दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

डॉ. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 12 **अंक** : 2 ❑ मार्च-अप्रैल, 2020

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो
डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची
डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका
डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना
डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:
448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com
©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

आत्मनिर्भरता संग ड्रैगन को सबक

आज दुनिया भर के सभी देश चीन से आए वायरस से जूझ रहे हैं, 91 लाख लोगों को संक्रमण हो चुका है और 4.72 लाख की मृत्यु हो गई है। यदि इसे चीन का षड्यंत्र न भी माना जाए तो भी यह तो सर्वविदित ही है कि चीन ने इसकी भयावहता को छुपाया और अपनी वैश्विक विमान सेवाओं को जारी रखते हुए जानबूझकर संक्रमित लोगों को दुनिया भर में पहुंचा दिया, जिससे यह संक्रमण फैल गया। इस संक्रमण ने दुनियाभर को अपनी चपेट में ले लिया। चीन के गैर जिम्मेदाराना व्यवहार से दुनिया भर में न केवल लोग स्वास्थ्य संकट से जूझ रहे हैं बल्कि एक भयंकर आर्थिक संकट का भी उन्हें सामना करना पड़ रहा है। पिछले 3 माह से ज्यादा, आर्थिक गतिविधियां लगभग पूरी तरह से ठप पड़ी हैं।

पिछले 20 वर्षों में जब से चीन डब्ल्यूटीओ का सदस्य बना है, उसने अपने सस्ते सामानों द्वारा दुनिया भर के बाजारों पर कब्जा कर लिया है। अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका, लैटिन अमेरिकी देश सभी चीन के माल पर आश्रित हैं। उनके उद्योग चीन के सस्ते माल से प्रतिस्पर्धा न कर पाने के कारण नष्ट हो चुके हैं। ऐसे में चीन अमेरिका के मुकाबले महाशक्ति के रूप में उभरा है। खरबों डॉलर के विदेशी मुद्रा भंडार के बलबूते उसने 67 देशों को मिलाकर एक बेल्ट रोड परियोजना की भी शुरुआत कर दी है, ताकि वो दुनिया के बड़े हिस्से के इंफ्रास्ट्रक्चर पर कब्जा कर सके और साथ ही साथ अधिकांश देशों को अपने जाल में फंसा पाए। श्रीलंका के हंबनटोटा बंदरगाह पर कब्जा चीन की उसी कुटिल नीति का एक उदाहरण है।

चीन ने इस बीच अपनी आर्थिक शक्ति के साथ अपनी सामरिक शक्ति को भी विस्तार दिया है। चीन का अभी तक का इतिहास विस्तार वाद का ही रहा है। 1962 में हमारी हजारों किलोमीटर भूमि पर अधिकार जमा लेना इसी नीति का हिस्सा था। वर्ष 2001 के बाद से उसने अपनी विस्तार वादी नीति को और तेजी से बढ़ाना शुरू किया है। हालांकि अमेरिका ने पहले से ही चीन की धोखेबाजीपूर्ण व्यापार नीति के खिलाफ युद्ध छेड़ रखा है और उसकी हुआवे जैसी कंपनियों को टेलीकॉम क्षेत्र से बाहर कर रहा है। कोरोना संकट के बाद तो लगभग हर देश चीन से किनारा कर रहा है। भारत समेत कई अन्य यूरोपीय देशों ने भी चीन की घटिया और नकली टेस्टकिट्स की खेपों को वापस भेज कर अपनी नाराजगी जताई है। जहां अमेरिका का चीन के खिलाफ व्यापार युद्ध बदस्तूर जारी है, उधर यूरोपीय समुदाय के देशों ने भी चीन पर विशेष आयात शुल्क लगाने का फैसला किया है। यह इसलिए किया गया है कि यूरोपीय समुदाय के देश यह मानते हैं कि चीन की सरकार अपने निर्यातों पर प्रोत्साहन राशि देकर उनको सस्ता कर यूरोप में भेजती है, जिसके कारण उनके उद्योगों को नुकसान हो रहा है। ऐसा लगता है कि चीन की बेल्ट रोड परियोजना भी खटाई में पड़ने जा रही है।

पहले 67 देश उस में भागीदार बन गए थे, लेकिन उनमें से कई देश तो पहले ही चीन के विस्तारवादी मंसूबों को समझकर कन्नी काटने लगे थे। गौरतलब है कि मलेशिया ने पहले से ही अपनी परियोजना को काफी छोटा कर दिया है। श्रीलंका के हंबनटोटा बंदरगाह को हथिया लेने के बाद श्रीलंका की जनता और सरकार चीन से नाराज है। कई मुल्कों पर कर्ज के बोझ को बढ़ा देने के कारण भी वहां के लोग और सरकारें चीन से नाराज हैं और उस परियोजना को आगे बढ़ाने के लिए उत्साहित नहीं हैं। मालदीव, मंगोलिया, मोंटेगरो, पाकिस्तान, कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, लाओस समेत कई देश चीन के कर्ज जाल में फंस चुके हैं। इटली सरीखे यूरोपीय देश भी जो अमरीका के विरोध के बावजूद, पहले बेल्ट रोड योजना में शरीक हो गए थे, चीन से आने वाले कामगारों से संपर्क के कारण जो कोरोना महामारी की चपेट में आ गए, अब चीन द्वारा इंफ्रास्ट्रक्चर बनाए जाने पर पुनर्विचार करने लगे हैं। अफ्रीकी देश, लेटिन अमेरिकी और ऑस्ट्रेलिया सभी अब चीन से खफा हैं। ऑस्ट्रेलिया के भारत के साथ बढ़ते रिश्तों को लेकर भी चीन आशंकित है। कहा जा सकता है कि भारत समेत पूरी दुनिया के देश चीन के माल का बहिष्कार कर रहे हैं। वहां की सरकारें चीन की कंपनियों से रिश्ते तोड़ रही हैं और चीन के माल को रोकने हेतु टैरिफ और गैर टैरिफ बाधाएं खड़ी कर रही हैं

और चीन के विस्तारवादी रवैये को देखते हुए चीन को सामरिक खतरे के रूप में देख रही हैं। ऐसी परिस्थिति को हम चीन का वैश्विक बहिष्कार भी कह सकते हैं।

चीन दुनिया भर में जनता के गुस्से, बहिष्कार और वहां की सरकारों के चीन के प्रति बढ़ते विरोध के चलते भारी चिंता में है। चीनी सरकार के मुखपत्र ग्लोबल टाइम्स के लेख इस और स्पष्ट इंगित कर रहे हैं। भारत में अभी भी कई लोग हैं जो यह मानते हैं कि चीन का बहिष्कार फलीभूत नहीं हो पाएगा, क्योंकि हमारी चीन पर अत्यधिक निर्भरता है। मोबाइल फोन, इलेक्ट्रॉनिक्स, दवा उद्योग के कच्चे माल, स्वास्थ्य उपकरण, केमिकल्स, धातुओं, खिलौनों, उद्योगों के लिए कलपुर्जों और कच्चे माल समेत हमारे देश की निर्भरता चीन पर इतनी अधिक है, चीन का बहिष्कार संभव नहीं और चीन के आयात पर रोक भारत की अर्थव्यवस्था के लिए नुकसानदेह हो सकती है। उनका यह भी कहना है कि चीन के माल का पूर्ण बहिष्कार कर भी दिया जाए तो भी उस से चीन को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा, क्योंकि उसके कुल निर्यात 2498 अरब डॉलर के मुकाबले भारत को उसके निर्यात मात्र 68.2 अरब डॉलर के ही हैं यानी मात्र 2.7 प्रतिशत।

हमें समझना होगा कि हमारे देश से चीन को कुल 50 अरब डॉलर का व्यापार अतिरेक प्राप्त होता है जो उसके कुल व्यापार का 11.6 प्रतिशत है। साथ ही नहीं भूलना चाहिए कि अमेरिका का चीन से व्यापार घाटा 360 अरब डॉलर का है जो चीन के व्यापार अतिरेक का 83 फिसदी से ज्यादा है। यदि भारत और अमेरिका दोनों मिलकर चीन के माल को अपने देशों से बाहर कर दें तो चीन का सारा व्यापार अतिरेक समाप्त हो जाएगा। जहां तक भारत की चीन के आयात पर निर्भरता का प्रश्न है भारत की क्षमता को कम आंकना सही नहीं है। आज से 15 साल पहले तक दवाओं का कच्चा माल 90 भारत में ही बनाया जाता था, लेकिन चीन द्वारा डंपिंग के कारण हमारी एपीआई इंडस्ट्री प्रभावित हुई। उसे पुनः स्थापित करने हेतु सरकार ने 3000 करोड रुपये के पैकेज की घोषणा पहले से ही कर दी है। चीन से आने वाले कई उत्पाद जीरो टेक्नोलॉजी के हैं, जिनका उत्पादन भारत में तुरंत शुरू किया जा सकता है। मात्र 2 महीनों में भारत पीपीई किट्स, टेस्टिंग किट्स समेत कई मामलों में आत्मनिर्भर हो चुका है और 50,000 से ज्यादा वेंटिलेटर भी भारत में तैयार हो चुके हैं। भारत की प्रतिभा और क्षमता पर किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। चीन के उत्पादों की कीमत के आधार पर हम उसके आयात को अनुमति दें। हमें देश में उद्योगों के पतन, बढ़ती बेरोजगारी और गरीबी पर भी विचार करना होगा।

संपादक

इस अंक में

प्राचीन धर्मग्रन्थों में पर्यावरण बोध–सुभाष कुमार 1

लोहिया के चौखम्भा की वर्तमान स्थिति–दीपेश कुमार 7

स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहारी महिलाएँ: पृष्ठभूमि और प्रभाव–डॉ० अमित कुमार 11

सांप्रदायिकता की त्रासद और यथार्थ अभिव्यक्ति: तमस–डॉ० शिप्रा शर्मा 16

बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन: एक समीक्षा–डॉ० उदय कुमार पासवान 22

बिहार में अगस्त क्रांति का स्वरूप: एक संक्षिप्त परिचय–मो० असलम; राकेश कुमार बैठा 25

अज्ञेय की कविताओं में प्रतीक-योजना–डॉ० प्रीति बैश्य 28

गुलज़ार और भूपेन हाजरिका के गीतों में प्रतिफलित प्रेम-भावना–पूजा बरुवा 36

हिन्दी भाषा की व्युत्पत्ति: एक अध्ययन–डॉ० रीतामणि वैश्य 42

रस-सिद्धांत एवं इसकी रसवादी हिन्दी आलोचना में स्थिति–डॉ० शैल कुमारी वर्मा 49

कॉलेज छात्राओं के स्वास्थ्य पर आहारीय आदतों का प्रभाव–डॉ० स्नेह लता 57

स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) का वर्णनात्मक अध्ययन–सर्जुन कुमार; डॉ० आशाराम 61

भारतीय समाज में बढ़ती समाजिक समस्याएं–अजय कुमार 69

तीन राष्ट्रीय समाचार पत्रों में आने वाले राजनितिक समाचारों का विश्लेषण-दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण व पंजाब केसरी समाचार पत्रों का एक तुलनात्मक अध्ययन–सुधीर कुमार 74

बुद्धकालीन भारत में सामाजिक घटक–अनुज कुमार 81

समकालीन हिंदी काव्य यात्रा 1975 से 1990–अरमान आनंद 85

भाजपा और राष्ट्रवाद का उभरता विमर्श : एक विश्लेषण–डॉ० पंकज कुमार राय; प्रीति रानी 93

संत गरीबदास का सामाजिक-चिन्तन–डॉ० सुनील कुमार 99

सिस्टर निवेदिता का भारतीय महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण–डॉ० रामजी सिंह 106

स्वामी विवेकानंद के राजनीतिक विचार–डॉ० मनोज कुमार सिंह 110

राजनीतिक यथार्थवाद और मैकियावली का राजनीतिक चिन्तन–डॉ० आलोक कुमार 113

भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति नरेन्द्र मोदी सरकार की प्रतिबद्धता: एक अवलोकन–डॉ० अमिताभ त्रिवेदी 118

गुटनिरपेक्षता में भारत की भूमिका: एक अवलोकन–डॉ० अनिल शर्मा 125

वर्त्तमान बिहार में महिला सशक्तिकरण विशेषत: पंचायती राज के सन्दर्भ में–आशुतोष सिंह जेलियाँग 129

सार्क और भारत–डॉ० अशोक कुमार 133
मातृ एवं शिशु के उत्तम स्वास्थ्य में यूनिसेफ का कार्य व योगदान–डॉ० कुमारी सुनीता 140
अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत की रणनीति–डॉ० नमिता कुमारी 144
वैदिक शिक्षा में गुरू-शिष्य परम्परा–डॉ० पूर्णनाथ कुमार 150
बंधनों से मुक्त होती स्त्री और उसका संघर्ष–डॉ० संजय कुमार सिंह 156
ग्रामीण से नगरीय प्रवास का नियन्त्रण तथा ग्रामीण सेवा केन्द्र: पटना जिला के एक गाँव का एक सूक्ष्मस्तरीय अध्ययन–डॉ० विजय मिस्त्री 161
बिहार के दलितों का नक्सलवादी आन्दोलन को समर्थन एवं सक्रिय सहयोग–डॉ० पवन कुमार 167
इक्कीसवीं सदी में महिला सशक्तिकरण–सुनीता कुमारी 172
मिथिलांचल की रामभक्ति-परम्परा में मोदलता की कृतियों का मूल्यांकन–डॉ० दिलीप कुमार झा 176
भारत में गठबंधन राजनीति: समस्या एवं समाधान–डॉ० सतीश कुमार वर्मा 180
बुरी आदत और लत–डॉ० राम बिनोद 185
छायावाद का राष्ट्रीय स्वर–भास्कर मिश्र 188
राधाकृष्ण : एक प्रसिद्ध कथाकार–प्रमोद कुमार 192
सामाजिक सुरक्षा एवं समाज कल्याण की अवधारणा–डॉ० संजीव कुमार 196
जिजीविषा और संघर्ष की 'कर्मभूमि'–शीतांशु 199
लोकप्रिय साहित्य में 'उपन्यास' का बदलता परिवेश एवं भाषा–डॉ० काना राम मीना 203
सांस्कृतिक विशेषीकरण के संदर्भ में जनजातियों का वर्गीकरण: एक विश्लेषण–डॉ० विकास कुमार 210
लैंगिक न्याय का सामाजिक परिदृश्य–डॉ० स्मिता 214
नवीन राष्ट्रीयता के अग्रदूत स्वामी दयानंद सरस्वती–डॉ० गुड्डी कुमारी 219
प्राचीन काल में बाल विवाह: एक ऐतिहासिक अवलोकन–डॉ० पूर्णिमा कुमारी 223
वैश्वीकरण और हिन्दी भाषा: विकास व चुनौतियाँ–डॉ० सुजीत कुमार 227
बावड़ियाँ निर्माण की रूपरेखा–बाबू लाल 232
प्रेस और स्वतंत्रता आन्दोलन–डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह 236
'मृदा प्रदूषण के प्रभाव एवं संरक्षण का भौगोलिक अध्ययन'–महेश चन्द मीना 241
शोध क्षेत्र में कम्प्युटर का महत्त्व एवं प्रयोग–दिलीपभाई जयसिंग वसावा 247
थेरीगाथा में वर्णित महिलाओं की स्थिति: एक विश्लेषण–अभिनव अर्चना 252
अशोक: एक अनोखा सम्राट युद्ध से शांति की ओर.....–डॉ० दीपक कुमार 259
रीतिकाव्य में नारी चित्रण का सामाजिक पक्ष–खेमराज मेघवाल 266
कुपोषण की समस्या का विशुध अध्ययन–डॉ० नीलम कुमारी 271
राँची शहर में जनजातियों के आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों पर प्रवास का प्रभाव–भुवनेश्वर कुमार मंडल 275
पर्यावरणीय चिन्तन: अतीत एवं वर्तमान–प्रो० रेखा सक्सेना; डॉ० ऋतेश भारद्वाज 287

गांधी, लोहिया और उपाध्याय का भारत–संजय कुमार सहनी 292
केवल शोक-गीति नहीं है 'सरोज स्मृति'–डॉ० हरीश अरोड़ा 296
बिहार की स्वतन्त्रता में बक्सर प्रतिरोध का प्रभाव–आशा शर्मा 301
हिमाचल प्रदेश के विशेष संदर्भ में पर्यावरणीय-पर्यटन की अवधारणा–ईरा भारद्वाज 308
भारतीय किसान के जीवन की यथार्थता–सपना रानी 313
वाल्मीकि रामायणकालीन समाज और नृत्यकला–मनीष कुमार 316
ममता कालिया कृत उपन्यास 'प्रेम कहानी': एक मूल्यांकन–डॉ० लवलीन कौर; डॉ० सुनील कुमार 320
ममता कालिया के उपन्यास में नारी चेतना–मोनिका कुमारी 324
अलवर ज़िले में बागवानी कृषि की सम्भावनाएँ, चुनौतियाँ एवं उपलब्धियाँ–योगेश कुमार; डॉ० विजय कुमार वर्मा 330
किशोरियों में प्रजनन स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान एवं यौन सम्बन्धी मिथकों का अध्ययन–अर्पणा सिन्हा 337
सोनारगढ़ (जैसलमेर) दुर्ग का स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था का विश्लेषणात्मक अध्ययन–चोथूराम 343
वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में शान्ति शिक्षा की पाठ्यचर्या–अश्विनी कुमार पाठक; प्रोफेसर एन०पी०भोक्ता 349
नाट्यानुभूति और रंगानुभूति का अंतर्सम्बन्ध–डॉ० प्रियंका मिश्र 355
पंचायती राज सशक्तिकरण और सुशासन–संतोष कुमार 358
मलिन बस्तियों की स्वास्थ्य-संबंधी समस्यायें: बहादुरपुर, पटना के परिप्रेक्ष्य में एक भौगोलिक अध्ययन–निरूपमा सुरभि लकड़ा 363
भारत में महिलाओं की प्रस्थिति : एक ऐतिहासिक अवलोकन–प्रो० (डॉ०) रामानन्द राम 372
नीमराना में ठोस अपशिष्टों के प्रभाव एवं प्रबंधन तकनीक–अरविन्द शुक्ला; डॉ खेमचन्द शर्मा 377
माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० रतन कुमार भारद्वाज; प्रभुदयाल 382
भारत रुस सम्बन्ध: 21वीं शताब्दी के सन्दर्भ में राजनीतिक सम्बन्धों का एक अध्ययन–अमित कुमार 387
सन् अठारह सौ सन्तावन और कुँवर सिंह–अरविन्द कुमार सिंह; डॉ० ओम प्रकाश राय 391
बिहार में असहयोग आन्दोलन और राजेन्द्र प्रसाद की भूमिका: एक अध्ययन; अखिलेश कुमार 396
भारतीय राष्ट्रवाद पर औपनिवेशिक इतिहासलेखन–बिपिन कुमार 402
कुटीर उद्योगों के विकास में बिहार के महिलाओं की भूमिका–चन्द्र किशोर 407
बौद्ध साहित्य में नारी का स्थान–डॉ० रिंकु कुमारी 412
मैथिली भाषाक भौगोलिक रूपरेखा–डॉ० रीता कुमारी 416
भारत में बाल-श्रम और बाल श्रम अधिनियम: एक विश्लेषणात्मक अधिनियम–डॉ० साधना कुमारी 419
गुप्त काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति–डॉ० संजय कुमार 423
गुरुग्राम जिले की लैंगिक विषमताओं का भौगोलिक अध्ययन–इन्दु 426
चिंतकों की दृष्टि में आहार की समस्यायें–डॉ० सुनीला कुमारी 432

दृष्टिकोण

वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्यिक अनुवाद की व्यावहारिक जटिलताएँ–जितेन्द्र कुमार गिरि 435

कोयला उत्खनन एवं ग्रामीण सामुदाय: समाजिक विकास का अध्ययन (छ.ग. के बिलासपुर सभांग के विशेष सदर्भ में)–सुनील कुमार–श्रीमति डॉ० ऋचा यादव

औपनिवेशिक काल में बिहार के किसानों की विभिन्न समस्याएँ एवं आन्दोलन: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–मो० शाहनवाज आलम 449

मौर्यकालीन समाज में गुलाम वर्गों के जीवन स्तर में आये परिवर्त्तन का समाज पर प्रभाव–डॉ० मनीष कुमार 454

कृष्णा सोबती द्वारा रचित ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त कारक बोधक परसर्गों का विवेचन–देवानन्द सिंह; डॉ० जीत सिंह 457

परिस्थितिकी पर्यटन का भारत के सामाजिक पर्यावरण पर प्रभाव–सीमा खाड़िया 464

शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के कक्षा 11वीं मे अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन–सुनीता अग्रवाल; डॉ० योगेश कुमार सिंह 471

राग दरबारी का यथार्थ और व्यंग्य की सार्थकता–डॉ० नीलू अग्रवाल 476

'मैला आँचल' उपन्यास में राजनीतिक यथार्थ: एक अध्ययन–जैनेन्द्र चौहान 480

संन्यासवाद: शास्त्रीय परम्परा और व्यवहार के सन्दर्भ में–डॉ० सरोज कुमार सिंह 483

'महाकवि माघ एवं शिशुपालवधम् का वैशिष्ट'–डॉ० मधु बाला मीना 488

आधुनिक भारतीय शिक्षा और स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन–डॉ० अनिल कुमार तेवतिया 495

विपिन किशोर सिन्हा के उपन्यास 'क्या खोया क्या पाया' में मूल्य-संक्रमण–विभा रीन; डॉ० सुनील कुमार 499

भारतीय लोकतंत्र एवं नई शिक्षा नीति 2020: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० विजय शंकर विक्रम 504

महिला कुपोषण में महिला स्वयं जिम्मेवार: एक अध्ययन–खुशबू कुमारी 512

असम में भक्ति साहित्य और श्रीमन्त शंकर देव–डॉ० विश्वजीत कुमार मिश्र 518

अद्वैत वेदान्त एवं सफ़ी मत: सापेक्षी मूल्यांकन–डॉ० कुमार वरुण 523

भारत में कृषि श्रमिकों की परिस्थिति–दिपेन्द्र सिंह1 529

महाकाव्य परम्परा और श्रीहर्ष : एक समीक्षण–प्रो० प्रसून दत्त सिंह 536

परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में भारत-बांग्लादेश सहयोग–दीपा कुमारी 539

राजभाषा हिन्दी का कार्यान्वयन–डॉ० गीता सहाय 542

भारतीय संस्कृति और श्रीरामकथामृत की सांस्कृतिक परम्परा–कुमारी लुसी 548

युवा और महिला सशक्तिकरण में शिक्षक शिक्षा की भूमिका–श्री सच्चिदानन्द पाठक 550

भारतीय कृषि क्षेत्र में व्यापार उदारीकरण का प्रभाव–सोनी कुमारी 557

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में नारी के विविध रूप–डॉ० नारायण 564

दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण की प्रासंगिकता–मंदीप कुमार चौरसिया 573

तुलसी की रामकथा के नवीन आयाम–डॉ० सुनीता चौहान 578

प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूप–डॉ० प्रदीप कुमार सिंह 582

हिंदी उपन्यासों में स्त्री विमर्श–डॉ० कोल्हे डी०बी० 586
पंचायती राज व्यवस्था का ऐतिहासिक दृष्टिकोण–स्वीटी रानी 590
होड़ोपैथी: झारखंड के आदिवासियों की पारंपरिक चिकित्सा व्यवस्था–ममता कुमारी 593
देवकवि–डॉ० सी०एल० सोनकर 598
अलवर ज़िले में मूलभूत सुविधाओं का विकास का मूल्यांकन–सत्यदेव; डॉ० विजय कुमार वर्मा 608
महात्मा गांधी का स्वच्छता अभियान–डॉ० सुनिता कुमारी 615
अलवर मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण का भौगोलिक अध्ययन–प्रतिभा बैरवा; डॉ० महेन्द्र कुमार जाजोरिया 619
'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में अभिव्यक्त लैंगिक असमानता: एक विश्लेषण–डॉ० उमा देवी 624
शिक्षा का आन्तरिक और बाह्य स्वरूप (संस्कृति और सभ्यता के संदर्भ में शिक्षा)–डॉ० रामावतार 629
भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में सामजिक समस्याओं का अवलोकन–रुमैसा नजीर 634
शिक्षा, समाज एवं संस्कृति–डॉ० अरूण कुमार पंडित 640
21वीं सदी में भारत और अमेरिका के संबंध–अरबिंद कुमार 642
सिवान जिला के अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान का प्रभाव:
एक भौगोलिक अध्ययन–रमेश कुमार रजक 645
बाजार की अवधारणा के क्षेत्र में हिंदी और प्रयोजनमूलक हिन्दी की आश्यकता और अनुप्रयोग–डॉ० प्रशांत प्रसाद गुप्ता 653
डॉ० बी० आर० अम्बेडकर के जाति प्रथा का उन्मूलन–डॉ० अंशुल पाण्डेय 658
स्त्री का जीवन संघर्ष–डॉ० भगवती देवी 661
भारत के आजादी के पश्चात से वर्तमान तक चीन के साथ सम्बन्ध–महेश कुमार पिन्टू 666
ममता कालिया की बोलने वाली औरतों में : शादीशुदा नारी–डॉ० सिजू पी वी 671
भारतीय जीवन बीमा निगम के समाजोमुख्य कार्यों का विश्लेषाणात्मक अध्ययन
–डॉ० नवीन अग्रवाल; डॉ० अजय कुमार उपाध्याय 674
नवादा जिला के फसल प्रतिरूप पर आधुनिक कृषि पद्धति का प्रभाव: एक भौगोलिक विश्लेषण–डॉ० अमर कुमार 680
मिश्रित विचारधारा के पुंज : डॉ. सत्येन्द्र नन्दा–सोमा देवी 687
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और इतिहास लेखन : एक समग्र दृष्टिकोण–डॉ० चन्दन कुमार 695
मन्नू भंडारी के उपन्यासों में नारी का संघर्ष–डॉ० मिनाक्षी 701
गांधी का चंपारण सत्याग्रह एवं पंडित राजकुमार शुक्ल–डॉ० संजय कुमार 705
भूमि उपयोग का वर्गीकरण तथा प्रतिरूप: भागलपुर जिला के संदर्भ में–रवीन्द्र कुमार प्रकाश 711
भरतपुर ज़िले में औषधीय पौधों का चिकित्सा भौगोलिक अध्ययन–देवेन्द्र कुमार शर्मा 716
माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों का
तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० बृजेश चन्द्र त्रिपाठी 727
प्राचीन भारत में पशुपालन-विधि एवं उपसंहार : एक अवलोकन–डॉ० केशव कुमार रंजन 736
वाजपेयी नीति की प्रासंगिकता–डॉ० रोहित कुमार 743

संवैधानिक विकास के प्रक्रिया के दौरान बैवेल योजना एवं कैबिनेट मिशन के महत्व का एक अवलोकन
–डॉ० सुधांशु कुमार 748
अनुच्छेद 370 और 35-ए की समाप्ति का निहितार्थ–डॉ० अबिनाश प्रताप सिंह 752
भारतीय दार्शनिकों का शिक्षा में योगदान–डॉ० मधु सिंह 758
महात्मा गाँधी और राष्ट्र: एक अध्ययन–डॉ० प्रियंका सिंह 762
व्यावसायिक शिक्षा के प्रति लड़कियों के अभिभावकों का दृष्टिकोण–डॉ० शादाब नवाज़ 768
आचार्य श्री विद्यासागरजी की शैक्षिक संकल्पना–श्रीमती प्रेरणा जैन; डॉ० दीपा जैन 772
महिलाओं में कैल्शियम की कमी की समस्या एक अध्ययन–चेतना; डॉ० चन्द्रा कर्ण 779
धर्म आधारित लैंगिक विभेद के प्राचीनतम ऐतिहासिक एवं पारंपरिक परिप्रेक्ष्य–आशुतोष पाण्डेय 782
विश्व शांति के परिप्रेक्ष्य में गाँधी जी का धर्म एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी विचार–डॉ० अमरजीत कुमार 786
शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 का प्रभाव (ऑनलाइन शिक्षा के विशेष संदर्भ में)–राकेश शर्मा 792
वैश्विक महामारी कोविड-19 से उपजे संकट से निपटने में गाँवों की भूमिका–देवेन्द्र कुमार सिंह 798
भारत में आदिवासी वन अधिकारों का एक समाजशास्त्रीय विश्लेशण–दीपक कुमार खरवार 801
भारतीय युवाओं में विवाह पूर्व यौनिक व्यवहार : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–सुबोध कान्त 808
समकालीन भ्रष्टाचार की यथार्थ की व्यंग्यपरक अभिव्यक्ति: नाट्य साहित्य के संदर्भ में–गुरमीत सिंह 816
महिलाओं में सशक्तिकरण : एक प्रभावशाली परिवर्तन–डॉ० निखिल कुमार 819
भारतीय समाज में प्रौढ़ कुमारियाँ और अकेली स्त्रियाँ–डॉ० विकास कुमार 822
इतिहास-लेखन में लैंगिक विमर्श : एक अध्ययन–डॉ० रागिनी दीप 826
प्रो० हरिमोहनझाक मैथिली साहित्यमे व्याप्त दार्शनिक विचार–डॉ० रश्मि कुमारी 831
गाँधी और सत्याग्रह : एक अध्ययन–बिपिन कुमार 836
भारत व नेपाल के बीच सामारिक सम्बन्ध–डॉ० मंजूषा रानी 839
गाँधीजी का महिला दर्शन : एक विश्लेषण–डॉ० पूनम डागर 849
ब्रिटिश कालीन भारत में अर्थ नीति का लेखा जोखा–प्रज्ञा शिखा 854
भारतीय चेतना में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद: एक अध्ययन–दिवाकर पासवान 860
तिरहुत प्रमण्डल में जनसंख्या वितरण का भौगोलिक अध्ययन–डॉ० चाँदनी चावला 865
समकालीन हिन्दी कहानी में मानवीय संवेदना–डॉ० विनय कुमार 875
अपने लिंग के संबंध में बिहार के हाईस्कूल के छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन–अदनान अहमद 878
महर्षि अरविन्द घोष के अनुसार नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय शिक्षा की उपादेयता–डॉ० ममता सक्टा; डॉ० विनय कुमार 881
एचआईवी/एड्स और गर्भावस्था–डॉ० अरूणा कुमारी 886
भारत छोड़ो आन्दोलन में शाहाबाद आर्य समाज का योगदान–डॉ० बिनोद कुमार 889
गुटनिरपेक्षता का वर्तमान समय में प्रासंगिता–नरेन्द्र ठाकुर 895

गुरुमुखी लिपि एवं ब्रजभाषा में रचित पंजाब का अल्पज्ञात कृष्ण काव्य (भाई गुरदास पुस्तकालय में सुरक्षित पांडुलिपियों का संदर्भ)–डॉ. सुनीता शर्मा 900
भारत-बांग्लादेश का मित्रवत संबंध एवं व्यापार: एक राजनीतिक विश्लेषण–अवधेश कुमार सिंह 911
पंडित जवाहर लाल नेहरु : आधुनिक भारत के निर्माता–पल्लवी 915
सारण जिले के कृषि उत्पाद एवं भंडारण की व्यवस्था का अध्ययन–डॉ० पंकज कुमार 918
अरावली में अवैध खनन की समस्या का भौगोलिक अध्ययन (भरतपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में) –चन्द्र शेखर; डॉ० गायत्री यादव 921
आधुनिक भारत में औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि : एक अध्ययन–डॉ. अनामिका ब्रजवंशी 926
भारत में क्रांतिकारी आंदोलन एवं उसकी प्रमुख गतिविधियां (बिहार के विशेष संदर्भ में)–डॉ० अनंता कुमारी 931
राष्ट्रीय आंदोलन एवं प्रजामंडल आंदोलन का अन्तर्सम्बन्ध: प्रगति, प्रभाव व सीमाएँ–डॉ० अरुण कुमार निराला 936
शैक्षणिक विकास–डॉ० राजीव रंजन वर्मा 942
आधुनिक भारत में आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में औपनिवेशिक पहल: एक अध्ययन–दिलीप कुमार 948
भारत में दलित आंदोलन एवं पेरियार की भूमिका : एक अध्ययन–डॉ० प्रज्ञा कुमारी 953
भारत में औपनिवेशिक शिक्षा के विमर्श बिन्दु, स्वरूप एवं नीतियाँ : एक अध्ययन–डॉ० संतोष कुमार 958
औपनिवेशिक मनोवृतियों के विरूद्ध भारतीय वैज्ञानिक समुदाय का संघर्ष, तकनीक व सफलताएं : एक अध्ययन–डॉ० वेदवती 964
श्री अरविन्द का विकास सिद्धान्त–डॉ० वीरेन्द्र कुमार सिंह 969
श्रीमद्भागवत गीता में ज्ञान मार्ग–डॉ० अजय कुमार सिंह 971
धर्म एवं धर्म दर्शन–डॉ० रामाशीष मालाकर 973
महिला उद्यमिता : समस्या समाधान एवं विकास की संभावनाएँ–डॉ० मणि भूषण कुमार 975
भारत में एकता–डॉ० अर्चना कुमारी 982
बिहार में महिला सशक्तीकरण का स्वरूप एवं महिला आरक्षण : चुनौतियां एवं संभावनाएं–डॉ० शशि रंजन कुमार 985
बिहार के जिलों में स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं में स्थानिक असमानता–अल्पना कुमारी 993
वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्द्धा और भारत–मुकेश कुमार 1004
वर्त्तमान परिवेश में कोरोना आपदा या अवसर : एक अध्ययन–डॉ० प्रगति 1010
प्रारंभिक भारतीय इतिहास में जेंडर संबंध और राष्ट्रवादी इतिहास लेखन–प्रभात कुमार 1012
रघुवंश महाकाव्य में प्रयुक्त उपमालंकार का वैषिश्ट्य–डॉ० दीनबन्धु मॉझी 1016
डॉक्टर लोहिया के धर्म और राजनीति : एक सिंहावलोकन–डॉ० रणधीर कुमार राणा 1018
''दू पत्र'' उपन्यास में भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य सांस्कृतिक विवेचन–प्रीति कुमारी 1023
कार्ल मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धांत एवं इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन–डॉ० महेन्द्र पासवान 1026
मत्स्य उद्योग का वरदान–उमेश कुमार सिंह 1033
जी.एस.टी. (GST) या वस्तु एवं सेवा–प्रोफेसर (डॉ.) संजय कुमार झा 1036

परंपरागत भारतीय बैंकिंग व्यवस्था–डॉ० कुमार सुधांशु 1041
समकालीन भारत में सेकुलर/लोकतांत्रिक और बहुलतावादी राष्ट्रवाद : बदलता विमर्श–अमृता कुमारी 1045
कल्हण का जीवनवृत एवं उनकी रचनाएँ–संध्या कुमारी 1051
मुगलकालीन गाँवों में सामुदायिक जीवन–डॉ० मोहम्मद तसद्दुक 1056
मुगलकालीन (1658 ई.-1719 ई.) भारत में आर्थिक स्त्रोतों का विवेचनात्मक अध्ययन–डॉ० सुरेन्द्र कुमार सिंह 1060
हिन्दी की चिंतन परंपरा में काव्य लक्षण–डॉ० संजीव कुमार 1063
भारत में राजनीतिक सहभागिता एवं महिलाएँ : एक अध्ययन–विकास कुमार 1066
धर्म और मानवीय मूल्य–डॉ० नलिनी श्रीवास्तव 1072
अवध की वीरांगना : बेगम हजरत महल–यासमीन खानम 1075
भारतीय भाषा दर्शन में स्फोटवाद की अवधारणा–डॉ० नागेन्द्र तिवारी 1079
प्राचीन भारत की राजनीति पर शुक्रनीति का प्रभाव–डॉ० सुनील कुमार 1083
काँग्रेस, गाँधी और किसानों के मुद्दे (1912-1922) : एक अध्ययन–डॉ० नेहा कुमारी 1086
गुप्तकाल में समाजिक परिवर्तन के आर्थिक आधार–डॉ० रेखा चौधरी 1091
कार्यरत महिलाओं के कार्यकारी संबंध, पारिवारिक सामंजस्य, असंगतियाँ तथा उनके कारण और परिणाम–डॉ० रीना कुमारी 1095
दिवाकर के कथा साहित्य में युगबोध–डॉ० बलराम कुमार 1099
भूमंडलीकरण की प्रवृत्तियाँ और और हिन्दी उपन्यास–विभा कुमारी 1103
गाँधीवाद : वैश्विक विकास का राजमार्ग–चंदा कुमारी 1106
गोदान की रचना-दृष्टि–चन्दीर पासवान 1110
भारत की राजनीति में अंतर्निहित भ्रष्टाचार के विविध आयाम–डॉ० नीतू गौरव 1114
अज्ञेय के कथा-साहित्य में प्रेम की अभिव्यंजना–डॉ० अनिल कुमार 1117
स्कूल के छात्र-छात्राओं के स्कूल छात्रवृत्ति के नेतृत्व–सारिका शर्मा 1122
स्वाधीनता-संग्राम में प्रेस की भूमिका–डॉ० सोनी कुमारी 1125
लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में लोक-विश्वासों की व्यंजना–डॉ० उमेश कुमार शर्मा 1128
सृजन के धरातल पर कीर्तिनारायण मिश्र का मैथिली गद्य-साहित्य–नीतु कुमारी 1132
निराला का साहित्य एवं कला-संबंधी दृष्टिकोण–डॉ० शर्मिला कुमारी 1138
गुलाम भारत के धार्मिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि–डॉ० प्रज्ञा कुमारी 1141
नक्सलवाद की उत्पत्ति एवं विकास: बिहार के परिप्रेक्ष्य में–डॉ० प्रदीप कुमार 1146
धर्म और साम्प्रदायिकता के संबंध में प्रेमचन्द की भूमिका–डॉ० सुनील कुमार 1151
गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य मेंशृंगार-तत्त्व–डॉ० अजीत कुमार 1158
कविवर नेपाली के गीतों में उनका प्रकृति प्रेम–डॉ० आर्य सिन्धु 1161
लिली रेक रचना दृष्टि : भाषा एवं शिल्प–कुमकुम कुमारी 1166

ललित-साहित्यक मूल कथ्य : भाषा एवं शिल्प–डॉ० गोपाल कुमार 1170
चन्द्रगुप्त मौर्य का इतिहास–बासुदेव शाह 1176
उपनिवेशवाद का अर्थ और इतिहास–डॉ० मंजुली कुमारी 1180
हिन्दी के संस्मरण साहित्य में दिनकर का अवदान–डॉ० महेश कुमार 1185
प्रसाद की बिम्ब परक कविताओं में सौंदर्य: एक अध्ययन–डॉ० उपेन्द्र प्रसाद 1188
संस्कृत साहित्य में पर्यावरण का महत्व–डॉ० इंदु कुमारी 1191
वृद्धावस्था की समस्याएं और देखभाल की जरूरत–डॉ० प्रज्ञा कुमारी 1197
भगवान महावीर का साधना काल–डॉ० मनोज कुमार 1201
तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार–अमित कुमार पाण्डेय 1206
भूमंडलीकरण के दौर में भाषा का संदर्भ : एक अध्ययन–डॉ० सुधीर कुमार 1209
बिहार में भारत छोड़ों आंदोलन की प्रकृति : एक अध्ययन–डॉ० अंगुरी बेगम 1213
वज्जिकांचल की धार्मिक अवस्था : लोक देवता एवं स्थानीय संस्कृति के विशेष संदर्भ में–डॉ० संतोष कुमार 1218
ध्रुवपद और अमता घराना–डॉ० कामेश्वर कुमार 1223
मानव जीवन में सांगीतिक उपचार–डॉ० चन्देश्वर प्रसाद कुशवाहा 1227
संगीत की परम्परा–डॉ० सुरेन्द्र कुमार राम 1230
जयपुर के पर्यटन स्थलों का भौगोलिक अध्ययन–शोभा शर्मा 1233
'हिन्द स्वराज' में वर्णित विचारों का आज के भारत के लिए प्रासंगिकता का सवाल–डॉ० शैलेन्द्र कुमार सिंह 1240
कवि की छाया प्रतिच्छाया–डॉ० मानस कुमार 1249
आत्महत्या का मनोविकार : कारण एवं निदान–डॉ० अस्मिता सिंह 1253
भारत छोड़ों आंदोलन में आजाद दस्ता की भूमिका : एक अध्ययन–डॉ० संजीव कुमार 1258
नागार्जुन की कविता में सौन्दर्य बोध–डॉ० सीमा कुमारी झा 1263
अमरजीक व्यंग्य स्तम्भ सबमे राजनीतिक ओ सामाजिक विवेचन–डॉ० शीतल कुमारी 1267
हृदयेश के उपन्यासों में परिवेशगत यथार्थ–लक्ष्मण कुमार पंकज 1271
21वीं सदी की मीडिया और हमारा समाज–नेहा कुमारी 1274
नागार्जुन का वृद्ध विषयक दृष्टिकोण–डॉ० ऋचा कुमारी 1277
उदय प्रकाश की कहानियों का सामाजिक परदृश्य–सरस्वती पाण्डेय 1281
कठगुलाब : स्त्री-जीवन का संघर्षगाथा–सुशील कुमार मंडल 1284
विद्यापति-पदावली मेंश्रृंगारिकता–डॉ० शोभा कुमारी 1288
आवां : स्त्री-पीड़ा की अभिव्यक्ति–रूपाली यादव 1294
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम् : एक समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० कुमारी निश्चय 1300
आधुनिक भारत में दलितोत्थान आंदोलन–डॉ० रेणु कुमारी 1303
प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति: एक अवलोकन–डॉ० सुजीत कुमार सिन्हा 1305

पूर्णिया जिले में बीस सूत्री कार्यक्रम कार्यान्वयन में सरकार की नीति एवं परिणाम–मो० नौशाद 1311
बिहार के आदिवासी–मिन्टु कुमारी 1314
ग़ज़ल का अभिप्राय एवं परिभाषा–रेशमा मोहन काम्बले 1317
बिहार में उभरता हुआ राष्ट्रवाद एवं पत्रकारिता–डॉ० मुकुल कुमार शर्मा 1321
मध्यकालीन मिथिला में शैक्षणिक विकास–डॉ० पप्पु कुमार 1324
भारत में सूचना प्रौद्योगिकी–डॉ० सुनील कुमार 1329
जीवन के अनुभवों से विश्व के श्रेष्ठतम साहित्यकार बनने का सफर- मैक्सिम गोर्की–अंकिता कुमारी 1332
फैजाबाद जनपद में ग्रामीण औद्योगिक विकास की संभावनाएँ–डॉ० कृष्ण कुमार सिंह 1336
सिद्ध एवं नाथ साहित्य–भोला प्रसाद यादव 1340
कौटिल्य के विचारों की प्रांसगिकता–शिव कुमार सिंह 1345
1857 : प्रारंभिक भारतीय विमर्श का एक तुलनात्मक अध्ययन (1944-52 ई.)–डॉ० अमृता कुमारी 1348
प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास लेखन : एक मूल्यांकन–डॉ० अनिल कुमार सिन्हा 1352
आधुनिक मिथिला में कृषि की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–गोविन्द कुमार झा 1358
भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन में अनीश्वरवादी मत का आध्यात्मिक विवेचना–डॉ० मनोज कुमार 1361
श्री गुरु नानक वाणी में जीवन मूल्य–डॉ० हरबंस सिंह 1367
सहरिया जनजाति की धार्मिक मान्यताएँ–प्रियंका सिन्दल 1371
सशक्त जन गीतकार डॉ. वशिष्ठ अनूप–डॉ० मनीषा मिश्रा 1374
श्री लाल शुक्ल के साहित्य में राजनीतिक मूल्य–कृष्ण कुमार; डॉ० निरुपमा हर्षवर्धन 1379
नीतीश कुमार की राजनीतिक एवं मुख्य चुनौतियां : एक विमर्श–डॉ० रुपक कुमार 1384
शिवमूर्ति की कहानी तिरिया चरित्तर में नारी संघर्ष की दासताँ–शिवाली शर्मा 1388
स्त्री साहित्य की अवधारणा–डॉ० मीनाक्षी 1393
भारतीय महिलाओं की दशा एवं दिशा : एक ऐतिहासिक विश्लेषण एवं चिन्तन–डॉ० रणधीर कुमार गुप्ता 1397
शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम की प्रासंगिकता का अध्ययन–विरेन्द्र कुमार सिंह 1400
नेपाल-भारत संबंध का भारत के आंतरिक सुरक्षा पर प्रभाव: एक अध्ययन–डॉ० विनीता भारद्वाज 1407
बिहार में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में जीविका का योगदान–मोनिका कुमारी 1412
विजय जोशी के कथा साहित्य में बाल मनोवैज्ञानिक विश्लेशण–श्रीमती सुमन डागर; डॉ० गीता सक्सेना 1417
भारतेन्दु युगीन साहित्यिक पत्रकारिता का वैचारिक स्वरूप–डॉ० रामचरण पांडेय 1421
झारखंड के आदिवासियों का आर्थिक जीवन और गाँधी–डॉ० दीक्षा कुमारी 1425
हिन्दी आलोचना और डॉ० नामवर सिंह–डॉ० कीर्ति माहेश्वरी 1430
विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार का उनके आवासीय वातावरण, स्थानीयता तथा लिंग-भेद के संदर्भ में अध्ययन–डॉ० श्याम सुन्दर कुशवाहा; तनुज कुमार 1435

शारीरिक शिक्षा का दर्शन–डॉ० सितेश कुमार 1441
हिन्दी आदिवासी कविता में प्रतिरोध का स्वर–डॉ० हनुमान सहाय मीना 1446
कुशीनगर जनपद में जनसंख्या घनत्व प्रकारात्मकता–डॉ० मंकेश्वर दत्त राय 1450
बदलती सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था में तीसरी दुनिया–डॉ० राम बिनोद रे 1454
सुमित्रानंदन पन्त पर गाँधी का प्रभाव–गुड्डू कुमार 1460
स्त्री अस्मिता, मीडिया और बाजार–डॉ० रविंद्र सिंह 1464
दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट एवं एम.एस.एम.ई. द्वारा संचालित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का प्रशिक्षणार्थियों की व्यावसायिक सफलता के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन–प्रियंका कुमारी; प्रो० गुरप्यारी सतसंगी 1469
बिहार की प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण तथा पर्यटन की संभावनाएँ–प्रेमलता कुमारी 1474
ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति–नूतन गुप्ता 1479
महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में नारियों की उच्च आर्थिक स्थिति–डॉ० वीरेंद्र प्रसाद ''भास्कर'' 1483
द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी विदेश नीति : एक विश्लेषण–डॉ० चरण दास 1487
पाणिनि युग में प्रशासनिक क्षेत्र का महत्व–डॉ० कहकशाँ प्रवीण 1491
इन्द्रधनुषी क्रान्ति और भारत का कृषि विकास–शम्मी कुमारी 1498
'भारत छोड़ो आंदोलन का भारत की स्वतंत्रता में भूमिका'–उषा कुमारी 1501
कुछ अनछुए पक्ष : विक्रमशिला महाविहार–डॉ० नूतन कुमारी 1503
सत्य तत्व के संवाहक : बाबा जगजीवन दास शोध सारतत्व–कंचन गुप्ता 1509
व्यक्ति व समाज की कालात्मक अभिव्यक्ति : साहित्य–डॉ० धीरज कुमार 1513
कार्य संतुष्टि की अवधारणा में फ्रेडरिक हर्जबर्ग का योगदान–डॉ० धनंजय कुमार 1518
जलवायु परिवर्तन के परिवेश में 'जल-जीवन-हरियाली' अभियान की प्रासंगिकता–अमिता चन्दन 1523
समकालीन कहानीकार- उदय प्रकाश–रेखा; डॉ० अनिरुद्धन 1528
थर्डजेंडर कानून के दायरे में (वैधानिक प्रावधान)–वंदना शर्मा 1530
मिथिला क्षेत्र का उदय, प्रसार तथा परिवेश–डॉ० डिम्पल कुमारी 1534
राधिकारमण प्रसाद सिंह के नाटकों में सामाजिक चेतना–डॉ० ज्योति कुमारी 1537
कार्ल मार्क्स : मानव मुक्ति का महत्वपूर्ण हथियार–डॉ० पंकज कुमार 1540
कोरोनाकाल में महिलाओं की भूमिका एक आर्थिक एवं सामाजिक अध्ययन–डॉ० सीमा कुमारी 1548
भारत-चीन सीमा विवाद : डोकलाम विवाद एवं पैंगोंग त्सो झील–अरुण मेघवाल 1550
सेकुलरवाद के भारतीय स्रोत–डॉ० आलोक कुमार श्रीवास्तव 1553
राष्ट्र नायक महाराणा प्रताप के प्रेरणादायक कलात्मक स्रोत–डॉ० यशपाल बरण्डा 1562
भारत में सामाजिक और धार्मिक अंधविश्वास–डॉ० हीरा कुमारी 1565
बिहार में औद्योगिक विकास और लघु उद्योग की स्थिति–डॉ० नवीन कुमार 1568

दृष्टिकोण

अरुण कमल की प्रकृतिपरक कविताओं का विश्लेषण–डॉ० ललिता कुमारी 1571
वर्त्तमान परिदृश्य में ग्रामीण हाट बाजार: अवसर और चुनौतियाँ–मनीषा कुमारी 1576
चूरू जिले में भूमिगत जल की वर्तमान स्थिति का अध्ययन–दिनेश कुमार मीणा; डॉ० रविन्द्र कुमार 1581
भारत की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विदेश नीति–मृत्युंजय 1586
समकालीन हिन्दी कविता में युगबोध–डॉ० शशि प्रकाश 1592
भारत में ग्राम पंचायतों का विकास–डॉ० अशोक कुमार उर्फ डॉ० अशोक चौधरी 1597
स्त्री शिक्षा का समाज पर प्रभाव–डॉ० परमानन्द त्रिपाठी 1602
भारत के विकास में डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का शैक्षिक विचार का ऐतिहासिक अवलोकन–आसमीन आरा 1605
बढ़ती आधुनिकता और गिरता नैतिक स्तर–डॉ० नीतू कुमारी 1608
डॉ० भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचार और उनकी प्रासंगिकता–डॉ० पीयूष भादविया 1611
राजनीतिक समाजीकरण का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० रिषपाल मीना 1618
राही मासूम रज़ा की चिन्तन भूमि में क्रांतिकथा-1857–अनुकृति तम्बोली 1622
विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी का स्वरूप : बिहार की विश्लेषणात्मक समीक्षा–मुनमुन 1626
कैमूर जिला के कृषि में नई तकनीक का प्रयोग विस्तार तथा प्रभाव–डॉ० हरिशंकर श्रीवास्तव 1633
भारतीय शिक्षा दर्शन के विकास में मिथिला का योगदान–जयन्ती कुमारी 1637
शिक्षक शिक्षा में मूल्यांकन की आवश्यकता–आदित्य नारायण चौधारी 1640
उगनाक दयादवादमे दलितक चित्रण–दीपक कुमार पटेल 1642
जनसंख्या वृद्धि का सांस्कृतिक एवम आर्थिक परिवेश–अर्चना शंकर 1645
जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक कारक–वंदना शंकर 1648
लैंगिक असमानता: एक विश्लेषण–कुमारी रीमा 1651
नव उदारवाद: एक दृष्टि–डॉ० सत्येन्द्र कुमार श्रीवास्तव 1654
गठबंधन सरकार की संकल्पना–डॉ० कुमार रंजीत 1658
श्रृंगारिक शीघ्रता और भोग का अधिकार–डॉ० विजय शंकर मिश्र 1661
वैदिक काल में राजतंत्र, राजनैतिक एवं सामाजिक संगठन–श्रीमती अंजू कुमारी 1665
प्रजातंत्र और नौकरशाही–एक दृष्टि–डॉ० सीता कुमारी 1671
महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में आनेवाली समस्याओं के समाधान के लिए सरकारी एवं सामाजिक प्रयास–डॉ० अरविन्द कुमार 1676
भारत एवं हिन्द महासागर की भू-राजनीति–नरेन्द्र कुमार शर्मा 1687
मानसिक विभ्रम–सोनल कुमारी 1689
भारत में दल प्रणाली की प्रकृति–चंद्र विजय प्रकाश यादव 1692
ईसवी पूर्व 200 के दौरान भारत में आर्थिक क्रियाकलाप–संतोष कुमार शर्मा 1698
नारी मुक्ति का उद्घोष : 'शकुन्तिका'–डॉ० अनिल सिंह 1701
बिहार में अलगाववादी साम्प्रदायिक तनाव में जिन्ना की भूमिका–डॉ० रुमा कुमारी 1704

अध्यापकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन–प्रज्ञा सिंह 1709
गाँधी दर्शन में स्वदेशी की अवधारणा: एक अध्ययन–दीक्षा 1713
भारत में केंद्र राज्य संबंध: तनाव के कारण व सुझाव–डॉ० देवेन्द्र कुमार साहू 1715
राजस्थानी लोक संस्कृति में श्री एवं समृद्धि का प्रतीक - माण्ड़नें–डॉ० प्रीति गुप्ता 1719
समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना–डॉ० आर०पी० वर्मा 1731
राजस्थानी चित्रकला का एक विवेचनात्मक अध्ययन–डॉ0 आशा रानी 1736
मध्यकालीन गीत-संगीत (सल्तनत काल)–डॉ० रियाजुल हसन 1739
दलित चेतना एवं साहित्य–डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी 1743
प्रसाद के काव्य में वर्ण वक्रता–डॉ० रश्मि कुमारी 1746
हिन्दी में प्रेमाख्यान (सूफी) परम्परा का प्रवर्तन एवं विकास–डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय 1751
अकबर के अन्तर्गत प्रशासनिक एकीकरण–डॉ० सुशील कुमार सिंह 1755
स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सक्रियता का उनके पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में अध्ययन
–चंद्रावती जोशी; दीपेश चंद्र जोशी 1762
ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका–डॉ० किरन सिंह 1769
राजस्थान में 15वीं विधानसभा चुनाव 2018 और मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक–देवेन्द्र कुमार 1773
कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन–राजेश कुमार; डॉ० आसिफ कमाल 1779
राजेंद्र यादव के कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० सुषमा पाल 1787
महिलाओं के स्वरोजगार के मार्ग में बाधक कारक–डॉ० वीरेन्द्र सिंह; डॉ० रमाकान्त ठाकुर 1791
स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनशीलता का अध्ययन–रामप्रवेश यादव; डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह 1797
नागार्जुन की भाषिक संरचना–डॉ० (श्रीमती) प्रभा सिंह 1805
पश्चिमीकरण का भारतीय ग्रामीण समाज पर प्रभाव–डॉ0 सपना सिंह 1810
"'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में नारी विमर्श"–डॉ० सुनील एम. पाटिल 1815
मृदुला गर्ग की रचनाओं में नारी विमर्श–डॉ० नम्रता जैन 1818
व्यापार में आचार-विचार–डॉ० रोमी अरोड़ा 1824
महाविद्यालय में पारस्परिक तनाव के निराकरण में प्राचार्यो की भूमिका–रत्नेश कुमार जैन 1826
जौनपुर जिला में कृषि आधुनिकीकरण के पर्यावरण पर प्रभाव का भौगोलिक अध्ययन–विकास सिंह; आलोक कुमार 1831
जनकवि रमेश रंजक–डॉ० राम सेवक 1835
जनपद जौनपुर में भूमि उपयोग प्रतिरूप एक भौगोलिक अध्ययन–रमा शंकर यादव 1837
उपन्यासों में नारी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति–डॉ० सुनीता; संगीता 1846
पाकिस्तानी परमाणु बम निर्माण में चीन की भूमिका–प्रा० डॉ० आर०एस० पवार 1850
भारत के वित्तीय क्षेत्र में सूचना प्रोद्योगिकी की भूमिका–डॉ० प्रमोद कुमार त्रिपाठी 1854

दृष्टिकोण

लम्बी कविता का सौन्दर्यशास्त्र और मुक्तिबोध की कविता–सतीश कुमार 1857

भारत में दलित महिलाओं का योगदान: बिहार के संदर्भ में–श्वेता कुमारी 1860

भारतीय चुनाव प्रणाली और मतदान व्यवहार–प्रताप सिंह; डॉ० खेमचंद महावर 1865

हिंदी साहित्य में पत्रकारिता का योगदान–सर्वजीत गांधी 1871

भारत में चुनाव भारी खर्च और राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण–वेंकटेश्वर; डॉ० खेमचंद महावर 1876

भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है संस्कृत–डॉ० एम० यसोदा देवी 1881

गोरखपुर क्षेत्र का नामकरण एवं योगी गोरक्षनाथ का समयकाल–डॉ० संजय श्रीवास्तव 1885

डॉ० जगन्नाथ मिश्र के सामाजिक चिंतन एवं कार्य–नीतू कुमारी 1888

सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने मे ग्राम सभा की भूमिका : सामुदायिक स्वास्थ्य के विशेष संदर्भ में –सचिन पाटीदार; रश्मि जैन 1893

पंचायती राज व्यवस्था, ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका–अंकित कुमार गुप्ता 1902

नगर नियोजन–गोकुल सरकार 1906

अन्य पिछडा वर्ग महिला का शिक्षा में सहभागिता - धुले (महाराष्ट्र) जनपद एक भौगोलिक अध्ययन–संजय बी० घोडसे 1909

'मनोहरश्याम जोशी' कृत 'क्याप' में अभिव्यक्त उत्तर-आधुनिकता–डॉ० विश्वम्भर पाण्डेय; निर्भय कुमार सिंह 1914

बड़वानी जिले की कपास विपणन व्यवस्था का अध्ययन–डॉ० विजय ग्रेवाल 1918

भारतीय समाज में महिला स्वास्थ्य संरक्षण: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण–अभिषेक कुमार सरोज 1921

तनाव प्रबन्धन में योग शिक्षा की उपादेयता–बिनीता; डॉ० योगेंद्र पाण्डेय 1924

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में महात्मा गॉधी और स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन –कृष्ण सिंह अधिकारी; डॉ० मंजुला सिंह 1928

केदारनाथ सिंह के काव्य में मानवीय संवेदना–सविता 1932

पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन की पाठ्य पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन –देवेन्द्र कुमार; प्रोफेसर रामबली यादव 1936

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' का तुलनात्मक अध्ययन –गीता पांडे; डॉ० हलधर यादव 1942

स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन–डॉ० हलधर यादव; ओमपाल सिंह 1949

हिंदी संत साहित्य पर बौद्ध धर्म-दर्शन का प्रभाव–जितेन्द्र सिंह 1957

आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य एवं विकास"–शिप्रा अग्रवाल; डॉ० हलधर यादव 1961

वर्तमान युग में महर्षि पतंजलि के शिक्षा दर्शन की उपादेयता–मनोज कुमार सकलानी; डॉ० हलधर यादव 1966

केदारनाथ सिंह: जीवन और जगत को मथने वाली अनुगूँज की गूँज–डॉ० वाचस्पति यादव 1971

स्नात्मक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन –ममता मेहरा; डॉ० मंजुला सिंह 1975

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन–पूनम रानी; डॉ० हलधर यादव 1982

शिक्षा नीति में आरक्षित और औसत छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध का अध्ययन
–शशि शर्मा; डॉ० हलधर यादव 1987
दलित जीवन को चित्रित करती आत्मकथा 'मुर्दहिया'–डॉ० सचेन्द्र कुमार 1993
राजनीति से जुड़ी दलित महिलाओं की सामाजिक-पारिवारिक समस्यायें: कुछ मुद्दे–अन्नपूर्णा भारती 1997
वैदिक एवं पौराणिक काल में पर्यावरण संरक्षण पर एक अध्ययन–डॉ० संजीव कुमार 2004
गुरदयाल सिंह के उपन्यासों में परिवारिक समस्याएँ–कलवीर कौर 2009
डॉ० भीमराव अम्बेडकर की पत्रकारिता एवं दलितों में राजनीतिक चेतना का महत्व–बबीता मलिक; डॉ० राजीव कुमार 2013
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय तथा निजी विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण का अध्ययन
–वीरेन्द्र प्रताप यादव; डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह 2019
शबरी खण्डकाव्य एवं वर्णव्यवस्था का प्रश्न–पुनीत तिवारी 2027
संयुक्त राष्ट्र संघ की नीतियों में भारत का योगदान–डॉ० वंदना वाजपेयी 2030
प्रभा खेतान कृत 'पीली आँधी' उपन्यास में सामन्ती व्यवस्था का सशक्त प्रतिरोध–विकास कुमार 2035
आख्यान काव्य परम्परा और रीतिकाल–ममता देवी 2039
राजेन्द्र अवस्थी के कथा-साहित्य में राजनीतिक स्वरूप–डॉक्टर दीपा त्यागी; आशु चौधरी 2042
अद्‌भुत कथा साहित्यकार: अमृत लाल नागर–पूनम त्यागी 2048
भारतीय संस्कृति के पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती–डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय 2054
21वी सदी में भारत-अफ्रीका संबंध–नितेश कुमार 2058
लोकतन्त्र एवं दलीय व्यवस्था–डॉ० उमाकान्त पासवान 2062
मीडिया में हिंसा: संभावित प्रभाव एवं कारण–डॉ० मानिनी श्रीवास्तव; डॉ० जया भारती 2069
भारतीय समाज में जातीय और धार्मिक संगठनो की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० प्रेमलता 2073
माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों
की अभिवृत्ति का अध्ययन–अमित कुमार; डॉ० श्रीमती अनुभा शुक्ला 2078
भारतीय संगीत और संगीत शास्त्र–डॉ० प्रेम चन्द्र कुशवाहा 2087
कोरोना लाकडाउन के दौरान युवाओं की मीडिया पर निर्भरता (एक अध्ययन कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल के सन्दर्भ में)
–हर्षवर्धन पाण्डे 2095
महाकवि भवभूति के नाटकों में कर्मफल सिद्धान्त: एक विवेचन–डॉ० शालिनी अग्रवाल 2100
नगरीय संस्कृति का उद्‌भव एवं विकास - एक अध्ययन–छाया कुमारी 2105
सामाजिक असमानता तथा निर्धनता–डॉ० रीभा सिंह 2108
वैश्विक राजनीति के बदलते आयाम, संयुक्त राष्ट्र संघ और नाटो की भूमिका–डॉ० यतेन्द्र सिंह 2112
हिंदी साहित्य में नारी विमर्श: एक विश्लेषण–क्रमांक शुक्ला 2116
माध्यमिक स्तर के दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के लिये जीवन कौशल शिक्षा प्रशिक्षण की आवश्यकता एवं महत्व:
एक अध्य्यन–बबिता सक्सेना; डा० मृत्युंजय मिश्रा 2120

विभिन्न कालों में प्राथमिक शिक्षा की भारतवर्ष में स्थिति का अध्ययन–जयप्रकाश यादव; डॉ० हलधर यादव 2125
मानवेन्द्रनाथ रॉय के राजनीतिक विचार–डॉ० सुबोध कुमार 2133
दुर्गा भाभी का क्रांतिकारी संघर्ष–डॉ० ईशा शर्मा 2137
रामायण : दार्शनिक चेतना–डॉ० सुगन्धा जैन 2143
व्यावसायिक कॉलेजों के कम बुद्धिमान, औसत बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान छात्र अपनी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध का अध्ययन–हुस्ना बानो; डॉ० संजीव कुमार 2149
आदर्शमूलक नीतिशास्त्र एवं विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र में सम्बन्ध–डॉ० प्रमोद कुमार सिंह 2156
आरक्षण के विरूद्ध समाजिक अवधारणा एक अध्ययन-प्रदीप कुमार 2160
डॉ0 ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम द्वारा कल्पित शिक्षक की अवधारणा-पाटिल कंचन गोपाल 2164
उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के हथकरघा बुनकरों की समस्याओं का अध्ययन-चाँदनी सिंह; डॉ० बिजेन्द्र प्रधान 2170
शक्ति की अवधारणा एक अध्ययन–डॉ० सुधीर कुमार शुक्ल 2176
मार्क्सवाद के साहित्यक प्रतिमान और हिन्दी साहित्य–डॉ० यतीन्द्र सिंह कुशवाहा 2179
गदर काव्य छंद-विधान–डॉ० हरबंस सिंह 2183
कबीर : पुनर्पाठ–डॉ० निम्मी ए.ए. 2187
पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका–डॉ० हर्षेन्द्र प्रताप सिंह 2191
चौधरी चरण सिंह जी के आर्थिक विचार एवं उनके विचारों की उपयोगिता का विश्लेषण–डॉ० ममता शर्मा; गीता 2198
सामाजिक-आर्थिक न्याय और समावेशी विकास: भारत के संदर्भ में एक अध्ययन–एन राजेन्द्र सिंह 2204
अमरकान्त की कहानियों में सामाजिक वर्गीय जीवन का संक्षिप्त विश्लेषण –डॉ० कनुभाई बिछिया भाई निनामा; ओमप्रकाश 2211
तहसील फरीदपुर में जनसंख्यात्मक वितरण-एक भौगोलिक विश्लेषण–डॉ० ए० के० एस० राना; बादाम सिंह 2216
अमिश त्रिपाठी के शिव रचनात्रय में वर्तमान प्रासंगीकता–पटेल रविचंद्र बाबूलाल 2222
भारत में शिक्षक शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य–कमल चन्द्र गहतोड़ी; डॉ० कल्पना पाटनी लखेड़ा 2227
हिन्दी भाषा वर्ण-विचार, वर्तनी और शुद्धिकरण–डॉ० अर्जुन के० तडवी 2232
मनरेगा: रोजगार के अवसर पैदा करने का सशक्त माध्यम–सुनीता कुमारी; डॉ० अशोक कुमार मिश्रा 2236
मौर्यकालीन भूमि स्वामित्त्व: एक ऐतिहासिक विश्लेषण–डॉ० स्वर्ण मणि 2245
वनवासी सामुदायिक अधिकारों के मुद्दे और पहचान–प्रीती 2249
वैयाकरण सम्प्रदाय में धातु एवं क्रिया का स्वरूप–डॉ० योगेन्द्र कुमार धामा 2254
साठोत्तरी कविताका उद्‌भव एवं उसका प्रारम्भिक स्वरूप–डॉ० जया द्विवेदी 2258
वर्तमान परिदृश्य में 'मधुमेह' रोग के कारणों का अध्ययन–वन्दना सिंह यादव 2267
विचित्र नाटक: एक अवलोकन–डॉ० ज्योति कौर 2271
ग्रामीण महिला सशक्तिकरण: मुद्दे एवं चुनौतियां–आसीन खाँ; डॉ० अनिल कुमार यादव 2277
प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना एवं महिला सशक्तिकरण–वीर कुमार 2283

दलित विमर्श एक अवधारणात्मक प्रस्थापना–चरन सिंह 2288
भारतीय लोकतन्त्र और भ्रष्टाचार: स्थिति, कारण, चुनौतियाँ और समाधान–आशा नागर 2294
पंचायती राजव्यवस्था में महिला जनप्रतिनिधियों की भूमिका–प्रियंका शर्मा; डॉ० खेमचंद महावर 2305
स्वातंत्रयोत्तर भारत में नारीवाद आन्दोलन एवं स्त्री चेतना: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–बेबी कुमारी 2310
उपन्यास 'थकी हुई सुबह' का समीक्षात्मक अनुशीलन–डॉ० देविका जौहरी 2317
कक्षा-कक्ष में सामाजिक अधिगम: आवश्यकता, महत्त्व एवं शैक्षिक उपयोग–डॉ० कल्पना जैन 2321
लोकसाहित्य में लोक और संस्कृति–डॉ० अमिता रानी सिंह 2325
बोधिसत्व बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर : एक प्रकाश स्तंभ–डॉ० चन्द्रकांता के माथुर 2329
समकालीन उपन्यास साहित्य में नारी विमर्श–प्रो० प्रदीप श्रीधर 2333
नासिरा शर्मा के साहित्य मे स्त्री विमर्श–नीलिमा शर्मा 2335
औपनिवेशिक भारत में सामाजिक न्याय और सती प्रथा–डॉ० अर्चना सिंह 2338
रसखान का काव्य–निरंजन सहाय 2342
अलवर जिले के बहरोड़ एवं नीमराणा तहसील के उच्च प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य दक्षता, व्यावसायिक संतुष्टि एवं आत्म सम्प्रत्यय का विश्लेषणात्मक अध्ययन–हंसराज यादव; डॉ० समुन्द्र सिंह 2352
भारत में भू-अभिलेखों का आधुनिकीकरण–डॉ० जाकिर हुसैन 2360
भारतीय पुलिस के समक्ष चुनौतियाँ एवं समाधान–डॉ० रजनी मीना 2365
'पद्मावत' में लोकतत्व एवं भारतीय समाज–सरिता 2369
प्राचीन भारतीय राज्य का सप्तांग सिद्धान्त: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० आलोक कुमार 2373
भारतीय दर्शन : एक गहन चिंतन–डॉ० सुगन्धा जैन 2379
मुगल बुन्देला सम्बन्ध: राजनीतिक समीक्षा–रविन्द्र प्रताप सिंह; डॉ० श्रीमती आरती पाण्डेय 2388
कुशाण कालीन संस्कृति के प्रमुख तत्व–पल्लवी सक्सेना; डॉ0 श्रीमती आरती पाण्डेय 2392
नवगीतकार उमाशंकर तिवारी के गीतों में लोक रंग–जयमाला दूबे 2396
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग-एक अध्ययन–डॉ० वीरेंद्र सिंह वर्मा 2403
डॉ० वीरेन डंगवाल के काव्य में शिल्प-विधान–डॉ० सविता उपाध्याय 2410
एक देश एक चुनाव: प्रासंगिकता–डॉ० विशाखा सिंह 2418
दहेज से अभिशापित होता भारतीय समाज–ताहिरा परवीन 2424
अभिराजराजेन्द्रविरचितम् जानकीजीवनम् में नारी-विमर्श के वर्तमान परिपेक्ष्य–रोहणी तिवारी; डॉ० सुकेश शर्मा 2429
गर्भावस्था के दौरान पौष्टिक आहार का सेवन पर्याप्त मात्रा में जरूरी–श्रीमती किरण कुमारी 2435
युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता: महिलाओं के समक्ष जोखिम, चुनौतियाँ एवं प्रभाव–हरीश कुमार यादव 2438
पर्यावरण संरक्षण में उच्चतम न्यायालय की भूमिका–हरिओम गुप्ता 2444
कृषि आधारित उद्यमिता विकास से आत्मनिर्भरता–शिशु पाल राठौर; डॉ० विकास प्रधान 2447
समलैंगिक उभयलिंगी और ट्रांसजेंडर लोगों के अधिकार–नईमउद्दीन 2452

नागरीय भूगोल: भारत में नगरीकरण का बढ़ता प्रभाव तथा उससे उत्पन्न मालिन बस्ती की समस्या
–डॉ० रत्न प्रकाश द्विवेदी 2457
भारत-नेपाल संबंध एवं विवाद–संजय सिंह 2463
राजस्थान में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की प्रभावशीलता–करतार सिंह 2467
भारतीय कृषि में महिलाओं की भागीदारी–प्रीति अग्रवाल 2474
महिलाओं के संवैधानिक एवं विधिक अधिकार एवं उच्चतम न्यायालय की भूमिका–प्रीति वर्मा 2478
उत्तर प्रदेश की महिलाओं के सामाजिक उत्थान में आर्यसमाज का योगदान–मनीष कुमार मिश्र 2483
पं0 दीनदयाल उपाध्याय:- एक विलक्षण व्यक्तित्व–मोहित सिंह रौतेला 2487
समाजवादी चेतना के प्रति सरदार बल्लभ भाई पटेल एवं गाँधी जी के विचारों की प्रासंगिकता–डॉ० श्रवण कुमार यादव 2494
श्रीमद्भगवद् गीता एवं भक्ति संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध–डॉ० भावना 2497
भारत की समुद्री कूटनीति: चुनौतियाँ और जिम्मेंदारियां–राजीव कुमार सिंह; प्रो० ब्रजेश कुमार त्रिपाठी 2501
कुसुम अंसल के उपन्यासों में नारी विमर्श–अमनदीप कौर 2504
मृदुला सिन्हा के कथा साहित्य की विशेषताएँ–रीना अग्रवाल; प्रो० दिनेश चंद्र चमोला 2507
यहया कहानी के लेखक सादिक चूबक–डॉ० तसनीम कौसर चिश्ती 2512
कृष्णा सोबती: स्त्रीत्व का परचम फहराती एक सशक्त कथाकार–डॉ0 अशोक कुमार शर्मा; शबनम भारतीय 2514
समाज बदलाव के संदर्भ में राहुल का वैचारिक योगदान–संजय कुमार सिंह 2518
'श्रीमाल पुराण' एक संक्षिप्त अध्ययन–प्रा० ब्रिजेश एस. पुरोहित 2522
विदेश नीति के निर्धरक तत्व: एक दृष्टि–डॉ० अजित 2525
स्वामी विवेकानंद के राष्ट्रवाद एवं लोकतंत्र संबंधि विचारों की प्रासंगिकता–डॉ० अजित 2525
मिजोरम की प्रमुख जन-जातियाँ: एक अवलोकन–कामना सिंह 2530
ग्रामोद्योग एवं ग्रामीण विकास का गाँधीय प्रतिमान–डॉ० तरूणा; डॉ० मनोज सिंह यादव 2536
आश्रम पद्धति विद्यालयों के विद्यार्थियों में सांवेगिक बुद्धि, राजकीय और अनुदानित माध्यमिक
विद्यालयों से तुलना–अभिलाषा त्रिपाठी 2540
भारतीय कृषि पर व्यय की प्रकृति और संरचना–डॉ० रेनू सिंह राणा 2544
छिन्नमस्ता की भाषिक संवेदना और स्त्री अस्मिता का प्रश्न–उपासना 2552
नव-इतिहासवाद–पंकज कुमार गुप्ता 2555
रघुवीर सहाय के काव्य में ''नेता'' की अवधारणा–पंकज सिंह 2558
मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में आधुनिकता के महावृत्तांतों एवं विचारधाराओं का अंत–उमेश कुमार यादव 2562
फणीश्वरनाथ रेणू के उपन्यासों में आंचलिकता की प्रासंगिकता–मनीषा यादव 2567
स्त्री विमर्श: अवधारणा एवं वैचारिकी–प्रीति सिंह 2571
सिक्ख धर्म की संगत व लंगर संस्थाओं का कोविड 2019 में महत्त्व–डॉ० रघु महेंद्र सिंह 2574
वर्तमान राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में कालिदास एवं भवभूति की नाट्यसूक्तियों की प्रासंगिकता–बब्बू राम 2579

वैदिक कालीन गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली तथा आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन–आकांक्षा सिन्हा; प्रो० (डॉ०) रजनी रंजन सिंह 2583
विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का उनके अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व के सन्दर्भ में अध्ययन–आसुतोष कुमार तिवारी; प्रो० (डॉ०) रजनी रंजन सिंह 2588
शिक्षार्थियों के शैक्षिक मूल्यांकन में समावेशन की स्थिति–अभिषेक कुमार; प्रो० (डॉ.) रजनी रंजन सिंह 2593
जैन साहित्य और कला में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं आर्थिक जीवन: एक अवलोकन–राजू यादव 2600
तर्पण उपन्यास में स्त्री जीवन का यथार्थ: एक दृष्टि–डॉ० समर जीत सुमन 2605
बाल अपचारियों से सम्बन्धित नीतियाँ–डॉ० अमृता श्रीवास्तव 2609
अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ का अभियान एवं रानी पद्मिनी–डॉ० शिवकुमार मिश्रा 2613
भारत में मानवाधिकार: न्यायपालिका और न्यायिक सक्रियता की भूमिका–तरुषी पांडेय 2618
भारतीय समाज में जातीय व्यवस्था: एक विवेचना–डॉ० शिखा सक्सेना 2623
दुग्ध उत्पादन में दुग्ध सहकारी संघ चम्पावत की भूमिका का अध्ययन–शंकर नाथ गोस्वामी; डॉ० उमेश चन्द्र आर्या 2628
छत्तीसगढ़ के मानव विकास सूचकांक का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० रश्मि पाण्डेय 2635
अफगान-शांति समझौता एवं चुनौतियाँ–सुबोध मणि त्रिपाठी 2639
स्थानीय प्रशासन के नवीन आयाम एवं चुनौतियाँ–डॉ० श्याम किशोर उपाध्याय 2643
जिला भोजपुर में महिला साक्षरता दर के परिवर्तनशील स्थानिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण–अनिल कुमार शर्मा 2648
भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और उसका स्थानीय स्वर: गोरखपुर के विशेष सन्दर्भ में–दिलीप कुमार राय; प्रो० संतोष कुमार 2654
भारत के प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में गुरूकुल का महत्व–प्रभु दयाल जयंत 2659
जातक कथाओं में वर्णित व्यापारिक केन्द्र एवं व्यापार व्यवस्था–रेशमा खातून 2663
शिक्षा के विकास महात्मा का गाँधी योगदान–डॉ० कमल प्रसाद बौद्ध 2666
सामाजिक एवं राजनैतिक विकास में डॉ० बी. आर. अम्बेडकर का योगदान–उपेन्द्र कुमार दास 2671
राजनीति विज्ञान में तथ्य-मूल्य विवाद–डॉ० धीरेन्द्र त्रिपाठी 2677
बालिका शिक्षा: अनुसूचित जनजातीय के संदर्भ में–एमलिन केरकेट्टा 2682
वर्ण व्यवस्था के विघटन का आर्थिक कारण–डॉ० त्रयम्बकेश्वर कुमार 2685
अरुण प्रकाश की संघष-यात्रा–कोमल कुमारी 2689
भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति और डॉ० बाबासाहेब अम्बेडकर–डॉ० अनिल विठ्ठल बाविस्कर 2693
स्वरोजगार के माध्यम से देश के विकास में योगदान–डॉ० परीक्षित लायेक 2697
जाति व्यवस्था में अनुसूचित जातियां-इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं वर्तमान परिस्थितियों का एक भौगोलिक अध्ययन –डॉ० जोगेन्द्र सिंह खोखर 2702
'ऐ लड़की' उपन्यास में स्त्री विमर्श–नदीम अहमद 2710
आचार्य कुन्दकुनद की रचनाओं में आत्म विरूपण–डॉ० दुधनाथ चौधरी 2713
रघुवीर सिंह 'अरविन्द' रचित बुद्ध-चरित महासागर के आधार पर गौतम बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण–लक्ष्मण शर्मा 2718

रामायण–महाभारतीय आख्यानों का संस्कृत साहित्य में अनुशीलन–डॉ० सन्तोष देवी 2722
स्त्री अंत:करण की भीतरी यात्रा- थेरीगाथा–ज्योति 2728
वुस्त एवं सेवा कर: एक परिचय एवं सुधार–राजेश कुमार वर्मा; प्रो० राजेश केसरी 2733
आपस्तम्ब स्मृति एक अध्ययन–हृषिकेश पधान 2739
सन् 1857 का विप्लव और राजस्थान का योगदान: एक ऐतिहासिक विवेचन–सुरेश कुमार मीणा 2746
अरुण कमल की काव्य में मजदूर चेतना–प्रो० संजय एल० मादार; नेहा कुमारी 2753
महिलाओं की जीवन शैली में सामाजिक परिवर्तन–किरन सिंह 2757
वैश्विक समाज पर महामारी का महासंकट और कोरोना वायरस–डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद सिंह 2761
स्कूल में हिंसा और एक सुरक्षित वातावरण कैसे विकसित करें–सुहास डफल 2766
भारतीय बौद्ध कला में लोक प्रतीक–राक्षी पासवान 2771
पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता एवं विकास–डॉ० रत्न प्रकाश द्विवेदी 2775
घरेलू हिंसा के विभिन्न कारण–पूनम यादव 2779
हिंद महासागर में सोवियत उपस्थिति एवं गैर परम्परागत जोखिम–राकेश कुमार 2783
वायुमंडल परिवर्तन के कारण और गतिविधिया–डॉ० सन्तोष कुमार गुप्ता 2786
भारत एवं जापान का पारस्परिक संबंध–डॉ० रामकृष्ण सिंह; सुशील कुमार रावत 2790
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं हिन्दी साहित्य जगत–डॉ० शालिनी 2794
मानव जीवन और योग–डॉ० हरेंद्रसिंह पी सोलंकी 2803
वर्तमान शिक्षा समस्याओं के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन का प्रभाव–डॉ० शशिकान्त यादव 2807
प्रगतिशील आन्दोलन में उर्दू कवियों का योगदान–डॉ० विजय कुमार 2812
पर्यटन के पर्यावरणीय प्रभाव: भारत के संदर्भ में–डॉ० शिव कुमार सिंह 2818
माइक्रोचिप्स: औद्योगिक क्रांति 4.0 का नींव एवं हृदय–डॉ० फूल चंद 2823
भारत की मूक आपात स्थिति - 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण–दीपशिखा नागवंशी 2825
सारण जिला के कृषकों तथा श्रमिकों में राजनैतिक चेतना का उद्‌भव एवं विकास (सन् 1917 से 1947 ई० तक) –डॉ० दिलीप कुमार साह 2832
21वीं सदी में भारत नेपाल सम्बन्ध–रूचिर जोशी 2835
लिंग असमानता- एक राष्ट्रीयकृत समस्या–अमरनाथ वर्मा 2840
अकहानी की उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ–पंकज कुमार 2844
बिहार में भूमि सुधार: एक अवलोकन–रमेश कुमार 2848
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विविध आयाम–सोनी कुमारी 2854
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में अन्तर्निहित प्रकृति का स्वरूप तथा कार्यावधायकत्व (महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा रामानुजाचार्य के विशेष सन्दर्भ में)–प्रो० रूप किशोर शास्त्री; अंकुर कुमार आर्य 2858
आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' पर रामचरितमानस का प्रभाव–जितेन्द्र कुमार उपाध्याय; डॉ० अचला पाण्डेय 2865

समकालीन हिन्दी काव्य में प्रतिरोध का स्वरूप और उसकी सार्थकता–डॉ० चंदन कुमार 2870
भोपाल शहर के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उसके ऊपर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन–सुनील कुमार पाटीदार 2877
प्रेमचंद साहित्य में किसान जीवन और उभरता किसान विमर्श–पूजा 2883
भारत-चीन सम्बन्ध सीमा विवाद एवं प्रबन्धन की आवश्यकता–डॉ० राजीव कुमार 2888
पांचवी अनुसूची और पेसा की अधूरी कहानी!–डॉ० अभय सागर मिंज 2891
हिंदी कविता का बौद्धिक मोर्चा और जातीय अत्याचारों का संहार–डॉ० ललित कुमार 2900
कश्मीर आधारित हिन्दी उपन्यासों में बलात्कार और भ्रूण हत्या का वीभत्स चित्रण–सत्यवान आर्य 2904
महात्मा गाँधी के नैतिक चिंतन: एक अध्ययन–डॉ० गायत्री कुमारी 2906
गुरुगौरवीयम् महाकाव्य में रस तत्त्व विवेचन 2908
डॉ० ललित कुमार गौड–लक्ष्मी कुमारी 2908
भारत का विभाजन और शरणार्थी समस्या–डॉ० सुखबीर सिंह 2914
गायन एवं वादन में अलंकार योजना–डॉ० सरिता कुमार 2918
हाड़ौती अंचल में बौद्ध धर्म की परम्परा- पुरातात्विक अध्ययन (6-8 शताब्दी)–महेश कुमार दायमा 2923
कॉर्पोरेट का सामाजिक-पर्यावरणीय प्रभाव एवं उत्तरदायित्व–सुरभि कच्छप 2927
ब्रिटिश कालीन द्वैध शासन व्यवस्था: एक अध्ययन–अरविन्द कुमार; डॉ० राधा गोविन्द सिंह 2932
ममता कालिया कृत उपन्यास 'बेघर' में स्त्री शोषण का विरोध–डॉ० विद्या कुमारी चन्द्रा 2941
आधुनिक छत्तीसगढ़ में श्रमिक (मजदूर) आंदोलन का विकास-एक अध्ययन–डॉ० सीमा पाल 2943
सामाजिक बुद्धि का सामाजिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और झारखंड के आदिवासी और गैर-आदिवासी की व्यक्तिपरक भलाई–डॉ० रीता कुमारी 2948
"ग्रामीण अपराध को रोकने में प्रौद्योगिकी की भूमिका: अवसर और चुनौतियाँ"–तानिया सिंह; डॉ० हर्षिता उपाध्याय 2958
वर्तमान भारतीय परिपेक्ष्य में संविधान के अन्तर्गत जातिगत आरक्षण व्यवस्था : एक चुनौती–अरविन्द कुमार गुप्ता 2966
सनातन धर्म में ध्यान का उद्‌भव का इतिहास–डॉ० लाल बहादुर स्वर्णकार 2970
बालश्रमिकों की समस्याएँ एवं उनके सर्वांगीण विकास हेतु शैक्षिकप्रयास–डॉ० प्रतिष्ठा 2976
महामना पं. मदन मोहन मालवीय की शैक्षिक दृष्टि–ऊषा शर्मा; प्रो० बी० एल० जैन 2983
गद्दी जनजाति के लोकगीतों का संचार मूल्य–रविंद्र सिंह 2988
छत्तीसगढ़ी कविता के विविध आयाम–डॉ० अनिल कुमार भतपहरी 2993
आचार्य चाणक्य का शिक्षा दर्शन–कुसुम सरोज; डॉ० नीलिमा चौधरी 2998
मेरठ जनपद में भूमि उपयोग का परिपवर्तनशील अध्ययन, 2000-2001 से 2015-16 –डॉ० नवनीत शर्मा; डॉ० रामदास सिंह 3001
उत्तराखंड में ग्रामीण होमस्टे: शांति और सांस्कृतिक समागम का प्रवेश द्वार–राजीव सेमवाल; डॉ० अखिलेश सिंह 3009
भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ पत्रकारिता का उदय–चन्दन आनन्द 3015

असगर वजाहत की कहानियों में समकालीन यथार्थ–छोटे कुमार मंडल 3022
दार्जिलिंग पहाड़ियों की चुनावी प्रणाली में अनुसूचित जाति समुदाय की भागीदारी का एक ऐतिहासिक अध्ययन –मोनिषा हिमांग 3024
वर्ण जाति एवं अस्पृस्यता के प्रश्नों का हिंदी दलित पत्रिकारिता से सरोकार–दुर्गेश कुमार देव 3028
मोबाइल एडिक्शन: एक विश्लेषण–डॉ० भावना 3034
भारतीय उपमहाद्वीप में नक्सलवाद की चुनौती: एक विवेचना–रवि रंजन प्रताप 3041
समावेशी शिक्षा और विद्यालय–अभिषेख कुमार पाण्डेय 3046
महाराणा कुम्भाकृत 'संगीत राज' ग्रन्थ का स्वरूप–प्रो० के० शशि कुमार; आवेश कुमार 3054
गुरू जम्भेश्वर के चिंतन में बाल कल्याण और नैतिक विकास–वैष्णव संगीता कुमारी 3061
भारत में जनसंख्या वृद्धि नियोजन का विश्लेशणात्मक अध्ययन–डॉ० शिवप्रताप सिंह; राकेश कुमार मौर्य 3064
जनपद हापुड के आर्थिक विकास में महिलाओं की भागीदारी का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन –डॉ० कविता सक्सैना; शालिनी त्यागी 3069
हिन्दी उपन्यास साहित्य में साम्प्रदायिक सद्भाव–साधना मिश्रा 3076
नरेश मेहता के कथा साहित्य में युग बोध–बबिता पाठक 3079
प्रेमचन्द की कहानियाँ और बाल मनोविज्ञान–कंचन 3082
कार्ल मार्क्स, महात्मा गांधी एवं वैज्ञानिक क्रान्ति–डॉ० किरण मदान 3084
राजस्थानी लोकनाट्य में अली बख्शी ख्याल परम्परा–रूपा 3087
ग्रामीण भारत में संयुक्त परिवार का विघटन–संतोष विश्वकर्मा 3091
मंजूर एहतेशाम कृत 'सूखा बरगद' उपन्यास में विभाजन की त्रासदी–डॉ० माजिद पटेल 3096
"किशोरों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर प्रभाव का अध्ययन करना"–श्री मुकेश खुटले 3100
''बिलासपुर जिले के शासकीय हायर सेकेण्डरी स्कूलों के सामान्य एवं अनुसुचित जनजाति के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ मे तुलनात्मक अध्ययन"–डॉ० रीता सिंह 3105
हरिशंकर परसाई की रचनाओं में सामाजिक समस्यायें: एक अनुचिंतन–प्रो० (डॉ०) शिव शंकर मण्डल 3110
महाराव की उपाधि और कच्छ का राज्य–चौधरी विपुलकुमार सगरामभाई 3114
भारत में कृषि श्रमिकों के योगदान पर एक अध्ययन–सोनल जे. पंड्या; डॉ० रोहित जे. देसाई 3118
सूचना का अधिकार अधिनियम: सुशासन के लिए महत्व और चुनौतियाँ–प्रमोद कुमार गंगवार; डॉ० धर्मेंद्र कुमार सिंह 3121
ओम पुरोहित 'कागद' के काव्य में पुरातात्विक चेतना–डॉ० पूजा धमीजा; कविता वर्मा 3129
भारत में एचआईवी/एड्स की रोकथाम और उपचार सेवाओं में महिलाओं की भूमिका–चंद्रेश कुमार 3136
अनुसूचित जनजातियों के सशक्तीकरण में मनरेगा की भूमिका (चन्दौली जनपद के नौंगढ़ ब्लाक के विशेष सन्दर्भ में) – डॉ० क्षत्रधारी यादव; आशुतोष कुमार सिंह 3143
''विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन'' – डॉ० हरीश कंसल; राजेश कान्त रंजन 3147
''माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के शैक्षिक मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन'' – डॉ० हरीश कंसल; निहारिका मिश्रा 3153
प्रेमचंद युग में ग्रामीण समाज व नारी की परिस्थितियाँ–डॉ० सुमित्रा कुमारी 3159

स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिकता–डॉ० प्रभात कुमार; डॉ० अरविन्द कुमार 3163
वल्लभभाई पटेल द्वारा आश्रम का पुन: उद्घाटन–वाणिया भावेशकुमार खेमचंदभाई 3169
गुजरात विद्यापीठ की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ–हर्षदभाई के. चौधरी 3171
सोशल मीडिया के उपयोग और प्रकृति से संबद्धता से सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की भविष्यवाणी –डॉ० बलबिंदर सिंह 3174
शाहू का राजनीतिक करियर: पहला भाग–मोतीभाई हरिभाई वलागांठ 3181
प्रबंध काव्य की दृष्टि सें ''वीरांगना बिलासा केंवटीन–श्री मिथलेश सिंह राजपूत; डॉ० स्नेहलता निर्मलकर 3184
शिक्षा का अधिकार एक मौलिक अधिकार के रूप में–डॉ० ललित मोहन शर्मा; श्रीमती लक्ष्मी सक्सेना 3189
उदारवादी नेताओं के विचारधारा एवं कार्यक्रम (1885-1904)–डॉ० दिवाकर प्रसाद 3192
भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति-एक अध्ययन–कौशल मणी 3196
उच्च विद्यालय के संदर्भ में शिक्षक-शिक्षिकाओं के सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं शिक्षक प्रभावकारिता का अध्ययन–डॉ० मसउद आलम खान; मो० मंसूर आलम 3199
ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन पर मास मीडिया का प्रभाव: करंजाकला, जौनपुर के सन्दर्भ में –देवेन्द्र कुमार यादव; डॉ० संदीप कुमार यादव 3204
हिन्दी भाषा शिक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता–डॉ० मोनिका सिन्हा 3211
'मानवाधिकार' वैश्विक चेतना के रूप में विकास–विभा कुमारी 3216
कश्मीर: अतीत समृद्ध, वर्तमान रक्तरंजित और भविष्य विकासोन्मुख, हिंदी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में–कृष्णा अनुराग 3221
भारत में आतंरिक जनस्थान्तरण: एक अध्ययन–तबस्सुम आरा 3225
नई आर्थिक भूस्वामित्व व्यवस्था, शोषण और किसान आंदोलन (19वीं शताब्दी): एक समीक्षा–सुबोध कुमार 3234
महिला सशक्तिकरण की अवधारणा–डॉ० सुरेन्द्र कुमार यादव; ऋषि कुमार चन्द्रा 3238
स्वच्छ भारत और गाँधीवादी दृष्टिकोण–ऋतेश भारद्वाज 3244
हिमाचली लोक गीतों में अभिव्यक्त स्त्री के विविध रूप–लतेश कुमारी 3248
भारतीय ज्ञान परम्परा का वैश्विक प्रभाव–डॉ० आकाँक्षा दुबे 3253
जन और जन आंदोलनों के कवि के रूप में–डॉ० रामाशंकर कुशवाहा; डॉ० अमित कुमार सिंह कुशवाहा 3257
दयानन्द सरस्वती और नवजागरण–दीप नारायण राम 3262
उपेन्द्र दोषीक गंधवाह कथा-पिहानीक चित्रण–भोगेन्द्र प्रसाद सिंह 3266
हिंदी साहित्य जगत में छत्तीसगढ़ के हिंदी लेखकों का अवदान (अविभाजित मध्य प्रदेश के काल से लेकर नवगठित छत्तीसगढ़ राज्य में अब तक)–डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय 3270
'भारत में ब्। को लागू करना कितना प्रासंगिक और उपादेय: एक अध्ययन'–डॉ० देवेन्द्र कुमार गोयल 3277
शांतिपर्व: राजधर्म–डॉ० वंदना त्रिपाठी 3280
जनजातीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति–डॉ० भावना कमाने 3286
औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था का मजबूत स्तम्भ: गाजीपुर अफीम फैक्ट्री–डॉ० जय लक्ष्मी कौल 3289
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में–डॉ० उदय कुमार; श्री लल्लन कुमार सिंह 3296
दायभाग में स्त्रीधन स्वरूप–प्रो० (डॉ०) नीभा शर्मा 3300

दृष्टिकोण

डॉ० रामविलास शर्मा का हिंदी भाषा के विकास में योगदान: एक विश्लेषण–डॉ० देवेंद्र शुक्ल 3308
वैश्वीकरण के दौर में भारतीय महिलायें: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–ईश्वरी बृजवासी सूर्यवंशी 3313
पितृसत्ता में लैंगिकता के प्रश्नों के मध्य तृतीय लैंगिकता की पहचान का संकट–डॉ० बिभा कुमारी 3317
निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी समाज–डॉ० धर्मा रावत 3323
काली आँधी: राजनीतिक यथार्थ की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति–डॉ० मनीष कुमार चौधरी 3327
संपादक, विचारक और समालोचक के रूप में प्रेमचंद–डॉ० रत्नेश कुमार सिंह 3331
नवजागरण की अवधारणा: एक विशेलषण–डॉ० राकेश कुमार सिंह 3340
जाति व्यवस्था के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू–श्री अमृतेष शुक्ला; डॉ० डी.एन. सूर्यवंशी 3345
ब्रिटिश भारत में साम्प्रदायिकता का उत्थान: एक ऐतिहासिक विश्लेषण–प्रो० (डॉ०) अरविन्द कुमार सिंह 3352
बौद्धधर्म तथा उपनिषद् एक अनुशीलन–डॉ० मोहन मिश्र 3357
मौर्यात्तर भारत में धार्मिक प्रवृत्तियाँ: एक अध्ययन–डॉ० विजय कुमार तिवारी 3361
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से संबद्ध अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता एवं कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन–सौरभ सिंह 3369
नगरीय एवं ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों की राजनीतिक गतिविधियाँ:एक अध्ययन–डॉ० सुनीता त्रिपाठी; आलोक कुमार माहेश्वरी 3377
बौद्ध सिद्धों की चर्या एवं दर्शन: एक समीक्षा–डॉ० चंद्रशेखर पासवान 3383
अर्थशास्त्र का ऐतिहासिक विकास-क्रम: मुख्यधारा के 'व्यष्टि-अर्थशास्त्र' की स्थापना एवं उन्नयन –डॉ० सत्येंद्र पूजन प्रताप त्रिपाठी 3389
समकालीन साहित्य: विविध विमर्श–डॉ० राजकुमार एस. नाईक 3401
भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की दशा एवं भावी संभावनायें: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० श्याम कुमार मधुकर 3406
वैदिक साहित्य में पर्यावरण: समस्या एवं समाधान–डॉ० कादम्बरी शर्मा पांडेय 3417
कामकाजी महिलाओं की दोहरी जिंदगी पर पड़ता प्रभाव: एक अध्ययन–रीना कुमारी 3420
ग्रामीणों के समुन्नयन में प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता मिशन का योगदान–डॉ० शिवेन्द्र सिंह 3425
भारतीय राजनैतिक परिपेक्ष्य और महिला सशक्तिकरण: प्रयास और चुनौतियाँ–डॉ० पंकज कुमार सिंह 3429
द्वैत वेदान्त: एक दर्शनशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० भैरवी 3435
संस्कृतसाहित्य में श्रृंगार और हास्यरस: एक अध्ययन–निधि कुमारी 3446
परिवर्तनशील साहित्य परंपरा में संस्कृत रचना: एक अध्ययन–ताराकान्त मित्र 3453
पाण्डुलिपि-सरंक्षण की आवश्यकता: एक अनुसंधान–नीलिमा पाण्डेय 3457
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के राज्य सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण–डॉ० प्रेम सिंह 3462
छत्तीसगढ़ की महिला रचनाकारों का भावात्मक पक्ष: वात्सल्य–श्रीमती अंजू महिलांग 3470
अष्टाध्यायी: पाणिनि का संस्कृत भाषा व्याकरण शास्त्र–डॉ० सुषमा भारद्वाज 3473
सोनभद्र जनपद में ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों का सामाजिक आर्थिक विकास: एक भौगोलिक अध्ययन –रवि प्रकाश सिंह; डॉ० बी आर पंत 3478
गुरू जाम्भोजी का आचार-दर्शन–डॉ० दर्शना धवल 3487

बिहार राज्य में गरीबी को कम करने में सार्वजानिक वितरण प्रणाली (PDS) की भूमिका–हिना कुमारी 3491
भारत की विदेश नीति के समक्ष समसामयिक चुनौतियाँ–डॉ० रंजीत कुमार 3495
नाच्यौ बहुत गोपाल में व्यक्त स्त्री-जीवन–बिरजानन्द मिश्र 3498
राष्ट्र निर्माण में गाँधीजी का योगदान–डॉ० दीपक सिंह 3502
मानव जीवन एवं पर्यावरण पर रसायनों के दुष्प्रभाव–डॉ० नरेन्द्र कुमार 3505
पाश्चात्य अवधारणा में नारी विमर्श–डॉ० शुभा तिवारी 3509
भारतीय कला वास्तुकला का इतिहास–डॉ० दिवाकर त्रिपाठी 3514
वर्तमान हिंदी सिनेमा में संगीत की परंपरा एवं प्रयोग, नवाचार के संदर्भ में–डॉ० दिनकर शर्मा 3520
ग्रामीण महिला सशक्तिकरण: एक अध्ययन–डॉ० नीलम कुमारी 3524
धूमिल के काव्य में राजनीतिक यथार्थ और जन-सरोकार–डॉ० दीनदयाल; विशाल कुमार यादव 3529
संजीव के कथा-साहित्य में आदिवासी अस्मिता से जुड़े आन्दोलन–डॉ० क्षमा यादव 3535
"अमृतलाल नागर के कथा साहित्य में ब्रज लोक संस्कृति की झलक"–डॉ० राधा भारद्वाज 3539

प्राचीन धर्मग्रन्थों में पर्यावरण बोध

सुभाष कुमार

शोधार्थी, विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

प्राचीन धर्मग्रन्थों में वृक्षों की सजीवता का बड़े विस्तारपूर्वक ढ़ंग से विवेचन किया गया है योगवशिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ भगवान राम से वृक्ष के विषय में कहते हैं- "हे राम ऐसे जीव जिनके पुण्य मध्यम होते हैं, वह वायु द्वारा उड़कर औषधि, फल-फूल आदि वृक्षों की योनियों में जन्म लेते हैं।" अथर्ववेद का प्रथम काण्ड वृक्षों में जीवन होने के मत की पुष्टि करता है। 'छान्दोग्य उपनिषद' में वृक्षों की सजीवता के विषय में कहा गया है कि "हे सौम्य! यदि इस बड़े वृक्ष को मूल से काटें तो मनुष्य के रक्त की तरह उनका भी रक्त टपकता है, मध्य (तना) और अग्रभाग (टहनी) काटने से भी वैसा ही जीवन रस निकलना है। वृक्षों में प्राणचेतना का अन्त होने पर वह सूख जाते हैं तथा उनमें किसी प्रकार का स्पदंन नहीं रह जाता।" मनुस्मृति में इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि- कर्मानुसार जीवन विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। वृक्षों में भी मनुष्य की तरह सुख-दु:ख की अनुभूति होती है। यह भी पत्तियों द्वारा सांस लेते जड़ द्वारा खुराक लेते हैं। यह मात्र चल-फिर नहीं सकते हैं। अत: इन्हें स्थावर कहा जाता है।[1]

मनुष्यों की तरह इनमें भी संवेदनायें होती है। हरा-भरा होना इनकी खुशहाली तथा सूखना इनकी मृत्यु का प्रतीक है। इससे स्पष्ट है कि पेड़ भी उसी दिव्य चेतना के प्रकाश पुंज है, जिसके कि मनुष्य तथा मनुष्येत्तर प्राणी। प्रख्यात भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बसु का सम्पूर्ण जीवन ही इस बात को प्रमाणित करने में लग गया कि वृक्षों में भी अनुभूति और भावनायें होती है। आयुर्वेद शास्त्र के पितामह महर्षि चरक के सम्बन्ध में कहा जाता है कि आयुर्वेद की रचना करते समय वे जंगल के एक-एक वृक्षों तथा वनस्पतियों पास जाते थे और उनकी विशेषताएँ पूँछते, वनस्पतियाँ अपनी विशेषताओं तथा औषधि गुण को स्वयं बता देती। भारतीय धर्मशस्त्रों में पेड़ और वनस्पतियों से मनुष्य द्वारा स्थापित किये गये सजीव सम्पर्क की घटनाओं का उल्लेख मिलता है।[2]

मनु के अनुसार वृक्षों की क्षति पहुँचाने पर राजा अपराधी को अपराधनुसार उचित दण्ड देगा।[3] याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी वृक्ष की शाखाओं को काटता है तो उसे 20 पण, तने की काटने पर 40 पण तथा सम्पूर्ण वृक्ष को काटने पर 80 पण का जुर्माना होगा।[4] याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि किसी ऐसे वृक्ष की शाखाएँ, तना अथवा सम्पूर्ण भाग काटा जाये तो वृक्ष किसी धार्मिक स्थान में, श्मशान में, पवित्र स्थान में, मंदिर में अथवा किसी खेत की सीमा पर हो तो अपराधी को दुगुना दण्ड क्रमशत: 40, 80 तथा 160 पण का जुर्माना किया जाएगा। पौधो तथा लताये काटने पर आधा जुर्माना (10, 20, 40 पण) किया जायेगा।[5] मित्रमिश्र का मत है कि जुर्माने के अतिरिक्त, अपराधी, वृक्षों, पौधों तथा लताओं के स्वामी को उचित क्षतिपूर्त्ति (मुआवजा) भी देगा।[6] याज्ञवल्क्य के अनुसार, किसी जंगल अथवा उद्यान में आग लगाने वाले अराधियों को मृत्यु दण्ड दिया जायेगा।[7] नारद के अनुसार फलों अथवा जड़ों को क्षति पहुँचाने वाले अपराधी को अपराधनुसार जुर्माना किया जाय।[8]

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में वृक्षारोपण की उपादेयता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, विष्णु स्मृति में वृक्षारोपण को पुण्य का काम कहा गया है।[9]

जो मनुष्य वृक्षों का आरोपण करता है वे वृक्ष उसके परलोक में पुत्र होकर जन्म लेते हैं। वृक्षों का दान करने वाला, वृक्षों के पुष्पों के द्वारा देवों को प्रसन्न करता है। फलों के द्वारा अतिथियों को सन्तुष्ट किया करता है और मेघ के बरसने पर छाया द्वारा अभ्यागतों को तथा जल से पितरों को प्रसन्न करता है। पुष्पों के दान करने से व्यक्ति समृद्धिशाली होता है। यहाँ वृक्षों के महत्त्व को रेखांकित किया गया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने **'अश्वस्थ सर्व वृक्षाणाम्'** कहकर पीपल को अपना मूर्त्तिमान स्वरूप बताया

है। वट वृक्ष की पूजा का वर्णन पद्म पुराण और मत्स्य पुराण में मिलता है। **'महेश्वरो वटो भूत्वा विष्ठते'** शिव के रूप में इसकी अर्चना करने का विधान है। वन सम्पन्न होंगे तो अधिक वर्षा होगी। वनभूमि के कटाव को रोकेंगे तो धारती की उर्वरता में वृद्धि होगी। जलवायु में संतुलन बना रहेगा। हमें वृक्षों से उपयोगी प्राणवायु प्राप्त होती है। महाभारत में भी वृक्षों की महिमा को बताया गया है।[10]

जिसके कोई पुत्र नहीं है, उसके वृक्ष ही पुत्र होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। वृक्ष लगाने वाला पुरुष परलोक में जाने पर स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। ऋग्वेद में ऋषि ने इसीलिए वृक्षों के महत्व को मानकर ही वृक्ष काटने वालों की निन्दा की है।[11]

"जिस प्रकार दुष्ट बाज पक्षी दूसरे पखेरूओं की गर्दन मरोड़कर उन्हें दु:ख देता है और मार डालता है, तुम वैसे न बनो और इन वृक्षों को दु:ख न दो, इनका उच्छेदन न करो, ये पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं को शरण देते हैं। महाभारतकार ने वृक्षारोपण को धार्मिक भावना से जोड़कर पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति में संतुलन बना रहे, इन सब बातों को ध्यान में रखकर वृक्षारोपण को पुण्य कर्म की संज्ञा से भी अभिहित किया है"।[12]

"भरतनन्दन! वृक्ष लगाने से मनुष्य लोक में कीर्त्ति बनी रहती है और मनुष्य मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग लोक में शुभ फल की प्राप्ति करता हैं। वृक्ष लगाने वाला पुरुष पितरों द्वारा भी सम्मानित होता है, देवलोक में जाने पर भी उसका नाम नष्ट नहीं होता। वह अपने बीते हुए पूर्वजों और आनेवाली सन्तानों को भी तार देता है। अत: वृक्ष अवश्य लगाने चाहिये।[13]

फल और फूलों से भरे हुए वृक्ष इस जगत में मनुष्यों को तृप्त करते हैं, जो वृक्ष[14] दान करते हैं, उनको वे वृक्ष परलोक में पुण्य की भाँति पार उतारते हैं। अत: कल्याण की इच्छा चाहने वाले को सदा ही सरोवर के किनारे वृक्ष लगाना चाहिए। पेड़-पौधों में तुलसी का पौधा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभकारी होता है, ऐसा ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है।[15]

तीनों लोकों में जितने भी गुल्म एवं वृक्ष हैं उन सब में तुलसी सबसे श्रेष्ठ है। मनु स्मृति हरे वृक्षों के संवर्द्धन की चर्चा करती है।[16]

ईंधन के लिये हरे वृक्षों को काटना और निन्दित अन्न को खाना उपपातक है, वन्य सम्पदा हमारे देश की सांस्कृतिक धारोहर रही हैं बनों को सुव्यवस्थित रखने में भी प्रकृति की महती भूमिका है। प्रकृति की निधि व नदी पर्यावरण को सन्तुलित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। भूमिगत जल-स्तर को ऊँचा रखने में सहायक भी होते हैं।

पौराणिक युग में भी वृक्ष पूजनीय था। उस समय पूजा का कारण न केवल भगवत भक्ति थी अपितु पूजा के माध्यम से पर्यावरण शुद्धि एवं रोगों का नाश ही मूल कारण प्रतीत होता है।

महाकवि कालिदास ने तो स्वयं बनों में उसी देवतावाद की कल्पना को साकार किया है, जिसकी कल्पना वैदिक काल में ऋषि एवं महर्षियों द्वारा की गई थी। ऐसी व्याख्या रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने इस प्रकार की है कि यदि हम वन संरक्षण के लिए समर्पित रहेंगे, तो ये वन अरण्य भी देवत्व रूप से हमें सुख भोग प्रदान करते रहेंगे।[17]

श्रावण मास में बाबा भोले शंकर को बड़ी ही श्रद्धा तथा भक्ति भाव से बेल पत्र एवं धातूरा चढ़ाया जाता है। भोलेनाथ सभी प्राणियों का कल्याण करने वाले देवता है। धातूरा और आक स्थानीय पर्यावरण को शुध करने में सहायक तो होता ही है साथ ही साथ महत्वपूर्ण औषधियों के रूप में भी इसका प्रयोग में होता है। यह पौधा पर्यावरण सन्तुलन को बनाये रखने में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पीपल वृक्ष की भांति ही ये पेड़-पौधो प्रचुर मात्रा में मनुष्य को प्राणवायु देता है। वृक्ष पारिस्थिति को सन्तुलन बनाये रखने में भी बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है, यही कारण है हिन्दू परिवारों में बेल के वृक्ष को लगाया जाता है तथा उनका संरक्षण किया जाता है।[18]

पद्मपुराण में यह वर्णन किया गया है कि जिस घर में तुलसी का पौधा रहता है, उसके निवासी भाग्यशाली होते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है कि जिस स्थान पर तुलसी का पौधा लगाया गया है, वह स्थान पवित्र एवं देवताओं का निवास स्थल माना जाता है।[19]

एक दूसरा अत्यन्त प्रसिद्ध वृक्ष रूद्राक्ष है, जिसके फलों को अति पवित्र माना जाता है और जिसके बीजों से जप करने की माला बनती है। उनके अनेक मुख या पक्ष होते हैं, जिनमें से प्रत्येक का एक विशेष अर्थ या महत्व है। एकमुखी रूद्राक्ष दुर्लभ है और उसे पाने वाला शक्ति, आनन्द और सुख भोगता है।

भारत के लिए वृक्ष नई वस्तु नहीं हैं, मोहनजोदड़ों में इसके प्रमाण मिलते हैं। पहले भी ऐसा था और आज भी आमतौर पर ऐसा ही विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक वृक्ष का एक देवता होता है, जिसकी पूजा-प्रार्थना जल, फूल-माला एवं मिठाइयाँ चढ़ाकर या धागा लपेट कर की जाती है। कभी-कभी वृक्ष देवों का आपस में विवाह कर दिया जाता है। मिथिला में वर-वधु को दुष्टग्रहों से बचाने के लिए वधु की शादी पहले आम और महुआ के पेड़ से कराया जाता है। भारत के अनेक भागों में यह विश्वास प्रचलित है कि वृक्षों द्वारा मनुष्य की आत्मा को खींचा जा सकता है। भारतीय ग्रामों की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या वृक्ष-पूजा और ग्राम-देवता की पूजा में भाग लेती है। आज भी ग्रामदेवता वृक्ष के नीचे ही वास करते हैं।

वृक्षारोपण की प्रथा हजारों वर्ष प्राचीन है, क्योंकि मत्स्य पुराण के एक अध्याय में इस समारोह के सन्दर्भ में पूर्ण विधि-विधान का वर्णन मिलता है। विद्वानों द्वारा कथित वह प्रक्रिया इस प्रकार है-

"सर्वप्रथम पृथ्वी को साफ करो और उसे सींचो। वृक्षों को मालाओं से सजाओ, उनके सामने गुग्गुल की सुगन्धा जलाओं और प्रत्येक वृक्ष के पास में एक-एक जल से भरा घड़ा रखो। प्रार्थना के साथ नैवेद्य अर्पण करो और फिर पवित्र जल उनपर छिड़को। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञाग्नि प्रज्वलित करो। इस तरह पूजा करने के उपरान्त वास्तविक वृक्षारोपण सम्पन्न करना चाहिये। जो मनुष्य केवल एक वृक्ष भी लगाता है, वह सीधा स्वर्ग जाता है और परम् पद प्राप्त करना है।"[20]

वाराह पुराण में भी वन महोत्सव या वृक्षारोपण समारोह का वर्णन है।

जो कोई एक पीपल, एक नीम, एक बड, दस फूलों के पौधो या लताएँ, दो अनार, दो नारंगी और पाँच आम के वृक्ष लगाता है, वह नरक में नहीं जाता।[21]

गृहस्थ आश्रम में वृक्षारोपण आवश्यक माना गया है। चाणक्य नीति में कहा गया है कि केवल एक फलो-फूलों का वृक्ष लगाना पर्यावरण को ऐसा आनन्दमय और सुगन्धित बना देता है, जैसा एक सुपुत्र किसी कुटुम्ब को बना देता है।[22]

वृक्ष-पूजा का केवल धार्मिक और पौराणिक आधार ही नहीं है, बल्कि वह पेड़-पौधों की उपयोगिता के विभिन्न तथ्यों पर भी आधारित है। प्रथम तथ्य है- सामान्य व्यावहारिक उपयोगिता अर्थात् मकान के लिए सामग्री प्रदान करना। दूसरा तथ्य है- उनका अच्छी और बुरी शक्तियों के अधीन होना। तीसरा तथ्य है- उनकी औषधियों वाली विशेषता का मूल्य। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या औद्योगीकरण और नागरीकरण में अभिवृद्धि के कारण वनस्पति के लिए उत्पन्न हुए संकट ने उस बुद्धिमता के प्रति सम्मान को अधिक बढ़ा दिया है, जिसने हमारी वृक्ष सम्पदा के संरक्षण पर ध्यान देकर वृक्षों को देश में समादृत बनाया। धीरे-धीरे देश का वन्य क्षेत्र घटता गया है और उद्यान लगाना अब एक पुण्य का कार्य नहीं रह गया है। इस बात ने पर्यावरण को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।[23]

श्रीमद्भागवत में वृक्षों के महत्व का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-

देखो! कितने भाग्यशाली हैं, ये वृक्ष, जो केवल इसलिए जीते हैं कि दूसरों का भला हो। कितनी महानता है, उनकी कि वे आँधी, वर्षा और धूप की प्रखरता सहते हुए भी रक्षा करते हैं।[24]

श्रीमद्भागवत् में ही कहा गया है कि-[25]

"वृक्ष अपने सभी अवयवों-पत्तों, फूलों, फलों, छाया, जड़ों, छाल, लकड़िया, गन्धा, गोंद, राख, कोयले और टहनियों से उनकी कामना पुरी करते हैं''।

श्रीमद्भागवत के अनुसार वृक्षों ने किसी भी याचक को कभी निराश न किया।[26]

समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले इन वृक्षों का जन्म कितना उत्तम है। सज्जनों जैसे कितने धान्य है वे, जिनके पास से याचक निराश नहीं लौटता। विक्रमचरितम् के 65वें श्लोक में वृक्षों को सत्पूरूषों के समान माना गया है। वृक्ष तो सज्जनों जैसे परोपकारी है। स्वयं धूप में खड़े रहते हुए भी वे दूसरों को छाया देते हैं। उनके फल भी दूसरों के उपयोग के लिए होते हैं।[27]

वराहपुराण में वृक्षों के उपकारों का वर्णन किया गया है-

वृक्षों के पाँच उपकार उनके दैनिक पाँच महायज्ञ हैं वे गृहस्थों को ईंधन देकर, पथिकों को छाया व विश्राम स्थल देकर, पक्षियों के नीड़ बनकर तथा पत्तों, जड़ों व छालों से समस्त जीवों को औषधी देकर उनका उपकार करते हैं।[28]

भारत में प्राय: सभी जगह हिन्दुओं के लिए पर्यावरण के संदर्भ में नदी का महत्व देखा जाता है। पूजा प्रत्येक भारतीय व्यक्ति का दैनिक कार्य होता है। पूजा के आरंभ में प्रथमत: नदी का स्मरण किया जाता है स्नान काल में तो प्रत्येक भारतीय नदियों का स्मरण करते ही हैं।[29]

पर्यावरण के कारकों में नदियों और पर्वतों का महत्व सर्वविदित है। वैदिक काल से आज तक इन कारकों का महत्व असन्दिग्ध ा रहा है। वेदों में स्पष्ट कहा गया है कि नदियों के किनारे ज्ञानियों को ज्ञान की प्राप्ति होती है।[30]

महाभारत के शांतिपर्व में व्यास स्पष्ट कहते हैं कि पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से तालाब का निर्माण, वृक्षारोपण, नदी सेवन जलाशयों का शुद्धिकरण आदि कार्य पुण्यदायी होता है।[31]

प्राय: विवाह काल में वर-वधु के आर्शीवाद के समय पुरोहितों द्वारा सुमंगली पाठ किया जाता है। उसमें विविध प्रकार के पर्वत, वृक्ष, नदी आदि का स्मरण दम्पत्ति के दीर्घायु के लिए किया जाता है।[32]

नि:संदेह प्राचीन काल में जल की शुधता का बड़ा ध्यान रखा जाता था, क्योंकि स्नान, तर्पण, आचमन आदि सारी क्रियाएँ जल से ही सम्पन्न होती थी।[33] जल को हर प्रकार के प्रदूषण से बचाया जाता था।

मनु ने कहा है कि-

मूत्र, मल, थूक, रक्त किसी प्रकार के विष या अन्य किसी उपवित्र वस्तु जैसे जूठन आदि को जल में नहीं डालना चाहिए। जल को हर प्रकार के प्रदूषण से बचाने का यत्न करना चाहिए।[34] कहा यह भी गया है कि आग में भी किसी अपवित्र वस्तु का प्रक्षेण न किया जाय- "अग्नि में दूषित वस्तु के प्रक्षेपण से दूषित धुआँ निकलेगा, वह सारे पर्यावरण को दूषित बनाएगा। स्मृतिकारकों की जल की ओर तो विशेष दृष्टि थी ही, इसके अतिरिक्त जहाँ सबके पैर पड़ते हैं, ऐसे स्थलों यथा-रास्तों, गायों के बैठने के स्थानों, भस्म, जुते हुए खेत, किसी वस्तु के ढ़ेर, चिता, आयताकार स्थान, पर्वत, टूटे-पुराने देवस्थान, जल और वावड़ी पर मल-मूत्र-त्याग वर्जित था। नदी किनारे पर और पहाड़ी के ऊपर भी मल-मूत्र-विसर्जन निषिद्ध था।[35]

प्रदूषित जल को निर्मली के फल से शुध किया जाता था। इससे मिट्ठी और दूषित कण नीचे बैठ जाते थे।[36] जल को मोटे वस्त्र से छानकर पिया जाता था।[37]

प्राय: सभी धर्मसूत्रों, स्मृतियों और राजनीति के ग्रन्थों में राज्य में बनों, अभ्यारण्यों या मृगबनों और चरागाहों की स्थापना कर जोर दिया है। कौटिल्य ने चार प्रकार के बनों का विधान किया है- सोमारण्य, तपोवन, विहार-वन और मृगवन। इनमें से किसी के भी वृक्ष को काटना वर्जित था। केवल अरण्यों की लकड़ी यज्ञ-यूपों के लिए काटी जा सकती थी। वृक्ष काटना हिंसा माना जाता था और उसे काटने वाला पाप का भागी माना जाता था।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में वृक्ष-वनस्पतियों का वर्गीकरण प्राणियों के रूप में किया गया है। अन्य प्राणियों की तरह से ये सुप्त चेतना वाले सजीव है। उन्निद्रित मानव की तरह ये भी दु:ख-सुख का अनुभव करते हैं। वृक्षों में देवत्व की भावना का विकसित रूप पुराणों में मिलता है। पद्मपुराण के कोलाहल नामक युद्ध में दानवों से पराजित देवताओं ने प्राणरक्षा के लिए वृक्षों की शरण ली थी। तभी से वृक्षों में देवताओं के निवास की मान्यता प्रचलित हुई। देवताओं के निवास के कारण वृक्षों का संरक्षण एवं पूजन पुण्य तथा उनका कर्तन एवं विनष्ट पाप माना गया।

आज भी सीमा पर स्थित सधान वृक्षावलियाँ और वनस्पतियाँ युद्ध के समय सैनिकों की रक्षा करती हैं सीमा पर धानी वृक्षावलियाँ वनस्पतियों का संरोपण करने के लिए मनुस्मृति का कथन पर्यावरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।[38]

प्राकृतिक तत्त्वों में देवत्व की भावना का एक दूरगामी परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर पाप एवं पुण्य की अवधारणा इससे जुड़ गई। प्राकृतिक तत्वों का संरक्षण पुण्य एवं इनका भक्षण या बिनाश पाप माना गया। प्राकृतिक तत्त्वों में पशु-हत्या एवं वृक्षों के बिनाश पर पंचतंत्र व्यंग्य करता है।[39]

सत्त्वों की हत्या के संदर्भ में प्राचीन ग्रन्थों में बहुत कुछ कहा गया है। इसी प्रकार प्राचीनकाल में पशु-पक्षी, जीव-जन्तु तथा वृक्ष-वनस्पतियों के प्रति संरक्षण को पुण्य मानने की अवधारणा व्यापक रूप से प्रचलित थी। इसी नैतिक आस्था के कारण आज भी गाँवों में प्राय: घरों के सामने नीम का पेड़ और घर के अन्दर तुलसी का बिरवा देखने को मिल जाता है। उनकी यह स्पष्ट ध ारणा है कि मनुष्य के प्रत्येक कार्य को ये प्राकृतिक या दैवी शक्तियाँ ही देखती है।[40]

पूज्य-पूजक भाव से सम्पूर्ण प्रकृति और मानव के बीच स्नेहिल सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी हुई है।

पर्यावरण का संरक्षक, सम्पूर्ण पहाड़ का निर्माण भी ईश्वर के द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए ही किया गया है। पहाड़ प्रकृति का बहुमूल्य निधि है। पर्वत के चोटियों एवं घाटियों के गोद में बड़े-बड़े जंगल होते हैं। जो पर्यावरण शुद्धि के लिए सर्वोत्तम साधन माने जाते हैं। प्राचीन काल के कवि एवं नाटककार अपने-अपने काव्यों में पर्वतों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है। इस सन्दर्भ में महाकवि कालिदास रचित कुमारसंभव महाकाव्य इसका विशद वर्णन करता है।

देवता सम्बन्धी यास्क का निर्वचन अत्यन्त प्रसिद्ध है- "हिमालय पर देवताओं का निवास है, स्वयं देवाधिदेव भगवान् शिव का निवास हिमालय ही है। हिमालय न केवल बर्फ के लिए प्रसिद्ध है, अपितु इसके गोद में अनेक जंगलों एवं उनमें प्राप्त दिव्य औषधि -वनस्पतियाँ आदि भी इसके महत्त्व को बढ़ाता है। हिमालय के लिए कहा जाता है कि यह पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है। रोगी यहाँ आकर रोगमुक्त हो जाते हैं। मनोरोगी भी यहाँ स्वस्थ हो जाते है। कुष्ठ रोगी अत्यन्त शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

हिमालय के क्षेत्र को भारत में देवक्षेत्र माना जाता है, जैसे देवताओं में विष्णु कल्याणकारी एवं शान्ति प्रदान करने वाले हैं, वही स्थान हिमालय का भी है। मुख्यतः भारत का सम्पूर्ण भू-भाग, पर्यावरण हिमालय पर्वतमाला से प्रभावित होता है। भारतीय जलवायु संरचना में हिमालय की महती भूमिका होती है। जहाँ शीतकाल में आनेवाली शीतवायु को रोक दिया जाता है, जिससे शीत ऋतु में तापमान न्यूनाधिक नहीं हो पाता है। शीत वायु सभी प्राणियों के लिए प्राणघातक होता है, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में यही हिमालय वर्षा का उपकारक होता है।

हिमालय को पर्यावरण का रक्षक, संशोधक, वनस्पति का निधि एवं देवताओं का अधिवास कहा जाता है। इसका मूल यहाँ का परिशुध वायु ही है। यहाँ घूमने मात्र से रोग भाग जाता है। हलायुधा कोष भी इस बात का उल्लेख करता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से हम देखते हैं कि पर्यावरण परिशुद्धि के लिए हमारे ऋषि-मुनि, कवि सभी प्राचीन काल से अत्यन्त प्रयत्नशील रहे हैं। साथ ही हमारे धर्मशास्त्र के साथ-साथ प्राचीन सभी साहित्य पर्यावरण संरक्षण का उल्लेख विशद रूप से इस ग्रन्थों में मिलता है और ये साहित्य हमें पर्यावरण संरक्षण का मंत्र देता है।

स्मृतियों में गंभीर अपराधें के साथ-साथ अत्यन्त सूक्ष्म अपराधें का भी वर्णन है, जो तत्कालीन समाज की सभ्यता के विकास एवं चिन्तकों की विद्वत्ता के परिचायक है।

मनु का मत है कि यदि कोई व्यक्ति तालाब की सीमा अथवा बांधा को तोड़ता है, या उसे क्षतिग्रस्त करता है, तो उसे उस तालाब अथवा बांधा की मरम्मत करानी होती थी तथा उस पर जुर्माना किया जाता था। यदि वह व्यक्ति क्षतिग्रस्त तालाब अथवा बांधा की मरम्मत नहीं कराता था अथवा जुर्माना नहीं देता था, तब उसे मृत्यु दण्ड दिया जाता था। याज्ञवल्क्य का मत है कि यदि कोई स्त्री बांधा तोड़ती है तो उसे नदी में फेंक कर मृत्यु दण्ड दिया जायेगा। यहाँ भाष्यकारों का मत है कि गर्भवती स्त्री को इस अपराध के लिये मृत्यु दण्ड नहीं दिया जायेगा। मनु के अनुसार बांधा अथवा बड़े पुल को तोड़ने के समय जो मदद नहीं करते हैं, उन्हें देश से निष्कासनका दण्ड दिया जायेगा। इस तरह बांधा, तालाब, एवं पुल भी पर्यावरण के संरक्षण के कारक है।

साथ ही हमारे धर्मशास्त्र के साथ-साथ प्राचीन सभी साहित्य पर्यावरण संरक्षण का उल्लेख विशद रूप से इन ग्रन्थों में मिलता है। और ये साहित्य हमें पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. डॉ. सत्यनारायण दूबे-पर्यावरण अध्ययन, शारदा पुस्तक भवन प्रथम संस्करण 210, इलाहाबाद, पृ. 123.
2. उपर्युक्त, पृ. वही।
3. मनुस्मृति, 8/285.
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/227.
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/229.
6. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/229 पर मित्रमिश्र की व्याख्या।

7. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/282.
8. नारद स्मृति, 14/4.
9. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव-इक्कीसवी सदी का पर्यावरण आंदोलन चिन्तन के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण 2010, नई दिल्ली, पृ. 125.
10. उपर्युक्त, पृ. वही।
11. उपर्युक्त, पृ. 126.
12. उपर्युक्त, पृ. वही।
13. उपर्युक्त, पृ. वही।
14. उपर्युक्त, पृ. वही।
15. उपर्युक्त, पृ. वही।
16. उपर्युक्त, पृ. वही।
17. स्कन्द पुराण, 6/247/21-22.
18. स्कन्द पुराण, 6/251/14.
19. स्कन्द पुराण, 21/66.
20. मत्स्य पुराण, 59/159.
21. बाराह पुराण, 172/39.
22. चाणक्य नीति दर्पण, 3/14.
23. डॉ. निधि मिश्रा-आयुर्वेद में पर्यावरण एवं समाज, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, प्रथम संस्करण 2009 नई दिल्ली, पृ. 120.
24. उपर्युक्त, पृ. वही।
25. उपर्युक्त, पृ. 121.
26. उपर्युक्त, पृ. वही।
27. उपर्युक्त, पृ. वही।
28. बाराहपुराण, 162/41-42.
29. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव-इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आंदोलन चिन्तन के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2010 नई दिल्ली, पृ. 117.
30. ऋग्वेद, 8/6/24.
31. महाभारत, शांतिपर्व, 58/32.
32. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव-इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आंदोलन चिन्तन के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशनस, प्रथम संस्करण 2010, नई दिल्ली, पृ. 118.
33. मनुस्मृति, 4/203.
34. मनुस्मृति, 4/56.
35. मनुस्मृति, 4/47.
36. मनुस्मृति, 6/67.
37. मनुस्मृति, 4/46.
38. मनुस्मृति, 6/246.
39. पर्यावरण प्रभुत्वम्, 8/24
40. मनुस्मृति, 8/279

लोहिया के चौखम्भा की वर्तमान स्थिति

दीपेश कुमार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), राजनीति विज्ञान विभाग, बी.एन.एम.यू., मधेपुरा

शोध-सारांश

डॉ. लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में चौखम्भा राज्य की योजना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस योजना के माध्यम से डॉ. लोहिया ने केन्दीकरण व विकेन्द्रीकरण की परस्पर विरोधी अवधारणा के माध्यम से समन्वय और संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। इस योजना के अन्तर्गत गांव, मण्डल, प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकार के महत्व व अस्तित्व को बनाये रखते हुये उन्हें एक कार्यमूलक संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत एकीकृत कर दिया जायेगा तथा वे अपने अपने जिम्मे के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुये स्वायत्ता के आधार पर एक सूत्र में बांधो रहेंगे। यह चौखम्भा राज्य की योजना मात्रा विकेद्रित प्रशासन की योजना ही नहीं है वरन् आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की भी योजना है। अत: प्रशासन संचालन के साथ-साथ इसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व एवं संचालन कृषि विकास शिक्षा स्वास्थ्य आदि सभी योजनाओं का कार्यान्वयन भी सम्मिलित है। डॉ. लोहिया द्वारा प्रतिपादित यह विकेन्द्रित चौखम्भा राज्य की योजना गांधीवादी ग्राम स्वराज योजना मूर्त रूप है तथा इसका प्रमुख अंग ग्राम पंचायत है जिस पर सम्पूर्ण प्रशासन के संचालन का उत्तर दायित्व है। वहीं से जिला प्रान्तीय एवं केन्द्रीय प्रशासन अपनी शक्ति और प्रेरणा प्राप्त करता है। अत: एक शुध पंचायती राज का सकारात्मक रूप है। तथा ग्राम पंचायत सम्पूर्ण प्रशासन में बुनियादी महत्व रखती है। डॉ. लोहिया का मत था कि ऐसे राज्य में ही सभी नागरिकों की प्रजातांत्रिक भागीदारी सम्भव हो सकती है। यह योजना उनके अनुसार मात्रा श्वेतशाषी स्वावलम्बी गांव की योजना ही नहीं बल्कि एक विवेकशील जीवन्त की योजना है।

मुख्य शब्द: केन्द्रीय प्रशासन, छत्रराज, विकेन्द्रीकरण, बेरोजगारी, मंडल, चौखम्भा, ग्राम पंचायत

प्रस्तावना

भारत गाँवो का देश रहा है और आने वाले समय में भी रहेगा। इस तरह देश की शासन व्यवस्था की सफलतापूर्वक कार्य करने व देश के विकास के लिए गाँवें का विकास होना अति आवश्यक है। इस दिशा में राम मनोहर लोहिया जी के चौखम्भा राज का सिद्धांत काफी हद तक ग्रामीण विकास पर टिका है। प्रस्तुत लेख के माध्यम से हम लोहिया जी के चौखम्भा राज को जानने की कोशिश करेंगे। और वर्तमान समय में बिहार सरकार व केंद्र के प्रयासों को भी जानने की कोशिश करेंगें जो ग्रामीण विकास को लेकर प्रतिबद्ध है।

लम्बी लड़ाई के बाद 1947 में जब भारत को आजादी मिली तो एक तरफ उम्मीदें थी और दूसरी तरफ कई आशंकाएं। पश्चिमी दुनिया के एक बड़े हिस्से को लगता था कि भारत लोकतंत्र की राह पर ज्यादा दूर तक नही चल पाएगा। इसकी एक वजह तो उसकी असाधारण विविधता थी। जिसके चलते कहा जाता था कि इस एक देश में कई देश हैं। दूसरा कारण यह था कि जिस मजबूत विपक्ष को लोकतंत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए बेहद जरूरी माना जाता है वह यहाँ नदारद दिखता था। ऐसे में वे लोहिया ही थे जिन्होंने विपक्ष क्या होता है और उसे क्या करना चाहिए, का पाठ भारतीय लोकतंत्र को सिखाया। अपने प्रयासों से उन्होंने आजादी के बाद एक छत्रराज करने वालाी काँग्रेस को 1967 तक पानीपीने पर मजबूर कर दिया। लेकिन ऐसा करने के लिए उन्होंने अपने मूल सिद्धांतों से समझौता नहीं किया।

लोहिया ने अपनी चर्चित कृति समाजवादी नीति के विविध पक्ष के अंतर्गत यह तर्क दिया कि समाज को संरचना में चार परतें पाई जाती है– गाँव (Village), मंडल (District) प्रांत (Province) और राष्ट्र (Nation) यदि राज्य का संगठन इन चारों परतों के अनुरूप किया जाए तो वह समुदाय का सच्चा प्रतिनिधि बन जाएगा। अत: राज्य में चार स्तंभों का निर्माण करना होगा। इस व्यवस्था को लोहिया ने चौखम्भा राज्य की संज्ञा दी है। जैसे चार खम्भें अपना पृथक-पृथक अस्तित्व रखते हुए भी एक छत को संभालते है वैसे ही यह व्यवस्था केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की परस्पर-विरोधी अवधारणाओं में सामंजस्य स्थपित करेगी।

प्रचलित व्यवस्था में से जिलाधीश का पद समाप्त कर देना होगा। क्योंकि वह प्रशासनिक शक्ति के जमाव का प्रतीक है। पुलिस व कल्याणकारी कार्य, गांव व नगर की पंचायतों को संभालने होंगे। ग्राम प्रशासन छोटी-छोटी मशीनों पर आधारित कुटीर उद्योगों के रूप में संगठित होंगे। इससे आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण और बढ़ती हुई बेरोजगारी को भी दूर किया जा सकेगा। लोहिया ने इस प्रस्तावित व्यवस्था को विश्व स्तर पर अलग करने को सुझाव दिया है जो विश्व संसद और विश्व सरकार के रूप में अपने तर्क संगत परिणाम पर पहुँचेगी।

26 फरवरी, 1950 को लोहिया जी ने भागीदारी आधारित लोकतंत्र को विस्तृत रूपरेखा अपने भाषण 'चौखम्भा राज्य' में प्रस्तुत करते हुये वे कहते है, यह जीवन का एक ढंग होगा जो मानव जीवन के सभी क्षेत्रों से संबंध रखेगाा जैसे उत्पादन, स्वामित्व, व्यवस्था, शिक्षा, योजना आदि। इस रूप में उन्होंने जनता की सीधी भगीदारी को लोकतंत्र का प्राण कहा है। एक निश्चित सीमा तक हमारा संविधान इस भागीदारी आधारित लोकतंत्र की स्थापना के लिए हमें एक ढांचा भी मुहैया कराता है। राज्य के नीति निर्देशक तत्व आर्थिक सामाजिक विषमता को दूर करके जनता की भागीदारी से समता मूलक समाज की रचना का लक्ष्य सामने रखते है। पंचायत नगर पालिका, जिला योजना समिति तथा राज्य वित आयोग जैसे संवैधानिक संस्थाओं के रूप में नीचे से लेकर ऊपर तक योजना और वित्त प्रबंधन का पूरा ढ़ाँचा मौजूद है।

73 वें और 74 वें संविधान संशोधन के बाद स्थानीय समस्याओं को ऐसे कर्त्तव्य व अधिकार मिले है जो योजना और उसे लागू करने में जनता को सीधी भागीदारी सुनिश्चित करते है। संविधान पंचायत और नगरपालिकाओं को स्थानीय स्वशासन को संस्थाएँ न कहकर उन्हें 'स्वशासन को संस्थाएँ कहता है' स्थानियें स्वशासन का मतलब हुआ स्थानीय स्तर पर स्थानीय मुद्दो को निपटाने की संस्थाएं। लेकिन स्वशासन का मतलब हुआ स्वराज यानि जनता स्वय अपने लिए निर्णय ले और उन्हें लागू करें। इसका अर्थ ये है कि ये केन्द्रीयें संस्थाओं की ताबेदार नहीं होगी बल्कि इन्हें लोकतंत्र में बराबर की जगह हासिल है, ये योजना बनाने लागू करने और वित्त प्रबंधन तक में स्वायत्त है इस रूप में संविधान में हमें ऐसे संस्थाओं का ढाँचा दिया है, जिसे मजबूती प्रदान कर हम भागीदारी आधारित लोकतंत्र का विकास कर सकते है। वे विकेन्द्रीकरण में विश्वास व्यकत करते है और कहते है कि सत्ता के केन्द्रीकरण से तानाशाही बढ़ती है। विकेन्द्रीकरण में शक्ति जनता तक पहुंचती है और वह अपने को उसका सझेदार समझती है इसलिए वे मानते है कि राजशक्ति का विकेन्द्रीकरण प्रजातंत्र और समाजवाद के लिए आवश्यक है। इसके माध्यम से जनता में जागृति आती है और वह अपने को समाज का सक्रिय हिस्सा मानती है। इस प्रकार वो लोहिया जी चौखम्भा योजना को जनता की राजनीति का हिस्सा मानते है। वो कहते है, हमें नीचे की, जनता की किसान की, मजदूर की विद्यार्थी को राजनीति चलाना है।

भारतीय संविधान के 73 वें संशोधन के आलोक में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ करने हेतू बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006 अधिनियमित किया गया है एवं स्वशासन में आम लोगों की सहभगिता बढ़ाने, पारदर्शिता लाने, अनुसूचित जनजातियों, समाज के अत्यंत पिछड़े वर्गो तथा महिलाओं को सम्मानजनक भागीदारी सुनिश्चित करने हुतू निरंतर सार्थक प्रयास किये गये हैं। अब ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का उतरदायित्व पंचायतों के पास है। आम जन को घर बैठे गाँव में उचित न्याय प्राप्त हो, इसके लिए ग्राम कचहरी का भी गठन राज्य में किया गया है।

त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके द्वारा ग्रामीण समुदाय को सत्ता में भागीदारी निभाने का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया गया है। ग्रामीण विकास में त्रिस्तरीय पंचायतों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। 14वें वित्त आयोग को अनुशंसा के आलोक में बिहार राज्य में भी ग्राम पंचायतों को राज्य स्तर से सीधे राशि उपलब्ध कराने का निर्णय लिया गया है। यह राशि संबंधित ग्राम पंचायतों के बैंक खाता में इलेक्ट्रॉनिक ट्रान्सफर के माध्यम से अंतरिक्त की जाएगी। 14वें वित्त आयोग की अनुशंसाओं के फलस्वरूप ग्राम पंचायतों का कार्य क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत एवं व्यापक हुआ है। इसके तहत ग्राम पंचायतों को ग्राम पंचायत विकास योजना का निर्माण करना है। अब ग्राम पंचायतों को विस्तृत, सर्वांगीण, समेकित, समावेशी और सहभागितापूर्ण, योजनाएँ तैयार करने

का दायित्व सौंपा गया है। इस क्रम में राज्य की सभी ग्राम पंचायतें अपने क्षेत्र की विकास संबंधी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूरा करने के लिए, अपने उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए अगले पाँच वर्षो के लिए दीर्घ कालिक और वार्षिक कार्य योजनाएँ की ग्राम पंचायतों के वार्ड स्तर पर संसाधनों एवं आवश्यकताओं का आंकलन करते हुए तैयार एवं अनुमोदित किया जाएगा। तत्पश्चात इन्हे ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम सभा द्वारा पारित कराया जायेगा।

14वें वित्त आयोग अंतर्गत केन्द्र प्रदत्त बुनियादी अनुदान की राशि का उपयोग ग्राम पंचायतों द्वारा चिन्हित मूलभूत सेवाओं पर भी किया जाएगा। ग्रामीण अपने प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर आजीविका सवंर्धन तथा पंचायत की मूलभूत सुविधाओं की सुदृढ़ करने के लिए जनोपयोगी योजनाओं का चयन कर सकते है, जो निम्नांकित हो सकते है :

(क) कृषि: फलदार वृक्षारोपण, भूमि समतली करण, पोखर, तालाब, कुआँ, वर्मी कम्पोस्ट टैक आदि।

(ख) पेयजल व स्वच्छता व्यवस्था-पुरानी सामुदायिक नल-जल प्रणाली का रख-रखाव, घर-घर नल-द्वारा पेयजल आपूर्ति, सामुदायिक नल-जल प्रणाली का निर्माण, सामुदायिक शौचालयों का निर्माण, पक्के नालों का निर्माण, सोखता, गढ़ो का निर्माण, वर्षा जल की निकासी हेतु प्रबंध आदि।

(ग) बुनियादि सुविधाएँ: सड़क, पैदल पथ, पुलिया व खेल का मैदान, टोला सम्पर्क पथ का निर्माण एवं रख-रखाव, सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था, पंचायत भवन, सामुदायिक भवन स्कूल भवन, आँगनवाड़ी केन्द्र आदि में प्रकाश की व्यवस्था इत्यादि।

(घ) उधान: पंचायतो में उद्योगों का विकास एवं रख-रखाव।

(ड़) कब्रिस्तान/श्मशान: कब्रिस्तान एवं शमशान में चबूतरा एवं चहार दीवारी का सुदृढीकरण एवं रख-रखाव तथा अन्य विकास कार्य।

विकास की सभी योजनाओं में टोला को इकाई मानकर कार्य किया जाना होगा। एक ही गांव के विभिन्न टोलों में से कुछ विकास से वंचित नहीं रह जायें, यह सुनिश्चित किया जाना होगा। विशेष कर महादलित एवं कमजोर वर्गो के टोलों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ते हुए उन्हें विकास की आयोजना में समुचित स्थान दिया जाना होगा। इन सभी विकास के योजनाओं के अलावे भी बहुत सारे कार्य है जो पंचायत के जमीनी स्तर पर विकास के लिए व जनता की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए मनरेगा, एन. आर. एल. एम., दीन दयाल उपाध्याय कौशल विकास योजना, एन. एस. एपी. आदि के माध्यम से लोहिया जी के चौखम्भा का स्वप्न साकार हो रहा है। जो सपना राम मनोहर लोहिया जी ने देखा था कि गाँव को अधिक सशक्त किया जाना चाहिए वो कार्य केन्द्र सरकार 73वें व 74वें संविधान संशोधन के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में त्रिस्तरीय शासन व शहरी क्षेत्र में भी त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था को संवैधाससनिक दर्जा देकर सिर्फ शक्ति का विकेन्द्रीकरण ही नही किया है बल्कि भारत जो कि गाँवों का देश है, अत: गाँवों को समृद्ध होना आवश्यक है वो कार्य भी तेज रफ्तार से हो रही है जो हमें साफ-साफ दिख रही है।

निष्कर्ष

अंत: हम कह सकते है कि भारतीय समाजवादी विचारक लोहिया जी ने जो चौखम्भा राज का स्वप्न देखा था वों आज वर्तमान भारत में कहीं उससे अधिक ताकतवर और अधिक सुविधाओं से लैस हमारे गाँव की सरकार यानि की स्थानीय स्वशासन की सरकार कार्यशील है और समय-समय पर उनमें सुधार व आवश्यकतानुसार पंचायती राज सुधार समिति का गठन करके उनमें वांछनीय सुध ार भी करते आये है, हमारी सरकार भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश रहा है और देश की अर्थव्यवस्था मूल रूप से कृषि पर ही टिकी है। अर्थात गाँवों को विकसित और प्रशासनिक रूप से मजबूत करना पहली प्राथमिकता रही है, जिनमें हमारी सरकार बहुत हद तक सफल भी रही है। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना, उज्ज्वला योजना और ऐसे ही कई योजनाएँ देश की जनता को व खास कर गाँवों के किसानों को आर्थिक रूप से मजबूत बना रही है। आज वैश्वीकरण की दौर में गलोबल विलेज का विकास जिस तेज गति से हो रहा है उससे भारत का गाँव अछूता नहीं रह सकता है। वर्तमान करोना से बचाव के लिए किये जा रहें प्रयास काफी सराहनीय है जो लोकतंत्र को डोर टू डोर पहुँचा दिया है। अन्यथा किसी भी राज्य के मुख्यमंत्री या देश का प्रधानमंत्री को ग्राउण्ड जीरो लेवल पर विकस कार्य या आपदा काल में तीव्र गति से लाभ पहुंचाना मुश्किल ही नही असंभव होता है। परंतु स्थानीय स्वशासन और जनता की भागीदारी वाले शासन पंचायतीराज की ही देन है कि आज सम्पूर्ण भारत तरक्की की नई राह पर अग्रसर

है। अर्थात हम कह सकते है कि लोहिया जी के चौखम्भा राज की वर्तमान स्थिति जिसमें पहले की तुलना में आज अधिक अच्छी है।

संदर्भ-सूची

1. चंदन शर्मा 23 मार्च 2020 Satyagrah. Scroll.in
2. कुमार नीरज Media VIGIL 12 October 2019
3. S.P.I .org . in chaukhamba – rag – sammelan 04 nove 2014
4. Hamara Gaon Hamari Yojna. Pd & Bihar pp-o6
5. वही पृ. सं. 13-14
6. ओंकार शरद-लोहिया के विचार, पृष्ठ 243-244
7. सन् 1956 में समाजवादी दल और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के मिलन स्वरूप संयुक्त समाजवादी दल का निर्माण हुआ।
8. 'अमर उजाला'–21.01.2009
9. डॉ. राम मनोहर लोहिया बिल टू पावर एन्ड अदर राइटिंग, पृष्ठ 132
10. राम मनोहर लोहिया–आसपेक्ट्स आफ सोशलिस्ट पॉलिसी
11. 13 अक्टूबर 1965 लोहिया का वक्तव्य प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वार प्रतिवेदित
12. राम मनोहर लोहिया व्हील ऑफ हिस्ट्री, पृष्ठ 111

स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहारी महिलाएँः पृष्ठभूमि और प्रभाव

डॉ० अमित कुमार

पूर्व शोध छात्रा, इतिहास विभाग, बी. एन. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपूरा

आपाला हो या भारती या रामगढ़ की रानी हो या बर्द्री की ठकुराईन। जनकदुलारी जी हो या प्रभावती जी ऐसे अगणित नाम हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन के समय अपनी जान हथेली पर रखकर सम्पूर्ण महिला समाज को सक्रिय भागीदारी के लिए उत्प्रेरित किया। इनके बलिदान एवं संघर्ष की गाथा आज भी इतिहास के पन्नों को जीवंतता प्रदान कर रहे हैं।[1]

उत्तर बिहार के तिरहुत प्रमंडल का चम्पारण जिला हिमालय के चरणों में नेपाल के समीप बसा हुआ ऐतिहासिक महत्व का स्थान रहा है। यहाँ कभी विस्मृत अतीत में दार्शनिक राजा जनक रहते थे। चम्पारण का भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में अद्वितीय महत्व का स्थान है। अफ्रीका से लौटने के बाद गाँधी जी ने नवोदित राष्ट्रवाद का पहला सफल प्रयोग यहीं किया था।[2] सन् 1917 ई. राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के पदार्पण से बिहार के चम्पारण जिले में स्वतंत्रता आन्दोलन में तेजी आयी जिसमें 1919 आते-आते सैकड़ों बिहारी महिलाएँ आजादी की लड़ाई में अपनी सक्रिय भूमिका अदा की जिनमें 'बा' (कस्तूरबा गाँधी) और श्रीमती प्रभावती जी, सरला देवी, राजवंशी देवी, राधिका देवी, सुनीति देवी आदि वीरांगना महिलाओं की प्रेरणा से सम्पूर्ण बिहारी महिला समाज में आजादी की लहर पैदा हो गयी और महिलाएँ बिना रूके हुए इस जंग में कूद पड़ी।[3] विदेशी सरकार की नृशंस दमन नीति के राष्ट्रव्यापी विरोध करने के शंखनाद पर बिहार की आत्मा उद्वेलित हो उठी। उसके नेता एवं लोगों ने उत्साह के साथ इसमें योगदान किया जिनमें महिलाएँ भी पीछे नहीं रहीं। उन्होंने भी इस शंखनाद पर रोलेट विधेयकों के विरूद्ध बिहार में 1919 फरवरी के अंतिम दिनों में आन्दोलन आरंभ कर दिया। मार्च में पटना, गया, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, छपरा और भागलपुर में विरोध प्रकट करने हेतु अनेक सभाएँ हुई।[4] इन सभाओं में हर वर्ग की महिलाएँ शामिल हुई। बिहार में 1920 के दिसम्बर यात्रा के दौरान सभाओं में भाषण करने के अतिरिक्त गाँधी जी विशेष बैठकों में छात्रों से मिले और उन्होंने कहा–मुझे भारत के नौजवानो (लड़के-लड़कियों को) से कहना है कि यदि वे पंजाब के अत्याचारों पर अपने को अपमानित समझते हों या खिलाफत संबंधी संकल्प उल्लंघन का अर्थ समझते हों तो बिना सोचे-विचारे सरकारी स्कूलों और कॉलेजों को खाली कर दें।[5] इतना सुनते ही बिहारी लड़कियाँ अपने पठन-पाठन को स्थगित कर आन्दोलन में कूद पड़ीं। सन् 1921 ई. के अक्टूबर माह में सरला देवी ने बिहार के विद्यार्थियों को सरकारी स्कूल छोड़ने का आह्वान किया। इनके इस आह्वान से सारे स्कूली छात्र बिना रूके झुके कांटों का ताज धारण कर आजादी के संघर्ष में कूद पड़े। प्रिंस आफॅ वेल्स के भारत आगमन के दौरान होने वाले समारोह के बहिष्कार की अगुवाई श्रीमती सावित्री देवी नामक महिला ने की। इसी साहसी महिला की अध्यक्षता में अंग्रेजों की दबंगकारी नीतियों के विरूद्ध कई आम सभाएँ और आन्दोलन हुई। यहाँ की महिलाओं ने इन दिनों चर्खा संभाल लिया एवं सत्याग्रह आन्दोलन की गति में तेजी लायी। जब-जब इनकी जरूरत हुई ये मैदान में तिरंगा झंड़ा लेकर आगे बढ़ती रही। इन वीर महिलाओं में पटना की श्रीमती सी. सी. दास और श्रीमती उर्मिला देवी का नाम प्रमुख है।[6] सन् 1921 के सत्याग्रह समाप्ति के बाद भी बिहार की महिलाएँ काफी बढ़चढ़ कर भाग लेती रहीं।[7] गाँधी जी इस प्रान्त में दिसम्बर प्रारंभ में यात्रा की जो अल्पकालिक थी। उन्होंने देशबंधु स्मारक कोष के लिए धन संग्रह करने का काम किया। गाँधी जी जहाँ-जहाँ जाते, चंदा एकत्र किया जाता। इस प्रकार लगभग 7 हजार रुपये नगद मिले। महिलाओं ने अपने कीमती आभूषणों को अपने शरीर से उतार कर दिया, इनमें जड़ाऊ कंगन और अंगूठियाँ भी होती।[8] महात्मा गाँधी के साथ यात्रा करने वाली महिलाओं में श्रीमती प्रभावती देवी (लोक नायक जय प्रकाश नारायण की पत्नी) अग्रणी थी। मुजफ्फरपुर में महिलाओं का जत्था देखने लायक

था। इसी समय बिहार में स्वदेशी और चर्खा आन्दोलनों की प्रगति जोरों पर थी। विदेशी वस्तुओं को जलाया जा रहा था, स्वदेशी वस्तुओं को अपनाया जा रहा था। इसी समय श्रीमती सरला देवी ने छोटा नागपुर प्रमंडल में कई जिलों में खद्दर एवं चर्खा पर भाषण दिया जिसका प्रभाव सम्पूर्ण बिहारी महिलाओं पर देखने को मिला। बिहार के स्थानीय नेताओं ने भी प्रान्त के विभिन्न भागों में अक्टूबर तथा नवम्बर, 1921 में अनेक सभाएँ की।[9] इन सभाओं में महिला मित्र मंडल का नेतृत्व सरला देवी ने किया। 24, अक्टूबर को श्रीमती सावित्री देवी उन दिनों बिहार में असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रही थी।[10]

12 मार्च, 1930 को जब नमक आन्दोलन का श्री गणेश गाँधी जी ने किया तो इस आन्दोलन का गहरा प्रभाव महिलाओं पर पड़ा और सभ्रांत महिलाओं ने भी नमक कानून भंग किया। इस नमक सत्याग्रह आन्दोलन में महिलाओं की कई आमसभाएँ भी हुई। संथाल परगना की श्रीमती शैलबाला राय के प्रभावशाली भाषणों से उत्प्रेरित होकर सैकड़ों महिलाएँ नमक कानून भंग करने की ओर बढ़ी। शाहाबाद जिले में राम बहादुर की पत्नी ने सासाराम थाने के समक्ष नमक बनाकर नमक-कानून भंग किया। इसी बीच हजारीबाग जिला काँग्रेस कमिटी की अध्यक्ष श्रीमती साधना देवी, श्रीमती सरस्वती देवी को गिरफ्तार किया गया और इन्हें छह माह तक कठोर कारावास की सजा दी गयी।[11] बिहार की शिक्षित महिलाओं में जागरण का आसार दीख रहा था। जनवरी, 1929 में पटना में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का अधिवेशन हुआ जिसमें बिहार की महिलाओं को देश के अन्य भागों की महिलाओं से मिलने का अवसर मिला और देश की स्वतंत्रता एवं महिला समाज में जो कुरीतियाँ फैली हुई थी उन्हें दूर करने के तरीकों पर विचार विमर्श किया गया। बिहार में सम्मेलन की एक शाखा का संगठन किया गया। इसका एक अधिवेशन 7 दिसम्बर, 1929 को हुआ। उसमें शारदा एक्ट के समर्थन तथा पर्दा प्रथा एवं दहेज प्रथा के विरोध में प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रांत में नारी शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के लिए जोर दिया गया। बिहार की कुछ महिला प्रतिनिधियों ने 20 जनवरी, 1930 को बम्बई में सामाजिक एवं शैक्षणिक सुधारों के हेतु अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में भाग लिया। बिहार महिला सम्मेलन का चौथा अधिवेशन गया के थियोसोफिकल हॉल में 4 दिसम्बर, 1930 को श्री नन्दकिशोर लाल की पत्नी की अध्यक्षता में हुआ। बिहार के लिए स्थायी समिति की सदस्या श्रीमती कमल कामिनी देवी ने पिछले वर्ष के कार्यो का एक रिपोर्ट पढ़ा और उसी में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन के अगामी अधिवेशन के लिए कुछ महिला प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया गया।[12] गाँधी जी ने महिलाओं के नाम पर एक खुली चिट्ठी में उनसे विदेशी वस्त्र एवं नशीले पदार्थो के बहिष्कार संबंधी कार्यो में भाग लेकर राष्ट्रीय संग्राम में सहायता देने की अपील की थी।[13] इसका प्रभाव बिहार की महिलाओं पर काफी पड़ा बिहार की अनेक महिलाएँ पर्दा से बाहर आयीं और गाँधी जी की अपील का सोत्साह उत्तर दिया। विशेष करके पटना में विदेशी वस्त्र बहिष्कार को जो सफलता मिली उसका श्रेय अधिकतर महिलाओं को था श्रीमती हसन इमाम के नेतृत्व में कुछ स्त्रियाँ पटना के सड़कों पर घूमीं एवं दुकानदारों से विदेशी वस्त्र का व्यापार नहीं करने की अपील की। श्रीमती बिन्धयवासिनी देवी ने भी इसमें प्रमुख भाग लिया। सहसराम में श्री रामबहादुर बार-ऐट-लॉ की पत्नी ने कुछ अन्य महिलाओं के साथ स्थानीय थाना के सामने एक छटाँक नमक बनाया।[14] जुलाई, 1930 ई. में गिरिडीह सब डिविजन की एक महिला श्रीमती मीरा देवी सत्याग्रह आन्दोलन के तहत गिरफ्तार होने वाली तीसरी महिला थी।[15] पटना की श्रीमती हसन इमाम एवं उनकी सुपुत्री श्रीमती शमी, श्रीमती सी. सी. दास और उनकी सुपुत्री कुमारी गौरी दास, गोरी सरकार के लिए एक पहेली बनी हुयी थी। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिए महिलाओं ने तीन बड़े-बड़े प्रदर्शन किये जिसमें तीन हजार से अधिक महिलाओं ने शिरकत की। श्रीमती साह मु. जुबेर इनसे प्रभावित होकर बुरका के पर्दो से बाहर निकलकर आन्दोलन में कूद पड़ी। उधर, दूसरी ओर, संथाल परगना जिले में श्रीमती साधना देवी के नेतृत्व में महिला सत्याग्रहियों ने ब्रिटिश सरकार को काफी परेशान कर रखा था, क्योंकि यहाँ महिलाओं के साथ छोटे-छोटे बच्चे भी धरना देने के कार्यक्रम में भाग लेते थे। 23 मार्च, 1931 ई. को जब महात्मा गाँधी एवं देश के अन्य नेताओं के विरोध के बावजूद सरदार भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरू को पफाँसी पर लटका दिया गया तब इस अमानुषिक कार्रवाई का जवाब भारतीय जनता ने हड़तालों एवं प्रदर्शनों से दिया। इस सिलसिले में आम सभाएँ हुई जिसकी अध्यक्षता श्रीमती कुसुम कुमारी देवी ने की उन्होंने कहा—नौजवानों! तुम पीछे क्यों हो? भगत सिंह, बिस्मिल, खुदी राम बोस की तरह अपने को कुर्बान करो! समय आ गया है भगत सिंह की शहादत से फूँकी गई चिंगारी देश भर में ज्वाला फैला रही है। आओ, इस बलि पंथी वीरों के मार्ग पर चल पड़ें। 4 जनवरी, 1932 को तड़के ही गाँधी जी को गिरफ्तार करके यरवदा जेल पहुँचा दिया गया। सरदार बल्लभ भाई पटेल भी उसी दिन गिरफ्तार हुए। तब भी बिहार में हड़तालों एवं प्रदर्शनों का सिलसिला चलता रहा। तीसरा गोलमेज-सम्मेलन सन् 1932 ई. के दिसम्बार माह में हुआ लेकिन यह भी पूर्व की तरह व्यर्थ रहा। जनवरी, 1933 को सारे देश में महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी दिवस के रूप में मनाया गया जिसमें बिहार भी पीछे नहीं रहा। इस अवसर पर पटना नगर में सात महिलाएँ गिरफ्तार की

गई, जिसमें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी की पत्नी श्रीमती राजवंशी देवी तथा चंद्रावती देवी भी थी। इन दोनों महिलाओं ने पूरे पटना नगर को क्रान्ति की भयंकर ज्वाला में झकझोर कर रख दिया। परंतु इन दोनों महिलाओं को पन्द्रह महीने का कारावास दण्ड दिया गया। अंग्रेजी सरकार ने 1941 में साम्प्रदायिक तत्वों को बढ़ावा देकर "फूट डालो और शासन करो'' की नीति अपनाई एवं अंग्रेजों ने इस नीति को अपनाकर वर्चस्व कायम करना चाहा तो इसके विरोध में महात्मा गाँधी ने 1941 में सत्याग्रह किये। उनके इस सत्याग्रह में गया में श्रीमती प्रियंवदा देवी, जगत रानी देवी एवं जानकी देवी को गिरफ्तार किया गया।[16] पूर्णियाँ जिला राजनैतिक सम्मेलन अक्टूबर के अन्त में 1941 ई. में हुआ जिसमें कई भूतपूर्व मंत्रियों ने भाग लिया। सत्याग्रह और रचनात्मक कार्यक्रम पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया। श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित 6 नवम्बर को पटना आयी। कई जगहों पर इन्होंने भाषण दिया, अनेक लोगों से मिली। श्रीमती पंडित ने 8 नवम्बर को पटना जिला राजनैतिक सम्मेलन की अध्यक्षता की। इसी क्रम में 1941 में दुमका काँग्रेस कमिटी के अध्यक्ष की पत्नी श्रीमती महादेवी जी ने दुमका में सत्याग्रह करने का फैसला किया। इस सिलसिले में फरवरी 1941 को वे दुमका के डिप्टी कमिश्नर से मिली लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। क्रांति की आग अंदर ही अंदर सुलगती रही। पटना में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की एक बैठक में प्रांत भर में इस संगठन को फैलाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री (चर्चिल) के हाल के भाषण पर बिहारी महिलाओं में व्यापक असंतोष था ऐसे लोगों को जो अब तक परोक्ष में थे, युद्ध प्रयत्नों का समर्थन नहीं करने का एक बहाना मिल गया। पशु बल द्वारा दबाया गया असंतोष 1942 के अगस्त माह में एक भयानक विस्फोट के रूप में फूट पड़ा।[17] 1942 के आन्दोलन को ए. सी. भुवन ने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' फ्रांसिस जी. हचिन्स ने स्वत: स्फूर्त आन्दोलन, ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने 'अव्यवस्था' तथा राष्ट्रवादी भारतीय विचारकों ने आजादी के गाँधी का संघर्ष, '1942 की भारतीय क्रान्ति', '42 का विद्रोह' तथा 'अगस्त क्रान्ति' की संज्ञा दी है।[18] अगस्त महाक्रान्ति बिहारी छात्रों की हड़ताल से हुई। महिलाओं, खासकर चर्खा समिति की सदस्यों ने इस भारत छोड़ो आन्दोलन की ज्वाला को धधकाने एवं उसे व्यापक बनाने की भरपूर कोशिश की। 9 अगस्त को महिलाओं का विराट जुलूस पटना से निकला जिसका नेतृत्व डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की बहन श्रीमती भगवती देवी कर रही थी, जिस समय बिहारी छात्रों का जत्था रेलवे लाईन, तार और टेलिफोन के तारों को काटना, संचार व्यवस्था को नष्ट करने का काम कर रहे थे ठीक उसी समय महिलाएँ उनके इस काम में कदम से कदम मिलाकर साथ दे रही थीं। 11 अगस्त को हजारीबाग में श्रीमती सरस्वती देवी के नेतृत्व में एक विराट जुलूस निकाला गया लेकिन संध्या समय उन्हें गिरफ्तार कर भागलपुर जेल भेज दिया गया। सच यह है कि बिहार में भारत छोड़ो आन्दोलन युवा वर्ग तथा छात्रों का आन्दोलन था लेकिन महिलाओं की भागीदारी भी कम नहीं थी। चारों ओर एक ही गुंज सुनाई दे रही थी 'अंग्रेज भारत छोड़ो'। 12 अगस्त को जब श्रीमती सरस्वती देवी, एक अन्य महिला कैदी के साथ हजारीबाग से भागलपुर जेल लायी जा रही थी तब छात्रों का एक दल धावा बोलकर अंग्रेजों के चंगुल से उन्हें छुड़ा लिया। लेकिन 14 अगस्त की एक जनसभा में उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया। महात्मा गाँधी ने 9 अगस्त, 1942 कों मुंबई काँग्रेस में 'करो या मरो' का नारा दिया। इसी नारे के साथ स्व. राम बिनोद सिंह की दो पुत्रियाँ सरस्वती और शारदा दिघवारा प्रखंड पर तिरंगा झंडा फहराने के अपराध में 11 और 14 वर्ष की सजा दी गई। 19 अगस्त को दुमका में एक विराट जुलूस निकाला गया जिसका नेतृत्व श्रीमती प्रेमा देवी जाम्बवती देवी ने किया। संथाल परगना के बिरजी भी गस्त के समय 28 अगस्त, 1942 को ब्रिटिश पुलिस द्वारा गोली से उड़ा दी गयी। उच्च वर्गीय और मध्य वर्गीय मुस्लिम महिलाएँ भी सक्रिय थी। बिहार को अत्यंत प्रभावशाली तरीके से लामबंद किया गया था। बिहारी महिलाओं के लिए यह आन्दोलन उस समय तक के आन्दोलनों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था और कहा जा सकता है कि इसी के जरिए उन्होंने जन-जीवन में अपना स्थान बनाया।[19] 1942 ई. में गया जिले के मुहम्मदपुर गाँव की प्यारी देवी को आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। इनके अलावा भारत छोड़ो आन्दोलन में कुछ महिलाओं ने सक्रिय रूप से भाग लिया, जिसमें श्रीमती उषा रानी मुखर्जी एवं शारदा देवी का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। वैशाली की सुनीति देवी एवं राधिका देवी ने मीलों पुरुष के वेश में साइकिल पर सवार होकर जन-जागरण का काम किया। बिहार से उठी अगस्त क्रान्ति की आंधी ने देखते ही देखते सम्पूर्ण बिहार के संचार तंत्र तथा मार्गों को बाधित कर दिया। बिहार के शहीदों की शहादत खाली नहीं गयी। इसने आन्दोलन को नई गति तथा दिशा दी जो शायद किसी अन्य प्रयास से संभव नहीं था। आन्दोलन के दौरान घोड़माड़ा गाँव की विराजी मधियाईन पुलिस की गोली से शहीद हो गईं। भागलपुर की रामस्वरूप देवी, वैशाली की ही श्रीमती बिंदा देवी की वीरता की कहानी घर-घर दुहरायी जाती है। मुजफ्फरपुर की भवानी मेहरोत्रा, संपतिया देवी, सुधा कुमारी शर्मा (पटना) पति-भूतो गोप (मुंगेर) प्यारी देवी (गया) आदि महिलाओं का योगदान स्वतंत्रता संग्राम में अद्वितीय रहा। 15 सितम्बर, 1942 को अकली देवी अपने गाँव में अंग्रेज सिपाहियों की

गोली का शिकार हुई। पूर्णियाँ तथा कटिहार की महिलाएँ भी इस महा क्रान्ति में वीरगति को प्राप्त हुई। कुमारी आर. सी. दास ने पलामू की महाक्रान्ति की बागडोर अपने हाथों में रखकर मजदूर किसान को संगठित किया। कुमारी आर. सी. दास के इन कार्यों से घबराकर सरकारी अधिकारियों ने इनके विरूद्ध भारत रक्षा कानून के तहत कार्रवाई की।[20] बसंती देवी ने अगस्त क्रान्ति को आगे जारी रखने के लिए आगे आयी। इस तरह बिहार की वीरांगनाऐं कदम से कदम मिलाकर सदैव आन्दोलन को कामयाबी की और ले गयी इनके शहादत को आज ढूंढ निकालने की आवश्यकता है, ताकि इन आन्दोलनों में उनके योगदानों से हम परिचित हो सके। महिलाएँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चली। लेकिन उन्हें पुरुषों के समान अधिकर नहीं मिला। गाँधी जी के आह्वान पर महिलाएँ इस आजादी की लड़ाई में कूदीं लेकिन अपने को स्वतंत्र महसूस नहीं कर सकी। इस परंपरावादी जड़ों के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाअें को पितृसत्ता तले रहने को मान्यता मिली। इस भागीदारी में उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान कोई कार्य एवं चुनाव में कोई गुंजाईश नहीं थी। महिलाएँ सिर्फ माँ, बेटी, बहन, बहू बनकर ही रह गयी स्वतंत्रता संग्राम में अनेकों महिलाओं ने हिस्सा लिया लेकिन कुछ महिला ही ऐसी निकली जो इस परंपरावादी समाज में अपने को अलग कर अपने नाम का परचम लहरा सकी जिनमें, शारदा देवी जी एवं प्रभावती जी का नाम लिया जा सकता है। इनके त्याग एवं बलिदान की कहानी आज भी इतिहास के पन्नों में 'सुनहरे अक्षरों' में लिखा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्याग्रह से लेकर भारत छोड़ो आन्दोलन तक महिलाओं ने अपनी अहम छाप छोड़ी लेकिन उसी महिला की स्थिति आज काफी दयनीय है। महिला आज अपने आप को स्वतंत्र महसूस नहीं कर रही हैं। समाज में निम्न तबके की स्त्रियाँ आर्थिक क्रिया कलाप कर घर तथा बाहर के कामों में अपना योगदान देती है। वे खेतों में काम करती है, हाट एवं बाजारों में सामान बेचती भी है, लेकिन इनका शोषण इनके पतियों, तथा मालिकों तथा समूचे समाज के द्वारा किया जाता है। जहाँ तक नेताओं की बात की जाय, ये अपने भाषण में नारी सशक्तिकरण की बात तो करते हैं, लेकिन कोई भी इस सशक्तिकरण की शुरूआत अपने घर से नहीं करते हैं। महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए समय समय पर सरकार ने कई कानून बनाए, विशेष सुविधाओं की व्यवस्था की, कई समाज सुधारकों ने ईमानदार प्रयास भी किये उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सुरक्षा के साथ-साथ काम करने के स्थान पर इनकी सुरक्षा सुनिश्चित किये जाने की ओर भी प्रयास जारी है। जिन सब के फलस्वरूप समाज में जागरूकता अवश्य फैली है, महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रही हैं। पर उसकी गति संतोषप्रद नहीं। उनकी स्थिति अभी भी द्वितीय दर्जे के नागरिक की ही बनी हुई है। इसलिए आज आवश्यकता है कि बुद्धिजीवी, समाजशास्त्री, प्रबुद्ध जन, हर तपके से निकलकर सामने आएं और इस दिशा में कदम उठाएं। तभी हमारा समाज समग्र रूप से विकसित होने में सफल होगा।

संदर्भ सूची

1. नंदन, सुबोध कुमार, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का योगदान, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार की महिलाएँ, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बिहार, पटना वर्ष–46, अगस्त, अक्टूबर 98, पृष्ठ 60।
2. दत्त, डॉ. के. के., बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–1, अध्याय-6 चम्पारण में महात्मा गाँधी का आन्दोलन, चम्पारण का ऐतिहासिक महत्व, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वितीय संस्करण जून 1998-3000, पृष्ठ 180।
3. नंदन, सुबोध कुमार, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का योगदान, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार की महिलाएँ, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बिहार, पटना वर्ष–46, अगस्त, अक्टूबर 98, पृष्ठ 60।
4. दत्त, डॉ. के. के., बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, अध्याय-7 1919 के सत्याग्रह और असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन में बिहार का भाग, बिहार में सत्याग्रह, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वितीय संस्करण जून, 1998-3000, पृष्ठ 312
5. वही, पृष्ठ 330
6. नंदन, सुबोध कुमार, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का योगदान, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार की महिलाएँ, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बिहार, पटना वर्ष–46, अगस्त, अक्टूबर 98, पृष्ठ 60।
7. वही, पृष्ठ 60।
8. दत्त, डॉ. के. के., बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, अध्याय-7 1919 के सत्याग्रह और असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन में बिहार का भाग, गाँधी जी की बिहार यात्रा, दिसम्बर 1920, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वितीय संस्करण जून 1998-3000, पृष्ठ 329

9. वही, पृष्ठ 413
10. वही, पृष्ठ 414
11. नंदन, सुबोध कुमार, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का योगदान, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार की महिलाएँ, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बिहार, पटना वर्ष–46, अगस्त, अक्टूबर '98, पृष्ठ 60।
12. द सर्चलाइट, 9 फरवरी और 11 दिसम्बर 1930।
13. यंग इंडिया, 10 अप्रिल 1930।
14. पटना आयुक्त का अभिलेख।
15. नंदन, सुबोध कुमार, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का योगदान, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार की महिलाएँ, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बिहार, पटना वर्ष–46, अगस्त, अक्टूबर '98, पृष्ठ 60।
16. वही, पृष्ठ 61
17. दत्त, डॉ. के. के., बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, खंड–2, अध्याय–4 विश्व संकट और भारतीय राष्ट्रवाद, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वितीय संस्करण जून 1998–3000, पृष्ठ 403।
18. कुमार, अजीत बिहार में अंग्रेजी राज और स्वतंत्रता आन्दोलन, अध्याय–14 बिहार में अगस्त क्रान्ति, उषा प्रकाशन, दिसम्बर 2002, पृष्ठ 146।
19. मुखर्जी, मृदुला, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रथम संस्करण–1990, प्रतियां–5000, पृष्ठ 268।
20. नंदन, सुबोध कुमार, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का योगदान, स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार की महिलाएँ, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बिहार, पटना वर्ष–46, अगस्त, अक्टूबर '98, पृष्ठ 62।

सांप्रदायिकता की त्रासद और यथार्थ अभिव्यक्तिः तमस

डॉ० शिप्रा शर्मा

विभाजन की त्रासदी भारत के इतिहास का ऐसा काला अध्याय है जिसको लेकर खासतौर पर हिन्दी, पंजाबी, बांग्ला और अंग्रेजी में सैकड़ों रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। उन रचनाओं में भीष्म साहनी के 'तमस' की विद्वानों ने भरपूर चर्चा की है। 'तमस' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिल चुका है। आजादी के ठीक पूर्व 1947 की घटना पर केन्द्रित और 1973 में पहली बार प्रकाशित इस कृति पर गोविन्द निहलानी ने इसी नाम से फिल्म बनाई है। धारावाहिक रूप में भी उसका प्रसारण हो चुका है। बावजूद इसके आज भी इस कृति की प्रासंगिकता यथावत बनी हुई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि 'बांटो और राज करो' की नीति वाले अंग्रेज भले ही भारत छोड़ चुके हों, किन्तु उनके द्वारा लागू की गई उस नीति से हमारा देश आज भी मुक्त नहीं हो सका है। साम्प्रदायिकता की समस्या हमारे देश की स्थाई समस्या बन चुकी है।

विभूति नारायण राय ने साम्प्रदायिकता की समस्या पर शोध किया है। उन्होंने लिखा है कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगा सबसे पहले 1713 में अहमदाबाद में हुआ था। उस समय तक अंग्रेज नहीं आए थे। इस दंगे के बारे में उन्होंने लिखा है, "दंगे के एक प्रत्यक्षदर्शी काफी खान के वर्णन के अनुसार एक हिन्दू ने अपने मुसलमान पड़ोसी के विरोध के बावजूद दोनों के घरों के सामने मौजूद साझा अहाते में होली जलाने की तैयारी की। विवाद के कारण यह मामला एक मुसलमान अधिकारी के सामने ले जाया गया, जिसने हिन्दू के पक्ष में फैसला दे दिया और हिन्दू ने होली जला दी। दूसरे दिन मुसलमान ने पैगंबर के सम्मान में अपने घर के सामने एक गाय की कुर्बानी दे दी। इसपर उत्तेजित होकर आस-पास के हिन्दू इकट्ठे हो गए और उन्होंने वहाँ उपस्थित मुसलमानों पर हमला कर दिया। इस हमले में कुर्बानी देने वाले मुसलमान का चौदह वर्षीय पुत्र मारा गया। इस घटना से अनेक मुसलमान क्रुद्ध हो उठे और इकट्ठा हो गए। शहर में मौजूद अफगान सैनिक भी उनकी मदद के लिए आ गए। अगले तीन-चार दिन तक चलने वाले इस दंगे में काफी सम्पत्ति का नुकसान हुआ और कई हिन्दू तथा मुसलमान मारे गए। दोनो पक्षों के नेताओं ने शान्ति स्थापित कराने के लिए बादशाह से अपील की। 1713 में हुआ अहमदाबाद का यह दंगा ब्योरेवार दर्ज की गई ऐसी पहली घटना है, जिसमें साम्प्रदायिक दंगे के सारे आवश्यक तत्व निहित हैं।"[1]

उल्लेखनीय है, इसके पहले हिन्दू-मुस्लिम दंगे का कोई जिक्र इतिहास में नहीं मिलता है। जबकि मुसलमान सदियों पहले इस देश में आ चुके थे। अनेक मुस्लिम शासकों ने गैर मुस्लिम जनता पर नाजायज रूप से जजिया कर तो लगाया किन्तु आम जनता मजहब के नाम पर कभी आमने सामने नहीं आई। इतना ही नहीं, सन् 1857 की क्रान्ति में भारतीय जनता ने हिन्दू मुस्लिम एकता का अद्‌भुत मिशाल पेश किया था, जब सभी ने एकमत से दिल्ली की गद्दी पर अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को बैठाया, जबकि बादशाह बूढ़ा हो चुका था और गद्दी पर बैठने मेंउसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी।

दरअसल, साम्प्रदायिकता जैसे अमोघ हथियार की खोज अंग्रेजों ने सन् 1857 के बाद की और उसका सुनियोजित और व्यवस्थित ढंग से इस्तेमान करना भी तभी सीखा। उसकी चरम परिणति भारत विभाजन था जो आजादी के समय भयंकर साम्प्रदायिक दंगे के साथ सामने आया। 'तमस' में रिचर्ड द्वारा इस हथियार के इस्तेमाल का बड़ा ही त्रासद और यथार्थ चित्र खींचा गया है। 'तमस' में विभाजन की त्रासदी के कारणों का वर्णन नहीं है अपितु घटनाओं के पीछे के षड्‌यंत्रों का चित्रांकन है।

'तमस' का परिवेश मार्च 1947 में रावलपिंडी तथा आस-पास के गाँवों में हुआ हिंदू-मुस्लिम दंगा है। यह दंगा पांच-छः दिनों तक रहा और जिले के सैकड़ों गाँवों को अपनी चपेट में ले लिया। स्वयं भीष्म साहनी के शब्दों में, "दंगे तो पांच-छः दिन तक

ही रहे लेकिन वर्षों पहले देश के वायुमंडल में हिंदू-मुस्लिम तनाव पाया जाता था। जब से पाकिस्तान की तहरीक चली थी, सांप्रदायिक प्रचार को एक तरह से खुली छूट्ठी मिल गई थी।"[2] वे आगे कहते हैं, "मैंने तनाव के दिन देखे हैं। उन दिनों मैं काँग्रेस की जिला कमेटी का सदस्य था और जिले में जगह-जगह घूमने का इत्तफाक भी हुआ था। तनाव के वे दिन भुलाए नहीं भूलते।"[3] उपन्यास में चित्रित किए गए अनेक प्रसंग ऐसे भी हैं जिनके वे स्वयं साक्षी रहे हैं। वे कहते हैं, 'सूअर को मारते तो मैंने कभी किसी को नहीं देखा, लेकिन जब शहर में तनाव बढ़ रहा था और नागरिकों का एक वफद अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर से मिलने गया तो मैं भी उसके साथ हो लिया था। लेकिन कुएँ में अपने बच्चों को लेकर कूद जाने वाली औरतों की घटना सच्ची है, लाशों से अटा हुआ कुआँ मैंने दंगों के बाद अपनी आँखों से देखा है। शहर के हेल्थ ऑफिस के साथ मैं स्वयं लोहा खालसा नामक गाँव में गया था, कुएँ में रासायनिक पदार्थ डालने के लिए, जिससे कुओं में सड़ती लाशों के कारण कोई बीमारी ना फैले और हमारे साथ उन स्त्रियों के अनेक संबंधी भी थे, उसी गाँव के रहने वाले जो दंगे के बाद गाँव छोड़कर रावलपिंडी शहर में आ गए थे और जो अभी भी यह समझ बैठे थे कि स्थिति सुधर जाने पर वे अपने गाँव को लौट जाएंगे।"[4]

'तमस' उपन्यास का आरंभ नत्थू चमार द्वारा सूअर मारने की घटना से होता है। मुरादअली जो अंग्रेजी सरकार का चमचा है, रिचर्ड के कहने पर नत्थू को पाँच रूपए देकर सूअर मरवाता है और उसे मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकवा देता है। परिणामत: शहर में सांप्रदायिक तनाव हो जाता है और दोनों संप्रदाय एक-दूसरे के दुश्मन हो जाते हैं। नागरिकों का एक शिष्टमंडल डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड से मिलकर शांति-स्थापना के लिए सरकारी सहयोग चाहता है। शिष्टमंडल के एक सदस्य बक्शी जी शहर में कर्फ्यू लगाने की सलाह देते हैं लेकिन रिचर्ड इसे स्वीकार नहीं करता। वह स्थिति की गंभीरता को जानते हुए भी अनजान बना रहता है। परिणामत: पूरे शहर में हत्या, लूट और आगजनी खुलकर होने लगती है। सांप्रदायिकता की आग गाँवों में भी फैल जाती है। सैयदपुर में सिख और मुसलमानों के बीच खूनी संघर्ष होता है। भयानक रक्तपात होता है। सिख औरतें अपने बच्चों सहित कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेती हैं। भीष्म साहनी लिखते हैं, "स्त्रियों का झुंड उस पक्के कुएँ की ओर बढ़ता जा रहा था, जो ढलान के नीचे दाएं हाथ बना था, और जहाँ गाँव की स्त्रियाँ नहाने, कपड़े धोने, बतियाने के लिए जाया करती थीं। मंत्रमुग्ध-सी सभी उसी ओर बढ़ती चली जा रही थीं। किसी को उस समय ध्यान नहीं आया कि वे कहाँ जा रही हैं, क्यों जा रही हैं। छिटकी चाँदनी में कुएँ पर जैसे अप्सराएँ उतरती आ रही हों। सबसे पहले जसबीर कौर कुएँ में कूद गई। उसने कोई नारा नहीं लगाया, किसी को पुकारा नहीं, केवल 'वाह गुरु' कहा और कूद गई। उसके कूदते ही कुएँ की जगत पर कितनी ही स्त्रियाँ चढ़ गई। हरिसिंह की पत्नी पहले जगत के ऊपर जाकर खड़ी हुई, फिर उसने अपने चार साल के बेटे को खींचकर ऊपर चढ़ा लिया, फिर एक साथ ही, उसे हाथ से खींचती हुई नीचे कूद गई। प्रेमसिंह की पत्नी खुद तो कूद गई, पर उसका बच्चा पीछे खड़ा रह गया। उसे ज्ञानसिंह की पत्नी ने माँ के पास धकेलकर पहुँचा दिया। देखते-ही-देखते गाँव की दसियों औरतें अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद गई।"[5]

बाद में सरकार की ओर से हस्तक्षेप होता है। नगर और गाँव के ऊपर एक हवाई जहाज मंडराता है और सारे माहौल को मिनटों में बदल देता है। लोग आतंकित होकर अपने-अपने घरों में दुबक जाते हैं। कर्फ्यू लगा दिया जाता है। जगह-जगह सेना तैनात कर दी जाती है। शांति कायम करने के लिए सरकार की ओर से एक 'अमन कमेटी' बना दी जाती है, जिसमें हिंदू, मुसलमान और सिख हैं। अमन कमेटी के सदस्य एक बस में बैठकर शहर का चक्कर लगाते हैं। लेकिन जो होना था वह हो चुका है। लोग अपने घर से, परिवार से, संबंधियों से बिछड़ चुके हैं। उनके घर जला दिए गए हैं, संपत्ति लूट ली गई है। वे शरणार्थी कैंपों में अपने बहू-बेटियों का पता पूछ रहे हैं। शतमसश उपन्यास सांप्रदायिक खूनी संघर्ष की कहानी है।

उपन्यास में उपन्यासकार ने न केवल इस सांप्रदायिक हादसे के जीवंत चित्र खींचे हैं बल्कि उनके कारणों का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया है। रिचर्ड और लीजा की बातचीत से स्पष्ट होता है कि भयानक हादसे की सबसे बड़ी जिम्मेदारी सरकार पर है, जिसकी नीति के ही तहत यह सब कुछ घटित होता है।

रिचर्ड और लीजा की बातचीत इस प्रकार है, 'क्या यहाँ के लोगों को तुमने ध्यान से देखा है? एक ही नस्ल के लोग हैं। नाक-नक्शा सबके एक जैसे हैं, एक तरह के नाक, होंठ, चौड़ा माथा, ब्राउन रंग की आँखें, यहां के लोगों की आँखें ब्राउन रंग की हैं, तुमने ध्यान दिया, लीजा?'

"एक ही नस्ल के कैसे हो सकते हैं रिचर्ड, जबकि तुम कहते हो कि इस रास्ते से ही तरह-तरह के लोग आते रहे हैं।"[6]

आगे रिचर्ड कहता है, "यहाँ के लोग कुछ नहीं जानते। ये वही कुछ जानते हैं जो हम इन्हें बताते हैं।" फिर थोड़ी देर तक मौन रहकर बोला, "ये लोग अपने इतिहास को जानते नहीं हैं। ये केवल उसे जीते भर हैं।"[7]

तो 'तमस' ऐसे ही लोगों की कहानी है जो एक ही नस्ल के लोग हैं लेकिन अपने इतिहास को जानते नहीं हैं, केवल उसे जीते भर हैं। ये लोग कौन हैं? ये लोग हिंदू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं। लेकिन एक ही नस्ल के लोग हैं। इनका आपसी फर्क इतना बारीक है कि लीजा अंत तक इनको अलग-अलग जातियों के रूप में पहचान नहीं पाती। वह रिचर्ड से पूछती है, "मैं तो अभी तक हिंदू और मुसलमान को अलग-अलग से पहचान भी नहीं सकती। तुम पहचान लेते हो रिचर्ड, कि आदमी हिंदू है या मुसलमान।"[8] लीजा उससे कहती है, "चालाक नहीं बनो, रिचर्ड! मैं सब जानती हूँ। देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो।"[9] रिचर्ड फिर बोला, "डार्लिंग, हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन-सी समानता पाई जाती है, उसकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वह किन-किन बातों में एक दूसरे से अलग हैं।"[10]

'तमस' इस भयानक षड्यंत्र में पिसते हुए लोगों की कहानी है। इस कहानी का अपना निश्चित देश और काल है। यह कहानी किसी उपन्यासकार की कल्पना नहीं है बल्कि भारतीय इतिहास की एक सच्ची घटना है। हिंदू-मुस्लिम तनाव के बारे में रिचर्ड से बातचीत करते हुए लीजा को बराबर यह महसूस होता है कि मानवीय मूल्यों का कोई महत्व नहीं होता। वास्तव में महत्व केवल शासकीय मूल्यों का होता है। मनोहरलाल स्पष्ट शब्दों में कहता है, "इन फिसादों के लिए जिम्मेदार कौन है? सरकार उस वक्त कहाँ थी जब शहर में तनाव बढ़ रहा था, अब कर्फ्यू लगाया गया है, उस वक्त क्यों नहीं लगाया गया?"[11] उपन्यासकार ने भारत में अंग्रेज शासकों की नीति का पर्दाफाश किया है। रिचर्ड के माध्यम से उसने इंडियन सिविल सर्विस के अफसरों के चरित्र का सही विश्लेषण किया है। ये अफसर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि थे जिनका मुख्य कर्तव्य था उन नीतियों को कार्यान्वित करना जो लंदन से निर्णीत होकर आती थीं। इसीलिए लीजा से रिचर्ड स्पष्ट शब्दों में कहता है, "इसमें कोई विशेष बात नहीं है लीजा, सिविल सर्विस हमें तटस्थ बना देती है। हम यदि हर घटना के प्रति भावुक होने लगें तो प्रशासन एक दिन भी नहीं चल पाएगा।"[12] क्या सिविल सर्विस के अधिकारियों का चरित्र आज भी इसी तरह का नहीं है?

दूसरी ओर काँग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता हैं जिनमें न तो आपसी तालमेल है और न तो अपने लक्ष्य के प्रति समर्पण भाव। एक दल 'भारत माता की जय' बोलता है, तो दूसरा 'पाकिस्तान जिंदाबाद'। एक दल 'महात्मा गांधी की जय' तो दूसरा 'कायदे आजम की'। प्रभात फेरी के लिए कार्यकर्ताओं की जो मंडली निकलती है उसे अपने प्रचार की चिंता ज्यादा है, "मेहता जी को छोड़कर लगभग सभी के कपड़े मुचड़े हुए और मैले थे। बख्शी के सिर पर गाँधी टोपी एक ओर से चिपकी हुई थी मानो सिर पर लादा हुआ कोई बोझ अभी-अभी फेंक कर आया हो। शंकर, मास्टर रामदास और अजीज ने कंधें पर झाड़ू उठा रखे थे। देशराज और शेरखान के हाथ में कड़ाहियाँ थीं। जनरैल लम्बा-सा बाँस उठाए था। दिन की रोशनी में मास्टर रामदास अपने हाथ में झाड़ू देखकर सकुचाने लगा था।"[13] स्वार्थी नेताओं के स्वार्थ का पर्दाफाश भी तब होता है, जब शंकर, मास्टर रामदास से कहता है, "मास्टरजी, हमें प्रचार करना है, कौन सचमुच की नालियाँ साफ करनी है। नाली मैं साफ करूँगा, तुम कड़ाही में कूड़ा उठाते रहना।"[14]

हिंदू, मुसलमान और सिख तीनों ही जमातों में जो सांप्रदायिक मनोवृति के लोग हैं, वे ही दंगों के कारण हैं। देवव्रत जी हिंदू युवकों को संगठित करते हैं और रणवीर की मानसिक दृढ़ता की परीक्षा लेते हैं और उसे दल में ही दीक्षित कर लेते हैं। यह दल हिंदू दंगाइयों का है। इसी प्रकार दूसरा दल है मुस्लिम दंगाइयों का, जो जामा मस्जिद में शेख गुलाम रसूल के मकान में असला इकट्ठा किए हुए हैं। दोनों ही, यहाँ तक कि रणबीर और धर्मदेव जो हिंदू जाति की रक्षा के लिए हलवाई से कड़ाही मांगने जा रहे हैं, अपनी ही जाति के हलवाई पर हमला कर देते हैं, "पेश्तर इसके हलवाई कुछ कहे उसके दाएं गाल पर खून की धार बह रही थी। एक बार उछलने के बाद रणबीर का हाथ फिर कुर्ते की जेब में चला गया था। हलवाई दोनों हाथों से चेहरा ढाँपे पैरों के बल श्हाय-हायश करता बैठ गया। खून की बूंदे बराबर उसके गाल पर से गिर-गिरकर फर्श पर पड़ रही थीं।"[15]

मुरादअली खुद पैसे देकर नत्थू से सूअर मरवाता है। दरअसल सवाल केवल धर्म और संप्रदाय का नहीं है, मनोविज्ञान काभी है। लाला लक्ष्मीनारायण अपने बेटे और जवान बेटी की सुरक्षा के लिए चिंतित हैं लेकिन अपने हिंदू नौकर नानकू की उन्हें कोई चिंता नहीं है। वह उसे शहर की जलती सांप्रदायिक आग में अकेले भेज देते हैं। चिट्ठी देकर देर तक लालाजी नानकू को समझाते रहे, "अगर देखा किसी गली में शोर है तो दूसरी गली में मुड़ जाना। हो सके तो मंदिर में से चपरासी को साथ ले लेना। अब जाओ देरी नहीं करो। जैसे भी हो खत पहुँचाकर आना।"[16] शाहनवाज की ब्यूक मोटर उसी आग में सारे शहर में चलती रहती है। उसे अपने बचाव की कोई चिंता नहीं है क्योंकि उसे सभी पहचानते हैं। वह अपने हिंदू मित्र रघुनाथ की मदद करता है। यहाँ तक कि अकेला जाकर उसके घर से उसके कीमती जेवरात निकालकर लाता है लेकिन उसके गरीब नौकर मिलखी को लगभग मार डालता

है, "मिलखी के हाथ में चाभियों का गुच्छा था और वह आगे-आगे उतर रहा था। डिब्बे को दोनों हाथों में उठाए शाहनवाज पीछे-पीछे चला आ रहा था जब सहसा उसके अंदर भभूका-सा उठा। न जाने ऐसा क्यों हुआ: मिलखी की चुटिया पर नजर जाने के कारण, मस्जिद के आँगन में लोगों की भीड़ को देखकर, या इस कारण कि जो कुछ वह पिछले तीन दिन से देखता सुनता आया था वह विष की तरह उसके अंदर घुलता रहा था। शाहनवाज ने सहसा ही बढ़कर मिलखी की पीठ में जोर से लात जमायी। मिलखी लुढ़कता हुआ गिरा और सीढ़ियों के मोड़ पर सीधा दीवार से जा टकराया। जब नीचे गिरा तो उसका माथा फूटा हुआ था और पीठ टूट चुकी थी, क्योंकि जहाँ गिरा वहाँ से उठ नहीं पाया।"[17]

हर साम्प्रदायिक दंगों में गरीब और निरपराध ही मारे जाते हैं। लेखक ने सांप्रदायिक दंगों के राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। केवल वर्णन करना उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं है। वह उन कारणों की तह में जाना चाहता है जो साँप की तरह कुंडली मारे भीतर की गहराईयों में छिपे हैं और मौका लगते ही फुंफकारने लगते हैं। शाहनवाज अचानक सीढ़ियां उतरते हुए मिलखी की पीठ पर लात जमा देता है और मिलखी की समझ में नहीं आता कि उसकी किस भूल से ख़फा होकर ख़ान जी ने उसे मारा है। ठीक इसी तरह जब इत्रफरोश को चाकू मारा जाता है तो वह अवाक हो जाता है और समझ नहीं पाता कि आखिर हुआ क्या है, "इत्रफरोश की बातों के ही कारण इंद्र संभल गया था और पैर मजबूती से चल रहे थे और कमानीदार चाकू की मूठ को भी उसने मजबूती से पकड़ रखा था। उसके मन में एकाग्रता आने लगी थी, उसकी आँखें इत्रफरोश की कमर पर टिकने लगी थीं। वही एकाग्र दृष्टि जिससे अर्जुन ने पेड़ पर बैठे पक्षी की आँख को फोड़ा था।"[18] इत्रफरोश अपने ऊपर हुए हमलों का कारण समझ नहीं पाता और वह सोचता है कि आखिर इंद्र ने ऐसा क्यों किया। इंद्र का निशाना ठीक बैठा था। वार करने के बाद सरदार के आदेशानुसार उसने चाकू को थोड़ा मोड़ भी दिया था और अंतड़ियों के जाल में फंसा भी दिया था।

सांप्रदायिकता के इस जहर का कोई तर्क नहीं है। यह एक भीतरी अंधेरा है, एक उन्माद है, जो जितना ही भयानक है उतना ही अर्थहीन। इसी तरह बंतो और हरनाम तथा सरदार इकबाल सिंह के प्रसंग ऐसे मार्मिक और दिल दहला देने वाले प्रसंग हैं जो किसी भी संवेदनशील पाठक को भीतर से झकझोर देंगे। सरदार इकबाल सिंह को मुसलमानों का एक गिरोह इस शर्त पर छोड़ता है कि वह उनका दीन कबूल कर ले। उपन्यासकार लिखता है, "शाम ढलते-ढलते इकबाल सिंह के शरीर पर से सिखी की सब अलामतें दूर कर दी गई थीं। पुरानी अलामतें हटाकर नई अलामतें लाने की देर थी कि इंसान बदल गया था। अब वह दुश्मन नहीं था, दोस्त था, काफिर नहीं था, मुसलमान था। मुसलमानों के सभी दरवाजे उसके लिए खुल गए थे।"[19]

'तमस' सांप्रदायिक अंधकार की कहानी है पर इस अंधकार में भी प्रकाश की कुछ किरणें मौजूद हैं। बंतो और उसको शरण देने वाली राजो का व्यक्तित्व इन्हीं से निर्मित है, "औरत अभी भी लस्सी का कटोरा हाथ में पकड़े बंतो के सामने खड़ी थी। लस्सी के कटोरे की ओर देखकर बंतो असमंजस में पड़ गई। बंतो ने आँखें उठाकर पति की ओर देखा। उसका पति उसी की ओर देख रहा था। मुसलमान के हाथ से कटोरा कैसे ले लें? उधर रात भर की थकान, हलक सूख रहा था। उनकी झिझक को घर की औरत समझ गई।"[20] मनुष्यता एकदम मरती नहीं है, भले ही कुछ ही लोगों में जिंदा रहे और कभी-कभी तो उसका गला घोंटना क्रूर व्यक्ति के लिए भी एक चुनौती की तरह हो जाता है। राजो के द्वारा मनुष्यता का भाव प्रकट होने पर बंतो के मन में शंका पैदा हो जाती है लेकिन राजो के व्यवहार से हरनाम सिंह का पत्थर के समान कलेजा पिघल उठता है और वह राजो के हाथ से कटोरा लेते हुए कहता है, "तेरे हाथ का दिया अमृत बराबर है बहन, हम तुम्हारा किया कभी नहीं उतार सकते।"[21] नफरत के माहौल में भी इन्सानियत की एक पतली-सी लकीर कहीं खींची हुई है। उपन्यासकार ने इस पतली लकीर अर्थात मनुष्य के भीतर छिपी-दबी मनुष्यता को उपन्यास में जगह-जगह पकड़ने और उभारने की कोशिश की है।

"तमस", उपन्यासकार के निजी अनुभवों की रचनात्मक प्रस्तुति है। इसलिए इस उपन्यास में एक आत्मीय और सहज विश्वसनीयता मिलती है। लेखक के वर्णन इतने जीवंत हैं कि स्थितियाँ सजीव हो जाती हैं, चाहे वह प्राकृतिक परिवेश का वर्णन हो या व्यक्ति की भीतरी हलचलों का। पात्रों की मनोदशाओं और उनके भीतरी सोच का सूक्ष्म विश्लेषण उपन्यास में जगह-जगह मिलेगा। सरदार इकबाल सिंह दंगाइयों के कब्जे में है। अकेला ही वह उनके हर अपमानित करने वाले आदेश का बच्चों की तरह पालन कर रहा है। उपन्यासकार लिखता है, "इकबाल सिंह उस वक्त आत्मसम्मान के न्यूनतम स्तर तक पहुंच चुका था, जब जीवन से चिपके रहने वाला त्रस्त जीव केवल गिड़गिड़ा सकता है, रेंग सकता है, हँसने के लिए कहो तो हँस देगा, रोने के लिए कहो तो रो देगा।"[22] दंगा समाप्त होने के बाद लाला लक्ष्मीनारायण और शेख नूरइलाही एक दूसरे से हँसी-मजाक करते हुए मिल रहे हैं। उपन्यासकार लिखता है, "यह हँसी खेल अपनी जगह पर ठीक था। इसके साथ नजर का लिहाज था, एक प्रकार की अनौपचारिकता

थी जो बड़ी उम्र के स्वार्थी पुरुषों में आ जाती है, अंदर ही अंदर वैमनस्य भी था, घृणा भी थी, पर दोनों व्यापारी थे, व्यवहार कुशल थे, अपने लिए एक दूसरे की जरुरत को समझते थे।"[23]

उपन्यास की भाषा इतनी सरल और अनुभवयुक्त है कि पाठक को उस अनुभव में साझीदार बना लेती है। पंजाब के परिवेश को सजीव करने के लिए उपन्यासकार पंजाबी शब्दावली का सार्थक उपयोग करता है। कथानक में अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर, उसकी पत्नी लीजा, काँग्रेस एवं लीगी, हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, शहरी, ग्रामीण, स्त्री-पुरुष आदि सभी वर्ग के पात्र सम्मिलित हैं। यही कारण है कि आलोच्य उपन्यास की भाषा में विविधता है। परंतु वातावरण, कथावस्तु एवं उद्देश्य की दृष्टि से भाषा का प्रवाह अबाध गति से चलता है। अवसर और परिस्थिति के अनुकूल पात्र, भाषा का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी, देहातों में बोली जाने वाली पंजाबी तथा मुहावरों का प्रयोग भाषा को सहजता एवं प्रवाह प्रदान करता है।

घटनाओं के वर्णन में वर्णानात्मक शैली की प्रधानता है। घटनाओं का वर्णन यथार्थ चित्र को प्रस्तुत कर देता है, "तभी कुएँ की ओर से किसी के भागते कदमों की आवाज आई। तीनों ने घूमकर देखा, एक गाय भागती आ रही थी। उसके पीछे-पीछे एक आदमी सिर पर मुंडासा बाँधे और हाथ में डंडा लिए गाय के पीछे-पीछे भागता हुआ, उसे हाँके लिए जा रहा था। उसकी छाती खुली थी और गले में ताबीज झूल रही थी। चिकनी खाल वाली बादामी रंग की गाय थी, मोटी-मोटी चकित-सी आँखें। डर के मारे उसकी पूँछ उठी हुई थी। लगता जैसे रास्ता भटक गई है। तीनों ठिठक गए। मुंडासे वाले आदमी ने मुँह लपेट रखा था। गाय को हाँकता हुआ वह सड़क पर से गुजरा और फिर उसे दाएँ हाथ एक गली की ओर ले गया।"[24]

उपन्यासकार की भाषा में स्निग्धता, भावप्रवणता और कोमलता कूट-कूट कर भरी हुई है। दंगाई खोह में छिपे इकबाल सिंह को पत्थर मारते हैं जिसका करुण दृश्य इस प्रकार उपस्थित हुआ है, "सभी लोग उस ओर दौड़े। दो-तीन खोहों के अंदर एक साथ ढेले पड़ने लगे। एक खोह में एक ढेला सीधा सरदार के घुटने पर लगा, पर वह चिल्लाया नहीं और पीछे दुबक कर बैठ गया। फिर धड़ाधड़ ढेले पड़ने लगे। कोई ढेला खोह की दीवार के साथ जा लगता, कोई सीधा उसके घुटनों पर या कंधे पर या माथे पर जा लगता और सरदार सिसक कर रह जाता। ढेले बराबर तीनों खोहों में पड़ते रहे। पर थोड़ी देर बाद एक खोह में से कराहने-बिलबिलाने की दबी-दबी आवाज आने लगी। अब हमलावरों को यकीन हो गया कि वह इसी खोह में दुबका बैठा है, और ढेलों की बौछार और तेज हो गई।"[25]

निस्संदेह आजादी के पहले 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अंग्रेजों ने अपना रखी थी और उसी नीति से वे हमें आपस में लड़ा रहे थे। लेकिन आज भी हमारे यहां सांप्रदायिक दंगे होते हैं। जाहिर है, अंग्रेजों की जगह उन कुर्सियों पर आज जो विराजमान हैं वे हमें हमें लड़ा रहे हैं। आज भी स्थिति जस की तस है, बस चरित्र बदल गए हैं। सांप्रदायिकता की इस आग में आज भी गरीब ही पिसते हैं क्योंकि उनकी दशा पहले जैसी ही है। 'तमस' का एक मजदूर पात्र सही कहता है, "आये आजादी पर हमें क्या? हम पहले भी बोझा ढोते हैं, आजादी के बाद भी बोझा ढोएंगे।"[26]

'तमस' की घटनाओं के समय भीष्म साहनी ने जिस धार्मिक कट्ठरता का अनुभव किया था उसमें आज भी कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। धर्मान्धता आज भी कायम है और समय-समय पर अपने वीभत्स रूप में प्रकट होती रहती है। इस धर्मान्धता को बढ़ाने में राजनीतिक दल और उसके नेताखाद-पानी देते रहते हैं ताकि अवसर आने पर इसका उपयोग वे अपने हित में कर सकें।

अंत में मैं फिर कहना चाहती हूँ कि सन् 47 में जो आजादी हमें मिली थी वह वास्तव में सत्ता का हस्तांतरण था। प्रशासनिक व्यवस्था अंग्रेजों वाली ही थी। विभूतिनारायण राय, जो स्वयं एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी रहे हैं, उन्होंने आजाद भारत में पुलिस प्रशिक्षण की कमजोरियों पर सवाल उठाया है और अपने शोध का निष्कर्ष देते हुए लिखा है, "उदाहरण के लिए नक्सलवाद या आतंकवाद अधिकांश पुलिसकर्मियों के लिए सिर्फ कानून और व्यवस्था की 'समस्या' है। इन गतिविधियों के सामाजिक ...आर्थिक पहलुओं को नजरंदाज करते हुए वे पूरी ईमानदारी के साथ यह मानते हैं कि यदि सख्ती के साथ कानून और व्यवस्था लागू कर दी जाय तो इस 'समस्या' से निजात पाई जा सकती है। इसी तरह साम्प्रदायिकता भी उनके लिए कानून और व्यवस्था का ही मामला है।"[27]

ऐसी दशा में स्पष्ट है, जबतक साम्प्रदायिकता की समस्या हमारे देश में बनी रहेगी, 'तमस' का महत्व भी बना रहेगा और साम्प्रदायिकता की समस्या तबतक बनी रहेगी जबतक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नहीं होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. राय विभूति नारायण, साम्प्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 27
2. साहनी भीष्म, रामजी मिश्र, भगवती प्रसाद निदारिया (संपादक मंडल) आधुनिक हिन्दी उपन्यास, भाग-1, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2010, पृ. 392
3. उपर्युक्त, पृष्ठ 392
4. उपर्युक्त, पृष्ठ 392
5. साहनी भीष्म, तमस, राजकमल प्रकाशन, 23वीं आवृत्ति-2006, पृ. 218-219
6. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 36
7. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 36
8. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 43
9. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 45
10. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 45
11. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 227
12. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 233
13. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 48
14. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 49
15. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 74
16. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 123
17. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 137
18. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 154
19. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 210
20. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 192
21. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 192
22. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 208
23. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 251
24. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 59
25. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 89
26. साहनी भीष्म, तमस, पृ. 118
27. राय विभूति नारायण, साम्प्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस, पृष्ठ 88

बिहार में स्वतंत्रता आंदोलनः एक समीक्षा

डॉ० उदय कुमार पासवान

पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, अल्लमा इक़बाल कॉलेज, बिहारशरीफ (नालंदा) बिहार

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में बिहार का स्थान गौरवमयी माना जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि प्लासी युद्ध का निर्णय अंग्रेजी इस्ट इंडिया कंपनी के पक्ष में था किन्तु कुछ ही वर्षों में उनके बढ़ते हुए अधिपत्य को पहले अकेले मीरकासीम और फिर अपने तीन सहयोगियों मीरकामीम, अवध के नवाब सुजाऊद्यौला एवं दिल्ली के सम्राट साह आलम द्वितीय ने 1764 ई० के बक्सर के युद्ध में अंग्रेजों को चुनौती दी लेकिन समय ने उनका साथ नहीं दिया और उन्हें हार का सामना करना पड़ा अन्यथा आज भारत का इतिहास कुछ और होता।

1757 और 1764 के पराजय के बाद अंग्रेज ने संपूर्ण भारत पर धीरे-धीरे अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। वे व्यापार के लिए आये थे किन्तु शासक बन बैठे। लेकिन बिहार सहित भारत के लोगों को अंग्रेज का अधिपत्य एवं उनकी दासता पसन्द नहीं थी। ब्रिटिश शासक के आने के साथ ही उनके साथ संघर्ष प्रारंभ हो गया। 1762 से 1857 तक ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध 68 विद्रोह हुए। इसमें अधिकांश विद्रोह तो बिहार में ही हुए जैसे वहावी विद्रोह (1830-69), कोल विद्रोह (1831-32) भूमिज विद्रोह (1832-33) और संथान विद्रोह (1855-56) इत्यादि प्रमुख हैं। पहले विद्रोहों को छोड़कर अन्य तीनों विद्रोह एक जनजातीय समुदाय द्वारा अंग्रेज सरकार के विरूद्ध किया गया विद्रोह था। इसके अतिरिक्त आदिवासियों के द्वारा अंग्रेज सरकार के विरूद्ध अनेक छोटे-छोटे विद्रोह हुआ उसको अंग्रेज सैनिकों ने आसानी से दबा दिया गया।[1]

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन बिहार के प्रथम विद्रोही शहीद तिलकामांझी थे। जो दक्षिण भारत के आदिवासी थे। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वे ब्रिटिश शासक के विरूद्ध संघर्षरत थे। इनका संघर्ष 1750-1784 ई० तक माना जाता है।

संथाल शहीदों में सिद्धू, कान्हू, चाँद और भैरव का नाम उल्लेखनीय हैं। अहमदुल्ला वहावी आंदोलन के प्रमुख विद्रोही थे। उन्हें राजद्रोह के अपराध में काला पानी की सजा दी गयी थी। वे लोग पाँच वर्षों तक आण्डमानद्वीप समूह में रहे (1885-1889) और वही शहीद हो गए। उनके भाई याहया अली को भी कालापानी की सजा भुगतनी पड़ी थी। सन् 1857 ई० में ब्रिटिश हुकुमत के विरूद्ध एक व्यापक विद्रोह हुआ। इस विद्रोह को अंग्रेजों ने सिपाही विद्रोह की संज्ञा दी है। लेकिन देश विदेश के कई विद्वानों ने इसे प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम माना है। यह महाविद्रोह था। यह विद्रोह अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध जनता और सिपाहियों की एक लंबी परंपरा की विकसित कड़ी है। 1857 के पूर्व के लिए जितने भी विद्रोह थे वे सभी स्थानीय स्तर पर थी जिसको अंग्रेजों द्वारा आसानी से दबा दिया गया था लेकिन 1857 के विद्रोह को आसानी से नहीं दबाया जा सका और दबाये जाने के बाद भी इसकी भावना जीवित रही। 1857 ई० के विद्रोह की चिनगारियाँ देश के खासकर उत्तरी भारत के विभिन्न भागों में फुट पड़ी। बिहार में आरा के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी बाबू कुंअर सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों से कई बार संघर्ष हुआ। उन्होंने अंग्रेजों को आजमगढ़ में परास्त किया। 23 अप्रैल 1858 ई० को भी उन्होंने ब्रिटिश सेना को पराजित किया। कहा जाता है कि इसी समय अंग्रेजों से लड़ते समय उनके भुजाओं में गोली लगी तो उन्होंने उस भुजा को काट दिया था। बाबू कुँअर सिंह के मरने के बाद उनका छोटा भाई अमर सिंह ने संघर्ष को जारी रखा था, किन्तु अंग्रेजों ने क्रूरतापूर्वक इस विद्रोह को दबा दिया। सन् 1857 ई० के विद्रोहियों और शहीदों में पीरअली और हरेकृष्ण सिंह का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।[2]

1857 के क्रांति के कुछ समय बाद कंपनी का शासन समाप्त हो गया और भारत के शासन व्यवस्था को ब्रिटिश सरकार सीधे अपने हाथों में ले लिया। 1858-1885 ई० के बीच भारत में राष्ट्रीयता का विकास हुआ और 1885 ई० में अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई।

इसी बीच बिहार में एक शशक्त विद्रोह बिरसा के नेतृत्व में सन् 1895 और 1901 ई० के बीच हुआ। वह मुण्डा विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बिरसा 1895 से 1897 ई० के बीच दो वर्षों तक जेल में रहे। 1897 ई० में जेल से छुटने के बाद ब्रिटिश विरोधी कार्य करने लगे और 3 फरवरी 1900 ई० को अपने कई साथियों के साथ फिर गिरफ्तार कर लिये गये। 9 जून 1900 ई० में जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई।[3]

सन् 1905 में बंगाल विभाजन हुआ। इससे स्वदेशी आंदोलन को प्रोत्साहन मिला। क्रांतिकारी गतिविधियों को प्रेरणा मिली। 1908 में मुजफ्फरपुर में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने किंग्सफोर्ड नामक जिला जज को मारने का प्रयास किया। एक वाहन पर बम फेका गया, जिसमें दो महिला मारी गई उस वाहन में किंग्सफोर्ड सवार नहीं थे। प्रफुल्ल चाकी ने गिरफ्तारी से बचने के लिए आत्म हत्या कर लिया जबकि खुदीराम बोस को 11 अगस्त 1908 को फांसी की सजा सुनाई गयी।

1912 ई० में बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग कर दिया गया और उसके तुरंत बाद 1936 में उड़ीसा से बिहार भी अलग हो गया। सन् 1912 ई. में काँग्रेस का 27वाँ अधिवेशन पटना के बांकेपुर में हुअ। 1915 में मजहरूलहक काँग्रेस के बम्बई अधिवेशन में शरिक हुए। सन् 1916 में लखनऊ में काँग्रेस का 31वाँ अधिवेशन हुआ, जिसमें बिहार के प्रतिनिधि के रूप में राजकुमार शुक्ल भी शामिल थे, जिन्हें गाँधीजी के चम्पारण लाने का श्रेय प्राप्त है। चम्पारण में नील की खेती होती थी और इस संबद्ध में अंग्रेजों द्वारा किसानों का काफी शोषण किया जाता था। इस समस्या से अवगत होने के लिए गाँधीजी ने राजकुमार शुक्ल के अनुरोध पर 19 अप्रैल 1917 ई० को चम्पारण पहुँचे। चम्पारण के किसानों के समस्याओं को देखकर गाँधी काफी दु:खी हुए और यही से उन्होंने अपना पहला अहिंसात्मक आंदोलन प्रारम्भ किया। गाँधीजी के साथ, राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल हक, ब्रज किशोर प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, शंभु शरण आदि गाँधी जी के साथ चम्पारण गये थे।[4]

गाँधी जी की असहयोग आन्दोलन में बिहार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ब्रिटिश शासक से यथासंभव असहयोग किया गया। छात्रों एवं शिक्षकों ने स्कूल कॉलेज छोड़ दी। कई अधिकारियों ने अपनी नौकरी छोड़ दी। कई लोगों ने अपनी सरकारी उपाधि और डिग्रियों का परित्याग कर दिया। वकील ने कचहरी छोड़ दी। विदेशी मालों का बहिस्कार हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए विद्यापीठ की स्थापना हुई। 6 फरवरी 1921 को बिहार में विद्यापीठ खोला गया जिसका उद्घाटन महात्मा गाँधी के द्वारा किया गया ब्रजकिशोर को इसका कुलपति और मौलाना मजहरूल हक को कुलाधिपति बनाया गया। मजहरूल हक ने दीघा के निकट एक आश्रम स्थापित किया जो सदाकत आश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख आकर्षक केन्द्र था। यही पर काँग्रेस के नेताओं की गोष्ठियाँ होती थी। इसी आश्रम से मजहरूल हक ने 'मदरलैण्ड' के नाम से एक समाचार पत्र का प्रकाशन 1921 ई. में किया था। इसी समय इंगलैण्ड के युवराज का पटना में आगमन हुआ था।[5]

सन् 1922 ई. में काँग्रेस का सैतिसवा अधिवेशन देशबंधु चितरंजन दास की अध्यक्षता में गया में हुआ। विधायिका में प्रवेश नहीं करने का निर्णय लिया गया। किन्तु पं० मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास आदि कुछ नेता विधायिका में प्रवेश के पक्ष में थे। उन्होंने स्वराजपार्टी की स्थापना की। बिहार में भी स्वराजपार्टी हुई, किन्तु यहाँ इसे सफलता नहीं मिली। मई 1923 में नागपुर में सत्याग्रह हुआ। राजेन्द्र प्रसाद कुछ स्वयंसेवकों को लेकर सत्याग्रह में भाग लेने के लिए वहाँ पहुँचे। वहाँ सत्याग्रहियों पर लाठी चलायी गयी जिसमें घायल बिहार के हरदेव सिंह की मृत्यु हो गई।

सन् 1930-32 में सविनय अवज्ञा आंदोलन हुआ जिसे नमक सत्याग्रह कहते हैं। नमक कानून के विरोध में बिहार के कई जिलों में नमक निर्माण का कार्य होता रहा। नमक बनाते समय ही कार्यकर्त्ताओं पर लाठी का प्रहार किया गया। शराब बंदी और विदेशी चीजों की बिक्री पर रोक के लिए पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई। बिहपुर के सत्याग्रह में राजेन्द्र प्रसाद पर भी लाठी का प्रहार हुआ था। स्वतंत्रता के सिपाहियों को जेल में घोर यातनाएँ दी जाने लगी। कोड़े लगाने से लेकर बर्फ के सिल्ली पर सुलाने तक का दण्ड दिया जाने लगा। भोजन के बाद जल के बदले अंग्रेजों द्वारा शराब दी जाती थी। 10 अगस्त 1929 को समस्त बिहार में राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में गुलजारबाग में एक सभा बुलाकर राजनीतिक पीड़ित दिवस मनाया गया। छपरा जेल में कैदियों ने विदेशी वस्त्र का व्यवहार करने से इन्कार किया था। वे स्वदेशी वस्त्र की मांग करने लगे थे। बिहार में चौकीदारी कर के विरोध में आंदोलन हुआ। सविनय अवज्ञ आंदोलन के समय बिहार के योगेन्द्र शुक्ला चन्द्रशेखर आजाद के संपर्क में थे। चन्द्रशेख आजाद ने पटना के चर्च में अंग्रेजों को मारने का षडयंत्र रचा परन्तु वे सफल नहीं हुए। बिहार के जनजातियों के बीच भी एक जोरदार आंदोलन शुरू हुआ था जिसे तानाभगत आंदोलन कहा जाता था। यह दीर्घ काल तक जारी रहा। इस पर काँग्रेस

और गाँधी जी का विशेष प्रभाव रहा। उरॉव जाति के लोगों ने इस आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था। जतरा उराँव ने इस आंदोलन को प्रारंभ किया था।[7]

गरमदल में बिहार के शुक्ल ओर चन्द्रमा सिंह भी प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे। 12 मई 1934 को गया सेन्ट्रल जेल में शुक्ल को पफाँसी दे दी गई और चन्द्रमा सिंह से जेल में कठोर श्रम कराया गया। सन् 1937 ई. में देश भर में प्रांतीय विधायिका के लिए चुनाव हुआ। कुछ अन्य प्रांतों के साथ बिहार में भी काँग्रेस को बहुमत मिला। दैनिक कार्यों में गवर्नर के हस्तक्षेप नहीं करने के प्रश्न पर करीब चार माह तक कांग्रेस की सरकार नहीं बन सकी। जब वायसराय ने यह आश्वासन दिया कि मंत्रियों के दैनिक कार्य में गवर्नर हस्तक्षेप नहीं करेगा तब 1937 ई० में श्रीकृष्णसिंह के नेतृत्व में बिहार में काँग्रेस की सरकार बनी। लेकिन 1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सरकार जब भारत को मनमाने ढ़ंग से शामिल कर लिया तो बिहार सहित अन्य प्रांत में भी काँग्रेस सरकार ने त्यागपत्र दे दिया।[8]

सन् 1940 में काँग्रेस का 53वाँ अधिवेशन मौलाना अब्दुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में रामगढ़ में हुआ। रामगढ़ में ही काँग्रेस के नरम और समझौतावादी नीति के विरोध में सुभाष चन्द्र बोस और स्वामी सहजानंद के नेतृत्व में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था। 1940 में ही व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा हुई। बिहार के भी कुछ प्रमुख नेताओं ने इसमें भाग लिया था। श्री कृष्ण सिंह बिहार के पहले सत्याग्रही थे। भारत छोड़ो आन्दोलन का भी बिहार में काफी प्रभाव पड़ा। 11 अगस्त को पटना में छात्र का एक विशाल जुलूस निकला वह जुलूस सचिवालय के पास पहुँची। यहाँ पहुँचकर सचिवालय भवन पर झंडा फहराने का उद्देश्य था। काफी भीड़ थी। भीड़ में पटना के गोरे जिलाधीश ने गोली चलवा दी। कई लोग घायल हुए सात सपूत तो वही स्वर्गवासी हो गये, उनके स्मृति में शहीद स्मारक का निर्माण हुआ। इस घटना के बाद जनता में काफी विरोध फैल गया। इसके विरोध में तार और टेलिफोन की लाईने काटी गयी। रेलवे पटरियाँ उखाड़ी गयी, रेलवे स्टेशनों, सरकारी भबनों और कार्यालयों में आग लगायी गयी। अधिकारी और गोरो पर आक्रमण किया गया। सारण जिले के मढ़ौर में छः गोरे मार दिये गये। वहाँ रामस्वरूप देवी ने अद्‌भुत साहस का परिचय दिया था। उन्होंने आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। वे बिहार के 'लक्ष्मीबाई' कही जाती है। मढ़ौरा के आंदोलन में सुकदेव नाराण मेहता भी काफी सक्रिय थे। सरकार ने भी कठोरता पूर्वक आंदोलन को दबाने का प्रयास किया। कई जगह लाठी चली, गोली चली बहुत से लोग जेल गये, घायल हुए, शहीद हुए, निर्धन हुए, विकलांग हुए और अनाथ हो गये। कई महिलायें विधवा हो गई और कई महिलाओं की गोद सूनी हो गयी।[9]

अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि लंबे संघर्ष के बाद 15 अगस्त 1947 को भारत को आजादी मिली इसमें बिहार का महत्वपूर्ण योगदान रहा। बिहार के ही महान सपूत डॉ. राजेन्द्र प्रसाद स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए और उन्होंने 12 वर्षों तक इस पद पर रहकर देश की सेवा की।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. हैड-अरली इंगलिश ऐडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बिहार, पृ. 8-10
2. मैलेशन, रीक्रियेशन ऑफ ऐन इंडिया ऑफिसियल पृ. 313
3. बिहार डिस्ट्रक गजेटियर सिंहभूम, राँची, 70, 99
4. राजेन्द्र प्रसाद सत्याग्रह इन चम्पारण पृष्ठ 69-74
5. ननकी ऑपरेश एण्ड खिलाफ मुवमेंट इन बिहार पृष्ठ 14-20
6. वही, पृष्ठ 20
7. वही, पृष्ठ 85
8. अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि की वार्षिक रिपोर्ट 1926
9. गोविन्द सहाय पृष्ठ 135

बिहार में अगस्त क्रांति का स्वरूपः एक संक्षिप्त परिचय

मो० असलम

पीएच.डी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

राकेश कुमार बैठा

पीएच.डी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

1942 का अगस्त आन्दोलन कोई पूर्व नियोजित आन्दोलन नहीं था। इसकी रूपरेखा और संचालन राष्ट्रीय नेताओं के हाथ में नहीं था। यह एक स्वतः स्फूर्त जन आन्दोलन था जिसमें मुख्यतः स्कूल, कॉलेजों के विद्यार्थियों, कृषकों और निम्न मध्यम् वर्ग के लोगों ने भाग लिया था। यह आन्दोलन मुख्य रूप से बिहार, बंगाल और उत्तरप्रदेश में अधिक उग्र एवं हिंसात्मक था। 1942 का आन्दोलन 1920 के आन्दोलन से सर्वथा भिन्न था। आन्दोलन ने एकाएक हिंसात्मक रूप धारण कर लिया जो ब्रिटिश शासन के अत्याचार का परिणाम माना जा सकता है। 1942 का आन्दोलन भारत की आजादी में एक निर्णायक रूख अख्तियार कर लिया। जिस तरह 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में भी बिहार पीछे नहीं रहा, ठीक उसी प्रकार 1942 के स्वतंत्रता संग्राम में भी बिहार ने अग्रणी भूमिका निभायी। आन्दोलन का प्रथम चरण 1942 के अगस्त से सितम्बर के मध्य कुछ सप्ताह तक चला।[1] आन्दोलन के प्रथम चरण में जनता ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया लेकिन सरकार के दमनात्मक नीति और क्रूर दमन चक्र ने इसे दबा दिया। परन्तु आन्दोलनकारियों में साहस, वीरता और सहनशीलता का अभाव नहीं था वे डटे रहे। आन्दोलन ने हिंसात्मक रूप धारण कर लिया। इस तरह आन्दोलन का स्वरूप बदल गया।

आन्दोलन के पहले चरण को सरकार ने आसानी से दबा दिया लेकिन आन्दोलन का दूसरा चरण पहले चरण से निकटवर्ती सम्बंध रखते हुए अपने लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ता रहा। दूसरा चरण मुख्यतः गुरिल्ला संघर्ष के रूप में होता जिस पर इतिहासकारों का ध्यान कम हो गया है।[2] जय प्रकाश नारायण ने अपने मार्गदर्शन में भारत के सभी राजनीतिक दलों और ग्रुपों से समर्थन प्राप्त कर आजाद दस्ता के माध्यम से अंग्रेंजी सरकार को परेशानी में डालकर जनमानस को आन्दोलन के लिए उत्साहित किया। बिहार में 1942 के आन्दोलन को जयप्रकाश नारायण ने भूमिगत आन्दोलन के स्वरूप में बदल कर इसका सूत्रधार किये। अंगेजी विरासत के विरुद्ध जयप्रकाश नरायण ने पूरे देश का दौरा किया और क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रथम चरण की असफलता की समीक्षा करते हुए विद्यार्थियों, अमेरिकी सैनिकों तथा आजादी के सेनायायको को पत्र लिखे तथा आग्रह किया कि आजादी की आन्दोलन में सहयोग करें। अपने क्रांतिकारी विचारों को भूमिगत होकर चलाने के उद्देश्य से ही जयप्रकाश नारायण ने नेपाल की तराई के बकरी का टापू में अखिल भारतीय आजाद दस्ता तथा बिहार प्रदेश दस्ता का गठन किया। यह दस्ता का मुख्य कार्य गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को बढ़वा देना था। आजाद दस्ता के प्रत्येक सदस्य अपने नाम के आगे 'आजाद' शब्द लगते थे।[3] मार्च 1943 में राजविलास में प्रथम गुरिल्ला प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई। यहाँ बिहार के 25 नवयुवकों को राइफल एवं रिवाल्वर चलाने का प्रशिक्षण दिया गया। जल्द ही इसकी शाखाएँ बिहार के अन्य जिलों और दूर दराज क्षेत्रों में खोली गयी।[4]

गाँधी जी हर प्रकार के हिंसा और गुप्त कार्यवाहियों का विरोध किया करते थे लेकिन 1942 के आन्दोलन को अपनी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए एक सभा में कहा कि "हमें अपनी आजादी के लिए लड़ना होगा क्योंकि आजादी आकाश से नहीं टपकेगी।"[5] इन्होंने जयप्रकाश नारायण का समर्थन करते हुए कहा कि अगर ब्रिटिश सरकार हिंसात्मक तरीकों से लोकप्रिय आन्दोलनों का दमन करती है तो फिर अगर कुछ भारतीय इन्हीं तरीकों का सहारा लेकर अपनी स्वतंत्रता संग्राम से सम्बंधित आन्दोलन करना चाहते हैं

तो इसकी भर्त्सना करने का अधिकार ब्रिटिश सरकार को नहीं है।[6] इस तरह गाँधीजी के द्वारा दिये गए अपने विचारों ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत छोड़ो प्रस्ताव ने जयप्रकाश नारायण और सोशलिस्ट पार्टी की अपेक्षाओं को पूरा करने का एक रास्ता प्रदान किया।[7] इसके बाद बिहार और झारखंड के कई जिलों में आजाद दस्ता का गठन अत्यंत अनुशासित तरीके से तथा पदक्रम के अनुसार किया गया।[8] सूरज नारायण सिंह को बिहार आजाद दस्ता का अध्यक्ष बनाया गया। खुशलाल जो कि ब्रिटिश सेना का एक भगोड़ा सिपाही था उसे आजाद दस्ता के सैन्य परीक्षण का प्रमुख बनाया गया।[9] आजाद दस्ता के सदस्यों को प्रशिक्षित कर कुछ उद्देश्यों को लक्ष्य बनाकर पूरा करने की नीति अपनायी गई। ये उद्देश्य थे यातायात के साधनों को क्षति पहुँचाना, विदेशी औद्योगिक प्रतिष्ठानों को नुकसान पहुँचाना, संचार साधनों को नष्ट करना। इन उद्देश्यों को प्राप्ति हेतु तीन तरह के उपायों पर बल दिया गया। (क) साधारण तोड़-फोड़ के लिए हथियारों और औजारों का प्रयोग। (ख) सरकारी फाइलों को नष्ट करना (ग) विस्फोटक सामग्री से मिलों, कार्यालयों को क्षति पहुँचाना। इस तरह गुप्त ढ़ंग से जन आन्दोलन का अंग बनकर हिंसात्मक संघर्ष को आगे बढ़ाते रहे।

इससे पूर्व 11 अगस्त 1942 को पटना सचिवालय गोली काण्ड ने इतिहास रच दिया 11 अगस्त को सम्पूर्ण भारतवासियों के लिए अविस्मरणीय बना दिया। पटना सचिवालय पर झण्डा फहराने के प्रयास में 11 अगस्त 1942 को भारत की स्वतंत्रता की बलिबेदी पर बिहार के सात नौजवानों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। इनकी शहादत ने पूरे बिहार में आग लगा दी अपने बलिदान से बिहारवासियों के मन में आजादी की अलख जगा दिया।

सचिवालय शहीद कांड से प्रेरित होकर बिहार के कोने-कोने में आन्दोलन ने हिसांत्मक रूप धारण कर लिया। बिहटा रेलवे स्टेशन पर छात्रों ने ट्रेन रोका। सदिसोपुर रेलवे और नौबतपुर डाक बँगला क्षतिग्रस्त कर दिये गए। पटना में आन्दोलन दिन-प्रति दिन उग्र रूप धारण करते जा रहा था। पटना में सैनिक कार्रवाई भी तेज कर दी गई। सेना का एक ब्रिग्रेड राँची से पटना बुलाया गया। पटना के कई छात्रावास एवं कॉलेज छावनी के रूप तब्दील कर दिये गए। पटना के गंगा किनारे स्टीमर पर भी सैनिक तैनात किये गए।

तिरहुत के क्षेत्र प्रारम्भ से ही साम्राज्यवादी हुकूमत के खिलाफ आग उगल रही थी। चम्पारण सत्याग्रह के दौरान ही तिरहुतवासियों ने अपनी अवाज को बहरे ब्रिट्रिश शासकों के कानों में पहुँचा दिया था। तिरहुत के सभी जिलों की स्थिति गम्भीर थी खासकर मुजफ्फरपुर में छात्रों की उत्तेजना सबसे ज्यादा थी। छात्रों ने 14 अगस्त को मुजफ्फरपुर से कुढ़नी स्टेशनों के बीच रेल की पटरियों को उखाड़ फेका। कुढ़नी डाकघर को क्षति पहुचाया गया। 15 अगस्त को छात्रों ने ग्रामीणों के सहयोग से कटरा थाना पर आक्रमण कर दी दारोगा सहित कुछ स्टेशन को जला दिया गया। साहेबगंज में छात्रों के द्वारा थाना पर काग्रेसी झंडा को लगा दिया गया। आवागमन के रास्ते में पडने वाले सभी पुल एवं पुलियों को तोड़ दिया गया। यहाँ तक कि थाने के लोग भी इस हिंसात्मक आन्दोलन के भय से बाहरी मदद की राह देख रहे थे।[10] आन्दोलनकारियों के संचार के माध्यम को भी ध्वस्त कर दिया गया था। वर्तमान में नागरिकों पर सरकार का नियंत्रण समाप्त हो गया था।[11]

हाजीपुर के एक शिक्षक ने अपने पद से त्यागपत्र देकर आन्दोलनकारियों का नेतृत्व कर रहे थे। हाजीपुर स्टेशन गोदाम-डाकघर को लूटा गया। आन्दोलनकारियों ने एक उपकारा पर हमला कर दिया और उन्नासी कैदियों को छुडा लिया। हाजीपुर के कई थाना ने काम करना बंद कर दिया। सीतामढ़ी रेलवे स्टेशन पर आन्दोलनकारियों ने तिरंगा झंडा फहरा दिया। सीतामढ़ी नगर थाने तथा सुरसंड एवं बेलसंड थाने के भबनों पर भी तिरंगा झंडा फहरा दिया गया। अंग्रेज सैनिकों ने बेलसंड थाना के अंतर्गत ग्राम छपरा में गोली चला कर सात छात्रों की हत्या कर दी जिसमें मंगल सिंह, भूपन सिंह, सहदेव सिंह, नौजत सिंह, बंशी ततमा, प्रसाद साह, सुन्दर महरा को मार दिया और इसमें 18 लोग घायल हुए।[12]

तिरहुत प्रमंडल में कई महीनों तक एक तरह जन राज्य चलाता रहा। चम्पारण जिला के अंतर्गत गोविंदगंज थाना में 'ऋषि दल' का संगठन किया और अपना राज्य कायम किया। इसका संगठन करने में श्री रामाश्रय दूबे का हाथ था। दूबे इस संगठन के अध्यक्ष थे। डाक व्यवस्था श्री नरसिह दूबे और प्रचार विभाग श्री पारस नाथ वर्मा के हाथों में था। मोहम्मद ताहिर तोड़-फोड़ करने वाले दल का नेतृत्व करते थे।

दरभंगा अनुमंडल के विरौल थाना के रसियारी केन्द्र अगस्त के मध्य से सितम्बर तक जनता के नियंत्रण में रहा। 16 अगस्त को कुछ अन्य लोगों के साथ श्री लघुमन झा ने रसियारी के राजग्रुप को अपने नियंत्रण में ले लिया और उनका प्रशासन चलाने के लिए एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की। लगभग हर गाँव में पंचायतें एवं रक्षादल गठित किये गए, हर गाँव से केन्द्रीय समिति के लिए दो प्रतिनिधि भेजे जाते थे। पंचायतें एवं रक्षा दलों के द्वारा सिंघिया थाना में 17 अगस्त से 10 सितम्बर तक जनता ने अपने नेतृत्व में शासन चलाया।

सरकार द्वारा आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार कर जेल में डाला गया था लेकिन जो जेल से बाहर रह गये थे उनकी संख्या भी कम नहीं थी। इनके दो गिरोह थे, एक गिरोह था फरारों दूसरा गुप्त आन्दोलनकारियों का। फरार प्राय: वही थे जिसपर वारंट था।

ये छिपे रूप में अपने गतिविधियों को संचालित करते थे। ये अपना नाम बदलकर, स्थान बदलकर जनता के बीच उम्मीद की किरण को जगाकर उन्हें अपने संगठन में जोड़कर आजादी की लक्ष्य को प्राप्त करने का काम करते थे। मुंगेर तथा भागलपुर जिलों के बीच 'परशुराम दल' फरारों की मदद करता था तथा अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चाबंदी करता था। ये दल सरकार के तमाम क्रियाकलापों को स्थिर नहीं रहने देते थे। भागलपुर का 'सियाराम दल' धन एकत्र करना, हथियार की व्यवस्था करना, जनता को हथियार चलाने का ट्रेनिंग का काम करती थी।

अगस्त क्रांति अपने शुरूआती दौर में केवल शहरों तक सिमटा रहा किन्तु मध्य अगस्त तक यह गाँवों तक छा गया और धीरे-धीरे इसने ब्रिटिश सरकार के विरोध में तीव्र किसान विद्रोह का स्वरूप धारण का लिया। इस तरह आन्दोलन में भाग लेने वाले विद्रोहियों में कई वर्ग के लोग थे जो राष्ट्रीय भावना के उफान के साथ मिलकर लड़ रहे थे। अत: आन्दोलन एक ही धारा में आगे बढ़ रही थी। हेनिंधम जिस विश्लेषण की तलाश कर रहे थे वह आन्दोलन का आंतरिक पहलू है जो कई आयामों में बँटकर जटिल स्वरूप को धारण कर रहा था।

यह कहा जा सकता है कि 1942 का अगस्त क्रांति ने बिहार में मध्यवर्गी जनता, छात्र तथा किसानों ने आन्दोलन को तीव्रता प्रदान की, साथ ही साथ आन्दोलन को शहर से गाँव की ओर ले जाने में अहम् भूमिका निभाई। जय प्रकाश नारायण के आजाद दस्ता ने आन्दोलन को भूमिगत आंदोलन का स्वरूप प्रदान कर लम्बे समय तक आन्दोलन को चलाया। इस संघर्ष में हुई जनभागीदारी ने विश्व भर में भारत की स्वतंत्रता के लिए सकारात्मक जनमत तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्रम में बिहारवासियों की भूमिका महत्वपूर्ण और स्मरणीय है। बिहार तो जग चुका था लेकिन अन्य कई राज्यों अथवा अखिल भारतीय स्तर पर अंग्रेजी सत्ता के प्रति ऐसा विरोध इस काल में देखने को नहीं मिला।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिहार राज्य अभिलेखागार, बिहार गर्वन्मेंट सर्कुलर रिगार्डिंग सिविल डिसओविडियंस–पृ. 37-39
2. विनिता दामोदरन, ब्रोकेन प्रामिस : पॉपुलर प्राटेस्ट इंडियन नेशनलिज्म एण्ड द काँग्रेस पार्टी इन बिहार पृ. 245-83
3. अरूण भुयन; द क्विट इंडिया मुवमेंट, नई दिल्ली 1975, पृ. 118
4. वही- पृ. 119
5. भी. बी. कार्तिक; द इंडियन ट्राइयूममेट : ए पॉलिटिक्स बायोग्राफी ऑफ गाँधी, नेहरू, पटेल 1959 पृ. 175
6. मार्डन रीव्यू 1941 पृ. 431
7. बी. पट्ठाभिरमैय्या, द हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल काँग्रेस वा. 1 पृ. 46 364
8. होम पोलिटिकल, नेशनल आर्काइब्स ऑफ इंडिया, फाइल नं. 5.64.43
9. विनीता दामोदरन; पूर्वाक्त पृ. 263-69
10. के.के.दत्ता; हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम मुवमेंट इन बिहार वा. 3, पृ. 186
11. मुजफ्फरपुर के पुलिस अधीक्षक का रिपोर्ट।
12. के.के.दत्ता- पूर्वोक्त पृ. 187।

अज्ञेय की कविताओं में प्रतीक-योजना

डॉ० प्रीति बैश्य

संपर्क सूत्र : सहकारी अध्यापिका, हिन्दी विभाग, प्रागज्योतिष महाविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

1 प्रस्तावना

प्रयोगवादी कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (सन् 1911-1987) सिर्फ एक सफल कवि ही नहीं थे, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार, सम्पादक, अध्यापक भी थे। बचपन से ही संगीत के प्रति अज्ञेय की विशेष रुचि थी। वे अपने पिता डॉ. हीरानंद वात्स्यायन के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित थे, जो पुरातत्ववेत्ता थे। विविध राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित अज्ञेय को 'आँगन के पार द्वार' पर साहित्य अकादमी, 'कितनी नावों में कितनी बार' पर भारतीय ज्ञानपीठ सम्मान से सम्मानित भी किया गया था।

2 अध्ययन का महत्व

प्रयोगवादी काव्याधरा के प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय का नाम जाना जाता है। सिर्फ प्रयोगवाद ही नहीं, नई कविता में भी अज्ञेय का विशेष स्थान है। हिन्दी में सन् 1943 में अज्ञेय की संपादना में प्रकाशित 'तार सप्तक' से 'प्रयोगवाद' का आरंभ माना जाता है। 'तारसप्तक' से हिन्दी कविता में नए युग का सूत्रपात होता है। 'तार सप्तक' के प्रकाशन से लेकर 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के समय तक प्रयोगवाद की समय-सीमा है। प्रगतिवाद के तुरंत बाद हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रयोगवादी काव्याधारा का सूत्रपात हुआ था। जहाँ प्रगतिवाद वस्तुवादी था, वहाँ प्रयोगवाद शैली-शिल्प को विशेष महत्व देता था। प्रयोगवादी कविता में पुराने रूढ़ उपमानों के स्थान पर नए उपमान, नए रूपक, नए प्रतीक, अनूठी बिम्ब-योजना के सार्थक प्रयोग देखा जाता है। अज्ञेय की कविताओं की प्रतीक-योजना से उनकी अभिव्यक्ति की समृद्धि हुई है। अत: अज्ञेय की कविताओं को समझने के लिए, प्रतीक-योजना के महत्व और निहितार्थ से परिचित होने के लिए अज्ञेय की कविताओं की प्रतीक-योजना का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है।

3 अध्ययन का शीर्षक

अध्ययन का शीर्षक है–अज्ञेय की कविताओं में प्रतीक-योजना।

4 अध्ययन का उद्देश्य

अज्ञेय की कविताओं में प्रयुक्त प्रतीक-योजना का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य रहा है।

5 अध्ययन का सीमांकन

अज्ञेय का काव्य-संसार व्यापक है। उनके द्वारा रचित काव्य-संग्रहों के नाम हैं– 'भग्नदूत' (1933), 'चिंता' (1942), 'इत्यलम्' (1946), 'हरी घास पर क्षण भर' (1949), 'बावरा अहेरी' (1954), 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' (1957), 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959), 'आँगन के पार द्वार' (1961), 'सुनहले शैवाल' (चित्रालंकृत संकलन :1965), 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967), 'क्योंकि मैं उसे जनता हूँ' (1970), 'सागर मुद्रा' (1970), 'पहले मैं सन्नटा बुनता हूँ' (1974), 'महावृक्ष के नीचे' (1977), 'नदी की बाँक छाया पर' (1981), 'ऐसा कोई घर आपने देखा' (1986), प्रिजन डेज एंड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में,

1946)। इन काव्य-संकलनों में संकलित कविताओं में प्रयुक्त सभी प्रतीकों पर एक शोध-पत्र में समीक्षा करना असंभव होने के कारण विषय की दृष्टि से 'उड़ चल हारिल', 'हरी घास पर क्षण भर', 'कलगी बाजरे की', 'खद्योत दर्शन', 'उगा तारा', 'प्रथम किरण', 'बावरा अहेरी', श्यह दीप अकेलाश, 'साँप', 'इतिहास की हवा', 'ओ लहर', 'सोन मछली', 'चिड़िया की कहानी' शीर्षक कविताओं पर प्रस्तुत शोध-पत्र में समीक्षा की गयी हैं।

6 अध्ययन में व्यवहृत पद्धति एवं उपाय

अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। ग्रंथ सूची के लिए 'आधुनिक भाषा संस्था' द्वारा अनोमोदित MLA 7 पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसमें अज्ञेय की कविताओं से संबन्धित विविध काव्य-संकलनों, आलोचनात्मक ग्रन्थों और इन्टरनेट की सहायता भी ली गयी हैं।

7 विश्लेषण एवं निर्वचन

छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद का विकास हुआ था। छायावादी रोमांटिक भावबोध की प्रतिक्रिया स्वरूप यथार्थवादी काव्याधरा के रूप में प्रगतिवाद और उसके बाद प्रयोगवाद का विकास हुआ था। 1938 ई. से हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों में परिवर्तन होने लगा था और 'तारसप्तक' के प्रकाशन ने उसे और भी पूर्ण रूप में प्रतिस्थित किया।

प्रयोगवाद आगे चलकर नयी कविता के रूप में पर्यवसित हो गया। अज्ञेय के नेतृत्व में प्रयोगवाद 1950 ई. के आसपास नयी कविता के रूप विकसित हुई। प्रयोगवाद की रचना प्रक्रिया, शिल्प, यथार्थवादी दृष्टि आदि का विकसित रूप नयी कविता में देखने को मिलता है। प्रयोगवाद के समान नयी कविता में भी शिल्पगत नवीनता प्रमुख विशेषता रही है। चाहे प्रयोगवादी कविता हो या नई कविता अज्ञेय ने नवीन प्रतीक-योजना को महत्व दिया है। वे पाश्चात्य साहित्यकार सार्त्र, मुनियर, कमिग्स आदि से प्रभावित थे, लेकिन उन पर टी. एस. इलियट का सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इलियट की भाँति अज्ञेय के काव्यों में भी प्रतीकों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में देखा जाता है।

7.1 प्रतीक का स्वरूप: 'प्रतीक' के लिए अंग्रेजी में 'सिम्बल' (symbol) शब्द का प्रयोग होता है। इसका अर्थ है– रूप, प्रतिरूप, संकेत, चिह्न, ऐसा वाक्य, शब्द आदि जो पूर्णता के द्योतक हों आदि। अर्थात प्रतीक किसी वस्तु, चित्र, लिखित शब्द, ध्वनि या विशिष्ट चिह्न को कहते हैं जो संबंध, सादृश्यता या परंपरा द्वारा किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग 'होमर के गीत' (हाइम) में मिलता है (https://hi.m.wikipedia-org, dated 4-4-2020)।

7.2 अज्ञेय की कविताओं में प्रतीक-योजना: अज्ञेय की कविताओं में प्रतीकों का बहुल प्रयोग देखने को मिलता है। नवीन प्रतीक-योजना अज्ञेय के काव्यों की प्रमुख विशेषता है। अज्ञेय ने कविताओं में प्रतीकों के द्वारा निजी सूक्ष्म अनुभूतियों और विचारों को अभिव्यक्त किया है। इन प्रतीकों के माध्यम से प्रणयानुभूति, यौन भावना, अध्यात्मिकता, देश-प्रेम आदि भी व्यक्त हुए हैं। डॉ. नामवर सिंह अज्ञेय की कविताओं में प्रयुक्त प्रतीकों के संबंध में कहते हैं–

आरंभ में 'अज्ञेय' के प्रतीक उन्हीं के शब्दों में प्राय: यौन-प्रतीक थे, लेकिन धीरे-धीरे विचारधारा में परिवर्तन के साथ वे इधर मान्यताओं के भी सूचक बने। 'नदी के द्वीप' अस्तित्व-संकट का प्रतीक है तो अनुलिखित कविता में 'बालू का तट' जीवन की ऊब-भरी निर्जन शून्यता का और अंगुलियों के बीच से बालू का यों ही गिरना अनमने ढंग से इस वास्तविकता को झेलते जाना (सिंह: 23-24)।

अज्ञेय ने पुराने प्रतीकों में नवीन अर्थ भरकर और नवीन प्रतीकों के प्रयोग से आधुनिक संवेदनाओं और संदर्भों की सफल अभिव्यक्ति कर भाषा को और अधिक आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक बनाया है। अज्ञेय प्रतीकों के संदर्भ में कहते हैं–

कोई भी स्वस्थ काव्य-साहित्य प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है (तिवारी: 27)।

अज्ञेय की कई कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें प्रयुक्त प्रतीकों के अर्थों को समझे बिना उन कविताओं को नहीं समझा जा सकता। इन कविताओं के प्रतीक परंपरागत और वास्तविक अर्थ के स्थान पर एक नवीन अर्थ प्रकट करता है। अब हम इन कविताओं की प्रतीक-योजना पर विचार करेंगे।

7.2.1 'उड़ चल हारिल' में प्रतीक-योजना: 'उड़ चल हारिल' 'इत्यलम्' काव्य-संग्रह में संगृहीत एक बहु चर्चित कविता है। यहाँ 'हारिल' पक्षी कवि की अदम्य सृजन शक्ति का, स्वतंत्र अस्तित्व का प्रतीक है और 'तिनका' सृजन के साधन का प्रतीक है। यद्यपि हारिल पक्षी को दसों दिशाओं से आकाश घिर रहा है, फिर भी उसे निडर होकर आगे बढ़ना है, वैसे ही कवि को भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व को घेरते हुए समाज के लोगों के उपहासों को झेलकर सृजन कार्य को बरकरार रखना है–

शक्ति रहे तेरे हाथों में–छुट न जाय यह चाह सृजन की;
शक्ति रहे तेरे हाथों में– रुक न जाय यह गति जीवन की!

× × ×

तिनका? तेरे हाथों में है अमर एक रचना का साधन-
तिनका? तेरे पंजे में है विधना के प्राणों का स्पंदन!
काँप न, यद्यपि दसों दिशा में तुझे शून्य नभ घेर रहा है,
रुक न, यद्यपि उपहास जगत् का तुझ को पथ से हेर रहा है; (kavitakosh.org, dated 7-4-2020)

7.2.2 'हरी घास पर क्षण भर' में प्रतीक-योजना: यह 'हरी घास पर क्षण भर' नामक काव्य-संग्रह की प्रसिद्ध कविता है। यहाँ हरी घास स्वतंत्र जीवन के आमंत्रण का प्रतीक है और प्रणय-बंधन नागरिक जीवन का प्रतीक है। इसके माध्यम से कवि ने नगर के कृत्रिम और बंधनपूर्ण जीवन पर व्यंग्य किया है। अज्ञेय में प्रकृति के प्रति गहरा लगाव देखा जाता है। वे कृत्तिमता से मुक्त होकर सहज-सरल जीवन व्यतीत करना चाहते हैं–

-वह हम हों भी तो यह हरी घास ही जाने :
(जिस के खुले निमंत्रण के बल जग ने सदा उसे रौंदा है
और वह नहीं बोली),
नहीं सुनें हम वह नगरी के नागरिकों से
जिनकी भाषा में अतिशय चिकनाई है साबुन की
किन्तु नहीं है करुणा। (https://www-hindi.kavita.com, dated 7-4-2020)

7.2.3 'कलगी बाजरे की' में प्रतीक-योजना: 'हरी घास पर क्षण भर' नामक काव्य-संग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता है 'कलगी बाजरे की'। अज्ञेय ने 'कलगी बाजरे की' नामक कविता में नवीन प्रतीकों के प्रयोग पर महत्व दिया है। प्रतीकों के संदर्भ में अज्ञेय का विचार है कि–

प्रतीकों के देवता कुच कर जाते हैं तब उन्हें भी नया संस्कार देने की आवश्यकता होती है। प्रतीक समर्थ कलाकार प्रतीकों को माँजता है (शर्मा: 25)।

प्रस्तुत कविता सूक्ष्म अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति के उपकरणों में आए बदलावों को स्पष्ट करती है। अज्ञेय के पहले ही प्रगतिवादी कवि स्पष्ट रूप से परंपरागत सौंदर्यबोध को नकार चुका है। अज्ञेय की दृष्टि में पुराने उपमान आज मैले हो गए हैं। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए जिन प्रतीक, उपमान आदि का प्रयोग पारंपरागत रूप से हो रहे हैं, उनके माध्यम से उभरनेवाला सौन्दर्य आज मिट गया है। अज्ञेय अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य-चित्रण करने के लिए नवीन प्रतीक और उपमान जुटाते हैं और उसकी उपमा तारा, कमल, चम्पे की कली आदि से न देते हुए 'बिछली घास' या 'हवा में लहलहाती छरहरी बाजरे की कलगी' से देना अधिक उपयुक्त समझते हैं–

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्याही कुंई,
टटकी कली चम्पे की

वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यहीं :
ये उपमान मैले हो गए हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।
कभी वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

× × ×

अगर मैं यह कहूँ–
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की? (सिंह: 28)

यहाँ 'बिछली घास' से नारी की सहज मृदुलता और 'हवा में लहलहाती बाजरे की छरहरी कलगी' से नारी के शरीर के लचीलेपन के अर्थ ध्वनित होते हैं। कवि पारंपरिक उपमान न जुटाने के स्पष्टीकरण के रूप में यह कहता है कि इसका अर्थ यह नहीं है कि अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य में कमी हो गयी है या कवि का हृदय सूना है या उसके प्रति कवि का प्रेम मैला हो गया है। कोई भी शब्द बार-बार प्रयोग होने पर अपना प्रभाव खो बैठता है। परंपरा से चले आ रहे प्रतीकों की चमक आज फीकी पड़ गयी है। अज्ञेय ग्रामीण-जीवन से जुड़े हुए कवि हैं। उन्होंने कृत्तिमता के स्थान पर प्रकृति की सहज नैस्वर्गिकता को महत्व दिया है। उन्होंने सौंदर्य-चित्रण के लिए परंपरागत उपमान के स्थान पर ग्रामीण जीवन में व्याप्त नवीन प्रतीक, नवीन उपमान को अपनाया है।

7.2.4 'खद्योत दर्शन' में प्रतीक-योजना: 'बावरा अहेरी' काव्य-संग्रह की एक भाव-गंभीर छोटी सी कविता है–'खद्योत दर्शन'। कवि के लिए 'जुगनू' आस्था का प्रतीक है। जब विस्तृत बनैले वन में चाँद थक जाता है, आसमान भी बादलों से घिर जाता है और चारों ओर घना अंधकार छा जाता है, तब जुगनू ही चमकर अंधकार से मुक्त होने के लिए लोगों के मन में विश्वास जगाता है–

चाँद तो थक गया, गगन भी बादलों से ढक गया
बन तो बनैला है-अभी क्या ठिकाना कितनी दूर तक
फैला है!
अंधकार। घनसार।
अरे पर देखो तो वो पत्तियों में
जुगनू टिमक गया! (https://www.hindi-kavita.com, dated 7-4-2020)

7.2.5 'उगा तारा' में प्रतीक-योजना: 'बावरा अहेरी' काव्य-संग्रह की 'उगा तारा' नामक कविता में 'तारा' आस्था का प्रतीक है। कवि कहते हैं कि जब सूर्य का प्रकाश बुझ जाता है तब आकाश में उदित अकेला शुक्र तारा ही प्रकाशमान दिखाई देता है। सूरज के डूब जाने पर जग को आलोकित करने का वही एकमात्र सहारा है–

ऊगा तारा :
मैंने देखा नहीं कि कब बुझ गया
लाल आलोक सूर्य का। पर जब देखा, देखा यही:
कि पेड़ों-चट्ठानों में उलझी हारी हुई लालिमा में
द्योतित है शुक्र
अकेला तारा। (https://www.hindi-kavita.com, dated 7-4-2020)

7.2.6 'प्रथम किरण' में प्रतीक-योजना: यह 'बावरा अहेरी' काव्य-संग्रह की कविता है। इसमें 'बनपाखी' वैयक्तिक भावना से पूर्ण मन का प्रतीक है तथा 'लाल रवि' जन-जीवन का प्रतीक है। यहाँ कवि अज्ञेय तन-मन की वैयक्तिक अनुभूति को जन-जीवन के प्रति समर्पित करते हुए कहते हैं–

प्रणति, लाल रवि, ओ जन-जीवन
लो यह मेरी
सकल भावना तन की, मन की–
वह बनपाखी जाने गरिमा
महिमा
मेरे छोटे चेतन छन की! (https://www.hindi-kavita.com, dated 7-4-2020)

7.2.7 'बावरा अहेरी' में प्रतीक-योजना: यह अज्ञेय के 'बावरा अहेरी' काव्य-संग्रह की प्रमुख प्रतीकात्मक कविता है। प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण इस काव्य में भी देखा जाता है। यहाँ प्रकृति के सचेतन रूप का चित्रण मानवीकरण के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली रूप में हुआ है। इसमें 'बावरा अहेरी' सूर्य का प्रतीक है और सूर्य का प्रतीकात्मक अर्थ प्रयोगवाद और नई कविता के कवि के संदर्भ में जोड़ा जा सकता है। प्रात:काल बावरा अहेरी रूपी सूर्य आलोक की लाल-लाल किरणों का जाल छोटी-बड़ी चिड़ियाँ, कबूतर आदि पर बिछा देता है और शाम को उसे समेटते समय जाल में फसे सब को अपनी ओर खींच लेता है। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित करता है उसी प्रकार प्रयोगवादी और नई कविता के कवि अपनी कविता में प्रयुक्त शब्द-योजना के जाल से सबको बांध लेते हैं। अज्ञेय कहते हैं–

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ:
छोटी-छोटी चिड़ियाँ
मँझोले परवे
बड़े-बड़े पंखी (kavitakosh.org, dated 7-4-2020)

कवि सूर्य के माध्यम से नए कवि को संबोधित करते हुए प्रश्न करते हैं कि क्या नई संवेदना के कवि समालोचना के डर से अपना काव्य मार्ग बदल देगा। अज्ञेय का विचार है कि कविगण परंपरावादी सोच में ही बंधा न रहें, नयी चेतना को अपनाये–

एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़ कर क्या तू चला जाएगा?
ले, मैं खोल देता हूँ कपाट सारे (kavitakosh.org, dated 7-4-2020)

7.2.8 श्यह दीप अकेलाश में प्रतीक-योजना: श्बावरा अहेरीश काव्य-संग्रह की यह बहु-चर्चित कविता है। इस कविता में 'दीप' व्यक्ति की अस्मिता का प्रतीक है। अज्ञेय ऐसे समाजवाद के समर्थक नहीं हैं, जिसमें व्यक्ति की अस्मिता को बरकरार रखने के लिए मुसीबत उत्पन्न हो। वे समाज के अंदर ही व्यक्तिगत गरिमा के प्रशंसक हैं। अज्ञेय अपनी तुलना एक अकेले दीप से करते हैं, जो प्रेम रूपी तेल से भरा होकर अपनी उज्ज्वलता में स्वत: दीप्त हैं। कवि इस अकेले दीप को दीपों की पंक्ति में रख देना चाहते हैं। यही व्यक्ति का सामाजिक परिप्रेक्ष है–

यह दीप अकेला, स्नेह-भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो। (सिंह, 29)

7.2.9 'साँप' में प्रतीक योजना: 'इंद्र-धनु रौंदे हुए ये' काव्य-संग्रह की यह एक व्यंग्यात्मक छोटी-सी कविता है। छोटी-सी कविता होने पर भी अर्थ की दृष्टि से यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह कविता सूत्रात्मक शैली में कवि के जीबनानुभव प्रस्तुत करती है। इसमें 'साँप' मानवीय मूल्यों से हीन, अवसरवादी, संवेदनशून्य नगर में रहनेवाले आत्मकेंद्रिक लोगों का प्रतीक है। कवि नागरिक सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि नगर में रहने पर भी सही अर्थ में वे लोग सभ्य नहीं हुए। सब प्रकार के अवगुणों से नगर का तथाकथित सभ्य जीवन आज भरा हुआ है। सभ्य समाज में ऐसे बहुत से लोग हैं, जो साँप से भी अधिक विषैले हैं। जैसे साँप दूसरे को डँसते हुए विष छोड़ता है, वैसे ही वे लोग भी दूसरों को नुकसान पहुँचाने में थोड़ा भी नहीं हिचकिचाते–

साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ- [उत्तर दोगे?]
तब कैसे सीखा हँसना-
विष कहाँ पाया? (सिंह, 30)

7.2.10 'इतिहास की हवा' में प्रतीक-योजना: यह कविता अज्ञेय के काव्य-संग्रह 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये' कविता में संगृहीत है। इसमें 'एकलव्य' बागड़ी जाति का प्रतीक है जबकि द्रोणाचार्य वर्तमानकालीन राजनीतिज्ञ का प्रतीक है। द्रोणाचार्य के माध्यम से कवि ने आधुनिक राजनीतिज्ञ की दोहरी चाल चलने की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। एक ओर द्रोणाचार्य ने एकलव्य को शिष्य के रूप में ग्रहण किया है, उसे धनुष धारण करते हुए तीर साधने के लिए प्रेरित किया है लेकिन दूसरी ओर उससे अँगूठे की माँग करके उसके साथ अनुचित आचरण किया है–

ताजमहल के शिल्पियों के हाथ कटवा दिये गए थे,
द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अँगूठा माँग लिया था,
अभिनव द्रोण किन्तु कहता है :
'वत्स, वीर,
धरो चाप, साधो तीर, धरती को विद्ध करो-
अमृत-सा कूप-जल यहीं फूट निकले!'
और फिर चुपके से एकलव्य के नये कुएँ में भाँग डाल देता है। (kavitakosh-org]dated 7-4-2020)

7.2.11 'ओ लहर' में प्रतीक-योजना: यह कविता अज्ञेय के काव्य-संग्रह 'इंद्र-धनु रौंदे हुए ये' में संगृहीत है। इसमें 'सागर' जीवन का प्रतीक है और 'लहर' जीवन की उथल-पुथल का प्रतीक है। कवि यह चाहते हैं कि वैयक्तिक जीवन की 'तरी' लहर के थपेड़े सहने के लिए लहर की ओर उन्मुख हो–

जिधर से आ रही है लहर
अपना रुख उधर को मोड़ दो:
तरी सागर की सुता है, संगिनी है पवन की,
उसे मिलने दो ललक कर लहर से : (kavitakosh-org] dated 7-4-2020)

7.2.12 'सोन मछ्ली' में प्रतीक-योजना: अज्ञेय के 'अरी ओ करुणा प्रभामय' नामक काव्य-संग्रह में यह कविता संगृहीत है। प्रस्तुत कविता में कवि ने प्राणी की जिजीविषा की भावना को 'सोन मछली' के प्रतीक के रूप में चित्रण किया है। काव्य में आँख के लिए मछ्ली उपमान का प्रयोग परंपरागत है। लेकिन यहाँ कवि ने पुराने प्रतीक को नए अर्थों में प्रयुक्त कर कविता को प्रभावोत्पादक बनाया है। हम काँच के पात्र में पाली हुई 'सोन मछ्ली' के रूप-सौन्दर्य को देखकर मोहित होते हैं लेकिन हम यह नजरंदाज कर देते हैं कि उस काँच के पीछे जो मछली है, वह जीवित रहने के लिए हाँफती रहती है–

हम निहारते
रूप काँच के पीछे
हाँप रही है, मछली।
रूप तृषा भी
(और काँच के पीछे)
है जिजीविषा। (https://www.hindi-kavita.com, dated 7-4-2020)

7.2.13 'चिड़िया की कहानी' में प्रतीक योजना: अज्ञेय के काव्य-संग्रह 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की एक महत्वपूर्ण छोटी-सी कविता है 'चिड़िया की कहानी'। इस कविता में 'चिड़िया' बाह्यिक घटनाओं का प्रतीक है तो 'पत्ती' मन का प्रतीक है। मन बाह्यिक घटनाओं से कुछ समय के लिए प्रभावित होता है, उद्वेलित होता है लेकिन फिर वह शांत हो जाता है–

उड़ गई चिड़िया
काँपी, फिर
थिर हो गई पत्ती। (kavitakosh.org, dated 7-4-2020)

8 उपलब्धियाँ

प्रस्तुत अध्ययन की उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं–

8.1 अज्ञेय की कविताओं में प्रतीक-योजना मिलती है।

8.2 हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद के जनक और नयी कविता के प्रतिनिधि कवि के रूप में अज्ञेय का विशेष स्थान है।

8.3 प्रतीकों के माध्यम से अज्ञेय ने प्रणयानुभूति, यौन-भावना, स्वदेशप्रेम, अपनी सूक्ष्म अनुभूति, मनोगत भाव या विचार अभिव्यक्त किया है।

8.4 अज्ञेय की कविताओं का प्रतीक शाश्वत भावों को अभिव्यक्त करता है।

8.5 अज्ञेय प्रतीकों के द्वारा तात्कालिक सामाजिक प्रसंग, राजनीतिक परिस्थिति, ऐतिहासिक परिस्थिति पर विचार व्यक्त करते हैं।

8.6 अज्ञेय ने अपनी कविताओं में नवीन प्रतीकों के साथ ही पुराने प्रतीकों को नए अर्थ में प्रयोग किया है।

8.7 अज्ञेय ने प्रतीकों के माध्यम से मानवीय संवेदन-हीन मनोवृत्तियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है।

8.8 अज्ञेय की कविताओं की प्रतीक-योजना में स्वाभाविकता, विविधता, भावों की मूर्तता आदि गुण विद्यमान हैं।

8.9 अज्ञेय की कविताओं में परंपरागत उपमान के स्थान पर ग्रामीण जीवन में व्याप्त नवीन प्रतीक, नवीन उपमान का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है।

8.10 अज्ञेय की कविताओं में प्रयुक्त प्रतीक बड़े ही सार्थक और प्रभावशाली हैं।

9 निष्कर्ष

अत: निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रयोगवाद और नयी कविता में अज्ञेय का महत्व अद्वितीय है। उन्होंने प्राचीन प्रतीकों को नया रूप देकर और नए प्रतीक, नवीन उपमान आदि को आधुनिक संवेदनाओं और संदर्भों से जोड़कर कविताओं को और अधिक आकर्षक और प्रभावोत्पादक बनाया है। निश्चित रूप से प्रतीक-योजना की दृष्टि से उनकी कविताएँ सफल हैं।

ग्रंथ सूची

- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, पहला इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2010
- बांदिवड़ेकर, चन्द्रकान्त अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन, द्वितीय आगरा: बिनोद पुस्तक मंदिर, 1990
- राजपाल शर्मा, नयी कविता के प्रतिनिधि कवि, प्रथम, दिल्ली: अशोक प्रकाशन, 1994

- द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, नवम, आगरा: बिनोद पुस्तक मंदिर, 1993
- बच्चन सिंह, सम्पा. एकत्र, नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2007
- सत्यनारायण सिंह, सम्पा. आधुनिक हिन्दी काव्य, द्वितीय, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2003

Web

- 4 अप्रैल, 2020, <https://hi.m.wikipedia.org
- 7 अप्रैल, 2020, <kavitakosh.org
- 7 अप्रैल, 2020, <https://www.hindi-kavita.com

गुलज़ार और भूपेन हाजरिका के गीतों में प्रतिफलित प्रेम-भावना

पूजा बरुवा

अतिथि अध्यापिका, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

1. प्रस्तावना

गुलजार (1936) और भूपेन हाजरिका (1926-2011) क्रमशः हिंदी तथा असमीया संगीत जगत के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। दोनों ही अपनी-अपनी भाषा तथा क्षेत्रों में एक सफल गीतकार, कवि, फिल्म निर्माता आदि रहे हैं। गुलजार और भूपेन हाजरिका भिन्न भाषा एवं प्रांत के होने के बावजूद भी दोनों के गीतों में एक जैसे विषय पाये जाते हैं। प्रेम भी एक ऐसा ही विषय है, जिस पर दोनों गीतकारों ने खुलकर गीत लिखे हैं। यहाँ प्रेम से केवल प्रणय-प्रेम का ही बोध नहीं कराया गया है, बल्कि उसके साथ-साथ मानव-प्रेम, देश-प्रेम, जाति-प्रेम आदि का भी चित्रण उन्के गियों में मिलता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हम गुलजार और भूपेन हाजरिका के गीतों में प्रतिफलित प्रेम-भावना पर चर्चा करेंगे।

2. अध्ययन का महत्त्व

गुलजार और भूपेन हाजरिका दो ऐसे महान हस्ताक्षर हैं, जिनके बिना हिन्दी और असमीया संगीत जगत अधूरा है। इनके गीत मनोहारी तो है ही साथ में भाव गांभीर्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं। दोनों के प्रेम-संबंधी गीत तो सबसे अधिक आकर्षक लगते हैं। उनके प्रेम-गीतों के बारे में जानने के लिए उनके गीतों का अध्ययन करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

3. अध्ययन का शीर्षकः

प्रस्तुत शोध-पत्र का शीर्षक है–गुलजार और भूपेन हाजरिका के गीतों में प्रतिफलित प्रेम-भावना।

4. अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य है–गुलजार और भूपेन हाजरिका के गीतों के प्रेम-पक्ष का उदघाटन करना।

5. अध्ययन का सीमांकन

प्रस्तुत अध्ययन गुलजार और भूपेन हाजरिका के गीतों के अध्ययन तक ही सीमित है। अध्ययन की सुविधा के लिए गुलजार और भूपेन हाजरिका से संबंधित अन्य रचनाओं को भी आवश्यकानुसार लिया गया हैं।

6. अध्ययन में व्यवक्त पद्धति एवं उपाय

प्रस्तुत शोध-पत्र की पद्धति विश्लेषणात्मक है। इसमें यथासंभव 'आधुनिक भाषा संस्था' (MODERN LANGUAGEASSOCIATION) के सप्तम संस्करण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में असमीया गीतों की पंक्तियों का लिप्यंतरण किया गया है। असमीया भाषा में स उच्चारणवाले दो वर्ण हैं–च और छ। असमीया भाषा में स के लिए कोमल ह का उच्चारण होता है। असमीया के स, च और छ इन तीनों वर्णों के लिए हिंदी

लिप्यंतरण में क्रमशः स, च और छ रखे गए हैं। हिंदी भाषा के 'य' वर्ण के लिए असमीया भाषा में दो वर्ण चलते हैं- एक का उच्चारण 'य' ही है और दूसरे का उच्चारण 'ज' होता है। असमीया 'य' के लिए हिंदी में भी 'य' रखा गया है, पर असमीया के 'य' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिपयांतरण में 'य' रखा गया है।

7. विषय का निर्वचन

प्रस्तुत शोध-पत्र की चर्चा अब हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर करेंगे–

7.1. प्रणय-प्रेमः गीत प्रेम की अभिव्यक्ति का एक सुंदर माध्यम है। गायक या गीतकार अपने गीतों के जरिये मन में छिपे भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। प्रेमी और प्रेमिका के मन में मिलन और बिछड़ने के समय कैसी भावनाएँ जागृत होती हैं, उसका यथार्थ और मनोहारी चित्रण गुलजार और भूपेन हाजरिका दोनों ने किया है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों स्थितियों का वर्णन गुलजार और भूपेन हाजरिका के गीतों में कई बार हुआ है। प्रेम के मिलम का आकर्षण और वियोग का विरह इन दोनों स्थितियों का चित्रण गुलजार और भूपेन हाजरिका के गीतों में इसप्रकार मिलता है–

7.1.1. संयोगः संयोग या मिलन एक ऐसी स्थिति होती है, जब प्रेमी और प्रेमिका के मन में अनेक रंगीन सपने सजते हैं। प्रकृति का हर उपकरण आकर्षक लगने लगता है। दिल खुशी से झूम उठता है। इसी स्थिति की अभिव्यक्ति गुलजार ने अपने गीतों में इसप्रकार किया है–

आजकल पाँव जमीं पर नहीं पड़ते मेरे
बोलो, देखा है कभी तुमने मुझे उड़ते हुए
जब भी थमा है तेरा हाथ तो देखा है
लोग कहते हैं कि बस हाथ की रेखा है
हमने देखा है दो तकदीरों को जुड़ते हुए
आजकल पाँव जमी पर नहीं पड़ते मेरे। (शेखर 6: 2016)

प्रियतम के आने से जिंदगी बदल जाती है। सारी खुशियों की वजह वही लगने लगता है। प्यार की गहराई के साथ-साथ वही जीने की वजह लगने लगता है। इस संबंध में गुलजार लिखते हैं–

तुम आ गए हो नूर आ गया है
नहीं तो, चिरागों से लौ जा रही थी
जीने की तुमसे वजह मिल गयी है
बड़ी बेवजह जिंदगी जा रही थी। (शेखर 66: 2012)

गुलजार की तरह भूपेन हाजरिका ने भी अपने कई गीतों में प्रेमी-प्रेमिका के मिलन की स्थिति का सुंदर चित्रण किया है। प्रिय-मिलन की के क्षण में मन में उठनेवाली भावनाओं की अभिव्यक्ति उनके 'मिलनर एइ शुभ क्षण' गीत में हुई है–

ऑ.....ऑ.....ऑ
मिलनर एइ शुभ क्षण
पखिला उरादि उरे मन
मरमरे एइ आवाहन
जीवनरे मधुर लगन।।
लाजरे बांधोन खुलि याय याय
बुकुवे सँहारि पाय पाय।
अमृतमत एइ आलिंगन
येने हर-गौरीर महामिलन।। (हाजरिका 1070: 2016)

(**भावार्थ:** मिलन के इस शुभ क्षण में मन तितली जैसे उड़ रहा है। प्यार का यह आह्वान जीवन का सुंदर लग्न बन गया है। लाज का बंधन टूटनेवाला है। अमृतसम यह आलिंगन जैसे हो हर-गौरी का महामिलन।)

प्रेमिका के मिलने से प्रेमी का मन खुशी से खिल उठता है। इस क्षण का चित्रण भूपेन हाजरिका ने इसप्रकार किया है–

देहर रन्ध्रे रन्ध्रे तुलिले शिहरण
तोमार ओंठर परशे
मोर छंदे छंदे उरे प्रेमर सुबास
मन नाचे किबा हरषे। (हाजरिका 1082: 2016)

7.1.2. वियोग: वियोग या बिछड़ने की स्थिति में प्रेमी और प्रेमिका एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं। विरह की स्थिति में प्रेम बढ़ता है, क्योंकि प्रियतम से मिलने का आकांक्षा पल-पल जलाती रहती है। गुलजार और भूपेन हाजरिका दोनों के जीवन में मिलन से अधिक विरह की तड़पन थी। यह विरह उनके व्यक्तिगत जीवन की ही उपज है। गुलजार के गीतों में प्रियतम से बिछड़ने के दर्द की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। प्रियतम के बिना सावन सुना लगता है, दिन नहीं ढलता, रात नहीं गुजरती–

तेरे बिना सावन सुने
तेरे बिना अब तो ये मन तरसे
न जाने कब आए दिन, दिन ढल जाए
तेरे बिना आँखियों से रात न जाए
तेरे बिना अब तो ये दिन तरसे
अबके न सावन बरसे। (शेखर 190: 2012)

प्रिय-वियोग का एक अन्य उदाहरण देखिए–

तेरे बिना जिया जाए ना
बिन तेरे, तेरे बिन साजना
सांस में सांस आए ना
तेरे बिना जिया जाए ना। (शेखर 142: 2016)

गुलजार की तरह भूपेन हाजरिका का जीवन भी व्यक्तिगत दु:खों से भरा हुआ है। अपने जीवन में कभी भी भूपेन हाजरिका को अपना प्यार न मिल सका, जिसका गम उन्हें हमेशा रह गया। अपनी पत्नी से दूर हो जाने के बाद जिस दर्द से उन्हें तड़पना पड़ा, उस दर्द को वे अपने गीतों में अभिव्यक्त करते हैं। अपने जीवित अवस्था में तो उन्हें पत्नी का साथ नहीं मिल सका; पर उनके मरने के बाद उनकी चीता के पास भी अगर वह आ गयी, तो वह भी उनके लिए काफी है–

मइ येतिया एइ जीवनर
माया एरि गुचि याम
आशा करों मोर चितार काषत
तोमार सँहारि पाम। (हाजरिका 1112: 2010)

(**भावार्थ:** मैं जब इस संसार को छोड़कर चला जाऊँगा, आशा करता हूँ कि मेरी चीता के पास मैं तुम्हारा साथ पाऊँगा।)

7.2. प्रकृति-प्रेम: कवि हो गायक हो, लेखक हो या अन्य कलाकार प्रकृति सभी का प्रिय विषय रहा है। प्रकृति के कण-कण में सुंदरता विराज करती है, उस सुंदरता को भले ही आम इंसान न देख सकें; पर किसी कलाकार की नजर से वह सुंदरता नहीं छिप सकती। नदी प्रकृति का एक अत्यंत सुंदर और महत्वपूर्ण तत्व है। गुलजार ने गंगा नदी के संबंध में लिखा है–

गंगा आए कहाँ से, गंगा जाए कहाँ रे
लहराए पानी में जैसे, धूप-छाँव रे

रात कारी दिन उजियारा
मिल गए दोनों साए
सांझ ने देखो रंग-रूप के
कैसे भेद मिटाये रे। (गुलजार 30: 2016)

भूपेन हाजरिका भी प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं। वे एक ऐसे गीतकार हैं, जिनके गीतों में प्रकृति के सभी उपकरण आ गए हैं। नदी, पहार, फूल-पत्ते, पेड़-पौधे, चिड़ियाँ, हवाएँ, बादल, आकाश, बारिश, रात-दिन कोई भी तत्व उनकी पारखी नजर से छूती नहीं। बादल को लेकर लिखा गया उनके एक गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिए–

मेघे गिर् गिर् करे
आ-हा हि हि मेघे करे
बा लागि आगलति कलापात लरे
एजाक येन बरषुण
आहों आहों करे। (हाजरिका 1123: 2010)

(**भावार्थ:** मेघ गरज रहे हैं, हवा के झोके से केले के पत्ते हिल रहे हैं। लगता है बारिश आनेवाली है।)

7.3. देशप्रेम: प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपने देश तथा अपनी जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा तथा प्रेम का होना स्वाभाविक है। कलाकार के मन में भी देशप्रेम की भावना होती है। वे अपने देश के कण-कण से प्रेम करते हैं। देश के प्रति निस्वार्थ प्रेम की अभिव्यक्ति गुलजार के कई गीतों के माध्यम से हुई है। इसका एक उदाहरण देखिए–

जय हिन्द, हिन्द, जय, जय हिन्द, हिन्द
गुरुमंत्र मेरा, इतिहास मेरा
तहजीब मेरी, विश्वास मेरा
मेरी कर्मभूमि, मेरी जन्मभूमि
यह हिन्द है हिंदुस्तान मेरा
जय हिन्द, हिन्द, जय, हिन्द, हिन्द
जय हिन्द, हिन्द, जय, जय हिन्द, हिन्द। (शेखर 256: 2012)

भूपेन हाजरिका में भी देशप्रेम की भावना विद्यमान थी। देश के लिए शहीद होनेवाले वीर जवानों को वे नमण करते हैं तथा देश की रक्षा के लिए मर मिटने को भी वे हमेशा तैयार थे। उनके गीत युवक-युवतियों के लिए प्रेरणा-स्रोत है। इसका एक उदाहरण देखिए–

रणक्लांत नहओ सेइ मुहूर्त्तलै
यि मुहूर्त्तते मोर सीमांतते
शेष शत्रु दैत्यटिर नहे मरण।
....
देशर माटित आमि
बक्ष-रक्तरे
स्वाक्षर करि करि
सँपिम जीवन
रणक्लांत नहओ।। (हाजरिका 1121: 2010)

(**भावार्थ:** जिस क्षण तक सीमा में रहनेवाले मेरे शत्रुओं की मृत्यु नहीं होती, तब तक में रण से क्लांत नहीं होऊँगा। देश की मिट्ठी में हम अपने खून से हस्ताक्षर करेंगे। देश को अपना जीवन सौंप देंगे; पर कभी भी रण से क्लांत नही होंगे।)

देशप्रेम के साथ-साथ अपनी जन्मभूमि के प्रति अपार श्रद्धा की भावना भी भूपेन हाजरिका के गीतों में मिलती है। अपनी जन्मभूमि असम की हवा, मिट्ठी, पानी तथा कण-कण के प्रति उनके मन में प्रेम हैं। असम के लोग, इसकी संस्कृति, सभ्यता सभी के प्रति उनमें एक तीव्र आकर्षण है। अपनी जनमभूमि असम का गुण-गान करते हुए वे लिखते हैं–

असम आमार रूपही, गुणरो नाइ शेष
भारतरे पूर्ब्ब दिशार सूर्य उठा देश।
गोतेइ जीवन बिचारिलेओ अलेख दिवस राति
असम देशर दरे नेपाओ इमान रसाल माटि। (हाजरिका 1072: 2010)

(**भावार्थ:** भारत के पूर्वी दिशा में स्थित हमारे असम के रूप-गुण की कोई तुलना नहीं है। सारी जिंदगी खोजने पर भी असम की तरह मिट्ठी कहीं ओर नहीं मिल सकती।)

7.4. मानव-प्रेम: कवि, साहित्यकार, गीतकार, गायक या कलाकार सभी मानवतावाद के पोषक होते हैं। मानव का मानव से प्यार ही कलाकार का काम्य होता है। गुलजार और भूपेन हाजरिका ने भी मानवता का गान किया है। समाज में आम आदमी की दुखद स्थिति को देखकर गुलजार का मन दु:खी हो जाता है। समाज के आम वर्ग के लोगों की मार्मिक स्थिति का यथार्थ चित्रण गुलजार ने निम्नलिखित गीत में इसप्रकार किया है–

हर शख्स को ये सरकारी दंडा ऑफिस-ऑफिस फेंटता है
इस कॉमन मैन को हर अफसर फुटबॉल बना कर खेलता है
इंच-इंच घिसता रहता है
सड़क पे चलता आम आदमी
अरे देखा है क्या लंबा-चौड़ा
छोटे कद का आम आदमी
आम आदमी, आम आदमी, आम आदमी, आम आदमी। (शेखर 264: 2012)

भूपेन हाजरिका के दिल में गरीब, पीड़ित, शोषित लोगों के प्रति तीव्र सहानुभूति थी। मानवता का ह्रास उन्हें दु:खी कर देता है–

मानुहे मानुहर बाबे
यदिहे अकणो नाभाबे
अकणि सहानुभूतिरे
भाबिब कोनेनो कोवाँ? समनीया
.....
मानुहे मानुहक बेचिब खुजि
मानुहे मानुहक किनिब खुजि
पुरणि इतिहास दोहारिले
भुल जानो नहॉब कोवाँ–समनीया? (हाजरिका 1034: 2010)

(**भावार्थ:** अगर एक इंसान दूसरे इंसान के लिए नहीं सोचेगा तो कौन सोचेगा?... इंसान एक दूसरे को बेचना-खरीदना चाहे तो क्या यह गलत नहीं है?)

8. उपलब्धियाँ

प्रस्तुत शोध-पत्र की उपलब्धियाँ निम्न प्रकार की हैं–

- गुलजार और भूपेन हाजरिका अलग-अलग भाषा तथा प्रांत के होते हुए भी उनके गीतों में एक जैसे विषय उपलब्ध हैं।
- प्रेम के संयोग और वियोग दोनों स्थितियों का बड़े ही सुंदर ढंग से गुलजार और भूपेन हाजरिका ने चित्रण किया है।
- देशप्रेम के साथ-साथ अपनी जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा तथा प्रेम की अभिव्यक्ति भी दोनों के गीतों में हुई है।

9. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि गुलजार और भूपेन हाजरिका हिन्दी और असमीया संगीत के ऐसी हस्ती हैं, जिनके जैसा ओर कोई नहीं। हिन्दी और असमीया संगीत-जगत उनके बिना अधूरा है। हिन्दी तथा असमीया कला-संस्कृति से पूरे विश्व को परिचित कराके भिन्न भाषा तथा संस्कृतियों से सांस्कृतिक समन्वय स्थापित कराने का श्रेय इन्हीं दो को जाता है।

ग्रंथ-सूची

- गुलजार, मेरा कुछ सामान, सप्तम, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2016
- Shekhar, Sunjoy-100 Lyrics GULZAR-Gurgaon: Penguin Books, 2012
- Shekhar, Sunjoy-Another 100 Lyrics GULZAR-Gurgaon: Penguin Books, 2016
- हाजरिका, सूर्य, सम्पा. डॉ. भूपेन हाजरिकार गीत समग्र:गीतावली, तृतीय, गुवाहाटी: लावण्य प्रकाशन, 2010

हिन्दी भाषा की व्युत्पत्तिः एक अध्ययन

डॉ० रीतामणि वैश्य

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

हिन्दी विश्व की एक प्रमुख भाषा है। हिंदी भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जानेवाली भाषा है। हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत में बोली जाती हैं। हालांकि, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है। संवैधानिक रूप से हिन्दी भारत की राजभाषा है। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। वर्तमान हिन्दी अनेक राष्ट्रों में व्याप्त होती जा रही है। मॉरीशस, त्रिनीदाद, सूरीनाम, फीजी, गयाना, इंग्लैंड, अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, मलेशिया, सिंगापुर, अर्जेन्टीना, बहरीन, बांग्लादेश, भूटान, ब्राजील, म्यांमार, कोलंबिया, कोस्टारिका, इक्केडर, अलसाल्वडोर, ग्वाटेमाला, होंडुरास, इंडोनेशिया, कुवैत, मेक्सिको, मोजाम्बिक, नेपाल, निकारागुआ, ओमान, पाकिस्तान, पनामा, पराग्वे, कतर, सऊदी अरब, सेशेल्स, श्रीलंका, थायलैंड, वेनेजुएला, दक्षिण यमन, संयुक्त राज्य अमेरिका, जाम्बिया, ब्रिटेन, कनाडा, रूस आदि राष्ट्रों में हिन्दी जाननेवालों की एक अच्छी-खासी आबादी है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।चीनी के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा भी है। किन्तु एथनॉलोग के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।

आज हिन्दी भारत की सीमा का अतिक्रमण कर पूरी दुनिया में फैलने लगी है। हिन्दी को इस विराट रूप में प्रतिष्ठित होने के लिए उसे हजारों सालों का रास्ता तय करना पड़ा है। हिन्दी भाषा के विकास का एक लंबा इतिहास है। हिन्दी भाषा की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए हमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर दृष्टि डालना आवश्यक होगा।

1. हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति
2. भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग और विकास
3. भाषा के रूप में हिन्दी की व्युत्पत्ति
4. खड़ीबोली का विकास

1.1 हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति

'हिन्दू' शब्द का संबंध 'हिन्द', 'हिन्दू' आदि शब्दों से है। 'हिन्द' या 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में कई मत मिलते हैं।

परंपरावादी संस्कृत पंडित मूल शब्द 'हिन्दु' मानते हैं। 'हिन्दु' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से दी जाती है। कुछ लोग 'हिन्' (=नष्ट करना) + 'दु' (=दुष्ट) से 'हिन्दु' शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं। इस दृष्टि से 'हिन्दु' का अर्थ है दुष्टों का बिनाश करनेवाला'।

आधुनिक युग का महाशब्दकोश 'शब्दकल्पद्रुम' के अनुसार 'हीन+दुष+डु' से 'हिन्दु' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। अर्थात 'हीनों को दूषित करनेवाला"हिन्दु' है।

'हिन्दु' शब्द की अन्य एक व्युत्पत्ति है–'हीन+दु' [हीनों (म्लेच्छों) का दलन या खंडित करनेवाला]। इसका अर्थ 'हीनता का दलन करनेवाला' भी माना जाता है।

अन्य एक व्युत्पत्ति के अनुसार 'यो हिसायाः दूयते, सः हिन्दु'। तात्पर्य यह है कि हिंसा को देखकर दुखी होनेवाले हिन्दु हैं।

एक वर्ग 'हिन्दु' शब्द की व्युत्पत्ति फारसी शब्द 'हिन्दु' से मानते हैं। दरअसल में यह शब्द मूलत: संस्कृत का है, फारसी का नहीं। 'हिन्दु' शब्द संस्कृत शब्द 'सिन्धु' का फारसी रूपान्तरण है। संस्कृत के अधिकांश व्याकरण में 'हिन्दु' शब्द का संबंध 'स्यन्द्' धातु से माना गया है। 'स्यन्द्' का अर्थ होता है–पसीजना, द्रबना, स्रवित होना। इसमें 'र' के संप्रसारण, 'दस्य' 'ध:' तथा 'उद्' प्रत्यय के योग से 'सिन्धु' शब्द बना है। इसका अर्थ नदी विशेष तथा समुद्र आदि है। इस प्रकार इसका मूल अर्थ 'बहना' है।

'हिन्दु' शब्द एक व्युत्पत्ति संस्कृत की 'इंद्' धातु से मानी गयी है। 'इंद्' का अर्थ है–'ऐश्वर्य होना'। संस्कृत का 'इंद्र' शब्द भी 'इंद्' से सम्बद्ध है। 'सिन्धु' शब्द को 'इंद्' या 'इन्द्' से सम्बद्ध माननेवाले लोग उस नदी में ऐश्वर्य पर बल देते हैं।

मोनियर विलियम्स का अनुमान है कि 'सिन्धु' शब्द को 'सिद्' (=जाना) धातु से निकला।

भोलानाथ तिवारी उल्लेखित प्रथम चार मतों को कल्पना-प्रसूत बताते हैं। साथ ही बाकी मतों से भी आप सहमत नहीं हैं। इन सभी मतों का खंडन करते हुए कहते हैं कि इस नदी विशेष का 'सिन्धु' नाम मूलत: संस्कृत का शब्द नहीं है। आपके अनुसार यह शब्द मूलत: द्रविड़ भाषा का है। वे इस संभावना को स्वीकारते हैं कि द्रविड़ जब भारत आये थे, उन्हें यह नाम आस्ट्रिक आदि पुरानी जाती से मिला हो और आर्यों के आने के समय इस नदी का जो भी नाम प्रचलित रहा हो, आर्यों ने 'सिन्धु' रूप में उसका संस्कृत रूप बना लिया हो। 'सिड्', 'सिद्', 'सित्' या 'चिंद्' आदि रूपों में द्रविड़ परिवार की कई भाषाओं एवं बोलियों में एक प्राचीन धातु मिलती है, जिसका प्रयोग 'छिड़कने', 'सींचने' या 'बहने' आदि अर्थों में भी होता है। भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि अगर यह शब्द द्रविडों को किसी पुरानी जाति से नहीं मिला था, तो इसी धातु के आधार पर द्रविड़ों ने सिन्धु को 'सिद्', 'सित्' नाम दिया था।

धीरे-धीरे हिन्दी शब्द का विकास होता है। ध्वनिक विकास के परिणामस्वरूप 'इ' पर बालाघाट हुआ। इससे अन्त्य 'उ' लुप्त होता है और इसतरह यह शब्द 'हिन्दु' से 'हिन्द' हो गया। आगे चलकर 'हिन्द' शब्द में ईरानी के विशेषणात्मक प्रत्यय 'ईक' जुड़ता है। इससे यह शब्द 'हिन्दीक' बनता है, जिसका अर्थ है 'हिन्दी का'। 'क' के लुप्त हो जाने के कारण 'हिन्दीक' का विकास 'हिन्दी' के रूप में हुआ।

1.2 भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग और विकास

भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग फारस और अरब से शुरू होता है। भारत की भाषाओं के लिए 'जबान-ए-हिन्दी' का प्रयोग होता रहा था। भारत में भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग मुसलमानों द्वारा किया गया था। मुसलमानों के भारत आने से पहले भारतीय परंपरा में प्रचलित भाषा के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता था। 'भाषा' शब्द का प्रयोग संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के लिए हुआ था। मुसलमान भारत आये तो उनलोगों ने यहाँ की भाषा को 'भाषा' न कहकर 'जबाने हिन्दी' कहा। उनका संबंध विशेष रूप से मध्यदेश से था। अत: धीरे-धीरे इसकी मध्यदेशीय बोली के लिए उन्होंने 'जबाने हिन्दी' या 'हिन्दी जबान' या 'हिन्दी' नाम का प्रयोग किया। कहा जाता है कि अमीर खुसरो ने सबसे पहले भाषा के रूप में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग 'खालिकबारी' में किया है। पर विद्वानों के एक वर्ग का मानना है कि खुसरो ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग 'भारतीय मुसलमानों' या 'भारतीय' लोगों के लिए किया था। उनका यह भी मानना है कि 'खालिकबारी' खुसरो की रचना नहीं है। 'खालिकबारी' की अव्यवस्था को देखकर विद्वान उसे अमीर खुसरो के परवर्ती समय के किसी खुसरो शाह की रचना मानते हैं (तिवारी 2007:52)। 'हिन्दी' शब्द के अविच्छिन्न प्रयोग की प्राचीन परंपरा 'दक्खिनी' या 'दक्खिनी हिन्दी' के कवियों एवं गद्यकारों में ही मिलता है। जैसे-शाही मीराजी (1475 ई.)- 'यों देखत हिन्दी बोल' (तिवारी 2007:54-55)। 17वीं सदी से उत्तर भारत में 'हिन्दी' शब्द अविच्छिन्न रूप से मिलने लगा था। हिन्दी कवियों में से सूफी कवि नूर मुहम्मद ने 1773 में लिखा है–

हिन्दू मग पर पाँव न राख्यौं।
का जौ बहुतै हिन्दी भाख्यौं।। (तिवारी 2007:55)

इससे पता चलता है कि इस समय तक आते-आते मध्यदेश की जनभाषा के लिए चल रहे 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग कुछ 'हिन्दुओं की भाषा' के अर्थ में होने लगाता है और इससे हिन्दुओं की शब्दावली निकालकर फारसी शब्दों के आधार पर उर्दू की नींव पड़ने लगी थी। लगभग 1800 में मुरादशाह ने लिखा था–

झिंझोरा फारसी के उस्तख्वाँ को
किया पुर मग्ज तब हिन्दी जवाँ को।
फसाहत फारसी से जब निकाली
लताफत शेर में हिन्दी के डाली। (तिवारी 2007:55)

'हिन्दी' का प्रयोग उस भाषा के लिए मिलता है,जो अरबी और फारसी से भरी जा रही थी। यही भाषा बाद में विकसित होकर 'उर्दू' कहलायी। 19वीं सदी के मध्य भाग तक कुछ अपवादों को छोड़कर 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होने लगता है। अंग्रेजों ने आधुनिक अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का व्यापक प्रयोग किया था। इस संबंध में 1800 ई. में कलकत्ते में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्त हिन्दी या हिन्दुस्तानी के अध्यापक गिलक्राइस्ट की महत्वपूर्ण भूमिका रही। उन्हीं के कारण आज हिन्दी और उर्दू स्वतंत्र भाषाएँ बनीं।आपनेउस समय के मध्यदेश की वास्तविक प्रतिनिधि भाषा को नहीं अपनाया था। यह भाषा न अधिक अरबी-फारसी की ओर झुकी हुई थी और न संस्कृत की ओर। 1904 तक गिलक्राइस्ट फोर्ट विलियम कॉलेज में अध्यापना करते रहे। अत: तब तक इसी भाषा को हिन्दी कहा गया। पर फोर्ट विलियम कॉलेज के कर्मचारियों का ध्यान इस पर गया कि यह वहाँ की प्रतिनिधि भाषा नहीं है। परिणामस्वरूप गिलक्राइस्ट की हिन्दी, जो वस्तुत: उर्दू ही थी, के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग होने लगा। साथ ही 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओं में प्रचलित संस्कृत मिश्रित भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा। इस नवीन अर्थ में स्पष्ट रूप से 'हिन्दी' शब्द का लिखित प्रयोग सबसे पहले प्रयोग करते हुए कैप्टिन टेलर ने फोर्ट विलियम कॉलेज के वार्षिक विवरण में कहा था–

मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिक्र कर रहा हूँ, जो फारसी लिपि में लिखी है....मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा, जिसकी अपनी लिपि है....जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता है और मुसलमानी आक्रमणों से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर-पश्चिम प्रांत की भाषा थी। (तिवारी 2007:57)

1824 में फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दी अध्यापक विलियम प्राइस ने स्पष्ट रूप से कहा था कि हिन्दी के लगभग सारे शब्द संस्कृत के हैं और हिन्दुस्तानी के शब्द अरबी-फारसी के हैं।

1.3 भाषा के रूप में हिन्दी की व्युत्पत्ति

भारत में आर्य भाषा का आरंभ कब से हुआ यह निश्चित रूप से कह पाना तो संभव नहीं है,पर यह माना जाता है कि 1500 ई. पू. के आसपास इसका आरंभ होता है। तब से अब तक भारतीय आर्य भाषाओं की आयु साढ़े तीन हजार वर्ष हो चुकी है। हिन्दी भाषा की व्युत्पत्ति का इतिहास भारतीय आर्य भाषा के इतिहास में समाया हुआ है। भारतीय आर्य भाषा के इतिहास को भाषिक विशेषताओं के आधार पर तीन कालों में बाँटा गया है–

3.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल– 1500 ई. पू.-500 ई. पू

3.2 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल- 500 ई. पू-1000 ई.

3.2.1 प्रथम प्राकृत-500 ई. पू-1 ई.

3.2.2 प्रथम प्राकृत-1-ई.-500 ई.

3.2.3 प्रथम प्राकृत-500 ई.–1000 ई.

3.3 आधुनिक भारतीय आर्य भाषा-1000 ई.-अब तक

3.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल (1500 ई. पू.-500 ई. पू): प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल में संस्कृत के दो रूप मिलते हैं-वैदिक और लौकिक। ऐसे प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप वैदिक संहिताओं में मिलता है। वैदिक संहिताओं का समय लगभग 1200 ई. पू. से 900 ई. पू. तक माना जाता है। वैदिक संहिताओं की भाषा में भी एकरूपता नहीं मिलती है। काव्य-भाषा होने के कारण वैदिक संहिताओं की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न होती थी। कुछ अपवादों को छोड़कर ब्राह्मणों एवं उपनिषदों की भाषा वैदिक संहिताओं के बाद की है। इस भाषा में जटिलता और रूपाधिक्य अपेक्षाकृत कम है। इनका गद्य तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट ठहरती है। इस भाषा का समय 900 ई. पू. के बाद का है। इस भाषा

का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है, जिसका समय 700 ई. पू. के बाद का है। यह पाणिनीय संस्कृत के निकट की भाषा थी। पर अवश्य ही इसमें पाणिनीय संस्कृत की एकरूपता नहीं थी। लगभग पाँचवीं सदी में पाणिनी ने अपने व्याकरण से संस्कृत को अधिक परिनिष्ठित एवं नियमबद्ध किया। यही बाद में स्थायी रूप में लौकिक संस्कृत (800 ई. पू. से 500 ई. पू. तक) का सर्वमान्य आदर्श बन जाता है।

3.2 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल (500 ई. पू-1000 ई.): लौकिक संस्कृत को पाणिनी ने अपने व्याकरण में जकड़कर उसे एक स्थायी रूप दिया था। पर जन भाषा किसी बंधन को नहीं मानती, वह निरंतर बढ़ती जाती है। इस जनभाषा के मध्यकालीन रूप को मध्यकालीन आर्यभाषा के रूप में जाना जाता है। मध्यकालीन आर्य भाषा का समय 500 ई. पू से 1000 ई. तक माना जाता है। मध्यकालीन आर्य भाषा को प्राकृत भी कहा जाता है। भोलानाथ तिवारी प्राकृत की व्युत्पत्ति के बारे में कहते हैं–

कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'प्रक् कृत' अर्थात 'पहले की बनी हुई' या 'पहले की की हुई' मानते हैं। दूसरे शब्दों में प्राकृत 'नैसर्गिक' 'प्रकृत' या अकृत्रिम भाषा है और इसके विपरीत संस्कृत कृत्रिम या संस्कार की हुई भाषा है।.....प्राकृत पुरानी भाषा है और संस्कृत उसका संस्कार करके बनाई हुई बाद की भाषा। ग्रियर्सन ने इसी को प्राइमारी प्राकृत कहा है। इसका अर्थ यह है कि इस अर्थ में प्राकृत शब्द का प्रयोग उस जनभाषा के लिए है, जो वैदिक एवं संस्कृत काल में जनभाषा थी और जिसका कुछ परिनिष्ठित एवं पंडितों द्वारा मान्य रूप वैदिक है एवं परवर्ती काल में जिसका सुसंस्कृत साहित्यिक रूप 'संस्कृत' है। अर्थात वह वैदिक की भी जननी है और उसी का कुछ परवर्ती रूप संस्कृत की जननी है। (तिवारी 2010:158)

विद्वानों का दूसरा वर्ग प्राकृत को संस्कृत से उत्पन्न मानते हैं। इस स्थिति में दोनों मत एक दूसरे के विरोधी हैं। एक मत संस्कृत का जन्म प्राकृत से मानता है,जब दूसरा मत संस्कृत से प्राकृत का जन्म मानता है। इस संदर्भ में भोलानाथ तिवारी का कथन है–

वस्तुत: अपने-अपने स्थान पर ये दोनों ही मत ठीक हैं। यदि हम उस जनभाषा को प्राकृत कहते हैं, जिसका परिनिष्ठित साहित्यिक रूप प्राकृत है, दूसरे शब्दों में जिससे संस्कृत उत्पन्न है, तो पहला मत ठीक है, अर्थात प्राकृत संस्कृत की जननी है, किन्तु यदि हम संस्कृत-कालीन जनभाषा को भी संस्कृत ही कहें–जो मूलत: वही था, केवल संस्कृत साहित्य भाषा थी और वह जनभाषा-तो दूसरा मत सही है। क्योंकि 5000 ई. पू. से 1000 ई. तक बोली जानेवाली प्राकृत भाषा उसी का विकसित रूप है अर्थात उसी से निकली है। अब प्राय: इसी भाषा को प्राकृत कहते हैं, अत: इसे अर्थात प्राकृत को हम संस्कृत से उत्पन्न मन सकते हैं। हाँ, यह बात ध्यान में रखने की है, यह प्राकृत भाषा वैदिक या लौकिक संस्कृत से उद्भूत नहीं है, अपितु तत्कालीन जनभाषा से उद्भूत है या उसका विकसित रूप हैं। (तिवारी 2010:158)

ध्यान देने की बात है कि प्राकृत वैदिक (1500 ई. पू.-800 ई. पू.) से पहले की भाषा हो या लौकिक संस्कृत के समय की भाषा हो, इसमें संदेह नहीं है कि दोनों स्थितियों में प्राकृत का विकास जनभाषा से हुआ है। विद्वानों का अनुमान है कि जनभाषा का संस्कार करके उसे 'संस्कृत' नाम से विभूषित किया गयाथा। अर्थात संस्कृत की तुलना में जनभाषा असंस्कृत हुई। पंडितों में प्रचलित इस संस्कृत भाषा के विरुद्ध जो प्रकृत या सामान्य लोगों में बोली जाती थी, प्राकृत नाम से जाना जाने लगी।

प्राकृत भाषा काल को तीन कालों में विभाजित किया जाता है–

1.3.2.1 प्रथम प्राकृत-500 ई. पू-1 ई.

1.3.2.2 द्वितीय प्राकृत-1-ई.-500 ई.

1.3.2.3 तृतीय प्राकृत-500 ई.–1000 ई.

1.3.2.1 प्रथम प्राकृत (500 ई. पू-1 ई.): प्रथम प्राकृत का समय 500 ई. पू से–1 ई. तक है। इस काल के अंतर्गत पालि तथा अभिलेखी प्राकृत आती हैं। पालि बौद्ध धर्म की भाषा है। पालि को 'मागधी' या 'देश भाषा' भी कहा जाता है। पालि में विभिन्न प्रदेशों की बोलियों के तत्व हैं। पर मूलत: यह मध्यप्रदेश की भाषा है। अभिलेखी प्राकृत के अधिकांश लेख शिला पर हैं। अत: इसे 'शिलालेख' प्राकृत भी कहा जा ता है। अभिलेखी प्राकृत की सामाग्री है–अशोकी अभिलेख और अशोकेतेर अभिलेख। सम्राट अशोक ने जनसाधारण के लिए विभिन्न क्षेत्रों में तत्कालीन बोलचाल की भाषा में अपनी धार्मिक एवं शासनिक सूचनाएँ अंकित कारवाई

थीं। इन्हीं अभिलेखों की भाषा को 'अशोकी प्राकृत' या; शिलालेखी' प्राकृत कहते हैं। अशोकेतर अभिलेख ई. पू. की अंतिम तीन सदियों के छोटे और खंडित अभिलेख हैं।

1.3.2.2 द्वितीय प्राकृत (1-ई.-500 ई.): द्वितीय प्राकृत का समय 1-ई.- से 500 ई. तक माना जाता है। द्वितीय प्राकृत के लिए 'प्राकृत' नाम का प्रयोग होता है। भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृतें द्वितीय प्राकृत में आती हैं। द्वितीय प्राकृत के प्रसंग में लगभग दो दर्जन नाम मिलते हैं। लेकिन भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से प्राकृत के पाँच भेद स्वीकार किए गए हैं। वे हैं–शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी और मागधी।

1.3.2.3 तृतीय प्राकृत (500ई.-1000 ई.): तृतीय प्राकृत में 500 ई. से 1000 ई. तक का समय आता है। तृतीय प्राकृत में अपभ्रंश और तथाकथित अवहट्ठ आती हैं। तथाकथित अवहट्ठ अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी है। यह एक संधिकालीन भाषा है। अपभ्रंश को अवहट्ठ, ग्रामीण भाषा, देसी, देसी भाषा, आभीरोक्ति, आभीरी आदि नामों से भी पुकारा जाता है। अपभ्रंश की छः बोलियाँ मिलती हैं, जिनसे आधुनिक भारतीय भाषा का विकास हुआ–शौरसेनी, पैशाची या केकय टक्क, ब्राचड, महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी और मागधी।

अवहट्ठ अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है। यह अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं की संधिकालीन भाषा रूप है। मोटे रूप से 1000 ई. के लगभग अपभ्रंश भाषा की समाप्त होती है और आधुनिक भाषाओं का यही से आरंभ होता है। लगभग 900 से 1100 ई. या कुछ बाद तक की भाषा में अपभ्रंश एवं आधुनिक भाषाओं का बहुत अधिक मिश्रण मिलता रहा होगा। भाषाविद डॉ. भोलानाथ तिवारी का मानना है कि 900 ई. से प्रायः 1000 ई. तक अपभ्रंश के अंश अधिक रहे होंगे और आधुनिक भाषाओं के अंश कम, किन्तु 1000 ई. से 1100 या कुछ बाद तक अपभ्रंश के अंश धीरे-धीरे कम होते गए और आधुनिक भाषाओं के अंश बढ़ते गए। यों तो उसके बाद भी लगभग 13-14वीं सदी तक कुछ-कुछ अपभ्रंश अंश मिलते हैं, किन्तु वे बहुत कम हो गये हैं (तिवारी 2010:189)।

1.3.3 आधुनिक भारतीय आर्य भाषा-1000 ई.-अब तकः 1000 ई. के आसपास अपभ्रंश के स्थानीय रूप से अवहट्ठ के रूपों से होते हुए आधुनिक भाषाओं का विकास होता है। अधिकतर आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल से शुरू होकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से गुजर कर हुआ है। शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ तथा राजस्थानी, गुजराती और पहाड़ी; पैशाची या केकय टक्क अपभ्रंश से लहँदा, पंजाबी; ब्राचड अपभ्रंश से सिंधी; महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी; अर्धमागधी से पूर्वी हिन्दी, मागधी से बिहारी, बांग्ला, उड़िया और असमीया का विकास हुआ है। अतः इन सब आधुनिक भाषाओं या बोलियों ने प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल (1500 ई. पू.-500 ई. पू.) से मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल (500 ई. पू-1000 ई.) के तृतीय प्राकृत काल यानी अपभ्रंश बोलियों के काल (500 ई. पू-1000 ई. पू) तक 2500 वर्षों का एक लंबा सफर एक साथ तय किया है। तृतीय प्राकृत की अंतिम सीमा पर अवहट्ठ का विकास होता है। यही से आधुनिक भारतीय भाषाएँ अपने स्वरूप में आने लगती हैं। पश्चिमी हिन्दी से कौरवी (खड़ीबोली), ब्रजभाषा, हरियाणी, बुन्देली और कन्नौजी-ये पाँच बोलियाँ; पूर्वी हिन्दी से बघेली और छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी से पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी, पूर्वी राजस्थानी या जयपुरी, उत्तरी राजस्थानी या मेवाती और दक्षिणी राजस्थानी या मालवी; पहाड़ी से पश्चिमी पहाड़ी और मध्यवर्ती पहाड़ी या कुमायुँनी-गढ़वाली और बिहारी से भोजपुरी, मगही और मैथिली का विकास हुआ (तिवारी 2007:80)। विविध शब्द भंडार एवं व्याकरणिक विशेषताओं से युक्त होकर ये भाषाएँ निरंतर विकास की ओर अग्रसर हैं।

1.4 खड़ीबोली का उद्भव एन्न विकास

सामान्य अर्थ में हिन्दी का अर्थ खड़ीबोली से लिया जाता है। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि खड़ीबोली मूल रूप में मेरठ की आसपास की कौरवी पर आधारित बोली है। परंतु खड़ीबोली की वर्तमान स्थिति यह है कि यह एक मिश्रित भाषा है। इसमें प्रमुख तत्व कौरवी के हैं, पर साथ ही पंजाबी, बाँगरू, ब्रज आदि के तत्व भी इसमें समाहित हैं। यह स्थान विशेष की बोली न होकर मानक हिन्दी के रूप में यह बोली जाती है। अतः 'हिन्दी', 'खड़ीबोली' और 'मानक हिन्दी' एक दूसरे के पर्याय हैं। यही भाषा देश की राजभाषा और संपर्क भाषा है।

खड़ीबोली मध्यदेश के भाषा-रूपों पर आधारित है। इसकी व्युत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश या शौरसेनी अवहट्ठ से हुई है। खड़ीबोली के बीज प्राकृत काल में ही मिलने लगे थे। अपभ्रंश काल में वह अधिक स्पष्ट हो जाता है। खड़ीबोली के जन्म का समय 1000 ई. के बाद का माना जाता है। खड़ोबोली के विकास काल को तीन खंडों में विभाजित किया जाता है–

1.4.1 आदिकाल-1100 ई.-1500 ई.

1.4.2 मध्यकाल-1500 ई.-1800 ई.

1.4.3 आधुनिक काल-1800 ई.-अब तक

1.4.1 आदिकाल (1100 ई.-1500 ई.): गोरखनाथ, खुसरो, रामानन्द, कबीर, रैदास, नामदेव और बंदानवाज जैसे कवियों की रचनाओं में खड़ीबोली का आदिकान रूप पाया जाता है। तत्कालीन खड़ीबोली पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज आदि बोलिओं के बहुत निकट हुआ करती थी। उस समय तक पंजाबी, कौरवी, ब्रज, राजस्थानी का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाया था। इसीलिए इनमें वापसी अंतरबहुत कम थे। आदिकालीन खड़ीबोली का शब्दभंडार तद्भव एवं देशज था। तत्सम शब्द कम मिलते थे और पश्तो, तुर्की, अरबी और फारसी के कुछ शब्द भी कुछ मिलते थे।

1.4.2 मध्यकाल (1500 ई.-1800 ई.): मध्यकालीन खड़ीबोली का स्वरूप गंग की 'चंद छंद वर्णन की महिमा', नानक, दादू, मलूकदास, रज्जब आदि संतों की रचनाओं, रहीम के 'मदनाष्टक', आलम के 'सुदामाचरित्र', जटमल की 'गोरा-बादल की कथा', वली, सौदा, इंशा, नजीर आदि दक्खिनी एवं उर्दू के कवियों की रचनाओं, कुतुबशतम (17वीं सदी), भोगलु पुरान (18वीं सदी) तथा संत प्राणनाथ के 'कुलजमस्वरूप' आदि में उपलब्द्ध है। इस काल के पूर्वार्द्ध में पश्तो, तुर्की, अरबी और फारसी के बहुत सारे शब्द मिलते हैं। पर कालांत में पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेजी शब्दों का समावेश हुआ है। भक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप दूसरे चरण में तत्सम शब्द कुछ अधिक मिलने लगे थे।

1.4.3 आधुनिक काल (1800 ई.-अब तक): खड़ीबोली का विशेष विकास आधुनिक काल में होता है। प्रेस, समाचार पत्र, विज्ञान आदि के प्रचार एवं प्रसार से खड़ीबोली ने कविता का क्षेत्र लांघकर गद्य के क्षेत्र में भी कदम रखा और खड़ीबोली गद्य का तेजी से विकास होने लगा। 19वीं सदी के अंत तक आते-आते खड़ीबोली मुख्यत: गद्य की भाषा बन चुकी थी। धीरे-धीरे इसने काव्य के क्षेत्र से ब्रज आदि को स्थानच्युत कर अपना एकाधिकार जमा लिया। यहाँ खड़ीबोली की दो शैलियाँ स्पष्ट होती है–हिन्दी शैली और उर्दू शैली। लल्लुजी लाल (1763–1835)के 'प्रेमसागर', सदल मिश्र (जन्म 1767-68 ई. तथा मृत्यु 1847-48) के 'नासिकेतोपाख्यान', मुंशी सदसुखलाल (1746–1824) के 'सुखसागर' और इंशा अल्ला खाँ (1756-1817) के 'रानी केतकी की कहानी' आदि रचनाओं में आधुनिक खड़ीबोली का रूप मिलता है। खड़ीबोली के प्रारंभिक गद्यलेखकों में इन साहित्यकारों का ऐतिहासिक महत्व है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'प्रेमसागर' की भाषा कोपूर्वीपन से युक्त मानते हैं। 'नासिकेतोपाख्यान' की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। मुंशी सदासुखलाल फारसी एवं उर्दू के लेखक और कवि होते हुए भी इन्होंने तत्कालीन शिष्ट लोगों के व्यवहार की भाषा को अपने गद्य-लेखन-कार्य के लिए अपनाया। इस भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग करके भाषा के जिस रूप को इन्होंने उपस्थित किया, उसमें खड़ी बोली के भावी साहित्यिक रूप का आभास मिलता है। 'रानी केतकी की कहानी' उर्दू लिपि में लिखी गयी थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय तक खड़ीबोली में एकरूपता का अभाव दिखाई देता है। पर खड़ीबोली गद्य के व्यापकता से इसमें शुद्धता एवं एकरूपता आती गयी। खड़ीबोली को परिनिष्ठित करने का अभूतपूर्व काम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। सांस्कृतिक उत्थान, ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज आदि के प्रभाव से छायावाद के समय खड़ीबोली में पर्याप्त तत्सम शब्दों का प्रयोग होता है। इसी समय खड़ीबोली संस्कृतनिष्ठ हो जाती है। परवर्ती समय में आंचलिक शब्द और मुहावरों का आगमन साहित्यिक खड़ीबोली में होने लगा। अब खड़ीबोली का शब्द भंडार बढ़ता जा रहा है। विदेशी भाषाओं में से इनमें अंग्रेजी के सैकड़ों शब्द आ रहे हैं। खड़ीबोली की अभिव्यंजना शक्ति अद्भुत है। अब खड़ीबोली हिन्दी सभी दृष्टियों से सम्पन्न होती जा रही है। यही कारण है विश्व की सर्वाधिक प्रचलित भाषाओं की पहली पंक्ति में यह मजबूती से अपना आसान जमाये बैठी है।

ग्रंथ सूची:

- तिवारी, उदयनारायण, हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 1995
- तिवारी, भोलानाथ, भाषा विज्ञान, चौवनवाँ, इलाहाबाद: किताब महल, 2010
- तिवारी, भोलानाथ, हिन्दी भाषा का इतिहास, पंचम, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2017
- https%@@hi-wikipedia-org@wiki@»E0»A4»B9»E0»A4»BF»E0»A4»A8»E0»A5»8D»E0»A4»A6»E0»A5»80 (9-4-2020)
- hi-wikipedia-org › wiki › ba'kk_ vYyk_ •kj (9-4-2020)
- hi-wikipedia-org › wiki › eqa'kh_ lnklq•yky (9-4-2020)
- hi-wikipedia-org › wiki › yYyw yky (9-4-2020)
- hi-wikipedia-org › wiki › lny_ feJ (9-4-2020)

रस-सिद्धांत एवं इसकी रसवादी हिन्दी आलोचना में स्थिति

डॉ० शैल कुमारी वर्मा

विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, महारानी जानकी कुंवर महाविद्यालय, बेतिया (प० चम्पारण)
बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भारतीय चिंतन पूर्णतया अध्यात्मिक है–रसौ वै स: की अवधारणा भी इसी का परिणाम है। हमारे यहाँ काव्यानंद, ब्रह्मानंद सहोदर माना गया है। यह सच है कि ब्रह्मानंद जहाँ स्थायी एवं नित्य है वही काव्यानंद क्षण स्थायी एवं अनित्य है। तथापि जो साधना ब्रह्मानंद की अनुभूति के लिए आवश्यक है वह काव्य के लिए भी आवश्यक है। और यह काव्यानंद रस का पर्याय है। काव्यात्मा की खोज में सबसे पहला नाम इस सम्प्रदाय का है। काव्य की चरम परिणति रस है। भरतमुनि का ग्रंथ नाट्य शास्त्र इस सूत्र को सर्वप्रथम स्पष्ट करता है–

"तत्र विभावानुभावव्याभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'[1]

अर्थात् वहाँ (रंगमच में) विभाव अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

भरतमुनि के रस सूत्र में संयोग व निष्पत्ति शब्द अतिमहत्वपूर्ण है। परिवर्त्ती आचार्यों ने इन्हीं शब्दों को लेकर रस सूत्र की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं। जिनसे रस सिद्धांत का विकास हुआ है भरतमुनि के रस सूत्र की सर्वप्रथम व्याख्या मीमांसक भट्ठलोल्लट ने प्रस्तुत की है।

भट्ठलोल्लट के अनुसार विभाव आदि के स्थायी भाव से संयोग होने पर रस की निष्पत्ति होती है। विभाव रस के कारण स्वरूप है और इनके द्वारा स्थायी भाव की (उत्पत्ति) उपचित् अवस्था का नाम ही रस है। इस प्रकार भट्ठलोल्लट के अनुसार निष्पत्ति शब्द का अर्थ उत्पत्ति है। इस दृष्टि से इनके सिद्धांत को उत्पत्तिवाद भी कहते हैं।[2] यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि भट्ठलोल्लट नट को स्थायी भाव को जन्म देने वाला उत्पादक नहीं मानते। नट तो अनुकार्य का अनुकरण करता है। कुछ देर के लिए वेषभूषा बनाकर मूलपात्र का आरोपण अपने ऊपर करता है। प्रमाता नट के कुशल अभिनय को देखकर उसी पर अनुकार्य का आरोप कर रस की प्रतीति कर लेता है। इस प्रकार इस मूलत: मूलपात्र अर्थात् रामादि में ही होता है किंतु उसके रूपादि के आरोपण से यह नट में भी विद्यमान होता है।

परन्तु भट्ठलोल्लट के मत पर यह आरोप किया जाता है कि मात्र प्रतीति से ही सहृदय को गंभीर अनुभूति कैसी होती है? साथ ही नट ने मूलपात्र रामादि को देखा नहीं है तो वह मूलपात्र का अनुकरण कैसे करता है। एक अन्य आक्षेप यह है कि एतिहासिक पात्र यदि कल्पित हो तो रस की स्थिति कहाँ मानी जायेगी? उपरोक्त प्रश्नों के समग्र प्रभाव के कारण भट्ठलोल्लट का सिद्धांत प्रमाता/सहृदय के रसास्वादन की व्याख्या उचित प्रकार से नहीं कर पाता है।

भट्ठलोल्लट के विवेचन में उपर्युक्त दोषों का अनुभव करते हुए श्री शंकुक ने रस को अनुमान का विषय सिद्ध करने का प्रयास किया। उनका मत अनुमितिवाद कहलाता है।[3] श्री शुंकुक रस सूत्र में प्रयुक्त संयोग शब्द का अर्थ अनुयाप्य-अनुयापक संबंध तथा निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति किया।

श्री शकुक अपने मत की व्याख्या चित्र तुरंग न्याय के आधार पर करते हैं।[4] जिस प्रकार चित्र में घोड़ा देखकर चित्र के वस्तुत: घोड़ा न होते हुए भी, यह घोड़ा है, इस प्रकार की प्रतीति होती है। इसी प्रकार अभिनय में रामादि अनुकार्य के उपस्थित न होते हुए

भी नट में प्रमाता को रामादि की प्रतीति होती है। जब प्रमाता उस नट को ही राम समझ लेता है तो शिक्षा और अभ्यास करने में कुशलता के कारण वह नट के विभावानुभावव्यभिचारी भावों को भी क्रत्रिम नहीं समझता और उनके द्वारा नट में स्थायीभाव रसादि का अनुमान करता है।

परंतु श्री शंकुक का मत भी पूर्णतया निर्दोष नहीं है क्योंकि

1. श्री शंकुक ने जिन विभावादियो को अनुमिति का हेतु बनाया है वे कल्पित व क्रत्रिम है। इस कारण यदि नटादि में इस का अनुमान कर भी लिया जाए तो यह चमत्कारजनक नहीं होगा।
2. सहृदय जनों में रस का प्रत्यक्ष अनुभव ही सिद्ध होता है, अनुमान नहीं।
3. यदि प्रमाता को यह निश्चित हो जाए कि ये सीतादि विभावादि कृत्रिम है तो उसे रति आदि भावों की अनुमिति न हो सकने के कारण रसानुभूति नहीं हो सकती।

श्री शंकुक पश्चात् इस सूत्र के अगले व्याख्याता भट्ठनायक हैं। रसनिष्पत्ति के सम्बंध में भट्ठनायक ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का खण्डन करते हुए अपने पक्ष की स्थापना की है।

आचार्य मम्मट के अनुसार भट्ठनायक ने अन्य आचार्यों का खण्डन निम्न शब्दों में करते हुए अपने मत भुक्तिवाद की स्थापना की।[5]

न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन।

रसः प्रतीयते नोप्पद्यते नाभित्यज्यते।[6]

अर्थात् रस की स्थिति न तो तटस्थ (नट) में होती है और न ही आत्मगत (प्रमाता) में होती है। (इस प्रकार) भट्ठनायक न रस अनुमिति और न ही रस की अभिव्यक्ति स्वीकार करते है। रसनिष्पत्ति हेतु भट्ठनायक भरतमुनि के रस सूत्र के संयोगाद् पद का अर्थ भोज्यभोजकसंबधननात् और निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति करते हैं। अपने मत की सिद्धि हेतु भट्ठनायक काव्यार्थ विषयक तीन व्यापारों को स्वीकार करते हैं:

1. अभिधा
2. भावकत्व
3. भोजकत्व

इसमें अभिधा व्यापार काव्य के अर्थ को समझने में सहायक सिद्ध होता है। भावकत्व व्यापार रसादि विषयक होता है। अर्थात् अभिधा द्वारा काव्य के अर्थ को जानने के पश्चात् भावकत्व व्यापार द्वारा विभावादि का साधारणीकरण होता है:

भावकत्वं साधारणीकरणम्। तेन हि व्यापारेण।

विभावादयः स्थायी च साधारणीक्रियन्ते।[7]

साधारणीकरण से अभिप्राय है कि रामसीता आदि पात्र अपने विशिष्ट अंश का परित्याग कर मात्र साधारण नायक नायिका के रूप में रह जाए। भावकत्व व्यापार द्वारा साधारणीकरण होने से राम व सीता का विशिष्ट अंश (रामत्व व सीतात्व) परित्यक्त होने से केवल साधारण नायक-नायिका रह जाते हैं। इस प्रकार साधारणीकरण के द्वारा रसादि भावित होते हैं।

भोजकत्व व्यापार प्रमाता या सहृदय विषयक होता है। जब साधारणीकरण द्वारा रसादि भावित हो जाते है तब भोजकत्व व्यापार द्वारा ही स्थायीभाव का भोग निष्पन्न होता है। यह भोग चित्त का विस्तार व विकास रूप है। यह भोग सत्वमय है, चेतन, आनंदस्वरूप व ब्रह्मांनद सहोदर है। इस प्रकार रस की भुक्ति हो जाती है।

भट्ठनायक के मत की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि भावकत्व व भोजकत्व का कोई शास्त्रीय आधार नहीं है। इन दोनो व्यापारो का काम लक्षणा व व्यंजना शक्ति से चल सकता था परन्तु उपर्युक्त आलोचना के बाद भी संस्कृत एवं समग्र भारतीय साहित्यशास्त्र में भट्ठनायक का योगदान साधारणीकरण सिद्धांत को लेकर है जिसको उनके परिवर्ती आचार्यों ने तो स्वीकार किया ही साथ ही किसी न किसी रूप में यह आज भी प्रासंगिक है।

भट्ठनायक ने रस निष्पत्ति के लिए भुक्तिवाद के रूप में विवेचना प्रस्तुत की थी वह सभी आचार्यों को स्वीकृत नहीं हुई। भट्ठनायक के साधारणीकरण व्यापार को स्वीकार करके भी अन्य आचार्यों ने भावकतव व भोजकत्व व्यापार को अनावश्यक माना।

इस संदर्भ में आचार्य अभिनवगुप्त का मत है कि भावकत्व, भोजकत्व व्यापार न तो आवश्यक है और न ही प्रमाणिक। रस की निष्पत्ति तो व्यंजना से ही हो जाती है। आचार्य ने संयोग का अर्थ अभिव्यङ्गय-अभिव्यंजकभावात् तथा निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति माना। इस प्रकार आचार्य अभिनवगुप्त के मत को अभिव्यक्तिवाद कहते हैं।[8]

आचार्य अभिनव गुप्त ने प्रमाता अथवा सहृदय के हृदय को रस निष्पत्ति के केंद्र में रखा। आचार्य के अनुसार जिस प्रकार पानी छिड़काने से सूखी मिट्ठी में से सौंधी सुगंध निःसृत होती है उसी प्रकार विभावादि के प्रभाव से सामाजिक में वासना रूप में स्थित रति आदि स्थायी भाव रस में अभिव्यक्त हो जाते हैं। विभावादि व्यंजक व रस व्यंग्य है। कहने का तात्पर्य है कि अनुकूल सामग्री पाकर सामाजिक के मन में वासना रूप में निहित भाव व्यक्त हो जाते हैं। जब वे जीवन में व्यक्त होते हैं तो भाव कहलाते हैं और जब कविता में व्यक्त होते हैं तो रस कहलाते हैं। इसका कारण साधारणीकरण व्यापार का अलौकिकत्व है। सत्वोद्रेक (जब रजो व तमोगुण दमित हो जाए व केवल सतो गुण का उद्रेक हो) की अवस्था के पश्चात् हुई रसाभिव्यक्ति एक लोकोत्तर आनंद को जन्म देती है जहाँ शोकादि विभावात्मक भाव भी आनंदमय हो जाते हैं।

रस सिद्धांत या रस सूत्र या रस निष्पत्ति की विभिन्न व्याख्याओं या मतो में आचार्य अभिनवगुप्त का मत ही सर्वाधिक मान्य है। परिवर्ती आचार्यों में मम्मट ने अगर उन्ही के मत की प्रतिष्ठा प्रदान की है तो रस गंगाधरकार ने आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा प्रतिपादित अभिव्यंजना वाद को वेदांत दर्शन के आधार पर स्वीकार किया है।

रस सूत्र या रस सिद्धांत की विशद विवेचना के पश्चात् रस चिंतन से जुड़ा एक महत्वपूर्ण प्रश्न शेष रह जाता है। वह प्रश्न है रसास्वादन अथवा काव्यास्वादन का। काव्यास्वादन या रसास्वादन की इस मौलिक समस्या का कि नट के अभ्यास व शिक्षण से अर्जित कृत्रिम अभिनय को देखकर प्रमाता या सहृदय को वास्तविक आनंद की प्राप्ति कैसी होती है? साथ ही भरतमुनि के रस सूत्र, "विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" में भी प्रश्न मूल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि रसनिष्पत्ति कहाँ होती है? इस प्रश्न के भी चार विकल्प हमारे समक्ष उपलब्ध है:

(1) नाटककार में (2) मूलपात्र में (3) नट में (4) सहृदय में

उक्त प्रश्नों के समाधान के निमित्त संस्कृत साहित्य में साधारणीकरण व्यापार विषयक व्यापक चिंतन हुआ है।

साधारणीयकरण विषयक चिंतन भारतीय या कि संस्कृत काव्यशास्त्र की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भट्ठनायक ने रस निष्पत्ति सबंधी भरतसूत्र की व्याख्या के अन्तर्गत किया था, ज्ञातव्य है कि भट्ठनायक के साधारणीकरण व्यापार की विस्तृत चर्चा पूर्वोल्लिखित है। भरतसूत्र के प्रथम दो व्याख्याकर्ताओं भट्ठलोल्लट एवं श्री शंकुक के क्रमशः अनुमितिवाद एवं उत्पत्तिवाद पर भट्ठनायक ने आपत्ति प्रकट की। भट्ठनायक की मुख्य आपत्ति यह थी कि किस प्रकार प्रमाता दूसरों के (मूल नायक नायिका आदि, कवि निर्मित पात्रों आदि के) भावों से रसास्वाद प्राप्त कर सकते हैं, विशेष रूप से उस स्थिति में जब उनमें से किसी एक अथवा कुछ एक अथवा सभी के प्रति वे किसी प्रकार का पूर्वाग्रह (आदर, सम्मान, श्रद्धा, घृणा आदि) रखते हों। इसी आपत्ति के निवारणार्थ भट्ठनायक सर्वप्रथम साधारणीकरण सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं–

साधारणीकरण व्यापार के संदर्भ में आचार्य भट्ठनायक कहते हैं–

काव्ये.....नाट्ये च.....निविडनिजमोहसंकटता-
निवारणकारिणा विभावादि साधारणीकरणात्मा, आधीयतो
द्वितीय अंशेन, भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानो रसः[9]।।

अर्थात् काव्य और नाटक में अमिधाव्यापार के उपरांत भावकत्व व्यापार द्वारा विभाव अनुभाव और संचारीभाव का साधारणीकरण हो जाता है। फलतः प्रमाता या पाठक के अपने समस्त मोह, श्रद्धा भाव आदि एवं तत्जन्य अज्ञान का निवारण हो जाता है। तथा इसके द्वारा रस भाव्यमान होता है। अर्थात् शब्द के तीसरे भोग नामक व्यापार की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है।

भट्ठनायक का स्पष्ट मत है कि, "काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादि साधारणीकरणात्म भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानः स्थायी, सत्वोद्रेकप्रकाशानंद-संविद्रिश्रांतिसतत्वेन भोगेन भुज्यते"[10]

अर्थात काव्य अथवा नाटक में अमिधा (तथा लक्षणा) से भिन्न विभावादि के साधारणीकरणस्वरूप भावकत्व नामक व्यापार से (विशेष पात्रादि के संबंध के बिना) साधारणीकृत स्थायीभाव सत्व गुण के उद्रेक से प्रकाश और आनंद की अनुभूति की स्थिति के सदृश भोग से (अर्थात् शब्द के भोजकत्व नामक व्यापार से) आस्वादित किया जाता है।

भट्ठनायक के परिवर्ती आचार्य अभिनवगुप्त ने भावकत्व व भोजकत्व दो शब्द शक्तियों को अस्वीकार किया। उनका विचार था कि भावकत्व व भोजकत्व व्यापार का कार्य मात्र व्यंजना शक्ति से भी सम्पन्न हो सकता है। अभिनवगप्त ने 2 स्तर पर साधारणीकरण स्वीकार किया है :

1. विभावादि के स्तर पर
2. सामाजिक/प्रमाता के स्तर पर

"एक स्तर पर विभावादि व्यक्ति विशिष्ट संबंध छूट जाता है और दूसरे स्तर पर सामाजिक का व्यक्तित्व बंधन नष्ट हो जाता है। अर्थात् विभावादि के साथ स्थायी भाव का साधारणीकरण होता है और साथ ही सामाजिक की अनुभूति का साधारणीकरण होता है।"[11]

वामन झलकीकर, तथा गोविंद ठक्कुर ने विभावादि रूप सीता तथा रामादि सम्बंधी रति के सीतात्व-रामत्व के संबंध के स्थान पर सामान्यत: कामिनीरूप में अथवा रति सामान्य रूप में उपस्थित होने को साधारणीकरण माना है।[12]

साहित्यदर्पणकार ने साधारणीकरण को इस रूप में प्रस्तुत किया है:

व्यापाराऽस्ति विभावादेनम्मि साधरणीकृत:
तत्प्रमावेण, यस्याऽऽसन् पायोधिप्तबनादय:
प्रमाता तद्भेदेन स्वात्मानं प्रतिपद्यते
उत्साहादिसमुद्बोध: साधारणण्याभिमानत:
नृणामणि समुद्रादिलंघनादौ न दुष्यति।[13]

आचार्य विश्वनाथ का मानना है कि काव्य नाटकगत विभाव आदि तीनों का व्यापार अर्थात् सम्मिश्रित क्रिया कलाप साधारण रूप ग्रहण कर लेता है अर्थात् समस्त घटना अपने विशिष्ट व्यक्तित्व से रहित हो जाता है। फलत: रामादि पात्र और प्रमाता दोनो में तादात्म स्थापित हो जाता है। दोनों के स्थायीभाव एक समान हो जाते हैं। अर्थात् प्रमाता पात्र के स्थायीभाव को ग्रहण कर लेता है ओर यही रसास्वाद की भूमिका है और यही साधररणीकरण की स्थिति है।

आचार्य विश्वनाथ के पश्चात् साधारणीकरण विषयक प्रमुख मत पंडितराज जगन्नाथ का है। पंडितराज ने साधारणीकरण के स्थान पर दोष दर्शन की स्थापना की है। पंडितराज का कथन है कि, "प्राचीन आचार्यो ने विभावादि के साधारणीकरण का कथन किया है। किन्तु यह दोष विशेष की कल्पना के बिना बन नहीं सकता क्योंकि काव्यों में शकुन्तला आदि शब्दों के द्वारा ही शकुन्तला आदि का प्रतिपादन रहता है जो शब्द शकुन्तलात्वेन शकुन्तला आदि के बोधक है वे कान्तात्वेन उनका बोध कैसे करा सकते हैं?" इस प्रकार से जगन्नाथ ने आश्रय के साथ तादात्म्य की अनुभूति के क्षणों में दोष विशेष की कल्पना के साथ निरूपण किया है। उनका दृढ़ मन्तव्य है कि शकुन्तला शब्द से शकुन्तला व्यक्ति विशेष की ही प्रतीति होती है।[14] समग्र रूप से कह सकते हैं कि भट्ठनायक से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक सभी ने साधारणीकरण की विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की परन्तु सभी की मूल धारणा कहीं न कहीं यही थी कि, "असाधारणस्य साधारणीकरणम् इति साधारणीकरम्"।

संस्कृत से इतर इधर आधुनिक हिन्दी साहित्य आलोचना में के कुछ आलोचकों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के रस चिंतन एवं साधारणीकरण सिद्धांत पर पर्याप्त विचार किया है। इन आलोचकों में प्रमुख है आचार्य रामचंद्रशुक्ल, नंददुलारेबाजपेयी, डॉ. नागेन्द्र आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि। अब तक रस सिद्धांत एवं साधरणीकरण सिद्धांत विषयक संस्कृत साहित्य में हुए विमर्श को प्रस्तुत किया गया। आधुनिक हिन्दी आलोचना में भी कुछ रसवादी आलोचक हुए है जिन्होंने रस एवं साधारणीकरण के विषय में पर्याप्त चिंतन किया है।

आचार्य शुक्ल रस सम्बंधी चिन्तन के अन्तर्गत रसवाद की लौकिक व्याख्या करते हैं। शुक्ल जी मानते हैं कि रस व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भावभूमि पर प्रतिष्ठित करता है। वे लिखिते हैं, "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं ..... कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भावभूमि पर ले जाती है। ..... वह अपनी सत्ता को लोक सत्ता में लीन किए रहता है।"[15]

साधारणीकरण को स्पष्ट करते वे लिखते है, "जब तक किसी भाव का कोई विशेषत्व इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यत: सबके उसी भाव का आलम्बन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ साधारणीकरण कहलाता है। अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति विशेष या वस्तुविशेष आता है, वह जैसे काव्य में वर्णित आश्रम के भाव का आलम्बन हो जाता है ..... साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है ..... तात्पर्य यह है कि आलम्बन रूप में प्रतिष्ठित व्यक्ति समान प्रभाव वाले कुछ धर्मों के कारण सबके भावों का आलम्बन हो जाता है।"(16)

साधारणीकरण के विषय में शुक्ल जी का मत है कि, "साधारणीकरण की दो प्रकार की व्याख्याएँ संभव हो सकती है।

1. आश्रय के साथ तादात्म्य
2. आलंबन का सामान्य रूप से कथन"(17)

शुक्ल जी ने सहृदय के आश्रय के साथ तादात्म्य की अनिवार्यता प्रतिपादित करते हुए रस की कोटियों की अवधारणा प्रस्तुत की। शुक्ल जी की मान्यता है कि रस की कोटियाँ 3 प्रकार की होती है–

1. आश्रय के साथ पूर्ण तादात्म्य की स्थिति में उच्चकोटि की रसात्मकता होगी।

   उदाहरणार्थ: शकुन्तला आदि पात्रों के साथ पाठक का तादात्म्य
2. जिन स्थलों पर आश्रय के साथ यह तादात्म्य स्थापित नहीं हो सकेगा और सहृदय मात्र शीलद्रष्टा के रूप में प्रभाव ग्रहण करेगा। यहाँ पर साधारणीकरण या तादात्म्य कवि के उस अव्यक्त भाव के साथ होता है जिससे पात्र विशेष की उद्भावना होती है। ऐसी स्थिति में मध्यम कोटि की रसात्मकता होती है।

   उदाहरणार्थ: दुष्ट पात्रों (यथा दुर्योधन आदि) का सहृदय से तादात्म्य शीलद्रष्टा के रूप में होता है।
3. जहाँ प्रमाता आश्रय की भाव व्यंजना से कुछ भी तादात्म्य नहीं कर पाता, वह रस की अधम कोटि है।

इस प्रकार शुक्लजी ने आलम्बनत्व धर्म का साधारणीकरण माना है तथा साधारणीकरण और तादात्म्य दोनों व्यापारों का शास्त्रीय नाम साधारणीकरण दिया।

नंद दुलारे बाजपेयी, यद्यपि अपनी आलोचना की ऊर्जा आचार्यशुक्ल से ग्रहण करते हैं तथापि उनका दृष्टिकोण अपना विशिष्ट स्थान रखता है। शुक्ल जी रसवाद की लौकिक व्याख्या करते हुए मानते हैं कि रस व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भावभूमि पर प्रतिष्ठित करता है। वे स्पष्टत: लिखते हैं कि, "रसवादी काव्य की आत्मा रस को अलौकिक मानते हैं। यह अलौकिकता का पाखण्डता केवल यही तक रहता है तो एक बात थी। वह जस असत्य आधार पर स्थित हुआ, उसने साहित्य का बड़ा अनिष्ट किया है।"(18) बाजपेयी जी, शुक्ल जी की उक्त रस संबंधी नैतिक मान्यता पर आपत्ति करते हुए मानते है कि रस नैतिकता से मुक्त एक सर्वथा शुद्ध ओर लोकातीत वस्तुत है, जैसा कि वह संस्कृत के आचार्यों के लिए था। शुक्ल जी से इतर बाजपेयी जी रसानुभूति का संबंध लोक से नहीं मानते हैं। इसलिए वे साधारणीकरण तथा इस सिद्धांत पर आधारित शुक्ल जी मान्यता की यह कहकर आलोचना करते है कि, "उन्होंने राम के निरूपण में ही रस की सत्ता मानी है रावण के निरूपण में नहीं।(19) रावण के निरूपण से तात्पर्य आदर्श रूप में रावण के निरूपण से है। विस्तृत लौकिक जीवन और उसके क्रिया कलाप को ही शुक्ल जी ने काव्य का विषय, रस एवं साधारणीकरण का आधार माना था जबकि बाजपेयी जी इसे स्थूल व्यवहारवाद की संज्ञा देते हैं।(20)

वे साधारणीकरण को आलम्बन उद्दीपन आश्राय आदि विशिष्ट भावों के सामान्यीकरण के रूप में स्वीकारते है तथा रस एवं रसानुभूति को अलौकिक मानते है। उनका कहना है कि, "काव्य की सार्वजनीन रसानुभूति सब वादो से ऊपर है।"(21) इस प्रकार बाजपेयी जी का रस एवं साधारणीकरण विषयक चिंतन संस्कृत के आचार्यों के अधिक निकट है। आचार्य शुक्ल जैसे दिग्गज आलोचक जो रस को युगानुकूल संशोधित कर काव्य मूल्यांकन की एकान्त और अन्तिम निकष आनन्द का पर्याय 'हृदय की मुक्तावस्था' एवं 'लोक भावभूमि' तक सीमित रखा उसे मनोविज्ञान की सुदृढ़ पीठिका की आधार शिला पर प्रतिष्ठित कर सर्वथा नवीन व्याख्या और नूतन आयाम देकर काव्य मूल्यांकन का एकान्त प्रतिमान की उद्घोषणा करने वाले उसी परम्परा के आलोचक

डॉ. नगेन्द्र हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, 'रस आस्वाद नही है, आस्वाद्य–अर्थात् अनुभूति नहीं है, अनुभूति का विषय है: नवीन शब्दावली में, रस विषयीगत नहीं है, विषयगत है।' इस प्रकार भावमूलक काव्यसौन्दर्य तथा उसकी अनुभूति एवं सामान्य काव्यसौन्दर्य ही डॉ. नगेन्द्र स्वीकारते हैं जो आनन्दमयी चेतना है। पाश्चात्य दार्शनिकों के मतों से सहमत होते हुए उन्होंने काव्यानन्द को ऐन्द्रिय-मानसिक आनन्द घोषित किया है जो आत्मिक आनन्द का ही एक रूप है। दूसरे शब्दों में ऐन्द्रिय, रागात्मक और बौद्धिक तत्वों का 'लवण-क्षीर संयोग' ही आस्वाद है। अनुभूति का मूलत: संवेदन रूप में ही डॉ. नगेन्द्र ने स्वीकारा है।

डॉ. नगेंद्र रस सम्बंधी उसी चिंतन को स्वीकारते है जिसे संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने प्रतिपादित किया था। रस सिद्धांत के महत्व को बताते हुए डॉ. नगेंद्र लिखते हैं, "भारतीय सौंदर्य दर्शन का मूल आधार है काव्यशास्त्र। ..... सौंदर्य के आस्वाद में विहित प्रीतितत्व का प्राधान्य रस सिद्धांत में प्रस्फुटित और विकसित हुआ, और उधर विस्मय तत्व की प्रमुखता ने वक्रता, अतिशय आदि के माध्यम से अंलकारवाद का रूप धारण किया। इन दोनों तत्वों में रस सिद्धांत केवल कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, वरन् प्रभाव और प्रसार की दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण है–वास्तव में भारतीय काव्यशास्त्र की आधारशिला यही है।"(22)

साधारणीकरण के प्रसंग में भट्ठनायक और अभिनव गुप्त की स्थापना से सहमत होते हुए भी डॉ. नगेन्द्र ने अपनी अलग स्थापना की है। साधारणीकरण से हमारा अभिप्राय असाधारण को साधारण, असामान्य को सामान्य तथा विशिष्ट को सम या विषय को सम बनाने से है। 'अतएव निष्कर्ष यह निकला कि साधारणीकरण कवित की अपनी अनुभूति का होता है। अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक प्रणाली में हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है। अनुभूति सभी में होती है। सभी व्यक्ति उसे याक्तिंचित व्यक्त भी कर लेते हैं। परन्तु साधारणीकरण की शक्ति सब में नहीं होती।(23)

इस प्रकार स्पष्टत: डॉ. नगेंद्र के साधारणीकरण के संबंध में विचार आचार्य शुक्ल के विचार से पृथक है। शुक्लजी के आलम्बनत्व धर्म के साधरणीकरण के विपरीत डॉ. नगेंद्र का मत है कि, "काव्य प्रसंग और कुछ नही कवि की भावना का बिम्ब मात्र है–यह काव्य प्रसंग या बिम्ब शरीर है और कवि भावना उसको प्रकाशित करने वाली चैतन्य आत्मा, और चूँकि साधरणीकरण जड़ यांत्रिक क्रिया न होकर चैतन्य क्रिया है अत: काव्य प्रसंग या रस के समस्त अवयवो का साधारणीकरण मानने की अपेक्षा कवि भावना का साधारणीकरण मनोविज्ञान के अधिक अनुकूल है।"(24)

इस प्रकार डॉ. नगेंद्र के अनुसार वास्तव में पाठक का तादात्म्य कवि के भाव के साथ होता है और इस प्रकार आश्रयगत भावों के औचित्य की समस्या भी हल हो जाती है। "रीतिकाव्य की भूमिका" में कवि अनुभूति के साधारणीकरण को और स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं, "आश्रय रूप रावण यदि कही राम की भर्त्सना करता हे तो क्या हुआ? हमारी सहानुभूति में कोई बाधा नहीं आती क्योंकि हमारे अंदर में तो वही अनुभूति जागेगी जो कवि ने प्रतीक द्वारा व्यक्त की है।"(25) साथ ही डॉ. नगेन्द्र ने स्थायीभाव को स्थिर मनोदशा तथा संचारीभाव को अस्थिर मनोदशा की श्रेणी में मनोवैज्ञानिक धरातल पर रखा है। केवल स्थायी ही रस दशा को प्राप्त करते हैं, संचारी नहीं, क्योंकि प्रत्येक सहृदय के चित्त में वासना रूप से विद्यमान रहने के कारण स्थायी का ही साधारणीकरण सम्भव होता है।(26) आलम्बनत्व धर्म के साधारणीकरण के नकार के साथ ही डॉ. नगेंद्र शुक्ल जी के समान रस की कोटियाँ भी नहीं स्वीकार करते है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को यद्यपि मानवतावादी समाजशास्त्रीय दृष्टि संयुक्त समीक्षक के रूप में स्वीकार जाता है तथापि उन्होंने भी रस एवं साधारणीकरण संबंधी बड़ा ही रोचक एवं सहज चिंतन किया है। रस के स्वरूप को लेकर द्विवेदी जी का चिंतन परम्परानुरूप ही है, "रस ही भारतीय शिल्प और कला का प्राण है। ..... रस भी आनंद ही है ..... वह भी ब्रह्ममानंद सहोदर है। इसीलिए उसकी अनुभूति के प्रकार को लेकर बहस हुई है पर उसकी अनुभूति की सच्चाई पर कभी संदेह नहीं किया गया है।"(27)

रस निष्पत्ति के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है, "नीबू और चीनी आदि के संयोग से जो एक विशेष प्रकार का रस बनता है वह न तो नीबू है, न चीनी है, न जल है, न इन सबका मिश्रित रूप है और न इनके बिना ही रह सकता है। ठीक

इसी प्रकार विभावादि से जो रस निष्पन्न होता है वह न तो नायक है, न नायिका है, न पुष्पोद्यान विहार है, न स्थायीभाव है, न अनुभाव है, न व्यभिचारी भाव है और न इन सबका मिश्रण है न इनके बिना रह सकता है वह इन सबसे भिन्न है और फिर भी इन्हीं चीजों से निष्पन्न या अभिव्यक्ति हुआ है। इसलिए कवि का उद्देश्य इन वस्तुओं का सूक्ष्म भाव से प्रकट करना नहीं है बल्कि इनको साधन बनाकर उस अलौकिक चमत्कार स्वरूप रस को व्यंग्य करना है। यह भारतीय कवि का विशेष दृष्टिकोण है। उसका प्रयत्न भावनाओं का चित्रण नहीं है, उनके द्वारा उनके उचित संयोग से अलौकिक ब्रह्मानंद तुल्य रस को अभिव्यक्त करने का है।"[28]

साधारणीकरण के संदर्भ में द्विवेदी जी अभिनवगुप्त के मत का ही समर्थन करते हैं-, "जिस प्रकार अंधकार में रखी हुई वस्तु दीपक आदि से प्रकाशित होकर ज्ञाप्य बनती है, उस प्रकार यह नहीं होता, क्योंकि वह स्वयंसिद्ध है। बल्कि वह विभावादि से व्यंजित होकर आस्वादित होता है। जो कारक द्वारा कार्य नहीं, ज्ञापक द्वारा ज्ञाप्य नहीं, ऐसी कोई वस्तु दुनिया में नहीं हो सकती, इसीलिए रस अलौकिक है। अभिनवगुप्त के इस मत में जो सबसे बड़ी विशेषता है वह यह कि वे स्थायी भाव को पहले ही सहृदय के चित्त में स्थित मानते हैं। निस्सन्देह अभिनवगुप्त का सिद्धान्त मनोविज्ञान सम्मत है और रसानुभूति का सर्वोत्तम मार्ग बताता है।"[29]

इस प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की रस एवं साधारणीकरण मान्यताएँ व विचार पूर्णतया संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुरूप है जो कि स्पष्टत: इसे भारतीय काव्य परम्परा के रूप में स्वीकारते हैं।

परिवर्ती हिन्दी आलोचना में साधारणीकरण को सीधे-सीधे नहीं स्वीकार किया गया। इसका मूल कारण था कि छायावाद एवं उसके पश्चात् जो भी काव्यधाराएँ एवं साहित्य विधाएँ विकसित हुयी वे सब वैयक्तिता प्रधान थी।[30] फिर भी प्रगतिशील आलोचकों एवं नई कविता के आलोचकों तथा अज्ञेय आदि साहित्यिकों ने कविता के मन्तव्य को पाठक तक पहुँचाने में जिस प्रेषणीयता[31] या सम्प्रेषणीयता की अवधारणा स्वीकृत की है वह भी प्रकारान्तर से परम्परा भिन्न रूप से साधारणीकरण का ही आधुनिक संस्करण कहा जा सकता है। इस प्रकार यह कहना कि वर्तमान हिन्दी काव्य आस्वादन प्रक्रिया के बीजवपन संस्कृत साहित्य की उर्वर भूमि के अन्तर्गत हुए है, अतिशयोक्ति न होगा।

संदर्भ

1. मनोहर काले: भारतीय काव्यशास्त्र के विविध आयाम: प्रथम भागय नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2006, पृ. 96
2. बच्चन सिंह : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययनय हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ़, सं. 2002, पृ. 10
3. उपरिवत् पृ. 12
4. उपरिवत्
5. काव्य प्रकाश: आचार्य विश्वेश्वर टीकाय ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, सं. 2009, पृ.105
6. उपरिवत् पृ. 106
7. काव्य प्रकाश: आचार्य गोविंद ठाकुर टीकाय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, सं. 2008, पृ. 66
8. काव्य प्रकाश: आचार्य विश्वेश्वर टीकाय ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, सं. 2009, पृ. 107
9. सं. डॉ. नगेन्द्र–अभिनव-भारती: अभिनवगुप्तय चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, सं. 1997, पृ. 464-465
10. काव्य प्रकाश: आचार्य विश्वेश्वर टीकाय ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, सं. 2009, पृ. 107
11. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश– भाग– एकय ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, सं. 2004, पृ. 753
12. उपरिवत्
13. सं. आचार्य लोकमणि दाहाल एवं डॉ. त्रिलोकीनाथ द्विवेदी-साहित्यदर्पण: आचार्य विश्वनाथ, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, सं. 2013, 3.9-11
14. मनोहर काले : भारतीय काव्यशास्त्र के विविध आयाम: प्रथम भागय नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2006, पृ. 117
15. आचार्य रामचंद्र शुक्ल: चिंतामणि भाग-1; लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सं. 2002, पृ. 82
16. उपरिवत् पृ. 136
17. आचार्य रामचंद्र शुक्ल: रस मीमांसाय काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, सं. 1986, पृ. 309

18. नंददुलारे बाजपेयी: हिंदी साहित्य: बीसवी शताब्दीय लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1995, पृ. 55
19. उपरिवत् पृ. 62
20. उपरिवत्
21. उपरिवत्
22. डॉ. नगेंद्र: रस सिद्धांतय राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2005, पृ. 3
23. डॉ. नगेन्द्र: रीतिकाव्य की भूमिकाय नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, सं. 1999, पृ. 47
24. डॉ. नगेंद्र: रस सिद्धांतय राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2005, पृ. 107
25. डॉ. नगेन्द्र: रीतिकाव्य की भूमिकाय नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, सं. 1999, पृ. 49
26. डॉ. नगेंद्र: रस सिद्धांतय राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2005, पृ. 219
27. हजारीप्रसाद द्विवेदी: साहित्य सहचरय नैवेद्य प्रकाशन, वाराणसी, सं. 1975, पृ. 123
28. उपरिवत्
29. उपरिवत्
30. नामवर सिंह: आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँय लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1999, पृ. 98
31. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश– भाग– एकय ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, सं. 2004, पृ. 420

कॉलेज छात्राओं के स्वास्थ्य पर आहारीय आदतों का प्रभाव

डॉ० स्नेह लता

(पी०एच०डी० एवं यू०जी०सी० नेट)

गृह विज्ञान विभाग, बी०आर०ए०बी०यू०, मुजफ्फरपुर

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन कॉलेज के छात्राओं के आहारीय आदतों और उससे स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित है। कॉलेज में जाने वाले नवागंतुक छात्राओं में नयी जीवन शैली और खान-पान के प्रति अत्याधिक आकर्षण होता है। कॉलेज परिसर में कैन्टीन एवं अन्य ठेला वेन्डरो की उपस्थिति से भोजन के प्रकार एवं मात्रा का चयन की स्वंत्रातता उपलब्ध होने के कारण आहारीय आदतों में बदलाव होने लगता है जो छात्राओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। इस अध्ययन के लिए श्री अरविद महिला कॉलेज, पटना के इन्टर और ग्रेजुएशन के छात्राओं का चुनाव किया गया जिसकी आयु (16-21) वर्ष थी इस अध्ययन के आधार पर यह जानने का प्रयास किया गया कि कॉलेज के छात्राओं का आहारीय आदत कैसा है? और उनका स्वास्थ्य कैसा है?

संकेत शब्दः आहारीय आदतें, जीवनशैली, पोषक तत्व, फास्ट फूड, पोषण शिक्षा, कुपोषण, स्वास्थ्य

परिचय

कॉलेज में प्रवेश करने वाली छात्राओं को एक नया वातावरण मिलता है, जो परिवार के बंधनों से मुक्त होता है। छात्राओं की शारीरिक गतिविधि और खाने की आदतें आमतौर पर इन वर्षो के दौरान बदल जाती है। इस दौरान खाने की अच्छी आदतों को स्थापित करना महत्वपूर्ण है क्योंकि ये आदतें आजीवन जारी रहते है, एक बार स्थापित होने के बाद स्थाई रूप से आदतों में शामिल हो जाते है। कॉलेज के दिनों में मोटापा से ग्रस्त होने के बाद आजीवन मोटापाग्रस्तता से संबंधित बीमारियाँ यथा हृदय रोग संबंधी, टाईप 2 मधुमेह, कैंसर और उच्च रक्तचाप जैसे आहार संबंधी रोगों के लिए खतरा बना रहता है। कॉलेज के छात्राओं को दैनिक पोषण संबंधी आवश्यकता को पूरा करने में मदद के लिए पोषण शिक्षा दिए जाने की आवश्यकता है। छात्राओं को पौष्टिक और संतुलित आहार लेने के लिए जागरूक रहने की आवश्यकता है।

कॉलेज काल में छात्राओं के शारीरिक और मानसिक कार्यभार बढ़ जाते है। इस अवस्था में दैनिक पोषण संबंधी आवश्यकता को बनाए रखना तथा उत्तम स्वास्थ्य को बनाए रखना महत्वपूर्ण हो जाता है। विभिन्न पौष्टिक तत्व जैसे प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइट्रेट विटामिन और खनिज लवण आदि खाद्य पदार्थ द्वारा ही लिए जाने चाहिए। प्रत्येक पोशक तत्व स्वास्थ्य चयापचय तथा शरीर के उचित कार्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कॉलेज काल (16-21) के दौरान होने वाले शारीरिक एवं मानसिक बदलाव के साथ उनके खाने-पीने के आदतों में भी परिवर्तन आता है। विशेष रूप से यह देखा गया है कि इस आयु में भोजन की पैष्टिकता के महत्वों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। सही समय पर भोजन न करने, भोजन करने की गलत आदतें, उसकी गुणवत्ता के प्रति अज्ञानता का छात्राओं के पोषण एवं स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालते है, छात्राओं में पोषण सबंधी समस्याएँ अधिक पाई जाती है। 85 प्रतिशत छात्राओं में पोषणात्मक कमियों का मुख्य कारण असंतुलित आहार पौष्टिकता का अभाव, फल-हरी-पीली साग-सब्जियों के प्रति कम रूचि, फास्ट फूड का बढ़ता प्रचलन, कृत्रिम पेय-पदार्थो का प्रयोग, भोजन का अनियमित समय, भोजन के साथ चाय

कॉफी का प्रयोग, आर्थिक स्थिति आदि है। पोषणात्मक कमियों के कारण छात्राओं के शैक्षणिक प्रदर्शन पर विपरीत प्रभाव प्रड़ता है। कॉलेज काल में छात्राएँ प्राय: कुपोषित तथा अपर्याप्त पोषित होती है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में कॉलेज की छात्राएँ अपर्याप्त भोजन ग्रहण करती है जिसके कारण उनका शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक विकास प्रभावित होता है। परिणामत: उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे कुपोषण की शिकार हो जाती है।

परिकल्पना

- कॉलेज की छात्राओं के आहारीय आदतों में परिवर्तन आता होगा।
- कॉलेज की छात्राएँ दोस्तों के साथ स्वतंत्रा होकर फास्ट फुड, जंक फूड, कृत्रिम पेय पदार्थ उपभोग करती होगी।
- छात्राएँ डाईट कॉन्शस होती होगी,
- उनमें पोषण संबंधी समस्याएँ होती होगी।
- अवसाद, चिंता ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई, मासिक धर्म की समस्याएँ होती होगी।
- छात्राएँ ज्यादातर अस्वस्थ्य रहती है।

साहित्य का पुनरावलोकन

इस अध्ययन के लिए विभिन्न वेवसाईटों/सामाचार पत्र, पत्रिकाओं एवं अन्य आधुनिक श्रोता का उपयोग किया गया है साथ ही डॉ. प्रमिला वर्मा एवं कांति पाण्डेय के पुस्तक "आहार एवं पोषण'' के किशोरावस्था में पोषण का उपयोग किया गया है। सुषमा गुप्ता, नीरज गर्ग, अमीता अग्रवाल की पुस्तक "आहार एवं पोषण और बाल विकास'' के (2006) आहार आयोजन तथा विभिन्न आयुवर्गो की आहार योजना से लिया गया है।

अध्ययन पद्धति

इस अध्ययन को पटना के रोड न0-4 काजीपुर, भिखना पहाड़ी स्थित श्री अरविद महिला कॉलेज में किया गया है। निदर्शन में 125 इन्टर और ग्रेजुएशन के छात्राओं को शामिल किया गया है। छात्राओं का चयन उद्देश्यानुसार प्रतिचयन के आधार पर किया गया। साक्षात्कार अनुसूचि के आधार पर विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों तथा आहार सर्वे के आधार पर आँकड़ों का संग्रह किया गया। आँकड़ों का सांख्यिकीय विशलेषण भी किया गया।

सारणी संख्या-01

परिणाम– प्रस्तुत अध्ययन में कॉलेज के छात्रों का आहारीय आदतें प्रतिशत में।

(1) अनियमित या असमय खाने की आदतें	55%
(2) फास्ट फूड, जंक फूड, कृत्रिम पेय पदार्थो का कम से कम एक बार	60%
(3) खाने में फल, हरी-पीली सब्जियों का कम सेवन	90%
(4) मांस, मछली, अंडे का सीमित प्रयोग करना	90%
(5) शुद्ध शाकाहारी होना, दुध दाल का सीमित प्रयोग	20%
(6) प्रतिदिन संतुलित और पौष्टिक का सेवन	30%

उपर्युक्त सारणी के अनुसार– 55% छात्राएँ अनियमित खाना खाती थी प्रतिदिन 2 से 3 बार खाना खाती थी। उनके खान-पान का समय निश्चित नहीं होता था। 60% छात्राएँ, फास्ट फूड, जंक फूड, कृत्रिम पेय पदार्थो को ज्यादा पसंद करती थी। कम से कम एक बार जरूर खाती थी। लंच के समय कॉलेज के कैटीन में चाउमीन, चाट, समोसा, गोल गप्पा, आदि अधिक नमकीन चटपटे आहार लेती थी। ये फास्ट पूड उच्च कैलोरी, संतृप्तवसा, चीनी और सोडियम से भरपूर होते थे। सुबह में जल्दी कॉलेज आने के चक्कर में नाश्ता या तो ब्रेड, बिस्कुट खाकर आती थी। कभी-कभी बिना नाश्ता किए ही आ जाती थी। 90% कॉलेज की छात्राएँ प्रतिदिन की निर्धारित मात्रा (पांच से अधिक सविगं) से कम फल और हरी-पीली सब्जियाँ लेती थी। आलु का सेवन अधिक करती थी। 80% छात्राएँ मांसाहारी थी लेकिन दैनिक आवश्यकता से कम खाती थी अधिकांश छात्राओं को सप्ताहिक मांस, मछली या अंडे खाने को मिलते थे। जाड़े के दिनों में दो या तीन दिन ही मांसाहारी खाना मिलता था।

20% शुद्ध शाकाहारी छात्राएँ थी। दुध, दाल का प्रयोग भी कुछ उपलब्धता के कारण कम खाती थी कुछ अरूचि के कारण। 30% छात्रा ही ऐसी थी जो प्रतिदिन संतुलित और पौष्टिक खाद्य प्रदार्थ सेवन करती थी।

सारणी संख्या-02

खाने की आदतों के वजह से स्वस्थ्य संबंधी समस्याएँ प्रतिशत में।

(1) एनीमिया के लक्षण		60%	
(2) ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई, अनिद्रा, चिंता, अवसाद	20%		
(3) कम वजन, कमजोरी		45%	
(4) अधिक वजन			15%
(5) मासिक धर्म संबंधी समस्याघ		35%	
(6) ऑख संबंधी बीमारियॉ			30%
(7) कमजोर इम्यूनिटी		40%	
(8) पेट संबंधी बीमारियॉ		50%	

उपर्युक्त सारणी से प्राप्त आँकडों से ज्ञात होता हे कि 60% कॉलेज की छात्राओं को एनीमिया के लक्षण पाये गए है। छात्राओं के खाने में फल-सब्जियाँ, दुध, दही, मांस, मछली आदि पर्याप्त मात्रा में नहीं लेती है जिसके कारण एनीमिया से ग्रसित थी। कम वजन, कमजोरी भी 45% छात्राओं में देखा गया, 15% छात्राओं में ही मोटापा देखा गया। 35% मासिक धर्म संबंधी समस्याएँ से ग्रसित थी। वे दूध, दही, मांस, मछली, सोयाबीन, मुँगफली, साबुत अनाज का सेवन कम करती थी। जो छात्राएँ अधिक मात्रा में फास्टफूड और जंकफूड खाती थी उनमें पेट संबंधी बीमारियाँ देखी गई। उनमें कब्ज, एसिडिटी, 20% को जांडिस भी हो चुका था। जो छात्राएँ फल, सब्जी, कम खाती थी उनमें ऑख संबंधी समस्याएँ देखा गया। 40% में कमजोर इम्यूनिटी पाया गया उनको बार-बार सर्दी जुकाम, मलेरिया, टाइफाइड आदि हो जाता था। चाय कॉफी का अधिक सेवन करने वाली छात्राओं में अनिद्रा, सम्बधी समस्याएँ भी देखा गया।

सारणी संख्या-03

स्वास्थ्य संबंधी स्थिति- प्रतिशत में।

(1) उत्तम स्वास्थ्य		36%
(2) मध्यम स्वास्थ्य या बेहतर स्वास्थ्य	47%	
(3) निम्न स्वास्थ्य या बहुत खराब स्वास्थ	17%	

उपर्युक्त सारणी में छात्राओं के आहारीय आदतों के वजह से उनके स्वास्थ्य के स्तर को दिखाया गया है। 36% छात्राओं का स्वास्थ्य बहुत बढ़िया था, मध्यम स्वास्थ्य 47% छात्राओं का 17% का स्वास्थ्य बहुत खराब था। उनको बार-बार पेट खराब, डायरिया, उल्टी होता था। उनको जांडिस और टाइफाइड भी हो चुका था।

निष्कर्ष

अध्ययन में कॉलेज के छात्राओं में आधुनिक जीवन शैली और खान-पान के प्रति अधिक आर्कषण पाया गया है। इस उनमें में दुबला दिखने, जीरो फिगर के चाहत में आधा भूखा यानि नास्ता या खाने भी छोड़ना जैसे प्रचलित मिथको से प्रभावित पाया गया। 90% कॉलेज के छात्राओं के खाने में फल, हरि सब्जियाँ की मात्रा काम होता था। 58% छात्राओं को पर्याप्त आहार का दैनिक आवश्यकता का महत्व पता था फिर भी 20% ही प्रतिदिन संतुलित भोजन लेती थी। असंतुलित, फास्ट फूड, सोडा कैफीन जैसे पेय पदार्थो के सेवन करने वाली छात्राओं में अवसाद, चिंता, चिडचिड़ापन, ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई, मासिक धर्म की समस्या और नींद की गड़बडी आदि की समस्या देखा गया। निम्न पोषण के कारण पोषणात्मक कमियाँ मुख्य रूप से उर्जा प्रोटीन कुपोषण तथा एनीमिया से ग्रस्त पाई गई। कुछ छात्राओं में रंतौधी, बेरी-बेरी, स्कर्वी, आयोडीन से होने वाली विसंगतियाँ भी पाया गया।

अध्ययन में देखा गया कि कॉलेज काल में छात्राएँ संतुलित खाना आर्थिक अभाव, और समय के अभाव में नहीं खाती थी। दोस्ती व परिवारिक खान पान का प्रभाव, परम्परागत भोजन संबंधी आदतें व गलत खाद्य पद्धति का प्रचलन आदि का भी छात्राओं के खान-पान पर प्रभाव देखा गया। हॉस्टल की छात्राओं तथा जो डेरा लेकर रहती थी। उनकें खान-पान जो अपने घर से आती थी उससे निम्न स्तर का था। उनके खाने में जंक फूड फास्ट फूड की अधिकता, फल-साग सब्जियाँ की कमी, प्रोटीन बहुल खाद्य पदार्थो की कमी देखा गया। दोपहर के खाने का समय भी अनिश्चित होता था, तथा चाय-कॉफी आदि का सेवन भी अधिक करती थी। जिससे वे अक्सर बीमार रहती थी।

सुझाव

फास्ट फूड और अस्वास्थ्यकर स्नैक कॉलेज में बढ़िया शैक्षणिक प्रदर्शन करने के लिए आवश्यक पोषण नहीं प्रदान करते हैं। संतुलित और पौष्टिक आहार शैक्षणिक प्रदर्शन को बढाते है। कॉलेज के छात्राओं को पूरे दिन में 4 बार खाने की कोशिश करना चाहिए। अधिक चाय कॉफी का सेवन नहीं करना चाहिए। बहुत अधिक कैफीन का सेवन से अनिद्रा की समस्या होती है। पर्याप्त पानी पीना चाहिए। कोल्ड ड्रिक्स के जगह नारियल पानी फलां का जूस पीना चाहिए। बिमारियों से बचने के लिए, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए रोजाना निर्धारित समय पर प्रर्याप्त कैलोरी युक्त संतुलित आहार लिया जाना चाहिए। छात्राओं का स्वास्थ्य का प्रभाव परिवार समाज और राष्ट्र पर भी पड़ता है क्योंकि प्रत्येक छात्रा को अपने चुने हुए क्षेत्र, अपने बच्चों के लिए माता, शिक्षक तथा सामूहिक मूल्यों के संरक्षक के नाते पेशेवर रूप में बहुत प्रकार के कार्य करने पड़ते है। अतः छात्राओं को अपने स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक होना चाहिए। शिक्षक अभिभावक को भी छात्राओं को पौष्टिक तत्वों का महत्व की जानकारी देना चाहिए। पोषण शिक्षा को पाठयक्रम में होने चाहिए। जागरूकता अभियान और पोषण शिक्षा द्वारा छात्राओं के आहारीय आदतों को सुधारा जा सकता है बेहतर बनाया जा सकता है। तथा उनका उत्तम स्वास्थ्य बनाया जा सकता है।

संदर्भ-सुची

1. डॉ. प्रमिला वर्मा एवं डॉ. कांति पाण्डेय (2006) आहार एवं पोषण विज्ञान पृष्ट संख्या 415-421
2. सुषमा गुप्ता, नीरज गर्ग अनीता अग्रवाल (2006) आहार एवं पोषण एवं बाल विकास पृष्ट संख्या 139-180
3. युवा आधुनिक महिलाओं के लिए नयी स्वास्थ नीति-विकास पीडिया
4. स्वामिनाथन एम (1994) आहार एवं पोषण पृष्ट संख्या 172-175
5. खाने की आदतों और पोषण संबंधी आवश्यकताओं का ज्ञान रखने वाले कॉलेज के छात्रा – पोषण और मानव स्वास्थ्य- (2018) खण्ड-2 अंक 1

स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) का वर्णनात्मक अध्ययन

सर्जुन कुमार

शोधर्थी, शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी०जी० कॉलेज, जौनपुर (उ०प्र०)

डॉ० आशाराम

एसो० प्रोफेसर, सेवानिवृत्त, शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी०जी० कॉलेज, जौनपुर (उ०प्र०)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधर्थी द्वारा स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीवन मूल्यों का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया एवं शून्य परिकल्पना के अन्तर्गत शोधर्थी द्वारा जीवन मूल्यों के संदर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच की गई। प्रस्तुत शोध अध्ययन में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 वित्त पोषित महाविद्यालयों से स्नातक (जीव विज्ञान वर्ग) की प्रथम वर्ष से कुल 200 विद्यार्थियों (100 छात्र व 100 छात्राऐं) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधर्थी द्वारा डॉ.जी.पी. शैरी व आर.पी.वर्मा द्वारा निर्मित व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली का प्रयोग कर विद्यार्थियों जीवन मूल्यों का अध्ययन किया गया है। आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधर्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन व टी-परीक्षण का अनुसरण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है सौन्दर्यात्मक, आर्थिक, शक्ति मूल्यों के संदर्भ में जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया जाता है। जबकि अन्य जीवन मूल्यों जैसे- धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य के संदर्भ में जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

1.1 प्रस्तावना

मानव को सच्चे अर्थो में मानव बनाने का श्रेय उन उदात्त जीवन मूल्यों को जाता है, जिनके माध्यम से वह अपना सात्विक व्यतीत कर रहा है। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन, वहाँ के समाज के आचरणगत मूल्यों के आधार पर ही होता है। प्रत्येक राष्ट्र

की परम्परागत संस्कृति होती है, जिसका सृजन उन मूल्यों के आधार पर होता है जिन्हें उनके महापुरुषों द्वारा अपने जीवन में अपनाया गया है।

व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आकंलन उसके जीवन मूल्यों से किया जाता है। जीवन मूल्य सफलता के लिए जरूरी हैं। वैदिक काल से होते हुए, गौतम बुद्ध और महात्मा गाँधी तक अनेक महापुरुष जीवन मूल्यों के कारण इतिहास में अमर हो गए। जीवन मूल्य व्यक्ति को सकारात्मक बनाते हैं। याद रखें, जो व्यक्ति मूल्यहीन जीवन जीते हैं वे समाज में व्यर्थ माने जाते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज के लिए बोझ माने जाते हैं। मूल्यहीन व्यक्ति की जिन्दगी पंगु मानी जाती है, जिसमें कोई गति और निरन्तरता नहीं होती और सिद्धान्तों के अभाव में ऐसे लोग महत्वहीन, अनुपयोगी और परिवार के लिए बोझ स्वरूप होते हैं। सिद्धान्त और मूल्य जीवन को ऊर्जा देते हैं। समाज हो चाहे परिवार, सबका संचालन कुछ आदर्शों और सिद्धान्तों से होता है। यदि जीवन में इनका अभाव हो जाए तो समाज का ढाँचा गड़बड़ाने लगता है। नियम जीवन को अनुशासित करते हैं। ये जीवन के आधारभूत तत्व हैं। अनियमित व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में सफल नहीं माना जाता। जीवन अनेक सत्यों, आदर्शों और नियमों के द्वारा संचालित होता है। इन्हीं के द्वारा जीवन मूल्य स्थापित होते हैं। संसार के सभी महापुरुष या सफलतम व्यक्ति अपने ऊँचे आदर्शों और मान्यताओं के कारण ही समाज में गाथा बनकर अपना नाम रोशन करते हैं। समाज सर्वदा ऐसे लोगों का अनुकरण करता है। रीढ़विहीन या लिजलिजे व्यक्ति का समाज में कभी आदर नहीं होता। ऐसे लोग सदैव आलोचना और निंदा के पात्र होते हैं।

सिंह (2017) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि धार्मिक मूल्य के सन्दर्भ में आवासीय व गैर आवासीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। जबकि सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक व राजनैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में आवासीय व गैर आवासीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।

उदयवीर (2016) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि सैद्धान्तिक मूल्य के सन्दर्भ में विज्ञान व कला वर्ग के बी०टी०सी प्रशिक्षणार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया। जबकि अन्य मूल्य जैसे- सामाजिक, सौन्दर्यात्मक, धार्मिक व आर्थिक मूल्यों के सन्दर्भ में विज्ञान व कला वर्ग के बी०टी०सी प्रशिक्षणार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

गुप्ता (2016) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि धार्मिक, सामाजिक, प्रजातांत्रिक, सुखद व शक्ति मूल्य के सन्दर्भ में महिला व पुरुष शिक्षकों के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है।

कुमार (2013) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि महिला तथा पुरुष शिक्षकों के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य मूल्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। प्रजातात्रिंक, सौन्दर्यात्मक, शक्ति तथा परिवार सम्मान मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया।

शोधर्थी द्वारा जीव विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर आधारित पूर्व में हुए शोध अध्ययनों का गहन विश्लेषण किया गया जिसमें विश्लेषण से यह विधित होता है कि पूर्व में हुए शोध अध्ययन अधिकांश: प्राथमिक व माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों, शिक्षकों के जीवन मूल्यों पर आधारित पाये गये जबकि जीव विज्ञान विषय वर्ग के अन्तर्गत विद्यार्थियों जीवन मूल्यों पर बहुत कम शोध अध्ययन पाये गये है जबकि जीवन मूल्य विद्यार्थी के चरित्र निर्माण के लिए एक प्रकाश भाँति है एवं देश एवं समाज के विकास के लिए युवाओं में एक संतुलित जीवन मूल्य एक आधारशीला रूप में कार्य करती है अत: शोध की महत्ता को ध्यान में रखते हुए शोधर्थी द्वारा "स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की जीवन मूल्यों का अध्ययन'' को शोध विषय के रूप में चयनित किया गया है।

1.2 अध्ययन के उद्देश्य

1. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्रों की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) अध्ययन करना।
2. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग की छात्राओं की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) अध्ययन करना।

3. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) अध्ययन करना।

1.3 अध्ययन की परिकल्पना

"स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।"

1.4 न्यादर्श प्रारूप

प्रस्तुत शोध अध्ययन में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 वित्त पोषित महाविद्यालयों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। तदोपरान्त प्रत्येक महाविद्यालय से स्नातक (जीव विज्ञान वर्ग) की प्रथम वर्ष से 10-10 छात्र-छात्राओं अर्थात् कुल 200 विद्यार्थियों (100 छात्र व 100 छात्रायें) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया।

1.5 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधर्थी द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए डॉ. जी.पी. शैरी व आर.पी.वर्मा द्वारा निर्मित व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली का प्रयोग कर विद्यार्थियों जीवन मूल्यों का अध्ययन किया गया है।

1.6 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधर्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन व टी-परीक्षण का अनुसरण किया गया है।

1.7 अध्ययन की उपलब्धियाँ

1. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्रों के जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) का अध्ययन

छात्रों की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) से सम्बन्धित आँकड़ों के सामान्य वितरण के सांख्यिकीय परीक्षण के उपरान्त, प्रस्तुत उद्देश्य में शोधर्थी द्वारा प्रत्येक मूल्य पर प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व वरीयता क्रम) किया गया है जिसे निम्नलिखित तालिका 01 में दर्शाया गया है।

तालिका 01: *स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्रों के जीवन मूल्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व मूल्यों का वरीयता क्रम)*

Ø.स.	मूल्य का नाम	मध्यमान	मानक-विचलन	वरीयता Øम
1	धार्मिक मूल्य	9.56	3.30	8
2	सामाजिक मूल्य	10.26	3.13	6
3	प्रजातान्त्रिक मूल्य	9.68	3.36	7
4	सौंदर्यात्मक मूल्य	9.19	2.77	9
5	आर्थिक मूल्य	13.91	2.87	4
6	ज्ञानात्मक मूल्य	14.05	3.16	3
7	सुखान्त मूल्य	8.81	3.41	10
8	शक्ति मूल्य	15.47	2.73	2
9	पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य	13.01	3.49	5
10	स्वास्थ्य मूल्य	16.06	3.11	1

उपरोक्त तालिका 01 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग की छात्रों द्वारा स्वास्थ्य मूल्य के प्रति सबसे अधिक प्रबलता (प्रथम वरीयता) प्रदर्शित की गयी है जिसके लिए मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 16.06 व 3.11 पाया गया है। इसी प्रकार छात्रों द्वारा शक्ति मूल्य को द्वितीय वरीयता क्रम के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 15.47 व 2.73 पाया गया है। तृतीय वरीयता क्रम के रूप में छात्रों द्वारा ज्ञानात्मक मूल्य को स्थान दिया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 14.05 व 3.16 पाया गया है। सभी जीवन मूल्यों में से चतुर्थ क्रम में छात्रों द्वारा आर्थिक मूल्य को स्थान दिया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 13.91 व 2.87 पाया गया है। छात्रों द्वारा पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य को पंचम वरीयता (M =k 13.01, SD =k 3.49), सामाजिक मूल्य को षष्ठम् वरीयता (M =k 10.26, SD =k 3.13), प्रजातांत्रिक मूल्य को सप्तम् वरीयता (M=k 9.68, SD =k 3.36), धार्मिक मूल्य को अष्ठम् वरीयता (M =k 9.56, SD =k 3.30) व सौन्दर्यात्मक मूल्य को नवम् वरीयता (M =k 9.19, SD =k 2.77) के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग की छात्रों द्वारा सुखद मूल्य (M =k 8.81, SD =k 3.41) को अन्तिम वरीयता के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि छात्रों द्वारा स्वास्थ्य मूल्य, शक्ति मूल्य व ज्ञानात्मक मूल्य को प्रथम तीन वरीयता क्रमों के रूप में अपने व्यक्तित्व में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जबकि आर्थिक मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य, सामाजिक व प्रजातांत्रिक मूल्य को मध्य क्रम के रूप में वरीयता दी गयी है। इसी प्रकार छात्रों द्वारा धार्मिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य व सुखद मूल्य को अपने व्यक्तित्व में अंतिम वरीयता दी गयी है। तालिका सं. 01 में दिये गये छात्रों की जीवन मूल्यों से सम्बन्धित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को निम्नांकित दण्डारेख 01 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

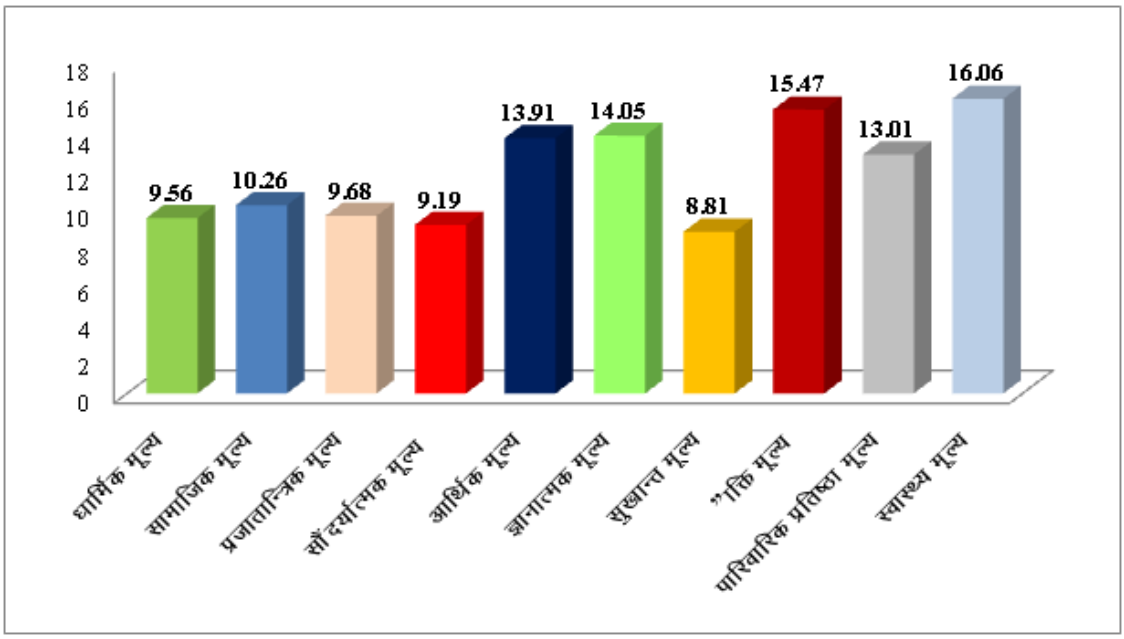

दण्डारेख 01 स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्रों की जीवन मूल्यों (धार्मिक, सामाजिक, प्रजातान्त्रिक, सौंदर्यात्मक, आर्थिक, ज्ञानात्मक, सुखान्त, शक्ति, पारिवारिक प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्य) का मध्यमान

2. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्राओं के जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) का अध्ययन

छात्राओं की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) से सम्बन्धित आँकड़ों के सामान्य वितरण के सांख्यिकीय परीक्षण के उपरान्त, प्रस्तुत उद्देश्य में शोधर्थी द्वारा प्रत्येक मूल्य पर प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व वरीयता क्रम) किया गया है जिसे निम्नलिखित तालिका 02 में दर्शाया गया है।

तालिका 02: *स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्राओं के जीवन मूल्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व मूल्यों का वरीयता क्रम)*

Ø.स.	मूल्य का नाम	मध्यमान	मानक-विचलन	वरीयता Øम
1	धार्मिक मूल्य	9.79	3.31	8
2	सामाजिक मूल्य	10.14	3.56	7
3	प्रजातान्त्रिक मूल्य	9.09	3.47	10
4	सौंदर्यात्मक मूल्य	13.61	3.11	3
5	आर्थिक मूल्य	12.63	2.77	5
6	ज्ञानात्मक मूल्य	14.09	3.54	2
7	सुखान्त मूल्य	9.17	3.49	9
8	शक्ति मूल्य	12.41	3.13	6
9	पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य	13.39	3.51	4
10	स्वास्थ्य मूल्य	15.68	3.37	1

उपरोक्त तालिका 02 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग की छात्राओं द्वारा स्वास्थ्य मूल्य के प्रति सबसे अधिक प्रबलता (प्रथम वरीयता) प्रदर्शित की गयी है जिसके लिए मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 15.68 व 3.37 पाया गया है। इसी प्रकार छात्राओं द्वारा ज्ञानात्मक मूल्य को द्वितीय वरीयता क्रम के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 14.09 व 3.54 पाया गया है। तृतीय वरीयता क्रम के रूप में छात्राओं द्वारा सौंदर्यात्मक मूल्य को स्थान दिया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 13.61 व 3.11 पाया गया है। सभी जीवन मूल्यों में से चतुर्थ क्रम में छात्राओं द्वारा पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य को स्थान दिया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 13.39 व 3.51 पाया गया है। छात्राओं द्वारा आर्थिक मूल्य को पंचम वरीयता (M =k 12.63, SD =k 2.77), शक्ति मूल्य को षष्ठम् वरीयता (M =k 12.41, SD =k 3.13), सामाजिक मूल्य को सप्तम् वरीयता (M =k 10.14, SD =k 3.56), धार्मिक मूल्य को अष्ठम् वरीयता (M =k 9.79, SD =k 3.31) व सुखान्त मूल्य को नवम् वरीयता (M =k 9.17, SD =k 3.49) के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग की छात्राओं द्वारा प्रजातान्त्रिक मूल्य (M =k 9.09, SD =k 3.47) को अंतिम वरीयता के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि छात्राओं द्वारा स्वास्थ्य मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य व सौन्दर्यात्मक मूल्य को प्रथम तीन वरीयता क्रमों के रूप में अपने व्यक्तित्व में सर्वोच्च स्थान दिया गया है।

जबकि पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य, आर्थिक मूल्य, शक्ति मूल्य व सामाजिक मूल्य को मध्य क्रम के रूप में वरीयता दी गयी है। इसी प्रकार छात्राओं द्वारा धार्मिक मूल्य, सुखान्त मूल्य व प्रजातान्त्रिक मूल्य को अपने व्यक्तित्व में अंतिम वरीयता दी गयी है। तालिका सं. 02 में दिये गये छात्रों की जीवन मूल्यों से सम्बन्धित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को निम्नांकित दण्डारेख 02 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

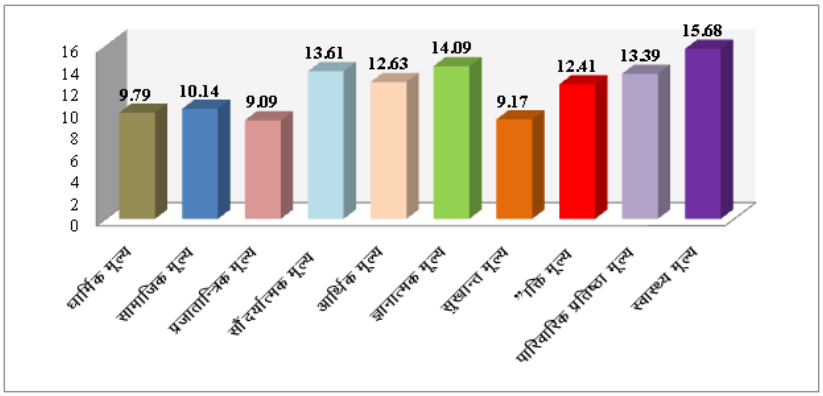

दण्डारेख 02 स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग की छात्राओं की जीवन मूल्यों (धार्मिक, सामाजिक, प्रजातान्त्रिक, सौंदर्यात्मक, आर्थिक, ज्ञानात्मक, सुखान्त, शक्ति, पारिवारिक प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्य) का मध्यमान

3. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन

जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) के संदर्भ में स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अंतर के लिये क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी एवं आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विलचन व क्रान्तिक अनुपात) को निम्नलिखित तालिका सं. 03 में दर्शाया गया है।

तालिका 03: *स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्राओं के जीवन मूल्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व मूल्यों का वरीयता क्रम)*

Ø. स.	मूल्य का नाम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	Øान्तिक अनुपात	मुäांश	सार्थकता स्तर
1	धार्मिक मूल्य	छात्र	100	9.56	3.30	0.49	198	0.05 पर असार्थक
		छात्रा	100	9.79	3.31			
2	सामाजिक मूल्य	छात्र	100	10.26	3.13	0.25	198	0.05 पर असार्थक
		छात्रा	100	10.14	3.56			
3	प्रजातान्त्रिक मूल्य	छात्र	100	9.68	3.36	1.22	198	0.05 पर असार्थक
		छात्रा	100	9.09	3.47			
4	सौंदर्यात्मक मूल्य	छात्र	100	9.19	2.77	**10.61**	198	0.01 पर सार्थक
		छात्रा	100	13.61	3.11			
5	आर्थिक मूल्य	छात्र	100	13.91	2.87	**3.21**	198	0.01 पर सार्थक
		छात्रा	100	12.63	2.77			
6	ज्ञानात्मक मूल्य	छात्र	100	14.05	3.16	0.08	198	0.05 पर असार्थक
		छात्रा	100	14.09	3.54			
7	सुखान्त मूल्य	छात्र	100	8.81	3.41	0.74	198	0.05 पर असार्थक
		छात्रा	100	9.17	3.49			
8	शक्ति मूल्य	छात्र	100	15.47	2.73	**7.37**	198	0.01 पर सार्थक
		छात्रा	100	12.41	3.13			
9	पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य	छात्र	100	13.01	3.49	0.77	198	0.05 पर असार्थक
		छात्रा	100	13.39	3.51			
10	स्वास्थ्य मूल्य	छात्र	100	16.06	3.11	0.84	198	0.05 पर असार्थक
		छात्रा	100	15.68	3.37			

उपरोक्त तालिका सं. 03 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं की सौन्दर्यात्मक, आर्थिक, शक्ति मूल्यों के संदर्भ में प्राप्त टी-परीक्षण का मान क्रमशः 10.61, 2.21 व 7.37 है जो कि 0.01 विश्वसनीय स्तर व 198 स्वतन्त्रता अंश पर सार्थक मान है। जो यह दर्शाता है कि सौन्दर्यात्मक, आर्थिक, शक्ति मूल्यों के संदर्भ में जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया जाता है। यहाँ सौन्दर्यात्मक मूल्य के संदर्भ में छात्रों की तुलना में छात्रायें प्रबल पायी गयी है। जबकि आर्थिक व शक्ति मूल्यों के संदर्भ में छात्र अधिक प्रबल पाये गये है। इसी प्रकार अन्य जीवन मूल्यों जैसे- धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य के संदर्भ में जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। तालिका सं. 03 में दिये गये छात्र व छात्राओं की जीवन मूल्यों से सम्बन्धित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान)को निम्नांकित दण्डारेख 02 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

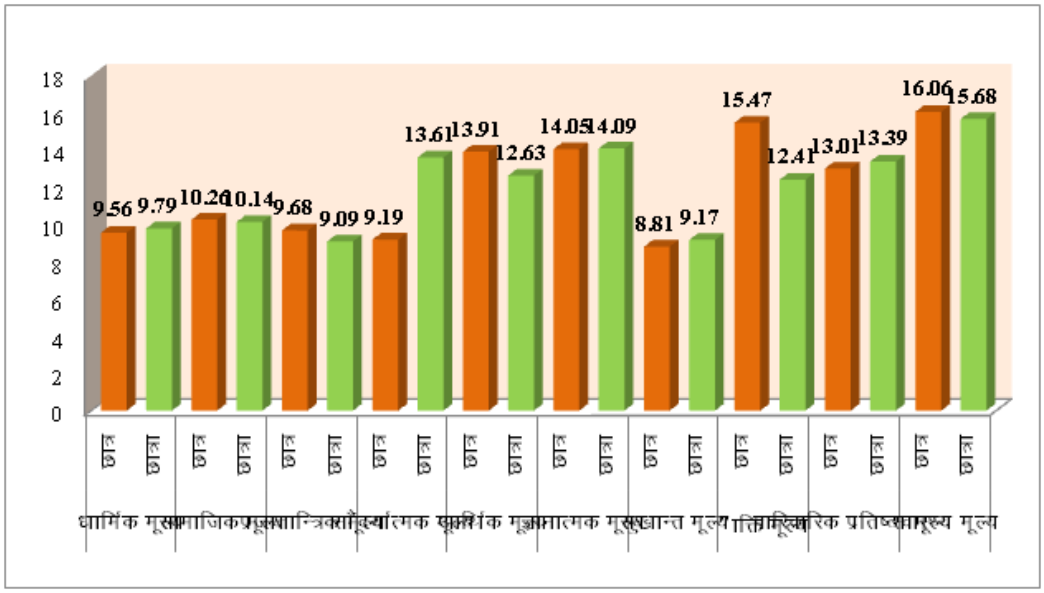

दण्डारेख 03 स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं की जीवन मूल्यों (धार्मिक, सामाजिक, प्रजातान्त्रिक, सौंदर्यात्मक, आर्थिक, ज्ञानात्मक, सुखान्त, शक्ति, पारिवारिक प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्य) का मध्यमान

1.8 परिकल्पना का परीक्षण

प्रस्तुत शोध की शून्य परिकल्पना "स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं की जीवन मूल्यों (धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, शक्ति मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य) में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।" को सौन्दर्यात्मक, आर्थिक, शक्ति मूल्यों के संदर्भ में 0.01 स्तर पर अस्वीकृत किया जाता है जबकि धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातान्त्रिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्य एवं स्वास्थ्य मूल्य के संदर्भ में 0.05 स्तर पर स्वीकृत किया जाता है अतः उक्त परिकल्पना को आंशिक रूप से स्वीकृत व आंशिक रूप से अस्वीकृत किया जाता है।

1.9 निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जीवन मूल्यों से सम्बन्धित उपलब्धियों के अध्ययन से यह पाया गया कि जीव विज्ञान विषय वर्ग के छात्र-छात्राओं द्वारा स्वास्थ्य मूल्य को प्रथम वरीयता दी गयी है एवं छात्रों द्वारा शक्ति मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य व आर्थिक मूल्य को प्राथमिकता दी गयी है। जबकि छात्राओं द्वारा ज्ञानात्मक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य व पारिवारिक प्रतिष्ठा को सर्वोच्च वरीयता दी गई

है। जीव विज्ञान विषय वर्ग के छात्रों द्वारा धार्मिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सुखान्त मूल्य वरीयता क्रम अन्तिम स्थान दिया गया है। जबकि स्नातक स्तर की छात्राओं द्वारा धार्मिक मूल्य, सुखान्त मूल्य व प्रजातांत्रिक मूल्य को अन्य जीवन मूल्यों की तुलना में अन्तिम वरीयता क्रम के रूप में स्थान दिया गया है। छात्र-छात्राओं द्वारा आर्थिक मूल्य, शक्ति मूल्य व सामाजिक मूल्यों मध्य क्रम में स्थान दिया गया है इसका कारण यह हो सकता है स्नातक स्तर पर युवा वर्ग अपने स्वास्थ्य व अध्ययन के प्रति अधिक सचेत होता है। इसी प्रकार प्रस्तुत शोध अध्ययन में छात्र-छात्राओं के मध्य शक्ति मूल्य, आर्थिक मूल्य व सौन्दर्यात्मक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया है जहाँ सौन्दर्यात्मक मूल्य के संदर्भ में छात्रायें अधिक प्रबल पायी गई है जबकि शक्ति व आर्थिक मूल्यों के संदर्भ में छात्राओं की तुलना में छात्र अधिक प्रबल पाये गये है।

संदर्भ सूची

कुमार, पवन (2013) "वैल्यूज ऑफ सीनियर सैकेण्डरी स्कूल टीचर्स" जरनल ऑफ एजुकेशनल एण्ड साइक्लोजिकल रिसर्च, वोल्यूम-3(1) पृ. 8-10

सिंह (2017) आवासीय व गैर आवासीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की जीवन मूल्य पर एक तुलनात्मक अध्ययन किया। पी-एच. डी. शोध ग्रन्थ दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट आगरा

उदयवीर (2016) आगरा जनपद के विज्ञान व कला वर्ग के बी०टी०सी० प्रशिक्षणार्थियों की जीवन मूल्यों में तुलनात्मक अध्ययन, इंटरनेशनल जनरल ऑफ एपलाइड रिसर्च वोल्यूम-2(10) पृष्ठ सं. 174-177

गुप्ता, गोल्डी (2016) ए कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ पर्सनल वैल्यूज ऑफ मेल एण्ड फीमेल सैकेण्डरी टीचर ऑफ रेवाड़ी डिस्ट्रिक्ट, इंटरनेशनल जनरल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी वोल्यूम-3 (3) पृष्ठ सं. 96-103

websites

http://repository.up.ac.za/bitstream/handle
http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/
http://web.stclair.k12.il.us/splashd/Experimt.htm.
http://www.eduresearch.duuniv.ac.in
http://www.dei.agra

भारतीय समाज में बढ़ती समाजिक समस्याएं

अजय कुमार

राजनीति विज्ञान विभाग, डी. ऐ. वी. महाविद्यालय, अबहोर

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। पर भारतीय समाज की प्रकृति को देखा जाए तो यह बहुत जटिल है। यहां पर भिन्न-भिन्न तरह कि संस्कृतियां, धर्म, जाति, नस्ल, भाषा एवं विचारों वाले लोग रहते हैं। यह ही विविधता ही इसकी पहिचान है। एम.एन. श्री निवासन ने भारतीय समाज की प्रकृति को समाजिक संरचना में विविधता को ही माना है। कभी भारतीय प्रदेश विश्व गुरु कहलाता था। पर आज इसकी प्रतिष्ठा को काफी चोट पहुंची है। वर्तमान समय में भारतीय समाज अनेक सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त हैं। जो भारतीय समाज को अंदर ही अंदर खोखला करती जा रही है। भारतीय समाज की प्रमुख समस्याओं में जनसंख्या में बढ़ौत्तरी, निर्धनता, बेरोजगारी, असमानता, अशिक्षा, गरीबी, आतंकवाद, घुसपैठ, बाल श्रमिक, श्रमिक असंतोष, छात्र असंतोष, भ्रष्टाचार, नषाखोरी, जानलेवा बीमारियां, दहेज प्रथा, बाल विवाह, भ्रूण बालिका हत्या, विवाह-विच्छेद की समस्या, बाल अपराध, मद्यपान, जातिवाद, अस्पृश्यता की समस्या ये सभी समाजिक समस्याअें के अन्तर्गत आती है। इन समस्याओं से इलावा ओर भी बहुत सारी समस्याओं से जूझ रहा है। भारतीय समाज में यह समस्याएं दिन-बे-दिन बढ़ रही है। जो इसके रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट है। यह समस्याएं इस प्रकार है:

1. जातिवाद

भारतीय समाज में अनेक जातियां हैं। इनकी पहचान भी अलग-अलग है। आज इन जातियों में एक दूसरे के जाति के प्रति असंतोष पैदा हुआ हैं। उच्चतम जातियों द्वारा अनुसूचित जातियों के साथ भेदभाव किया जाता है। आज यह जातिवाद भारतीय समाज के लिए ऐक गंभीर समस्या का रूप धारण कर चुका है। समाज में जातिवादी हिंसा के मामले बढ़ रहे हैं। राष्ट्रिय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक भारत में वर्ष 2010-11-12-13-14-16 में क्रमश 33712,33719,33655,39408,47064,40744 हजार मामले आए। इन मामलों में आए दिन वृद्धि होना चिंताजनक है।

2. सांप्रदायिकता

भारतीय समाज के लिए संप्रदायिकता गंभीर चुनौती बनता जा रहा है। भारतीय समाज में वर्तमान समय में एक दूसरे के धर्म के प्रति सहनशीलता की कमी आई है। भारतीय समाज में धार्मिक कट्ठरवाद संप्रदायिकता को पैदा करता है। यह कट्ठरवाद हिंसा को जन्म देता है। यहां तक कि वोटबैंक के वास्ते राजनीतिक दलों द्वारा धर्म का प्रयोग किया जाता है। भारत में संप्रदायिक हिंसा के मामले दिन-ब-दिन बढ़ते जा रहे हैं। वर्ष 2002 के दंगों को देखा जाए तो इन दंगों में 2000 लोगों की मौत ओर। वहीं वर्ष 2017 में राम रहीम को कोर्ट द्वारा सजा सुनाए जाने पर पंजाब हरियाणा में हुए दंगों में 41 मौतों हुई। लोकसभा में प्रस्तुत की रिपोर्ट के आंकड़े इस प्रकार है:

वर्ष	दंगे	मौतों
2008	943	167
2009	849	125
2010	701	116

2011	580	91
2012	668	94
2013	823	133
2014	644	95
2015	751	97
2016	703	86
2017	822	211

इस तरह आंकड़े से देखा जाए तो संप्रदायिकता भारतीय समाज के लिए ऐक गंभीर समस्या बन चुकी है।

3. गरीबी

जो व्यक्ति अपनी बुनियादी जीवन निर्वाह करने की जरूरतों को पूरा नहीं कर सकता वह गरीब है। यह समाज के लिए एक गंभीर समस्या है। गरीब लोग अपनी जीवन की आवश्यकताओं पूरी नहीं कर सकते। वह अच्छे भोजन, स्वास्थ्य सेवाएं, शिक्षा, स्वच्छ जल आदि से वंचित रहते हैं। जिस कारण इनमें असंतोष पैदा होता है। यह फिर अपराधीक गतिविधियों को अंजाम देते हैं। जो समाज लिए खतरनाक है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में वर्ष 2015-16 के अनुसार 36.9 करोड़ लोग गरीब है।

4. बेरोजगारी

बेरोजगारी ऐक समाजिक–आर्थिक समस्या है जो आज उद्योगक युग में पैदा हुई है।जो व्यक्ति बाजार में प्रचलित दर पर काम करने को तैयार हैं उसे काम नहीं मिलता तो बेरोजगार हैं। बेरोजगारी मानसिक तनाव को जन्म देती है। वह व्यक्ति प्रचलित व्यवस्था से असंतुष्ट होकर उसे नुकसान पहुंचाने की कोशिश करता है।वह आतंकवादी भी बन सकता है। इस तरह वह समाज के लिए खतरनाक साबित हो सकता है। बेरोजगारी की दर भारत में दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है जो एक चिंताजनक विषय है। भारत कि बेरोजगारी दर मार्च 2019 के हिसाब 9.3% है।

5. बढ़ते महिलाओं के प्रति अपराध

महिलाओं के प्रति अपराध ऐक समाज के लिए शर्मनाक बात होती है।पर फिर भी आज महिलाओं के प्रति अपराध बढ़ रहे हैं। ऐक महिला समाज में आज अपने को असुरक्षित महसूस कर रही है।आज समाज के लिए महिला अपराध गंभीर समस्या बन चुका है। महिलाओं के प्रति अपराध आमबात हो हो गई है। उनको घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के साथ बलात्कार कार्य स्थलों पर यौन उत्पीड़न आम बात हो गई है। निर्भया कांड, हैदराबाद कांड इनके इलावा अन्य कांड भी दिल दहलाने वाले हैं। महिलाओं के साथ आम लोग तो है ही बहुत सारे गणमान्य के द्वारा भी अंजाम दिया जाता है। कुलदीप सेंगर, नित्यानंद आदि कानुन बनाने वाले भी लोग ऐसे कुकर्मों को अंजाम देते हैं। राष्ट्रिय अपराध ब्यूरो की रिपोर्ट के मुताबिक आंकड़े इस प्रकार है:-

वर्ष	आंकड़े
2015	3,29,293
2016	3,38,954
2017	95,983
2018	1,05,000

इन आंकड़ों को देखा जाए तो भारतीय समाज के लिए यह ऐक कलंक है। जो महिलाएं शांति कि मूर्त है उस के प्रति किया जाना कहां की बहादुरी है।

6. बढ़ते बाल अपराध

कानूनी आधार पर 8 साल से लेकर 16 साल तक के उम्र के बच्चों द्वारा किए गए अपराधें को बाल अपराध की श्रेणी में लाया जाता है। बाल अपराध बढ़ती घटनाएं भारतीय समाज के लिए गंभीर चुनौती समस्या बनती जा रही है। जिस देश के भविष्य ही राह भटक जाए वह देश तरक्की नहीं कर सकता। यह बात भारत पर ही लागू हो रही। आज हर रोज बालकों द्वारा अपराधिक घटनाओं को अंजाम दिया जा रहा है। बाल अपराध के कई कारण हो सकते हैं जेसे मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, परिवारिक, रहन सहन आदि। यह कोई नवीन नहीं है। यह सदियों से चले आ रहे हैं। यह समाज की जड़ों को खोखला कर देते हैं। राष्ट्रिय अपराध ब्यूरो की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में आंकड़े इस प्रकार है:

वर्ष	आंकड़े
2010	22,740
2011	25,125
2012	27936
2013	31725
2014	33526

7. नक्सलवाद

नक्सलवाद आतंकवाद का ही दूसरा नाम है। नक्सलवाद एक आंदोलन के रुप में शुरू हुआ था।जो आज ऐक भारतीय लोकतंत्र के लिए गंभीर चुनौती बन चुका है। इसकी शुरुआत वर्ष 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी गांव में जमींदारों के शोषण के खिलाफ वहां के नौजवानों ने शुरू किया था। इसकी अगुवाई चारू मजूमदार ने भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी से अलग होकर की थी। यह ऐक समाजिक आर्थिक आंदोलन था। चारु मजूमदार माओवादी विचारधारा में विश्वास रखते थे।उनका मानना था गरीब किसानों, और मजदूरों की दुर्दशा का कार्ण सरकार की गलत नीतियां हैं। यह नीतियां बड़े जमींदारों को फायदा पहुंचाने के लिए बनाई गई है। इन नीतियों के खिलाफ यह आंदोलन छोड़ा गया था। चारु मजूमदार के सहयोगी थे जिनका नाम कानू सान्याल था। इन दोनों ने मिलकर नौजवानों के साथ 1969 के भूमि अधिग्रहण बिल के खिलाफ नक्सलबाड़ी आंदोलन चलाया। इनकी सरकार से मांग थी जमीन उसी को देनी चाहिए जो इस पर काम करते हैं। जमींदारों का इस पर कोई अधिकार नहीं। इस आंदोलन ने उस समय सफलता प्राप्त की जब इन्हें ने पश्चिम बंगाल में 1977 में काँग्रेस को हराकर कम्युनिस्ट पार्टी की सर बनाई। ज्योति बसु उस समय बंगाल के मुख्यमंत्री बने। क्षह ऐक समाजिक आर्थिक आंदोलन था। इसका मुख्य उद्देश्य समाज में आर्थिक समाजिक समानता लाना था। यह भारत में कम्युनिस्ट शासन लाने चाहते हैं। यह संसदिय लोकतंत्र में विश्वास नहीं करते।जब 1971 में चारु मजूमदार की मौत हो गई उस के बाद यह आंदोलन कई भागों में विभक्त हो गया। यह आंदोलन जिस उद्देश्य के लिए बनाया गया था उस उद्देश्य से यह भटक गया। आज यह केन्द्रीय सत्ता के खिलाफ शुरू हो गया। यह अपने उद्देश्य को सिर्फ हिंसा के माध्यम से प्राप्त करना चाहता है। इनके द्वारा निर्दोष लोगों की हत्या कर दी जाती है। इनका जिन्ह क्षेत्रो में इनका प्रभाव है वहां यह विकास नहीं करने देते। इनके प्रभाव के क्षोत्रे में यह अपनी अदालतों स्थापित करते हैं। अपने मनमुताबिक फैसले सुनाते हैं। लोगों से टैक्स वसूली करते हैं। नक्सली गतिविधियां देश के 20 राज्यों में 223 जिलों के 2000 थाना क्षेत्रों में फैली हुई है जिनमें प्रमुख राज्य हैं-: छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, तामिलनाडु, पश्चिम बंगाल राज्य है। इनके प्रभाव में देश का छे फीसदी क्षेत्र हैं। इनके द्वारा की बार लोगों को जान मार का नुकघ्सान पहुंचाया जाता है।आज यह भारतीय समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन चुकी है। इनके द्वारा की गई घटनाएं के आंकड़े इस प्रकार है;

वर्ष	नक्सली घटनाएं	शहिद पुलिसकर्मी	नागरिकों की मौत	गिरफ्तार हुए
2014	231	8	86	516
2015	196	4	47	458

2016	196	9	61	526
2017	186	2	44	608
2018	118	9	27	515
2019	91	14	27	289

इस प्रकार इनका प्रभाव दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है जो भारतीय समाज के लिए ऐक गंभीर समस्या बन चुकी हैं।

8. भीड़ हत्या

भीड़ हत्या से अभिप्राय है कि किसी बिना व्यवस्थित न्याय प्रक्रिया के भीड़ द्वारा किसी व्यक्ति को शारीरिक प्रताड़ना देना या पीट पीट कर मार डालान शामिल हैं। यह काम आमतौर गुमराह होई भीड़ द्वारा किया जाता है। कितने निर्दोष लोगों की हत्या कर दी जाती है। यह ऐक समाज के लिए कितना आपत्तिजनक है सोच भी नहीं सकते। हाल में ही महाराष्ट्र में दो संतों कि हत्या गुमराह होई भीड़ ने पीट पीट कर दी। राष्ट्रिय अपराध ब्यूरो की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में वर्ष 2001 से वर्ष 2014 तक देश में 2290 महिलाओं कि हत्या डायन समझ कर भीड़ द्वारा पीट पीट कर दी गई। इडियास्पेड कि रिपोर्ट मुताबिक वर्ष 2012 से 2019 तक सुमदायिक घृणा के चलते 128 घटनाओं को अंजाम दिया गया। देखा जाए तो भीड़ हत्या भारतीय समाज के लिए धबा बन चुकीं हैं।

9. अनपढ़ता

शिक्षा व्यक्ति का तीसरा नेत्र होती है। शिक्षा के बिना जीवन अंधकारमय होता है। भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या अनपढ़ता है। आज भी भारतीय समाज में 35% लोग अनपढ़ हैं। अनपढ़ व्यक्ति वर्तमान समस्याएं को समझ नहीं सकता। अनपढ़ लोगों का शोषण भी समाज में किया जाता है। इन लोगों को गुमराह भी किया जाता है। जिसे यह अनुचित कार्य को अंजाम दे देते हैं जिसका खामियाजा समाज को भुगतना पड़ता है। अनपढ़ता के कारण समाज विकास नहीं करता। यह पीछे की ओर चला जाता है। अनपढ़ता के कारण समाज के लोग अंधविश्वासों में घिर जाता है। आज यह ही स्थिति भारत में बिराजमान है। यह भारतीय समाज के रस्ते में बहुत बड़ी चुनौती है।

9. ऑनर किलिंग

ऑनर किलिंग का मतलब है कि अपने ही परिवार सदस्य का परिवार सदस्यों द्वारा हत्या करना आम तौर पर यह हत्या महिला सदस्य की की जाती है। यह हत्या समाजिक प्रतिष्ठा खातर कि जाती है। यह आम तौर पर तब की जाती है जब किसी युवक ओर युवती द्वारा अंतरजातिय विवाह करने की कोशिश या किया जाता है। आज के वक्त वी इसे की लोगों द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता जो एक रुढ़ीवादी सोच का परिणाम है। यह आम तौर ग्रामिण क्षेत्रे में देखने को मिलता है। आज भी यह घटनाएं घटित होना समाज के लिए धबा है। यह सब झुठी शान के खातिर किया जाता है। राष्ट्रिय अपराध ब्यूरो के रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2014 में 28, मामले वर्ष 2015 में 192 मामले, वर्ष 2016 में 68 मामले आए।

10. नशाखोरी

नशाखोरी भारतीय युवा वर्ग को दीमक की तरह खाती जा रही हैं। भारतीय युवा वर्तमान नशें में लिप्त हो रहा। बहुत सारे युवा नशाखोरी के जाल में फस रहें हैं। यह नशा न मिलने पर किसी भी हद तक जा सकतें हैं। आज भारत में लाखों रुपए ऐक दिन में नशें खरीदने में लगाए जा रहे हैं। इस नशाखोरी के वजह से समाज में आपराधिक घटनाएं घटित होती है। समाजिक हिंसा, लूटमार, हत्या तक के कारण नशें तक जुड़े है।आज हजारों लोगों की मौत नशे के कारण हो रही है। जुलाई 2016 में राज्य सभा में राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो की रिपोर्ट के मुताबिक हर रोज 10 मोतों नशें के कारण होती है। वहीं राष्ट्रिय सर्वेक्षण के अनुसार 73 लाख लोग देश में गांजा और भाग पीते हैं। जिसमें युपी पहले नंबर पर है।ऐक सर्वे के मुताबिक भारत में 16 करोड़ लोग हर रोज शराब पीने के आदी हैं। यह भारतीय समाज में एक चिंताजनक विषय बन गया है।

11. आतंकवाद

भारतीय समाज के लिए सबसे बड़ा खतरा आतंकवाद बनता जा रहा है। आज भारतीय प्रदेश आतंकवादी हिंसा से प्रभावित है। कितने मासूमों की जान आतंकवादी हमलों में जाती है। सबसे बड़ी चुनौती तो है आज भारतीय युवा भी आतंकवाद का रास्ता अपना रहें हैं। यह सब आर्थिक, समाजिक आदि समस्याओं के कारण होता है। आतंकवाद भारतीय समाज के विकास में सबसे बड़ी बांधा है। यह ऐक राष्ट्र के विरुद्ध अघोषित युद्ध हैं। जिसमें बिना सामने आये राष्ट्र को नुक्सान पहुंचाना है। कश्मीर राज्य इससे ज्यादा प्रभावित हैं। आतंकवाद को पनपने में हमारा विरोधी राष्ट्र पाकिस्तान मदद करता है। वह भारत को संतुलित करने के लिए आतंकवाद का सहारा लेता है। भारत में आतंकवादी प्रमुख घटनाएं इस प्रकार है। 12 मार्च, 1993 को मुंबई के बम ब्लास्ट में 257 लोगों की मौत हो गई। जम्मू कश्मीर की विधानसभा पर 1 अक्टूबर, 2001 को हमला किया गया जिसमें 38 लोग मारे गए। वहीं 13 दिसंबर 2001 में भारत संसद पर जैश ए मोहम्मद के आतंकवादीयो ने हमला किया जिसमें 6 पुलिस कर्मी शहिद हुए और 3 कर्मचारी मारे गए। 18 दिसंबर 2016 उड़ी में सेना सेक्टर पर हुए हमले में 20 जवान शहीद हुए। इन घटनाओं से पता चलता है किस तरह आतंकवाद ऐक समाज में अराजकता फैला रहा है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज मे इनके इलावा बहुत सारी ओर भी समस्याएं हैं। यह सब समस्याएं भारतीय समाज के विकास में बाधक है। यह समस्याएं दिनों दिन बढ़ती जा रही है जो कि समाज के लिए चुनौती है। इन समस्याओं को दूर करने के लिए समाज को मिल जुलकर प्रयास करने होंगे। हमारी सरकार को कड़े कदम उठाने चाहिए। कठोर से कठोर कानूनों को लागू करके इन समस्याओं पर लगाम लगानी चाहिए।जे इन पर लगाम नहीं लगाई गई तो यह समाज के बिनाश का कारण बन जाएगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- भारतीय समाज, राम आहुजा, रावत पब्लिकेशन
- भारतीय समाज, श्याम नारायण दुबे
- हमारी चुनौतीयां, बद्री नारायण, सुनिता सिंह
- पालटिकस इन इंडिया, रजनी कोठारी
- राष्ट्रिय अपराध ब्यूरो रिपोर्ट
- रिलिजन, कास्ट, एंड पालिटिक्स इन इंडिया: किर्स्टोफ जफरलोट
- अमर उजाला, देहरादून संस्करण, 28 अप्रेल 2019
- https@@hindi-webdunia-com@regional&hindi&news
- हिन्दुस्तान, देहरादून संस्करण, 14 जुन 2013
- भारत-पाक और अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद, पो. मान चन्द्र खंडेला, अविष्कार पब्लिकेशन

तीन राष्ट्रीय समाचार पत्रों में आने वाले राजनितिक समाचारों का विश्लेषण-दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण व पंजाब केसरी समाचार पत्रों का एक तुलनात्मक अध्ययन

सुधीर कुमार

शोधार्थी, संचार प्रबंधान एवं तकनीकी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रोधोगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

भूमिका

मीडिया किसी भी समाज में एक मजबूत राजनीतिक कथा शुरू करने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है। दर्शकों द्वारा उपभोग की जाने वाली जानकारी सीधे तौर पर उनकी राय पर असर डालती है। यह जानकारी लोकतंत्र के जीवित रहने और फलने-फूलने के लिए महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। हालांकि इन दिनों एक चिंताजनक प्रवृत्ति यह है कि मीडिया आज किसी वर्ग विशेष के विशिष्ट हितों को पूरा करने मे संलिप्त है। जानकारी को स्थानांतरित करने के अपने मूल उद्देश्य से दूर हट चुका है। हर राजनीतिक दल यही चाहता है कि मीडिया से उसके रिश्ते खराब न हों। हर सियासी दल में इसलिए प्रवक्ता होते हैं, जो कि पार्टीगत जानकारी और पार्टी के एजेन्डे को मीडिया के जरिए उस जनता तक पहुंचा सके, सत्तारूढ़ राजनैतिक दल मीडिया पर हावी होने की कोशिश भी करता है इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान संदर्भ में जब हम मीडिया की भूमिका को खोजने निकलते हैं, तो किसी तरह के नकारात्मक या सकारात्मक निष्कर्ष तक पहुंचने में खासी मेहनत करनी पड़ती है, न तो मीडिया की तारीफ करते बनता है और न ही बेवजह मीडिया की आलोचना ही की जा सकती है। यह बहुत ही दुविधा वाली परिस्थिति है। मीडिया की भूमिका बहुत बेहतर चाहे न हो, पर एकदम नकारा भी नहीं है। आज की तारीख में मीडिया पर कुछ भी लिखने से पहले बहुत सोच-विचार करना पड़ता है। मामला बहुत नाजुक भी है और संवेदनशील भी। इस विकट परिस्थिति के बाद भी जब मीडिया पर कुछ लिखना ही पड़े तो निश्चित तौर पर अतीत और वर्तमान के मीडिया का निष्पक्ष तुलनात्मक अधययन जरूरी हो जाता है, यही वह बिंदु है जहां से मौजूदा मीडिया को और उसके कार्य व्यवहार को आलोचना के दायरे में रखा जा सकता है। प्रस्तुत पेपर में यह देखने की कोशिश की गयी है की मीडिया द्वारा किस राजनैतिक दल के समाचारों को ज्यादा तवज्जो दी जा रही है प्रस्तुत पेपर में शोधार्थी द्वारा शोध के लिए तीन राष्ट्रीय समाचारपत्रों का चयन किया गया है जिनमे उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर व पंजाब केसरी समाचार तीनों समाचार पत्रों में आने वाले राजनितिक समाचारों का अंतर्वस्तु विश्लेषण किया गया हैं।

साहित्य समीक्षा

1. गैमसन (1992) ने समाचार में 'निर्माणवादी' दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया। उनके शोध से पता चलता है कि लोग राजनीतिक मुद्दों से मतलब रखते हैं। मीडिया कवरेज में उपलब्ध फ्रेम का उपयोग करना, और इन्हें शामिल करके भी व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से जाली के साथ पैकेज या दूसरों के साथ बातचीत से यह स्थापित किया जा सकता है।

2. यांग (2003) ने एक फ्रेम एनालिसिस तकनीक का इस्तेमाल किया है। जिसमें चीनी मीडिया के तरीके की तुलना अमेरिकी मिडिया से की गई। पीपल्स डेली ऑनलाइन एंड द चाइना डेली और यूएस मीडिया द न्यूयॉर्क टाइम्स और वाशिंगटन पोस्ट ने 1999 में यूगोस्लाविया पर नाटो के हवाई हमलों को कवर किया। 200 समाचारों की सामग्री विश्लेषण से पता चलता है कि चीनी समाचार पत्र और यू.एस.समाचार पत्रों ने बड़े पैमाने पर सेना कार्रवाई की भर्ती में दो अलग-अलग मीडिया फ़्रेमों को अपनाया है। जबकि चीनी अखबारों ने हस्तक्षेप के रूप में हवाई हमलों को तैयार किया। यूगोस्लाविया की संप्रभुता और क्षेत्र, अमेरिकी अखबार ने सर्बियाई लोगों द्वारा शुरू की गई जातीय सफाई को रोकने के लिए अल्बानियाई को मानवीय सहायता हवाई हमलों को एक रूप दिया। हवाई हमलों की ओर सरकार के दृष्टिकोण के सामान्य अनुरूप प्रतिबिंब अखबारों में मीडिया फ्रेम पर राष्ट्रीय हित के काफी प्रभाव का संकेत मिलता है। लेखक ने निष्कर्ष निकाला कि अंतर्राष्ट्रीय समाचार रिपोर्ताज, राष्ट्रीय हित में अक्सर मीडिया पाठ तैयार करने में एक सक्रिय भूमिका निभाने के लिए अन्य कारकों की रूपरेखा तैयार करते हैं।
3. सन 2005 में चार्ल्स एच. डी. वर्ष द्वारा 'समाचार फ्रेमिंग सिद्धांत एवं वर्गीकरण' विषय पर शोध अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में ब्रिटेन डेनमार्क तथा नीदरलैंड के मीडिया समूहों के मिडिया की फ्रेमिंग की जांच की गई। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जांच करना था कि समाचार फ्रेमिंग के तत्व, गुण एवं कार्य कौन से है, जो समाचारों को फ्रेमिंग एवं प्रभावित करते हैं। अध्ययन से यह परिणाम निकलकर आया कि समाचारों में योग्य विचार एकता एवं भाषाई विशेषताएं होनी चाहिए। समाचारों की फ्रेमिंग इस तरह होनी चाहिए कि वह अन्य समाचारों से अलग दिखाई दे। फ्रेमिंग में प्रतिनिधित्व संबंधी वैधता होनी चाहिए। जिससे एक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। समाचारों में विशिष्टता का होना अति आवश्यक है। समाचारों की फ्रेमिंग करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि समाचारों में वर्गीकरण जैसे राजनीतिक आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक होना चाहिए। इस अध्ययन में समाचार फ्रेमिंग को पहचानने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं का वर्णन किया गया हैं, जो इस प्रकार है-सब हैड, तस्वीरें, फोटो कैप्शन, लीड, स्त्रोत, चैन उद्धरण, लोगों, आंकड़े और चार्ट पैराग्राफ आदि। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपरोक्त बिंदुओं को अपनाकर समाचारों की अच्छी फ्रेमिंग की जा सकती है।
4. सन 2010 में जॉन एल्को नर्स द्वारा 'रेस, जेंडर और पॉलिटिकल कार्टून इमेजनरी: बराक बनाम हिलेरी', विषय पर अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में अमेरिका में सन 2008 में राष्ट्रपति चुनाव से संबंधित 57 अमेरिकी राजनीतिक कार्टूनों में चित्रण का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन से यह परिणाम निकल कर आया कि विशेष राजनीतिक कार्टून किसी विशेष राजनीतिक उम्मीदवार के मुद्दे एवं राजनीति को समर्थन करता है। इन कार्टूनों में विशेष प्रकार की इमेजनरी होती है जो किसी भी राजनीतिक उम्मीदवार की लोकप्रियता को घटा एवं बढ़ा सकती है। यह कार्टून विशेष पार्टी उम्मीदवार की छवि का निर्माण करते हैं। इन कार्टूनों में विशेष प्रकार की इमेजनरी होती है जो परिणामों को बदल सकती हैं।
5. सन 2017 में रिचर्ड डब्ल्यू. एस. द्वारा 'दो संबंधित पीढियों में राजनीतिक संबंधता और कल्पना' विषय पर अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में ओहियो विश्वविद्यालय के 175 विद्यार्थियों का चयन करके उनसे राजनीतिक संबंधता कि जांच की गई। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में राजनीतिक संबंधित एवं राजनीतिक दृष्टिकोण में महान प्रभाव छोड़ती है। यह एक जटिल प्रक्रिया है। विशेष रूप से इंजीनियरिंग और विज्ञान के छात्रों में साफ दिखाई देती है। राजनीतिक पार्टियों के दृष्टिकोण एवं मुद्दे छात्रों पर अपना विशेष प्रभाव छोड़ते हैं। इस अध्ययन में दो मुख्य पार्टियों रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक राजनीतिक पार्टियों के विचारों को मानने वाले छात्रों पर अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन से यह परिणाम निकल कर आया कि डेमोक्रेटिक पार्टी की अपेक्षा रिपब्लिकन पार्टी की विचारधारा को मानने वाले छात्रों के दृष्टिकोण में बदलाव साफ दिखाई देता है। डेमोक्रेटिक पार्टी की विचारधारा मानने वाले छात्रों में रूढ़िवादिता साफ दिखाई देती है। उनमें एक विशेष प्रकार का दबाव दिखाई देता है जो उनको कैरियर लक्ष्य चयन करने में संघर्ष करना पड़ता है। विशेष पार्टी की विचारधारा मानने वाले छात्रों में विशेष प्रकार की आक्रामकता साफ दिखाई देती है जो उनकी राजनीतिक संबंधता और कल्पना को प्रभावित करती है।

शोध के उद्देश्य

वृहद उद्देश्य-प्रस्तुत शोध में तीन समाचार पत्रों में आने वाले राजनितिक समाचारों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

अन्य उदेश्य

तीनो समाचार पत्रों में आने वाले राजनितिक समाचारों को मिलने वाले स्थान का विश्लेषण।

तीनो समाचार पत्रों ने किस राजनीतिक दल को ज्यादा स्थान दिया है का विश्लेषण।

तीनों समाचार पत्रों ने किस राजनैतिक दल के ज्यादा समाचारों को प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया है।

तीनों समाचार पत्रों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर के राजनितिक समाचारों की संख्या का पता लगाना।

शोध विधि

तीन हिंदी दैनिक राष्ट्रीय समाचार पत्रों में राजनीतिक समाचारों का विश्लेषण विषय पर अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा अंतर्वस्तु विश्लेषण शोध विधि का प्रयोग किया गया है। यह एक गुणात्मक शोध है। गुणात्मक अध्ययन का सबसे बड़ा लाभ है की इसमें सैंपल साइज भी अपेक्षाकृत काफी छोटा होता है और शोधकर्ता अधिक निपुणता से तथ्यों का विश्लेषण कर सकता है। वालीजर और वैनियर (1978) के अनुसार अंतर्वस्तु विश्लेषण वह व्यवस्थित प्रक्रिया है रिकार्डेड सूचनाओं का मूल्यांकन किया जा सकता है। कार्लिगर (2000) के शब्दों में अंतर्वस्तु विश्लेषण संचार की व्यवस्थित उदेश्यपूरक और संख्यात्मक अध्ययन की विधि है जिसके माध्यम से वेरिएबल का मापना संभव हो पाया है। मीडिया में राजनितिक और सामाजिक मुद्दों को किस प्रकार रखा जाता है यह जानने का सबसे बेहतर तरीका अंतर्वस्तु विश्लेषण ही है। इसके माध्यम से संचार कंटेंट का विश्लेषण संभव हो पाया है, साथ ही मीडिया कंटेंट की दूसरे कंटेंट से तुलना की जा सकती है

सैंपल डिज़ाइन

प्रस्तुत शोध में सैंपल डिज़ाइन के निम्न अवयव हैं।

यूनिवर्स-प्रस्तुत शोध समाचार पत्रों में आने वाले राजनितिक समाचारों का तुलनात्मक अध्ययन है। अध्ययन में राष्ट्रीय स्तर के समाचारपत्र शामिल हैं। शोध 3 माह की अवधि के दौरान किया गया है।

सैंपलिंग एलिमेंट-शोध के दौरान पूरे यूनिवर्स का अध्ययन करना संभव नहीं है। इस कारण सैंपलिंग एलिमेंट का चयन किया गया है। प्रस्तुत शोध में प्रसार संख्या के अनुसार भारत के तीन प्रमुख हिंदी समाचार पत्रों को चुना गया है जिनमे दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण व पंजाब केसरी शामिल है।

सैंपलिंग तकनीक-प्रस्तुत शोध के लिए रैंडम सैंपलिंग विधि से समाचार पत्रों का चयन किया गया है। शोधार्थी द्वारा 3 महीने के समय अंतराल में हर माह से रैंडम्ली 6 दिनों का चयन किया गया है तथा 3 माह में कुल 18 दिनों के समाचार पत्रों को चुन कर उनका विश्लेषण किया गया है।

शोध अवधि-प्रस्तुत शोध के लिए 1 जून 2019 से 31 अगस्त 2019 की अवधि में प्रकाशित समाचार पत्रों को चुना गया है। जिन तिथियों के समाचार पत्रों को चुना गया है वे नीचे सारणी में प्रस्तुत हैं।

माह	*चुने गए दिन*
जून	1 जून, 6 जून, 09 जून, 15 जून, 21 जून, 29 जून,
जुलाई	3 जुलाई, 09 जुलाई, 12 जुलाई, 17 जुलाई, 22 जुलाई, 28 जुलाई,
अगस्त	2 अगस्त, 08 अगस्त, 13 अगस्त, 18 अगस्त, 22 अगस्त, 30 अगस्त,

तीनों माह में चुनी गई तिथियों को तीनों समाचार पत्रों को लिया गया है।

आंकडों का विशलेषण *ग्राफ संख्या-1* *तीनों समाचार पत्रों मे आने वाले कुल राजनीतिक समाचार*

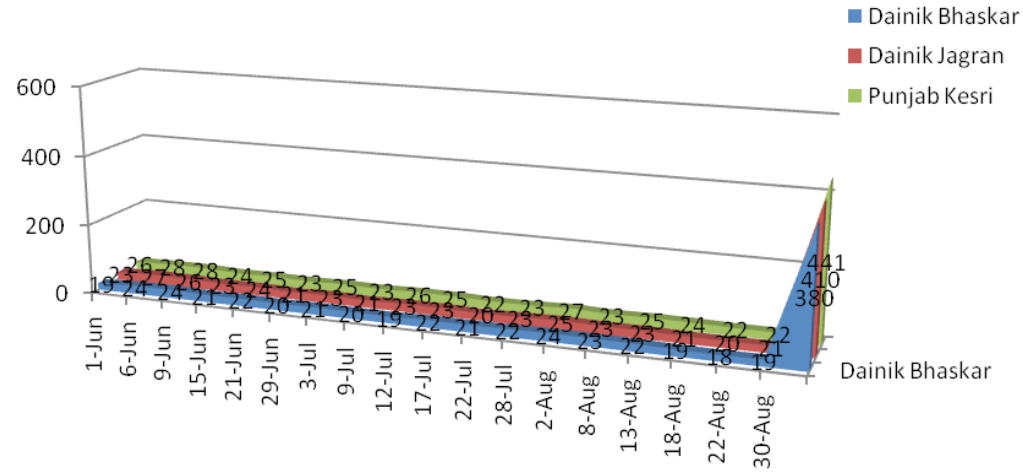

प्रस्तुत ग्राफ-1 में तीनो समाचार पत्रों में आने वाले राजनीतिक समाचारों की संख्या को दिखाया गया है। 3 माह में चुने गए दिनों के समाचार पत्रों में दैनिक भास्कर में कुल 380 समाचार प्रकाशित हुए हैं जबकि दैनिक जागरण में इनकी संख्या 410 रही है वहीं पंजाब केसरी में इनकी संख्या 441 रही है। राजनितिक समाचारों को प्रकाशित करने में पंजाब केसरी पहले स्थान पर रहा है जबकि दैनिक जागरण दूसरे व दैनिक भास्कर तीसरे स्थान पर रहा है।

ग्राफ संख्या-2 *तीनों समाचार पत्रों मे आने वाले कुल अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक समाचार*

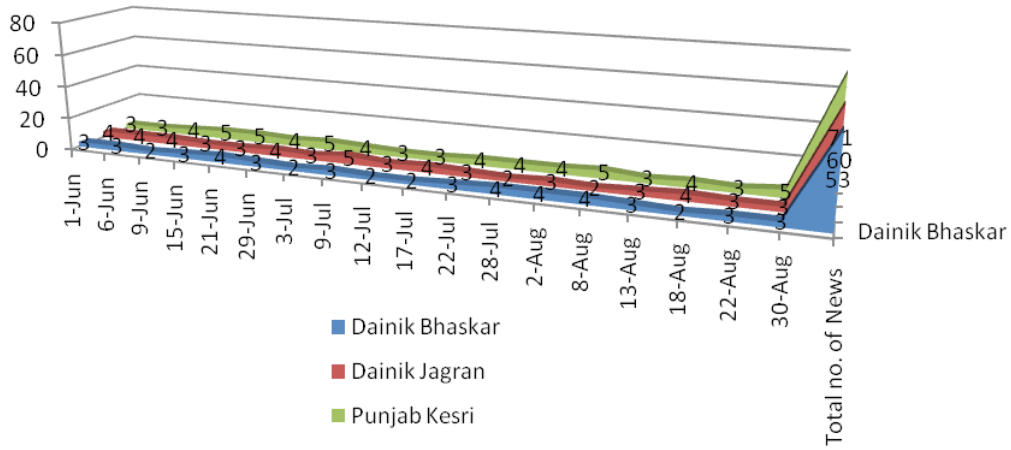

प्रस्तुत ग्राफ-2 में तीनो समाचार पत्रों में आने वाले अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक समाचारों की संख्या को दिखाया गया है। 3 माह में चुने गए दिनों के समाचार पत्रों में दैनिक भास्कर में कुल 51 समाचार प्रकाशित हुए हैं जबकि दैनिक जागरण में इनकी संख्या 60 रही है वहीं पंजाब केसरी में इनकी संख्या 71 रही है वाले अंतर्राष्ट्रीय राजनितिक समाचारों को प्रकाशित करने में पंजाब केसरी पहले स्थान पर रहा है जबकि दैनिक जागरण दूसरे व दैनिक भास्कर तीसरे स्थान पर रहा है।

सारणी-3 *चुने गए समाचार पत्रों में राजनीतिक समाचारों को मिलने वाला कुल स्थान*

दैनिक भास्कर का कुल स्थान 21306 स्केयर सेंटीमीटर, दैनिक जागरण का 21624 स्केयर सेंटीमीटर, पंजाब केसरी का माप 21306 स्केयर सेंटीमीटर है।

of ion	Total Space of Dainik Bhashker	Space of Political News	Space in Percentage Of political News	Total Space of Dainik Jagran	Space of Political News	Space in Percentage of political News	Total Space of Punjab Kesri	Space of Political News	Space in Percentage of political News
	21306cm²	2312cm²	10.85%	21624cm²	2790cm²	12.90%	21306cm²	3445cm²	16.16cm²
	21306cm²	2770cm²	13%	21624cm²	3105cm²	14.35%	21306cm²	3665cm²	17.20cm²
	21306cm²	2652cm²	12.44%	21624cm²	3025cm²	13.98%	21306cm²	3690cm²	17.31cm²
	21306cm²	2300cm²	10.79%	21624cm²	2685cm²	12.41%	21306cm²	3215cm²	15.08cm²
	21306cm²	2350cm²	11.02%	21624cm²	2805cm²	12.97%	21306cm²	3320cm²	15.58cm²
	21306cm²	2210cm²	10.37%	21624cm²	2515cm²	11.63%	21306cm²	3185cm²	14.94cm²
	21306cm²	2375cm²	11.14%	21624cm²	2805cm²	12.97%	21306cm²	3345cm²	15.69cm²
	21306cm²	2482cm²	11.64%	21624cm²	2605cm²	12.04%	21306cm²	3205cm²	15.04cm²
	21306cm²	2295cm²	10.77%	21624cm²	2805cm²	12.97%	21306cm²	3520cm²	16.52cm²
	21306cm²	2415cm²	11.33%	21624cm²	2875cm²	13.29%	21306cm²	3475cm²	16.30cm²
	21306cm²	2500cm²	11.73%	21624cm²	2405cm²	11.12%	21306cm²	3105cm²	14.57cm²
	21306cm²	2785cm²	13.07%	21624cm²	3045cm²	14.08%	21306cm²	3205cm²	15.04cm²
t	21306cm²	2685cm²	12.60%	21624cm²	2985cm²	13.80%	21306cm²	3550cm²	16.66cm²
t	21306cm²	2715cm²	12.74%	21624cm²	3012cm²	13.92%	21306cm²	3190cm²	14.97cm²
ıst	21306cm²	2652cm²	12.44%	21624cm²	3115cm²	14.40%	21306cm²	3320cm²	15.58cm²
ıst	21306cm²	2410cm²	11.31%	21624cm²	3315cm²	15.33%	21306cm²	3325cm²	15.60cm²
ıst	21306cm²	2245cm²	10.53%	21624cm²	2685cm²	12.41%	21306cm²	3110cm²	14.69cm²
ıst	21306cm²	2385cm²	11.19%	21624cm²	2410cm²	11.14%	21306cm²	3165cm²	14.85cm²

प्रस्तुत सारणी में तीनों समाचार पत्रों में राजनितिक समाचारों को मिलने वाले स्थान का आंकलन किया गया है। इस कार्य के लिए तीनों समाचार पत्रों के कुल स्थान को मापा गया है इसके बाद राजनितिक समाचारों को मिलने वाले स्थान को माप कर उसका प्रतिशत निकला गया है। राजनितिक समाचारों को सबसे ज्यादा स्थान भी पंजाब केसरी ने दिया है इस समाचार पत्र ने अत्यधिक 17.31 प्रतिशत स्थान राजनितिक समाचारो को दिया है यदि चुने हुए समयावधि में इस समाचार पत्र का औसत स्थान देखे तो यह 15.65 प्रतिशत है वहीं दैनिक जागरण में अत्यधिक स्थान 15.33 प्रतिशत है इसका औसत 13.09 प्रतिशत है। दैनिक भास्कर यह स्थान सबसे कम रहा है दैनिक भास्कर ने अन्य दोनों समाचारपत्रों की अपेक्षा राजनितिक समाचारों को कम स्थान दिया है। दैनिक भास्कर में अधिकतम स्थान 13.07 प्रतिशत रहा है दैनिक भास्कर द्वारा दिए गए औसतन स्थान की बात करें तो यह 11.60 प्रतिशत रहा है।

प्रस्तुत ग्राफ-4 में तीनों समाचार पत्रों में चुने गए समयावधि में किस राजनितिक पार्टी के कुल कितने समाचार प्रकाशित हुए हैं व प्रथम पृष्ठ पर किस पार्टी के कितने समाचार प्रकाशित हुए हैं दिखाया गया है। इस कार्य के लिए भारत की 6 राष्ट्रीय पार्टियों की तुलना की गयी है। प्रस्तुत ग्राफ के अनुसार चुनी गयी समयावधि में दैनिक भास्कर में इंडियन नेशनल कांग्रेस के कुल 121 समाचार प्रकाशित हुए हैं। प्रथम पृष्ठ पर इस पार्टी के केवल 62 समाचारों को स्थान मिला है। जबकि भारतीय जनता पार्टी के समाचारों की संख्या इस समाचार पत्र में 175 समाचार प्रकाशित हुए है। प्रथम पृष्ठ पर इस पार्टी के कुल 90 समाचारों को स्थान मिला है। नेशनल कांग्रेस पार्टी के समाचारों संख्या 12 रही है जबकि प्रथम पेज पर केवल 1 समाचार चुनी हुई समयावधि में प्रकाशित हुई है। बहुजन समाज पार्टी के कुल 20 समाचार प्रकाशित हुए हैं, जबकि प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 2 रही है। कम्युनिस्ट पार्टी के 3 समाचर इस समाचार पत्र में छपे हैं प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 0 है।

प्रस्तुत ग्राफ-4 में तीनों समाचार पत्रों में चुने गए समयावधि में किस राजनितिक पार्टी के कुल कितने समाचार प्रकाशित हुए हैं व प्रथम पृष्ठ पर किस पार्टी के कितने समाचार प्रकाशित हुए हैं।

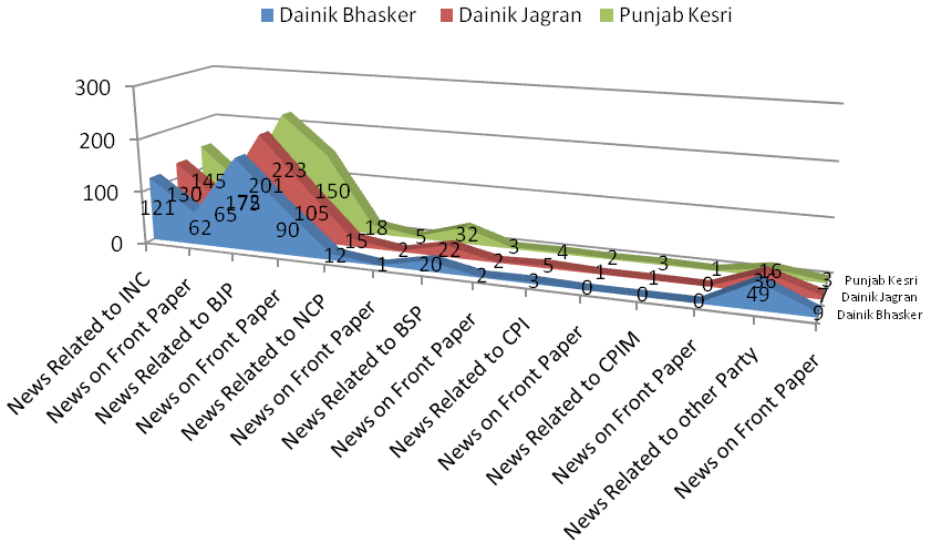

कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी का एक भी समाचार इस समयावधि में नहीं छपा है। अन्य राजनितिक दलों के 49 समाचार छपे हैं, प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 9 रही है। दैनिक जागरण में इंडियन नेशनल कांग्रेस के कुल 130 समाचार प्रकाशित हुए हैं। प्रथम पृष्ठ पर इस पार्टी के केवल 65 समाचारों को स्थान मिला है। जबकि भारतीय जनता पार्टी के समाचारों की संख्या इस समाचार पत्र में 201 समाचार प्रकाशित हुए है प्रथम पृष्ठ पर इस पार्टी के कुल 105 समाचारों को स्थान मिला है। नेशनल कांग्रेस पार्टी के समाचारों संख्या 15 रही है जबकि प्रथम पेज पर केवल 2 समाचार चुनी हुई समयावधि में प्रकाशित हुई है। बहुजन समाज पार्टी के कुल 22 समाचार प्रकाशित हुए हैं जबकि प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 2 रही है। कम्युनिस्ट पार्टी के 5 समाचर इस समाचार पत्र में छपे हैं प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 1 है। कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी का एक समाचार इस समयावधि में छपा है प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 0 है। अन्य राजनितिक दलों के 36 समाचार छपे हैं प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 7 रही है। पंजाब केसरी में इंडियन नेशनल कांग्रेस के कुल 145 समाचार प्रकाशित हुए हैं। प्रथम पृष्ठ पर इस पार्टी के केवल 72 समाचारों को स्थान मिला है। जबकि भारतीय जनता पार्टी के समाचारों की संख्या इस समाचार पत्र में 223 समाचार प्रकाशित हुए है प्रथम पृष्ठ पर इस पार्टी के कुल 150 समाचारों को स्थान मिला है। नेशनल कांग्रेस पार्टी के समाचारों संख्या 18 रही है जबकि प्रथम पेज पर केवल 5 समाचार चुनी हुई समयावधि में प्रकाशित हुई है। बहुजन समाज पार्टी के कुल 32 समाचार प्रकाशित हुए हैं जबकि प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 3 रही है। कम्युनिस्ट पार्टी के 4 समाचर इस समाचार पत्र में छपे हैं प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 2 है। कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी के 3 समाचार इस समयावधि में छपे है प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 1 है। अन्य राजनितिक दलों के 16 समाचार छपे हैं। प्रथम पृष्ठ पर इनकी संख्या 3 रही है।

प्राप्तियां व निष्कर्ष

- दैनिक भास्कर में कुल 380 समाचार प्रकाशित हुए हैं जबकि दैनिक जागरण में इनकी संख्या 410 रही है वहीं पंजाब केसरी में इनकी संख्या 441 रही है। राजनितिक समाचारों को प्रकाशित करने में पंजाब केसरी पहले स्थान पर रहा है जबकि दैनिक जागरण दूसरे व दैनिक भास्कर तीसरे स्थान पर रहा है।
- दैनिक भास्कर में कुल 51 अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक समाचार प्रकाशित हुए हैं जबकि दैनिक जागरण में इनकी संख्या 60 रही है वहीँ पंजाब केसरी में इनकी संख्या 71 रही है वाले अंतर्राष्ट्रीय राजनितिक समाचारों को प्रकाशित करने में पंजाब केसरी पहले स्थान पर रहा है जबकि दैनिक जागरण दूसरे व दैनिक भास्कर तीसरे स्थान पर रहा है।

- राजनितिक समाचारों को सबसे ज्यादा स्थान भी पंजाब केसरी ने दिया है इस समाचार पत्र ने अत्यधिक 17.31 प्रतिशत स्थान राजनितिक समाचारो को दिया है यदि चुने हुए समयावधि में इस समाचार पत्र का औसत स्थान देखे तो यह 15.65 प्रतिशत है।
- पंजाब केसरी में भारतीय जनता पार्टी क 223 समाचार प्रकाशित हुए है प्रथम पृष्ठ पर इस पार्टी के कुल 150 को स्थान मिला है।

उपरोक्त परिणामो से ज्ञात हुआ है कि चुने हुए सभी समाचार पत्रों ने सत्तारूढ़ दल के समाचारों को ज्यादा तवज्जो दी है। प्रथम पेज पर भी ज्यादातर संख्या में सत्तारूढ़ दल भाजपा के समाचारों को ही प्रकाशित किया गया है। साथ ही यह भी देखने को मिला है कि इन सभी समाचार पत्रों ने अपने कुल स्थान का 15 से 18 प्रतिशत का स्थान रजनीतिक समाचारों को दिया है।

संदर्भ सूची

- Geethakumary, V. (2004). "Language of News-Reporting in Indian Language Newspapers:A Study of Malayalam News Reporting". In Language in India, Vol. 4 : 5 May 2004.
- Glaser, S. & Strauss,A. (1967). The Discovery of grounded theory. Chicago:Aldine.
- Graber, D.A. (1990). Media Power in Politics. Chicago: Macmillan.
- Green, Lelia (2001). Communication, society and technology, sage publication: London. Pp3.
- Guha, T. (2008). *ICT in India: bridging the digital divide. Mass communication IN India. New Delhi: Publication division, Ministry of I&B (GOI), Pp 01-17.*
- Hardt, H. (2001) Social Theories of the Press: Constituents of communication Research.
- Iyengar, Shanto (1991). IsAnyone Responsible? How Television Frames Political Issues. University of Chicago Press, Chicago.
- J, D. Halloran et al (1970). Demonstrations and Communications:A Case Study. London, P.313.
- Jensen, K.B. & N.W. Jankowski (1991).A Handbook of Qualitative Methodologies for Mass Communication Research. London: Routledge.
- Jervis, R. (1976). Perception and Misperception in International Politics. Princeton, NJ.: Prinehart & Winston.
- Kerlinger, F.N. (2000). Foundation of Behavioral research (4th edi.), New York: Holt Rinehart & Winston.
- Kohalbacher, F. (2006) vol.7 (1),Art 21.
- Klapper, J.T. (1960). The effect of mass communication. Glencoe: The Free Press. (Pp.19-20).
- Kothari, C.R. (2009). Research Methodology: methods of techniques. New age international publication: New Delhi.
- Kotz, H.J. (1986). Political organization in SouthAfrica:A-Z paperback, University of Stellenbosch.
- Krippendorff, K. (1980), ContentAnalysis:An introduction to its Methodology. Sage, Beverly Hills, Calif.
- Krippendorff, K. (1980). ContentAnalysis an Introduction to its Mythology Beverly Hills: SAGE.
- Lerner, Daniel (1965). The Passing of Traditional Society: New York, Free Press.
- Lincoln, Y. & Guba, E. (1985). Naturalistic Inquiry. Beverly hills, CA: SAGE.
- Manning, P. (2001). News and News Sources,A Critical Introduction. London: Sage.
- McQuail, (1992). Media Performance: Mass Communication and the Public Interest. London: Sage.
- Mc Gurie, Tim (Winter, 2004). Two Perspectives: Reporting WithAttitude.
- Reah, Danuta. (1998). The Language of Newspapers. London: Routledge.
- Sharodar. (1997). *history and international relation theory*
- Shaw, D. & MC Combs, M. (1977). The Emergency ofAmerican Political Issues.
- Thapar and kamatiya. (2013). *ethical issue in the online communication*
- The use of qualitative content analysis in case study research. (n.d.). Retrieved from http://www.qualitative-research.net
- Watson, J. (1998). Media Communication:An Introduction to Theory and Process. London: Macmillan.
- Wimmer, R.D. & J.R. Dominick. (2000). Mass Media Research:An Introduction. CA: Wadsworth Publishing Company.
- Whedon, J. (2007).Astonishing X-Men vol.2

बुद्धकालीन भारत में सामाजिक घटक

अनुज कुमार

ग्राम-मनोरथा, पोस्ट-हवासा, थाना-अशोक पेपर मिल, भाया-आनन्दपुर, जिला-दरभंगा

भगवान बुद्ध का प्रादुर्भाव ईसा पूर्व छट्ठी शताब्दी में होता है। उस समय प्रजा विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त जाल में जकड़ चुकी थी। जन जीवन अस्त-व्यस्त हो चुका था। दूसरे शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि दिग्भ्रान्त जनता के लिए कोई दिशा-निर्देश नहीं मिल रहा है। उस समय के जो भी चिन्तक थे वे स्वयं किसी सिद्धान्त पर अपने को स्थिर नहीं कर पाते थे, जिसका उदाहरण पालि साहित्य के दीघ-निकाय का सामञ्ञल-सुत्त है।[1] ऐसे ही समय में मानवता को एक प्रशस्त मार्ग पर ले चलने के लिए भगवान बुद्ध आते हैं। भगवान बुद्ध का जन्म कोशल प्रदेश के शाक्य गणराज्य में हुआ था। प्रारंभ में शाक्य कोशल के ही अन्तर्गत अवस्थित था, क्योंकि पालि साहित्य में जिन 'सोलह महाजनपदों'[2] की चर्चा हुई है उसमें शाक्य जनपद करके कोई उल्लेख नहीं है। परंतु यह निर्विवाद है कि वह एक राज्य था और कपिलवस्तु उसकी राजधानी थी। कपिलवस्तु के ही शाक्य परिवार में शुद्धोधन के पुत्र के रूप में भगवान बुद्ध जन्म ग्रहण करते हैं जिनका वाल्यकाल का नाम सिद्धार्थ था। इनका नाम सिद्धार्थ इसलिए रखा गया कि महाराज शुद्धोधन को पुत्र-रत्न की प्राप्ति चिर प्रतीक्षा के बाद हुई थी और हिन्दु धर्म में ऐसा विश्वास है कि बिना पुत्र प्राप्ति के मुक्ति या मोक्ष नहीं होता है। इस महामानव सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के विषय में यहाँ उनके कुल, गोत्र, जाति एवं समय की चर्चा करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है।

भगवान् बुद्ध का ऐसा व्यक्तित्व रहा है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का हो उनके सम्पर्क में आकर उनसे प्रभावित नहीं हुआ हो, ऐसा उल्लेख शायद ही मिलता है। इनका व्यक्तित्व एवं उनके धर्म का ऐसा सरल कथन एवं मार्ग था कि बहुजनहित और बहुजनसुख प्रदान किया जाये। वैदिक ऋचाओं में '-सर्व भवन्तु सुखिनः' का शंखनाद किया गया था, लेकिन अक्षरशः पालन नहीं हो रहा था। बुद्ध इसीलिए सभी को कल्याण और सुख देना चाहते थे। लेकिन यह संभव नहीं था। इसलिए उन्होंने भिक्षुओं को यह निदेश दिया था "चरथ भिक्खवं चारिके बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय अत्थाय, हिताय सुखाय देवमनुस्साने।"[3]

बुद्धकालीन भारतीय समाज में जातिभेद पराकाष्ठा पर था। वर्ण-व्यवस्था के बन्धन बड़े ही कठोर हो गये थे। रायस डेविड्स के मतानुसार वर्णो का क्रम क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र था।"[4] अर्थात् उनके मतानुसार क्षत्रिय सर्वश्रेष्ठ थे। रायस डेविड्स ब्राह्मणों द्वारा लिखे उन ग्रन्थों को सत्य प्रमाण नहीं मानते जिसमें ब्राह्मण का क्षत्रियों की तुलना में श्रेष्ठ बतलाया गया है। हाँ, इसके लिए वे बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों को प्रमाण मानते हैं। दीघ-निकाय के अनुसार राजा प्रसेनजित् अपने अधीनस्थ राजा पोक्खरसाति से बातें करते समय बीच में पर्दा लगवा लेता था, क्योंकि क्षत्रिय होने के नाते वे उच्च थे।[5]

बुद्धकालीन समाज में यदि कोई वर्ग कष्टों की पराकाष्टा को झेल रहा था तो वह था शूद्र वर्ण। शूद्र की अवस्था अत्यन्त दयनीय ही है। विभिन्न प्रकार के बन्धनों और नियंत्रणों से वह आबद्ध था। समाज में वह निम्नतम् श्रेणी की सदस्य माना जाता था तथा सेवा करना ही उसका प्रधान काम था। डेए मासक प्रतिदिन को उसकी मजदूरी मानी जाती थी।[6] ऐसी अनेक शूद्र जातियाँ जो अपने पेशे के कारण विख्यात थीं। बुनकर, बढ़ई, लोहार, दन्तकार, कुम्हार आदि का विभिन्न शुद्रीय वर्ग था।[7]

शूद्रों को विभिन्न श्रेणियों से यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन जीवन में उनकी स्थिति पूर्ववत् बनी रही। वे पूर्ण रूप से अधिकार विहीन और सम्मानहीन थे। सामाजिक व्यवस्था में उन्हें निम्न स्तर ही प्राप्त था। समाज में अनेक प्रकार की अंकुश और नियंत्रण उन पर लगाये गये थे, ताकि सामाजिक व्यवस्था में वे किसी प्रकार का व्यवधान न कर सकें।

बुद्धकालीन समाज में कुछ जातियाँ ऐसी भी थीं जिन्हें हीन जाति कहा जाता था। उनकी संख्या पाँच थीं तथा जिनके नाम चांडाल, नेसाद, पुक्कुस, वर्ण तथा रथकार थे। इन जातियों को नीच कुलोत्पन्न कहा जाता था।

उपरोक्त विवेचन से यह अनुमान लगाने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती है कि हीन जातियों का जीवन उस समय के समाज में कितना तिरस्कृत एवं कष्टमय था। उनमें हीन भावना इतनी प्रबल थी कि वे समाज के सामने आने से घबराते थे। समाज का एक बहुत बड़ा अंग मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। समाज में तिरस्कृत मानवीय अधिकारों से वंचित लोगों में आत्मसम्मान की भावना जागृत करने के लिए बुद्ध जैसे समदर्शी एवं पथप्रदर्शक का आविर्भाव होना उस युग में अवश्यम्भावी था। अत: ऐसी जाति व्यवस्था के विरूद्ध बुद्ध ने लोकहित में लौकिक धर्म की धर्म-देशना करते हुए कहा–

"न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणों।
कम्मुना बसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणों।।"[8]

भारतीय समाज इन्हीं सामाजिक संस्थाओं के कारण विश्व के अन्य समाजों से अलग है। अन्य समाजों की तुलना में भारतीय समाज की जो विशिष्टताएँ है, वे अपेक्षाकृत बाध्य कानूनों और नीतियों पर बहुत कम निर्भर करती है। भारतीय सामाजिक संस्थाओं ने व्यक्ति के माध्यम से अनेक ऐसे नियम सदाचरण और प्रथा-परम्परा का सन्निवेश कराया कि उस समाज का प्रत्येक सदस्य सचरित्र और उत्कृष्ट बने। भारतीय सामाजिक संस्थायें वैदिक युग से ही भारत की सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए उन्नतिशील रही है। वैदिक युग में वर्ण-संस्था, आश्रम संस्था, विवाह-संस्था आदि अनेक सामाजिक संस्थाओं का उद्‌गम हुआ और प्रवृतिकाल तक चला आया।[9]

भगवान बुद्ध ने कहा कि मनुष्य न तो जन्म से चाण्डाल होता है और न ब्राह्मण ही, अन्तोगत्वा मानवमात्र में समता है, विभेद तो बाह्य एवं कृत्रिम है। इसकी पुष्टि में उन्होंने यह तर्क रखा है कि क्या उच्चे वर्ण में जन्म पाने से किसी व्यक्ति विशेष के लिए मृत्यु का द्वार बन्द हो सकता है? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कोई भी तो अजर-अमर नहीं है,[10] सभी का अन्त एक ही है, फिर क्यों हम किसी को जन्मना श्रेष्ठ मानें और दूसरे को हेय दृष्टि से देखें? इसी प्रकार विभिन्न तर्कों से भगवान बुद्ध तथा उनके अनुयायियों ने वर्ण तथा जाति-व्यवस्था को व्यर्थ बताने की चेष्टा की। उनका तर्क है कि यदि ब्राह्मणों ने यह व्यवस्था की है कि वेदों का अध्ययन-अध्यापन ब्राह्मणें का कर्म है, राजस्व क्षत्रिय का, कृषि वाणिज्य वैश्यों का तथा सेवा कार्य शूद्रों का, तो इसे हम ब्रह्म वाक्य क्यों मान लें?[11] बौद्ध-दृष्टिकोण से ऐसी व्यवस्था ब्राह्मणों द्वारा अपने स्वार्थ-साधना के लिए, अपनी जीविका के लिए समाज पर लाद दी गई।

अब हमें यह देखना है कि भगवान बुद्ध के प्रयत्न कहाँ तक सफल हुए और व्यवहारिक जगत में उन्होंने जातिवाद का खण्डन किस रूप में किया। बौद्ध-साहित्य का अनुशीलन यह बतलाता है कि तत्कालीन जातिवाद के खण्डन में भगवान बुद्ध को केवल भिक्षु संघ में सफलता मिली।

जातिवाद के खंडन संबंधी भगवान् बुद्ध के उपदेश भिक्षु-संघ के बाहर समाज में प्रभावशाली सिद्ध न हो सके। उनके द्वारा प्रतिपादित नवीन सामाजिक विचाराधारा का तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर कोई प्रभाव न पड़ा। समाज का संगठन यथावत् बना रहा। उपासक के रूप में बौद्ध-धर्म स्वीकार करने का अर्थ अपनी जाति का त्याग कदापि नहीं था। बौद्ध होकर भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ही बने रह जाते थे। इसका यह कारण था कि जो सामाजिक प्रथा प्रबल थी उसका प्रतिकार कठिन था। बुद्ध भी इसमें असफल रहे, यह उनकी शक्ति से बाहर थी। उन्हें भी तत्कालीन सामाजिक ढ़ाँचे को स्वीकार करना पड़ा और तदनुकूल अपने धर्म का भी वे प्रचार करते रहे। यदि उन्होंने यह नियम बना दिया होता कि बौद्ध वही व्यक्ति हो सकता है जो अपने को किसी भी वर्ण अथवा जाति का सदस्य न माने तो बौद्ध धर्म लोकप्रिय हो पाता।[12]

भगवान बुद्ध ने जातिवाद का खंडन तो किया परंतु उनका वास्तविक विरोध उसके तत्कालीन रूढ़ रूप से था। वस्तुत: वे मात्र जन्मना वर्ण के सिद्धान्त के विरोधी जान पड़ते हैं। ब्राह्मणत्व सम्पन्न ब्राह्मण को निन्दा करते हुए हम उन्हें नहीं पाते हैं। वे अब्राह्मणोचित कर्मों में संलग्न तथा गुणहीन ब्राह्मणों को अवश्य विरोध करते थे। वे इसके पक्ष में नहीं थे कि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने मात्र से हम किसी व्यक्ति को श्राप का पात्र मान लें। वास्तव में भगवान बुद्ध ऊँचे-नीच की भावना के विरोधी थे। वे परम्परागत समाज के विरोधी न थे, परंतु उसकी त्रुटियों को दूर कर उस दु:खावस्था का उन्मूलन करना चाहते थे जिसमें जाति-विशेष में जन्म ग्रहण करने के कारण ही मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास तथा उसकी सफलता का मार्ग अवरूद्ध न हो जाये। व्यावहारिक रूप में तत्कालीन सामाजिक संगठन में उनके द्वारा जातिवाद का खंडन यहीं तर्क था।[13]

बुद्ध की दृष्टि में सबका धर्म में समान अधिकार और सम्मानास्पद स्थान है। स्वेच्छानुसार कोई भी इसे अपना सकता है। भगवान् ने कहा जिस प्रकार अनेक नदियाँ-गंगा, यमुना, अचिरवती, सरयू और महीं, महासमुद्र में पड़कर अपने-अपने पूर्वनाम और गोत्र को छोड़ देती है और वे सभी मिलकर महासमुद्र कहलाती है उसी प्रकार नाना जातियों और धर्मों के व्यक्तियों के धर्म में प्रव्रजित हो जाने पर अपने जातिगत अस्तित्व को खो देते हैं और वे सभी समान सम्मान को पाते हैं।[14] चुल्लवग्ग में समागत प्रसंग इसका प्रबल प्रमाण है। यहाँ वर्णन है कि भगवान् बुद्ध ने युगपत् उपस्थित भद्दीय, अनुरूद्ध, आनन्द, भृगु, बिम्बिल और देवदत्त आदि छह शाक्य राजकुमारों को छोड़कर सर्वप्रथम नीच जाति में उत्पन्न उपालिनापित को प्रव्रजित किया था।[15] उन्होंने ऐसा इसलिए किया था जिससे शाक्यों के शाक्य होने का जो अहंकार था, वह मर्दित हो जाय। दोक्षाक्रम में उपालि शाक्य राजकुमारों से उग्र एवं पूज्य बन गए। संघ को नियमानुसार शाक्यकुल में प्रव्रजित उक्त भिक्षुकुमारों को उपालि का अभिवादन और प्रत्युत्थान आदि करना अनिवार्य हो गया। इतना ही नहीं, बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन से भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि बुद्ध की शरण में आए हुए नाना जातियों और धर्मों के व्यक्तियों को समुचित आदर, सम्मान एवं आतिथ्य प्राप्त था, वे सभी समानभाव से एक ही आसन पर बैठे हुए दिखलाई देते हैं। यही सामाजिक समानता बौद्ध दर्शन की अपनी विशिष्ट देन है।

भगवान बुद्ध और इनके शिष्यों में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं था, इसी कारण वे सभी व्यक्तियों के घरों से भिक्षा ग्रहण करते थे, चाहे वे भले ही निम्न जाति के ही क्यों न रहे हों। स्वयं कभी राजा बिम्बसार के राजदरबार में भिक्षा लेते हुए नजर आते हैं तो कभी वे नीच चाण्डाल जाति के व्यक्तियों के झोपड़पट्ठियों से भिक्षा ग्रहण करते हुए देखे जाते हैं। जिन दिनों भगवान् वैशाली गणराज्य में विहार पर थे उन्हीं दिनों वहाँ उन्होंने लिच्छवियों के निमंत्रण को अस्वीकार कर समाज में हेय दृष्टि से देखी जाने वाल वेश्या आम्रपालि के घर का भोजन स्वीकार कर उसे भी कल्याण मार्ग में नियुक्त किया था।[16] ऐसे ही उन्होंने अपना अंतिम भोजन भी निम्न जाति के चुन्द नामक कम्मकार के यहाँ किया था।[17] नि:संदेह इससे सभी वर्गों और धर्मों के प्रति भगवान् का मैत्री एवं बन्धुत्व भाव स्पष्ट झलकता है।

इस प्रकार भगवान बुद्ध का समस्त दर्शन समाज कल्याण में सदैव तत्पर दिखलायी देता है। उनके द्वारा उपदिष्ट आर्य अष्टांगिक[18], मार्ग में जहाँ सम्यक्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यक्स्मृति और समयक्समाधि को मानव हितकारी धर्म कहा जा सकता है, वहीं सम्यक्वचन, सम्यक्कम, सम्यक् आजीव और सम्यक् व्यायाम (प्रयत्न) ये सभी समाज हितकर कार्य हैं। सम्यक् आजीव (आजीविका) और सम्यक् धर्म (दृष्टि) की यह यथार्थ भावना ही व्यक्ति को समाज में उचित कर्म करने की प्रेरणा देती है।

भगवान बुद्ध ने आनन्द को सम्बोधित करते हुए वज्जीगण के विषय में जो कुछ कहा था वह तो आज भी गणतंत्र राष्ट्रों के लिए अमूल्य संदेश है। गौतम बुद्ध ने उन्हें सात अपरिहाणिय[19] (अर्थात्, न त्यागने योग्य, अनिवार्य रूप से ग्रहण करने योग्य) धर्म के रूप में स्पष्ट समझाया है।

जिनमें मानव कल्याण की भावना निहित है। इस तरह बौद्ध दर्शन व्यक्ति (मानव) और समाज के सम्बन्धों के प्रति सदैव जागरूक है, उसका लक्ष्य मात्र निर्वाण लाभ ही नहीं है अपितु जनहित एवं समाज कल्याण पहले है। इसी समाज कल्याण का समत्त्व की मनोज्ञ भावना में ही विश्वकल्याण निहित है।

निष्कर्ष

भारतीय हिन्दू समाज जातियों के अनेक समूहों और वर्गों में विभाजित है जो अपने प्रतिष्ठा अनुसार सामाजिक आचार-विचार रहन-सहन और व्यवहार में भी पृथक है। प्राचीनकालीन भारतीय समाज विभिन्न समूहों में था जिनकी अपनी विशिष्टताएँ थीं जो कालान्तर में जातियों के रूप में विकसित हुई। जातियों के विकास के साथ-साथ अनेक सामाजिक संस्थाओं का भी निर्माण हुआ जो भारतीय जीवन की विधियों को व्यक्त करती है, जिसके माध्यम से आचार-विचार, रीति-रिवाज, ज्ञान-दर्शन आदि का पता सामाजिक विभाजन से ही लगता है। बाद में विकसित होने वाली सामाजिक संस्थाएँ जीवन को उद्घाटित करने की मूल प्रेरक तत्व बनीं। कालान्तर में विविध पक्षों से संबंधित सामाजिक संस्थाओं का गठन और विकास प्रारंभ हुआ, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न नियमों और निषेधें से समाज को पूर्णता प्रदान की गई। परिणामस्वरूप मानव जीवन के अभीष्ट की प्राप्ति में उसकी क्रियाशीलता का सर्वाधिक महत्व है जो उसके आदर्श और व्यवहार को सम्पुष्ट करती है।

स्रोत संदर्भ सूची

1. दीघ-निकाय का साम0 सु0, पृ. सं. 45– 52, नालन्दा संस्करण।
2. अंगुत्तर-निकाय-जिन्द चौथी, पृ. 252, 256, 260 (अट्ठक निपात)
3. महावग्ग-पृ. 23
4. बुद्धिस्ट इण्डिया-पृ. 53, 60, 61
5. दीघ-निकाय (हि0 अनु0), पृ. 41
6. जातक-3, पृ. 326
7. दीघ निकाय-1, पृ. 3: धम्मपद 80: जातक पृ. 189: मज्झिम निकाय-2, पृ. 18, भाग 3, पृ. 118
8. सुत्तनिपात बसलसुत्त 121
9. डॉ. पूनम कुमारी, बुद्धकालीन भारत, नन्द किशोर सिंह, जानकी प्रकाशन, अशोक राजपथ चौहट्ठा, पटना, 2005, पृ. 91
10. विमानवत्थु 4/13/15: पेतवत्थु, 2/6/12
11. जातक, 6, पृ. 808
12. उपर्युक्त
13. मज्झिम-निकाय-3, पृ.7 177: अंगुत्तर निकाय, 4, पृ. 129-34, 4, पृ. 190-91
14. सेय्ययापि, भिक्खवे, या काचि महानदियो, सेय्यथीदं-गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही ता महासमुद्दं पत्त्वा जहन्ति पुरिमानि नामगोत्तानि, महासमुद्दो, त्त्वेव सङ्खं गच्छन्ति, एवमेव खो भिक्खवे चत्तारो वण्ण-खत्तिया, ब्राह्मणा, वैष्सा, सुद्दा ते तथागतप्पवेदिते धम्मविनये अगारस्मा अनगारियां बब्बजित्त्वा जहन्ति पुरिमानिक नामगोत्तानि, समणा सक्यपुत्तिया त्त्वेव सङ्खं गच्छन्ति। अच्छरियो अब्भुतो धम्मो, यं दिस्वा दिस्वा भिक्खू इमस्मिं धम्मविनये अभिरमन्ति। उदान, 5, उपोसथसुत्त, पृ. 127
15. चुल्वग्ग, पृ. 279
16. 'अथ खो ते लिच्छवी भगवन्तं एतवोचुं-अधिवासेतु नो भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खु सङ्येनाति। अथ खो भगवा ते लिच्छवी एतदवोच-अधिवत्थुं खो, में, लिच्छवी, स्वातनाय अम्बपालिया गाणिकाय भत्तंति।' दीघनिकाय 2/ 3/8 (अम्बपालीगणिका)
17. 'चुन्दस्स भत्तं भुञ्जित्तवा कम्मारस्सा ति में सुतं।' दीघनिकाय 2/3/19
18. वही, 2/311, मज्झिम निकाय 1/49, संयुत्तनिकाय 5/8-10, विभंग 104, विसु0 16/13
19. महापरिनिव्वाणसुत्त, वज्जीनं सत्त अपिंरिहानिया धम्का, 1

समकालीन हिंदी काव्य यात्रा 1975 से 1990

अरमान आनंद

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

समकालीन हिन्दी कविता का आरम्भ 1975से माना जाता है। 1990 समकालीन हिन्दी कविता के लिए बड़ा टर्निंग पॉइंट है। इसके बाद की कविता अधिक जिम्समेदार रूप में सामने आती है। सोवियत पतन, नेहरु युग की समाप्ति के साथ ही साथ कविता में विषयों को लेकर बड़ा बदलाव आ जाता है। इसमें जमीनी विमर्शों की शुरुआत होती है। विभिन्न अस्मिता मूलक आंदोलनों का जन्म होता है लेकिन 1990 के बाद की समकालीन कविता को समझने के लिए आवश्यक है कि उससे पहले 1975 से 90 तक कि समकालीन कविता को समझ लिया जाए। समकालीन हिन्दी कविता की यात्रा 1975 से 1990 शीर्षक इस शोध पत्र में इसी दौर की कविता का अध्ययन विश्लेषण करने की कोशिश करेंगे।

पृष्ठभूमि

समकालीन हिन्दी कविता में युवा पीढ़ी अपना नया सृजनात्मक मुहावरा लेकर आई। इसकी पृष्ठभूमि में था सन 60 और उसके बाद का समय, समाज और राजनीतिक व्यवस्था। चीन और पकिस्तान से युद्ध, नेहरु का अवसान। हिन्दुस्तान के समाज की अव्यवस्था। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद उम्मीद थी कि आकांक्षाओं के अनुरूप भारत बदलेगा। एक स्वस्थ और वैज्ञानिक सोच से संपन्न भारत का निर्माण होग। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। 50 का दशक मोहभंग के दशक के नाम से जाना जाता है। युवा-पीढ़ी की व्यग्रता बेचैनी स्वाभाविक थी। वह इस विघटित होते परिवेश के प्रति क्षोभ, क्रोध या आक्रोध से युक्त थी। देश-विदेश की परिस्थितियों से प्रेरित हो वह फूट पड़ी। भूखी पीढ़ी, वीर कविता, अकविता, युयुत्सावादी कविता आदि अनेक नाम रूपों में वह कविता बह निकली। इसका केंद्र बिंदु था परम्परागत रुढियों और संस्कारों के प्रति क्षोभ, रुढ़िवादी मानसिकता से विद्रोह तथा सामजिक निषेधें से मुक्ति। उसका मुख्य मुद्दा है स्वतंत्र यौनाचार की मांग। प्रसिद्ध समीक्षक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह के शब्दों में कहें–"उसे लगता है सारे पाप की जड़ उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व नहीं, बल्कि वह सामाजिक निषेध है जिसके नीचे दबकर वह यौन स्वच्छन्दता का प्रयोग नहीं कर पाता। वह जड़ को नहीं देखता डाल-पात को देखता है व्यवस्था की असंगतियों के प्रति सतही दृष्टि होने के कारण वह एब्स्टर्डबोध को ही इतिहास का अग्रगामी चरण मान बैठता है।[1]

कविता के अंत और पुनः 1980 में अशोक वाजपेयी द्वारा कविता की वापसी की घोषणा भी हुई।[2] हालाँकि कविता की वापसी के इस नारे पर भी मतभेद हैं, क्योंकि एक बड़ा वर्ग ऐसा भी था जिसने कविता के अंत को स्वीकार नहीं किया था। इतिहास का अंत और कविता का अंत जिस विचार दर्शन से आया है भारतीय कवि उसे स्वीकार नहीं कर सकता। इस विचार-दर्शन में पूँजीवाद के अंत की बात नहीं है, बाजारवाद के अंत की बात नहीं है।[3] समकालीन कविता का कवि इतिहास को स्वीकार करता है।[4] समकालीन कविता इतिहास के अंत की कविता नहीं है। साठोत्तरी कविता के संपादक सलिल गुप्त ने कहा है–"साठोत्तरी कविता का कथ्य आत्मसंचेतन या सेक्स न होकर आत्म्विस्फोट है, साठोत्तरी कविता का 'मैं' वैयक्तिक न होकर सामूहिक है। साठोत्तरी कविता घुटन और संघर्ष से जन्मी है। वह प्रतिक्रिया है जो मरी हुई परम्पराओं, विचारों, प्रणालियों, के विरुद्ध क्रांति का आवाह्न करती है।[5]

साठोत्तरी कविता के इस उथल-पुथल भरे दौर में राजनीति की धारा भले ही क्षीण हुई हो और यौनिकता कविता के केंद्र में हो परन्तु हिन्दी साहित्य के मील का पत्थर मानी जाने वाली रचनाएँ भी इस दौर में आई जिसने समकालीन कविता के उद्देश्य निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी दरम्यान चाँद का मुंह टेढ़ा है (संग्रह) 1964, कुआनो नदी (1970), संसद से सड़क तक

(1972), जैसी रचनाएँ भी आयीं, जो सामाजिक और राजनैतिक प्रतिबद्धता से लबरेज थीं। इस समय प्रमुख रूप से लिखने वाले कवि थे-राजकमल चौधरी, धूमिल, चंद्रकांत देवताले, विष्णु चन्द्र शर्मा, विनय, बलदेव वंशी, नरेंद्र मोहन, विजेंद्र, सौमित्र मोहन, लीलाधर जगूड़ी, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, ऋतुराज, सुरेश ऋतुपर्ण, अवधोश कुमार व्यास, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश भारती, नन्द किशोर आचार्य, श्रीराम शर्मा, राजेन्द्र किशोर, राजेश जोशी, राजीव सक्सेना, अशोक वाजपेयी, रमेश कौशिक, कुमार विमल, अक्षय उपाध्याय, मंगलेश डबराल, अजित कुमार, अरुण कमल, विष्णु नागर, बिनोद भरद्वाज, सतीश जमाली, श्रीराम शुक्ल, ललित शुक्ल, जीवन शुक्ल, सुरेश, सलिल गुप्त, अरुण त्रिवेदी, रंजन अधीर, बिनोद तरुण, शतदल, सोनवलकर, मनोज सोनकर इत्यादि। इनमें से अधिकांश कवि समकालीन कविता के हस्ताक्षर बने।

1967 में नक्सलबाड़ी आन्दोलन और 1975 में आपातकाल की घोषणा के साथ भारतीय राजनीति में भूचाल आ जाता है। जयप्रकाश आन्दोलन को भारत की जनता युग परिवर्तन की दृष्टि से देख रही थी। इसका असर साहित्य पर भी जोरदार पड़ा। साठोत्तरी कविता में जिस राजनीति की धारा मंद हुई थी वह अब अपने पूरे शबाब पर थी। नक्सलबाड़ी आन्दोलन के प्रमुख कवि धूमिल (हालांकि धूमिल वामपंथी नहीं थे, फिर भी उनकी रचनाओं में हथियारबंद आन्दोलन का प्रभाव दिखता है। अपनी कविताओं में वे संसद, लोकतंत्र, कानून, व्यवस्था पर सवाल खड़े करते हैं।), आलोकधन्वा (गोली दागो पोस्टर, जनता का आदमी), गोरख पाण्डेय, नागार्जुन (प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का, भोजपुर आदि) त्रिलोचन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (किस्टा गौड़ और भूमैया की फांसी के विरोध में कवितायें लिखीं) आदि रहे। इस धारा का विकास वीरेन डंगवाल, कुमार विकल, दिनेश कुमार शुक्ल, पंकज सिंह आदि कवियों में दिखता है। आपातकाल का असर भी समकालीन हिंदी कविता पर खूब पड़ा। वहाँ लोकदेव नेहरु कहने वाले रामधारी सिंह दिनकर ने जयप्रकाश को भारतीय राजनीति का पुरोधा घोषित कर दिया। यह एक बड़ा परिवर्तन था। आपातकाल पर कमोबेश सभी तत्कालीन हिंदी कवियों ने लिखा। नागार्जुन ने 1974 में बाघिन, 'इंदु जी-इंदु जी क्या हुआ आपको', 1976 में चंदू मैंने सपना देखा जैसी कविताएँ लिखीं और इस क्रांति से मोह-भंग होने पर उन्होंने खिचड़ी विप्लव देखा हमने जैसी कविताएँ भी लिखीं।

खिचड़ी विप्लव देखा हमने
भोगा हमने क्रांति विलास
अब भी खत्म नही होगा क्या
पूर्ण क्रांति का भ्रान्ति विलास।[6]

कभी नक्सलवाड़ी आन्दोलन के रंग में भीगने वाले बाबा नागार्जुन का मोह जब माओ से टूटा तब उन्होंने लिखा–

यह माओ कौन है, बेगाना है यह माओ
आओ इसकी नफरत को थूकों से नहलाओ।[7]

समकालीन दौर से पूर्व की कविताओं की प्रवृति पर चर्चा करते हुए विजय कुमार लिखते हैं–अभी निकट अतीत में हमने कवियों में दो प्रवृत्तियाँ देखी थी। कवि या तो इस समाज के हालात से पूरी तरह निराश होकर आत्महनन या सिनिनिज्म की राह पकड़ता था या फिर एक ऐसी सरल राजनीतिक समझ उसे तुरंत हासिल हो जाती थी, जहाँ बिना किसी संशय के बिना किसी दुविधा के, बिना किसी आत्मपरीक्षण के कविता को तुरत-फुरत एक हथियार समझ लिया जाता था। कहना न होगा कि ये दोनों प्रवृत्तियाँ प्रकारांतर से कविता के अंत:संघर्ष को खारिज कर देती थीं। एक का सन्दर्भ यदि समाज की सड़न को ओझल कर कवि के निषेधात्मक व्यक्तित्व को ही इतना बड़ा बना देना था कि बाकि सारे तत्व गौण हो जायें तो दूसरे प्रकार की कविता जीवन को बेहतर बनाने की कामना करते हुए भी दिलचस्प अंतर्विरोध भी दिखाई पड़ते थे। मसलन कवि एक क्षण में कविता को गोलाबारूद बना देना चाहता था तो दूसरे क्षण पूछता था "इस ससुरी कविता से जबरन एक चोली बन सकती है, न एक कमीज तो मैं इस कविता का क्या करूँ।[8] 1975 के बाद जो समकालीन कविता बनती है उसमे जो एक खास बात है वह यह कि यह दो जन आंदोलनों का हश्र देख चुकी कविता है। स्वतंत्रता के बाद का मोहभंग, हथियार बंद नक्सलबाड़ी आन्दोलन और जन आंदोलनों से मोहभंग की निराशा और अवसाद समकालीन कविता को परम्परागत रूप से उपहार में मिली थी। लेकिन सिर्फ इतना ही था यही नहीं कह सकते प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की धारा थी, मार्क्सवादी आलोचकों और संपादकों का एक बड़ा तबका था जो जनधर्मिता को बचाए हुए था। कविता हार मानने को तैयार नहीं थी। वर्चस्व के खिलाफ वह जब-तब उठ खड़ी होती थी।

1975 के बाद की समकालीन कविता ने जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया वह यह था कि समाज का जो भी वर्चस्वशाली तबका था उसे इसने सीधे तौर पर निशाने पर लिया। 'ये कविताएँ नयी कविता और अकविता से अलग हट कर सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हैं। प्रचलित भाषा में इन्हें प्रगतिशील स्वर की कवितायें कह सकते हैं। इनका संसार आम आदमी के सुख-दुःख, आज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, विसंगतियों से और यथास्थिति के विपरीत मूल्यों की अकुलाहट से बना है। यह दुनिया प्रगतिशील चेतना की होती हुई भी पिछली प्रगतिवादी कविताओं की दुनिया से अधिक जटिल और गहरी है, अधिक काव्यात्मक है। इसमें अभिव्यक्ति की सादगी भी है और काव्यात्मक सांकेतिकता भी।[9] समकालीन कविता के इस दौर में स्त्री, दलित, आदिवासी आदि विमर्शों का जो सिलसिला चला उसने भारतीय समाज में व्याप्त क्रमशः पितृ सत्ता, ब्राह्मण सत्ता और अभिजात्य समाज की सत्ता की जड़ें नोचने में कामयाब रहा। विजय कुमार लिखते हैं–"ये अभिव्यक्तियाँ शोषक शक्तियों के एक समग्र और कामचलाऊ बोध को लेकर सामने नहीं आयी हैं, बल्कि शोषक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों, रूपों और कार्यप्रणाली की भी पहचान करती नजर आती हैं। इस समूचे संघर्ष में वे बिचौलिया वर्ग की भूमिका खारिज करती हुई बहुत ठोस और बुनियादी मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रही हैं। कहीं अछूत और पिछड़ी जातियों का मुद्दा लेकर, कहीं स्त्री मुक्ति की आवाज उठातीं, कहीं दलित वर्ग के मोर्चे पर सामाजिक शोषण को आर्थिक शोषण की प्रक्रिया से जोड़ने की समझ पैदा करती हुई, कहीं बंधुआ मजदूरों और छोटे किसानों को संगठित करती हुई, कहीं पर्यावरण और वन्य संरक्षण के प्रश्न को मनुष्य की समूची अस्मिता से जोड़ती हुई तो कहीं अभिव्यक्ति की आजादी और नागरिक अधिकारों के सवाल पर संघर्ष करती हुई प्रकट हुई हैं। इन अभिव्यक्तियों ने न केवल सोच में परम्परागत राजनीतिक मुहावरेबाजी को अपदस्थ किया है, बल्कि सत्ता अधियाचन की धारणा से आगे जाकर क्रांति और बदलाव के अर्थों को पुनः परिभाषित करना आरम्भ किया है।"[10]

समकालीन कविता की तीन प्रमुख प्रवृतियाँ दिखतीं हैं–

1. मध्यवर्गीय समाज की सोच और समस्याओं का चित्रण।
2. राजनीतिक उथल-पुथल के बीच प्रतिरोध की विचारधारा का सृजन और विस्तार।
3. दलित आदिवासी और स्त्री जैसे अस्मितामूलक विमर्शों का उत्थान।

समकालीन हिंदी कविता के निर्माण में लगा हुआ मस्तिष्क मध्यवर्गीय है। भारत में हो रहे आर्थिक विकास का असर समाज पर हो रहा था इसलिए निम्न मध्यवर्ग में तब्दील हो रहे थे। गाँव के किसान बेहतर जीवन की तलाश में शहर का रुख कर रहे थे। शहर में औद्योगिक सभ्यता अपने पाँव पसार रहा था। औद्योगिक सभ्यता की पहली मांग है व्यक्ति समाज में रहते हुए भी स्वयं केन्द्रित हो, इसलिए वह इस कड़ी में संयुक्त परिवार को अनावश्यक और बोझ बताता है। समकालीन हिंदी कविता में इस बढ़ते एकाकीपन, छूटते गाँव और परिवार का चित्रण हुआ है। साथ ही उद्योगों के निर्माण से कृषि सभ्यता के पतन से बड़ी संख्या में मजदूरों और विस्थापितों का संकट उभर कर सामने आया है। किसानों के खेत चले जाने से उनका स्थायित्व समाप्त हो गया है। ऐसे जन संकटों को अपना विषय बनाकर कविता ने स्वयं को जनवादी घोषित किया। 'अपने व्यापक और उदार रूप में जनवादी कविता आज की कविता है। यदि एक ओर उसमें प्रचारवादी और नारेवादी तमाम असमर्थ कवि और लेखक हैं, तो दूसरी ओर मुक्तिबोध की परम्परा के अनेक समर्थ कवि और लेखक भी हैं, जो आम आदमी की जिन्दगी के खुले कथ्य और काव्य-शिल्प दोनों की समान चिंता करते हैं और इसमें बिना ठप्पा वाले अच्छे कवि और लेखक काफी दूर तक शरीक हैं। यह काफी आश्वस्तिकारी बात है।'[11]

समकालीन कवियों ने समय-समय पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले राजनीतिक उथल-पुथल को भी अपनी कविता का विषय बनाया है। समकालीन कविता की विशेषता रही है कि परिस्थितियों में उसने प्रतिरोधी चेतना को अपनाया है। 1990 के बाद की समकालीन कविताओं में इसी चेतना का विकास मिलता है। सितम्बर 1988 में 'मारे जायेंगे' शीर्षक कविता में राजेश जोशी ने सत्ता के विपक्ष में खड़े होने पर आसन्न संकटों की तरफ इशारा किया है।

जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे
मारे जायेंगे
कटघरे में खड़े कर दिए जायेंगे, जो विरोध में बोलेंगे
जो सच-सच बोलेंगे, मारे जायेंगे
जो अपराधी नहीं होंगे मारे जायेंगे।[12]

रघुवीर सहाय, नागार्जुन, ज्ञानेंद्रपति, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, आदि लगभग उस दौर के सभी कवियों ने तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल को कविताओं का आधार बनाया। समकालीन कविता की राजनीतिक चेतना को लेकर विजय कुमार कहते हैं-'भारतीय समाज में एक रचनाकार के परिवेश को हम देखें तो साफ नजर आता है कि इधर के वर्षों में एक आम भारतीय नागरिक का राजनीतिक ढाँचे के प्रति अधिकाधिक मोहभंग हो गया है पर इसका असर आज के रचनाकार ने यह नहीं लिया है कि उसका रचनाकर्म ही गैर राजनीतिक या राजनीति निरपेक्ष हो जाये। बल्कि इसका उलट ही सच हुआ है कि आज की हिन्दी कविता अभूतपूर्व ढंग से राजनीतिक चेतना से संपन्न कविता है।'[13]

समकालीन कविता जगत में 1975 से 1990 के बीच एक सौ से अधिक संग्रह प्रकाश में आये उनमें से प्रमुख संग्रह हैं–त्रिलोचन-ताप के ताए हुए दिन 1980, उस जनपद का कवि हूँ 1981, तुम्हें सौंपता हूँ 1985, फूल नाम है एक 1985, सबका अपना अपना आकाश 1987, (इसमें से कुछ संग्रहों में उनकी पुरानी कवितायें भी हैं।) केदार नाथ सिंह-जमीन पक रही है 1980, यहाँ से देखो 1983, बाघ 1986, अकाल में सारस 1988 केदारनाथ अग्रवाल–हे मेरी तुम 1981, मार प्यार की थापें 1981, कहें केदार खरी-खरी 1983, बम्बई का रक्त स्नान 1983, जमुन जल तुम 1984, अपूर्वा 1984, बोले बोल अबोल 1985, जो शिलाएँ तोड़ते हैं 1985 शमशेर बहादुर सिंह–चुका नहीं हूँ मैं 1975, इतने पास अपने 1980, बात बोलेगी 1981, टूटी हुई बिखरी हुई 1990 अज्ञेय–पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ 1976, नदी की बांक पर साया 1981, ऐसा कोई घर देखा है आपने 1986, हरी घास पर क्षण भर, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, महावृक्ष के नीचे, बावरा अहेरी गिरिजा कुमार माथुर–वर्तमान 1979, कल्पान्तर 1983, मैं वक्त के सामने हूँ 1990 धर्मवीर भारती-सात गीत वर्ष 1976 भवानी प्रसाद मिश्र-चकित है दुःख 1977, खुशबू के शिलालेख, इदंमम भारतभूषण अग्रवाल-एक उठा हुआ हाथ 1976 देवराज-सुबह के बाद 1975, आहत आत्माएं 1978 जगदीश चतुर्वेदी-इतिहासहन्ता 1980, नए मसीहा का जन्म 1988 नरेश मेहता-तुम मेरा मौन हो 1983, अरण्या 1985, प्रार्थना पुरुष 1985 रघुवीर सहाय-लोग भूल गए हैं 1982, हंसो हंसो जल्दी हंसो, कुछ गलत पते की चिट्ठियाँ 1989 नागार्जुन-हजार हजार बाँहों वाली 1981, पुरानी जूतियों का कोरस 1983, इस गुब्बारे की छाया में 1989 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना-जंगल का दर्द 1976, कुआनो नदी, खूंटियों पर टंगे लोग 1982, कोई मेरे साथ चले 1985 कैलाश वाजपेयी-महास्वप्न का मध्यांतर 1980 लीलाधर जगूड़ी-घबराये हुए शब्द-1981 सौमित्र मोहन-लुकमान अली तथा अन्य कविताएँ 1978 विनय-पुनर्वास का दंड 1978 नरेंद्र मोहन-कहीं भी खत्म नहीं होती कविता 1978, इस हादसे से 1975, सामना होने पर 1979, एक अग्निखंड जगहें बदलता 1983, हथेली पर अंगारों की तरह 1990 केशव कालीधर-समर्था-रति 1988 नन्द किशोर आचार्य-जल है जहाँ 1980, वह एक समुद्र था 1982, शब्द भूले हुए 1987, आती है जैसे मृत्यु 1990 विष्णु नागर-तालाब में डूबी छह लड़कियाँ 1978 मंगलेश डबराल-पहाड़ पर लालटेन 1981 राजेश जोशी-एक दिन बोलेंगे पेड़ 1980 सतीश धर-कल की बात 1981 सुरेश ऋतुपर्ण-अकेली गौरैया देख 1980 नन्द किशोर आचार्य-जल है जहाँ 1980 अम्बिका दत्त-जहाँ लोग खड़े हैं 1987 केवल गोस्वामी-एक नदी की देहगाथा 1989 नईम-पथराई आँखें 1980

डॉ. नगेन्द्र चौरसिया-कविता उनके लिए है 1984 रामदरश मिश्र-कंधो पर सूरज 1977, दिन एक नदी बन गया 1984, मेरे प्रिय गीत 1985, बाजार को निकले हैं लोग 1986, जुलूस कहाँ जा रहा है 1989 कुमार रवीन्द्र-आहत है वन 1984, चेहरों के अंतरीप 1987, लौटा दो पगडंडियाँ 1990 चंद्रकांत देवताले-लकड़बग्घा हंस रहा है 1981, रोशनी के मैदान में 1982, आग हर चीज में बताई गई थी 1987 कैलाश वाजपेयी-महास्वप्न के मध्यांतर 1980 अशोक वाजपेयी-एक पतंग अनंत में 1984, अगर इतने से 1986, तत्पुरुष 1989

विष्णु खरे-खुद अपनी आँख से 1978 विपिन कुमार अग्रवाल-आदिहीन अनंत यात्रा 1987 अजीत कुमार-घरौंदा 1987 श्रीकांत वर्मा-मगध 1984, गरुड़ किसने देखा है 1987 जगदीश गुप्त-आदिम एकांत 1980, माँ के लिए 1990 लक्ष्मीकान्त वर्मा-दीप देहरी द्वार विमल कुमार सर्जना के स्वर 1896, युग मानव बापू 1987 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी-साथ चलते हुए 1976, बेहतर दुनिया के लिए 1985 डॉ. ओम प्रकाश सिंह-सर्जना के पंख 1993, गीत मेरे गीत 1995 अमृता भारती-मिट्ठी पर साथ साथ 1976, मैंने नहीं लिखी कविता 1978, आज या कल या सौ बरस बाद 1979 सुनीता जैन-हो जाने दो मुक्त 1978, कौन सा आकाश 1978 दुर्गावती सिंह-पत्तियों के बीच से 1981 स्नेहमयी चौधरी अपने खिलाफ 1982 सरला भटनागर-सात देवरों वाली भाभी 1970 डॉ. सरोजिनी प्रीतम-हंसिकाएँ 1982 कुसुम अंचल-धुएँ का सच 1980 डॉ. कमल कुमार-बयान 1981, गवाह 1989 पुष्पलता कश्यप-दर्द के आस-पास 1981 शांति सुमन-परछाई टूटती 1978, सुलगते पसीने 1979, पसीने के रिश्ते 1980, मौसम हुआ कबीर 1985 जवाहर लाल कौल-दिवा स्वप्न 1977 बुद्ध संघ प्रेमी-प्रेमी की लड़ियाँ 1981 सोहन पाल सुमनाक्षर-अन्ध समाज बहरे लोग 1984 नवेन्दु

महर्षि-कामना 1979 डॉ. धर्मवीर-हीरामन 1987 पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी-द्वार पर दस्तक 1988 ओम प्रकाश वाल्मीकि-सदियों का संताप 1989 मोतीलाल संत-समय की पुकार प्रकाशन वर्ष 1980, से 1984, के बीच कुमार प्रदीप (संपादक)– जनवादी कविताओं का संग्रह नई फसल 1989 पीड़ा जो चीख उठी 1988 भारतीय दलित साहित्य मंच (संपादक का नाम उद्धृत नहीं है)

कुछ कवियों की पुरानी रचनाओं के संकलन और कुछ के मरणोपरांत संकलन भी आये कुछ ऐसे कवि भी थे जो लिख रहे थे परन्तु उनकी रचनाओं में समकालीन दौर के अनुसार परिवर्तन नहीं आया। अतः ये ऐतिहासिक दृष्टि से उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं।

महादेवी वर्मा-अग्निरेखा-1990 असंकलित कवितायें-निराला 1981 वाणी की व्यथा-शिवमंगल सिंह सुमन 1980 हरिवंशराय बच्चन-सोऽहं हंसः 1981 भगवतीचरण वर्मा-सविनय और एक नाराज कविता 1984 रामविलास शर्मा-सदियों के सोये जाग उठे 1988, इस अकाल वेला में 1988, बुद्ध वैराग्य तथा प्रारंभिक कवितायें 1997

समकालीन कविता में स्त्री विमर्श की शुरुआत अमृता भारती, प्रभा खेतान (अपरिचित उजाले 1981, सीढियाँ चढ़ती हुई मैं 1982 एक और आकाश की खोज में 1985 कृष्णधर्मा मैं), सुनीता जैन (एक और दिन 1983, रंग-रति 1986), दुर्गावती सिंह, सरला भटनागर, स्नेहमयी चौधरी (संग्रह-अपने खिलाफ 1982), डॉ. सरोजिनी प्रीतम, कुसुम अंसल (धुंए का सच 1980, विरूपिकरण 1986), डॉ. कमल कुमार, पुष्पलता कश्यप, शांति सुमन, अनामिका, कात्यायिनी, सविता सिंह, निर्मला गर्ग सहित अनेक समकालीन दौर की कवयित्रियाँ रही हैं, जिन्होंने अपनी अस्मिता की रक्षा और बराबरी की मांग के लिए अनेक कवितायें लिखी हैं।

आधुनिक काल में श्री कमलेश्वर ने सारिका के दो दलित साहित्य विशेषांक 1975 में सम्पादित कर हिन्दी साहित्यकारों को दलित साहित्य से परिचय करवाया। इसके उपरांत डॉ. महीप सिंह ने भी "संचेतना'' का एक अंक "दलित साहित्य अंक'' 1980 में सम्पादित किया था, जिससे हिन्दी की मुख्य धारा के साहित्यकारों ने इस नव्य साहित्यधारा को जरा आश्चर्य से देखा, जबकि इसके पूर्व "निर्णायक भीम'' आदि पत्र पत्रिकाओं में भी दलित साहित्य छप रहा था। यहाँ तक स्पष्टतः कोई प्रभावी साहित्यिक आन्दोलन जैसा दिखाई नहीं दे रहा था, लेकिन 1980 के आस-पास हिन्दी में बकायदा दलित साहित्य आन्दोलन की शुरुआत हुई। चमनलाल भी हिंदी में दलित साहित्य की अवधारणा का उभार 1980 से मानते हैं लेकिन उनके तर्क थोड़े भिन्न हैं वे लिखते हैं- "1980 के बाद या सदी के अंतिम दशक में हिंदी में दलित साहित्य की अवधारणा विकसित हुई, जिससे बीसवीं सदी की हिंदी कविता को इस दृष्टि से आंकने का प्रयत्न शुरू हुआ। इस दिशा में माताप्रसाद ने हिंदी काव्य में दलित धारा की शुरुआत की। 1993 में प्रकाशित इस पुस्तक में हिंदी काव्य में समय-समय पर अभिव्यक्त दलितों के जीवन पर 'फोकस' कविता का विश्लेषण किया गया।[14] दलित कविता के क्षेत्र में नागार्जुन के योगदान को रेखांकित करते हुए मैनेजर पाण्डेय कहते हैं–"पिछले एक दशक से दलित साहित्य के आन्दोलन के उभार के साथ दलित जीवन की पीड़ा, यातना और संघर्ष पर बहुत सारी कविताएँ लिखी गई हैं, लेकिन इस आन्दोलन के पहले की हिन्दी कविता में दलित जीवन के दुःख-द्वन्द और संघर्ष की उपस्थिति नहीं के बराबर है। इस सच्चाई को ध्यान में रखिये तो 1977 में लिखी नागार्जुन की कविता "हरिजन गाथा'' हिंदी कविता की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इस कविता में दलित जीवन के इतिहास और संभावनाओं के द्वंदात्मक सम्बन्ध की अभिव्यक्ति है। नागार्जुन ने दलित जीवन की यातना के साथ-साथ मुक्ति की चेतना की भी अभिव्यक्ति की है–

दिल ने कहा-दलित मांओं के
सब बच्चे अब बागी होंगे''[15]

डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा भारतीय दलित साहित्य का मुख्य विचार-बिंदु है। 1970 के बाद देश में विभिन्न दलित सांस्कृतिक संगठनों ने अम्बेडकरवाद को अपनाकर साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति को अपना लक्ष्य बनाया। भाषा में 1980 के बाद ही यह संभव हो पाया।[16]

कँवल भारती लिखते है : "आठवें दशक की दलित कविता का संघर्ष समाजिक समानता और आर्थिक मुक्ति इन्हीं दो लक्ष्यों को पाने के लिए था। यह उसकी बहुजन चेतना की समाजवादी धारा थी। कहना न होगा इसी समय के दलित कवियों ने डॉ. आंबेडकर के आन्दोलन को ठीक ढंग से समझा था।"[17]

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर दलित जीवन के दुरूह और अपमानजनक जीवन को शब्दबद्ध करते हुए कहते हैं–

तुमने हमें नीच/कमीन/ढेढ़/हरामी
और न जाने क्या क्या न कहा,

और मेरी माँ-बहनों को तो
तुमने वे पदवियां दे डालीं
जो लाख ढूँढने पर भी
कहीं नहीं मिलती हैं
सभ्य समाज के शब्दकोश में।
क्या इसी से हम कहें कि
तुम सभी हो शिष्टाचारी हो मानवता के हिमायती हो
सदाचारी हो।[18]

ब्राह्मणवादी सत्ता ने अपने वर्चस्व के नशे में एक बड़ी आबादी का शोषण किया और स्वयं कोसभ्य बताते रहे। सुमनाक्षर जी उस सभ्यता को चुनौती देते हुए पूछते हैं सभ्य समाज के शब्दकोष में क्या वे गलियाँ हैं जो तुमने दलित समाज की बहु-बेटियों के लिए निर्धारित की हैं? तो कैसे मान लूं कि तुम्हारा समाज सभ्य समाज है। 1988 में आई हुई कविता पुस्तक 'पीड़ा जो चीख उठी' में एक कविता है जो सीधे संसद पर प्रश्न खड़ा करती है। संसद जनतंत्र का प्रतीक है। मनुष्य के न्याय की रक्षा करता है। कवि पूछता है कि यह कैसी संसद है जो दलित और शोषितों के साथ नहीं खड़ी?

किसलिए बनी यह संसद, जो आम राय का नारा है?
हर शोषित कहता शोषित से, क्या भारत वर्ष तुम्हारा है?
भुखमरी जहाँ की शोभा है, वे भारत में ही रहते जो।
आ रिक्शा चालक दिल्ली में, जो व्यक्ति पुलिस का मारा है
हर रिक्शा वाला कहता है, क्या भारत वर्ष हमारा है?।[19]

इस कविता में परिवर्तन के लिए कवि न्याय के एक पक्षीय और ब्राह्मणवादी ढांचे के खिलाफ हथियार तक उठाने की बात करता है।

हिम्मत कर हथियार उठा ले, कबतक ऐसे रोना है?
परिवर्तन तो परिवर्तन है, आज नहीं तो कल होना है।[20]

ओम प्रकाश वाल्मीकि तो ऐसे क्षद्म बुद्धिजीवी पर ही प्रश्न खड़ा करते हैं जो वर्चस्ववादी सत्ता, प्रतिरोधी अस्मिताओं के बीच दलाल वर्ग का काम करते हैं तथा क्रांतिकारी विचारधाराओं की धार कुंद करते हैं।

ठन्डे कमरों में बैठकर
पसीने पर लिखना कविता
ठीक वैसा ही है
जैसे राजधानी में उगाना फसल कोरे कागजों पर।[21]

इसी तरह 'ठाकुर का कुआँ' दलित कवि ओम प्रकाश वाल्मीकि जी की मशहूर कविता है। इसीनाम से प्रेमचंद ने एक मशहूर कहानी भी लिखी थी। इस कविता में वाल्मीकि जी ने कहा जब गाँव के खेत, फसल, कुआँ, रोटी सब ठाकुर की ही है तो गाँव और देश के मायने क्या हैं? ऐसे राष्ट्र और राष्ट्रवाद का क्या मतलब जिसके लिए वह जान दे।[22]

1980 से 1990 तक के दलित कवियों में प्रकाश कवि, दुलारे लाल जाटव, भीखाराम गड़ेड़िया, बिहारी लाल हरित, रामदास शास्त्री, लक्ष्मी नारायण सुधाकर, मंसाराम विद्रोही, राजपाल सिंह राज, नाथूराम सागर, कुसुम वियोगी, बुद्धसंघ प्रेमी, नाथूराम ताम्र, कर्मशील भारतीय, नत्थू सिंह पथिक, अनुसूया 'अनु', भगवान् दास 'सुजात', जयपाल सिंह, रंजित सिंह 'निर्भय', राम सिंह निम, राजपाल सिंह राजा, इन्द्रजीत कनौजिया, दिलीप सिंह अश्क, हरकिशन सिंह संतोषी, रामदास निमेश, जसराम हरनौटिया, सिद्ध गोपाल, के0 पी0 सिंह 'आदित्य', सोहनपाल सुमनाक्षर, और भीमसेन संतोष, ओम प्रकाश वाल्मीकि, 'श्योराज सिंह बेचैन' आदि नाम प्रमुख हैं।

आदिवासी विमर्श मूलक कविता-हिन्दी साहित्य में आदिवासी कविता शुरूआती दौर में अनुदित रूप में ही मिलती है। भुजंग मेश्राम (मराठी), वहरू सोनवणे, निर्मला पुतुल (संथाली), सत्यनारायण मुंडा (मुंडारी), प्यारे केरकेट्ठा, नुअस केरकेट्ठा, रोज केरकेट्ठा (खड़िया), हाड़ीबंधु मिर्धा (उड़िया), पोब्र फर्नांडिस (कोंकणी) आदि कवियों की रचनाएँ अनुदित होकर हिन्दी में आती हैं। इस प्रकार की कविताओं की संख्या हिन्दी में लिखी जा रही आदिवासी कविताओं की संख्या से बहुत बड़ी है। जिन कवियों ने हिंदी में कुछ कवितायेँ लिखी भी हैं वे मूल रूप से आदिवासी बोलियों के ही कवि हैं लेकिन हिन्दी भाषा की जानकारी होने के कारण उन्होंने अपने और अन्य साथी कवियों की कविताओं का अनुवाद तो हिंदी में किया ही कुछ कवितायें भी हिंदी में लिखी हैं। जिनमे से प्रमुख नाम है–ग्रेस कुजूर, हरिराम मीणा, शंकरलाल मीणा, सरिता सिंह बडाईक, राम दयाल मुंडा, महादेव टोप्पो, लक्ष्मण सिंह कावडे, हजारीलाल मीणा 'राही', सहदेव सोरी, भुवन लाल सोरी, मोतीलाल, मीरां रामनिवास।

सांप्रदायिकता विरोधी कविता-सांप्रदायिकता विरोधी कविताओं की अवधारणा का विकास उस प्रकार नहीं मिलता जैसा कि स्त्री, दलित और आदिवासी कविताओं में मिलता है। हिन्दी की कविताओं में साम्प्रदायिकता विरोध को लेकर कोई विमर्श उस प्रकार खड़ा दिखता है जैसा कि अस्मिता मूलक विमर्शों को खड़ा किया गया है। यहाँ तक की आजादी के बाद हुई साम्प्रदायिक हिंसा पर भी कोई बड़ी कविता देखने में नहीं आती जिसका उल्लेख अपने समय के आलोचकों ने भी किया है। साम्प्रदायिकता विरोधी समकालीन कविता और सत्ता विमर्श वाले अध्याय में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है।

समकालीन कविता में मध्यवर्ग की जहाँ तक बात है समकालीन कविता का बड़ा हिस्सा मध्यवर्गीय चेतना और मध्यवर्गीय समस्याओं को केंद्र में रख कर चल रहा हैं। स्त्री, दलितं और आदिवासी कविता आन्दोलन की कविताओं को छोड़ दिया जाय तो लगभग कवितायें मध्यवर्गीय कवितायें हैं।1990 से पूर्व के मध्यवर्गीय कविता के प्रमुख कवि हैं जगदीश चतुर्वेदी, नरेश मेहता, नागार्जुन, लीलाधर जगूड़ी, नन्द किशोर आचार्य, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, कुमार रवीन्द्र, चंद्रकांत देवताले, विष्णु खरे, कैलाश वाजपेयी, अशोक वाजपेयी, स्नेहमयी चौधरी, सरला भटनागर, प्रभा खेतान, कुसुम अंसल इत्यादि।

निष्कर्ष

1975 से 1990 के बीच की समकालीन कविता का दौर समकालीन कविता का वह काल है जिसने 1990 के बाद की समकालीन कविता के लिए जमीन तैयार की। इसमें उसने मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय लोगों की समस्याओं के साथ अपने समय की राजनीति में हस्तक्षेप भी किया। कविता विचारगत और संरचनागत आंदोलनों से आगे बढ़कर ज्यादा जिम्मेदार और सरोकारी हुयी। कविता में जीवन की विसंगतियों को अधिक सूक्ष्मता से पकड़ने की योग्यता का निर्माण हुआ। समाज में अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे वर्ग जैसे स्त्री, दलित, आदिवासी और किसानों को हिन्दी समकालीन कविता ने सांस्कृतिक सहयोग प्रदान किया। उनकी समस्याओं को वैश्विक पटल पर उभरने का काम किया। साठ और सत्तर के दशक की कविता में जहाँ शोर शराबा अधिक था वहीं समकालीन कविता उससे बेहतर काम बेहतर सोच और समझदारी के साथ कर रही है। समकालीन कविता ने कुछ भी छुपा कर नही रखा। चाहे वह राजनीति का विषय हो या प्रेम का। समकालीन कविता सबकुछ को एक्सपोज करती चली गयी। इसने आदर्श के स्थान पर यथार्थ को बढ़ावा दिया। अपने विषय को लेकर गंभीर रही। सबसे बड़ी बात अपने अनुभवों को इसने अपना आधार बनाया जो आगे के दशकों की कविताओं को ठोस जमीन प्रदान करती हैं।

(Endnotes)

1. डॉ. पद्मजा घोरपड़े, 1990 से 2009 तक समकालीन हिन्दी कविता की नयी सोच, पृ. 70-71
2. डॉ. वीरेन्द्र मोहन, (आलेख समकालीन कविता के मूल्यांकन की दशाएँ) शताब्दी कविता, संपादक लीलाधार मंडलोई, पृ. 344
3. डॉ. वीरेन्द्र मोहन, (आलेख समकालीन कविता के मूल्यांकन की दशाएँ) शताब्दी कविता, संपादक लीलाधार मंडलोई, पृ. 344
4. डॉ. वीरेन्द्र मोहन, (आलेख समकालीन कविता के मूल्यांकन की दशाएँ) शताब्दी कविता, संपादक लीलाधार मंडलोई, पृ. 345
5. डॉ. पद्मजा घोरपड़े, 1990 से 2009 तक समकालीन हिन्दी कविता की नयी सोच, पृ. 70-71
6. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 66
7. नागार्जुन, धर्मयुग, 27-06-1963, पृ. 1
8. विजय कुमार, कविता की संगत, पृ. 15

9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, पृ. 641
10. विजय कुमार, कविता की संगत, पृ. 17
11. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 642
12. राजेश जोशी, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल पेपरबैक्स, 2013, पृ. 87
13. विजय कुमार, कविता की संगत, पृ. 16
14. चमनलाल लीलाधर मंडलोई, कविता के सौ बरस, पृ. 526
15. मैनेजर पाण्डेय, नागार्जुन : काव्य की भूमि और भूमिका का विकास, मैनेजर पाण्डेय संकलित निबंध नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, पृ. 165
16. चमनलाल, लीलाधर मंडलोई, कविता के सौ बरस, पृ. 52
17. कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष, पृ. 128
18. डॉ. सोहन पाल सुमनाक्षर, अँध समाज बहरे लोग (कविता संग्रह), भारतीय दलित साहित्य अकादमी, 233 टैगोर पार्क मॉडल टाउन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, अगस्त 2002, पृ. 21-22
19. पीड़ा जो चीख उठी, कविता संग्रह भारतीय दलित
साहित्य मंच (संपादक का नाम उद्धृत नहीं है), भगवतगली, ब्रह्मपुरी, गोंडा, दिल्ली, 1988, पृ. 20
20. पीड़ा जो चीख उठी कविता संग्रह भारतीय दलित साहित्य मंच (संपादक का नाम उद्धृत नहीं है), भगवतगली, ब्रह्मपुरी, गोंडा, दिल्ली, 1988, पृ. 20
21. ओम प्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, फिलहाल प्रकाशन 24/49, धर्मपुर देहरादून, 1989, पृ. 3
22. ओम प्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, फिलहाल प्रकाशन 2/49, धर्मपुर देहरादून, 1989, पृ. 9

भाजपा और राष्ट्रवाद का उभरता विमर्श : एक विश्लेषण

डॉ० पंकज कुमार राय

एसोसिएट प्रोफेसर, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुफ्फरपुर।

प्रीति रानी

शोध-छात्रा, इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुफ्फरपुर

भारतीय राजनीति के 1989 के बाद के चरण में भाजपा के पुनरुत्थान को ठीक से समझने के लिए हमें भारतीय जन संघ के, 1950-51 में उसके गठन के समय से, विकास का परीक्षण करना होगा। भाजपा की सांगठनिक तथा विचारधारात्मक जड़ें ऐतिहासिक रूप से जन संघ में ही स्थित हैं। कार्यक्रम के स्तर पर भाजपा में दिखायी पड़नेवाली गहरे बदलावों और उस राजनीतिक परिदृश्य में बुनियादी परिवर्तन के बावजूद जो भारतीय जन संघ का सन्दर्भ-फ्रेम था, जन संघ की विचारधारा, सांगठनिक ढाँचा और सामाजिक आधार की समझ भाजपा की कार्यपद्धति तथा भूमिका को समझने के लिए बेहद जरुरी है। भारतीय राजनीति, राजनीतिक दलों तथा पार्टी प्रणाली पर लिखे गये साहित्य में भारतीय जन संघ के विचारधारात्मक स्रोत और सांगठनिक व्यवहार को जिन कई शब्दावलियों में वर्णित किया गया था, वे हैं प्रतिक्रियावादी, साम्प्रदायिक, हिन्दू पुनरुत्थानवादी, धुर दक्षिणपंथी तथा उग्र राष्ट्रवादी। इन तमाम विस्तृत वर्ग और चरित्र निरुपणों का खंडन भारतीय जन संघ के सिद्धान्तकारों और नेताओं द्वारा किया गया। उनका कहना था कि इन वर्ग निरुपणों के पीछे पश्चिमी राजनीतिक चिन्तन तथा विश्लेषण का कुटिल प्रभाव है। जन संघ के एक प्रमुख विचारधारात्मक प्रतिपादक का यह उद्धरण पार्टी की विचारधारात्मक स्थिति को बहुत साफ ढंग से पेश करता है :

'पश्चिम में राजनीति दलों को आम तौर पर 'दक्षिणपंथी' या 'वामपंथी' कहा जाता है। भारत में भी विभिन्न राजनीतिक दलों के चरित्र तथा उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए इस शब्दावली का प्रयोग बढ़ रहा है। लेकिन यह वर्गीकरण भारतीय राजनीति की सच्ची स्थिति पर प्रकाश नहीं डालता। हम ऐसा सिर्फ इसलिए नहीं कहते कि ऐसी भी पार्टियाँ हैं जो अति दक्षिणपंथ और अति वामपंथ के बीच मौजूद विभिन्न रंगतों का प्रतिनिधित्व करती हैं, बल्कि इसलिए कि इन पार्टियों के अनेक कार्यक्रम रूढ़िवादी आधार पर किये गये किसी भी वर्गीकरण का अतिक्रमण करते हैं। काँग्रेस वामपंथी पार्टी हो सकती है—जहाँ तक वह समाजवादी पैटर्न के समाज की पक्षधार है, लेकिन वह जिस तरह न्यस्त स्वार्थों को समर्थन देती है और उनसे समर्थन प्राप्त करती है, वह उसे संरक्षणवादी रंगत प्रदान करता है। जन संघ को 'दक्षिणपंथी' कहा जा सकता है, क्योंकि 'मतवाद-आधारित समाजवाद' में उसका विश्वास नहीं है, लेकिन उसका कार्यक्रम और कार्यकर्ता समुदाय निश्चित रूप से उसे देश की कई तथाकथित रेडिकल पार्टियों से ज्यादा 'रेडिकल' बनाते हैं। यदि हम इस पश्चिमी पदावली को छोड़ दें तो भारत के राजनीतिक दलों को उनकी प्रेरणा के स्रोत के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। अधिकांश दल भारत की राजनीति को किसी न किसी विदेशी पैटर्न पर ढालना चाहते हैं। उनका विचारधारात्मक आधार पश्चिमी राजनीतिक चिन्तन से बना है। वे सभी विदेशी राजनीति को भारतीय परिदृश्य में प्रक्षेपित करना चाहते हैं। वे मौलिक रूप से सोचना नहीं चाहते न ही हमारे राष्ट्र के बुनियादी वैचारिक मूल्यों को अपने विचार जगत में स्थान देना चाहते हैं। उनका अधिकतम स्वीकार्य बिन्दु है पश्चिमी विचारों और भारतीय संस्कृति का समन्वय। वे पश्चिम की राजनीतिक तस्वीर को भारतीय फ्रेम में जड़ना चाहते हैं। भारतीय स्थिति का विश्लेषण करते हुए वे तत्परता के साथ और बिना ना-नुकच के विदेशी विश्लेषण के परिणाम

को स्वीकार कर लेते हैं।[1]

भारतीय जन संघ का आदर्श था भारतीय संस्कृति और मर्यादा के आधार पर भारत का पुनर्निर्माण। वह भारतीय संस्कृति के सिद्धान्तों के अनुसार राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की रचना करना चाहता था। जन संघ भारतीय जीवन के परंपरागत मूल्यों को बचाये रखना चाहता था, लेकिन संगठन के पूर्व अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, 'यह उन रीति-रिवाजों और परंपराओं से चिपके रहना नहीं चाहता जो निरर्थक या रुग्ण हो चुके हैं। इस दृष्टि से इसे रामराज्य परिषद् से भिन्न माना जाना चाहिए। हम अपने समाज को सुधारने की जरुरत महसूस करते हैं, ताकि वह आधुनिक समय की चुनौतियों का सामना कर सके। लेकिन आधुनिक बनने का प्रयास करते समय हमें सावधान रहना है, ताकि आधुनिकता के वेश में पश्चिमीकरण प्रवेश न कर जाये। यहीं जन संघ काँग्रेस, पी.एस.पी., सी.पी.आई. और स्वतंत्र पार्टी जैसी अन्य सभी राजनीतिक पार्टियों से भिन्न है जो विभिन्न रूपों में और भिन्न-भिन्न हदों तक पश्चिम के राजनीतिक और आर्थिक विकास को भारतीय परिदृश्य में प्रक्षेपित करना चाहते हैं। अतः हम 'दक्षिण' और 'वाम' अथवा 'समाजवाद' और 'पूँजीवाद' की सभी अवधारणाओं को अस्वीकार करते हैं। हमारे जैसे विस्तृत एवं समृद्ध विरासतवाले देश के जीवन को विदेश से आयातित सुनिश्चित साँचों में नहीं ढाला जा सकता है।[2]

जन संघ के प्रवक्ता के अनुसार राजनीतिक दलों को उनके बौद्धिक तथा दार्शनिक प्रेरणा-स्रोत के अनुसार वर्गीकृत किया जाना चाहिए–'जन संघ दयानन्द और तिलक की सुधारवादी परंपरा का अनुकरण करता है–सिर्फ सामाजिक क्षेत्र में नहीं, बल्कि आर्थिक मुद्दों तक भी उसका विस्तार करने का प्रयास करता है। भारतीय संस्कृति और मर्यादा भारतीय जन संघ का आधार हैं। भारतीय संस्कृति का अर्थ सिर्फ वे तत्व नहीं हैं जो किसी विशेष जन की सांस्कृतिक विशेषताओं का निर्धारण करते हैं, बल्कि एक विश्व दर्शन भी है। यही दर्शन न केवल विभाजित विश्व को एक कर सकता है, बल्कि एक विश्व दर्शन भी है। यही दर्शन न केवल विभाजित विश्व को एक कर सकता है, बल्कि उसे शान्ति प्रदान कर सकता है। सह-अस्तित्व और विश्व ऐक्य के आदर्श तब तक सिर्फ रणनीतिक नारे रहेंगे जब तक वे इस जीवन्त दर्शन से अनुप्राणित नहीं होते। हमारा मिशन यही है। भारतीय संस्कृति जड़ नहीं, गतिशील है। हम पाते हैं कि समाज में दो तरह की प्रवृत्तियाँ कार्यशील हैं। एक प्रवृत्ति प्राचीन को स्वीकार करती है, जिसका निहितार्थ यह है कि मौजूदा स्थिति मानो किसी धर्मविधान से जुड़ी हुई है, जिसके बारे में प्रश्न नहीं किया जा सकता और जिसे कभी बदला नहीं जा सकता। दूसरी प्रवृत्ति जो कुछ भी पुराना है, उसकी भर्त्सना करती है और दिशा तथा रूपाकार की परवाह किये बगैर परिवर्तन के लिए व्याकुल है। जन संघ इन दोनों प्रवृत्तियों के विरुद्ध है। अतीत हमारे लिये प्रेरणा की वस्तु है। लेकिन हमें भविष्ययोन्मुख होना है। जन संघ को हमारी जनता के पुनर्जागरण का सक्षम औजार बनना है। हमें एक आन्दोलन का नेतृत्व करना है, न कि सिर्फ एक पार्टी बनानी है।[3]

अतएव जन संघ ने हमेशा अपने आपको उन्नीसवीं शताब्दी के बहुत-से महापुरुषों द्वारा चलाये गये सामाजिक तथा बौद्धिक आन्दोलनों का वाहक माना–'यह कोई नया आन्दोलन नहीं है। पिछली शताब्दी के दौरान स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, डॉ. हेडगेवार, मदनमोहन मालवीय और महात्मा गाँधी इस क्षेत्र में अग्रणी रहे हैं। इसी परंपरा को हमें आगे बढ़ा है।'[4] 'वाम' और 'दक्षिण' के विवाद की चर्चा करते हुए लालकृष्ण आडवाणी ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा था, 'हमारे गाजियाबाद सम्मेलन के बाद से ही प्रेस और राजनीतिक क्षेत्रों में ढेर सारी टिप्पणी की गयी है कि जन संघ वामपंथ की ओर मुड़ रहा है। जन संघ किसी भी आर्थिक वाद के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है और 'दक्षिण' तथा 'वाम' जैसे शब्द भारतीय सन्दर्भ में बिल्कुल ही प्रासंगिक नहीं हैं। पश्चिम की लोकतांत्रिक राजनीति में 'वामपंथ' का अर्थ मोटे तौर पर हो गया है राज्य द्वारा नियंत्रण की ओर झुकाव। जिस दूसरी महत्वपूर्ण कसौटी पर पश्चिम में वाम-दक्षिण का भेद आधारित है, वह है समानता के प्रति रुख, परिवर्तन के प्रति रुख। पहली कसौटी के आधार पर जन संघ को दक्षिणपंथी पार्टी कहा जा सकता है। 'लेकिन दूसरी कसौटी पर जन संघ को वामपंथी पार्टी कहा जा सकता है। सच्चाई यह है कि यह न तो वामपंथी है और न दक्षिणपंथी। यह भविष्योनमुखी पार्टी है।

अटलबिहारी वाजपेयी ने 1972 में भागलपुर के अपने अध्यक्षीय भाषण में, इस वाम-दक्षिण विवाद के सन्दर्भ में घोषणा की थी, 'हम न तो बायें जा रहे और न दाये जा रहे हैं। हम सीधो जा रहे हैं और राष्ट्र को उचित विकल्प देने की अपनी नियति को पूरा करने के लिाए आगे ही बढ़ते जायेंगे।'[5] भारतीय परंपरा का हवाला देते हुए उन्होंने आगे कहा, 'जन संघ वह पार्टी है जो आगे बढ़ने की अपनी कोशिश में पीछे देखने में विश्वास करती है।'[6]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि पार्टी का बुनियादी दर्शन पार्टी की अपनी परिभाषा के अनुसार भारतीय संस्कृति के सिद्धान्तों

और मूल्यों के साँचे में ढला है, यद्यपि वह गत्यात्मक परिवर्तनों को अंगीकार करने के खिलाफ नहीं है। पार्टी की विचारधारा में एक देश, एक जनता, एक संस्कृति और एक राष्ट्र जैसे विचार शामिल हैं। इस विचारधारा के अनुसार, भारत एक और अविभाज्य है, एक आवयविक सम्पूर्णता–भौगोलिक रूप से भी और ऐतिहासिक रूप से भी। इस भूमि के कण–कण के प्रति प्रेम और आदर की भावना को व्यक्त करने के लिए लोगों ने भारत की कल्पना भारत माता के रूप में की है और उसकी पूजा की है। भारतीय संविधान की ओर संकेत करते हुए दीनदयाल उपध्याय ने कहा, 'यह भारत की एकता और अविभाज्यता की विपरीत दिशा में जाता है। (इसमें) भारत माता, हमारी पवित्र मातृभूमि, जो हमारे लोगों के हृदय में स्थापित है, के विचार को कोई स्वीकृति नहीं है। संविधान के पहले परिच्छेद के अनुसार इंडिरू अर्थात् भारत राज्यों का संघ होगा। यानी बिहार माता बंग माता, पंजाब माता, कन्नड़ माता, तमिल माता आदि को मिला कर भारत माता की रचना होगी। यह आस्यास्पद है। हमने प्रान्तों को भारत माता के अंगों के रूप में देखा है, अलग–अलग माताओं के रूप में नहीं। अत: हमारा संविधान संघीय के बजाय एकात्मक होना चाहिए।'[7]

जन संघ की मान्यता थी कि भारतीय संस्कृति भारतवर्ष की ही तरह एक और अविभाज्य है–'अत: साझा संस्कृति की कोई भी चर्चा न केवल गलत, बल्कि खतरनाक है। क्योंकि यह राष्ट्रीयता एकता को कमजोर करती है और विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करती है।'[8] जन संघ के अनुसार अविभाजित निष्ठा ही वह मुख्य आधार है, जिस पर भारतीय राष्ट्रवाद टिका होना चाहिए। भारत के एकीकरण और अखण्ड भारत अर्थत् भारत और पाकिस्तान के पुनर्मिलन की स्थापना के लिए 'जन संघ बिना थके प्रयास करता रहेगा। अखण्ड भारत की स्थापना के द्वारा ही इस संघ बिना थके प्रयास करता रहेगा। अखण्ड भारत की स्थापना के द्वारा ही इस प्राचीन भूमि के लोग अपनी शाश्वत नियति को हासिल कर सकते हैं, जो जन संघ का सर्वोच्च लक्ष्य है।'[9]

हिन्दुत्व के मूल्यों पर आधारित भारतीय संस्कृति पर जन संघ का आग्रह तथा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दौर और शुरुआती बीसवीं शताब्दी के धार्मिक–सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों के उसके द्वारा 'गौरवान्वयन ने उसे भारतीय राजनीति में उग्र हिन्दू एवं रेडिकल दक्षिणपंथी तत्वों का मुख्य राजनीतिक औजार बना दिया। 'उग्र हिन्दू' झुकाव से 'साम्प्रदायिक हिन्दू' राजनीति की ओर जाना अगला तार्किक और अनिवार्य कदम था। इसने भारतीय जन संघ को न केवल भारत के विभिन्न धार्मिक तथा भाषाई अल्पसंख्यकों से काट दिया, बल्कि इसे एक 'संकीर्ण राष्ट्रवादी' छवि भी प्रदान की, जिसे हिन्दू साम्प्रदायिकता से अलग नहीं किया जा सकता।

दिल्ली में 21 अक्टूबर, 1951 को अखिल भारतीय जन संघ के पहले सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने काँग्रेस की और खास तौर से देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की नीतियों पर प्रहार किया। उन्होंने काँग्रेस पार्टी के धर्मनिरपेक्ष कार्यक्रम को 'मुसलमानों का तुष्टीकरण' करार दिया और भारतीय संस्कृति और मर्यादा पर पार्टी की नींव का बचाव किया। उन्होंने घोषणा की, 'अतएव जहाँ हम धर्म राज्य अर्थात् विधिसम्मत शासन की स्थापना करने का लक्ष्य रखते हैं, वहीं हम भारतीय संस्कृति की उच्चतम परंपरा के प्रति, जो सभी लोगों को वास्तविक मैत्री तथा बन्धुत्व के धागे में गाँधीजी है, निष्ठावान हैं।'[10]

भारतीय राष्ट्रीयता को धार्मिक तथा सांस्कृतिक हिन्दुत्व से समीकृत करने का भाजपा का मौजूदा अभियान वस्तुत: पहचान के उस संकट से पैदा हुआ है जिसने पार्टी को 1980 से 1984 तक ग्रस्त किये रखा। 1980 का पार्टी का दर्शन और सामाजिक विचारधारा उसके बहुत–से कार्यकर्ताओं और समर्थकों की राजनीतिक और बौद्धिक दिशा का स्पष्ट रूप से निषेध करती थी। उनकी राजनीतिक शिक्षा–दीक्षा भारतीय जन संघ की राजनीतिक संस्कृति में हुई थी। जन संघ का राजनीतिक सोच–विचार मुख्य धारा से बुनियादी रूप से अलग था। मुख्य धारा की राजनीति में गांधीवाद सर्वोदयी थे, सर्वसहमति के आधार पर चलनेवाले नेहरुवादी उदारपंथी समाजवादी थे, उदारपंथी रेडिकल संविधानवादी थे, समाजवादी थे और विभिन्न प्रकार के वामपंथी–साम्यवादी थे। इन सबके बीच विभिन्न मसलों पर खासे और यहाँ तक कि कटु मतभेद थे, लेकिन धर्मनिरपेक्षता के प्रति निष्ठा के मामले में सभी एकमत थे, जो सामन्तवाद विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के साझा अनुभवों से विकसित हुई थी। लेकिन आर.एस.एस. ने सामन्तववाद और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से अपने को अलग रखा था। इसलिए राष्ट्रीय आन्दोलन की धर्मनिरपेक्ष और साझा सांस्कृतिक विरासत के तत्व उनकी विचारधारा का अंग नहीं बन सके।

वाजपेयी के नेतृत्ववाली 1980–84 की भाजपा जेपी आन्दोलन और इमरजेंसी विरोधी संघर्ष की गर्वीली उत्तराधिकारी ज्यादा थी– आर.एस.एस. के हिन्दू मंच की वारिस कम। उस भाजपा ने अपने पूर्व–अवतार की धार्मिक, सांस्कृतिक नीतियों का त्याग नहीं किया तो उन्हें पनीला जरुर कर दिया। यह मुख्य धारा की केन्द्रिकता की दिशा में प्रयाण करने का क रचनात्मक प्रयास था। लेकिन वाजपेयी के नेतृत्ववाली भाजपा आर.एस.एस.–जन संघ की परंपरा में दीक्षित कार्याकर्ताओं और जन समर्थकों को अपने साथ नहीं

ले जा सकी। यह पार्टी के करारी हार से और गम्भीर हो गया। उसके बाद पार्टी में विचार मंथन का जो दौर चला, उसका असंदिग्धा निष्कर्ष यही था कि भाजपा को पूर्व-जन संघ की हिन्दूवादी नीति ही अख्तियार करनी चाहिए। 1985 में आडवाणी के नेतृत्व का आविर्भाव 'ऑपरेशन पुनरुत्थान' का निर्णायक परिणाम था।[11]

1980 के बाद इन्दिरा गाँधी ने जो मुलायम हिन्दूवाद के प्रयोग किये, जिसकी परिणति 1988 में राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद परिसर के दरवाजे के ताले खुलने में हुई, जिसने भाजपा को राजनीतिक प्रक्रियाओं और चुनावी नीतियां का घोर हिन्दूकरण करने के लिए बाध्य कर दिया। शाहाबानो मामले में उच्चतन न्यायालय के फैसले को रद्द करते हुए मुस्लिम महिला विधेयक जिस तरह लाया गया, जिससे भाजपा का यह आरोप पुष्ट हुआ कि काँग्रेस मुसलमानों का तुष्टीकरण कर रही है। आर.एस.एस. ने जिस तरह साधु-संतों के साथ राजनीतिक रिश्ते बनाये, जिसकी परिणति विश्व हिनदू परिषद् के गठन में हुई, जो विभिन्न प्रकार के संगठनों का एकीकृत हिन्दू फ्रंट था। बुर्जुआ वर्ग का बढ़ता हुआ राजनीतिक समर्थन और गैर-काँग्रेस मध्य मार्ग की टूट-फूट तथा बिखराव, जिसने काँग्रेस के लोकतांत्रिक समाजवादी विकल्प को नष्ट कर दिया। यह समझने में वामपंथी दलों की असमर्थता और अनिच्छा कि भारत में वर्ग और राज्य के ढाँचों और उनके अन्त:संबंधों पर जाति-आधारित सोपानवादी सामाजिक व्यवस्था का गहरार असर है और अन्तत: सोवियत संघ का बिखराव तथा नोकरशाही पर आधारित साम्यवाद का निश्चित पतन, जो उसके बदसूरत अलोकतांत्रिक राजनीतिक ढांचे को व्यक्त करता था आदि ऐसी घटनाएँ हैं जिन्होंने संघ परिवार को विचारधारात्मक स्तर पर मुखर तथा राजनीतिक स्तर पर दृढ़ किया है।

1984 के बाद का भाजपा का अभियान भारतीय राष्ट्रवाद की साम्राज्यवाद विरोधी, बहुलतावादी और लोकतांत्रिक विरासत को संकीर्ण हिंदू राष्ट्रवाद में परिणति करने का अभियान है। पार्टी पुराने मिथकों और प्राचीन भारतीय पुरातत्व को जाग्रत करना चाहती है। वह मध्य युग के उन अध्यायों को गौरवान्वित करती है जिन्हें हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के रूप में देखा जाता है। मन्दिरों का पुनर्निर्माण, गोरक्षा, कश्मीर, समानन नागरिक संहिता, एटम बम का निर्माण, तथाकथित छद्म-धर्मनिरपेक्षता, अल्पसंख्यकवाद आदि का उपहास, बाँग्लादेश के शरणार्थियों को वापस भेजना आदि वे मुद्दे हैं, जो भाजपा को आकर्षित करते हैं। इन सभी मामलों में स्पष्टत: यह भारतीय जन संघ की विरासत है, जिसका भाजपा अनन्य भाव से पालन कर रही है। यह निश्चय ही पार्टी का एक जटिल चरण है, क्योंकि एक ओर तो पार्टी के भीतर धाड़ेबाजी बढ़ रही है और दूसरी ओर पार्टी को उन दबावों का भी सामना करना है, जो सामाजिक और आर्थिक न्याय, धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता, वंचित तबकों के शक्तीकरण तथा आदिवासियों और स्त्रियों को न्याय तथा समानता प्रदान करने की स्थानीय पहलों से जुड़े आन्दोलनों से पैदा हुए हैं।[12]

भाजपा का नस्लवाद मुख्यत: मुसलमानों के विरुद्ध है। ईसाई भी उसके रोष की परिधि में आते हैं, लेकिन चूँकि ईसाई भारतीय समाज का कोई प्रमुख हिस्सा नहीं हैं, अत: उनके खिलाफ लगातार विष-वमन जरुरी नहीं जान पड़ता। हाँ, जहाँ-जहाँ ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों के बीच काम करती हैं और उनका धर्मान्तरण प्रोत्साहित करती हैं, वहाँ भाजपा के कार्यकर्ता हस्तक्षेप करना अपना कर्तव्य समझते हैं। यह हिन्दू प्रेम नहीं, ईसाई द्वेष है। भाजपा का मुस्लिम द्वेष और भी सघन है। निश्चय ही भारतीय समाज में इस मुस्लिम द्वेष की ऐतिहासिक जड़ें हैं। यह द्वेष आज भी भारतीय समाज में उपस्थित है। भाजपा ने इसे पैदा नहीं किया है। वह इसे मजबूत जरुर करना चाहती है और राजनीतिक रूप देना चाहती है। कह सकते हैं कि यह हिन्दू समाज की मुस्लिम ग्रंथि ही है जो प्रबल और संगठित होकर भाजपा के रूप में प्रकट हुई है। वस्तुत: जब तक हिन्दू समाज की इस मुस्लिम ग्रंथि का विमोचन नहीं होगा, भाजपा और शिवसेना जैसी पार्टियों को राजनीतिक अवसर मिलता रहेगा। एक सहज भारतीय या आधुनिक दृष्टि ही इस ग्रंथि का विमोचन कर सकती है, अत: भाजपा को दोनों से वैर है। वह इस ग्रंथि का आंतरिक नहीं, बाहरी विमोचन चाहती है। शोध के बजाय प्रतिशोध में विश्वास रखती है। यही उसके फासिज्म का स्रोत है।[13]

यही कारण है कि भाजपा के पास मुस्लिम एजेंडा तो है, लेकिन हिन्दू एजेंडा नहीं। दरअसल, उसने अभी फैसला ही नहीं किया है कि उसे हिन्दुओं के साथ करना क्या है। उसे कुछ हिन्दू प्रतीकों से प्रेम है (उसी तरह जैसे देश के सभी हिन्दुओं को है), वह हिन्दू कर्म-कांड का भी सम्मान करती है (जैसे लगभग सभी हिन्दू करते हैं) तथा हिन्दू गौरव की भी फिक्र है (जैसे प्राय: सभी हिन्दुओं को है, लेकिन वे समझ नहीं पाते कि इसका करें तो क्या करें), लेकिन कोई खास हिन्दू व्यवस्था वह भारत में स्थापित नहीं करना चाहती है, क्योंकि ऐसी कोई खास व्यवस्था है ही नहीं, जिसे स्थापित करना चाहता जा सके। यही कारण है कि भाजपा की केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों ने भी अभी तक कोई ऐसा काम नहीं किया है जिसका संबंध हिन्दू समाज से हो। हाँ ऐसे काम जरुर किये हैं, जिनका संबंध मुस्लिम समाज से है। जैसे हाल के दिनों में तीन तलाक पर प्रतिबन्ध लगाना। भाजपा हिन्दू समाज

से मुख्य अपेक्षा यही करती है कि वह ऐक्यबद्ध और संगठित हो, ताकि मुसलमानों को मजा चखाया जा सके। इस हिन्दू एकता का कुछ और भी प्रयोजन हो सकता है–जैसे समाज सुधार, इसका भाजपा को खयाल भी नहीं आता।

समान नागरिक संहिता भी उसकी दिलचस्पी का विषय है। इसमें वह दिखाना तो यह चाहती है कि वह सभी नागरिकों कमे लिए समान अधिकारों व कानूनों की हिमायती है, पर गौर से देखें तो यह भी उसकी मुस्लिम द्वेष से उपजी माँग है। इस सन्दर्भ में वह कहती है कि हिन्दू विवाह अधिनियम के मुताबिक हिन्दू तो एक ही विवाह कर सकता है, परन्तु मुसलमानों को चार-चार विवाह करने की छूट है। हिन्दू वादी करने के बाद आसानी से तलाक नहीं दे सकता, मुसलमान तीन बार तलाक-तलाक-तलाक कहने से बरी हो जाता है। हालाँकि तीन तलाक कानून पारित होने के कारण इस पर विरोध लग सकता है। हिन्दू लोग परिवार नियोजन कराते हैं, किन्तु मुसलमान उससे परहेज करते हैं। फलतः उनकी जनसंख्या बेतहाशा बढ़ रही है। साधारण हिन्दू इन बातों को सुन कर बहक जाता है। उसे लगता है कि बहुसंख्यक होने के नाते उससे भेदभाव किया जा रहा है। लेकिन वह भूल जाता है कि हिन्दू-मुसलमानों की जीवन-पद्धतियाँ ही अलग-अलग हैं, इसलिए उनके जन्म-मरण और विवाह संबंधी कानूनों में कुछ भिन्नताएँ तो होंगी ही।

धर्मनिरपेक्षता को कठघरे में खड़ा किये बिना भाजपा का पूरा मतलब नहीं सधता। उसे मालूम है कि भारत में जब तक धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त रहेगा, तब तक 'हिन्दू राष्ट्र' की अवधारणा लोगों के गले नहीं उतरेगी। इसलिए उस पर भी हमला करो। यही कारण है कि वह इसे छद्म धर्मनिरपेक्षता कह कर अक्सर लज्जित करती रहती है। वह भारत में रहनेवाले हरेक व्यक्ति को भारतीय कहने की बजाय हिन्दू कहना पसन्द करती है। अल्पसंख्यकों के हित में उठाये गये हर कदम को वह 'तुष्टीकरण' की संज्ञा देती है।

भाजपा की हिंदुत्व राजनीति ने धार्मिक बहुसंख्या को राजनीतिक बहुसंख्या में बदल कर सिर्फ हिंदू वोटो के जरिये न केवल चुनावी बहुमत खड़ा करने की प्रक्रिया को वैचारिक आधार प्रदान किया, बल्कि अपनी राजनीति का समर्थन करने के लिए एक सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना भी खड़ी कर दी। नब्बे के दशक की हिंदुत्व राजनीति ने पुरानी महाजनी-गाँधीवादी राजनीतिक संस्कृति को प्रभावहीन तो किया ही, उसने उसकी उत्तराधिकारी *खाम* (पिछड़ों, दलितों, आदिवासियों और मुसलमानों का गठजोड़) की राजनीति को भी बेअसर कर दिया। इसके लिए भाजपा ने पिछड़ों, दलितों और आदिवासियों को सत्ता और संगठन में जगह देने में कोई हिचक नहीं दिखायी। उसने दलितों और आदिवासियों की विशेष सांगठनिक शाखाएँ भी गठित कीं। विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल में इन सामाजिक ताकतों की बड़े पैमाने पर सीधी भर्ती की गयी।

भाजपा द्वारा राजनीति में अहमियत दिये जाने के कारण पिछड़ों, आदिवासियों और दलितों में सामाजिक ऊधर्वगामिता और प्रगति का एहसास पैदा हुआ। भाजपा ने कुछ गाँधीवादी संस्थाओं, शैक्षिक ट्रस्टों, ट्रेड यूनियनों, युवकों और महिलाओं के संगठनों में भाजपा की उपस्थिति धीरे-धीरे बढ़ती चली गयी। नागरिक समाज के एक बड़े हिस्से पर भाजपा के कार्यकर्ता छाते चले गये। काँग्रेस राजनीतिक लाभ पहुँचाने के जिस विशाल नेटवर्क को वर्षों से संचालन और इस्तेमाल कर रही थी, उस पर भाजपा का कब्जा हो गया। खाम गठजोड़ ने ऊँची जातियों और मध्यवर्ग के लिए राजनीति अस्थिरता का जो अंदेशा पैदा किया था, उसका अंत हो गया। भाजपा ने मुसलमानों को पूरी तरह किनारे फेंक कर विहिप और बजरंग दल के जरिये खाम में शामिल अन्य समुदायों को राजनीति और सत्ता के लाभों में भागीदारी दी और इसके जरिये ऊँची जातियो और मध्यवर्ग के राजनीतिक बोलबाले को फिर से स्थापित किया।[14]

निष्कर्ष

सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर लगता है कि काँग्रेस अपने महाजनी-गाँधीवादी चरित्र का महाजनी पहलू कभी नहीं छोड़ पायी। वह चरित्र सैद्धांतिक रूप से तो सेकुलर-राष्ट्रवादी था, पर व्यवहार में इसका रवैया ऊँची जातियो के हिंदू रवैये से ही मेल खाता था। यही कारण था कि पिछड़ी जातियाँ, हरिजन, आदिवासी और मुसलमान जैसा शक्तिशाली और सफल राजनीतिक समीकरण बिखर गया। काँग्रेस ने बातें तो बहुत कीं, पर इन समुदायों, खासकर दलितो और मुसलमानों, के राजनीतिक और आर्थिक हितों को पूरा नहीं कर सकी। सत्तर और अस्सी के दशकों में काँग्रेस को इसी जातीय समीकरण ने भारी चुनावी जीतें दिलवाई थीं। काँग्रेस के विपरीत भाजपा सरकार ने संघ परिवार को खुली छूट दी ताकि वह दलितों और आदिवासियों के हिंदुत्वकरण की कार्ययोजना पर जम कर अमल कर सके। कुल मिलाकर कर कहा जा सकता है कि नब्बे के दशक के उपरांत संघ परिवार द्वारा

की जाने वाली सांप्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति ने जातीय और जातिगत टकरावों को सांप्रदायिक टकराव में परिवर्तित करने में सफलता प्राप्त की जिससे भाजपा के पक्ष में हिंदू वोट बैंक बनता चला गया। नतीजतन भाजपा ने 2014 और 2019 में लगातार दो चुनाव भारी बहुमत से जीते।

सन्दर्भ सूची

1. दीनदयाल उपाध्याय, 'वामपंथ और दक्षिणपंथ भारत के राजनीतिक सन्दर्भ में गलत शब्द हैं, द ऑर्गेनाइजर, नयी दिल्ली, 8 सितम्बर, 1961, पृ. 3.
2. द मदरलैंड, नयी दिल्ली, 8 मई, 1972.
3. द हिन्दू, मद्रास, 9 अगस्त, 1972.
4. दीनदयाल उपाध्याय, इंटेग्रल ह्यूमनिज्म, नयी दिल्ली.
5. भारतीय जन संघ, प्रिंसिपल एंड पॉलिसी, विजयवाड़ा, भारतीय प्रतिनिधि सभा, 25 जनवरी, 1965, पृ. 16.
6. डी. पी. घोष, अध्यक्षीय भाषण, नयी दिल्ली, भारतीय जन संघ, केन्द्रीय कार्यालय, 1958.
7. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, द जन संघ एप्रोच, नयी दिल्ली, भारतीय जन संघ, नवम्बर, 1968, पृ. 7.
8. माइरॉन वेनर, पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957, पृ. 156.
9. एच.एल. एर्डमैन, द स्वतंत्र पार्टी एंड इंडियन कंजरवेटिष्म, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967, पृ. 51.
10. जीन ए. कुर्रन, जूनियर, मिलिटेंट हिन्दूइज्म इन इंडियन पॉलिटिक्स : ए स्टडी ऑफ द आर.एस.एस., न्यूयॉर्क, इंस्टीट्यूट आफॅ पेसिफिक रिलेशन्स, 1951, पृ. 21.
11. बलराज मधेक, पॉलिटिकल ट्रेंड्स इन इंडिया, दिल्ली, एस. चाँद एंड कम्पनी, 1959, पृ. 45.
12. क्रिस्टाफे जैफरलॉ, मेजॉरिटारियन स्टेट : हाऊ हिन्दू नेशनलिज्म इज चेंजिंग इंडिया, हार्पर कॉलिन्स, न्यू दिल्ली, 2019.
13. थॉमस ब्लॉम हांसेन, द सफैरन वेव: डेमोक्रेसी एण्ड हिन्दू नेशनलिज्म इन मॉडर्न इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेमस, न्यू दिल्ली, 1999, पृ. 43-47.
14. थॉमस ब्लॉम हांसेन एण्ड क्रिस्टाफे जफैरलॉ, द बीजेपी एण्ड द कम्पलशंस आफॅ पॉलिटिक्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली, 2000, पृ. 79-83.

संत गरीबदास का सामाजिक-चिन्तन

डॉ० सुनील कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)

वैदिककाल से ही हरियाणा प्रदेश साहित्य की दृष्टि से समृद्ध रहा है। महामना संत गरीबदास हरियाणवी संत परम्परा में विशिष्ट स्थान रखते हैं। हमारे यहां संत-साहित्य का एक विशिष्ट महत्व रहा है क्योंकि इस साहित्य ने कभी भोग के हाथों योग को नहीं बेचा, धन के बदले आत्मा की आवाज़ को नहीं बदला तथा शक्ति और पुरुषार्थ के स्थान पर कभी संकीर्णता और अकर्मण्यता को नहीं अपनाया। गरीबदास अध्यात्म की सुदृढ़ परम्परा के संवाहक भी थे। संत वाणी का मूल स्वर सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करना है। इसमें समाज को नव्यतर जीवनी शक्ति प्रदान करने की असीम क्षमता है। संत साहित्य में समन्वय की विराट् चेतना दिखाई देती है। संतों की मूल चेतना पर विचार कर पाते हैं कि संत साहित्य सार्वभौम, सार्वजनीन एवं वैश्विक चेतना का साहित्य है। गरीबदासी पंथ का साहित्य भी इसी महत चेतना से अनुप्राणित है। संत गरीबदास द्वारा प्रवर्तित गरीबदासी पंथ 'सर्वधर्म समभाव' की मूल चेतना से अनुस्यूत है। संत गरीबदास का आविर्भाव जिन परिस्थितियों में हुआ, वह एक संक्रान्ति काल था, जहाँ मुगलकालीन संस्कृति का भानु अस्ताचल गमन कर रहा था और एक नवीन साम्राज्य पनप रहा था। संत गरीबदास का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराईयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता का बोलबाला था। धार्मिक पाखण्ड चरम पर थे और धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ की रोटियां धार्मिक कट्ठरता एवं उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। गरीबदास ने इसका डटकर विरोध किया और सभी क्षेत्रों में फैली हुई सामाजिक बुराईयों को दूर करने का भरपूर प्रयास किया। उन्होंने अपनी बात निर्भीकता से कही। वस्तुतः गरीबदास भक्त और कवि बाद में थे वे सही अर्थों में समाज-सुधारक पहले थे।

संत जी ने नारी को पुरुष की सहभागिनी बताते हुए पतिव्रता स्त्री के बारे में कहा है–

गरीब पतिव्रता सो जानिये, मानें पीव की कान।
पीव भावे सोई करे, बिन आज्ञा नहीं खान।।

आगे संत जी कहते हैं–

गरीब पतिव्रता सो जानिये, नांही आन उपाव।
एकै मन, एकै दिसा, छोडै भगति न भाव।।

संत जी ने जहां नारी के त्रिय चरित्र और कामिनी नारी की निंदा की है वहीं उसके उत्कृष्ट रूप की खुलकर प्रशंसा की है। इसी प्रकार गुणी पुरुष की प्रशंसा और कामी व कपटी नर की निन्दा भी की है। संत जी दाम्पत्य संबंधों में संतुलन पर बलदेते हैं संत जी कहते हैं–

गरीब कामी तजे न कामना, ना हृदय हरि सेत।
यमपुर निश्च जायेगा, सारे कुटुम्ब समेत।।

बुरे कृत्य करने वालों को संत जी ने काफिर कहकर उन्हें धिक्कारते हुए कहा है–

काफिर सो माता दैं गारी, वे काफिर जो खेले सारी।
काफिर दान यज्ञ नहीं करही, काफिर साधु संत सैं अरहीं।।
काफिर पिता वचन उलटाही, इतने काफिर देजिख जाँही।।

संत जी आगे कहते हैं–

वे काफिर जो कन्या मारै, वे काफिर जो वनखंड जारै।।
वे काफिर जो खेती चोरं, वे काफिर जो मारै मोरं।।

संत जी ने समाज में व्याप्त बाह्याडम्बरों व अंधविश्वासों की निंदा करते हुए राम नाम के स्मरण पर बल दिया है–

गरीब कोट गऊ जे दान दे, कोटि जगि जौनार।
शुकदेव की चौरासी मिटी, निरालम्ब निज नाम।।

संत जी आगे कहते हैं–

गरीब साहिब मेरी बीनती, कर जोरों कर्तार।
तन मन धन कुरबान जां, दीजे मोहि दीदार।।

समाज के प्रति जागरूक संत गरीबदास ने साधाना के क्षेत्र में व्याप्त बाह्याडम्बरों का डट कर विरोध किया। लोग बाह्यचारों को भी धर्म समझकर आन्तिरिक शुधता पर बल नहीं देते। यह बात संत गरीबदास को पता थी। इसलिए उन्होंने जनता को सचेत करते हुए कहा कि जटा होना, केशलुंन, मौन व्रत, सिर मुण्डन, तिलक मुद्रा, तीर्थ, हज यात्रा से कोई साधक नहीं हो जाता। लोग तन का योग साध रहे हैं, जबकि उन्हें मन की योग साधाना करनी चाहिए। कर्मकांडों को छोड़कर राम नाम का भजन करने से मुक्ति मिलती है–

तीर्थ, व्रत अर्थ नहीं पावें। राम भजे तो मुक्ति करावें।।

मनुष्य को अहंकार तजकर व सभी चिंताओं को परे रखकर प्रभु भक्ति करनी चाहिए–

गरीब लै लागी तब जानिये, हरदम नाम हनोज।
मैं मेरी कुं पटक दे, शिर से डारो बोझ।।

सच्चा सतगुरु साधक के अन्दर अज्ञान के अन्धकार को दूर करके ज्ञान का प्रकाश फैलाता है। ज्ञान पैदा होने पर ही साधक की परमात्मा की तरफ रुचि बढ़ती है और वह संसारिकता से दूर होने लगता है। संत जी कहते हैं–

गरीब जेते श्वास शरीर में, तेते नाम जपंत।
रोम रोम तारी लगे, तब जा पावे पंथ।।

सतगुरु को पारस के समान मानते हुए संत जी कहते हैं–

गरीब अलह अविगत राम है, बेचगूंन निरबान।।
नाम निरन्तर लीजिये, ध्यान चकोरा चन्द।।

आगे–

गरीब, ऐसा सतगुरु हम मिल्या, सिंधु सुरति की सैन।
उर अंतर प्रकासिया, अजब सुनाये बैन।।

संत गरीबदास जी ब्रह्म प्राप्ति में सबसे बड़ा साधक तत्व गुरु को मानते हैं। गुरु ही परमात्मा तक पहुंचने की पहली सीढ़ी है, जिसके सहारे साधक का परमात्मा की तरफ झुकाव पैदा होता है। संत जी कहते हैं–

गरीब माया का रस पीय करि, हो गये डामा डोल।
ऐसा सतगुरु हम मिल्या, ज्ञान जोग दिया खोल।

संत जी हर प्रकार के नशे व व्यसनों से बचने को कहते हैं–

सुरापान भंगी मीट मांस खाहिं।
कक्कड़ चरस पीय यमलोक जाहि।।

इसी प्रकार–

काफिर भाँग भसौड़ी भरही, काफिर हुक्के सूँ सर करहीं।
काफिर घट में धुआँ देही, काफिर नास नाक में लेही।।

संत जी ने हिंसा का विरोध हर स्तर पर किया है चाहे वह जीभ के स्वाद के लिए की गई हो या धर्म के नाम पर की जा रही हो। संत जी ने मांस भक्षण की कड़ी निंदा की है–

गरीब सूर गऊ कूँ खात हैं, भक्ति बिहूनें राढ़।
भाँग तमाखू ख गये, सो चाबत हैं हाड़।

आगे–

गरीब भाँग तमाखू पीबहिं, गोसत गला कबाब।
मोर मृग कूँ भखत हैं, देहँगे कहा जबाब।।

समाज सुधार की दृष्टि से संत जी ने कुसंगति, कपट और द्वेष की निंदा की है। इन चीज़ों को अध्यात्म और व्यवहारिक दोनों प्रकार के जीवन में उन्नति में बाधक बताया है। मनुष्य को सद्कर्मों की ओर प्रवृत होने का उपदेश देते हुए संत जी कहते हैं–

गरीब बीज न बोया जान कर, संगति करी न साध।
शील संतोष विवेक बिन, बंधो वाद विवाद।।

सतसंग की महिमा संत जी इस प्रकार बताई है–

गरीब संगत कीजै साध की, संसारी भटकंत।
पिंजर सूआ पढत हैं, किसकूँ बूझे पंथ।।

साधु महिमा का गान करते हुए संत जी कहते हैं–

गरीब साध संगति हरिभक्ति बिन, कोई न पावै पार।
निर्मल आदि अनादि है, गंगा सब संसार।।

संत जी आगे कहते हैं–

भक्ति हेत गृह बाँधिया घण नामी घट माहि।
साधूजन सेवे बिना, साई पावै नाहि।।

संत गरीबदास ने सार ग्रहण की प्रवृति पर बल दिया है। उनका मत है कि अच्छी बातों को ग्रहण करना चाहिए तथा बुरी बातों का त्याग करना चाहिए। संत जी का कहना है कि व्यक्ति को सोच समझकर और विचारकर आचरण करना चाहिए–

गरीब ज्ञान विचार विवेक बिन, क्यों दम तोरै श्वास।
कहा होत हरि नाम सैं, जौ दिल ना विश्वास।।

आगे संत जी कहते हैं–

गरीब, करैं विचारि समझिकर, खोज बूझ का खेल।
बिना मथै निकसे नहीं, है तिल अंदर तेल।।

सत्य की महिमा प्रतिपादित करते हुए संत जी कहते हैं–

गरीब सोचे कूँ प्रणाम है, झूठे के सिर डंड।
और नहीं तिहुँ लोक में, भरमत है नौ खंड।।

आगे संत जी कहते हैं–

गरीब झूठा सब संसार है, साचा है सो एक।
पारब्रह्म सतपुरुष पद, सब वसुधा की टेक।।

संत गरीबदास मानवतावादी आस्था के साथ समाज में सुधार लाना चाहते थे। सर्वधर्म समभाव का संदेश देते हुए संत जी कहते हैं–

कैसे हिन्दू तुरक कहाया। सबही एकै द्वारे आया।।
कैसे ब्राह्मण कैसे सूदा। एकै हाड चाम तन गूदा।।

इसी प्रकार–

कौम छतीस एक ही जाती। ब्रह्म बीज सबकी उतपाती।
एकै कुल एकै परिवारा। ब्रह्म बीज का सकल पसारा।।

संत जी पर्यावरण संरक्षण पर बल देते हुए कहते हैं–

गरीब गाब नहीं, बेला नहीं, कूप न सरवर सिंध।
नगरी निश्चय त्यागिये, जमके परि है फंद।।

इसी क्रम में संत जी आगे कहते हैं–

गरीब छह; तु बारह माह में, नहीं कुलाहल राग।
जेह नगरी क्या रहनि है, कोयल कूक न बाग।।

गरीबदास जी ने आचरण की शुधता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने पर बल दिया है। उनका मत है कि जब तक मन में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि विकार भरे हैं तब तक हृदय में भगवान की भक्ति नहीं आ सकती। संत जी ने शुध भक्ति के लिए पंचविकारों का त्याग करने की सलाह दी है–

गरीब काम, क्रोध, मद, लोभ सब हो गये ठीकम ठीक।
मैं तै छार सब हो गई, ऐसी लागी डीक।।

संत जी ने नाम मार्ग का महत्व इस प्रकार बतलाया है–

रत्न खजाना नाम है, माल अजोख अपार।
यह सौदा सत कीजिए, दुगने तिगने चार।।

संत जी ने अपनी वाणी में 'नाम' को ही मुक्ति का साधन बताया है–

नाम बिना क्या होत है, जब तप संयम ध्यान।
बाहरि भरमे मानवी, अब अन्तर में जान।।

संत जी ने बाहरी दिखावे की प्रवृति की आलोचना की है–

कण्ठी माला सुमरणी पहरे सै क्या होय।।
ऊपर ढुंढा साध का, अन्तर राख्या खोय।।

संत जी अन्य आडम्बरों को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करने की सलाह देते हैं–

कहां पाहन फूल चढ़ावै जड़ जूनी घण्ट बजावै।
याह जड़ पूजा नंहि कीजै, जासै पार ब्रह्म नहिं रीझै।।

गरीबदास जी को भगवान की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास है। श्रद्धा और विश्वास भक्ति के अनिवार्य तत्व है। संत जी को पूरा विश्वास है कि परमात्मा पूर्ण समर्थ है। संत जी कहते हैं कि केवल ईश्वर की सत्य है, वही विश्वास के योग्य है बाकी सब छलावा मात्र है–

गरीब करि विश्वास अकीन रखि धनी करे सो होय।
त्रिकुटी संजय ध्यान धरि देख परम पद लोय।।

संत जी आगे कहते हैं–

गरीब दूनी दिवानी दोजखनि कहां दुनी से नेह।
जाका तूं विश्वास रखि, जिन दीन्ही तुझि देह।।

ईश्वर और गुरु भक्ति करने वाले मनुष्य के मन की सारी चिन्ताएं मिट जाती हैं–

ऐसा सतगुरु हम मिल्या, तेज पुंज की लोय।
तन मन अरपण शीश कूं, होनी सो जो होय।।

संत जी ने धर्म के नाम पर व्याप्त हिंसा का विरोध किया। अहिंसा को ही परम भाव बताते हुए संत जी का कहना है–

आतम प्राण उधरहि, ऐसा धरम न और।
कोटि यज्ञ असमेघ फल, सबद समाना भौर।।

संत जी विषय वासनाओं से मुक्ति का मार्ग बताते हुए कहते हैं कि इच्छा ही सब दुखों का कारण है–

इच्छा सब जग लुटिया, इच्छा किनें न लूट।
परवतर तोड़े भरम के शब्द ज्ञान की मूठ।।

उस समय के समाज की आर्थिक दशा का चित्रण भी किया है। उस समय पड़ने वाले अकालों की जानकारी भी मिलती है। संत जी कहते हैं–

गरीब एक आने सेर अन्न लेते सब मजूर।
देखि दसगुणा बधि गया, समझि गदहरे सूर।।
गरीब, जुलाहौं अपर जुलम था, मरि गये डूम डहाल।
कातन कूँ पाया नहीं, पर्या ज बीसाकाल।।

संत जी कहते हैं कि सांसारिक प्रेम हमें संसार से बांध देता है जबकि परमात्मा का प्रेम हमें संसार से मुक्ति दिलाता है–

सजन सुराही हाथ है, अमृत का प्याला।
हम बिरहन बिरहे रंगी, कोई पूछे हाला।।

संत जी आगे कहते हैं–

यह संसर झाड़ और झांकर, उलझ पलझ मर जाना है।
कहे कबीर सुना भई सन्तों, सतगुरू नाम ठिकाना है।।

संत जी का कहना है कि प्रेम का कोई मोल नहीं होता। मानवता को प्रेम मार्ग पर चलने का उपदेश देते हुए संत जी ने फरमाया है–

ऐसा सतगुरु हम मिल्या, मगन किये मस्ताक।
प्याला पाया प्रेम का, गगन मण्डल गरगाप।।

मन-माया की झूठी कल्पनाओं से बचने का उपदेश संत जी ने इस प्रकार दिया है–

नंगा आया जगत में, नंगा ही तू जाय।
बिच में ख्वाबी ख्याल है, मन माया भरमाय।।

संत जी का कहना है कि मनुष्य जीवन दुर्लभ है और यह इस लिए मिला है ताकि परमात्मा को जाना जा सके। गरीबदास यह स्वीकारते हैं कि मानव परमात्मा की कृपा से ही कुछ कर सकने योग्य बनता है। जीव को हर सांस प्रभु का नाम जपना चाहिए–

कबीर मानस जनम दुर्लभ है, होत न बारम्बार।
ज्यों फल पक कर भुई गिर, बहुरि न लागे डार।।

संत जी इसी सत्य को बखूबी प्रगट करते हैं और आगे कहते हैं–

क्या लेकर जन्म लियो है, क्या लेकर चले जाओगे।
मुठी बांध कर जन्म लियो, हाथ पसार जाओगे।।

संसार की नश्वरता को प्रतिपादित करते हुए संत जी का कहना है–

या माटी के महल में, मगन भया क्यूं मूढ।
कर साहिब की बन्दगी, उस सांई को ढूंढ।।

संत जी ने कामवासना को अध्यात्मिक पथ की बहुत बड़ी बाधा माना है। संत गरीबदास ने कंचन और कामिनी को साधना के मार्ग में बाधक बताया है। मानव को उपदेश देते हुए संत जी कहते हैं–

परनारी नहीं परसिए, होगा हाल बेहाल।
पारस पूंजी जात है, कांकर सांटे लाल।।

परमात्मा की भक्ति में रमे बिना जीव दिन-रात भटकता रहता है–

गरीब मृग तृष्णा तोकूं लगी, भटकत है दिन रैन।
थल का जल दीखंत है, एक पलक नहीं चैन।।

निष्कर्षत

हम कह सकते हैं कि गरीबदास जी ने समाज में व्याप्त वैषम्य को दूर कर समता स्थापित करने का प्रयास किया। परोपकार, सेवा, क्षमा, करुणा, दान, धैर्य, अहिंसा, सत्संग आदि का प्रचार करके वे शुध आचरण एवं सात्विकता पर बल देते दिखाई पड़ते हैं। गरीबदास जी सामाजिक समन्वय पर बल देते हैं। वे चाहते थे कि हिन्दू-मुसलमानों में भाई-चारे की भावना उत्पन्न हो। वे ढोंग तथा अन्धविश्वास समाप्त करना चाहते थे। गरीबदास लीक छोड़ कर चलने वाले ऐसे कवि थे जिन्होंने समाज में व्याप्त विसंगतियों, मिथ्याडम्बरों एवं अनीतिपूर्ण आचरण पर खुलकर प्रहार किए। वे सहज जीवन के कवि हैं जिन्हें मिथ्याचार एवं पाखण्ड से घृणा है। उन्हें जो ठीक लगा उसे कहने में कोई संकोच नहीं किया। वे प्रकृति से सच्चे समाज सुधारक एवं हृदय से लोक कल्याण के आकांक्षी महामानव थे। उनके व्यक्तित्व का पूरा प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में विद्यमान हैं। गरीबदास जी का प्रतिपाद्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–रचबनात्मक तथा आलोचनात्मक। रचनात्मक भाग में अन्तर्गत वे उपदेशक हैं तथा मानवमात्र को सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, दया, क्षमा, सन्तोष, उदारता जैसे गुणों को धारण करने का उपदेश देते हैं तो आलोचनात्मक भाग के अन्तर्गत वे समाज में व्याप्त धार्मिक पाखण्ड जातिप्रथा, मिथ्याडम्बर, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों का खण्डन करते हैं। गरीबदास पढ़े लिखे न थे, किन्तु उनमें अनुभूति की सचाई एवं अभिव्यक्ति का खरापन विद्यमान था। वे अनुभवजन्य सत्य पर विश्वास करते हैं न कि शास्त्रोक्त बातों पर।

गरीबदास नैतिक मूल्यों के पक्षधर ऐसे सन्त कवि थे जो जनता के सच्चे पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। आचरण की पवित्रता का जो मार्ग उन्होंने जनता के लिए उचित बताया उस पर स्वयं चलकर भी दिखाया। उन्होंने व्यक्ति के सुधार पर इसलिए बल दिया क्योंकि व्यक्तियों से ही समाज बनता है। यदि किसी समाज में अच्छे आचरण वाले व्यक्ति अधिकता में होंगे तो समाज स्वयमेव सुधर जाएगा। गरीबदास जी का समाज दर्शन एवं उनकी शिक्षाएं आज भी प्रासंगिक हैं।

संदर्भ

आधार ग्रंथ–

* श्री सतगुरु ग्रंथ साहिब, श्रीमज्जगद्गुरु श्री 1008 आचार्य गरीबदास साहिब जी महाराज कृत अमृतमयी वाणी मूल ग्रन्थ, स्वामी दर्शनदास, अध्यक्ष- ब्रह्मसागर संत चरण ट्रस्ट (रजि), अवतार स्थान–श्री रामपुर धाम, रोपड़, 2013.

सहायक ग्रंथ–

* डॉ. रामसजन पाण्डेय, विद्यापति का सौन्दर्यबोध, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण

* डॉ. रामसजन पाण्डेय, निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
* डॉ. रामसजन पाण्डेय, दादू की भाषा, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 1996.
* राजपाल सिंह कादयान/राजबीर सिंह धनखड़, हरियाणा का प्रसिद्ध संत : संत गरीबदास, सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, 2004.
* डॉ. रामपत यादव, गरीबदासी पंथ : सिद्धांत और साहित्य, साहित्य संस्थान, गाज़ियाबाद, 2004.
* डॉ. रणधीर सिंह, संत गरीबदास : दर्शन और रहस्यवाद, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, 2006
* महर्षि गंगा दास, परमसंत गरीब दास जी की दिव्य लीलामृत, बाबा गरीबदास आश्रम, बड़ौता, गोहाना, 2007.
* डॉ. सूरज भान, हरियाणा का सन्त-साहित्य, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, 2017

पत्र-पत्रिकाएं–

* अनुसंधनिका (भाग-1), डॉ. रामशंकर त्रिपाठी (संपा.), भवदीय प्रकाशन,शृंगारहाट, आयोध्या, 2005.
* कश्फ़, डॉ. बिनोद कुमार तनेजा (संपा.), विभोर प्रकाशन, अमृतसर, जून-2011.
* वैचारिकी, डॉ. बाबूलाल शर्मा (संपा.), भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, जुलाई-अगस्त, 2012.
* सरस्वती सुमन, डॉ. आनन्दसुमन सिंह (संपा.), सारस्वतम्, 1-छिब्बर मार्ग, आर्यनगर, देहरादून, जून 2017.

इंटरनेट–

· www.banigaribdasji.com
· www.garibdassahib.org
· www.satsahib.org

सिस्टर निवेदिता का भारतीय महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण

डॉ० रामजी सिंह

(पटना)

सारांश– स्वामी विवेकानंद की प्रमुख शिष्य भगिनी निवेदिता जो 1893 के स्वामी जी के शिकागो विश्व धर्म संसद के भाषण में उपस्थित थी, और तब से स्वामी जी के विचारों से प्रभावित होकर, स्वामी जी के इंग्लैंड के अनेकों सम्मेलनों आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भगिनी निवेदिता स्वामी जी के सुझाव पर 1898 मैं भारत आई तथा 1911 (मृत्यु पर्यंत) भारत भूमि को अपना कर्म क्षेत्र मानकर अनेक महत्वपूर्ण तत्कालीन समस्याओं में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वह एक तरफ तत्कालीन समय में बंगाल में फैली 'प्लेग' जैसी महामारी के खिलाफ, लोगों को संगठित कर, अस्पतालों में बीमार लोगों की सेवा की, तो दूसरी तरफ बंगाल में युवा क्रांतिकारियों के प्रेरणा के स्रोत थी, क्योंकि वह आयरलैंड में ब्रिटिश उपनिवेश के खिलाफ आंदोलन में भी बढ़-चढ़कर समर्थन की थी। वह इस्त्री शिक्षा तथा स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता की प्रबल समर्थक थी। वाह स्त्री को परिवार तथा समाज की केंद्रबिंदु (धुरी) मानती थी। वह बंगाल में रामकृष्ण मिशन आश्रम में रहते हुए पश्चिमी ज्ञान विज्ञान पर आधारित एक अंग्रेजी माध्यम से संचालित बालिका विद्यालय की स्थापना की, तथा एक समय जब इसके संचालन में वित्तीय संकठ की समस्या उठ खड़ी हुई तो इन्होंने अपना अमेरिकी दौरा कर अनेक लोगों से वित्तीय सहायता प्राप्त की, तथा तत्कालीन समस्या से निपट सकी। इसके अतिरिक्त यह बंगाल क्षेत्र के अनेक बालिका विद्यालयों के संचालन में समन्वयक की भूमिका भी अदा की। यह स्वामी जी की तरह अध्यात्मिक दृष्टिकोण भी रखती थी तथा मानती थी कि दुनिया के सभी धर्मों में कुछ अच्छाइयां हैं तो कुछ त्याग ने जैसी बातें भी हैं, इसलिए सभी धर्मों के बीच एक सामंजस्य स्थापित कर संतुलन कायम करने की जरूरत है। इस तरह बहन निवेदिता ने तत्कालीन सभी महत्वपूर्ण समस्याओं पर न सिर्फ अपना महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किया, बल्कि समस्याओं के समाधान की दिशा में बढ़ चढ़कर भाग लिया। इतना ही नहीं इन्होंने 1902 में शिवाजी के स्वर्ग सिधार करने के पश्चात शिवाजी के अधूरे कार्यों को एक चुनौती के रूप में ली, तथा जीवन पर्यंत इसे पूरा करने के लिए संघर्षरत रहीं।

परिचय- भगिनी निवेदिता मूल रूप से आयरलैंड की नागरिक थी और वहां उनका नाम था– मार्गरेट एलिजाबेथ नोबेल। स्वामी विवेकानंद से प्रभावित होकर वह भारत आई और रामकृष्ण मिशन में शामिल हो गई, जहां पर उन्हें निवेदिता नाम दिया गया। यह भारतीय मठ में शामिल होने वाली पहली पश्चिमी महिला मानी जाती है, जिन्होंने भारत भूमि की प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए अपने को समर्पित कर ली। इनका जन्म 28 अक्टूबर 1867 को उत्तरी आयरलैंड के एक छोटे शहर डूंगानन में हुआ था। इनके पिता सैमुअल रिचमण्ड पूरी तरह ईश्वर पर भरोसा रखने वाले तथा गरीबों की सेवा करने वाले एक चर्च पुजारी तथा सामाजिक कार्यकर्ता थे। मार्गरेट प्राय अपने पिता के कार्यों में हाथ बताती थी, इसलिए उन्हें बचपन से ही इन्हें दीन दुखियों के प्रति सहानुभूति थी तथा दूसरी तरफ ईसाई धर्म के कुछ अनसुलझे सवालों का उत्तर ढूंढने की कोशिश करती रही, जिसका समाधान उन्हें भारतीय महान संत स्वामी विवेकानंद से मिलने के पश्चात ही मिल सका। उन्होंने 1884 मैं एक चर्च संगठन द्वारा संचालित प्रसिद्ध हेलीफैक्स कॉलेज से अपनी शिक्षा पूरी की। तथा वही केशविक नामक स्थान में स्कूल शिक्षक के रूप में अपनी सेवा देनी आरंभ की। लेकिन यहां अकेलापन महसूस होने के कारण वह 1886 में रेक्सहेम आ गई जहां यहां इन है रांमवेल्स नामक युवक इंजीनियर से मुलाकात हुई। दोनों ने एक साथ बहुत सारे सामान्य कार्य पूरा किए। दोनों एक दूसरे से प्यार करने लगे तथा अंततः दोनों ने विवाहित बंधन में बंधने का निर्णय लिया। लेकिन दुर्भाग्यवश कुछ ही दिनों के अंदर युवक इंजीनियर गंभीर रूप से बीमार पड़कर अंततः दम तोड़

दिया। अब मार्गरेट अंदर से पूरी तरह टूट चुकी थी तथा शीघ्र ही रेक्सहेम छोड़कर अपनी बहन के पास चेस्टर चली आई। यहां इन्हें मिस्टर और मिसेज लौगमेन ईसावेल, मार्गेसन, लेकी रिपन इत्यादि से मुलाकात हुई। इन लोगों के साथ मिलकर इन्होंने साहित्यिक अंतरंग मंडलीं सिसम क्लब' की स्थापना की, जहां जॉर्ज बर्नाड शॉ तथा थॉमस हॅक्सले जैसे प्रतिभाशाली लोग प्रतिदिन आया करते थे। लेकिन इनकी धार्मिक पिपासा 1895 में इंग्लैंड में महान हिंदू संत स्वामी स्वामी विवेकानंद के मिलने के बाद शांत हो सका। उस समय 1893 के शिकागो व्याख्यान के पश्चात पश्चिमी जगत में स्वामी जी काफी लोकप्रिय हो चुके थे। स्वामी जी के सभी धर्मों के प्रति इमानदार रवैये ने मार्गरेट को काफी प्रभावित किया। अब मार्गरेट इंग्लैंड के सभी महत्वपूर्ण बैठकों में भाग लेने लगी तथा अनेकों अनसुलझे सवालों का जवाब पाकर अपने अंदर के दुविधा को दूर करने में सफल रही। स्वामी जी के संस्कृत मंत्र का उच्चारण इन्हें चर्च के ग्रेगोरियन जादू की तरह लगा।

अध्ययन का उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य तत्कालीन नारी शक्ति करण के उस दौर में, महिलाओं को विकट कठिन परिस्थितियों में भी, अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहने की प्रेरणा देना है। भगिनी निवेदिता ने भी बंगाल के रामकृष्ण मिशन आश्रम में रहते हुए प्लेग रोगियों की निस्वार्थ तथा अनवरत सेवा की। आज भी तत्कालीन परिस्थितियों में कोरोना संकठ के इस दौर में कोरोना योद्धाओं को भी इनके विचारों से अवगत करा कर यह संदेश देने का है की संकट के इस घड़ी में वे अपना धैर्य एवं संयम का संतुलन बनाए रखें। दूसरी तरफ निवेदिता भारतीय नारी के प्रति एक स्वच्छ दृष्टिकोण रखती थी जिस तरह स्वामी विवेकानंद भी रखते थे। स्वामी जी ने तो 'भारतीय नारी' पर एक पुस्तक लिख कर अपने व्यापक दृष्टिकोण से लोगों को परिचित कराया। अध्ययन के इस क्षेत्र को चुनने का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि भगिनी निवेदिता जब एक विदेशी महिला होकर जिस तरह भारत को अपना कर्म क्षेत्र मानकर यहां के तत्कालीन समस्याओं के समाधान के लिए अपने जीवन पर्यंत संघर्ष करती रही तो भारतीय तत्कालीन नारी भी अपने परिवार, समाज तथा देश के उत्थान के लिए तत्कालीन समस्याओं के समाधान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

भगिनी निवेदिता का भारतीय नारी के प्रति दृष्टिकोण– भगिनी निवेदिता भारतीय नारी को परिवार की ताकत तथा केंद्र बिंदु मानती थी। वह इनकी सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों के समन्वय को महत्व देती थी। इनकी वास्तविक स्थिति की शुरुआत असामाजिक ढांचा के अध्ययन से आरंभ होती है। इनकी सामाजिक ढांचा, सांस्कृतिक पहलू तथा जीवन मूल्य स्त्री तथा पुरुष दोनों के महान सामाजिक व्यवहार को स्थापित करता है। परिवार तथा उसका प्रभुत्व, शादी तथा धार्मिक परंपराएं कहीं ना कहीं व्यवस्था को दीमक की तरह खा रही है अर्थात इससे व्यवस्थाएं ढलान/उतराव की तरफ जा रही है। स्त्री तथा पुरुष दोनों की विचारधाराएं तथा नैतिक आधार दोनों राष्ट्र की अधिकार तथा कर्तव्य की याद दिलाते हैं। इस तरह भगिनी निवेदिता ने भारतीय नारियों के स्थिति का निपटारा उसकी सामाजिक ढांचा तथा सामाजिक संगठनों के माध्यम से की। वह भारतीय नारियों को एशियाई विचारधारा का मुख्यालय मानती थी। वह मानती थी कि भारतीय नारियों की मधुरता का राज कहीं ना कहीं महान संस्कृति में छिपी हुई है। यहां के घरों की मिठास तथा सुंदरता का राज महिलाओं के नैतिक आचरण में छिपी हुई है। यहां के महिलाओं की वेशभूषा एक उच्च आदर्श की ओर संकेत करता है। घरेलू महिलाओं की धार्मिक परंपराएं, माता का संतुष्टि का स्वप्न तथा इनका आत्म गौरव तथा सुरक्षात्मक उपाय मनुष्यों के उच्च विकास में घोतक है। एशिया के महिलाओं के मुख मंडल पर मिठास तथा सुंदरता का एक अनोखा आकर्षण है। यहां के नारियों का नारीत्व (स्त्री स्वभाव, मैं बुद्धिमता, सेवा भावना, त्याग की भावना तथा शक्ति वह प्यार का एक अनोखा संगम है। भारतीय नारी दमयंती, सीता तथा सावित्री के गुणों के साथ एक महत्वपूर्ण नारी की छवि पेश करती है। भारतीय महिलाओं को यह कोई मायने नहीं रखता कि वह गरीबी तथा अभाव से संघर्ष करती है तथा उन्हें औद्योगिक तकनीकी ज्ञान का अभाव है। सीता तथा सावित्री यहां के प्रत्येक हिंदू नारियों की आदर्श है, जिनका आचरण वह प्रत्येक दिन के क्रिया-कलापों मैं करती हैं। वह निवेदिता पश्चिमी संस्कृति की उपज रहते हुए भारतीय नारी के वास्तविक स्वरूप को समझने में सक्षम थी। वह मानती थी कि पूरे एशिया में भारतीय नारी की एक अलग सभ्यता तथा संस्कृति थी। दूसरी तरफ वाह एशियाई महिलाओं को भी एक विशेष नैतिक उच्चारण की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। वह मानती थी कि यहां के हिंदू महिलाओं की कीर्ति तथा जीवन में एक विशेष प्रकार की पवित्राता तथा शुद्धता है।

भगिनी निवेदिता जीवन के पाश्चात्य और भारतीय आदर्शों में भारी अंतर देखती थी। सीता जी का चरित्र हमारी जाति के लिए सहनशीलता का आदर्श है। पाश्चात्य संस्कृति रहती है कि तुम यंत्रवत् कार्य में लगे रहो और अपनी शक्ति का परिचय कुछ भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करके दिखाओ। भारतीय आदर्श, इसके विपरीत कहता है कि तुम्हारी महानता देखो को सहन करने की शक्ति में है।

पाश्चात्य आदर्श अधिक से अधिक धन-संपत्ति के संग्रह में गर्व करता है, भारतीय आदर्श हमें अपनी आवश्यकताएं को न्यून से न्यूज कर जीवन को सरलता पूर्वक निर्वहन करने की प्रेरणा देता है। उस प्रकार दोनों आदर्शों में दो ध्रूवों का अंतर है माता सीता भारतीय आदर्श की प्रतीक है आज सीता जी के आदर्श के सादृश्य ऐसी कोई अन्य पौराणिक कथा नहीं है, जो इनके जीवन के साथ इतनी एका कार हो गई हो, भारत में माता-पिता का नाम पवित्रता, साधुता और विशुद्ध जीवन का प्रतीक है। वह इस तरीके अखिल गुणों का जीता-जागता आदर्श है। भारत में कोई गुरु अथवा संत जब किसी स्त्री को आशीर्वाद देते समय कहते हैं की 'तुम सीता के समान बनो' बालिका को आशीर्वाद देते समय 'सीता जी के अनुशरण' करने का सुझाव देते हैं। स्त्रियां, बालिकाएं सभी भगवती सीता की संतान है, और वह सब माता सीता के समान धीर-गंभीर, चीरपवित्रा तथा सतीत्वमय जीवन बनाने के लिए प्रयत्नशील है।

बहन निवेदिता कहती है कि भगवती सीता जी को पद-पद पर यातनाएं और कष्ट प्राप्त होते हैं, परंतु उनके श्रीमुख से भगवान रामचंद्र के प्रति एक भी कठोर शब्द नहीं निकलता है। सब विपत्तियों और कष्टों का वे कर्तव्य बुद्धि से स्वागत करती हैं और उसे भली-भांति निभाती हैं। उन्हें अन्याय पूर्वक वन में निर्वासित कर दिया जाता है, लेकिन उसके कारण उनके हृदय में लेश मात्रा भी कटुता नहीं होती है और यही सच्चा भारतीय आदर्श है। भगवान बुद्ध मानते थे कि जब तुम्हें कोई चोट पहुंचाता है और तुम प्रतिरोध में उसे चोट पहुंचाते हो तो इस प्रकार प्रथम अपराध का निवारण तो नहीं होता, लेकिन वह संसार में दुष्ट बुद्धि का कारण बन जाता है। मां सीता भारतीय स्वभाव की यथार्थ प्रतीक थी, उन्हें पहुंचाई गई चोट या कष्ट के प्रत्युत्तर में उन्होंने किसी दूसरे को कष्ट नहीं दिया। यदि हम विश्व के भूतकाल के साहित्य तथा वर्तमान का अवलोकन करें तो हमें सीता जी के समान भव्य आदर्श नहीं प्राप्त होता है। सीता जी के चरित्र का आगमन विश्व इतिहास की वह घटना है, जिसकी पुनरावृति कठिन है। यह संभव है कि विश्व में अनेक राम का जन्म हो परंतु दूसरी सीता कल्पनातीत है। सीता भारतीय नारीत्व की उज्जवल कृति है। वह पूर्ण विकसित नारीत्व के सभी भारतीय आदर्शों का मूल सच्चा चरित्र है। आज भी वह भारत के सभी दिशाओं में संपूर्ण नारी जाति की आराध्य देवी बनी हुई है। पवित्रता से भी अधिक पवित्र, धैर्य और सहनशीलता की साक्षात प्रतिमा हमेशा इस महान पद पर आसीन रहेगी। चाहे हमारा वेद साहित्य नष्ट हो जाए लेकिन जब तक एक भी हिंदू बचा रहेगा नारियों में मां सीता का गुणगान होता रहेगा। वास्तव में मां सीता न सिर्फ सभी भारतीय नारियों की आदर्श हैं बल्कि प्राण भी हैं। प्रत्येक हिंदू स्त्री और पुरुष के रक्त में सीता जी का आदर्श विद्यमान है, हम सब उसी माता की संतान हैं उसी माता की संतान है, यदि हम भारतीय स्त्रियों को आधुनिक रूप देने के उद्देश्य से उन्हें सीता के आदर्श से वंचित करने का प्रयत्न करें तो, हमारा यह प्रयत्न विफल साबित होगा क्योंकि भारतीय नारियों किया विशेषता है कि जल्दी उन्हें आदर्श से विचलित नहीं किया जा सकता है। आर्यव्रत की स्त्रियों का विकास और उन्नति तभी संभव है, जब वे सीता जी के पद चिन्हों पर चलें।

बहन निवेदिता का कहना है कि भारत की हर एक कन्या की आकांक्षा है कि वह सती सावित्री के समान बने, जिसके प्रेम मे मृत्यु पर भी विजय पा ली, जिसने अपने अनंत प्रेम द्वारा मृत्यु देवता यम के पास से भी अपने पति की आत्मा का छुटकारा करवा लिया। अश्वपति नामक राजा की पुत्री इतनी सुशील तथा सुंदर थी कि उनका नाम सावित्री पड़ गया। वह अपनी पिता की इच्छा पर अपने पति सत्यवान का चुनाव की थी। यह इस बात का संकेत है कि भारत में बहुत पहले से बालिकाओं को अपने जीवन साथी के चुनाव में स्वतंत्रता हासिल थी अर्थात् पिता द्वारा उनकी इच्छाओं को जानने समझने का प्रयास किया जाता था।

निष्कर्ष

इस तरह स्पष्ट है कि भगिनी निवेदिता विदेशी महिला होकर भी भारत को न सिर्फ अपनी कर्मभूमि माना बल्कि लंबे समय तक बंगाल के रामकृष्ण मिशन आश्रम से तरह-तरह की गतिविधियों में संलिप्त रही जो तत्कालीन समय की जरूरत थी। उनका व्यापक दृष्टिकोण था इसलिए इन्होंने हर एक महत्वपूर्ण विषयों में अपना विचार व्यक्त किया विशेषकर शिक्षा, धार्मिक तथा अध्यात्मिक विषय तथा भारतीय नारी के प्रति उनका व्यापक दृष्टिकोण। बहन निवेदिता को भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की गहरी समझ थी। वह मानती थी कि भारत की प्रत्येक स्त्री दमयंती, सीता तथा सावित्री को अपना आदर्श मानती है तथा उनका प्रयास

रहता है कि इन उच्च आदर्श वाली महिलाओं की तरह सत्य, निष्ठा तथा विकट एवं विपरीत परिस्थितियों में भी अपना धैर्य नहीं खोए तथा अपना संतुलन बनाए रखें। विशेषकर मां सीता का आदर्श इनकी गहरी जड़े हैं जो हमेशा युगों-युगों तक कायम रहेगी। हालांकि निवेदिता पश्चिमी दुनिया के भौतिकवादी संस्कृति की खोखली दिखावटी को अस्वीकार करती है तथा इसके मुकाबले पूर्व की सामान्य जीवन तथा ऊंचे आदर्श को ज्यादा तारजीह देती है। वह पूरे एशिया के नारी को ज्यादा आदर्शवाद तथा सत्य निष्ठा और ऊर्जावान मानती है। वह मानती है कि विशेषकर भारतीय स्त्रियां सीमित संसाधनों तथा अभाव में रहकर भी ज्यादा खुश हैं अर्थात वह सीमित संसाधनों में बेहतर जीवन जीने की कला जानती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आर. लाल– सूर्या, एजुकेशन पब्लिशर, मेरठ, उत्तर प्रदेश
2. आदित्यराज, अरविंद, लोकमाता– भगिनी निवेदिता, विश्वज्योति, होशियारपुर, पंजाब, अगस्त 1988
3. सिंह, रामजी– सिस्टर निवेदिता का क्रांतिकारी मानववाद तथा राजनीतिक गतिवाद, 1907
4. Bishop, Donald H & Ram Krishna and the Indian Renaissance, Bulletin of the the Ramakrishna mission institute of culture] Feb 1979
5. मजूमदार, आर. सी.– " sister Nivedita", Bulletin of the Ramakrishna mission institute culture, January 1980
6. स्वामी विवेकानंद– भारतीय नारी

स्वामी विवेकानंद के राजनीतिक विचार

डॉ० मनोज कुमार सिंह

(पटना)

सारांश

भारतीय पूर्नजागरण के अग्रदूतों मैं स्वामी विवेकानंद का स्थान आधुनिक भारतीय इतिहास में काफी महत्वपूर्ण रहा है। हम इस आलेख में यह देखेंगे कि उनके शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन से पूर्व पश्चिमी विद्वान भारतीय धर्म तथा दर्शन के कटु आलोचक थे, वह इनके महत्व को तुच्छ समझते थे, लेकिन स्वामी जी द्वारा 1893 में विश्व धर्म संसद में भारतीय वेदांत दर्शन पर जोरदार ढंग से व्याख्यान देने के पश्चात अब पश्चिमी विद्वान मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा करने लगे। इन्हीं आलोचनाओं से निजात पाने के लिए इन्होंने शिकागो सम्मेलन में भाग लेने का निर्णय किया था। इनका भाषण संकीर्णता से परे सार्वदेशिकता और मानवता से ओतप्रोत था तथा वहां की जनता इसे सुनकर मंत्रमुग्ध हो गई थी। उन्होंने अपने व्याख्यान के दौरान स्पष्ट शब्दों में कहां की जिस प्रकार सारी धाराएं अपने जल को सागर में मिला देती हैं,उसी प्रकार मनुष्य के सारे धर्म ईश्वर की ओर ले जाते हैं। स्वामी जी का सामाजिक तथा राजनीतिक विचारधारा अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। पिछले आलेख में मैं उनके सामाजिक विचारधारा पर प्रकाश डाला था, लेकिन यहां हम उनके राजनीतिक विचारधारा पर प्रकाश डाले हैं। हमेशा एक मजबूत राष्ट्र के पक्ष में थे लेकिन राजनीतिक आंदोलन के पक्षधर नहीं थे। हमेशा धर्म को इस राष्ट्र का एक मजबूत मानते थे तथा उनकी नजर में अन्य तत्वों का इसके मुकाबले गौड स्थान है। वह धार्मिक तथा अध्यात्मिकता को राष्ट्रवादी विचारधारा में एक महत्वपूर्ण योगदान मानते थे। इसके आधार पर वे विश्व विजय की परिकल्पना को भी सरकार होने की बात करते थे। स्वामी जी अपने राजनीतिक विचारधारा के अंतर्गत फ्रांसीसी क्रांति के महत्वपूर्ण सिद्धांत स्वतंत्रता, समानता तथा विश्वबंधुत्व को अत्यंत सर्वोपरि मानते थे। वे अपने जीवन में स्वयं एक निर्भीक तथा साहसी व्यक्ति थे तथा वे भारतीयों के हीनता तथा शक्तिहीनता पर दुखी थे। स्वामी जी में देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी इसीलिए वे अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की बात किया करते थे। ऐसे ही लोगों की प्रेरणा से बंगाली राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला जो कालांतर में भारतीय राष्ट्रवाद में परिणत हो सका।

परिचय

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 फरवरी 1863 में कलकत्ता में हुआ था जो भारतीय पुर्नजागरण के अग्रदूतों में से एक थे। उनकी मां एक अध्यात्मिक महिला थी जबकि पिता एक स्वतंत्र विचारों वाले व्यक्ति थे। उनके बचपन का नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे रामकृष्ण के शिष्य बनने से पूर्व ना सिर्फ अस्त्र तथा शास्त्र की शिक्षा ग्रहण किए थे बल्कि अनेक पश्चिमी राजनीतिक विचार को तथा दार्शनिकों की रचनाओं को गहनता से अध्ययन किया था, इसीलिए उनकी विचारधारा आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक हो गया था। वे ब्रह्म समाज की शिक्षाओं से प्रभावित थे तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण ईश्वर से उनका विश्वास नष्ट हो गया था। वे लंबे समय तक नास्तिक बने रहे तथा कलकत्ता शहर में वे एक ऐसे गुरु की खोज में घूमते रहे जो उन्हें ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान करा सके। जिस समय यह अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस से मिले उस समय इनकी आयु 25 वर्ष की थी। इनका मिलन एक प्राचीन तथा नवीन विचार धारा का मिलन था उन्होंने अपने गुरु से मिलकर अनेक प्रश्नों का उत्तर प्राप्त किया तथा गुरु की अध्यात्मिक विचारधारा ने इन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया। उनका

आकर्षण अपने गुरु के प्रति दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा तथा इन्होंने उनके सामने अपने को पूर्णरूपेण अर्पित कर दिया और उनके शिष्य बन गए। इसी बीच एक 11 सितंबर 1893 के शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में भाग्य लेकर भारतीय वेदांत दर्शन का बड़े जोरदार ढंग से व्याख्यान दिए जिसके परिणाम स्वरूप पश्चिमी जगत के विद्वान मंत्रमुग्ध हो गए तथा अब इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे, जबकि इसके पहले वे भारतीय धर्म तथा दर्शन के कटु आलोचक थे। स्वामी जी के इस सम्मेलन की पश्चिमी जगत के कई विद्वान भूरि-भूरि प्रशंसा की है। प्रो. राइट ने तो इतना तक कहा कि स्वामी विवेकानंद एक ऐसा व्यक्ति है कि अगर उनके व्यक्तित्व की तुलना विश्वविद्यालय के सभी प्रोफेसरों के एकत्र ज्ञान से किया जाए तो भी वे अधिक ज्ञानी सिद्ध होंगे।

अध्ययन का उद्देश्य

इस आलेख का प्रमुख उद्देश्य आज के युवा पीढ़ी को आधुनिक भारतीय इतिहास के पुर्नजागरण के अग्रदूतों मैं से एक स्वामी विवेकानंद के विचारों से अवगत कराना है। क्योंकि आज के युवा पीढ़ी में भीरूता, हीनता, कार्य करने की संस्कृति का अभाव, स्त्रियों के प्रति सम्मान की भावना की कमी तथा तत्कालीन राजनीतिक संगठनों तथा सिद्धांतों से दूरी जैसे कमी साफ तौर पर दिखाई दे रही है। स्वामी जी बहुमुखी प्रतिभा के ध्वनि तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे इसीलिए युवा वर्ग स्वाभाविक तौर पर उनके प्रति आकर्षित हो जाते थे वह एक निडर तथा साहसी व्यक्ति थे जिसकी झलक उनके शिकागो सम्मेलन में देखने को मिलता है। वह भारतीय क्षेत्रों का भ्रमण कर इस बात का अनुभव किया की भारत में गरीबी तथा अशिक्षा का प्रमुख कारण कार्य करने की संस्कृति का अभाव है क्योंकि युवा पीढ़ी बिना कठिन परिश्रम के बहुत कम श्रम तथा समय में सब कुछ पा लेने की इच्छा रखती है। वह पश्चिम के उपभोक्तावादी संस्कृति को भी घृणा की दृष्टिकोण से देखते थे तथा उसे भारतीय संदर्भ में बिल्कुल उचित नहीं मानते थे। पश्चिम के उपभोक्तावादी संस्कृति के अभाव के कारण ही आज भारत में स्त्री को केवल उपयोग की वस्तुओं के रूप में देखा जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप आज स्त्रियों के ऊपर अत्याचार तथा अन्याय बढ़ गया है जबकि प्राचीन भारतीय इतिहास में इन्हें उचित सम्मान तथा अधिकार प्राप्त था। वह पक्के राष्ट्रभक्त थे तथा राष्ट्रीयता के तत्वों को बढ़ाने में वे धर्म का महत्वपूर्ण योगदान मानते थे। वह फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता समानता तथा विश्व बंधुत्व के सिद्धांतों में काफी गहरे रूप से प्रभावित थे। इसीलिए आज के युवा पीढ़ी जो अपने पथ से विचलित हो गई है, तथा जिनमें नैतिकता तथा सदाचार के सिद्धांतों की कमी आ गई है इन्हें आज स्वामी जी के विचारों एवं सिद्धांतों से अवगत कराने की सख्त जरूरत है।

स्वामी विवेकानंद का राजनीतिक विचारधारा

स्वामी जी एक गतिशील तथा मजबूत राष्ट्र के पक्षधर थे लेकिन किसी राजनीतिक आंदोलन के पक्ष में नहीं थे। वे धर्म को किसी राष्ट्र की संजीवनी शक्ति मानते थे। उनका मानना था कि किसी भी राष्ट्र के प्रधान तत्वों में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है तथा अन्य तत्व का स्थान गौड है अर्थात वह राष्ट्रवाद के धार्मिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। विश्वास करते थे कि धर्म ही भारत के राष्ट्रीय जीवन का प्रमुख आधार बनेगा। उनके विचार में किसी राष्ट्र को गौरवशाली, उसके अतीत की महत्ता की नीव पर ही बनाया जा सकता है क्योंकि इसकी उपेक्षा करके राष्ट्र का विकास नहीं किया जा सकता है। वह राष्ट्रीयता के अध्यात्मिक पक्ष में विश्वास करते थे इसीलिए उनका विचार था कि भारत में स्थाई राष्ट्रवाद का निर्माण धार्मिकता के आधार पर ही किया जा सकता है उन्होंने अपने एक व्याख्यान में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि- भारत में विदेशियों को आने दो शस्त्रा बल से जीतने दो, किंतु हम भारतीय अपने अध्यात्मिकता से समस्त विश्व को जीत लेंगे, प्रेम घृणा पर विजय प्राप्त करेगा, हमारी अध्यात्मिक पश्चिम को जीतकर रहेगी, उदबुद्ध और सजीव राष्ट्रीय जीवन की शर्त ही है कि हम दर्शन और अध्यात्मिकता से विश्व पर विजय प्राप्त करें। विवेकानंद के स्वतंत्रता संबंधी सिद्धांत अत्यंत व्यापक थे और वे मानते थे कि समस्त विश्व इसी की खोज कर रहा है क्योंकि वे मानते थे कि मनुष्य का विकास स्वतंत्र वातावरण में ही हो सकता है। स्पष्ट तौर पर मानते थे कि शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होना तथा दूसरों को उसकी ओर अग्रसर होने में सहायता देना मनुष्य का सबसे बड़ा पुरस्कार है। वे यह भी मानते थे कि जो सामाजिक नियम इस स्वतंत्रता के विकास में बाधा डालते हैं, वह हानिकारक है और उन्हें शीघ्र नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाए जिनके द्वारा मनुष्य स्वतंत्रता के मार्ग पर आगे बढ़ता हो। विवेकानंद का सबसे बड़ा देन साहस तथा निर्भीकता का संदेश युवाओं को देना था। क्योंकि उस समय देश परतंत्रता की बेड़ियों में झगड़ा हुआ था और भारतीय जनमानस हीनता से पूर्णत: ग्रस्त था, उस समय विवेकानंद ने अनुभव किया कि- सुप्त तथा पद दलित भारतीय जनता को शक्ति

के अभाव में ना तो हम व्यक्तिगत अस्तित्व को स्थिर रख सकते हैं और ना ही अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। वह शक्ति को धर्म से बढ़कर मानते थे और उनके अनुसार जो धर्म हृदय में शक्ति का संचार नहीं कर सकते वे सच्चा धर्म नहीं हो सकते हैं। उनका मानना था कि प्रत्येक भारतवासी को ज्ञान, चरित्र तथा नैतिकता की शक्तियों का सृजन करना चाहिए, व्यक्तियों को अपने पुरुषार्थ, मानव गरिमा तथा स्वाभिमान आदि श्रेष्ठ गुणों का विकास करना चाहिए। उनका यह भी मानना था कि आत्मा का लक्षण सिंह के समान है अत: मनुष्य को भी सिंह के समान निर्भय होकर आचरण करना चाहिए। उन्होंने देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा था कि– हे वीर निर्भीक बनो, साहस धारण करो, इस बात पर गर्व करो कि तुम भारतीय हो और गर्व के साथ घोषणा करो कि मैं भारतीय हूं तथा प्रत्येक भारतीय मेरे हैं, यह शब्द सोये हुए भारतीय को जागने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे। जिस समय देश की जनता निराशा में डूबी हुई दयनीय जीवन व्यतीत कर रही थी, उस समय शक्ति व निर्भीकता का संदेश देना उनकी प्रखर बुद्धि का ज्वलंत उदाहरण है। विवेकानंद में देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी इसीलिए वे मातृभूमि की रक्षा के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहते थे। भारतीय भूमि को स्वर्ग तथा कल्याण की भूमि मानते थे डॉ. वर्मा के शब्दों में बंकिंग की भारती वह भी भारत माता को एक आराध्या देवी मानते थे। यह कल्पना की भारत देवी माता की विभूति है बंगाल के राष्ट्रवादियों और आतंकवादियों की रचनाओं तथा भाषणों की प्रेणा रही है, उनके लिए देशभक्ति एक शुद्ध और पवित्र आदर्श था।

निष्कर्ष

उस तरह उपयुक्त आलेख से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामी विवेकानंद एक ऐसे आकर्षक बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्तित्व थे जो भारतीय युवा वर्ग के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरणा के स्रोत थे। ऐसे ही प्रतिभाओं के प्रेरणा के स्रोत के बंगाली राष्ट्रवाद ने अंतत: भारतीय राष्ट्रवाद के रूप में परिणत हो गया। बंगाल के युवा क्रांतिकारियों के प्रेरणा के स्रोत के रूप में स्वामी जी तथा बहन निवेदिता (विवेकानंद की प्रमुख शिष्या) का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उस समय देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था तथा हमारा युवा वर्ग में उत्साह तथा उमंग के संचार की सख्त आवश्यकता थी। स्वामी जी ने समय की नजाकत को पहुंचाना तथा बिल्कुल सही समय पर युवा वर्ग में राष्ट्रीयता की भावना के विचार में बढ़ावा देने का कार्य किया, यह विवेकानंद के प्रखर बुद्धि का ही परिणाम था। उनकी प्रखर बुद्धि का ही परिणाम था कि उन्होंने रामकृष्ण परमहंस जैसे परम ज्ञानी कृतित्व तथा व्यक्तित्व की सच्ची परख कर उन्हें अपना गुरु बनाया। उनके साहसिक तथा प्रखर व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि उन्होंने सितंबर 1893 के शिकागो के विश्व धर्म संसद में भारतीय वेदांत दर्शन का जोरदार ढंग से व्याख्यान देने में सफल रहे जिनके परिणाम स्वरूप पश्चिमी विद्वान भारतीय धर्म तथा दर्शन के गूढ़ रहस्य से परिचय करा कर उनके आलोचनाओं को प्रशंसा में बदलने के लिए विवश कर दिया। पक्के राष्ट्रभक्त थे तथा उन्होंने भारतीय युवा वर्ग में राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समानता तथा विश्व बंधुत्व की भावना का पक्के हिमायती थे। वह मानव स्वतंत्रता के भी जोरदार पक्षधर थे। मैं राष्ट्र की समृद्धि के पक्के पक्षधर थे, लेकिन इसके लिए वह किसी राजनीतिक आंदोलन के पक्ष में नहीं थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. डॉव मनोज कुमार सिंह-THE REVOLUTIONARY HUMANISMAND THE SOCIO & POLITICAL IDEAS OF SWAMI VIVEKANANDA&THESIS
2. SURYA R. LALL. EDUCATION PUBLISHER'S, MEERUTH
3. डॉक्टर प्रभुदत्त शर्मा-आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास
4. Swami Vivekananda books online
5. Swami Vivekananda books pdf

राजनीतिक यथार्थवाद और मैकियावली का राजनीतिक चिन्तन

डॉ० आलोक कुमार

एम०ए०, पी०एच०-डी० (राजनीति विज्ञान), जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध पत्र का सार

राजनीति विज्ञान में यथार्थवादी अध्ययन की शुरूआत आधुनिक समय में हुई है तथा इसे स्थापित करने का श्रेय व्यवहारवाद को जाता है। इसके बाद भी राजनीतिक यथार्थवाद की उपस्थिति मैकियावली के राजनीतिक चिन्तन में दृष्टिगोचर होता है। मैकियावली को आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के जनक की संज्ञा देने के मूल में एक कारण राजनीतिक यथार्थवाद पर उसके चिन्तन का आधारित होना है। मैकियावली की रचना 'द प्रिन्स' (1513) तथा 'डिस्कोर्सेज ऑन टाइटस लिवियस' (1521) में प्रस्तुत विचारों में राजनीतिक यथार्थवाद का प्रबल समर्थन मिलता है। यह सही है कि मैकियावली का राजनीतिक चिन्तन नैतिकता और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सन्दर्भ में आलोचनीय है, परन्तु वह यथार्थ पर आधारित है। मैकियावली ने अपने समय के यथार्थवादी परिस्थिति और आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है, तभी तो डनिंग ने उसे "अपने समय का शिशु" कहा है। मैकियावली के द्वारा राष्ट्र-राज्य का समर्थन तथा राजनीति में राजा की कठोरता का समर्थन समय की यथार्थवादी माँग थी। मैकियावली ने भ्रष्टाचार के नियंत्रित करने के लिए राजा/शासक को नैतिकता निरपेक्ष होकर कार्य करने की बात कही थीं। मैकियावली की राजनय सिद्धान्त पूर्णत: राजनीतिक यथार्थवाद पर आधारित रहा है। स्पष्टत: मैकियावली ही राजनीति विज्ञान में राजनीतिक यथार्थवाद का प्रथम प्रवक्ता था तथा उसी परिप्रेक्ष्य में उसे आधुनिक राजनीतिक चिन्तन का जनक भी कहा जाता है।

मूल शब्द

व्यवहारवाद, शक्ति, आगमन पद्धति, ऐतिहासिक पद्धति, पुनर्जागरण, परिषदीय आन्दोलन, आधुनिक राजनीतिक चिन्तन, राष्ट्र-राज्य तथा राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना

पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार आन्दोलन के बाद मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। इससे राजनीतिक जीवन का प्रभावित होना भी स्वाभाविक ही था। उसी पुनर्जागरण के दौर में निकोली मैकियावली का आगमन होता है। इटली के फ्लोरेन्स में वर्ष 1469 ई० में निकोली मैकियावली का जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ।[1] मैकियावली ने प्रशासन में एक साधारण कलर्क के रूप में कार्य प्रारम्भ किया, परन्तु अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ, प्रतिभा और कार्यक्षमता के कारण वह विभिन्न प्रशासकीय पद को प्राप्त किया। राजदूत के रूप में कई देशों की उन्होंने यात्रा भी किया।[2] उन्होंने कई पुस्तकों की रचना भी किया।

मैकियावली को अरस्तू के बाद का दूसरा राजनीतिक वैज्ञानिक माना जाता है, जिन्होंने राजनीति तथा धर्म के विभाजन को महत्वपूर्ण माना। मैकियावली ने नीति, न्याय आदि के अमूर्त सिद्धान्तों पर आधारित निगमन तर्क पद्धति का परित्याग कर दिया, जिस पर मध्यकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों की रचना हुई थी। दूसरी ओर उन्होंने यथार्थवादी राजनीतिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया।

यही कारण है कि राजनीतिक चिन्तन में राजनीतिक यथार्थवाद का प्रथम प्रयोगकर्त्ता तथा प्रवक्ता मैकियावली को ही माना जाता है। मैकियावली अपने समय एवं परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक यथार्थवाद को आधार बनाकर सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है, तभी तो डनिंग (Dunning) ने उसे समय का शिशु (Child of his times) कहा है।[3]

मैकियावली ने पूरी तरह वैज्ञानिक तटस्थता की नीति अपनाते हुए अपनी समकालीन परिस्थितियों का बड़े ध्यान से अध्ययन किया, अपने युग की समस्याओं को समझा और फिर अपने निष्कर्षों का प्रतिपादन किया। इस तरह उसने अपनी राजनीतिक पद्धति में अनुभववाद और इतिहासवाद का समन्वय किया। दूसरे शब्दों में, उसने अनुभूतिप्रधान (Empirical) या ऐतिहासिक पद्धति को अपनाया। अरस्तू के बाद राजनीतिक गवेशणा के क्षेत्र में इस पद्धति को अपनाने वाला वह प्रथम् विचारक था। इतिहास और तर्क का सहारा लेते हुए उसने तत्कालीन धर्म-शक्ति को एक गम्भीर चुनौती दी तथा 'मानव व्यवहार के पथ-प्रदर्शक के रूप में ईश्वरीय नियम का बहिष्कार करते हुए राजनीति विज्ञान का आधार ही परिवर्तित कर दिया।' मैकियावली की 'प्रिंस' वह सर्वप्रथम् महान रचना थी, जिसमें दैवीय और मानवीय इन दोनों तत्वों में स्पष्ट संघर्ष दिखलाई पड़ा और जिनमें पूर्ववर्ती नसलों द्वारा अपनाई हुई प्राचीन सूक्तियों को यह समझकर छोड़ दिया गया कि सैद्धान्तिक रूप से वे बुद्धिहीन एवं व्यावहारिक रूप में मार्ग-भ्रष्ट करने वाली थी।[4]

मैकियावली का मत था कि सभी देशों और कालों में मानव-स्वभाव एक जैसा रहता है, लगभग एक ही प्रकार के उद्देश्यों से संचालित होता है और एक जैसी ही समस्याओं का उसे समाधान करना पड़ता है। अत: यदि वर्तमान काल की समस्याआं का हमें समाधान करना है अथवा हमें भविष्य में क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर पाना है तो यह उचित है कि हम भूतकाल में क्या किया था और उसके क्या परिणाम निकले थे? मैकियावली का विश्वास था कि भूत के गंभीर अनुशीलन से हम सफलताओं और विफलताओं के कारणों को सामान्यत: मालूम कर सकते हैं। किन्तु उल्लेखनीय है कि मैकियावली ने "इतिहास का उपयोग अपने पूर्वकल्पित निष्कर्षों की पुष्टि में किया है, इनके प्रणयन में नहीं।"[5]

मैकियावली की पद्धति देखने में जितनी ऐतिहासिक लगती है, यथार्थ रूप में उतनी नहीं है। उसके पर्यवेक्षण (Observations) अधिकतर ऐतिहासिक न होकर अपने समय के ही थे। समकालीन परिस्थितियों को देखते हुए उसने पहले से ही कुछ सिद्धान्त निश्चित कर लिए थे और फिर इनके समर्थन के लिए प्राचीन इतिहास के प्रमाणों को खोजा था। जिस प्रकार नैतिक ष्ठिाक्षा का समर्थन करने के लिए पशु-पक्षियों को मनोरंजक कहानियाँ उदाहरण के रूप में गढ़ा करता था, उसी प्रकार मैकियावली अपनी अनुभूति के आधार पर निकाले गए परिणामों (Empirical conclusion) की इतिहास से पुष्टि करता था। सेबाइन ने भी मैकियावली की पद्धति को ऐतिहासिक कहना भ्रमपूर्ण माना है। सेबाइन के अनुसार उसकी पद्धति पर्यवेक्षणात्मक थी। उसने अपने तर्कों को सत्य सिद्ध करने के लिए इतिहास का आश्रय लिया। वास्तव में उसके लेखों में "कुछ निष्ठिचत आधारभूत विश्वास निहित हैं और उन विश्वासों पर तर्क का सम्पूर्ण ढाँचा आश्रित है।... यह पूर्णत: स्पष्ट है कि प्रत्येक काल की घटनाओं की गति और उनसे निकलने वाले परिणामों के सम्बन्ध में वह जो धारणाएँ रखता था उन पर निर्णयात्मक प्रभाव उसके मानव सम्बन्धी उस विशिष्ट दृष्टिकाण से था जिसकी छाप बाह्य घटनाओं पर पड़ती है, जिससे उनका रूप निर्धारित होता है और जिससे वे नियन्त्रित होते हैं।[6]

मैकियावली ने अपनी रचनाओं द्वारा मध्ययुगीन विचारों पर करारे प्रहार किए। उसने दैविक कानूनों को अस्वीकार करके केवल मानवीय कानूनों के अस्तित्व को ही स्वीकार किया और राज्य को सर्वोच्चता प्रदान की। उसने निरंकुश पोपतंत्र की कटु आलोचना की और राज्य को प्रभुत्व-सम्पन्न तथा चर्च को उसका अनुगामी बताया। उसने मध्ययुगीन राज्यों की एकता में बाधक सामन्तवाद का खण्डन करते हुए उसे अपने राज्य में कोई स्थान नहीं दिया लेकिन इन मध्ययुगीन परम्पराओं का खण्डन करने मात्र से ही वह आधुनिक युग का प्रवर्तक नहीं बन गया। उसके विचारों में कुछ अन्य विशेषताएँ भी थीं जिनमें आधुनिकता के बीच विद्यमान थे और उन्हीं के कारण उसे आधुनिक युग का सृष्टा कहा गया है।[7]

मैकियावली ने एक तरफ तो राज्य को सर्वोच्च बताया और दूसरी ओर व्यक्ति एवं जीवन की सुरक्षा के अधिकार को घोषित किया। उसने शासन का यह मुख्य धर्म बतलाया कि व्यक्तिगत धन औन जीवन का सम्मान किया जाए। सम्पत्ति के अपहरण को उसने गम्भीर अपराध की संज्ञा दी। इस तरह के विचारों ने आधुनिक व्यक्तिवाद और राष्ट्र-राज्य की स्थापना के बीच बोए। मैकियावली के इस मत का कि जनता शासक से अधिक बुद्धिमान होती है और गणतंत्र में व्यक्ति तथा राष्ट्र की स्वतन्त्रता उचित रूप से सुरक्षित रह सकती है, सहारा लेकर आधुनिक विद्वानों ने व्यक्तिवाद का आन्दोलन चलाया।[8]

मैकियावली ने आधुनिक राष्ट्र राज्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता सार्वभौमिकता के आविर्भाव के लिए भी प्रशस्त किया। यद्यपि उसने इस पर अथवा इससे सम्बन्धित समस्याओं पर कोई प्रकाश नहीं डाला किन्तु मध्यकालीन समाज के शिखरोन्मुखी संगठन और सामन्तवादी विचार का खण्डन करके तथा उसके स्थान पर सम्पूर्ण नागरिकों एवं समुदायों पर एक सर्व शक्तिमान केन्द्रीय शक्ति को प्रतिष्ठित करके स्पष्ट रूप से सार्वभौमिकता के विचार के आविर्भाव की भूमि तैयार कर दी।[9]

मध्यकाल की धार्मिकता से परिपूर्ण और अन्ध-विश्वासों तथा मूढ़ताओं से भरी अध्ययन-पद्धति में प्रगति और वास्तविकता के लिए कोई जगह न थी। मैकियावली ने अपने कार्य के लिए सर्वप्रथम अनुभूति प्रधान ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति को अपनाया। उसने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए धार्मिक दृष्टान्तों का सहारा नहीं लिया, बल्कि इतिहास, तर्क एवं पर्यवेक्षण की ऐसी पद्धति ग्रहण की जिसमें उसका चातुर्य तथा सहज बुद्धि काम करती थी। यद्यपि मैकियावली की पद्धति दोष-रहित न थी तथापित उसने एक नवीन मार्ग का निर्देशन किया और उसके बाद के प्रायः सभी विचारकों ने ऐतिहासिक पद्धति का सहारा लिया।[10]

मैकियावली ने राज्य के प्रकृतिवादी सिद्धान्तों को सम्भव बनाया और इस बात से इन्कार किया कि मानव-जीवन का कोई अति प्राकृतिक लक्ष्य भी होता है तथा मानव जीवन किसी दैविक या प्राकृतिक कानून से विनियमित होता है। राज्य को एक प्राकृतिक संस्था के रूप में प्रकट करना मैकियावली की एक महान देन थी।[11] जोन्स का कहना है कि "मैकियावली का यह विश्वास था कि प्राकृतिक शक्तियों से ही राज्य का जन्म होता है और उन्हीं के बीच वह रहता है। यदि एक शासक और राजय जीवन-रूपी घोर प्रतिस्पर्द्धा से बचना चाहते हैं तो उन शक्तियों को समझना चाहिए और उनका लाभ उठाना चाहिए।"[12]

मैकियावली की आधुनिक राजनीति शास्त्र को सर्वाधिक महत्वपूर्ण देने यह है कि उसने राजनीति का धर्म और नैतिकता से सम्बन्ध-विच्छेद प्रस्थापित किया। उसने कहा कि धर्म का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से है, राजनीति से धर्म बिल्कुल अलग है। बाद में इस मत को व्यापक समर्थन मिला और हम देखते हैं कि आधुनिक काल में प्रायः प्रतयेक प्रगतिशील राज्य अपने-आपको धर्म के बन्धनों से मुक्त रखता है। वास्तव में धर्म-निरपेक्ष (Secular) राजनीति का प्रथम जन्मदाता मैकियावली ही था। मैकियावली ने राज्य की सुरक्षा को सर्वोपरि स्थान देते हुए नैतिकता को एकदम गौण एवं अपेक्षणीयय बना दिया। यदि उसके इस विचार का अर्थ यह लिया जाए कि साध्य एवं साधन का औचित्य है और साधनों का मूल्य केवल उसी सीमा तक है जहाँ तक वे साध्य की प्राप्ति में साधक हों, तो यह अवश्य ही आपत्तिजनक है। किन्तु यदि हम इसका अर्थ यह लें कि एक आदर्श राजनीतिज्ञ को केवल कल्पनाशील दार्शनिक नहीं बल्कि यथार्थवादी होना चाहिए जो अपने "राज्य और उसके वाँछनीय लक्ष्य के सिद्धान्त की रचना मानव के एक वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण अध्ययन के आधार पर करना चाहता है जिसमें अध्यात्मिक तथा धार्मिक विचारों का कोई सम्मिश्रण न हो, तो निस्सन्देह आधुनिक राजनीतिक विचार के इतिहास को यह एक मूल्यवान देन है।" वास्तव में मैकियावली व्यावहारिक राजनीति में उपयोगी साधनों का ही समर्थक था। वह चाहता था कि धर्म और नैतिकता का उपयोग राज्य की भलाई के लिए हो। राज्य को वह धर्महीन नहीं बल्कि धर्मनिरपेक्ष, आचारहीन नहीं बल्कि आचारगत बाधाओं से दूर देखना चाहता था। व्यावहारिक पक्ष पर इतना बल देने के कारण ही केटलिन ने कहा कि "मैकियावली प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक था।" मैकियावली के विचारों की व्यावहारिकता का स्पष्ट प्रमाण यही है कि आज की सारी राजनीति में धर्म और नैतिकता एक प्रहसन बन गई है जिसकी आड़ केवल राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही की जाती है।

मैकियावली ने सीमित प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादित किया। शासन और सम्प्रभुता के प्रति उसका दृष्टिकोण मर्यादित, उपयोगितावादी तथा यथार्थ वस्तुवादी था। इसके अतिरिक्त उसने राज्य को साधन और साध्य दोनों ही रूप में स्वीकार किया। यह विचार बाद में हीगल के द्वारा प्रतिपादित किया गया कि मानव दुःख से बचना चाहता है तथा सुख की कामना करता है। इसी विचार पर उपयोगितावादी सिद्धान्त का बहुत कुछ निर्माण हुआ। मैकियावली ने इटली राज्य के सम्बन्ध में जो चित्र प्रस्तुत किया वह बहुत कुछ आधुनिक राज्यों के समान है। आधुनिक राज्य प्रभुता-सम्पन्न, धर्म-निरपेक्ष, स्वतन्त्र अस्तित्ववान और राष्ट्रीय राज्य है। कुछ राज्यों में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति गम्भीर रूप से विद्यमान है। मैकियावली ने भी स्पष्ट कहा था कि शक्ति-संवर्द्धन राज्य तथा प्रभुत्व विस्तार राजा के लिए आवश्यक है। उसने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि राज्य अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रख कर ही उन्नति कर सकता है।[13]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मैकियावली को आधुनिक राजनीतिक चिन्तक की संज्ञा देना पूर्ण रूप से उचित है। उसे इस रूप में प्रतिष्ठित करना ही उसका सही मूल्यांकन है। मैकियावली का चिन्तन जिस तत्व फलस्वरूप उसके आधुनिक राजनीतिक चिन्तक के रूप में राजदर्शन में स्थान प्रदान करता है, उसके तत्वों में अग्रलिखित दर्शन होते हैं: (i)

मैकियावली ने राजनीतिक चिन्तन में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर राजनीति को धर्म के नियंत्रण से पृथक् किया। (ii) मैकियावली ने ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का सहारा लेकर राजनीतिक प्रश्नों और समस्याओं पर विचार किया और अपने निष्कर्ष निकाले। इस तरह उसने अपने राजनीतिक चिन्तन को वैज्ञानिक और यथार्थवादी स्वरूप प्रदान किया। (iii) मैकियावली का इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय योगदान माना जा सकता है कि उसने राजनीति को नैतिकता से अलग किया। (iv) मैकियावली को ही सम्प्रभु राष्ट्रीय राज्य के सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय दिया जा सकता है। (v) मैकियावली को आधुनिक राष्ट्रीयतावाद का अग्रगामी विचारक माना जाता है। (vi) मैकियावली ने अपने चिन्तन में यद्यपि सिद्धान्त में तो सशक्त राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का समर्थन किया, लेकिन व्यवहार में गणतंत्रात्मक-जनतांत्रिक व्यवस्था का समर्थक था। (vii) मैकियावली ने मध्ययुगीन कल्पनावाद से ऊपर उठकर यथार्थवादी राजनीतिक दर्शन प्रस्तुत किया। उक्त कारणों से मैकियावली को 'यथार्थवादी विचारक' और 'आधुनिक राजनीतिक विचारक' के रूप में जाना जाता है।[14]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत राजनीतिक यथार्थवाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मैकियावली के राजनीतिक चिन्तन में राजनीतिक यथार्थवाद की उपस्थिति का अवलोकन करना है। स्पष्टतः शोध पत्र का उद्देश्य स्पष्ट व सर्वविदित है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध पत्र का शीर्षक "राजनीतिक यथार्थवाद और व्यवहारवाद' है। वस्तुतः द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद व्यवहारवाद ने स्पष्ट रूप में राजनीतिक यथार्थवाद और विज्ञानवाद को स्थापित करने का प्रयास किया। राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में भी राजनीतिक यथार्थवाद का परिचय मिलता है। भारतीय राजनीतिक चिन्तन तथा पश्चात्य राजनीतिक चिन्तन, दोनों में भी राजनीतिक यथार्थवाद की शुरूआत हुई, जो टॉम्स हॉब्स के द्वारा आगे बढ़ाया गया। इसके बाद भी व्यवहारवाद को ही राजनीतिक यथार्थवाद, अनुभववाद, विज्ञानवाद सदृश अवधारणाओं की शुरूआत मानना उचित होगा।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन में कई द्वितीयक स्त्रोतों का सहयोग लिया गया है तथा कई साहित्य सर्वेक्षण भी सम्पन्न हुए है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों का उल्लेख अनिवार्य प्रतीत होता है, जिसमें राजनीतिक यथार्थवाद और व्यवहारवाद का विशद् अध्ययन किया गया है:

1. राजनीतिक सिद्धान्त, डॉ. अष्ठोक कुमार, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, पटना वर्ष 2007
2. राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, डॉ. इकबाल नारायण, रतन प्रकाष्ठान मंदिर, आगरा, 1991
3. A Study in the History of Political thought, K.K. Kulshrestha, Ratan Publication, Agra-1998
4. The Behavioural Approach in Political Science, Robert A Dahl, Doubvry Press Belmont, 1971
5. राजनीति विज्ञान, एम०डी० अरोड़ा, द मिग्रो हिल, नई दिल्ली-2011

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

विवेचनोपरान्त स्पष्ट है कि विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों का मैकियावली पर व्यापक प्रभाव पड़ा है और मैकियावली इन परिस्थितियों का अध्ययन करते हुए उसका निदान सुझाता है। अतः डनिंग का कथन प्रमाणित है कि मैकियावली अपने युग का शिशु

है। इस विवेचन के दौरान यह भी देखने को मिलता है कि मैकियावली ने राजनीतिक विचारों की नई दुनिया की खोज करके राजनीति विज्ञान के प्रति दृष्टिकोण बदल दिया और उसके शास्त्र के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराया है। राजनीतिशास्त्र को राज्य की वास्तविक समस्याओं के निदान से सम्बद्ध किया है, जो भी बातें की हैं वह व्यावहारिक है। इसलिए कैटलिन के शब्दों में इन्हीं तर्कों के आधार पर मैकियावली को प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक भी कहा जाता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, डॉ. प्रभुत्व शर्मा, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पुनसंस्करण 2002, पृष्ठ 268
2. तथैव, पृष्ठ 268
3. डनिंग, पोलिटिकल थियरीज-एनसियट एण्ड मेडाइवल, पृष्ठ संख्या 285
4. कैमब्रीज मॉडन हिस्ट्री, वोल्यूम-1, पृष्ठ 213
5. मदोदर राव, पश्चात्य राजनीतिक चिन्तक, भाग-1, पृष्ठ 323
6. कैम्ब्रीज मॉडर्न हिस्ट्री, वोल्यूम-1, पृष्ठ 208
7. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ 285
8. तथैव, पृष्ठ 286
9. तथैव, पृष्ठ 286
10. तथैव, पृष्ठ 286
11. तथैव, पृष्ठ 287
12. तथैव, पृष्ठ 287
13. तथैव, पृष्ठ 287

भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति नरेन्द्र मोदी सरकार की प्रतिबद्धता: एक अवलोकन

डॉ० अमिताभ त्रिवेदी

एम०ए० (राजनीति विज्ञान), पी०यू०, पटना, पी०एच०-डी०, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)

शोध आलेख का सार

राष्ट्रीय सुरक्षा को सामान्य रूप से राष्ट्रीय हित का पर्यायवाची समझ लिया जाता है, जो राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं की रक्षा से सम्बन्धित होती है तथा राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुरक्षित रखने से संबंधित होती है। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा आन्तरिक कानून व्यवस्था की स्थापना एवं समाज में सौहार्द की स्थापना से भी जुड़ा हुआ है। प्रारम्भ में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को केवल सामरिक और सैनिक रणनीति से जाता रहा है, जबकि आज तो राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा का आर्थिक और राजनीतिक पक्ष, दोनों ही रूपों में महत्वपूर्ण बन गया है। राष्ट्र की आन्तरिक राजनीति तथा वैदेशिक नीति का उद्देश्य व्यापक अर्थ में राष्ट्रीय सुरक्षा है। राष्ट्रीय सुरक्षा की पूर्ति राष्ट्र अपने वैदेशिक नीति के माध्यम से एक तरफ पूरा करता है, तो दूसरी ओर आन्तरिक रूप में अपने लोगों को हर प्रकार से सुरक्षित, शोषण व उत्पीड़न से मुक्त तथा उच्च मनोबल युक्त रखता है। स्पष्टत: राष्ट्रीय सुरक्षा नागरिकों के मनोबल विकास तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा से भी सम्बन्धित है। राष्ट्रीय सुरक्षा का सम्बन्ध राष्ट्र की ऐतिहासिक, अस्मिता और परम्पराओं को कायम रखना तथा अपनी संस्कृति को अपसंस्कृतिकरण से सुरक्षा भी है। स्पष्टत: राष्ट्रीय सुरक्षा का सांस्कृतिक आयाम भी महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय सुरक्षा की सम्बद्धता समाज व राष्ट्र की अपनी स्वाधीन संस्कृति व पहचान को कायम रखना भी है इसके बाद भी राष्ट्रीय सुरक्षा का केन्द्रीय विषय सामरिक सुरक्षा और सामरिक सन्दर्भ में राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष उपस्थित चुनौतियों और अनिवार्यताओं की चर्चा के साथ-साथ मोदी सरकार की वैदेशिक नीति, घरेलू नीति और बाह्य रणनीति के विषयों पर लेखन अपेक्षित है।

मूल शब्द: आतंकवाद, गुटनिरपेक्षता, विदेश नीति, पंचशील, नि:शस्त्रीकरण, कूटनीति सामरिक रणनीति, बफर स्टेट, सामूहिक सुरक्षा।

प्रस्तावना

भारत ने भी अन्य देशों की भाँति अपने वैदेशिक नीति के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावी बनाने का प्रयास किया है। भारत की वैदेशिक नीति की आधारभूत सिद्धान्त गुटनिरपेक्षता को माना जाता है। जिस समय अमरीका और पूर्व सोवियत संघ, दोनों महाशक्तियाँ शीत युद्ध की नीति का अवलम्बन कर रही थीं तथा पूँजीवादी और साम्यवादी गुट अपनी-अपनी शक्ति को मजबूत बनाने के लिए विभिन्न राष्ट्रों के साथ गठजोड़ कर रहे थे, तब भारतीय नीति-निर्माताओं, विशेषतया पं० जवाहर लाल नेहरू ने विश्व शान्ति के साथ-साथ भारतीय सुरक्षा तथा आवश्यकताओं के हित में यही उचित समझा कि भारत को इस शक्ति राजनीति से पृथक् ही रखा जाय। प्रारम्भ में इस नीति को तटस्थता की नीति कहा गया था, परन्तु पाँचवें दशक में इसे गुटनिरपेक्षता के नाम से जाना जाने लगा। इसके बाद से समय और परिस्थिति से गुटनिरपेक्षता की नीति भी प्रभावित होती रही है। गुटनिरपेक्ष संगठन की प्रथम शिखर सम्मेलन 1-6 सितम्बर, 1961 को बेलग्रेड (युगोस्लाविया) में आयोजित किया गया। उस समय से लेकर अब तक 17 शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ है। गुटनिरपेक्षता का 18वाँ शिखर सम्मेलन वर्ष 2018 में वियतनाम में प्रस्तावित हुआ

है। यह उल्लेखनीय है कि भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के बनने के बाद दो गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन वर्ष 2016 में वेनेजुएला के 'पोरलामार' शहर में सम्पन्न हुआ है तथा वर्ष 2018 का शिखर सम्मेलन वियतनाम में प्रस्तावित था, जो अब 2019 में बाकू अजेरबैजान में सम्पन्न हुआ।

गुटनिरपेक्षता की नीति विकासशील देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ-साथ विश्व समाज के प्रति भी समान रूप में सचेत एवं सक्रिय रही है। स्पष्टत: भारत की वैदेशिक नीति का लक्ष्य जिस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ-साथ सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा है, ठीक उसी प्रकार गुटनिरपेक्षता की नीति और उद्देश्य भी है। यह अलग बात है कि समय व परिस्थिति के सन्दर्भ में गुटनिरपेक्षता का विकास हुआ है। गुटनिरपेक्षता नीति के शुरूआती दिनों में साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध तथा दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद नीति का विरोध रहा, हालांकि शस्त्रीकरण को भी शुरू से ही गुटनिरपेक्षता ने राष्ट्रीय सुरक्षा और सामूहिक सुरक्षा के मार्ग में बाधा माना है। गुटनिरपेक्षता के विकास का द्वितीय चरण वर्ष 1973 से 1990-91 तक माना जाता है, जिसमें नवीन आर्थिक व्यवस्था तथा प्राकृतिक मित्र का सिद्धान्त रहा।[1] यह उल्लेखनीय है कि 3-9 सितम्बर, 1979 को हवाना (क्यूबा) में छठा गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ।[2] उसी सम्मेलन में क्यूबा के राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रों ने पूर्व सोवियत संघ को विकासशील देशों का स्वाभाविक एवं प्राकृतिक मित्र कहा था, हालांकि उस समय भारत ने प्राकृतिक मित्र के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया था। गुटनिरपेक्षता के विकास का तीसरा चरण वर्ष 1992 से प्रारम्भ माना जाता है, जिसे वर्तमान चरण भी कहा जा सकता है। इस चरण में गुटरिनरपेक्षता स्वयं अपनी प्रासंगिकता की खोज में लगा हुआ है, क्योंकि 1990 के दशक में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन हुआ है(शीतयुद्ध का अन्त हो गया है(वैचारिक तनाव तो खत्म हो गया है, परन्तु आतंकवाद ने विश्व समान के सामने राष्ट्रीय सुरक्षा और विश्व शांति व सौहार्द के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा उत्पन्न का दिया है। गुटनिरपेक्षता की नीति में ही बदलाव नहीं हुआ है, बल्कि नेहरू से लेकर वर्तमान समय तक प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी तक का दृष्टिकोण भी बदलता रहा है। भारत के प्रधानमंत्रियों के दृष्टिकोण का परिवर्तन भारत के सामरिक एवं राष्ट्रीय हित को परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में पूरा करना बताया जा सकता है। गुटनिरपेक्षता के प्रतिनिधि विचारक, निर्माणक तथा भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने गुटनिरपेक्षता को 'शांति का समर्थक' कहा तथा शांति और नि:शस्त्रीकरण पर बल दिया, जो विश्व शांति और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए समान रूप में अनिवार्य था। नेहरू ने कहा था कि गुटनिरपेक्षता महाशक्तियों का विरोध नहीं, अपितु स्वतंत्रता के विस्तार की माँग है।[3] नेहरू के बाद इंदिरा ने गुटनिरपेक्षता के यथार्थवादी आयाम पर बल दिया। इंदिरा गाँधी ने गुटनिरपेक्षता की नीति के साथ सामूहिक सुरक्षा के साथ-साथ भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता जैसे मुद्दे को महत्वपूर्ण बताया। गुटनिरपेक्षता के 16वाँ शिखर सम्मेलन वर्ष 2012 में ईरान की राजधानी तेहरान में सम्पन्न हुआ, जिसमें मनमोहन सिंह के द्वारा शांति और न्याय पर बल दिया गया। उस समय यह कहा गया कि शांति एवं न्याय के पक्ष में प्रभावी पहल की आवश्यकता आज समस्त विश्व महसूस कर रहा है।[4]

वर्ष 2016 में गुटनिरपेक्षता का सत्रहवाँ शिखर सम्मेलन लैटिन अमरीकी देश वेनेजुएला के पोर्लामर में सम्पन्न हुआ, जिसमें भारत का प्रतिनिधित्व उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने किया।[5] यह पहला अवसर था नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में तथा उसमें उन्होंने भाग नहीं लिया।[6] यह उल्लेखनीय है कि 1979 में कार्यवाहक प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने भी गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भाग नहीं लिया था।[7] गुटनिरपेक्षता के प्रति भारत का दृष्टिकोण पूर्व की भाँति सकारात्मक ही रहा है, हालांकि नरेन्द्र मोदी ने भारत को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने के लिए इसे केवल विकासशील देशों से सम्बद्ध करके नहीं रखना चाहते हैं।

भारत की वैदेशिक नीति के मूल में नि:शस्त्रीकरण की अवधारणा हमेशा ही उपस्थित रही है, जिसे सामूहिक सुरक्षा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा, दोनों के लिए ही महत्वपूर्ण माना जाता है। वर्ष 1963 के आंशिक परमाणु परीक्षण निषेध संधि पर भारत ने हस्ताक्षर करके इस दिशा में अपनी प्रतिबद्धता को व्यक्त कर दिया था, हालांकि वर्ष 1968 के परमाणु अप्रसार संधि का भारत की आपत्ति का मूल कारण विभेदपूर्ण नि:शस्त्रीकरण की नीति ही थी। वर्ष 1996 में व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि (CTBT) की भी भेदभावपूर्ण स्थिति ने भारत को आपत्ति दर्ज करने पर बाध्य कर दिया। आज 183 देशों ने सी०टी०बी०टी० पर भले ही हस्ताक्षर कर दिया है, लेकिन भारत, पाकिस्तान और उत्तर कोरिया के द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया है। भारत के अनुसार सी०टी०बी०टी० केवल विकासशील देशों के परमाणु कार्यक्रम को प्रतिबंधित करता है, जो अन्याय है तथा वास्तविक नि:शस्त्रीकरण से दूर है। इसलिए भारत ऐसे संधि पर हस्ताक्षर नहीं करता। भारत को विश्व शांति पर पूर्ण विश्वास है, परन्तु विभेदपूर्ण आचरण को यह ठीक नहीं मानता। भारत कहता है कि सी०टी०बी०टी० के द्वारा विकासशील देशों को तकनीकों से भी वंचित करने का प्रयास किया गया है। भारत

का नि:शस्त्रीकरण, विश्व शांति, सामूहिक सुरक्षा में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को समावेशित करने पर अधिक बल है। परमाणु प्रसार रोकने के लिए परमाणु आपूर्तिकर्त्ता समूह (एन०एस०जी०) की स्थापना वर्ष 1974 में हुई[8], जब भारत ने प्रथम पोखरन किया था। एन०एस०जी० का प्रावधान है कि जिन देशों ने एन०पी०टी०-1968 पर हस्ताक्षर किये हैं, उनको ही परमाणु ईंधन और तकनीक उपलब्ध कराया जायेगा।

भारत के प्रति प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में वैश्विक दृष्टिकोण में बहुत बदलाव हुआ है। भारत भले ही सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर नहीं किया है, परन्तु नरेन्द्र मोदी के प्रयास से उसे एन०एस०जी० से रियायत मिल रही है। भारत विश्व का अकेला ऐसा देश बन गया है, जिसे परमाणु अप्रसार सधि पर हस्ताक्षर किए बिना 'ट्रिगर लिस्ट' से सामग्री प्राप्त करने की छूट प्रदान की गई है।[9] नरेन्द्र मोदी के प्रयास से भारत को एन०एस०जी० से लगातार महत्व प्राप्त हो रहा है। चौथा नाभिकीय सुरक्षा सम्मेलन 31 मार्च से 1 अप्रैल, 2016 को वाशिंगटन (USA) में आयोजित किया गया।[10] इस सम्मेलन पर मोदी के व्यक्तित्व का प्रभाव था। यह अलग बात है चीन के द्वारा लगातार भारत का विरोध किया जा रहा है। वासेनार समूह की स्थापना वर्ष 1996 हालैंड के वासेनार शहर में आयोजित हुई, जिसका उद्देश्य परम्परागत हथियारों के निर्यात तथा दोहरे तकनीकी इस्तेमाल को रोकना हैं। भारत इस संगठन का प्रभावी सदस्य है। इसके 41 सदस्यों में चीन को छोड़कर बाकि लगभग सभी सदस्य वही देश हैं जो एन०एस०जी० में है। चीन इसकी सदस्यता चाहता है, जिसका भारत अप्रत्यक्ष विरोध करता है। इसे नरेन्द्र मोदी की कूटनीतिक विजय ही कहा जायेगा। वर्ष 2016 में वाशिंगटन सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसका मूल उद्देश्य परमाणु आतंकवाद को समाप्त करना रहा है। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने उक्त सम्मेलन में भाग लेकर भारतीय दृष्टिकोण को प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे भारत की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में कूटनीतिक विजय प्राप्त हुई है। जुलाई, 2019 में नरेन्द्र मोदी के प्रयास से अमरीका ने भारतीयों के लिए बीजा व निवास को आसान बनाया है।

भारत की परमाणु नीति तथा सामरिक रणनीति हमेशा ही महत्वपूर्ण रही है। भारत की सामरिक नीति विश्व में अनोखा है, क्योंकि इसमें विश्व शांति व सौहार्द तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को समान रूप में महत्व प्रदान किया गया है। भारत के द्वारा अपनी सामरिक अभिक्षमता की वृद्धि के लिए लगातार प्रयास किया जाता रहा है तथा देश परमाणु ऊर्जा के विकास में भी लगातार कार्य करता रहा है। 21वीं शताब्दी के शुरू से ही पुन: भारत ने परमाणु ऊर्जा के आयात को प्रारम्भ कर दिया। मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद सामरिक क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है।

भारत के द्वारा जब वर्ष 1974 में प्रथम पोखरन किया गया, तब अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की परमाणु नीति और कार्यक्रम का विरोध प्रारम्भ हो गया। अमरीका के साथ-साथ पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों ने 'शांति के लिए परमाणु' उपागम को परिवर्तित कर दिया तथा परमाणु तकनीक हस्तांतरण पर प्रतिबंधों को कठोरता प्रदान करने वाली एक सुरक्षा व्यवस्था को निर्मित एवं स्थापित किया। परमाणु आपूर्तिकर्त्ता समूह (एन०एस०जी०) के दृष्टिकोण के समान यह दृष्टिकोण भी भारत के परमाणु परीक्षण के प्रति प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया थी।[11] अंतर्राष्ट्रीय प्रतिरोध ने भारत के परमाणु ऊर्जा नीति को प्रभावित किया तथा उसके विकास को विपरीत रूप में प्रभावित किया।[12]

नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद 6 मार्च, 2017 को भारतीय नौ-सेना में सेवारत रहे विमानवाहक युद्धपोत आई०ए०एस० विराट को सेवामुक्त कर दिया, जो मई 1987 से कार्य कर रहा था।[13] 29 मार्च, 2017 को नौ-सेना के समुद्री गश्ती विमान टीयू-142 एम को भी भारतीय नौ-सेना से हटा दिया गया।[14] नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में भारत के सामरिक सशक्तीकरण के दिशा में लगातार प्रयास हो रहा है। नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए लगातार राजनीतिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। नरेन्द्र मोदी के शासन काल में स्वदेश निर्मित पनडुब्बी आई०एन०एस० खंडेरी का जलावतरण प्रारम्भ हुआ। पहली पनडुब्बी आई०एन०एस० कलवरी का जलावतरण अप्रैल, 2015 में किया तथा 12 जनवरी, 2017 को खंडेरी द्वितीय का जलावतरण मुम्बई के मझगाँव डॉक से अरब सागर में किया गया।[15] नरेन्द्र मोदी के प्रयास से ही पहली बार नागरिक उड्डयन से सम्बन्धि प्रदर्शन का एयरो इंडिया को आयोजित किया गया। रक्षा मंत्रालय के तत्वाधान में 11-18 फरवरी, 2017 को 'एयरो इंडिया 2017' का आयोजन किया गया।[16]

नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद से लगातार सीमापार आतंकवाद से राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती मिल रही है। अबतक के आतंकी हमला में जम्मू-कश्मीर में उड़ी में सैन्य ठिकाने पर हमला सबसे बड़ा माना जा सकता है। वस्तुत: उड़ी में पाकिस्तान समर्थित आतंकवादियों ने 18 सितम्बर, 2016 को कश्मीर में उड़ी में भारतीय सेना पर हमला कर 18 सैनिकों को मारने के दु:साहस किया, जिसका बदला भारतीय सेना ने 10 दिन के भीतर ले लिया। शीर्ष रणनीतिक निर्णय के तहत सेना में पूर्णत: सफल सर्जिकल

स्ट्राइक (सीमित सैन्य कार्यवाही) 28 सितम्बर, 2016 की रात्रि में किया, जिसके तहत सेना के विशेष दस्ते लगभग 150 भारतीय सैनिकों ने नियन्त्रण रेखा को पार कर तीन से पाँच किमी. आगे बढ़कर पाक अधिकृत कश्मीर में तीन-चार घण्टे के ऑपरेशन में आतंकियों के सात ठिकानों को नष्ट कर दिया।[17]

जम्मू-श्रीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग पर पुलवामा में 14 फरवरी, 2019 को पाक समर्थित बर्बर आतंकी हमले में सी०आर०पी०एफ० के 42 जवान शहीद हो गये। इस हमले के 13वें दिन 26 फरवरी, 2019 को भारतीय वायु सेना ने पाक सीमा के भीतर 80 किमी० भीतर जाकर बालाकोट में जैश-ए-मोहम्मद के कैम्पों को नेस्तनाबूद कर दिया। इससे भी मोदी की दृढ़ इच्छा शक्ति दृष्टिगोर होती है।

.प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रयास से फ्रांस से 36 लड़ाकू राफेल विमानों की खरीद हेतु समझौता पर हस्ताक्षर सम्पन्न हुआ तथा नेत्र प्रणाली वायुसेना में शामिल हुई। स्वदेश निर्मित तेजस विमान भारतीय वायुसेना में शामिल किया गया। इसके अतिरिक्त भारतीय वायुसेना का सैन्याभ्यास आयरन फिस्ट-2016, एक्सो एटमॉस्फीयरिक इंटरसेप्टर मिसाइल परीक्षण, अग्नि-V एवं अग्नि-IV का सफल परीक्षण तथा राष्ट्रीय युद्ध स्मारक की स्थापना आदि महत्वपूर्ण कार्य नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में ही सम्पन्न हुआ है। फ्रांसीसी रक्षा मंत्री जीन यवेन ली द्रियान (Jean Yves Le Drian) व भारतीय रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर के अतिरिक्त राफेल की निर्माता कम्पनी डसॉल्ट के मुख्य कार्यकारी अधिकारी की उपस्थिति में 8.85 अरब डॉलर के इस सौदे पर हस्ताक्षर 23 सितम्बर, 2016 को किया गया था।[18]

भारतीय वायुसेना की युद्धक क्षमता में विस्तार फरवरी 2017 में विकसित एयरबोर्न अर्ली वर्निंग एण्ड कन्ट्रोल सिस्टम (AEW and C) को वायुसेना में शामिल करके किया गया। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO) की प्रयोगशाला में विकसित इस प्रणाली को नेत्र नाम दिया गया है, जिसको ने 300 किमी के क्षेत्र में शत्रु के विमान एवं प्रक्षेपास्त्र आदि को जमीन, आकाश व समुद्र में खोजने की क्षमता है। इससे आक्रामक विमान आदि की पूर्व जानकारी मिलने पर उसके लिए सुरक्षात्मक कदम सेना द्वारा समय पर ही उठाया जा सकता है।[19]

स्वदेश निर्मित हल्के लड़ाकू विमान (Light Combat Aircraft—LCA) 'तेजस' को 1 जुलाई, 2016 को भारतीय वायुसेना में औपचारिक रूप से शामिल किया गया है। यह हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स को सौंपा गया है, जिनके लिए 45वीं स्क्वाड्रन, जिसे "लाइंग डैगर्स नाम दिया गया है, का गठन वायुसेना में किया गया था तथा लगभग दो वर्ष तक यानि वर्ष 2018 तक यह स्क्वाड्रन बेगलुरू से की जा रही है होगी तथा उसके पश्चात् इसे कोयम्बटूर के निकट सुलुर (Sulur) में स्थानान्तरित किया गया है।[20]

मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में भारतीय नौ-सेना ने अब तक का अपना सबसे बड़ा शक्ति प्रदर्शन अंतर्राष्ट्रीय बेड़ा समीक्षा बंगाल की खाड़ी में 6 फरवरी, 2016 को विशाखापतनम के तट पर किया था।[21]

भारतीय वायुसेना ने अपना अब तक का सबसे बड़ा युद्धाभ्यास 18 मार्च, 2016 को राजस्थान में पोखरन में सम्पन्न किया। चांघन फायरिंग रेंज में आयरन फिस्ट-2016 नाम से सम्पन्न उस दूसरे युद्धाभ्यास में अपनी मारक क्षमता का प्रदर्शन वायुसेना के द्वारा किया गया था। यह उल्लेखनीय है कि ऐसा पहला युद्धाभ्यास आयरन फिस्ट-2013 में सम्पन्न किया गया था। राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर, राजस्थान के राज्यपाल कल्याण सिंह व मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे आदि अति विशिष्टजनों की उपस्थिति में आयोजित उस युद्धाभ्यास में उन्नत लड़ाकू विमानों से शत्रु सेना के काल्पनिक ठिकानों को पूर्णतः नष्ट कर दिया था।[22]

भारतीय नौ-सैना ने अपनी सामुद्रिक सामरिक शक्ति को बढ़ावा देने के लिए मध्यम दूरी की सरफेस टु एयर मिसाइल बराक का विमान-वाहक युद्धपोत आई०एन०एस० विक्रमादित्य से परीक्षण 21-23 मार्च, 2017 के दौरान किया। वस्तुतः इस युद्धपोत से मिसाइल बराक का यह पहला ही परीक्षण था।[23]

भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने इजरायल के सहयोग से भारत में विकसित की जा रही LR-SAM मिसाइल के दो सफल परीक्षण 20 सितम्बर, 2016 को व एक अन्य परीक्षण 21 सितम्बर, 2016 को किया गया। सतह से आकाश में (Surface to Air) मार करने वाली इस अत्याधुनिक मिसाइल का परीक्षण ओडिशा के बालासोर जिले के चाँदीपुर स्थित एकीकृत परीक्षण रेंज से मोबाइल लांचार के माध्यम से किए गए खतरे की चेतावनी देने वाले रडार व मल्टी फंक्शनल सर्वीलांस सिस्टम से

युक्त इस मिसाइल ने खतरे का संकेत मिलते ही 'मानवरहित लक्ष्य विमान' को बंगाल की खाड़ी के ऊपर अपना निशाना बना लिया था। LR-SAM (Long Range Surface to Air Missile) मिसाइल इजरायल की बराक-8 मिसाइल है। भारत में इस मिसाइल का विकास इजरायल के सहयोग से हो रहा है।[24]

स्वतन्त्रता के पश्चात् 22,500 से अधिक सैनिक राष्ट्रीय सुरक्षा में तथा राष्ट्र की सम्प्रभुता एवं अखण्डता की रक्षा के लिए अपना बलिदान दे चुके हैं। इन शहीदों की स्मृति में एक राष्ट्रीय युद्ध स्मारक (National War Memorial) व राष्ट्रीय युद्ध संग्रहालय (National War Museum) की स्थापना का सरकार की प्रतिज्ञा है। इसके लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में 7 अक्टूबर, 2015 को नई दिल्ली में सम्पन्न बैठक में स्वीकृति प्रदान की गई थी।[25]

भारत की रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO) ने मिसाइल विकास कार्यक्रम के तहत एक बड़ी उपलब्धि 11 फरवरी, 2017 को उस समय प्राप्त की, जब किसी 'आक्रामक मिसाइल को स्वदेशी एक्सो-एटमॉस्फीयरिक इंटरसेप्टर के द्वारा आकाश में ही लगभग 100 किमी. ऊँचाई पर नष्ट करने में सफलता प्राप्त किया था। उस तरह की बैलिस्टिक मिसाइल सुरक्षा कवच (Balistic Missile Defence—BMD) की क्षमता अभी तक अमरीका रूस व इजरायल के पास ही मौजूद थी तथा ऐसी उपलब्धि वाला भारत विश्व का चौथा राष्ट्र हो गया है।[26]

भारतीय सेना की सामरिक बल कमान (Strategic Forces Command) ने सतह- से-सतह पर मार करने वाली स्वदेश निर्मित अग्नि-IV का परीक्षण 9 नवम्बर, 2015 को किया गया। 4000 किमी. की मारक क्षमता वाली इस मिसाइल का यह परीक्षण ओडिशा के तट के निकट अब्दुल कलाम द्वीप (व्हीलर द्वीप) से किया गया था। अग्नि-IV मिसाइल का यह लगातार पांचवाँ सफल परीक्षण था।[27] यह उल्लेखनीय है कि इसका पहला सफल परीक्षण 15 नवम्बर, 2011 को किया गया था। 'पिनाका (PINAKA) एक मल्टी बैरल रॉकेट लांचर है। भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO) द्वारा विकसित इस लांचर का प्रयोग भारतीय सेना द्वारा किया जाता है। कारगिल युद्ध के समय भी इसका उपयोग सेना द्वारा किया गया था। मोदी सरकार में इसके विकसित संस्करण 'गाइडेड पिनाक' का सफल परीक्षण DRDO ने 24 जनवरी, 2017 को ओडिशा में चाँदीपुर स्थित एकीकृत परीक्षण रेंज (ITR) से किया, नवविकसित गाइडेड पिनाक की मारक क्षमता पहले से अधिक है तथा नेवीगेशन, गाइडेंस व कंट्रोल किट से युक्त होने के कारण यह अधिक शुद्धता के साथ लक्ष्य को निशाना बनाने में पूर्ण रूप में सक्षम है।[28] भारत ने स्वेदश निर्मित अपनी सर्वाधिक शक्तिशाली अन्तर्महाद्वीपीय मिसाइल अग्नि-V का एक सफल परीक्षण 25 दिसम्बर, 2016 को किया, जिसके एक सप्ताह बाद ही अग्नि-VI का एक नया परीक्षण 2 जनवरी, 2017 को किया। यह दोनों परीक्षण ओडिशा में बालासोर के तट के निकट अब्दुल कलाम द्वीप (व्हीलर द्वीप) स्थित एकीकृत परीक्षण रेंज (ITR) से सम्पन्न किया गया। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए बाह्य सीमाओं की सुरक्षा हेतु तथा सामरिक रणनीति हेतु सशक्तिकरण आवश्यक है। दूसरी ओर आन्तरिक सुरक्षा भी कम महत्वपूर्ण नहीं होता है। भारत में जहाँ बाह्य राष्ट्रीय सुरक्षा का प्राथमिक दायित्व रक्षा मंत्रालय पर होता है, वही आन्तरिक मामलों में राष्ट्रीय सुरक्षा का दायित्व गृह मंत्रालय के पास होता है। राष्ट्रीय सुरक्षा में रक्षा मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय के मंत्री, प्रधानमंत्री के निर्देशन, समन्वयन और नियन्त्रण में कार्य करते हैं। आन्तरिक सुरक्षा के अन्तर्गत राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को सुनिश्चित करना, आन्तरिक शांति एवं सौहार्द को बनाए रखना, कानून-व्यवस्था को बनाए रखना आदि महत्वपूर्ण है, जिनमें राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ-साथ राज्य की मशीनरी की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में आतंकवाद के अतिरिक्त वामपंथ, उग्रवाद सम्प्रदायवाद और अलगाववाद जैसी समस्याएँ हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति शासकीय प्रतिबद्धता को स्पष्ट करना है। इस आलेख में नरेन्द्र मोदी सरकार की राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता के वास्तविक स्थिति का अवलोकन अपेक्षित है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक 'भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति नरेन्द्र मोदी सरकार की प्रतिबद्धता: एक अवलोकन' है। इस शीर्षक की परिकल्पना राष्ट्रीय सरुक्षा जैसी महत्वपूर्ण अवधारणा से जुड़ी हुई है। राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा राष्ट्रवाद, एकता तथा

अखंडता से भी संबद्ध है। नरेन्द्र मोदी सरकार की राष्ट्रीय सुरक्षा की प्रतिबद्धता वर्तमान समय में प्रबल रूप में दिख रही है तथा भविष्य की सरकार भी अपने वैदेशिक नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा को अधिकाधिक महत्व प्रदान करेगी। विशेषत: भारत की राजनीतिक गतिविधि तथा मत व्यवहार राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा से प्रभावित दिखती है।

साहित्य सर्वेक्षण

इस विषय पर अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ. एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
4. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा में नरेन्द्र मोदी सरकार की रणनीति सफलता की ओर बढ़ रही है। वस्तुत: राष्ट्रीय सुरक्षा का सम्बन्ध वर्तमान में वैश्विक सम्बन्ध और राष्ट्रीय गतिविधि सह अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की गतिविधियों से भी है। इसलिए भारत के विदेश नीति को विश्व के देशों के साथ सम्बन्धों से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। भारत में नक्सली गतिविधियों में भी तुलनात्मक रूप में कमी आ रही है। पाकिस्तान अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर कमजोर हुआ है तथा चीन को भी भारत जबाव दे रहा है। निष्कर्ष नरेन्द्र मोदी की रणनीति आन्तरिक और बाह्य दोनों ही रूप में सफलता की ओर तेजी से आगे बढ़ रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 141
2. दैनिक समाचार हिन्दुस्तान, पटना 14 सितम्बर, 2016
3. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, 14 सितम्बर, 2016
4. डॉ. मदोदर रावत, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, रावत प्रकाशन, हरियाणा, 2011, पृष्ठ 152
5. अनीश भसीन, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, प्रभात पेपरबैक्स प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 245
6. तथैव, पृष्ठ 247
7. तथैव, पृष्ठ 247
8. जॉर्ज पर्कोविच (1999) इंडियाज न्यूक्लियर बॉम्ब: द इम्पैक्ट ऑन ग्लोबल प्रोलिफरेशन, बर्कली यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, पृष्ठ 153

9. तथैव, पृष्ठ 154
10. प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक, समसामयिकी वार्षिकी Vol.-2, 2017 पृष्ठ 52
11. तथैव, पृष्ठ 52
12. तथैव, पृष्ठ 53
13. तथैव, पृष्ठ 53
14. तथैव, पृष्ठ 53
15. प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तांक, समसामयिक वार्षिकी, Vol-2, 2019
16. प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तांक, समसामयिक वार्षिकी, टवस.2ए 2017 पृष्ठ 54
17. तथैव, पृष्ठ 55
18. तथैव, पृष्ठ 55
19. तथैव, पृष्ठ 55
20. तथैव, पृष्ठ 55
21. तथैव, पृष्ठ 56
22. तथैव, पृष्ठ 56
23. तथैव, पृष्ठ 56
24. तथैव, पृष्ठ 56
25. तथैव, पृष्ठ 57
26. तथैव, पृष्ठ 57
27. तथैव, पृष्ठ 57
28. अशोक कुमार एवं विपुल, भारत की आंतरिक सुरक्षा : मुख्य चुनौतियाँ, मैक्ग्रा हिल एडुकेशन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 18

गुटनिरपेक्षता में भारत की भूमिका: एक अवलोकन

डॉ० अनिल शर्मा

एम०ए०, पी-एच०डी०, राजनीति विज्ञान, पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध आलेख का सार

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में परिवर्तन लाने वाले संगठनों में संयुक्त राष्ट्र संघ के बाद गुटनिरपेक्ष सबसे बड़ा संगठन है। इस आंदोलन की उत्पत्ति के पीछे उद्देश्य यह था कि दुनिया के दो शक्तिशाली सैनिक गुटों (अमरीकी पूँजीवादी गुट व रूसी साम्यवादी गुट) से अलग रहकर नवोदित राष्ट्रों की स्वाधीनता की रक्षा करना और युद्ध की सम्भावनाओं को रोकना था। यह नवोदित राष्ट्र अपने आपको किसी गुट के साथ सम्बद्ध नहीं करना चाहते थे और उनका विश्वास था कि दुनिया को अविकसित अथवा विकासशील राष्ट्रों का हित गुटीय स्पर्धा के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में निहित है। स्वतन्त्र भारत ने इस नीति का पालन करना शुरू कर दिया, उसके बाद एशिया एवं अफ्रीका के अनेक देशों ने भी इस नीति में अपनी आस्था व्यक्त किया है, तभी तो वर्तमान में 120 सदस्य देशों की संख्या हो गई है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से अलग न होकर अमरीकी व रूसी गुटों से अलग रहकर राज्यों के मध्य शान्ति पूर्ण सहअस्तित्व की नीति का पालन करते हुए सक्रिय अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भागीदारी रहा है। चाहे समस्याएँ गुटीय राष्ट्रों से अथवा किसी भी अन्य संगठनों से सम्बन्धित हों अथवा गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों से सम्बन्धित हों। भारत के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू, मिश्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर और यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के जनक रहे हैं। इन तीनों राजनेताओं ने मिलकर ही विश्व में इस तीसरी शक्ति की अवधारणा को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के रूप में स्थापित किया।

मूल शब्द: पंचशील, गुटनिरपेक्षता, विदेश नीति, नि:शस्त्रीकरण, आतंकवाद, कूटनीति सामरिक रणनीति, कर स्टेट, सामूहिक सुरक्षा।

प्रस्तावना

प्रारम्भ से ही भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापक सदस्य देश रहा हैं। इस आन्दोलन के समस्त शिखर सम्मेलनों और अन्य बैठकों में हिस्सा लिया और दुनिया की समस्याओं के निदान के लिए मिलकर कार्य किया। सितम्बर, 1961 में बेलग्रेड (यूगोस्लाविया) में प्रथम सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें भारत के प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने भाग लिया। इस प्रथम सम्मेलन में ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर दुनिया का ध्यान खींचा गया जिनसे विश्व युद्ध का जन्म हो सकता था। जैसे- बर्लिन की समस्या, कोरिया की समस्या, वियतनाम संघर्ष, कागो की समस्या। भारत ने इन तीनों ही विवादों के शान्तिपूर्ण हल के लिए गुटनिरपेक्ष देशों ने दुनिया के समस्त राष्ट्रों से अनुरोध किया। साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद को विश्व शान्ति के लिए हानिकारक घोषित किया तथा माँग किया कि प्रत्येक देश को अपनी इच्छानुसार अपने शासन का स्वरूप निर्धारण और संचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जाति, धर्म, रंगभेद, नस्ल के आधार पर सभी प्रकार के भेदभावों की भर्त्सना की गई और राष्ट्रों के मध्य शान्ति, सहअस्तित्व के सिद्धान्त का पालन करने की आशा व्यक्त की गई।[1]

गुटनिरपेक्ष देशों का द्वितीय शिखर सम्मेलन सन् 1964 में काहिरा (मिश्र) में आयोजित हुआ, जिसमें राजनीतिक कार्यक्रम के साथ आर्थिक सहयोग बढ़ाने की बात की गई। नि:शस्त्रीकरण की माँग, दक्षिण रोडेशिया में रंगभेद नीति का विरोध और विश्व में

सभी प्रकार के उपनिवेशों के अन्त की माँग से सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किए गए। तृतीय शिखर सम्मेलन लुसाका (जीम्बिया) में सम्पन्न हुआ, जिसमें इजरायल द्वारा अरब पर हमले की निन्दा, वियतनाम से अमरीकी फौजें हटाने की माँग, कम्बोडिया में बाहरी हस्तक्षेप का विरोध, दक्षिण अफ्रीका में स्वाधीनता संघर्ष का समर्थन आदि घोषणाएँ की गई। चौथा शिखर सम्मेलन अल्जीरिया की राजधानी अल्जीयर्स में सितम्बर, 1973 में आयोजित हुआ। इसी सम्मेलन में नेपाल की महाराजा वीरेन्द्र ने नेपाल के लिए एक शान्ति क्षेत्र प्रस्ताव की योजना प्रस्तुत किया। इस सम्मेलन में विश्व की राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं पर चर्चा हुई और निर्गुट देशों के मध्य आर्थिक, व्यापारिक व तकनीकी सहयोग बढ़ाने की सिफारिश की गई।[2] पांचवाँ शिखर सम्मेलन कोलम्बो (श्रीलंका) में अगस्त 1976 में एवं छठा सम्मेलन हवाना (क्यूबा) में आयोजित किया गया। इन सम्मेलनों में पुरानी माँगों के अतिरिक्त नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था विकसित करने एवं डियागो-गार्सिया (हिन्द महासागर) से नौ सैनिक अड्डे हटाने की माँग की गई। तेल निर्यातक देशों से अपील की गई कि वे दक्षिण अफ्रीका को तेल सप्लाई बिल्कुल न करें। गुटनिरपेक्ष देशों का सातवाँ शिखर सम्मेलन (6 से 13 मार्च 1983) को नई दिल्ली में श्रीमती इन्दिरा गाँधी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में 101 सदस्य देशों से 93 देशों ने भाग लिया। सम्मेलन की समाप्ति पर जो घोषणाएँ की गई उन्हें राजनीतिक और आर्थिक घोषणाओं की नई दिल्ली संदेश की संज्ञा दी गई।[3] ईरान-ईराक युद्ध बंद करने के प्रयास के साथ पश्चिमी एशिया में शान्ति स्थापित करने के शान्तिपूर्ण उपाय सुझाये गए। आर्थिक उपायों में गुटनिरपेक्ष देशों के आर्थिक विकास के लिए पूँजी निवेश, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा एवं वित्तीय प्रणाली में सुधार पर बल दिया गया। दक्षिण अफ्रीका में अश्वेत लोगों के शोषण व उनके प्रति असमानता के व्यवहार व उनके अधिकारों के हनन की भर्त्सना की गई। यूरोप में बढ़ती हथियारों की होड़ तनाव व विभिन्न गुटों के बीच टकराव की नीति पर चिन्ता व्यक्त की गई। दक्षिण अमरीका के देशों में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व नव-उपनिवेशवाद के खिलाफ संचालित संघर्ष का समर्थन किया गया। इन सभी प्रस्तावों में भारत का भी प्रबल समर्थन रहा है।

उपर्युक्त सम्मेलनों के बाद निर्गुट देशों के अन्य शिखर सम्मेलन हरारे (जिम्बावें) आठवाँ, सितम्बर, 1986, बेलग्रेड (यूगोस्लाविया) नवाँ, सितम्बर 1989, जकार्ता (इण्डोनेशिया) दसवाँ सितम्बर, 1992, कार्टागिना (कोलम्बिया) ग्यारहवाँ अक्टूबर 1995 और डरबन (दक्षिण अफ्रीका) बारहवाँ आयोजित किए गए, जिनमें राजनीतिक प्रस्तावों पर चर्चाएँ हुई। विकासशील देशों में गरीबी, भूखमरी, निरक्षरता के उन्मूलन और आर्थिक समस्याओं के निराकरण के उपाय खोजने पर चर्चाएँ प्रारम्भ हुई। मादक द्रव्यों के सेवन व तस्करी रोकने, पर्यावरण को दूषित होने से बचाने, परमाणु हथियारों के जखीरे को नष्ट करने, रसायनिक एवं जैविक हथियारों पर नियन्त्रण करने, निर्गुट देशों में पारस्परिक आर्थिक सहयोग बढ़ाने विकसित विकासशील देशों के मध्य अन्तर कम करने एवं धनी देशों द्वारा निर्धन देशों के विकास में सहयोग करने एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किए गए। यह भी स्पष्ट है कि विश्व में साम्यवाद के अवसान एवं शीतयुद्ध की समाप्ति के कारण सदस्य राष्ट्रों की इसके कार्यकलापों में रूचि घटती गई।[4] फलतः इस आन्दोलन की घोषणाएँ महज दिखावा मात्र साबित होने लगीं। निर्गुट देशों में भी इसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लगने लगा। तभी तो लीबियाई नेता कर्नल गद्दाफी ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय छलावा मात्र बताया तथा यह भी कहा कि गुटनिरपेक्ष अप्रासंगिक बन गया है।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का तेरहवाँ शिखर सम्मेलन (24-25 जनवरी) 2003 ई० में मलेशिया की राजधानी कुआलालम्पुर में सम्पन्न हुआ, जिसमें 116 सदस्य राष्ट्रों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में दक्षिण एशिया की दो नाभिकीय शक्तियों (भारत-पाकिस्तान) के बीच कटुता का भाव देखने को मिला, क्योंकि पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सार्थकता को कश्मीर मुद्दे से जोड़ते हुए सुझाव दिया था कि इस महत्वपूर्ण संगठन को एक केन्द्रीय भूमिका निभानी चाहिए और कश्मीर सहित विश्व के अन्य क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों के समाधान के प्रतीक के रूप में कार्य को तत्पर रहना चाहिए। मुशर्रफ के इस वक्तव्य को भारतीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हास्यास्पद बताते हुए इसका कड़ा विरोध किया। कुआलालम्पुर में निर्गुट राष्ट्रों के सम्मेलन में अग्रलिखित मुद्दों पर महत्वपूर्ण चर्चा हुई : 1. आतंकवाद की समाप्ति के लिए प्रयास, 2. क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देना, 3. प्रदूषण को कम कर पर्यावरण की रक्षा करना, 4. संयुक्त राष्ट्र संघ को शक्तिशाली बनाना, सदस्य राष्ट्रों की समस्याओं का बातचीत से हल ढूँढना एवं निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करना।[5]

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का चौदहवाँ शिखर सम्मेलन (16-17 सितम्बर, 2006) क्यूबा की राजधानी हवाना में सम्पन्न हुआ, जिसमें 118 सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। निर्गुट राष्ट्रों के इस शिखर सम्मेलन में शामिल हुए दुनिया के एक सौ से अधिक विकासशील देशों ने एक ओर जहाँ आतंकवाद की कड़े शब्दों में भर्त्सना की, वहीं दूसरी ओर ईरान के विवादस्पद परमाणु कार्यक्रम

का भी समर्थन किया। नाम (NAM) के चौदहवों शिखर सम्मेलन में जहाँ लेबनान और फिलीस्तान के खिलाफ इजराइल हमले की निन्दा की गई, वहीं ईरान पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा बनाये जा रहे दबाव की भी भर्त्सना की गई, क्योंकि नाम के सदस्य राष्ट्रों का साफ कहना था कि ईरान को शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु ऊर्जा उत्पादन का पूरा अधिकार है। इस सम्मेलन के दौरान भारतीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह एवं पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ के बीच आपसी मुलाकात हुई, जिसमें आतंकवाद के खिलाफ दोनों राष्ट्र सहमत हुए और मुशर्रफ ने कहा कि सीमा पार से आतंकवाद को रोकने के लिए दोनों राष्ट्र ठोस कदम उठायेंगे। इस शिखर सम्मेलन की समाप्ति पर संयुक्त घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें सभी देशों से आतंकियों को राजनीतिक, राजनयिक, नैतिक एवं भौतिक समर्थन नहीं देने का आग्रह करते हुए इस सन्दर्भ में अपना वैश्विक दायित्व निर्वहन का अनुरोध किया गया।[6]

गुटनिरपेक्ष देशों का 15वाँ शिखर सम्मेलन मिश्र के शहर अर्म-अल-शेख में दिनांक- 05-16 जुलाई, 2009 को सम्पन्न हुआ। इसमें 188 सदस्य देशों के शीर्ष नेताओं/प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा 15 पर्यवेक्षक देशों ने भाग लिया। यह सम्मेलन पिछले सम्मेलनों से दो अर्थों में भिन्न था। प्रथम सम्मेलन में भाग लेने वाले शीर्ष नेताओं ने गत सम्मेलनों की तरह लम्बे और आदर्शवादी भाषणों के स्थान पर छोटी सी सटीक वक्तव्यों के माध्यम से यह सन्देश देने का प्रयास किया कि गुटनिरपेक्ष देश शान्ति और विकास के लिए एकजुटता दिखायें, साथ ही इसमें किसी प्रकार के द्विपक्षीय मुद्दों को भी नहीं उठाया गया। इस सम्मेलन के अन्त में जो घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें सटीकता के साथ वर्तमान वैश्विक मुद्दों के सम्बन्ध में सामूहिक कार्यवाही की आवश्यकता को महत्वपूर्ण बताया। भारतीय प्रधानमंत्री ने जलवायु परिवर्तन के सम्बन्ध में दिसम्बर, 2009 में कोपेनहेगन में सम्पन्न सम्मेलन का भी जिक्र किया। भारत का कहना था कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इस सम्मेलन का परिणाम गरीब देशों के लिए सन्तुलित व समानतापूर्ण हो। भारत ने संयुक्त राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को ध्यान में रखने, फिलीस्तीन समस्या के समाधान करने तथा आतंकवाद के विषय में एक व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि को स्वीकार करने की बात उठाई। भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का एक संस्थापक सदस्य देश है तथा इसके महत्व का आकलन इसी बात से लगाया जा सकता है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के अन्तिम घोषणा-पत्र में भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा उठाये गये मुद्दों को प्रमुखता से शामिल किया गया।[7]

सोलहवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन, तेहरान (ईरान) में 26 से 31 अगस्त, 2012 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में 120 देशों के नेता सम्मिलित हुए, जिनमे 24 देशों के राष्ट्रपति, देशों के राजा, आठ देशों के प्रधानमंत्री तथा 50 देशों के विदेशमंत्री भी शामिल हुए। इसमें आर्थिक गतिविधियों में परस्पर सहयोग की चर्चा की गई।[8]

सतरहवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन वेनेजुएला के पोरलामार शहर में 17-18 सितम्बर, 2016 को आयोजित किया गया।[9] यह नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद प्रथम शिखर सम्मेलन है। इस सम्मेलन में भारत की ओर से उप राष्ट्रपति हामिद अंसारी ने भाग लिया। इसमें भारत के विश्व शांति हेतु आतंकवाद पर विश्व जनमत कायम करने की बात की। 18वाँ शिखर सम्मेलन वर्ष 2019 में बाकू (अजरबैजान) में सम्पन्न हुआ, जिसमें उपराष्ट्रपति नायडु ने भारत का पक्ष रखा।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य गुटनिरपेक्षता की अवधारणा को स्पष्ट करना है तथा भारत की गुटनिरपेक्ष संगठन में क्या भूमिका या योगदान रहा है, को भी स्पष्ट करना है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध पत्र की परिकल्पना गुटनिरपेक्ष संगठन के अस्तित्व एवं औचित्य से संबंधित है। विगत दो शिखर सम्मेलनों में भारत के प्रधानमंत्री का भाग न लेना इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल अपने आप को तृतीय विश्व के देशों से न जोड़कर विश्व के सभी देशों से जोड़ता है। भविष्य में भारत की वैदेशिक नीति का स्वरूप क्षेत्रीय राजनीति से निकलकर पूर्णत: वैश्विक हो जायेंगी।

साहित्य सर्वेक्षण

इस विषय पर अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य

माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ. एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
4. डॉ. हरिशचन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

निष्कर्ष

सार रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जो 25 देशों द्वारा प्रारम्भ किया गया था, वर्तमान में अब इसकी सदस्य संख्या बढ़कर 120 हो चुकी है। सदस्यों की संख्या में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ इस आन्दोलन के कार्य क्षेत्र में विस्तार हुआ है। इस आन्दोलन ने विश्व राजनीति में अनेक संघर्षों को टालने, शीत युद्ध को शस्त्र युद्ध में परिणित होने से रोकने, नि:शस्त्रीकरण और विश्वशान्ति को बढ़ावा देने, विकासशील राष्ट्रों के मध्य आर्थिक सहयोग की बुनियाद खड़ी करने और नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान समय में गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता का प्रश्न चिन्ह लग गया है, क्योंकि इस अवधारणा की सार्थकता द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शीत युद्ध के वातावरण में तो थी, लेकिन पिछले 29-30 वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यापक परिवर्तनों के कारण इसकी महत्ता धूमिल पड़ती जा रही है। शीत युद्ध, सोवियत संघ का विघटन, पूर्वी यूरोप से साम्यवाद का अवसान एवं वारसा पैक्ट की समाप्ति, नाटो की भूमिका में परिवर्तन, जर्मनी का एकीकरण और दुनिया से द्विगुटीय राजनीति की समाप्ति आदि के अनेक कारण है, जिनसे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अप्रासंगिक है। लीबिया के नेता कर्नल गद्दाफी ने इस निर्गुट आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय भ्रम का मजाकिया आन्दोलन कहकर खिल्ली उड़ाई है। अधिकांश सदस्य देश इसे गम्भीरता से महत्व नहीं दे रहे हैं। अब इस आन्दोलन की अपेक्षा 'दक्षेस' जैसा संगठन अधिक महत्वपूर्ण साबित हो रहे हैं। यह संगठन पुन: भारत की प्रतिबद्धता की अपेक्षा करता है।

सन्दर्भ सूची

1. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1998, पृष्ठ 207-220
2. तथैव, पृष्ठ 211
3. तथैव, पृष्ठ 214
4. तथैव, पृष्ठ 168
5. सिंघल, एस०पी०, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पृष्ठ 462
6. तथैव, पृष्ठ 463
7. तथैव, पृष्ठ 463
8. तथैव, पृष्ठ 463
9. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, पटना 18 सितम्बर, 2016

वर्त्तमान बिहार में महिला सशक्तिकरण विशेषतः पंचायती राज के सन्दर्भ में

आशुतोष सिंह जेलियाँग

शोध प्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

रिसर्च आर्टिकल का सार तत्त्व

समसामयिक विश्व में महिला समाज की स्थिति पुरुष समाज की तुलना में न केवल दुर्बल स्थिति में है, बल्कि कमोबेश विश्व के सभी देशों में महिलाएँ राजनीति, प्रशासन, अर्थव्यवस्था और जीवन के अन्य क्षेत्रों में पिछड़ी हुई है। भारत तथा इसका एक महत्वपूर्ण प्रान्त 'बिहार' भी इसका अपवाद नहीं है। भारत में महिलाओं की स्थिति पर ध्यान दिया जाये तो उत्तर वैदिक काल से महिलाओं की स्थिति उत्तरोत्तर रूप में दयनीय होती गई है। मध्यकालीन भारत में महिलाओं की स्थिति में अत्यधिक गिरावट आई विशेषत: हिन्दू महिलाओं में शिक्षा समाप्त सदृश हो गई, बाल-विवाह, दहेज, बेमेल विवाह आदि के कारण महिलाएँ दैयनीय स्थिति में पहुँच गई। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भी महिलाएँ शोषण और उत्पीड़न से ऊबर नहीं पायी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भले ही लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्वीकृति, विधि के शासन की स्थापना तथा स्वतन्त्रता-समानता व न्याय की अवधारणा को अंगीकार कर लिया गया है, परन्तु अभी भी महिलाएँ विकास और बराबरी से कोसों दूर है। आज भारत को एक महान लोकतांत्रिक देश तथा विश्व गुरू बनाने के लिए महिला सशक्तिकरण अनिवार्य है। भारत के पिछड़े राज्यों में बिहार की चर्चा होती है। यहाँ महिलाओं की स्थिति और भी दैयनीय है। इसलिए इस राज्य के महिला-सुरक्षा, कल्याण एवं सशक्तिकरण की दिशा में ईमानदार एवं मजबूत प्रयास अनिवार्य है।

मूल शब्दः नारीवाद, महिला सशक्तिकरण, लोकतंत्र, राजनीतिक सहभागिता, स्थानीय प्रशासन, पंचायती राज, जन-जागरूकता, लिंग-न्याय।

प्रस्तावना

महिला सशक्तिकरण वर्त्तमान समाज की आवश्यकता एवं लोकतांत्रिक मांग है। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य महिला समाज को अबला से सबला बनाना है। महिला सशक्तिकरण हेतु सबसे पहले महिला समाज के लिए सुरक्षात्मक एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों को निर्धारित एवं क्रियान्वित करना है। तत्पश्चात् महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सभी प्रकार के कार्यों को क्रियान्वित करना है।

स्वतन्त्र भारत में महिलाओं को संविधान और कानून ने समान अधिकार प्रदान किया है, परन्तु उनकी स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ है। महिला कल भी शोषण की शिकार थी, वह अबला थी तथा यौन संतुष्टि हेतु एक खिलौना मात्र थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी समान मौलिक अधिकार प्राप्त करके भी उसकी वही स्थिति कमोबेश 20वीं शताब्दी के अन्त तक बनी हुई है। इसके साथ इस बात को भी स्वीकार किया जा सकता है कि सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान हेतु विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन भी किया गया है। यदि सैद्धान्तिक प्रयास की बात करे तो विधायिका में एक-तिहाई आरक्षण प्रदान करने की बात कही जाती रही है, हालाँकि अन्तिम प्रयास अबतक तो असफल ही है। स्थानीय संस्थाओं के चुनावों में महिला भागीदारी बढ़ा है, लेकिन सरकारी प्रयास के बावजूद लिंगानुपात से महिलाओं की दुर्बल स्थिति का ही बोध होता है। लिंगानुपात तथा मानव समाज

के सामने भविष्य में उत्पन्न होने वाले महत्वपूर्ण समस्याओं को देखते हुए ही महिला सशक्तिकरण की ओर विशेषत: राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था का ध्यान गया है। 21वीं शताब्दी के आगमन ने देश के नियोजित विकास को आधार बनाया गया है। इस अवधि में महिला केन्द्रित योजनाएँ आयी है और महिलाओं के विकास सम्बन्धी मुद्दों को अधिक गम्भीरता पूर्वक लिया गया है। पिछले दो दशकों में विशेषकर नवीं और दसवीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान प्रयासों को तीव्र किया गया है और राष्ट्र के विकास में महिला अधिकारिता को विशिष्ट लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। महिलाओं की शिक्षा हेतु योजनाओं के अतिरिक्त स्वस्थ्य एवं पोषण योजनाएँ महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार योजनाएँ, मजदूरी तथा स्वरोजगार सहायता योजनाएँ, गरीब महिलाओं के समूह की आर्थिक गतिविधियों के लिए लघु ऋण जैसे निवेश कार्य प्रारम्भ किए गए हैं। महिला संगठनों की गतिविधियों तथा उनके दबाव के द्वारा न केवल आर्थिक और सामाजिक लाभ प्राप्त हुए हैं, बल्कि राजनीतिक स्तर पर भी स्थान प्रदान किया गया है। महिलाओं की अधिकारिता तथा लिंग समानता की दिशा में बढ़ने तथा उनकी स्थिति बेहतर करने पर केन्द्रित राष्ट्रीय विद्यानों और नीतियों को आकार प्रदान किया है।

बिहार में वर्ष 2005 में नीतीश कुमार के नेतृत्व में सरकार बनी तथा उसके बाद अलग-अलग गठबन्धन के बाद भी उन्हीं के नेतृत्व में सरकार संचालित हो रही है। नीतीश सरकार शुरू से ही महिलाओं की सुरक्षा, कल्याण, विकास एवं सशक्तिकरण के मार्ग में कार्य कर रही है। इसने वर्ष 2006 में पंचायती राज व्यवस्था में नवीन नियमावली के माध्यम से ग्रामीण स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत स्थान आरक्षित किया है। महिला समाज के लिए नीतीश सरकार ने अनेक कल्याणकारी नीतियों को निर्धारित व क्रियावित किया है। इतना ही नहीं, वर्ष 2016 से सार्वजनिक नियोजन में महिलाओं को 35 प्रतिशत आरक्षण क्षैतिज आधार पर प्रदान किया है। सरकार के इन सभी प्रयासों को बिहार में महिला सशक्तिकरण से जोड़ा जा सकता है, परन्तु पंचायती राज के सन्दर्भ में वर्त्तमान बिहार में महिला सशक्तिकरण की चर्चा अधिक सार्थक प्रतीत होती है।

भारत में पंचायती व्यवस्था का इतिहास प्राचीन है। यहाँ वैदिक काल में भी पंचायत जैसी व्यवस्था की झलक मिलती हैं। उस काल में सभा आयोजित होती थी, जिसमें राजा के कार्यों का मूल्यांकन किया जाता था। महाकाव्य काल के साथ-साथ बौद्ध काल में भी पंचायती व्यवस्था की उपस्थिति के सम्बन्ध में जातक कथाओं से जानकारी मिलती है। कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' में भी ग्राम पंचायतों की स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था में भूमिका का उल्लेख मिलता है तो गुप्तकालीन व्यवस्था में भी ग्राम पंचायतों का अत्यधिक महत्व था। मुगलकाल में मुस्लिम शासकों ने पंचायती व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। ब्रिटिश काल में पंचायती व्यवस्था शुरू में विपरीत रूप में जरूर प्रभावित हुई, परन्तु वर्ष 1882 में लार्ड रिपन ने ग्रामीण क्षेत्रों में बोर्ड अथवा मण्डलों की स्थापना का सुझाव दिया। 1919 ई० में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुझावों के आधार पर भारत में पंचायतों की ओर कुछ और ध्यान दिया गया। 1920 में मद्रास प्रान्त में पंचायत कानून बना दिया गया तथा 1946 में ग्राम पंचायत अधिनियम बना दिया गया। स्वन्तत्र भारत में गाँधीवादी प्रभाव में भारतीय संविधान के भाग-4 में उपबंधित नीति निदेशक तत्व के अनुच्छेद-40 के अन्तर्गत ग्राम पंचायत को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक, 1989 तथा 73वाँ संविधान संशोधन, 1992 के माध्यम से पंचायती व्यवस्था के विकास के दिशा में कार्य दिया गया।

भारत में पंचायतों को अहम भूमिकाएं सौंपी गई, जिनमें से एक थी महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी को बढ़ावा देना। संविधान के 73वें तथा 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायती राज को एक नई दिशा दी गई। इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि जनसहभागिता का लाभ कमजोर व पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधि को मिला। पंचायती राज व्यवस्था में 33 प्रतिशत महिलाओं की आरक्षण के द्वारा लगभग 15 लाख महिलाओं को ग्राम पंचायतों व शहरी निकायों के चुनावों में निश्चित भागीदारी का अवसर दिया। इसके फलस्वरूप देश के विभिन्न राज्यों में 43 प्रतिशत तक महिला प्रतिनिधि बनी तथा महिला सशक्तिकरण की अवधारणा व्यावहारिक मार्ग की ओर अग्रसर हुई। बिहार में 2006 के निर्वाचन नियमावली के माध्यम से महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है, ताकि यहाँ वास्तविक रूप में लिंग-न्याय हो सके तथा महिला सशक्तिकरण की गति पूर्व से अधिक तेज हो सके।

बिहार में यह निश्चित किया गया कि ग्राम स्वराज की व्यवस्था में ग्राम सभा की अपनी स्थायी समितियाँ आवश्यक है ताकि बैठकों में कोरम की अनिवार्यता में 50 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जा सके। इसका यह लाभ हुआ है कि अत्यधिक विरोधों के बावजूद राज्य भर में पंचायतों के जरिए जहाँ-जहाँ महिलाएं सरपंच चुनी गई हैं, वहाँ-वहाँ कमोबेश पूरे उत्साह के साथ विकास कार्यो के निष्पादन में जुट गई है।

बिहार में 2001 में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव में कुल 4,36,262 उम्मीदवार खड़े थे, जिनमें एक लाख से अधिक संख्या महिला उम्मीदवारों की थी। ग्राम पंचायत के स्तर पर 35.65 प्रतिशत महिला उम्मीदवार सदस्यों के रूप में विजयी हुई। इनके चुने जाने से लोकतंत्र में 'स्त्री-पुरुष' भेद निश्चित रूप में कम होगा। अत: महिला प्रतिनिधियों के नेतृत्व से ग्रामीण महिलाओं में जागरूकता बढ़ी है तथा यह आशा की जा सकती है कि ग्राम सभा में भी आम ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी।

दिनांक-18 जनवरी, 2006: बिहार पंचायती राज अध्यादेश 2006 (बिहार अध्यादेश संख्या-1, 2006) की धारा 146 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बिहार राज्यपाल, बिहार पंचायत निर्वाचन नियमावली, 2006 बनाया। बिहार पंचायत चुनाव, 2006 में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत, आरक्षण सुविधा प्रदान की गयी है। इसके बाद तो राज्य में महिलाओं के भागीदारी बहुत बढ़ गई है।

अध्ययन का उद्देश्य

बिहार एक पिछड़ा हुआ राज्य है तथा यहाँ महिलाओं की प्रस्थिति दुर्बल है। विगत दशक से बिहार में विकास की चर्चा तेज हो गई है तथा इस दिशा में कुछ कार्य भी हो रहे हैं। हाल के दिनों में बिहार सरकार दहेज बंदी और बाल विवाह के विरुद्ध राजनीतिक-प्रशासनिक आधार पर तो कार्य कर रही है, सामाजिक चेतना कायम करने की दिशा में प्रयास भी कर रही है। सामाजिक चेतना के सन्दर्भ में 21 जनवरी, 2018 को आयोजित मानव-श्रृंखला को एक महत्वपूर्ण प्रयास बताया जा सकता है। पंचायतों में महिला आरक्षण तथा उसके माध्यम से अनेक योजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है। सरकार महिलाओं के विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त कर रही है। इसलिए अनिवार्य प्रतीत होता है कि वर्त्तमान बिहार में महिला सशक्तिकरण जैसे विषय पर शोध आलेख का लेखन किया जाये। इस प्रकार के अध्ययन से बिहार में महिला समाज के उत्थान के लिए सार्थक सुझाव दिये जा सकते हैं तथा विकास प्रशासन के सन्दर्भ में राजनीतिक-प्रशासनिक प्रतिबद्धता की स्थिति एवं दायित्व को स्पष्ट किया जा सकता है। स्पष्टत: इस विषय पर अध्ययन का औचित्य है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ अपेक्षित है:

1. शोध कार्य में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा का अवलोकन अपेक्षित है तथा भारत विशेषत: बिहार में महिलाओं की प्रस्थिति का ऐतिहासिक अवलोकन भी अपेक्षित है।
2. बिहार में महिला समाज के विकास के लिए कल्याणकारी कार्यक्रमों तथा शासकीय नीतियों का यथार्थ अवलोकन भी अपेक्षित है।
3. भारत और बिहार में पंचायती राज व्यवस्था की स्थिति, ऐतिहासिक विकास तथा परिवर्तन का व्यापक परिप्रेक्ष्य में अवलोकन अपेक्षित है।
4. वर्त्तमान बिहार में महिला सशक्तिकरण की दिशा में निष्पादित कार्य/प्रयास के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष का यथार्थ अवलोकन भी संभव है।
5. शोध आलेख में बिहार की राजनीतिक संस्कृति, महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता तथा राजनीतिक-प्रशासनिक प्रतिबद्धता का यथार्थ अवलोकन अपेक्षित है।

साहित्य सर्वेक्षण

भारत में राजनीतिक सहभागिता और महिला विषय पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए है। इस विषय पर महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन भी अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए हमने निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. डॉ. अमरजीत सिंह नारंग की पुस्तक 'भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998

2. डॉ. जे०सी० जौहरी और डॉ. आर०के० पुखार, भारतीय शासन और राजनीति, विशाल पब्लिकेशन्स जालन्धर, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, वर्ष 1988
3. डॉ. जयप्रकाश शर्मा, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2000 ई०
4. मदोदर रावत, भारत की राजनीति और महिला, रावत पब्लिकेशन्स हरियाणा, 2001
5. डॉ. सुभाष काश्यप और विश्व प्रकाश गुप्त, संसद का इतिहास, भाग-1 और भाग-2, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, नवीन संस्करण, 2009

शोध की पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की प्रमुख पद्धति वस्तु-विश्लेषणात्मक होगी। ऐसे ऐतिहासिक पद्धति के साथ-साथ तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग भी अपेक्षित है।

निष्कर्ष

अबतक के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण देश में महिला सशक्तिकरण की चर्चा एवं माँग महत्वपूर्ण हो गई है। इसलिए बिहार में भी महिलाओं की सशक्तिकरण और विकास पर बल दिया गया है। यह समय की माँग ही नहीं, लोकतंत्र की माँग तथा अनिवार्य भी है। बिहार में महिलाओं की दुर्बल स्थिति को देखते हुए बिहार सरकार ने कई महत्वपूर्ण योजनाओं को निर्धारित एवं क्रियान्वित किया है। बिहार सरकार के द्वारा वर्ष 2006 में पंचायती राज नियमावली में संशोधन करके महिलाओं को स्थानीय ग्रामीण निकायों मे 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था कर दी गई है, जिनसे महिलाओं की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में गुरूत्तर सुधार हुआ है। स्पष्टत: बिहार में महिलाओं के सशक्तिकरण में पंचायती राज व्यवस्था को सहायक बताया जा सकता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को सत्ता के वास्तविक प्रयोग हेतु शिक्षित, जागरूक व सशक्त बनाया जाये।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. बिहार पंचायती राज नियमावली
2. भारतीय संविधान-एक परिचय, डी०डी० बसु
3. भारतीय शासन और राजनीति बी०एल० फड़िया
4. भारतीय राज-व्यवस्था– एम० लक्ष्मीकांत
5. राजनीतिक सिद्धान्त– डॉ. अशोक कुमार
6. राजनीति के सिद्धान्त– मदोदर राव
7. भारतीय शासन और राजनीति– डॉ. ए० एस० नारंग

सार्क और भारत

डॉ० अशोक कुमार

एम०ए० (राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन), पी०एच-डी०, पी०यू०

शोध आलेख का सार

सार्क (SAARC – The South Asian Association for Regional Co-operations) यानि दक्षेस दक्षिण एशिया के आठ देशों का एक सहयोग संगठन है। इन आठ दक्षिण एशियाई देशों में भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बंगलादेश, भूटान, श्रीलंका, मालद्वीप और अफगानिस्तान सदस्य राष्ट्र हैं। सार्क के सभी आठों राष्ट्र पृथ्वी के एक विस्तृत भू-भाग को घेरे हुए हैं, और इनमें विश्व की लगभग बीस प्रतिशत आबादी रहती है। इस क्षेत्र में भारत एक हृदय देश के समान है, जो सम्पूर्ण क्षेत्र का लगभग 72 प्रतिशत स्थान घेरे हुए हैं और यहाँ 77 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा भारत में विकसित अर्थव्यवस्था लगभग 70 प्रतिशत है। यहाँ विशाल खनिज भण्डार है और वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान में दक्षिण एशिया के सभी देशों से आगे है। इस प्रकार आठों का यह संगठन क्षेत्र तथा जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा क्षेत्रीय संगठन कहा जाएगा। दक्षिण एशियाई इन देशों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कुछ विभिन्ताओं के साथ अनेक समानताएँ भी दिखाई देती हैं। जहाँ तक विभिन्नताओं की बात है, कुछ भौगोलिक दृष्टि से तथा कुछ धामिक दृष्टि से हो सकती है, फिर भी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से किसी न किसी रूप में दक्षिण एशियाई देश आपस में जुड़े हुए हैं। इन देशों में राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक समानताओं की गहरी जड़े विद्यमान है।

मूल शब्दः उत्तर-दक्षिण संवाद, दक्षिण-दक्षिण संवाद, आतंकवाद, क्षेत्रीय संगठन, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, तालिबान, सीमा पार आतंकवाद।

प्रस्तावना

सार्क के इतिहास की शुरूआत सन् 1977 में बंगलादेश से माना जाता है, हालांकि कुछ लोग इसकी शुरूआत नेपाल से मानते हैं। क्षेत्रीय सहयोग के सम्बन्ध में सर्वप्रथम पहल नेपाल नरेश वीरेन्द्र वीर विक्रम शाह देव ने सन् 1977 में 26वें मंत्री स्तर की बैठक में की थी, जो कोलम्बो योजना हेतु काठमाण्डू में आयोजित हुई थी। इस सम्मेलन में एशियाई क्षेत्रीय सहयोग के अन्तर्गत नेपाल, भारत, चीन, भूटान, बंगलादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका के साथ ही अन्य समीप के क्षेत्रों को भी रखने का सुझाव दिया गया था।[1] नेपाल के इस सुझाव से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह उस समय चीन की ओर झुका हुआ था, किन्तु सहयोग का यह प्रस्ताव अनिर्णीत ही रह गया। इसी के सम्बन्धित एक दूसरी बैठक "इण्डियन कॉउन्सिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स", नई दिल्ली के नेतृत्व में मई, 1978 में सम्पन्न हुई, जिसमें बंगलादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका तथा नेपाल के विशिष्ट अर्थशास्त्री, प्रबन्ध शास्त्री एवं विकास क्षेत्र के विद्वान सम्मिलित हुए थे। ज्ञातव्य है कि इस समय दक्षिण एशिया का अर्थ अफगानिस्तान, बंगलादेश, भूटान, वर्मा, भारत, ईरान, मालद्वीप, नेपाल पाकिस्तान और श्रीलंका को समझा जाता था। इस बैठक में विद्वानों के विचार-विमर्श के दौरान यह बात सामने आयी कि क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ाने में भौगोलिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ बाधक हो सकती है। अतः सहयोग एवं संगठन के लिए इस तरह का कार्यक्रम तय किया जाए कि सभी राष्ट्र उसे स्वीकार कर सके।

बंगलादेश के राष्ट्रपति स्वर्गीय जिया उर रहमान ने दक्षिण एशिया के देशों की अनेक यात्राएँ की। उन्होंने क्षेत्रीय सहयोग का विचार सभी राष्ट्रों के सम्मुख रखा और सभी से मिलकर मई, 1980 में क्षेत्रीय सहयोग से सम्बन्धि एक पत्र दक्षिण एशिया के राज्यों

को भेजा। बंगलादेश के राष्ट्रपति ने विभिन्न देशों को प्रेषित पत्रों में, सार्क के निर्माण और उसकी कार्यप्रणाली निश्चित करने पर विशेष जोर दिया था। इस प्रेषित पत्र में सहयोग के जिन ग्यारह क्षेत्रों पर विचार करने की संस्तुति की गई थी वे अग्रलिखित थे- दूरसंचार, मौसम विज्ञान, परिवहन, जहाजरानी, पर्यटन, कृषि तथा अनुसंधान, संयुक्त साहसिक कार्य, बाजारों को प्रोत्साहन, वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग, शिक्षा सम्बन्धी तथा तकनीकी शिक्षा सहयोग एवं सांस्कृतिक सहयोग।[2]

बंगलादेश के राष्ट्रपति के प्रस्ताव के आधार पर सात सार्क देशों के विदेश सचिवों की प्रथम बैठक 21-23 अप्रैल, 1981 में कोलम्बो में आयोजित हुई, जिसमें यह तय किया गया कि विवादग्रस्त मामलों को छोड़कर विकास हेतु कार्यक्रम तय किया। इसी कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए विदेश सचिवों की द्वितीय बैठक 2-4 नवम्बर, 1981 को काठमाण्डू (नेपाल) में, तृतीय बैठक 7-8 अगस्त, 1982 इस्लामाबाद में और चतुर्थ बैठक 28-30 मार्च 1983 को ढाका में आयोजित हुई। इन बैठकों में सार्क के गठन एवं कार्यक्रमों के बारे में भूमिका निर्धारित की गई।[3] चौथी बैठक में प्रस्तावित कार्यक्रम पर पुनर्विचार किया गया और एक एकीकृत कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया गया। इसी बैठक में अगस्त, 1983 में विदेश मन्त्रियों की बैठक आयोजित करने का भी निर्णय लिया गया। वस्तुतः इस बैठक का निर्णय क्षेत्रीय सहयोग तथा एकीकृत कार्यक्रम का प्रथम चरण माना जा सकता है।

विदेश सचिवों की अन्तिम पाँचवीं बैठक 28-29 जुलाई, 1983 को नयी दिल्ली में सम्पन्न हुई और इसे ठीक एक महीने बाद 1-2 अगस्त, 1983 के नयी दिल्ली में ही सातों देशों के विदेश मंत्रियों की प्रथम बैठक सम्पन्न हुई। इस बैठक में सार्क की औपचारिक स्थापना का प्रस्ताव पारित हुआ। इस प्रथम बैठक का उद्घाटन करते समय भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने अपने विचार व्यक्त किया था कि इस क्षेत्र के देशों को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग अपनी आर्थिक समस्याओं से जूझने के स्थान पर उनका सामूहिक रूप से सामना अपेक्षित है, जिससे सभी सदस्यों को विशेष लाभ प्राप्त होगा। उन्होंने आश्वस्त किया था कि इस क्षेत्रीय सहयोग का किसी प्रकार का कोई सैनिक उद्देश्य नहीं है और न परस्पर किसी के विरुद्ध कोई कार्य करने का इरादा है।[4] विदेश मंत्रियों की बैठक में एकीकृत कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि, ग्रामीण विकास, दूरसंचार, मौसम विज्ञान, स्वास्थ्य एवं जनसंख्या नियन्त्रण कार्यक्रम मुख्य विषय थे। इनमें परिवहन, डाक सेवा, वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग, खेलकूद, कला एवं संस्कृति को भी बाद में जोड़ा गया। इस बैठक के बाद विदेश मंत्रियों की अगली बैठक जुलाई, 1984 में मालद्वीप में और 1985 में भूटान में आयोजित हुई। इसके बाद ही सार्क के संगठन और इसके संवैधानिक स्वरूप को विधिवत स्वीकार कर लिया गया।

विदेश सचिवों एवं विदेश मंत्रियों की विभिन्न बैठकों में उत्पन्न वैचारिक एकरूपता के बाद सभी सात देशों की सहमति से प्रथम सार्क शिखर सम्मेलन बंगलादेश की राजधानी ढाका में 7-8 दिसम्बर, 1985 को सम्पन्न हुआ। प्रथम शिखर सम्मेलन में सार्क के चार्टर को स्वीकार किया गया और इसके उद्देश्य, सिद्धान्त घोषित किए गए। सार्क के चार्टर के अनुसार यह निश्चित किया गया कि प्रतिवर्ष एक शिखर सम्मेलन आयोजित किया होगा, जिसमें सदस्य देशों के शासनाध्यक्ष भाग लेंगे।

सार्क के प्रथम सम्मेलन में चार्टर की घोषणा के साथ-साथ इसके उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों की भी घोषणा की गई। प्रथम सम्मेलन में स्वीकृत चार्टर के अनुसार सार्क के मुख्य उद्देश्य हैं- (1) दक्षिण एशिया क्षेत्र की जनता के कल्याण एवं उनके जीवन स्तर में सुधार करना, (2) दक्षिण एशिया के देशों की सामूहिक आत्म-निर्भरता में वृद्धि करना, (3) क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना, (4) आपसी विश्वास, सूझ-बूझ तथा एक-दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन करना, (5) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सहयोग एवं पारस्परिक सहायता में वृद्धि करना, (6) अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग में वृद्धि करना तथा (7) सामान्य हित के मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग मजबूत करना। सार्क के सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण रहे हैं। उद्देश्यों के समान ही सार्क के प्रथम सम्मेलन में चार्टर के अनुसार स्वीकृत किए गए मुख्य सिद्धान्त अग्रलिखित प्रकार है: (i) संगठन के ढाँचे के अन्तर्गत सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राजनीतिक स्वतन्त्रता, दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा आपसी लाभ के सिद्धान्तों का सम्मान करना, (ii) द्विपक्षीय सहयोग, बहुपक्षीय सहयोग का स्थान नहीं लेगा, बल्कि उनका पूरक होगा, (iii) इस प्रकार का सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का विरोधी नहीं होगा।[5]

सार्क के इस प्रथम सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी व नेपाल के राजा श्री वीरेन्द्र शाह, बंगालादेश के राष्ट्रपति, पाकिस्तान के राष्ट्रपति तथा श्रीलंका के राष्ट्रपति सम्मिलित हुए। सार्क के विकास में यह सम्मेलन ऐतिहासिक महत्ता रखता है, क्योंकि इसमें दक्षेस की स्वीकृति और घोषणा के साथ-साथ दक्षिण एशिया के देशों ने शान्ति और मित्रता के साथ मिलकर सम्पूर्ण क्षेत्र के विकास की बात निर्धारित की गई। प्रथम संयुक्त घोषणा पत्र में सदस्य राष्ट्रों ने आपसी सहयोग बढ़ाने और तनाव समाप्त

करने पर विश्वास प्रकट किया। इस नवीन संगठन के जन्म से इन सातों देशों के बीच सद्भावना, भाईचारा और सहयोग का नया युग शुरू होगा। क्षेत्रीय सहयोग संघ के जन्म को युगान्तकारी घटना, नये युग का शुभारम्भ तथा सामूहिक सूझ-बूझ और राजनीतिक इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति बताया गया।[6]

सार्क का द्वितीय शिखर सम्मेलन बंगलौर (भारत) में 16-17 नवम्बर, 1986 को सम्पन्न हुआ।[7] इसका उदघाटन भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी द्वारा किया गया।[8] गाँधी ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता भी किया। इस सम्मेलन में विभिन्न समितियों का गठन हुआ तथा उसके केन्द्रीय सचिवालय का गठन भी किया गया, जिसके प्रथम महासचिव श्री अब्दुल हसन (बंगलादेश) नियुक्त किए गए। महासचिव का कार्यकाल दो वर्ष निर्धारित किया गया तथा क्रमानुसार से सभी देशों को यह पद प्राप्त करने की व्यवस्था निर्धारित की गई। सार्क का सचिवालय काठमाण्डू में स्थापित किया गया, यही सार्क का प्रधान कार्यालय है, जो महासचिव के नियंत्रण में कार्य करता है। इस सम्मेलन में सहयोग के कुछ नये क्षेत्र नशीले पदार्थों की तस्करी रोकने, पर्यटन के विकास, रेडियो, दूरदर्शन प्रसारण कार्यक्रम विपदा प्रबन्धन पर अध्ययन हेतु एक समयबद्ध कार्यक्रम की घोषणा की गई।

सार्क का तीन दिवसीय तृतीय शिखर सम्मेलन नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में 4 नवम्बर, 1987 को आयोजित हुआ।[9] इस सम्मेलन का उद्घाटन नेपाल के महाराज वीरेन्द्र विक्रम शाह के द्वारा किया गया। भारत की ओर से प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। आतंकवाद की समस्या सभी राष्ट्रों के मध्य गम्भीर समस्या के रूप में उभरकर आयी और आतंकवाद निरोधक समझौता इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए।

सार्क का चतुर्थ सम्मेलन 29-31 दिसम्बर, 1988 को इस्लामाबाद (पाकिस्तान) में आयोजित हुआ।[10] इसमें भारत के प्रधानमंत्री राजीव गाँधी सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में एकीकृत योजना के अन्तर्गत शताब्दी के अन्त तक क्षेत्र की एक अरब आबादी को आवास व शिक्षा देने की व्यवस्था करने का प्रावधान निर्धारित किया गया। इसमें मादक द्रव्यों के खिलाफ संघर्ष करने की बात की गई।

21-23 नवम्बर को मालद्वीप की राजधानी माले में 5वाँ दक्षेस शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ।[11] इसमें भारत के प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर के अतिरिक्त अन्य समस्त देशों के शासनाध्यक्ष शामिल हुए। इस बैठक में आर्थिक क्षेत्र में आपसी सहयोग मजबूत करने, संयुक्त उद्यम स्थापित करने और क्षेत्रीय परियोजनाओं हेतु सामूहिक कोष गठित करने का निर्णय लिया गया। जैव प्रौद्योगिकी के विकास एवं चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं में सहयोग बढ़ाने पर बल दिया गया। सम्मेलन में 1990 के दशक को 'दक्षेस बालिका दशक वर्ष' 1991 को 'दक्षेस आश्रय वर्ष और 1993 को 'दक्षेस विकलांग वर्ष' के रूप में स्वीकार करने पर सहमति बनी।[12]

श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में 21 दिसम्बर, 1991 को छठा सार्क शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ।[13] इसमें भारत के प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव एवं अन्य देशों के शासनाध्यक्षों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में सदस्य देशों ने निःशस्त्रीकरण की सामान्य प्रवृत्तियों का स्वागत करते हुए सैन्य शक्तियों को विश्व के अन्य क्षेत्रों के संयम बरतने को प्रेरित किया तथा मानवाधिकारों की प्रवृत्तियों की रक्षा पर बल देने तथा तृतीय विश्व के देशों के विकास में सहयोग करने का आह्वान किया। गरीबी उन्मूलन के लिए एक स्वतन्त्र सार्क समिति की स्थापना एवं सन् 2000 तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा सुलभ कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

सार्क देशों का सातवाँ शिखर सम्मेलन 10-11 अप्रैल 1993 को बंगलादेश की राजधानी ढाका में सम्पन्न हुआ।[14] यह सम्मेलन कुछ कारणों से दो बार स्थगित करना पड़ा था। सम्मेलन में सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया। इसमें दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार (Saare Preferential Trade Agreement) साप्टा (SAPTA) पर समझौता हुआ। भारत-नेपाल सहित देशों के नेताओं ने 15 पृष्ठों का एक 63 सूत्री ढाका घोषणा-पत्र सर्वसम्मति से पारित किया। इसमें दक्षिण एशियाई क्षेत्र में चरणबद्ध रूप से व्यापार की उदार व्यवस्था शुरू करने का संकल्प व्यक्त किया गया। इससे दक्षिण एशिया को आर्थिक सहयोग और साझा बाजार के एक नये युग का सूत्रपात हुआ।[15]

3-4 मई, 1995 को दक्षेस देशों का आठवाँ शिखर सममेलन भारत की राजधानी नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ।[16] भारत के प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव के अतिरिक्त अन्य सभी शासनाध्यक्ष इसमें सम्मिलित हुए। आतंकवाद एवं गरीबी के खिलाफ भारत ने जोरदार ढंग से आवाज उठाया। इस शिखर सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि दक्षेस अधिमान्य समझौता (SAPTA) को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। इस सम्मेलन की घोषणा-पत्र में 1995 को 'दक्षेस गरीबी उन्मूलन वर्ष' तथा वर्ष 1996 को

'दक्षेस साक्षरता वर्ष' घोषित किया गया।[17]

दक्षेस देशों का नवाँ शिखर सम्मेलन 12-14 मई, 1997 को मालद्वीप की राजधानी माले में सम्पन्न हुआ।[18] इस सम्मेलन में साप्टा के साथ साप्ता को विकसित करने के वर्ष 2005 तक के पूर्व निर्धारित लक्ष्य को सन 2001 तक ही प्रारम्भ करने की बात निश्चित की गई। भारत के प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने आतंकवाद समाप्त करने और दक्षिण एशियाई स्वतन्त्र व्यापार को शुरू करने का आह्वान किया।

श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में दिनांक-29-31 जुलाई, 1998 को 10वाँ शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ।[19] इसमें भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के अतिरिक्त अन्य सभी शासनाध्यक्ष सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन की अध्यक्षता श्रीलंका के राष्ट्रपति श्रीमती चन्द्रिका भण्डारनायके तुंग द्वारा किया गया। शिखर बेठक में अनेक विषयों पर विचार-विमर्श के बाद घोषणा-पत्र प्रस्तुत एवं स्वीकृत किया गया। घोषणा-पत्र में पहले सार्क के कार्यक्रमों की प्रशंसा की गई और साप्टा के शीघ्र शुरू करने का आह्वान किया गया। छोटे देशों की सुरक्षा, शिक्षा, निर्धनता, विज्ञान एवं तकनीकी, मौसम विज्ञान, स्वास्थ्य, अपंग व्यक्तियों की सहायता आदि से सम्बन्धित घोषणा-पत्र में प्रस्ताव पारित किया गया। आतंकवाद एवं नशीली वस्तुओं को रोकने, मानव अधिकारों की रक्षा करने और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग करने के भी प्रस्ताव पारित हुए।[20] सभी दक्षेस के देशों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और घोषणा की कि सभी लघु देशों के विकास हेतु सार्क संगठन विशेषज्ञ व्यवस्थाएँ करेगा।[21] सार्क देशों का 11वाँ शिखर सम्मेलन 4-6 जनवरी, 2002 को नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में सम्पन्न हुआ।[22] इस सम्मेलन में आतंकवाद का मुद्दा जोरों पर छाया रहा। भारत, पाकिस्तान और नेपाल तीनों ही देशों के शासनाध्यक्षों ने अपने-अपने तरीके इस समस्या पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए। आतंकवाद के अतिरिक्त इस क्षेत्र में 2004 तक मुक्त व्यापार क्षेत्र (साफ्टा) बनाने, गरीबी उन्मूलन करने और मानव संसाधनों के विकास को तेज गति से आगे बढ़ाने की घोषणा की गई।[23] इस सम्मेलन में किसी व्यक्ति अथवा संगठन (सार्क देशों के) को इस क्षेत्र में शान्ति, विकास, गरीबी उन्मूलन, क्षेत्रीय सहयोग आदि किसी भी क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान करने के लिए 'सार्क अवार्ड' देने की भी घोषणा की गई। इसी शिखर सम्मेलन के अन्त में यह भी निर्धारित किया गया कि सार्क देशों का बारहवाँ शिखर सम्मेलन जनवरी, 2003 में इस्लामाबाद (पाकिस्तान) में आयोजित किया जाएगा।[24] सार्क का 12वाँ शिखर सम्मेलन 2-6 जनवरी, 2004 में इस्लामाबाद (पाकिस्तान) में सम्पन्न हुआ।[25] सार्क के इस सम्मेलन में पाकिस्तान ने भी आतंकवाद पर भारत की चिन्ता से सहमति जताई। तमाम अटकलों के बीच प्रधानमंत्री वाजपेयी ने पाकिस्तान राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ से सद्भावना मुलाकात की। पाकिस्तान ने कश्मीर का जिक्र नही किया, आतंकवाद पर भारत के साथ साझा चिन्ता जताई और विज्ञान व तकनीक के साथ-साथ साझा व्यापार की जरूरत पर बल दिया।[26]

सार्क का 13वाँ शिखर सम्मेलन 12-13 नवम्बर, 2005 को बंगालादेश (ढाका) में सम्पन्न हुआ।[27] भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष का पुरजोर ढंग से आह्वान करते हुए क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के विकास, गरीबी उन्मूलन व ऊर्जा सुरक्षा के लिए ठोस उपायों की आवश्यकता को रेखांकित किया। भारतीय प्रधानमंत्री ने आशा व्यक्त की कि 1 जनवरी, 2006 से दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार (साफ्टा) लागू करने के मार्ग की सभी रुकावटों को समय से पूर्व दूर कर लिया जायेगा।

अफगानिस्तान को सार्क की सदस्यता प्रदान करने का सम्मेलन में निर्णय लिया गया। वह इस समूल का आठवाँ सदस्य होगा।[28] 14वाँ सार्क शिखर सम्मेलन 4 अप्रैल, 2007 को नई दिल्ली में सौहार्दपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ।[29] सार्क का आठवां सदस्य अफगानिस्तान पहली बार सम्मेलन में शामिल हुआ।[30] इसके साथ ही पांचों पर्यवेक्षकों (संयुक्त राज्य अमरीका, जापान, दक्षिण कोरिया, चीन और यूरोपीय संघ) को भी सम्मेलन में शामिल किया गया। सदस्य देशों ने सार्क नेताओं के बीच दृढ़ता और अपने लक्ष्य के प्रति नई समझ देखी। दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय और दक्षेस खाद्य बैंक की स्थापना के समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। राजनीतिक अस्थिरता से घिरे क्षेत्र के लिए वर्ष 2008 को 'सुशासन का सार्क वर्ष' घोषित किया गया। 14वें सार्क शिखर सम्मेलन में आर्थिक मुद्दे ही अधिक प्रभावी रहे।[31] भारत की ओर से क्षेत्र के अल्प विकसित देशों के लिए शुल्क मुक्त व्यवस्था की एकतरफा घोषणा को सम्मेलन की मुख्य उपलब्धि कहा जा सकता है। शुल्क मुक्त व्यवस्था की भारत की घोषणा से अफगानिस्तान, बंगालादेश, भूटान, नेपाल और मालदीव जैसे गरीब देशों को लाभ की संभावना बनी। सार्क के प्रस्तावित खाद्य बैंक में भारत सर्वाधिक 15 लाख 30 हजार टन अनाज का योगदान की बात कही गई।[32]

श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में आयोजित 15वें सार्क शिखर सममेलन 2-3 अगस्त, 2008 को सम्पन्न को सम्पन्न हुआ।[33]

इसमें भारत ने सामाजिक क्षेत्र के लिए 100 मिलियन अमरीकी डॉलर के अंशदान के अतिरिक्त 100 मिलियन अमरीकी डॉलर की स्वैच्छिक वचनबद्धता व्यक्त की गई। सार्क मंच से पहली बार भारत की पहल पर अफगानिस्तान एवं श्रीलंका जैसे देशों ने खुलेआम आतंकवाद के मुद्दे भी उठाया।[34] 28-29 अप्रैल, 2010 में थिम्पू (भूटान की राजधानी) में आयोजित 16वें सार्क सम्मेलन आयोजित किया गया।[35] इसमें प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा कि सार्क का वास्तविक उद्देश्य इस क्षेत्र में लोगों की आवाजाही, वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यापार की स्वतन्त्रता से ही प्राप्त होगी।[36] सार्क का 16वाँ शिखर सम्मेलन 28-29 अप्रैल, 2010 में सार्क के सभी सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया।

दक्षिण एशिया के 8 देशों (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बंगलादेश, श्रीलंका, भूटान, मालदीव व अफगानिस्तान) के क्षेत्रीय संगठन 'दक्षेस' (SAARC) का 17वाँ शिखर सम्मेलन मालीप में आडू सिटी (Addu City) में 10-11 नवम्बर, 2011 को सम्पन्न हुआ[37] सभी 8 सदस्यों के राष्ट्राध्यक्ष इस शिखर सम्मेलन में उपस्थित थे। सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में ही दक्षेस के निवर्तमान अध्यक्ष भूटान के प्रधानमंत्री थिनले ने अपना यह कार्यभार नए अध्यक्ष मालदीव के राष्ट्रपति मोहम्मद नशीद को सौंप दिया। दो दिन के इस शिखर सम्मेलन का थीम था- 'सम्पर्क निर्माण' (Building Bridges) दक्षेस का यह लगातार पांचवाँ शिखर सम्मेलन था जिसमें भारतीय शिष्टमंडल का नेतृत्व डॉ. मनमोहन सिंह ने किया।

सार्क संगठन का अठारहवाँ शिखर सम्मेलन 26-27 नवम्बर, 2014 को नेपाल की राजधानी काठमांडू में सम्पन्न हुआ।[38] भारत के द्वारा सदस्य देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में आतंकवाद को बहुत बाधा बताया गया तथा उसकी समाप्ति की बात कही गई। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के काल में यह प्रथम सार्क सम्मेलन रहा है। यह उल्लेखनीय है कि उन्नीसवाँ सार्क शिखर सम्मेलन 9-10 नवम्बर, 2016 को पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद में आयोजित होना सुनिश्चित था, परन्तु भारत में पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद के कारण वह रद्द हो गया। सार्क सदस्य देशों अफगानिस्तान, बंगलादेश, भूटान तथा भारत ने पाकिस्तान की आतंकवादी सहयोगी गतिविधियों के कारण 19वाँ सार्क सम्मेलन को रद्द कर दिया। 20वाँ सार्क सम्मेलन श्रीलंका में 2020 में अपेक्षित है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय संगठनों विशेषत: सार्क की संरचना, उद्देश्य तथा अबतक की शिखर सम्मेलनों की सफलता तथा असफलता का आंकलन करना है। इतना ही नहीं, इस आलेख का उद्देश्य भारत की सार्क में भूमिका का अवलोकन भी अपेक्षित है।

परिकल्पना

सार्क एक क्षेत्रीय संगठन है, जो दक्षिण एशियाई राजनीति को प्रभावित करता रहा है। पाकिस्तान ने इस संगठन की सफलता के मार्ग में रोड़ा अटकाया है, परन्तु भविष्य में उसकी भूमिका व महत्व दक्षिण एशिया की राजनीति में लगभग समाप्त होंगी, तब सार्क संगठन सफलता की ओर अग्रसर होगा। जिस प्रकार गुटनिरपेक्ष संगठन के द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के सहयोगी के रूप में कार्य किया जा रहा है, भविष्य में सार्क भी गुटनिरपेक्ष संगठन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ दोनों के सहयोगी के रूप में कार्य करेगा।

साहित्य सर्वेक्षण

शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य माना जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ. एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019

4. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

सार्क एक क्षेत्रीय संगठन है, जो प्रारम्भ में दक्षिण एशिया की राजनीति ही नहीं, कमोबेश विश्व राजनीति को प्रभावित कर सकता है। परन्तु पाक की आतंकवादी समर्थक गतिविधि तथा चीन जैसे देशों के हस्तक्षेप के कारण यह संगठन असफलता की ओर अग्रसर है। आवश्यकता इस बात की है कि पाकिस्तान को अलग करते हुए सार्क के देशों आपस में एकजूट होकर कार्य करें। सार्क के सभी सदस्य देशों को भारत के नेतृत्व में कार्य करनी चाहिए, यही सार्क संगठन तथा सदस्य देशों के हित में होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एस०डी० मुनी: "साउथ एशियन को-ऑपरेशन: इवोल्यूशन एण्ड प्रोस्पेक्ट्स ग्लोबल सेक्यूरिटी, के० सुब्रह्मण्यम और जसतीज सिंह द्वारा सम्पादित, नई दिल्ली, 1987, पृष्ठ 111
2. रिजनल स्टडीज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, इडेनबर्ग, इंगलैंड, 1986, वॉल्यूम-4, नं०-4, पृष्ठ 53 शैमश-उल- हम इंटरनेशनल पॉलिटिक्स- "ए थर्ड वर्ल्ड प्रोस्पेक्टिव", नई दिल्ली, 1987, पृष्ठ 49
3. सार्क पर्सपेक्टिव, सार्क सचिवालय द्वारा सम्पादित और प्रकाशित, काठमाण्डू, मई, 1987, पृष्ठ 19
4. रिजनल स्टडीज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, इडेनबर्ग, इंगलैंड, 1986, वॉल्यूम-4, नं०-4, पृष्ठ 55
5. डॉ. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1999, पृष्ठ 495
6. तथैव, पृष्ठ 494
7. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, भारती भवन, द्वितीय सस्करण 2014, पृष्ठ 544
8. तथैव, पृष्ठ 544
9. तथैव, पृष्ठ 544
10. तथैव, पृष्ठ 545
11. तथैव, पृष्ठ 545
12. डॉ. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1999, पृष्ठ 497
13. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 545
14. तथैव, पृष्ठ 545
15. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, जयपुर, पृष्ठ 334
16. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पष्ठ 545
17. प्रतियोगिता दर्पण, मासिक पत्रिका जुलाई, 1995
18. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 546
19. तथैव, पृष्ठ 546
20. के० भूषण एण्ड जी० कात्याल, सार्क, चैलेंजेस बिफोर न्यू मिलेनियम, ए०पी०एच० पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 167-168

21. तथैव, पृष्ठ 168
22. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 546
23. अमर उजाला, आगरा, 3 जनवरी, 2002
24. दैनिक जागरण, आगरा, 10 दिसम्बर, 2002
25. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 546
26. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य भवन, पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010, पृष्ठ 372
27. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 546-547
28. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010, पृष्ठ 372
29. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 372
30. तथैव, पृष्ठ 547
31. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 372
32. तथैव, पृष्ठ 372
33. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 547
34. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 372
35. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 547
36. बी०एल० फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 372
37. गाँधीजी राय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ 547
38. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, पटना 27 नवम्बर, 2014

मातृ एवं शिशु के उत्तम स्वास्थ्य में यूनिसेफ का कार्य व योगदान

डॉ० कुमारी सुनीता

एम०ए० (गृह विज्ञान), पी०एच०-डी, गेस्ट शिक्षिका, जयप्रकाश महिला महाविद्यालय, छपरा, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध पत्र का सार

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद विभिन्न औपचारिकताओं को पूरा करते हुए एक मजबूत अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में 'संयुक्त राष्ट्र संघ' (United Nations Organisation, UNO) का गठन 24 अक्टूबर, 1945 को किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ का अपना एक संविधान है, जिसे चार्टर कहा जाता है। चार्टर में कुल अनुच्छेदों की संख्या 111 है। चार्टर के अनुच्छेद-1 में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की चर्चा की गई है। इस अनुच्छेद में विश्व शांति, सुरक्षा व सौहार्द की स्थापना करना UNO का उद्देश्य बताया गया है। UNO के छः प्रमुख अंग हैं तथा इन अंगों के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण अंग एवं विशिष्ट अभिकरण है। इन अभिकरणों में यूनिसेफ (UNICEF) महत्वपूर्ण है। यूनिसेफ का तात्पर्य है- संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष (United Nation's International Children's Emergeny Fund, UNICEF)। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद यूनिसेफ की स्थापना 11 दिसम्बर, 1946 को हुई थी। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका को देखते हुए बालकों की आपात आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सर्वसम्मति से एक कोष का अधिदेश स्वीकृत किया गया था, जिसे UNICEF नाम दिया गया। यूनिसेफ प्रारम्भ में चीन, यूरोप आदि देशों में युद्ध की विभीषिका से ग्रसित बालकों को वस्त्र, भोजन, औषधियाँ व अन्य उपयोगी समान वितरित करने का कार्य करती रही है। इस संगठन का कार्य अत्यन्त ही सराहनीय, प्रशंसनीय एवं प्रभावी रहा है। इस संगठन की कार्य-कुशलता एवं उपयोगिता को देखते हुए दिसम्बर, 1950 में यूनिसेफ अधिदेश में आवश्यक परिवर्तन किया गया। यूनिसेफ का मुख्य उद्देश्य उन अविकसित एवं विकासशील देशों में जहाँ अनगिनत बालक न्यूनतम आवश्यकता के अभाव में असमय ही दम तोड़ देते हैं, उनके हित के लिए कार्य करना था। सन् 1953 में यूनिसेफ को संयुक्त राष्ट्र संगठन (UNO) का एक स्थायी अंग बना दिया गया तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय एवं 'आपातकालीन' शब्दों को हटा दिया गया, परन्तु 'यूनिसेफ' संक्षिप्त नाम की लोकप्रियता को बरकरार रखते हुए इसका नाम 'यूनिसेफ' ही रखा गया। यह संगठन 1950 से ही विश्व के विकासशील देशों के बालकों की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा है। अब यूनिसेफ को 'संयुक्त राष्ट्र बाल कोष' (United Nations Children Fund) भी कहा जाता है।

मूल शब्दः जीवितता, वैक्सीन, प्रतिरक्षण, सामाजिक सशक्तिकरण, शिशु पोषण, प्राकृतिक आपदाएँ, बाल-संरक्षण, व्यावसायिक प्रशिक्षण, अनौपचारिक शिक्षा।

प्रस्तावना

यूनिसेफ एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है, जो संयुक्त राष्ट्र संघ का एक विशिष्ट अभिकरण है। इस संगठन का मौलिक उद्देश्य मातृ एवं शिशु रोग का निवारण तथा उनके उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति है। यूनिसेफ आहार एवं कृषि संगठन (Food and Agriculture Organization, FAO), यूनेस्को (UNESCO) तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के साथ मिलकर तथा उनके सहयोग से विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का संचालन करती है। वर्तमान में यूनिसेफ विश्व स्वास्थ्य संगठन के सहयोग से मलेरिया, क्षयरोग एवं यौन रोग के उन्मूलन के लिए कार्य कर रहा है। इसके अतिरिक्त यह विभिन्न देशों के मातृ एवं शिशु रोग के उन्मूलन, बाल स्वास्थ्य,

पोषण, पर्यावरण स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, ग्रामीण क्षेत्रों में जलापूर्ति, स्वास्थ्य केन्द्रों, स्वास्थ्य शिक्षा आदि के लिए कई कार्यक्रमों को संचालित करने में मदद देता है। शिशु राष्ट्र की निधि है। राष्ट्र की इस अमूल्य सम्पत्ति की रक्षा आवश्यक है। इस धारणा के साथ यूनिसेफ शिशुओं के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य कर रहा है। बच्चों के भोजन, पोषण, स्वास्थ्य एवं शिक्षा आदि को उपलब्ध कराने हेतु यूनिसेफ द्वारा विभिन्न कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं।

यूनिसेफ के द्वारा शिशु पोषण, शिशु स्वास्थ्य, बाल विकास एवं जीवितता, स्वास्थ्य संरक्षण, कल्याण एवं प्रतिरक्षण हेतु व्यापक कार्यों को निष्पादित किया जाता है। यूनिसेफ के कार्यों में शिशु पोषण (बेपसक छनजतपजपवद) सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिशु के उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार आवश्यक होता है। यूनिसेफ आहार एवं कृषि संगठन (थ८) तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के साथ मिलकर तथा इनके सहयोग से उन क्षेत्रों में जहाँ अँधता, जेरोपथैल्मिया के अधिक रोगी हैं, वहाँ विटामिन 'ए' की खुराकें है। घेंघा (ळवपजतम) से प्रभावित क्षेत्रों में नमक में आयोडिन मिलाने का कार्यक्रम चलाया है तथा सहयोग दिया है। नमक में आयोडीन मिलाने का एक प्रमुख कारण है, वह यह कि नमक व्यक्ति के आहार की आधारभूत आवश्यकता है तथा गरीब-अमीर सभी वर्गों के लोगों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम चलाने का कार्यक्रम आयोजित किया था। ग्रामीण स्तर के पोषण कार्यकर्त्ता को प्रशिक्षित करने के लिए अनुदान राशि भी उपलब्ध कराता है। दूध का पाउडर, गेहूँ का आटा, दलिया, चावल, चीनी, पोषक पदार्थ व अन्य खाद्य सामग्री को वितरित कराने में भी योगदान देता है।

यूनिसेफ ने बच्चों के उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति एवं रोगों से सुरक्षा हेतु कई वैक्सीन एवं सौरा तैयार करने में सहयोग दिया है। बच्चों की छः जानलेवा रोगों से रक्षा के लिए प्रतिरक्षण (प्उउनदप्रंजपवद) टीके भी तैयार करवाए हैं। वातावरण स्वच्छता, ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध जल की पूर्ति के लिए भी कई कार्यक्रम बनाए हैं तथा यूनिसेफ की सहायता से चलाए जा रहे हैं। मातृ एवं शिशु के स्वास्थ्य को उन्नति के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भी खोले गए हैं। ग्रामीण जनता में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं। उन्हें श्रव्य-दृश्य साधनों, फिल्म, पोस्टर, फोल्डर, चार्ट, टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से स्वास्थ्य शिक्षा के बारे में अवगत कराया जा रहा है।

यूनिसेफ शिशु/बालकों के स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य संरक्षण पर जोर देता है तथा इससे सम्बन्धित कार्यकर्त्ता, स्वास्थ्य सहायता तथा स्वास्थ्य से जुड़े कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कार्यक्रम बनाता है व इसका संचालन करता है। इसके साथ ही यूनिसेफ नवीन उपकरण व तकनीकी सहायता विभिन्न स्वास्थ्य केन्द्रों को उपलब्ध कराता है। अतिआवश्यक औषधियाँ एवं टीकाकरण हेतु वैक्सीन भी उचित तरीके से उचित समय पर उपलब्ध करवाने में हरसम्भव प्रयास करता है।

स्वास्थ्य कार्यक्रमों को उन्नत एवं सफल बनाने के लिए जल एवं स्वच्छता आधारभूत आवश्यकता है। जब तक प्रत्येक व्यक्ति को पीने के लिए शुद्ध जल प्राप्त नहीं हो सकेगा, स्वास्थ्य के स्तर को ऊँचा नहीं उठाया जा सकेगा, क्योंकि जल से फैलने वाली अनेक बीमारियाँ हैं। यदि दूषित जल का सेवन कर लिया जाता है तो उसका दुष्प्रभाव लम्बे समय तक शरीर पर पड़ता है।

यूनिसेफ द्वारा सुरक्षित जल वितरण प्रणाली की योजना संचालित की जा रही है। सुरक्षित जल प्राप्ति के लिए शहर से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों तक कुएँ, हैण्ड पम्प, ट्यूब वेल आदि की व्यवस्था की जाती है। जल के परीक्षण, शुद्धिकरण एवं वितरण व्यवस्था में सुधार किया जाता है। यूनिसेफ को इन उत्कृष्ट कार्यों के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय जल संसाधन संघ' (प्दजमतदंजपवदंस ॅजमत त्मेवनतबम ।वबपंजपवद) की ओर से, सर्वप्रथम, पुरस्कार से पुरष्कृत किया गया है।

यूनिसेफ शिक्षा के माध्यम से लोगों में जागृति पैदा करने के लिए भरपुर प्रयत्न कर रहा है, क्योंकि बहुत सारी बीमारियों एवं बुराइयों का जड़ अशिक्षा ही है। इसके लिए यूनिसेफ द्वारा-औपचारिक एवं अनौपचारिक-दोनों प्रकार के शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए विधि कार्यक्रम बनाए जाते हैं। यह प्राथमिक स्कूल अध्यापकों एवं अन्य कर्मचारियों के लिए नवीन प्रशिक्षण कार्यक्रम का संचालन करता है। साधन व सुविधा भी जुटाने का कार्य करती है। अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों को सुविधाएँ, सहायता देने के साथ-ही-साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र को भी शिक्षण सामग्री जैसे-पोस्टर, चार्ट, पुस्तकें, श्यामपट्ठ, बुलेटिन, मैनुअल, ग्लोब, नक्शा, दृश्य-श्रव्य सामग्री, (स्लाइड, फिल्म, एपिडयास्कोप, प्रोजेक्ट यन्त्र) आदि शिक्षा साधन उपलब्ध कराने में सहयोग देती है। कभी-कभी पुस्तकें छपवाने, जिल्द मंढवाने व कागज जैसी सामग्री भी यूनिसेफ द्वारा उपलब्ध कराई जाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन सन् 1974 से ही विस्तृत प्रतिरक्षण कार्यक्रम चला रहा है। यूनिसेफ के सहयोग से इस कार्यक्रम में और भी बल मिला है। शिशु को छः घातक जानलेवा बीमारियों से बचाने के लिए प्रतिरक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, ताकि सम्पूर्ण

विश्व में शिशु मृत्यु दर में कमी आए तथा कोई भी शिशु अपंग रकर तिरस्कृत जीवन में नहीं जीए। ये छः जानलेवा बीमारियाँ जो शिशु मृत्यु के मुख्य कारण है, वे है-पोलियो, क्षयरोग, खसरा, डिफ्रथीरिया, कुकूर खाँसी और टिटनस।

यूनिसेफ ने विश्वभर में प्रचलित बीमारियों के अध्ययन के फलस्वरूप ही उपर्युक्त छः खतरनाक प्राणलेवा बीमारियों का चयन किया है। सार्वभौमिक प्रतिरक्षण के लिए 0-5 वर्ष तक के शिशु को इन छः बीमारियों से बचाने के लिए टीके लगवाए जाते हैं तथा टीके हेतु वैक्सीन यूनिसेफ द्वारा उपलब्ध करवाये जाते हैं। टीकाकरण हेतु प्रचार-प्रसार भारत सरकार व स्वयंसेवी संस्थानों के माध्यम से गाँव-गाँव, शहर-शहर तथा वे जो सुदूर बीहड़ जंगलों में वास करते हैं, उन तक किया जाता है ताकि कोई भी शिशु 'टीका' से वंचित न रह जाए। पोलियो को जड़ से मिटाने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा यूनिसेफ कृत-संकल्प है। इसके लिए प्रतिवर्ष भारत में पल्स पोलियो अभियान चलाया जाता है तथा पोलियो की खुराक 0-5 वर्ष तक के सभी शिशुओं को मुफ्त में उपलब्ध कराई जाती है। प्रतिरक्षण हेतु वैक्सीन भी UNICEF/WHO द्वारा उपलब्ध करावाए जाते हैं। अन्य प्रकार के साधन, तकनीकी सहायता एवं उपयोगी उपकरण भी सहायततार्थ दिए जाते हैं।

शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए पूरा विश्व ही चिन्तित है तथा इसके लिए विविध प्रकार के कार्यक्रम, योजनाएँ चलाई जाती है। शिशु के स्वास्थ्य की उन्नति की जिम्मेदारी केवल माता-पिता, परिवार या समाज की नहीं बल्कि राष्ट्र एवं विश्व को भी है। ऐसी धारणा को लेकर यूनिसेफ कार्य कर रहहा है। माता-पिता को शिक्षित करना, डे-केयर केन्द्र खोलना, शिशु कल्याण केन्द्र खोलना आदि कार्य यूनिसेफ की सहायता से किये जा रहे हैं। लड़कियों एवं महिलाओं को शिक्षित करने के लिए गृह क्लब, बाल संरक्षण, भोजन का परीक्षण, व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र तथा धन उपार्जित करने के साधनों के लिए अनुदान राशि भी उपलब्ध कराता है।

यूनिसेफ संकटकाल एवं आपातकाल से ग्रस्त राष्ट्रों/देशों/क्षेत्रों को सहयोग एवं सहायता प्रदान करता है। वे देश जो प्राकृतिक विपदाएँ, जैसे-भूकम्प, बाढ़, सूखा, अकाल, भू-स्खलन आदि के शिकार होते हैं, उन्हें आवश्यक औषधियाँ, आवास, खाद्य सामग्री, जलापूर्ति, उपकरण एवं अन्य उपयोगी वस्तुएँ उपलब्ध करवाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा विशेष सहायता, अनुदान एवं सुविधाएँ भी उपलब्ध करवाता है। भूकम्प, दंगे, भूस्खलन आदि की स्थिति में यूनिसेफ द्वारा सुरक्षा कार्यक्रमों एवं पुनर्वास का प्रबन्धन करता है।

वर्तमान में यूनिसेफ द्वारा शिशु और बालकों में मृत्युदर को कम करने के लिए एक अभियान (Campaign) 'गोबी' (GOBI) के नाम- (i) वृद्धि आवेक्षण (Growth Surveillance)—G, (ii) मौखिक पुनर्जलीकरण (Oral Rehydration)—O, (iii) स्तनपान को प्रोत्साहन (Promoting Breast-feeding)—B, (iv) प्रतिरक्षण कार्यक्रम (Immunization Programme)—I

यूनिसेफ को संयुक्त राष्ट्र संगठन से कोई वित्तीय सहायता नहीं प्राप्त होती है बल्कि इसके सदस्य देश ऐच्छिक रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। वर्तमान में यूनिसेफ के 117 सदस्य देश हैं। यूनिसेफ अपने कार्डों को बेचकर अपने साधनों को 10% तक मजबूत बनाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य गृह विज्ञान के अंतर्गत स्वास्थ्य, मातृ रक्षा तथा बाल कल्याण के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विशिष्ट अभिकरण 'यूनिसेफ' की संरचना, कार्य तथा भूमिका का अवलोकन करना है। इस शोध आलेख का उद्देश्य यूनिसेफ की वर्तमान भूमिका का निष्पक्ष अवलोकन भी है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख में यूनिसेफ की पृष्ठभूमि, संरचना, कार्य, उद्देश्य तथा भूमिका का सामान्य अवलोकन किया गया है। कभी-कभी यूनिसेफ की भूमिका को लेकर प्रश्न चिन्ह खड़ा किया गया है, जो निश्चित रूप में भविष्य में यूनिसेफ के भविष्य को नकारात्मक रूप में प्रभावित करेगा। इस संगठन की साख और अर्थव्यवस्था भी भविष्य में विपरीत रूप में प्रभावित होना स्वाभाविक प्रतीत होता है, क्योंकि अनुदानकर्त्ता देशों में तनाव दिख रहा है।

साहित्य अवलोकन

मैंने अपने इस रिसर्च आर्टिकल को तैयार करने के लिए संवैधानिक-वैधानिक प्रावधानों का अध्ययन किया है। तथ्यगत सामग्री के कारण फूटनोट देना मुझे अधिक उचित नहीं लगा है। प्रस्तुत आलेख की तैयारी के पूर्व कुछ प्रमुख साहित्य का अवलोकन किया गया है:

1. परिवार एवं सामुदायिक विज्ञान, डॉ. बृन्दा सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय सस्करण, 2019
2. मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, डॉ. बृन्दा सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय सस्करण, 2019
3. गृह प्रबंधन, माधुरी देशमुख, गौरव बुक्स कानपुर, यू०पी०, 2016
4. होम मैनेजमेंट, रामा यादव, अलफा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, फर्स्ट पब्लिश, 2009

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

अबतक के विवेचन से स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट एजेन्सियों में यूनिसेफ एक महत्वपूर्ण एजेन्सी है। वास्तव में, शांति व सौहार्द को वैश्विक रूप से प्राप्त करने के लिए बच्चों की शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को अनिवार्य माना जाता है। इसलिए यूनिसेफ की संयुक्त राष्ट्र संघ के अभिकरणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इसकी संरचना एवं कार्य महत्वपूर्ण है तथा इसे अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है, हालांकि अबतक इस संगठन की भूमिका को लेकर कई देशों ने पक्षपात का आरोप लगाया है तथा स्वयं को इस संगठन से अलग कर लेने की चेतावनी भी दिया है। इससे निश्चित रूप में इस संगठन की साख, कार्य एवं भूमिका विपरीत रूप में प्रभावित होंगी तथा प्रभुत्व वाले देशों का दृष्टिकोण भी इस संगठन के प्रति नकारात्मक ही दिख रही है। स्पष्ट है कि यूनिसेफ का भविष्य चुनौतिपूर्ण है। अब इस संगठन को किसी देश विशेष के प्रभाव से निकलकर निष्पक्ष भूमिका में आने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. डॉ. बृन्दा सिंह, परिवार एवं सामुदायिक विकास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. आहूजा, राम, "भारतीय सामाजिक व्यवस्था", रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1995
3. लवानिया, एम०एम०, "भारतीय समाज", रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1987
4. गुप्ता, मोती लाल, "भारतीय सामाजिक संस्थायें", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1962
5. मुखर्जी, रविन्द्रनाथ, "भारतीय सामाजिक संस्थायें", विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
6. शर्मा के०एल०, "भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन", रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2010
7. राजोरा, एस०सी०, "समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण, 2010
8. World Health Organisation, 2006, Constitution of the WHO, Basic documents, Forty-Fifth Edition, Supplement, October, 2006

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत की रणनीति

डॉ० नमिता कुमारी

एम०ए० (राजनीति विज्ञान), पी०यू०, पी-एच०डी०, सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखंड

शोध आलेख का सार तत्व

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विश्व के सभी देश अपनी शक्ति एवं सार्मथ्य के अनुरूप अपने-अपने राष्ट्रीय हित को प्राप्त करने के प्रयास करते रहे हैं। इसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्र-राज्यों के बीच परस्पर अन्त:क्रियाएँ होती है तथा उनके बीच राष्ट्रीय हित की पूर्ति के लिए परस्पर आदान-प्रदान से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और वैदेशिक सम्बन्ध का स्वरूप भी परिवर्तित होता हैं। परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है, ऐसी स्थिति में राष्ट्र का हित भी परिवर्तित होता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी परिवर्तित होता रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में लगातार उतार-चढ़ाव दृष्टिगोचर होता है, इसलिए भारत की स्थिति, वैदेशिक नीति के सिद्धान्त और व्यवहार में भी आंशिक परिवर्तन होता रहा है। इसके बाद भी भारत की वैदेशिक नीति में भी आंशिक परिवर्तन होता रहा है लेकिन इसने राष्ट्रीय हित की पूर्ति तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कभी भी सिद्धान्त को अनदेखा नहीं किया है। भारत की वैदेशिक नीति के आधारभूत सिद्धान्त प्रत्येक काल और परिस्थिति में अनुप्रयोग होते रहे हैं। वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी इसका अपवाद नहीं है। नरेन्द्र मोदी के व्यक्तित्व एवं कार्यकरण से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का कद पूर्व से बहुत बढ़ गया है अर्थात् नरेन्द्र मोदी की वैदेशिक रणनीति पूर्व की तुलना में परिवर्तित हुई है, लेकिन भारत के सैद्धान्तिक पक्ष में विशेष बदलाव नहीं हुआ है।

मूल शब्द: नि:शस्त्रीकरण, पंचशील, गुटनिरपेक्षता, विदेश नीति, कूटनीति सामरिक रणनीति, आतंकवाद, बफर स्टेट, सामूहिक सुरक्षा।

प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का स्वरूप गतिशील रहा है, जिसके मूल में राष्ट्रों के राष्ट्रीय हित और राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा का पर्यावरणीय सन्दर्भ में परिवर्तनशील होना है। भारत विश्व का एक ऐसा देश है, जो हमेशा ही अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सौहार्द के प्रति चिन्तित रहा है। इसके द्वारा हमेशा ही राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित रखने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को उन्नत करने, राष्ट्रों के आपस में न्यायपूर्ण तथा सम्मानजनक सम्बन्धों को बनाये रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सम्मान तथा सन्धि-उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। भारत ने सदैव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने का प्रयास रहा है। भारत शीत युद्ध के विरुद्ध गुटनिरपेक्षता की नीति को अपना कर, गुटीय-राजनीति से अलग रह कर, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उत्पत्ति तथा विकास में एक नेतृत्वपूर्ण भूमिका अदा करके, संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावों तथा उद्देश्यों के साथ अपनी विदेश नीति को जोड़ कर, तीसरे विश्व के अधिकारों की सुरक्षा के लिए दृढ़ तथा लगातार प्रयास करता रहा है। भारत के द्वारा परमाणु साम्राज्यवाद की स्थापना का विरोध करके, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद तथा नक्सलवाद का विरोध, परमाणु नि:शस्त्रेकरण तथा नीओ (NIEO) का दृढ़ समर्थन करके, विश्व स्तरीय तथा क्षेत्रीय कार्यात्मक संगठनों में सक्रिय भूमिका निभाने का प्रयास किया जा रहा है और इस उद्देश्य में एक प्रकार से अब तक बहुत हद तक सफल भी रहा है। भारत की वैदेशिक नीति में सैद्धान्तिक स्थायित्व है तथा सामूहिक सुरक्षा के प्रति गतिशीलता भी है। भारत सर्वदा राष्ट्रीय सुरक्षा और सामूहिक

सुरक्षा के बीच तालमेल स्थापित करने का प्रयास करता रहा है। भारत की भौगोलिक स्थिति भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इसकी स्थिति एवं रणनीति को प्रभावित करती है। भारत एशिया महाद्वीप का दक्षिणी देश है। वस्तुत: भारत एक प्राय:द्वीप है, जो तीन ओर से समुद्र से घिरा हुआ है। दक्षिण में हिन्द महासागर, की ओर अपनी लटकती हुई प्राय:द्वीपीय स्थिति के कारण भारत का एशिया में विशेष भू-सामरिक महत्व है, जिसका हिन्द महासागर से सम्बद्ध सभी राष्ट्रों पर प्रभाव पड़ता है।

24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की विधिवत् स्थापना हुई। इस सम्बन्ध में विजय लक्ष्मी पण्डित ने कहा, "उन आरम्भिक दिनों जब उपनिवेशवाद समाप्त हो रहा था, तब तीसरी दुनिया में यह उम्मीद की गई कि अब अच्छे दिन आएँगे और संयुक्त राष्ट्र संघ को मानवता की चेतना बताया गया।"[1] संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन के शुरुआती दिनों में पश्चिमी राष्ट्रों का प्रभुत्व कायम था और यह उनके प्रभाव की दृष्टि से श्वेत मानवों का क्लब कहलाता था, क्योंकि उस समय इस संगठन में युद्ध के विजेताओं के हितों का ही संरक्षण किया जाता था। इसकी सभी गतिविधियों में पश्चिमी राष्ट्रों का अनेक वर्षों तक दृढ़ नियन्त्रण रहा। पश्चिमी जगत् का हित ही सम्पूर्ण विश्व के हित समझा जाता था। इसमें 51 मूल सदस्य, 5 स्थायी सदस्य और 6 अस्थायी सदस्यों का ही पूरा नियन्त्रण रहता था, लेकिन धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदलती गई तथा अब संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता 51 से बढ़कर 193 तक पहुँच गई है।[2] अब संयुक्त राष्ट्र संघ पश्चिमी राष्ट्रों का निजी क्लब मात्र नहीं रह गया है। अफ्रीका और एशिया के नवोदित राष्ट्रों का अब इस संस्था में बहुमत है। इनकी संख्या लगभग 126 है। अब महाशक्तियों को इन राष्ट्रों के हितों का भी ध्यान रखना होता है, हालाँकि अब भी इसमें महाशक्तियों का ही बोलबाला रहता है, क्योंकि साधन सम्पन्नता और दुनिया की अधिकांश पूँजी इन्हीं राष्ट्रों के पास है। इनको संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थायी सदस्यता के साथ-साथ सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार का अधिकार भी प्राप्त है। यद्यपि भारत, जापान जैसी कुछ महाशक्तियाँ भी स्थायी सदस्यता की मांग कर रही हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उत्पन्न विभिन्न कारणों से दुनिया दो महाशक्तिशाली गुटों में बँट गई थी। इनमें प्रथम गुट का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमरीका के हाथों में तथा तथा द्वितीय गुट का नेतृत्व पूर्व सोवियत संघ कर रहा था। पूर्व सोवियत संघ का उद्देश्य दुनिया में साम्यवाद का प्रचार और प्रसार करना था जबकि संयुक्त राज्य अमरीका दुनिया से साम्यवाद् का उन्मूलन करना चाहता था। महाशक्तियों के बीच शीत-युद्ध और पारस्परिक गुटबन्दी के कारण नेपाल को लगभग 10 वर्ष तक संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश नहीं मिल सका। नेपाल ने भी भारत के समान महाशक्तियों की गुटबन्दी से अलग रहकर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में सम्मिलित होना उचित समझा था। इस कारण महाशक्तियाँ नेपाल को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाने में अधिक रूचि नहीं ले रही थी, लेकिन भारत के सद्प्रयासों और महाशक्तियों के मध्य समझौता हो जाने के कारण नेपाल 14 दिसम्बर, 1955 को संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) का सदस्य बन सका। नेपाल के संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बन जाने के पश्चात् अपनी गुटनिरपेक्ष नीति के अन्तर्गत अनेक अवसरों पर कभी भारत के मत का समर्थन किया, तो कभी उसने विरोध भी किया। इसी तरह उसने विश्व मंच और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से भी अपनी स्वतन्त्र स्थिति का परिचय देते हुए पूर्व सोवियत संघ, अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि शक्तियों की समयानुकूल आलोचना की। संयुक्त राष्ट्र संघ में उनके विरुद्ध मतदान भी किया और कभी-कभी उनके पक्ष का समर्थन भी किया। पाश्चात्य शक्तियों के उपनिवेशवादी तथा रंगभेदी नीति का वह भारत के समान हमेशा कटु आलोचक बना रहा।

भारत की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शुरूआत एक निष्पक्ष और स्वतन्त्र नीति अपनाने वाले राष्ट्र के रूप में हुई। जब 8 दिसम्बर, 1951 को सेनफ्रान्सिस्को में सम्पन्न हुई जापान शान्ति बैठक में, अमरीका की अनुचित शर्त्तों पर आपत्ति की और साथ ही भारत ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने से भी अस्वीकार कर दिया। फलत: अमरीका को संशोधित सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। इसके साथ ही जापान और अमरीका के मध्य युद्ध समाप्ति के लिए कार्यवाही पूर्ण हो सकी। कोरिया संकट 1950-53 के समय जब दोनों गुटों के बीच शीतयुद्ध बहुत तीव्र हो चला तो भारत ने इस शीतयुद्ध की समाप्ति, युद्ध बन्दियों की अदला-बदली आदि कार्यों में एक सशक्त स्वतन्त्र विदेश नीति अपनाते हुए कोरिया के संकट को टालने में सराहनीय योगदान दिया। भारत ने एशिया और अफ्रीका के इन सभी नव-स्वतन्त्र देशों को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश कराने और उनकी समस्याओं को समर्थन देने में भारी योगदान दिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ अपने प्रारम्भिक दिनों में पश्चिमी देशों का एक क्लब जैसा था, लेकिन अफ्रो-एशियाई एकता के कारण अब वहाँ बहुमत नव-स्वतन्त्र और एशियाई देशों का है। इन देशों के अभ्युदय से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक नयी दिशा प्राप्त हुई है। अब संयुक्त राष्ट्र संघ में पश्चिमी साम्राज्यवादी राष्ट्रों की समस्याओं पर ही विचार नहीं होता, बल्कि अब सबसे अधिक एशिया-अफ्रीका व दुनिया के अन्य अविकसित और विकासशील देशों की समस्याओं पर भी विचार होने लगा है। भारत के सद्प्रयासों से 1984-85 में संपन्न संयुक्त राष्ट्र महासभा के 39वें अधिवेश में उपनिवेशों की समाप्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रस्ताव

स्वीकार किए गए। ऐसे ही प्रस्ताव पिछले अधिवेशनों में भी स्वीकार किए गए थे। इनमें विदेशी आर्थिक शक्तियों की उन कार्यवाहियों की भर्त्सना की गई थी जो उपनिवेशों को स्वतन्त्रता दिये जाने की घोषणा के कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न करती है।[3] महासभा ने एक और प्रस्ताव भी स्वीकार किया है, जिसमें 1990-2000 को उपनिवेशवाद समाप्ति के अन्तर्राष्ट्रीय दशक के रूप में मनाने की घोषणा शामिल थी।[4]

विश्व से उपनिवेशवाद को समाप्त कराने की दिशा में भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में रहकर महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें ऐसा जनमत तैयार हुआ है, जिससे उपनिवेशवाद समाप्त करने के आन्दोलनों को बल प्राप्त है? यद्यपि विश्व में राजनीतिक उपनिवेशवाद तो समाप्त हो रहा है, लेकिन आर्थिक क्षेत्र में साम्राज्यवादी ताकतें अभी भी दुनिया को गुलाम बनाए रखना चाहती है। भारत इन ताकतों का संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न मंचों के माध्यम से अविकसित राष्ट्रों में आत्मविश्वास उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थिति ऐसी बनती जा रही है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ यह स्वीकार करने लगी है कि संख्या बल के आधार पर यह देश संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रमुख भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।[5]

अब भारत की भूमिका संयुक्त राष्ट्र संघ में अति महत्वपूर्ण होती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में परमाणु निषेध सन्धि (N.P.T.), 1968 एवं व्यापक आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (C.T.B.T.), 1993 इसीलिए महत्वपूर्ण रही, क्योंकि इन सन्धियों को भारत ने कभी स्वीकार नहीं किया। यद्यपि भारत हमेशा से ही संयुक्त राष्ट्र संघ व विश्व राजनीति में निःशस्त्रीकरण का समर्थक रहा है, लेकिन वह किसी ऐसी सन्धि को स्वीकार नहीं करना चाहता जिसमें कि विश्व की पाँच महाशक्तियों को छोड़कर सम्पूर्ण विश्व में आणविक विस्फोट करने पर रोक लगायी जाए। दूसरी ओर, पाँचों शक्तिशाली आणविक देश अपने आणविक विकास करने और विस्फोट करने के लिए स्वतंत्र थे। यही कारण है कि मई, 1998 में भारत द्वारा परमाणु विस्फोट करने के बाद अब N.P.T. और C.T.B.T. दोनों ही सन्धियाँ महत्वहीन हो चुकी हैं और अब कोई भी राष्ट्र इन सन्धियों पर चर्चा नहीं कर रहा है।

भारत का संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता का दावा बहुत सशक्त हो चुका है। अमरीका और जर्मनी के बाद अब फ्रांस में भी भारत का खुला समर्थन किया है। फ्राँस ने कहा कि बहुध्रुवीय विश्व में भारत का शक्ति के केन्द्र के रूप में उभरकर आना तय है। अतः इस आधार पर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में उसकी स्थायी सदस्यता का अधिकार बनता है।[6] फ्राँस की तरह ब्रिटेन के विदेश मंत्री ने भी कहा कि "ब्रिटेन भारत को सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता का स्वाभाविक दावेदार मानता है। उन्होंने कहा कि लंदन और नयी दिल्ली सुरक्षा परिषद् के सुधार के प्रति प्रतिबद्ध है।[7] अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने मार्च, 2000 में अपनी भारत यात्रा के दौरान पत्रकारों से एक भेंट वार्ता में स्वीकार किया था कि भारत के लिए परमाणु कार्यक्रम छोड़ पाना मुश्किल है। एशिया में उसकी महत्वपूर्ण स्थिति को देखते हुए सुरक्षा परिषद में उसकी स्थायी सदस्यता की माँग उचित है।[8]

रूस भारत के दावे का जोरदार समर्थन करता है।[9] यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन के सम्बन्ध में 2 मार्च, 1997 को एक प्रस्ताव पारित कर सिद्धान्तः स्थायी सदस्यों की संख्या बढ़ाने की बात स्वीकार कर चुकी है। यह आगे भविष्य में ही निर्धारित हो सकता है कि भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता प्राप्त हो पाती है अथवा नहीं। इसमें कोई दो राय नहीं कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यकलापों में भारत की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती जा रही है। इस दृष्टि से हम पाकिस्तान के योगदान पर विचार करें तो संयुक्त राष्ट्र संघ में उसकी भूमिका एक अनजान राष्ट्र जैसी ही है।[10] विश्व में पाकिस्तान को आतंकवाद का जन्म स्थली माना जा रहा है।

विश्व शान्ति एवं दुनिया में सुरक्षा बनाए रखना है। इसकी मुख्य जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् पर निर्भर की गई है। यहाँ यह कहना गलत न होगा कि विश्व शान्ति को खतरे में डालने वाला कोई भी बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष तभी सामने आ सकता है जबकि उसे एक या अधिक बड़े राष्ट्रों की सहायता एवं समर्थन प्राप्त हो। ऐसे किसी संघर्ष एवं युद्ध को सुरक्षा परिषद् कैसे रोक या नियंत्रित कर सकती है, जबकि दुनिया के पाँच शक्तिशाली राष्ट्रों अर्थात् अमरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन को वास्तविक प्रश्नों के निर्णय में निषेधाधिकार (वीटो) प्राप्त है? द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यानि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय से अब तक 5-6 बड़े अन्तर्राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हुए हैं यथा बर्लिन का संकट (1948-49), क्यूबा प्रक्षेपास्त्र संकट (1962), हंगरी का संकट (1956), कोरिया संकट (1950-53), वियतनाम युद्ध (1968-73), अफगानिस्तान संकट (1979), ईराक पर अमरीकी बमबारी (जनवरी,

1993)। इन सभी में एक न एक महाशक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिस्सेदार थी। इसीलिए इन संकटों में सुरक्षा परिषद् कोई असरदार कार्यवाही न कर सकी। इन बड़े संकटों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद पिछले सात दशकों में लगभग 150 छोटे, बड़े सैन्य संघर्ष दुनिया में दृष्टिगोचर हुए हैं। इनमें अनेक संघर्षों का निपटारा सम्बद्ध देशों से सीधी वार्ता से हुआ है, लेकिन अन्य कई विवादों के सम्बन्ध में यू०एन०ओ० ने शक्ति का प्रयोग किया है, और अपनी शान्ति सेनाएँ भेजकर दोषी शक्ति बलों को दण्डित भी किया है। भारत ने यू०एन०ओ० के तत्वावधान में अपने-अपने शान्ति सैनिक भेजे और दुनिया की समस्याओं को हल करने में सहायता दिया। भारत ने बर्लिन का संकट, क्यूबा का संकट, हंगरी का संकट, वियतनाम युद्ध आदि अनेकों संकटों के अवसरों पर किसी न किसी रूप में शान्ति स्थापना में सहायता प्रदान किया है।

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का प्राथमिक सदस्य देश रहा है। अमरीका के वाशिंगटन डी०सी० में अक्टूबर, 1944 में जब यू०एन०ओ० की घोषणा की गई तथा 25 से 26 अप्रील, 1995 में जब सेन फ्रांसिसकों में सम्मेलन हुआ तो भारत उसमें भागीदारी निभाई।[11] नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री काल में भारत के द्वारा अपने पूर्व के रणनीति के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र संघ में कार्य किया जाता रहा है, हालांकि और भी जोरदार रूप में भारत के पक्ष को रखने में नरेन्द्र मोदी की सरकार ने कार्य किया है। भारत के द्वारा नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में पूर्व की भांति इस बात पर बल दिया गया कि दुनिया का सबसे विशाल जनसंख्या वाला देश तथा उदारवादी विचारधारा वाला देश होने के कारण इसे संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्य बनाया जाये। भारत ने इस समय इस बात पर बल दिया कि वह दुनिया का सातवाँ अर्थव्यवस्था है तथा क्रय शक्ति में विश्व में इसका स्थान तीसरा है। वर्ष 2014 के अन्त में, भारत ने बताया कि वह संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति हेतु ऑपरेशन में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करने वाला तीसरा देश है। भारत 2014 तक 7860 कार्मिकों को अब तक 10 पीस कीपिंग ऑपरेशन में नियुक्ति कर चुका है।[12] संयुक्त राष्ट्र संघ के एक व्यक्तव्य में बताया गया है कि भारत विश्व मं चौथा बड़ा पुलिस योगदान देने वाला देश है।[13] फरवरी, 2017 में संयुक्त राष्ट्र संघ का एक व्यक्तव्य आया कि अब तक संयुक्त राष्ट्र पीस कीपिंग ऑपरेशन में 163 भारतीयों की जान जा चुकी है।[14] नरेन्द्र मोदी के प्रयास का ही प्रतिफल है कि 11 दिसम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में स्वीकार किया।[15] मोदी के नेतृत्व में भारत ने वर्ष 2016 में सतत् विकास के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समानता की बात कही गई[16] तथा 14 अप्रैल को बाबा साहब भीम राव अम्बेडकर के जन्म दिन को अन्तर्राष्ट्रीय समानता दिवस के रूप में स्वीकार करने की बात कही गई।[17] वर्ष 2015-16 में भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में 2,440,000,000 (US $ 34 million) योगदान दिया है।[18] यह योगदान पिछले योगदान की तुलना में 55 प्रतिशत अधिक रहा।[19] भारत संयुक्त राष्ट्र के बजट में नियमित योगदान देने वाला देश है।[20] यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र में भारत के महत्वपूर्ण भागीदारी के लिए संयुक्त राष्ट्र राजदूत के रूप में सैयद अकबरूद्दीन को जनवरी, 2016 को नियुक्त किया गया है।[21] 3 अक्टूबर, 2018 को दिल्ली में आयोजित एक विशेष समारोह में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को संयुक्त राष्ट्र के सर्वोच्च पर्यावरणीय पुरस्कार "चैंपियंस ऑफ अर्थ द अवार्ड" से सम्मानित किया गया। संयुक्त राष्ट्र महासचिव एटोनियो गुटरेस ने पर्यावरण के क्षेत्र में योगदान के लिए मोदी को अवॉर्ड दिया। उन्होंने ने कहा कि पर्यावरण के क्षेत्र में मोदी का महत्वपूर्ण योगदान है तथा ग्रीन इकोनॉमी में इनके योगदान को भविष्य में बहुत अधिक महत्व दिया जायेगा।[22] भारत के द्वारा प्रारम्भ से ही संयुक्त राष्ट्र संघ में महत्वपूर्ण योगदान दिया जाता रहा है। भारत ने हमेशा ही संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की मूल भावना को बनाए रखा है तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में इसके अस्तित्व से कभी अस्वीकार नहीं किया है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन किया है तथा इसे विश्व शांति की एक एजेंसी मानता है। भारत को आज प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में दुनिया की प्रत्येक संघर्षपूर्ण समस्याओं, बहु-राष्ट्रीय समस्याओं, वैश्वीक समस्याओं इत्यादि का शांतिपूर्ण समाधान चाहता है। भारत आतंकवाद को समाप्त करने में संयुक्त राष्ट्र का कार्य एवं प्रयास निर्णायक बनाना चाहता है।

अध्ययन का उद्देश्य

शोध आलेख का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की स्थिति तथा नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में परिवर्तित स्थिति को स्पष्ट करना है। इस आलेख में तुलनात्मक रूप में नरेन्द्र मोदी से पहले तथा नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत की वैदेशिक नीति, कूटनीति और

रणनीति को समझना भी है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख के अन्तर्गत राष्ट्रीय राजनीति में भारत की स्थिति के अवलोकन के आधार पर यह परिकल्पना निर्धारित की जाती है कि भारत अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अत्यधिक सशक्त होकर कार्य करेगा तथा मोदी के प्रभाव में संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद् में भारत को स्थायी सदस्यता प्राप्त होंगी।

साहित्य सर्वेक्षण

शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य माना जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ. एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
4. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ को लोकतांत्रिक बनाने की हमेशा ही माँग करता रहा है। आज भी भारत के द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों में वृद्धि तथा इसके स्वरूप को अधिक लोकतन्त्रीय बनाने की मांग का भरपूर समर्थन किया जा रहा है। भारत सुरक्षा परिषद में स्थायी स्थान पाने का एक सशक्त दावेदार है। भारत अपने दावे को न्याय, समानता, लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण, न्याय भावना आदि सिद्धान्तों तथा विद्यमान परिस्थितियों में देश की महत्वपूर्ण स्थिति के आधार पर पूर्णतया उचित ठहराया है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन किया है तथा इसे विश्व शांति की एक एजेंसी मानता है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत को पूर्व की भाँति पूरा विश्वास है कि दुनिया की प्रत्येक संघर्षपूर्ण समस्याओं, बहु-राष्ट्रीय समस्याओं, वैश्वीक समस्याओं, आतंकवाद इत्यादि का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से ही किया जान चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. पं० विजय लक्ष्मी, द स्कोप ऑफ हैप्पीनेस, 1979, पृष्ठ 258
2. मदोदर राव, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, रावत पब्लिकेशन, 1974 हरियाण, पृष्ठ 77
3. प्रभुदत्त शर्मा, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 1998, पृष्ठ 337
4. प्रभुदत्त शर्मा, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 1998, पृष्ठ 337
5. तथैव, पृष्ठ 337
6. तथैव, पृष्ठ 337
7. अमर उजाला, आगरा, 15 अप्रैल, 2000 एवं डॉ. आर०पी० पाण्डेय भारत की परमाणु नीति, सामाजिक सहयोग, राष्ट्रीय शोध पत्रिका उज्जैन 2000, पृष्ठ 5

8. तथैव, पृष्ठ 6
9. अमर उजाला आगरा, 23 अप्रैल, 2000
10. अमर उजाला आगरा, 24 जून, 2000
11. राइजिंग नेपाल काठमाण्डू, 5 सितम्बर, 1981
12. मेम्बर स्टेट्स, यूनाइटेड नेशन्स, यू०एन०ओरि०रिट्राइवेड 27/04/2016
13. संयुक्त राष्ट्र संघ की सूचना 14 नवम्बर, 2016
14. फाइनेंनसियल एक्सप्रेस डॉट कॉम 21 अप्रैल, 2016
15. पायोनियर, 10 अप्रैल, 2017
16. संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्णय तथा विभिन्न समाचार पत्रों एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा प्रस्तुत 12 दिसम्बर, 2014
17. मिड डे डॉट कॅम, 21 अप्रैल, 2016
18. टाइम्स ऑफ इण्डिया 21 अप्रैल, 2016
19. इकॉनोमिक टाइम्स 24 मार्च, 2017
20. तथैव 21 मई, 2017
21. तथैव, 21 अप्रैल, 2016
22. एनडीटीवी डॉट कॉम 14 जनवरी, 2016

वैदिक शिक्षा में गुरू-शिष्य परम्परा

डॉ० पूर्णनाथ कुमार

नेट (यू०जी०सी०), एम०एम०, पी-एच०डी०, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

वैदिककालीन शैक्षिक व्यवस्था में गुरू-शिष्य परम्परा का अप्रतिम महत्व रहा है जो आज भी किसी व्यवस्था के लिए आदर्श स्थिति है। आज जो महत्व शिक्षकों, शिक्षण-संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों आदि को प्राप्त है, वैदिक-काल में उपयुक्त सभी शैक्षणिक संस्थाओं एवं शिक्षकों का सम्मिलित महत्व अकेले 'आचार्य' को ही प्राप्त था, क्योंकि तद्युगीन व्यवस्था में कोई स्थायी शैक्षणिक-संस्था स्थापित नहीं थी। बाल्यकाल से ही छात्रों का उतरदायित्व अपने ऊपर लेकर आचार्य उन्हें योग्य एवं समाजोपयोगी व्यक्तित्व प्रदान करता था। आचार्य शिष्य को अंधकार से निकालकर ज्ञानालोक की ओर सतत् अग्रसारित करते रहते थे। एक परवर्त्ती मनीषी का कथन है कि 'ज्ञानरूपी दीपक एक प्रकार के आवरण से आच्छन्न रहता है एवं आचार्य जब इस आवरण को हटा देता है तभी ज्ञान की किरणें निकलती है।[1] अत: आचार्य के प्रति कृतज्ञ होना एवं उनका अधिकाधिक सम्मान करना शिष्य का ही नहीं, अपितु संपूर्ण समाज का नैतिक उतरदायित्व है। आचार्य माता-पिता से भी अधिक सम्मानीय है, क्योंकि माता-पिता से केवल नश्वर-शरीर ही प्राप्त होता है, जबकि आचार्य से बौद्धिक उन्नति के रूप में कालजयी ज्ञान। वैदिक काल में आचार्य को शिष्य का मानस-पिता स्वीकार किया गया है।[2] बिना उनकी सहायता एवं दिशा-निर्देश के ज्ञान प्राप्त करना असंभव था। विद्या एवं ज्ञान का मार्ग आचार्य ही प्रशस्त करते हैं इसलिए ये अधिकाधिक सम्मानीय हैं। मनोवैज्ञानिकों का भी मानना है कि यदि आचार्य का उचित दिशा-निर्देशन न मिले तो जातक के अंदर जो प्रतिभा है, उसका समुचित प्रस्फुटन नहीं हो सकता। अत: भावी संतति के उन्नयन के प्रति आचार्य उचित आचरण करते हैं एवं शिष्य उनका अनुसरण करते हैं।

वैदिक समाज में आचार्य की महत्ता का स्पष्ट कारण था कि वेदाध्ययन मौखिक परम्परा से संपादित हो रही थी, जो कमोबेश हाल के समय तक चली आ रही है। मौखिक परंपरा से संचालित वैदिक शिक्षा-पद्धति में मंत्रों के शुद्ध स्वरोच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता था एवं उच्चारण की शुद्धता सुयोग्य आचार्य के श्रीमुख से प्रत्यक्ष स्तर पर ही सीखी जा सकती थी। तत्कालीन समाज में वेदों को अनुपम एवं अलौकिक सम्मान प्राप्त था एवं इस अमूल्य-निधि की रक्षा एवं इसकी भावी-संतति तक हस्तांतरण सुयोग्य आचार्य के अभाव में सर्वथा असंभव था। उपनिषद् काल में तो आचार्य की महिला जगद्-व्याप्त थी। उपनिषदों का तो विश्वास है कि मुक्ति का मार्ग तो गुरू ही दिखला सकता है।[3] इस काल में दर्शन के क्षेत्र में गुरू की महिमा वृद्धि के साथ ही जनपद के सामान्य आचार्य की महिमा में भी अपेक्षित अभिवृद्धि हुई, क्योंकि शिल्पशिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा आदि में उच्चकोटि की कुशलता केवल दीर्घावधि के अनुभव प्राप्त आचार्य से प्रत्यक्ष स्तर से ही प्राप्त की जा सकती थी।[4]

आचार्य की योग्यता

वैदिक समाज में आचार्य की महत्ता के साथ योग्यता का भी विशेष मानदण्ड स्थापित किया गया था। आपस्तंबधर्मसूत्र में उपनयन हेतु सर्वदा योग्य आचार्य का वरण आवश्यक बतलाया गया है।[5] आचार्य की जीवनशैली शिष्यों के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय थी, अतएव उनमे सद्-आचरणों का होना अवश्यम्भावी था। वास्तव में आचार्य शब्द की उत्पत्ति 'आचार' (आचरण) से ही हुई है। आचार्य शब्द को परिभाषित करते हुए निरूक्तकार कहते हैं कि- "वह आचार को ग्रहण करता है, शास्त्रों के अर्थों का संग्रह करता है अथवा बुद्धि का संग्रह करता है।[6] तद्युगीन विचारकों का मत था कि आचार्य को शांत स्वभाव का होने के साथ ही समदर्शी होना चाहिए। उन्हें शास्त्रों में पटु होना चाहिए। 'जीवनपर्यंत स्वाध्याय करने वाला होना चाहिए।'[7] उनके लिए प्रकांड पांडित्य का होना ही यथेष्ट नहीं, अपितु उन्हें वाक्चतुर, वक्ता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, तार्किक, रोचक कथाकार एवं कठिन-से-कठिन विषों का तत्काल

व्याख्या कर देने में प्रवीण होना चाहिए।[8] कालिदास के मतानुसार, "आचार्य को विद्वान ही नहीं अपितु पटु अध्यापक भी होना चाहिए। उनमें अत्युच्च योग्यता होना चाहिए ताकि वह अपनी पवित्रता, चारित्रिक बल, पांडित्य एवं सदाचार जीवन शैली के द्वारा छात्रों के जीवन पर, जो उनके सान्निध्य में शिक्षा ग्रहण करते हों, ऐसा प्रभाव डाले, जिनकी छाप अमिट हो।"[9] जैनवाङ्मय भगवती-अराध ना में आचार्य की योग्यता के संदर्भ में कहता है कि "जो पांच प्रकार के आचार का स्वयं निरतिचार पालन करता है एवं दूसरों तथा शिष्यों को पालन करने हेतु उपदेश देता है एवं प्रेरित करता है, वही आचार्य है।"[10] आचार्य भी बिना कुछ छिपाये अपना सारा ज्ञान शिष्य को प्रदान करते थे। कोई भी आचार्य यह सोच कर कि भविष्य में शिष्य अपने ज्ञान एवं विद्वत्ता से हतप्रभ कर उसकी वृत्ति पर आघात पहुँचा सकता है, कुछ भी उनसे नहीं छिपाता था। यदि वह अपना ज्ञान शिष्य से छिपाता, तो वह 'आचार्य' पद के अयोग्य समझा जाता था।[11] आचार्य भी सर्वदा नये ज्ञान की खोज में रत रहते थे एवं बीच-बीच में अपने से श्रेष्ठ आचार्य के पास ज्ञान प्राप्त करने में हिचकते नहीं, अपितु अपना सौभाग्य एवं उत्तरदायित्व समझते। गोपथब्राह्मण से ज्ञात होता है कि "मौद्गल्य से पराजित होने पर मैत्रेय ने तत्काल अपनी पाठशाला बन्द कर दी एवं पूर्णज्ञान की प्राप्ति हेतु अपने प्रतिपक्षी आचार्य का शिष्यत्व ग्रहण किया।[12] आरूणि ने कुछ दिन अपना अध्यापन कार्य बन्द कर एक बार अपने पास आए हुए शिक्षार्थियों के साथ एवं दूसरी बार अपने पुत्र के साथ अध्ययन करने के लिए तत्कालीन समय के एक अन्य आचार्य के पास गए थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि विवेच्य काल में आचार्य अपने शिक्षण-प्रणाली में सुधार करे परिष्कृत ज्ञान शिष्य को प्रदान करने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते थे एवं इस परिप्रेक्ष्य में यथासंभव प्रयास करते थे। इस समय यद्यपि आचार्यत्व के लिए कोई नियमित प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी, तथापि अप्रत्यक्ष रूप से श्रेष्ठतम् शिष्यों को भी यदा-कदा शैक्षणिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता था, जिससे कि उनमें अध्यापन प्रवृत्ति का अनायास ही विकास हो जाता था। आपस्तंब का वचन है कि "वृद्धतर ब्रह्मचारी का सम्मान आचार्यवत् होना चाहिए।"[13] सुतसोमजातक से ज्ञात होता है कि तक्षशिला में कुरू-राजकुमार सुतसोम जो वृद्धतर ब्रह्मचारी थे, काशी के युवराज को पढ़ाते थे।[14] आचार्य की अनुपस्थिति में तक्षशिला में 'अग्रशिष्य' ही गुरूकुल का प्रधान होता था।[15] यह प्रणाली आगामी आचार्य के निर्माण में एक अत्यन्त स्वस्थ परंपरा का वाहक थी, जिससे प्रतिभावान शिष्यों को अध्यापन-कला सीखने का सुअवसर प्राप्त होता था।

आचार्य के कर्त्तव्य

वैदिक काल के प्रारंभिक अवस्था में पिता ही आचार्य का उत्तरदायित्व निर्वाह करते थे। देवों, असुरों एवं मानवों की शिक्षा उनके पिता प्रजापति के आचार्यत्व में हुई थी।[16] श्वेतकेतु ने आरंभिक अध्ययन अपने पिता आरूणी के पास ही किया था।[17] भृगु ने अपने पिता वरुण से शिक्षा प्राप्त की थी।[18] किन्तु परवर्त्ती काल में शिक्षा के प्रति आमजनों के अत्यधिक लगाव के कारण छात्रों की जिज्ञासा बढ़ती गई एवं वे अपनी ज्ञान-पिपासा मिटाने की खातिर अन्य आचार्य के पास जाने लगे। कालांतर में यह प्रथा सामान्य हो गई जिससे कि छात्र, परिवार एवं पिता से सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत किसी विशिष्ट आचार्य के पास ही शेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाने लगे। इस बदलते हुए परिवेश में आचार्य के पास ही शेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाने लगे। इस बदलते हुए परिवेश में आचार्य के कर्त्तव्य भी बढ़ते गए। शिष्य के उपनयन संस्कार संपादित करने का उत्तरदायित्व भी आचार्य को ही था। अथर्ववेद में आचार्यकरण प्रक्रिया का वर्णन मिलता है, जहाँ वर्णन है कि "आचार्य उपनयन संस्कार के द्वारा ब्रह्मचारी को अपने विद्यागर्भ के भीतर प्रविष्ट करता है।"[19] एक अन्य सील पर कहा गया है कि "आचार्य विद्या से शिष्य को उत्पन्न करता है।[20] इसी उदात्त मान्यता के परिप्रेक्ष्य में ब्रह्मचारी को 'अन्तेवासी' भी कहा जाता था। जैसे माता के गर्भ में शिशु का पोषण होता है, ठीक उसी प्रकार अन्तेवासी अपने आचार्य के विद्यागर्भ में सभी प्रकार के अध्यात्मिक पोषण प्राप्त करता है। आचार्यगण अपने आश्रम में शिष्य के आगमन पर खुश होते थे।[21] शिष्यगण कपटशून्य हों, प्रामाणिक ज्ञान ग्रहण करनेवाले, इन्द्रिय दमन करने वाले हों एवं मन को वश में करने वाले हों, इसके निमित भी आचार्य यज्ञाहुति प्रदान करते थे।[22] आचार्य नित्यप्रति यह प्रयास करते थे कि उनके पास देश-देशांतर से शिष्यगण अध्ययनार्थ आएँ।[23]

आचार्य की कोटि

अध्यापन क्षमता की दृष्टि से तात्कालीन समाज में भी आचार्यों की विभिन्न श्रेणी का परिज्ञान हमें वैदिक वाङ्मयों में यत्र-तत्र मिलते हैं। बौधायनगृह्यसूत्र से हमें उपाध्याय, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, ऋषिकल्प, भ्रूण, ऋषि एवं देव कोटि के आचार्यों का हमें परिज्ञान होता है।[24] इन आचार्य-श्रेणी की विशेषताएँ इनके नाम एवं योग्यता के अनुरूप होती थी।

शिष्य

किसी भी शैक्षणिक-परम्परा की मौलिक निधि उसमें अध्ययन करनेवाले होते हैं, क्योंकि कालांतर में उन्हीं में सम्यक् नियोजन से समाज एवं सामाजिक मूल्यों का परिवर्धन होता है। वैदिक समाज ने अध्येताओं के महत्ता को सर्वदा उच्च भाव से स्वीकार करते हुए उन्हें 'ब्रह्मचारी' शब्द से संबोधित किया।[25] ब्रह्मचारी का अर्थ है ज्ञान (ब्रह्म) के मार्ग पर चलने वाला अर्थात् ज्ञान-पिपासु। संपूर्ण वैदिक काल में अध्येताओं के लिए सर्वाधिक प्रचलित शब्द ब्रह्मचारी ही था। इसके अतिरिक्त शब्द भी प्रचलित थे, जिनमें से एक शब्द 'अन्तेवासी' था।[26] ब्रह्मचारी को 'आचार्यकुलवासी' भी कहा गया है।[27] उपरोक्त दृष्टांत से सहज ही ज्ञात होता है कि ब्रह्मचारी अर्थात् शिष्य अध्ययनकाल में हमेशा आचार्य के आश्रम में रहते थे अर्थात् वे आचार्य के परिवार के सदस्य थे, जिससे वे आचार्य के संतान सदृश रहकर अध्ययन करते थे।

शिष्यत्व हेतु अर्हताएँ

वैदिक काल में शिष्यत्व के लिए कुछ न्यूनतम अर्हताएँ थीं। सर्वप्रथम शिष्य को निर्भीक रूप से सत्य आचरण एवं सत्य-भाषण करना चाहिए। सत्यकाम-जाबाली ने अपना परिचय आचार्य के पास देते हुए अपनी जन्म-संबंधी माता द्वारा कही गई घटना सुना दी, जिससे कि उसके सत्य भाषण से खुश होकर आचार्य ने उन्हें शिष्यत्व प्रदान कर दिया।[28] शिष्य के लिए आचार्य केप्रति देव-भाव तथा पितृभाव होना चाहिए एवं तद्नुरूप आचरण करना चाहिए। अतिप्राचीन काल में पिता ही आचार्यत्व का निर्वहन करते थे, लेकिन कालांतर में शिष्य अनेक कारणों से ज्ञान के लिए अन्य आचार्य के सान्निध्य में अध्ययन करने लगे, जिससे कि आचार्य के प्रति उनका पिता सदृश व्यवहार अपेक्षित था, क्योंकि शिष्य भी अंतेवासी के रूप में आचार्य के विशेष उत्तरदायित्व थे।[29] निरूक्त भी शिष्य की योग्यताएँ एवं अपात्रता के संदर्भ निर्देश देते हैं। शिष्य को उच्च आचरण से युक्त होना चाहिए। उन्हें अनिंदक, सरलस्वभव, जितेन्द्रिय, मन एवं वचन से माता-पिता एवं गुरू का आदर करने वाला, पवित्र, अप्रमत्त, मेधावी, ब्रह्मचर्य एवं कृतज्ञ आदि गुणों से युक्त होना चाहिए।[30] अन्य ग्रंथों से भी ज्ञात होता है कि शिक्षार्थी को आचार्य के प्रति सर्वदा पितृभाव एवं आचार्यत्व भाव का तन-मन से पालन करना चाहिए।[31] शिक्षार्थी के योग्यता के संदर्भ गोपथब्राह्मण में भी उल्लेख है, जहाँ ब्रह्मचारी से अपेक्षा की गई है कि वे अपने मन के सात वेगों पर नियंत्रण रखे। जात्यभिमान (ब्रह्मवर्चस), यश, निद्रा, क्रोध, आत्मष्लाधा, आत्मसौंदर्य तथा सुंगधि का क्रमशः मृग, गुरू, अजगर, सूकर, जल, कुमारी, वृक्ष एवं वनस्पति के साथ संबंध उभारा गया है। यदि ब्रह्मचारी मृगचर्म से अपने को आच्छादित करता है तो वह ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करता है। यदि वह गुरू के लिए कार्य करता है तो वह उनकी प्रसिद्धि को प्राप्त कर लेता है। यदि वह सोते हुए भी निद्रा से अलग रहता है तो वह अजगर की निद्रा प्राप्त कर लेता है। यदि नम्र होकर किसी क्रोध वश दूसरों को क्षति नहीं करता तो वह सूकर के क्रोध को प्राप्त कर लेता है। यदि वह जल में कुचेष्टा नहीं करता तो वह जल की श्लाघा को प्राप्त कर लेता है। यदि वह नग्न-स्त्री की ओर नहीं देखता है तो वह इसके सौंदर्य को प्राप्त कर लेता है। यदि वह वनस्पतियों एवं वृक्षों को काटकर नहीं सूंघता, तो वह सुगंधि से भर जाता है।[32] तात्पर्य यह है कि शिष्य को यथासंभव हमेशा उच्च नैतिक मर्यादा का पालन करना चाहिए।

शिष्य के कर्त्तव्य

आचार्य से शिक्षा ग्रहण करनेवाले अन्तेवासी के अनेकानेक स्वतःस्फूर्त कर्त्तव्य भी थे। वे आचार्य के विद्यागर्भ से उत्पन्न होते अर्थात् विद्या प्राप्त करने के योग्य होते थे, जिस कारण आचार्य उनके माता-पिता तुल्य थे।[33] तैतिरीयोपनिषद् में शिष्य के लिए आचार्य को देवस्वरूप व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है।[34] शिष्य आचार्य के दैनिक एवं गृहकार्य में सहयोग करते थे।[35] छात्रगण आश्रम के खर्च के निमित्त भिक्षाटन भी करते थे एवं पशुधन की वृद्धिकार्य के प्रति सदैव तत्पर रहते थे। सत्यकाम-जाबाल ने चार सौ कृषगाय की तब तक सेवा की जब तक कि उसकी संख्या एक हजार नहीं हो गई।[36]

शिष्यों की कोटि

अध्ययन के विभिन्न पक्षों के संदर्भ में अध्येताओं की अनेक कोटि का उल्लेख वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। जैसा कि ज्ञात होता है कि वैदिक काल के आरंभिक समय में प्रायः पिता ही अपने संतान के आचार्य हुआ करते थे या कम से कम बच्चे आरंभिक शिक्षा घरेलू स्तर पर अवश्य प्राप्त करते थे। कालांतर में विशेष अध्ययन के संदर्भ में शिष्य आस-पास अथवा दूर-देश के किसी

विशिष्ट आचार्य के पास जाने लगे। क्रमशः अध्ययन के विषय की बढ़त क्षेत्र को देखते हुए वेद अथवा वैदिक विषय के अतिरिक्त कुछ आरंभिक ज्ञान की आवश्यकता समाज में महसूस की जाने लगी, जिस कारण उपनयन पूर्व भी बच्चे अध्ययन आरंभ कर देते थे। प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने वाले, कम आयु वाले अनुपतीत बच्चे 'माणव' कहलाते थे। उनकी एक संज्ञा 'दण्डमाणव' भी थी, क्योंकि सुरक्षा एवं संरक्षा के ध्येय से उनके पास दण्ड होता था। जातकों में माणव को आयु में बाल कहा गया है।

ब्रह्मचारी

मुख्यतया वैदिक शिक्षा प्रणाली आचार्य के साथ सहचर शब्द के रूप में शिष्य के लिए ब्रह्मचारी ही प्रयुक्त होता था। वास्तव में इस काल में शिक्षा के आचार्य एवं ब्रह्मचारी ही दो सर्वप्रमुख स्तंभ थे। ब्रह्मचर्य का आरंभ विभिन्न समय में विभिन्न साजिक परिप्रेक्ष्य में अलग-अलग समय पर होता था। इसके साथ ही ब्रह्मचर्य की अवधि भी विभिन्न सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अलग-अलग समय पर होता था। इसके साथ ही ब्रह्मचर्य की अवधि भी सामाजिक परिवेश में विभिन्न व्यक्तियों के लिए अलग-अलग होती थी। सामान्यतः ब्रह्मचर्य काल की अवधि अध्येता के चौबीस वर्ष के उम्र तक होती थी।[37] इसके उपरांत व्यक्ति समावर्त्तन मूल्य संपादित करके सामान्यतः गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपने पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते थे। लेकिन सम्यक्रूपेण ब्रह्मचर्य का सम्पादन न कर पाने के कारण इससे अधिक काल तक भी पुनः अध्याय करना पड़ता था। अनेकों अध्येता अपने जीवन का अधिकांश समय नियमित अध्ययन में ही लगा देते थे। अति संक्षिप्त समय के लिए भी कोई ब्रह्मचारी थोड़े से ज्ञान के लिए समित्पाणि होकर आचार्य का सन्निध्य ग्रहण करता था। अधिकांशतया ब्रह्मचर्यकाल का संपादन आचार्य के आश्रम में रहकर ही किया जाता थ। अधिकांशतया ब्रह्मचर्यकाल का संपादन आचार्य के आश्रम में रहकर ही किया जाता था, जिस कारण ब्रह्मचारी की एक विशेष संज्ञा 'अन्तेवासी' भी होती थी।[38] ब्रह्मचारी एवं अन्तेवासी सामान्यतः पर्याय शब्द हैं। आचार्य के आश्रम में नियमित वास करते हुए अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारी ही अन्तेवासी कहलाते थे, जिससे सहज ही यह भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य काल का आरंभ सामान्यतः उस अवस्था में होता होगा, जिस उम्र में शिष्य घर से दूर आचार्य के आश्रम में रहने के योग्य हो जाते थे अर्थात् अपना सामान्य दैनिक कृत्य स्वयं ही संपादित करने के योग्य हो जाते होंगे। सामान्यतः वैदिक काल में ब्रह्मचर्य का आरंभ अर्थात् नियमित अध्ययन का आरंभ बालक के 8-10 वर्ष के आयु में होता था। इससे कम उम्र में ब्रह्मचर्य का आरंभ उसी स्थिति में होती होगी जहाँ अध्ययन की सुलभता परिवार में ही होगी, क्योंकि परवर्त्ती काल में 'पितुरन्तेवासी' शब्द का भी प्रयोग मिलता है।39

चरक

अध्येताओं की एक श्रेणी चरक थी। आचार्यकुल में बह्मचर्यकाल समाप्त कर लेने के उपरान्त भी जो अध्येता उच्चतर ज्ञान की खोज में विचरण करते रहते थे, ऐसे शिष्टि, ज्ञानार्थी वर्ग के लिए तत्कालीन समय में चरक शब्द प्रयुक्त होता था। व्यासशिष्य एवं यजुर्वेद के विशिष्ट विद्वान *वैशम्पायन* का एक अन्य नाम चरक था। संभवतः एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर ज्ञान-प्राप्त कर उनका प्रचार-प्रसार करने के कारण उनकी यह विशेष संज्ञा हुई। वैशंपायन के शिष्यों की भी संज्ञा चरक थी, क्योंकि वे भी चरक शैली के अध्येता थे तथा उनमें से कई स्वयं किसी विशेष चरण के प्रवर्त्तक आचार्य थे।[40] भुज्य-लाह्यनि ने याज्ञवल्क्य से कहा कि व मद्रदेश में अपने सहपाठियों के साथ चरकरूप में विचर रहा था।[41] जातकों में तक्षशिला के विद्यार्थियों के लिए 'चारकिंचरंता' कहा गया है, जो अध्ययन समाप्त करके स्वयं देशाचार का परिजान करने हेतु यात्रा करते थे।[42] *ह्वेनसांग* ने भी पाणिनी के विषय में लिखा है कि शब्द सामग्री की खोज में उन्होंने दीर्घयात्रा की एवं विद्वानों से मिलकर पूछताक्ष की थी, यही उनका चरक रूप था।[43] ऐतरेयब्राह्मण में भी विशेष ज्ञानार्थ अध्येता को चरक बनने का निर्देश दिया गया है।[44] बृहदारण्ययकोपनिषद् से ज्ञात होता है कि गार्गी भी चरक रूप में ही याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने के लिए दूर देश से विदेहराज जनक के सभा में उपस्थित हुई थी।[45]

आचार्य-शिष्य संबंध

वैदिक काल में शिक्षा-प्रणाली का मूलाधार ब्रह्मचर्य-प्रणाली था। उस काल में सार्वजनिक शिक्षण की ऐसी प्रणाली संभवतः नहीं थी, जिनमें अध्येताओं की भर्त्ती व्यवस्थापक करते थे। अतः आचार्य एवं शिष्य का संबंध किसी संस्था के माध्यम स नहीं, बल्कि प्रत्यक्षतः उन्हीं दोनों के मध्य था। आचार्य एवं शिष्य परस्पर विद्या-सम्बन्ध से बंधे रहते थे। आचार्य सामान्यतः उन्हीं शिष्यों को विद्या-दान करते थे जो सर्वदा सत्यनिष्ठ, सदाचारी, उत्साही एवं उनके प्रति अनुरक्त रहते थे। इसी प्रकार शिष्य भी विद्याध्ययन के

निमित्त प्रायः उन्हीं आचार्य के पास शरणागत होते थे, जिनकी विद्वत्ता की ख्याति सर्वत्र व्याप्त थी, भले ही इसके लिए उन्हें स्वगृह से दूर-देश ही क्यों न जाना पड़े। संपूर्ण अध्ययनाल में वे आचार्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहते थे एवं उनकी अन्तेवासी हो जाते थे। इस स्थिति में शिष्य आचार्य के पारिवारिक सदस्य के रूप में संतान सदृश जीवन-यापन करते थे। अतः शिष्य का दैनिक-चर्या भी आचार्य के आश्रम के अनुकूल ही होती थी। आचार्य एवं शिष्य सर्वथा एक-दूसरे के कल्याण के प्रति सदैव तत्पर रहते थे, जिसकी पुष्टि अध्ययन के संदर्भ में शांतिपाठ से भी होती थी।[46] आचार्य एवं शिष्य का अंतर्संबंध पिता-पुत्र की भांति चलता रहता था। अनेक ब्राह्मण ग्रंथों में तथा उपनिषद् में भी आचार्य-शिष्य के वंश की जानकारी प्राप्त होती है।[47] आचार्य एवं शिष्य की इस आदर्श-परम्परा की छाप परवर्त्ती का में भी व्याप्त रही। बुद्ध के शब्दों में 'आचार्य एवं शिष्य परस्पर सम्मान, विश्वास एवं एकत्रित जीवन के कारण अभिन्न हो गए थे।[48] यह परम्परा केवल ब्रह्मचर्यकाल तक ही नहीं चलती रहती थी अपितु समावर्त्तन पश्चात् भी विद्यमान रहती थी। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी बार-बार आचार्य के दर्शनार्थ जाना एवं सामर्थ्यानुकूल उपहार भेंट करना शिष्य का कर्त्तव्य था।[49]

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. अनंत सदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ०-37 पदटिप्पणी-यथाघटप्रतिच्छना रत्नराजा महप्रभाः। अकिंचित्करतां प्राप्तास्तद्वद्विधाश्चतुर्द।
2. अथर्ववेद, 11/5/3-आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भन्तः एवं मनुस्मृति, 2/170
3. कठोपनिषद्, 11/9-नैषा मस्तिकर्णापनया प्रोक्तान्येव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
4. निरूक्त, 1/16-यथा जानपदीक विद्यातः पुरुषविशेषो भवति।
5. आपस्तंबधर्मसूत्र, 1/1/1/11-तमसो वा एष तमः प्रविशति यम् अविद्वान।
6. निरूक्त, 1/4-आचार्य आचारं ग्राह्यति। आचिनोत्यर्थान। आचिनोति बुद्धिमिति वा।
7. अनंत सदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ. 2, पादटिप्पणी- यावज्जीवमधीते विप्रः।
8. महाभारत, 5/33/33- प्रवृत्तवाक्चित्रकथः ऊहवान् प्रतिभानवान्। आशु ग्रंथस्य वक्ता च यः स पंडित्य उच्यते ।।
9. मालविकाग्निमित्र, प्रथमांक-शिष्य क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रातिरन्यस्य विशेषरूपा। यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापायितव्य एव ।।
10. भगवतीआराधना, सूत्र 419-आयरं पंचविहं चरिद जो णिरदिचारं उवदिसदि य अयरं एसो आयरणं णाम्
11. आपस्तबधर्मसूत्र, 1/2/8/28-आचार्योऽप्यनाचार्यो भवति श्रुतात्परिहमारणः ।
12. गोपाथब्राह्मण, 1/1/37
13. आपस्तंबधर्मसूत्र, 1/2/7/28, 29- तथा समादिष्टेडप्यध्यापयति। बृद्धतरे च सब्रस्मचारिणि।
14. सुतसोमजातक, सं० 537
15. सुखबिहारीजातक, सं० 10
16. बृहदारण्यकोपनिषद्, 5/2/1
17. वही, 6/1 एवं छांदोग्योपनिषद्, 5/3
18. तैत्तिरीयोपनिषद, 3/1-भृगुर्वै वारुणिः वरूणं पितरमुपसार अधीहि भगवो ब्रह्भेति।
19. अथर्ववेद, 11/5/3-आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
20. आपस्तंबधर्मसूत्र, 1/1/1/16-स हि विद्यास्तं जनयति।
21. तैत्तिरीयपोनिषद्, 1/4-अमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा।
22. वही-विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। प्रमायन्तु ब्रह्मचाणिः स्वाहा। दमायन्तु ब्रह्मचाणिः स्वाहा। शमायन्तु ब्रह्मचारिण, स्वाहा।
23. तैत्तिरीयपोनिषद्, 1/4-यथाऽऽपः प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम्। एवं मां ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा।
24. बौधायनगृह्यसूत्र, 1/7/2/8
25. अथर्ववेद, 11/5
26. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/11-वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति।
27. छांदोग्योपनिषद्, 2/23/1-द्वितीयो ब्रह्मचार्योचार्यकुलवासी।

28. छांदोग्योपनिषद्, 4/4/1-5-सत्यकामो ह जाबालो .... इति तमुपनीया।
29. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/1- भृगुर्वै वारुणिः वरुणं पितरमुपसार अधीहि भगवो ब्रह्भेति। तथा बृहदारण्यकोपनिषद्, 5/2/1
30. निरूक्त, 2/4-विद्या ह वै ब्राह्मणम जगाम... यस्ते न द्रुह्योत्कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्।।
31. मैत्रायणीब्राह्मण उपनिषद्, 6/29-नापुत्राय दातव्यं नाशिष्याददातव्यम। सम्यक् परीक्ष्य दातव्य मासं शण्मासवत्सरम्।।
32. गोपथब्राह्मण, 1/2/1-9
33. अथर्ववेद, 11/5/3
34. तैत्तिरीयोपनिषद्,, 1/11-आचार्यदेवो भव।
35. गोपथब्राह्मण, 1/2/1-8
36. छांदोग्योपनिषद्, 4/4/5- तमुपनीय कृशानमवलानां चतुशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयान्नुवाच नासहस्त्रेवर्ते यति स ह वर्षगणे प्रोवास ता यदा सहस्त्रं संपेदः।
37. छांदोग्योपनिषद्, 6/1/1,2
38. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/11
39. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलिकालीन भारत, पृ. 433 पदाटिप्पणी-होतुः पुत्रः पितुरन्तेवासी। एवं पुत्रं व्रते धर्मम्, पुत्रमनुशास्ति धर्मम्।
40. काशिका, चरक इति वैशम्पयानस्य अख्या, तत्संबंधेन सर्वे तदन्ते वासिनश्चरकाइत्युउपयन्ते।
41. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/3/1-मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम्।
42. सोनकजतक, 5/247
43. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ 267
44. ऐतरेयब्राह्मण, हरिश्चन्द्रोपाख्यान
45. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/6- अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी प्रपच्छ याज्ञवल्क्योति।
46. कठोपनिषद्, ॐ यह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावरै। तेजस्बिनावधीतमस्तु। म विद्विषाव है-
47. शतपथब्राह्मण, 17/7/3/26-28, 10/6/5/9
48. महावग्ग, 1/25
49. आपस्तंबधर्मसूत्र, 2/1/8/22

बंधनों से मुक्त होती स्त्री और उसका संघर्ष

डॉ० संजय कुमार सिंह

पी०एच०-डी० (JNU)

शोध पत्र का सार

विकास और बाजार के बढ़ते प्रभाव ने व्यक्ति को स्व के प्रति जागरूक किया, जिसके फलस्वरूप सामाजिक बंधन ढीले पड़ गए। दूसरी तरफ बाजार की प्रभावी नीतियों ने व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अनेक अवसर प्रदान किए। भूमण्डलीकरण ने उसे अपनी कर्मशीलता पर भरोसा करना सिखा दिया है। जिससे सभी धार्मिक प्रतिमान टूटने लगे हैं। अंधविश्वास के स्थान पर व्यक्ति अपनी कर्मशीलता के बल पर आगे बढ़ रहा है। उसके लिए सिर्फ मानवधर्म ही श्रेष्ठ है। पुरुष की ही भाँति स्त्री भी इस भौतिक उपभोक्तावादी संस्कृति में अपने 'स्व' के प्रति जागरूक हुई है। भूमंडलीकरण व बाजार की प्रभावी नीतियों ने स्त्री को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक किया है। जिसके फलस्वरूप वह भी सभी सामाजिक रूढ़िग्रस्त मान्यताओं के विरूद्ध संघर्ष करती दिखाई पड़ती है। विवाह व परिवार जैसी परंपरागत संस्थाओं को वह अपने जीने के लिए अनिवार्य नहीं मानती। बाजार ने स्त्री के जीने का क्षेत्र व्यापक बना दिया है। परंपरागत पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री को केवल वंश चलाने के लिए प्रजनन कोख में बदल दिया था। उसकी यौनिकता को दबाने और सीमित करने के लिए तरह-तरह के नियम-कानून बनाए गए थे। परन्तु पूँजीवादी आधुनिकता ने स्त्री विषयक सभी परंपरागत धारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है।

मूल शब्दः नारीवाद, भौतिकवाद, उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, पूँजीवाद, प्रगतिशीलता, सामाजिक सशक्तिकरण, अनुदारवाद।

प्रस्तावना

आज स्त्री को बाजार ने घर की चहारदीवारी से मुक्त करा दिया है। अब स्त्री दुनिया में विभिन्न कार्यों, प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए संघर्षरत दिख रही है। भूमंडलीकरण ने औरत को 'पावर वुमैन' बना दिया है। इस सन्दर्भ में राणा नायर का कथन है कि "शायद औरतों के लिए इतना अच्छा और मर्दों के लिए इतना बुरा वक्त कभी नहीं आया होगा। आर्थिक आजादी ने औरतों के ख्यालों को मुक्त उड़ान भरने का मौका दे दिया है। घर के भीतर आजकल अघोषित नियम यह चल रहा है कि तुम्हारा पैसा तो मेरा है ही, मेरा पैसा सिर्फ मेरा है। परिवार को चलाने का दंश चूर-चूर हो जाने के बावजूद पुरुष को अपनी परंपरागत भूमिका पूरी तरह निभानी पड़ रही है। कोई और चारा न होने के कारण वह सिर झुकाकर काम में लगा हुआ है। उसे परंपरागत अपेक्षाओं के बंधनों से छुटकारा पाने की कोई गुंजाइश नजर नहीं आ रही है। वे तमाम सुविधाएं और विशेषाधिकार उससे छिन चुके हैं, जिन्हें वह स्वाभाविक रूप से भोगता था। उसकी औरत न केवल संपूर्ण आजादी के साथ आगे निकलती जा रही है, बल्कि उसने अपने सभी दायित्वों को भी त्याग दिया है।"[1] अब स्त्री के लिए पुरुष 'स्वामी' न होकर एक साथी/मित्र के रूप में स्थापित हो चुका है। लेकिन यही स्थिति वास्तविक जीवन में न बन पाने पर संबंधों में टकराहट पैदा होती है। यह टकराहट ही बिखरते संबंधों का सबसे बड़ा कारण है। इस तरह की समस्याओं का चित्रण मन्नू भंडारी की रचनाओं में भरा पड़ा है। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण उनका उपन्यास 'आपका बंटी' है।

मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' उपन्यास आधुनिकतावादी उपन्यास है। आपका बंटी में मन्नू भंडारी ने उस समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है जिसमें शहरीकरण, औद्योगीकरण और आर्थिक दबावों की वजह से अनेक परिवर्तन हुए हैं। इस समाज में संयुक्त

परिवारों के टूटने-बिखरने की सामाजिक प्रक्रिया पहले से अधिक तेज हुई है। शिक्षित स्त्रियाँ बाहर निकलकर कमाने लगी हैं। ऐसे में जब आकांक्षाएँ पूरी नहीं होतीं तो उनमें टकराहट पैदा होने लगती है। पारिवारिक प्रतिष्ठा और नैतिकता से अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न पैदा हो गया है। 'आपका बंटी' मन्नू भंडारी का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें उन्होंने बंटी के माध्यम से बदलते स्त्री-पुरुष, उनके संबंध और सामाजिक परिस्थितियों के बीच अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने का चित्रण किया है। इसमें शकुन और बंटी दो ऐसे पात्र हैं जो आधुनिक होते इस समाज में अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं। शकुन जहाँ अपनी जायज महत्वाकांक्षा और आत्मनिर्भरता के जरिए पुरुष सत्तात्मक समाज से लड़ रही है, वहीं बंटी तलाकशुदा माँ-बाप के बीच अपनी सार्थकता की तलाश कर रहा है।

'आपका बंटी' हमारी जिन्दगी के विभिन्न स्तरों का उद्घाटन करता है। इसके साथ ही मध्यवर्गीय मानसिकता, स्त्री-पुरुष के आदिम संबंधों, उन पर पड़ते युगीन दबावों और उनसे उपजे सवालों से भी यह उपन्यास कई स्तरों पर जूझता है। यह एक ऐसा यथार्थ है जिसे हम अपने इर्द-गिर्द देखकर भी अनदेखा कर जाते हैं। आज स्त्री-पुरुष के संबंधों में जो संघर्ष देखने को मिलता है वह इस 'आधुनिकता-बोध' की तेज रफ्तार का ही परिणाम है। उनके मस्तिष्क अब पहले की तरह सपाट और सीधी लकीर पर चलने वाले नहीं रह गये हैं। वैचारिक और संवेदना की कई परतें एक में एक होकर विलक्षणता का वृत्त पैदा कर रही हैं। आज स्त्री भी पुरुष से हर कदम पर कंधा मिलाकर चल रही है और यही कारण है कि उसका अहम् भी पुरुष के अहम् से कमतर नहीं आंका जा सकता। वह आज इस मुकाम पर है कि किसी भी प्रकार का समझौता न करके अपना अलग व्यक्तित्व निर्मित कर सकती है। परंतु हमारी मध्यवर्गीय नैतिकताएँ, पुरानी रूढ़ियाँ उसे आज भी किसी का सहारा लेने के लिए बाध्य करती हैं। 'आपका बंटी' की शकुन एक ऐसी पात्र है जो संबंध को बचाने के लिए किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करती और तलाक ले लेती है। उसे संघर्ष करना पड़ता है। इसी का परिणाम होता है कि वह दूसरी शादी करती है। इस सन्दर्भ में डॉ. महेन्द्र भटनागर लिखते हैं कि "स्वातंत्रयोत्तर जीवन-यथार्थ के नये संदर्भों में नारी जीवन में अनेक केन्द्रिय महत्व के प्रश्न उभरे हैं। नारी शिक्षा, तलाक बिल, समाज में नारी को समानता का अधिकार मिलना, उसका आर्थिक स्वावलंबन तथा घर की सीमा से बाहर निकल कर विभिन्न सामाजिक दायित्वों में पुरुषों के साथ भाग लेना आदि नारी-जीवन के नए यथार्थ का धरातल है।"[2]

भारतीय समाज की यह विडंबना रही है कि जहाँ पत्नी मानसिक स्तर पर आधुनिक विचारों से युक्त होती जा रही है, वहीं अधिकांश पति आज भी सामंती विचारों को ढो रहे हैं। शकुन आधुनिक विचारों से परिपूर्ण है इसलिए वह अपने अस्तित्व को समाप्त कर समझौता नहीं कर पाती। वह अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए इस पुरुष सत्तात्मक समाज के खिलाफ आवाज बुलंद कर लेती है। लेखिका ने स्त्री की इस जिजीविषा को और अधिक बढ़ाते हुए चाचाजी से कहलवाया है कि-"परिस्थितियों ने चाहे तुम्हें जितना तोड़ा हो, समय को तुमने अपने ऊपर हाथ नहीं रखने दिया। रियली यू सींग टू बी एज फ्रू।[3] मन्नू भंडारी स्त्री के पुनर्विवाह को सही मानती हुई समाज के सामने सच्चाई रखते हुए पूछती हैं कि "अगर अजय अपनी जिन्दगी की नई शुरूआत कर सकता है, तो तुम क्यों नहीं कर सकती? क्यों अपने को इतना बाँध-बाँधकर रखती हो?"[4]

मन्नू भंडारी ने शकुन के माध्यम से समकालीन नारी के उस संघर्ष को आवाज दी है, जिसमें उसका स्वतंत्र अस्तित्व किसी भी तरह के बंधन को स्वीकार नहीं करना चाहता। "वह अपने को समाप्त नहीं कर सकी थी, इसलिए उसे अजय को खोना पड़ा।"[5] आज स्त्री किसी भी संबंध में बंधना तभी तक स्वीकार कर सकती है जब तक कि वह उसको बोझ न लगने लगे, फिर चाहे वह बंधन पत्नी के रूप में हो या माँ के रूप में। जैसे 'आपका बंटी' की नायिका, "शकुन चक्की पीस-पीसकर बेटे का जीवन बनाने में अपने आपको स्वाहा कर देने वाली माँ नहीं थी, बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व, आकांक्षाएँ और आजीविका के साधनों से तृप्त माँ थी।"[6]

सामाजिक कुरीतियों/विडंबनाओं से जूझती दिखाई देती है। समाज के कटु आघातों का सामना करते हुए वह खोखले नियमों के विरुद्ध उठ खड़ी होती है। वह कहती है कि "करने दो। इन लोगों के पास ये बातें न हों तो ये जिएँ कैसे बेचारे?"[7] उसे अब न किसी संबंध से उम्मीद है न समाज से। अगर वह भरोसा करती है तो अपने व्यक्तित्व पर। इसीलिए तलाक की बात पर शकुन कहती है कि-"उम्मीद का तो प्रश्न ही नहीं उठता वकील चाचा। उम्मीद तो न पहले थी, न अब है।"[8] परन्तु तलाक को लेकर जो मध्यवर्गीय दृष्टिकोण एक स्त्री में होता है, उससे वह आज भी पूरी तरह से बाहर नहीं निकल पाई। उस दृष्टिकोण से वह आज भी बाहर निकलने के लिए लगातार संघर्ष कर रही है। तलाक को पूरी तरह स्वीकारते हुए शकुन सोचती है कि-"एक अध्याय था,

जिसे समाप्त होना था और वह हो गया। दस वर्ष का यह विवाहित जीवन-एक अंधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न था। आज जैसे एकाएक वह उसके अंतिम छोर पर आ गई है। पर आ पहुँचने का संतोष भी नहीं है, ढकेल दिए जाने की विवश कचोट भर है। पर कैसा है यह छोर? न प्रकाश, न वह खुलापन, न मुक्ति का अहसास।"[9]

शकुन एक ऐसी आधुनिक नारी के रूप में उभर कर आई है जिसके सारे फैसले अपने हैं। उन पर वह किसी का अधिकार नहीं समझती, अपने बेटे का भी नहीं। मन्नू भंडारी ने शकुन के माध्यम से एक नई औरत की परिभाषा गढ़ी है जो परंपरागत स्त्री की भूमिका से बिल्कुल अलग है। जहाँ परंपरागत औरतें पति और बच्चे के पीछे ही अपनी सारी जिन्दगी स्वाहा कर देती थीं, वहाँ शकुन इन सबसे अलग जाकर अपने अस्तित्व के बारे में सोचती है। यह आधुनिक स्त्री की एक नई तस्वीर है। लेखिका ने शकुन के बारे में कहा कि "तुम केवल बंटी की माँ ही नहीं हो, इसलिए केवल बंटी की माँ की तरह ही मत जियो, शकुन की तरह भी जियो।"[10] शकुन खुद भी वही सोचती है कि "क्यों नहीं वह अपने लिए जीती है। अपने को लक्ष्य बनाकर जी पाती?"[11] सामान्य तौर पर यह मानना गलत नहीं होगा कि यह सवाल लेखिका केवल शकुन से नहीं बल्कि सम्पूर्ण स्त्री-जाति के समक्ष प्रस्तुत करती है। वह शकनु में यह प्रेरणा भरती है कि-"उसे मुक्त होना ही है, एक नई जिन्दगी की शुरूआत करनी ही है।"[12] अलग होने के बाद वह मानती है कि बेटे के लिए बराबर जिम्मेदारी दोनों की है। इसीलिए जब बंटी उसके और डॉक्टर के बीच 'एडजेस्ट' नहीं कर पाता है तो वह उसे अजय के पास भेज देती है। वह फैसला करती है कि-"नहीं-नहीं। यह सब अब और नहीं चलेगा, चल नहीं सकता। वे दोनों ही अब अपनी-अपनी जिन्दगी जिएँगे। शकुन शकुन की और बंटी बंटी की।"[13] यहाँ यह पता चलता है कि जब पुरुष अपनी जिम्मेदारी को दरकिनार करके नए जीवन की शुरूआत कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं?

मन्नू भंडारी समाज के समक्ष सवाल उठाती है कि स्त्री ही अपनी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ क्यों दबाए। सिर्फ इसलिए कि वह स्त्री है। उन्होंने समाज के इस दोहरे मानदण्ड के खिलाफ आवाज उठाते हुए लिखा है-"कितनी सहज स्वाभाविक इच्छाएँ थीं उसकी। फिर भी सब गलत, केवल इसलिए कि वे उसकी थीं।"[14] यह पंक्तियाँ केवल शकुन की नहीं, बल्कि हर उस स्त्री के मन की वेदना है, जिसे अब वह और अधिक नहीं सहना चाहती। वह समाज से अपने लिए एक अलग जगह माँगती है, जहाँ उसके अस्तित्व को, उसके निर्णय को सम्मान के रूप में देखा जाए। वह समाज के इन दोहरे मापदंडों से लगातार संघर्ष कर रही है, जहाँ पुरुष के लिए आगे बढ़ने के सभी रास्ते खुले हैं, पर स्त्री के लिए नहीं, चाहे वह कितनी ही योग्य क्यों ना हो। इस संबंध में प्रो. नित्यानन्द तिवारी का शकुन के बारे में एक कथन उल्लेखनीय है कि-"शकुन के व्यक्तित्व की स्वतंत्रता, स्त्री-पुरुष संबंधों की एक ऐसी संस्था की माँग करती है, जो उसकी यातना और समस्या का मानवीय और सन्तोषप्रद उत्तर दे सके।"[15]

'आपका बंटी' उपन्यास में मन्नू भंडारी उस समाज के विरुद्ध आवाज उठाती दिख रही हैं जो समाज किसी के व्यक्तिगत जीवन पर आघात करता है। लेखिका कहती है कि किसी को भी अपनी जिन्दगी जीने का पूरा हक़ है। व्यक्तिगत जीवन में समाज की घुसपैठ पर सवाल खड़े करते हुए शकुन के दूसरे पति डॉक्टर जोशी कहते हैं कि- "आज मैनेजर को आपत्ति हुई तो तुमने नौकरी छोड़ दी। कल शहर को आपत्ति होगी तो तुम शहर छोड़ने को कहोगी और आपत्ति जरूर होगी। छोटी जगह है-ऐसी बातें लोग आसानी से पचा नहीं पाते हैं। पर इस तरह कमजोर होने से कहीं काम चलता है, चल सकता है?"[16] लेखिका प्रश्न करती है कि-"इन लोगों को क्या हक है, तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करने का?"[17] जीवन तुम्हारा है, तुम जैसे चाहो उसे जीने के लिए स्वतंत्र हो। हालांकि शकुन सामाजिक बंधनों से मुक्त चरित्र है। वह अपने को किसी के सामने छोटा नहीं होने देना चाहती। क्योंकि "छोटा बनकर जीना उसके अहं को बर्दाश्त नहीं।"[18] इस तरह यह उपन्यास शकुन के माध्यम से स्त्री की अनेक परेशानियों को सामने लाता है।

मन्नू भंडारी की रचनाओं के पात्र अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करते, अपनी पहचान के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। केवल 'आपका बंटी' ही नहीं बल्कि उनकी कुछ कहानियाँ भी हैं जिसमें इस तरह के पात्रों की रचना लेखिका ने किया है। उनकी एक कहानी 'हार' में स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहने वाले पति-पत्नी के संघर्ष को दिखाया गया है। दीपा और शेखर अपने विचारों और सिद्धांतों के कारण एक-दूसरे के विरोधी हो जाते हैं। दीपा राजनीतिक माहौल में पली-बढ़ी होने के कारण राजनीति का ककहरा जानती है। जब अपने भाषण के दौरान एक राजनीतिज्ञ यह कहते हैं कि- "अब लड़कियों से राजनीति के मामले में बहस कौन करे...। राजनीति की ए.बी.सी.डी. भी तो जानती नहीं।"[19] इस टिप्पणी को दीपा चुनौती के रूप में लेती है और राजनीति को ही अपना जीवन क्षेत्र बनाने का निर्णय लेती है। यहीं से उसकी आकांक्षाएँ टकराने लगती हैं। पहले वह पिता की मर्जी के खिलाफ विरोधी पार्टी के नेता शेखर से शादी कर लेती है, उसके बाद चुनाव में जब उसके पति उसकी बात नहीं मानते तो वह चुनाव प्रचार

पति के विरोधी उम्मीद्वार का करती है। उसे बहुत समझाने बुझाने का प्रयास किया जाता है लेकिन वह नहीं मानती। जब उसे पता चलता है कि विरोधी पार्टी से उसके पति खड़े हो रहे हैं तो वह विचलित नहीं होती। वह अपने पति से कहती है कि "अभी तक तुम्हारी पार्टी की ही विरोधिनी थी, अब तुम्हारा भी विरोध करना पड़ेगा।"[20] फिर वह सफाई देते हुए कहती है कि "कुछ उल्टा-सीधा हो जाय तो जबरदस्ती ही बुरा मान जाओ तो ठीक नहीं।"[21] इस तरह दीपा अपने पति का विरोध करती है।

'दीवार, बच्चे और बरसात' कहानी भी सामाजिक दबाव में टकराती महत्वाकांक्षाओं की ओर संकेत करती है। इस कहानी में एक ऐसी मंडली का अंकन है जो परंपरावादी होने के कारण किसी नए सामाजिक परिवर्तन को एकदम नहीं स्वीकारती। लेखिका ने 'रानी बीबी' के माध्यम से समानता की मनोभूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग एक संघर्षशील नारी को चित्रित किया है। हालांकि इस सन्दर्भ में देखा जाय तो रानी ने यहाँ परंपरागत स्त्री के पतिव्रता धर्म को तोड़कर समानाधिकार की दिशा में कदम उठाया है। रानी बीबी यों तो एक पढ़ी-लिखी युवती है जो एक अनमेल व्यक्ति से ब्याही गई है। पति उसके आधुनिक विचारों और स्त्री-पुरुष समानाधिकार की दिशा में उठने वाले कदमों को बर्दाश्त नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप दोनों में हमेशा कहा सुनी होती रहती है। वास्तव में रानी बीबी है ही इतनी आजाद प्रवृत्ति की कि परंपरागत संस्कारों के दायरे में पली हर कोई स्त्री उस पर शक करने लगे। किन्तु रानीबीबी के प्रगतिशील विचार स्त्री स्वातंत्र्य की बात करते हैं। उसके आसपास के लोग उसे समझने के बजाय उसे बुरा-भला कहते हैं। बात यहीं नहीं रुकती बल्कि आस-पड़ोस की परंपरागत पतिव्रता धर्मा और पत्नीत्व के रंग में सराबोर दूसरी औरतें रानी बीबी की न सिर्फ कटु आलोचना करती हैं, बल्कि उससे भी आगे जाकर कहती हैं, कि-"इस पढ़ाई निगोड़ी ने औरतों का धरम-करम तो सब डूबो दिया।"[22] और यह कहकर वे शिक्षित स्त्रियों की खुली भर्त्सना करने लग जाती हैं। इधर रानी बीबी का पति इन सब बातों को देख-सुनकर अपनी जगह अड़ा हुआ है। रानी अपने स्वभाव के अनुसार परंपरागत पत्नीत्व के बोझ तले दबकर नहीं रहना चाहती। उसका समाचार पत्रों में लेख लिखना, पढ़ना, लोगों से मिलना- जुलना सब कुछ चलता है। पति-पत्नी के बीच कहा-सुनी होने पर भी रानी के व्यवहार में परिवर्तन नहीं आता। ऐसे में एक दिन देर रात रानी का घर आना पति के लिए असह्य हो जाता है। वह रानी से कहता है कि-"निकल जा मेरे घर से। जिन यार-दोस्तों में घूमती फिरे है, उन्हीं के घर जाकर बैठ।"[23] पति रानी का बाल पकड़कर दो थप्पड़ रसीद कर देता है। यह बात रानी को बहुत आहत करती है। उसका सजग मन उसी क्षण- "हम दोनों का साथ न निभ सके तो साथ रहने से क्या फायदा?"[24]-कहता हुआ भड़क उठता है। रानी उसी क्षण उससे अलग हो जाती है। वह अपने पति का घर ही नहीं बल्कि वह गाँव ही छोड़ देती है।

यदि समग्रता में देखा जाय तो यह विद्रोह न होकर रानी बीबी के अधिकार सजगता है जो हमें किसी बड़े परिवर्तन से कम नहीं दिखाई देती। ऐसे ही 'जीती बाजी की हार' में एक पात्र मुरला है। आशा, नलिनी और मुरला तीनों एक साथ पढ़ रही थीं। पढ़ाई खत्म करने पर आशा और नलिनी शादी कर लेती हैं पर मुरला नहीं करती। एक बार आशा उससे शादी के बारे में पूछती है तो मुरला कहती है कि- "वह सब तुम लोगों को ही मुबारक हो। शादी करके मैं अपने व्यक्तित्व को नहीं बेच सकती।"[25] मुरला एक स्त्री है पर वह यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है कि "सबकुछ होकर भी नारी है। और नारी को एक साथी चाहिए, एक सहारा चाहिए, परिवार चाहिए और चाहिए बच्चे। उच्च से उच्च शिक्षा भी उसकी इस भावना को नहीं कुचल सकती।"[26] बल्कि मुरला आत्मविश्वास के साथ कहती है कि- "सहारा उसे चाहिए, जो अपने को अबला समझे। मैं सबला हूँ, मुझे किसी का सहारा नहीं चाहिए।"[27] इसके अतिरिक्त 'नई नौकरी', 'यही सच है', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'इन्कमटैक्स' आदि ऐसी कहानियाँ हैं जिसमें स्त्री अपने समय और समाज से, पुरुष से, अपनी आकांक्षाओं के लिए लड़ती हैं, जिसमें सामंजस्य और सहयोग के अभाव के कारण संबंधों में कटुता आ जाती है। परिवार टूट जाते हैं।

निष्कर्ष

बाजारवाद और भूमंडलीकरण ने एक तरफ जहां समाज को विकसित किया है तो वहीं दूसरी तरफ व्यक्ति को जागरूक बनाया। इस भौतिक सभ्यता ने मानव समाज को, विशेष कर स्त्री को अज्ञान के अनुशासन से मुक्त कर व्यक्तिगत मूल्य के प्रति जागरुक किया और पारिवारिक तथा सामाजिक संबधों के प्रति नई दृष्टि दी। साहित्यकारों ने भी समाज पर बाजारवाद के बढ़ते प्रभावों को अपने कथा साहित्य का आधार बनाया है। इसमें बाजारवाद का सबसे अधिक प्रभाव परंपरागत रूढ़िग्रस्त मान्यताओं को नकारने में

देखा गया है। मन्नू भंडारी की रचनाओं में स्त्री पात्र अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। उनके यहाँ स्त्री के लिए पुरुष 'स्वामी' न होकर एक साथी/मित्र के रूप में स्थापित हो चुका है। यही स्थिति संबंधों में टकराहट पैदा होती है। यह टकराहट ही बिखरते संबंधों का सबसे बड़ा कारण है। इस तरह की समस्याओं का चित्रण मन्नू भंडारी की रचनाओं में भरा पड़ा है।

सन्दर्भ सूची

1. द बैकलेश, द संडे ट्रिब्यून, 12 नवंबर, 2000
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 21
3. आपका बंटी, पृ. 44
4. वही, पृ. 44
5. वही, पृ. 115
6. आपका बंटी, जन्मपत्री, बंटी की, पृ. 9
7. आपका बंटी, पृ. 21
8. वही, पृ. 31
9. आपका बंटी, पृ. 38
10. वही, पृ. 43
11. वही, पृ. 47
12. वही, पृ. 47
13. वही, पृ. 108
14. वही, पृ. 176
15. सजनशीलता का संकट, पृ. 58
16. आपका बंटी, पृ. 111
17. वही
18. वही, पृष्ठ 110
19. तीन निगाहों की एक तस्वीर, हार, पृष्ठ 85
20. वही, पृष्ठ 93
21. वही
22. मैं हार गई (दिवार, बच्चे और बरसात), पृष्ठ 85
23. वही, पृष्ठ 102
24. वही, पृष्ठ 102
25. वही, पृष्ठ 102
26. वही, पृष्ठ 102
27. वही, पृष्ठ 41

ग्रामीण से नगरीय प्रवास का नियन्त्रण तथा ग्रामीण सेवा केन्द्रः पटना जिला के एक गाँव का एक सूक्ष्मस्तरीय अध्ययन

डॉ० विजय मिस्त्री

एम०ए०, पी-एच०डी० (भूगोल), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शोध आलेख का सार तत्त्व

'ग्रामीण सेवा केन्द्र' की अवधारणा 'केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त' से लिया गया है। यह एक 'विकास केन्द्र' होता है, जो अपनी जनसंख्या के साथ-साथ आस-पास के लागों को भी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध कराती है। संबंधित क्षेत्रों के सतत् एवं संतुलित सामाजिक-आर्थिक विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस प्रकार ग्रामीण से शहरी प्रवास को नियंत्रित करने का यह एक महत्वपूर्ण युक्ति है, क्योंकि ग्रामीण से शहरी प्रवास मुख्यतः बेरोजगारी, गरीबी, अपर्याप्त शैक्षणिक एवं चिकित्सा व्यवस्था तथा अलाभकारी कृषि कार्य आदि से प्रेरित होती है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है, ग्रामीण से शहरी प्रवास को नियंत्रित करने में ग्रामीण सेवा केन्द्रों की भूमिका का सुक्ष्मस्तरीय अध्ययन करना। यह अध्ययन कार्य प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों पर आधारित है- प्राथमिक आँकड़ों का संग्रह, स्वावलोकन एवं ग्रामीणों का साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है, जबकि द्वितीयक आँकड़ों का संग्रह जनगणना कार्यालय, शोध-पत्रिकाएँ, इन्टरनेट, अप्रकाशित शोध-प्रबंध, समाचार पत्रों एवं अन्य माध्यमों से किया गया है। अध्ययन कार्य के लिए चयनित सुक्ष्मस्तरीय अध्ययन क्षेत्र पटना जिला का "बहरामपुर गाँव" है, जो धनरूआ प्रखण्ड में कररूआ नदी के मैदानी भाग में स्थित है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार बहरामपुर गाँव की कुल जनसंख्या 2115 थी, जिसमें से 807 कार्यकारी जनसंख्या थी, जिसमें से 132 लोग (16.35%) गैर-कृषि कार्यों में संलग्न थे, जिसमें से लगभग 55 व्यक्ति (41%) प्रवासित थे। वर्ष 2019 में कुल जनसंख्या 2405 है, जिसमें से 215 व्यक्ति (23.24%) गैर-कृषि कार्य में संलग्न है, जिसमें से 77 व्यक्ति (36%) प्रवासित है, अर्थात् अध्ययन क्षेत्र के आस-पास ग्रामीण सेवा केन्द्रों का विकास होने से ग्रामीण से शहरी प्रवास की दर में आशाजनक कमी आयी है, क्योंकि ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विकास होने से लोगों को घर के पास में हीं रोजगार के अवसर प्राप्त हुए हैं एवं विभिन्न प्रकार की शहरी सुविधाएँ भी लोगों को अब पास में ही उपलब्ध हो गया है। इस प्रकार ग्रामीण से शहरी प्रवास नियंत्रित होने के साथ-साथ लोगों में सम्पन्नता भी आयी है।

मूल शब्दः नगरीकरण, संरचनात्मक विकास, सामाजिक सशक्तिकरण, विकास, पोषणकारी विकास, प्रवर्जन, पर्यावरण।

प्रस्तावना

प्रवास का सामान्य अर्थ है, व्यक्तियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसना। इसके कई प्रकार हो सकते हैं, लेकिन किसी दूसरे स्थान पर आकर बसने की प्रकृति, खासकर समय के आधार पर प्रवास को स्थायी एवं अस्थायी प्रवास में वर्गीकृत किया जा सकता है। स्थायी प्रवास में आये हुए व्यक्ति बसावट के बाद वापस अपने मूल स्थान पर नहीं जाते हैं, जबकि अस्थायी प्रवास के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो कुछ समय बाद अपने मूल निवास स्थान को लौट जाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में "ग्रामीण से नगरीय

प्रवास" का अध्ययन किया गया है, जिसके अंतर्गत स्थायी एवं अस्थायी दोनों प्रकार के प्रवास की प्रवृत्तियों को देखा गया है। "ग्रामीण से नगरीय प्रवास" का मुख्य कारण होता है, रोजगार की तालाश एवं नौकरी-पेशा वालों का स्थानांतरण। ऐसी स्थिति में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का विकास होने से लोगों का अब गाँव के आस-पास में सामान्य स्तर के विभिन्न शहरी सुविधाएँ एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध हो रहें है, जिसके कारण अब ग्रामीण लोग गाँव में ही रहकर जीविकोपार्जन करने की भरसक कोशिश करते हैं।

शोध आलेख का अध्ययन क्षेत्र

चयनित सुक्ष्मस्तरीय अध्ययन क्षेत्र "बहरामपुर गाँव" बिहार के पटना जिला के धनरूआ प्रखण्ड में कररूआ नदी के पूरब में अवस्थित है, जिसका आक्षासीय विस्तार $25^0$18'46"N से $25^0$19'20"N आक्षांस एवं देशान्तरीय विस्तार $85^0$8'0"E से $85^0$9'13"E देशान्तर तथा समुद्रतल से औसत ऊँचाई लगभग 58 मीटर है। इसका कुल क्षेत्रफल 177 हेक्टेयर (1.77 Square KM.) है। 2011 की जनगणना के अनुसार बहरामपुर गाँव की कुल जनसंख्या 2115 है एवं यहाँ की जनसंख्या घनत्व 1195 व्यक्ति/ km^2 है। यह बिहार की राजधानी पटना (जीरो माईल) से लगभग 35 किमी. दक्षिण में स्थित है। इसके उत्तर में ओलीपुर गाँव दक्षिण में छोटकीमठ गाँव, पूरब में पिपरवाँ गाँव स्थित है एवं पश्चिम में कररूआ नदी बहती है।

ग्रामीण सेवा केन्द्र

किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों के क्षेत्रीय वितरण में सकेन्द्रण की प्रवृति पायी जाती है, जिसके अन्तक्रियात्मक कारणों से मानव अधिवासों का विकास भी प्रेरित होता है। फलस्वरूप कुछ अधिवासों की अवस्थिति केन्द्रीय हो जाती है। सामान्यत: इस प्रकार के अधिवासों का वितरण कुछ निश्चित दूरी अंतराल पर मिलता है, जो मानव के विभिन्न प्रकार के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिवास, "विकास केन्द्र" का कार्य करता है, जिसे ग्रामीण सेवा केन्द्र कहा जाता है।

शोध आलेख का अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयनित बहरामपुर गाँव एक ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है, जिसके आस-पास छोटकीमठ, धनरूआ, पभेरी, साइ, मोरीयावा, पंडितगंज, ओकरी बडीहा आदि ग्रामीण सेवा केन्द्र अवस्थित है, जो अपने लोगों के साथ-साथ आस-पास के क्षेत्रों को भी विभन्न प्रकार की सेवाएँ एवं रोजगार का अवसर प्रदान कर रहा है, जिसके कारण अब लोगों को किसी विशेष परिस्थिति में ही पटना, गया जैसे नगरीय केन्द्रों में जाना पड़ता है।

प्रवास

मानव प्रवास का सामान्य अर्थ होता है, मनुष्यों को बसने के उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होना। यह जनसंख्या परिवर्तन का एक जटिल एवं महत्वपूर्ण तत्व है, जो विचारों एवं सूचनाओं के प्रसार के लिए एक तंत्र का कार्य करता है तथा यह किसी स्थान के लिए सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा पर्यावरणीय स्थिति का संकेतक का कार्य भी करता है।

प्रवास के प्रकार

A. अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास: इसके अन्तर्गत वैसे मानव प्रवास को रखा जाता है, जिसमें प्रवासी राष्ट्रीय सीमा को पार करते हैं।
B. आन्तरिक/राष्ट्रीय प्रवास: जब कोई व्यक्ति राष्ट्रीय सीमा के अंदर एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवासित होता है तो ऐसे मानव प्रवास को आन्तरिक प्रवास के अन्तर्गत रखा जाता है।

आन्तरिक प्रवास को निम्नांकित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(i) ग्रामीण से नगरीय प्रवास
(ii) नगरीय से ग्रामीण प्रवास
(iii) ग्रामीण से ग्रामीण प्रवास

ग्रामीण से नगरीय प्रवास

"ग्रामीण से नगरीय प्रवास" आन्तरिक प्रवास का ही एक रूप है, जिसमें मानव राष्ट्रीय सीमा के अंदर ही किसी ग्रामीण अधिवास से प्रवासित होकर नगरीय केन्द्रों में बसते हैं। इस प्रकार का अधिवासीय परिवर्तन मुख्य रूप से मजदूरों का प्रवास से संबंधित होता

है जो प्राथमिक आर्थिक क्रियाकलाप से द्वितीय या तृतीयक आर्थिक क्रियाकलाप की ओर उन्मुख होते हैं। इसके अतिरिक्त रोजगार की तलाश में या स्वास्थ्य सेवाएँ, शैक्षणिक सुविधाएँ एवं अन्य सुविधाओं की प्राप्ति के लिए भी लोग ग्रामीण क्षेत्रों से उठकर नगरीय केन्द्रों में बसते हैं।

भारत में वर्ष 1951 में केवल 17.29 प्रतिशत जनसंख्या ही नगरीय क्षेत्रों में निवास करते थे जो वर्ष 2025 तक अनुमानत: लगभग 42.5 प्रतिशत तक हो जाएगा, जिसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश प्रवासी जीवन निर्वाह के लिए गाँव छोड़ने को मजबूर हैं तो कुछ लोग बेहतर रोजगार की तलाश में या शैक्षिक एवं स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुविधाओं की प्राप्ति के लिए भी नगरीय केन्द्रों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 31.16 प्रतिशत एवं बिहार कुल जनसंख्या का लगभग 11.30 प्रतिशत लोग नगरों में निवास करते हैं।

ग्रामीण से नगरीय प्रवास के कारण

ग्रामीण से नगरीय प्रवास के कई कारण है, जिसमें से कुछ निम्नांकित है:-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की कमी।
2. मजदूरों को ग्रामीण क्षेत्रों में कम मजदूरी मिलना।
3. आवासीय संतुष्टि की कमी।
4. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा या उच्च शिक्षा की चाहत।
5. दोस्त एवं परिवार का प्रभाव।
6. आय में वृद्धि के लिए।
7. सरकारी नौकरी वालों को शहरों में स्थानांतरण।
8. प्राकृति संसाधनों पर जनसंख्या दबाव।
9. सामाजिक झगड़े इत्यादि

Table : PERCENTAGE OF MIGRANTS INVOLVED IN DIFFERENT OCCUPATIONS : BAHRAMPUR VILLAGE

Occupation	**No. of Migrants**		**No. of Migrants in %**	
	2011	**2019**	**2011**	**2019**
Unskilled labour	26	31	22.61	21.98
Private Service	15	16	13.91	11.34
Govt. Service	8	15	13.04	10.64
Business	6	10	5.21	7.09
Education purpose	15	21	13.04	14.89
For Residential Satisfaction	45	48	39.13	34.04
Total	115	141	100	100

Source : Data collected by Author in 2019

ग्रामीण से नगरीय प्रवास को नियंत्रित करने में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का योगदान

ग्रामीण सेवा केन्द्रों का विकास होने से गाँव में या गाँव के आस-पास में ही विभिन्न प्रकार की नगरीय सुविधाएँ उपलब्ध होने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की व्यवसायों, जैसे-किराना दुकान, होटल, सैलून, टी-स्टॉल, फास्ट-फूड, सिनेटरी दुकान, स्टेशनरी

दुकान, कीटनाशक एवं बीज भंडार, हार्डवेयर, मशीनरी कार्य, फर्नीचर, परिवहन कार्य, फल एवं सब्जी दुकान, मेडिकल हॉल, स्वास्थ्य केन्द्र, शैक्षणिक कार्य आदि में रोजगार के अवसर प्राप्त होने के कारण पूर्व के वर्षों की तुलना में वर्तमान में ग्रामीण से नगरीय प्रवास की दर में कमी आयी है, जिसे निम्नांकित शीर्षकों के माध्यम से विस्तृत रूप में समझा जा सकता है:

(1) नगरीय सुविधाओं की उपलब्धता: ग्रामीण सेवा केन्द्रों का विकास होने से ग्रामीण लोगों को अपने गाँव में ही विभिन्न प्रकार की नगरीय सुविधाएँ, जैसे-स्वच्छ पेय नल-जल, सतत् निजली आपूर्ति, परिवहन सुविधा, बाजार, शैक्षणिक केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र आदि उपलब्ध होने के कारण लोग आवासीय सुविधाओं से संतुष्ट हैं और अब लोग केवल आवासीय संतुष्टि के लिए गाँव नहीं छोड़ना चाहते हैं तथा वर्तमान में PURA एवं बिहार सरकार की महत्वकांक्षी "सात निश्चय योजना" का भी ग्रामीण से नगरीय प्रवास नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा रही है। क्योंकि उपर्युक्त ज्ंइसम से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2011 की तुलना में वर्ष 2019 में कुल ग्रामीण नगरीय प्रवास में लगभग 23% की वृद्धि होने बावजूद आवासी संतुष्टि के लिए हुए ग्रामीण नगरीय प्रवास में केवल लगभग 7% की ही वृद्धि हुई है।

(2) बाजार की उपलब्धता एवं स्वरोजगार के अवसर: अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीणों का विभन्न व्यावसायिक कार्यों जैसे-संचार एवं परिवहन कार्य, अध्यापन कार्य, होटल, हार्डवेयर, स्टेशनरी, किराना, इलेक्ट्रीक एवं इलेक्ट्रोनिक्स, कपड़ा आदि कई तरह के दुकानों के संचालन में अपने गाँव के पास ही रोजगार के अवसर प्राप्त हुए हैं तथा जो कृषक पहल अपने कृषि उत्पादों, खासकर फल एवं शब्जियाँ को औने-पौने दाम पर बेचने को मजबूर थे। फलत: वे कृषि कार्य छोड़कर महानगरों में पलायन करने को मजबूर थे, उन्हें अब ग्रामीण सेवा केन्द्रों में अपने कृषि उत्पादों को उचित कीमत मिल रहा है। इस प्रकार प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण सेवा केन्द्र ग्रामीण से नगरीय प्रवास को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है।

(3) संचार एवं परिवहन सुविधाएँ: सरकार की विभिन्न विकास योजनाओं के सहयोग से लगभग प्रत्येक गाँव पक्की सड़कों के माध्यम से मुख्य सड़कों से जुड़ गया है, जिससे ग्रामीण सेवा केन्द्रों का तेजी से विकास हुआ है। ग्रामीण सेवा केन्द्रों से नगरीय केन्द्रों के लिए प्रत्येक दिन सुबह लगभग 7 बजे से शाम 7 बजे तक सुगम, सतत् एवं नियमित परिवहन सुविधाएँ ग्रामीणों के द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है, जिससे परिवहन कार्य में ग्रामीणों को रोजगार भी मिल रहा है तथा ग्रामीणों को अपना कृषि उत्पादों को नगरीय केन्द्रों में रहना पड़ रहा था, वे लोग अब अपने गाँव में ही रहने लगे हैं। इस प्रकार ग्रामीण सेवा केन्द्रों का विकास होने से अनावश्यक ग्रामीण से नगरीय प्रवास में कमी आयी है।

(4) गुणवत्तापूर्ण शिक्षा: वर्तमान में ग्रामीण सेवा केन्द्रों में सरकारी शैक्षणिक संसीान के साथ-साथ प्राईवेट शैक्षणिक संस्थान भी उपलब्ध है जो नर्सरी कक्षा से लेकर प्रतियोगिता परीक्षाओं तक की शैक्षणिक सुविधाएँ मुहैया करा रही है। बड़े-बड़े प्राईवेट शैक्षणिक संस्थान भी ग्रामीण सेवा केन्द्रों तक बच्चों को परिवहन सेवाएँ प्रदान करा रही है तथा दर्जनों ऐसे विद्यार्थी भी है, जो उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए नगरों में रहने के बजाय अपने गाँव से रोजाना आना-जाना करते हैं।

(5) सम्मानजनक दैनिक मजदूरी: ग्रामीण क्षेत्र में भी खासकर गैर-कृषि कार्यों जैसे-फर्नीचर एवं लोहा से संबंधित निर्माण कार्य, भवन निर्माण कार्य, रंगाई-पोताई का कार्य आदि में सम्मानजनक दैनिक मजदूरी दिया जा रहा, वही महिलाएँ को भी कृषि मजदूर के रूप में जीवन-निर्वाह भर मजदूरी प्राप्त हो जाता है। इसके साथ-साथ सरकारी योजनाओं के तहत सस्ती दरों पर अनाज मिल जाता है। हालांकि गाँव में सालों भर नियमित रोजगार नहीं मिलने के कारण भी रोजगार की खोज में नगरों में प्रवास करते हैं, जिसमें लगभग 80% से अधिक लोग, जो 18-50 वर्ष आयु के पुरुष होते हैं।

(6) घर की उपलब्धता: अध्ययन क्षेत्र में पाया गया है कि जिन परिवारों का अपना पक्का घर नहीं था, वे लोग रोजगार की तलाश में सपरिवार नगरों में प्रवास कर जाते थे, लेकिन सरकारी आवास योजनाओं के तहत पक्का घर बन जाने के बाद ऐसे अधि कांश परिवारों का केवल जवान पुरुष सदस्य ही रोजगार की तलाश में नगरीय केन्द्रों में प्रवास करते है एवं शेष सदस्य अपने गाँव में ही खेतिहर मजदूर के रूप में जीवनयापन करते हैं।

(7) कृषि कार्य: अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण से नगरीय प्रवास को नियत्रित करने में कृषि का योगदान कोई खास नहीं है, जिसका मुख्य कारण है अनियमित एवं अपर्याप्त वर्षा तथा नदियों में पानी का अभाव, अर्थात् सिंचाई के लिए केवल निजी नलकूपों पर

निर्भरता। ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विकास होने से किसानों का कृषि कार्य के लिए आवश्यक चीजों को खरीदना एवं कृषि उत्पादों को बाजारों तक पहुँचाना तथा बेचना असान हो गया है, जिसके कारण छोटे किसान भी अब अपने गाँव में ही रहना श्रेयष्कर मानते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में कृषि कार्य कम लाभकारी होने के बावजूद सेवा केन्द्रों का विकास होने से ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की नगरीय सुविधाओं की उपलब्धता एवं रोजगार के अवसर की उपलब्धता के कारण ग्रामीण से नगरीय प्रवास बहुत हद तक नियंत्रण में है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण से शहरी प्रवास को नियंत्रित करने में ग्रामीण सेवा केन्द्रों की भूमिका का सुक्ष्मस्तरीय अध्ययन करना है।

सुझाव अध्ययन की विधि

शोध अध्ययन के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मुख्यत: प्राथमिक आँकड़ों का सहारा लिया गया है तथा कुछ द्वितीयक आँकड़ों का भी उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण स्वावलोकन एवं ग्रामीण लोगों से साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है जबकि द्वितीयक आँकड़ों का संकलन जनगणना कार्यालय, पटना, प्रखण्ड कार्यालय, धनरूआ, शोध पत्रिकाएँ एवं इन्टरनेट आदि के माध्यम से किया गया है।

सुझाव एवं निष्कर्ष

सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकरी करने वालों के अतिरिक्त अधिकांश ग्रामीण (सामान्यत: भूमिहीन) लोग मुख्यत: जीवन निर्वाह के उद्देश्य से एवं कुछ विद्यार्थी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की प्राप्ति के उद्देश्य से नगरीय केन्द्रों में प्रवास करते हैं तथा कुछ लोग अन्य कारणों से कम से कम समय के लिए शहरों में प्रवास करते है, जिसे नियंत्रित करने के लिए अग्रलिखित कदम उठाया जाना चाहिए: (i) PURA के अन्तर्गत यदि विभिन्न प्रकार के शहरी सुविधाओं जैसे-स्वचछ पेय जल, सफाई व्यवस्था, पक्की नाली-गली, सिवेरेज एवं कचरा प्रबंधन, पक्की सड़क, सतत् बिजली आपूर्ति, बाजार, शैक्षणिक केन्द्र संचार एवं परिवहन के साधन आदि का प्रबंध ग्रामीण क्षेत्रों में कर देने से प्रवास नियंत्रित होगा; (ii) ग्रामीण क्षेत्रों में से कम जीवन निर्वाह करने भर सम्मानजनक मजदूरी के साथ रोजगार का अवसर उपलब्ध कराया जाना चाहिए; (iii) ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन-यापन के लिए कृषि प्रमुख आर्थिक क्रियाकलाप होता है, लेकिन वर्तमान में मौनसून की अनिश्चितता एवं बढ़ते उत्पादन लागत के कारण कृषि कार्य फायदेमंद आर्थिक क्रियाकलाप नहीं रह गया है। (iv) ग्रामीण सेवा केन्द्रों को आधुनिक सुविधाओं, सेवाओं एवं तकनीकों के साथ विकास किया जाना चाहिए; इत्यादि। इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण सेवा केन्द्रों का विकास होने के कारण अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण से नगरीय प्रवास वर्तमान में बढ़ने के बावजूद बहुत हद तक नियंत्रण में है, अन्यथा नगरीय प्रवास की संख्या बहुत अधिक हो जाती अर्थात् निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि ग्रामीण से नगरीय प्रवास को नियंत्रित करने में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. तिवारी, के०एन० (2019): ग्रामीण कृषितर क्षेत्र को बढ़ावा, कुरूक्षेत्र, वर्ष-65, अंक-9, जुलाई, 2019
2. Vivek Kumar (2018) : Trends of Rural-Urban migration and it's impact on Urban System in North Bihar, PARISHEELAN, Vol.-XVIII, Dec. 2018
3. Shamshad (2012) : Rural to Urban migration : Remedies to control, Golden Research Thoughts, Vol.-2, Issu-4, Oct., 2012

4. Sharma, Arpita (2015) : PURA : Rural-Urban Linkage in India, Kurukshetra, Vol. 63, No.-4, Feb. 2015
5. Vivek Kumar (2018) : Changing Scenario of Agricultural Development in Bihar: A Micro level study of Bahrampur village of Patna district, International Journal of Research (IJR), Vol.-5, Issue-12, April 2018.
6. Lalan Kumar Mahto (2015) : Rural-Urban linkage : Empowering Rural Community, Kurukshetra, Vol.-63, No.-4, Feb.-2015.
7. Barna Ganguli (2014) : Rural Employment - A challenging task, Kurukshetra, Vol.-62, No.-12, Oct., 2014.
8. Mohapatra, A. Kumar (2014) : Rural-Urban migration in India-A Critical Review, Kurukshetra, Vol.-62, 6 No.-14, Sept., 2014.
9. Sinha, V.N.P., Nazim M., Ahmad, P.F. (2013) Bihar : Land people & Economy, Rajesh Publication, New Delhi Ghosal, G.S. (1961) : Internal migration in India - A Regional Analysis, The India Geographical Journal.
District census hand book, Patna-Part A&B, 2011.

बिहार के दलितों का नक्सलवादी आन्दोलन को समर्थन एवं सक्रिय सहयोग

डॉ० पवन कुमार

+2 शिक्षक, इतिहास, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पावापुरी

नक्सलवादी आन्दोलन जिसका समाजिक आधार दलित हैं का प्रारंभ हुआ बंगाल के दार्जलिग जिले के नक्सलवाड़ी गाँव से लेकिन दृढ़ हो गया मध्य बिहार में। उत्तर बिहार के मुजफ्फरपुर जिला के मुशहरी से प्रारंभ आन्दोलन भोजपुर होते हुए मध्य बिहार में धधक उठा। दलितों ने अपनी सदियों की पीड़ा की आहुति देनी प्रारंभ कर दी। शिकायत से थके दलित पहले तो बेवस हो गये परंतु चारू मजूमदार द्वारा आरंभ नक्सलवाड़ी आन्दोलन उनके लिए समाधान लेकर आया। वे अब शिकायत नहीं अपितु स्वयं समाधान लेकर प्रस्तुत हुए। प्राण देने और प्राण लेने तक की सीमा तक वे चले गए। सरकार इसे कानून व्यवस्था की समस्या मानती रही और दलित इसे अपना नैसर्गिक अधिकार समझते रहे। हालांकि नक्सलवादी आन्दोलन जहाँ पैदा हुआ था अपनी चमक दमक खो चुका है। लेकिन मध्य बिहार में राजकीय दमन और सामंती तत्वों द्वारा किये गये जनसंहार की बार-बार की घटनाओं को धत्ता बताते हुए यह आन्दोलन आज भी जिन्दा है। इसी क्षेत्र पर क्रांति की नजर है। बिहार में इस आन्दोलन को जीवित रखने में बिहार के दलितों का महत्वपूर्ण योगदान है। मुख्यत: दलित ही बिहार में नक्सलवाड़ी आन्दोलन का सामाजिक आधार है।

बिहार में विद्यमान कृषि संरचना और सामाजिक संरचना ही नक्सलवादी आन्दोलन के उदय एवं विकास का मूल कारण है, वही इस आन्दोलन में दलितों की सक्रिय सहमागिता की स्वभाविक व्याख्या करता है अत: कृषि संरचना और सामाजिक संरचना का विश्लेषण यहाँ अप्रसांगिक नहीं होगा।

बिहार में कुल खेती योग्य भूमि का (61 प्रतिशत) राष्ट्रीय औसत (47 प्रतिशत) से ज्यादा है।[1] सिंचित जमीन के मामले में भी बिहार कई अन्य राज्यों से बेहतर है। यह राष्ट्रीय औसत (35.12 प्रतिशत) से अधिक (46.69 प्रतिशत) है।[2] यहाँ भी मध्य बिहार राज्य औसत से बेहतर है इस क्षेत्र में सोन नहर मुख्य सिंचाई व्यवस्था है। उन्नत सिचाई साधनों के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्वि तो हुई लेकिन खेतिहर जमदूरों की मजदूरी अपेक्षाकृत नही बढ़ पाई। कृषि उत्पादों से प्राप्त मुनाफा का लाभ मुख्य रूप से जमीनदार उठाने लगे तथा इसका उपयोग गैर कृषि गतिविधियों यथा परिवहन, व्यापार, सूदखोरी आदि कार्यो में करने लगे। इसका असर सामाजिक संबंधों पर भी पड़ा। अब जमीन्दार स्वयं कृषि कार्यों में रूचि लेने लगे। इससे प्रभावशाली जाति के जमीन्दारों और निचली जाति के गरीब किसानों एवं खेत मजदूरों के बीच जाति वर्ग समीकरण बदल गया।[3] उत्पादन अधिशेष ने विशम समाजिक संबंधों की स्थापना की जिसका सर्वाधिक प्रभाव खेत-मजदूरों पर पड़ा। उल्लेखनीय है कि अनुसूचित जातियाँ ही मुख्यत: कृषि क्षेत्र की श्रम शक्ति का निर्माण करती है पूरे बिहार राज्य में जहाँ आबादी का 43.41 प्रतिशत खेतिहर किसान है वहीं अनुसूचित जातियों में सिर्फ 15.63 प्रतिशत ही खेतिहर किसान है।[4] दूसरी ओर राज्य की आबादी का 37.20 प्रतिशत खेत मजदूर है, जबकि अनुसूचित जातियों में खेत मजदूर पेशा वालों की संख्या 72.25 प्रतिशत है।[5]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि कृषि संरचना का स्वरूप बिहार में ऐसा है कि अनुसूचित जाति ही मुख्यत: यहाँ कृषि श्रम का आधार है तथा सिचाई आदि कारण से कृषि सामाजिक संबंध में जो बदलाव आया उसका नकारात्मक प्रभाव भी इसी वर्ग पर पड़ा। इस तथ्थों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कृषि संबंधों में परिवर्तनजनित असंतोष ने बिहार में नक्सलवादी आन्दोलन को

उत्पन किया और कृषि श्रमिक के रूप में इसी वर्ग ने अर्धात अनुसूचित जाति ने इस आन्दोलन का सामाजिक आधार तैयार किया।

इस परिप्रेक्ष्य में बिहार में विद्यामान सामाजिक संरचना का भी विश्लेषण किया जा सकता है। जातिगत अर्ध में ऊँची जाति बिहार की आबादी का 12.7 प्रतिशत है। पिछड़ी जातियो आबादी का 50 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों आबादी का 13.8 प्रतिशत है।[6] यहाँ सूक्ष्म रूप से जातीय संरचना को नक्सलवाद प्रभावित जिलों में देखना उपयुक्त होगा।

जिला	*दुसाध*	*रविदास*	*मुसहर*[7]
औरंगाबाद	8%	1688%	8%
गया	6%	5%	10%
जहानाबाद	4%	4%	8%
पटना	6%	4%	–

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नक्सलवादी क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों की संख्या अच्छी खासी है और यही वर्ग मुख्य रूप से कृषि श्रमिक का भी कार्य करता है अत: स्पष्ट है कि इसी वर्ग ने नक्सल आन्दोलन का समाजिक आधार तैयार किया है।

इसी प्रसंग में बिहार कें भूमि सुधार प्रक्रिया को देखना उपयुक्त होगा। बिहार जमींदारी उन्मूलन बिल 1947 में पारित हुआ।[8] इसके बाद बिहार भूमि सुधार कानून 1950, भूदान यज्ञ कानून 1959, बिहार चकबंदी कानून 1956, बिहार हदबंदी कानून 1961 आदि पारित हुए।[9] जिसका मूल उद्देश्य कृषि व्यवस्था के भीतर शोषण और अत्याचार खत्म हो ताकि कृषि व्यवस्था में मौजूद तनाव कम हो। इस भूमि सुधार का अनुसूचित जातियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब भी जमीन्दारों के पास पर्याप्त जमीन फर्जी नाम मिलिकयत और ट्रस्ट आदि के अधीन थी।[10] अनुसूचित जातियों की कुल आबादी 14.5% है के केवल 8.15% परिवारों के पास अपनी जमीन थी। रकबा के हिसाब से कुल जमीन का 4.5 प्रतिशत है। अनुसूचित जाति के लगभग 90 प्रतिशत जोतदारों के पास एक हेक्टेयर से भी कम जमीन है इस प्रकार भूमि सुधार की कानूनी प्रक्रिया के बावजूद यह मूर्त रूप नही ले सका। अनुसूचित जाति को इसका लाभ मिलना तो दूर उनपर जमीन्दारो का नियंत्रण रेहन, गैर मजरूआ जमीन और सभी संपत्ति स्रोतों पर नियंत्रण के माध्यम से बरकरार रखा।[11] यह बिहार में नक्सलवाद के उदय में प्रमुख कारक था और इस बात की भी पुष्टि करता है कि इस आन्दोलन का सामाजिक आधार तैयार करने में अनुसूचित जातियों की भूमिका कितनी प्रासंगिक थी। इस संदर्भ में 1971 में पूर्णिया के रूपसपुर चंदवा[12] में पहली जनसंहार के बाद तत्कालीन गृह राज्यमंत्री के बयान को देखा जा सकता है जिसमें उन्होनें कहा कि सुधार की किलता नक्सलवादी हिंसा का मूल कारण है।[13]

1970 के दशक में अन्य राज्यों की भांति बिहार में भी हरित क्रांति प्रारंभ की गयी जिससे आर्धिक विकास तो तीव्र हुआ परंतु इसके अनचाहे विपरीत सामाजिक परिणाम की हुए। इससे आय में तीव्र विशमता पैदा हुई और परिणमस्वरूप वृहद सामाजिक तनाव पैदा हुए।[14] आधुनिक प्रौद्योगिकी के माध्यम से उठाए गए कदमों से न सिर्फ आर्थिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, बल्कि जमीन्दारों काश्तकारों भूस्वामियों और मजदूरों के बीच सामाजिक दुश्मनी की वृद्धि में भी योगदान दिया।[15] यद्यपि दलितों के उत्थान हेतू जो कार्यक्रम बने और क्रियान्वित हुए उसका लाभ दलितों को भी मिला उनमें भी नवीन मध्यम वर्ग अस्तित्व में आया जिनका इससे कोई सरोकार न था। इसी समय गैर काँग्रेसवाद के विकल्प के रूप में समाजवादी विकल्प भी था दलितों का सम्मान भी इस ओर गया जिसके फलस्वरूप काँग्रेस की शक्ति क्षीण होती चली गयी। लेकिन समाजवाद भी संसदीय राजनीति में अप्रत्यक्ष समाधान ही प्रस्तुत कर रहा था। यह वही समय था जब 1967 में नक्सलवाड़ी के रूप में उग्र कृषि क्रांति का बिगुल फूँका गया।[16] बिहार में खासकार मध्य बिहार में ऐसे उग्र कृषि आन्दोलन के लिए आदर्श स्थिति थी ही। फलत: दलितों का आकर्षण शीघ्रता से रेडिकल मॉडल की ओर हुआ तथा बिहार इस आन्दोलन का सक्रिय स्थल बन गया। वस्तुत: बिहार की कृषि और सामाजिक संरचना एवं भूमि सुधार के उपरांत होने वाले परिवर्तन का स्वरूप ही ऐसा था कि दलितों को ही इस आन्दोलन में सक्रियता दिखानी थी और यही हुआ भीं। दलितों के ही समर्थन एवं सक्रिय सहयोग के आधार पर नक्सलवादी आन्दोलन पिछले चार वर्षो से सिंचित होता रहा नक्सलवादी के नाम पर सामूहिक नरसंहार की पहली घटना 22 नवंबर 1971 को पूर्णिया जिले के चंदवा रूपसपुर गाँव में हुई।[17]

जहाँ भूस्वामियों के द्वारा 14 संथालों को जिन्दा जला दिया गया था। तब से बर्बर भूस्वामियों के सशस्त्र गिरोहों और मुख्यत: दलित खेत मजदूरों के सशस्त्र दस्ते के बीच मुठभेड़े ग्रामीण बिहार की एक विशेषता बन गयी।

1977 में केन्द्र में जनता सरकार के गठन के कुछ दिनों बाद 27 मई 1977 को पटना जिले के बेलछी गाँव में कुर्मी भूस्वामियों के गिरोह द्वारा 11 लोगों को रस्सी से बाँधकर जला दिया गया। ये सभी हरिजन थे।[18]

सर्वाधिक संवेदनशील क्षेत्र भोजपुर था यहाँ नक्सलवादियों ने ग्रामीण स्तर पर अपने दस्ते तैयार किये। सन 1970-75 के अपने प्रथम चरण में नक्सली आन्दोलन हरिजनों, मुसहरों और दुसाधों के बीच लोकप्रिय हो चुका था।[19] जो काम त्रिवेणी संध, समाजवाद-लोहियावादी, भाकपा और माकपा के नही कर सकी वह काम बंगाल से आई नक्सली चिन्गारी के बैनर तले यहाँ के हरिजनों ने किया। पूरा भोजपुर लाल झंडे से पट गया। भोजपुर के सहार प्रखंड का एकवारी गाँव इस आन्दोलन का केन्द्र बना।[20] भोजपुर का यह आन्दोलन कुचला नही जा सका अपितु इसकी लपटे और भी तेज हुई।

सन 1980 में बिहार के 7 जिले अति संवेदनशील घोषित किये गये जिसमें– पटना, नालन्दा, गया, नवादा, औरंगाबाद, भोजपुर, रोहतास शामिल थे।[21] सन 1980 से 1984 के बीच 19000 से अधिक लोग इस संधर्ष में मारे गये। हरिजन बस्तिया खाली होती रही फिर बसती रही बेलछी के बाद पकसारा (रोहतास), धरमपुरा (भोजपुर), वैधनाथपुर (नवादा), जगदीशपुर (रोहतास), पारसबिघा (गया) जैसे अनेक कांड हुए।[22]

भ:स्वामियों की गतिविधियों को प्रतिरोधित करने के विपरीत सरकार ने भी निरीह खेत-मजदूरों को ही अपना निशाना बनाया। पटना सहित मध्य बिहार के क्षेत्रों में पुलिस ऑपरेशन तेज हो गया। गाँव में घर-घर तलाशी होने लगी। लेकिन ये तलाशियों केवल हरिजनों-दुसाधों के घर में ही होती थी।[23]

इसी बीच किसान सभा के नेतृत्व में पुलिस दमन के खिलाफ और खेत मजदूरों आदि की मांग को लेकर इलाके के सभी गाँवों में प्रतिरोध संधर्ष तेज होता गया। इसी समय बिहार प्रदेश किसान सभा सहित लगभग 150 छोटे बड़े संगठनों ने मिलकर "इंडियन पीपुल्स फ्रंट'' नामक मोर्चे का गठन दिल्ली में किया।[24] इसी नक्सलवादी संगठन ने बिहार के गाँवों में हरिजनों और गरीब किसानों को सामंती दासता और पुलिस दमन के खिलाफ संधर्ष के लिए प्रेरित किया। हरिजन-मुसहरों की दलित आबादी अब केवल रोटी ही नही अपने सम्मान और आजादी की लड़ाई लड़ रही थी।[25]

भोजपुर की चिन्गारी शीघ्र ही गया, नवादा, औरंगाबाद, जहानाबाद में फैली। जिसे वहाँ के दलितों ने ही आधार प्रदान किया। गया का डोभी टिकारी प्रखंड को दलितों ने ही आधार प्रदान किया। गया के अन्य प्रखंडो यथा इमामगंज बाँके बाजार, गुरूआ, मोहनपुर, गुरारू प्रखंड भी नक्सली गतिविधियों से जुड़ा रहा और सर्वत्र पिछड़ी जातियों के साथ दलितों ने मुख्य भूमिका निभायी।

गया की तरह औरंगाबाद भी नक्सल गतिविधयों का प्रमुख केन्द्र रहा। यहाँ भी 1972 में बंगाल के दो नक्सली कन्हाई चटर्जी एवं सीवन चटर्जी का आगमन हुआ था। जिन्होने अपना कार्यस्थल चाल्हो पहाड़ी को बनाा।[26] यहाँ भी दलितो ने पिछड़ी जाति के साथ अपने को संगठित किया तथा बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ हिंसक संघर्ष किया। यहाँ भी आर्थिक संघर्ष जाति युद्व में बदल गया। फलत: दोनो ओर से नरसंहार की कई घटनाये हुई। औरंगाबाद का दाउदनगर, हसपुरा, गोह, रफीगंज के इलाके काफी संवेदनशील है। कृषि संरचना एवं सामाजिक संरचना ने यहाँ अनिवार्य रूप से हरिजनों को भूमिपतियों के खिलाफ खड़ा कर दिया फलत: दलेचक बधेरा नरसंहार हुआ जिसमें एम0सी0सी0 ने गाँव के राजपूत परिवारों के 42 लोगों को मार डाला।[27]

नक्सलवाद से सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र जहानाबाद रहा है। मगध प्रमंडल के अंतर्गत सर्वाधिक नरसंहार इसी जिले में हुआ।[28] यहाँ अधिकांश हत्याये एवं नरसंहार जातीय वर्चस्व को कायम रखने के लिए की गयी। यथा नोनही-नगवाँ गाँव 16 जून 1988 19 हरिजनों की हत्या, दमुहा-खगड़ी गाँव में 11 अगस्त 1988 को छोटे बच्चों सहित 11 हरिजनों की हत्या। जो ब्रहमर्षि सेना और लोरिक सेना के सहयोग से अंजाम दिया गया।[29]

बिहार का जहानाबाद जिला इस संघर्षो के कारण राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा। यह चर्चा मूलत: जिले में जारी खेत मजदूर संघर्षो और सरकार द्वारा नक्सलवादी गतिविधियों पर काबू पाने की कारवाईयों को लेकर होती रही। कभी अरबल[30], कभी कंसारा[31], कभी

कुर्था[32] तो कभी आजाद विगहा[33] में एक के बाद एक पुलिस और भू-स्वामियों की राइफले खेत-मजदूरों एवं महिलाओं, बच्चों पर आग उगलती रही।

इस संघर्ष को खत्म करने हेतू सरकार द्वारा दर्जनों महत्वकांक्षी अभियान चलाये गये। केन्द्र सरकार द्वारा भी ऑपरेशन दक्षक और ऑपरेशन जहानाबाद जैसे अभियान चले। 34 लेकिन ये समस्त प्रयास किल होते रहे। किसान संघर्ष का विस्तार रोका नहीं जा सका। लेकिन किसान सभा संग्राम समिति के आगमन के साथ ही यह आतंकराज धीरे-धीरे टूटने लगा। गरीबों खेत मजदूरों और हरिजनों ने सम्मान के साथ जीना शुरू किया। इस जद्दोजहद में भीषण टकराव हिंसक संघर्ष और जनान्दोलन के कई उतार चढाव आये।

फलत: जब नक्सलवाद के रूप में रेडिकल मॉडल प्रस्तुत हुआ तो ये दलित वर्ग अनायास इस ओर आकर्षित हुए। इस प्रकार मूलत: दलितों के सक्रिय सहयोग एवं समर्थन से ही नक्सलवादी आन्दोलन सुदृढ़ हुआ और जितनी भी हिंसा हुई। उनमें दलित ही मारे गये। इन्हें ही नक्सल समझा गया। सरकारी प्रयासों का भी शिकार दलित वर्ग ही हुए। यह तथ्य भी नक्सलवाद के सामाजिक आधार के रूप में दलितों के समर्थन एवं सहयोग की पुष्टि करता है।

चुनाव राजनीति में मध्य बिहार में काँग्रेस को ही सर्वाधिक सीटे मिलती रही तथापि पीपुलस फ्रंट इन इलाकों में काँग्रेस के लिए चुनावी-चुनौती हो गया। उल्लेखनीय है कि 1984 के आम चुनाव में फ्रंट से ही भाकपा प्रत्याशी रामाश्रय सिंह संसदीय चुनाव जीतने में सफल हुए थें।[35] आरा में भी मुंट के प्रत्याशी को सफलता मिली।[36] ये चुनावी संकेत भी दलितों में नक्सलवादी विचार धारा की मौजूदगी को प्रमाणित करता है।

इस प्रकार बिहार में एक तरफ जहाँ नक्सलवादी आंदोलन का मुख्य सामाजिक आधार बना नहीं नक्सलवादी आंदोलन ने भी उन्हें प्रभावित किया, संगठित किया ओर राजनीतिक रूप से चेतनशील बनाया।

संदर्भ एवं पाद टिप्पणि

1. रिपोर्ट ऑफ सेंटर फार मोनिटरिंग इंडियन इकोनोमी मुंबई, 1993
2. वहीं
3. प्रकाश लुइस, जनशक्ति, मध्य बिहार में नक्सलवादी आन्दोलन दिल्ली 2008, पृ. 15
4. विजय प्रसाद, अनटचेबुल फ्रीडम: ए सोशल हिस्ट्री आफॅ दलित कम्युनिटी, दिल्ली, 2000, पृ. 26
5. वहीं
6. प्रकाश लुइस, पूर्वोक्त, पृ. 83
7. वहीं
8. वही, पृ. 102-103
9. वहीं
10. विजय प्रसाद, पूर्वोक्त पृ. 103
11. प्रकाश लुइस, पूर्वोक्त पृ. 103
12. इस नरसंहार के आरोपी बिहार विधान सभा के पूर्व अध्यक्ष लक्ष्मीनारायण सुधांशु थें।
13. सर्चलाइट, पटना, 27 दिसंबर 1971
14. चार्ल्स बाउल्स, ए न्यूज फ्रॉम न्यू दिल्ली, एलायड, मुंबई, 1969 पृ. 83
15. फ्रैंशाइन आर0 फ्रैंकेल, इंडियाज ग्रीन रिवोल्यूशन इकोनॉमिक गेन एंड पॉलिटिकल कास्टस, मुंबई, 1971, पृ. 197
16. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत, स्वर्ग पर घावा: बिहार में दलित आन्दोलन, दिल्ली, 2005, पृ. 269
17. वहीं, पृ. 280

18. वहीं
19. उर्मिलेश, बिहार का सच, दिल्ली, 1999, पृ. 67
20. बी0 एन0 सिन्हा, फ्रॉम नक्सलवाडी टू एकवारी, द सर्चलाइट, 11 जून 1975
21. उर्मिलेश, पूर्वोक्त, पृ. 76
22. वहीं, पृ. 77
23. वहीं, पृ. 80
24. वहीं, पृ. 81
25. वहीं
26. अजित कुमार, बिहार में नक्सलवादी आन्दोलन का इतिहास पटना, 2005 पृ. 78
27. उर्मिलेश, पूर्वोक्त पृ. 104
28. अजीत कुमार, पूर्वोक्त पृ. 82
29. उर्मिलेश, पूर्वोक्त– पृ. 107
30. 19.04.86– अरवल नरसंहार
31. 29.07.86– कंसारा नरसंहार
32. 00.00.97- कुर्था नरसंहार
33. उर्मिलेश, पूर्वोक्त पृ. 111
34. वहीं
35. उर्मिलेश, पूर्वोक्त पृ. 110
36. वही

इक्कीसवीं सदी में महिला सशक्तिकरण

सुनीता कुमारी

समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

किसी भी देश या समाज के विकास मापकों को महिलाओं और बच्चों की स्थिति ही स्पष्ट करती हैं, क्योंकि बच्चा जहाँ देश का भविष्य है वहीं स्त्री उसकी जननी, पोषिका, शिक्षिका और दिग्दर्शिका है। लेकिन वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्रसंघ और यूनीसेफ जैसे संगठन जो आज भी अशिक्षा, निर्धनता और गरीबी के कारण कुपोषित जीवन जी रहे हैं, बच्चों के स्वास्थ्य और उनकी शिक्षा के महत्व पर भी अपनी चिन्ता जता चुके हैं।

महिला सशक्तिकरण न केवल भारत में बल्कि विश्व भर में राजनीति के साथ-साथ सामाजिक व प्रशासनिक मुद्दा भी बना हुआ है जिसका सूत्रपात यू.एस.ए. के द्वारा 8 मार्च, 1975 को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस' मनाने की शुरूआत से हुआ है। मनुस्मृति में कहा गया हैं- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता: अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है वहाँ देवता निवास करते हैं। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि महिलाओं की कार्यक्षमता भी पुरुषों से किसी भी तरह कम नहीं होती हैं। महिलायें भी राष्ट्र के निर्माण और उसके विकास व प्रगति में अहम भूमिका का निर्वाह कर सकती है। आत्म विश्वास एवं दृढ़ संकल्प के साथ हर महिला पुरुषों के साथ कंधो से कंधा मिलाकर चल सकती है। प्रश्न तो यह हैं कि कोई समाज में उनकी भागीदारी को नकारात्मक अर्थ में लिया जाता है तो निश्चित रूप से इसका प्रभाव समाज या राष्ट्र पर प्रतिकूल पड़ता है और यदि सकारात्मक अर्थ में लिया जाता है तो निश्चित रूप से कोई भी राष्ट्र विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में पीछे नहीं रह सकता।

महिला सषक्तिकरण प्रत्यय कर्णपटल पर सुनाई देते ही एक बात जेहन में बिजली की तरह कौंध जाती है कि महिला सशक्तिकरण क्या हैं? वास्तव में यदि विचार किया जाय तो महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिला को शक्ति सम्पन्न बनाना है। परन्तु व्यापकता में इसका अर्थ बड़ा गूढ़ है। सशक्तिकरण का अभिप्राय सत्ता प्रतिष्ठानों में स्त्रियों का सशक्तिकरण उन्हें नये क्षितिज दिखाने का प्रयास है जिसमें वे नई क्षमताओं को प्राप्त कर स्वयं को नये तरीके देखेगी, घरेलू शक्ति सम्बन्धों का बेहतर समायोजन करेगी ओर घर तथा पर्यावरण में स्वायता की अनुभूति करेगी। सशक्तिकरण का अर्थ हैं किसी कार्य को करने या रोकने की क्षमता। महिला सशक्तिकरण का अर्थ हैं उनके द्वारा समाज की वर्तमान व्यय और तौर तरीकों को चुनौती के समान अवसर, प्रजनन का अधिकार आदि वैसे महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गई थी।

वैदिक युग में नारी के विषय में कहा जाता था-"नर नारी प्रोददरति मज्जनं भववारिधौ"। अर्थात् संसार रूपी समुद्र में डुबते नर का उद्वार नारी करती है तो फिर नारी कमजोर कैसे? किन्तु पुरुषों के तुलना में महिलाएं सामूहिक सत्ता प्रतिष्ठानों में पीछे हैं। ज्यादातर मामलों में निर्णय पुरुषों द्वारा लिये जाते है, और प्राय: महिलाओं के स्वतंत्र निर्णय की कोई कद्र नहीं की जाती है। उनके साथ प्राय: दोहरे मानदण्ड अपनाये जाते हैं और उनकी शक्ति पर संदेह करके उन्हें ऐसे अवसरों से वंचित किया जाता है जिसमें वे अपनी क्षमता का पूर्ण प्रदर्शन कर सकती थी। आंकड़े पुरुषों की तुलना में उन्हें पीछे बताते हैं और समाज के उचित विकास के लिए आंकड़ों में संतुलन आवश्यक है। इसकी आवश्यकता ने समाज में "महिला सशक्तिकरण" जैसे प्रत्यय को जन्म दिया।

आज वैश्वीकरण के इस युग में परिस्थिति बदल चुकी है। स्त्रियों ने अनेक मौकों पर अपनी शक्ति सम्पन्नता का अहसास कराया है। आज का समाज यह समझ चुका है कि विकास कार्यों में स्त्री की सहभागिता के बिना वांछित लक्ष्य प्राप्त करना अत्यन्त कठिन

है। अत: आज जरूरत महसूस हुई है स्त्री को शक्ति सम्पन्न बनाने की। अत: आज समाज में "महिला सशक्तिकरण" प्रत्यक्ष का जन्म हो चुका है और इस हेतु अनेक प्रयास किये जा रहे है। आधुनिक समाज में मध्य वर्ग तथा उच्च वर्ग की महिलाएं वकील, अफसर, चिकित्सक, इंजीनियर, पत्रकार व पायलट आदि है। निम्न वर्ग में स्त्रियां, अखबार बेचना, पान-बीड़ी बेचेना, साईकिल के पंचर ठीक करना, जंगल से लकड़ियां काटकर लाना, कृषि कार्य में सहयोग देना आदि कार्य करती है। महिलाएं गृह कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे गृहकार्य, बच्चों का पालन-पोषण, बर्तन घर की सफाई, कपड़े धोना, सिलाई वृद्धजनों की सेवा आदि अनगिनत कार्यों को करती है। जो कि पुरुषों के कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान में तो महिलाएं बाहरी क्षेत्र में भी कार्य करती है। शिक्षा, व्यवसाय प्रशासन आदि संबंधी उत्तरदायित्व निर्वाह के साथ वे सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में भी कार्यरत हैं वह पुलिस अफसर, वायुयान-पायलट, जलपोत संचालक आदि के दायित्वों को सम्भाल रही है। पुलिस अफसर श्रीमती किरन बेदी के साहस की बाते हमारे समाज में प्रचलित कहानियां बन चुकी है।

श्रीमती इंदिरा गांधी, श्रीमती भंडारनायके, श्रीमती गोल्डामायर, श्रीमती थ्रेचर, श्रीमती चंद्रिका कुमारतुंगे आदि नारियां आधुनिक नारी में आये बदलाव को डंके की चोट पर बता रही है। इतना ही नहीं कई नारियां विश्व के सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट पर भी हो आई है। जिनमें बछेन्द्री पाल व संतोष यादव के नाम उल्लेखनीय है। इसके आलावा किरण बेदी, कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, श्रीमती प्रतिभा पाटिल, श्रीमती शीला दीक्षित, श्रीमती बसुन्धरा राजे सिंधिया, श्रीमती सोनिया गांधी से लेकर कर्णम मलेश्वरी, पी0टी0 उषा और सानिया मिर्जा ने पुलिस प्रशासन से लेकर विज्ञान, राजनीति और खेल के क्षेत्र में भारत का नाम रोशन किया है। कला, अभिनय, संगीत, लेखन, मॉडलिंग यहां तक की विश्व सुन्दरी के खिताब जीतने वाली नारियां आज आकाश की ऊँचाईयों को छूती नजर आ रही है। नौकरी करने वाली महिलाएं तो परिवार की आर्थिक मदद करने वाली एक महत्वपूर्ण इकाई है। आज उसके मानसिक दृष्टिकोण में बदलाव आया हैं, हर समस्या को गहराई से सोचना व उस पर निर्णय लेना उसकी आज की तेजी से परिवर्तित होती स्थिति को ही दर्शाता हैं, जिसके कारण आज उसके रहन-सहन में भी एक अनोखा बदलाव आया है। सम्प्रति महिलाओं ने अपनी दिमाग की खिड़की को खोला है। आज वह उससे झांकना नहीं चाहती अपितु उथल-पुथल व अनेक समस्याओं से ग्रसित इस सामाजिक परिवेश को पढ़कर अपने अस्तित्व को तलाशने की चाह में वह आगे बढ़ रही है। आज सामाजिक, राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव एवं पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव व प्रगतिशील विचारधारा ने नारी दासता की बेड़ियों को काटा हैं, वह मुक्ति की ओर अग्रसर हुई है। यहां तक कि एक सफल पुरुष के पीछे भी महिला की प्रेरणा ही उसकी प्रेरणा पुंज रही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 'समानता' के लिए नारी संघर्ष ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। महिलाओं ने राजनीति, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, विज्ञान, प्रबन्धन और खेलों आदि में अपनी छाप छोड़ी है। महिलाओं का सशक्तिकरण एक लगातार चलने वाली अनवरत और गतिषील प्रक्रिया है। इसका मूल उद्देश्य यह है कि हाशिये पर के लोगों को मुख्यधारा में लाया जा सके और सत्ता संरचना में भागीदार बनाया जा सके। भारत में भी लैंगिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए सराहनीय प्रयास किये है।

महिलाओं की स्थिति में सुधार का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि 1951 में जहां इनकी साक्षरता दर 8.66 प्रतिशत थी, वहीं 2001 में बढ़कर यह 54.16 प्रतिशत तक पहुंच गयी। इसी प्रकार 1961-71 में महिलाओं की औसत आयु जहां 40.6 वर्ष थी, वह 1991-2001 में 62 वर्ष हो गई है। यद्यपि 1952 में संसद में महिलाओं की संख्या 4 प्रतिशत थी जो 1999 तक केवल 8.9 प्रतिशत तक पहुंच सकी है। स्थानीय निकायों में महिलाओं की भागीदारी यद्यपि 73वें संविधान संशोधन के कारण संतोषजनक हो गई है। ग्रामीण एवं जिला स्तर पर स्थानीय निकायों में लगभग 10 लाख महिलाएं शीर्ष पर है।

आई.ए.एस., आई.एफ.एस. तथा आई.पी.एस. के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में पहले की तुलना में वृद्धि हुई है। देश में अब थल, वायु और नौसेना में महिलाओं को कमीशन दिया गया है। देश के अनेक स्थलों पर 'महिला थाना' खोले गये हैं, जिसमें महिलाओं पर हो रहे अत्याचार का तुरन्त निराकरण किया जा सके।

इन सबके बावजूद आज नारी को जितना सम्मान मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाया है। इसके मूल में महिलाओं में शिक्षा का प्रसार न होना है। घुटन भरे वातावरण में आज भी अनेक शिक्षित नारियां दीन-हीन दशा में है। 'शारदा एक्ट' के होते हुए भी मध्य खेतीहर जातियों में आज भी बाल-विवाह का काफी प्रचलन है। देश में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन न होने से दहेज प्रथा

से समाज आज भी अभिशप्त है। सरकार राष्ट्र के संविधान की उद्देशिका में वर्णित सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक, न्याय विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिभा और अवसर की समानता प्रदान करने के लिए पूर्ण कटिबद्ध है। संविधान में वर्णित प्रमुख अनुच्छेद-14, 15 (3,4), 16, 23, 24, 39 डी 42, 47, 243 (डी.टी.) महिला कल्याण व सबलीकरण की दिशा में सभी वर्गों और क्षेत्रों की महिलाओं को विकास के आयाम छूने के लिए प्रेरित करते है। समाज में महिलाओं के उत्पीड़न, शोषण तथा उनकी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए दहेज निषेध अधिनियम-1961 कामगार महिलाओं को समाज में आर्थिक समानता के अधिकार के लिए समान पारिश्रमिक अधिनियम-1976, पति की मृत्यु के उपरान्त विवाहिता द्वारा आत्मदाह करना, सती निषेध अधिनियम 1987, विकसित द्वारा आत्मदाह करना, सती निषेध अधिनियम 1987, विकसित तकनीक के दुरूपयोग को रोकने के लिए 'प्रसव पूर्व निदान तकनीकी अधिनियम-1994 लागू किया गया।

महिलाओं की सुरक्षा के लिए 31 जनवरी 1992 में 'राष्ट्रीय महिला आयोग' का गठन किया गया। इसके अलावा सरकार के द्वारा कुछ प्रमुख उपयोगी योजनाएं-कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना-1997, स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना-2000, महिला स्वाधार योजना-2001, राष्ट्रीय पोशाहार मिशन योजना-2001, राष्ट्रीय पोशाहार मिशन योजना-2001 जीवन भारती महिला सुरक्षा योजना-2003 जननी सुरक्षायोजना-2003, मौलाना आजाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना-2003, वंदे मातरम योजना-2004, कस्तूरबा गांधी विद्यालय योजना-2004 लागू की गई। राज्य सरकारों द्वारा भी महिला विकास की कुछ प्रमुख योजनाएं स्वास्थ्य सखी योजना उ0प्र0 सरकार द्वारा, किशोरी बालिका योजना, कामधेनु योजना, अपनी बेटी अपना धन योजना का श्रीगणेश हरियाणा सरकार ने युग पुरुष महात्मा गांधी के 125 वें जन्म दिवस पर अर्थात् 2 अक्टूबर 1994 को किया गया।

महिलाओं की स्थिति सबल करने की समस्या का हल केवल सरकारी प्रयासों या कानूनों से नहीं निकल सकता जब तक कि हम स्वयं सक्रिय और जागरूक न हो। सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा के लिए अनेक कानून बनायें, उन्हें लागू किया और नित नये-नये कानूनों का निर्माण भी कर रही है। दहेज हत्या, बलात्कार, सतीप्रथा और घरेलू हिंसा जैसे विभिन्न प्रकार के कानून महिलाओं की सुरक्षा के लिए पारित किये गये घरेलू हिंसा से महिलाओं के निजात के लिए हाल ही में एक नया कानून 'घरेलू हिंसा' के महिलाओं का संरक्षण अधिनियम-2005' लागू किया गया। कुछ कारणों से इसे लागू करने में विलम्ब हुआ। अतः 26 अक्टूबर 2006 से इसे लागू किया गया। महिलाओं को विवाह पंजीकरण को अनिवार्य बनाये जाने से भी लाभ होगा। अभी तक विवाह पंजीकरण अनिवार्य न होकर वांछनीय है महिलाओं को सशक्त करने के लिए महिला आरक्षण विधेयक पर विचार चल रहा है। यदि वह विधेयक पास हो जायेगा तो महिलाओं को संसद तथा विधानमंडलों में एक तिहाई आरक्षण मिल जायेगा, जब महिलायें अपना कानून स्वयं बना सकेगी और विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में पूर्ण योगदान दे सकेगी।

वैसे तो देखने में प्रतीत होता हैं कि महिलाएं पहले की तरह चाहरदीवारी तक ही समिति रही है व आधुनिक महिलाओं ने पुरुषों को विभिन्न क्षेत्रों में मुक्त चुनौती दी है तथापि क्या महिलाएं अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों, शोषण, बलात्कार के खिलाफ एकजुट आवाज उठा पायेगी, जो आये दिन पुरुषों द्वारा उन पर किये जाते है। अतः महिलाओं को चाहिए कि वे मार्ग में आने वाले अवरोधों को सामना करके खुद बाधाओं का निराकरण करके अनुकूल वातावरण बनाये। नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी में निहित इन्हीं सम्भावनाओं को लक्ष्य करके कहा था- "मुझ एक योग्य माता दे दो, मैं तुम्हें एक योग्य राष्ट्र दूंगा।"

अतः महिलाओं को इस शोषित, उपेक्षित, त्रस्त स्थिति से उबरने के लिए जहां सामाजिक स्तर पर सांस्कृतिक क्रन्ति की जरूरत प्रतीत होती है तो दूसरी तरफ महिलाओं व पुरुषों के समीकरण के बदलाव की भी जरूरत है। वैसे तो नवीन तकनीकों ने गृहकार्य को अत्यन्त सुलभ कर दिया है, लेकिन घरेलू कामकाज को एक सार्वजनिक उद्योग का दर्जा देने हेतु यदि सोचा जाये तो समस्या का निदान कुछ सीमा तक सुलझाया जा सकता है एवं साथ ही साथ वास्तविक स्थिति में सुधार तभी सम्भव है। यदि आर्थिक स्थिति से उत्पन्न शोषण को भी दोनों के बीच समाप्त कर दिया जाये। छोटी उम्र की बच्चियों के साथ बलात्कार जैसे भयावह घटनाओं को रोकने हेतु वर्तमान कानून में संशोधन के साथ-साथ सांस्कृतिक प्रदूषण को रोकने की भी जरूरत है साथ ही साथ पुरुषों की सोच में महिलाओं के प्रति बदलाव की भी महती आवश्यकता है। इसके साथ ही महिलाओं को भी सोचना होगा कि उनकी स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छता नहीं है। उनको अपने देश, समाज की अमूल्य, संस्कृतिकार, परिवार की मान मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए

ही आगे बढ़ने की इस होड़ में अपने यथोचित स्थान को समाज में तलाशना होगा, ताकि जहाँ वह परिवार रूपी डोर से तो बंधी होगी ही साथ ही समाज व राष्ट्र की प्रगति में भी अपने शिक्षित, जागरूक एवं सचेत होने का परिचय दे सकेगी आधुनिकीकरण के नाम पर दिन प्रतिदिन लगने वाले प्रश्न चिन्हों का उत्तर भी दे सकेगी। एक आदर्श को लेकर किया गया, नारी-प्रगति का आन्दोलन जहाँ महिलाओं की स्थिति में सुधार करेगा, वहीं स्त्रियों का आत्मगौरव भी प्रदान कर सकेगा एवं महिलाएं राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय संस्कृति को भी गौरवान्वित कर सकेगी।

अतः कहा जा सकता है-

हर दिल में, हर मन में उठानी होगी पीर
हर नारी को अपने ही हाथों से लिखनी होगी अपनी तकदीर।

संदर्भ

1. कुरूक्षेत्र मार्च 2006, पृष्ठ 10.
2. कुरूक्षेत्र, मार्च 2006, पृष्ठ 10.
3. प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर, 1995, पृष्ठ 338.
4. प्रमाणित हिन्दी निबन्धा-डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय, यूनिट पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-2007.
5. निबन्धा सागर- डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
6. कुरूक्षेत्र, मार्च 2006, पृष्ठ 10.
7. कुरूक्षेत्र, मार्च 2006, पृष्ठ 10.
8. प्रतियोगिता दर्पण सितम्बर, 1995, पृष्ठ 338.

मिथिलांचल की रामभक्ति-परम्परा में मोदलता की कृतियों का मूल्यांकन

डॉ० दिलीप कुमार झा

पूर्व शोधार्थी (हिन्दी),
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मिथिलांचल में राम भक्ति की एक अक्षुण्ण धारा प्रवाहित है, जिसमें प्रीति की विविध वीचियाँ सृष्ट होती हैं। 'रामरहस्योपनिषद्' के अनुसार राम संपूर्ण भूमण्डल की शोभा है ''अखिलं राति महिस्थित:''। सीता उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं, जो अपने कर्मों से राम को वशीभूत करती हैं - ''सिनोति वशं करोति स्वकर्मण: भगवन्तम् सा सीता''।

ऋक-साम का रस - रहस्य राम की लीला - वैचित्री से प्रकट होता है, जिसे वेदान्त ने अवा्मनसगोचर (मन-वाणी की सीमा से परे) कहा है।

राम का मिथिलागमन शक्ति (सीता) के द्वारा ब्रह्माकर्षण है। उनकी मिथिला की यात्रा के क्रम में दुराशा की ताटका तथा दु:ख के सुबाहु का विनाश होता है, तथा दुर्गुण का मारीच दूर फेक दिया जाता है। बुद्धि की जड़ता अहल्योद्धार के पश्चात् समष्टि के अहंकार का वाचक शिव - धनुष को तोड़ दिया जाता है तथा परिणय - लीला के द्वारा शक्ति (सीताऋतथा शक्तिमान् (राम का) मिलन होता है। सीताराम विवाह की इस प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में मिथिला के रसिक कवियों ने अपनी वाणी विषयिणी- साधना की है, जो सर्वर्था स्तुत्य है।

मिथिला की रामोपासना की शाश्वतता के विवेचन-क्रम में मैथिल याज्ञवल्क्य की उस मधुविद्या को उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें आत्मा को सारे प्राणियों के लिए मधु कहा गया है तथा सारे प्राणी आत्मा हेतु मधु रूप में कथित है -

''अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै
आत्मा सर्वाणिभूतानि मधुयश्च।।'' (बृ. उप.)

श्रुति प्रोक्त ''मधुविद्या' का प्रतिफलन मिथिला की माधुरोपासना में परिलक्षित होता है, जिसकी पूर्णता मोदलता की काव्य साधना में दृष्टिगत होती है। अग्रदास, युगलप्रिया, युगलानन्यशरण, देवतीर्थ आदि की मधुरोपासना के परिप्रेक्ष्य में मोदलता वर्णित महाभाव का विवेचन द्रष्टव्य है। प्रेम की अष्ट अन्तर्दशाएँ स्नेह मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव कहीगयी है, जिसमें दिदृक्षा (देखने की इच्छा) रिरंसा (रमण की इच्छा) तथा विवरयिषा (वरण की इच्छा) की सुषमा अनुस्यूत होती है। लाक्षास्नेह, घृतस्नेह तथा मधुस्नेह के आधार पर राम भक्ति की स्वसुखी, चित्सुखी तथा तत्सुखी साधना का रस - रहस्य प्रकट होता है।

रसिक सन्त मोदलता ने मैथिली, ब्रजी तथा खड़ी बोली हिन्दी में राम की मधुरोपासना विषयक अनेक पदों की रचना की है। 'मोदपदावली' का तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें सीता-राम विवाह-लीला के ललित गीतों तथा छन्दों का संग्रह, सहृदय संवेद्य है। मोदलताजी के सुपुत्र जानकी रमण शरण ने 'मोदकवित कुंज' के नाम से मोदलता विरचित कवित्तों का प्रकाशन कराया है, जिसमें सीताराम-सौन्दर्य वर्णन के अतिरिक्त ज्ञान तथा भक्ति विषयक छन्द हैं, जो अतीव हृदयावर्जक है। मैथिली बल्लभशरण परिमल' ने 'मोदमानसमाधुरी' नाम्नी काव्यकृति की प्रस्तुति द्वारा, मोदलता की रसिकोपासना का ललित वर्णन किया है। इस कृति की पाण्डित्यपूर्ण भूमिका हिन्दी - साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ0 प्रभाकर पाठक ने प्रस्तुत की है जो द्रष्टव्य है। डॉ0 पाठक ने रसिक साधना के विवेचन क्रम में मोदलता की कुशाग्रीय शेमुषी की महती प्रशंसा की है।

मिथिलांचल के रसिक संत मोदलता की ख्याति अवध, चित्रकूटादि तीर्थो में प्रसरित है। इन्होंने राम की मिथिला लीला का मनोज्ञ वर्णन किया है। उनकी मान्यता है -

''याही मिथिला देश में,
धर्योग दुल्लह वेश।
तते यही उपासना,
चाहिए हमे हमेशा।''

रसिक संतों तथा हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने मोद - साहित्य की महती प्रशंसा की है। मिथिला तथा अवध की संबंध - शाश्वतता के विवेचन क्रम में मोदलता की रचनाओं का मूल्यांकन परम विहित प्रतीत होता है। विद्यापति की तरह आज भी मोदलता तथा स्नेहलता के मधुर गीत जन - जन के कंठ में विद्यमान है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में रामभक्ति - धारा की मधुरोपासना के विवेचन क्रम में मोदलता की काव्य साधना का मूल्यांकन परम आवश्यक है।

प्रस्तुत आलेख के द्वारा मिथिलांचल की मधुरोपासना की परम्परा में मोदलता जी की काव्य साधना की उन विशेषताओं को उद्घाटित करना है, जिनके द्वारा सम्बन्ध स्थापना का रस - रहस्य प्रकट होगा। मोदलता ने मैथिली भाषा के अतिरिक्त ब्रजी तथा खड़ी में भी अपनी रचना - धर्मिता प्रस्तुत की है, फलतः भाव एवं भाषा, संवेदना तथा शिल्प आदि की दृष्टि से मोदता जी की रचनाधर्मिता का मूल्यांकन अभिनवता से संयुक्त है। रसब्रह्म, क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम श्री राम की रूपमाधुरी, नाममाधुरी, लीला - माधुरी तथा धाम -माधुरी की अभिव्यक्ति के क्रम में मोदलता जी की कारयित्री -प्रतिभा का उद्घाटन आह्लादपूर्ण प्रतीत होता है। सगुणोपासना में जीव तथा ब्रह्म की सम्बन्ध स्थापना के क्रम में माधुर्य रस के उत्कर्ष का पल्लवन अनिवार्य हो जाता है। मोदलताजी का काव्य - साधना के द्वारा सम्बन्ध - योजना की दर्शनिकता कान्तासक्ति के द्वारा प्रकट हुई है। श्रुति प्रोक्त सखा तथा सखी - भाव की चारुता, इस कवि की रचनाओं में अनुसंधेय है। इस प्रकार मधुरोपासना की अक्षुण्ण परमपरा के विकासक्रम में मोद - साहित्य की मीमांसा महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

इस आलेख के स्रोत के रूप में 'मंत्ररामायण' के अतिरिक्त श्रुति कथित 'मधु विद्या' (बृ. उप.) का आश्रय अनिवार्य हो जाता है। तत्पश्चात् 'बाल्मीकिरामायण' तथा मोद - साहित्य का अवलोकन भी विहित है। कृष्ण भक्ति धारा की मधुरोपासना के प्रतिफलन को रामोपासना में भी देखा जा सकता है। इसलिए 'उज्जवलनीलमणि' तथा भक्तिरसामृत सिंधु - इन उभय ग्रंथों का परायण भी अनिवार्य है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में ज्ञान भक्ति का विवेचन करते हुए कहा कि ज्ञान पुरुष है और भक्ति नारी। माया पुरुष को नया देती है। परंतु वह भक्ति की अनुचरी है फलतः भक्तों को यह माया प्रभावित नहीं करती है।

'मोहन नारि नारि के रूपा' कहकर तुलसी ने इस सत्य को वाणी दी है। पुनः कवि ने ज्ञान - दीपक का रूपक प्रस्तुत किया है। सात्त्विक श्रद्धा रूपी धेनु जप-तदपादि की घास चरती है। उससे परम धर्ममय दुग्ध प्राप्त किया जाता है। उसे निष्काम अग्नि में औटा जाता है। घृति का जमावट देकर दही तैयार किया जाता है।

उसको मुदिता की मथनी से मथा जाता है। फिर वैराग्य रूपी नवनीत प्राप्त किया जाता है। उसे योगाग्नि में जलाकर विज्ञान रूप घृत को प्राप्त किया जाता है। उसे चित्त के दीपक में भरा जाता है। तुरीय की बाती लगाकर दीपक जलाया जाता है। कवि ने लिखा है -

'सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा।
दीपसिखा पुनि सो सु प्रचंडा।।'

इन्द्रियों के द्वार पर देवताओं का निवास है। जब विषय - वासना की आंधी चलती है तो विज्ञान दीपक को बुझा देती है।

'बुद्धि विकल भई विषय बतासा'
बुद्धि में वैकल्य का आगमतन होता है।

भक्ति तो मणि है। कवि ने लिखा है-

राम- नाम मनि दीप धरू
जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहुरे
जो चाहसि उजिआर।

इसीलिए जो इस भक्ति का त्याग कर, केवल ज्ञान हेतु श्रम करते हैं, वे घर की कामधेनु का त्याग कर दूध के लिए अवकन का अनुसंधान करते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भक्ति के पंच रसों में सर्वश्रेष्ठ मधुर रस है। इसी के आश्रय से उपासना का रस - रहस्य आयत्त होता है। मिथिला में इस उपासना की महती परम्परा दृष्टिगत होती है। वस्तुतः भाव जगत के स्वरूप-निरूपण के क्रम में उपासनीय ब्रह्म कर लीलानन्द सहज ही प्रकअ होता है।

संदर्भ :

1. ऋग्वेद-श्रीरामशर्मा आचार्य, मथुरा से प्रकाशित, 2001
2. सामवेद-श्रीरामशर्मा आचार्य, मथुरा से प्रकाशित, 2001
3. मंत्ररामायण-श्रीरामशर्मा आचार्य, मथुरा से प्रकाशित, 2003
4. बाल्मीकिरामायण-गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. अध्यात्मरामायण-गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. जनकपुर की झांकी-रामानन्दाश्रम जनकपुर से प्रकाशित, 2009
7. सीता सूक्त-जनकपुर से प्रकाशित - रामानन्दाश्रम, 1979

8. सीतामंत्रार्थ रहस्य-जनकपुर से प्रकाशित -रामानन्दाश्रम, 1979
9. सीतास्त्रोत्र सुधासागर-रामानन्दाश्रम, जनकपुर, 1983
10. जानकी विन्दु-काष्ठजिह्वा स्वामी 'देवतीर्थ'-बनारस, काशी काशी नरेश बुक ट्रस्ट, 1953
11. राम भक्ति में रसिक समप्रदाय-भगवती प्रसाद सिंह-बनारस, काशी नरेश बुक ट्रस्ट, 1964
12. रामभक्ति में मधुरोपासना - भुवनेश्वर मिश्र माधव - बनारस, काशी नरेश बुक ट्रस्ट
13. हिन्दी साहित्य और बिहार- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2003

भारत में गठबंधन राजनीतिः समस्या एवं समाधान

डॉ० सतीश कुमार वर्मा

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, सरिया कॉलेज, सरिया, गिरिडीह

Abstract

भारत की संसदीय इतिहास में नेहरू काल के बाद से अस्थिर गठबंधन सरकार का दौर आरंभ होता है। भारत की संसदीय इतिहास में प्रथम बार 1977 ई. में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में गठबंधन सरकार की स्थापना की गई जो आपसी अन्तर्विरोध के कारण गिर गई। इसके बाद कुछ हद तक 1980-89 ई. के बीच इंदिरा-राजीव के शासन काल में स्थिर एवं एकदलीय बहुमत की सरकार बनी। लेकिन राजीव-इंदिरा शासन काल के बाद जितने भी आम चुनाव हुए किसी भी एक राजनीतिक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्येक बार गठबंधन सरकारों का निर्माण किया गया परंतु कोई भी सरकार स्थायी एवं स्वनिर्णय में सक्षम नहीं हुई। घटक दलों के क्षुद्र स्वार्थों एवं अन्तर्विरोधों के कारण सभी सरकारें विवादित रही। ऐसी स्थिति में 1999 ई. में बनी वाजपेयी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार ने स्थिर एवं विकासशील सरकार की नींव रखी प्रस्तुत शोध-प्रबंध यह देखने का प्रयास किया है कि वर्तमान समय में भारतीय राजनीति में इसका क्या महत्व है।

वर्त्तमान परिस्थिति को देखकर साफ तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति में एक दल की प्रभूता समाप्त हो गई है। यह कहना बिल्कुल अतिश्योक्ति नहीं होगी कि केन्द्रीय स्तर पर मिली-जुली सरकार का शासन अब एक सामान्य नियम हो गया है।

Keywords:- संसदीय शासन, लोकतंत्र, गठबंधन राजनीति, अटल बिहारी बाजपेयी।

प्रस्तावना

भारत में प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था संसदीय प्रणाली पर आधारित है। संसदीय व्यवस्था ने भारत के जनमानस पर अपनी अमीट छाप छोड़ी है जिसका प्रभाव है की आज भी यह व्यवस्था अपनी मजबूती के साथ विद्यमान है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के घटनाक्रमों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि भारत में लोकतंत्र विश्व का सबसे सफल लोकतंत्र है जहाँ सरकारें जनता के अनुरूप बनती बिगड़ती रही हैं। भारत के संसदीय इतिहास के प्रारंभ में काँग्रेस का वर्चस्व था लेकिन धीरे-धीरे अन्य दलों ने भारतीय राजनीति में अपनी पकड़ मजबूत किया। आज परिस्थितियाँ यह है कि काँग्रेस के अलावा भाजपा एवं तीसरा मोर्चे की संभावना दिखती है। इन तीनों मोर्चों में कोई यह दावा नहीं कर सकता है कि सरकार किसकी बनेगी।[1]

भारत में लोकतंत्र की हकीकत है देश गठबंधन की राजनीति की ओर प्रवेश कर गया है। पिछले दो दशक से लगभग हर आम चुनावों के बाद किसी एक दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिलने के कारण विभिन्न दल आपस में मिलकर केन्द्र व राज्य स्तर पर सरकार बनाते है। जिसे गठबंधन सरकार या मिश्रित सरकार कहा जाता है। भारत की संसदीय व्यवस्था में सरकार का गठन, उसका संचालन, पुनर्निर्माण सरकार में शामिल दलों की संख्या पर निर्भर करता है। भारत गठबंधन राजनीति के युग में प्रवेश कर अपनी पैठ बना चुका है। भारतीय जनता पार्टी और काँग्रेस पार्टी के आलावा क्षेत्रीय दल भी भारतीय राजनीति का अटूट हिस्सा बन चुके हैं। भारत एक बहुभाषी, बहुधर्मी, बहुजातीय और क्षेत्रीय विविधता वाला समाज है। छोटे-छोटे जातीय, क्षेत्रीय एवं भाषायी समूह अपनी पहचान बनाए रखने के लिए हमेशा प्रयासरत होते हैं।

यही विविधताएं अक्सर राजनीतिक के क्षेत्र में अभिव्यक्त होती हैं। भारतीय समाज को इस जटिल संरचना को मानने और स्वीकार करने की आवश्यकता है तभी गठबंधन सरकारें विकास के साथ सफलतापूर्वक चलाई जा सकती है। वास्तविक रूप में देखा जाय तो राजनीतिक गठबंधन उसमें भागीदार राजनीतिक दलों के कार्यक्रम तथा उनकी सामाजिक एवं वर्गीय संरचना के आधार पर बनती है। लेकिन कभी-कभी राजनीतिक बाध्यताएँ भी राजनीतिक दलों को गठबंधन करने के लिए विवश कर देती हैं। कोई भी एक दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिलने के कारण विभिन्न राजनीतिक दलों की मिश्रित सरकार बनाना राजनीतिक विवशता हो गई है। वर्त्तमान समय में गठबंधन सरकार की अवधारणा तेजी से विकसित हो रहा है। मिश्रित सरकार के गठन और संचालन के लिए जिस राजनीतिक संस्कृति की आवश्यकता होती है भारत की संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में कमी रहा है। राजनीतिक दलों के लिए गठबंधन सरकार बनाना आसान होता है लेकिन उसे चलाना उतना ही कठिन हो गया है जिसके कारण यह देखा गया कि गठबंधन की सरकार विकास के वादे तो करती है परंतु विकास पूर्ण रूप से नहीं कर पाती है। घटक दल आपस के अंतर्विरोध में ही उलझे रहते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम गठबंधन सरकार की नींव 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार के गठन के साथ मानी जाती है। 1 मई, 1977 के दिल्ली के 'हॉल ऑफ नेशन्स' में संगठन काँग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी तथा लोकतांत्रिक काँग्रेस ने मिलकर जनता पार्टी को औपचारिक रूप दिया। संघीय स्तर पर काँग्रेस एकछत्र शासन को समाप्त कर पहली बार 1977 में जनता पार्टी की सरकार ने अपनी शासन स्थापित किया।[2] डॉ. राममनोहर लोहिया के द्वारा दिए गए गैर काँग्रेसवाद के नारे को स्वीकार करते हुए मतदाता ने जनता पार्टी को शासन की बागडोर सौंप दी। परन्तु जनता पार्टी के घटक दल आपसी कलह में उलझे रहे जिसके कारण आम जनता की आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकी, परिणामस्वरूप पार्टी और सत्ता दोनों की अकाल मृत्यु हो गई।

देश में केन्द्रीय स्तर पर इस तरह के अवसरवादी एवं सिद्धांतविहिन गठबंधन के प्रयोग को 2 दिसम्बर, 1989 को राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनाकर फिर से दोहराया गया। राष्ट्रीय मोर्चा की इस गठबंधन सरकार में मुख्य रूप से जनता दल, तेलगूदेशम, असम गण परिषद, काँग्रेस जैसे क्षेत्रीय राजनीतिक दल भागीदार थे। इसके आलावा भाजपा जैसे दक्षिण पंथी तथा कम्यूनिस्ट जैसे वामपंथी दलों का सरकार को बाहर से समर्थन देना, दलों का सत्ता की लालसा को दिखाता है। ये सभी दल गठबंधन में सहयोगी होते हुए भी विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय मुद्दों पर परस्पर विरोधी और तीक्ष्ण मतभेद रखते थे। जनता दल के विभिन्न घटकों के नेताओं की महत्त्वकांक्षा ने आगे चलकर सरकार की कार्य-पद्धति को प्रभावित किया तथा गठबंधन सरकार को पतन की ओर धकेल दिया। प्रधानमंत्री पद के लिए वी० पी० सिंह के नाम पर असहमति जताते हुए चन्द्रशेखर द्वारा स्वयं को प्रधानमंत्री के रूप में घोषित करना और चौधरी देवीलाल द्वारा वी० पी० सिंह का खुलकर समर्थन करना, इस प्रकार के घटनाक्रम से यह राजनीतिक गठबंधन असमय बिखर कर पुनः एक अस्थिर गठबंधन की परिपाटी को आगे बढ़ाया।[3]

राजीव गांधी की अकाल मृत्यु के बाद उपजी राष्ट्रव्यापी सहानुभूति की लहर में 10वीं लोकसभा चुनाव के बाद सबसे बड़े दल के रूप में काँग्रेस उभरी तथा उसके नेता पी० वी० नरसिम्हाराव ने छोटे-छोटे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों एवं कुछ निर्दलीय सांसदों के समर्थन से गठबंधन सरकार की नींव रखी। बाद में बड़े पैमाने पर दल-बदल कराकर काँग्रेस ने अपनी अल्पमत की सरकार को बहुमत की सरकार में बदला। 1977, 1989, 1990 और 1991 तक कई बार गठबंधन सरकार बनी और अपना कार्यकाल पूरा करने के पहले ही गिर गई।

1996 व 1997 में क्रमशः वाजपेयी, देवगौड़ा व गुजराल की गठबंधन की सरकार बनी जो अपना कार्यकाल पूरा करने से पहले ही गिर गयी।[4] ये सब देखकर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज भारतीय राजनीति में एक व्यक्ति प्रधान क्षेत्रीय एवं राज्यस्तरीय दलों की भरमार ने देश को राजनैतिक अस्थिरता के दौर में पहुंचा दिया है। क्योंकि ये दल राष्ट्रीय हित नहीं बल्कि अपना क्षेत्रीय एवं स्वहित को ज्यादा तरजीह देते हैं।

यदि वास्तविक रूप से देखा जाय तो त्रिशंकु सरकार का गठन 11वें लोकसभा चुनाव के बाद हुआ, इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी 161 सीट, काँग्रेस को 140 सीटें और क्षेत्रीय दलों को 150 सीटें प्राप्त हुए। किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिलने के कारण राष्ट्रपति ने भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन यह सरकार मात्र 13 दिनों में बहुमत सिद्ध करने से पहले गिर गई।[5]

केन्द्र में बनने वाली गठबंधन सरकारों के अध्ययन से पता चला कि अधिकांश गठबंधन सत्ता, राजनीतिक स्वार्थपरकता पर आधारित थी, जो सिद्धांतविहिनता एवं व्यक्तिगत हित को बढ़ावा दे रहा था। गठबंधन सरकार के इतिहास में 1977 से लेकर 2004 तक जितनी भी गठबंधन सरकारें बनी सब गैर काँग्रेसी थी। जो भी गठबंधन सरकार को काँग्रेस ने समर्थन दिया वे सभी सरकार कभी भी सुचारू रूप से नहीं चल पायी। काँग्रेस ने कोई न कोई बहाना बनाकर समर्थन वापस ले लिया। काँग्रेस के द्वारा चौधरी चरण सरकार को समर्थन देना वापस लेना, वी० पी० सरकार के खिलाफ चन्द्रशेखर को खड़ा करना, देवगौड़ा सरकार को गिराकर गुजराल सरकार बनाना ये कारनामे सिद्धांतविहिन राजनीति ही नहीं एक नैतिकविहिन राजनीति कहा जा सकता है।[6]

वाजपेयी के पहले तक जो गठबंधन सरकार बनी थी उनमें अधिकांश परस्पर विरोधी विचारधारा वाले दलों का गठबंधन देखने को मिला जैसे वी० पी० सिंह सरकार जो साम्यवादी दल तथा भारतीय जनता पार्टी का समर्थन था। इस तरह के गठबंधन कभी टिकाऊ नहीं हो सकता है। इसके अलावा गठबंधन की राजनीति में 'बाहर से समर्थन' की नीति ने हमेशा सरकार को अस्थिर किया।

गठबंधन राजनीति की एक नई समस्या छोटे एवं क्षेत्रीय दल थे जिनका प्रभाव 1989 के बाद बढ़ता गया। अब इन दलों के बिना सरकार बनाना असंभव हो गया। इन सब परिस्थितियों ने भारतीय राजनीति को झकझोर दिया। यह माना जाने लगा कि भारत की संसदीय व्यवस्था भारत के परिप्रेक्ष्य में सफल नहीं है। यहाँ की विविधता बहुदलीय व्यवस्था के अनुकुल है। इस बहुदलीय राजनीति में संसदीय व्यवस्था सफल नहीं हो सकती है।[7] तब वाजपेयी ने चुनाव पूर्व गठबंधन की अवधारणा को लाकर इस चुनौती से सामना किया और उसे सफलीभूत बनाया। 12वीं लोकसभा चुनाव से पहले 13 दलों का गठबंधन बनाया। इन दलों के नीतियों एवं कार्यक्रमों से समन्वय स्थापित कर न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर सरकार का गठन कर अस्थिरता को दूर करने का प्रयास किया। यह माना जाता रहा कि गठबंधन सरकारें सिर्फ सत्ता के लिए बनती हैं लेकिन वाजपेयी ने दिखाया कि गठबंधन सिर्फ सत्ता के लिए नहीं विचारधारा के आधार पर भी गठबंधन सरकार की नींव रखी जा सकती है। अब मतदाता चुनाव पूर्व भी जान सकता है कि प्रधानमंत्री कौन होगा। हमने किस गठबंधन को वोट दिया। चुनाव पूर्व गठबंधन से गठबंधन सरकार में स्थिरता आती है। इसके घटक दलों में नैतिक जिम्मेवारी होती है कि जनता जिस कार्यक्रम और नीतियों के लिए चुना है उसे पूरा करें। यदि कोई दल गठबंधन को तोड़ता है तो यह डर होता है कि जनमानस की प्रतिक्रिया उसके खिलाफ हो। इन अवधारणा के प्रतिपादन का मुख्य श्रेय वाजपेयी को दिया जा सकता है जिन्होंने 13वीं लोकसभा चुनाव के पूर्व जिस तरीके से राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की नींव रखी और इसके बैनर तले न्यूनतम साझा कार्यक्रम की घोषणा की तथा भाजपा के प्रमुख राजनीतिक मुद्दे राम मंदिर निर्माण, गोवध निषेध, धारा 370, एक समान नागरिक संहिता जैसे मुद्दे को गठबंधन की घोषणा पत्र से अलग रखा यह काबिले तारीफ है क्योंकि इन मुद्दों से गठबंधन कमजोर हो सकता था।[8] वाजपेयी ने यह संदेश देने का कार्य किया कि जब भी गठबंधन की नींव रखे विवादित मुद्दों को शामिल न करें ताकि झगड़े की जड़ न रहे और कोई भी गठबंधन सफलता पूर्वक संचालित हो। वाजपेयी भारत के इतिहास के प्रथम ऐसे गैर-काँग्रेसी प्रधानमंत्री थे जिन्होंने अपनी 5 वर्ष के कार्यकाल को सफलतापूर्वक चलाया। उससे यह संदेश भारतीय नागरिकों के समक्ष गया कि केवल कांग्रेस ही सरकार का संचालन नहीं कर सकती है बल्कि अन्य दल भी सफलतापूर्वक सरकार चला सकते हैं। अब मतदाताओं के पास विकल्प मौजूद हैं। यदि काँग्रेस अच्छी सरकार नहीं दे सकती है तो दूसरी धूरी भाजपा बन गई।

दूसरी बड़ी देन यह हुई कि अब भारतीय राजनीतिक द्विध्रुवीय व्यवस्था की ओर बढ़ा है।

भाजपा एवं काँग्रेस के नेतृत्व में क्रमशः राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन एवं संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन ने द्विदलीय पद्धति जैसी स्थिति भारत के संसदीय राजनीति में लाई जिसका श्रेय वाजपेयी को दिया जा सकता है। वाजपेयी ने राजग सरकार का सफल संचालन कर इतिहास रचा यही कारण रहा कि भारत की संसदीय राजनीति वाजपेयी के बाद अस्थिरता के दौर से बाहर निकला। आज गठबंधन की राजनीति भारत के लिहाज से सुखद प्रतीत हो रहा है। गठबंधन सरकार में सभी क्षेत्रों के लोगों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो रहा है। जिसके कारण भारतीय लोकतंत्र मजबूत हुआ है।[9]

वाजपेयी ने सिद्ध कर दिया कि गठबंधन सरकारें भी राजनीतिक स्थिरता के साथ विकास भी कर सकती है। उन्होंने 24 दलों के गठबंधन को साथ चलाकर जो गठबंधन का मॉडल दिया उसी मॉडल के अनुरूप नये दौर में गठबंधन बन रहे हैं और स्थिर सरकारों का गठन हो रहा है चाहे वह संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के तहत् मनमोहन सरकार हो या राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के तहत नरेन्द्र मोदी की सरकार।[10]

वाजपेयी नीत सरकार एवं अन्य गठबंधन सरकार के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि वाजपेयी सरकार के पूर्व जितनी भी गठबंधन सरकार बनाई गई वे गठबंधन चुनाव के पश्चात् था जो सत्ता के लिए बनाया गया। इन गठबंधन के पास न तो न्यूनतम

साझा कार्यक्रम था न ही गठबंधन को चलाने के लिए संगठन। पहले गठबंधन राजनीति में यह भी देखा गया कि कई दल 'बाहर से समर्थन' देने की प्रथा की शुरुआत की जो अस्थिरता प्रदान करने का सबसे बड़ा कारण रहा। बेमेल गठबंधन भी पूर्ववर्ती गठबंधन सरकारों में हुआ इनमें शामिल दलों के नीतियों एवं कार्यक्रमों में विभिन्नता के बावजूद गठबंधन किया गया जिसके कारण भी सरकारें अस्थिर रही।[11]

प्रस्तुत शोध आलेख में शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन क्षेत्र में एकत्र किए गए आँकड़े के आधार पर गठबंधन राजनीति के निम्न नकारात्मक एवं साकारात्मक पक्ष प्राप्त होते हैं।

नकारात्मक पक्ष

(i) गठबंधन सरकार में गठबंधन दलों के बीच दलीय अनुशासन के आभाव के कारणसामूहिक उत्तरदायित्व की भावना कमजोर होती है।

(ii) नीतियों में समन्वय का आभाव के कारण एक निश्चित दिशा में कार्य नहीं हो पाता।

(iii) गठबंधन सरकार में स्थायित्व की कमी होती है।

(iv) गठबंधन सत्ता की प्राप्ति के लिए बनाये जाते रहे है।

(v) भारतीय राजनीति में बेमेल गठबंधन होते रहे हैं।

(vi) अधिकांश गठबंधन सौदेबाजी को बढ़ावा देता है।

(vii) 'बाहर से समर्थन' देने की पद्धति सरकार के अस्थायित्व के लिए मूल रूप से जिम्मेवार रहा है।

(viii) भारत में गठबंधन चुनाव पश्चात् होते रहे हैं। जिससे सरकार बनाते समय सौदेबाजी को बढ़ावा मिला। सरकार के स्थायित्व में भी प्रश्नचिन्ह लगा।

(ix) वाजपेयी सरकार से पूर्व न्यूनतम साझा कार्यक्रम का आभाव रहा।

सकारात्मक पक्ष

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में गठबंधन राजनीति को अच्छा नहीं मानी जाती है लेकिन गठबंधन राजनीति के कुछ सकारात्मक पक्ष भी है, जिसका प्रभाव देखा जा सकता है।

(i) गठबंधन राजनीति ने संक्रमण काल से भारत को निकाला। संसदीय व्यवस्था में निम्नसदन में बहुमत प्राप्त नेता ही सरकार गठन करता है उस परिस्थिति में जब किसीदल को बहुमत नहीं मिलता तब गठबंधन, सरकार बनाने में सहायक होता है। भारत में 1989 के बाद ऐसा देखने को मिलता है।

(ii) गठबंधन राजनीति में क्षेत्रीय दलों को राष्ट्रीय राजनीति में प्रतिनिधित्व का मौका मिलता है। जिससे क्षेत्रीय हितों की पूर्ति संभव हो पाती है।

(iii) गठबंधन सरकार में विभिन्न क्षेत्रों, हितों, वर्गों को प्रतिनिधित्व का मौका मिलता है।

(iv) गठबंधन सरकार एकदलीय सरकार की तुलना में अधिक लोकतांत्रिक है। जिसमें कोई भी निर्णय में सभी की भागीदारी होती है।

(v) गठबंधन राजनीति में भारत की संघीय व्यवस्था मजबूत हुई।

(vi) गठबंधन राजनीति ने राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया। विभिन्न दलों को सरकार में भागीदारी से उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न हुई।

(vii) गठबंधन सरकार के स्थानीय प्रतिनिधियों की भागीदारी से स्थानीय स्तर की समस्याओं को सुलझाने में आसानी होती है।

उपरोक्त नकारात्मक एवं सकारात्मक पक्ष के अवलोकन तथा गठबंधन राजनीति के विस्तृत अध्ययन से प्राप्त अनुभव के आधार पर शोधकर्त्ता के द्वारा गठबंधन राजनीति को सुचारू रूप से चलाने तथा इसकी सफलता के लिए अपने कुछ सुझाव प्रस्तुत करता है।

(i) गठबंधन उन्हीं दलों के साथ करना चाहिए जिसके विचारों में समानता हो।
(ii) गठबंधन चुनाव पूर्व होनी चाहिए।
(iii) 'बाहर से समर्थन' देने की अवधारणा को समाप्त कर गठबंधन दलों को सरकार में भागीदार होना चाहिए।
(iv) गठबंधन में गठबंधन के सबसे बड़े दल को ही सरकार का नेतृत्व करना चाहिए।
(v) गठबंधन में शामिल दलों का चुनावी घोषणा पत्र एक हो।
(vi) न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर ही सरकार का संचालन करना चाहिए।
(vii) गठबंधन को एक संस्थागत रूप देकर उसके संचालन के लिए एक कमिटी का गठन करना चाहिए तथा उसका अपना संविधन हो।
(viii) गठबंधन में घटक दलों के विवादित मुद्दे को शामिल नहीं करना चाहिए।
(ix) गठबंधन में शामिल छोटे से छोटे दलों को भी सम्मान देना चाहिए।
(x) गठबंधन में उत्पन्न विवादों के समाधान के लिए एक कोर कमिटी का गठन करना चाहिए।
(xi) मंत्रिमंडल के निर्माण में सभी दलों के बीच संतुलन स्थापित करना चाहिए।
(xii) गठबंधन सरकार में निर्णय लोकतांत्रिक प्रक्रिया से लेना चाहिए।

प्रस्तुत शोध आलेख के अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि भारत में गठबंधन की राजनीति अब सामान्य नियम हो गया है आज कोई भी दल अपने बूते सरकार बनाने की स्थिति में नहीं है। 2014 एवं 2019 के आम चुनाव का भी अवलोकन किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि भाजपा ने गठबंधन के बदौलत ही 282 तथा 303 सीटें जीतने में सक्षम हुई। इस कारण कह सकते है कि यदि उपरोक्त सुझावों के आधार पर गठबंधन की नींव रखी जाय तो गठबंधन सरकार को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. नुरानी, 1989
2. वरनी, डगलस वी० (2003): "फ्रॉम क्वेजार्ड, फेडरलिज्म टु क्वेजाई कन्फेडरेसी? द ट्रांसफोरमेशन ऑफ इण्डियाज पार्टी सिस्टम" पुब्लियस: दी जर्नल ऑफ फेडरलिज्म, पृ. 33 (4)
3. ल्वन ज्नइमए प्रधानमंत्री एपीसोड, एबीपी न्युज
4. वरनी, डगलस वी० (2003): "फ्रॉम क्वेजार्ड, फेडरलिज्म टु क्वेजाई कन्फेडरेसी? द ट्रांसफोरमेशन ऑफ इण्डियाज पार्टी सिस्टम" पुब्लियस: दी जर्नल ऑफ फेडरलिज्म, पृ. 156
5. राम, डी० सुन्दर: 'कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया', सर्च फोर पॉलिटिकल स्टेबिलिटि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2000, पृ. 135
6. सिंह, एम० पी०: 'नेशनल फ्रंट एण्ड यूनाइटेड फ्रंट कोएलिशन गवर्नमेंट', पृ. 83
7. अरोड़ा, बलवीर (2002): 'द पॉलिटिकल एण्ड पार्टी सिस्टम', द एमरजेन्स ऑफ न्यू कोलिशंस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
8. चक्रवर्ती, विधुत (2006): 'फॉरजिंग पावर: कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया', नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
9. रत्ना, डॉ. अनुराग: 'कोएलिशन पोलिटिक्स ए न्यू टर्न टू कन्स्टीट्युशनल डेवलपमेंट इन इंडिया', उप्पल पब्लिकेशन दिल्ली, पृ. 38
10. रत्ना, डॉ. अनुराग: 'कोएलिशन पोलिटिक्स ए न्यू टर्न टू कन्स्टीट्युशनल डेवलपमेंट इन इंडिया', उप्पल पब्लिकेशन दिल्ली, पृ. 42-43
11. फारूकी, अदनान/श्रीधारन ईश्वरन: 'रिसर्च आर्टिकल, सेंटर फॉर द एडवांस स्टडी ऑफ इण्डिया (सी०ए०एस०आई.)', द ट्रस्टी ऑफ द यूनीवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया

बुरी आदत और लत

डॉ० राम बिनोद

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, के.एस.आर. कॉलेज, सरायगंज, समस्तीपुर (बिहार)

परिचय

लत एक आवृत्ति क्रिया है, जो बार-बार दोहराए जाने पर व्यक्ति में विकसित हो जाती है। अगर लत की पूर्ति न की जाये तो मस्तिष्क शरीर को संकेत भेजता है, जिससे व्यक्ति के शरीर, स्वास्थ्य और व्यवहार में बदलाव देखे जा सकते हैं।

किसी वस्तु, व्यक्ति, सामग्री या खाद्य पदार्थ के न मिलने पर व्यक्ति का असहज महसूस कर असमान्य व्यवहार करना इस बात का संकेत है कि व्यक्ति को उनकी लत लग चुकी है। किसी भी प्रकार की लत में पड़े लोग अपने भविष्य की ज्यादा चिंता नहीं करते । कुछ देर के आनंद प्राप्ति के लिए, वह अपना सब कुछ दाव पर लगाने से भी पीछे नहीं हटता है। लत डालने वाली चीजों का व्यक्ति के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

लत के प्रकार

- नशीले पदार्थों की लत– लत की जब भी बात होती है, हमारे मन में सबसे पहले शराब, हिरोइन, कोकिन, भांग, चरस, ब्राउन सुगर आदि मादक पदार्थ आते हैं। यह सभी ऐसी गुलाम बनानेवाली लतें है जिससे व्यक्ति जीवन भर आजाद नहीं हो पाता है।
- जुआ खेलने की लत– जुआ खेलना एक बहुत भयंकर लत है। इस लत में पड़ा व्यक्ति अपना घर-बार सब गिरवी रख सकता है।
- मोबाइल, इंटरनेट की लत– आधुनिक समय में बहुत अधिक संख्या में व्यक्ति मोबाइल व इंटरनेट की लत में पड़ कर, स्वयं का समय और स्वास्थ्य बर्बाद कर रहें हैं।
- धुम्रपान की लत– तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी, गुटखा यह नशीले पदार्थ व्यक्ति के मुख, फेफड़े और हृदय को क्षति पहुंचा सकते हैं।

आदत और लत में अंतर

आदत और लत के बीच बहुत पतली रेखा अंकित है। जिससे लोगों को ऐसा लगता है आदत और लत एक ही विषय है पर ऐसा नहीं है। आदत पर हमारा नियंत्रण हो सकता है, जबकि लत पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता है।

- आदत का अर्थ– हाथ के नाखून चबाना, पैर हिलाना, व्यक्ति की आदत हो सकती है लत नहीं। यकीनन इससे व्यक्ति को बहुत अधिक नुकसान नहीं पहुंच सकता है।
- लत का अर्थ– किसी आदत के सीमा पार कर जाने पर वह लत का रूप ले लेता है। नशा व्यक्ति का जीवन नष्ट कर सकता है; इस बात का ज्ञान होने पर भी व्यक्ति हर हाल में नशीले पदार्थ का सेवन करता है। किसी व्यक्ति की मित्रता से हमें उस विशेष व्यक्ति की आदत हो सकती है, पर उस विशेष व्यक्ति की आदत में उसकी गुलामी करने लगना इस बात का इशारा है की हमें उस व्यक्ति की लत पड़ चुकी है।

लत की पहचान या लक्षण

- व्यक्ति जिस वस्तु की लत में पड़ा है, उसके अभाव में वह असमान्य बर्ताव करता है और उसका आत्मविश्वास कमजोर पड़ने लगता है।
- व्यक्ति को बहुत अधिक घबराहट होती है । इसके अलावा उसे गुस्सा, अनिद्रा, अनियमित रक्तचाप, बेचैनी, शरीर में दर्द, भूख न लगना, कम्पन, उल्टी तथा चिड़चिड़ापन होता है।
- व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक तकलीफ होने पर भी व्यक्ति अपनी लत को नहीं छोड़ता है।
- मादक पदार्थों की लत के चपेट में आ जाने पर निश्चित समय की तुलना में दवाईयों का सेवन करने की अवधी बढ़ जाती है।
- जिस भी चीज की लत है हमेशा उसका चिंतन होता रहता है और किसी विशेष काम पर ध्यान नहीं लगता ।
- व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है, वह लत के प्रभाव में पहले के अपेक्षा असमान्य व्यवहार करते हैं।
- पैसे न होने पर भी अपने लत की पूर्ति के लिए हर संभव प्रयास कर उसे प्राप्त करना।
- स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं जैसे कमजोरी, नेत्र संबंधी समस्या, वजन घटना आदि का शरीर में व्याप्त होना।
- अपने लत को पूरा करने की प्रबल इच्छा का होना।
- ऐसे लोगों से मित्रता करना जो उनके लत में उनका साथ दे सके।
- समाज परिवार तथा व्यवसाय में विशेष रुचि न रखना और उनसे दूर होते चले जाना।
- अपने लत की पूर्ति के लिए कोई भी गलत कार्य करने के लिए तैयार रहना।

लत पड़ने के प्रमुख कारण

- आनंद की प्राप्ति– चिंता, शोक, बोरियत, अवसाद (Depression) से भागते हुए व्यक्ति आनंद की प्राप्ति के इच्छा से किसी वस्तु, कार्य, संसाधन या पदार्थ का उपयोग नियमित रूप से करने लगता है। यह लत का कारण है।
- संगति– व्यक्ति की संगति (दोस्त) आदमी के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालती है। हम जिन्हें दिल से चाहते हैं, उनके स्वभाव से प्रभावित हो कर हम भी वह कार्य करने लगते हैं जो कार्य हमारे मित्र करते हैं।
- दिखावा– शराबघर जाना, देर रात पार्टी कर शराब पीना, जुआ खेलना तथा अन्य बुरी आदतों को युवा पीढ़ी आधुनिकता का नाम देती है। इस वजह से भी कुछ व्यक्ति, लोगों को दिखाने मात्र के लिए इन बुरी आदतों को पालते हैं। यह दिखावा बाद में इनकी जरूरत का रूप ले लेती है।

लत (एडिक्शन) के दुष्परिणाम

लत के वजह से व्यक्ति की कार्य दक्षता पर असर पड़ता है, लोगों के साथ लड़ाई-झगड़ा करना, कार्यस्थल पर अक्सर अनुपस्थित रहना, नौकरी से निकाला जाना, अनुशासनहीन होना, दूसरों के साथ गलत व्यवहार, सोचने समझने की शक्ति का कम होना। इन सब कारणों की वजह से व्यक्ति की समाजिक प्रतिष्ठा में कमी आती है, तथा उसे अनेक तरह की आर्थिक परेशानियों से गुजरना पड़ता है।

लत लगने का जीवन पर प्रभाव

वास्तव में व्यक्ति के पास सब कुछ होने के बाद भी यदि उसे किसी चीज की लत है, तो उसके पास कुछ नहीं रह जाता। वह अपने जीवन में जो कुछ प्राप्त कर सकता है, लत के वजह से उससे मीलों दूर होता चला जाता है। लत के प्रभाव से अपनी बुद्धि खोकर व्यक्ति अपने हितैषियों के साथ भी बुरा व्यवहार करने लगता है। इस वजह से लत के शिकार व्यक्ति से सभी दूर होते चले जाते हैं। किसी भी प्रकार की लत हमारा समय, पैसा और जीवन सब कुछ नष्ट कर देती है।

लत लगने से हानि

- बुरे लत का शिकार हो जाने पर व्यक्ति का पारिवारिक जीवन संकट में पड़ सकता है। उसके अपने उससे दूर हो सकते हैं।
- किसी लत के चपेट में आ जाने से व्यक्ति के व्यवसायिक जीवन पर भी गहरा असर पड़ता है। सामान्य व्यक्ति की तुलना में लत से पीड़ित व्यक्ति के कार्य कुशलता में कमी आ जाती है।
- व्यक्ति के स्वभाव में किसी चीज की लत के विकसित होने पर यह व्यक्ति के स्वास्थ्य को हानि पहुंचा सकती है।
- किसी चीज की लत के वजह से व्यक्ति अपने सहकर्मी, सहपाठी से पदोन्नती में बहुत पीछे रह जाते हैं।
- समाज ऐसे व्यक्ति को सम्मान नहीं देता जिसे किसी चीज की लत हो।
- यदि हमें किसी बुरी चीज की लत है, इस स्थिति में लोग हमारे मित्र भी नहीं बनना चाहते।

लत से मुक्त होने के उपाय

- किसी भी प्रकार के लत से मुक्त होने के लिए सर्वप्रथम हमें स्वयं में दृढ़ इच्छा शक्ति का होना अत्यंत आवश्यक है।
- नशाविमुक्ति केन्द्र व अन्य लत-सुधार के शोध संस्थान की सहायता से नशे की लत छोड़ना संभव है।
- मनोविज्ञान उपचार का सहारा लेना कारागर साबित हो सकता है।
- प्रेरक साक्षात्कारों (Motivational Interview) को देखना, सुनना लत से छुटकारा पाने में हिम्मत प्रदान करता है।
- अपनी उम्र से बड़े व समझदार लोगों से इस विषय में बात करके समस्या का हल निकाला जा सकता है।
- अपना मन अन्य रोचक कार्यों में लगाए जिससे अपको आनंद की प्राप्ति हो जैसे- कविताएं लिखना, बाइक राइड पर जाना, नये-नये स्थलों पर घूमना, स्विमिंग करना, संगीत या नृत्य सिखना आदि।

निष्कर्ष

व्यक्ति के खुशहाल जीवन में, किसी भी प्रकार का लत बहुत बड़ी बाधा है। किसी सामग्री, कार्य या वस्तु की आदत हमें संभवतः लाभ पहुंचा सकती है पर इन तमाम चीजों की लत से हमें हानि के अलावां और कुछ नहीं प्राप्त होगा।

हमारे पास सब कुछ होते हुए भी, लत में पड़ जाने के पश्चात कुछ नहीं रहता। बेहतर होगा हम किसी सामग्री विशेष को अपनी जरूरत न बनाए और अपने प्रिय जनों को भी किसी प्रकार के लत में न पड़ने की सलाह दे।

संदर्भ

- Szalavitz M (2016). Unbroken Brain. St. Martin's Press. ISBN 978-1-250-05582-8.
- Malenka RC, Nestler EJ, Hyman SE (2009). "Chapter 15: Reinforcement and Addictive Disorders". In Sydor A, Brown RY (eds.). Molecular Neuropharmacology: A Foundation for Clinical Neuroscience (2nd ed.). New York: McGraw-Hill Medical. pp. 364–375. ISBN 9780071481274.
- Perry CJ, Zbukvic I, Kim JH, Lawrence AJ (October 2014). "Role of cues and contexts on drug-seeking behaviour". British Journal of Pharmacology. 171 (20): 4636–72. doi:10.1111/bph.12735. PMC 4209936. PMID 24749941.
- Volkow ND, Fowler JS, Wang GJ, Swanson JM, Telang F (2007). "Dopamine in drug abuse and addiction: results of imaging studies and treatment implications". Arch. Neurol. 64 (11): 1575–79. doi:10.1001/archneur.64.11.1575. PMID 17998440.
- "Drugs, Brains, and Behavior: The Science of Addiction". National Institute on Drug Abuse.
- "Understanding Drug Abuse and Addiction". National Institute on Drug Abuse. November 2012.
- Malenka RC, Nestler EJ, Hyman SE (2009). "Chapter 15: Reinforcement and addictive disorders". In Sydor A, Brown RY (eds.). Molecular Neuropharmacology: A Foundation for Clinical Neuroscience (2nd ed.). New York: McGraw-Hill Medical. pp. 384–85. ISBN 978-0-07-148127-4.

छायावाद का राष्ट्रीय स्वर

भास्कर मिश्र

शोध छात्र, विश्व भारती, शान्तिनिकेतन, प० बं०-731235

छायावाद हिन्दी साहित्य के इतिहास का वह कालखण्ड है जिसको मानव-समाज की स्तंत्रता, मुक्त चिन्तनशीलता, विश्व कल्याण कामना और व्यापाक रागबोध और जिजीविषा का इतिहास कहा जा सकता है। यह युग अपने आप में कई संस्कृतियों और दर्शन को समाये हुए है, और आध्यात्मिक चिन्तन से लेकर समकालीन काव्य की रूपरेखा का वर्णन बड़ी ही सहजता के साथ देखा जा सकता हैं। छायावाद के कवि प्राय: सत्ता से अलग रहकर अपनी सत्यनिष्ठा और सामाजिकता का परिचय देते रहे है, यही कारण है कि उनके काव्यात्मक इतिहास में कला के उत्कर्ष के साथ-साथ समसामयिक जीवन बोध भी समाहित था।

छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता का मध्यवर्ती उत्कर्ष काल है। भारतेन्दु युग में हिन्दी कविता अपने स्वरूप को निखारती है। तो वही द्विवेदी युग में व्याकरण संस्कार से सुसज्जित होते हुए, छायावाद में अपने कलात्मक उत्कर्ष को प्राप्त होती है। इस युग की कविता में जो कलात्मक व सृजनात्मक विकास हुआ, वह अन्य युग में नहीं देखने को मिलता है। प्रकृति तथा मनुष्य का सम्यक सह अस्तित्व इस युग की विशेषता रही है। प्रकृति, प्रेम, रहस्य और दर्शन के दुर्लभ चित्र भी इस युग की कविता के प्रमुख विषय रहे हैं। इस युग ने अपनी समस्त जड़ता को मिठाकर नवीन युग का मार्ग प्रशस्त किया। यह कहना गलत न होगा कि छायावादी कवि काव्य के स्वरूप को स्थूल रूप नहीं अपितु सूक्ष्म रूप में ग्रहण करने के पक्षधर रहे है। इस युग कवि बिना किसी पूर्वाग्रह के मानव और मानवधर्म के आलोक में अपने काव्य संसार को संचालित है। छायावादी कवियों का समय मानवीय संवेदना, मुक्त मनुष्य के हृदय की सुन्दर अभिव्यक्तियों का समय कहा जा सकता है। ये कवि भी सत्य के अन्वेशक रहे हैं किन्तु उनका सत्य सौन्दर्य मंडित सत्य पर आधारित है। जिसे प्रसाद की भाषा में हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य कहा जा सकता है। आज के दौर मे यदि हम छायावाद पर विचार करें तो हमें पायेगे कि छायावाद कल्पना और सौन्दर्य मंडित जीवन के मार्मिक सत्यों की अभिव्यक्ति का पर्याय है।

साहित्यिक दृष्टि से जिसे हम छायावाद कहते है, वहीं ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से उसे गाँधीयुग कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि छायावादी, काव्य गाँधी युग में भावी-भविष्य की संकल्पना के सपने देख रहा था। छायावाद का उद्‌भव जिन परिस्थितियों में हुआ उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन अपने चरम पर था। गाँधी जी अपने असहयोग, और सत्याग्रह और आन्दोलन के माध्यम से औपनिवेशिक शासन सत्ता की मुक्ति का अभियान बड़े जोर-शोर से संचालित कर रहे थे। फिर भी सम्पूर्ण भारतीय जनमानस विदेशी सत्ता से परिचालित था। यही कारण था कि स्वतन्त्रता जैसे मूल्य को जीवित रखने तथा उसे प्रतिष्ठित और संचालित करने की मानसिकता छायावाद के अन्दर समाहित थी। छायावादी कवियों के इसी युगांतकारी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति अपने काव्य जगत में की। कुछ आलोचक इसपे यह अरोप लगाते रहे है कि स्वतंत्रता के सघंनतम काल में रचे जाने के बावजूद यह काल राष्ट्र धर्म की बात करने में पीछे रहा। स्थूल दृष्टि से देखने पर ऐसा लगना स्वाभाविक है, किन्तु गहन विश्लेषण से सिद्ध होता है कि यह काव्य अपने समय के सांस्कृति और राष्ट्रीय सन्दर्भो को धारण ही नहीं करता बल्कि उसकी प्रगति का नेतृत्व भी करता हैं। 1918 के बाद काल राष्ट्रीय चेतना का काल माना जाता हैं। और इसी समय छायावाद अपना आकार भी ग्रहण कर रहा था। तो तत्कालीन आन्दोलन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। छायावाद के उदय और उसके स्वरूप पर विचार करते हुए दिनकर ने अपने मिट्‌टी ओर की में करते है कि "आकाश में आच्छन्न होने वाले बादल जिस क्रांति से उमड़े थे, छायावाद भी ठीक उसी क्राति का पुतला था। जिस क्रांतिकारी भावना के कारण बाह्य जीवन में राजनीतिक दुरवस्थाओं की अनुभूतियाँ तीव्र होती जा रही थी, वही भावना साहित्य में छायावाद का रूप धारण कर खड़ी हुई थी और मनुष्य की मनोदशा विचार एवं सोचने की प्रणाली में विप्लव की सृष्टि कर रही थी।"[1]

स्वधर्म, स्वभूमि और स्वतंत्रता के प्रति आग्रही ये कवि अपने नैसर्गिक राष्ट्र भावना से कही विलग नहीं बल्कि बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे तथा अपने राष्ट्रीय अस्मिता को मजबूती भी प्रदान करते थे। ये केवल प्रेम करूणा जैसे बुनियादी भावों के सृजनकर्ता ही नहीं बने अपितु अपने राष्ट्र धर्म के निर्माता भी बने। छायावादी कविताएं पलायान कि नहीं बल्कि व्यापक दृष्टि बोध से देखने पर पता चलेगा कि ये कविताएं राष्ट्रीय चेतना से संपृक्त है।

छायावाद का समय साहित्य के मूल में भारतीय समाज के नवजागरण का उत्थान नजर आता है। यह समय भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता संग्राम, सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलन, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्टीय परिस्थितियों के प्रभाव का प्रतिफल था। यह समय जहाँ एक तरफ भारत, विदेशी सत्ता से दो-दो हाथ कर रहा था, जिससे भारतीय संस्कृति और आर्थिक दशा दिन-प्रतिदिन खण्डित होती जा रही थीं। तो वही दूसरी ओर राष्ट्रीय नवजागरण, स्वदेशाभिमान तथा सृजनात्मकता का भी समय है। इस नवीन चेतना और भारतीय नवजागरण के बीच छायावादी कवि अपनी खोई हुई अस्मिता को प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्षरत रहें। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में जिस राष्ट्रीयता का उद्‌भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था, वह कई देशभक्तों सत प्रयास का परिणाम था।

सुधारवादी आन्दोलन का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय जागरण ही था राजनैतिक पटल पर गाँधी जी देश को राजनीतिक दृष्टि से जागृत कर रहे थे, वही दूसरी तरफ भारतीय भाषाओं के बड़े कवि भारतवासियों कि सोई हुई आत्मा को जागृत करने का लगातार सफल प्रयास कर रहे थे। "इस समय छावावाद युग में हिन्दी कविता के दो रूप दिखाई पडे एक तो वह जिससें देश की स्वाधीन भावना मुक्त कण्ठ से मुखरित हो रही थी, दूसरी वह जिसमें धैर्य, समाज साहित्य के रूढ़ियों से विमुख होकर कवि अपनी सत्ता को स्वछन्द रीति से प्रतिष्ठित करने का आग्रह कर रहे थे।"[2]

औपनिवेशिक शासन के बढ़ते प्रभाव ने भारतवासियों के लिए चिन्ताएं तो बढ़ाई किन्तु वहीं कवियों ने समस्याओं के समाधान के लिए भारत के स्वर्णिम अतीत की ओर दृष्टिपात किया। सर्वश्रेष्ठ भारतीय संस्कृति में कई ऐसे मनीशी हुए जिनके विराट व्यक्तित्व से प्रेरणा लेकर इस युग के कवियों ने, छायावादी काव्य जगत एवं समस्त भारत में आशा की नई किरण संचारित की। विदेशी सांम्राज्यवाद के विरूद्ध जो तत्कालीन व्यापक आन्दोलन चल रहा था, उसका वास्तविक प्रतिबिम्ब छायावाादी काव्य में देश प्रेम जागरण और आत्म गौरव में रूप में स्पष्ट दिखाई देने लगा।

कोई भी कविता अपने समकालीन के साथ कई स्तरों पर सम्बन्ध बनाती है। जिसमें कुछ कविताएं ऐसी होती है जो अपने समय की जीवन्त घटनाओं को बताकर इतिहास बोध का परिचय देती हो और इन्ही घटनाओं से यह ज्ञात होता है कि उक्त कविता अपने समकालीन यर्थाथ से कितना सरोकार रखती है इसके अतिरिक्त कुछ कविताएं ऐसी होती है जो अपने समय की दिन चर्या नहीं बताती बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक सत्य का गहराई से पड़ताल करती है ऐसी कविताएं स्थूल दृष्टि से देखने पर से कटी हुई नजर आयेगी, पर वास्तव में सत्य नही हैं। क्योंकि ये कविताएं समाज के अन्त स्थल से जुड़ी हुई होती है छायावादी कविता भी इसी प्रकार अपने समाज से तदात्म्य स्थापित करती हुई चलती हैं।

छायावाद में जागरण शब्द का प्रयोग लगभग सभी कवियों ने किया जो उनके राष्ट्र के प्रति सचेतनता का प्रणाम हैं। यह जागरण सूक्ष्म रूप में सांस्कृतिक नवजागरण और राष्ट्रीय राजनीतिक जागरण है। जयशंकर प्रसाद कहते है कि -

"बीती बिभावरी जाग री"

अम्बर पनघट में डुबो रही तारा घट उशा नागरी[3]।-लहर

निराला कहते है कि- "जागो फिर एक बार"[4], राग-विराग

महादेवी वर्मा कहती है कि-"जाग तुझको दूर जाना"[5]

छायावादी काव्य राष्ट्रीय जागरण की मूल चुनौतियों को गहराई से परखता है। इस काल खण्ड का कवि जानता था कि सदियों से भारत गुलामी की दासता से जकड़ा हुआ था जिससे उसके जातीय व सांस्कृतिक स्वभिमान नष्ट हो चुके थे, वहाँ जागरण की प्रथम शर्त राष्ट्रीय स्वभिमान का जागृत होना है। छायावादी कवि अतीत से रचनात्मक ऊर्जा ग्रहण करके वर्तमान के संघर्ष से जूझना जानता है अत: अतीत के गौरव गान के माध्यम से छायावादी कवि भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय स्वर का सम्बल प्राप्त करते हुए जड़ताओं पर प्रहार करता हुआ, विश्वगुरू भारत की कल्पना को साकार करने में उन्नमुख होता है। अत: अतीत का गौरव गान उसके यहाँ बहुतायत मात्रा में मिलता है निराला व प्रसाद क्रमश: कहते है कि -

1. "पश्चिम की उक्ति नहीं, गीता है, गीता है"[6]

2. "किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यही,
कहीं से हम आये थे नहीं, हमारी जन्मभूमि है यही।"[7]

- भारत महिमा

छायावादी कवि यह बात भली-भाँत जानते थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक वैश्विक स्तर पर एक मजबूत मन: स्थिति का होना आवश्यक है। वह अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय समस्याओं का विश्लेषण मात्र ही नहीं करते बल्कि उससे टकराते हुए भावी भविष्य के लिए नवीन मार्ग प्रश्स्त करते है जिस प्रकार द्विवेदी युग में "भारत-भारती" चेतना की संवाहक बनी वैसे ही छायावादी कवियों की कविताएं भी आजादी की मांग को मुक्त कण्ठ से कहना शुरू कर दी।

1. "हिमाद्री तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वन्तत्रता पुकाराती,"[8]

2. "अरूण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा"[9]

छायावादी कविता अपने ढ़ग की अनूठी कविता थी जो सामान्य कविताओं से कहीं आगे कि थी। इस युग की कविता मात्र अपने दायित्व का बोध करके आगे बढ़ने वालो में न थी बल्कि उससे अलग भी उसकी चिन्ता राष्ट्रीय मन की थी। वह राष्ट्रीय सांस्कृतिक समस्याओं का समाधान भी अपने प्रज्ञा से करती थी। इस युग के कवि समाजिक विद्रुपताओं की ओर केवल ध्यान नहीं दिलाते वरन् उसमें वांछनीय परिवर्तन करके जन सामान्य के लिए सर्व सुलभ भी बनाते है। "राम की शक्ति पूजा" की मूल समस्या यही है कि 1936 ईस्वी के भारत में शक्ति निरर्थक प्रतीत होने लगती है तो निराला उसका नवीन मार्ग सुझाते है:-

"शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक ना सिद्धि हो रघुनन्दन
रावण अशुध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चिय तुम हो सिद्ध करोगें उसे ध्वस्त"

-राम की शक्ति पूजा।

छायावाद की राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र तक सीमित नहीं थी अपितु सम्पूर्ण मानवता के स्तर पर सक्रिय थी। इसकी प्रेरणा में कही न कही भारतीय संस्कृति की दिव्य ज्ञान परम्परा जो **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना से परिचालित थी। उसको आत्मसात करते हुए वैश्विक हितों की बात करती है। जहाँ केवल निजता हावी नहीं रही बल्कि सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना की जाती है।

"औरों को हँसते देखों मनु, हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ"[11]

छायावादी साहित्य में देश भक्ति की भावना व्यापाक रूप में पायी जाती है। सांस्कृतिक उत्थान, सामाजिक जागृति के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण के स्वर भी बहुतायत मात्रा में पाए जाते है। वस्तुत: छायावाद के उन्मेश के पीछे दो अनुरोध सक्रिय थे इतिहास और संस्कृति जो क्रमश: राष्ट्रीय और आध्यात्मिक थे विदेशी शासन सत्ता के आगमन से भारतीय संस्कृति जो कुछ समय के लिए जबरन अग्राह्य बना दी गयी थी जिससे भारतीय जन जीवन ईश्वर और धार्म के बारे में जहाँ एक तार्किक अपेक्षाकृत व्यापक दृष्टिकोण निर्मित करने की मानसिकता के दौर से गुजर रहा था वही राष्ट्रीय स्तर पर सम्पूर्ण देश को संगठित औरं जागृत भी करना चाहता था, इस कार्य को आसान छायावाद के चार स्तभों ने अपने मजबूत आत्मबल के माध्यम से किया। इस प्रकार हम देखते है कि छायावाद राष्ट्रीय जागरण को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देता है। तथा राष्ट्रीय चेतना की भावना समग्र विश्व में फैलाकर अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति को और उत्कर्ष तक पहुँचा देता है, अत: छायावाद का राष्ट्रीय स्वर व्यापक अर्थ में साामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना तथा राष्ट्रीय चेतना का संवाहक बना।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विनय मोहन शर्मा-साहित्यावलोकन-प्र0साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद-पृष्ठ सं0-112
2. विनय मोहन शर्मा : साहित्यावलोकन -प्र0सा0भ0लि0 इलाहाबाद- पृष्ठ सं0-112
3. लहर-जयशंकर प्रसाद-लोकभारती प्रकाशन- पृष्ठ सं0-33
4. राम विराग-सं0 रामविलासशर्मा- लोकभारती प्रकाशन- पृष्ठ सं0-42
5. महादेवी वर्मा-कविता कोश
6. जागो फिर एक बार-कविता कोश
7. भारत महिमा-जयशंकर प्रसाद-कविता कोश
8. कविता कोश
9. कविता कोश
10. राग विराग सं० रामविलास शर्मा-पृष्ठ सं०-100
11. कामायनी जयशंकर प्रसाद कर्म सर्ग

राधाकृष्ण : एक प्रसिद्ध कथाकार

प्रमोद कुमार

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, सरिया कॉलेज, सरिया, गिरिडीह-825320 (झारखण्ड)

सारांश

झारखण्ड के प्रेमचंद कहे जाने वाले राधाकृष्ण अंगुलियों पर गिने जाने वालों में शामिल प्रसिद्ध कथाकार थे। राधाकृष्ण 1929 ई. से जीवन पर्यंत (03 फरवरी, 1979 तक) लिखते रहे। विपरीत परिस्थितियों में भीषण आर्थिक संकट का सामना करते हुए सार्थक लिखते रहना इनके लिए एक जीवट भरा कार्य था। वे साधारण साहित्यकार नहीं थे। वे श्रष्टा और द्रष्टा के प्रतिमूर्ति थे। उनकी सृजन-परिधि में वह सबकुछ शामिल था जो जीवन, व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, भाषा, साहित्य, संस्कृति और धर्म- अध्यात्म के लिए अक्षुण साबित हो। उन्होंने अपने जीवन में विशाल साहित्य-सृजन किया, जिसमें कहानियाँ, उपन्यास, हास्य-व्यंग्य, बालोपयोगी साहित्य, नाटक, रेडियो नाटक, प्रहसन, संस्मरण आदि अनेक विद्याओं की रचनाएँ सम्मिलित है। राधाकृष्ण को अपने जीवन काल में साहित्यिक क्षेत्र में जो पहचान मिलनी चाहिए थी वह पहचान नहीं मिल पाई थी। सही मायने में राधाकृष्ण का वास्तविक जीवन उनके मरने के बाद ही आरंभ होता है। कथाकार राधाकृष्ण ने अपनी सीमित रचनाओं में इस समाज से जुड़े असीमित पक्षों का जो उद्घाटन एवं सजीव चित्रण किया है वह अपने आप में श्लाध्य है। जरूरत है कि हम प्रेमचंद के चहेते राधाकृष्ण द्वारा किये गए ईमानदार प्रयासों को शोधा एवं साहित्य की दिशा में एक नई पहचान दिलाएँ।

की-वर्ड: राधाकृष्ण का साहित्य, प्रसिद्ध कथाकार, कहानी, उपन्यास, मूल्य, झारखण्ड के प्रेमचंद, यथार्थवाद

प्रस्तावना

राधाकृष्ण का जन्म रांची के अपर बाजार में 18 सितम्बर 1910 ई. को हुआ था। इनके पिता मुंशी राम जतन लाल कचहरी में मुंशी का काम किया करते थे तथा इनकी माता का नाम सूर्यवंशी कुंवर था जो स्वभाव से काफी सरल थी। मुंशी रामजतन लाल के कुल छह लड़कियाँ थीं और एकमात्र पुत्र राधाकृष्ण जो सबसे छोटे थे। एकमात्र पुत्र राधाकृष्ण को घर वालों से काफी लाड़-प्यार मिलता था। राधाकृष्ण की छोटी दीदी मानस (माना) थी जो कविता लिखती थी। राधाकृष्ण इनसे कविता, कहानी सुना करते थे। एक दिन पूजा करते समय मानस की साड़ी में आग लग गयी जिससे वह बुरी तरह जल गई और अचानक मृत्यु हो गई। मुंशी राम जतन लाल पुत्री-बिछोह नहीं झेल सके और 5 जुलाई 1916 को उनकी मृत्यु हो गई। इस समय राधाकृष्ण मात्र छह वर्ष के थे। पिता की मृत्यु के उपरांत इनका पूरा परिवार घोर संकट में पड़ गया। इनकी पांच पुत्रियों का विवाह पूर्व में हो चुका था। घर में अकेली राधाकृष्ण की माँ और खुद राधाकृष्ण बच गए थे। आर्थिक संकट से राधाकृष्ण की शिक्षा-दीक्षा काफी प्रभावित हुआ। विद्यालय में देने के लिए पैसे नहीं थे, जिसके कारण कई स्कूलों में उनका नाम लिखा व काटा गया। किसी प्रकार कुटौना-पिसौना करके मां घर चलाती थी। राधाकृष्ण आत्मकथ्य 'अपनी बात' में अपनी दयनीय दशा पर कहते हैं- "हमलोग बड़ी गरीबी के बीच गुजर रहे थे। पिताजी मर चुके थे। घर में कर्ज और गरीबी छोड़ कुछ भी नहीं बचा था। न पहनने को कपड़ा और न खाने को अन्न। किसी प्रकार कुटौना-पिसौना करके मां गरीब-गुजारा चला लेती थी। पास पड़ोस के लोग हमलोगों को तुच्छ समझते थे। अक्सर हमलोगों की उपेक्षा-अवहेलना करके हमारा मजाक उड़ाना ही उन लोगों को पसंद था। खेलते समय हमजोली लड़के भी मुझसे घृणा करते थे। फलत: मैं उन मित्रों के साथ रहना अच्छा नहीं समझता था जो गरीब होने के कारण ही मुझसे घृणा करते थे। वे घृणा और उपेक्षा को ही अपना महत्व समझते।"[1] राधाकृष्ण के बाल्य जीवन में जो संघर्ष शुरु हुआ वह आगे कई वर्षों तक जारी रहा। आर्थिक संकट के कारण स्कूली शिक्षा मात्र चौंथी कक्षा तक ही हो पाई। इसके बाद तो औपचारिक शिक्षा पर पूर्णत: विराम लग

गया था। वे इस संबंध में कहते हैं- "स्कूल की पढ़ाई चल नहीं पाती थी। पढ़ने-लिखने की रूचि तो थी, पर स्कूल की फीस दे सकना पार नहीं लगता था। आज इस स्कूल में हूँ तो कल उस स्कूल में गया। इसी तरह किसी प्रकार चल रहा था। अभाव के कारण न जाने कितने स्कूलों में मेरा नाम लिखा गया और काटा गया। स्कूली पढ़ाई ठीक से चल नहीं पाती थी। पर फिर भी मेरा अध्ययन आरंभ हो गया। शहर में एक पुस्तकालय था। नाम था उसका 'हिन्द स्वाधीन पुस्तकालय'। उस पुस्तकालय का मैं सदस्य था। वहां जाकर जो पढ़ता सो पढ़ता ही था, घर में भी किताबें लाता और पढ़ा करता। सच पूछिये तो वहीं के अध्ययन ने हमारी रूचि को विकसित और परिष्कृत किया।"[2]

ऐसे ही राधाकृष्ण स्वाध्याय के माध्यम से अपनी पढ़ाई जारी रखे। जैसे-जैसे वे बड़े होते गए घर की जिम्मेदारी भी बढ़ती गई। जीवकोपार्जन के लिए इन्होंने बाजार में नमक बेचा, फोटोग्राफी की और कचहरी में मुहर्रिरी सीखी। उन्होंने रांची से लोहरदगा जाने वाली राधेश्याम बस में 1937 ई. तक कंडक्टरी का काम भी किया। बस कंडक्टर रहते हुए वे रात में लेखन कार्य भी किया करते थे। राधाकृष्ण को लोग घर में प्यार से लाल बाबू कहा करते थे। घर में माँ और माना दीदी से वे कहानियाँ सुनते थे। इस प्रकार साहित्य के प्रति इनकी रूचि बढ़ती गई। यही रूचि के कारण राधाकृष्ण को अन्य काम में मन नहीं लगता था। राधाकृष्ण का सक्रिय साहित्यिक जीवन 16 वर्ष की उम्र (1926 ई.) से आरंभ होता है। इसी समय से जगन्नाथ प्रसाद 'मृणाल' की रचनाओं को राधेकृष्ण अपने हाथों से लिखते थे। इसी वर्ष स्थापित संतुलाल पुस्तकालय में राधाकृष्ण अनेक साहित्यकारों के बीच बैठकर साहित्यिक चर्चा ओर पढ़ाई किया करते थे। राधाकृष्ण से पूर्व उनके परिवार में कोई भी साहित्यिक व्यक्ति नहीं रहा। इस संबंध में राधाकृष्ण स्वयं लिखते हैं- "लिखने की लालसा मेरे मन में तब से थी, जब मैं ठीक से पढ़ना भी नहीं जानता था। प्रतिदिन रात के समय में अपनी माँ से कहानी सुनाने की जिद ठान देता और जब वह कहानी कहती तो मेरा हृदय न जाने किस तरह की कल्पनाओं से भर उठता।"[3]

राधाकृष्ण वैसे तो कई विद्याओं में रचनाएँ लिखे अपितु उन्हें कथाकार के रूप में विशेष ख्याति मिली। इनकी कहानियां काफी प्रसिद्ध है। ये आरम्भ में घोष-बोस-बनर्जी-चटर्जी उपनाम से हास्य-व्यंग्य लिखा करते थे। प्रेमचंद इनकी कहानियों के बहुत बड़े प्रशंसक थे। वे राधाकृष्ण से प्रभावित होकर कहे थे- "मैंने छोटानागपुर के कोयला खान से एक हीरा ढूंढ निकाला है।... यदि हिन्दी के उत्कृष्ट कथा शिल्पियों की संख्या काट-छांट कर पांच भी कर दी जाये, तो उनमें एक नाम राधाकृष्ण का होगा।"[4] सम्भवत: इतने कम उम्र के किसी युवा कथाकार की ऐसी प्रशंसा शायद कभी हुई होगी। राधाकृष्ण जब लखनऊ जाकर प्रेमचंद से मिले थे तो प्रेमचंद उन्हें देखकर अचंभित हो उठे। उनके मन में था कि राधाकृष्ण कोई उम्रदराज व्यक्ति होगा जबकि उस समय राधाकृष्ण की उम्र मात्र 18 वर्ष की थी। 1930 ई. से शुरु हुए प्रेमचंद की 'हंस' पत्रिका के प्रवेशांक में राधाकृष्ण की कहानी 'धोखा' छपी और पुरस्कार स्वरूप सौ रुपये का पारिश्रमिक भी मिला। इस तरह राधाकृष्ण की कहानियां 'हंस' के अलावा अन्य पत्रिकाओं में भी छपने लगी।

राधाकृष्ण की पहली कहानी 'सिन्हा साहब' मात्र 19 वर्ष की उम्र में मार्च, 1929 को 'हिन्दी गल्प माला' में प्रकाशित हुई और तब से वह अजीवन लिखते ही रह गये। महावीर, माया, संदेश, वाटिका, हंस, कहानी, साहित्य विवेचन, जागरण, झारखण्ड, आदिवासी जैसी अनेक पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। इन्होंने केवल कहानियों, उपन्यासों, हास्य तथा व्यंग्य की रचनाओं और नाटकों को ही नहीं लिखा अपितु बालोपयोगी, किशोरोपयोगी तथा व्यस्कों के लिए भी काफी लेखन किया। इन्होंने महावीर, माया, कहानी, आदिवासी जैसे अनेक पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। उनकी अनेक रचनाएँ आज भी अप्रकाशित है।

एक कथाकार के रूप में राधाकृष्ण काफी अधिक प्रसिद्ध हुए। इनकी कथा-यात्रा प्रेमचंद युग से आठवें दशक तक निरंतर चलती रही। इनके पांच कहानी संग्रह - 'रामलीला' (1946 ई.), 'सजला' (दो खण्ड में, 1951 ई.), 'गल्पिका' (1956 ई.), 'गेंद और गोल' (1975 ई.) है जिसमें में कुल 84 कहानियाँ संकलित है। इसके अलावा उपन्यासों में 'फुटपाथ' (1951 ई.), 'रूपान्तर' (1952 ई.), 'बोगस' (1953 ई.), 'सनसनाते सपने' (1954 ई.) और 'सपने बिकाऊ है' (1963 ई.) काफी प्रसिद्ध है। डॉ० चंद्रेश्वर कर्ण लिखते हैं- "राधाकृष्ण मूलत: निम्न-मध्यवर्ग के कथाकार हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में इस वर्ग की समस्याएँ, इनकी त्रासदी, बेचैनी, असहायता को अभिव्यक्ति मिली है। यह कहानीकार का अपना वर्ग था, जिसमें वह जी रहा था। राधाकृष्ण की यादगार कहानियाँ वे हैं जिनमें मजदूरों तथा मामूली आदमियों की हताशा, पराजय, लाचारी तथा कुंठा को अभिव्यक्ति मिली है। उनकी कहानियाँ इस बात का स्पष्ट संकेत देती हैं कि आज आदमी के समक्ष जो संकट है, उसके मूल में पूंजीवादी अर्थतंत्र है।"[5]

इनकी कहानियों में एक ओर जहाँ मानवीय जीवन मूल्यों व आदर्शों का चित्रण मिलता है वहीं दूसरी ओर समाज के निम्न वर्गों को जीवन जीने के लिए संघर्ष करते दिखाया गया है। तीसरे स्तर की कहानियों में हास्य-व्यंग्य मिश्रण के सहारे जनविरोधी ताकतों

पर प्रहार होता है। इनकी कहानियों में जितने भी संघर्ष दिखते हैं उसका अनुभव कहीं न कहीं राधाकृष्ण ने अपने जीवन में किया था। श्रवण कुमार गोस्वामी लिखते हैं- "राधाकृष्ण की कहानियाँ इस बात की बानगी हैं कि उनमें जिस हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, अभिलाषा-हताशा, जिजीविषा, संघर्ष, विसंगति आदि का चित्रण है, वह उधार की अनुभूति न होकर लेखक का भोगा हुआ अपना यथार्थ है।"[6] इनकी यथार्थवादी कहानियों में 'कर्तव्य-पथ', 'अन्त', 'माँ-बेटी', 'सिर का दर्द', 'बहन', वरदान का फेर', 'लैला की शादी', 'क्या जाने आगे', 'राजा राम', 'मनुष्य और पशु', 'वसीयतनामा', 'लेखक की जिन्दगी', 'अवलम्ब', 'विटामिन-कम्पलेक्स', 'कोयले की जिन्दगी', 'मूल्य', 'पहली भीख', 'गरीबी की दवा' आदि काफी प्रसिद्ध है। इसमें 'माँ-बेटी' क्रूर तथा निर्मम यथार्थ की प्रसिद्ध मार्मिक कहानी है। यह कहानी प्रेमचंद के 'कफन' कहानी की तरह प्रभावशाली है। इस कहानी में मनोरमा अपनी मां की खातिर अंतत: कुछ भी करने को तैयार हो जाती है। एक बार वह मन-ही-मन कहती है- "यदि भगवान हैं तो वे बार-बार मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं और मैं बार-बार अनुत्तीर्ण होती जाती हूँ, अभी भी अनुत्तीर्ण होऊँगी। मुझे भगवान नहीं चाहिए मुझे मां चाहिए। अपनी माँ के ऊपर मैं सैकड़ों भगवान को न्योछावर कर सकती हूँ। मैं हजारों-लाखों भगवान को छोड़ दूंगी लेकिन अपनी मां को नहीं छोड़ूंगी। मैं भगवान का प्रेम नहीं जानती केवल अपनी माता का स्नेह जानती हूँ। यदि लाखों पाप करने से भी मेरी माँ बचेगी तो मैं उन पापों को करने से जरा भी नहीं डरूंगी।"[7] आदिवासी जीवन पर लिखी गई कहानियाँ भी काफी प्रसिद्ध हुई। इन कहानियों में 'मूल्य', 'कानूनी और गैर कानूनी', 'मुड़कर भी न देखा', 'ढुकू', 'धरती की प्यास', 'और जिन्दगी चलती रही, आदि उल्लेखनीय है। इनकी 'मूल्य' कहानी काफी प्रसिद्ध है। इस कहानी में आदिवासियों की उरांव जनजाति समाज के लोगों का दु:ख, संत्रास, संघर्ष एवं सादगी भरे पारंपरिक प्रेम का जीवंत चित्रण हुआ है। अरविंद कुमार कहते हैं- "मूल्य कहानी में आदमी और बैल में आदमी की हार होती है। गरीबी इतनी है कि दाम देकर बैल खरीद नहीं सकते और बैल कृषि की बुनियाद है तो आदमी को बेचकर बैल खरीद लो। भत्तू और दूगी अपनी बेटी दूलो को बैल खरीदने के लिए बेच देना चाहते हैं। यहाँ बैल हर हालत में महत्वपूर्ण है इसलिए दूलो के प्रेमी को उसे पाने के लिए बैल का स्थानापन्न होना स्वीकारना पड़ता है। दूगी भत्तू से कहती है- 'आज के इस जमाने में रहकर तुम आदमी की कीमत से बैल का दाम चाहोगे तो वह हो नहीं सकता।... आदमी के दाम से बैल का दाम हमेशा ज्यादा रहा करता है।"[8] राधाकृष्ण हिन्दी में जनजातीय जीवन के संभवत: पहले कहानीकार थे। इनकी कहानियों के अधिकांश पात्र निम्न मध्य वर्ग के हैं। इस वर्ग के समाज व लोगों की समस्याएँ जैसे- गरीबी, भुखमरी, रोग, मृत्यु, कुण्ठा आदि का अत्यंत सजीव व मार्मिक चित्रण इनकी कहानियों में हुआ है। इनकी अन्य कहानियों में 'गेंद और गोल', 'टिली', 'रामलीला', 'मैना', 'धीरज की परीक्षा', 'प्रतिक्रियाएँ', 'बुढ़िया गुलाबी', 'एक लाख सत्तानवे हजार आठ सौ अठ्ठासी', 'प्रोफेसर भीम भंटा राव' आदि महत्व व प्रभाव की दृष्टि से काफी प्रसिद्ध हुई। इनकी सभी कहानियां जीवन के यथार्थ को छूते हुए नैतिक व मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न कराता है।

राधाकृष्ण कहानियों के अतिरिक्त उपन्यास भी लिखे। इनके उपन्यासों का विषय गंभीर मुद्दों के अलावा हास्य से भी संबंधित है इनका 1951 में प्रकाशित 'फुटपाथ' उपन्यास यथार्थ जीवन पर लिखा एक गाथा है। हमारे देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा आज भी फुटपाथी जीवन के रंग एवं ढंग में संघर्ष करते मिल जाते हैं। इसका सफल चित्रण राधाकृष्ण ने इस उपन्यास में किया है। इनका 'रूपान्तर' (1952 ई.) सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। यह उपन्यास आध्यात्मिक भावभूमि पर लिखा गया है जिसमें भूमा तथा भूमि के श्रेय व प्रेय के द्वन्द्व को कथाकार ने दूर किया है। इनके शेष उपन्यासों में हास्य-व्यंग्य के माध्यम से समाज का चित्रण मिलता है।

कथाकार राधाकृष्ण ने अपनी विभिन्न रचनाओं में निम्न मध्यवर्ग, जनजातीय जीवन, कृषक समाज, मजदूर समाज के विभिन्न पक्षों एवं समस्याओं को चित्रित किया है। इन्होंने 1929 ई. से जीवन पर्यंत (मृत्यु, 03 फरवरी 1979 तक) अपनी रचना कौशल से हिन्दी साहित्य को काफी समृद्ध किया है। साहित्य के इस महान शिखर व्यक्तित्व के साहित्यकार को हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान न देना साहित्य जगत में एक प्रश्न खड़ा कर देता है।

कई लोग कहते हैं राधाकृष्ण का मूल्यांकन सही रूप में नहीं हो पाया। प्रसिद्ध आलोचक डॉ० भारत यायावर कहते हैं- "राधाकृष्ण जब लिख रहे थे तो बहुत चर्चित थे। राष्ट्रीय स्तर पर पहचान थी। रांची में उनका अभिनंदन हुआ था। सभी लेखकों ने उस समय उनकी रचनाओं पर महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ लिखी थी, पर रांची में वह रह गए और तब रांची में वैसा साहित्यिक परिवेश नहीं था। उनके देहांत के बाद रचनाएं ढंग से संकलित नहीं हो पायी थी।"[9]

वैसे 14 मार्च 1954 ई. का दिन राधाकृष्ण के जीवन में एक अविस्मरणीय दिन के रूप में सदा याद किया जायेगा। इसी दिन रांची में राधाकृष्ण का नागरिक अभिनंदन किया गया था। यह कार्यक्रम लगातार दो दिनों तक चला था। इस शुभ अवसर पर हिन्दी जगत के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार रांची आये। इस अवसर पर राधाकृष्ण को एक अभिनन्दन-ग्रंथ समर्पित किया गया था जिसमें भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद से लेकर हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकारों की शुभकामनाएं तथा विचार सम्मलित है। इसके अलावा राधाकृष्ण को बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रभाषा परिषद, उत्तर प्रदेश के सरकार द्वारा, ऐसे ही अनेक संस्थाओं द्वारा साहित्यिक उपलब्धि पर अनेक सम्मान मिला।

निष्कर्षत: आज राधाकृष्ण हमारे बीच नहीं है पर इनकी दु:ख भरी कहानी और इनकी रचनाओं का मूल्य तथा प्रभाव आज भी कायम है। इनकी रचनाओं को पढ़कर आज पाठकगण प्रभावित हो रहे हैं। राधाकृष्ण को महज रांची वाले होने के कारण या अंत तक रांची में ही जीवन गुजारते हुए हिन्दी-साहित्य की सेवा करने के कारण उन्हे कम करके नहीं आंका जा सकता है। विपरीत परिस्थितियों से गुजरते हुए भी उन्होंने जिजीविषा को न छोड़ा न ही कभी टूटे। इनकी रचना-संसार इसकी पक्की गवाही देता है। राधाकृष्ण के अनेक अनछुवे पहलु हैं जिन्हें आज संवारने की जरूरत है। उनके साहित्य को एक फलक पर लाकर सम्मान देने की जरूरत है। उनके परिवार वालों की सुधि लेने के साथ ही उनकी अधूरी विरासत को अक्षुण रखने के उपाय को जरूरत है। इनकी कई रचनाएं अप्रकाशित है उसे भी ढूंढ़कर प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य में अभिवृद्धि की जा सकती है। अत: समग्रता में देखा जाय तो उनके 'रचना-समग्र' का प्रकाशन इस समय की मांग है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राय, धर्मराज (संपादक) : 'ब्रह्मर्षि समाज दर्शन', त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2015, रांची, झारखण्ड, पृ० 06
2. राय, धर्मराज (संपादक) : 'ब्रह्मर्षि समाज दर्शन', त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2015, रांची, झारखण्ड, पृ० 06
3. यायावर, भारत : 'राधाकृष्ण : एक अप्रतिहत रचनाकार', एपीएन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2017, पृ० 125
4. राय, धर्मराज (संपादक) : 'ब्रह्मर्षि समाज दर्शन', त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2015, रांची, झारखण्ड, पृ० 46
5. यायावर, भारत : 'राधाकृष्ण : एक अप्रतिहत रचनाकार', एपीएन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2017, पृ० 25
6. राय, धर्मराज (संपादक) : 'ब्रह्मर्षि समाज दर्शन', त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2015, रांची, झारखण्ड, पृ० 63
7. यायावर, भारत : 'राधाकृष्ण रचना संचयन', साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ० 52
8. राय, धर्मराज (संपादक) : 'ब्रह्मर्षि समाज दर्शन', त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2015, रांची, झारखण्ड, पृ० 62-63
9. यायावर, भारत (संपादक) : 'प्राची', जनवरी, 2017

सामाजिक सुरक्षा एवं समाज कल्याण की अवधारणा

डॉ० संजीव कुमार

पूर्व शोध छात्र, विश्वविद्यालय औद्योगिक संबंध एवं कार्मिक प्रबंधन विभाग
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

मानव जीवन की उद्‌भव एवं विकास की निरंतर गाथा जो अब तक लिखी गई है, उसकी मीमांसा करने पर यह तथ्य सामने उभर कर आता है कि मानवीय जीवन के विभिन्न क्षणों में मानव मात्र का जीवन विभिन्न तरह की चुनौतियों का सामना करते हुए रहा है। प्राकृतिक दशाओं से लेकर आज तक के जीवन चक्र का इतिहास यह बतलाता है कि प्राकृतिक दशाओं में प्राकृतिक अवरोधो से बचने के लिए प्रकृति ने ऐसी व्यवस्थाएं कर रखी थी, जिसमें मनुष्य मात्र सुरक्षात्मक स्थितियों में रह सके। आखेट युग, पशुपालन युग, कृषि प्रधान युग एवं आधुनिक काल में सामाजिक परिवर्तनों एवं आर्थिक चुनौतियों के चलते मानवीय जीवन विभिन्न तरह की असुरक्षात्मक स्थितियों से जूझने लगा, जिसके चलते राजसत्ता का जो भी स्वरूप रहा हो, उसने अपने प्रयासों से सुरक्षा एवं कल्याण की भावना से प्रेरित होकर विभिन्न कदम उठाए। संभवत: इसी धारणा के चलते यह कहा गया है कि सामाजिक सुरक्षा एवं समाज कल्याण की खोज मानव मात्र की प्रारंभिक खोजो में से एक महत्वपूर्ण खोज रही है।

प्रस्तावना

इतिहास के पन्ने एवं उपलब्ध दस्तावेज इस बात के पूरक रहे हैं कि मानवीय जीवन में सामाजिक एवं आर्थिक असुरक्षाओं ने मनुष्य मात्र को संभवत: संगठित समाज की स्थापना करने को प्रेरित किया। वस्तुत: अगर मानवीय समाज के विकास क्रम पर दृष्टि डाली जाए तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि आखेट युग से लेकर आज तक मानवीय जीवन के समक्ष उभरी असुरक्षाओं सामाजिक-सह-आर्थिक की विवशता में मनुष्य ने अपनी सुरक्षा हेतु कतिपय उपाय ढूंढ निकाले थे एवं समाज, समुदाय, विवाह, कबीले इत्यादि जैसे अन्य संस्थाओं का निर्माण किया था, ताकि उसका जीवन प्राकृतिक असुरक्षात्मक स्थितियों में सुरक्षित रह सके। कौन नहीं जानता कि मानवीय जीवन प्राकृतिक असुरक्षाओं जैसे-जैसे भूख प्यास जंगली जानवरों से उत्पन्न असुरक्षा, धूप-वर्षा इत्यादि से प्रभावित रहा था। वही उसकी सुरक्षा एवं बचाव के लिए नदियों के जल, उपलब्ध फल एवं मूल कंद, पहाड़ की कंदराएं, वृक्षों की छाया एवं छाल इत्यादि चीजें प्राकृतिक दशाओं में भी उपलब्ध थी। मानवीय सभ्यता के विकास क्रम में सामाजिक सह आर्थिक चुनौतियां बढ़ती गई एवं मानवीय जीवन आर्थिक असुरक्षाओं से ज्यादा प्रभावित होता चला गया। औद्योगिक युग की शुरुआत से लेकर आज तक की स्थिति पर अगर हम ध्यान दें तो ऐसा लगता है कि मानवीय जीवन में असामयिक घटनाओं जैसे- रोटी कमाने वाले की असामयिक मृत्यु, दुर्घटनाएं, बीमारियां, बुढ़ापा, मात्रित्व की स्थिति इत्यादि के चलते मनुष्य के आय के निरंतर स्रोत सूख जाते हैं। दूसरी ओर सामाजिक रीति-रिवाजों के बंधन, जैसे- बेटी की विवाह पर होने वाला खर्च, धर्म एवं कर्मकांडों की विवशता के चलते बढ़ते खर्च की सीमा, श्राद्ध यज्ञोपवित्र के अवसर पर किया जाने वाला खर्च इत्यादि के चलते भी आर्थिक असुरक्षा उत्पन्न हुई है। पुन: हम देखते हैं कि आय की सीमा बहुत अंशों तक व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक क्षमता पर निर्भर करती है। इसके चलते अपंगता बीमारी बेरोजगारी मूल्य वृद्धि औद्योगिकरण के प्रभावों एवं सीमाओं में स्वाभाविक रूप से वृद्धि होती है, जो अंतत: व्यक्ति की आय की असुरक्षा को जन्म देती है। सामाजिक सुरक्षा के जाने-माने अमेरिकी विद्वान रेजदा ने इन्हें Random Events

Theory] Social Barrier Theory and Personal Difference Theory के रूप में चिन्हित किया है। दूसरी ओर आय की असुरक्षा को जन्म देने वाले प्रधान कारकों को लॉर्डवेब्रिज ने पांच राक्षसों- गरीबी, बेरोजगारी, अपंगता, मातृत्व एवं बीमारी के रूप में चिन्हित किया है।

मानवीय समाज की स्थिति चाहे जैसी रही हो, हर समय मानवीय जीवन आर्थिक-सह-सामाजिक असुरक्षाओं से घिरता रहा है। एक संबद्ध समाज ने इन असुरक्षाओं से जुझने हेतु उपाय ढूंढ निकाले हैं। प्रक्रिया एवं तकनीक, इन असुरक्षाओं से जूझने के भले ही भिन्न-भिन्न रहे हो, किंतु असुरक्षा को सुरक्षा में बदलने हेतु निरंतर प्रयास जारी रहे हैं। उदाहरणत: परंपरागत समाज ने संयुक्त परिवार प्रथा, जाति रूपी संस्था, दान पुण्य, दरिद्र नारायण भोज जैसे उपाय ढूंढ निकालें ताकि आयकी असुरक्षात्मक स्थितियों में मनुष्य को सुरक्षा मिल सके। चुकी आधुनिक समाज में आर्थिक-सह-सामाजिक चुनौतियां गरीबी, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, वैश्वीकरण इत्यादि के चलते ज्यादा बढ़नें लगी है। अपितु आधुनिक समाज एवं इसकी भावनाओं का प्रतिबिंब सरकार ने अपने परंपरागत दायित्वों को छोड़कर समाज में रहने वाले लोगों को सुरक्षा एवं कल्याण निमित्त नए-नए तकनीक जैसे-सामाजिक सहायता, सामाजिक बीमा, नियोक्ता के दायित्व के आधार पर किए जाने वाले प्रयास, समाज कल्याण संबंधित विभिन्न योजनाओं का अंगीकरण इत्यादि उपाय खोज निकाले, ताकि आय की असुरक्षा से जूझने वाले समाज के प्रभावित लोगों को संरक्षण एवं निजात मिल सके। चुकी परंपरागत तकनीक आज के संदर्भ में बहुत कारगर नहीं रह सके हैं, इसलिए समाज-सह-सरकार के द्वारा नए-नए तकनीकों का ईजाद किया गया है, ताकि औद्योगिक श्रम एवं समान समाज में रहने वाले लोगों को, जो आय की असुरक्षा से प्रभावित हैं, उन्हें संरक्षण एवं त्राण मिल सके।

उपलब्ध दस्तावेज यह बतलाते हैं कि सामाजिक सुरक्षा आंदोलन का अग्रणी देश ब्रिटेन रहा है एवं इसके बाद में विश्व के अन्य देशों चाहे भारत ही क्यों ना हो इसकी महत्ता को समझते हुए इस आंदोलन से जुड़ने की कोशिश की है। समाज कल्याण कीओर अगर हम दृष्टि डालें तो ब्रिटेन का Poor Law आज के संदर्भ में विभिन्न राष्ट्रों, प्रांतों एवं राज्यों के द्वारा चलाई जाने वाली जन सामान्य के लिए कल्याणकारी योजनाएं कहीं ना कहीं सामाजिक सुरक्षा को पोषित करती है। सामाजिक सुरक्षा आंदोलन के बीजा रोपण से लेकर अब तक की जो यात्रा विश्व स्तर पर तय की गई है, उसकी पृष्ठभूमि में इस क्षेत्र के विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की प्रमुख तीन विधियों का उल्लेख किया है। यहां यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि अधिकांश पुस्तकों में जैसे- पीसी श्रीवास्तव, सी बीममोरिया एवं अंग्रेजी विद्वान रेजदाने मात्र 2 ही विधियों का उल्लेख किया है, किंतु परिवर्तन के दौर में नई विधियां भी सम्मिलित की गई है। प्रमुखत: सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने निमित्त सामाजिक बीमा एवं सामाजिक सहायता 2 ही विधियां अंगीकृत विधियों की श्रेणी में आती है, किंतु सामाजिक सहायता का सैद्धांतिक पक्ष इतना विशाल आज के संदर्भ में हो चुका है, जिसके चलते सरकार, नियोजक तथा स्वयंसेवी संगठन द्वारा चलाए गए समाज कल्याण के विभिन्न कार्य सामाजिक सहायता से अलग हटकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व आज बना चुके हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की तीसरी विधि का भी उल्लेख किया है, जिसे सार्वजनिक या सामाजिक सेवा, दूसरे शब्दों में समाज कल्याण कार्यक्रम के रूप में चिन्हित किया जा चुका है।

राज्य की बदली हुई भूमिका तथा सामाजिक सुरक्षा एवं समाज कल्याण के क्षेत्र में बढ़ता हुआ हस्तक्षेप तथा तदर्थ उठाए गए उपाय एवं चलाये गए कार्यक्रमों के चलते समय सुरक्षा एवं समाज कल्याण का क्षेत्र ज्यादा व्यापक होता गया। इसकी महत्ता के मद्देनजर भारतीय समाज की केंद्रीय सरकार एवं उसके अधीन राज्य सरकारों ने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के वैसे लोगों को संरक्षण, सुरक्षा एवं त्राण दिलाने हेतु प्रयत्नशील है। भारत सरकार की आर्थिक नीति को अगर देखा जाए तो विगत हरेक पंचवर्षीय योजनाएं गरीबी एवं बेरोजगारी उन्मूलन की दिशा में कार्यशील रही है। वहीं विभिन्न समाज कल्याण कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के उपेक्षित, गरीब, बीमार, दुर्घटनाग्रस्त, बुढ़ापा से प्रभावित लोगों को राहत देने का प्रयास भी किया जा रहा है। भारत सरकार के आर्थिक नीति के अनुरूप ही बिहार सरकार ने खुद अपने स्तर पर एवं कुछ केंद्रीय सरकार की सहायता से संपूर्ण प्रदेश में ऐसी सामाजिक एवं कल्याणकारी योजनाएं आज चला रखी हैं, ताकि आम जनों का आय का अनवरत स्रोत सूख न पाए एवं आय की असुरक्षात्मक स्थितियों में जाने को विवश ना हो जाए।

अत: हम देखते हैं कि समाज कल्याण, श्रम कल्याण, कर्मचारी कल्याण एक दूसरे के पर्यायवाची बनकर औद्योगिकरण की प्रक्रिया के शुरुआत से लेकर एक लंबी यात्रा तय की है। प्राकृतिक दशाओं में प्रकृति ने अपने विभिन्न प्रयासों से मानव को संरक्षण देने हेतु प्रयास किए थे। यह बात अलग है कि उस समय में पहाड़ की कंदराएं, कंद-मूल, वृक्ष की छाल एवं छाया भले ही समाज

कल्याण शब्द से अभीत नहीं रहे हो, किंतु इनका स्वरूप तो वही है। आखेट युग, पशुपालन युग तथा आधुनिक समाज में मानवीय आवश्यकताएं काल क्रम में बढ़ती गई एवं समाज कल्याण का दायरा भी दिन प्रतिदिन मनुष्य के सामने उत्पन्न चुनौतियों के चलते बढ़ता चला गया। स्वाभाविक रूप से राज्य सत्ता, प्रशासनिक व्यवस्था, प्राकृतिक नियंत्रण का जो भी स्वरूप रहा हो मानव के कल्याण हेतु अनवरत प्रयास जारी रहे हैं। इन सभी को अंगीकृत करते हुए, हम कह सकते हैं कि समाज कल्याण, सामाजिक-आर्थिक विकास का एक मूल मंत्र बन चुका है तथा भविष्य में रहने वाले लोगों के समक्ष जैसे-जैसे आर्थिक, गैर-आर्थिक इत्यादि चुनौतियां बढ़ती जाएगी, समाज कल्याण का स्वरूप और भी विस्तृत होता चला जाएगा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. आर केगोहिलरू, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास (नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन)
2. ए.सी. छागलारू, आधुनिक औद्योगिक समाज।
3. दिनेश चंद्र कोचररू, उद्योग एवं संगठन मनोविज्ञान (पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी)
4. पी.सी. खरे एवं वी सिन्हारू, औद्योगिक समाज विज्ञान (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस)
5. पी.आर.एल. सिन्हा एवं इंदुबालारू, श्रम एवं समाज कल्याण (पटना, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स)
6. भारत में सामाजिक परिवर्तन और विकास (एनसीईआरटी, नई दिल्ली)
7. श्री राम अहूजा, सामाजिक समस्याएं (नई दिल्ली)
8. डॉ. संजीव कुमार, शोधपत्र (पूर्णिया अनुमंडल के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा एवं समाज कल्याण से संबंधित चयनित सरकारी कार्यक्रमों (योजनाओं) का एक मूल्यांकन)

जिजीविषा और संघर्ष की 'कर्मभूमि'

शीतांशु

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, दीपू परिसर, दीपू, असम

'कर्मभूमि' का प्रकाशन अगस्त 1932 में हुआ था। प्रेमचंद इस दौर में स्वाधीनता आन्दोलन की दिशा और स्वराज्य के स्वरूप के संबंध में गंभीरता से विचार कर रहे थे। 18 फरवरी 1929 को प्रेमचंद ने मुंशी दयानरायण निगम को एक पत्रा लिखा था जिसमें 'कर्मभूमि' लिखने की योजना का पता चलता है। 'कर्मभूमि' मूलत: हिन्दी में लिखा गया था जिसका अनुवाद प्रेमचंद ने 'मैदाने अमल' नाम से बाद में प्रकाशित करवाया। 1935 में फिर गुजराती में भी उसका अनुवाद हुआ और धीरे-धीरे कुछ अन्य भाषाओं में भी उसका अनुवाद हुआ।

'कर्मभूमि' भारतीय सामाजिक संरचना के स्वरूप की एक ऐसी कलात्मक प्रस्तुति है जिससे हमें उन केन्द्रीय समस्याओं की सहज जानकारी मिल जाती है जो दीमक की तरह पूरी भारतीय सामाजिक प्रणाली को खोखला करते जा रही हैं, उसे कमजोर बना रही हैं। और यह सिर्फ स्वातंत्रता-पूर्व भारत के संदर्भ में सच नहीं है। इस रचना के नाम से ही उसके अभिप्राय को काफी हद तक समझा जा सकता है। कर्मभूमि न सिर्फ विभिन्न वर्गों, बल्कि विभिन्न अस्मिताओं से बंधे जनसमूह को स्वाधीनता आन्दोलन के समर्थन में और सामाजिक कुरूपताओं के खिलाफ लामबंद होने की प्रेरणा देता है। क्या शहरी उच्च वर्ग और क्या गाँव का किसान, स्त्री हो या पुरुष, दलित हो या सवर्ण, मजदूर हो या पूँजीपति, सभी को इस 'कर्मभूमि' का हिस्सा बनना पड़ेगा। समरकान्त, अमरकान्त, सुखदा, सकीना, सलीम, मुन्नी, सलोनी आदि सभी जो उपन्यास के विकास में एक मंच पर खड़े दिखते हैं, मूलत: भिन्न-भिन्न वर्गों और अस्मिताओं का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

'कर्मभूमि' पर अपने समय की सक्रिय राजनीति और युगचेतना का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना उनके उपन्यासों में क्रमश: तीव्रतर होती जाती है। कर्मभूमि में जहाँ युग के अनुरूप अनुगूँजें सुनाई देती हैं, वर्तमान का स्वर सुनाई देता है, वहीं और आगे बढ़ने पर भविष्य के भारत की चिन्ता और भी गहन दिखाई देती है। गोदान और कफन उन चरित्राों को समर्पित है जिन्हें स्वाधीन भारत में सर्वाधिक कष्ट उठाना था। प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना की गहनता का यह प्रमाण है कि वह नारेबाजियों या पैम्फलेटों की तरह नहीं बल्कि मानवीय चेतना को भीतर तक मूल्यों से सिंचित करने की अभिलाषा के साथ प्रवाहित है। कर्मभूमि इसका एक प्रमुख पड़ाव है और उचित ही रामविलासजी ने कर्मभूमि को स्वाधीनता आन्दोलन की गहराई और प्रसार के उपन्यास के रूप में देखा है। स्वराज्य लाभ और उसका व्यवस्थित विकास कर्मभूमि का लक्ष्य है। 3 जून 1932 को बनारसी दास चतुर्वेदी के नाम अपने खत में प्रेमचन्द लिखते हैं, ''मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजीय हों।'' कर्मभूमि में गजनवी कहता है कि ''स्वराज्य हम भी चाहते हैं मगर इनकलाब की सूरत में नहीं। हालाँकि कभी-कभी मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि इनकलाब के सिवा हमारे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। इतनी फौज रखने की क्या जरूरत है, जो सरकार की आमदनी का आधा हजम कर जाए। फौज का खर्च आधा कर दिया जाए तो किसानों का लगान बड़ी आसानी से आधा हो सकता है।... आखिर एक दो सदी बाद दुनिया में एक सल्तनत हो जाएगी। सबका एक कानून, एक निजाम होगा, कौम के खादिम कौम पर हुकूमत करेंगे, मजहब शख्सी चीज होगी। न कोई राजा होगा न कोई परजा।'' कहना न होगा कि कर्मभूमि के माध्यम से प्रेमचंद की स्वराज्य की जो परिकल्पना सामने आती है उसमें स्वराज्य का संचालन प्रजा के हाथों में दिखता है। देश की आवश्यकताओं को समझना और पूरा करना ही स्वराज्य है। यह नहीं हो सकता कि 'प्रजा लगान और करों के बीच में दबी रहे और अधिकारी लोग दिनोंदिन सेना बढ़ाते जाएँ, कर्मचारियों का वेतन बढ़ाते जाएँ।' रईसों के लिए स्वराज्य नहीं चाहिए, उनके लिए चाहिए जो अभावों में जी रहे हैं, शोषित और दलित हैं। लाला समरकान्त कहते भी हैं, ''अगर म्युनिसिपैलिटी इस प्रधान कर्तव्य

को नहीं पूरा कर सकती तो उसे तोड़ देना चाहिए। रईसों और अमीरों की कोठियों के लिए, बगीचों के लिए, महलों के लिए क्यों इतनी उदारता से जमीन दी जाती है? इसलिए कि हमारी म्युनिसिपैलिटी गरीबों की जान का कोई मूल्य नहीं समझती।''

युग की प्रभावशाली विचारधारा से कर्मभूमि का संबंध विशिष्ट है। यह गाँधीवाद का युग था और विश्वपटल पर मार्क्सवादी समाजवाद के विचार तेजी से फैल रहे थे। कर्मभूमि में इन दोनों विचारधाराओं की अवस्थिति को समझना जरूरी है। विचारधारा की परतों को खोलकर ही कर्मभूमि में उपस्थित वर्ग चेतना, जातिगत-धार्मिक समस्याएँ, वायवीयता, यथार्थ का स्वरूप और स्वाधीनता की चेतना को समझा जा सकता है। गाँधीवाद से प्रेमचन्द के रिश्तों को लेकर हमेशा ही चर्चाएँ होती रहती हैं। कर्मभूमि पर भी गाँधीवाद का असर साफ दिखाई देता है लेकिन पहले की कई रचनाओं की तरह इसमें गाँधीवाद या आदर्शवाद थोपे हुए रूप में नहीं है बल्कि तराशकर संजोया गया है। युगीन विचारधारा की समस्याओं को प्रेमचन्द ने जिस बारीकी से गोदान में उभारा है, विचारधारात्मक आग्रहों को जिस कदर वे गोदान में आतिक्रमित कर गए हैं, वह प्रौढ़ता कर्मभूमि में नहीं दिखती। फिर भी कर्मभूमि में उनका जोर, पहले की तुलना में हृदय परिवर्तन जैसी बातें या आदर्श चरित्राों की सृष्टि के अतिरिक्त प्रयास की ओर न दिखकर स्वाधीनता आंदोलन को आगे बढ़ाने के गाँधीवादी तरीकों पर है। गाँधीवादी आंदोलन के तरीकों का असर ही है कि कर्मभूमि के अंत में सभी वर्ग और अस्मिताएँ एक ही उद्देश्य के लिए संघर्षरत दिखती हैं और गवर्नर घुटने टेक देता है। प्रेमचन्द स्वाधीनता आन्दोलन के लिए क्रान्तिकारियों की पद्धति से सहमत नहीं थे। 1932 में बंगाल में आतंकवाद की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा भी है, ''आतंकवादियों की समझ में कब यह बात आएगी इन अपराधें से वे केवल राष्ट्र की उन्नति में बाधक हो रहे हैं।'' संवेदना के धरातल पर कई बार वे गाँधीवादी आग्रहों को अतिक्रमित कर जाते हैं किन्तु गाँधीवाद फिर भी काफी असरदार तरीके से कर्मभूमि में जगह-जगह झाँकता हुआ दिखाई देता है। लाला समरकान्त जब अमरकान्त को चरखा चलाते देख कर झल्लाते हैं तो अमरकान्त कहता है, ''चरखा रुपए के लिए नहीं चलाया जाता। यह आत्मशुद्धि का एक साधन है।''

कर्मभूमि के संसार का वास्तविकता से संवाद भी अलग ढंग का है। कर्मभूमि में यथार्थ का स्वरूप निर्ममता की ओर मुखरित नहीं है और न ही उसमें कोरा आदर्शवाद है। 'ऐसा हो सकता है' की विश्वसनीयता की परिसीमा के भीतर ही उसे रखने का प्रयास प्रेमचन्द ने किया है। उसमें कल्पना की अद्‌भुत उड़ान या किसी आश्चर्यजनक चमत्कार की सृष्टि नहीं है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तंत्रा की गूढ़ता को खोलने का काफी हद तक एक सफल प्रयास है कर्मभूमि। वायवीयता और अजूबों की दुनिया से उपन्यास को सफलतापूर्वक बाहर लाने वाले प्रेमचंद ने कर्मभूमि के माध्यम से औपन्यासिक अंतर्वस्तु और शिल्प को नया आयाम दिया। ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि प्रेमचन्द ने कर्मभूमि में अपने युग को, समाज को, स्वाधीनता आन्दोलन के दौर को मानवीय मूल्यों को सघन बनाने के उद्देश्य से समेटा है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौर की घटनाओं या नेताओं के साथ कर्मभूमि का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं दिखता लेकिन उसके कथा के विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया वस्तुतः स्वाधीनता आन्दोलन के दौर और आम जन पर उसके प्रभाव और विकासशील चेतना के साथ ही संलग्न है।

प्रेमचन्द ने स्वाधीनता आन्दोलन की विशेषताएँ कुछ इस तरह प्रक्षेपित हैं कि हर तरह के लोग उससे जुड़ते दिखाई देते हैं। आई. ए.एस. सलीम से लेकर गृहणी सुखदा तक, सभी सामाजिक आन्दोलन में कूद पड़ते हैं। प्रेमचन्द ने मध्यवर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग की अवस्थिति को भी रेखांकित किया है। कर्मभूमि में मध्यवर्गीय चरित्रा पूँजीवादी मानसिकता और द्वंद्व के शिकार बहुत जल्दी हो जाते हैं। सलीम, सुखदा और अमरकान्त सभी में उलझने रहती हैं। लेकिन अन्ततः आम जनता में चेतना के प्रसार के माध्यम बनकर ये लोग सामने आते हैं। कर्मभूमि के माध्यम से प्रेमचन्द की यह दृष्टि सामने आती है कि मध्यवर्ग को अगर दौलत के नशे से बाहर लाया जा सके, राजनीतिक चेतना की उचित शिक्षा दी जा सके तो उसके भीतर भी उचित पक्षधरता पैदा की जा सकती है। कर्मभूमि में मध्यवर्गीय चरित्रा को उन्होंने परत दर परत खोला है। शहरी मजदूरों के ही नहीं किसानों के जागरण में भी मध्यवर्ग की संभावित भूमिका को उन्होंने रेखांकित किया है। सुखदा और डॉक्टर शांतिकुमार शहरी मजदूरों में हड़ताल की चेतना जगाते हैं और अमरकान्त गाँव में किसानों के भीतर यह चेतना जगाता है। दोनों को ही प्रारम्भ में मुश्किले होती हैं, पर दोनों को ही अन्ततः सफलता मिलती है। मजदूर हड़ताल करते हैं और किसान आन्दोलन। मध्यवर्ग को स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में एक दिशा देने का उद्देश्य उपन्यास में प्रवाहित है।

कर्मभूमि का उपयोग प्रेमचंद सिर्फ स्वाधीनता की चेतना जगाने के लिए नहीं बल्कि उसे आगे रास्ता दिखाने के लिए भी करना चाहते थे। इस रचना में भविष्य की आशाएँ आकांक्षाएँ और परिकल्पानाएँ दिखाई देती हैं। सरकार और पुलिस के दमनचक्र के खिलाफ आवाज और जातिगत-धार्मिक भेदभाव से मुक्ति कर्मभूमि के प्रमुख स्वर हैं। प्रेमचंद की चिन्ता है कि भविष्य में कहीं सिर्फ

सत्ता का हस्तांतरण न हो जाए और परिस्थितियाँ वैसी की वैसी ही बनी रहें। कर्मभूमि निश्चय ही युगीन परिवेश से ओतप्रोत है लेकिन उसमें उठाई गई चिंताएँ, समस्याएँ और आशाएँ-आकांक्षाएँ उसे अपने समय से आगे ले जाती हैं।

जाति के प्रश्न को लेकर प्रेमचंद की स्थिति बहुत विडंबनापूर्ण है। उन्हें अपने समय के जातिवादी ब्राह्मणों और ठाकुरों से ढेरो अपशब्द सुनने पड़े और आज अस्मिता की अतिवादिता से ग्रस्त कुछ आलोचक उन्हें सामंत का मुंशी कह रहे हैं। प्रेमचंद वर्ण व्यवस्था को भारतीय समाज के लिए अनावश्यक और अभिशाप समझते थे। प्रेमचंद भी यह देखते हैं कि इस व्यवस्था में कोई सीढ़ी नहीं है। इसका विनाश जरूरी है। कर्मभूमि में दलित समुदाय अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है। कर्मभूमि में जब ब्रह्मचारीजी यह कहते हैं कि शास्तर में कहाँ लिखा है कि अन्त्यजों को मंदिर में आने दिया जाए? तब डॉक्टर शांतिकुमार उत्तर देते हैं, ''कहीं नहीं। शास्त्रा में यह लिखा है कि घी में चरबी मिलाकर बेचो, टेनी मारो, रिश्वतें खाओ, आँखों में धूल झोको और जो तुमसे बलवान हो उनके चरण धो धोकर पीयो, चाहे वो शास्त्र को पैरों से ठुकराते हों। तुम्हारे शास्त्रा में तो यह लिखा है कि भगवान की दृष्टि में न कोई छोटा है न बड़ा, कोई शुद्ध और न कोई अशुद्ध। उसकी गोद सबके लिए खुली हुई है।'' शांतिकुमार के साथ दलित और अन्य समूह के लोग भी मंदिर में प्रवेश करने के लिए आन्दोलन करते है और अन्ततः सफल भी होते हैं। इस तरह प्रेमचंद दलित जीवन की अवमानना को एक ऐसे समय में साहित्यिक धरातल पर उपस्थित करते हैं जब उन प्रश्नों को साहित्यिक जगत में बहुत सार्थक आवाजें नसीब नहीं हुई थीं। यह एक सार्थक हस्तक्षेप इस लिहाज से भी था कि जिन लोगों ने जातिवाद के दंश को नहीं झेला था, इतिहास बताता है कि कला रूपों में उसकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति में वे बहुत कम सफल हुए। प्रेमचंद ने यह दंश नहीं झेला था लेकिन संवेदनात्मक परिपक्वता के बल पर उसे वास्तविक चिन्ताओं में स्थान दिलाने के लिए आतुर थे। बड़े महाआख्यानों के आवरण में इस प्रश्न के छूट जाने की चिन्ता उनकी विचारधारा में निरन्तर बनी रही।

दलित जीवन के अनुभव-चित्रा सीमित रूप में ही प्रेमचंद के लेखन में आए लेकिन ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पाखंड को उन्होंने बहुत बेजोड़ तरीके से उद्घाटित किया है। यह उनकी विभिन्न रचनाओं की तरह कर्मभूमि में भी प्रत्यक्ष है। कर्मभूमि में भी यह दर्शाया गया है कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पोषकों ने दलितों में शास्त्र, जन्म, मृत्यु, ईश्वर आदि का भय जगाकर उनका शोषण किया है। कर्मभूमि में प्रस्तुत तार्किक विवेचन और संवेदनशील चित्राण ने ब्राह्मणवादी व्यवस्था की दकियनूसी पर्दफाश किया है। कर्मभूमि में शोषित वर्ग जमीन पर अधिकार पाने के लिए और शास्त्रों की विभाजनकारी अन्याययुक्त कुरूपताओं से लड़ने के लिए खड़ा है। सामन्तवाद और ब्राह्मणवाद की इमारत ताकत और ज्ञान पर टिकी है और यह प्राप्त होती है सामंती अवशेषों से, संशाधनों पर नियंत्रण से। कर्मभूमि का शोषित और दलित संशाधनों पर, जमीन पर, व्यवस्था पर कुछ खास समुदायों के एकाधिकार के खिलाफ खड़ा दिखाई देता है। इस आन्दोलन में स्त्रियाँ भी बढ़ चढ़कर हिस्सा लेती हैं। सुखदा के आह्वान पर शहर में हड़ताल की नौबत आती है और सलोनी काकी और मुन्नी अमरकान्त के आन्दोलन को आगे बढ़ाती हैं।

कर्मभूमि प्रेमचंद की पूर्ववर्ती रचनाओं की तुलना में ज्यादा मजबूत है। धार्मिक, सांस्कृतिक दृष्टि से यह उपन्यास स्त्री जीवन के पहलुओं को भी गंभीरता से सामने लाता है। कर्मभूमि बीसवीं सदी की स्त्राी का सूक्ष्म अंकन करके उसे उसका वास्तविक और आवश्यक स्थान दिलाने का प्रयास करता है। उनकी दृष्टि में नारी कोई गूढ़ संदेहात्मक विषय नहीं बल्कि पुरुष की पूरक है, ठीक वैसे ही जैसे पुरुष स्त्री का पूरक है। कर्मभूमि में प्रेमचंद वर्तमान समाज में स्त्राी की विभिन्न समस्याओं- प्रेम, शोषण, शारीरिक शोषण आदि के प्रति सचेत दिखाई देते हैं। कर्मभूमि में मौजूद स्त्री वर्ग (सुखदा, नैना, मुन्नी) चुनौतियों को पहचान कर अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए सचेत हैं। मुन्नी अपने अपमान को बर्दश्त नहीं कर पाती है। सुखदा भी अमरकान्त के प्रति परम्परागत पतिव्रता सदाचारी स्त्री की तरह बर्ताव नहीं करती। नैना तो परिवार के खिलाफ ही खड़ी हो जाती है।

प्रेमचन्द ने कर्मभूमि में सामाजिक तंत्रा के इस गड्ड-मड्ड स्वरूप को बखूबी पकड़ा है। कर्मभूमि यह संप्रेषित करता है कि जब तक धर्म और पूँजी के माध्यम से ही व्यक्ति की अस्मिता और श्रेष्ठता पहचानी जाती है, तब तक समाज को सार्थक दिशा में नहीं ले जाया जा सकता। कर्मभूमि में लाला समरकान्त कहते भी हैं, ''ये बड़े बड़े महल जान हथेली पर रख कर कौन बनाता है? इन कपड़ों की मीलों में कौन काम करता है? प्रातःकाल द्वार पर दूध और मक्खन लेकर कौन आवाज देता है? सफाई कौन करता है? कपड़े कौन धोता है? सवेरे अखबार और चिट्ठियाँ लेकर कौन पहुँचता है? शहर के तीन चौथाई आदमी एक चौथाई आदमी के लिए अपना रक्त जला रहे हैं। इसका प्रसाद यही मिलता है कि उन्हें रहने के लिए जगह नहीं है। हमारे बड़े आदमी साफ सुथरी हवा और खुली हुई जगह चाहते हैं। उन्हें यह खबर नहीं है कि जहाँ असंख्य प्राणी दुर्गंध और अंधकार में पड़े भयंकर रोगों से मर मर कर रोग के कीड़े फैला रहे हैं, वहाँ खुले हुए बँगले में रह कर भी वह सुरक्षित नहीं हैं।'' असल में तंत्र के हर सिरे में समस्याएँ

है इसलिए सिर्फ गहनों की समस्या, परिवार की समस्या या सिर्फ स्वाधीनता आन्दोलन पर बातें करके कोई फायदा नहीं है। पूरे सामाजिक ढाँचे की पड़ताल है कर्मभूमि। और गोदान इसका अगला पड़ाव है। स्त्री जीवन की समस्याएँ, वर्ण व्यवस्था की कुरूपता, स्वाधीनता आन्दोलन की दिशा, स्वराज्य का स्वरूप, राजनीति, किसान जीवन की पीड़ा, शहरी मजदूर वर्ग के अधिकार, धार्मिक रुढ़िवादता, हिन्दू-मुस्लिम संबंध, प्रेम की सामाजिक स्वीकारोक्ति की जरूरत आदि सब कुछ कर्मभूमि में इसीलिए एक साथ दिखाई देते हैं। रचनाकार किसी एक मुद्दे पर सिमट कर नहीं रह गया है। जब समस्या पूरे औपनिवेशिक तंत्र के साथ है तो समाधान का रास्ता भी इस औपनिवेशिक ढाँचे के टूटने के साथ ही खुलेगा। भारतीय समाज धर्म और अर्थ की समास्याएँ उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के रहते नहीं सुलझ सकती थीं। कर्मभूमि भारतीय समाज की एक ऐसी धार्मिक सांस्कृतिक आलोचना है जो पूरे औपनिवेशक तंत्र की कार्यप्रणाली और शोषण की प्रक्रिया की बखिया उधेड़ कर रख देती है और भविष्य के लिए रास्ता दिखाती है। गोदान क्यों कालजयी रचना बनी इसकी छवियाँ कर्मभूमि में दिखाई देने लगती हैं।

संदर्भ

1. प्रेमचंद, कर्मभूमि, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक), नई दिल्ली, 1994, पृ. 297
2. वही, पृ. 355
3. प्रेमचंद, प्रेमचंद के विचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, पृ. 110
4. प्रेमचंद, कर्मभूमि, वही, पृ. 26
5. वही, पृ. 196
6. वही, पृ. 354

लोकप्रिय साहित्य में 'उपन्यास' का बदलता परिवेश एवं भाषा

डॉ० काना राम मीना

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य)

आज हम एक ऐसे दौर में जी रहे है, जिसमें एक ओर लगातार लेखक व साहित्य के अंत की घोषणा की जा रही है तो दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति अपने भाव-संवेदनाएं उकेर लेखक की श्रेणी में शामिल होते जा रहा हैं। एक ओर अभिव्यक्ति के अधिकारों पर अंकुश लगाया जा रहा हैं तो वही दूसरी तरफ व्यक्ति उतना ही सीमाएं लांघ अपनी भाषा का उपयोग कर रहा हैं। इस उत्तर आधुनिक युग में जहाँ राजनीति और सामाजिक संरचना का पतन हो रहा हैं। वही हमारे सामाजिक जीवन के सारे ताने-बाने भी विश्रृंखलित से होते जा रहे हैं। दिनोंदिन आम आदमी ज्यादा से ज्यादा संकट ग्रस्त होता जा रहा हैं। टेक्नोलॉजी के विकास ने सम्पूर्ण समाज को संचार माध्यम और मनोरंजन कम्पनियों की दुनिया में बदल दिया हैं तो दूसरी तरफ साधारण व्यक्ति का अपनी प्राथमिक जरूरतों के लिए भी संघर्ष दुगना हो गया हैं। ऐसे अराजक समय में समाज के लिए साहित्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। लेकिन 21वीं सदी के नवउदारवादी एवं पूंजीवादी दौर में मुख्यधारा के साहित्य की स्थिति एक चिंताजनक स्थिति बन चुकी है। जिसके कारण साहित्य के पाठकों की संख्या तेजी से गिरती जा रही हैं। इसके विपरीत लोकप्रिय साहित्य व लोकप्रिय संस्कृति ने पूरे जनमानस पर कब्जा कर लिया हैं। पिछले कुछ समय से इस गंभीर समस्या पर बुद्धिजीवियों में चर्चा होने लगी है। प्रो० मैनेजर पाण्डेय ने इस चिंता की ओर संकेत करते हुए कहा है कि, "यह ठीक है कि बाजारू लोकप्रिय साहित्य पूंजीवादी व्यवस्था की पतनशील संस्कृति की उपज है लेकिन यह मान लेने के बाद उसको कूड़ा-कचरा कहकर उससे पल्ला झांड लेना ठीक नहीं है। यह तो पूंजीवादी व्यवस्था की एक प्रमाणिक वास्तविकता की खतरनाक उपेक्षा होगी। अगर ओर किसी कारण से नहीं हो पूंजीवादी व्यवस्था के विचारधारात्मक स्वरूप, उसकी संस्कृति के एक रूप और उसमें मनुष्य की दशा या दुर्दशा को समझने के लिए उसकी नंगी वास्तविकता का विश्लेषण जरूरी हैं।"[1]

कला व साहित्य का सम्बन्ध सामाजिक संदर्भों से जुड़ा होता है। मानव-समाज में होने वाले परिवर्तनों के साथ कला व साहित्य के स्वरूप में भी बदलाव दिखाई देते हैं। यह बदलाव साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए साहित्य की अलग-अलग विधाओं में लक्षित होते हैं। वर्तमान समय में कविता से लेकर उपन्यास तक सबका ढांचा करीने से परिवर्तित होता जा रहा हैं। साहित्य और समाज के अन्योन्याश्रित संबंध को 'उपन्यास' में सशक्त रूप से प्रस्तुत किया जाता रहा है। क्योंकि आधुनिक मशीनी सभ्यता के युग में उपन्यास ही एक ऐसी विधा है जो समूचे सामाजिक जीवन को अभिव्यक्ति देने में सक्षम सिद्ध हुई है। इसीलिए सुप्रसिद्ध कथा-आलोचक रैल्फ फॉक्स ने उपन्यास के सामाजिक स्वरूप पर विचार करते हुए इसे 'आधुनिक युग का महाकाव्य' कहा है। "उपन्यास का वास्तविक संबंध जीवन से है। वह महान घटनाओं की खोज नहीं करता, उसका रचना क्षेत्र तो दैनिक जीवन की घटनाओं से है।"[2] उपन्यास के माध्यम से मनुष्य के जीवन की जटिलताओं, उसके संबंधों व परिस्थितियों को रोचक व प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

आधुनिक दौर के समाज में कई परिवर्तन देखने को मिलते हैं, जिसमें पूंजीवाद के उदय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नवीन वैज्ञानिक अविष्कार तथा औद्योगिक क्रांति ने समाज की आन्तरिक संरचना को प्रभावित किया, जिससे मध्यवर्ग का उदय हुआ। पश्चिम में मध्यवर्ग के उदय ने उपन्यास को लोकप्रिय बनाया। इस लोकप्रियता का मूल कारण है कि उपन्यास में मानवीय सम्बन्धों और सामाजिक मूल्यों का गम्भीरता से विवेचन होता है। उपन्यास कभी शास्त्रीय सीमाओं में बँधकर नहीं रहा। वह निरन्तर युग के

अनुरूप समाज सापेक्ष अपना स्वरूप व भाषा बदलता रहता है। मानव जीवन के विकास का आधार परिवर्तन है और उपन्यास इन्हीं परिवर्तनों का एक जीवित इतिहास है। उपन्यास में अभिव्यक्त विचारों और उद्देश्यों को बिना सामाजिक पृष्ठभूमि के अध्ययन किये नहीं समझा जा सकता।

भारत में उपन्यास का उद्‌भव और विकास ब्रिटिश शासन काल में हुआ। उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवतनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। इन परिवर्तनों के चलते भारत में उपन्यास की दस्तक औपनिवेशिक शासन काल में दिखाई देती है। यद्यपि यूरोप में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप मध्यवर्ग का उदय हो गया था, जिसने उपन्यास के उदय के लिए बुनियादी संरचना के निर्माण में योगदान दिया। लेकिन भारत की परिस्थितियाँ यूरोप से बिल्कुल भिन्न थी इसलिए यहाँ, "उपनिवेशवाद के कारण भारतीय समाज के यथार्थ और भारतीय जनता की चेतना में ऐसे अंतर्विरोध थे, जो उपन्यास के स्वाभाविक विकास में बाधक थे। यूरोप में उपन्यास का उदय जिन स्थितियों में हुआ था, उनके ठीक विपरीत परिस्थितियां यहां मौजूद थी। भारत में न तो औद्योगिकरण हो रहा था, वह भारतीय समाज के स्वाभाविक विकास का परिणाम न था। वह साम्राज्यवाद की लूट के लिए फैले व्यापार और बाजार का एक हिस्सा था। उपनिवेशवाद ने भारतीय सामंतवाद के मूल ढांचे को बनाए रखा और उसके साथ एक नए किस्म का सांमतवाद भारतीय समाज पर थोप दिया। इसलिए यहां के औद्योगिकीकरण में स्वाभाविक रूप से विकसित पूंजीवाद की कोई विशेषता न थी। यूरोप में जो मध्यमवर्ग उपन्यास के विकास का आधार बना था, वह यहां लगभग गायब था।"[3] और भारत में जिस मध्यवर्ग का विकास हुआ था, उसकी मूल्य चेतना दुविधाग्रस्त थी। उसमें एक ओर परम्परा बनाम आधुनिकता का द्वंद्व था तो दूसरी और आधुनिकता के नाम पर भ्रामक आधुनिकता की ओर झुकाव भी था। संभवत: यही कारण है कि आरंभिक उपन्यासों में कहीं भारतीय व पश्चिमी मूल्यों का द्वंद्व मिलता है तो कहीं सतही आधुनिकता के नाम पर पश्चिमी मूल्यों की नकल मिलती है। शायद इसीलिए उपन्यासों को इस समय चरित्र बिगाड़ने वाला माना जाता था । फिर भी लोग चोरी-छिपे उपन्यास को पढ़ते ही थे।"[4]

उन्नीसवीं सदी में प्रेस व प्रकाशन व्यवस्था के आगमन के साथ ही साहित्य की दिशा व दशा में महत्वपूर्ण बदलाव आया। यद्यपि फोर्ट विलियम कॉलेज के भाषामूंशी हिन्दी-उर्दू गद्य का निर्माण पहले से ही कर रहे थे। इस दौर में पत्र-पत्रिकाओं ने 'उपन्यास' के विकास में योगदान दिया है। इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विभिन्न भाषाओं (उर्दू, उड़िया, बंग्ला आदि) में उपन्यास व्यावहारिक के रूप में प्रकाशित होने लगे। साथ ही इन पत्र-पत्रिकाओं ने उपन्यास के पाठक को बताया है कि एक जमाने में बंकिंमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास के अगले हिस्से को जानने की उत्सुकता में 'बंग-दर्शन' पत्रिका का बेसब्री से इंतजार किया जाता था। इस दौर में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन बहुत तेजी से घटित हो रहे थे। एक ओर राष्ट्रीय आंदोलन अपनी रफ्तार पकड़ रहा था तो दूसरी ओर सामाजिक सुधारवादी आंदोलन का प्रसार व प्रभाव तेजी से भारतीय जन-मानस पर पड़ता जा रहा था। इन सभी परिवर्तनों की छाया नवजागरण के दौर मे लिखे जा रहे साहित्य पर दिखाई देती हैं। उपन्यास भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रहा। इस दौर में उपदेश-प्रधान सामाजिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक उपन्यास के लेखन की परम्परा चल पड़ी, जिसमें लाला श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, किशोरी लाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता, बलदेव प्रसाद मिश्र व ब्रजनन्दन सहाय आदि हैं। यह समय पाठक वर्ग के निर्माण का समय कहा जा सकता है लेकिन पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण उपन्यास को लेकर मध्यवर्ग में अनेक भ्रांतियाँ विद्यमान थी, जिसमें एक थी कि उपन्यास पढ़ने से मनोवृत्ति बिगड़ जायेगी, शायद यही कारण था कि प्रारंभ में लोग छिप-छिपकर उपन्यास पढ़ा करते थे।

भारत में कथा-साहित्य की धारा प्राचीन काल से चली आ रही है। वेदों, रामायण, महाभारत, पुराणों, जैन गाथाओं, जातक गाथाओं, हितोपदेश, पंचतंत्र की कहानियाँ, बैताल पच्चिसी आदि कथा कहने की परम्परा विद्यमान रही हैं। इसी तरह उर्दू भाषा में भी रहस्य, रोमांच और कोतूहल भी कथाएँ लिखने की परम्परा दिखाई देती है। जिनमें 'अलिफ लैला', 'गुलसनोवर', 'अमीर हमजा की दास्तान' आदि प्रमुख हैं। आज भी इन कथाओं को आधुनिक रूप देकर धारावाहिक तथा 'एनिमेशन' फिल्मों के माध्यम से जन-मानस के बीच प्रस्तुत किया जा रहा है। उदाहरण के लिए 'अलिफ लैला' की कहानी ने धारावाहिक के रूप में बेतहाशा लोकप्रियता बटोरी है। 'अलीफ लैला' एक खूबसूरत नवयुवती की कहानी है, जिसने एक स्त्री से धोखा खाए बादशाह का हृदय परिवर्तन कर अनेक नवयुवतियों को जीवनदान दिया। यह जालिम बादशाह प्रत्येक स्त्री से विवाह कर अगली सुबह उसकी निर्ममता से हत्या कर देता है। हत्याओं की इस निर्ममता से त्रस्त होकर 'शहरजाद' सुंदरी ने उस बादशाह से विवाह कर उसे अपनी कहानियों के मायाजाल में इस तरह बाँधा कि प्रत्येक रात के अंतिम पहर में शुरू होती हुई कहानी सबुह तक समाप्त नहीं हो पाती। राजा

की उत्सुकता प्रत्येक कहानी के साथ साथ चौगुनी होती जाती देख 'शहरजाद' का जीवन अगली सुबह के लिए नई आशा बनकर आता। इस पुस्तक में कुल मिलाकर 35 कहानियाँ गढ़ी गई हैं। कहानियों के भीतर में कहानियाँ इस प्रकार गूंथी गई है कि पात्रों के साथ-साथ पाठक की जिज्ञासा व रोचकता कहीं छूट नहीं पाती। एक कहानी खत्म होने से पहले दूसरी कहानी का सूत्र आरंभ होना; इसी रोचकता का प्रमुख आधार है जो पाठक की दृष्टि बांधे रखता है। इसकी कहानियों में तिलिस्म, जादू-फूंक-मंत्र, राक्षस-राजा, परियाँ-चुड़ैल आदि का वर्णन यथास्थान मिलता है। साँप का आकाश में उड़ना, राक्षस का युवती के रूप में आना, बहनों को कुतिया बना देना आदि कई ऐसे रोचक तथ्य इन कहानियों में पेश किये गए हैं, जिससे पाठक बंधा रहता है और अगले पल कहानियों में क्या होगा उसकी उत्सुकता बनी रहती है। इन कहानियों की मुख्य विशेषता उनका परिवेश ही है। स्पष्ट है मुस्लिम परिवेश को ध्यान में रखकर इन कहानियों की संरचना को गढ़ा गया है। सामान्य दुनिया के बीच एक अन्य कल्पना मिश्रित लोकजगत को निर्माण करके पाठक की मनस्थिति को कैसे अपने वशीभूत करना है; यह मंत्र इन लोकप्रिय साहित्यकारों को बखूबी ज्ञात था। चूंकि यह उपन्यास मुस्लिम धर्म सम्प्रदाय से रचित है, इसलिए इसका परिवेश एवं भाषा दोनों की सृष्टि उसी के आधार की गई है। जैसे कहानियों के शीर्षक में देखा जा सकता है- 'जुबीदा की कहानी, अमीना की कहानी, सिन्दबाद जहाजी की कहानियाँ, नूरुद्दीन और बदरुद्दीन की कहानी, अलीबाबा की कहानी आदि में पात्रों के नाम से लेकर उनका परिवेश-वेशभूषा उसी के अनुरूप पेश किया गया है। इन लोकप्रिय उपन्यासों की सबसे प्रमुख विशेषता है उनका घटना-प्रधान होना। यानी ये उपन्यास घटना-चमत्कार का प्रदर्शन कर या तो मनोरंजन करना चाहते हैं या कोई उपदेश देना चाहते हैं।

इन लोकप्रिय उपन्यासों मे उपन्यासकार जीवन के यथार्थ की जटिलताओं में नहीं उलझता, बल्कि सनसनी पैदा करने वाली, कौतूहलवर्द्धन करने वाली या किसी विशेष सुधारवादी अंत तक पाठक को पहुँचाने वाली घटनाओं को लेखक अपने ढंग से सजाता चलता है। "घटना प्रधानता प्राचीन कथाओं की एक खास विशेषता रही है चाहे वे कथाएँ दादी-नानी के मुँह से सुनी गई कहानियाँ हो, चाहे बैताल पंचपचीसी, सिंहासन द्वाविंशति, हितोपदेश और पंचतंत्र की कहानियाँ हों । इनमें घटना का एक अद्‌भुत् प्रवाह होता है। और ये घटनाएँ मानव और मानवेत्तर जगत सभी को अपना क्षेत्र और पात्र बनाती चलती है। इन कहानियों में देशकाल की यथार्थता की रक्षा नहीं होती है। एक था राजा उसके सात बेटे थे, सात रानियाँ थीं। पाठक या श्रोता इन पात्रों का नाम-धाम जाने बिना उनके परिवेश को समझे बिना कहानी सुनता चला जायेगा, घटनाएँ उसे अबाध गति से बताती चली जाएँगी।"[5] इन घटना प्रधान कहानियों में न जीवन का यथार्थ होता है न ही पात्रों की निजी विशेषता होती है। जो अद्‌भुत घटनाएँ घट रही है, उनके लिए न कोई सवाल न ही जवाब होता है। पाठक को केवल कहानी सुनने से प्रयोजन है। देशकाल की वास्तविकता से उसे कोई लेना-देना नहीं है। इस संदर्भ में रामदरश मिश्र कहते हैं कि, "इन पात्रों में मानव की गहरी संवेदना, जटिल भावबोध और चिन्तन शक्ति को प्रभावित करने की क्षमता नहीं होती। वे हमारे राग-विराग के ऊपरी स्तर को छूते हुए विस्मय, कौतूहल पैदा करते हुए चलते रहते हैं। कहानी के अन्त में सारी घटनाओं की एक सुखद परिणति दिखाई पड़ती है और पाठक या श्रोता के सामने यह मंगल वाक्य होता है कि जैसे इस कथानायक का राजपाट लौटा वैसे सबका लौटे।"[6] हिन्दी कथा साहित्य में 'उपन्यास' विधा सुधारवादी और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर उभर रही थी, लेकिन इसके साथ ही साथ एक अन्य धारा 'मनोरंजन प्रधान व जासूसी प्रधान उपन्यास' भी पाठक के बीच लोकप्रियता पा रहे थे। इन लोकप्रिय किस्सों व कहानियों की परम्परा को देवकीनन्दन खत्री ने आगे बढ़ाया। उन्होंने भांप लिया था कि पाठक इन कहानियों के मायाजाल मे फंसता चला जायेगा और व्यवसायिक दृष्टि से इससे सरल रास्ता कोई ओर नहीं हो सकता है। सन् 1888 में 'चन्द्रकांता' का प्रकाशन हुआ। 'चन्द्रकांता' व चन्द्रकांता संतति की लोकप्रियता को देखकर सन् 1898 ई. मे अपनी स्वयं की प्रेस 'लहरी प्रेस' के नाम से खोल लिया। अब इनके सारे उपन्यास हीं से प्रकाशित होने लगे। माधव प्रसाद मिश्र के सम्पादन में 'सुदर्शन' नामक समाचार पत्र भी इनकी देखरेख में निकलने लगा। उनके उपन्यासों की सफलता के बाद जगन्नाथदास 'रत्नाकर', बालमुकुन्द गुप्त, हरिकृष्ण जौहर, किशोरीलाल गोस्वामी, राधाकृष्ण वर्मा आदि कई प्रतिष्ठित साहित्यकार भी इनकी मित्र मण्डली में शामिल हो गये थे।

देवकीनन्दन खत्री का सर्वाधिक महत्त्व उपन्यास को लोकप्रिय बनाने में है। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि, "जिस उपन्यास या उपन्यासमाला ने साहित्य के लाखों पाठक पैदा किए हो, असंख्य लोगों को हिन्दी का लेखक बनाया हो, उनका ऐतिहासिक महत्त्व स्वयं सिद्ध है।"[7] देवकीनन्दन खत्री ने अपने जीवनकाल में आठ उपन्यासों की रचना की है। जिसमें चार सम्पूर्ण व चार अधूरे हैं - 'चन्द्रकान्ता' (1888 ई.), 'चन्द्रकांता सन्तति' (1894-1895 ई.), 'भूतनाथ' (1908-125), 'कुसुम कुमारी' (1894-1898), नरेन्द्र मोहिनी (1893 ई.), वीरेन्द्र वीर व कटोरा-भर-खून (1895 ई.) काजर की कोठरी (1902 ई.), गुप्त गोदना (अपूर्ण) है।

'चन्द्रकान्ता' व देवकीनन्दन खत्री के अन्य उपन्यासों की भाषा की प्रशंसा सभी आलोचको ने मुक्त कण्ठ से की है। भाषा के सम्बन्ध मे स्वयं लेखक लिखता है कि, "किसी ग्रन्थ या पत्र की भाषा के लिये यदि किसी बड़े कोष को टटोलना पड़े तो कुछ परवाह नहीं, परन्तु साधारण विषय के लिए भी कोष को टटोलना पड़े तो निस्संदेह दोष की बात है। मेरी हिन्दी किस श्रेणी की हिन्दी है, इसका निर्धारण मैं नहीं करता, परन्तु मैं यह जानता हूँ कि इसको पढ़ने के लिये कोष की तलाश नहीं करनी पड़ती।"[8] वास्तव में चन्द्रकान्ता की भाषा इसी प्रकार की थी जिसे पढ़ने के लिए पाठक को किसी शब्दकोश की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि जिस भाषा का प्रयोग देवकीनन्दन खत्री कर रहे थे वह सामान्य बोलचाल की भाषा थी । जिसे उस सम हिन्दुस्तानी कहा जाता था। भाषा की सरलता व सहजता के कारण हर वर्ग के लोग चन्द्रकान्ता के पाठक बने। सामान्य जन हो, चाहे जमींदार हो या बौद्धिक वर्ग हो रह किसी ने चन्द्रकान्ता को पढ़ा यहाँ तक जिसे हिन्दी नहीं आती थी उसने भी चन्द्रकान्ता के लिए हिन्दी सीखी और एक के बाद एक देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों को पढ़ते चले गये।

जिस दौर में देवकीनन्दन खत्री उपन्यासों की रचना कर रहे थे, उस समय भाषा को लेकर चारों ओर अराजकता विद्यमान थी। हिन्दी-उर्दू विवाद अपनी चरम सीमा पर था। लेखक व बौद्धिक वर्ग भाषा को लेकर दो खेमों में बंट गये थे। पहला वर्ग अरबी-फारसी से युक्त उर्दू का समर्थक था तो दूसरा वर्ग संस्कृतनिष्ट हिन्दी का समर्थक था। एक ओर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द थे तो अरबी-फारसी से युक्त शब्दावली के पक्ष में में थे तो दूसरी ओर ऐसे भी लेखक थे जो छाँट-छाँटकर उर्दू शब्दों का बहिष्कार करके संस्कृत शब्दों की भरमार से भाषा को मृत-प्राय और बोझिल बना रहे थे। इस तरह खत्री जी की भाषा के स्तर पर दोहरी लड़ाई थीं उन्होंने भाषिक कट्टरता और हठधर्मिता को छोड़कर भाषा के स्वस्थ और वैज्ञानिक विकास की पद्धति अपनायी। इस संबंध में मधुरेश ने लिखा है,"भाषा के मोर्चे पर देवकीनन्दन खत्री की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि ऊपरी तौर पर दो परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले रास्तों को उन्होंनें अपने मानसिक आदर्श और व्यवहार के द्वारा एक कर दिया और इस तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समर्थक जो काम नहीं कर सके, वह अकेले उन्होने करके दिखा दिया। उन्होंने हिन्दी को लगभग वहीं से उठाया जिसे लोग तिरस्कार भाव से 'राजा शिवप्रसादी हिन्दी' कहते थे। लेकिन उसके लिये निरन्तर संघर्षशील और सचेत रहकर उसे लगभग वहीं पर पहुँचा दिया जो स्वयं भारतेन्दु हरिचन्द्र और उनके समर्थकों का आदर्श था।"[9]

कट्टरता व परस्पर विरोध के कारण हिन्दी भाषा के विकास में जो कठिनाइयाँ आ रही थी उन्हें देवकीनन्दन खत्री ने अपने ढंग से सरल व संभव बना दिया। उन्होंने सामान्य जन की मानसिकता को ध्यान में रखते हुए भाषा का प्रयोग किया है। 'चन्द्रकान्ता' की भाषा को समझने के लिए उर्दू जानने वालों के लिए केवल नागरी वर्णमाला सीख लेना प्रर्याप्त था, तो हिन्दी जानने वालों को भी शब्दकोश की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि उपन्यास मे सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले उर्दू शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। उन्होंने उपन्यास मे संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है तो अप्रचलित अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग से भी दूर रहे हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी की इतिहास दृष्टि में कमियाँ होते हुए भी उन्होंने तिलिस्म के जाल में उलझे हुए पाठक को झकझोरते हुए हिन्दी कथा साहित्य में उपन्यास को नया आयाम दिया। इन्होनें असाधारण स्मरण शक्ति और कल्पना के माध्यम अपने युग में प्रचलित उपन्यासों के हर क्षेत्र में हाथ आजमाया है जिनमें प्रमुख है - सामाजिक, तिलिस्मी और जासूसी। लेकिन उनको पहचान मिली ऐतिहासिक उपन्यास लेखक के रूप में अपने उपन्यासो का ऐतिहासिक कालक्रम मुस्लिम व राजपूती काल को चुना है, इसलिए उनके उपन्यासों में मुसलमानों के प्रति विद्वेष व कटूता दिखाई देती है। जो देवकीनन्दन खत्री के यहाँ भी दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के विकास मे गोपालराम गहमरी का अतुलनीय और अविस्मरणीय योगदान है। अपने साहित्य उपन्यास, अनुवाद, कविताओं, हास्य-व्यंग्य लेख, रिपोर्ताज व पत्र-पत्रिकाओं के संपादन आदि के माध्यम से हिन्दी भाषा व साहित्य को विकसित किया है। गोपालराम गहमरी ने उपन्यास के पाठकों को तिलिस्म की दुनिया से बाहर निकालकर जासूसी की भूल-भुलैया में प्रवेश करा दिया। "डरिये मत, यह कोई भकौआ नहीं है, धोती सरियाकर भागिए मत, यह कोई सरकारी सीआईडी नहीं है, है क्या? क्या है? है यह पचास पन्ने की सुंदर सजी-सजायी मासिक पुस्तक, माहवारी किताब जो हर पहले सप्ताह सब ग्राहकों के पास पहुँचती है। हर एक में बड़े चुटीले, बड़े चटकीले, बड़े रसीले, बड़े गरबीले, बड़े नशीले मामले छपते हैं। हर महीने बड़ी पेंचीली, बड़ी चक्करदार, बड़ी दिलचस्प घटनाओं से बड़े फड़कते हुए, अच्छी शिक्षा और उपदेश देने वाले उपन्यास निकलते हैं.....कहानी

नहीं ऐसी हहराती है, किस्से का झरना ऐसे झरझराता है कि पढ़ने वाले आनंद के भंवर में डूबने उतराने लगते हैं"[10] यह गोपालराम गहमरी के पत्र 'जासूस' का विज्ञापन है जो इसके प्रकाशित होने से पूर्व 'भारत मित्र' में दिया गया था। इसके पीछे उद्देश्य था ज्यादा से ज्यादा पाठकों को आकर्षित कर पत्र से जोड़ना हुआ भी यही और प्रकाशित होने से पहले ही सैकड़ों पाठकों ने पत्र की वार्षिक सदस्यता ग्रहण कर ली थी। जाहिर है इसके पीछे उनका उद्देश्य 'व्यवसायिकता' ही था क्योंकि उनका उद्देश्य देवकीनंदन खत्री की तरह व्यावसायिक था। इस उद्देश्य में वे सफल रहे उन्होंने अपने 'जासूस' किरदारों से पाठकों के मन-मस्तिष्क में जगह बनाई। "गहमरी जी ने हिन्दी उत्पन्न नये पाठक वर्ग को जो ऐयारी-तिलिस्म प्रधान रोमांसों में लीन था, स्वाद बदलने के लिए, अपराध प्रधान और जासूसी कथाएँ उपलब्ध करायीं। इन कथापुस्तकों का नयापन यह था कि इसके केन्द्र में तिलिस्म कथा की तरह कोई प्रेमकथा न होकर कोई 'अपराध' होता था।"[11] इस तरह से 'हीरे का मोल' के अनुवाद की लोकप्रियता और 'जोड़ा जासूस' लिखकर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के कारण वे कई तरह की योजनाएँ बनाने लगे। सरल, सुगम व सामान्य वर्ग की भाषा हिन्दी ही गहमरी जी के उपन्यासों की विशेषता है जिससे पाठक आसानी से जुड़ते चले गये। वे स्वयं पंडिताऊ या संस्कृतनिष्ठ भाषा शैली के पक्ष में नहीं थे। "वे ऐसी भाषा की निदां करते थे जिसको समझने के लिए कोश उठाना पड़ जाए। लेखन को लेकर गहमरी जी की दृष्टि बहुत साफ ओर सुलझी थी। किसी कथा और उपन्यास के अच्छे होने का मानक उनके लिए यह था कि कहानी के पूर्णत: कल्पित होने के बावजूद जिसे लोग सोलहों आने सच समझे।"[12]

हिन्दी उपन्यास का परिवेश और उसकी भाषा में बड़ा परिवर्तन प्रेमचन्द के आगमन से हुआ। जिस समय प्रेमचंद अपने साहित्यिक लेखन (उर्दू में) की शुरूआत कर रहे थे, तब हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में रहस्य, तिलिस्म तथा जासूसी उपन्यासों का प्रभाव पाठक पर बहुत ज्यादा था। प्रेमचन्द भी इस तिलिस्म से परिचित थे, लेकिन उन्होंने अपने लेखन में समाज के यथार्थ सर्वोपरि रखते हुए साहित्य दृष्टि के उद्देश्यों की पूर्ति की है। हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द व उनके समकालीन लेखकों (जयशंकर प्रसाद, निराला, बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, इलाचन्द्र जोशी आदि) के आगमन का पहला उल्लेखनीय असर यह हुआ कि उपन्यास का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन प्रदान न रहकर सामाजिक चेतना बन गया। ऐयारी व तिलिस्म प्रधान साहित्य का पाठक कम होने लगा। जासूसी कथा पुस्तकों का दौर समाप्त होने लगा। यद्यपि ऐसा नहीं है कि इस दौरान लोकप्रिय साहित्य लिखा ही नहीं गया।

आजादी के बाद का समय काफी उथल-पुथल भरा रहा है। न सिर्फ राजनीतिक स्तर पर बल्कि सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर भी बड़े बदलावों का समय इसे कहा जा सकता है। एक तरफ विभाजन का दंश सहन कर सामान्य जनमानस अपने-आपको सम्भालने में लगा था तो दूसरी तरफ आजादी के बाद के सपनों का मोहभंग कम नहीं हो रहा था। नेहरू के आर्थिक औद्योगिक विकास की स्वप्न आलोचना के केन्द्र में आ गया था। छठे-सातवें दशक में मोहभंग के बाद आपातकाल, भूमण्डलीकरण, साम्प्रदायिकता के उभार आदि ने साहित्य को प्रभावित किया। आजादी के दौरान जो साहित्यिकार यथार्थवादी साहित्य को आगे बढ़ा रहे थे, वे 60 के दशक में इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर भी साहित्य कर्म कर रहे थे। अज्ञेय, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती, नागार्जुन, शमशेर, जैनेन्द्र कुमार आदि लेखकों ने उपन्यासों ने तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को अपने उपन्यासों में दिखाते हुए आजादी बाद की परिस्थितियों को भी चित्रित किया है।

स्पष्ट है इन बदलती परिस्थितियों का प्रभाव उपन्यास के स्वरूप - भाषा के साथ-साथ उसके पाठक पर भी पड़ रहा था। 19वीं सदी के बाद लगभग तीन दशक तक लोकप्रिय उपन्यासों का जो बोलबाला रहा था, अब वापस पाठक रहस्य, अपराध व जासूसी उपन्यासों की ओर अग्रसर हो रहा था। लोकप्रिय उपन्यासों की वापसी में साठ के दशक की परिस्थितियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जो पाठक आजादी से पूर्व कलात्मक साहित्य पढ़कर राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी योगदान दे रहा था उसके सपने आजादी के बाद टूटते हैं और मोहभंग के कारण सामान्य पाठक इन लोकप्रिय उपन्यासों के माध्यम से अपने मानसिक तनाव को दूर करने का जरिया बनाने लगा था। आजादी के बाद पूंजीवादी बाजार व उपभोक्तावादी संस्कृति वापस साहित्य पर भी अपना कब्जा जमाने लगती है। अब समय वापस पाठक की माँग के अनुसार साहित्य लेखन पर जोर देने लगा था। यहाँ यह भी स्पष्ट रहे कि आजादी तक मुख्यधारा के साहित्य व लोकप्रिय साहित्य में विभाजन हो चुका था, जिसे आलोचकों ने 'लुगदी घासलेटी या सड़कछाप' कहकर दरकिनार कर दिया था।

हिन्दी में विशुद्ध रूप से लोकप्रिय उपन्यासों की पुर्नस्थापना का प्रयास इब्ने सफी तथा गुलशन नंदा के जासूसी उपन्यासों से प्रारम्भ होता है। इब्ने सफी का पहला जासूसी नावेल 1952 में 'दिलेर मुजरिम' नाम से प्रकाशित किया। उनका यह उपन्यास लाखों पाठकों को अपना दिवाना बना दिया था। "उनके जज्बे से प्रभावित होकर अब्बास हुसैनी ने 'जासूसी दुनिया' नामक एक मासिक पत्रिका की शुरूआत की, जिसके पन्नों पर इब्ने सफी का नाम पहली बार छपा 'दिलेर मुजरिम'। कहते हैं यह उपन्यास विक्टर गन के उपन्यास आयरन साइड्स लोन हैंड्स पर आधारित था, लेकिन उसके किरदार खालिस देशी, ये पात्र जासूसी सीरीज के अमर किरदार बन गये।"[13] इब्ने सफी ने आजादी के बाद 'लोकप्रिय उपन्यासों' की वापसी में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने लगभग 36 उपन्यास जासूसी दुनिया का तथा 79 उपन्यास इमरान शृंखला के लिए लिखा है। सभी मिलाकर लगभग 250 उपन्यास लिखें हैं। 26 जुलाई 1980 को उनकी लेखनी को विराम मिला। सन् 1960 का दशक साहित्यिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का दौर माना जाता है। एक ओर मुख्य धारा के साहित्य में सामान्य जनमानस के मोहभंग की अभिव्यक्ति हो रही थी तो दूसरी ओर लोकप्रिय साहित्य अपराध, जासूसी और तिलिस्म के चंगुल से बाहर निकलकर रोमांस, सामाजिक मुद्दों और भावनाओं के नए बाजार को फतह करने निकल पड़ा था।

60 के दशक में लोकप्रिय उपन्यासों के प्रतिनिधि उपन्यासकार गुलशन नंदा को माना जाता है। वे ऐसे लेखक थे जिन्होंने जासूसों को प्रेम की भूल-भूलैया में भटका दिया। इस श्रृंखला में ओमप्रकाश शर्मा व वेद प्रकाश शर्मा जैसे लोकप्रिय उपन्यासकारों ने हिन्दी जगत् के पाठकों पर कब्जा कर लिया। समकालीन उपन्यासकार रीमा भारती, मीनू, चेतन भगत, शवि शर्मा, दुर्जोय दत्त, रविन्द्र सिंह, भगवंत अनमोल, दिव्य प्रकाश दुबे, सत्य व्यास आदि लोकप्रिय उपन्यासकार बाजार की मांग के अनुरूप उपन्यासों का लेखन कर रहे है।

बाजारवाद, व्यवसायीकरण, प्रकाशन व्यवस्था और राजनीति, प्रोपेगेंडा और टेलीविजन जैसे माध्यमों के हस्तक्षेप से लोकप्रिय साहित्य का प्रसार भारतीय समाज में तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस साहित्य को पूंजीवाद ने पाला-पोसा है। इंटरनेट, सोशल नेटवर्किंग साइट, फेसबुक व ब्लॉगिंग के जमाने में लोकप्रिय साहित्य ने अपनी उपस्थिति मजबूती के साथ दर्ज करवाई है। ऐसे समय में वह साहित्य जिसे हम लोकप्रिय, बाजारू, घटिया, घासलेटी, सड़क छाप या सतही साहित्य कहकर दरकिनार कर देते हैं, उसके बारे में यह जानना जरूरी है कि यह साहित्य समाज के किस हिस्से का नेतृत्व करता है, कौन सी संस्कृति का निर्माण करता है? और उसके उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रिया क्या है? जरूरी है कि इन सवालों के जवाब खोजते हुए उसके स्वरूप पर व्यवस्थित ढंग से विचार किया जाए।

लोकप्रिय साहित्य पूंजीवादी समाज की उपज है। पूंजीवादी समाज की इस कटु सच्चाई को पूँजीवादी समाजशास्त्री भी स्वीकार करते हैं। इस उत्तर-आधुनिक युग में बाजार के माध्यम से चीजों को तोड़-मरोड़कर पेश किया जाता है। मानवीय सम्बन्ध बाजारू वस्तु का रूप धारण करते जा रहे हैं और सम्बन्धों का आधार आर्थिक होता जा रहा है। जिससे मानवीय संवेदनाओं का ह्रास और मनुष्य की चेतनाशीलता समाप्त होती जा रही है। उसकी मान्यताएं व मूल्य आर्थिक तन्त्र के नीचे दबकर रह गए हैं। पूंजीवादी व्यवस्था का लक्ष्य भी यही है जिसे वह मीडिया, टी.वी. व टेक्नालोजी के माध्यम से पूरा कर रहा है। इस पूंजीवादी व्यवस्था में यह साहित्य लेखकों के नाम से कम व प्रकाशनों के लेबुल या सीरिज के नाम से ज्यादा बिकता है। लोकप्रिय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका 'नामकरण' है। चाहे प्रारंभिक लोकप्रिय उपन्यास हों या आज के समय के लोकप्रिय उपन्यास हों, उनके नाम रहस्यात्मक, रोमांचक, आकर्षक व मनोरंजक होते थे, जिससे पाठक वर्ग जुड़ जाता था। नामकरण का यह प्रभाव भी कलात्मक साहित्य पर पड़ता दिख रहा है। जैसे आज के दौर के उपन्यासों- पतनशील पत्नियों के नोट्स, छबीला रंगबाज, हाफ गर्लफ्रेंड, बनारस टाकिज, जिन्दगी 50-50 आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

लोकसाहित्य अपनी रचनाशीलता और सम्वेदना के आधार पर जन सामान्य में लोकप्रिय होता है, जबकि लोकप्रिय साहित्य की लोकप्रियता के नेपथ्य में बाजारवाद व पूंजीवाद होता है। लोक साहित्य के लिए लोकप्रिय से ज्यादा उपयुक्त शब्द जनप्रिय होगा, जिसकी रचना लोक करता है। यह साहित्य साधारण जनता से सम्बन्ध रखता है जिसने आदिकाल से लेकर अब तक की भारतीय

संस्कृति को संजो कर रखा है। लोकप्रिय साहित्य व जनवादी साहित्य एक-दूसरे से एकदम भिन्न हैं। जनवादी साहित्य पूंजीवादी व्यवस्था के घिनौने चेहरे को बेनकाब करने तथा सतही व बाजारू साहित्य से लुप्त होती मानवीय संवेदना व चेतना को जाग्रत करने में योगदान दे रहा है।

संदर्भ

1. मैनेजर पाण्डेय – साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका , पृ० सं० – 303
2. उपन्यास और लोक जीवन-रैल्फ फॉक्स, पृ० सं० – 35
3. मैनेजर पाण्डेय- साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, पृ० सं० - 296
4. मैनेजर पाण्डेय- साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, पृ० सं०- 299
5. रामदरश मिश्र- हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा पृ० - 22
6. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ. 23
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 498
8. मधुरेश - देवकीनन्दन खत्री, पृ. 60
9. देवकीनन्दन समग्र चन्द्रकान्ता, भाग-24
10. जासूस (पत्रिका), का विज्ञापन 'भारत मित्र' में
11. गोपालराय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ. 99
12. गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास पृ. 212
13. इब्ने सफी की जासूसी दुनिया - जानकी पुल

सांस्कृतिक विशेषीकरण के संदर्भ में जनजातियों का वर्गीकरण: एक विश्लेषण

डॉ० विकास कुमार

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, ईश्वर शरण पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ०प्र०)

सारांश

जनजातीय समाज मानव इतिहास में संस्कृति के उन आरंभिक चरणों की ओर संकेत करते है, जहाँ से वह विकास की वर्तमान अवस्था तक पहुँची है। प्रत्येक मानव-समूह की संस्कृति में विशिष्टता का यह गुण पाया जाता है। प्रस्तुत लेख में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए जनजातियों के भौगोलिक, आर्थिक, प्रजातिय तथा भाषा के आधार पर दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही वर्तमान युग में इनकी संस्कृति बाहरी लोगों से सम्पर्क में आने के बाद परिवर्तित हुआ है।

प्रमुख शब्द: जनजाति, संस्कृति, भाषा, आदिवासी, नृवृतीय।

आदिवासी शब्द अपने में असीम, अनुपम और अदभुत इतिहास सँजोये हुए है। इसका उच्चारण करते ही पुरातन, लुण्तप्राय: जातियो की एक झलक सामने आ जाती है। आदिवासी देश के गडे हुए या छिपे हुए खजाने है। वैज्ञानिक युग् के चकाचौंध से दूर, आधुनिकता की कृत्रिम और जटिल व्यवहार शैली से अलग और आज के भौतिक वैभव एवं भोगवादी जीवन से अपरिचित, एकान्त और शान्त प्रकृति की गोद में रहने वाली इस जाति के लोग आज भी अपनी परम्पराओं और रूढियों से ग्रसित अपनी मर्यादा और संस्कारों से संबंधित सामाजिकता का परिचय देते है।

मानव मात्र का सर्वांगीण अध्ययन ही मानव विज्ञान का विषयक्षेत्र कहा जाता है। किन्तु मानव विज्ञान का जन्म लगभग 150 वर्ष पूर्व जिन परिस्थितियों में हुआ, उनमें यूरोपियन मनोवैज्ञानिक अधिकांशत: ऐसे अन्य महादेशों के वासियों का अध्ययन करते थे, जो सांस्कृतिक दृष्टि से यूरोप की तुलना में अति पिछड़े हुए थे। इस प्रकार, एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और द्वीप समूहों के आदिवासियों के सांस्कृतिक अध्ययन ही सांस्कृतिक, सामाजिक मानव विज्ञान की परम्परा में जुड गये। इसके कई कारण थे। इन आदिम जातियों अथवा आदिवासी कबीलों की संस्कृति यूरोपिय संस्कृति की तुलना में अत्यधिक रंगीन और रोचक थी, इन कबिलों की सामाजिक जीवन छोटे पैमाने पर संगठित और सरल था, और प्रशासकों के लिए शासित लोगो की संस्कृति और सामाजिक रचना का ज्ञान आवश्यक था, ताकि शासन अच्छा, सुगम और अर्थपूर्ण हो सके।[1]

इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर अंग्रेज अधिकारियों और प्रशासको ने अपनी भारतीय साम्राज्य में बिखरी आदिवासी संस्कृति का अध्ययन प्रारंभ किया। औपचारिक रूप से भारतीय विश्वविद्यालयों में मानव विज्ञान को स्थान बाद में मिला, परन्तु उसके पूर्व ही देश की आदिवासी संस्कृतियों और उनके सामाजिक जीवन पर विभिन्न दृष्टिकोण से पुस्तकें लेख और रिर्पोट लिखी जा रही थी। जहाँ एक और भारतीय विश्वविद्यालयों में मानव विज्ञान ही पाठ्यक्रम में स्वीकार करने के साथ जनजाति विषयक नृवृतीय और नृवंशशास्त्रीय अध्ययन वैज्ञानिक विधि से होना प्रारंभ हुआ, वहीं स्वतंत्र भारत के संविधान ने यह घोषणा की कि आदिवासी हितो की रक्षा शासन का परम कर्तव्य है, और इस दिशा में शासन को क्या करना है, इसकी विस्तृत रूप-रेखा निर्धारित की गई है। इसके अनुसार, आदिवासी को अनुसूचित जनजातियों के रूप में संवैधानिक सुविधाएँ भी प्रदान की गई, जिससे उनका सर्वांगिण विकास किया जा सके। इनके विकास के लिए सामाजिक समुदायों के वैज्ञानिक अध्ययन को आवश्यक माना गया और इस प्रकार के अध्ययनों को बल मिला।

इस प्रकार, आज देश में आदिवासी अथवा अनुसूचित जनजातियों के सांस्कृतिक-सामाजिक अध्ययन का महत्व सैद्धांतिक-वैज्ञानिक भी है और व्यावहारिक भी। भारतीय संविधान जनजातियों को अनुसूचित जनजाति का नाम दिया है, लेकिन नृतत्वशास्त्रियों ने

जनजातियों को अलग-अलग नामों से संबोधित किया है। रिजले, लेके, सोवर्ट, मार्टिन, ए०वी० थक्कर ने उन्हे आदिवासी (एबारिजिंस) नाम से पुकारा है। वेन्स ने इन्हे प्रवर्तीय जनजातियाँ (हिल ट्राइब्स) की संज्ञा दी है।

प्रसिद्ध समाशास्त्री डॉ० घुरये ने इन्हे तथाकथित आदिवासी (सो काल्ड एबारिजिन्स) अथवा 'पिछडे हुए हिन्दू' नाम दिया है तथा उन्होने इनके लिए अनुसूचित जनजातियाँ (शिड्युल्ड ट्राइब्स) नाम प्रस्तावित किया, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342, निर्हित किया गया।[2] एल० एम० श्रीकान्त के अनुसार, ''जनजातियाँ भारतवर्ष में विभिन्न समयों में अलग-अलग नामों से जानी गयी है, जैसे अरण्यक, रानीपरज, आदिवासी।[3] इस प्रकार भारत में आदिवासी कई नामों से जाने जाते है- वनवासी, वन्यजाति, गिरिजन, आदिम जाति इत्यादि नामों की विविधता को देखते हुए जनजातियों की विशेषताएँ क्षेत्र के अनुसार एक समान नहीं होती है। गिलिन और गिलिन ने अपनी पुस्तक (कल्चरल एन्थ्रोपोलॉजी) में जनजाति की परिभाषित करते हुए कहाँ कि ''स्थानीय जनजातीय का ऐसा समवाय जनजाति कहाँ जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोगब करता है, तथा जिसकी एक सामान्य संस्कृति है।''[4] डी० एन० मजूमदार ने पुस्तक (रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया) में बतलाया कि'' कोई जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गो का एक ऐसा समूह है, जिसका एक सामान्य नाम है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर निवास करते है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते है, जिन्होने एक आदान-प्रदान संबंधि तथा पारस्परिक कर्तव्य विषय एक निश्चित व्यवस्था का विकास कर लिया है। साधारणतया एक जनजाति अर्न्तविवाह के सिद्धान्त का समर्थन करती है, और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति में विवाह करते है।''[5] इस प्रकार, एक सर्वसम्मत तथ्य है कि एक आदिवासी समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था, एक सामान्य निवास व प्रजाति आदि होती है, इस देश के प्राचीनतम लोगों में से माना जाता है।

प्रोफेसर ए०आर० देसाई ने उन जनजातिय समूहो जो कि अभी तक संस्कृतिकरण एवं आत्मसात्मीकरण का विरोध करते आये है, के सामान्य लक्षण निम्नोक्त है।[6]

1. वे आदिम धर्म को मानते है जो कि सर्वजीववाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। जिसमें भूत-प्रेत या आत्माओं की पूजा का विशेष स्थान होता है।
2. वे जनजातीय भाषा का प्रयोग करते है।
3. वे जनजातीय व्यवसायों को अपनाते है, जैसे प्राकृतिक उपयोगी वस्तुओं का संग्रह, शिकार, वन में उत्पन्न वस्तुओं का संग्रह करना आदि।
4. वे अधिकांशतया माँस-मझी है।
5. उनकी खानाबदोशी आदते है तथा मद्यपान एवं नृत्य के प्रति उनकी विशेष रूची है।
6. वे सभ्य जगत से दूर पर्वतों तथा जंगलों में दुर्गम स्थानों में निवास करते है। देसाई के अनुसार, कुल जनजातीय जनसंख्या का केवल 1/5 भाग में उपरोक्त सामान्य लक्षण पाये जा सकते है।

भारत में पैह्ले जनजातीय समूहों को भौगोलिक, प्रजातीय तत्वों, भाषा एवं आर्थिक आधार पर जनजातियों के विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

(1) भौगोलिक आधार पर जनजातियों का वितरण

डी० एन० मजूमदार ने भौगोलिक आधार पर जनजातियों को उत्तर तथा उत्तर पूर्व, मध्यवर्ती तथ दक्षिण भाग में विभाजित किया। श्यामाचरण दुबे ने पुस्तक (मानव और संस्कृति)[7] में जनजाति-प्रधान क्षेत्रों को चार भागों में बाँटा है-

(i) *उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्र*–इस क्षेत्र के अन्तर्गत जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मणिपुर-त्रिपुरा का तराई क्षेत्र, असम, उत्तरी बंगाल, मेघालय, नागालैण्ड तथा त्रिपुरा आते है। इस क्षेत्र को 'हिमालयी क्षेत्र' भी कहाँ जाता है। इस क्षेत्र में निवास करने वाली कुछ मुख्य जनजातियाँ-गद्दी, गुज्जर, भोट, कोबरा, थारु, भोटिया, रियाना, माओ मिजो, गारो, रवासी, आपातानी आदि है। देश की सपूर्ण जनजातीय जनसंख्या का 2% इस क्षेत्र में वितरित है।

(ii) मध्य क्षेत्र- इस क्षेत्र के अर्न्तगत पश्चिम बंगाल, बिहार, क्षारखण्ड, उडीसा तथा तथा मध्यप्रदेश आता है। इस क्षेत्र में निवास करने वाली प्रमुख जनजातियाँ- संथाल, मुंडा, उराँव, हो, भूमिज, गोण्ड, कमार, बैगा, भूमिका, कोया आदि है। सम्पूर्ण जनजातीय जनसंख्या का लगभग 49% इस क्षेत्र में निवास करते है।

(iii) पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र – इस क्षेत्र के चार राज्यों गुजरात, राजस्थान, पंजाब तथा महाराष्ट्र आते है। इस क्षेत्र में निवास करने वाली प्रमुख जनजातियाँ-मीना, भील, कोली, कोकना, घोदिया, डब्ला आदि है। संपूर्ण जनजातीय जनसंख्या का लगभग 27% यहाँ निवास करते है।

(iv) दक्षिणी क्षेत्र- इस क्षेत्र में आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, अण्डमान व निकोबार द्वीपसमूह और लक्षद्वीप आता है। पश्चिमी घाट के दक्षिणी भागो में रहने वाले जनजातियों को देश की अति प्राचीन जनजातियों के रूप में माना जाता है। इस क्षेत्र में निवास करने वाले प्रमुख जनजातियाँ- चेरु, टोडा, कोटा, बदागा, चेट्टी, केनी, कुरिचिया, अण्डमानी, निकोबारी, जरावा आदि पायी जाती है। संपूर्ण जनजातीय आबादी का लगभग 12% इस क्षेत्र में पाया जाता है।

(2) प्रजातीय तत्वों के आधार पर जनजातियों का वितरण

भारत की जनजातियों के अन्तर्गत प्रजातीय तत्वें का विशेष अध्ययन नहीं हुआ है, तथापि अब तक के किए गए अध्ययनों का ध्यान में रखने पर यह स्पष्ट है कि यदि दक्षिण क्षेत्र में 'नीग्रीटो' का मिश्रण है तो केन्द्रिय क्षेत्र में 'आस्ट्रेलियाइ' की विशेषताएँ और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में मंगोलॉयड' प्रजाति का लक्षण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

शारीरिक लक्षण (प्रजातीय तत्वों के आधार पर)-

नीग्रीटो प्रजाति- घुंघराले बाल, चिपकी नाक

प्रोटो- आस्ट्रेलायड- चेहरे का आकार, शरीर की त्वचा का रंग तथा सिर का बाल एक जैसा (काला) होता है।

मंगोलॉयड- चिपटे मुँह, गाल की चौडी हड्डियाँ, चिपटा नाक तथा पीलापन लिए शरीर का रंग

(3) भाषा के आधार पर जनजातियों का वर्गीकरण

एक बोली बोलने वालो को एक 'भाषा-परिवार' में रखा जाता है। भारत की जनजातियाँ विभिन्न भाषा परिवारों की है जो है-

1. आग्नेय- आग्नेय, आस्ट्रिक का ही दुसरा नाम है इस परिवार की दो शाखाएँ है- (1) मानखमेर- इस उपशाखा के चार वर्ग है, मानखमेर, पलौगवा, खासी और निकोबारी। जैसा की नाम से स्पष्ट है कि 'निकोबारी' निकोबार द्वीप की और खासी मेघालय के खासी लोगों की भाषा है। भारत की दृष्टि से आग्नेय परिवार की सबसे प्रधान भाषा 'मुण्डारी' है। मुंडा, हो, संथाल, भील आदि केन्द्रिय वर्ग की जनजातियाँ इसी परिवार की भाषा, जिसे ''मुंडारी'' भी कहते है, व्यवहार में लाती है। भारत में 'मुंडारी भाषा का प्रसार बहुत ज्यादा था। यह प्रत्यय-प्रधान भाषा है। इसमें स्त्रीलिंग और पुलिंग व्याकरण के आधार पर नहीं, सजीव और निर्जीव के भेद के अनुसार होता है। इस भाषा की सबसे बडी विशेषता उसकी वाक्य-रचना है। यह भाषा झारखंड, म०प्र०, उडीसा और तमिलनाडु के कुछ भागों में बोली जाती है।
2. द्राविड-द्राविड परिवार की मध्यवर्ती बोली में गोडी सर्वप्रमुख है। द्राविड परिवार की अन्य बोलियाँ कुरूरव माल्टो, कोलामी तथा कुई विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कंडुरव छोटानागपुर (क्षारखण्ड), म०प्र० और उडीसा के कुछ जिलों में बोली जाती है। इसका तमिल तथा कन्नड से निकट का साम्य है। कुँडुख की एक शाखा माल्तो है, जो राजमहल पहाड़ियों में रहने वाले सौरिया या मालेर लोगों की भाषा है। 'कुई' उडीसा की भाषा है, इसका तेलगु से अधिक साम्य है।
3. तिब्बती-वर्मी- उत्तर-पूर्वी क्षेत्र या हिमाचल क्षेत्र में रहने वाली आदिवासी जनजातियों की भाषा के स्वरुप के आधार पर तिब्बती-वर्मी भाषा है, और कही न कही इस पर 'आस्ट्रिक' भाषा का प्रभाव भी है।

आधुनिक समय में जनजातियाँ, गैर जनजातियों के प्रभाव में आकार उनकी बोली भी जान गई है। जैसे- छोटानागपुर की जनजातियाँ अपनी भाषा के अलावा अन्य की भाषा समझना-बोलना सीख गई है, यथा हिन्दी। उसी तरह, उडीसा भाषा का ओडिसा के आदिवसियों पर प्रभाव दिखाई देता है। यही स्थित्ति दक्षिणी और पश्चिमी प्रदेशों के साथ भी है।

(4) आर्थिक विकास के आधार पर जनजातियों का वर्गीकरण

हमारे देश की जनजातीय आबादी का बहुत बडा भाग जंगलियों की तरह जीवन यापन करता था। ये लोग शिकार या मछली पकडने या पशुपालन या एक प्रकार की खेती के द्वारा भोजन आदि प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। देश की ग्रामीण जनता के संपर्वह में आकर इनमें से अधिकाशत: ने अपनी जंगली रीति-रिवाजो को त्यागकर सभ्यता के पथ पर आगे बढते चले जा रहे है।

जनजातिय अर्थव्यवस्था अपने आप में एक विशिष्टता को लिए हुए है। वे अर्थव्यवस्था के विभिन्न अवस्थाओं जैसे भोजन-संग्रह करने की अवस्था से लेकर स्थानान्तरण कृषि, स्थायी कृषि अवस्था तथा वर्तमान समय में स्थित औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत दिखाई देता है।

मजूमदार तथा मदन ने आर्थिक दृष्टि से भारतीय जनजातियों को निम्न प्रकार से विभाजित किया है।[8]

(1) जो जातियाँ जंगलों और पहाडो में रहकर अपनी आदिम अर्थव्यवस्था को निभाये हुए है। भोजन संग्रह करना ही इनकी अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता है। उनमें से उत्तर प्रदेश के राजी, प० बिहार के खडिया, बिरहोर, और पहाडिया, असम की कुकी, मध्यप्रदेश की पहाडी व मडिया, उडीसा का जुआंग आदि उल्लेखनीय है। ये जातियाँ ग्रामीण लोग से संपर्क में आने के पूर्व जंगलों और पहाडो में रहती थी और शिकार तथा जंगलों में अपनी काम चलाते थे।

(2) दुसरी श्रेणी के अन्तर्गत वे जनजातियाँ आती है जिनकी अर्थव्यवस्था भोजन संग्रहीता तथा आदिम कृषि व्यवस्था के प्रकारो के बीच की है। कमार, बैगा, रेड्डी जनजाति के लोग इस व्यवस्था के अंतर्गत आते है।

(३) तीसरी श्रेणी में जनसंख्या का वह बहुत बडा भाग आता है। जो कि किसी न किसी प्रकार की कृषि पर आश्रित होने के साथ निकट के जंगलों में वन्य उत्पादकों वस्तुओं का संचय भी करता है। उत्तर-पूर्व भारत की जनजातियाँ अधिकांशत: इस श्रेणी में आती है। इस श्रेणी को दो उप-श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

- स्थानान्तरण कृषि- मुडिया, माडिया, कोरवा, साबडा, गोरो आदि
- स्थायी कृषि- गोंड, उराँव, थारु, मुण्डा, भील, कोटा, परजा, इत्यादि

(4) चुतर्थ श्रेणी में उन जनजातियों को रखा गया जो उद्योगोंकी ओर आकर्षित हुए। बिहार, बंगाल तथा असम की जनजातियाँ अपने परम्परागत व्यवसायों को छोडकर औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कार्य की तलाशा में आने लगी है। सन्थाल, हो, मुण्डा, असुर, भुईया आदि जनजातियों के लोग श्रमिक के रूप में शहरी क्षेत्रों की ओर जाते है।

वर्तमान युग में संचार और आवागमन के साधनों के विकास होने के साथ-साथ जनजातियों का अन्य लोगों के साथ सम्पर्वह स्थापित हो गया है, और वे अपने परम्परागत व्यवस्था पर आश्रित न होकर अन्य नये व्यवस्था अपनाने लगे है। इस प्रकार, व्यावसायिक वर्गीकरण अब कठोर रूप में नहीं रह गया है। वस्तु विनमय की व्यवस्था का अब धीरे-धीरे खास होता जा रहा है, फिर भी, उपरोक्त वर्गीकरण को मौटे तौर पर स्वीकार किया जा सकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार, जनजाति, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विविध आधार को समेटे हुए अपनी एक अलग विशिष्टता को संजोये हुए है। आज भारतीय जनजातीय समाज के अध्ययनकर्ता वर्तमान समय में जनजातियों के बदलते परिवेश जैसे जनजातीय संस्कृति, राजनीतिक स्थिति, भाषा, व्यवसाय, सामाजिक स्थिति का अध्ययन तथा मूल्यांकन अपने-अपने ढंग से करने में लगे हुए है। इस अध्ययन का आधार भौगोलिक प्रजातीय, भाषा, व्यवस्थाय आदि पर निर्भर करता है, जिसे इस शोध-लेख में स्पष्ट ढंग से वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विद्यार्थी, डॉ० ललित प्रसाद, ''भारतीय आदिवासी : उनकी संस्कृति और सामाजिक पृष्ठभूमि'' हिन्दी समिति, राजर्षि पुरुतोषमदास टण्डन हिन्दी भवन, लखनऊ, 1975
2. एल्विन, वैरियर, 'दि वैगा'
3. श्रीकान्त, एल०एम०, क्लासिफिकेशन ऑफ ट्राइबल्स ''ट्राइबर सोविनयर
4. जोशी, डॉ० हरिश्चन्द्र, ''भारतीय जनजातियाँ'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (राजस्थान), 1997
5. मजूमाद, डी.एन., ''रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इंडिया, 1961
6. देसाई, ए०आर०, ''रूरल इण्डिया इन टुंजिशन'', 1961
7. दुबे, श्यामाचरण, ''मानव और संस्कृति'' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1960
8. मजूमदार, मदन, ''इन्ट्रोडक्शन टु सोसियल'', एन्थ्रोपोलॉजी, 1957

लैंगिक न्याय का सामाजिक परिदृश्य

डॉ० स्मिता

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, (समाजशास्त्र), आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

सारांश

समाज में समय परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रें में अनुकरणीय परिवर्तन हुए, परंतु इन परिवर्तनों में लैंगिक क्षेत्र ऐसा क्षेत्र है जिसमें उचित परिवर्तन न हो सका। आज भी महिलाओं की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा दयनीय है एवं इसके साथ-साथ कमोबेश ट्रांसजेंडर्स की भी वही स्थिति है। लैंगिक न्याय शब्द जिसका आशय ही इतना सुंदर है कि समाज में किसी भी लिंग के साथ किसी तरह का भेदभाव न हो, वह आज तक स्वयं ही न्याय की तलाश में है। जबकि लिंग निर्धारण तो प्राकृतिक देन है। महिलाओं के साथ बचपन से लेकर मृत्यु तक कन्या भ्रूण हत्या और सती-प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों के रूप में भेदभाव व उत्पीड़न होता रहा है, जोकि वर्तमान समय में भी जारी है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपने 17 सतत विकास लक्ष्यों की श्रेणी में लैंगिक आधार पर हो रहे भेदभाव को रखा है। ग्लोबल जेंडर गैप इंडेक्स की रिपोर्ट के अनुसार भारत 144 देशों की सूची में 108 नंबर पर है। रोजगार, खेल, धार्मिक, राजनीति, स्वास्थ्य, सामाजिक कुप्रथाएँ, मनोरंजन शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ पर लैंगिक भेदभाव देखने को न मिलता हो। महिलाओं के लैंगिक न्याय हेतु लैंगिक कानून, लैंगिक विशेषाधिकार बनाए गए, साथ ही साथ योजनागत प्रयास भी किए गए परंतु लैंगिक भेदभाव अभी भी सामाजिक बुराई के रूप में समाज में विद्यमान है। समाज में व्याप्त लैंगिक खाई को पाटना ही लैंगिक न्याय है। ऐसा तभी संभव है जब मनुष्य स्वयं जागरूक हो और सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों का कठोरता से पालन हो।

कीवर्ड्स- लैंगिक न्याय, लैंगिक भेदभाव, सामाजिक बुराई, महिला, ट्रांसजेंडर, लिंग निर्धारण, भेदभाव

समय का पहिया भूत, वर्तमान, भविष्य की चिंता किये बगैर हमेशा अपनी गति से चलायमान रहता है। समय परिवर्तन के साथ-साथ समाज में हमेशा परिवर्तन भी होता रहता है। भले ही परिवर्तन की आंधी वक्त के साथ न चल पा रही हो, आगे-पीछे ही सही, पर कण-कण को उसका स्थान दे रही है। ये बात सही है कि वक्त बदला और वक्त के साथ समाज के स्वरूप में परिवर्तन हुये और उन परिवर्तनों में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि तमाम परिवर्तन हुए, पर उन परिवर्तनों में कुछ तो ऐसा रह गया जिस पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना दिया जाना चाहिए। शायद उसी का परिणाम है कि आधुनिक तकनीकों और प्रौद्योगिकी से युक्त समाज में व्याप्त लैंगिक न्याय जैसी समस्या को लेकर सैकड़ों सवाल हमारे और आपके दिमाग में घूम रहे हैं। आज उस दौर में हम जी रहे हैं, जहां मानव सोच से परे चांद पर फतह कर रहा है, पर क्या हास्यास्पद स्थिति है, कि वहीं हमारे समाज की दूसरी ओर हम लैंगिक न्याय जैसी समस्याओं से उबर नहीं पा रहे हैं।

लैंगिक न्याय पर विचार करने से पहले ये जानना ज्यादा जरूरी है कि लिंग का आशय क्या है और लैंगिक न्याय क्या है। इस जगत में मानव ही ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट, सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ कृति है और उसकी यह अनुपम, अनोखी, अप्रतिम कृति स्त्री और पुरुष दो रूपों में अभिव्यक्त होती है। सामान्तयः लोग स्त्री या पुरुष होने के बोध को ही लिंग कहते हैं, पर बात यहीं खत्म नहीं होती। प्रकृति द्वारा बनाया गया मानव का तीसरा स्वरूप भी है, जो कि न स्त्री है न पुरुष, वो भी आज किसी लिंग का बोध कराता है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि बात जब लैंगिक न्याय की हो रही हो तो उसको छोड़ने पर ही लैंगिक न्याय पर एक सवाल खड़ा होता है कि इसमें मेरा क्या दोष है। उसे उतना ही हक और अधिकार होना चाहिए जितना कि समाज में स्त्री और पुरुष के आधार पर लिंग व्यक्तित्व को है।

जब लैंगिक के साथ न्याय जुड़ जाए तो दिमाग में सवाल ये उठता है कि किस बात का न्याय। इसलिए पहले ये समझ लिया जाए कि लैंगिक न्याय का आशय क्या है, फिर लैंगिक न्याय को चर्चा में लाते हैं। कंधो से कंधा मिलाकर लैंगिक न्याय को एक

ऐसी दुनिया के संदर्भ में समझा जाता है, जहां हर कोई महिला और पुरुष, लड़के और लड़कियां एवं ट्रांसजेंडर सभी, समान रूप से मूल्यवान हैं। सभी शक्ति, ज्ञान और संसाधनों के वितरण को समान रूप से साझा करने में सक्षम हैं। यही लैंगिक न्याय है।

इस समाज की बड़ी अजीबो-गरीब दास्तान रही है, जिसका आशय ही इतना बेहतरीन हो जो समाज के सभी लोगों को लिंग पर आधारित हिंसा, दमन एवं उत्पीड़न की सांस्कृतिक और पारस्परिक व्यवस्था तथा विशेषाधिकारों से मुक्त देखना चाहता है, वह समाज में अभी तक स्थापित नहीं हो पाया और आलम ये है कि लैंगिक न्याय आज के इस दौर में खुद अपने न्याय के लिए लड़ाई लड़ रहा है। लैंगिक न्याय के आभाव में समाज का हाल बुरा है। तो आइए देखते हैं कि लैंगिक न्याय आज समाज में न्याय के लिए कहां लड़ रहा है। ये बात तो सर्वमान्य है कि न्याय उन्नतशील सभ्यता का अंग है। मतलब यदि किसी समाज में लैंगिक न्याय के लिए सकारात्मक सोच प्रस्फुटित हो रही है तो यह साफ है कि वह समाज समृद्धिशाली एवं उन्नतिशीलता की प्रगति पर है।

लैंगिक न्याय का सीधा और आसान शब्दों में यही मतलब है कि किसी के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए क्योंकि कौन स्त्री होगी, कौन पुरुष होगा और कौन तीसरा लिंग अर्थात् ट्रांसजेंडर, यह क्रोमोसोम तय करते हैं। मानव में क्रोमोसोम के 23 जोड़े रहते हैं- कौन पुरुष होगा या स्त्री ये 23वें जोड़े पर निर्भर करता है। यदि 23वें जोड़े में XX होते हैं तो पुरुष और यदि XY तो स्त्री पर इसके साथ प्रकृति एक और अजीब खेल खेलती है। कुछ व्यक्तियों में 23वें क्रोमोसोम जोड़े में ही नहीं होते। कभी यह तीन या केवल एक होते हैं। अर्थात् XXY या XYY या X या Y, ये लोग पूर्ण पुरुष या स्त्री नहीं कहे जाते। इन्हें ट्रांसजेंडर कहा जाता है। यहां से यह तो साफ है कि कोई व्यक्ति विशेष किस प्रकार के लिंग वर्गीकरण से है, उसमें उसकी अपनी कोई भूमिका नहीं होती, यह एक प्राकृतिक खेल है। इसलिए समाज में लिंग के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए, पर ऐसा है नहीं, क्योंकि यदि ऐसा होता या कुछ सुधार हो रहा होता तो सितम्बर 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की उच्च स्तरीय बैठक में एजेंडा 2030 के अन्तर्गत 17 सतत विकास लक्ष्यों की श्रेणी में लैंगिक आधार पर हो रहे भेदभाव को न रखना पड़ता। खैर ये अच्छी बात है जब जागो तभी सवेरा, संयुक्त राष्ट्र की बैठक में इस ओर भी धयान दिया गया।

यही समस्या हमारे अपने देश में तो बहुत ही व्यापक स्तर पर काम कर रही है। जन्म से लेकर मौत तक शिक्षा से लेकर रोजगार तक हर जगह पर लैंगिक भेदभाव साफ-साफ नजर आता है, जो लैंगिक न्याय को जन्म देता है। वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम की 2019 के ग्लोबल जेंडर गैप इंडेक्स की रिपोर्ट के अनुसार भारत 144 देशों की सूची में 108 नम्बर पर आता है। इस आंकड़े के अनुसार साफ तौर पर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि हमारे देश में लैंगिक भेदभाव की जड़ें कितनी मजबूत और गहरी हैं। हमारे अपने देश में आज स्त्री और पुरुष, इन्हीं दो लिंगों के बीच इतनी व्यापक खांई व्याप्त है कि तीसरे जेंडर के लिए न्यायिक बात सोचना ही परे है।

आज भी बहुत से परिवारों में लड़की का जन्म ही अपने में अभिशाप है, लड़कों को ढेर सारा प्यार एवं हर तरह की सुख सुविधाएं और लड़कियों को तिरस्कार तथा घर की चाहरदीवारी तक सीमित रखा जाता है। भारत की साक्षरता को देखकर तो यह अनुमान आप सब लगा ही सकते हैं कि लिंगों के बीच कैसे खांई व्याप्त है। वर्ष 1951 की जनगणना में स्त्री का साक्षरता प्रतिशत 8.86 %, पुरुष का 27.16 % और लिंगानुपात 946 था और वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार स्त्री का साक्षरता प्रतिशत 65.50 %, पुरुष का 82.14 % और लिंगानुपात 940 है। आंकड़ों को देखकर यह सोचना तो उचित है कि कहीं न कहीं दोनों की साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि हुयी है पर यह समझना कतई उचित नहीं कि दोनों के बीच में व्याप्त खांई में कोई परिवर्तन हुआ है।

यदि रोजगार की भी बात की जाए तो वहां भी आपको पर्याप्त लैंगिक अन्याय नजर आ जाएगा। सामान्य सा उदाहरण ले लीजिए, स्त्रियां दिन रात घर गृहस्थी के कार्य में लगी रहती हैं, लेकिन इस कार्य को अनुत्पादक कार्य माना जाता है। रोजगार के लिए कोई भी क्षेत्र हो चाहे वह कृषि क्षेत्र हो या कोई अन्य, हर जगह वो पुरुषों से पीछे ही हैं। लिंगों के बीच व्याप्त इस समस्या के लिए समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 लागू किया गया, लेकिन कानून होने के बाद भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। प्रभाव की पुष्टि के लिए मास्टर सैलरी इंडेक्स 2016 के आंकड़ों पर नजर डालें तो समझ आता है कि एक जैसे कार्य के लिए भी भारत में महिलाएं 25 फीसद कम वेतन पाती हैं। ऐसा ही आलम रोजगार के कई अन्य क्षेत्रों का है।

आज हम स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं को लेकर ही दोनों लिंगों में पर्याप्त अन्तर देख सकते हैं। हालांकि इस स्थिति में शहरी इलाकों में काफी हद तक सुधार हो गया है, लेकिन ग्रामीण समाज का वही पुराना आलम है कि जब घर के पुरुष वर्ग खाना खा लेते हैं तब स्त्री खाती है। बात यहीं नहीं रुकती, ये अन्तर आज आपको वहां भी देखने को मिलेगा जो आम समाज से बिल्कुल

अलग है, पर काम धाम समाज के लिए ही करता है वो है मनोरंजन का क्षेत्र (बालीवुड, हालीवुड, टालीबुड आदि) यहां फिल्मों में अक्सर अभिनेत्रियों को मुख्य किरदार के लायक नहीं समझा जाता और उन्हें पारिश्रमिक भी अभिनेताओं की तुलना में कम मिलता है।

भारत में पहले सती प्रथा नाम की एक कुप्रथा चलन में थी जो समाज के लिए एक अभिशाप थी। यह प्रथा समाज में महिला के साथ होने वाले भेदभाव को सही तरीके से उजागर करती थी। शायद ही कभी किसी ने पुरूष का पत्नी की मृत शरीर के साथ जलने की बात सुनी हो। सामाजिक सुधार आंदोलनों के साथ-साथ इस प्रथा का अंत तो हुआ परंतु महिलाओं की स्थिति में अभी भी ऐच्छिक सुधार अभी नहीं हुआ है। आज भी पत्नी की मृत्यु के पश्चात पुरुष की शादी के लिए कई दलीलें पेश कर दी जाती हैं परंतु पति की मृत्यु के पश्चात महिला की पुनः शादी के लिए बहुत कम ही लोग आगे आते हैं। क्या किसी महिला को अपना जीवन खुशी से जीने का अधिकार नहीं है? यदि है तो समाज में विपरीत लिंग के साथ ऐसा भेदभाव क्यों?

अब बात वहां की भी कर ली जाए जहां के लिए आजकल हर टीवी चैनल वाले हफ्ते की दो तीन शामों को बहस के लिए देते हैं, पर दुखद बात ये है कि वहां भी बात मुद्दे की नहीं होती। मेरा आशय यहां धार्मिक स्थलों से है। भारत में अभी भी कई ऐसे मंदिर हैं जहां महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। ज्वलंत उदाहरण-सबरीमाला मंदिर केस (कोर्ट के अधीन निर्णय) है। यदि मुस्लिम सम्प्रदाय की बात की जाए तो इस समुदाय की स्त्रियों को भी बहुत सी मस्जिदों में नमाज पढ़ने का अधिकार नहीं है।

यहां तक कि खेल जगत भी इस लैंगिक न्याय की समस्या से अछूता नहीं रह गया। खेल जगत में ईनामी राशि के बीच महिला और पुरुष खिलाड़ियों में पर्याप्त अन्तर है। और तो और इसी खेल जगत का एक किस्सा है जब समाज के तीसरे लैंगिक वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली संथी सुन्दराजन से दोहा एशियाई खेलों का रजत पदक वापस ले लिया गया था, क्योंकि वो ट्रांसजेंडर थीं। यदि महिला एवं पुरुष समान खेल खेलते हैं और समान मेहनत भी करते हैं तो भी यह देखने को मिलता है कि महिला खिलाड़ी या महिला टीम को पुरुषों की अपेक्षा कम स्पान्सर्स मिलते हैं।

राजनीति एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ पर लैंगिक न्याय की सर्वाधिक आवश्यकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि भारत के लोकसभा व राज्यसभा एवं राज्य की विधान सभाओं व विधान परिषदों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम है। ये ऐसे स्थान हैं जहाँ पर देश में होने वाले कार्यों के लिए कानून और कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाता है। यहाँ पर महिलाओं की संख्या उचित मात्रा में होने पर वो अपने वर्ग के लिए उचित माँग सरकार के सम्मुख रख सकेंगी। ऐसी स्थिति में सरकार को भी उनकी मांगों को मानना पड़ेगा। अभी इन स्थानों पर इनकी संख्या पुरुषों के अनुपात में काफी कम है जो इनकी दयनीय स्थिति का सबसे बड़ा कारण है।

यदि हम समाज के तीसरे लैंगिक वर्ग की बात करें तो उन्हें समाज में हंसी का पात्र समझा जाता है- उनके प्रति एक अलग दृष्टिकोण लोग अपनाते हैं। सरकारी और गैर सरकारी कई संस्थाओं में उन्हें लिंग को लेकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उन्हें वो आदर सत्कार नहीं मिलता जो उन्हें मिलना चाहिए, जबकि लैंगिक न्याय के आधार पर सभी बराबर हैं। लोगों का उनके प्रति सोचने का ये नजरिया उन्हें मानसिक रूप से कमजोर बनाता है। इस कारण से ये लोग समाज में होने वाले कार्यक्रमों में शामिल होने से कतराते रहते हैं, और सदैव मानसिक रूप से परेशान रहते हैं।

इसके अतिरिक्त महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा जैसे-अपहरण, पर्दा प्रथा, दहेज के लिए पीटना, जबरदस्ती भगा ले जाना, यौन दुष्कर्म, यौन उत्पीड़न, ऑनर किलिंग, असुरक्षित गर्भपात, कन्या भ्रूण हत्या, ऐसिड हमला भी विपरीत लिंग के साथ होने वाले लैंगिक असमानता के अन्तर्गत ही आएंगे, जो लैंगिक न्याय के लिए प्रेरित करते हैं।

सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों प्रकार के तंत्र समाज में व्याप्त इस लैंगिक असमानता को रोकने के लिए उपाय तलाश करने में लगे हुए हैं। जैसे-कानून, विशेषाधिकार, योजनागत कार्यक्रम आदि के द्वारा।

कानून

सती प्रथा अधिनियम, 1829:- ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय के अथक प्रयासों का ही नतीजा है कि अंग्रेज सरकार ने 1829 में सती प्रथा को रोकने के लिए कानून बनाया।

विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856:- यह अधिनियम ब्रिटिश राज में उन स्त्रियों और उनके बच्चों को सुरक्षा प्रदान करता है जिसके पति की मृत्यु समय से पहले हो गई हो।

विशेष विवाह अधिनियम, 1954:- यह भारत की संसद से प्रदत्त अधिनियम है, जो विशेष अधिकार देता है।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955:- यह अधिनियम भी संसद द्वारा प्रदत्त है। यह अधिनियम पुरानी रूढ़ियों को तोड़ते हुए स्त्रियों को विशेषाधिकार देता है। जैसे-शादी के बंधन से पृथक होने का।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956:- यह कानून सही उत्तराधिकारी का चयन करने का अधिकार देता है। यह हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के समय ही पारित हुआ।

दहेज निरोधक अधिनियम, 1961:- इस अधिनियम में दहेज लेने या देने पर कठोर दण्ड का प्रावधान है।

डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट, 2005:- इस अधिनियम का उद्देश्य घरेलू हिंसा से महिलाओं को बचाना है। यह 26 अक्टूबर 2006 को लागू हुआ।

स्त्रियों का संपत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937:- यह अधिनियम 1937 में पारित हुआ था। इसमें हिंदु महिलाओं को संपत्ति में अधिकार दिलाने की बात स्पष्ट की गई है।

बाल विवाह निरोध अधिनियम (शारदा एक्ट), 1929:- यह अधिनियम 28 सितम्बर 1929 को पारित हुआ था। इसमें पहले विवाह के लिए लड़कियों की उम्र 14 वर्ष व लड़कों की उम्र 18 वर्ष निर्धारित की गई परंतु बाद में बढ़ाकर क्रमशः 18 वर्ष व 21 वर्ष कर दी गई। हरबिलास सारडा के कारण इसे शरद एक्ट के नाम से भी जानते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य कानून भी सरकार द्वारा बनाए गए हैं।

विशेषाधिकार

पंचायत में 33 प्रतिशत आरक्षणः- संविधान के अनुच्छेद 243D में निहित प्रावधानों के अनुसार संविधान के भाग 9 में प्रदत्त पंचायतीराज व्यवस्था के सभी स्तर पर 33 प्रतिशत महिला आरक्षण का प्रावधान है।

समानता का अधिकारः- यह अधिकार अनुच्छेद 14 से 18 तक प्राप्त है। इसमें किसी भी प्रकार के भेदभाव को गलत बताया गया है और समानता का अधिकार दिया गया है।

महिला आयोग का गठन, 1992:- यह आयोग 1992 में गठित हुआ। यह आयोग महिलाओं के संवैधानिक हितों और उनके लिए कानूनी सुरक्षा उपायों को लागू करती है।

इसी प्रकार मैटरनिटी लीव का अधिकार, प्रसूति सहायता का अधिाकार आदि अधिकार दिए गए हैं।

योजनागत प्रयास

जननी सुरक्षा योजना- भारत सरकार द्वारा सन् 2005 में लागू किया गया। इसके अन्तर्गत गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली महिलाओं को संस्थागत प्रसूति के लिए 1000 रुपए की आर्थिक सहायता दी जाती है।

सबला योजना- भारत सरकार द्वारा 2010 में 11 से 18 वर्ष की किशोरियों के सशक्तीकरण के लिए प्रारम्भ की गई योजना है।

प्रधानमंत्री मातृत्व वंदना योजना- इस योजना के अन्तर्गत गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पहले जीवित जन्म के लिए 6000 रुपए की आर्थिक सहायता मुहैया कराई जाती है।

इसके अतिरिक्त अन्य योजनाएं भी हैं जैसे-विधवा पेंशन योजना, कस्तूरबा गांधी बालिका शिक्षा योजना आदि जिसके माध्यम से महिलाओं को लैंगिक न्याय दिलाया जाता है।

निष्कर्ष

भारत में अभी भी बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पर लैंगिक भेदभाव विद्यमान है। लैंगिक भेदभाव के कारण विपरीत लिंग की स्थिति समाज में अच्छी नहीं है। आज के सामाजिक परिदृश्य में लैंगिक न्याय की आवश्यकता लैंगिक भेदभाव के कारण ही है। समाज में लैंगिक न्याय को स्थापित करने के लिए सरकार द्वारा कानून बनाए गए, योजनागत प्रयास किये गए, विशेषाधिकार सुनिश्चित किए

गए परन्तु इन सभी योजनाओं, कानूनों और संगठनों के माधयम से अभी भी लैंगिक न्याय प्राप्त करने में आशातीत सफलता नहीं मिली है। हमें आशातीत सफलता तभी मिलेगी जब मनुष्य स्वयं जागरूक होगा और सरकार अपने द्वारा बनाए गए कानूनों का कठोरता से पालन करेगी।

यही सारी समस्याएं हैं जो समाज में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं हर क्षेत्र में लिंग के आधार पर एक विकराल समस्या के रूप में आकर खड़ी है। समाज में व्याप्त इस खांई को पाटना ही लैंगिक न्याय है। लैंगिक न्याय यही चाहता है कि सभी लोग समाज में समानता से रहें, अर्थात सीधे शब्दों में यदि कहा जाए तो समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता को लैंगिक समानता में बदलने का सार लैंगिक न्याय है।

"समानता एक सुंदर और सुरक्षित समाज की वो नींव है जिस पर विकास रूपी इमारत बनाई जा सकती है।"

सन्दर्भ सूची

बोउआर, सिमोन द; द सेकेण्ड सेक्स; विण्टेज बुक्स; न्यूयार्क; 1989

राजोरा, डॉ॰ सुरेश चन्द्र; समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी; जयपुर; 2016

सिंह, वि॰ एन॰; सिंह, जनमेजय; भारत में सामाजिक आन्दोलन; रावत पब्लिकेशन्स; जयपुर; 2018

गर्ग, डॉ॰ संजय; स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास; सामयिक प्रकाशन; नई दिल्ली; 2014

बिसारिया, पुनीत; वेदबुक से फेसबुक तक स्त्री; एटलांटिक पब्लियशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा॰) लि॰; नई दिल्ली; 2015

परमार, शुभ्रा; नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार; ओरिएण्ट ब्लैकस्वॉन; तेलंगाना; 2017

नाटाणी, प्रकाश नारायण; महिला जागृति और कानून; आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स; जयपुर; 2002

त्रिपाठी, प्रो॰ मधुसूदन; महिला विकास एक मूल्यांकन; ओमेगा पब्लिकेशन्स; दिल्ली; 2010

शर्मा, प्रज्ञा; भारतीय समाज में नारी; पोइन्टर पब्लिशर्स; जयपुर; 2001

सिंह, जे॰ पी॰; आधुनिक भारत का समाज; रावत पब्लिकेशन्स; जयपुर; 2019

शर्मा, जी॰ एल॰; सामाजिक मुद्दे; रावत पब्लिकेशन्स; जयपुर; 2015

कुमार, डॉ॰ रवीश; दीक्षित, अजीत कुमार; सामाजिक संदर्भ में नारी अभिव्यक्ति; प्रत्यूष पब्लिकेशन्स; दिल्ली; 2018

शाह, घनश्याम; सोशल मूवमेन्ट इन इण्डिया; सेग; नई दिल्ली; 1990

जैन, शोभित; भारत में परिवार, विवाह एवं नातेदारी; रावत पब्लिकेशन्स; जयपुर; 1996

आहुजा, राम; सोसायटी इन इण्डिया; रावत पब्लिकेशन्स; जयपुर; 1999

नवीन राष्ट्रीयता के अग्रदूत स्वामी दयानंद सरस्वती

डॉ० गुड्डी कुमारी

(पीएच.डी., नेट), गेस्ट लेक्चरर (इतिहास विभाग)
ए.एन.डी. कॉलेज, पटोरी, समस्तीपुर, एल.एम.एन.यू. दरभंगा

स्वामी दयानंद के समय (1824–1883 ई.) भारत ब्रिटिश शासन के पराधीन था। इस शासन के अंतर्गत स्वशासन की कोई संस्था नहीं थी। भारत में इस समय लोकतंत्रा अज्ञात था और यूरोप में भी लोकतंत्रा आदिम अवस्था में था। भारत में राष्ट्रीयता की भावना का भली-भांति विकास नहीं हुआ था। देश में राष्ट्रीय एकता की भावना का भी कोई स्पष्ट आधार नहीं था। भारतीयों का अपने धर्म व संस्कृति पर जो स्वाभिमान था, उसको नष्ट करने का प्रयास भी अंग्रेज शासकों ने किया। अंग्रेजों द्वारा जिस शिक्षा पद्धति को भारत में प्रचारित किया जा रहा था, उसका उद्देश्य था भारतीयों का अपने धर्म वह संस्कृति के प्रति अपना स्वाभिमान नष्ट करना और खुद में हीन भावना उत्पन्न करना ताकि वे मानसिक दृष्टि से भी ब्रिटिश शासन के गुलाम बन जाए।[1] अतः ऐसे असहाय कराल काल में भारत के कार्यक्षेत्र में दयानंद सरस्वती का आगमन हुआ।

तत्कालीन विदेशी ब्रिटिश, जिसके सुदृढ़ दास्तां के लोहे के शिकंजे में पड़ा यह देश शताब्दियों से स्वतंत्रता के लिए छटपटा रहा था, कि घातक चालों के परिणाम स्वरूप यहां की जनता में उस समय उस शासन के विरुद्ध सर्वप्रथम जो शक्तिशाली महान विस्फोट हुआ था, वह 1857 ई. का स्वाधीनता का प्रथम महान संग्राम था। जिसे उन विदेशी शासकों ने प्रखर देशभक्त तत्वों को बदनाम कर क्रांति को असफल करने के लिए बदनाम गदर संज्ञा प्रदान की। इसमें भारत के अटक से लेकर कटक तक तथा कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के विभिन्न मतवादी निवासियों ने पारस्परिक सभी मतभेदों को भुलाकर एकता के सूत्र में संगठित हो स्वाध ीनता के पावन उद्देश्य से अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने के लिए पूर्व निश्चित गुप्त योजना बनाई। यह योजना तैयार कर उसे सफलता की ओर ले जाने वालों में दयानंद सरस्वती, उनके विद्यादाता गुरु विरजानंद दंडी तथा उनके गुरु स्वामी पूर्णानंद जी भी सम्मिलित थे, इस तथ्य की पुष्टि करते हुए एक महान लेखक लिखते है कि विरजानंद ने अपने प्रज्ञा नेत्रों से साक्षात कर दिया था की दुर्दशा के दो प्रधान कारण है, एक अनार्ष ग्रंथ प्रसार तथा दूसरा विदेशी राज्य। एक इतिहासकार मुक्त कंठ से कहते हैं कि विरजानंद तथा उनके गुरु पूर्णानंद सरस्वती ने इस संग्राम का आरंभ कराया था इसके लिए वे दो हेतु प्रस्तुत करते हैं, सन् अट्ठारह सौ सत्तावन ईसवी के स्वतंत्रता संग्राम के समर में जूझने की जो भावना राजाओं में उत्पन्न हो रही थी, उसकी प्रेरणा उन्हें भारतीय संस्कृति के उच्च गुरु स्वामी दयानंद सरस्वती से ही प्राप्त हुआ था। दूसरा प्रमाण वे यह उपस्थित करते हैं कि जिज्ञासु दयानंद 1855 ई. में कनखल में विरजानंद के गुरुदेव स्वामी पूर्णानंद सरस्वती की सेवा में विद्या प्राप्ति के निमित्त पहुंचते हैं। पूर्णानंद जी उन्हें मथुरा अपने शिष्य विरजानंद के पास विद्या अध्ययन के लिए भेजते हैं। व्यग्र दयानंद सीधे कनखल से मथुरा नहीं जाते। वे उत्तराखंड की ओर चलकर कानपुर तथा नर्मदा के परिसर में पहुंचते हैं। यह वह क्षेत्र है जहां स्वतंत्रता संग्राम का आयोजन किया जा रहा था। इस प्रकार दयानंद सरस्वती 1855 ई. में चलकर 1859 ई. में मथुरा विधा प्राप्ति के लिए पहुंचते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि अट्ठारह सौ सत्तावन ई. की क्रांति में दयानंद सरस्वती का महत्वपूर्ण योगदान था।[2]

यद्यपि अट्ठारह सौ सत्तावन ईसवी की क्रांति असफल हो जाती है किंतु उसकी विफलता राष्ट्रीय स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि तैयार कर जाती है। जिसमें दयानंद की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इस विषय परिस्थितियों में दयानंद भी गुरु की पाठशाला से तैयार होकर भारत के कार्य क्षेत्र में आ चुके थे, तब उन्होंने अपनी लोह लेखनी के द्वारा भारत के प्रस्तुत आत्मा को जगाने का साहसिक एवं

ऐतिहासिक उपक्रम किया। भारत के जन मन में उस समय और उसके पश्चात जो भी राजनीतिक चेतना आई, वह ऋषि दयानंद सरस्वती की लेखनी और वाणी का ही प्रभाव था। 1873 से 1881 ई. तक दयानंद उत्तर भारत के अनेक नगरों में घुमाते और अपने विचारों का प्रचार करते रहे, जिसके कारण भारतवासियों में अपने प्राचीन इतिहास और धर्म का गौरव फिर से जागने लगा। 1873 ई. से भारत में राजनैतिक पुनर्जागरण के लक्षण भी प्राय: प्रकट होने लगे।

स्वराज्य का आदर्श...

राजनीति में स्वामी दयानंद को नवीन राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहे तो अतिशयोक्ति न होगी।[3] स्वामी दयानंद ही प्रथम स्वप्नद्रष्टा थे जिन्होंने भारतीयों द्वारा स्वशासित अखंड भारत की सुंदर झांकी प्रस्तुत की।[4] स्वामी दयानंद सरस्वती का समय वह समय था जब उपनिवेशवाद भारतवर्ष में जड़ पकड़ रहा था तथा पाश्चात्य विद्वानों ने यह प्रतिपादित करना शुरू कर दिया था कि गौरांग लोग सब मनुष्यों में उत्कृष्ट हैं और एशिया के निवासियों को सभ्य बनाने के कार्य ईश्वर ने उन्हें दिया है। पश्चात्य विद्वानों के इस मंतव्य का प्रभाव अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों को पर पड़ने लगा था और उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय अंग्रेजों के इस विदेशी शासन को अपने देश के लिए न केवल स्वाभाविक एवं समुचित मानने लगे अपितु यह भी समझने लगे थे कि यह शासन उनके लिए वस्तुत: हितकारी है। ऐसे समय में स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारत की पूर्ण राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का स्वप्न देखा। उन्होंने भारतीयों के इस भावना को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने देशवासियों का ध्यान भारत के अतीत कालीन गौरव की तरफ आकृष्ट कर यह प्रतिपादित किया कि यह देश विश्व का शिरोमणि देश है। इसकी सभ्यता, धर्म और संस्कृति सर्वोत्कृष्ट है। विश्व के दूरस्थ देशों में भी इसके धर्म व संस्कृति का प्रचार था। ज्ञान विज्ञान में भी भारत सबका अग्रणी था।

स्वामी दयानंद ने देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने के लिए[5] स्वराज की कल्पना 19सदी के उत्तरार्ध में उस समय की जब राष्ट्रीय संस्था अखिल भारतीय नेशनल काँग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था। 1906 ई. में सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी ने "स्वराज" शब्द का उच्चारण किया। 1916 ई. के लखनऊ काँग्रेस में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है इस मंत्रा की घोषणा की। बाद में 1929 ई. में लोहार काँग्रेस ने "पूर्ण स्वराज्य" को अपना ध्येय बनाया। परन्तु दयानंद ने इससे बहुत पहले ही स्वराज की आवश्यकता तथा महता का जयगान किया था तथा "भारत भारतीयों के लिए" का नारा दिया था। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने स्वराज के संबंध में अपनी निम्र लिखित अमर वाक्य लिखा-"कोई कितना ही करें जो स्वदेशी राज होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मत मतांतर के आग्रह रहित अपने पराए का पक्षपात शुन्य प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता"।[6]

स्वामी दयानंद ने न केवल स्वराज की प्राप्ति व उत्कर्ष के लिए प्रार्थना कि वरन् वे अंग्रेजों से पदाक्रांत तथा हीन भावना से ग्रस्त देशवासियों को स्वराज्य का महत्व बताकर भारत में 19वीं शताब्दी में हुए राजनीतिक जागृति के आंदोलन को एक नया मोड़ देने में सफल हुए।[7]

आर्य समाज की स्थापना (1875 ई.) के 10 वर्ष पश्चात 1885 ई. में अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के मूल में अंग्रेजों के विषाक्त भावना कार्य कर रही थी। लेकिन जब काँग्रेस का कार्यक्षेत्र महर्षि दयानंद के संसर्ग से प्रखर देशभक्ति, स्वगौरव एवं स्वाभिमान का पाठ पढ़ें हुए विशुद्ध एवं कट्ठर देशभक्त आर्यसमाजियों के हाथ में आया तो इन्होंने अपने प्रभाव एवं प्रबल राष्ट्रीय विचारधारा के प्रभाव से उसके विचार प्रवाह तथा कार्य क्षेत्र एवं लक्ष्य को नया मोड़ दे दिया। जिसकी पुष्टि हेतु इतिहास का निम्न संदर्भ नीचे दिया गया है:

महादेव गोविंद रानाडे– स्वामी दयानंद के जिन राजनैतिक शिष्यों ने काँग्रेस को राष्ट्रवाद एवं पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति की नई दिशा दिखाई उन व्यक्तियों में सबसे पहले तथा प्रमुख नाम महादेव गोविंद रानाडे का आता है। यह महर्षि दयानंद सरस्वती के अपने समय के शिष्यों तथा अनुयायियों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। उन्होंने ही महर्षि दयानंद को निमंत्रित कर के अपने प्रबंधकत्व में पुणे में महर्षि के इतिहास प्रसिद्ध 15 व्याख्यान कराये थे। यह दयानंद सरस्वती के परमभक्तों में से थे। ये महाशय यद्यपि तत्कालीन सरकार के न्यायाधीश जैसे प्रतिष्ठित पद पर कार्य किया करते थे तथापि ऋषि दयानंद जैसे श्रेष्ठ उत्कट तथा प्रखर देशभक्त महापुरुष के संपर्क से इनके अंत:करण में भी अपने देश के प्रति अपार स्नेह तथा भक्ति के भाव जागृत हो गए थे। जिससे कि सरकारी संदेहों से उत्पन्न होने वाले खतरों की परवाह न करके यथाशक्ति देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील रहते थे, काँग्रेस में उस समय इनको

प्राय: मूर्धन्य व्यक्ति के रूप में उच्चतम स्थान प्राप्त था। इस प्रकार काँग्रेस के कदमों को पहले पहल देशभक्ति की राह पर बढ़ने की प्रेरणा तथा शक्ति देने वाले महाशय राणाडे के रूप में ऋषि दयानंद की राष्ट्रीयता ही संस्था की मार्गदर्शिका बनी थी।

गोपाल कृष्ण गोखले– इस राजनैतिक शिष्य परंपरा में आने वाले महानुभावों ने उसी अंकुर को सींच सींच कर विशाल वटवृक्ष के रूप में पारिणत कर दिया, दयानंद सरस्वती की इस शांतिमयी देशभक्त परंपरा में रानाडे के पश्चात उनका राजनैतिक शिष्य गोपाल कृष्ण गोखले का नाम आता है। काँग्रेस में आकर राष्ट्रीयता के जिस प्रखर स्वरूप का सबल में और जोरदार शब्दों में स्पष्टतया समर्थन किया, वह शक्ति उन्हें ऋषि दयानंद के राजनीतिक शिष्य महादेव गोविंद रानाडे की शिष्यता के कारण प्राप्त हुई थी।

महात्मा गांधी– ऋषि दयानंद सरस्वती की देशप्रेम तथा राजनैतिक इस शिष्य परंपरा में गोखले के पश्चात यदि कहीं दृष्टि जाकर ठहरती है तो वे हैं विश्ववंदया महात्मा गांधी। महात्मा गांधी गोखले को अपनी राजनीतिक गुरु कहते थे, यह उचित ही था। इतिहास के इन प्रबल प्रमाणों से पुष्ट इस सारी परंपरा का दिग्दर्शन कराने का यह अभिप्राय है कि देश प्रेम की जो स्वच्छ गंगाधार ऋषि दयानंद सरस्वती रूपी हिमालय से प्रवाहित हुई वह राणाडे और गोखले रूपी क्षेत्र को सिंचित करते हुए अंत में महात्मा गांधी रूपी क्षेत्र में जाकर वहां भी हरियाली उत्पन्न कर देने का कारण बनी। देश प्रेम की भावना का अधिक अंश महात्मा गांधी को उस शिष्य परंपरा से प्राप्त हुआ, जिसके आदि प्रवर्तक तथा आदिम आचार्य ऋषि दयानंद सरस्वती थे। अत: महात्मा गांधी को प्रबल राष्ट्रीयता एवं आजीवन स्वतंत्रता के लिए जूझने की प्रवृत्ति ऋषि दयानंद सरस्वती तथा आर्यसमाज की ही देन है।

यहां तक हमने उस राष्ट्रीय विचारधारा का वर्णन किया जो महर्षि दयानंद सरस्वती के हृदय से निकलकर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा सर्वप्रथम काँग्रेस में प्रवेश पा सकी, इसके आगे इस संबंध में उन महापुरुषों का नाम है जो धार्मिक रूप से भी ऋषि दयानंद को अपना आचार्य मानते हुए अपने को गर्व के साथ एवं स्पष्ट रुप से आर्य समाजी घोषित करते हुए स्वदेशी एवं स्वराज्य की भावना से प्रेरित हो राष्ट्र की स्वाधीनता के कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, ऐसे राष्ट्र निष्ठ महापुरुषों में लाला लाजपत राय स्वामी, स्वामी श्रद्धानंद, भाई परमानंद, भाई बालमुकुंद, कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, भगत सिंह, अजीत सिंह आदि नाम प्रमुख है।[8]

स्वामी दयानंद स्वदेशी आंदोलन के प्रथम नायक थे। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने वर्ष 1908 ईस्वी में औपचारिक रूप से ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार तथा भारतीयों द्वारा स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग करने का संकल्प प्रस्ताव पारित किया था, परंतु स्वामी दयानंद ने इससे पहले ही स्वदेशी के पक्ष में अपनी आवाज उठाई थी। उनका मंतव्य था कि सब भारतीयों को स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए। स्वामी दयानंद के अनुसार स्वदेशी शब्द का अर्थ केवल स्वदेश में निर्मित वस्तुओं का उपयोग करना मात्रा नहीं है, वरन् स्वदेशी का वास्तविक अर्थ है- स्वशासित राज्य, स्वकीय संस्कृति, स्वकीय रहन सहन, स्वकीय चाल-चलन, सनातन वैदिक (आर्य) धर्म और पुरातन परंपराओं के साथ स्वकीय आर्य भाषा का सभी देशवासियों द्वारा प्रयोग।[9]

निष्कर्ष

राजनीति में स्वामी दयानंद को नवीन राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। स्वामी दयानंद ही प्रथम स्वप्नद्रष्टा थे जिन्होंने भारतीयों द्वारा स्वशासित अखंड भारत की सुंदर झांकी प्रस्तुत की। स्वामी दयानंद सरस्वती का समय वह समय था जब उपनिवेशवाद भारतवर्ष में जड़ पकड़ रहा था तथा पाश्चात्य विद्वानों ने यह प्रतिपादित करना शुरू कर दिया था कि गौरांग लोग सब मनुष्यों में उत्कृष्ट हैं और एशिया के निवासियों को सभ्य बनाने के कार्य ईश्वर ने उन्हें दिया है। ऐसे समय में स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारत की पूर्ण राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का स्वप्न देखा। उन्होंने भारतीयों के इस भावना को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने देशवासियों का ध्यान भारत के अतीत कालीन गौरव की तरफ आकृष्ट कर यह प्रतिपादित किया कि यह देश विश्व का शिरोमणि देश है। इसकी सभ्यता, धर्म और संस्कृति सर्वोत्कृष्ट है।

स्वामी दयानंद ने देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने के लिए स्वराज की कल्पना 19सदी के उत्तरार्ध में उस समय की जब राष्ट्रीय संस्था अखिल भारतीय नेशनल काँग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था। दयानंद ने इससे बहुत पहले ही स्वराज की आवश्यकता तथा महता का जयगान किया था तथा "भारत भारतीयों के लिए" का नारा दिया था। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने स्वराज के संबंध में अपनी निम्न लिखित अमर वाक्य लिखा- "कोई कितना ही करें जो स्वदेशी राज होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मत मतांतर के आग्रह रहित अपने पराए का पक्षपात शुन्य प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता"।

संदर्भ सूची

1. डॉ. शांता मल्होत्रा, स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक विचार, कल्पना बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली–11033, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ 61
2. भारतीय स्वाधीनता संग्राम में आर्य समाज का योगदान– आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, प्रकाशक– हरियाणा साहित्य संस्थान रोहतक, द्वितीय संस्करण– 2040 वि. पृष्ठ 10-20
3. वही, पृष्ठ 23-24
4. डॉ. शांता मल्होत्रा, स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक विचार, कल्पना बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली– 11033, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ 67
5. वही, पृष्ठ 64-65
6. आर्य संकल्प, बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा, नवंबर 2012, पृष्ठ 12-13,
7. डॉ. शांता मल्होत्रा, स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक विचार, कल्पना बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली–11033, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ 66
8. भारतीय स्वाधीनता संग्राम में आर्य समाज का योगदान– आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, प्रकाशक– हरियाणा साहित्य संस्थान रोहतक, द्वितीय संस्करण– 20 40 वि. पृष्ठ 58-63.
9. डॉ. शांता मल्होत्रा, स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक विचार, कल्पना बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली–11033, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ 78-79,
10. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास (भाग 3), आर्य स्वाध्याय केंद्र, नई दिल्ली-29, प्रथम संस्करण, 1983,
11. सर्वदेशिक सप्ताहिक, सर्व देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली, 2003,
12. कोलेश्वर राय, बिहार का इतिहास, किताब महल इलाहाबाद, तृतीय संस्करण- 2007,
13. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानंद सरस्वती, चौदहवां संस्करण।

प्राचीन काल में बाल विवाह: एक ऐतिहासिक अवलोकन

डॉ० पूर्णिमा कुमारी

एम.ए., पीएच.डी., इतिहास विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

हिंदू समाज में बाल विवाह का प्रचलन इतिहास के परिवर्तनशील समय का परिणाम है,जो कालांतर में एक रुढीवाद के रूप में जनजीवन से संबंधित हो गया है। वस्तुत: इसका प्रारंभ वैदिक युग के बाद हुआ तथा परवर्ती युग तक आकर हिंदू समाज का एक अंग बन गया। सभी धर्म शास्त्रों और स्मृतियों में इस बाल विवाह प्रथा का समर्थन मिलता है और ऐसे विवाह को धर्म सम्मत कहा जाता है। इस प्रथा के अंतर्गत प्राय: लड़कियों का विवाह बाल अवस्था में करने का निर्देश किया गया था तथा लड़कों की युवा होने पर। वैदिक युग में स्त्री और पुरुष दोनों की स्थिति समान थी तथा उनका आदर एक जैसा था इसलिए दोनों समकक्ष माने जाते थे। किंतु इस युग के बाद स्त्रियों की स्थिति धीरे-धरे ह्रस की ओर अग्रसर होती गई तथा उनके अधिकारों पर प्रतिबंध लगने लगा। उनका कोई स्वतंत्रा अस्तित्व नहीं रह गया।

स्त्रियों के बाल विवाह के प्रमुख कारणों के पीछे विदेशियों का भारत पर आक्रमण और उनका प्रसार रहा है। जो दूसरी सदी इ.पू. से 17वीं सदी युग तक होता रहा। इन आक्रमको में यूनानी, शक, पहलव, कुषाण, हुण, अरब, तूर्क, मुगल एवं अंग्रेज आदि अनेक विदेशी जातियां थी, जिन्होंने यहां के प्रदेशों को जीता, शासन किया तथा यहां के मूल निवासियों से रक्त संबंध स्थापित किया। अत: भारतीय धर्मशास्त्रकारो ने आर्य रक्तों को शुद्ध बनाए रखने, स्त्रियों के कौमार्य और अस्तित्व की रक्षा करने तथा हिंदू समाज में संकरता को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से अधिक कठोर नियम बना दिए। बाल विवाह इसी का परिणाम है। परिणामत: समाजिक उदारता और गरिमा को अछुण बनाए रखने में बाल विवाह जैसा प्रतिबंध लड़कियों की सुरक्षा में सहायक तथा उनके अपहरण में अवरोध बना, किंतु इसके विपरीत स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक स्थिति दयनीय हो गई। यह बाल विवाह आज 21वी सदी में भी भयावह रुप से व्याप्त है।[1]

ऋग्वैदिक काल में समाजिक संस्कारों में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार था। अति प्राचीन काल में विवाह का बंधन नहीं था और सब स्त्रियां अनावृत थी। दिघतमा ऋषि के समय तक यही दशा थी। अनावरण हटाने का श्रेय श्वेतकेतु को भी दिया जाता है। विवाह संस्था में श्वेतकेतू ने कुछ सुधार किए ऐसा अनुमान लगाया जाता है। धीरे धीरे विवाह संस्था दृढ़ हो गई।[2]

इस युग में स्त्रियों का विदुषी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि पुरुषों के समान स्त्रियां भी उपनयन संस्कार कर ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश किया करती थी और गुरुकुल में निवास कर वेद शास्त्र तथा विभिन्न विद्याओं का अध्ययन करती थी।[3] अपाला, विश्ववारा, घोषा आदी ने तो नर ऋषियों की भांति मंत्र रचना भी की थी। सदाचार का स्तर काफी ऊंचा था।[4] वैदिक एवं उत्तर वैदिक युग में विवाह संबंध निर्धारित करते समय वर वधू के गुण कर्म स्वभाव एवं आयु की अनुकूलता का ध्यान रखा जाता था।[5]

ऋग्वेद में बहूपति विवाह और बाल विवाह का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। नारियों को अपना पति चुनने में काफी स्वतंत्रता थी, विवाह के अंतर्गत पत्ति की रक्षार्थ रहती थी। उनके सम्मान स्वरुप वर्तमान काल से अधिक थे। गृह की वह स्वामिनी थी और वहा के सारे काज उन्हीं के देखरेख में संपन्न होते थे। उनके बाहर निकलने आने-जाने पर अंकुश न था, और वे आकर्षक वस्त्र धारण कर समाज और घर के यज्ञों आदि में सम्मिलित रहती थी।[6]

उपनिषद

वृहदारणयक उपनिषद में कहा गया है कि जो कोई चाहे कि मेरी दूहिता पंडित बने और सौ वर्ष की पूरी आयु प्राप्त करे, तो वह घी के साथ तील और चावल पका कर सेवन किया करें।[7]

तैतरीय उपनिषद में एक स्थल पर पुरुष अपनी स्त्री से कहता है मुझे यह ज्ञात है कि तुम मुझे मन से चाहती हो संतान की कामना करती हो। हे पुत्र चाहने वाली युवती स्त्री तुम मेरे पास आओ, तुम संतान उत्पन्न करो।[8]

सूत्र काल

सूत्र ग्रंथों में स्त्री द्वारा यज्ञ के अनुष्ठान का उल्लेख मिलता है, जो तभी संभव था जब वो शिक्षित हो और वेद मंत्रों का पाठ करने में समर्थ हो। ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरुकुल में निवास कर और वहां शिक्षा पूर्ण करने के अनंतर ही कन्याएं युवा पति से विवाह करने की कामना किया करती थी। इस तथ्य की पुष्टि में प्राचीन शास्त्रों का "ब्रहमचर्येन कन्या युवान विदंते पतिम" उल्लेखनीय है।[9] गृह सूत्रों का मत भी इस संबंध में एक सा नहीं है। किंतु गृहसूत्र के काल में आकर कन्याओं के विवाह की आयु कम होने लगी। ऐसी कन्याओं की कई श्रेणियां हो गई, जिनके अलग-अलग नाम दिए गए। हिरण्यकशी और गोभिल गृह सूत्रों के अनुसार विवाह के लिए नागनीका कन्या हि श्रेष्ठ थी। नागनीका कन्या के विद्वानों ने दो अर्थ लिए, एक तो वह जो नग्न रहने में लजा नहीं करती थी और जिसमें यौवन के चिन्ह नहीं होते थे तथा दूसरी जिनमें यौवन के चिन्ह थे। पहले अर्थ में 10 से 12 वर्ष तक की कन्या का सनिवेश हुआ और दूसरे अर्थ में 16 वर्ष की कन्या का। 10 से 12 वर्ष तक कन्या को श्यामा कहा जाता था। 12 वर्ष के अधिक की कन्या कुमारी होती थी।[10]

महाकाव्य काल

महाकाव्य काल के संदर्भ में बाल विवाह का प्रचलन नहीं हो पाया था। शकुंतला, दमयंती, सावित्री, सत्यवती शर्मिष्ठा आदि कोई भी विवाह के समय नाग्निका नहीं थी। अंबिका, अंबालिका, गंधारी, कुंती, द्रौपदी, सुभद्रा, चित्रांगदा आदि महिलाओं का विवाह यौवन काल में हुआ था। इसी प्रकार रामायण में सीता का विवाह युवती होने पर ही हुआ।[11]

महाभारत काल के अनुसार (अनुशासन पर्व 55/4-5) रितुमति हो जाने पर उसे अविवाहित रखने वाले पिता और बंधु बांधव मूर्ख है तथा वे भ्रूण हत्या का पाप करते हैं।[12] महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म से कहलाया गया है कि 30 वर्ष का पुरुष 10 वर्ष की कन्या से 21 वर्ष का पुरुष 7 वर्ष की कन्या से विवाह किया करें।[13]

600 ई. पू. से 323 ई. पू. तक बाल विवाह की स्थिति

बौद्ध कालः जातक काल में कन्याओं का विवाह छोटी आयु में कर दिया जाता था। गुड़ियों के साथ खेलती हुई कन्या विवाह बंधन में बंध जाती थी, उस समय कन्या के लिए विवाह योग्य आयु 16 वर्ष थी। अल्टेकर लिखते हैं कि इस काल में बचपन में कन्याओं का विवाह किए जाने के कारण नारियां अशिक्षित रहती थी। जातक की कथा में कन्या अधिक वर्ष में पति पाने को अभिशाप समझते हुए कहती है कि 20, 25 या 29 वर्ष में पति मिलने का कष्ट वह भोगे, जिसने आम चुराए हैं। जातको में सामान आयु के पत्नी-पति के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं और पुरुषों के 16 वर्ष की आयु के विवाह के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। वयस्क होने तक भी कभी-कभी कन्याएं अविवाहित रहती थी।[14]

जातकों के अनुसार इस युग का पुरुष इतना स्वार्थी हो गया था कि अपनी कन्याओं को बेचने में उसे लाज नहीं आती थी। वृद्ध पुरुषों ने पैसे के बल पर सुकोमल तरुण खिलती हुई कलियों से विवाह किया।[15] विवाह के संदर्भ में माता-पिता की इच्छा का महत्व इस रूप में स्पष्ट होता है कि दो मित्र बच्चे पैदा होने से पूर्व यह समझौता कर लेते थे कि उनकी पत्नियों से उत्पन्न भावी बच्चों का आपस में विवाह कर देंगे।[16] एक मित्र कहता है कि यदि मेरे पुत्र होगा और तेरी पुत्री तो दोनों का परस्पर विवाह कर देंगे। धम्मपद टीका में राजगिरी की श्रेष्ठी की कन्या कुंडलकेसी का उल्लेख आया है जो 16 वर्ष की आयु तक अविवाहित रही थी। वहां भी यह लिखा है कि यही आयु है जिसमें की स्त्रियां विवाह के लिए इच्छुक होती है।[17]

बौद्ध काल में भी महाकाव्य की तरह बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। किंतु ऐसे कई उल्लेख मिलते हैं जिस से ज्ञात होता है कि बाल विवाह आंशिक रूप से अवश्य प्रचलित था। "भिक्षुणी वीभांग" में 12 वर्ष से कम उम्र की कन्या के विवाह का वर्णन

है। इस साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि बाल विवाह का प्रचलन आंशिक रूप से अवश्य था किंतु दूसरी अन्य बालिकाओं के विवाह का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।[18] इस समय समाज में कन्या का विवाह 16 वर्ष की अवस्था में ही होता था।[19]

विदेशी आक्रमण (ईरान एवं यूनान "सिकंदर") के काल में बाल विवाह की प्रवृत्ति प्रदूर्भुत हुई। उसका एक कारण यह कल्पना किया जा सकता है कि चौथी सदी ईसा पूर्व में ईरान एवं यूनानी आक्रमण प्रारंभ हो गए थे। अत: कालांतर में स्त्रियों के लिए यह सिद्धांत प्रतिपादित किया जाने लगा कि उनका उपनयन नहीं होना चाहिए और उन्हें विद्या अभ्यास नहीं कराना चाहिए एवं उनका विवाह 16 साल की आयु में हो जाना चाहिए बल्कि पुरुषों के विवाह की आयु 25 साल निर्धारित की गई थी।[20] तक्षशिला में ग्रीकों ने दरिद्र पिता को बाजारों में अपनी कन्याओं को बेचते देखा।[21]

मौर्य काल 323 ई. पूर्व से 185 ईसा पूर्व में विवाह के लिए कौन सी आयु उपयुक्त समझी जाती थी इस संबंध में भी कुछ सूचनाएं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विद्यमान हैं। अर्थशास्त्र से स्पष्ट होता है स्त्री 12 साल की आयु में प्राप्त व्यवहार बालिग हो जाती है और पुरुष 16 साल की आयु में।[22]

मौर्योत्तर काल में 185 ईसा पूर्व से 320 ई. पहले यबनों ने भारत पर आक्रमण किए और फिर शको, पह्लवो, कुषाणो एवं हुणो ने भारत पर आक्रमण किया। कई सदियों तक भारत इन विदेशियों द्वारा आक्रांत होता रहा। विदेशी आक्रांता सैनिक भारतीय स्त्रियों के साथ विवाह संबंध स्थापित करने के लिए इच्छुक रहे होंगे यह कल्पना असंगत नहीं है। पर आज अपनी रक्त शुद्धता को कायम रखना चाहते थे और स्वाभाविक रूप से अपनी कन्याओं को विदेशियों से बचाने के लिए प्रयत्नशील रहे होंगे। इस दशा में यदि कन्याओं के माता-पिता ने स्वअल्पायु में ही उनका विवाह कर अपनी उत्तरदायित्व से मुक्त होने का प्रयत्न किया हो तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। 8 या 12 साल की आयु में कन्याओं के विवाह शुरू हो जाने पर उनके लिए यह संभव नहीं रहा कि वे ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश कर शिक्षा प्राप्त कर सके। उनके लिए यह पर्याप्त समझा जाने लगा कि गृहकार्य में दक्ष हो जाए और दूसरों द्वारा रक्षित होकर जीवन व्यतीत किया करें।[23] मनु ने बाल विवाह का आदेश दिया और 12 और 8 वर्ष की कन्याओं का विवाह उचित बताया है। मनु की राय में नारी कभी स्तंत्रा नहीं हो सकती। कौमर्य अवस्था में उसको पिता की रक्षा में, यौवन में पति की और वृद्धावस्था में पुत्रों की रक्षा में रहना उचित बताया है।[25] इसलिए मनु ने ये विधान किया था कि पत्नी को मंत्रा का उच्चारण किए बिना ही यज्ञ कुंड में आहुति दे देनी चाहिए।[26] यज्ञवलक्य के स्मृति में यहां तक कहा गया है कि रजो दर्शन के पश्चात जो पिता अविवाहित रखता है उतने समय तक उसके माता पिता को भ्रूण हत्या का पाप लगता है[27]।

100 ई. से 600 ई. तक के अन्य स्मृतिकारों के विधा अनुसार-परासर शक्ति में लिखा है कि 12 वर्ष की आयु में रजोदर्शन हो जाने पर भी जो पिता अपनी पुत्री को अविवाहित रखता है। वह नरक को प्राप्त करता है। वात्स्यायन के काम सूत्र के अनुसार वर और वधू की आयु में तीन से कम और 7 से अधिक वर्षो का अंतर नहीं होना चाहिए। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि मौर्येतर युग में कन्याओं के बाल विवाह के साथ साथ व्यस्क विवाह का प्रचलन था।[28]

गुप्त काल में पहले की अपेक्षा स्त्रियों के स्थिति में कुछ गिरावट आई। गुप्त काल में बाल विवाह की प्रथा का प्रचलन था।[29]

निष्कर्ष

हिंदू समाज में बाल विवाह का प्रचलन इतिहास के परिवर्तनशील समय का परिणाम है, जो कालांतर में एक रुढी के रूप में जनजीवन से संबंध हो गया है। वस्तुत: इसका प्रारंभ वैदिक युग के बाद हुआ तथा परवर्ती युग तक आकर हिंदू समाज का एक अंग बन गया। सभी धर्म शास्त्रों और स्मृतियों में इस बाल विवाह प्रथा का समर्थन मिलता है और ऐसे विवाह को धर्म सम्मत कहा जाता है। इस प्रथा के अंतर्गत पराय: लड़कियों का विवाह बाल अवस्था में करने का निर्देश किया गया था तथा लड़कों की युवा होने पर। वैदिक जुग में स्त्री और पुरुष दोनों की स्थिति समान थी तथा उनका आदर एक जैसा था इसलिए दोनों समकक्ष माने जाते थे। किंतु इस युग के बाद स्त्रियों की स्थिति धीरे-धरे ह्रस की ओर अग्रसर होती गई तथा उनके अधिकारों पर प्रतिबंध लगने लगा। उनका कोई स्वतंत्रा अस्तित्व नहीं रह गया।

स्त्रियों के बाल विवाह के प्रमुख कारणों के पीछे विदेशियों का भारत पर आक्रमण और उनका प्रसार रहा है जो दूसरी शादी इ.पू. से 17 ही सदी युग तक होता रहा।इन आक्रमको में यूनानी, शक, प्रहलव, कुषाण, हुन, अरब, तूर्क, मूगल एवं अंग्रेज आदी अनेक विदेशी जातियां थी जिन्होंने यहां के परदेसो को जीता शासन किया तथा यहां के मूल निवासियों से रक्त संबंध स्थापित किया।

अत: भारतीय धर्मशास्त्रकारो ने आर्य रक्तों को शुद्ध बनाए रखने, स्त्रियों के कौमार्य और अस्तित्व की रक्षा करने तथा हिंदू समाज में सकरता को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से अधिक कठोर नियम बना दिए। बाल विवाह इसी का परिणाम है। परिणामत: समाजिक उदाता और गरिमा को अछुण बनाए रखने में बाल विवाह जैसा प्रतिबंध लड़कियों की सुरक्षा में सहायक तथा उनके अपहरण में अवरोध बना किंतु इसके विपरीत स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक स्थिति दयनीय हो गई। यह बाल विवाह आज 21वी शदी में भी भयावह रुप से व्याप्त है।

संदर्भ सुची

1. जय शंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, दशम संस्करण 2006 पृष्ठ 358-359।
2. राधा कृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का राजनीति और सांस्कृतिक इतिहास, भारतीय भवन पटना, 1989 पुन: मुद्रण 2003 पृष्ठ 57।
3. सत्य केतु विद्या आलकार, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 2011 पृष्ठ 208 214।
4. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ 25
5. सत्यकेतु विद्यालकार, पृष्ठ 232-233।
6. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ 25
7. सत्य केतु विद्या आलकार, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 2011 पृष्ठ 208-214।
8. जय शंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, दशम संस्करण 2006 पृष्ठ 355।
9. रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ 104।
10. वही, पृष्ठ 208-214।
11. कैलाश चंद जेन, प्राचीन भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और भौगोलिक अध्यन, पब्लिशग हाउस, नई दिल्ली, 1968, पृष्ठ संख्या 105-106
12. रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ 56।
13. वही, पृष्ठ 248-249।
14. वही, पृष्ठ 248-249।
15. वही, पृष्ठ 248-249।
16. एस.एल. नागोरी ऐतिहासिक निबंध श्री प्रकाश की, जयपुर, 1998, पृष्ठ 28।
17. राम शरण शर्मा, पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा आवृति, 2014, पृष्ठ 28-29।
18. कैलाश चंद जेन, प्राचीन भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और भौगोलिक अध्यन, पब्लिशग हाउस, नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ संख्या 105-106
19. सत्य केतु विद्या आलकार, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 2011 पृष्ठ 208-214।
20. वही पृष्ठ 208-214।
21. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ 104।
22. सत्य केतु विद्या आलकार, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 2011 पृष्ठ 245।
23. वही, 208-214।
24. कैलाश चंद जेन, प्राचीन भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और भौगोलिक अध्यन, पब्लिशग हाउस, नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ संख्या 105-106।
25. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ 56।
26. सत्य केतु विद्या आलकार, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 2011 पृष्ठ 208-214।
27. वही, पृष्ठ 248-249।
28. वही, पृष्ठ 248-249।
29. एस. नागोरी, ऐतिहासिक निबंध, जयपुर, पृष्ठ 28

वैश्वीकरण और हिन्दी भाषा: विकास व चुनौतियाँ

डॉ० सुजीत कुमार

सहायक प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स
1630, गौर सौंदर्यम, गौर चौक, टेक जोन-4, ग्रेटर नोएडा वेस्ट, गौतम बुद्ध नगर-201318

प्रस्तावना

वैश्वीकरण के लगभग तीन दशक पूरे हो गए हैं। दावा बहुत कुछ का किया गया था कि इसके बढ़ते कदम राष्ट्रीय सीमाओं को मिटा देंगे, दुनिया को एकीकृत बाजार मे बदलकर क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय संस्कृतियों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों और मिथको को निष्प्राण कर देंगे? फिर किसी भी देश या क्षेत्र की अपनी पहचान नहीं रह जाएगी? इतना ही नहीं उसका साहित्य, उसकी विभिन्न विधाएँ और शैलियाँ गंभीर रूप से प्रभावित होंगी। इसने राष्ट्र, समाज और समुदाय सबको बेमानी बना दिया? लेकिन विश्व एक बाजार बन के रह गया है। बाजार ने नैतिकता और मूल्य को प्रभावित किया है। समाज के हर तबके को इसने अपने आगोश में ले लिया। अब प्रासंगिक प्रश्न यह है कि 'मैं कौन हूँ?' अत: अब वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण पर बहस से आगे उसके प्रभाव पर होना लाजिमी है। एसे मे भाषा कैसे अछूती रह सकती है? आज विश्व मे भारत की ज्यों-ज्यों प्रभुता बढ़ रही है, साथ-साथ हिन्दी भाषा भी अपने महत्व को रेखांकित कर रही है। भारत विभिन्न संस्कृतियों के साथ विभिन्न बोलियों एवं भाषाओं को अपने मे समेटे हुए है। इन तमाम भाषाओं मे से हिन्दी को भारत की राजभाषा के स्वीकार किया गया और आज हिन्दी पूरे विश्व मे अपनी लोकप्रियता को प्राप्त हो रही है। यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि हिन्दी को संवृद्ध करने मे देश के विद्वानो के साथ-साथ अनेक विदेशी एवं प्रवासी भारतियों की अहम भूमिका रही है। इसके साथ ही हिन्दी भाषा की ग्लोबल स्वीकृति मे विश्व हिन्दी सम्मेलन और मीडिया की केंद्रीय भूमिका रही है।

संकेत-शब्द: राजभाषा, प्रवासी, वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, इलेक्ट्रॉनिक्स, आधारभूत, विज्ञापन।

भूमिका

वैश्वीकरण एक अवधारणा है, जिसके मूल मे व्यापार है। इसके लिए बाजार कि जरूरत पड़ती है। यह सार्वभौम की बात नहीं करता, बल्कि अमेरिका का विश्व प्रभाव मात्रा है। अमेरिका ग्लोब का पर्याय मात्रा हो गया है। विश्वदृष्टि का मतलब अमेरिकी सोच के साथ साथ बहुत कुछ यूरोपीय देशों की सोच है। कुल मिलाकर यह वर्चस्व की स्थापना है जिसका मुख्य आधार सूचना तकनीक है। इसके माध्यम से पूरी मानसिक चेतना पर आधिपत्य करना, संस्कृति पर आधिपत्य स्वयं हो जाएगा।

वैश्वीकरण की ओर उत्तरोत्तर बढ़ती दुनिया में एक तरफ सैकड़ों भाषाएं विलुप्त होने के कगार पर हैं, दूसरी तरफ यह सवाल भी उपस्थित है कि क्या ज्ञान और विकास के लिए भाषा की अब कोई अहमियत बची है? इसका जवाब हां में हो सकता है, लेकिन प्रमुख सवाल है कि ज्ञान और विकास के लिए भाषा की अहमियत कैसे हैं? खासकर जब उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया जारी है, और दुनिया पश्चिमी आर्थिक वर्चस्व की तरह अंग्रेजी के भाषाई वर्चस्व की छाया में हो। साथ ही यह जानना दिलचस्प होगा कि ज्ञान या सोच की प्रक्रिया के आधुनिकीकरण में स्थानीय भाषाओं या हिंदी समेत भारतीय भाषाओं की अपनी क्या भूमिका होगी? इस संदर्भ मे एडवर्ड सईद के शब्द महत्वपूर्ण हैं, उनके शब्दों में "प्रत्येक बुद्धिजीवी व्यक्ति का जन्म एक भाषा मे हुआ होता है,

और वह अपने जीवन का बड़ा हिस्सा उसी भाषा मे बीताता है, जो उसकी बौद्धिक गतिविधियों का प्रमुख माध्यम होती है"। इस पर विचार इस पूर्वाग्रह से मुक्त हुए बिना नहीं किया जा सकता कि अंग्रेजी ही ज्ञान के आधुनिकीकरण की एकमात्रा राह है।

हिंदी भाषा का इतिहास

हिंदी भाषा का इतिहास महज डेढ़ सौ वर्षो का है। अपने इस छोटे से सफर में हिंदी भाषा स्वतंत्रता की सहचरी बनी। इससे हिंदी की क्षमता और आवश्यकता दोनों को समझा जा सकता है। परंतु दुर्भाग्य यह रहा कि स्वतंत्रता मिलते इसके पक्षधर इसके धुर विरोधी बन गए, जिसके परिणाम स्वरुप काफी जद्दोजहद के पश्चात 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकृत हुई लेकिन इसके साथ अंग्रेजी को भी 15 वर्षो तक लगा दिया। इसे नेहरू जी ने '1963 में के राजभाषा अधिनियम' के द्वारा हमेशा के लिए हिंदी पर थोप दिया। दूसरा दुर्भाग्य कि विकास को लेकर किए गए प्रावधान (अनुच्छेद 351) के रूप में था, जिसमें कहा गया कि "हिंदी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों को अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और आठवीं अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां तक आवश्यक एवं वांछनीय हो, वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी संवृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा"। इसका परिणाम बहुत ही भयावह हुआ। हिंदी आम जनता क्या पढे-लिखे वर्ग से भी परे हो गई। इसके दो कारण थे- पहला प्रत्येक अंग्रेजी शब्द का अनिवार्य रूप से अनुवाद किया जाना तथा दूसरा अनुवाद में लिया गया प्रत्येक शब्द अनिवार्य रूप से संस्कृत का होना। हिन्दी अब अपने ही लोगों के बीच जगह बनाने के लिए संघर्ष करने लगी। संवैधानिक प्रावधानों, आयोगों, समितियों ने हिंदी के विकास में मात्रा इतना योगदान किए कि सभी कार्यालयों में सरकारी पत्रों का अनुवाद के लिए एक अनुवादक रखा जाने तक सीमित हो गया। हिंदी के विकास का भार 'मैकाले के मानस पुत्रों' के कंधों पर था जो 'लौहपथगामिनी' के रूप में सामने आया।

सवाल यह उठता है कि अंग्रेजी के स्वीकार करने के पीछे क्या कारण थे? अंग्रेजी के राजभाषा के रूप में स्वीकार करने से हिंदी ही नहीं अन्य सभी भारतीय भाषाओं का विकास रुक गया। पहला, क्या अंग्रेजी ज्ञान की कुंजी है? और दूसरा यह कि हिंदी के आ जाने से सभी अवसर का लाभ हिंदी भाषी उठा लेंगे? दोनों तर्क हास्यास्पद से लगते हैं। फिर क्या कारण थे? प्रथम तो यह कि राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी और दूसरा यह कि अंग्रेजी को लाने के पीछे गहरी साजिश थी। अंग्रेजी सत्ता की भाषा थी, अधिकार की भाषा है। समाज का सबसे बड़ा वर्ग हमेशा से आधारभूत सुविधाओं से वंचित रहा। परिणाम स्वरूप स्वतंत्रता के पश्चात उन्हें कुछ अधिकार मिला जिसमें शिक्षा का अधिकार भी था। बराबरी पर आ जाने के भय ने अंग्रेजी को स्वीकृत बना दिया। जहां तक राजनीतिक इच्छा शक्ति की बात है तो इतिहास गवाह है कि कमाल पाशा ने तुर्की भाषा और स्टेलिन ने रूसी भाषा को देशहित मे चंद दिनों सबको सिखा दिया। जापान दो परमाणु बम की विभीषिका झेल कर भी ऊंचाई पर खड़ा है अर्थात हम कह सकते हैं कि अपनी भाषा, विकास और मौलिक विचार की कुंजी है। परंतु हम तो अंग्रेजी के रथ पर सवार होकर विश्व की महाशक्ति बनने चले हैं?

हिन्दी का वर्तमान रूप

भारत को स्वतंत्रा हुए लगभग 73 वर्ष हो गए परंतु आज तक हिंदी विकसित ही हो रही है। 14 सितंबर को फूल खिलता है और फिर सुख जाता है। सरकारी सभी प्रयास टांय-टांय फिस ही रहे? लेकिन अंग्रेजी के दबदबे के बावजूद हिंदी की जो स्थिति आज है वह अपने दम पर है। जिसके दम में चार चांद वैश्वीकरण ने लगा दिया। हिन्दी बूम की जड़ में हिंदी की बढ़ी हुई व्यावसायिक ताकत है। आज कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां हिन्दी की पहुँच न हो। प्रिंट माध्यम से लेकर इलेक्ट्रॉनिक्स माध्यम हिन्दी के प्रयोग को फायदा का सौदा मानते हैं। विज्ञापनों की निगाह में यह क्षेत्र उपभोक्ताओं का है–'ठंडा मतलब कोको-कोला' इसकी नई शक्ति है। जो चैनल पहले अंग्रेजी में आते थे-स्टार, सोनी. वे अब पूरी तरह से हिंदी कार्यक्रम दिखा रहे हैं। डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक और एनिमल प्लानेट हिंदी में दिखाने को बेकरार है। भारत में टी.वी. उद्योग विश्व का तीसरा बड़ा बाजार है। उसकी पहुँच करोड़ों घरों तक है, सेटेलाइट टी.वी., कैस, डीटीएच, इन्टरनेट टी.वी.... लोगों के घरों मे घुस गए है। रेडियो के विभिन्न

चैनल नई रंगत लिए बाजार में आ रहे हैं, उनका अपना एक श्रोता वर्ग है। "एफ.एम. रेडियो चैनलों ने नई मेट्रो-हिन्दी को जन्म दिया है। मिश्रित, चपल, चटपटी, और मनोरंजक, पॉप हिन्दी युवा गतिवान जगत की हिन्दी है"। वह नित नई भाषा शब्दावली का निर्माण कर रहा है। फिल्म से हम सभी परिचित है, यह हमेशा से हिंदी भाषा के विकास का सशक्त माध्यम रहा है। अब के दौर में शुद्धता का सवाल नहीं रह गया है। सूचना क्रांति ने भाषा की सीमाओं को समाप्त कर दिया है। ऐसे में शुद्धता की बात करना बेमानी है। भाषा शब्दों से बनती है। शब्द वही बनाते हैं जो कुछ प्रयोग करते हैं, कुछ इन्वेंट करते हैं।

इलेक्ट्रोनिक मीडिया के उभार में दिलचस्प बात यह है कि चैनलों की वृद्धि के समानांतर पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी बढ़ रही है। हिंदी का पाठक वर्ग दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। संख्या के आधार पर देखेंगे तो हिंदी के अखबारों जागरण, दैनिक भास्कर, आज और अमर उजाला अंग्रेजी के अखबारों के ऊपर है। इनके अंतर्राज्यी संस्करण कोलकाता, चेन्नई और बेंगलुरु से निकलने लगे हैं। सभी प्रमुख हिंदी दैनिकों के इंटरनेट संस्करण भी उपलब्ध है। केरल के मलयालम मनोरमा प्रकाशन समूह हिन्दी वार्षिकी निकाल रहा है।

सच यह है कि हिंदी में उत्सव का समय है। हिंदी प्रिंट मीडिया में विस्फोट है। नई पीढ़ी हिंदी में अपना प्रतिबिंब देखना चाहती है। यह सिर्फ हिंदी पट्ठी कि भाषा नहीं रह गई है। कोलकाता, मुंबई या चेन्नई ...उसके कई संस्कारण हैं। अंग्रेजी कि पत्र-पत्रिकाएं भी धड़ल्ले से हिंदी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग कर रहे हैं। मई 2017 के टाइम्स ऑफ इंडिया के संपादकीय पृष्ठ पर प्रमुख आलेख का शीर्षक था- 'सबसे बड़ा रुपैया' अब तो लगातार यह प्रवृति नजर आती है। दस वर्ष पहले यह स्थिति नहीं थी। तब अंग्रेजी के संपादक और लेखक हिंदी से परहेज किया करते थे।

इंसान कि जिंदगी में इंटरनेट से ज्यादा नई चीजें अभी तक कोई और नहीं आई है। इससे नए-नए माध्यम विकसित हुए। आज सोसल मीडिया के रूप मे अनेक प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, ट्वीटर, व्हाट्सप..... आदि हैं जिसके माध्यम से हिन्दी का प्रचार-प्रसार तेजी से हुआ। इसलिए आज हिंदी भाषा कंप्यूटर के लिए फैमिलियर है या नहीं, यह सवाल ही नहीं रहा। हिंदी में ई-मेल, सर्च इंजन.... सब की सुविधा उपलब्ध है। अब तो माइक्रोसॉफ्ट, गूगल... आदि ने ऐसा सॉफ्टवेयर (यूनिकोड) विकसित किया जिससे रोमन लिपि से देवनागरी वर्ण मे लिखा जा सकता है। इस संदर्भ मे एक उद्धरण से हिंदी की उस दुनिया की आहटें मिलती हैं जहां 'वर्चुअल' अपनी निर्मित के दौर में 'रियल' का मुकाबला करते हुए अपनी अनंत संभावनाएं दिखा रहा है–'इंटरनेट एक नया लेकिन तेजी से फैलता हुआ माध्यम है। बतौर भाषा हिंदी का प्रौद्योगिकी के साथ एक उद्यमहिन और हिचकता हुआ रिश्ता रहा है। इसलिए यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि बीस और तीस के लपेटे में चल रहे नौजवानों ने ब्लॉगिंग जैसा ताजातरीन माध्यम जमकर अपनाया है।'

हिंदी के प्रसार और अहमियत मे हुई बढ़ोतरी का उल्लेखनीय आयाम यह है कि उसने विभिन्न भाषाओं के बीच बौद्धिक संपर्क के रूप में धीरे-धीरे अंग्रेजी की जगह लेनी शुरू कर दी है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण अनुवाद का क्षेत्र है। भारतीय भाषाओं में आपस में अनुवाद करने के लिए हिंदी में अनूदित कृति को आधारभूत टेक्स्ट बनाने का रुझान चालू हो गया है। अनुवाद के माध्यम से नई नई सामग्री, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी सभी क्षेत्रों में उपलब्ध हो रही है। दूसरे सोर्स से ही सही विचार हिंदी पाठक तक पहुंच रहा है। हिंदी में मौलिक चिंतन की शुरुआत हो चुकी है। गिरीश मिश्र, पी.सी. जोशी, कृष्ण कुमार, श्यामाचरण दुबे, कमलनयन काबरा... जैसे समाज चिंतकों का लेखन सभी वर्गो मे लोकप्रिय हो रहे हैं। आज स्थिति यह है कि अंग्रेजी का औसत समाज विज्ञानी, मीडिया.... आदि का लेखक चाहता है कि उसकी पुस्तक का हिंदी संस्करण अवश्य आए। यह हिन्दी के विकसित होते हुए बाजार का ही परिणाम है। हिन्दी भाषा के विकास मे "नई शिक्षा नीति 2020" मे भरपूर संभावनाएं निहित है।

विश्व में हिन्दी की स्थिति और विश्व हिन्दी सम्मेलन

आज विश्व के करीब 60-70 देशों के विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। अमेरिका भी इससे अछूता नहीं रहा। दक्षिण एशिया पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि सभी देशों मे हिंदी का अध्ययन और शिक्षण-प्रशिक्षण चल रहा है और एक सर्वमान्य भाषा के रूप में हिंदी उभर रही है। मोरीसस, फिजी, त्रिनिदाद.... आदि देशों की मुख्य भाषा हिंदी का रूप है। हिन्दी के बोलने वाले करीब विश्व के हर कोने मे हैं। यह उनकी पहचान है, उनकी अस्मिता है। आज के जमाने मे 'टीस की

बात यह है कि आदमी तीस दिन में बदल जाता है। लेकिन इसके वंशज करीब डेढ़ सौ सालो से लोक भाषाओं, लोक संस्कृति का गान गा रहे हैं। परंतु हम हैं कि थोड़ी अंग्रेजी आई नहीं कि अपने आप को भूल जाते हैं। क्या अपनी जड़ों को त्याग कर कोई भी देश विकास कर सकता है। चाहे वह भाषा का ही विकास क्यों न हो? इजराइल का उदाहरण हमारे सामने है। लगभग दो सौ वर्ष अपनी धरती से बाहर रहने के बावजूद अपनी भाषा को नहीं भूले।

विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी का विश्व मेला है। मेला सभी को एकत्रित करता है। हिंदी अकेले की भाषा नहीं है बल्कि विश्व भाषा है। इस मेले में दुनिया भर के हिंदी प्रेमी मिलते-मिलाते, हंसते-खिलखिलाते हैं। इसका घोषित उद्देश्य विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है। सन 1975 मे शुरू हुए प्रथम सम्मेलन से लेकर अब 11 सम्मेलन हो चुके हैं। सभी सम्मेलनों में मुख्य मुद्दा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने को लेकर रहा है। अभी भी संघर्ष जारी है। न्यूयार्क मे हुए आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का मोटों था "विश्व मंच पर हिन्दी"। इस सम्मेलन की खास बात यह रही कि अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने अमेरिका में हिंदी के ज्ञान के लिए विशेष राशि का प्रावधान किया। इसके पीछे भले ही बाजारवाद हो पर हिंदी के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में है। विश्व सम्मेलन की वेबसाइट www-vishwahindi-com पूरी तरह से यूनिकोड में बनी है। इस पर सभी सूचनाएँ उपलब्ध है तथा साथ ही पाठकों के साथ संपर्क की सुविधा भी प्रदान करता है। यह निरंतर अपडेट होता रहता है। विश्व हिन्दी सम्मेलन विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार में महती भूमिका अदा कर रहा है। बस इसके लिए यह प्रार्थना की जानी चाहिए कि यह भी हिंदी दिवस की तरह ना हो जाए।

हिंदी के समक्ष चुनौतियां

हिंदी के विश्व भाषा के संबंध में सबसे अहम सवाल यह है कि जो भाषा अपने ही देश में एक तरह से अमान्य है वह सारे विश्व में मांग कैसे हो सकती है? क्या सचमुच भारत की राजभाषा हिंदी है? बल्कि यह कहा जाए कि दूसरी राजभाषा हिंदी है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। सरकार का सारा काम-काज अंग्रेजी में होता है। इससे बड़ा विरोधभास क्या हो सकता है कि स्वराष्ट्र में तो अंग्रेजी चलती रहे और संयुक्त राष्ट्र संघ में आप हिंदी चलाएं? हमारी मानसिकता गुलामी की है? अपनी पहचान खो चुके हैं या फिर अधिकार की भाषा अधिकार के लिए बनाए रखने की चाह है?

यह तकनीकी और सूचना क्रांति का युग है। इस युग मे तकनीकी और अवश्यकतानुसार हिंदी के बहुत से रूप प्रचलित हो रहे हैं। ऐसे मे हिंदी का स्वरूप कैसा हो? इस पर बहस जरूर होनी चाहिए। अब हिंदी, हिन्दी पट्ठी की भाषा नहीं रह गई है। दूसरी बात यह कि इस बाजारवाद ने हिंदी या किसी भारतीय भाषा के विकास को बाजार के भरोसे छोड़ा नहीं जा सकता। इसके लिए समाज को कुछ प्रयास करना होगा। भाषा का ज्ञान महज अभिव्यक्ति के एक माध्यम का ज्ञान नहीं है। भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व, जातीय अस्मिता और संस्कृति की भी पहचान है।

निष्कर्ष

अंतत: कहा जा सकता है कि इस हिंदी भाषा ने अपनी जमीन तैयार कर ली है। वह विश्व भाषा की ओर निरंतर अग्रसर है। चाहे तकनीकी प्रयोग का हो या फिर शब्द भंडार का सवाल, हिन्दी पूर्णता की ओर बढ़ रही है। अंग्रेजी जैसी शब्दों को ग्रहण करने की शक्ति हिंदी में आ गई है। फिर भी हिंदी को लेकर कई कुंठाएँ थीं, वे समाप्त हो गई है ऐसा नहीं कह सकते। हमारी परंपरा है कि हमें अपना महत्व या शक्ति का तब पता चलता है जब बाहर के लोग बताते हैं। कहने को तो हम हनुमान जी के देश के लोग हैं हनुमान तो छलांग लगा ली, परंतु हम कदम ही नहीं बढ़ते हैं। भारतेन्दु बाबू कह गए "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल", पर हमारा पैर अंगद की तरह ही जमा है। इससे बाहर निकलना होगा। ज्ञान की कोई भाषा नहीं होती जिस भाषा मे मिले उसे ग्रहण करना चाहिए। अपनी जड़ से जुड़े हुए हमे अपनी शक्ति की पहचान नहीं है। इसे पहचानना होगा चाहे वह भाषा का ही क्षेत्र क्यों न हो? हमारी शक्ति को दूसरे हमारे ही ब्रेन-ड्रेन से पहचान रहे हैं- माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, याहू...। दुनिया का कौन सा ऐसा राष्ट्र है जो विदेशी भाषा के जरिए महाशक्ति बना है? महाशक्ति बनना है तो 'निज भाषा' को अपनाना ही होगा।

संदर्भ

1. वाक– सं. सुधीश पचौरी, पृ. 86, वाणी प्रकाशन-2007
2. भारत का संविधान– दुर्गा दास बसु, पृ. 391, वाधावा एंड कंपनी-2000
3. वही, पृ. 393
4. भूमंडलीकरण का संक्षिप्त इतिहास– गिरीश मिश्र, पृ. 107, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली
5. वही,
6. वाक, पृ. 40
7. नई शिक्षा नीति 2020, भारत सरकार
8. द कंप्लीट विजन मासिक, पृ. 35, 2007
9. भारतेन्दु और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ– राम विलास शर्मा, पृ. 45, राजकमल-1985।

बावड़ियाँ निर्माण की रूपरेखा

बाबू लाल

शोधर्थी, इतिहास विभाग
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय, महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

बावड़ियो का अर्थ एवं परिभाषा

पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः।
ससोपानो भवेद् वापी तज्जलं वाप्यमुच्यते।।[1]

अर्थात्- जो कुआँ पत्थर तथा ईटों से बंधा हुआ हो तथा जिसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हो उसे वापी कहा जाता है। उसके जल को वाप्य कहा जाता है।

बावड़ियों को विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे- सीढ़ियाँ युक्त कुओं को संस्कृत भाषा में 'वापी', हिन्दी में बाव या, बावली, मराठी में 'बारव कन्नड़' भाषा में 'कल्याणी' या पुष्करणी तथा अंग्रेजी में 'स्टेपवेल' ¼Step-well½ भी कहा जाता है।[2]

इस प्रकार बावड़ियों से अभिप्राय उन जल संग्रहण भण्डारों से है जिनमें जमीन के नीचे स्वतः जल की ओजस्य धाराएँ हमेशा प्रवाहित रहती हो जिस तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी होती हैं।

बावड़ियों के प्रकार

बावड़ियों का निमार्ण वास्तु शास्त्रीय नियमों के अनुसार किया जाता था। वास्तु शास्त्र के प्रतिष्ठित ग्रन्थों जयपृच्छा, अपराजितपृच्छा, राजवल्लभ वास्तुशास्त्र, विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र, वापी कूप विधान आदि में वापी एवं उसके निमार्ण संबंधी जानकारी मिलती है। अपराजित पृच्छा में दस प्रकार के कूप, चार प्रकार की वापियों, चार प्रकार के कूण्डों व छह प्रकार के तालाबों के निमार्ण का वर्णन मिलता है।[3] अपराजित पृच्छा के अनुसार बावड़ियों के चार प्रकार बताए गए हैं– 1. नन्दा, 2. भद्रा, 3. जया और 4. विजया।

नन्दा भद्रा जया चैव चतुर्थी विजया तथा।
एकवक्त्रा त्रिकूटा च नन्दा नाम वरपदा।।
द्विवक्त्रा च शट्कूटा भद्रा नाम सुशोभिता।
त्रिवक्त्रा नवकूटा च जया वै देवदुर्लभा।।
चतुर्वक्त्रा सूर्यकूटा विजया सर्वतोमुखी।
वाप्यश्च कथिता वत्स कुण्डानि श्रृगु सम्प्रति।।[4]

अर्थात् नन्दा वापी एकमुखी तथा कूट तीन कूट वाली होती है। इसे वरप्रदायक वापी भी कहा जाता है दूसरी वापी दो मुख वाली भद्रा है, अर्थात् जिसमें दो द्वार और छह कूट होते हैं। इसी प्रकार जिस वापी में तीन द्वार हों तथा नौ कूट हों, जया वापी कहलाती है। इसे उत्तम वापी माना गया है तथा देवताओं के लिए भी ऐसी वापी दुर्लभ जानी गयी है। चतुर्थ वापी विजया के चार मुख अर्थात् द्वार तथा बारह कुट (सीढ़ियाँ) होते हैं-

बावड़ियों का स्थापत्य

विश्वकर्मवास्तुशास्त्र में बावड़ी निर्माण के स्थल से लेकर उनके आकार-प्रकार, स्थापत्य आदि की जानकारी प्राप्त होती है।

यत्र स्वादुजलस्त्रावः सन्ततं स्थितिभाग्भ्यभवेत्।

परीक्ष्य तत्र कर्तव्यं वापीकूपादिकं मतम्।।[6]

अर्थात् जिस स्थान पर मीठे पानी के जल स्त्रोत हों तथा वे निरन्तर बने रहते हों, दकार्गल विधि (लकड़ी की शाखा द्वारा पानी की खोज करना) से ऐसे स्थल का परीक्षण करके वहाँ पर बावड़ी का निर्माण करवाना चाहिए।

चतुरश्रां वर्तुलां वा दीर्धा वा तां प्रकल्पयेत्।

त्रिदण्डं वा चतुर्दण्डं प पे्चदण्डमथापि वा।।

षडादिदशदण्डान्तं प्रमाणमिह योजयेत्।

चतुर्मुखां वा द्विमुखां क्वचिदेकमुखां तु वा।।[7]

अर्थात् स्थापत्य की दृष्टि से सामान्यता बावड़ी चतुरस (चौकोर) वर्तुल या लम्बाकार बनाई जाती थी। यह तीन दण्ड, चार दण्ड, पाँच दण्ड, छह दण्ड से लेकर दस तक निर्मित की जाती थी। इसमें प्रवेश के लिए एक, दो, तीन, या चार प्रवेश द्वार होते थे।

दशहस्तप्रमाणं वाऽधिकं वा तलमध्यभाक्।

भित्तिकल्पनमत्रोक्तमैष्टिक शैलकं तु वा।।

जालन्तिकेऽडःणं कल्प्यमाघमेतदुदीरितम्।

द्वितीयडःकं वापि तृतीयाडःणकं।।[8]

अर्थात् इसके तल के मध्य भाग का नाप दस हाथ प्रमाण के बराबर अथवा और अधिक गहराई भी हो सकती है। इनकी दिवारों को ईटों से अथवा पाषाण से निर्मित करना चाहिए। इसके अधोभाग के लिए भूमिलंबनकरण के बाद जल के समीप ही विहार के लिए चौंकोर और दो या एक भाग का आँगन परिकल्पित किया जाना चाहिए।

सपादं वा विपादं वा युक्त्या स्थापनमीरितम्।

कल्पनं दाढर्यसंयुक्तं पादसोपाम्जुलम्।।[9]

वास्तुशास्त्र के रचियता ने यहाँ 'युक्ति' (निर्माण तकनीक) पर अधिक जोर दिया है उनके अनुसार चाहे स्थापत्य सपाद अर्थात् खम्बे पर टिका हो अथवा विपाद (बिना खम्बे का) हो पर उसकी जुड़ाई स्थायी व मजबूत तथा सुन्दर दिखती है।

मुखमण्टपयुक्तं वा कवाटादिसमन्वितम्।

वाप्यां वर्तुलरूपायां भुजडःवेष्टनाकृति।।

पडिःदृढां वा रचयेदथवा सूत्रपडिःकम्

चतुर्विंशल्यडःलेव विहीन नेष्यते बधौः।।[9]

अर्थात् बावड़ी के मुख मण्डप अथवा मुख्य द्वार में कपाट लगे होने चाहिए। बावड़ी को गोलाई से युक्त बनाया जाता है तो उसमें जल के सतह तक पहुँचने के लिए भित्ति के साथ-साथ सर्पाकार, मुड़ती हुई सीढ़ियाँ बनाई जानी चाहिए। इस सोपान पक्तियों को मजबूती के साथ बनाएँ। इसके लिए सूत्रपंक्ति रखनी चाहिए अर्थात् इनको सूत्र पंक्ति नामक एकहस्त, द्विहस्त, वाले क्रमशः नीचे की ओर जाती हुई सोपान की कतारें जाएँ। ज्ञानियों का मत है कि वापी में कभी सोपान का आकार चौबीस अंगुल से कम नहीं रखना चाहिए।

घटीयन्त्रस्थलं तीरे रचयेत्साडःणंबुधाः।

अवगाहतलोपेद्वारकिन्नररूपकम्।।

कल्पनं देवमूर्तीनामथवा सम्प्रयोजयेत्।।[10]

अर्थात् यह कहा गया है कि बावड़ियों पर जलोत्थान के लिए रहट जिसे अरहट भी कहा जाता है, का प्रयोग करना चाहिए और इसको स्थापित करने के लिए बावड़ी, कूप के ऊपरी भू तीर-जल पर आँगन (दाबड़ा) बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त गहरे जल के ऊपरी भू-तल तक द्वार बनाएँ। वह किन्नर के रूप का होना चाहिए अर्थात् उन सीढ़ियों में जगह-जगह किन्नर-मिथुनों की मूर्तियाँ बनाई जाएँ। कहीं-कहीं देवादि की मूतियाँ भी हो अथवा अन्य पूज्य, दर्शनीय देवताओं के बिम्बों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बावड़ी को पद सोपान, सीढ़ियों और स्तम्भों से मजबूत और सुन्दर बनाया जाता था इनकी आंतरिक संरचना को भव्यता प्रदान करने हेतु चारो और देवी-देवताओं की मूर्तियों से अलंकरण किया जाता था। रथिका बिम्बों में वरूण आदि देवताओं की मूर्तियों बनाई जाती थीं, जिनके दर्शन कर लोग पुण्य लाभ प्राप्त सकें। इन कलाकृतियों में तत्कालीन समाज व धर्म की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। बावड़ी का कूप आयताकार, वर्गाकार या अष्टभुजाकार होता था। इन पर इन पर अलंकृत द्वार तथा तोरण बनाएँ जाते थे। जल स्तर भूमि से काफी नीचे होता था, अत: सोपानों की योजना, श्रृंखला में तथा अन्तराल युक्त बनाई जाती थी, जिससे बावड़ी के घटते जल स्तर का प्रभाव उसके उपयोग में बाधक न हो सके।[11]

बावड़ियों मूल रूप से कूप (कुआँ) ही होती है, किंतु स्थापत्य शास्त्र के समर्थक सुत्रधारो के ज्ञान के विकास के साथ-साथ बावड़ियों के भी स्थापत्य का विकास होता चला गया। जिन क्षैत्रो में जल पर्याप्त होता है। वहाँ कुण्ड़, सरोवर ही जल स्त्रोत होते है, किन्तु जहाँ जल दुर्लभ या कठिनाई से प्राप्त होता है वहाँ गहराई तक पहुँच सुलभ हो, इसके लिए बावड़ी का निर्माण किया जाता है इसलिए जंगल और साधारण प्रदेशो में बावड़ी स्थापत्य का विकास हुआ। गुजरात के सौराष्ट्र से लेकर अलवर और मेवाड़ से लेकर जांगल-जैसलमेर तक जो बावड़ियों बनी है उनकी विशेषता यही है।कि वे कुएँ की तरह सामान्य न होकर पक्की बनी होती है कुएँ गर्त के रूप में भी खोढे जा सकते है, किन्तु बावड़ी को बाँधा और बनाया जाता है।

बावड़ियों के निमार्ण में विभिन्न सामग्रियो का प्रयोग होता है, चुनाई के लिए चूना, रेत का मिश्रण, पत्थरों का संयोजित करने के लिए 'व्रजलेप' का प्रयोग भी होता है। बृहसहिंता, विष्णुधार्मोत्तरपुराण, मयमतम, तंत्रसमुच्चय, विष्णुसंहिता, विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्, मंजूश्री चित्रशास्त्र, समरांगण सुत्रधार आदि में व्रजलेप बनाने की विधियाँ देखने को मिलती है। वराहमिहिर के अनुसार यह लेप हजारों वर्षो तक अक्षुण्ण रहता है। और काले पत्थरों की सुभाज ग्रेनाइट की बावड़ियाँ 'काली बावड़ी' कहलाती है।

पत्थर के उपयोग में चट्ठानों के टुकडे तथा पट्ठी के आकार वाले प्रस्तर खंड भी होते है। जिस क्षेत्र में जिस प्रकार का पत्थर हो, बावड़ी की रंगत भी उसी तरह की होती है। उदयपुर में सफेद संगमरमर के पत्थरों की बनी बावड़ी 'धोली बावड़ी' कहलाती है, और काले पत्थरों की सुभाजा ग्रेनाइट की बावड़ी 'काली बावड़ी' कहलाती है।

कारीगर अपने निमार्ण कार्य में माप करने के लिए 'हस्त' का प्रयोग करते थे। एक हस्तमान 24 अंगुल का होता है, इसे 'विश्वकर्मीय गज' भी कहा जाता है। पत्थरो की कटाई ही नही बावड़ी की सीढीयो का सयोंजन भी इसी गज या हस्तप्रमाण से किया जाता है पत्थरों और पट्यिों के ऊधर्वाधवर संयोजन के लिए "कबीं" विधि या 'जल-स्तर' (पानी तार) का उपयोग किया जाता है।

बावड़ी के स्थापत्य में सौन्दर्य का विशेष ध्यान रखा जाता है। उसकी पवित्रता बनाए रखने के लिए फाट के दोनो और, प्रारम्भिक स्तर पर ही भैरू और गणेश जी की मूर्तियाँ लगाई जाती थी, भैरू जी भय हरने वाला देवता है। और गणेश जी प्रथम पूज्य।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भुवनदेवाचार्य कृत अपराजितपृच्छा, सं. एवं अनु- डॉ. श्रीकृष्ण– 'जूगनू' एवं प्रो. भँवर भाग-1, सुत्र-74, श्लोक 74, 1-8
2. अपराजित भाग-1, सुत्र-74, श्लोक 9-11
3. भुवनदेवाचार्य कृत अपराजितपृच्छा, सं. एवं अनु- डॉ. श्रीकृष्ण– 'जूगनू' एवं प्रो. भँवर भाग-1, सुत्र-74, श्लोक 74, 1-8
4. अपराजित भाग-1, सुत्र-74, श्लोक 9-11
5. विश्वकर्मण विरचित विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम् अध्याय-33, श्लोक 1, सं. डॉ. श्री कृष्ण 'जूगनू' एवं प्रो. बी.एल शर्मा, पृ. सं.-220

6. पूर्वोक्त अध्याय 33, श्लोक 2-3, पृ. सं.-221
7. पूर्वोक्त अध्याय 33, श्लोक 4-5, पृ. सं.-222
8. पूर्वोक्त अध्याय 33, श्लोक 6, पृ. सं.-222
9. पूर्वोक्त अध्याय 33, श्लोक 9, पृ. सं.-222
10. पूर्वोक्त अध्याय 33, श्लोक 9, पृ. सं.-222
11. सोलंकी डॉ. कुसुम पूर्वोक्त, पृ. सं.-42

प्रेस और स्वतंत्रता आन्दोलन

डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह

पी-एच0 डी0 (इतिहास विभाग)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारत में पत्रकारिता का प्रारंभ विलियम बोल्ट्स ने किया था। 1768 के सितम्बर महीने बोल्ट्स ने प्रकाशन और मुद्रण के कार्य में रूचि और जानकारी रखने वालों को समाचारपत्र प्रकाशित करने के लिए आमंत्रित किया था।

भारत में आधुनिक पत्रकारिता को प्रारंभ करने का श्रेय अंग्रेजों को जाता है। मस्तिष्क और आत्मा की स्वाधीनता के नाम पर जेम्स अगस्त हिकी ने 29 जनवरी 1780 को 'बंगाल गजेट एण्ड कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' नाम साप्ताहिक पत्र का प्रारंभ किया। वस्तुतः इसी दिन से भारत में पत्रकारिता का विधिवत प्रारंभ माना गया है। इसे 'हिकीज गजेट' भी कहते है। हिकी ने स्पष्ट किया था–

'यह राजनीतिक और व्यावसायिक पत्र खुला तो सबके लिए है, पर प्रभावित किसी से नहीं है...।'

हिकीज गजेट में ब्रिटिश सरकार की आलोचना होती थी, इसलिए तात्कालीन गवर्नर वारेन हेस्टिंग ने इसे मार्च 1782 से इसे बंद करवा दिया। अपने संक्षिप्त जीवन काल में इस समाचारपत्र ने सरकारी दमन के विरूद्ध जो साहस दिखलाया, वह आनेवाले समय की पत्रकारिता के लिए आदर्श बन गया।

भारत का दूसरा समाचारपत्र पीटर रीड और बी0 मैसिक द्वारा नवम्बर 1780 में 'इण्डिया गजेट' के रूप में प्रकाशित हुआ। इसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता था। मार्च 1784 में सरकारी संरक्षण में फ्रांसिस ग्लाडविन ने कलकत्ता गजेट नामक अखवार का प्रकाशन किया।

अप्रैल 1785 में 'ओरियण्टल मैगजीन' नामक मासिक पत्रिका का और फरवरी 1785 में साप्ताहिक पत्र 'बंगाल जनरल' का प्रकाशन हुआ। ये दोनों कलकत्ता से प्रकाशित होते थे। अक्टुबर 1785 में 'मद्रास कोरियर' नामक पत्र, मद्रास से प्रारंभ हुआ।

फरवरी 1786 में 'कलकत्ता क्रोनिकल', कलकत्ता से और 1789 में मुंबई से 'बम्बई हेराल्ड' और 'बम्बई कोरियर' का प्रकाशन हुआ। 1791 में मुंबई से बम्बई गजेट प्रकाशित हुआ।

अंग्रजी भाषा के इन पत्रों के प्रकाशक और संपादक अंग्रेज थे। लगभग 98-99 फीसदी पाठक भी अंग्रेज ही थे। लेकिन अंग्रेजों के पत्रकारिता के क्षेत्र में किए गए इन प्रकाशनों के जरिए 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत समाचारपत्रों के प्रकाशन की एक सुव्यवस्थित परंपरा स्थापित हो गई थी। अंग्रेजी भाषा के ये पत्र, हिन्दी एवं अन्य भरतीय भाषाओं के पत्रों के प्रकाशन के लिए प्रेरणा बने।

प्रकारांतर, से ये सारे पत्र परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की गति को प्रभावित करते रहे।

शब्द कुंजीः मिशन, जागरण, सेंसर, गतिरोध, लाईसेंस, कार्य गोपनीय प्रविष्टीकरण।

परिचर्चा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का यदि सही ढंग से आकलन किया जाय तो स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि तैयार करने में पत्रों एवं पत्रकारों की भूमिका सर्वोपरि रही है। स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए राजनेताओं को जितना संघर्ष करना पड़ा, उससे तनिक भी कम संघर्ष पत्रों एवं पत्रकारों को नहीं करना पड़ा।

उन दिनों पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक को न तो किसी का सम्बल था और न संरक्षण। संसाधनों का अभाव साथ ही अभिव्यक्ति स्वातंत्रय की न तो संविधान सम्मत अवधारणा। बावजूद पत्रकारिता व्यवसाय नहीं मिशन के रूप में अपनाई गई। लक्ष्य सिर्फ एक था, देश को दासता की जंजीरों से मुक्त करना। लेखनी के माध्यम से जन जागरण का उत्कृष्ट उद्घोष करना। ब्रिटिश नौकरशाही को जड़ मूल से उखाड़-फेकने का संकल्प और पुरस्कार में कारावास भोगने के अतिरिक्त नृशंस यातनाएँ सहने को तत्पर रहना।[1]

इस संदर्भ में सबसे पहले पत्र एवं पत्राकारों पर होनेवाले नृशंस अत्याचारों से अवगत कराना आवश्यक है क्योंकि पत्रकारिता की कठिनाइयों को समझ लेने के बाद आप खुद सोचने को विवश हो जायेंगे कि कितने जीवट के होते थे पत्रकार जो आग से खेलते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ते जाते थे। वे समस्यायें झेलते नहीं, वरन् समस्याओं से जूझते थे।[2]

न तो नियमित प्रेस था और न प्रकाशन। जो भी प्रेस था, मुद्रण के लिए उनके समक्ष हाथ-पाँव जोड़कर चिरौरी करना नियति थी।

प्रिंटिग प्रेस की असुविधा के बावजूद देश भक्त सोये नहीं थे। सन् 1757 में प्लासी और बक्सर की लड़ाई के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा लूट-खसोट, असह्य अत्याचार का पर्दाफास करने और जनमत जाग्रत करने के लिए एक अंग्रेज विलियम बोल्ट्स ने सन् 1766 में पहला दीवाल समाचारपत्र; वाल न्यूज पेपर शुरू किया। कोई भी व्यक्ति इस दीवाल समाचारपत्र के लिए खबर दे सकता था, केवल शर्त थी कि खबर सच्ची होनी चाहिए। कम्पनी अधिकारियों को 'बोल्ट्स' का यह प्रयोग असह्य लगा और 'बोल्ट्स' को इंग्लैंड निर्वासित कर दिया। कल्पना की चीज है कि जिस ब्रिटिश नौकरशाह को "वालन्यूज" सह्य नहीं हुआ, वह न्यूजपेपर या मैगजीन को कितना कबूल करेगा, चिंतनीय प्रश्न है।

इसलिए सन् 1799 में लार्ड वेलसली ने प्रेस सम्बन्धी प्रथम कानून बनाया कि पत्र प्रकाशन के पूर्व समाचारों को सेंसर करना अनिवार्य है तथा अन्य शर्तें लागू की गई –

(क) पत्र के अन्त में मुद्रक का नाम एवं पता स्पष्ट रूप से छापा जाय,

(ख) पत्र के मालिक एवं सम्पादक का नाम-पता एवं आवास का पूर्ण विवरण सरकारी सेक्रेटरी को दिया जाय,

(ग) सेक्रेटरी के देखे बिना कोई पाठ्य सामग्री छापी नहीं जाए एवं

(घ) प्रकाशन को रविार को बंद रखा जाय।

18वीं शताब्दी में बाम्बे हेराल्ड, बाम्बे केरियर, बंगाल हरकारु, कलकत्ता केरियर, मार्निंग पोस्ट, ओरियंट स्टार, इंडिया गजट, एसियाटिक मिरर आदि पत्र सामने आये। पत्र-पत्रिकाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और अंग्रेजों की दमनात्मक कार्रवाइयों में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती गई।[3]

ब्रिटिश सरकार शक्ति की बारूद और प्रेस एक्ट की तोप से किसी भी पत्र-पत्रिका की हत्या के लिए कटिबद्ध थी।

क्रूरता, अन्याय, क्षोभ, विरोध, क्लेश, संत्रास एवं गतिरोध पत्रकारों की दिनचर्या थी। फिर भी वे अटल थे, अडिग थे और मृत्यु वरण करने को सहर्ष तैयार थे। उनका लक्ष्य था येन-केन प्रकारेण गुलामी की जंजीरे तोड़ स्वतंत्रा भारत में स्वतंत्र पीढ़ियाँ पैदा करना। उनका उद्देश्य था, सभी अवरोधें, प्रतिरोधें एवं बाधक विचारों का खंडन कर देशभक्ति का उष्ण रक्त पीढ़ियों की रगों में अविराम संचारित करना।

सन् 1818 में लार्ड हेस्टिंग्स ने प्रेस नियमों में छूट दी। लार्ड बेलसली के शर्तों में कुछ ढील दी गई, जिसके अन्तर्गत प्रकाशन के पूर्व सेंसर की प्रथा समाप्त करते हुए रविवार को प्रकाशन प्रतिबंध समाप्त करते हुए, निम्न आदेश जारी किये गए –

क. सरकारी आचरण पर आक्षेप लगाने वाला समाचार नहीं छापा जाए।

ख. भारतवासियों के मन में शंका उत्पन्न करनेवाला समाचार नहीं छापा जाए।

ग. धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जाए।

घ. ब्रिटिश सरकार की प्रतिष्ठा पर आँच आनेवाला समाचार नहीं छापा जाए।

ङ. व्यक्तिगत दुराचार विषयक कोई चर्चा पत्रों में नहीं की जाए।

इन तमाम शर्तों के बावजूद हेस्टिंग्स का रवैया उदारवादी होने के कारण भारतीय भाषाओं में पत्र प्रकाशित होने लगे। इनमें प्रमुख थे –

1. कलकत्ता जर्नल सन् 1818
2. बंगाल गजट; 1818
3. बांग्ला मासिक-दिग्दर्शक; 1818
4. समाचार दर्पण; 1818
5. फ्रेन्ड्स ऑफ इंडिया; 1819
6. राजाराम मोहन राय द्वारा बांग्ला-संवाद कौमुदी; 1821
7. बह्ग निकल मैगजीन; 1822 भी प्रकाशित हुआ। इनमें कलकत्ता जर्नल और "संवाद कौमुदी" काफी उग्र थे।

हेस्टिंग्स के अवकाश ग्रहण के बाद 'जॉन आडम' नये गवर्नर जनरल हुए। उन्होंने 04.04.1823 को प्रेस सम्बन्धी नये कानूनों द्वारा पुन: प्रतिबंध लगा दिया –

(क) कोई व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह सरकारी स्वीकृति के बिना फोर्ट विलियम के आबादी वाले क्षेत्रों में कोई समाचारपत्र, पत्रिका, विज्ञप्ति अथवा पुस्तक किसी भाषा में प्रकाशित नहीं करेगा, जिस पर सरकारी नीति एवं कार्य प्रगति पर टीका-टिप्पणी हो।

(ख) लाईसेंस प्राप्ति के लिए जो आवेदन पत्र दिया जाए, उसके साथ शपथ पत्र भी दिया जाए, जिसमें पत्र-पत्रिका, पुस्तक, मुद्रण, प्रकाशक एवं प्रेस मालिक का पूर्ण विवरण भी दिया जाय, जहाँ से प्रकाशन होगा।

(ग) बिना लाईसेंस प्राप्त किए, पत्र प्रकाशित किये जाने पर प्रकाशक को चार सौ रुपये जुर्माना अथवा चार महीने कैद की सजा दी जायगी।

(घ) छापाखाने के लिए भी लाईसेंस अनिवार्य बनाया गया। बिना लाईसेंस के छापाखाने को जब्त कर मालिक को छ: माह का कारावास एवं एक सौ रुपया जुर्माना होगा।

(ङ) जिस पत्र का प्रकाशन रोका गया है, उसके वितरक को भी एक हजार रुपया जुर्माना तथा दो माह का कारावास का दंड होगा।

इन प्रतिबंधें का पूरे देश में विरोध हुआ। लोग विरोध में कलकत्ता; कोलकाता, सुप्रीम कोर्ट और किंग-इन-काउंसिल भी गये। जब सफलता नहीं मिली, 'मिरात उल अखबार' एवं 'कलकत्ता जर्नल' बन्द हो गया।

लेकिन लोगों के जेहन में उर्दू के महाकवि अकबर की पंक्ति बैठ गयी थी –

खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो,
जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो।[4]

16 फरवरी सन् 1826 को हिन्दी का पहला समाचारपत्र उर्दत मार्तंड, श्री युगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में निकला। इसमें मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धक बातें छपती थी।

सन् 1828 में विलियम बेंटिक गवर्नर जनरल हुए। उन्होंने कानून हटाया तो नहीं, कार्यान्वयन में थोड़ी उदारता बरती।

सन् 1835 में सर चार्ल्स मेटकाफ ने अपने कार्यकाल में अधिक उदारता बरती और अंततः 03.08.1835 में इसे समाप्त कर दिया, किन्तु नियंत्रण रखने के लिए कुछ नियम बनाये गये। इस उदार नीति के कारण पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई–

1. कलकत्ता; कोलकाता में 26 यूरोपियन पत्र, जिनमें 9 भारतीय 9 दैनिक
2. बम्बई; मुंबई में 10 यूरोपियन पत्र तथा 4 भारतीय
3. मद्रास; चेन्नई 9 यूरोपियन पत्र।

सन् 1839 में "सैयदुल अखबाराय" पत्र दिल्ली से निकाला जो काफी लोकप्रिय हुआ। पत्र-पत्रिकाओं ने ब्रिटिश नौकरशाही की नींद हराम कर दी।

लार्ड केनिंग का प्रेस कानून

लार्ड केनिंग ने इस सुलगती आग की उष्णता की गहराई महसूस कर भारतीय पत्रों पर प्रेस सम्बन्धी नये कानून बनाकर पत्र, पत्रकार और सम्पादक पर यातनाओं का सिलसिला जारी किया।[5]

दिनांक 13-06-1857 को लार्ड केनिंग के द्वारा निम्न प्रेस सम्बन्धी कानून लागू किया गया –

1. **इंडियन पैनल कोड में संशोधनः** लार्ड मेकाले द्वारा 1836 में जो धारा 110 लगाई गई थी, उसे 1860 में समाप्त कर दिया गया।
2. **रेगुलेशन ऑफ प्रिंटिंग प्रेस एण्ड न्यूजपेपर्स एक्टः** इस अधिनियम के अनुसार समाचार पत्रों एव पुस्तकों के प्रकाशन की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई। इंडियन पेनल कोड में एक नई धारा जोड़कर आपत्तिजनक लेखों के लेखकों को दंडित करने का प्रावधान कर दिया गया। इन प्रावधानों का विरोध करने वाले प्रमुख पत्रों में "स्टेट्समैन", "पायोनियर", "अमृत बाजार पत्रिका" तथा "टाइम्स आफ इंडिया" प्रमुख थे।
3. **गैगिंग प्रेस एक्ट आफ 1878ः** स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम 1857 के बाद पत्राकारों के बीच नवजागरण उत्पन्न हुआ, जो मूलतः भारतेन्दु युग का प्रथम चरण बना। इनके नेतृत्व में पत्रकार "स्व" से निकलकर देश हित में अग्रसर हुए। इस युग के प्रमुख पत्रों में "बिहार बन्धु", "कवि वचन सुधा", "हरिश्चन्द्र मैग्जिन", "ब्राह्मण", "भारत मित्र'' एवं "उचित वक्ता'' आदि अग्रणी रहे।
4. **बर्नाकूलर प्रेस एक्ट, 1878ः** भारतेन्दु युग से प्रस्फुटित उत्साह देखकर अंग्रेज घबड़ा उठे एवं इस कानून द्वारा देशी भाषा के पत्रों के सम्पादकों, प्रकाशकों एवं मुद्रकों के लिए एक शर्त अनिवार्य कर दी गई कि वे कोई प्रकाशन नहीं करें जिससे घृणा एवं द्रोह उत्पन्न हो। अंग्रेजी पत्रों को मुक्त रखा गया, किन्तु 1880 में लार्ड रिपन के आने पर बर्नाकूलर एक्ट 07-09-1881 में रद्द कर दिया गया। उसकी उदार एवं सुधार नीतियों के कारण सर्वत्र उल्लासपूर्ण वातावरण फैल गया। सन् 1885 में इंडियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना हुई।
5. **आफिसियल सिक्रेट्स एक्ट आफॅफ 1889ः** लार्ड रिपन की उदारता अंग्रेजों के लिए असहय हो उठी। अतः अंग्रेजी पत्रों ने सरकार को "कार्यालय गोपनीय प्रविष्टीकरण" को 17-10-1889 से लागू करने के लिए बाध्य कर दिया। उसके द्वारा किसी योजना का प्रकाशन कानूनी अपराध घोषित कर दिया गया। वस्तुतः इसका अर्थ राष्ट्रीय जागरण से सम्बन्धि त था।
6. **राजद्रोह अधिनियम, 1898ः** लार्ड कर्जन के 1898 में कार्य भार ग्रहण करते ही भारतीय समाचरपत्रों पर नियंत्रण करना पुनः प्रारम्भ कर दिया गया। अबतक लखनऊ से "हिन्दुस्तानी", "अवधा बिहार", विद्या बिनोद", "एडवोकेट", मेरठ से "शाहना-ए-हिन्दी", "अवनीश-ए-हिन्द", इटावा से "आल वसीर", बरेली से "यूनियन'' तथा इलाहाबाद से "अभ्युदय'' आदि पत्र राष्ट्र स्तर पर शंखनाद कर रहे थे।

7. **प्रेस एक्ट, 1910:** 20वीं शती के प्रारम्भ होते ही विभिन्न घटनाओं ने राष्ट्रीय स्तर पर झंझावात उत्पन्न कर दिया, जिसमें 1905 का बंगाल का विभाजन भी प्रमुख था। सुधार के बहाने सरकार ने विभिन्न समितियों का गठन किया, किन्तु 1910 में यह अधिनियम पारित हो गया। इसके बाद अंततः 1922 में यह कानून रद्द कर दिया गया।
8. **प्रेस एंड अनअथराइज्ड न्यूजपेपर्स आर्डिनान्स, 1930:** इरविन ने देश व्यापी आन्दोलन को देखकर इस अध्यादेश को मई-जून से लागू कर दिया। जमानत की राशि 500 से बढ़ाकर हैन्डबिल एवं पर्चों पर भी प्रतिबंध लगा दिया।
9. **प्रेस बिल, 1931:** पूरा देश एवं राजनेता "राउन्ड टेबुल कांफ्रेंस" में व्यस्त थे और सरकार ने इसी बीच अध्यादेश को कानून के रूप में पेश कर इसे पारित करा लिया। इसके अन्तर्गत समाचार एवं पत्रों के शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणियों को बदलने का भी अधिकार सुरक्षित रख लिया।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आंदोलन के क्रम में हिन्दी पत्रकारिता एक मिशन थी। इसका लक्ष्य, राष्ट्रीय अस्मिता, एकता, अखंडता, स्वतंत्रता एवं स्वत्तव की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए भारतीय जनमानस को प्रेरित करना था। उस अवधि में अधिकांश पत्रकार, स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े हुए थे।

जनमत संरचना और जन शिक्षण की दिशा में पत्रकारों ने जिस निष्ठा से आजादी की लड़ाई के दौरान कार्य किया था, वह निष्ठा भाव या कहें मिशन स्वतंत्र भारत में गायब हो गया। पूरी निष्ठा से स्वराज प्राप्ति का जतन करने वाली हिन्दी पत्रकारिता, आजादी मिलने के बाद, सुराज प्राप्ति के मार्ग से भटक गई। मिशन पर व्यावसायिकता हावी हो गई। अखवारों पर संपादको का कब्जा हो गया, जो कि पूंजीपति या व्यवसायी होते है, जिसकी वजह से पत्र प्रकाशन लाभ-हानि से जुड़ गया।

संदर्भ

1. स्वतंत्रता संग्राम में पत्र पत्रिकाओं का योगदान, लेखिका डॉ. भारती कुमारी सिंह, पृ. 1.
2. वही, पृ. 2.
3. वही, पृ. 3.
4. वही, पृ. 3.
5. वही, पृ. 5.
6. तिवारी, डॉ. अर्जुन : हिन्दी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. भानावत, डॉ. संजीव : पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम।
8. नटराजन, जे0 : हिस्ट्री ऑफ इंडियन जर्नलिज्म
9. वैदिक, डॉ. वेद प्रताप : पत्रकारिता के विविध आयाम।

'मृदा प्रदूषण के प्रभाव एवं संरक्षण का भौगोलिक अध्ययन'

महेश चन्द मीना

सह आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

शोध सारांश

मृदा प्रदूषण तब होता है जब मानव मिट्टी में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानिकारक पदार्थों, रसायनों, या वस्तुओं का उपयोग करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अन्य जीवित चीजों का नुकसान होता है या मिट्टी या जल पारिस्थितिकी प्रणालियों को नष्ट कर देता है।

मिट्टी के प्रदूषकों में विभिन्न रसायनों (कार्बनिक और अकार्बनिक) की एक विशाल विविधता शामिल होती है जो मिट्टी में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है और मनुष्यों द्वारा उत्पादित होती है। दोनों ही मामलों में, मानव गतिविधियाँ मृदा प्रदूषण का मुख्य कारण रही हैं (जैसे - स्वास्थ्य संबंधी जोखिम के स्तर पर उन रसायनों का संचय जो मानवीय गतिविधियों जैसे कि आकस्मिक रिसाव और प्रकीर्णन, निक्षेपण, निर्माण प्रक्रिया आदि) के कारण होता है।। प्राख्रतिक प्रक्रियाओं के कारण कटाई भी संभव है। मृदा प्रदूषण के विभिन्न कारकों का विवरण निम्नलिखित है।

इन कारणों में, शहरी क्षेत्रों में मिट्टी के प्रदूषण के लिए निर्माण स्थल (उनके लगभग सर्वव्यापी प्रख्रति के कारण) महत्वपूर्ण कारक हैं। सामान्य तौर पर, निर्माण स्थलों पर रखा गया कोई भी रसायन मिट्टी को प्रदूषित कर सकता है। हालांकि, रसायनों से अधिक जोखिम होता है जो आसानी से हवा (सूक्ष्म कणिकाओं के रूप में) के माध्यम से आगे बढ़ सकते हैं और जो पीएएच जैसे जीवित जीवों में गिरावट और बायोकैकुम्यूलेशन के प्रतिरोधी हैं। इसके अलावा, निर्माण स्थल की धूल आसानी से हवा से चारों ओर फैल सकती है और सूक्ष्म कणों (10 माइक्रोन से कम) के कारण खतरनाक है। इस प्रकार के निर्माण से धूल से संबंधित रोग, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस और यहां तक कि कैंसर भी हो सकता है।

मुख्य शब्द : मृदा प्रदूषण, अत्यधिक कीटनाशकों का उपयोग, रासायनिक उर्वरक, औद्योगिक प्रभाव, मृदा अपरदन, मृदा प्रदूषण और इसके प्रभाव, मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव, पौधों की वृद्धि पर प्रभाव, मृदा संरक्षण के उपाय।

उद्देश्य :

1. मृदा प्रदूषण का अध्ययन करना।
2. मृदा प्रदूषण के कारकों का अध्ययन किया गया।
3. मृदा प्रदूषण संरक्षण के उपाय सुझाए गए हैं।

परिकल्पना

1. मानव गतिविधियों के कारण मिट्टी की गिरावट की समस्याएं लगातार बढ़ रही हैं।
2. वर्तमान में मृदा प्रदूषण संरक्षण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

आँकड़ो का संग्रह

प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक और माध्यमिक डेटा का उपयोग करता है। डेटा को पर्यावरण विभाग, व्यक्तिगत सर्वेक्षण, साक्षात्कार, कार्यक्रम, डायरी, पत्र, समाचार पत्र और विभिन्न वेबसाइटों और पुस्तकों के माध्यम से संकलित किया गया है। इस अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक है।

मृदा प्रदूषण

पृथ्वी की सतह के सबसे ऊपरी भाग को मिट्टी कहा जाता है। जल और गर्मी जैसे जैविक कारकों और पौधों और सूक्ष्म जीवों जैसे जैविक घटकों द्वारा पृथ्वी की सतह पर मिट्टी का निर्माण होता है। इसलिए यह फसलों की पैदावार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यदि मिट्टी में ऐसा कोई पदार्थ पाया जाता है या मिट्टी के घटक से कोई पदार्थ निकलता है, यदि मिट्टी की उपजाऊ क्षमता, गुणवत्ता और भूजल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो हम इसे मिट्टी का प्रदूषण कहेंगे। यह निम्नलिखित कारणों से हो सकता है।

(A) अत्यधिक कीटनाशकों का उपयोग : अधिक पैदावार के लालच में किसान फसलों पर कई तरह के कीटनाशक, फफूंदनाशक, कृन्तक और खरपतवार का इस्तेमाल करते हैं। उपरोक्त सभी प्रकार के रसायन इन विभिन्न प्रकारों में जैव रासायनिक होते हैं–

(i) ऑर्गेनोक्लोरिन या क्लोरीनयुक्त हाइड्रोकार्बन हैं। (डीडीटी, बीएचसी, एल्ड्रिन आदि) जो विघटित नहीं होते हैं और स्थायी रूप से भूमि का हिस्सा बन जाते हैं।

खाद्य श्रृंखला के माध्यम से उनकी मात्रा बढ़ जाती है, इसका उच्च स्तर के उपभोक्ता जानवरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इसलिए उनका उपयोग हानिकारक है।

(ii) ऑर्गोपेसिसाइड्स जो विघटित हो जाते हैं, लेकिन खेतों में डालने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। Millathione] parathyone और carbamates इस श्रेणी में आते हैं।

(iii) अकार्बनिक कीटनाशक- ये मुख्य रूप से आर्सेनिक और सल्फर का उपयोग करते हैं जो हानिकारक हैं।

(iv) वेकसाइड- ये रसायन मिट्टी में स्थायी रूप से बने रहते हैं और हानिकारक होते हैं।

(B) रासायनिक उर्वरक : इनका अत्यधिक उपयोग भूमि में प्राख्रतिक रूप से मौजूद रोगाणुओं को कम करके भूमि की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। ये धीरे-धीरे भूमि द्वारा अवशोषित हो जाते हैं, जो अंतत: भूजल को जहर देते हैं। खाद में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के लवण खाद्य फसलों में नुकसान पहुंचाते हैं। उदाहरण के लिए, जब पत्तियां, फल और पानी अत्यधिक नाइट्रेट हो जाते हैं, तो वे जानवरों के भोजन नली में नाइट्राइट में बदलकर रक्त में प्रवेश करते हैं। रक्त में नाइट्राइट हीमोग्लोबिन के साथ जुड़ते हैं और इसे ऐसे पदार्थों में परिवर्तित करते हैं जो हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता को कम करते हैं। यह स्थिति बच्चों के लिए बहुत खतरनाक है।

(C) औद्योगिक प्रभाव: इन अपशिष्टों में कई विषैले पदार्थ होते हैं जैसे साइनाइड, क्रोमेट्स, एसिड, क्षार और पारा, तांबा, जस्ता, सीसा या कैडमियम, आदि जैसे धातु, जो मिट्टी के साथ मिलकर इसे प्रदूषित करते हैं।

(D) पर्यावरण में भूमिगत खदानों से लगातार धूल के कण निकलते हैं जो कई तरह से वनस्पति और उनके आसपास के जानवरों के लिए हानिकारक होते हैं।

(E) भूमि में लवण जमा करना: भूमि में जमा किया जाने वाला नमकविभिन्न कारणों से जमीन की सतह पर लवण जमा हो जाते हैं और ऊपरी सतह सफेद-सफेद दिखाई देने लगती है जिसके कारण भूमि कम उपजाऊ या लगभग बंजर हो जाती है। भूमि की लवणता निम्नलिखित कारणों से हो सकती है-

(i) आसपास की चट्टानों के कटाव से,

(ii) जल निकासी की उचित व्यवस्था न होने के कारण,

(iii) भूजल के बढ़ने के साथ,

(iv) भूमिगत और नहर के पानी में प्रचुर मात्रा में लवणों की उपस्थिति,

(v) रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग।

मृदा अपरदन

अच्छी उपजाऊ भूमि को कम उपजाऊ में बदलने वाले कारकों में मिट्टी का क्षरण बहुत महत्वपूर्ण है। मिट्टी का क्षरण बड़ी चट्टानों के टूटने, वर्षा के पानी (बाढ़ के कारण) के कारण होता है, रेगिस्तान में तेज हवाओं के प्रवाह से, बाढ़ के दौरान नदी के किनारे टूटने से आदि।

मृदा अपरदन के कारण

मृदा अपरदन या मृदा अपरदन / मृदा अपरदन: मृदा अपरदन एक प्राख्रतिक प्रक्रिया है जो अक्सर जल प्रवाह और पवन अपवाह के कारण होती है, यह कृषि, निर्माण कार्य, पशुओं द्वारा अत्यधिक चरने, घास की परतों के कारण मानव गतिविधियाँ बहुत तेजी से फैलती है। वनों को जलाना और काटना।

आज जल और मिट्टी दोनों को एकीकृत उपचार विधियों के माध्यम से संरक्षित किया जा रहा है। इनमें से, दो प्रकार के उपचार आमतौर पर कुछ सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले तरीकों में से एक हैं।

ख फील्ड उपचार में पूरे भूमि क्षेत्र का उपचार शामिल होता है।

ख ड्रेनेज प्रबंधन में प्राख्रतिक जल चैनलों (नालियों) का उपचार शामिल है।

उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग: यह मिट्टी को भंगुर और मिट्टी को कटाव / कटाव के लिए अतिसंवेदनशील बनाता है।

अत्यधिक लवण और पानी: अत्यधिक सिंचाई से जल जमाव होता है जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी का लवण होता है।

मृदा प्रदूषण और इसके प्रभाव

मृदा प्रदूषण हम सभी के साथ-साथ पौधों और जानवरों को भी प्रभावित कर सकता है। हालांकि, बच्चे आमतौर पर अतिसंवेदनशील / नरम होते हैं। इसका कारण यह है कि बच्चे विभिन्न प्रदूषकों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं और वे मैदान में नियमित रूप से खेलने के कारण मिट्टी के निकट संपर्क में आ सकते हैं। इसलिए, वयस्कों की तुलना में बच्चों के लिए मृदा प्रदूषण हमेशा अधिक जोखिम भरा होता है कोई भी मृदा प्रदूषण से प्रभावित हो सकता है, मृदा प्रदूषण का प्रभाव आयु, सामान्य स्वास्थ्य की स्थिति, और अन्य कारणों पर भी आधारित हो सकता है।

1. मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव : मृदा प्रदूषण लोगों को बीमार बनाने का एक प्रमुख कारण है, इस पर विचार करते हुए हमें खुद को बहुत सतर्क रखना होगा। प्रदूषित मिट्टी में उत्पन्न फसलें और पौधे अधिक प्रदूषण को अवशोषित करते हैं और फिर इसे मानव जाति में स्थानांतरित करते हैं। नतीजतन, छोटे और गंभीर रोगों में अचानक वृद्धि हो सकती है।

ऐसी मिट्टी के लिए लंबे समय तक संपर्क मानव शरीर की आनुवंशिक संरचना को प्रभावित कर सकता है, जिसके परिणामस्वरूप जन्मजात बीमारियां और दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं जो आसानी से ठीक नहीं होती हैं। वास्तव में, यह पशुधन को काफी हद तक बीमार कर सकता है और लंबे समय तक भोजन विषाक्तता का कारण बन सकता है। यदि पौधे इस मिट्टी में विकसित नहीं हो सकते हैं, तो मिट्टी के प्रदूषण के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर अकाल हो सकता है।

2. पौधों की वृद्धि पर प्रभाव : मिट्टी के व्यापक प्रदूषण के कारण किसी भी प्रणाली का पारिस्थितिक संतुलन प्रभावित होता है। अधिकांश मिट्टी के पौधे अनुकूल नहीं होते हैं जब मिट्टी रसायन समय की एक छोटी अवधि में मौलिक रूप से बदल

जाता है। फफूंदी और जीवाणु मिट्टी में पाए जाते हैं जो इसे अपरदन से पहले एक साथ बांध देते हैं, जिससे मिट्टी के कटाव की एक और समस्या पैदा हो जाती है।

जैसे-जैसे मिट्टी की उत्पादकता धीरे-धीरे कम होती जाती है, भूमि ख़्रषि के लिए अयोग्य हो जाती है, और एक स्थानीय पौधे का विकास शुरू हो जाता है। मृदा प्रदूषण के कारण भूमि का एक बड़ा मार्ग स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। अवांछनीय रेगिस्तान जो अपने मूल वनस्पतियों के विकास के लिए उपयुक्त हैं, इस प्रकार की भूमि जीवन के अधिकांश रूपों का समर्थन नहीं कर सकती है।

3. मिट्टी की उर्वरता में कमी : मिट्टी में मौजूद जहरीले रसायन मिट्टी की उर्वरता / उत्पादकता को कम कर सकते हैं और इसलिए मिट्टी की उपज भी घट सकती है। दूषित मिट्टी का उपयोग फलों और सब्जियों के उत्पादन के लिए किया जाता है, जो पोषक तत्वों की कमी हो सकती है और इसमें कुछ विषाक्त पदार्थ होते हैं, जिससे इसका सेवन करने वाले लोगों के लिए गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं।

4. विषाक्त धूल : लैंडफिल से निकलने वाली विषाक्त और अशुद्ध / बदबूदार गैसें पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं और कुछ लोगों के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालती हैं। अप्रिय गंध से लोगों को असुविधा होती है।

5. मृदा संरचना में परिवर्तन : कई मिट्टी के जीवों (जैसे केंचुए) की मृत्यु के परिणामस्वरूप मिट्टी की संरचना बदल सकती है। इसके अलावा, यह अन्य शिकारियों को भोजन की तलाश में अन्य स्थानों पर जाने के लिए भी मजबूर कर सकता है।

मृदा प्रदूषण को नियंत्रित करने और रोकने के उपाय

मृदा प्रदूषण को रोकने में मनुष्य की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, उनमें से मुख्य हैं-

(A) कीटनाशकों का न्यूनतम उपयोग कीटनाशक का न्यूनतम उपयोग: आजकल ऐसी फसलें विकसित की जा रही हैं या की जा रही हैं जो रोग प्रतिरोधी हैं। इसलिए, उन्हें कीटनाशक, कवकनाशी आदि का उपयोग नहीं करना पड़ता है।

(B) अधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से बचना और अधिक जैविक खादों (गोबर की खाद) का उपयोग करना ताकि उर्वरता बरकरार रहे।

(C) छोटे बाँधों और छोटी नहरों के निर्माण से भूमि की लवणता कुछ हद तक कम हो सकती है। बड़े जलाशय बड़े बांधों द्वारा बनाए जाते हैं। बड़ी मात्रा में जल संग्रहण और बड़ी नहरों के निर्माण के कारण, आसपास के भूमि में अत्यधिक लवण जमा हो जाता है और जल जमाव भी होता है।

(D) मृदा अपरदन के कारणों को जानने के बाद, उन्हें रोकने के लिए कुछ सिद्धांत है, जो इस प्रकार है-

(i) वर्षा जल के प्रभाव से भूमि की रक्षा करने के लिए,

(ii) बहुत संकरे रास्ते से पानी के बहाव को रोकने और इसकी गति को कम करने के लिए,

(iii) भूजल की मात्रा बढ़ाने के प्रयास,

(iv) जमीन के कणों के आकार को बढ़ाने के उपाय करना;

(v) मैदानी इलाकों में पेड़-पौधे लगाकर हवा की गति कम करना

(vi) ऐसी वनस्पति को जगह-जगह बाँधने के रूप में उगाएँ जो बहती मिट्टी (मिट्टी) के कणों को पकड़ और रोक सकें।

मिट्टी संरक्षण के उपाय

उपरोक्त लिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, मृदा-संरक्षण उपायों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) जैविक विधियाँ विभिन्न प्रकार की ख़्रषि प्रणालियों का उपयोग करती हैं। उदाहरण के लिए, समोच्च खेती, मल्चिंग या शहतूत, फसल रोटेशन, सूखी खेती आदि विभिन्न ख़्रषि प्रणालियाँ हैं।

(ii) यांत्रिक विधियाँ: ख़ृषि योग्य भूमि और समोच्च छतों में जल संग्रहण के लिए भवन निर्माण करने से भी भूमि संरक्षण हो सकता है।

(iii) अन्य विधियों में पेड़ लगाना, नालियाँ लगाना, रेगिस्तान में पेड़ लगाना विशेष रूप से एक कोण पर (जिससे तूफान की गति कम हो जाती है), मिट्टी के प्रदूषण को रोकने के तरीके आदि, जो मिट्टी के संरक्षण में फायदेमंद हो सकते हैं।

पर्यावरण को स्वच्छ रखने में मनुष्य की भूमिका

यदि हम पर्यावरण को प्रदूषित करने के लिए मानव गतिविधियों को जिम्मेदार मानते हैं, तो प्रख़ृति को प्रदूषित पर्यावरण के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए, प्रख़ृति संरक्षण के उपाय भी मानव को करने होंगे। इसके लिए, जल, वायु और मृदा प्रदूषण के कारण और प्रभाव के साथ, उनके नियंत्रण और रोकथाम के उपायों पर भी पिछले पृष्ठों में चर्चा की गई है। इसी प्रकार, वन और प्रख़ृति संरक्षण के प्रबंधन के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों को भी अध्याय -3 में विस्तार से दिया गया है। इन सभी प्रयासों में, प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की जिम्मेदारी के अलावा, उसे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे प्रयासों में आवश्यक मदद भी देनी चाहिए।

निष्कर्ष

वर्तमान में, प्रदूषण की गति को जांचने के लिए कई तरीके सुझाए गए हैं। पर्यावरण को स्वच्छ बनाने के लिए ऐसे प्रयासों में समय और संसाधनों की प्रचुर आवश्यकता है। उद्योगों को खतरनाक कचरे के निपटान के लिए निर्देश दिए गए हैं, जिसका उद्देश्य प्रदूषित क्षेत्रों को कम करना है। खेती के जैविक तरीकों का समर्थन किया जा रहा है, जिसमें रसायनों से भरे कीटनाशकों और उर्वरकों का उपयोग नहीं किया जाता है। ऐसे पौधों के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है जो मिट्टी से प्रदूषकों को निकाल सकते हैं। हालांकि, लक्ष्य बहुत आगे है, और मृदा प्रदूषण रोकथाम में कई साल लगेंगे।

संदर्भ पुस्तक सूची

1. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. दया शंकर त्रिपाठी।
2. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. रतन जोशी, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा।
3. पर्यावरण प्रदूषण और हमारा संक्षिप्त परिचय है, प्रतिभा सिंह।
4. पर्यावरण प्रदूषण डॉ. रवींद्र कुमार का एक अध्ययन
5. पर्यावरण भूगोल, डॉ. एचएम सक्सेना, पूजा सक्सेना, रावत प्रकाशन, जयपुर।
6. पर्यावरण प्रदूषण और प्रबंधन, श्रीशरण, कू अशोक प्रधान।
7. पर्यावरण और मानव जीवन, डॉ. सुमन गुप्ता, लोकप्रिय विज्ञान श्रृंखला।
8. पर्यावरण भूगोल, प्रो सविंदर सिंह, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

शोध क्षेत्र में कम्प्युटर का महत्त्व एवं प्रयोग

दिलीपभाई जयसिंग वसावा

एम.ए., एम.एड्., एम.फिल. जीसेट (एज्युकेशन), नेट (हिन्दी), पी.एच.डी (रनिग)
कार्यक्रारी प्राचार्य, श्रीमती बी.सी.जे. कोलेज ऑफ एज्युकेशन- एम.एड्., खम्भात

वर्तमान युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। हमारा जीवन इलेवट्रॉनिक वस्तुओं के बिना अधूरा-सा है। आज हमारा जीवन जिस प्रकार TV का एक भाग बन गया है या यों कहैं कि टी.वी. हमारे जीवन का एक अंग बन गया है उसी प्रकार कम्प्यूटर भी एक अभिन्न अंग बन गया है। सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है जहाँ कम्प्यूटर की उपयोगिता न हो। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र कम्प्यूटर से जुड़ क्या है। शोध कार्यो में तो ड्सकौ उपयोगिता मील का पत्थर साबित हो रही है। यदि यह कहा जाए कि आज का युग कम्प्यूटर का युग है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसलिए शोध से जुडे सभी व्यक्तियों को इसका प्रयोग करना चाहिए।

प्रारम्भ में कम्प्यूटर का प्रयोग गणनात्मक कार्यों के लिए किया जाता था, लेकिन इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है इसलिए अब कम्प्यूटर की सूचना या तथ्यों के आधार पर संसाधन चाला उपकरण कहा जाता है। यही कारण है कि कम्प्यूटर को भण्डार गृह कहा जाता है। कक्यूटर मान के लिए तथ्यों को व्यवस्थित, संग्रहित, संशोधित व परिमोजित करने के लिए निवेशित किया जाता है जिनकी एक मानव के लिए अत्यन्त आवश्यकता है, जिनकी किसी भी अन्य विधि से करने में समय व धन ज्यादा खर्च होता है। इलेवट्रॉनिक कम्प्यूटर जो अपनी तीव्रता के लिए विश्वविख्यात है। एक मध्यम आकार वाले कम्प्यूटर जैसे कि आई. बी. एम. 1660, दो दस अंकों वाली संख्या के गुणा में एक शतांश लगाता है इस प्रकार एक सेकपड़ में 56 से अधिक गुणा किये जा सकते हैं। यूनिवैक 1107 जो 1480 की गति से गुणा करती है। कम्प्यूटर जिस काम को करने में कुछ समय लगाता है, संग्रख्यिक्री लिपिक उसे 10 सप्ताह में भी नहीं कर माता है। आज वह समस्या जिन्हें हाथ से गणना करने पर हमेशा संदेह रहता है उन्हें कम्प्यूटर से हल करना आसान हो गया है। कम्प्यूटर को गति के साथ-साथ निश्चितता के लिए भी पहचाना जाता है। कोई भो अनुभवी व्यक्ति यह स्वीकार कोमा कि जब कभी सांख्यिकी गणना की जाती है तो मानव क्री भूल की संभावना ज्यादा रहती है। एक व्यक्ति कोई भी गणना करते समय कई वार उसको दोहराता है फिर भी यह शंका वनी रहती है कि कहीं भूल हुई है लेकिन कम्प्यूटर इस समस्या को स्वत: ही समाधान करता है। प्राय: सैद्धान्तिक संभावना यह रहती है कि कभी-कभी कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं जिनका पता नहीं लग पाता है। प्राय: ऐसी सम्भावना कम रहती है। कम्प्यूटर क्री तीसरी विशेषता उसका संचित कार्यक्रम है। यह संगणक से भिन्न होता है। कम्पूटर एक समय में एक से ज्यादा निदेश दे सकता है। जिनको का स्कूटर एक-एक करके बिना किसी के रुकावट के पालन करेगा। वास्तव मे कम्प्यूटर, एक डेस्क केलकृरनेटर से पूर्णत: भिन्न है। डेस्क कैलकुलेटर में एक गुणा, जोड, घटाना, भाग के वाद हर वार नया निर्देश देना होगा जबकि कम्प्यूटर इससे बहुत दूर है। कम्प्यूटर में एक प्रोग्राम होता है। अनेक निर्देश हैं जो मशीन सै पढे जा सकते हैं। या तब मशीनें, जो भी आँकडे उनमें रखे जाते हैं अपनी प्रक्रिया शुरू कर देती हैं। एक तत्व ऐसा है जोकि कम्प्यूटर की पर्याप्त मात्रा में योग्यता की वृद्धि करता है। वह यह तथ्य है कि उसे निर्णय प्रदान काने के लिए निर्देशित किया जाए। उदाहरण-परिवर्ती क्री जाँच करने के लिए निर्देशित किया जा सकता है तथा वहाँ सै भिन्न-मिन्न रास्तों से एक और बढने को कहा जा सकता है जैसे-सकारात्मका शून्य व नकारात्मका इस प्रकार के अनेक निर्णय वाले कथनों के द्वारा एक व्यक्ति उन व्यापक संभावनाओं की और बढ़ सज्जा है जिनकी मशीन स्वत: ही सुचारू रूप सै देख-रेंख करेगी।

कम्प्यूटर का शोध में अनुप्रयोग

अनुसंधानकर्चा कम्प्यूटर का कितना उपयेश्या कर पाते हैं। उसकी क्या सीमाएँ हैं। यह कहना उचित नहीं है क्योकि यह नवीन विषय है प्रयास जारी है।

1. सारणीयन में उपयोगी–सारणीयन में गुणात्मक विशेषताओं या संख्यात्मक विशेषताओं अथवा दोनों से सम्बद्ध हो सकता है। गुणात्मक विशेषताओं के सारणीयन पर सर्वप्रथम विचार किया जायेगा। मान लीजिए एक समाजशास्त्री ने एक जनसंख्या का सर्वेक्षण करने में, प्रत्येक सदस्य की इस प्रकार की विशेषताओं के बारे में सूचना एकत्र की है जैसे लिग, प्रजाति, व्यवसाय, वैवाहिक स्तर, ज़न्म स्थान आदि। मान लीजिए इस सम्पूर्ण सूचना को उचित ढंग से संकेतबद्ध करके IBM के कार्डों पर चिहिन्त किया जाता है। यदि शोधकर्ता को इस मामले में सामान्य सारणीयन जैसे प्रत्येक वैचारिक स्तर का अथवा व्यावसायिक समूल का प्रतिशत जानना है तो सर्वाधिक मितव्ययी प्रणाली IBM 82 तथा 83 के साधारण कार्ड छाँटने वाले यंत्र का प्रयोग करना होगा जिसके साथ कार्ड की गणना करने वाली इकाई भी सलंग्न होगी। जब दोहरा सारणीयन जैसे वैचारिक स्तर तथा व्यावसायिक समूह का दोहरा सारणीयन करना हो तो छाँटने वाले यंत्र का प्रयोग कम सुविधाजनक होता है किन्तु यदि कुछ ही ऐसी तालिकाएँ बनानी हों तो सम्भवत: कार्ड छाँटने का यंत्र अधिक ठीक होगा। कम्प्यूटर का लाभ तब दृष्टिगत होता है जब एक ही प्रकार के आँकडों से कई विस्तृत तथा दोहरी तालिकाएँ बनानी होती है। विहित किए हुए कार्डों को एक बार कम्प्यूटर में डालने के पश्चात् ये सभी शांणीणा एक साथ प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उसी समय कम्प्यूटर को प्रतिशत, अनुपात तथा ऐसी अन्य सहायक सूचना प्राप्त करने के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार कुछ कठिनाई के पश्चात् क्या में सभी प्रकार के सारणीयन के लिए अधिक उपयुक्त व्यवस्था है।

   मात्रात्मक आँकडों के संदर्भ में सारणीयन आवृत्ति वितरणों का रूप धारण कर लेती है। पुन: शोधकर्ता भावात्मक तथा गुणात्मक आंकड़ो को दोहरे सारणीयन करने का प्रयास कर सकता है। जैसे अध्यन के समूह के पुरुषों तथा स्त्रियों के मध्य आमदनी का वितरण ज्ञात करना। अंतत: आवृत्ति के दोहरे वितरण की समस्या क्या हो सकती है। उदाहरणतया स्कूल के वर्षों" तथा वार्षिक आय के वितरण में परस्पर सम्बन्ध ये सभी सारणीयन सरलतापूर्वक कम्प्यूटर की सहायता से किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उसी समय कम्प्यूटर को प्रतिशत, अनुपात तथा ऐसी अन्य सहायक सूचना प्राप्त करने के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार कुछ ही कठिनाई के पश्चात् कम्प्यूटर में सभी प्रकार के लिए उपयुक्त व्यवस्था है।

   इसके अतिरिक्त कम्प्यूटर का यह भी लाभ है कि इसके द्वारा आवृत्ति वितरणों की गणना के समय ही विभिन्न सांख्यिकीय आँकडों को एकत्र किया जा सकता है। उदाहरणतया जब कम्प्यूटर से आवृत्ति वितरण ज्ञात किया जा रहा हो उसी समय उसके साथ मध्यमान तथा विषमताएँ भी प्राप्त की जा सकती हैं। अत: स्पष्ट है कि समस्या जितनी अधिक जटिल होगी कम्प्यूटर उतना ही अधिक लाभप्रद होगा।

2. सांख्यिकीय गणनाओं में उपयोगी–सभी सांख्यिक परिणामों की कम्प्यूटर के द्वारा गणना की जा सकती है तथा बहुत कम कठिनाई के साथ उनकी कम समय में तथा सही रूप से गणना की जा सकती है। कम्प्यूटर मात्र एक सुविधाजनक उपकरण ही नहीं है अपितु उसका अनुसंधान की पद्धति पर ठोस प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्रियों ने सर्वदा अपने आँकडों का पर्याप्त विश्लेषण नहीं किया है तथा सदैव अधिक सम्भावित प्राक्कल्पनाओ की जाँच की है तथा कम सम्भावित प्राक्कल्पनाओं की जॉच नहीं की है क्योकि उसमें उम्हें अधिक परिश्रम की आवश्यकता हो सकती है। कम्प्यूटर इस कमी को दूर कर देते हैं तथा उनकी सहायता से आँकडों का अधिक विस्तारपूर्वक विश्लेषण सम्भव हो जाता है। ऐसा विस्तृत विश्लेषण उन सम्बन्धों को व्यक्त कर सकता है जो कि अन्यथा अपरिचित ही रह जाते हैं। कम्प्यूटर बहुत अधिक आँकडों का विश्लेषण सम्भव बनाते हैं जोकि पहले सम्भव नहीं था। यह न्यादर्शात्मक अध्ययनों के लिए सहायक है। नमूने के आकार वाले वर्ग मूलों के साथ मानक त्रुटियाँ अन्तविरोध रूप में दृष्टिगत होती हैं। इस प्रकार जितनी त्रुटियाँ 100 के

न्यादर्श में होंगी उसके तिगुनी त्रुटियाँ 900 के न्यादशं में होंगी। उदाहरण के रूप में छोटे न्यादशं में अधिक त्रुटियों हो जाने पर एक अनुसंधानकर्ता यह निर्णय करने में असफल रहेगा कि क्या प्रदत्त आकार के सह-सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है अथवा इसे संयोग के आधार पर स्पष्ट किया जाना चहिए। दूसरी ओर एक वडे न्यादर्श में जिनमें अपेक्षाकृत कम त्रुटियाँ हों, वह एक संतोषजनक निणय में पहुच सकता है। इस प्रकार जितने ही वड़े आकार वाले न्यादशं होंगे सम्भवत: विश्लेषण अधिक परिस्कृत होगा। साथ ही सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं सें बडे हँग्दशों का अध्ययन करने का प्रयास किया जा रहा है। कम्प्यूटर द्वारा इनके व्यापक विश्लेषण में सहायता प्राप्त होती है।

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, कम्प्यूटर की सहायता से स्तरीय सांख्यिकीय पद्धतियों का प्रयोग अधिक विस्तारपूर्वक तथा अधिक जनसंख्या में किया जा सकता है किन्तु कम्प्यूटर इससे अधिक कार्य करते हैं। यह गणित सम्बन्धी पद्धतियों का प्रयोग सम्भव बनाता है जोकि गणितीय दृष्टिकोण से अधिक उत्तम थे किन्तु जिसमें पर्याप्त गणना की आवश्यकता होती थी, जोकि अपने आप में एक कठिन कार्य था। एक सरल उदाहरन "फिशर के 2×2 की-तालिकाओं का निश्चित प्रयोग है।" गणितिय रूप से यह पद्धति बहुत जाधिक आकर्षक है किन्तु इसमें कारकों का प्रयोग निहित रहता है तथा जब तक तालिका में संख्याएँ बहुत छोटी न हों, इन कारकों की उपयोगिता कम महत्त्वपूर्ण रह जाती है। तथापि एक कम्प्यूटर के साथ विधि कठिन नहीं है। यह स्पष्ट उदाहरण एक सामान्य प्रवृत्ति को व्यक्त करता है। कम्प्यूटर का प्रयोग गणितिक सांख्यिकी के स्वरूप को प्रभावित कर सकता है। गणित की कठोरता तथा व्यावहारिक सुविधा के मध्य एक प्रकार का सह-सम्बन्ध होना चाहिए। गणना की संख्या को सीमित रखने के लिए सांख्यकारों को कभी-कभी कुछ सुविधापूर्ण पूर्वानुमानों का निर्माण करना पड़ता है जिन्हें कठोर रूप से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यह पूर्वधारणा कि दूसरे के वाद एक श्रृंखला में सभी पदों की आसानी से उपेक्षा की जा सकती है। कम्प्यूटर उपलब्ध होने पर सरलीकृत पूर्वानुमानों की आवश्यकता कम रहती है। इन कारणों से यह सम्भव है कि कम्प्यूटरों के व्यापक प्रचार से गणितीय सांख्यिकी के क्षेत्र में एक क्रान्ति उत्पन्न होगी।

3. सह-सम्बन्ध का परिकलन करने और काई वर्ग परीक्षण में उपयोगी-समाज़ शास्त्रीय अनुसंधानों में सह-सम्बन्ध परिकलन और काई वर्ग परीक्षण की महतीय उपादेयता है। अक्सर औसत श्रेणी में अनुसंधानकर्ता परिकलन को त्रुटि मात्र से इसका परिहार करते देखे जाते है। भौतिक विज्ञानों में सह-सम्बन्ध कठिन नहीं हैं क्योकि वहाँ प्रयोगों के आधार पर दो या अधिक परिवत्यों के मूल्यों में गणितीय सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं जैसे तापक्रम पर ताप का प्रभाव गणितीय सूत्र के रूप में उतारा जा सकता है जो दो परितत्यों के बीच सम्बन्ध प्रकट करेगा। समाजशास्त्र में सह-सम्बन्ध का अध्ययन अन्य अध्ययनों के समान परिशुध नहीं हो सकता। दत्त सामग्री कारणों के वाहुल्य से प्रभावित होती हैं और यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि परिवर्त्यो के मूल्य में परिवर्तनों के लिए कौन-सा कारण विशेष उत्तदायी है। यथार्थ : कम्प्यूटर के प्रयोग से यह कार्य समाजशास्त्रीयो के लिए अब आसान हो गया है। अब समाजशास्त्रीय कारकों में से उन कारकों के अलग-अलग प्रभाव का अध्ययन करना कम्प्यूटर ने सम्भव कर दिया है। कभी सांख्यिकी क्षेत्र में असम्भव माने जाते रहे है। काई वर्ग परीक्षण जो हमें सामर्व्य देता है कि हम सिद्धान्त और वास्तविकता में अन्तर अथवा प्रत्याशित एवं वास्तविक बारम्बारत्ताओं में अन्तर मालूम कर सके कि वह सार्थक है अथवा नहीं, के परिकलन से भी एक औसत समाजशास्वी कतराता है, किन्तु कम्प्यूटर ने इस कार्य को आसान बना दिया है।

4. दत्त सामग्री के आरेखीय एवं लेखाचित्रीय निरूपण में उपयोगी-दत्त सामग्री को सुबोध बनाने में आरेख और लेखाचित्रों की महती भूमिका है। इनकी विशेषता यह है कि ये अंकों का प्रयोग पूर्णत: हटा देते हैं और अत्यन्त नीरस और अरोचक सांख्यिकीय तथ्यों के रोचक और प्रभावशाली चित्रों और चार्टों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। एक साधारण व्यक्ति संख्याओं से अवश्य बचना चाहता है, परन्तु चित्र, आरेख और लेखाचित्र आदि से वह अवश्य प्रभावित तथा आकर्षित होता है परन्तु आजकल शोध प्रबन्धों में आरेखों एबं लेखाचित्रों के निरूपणों का पूर्णतया अभाव पाया जाता है। इनकी रचना करने से भी औसत श्रेणी का अनुसंधानकर्ता कतराता है क्योकि वह उनके बनाने के नियमों से अनभिज्ञ होता है। अत: वह कम्प्यूटर

की सहायता से अपने शोध प्रबन्ध में आरेखों एवं लेखाचित्रों का प्रस्तुतीकरण करके उसे वैध और प्रामाणिक बना सकता है।

5. गणितीय रूप से निर्मित सिद्धान्तों में उपयोगी-ऐसा सिद्धान्त संगतपूर्ण उपकल्पनाओं से दूर होता है जिसमें प्रयोगों का निर्माण किया जाता है। तव एक आनुभाविक विज्ञान में प्रमेयों की तथ्यात्मक सत्यता की आनुभाविक रूप से जाँच क्री जाती है। ज्यों ही अधिकाधिक प्रमेय सत्य पाए जाते हैं, सिद्धान्ती का अधिकाधिक सुचारू रूप से सत्यापन किया जा सकता है। सत्यापन का आदर्श तब सम्पूर्ण होता है जबकि सिद्धान्त से निर्गमित प्रमेय अनुभाबिक तथ्यों से मेल खाते हैं तथा जब सभी वैकल्पिक सिद्धान्तो के निगमन ऐसा करने में असमर्थ हो जाते हैं। आनुभाविक विज्ञान के प्रमेयों तथा उपकल्पनाओं को गणितीय अर्थों में व्यवत्त करने क्री तार्किक आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, उदाहरण के रूप में, भूगर्भ विज्ञान तथा जीब विज्ञान क्री अनेक प्रस्थापनाओं को गैर-मात्रात्मक रूप में साधारण गद्यात्मक भाषा में व्यक्त किया जाता है तथापि एक सिद्धान्त के लिए जब भी सम्भव हो, अंकशास्वीय सूत्रीकरण के स्पष्ट लाभ होते हैं। अंकशास्त्रीय कथनों में एक निविचतता तथा स्पष्टता होती है जो गद्यात्मक कथनों में नहीं मायी जाती है। एक अंकशास्वीय समीकरण के रूप मे अभिव्यक्त प्राकृतिक विधि की जाँच स्वतंत्र परिवत्यों के विभिन्न मूल्यों का निरीक्षण करके तथा उम्हें समीकरण मे' परिवर्तित करके तथा तव यह पता लगाकर की जा सकती है कि क्या आश्रित परिवत्यों में वस्तुत: वे मूल्य ये जिनकी भविष्यवाणी की गयी थी। सम्भवत: यह कहना उचित होगा कि वर्तमान समाज़शास्त्रीय सिद्धान्त की सबसे बडी दुर्बलता उसकी अस्पष्टता का होना है।

मात्रात्मक पद्धतियो का प्रयोग समाजशास्त्र में व्यापक रूप से किया जा रहा है। वस्तुत: यह तथ्य समाज़शास्त्रीय अनुसंधान में कम्प्युटरों की उपयोगिता से सम्बन्धित सम्पूर्ण विचार-विमर्श में निहित है तथा समाजशास्त्रीयो ने विशिष्ट स्थितियों तथा एकाकीकृत प्रस्थापनाओं की जाँच के लिए, सम्पूर्ण निगमनात्मक रूप से निरूपित मूरेनद्धान्तो का प्रयोग किया है। दूसरे शब्दों में, प्रचलित सांख्यिकीय प्रणालियों के लिए गणित का प्रयोग विशिष्ट रूप से किया गया है तथापित गणितीय पदों में सम्पूर्ण समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो का निर्माण इसमें कुछ और अधिक निहित करता है। यह मानवीय सामाजिक क्रियाओं के अंशों में गणितीय नमूनों का निर्माण निहित करता है। यह आनुमाविक तथ्यों के साथ तुलना करके इन नमूनों के औचित्य की सथापना का प्रयास करता है। यह निश्चित प्रतीत होता है कि समाजशास्त्री अधिकाधिक मात्रा में गणितीय नमूनों का प्रयोग करेंगे। सिब्ले ने अपने समाजशास्त्रीय शिक्षा के आसन्न सर्वेक्षण में इस प्रकार मत व्यक्त किया है-"वे समाजशास्वी जिनका कि गणित की ओर झुकाव नहीं है वे गलत रूप में यह धारणा रखते हैं कि गणित समाजशास्त्र में ही उपयोगी होता है तथापि, पर्याप्त समय से ही धारणा। यह बढती जा रही है कि समाजशास्त्र सहित कोई आनुभाविक विज्ञान जैसे ही सामान्य ज्ञान की अवस्था से आगे बढता है तो एक कठोर औपचारिक रूप में धारणाओं के निर्माण की योग्यता अधिकाधिक रूप में आवश्यक हो जाती है तो भी कुछ ही समाजशास्त्री कुछ जटिलतर गणितीय प्रारूपों की सहायता से समाजशास्त्रीय अध्ययन कर रहे हैं, लेकिन अब उनकी संख्या में वृद्धि होती जा रही है तथा जैसा कि अन्य विज्ञानों में से अर्थशास्त्र तथग मनोविज्ञान इस दिशा में पर्याप्त आगे बढ चुके हैं तथा उनके अध्येता पर्याप्त अनुपात में गणितीय अर्थों में प्रशिक्षित होते हैं। सामाजिक विज्ञानों के इतिहास से ज्ञात होता है, यह प्रवृत्ति अब उत्तरोत्तर बढती जाएगी। सामाजिक विज्ञानों में गणितीय प्रारूपों का उपयोग पर्याप्त जटिल है जिसकी चर्चा यहाँ पर करना सम्भव नहीं है, तथापि जैसा कि सिब्ले ने कहा है, "समाजशास्त्र सहित अनेक सामाजिक विज्ञानों में इस प्रकार के प्रयास प्रारम्भ हो गये हैं।" यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसी प्रक्रियाओं में उत्तरोत्तर कम्प्यूटरों की उपयोगिता अनुभव के द्वारा प्रमाणित हो रही है। इस बात के वारे में भविष्यवाणी करना कठिन प्रतीत नहीं होता है कि समाजशास्त्र तीव्र प्रगति के युग में प्रवेश कर रहा है तथा कम्प्युटर इस विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगे।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि कम्प्युटरीकृत के प्रयोग से एक समाजशास्त्री अपने तथ्यों के साहचर्यों का प्रस्तुतीकरण बहुत ही अच्छी तरह से कर सकता है यदि उसे कम्प्युटर की विधियों का सामान्य ज्ञानं हो। दत्त-सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए अन्तिम, परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात शायद उचित सांख्यिकीय विधियों का चुनाव है। विमिन्न प्रकार की दत्त-सामाग्री

के लिए सभी प्रकार की सांख्यिकीय विधियाँ उपयुक्त नहीं होतीं। यदि सांख्यिकीय विधियों के चुनाव में कोई गलती हो गयी है तो भ्रामक धारणायें उत्पन्न हो सकती हैं' कोई भी अनुपयुक्त सांख्यिकीय विधि किसी तथ्य का विकृत रूप प्रस्तुत कर सकती है। इसलिए सांख्यिकीय विधियो के चुनाव में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता पड़ती है।

सन्दर्भ साहित्य

1. Turney, Billy L. and George, P. Robbins (1970), Research in Education: An Introduction, Illinois: The Dryden Press Ltd.
2. Villars, D.S. (1951), Statistical Design and Analysis of Experiments for Development Research, low: Brown.
3. Young, Pauline, Scientific Social Survey and Research, Mumbai: Asia Publishing House, 1966.

थेरीगाथा में वर्णित महिलाओं की स्थिति: एक विश्लेषण

अभिनव अर्चना

पी-एच0डी0 इतिहास विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

सारांश

प्राचीन भारत से संबंधित अधिकांश साहित्य प्रासमिक (Normative) है, जो समाज के सदस्यों के लिए आचरण-व्यवहार-दण्ड के मानक निर्धारित करता है। इसका इस्तेमाल सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) और सामाजिक संरचना (Social Construct) को समझने के लिये किया गया है। आचरण, व्यवहार और दण्ड के मानकों पर ही हम समाज में रहने वाले लोगों के अनुभवों और उनकी संवेदनाओं का अनुमान लगाते आये हैं। यह शोध-पत्र मुख्य रूप से थेरीगाथा पर आधारित है। शोध-पत्र में थेरियों द्वारा रचित कविताओं के विश्लेषण के आधार पर तत्कालीन समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति पर विचार किया गया है।

बौद्ध धर्म की बुनियाद तकरीबन 2600 साल पहले गौतम बुद्ध (ई.पू. 563-ई.पू. 483) के द्वारा रखी गई जो मध्य गंगा घाटी के अभिजात्य वर्ग से सम्बन्ध रखते थे। इतिहासकारों में बौद्ध धर्म के तत्कालीन उत्तर भारतीय समाज पर होने वाले प्रभाव को लेकर पर्याप्त बहस हो चुकी है। बौद्ध धर्म के प्रभाव का विश्लेषण समाज के विभिन्न घटकों पर किया जाता रहा है। स्त्रियाँ भी इससे अछूती नहीं रहीं। कुछ इतिहासकारों की अवधारणा है कि बौद्ध धर्म ने तत्कालीन समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति को ऊपर उठाया। इस अवधारणा के मूल में गौतम बुद्ध के द्वारा स्त्रियों को बौद्ध संघ में प्रविष्टि होने की अनुमति देना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्त्रियाँ गौतम बुद्ध के काल में ही संघ का हिस्सा बन गई थीं। किन्तु संघ में उनको प्रवेश देने की गौतम बुद्ध की प्रारम्भिक हिचक, उनके संघ प्रवेश से सम्बन्धित नियम, संघ में उनके आचरण को लेकर उन पर तय की गई पाबंदियाँ– यह बताती हैं कि तत्कालीन समाज की ही भाँति बौद्ध धर्म भी अपने प्रारूप में पितृसत्तात्मक सोच से प्रभावित था। इस प्रभाव के बावजूद अपने प्रारम्भिक चरण में बौद्ध धर्म स्त्रियों के प्रति वैदिक धर्म की भाँति कट्ठरतापूर्ण रवैया नहीं रखता था।

संघ द्वारा तय किये गये कठोर नियमों के बावजूद काफी संख्या में स्त्रियों ने गृहस्थ जीवन को त्याग संघ में प्रवेश कर भिक्षुणी बनना स्वीकार किया।[1] निश्चित रूप से जीवन यापन के विभिन्न उपलब्ध विकल्पों में उन्हें संघ का जीवन बेहतर लगा। थेरीगाथा[2] प्रारम्भिक बौद्ध धर्म, तत्कालीन समाज और स्त्रियों के पारम्परिक समीकरण को समझने का बेहतर स्रोत है।अन्य स्रोतों की तुलना में यह इसलिये विशिष्ट है कि इसकी रचना उन्हीं स्त्रियों के द्वारा की गयी जिनका सामाजिक घटक के रूप में विश्लेषण किया जाना है। अन्यथा इतिहास में स्त्री को तलाशते हुए हमें आम तौर पर पुरुषों द्वारा रचित साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। वस्तुत: थेरीगाथा स्त्रियों के अनुभव संसार का अनूठा संकलन है जो उनके सुख-दु:ख, इच्छा-अनिच्छा, महत्वाकांक्षाओं-संवेदनाओं का परिचय हमें देता है। थेरीगाथा नारीवाद से अनभिज्ञ ऐतिहासिक चरण का स्त्री-विमर्श प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इन कविताओं/भजनों में स्त्रियों के सामाजिक-धार्मिक-अध्यात्मिक अनुभव कैद हैं जो मानव के विचार श्रृंखला के इतिहास को और अधिक समृद्ध बनाते हैं। साथ ही साथ स्त्रियों की दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचय भी कराते हैं जिससे वे अपनी भावनात्मक कमजोरियों से ऊपर उठ सकीं और जीवन की उन विषम और अप्रीतिकर परिस्थितियों को भुला सकीं जो उनके सतत दु:ख का कारण थीं।[3]

स्त्रियों ने संघ में प्रवेश से पहले के अपने जीवन के सौभाग्य और दुर्भाग्य का खुलकर उल्लेख अपनी कविताओं/भजनों में किया है। यही उल्लेख तत्कालीन समाज में उनकी प्रस्थिति को विश्लेषित करने में हमारी मदद करते हैं। थेरीगाथा की कविताएँ थेरियों के नाम के साथ संकलित हैं। अधिकांश थेरियाँ गौतम-बुद्ध की समकालीन बतायी गयी हैं। बुद्ध का समय छठी शताब्दी ईसा पूर्व है। मोटे तौर पर उसी समय के समाज का प्रतिबिम्बन इन कविताओं में है।[4]

थेरीगाथाओं में 73 भिक्षुणियों की 522 गाथााओं का संग्रह किया गया है, जो कि 16 भागों में विभक्त हैं। कुछ गाथाओं का संग्रह सामूहिक रूप में किया गया है। ये सभी भिक्षुणियाँ बुद्ध कालीन थीं और उनकी शिष्याएँ भी थीं। अत्यन्त संगीतात्मक भाग में आत्म अभिव्यंजना पूर्ण गीत काव्य शैली के आधार पर भिक्षुणियों ने अपने जीवन अनुभव को बताया है, नैतिक सच्चाई और भावनाओं की गहनता की विशेषता ही उसका काव्यगत सौन्दर्य है। थेरीगाथा की रचियता स्त्रियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी वर्णों की स्त्रियाँ थी[5] जो विभिन्न आर्थिक स्तरों वाले परिवारों से सम्बन्धित थीं। कुछ अत्यधिक अभिजात्य वर्ग से थीं तो कुछ अन्य निर्धन परिवारों से। थेरियों में चार गणिकाएँ भी थी।[6] सर्वाधिक संख्या (23) राजपरिवारों से आने वाली स्त्रियों की थी। दूसरे क्रम में विभिन्न आर्थिक वर्गों वाली ब्राह्मण स्त्रियाँ थी।[7] स्त्रियों के वर्ण/जाति और आर्थिक स्थिति का संघ की नजर में कोई महत्व नहीं था। संघ प्रवेश-अर्हता के निर्धारित मानकों में अच्छा स्वास्थ्य, ऋणों से मुक्त होना, दासत्व से मुक्त होना और राजकीय सेवा में न होना प्रमुख थे। अपने इस समतावादी दृष्टिकोण (EgalitarianApproach) में बौद्ध धर्म विशिष्ट था। पूर्ववर्ती वैदिक धर्म इस संदर्भ में असमतावादी था जो शूद्रों और स्त्रियों को संन्यास, अध्यात्म और मोक्ष के लिए अयोग्य समझता था। जाति और आर्थिक स्थिति की भाँति स्त्रियों की वैवाहिक स्थिति भी संघ के लिए महत्वहीन थी। थेरियों में हम अविवाहित, विवाहित और विधावा सभी प्रकार की स्त्रियों को सम्मिलित पाते हैं।

यद्यपि संघ का रवैया समतावादी था, किन्तु संघ समाज के साथ सामंजस्य बिठाकर कार्य करना चाहता था, इसलिये स्त्री के परिवार की अनुमति को संघ में प्रवेश के लिये अनिवार्य मानता था। अविवाहित स्त्रियों को संघ में प्रवेश लेने से पहले माता-पिता की अनुमति लेना अनिवार्य था।[8] विवाहित स्त्रियों के लिए यद्यपि पति की अनुमति अनिवार्य नहीं थी किन्तु उसके (पति) अप्रसन्न होने की स्थिति में संघ में प्रवेश लेने के बाद विवाहिता को 'प्रायश्चित्त' करना पड़ता था।[9] जाहिर है कि संघ का 'प्रायश्चित्त' का नियम पितृसत्तात्मक समाज से ताल-मेल बिठाकर चलने के लिये था और समाज स्त्री को अपने जीवन से सम्बन्धित निर्णय लेने का अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। ऐसे उद्धरण कम ही हैं जिनमें स्त्री की इच्छा का सम्मान रखते हुए उसे संघ-प्रवेश की अनुमति दी गयी हो।

प्रायः अनुमति देने का अधिकार रखने वाले (माता-पिता एवं पति) की व्यक्तिगत इच्छा अधिक महत्वपूर्ण दिखती है। अविवाहित स्त्रियों को पारिवारिक त्रासदी, विवाह की समस्या जैसी विकट परिस्थितियों में संघ प्रवेश की अनुमति सरलता से मिल जाती थी। अभिरूपनंदा[10], उप्पलबना[11] नामक स्त्रियाँ विवाह न हो पाने की स्थिति में अभिभावकों द्वारा सहर्ष संघ में प्रविष्ट करा दी गयीं। इसिदासी[12] क्रमशः तीन वैवाहिक सम्बन्धों के असफल हो जाने पर पिता की सलाह से संघ में प्रविष्ट हुई। इसी क्रम में सुन्दरी[13] पारिवारिक त्रासदी की वजह से संघ में प्रविष्ट हुई। सुन्दरी के भाई की असमय मृत्यु से दुःखी क्रमशः उसके पिता, माता ने संघ-प्रवेश का निर्णय लिया। यद्यपि सुन्दरी की माता चाहती थी कि भाई की मृत्यु के बाद सुन्दरी पारिवारिक विरासत को सँभाले किन्तु उसने सांसारिक जीवन में अरूचि दर्शाते हुए माँ से संघ प्रवेश की अनुमति माँगी। सीहा[14], गुट्ठा[15], रोहिणी[16], को माता-पिता की अनुमति पाने में किसी कठिनाई का सामना करना पड़ा हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। सुमेधा अपने माता-पिता की इच्छा के विरूद्ध संघ में प्रविष्ट हुई।[17] विवाहोपरान्त पति की सहमति से वह संघ में प्रवेश पा सकी।[18]

विवाहित थेरियों के सहमति-असहमति के संदर्भ भी उल्लेखनीय हैं। यदि पति स्वयं संन्यास लेने का इच्छुक हो तो वह पत्नी को सहर्ष अनुमति दे देता था। इस संदर्भ में भद्दा[19] और धम्मादिन्ना[20] उल्लेखनीय हैं। भद्दा और उसका पति पिप्पली[21] एक साथ संघ में प्रविष्ट हुए। धम्मादिन्ना थेरी के पति ने स्वयं संघ में प्रवेश का निर्णय लेने के बाद धम्मादिन्ना को पर्याप्त सम्पत्ति लेकर वापस अपने पितृकुल लौट जाने की सलाह दी जिसे अस्वीकार कर उसने स्वयं संघ प्रवेश का निर्णय लिया।

इन दोनों संदर्भों में स्त्रियों के संघ प्रवेश के निर्णय परिस्थितिजन्य थे। सम्भवतः पति की अनुपस्थिति में उन्हें सामाजिक जीवन संघ में कठोर जीवन चर्या की तुलना में अधिक विकट लगा और उन्होंने संघ की शरण ली।

सोना नामक थेरी के भी पति के संघ में प्रवेश के पश्चात भिक्षुणी बनने का संदर्भ थेरीगाथा में है। सोना[22] का उल्लेख दस बच्चों की माँ के रूप में मिलता है। पति के भिक्षु बनने के बाद संतति (पुत्र एवं पुत्रवधुओं) से मिलने वाली प्रताड़ना से त्रस्त होकर इस वृद्ध स्त्री ने संघ में प्रवेश लिया। वृद्धावस्था में संतति के द्वारा किये जाने वाले दुर्व्यवहार और अपमान का सांकेतिक उल्लेख उसकी कविता[23] में है।

खेमा[24] की उल्लेख भी विवाहित भिक्षुणियों में किया जा सकता है। वह मगध के शासक बिम्बिसार की अपने सौन्दर्य से अभिभूत आत्ममुग्धा रानी थी और व्यक्तिगत रूप से बुद्ध, धर्म या संघ में कोई रूचि नहीं रखती थी। किन्तु चूँकि बिम्बिसार स्वयं बौद्ध ध र्मानुयायी था इसलिये उसने विशेष प्रयत्न कर खेमा को दीक्षा दिलवायी। खेमा की गणना प्रबुद्ध भिक्षुणियों में की जाती है। उसकी कविता/भजन का पहला छंद (छंद संख्या-139) उसकी आत्ममुग्धता का उल्लेख करता है। खेमा का संघ प्रवेश भी स्वैच्छिक नहीं था। खेमा को दीक्षित करने की प्रक्रिया में उसके साथ किसी किस्म का दुराग्रह पूर्ण व्यवहार नहीं किया गया और बिम्बिसार के इस प्रयास ने खेमा को भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण प्रतिष्ठित स्थान भी दिलवाया, किन्तु फिर भी एक प्रश्न स्वत: उठ खड़ा होता है कि यदि बिम्बिसार स्वयं बौद्ध धार्मानुयायी न होता तो क्या वह खेमा को संघ-प्रवेश की सहज इजाजत देता?

दो अन्य विवाहिताओं मुत्ता एवं अनाम भिक्षुणी की कविताएँ संवेदनहीन पति के साथ चूल्हे-चौके में स्वाहा होते स्त्री जीवन का प्रतिबिम्बन हैं। मुत्ता[25] की कविता/भजन चार पंक्तियों की होते हुए भी उल्लेखनीय है जिसमें उसने चक्की, खरल और कुबड़े पति से मुक्त हो जाने की उल्लासपूर्ण भावाभिव्यक्ति की है। अनाम भिक्षुणी[26] जिसे उसके पुत्र के नाम पर 'सुमंगल की माँ' कह कर सम्बोधित किया गया है मुत्ता जैसी भावाभिव्यक्ति अपनी कविता में करती है। दोनों ही स्त्रियों के द्वारा गृहस्थी के कार्यों से बोझिल होना और पति के लिये नकारात्मक विशेषण का प्रयोग[27] यह दर्शाते हैं कि ये उनके पूर्व जीवन में दु:ख का कारण थे।

थेरीगाथा में तीन विधावा स्त्रियों की कविताएँ भी संकलित हैं जो पति की मृत्यु के बाद संघ में आयीं। इनके नाम गौतमी महाप्रजापति[28], धम्मा[29] और पटचारा[30] हैं। गौतमी महाप्रजापति (गौतम बुद्ध की मौसी) ने गौतम बुद्ध के पिता की मृत्यु के बाद भिक्षुणी संघ की स्थापना की दिशा में विचार और प्रयास किया। उनके सतत अनुरोधा के बाद अनिच्छापूर्वक गौतम बुद्ध ने स्त्रियों को संघ प्रवेश की इजाजत दी। गौतमी संघ में प्रवेश लेने वाली पहली स्त्री थीं। उन्हें गरूधम्मो[31] (Eight Chief Rules) का अनुपालन करने की शर्त के साथ संघ में प्रवेश मिला था।

श्रावस्ती के संभ्रान्त परिवार में जन्मी धम्मा[32] नामक विवाहिता ने पति की सहमति न मिलने पर अतिरिक्त धैर्य का परिचय देते हुए पति की मृत्यु तक सहधार्मिणी की भूमिका का निर्वाह किया, तत्पश्चात संघ में प्रविष्ट हुई। एक अन्य अनाम भिक्षुणी के द्वारा पति की सहमति के लिये लम्बी प्रतीक्षा करने का उल्लेख थेरीगाथा में मिलता है।[33]

गौतमी महाप्रजापति और धम्मा अपने संघ प्रवेश से पहले के जीवन में गृहस्थ जीवन का निर्वहन करने वाली आदर्श-पत्नी की छवि प्रस्तुत करने वाली स्त्रियाँ हैं जो पति की इच्छा को सर्वोपरि मानती हैं। उनकी यह आदर्श छवि पुरुष प्रधान समाज के खाके के अनुरूप है।

पति वियोग के अलावा अनेक स्त्रियाँ संतान की असमय मृत्यु से उपजे दु:ख की वजह से संघ की शरण में आयीं। इन स्त्रियों में उब्बिरी, किसा-गौतमी और पटचारा उल्लेखनीय हैं। अपनी कविताओं में इन स्त्रियों ने संतान खोने के दु:ख का भावविद्वल वर्णन किया है।[34] किसा-गौतमी की कथा मार्मिक है। सर्पदंश से मरे पुत्र के शरीर को लेकर यत्र-तत्र भटकने का जो विवरण पालि साहित्य में मिलता है वह द्रवित करने वाला है।[35] उब्बिरी को अपनी छोटी सी बेटी जीवा को खो देने का दु:ख संघ की शरण में खींच लाया। पटचारा को एक साथ पति एवं पुत्रों की मृत्यु का दु:ख झेलना पड़ा। माँ का संतति से नैसर्गिक लगाव होता है, अत: दु:ख स्वाभाविक है किन्तु संतान खोने की स्थिति में जीवन को त्रासद मान लेना एवं उससे विमुख हो जाने की अवधारणा पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री में रूढ़ की। ऐसे समाज में स्त्री की पहचान और प्रतिष्ठा परिवार, पति और संतान के संदर्भ में तय होती है। इसलिये वह स्त्री के लिए पुरुष की तुलना में अधिक मूल्यवान होते हैं जिनको खो देने पर असंतुलन स्वाभाविक है।

थेरीगाथा में मानसिक धारातल पर मजबूत स्त्रियाँ भी उपस्थित हैं। संघ में प्रविष्ट होने से पहले इन स्त्रियों ने अपनी गैरमौजूदगी में अपने बच्चों के जीवन निर्वाह एवं अभिभावक की समुचित व्यवस्था की। संघा[36], सकुला[37], वद्धा की माँ[38] और कामा[39] नामक

थेरियों के गीत पीछे छूट गये बच्चों का उल्लेख करते हैं। वद्धा का गीत उस समय का उल्लेख करता है जब वह अपनी माँ से मिलने अकेला ही भिक्षुणियों के बीच चला आया।[40]

संघ के भीतर की चर्या भी स्त्रियों की स्थिति को रेखांकित करती है। गरूधम्मपद (Eight Chief Rules)[41] का भिक्षुणी संघ की स्थापना एवं संघ प्रवेश की प्राथमिक शर्त होना ही स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का द्योतक है। स्त्रियों की उपसम्पदा अभिषेक की प्रक्रिया भी दर्शाती है कि उन्हें कमतर समझा जाता था। उपसम्पदा अभिषेक के लिये इच्छुक नवदीक्षित स्त्रियों को क्रमशः भिक्षुणी एवं भिक्षु दोनों संघों से अनुमति लेनी पड़ती थी। इस नियम का केवल एक अपवाद मिलता है।[42] भद्दा कुण्डलकेशा जो पूर्व में जैन धार्मानुयायी थी, को बुद्ध ने स्वयं उपसम्पदा दी। किन्तु यह एक विशेष परिस्थित थी। सामान्यतः दोनों संघों की सहमति अनिवार्य थी।

विनयपिटक में अनेकानेक ऐसे संदर्भ हैं जिनमें भिक्षुओं को अपनी शंकाओ-समस्याओं के शमन हेतु बुद्ध से सम्पर्क साधाते हुए दिखाया गया है। इस तरह का सम्पर्क बुद्ध और भिक्षुणी संघ के बीच नहीं दिखता। ऐसा नहीं है कि भिक्षुणियों की कोई शंका-समस्या नहीं थी। किन्तु उसे गौतम तक पहुँचाने का रास्ता लम्बा और मध्यस्तता वाला था। पहले भिक्षुणियाँ अपनी समस्याओं की चर्चा आपस में करती थीं फिर उसे भिक्षु संघ के सदस्यों की मध्यस्तता से गौतम बुद्ध तक पहुँचाया जाता था। सिर्फ महाप्रजापति गौतमी ही एक ऐसी भिक्षुणी थीं जिन्हें अपवाद माना जा सकता है।[43]

भिक्षुणियों का अध्यात्मिक चिन्तन मनन के लिये एकांत और निर्धन स्थानों पर जाना वर्जित था। सम्भवतः इस निषेध की वजह एकांत स्थानों पर घट सकने वाली दुर्घटनाओं का डर था जो किसी स्त्री के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को कुचल सकती थी। उप्पलबना नामक भिक्षुणी के साथ घटी बलात्कार की घटना से इस विचार को बल मिलता है।[44] जाहिर है कि इस निषेध के लिये समाज का स्त्री के प्रति रवैया अधिक जिम्मेदार था जो सांसारिक जीवन त्याग चुकी स्त्री को भी जिंस के रूप में ही देखता था।

कुछ भिक्षुणियों के द्वारा वापस गृहस्थ जीवन में लौट जाने के भी उल्लेख हैं। संयुक्त निकाय[45] तिस्सा नामक स्त्री के गृहस्थ जीवन में लौट जाने की बात कहता है। विनय पिटक से भी ऐसे संदर्भ मिलते हैं।[46] ये संदर्भ बताते हैं कि स्त्रियों को अनिच्छा पूर्वक संघ का सदस्य बने रहने के लिये बाध्य नहीं किया जाता था। उल्लेखनीय है कि भिक्षुणियों की तुलना में भिक्षुओं के द्वारा संघ छोड़ने के संदर्भ बड़ी संख्या में मिलते हैं। भिक्षुणियों के ऐसे संदर्भ इक्का-दुक्का ही हैं। तत्कालीन सामाजिक खाके के अनुरूप सोचें तो भिक्षुणियों को यह डर रहता होगा कि वापस लौटने पर उनका परिवार उन्हें स्वीकार करेगा या नहीं? जिन विकट- दुःखद परिस्थितियों से निराश होकर वे यहाँ आयी थीं वापस लौट कर उन्हीं परिस्थितियों के साथ कैसे समायोजन बिठायेंगी? एक बार संघ छोड़ देने के बाद वापस लौटने को लेकर संघ के नियम सख्त थे[47] और इसमें अनेक कठिनाइयाँ थी। यही वजह होगी कि भिक्षुणियाँ भिक्षुओं की भाँति अधिक तीव्रता से निर्णय नहीं ले पायी होंगी। पुरुषों को लेकर समाज और संघ दोनों का नजरिया अधिक सकारात्मक और सहयोगी था। इसलिये भिक्षु अपने व्यक्तित्व में अधिक स्वतंत्र दिखते हैं।

सीहा[46] नामक भिक्षुणी के द्वारा किया गया आत्महत्या का प्रयास इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। सात वर्षों तक अर्हत बनने के लिये संघर्ष करने के बाद भी असफल रहने पर उसने आत्महत्या का रास्ता चुना। उसने ये कदम घोर निराशा में उठाया क्योंकि उसने ये मान लिया था कि अर्हत बनने की योग्यता उसमें नहीं थी। पालि साहित्य में कहा गया है कि 'घोर नैराष्य एवं अवसाद की स्थिति में उसने जंगल में जाकर एक पेड़ से पफाँसी लगाने का प्रयास किया'। संघ में बने रहने की बाध्यता न होने के बावजूद सीहा का ये कदम सांसारिक एवं अध्यात्मिक दोनों जीवनों से उपजी निराशा का परिणाम है। (छंद संख्या– 79, 80)। उसकी कविता के अंतिम छंद (छंद संख्या-80) में कहा गया है, कि, 'उसी क्षण उसे ज्ञान की प्राप्ति हो गयी।'

गैरजिम्मेदार सदस्यों को बार-बार नियमों का उल्लंघन करने पर निष्कासित करने का भी प्रावधान था। पालि साहित्य निष्कासित की गयी भिक्षुणियों की कोई सूची नहीं देता। विनयपिटक से मेत्तिया[49] नामक एक भिक्षुणी के निष्कासन का संदर्भ मिलता है। मोत्तिया और भिक्षु संघ के एक सदस्य के बीच विवाद का उल्लेख करते हुए विनयपिटक में कहा गया है कि गौतम ने मोत्तिया भिक्षुओं के रचे किसी शड्यंत्र का शिकार हो गयी क्योंकि निष्कासन के लिये निर्धारित मानकों में से किसी का उल्लंघन उसके द्वारा किये जाने का उल्लेख साहित्य में नहीं है।[50] भिक्षुणियों के निष्कासन का सिर्फ सही एक संदर्भ है।

सामाजिक-संघिक भेदभाव से संघर्ष करती, जूझती स्त्रियों में से अनेक ऐसी हैं जिन्होंने बौद्ध संघ और धर्म में अपने लिये महत्वपूर्ण प्रतिष्ठित एवं सम्मानित स्थान प्राप्त करने का गौरव हासिल किया। इनमें सुक्का ने एक योग्य उपदेशक के रूप में अपनी पहचान बनायी।[51] पटचारा विनय (पिटक) की जानकार थी। उसने अनेक स्त्रियों को बौद्ध धार्मानुयायी बनाया।[52] धम्मादिन्ना[53], विशाखा[54] अन्य प्रबुद्ध स्त्रियाँ थीं। खेमा[56] का योगदान भी उल्लेखनीय है। इन सभी स्त्रियों को अपनी योग्यता और प्रबुद्धता को दर्शाने का अवसर महाप्रजापति गौतमी के सतत् प्रयासों से मिला। स्त्रियों के प्रति सदेच्छा की भावना ही उनका सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान है जिसने तमाम स्त्रियों के निराश जीवन में आशा का संचार कर उनके जीवन को एक नयी दिशा दी और इतिहास में स्त्रियों को अपनी पृथक पहचान भी।

सन्दर्भ

1. रेइले, केविन, वर्ल्ड्स ऑफ हिस्ट्री : अ कम्प्रेहेन्सिव रीडर, वाल्यूम-1, न्यूयार्क, सेन्ट मार्टिन्स प्रेस।
2. थेरीगाथा बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा संघ प्रवास के दौरान लिखी गयी कविताओं का संकलन है। बौद्ध साहित्य में इसे सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय के नवें खण्ड के रूप में संकलित किया गया है। कविताओं की कुल संख्या 73 है। थेरवाद सम्प्रदाय से सम्बन्धित होने की वजह से इन भिक्षुणियों को थेरी कहा गया है। यह बौद्ध धर्म का प्राचीनतम सम्प्रदाय है।
3. चुल्लवग्ग, X, 1, 4
4. इन गाथाओं को ई. पू. 80 में संकलिप किया गया।
5. विनय पिटक, पृ. 272; विनय पिटक में कहा गया है कि चार कुलों-खत्तिय, ब्राह्मण, वेस्स और सूद्द– स्त्रियों ने संघ में प्रवेश लिया।
6. गणिकाओं के नाम अद्धाकाशी (थेरीगाथा-XXII), अभय की माँ (थेरीगाथा-XXIV), विमला (थेरीगाथा-XXXIX) और आम्बपाली (थेरीगाथा-LXVI) मिलते हैं।
7. संघ में प्रविष्ट ब्राह्मण स्त्रियों के तीन वर्ग मिलते हैं–
   (i) प्रभुत्वशाली परिवार– 7 स्त्रियाँ
   (ii) सामान्य परिवार– 9 स्त्रियाँ
   (iii) निर्धन परिवार– 2 स्त्रियाँ
8. महावग्ग, पए 54 चुल्लु वग्ग, X 17, 1 विनय पिटक के महावग्ग में कहा गया है कि अविवाहित स्त्रियों के लिये संघ में प्रवेश लेने से पहले माता-पिता की अनुमति अनिवार्य थी।
9. विनय पिटक, IV पृ. 334-35
10. थेरीगाथा– XIX
11. थेरीगाथा– LXIV
12. थेरीगाथा– LXXII
13. थेरीगाथा– LXIX
14. थेरीगाथा– XI पर भाष्य
15. थेरीगाथा– LVI पर भाष्य
16. थेरीगाथा– LXVII
17. थेरीगाथा– LXXIII
18. थेरीगाथा– पए XIV
19. थेरीगाथा– XXXVII
20. थेरीगाथा– XII
21. डेविड्स, मिसेज राइस; साज्म्स ऑफ अर्ली बुद्धिस्ट्स; पाली टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन, 1909, पृ. 48
22. थेरीगाथा– XLV पर भाष्य, देखें संदर्भ संख्या– 23

23. थेरीगाथा– XLV छंद संख्या– 102, 103
24. थेरीगाथा– LII
25. थेरीगाथा– XI
26. थेरीगाथा– XXI
27. मुत्ता ने अपने पति के लिये 'कुबड़ा' शब्द का इस्तेमाल किया है। सुमंगल की माँ ने अपने पति को 'पाशविक' कहा है।
28. थेरीगाथा– LV
29. थेरीगाथा– XVII पर भाष्य
30. थेरीगाथा– XLVII पर भाष्य
31. थेरीगाथा– XIX, 1, 4
32. थेरीगाथा– XVII, छंद-17
33. थेरीगाथा– I, छंद-1 पर भाष्य
34. उब्बिरी, थेरीगाथा– XXXIII; किसा-गौतमी, थेरीगाथा LXIII; पटचारा, थेरीगाथा- XLVII
35. थेरीगाथा– LXIII पर भाष्य
36. थेरीगाथा– XVIII, छंद संख्या-18
37. थेरीगाथा– XLIV, छंद संख्या-98
38. थेरीगाथा– LXII, देखें संदर्भ संख्या– 40
39. थेरीगाथा– LXVIII, छंद संख्या– 300, 302, 303
40. थेरीगाथा– LXVII, छंद संख्या– 204
41. चुल्लवग्ग, ग्ए 1, 4
42. थेरीगाथा– XLVI
43. विनय पिटक- III, पृ. 234-35
44. थेरीगाथा– LXIV, यद्यपि इस कविता में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। हॉरनर, आई.,बी., वुमन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, नई दिल्ली, 2007 (रिप्रिंट) मोतीलाल बनारसी दास, पृ. 155; मरकॉट, सूजॅन, द फर्स्ट बुद्धिस्ट वुमन, बर्कले, 1991, परालैक्स प्रेस।
45. संयुक्त निकाय, XVI; 10-11
46. विनट पिटक IV, पृ. 235-36
47. चुल्लवग्ग,X, 26, 1 एवं 2
48. थेरीगाथा– XL
49. विनयपिटक, IV, पृ. 235-36
50. विनयपिटक, IV, पृ. 210-220, दोतरफा शारीरिक आकर्षण, किसी भिक्षु से शारीरिक सम्पर्क (गले से घुटने के बीच), किसी भिक्षु के साथ एकांत स्थान पर प्रवास, किसी अपराध को छिपाना, सजा पाये किसी भिक्षु का अनुकरण, उत्तरदायित्वों को नजरअंदाज करना आदि कुछ ऐसे कारण थे जो संघ से निष्कासन की वजह बताये गये हैं। विनय पिटक ऐसे अनेक भिक्षुओं के संदर्भ देता है जो भिक्षुणियों के माध्यम से अपनी यौनेच्छा के शमन का प्रयास करते थे। सुन्दरीनंदा नाम की एक भिक्षुणी का उल्लेख विनयपिटक (IV, 216) में मिलता है जो गर्भवती हो जाने की वजह से संघ छोड़ने को बाध्य हुई।
51. थेरीगाथा– XXXIV पर भाष्य
52. थेरीगाथा– XLVII पर भाष्य
53. थेरीगाथा– XII पर भाष्य, अंगुत्तर निकाय, पए पृ. 25
54. थेरीगाथा– XIII पर भाष्य

55. थेरीगाथा– LII पर भाष्य

ख शोध पत्र में थेरियों के गीत साञ्म्स ऑफ अर्ली बुद्धिस्ट्स, मिसेज राइस डेविड्स, पाली टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन (1990) से लिये गये हैं।

ख शोध पत्र में थेरीगाथा के भाष्य धम्मपाल की कमेण्टरी से लिये गये हैं।

अन्य सन्दर्भ

1. द थेरीगाथा, संपादित, हरमन ओल्डेनबर्ग एवं रिचर्ड पिशेल, लंदन, 1883, पाली टेक्स्ट सोसाइटी, आक्सफोर्ड, यूनीवर्सिटी प्रेस।
2. वुमेन इन प्रिमिटिव बुद्धिज्म, आई. बी. हार्नर, नई दिल्ली, 2007 (रिप्रिन्ट), मोतीलाल बनारसी दास।
3. वुमेन एण्ड रिलिजन (वाल्यूम III), संपादित एमन एम. अहमद, इस्ताम्बुल, टर्की, 1998, हेनरिख बॉल फाउण्डेशन।
4. वुमन अंडर फुटस्टेप्स ऑफ बुद्धा, कैथरीन आर. ब्लैक स्टोन, नई दिल्ली, 2000, मोती लाल बनारसी दास।
5. वुमेन इन इण्डियन सोसाइटीज, संपादित, कुमकुम रॉय, नई दिल्ली, 2005, मनोहर।

अशोकः एक अनोखा सम्राट युद्ध से शांति की ओर.....

डॉ० दीपक कुमार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
इतिहास विभाग, एम.पी.सिन्हा साइंस कॉलेज, मुजफ्फरपुर

इतिहास के सबसे शक्तिशाली और ताकतवर योद्धाओं में से एक सम्राट अशोक मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य के पोते तथा मौर्य साम्राज्य के दूसरे शासक बिन्दुसार और माता सुभद्रांगी के पुत्र थे। अशोक का जन्म करीब 304 ई. पूर्व (संभावित) बिहार के पाटलिपुत्र पटना में हुआ था। अशोक विश्व के इतिहास के उन महानत्तम सम्राटों में अपना सर्वोपरि स्थान रखता है जिन्होंने अपने युग पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी तथा भावी पीढ़ियों जिनका नाम अत्यन्त श्रद्धा एवं कृतज्ञता के साथ स्मरण करती है। निःसंदेह उनका शासन काल भारतीय इतिहास के उज्ज्वलत्तम पृष्ठ का प्रतिनिधित्व करता है। अशोक में चन्द्रगुप्त मौर्य जैसी शक्ति, समुद्रगुप्त जैसी बहुमुखी प्रतिभा तथा अकबर जैसी सहिष्णुता थी।

सम्राट अशोक को विलक्षण प्रतिभा की वजह से ही वे बेहद कम उम्र में ही अपने पिता के राजकाज को संभालने लगे थे। वे अपनी प्रजा का भी बेहद ख्याल रखते थे। इसी वजह से वे अपने प्रजा के चहेते शासक भी थे। वहीं सम्राट अशोक की विलक्षण प्रतिभा और अच्छे सैन्य गुणों की वजह से उनके पिता बिन्दुसार भी उनसे बेहद प्रभावित थे। जब अशोक के बड़े भाई सुशीम अवन्ती की राजधानी उज्जैन के प्रांतपाल थे, उसी दौरान अवन्ती में हो रहे विद्रोह में भारतीय और यूनानी मूल के लोगों के बीच दंगा भड़क उठा, जिसको देखते हुए राजा बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजा, जिसके बाद अशोक ने अपनी कुशल रणनीति अपनाते हुए इस विद्रोह को शांत किया। इसके उपरान्त अशोक को अवंती प्रांत के वायसराय के रूप में भी नियुक्त किया गया था। वहीं इस दौरान उनकी छवि एक कुशल राजनीतिज्ञ योद्धा के रूप में भी बन गई थी।

अशोक 273 ईसा पूर्व के लगभग मगध के राजसिंहासन पर बैठा। सम्राट अशोक के राजा बनाए जाने को लेकर अशोक और उनके सौतेले भाईयों के बीच घमासान युद्ध हुआ। इसी दौरान सम्राट अशोक की शादी विदिशा की राजकुमारी शाक्या कुमारी से हुई। शादी के बाद उन्हें महेन्द्र और संघमित्रा नाम की संतानें भी प्राप्त हुई। कुछ इतिहासकारों के मुताबिक 268 ईसा पूर्व के दौरान अशोक ने अपने मौर्य साम्राज्य का विस्तार करने के लिए करीब 8 (आठ) सालों तक युद्ध लड़ा। उन्होंने न सिर्फ भारत और उपमहाद्वीपों तक मौर्य साम्राज्य का विस्तार किया, बल्कि भारत और इरान की सीमा के साथ-साथ अफगानिस्तान के हिन्दूकश में भी मौर्य साम्राज्य का सिक्का चलवाया। इसके अलावा अशोक ने दक्षिण के मैसूर, कर्नाटक और कृष्ण गोदावरी की घाटी में भी कब्जा किया। उनके साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र (मगधा, आज का बिहार) और साथ ही उपराजधानी तक्षशिला और उज्जैन भी। इस तरह अशोक का शासन धीरे-धीरे बढ़ता ही चला गया और उनका साम्राज्य उस समय तक का सबसे बड़ा भारतीय साम्राज्य बन गया।

अशोक का कलिंग युद्ध

अपने राज्याभिषेक के नवें वर्ष में अशोक ने कलिंग पर विजय प्राप्त की। रोमिला थापर का विचार है कि कलिंग उस समय व्यापारिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण राज्य था तथा अशोक की दृष्टि उसके समृद्ध व्यापार पर भी थी। कलिंग का प्राचीन राज्य

वर्तमान दक्षिणी उड़ीसा में स्थित था। मगध की सीमाओं से जुड़े हुए ऐसे शक्तिशाली राज्य की स्थिति के प्रति मगध शासक उदासीन नहीं रह सकता था। खारवेल के समय मगध को कलिंग की शक्ति का कटु अनुभव हुआ। सुरक्षा की दृष्टि से कलिंग का जीतना आवश्यक था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार कलिंग को जीतने का एक दूसरा कारण भी था। दक्षिण के साथ सीधो संपर्क के लिए समुद्री और स्थल मार्ग पर मौर्यो का नियंत्रण आवश्यक था। कलिंग यदि स्वतंत्र देश रहता तो समुद्री और स्थल मार्ग से होने वाले व्यापार में रूकावट पड़ सकती थी, अत: कलिंग को मगध साम्राज्य में मिलाना आवश्यक था। किंतु यह कोई प्रबल कारण नहीं प्रतीत होता क्योंकि इस दृष्टि से तो चंद्रगुप्त के समय से ही कलिंग को मगध साम्राज्य में मिला लेना चाहिए था। कौटिल्य के विवरण से स्पष्ट है कि वह दक्षिण के साथ व्यापार को बहुत महत्व देता था। विजित कलिंग राज्य मगध साम्राज्य का एक अंग हो गया। राजवंश का कोई राजकुमार वहाँ का वाइसराय (उपराजा) नियुक्त कर दिया गया। तोसली इस प्रांत की राजधानी बनाई गई। कलिंग युद्ध में काफी रक्तपात हुआ, हजारों लोग मारे गए। अशोक के तेरहवें शिलालेख में इस युद्ध के भयानक परिणामों का इस प्रकार उल्लेख हुआ है– 'इसमें एक लाख 50 हजार व्यक्ति बन्दी बनाकर निर्वासित कर दिये गये, एक लाख लोगों की हत्या की गयी तथा इससे भी कई गुणा अधिक मर गये।' युद्ध में भाग न लेने वाले ब्राह्मणों, श्रमणों तथा गृहस्थियों को अपने संबंधियों के मारे जाने से महान् कष्ट हुआ। सम्राट ने इस भारी नरसंहार को स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

कलिंग युद्ध में हुए नर-संहार तथा विजित देश की जनता के कष्ट से अशोक की अंतरात्मा को तीव्र आघात पहुँचा। युद्ध की भीषणता का अशोक पर गहरा प्रभाव पड़ा। अशोक ने युद्ध की नीति को सदा के लिए त्याग दिया और 'दिग्विजय' के स्थान पर 'धम्म विजय' की नीति को अपनाया तथा बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया।

अशोक का धम्म

अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिये अशोक ने जिन आचारों की संहिता प्रस्तुत की उसे उसके अभिलेखों में 'धम्म' कहा गया। 'धम्म' संस्कृत के 'धर्म' का ही प्राकृत रूपान्तर है परन्तु अशोक के लिये इस शब्द का विशेष महत्व है। वस्तुत: यदि देखा जाए तो यही धम्म तथा उसका प्रचार अशोक के विश्व इतिहास में प्रसिद्ध होने का सर्वप्रधान कारण है।

अशोक के धम्म में किसी देवता की पूजा अथवा किसी कर्मकांड की आवश्यकता नहीं थी। उन्हें लगता था कि जैसे पिता अपने बच्चों को अच्छे व्यवहार की शिक्षा देते हैं वैसे ही यह उनका कर्तव्य था कि अपनी प्रजा को निर्देश दें। वे बुद्ध के उपदेशों से भी प्रेरित हुए थे। ऐसी कई समस्याएँ थीं जिनके लिए उनमें संवेदना थी। उनके साम्राज्य में अलग-अलग धर्मो को मानने वाले लोग थे और इससे कई बार टकराव पैदा हो जाता था। जानवरों की बलि चढ़ाई जाती थी। दासों और नौकरों के साथ क्रूर व्यवहार किया जाता था। इसके अलावा परिवार में, पड़ोसियों के बीच भी झगड़े होते रहते थे। अशोक ने यह महसूस किया कि इन समस्याओं का निदान उसका कर्त्तव्य है। इसलिए उसने धम्म-महामात्त नाम के अधिकारियों की नियुक्ति की जो जगह-जगह जाकर धम्म की शिक्षा देते थे।

अशोक ने अपने प्रजा के लिए संदेश दिया कि लोग विभिन्न अवसरों पर अनुष्ठान करते हैं। उदाहरण के लिए जब वे बीमार होते हैं, जब उनके बच्चों का विवाह होता है, बच्चों के जन्म और जब यात्रा शुरू करते हैं तब वे तरह-तरह के अनुष्ठान करते हैं।

ये कर्मकांड किसी काम के नहीं।

इसके बदले यदि लोग दूसरी रीतियों को मानें तो वह ज्यादा फलदायी होंगी। ये अन्य प्रकार की रीतियाँ मतलब कि वे अपने दासों और नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार करें, बड़ों का आदर करें, सभी जीवों पर दया करें और ब्राह्मणों तथा श्रमणों को दान दें।

अपने धम्म की प्रशंसा या दूसरों के धम्म की निन्दा करना, दोनों ही बातें गलत हैं। हर किसी को दूसरे धर्म का आदर करना चाहिए। यदि कोई अपने धर्म की बड़ाई और दूसरों के धर्म की बुराई करता है तो वह वास्तव में अपने धर्म को ज्यादा नुकसान पहुँचा रहा है। इसीलिए हर किसी को दूसरे के धर्म के प्रमुख विश्वासों को समझने की कोशिश करते हुए उसका आदर करना चाहिए।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है "उनके धार्मादेश आज भी हमसे एक ऐसी भाषा में बात करते हैं जिन्हें हम समझ सकते हैं– और जिनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था। सभी बौद्ध ग्रंथ अशोक को बौद्ध धर्म का अनुयायी बताते है। अशोक के बौद्ध होने के सबल प्रमाण उसके अभिलेख हैं। राज्याभिषेक से संबद्ध लघु शिलालेख में अशोक ने अपने को बुद्धशाक्य कहा है। साथ ही यह भी कहा है कि वह ढ़ाई वर्ष तक एक साधारण उपासक रहा। अशोक का धम्म व्यावहारिक फलमूलक और अत्यधिक मानवीय था। इस धर्म के प्रचार से अशोक अपने साम्राज्य के लोगों में तथा बाहर अच्छे जीवन के आदर्श को चरितार्थ करना चाहता था। इसके लिए उसने जहाँ कुछ नई बातें लाकर बौद्ध धर्म में सुधार किया वहाँ लोगों को धर्म परिवर्तन के लिए कभी विवश नहीं किया।

अशोक का धम्म-प्रचार

बौद्ध धर्म ग्रहण करने के एक वर्ष बाद तक अशोक एक साधारण उपासक रहा और इस बीच उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए कोई उद्योग नहीं किया। इसके पश्चात् वह संघ की शरण में आया और एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक संघ के साथ रहा। इसी बीच उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए इतना अधिक कार्य किया कि उसे स्वयं यह देखकर आश्चर्य होने लगा कि बौद्ध धर्म की जितनी अधिक उन्नति इस काल में हुई उतनी इसके पूर्व कभी नहीं हुई। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार में अपने विशाल साम्राज्य से सभी साधानों को नियोजित कर दिया। उसके द्वारा किये गये कुछ उपाय पर्याप्त रूप से मौलिक थे। अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अपनाये गये साधानों को हम इस प्रकार रख सकते हैं–

(i) धर्म-यात्राओं का प्रारम्भ– अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार धर्म-यात्राओं से प्रारम्भ किया। वह अपने अभिषेक के दसवें वर्ष बोधगया की यात्रा पर गये। यह पहली धर्म यात्रा थी।

(ii) राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति– अशोक का साम्राज्य बहुत विशाल था। अत: यह एक व्यक्ति के लिए संभव नहीं था कि वह सभी स्थानों पर जाकर धर्म का प्रचार कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अशोक ने अपने साम्राज्य के उच्च पदाधिकारियों को भी धर्म प्रचार के काम में लगा दिया।

(iii) धर्म श्रावन तथा धार्मोपदेश की व्यवस्था– धर्म-प्रचार के उद्देश्य से अशोक ने अपने साम्राज्य में धर्मश्रवण (धम्म सावन) तथा धार्मोपदेश (धम्मानुसधि) की व्यवस्था करवाई।

(iv) धर्म-महामात्रों की नियुक्ति– अपने अभिषेक के तेरहवें वर्ष बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अशोक ने पदाधिकारियों का एक नवीन वर्ग बनाया जिसे धर्म-महामात्र (धम्ममहामात्त) कहा गया।

(v) दिव्य रूपों का प्रदर्शन– अशोक पारलौकिक जीवन में आस्था रखता था। उसने धर्म को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से जनता के बीच उन स्वर्गीय सुखों का प्रदर्शन करवाया जो मनुष्य को देवत्व प्राप्त करने पर स्वर्ग लोक में मिलते हैं।

(vi) लोकोपकारिता के कार्य– अपने धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अशोक ने मानव तथा पशु जाति के कल्याणार्थ अनेक कार्य किये। सर्वप्रथम पशु-पक्षियों की हत्या पर रोक लगा दिया गया। इसके पश्चात् उसने अपने राज्य तथा विदेशी राज्यों में भी मनुष्यों तथा पशुओं के चिकित्सा की अलग-अलग व्यवस्था करवाई।

(vii) धर्मलिपियों का खुदवाना– धर्म के प्रचारार्थ अशोक ने विभिन्न शिलाओं एवं स्तम्भों के ऊपर उसके सिद्धान्तों को उत्कीर्ण करवा दिया। ये लेख उसके विशाल साम्राज्य के प्रत्येक कोने में फैले थे।

(viii) विदेशों में धर्म-प्रचारकों को भेजना– अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ के लिए विदेशों में भी प्रचारकों को भेजा। दूसरे तथा तेरहवें शिलालेख में वह उन देशों के नाम गिनाता है जहाँ उसने अपने दूत भेजे थे। अशोक ने धम्म के विचारों को प्रसारित करने के लिए सीरिया, मिस्र, ग्रीस तथा श्रीलंका में भी दूत भेजे।

सिंहली अनुश्रुतियों-दीपवंश एवं महावंश के अनुसार अशोक के राज्य-काल में पाटलिपुत्र में बौद्ध धर्म की तृतीय संगीति हुई। इसकी अध्यक्षता मोग्गलिपुत्ततिस्य नामक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु ने की थी।

अशोक के अभिलेख

अशोक का इतिहास हमें मुख्यत: उसके अभिलेखों से ही ज्ञात होता है। उसके अभी तक 40 से भी अधिक अभिलेख प्राप्त हो चुके है जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक बिखरे पड़े हैं। जहाँ एक ओर ये अभिलेख उसकी साम्राज्य-सीमा के निर्धारण में हमारी मदद करते हैं, वहीं दूसरी ओर इनसे उसके धर्म एवं प्रशासन संबंधी अनेक महत्वपूर्ण बातों की सूचना मिलती है। सर्वप्रथम 1837 ई. में जेम्स प्रिंसेप (James Prinsep) नामक विद्वान ने अशोक के लेखों का उद्घाचन किया। अशोक के अभिलेखों का विभाजन निम्नलिखित वर्गो में किया जा सकता है–

(i) शिलालेख, (ii) स्तम्भलेख और (iii) गुहालेख

बृहद् शिलालेख (Major Rock-Edicts)

चतुर्दश बृहद् शिलालेख– ये अशोक की चौदह विभिन्न राजाज्ञायें (शासनादेश) है जो आठ भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त किये गये है।

शाहवाजगढ़ी– आधुनिक पाकिस्तान के पेशावर जिले की यूqiQजई तहसील में स्थित है। इसमें बारहवें के अतिरिक्त अन्य सभी लेख हैं।

मनसेहरा– पाकिस्तान के हजारा जिले में स्थित है। यहाँ से प्राप्त तीन शिलाओं में पहली पर प्रथम आठ शिलालेख, दूसरी पर नवें से बारहवां तक तथा तीसरी पर तेरहवां और चौदहवां लेख उत्कीर्ण है।

कालसी– उत्तर प्रदेश के देहरादून जिले में स्थित है।

गिरनार– गुजरात प्रान्त के काठियावाड़ा में जूनागढ़ के समीप गिरनार की पहाड़ी है। यहीं से रूद्रदामन तथा समुद्रगुप्त के लेख भी मिले हैं। अशोक का शिलालेख दो भागों में है जिनके बीच में उपर से नीचे तक एक रेखा खींची हुई है। पहले पाँच लेख बायी ओर तथा सात दायीं ओर उत्कीर्ण किये गये हैं। तीसरा लेख नीचे है जिसके दायी ओर चौदहवां लेख है।

धौली तथा जौगढ़– ये दोनों ही स्थान वर्तमान उड़ीसा के क्रमश: पुरी तथा गंजाम जिलों में स्थित है। धौली की तीन छोटी पहाड़ियों की एक श्रृंखला पर लेख खुदे है। जौगढ़ के लेख भी तीन शिलाखण्डों पर खुदे हुए हैं। दोनों प्रज्ञापनों में ग्यारहवें से तेरहवें तक लेख नहीं मिलते तथा उनके स्थान पर दो नये लेख खुदे हुए है जिनमें अन्तों (सीमान्तवासियों तथा जनपदवासियों) को दिये गये आदेश है।

एर्रगुडि– आन्ध्रा के कर्नूल जिले में स्थित है। यहाँ पत्थरों के छ: टीलों पर अशोक के शिलालेख एवं लघु शिलालेख उत्कीर्ण है। एर्रगुडि लेख में लिपि की दिशा दाये से बायें मिलती है जबकि अन्य सभी में यह बायें से दाये हैं।

सोपारा– महाराष्ट्र प्रान्त के थाना जिले में स्थित एक खण्डित शिला पर आठवें शिलालेख के कुछ भाग उत्कीर्ण है।

लघु शिलालेख (Minor Rock-Edicts)

पहले इन लेखों की मात्र तीन प्रतियाँ ही प्राप्त हुई जिन्हें उत्तरी प्रतियाँ कहा जा सकता है। किन्तु बाद में दक्षिण के कई स्थानों से भी यह प्राप्त हो गयीं। कर्नाटक प्रान्त के ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर तथा जटिंग रामेश्वर से जो लेख प्राप्त हुए हैं उनमें एक संक्षिप्त पूरक प्रज्ञापन है जिसमें धम्म का सारांश दिया गया है। कुछ विद्वान इसे द्वितीय लघु लेख (Second Minor Rock Edicts) कहते हैं। इस दृष्टि से अशोक के लघु शिलालेखों की संख्या दो हुई। इनका विभाजन उत्तरी और दक्षिणी प्रतियों में भी किया जा सकता है।

ये शिलालेख चौदह शिलालेखों के मुख्य वर्ग में सम्मिलित नहीं है और इस कारण इन्हें 'लघु शिलालेख' कहा गया है यह निम्न स्थानों से प्राप्त हुए है–

(i) रूपनाथ (मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले में स्थित)।

(ii) गुजर्रा (मध्यप्रदेश के दतिया जिले में स्थित)।

(iii) सहसाराम (बिहार)।

(iv) भब्रू (वैराट) (राजस्थान के जयपुर जिले में स्थित)।

(v) मास्की (कर्नाटक के रायचूर जिले में स्थित)।

(vi) ब्रह्मगिरि (कर्नाटक के चित्तलदुर्ग जिले में स्थित)।

(vii) सिद्धपुर (ब्रह्मगिरि के एक मील पश्चिम में स्थित)।

(viii) जटिंगरामेश्वर (ब्रह्मगिरि के तीन मील उत्तर पश्चिम में स्थित)।

(iv) एर्रगुडि (आन्ध्रप्रदेश के कर्नूल जिले में स्थित)।

(x) गोविमठ (मैसूर के कोपबल नामक स्थान के समीप स्थित)।

(xi) पालकिगुण्डु (गोविमठ से चार मील दूरी पर स्थित)।

(xii) राजुल मंडगिरि (आन्ध्र के कर्नूल जिले में स्थित)।

(xiii) हरौरा (उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में स्थित)।

सप्त स्तम्भ-लेख (Seven Pillar-Edicts)

इन राजाज्ञाओं अथवा प्रज्ञापनों की संख्या सात है जो छः भिन्न-भिन्न स्थानों में पाषाण स्तम्भों पर उत्कीर्ण पाये गये हैं। ये इस प्रकार है–

(i) दिल्ली टोपरा– यह सर्वाधिक प्रसिद्ध स्तम्भ लेख है। इस पर अशोक के सातोंलेख उत्कीर्ण हैं, जबकि अन्य पर केवल छः ही मिलते हैं।

(ii) दिल्ली मेरठ– यह भी पहले मेरठ में था तथा बाद में फिरोज तुगलक द्वारा दिल्ली में लाया गया।

(iii) लौरिया अरेराज– बिहार के चम्पारण जिले में है।

(iv) लौरिया नन्दनगढ़– यह भी चम्पारण जिले में ही स्थित है।

(v) रामपुरवा– चम्पारण, बिहार।

(vi) प्रयाग– यह पहले कौशाम्बी में था तथा बाद में अकबर द्वारा लाकर इलाहाबाद के किले में रखवाया गया।

लघु स्तम्भ-लेख (Minor Pillar-Edicts)

अशोक की राजकीय घोषणायें जिन स्तम्भों पर उत्कीर्ण है उन्हें साधारण तौर से 'लघु स्तम्भ लेख' कहा जाता है। ये निम्नलिखित स्थानों से मिलते हैं–

(i) सांची– रायसेन जिला, मध्यप्रदेश।

(ii) सारनाथ– वाराणसी, उत्तरप्रदेश।

(iii) कौशाम्बी– इलाहाबाद के समीप।

(iv) रूम्मिनदेई– नेपाल के तराई में स्थित।

(v) निग्लीवा (निगाली सागर)– यह भी नेपाल की तराई में स्थित है।

सांची– सारनाथ के लघु स्तम्भ लेख में अशोक अपने महामात्रों को संघ-भेद रोकने का आदेश देता है।

गुहा-लेख (Cave-Inscriptions)

दक्षिण बिहार के गया जिले में स्थित 'बराबर' नामक पहाड़ी की तीन गुफाओं की दिवारों पर अशोक के लेख उत्कीर्ण मिले है। इनमें अशोक द्वारा आजीवक सम्प्रदाय के साधुओं के निवास के लिये गुहा-दान में दिये जाने का विवरण सुरक्षित है। ये सभी अभिलेख प्राकृत भाषा में तथा ब्राह्मी लिपि में लिखे गये है। केवल दो अभिलेखों– शाहबाजगढ़ी तथा मानसेहरा की लिपि ब्राह्मी न होकर खरोष्ठी है। यह दाई से बाई ओर लिखी जाती है।

अशोक : एक प्रशासक के रूप में

चक्रवर्ती सम्राट अशोक विश्वप्रसिद्ध एवं शक्तिशाली भारतीय मौर्य राजवंश के महान सम्राट थे। अशोक में चन्द्रगुप्त मौर्य जैसी शक्ति, समुद्रगुप्त जैसी बहुमुखी प्रतिभा तथा अकबर जैसी सहिष्णुता थी। विजेता के रूप में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार उसने कलिंग के राज्य को आत्मसात् कर लिया। अशोक ने व्यक्तिगत रूप से इस युद्ध में भाग लिया था तथा सेना का संचालन किया था। प्रशासन के क्षेत्र में उसने अनेक सुधार किये। वे कभी भी अपने दैवी उत्पत्ति का दावा नहीं किये तथा अपने को जनता का सेवक ही समझते रहें। अपने छठें शिलालेख में वह राजत्व संबंधी अपना विचार इन शब्दों में व्यक्त करता है– "सर्वलोकहित मेरा कर्तवय है। सर्वलोकहित से बढ़कर कोई दूसरा कर्म नहीं है। मैं जो कुछ पराक्रम करता हूँ, वह इसलिए कि भूतों के ऋण से मुक्त होऊँ।"

अशोक एक महान् निर्माता भी था। बौद्ध परम्परा उसे 84 हजार स्तूपों के निर्माण का श्रेय प्रदान करती है। उसने कनकमुनि के स्तूप का संवर्धान करवाया था तथा बराबर पहाड़ियों को कटवाकर आजीवकों के लिये गुफाओं का निर्माण करवाया था। कश्मीर में श्रीनगर तथा नेपाल में देवपाटन नामक दो नगरों की स्थापना भी उसने करवाई थी।

वह पहला शासक था जिसकी उदार दृष्टि से संपूर्ण मानव समाज ही नहीं, अपितु सभी जीवधारी समान थे। जिस समय उसने कलिंग की विजय की थी, उसके पास असीम साधन एवं शक्ति थी और यदि वह चाहता तो उसे विश्व विजय के कार्य में लगा सकता था। परन्तु उसका कोमल हृदय मानव जाति के कल्याण के लिए द्रवित हो उठा और उसने शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचकर विजय कार्यो से पूर्णतया मुख मोड़ लिया। यह अपने आप में एक आश्चर्यजनक घटना है जो विश्व इतिहास में अपनी सानी नहीं रखती। उसने बौद्ध धर्म के उपासक स्वरूप को ग्रहण किया और उसके प्रचार-प्रसार में अपने विशाल साम्राज्य के सभी साधानों को लगा दिया।

इस प्रकार अशोक ने अपने अदम्य उत्साह से एक स्थानीय धर्म को विश्वव्यापी धर्म बना दिया। परन्तु इस धर्म के प्रति उसके अदम्य उत्साह ने उसे अन्य धर्मों के प्रति क्रूर अथवा असहिष्णु नहीं बनाया। उसने कभी अपने धर्म को बलात् किसी पर थोपने का प्रयास नहीं किया। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में वह शान्ति एवं सहिष्णुता का पुजारी था। अशोक ने ही सर्वप्रथम विश्व को 'जीओ और जीने दो' (sivमं दक स्मज वजीमते sivम) तथा राजनीतिक हिंसा धर्म विरूद्ध है का पाठ पढ़ाया। अशोक के पूर्व ऐसी नीति नहीं अपनाई गयी। उसने कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित लौह विजय के सिद्धान्त को उलट दिया। राधाकुमुद मुकजी के शब्दों में "अशोक इतिहास में शान्ति एवं विश्व-बन्धुत्व के अन्वेषकों में सर्वप्रमुख हैं। इस दृष्टि से वह न केवल अपने समय से अपितु आधुनिक समय से भी बहुत आगे था, जो अब भी इस आदर्श को कार्यान्वित करने के लिए संघर्ष कर रहा है।"

निष्कर्ष

ऐसा कहा जा सकता है कि विश्व इतिहास में अशोक का स्थान सर्वथा अद्वितीय है। सही अर्थो में वह प्रथम राष्ट्रीय शासक था। जब हम देखते हैं कि आज भी विश्व के देश हथियारों की होड़ रोकने तथा युद्ध की विभीषिका को टालने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहने के बावजूद सफल नहीं हो पा रहे हैं तथा मानवता के लिए परमाणु-युद्ध का गम्भीर संकट बना हुआ है, तब अशोक के कार्यो की महत्ता स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है। अशोक के उदात्त आदर्श विश्व शान्ति की स्थापना के लिए आज भी हमारा मार्गदर्शन करते हैं। स्वतंत्र भारत में सारनाथ स्तम्भ के सिंह-शीर्ष को अपने राजचिन्ह के रूप में ग्रहण कर मानवता के इस महान् पुजारी के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है।

संदर्भ

1. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति– कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 224, 225, 227, 240
2. प्राचीन भारत का इतिहास– द्विगेन्द्रनारायण झा, कृष्णमोहन श्रीमाली, पृष्ठ संख्या 181, 184, 191
3. हमारी अतीत–1, छठी कक्षा छब्म्ज्, पृष्ठ संख्या 79, 80
4. भारतीय इतिहास, भाग–1, 12वीं कक्षा– पृष्ठ संख्या 32, 34
5. विकिपीडिया

रीतिकाव्य में नारी चित्रण का सामाजिक पक्ष

खेमराज मेघवाल

शोधार्थी, हिंदी विभाग, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

आचार्य मनु ने नारी सम्मान और उसकी अस्मिता निरूपित करते हुए लिखा है –

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रोतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया:।
शोचन्ति जाययो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रेता वर्धते तहि सर्वदा।''[1]

महाभारत के शांतिपर्व में विवेचन है कि पत्नी पर ही पुरूष का सुख; घर, धन, कल्याणादि निर्भर है। उसकी धर्म, अर्थ, काम अर्थात् सर्वसिद्धि पत्नी पर ही आधारित है –

''धर्मार्थकामकालेषु भार्या पुस सहायिनी।
विदेशगमने चास्य सैव विश्वासकारिका।।''[2]

भारतीय परिवेश में वेद-पुराणादिक धार्मिक ग्रंथों में नारी के पतिव्रत स्वरूप ने खूब आदर-सत्कार पाया है। एकाध तलैया यदि परकियाओं के लिये छोड़ दें तो शेष समस्त महामीर पतिव्रता नारियों का ही मिलता है। अत: रीतिकाव्य का अधिकांश वर्ण्य विषय नैतिक, मर्यादित एवं सामाजिक आदर्शानुरूप निरूपित मिलता है चाहे श्रृंगारिकता के एकाध तंतु को टटोल कर इस काव्य को कितना ही कुरेदा गया हो।

भारत में विवाह संस्कार अति ही पावनतम सूत्र रहा है। यह केवल दिखावटी अथवा प्रस्तुत्य संस्कार ही नहीं बल्कि पावन कौटुम्बिक सूत्र है।

शशिप्रभा प्रसाद लिखती हैं ''भारतीय परिवेश के दाम्पत्य जीवन की पावनता, पति-पत्नी की एक दूजे के प्रति अनन्यता, सम्मान-सद्भाव एवं समर्पण भाव विश्वपटल पर सराहनीय रहे हैं। जाति-बिरादरी की मान-मर्यादा का ध्यान रखते हुए; गोत्र की कन्या को बहिन मानना और गोत्र टालते हुए विवाह करना आदि विवाहगत मर्यादाएँ हिंदुत्व की साख को नैरंतर्य प्रदान करते आए हैं।''[3]

महेन्द्रप्रताप सिंह बताते है कि ''प्राच्य विद्वानों के अनुसार नायिका भेद के माध्यम से प्रस्तुत किये गए भारतीय गार्हस्थ्य जीवन में पति-पत्नी के सम्बन्धों की ऐसी झाँकी मिलती है जो अन्य देश के साहित्य में दुर्लभ है।''[4]

रीतियुगीन समाज में नारी का वही मान-सम्मान था जो इतिहास प्रसिद्ध मिलता है। पर्दा-प्रथा, घूँघट प्रथा का प्रचलन नारी के मान-मर्यादा का ही उपादान रहा है न कि उनकी अस्मिता के अवगुँठन रूप में। ये उपादान नारी के प्रति गैर-मर्यादित वैचारिकता पर अंकुश अथवा उनके परिशमन रूप में व्याप्त रहे हैं।

अत: रीतिकाव्य की नारी पर 'सेक्सुअलिटी' परक अवधारणा थोपना मीमांसा जगत की स्तरीयता मात्र कही जा सकती है। नारी उन्मुक्ति का पैमाना माँसल श्रृँगारिकता तथा स्वच्छंदता में ही आँकना समुचित नहीं। रीतिकाव्य में श्रृंगार के अतिरिक्त भी नारी चित्रण एवं उसकी अस्मिता के कई अन्य मानी-मायने खोजे जा सकते है।

रीतिकाव्य को कोरा श्रृंगारिक काव्य रूप में निबद्ध दिखाने हेतु तद्युगीन नारी तथा सौंदर्यपरक उज्ज्वलतम अवधारणाओं को विद्रूपित दिखाने का यत्न शुक्ल परवर्ती काव्य-मीमांसा से आरम्भ होता है। मीमांसा के इस दौर ने रीतिकाव्य परिदृश्य में नारी उन्मुक्ति और तत्सम्बन्धी विमर्शीय कोण ढूँढने अथवा उभारने के निमित्त श्रृंगारिक भदेसपन और माँसल सौंदर्य उडेलने का यत्न जो किया है।

किसी भी युगीन साहित्य में नारी के कामिनी रूप की निंदा अवश्य मिल जाती है उसके भागिनी रूप की नहीं। भक्तिकाल में अध्यात्म स्तर पर नारी के सतीत्व रूप की अभ्यर्थना हुई है। रीतिकाव्य में यदि नारी का किंचित कामिनी रूप विवेचित है तो वह माँसल-अश्लीलता का प्रसारक-परिचायक नहीं बल्कि वह भी प्रेम-निरूपण का पावन संगम ही कहा जा सकता है।

रीतिकाव्य में शृंगारानुवर्ती रूप में मिलने वाले नारी चित्रण का प्रतिपाद्य यह कतई नहीं कि नारी व्यभिचारिणी अथवा भोग्या रूप में उभर आए। इस शृंगारिकता ने तो नारी को अपने अहमियत-अस्तित्व को उभारने और गैरज़दा स्थितियों के प्रबंधन की आधारभूमि प्रदान करने का महत्त कार्य किया है।

रीतिकाव्य का नारी चित्रण परक दृष्टिकोण संस्कृत जैसे पावनतम साहित्य से ग्रहित एवं अभिप्रेरित रहा है लेकिन तदर्थ चित्रण के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण कुछ पाश्चात्यानुवर्ती बन पड़ा है। स्वाभाविक ही है कि ऐसे दृष्टिकोण के रहते ऋजु एवं पावन वैचारिकता भी बंकिम एवं पतित नजर आने लगे। रीतिकाव्य के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसा ही घटित हुए चला है।

स्त्रीत्व की सामाजिक-साहित्यिक अन्विति के संदर्भ में सुधीश पचोरी ने लिखा है ''हम कह सकते हैं कि साहित्य का ज्यादातर कारोबार पुरूषों के पास ही था और शृंगार रस के केंद्रण के कारण नायिका भेद के प्रमुख विषय बनने के पीछे रसिक समाज की माँग भी रही। इसी प्रक्रिया में 'स्त्रीदेह' एक बड़ा विषय बनीं। कविता का 'एकल विषय' बनने के प्रक्रिया में ही स्त्रीदेह, उनकी देहभाषा और देह-इतिहास का निर्माण हुआ। इसमें निर्मित स्त्री, कवि के लिखने के बाद कवि के नियंत्रण से बाहर होती गई और फ़िर सम्पूर्ण विमर्श में बदल गयी। नायिका निर्माण में जितनी तरह की स्त्रियाँ बनीं, वे सामाजिक प्रक्रिया और सामाजिक सम्बन्धों में बनीं और नए सामाजिक मूल्य बनाने वाली हुई। साहित्य में उनकी सत्ता स्थापित हुई। वे एक साहित्य-विषय के रूप में अनिवार्य हो उठीं''।[5]

इस प्रकार पचोरी जी ने रीतिकालीन स्त्री की अस्मिता निरूपित करने का कार्य किया है। इस अस्मिता हेतु तद्युगीन स्त्री द्वारा किये गए प्रयासों पर भौंहे सिकोड़ने वाले सुचितावादियों को वे आड़े हाथों लेते है।

गायत्री आर्य के अनुसार ''सुधीश पचौरी अपनी पुस्तक में एक तरफ रीतिकाल का पुनर्पाठ करते हैं दूसरी तरु उन कारणों को भी खोजने की कोशिश करते हैं जिनके चलते रीतिकाल को हिंदी में उपेक्षित रखा जाने लगा। वे नवजागरण कालीन विमर्श और राष्ट्रवादी उत्थान से जुडी हिंदुओं की सुचितावादी मानसिकता को रीतिकाल को एक घोर पवनशील अश्लीलता से भरा युग उकराने के लिए जिम्मेदार मानते हैं। साथ ही रीतिकालीन नायिकाओं की छवि को 'पवित्र हिंदू स्त्री' की छवि से न सिर्फ अलग बल्कि निम्नतर और अनैतिक माने जाने पर भी आपत्ति व्यक्त करते हैं।''[6]

रीतियुगीन राजनैतिक परिवेश में चाहे अस्थिरता एवं मादकता रही हो, वह एक सीमित परकोटे के भीतर ही। तद्युगीन काव्य मर्मज्ञों का उद्देश्य दरबार में वाहवाही लूटना मात्र ही नहीं बल्कि लोकनिष्ठा अर्जित करना भी रहा होगा। इस अर्थ में जहाँ एक ओर वे अपने दरबारों की मन:स्थिति को परितुष्ट कर रहे थे वही दूसरी ओर लोकानुभूतिपरक एवं लोकानुरंजक शैली में लोकजीवन को भी श्रेष्ठ, पावन एवं सदाचारी रूप में निरूपित करने में लगे हुए थे। विदेशी यात्रियों के यात्रावृत्तांत इस बात की पुष्टि करते मिलते हैं जिनका व्यंजनार्थ स्वत: ही दरबारी और लोकजीवन की तुलना को प्रेरित किये देता है।

तात्पर्य यह कि रीतिकाव्य कितना ही शृंगारी एवं आलंकारिक रहा हो; वह नारी के मर्यादित रूप सौंदर्य तथा नायिका के स्वकीया रूप आदि को समर्पित रहा था। परकीया निरूपण तो तद्युगीन कहें अथवा किसी भी युगीन(नारी चित्रण का सहचर हो; उसका अंशत: एकांश इंगितार्थ ही।

दीपक रूहानी के अनुसार 'रीतिकालीन' काव्य में नारी के अस्तित्व को लेकर एक विशिष्ट बात मिलती हैं कि रीतिकवियों ने जितने प्रेम-प्रसंगों का वर्णन किया है, उनमें एक नायक को तो अलग-अलग नायिकाओं से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने वाला दिखाया गया है, परन्तु बहुत कम नायिकाओं को अलग-अलग नायकों से सम्बद्ध माना गया है।

कहने का आशय कि 'व्यभिचारी भाव पुरूष मानसिकता में है, नारी की मानसिकता में नहीं। यदि किसी प्रकार यह सिद्ध भी होता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियाँ भोग-विलास की सामग्री थीं तो यह मानसिकता पुरूषजन्य ही थी अर्थात् पुरूषों ने ही नारियों को विलास की विषय-वस्तु समझा; नारियों ने स्वयं को इस रूप में नहीं प्रस्तुत किया था।''[7] रीतिकालीन कवियों द्वारा सृजित उक्त सम्बन्धी संदर्भ- उदाहरणों के अनुशीलन से उक्त विवेचन की पुष्टि हो जाती है।

प्राय: सभी रीतियुगीन कवियों ने तद्युगीन नारी का सौंदर्यार्थ अथवा उसके अस्तित्वोद्रेक के उद्देश्य सेशृंगारिक चित्रण किया है तो साथ ही उसकी पावन एवं मर्यादित सामाजिक पृष्ठभूमि का अंकन करते हुए तद्युगीन समाज में उसकी साहचर्यमूलक स्थिति भी पूरी निष्ठा के साथ निरूपित की है।

तद्युगीन समस्त कवि शृंगार के काव्य परम्परा का अनुषंगी होने के चलते नारी का संदर्भानुरूप शृंगारिक एवं परकीय चित्रण दर्शाते हैं लेकिन अंतत: उन्हें काव्य सृजन का परितोष स्वकीय चित्रण में ही हो पाया है। वे तद्युगीन समाज में व्याप्त स्वकीय प्रेम के ही पक्षधर एवं अनुगामक मिलते हैं और उसी का संदेश प्रेषित किये चले हैं। उनका परकीय प्रेमवर्णन तो स्वकीय प्रेम की श्रेष्ठतार्थ हो।

रीतियुग में नारी का स्वकीय (पतिव्रता) अथवा सामाजिक पक्ष अति ही पावनतम रहा है। तद्युगीन नारी का शृंगारिक चित्रण काव्य रूढ़ि मात्र था। समाज में सर्वथा-सर्वत्र स्वकीय रूप ही स्वीकार्य एवं व्यहृत था।

विष्णुप्रसाद पाण्डेय के अनुसार ''रीतिकालीन काव्यानुशीलनोपरांत स्पष्ट होता है कि रीतियुगीन नारी का कार्य प्रात: दही से माखन तथा तक्र बनाना होता था। गृह की सफाई, साज-सज्जा, स्वच्छता तथा पवित्र बनाए रखना उनके नित्य कर्म थे। गोबर से घर को लीपती-पोतती तथा दैदीप्यमान बनाती थीं। तदुपरांत कूप, नदी तथा सरोवर से जल भरने जाती थीं। स्नान करके परिवार के लिए भोजन निर्मित करती थीं। बच्चों का पालन-पोषण करना उनके समस्त कार्यों में प्रमुख कार्य था। सायंकाल गाय दुहना, बिछौना बिछाना, सास-ससुर तथा वृद्धजनों की सेवा सुश्रूषा उनका कार्य होता था। सायंकाल भोजनादि कराने के बाद गीत गाना, लोकवार्त्ता,

चर्चा-परिचर्चा, सखियों के साथ अनेक प्रकार की मनोरंजक क्रीडाएँ करना, ऋतुओं के अनुकूल व्रतादि-उपवास करना इनका दैनिक कार्य था।''[8]

इस प्रकार विविध सामाजिक संस्कारों-पर्वोत्सवों में सजधज कर शीलवती रूप में उमंगित-उत्साहित हो भाग लेना इत्यादि तद्युगीन नारी अस्तित्व-अस्मिता उद्रेक एवं विभावन के आयाम रहे हैं। स्वकीया नायिका की प्रतिष्ठा का मूल आधार है-पतिव्रत और शील। सामाजिक मर्यादाओं के परिपालन हेतु पतिव्रता नारी लाजवंती रूप में रहती थीं। परम्परानुसार रीतिकाव्य में उक्त बात के उल्लेख मिलते हैं।

बच्चनसिंह ने लिखा है ''स्वकीया प्रेम में पति सब कुछ है। वह प्रेमी, भर्त्ता, सुख-सौभाग्य और जीवन है। वह केवल वैवाहिक बंधनों के कारण पति से प्रेम नहीं करती बल्कि अपने अंत:करण की पुकार सुने चलती है और पतिव्रत धर्म का परिपालन अपना पहला धर्म मानती है। वह मन, वचन और कर्म से पति के अनुकूल आचरण पर खरा उतरना ही अपना धर्म मानती है। रीतिकालीन कवियों ने पति प्रेम के इसी आदर्श को उपस्थित किया है।''[9]

स्पष्टत: कहा जा सकता है कि रीतिकवियों ने अपनी शास्त्रीय निबद्धता को श्रेष्ठ अथवा सरस रूप में उभारने के हेत अपने अधिकांश उदाहरण नायिका के परकीय विवेचन के रूप में उठाए हैं अस्तु यह कार्य उनका सायास प्रक्लिन मात्र ही जबकि नायिका का स्वकीया रूप अनायास ही रीतिकाव्य में सर्वत्र व्यवहार्य-व्यहृत मिलता है। रीतिकाव्य में समस्त पारिवारिक, गार्हस्थ्य एवं दाम्पत्य परिवेश तथा प्रेम-निरूपण इत्यादि परक विवेचन सर्वत्र ही स्वकीया नायिका आधृत होकर विवेचित मिलता है। तभी तो विलासितापूर्ण उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति तथा नारी के प्रति सामंतीय दृष्टिकोण के होते हुए भी इस प्रवृत्ति में गार्हस्थिक प्रेम की व्यापक स्वीकृति देखने को मिलती है।

नगेन्द्र द्वारा संदर्भित पंक्तियों यथा -

''छोड़ी आपनो भौन तुम भौन कौन को जात।''

अथवा

''ते धनि जे ब्रजराज लखें, गृहकाज करें अरूलाल संभारे।''[10]

-के द्वारा स्वकीया प्रेम की व्यापक स्थापना मिलती है। उक्त प्रकार के विवेचन के उपरांत यदि हम रीतियुगीन कवियों द्वारा तदर्थ निरूपणार्थ उदाहरण- दृष्टांतों की ओर जाएँ तो पाते हैं कि रीतिकाव्य स्वकीया निरूपण और नारी के सामाजिक संदर्भ के निरूपणार्थ समर्पित मिलता है।

रीतिकाल के आचार्य केशवदास ने ग्रह की सुख-समृद्धि दाम्पत्य प्रेम पर निर्भर बताई है। पति-पत्नी दोनों ही एक-दूजे के बिना अधूरे हैं-

''पतिनि पति बिनु दीन अति, पति पतिनि बिनु मंद।''[11]

केशवदास नारी के बिना न घर को स्वीकार करते हैं न वन को। उनके अनुसार नारी के बिना दोनों ही धर्महीन हैं -

''घरनी बिन घर जो रहे, छाँडे धर्म-अधर्म।
बनिता तजि जो जाइ वन, वन के निष्फल कर्म।।''[12]

कविवर देव ने पतिव्रता नारी का चित्रण अति ही स्वाभाविक एवं सम्मानीय रूप में किया है -

''देव पतिव्रत पाटी पढी, न कढी पिय रेहिय पैढी।
लाज करै गुरु लौगन मैं, अस काज करै घर में घर बैठी।''[13]

किसी अज्ञात कवि के अनुसार पतिव्रता नारी पति के सुख में ही अपने सभी सुखों का सार निहित बताती है -

''पति को दुख लौं प्रिय दुख होई। पितु का राज्य काम केहि सोई।।
सौ तुम दुखघन सहौ अपारा। तो पति सुख हमार सब छारा।।''[14]

कवि भिखारीदास ने रीतियुगीन नारी के पतिव्रत और गार्हस्थिक सौरस्यता को इस प्रकार दर्शाया है -

''पान औ खान तें पी कौं सुखी लरौ, आप तखैं कछु खाति है।
दाराजू केलि कली में डीठो विलोकति बोलति औ मुसकाति है।''[15]

नारी चित्रण के सामाजिक पक्ष के संदर्भ में मध्यकाल की अनुरागवती गृहवधू का जो मार्मिक और मोहक चित्रण मतिराम ने किया है, अति ही सहज एवं श्रेष्ठ है। अत: रीतिकवियों की उक्त भाँति की अन्तर्दृष्टि हमें रीतिकाव्य के पुनर्मूल्यांकन को प्रेरित करती है।

नारी के सामाजिक चित्रण में मतिराम का कविकर्म मर्यादाउत्तम कहा जा सकता है जब हम उनके द्वारा चित्रित नारी के अनन्य-एकनिष्ठ प्रेम की ओर दृष्टिपात करते हैं -

''भलो एक मन ही गह्यो सज्जनता के नेम।
दृगनि मारि घायल कियो, तासों बाँधत प्रेम।।''[16]

इसी प्रकार मतिराम ने सामाजिक आदर्श एवं मर्यादाओं का दिग्दर्शन अति ही भावबोध के साथ कराया है। उनके भीतर सामाजिक, पारिवारिक, ग्राम्य भावबोध इतना प्रबल था कि वे शील संकोच अथवा सामाजिक लज्जाशीलता के भरसक सुंदर चित्र उकेरे हुए हैं। निम्नवर्णित पंक्तियों में उन्होंने स्वकीया नवौढ़ा की लज्जाशीलता का उद्रेक किया है –

''साथ सखी के नई दुलही को भयौ हरि को हिय हेरि हिमंचल।
आय गए मतिराम वहाँ घरू जति इकंत, अनन्द तें अंचल।
देखत ही नंदलाल को बाल के पूरि रहे अंसुनि दृगंचल।
बात कहीं न गयी सु रही गहि हाथ दुहुँ से सहेली को अंचल।''[17]

कवि पद्माकर का एक छंद जिसमें स्वकीया नायिका का मान-सम्मान एवं सामाजिक प्रतिष्ठा चित्रित है। इससे रीतियुगीन नारी का सामाजिक पक्ष उदात्त रूप में उभर आता है –

''शोभित स्वकीया गुन गन गनती में वहाँ,
तेरे नाम ही एक रेखा रेखियतु है।
कहै पद्माकर पगी यों पति प्रेम ही में,
पद्मिनि तोसी तिया तू ही वेखियतु है।
सुबरन रूप वैसो तैसो शील सौरभ है,
याही ते तिहारौ तनु धनु लेखियतु है।
सोने में सुगंध नाहीं, सुगंध में सुन्यो न सोनो,
सोनो और सुगंध तामें दोनों देखियतु है।''[18]

पद्माकर ने रीतिकालीन गृहिणी की मर्यादानुरूप दिनचर्या का उल्लेख किया है जिससे तद्युगीन नारी की पारिवारिक-सामाजिक निष्ठा एवं पातिव्रत्य का सहज ही आकलन हो आता है –

''खान पान पीछे करती, सोवत पिछले छोर।
प्रान पियारै तैं प्रथम जगति भावति भोर।।''[19]

रीतिमुक्त काव्य में हुए नारी चित्रण पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि इन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण लौकिक स्तर से अलौकिक स्तर की ओर बढ़ता हुआ मिलता है।

कवि घनानंद ने ब्रजमंडल में एक कन्या के जन्म पर उत्सव मनाने तथा कन्या को भाग्य की देवी मानकर लोगों को बधाई गीत गाते दर्शाया है –

''कीरति भई जगत उजियारो भाग भरी राधा के जाएँ।
नित-नित सुख सोहिले दुहु घर आनंदघन भी जे गुण गाएँ।।''[20]

कवि आलम ने रूक्मिणी के जन्म पर गाए गए गीतों का उद्धरण देते हुए पुत्र-पुत्री को एक समान दर्शाया है –

''ज्योतिष रूकुमिनी नाम परगासा। पुत्री-पुत्र एक सम लेखहिं।।''[21]

इसी प्रकार रीति स्वच्छंद कवि ठाकुर ने एक छंद में परकीय प्रेम में होने वाली बदनामी(लोगों द्वारा अंगूली उठाते हुए कानफूसी आदि के बारे में बताते हुए स्वकीय प्रेम की प्रतिष्ठापना की है –

''छोड़ि पतिव्रत प्रीति करि निबहीं नहीं बाण सुनी हम सोऊ।
मौनु भए रहनेई परो सहनेई परो जो कहै कहू कोऊ।
साँची भई कहनावति वा कवि ठाकुर कौन सुनीहति जोऊ।
माया मिली न राम मिले दुविधा में गए सजनी सुनि दोऊ।।''[22]

उक्त प्रकारेण ही कवि ठाकुर ने परकीय प्रेम में होने वाली बदनामी तथा लोगों द्वारा मारे जाने वाले तानों और हेयदृष्टि के चलते ऐसे प्रेमी को जीते हुए भी मृत समान बताया है –

''दान दया बिन दीबो कहा अरू लीबो कहा जब आपुतैं माँगो।
प्रान गए रस पीबो कहा पग छीबो कहा उर प्रेम न जागो।
नारि कहा जेहि लाज तजि गुरू कीबौ कहा भ्रम दूरि न भागो।
वा जग में फिर जीबो कहा जब आँगुरी लोग उठावन लागो।''[23]

इस प्रकार प्राय: सभी रीतिकवियों ने स्वकीय और सामाजिक संदर्भ में नारी को पावनतम दृष्टिकोण में चित्रित किया है। परदेश जाते समय स्वकीय प्रेम के प्रति सामाजिक मान्यताओं को इन कवियों ने भली भाँति निर्धारित किया है।

अत: दाम्पत्य जीवन की निष्ठा एवं सौरस्यता ने भारतीय सामाजिक तथा पारिवारिक संघटना में उत्तमोत्तम भूमिका निभाई है। तद्युगीन संयुक्त परिवार की गार्हस्थ्य जीवन हेतु अनुकूलता के संदर्भ में शशिप्रभा प्रसाद ने लिखा है ''भारतीय परिवार का संगठन

और जीवन में महत्त्व संसार के अन्य देशों से अधिक सुगठित और व्यापक है। नैतिक आदर्शो ने स्त्री और पुरूष दोनों के लिए गृहस्थ जीवन को एक आदर्श संस्था माना है। अत: सामाजिक कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए परिवार आवश्यक था।''[24]

रीतिपरवर्ती आलोचकों द्वारा रीतिकाव्य-निहित श्रृंगारिकता के बहाने इसे हेय निर्धारित करने के प्रयासों के खंडन स्वरूप गायत्री आर्य ने सुधीश पचोरी की रचना ''रीतिकाल: सेक्सुअलिटी का समारोह' के समीक्षण के अनन्तर कई तर्क प्रस्तुत कर; तद्युगीन श्रृंगारिक निरूपण को पुरूष मानसिकता का प्रतिफल तथा रीतियुगीन कवियों की 'फैंटेसी' मात्र ठहराया है।

अपनी इस पुस्तक समीक्षा में गायत्री आर्य लिखती हैं ''रीतिकाल को स्त्री सेक्सुअलिटी का समारोह तब जरूर माना जाता, जब वहाँ लेखिकाओं के मनचाहे नायक वर्णन होते; स्त्रियों के दरबार में होते, रानियों के आदेश से होते।''[25]

अत: रीतियुगीन नारी चित्रण श्रृंगारिकता का उद्भावन नहीं बल्कि तद्युगीन आंशिक फैंटेसी मात्र था। जो परवर्ती आलोचना तले तिल का ताड़ बनता गया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रीतियुगीन भारतीय समाज में गरीब नारी की स्थिति-परिस्थिति जैसी भी रही हो; सामाजिक-मांगलिक संस्कारों को उसने बड़ी ही तत्परता एवं उमंग के साथ कर्त्तव्यपरायण रहकर निबाहा। तीज-त्योहारों, उत्सवों पर उसका सहज सौंदर्य, भारतीय मर्यादाओं के प्रति उसका समर्पण और लज्जावनत स्वरूप देखते ही बनता है। इस भाँति के पावन आचरण से शोभित नारी; यहाँ की पारिवारिक संघटना; दाम्पत्य जीवन की सुघड़ता, पावनता एवं नैतिकता विश्व पटल पर सराहनीय रहे हैं। रीतियुगीन घर-परिवार की प्रतिष्ठा नारी के ही नाम थी। समाज द्वारा निर्धारित कौटुम्बिक मर्यादा एवं मान्यताओं को गार्हस्थ्य जीवन के लिए जरूरी समझा जाता था। नारी का यही सौभाग्यवती स्वरूप रीतियुगीन नारीत्व की पहचान रही है।

(थ्ववजदवजमे)

1 दर्शनानंद सरस्वती : मनुस्मृति टीका, पुस्तक मंदिर मथुरा, संवत् 2029, 3/56-57
2 महाभारत (शांतिपर्व) (वेदव्यास प्रणीत) - गीताप्रेस गोरखपुर, 145/13
3 शशिप्रभा प्रसाद : रीतिकालीन भारतीय समाज, लोकभारती, प्रकाशन-इलाहाबाद पृ. 25
4 महेन्द्रप्रतापसिंह : रीतिकालीन हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, पृ. 232
5 सुधीश पचौरी : रीतिकाल : सेक्सुअलिटी का समारोह, वाणी प्रकाशन पृ. 82
6 गायत्री आर्य : (रीतिकाल: सेक्सुअलिटी का समारोह : जब अश्लील जैसा कुछ नहीं था) सत्याग्रह (ई-जर्नल) - 2017
7 दीपक रूहानी :'रीतिकाव्य में नारी-निरूपण पर कुछ टिप्पणी (रीतिकाव्य : मूल्यांकन के नय आयाम (सं.) प्रभाकर सिंह) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2016 पृ. 142
8 विष्णुप्रसाद पाण्डेय : हिंदी रीतिकालीन काव्य की सामा. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (शोध प्रबंध) पृ. 1135
9 बच्चनसिंह : रीतिकवियों की प्रेमव्यंजना, लोकभारती प्रका. इलाहाबाद पृ. 326
10 नगेन्द्र : हिंदी साहित्य का वृहत्त इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा-वाराणसी पृ. 307
11 आनंद प्रकाश दीक्षित (सं.) केशव दास, कमल प्रकाशन, इंदौर, पृ. 4
12 वही पृ. 41
13 लक्ष्मीधर मालवीय (सं.) देवग्रंथावली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस-दिल्ली
14 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं.) दास ग्रंथावली, वाणी विद्याभवन ब्रहनाल बनारस
15 वही
16 कृष्ण बिहारी मिश्र (सं.) मतिराम ग्रंथावली, ना. प्र. सभा-वाराणसी पृ. 374
17 वही, पृ. 206
18 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं.) पद्माकर ग्रंथावली, ना. प्र. सभा - वाराणसी पृ. 82
19 वही, पृ. 82
20 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं.) घनानंद ग्रंथावली, ना. प्र. सभा - काशी
21 विद्यानिवास मिश्र (सं.) आलम ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली
22 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं.) ठाकुर ग्रंथावली, ना. प्रचारिणी सभा वाराणसी पृ. 22
23 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं.) ठाकुर ग्रंथावली, ना. प्रचारिणी सभा वाराणसी पृ. 45
24 शशिप्रभा प्रसाद : रीतिकालीन भारतीय समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 27
25 गायत्री आर्य : (रीतिकाल : सेक्सुअलिटी का समारोह : जब अश्लील जैसा कुछ नहीं था) सत्याग्रह (ई-जर्नल) 2017.

कुपोषण की समस्या का विशुध अध्ययन

डॉ० नीलम कुमारी

पोस्ट रिसर्च स्कॉलर, गृह-विज्ञान विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

किसी भी राष्ट्र का विकास वहाँ के समुदाय खासकर महिलाओं और बच्चों के अच्छे स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। यदि स्वास्थ्य के जड़ मजबूत है तो विकास के सभी स्तम्भ खुद-ब-खुद मजबूत हो जाते हैं। कुपोषण व्यापक और सूक्ष्म पोषकों के असंतुलन को दर्शाता है जो कि अनुपयुक्त भोजन तथा इसके अपर्याप्त जैविक उपयोग के कारण हो सकता है। शैशवावस्था और बचपन से कम कम खान-पान के कारण कुपोषण होती है जिसका परिणाम होता है कमजोर संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास, खराब स्कूल प्रदर्शन और बाद के जीवन में कम उत्पादकता। इसलिए कुपोषण सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए बहुत बड़ा खतरा है क्योंकि यह पाँच वर्ष से कम आयुवर्ग के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए सबसे बड़ी बाधा है। 2006 में सभी को स्वच्छ जल प्रदान करना भारत सरकार की योजना का मुख्य लक्ष्य था तथा 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को कुपोषण के मौजूदा स्तर को घटाकर आधो तक लाना तथा महिलाओं एवं बच्चों में रक्त अल्पता को घटाकर 50 प्रतिशत तक लाना साथ ही साथ ज्यादा से ज्यादा गरीबों के पोषणीय परिणामों में कैसे सुधार लाया जाए ताकि बच्चों को कुपोषण से बचाया जा सके इसकी भी जाँच की जानी चाहिए। डॉ. प्रमिला वर्मा एवं कान्ति पाण्डेय के अनुसार कुपोषण वह स्थिति है जिसमें भोज्य तत्वों के गुण और परिणाम में अपर्याप्तता होती है दूसरे शब्दों में जब भोज्य पदार्थ इस प्रकार का हो जिससे कि पोषक तत्वों की आपूर्ति शरीर की आवश्यकता से कम अथवा आवश्यकता से अधिक हो तो वह भोज्य पदार्थ शरीर के लिए हानिकारक बन जाता है इस तरह के आहार व्यवस्था के परिणाम को कुपोषण कहा जाता है।

मुख्य शब्दः अल्पपोषण, अतिपोषण, मानसिक विकास, पौष्टिकता, मानसिक विकार, कुपोषण

प्रस्तावना

कुपोषण से तात्पर्य उत्तम पोषण की विपरीत दशा से है। उत्तम पोषण को दूसरे शब्दों में सुपोषण भी कहा जाता है। सुपोषण के अन्तर्गत भोजन में शरीर की पोषण सम्बन्धी सभी आवश्यक तत्वों की पूर्ति भलीभाँति होती है, कुपोषण में आवश्यक तत्वों की पूर्ति उचित मात्रा में नहीं होती है। श्रीमती एस0पी0 सुखिया के अनुसार, त्रुटिपूर्ण आहार जिसमें पोषक तत्व आवश्यकता की दृष्टि से कम या अधिक मात्रा में रहता है, कुपोषण का कारण होता है।

स्वीटर एण्ड क्रौली ने अनुसार *Malnutrition, a word that evokes mental images of starving children or emaciated adults, is actually a b general term indicating a deficit, excess, or imbalance of one or more essential nutrients.*

कुपोषण शब्द का उपयोग कैलोरी की कमी या आधिक्य के लिए भी किया जाता है। सामान्यता, कुपोषण पोषक तत्वों या कैलोरी की कमी या दोनों की कमियों के कारण, पहचान में आने वाले व्याधियों को इंगित करता है।

भावना सबरवाल के अनुसार *"Malnutrition at its fundamental biologic level is inadequate supply of nutrients to the cell. A lack of essential nutrients at cellular level however, isthe result of a complex web of factors: psychologic, personal, social, cultural, economic, political and educational."*

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कुपोषण शरीर में, शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्वों या कैलोरी या दोनों की कमी या दोनों के आधिक्य की स्थिति का परिचायक है। इसके अन्तर्गत दोनों तरह के कुपोषण–

1. अतिपोषण, जिसमें मनुष्यों को आवश्यकता से ज्यादा पोषक तत्व प्राप्त होते आते हैं।
2. अल्पपोषण जिसमें मनुष्यों को आवश्यकता से कम पोषक तत्व प्राप्त होते आते हैं। दोनों तरह के कुपोषण शरीर के लिए हानिकारक एवं खतरनाक होते हैं और कभी-कभी इनके कारण मृत्यु भी होजाती है। कुपोषण केवल बच्चों में ही नहीं होता है बल्कि कुपोषण मनुष्य के पूरे जीवन काल में कभी भी हो सकता है। इसे नीचे दिये गये चित्र से समझा जा सकता है।

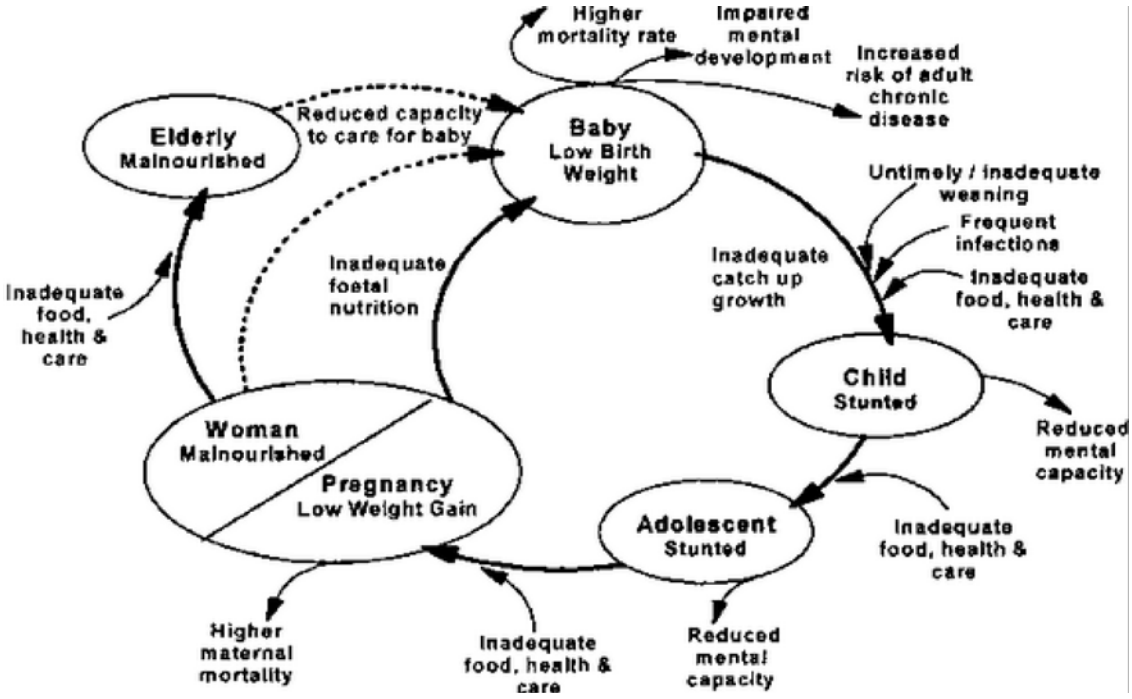

अंग्रेजी के मशहूर कवि वड्र्सवर्थ का कहना है कि "बच्चे देश का भविष्य है।" अपने इस कथन से वह दुनिया के सामने यह संदेश देना चाहते थे कि बच्चे के व्यक्तित्व की पहचान बचपन से ही होने लगती है। इसलिए यह जरूरी है कि हम अपने बच्चे को स्वस्थ वातावरण उपलब्ध कराये ताकि उन्हें विकास के सम्पूर्ण अवसर मिल सके आमतौर पर यह धारणा है कि तीसरी दुनिया के कई देश जिसमें भारत भी शामिल है, इनमें बच्चों का बीमार पड़ना या उनकी मृत्युदर जापान, अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों की अपेक्षा अधिक है। जब हम विकसित व विकासशील दोनों वर्गों में शिशुओं में रोग उत्पन्न होने वाले कारकों बड़ी संख्या में होने वाली मृत्युदर का व्यापक अध्ययन करते हैं, तो पाते हैं कि इसके पीछे मुख्य कारण है कुपोषण। कुपोषण के कारण ही बच्चे विभिन्न संक्रमण से ग्रस्त होते हैं। यही वजह है कि डायरिया और तपेदिक जैसी बीमारियों के कारण मृत्युदर बढ़ रही है। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव श्री कोफी अन्नान ने सन् 1998 में एक विश्वस्तरीय कार्यक्रम के दौरान स्पष्ट तौर पर कहा कि संतुलित पोषण बच्चों के जीवन को बदल सकता है। यह जहाँ एक ओर बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास करता है वही दूसरी ओर स्वास्थ्य

भविष्य की नींव भी डालता है। विकाशसील देशों में पाँच वर्षों से कम के दो सौ करोड़ से भी ज्यादा बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। विश्व के लिए यह चौंकाने वाला तथ्य है कि इन देशों में प्रतिवर्ष पांच वर्ष से कम आयु के लगभग बारह करोड़ बच्चे कुपोषण के कारण मौत का शिकार होते है।

कुपोषण के कारण बच्चों में तमाम मानसिक विकार उत्पन्न हाते हैं आरै वह कई बीमारियों का शिकार बनते हैं ऐसे बच्चे यदि जीवित भी बचते हैं तो कई मानसिक रोगों का शिकार बनते हैं। विभिन्न आकलनों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि महिलाएँ एवं बच्चे ही गरीबी के गिरफ्त में आते और इसका सर्वाधिक असर इन दोनों पर ही पड़ता है। यही कारण है कि लाचार महिलाएँ अपने बच्चे को स्तनपान का सुख नहीं दे पाती है और पर्याप्त पोषण के अभाव में बच्चे बीमारियों के शिकंजे में पहुँच जाते हैं। वास्तविकता यह है कि कुपोषण एक तरह से मौन आपातकाल की एक ऐसी स्थिति है जो एक आपदा के रूप में फैल चुकी है और निरंतर बढ़ रही है। कुपोषण भविष्य में समाज के लिए एक गंभीर खतरा है। कुपोषण न केवल एक मौन आपातकाल की स्थिति है वरन् व्यापक तौर पर अदृश्य भी है। विश्वव्यापी तौर पर एक-तिहाई बच्चे कुपोषण का शिकार बनते हैं। हालांकि आमतौर पर परिस्थिति की जांच प्रायः दोषपूर्ण ही रहती है। अकाल, युद्ध या अन्य आपदाओं के कुपोषण के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता है। वास्तविकता यह है कि सभी कारण इस आपदा में छोटी भूमिका निभाते हैं। कुपोषण के लम्बे समय तक एक आपदा के रूप में नहीं पहचाना गया बल्कि इसे गरीबी का ही एक रूप माना गया लेकिन अब लगातार बढ़ रही इस आपदा का स्वरूप काफी हद तक स्पष्ट है और गरीबी को ही इसका मुख्य कारण माना जा रहा है। बालपन में होने वाले रोगों से कुपोषित बच्चे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं जबकि पर्याप्त पोषण पाने वाले बच्चों पर इनका असर कम दिखता है। हाल ही में हुए एक शोध के अनुसार प्रारम्भिक जीवन में कुपोषण के शिकार व्यक्ति दिल की बीमारी, मधुमेह व उच्च रक्तचाप जैसे रोगों से ग्रसित पाये गये हैं। कुपोषण के मामले में यह शोध एक नई दिशा की ओर प्रकाश डालता है। सर्वाधिक रूप से तीन वर्ष के उपर के बच्चे कुपोषण के शिकार बनते हैं। भरपूर देख-रेख का अभाव लगातार बीमारियाँ नियमित स्तनपान न करने व पोषण रहित भोजन लेने वाले बच्चे आसानी से कुपोषण का शिकार बनते हैं। बीमारियों से लगातार ग्रसित होने का कारण कुपोषण ही है।

कुपोषण के कई कारण हैं प्रोटीन, आयरन व विटामीन 'ए' का अभाव कुपोषण का ही एक रूप है। पर्याप्त पोषण वाले भोजन, सही व पर्याप्त तरीके से दूध का न मिलना, सुरक्षित व स्वच्छ रूप से न होना कुपोषण का एक और रूप है। वैसे देखा जाये तो यह सभी कारण हमारे दिमाग की उपज मात्र है। मुख्य रूप से कुपोषण हमारे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक स्वरूप की उपज है। माँ में अच्छी शिक्षा और सही जानकारियों का अभाव कुपोषण के मुख्य कारण है। बिना जानकारी योजनाओं और प्रभावी शैक्षणिक कार्यक्रमों के कुपोषण से निजात असंभव है। कुपोषण के परिणाम बेहद बिनाशकारी होते हैं। यह बच्चों में शिथिलता भर देता है। इस शिथिलता के कारण बच्चों के विकास में बाधा पड़ जाती है और उनकी शक्तियाँ क्षीण पड़ने लगती है। पारिवारिक स्तर पर कुपोषण के कारण वस्तु की बढ़ती कीमत और अन्य दबाब हैं। विकासशील देशों में परिवारों विशेषकर महिलाओं के लिए ऐसी कोई सामाजिक मदद उपलब्ध नहीं है जो सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम हो। सामाजिक तौर पर परिवारों में लगातार होने वाले सूक्ष्म नुकसान विश्व विकास को कमजोर बनाते हैं। यदि केवल 1990 की स्थिति पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि विश्वव्यापी तौर पर सामाजिक विकास के चार कारणों ने व्यापक नुकसान पहुँचाया था :

1. कुपोषण,
2. पौष्टिकता का नुकसान,
3. आयोडिन की कमी के कारण होने वाले विकार,
4. लौह तत्व व विटामिन 'ए' की कमी।

एक आम राय के अनुसार लाखों वर्षों से यही कारण जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। बेहतर जीवन के मद्देनजर कई क्षेत्र या कई पहलुओं को समाहित करना जरूरी है। इनमें आर्थिक स्वास्थ्य शिक्षा सभी के क्षेत्र में आते हैं। इन सभी क्षेत्रों में स्वास्थ्य को सबसे उपर दर्जा दिया गया है। हालांकि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आधुनिक विकास के इस दौर में कृषि व भवन निर्माण जैसे क्षेत्रों को वरीयता दी जा रही है। इस दौर में मनुष्य के बेहतर स्वास्थ्य के मामले में काफी उदासीनता बरती जा हरी है और शिशुओं के

स्वास्थ्य को पूर्ण सुरक्षा नहीं मिल रही है जिनके कारण स्वास्थ्य सुरक्षा एक वैश्विक समस्या का रूप ले चुकी है। भारतीय योजनाकार भी स्वास्थ्य संबंधी रक्षा की ओर ध्यान देने के बजाय कृषि, परिवार कल्याण एवं भवन निर्माण की ओर अधिक तवज्जो दे रहे हैं।

संदर्भ-सूची

* डॉ. प्रमिला वर्मा एवं डॉ. कांति पाण्डेय-आहार एवं पोषण विज्ञान, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना 1991 पृष्ठ 543
* एस0 पी0 सुखिया-पोषण आहार विज्ञान के मूलभूत सिद्धांत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1991, पृ. 225
* कैरोल जिन वेस्ट एवं मेरिली, फारवेस कौली-न्यूट्रीशन, प्रिंस पल्स एण्ड एप्लीकेशन इन हेल्थ प्रोमोशन, जे0 वी0 लिपिन कौट कम्पनी, फिलाडेल्फिया, 1984 पृ. 277.
* भावना सबरवाल-अप्लायड न्यूट्रीशन एण्ड हेल्थ, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, दिल्ली, 1999, पृ. 259
* सचिन कुमार जैन, बचपन की भुखमरी, बुक्स फॉर चेंज, 2006, पृ. 46, भारत सरकार का रिपोर्ट 2002-2007
* Goldston, I (1963) - Man's Image in Medicine and Anthropology (ed.)-International University Press, New York, pp. 26-29
* Hasan, K.A. (1979) - "Medical Sociology of Rural India" Sachin Publication, Ajmer. pp. 16-21
* Kos, E.L. (1970) - The Health of Regionville. Quoted in Brom, Sociology of Medicine Rodney, M. Co., McGraw Hill, New York. pp. 28-39

राँची शहर में जनजातियों के आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों पर प्रवास का प्रभाव

भुवनेश्वर कुमार मंडल

सहायक प्राध्यापक(ाक भ्वब), भूगोल विभाग, सी.एम.जे. कॉलेज, दोनवारीहाट, खुटौना, मधुबनी (एल.एन.एम.यू., दरभंगा)

मानव एक गतिशील प्राणी है, ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में सक्षम है। पुरातात्विक साक्ष्य स्पष्ट संकेत देते हैं कि प्राचीन मानव अपनी सुरक्षा, भोजन उपलब्धि और स्थायित्व के मद्देनजर एक स्थान से दूसरे स्थान जाया करते थे। मानव जाति के इतिहास के विभिन्न युगों में वैदिक काल से लेकर औपनिवेशिक काल होते हुए वर्तमान युग तक प्रवास की प्रक्रिया जारी थी, भले ही मात्रा में कमोवेश क्यों न हुआ हो।

प्रवास का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना स्वयं मानव का इतिहास चूँकि प्रवास भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया है। जिसकी गति एवं दिशा अनिश्चित होती है। प्रवास होने का जो भी कारण हो पर ये समाज के आर्थिक, सामाजिक संरचना में परिवर्तन ला देती है। यह परिवर्तन समाज के स्रोत क्षेत्र और गन्तव्य दोनों स्थानों पर स्पष्ट देखा जा सकता है।

जनजातीय संदर्भ में प्रवसन की अवधरणा बहुत पुरानी नहीं है। संचार साधनों के विकसित होने के बाद प्रवसन की सम्भावनायें बढ़ी। जनजातीय प्रवसन को दो पहलुओं से समझा जा सकता है। पहला, उन कारकों के माध्यम से जो किसी जनजातीय समूह को बाहर की ओर प्रवास के लिए विवश करता है और दूसरा, उन कारकों के माध्यम से जो किसी जनजातीय समूह को अपनी ओर खींचते हैं या उन्हें आकर्षित करके अपना मूलस्थान छोड़ने के लिए उकसाते हैं। पहली श्रेणी के कारकों में सामाजिक-आर्थिक शोषण, बीमारी व भूखमरी तथा बाढ़ व सूखे जैसी प्राख्रतिक विपदाओं के अलावा भूमि हस्तांतरण, ऋणग्रस्तता तथा विकासात्मक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के परिणामस्वरुप जनजातियों के प्रवसन को शामिल किया जाता है। दूसरे प्रकार के कारकों में शहरों में रोजगार के बेहतर अवसर व अधिक मजदूरी जैसे कारक शामिल किये जा सकते हैं, जिनके कारण बहुत सी जनजातियाँ प्रवासी बन जाती हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष में जनजातीय प्रवसन की समस्या काफी हद तक शहरी करण तथा औद्योगिकीकरण से भी जुड़ी हुई है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र राँची जिला झारखण्ड के मध्य में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 5087 वर्ग किमी. है। इसका विस्तार 22°52' उत्तरी अक्षांश से 23°45' उत्तरी अक्षांश तथा 84°52' पूर्वी देशान्तर से 85°55' पूर्वी देशान्तर है। इसकी जनसंख्या 2914253 है। जिसमें अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 1042016 है। चूँकि जिलान्तर्गत प्रखण्डवार प्रवसन के प्रतिरुप का अध्ययन सीमित समय में पूरा नहीं किया जा सकता है। अत: सुविधानुसार अध्ययन हेतु राँची नगर निगम का चयन किया गया है जो कि प्रस्तुत अध्ययन के संतुष्टि के लिए आवश्यक है।

अध्ययन क्षेत्रः राँची नगर निगम

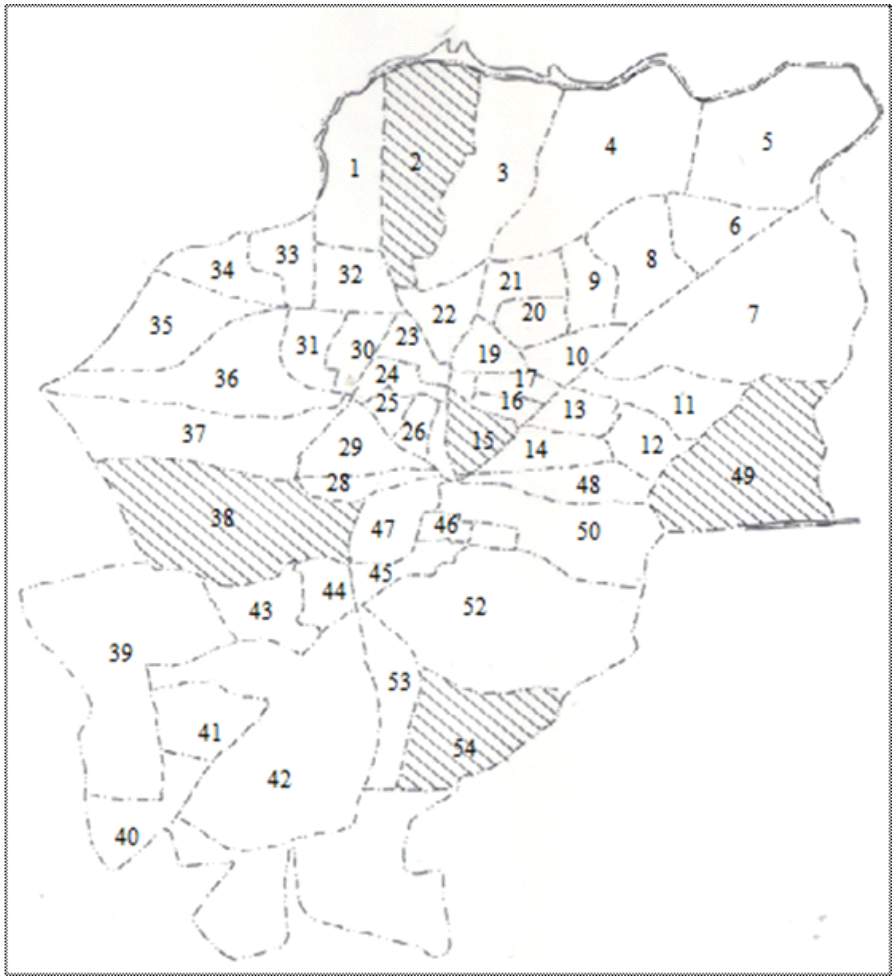

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य राँची जिला में जनजातियों के प्रवास के कारण जिला पर पड़ने वाला आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव का अध्ययन एवं प्रवास के कारणों एवं उससे उत्पन्न समस्याओं को उजागर करना है।

परिकल्पना

इस अध्ययन में निम्न परिकल्पनाओं के सत्यापन पर ध्यान आकृष्ट किया गया है।

1. जिन अनुसूचित जनजातीय परिवार का प्रवास हुआ है उनकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन आया है।
2. जिन अनुसूचित जनजातीय परिवार का प्रवास हुआ है उनके परंपरागत व्यवसाय में परिवर्तन देखने को मिला है।
3. जिन अनुसूचित जनजातीय परिवार का प्रवास हुआ है उनमें सामाजिकता निर्वाहन के दायरे का विस्तार हुआ है।

विधितंत्र

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। जिसमें राँची जिला के अन्तर्गत राँची नगर निगम के 5 वॉड में से 20-20 परिवारों को मिलाकर कुल 100 परिवारों का चयन उद्देश्यपूर्ण यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया गया है तथा स्वनिर्मित अनुसूचि के माध्यम से आँकड़ों को एकत्रित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन राँची जिला के राँची नगर निगम का है। चूँकि यह झारखण्ड राज्य की राजधानी होने के कारण एक प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र है। इसकारण यहाँ न सिर्फ राँची जिला के जनजातियों का निवास क्षेत्र है बल्कि यहाँ राँची जिला के दूसरे जिलों तथा दूसरे राज्यों से भी जनजातीय लोगों का प्रवास देखने को मिलता है।

राँची जिला में जनजातीय प्रवास की दृष्टि से अधिकांश प्रवास राँची जिला के अन्य प्रखण्ड़ो तथा अन्य जिलों से देखने को मिला है। इसके अतिरिक्त उड़िसा, छतिसगढ़, पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश तथा पूर्वोतर राज्यों से भी जनजातियों का प्रवास हुआ है।

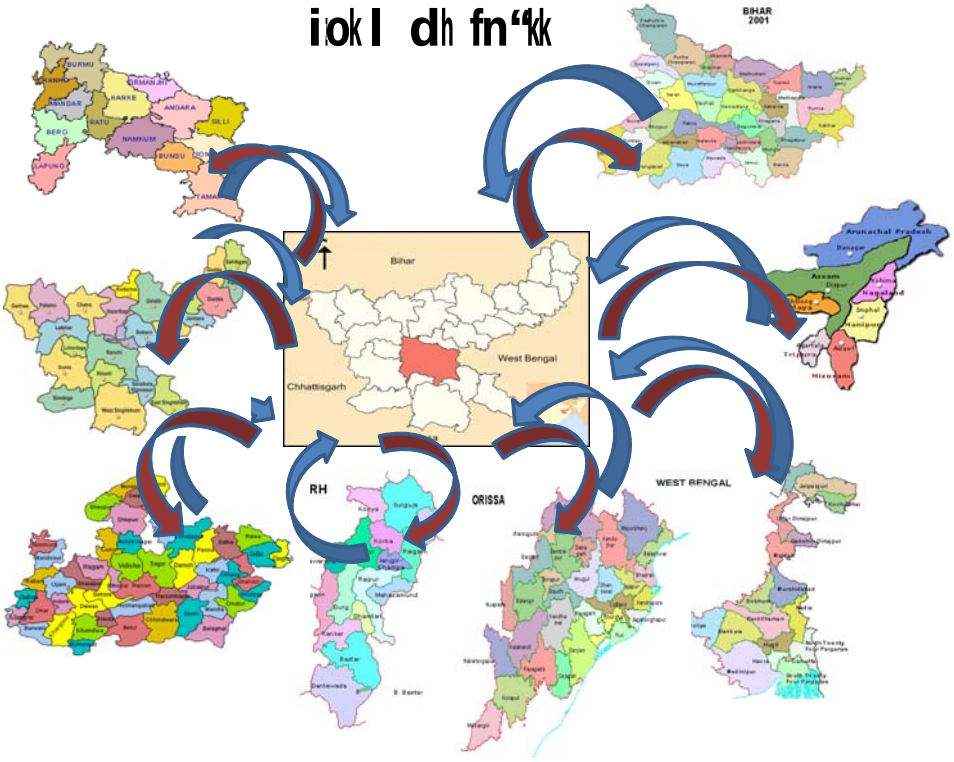

प्रवास की दिशा

वार्ड संख्या	अपने जिले के अन्य प्रखण्ड से	दूसरे जिला से	दूसरे राज्य से	कुल
2	11	6	3	20
%	55	30	15	100
15	10	4	6	20
%	50	20	30	100
38	10	5	5	20

%	50	25	25	100
49	9	8	3	20
%	45	40	15	100
54	12	4	4	20
%	60	20	20	100
कुल	**52**	**27**	**21**	**100**

तालिका 1

तालिका 1 से पता चलता है कि राँची नगर निगम में राँची जिला के अन्य प्रखण्ड़ो से सबसे अधिक 52% जनजातीय लोगों का प्रवास हुआ है। 27% झारखण्ड राज्य के दूसरे जिलों से तथा 21% दूसरे राज्यों से भी यहाँ जनजातियों का प्रवास देखने को मिलता है। जिसमें उड़िसा, छतिसगढ़, पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश तथा पूर्वोतर राज्यों से भी जनजातियाँ है।

राँची जिला में जनजातीय प्रवास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित है-

आर्थिक कारक (Economic Factors)

जनजातियों का मूल निवास स्थान सूदूर पर्वत, पहाड़ियाँ तथा जंगल होता है। जहाँ लगभग 45% भूमि कृषि के योग्य नहीं है। यहाँ की कृषि मानसून पर निर्भर करती है। सिंचाई के साधनों का अभाव परम्परागत कृषि व्यवस्था, प्रति व्यक्ति कम कृषि योग्य भूमि तथा कम उपजाऊ जमीन के कारण कृषि उत्पादन पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाता है। जंगलों की कटाई के कारण लघु वन उत्पादनों तथा शिकार की गतिविधियों में भी कमी आयी है। जनजातीय लघु कुटीर उद्योगों में ह्रास आने के कारण भी लागों की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा है।

जनजातीय क्षेत्र में रोजगार के बहुत ही सीमित आयाम उपलब्ध होते हैं। यही कारण है कि कष्ट काल के दौरान गरीबी तथा बेरोजगारी के कारण बड़ी तादात में जनजातियाँ राज्य के बाहर तथा राज्य के विभिन्न स्थानों में जहाँ रोजगार मिल पाता है काम करने जाते है।

राँची जिला झारखण्ड राज्य का प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र है तथा यहाँ शहरीकरण के विकास के कारण रोजगार, शिक्षा, चिकित्सा, निवास आदि की सुविधाओं से आकर्शित होकर कृषि में लगी जनजातीय जनसंख्या यहाँ प्रवासित हुई है।

सामाजिक कारक (Social Factors)

गाँवों में शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, यातायात, कानून-व्यवस्था आदि सुविधाओं का अभाव होता है, जबकि शहरों में ये सुविधाएँ सुलभ होती है। अत: इन सुविधाओं के उपयोग के लिए जनजातीय आबादी शहरों की ओर प्रवास कर जाती है।

राँची जिला में भी तेजी से शहरीकरण के विकास के कारण शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन साधन, यातायात सुविधा, कानून व्यवस्था आदि सुविधाओं का विकास हुआ है, जिससे जनजातियाँ यहाँ आकर्षित हो रही है।

	प्रवास का कारण										
	2	**%**	**15**	**%**	**38**	**%**	**49**	**%**	**54**	**%**	**कुल**
रोजगार	9	45	15	75	10	50	7	35	8	40	49
शिक्षा	8	40	5	25	3	15	2	10	3	15	21
विवाह	–	–	–	–	1	5	2	10	–	–	3

भू-अधिग्रहण	3	15	–	–	2	10	4	20	–	–	9
व्यापार	–	–	–	–	1	5	2	10	3	15	6
अन्य	–	–	–	–	3	15	3	15	6	30	12
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

तालिका 2

तालिका 2 से स्पष्ट है कि राँची नगर निगम में 49% जनजाति रोजगार के कारण, 21% शिक्षा के कारण, 3% विवाह के कारण, 9% भू-स्थानांतरण के कारण, 6% व्यापार के कारण तथा 12% अन्य कारणों से जैसे पारिवारिक समस्या, चिकित्सा तथा बेहतर जीवन के लिए यहाँ प्रवासित हुए हैं।

प्रवास का जनजातियों के आर्थिक जीवन पर प्रभाव

शिक्षा और प्रवास के बीच अन्योन्याश्रय संबंध है। गाँव से लोग शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहर जाते हैं तथा वहीं की जीवन शैली से प्रभावित होकर वहीं बस जाना पसंद करते हैं। उन्हें अपने बच्चों का भविश्य गाँव की अपेक्षा शहर में ज्यादा उज्जवल दिखायी पड़ता है, क्योंकि वहाँ शिक्षा तथा अन्य सुविधाएँ उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय के निर्धारण में व्यक्ति विशेष के शिक्षा स्तर की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा के अभाव के कारण व्यक्ति अभावग्रस्त अथवा गरीबी का शिकार हो जाता है। वैसे भी जनजातीय क्षेत्रों में निर्धनता देखने को मिलती है जिसका प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव है।

अध्ययन क्षेत्र में 21% जनजातीय परिवारों के प्रवास का प्रमुख कारण शिक्षा है। तालिका-3 से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 9% परिवार प्राथमिक शिक्षा, 30% परिवार के लोग माध्यमिक, 50% परिवारों के लोग उच्च तथा 11% जनजातीय परिवारों के लोग तकनीकि शिक्षा भी प्राप्त किए है। प्रवास के कारण जनजातीय परिवारों में सबसे अधिक लोग आज उच्च शिक्षा प्राप्त किए है।

शैक्षणिक स्थिति

वॉड संख्या	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल
प्राथमिक	3	15					4	20	2	10	9
माध्यमिक	6	30	6	30	7	35	6	30	5	25	30
उच्च	10	50	10	50	12	60	8	40	10	50	50
तकनीकी	1	5	4	20	1	5	2	10	3	15	11
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

प्रति व्यक्ति मासिक आय

	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल
5000झ	5	25	2	10	4	20	4	20	3	15	18
5000.15000	6	30	8	40	7	35	9	45	9	45	39
15000.25000	5	25	7	35	5	25	6	30	6	30	29
25000ढ	4	20	3	15	4	20	1	5	2	10	14
	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

आर्थिक क्रियाकलाप

	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल
प्राथमिक	3	15	2	10	5	25	4	20	7	35	21
द्वितीयीक	8	40	8	40	7	35	8	40	7	35	38
तृतीयक	9	45	10	50	8	40	8	40	6	30	41
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

तालिका 3

उपरोक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि आज प्रवास के कारण जनजातियों में शिक्षा के प्रति जागरुकता आई है और जनजातीय परिवारों के लोग आज उच्च शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर रहे है। इसका मुख्य कारण सरकार द्वारा आरक्षण प्राप्त होना तथा शहरों में आर्थिक सुविधाओं का मिलना है।

अध्ययन क्षेत्र में 18% जनजातीय परिवार की मासिक आय 5000 रु. से कम है इसका मुख्य कारण लोगों का अभी भी प्राथमिक क्रियाकलापों में संलग्न होना है। 39% परिवारों का मासिक आय 5000–15000 रु. है, 29% परिवारों का 15000–25000 रु. तथा 14% परिवारों का 25000 रु. से ज्यादा है। जिन परिवारों के लोगों में उच्च तथा तकनिकी शिक्षा प्राप्त की है उनके आय में वृद्धि देखी गई है क्योंकि ये परिवार शिक्षा ग्रहण करने फलस्वरुप द्वितीयक एवं तृतीयक कार्य में संलग्न है।

अध्ययन क्षेत्र में 21% परिवार प्राथमिक कार्य में संलग्न है इसकी कार्यशैली आज भी परम्परागत है। प्राथमिक क्षेत्र में कार्य करने वाले परिवारों में मुख्यत: कृषि, पशुपालन तथा घरेलु काम में संलिप्त है। 38% परिवार द्वितीय कार्य में संलग्न है इसके अन्तर्गत आने वाले परिवार मुख्यत: व्यापार, लघु उद्योग तथा निजी क्षेत्र से जुड़े है। 41% परिवार तृतीयक क्षेत्र में संलग्न ये मुख्यत: डॉक्टर, इंजिनियर तथा सरकारी सेवा में कार्यरत है

परम्परागत व्यवसाय में परिवर्तन

	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल
हाँ	17	85	20	100	20	100	18	90	19	95	94
नहीं	3	15	0	0	0	0	2	10	1	5	6
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

आर्थिक स्थिति में सुधार

	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल
हाँ	19	95	20	100	19	95	18	90	18	90	94
नहीं	1	5	0	0	1	5	2	10	2	10	6
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

तालिका 4

अध्ययन क्षेत्र में 94% लोगों का व्यवसाय वर्तमान समय में प्रवास के कारण परिवर्तित हो गया है इसका मुख्य कारण आधुनिकिकरण एवं नगरीकरण से जुड़ाव तथा तकनीकी विधि का विकास होना, जबकि 6% परिवारों की कार्यशैली आज भी परम्परागत है। इसका मुख्य कारण अभी भी कुछ जनजातियों में शिक्षा के प्रति जागरुकता का नहीं होना है।

आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने के बाद उपरोक्त आँकड़े से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के 94% परिवारों के आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। आर्थिक स्थिति में सुधार होने का मुख्य कारण जनजातियों के लिए राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों के साथ-साथ निजी क्षेत्र में भी विभिन्न रोजगार का उपलब्ध होना है, जबकि 6% परिवारों का आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ है इसका मुख्य कारण लोगों का प्राथमिक कार्यों में संलग्न होने के साथ-साथ परम्परागत जीवन शैली होना है। इसके अतिरिक्त इन लागों पर आधुनिकिकरण तथा नगरीकरण का प्रभाव भी न्यून देखने को मिलता है। जिसे तालिका 4 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या 5 से स्पष्ट होता है अध्ययन क्षेत्र के कृषि कार्य में संलग्न 17% परिवारों के पास कृषि कार्य करने के लिए स्वयं की जमीन है जबकि 83% लोगों के पास कृषि कार्य करने के लिए स्वयं की जमीन का अभाव है। अध्ययन क्षेत्र में 83% लोगों के पास जमीन के नहीं होने का मुख्य कारण प्रवासित होने के साथ-साथ भूमि अधिग्रहण के अतिरिक्त प्राकृतिक आपदा से अनोपयोगि भूमि का होना है।

कृषि के लिए स्वयं की जमीन जायदात

वॉड संख्या	2	15	38	49	54	कुल
हाँ	3	0	5	4	5	17
नहीं	17	20	15	16	15	83
कुल	20	20	20	20	20	100
कृषि पद्धति	**कुल**					
परम्परागत	1	–	2	2	1	6
आधुनिक	3	–	3	2	4	11
कुल	4		5	4	5	17

तालिका 5

जिन जनजातीय परिवार के पास कृषि के लिए स्वयं की भूमि है उनमें से 35% जनजातीय परिवारों की कृषि पद्धति आज भी परम्परागत ही है। ये मुख्यत: कृषि कार्य को पुराने ढ़ंग से ही करते है तथा इसके कृषि कार्य करने की शैली पर आधुनिक तकनिक का प्रभाव कम देखने को मिलता है, जबकि 65% परिवार कृषि कार्य को आधुनिक ढंग से करते है। ये मुख्यत: उन्नत बीज रासायनिक उर्वरक तथा आधुनिक उपकरण का उपयोग करके अपने कृषि कार्य को संपादित करते है।

मकान का प्रकार

वॉड संख्या	2	15	38	49	54	कुल
स्वयं	11	10	12	8	13	54
किराया	9	10	8	12	7	46
कुल	20	20	20	20	20	100

स्वयं

वॉड संख्या	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल	%
कच्चा	6	55	2	20	2	17	3	38	2	15	15	28

पक्का	5	45	8	80	10	83	5	62	11	85	39	72
कुल	11	100	10	100	12	100	8	100	13	100	54	100
किराया												
कच्चा	2	22		0	3	38	2	17	1	14	8	17
पक्का	7	78	10	100	5	62	10	83	6	86	38	83
कुल	9	100	10	100	8	100	12	100	7	100	46	100

घरेलु सामानों में परिवर्तन

वॉड संख्या	2	15	38	49	54	कुल
हाँ	19	20	19	18	18	94
नहीं	1	0	1	2	2	6
कुल	20	20	20	20	20	100

तालिका 6

अध्ययन क्षेत्र प्रवासित जनजातीय परिवारों में 54% लागों के पास स्वयं का आवास है, जिसमें 28% लागों के पास कच्चा तथा शेष 72% लागों के पास पक्का मकान है। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र में प्रवासित जनजातीयों में 46% लोग किराए के मकान में निवास करते है इनके पास रहने के लिए खुद का घर नहीं है इनमें 17% लोग कच्चे किराए के मकान में रहते है जबकि 83% लोग पक्के किराए के मकान में रहते है। जिसे तालिका संख्या 6 में दर्शाया गया है।

आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि प्रवासित जनजातीय परिवारों में उपयोग होने वाले घरेलु समानों में भी परिवर्तन हुआ है। इनमें 94% जनजातीय परिवारों में आधुनिक घरेलु उपकरण का उपयोग होता है इससे जनजातीय परिवारों पर आधुनिकिकरण तथा नगरीकरण का प्रभाव स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है, जबकि अध्ययन क्षेत्र में प्रवासित 6% परिवार अभी भी परम्परागत घरेलु उपकरण का प्रयोग करते है। इसका मुख्य कारण आय का कम स्रोत के साथ-साथ निम्न जीवन स्तर का होना है।

प्रवास का जनजातियों के सामाजिक जीवन पर प्रभाव

अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत प्रवासित जनजातीय परिवार पर सामाजिक क्रियाकलाप की स्थिति के विषय में विस्तृत अध्ययन के लिए नीचे वर्णित आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर व्याख्या किया जा सकता है जो इस प्रकार है।

जनजातियों क्रियाकलाप में बदलाव

वॉड संख्या	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल
हाँ	12	60	17	85	12	60	11	55	15	75	87
नहीं	8	40	3	15	8	40	9	45	5	25	13
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100
धर्म परिवर्तन किया है?											
हाँ	8	40	11	55	12	60	7	35	14	70	52
नहीं	12	60	9	45	8	40	13	65	6	30	48

कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100
हाँ तो कौन सा धर्म											
हिन्दू	3	37	2	18	5	42	3	43	3	21	16
ईसाई	5	63	9	82	7	58	4	57	11	79	36
कुल	8	100	11	100	12	100	7	100	14	100	52

तालिका 7

तालिका संख्या 7 के आँकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में प्रवासित 87% जनजातियों के सामाजिक क्रियाकलाप में आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण के प्रभाव के फलस्वरुप परिवर्तन देखने को मिलता है, जबकि 13% प्रवासित जनजातीय समुदाय के सामाजिक क्रियाकलाप में बदलाव नहीं देखने को मिलता है। ये जनजातीय समुदाय आज भी अपने परम्परागत जीवन शैली को अपनाए हुए है।

अध्ययन क्षेत्र में प्रवासित जनजातीय समुदाय में विभिन्न धर्मों के प्रभाव के फलस्वरुप परिवर्तन देखने को मिलता है। यहाँ 52% परिवारों में धर्म परिवर्तन हुआ है, इसमें 31% हिन्दु धर्म को अपनाए है तथा शेष 69% ईसाई धर्म को, जबकि 48% परिवारों में धर्म परिवर्तन नहीं देखने को मिलता है ये आज भी सरना धर्म के पोशक है। जनजातीय समुदाय में धर्म परिवर्तन का मुख्य कारण विभिन्न धर्म समुदाय के लोगों के संपर्क में आने के बाद यह स्वरुप देखने को मिला है।

विवाह के विधि											
वॉड संख्या	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	**कुल**
परम्परागत	8	40	3	15	8	40	9	45	5	25	33
आधुनिक	12	60	17	85	12	60	11	55	15	75	67
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100
विधवा विवाह											
हाँ	17	85	19	95	16	80	18	90	19	95	89
नहीं	3	15	1	5	4	20	2	10	1	5	11
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

तालिका 8

तालिका संख्या 8 के आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि 33% प्रवासित जनजातीय परिवार वर्तमान समय में भी परम्परागत विधि से विवाह संस्कार का निर्वाहन करते है, जबकि 67% परिवार पर विवाह शैली में परिवर्तन देखने को मिलता है। इस परिर्वतन का मुख्य कारण विभिन्न धर्मो से जुड़ाव के साथ-साथ धर्म परिवर्तन के फलस्वरुप आए विवाह शैली का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त इनके सामाजिक जीवन शैली पर आधुनिकिकरण, नगरीकरण का भी प्रभाव देखने को मिलता है। जहाँ पहले ये जनजातीय समुदाय अपने परम्परागत तरीके से विवाह संस्कार को सम्पादित करते थे, वहीं वर्तमान समय में बदलाव देखने को मिलता है। जनजातीय समुदाय में पहले जहाँ बाल विवाह तथा घुमकुड़िया विवाह शैली का प्रचलन था। आज ये क्रियाकलाप नहीं देखने को मिलती है। 89% प्रवासित जनजातीय परिवार विधवा विवाह को मान्यता देते है। शिक्षा के प्रसार के कारण जनजातीय लोगों में भेदभाव में कमी आई है तथा लोगों के परम्परागत सोच में बदलाव आया है, इस बदलाव के फलस्वरुप अधिकांश जनजातीय समुदाय अब विधवा

विवाह को भी मान्यता देते है, जबकि 11% परिवार विधवा विवाह को मान्यता नहीं देते है, क्योंकि ये परम्परागत सोच को अपनाए हुए है।

पहनावा में परिवर्तन

वॉड संख्या	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	कुल
हाँ	19	95	20	100	20	100	20	100	20	100	99
नहीं	1	5	0	0	0	0	0	0	0	0	1
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100
भोजन में परिवर्तन											
हाँ	15	75	17	85	12	60	16	80	18	90	78
नहीं	5	25	3	5	8	40	4	20	2	10	22
कुल	20	100	20	90	20	100	20	100	20	100	100

तालिका 9

अध्ययन क्षेत्र में प्रवासित जनजातियों पर आधुनिकता का प्रभाव रहन-सहन के साथ-साथ पहनावा में भी देखने को मिलता है। 99% परिवारों में पहनावा में बदलाव आया है जबकि 1% परिवार आज भी परम्परागत पहनावा का उपयोग करते है। पहले जहाँ जनजातियों में पुरुष धोती, लुगी, कुर्ता, गमछा पहनते थे, वे आज शर्ट पैंट पहनते है। महिलाएँ आज साड़ी के साथ-साथ सलवार, कुर्ता, पैंट, शर्ट आदि भी पहनती है। प्रवासित जनजातीय परिवार में सामाजिक जीवन में परिवर्तन के अन्तर्गत भोजन सामग्री में भी परिवर्तन देखने को मिलता है, 78% प्रवासित जनजातीय परिवार में खान-पान में परिवर्तन हुआ है, जबकि 22% परिवार परम्परागत भोजन को आज भी अपनाते है। जिसे तालिका 9 में दर्शाया गया है।

सामाजिकता का निर्वाहन

तालिका संख्या 10 में सामाजिक मेल मिलाप के आधार को दर्शाया गया है। अध्ययन क्षेत्र में 15% लोग अपनी जाति के लोगों से ही मिलते है, 35% लोग अधिकतर धर्म के आधार पर मिलते है तथा शेष 50% प्रवासित जनजाति परिवार के लोग बिना भेद भाव के सभी जाति, धर्म के लोगों से मिलते है। परम्परागत सोच में बदलाव तथा शिक्षा के विकास के कारण प्रवासित जनजातीय परिवार में सामाजिककरण का विकास हुआ है। अब ये सभी समुदायों तथा धर्मों के लोग से मिलते है तथा व्यवहारिक आदान प्रदान करते है। जो चित्र 1 से स्पष्ट होता है।

सामाजिकता का निर्वाहन

सामाजिक मेल मिलाप का आधार

	2	%	15	%	38	%	49	%	54	%	
अपनी जाति के लोगों से मिलते है	2	10	2	10	4	20	3	15	4	20	15
अपने धर्म के लोगों से मिलते है	8	40	3	15	7	35	8	40	9	45	35
सभी लोगों से मिलते है	10	50	15	75	9	45	9	45	7	35	50
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

सामाजिकता के निर्वाहन में महिलाओं की भागीदारी											
हाँ	14	70	18	90	17	85	15	75	17	85	81
नहीं	6	30	2	10	3	15	5	25	3	15	19
कुल	20	100	20	100	20	100	20	100	20	100	100

तालिका 10

सामाजिक मेल मिलाप का आधार

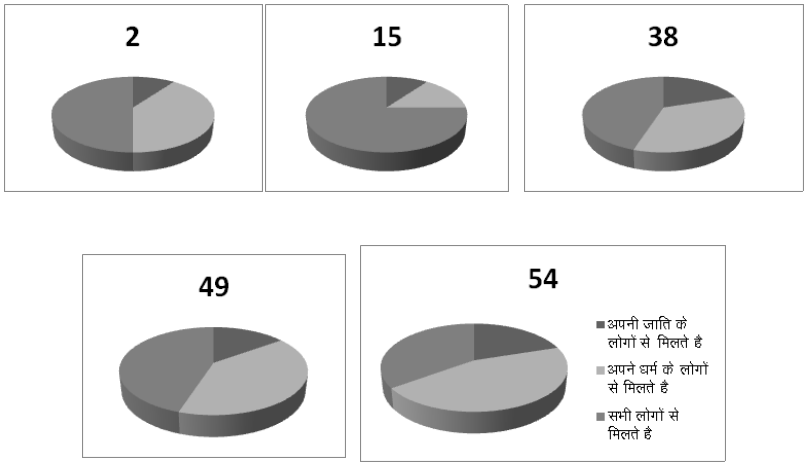

चित्र संख्या 1

अध्ययन क्षेत्र के आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि 94% परिवारों में धार्मिक उत्सव के अवसर पर जाति या वर्ग के भेदभाव को छोड़कर सभी से मिलते है तथा सामाजिक व्यवहारिक कार्य को संपादित करते है, जबकि 6% परिवार में इसका अभाव देखने को मिलता है, इसका मुख्य कारण परम्परागत सोच के साथ-साथ अशिक्षित होना है। यहाँ 81% परिवार के लोगों ने सामाजिकता में महिलाओं की भागीदारी को अपनाया है, क्योंकि इन परिवारों के विभिन्न क्रियाकलापों में अब महिलाओं की भागीदारी होती है, जबकि शेष 19% परिवारों में इसका अभाव देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त 85% परिवारों में जाति धर्म को नजर अंदाज करते हुए सभी के घर भोजन करना पसंद करते है तथा 15% लोग भोजन करना पसंद नहीं करते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि प्रवासित जनजातीय परिवार में व्यापक बदलाव आया है। प्रवासित परिवार के आर्थिक क्रियाकलाप में बदलाव के कारण आय में वृद्धि हुई है, जिससे आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। पहले जहाँ जनजातीय समुदाय का क्रियाकलाप प्राथमिक क्षेत्र अर्थात वन सम्पदा से प्रभावित रहता था, वहीं प्रवास के फलस्वरुप शिक्षा के विकास के कारण वर्त्तमान समय में द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र में भी इनकी भागीदारी देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त इनके सामाजिक जीवन में भी बदलाव देखा जा सकता है। पहले जहाँ ये लोग अपने ही धर्म समुदाय या जाति के लोगों से खान-पान, मेल-जोल तथा विवाह संस्कार को संपादित करते थे, वहीं प्रवास के फलस्वरुप ये विभिा धर्मों के लोगों से मिलते है, उनके साथ सामाजिकता का निर्वाहन करते है, और विभिा जाति धर्म के लोगों से विवाह संबंध या संस्कार को संपादित करते हैं। अब इन जनजातीय समुदाय में विधवा

विवाह भी देखने को मिलता है तथा सामाजिक क्रियाकलाप में पहले की तुलना में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जो एक सकारात्मक संकेत है।

संदर्भ

1. मौर्य एस.डी. (2003) मानव भूगोल, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
2. लकड़ा, फा. जोन एस.जे. (2010) आदिवासी संस्कृति तब और अब, प्रथम संस्करण, राँची, कैथलिक प्रेस।
3. हसनैन, नदीम, (2006) जनजातीय भारत, सातवाँ संस्कर, नई दिल्ली, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
4. प्रभात खबर, 21 अक्टूबर, 2013, पेज नम्बर 15।

पर्यावरणीय चिन्तनः अतीत एवं वर्तमान

डॉ० रितेश भारद्वाज

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
श्याम लाल कॉलेज, संध्या, दिल्ली विश्वविद्यालय

वर्तमान समय में पर्यावरण मुद्दों की चर्चा का एक विशेष महत्व है। आज मीडिया के माध्यम से भविष्य में होने वाले युद्ध के लिए जल की संभावना को एक प्रमुख कारण बताया जा रहा है। देश में बाँधों की स्थिति या जल, जंगल, जमीन पर आदिवासियों की खबरें भी प्रसारित होती रहती हैं। दो दशक पहले ऐसा लगा था कि पर्यावरण एक ऐसा विचार है जिस पर **चिन्तन** करने का समय आ गया है जैसा कि 1989 में 'टाईम' मैगजीन ने अपने कवर पेज पर किसी पुरुष या महिला की जगह पृथ्वी को 'The Planet of the Year' के रूप में दर्शाया। पर्यावरण आज एक आलोचनात्मक मुद्दा है चाहे इसे क्षेत्रीय, राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देखा जाए। पर्यावरण से जुड़े मुद्दों के सामने आने का क्या कारण रहे है? 'पारिस्थितिकीय' से क्या अभिप्राय है? प्रस्तुत लेख में प्रख्रति और मनुष्य के आपसी संबंधों को पर्यावरण अध्ययन में रेखांकित करते हुए संस्ख्रत व हिन्दी साहित्य में इनके वर्णन की समीक्षा करते हुए, समकालीन समय में पारिस्थितिकीय संतुलन की अपरिहार्यता और महत्व को उजागर किया गया है।

पर्यावरण से तात्पर्य है– वह वातावरण जिससे संपूर्ण जगत या ब्रह्माण्ड घिरा हुआ है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण पृथ्वी एक आवरण से आवृत्त है जो इसे परिचालित भी करता है और स्वयं इससे प्रभावित भी होता है। पर्यावरण अंग्रेजी शब्द 'Environment' का अनुवाद है जो दो शब्द अर्थात् 'Environ' व 'ment' से मिलकर बना है जिसका अर्थ आवृत करना है, (Encircle or all around) अर्थात् "जो चारों ओर से घेरे हुए है'' वह पर्यावरण है। सम्पूर्ण पृथ्वी वायुमंडल से आवृत है, इसी प्रकार धारातलीय जीवस्थल, जल, वायु एवं इनके घटकों से आवृत है। सम्पूर्ण जीवमंडल जैविक व अजैविक घटकों द्वारा आवृत है। वृहत रूप से यह स्थलमण्डल (Lithosphere), जलमंडल (Hydrosphere), वायुमंडल (Atmosphere) से संबंधित है और यही भौगोलिक पर्यावरण का मूल है।

धारती की पारिस्थितिकीय (Ecology) पर मनुष्य का प्रभाव स्वयं मनुष्य जितना ही प्राचीन है। पारिस्थितिकीय तंत्र (Eco system) अंग्रेजी के दो शब्दों से मिलकर बना है। जिसमें 'Eco' का अभिप्राय 'चारों ओर के प्राकृतिक पर्यावरण' से है, उसके 'System' से अभिप्राय एक तंत्र या व्यवस्था से है। संपूर्ण पृथ्वी अर्थात् स्थल, जल एवं वायुमण्डल और इस पर निवास करने वाले जीव एक विशिष्ट चक्र अथवा प्रणाली या तंत्र में परिचालित होते रहते हैं तथा प्रकृति या पर्यावरण के साथ अभूतपूर्व सामंजस्य स्थापित करके न केवल अपने को अस्तित्व में रखते हैं, अपितु पर्यावरण को भी स्वचालित करते हैं। इस प्रकार रचना एवं कार्य दृष्टि से जीवसमुदाय एवं वातावरण एक तंत्र के रूप में कार्य करते हैं, जिसको पारिस्थितिकीय तंत्र कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, पारिस्थितिकीय तंत्र एक अंतः क्रियात्मक व अंतःनिर्भर समिश्र प्राकृतिक व्यवस्था है।

पारिस्थितिकीय के अध्ययन को यदि अतीत काल में अध्ययन किया जाए तो अरस्तू, हिप्पोक्रेटीज और अन्य ग्रीक दार्शनिकों के लेखों में इसे पढ़ा जा सकता है। जीव और उनके पर्यावरण के मध्य परस्पर संबंधों का सर्वप्रथम वर्णन ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में अरस्तू के मित्र 'थीयोफ्रेस्टस' ने किया था। इसी वजह से थीयोफ्रेस्टस को 'पारिस्थितिकीय विज्ञान का पितामह' माना जाता है, तो वहीं 1869 में जन्तुशास्त्री 'अर्नेस्टीकेल' ने सर्वप्रथम इकोलॉजी (Ecology) शब्द का प्रयोग किया। 'अर्नेस्टीकल' के अनुसार "पारिस्थितिकीय विज्ञान प्राणी जगत और उसके कार्बनिक और अकार्बनिक सम्पूर्ण संबंधों का अनुसंधान है और इसी तरह

जीव-पर्यावरण संबंधों को विविध् नामों से संबोधित किया। जैसे वी.वी. डोकूचेह (1846-1903) ने इसे 'Geobioceonosis' कहा, तो वहीं 1877 'कार्लमोबियस' ने इसे 'Bicochosis' कहा। इसी तरह 1887 में एस.ए. फोरबिस द्वारा इसे 'Microcosm' कहा गया, तो वहीं 1939 मेंथियनेमान ने इसे 'Biosystem' शब्द से संबोधित किया, परन्तु सर्वस्वीकार्य शब्द 'Ecosystem' को माना गया।

पारिस्थितिकीय की उत्पत्ति वैसे तो जीववैज्ञानिकों द्वारा हुई और आरंभ में इसका केवल शैक्षिक महत्व था किन्तु अब यह महत्त्वपूर्ण समाज-उपयोगी विज्ञान के रूप में उभरा है जैसे-जैसे विज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति हुई, जनसंख्या बढ़ी और लोगों में उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रचलन बढ़ा वैसे-वैसे प्राकृतिक संसाधनों का अधिक दोहन होने लगा और पारिस्थितिकीय तंत्र का संतुलन डगमगाने लगा। ऐसे क्रियाकलापों के फलस्वरुप हमारा पर्यावरण जहरीला होता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप मानव की उत्तरजीविता पर संकट के बादल मंडराने लगे। प्रबुद्ध वैज्ञानिकों ने भी चेताया कि अगर समय रहते पारिस्थितिकीय संतुलन का असंतुलन संभाला न गया तो जीव-जंतुओं व पादपों के साथ मानव जीवन भी संकट में पड़ जाएगा। यही कारण है कि वर्तमान में वैज्ञानिकों की रूचि व्यावहारिक पारिस्थितिकीय (Applied Ecology) में है जिसके अंतर्गत समस्त जैविक समुदाय के संपूर्ण समाज का अध्ययन किया जाता है और विश्लेषण करके उन तरीकों की खोज की जाती है जिससे हमारी धारती जीवों के रहने लायक बेहतर बनी रहे। क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जीवों के अस्तित्व हेतु केवल यही एक स्थान है। इसी कारण कई बार इस पर्यावरण असंतुलन को इस ग्रह के लिए 'निर्णायक मोड़' कहा गया है।

आज के दौर में पर्यावरणीय चिंतन कई रूपों में हमारे सामने आता है। जैसे पर्यावरणीय सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक दोहन, प्रदूषण और जैव-विविधता का खत्म होना, भूमण्डलीय तापन आदि पर्यावरण से जुड़े प्रमुख समकालीन मुद्दे चुनौतियों के रूप में सामने खड़े हैं। अतीत में भी इन समस्याओं का सामना करने की कोशिश की जाती रही है, जैसे वन संरक्षण के बारे में कानून बनाए गए कि कौन और कब जंगलों का उपयोग कर सकता है? वेनिस, जर्मनी और फ्रांस हर जगह इस तरह के नियम बनाए गए। पिछली दो सदियों में इन सवालों को नया आयाम मिला है कि विशिष्ट संसाधनों पर किसका अधिकार होना चाहिए और क्यों होना चाहिए? समकालीन समय में इस बारे में चिंता प्रकट की गई है कि संसाधनों के उपयोग करने के तरीकों से विश्व प्रभावित भी होता है। प्रारंभिक फ्रेंच और ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने हिन्द महासागर क्षेत्र में पेड़ों की कटाई, पुराने पेड़ों के पूरी तरह खत्म होने और पानी की पुनः पूर्ति के बीच जुड़ाव पर विचार किया। भारत में सन् 1864 में वन विभाग का गठन किया गया। दरअसल इस विभाग के माध्यम से जंगल के महत्त्वपूर्ण और रणनीतिक आर्थिक संसाधन अर्थात् लकड़ी पर कब्जा करने कोशिश की गई।

बीसवीं सदी में दो बड़े विश्व युद्ध हुए (1914-18 व 1939-45) और इन दोनों विश्व युद्ध के पश्चात के पश्चात् समृद्धि के अभूतपूर्व दौर की शुरूआत हुई। इस संदर्भ में इतिहासकार जॉन मकॅनील ने यह आंकलन किया है कि लोगों ने पिछले 100 सालों में जितना उर्जा का प्रयोग किया है, इनके पूर्वजों ने उतनी उर्जा का प्रयोग पिछले 10,000 सालों में भी नहीं किया। 1960 का दशक आते-आते इसके संकेंत मिलने लगे थे कि जिस प्रकार धारती के संसाधनों का प्रयोग किया जा रहा है उसमें बहुत सारे तरीके ठीक नहीं हैं। आज सार्वजनिक रूप से इन विषयों पर भी चर्चा होने लगी है कि परमाणु परीक्षण के बाद होने वाले रेडियोएक्टिव रिसाव से कैसे निपटा जाए? जापान में आई सुनामी के कारण परमाणु संयंत्रों का संकट गहराया था। वहीं दूसरी ओर 'बैरीकॉमोनर' (Barry Commoner) के विचार भी बहुत प्रमुख हैं इन्होंने इस बात पर जोर दिया कि केवल मात्र तकनीक के माध्यम से ही पारिस्थितिकीय समस्या का हल नहीं किया जा सकता है।

1970 के दशक से बड़े बांधों की प्रासंगिकता और इनके कारण वन व ग्रामीण क्षेत्रों के जलमग्न होने का मुद्दा सामने आया। साईलेंट वैली केरल और तमिलनाडु के मोयर में विरोध के कारण बाँधा बनाने की योजना को छोड़ दिया गया। 1980 के दशक के प्रारंभ में विकास के एक ऐसे नए मॉडल को पेश करने की कोशिश की गई जिसमें पारिस्थितिकी और समानता दोनों को ही समान महत्व दिया गया। आज बहुत कम लोग इस बात को महसूस कर पाते हैं कि 1982 की 'द स्टेट आफ इंडियाजः द फर्स्ट सिटीजन रिपोर्ट' कितनी महत्त्वपूर्ण और पर्यावरण पर दूरगामी प्रभाव डालने वाली थी जिसमें अनिल अग्रवाल की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। अनिल अग्रवाल ने बैरीकॉमनर की तरह 'रिडक्शनिज्म' (Reductionism) सिद्धांत का खंडन किया। 'रिडक्शननिज्म' का अर्थ है कि किसी समस्या को पूर्णतः में न देखकर सिर्फ उसके कुछ पहलुओं पर नजर डालना। इस रिपोर्ट में धानी वर्गों के

पारिस्थितिकीय अपव्यय की तुलना में निर्धनों की सूझबूझ के साथ संसाधनों का उपयोग करने की प्रवृत्ति पर जोर दिया। यह विकास के बहुत से वैकल्पिक मॉडलों में से एक मॉडल के रूप में सामने आया।

इसी प्रकार विकसित व विकासशील देशों के बीच की वैचारिक भिन्नता आज भी जगजाहिर है। पर्यावरण के बारे में संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित सम्मेलनों में यह वैचारिक भिन्नता कई बार देखने को मिली, जैसे स्टॉकहोम सम्मेलन (1972), रियो दि जेनेरो (1992), जोहान्सबर्ग (2002) और कानकुन सम्मेलन (2011) में हुआ। पिछले तीन दशकों में केवल मांट्रियल समझौता ही सफलता हासिल कर पाया है जिसमें ओजोन परत के क्षरण को रोकने के लिए तकनीकी हस्तांतरण के बारे में सहमति बन पाई है, क्योंकि क्लोरोफ्लरो कार्बन में कटौती करने की तकनीकी जानकारी को बांटना जरूरी था। परंतु आज के समय में कार्बनडाइऑक्साइड का सबसे अधिक उत्सर्जन होता है। कार्बनडाइऑक्साइड की कटौती को लेकर अभी तक कोई समझौता नहीं हो पाया है। वास्तव में इस दौरान पर्यावरण के मुद्दों पर एक तरह की आम सहमति उभरकर सामने आई लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर यह सहमति प्रभावशाली रूप धारण नहीं कर पाई।

वास्तव में ऐसे बहुत कम समाज है जहाँ पर्यावरण के मसले पर सरकार द्वारा इतनी सक्रियता से कदम उठाए गए हों। भारत में 1973 में 'प्रोजेक्ट टाइगर' की शुरूआत की गई, जोकि उस समय विश्व में वन्य जीवों के संरक्षण की सबसे बड़ी योजना थी। इसके तहत जल्दी ही बहुत से क्षेत्रों में रिजर्वों की स्थापना की गई। सन् 1972 में संसद ने वन्य जीव संरक्षण अधिनियम पारित किया और 1980 में संसद ने वन संरक्षण अधिनियम भी पारित किया। कुछ वर्ष पूर्व केन्द्र सरकार ने पर्यावरण विभाग की स्थापना की जिसे आज एक अलग मंत्रालय बना दिया गया है। यहाँ पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यदि ये नीतियाँ प्रभावशाली थी, तब इस दौर में पर्यावरण के मुद्दों पर इतना ज्यादा संघर्ष क्यों था? दरअसल, जिस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित तथा विकासशील देशों के बीच पर्यावरण के संबंध में वैचारिक भिन्नता है ठीक उसी तरह से भारतीय समाज में भी इस बात पर मतविभाजन है कि कौन-सा पर्यावरणीय मुद्दा महत्त्वपूर्ण है। 1980 के दशक में जमीनी स्तर पर कई पर्यावरणीय आंदोलन सामने आए। जंगल के समुदायों ने मिश्रित जंगलों को खत्म कर उनकी जगह एक ही तरह के पेड़ लगाने की वन विभाग की नीति के खिलाफ आंदोलन चलाया। वैज्ञानिक प्रमाणों से भी यह बात साबित हुई है कि मिश्रित जंगलों को साफ कर एक ही तरह के पेड़ लगाने की नीति सही नहीं है। केरल में 'साइलेंट वैली परियोजना' पर भी स्थानीय लोगों के आंदोलन के कारण ही रोक लगी। हिमालय के तराई के इलाकों और देश के कई भागों में आदिवासियों द्वारा चलाए जा रहे आंदोलनो ने वन नीति को एक नई दिशा में अग्रसर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

बनों के प्रति भारतीय ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोण

यह सर्वविदित है कि पृथ्वी के जिस प्राकृतिक आवरण की गोद में मानव जीवन पलता है, वह पर्यावरण ही है। प्रकृति के आँचल में मौजूद जल, जीव, हवा, पर्वत आदि के साथ ही वन या पेड़-पौधो इस पर्यावरण के प्रमुख घटक हैं। सदियों से इस पर्यावरण के प्रति भारत के लोगों का बदलता हुआ रवैया प्राचीन इतिहास व साहित्य के माध्यम से समझा जा सकता है। ऐसे में देश की वन-सम्पदा के प्रति लोगों का यह बदलता दृष्टिकोण प्राचीन संस्कृत, प्राकृत, तमिल, जैन तथा बौद्ध साहित्य के साथ ही अन्य भाषाओं के साहित्य में बखूबी झलकता है।

सामान्यत: यह भी देखा गया है कि मौखिक परम्परा में बनों के प्रति सहानुभूति अधिक रही है। हालाँकि आदिम समाज-व्यवस्था में मनुष्य की बनों से गहन नजदीकी थी लेकिन धीरे-धीरे शिक्षित समाज-व्यवस्था की उपभोक्तावादी जीवनशैली के चलते परवर्ती काल में मनुष्य की बनों से दूरी बढ़ती गई। वैसे सभी युगों में यह बदलाव समान गति से नहीं हुआ है। आरम्भ में इसकी गति ध ीमी थी लेकिन जैसे-जैसे जमीन व अन्य चीजों की माँग बढ़ी ठीक वैसे ही तथाकथित विकास के नाम पर हुए आविष्कारों और औद्योगिकरण ने इस प्राकृतिक संयोजन को बुरी तरह बिगाड़ दिया। अपने इलाके को विस्तृत करने की चाह में लोगों द्वारा बनो को तीव्रता से साफ किया गया जिसकी वजह से कुछ इलाको में तो वहाँ का पारिस्थितिकी संतुलन ही बदल गया। उदाहरणार्थ ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार सिंधु-घाटी के पतन के पीछे एक मुख्य वजह पर्यावरण की बर्बादी को न रोक पाना ही है। संभवत: पर्यावरण के इस महत्व को महसूस करके ही आगे चलकर आधुनिक युग के

औपनिवेशिक दौर में प्रकृति व मनुष्य के पारस्परिक संबन्ध को हिन्दी साहित्य में छायावादी दृष्टिकोण से पेश किया गया। इसी प्रकार कुछ प्रांतीय साहित्य भी पारिस्थितिकी और संस्कृति के बीच अंतर्संबंधा को प्रकट करते हैं। जैसे ईस्वी सदी के प्रारंभ में रचित तमिल संगम साहित्य में पारिस्थितिकी इलाकों का ख्याल तमिल भाषा में तिन्ने के नाम से विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है जो कि प्राचीन दृष्टिकोण का एक बेहतर उदाहरण है।

प्राचीन वैदिक साहित्य तथा रामायण व महाभारत में भी ग्राम व अरण्य का अंतर मौजूद है। महाभारत के किस्सों में वन और वन्य जीवन को उजाड़ने का चित्रण मिलता है। जिस प्रकार दुष्यंत और शकुंतला के कथा-प्रसंग में दुष्यंत द्वारा शिकार करने की क्रिया के तहत जंगल के जानवरों को अंधाधुंधा मौत के घाट उतार देना एवं पेड़ों की तबाही करना एक प्रकार से प्रकृति से ही जंग है। ग्रामवासी लोग वन के निवासियों से भिन्न हैं। वे वन को जंगली आवास मानकर उस पर नियंत्रण चाहते हैं जबकि वनवासियों के लिए वन उनका प्राकृतिक आवास है जहाँ वे कन्दमूल, फल खाकर व जंगली जानवरों का शिकार कर अपना जीवनयापन करते हैं। यदि ग्रामवासियों की कोई सभ्यता वनवासियों के प्राकृतिक आवास को नष्ट करती है तो वे ऐसी सभ्यता के विरोधी हैं। धयातव्य है कि सभ्यता का विकास बनों को उजाड़ता रहा है फिर भी वन कई रूपों में स्वीकार्य रहे हैं। आदिवासी समाज में तो प्रत्येक जाति का अपने गौत्र के मुताबिक फुल व वृक्ष होता है जिसकी वे 'धाड़ी' व 'सरना' जैसी प्रथाओं के तहत पूजा करते हैं तथा बनों को संरक्षण प्रदान करते हैं।

देखा जाए तो बनों को पूजने की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। वैदिक पूजा विधि में प्रयुक्त होने वाला पात्र खास पेड़ की लकड़ी से ही निर्मित होते थे जिससे यह स्पष्ट अनुभव होता है कि उनके अनुष्ठानो में बनों का महत्व गहराई से जुड़ा है। ऐसे खास पेड़ों की श्रेणी में पीपल, बरगद व साल का भी जिक्र होता रहा है। खास पेड़ों को पूजने की रीति में 'पीपल' के पेड़ को यह पूज्य पद लम्बे अरसे से प्राप्त है जिसका साक्ष्य सिन्धु-घाटी की मुद्राओं पर भी अंकित है और आज यह हिन्दू व मुसलमानों के बीच भी पूज्य रूप में स्वीकार्य है। इस पेड़ का बौद्ध धर्म से भी गहरा नाता है। अत: जैन और बौद्ध साहित्य में भी बनों की पवित्रता का जिक्र मिलता है। जैन व बौद्ध मठ इन बनों की रक्षा करते थे। ऐसे पवित्र बनों या पूज्यनीय पेड़ों को 'चौत्य' के नाम से पुकारा जाता था। बोधगया में बौद्ध वृक्ष के पास खुदाई के दौरान जिस चबूतरे के साक्ष्य मिले हैं उसे मौर्यकालीन माना गया है। इसी प्रकार पेड़ों को उर्वरता का प्रतीक मानकर उसकी पूजा अथवा उपासना करने की विधि कृषक, पशुपालक आदि में अत्यन्त प्रधान रही है। प्राचीन भारतीय कहानियों में भी कुछ पेड़ों का देवी-देवताओं से संबन्ध स्थापित कर उनकी पवित्रता एवं जादूगरी को मानवीकरण रूप में रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। ऐसे में वनदेवता के आधार पर मानव के मन में प्रकृति के प्रति आदर एवं सहानुभूति मौजूद थी।

आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत संन्यासी जीवन मानव और वन के बीच बढ़ते हुए संबंध को दर्शाता है। संन्यासी और देश निकालों को वन में जा बसने से लोगों के मन में बनों के प्रति भय कम हुआ और वह बनों के संपर्क में रहना ज्यादा श्रेयस्कर समझने लगा। उदाहरणार्थ साहित्यिक रचनाओं में कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' की कथा इस द्विभाजन को उभारती है जहाँ एक ओर दुष्यंत जंगल के जानवरों का शिकार करने जाते हैं वहाँ बनाश्रम की शान्ति, सौम्यता और प्रकृति शकुन्तला के मन को खूब भाती है क्योंकि वन्य प्रकृति में पौधो और हिरण भी शकुन्तला को अपने पास बुलाते नजर आते हैं। उसे वन्य प्रकृति में एक नवीन जीवन का अहसास होता है। वस्तुत: साहित्यिक रचनाएँ हमें लोगों की भावनाओं का अंदाज देती है।

हालाँकि प्राचीनकाल से ही साहित्य में प्रकृति-चित्रण किसी-न-किसी रूप में मौजूद रहा है लेकिन साहित्य में पहले प्रकृति का चित्रण किसी कथा-प्रसंग अथवा मानवीय क्रिया की पृष्ठभूमि के रूप में ही किया जाता रहा है। जैसे कालिदास के 'कुमारसंभव' के आरम्भिक कथा-प्रसंग में हिमालय का विस्तृत वर्णन है और 'मेघदूत' में मेघविरह-निवेदन के 'दूत' रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह हिन्दी साहित्य के भक्ति तथा रीतिकालीन कवियों द्वारा भी प्रकृति को गौण स्थान ही दिया गया है। क्योंकि साहित्य के प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वन, उपवन आदि नायक या नायिका की चेष्टाओं को चित्रित करने वाले 'शृंगार' के उद्दीपनमात्र है। इसलिए हिन्दी के मध्यकालीन कवियों ने प्रकृति के महत्व पर अधिक ध्यान नहीं दिया। लेकिन जब हिन्दी के आधुनिक छायावादी कवि यह कहते हैं कि उन्हें कविता करने की प्रेरणा ही प्रकृति से मिली, तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर प्रकृति की कौन-सी शक्तियो ने आधुनिक कवियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। जाहिर है कि छायावादी काव्य प्रकृति के शुरू

होते ही वन या प्रकृति पर छायावादी रंग चढ़ गया और हिन्दी साहित्य में यह छायावादी प्रवृत्ति तब आरम्भ होती है जब सभ्यता के विकासक्रम के दौरान आधुनिक कवि यह महसूस करता है कि प्रकृति पर भौतिक संस्कृति विजय पा रही है और इस भौतिक संस्कृति में उसकी वैयक्तिक स्वाधीनता खतरे में पड़ रही है।

वस्तुतः साहित्य ऐसी अन्तः दृष्टि है जो देखता भी है और दिखाता भी है। साहित्य की आँखों से हम समाज को देखते हैं तो दूसरी ओर समाज की आँखों से हम साहित्य को देखते हैं। इसमें भले ही पारस्परिक विरोधभास प्रतीत हो लेकिन इससे साहित्यिक व सामाजिक दृष्टिकोण भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। समाज का निर्माण स्त्री और पुरुष के सहयोग से हुआ है। यहाँ ध्यातव्य है कि नारी दुनिया की लगभग आधी आबादी का हिस्सा है लेकिन उसकी भागीदारिता को आज भी दोयम दर्जे का ही माना जाता है, जबकि आधुनिक परिख्रश्य में नारी का स्वरूप बदल रहा है। आज की नारी जीवन के विभिन्न क्रिया क्षेत्रों के साथ ही पर्यावरण संरक्षण में भी अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही है। ऐसे में आज जब नारी जीवन के हर क्षेत्र में ख़ढ़ता से आगे बढ़ रही है, तो इस पर्यावरण या वन-संरक्षण के क्षेत्र में भी उसकी अगुआई की सख्त जरूरत है।

आज भूमण्डलीकरण मनुष्य के समस्त संबंधों को ताक पर रखकर जिस विकास का सूत्र अपना रहा है वह पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ रहा है। इसमें अर्थतंत्र और पारिस्थितिकी तंत्र में टकराव है और यह पर्यावरण संकट को उभार रहा है। प्रख्रति के साथ हमारा रिश्ता सांस्कृतिक मनोभूमि का है, इसलिए साहित्य के अंतर्गत कविता में पर्यावरण या प्रकृति मानवीय व्यवहार का हिस्सा बनकर आती है। जहाँ प्रकृति के साथ एक सहचर्य स्थापित होता दिखाई देता है। जैसे हिन्दी में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, एकांत श्रीवास्तव, पंकज चतुर्वेदी आदि की कविता में यह पर्यावरण चिंतन मौजूद है। इनकी कविताओं में एक गाँव है, लोक है, जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का अत्यन्त मोहक वातावरण है। हालाँकि यह ठीक है कि यहाँ कवि किसी समाज सुधारक अथवा पर्यावरणविद् की मुद्रा में नहीं है लेकिन वह पर्यावरण आन्दोलन कर्ताओं को एक संबल देता है, सहारा देता है और सम्मान देता है। इस तरह साहित्य में भी पर्यावरण चिंतन स्पष्ट उभरकर सामने आता रहा है।

बनों के प्रति भारतीयों का बदलता दृष्टिकोण इतिहास के माध्यम से भी देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ भारतीय इतिहासकार रोमिला थापर ने स्पष्ट किया है कि प्राचीन भारतीय दार्शनिक कौटिल्य ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में वन संपदा को महत्व देते हुए कहा कि बिना सरकारी अनुमति के वन वके किसी भी भाग की कटाई निषिधा होनी चाहिए। उन्होंने वन पदार्थों और साफ की गई जमीन पर होने वाली खेती, दोनों से मिलने वाले राजस्व पर नियंत्रण रखने का समर्थन किया। सम्राट अशोक को अपने प्रशासन द्वारा बनाए गए राजमार्गों पर बहुत गर्व था जिसके दोनों तरफ बड़े-बड़े छायादार पेड़ लगे थे और थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुएँ भी खुदवाए गए थे। चौथी ई. के बाद राजस्व बढ़ाने के लिए और शायद बढ़ती हुई आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए खेती का विस्तार होने लगा और फलस्वरुप बनों पर दबाव निर्भरता बढ़ने लगी।

गुप्तकाल के शिलालेख में बनों में रहने वाली जातियों पर हिंसा का जिक्र मिलता है। जिसमें इन वनवासियों को काबू में करने की जरूरत का भी वर्णन है चूँकि यह शिलालेख तत्कालीन सरकारी फरमान थे इसलिये वनवासियों को काबू में लाया गया। इनके वन-संसाधनों पर कब्जा किया गया और इन्हें नीची जाति का दर्जा देकर शहर के हाशिये पर या बनों में दूसरी जगह बसाया गया क्योंकि दरअसल बनोपज से गुजारा करने वालों को हाशिये पर लाने का यही एक तरीका था। वस्तुतः देखा जाए तो बनों में रहने वाले ही वन के सबसे करीब होते हैं और दूसरों की तुलना में ज्यादा मिलनसार भी।

References

1. Gadgil, Madhav. *Ecological Journeys*, Permanent Black, Delhi, 2001 p. 23.
2. Guha, Ramachandra, *Environmentalism: A Global History*, OUP, Delhi, 2000, p. 41.
3. *Ibid.,* p.45.
4. Thapar, Romila. *The Penguin History of Early India from the Origins to 1300 CE*, Penguin, Delhi, 2001, p. 58.
5. *Ibid.*, P. 59.
6. *Ibid.*, P. 62.

गांधी, लोहिया और उपाध्याय का भारत

संजय कुमार सहनी

यू0जी0सी0 नेट उत्तीर्ण, शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ल0ना0मि0वि0 दरभंगा।

20वीं सदी के पूर्वाद्ध में भारतीय इतिहास में सत्य और अहिंसा का सिद्धांत स्थापित करने वालेमोहन दास करमचंद गांधी, व सप्तक्रांति समता एवं वैश्विक मैत्री का दर्शन प्रस्तुत करने वाले डॉ. राम मनोहर लोहिया एवं संपूर्ण विश्व में "एकात्म मानववाद" की अवधारणा प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति की उदारवादी व्याख्या करने वाले पंडित दीनदयाल उपाध्याय का योगदान भारतीय इतिहास में अमिट है।

भारतीय राजनीतिक इतिहास में महात्मा गांधी जी ने सत्य और अंहिसा के सिद्धांत को प्रतिपादित करप्रकार बिना शस्त्र का प्रयोग किये भारत को गुलामी से बाहर निकाला, यह विश्व इतिहास में बेमिसाल उदाहरण है। इसी पर महान वैज्ञानिकआइंस्टीन ने कहा था कि-"आने वाली पीढी तुम पर नाज करेगी जब तुम यह कहोगे कि मैंने गांधी को देखा है"।

जब दुनिया दो विश्व युद्धों के दौर से गुजर रही थी। उस सशस्त्रीकरण के दौर में भी गांधी जी ने सत्य और अंहिसा का नियम ढूंढ निकाला और दुनिया को यह संदेश दिया कि-"मानव जाति की मुक्ति का मार्ग हिंसा से नहीं मिलेगी, हिंसा से तो सिर्फ हिंसा मिलेगी। हिंसा से बचने के लिए हमे अहिंसा का मार्ग अपनाना होगा।"[1] उनका कहना था कि अहिंसा का अर्थ है "ज्ञान पूर्वक कष्ट सहना इसका मतलब यह नहीं कि अत्याचारो के आगे दबकर या झुककर घुटने टेक दें, बल्कि अत्याचार के खिलाफ अपनी आत्मा की सारी शक्ति लगा देना"।[2]

भारत में गांधी जी ने धार्मिक और सांप्रदायिक सौहार्द की स्थापना पर बल दिया। उनका मानना था कि राजनीतिक एकता तो जोर जबरदस्ती से भी स्थापित की जा सकती है लेकिन सच्ची एकता तो तब स्थापित होगी जब हिन्दू और मुसलमान दिल से दोस्ती करे और एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करे। उनका मानना था कि धर्म में जबरदस्ती के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। वे कहते हैं कि सांप्रदायिक मुददे पर यदि नेता न लड़ना चाहे तो आम जनता भी लड़ना पसंद नहीं करती। इसीलिए नेताओं को भी यह बात मान लेनी चाहिए कि जिस प्रकार अन्य सभ्य देषों ने आपसी लड़ाई झगड़े को राजनीतिक जीवन से निकाल दिया, उसी प्रकार भारत में भी होना चाहिए तो कोई शक नहीं कि यहॉ भी सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित न हो।[3]

गांधी जी ने मानव समाज के कल्याण के लिए अष्पृष्यता को सबसे भयंकर बुराई माना। उसने कहा कि यह एक ऐसा विश है जो धीरे-धीरे हिन्दू धर्म को नष्ट किये जा रहा है। इस घृणितप्रथा ने अधिकांश हिंदू जातियों का विकास रोक रखा है। उन्हें जीवन की सामान्य सुविधाएं नहीं दी जाती। इसीलिए जितना जल्दी हो इस बुराई को निर्मूल कर देना चाहिए। ताकि हिन्दू धर्म भारत और विश्व के मानव समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सके। दरअसल अष्पृष्यता प्राचीन काल से चली आ रही एक घृणित प्रथा है। यदि यह व्यवस्था बेकार है तो इसका बचाव किसी भी सूरत में नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन भारत में जाति या वर्ग विशेष को ही अष्पृष्य या अछूत माना जाता है। वह भी इसलिए क्योंकि वह अपनी जीविका चलाने के लिए नीच काम को करती है, मसलन कूड़ा ढ़ोना, मैला ढोना, प्रसव के दौरान गंदगी साफ करना आदि। वस्तविकता यह है कि उक्त व्यक्ति जो इस प्रकार के कामो में संलग्न है वह स्वच्छता से संबंधित है। यदि ऐसा नहीं है तो भारत का हर वह व्यक्ति अछूत या अष्पृष्य माना जाएगा, जो इस प्रकार के कामो में संलग्न है-जैसे डॉक्टर नर्स भी तो प्रसव कराने और गंदगी साफ करने का काम करती है। इसी संदर्भ में ईश्वरचन्द्र

विधासागर का कथन उल्लेखनीय है कि-"यदि मैला साफ करने से कोई शूद्र हो सकता है, तो प्रत्येक वह मनुष्य शूद्र होगा जो शौच क्रिया के बाद अपना शरीर स्वयं साफ करता है"।[4] यदि काम के आधार पर अष्पृष्यता का आकलन करेंगे तो उन्हें भी अष्पृष्य या अछूत कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गांधी जी ने अपना पूरा जीवन अष्पृष्यता को समाप्त करने में लगा दिया। उन्होनें हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश दिलाया जिसके कारण गांधी जी को अपमान और विरोध भी झेलना पड़ा। 1942 में अम्बेदकर ने "मि0 गांधी और अछूतों की मुक्ति" शीर्शक से एक पर्चा लिखा "जिसमें उसने आगाह किया कि दूनिया के सामने हिन्दुओं को जवाबदेह बनना पड़ेगा"। गांधी जी ने भी कहा "यदि अष्पृष्यता हिन्दु धर्म में है तो मुझे कहना पड़ेगा कि इसमे शैतानियत भरी हुइ है, धर्म नही। हिन्दू अपने पाप के लिए जवाबदेही से नहीं बच सकते हैं।[5]

गांधी जी कहते है कि भारत गांवों का देश है, भारत गांवों में बसता है, इसीलिए गांव एवं गांववालों का विकास होना चाहिए तभी भारत का सच्चा विकास माना जाएगा। गांधी जी ने कुटीर उद्योग लगाने पर बल दिया जिससे ग्रामिणों का आर्थिक विकास हो सके और बहुत हद तक समाजवाद कि व्यवस्था को बहाल किया जा सके। 26 जुलाई 1942 ई. में हरिजन नामक पत्रिका में गांधी जी ने आदश भारतीय गांव की व्याख्या प्रस्तुत कि-"यह एक सम्पूर्ण जनतंत्र होगा, जो अपनी जीवन संबंधी आवश्यकताओं के लिए जिसमें दूसरे पर निर्भरता अनिवार्य है अन्योन्याश्रित रहेगा। इस प्रकार यह गांव का सबसे पहला काम होगा कि खुद अनाज पैदा करे तथा अपने कपड़े के लिए कपास पैदा करे। उसमें गोचर भूमि होगी तथा प्रौढों और बच्चों के लिए मनोरंजन के साधन और खेल कूद का मैदान होगा। गांव में नाटक घर, पाठशाला और सार्वजनिक भवन की व्यवस्था होगी। बुनियादी पाठयक्रम पूरा होने तक शिक्षा अनिवार्य होगी। जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक प्रवृति सहकारिता के आधार पर चलायी जाएगी।"[6]

डॉ. राममनोहर लोहिया की सप्तक्रांति: जिस प्रकार गांधी जी ने मानवीय मूल्यों कि रक्षार्थ अपना जीवन अर्पित किया। उसी प्रकार डॉ. राम मनोहर लोहिया ने भी गांधी जी से अलग एक सिद्धांत स्थापित किया जिसके मूल में मानवीय संवेदना के प्रति आह: की भावना दिखाई पड़ती है। डॉ. राम मनोहर लोहिया ने सप्तक्रांति की संकल्पना को स्थापित कर समता मूलक समाज पर बल दिया।इन्होंने समाजिक गैर बराबरी को मूल समस्या माना है, और जबतक यह हो नहीं जाता तबतक उन्नत भारत कि परिकल्पना नहीं कि जा सकती है। उनके विचारों के लिए मुक्त कण्ठ से लोहिया की प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने कभी भी पद या सत्ता की कामना नहीं की।[7] लोहिया पहले ऐसे नेता थे, जो अपनी पार्टी या सरकार की गलत नीतियों की विपक्ष कि तरह आलोचना किया करते थे, भारत के संसदीय इतिहास में ऐसा कम ही देखने को मिलता है।

सप्तक्रांति के सात सूत्र

1. नर नारी असमानता का विरोध
2. त्वचा के रंग के आधार पर भेदभाव का विरोध
3. जाति प्रथा और पिछड़ो को विशेष अवसर देने हेतु क्रांति
4. लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था स्थापित करन`के लिए क्रांति
5. सशस्त्रीकरण का विरोध तथा सत्याग्रह
6. विदेशी दास्तां से मुक्ति के लिए क्रांति
7. आर्थिक समानता के लिए क्रांति

लोहिया के सप्तक्रांति पर स्पष्टत: गांधी दर्शन की छाप दिखाई पड़ती है। लोहिया दुनिया को खराब करने वाले अन्यायों में से एक स्त्री पुरुष असमानता को भी मानते हैं। जिसका असर हर क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। लोहिया ने गरीबी को दूर करने के लिए एक निश्चित सीमा तक ही खर्च को उचित माना है उन्होने लोकसभा के प्रथम भाशण में कहा था कि 27 करोड़ आदमी तीन आने रोज कमाकर अपना जीवन व्यतीत करने को मजबूर है जबकि प्रधानमंत्री 25-30 हजार रूपये रोज कमाते हैं। देश का सबसे महत्वपूर्ण काम करने वाले अध्यापक मात्र 6 रूपये रोज कमाकर अपना जीवन चलाते है जबकि प्रधानमंत्री 25-30 हजार रूपये ऐसा नहीं होना चाहिए खर्च की सीमा निश्चित होनी चाहिए तभी जाकर समता मूलक समाज की स्थापना संभव है।[8]

लोहिया जी ने पूंजीपतियों के विरूद्ध छोटे गरीब आदमी की लड़ाई को उचित ठहराया। जिससे कि शोषण कम से कम हो सके और शोषक तथा शोषितों के बीच फर्क को कम किया जा सके। तभी जाकर समाजवाद कि अवधारणा सफल हो सकती है। शुरूआती दौर में उनकी मृत्यु पश्चात दो नेताओं ने मुख्य रूप से उनकी विचारधाराओं को अपनाया और अपनी राजनीतिक यात्रा प्रारंभ की जिसमें मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव जी थे इनके साथ सहयोगी रामविलास पासवान और नीतिश कुमार भी थे।9 लेकिन कुछ समय पश्चात ये सभी नेता भी अपने लोहिया के समाजवादी विचारधारा से दूर होते नजर आए। आज हालात यह है कि कुछ नेता अपने को लोहियावादी कहते फिरते है, लेकिन वास्तविकता तो कुछ और ही है।

लोहिया भी गांधी की तरह भारत से जाति प्रथा को समाप्त करना चाहते थे। जो भारत की जड़मूल समस्या है। उनका मानना था कि निम्न या दलित वर्ग के लोगो को विशेष अवसर देना चाहिए ताकि उनका भी विकास हो और वे मुख्यधारा से जुड़ सके। तभी लोहिया का समाजवाद धारातल पर सफल हो सकेगा। डॉ. लोहिया ने कहा कि-"क्रांतियां हमेशा समाज को नये सिरे से निर्मित होने का सुअवसर प्रदान करती हैह। यही कारण है कि इतिहास में जितनी भी क्रांतियां हुई है उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक विचार धाराओं एवं सामाजिक संरचानाओं में परिवर्तन किया है।"

समाजवाद से एक सीढ़ी नीचे उतरो उस सीढ़ी का नाम है- बराबरी। उस बराबरी से एक सीढ़ी नीचे उतरो तो आर्थिक बराबरी, समाजिक बराबरी और उससे एक सीढ़ी नीचे उतरो तो संपूर्ण समता संभव समता, संपूर्ण समता का सपना देखो। लोहिया के विचार अन्याय के विरूद्ध है किसी धार्म, संप्रदाय या जाति के विरूद्ध नहीं।[10]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने गांधी एवं लोहिया की तरह ही पूंजीवादी व्यवस्था एवं पश्चिमी व्यक्तिवाद की विचारधारा का विरोध किया लेकिन आधुनिक तकनीक एवं पश्चिमी विज्ञान का स्वागत भी किया। इन्होंने पूंजीवाद तथा मार्क्सवादी साम्यवाद के बीच एक ऐसी रेखा खीचीं जिसमें दोनों के गुण मौजूद हों किन्तु अवगुण न हों। इन्होंने माना कि पूंजीवादी एवं समाजवादी विचारधारायें केवल मानव के शरीर एवं मन कि आवश्यकताओं पर ध्यान लगाती है। इसीलिए वे भौतिकवादी उद्देश्यों को पूरा करेगी। जबकि मानव समुदाय के सम्पूर्ण विकास के लिए इसके साथ साथ आत्मिक विकास (नैतिक बोध) भी आवश्यक है।[11] इन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं को दूर करने के लिए "वसुधौव कुटुम्बकम्" की अवधारणा पर बल दिया तो वहीं मानवीय संवेदनाओं के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि "एकात्म मानववाद" का दर्शन प्रस्तुत कर किया।

उन्होंने अपने एकात्म मानववाद के दर्शन में बताया कि "व्यक्ति एक है, उसके चारो ओर परिवार रूपी घेरा है, परिवार के चारो ओर समाजरूपी एक घेरा तथा समाज के चारों ओर राष्ट्र रूपी एक घेरा है, और राष्ट्र के चारो ओर विश्व का आवरण एवं उसके उपर ब्राहमांड का आवरण हैह। इस प्रकार हर कोई एक दूसरे से इस प्रकार जुड़ा है या समाहित है कि इससे अपने को अलग नहीं कर सकता है। चाहे जाति के स्तर पर हो या नस्ल के स्तर पर हो। उन्होंने सबको एक ही परिधि के अन्तर्गत रखकर विश्व समुदाय को यह बताने की चेश्टा की है कि हम सभी मानव जाति विश्व में एक ही है। एक परिवार के सदस्य है। इस प्रकार देखा जाए तो दीन दयाल उपाध्याय ने "वसुधौव कुटुम्बकम" की अवधारणा को अपने "एकात्म मानववाद" दर्शन के द्वारा दिखाने की कोशिश की है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने दर्शन के माध्यम से एक वर्गहीन, जातिविहीन और संघर्षमुक्त सामाजिक व्यवस्था की स्थापना पर जोड़ दिया। इनका उद्देश्य मानव को एक गरिमा पूर्ण जीवन प्रदान कर समाज के सबसे निचले स्तर पर बैठे व्यक्ति के जीवन में विकास लाना है।

दीनदयाल उपाध्याय जी एक युगद्रष्टा थे। वे गांधी की तरह गांव के विकास एवं कुटीर उद्योगों को बढाबा देने की वकालत करते हैं। यही कारण है कि जब 1950 के दशक में बड़े बड़े सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना पश्चिमी मॉडल की नकल पर हो रही थी तो इन्होंने इसका विरोध किया। ये भारत की तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर ही उद्योग धंधो का विकास करना चाहते थे जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार हो सके।[12]

आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इनके विचारों की प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र की मोदी सरकार दीनदयाल उपाध्याय कौशल योजना, स्टार्ट अप व स्टैंड अप इंडिया, मुद्रा बैंक योजना, दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण योजना, ज्योति योजना चला रही है।

उनका नारा "सबका साथ सबका विकास" भी समाज के अन्तिम व्यक्ति के उत्थान की अवधारणा पर आधारित है ऐसा प्रतीत होता है।

गांधी लोहिया व उपाध्याय के विचारों कि प्रासंगिकता

इस प्रकार गांधी और लोहिया की तरह, उपाध्याय जी ने भी मानव समाज के कल्याण के लिए जीवन पर्यंत प्रयास किया। प्रस्तुत आलेख में यह स्पष्ट करने की कोशिश की गई है कि जिस प्रकार महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के माध्यम से मानव समुदाय में सौहार्द एवं समरसता स्थापित करने की कोशिश की तो वहीं अपने सिद्धांतो के बल पर भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परंपरा और विचारधाराओं पर कुठाराधात किया फिर मानव जाति को एक नूतन संदेश से आलोकित किया।

डॉ. लोहिया ने भी मानवीय मूल्यों की पहचान कर उसने अपने सप्तक्रांति के सिद्धांत को स्थापित किया, जिससे भारत में जातीय भेदभाव और सतत् समाजवाद की स्थापना हो सके। कुल मिलाकर देखा जाए तो लोहिया भी गांधी जी की तरह एक सच्चे मानवतावादी और उद्धारक नजर आए।

एकात्म मानववाद के प्रेणता पंडित दीन दयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की अवधारणा को स्थापित कर मानव जाति को एक छत के नीचे लाने की कोशिश की इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि तीनो महापुरुषों ने अलग-अलग अवधारणाओं या विचारधाराओं के माध्यम से मूलत: मानव समाज के कल्याण के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया।

आज के वर्तमान समय में इनके विचारों की प्रासंगिकता इसलिए बढ़ गयी है कि आज का मानव व्यक्तिवाद, स्वार्थपरता, ध नलोलुपता एवं अनैतिक बाहय आडंबर के चकाचौधां में फंसता नजर आ रहा है जिसके कारण मानव समुदाय का अस्तित्व खतरे में दिखाई पड़ रहा है। अत: आज यह अत्यंत आवश्यक है कि इनके विचारों एवं चिंतन आदर्शों पर पुन: विमर्श किया जाए।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मोहनदास करमचन्द गांधी, मेरे सपनो का भारत, पृष्ठ 69, राजपाल प्रकाशन
2. मोहनदास करमचन्द गांधी, मेरे सपनो का भारत
3. मोहनदास करमचन्द गांधी, मेरे सपनो का भारत
4. ईश्वरचन्द विद्यासागर, जीवनी
5. हरिनारायण ठाकुर, भारत में पिछड़ा वर्ग आन्दोलन, कालपाज प्रकाशन
6. लुई फिशर, गांधी की कहानी, पृष्ठ 117
7. डॉ. कन्हैया त्रिपाठी, राममनोहर लोहिया और सतत समाजवाद, ग्रंथ अकादमी
8. वही,
9. वही,
10. वही,
11. डॉ. दीनानाथ सिंह, पंडित दिनदयाल उपाध्याय की चिंतन दृष्टि, सिवांक प्रकाशन
12. वही,

केवल शोक-गीति नहीं है 'सरोज स्मृति'

डॉ० हरीश अरोड़ा

हिन्दी विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार

हिन्दी कविता में निराला रचित शोक-गति नितान्त वैयक्तिक होने के बावजूद भी प्रगतिशील चेतना का निर्वहन करती है। वर्ष 1936 में प्रगतिवाद के उदय और छायावाद के चरमोत्कर्ष के कालखण्ड में लिखी गई इस कविता में निराला बाह्य विषमताओं के कारण उपजी वेदना की चीख को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। सरोज के जीवन की करुणा के माध्यम से तत्कालीन समाज और उसकी विसंगतियों पर गहरा प्रहार करती है यह कविता।

बीज शब्द : शोक-गीति, सौन्दर्यानुभूति, छायावादी शैली, प्रगतिशील, महाकाव्योचित औदात्य।

हिन्दी कविता संसार में बहुत कम मात्रा में शोक-गीतों की रचना हुई है। 'सरोज स्मृति' को हिन्दी कविता में प्रथम 'शोक-गीत' का स्थान प्राप्त है। किन्तु निराला की इस परम्परा का निर्वाह हिन्दी में शायद ही निराला की भाँति किसी ने किया हो। छायावादी कविता में दु:ख की अनुभूति को सभी कवियों ने स्वरांजलि दी है। उनका दु:ख नितान्त वैयक्तिक और करुणा से आप्लायित रहा है। किन्तु 'निराला' का दु:ख छायावादी दु:ख के चेहरे से भिन्न एक अलग चेहरा प्रस्तुत करता हैं। जहाँ दु:ख की करुण भूमि के साथ-साथ यथार्थ की ठोस भूमि भी विद्यमान है।

वास्तव में छायावाद में दु:ख और करुणा तो साहित्य का विशिष्ट अंग थीं। सामाजिक जीवन की विसंगतियों और भारत की पराधीन चेतना को जागृत करने में भी दु:ख ने महत्त्पूर्ण भूमिका निभाई। विशम्भर 'मानव' का मत है कि *"काव्य में करुणा के प्रसंग कवि की मनोग्रंथि को खोलने के साथ उसके मानव-धर्म के पालन में भी सहायता पहुँचाते हैं। वे क्योंकि अंतर की गहराईयों से उमड़ते हैं, अत: लोकमंगल की दृष्टि से भी बड़े उपयोगी होते हैं।"*[1] देखा जाए तो आधुनिक कवियों में निराला के समान अन्य ऐसा कोई भी कवि नहीं हुआ जो अपनी पीड़ा से कहीं अधिक दूसरों की पीड़ा को अभिव्यंजित करता हो।

निराला की पुत्री सरोज की असामयिक मृत्यु से पूर्व ही उनके परिवार में जैसे काल ने डेरा ही डाल लिया था। अपने परिजनों की इस अकाल मृत्यु से आहत निराला की पुत्री की अचानक मृत्यु ने तो जैसे निराला के पूरे व्यक्तित्व को ही हिलाकर रख दिया था। जीवन के संघर्षों से कभी भी कभी भी निराश न होने वाले कवि का सारा भाव-जगत जैसे इस दु:ख के दायरे में आकर सिमट गया। उनके दु:ख की अनुभूति छायावादी कवियों के समान किसी दूसरे लोक का सहारा नहीं ढूंढती थी, वह यथार्थ के धारातल पर खड़ी होकर जीवन-संघर्षों का साकार रूप प्रस्तुत करती थी। कवि मलयज के शब्दों में कहें तो– *"सरोज स्मृति में पहली बार दुख एक सौन्दर्यानुभूति के स्तर से लग कर कठोर वास्तविकता के रूप में व्यक्त होता है और इस दुख के बखान में कवि का कण्ठ किसी अन्त:संगीत से नहीं, बाह्य विषमताओं के बोध से फटा-फटा सा हो गया है। यहाँ दुख का उसके निपट नंगेपन में साक्षात्कार है, उसे भुलावा देने या मधुर-मधुर बनाने की चेष्ठा नहीं। ..... 'सरोज स्मृति' दुख को लेकर उड़ने या उसमें खोने के लिए नहीं बल्कि दुख को याद करने, उससे भीतर-ही-भीतर मर्माहत होने और बीच-बीच में बाहर कभी व्यंग्य-विद्रूप में तो कभी आत्माधिकार में चीख पड़ने के लिए है।"*[2]

'सरोज स्मृति' का आरम्भ भले ही कवि ने छायावादी शैली में अपनाया है किन्तु जैसे-जैसे कविता का विकास होता है वैसे-वैसे कवि का स्वर भी छायावाद से बाहर निकलकर प्रगतिशील सामाजिक जीवन-चेतना से सम्बद्ध हो जाता है। कविता के आरम्भ में ही कवि कहता है-

ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु तरण
तनये, कर ली दृक् पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण
गीते मेरी, तज-रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय
चढ़ मृत्यु तरणि पर तूर्ण-चरण
कह- 'पितः, पूर्ण-आलोक-वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं वरण
सरोज का ज्योतिः शरण-तरण।[3]

कविता का आरम्भ दुःख की परछाई से परे है और कवि ने इसमें काव्योचित भव्यता के लिए एक विशाल रूपक बाँधा है। यह दुःख के परे जीवन सत्य का दर्शन उपस्थित करता है। इसमें दुःख और करुणा का उत्ताप नहीं है बल्कि एक शांत और गम्भीर चिन्तन का स्वर झलकता है। सरोज का मरण जीवन के 'शाश्वत विराम' की ओर जाने की यात्रा है। क्योंकि उसके जीवन के अट्ठारह वर्ष गीता के अट्ठारह अध्याय हैं। गीता का पूर्ण पठन मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाता है। कवि ने जिस विराट कल्पना के द्वारा मृत्यु को गीता के साथ सम्बद्ध किया है उससे कवि द्वारा खींचा गया यह रूपक अत्यन्त दार्शनिक विचारणा से युक्त बन पड़ा है। 'जीवन-सिन्धु' पर तैरकर ही 'मृत्यु-तरणि' जीवन को 'पूर्ण-आलोक-वरण' तक ले जाती है। कवि ने अत्यन्त गहन विचार प्रधान शैली द्वारा आरम्भ में ही महाकाव्योचित औदात्य की गरिमा को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

निराला ने जीवन-भर साहित्य देवी की आराधाना की है। उस 'ज्योतिस्तरणा' के चरणों में बैठकर ही उसने 'अशब्द अधारों' की भाषा को सुनने-समझने की आभा प्राप्त की है। इसीलिए वे सरोज के मन की बात जान गए। जीवन के यथार्थ पथ पर अपनी सहचरी का साथ वे बहुत पहले खो चुके थे। इसीलिए सरोज परलोक में उनकी सहायक बनने के लिए ही उनसे पहले पहुँच गई। निराला के कवि मन को यह पीड़ा भी थी कि वे अपने पुत्री के लिए कुछ भी न कर सके-

धान्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।[4]

जीवन में जिस सत्य के सामने निराला कभी झुके नहीं, उस सत्य की कठोर अनुभूति ने समाज के यथार्थ को सामने लाने के लिए ही कवि को बाध्य किया। समाज की स्वार्थ नीतियों से कवि सदैव पराजित हो गया लेकिन अपने आदर्श सिद्धान्तों से उन्हें कोई पदच्युत न कर सका। आलोचकों ने उन पर, उनकी कविताओं पर, उनके 'मुक्त छंद' पर अनेक आघात किए किन्तु कवि अपनी

आत्म शक्ति से निरन्तन उनसे जूझता रहा। धन की अपेक्षा साहित्य-सर्जना उनके जीवन का उद्देश्य बन गई। कवि के मन का क्षोभ, उनकी उदासी का स्वर कविता में मुखरित होने लगा। किन्तु इस उदासी से वे बाहर आते हैं अपनी पुत्री की स्मृति के चित्रों को उकेरते हुए। सरोज की बाल-क्रीड़ायें, गंगा के तट की लहरियों को देखकर उसका प्रसन्न होना– सरोज की स्मृतियों में ही कवि के जीवन के आदर्श और यथार्थ साक्षात हो उठते हैं। उनकी उदासी का विस्फोट व्यंग्य रूप में सामाजिक अंधा-परम्पराओं के विरुद्ध साकार हो उठता है-

ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद
इस विषम बेलि में विष ही फल
यह दग्धा मरुस्थल-नहीं सुजल।[5]

कवि मर्यादित जीवन में मानवता के जीवन्त और आदर्श स्वरूप के प्रति आकृष्ट है इसीलिए अपनी ही जाति पर उसका आक्रोश स्वाभाविक था। यह तो संयोग ही था कि अपनी जाति का सुयोग्य युवक उन्हें अपनी पुत्री के वर रूप में मिल गया। एक नए विवाह की रीति-विधि से कवि ने पुत्री को विदा किया किन्तु काल की विडम्बना ने उनकी पुत्री को उनके संसार से ही छीन लिया। इसीलिए कवि स्वयं को भाग्यहीन कहता है– उसके जीवन की कथा तो केवल दु:ख से लिखी गई है-

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं।
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कर्म सकल
हो भ्रष्ट शीत के-से शतदल।[6]

वास्तव में कवि ने जीवन-भर संघर्षों का डटकर सामना किया। उसकी आन्तरिक शक्ति उसके जुझारू रूप को कविता में बार-बार उभारती है। किन्तु अन्तत: पराजित होकर ही वह रचना-कर्म पर भी वज्रपात करना चाहता है। समाज से लड़ने वाला कवि अन्तत: भाग्य के सामने ही पराजित होता है। लेकिन समाज की जड़-परम्पराओं का विरोध और शुचिपरक मूल्यों की स्थ्ज्ञापना में कवि विजय प्राप्त करता है। 'राम की शक्ति पूजा' में निराला परोक्ष रूप से कविता में रहते हैं इसलिए राम का दु:ख प्रबल होने पर भी कवि के वैयक्तिक दु:ख का आभास ही देता है किन्तु 'सरोज स्मृति' में तो कवि प्रत्यक्ष रूप में अपने व्यक्तिगत् दु:खों को ही अभिव्यक्त करता हैं

'सरोज स्मृति' का अन्त एक रचना का अन्त नहीं था, कवि इस रचना में अपनी शोकानुभूति के साथ-साथ समाज की विद्रूप स्थितियों को नग्न कर यथार्थ रूप में सामने भी लाना चाहता था। इसलिए इस शोक-गीति में कल्पना, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि सभी का समायोजन कवि के कलात्मक कौशल को भी प्रस्तुत करता है। कवि ने नितान्त व्यक्तिगत जीवन-प्रसंगों को उठाकर भी वस्तुपरक तटस्थता द्वारा इसे कलात्मक रचना बना दिया है।श्रृंगार के आंशिक चित्रों के बावजूद शोक की गहरी अनुभूति ने इस कविता में अंगी रस के रूप में 'करुण रस' को स्थान दिया है। केवल 'दु:ख ही जीवन की कथा रही' कहकर कवि ने सारी करुणा इसी पंक्ति द्वारा उड़ेल दी है।

निराला भाषा के शिल्पी थे। उन्होंनें प्रत्येक विषय को किसी भी रूप में प्रस्तुत करते समय ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो कथ्य को जीवन्त और अर्थवान बना देती है। 'सरोज स्मृति' में निराला की भाषा के स्तर भावां के अनुकूल बदलते हैं। कवि की निराशा शब्दों के चयन या बलात प्रयोग से नहीं हुई बल्कि ये कवि के सहज उद्गारों से निकले शब्द ही हैं जो उनकी निराशा और विक्षोभ को प्रकट करते हैं-

लौटी रचना लेकर उदास
ताकता रहा मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन गुनकर
सम्पादक के गुण, यथाभ्यास
पास की नोचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर।[7]

सरोज के नख-शिख निरूपण में कवि काश्शृंगार वर्णन तो हिन्दी का अद्वितीय वर्णन है। पिता द्वारा पुत्री के यौवन के पर्दापण तथा उसकी शारीरिक परिवर्तन की सूचना देना हिन्दी कविता में अन्यत्र नहीं मिला, ऐसा दुर्लभ किन्तु शुचिपरक वर्णन वास्तव में निराला जैसा विद्रोही कवि ही कर सकता था।

बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज तारुण्य सुघर
आई, लावण्य-भार थर-थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर।
नैश स्वप्न ज्यों मन्द-मन्द
फूटी ऊषा जागरण-छंद।[8]

कवि ने लावण्य-भार से थर-थर काँपती देह की उपमा वीणा पर गाए गए राग मालकोश से देकर सौन्दर्य वर्णन में भी औदात्य की रक्षा की है।

निराला की एक अन्यतम विशेषता इस बात में है कि वे कविता के मुख्य भाव में अन्य भावों के संयोजन के लिए 'पूर्व दीप्ति शैली' का प्रयोग करते हैं। 'सरोज स्मृति' में तो दु:ख और विषाद के क्षणों में भी अपनी पुत्री के बाल्य-काल के स्मृतिजन्य वर्णनों द्वारा कवि ने दु:ख को अधिक गहरा करने के लिए ही साधन बनाया है। साथ ही सामाजिक यथार्थ पर आक्रोश की अभिव्यक्ति द्वारा कवि ने कविता को मार्मिक और अर्थवान बना दिया है। निराला का विराटत्व उनके बिम्बों में भी झलकता है। उनके बिम्ब तो विराट-चित्र की सर्जना करते है। 'सरोज का ज्योति:शरण तरण' के द्वारा कवि ने अध्यात्मिक चेतना और दार्शनिक चिन्तन को अभिव्यक्त किया है-

चढ़ मृत्यु तरणि पर तूर्ण-चरण
कह-'पित:, पूर्ण-आलोक-वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं वरण
सरोज का ज्योति: शरण-तरण।[9]

बिम्ब तो जैसे निराला की कविताओं को साकार रूप में प्रस्तुति देने के लिए ही बने हैं। उपमा, रूपक आदि अलंकारों से युक्त होकर इन बिम्बों में विभिन्न रंग उपस्थित हुए हैं। कथ्य और कला दोनों ही दृष्टियों में 'सरोज स्मृति' अप्रतिम है।

संदर्भ

1. मलयज, निराला की कविताएँ, सं. परमानंद पांचाल, नीलाभ प्रकाशन, संस्करण 1977, पृष्ठ 68
2. विशम्भर 'मानव', काव्य का देवता : निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1963, पृष्ठ 117
3. निराला, 'सरोज स्मृति', निराला रचनावली-1, सं. नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 1983, पृष्ठ 296
4. वही, पृष्ठ 297
5. वही, पृष्ठ 302
6. वही, पृष्ठ 305
7. वही, पृष्ठ 299
8. वही, पृष्ठ 301
9. वही, पृष्ठ 296

संक्षिप्त परिचय

डॉ. हरीश अरोड़ा

* दिल्ली विश्वविद्यालय के पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य) में विगत् 20 वर्षों से प्राध्यापक।
* आठ वर्षों तक 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' में सेवा के पश्चात् अध्यापन के क्षेत्र में सक्रिय।
* कविता, कहानी, नाटक, आलोचना और पत्रकारिता आदि विभिन्न विधाओं में 35 से अधिक पुस्तकों का लेखन एवं सम्पादन।
* मेरे मौलिक साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों से विभिन्न शोधर्थियों को 4 एम.फिल्. तथा 1 पी-एच.डी. की उपाधियाँ।
* मेरी कवितायें संत बाबा गाडगे अमरावती विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र तथा रानी चेनम्मा विश्वविद्यालय, कर्नाटक के अनिवार्य पाठ्यक्रम में शामिल।
* लगभग 20 से अधिक राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय सम्मानों से विभूषित।

बिहार की स्वतन्त्रता में बक्सर प्रतिरोध का प्रभाव

आशा शर्मा

शोधर्थिनी, (इतिहास विभाग)
तिलकामांझी, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

बिहार का इतिहास हमेशा से गौरवशाली रहा है। प्राचीनकाल से ही यह राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक चेतना का केन्द्र बिन्दु रहा है। चन्द्रगुप्त, अशोक शेरशाह जैसे और गुरु गोविन्द सरीखे धर्मगुरु बिहार की मिट्ठी से ही पैदा हुए हैं। गौतम बुद्ध तथा महावीर को ज्ञानदिप्ति बिहार से ही मिली, जिसके फलस्वरूप उनका धर्म दुनिया के कोने-कोने में फैला है, अपने दीर्घकालीन आस्तित्व के हर काल खण्ड में बिहार की भूमि ने अपूर्व प्रतिरोधत्मक शक्ति का परिचय दिया है। प्राचीन युग में महात्मा बुद्ध और महावीर ने उत्पीड़न तथा शोषण से लिप्त ब्राह्मणवाद एवं कर्मकाण्ड पर आश्रित समाज में आपेक्षित सुधार लाने के लिए अभूतपूर्व आन्दोलन किया तथा प्रतिक्रियावादी एवं सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध उन्होंने ऐतिहासिक प्रतिरोध का बीच बचाव किया है। आताताई नन्दवंश को समुल उखाड़ कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी अद्‌भूत प्रतिरोध की नींव डाली। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकन्दर के आक्रमण का भी प्रबल विद्रोह किया। देबनाम प्रियदर्शी सम्राट अशोक ने परम सुधारवादी बौद्ध धर्म को प्रश्रय देते हुए पाखण्डों पर आश्रित ब्राह्मण धर्म के प्रदूषणों का प्रतिरोध जारी रखा। मध्यकाल में शेरशाह ने सैनिक और संगठनात्मक शक्ति की बदौलत मुगल साम्राज्य को हिला डाला।

इतिहास के पृष्ठों के अवलोकन से पता चलता है कि बिहार का स्वतन्त्र आस्तित्व हमेशा विद्यमान रहा है। मुसलमानों के शासनकाल में भी बिहार का अपना अलग आस्तित्व था और पूर्वी हिन्दूस्तान को कुंजी समझा जाता था। मुगल शासन के कमजोर हो जाने के पश्चात् बंगाल का नबाब स्वतंत्र हो गया और बंगाल पर मुगलों का नाम मात्र का ही शासन रहा। इस समय बिहार के प्रशासन के लिए एक अलग नायब नाजीम नियुक्त किया जाता था। परन्तु 1764 ई. की बक्सर की लड़ाई के बाद दिल्ली का एक कमजोर बादशाह शाह आलम ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दिवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दी। फिर भी बिहार के एक नायब-नाजीम बहाल होता रहा।

बक्सर की लडाई में एक तरफ ईस्ट इंडिया कम्पनी थी तो दूसरी ओर अवधा के नबाव शुजाउहौल, बंगाल के नवाव मीर कासिम और मुगल शहंशाह आलम द्वितीय की सेना थी। मात्र तीन घंटे में ही ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शासन पुत्र अपने हाथों में लेने के पश्चात् लोगों के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन में अनेक परिवर्त्तन किया परन्तु इस परिवर्त्तन को जनता बरदाश्त नहीं कर सकी और जगह-जगह विरोध होने लगा। 1780-81 में बनारस के राजा चेत सिंह ने जब अंग्रेजों के खिलाफ विरोध कर दिया तब तक बिहार के जमींदारों ने विप्लवियों का साथ दिया।[1] इस समय बिहार में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने वालों में हथुआ के राजा फतह शाह, गया जिले के नरहत तथा समाई के राजा अकबर अली खाँ तथा सेरेस और कातुम्बा (गया) के जमींदार नारायण सिंह का नाम उल्लेखनीय है।

12 अगस्त 1765 ई. को अग्रेंजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय से बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दिवानी प्राप्त की इसके साथ ही बंगाल में द्वैधा शासन की शुरूआत हुई। निजामत पूर्ववत बंगाल के नबाव के हाथ में रहा। लेकिन

दिवानी अर्थात राजस्व उगाहने का काम कम्पनी प्रशासन के हाथों में चला गया। कम्पनी के निदेशक मण्डल एवं स्वयं क्लाइव ने दिवानी के इस गुरुत्तर दायित्व को प्रत्यक्ष रुप से अपने हाथों में लेने से इन्कार कर लिया। क्वाइव ने स्पष्ट रूप से कलकत्ता कौंसिल को लिखा "हम मानते है कि दिवान के पद को सिर्फ राजस्व की उगाही एवं उसके निपटारे की र्प्यवेक्षण तक सीमित रहना चाहिए। नि:सन्देह दिवानी का पद कम्पनी में निहित किया गया है। वास्तव में इस शक्ति का उपयोग हमें अपने भारतीय कर्मचारियों के माध्यम से करनी चाहिए। दिवान का कार्य सिर्फ नबाब के कोष में राजस्व जमा करना एवं उस कोष के पैसे को हासिल करना तक सीमित होना चाहिए। मेरे विचार से दिवानी के पद का अभिप्राय यही है कि प्रशासनिक कार्यों को कार्यरुप देना, असैनिक प्रशासन के तहत मुख्य रुप से यह कार्य नबाब और उसके मंत्रियों का है।[2]

बक्सर के युद्ध के उपरान्त बिहार के प्रशासन का कार्य मीर जाफर के भाई मिर्जा मोहम्मद कासीम खाँ के द्वारा बिहार के उप गर्वनर धीरज नारायण के सहयोग से चलाया जा रहा था। धीरज नारायण राजा रामनारायण का भाई था। सितम्बर 1765 ई. में क्लाइव ने बिहार के प्रशासन में परिवर्त्तन किया। उसने मोहम्मद कासीम खाँ को अपास्त कर दिया और उसे पेंशन देकर राजामहल भेज दिया। उसके बदले बिहार का शासन राजा धीरज नारायण के हाथों में सौंप दिया। राज सिताब राय को उनका दीवान नियुक्त किया गया। 1766 ई. के प्रारंभ में एक तीन सदस्यीय काउसिंल का गठन किया गया जिसका अध्यक्ष धीरज नारायण था। इसके अतिरिक्त सिताब राय एवं सेमुअल मिडिलटन के सदस्य थे। सैमुअल मिडिलटन का बिहार के प्रशासन पर अच्छा खासा प्रभाव था। 1767 ई. में मिडिलटन को पटना में कम्पनी के फैक्ट्री के प्रधान के पद से हटा दिया गया। उसके स्थान पर थोसम रमबोल्ड की नियुक्ति की गई उसे फैक्ट्री के प्रधान के साथ-साथ राजस्व उगाही का निरीक्षक भी नियुक्त किया गया। रमबोल्ड ने 1769 ई. में अपने पद से इस्तिफा दे दिया। उसके स्थान पर जैम्स ऐल्कजेन्डर को निरीक्षक नियुक्त किया गया।[3] राजा धीरज नारायण में प्रशासनिक दक्षता की घोर कमी थी। बिहार कठिन परिस्थतियों से गुजर रहा था। उसकी सेना ने बंगाल का रुख अपनाया। जिस समय स्लाइव 1766 ई. में पटना में ठहरा हुआ था राजा सिताब राय ने उसे सलाह दी कि मोहम्मद राजा खाँ के द्वारा राजस्व संबंधी मामलों की जाँच करा ली जाय। मोहम्मद राजा खाँ ने राजा धीरज नारायण पर कई वित्तीय अनियमित्ताओं का आरोप लगाया था उसे अपने पद से हटा दिया गया और उस पद पर राजा सिताब राय को नियुक्त कर दिया गया। राजा सिताब राय के समय उनके पुत्र कल्याण सिंह ने उस शासक के पद को संभाला और पिता को सहयोग दिया। जब सिताब राय ने नए गवर्नर हैनरी बरैल्सट से मुलाकात करने के लिए कलकत्ता प्रस्थान किया उसने बिहार का प्रभार अपने पुत्र के हाथों में सौंपा।[4] क्लाइव ने बिहार की उत्तरी पश्चिमी सीमा की ओर से मिल रही परेशानियों से उबरने के लिए कुछ कदम उठाये,। इस समय मराठों के आक्रमण का भय भी बना हुआ था। मुंगेर में युरोपीय सिपाहियों के विद्रोह की सूचना मिलते ही क्लाइव ने 15 मई 1766 को वहाँ के लिए प्रस्थान किया। विद्रोह को कुचलकर वह वापस पटना चला गया। पटना से उसने छपरा की यात्रा की जहाँ उसने जरनल कारनक, सुजाउद्धौला एवं सम्राट के दूत जाट राजा एवं सरेला प्रभुत्व को बुलाया था। बिहार में राजस्व उगाही करने वाले अधिकारियों को समय-समय पर सैनिकों की सहायता लेनी पड़ती थी। जमींदारों के द्वारा प्राय: राजस्व देने से इन्कार किया जाता था। गर्वनर ने बेतिया के जमींदार राजा जुगल किशोर को 24 जुलाई 1765 को एक पत्र लिखा जिसमें कहा गया कि मीर कासिम के काल में वह 6 से 7 लाख रूपये प्रतिवर्ष जमींदारी शुल्क जमा करता था।[5] लेकिन बाद में उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उसे तत्काल राजकोष में शुल्क जमा करने की हिदायत दी गयी। अन्यथा उसके खिलाफ सैनिक कदम उठाया जायेगा। 1766 में पटना से सर रौबर्ट वारकर को बेतिया भेजा गया। बारकट ने बेतिया के किले को धवस्त कर जमींदार को बकाया चुकाने के लिए मजबूर कर दिया।

यदि 1765 ई. के पूर्व बिहार के लोगों की दशा दयनीय थी तो 1765 से लेकर 1772 के बीच उनकी अवर्णनीय हो गई। क्लाइव ने द्वैधा शासन प्रणाली के दौरान बिहार एवं बंगाल के प्रशासनिक ढांचे में एक नई जान डालने का प्रयास किया, लेकिन उसके कर्मचारी ही उसकी जाने दुश्मन हो गये। कम्पनी के कर्मचारी एवं व्यापारी गलत तरीकों को अपनाकर आर्थिक रूप से काफी समुद्धशील हो गये। कम्पनी की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। ऐसे समय में क्लाइव 29 जनवरी 1767 को बंगाल छोड़कर इंग्लैंड चले गये। उसके दो उत्तराधिकारी बैरेलस्टर और कार्हियर को एक पत्र लिखा जिसमें उसने स्वीकार किया कि दिवानी ने न तो कम्पनी को लाभ पहुंचाया ना ही भारत के लोगों के हित में उपयोगी सिद्ध हुआ। द्वैद्य शासन ने कम्पनी को सारे अधिकार प्रदान किये। लेकिन उसे कोई दायित्व नहीं सौंपा गया। ऐसे ही समय में 1769-70 ई. के बीच बिहार को भीषण आकाल का सामना करना पड़ा। पूरे

प्रान्त में भूखमरी की स्थिति पैदा हो गई। बड़ी संख्या में लोग मर गये। सरकार की ओर से लोगों को उचित सहायता नहीं मिल पायी। आकाल सबसे ज्यादा पूर्णिया, पटना एवं उसके आस-पास के क्षेत्र में फैला। किसानों को अपने जानवर तथा कृषि का उपकरण बेचना पड़ा। उन्होंने बीज के लिए रखे अनाजों को खाना शुरु कर दिया था। इतना ही नहीं अपने बेटों, बेटियों को भी बेचना पड़ा। र्जाज वेसिर्टाट को फरवरी 1771 ई. में पटना से वापस बुला लिया गया और उनके बदले जैकल को भेज दिया गया। जैकल पटना में कुछ महीनों के लिए रहा। विलियम बारगेंल के पुत्र रिर्चड बारगेल ने पटना में पद को संभाला। रिचर्ड वारगेल को वापस बुला लेने के बाद जार्ज वेनसिर्टाट पटना का प्रमुख नियुक्त हुआ। इसी समय 3 अप्रैल 1772 ई. को वारेन हेस्टिंग ने दोहरी शासन प्रणाली को निरर्थक समझा और कहा कि इस शासन प्रणाली से ना तो कम्पनी का भला हुआ और न ही यहाँ के लोगों का, इस तरह के शासन प्रणाली का कोई मतलब नहीं था। अत: द्वैधा शासन को समाप्त करने की घोषणा कर बंगाल, बिहार, उड़ीसा के उपर अंग्रेजी कम्पनी का प्रत्यक्ष प्रशासन को शुरू किया। इस तरह बिहार में द्वैद्य शासन की समाप्ति हुई।

स्थायी बन्दोबस्त या इस्तमरारी भू-राजस्व व्यवस्था का जनक गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस को माना गया है। लार्ड कार्नवालिस को ही भारतीय प्रशासन का जनक माना गया है। उसने ही सही अर्थों में भारत में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी को ठोस प्रशासनिक ढांचा प्रदान किया। इस विशाल ढांचे को दक्षतापूर्वक संचालित करने के लिए राजकोष का भरा रहना आवश्यक था। प्रारंभ में कम्पनी के अधिकारियों ने मुगलों के ही राजस्व प्रबंध को अपनाया और अपने कोष को कम-से-कम समय में भरने के लिए उन्होंने इजारेदारी पद्धति का सहारा लिया। चूँकि कार्नवालिस का जमींदार परिवार से संबंध था। इसी भावना से उत्प्रेरित होकर उसने 1793 में भू-राजस्व की एक स्थाई व्यवस्था को लागू किया। इसे बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण भारत के नंदर्न सरकार ने भी लागू किया और उम्मीद की गई कि इस व्यवस्था से सभी वर्ग के लोगों को लाभ पहुँचेगा।

अंग्रेजी कम्पनी के द्वारा स्थायी बन्दोबस्त लागू किये जाने के उपरांत भूमि का स्थायित्व किसानों के हाथ से निकलकर जमीनदारों के हाथ आ गया। बिहार में दरभंगा राज, बेतिया राज, हथुआ राज, छोटानागपुर राज, बाधिराज, डुमरांव राज और पातेपुर राज जैसे अनेकों राज को जमींदारों का दर्जा दिया गया और उनके साथ राजस्व वसूलने का अनुबंधा किया गया। किसानों के हाथ से भूमि की मिलिकयत जाती रही और अब उन्हें जमींदारों के रहमों-करम पर जीवन बसर करने के लिए मजबूर कर दिया गया।[6] स्थायी बन्दोवस्त के अंतर्गत सरकार ने अपना और जमींदारों के राजस्व का हिस्सा तय कर दिया था लेकिन उसने जमींदारों के ऊपर कोई अंकुश नहीं लगाया कि वे किसान से कितना उगाहेंगे। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि किसानों ने अपने खेतों में कितना ऊपज किया है। समय पर राजस्व नहीं चुकाने के कारण किसानों का जमीन नीलाम होने लगा जो कल तक अपने जमीन के मालिक थे। अब उन्हें खेतिहर मजदूर बनने को मजबूर होना पड़ा। कुटिर उद्योग संघों के नष्ट हो जाने के कारण जमीन पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा था। इसके कारण भी किसानों का दूरगति शुरू हुई।

बड़े-बड़े जमींदारों के बढ़ते अत्याचारों ने किसानों की स्थिति को दयनीय बना दिया था। इन जमींदारों ने अपने मैनेजरों एवं अन्य अधिकारियों के हाथों में राजस्व उगाहने का कार्य छोड़कर बड़े-बड़े शहरों में जाकर विशाल भबनों का निर्माण किया और वहाँ रहने लगे तथा किसानों को उनके भाग्य के सहारे रहना छोड़ दिया। इस तरह कहा जा सकता है कि स्थायी बन्दोबस्त ने बिहार की सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे में जबरदस्त परिवर्त्तन लाया। पुराने जमींदारों का स्थान नये जमींदारों ने लेना शुरू किया। नए जमींदारों में अधिकांश लोग व्यापारी एवं महाजन थे जिन्होंने किसानों एवं गरीबों का शोषण कर धन अर्जित किया था।

बिहार में जगह-जगह पर किसानों के द्वारा जमींदारो एवं महाजनों के खिलाफ विद्रोह शुरू हुआ और किसानों को अस्त्र-शस्त्र उठाने के लिए मजबूर होना पड़ा। 1857 के विद्रोह से पहले इस तरह के अनेकों विद्रोह हुए जिसे कम्पनी की सरकार ने बुरी तरह कुचल दिया।

दक्षिण बिहार में जनजातियों के ऊपर भी स्थायी बन्दोबस्त का अत्यधिक बुरा असर पड़ा। इस व्यवस्था ने तो उनकी दुनिया ही उजाड़ दिया। उनके लिए भूमि का महत्व सिर्फ आर्थिक ही नहीं अपितु भूमि में ही उनके पूर्वजों की आत्मा वास करती थी और उनके सारे देवी-देवता भूमि से ही जुड़े हुए थे। मुगलकाल में विशेष कर अकबर के समय में ही जब छोटानागपुर राज्य का आर्भिभाव हुआ तब सामुदायिक कर लगाने की व्यवस्था शुरू हुई लेकिन जनजातिये लोगों को नाम मात्र का राजस्व देना पड़ता था। स्थायी

बन्दोवस्त के लागू होने के उपरांत इनलोंगो को छोटे-छोटे जमींदार का दर्जा दे दिया गया और छोटानागपुर का राजा बड़ा जमींदार बना। समय पर राजस्व नहीं देने के कारण जनजातिये लोगों की जमीनें भी नीलाम की जाने लगी। इन जमींदारों ने इस क्षेत्र में महाजनों व्यापारियों एवं सुदखोरों का प्रवेश करवाया और जनजातिये लोगों की इज्जत के साथ खिलवाड़ शुरू हुआ। इन्हीं जमींदारों, सुदखोरों और महाजनों के खिलाफ छोटानागपुर में हो, कोल एवं संथाल परगना में संथाल विद्रोह की शुरूयात हुई और बड़े पैमाने पर इन शोषक तत्वों को खत्म कर दिया लेकिन कम्पनी सरकार ने शोषकों का साथ दिया और जनजातियों से विद्रोह राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा हो गया।

1770 ई. में बिहार के नोनिया जाति के लोगों ने अंग्रेजी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष शुरू किया। बिहार में शोरे के उत्पादन का मुख्य केन्द्र हाजीपुर, तिरूहत, सारण और पूर्णिया थे। शोरे की मिट्ठी इक्टठा करने और उसे तैयार करने का काम नोनिया करते थे, शोरे के व्यापार पर बिहार में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की इजारेदारी थी ऐसी हालत में अत्याधिक शोषण का मुकाबला करने में नोनिया सक्षम नहीं थे। खुला विद्रोह करना उनके लिए संभव नहीं था।

1781 ई. में बनारस के राजा चेत सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। उसमें उनका साथ बिहार के कुछ असंतुष्ट जमींदारों ने दिया। उनमें रजा कुली खाँ, पुतल शाह, नारायण सिंह एवं अकबर अली प्रमुख थे। 1789 ई. में अवधा के वजीर अली ने विद्रोह किया। उसके प्रमुख सहायकों में गया जिलों के टेकारी राजा मंजीत सिंह प्रमुख थे। स्थायी बन्दोबस्त ने बिहार में किसानों की कमर तोड़ दी जिसके कारण चेरों विद्रोह, तमार विद्रोह, हो विद्रोह, कोल विद्रोह तथा संथाल विद्रोह और इन्हीं विद्रोह के फलस्वरूप 1857 ई. में अंग्रेजों के खिलाफ इन किसानों ने विद्रोह किया।

1789 ई. में छोटानागपुर के उड़ाब जनजाति के द्वारा जमींदारों के शोषण के खिलाफ विद्रोह की शुरूआत हुई। जो 1794 ई. तक चला। इतिहास में यह विद्रोह तमार विद्रोह के नाम से जाना गया। पुलिस ने इसे शांति व्यवस्था बनाये रखने की अपील की लेकिन इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुई। पुनः 1811, 1817 और 1820 ई. में जनजातिये किसानों की भूमि अवैधा तरीके से छीने जाने के कारण छोटानागपुर के जनजातीय लोगों ने खासकर मुण्डा तथा उड़ाव लोगों ने जमींदारों के खिलाफ विद्रोह किया।

इसके बाद छोटानागपुर संथाल परगाना की आदिवासियों ने भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरूद्ध विरोध कर दिया, जिसका मुख्य कारण लगान की बढ़ोत्तरी, बैगारी तथा महाजनों द्वारा मनमाने सूद की वसूली था। आदिवासियों के ऐसे विद्रोह में 1820-21 ई. का हो विद्रोह, 1831-33 ई. का कोल विद्रोह, तथा मान भूमि के भूमि जो के विद्रोह प्रसिद्ध थे। परन्तु इन सबसे बढ़कर 1855-57 ई. का संथाल विद्रोह था जिसके नेता सिद्ध, कान्हु, चाँद तथा भैरव नाम के चार भाई थे। यद्यपि ये सभी विद्रोह दबा दिये गये, फिर भी उन्हें दबाने में सरकार की धान-जन की भी काफी क्षति हुई।[7] 1857 ई. की क्रांति में भी बिहार का प्रमुख योगदान रहा क्रांति की प्रथम चिन्गारी को प्रज्जवलित करने वाला बहादुर सिपाही मंगल पाण्डे बिहार (शाहबाद) का निवासी था। जगदीशपुर के बावू कुंवर सिंह तथा उनके छोटे भाई अमर सिंह ने इस संग्राम में अपने पराक्रम का अपूर्व परिचय दिया। पटना, गया, सारण, मोतिहारी, भागलपुर, तथा मुजफ्फरपुर के लोगों की भी इस क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है यद्यपि 1857 ई. का विद्रोह असफल रहा, फिर भी राजनेतिक चेतना के विकास में यह काफी सहायक सिद्ध हुआ।[8] 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई, तब बिहारियों की चेतना कुछ और प्रबंध हो गयी दरभंगा के राजा लक्ष्मीश्वर सिंह निरंतर काँग्रेस को आर्थिक सहयोग प्रदान करते रहे। 1886 ई. में जब कलकत्ता में अखिल भारतीय काँग्रेस का अधिवेशन हुआ तो बिहार के प्रतिनिधि भी शामिल हुए थे। 1888 ई. के इलाहाबाद काँग्रेस ने भी बिहारियों का प्रतिनिधित्व किया था। तब काँग्रेस के सभी अधिवेशनों में बिहार के प्रतिनिधि जाते रहे।

फिर भी बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का एक सूत्र में बंधा रहना बिहार के प्रगति के लिए बाधाक सिद्ध हुआ। राजधानी कलकत्ता होने के कारण बिहार में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार उतना नहीं हुआ जितना की बंगाल में हुआ। बिहार में प्रशासिकीय पदों को भरने के लिए कलकत्ता से अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किये हुए बंगालियों को ही लाया जाता था। बिहार के विद्यालयों में शिक्षक पर पर बंगाली ही नियुक्त किये जाते थे तथा बिहार के विद्यालयों में टिके रहने के लिए उन्हें अतिरिक्त भत्ता भी दिया जाता था। फलतः बंगाल की अपेक्षा बिहार सामाजिक और आर्थिक विकास में पिछड़ता चला गया।

इस संदर्भ में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "बिहार एक पिछड़ा हुआ सूबा था जहाँ सार्वजनिक जीवन का श्रोत बहुत पतला बहा करता था, शिक्षा का भी पूरा अभाव था सभी बातों में बिहार के लोग अन्य सूबों के लोगों की अपेक्षा बहुत पिछड़े समझे जाते थे। बिहार अंग्रेजी शासन के प्रारंभ से ही बंगाल के साथ था। वह वर्षों बंगाल का हिस्सा बना रहा। यहाँ तक बंगाल का अलग नाम तक भी भूल गये थे। बंगाल उन्नत सूबा था पर उन्नति का प्रभाव बिहार तक नहीं पहुँच पाया था। अंग्रेजी शिक्षा में भी बिहार इतना पिछड़ा हुआ था कि बिहारी लोग सरकारी दफतरों तक नहीं पहुँच पाते थे, ऊँचे ओहदों को कौन कहे।[9] बिहारी अपनी निरीहता के प्रति सदैव चिंतित रहे, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बंगाल में अलग होने की बात उनके मन में घर करती गई। सन् 1889 ई. में सच्चिदाननद सिन्हा बैरिस्ट्री पास करने इंग्लैंड गये। कतिपय राजनीतिक तथा प्रशासनिक कारणों से इंग्लैंड में उस समय बिहार का नाम कोई नहीं जानता था, जब सच्चिदानन्द बिहार की स्थिति का भौगोलिक स्थिति का दर्पण करते तो अंग्रेज कहने लगते अरे! बंगाल कहो, बहुत से उनके मित्र तो उन्हें यहाँ तक चुनौती देते कि भूगोल के किसी भी स्वीकृत पाठ्यपुस्तक में बिहार का नाम दिखला दो।[10] इस पर सच्चिदानंद की गर्दन शर्म से झुक जाती थी। उन्होंने पटना के वरिष्ठ पत्रकार महेश नारायण के साथ मिलकर तथा उनके सहयोग में नन्द लाल किशोर तथा कृष्ण सहाय ने मिलकर इस विद्रोह को आगे बढ़ाने का निर्णय किया और 1894 ई. में बिहार टाइम्स नाम का पत्र निकालना आरंभ किया। महेश नारायण को ही इसका सम्पादक बनाया गया। बिहार टाइम्स के प्रकाशन के साथ ही बिहार पृथीकरण आंदोलन की गति तेज हो गयी। इस संबंध में अनेक लेख छपे जिसमें लोगों को बताया गया कि बिहार और बंगाल का गठबंधन कृत्रिम है, जो सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक प्रगति के मार्ग में बाधाक है पत्र के आंकड़ों द्वारा बताया गया कि किस तरह सरकार प्रत्येक क्षेत्र में बंगालियों का पोषण कर रही है।[11] "बिहार हेराल्ड" के सम्पादक गुरु प्रसाद सेन ने बिहार के पृथिकरण के विरूद्ध अनेक लेख लिखे। इसी समय बंगाल के उपराज्यपाल एलेक्जेण्डर मैकेजी गया आये, सच्चिादन्द सिन्हा ने नन्द किशोर लाल से विचार-विमर्श कर एक ज्ञापन तैयार कराया जिसमें बिहार को बंगाल से अलग करने की मांग की गई थी। यह ज्ञापन गया की स्थानीय संस्थाओं की ओर से उपराज्यपाल को दिया गया। परन्तु उन्होंने इस मांग को अस्वीकार कर दिया। उपराज्यपाल महोदय ने बतलाया कि भारतमंत्री उत्तरी भारत के किसी अन्य स्थानीय शासन की स्थापना को कभी भी स्वीकृति प्रदान नहीं करेंगे।[12] सन 1903 ई. के आरंभ में ही लोगों को यह बात मालूम हो गई थी कि भारत के वायसराय लार्ड कर्जन बंगाल के बंटवारे के लिए दृढ़ प्रतिज्ञाबद्ध है। कर्जन ने विलियम वार्ड की योजना को मृत रूप देने के लिए बंगाल के चटगांव मण्डल तथा ढाका और मेमन सिंह दो जिलों को असम में मिलाने की बात की एक सरकारी प्रस्ताव में अंकित कराया, जो गृह विभाग के सचिव हर्वट रिजले के हस्ताक्षरसे 30 दिसम्बर 1903 ई. को प्रकाशित हुआ। इसके तुरन्त बाद बंगाल के विभाजन के विरोध में सम्पूर्ण देश में स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन छिड़ गया।[13] सच्चिदानन्द सिन्हा ने फरवरी 1904 ई. के हिन्दूस्तान रिब्यु में एक लेख लिखा था, "दि पार्टिशन ऑफ द लोअर प्रोविसेज : एन अल्टरनेटिव प्रोपोजल तथा इसी शीर्षक से दूसरा लेख अगस्त 1905 ई. के हिन्दूस्तान रिब्यु में श्री महेश नारायण ने लिखा। इन दोनों लेखों को मिलाकर जनवरी 1906 ई. में एक पुस्तक प्रकाशित की गई, जिसका नाम 'पार्टिशन ऑफ बंगाल' और सेपेरेशन ऑफ बिहार रखा गया। भारत और ब्रिटेन में इसका वृहत पैमाने पर वितरण किया गया। बिहारियों को पूर्ण विश्वास था कि जब सरकार उनकी मांग की उपयोगिता को समझ जायेगी, तब वह उसे स्वत: स्वीकृत कर लेगी। बंगालियों द्वारा बिहारी नेताओं के स्वतंत्र सुबे की मांग की काफी आलोचना हुई तथा कुछ लोगों ने इसे व्यक्तिगत स्वार्थ समझा, जिससे बिहारियों को अधिक संख्या में नौकरी मिल सके।[14] फिर भी बिहारी नेताओं ने अपनी भर्त्सना तथा आलोचना की जरा भी परवाह नहीं की और हिन्दू-मुसलमान कंधा से कंधा मिलाकर अपनी मांग पर अटल रहे।

जुलाई 1906 ई. में बिहार टाईम्स का नाम बदलकर 'बिहारी' रखा गया। यद्यपि इसके सम्पादक महेश नारायण ही बने रहे। परन्तु कुल आर्थिक दायित्व सच्चिदानन्द ने अपने उपर ही ले रखा था। दुर्भाग्यवश 1907 ई. में महेश नारायण का देहावसान हो गया और बिहार पृथिकरण आंदोलन में सच्चिदानन्द सिन्हा अकेले हो गये, फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी, ऐसे मौके पर ब्रह्मदेव नारायण, एक अवकाश प्राप्त डिप्टी मजिस्ट्रेट बिहार के निर्माण में सच्चिदानन्द सिन्हा को सहयोग प्रदान करने पहुंच गये।[15] महेश नारायण की मृत्यु के पश्चात महजहरूल हक, अली इमाम, हसन इमाम तथा अन्य बिहारी मुसलमानों ने भी सच्चिदानन्द सिन्हा को अपूर्व सहयोग दिया। इन नेताओं के प्रयास से बिहार प्रादेशिक सम्मेलन की स्थापना हुई जिसका पहला अधिवेशन अली इमाम की अध्यक्षता

में 12 और 13 अप्रैल 1908 ई. को पटना में सम्पन्न हुआ।[16] बिहार प्रादेशिक सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन 9 और 10 अप्रेल 1909 ई. को भागलपुर में सच्चिदानन्द सिन्हा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

जहाँ बिहार को अलग प्रान्त करने का जोरदार मांग हुआ। सच्चिदानन्द सिन्हा अपने भाषण में कहा कि बिहार एक वृहद आबादी का क्षेत्र है जो एक विस्तृत भू-भाग में बसा है, जब तक इसे अलग प्रान्त का दर्जा नहीं मिलता, तब तक यहाँ के लोग संतुष्ट नहीं रह सकते।[17] उन्होंने जोरदार शब्दों में मांग की, कि बिहार को एक अलग प्रान्त बनाया जाय, जिसमें उड़ीसा मण्डल रहे या ना रहे परन्तु छोटानागपुर अवश्य सम्मिलित हो, कुछ दिनों के बाद जब केन्द्रीय विधान परिषद का सत्र समाप्त हो गया और सच्चिदानन्द पटना आने की तैयारी करने लगे, तब अली इमाम ने उनसे कहा कि मान लो बिहार प्रान्त का अलग निर्माण हो भी गया, तो भी इसकी सम्भावना नहीं थी कि कार्यकारिणी परिषद का लाभ मिले ही क्योंकि संयुक्त प्रदेश तथा पंजाब में भी ऐसी संस्था नहीं बनी है। बायसराय के कार्यकारिणी परिषद में अगर वह ऐसा प्रस्ताव रखते हैं तो लोग सिर्फ इसका मजाक ही उड़ायेंगे। इस पर सच्चिदानन्द ने जबाब दिया कि अगर बिहार को अपना अलग प्रान्त मिलता है तो बिहारी कार्यकारिणी परिषद के भी हकदार होगें, क्योंकि बंगाल के साथ रहते हुए भी बिहार को कार्यकारिणी परिषद का लाभ सदैव मिलता रहा है। परन्तु इमाम अली ने नहीं समझा कि इस तर्क का कोई महत्व सरकार के सामने होगा। उन्होंने जबाब दिया, "कहना बहुत आसान है, परन्तु करना बहुत कठिन।"[18] पाश्चात्य संवैधानिक विधि पर उनके ग्रंथों के अवलोकन के बाद सच्चिदानन्द इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बिहार पृथककरण के सरकारी दस्तावेज में अगर सपरिषद्-उपराज्यपाल शब्द अंकित कर दिया जाय, तब संभव है, सरकारी अधिकारी इस सूक्ष्म तथा तकनीकी शब्द के महत्व को नजर अंदाज कर जाये और बाद में सरकार बिहार में कार्यकारिणी परिषद गठित करने को विवश हो जाय। फिर कार्यकारिणी परिषद वही गठित हो सकती है, जहाँ विधान-परिषद काम करती हो। इस तरह सरकारी दस्तावेज में सपरिषद उपराज्यपाल अंकित हो जाने पर बिहार को कार्यकारिणी परिषद तथा विधान-परिषद दोनों का लाभ मिलेगा। परन्तु साधारण समीक्षक इसे सिर्फ विधान-परिषद ही समझेंगे सच्चिदानन्द ने अली इमाम को अपनी योजना बताई और औपचारिक रूप से कार्यकारिणी परिषद की माँग करने के बदले सरकारी दस्तावेज में सपरिषद् उपराज्यपाल शब्द को ही अभी व्यक्त करने के लिए कहा। अली इमाम यद्यपि इस योजना में संदेह था, फिर भी उन्होंने इस सुझाव को मान लिया। परन्तु इस योजना को अप्रत्याशित सफलता मिली।[19]

12 दिसम्बर 1911 ई. को दिल्ली में एक शाही दरबार हुआ, जहाँ सम्राट ने बिहार और उड़ीसा को मिलाकर एक नया प्रान्त बिहार के निर्माण की घोषणा की। बिहार को सपरिषद् उपराज्यपाल का लाभ मिला।

इस घोषणा से बिहारियों में नई चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। 26 और 29 दिसम्बर 1911 ई. को कलकत्ता में अखिल भारतीय काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। जहाँ एक प्रस्ताव पारित कर बिहार को एक नए प्रान्त का दर्जा देने के लिए सम्राट के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई। प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए तेजबहादुर सप्रू के कहा कि हमें इसलिए खुशी नहीं है कि बिहार को एक अलग प्रान्त मिला बल्कि खुशी इसलिए है कि बिहार को कार्यकारिणी-परिषद् तथा विधान परिषद् का भी लाभ मिला। परमेश्वर लाल ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। 1 अप्रेल 1912 ई. को बिहार प्रान्त का विधिवत् उद्घाटन हुआ, जिसकी राजधानी पटना बनी।

उपरोक्त सारी बातों के आधार पर कहा जा सकता है कि बक्सर युद्ध के बाद जो अंग्रेजों को शाह आलम द्वितीय द्वारा बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दिवानी मिली थी और बिहार, बंगाल के साथ जुड़ गया था जो विभिन्न आंदोलन के द्वारा 1912 ई. में बिहार को बंगाल से अलग कर दिया गया। तत्पश्चात् एक नए बिहार का जन्म हुआ लेकिन जब 1936 ई. में उड़ीसा का बिहार से अलग किया गया तब बिहार पूरी तरह से स्वतंत्र राज्य का दर्जा प्राप्त किया।

संदर्भ सूची

1. एन.एम.पी. श्रीवास्तव, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृ. 3-4
2. प्रमोदानंद दास बिहार, इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 178
3. प्रमोदानंद दास बिहार, इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 179
4. प्रमोदानंद दास बिहार, इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 179

5. प्रमोदानंद दास बिहार, इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 180
6. प्रमोदानंद दास बिहार, इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 186
7. एन.एम.पी. श्रीवास्तव, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृ. 4
8. एन.एम.पी. श्रीवास्तव, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृ. 4
9. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पटना (1947) पृ. 101
10. विजयचन्द्र चौधरी, क्रियेशन ऑफ मॉर्डन बिहार, (1964), पृ. 49
11. सच्चिदानन्द सिन्हा, सम इमिनेन्ट बिहार कन्टोम्पोरोरीज, पृ. सं.– xiii
12. नागेन्द्र मोहन प्रसाद श्रीवास्तव ग्रोथ ऑफ नेशनलिजम इन इंडिया इफेक्टस् ऑफ ईस्ट (नेशनल इफेक्टस्, मेरठ, 1973) पृ. 8
13. सच्चिदानन्द सिन्हा, सम इमिनेन्ट बिहार कन्टोम्पोरोरीज, पृ. सं.– 48
14. हिन्दूस्तान रिब्यु, अगस्त 1907, पृ. सं.– 177-79
15. हिन्दूस्तान रिब्यु, अप्रैल 1909, पृ. सं.– 388
16. दि बिहारी 1 अक्टूबर 1909
17. सच्चिदानन्द सिन्हा, सम इमिनेन्ट बिहार कन्टोम्पोरोरीज, पृ. सं.– गगगप
18. सच्चिदानन्द सिन्हा, सम इमिनेन्ट बिहार कन्टोम्पोरोरीज, पृ. सं.– गगगपपप
19. रिर्पोट ऑफ दि इंडियन नेशनल काँग्रेस (1911) पृ. 47

हिमाचल प्रदेश के विशेष संदर्भ में पर्यावरणीय-पर्यटन की अवधारणा

ईरा भारद्वाज

पीएचडी शोधर्थी, स्कूल आफ बिजनेस मैनेजमेंट
नोएडा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी, उत्तर प्रदेश

हिमाचल प्रदेश जो अपने समृद्धि प्राकृतिक विरासत के लिए विश्व में जाना जाता है, देश के विशेष पर्यटन स्थलों में से एक है, अंतरराष्ट्रीय पर्यटन के दृष्टिकोण से, हिमाचल प्रदेश में पर्यावरणीय-पर्यटन (Eco-Tousim) से जुड़ी गतिविधियां विशेष रूप से चार मुख्य स्थानों पर केंद्रित है जिसमें शिमला, मनाली, धर्मशाला और डलहौजी है। ऐसा नहीं है कि इन चार क्षेत्रों में ही केवल पर्यावरणीय-पर्यटन की संभावनाएं मौजूद है। आज अधिकांश पर्यटकों को वन क्षेत्रों, अभयारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों में निहित समृद्ध जैव-विविधता का अनुभव करने का अवसर प्राप्त नहीं होता, जिसमें हिमाचल प्रदेश के बहुत सारे प्राकृतिक स्थान शामिल है और यहां पर सतत पर्यटन और पर्यावरणीय-पर्यटन की अपार संभावनाएं भी मौजूद है। प्रस्तुत लेख में हिमाचल प्रदेश में संभावित पर्यावरणीय-पर्यटन का अवलोकन करते हुए, यहां पर मौजूद अपार संभावनाओं का अध्ययन किया गया है। इसी संदर्भ में, 'पर्यावरणीय-पर्यटन की पुनः संशोधित नीति 2017' का अवलोकन करते हुए समकालीन समय में हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा किए जा रहे पर्यावरणीय पर्यटन के प्रयासों का अध्ययन भी किया गया है।

सतत विकास लक्ष्य (SDG: Sustainable Development Goal) में भविष्य के अंतरराष्ट्रीय विकास से संबंधित लक्ष्यों का एक समूह है। ये संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्मित किए गए हैं और सतत विकास के लिए वैश्विक लक्ष्यों के रूप में घोषित किए गए हैं। गरीबी उन्मूलन, शून्य भूख, अच्छा स्वास्थ्य, लिंग समानता, सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा, सभ्य नौकरियां और आर्थिक विकास, साफ पानी और स्वच्छता, और उत्तरदायित्व के साथ उपभोग आदि सहित 17 लक्ष्य इसमें निर्धारित किए गए हैं। सतत विकास के लक्ष्य की पृष्ठभूमि को देखते हुए, वैश्विक स्तर पर स्थायी पर्यटन (Sustainable Development) की संभावनाएं काफी उज्जवल हैं। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण भूमिका का जिक्र सतत विकास के लक्ष्य संख्या 8 और 12 में किया गया है। लक्ष्य संख्या 8 में, "निरंतर, समावेशी और सतत आर्थिक विकास" (Continuously, Inclusive & Sustainable Economic Development) के स्तर पर सभी के लिए पूर्ण और उत्पादक रोजगार और बेहतरीन कार्यों को शामिल किया गया है। लक्ष्य संख्या 8.9 के में वर्ष "2030 तक, स्थायी पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए ऐसी नीतियों को लागू करना और कार्यान्वित करने पर जोर दिया गया है जो रोजगार व उत्पादन के साथ-साथ स्थानीय संस्कृति को भी बढ़ावा दे" (नीति आयोग, अगस्त 2018)। भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय का उद्देश्य आर्थिक विकास के लिए एक प्रमुख इंजन के रूप में पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देना है। पर्यावरणीय रूप से स्थायी रोजगार सृजन और गरीबी उन्मूलन के लिए कई कार्यक्रमों को लागू करना है। इस संदर्भ में, वर्तमान पर्यटन नीति-2019 को स्थायी रूप से व्यापक बनाने की बहुत आवश्यकता है। हिमाचल प्रदेश राज्य इस उद्देश्य पर सटीक रूप से काम कर रहा है। यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि हिमाचल प्रदेश में आने वाले पर्यटकों की संख्या 2004 में 6.55 मिलियन से बढ़कर वर्ष 2017 में 19.6 मिलियन हो गई।

हिमाचल प्रदेश में पर्यावरणीय पर्यटन और सतत विकास
(Sustainable Development & Eco-Tourism in Himachal Pradesh)

पर्यटन नीति जो आर्थिक विकास को गति देता है, सामाजिक असमानता व गरीबी को कम करता है, टिकाऊ तरीके से मूर्त और अमूर्त विरासत (अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग करके) का संरक्षण भी करता है। सतत विकास में पर्यावरणीय पर्यटन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP: United Nation Environment Programme) और विश्व पर्यटन संगठन (WTO) ने सभी देशों को यह सुनिश्चित करने के लिए प्रोत्साहित किया हैं कि वे स्थायी विकास और प्रबंधन के लिए इनकी नीतियों और कार्यों को स्थिरता के साथ क्रियान्वित करें। इसी तरह, सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए बनाई गई नीतियों का पर्यावरणीय पर्यटन के क्षेत्र में भी ध्यान रखा जाना चाहिए। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और घोषणाओं ने सतत पर्यटन के लिए सिद्धांतों और दिशा-निर्देशों को आगे रखा है। पर्यटन के महत्व और इसकी स्थिरता को सतत विकास पर 2002 के विश्व शिखर सम्मेलन में भी रेखांकित किया गया था। कई देशो ने यह घोषणा भी की थी कि वे इसके दिशानिर्देशों और उद्देश्य का पालन कर रहे हैं। इस रुचि के बावजूद, पर्यावरणीय-पर्यटन और सतत विकास के बीच का संबंध इतना अंर्तसंबंधित हो गया है कि अब उन्हें अलग दर्शन के रूप में नहीं समझा जाता है।

पर्यावरणीय-पर्यटन नीतियां (Eco-Tourism Policies)

हिमाचल प्रदेश वन विभाग ने 2001 के दौरान इको-पर्यटन नीति तैयार की, जिसे बाद में वर्ष 2005 में इसे संशोधित किया गया था। उपरोक्त इको-पर्यटन नीति का मुख्य उद्देश्य है कि हिमाचल प्रदेश में पर्यटन स्थलों का विस्तार और पर्यटकों को प्रख्रति के करीब लाना व राज्य के साथ-साथ स्थानीय समुदायों की जीविका का विस्तार करना। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए 'हिमाचल प्रदेश इकोटूरिज्म सोसाइटी' (Himchal Pradesh Eco-Tourism Society) का गठन, वन विभाग शिमला (एचपी) के मुख्यालय के साथ किया गया है। यह सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत एक पंजीकृत सोसायटी है। सोसाइटी सर्वोच्च निर्णय लेने वाला निकाय है और यह माननीय मुख्यमंत्री (हिमाचल प्रदेश), प्रधान सचिव (वन) के नेतृत्व वाला शासकीय निकाय है, जिसके सदस्य सचिव होते हैं।

पुनः संशोधित पर्यावरणीय-पर्यटन नीति, 2017 (Re-Revised Eco-Tourism Policy, 2017)

हिमाचल प्रदेश के पुनः संशोधित पर्यावरणीय-पर्यटन नीति, 2017 को संशोधित करने का उद्देश्य हिमाचल प्रदेश के बनों और इनके पारिस्थितिकीय तंत्र को आगंतुकों (पर्यटकों) के करीब लाना है और साथ ही इन प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और संवध र्न के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपाय और प्रणालियां सुनिश्चित करना है। स्थानीय समुदायों को शामिल करने से, इस नीति में आजीविका के अवसरों में वृद्धि के साथ-साथ जागरूकता निर्माण, संरक्षण और संवर्धान में उनकी भागीदारी से मदद मिलेगी। इस नीति से प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के लिए एक बड़ी समझ और प्रशंसा को भी बढ़ावा देगा।

लक्ष्य (Mission)

पुनः संशोधित इको पर्यटन नीति का मुख्य मिशन हिमाचल प्रदेश को वर्ष 2030 तक राज्य में आने वाले कुल पर्यटकों में से कम से कम 10% आकर्षित करने वाले पर्यावरणीय-पर्यटन के साथ एक प्रमुख पर्यावरणीय-पर्यटन स्थल बनाने का लक्ष्य रखा गया है।

दृष्टि (Vision)

इस नीति के विजन में हिमाचल प्रदेश की प्राकृतिक (वनस्पतियों और जीवों) और सांस्कृतिक विरासत दोनों को संरक्षित और संवर्धित करना है, स्थानीय लोगों को इसमें अवसर प्रदान करना, सतत विकास के लिए संसाधनो का निर्माण करना और प्रामाणिक पर्यावरणीय पर्यटन पहलों के माध्यम से इस विरासत के लिए गहरी समझ और प्रशंसा को बढ़ावा देना है। पर्यावरणीय-पर्यटन नीति

से नागरिक समाज (स्थानीय समुदाय, गैर-सरकारी संगठन, इको-क्लब, शैक्षणिक संस्थान) के सदस्यों के साथ ही निजी उद्योग व्यवसाय, जंगल, पर्यटन, मत्स्य पालन, बिजली, लोक निर्माण विभाग के सरकारी विभागों के बीच साझेदारी को बढ़ावा मिलेगा।

मुख्य उद्देश्य (Main Objective)

इस नीति का उद्देश्य पर्यटकों को प्रकृति का आनंद और पर्यटन शिक्षा के अवसर प्रदान करना है। पर्यटन के नकारात्मक प्रभावों को कम करना और पर्यावरणीय संरक्षण के क्षेत्र में सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा देते हुए स्थानीय समुदायों के इष्टतम आर्थिक लाभों के लिए उन्हें इको पर्यटन का प्रबंधन करने में सक्षम बनाना। स्थानीय संस्कृति और पारिस्थितिकी के संरक्षण के लिए स्थानीय समुदायों की प्रत्यक्ष हिस्सेदारी बनाकर स्थानीय समुदायों को इसमें शामिल करना और उनकी आजीविका की जरूरतों का समर्थन करना। पर्यावरणीय-पर्यटन के लिए संगठनात्मक और अवस्थापना सुविधाओं को विकसित करना और पर्यावरणीय-पर्यटन प्रबंधकों की क्षमता का निर्माण करना शामिल हैं। राज्य के लिए राजस्व उत्पन्न करना भी इसका एक मुख्य उद्देश्य है।

कार्यान्वयन रणनीति (Implementation Strategy)

1. संस्थागत व्यवस्था (Institutional System): वन विभाग ने नीति के मिशन और उद्देश्यों को पूरा करने में सहायता करने के लिए हिमाचल प्रदेश इको-पर्यटन समाज (HP ECOSOC) सोसाइटीज एक्ट अधिनियम, 1860 के अधीन एक विशेष प्रयोजन वाहक बनाया गया है। एचपी इकोसॉक (HP ECOSOC) पूरे राज्य को कवर करता है, यह सार्वजनिक-निजी साझेदारी के (PPP:Public Private Partnership) पहलोंओ को सुविधाजनक बनाने के लिए डिवीजन/सर्कल स्तर पर इको-पर्यटन सोसाइटी के साथ कार्य करता है। यह सिद्धांत हितधारकों (Stakeholders) के मध्य जागरूकता और क्षमता निर्माण के लिए भी कार्य करता है।

2. सामुदायिक भागीदारी (Community Participation): हिमाचल प्रदेश ने सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से समुदाय-आधारित पर्यटन (Community Based Tourism) को बढ़ावा दिया है, जो राजस्व सृजन और साझाकरण (सरकार, निजी क्षेत्र और समुदायों के बीच) की अच्छे व्यवहार को प्रदर्शित करता है। हिमाचल प्रदेश उन होमस्टे प्रचारको में सबसे आगे रहा है जो स्थानीय समुदायों के लिए सीधो पर्यटन लाभ सुनिश्चित करता है। वर्तमान में राज्य में होमस्टे पर्यटन के विभिन्न रूप हैं। इसमें समुदाय को होमस्टे, वेटलैंड रजिस्ट्रेशन, एग्रो-टूरिज्म, सांस्कृतिक गतिविधियों में पर्यटन के प्रबंधन के लिए सबसे आगे रखा गया है, जोकि राज्य का प्रमुख पर्यटक आकर्षण हैं। पर्यटन के हितधारक भी हिमाचल में बहुत अच्छी तरह से संगठित हैं और इस क्षेत्र में मजबूत निजी निवेश भी किया गया हैं जो पर्यटन के समग्र विकास को प्रभावित करता हैं।

3. विपणन (Marketing): इकोसॉक (ECOSOC) प्रभावी विपणन वेबसाइट (Effective Marketing Website) लिंकेज के लिए एक मंच प्रदान करता है पर इसके साथ ही सुविधाओं की ऑनलाइन बुकिंग के लिए जानकारी प्रदान करना, पर्यटन संवध र्न में लगे संगठनों 'संस्थाओं/टूर ऑपरेटरों' ट्रैवल एजेंटों/होटल व्यवसायों के साथ संपर्क भी किया जा सकता है, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का उपयोग शिविरों, प्रकृतिक भ्रमण, ट्रेकिंग, विश्राम गृहों को उनके बुनियादी ढांचे को बढ़ाकर पर्यावरणीय-पर्यटन के तहत शामिल किया गया है।

4. इको-क्लब (Eco-Club): पर्यावरण संरक्षण से संबंधित गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए इस पुणे संशोधित नीति में राज्य स्तर पर इको-क्लब बनाए जाएंगे और पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति में रुचि रखने वाला कोई भी व्यक्ति क्लब का सदस्य बन सकता है।

5. प्रभाव मूल्यांकन अध्ययन (ImpactAssessment Study): पर्यावरणीय प्रभाव का आकलन एक योजना, नीति, कार्यक्रम या वास्तविक परियोजनाओं के पर्यावरणीय परिणामों (सकारात्मक और नकारात्मक) का समग्र आकलन है, जो संशोधित नीति में प्रस्तावित कार्रवाई के साथ आगे बढ़ने के निर्णय से पहले की एक समीक्षा है। इस पर्यावरणीय-पर्यटन नीति में कार्यरत परियोजनाओं का मूल्यांकन करने के लिए प्रभाव मूल्यांकन अध्ययन तुरंत किया जाएगा और इसी आधार पर नए प्रोजेक्ट का निर्माण, उसी प्रक्रिया का पालन करते हुए प्रस्तावित किया जाएगा, जो पहले से ही नई साइटों के लिए निर्दिष्ट है।

पर्यावरणीय-पर्यटन हेतु समकालीन प्रयास (Contemporary Efforts for Eco-Tourism)

हिमाचल प्रदेश सरकार मौजूदा पारिस्थितिकी और पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना पर्यटन से संबंधित बुनियादी ढांचे के विकास के लिए निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करके राज्य में स्थायी पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है। इस उद्योग से ना केवल राजस्व में वृद्धि करने की अपार संभावना है, बल्कि इसमें रोजगार और स्वरोजगार सृजन की भी काफी संभावनाएं हैं। यह बात हाल ही में मुख्यमंत्री जय राम ठाकुर ने चंडीगढ़ में इंडियन टूरिज्म कॉन्क्लेव के समापन सत्र को संबोधित करते हुए कही थी। इस सम्मेलन का आयोजन एचपीटीडीसी (HPTDC), हरियाणा पर्यटन, उत्तर प्रदेश पर्यटन, पंजाब पर्यटन और उत्तराखंड पर्यटन के सहयोग से सेंटर फॉर इकोनॉमिक पॉलिसी रिसर्च, चंडीगढ़ द्वारा किया गया था। व्याख्यान के समापन सत्र में मुख्यमंत्री ने कहा था कि पर्यटन से न केवल राज्य की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में सहायता प्राप्त होगी बल्कि स्थानीय समुदायों के लिए रोजगार सृजन भी संभव हो पाएगा। मुख्यमंत्री ने यह भी कहा कि गोवा देश का एक ऐसा राज्य था, जिसने पर्यटन विकास में काफी प्रगति की है और इसकी अर्थव्यवस्था पर्यटन उद्योग पर आधारित थी। अन्य राज्यों को भी अपने राज्य की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए पर्यटन को एक प्रमुख स्रोत बनाने के लिए कुछ सबक लेने चाहिए। उन्होंने कहा कि शांतिपूर्ण वातावरण हमारे राज्य में आने वाले पर्यटकों के लिए मुख्य आकर्षण था और राज्य भी अपने स्वच्छ और प्रदूषण मुक्त वातावरण को बढ़ावा दे सकता है क्योंकि राज्य में लगभग 67 प्रतिशत क्षेत्र बनों से आच्छादित है।

राज्य मुख्यमंत्री जयराम रमेश ने कहा कि राज्य के छह गंतव्य को उदयन-2 के तहत बद्दी, शिमला, रामपुर, नाथपा झाकरी, मंडी और मनाली को शामिल किया गया है। हिमाचल प्रदेश संभवत: देश का पहला राज्य है, जिसने अपने राज्य में हेलीकॉप्टर को शिमला और चंडीगढ़ के बीच हेली टैक्सी के रूप में एक सप्ताह में तीन दिनों के लिए चलाया है। उन्होंने कहा कि राज्य में अधिक से अधिक रोप वे के निर्माण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं और हाल ही में राज्य सरकार और पंजाब के बीच श्री आनंदपुर साहिब और श्री नैना देवी जी के बीच रोपवे के निर्माण के लिए एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए हैं। उन्होंने कहा कि यह रोप वे वर्ष 2021 तक पूरी होगी। उन्होंने कहा कि राज्य सरकार, राज्य में पर्यटन बुनियादी ढांचे के विकास के लिए 1,900 करोड़ रुपये के एडीबी प्रोजेक्ट को मंजूरी लेने में सफल रही है। इस परियोजना के तहत शिमला जिले में चांसल को स्कीइंग स्थल, मंडी जिले के झांझली में इको टूरिज्म के दृष्टिकोण से, कांगड़ा जिले में पोंग डैम को जल क्रीड़ा स्थल और कांगड़ा जिले में बीर बिलिंग को पैराग्लाइडिंग स्थल के रूप में विकसित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि राज्य के दूरस्थ क्षेत्रों में बेहतर सड़क संपर्क सुनिश्चित करने के लिए भी प्रयास किए जा रहे हैं और बेहतर हवाई संपर्क सुनिश्चित करने के लिए राज्य के तीन हवाई अड्डों का विस्तार किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि राज्य सरकार ने हाल ही में बजट आवंटन के साथ एक नई योजना 'नई राहें-नई मंजिलें' शुरू की है। देश के पक्ष में अस्पष्ट और अप्रयुक्त पर्यटन स्थलों के विकास के लिए 50 करोड़ रुपए भी आवंटित किए गए हैं। मुख्यमंत्री ने कहा कि गुजरात में बनी एकता की प्रतिमा अपने आप में अद्भुत थी, जो एक प्रमुख पर्यटन स्थल के रूप में उभरने के लिए तैयार हैं, उन्होंने कहा कि इससे एक दिन में 27,000 से अधिक पर्यटक आकर्षित हुए हैं। उन्होंने कहा कि राज्य सरकार पर्यटन बुनियादी ढांचा परियोजनाओं जैसे रोडवेज, रिसॉर्ट्स, मनोरंजन पार्क, गोल्फ कोर्स और फिल्म सिटी आदि के विकास के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी निवेश पर ध्यान केंद्रित कर रही थी।

हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा 'स्वदेश दर्शन कार्यक्रम' के तहत केंद्रीय पर्यटन मंत्रालय ने 100 करोड़ रुपये राज्य को एक हिमालयन सर्किट निर्माण के लिए मंजूरी दी है, इसका काम प्रगति पर है और इस योजना के तहत, राज्य सरकार ने दो और नए सर्किट प्रस्तावित किए हैं जो पर्यावरणीय-पर्यटन और साहसिक व धार्मिक सर्किट, प्रत्येक के लिए 100 करोड़ रु आवंटित किए गए हैं। इसके अलावा, पर्यटन मंत्रालय ने 'परसाद' योजना के तहत ऊना जिले में माता चिंतपूर्णी मंदिर के लिए 50 करोड़ रुपये की परियोजना को मंजूरी दी है। मुख्यमंत्री ने कहा कि हिमाचल राज्य सरकार हिमाचल प्रदेश को स्वास्थ्य और कल्याण पर्यटन स्थलों के रूप में भी विकसित करेगी और इस दिशा में सरकार द्वारा मंडी जिले के जंजीहली में स्वास्थ्य और स्वास्थ्य पर्यटन केंद्र विकसित करके पहल की गई है। इसी तरह, सूजा, झिंगरी, राजगढ़, बीर बिलिंग आदि जैसी अन्य जगहों को भी उसी तर्ज पर विकसित किया जाएगा।

संक्षेप में, हिमाचल प्रदेश वन विभाग ने वर्ष 2001 के दौरान पर्यावरणीय-पर्यटन नीति को तैयार किया जिसे वर्ष 2005 में संशोधित किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य आगंतुकों को प्राकृतिक सुंदरता और शांति से परिचित कराते हुए स्थानीय समुदायों के लिए जीविका के साधन उपलब्ध कराने के साथ-साथ राज्य के राजस्व में वृद्धि करना भी रहा है। अभी हाल ही में वर्ष 2017 में पुनः संशोधित पर्यावरण नीति को लागू किया। पर्यावरणीय पर्यटन केंद्रीय मंत्रालय के दिशा निर्देशों के अनुसार चलाया जा रहा है और इस दिशा में 'देव भूमि' पर वृहत स्तर पर राज्य सरकार द्वारा कार्य किए जा रहे हैं और संभवतः अपनी अपार पर्यावरणीय-पर्यटन की संभावनाओं को साकार करने में हिमाचल प्रदेश सफल होगा।

संदर्भ सूची

1. *Making Tourism More Sustainable - A Guide for Policy Makers*, UNEP-WTO, 2005
2. Gail Y. B. Lash and Alison D. Austin, *Rural Ecotourism Assessment Program (REAP) - A Guide to Community Assessment of Ecotourism as a Tool for Sustainable Development*, Epler Wood International, October 2003.
3. Acott, T.G., Trobe, H.L. and Howard, S., An Evaluation of Deep Ecotourism and Shallow Ecotourism, *Journal of Sustainable Tourism* 6(3): 238-253, 1998.
4. Airey, S., *Ecotourism: A Mechanism for Selling the Conservation and Sustainable Use of Biodiversity*, Thesis for MSc in Resource Management, Lincoln University.
5. Himachal Yellow Pages, *About Himachal: Languages of Himachal Pradesh*, Retrieved 14 October 2013, from http://www.himachalyellowpages.in/Languages%20of%20Himachal.html
6. *Himachal Pradesh Tourism Policy-2019*, Himachal Pradesh Government, Retrieved from www.himachaltourism.nic.in.
7. *Himachal Pradesh Eco-Tourism Policy-2019*, Himachal Pradesh Government, 2019, Retrieved from www.himachaltourism.nic.in.
8. Hunter, C., Sustainable Tourism as An Adaptive Paradigm, *Annals of Tourism Research*, 24(4), 850-867. doi: http://dx.doi.org/10.1016/S0160-7383(97)00036-4.

Websites

1. http://www.ecotourism.org
2. http://en.wikipedia.org/wiki/Ecotourism
3. http://www.ecoindia.com/eco-tourism-in-india.html
4. http://www.himachalecotourism.nic.in
5. www.wttc.org/research/annual-review/
6. http://en.wikipedia.org/wiki/Tourism_in_India#Himachal_Pradesh

भारतीय किसान के जीवन की यथार्थता

सपना रानी

पीएच.डी. शोधर्थी, हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

संदर्भ (फाँस)

कथाकार संजीव साहित्य जगत में अपनी उपलब्धियों के कारण एक विशिष्ट पहचान रखते हैं। उनकी प्रत्येक कृति हमें समाज की सच्चाई से अवगत करवाते हुए हमारी चेतना पर भी प्रभाव डालती है और हमें सोचने पर विवश करती है कि हमारे देश और समाज में वास्तविकता में ऐसी समस्याएँ भी हो सकती हैं जिनके विषय में हममें से अधिकतर लोग नहीं जानते। यदि यह पूछा जाए कि क्या हमारे समाज का कोई ऐसा हिस्सा भी है जो स्वयं के लिए तीन समय का भोजन जुटाने में भी असमर्थ है तो इसका उत्तर संजीव के 'फाँस' उपन्यास में स्पष्ट रूप में मिलता है। उपन्यास की कथा का आधार देषभर में लगभग पिछले दो दशकों से बढ़ रही आत्महत्याएँ है। इस उपन्यास में महाराष्ट्र के यवतमाल गाँव के किसानों के साथ-साथ उन सभी गाँवों के किसानों के जीवन की व्यथा का चित्रण किया गया है जिन्हें पहले तो जीएम बीजों का प्रयोग करने के लिए बहकाया गया और बाद में कर्ज दिया गया। किसानों द्वारा इन बीजों का उपयोग तो किया गया लेकिन प्रकृति के साथ अनाचाार और बाढ़ के कारण, तो कभी सूखे की मार के कारण उन्हें खेती में भारी नुक्सान सहना पड़ा जिस कारण किसान ऋण के बोझ तले दबते चले गये और इसी कर्ज के बोझ से मुक्ति पाने के लिए वह निरन्तर आत्महत्या की ओर बढ़ते जा रहे हैं। 1995 में 10720 किसानों ने आत्महत्या की तो 2010 में 15960 किसानों ने। 2010 के बीच 2.5 लाख से ज्यादा किसानों ने आत्महत्या की है लेकिन, कारपोरेट हितैशी केवल आर्थिक नीतियों का डिंडौरा ही पीटते रहे।

प्रेमचन्द के बाद संजीव ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने किसान के जीवन के यथार्थ जैसा ज्वलंत मुद्धा उठाया है। इन्होंने किसान के जीवन से जुड़ी समस्याओं को परत-पर-परत उगाड़ा है। भारतीय किसान के लिए उसकी कृषि ही सबसे बड़ा फाँस बन गई है। किसानों के लिए खेती ही उनके जीवन-यापन का साधन है परन्तु, आज के औद्योगिक युग में किसान के लिए खेती में बने रहना बहुत ही कठिन होता जा रहा है। वह खेती के लिए बीज तक जुटाने में स्वयं को सक्षम नहीं पा रहा और यदि वह ऐसा कर भी पा रहा है तो आगे खाद और कीटनाशक जैसी आवश्यकताओं को पूरा करने में वह असक्षम है जिसका बहुत बड़ा कारण यह है कि उनके पारम्परिक बीजों का स्थान, हाईब्रीड बीटी बीज लेने लगे जिन्हें, खरीदने में किसान स्वयं को असमर्थ पाता है। अपनी इसी असमर्थता के कारण वह लोन लेने को विवश हो जाता है और ऋण लेने के लिए उसे अनेक प्रकार से उकसाया जाता है जो 'फाँस' उपन्यास की इन पंक्तियों में स्पष्ट है- "सन् 2002 में आया था कपूस का महाबीज बीटी कॉटन बीज क्या, तो विलायत से कि अमेरिका से। विलायती बीज है, नाजुक बीज, खाद चाहिए? लो। कीटनाशक भी चाहिए। लो। पैसे नहीं हैं, सरकार कर्ज दे रही है न। लो। और पानी? ऊपर वाला देगा न।... लेकिन अगले ही साल झटका लगा। बीटी कॉटन का महाबीज दूसरी बार फिस हो गया। फिर से खाद, किटनाशक, फिर से मजदूरी फिर से कर्ज।"[1]

बीटी बीज एक ही साल फसल देने लगे जो कि किसानों के लिए एक नई और बड़ी समस्या थी। बीज पर भी महाप्रभुओं ने अपना अधिकार कर लिया है। ऐसे में संसार के लिए अन्न जुटाने वाला अन्नदाता किसान दूसरों की इच्छानुसार खेती करने को विवश है। इसी कारण वह कर्ज लेने का रास्ता अपनाता है जो बाद में उसके गले की फाँस बनता जाता है।

शिबू इस उपन्यास का ऐसा पात्र है जो दिन-रात खेती में मेहनत करने के बाद भी अपने परिवार की अन्य जरूरतें तो क्या तीन समय का भोजन भी पूरा नहीं कर पाता क्योंकि, वह भी ऋण तले दबा हुआ है और अन्त में विवशतावश अपनी पत्नी शकुन के गले की हंसुली बेचकर उसे कर्ज चुकाना पड़ता है।

"हंसुली बिकी साढे तीन हजार रूपए में लो साहब ऋण से मुक्ति दो। शिबू ने सारे रूपये उलट दिये बैंक मैनेजर की टेबुल पर।"[2]

परन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या इतना सब करने के उपरान्त भी शिबू जैसा किसान ऋण से मुक्ति पाने के बाद खेती करके सामान्य जीवन जी सकता है? कर्ज अदा करते-करते किसान आत्महत्या की स्थिति तक पहुँच जाता है। शिबू के साथ भी यही होता है, जो शुभा द्वारा कहे गए शब्दों से स्पष्ट है- "लेकिन बैंक का लोन अदा करते-करते तबाह हुआ यह परिवार।" शुभा बोली पड़ोसी होने के नाते मैं जानती हूँ इस परिवार को। इसी कुएँ से सरकारी कर्ज के चलते तीन साल से इस परिवार ने त्यौहार के दिन भी कभी पूड़ी-पकवान नहीं बनते देखा। पूड़ी-पकवान तो दूर भर पेट कभी दोनों जून जेवन भी नसीब नहीं हुआ हो- मुझे संदेह है।"[3]

यह है देश के अन्नदाता कहलाने वाले किसान के जीवन की यथार्थता। उदारीकरण के चलते सरकार का रवैया भी किसानों के प्रति कारपोरेट वाला हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में ही किसान पफाँसी के फँदे से झूल रहा है। "आज 4 जुलाई है। आज ही विऋल शंकर ने कर्ज की कुर्की से तंग आकर आत्महत्या कर ली।"[4]

किसानों को हेय दृष्टि से देखा जाता है जबकि यह वही किसान है जो समूचे संसार के लिए अन्न जुटाता है। वह हेयता का नहीं सम्मान का पात्र है। पढ़ा-लिखा गवंई युवा खेती नहीं करना चाहता क्योंकि खेतिहर निचले पायदान का जीव समझ लिया जाता है। आज बहुत से किसान खेती छोड़ रहे हैं क्योंकि जिस तीन समय के भोजन के लिए वह खेती-बाड़ी करता है यदि वह उसे ही न पा सके तो उसके पास ऐसा करने की बजाए विकल्प ही क्या बचता है। इस उपन्यास का पात्र सदा भी यही निर्णय लेता है। "अगले साल से अपुन खेती छोड़ रहा हैं"[5]

सरकार द्वारा किसानों के लिए बहुत सी योजनाएँ बनाई जाती हैं परन्तु यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या सरकार द्वारा बनाई गई इन राहत योजनाओं का लाभ वास्तविकता में किसानों तक पहुँच पाता है?

"ठीक 2009 के चुनाव के पहले 72 हजार करोड़ रूपये की कर्ज माफी की घोशण हुई। यानी जो कर्ज लिए थे, वो माफ। लेकिन कुछ गाँव वालों का मुँह लटक गया। सरकार के हिसाब से कर्ज वही था जो सरकारी बैंकों से लिया गया था। उनको तो लाभ मिला लेकिन बाकियों को? ज्यादातर लोगों ने तो गाँव के सूदखोरों से कर्ज लिया है। उनका खून साहूकार चूसते रहे और 72 हजार करोड़ का आँकड़ा सरकारी दान के रूप में छापकर सरकार अपनी पीठ थपथपाती रहे।"[6]

सरकार द्वारा किसानों के लिए जो योजनाएँ बनाई जाती हैं वह उनकी वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नहीं बनाई जातीं जिस कारण भारतीय किसान आज भी दयनीय स्थिति में है। यदि यह योजनाएँ उनकी आवश्यकतानुसार नहीं हैं तो इनसे उन्हें लाभ मिलने का सवाल ही नहीं उठता। जैसे, किसानों की सहायता करने के लिए उन्हें हाईब्रीड गाय दी जाती है परन्तु, किसानों के हाथ लाभ नहीं केवल हानि ही हाथ लगती है। इस योजना का स्थानीय नियोजन पूर्ण रूप से गलत रहा क्योंकि 20-25 लीटर दूध देने वाली गाय से केवल उन लोगों को मुनाफा हो सकता है जो ऐसे शहरों के आसपास रहते हैं यहाँ इतनी मात्रा में दूध की माँग हो। इसी कारण किसान सरकार के प्रति प्रश्न उठाते हैं- "दिल्ली में ही बैठकर क्यों बना ली सरकारों ने हमारे गाँवों के कायाकल्प की योजना? मर गये लोग। हमसे पूछती हम बताते- बड़े नहीं छोटे-छोटे सपने चाहिए हमारे गाँव को। हवाई नहीं धारती के, गाय नहीं बकरी। फिर सबसे ऊपर दान नहीं पानी। दान वापस ले लो हमें सिफ सिंचाई के लिए थोड़ा-सा पानी दे दो।"[7] किसान बड़े-बड़े सपने देखने के स्थान पर अपने छोटे-छोटे सपनों को पूरा करना चाहते हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि संजीव किसानों की समस्याओं को पहचानते हैं और इस बात को भी वह भलि प्रकार से जानते हैं कि सरकार सही अर्थों में किसानों की आवश्यकताओं को नहीं जानती और ऐसी स्थिति में वह उनकी समस्याओं का समाधान करने में सफल कैसे हो सकती है? इसी विवशता के कारण वह आत्महत्या की ओर बढ़ रहे हैं। यह ऋण उनके गले की पफाँस

बन गया है। सरकार को किसानों की प्राथमिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए जो कि नहीं हो पा रहा है। इस प्रकार पफाँस उपन्यास लिखकर संजीव ने सही रूप में किसानों की समस्याओं को हमारे सामने लाया है और इस ओर भी हमारा ध्यान केन्द्रित किया है कि हमें और सरकार को उनकी ओर सहायता का कदम बढ़ाना चाहिए। जिस समय भारतीय किसान दिन-व-दिन आत्महत्या की ओर बढ़ता जा रहा है ऐसे समय में पफाँस जैसे उपन्यास की रचना एक सराहनीय कार्य है।

संदर्भ सूची

1. संजीव, फाँ स, 37-38
2. वही, पृ. 64
3. वही, पृ. 105
4. वही, पृ. 160
5. वही, पृ. 43
6. वही, पृ. 66-67
7. वही, पृ. 72

वाल्मीकि रामायणकालीन समाज और नृत्यकला

मनीष कुमार

शोधर्थी (M.Phil, MGCUB)
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर

शोध सारांश

वाल्मीकि रामायण काल में राजभवनों तथा राजसभाओं में जन्म, विवाह, राज्याभिषेक, यज्ञ आदि उत्सवों पर नृत्य का आयोजन करवाये जाते थे, विशेष अवसरो पर आश्रमों में भी नृत्य का आयोजन होता था। लव-कुश के रामायणगान के समय भगवान राम ने अन्य शास्त्रों के ज्ञाता विद्वानों के साथ-साथ गीत-नृत्य विशारदों को भी राज्य सभा में निमंत्रित किया था। भगवान राम के जन्मोत्सव, विवाहोत्सव एवं राज्याभिषेक के समय नृत्य-गीत का आयोजन का प्रसंग रामायण में मिलता है। श्रीराम के अश्वमेघ यज्ञ के समय नट-नर्त्तक उपस्थित थे, लंकानगरी में विभिन्न प्रकार के नृत्यादि के आयोजन का उल्लेख किया है। रावण की पत्नी मन्दोदरी संगीत की विदूषी थी। रावण को नृत्य-गीत के साथ भगवान शंकर की आराधाना किया गया है। दण्डकारण्य के आश्रम में अप्सराएँ नृत्य करती थी, रामायण में गणिकाओं, नटों, नृर्त्तकों और शैलूष आदि के नृत्य का उल्लेख हुआ है। रामायण में समान्य लोगों द्वारा नृत्य का उल्लेख आया है, ननिहाल में रहे भरत जब दु:स्वप्न के कारण दु:खी हो गये, तब मनोरंजन के लिए मित्रों ने वीणा बजायी, नृत्य किया और हास्य रस प्रधान नाटक सुनाया। वाल्मीकि कालीन समाज उच्च कोटि का था। उस युग में नृत्य संगीत आदि कलायें किसी वर्ग विशेष की ना होकर समान्य लोकरुचि का विषय था।

वाल्मीकि रामायणकालीन समाज और नृत्यकला

वाल्मीकि रामायण भारत का राष्ट्रीय आदि काव्य है। धार्मिक एवं नैतिक आदर्शो का भण्डार होने के साथ– साथ वह एक महत्वपूर्ण मानवीय समाजशास्त्र भी है, जो सहस्त्रों शताब्दियों पूर्व के भारतीयों के जीवन यापन का रोचक वृत्तान्त उपस्थित करता है। एक पुरातन युग की जीवित परम्पराओं, धारणाओं चिन्ताओं, आकांक्षाओं और भावनाओं को चित्रित करने के कारण वह प्रचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की एक बहुमूल्य निधि है। उसकी उपमा एक ऐसे पर्वत से दी जा सकती है, जिसकी शिखर से हम प्राचीन आर्यो के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं कला सम्बन्धी क्रिया– कलाप का सम्यक् दर्शन कर सकते हैं।

आलोच्य ग्रन्थ में ऋषि वाल्मीकि ने वैदिक संस्कृति तथा विचारधारा को लोकजीवन में प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। वैदिक युग में यज्ञ-यागों के समय सम्पादित होने वाले नृत्य, गीत आदि आयोजनों के विशद रुप का वर्णन भी इस ग्रन्थ में देखने को मिलता है। वेदों और वैदिक साहित्य के बाद रचे गये विभिन्न विषयक सामग्री के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में ही नृत्यकला की शिल्पविधियों का विकास पूर्णत: हो चुका था और समाज के सभी वर्गो द्वारा उसे मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। जनजीवन की ही भाँति साहित्य के क्षेत्र में भी उसे व्यापक रुप में अपनाया जाने लगा था। इस प्रकार के ग्रन्थों में अष्टाध्यायी की सामग्री का विशेष महत्त्व है। उसके बाद रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, पुराण, महाभाष्य, जैन-बौद्धों के ग्रन्थ, कालिदास के

रघुवंश महाकाव्य एवं कामसूत्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों में नृत्यकला के प्रयोग और प्रसार का ही नहीं वरन् उसकी पारिभाषिक शब्दावली का भी उल्लेख हुआ है।

वाल्मीकि रामायण के विभिन्न प्रसंगों से सुविदित होता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के युग में लोकजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कला के विभिन्न रुपों का प्रचार-प्रसार हो चुका था। उस युग में गीत, नृत्य, वाद्य, चित्र आदि समस्त कलाओं को शिल्प के अन्तर्गत माना जाता था। इसलिए शिल्पकार का बड़ा सम्मान था। शिल्प के प्रति जनसामान्य की गहरी अभिरुचि थी। स्वयं श्रीराम भी उसके प्रभाव से अछूते नहीं थे। महामुनि ने उन्हें संगीत, वाद्य, चित्र आदि कलाओं का ज्ञाता बताते हुए लिखा है-

वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित्।
आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम्।।[1]

अर्थात् मर्यादापुरुषोत्तम राम विहार सम्बन्धी कलाओं एवं गीत-वाद्य आदि शिल्प कलाओं में कुशल थे।

रामायण का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि उस समय राजभवनों तथा राजसभाओं में जन्म, विवाह, राज्यभिषेक, यज्ञ आदि उत्सवों पर नृत्य के आयोजन करवाये जाते थे। अवसर-विशेष पर आश्रमों में भी नृत्य के आयोजन होते थे। उस समय राम की अयोध्या, बालि की किष्किन्धा और रावण की लंका में सभी जगह नृत्योत्सव मनाये जाते थे। नटों, नर्तकों, शैलूष, गणिकाओं तथा सामान्य लोगों के अतिरिक्त राजकुमारियों, दिव्यांगनाओं, अप्सराओं और गन्धावों के द्वारा नृत्य करने के वर्णन एवं उल्लेख रामायण में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं। प्रस्तुत है इन्हीं पर एक संक्षिप्त विवेचन-

1. राज सभा तथा राजभवन में नृत्य रामायण के अनुसार उस समय भारतीय समाज के प्राय: सभी वर्गो में नृत्य प्रतिष्ठित हो चुका था। राजभावनों में नृत्य- कला को समुचित सम्मान प्राप्त था। यथा– राम के राज्याभिषेक के अवसर पर तालापचर नर्तक तथा गणिकाएँ भली-भाँती अलंकृत होकर राजभवन के दूसरे प्रांगण में नृत्य कर रहे थे-

आबधयन्तां पताकाश्च सिधयताम्।
सर्वे च तालापचरा गणिकाश्च स्वलंकृता:।।[2]

लव-कुश के रामायणगान के समय रामचन्द्र जी ने अन्य शास्त्रों के ज्ञाता विद्वानों के साथ-साथ गीत-नृत्य विशारदों को भी राज सभा में निमन्त्रित किया था। यथा-

अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन्।
चित्रज्ञान् वृत्तसूत्रज्ञान् गीतनृत्यविशारदान्।।[3]

2. जन्म-विवाह-राज्याभिषेक आदि उत्सवों पर नृत्य-

विभिन्न प्रकार के महोत्सवों के समय नृत्य गान द्वारा हर्षोल्लास मनाने के प्रसंग रामायण में दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीराम के जन्मोत्सव, विवाहोत्सव एवं राज्यभिषेक के समय नृत्य-गीत का आयोजन का प्रसंग रामायण में मिलते हैं-

(क) श्रीराम के जन्मोत्सव के समय। यथा-

रथ्याश्च जनसंबाधा नटर्नतकसंकुला:।
गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरै:।।[4]

(ख) राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुधन इन चारों भाईयों के विवाह के समय अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का उल्लेख रामायण में इस प्रकार मिलता है-

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदन्तरिक्षात्सु भास्वरा।
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतवादिगनि: स्वनै:।
ननृतुश्चाप्सर: सङ्घा: गन्धार्वाश्च जगु: कलम्।
विवाहे रधुमुख्यानां तद्भुतमदृश्यत्।।[5]

(ग) इसी प्रकार श्रीराम के राज्याभिषेक समारोह में सम्मिलित होने वाले सम्भ्रान्त लोगो में नट-नर्तक भी उपस्थित थे। यथा-

नटनर्तकसङ्घानां गायकानां च गायताम्।
मनः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।।[6]

3. यज्ञ आदि उत्सवों पर नृत्य-रामायण में श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के समय नट-नर्तक उपस्थित थे। यथा-

तथैव तालावचरास्तथैव नटनर्तकाः।
यज्ञ वाटश्च समुहान्कि गोमत्या नैमिषे बने।।

उत्तरकाण्ड में व्यापारी, नट, नर्तक, रसोइये और मंगलामुखी स्त्रियों का आने का उल्लेख प्राप्त हुए हैं-

अन्तरा पण्य वीथ्यश्च सर्वे च नटनर्तकाः।
सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः।।[7]

4. आश्रमों में नृत्य-अयोध्या काडं में वर्णित है कि- जब राम को वन से वापस ले जाने के लिए भरत सेना लेकर मुनि भारद्वाज के आश्रम में आये तो मुनि ने उनके स्वागत में अप्सराओं के नृत्य का आयोजन करवाया था-

प्रववुश्चोत्तमा वाता ननृतश्चाप्सरोगणाः।
प्रजगुर्देवगन्धार्वा वीणाः प्रमुमुचुः स्वरान्।।[8]

दण्डकारण्य में ऋषियों के आश्रमों में भी अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का उल्लेख प्राप्त होता है-

पूजितं चोपनृत्तं च नित्यमप्सरसां गणैः।[9]

5. लड्का में नृत्य-लंका नगरी में विभिन्न प्रकार के नृत्यादि के आयोजन का उल्लेख किया गया है। रावण की पत्नी मन्दोदरी संगीत की विदुषी थी। रावण को नृत्य-गीत के साथ भगवान शंकर की आराधाना करते हुए वर्णित किया गया है-

ततः सतामति हरं परं परं वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम्।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ प्रसार्य हस्तान् प्रननर्त चाग्रतः।।[10]

6. दिव्याङ्गना अप्सराओं और गन्धार्वो द्वारा नृत्य राम, लक्ष्मण आदि चारों भाइयों के विवाह के उपलक्ष्य में अप्सराओं ने नृत्य किया था। यथा-

ननृतुश्चाप्सरासंघा गन्धार्वाश्च जगुः कलम्।।[11]

दण्डकारण्य के आश्रमों में भी अप्सराएँ नृत्य किया करती थी। यथा-

पूजितं चोपनृत्तं च नित्यमप्सरसां कुशैः।।[12]

7. राजकुमारियों द्वारा नृत्य-राजकुमारी द्वारा भी नृत्य करने का उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है। यथा-

कुशनाभस्तु राजर्षि कन्याशतमनुत्तमम्।
जनयामास धार्मात्मा धृताच्यां रधुनन्दन।।
गायन्त्यो नृत्यमानांश्च वादयन्त्यश्च सर्वशः।
आमोदं परमं जग्मुर्वराभरणभूषिताः।।[13]

अर्थात् धार्मात्मा और राजर्षि कुशनाम ने धृताची आदि सौ सुन्दरी कन्याएँ उत्पन्न कीं। जब वे युवती हुई और उनका रुप निखरा, तब भली-भाँति सज-धाजकर और सुन्दर आभूषण पहनकर वे उद्यान में जाकर गाती, नाचती और वाद्यों को बजाती हुई किल्लोल करने लगतीं।

इस तरह रामायण में गणिकाओं, नटों, नर्तको और शैलूष आदि के नृत्य का उल्लेख प्राप्त हुए हैं। यथा–

(क) सर्वे च तालापचरा गणिकाश्च स्वलंकृता:।

कक्ष्यां द्वितीयामाश्रित्य तिष्ठन्तु नृपवेश्मन:।।[14]

(ख) रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तकसंकुला:।[15]

(ग) वाल्मीकि ने एक प्रसंग में कहा है कि शासनहीन जनपद मे

नट–नर्तक प्रसन्न नहीं दिखई देते। यथा–

नराजक जनपदे प्रहृष्टनटनर्तका:।

उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धान्ते राष्ट्रवर्धना:।।[16]

रामायण में सामान्य लोगों द्वारा नृत्य करने का उल्लेख आया है। ननिहाल में रह रहे भरत जब दु:स्वप्न के करण दु:खी हो गये, तब उनके मनोरंजन के लिए मित्रो ने वीणा बजायी, नृत्य किया और हास्य रस प्रधान नाटक सुनाये। यथा–

वादयन्तिस्म हसन्तिस्म गायन्तिस्म च सैनिका:।

समन्तात्परिधावन्ति माल्योपेता: सहस्त्रश:।।[17]

अत: निष्कर्ष रुप में पाते हैं कि– वाल्मीकि रामायण कालीन समाज उच्च कोटि का था। उस युग में नृत्य, संगीत आदि कलाएँ किसी वर्ग विशेष की न रहकर सामान्य लोकरुचि का विषय बन चुकी थी।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 1/28
2. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 31/7
3. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 94/4
4. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 18/17
5. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 73/38–39
6. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 6/64
7. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 91/15
8. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 91/26
9. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 1/14
10. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 31/44
11. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 73/38–39
12. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 1/4
13. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 32/11
14. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 3/17
15. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 18/17
16. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 67/15
17. वाल्मीकि रामायण अ.का. – 91/62

ममता कालिया कृत उपन्यास 'प्रेम कहानी': एक मूल्यांकन

डॉ० लवलीन कौर

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), कन्या महाविद्यालय, जालंधर

डॉ० सुनील कुमार

असिस्टेंट प्रोफेस, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्याल, अमृतसर

'प्रेम कहानी' हिंदी साहित्य जगत की प्रख्यायित लेखिका ममता कालिया की एक लघु औपन्यासिक कृति है जिसमें नारी मनोविज्ञान को बड़ी मर्मज्ञता से उघाड़ा गया है। सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य संबंधों की घुटन, प्रेम संबंधों की विफलता तथा अर्थाभाव से जूझती स्त्री का चित्रांकन करने में यहाँ ममता जी मुहारित हासिल किये हुए हैं वहीं नारी मन के कोमल तंतुओं के परिपक्व स्वरूप को बयाँ करने में भी बड़ी सक्षम हैं। उपन्यास में 19 वर्ष की जयाके कोमल मन में एक तरफ अगर पहले प्रेम के रंगीन सपने जन्म ले रहे हैं तो दूसरी तरफ वह मर्द जाति की प्रवृति को आंकने में किसी 80 वर्षीय प्रौढ़ा से कम नहीं दिखाई गई। वास्तव में उसके अंकल द्वारा उसके साथ घिनौनी हरकत करने की कोशिश और उसकी सहेली यशा के पहले प्यार का समतुल्य उसे प्रौढ़ा बनने पर मजबूर कर देता है। यह दोनों बातें उसके कौमार्य मन को बड़ी चुभती हैं। उसकी इख्लाकी समझ उसे जज्बाती कर उसे सोचने पर मजबूर करती है– "मुझे यशा से बेहद ईर्ष्या हुई। एक उसका अनुभव था पहले प्यार का वह पागल मुहब्तनामा, एक मेरा तजुर्बा था-तलखी, तनहाई और तोबा से भरा हुआ। एस क्षण मुझे लग रहा था कि शायद अब ताउम्र मैं प्यार के काबिल नहीं रहूंगी या शायद मर्द प्यार के काबिल नहीं होते। इस एक वारदात के बाद मुझे लग रहा था, मर्दों के चेहरे चेहरे नहीं, धुले– पुछें श्यामपट होते हैं, कुछ भी लिखो, कुछ भी मिटा लो। सुबह उठो, कपड़े बदलो, शेव करो, सब साफ।"[1] स्त्री और मर्द के जीवन की वास्तविकता यही है जो युगों– युगों की दास्तान है और शायद हमेशा रहेगी क्योंकि वर्तमान परिवेश इसका साक्षात् उदाहरण है लेकिन यह भी सत्य है कि नारी अपनी अस्मिता और स्वाभिमान के लिए जब सज्य हो जाती है तो वह इन सामाजिक परम्पराओं के कटघरे में खड़ी होकर अपने दामन को बेदाग साबित करने की बजाये एक भव्य दार्शनिका की भांति अपने जीवन फलसफे को स्वयं लिखने में विश्वास रखती है। शायद इसी को नारी सशक्तिकरण कहते हैं जिसकी परतों को लेखिका ने जया के माध्यम से चरण-दर-चरण खोला है। जया पहले तो विश्वविद्यालय होस्टल में रह्ने का और फिर गिनेस के साथ घर बसाने का फैसला लेकर स्वयंभू होने की सफल उदाहरन प्रस्तुत की है।

उपन्यास स्त्री-पुरुष के प्रेम संबंधों और उनके आड़े बदलते जीवन आदर्शों और यथार्थो के विविध व्याख्यान पेश करता है। पुरुष के लिए स्त्री महज जीवन जीने की एक आवश्यक वस्तु है जबकि स्त्री के लिए पुरुष उसका सर्वस्व। यथा गिनेस कहता है– "प्रेम और प्रेमी इतने पिटे शब्द हैं कि इनका कोई अर्थ नहीं बचा। हम एक-दूसरे के लिए जरूरी हैं, क्या यह काफी नहीं। तुम मेरी जिंदगी में वैसे ही जरूरी हो, जैसे सुबह का अखबार।"[2] लेकिन जया कहती है– "तुम मेरे लिए उतने ही जरूरी हो जितना जिन्दा रहने के लिए मिट्ठी, पानी और आकाश। मेरे लिए सांस लेने का पर्याय हो तुम।"[3] क्या यह दोनों की प्रेम संबंधी अधूरी आस्था है या फिर अंध श्रद्धा में गुमराह होती दो जिंदगियां? लेकिन जो भी हो जया का यह कथन वर्तमान अस्तित्ववादी युग में नारी पर लगे

उन सब प्रश्नचिन्हों को मिटा देने में सक्षम है जो कभी उसे स्वार्थपरकता की वेदी पर चढ़ाकर तो कभी आत्मनिर्भयता की कसौटी पर खरा कर बार-बार परखते हैं। वर्तमान औरत उपजीव्य शक्ति बनकर घर चलाने में मर्द की सहयोगिनी है तो दया, प्रेम, त्याग, और ममता की प्रतिमा बनकर परिवार को परिवार की परिभाषा में बंधे रखने में किसी 18वीं या 19वीं शती की स्त्री से कम भी नहीं। जया अपना घर-परिवार और यहाँ तक कि वैवाहिक जीवन की सब रंगीनियों को त्याग देने से हिचक्चाती नहीं लेकिन इस त्याग की भावना का ऊहा–पोह, छटपटाहटवह अंदर ही अंदर जीती भी है यथा जीवन की यथार्थकता में कभी असंतुलन नहीं आने देती। वह सोचती है–"आए दिन मैं दिल्ली की सड़कों पर नवविवाहिता जोड़ों को देखती-भरी साड़ियाँ और नए सूट पहने, एक-दूसरे के हाथों में हाथ डाल घूमते, हँसते, चहचहाते। हमारा एक भी दिन इतना निश्चिन्त नहीं गुजरा था। गिनेस का अनिश्चित डयूटी क्रम, अध्ययन और चिंतन इस सबकी इजाजत नहीं देता।"[4] इसी क्रम में वह आगे कहती है-"प्रेम भी कर लिया, शादी भी कर ली पर एक भी बार न ताजमहल गए, न कश्मीरद्यन कोई फोटो खिंचवाई, न जेवर बनवाए। इसका मतलब चालू अर्थों में या तो हम औसत नहीं हैं, या हम प्रेमी नहीं हैं, या हम दोनों नहीं हैं।"[5] उसके परिकल्पनात्मक धरातल पर सुंदर-सुखद जीवन के बीज अंकुरित तो होते हैं लेकिन जड़ रूप लेकर वह एक वृक्ष का रूप धारण नहीं कर पाते। उसके पास दु:ख-सुख बाँटने वाला अच्छा मित्र तो है लेकिन पत्नी के मनोबल तक पहुँच पाने का मादा रखने वाला एक दूरदर्शी पति नहीं। इस पक्ष से अगर मुल्यांकन किया जाए तो जया उसका सच्चा प्रेम नहीं बल्कि एक बहुत बड़ी जरूरत है घर बसाने हेतु एक पत्नी के रूप में, घर सम्भालने हेतु एक सशक्त महिला के रूप में, सुख-दु:ख बटाने के लिए एक सच्चे मित्र के रूप में अथवा उसकी नैतिक सरंक्षा के रूप में। जया उसकी एक ऐसी जरुरत है है जो उसका आधार सतम्भ है जो उसकी सफलता के महलों को निर्मित कर रहा है– अपने अरमानों, अपनी खुशियों, अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का चूरा डालकर। डाक्टर बनकर गिनेस अपनी व्यस्तताओं के आड़े अपनी निजी और बाह्य लाईफ में स्थाईपन ही स्थापित न कर पाता। जितना आदर्शवादी वह प्रेमी और डाक्टर था शायद उतना पति नहीं। एक प्रेमी के रूप में–

"कुछ हफ्ते मेरे परिवार को निकट से देखो, हमारे रहने का ढंग, रीति-रिवाज, हमारे सम्पर्क, हमारी दुनिया– मेरा मतलब है, हमारी जिन्दगी का तापमान पहचान लोद्य"

".....और तापमान रास न आने पर..... ।"

"हाँ, कोई मजबूरी नहीं, तुम वापिस आने के लिए आजाद होगी या वहीकिसी और से, मुझसे अच्छे आदमी से नाता जोड़ने को स्वतंत्रा।"[6]

वह सब कुछ चाहता है लेकिन अपने पौरष के अंह के तले। अपने ही पेशे तक को वह नहीं छोड़ता। वह उसे शक्ल के पेशे की तरह अक्ल का पेशा करना कहता है। एक पति की हैसीयत से वह अपनी निजता को सिद्धातों और आदर्शों के तराजू में ही तौलता रहा। शयद यही कारण था कि एक सफल व्यक्ति बनकर भी सफल पतित्व कभी नहीं निभा पाया। क्या सच में सभी पुरुषों की एक ही वृति होती है क्यूंकि जया के अंकल ने प्रेम की पवित्रतता का हनन किया था और गिनेस ने प्रेम की सार्थकता का। उसके भरपूर जीवन के खालीपन को लेखिका ने उसी के विचारों में बड़ी सजगता से संजोया है-

"मुझे लगता है गिनेस, विद्यार्थी जीवन सपनों का सिलसिला होता है, तुम ऐसे ही सपनो में जीते हो। जरा आँख खोलकर देखो। क्या दुनिया सपनोंसे चल सकती है? इसमें नोन, तेल, लकड़ी की सख्त जरुरत होती है, जनाब!"

"डाक्टर साहिब के सामने उनमें से एक भी समस्या नहीं है जया, समस्या है तो उनकी हवस।"

"जब तुम प्रेक्टिस शुरू करोगे, तब देखेंगे।"

"देख लेना। मुझे प्रेक्टिस छोड़ना मंजूर होगा, सिद्धांत नहीं।"

"हर असफल आदमी आदर्शवादी होता है, हर सफल इंसान यथार्थवादी। ....."

"क्या तुम्हारी निगाह में भी सफलता वही है जो नोटों में नापी जाए? क्या तुम भी इंतजार कर रही हो कि कब मैं पढ़ाई खत्म कर पैसे कमाने की मशीन में ढल जाऊँ?"[7] जया आदर्श और यथार्थ की जीवन–प्रणाली को खूब समझती है। उसके कहने का अर्थ था की गिनेस का जीवन आदर्शों की ऐसी कच्ची राह पर चल रहा है जो वास्तविक तथ्यों की कल्पना से भी कोसों दूर है। उसके आदर्श केवल उसके अहं को फलीभूत करते हैं और उसे अपनेपन से हमेशा दूर रखते हैं। डाक्टर बनकर भी वह जीवन–सत्यों

से निर्दृष्ट ही रहता है। जया अभी भी उसमें से उसी गिनेस को ढूँढती है जिसपर वह अपना सर्वाधिक हक्क समझती थी, जिसके लिए वह सर्वस्व त्याग आई थी परन्तु अब वह यह सोचने को बाध्य है– "सफल आदमी कितना सम्पूर्ण होता है। उसे अगल-बगल किसी की जरुरत नहीं होती।"[8] लेकिन यह सर्वदा सत्य है क्योंकि "उसे अपनी व्यस्तता और कार्याधिक्य से कोई शिकायत भी न थी। यह तो मेरा ही मन था जो उसकी दुधिया, मधुर बातोंके लिए अब भी तरसता था, अब भी शहर की दूरदराज सड़कें उसके संग कदम से कदम मिलाकर वक्त-बेवक्त नापना चाहता था.....।"[9] जया के मन की ऊहा-पोह उसे कभी भी स्थिर नहीं होने देता। सामाजिक व्यवस्थाओं के आड़े वह ओर बहुत कुछ हो सकने की उम्मीद अपने पति से करती है लेकिन एक अस्तित्ववादी–व्यक्तिवादी दृष्टि से स्वयं के प्रेम और वैवाहिक जीवन को बड़ा सफल मानती। यशा की गाथा सुनकर वह भी अपने स्वार्थ की अभिव्यक्ति बड़ी आसानी से दर्शा देती है कि गिनेस के साथ मेरी जिन्दगी साधारण ही चलती है लेकिन उसका व्यक्तित्व मुझे साधारण औरतों की तरह सोचने को मजबूर नहीं करता। अब सवाल यह है किक्या व्यक्ति मन की संकीर्णता कहीं भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। यह मानसिक छटपटाहट इंसान को बनावटी और दिखावेबाज बने रहने को मजबूर करती है। जीवन की वास्तविकताओं से ओझल होकर, स्वयम को तस्सल्ली देकर जीना कहाँ तक सार्थक सिद्ध हो सकता है। जया जीवन की यथार्थकता को तो बड़ी शिद्दत से निभाती है परन्तु अंत प्रेम–श्रद्धा उसके स्वाभिमान को बौना बनाकर रख देती है; "पति की हाँ में हाँ और ना में ना मिलाना आसान ही होता होगा, तभी करोड़ों लोग शादी कर सकते हैं और सुखी रहे आते हैं। मेरे लिए शादी की वर्णमाला कितनी मुश्किल पड़ने लगी है।"[10] वैवाहिक जीवन में पति का नाम, शोहरत, रूतबा, धन इत्यादि उतने मायने नहीं रखता जितना उसका निच्छल प्रेम, उसकी स्पेशल केयर और और उसके निजपन का आनंद मायने रखता है। खैर यशा तो प्रेमी और पति दोनों से ही वंचित रही। उसके प्रेम को जाति-धर्म की वेदी पर चढ़ा कर बड़ी आसानी से झटका दिया गया। उसके कौमार्य अरमानों का गला घोंट कर उसे एक व्योपारी की खूँटी से बांध दिया जाता है। यशा स्वयं कहती है-"पढ़ना-लिखना लड़कियों के पैर लगा देता है या पर? हम लाख एम.ए. हो जाएं, पी.एच डी. हो जाएं, परम्पराएँ जब माँ- बाप, ताई-चाची की शक्ल में सामने आती हैं, तब सब भूल जाता है।"[11] सच में नारी के शिक्षित-अशिक्षित होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। परम्पराओं और मान्यताओं के घेरे में वह अबला ही है। वह अपने पिता की सम्पति है जिसे वह स्वेच्छा से किसी को भी समर्पित कर सकता है। इस सबके विपरीत लेखिका बड़े यशस्वी ढंग से जया के मूंह से कहलवाती है– "अपने यहाँ रीति-रिवाजों पर बड़ा क्रोध आया। यह कैसा रिश्ता है, जहाँ न मन मिले हैं, न मस्तिकष, केवल जिस्म के स्तर पर ही जीवन चलता है। शादी में सिर्फ यह देखा जाता है कि एक साबुत शरीर लड़का एक साबुत शरीर लड़की को प्राप्त कर ले। दोनों की मानसिकता का कोई विचार नहीं किया जाता। बहुत हुआ तो आर्थिक स्थिति टटोल ली जाती है। माता-पिता कन्यादान ऐसे कर देते हैं जैसे गऊदान। हमारे मुलक के सिवा और कहाँ ऐसा मजाक होता होगा कि अच्छे खासे पढ़े– लिखे लड़के-लड़की शादी के वक्त अपना समस्त व्यक्तित्व माता-पिता के हवाले कर देते हैं।"[12] पुरुष को स्त्री चाहिए– प्रेयसी, पत्नी या फिर वैश्य भी इसके बनाये समाज चलती है। लेकिन स्त्री को पूर्णरूपेण पुरुष चाहिए– जिस्मानी स्तर से कहीं ऊपर आत्मिक स्तर पर। क्या ऐसा संभव है? वर्तमान युग में तलाक की बढ़ती दर के लिए कौन जिम्मेदार है? आज का सोशल मीडिया किसी प्राचीन हरम से परे तो नहीं। औरत स्वाभिमानी बनकर जीना तो सीख गयी है पर क्या पुरुष की सहनीय शक्ति से बहार नहीं? या फिर स्त्री का कामकाजीपन और घरेलूपन दोनों मिलकर उसके नारीत्व को मार रहे हैं। व्यवस्था कोई भी हो, कैसी भी हो स्त्री हमेशा सब ढोती आई है। डॉ. लाल साहिब के शब्दों में– "वर्तमान सामाजिक परिवेश में नारी के दोनों रूप विद्यमान हैं। एक तो वह प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं से बंधी अंध रूप से उन्हें ढोती चली आ रही है। दूसरे वह पाशचात्य संस्कृति एवं सभ्यता के प्रकाश में अपनी अवस्था का मनन एवं विश्लेष्ण करती हुई प्राचीन परम्पराओं और प्रथ्यों को तोड़ भी रही है।"[13] नारी अपनी अस्मिता समाजिकता और स्वयंबोध को निभाती हुई कई परिस्थितियों से गुजरती हुई अपने जीवन को संजो कर चलती है। यही तो है उसकी विलक्षणता।

निष्कर्षत

कह सकते हैं उपन्यास स्त्री-पुरुष संबंधों के मध्य उन सब गली-सड़ी मान्यताओं को आक्रोश भरे स्वर में प्रस्तुत करता है जो युगों से सामाज को दीमक की तरह चाट रहे हैं तथा आज भी अपने उसी रूप में मिलते हैं। उपन्यास डाक्टर वर्ग के रहस्यों, किडनैपिंग के धंधों, अमीरों के चोंचलों और गरीबों की लाचारी जैसे कई सामाजिक उपक्रमों को लेकर आगे बढता है परन्तु इस लघु औपन्यासिक कृति क कोई ठोस अंत नहीं है। गिनेस और जया की प्रेम कहानी न तो किसी चरम को छूती है और न ही समाप्त

होती है। परन्तु कहना न होगा कि इस लघु औपन्यासिक कृति में ममता जी ने स्त्री के मन की परतों को चरण-दर-चरण खोला है जिसको समझने की और विचारने की आवश्यकता है। नारी आज भी खड़ी वहीं है, बिना शक्क अब उसने अपने आप को अबला की परिभाषा से निकल लिया है, शेष समाज का नजरीया तो वैसा ही है। वह संभल रही है इस पुरुष प्रधान समाज की दकियानूसी सोच से। छोटी-छोटी खुशियाँ उसके कोमल मानसिक तंतुओं को हमेशा प्रभावित करती आई हैं और करती रहेंगी जैसे जया है। अत: यह एक सफल औपन्यासिक कृति है।

संदर्भिका

1. तीन लघु उपन्यास, ममता कालिया (नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2008), पृ-123
2. तीन लघु उपन्यास, ममता कालिया (नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2008), पृ-165
3. वही, पृ-165
4. वही, पृ-165
5. वही, पृ-165
6. वही, पृ-138-139
7. वही, पृ-160
8. वही, प-194
9. वही, पृ. 192
10. वही, पृ-195
11. वही, पृ-171
12. वही, पृ-184
13. स्वातंत्रयोत्तर हिंदी उपन्यासों में युग- बोध, लाल साहिब सिंह, कानपुर : अभय प्रकाशन, 2005, पृ-123

ममता कालिया के उपन्यास में नारी चेतना

मोनिका कुमारी

शोधार्थिनी, (हिन्दी विभाग)
तिलकामांझी, भागलपुर विश्वविद्यालय

'नारी चेतना' एक बहुआयामी शब्द है, जिसको बुद्धिजीवी वर्ग अपने-अपने ढंग से देखते और समझते हैं। हर एक के लिए इस शब्द का अर्थ अलग-अलग हो सकता है परन्तु इसे नकारा नहीं जा सकता। स्त्रियों का संघर्ष आदिकाल से लेकर वर्तमान तक निरंतर चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। जिन स्त्रियों को हम सफलता के शीर्ष पर देखते हैं, उनकी उस सफलता के पीछे सतत् संघर्ष होता है, 'जिद' होती है कुछ कर दिखाने की। स्त्रियों ने हर क्षेत्र में अपनी सामर्थ और कार्यकुशलता को सिद्ध किया है जो उनके लिए वर्जित माना जाता था। किन्तु साधारणत: हम जिन सफल स्त्रियों की चर्चा करते हैं, उनका प्रतिशत बहुत कम है। इसका कारण यह नहीं है कि उनमें सामर्थ नहीं है वरन् उनको अवसर ही नहीं मिल पाते हैं।

विगत में नारी का स्वरूप कुछ भी रहा हो, किन्तु वर्तमान में वह अपनी निर्धारक और नियंता स्वयं बनाना चाहती है। "पूर्व में कुछ भी पाने के लिए वह पुरुष की दया पर मोहताज रही है। अब वह सबकुछ स्वाभाविक रूप से पाना चाहती है। वह आगे किसी की मोहताज नहीं होना चाहती, दया का पात्र नहीं बनना चाहती, किसी की जूठन नहीं बनना चाहती। किसी के पैरों की जूती नहीं बनना चाहती। बनाना चाहती है तो एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व, जिसके अंश-अंश की नियंता वह स्वयं हो। उस पर न कोई अर्गला हो, न कोई बंधन, न कोई पूर्वाग्रह, न इतिहास की कोई युक्ति।"[1] भूमण्डलीकरण, संचार क्रान्ति एवं आर्थिक उदारीकरण ने नारी चेतना को विकसित होने के नये परिप्रेक्ष्य प्रदान किये हैं। यह चेतना ममता कालिया के कथा साहित्य में उनके स्त्रियों में परिलक्षित होता है।

ममता कालिया का आधुनिक हिन्दी कथाकारों में महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक समाज में नारी के जितने भी रूप हैं, ममता कालिया की रचनाओं में उनकी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उनके कथा साहित्य में कई नारी परम्परा एवं रूढ़ियों से ग्रसित हैं। कथा साहित्य में नारी अलग-अलग परिस्थतियों में अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करती हैं। उनके साहित्य में स्त्रियाँ अपने शोषण और दमन का विरोध भी करती है लेकिन वे कभी हिंसा का सहारा नहीं लेती। वर्तमान समय में स्त्री के कार्य क्षेत्र में विस्तार हुआ है, इसलिए उसे घर-परिवार की जिम्मेदारियों के साथ-साथ और भी कार्य करने पड़ते हैं यही कारण है कि नारी पुराने पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाये नियमों को निभाने में असमर्थ है। आधुनिक नारी अपनी स्वतंत्रता के प्रति भी जागरूक है इसलिए उसमें पितृसत्ता से मुक्ति की छटपटाहट दिखाई देती है। ममता कलिया के साहित्य में नारी अपने अधिकारों को पाने के लिए पितृसत्ता का विरोध करती है और सफलता भी प्राप्त करती है और वे आर्थिक, स्वतंत्रता, व्यवसायिक दक्षता एवं आत्मनिर्भरता के प्रति विशेष सजग है। नारी में शिक्षा और आर्थिक निर्भरता प्राप्त करके अपनी अलग पहचान बनाई है। ममता कालिया ने बेघर, नरक दर नरक, प्रेम कहानी, लड़कियाँ, एक पत्नी के नोट्स, दौड़, दुक्खम्-सुक्खम्, अँधोरे का ताला आदि उपन्यासों की रचना की है। उनके 8 उपन्यास विविध भावों को उजागर करते हैं।

भारतीय संस्कृति ने नारी को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'** अर्थात् जहाँ स्त्री की पूजा की जाती है, वहाँ देवता वास करते हैं-कहकर उनकी स्तुति की है। माता, बहन, पत्नी, शक्ति सहधार्मिणी, करूणामयी कहकर उसे सम्मानित किया गया है। फिर भी वर्तमान समय में नारी की समस्या ज्यों-की-त्यों है। अत: वह प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आज

की नारी पढ़-लिखकर नौकरी कर रही है। वह पुरुष के साथ कंधो से कंधा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति कर रही है। किन्तु पुरुष प्रधान समाज नारी के इस रूप से एक ओर खुश है, तो दूसरी ओर उसे दुय्यम दर्जा दे रहा है। इस वजह से आज नारी को अपने अस्तित्व एवं अधिकार के लिए लड़ना पड़ रहा है। निश्चित रूप से नारी का जीवन जटिल समस्याओं से भरा पड़ा है। डॉ. फैमिदा बीजापुरे के अनुसार, "स्त्री चाहे जितनी सुशिक्षित क्यों न हो उसके प्रति देखने की दृष्टि इस रूप प्रधान संस्कृति में अच्छी नहीं है। उसकी शिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया जाता। अगर यह स्त्री पुरुष से ज्यादा पढ़ी-लिखी और होशियार हो तब तो उसकी प्रतिभा को मात देने की, उसके घर की चारदीवारी में कैद करने की प्रवृत्ति पुरुषों की होती है। ऐसी कई समस्याओं सुशिक्षित नारियों की होती है।"[2] वैसे देखा जाए तो महिलाओं की अनेक समस्याएँ प्राचीनकाल से ही समाज में मौजूद थी और वर्तमान समय में भी है। निरक्षर, शिक्षित, विवाहित, अविवाहित, युवा, प्रौढ़, अधोड़, वृद्ध तथा किसी भी कारणवश दु:खी पीड़ित नारियों की समस्याओं का प्रभावी एवं गंभीर चित्रण ममता कालिया ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है।

'बेघर' ममता कालिया का पहला उपन्यास और उनकी दूसरी पुस्तक है जो 'कौमार्य मिथक' की पुरुष समाज में व्याप्त रूढ़ धारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लगा गहरी चोट करता है। पति-पत्नी के शारीरिक संबंध को केन्द्र में रखकर लिखा गया यह उपन्यास आधुनिक समाज में पुरुष की संस्कारबद्ध जड़ता और संदेह वृत्ति को उघाड़ता है। "परमजीत अपनी नवविवाहिता पत्नी संजीवनी के कुँआरेपन को पुरानी कसौटी पर रखता है और उसे लगता है कि वह 'खरी नहीं है, अर्थात् उसके जीवन में वह 'पहला' पुरुष नहीं है। संजीवनी के प्रति परमजीत का यह संदेश कीड़े की तरह उसे स्वयं ही खोखला करने लगता है और यह तनाव उसे इस तरह तोड़ता है कि दोनों में संबंध विच्छेद हो जाता है, लेकिन पत्नी संजीवनी के बाद परमजीत जिस दूसरी स्त्री से शादी करता है, वह उसे एक पुरजा बना डालती है, यहाँ तक कि उसकी निजता और पहचान सब कुछ समाप्त हो जाता है। वस्तुत: स्त्री के कुँआरेपन को लेकन समाज में रूढ़ धारणाएँ हैं, वे न सिर्फ अवैज्ञानिक हैं बल्कि अमानवीय भी है।"[3] भारतीय समाज में असंख्यक औरतों पर भी इसी प्रकार की मानसिकता का प्रभाव पड़ता है। एक शिक्षित रोजगार सम्पन्न स्त्री जो अपने प्रेमी को सर्वस्य दे देती है फिर भी परमजीत पुरुष मानसिकता के दम्भ से बाहर नहीं निकल पाता है और संजीवनी जैसी लड़की के बारे में गलत फैसला लेता है। संजीवनी भरूचा भी परमजीत से संघर्ष करना चाहती है तो वह परमजीत से बात करना चाहती है कि "वह उसक सस्ती, संयमहीन लड़की समझ रहा होगा। यह बात उसे भुलाये नहीं भूल रही थी। उसे गुस्सा आ रहा था कि क्यों वह स्वयं इस तरह बेवकूफ बन गयी।" वह परमजीत से एक लम्बा बहस करना चाहती है परन्तु वह अपने इस प्रयास में सफल नहीं हो पाती क्योंकि परमजीत उसे अवसर नहीं देता। यहाँ अस्मिता के लिए संघर्ष करती हुई जीवन्त नारी भी है।

पति-पत्नी के शारीरिक संबंधों को केन्द्र में रखकर यह उपन्यास लिखा गया है। कुँवारेपन की कसौटी को लेकर हमारे समाज में आज भी जो रूढ़ धारणाएँ हैं उनपर इस उपन्यास पर तीखा व्यंग्य है। यही लोग स्त्रियों के प्रति भोगवादी, सामंती और आमनवीय व्यवहार रखते हैं, शोषण और शोषक का सम्बन्ध समाप्त हो, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों खुलकर साँस ले सकें, आनन्दमय जीवन जी सकें। जिससे स्त्री की आँखों में आँसू न आये। स्त्री घुटन से मानसिक तनाव से बाहर निकल सके। समाज में स्त्रियों की स्थिति पर विचार करना जितना स्त्रियों के लिए आवश्यक है उतना ही पुरुषों की भी जिम्मेदारी है। जिस दिन शोषक वर्ग में यह चेतना आ जायेगी कि हमें शोषण नहीं करना है, निश्चित रूप से स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षित सुधार समाज के पटल पर दिखाई देने लगेगा और स्त्रियाँ भी सम्मानपूर्वक जीवन जीने की अवसर प्राप्त कर सकेंगी। नारी अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट है इसलिये वह परिवार में अपने असंतोष को जहाँ-तहाँ उजागर कर रही है। उपन्यासों में विवाहित व अविवाहित दोनों रूप में नारी की पारिवारिक स्थिति को लेकर पीड़ा, असंतोष के अन्तर्गत पुरुष सत्तात्मक नियमों को तोड़ने का प्रयास आज भी कर रही है। उपन्यास में नारी बंधो बंधाये नियमों से हट कर जीवन चुनती है वहीं प्रतिप्रश्न, नयी दुनिया, दूसरी आजादी उपन्यास में नारी पात्र स्त्री स्वतंत्रता का समर्थन करती है।

नरक दर नरक उपन्यास की नायिका उषा सामान्य सी सूरत एवं सांवली, दुबली, एम.ए. फाइनल की छात्रा है। "जोगेन्दर सहनी (जगन) से विवाह के बाद उषा का सामान्य पारिवारिक जीवन प्रारंभ होता है। अपने विवाह में कोई भी समझौता नहीं करके प्रेमविवाह किया। विवाहोपरान्त नारी-जीवन में जो परिवर्तन होता है वह नि:संदेह उसके व्यक्तित्व को भी प्रभावित करता है।

कामकाजी विवाहित स्त्री के जीवन की मुश्किलों और संघर्षों का सजीव वर्णन किया है।"[4] 'विवाह' नारी जीवन का ऐसा निर्णायक मोड़ हे, जहाँ से उसका संघर्ष विभिन्न पड़ाओं से गुजरता हुआ लक्ष्य को प्राप्त करता है, विवाह पूर्व नारी की विभिन्न संवेदनाओं में अपेक्षाकृत बदलाव दृष्टिगत होता है। नारी कितनी भी आधुनिक एवं शिक्षित क्यों न हो जाए किन्तु प्रकृति एवं परंपरा का परित्याग वह नहीं कर पाती। जीवन के यथार्थ के आगे प्राकृतिक भावों के प्रति 'नरक दर नरक' 'उषा' का व्यक्तित्व आम नारियों से पृथक नहीं था। आज की नारी अत्यंत संघर्षशील है। वह सामाजिक और मानसिक तनावों से मुक्ति पाने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है। इन प्रयासों में उन्हें कुछ सफलता अवश्य मिली है। ममता जी के रचनाओं में शोषित पीड़ित नारी घर और परिवार से पलायन की कल्पना अवश्य करती है परंतु वास्तविक रूप में उसे क्रिया में नहीं उतार पाती। उनकी नारियाँ जिम्मेदारियों के प्रति सजग दिखाई देती है। जीवन से निराश और हताश होकर भी वह मृत्यु को गले नहीं लगाती बल्कि परिस्थतियों से समझौता कर लेती है। जीवनगत परिस्थितियों के मध्य अपने अस्तित्व के प्रति सचेत नारियों में अपनी स्वंतत्रता के लिए ठोस कदम उठाने का साहस है जिनमें परिस्थितियों के आगे हार न मानने का साहस है।

'प्रेम कहानी' उपन्यास में नारी जीवन को स्वच्छंद रूप से दर्शाया है एवं बताया है कि नारी किसी भी पुरुष के हाथों की कठपुतली नहीं है। नारी अपने जीवन में हर प्रकार के दु:ख सहकर भी पुरुष को सुखी रखती है। ममता जी रचनाओं में खुद के व समाज के जीवन को जीनें आजादी की ललक, स्वतंत्रता की आकांक्षा असहायता व असुरक्षा भाव को चित्रित किया है। साथ ही उन्होंने नारी जीवन की अछूती व अनभिव्यक्त स्थितियों व क्षणों को अभिव्यक्त किया है। नारी मन की सूक्ष्म झाकियाँ मिलती है जिसमें कहीं सामाजिक दबाबों का दर्द है, कहीं परम्पराओं का विद्रोह है, कहीं मन के सूक्ष्म अरमानों का भाव है तो कहीं कर्त्तव्यों एवं अधिकारों का आकर्षण है। "उपन्यास की जया को शिक्षा से बहुत लगाव था। 'जया' तथा 'यशा' भी शिक्षित होकर स्वाबलम्बी होना चाहती है। जया अपनी शिक्षा के प्रति सुदृढ़ प्रतिभाशाली छात्राओं में थी। अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता की जिद में जया ने दिल्ली में पढ़ने के निर्णय में अपने परिवार की स्वीकृति हासिल कर ली। वह अपनी शिक्षा हेतु प्रयासरत है किंतु पिता का तबादला बार-बार होने से नाना-प्रकार के समस्याओं से प्रभावित होकर जया हिम्मत से आगे बढ़ती है।"[5] खुला दृष्टिकोण रखनेवाली और मुकाबले करने की शक्ति उनके पास है। आजादी के बाद समाज की गलत मान्यताओं को ठेस लगी है तथा महिला आत्मनिर्भर होकर जागरूकता का प्रयास कर रही है। नारियों की स्वतंत्रता तथा उसकी अस्मिता के प्रति संवेदनशील दृष्टि रखकर उन्होंने अपने उपन्यास में नारी चेतना को जागृत किया है।

'लड़कियाँ' ममता कालिया का यह एक लघु उपन्यास है। उपन्यास में लेखिका ने अविवाहित कामकाजी स्त्री का चित्रण किया है। महानगरीय यथार्थ को जीवंत करता यह उपन्यास बम्बई जैसे महानगर में अकेली रहने वाली नायिका है। उपन्यास की प्रौढ़ नायिका परिवार और पति की दखलअंदाजी से बचने के लिए विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा कर मुंबई जैसे महानगर में अकेली रह कर नौकरी करती है। नायिका लल्ली और सहनायिका अफशाँ को जिंदगी का विवेचन करते हुए सामाजिक असुरक्षितता जीवन के विविध आयाम उपस्थित करती है। महानगरीय जीवन की त्रासदी में वे दोनों हमेशा अपने आस्तित्व की रक्षा के लिए सचेत रहती है। इतने बड़े शहर में सगे-संबंधित के न रहते विज्ञापन एजेंसी में काम करना एक जोखिम भरा काम होते हुए भी वह अपना व्यक्तित्व नौकरी को समर्पित करती है। अपने परिश्रम के आधार पर वह विज्ञापन की दुनिया में क्रांति कर देना चाहती है। "मेरे व्यक्तित्व का सर्वश्रेष्ठ अंग नौकरी समर्पित था मेरी संवेदना, कल्पनाशीलता और रचनात्मकता जिंगल और स्लोगन लिखने में लगी हुई थी।"[6] आज की नारी ने कई रास्ते तय किये हैं। सुन्दरता और बौद्धिकता का समन्वय बिठाने वाली नई नारी आर्थिक तौर पर स्वतंत्र होने की यात्रा में काफी आगे पहुँच चुकी है। इन महिलाओं का संघर्ष आने वाली पीढ़ी के लिए मार्ग को कुछ आसान अवश्य बनाएगा।

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में एक प्रबुद्ध स्त्री की जीवन विसंगतियों एवं त्रासदी को अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास इक्कीसवीं सदी की नारी का चित्रण भी करता है जो इक्कीसवीं सदी के यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए वह पति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहती है। कविता भी अपने पैरों पर खड़ी है जबकि उसका पति उसे नीचा दिखाने के लिए वह उसका किसी तरह से अपमान कर देना चाहता है। जबकि कविता उसका पति आई. ए0 एस0 आफीसर है। इसके बावजूद वह अपने व्यक्तित्व अपनी गरिमा के लिए लेक्चरर की नौकरी करती है। 'कविता' का मानसिक ढ़ाँचा अकादमिक जिंदगी के लिए बना था। किताबों पढ़ना, लेक्चर तैयार

करना, सेमिनार अटैंड करना, भाषण देना और घंटों खाली लेट कर किताब पढ़ना। अब एक संदीप दफतर से देर रात लौटता "कविता शिकायत न करती कि चार घंटे देर से क्यों आये। वह इतवार को भी दफतर क्यों चले जाते हैं। उसका दिमाग किसी न किसी किताब में उलझा रहता है उसी सुरताल में वह जीती। इसलिए अक्सर उसके चेहरे पर एक तनमयता देखी जा सकती थी। मानों कोई आन्तरिक सिम्फनी उसके अन्दर लगातार धवनित हो रही है।"[7] नारी स्वतंत्र चेता हो, आत्मनिर्भर हो, आत्मविश्वासी हो और 'स्व' के प्रति जागरूक हो। नारी चेतना में प्रायः नारी मुक्ति की बात की जाती है। "नारी मुक्ति का अर्थ नारी को पुरुष से मुक्ति नहीं उन सड़ी-गली रूढ़ियों से मानव मात्र की मुक्ति हो जिससे पुरुष भी उतना ही प्रभावित है जितनी नारी। नारी चेतना का अर्थ है अपनी पहचान। अपने बारे में एक स्पष्ट अभिमत और उसी अनुसार स्वयं का व्यक्तित्व विकास। क्षमता, सामर्थ्य, कर्मठता, निर्भीकता और आत्मविश्वास से भरा ऐसा नारीत्व कि पुरुष उसका सम्मान करे। उसकी शक्ति को पहचाने। ऐसा खुला-खुलासा हीनताओं से ऊपर, कुंठारहित, उदारचेता व्यक्तिव ही सही मायने में नारी चेतना से परिपूर्ण व्यक्तित्व है। वर्तमान जीवन की विसंगतियों में नारी अपने स्व-अस्तित्व को पाने के लिए निरंतर प्रयासरत है।

'दौड़' उपन्यास में अति आधुनिकता की एक ऐसी दौड़ का वर्णन किया है जो न तो व्यक्ति को किसी दिशा में पहुंचाती है और न ही रूकने देती है बल्कि इस भौतिकतावादी दौड़ में परिवार, समाज, राष्ट्र के मानवीय मूल्यों का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है। एक छोटे से परिवार के माध्यम से बाजार की रफ्तार से हमें अवगत कराया है, जहाँ संवेदना शून्य हो जाती है। इक्कीसवीं सदी नयी समस्याएँ लेकर आयी जैसे कि आज अभिजात्य वर्ग के बच्चों को लगता है कि उसका भविष्य बड़े शहरों में है। इसलिए वे उसी ओर भागते हैं बिना इसकी पहवाह किये कि उनके पीछे परिवार का क्या होगा। व्यक्ति बेहद अकेला महसूस कर रहा है। इस उपन्यास में आज की जिंदगी की वह दौड़ है जिसके साथ मनुष्य का संत्रास बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान युग, नए युग तथा नई युवा-पीढ़ी की भागती दौड़ती जिंदगी का युग है। आधुनिकता के नाम पर समाज में आ रहे चतुर्मुखी परिवर्तन का प्रभाव मानव संबंधों पर भी पड़ा है। 'दौड़' उपन्यास में नायक-नायिका विवाह के पवित्र बंधन का स्वीकार तो करते हैं लेकिन विवाह पश्चात् दोनों विवाह की मान्यताओं और बंधनों से परे ही रहते हैं। करियर के लिए पति के चैन्नई चले जाने पर वह अपने कम्प्यूटर विजनेश को छोड़कर पति के साथ नहीं जाती बल्कि अपने स्वतंत्र व्यवसाय को अकेले संभालती है। "स्टैला आज के आधुनिक समाज की नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह आधुनिक तकनीक की ज्ञाता, एक सफल व्यवस्थापिका होने के साथ ही साथ खुले विचारों वाली युवती है। वह भले ही खाना बनाना नहीं चाहती या नहीं जानती, लेकिन अपनी सास रेखा की कई कहानियों को कम्प्यूटर पर अंकित कर उसकी प्रशंसा की अधिकारिणी बन जाती है। उसमें परिवार का सम्मान तथा सेवा करने का भाव है, लेकिन वह पारंपारिक न होकर आधुनिक है।"[8] इस तरह 'स्टैला' नए जीवन मूल्यों का बोध कराती है। स्वतंत्र व्यक्तित्व व अपने ढंग की जिंदगी जीने में उसका पूर्ण विश्वास है, वह आधुनिक यथार्थ स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती स्वतंत्र एवं सक्षम महिला है।

'अंधोरे का ताला' उपन्यास में शिक्षा जगत में फैले भ्रष्टाचार में परिवर्तनशील समाज का परिदृश्य दिखाया है। शिक्षा जगत में फैली राजनीति को तार-तार करता यह उपन्यास वर्तमान समाज की गतिविधियों को दर्शाता है। उपन्यास में ममता जी ने अपने चिरपरिचित परिवेश-कॉलेज की अध्यापिकाओं, छात्राओं और कर्मचारियों के जीवन को चित्रित किया है। निराला जी की प्रसिद्ध कविता की पंक्तियाँ जल्द-जल्द पैर बढ़ाओं, आयो आयो। आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठशाला, धोबी, पासी चमार, तेली, खोलेंगे अंधोरे का ताला। एक पाठ पढ़ेगें। टाट बिछाओ। को सामने रखते हुए 'अँधोरे का ताला' खोलने वालों की असलियत को सुपरिचित व्यंग्य एवं बिनोद भरी शैली से उकेरा है। शिक्षा का क्षेत्र किस तरह उथल-पुथल का शिकार है। इसका एक दस्तावेज इस उपन्यास में है। अन्त में नन्दिता और उसकी प्रध्यापकों की हिम्मत को एक अदम्य साहस से भरा दिखाया गया है।

इस उपन्यास में आधुनिक नौकरी पेशा नारियों के संघर्षो को दर्शाया है। भ्रष्टाचार के बढ़ते सामाजिक संदर्भो में शिक्षा का क्षेत्र भी अधेरा नहीं रहा है। 'नन्दिता' का व्यक्तित्व अनुशासन प्रिय, कर्मनिष्ट एक सक्त अध्यापिका का है। प्रधान अध्यापिका के पद पर कार्यरत नन्दिता कॉलेज में अपनी गरिमा अपनी अस्मिता के लिए सतत् संघर्षरत है। पूरे कथ्य में नन्दिता कभी छात्राओं के लिए, कभी कॉलेज शौचालय के लिए, शिक्षिकाओं के लिए, फंड आदि के लिए स्वयं सतत् संघर्ष करती है, किन्तु उससे हताश न होकर साहस का परिचय देती है। इस उपन्यास के माध्यम से ऐसी आधुनिक नारी का चित्रण किया है, जो परिस्थिति एवं समस्याओं का डटकर सामना करती है। "नन्दिता धामकियों से डरने वाली चीज नहीं थी। उसे यह भी आभास था कि वह अपने ऑफिस की

सुरक्षित कुर्सी पर बैठी है। यहाँ से वह बड़े-बड़ों की छुट्टी अपनी एक भृकुटि से कर देती है।"[9] उपरोक्त परिस्थितियों के मध्य नारी-जीवन के विभिन्न संघर्षों की सूक्ष्म अनुभूतियों को प्रस्तुत किया है। अधिकांश नारी-पात्र आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपना व्यक्तित्व का विकास करती है।

'दुक्खम्-सुक्खम्' उपन्यास में तीन पीढ़ियों की नारियों की विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्षों का वृतांत है। विद्यावती, इन्दु, भग्गो, मनीषा, प्रतिभा आदि नारी पात्रों के माध्यम से पारिवारिक जीवन की विभिन्न अनुभूतियों को यथातथ्य प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में सबसे अधिक जुझारू और संघर्षशील पात्र विद्यावती है। नारी अपने अस्तित्व स्थापना हेतु सदा संघर्षरत रहती है। अपने इस प्रयास में वह जन्म, विवाह तथा मातृत्व जैसे सोपानों से गुजरकर कठोर परिश्रम के बाद ही उपलब्धि हासिल करने में सक्षम होती है। प्राय: उसका आधा जीवन इसी संघर्ष में बीत जाता है। नारी की अस्मिता तथा व्यक्तित्व को सहजता से स्वीकारना पुरुष सत्तात्मक समाज में आसान नही है। शिक्षा ग्रहण करने की कोई आयु नहीं होती।' विद्यावती सीमित शिक्षा के बावजूद कुशाग्र बुद्धि की स्त्री थी। पति का विरोध करके वो चरखा समिति की सदस्य बनकर स्वतंत्रता संग्राम में सहभागी बनती है। विद्यावती ने लीला और कुन्ती की किताबों से अपना बिसरा ज्ञान ताजा कर लिया। फिर तो उसे स्कूल की पढ़ाई में इतना रस मिलने लगा कि अपनी बेटियों से पहले विद्यावती पाठ याद कर लेती। सीमित शिक्षा के बावजूद उसमें सहज व्यवहारिक ज्ञान था कि स्त्री के लिए घर-परिवार एक तरह का आजीवन कारावास होता है, जिससे जीते जी छुटकारा संभव नहीं। संभवत: इसीलिए वह विपरीत परिस्थितियों में भी जीने का रास्ता निकाल लेती है। यह नारी शक्ति का द्योतक आरंभिक काल में नारी को पढ़ने-लिखने की स्वतंत्रता नहीं थी। अशिक्षित होने के वजह से उसे पुरुषों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। आज वह पढ़-लिखकर स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हुई है। नारी चेतना का प्रमुख आयाम स्त्री को मनुष्य के रूप में स्थापित कर उसे उसके अस्तित्व की पहचान कराना है। लेकिन जैसे ही उन्हें अन्य व्यक्ति द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त होता है तब उन्हें एक नई प्रेरणा प्राप्त होती है और वह नई दिशा की ओर प्रेरित होती है। "एक स्त्री को अपने व्यक्तित्व की पहचान बनाने के लिए यदि देखा जाए तो पुरुष से अधिक कठोर परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि उसकी आधी उपलब्धियाँ तो यह कहकर काट दी जाती है कि कुछ भी कर लें उसका परिचय फलाने की बेटी, फलाने की पत्नी, और फलाने की माँ कहकर ही दिया जाता है तब लोग उसके सामर्थ्य को गंभीरतापूर्वक लेते हैं कि जिन स्त्रियों का नाम हम उनके व्यक्तित्व के स्तर पर सुनते हैं, वह साठ पार की है।"[10] स्त्री की संवेदनाओं को युगों-युगों से रौंदा गया है। किन्तु अब समय है बदलाव का।

नारी शक्ति का ही द्योतक है कि पति द्वारा की गई गर्भ मिटाने की पुड़िया विद्यावती खाने के बजाय नाली की मोरी में फेंक देती है। पति के न चाहने पर भी विद्यावती बेटे को एम0ए0 करने के लिए शहर भेजने पर राजी करवा लेती है। मनीषा के स्कूल में जब उसके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार होता है तब वह भी उस स्थिति से निपटने के लिए संघर्ष करती है बिना किसी से डरे। मनीषा की बड़ी बहन प्रतिभा मॉडलिंग के क्षेत्र में जाने से मना करने पर, पूरे परिवार के साथ संघर्ष करती है। प्रतिभा अपने जुझारूपन और संघर्षशीलता के दम पर मॉडलिंग के क्षेत्र में अपनी एक प्रतिष्ठित जगह भी बना लेती है। "मैं लोगों की परवाह नहीं करती। .....क्या मैं मानूँ आपकी समस्त शिक्षा-दीक्षा गलत निकली।"[11] प्रतिभा जैसी नारी अपनी स्वतंत्रता, अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति पूर्णरूप से दृढ़ संकल्पित है। इस उपन्यास में सभी नारी पात्र, विद्यावती, मनीषा, प्रतिभा, इन्दु, लीला और भगवती अपने-अपने जीवन में बहुत संघर्ष करते हैं परन्तु हार नहीं मानते। ममता कालिया के कथा साहित्य में भी नारी पात्र जीवन में आने वाली समस्याओं के समक्ष घुटने नहीं टेकते बल्कि उनके विरूद्ध संघर्ष करते हैं। नारी चेतना की खोज में संघर्षरत नारी जीवन को व्यक्त किया है।

निष्कर्ष

ममता कालिया जी के कथा साहित्य में व्याप्त नारी चेतना का सूक्ष्म विश्लेषण व विवेचन किया गया है। साहित्य में मानवीय चेतना से युक्त नारी का चित्रण किया है। शिक्षा के माध्यम से आई चेतना से समाज में एक नई जागृति आई नारी का स्वयं को देखने और समाज का नारी को देखने के दृष्टिकोण में अंतर आया। उपन्यासों के अधिकांश नारी पात्र आर्थिक परवशता से मुक्त होकर अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहती है। संजीवनी, कविता व स्टैला इस क्षेत्र में सफल होना सशक्त चेतना में अपना समर्थन दिया है। पढ़-लिखकर नारी आर्थिक रूप से सक्षम बनकर पुरुष के अन्याय शोषण से बच सकती है। मानवीय चेतना की

अभिव्यक्ति नंदिता चक्रवर्ती के माध्यम से की है। नारी पात्र आर्थिक रूप से सक्षम व समर्थ है। उषा, जया, यशा, लल्ली आदि नारी पात्र के वैचारिक विकास के लिये तथा परिवार में अपनी सशक्त उपस्थिति के लिए आवश्यक है। विद्यावती स्वतंत्रता आंदोलनों से जुड़कर अपनी चेतना का विकास करती है, दुक्खम-सुक्खम् उपन्यास सबसे सशक्त उपन्यास है। ममता कालिया के उपन्यास में नारी चेतना की अभिव्यक्ति कहीं न कहीं मिल जाती है। ममता कालिया का आधुनिक हिन्दी कथाकारों में महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक समाज में नारी के जितने में भी रूप हैं, ममता कालिया की रचनाओं में उनकी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ सूची

1. दिनेश धर्मपाल, स्त्री, पृ. 20
2. ममता कालिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. फैमिदा बीजापुरे, पृ. 173
3. बेघर, ममता कालिया (भूमिका से), पृ. 8
4. 'नरक दर नरक' ममता कालिया
5. प्रेम कहानी, ममता कालिया
6. तीन लघु उपन्यास (लड़कियाँ), किताब घर प्रकाशन, पैपर बैंक सं. 2011, पृ. 79
7. तीन लघु उपन्यास (पत्नी के नोट्स) ममता कालिया, किताब घर प्रकाशन, पैपर बैंक संस्करण 2011, पृ. 23
8. दौड़, ममता कालिया
9. अँधोरे का ताला, ममता कालिया, पृ. 18
10. मेरे साक्षात्कार (मीनू रानी दूबे से बातचीत)– ममता कालिया, पृ. 37
11. दुक्खम्-सुक्खम्– ममता कालिया, पृ. 253

अलवर ज़िले में बागवानी कृषि की सम्भावनाएँ, चुनौतियाँ एवं उपलब्धियाँ

योगेश कुमार

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान) 302004

डॉ० विजय कुमार वर्मा

सह आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.) 301001

शोध पत्र सारांश

यह शोध पत्र अलवर ज़िले में बागवानी की संभावनाओं, चुनौतियों और उपलब्धियों का अध्ययन करता है। पौधे जीवन के लिए नितांत आवश्यक हैं। सांस लेने से लेकर खाने-पीने तक का कोई भी बुनियादी काम पौधों के बिना संभव नहीं होगा। पौधे न केवल खाद्य स्रोतों के रूप में कार्य करते हैं बल्कि ऑक्सीजन भी छोड़ते हैं और पानी की मेज को बनाए रखने में मदद करते हैं। इस मामले का साधारण तथ्य यह है कि हम पौधों के बिना जीवित नहीं रह सकते। जंगल में कई प्रकार के पौधे उगते हैं, लोग अपने घरों या यार्ड में कुछ पौधों, झाड़ियों और झाड़ियों की खेती करते हैं और बढ़ते हैं। इस गतिविधि को बागवानी के रूप में जाना जाता है। बागवानी कृषि वास्तव में कला और विज्ञान का अद्‌भुत मिश्रण है। जिसमें फल, सब्जियां, मसाले, फूल, औषधीय और सुगंधित फूलों की खेती की जाती है। बागवानी के क्षेत्र में न केवल परिवेश का सौंदर्यीकरण शामिल है, बल्कि पौधों का अध्ययन और उनका महत्व भी शामिल है। बागवानी कृषि में पौधों के फसल उत्पादन से लेकर मिट्‌टी की तैयारी, जलवायु, सिंचाई प्रणाली, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशकों का उपयोग, बाजार मूल्य और उत्पादन लागत शामिल हैं।

मुख्य शब्द : अलवर में बागवानी कृषि, अनार की कृषि, बागवानी का महत्व, अलवर में बागवानी संभावनाएँ और चुनौतियाँ एवं निष्कर्ष।

बागवानी कृषि

बागवानी एक ग्रीक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है "उद्यान की खेती"। इसमें कृषि के समान ग्रीक जड़ें हैं, लेकिन इसका अर्थ है "खेत की खेती"। जैसा कि उनकी जड़ों द्वारा देखा जा सकता है, शब्द अधिकतर पैमाने में भिन्न होते हैं। हालांकि, इतिहास ने उन्हें आगे अलग होने के लिए आकार दिया है। जबकि बागवानी कई प्रजातियों से संबंधित है और वे एक तंग स्थान पर कैसे कब्जा कर सकते हैं, ख़षि एक ही प्रजाति की बड़ी मात्रा में उत्पादन पर केंद्रित है। ख़षि भोजन और अन्य उत्पादों के लिए जानवरों के उत्पादन से भी संबंधित है, जो बागवानी नहीं है।

पौधों से संबंधित एक और विज्ञान ख़षि विज्ञान और ख़षि भूगोल है। भूगोलवेत्ता ख़षि पर ध्यान केंद्रित करते हैं, अद्वितीय शारीरिक रचना जो उन्हें बनाती है, और रासायनिक प्रक्रियाएं जो उनके जीवन को चलाती हैं। बागवानी इस बात से अधिक चिंतित है कि ये पौधे कैसे रहते हैं और प्रजनन करते हैं, और इसका मतलब यह है कि पौधों का उपयोग एक बगीचे में पौधों को पोषण, फसल और रखरखाव के लिए किया जा सकता है। यह पौधों को आकर्षक बनाने और आगंतुकों को आकर्षित करने से भी संबंधित है। जबकि अंतर मनमाने ढंग से लग सकते हैं, ये विशेषताएं अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में काम करती हैं। ख़षिविज्ञानी और

भूगोलवेत्ता बड़े पैमाने पर फसलों के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि बागवानी वैज्ञानिक कई किस्मों पर ध्यान केंद्रित करते हैं और उन्हें तार्किक और सौंदर्य दोनों रूप से जोड़ा जा सकता है। बागवानी नई किस्मों और बागवानी के तरीकों के साथ मानवता प्रदान करती है, जिसे बाद में बड़े पैमाने पर लागू किया जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र

भौगोलिक स्थिति : जिला अलवर राजस्थान के उत्तर पूर्व म लें 27°4" से 28 4" उत्तरी अक्षांश तथा 67°4" से 77°13" पूर्वी देशान्तर के मध्य अरावली पर्वत श्रृखलाओं में स्थित है। आकार में अच्छा खासा चतुर्भुजाकार है। जिले की सीमायें पूर्व में भरतपुर पश्चिम में जयपुर दक्षिण में जयपुर, दौसा, जिला तथा उत्तर में हरियाणा राज्य से घिरी हुई है।

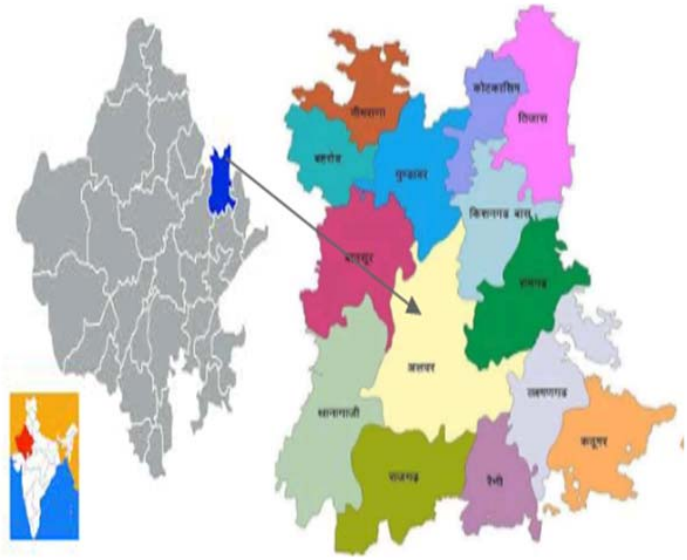

क्षेत्रफल व भौतिक स्वरूप

जनगणना 2011 के अनुसार जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8380 वर्ग कि.मी. है जो राजस्थान के भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.45 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की ख़ष्टि से जिले की आख़ति लगभग चौकोर है जो जिले के दक्षिणी पश्चिमी भागों में मुख्य अरावली श्रेणियों की निरन्तरता बनाये रखते हुए घाटियों के ऊँचें पठारों के रूप में विद्यमान है। जिले के मध्य भाग में उत्तर से दक्षिण की ओर अरावली पहाड़ियों की ऊँचाई 456 मीटर से 700 मीटर है। जिले का यह भू-भाग जंगलों से परिपूर्ण है। जिले का पश्चिमी भाग रेतीला है जबकि मध्य भाग में पर्वतीय तथा पठारी भू-भाग है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य इस प्रकार हैं।

1. अलवर में बागवानी कृषि के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।
2. अलवर में बागवानी कृषि के महत्व एवं उपलब्धियों का अध्ययन किया गया है।
3. अलवर में बागवानी की संभावनाएँ और चुनौतियाँ का अध्ययन किया गया है।

परिकल्पना :

1. अध्ययन क्षेत्र अलवर ज़िले में बागवानी कृषि के विकास में निरन्तर वृद्धि हो रही है।
2. अलवर ज़िले में बागवानी ख़षि के प्रबंधन हेतु प्रयास किए जा रहे हैं।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आकड़ो का प्रयोग किया गया है। आकड़ो के संकलन, प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, व्यक्तिगत संपर्क एवं डायरी, पत्र पत्रिकाओं,समाचार पत्र एवं विभिन्न वेबसाइट एवं पुस्तकों के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन की प्रकृति वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति है।

अलवर में बागवानी कृषि

अलवर जिले में, गेहूं, सरसों और प्याज की फसलें यहां की अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभा रही हैं। नई तकनीक से खेती करने के लिए जिले के युवा भी आगे आ रहे हैं। अब किसानों को प्याज के दाम कम होने की चिंता नहीं होगी, इसलिए फसल कभी खराब नहीं होगी। जिले में हजारों किसान बागवानी को अपना रहे हैं। बागवानी के सहायक निदेशक का कहना है कि राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत फलदार बागों और सब्जियों की उन्नत किस्मों की खेती की जा रही है। दिल्ली समेत कई महानगरों में इसकी भारी मांग है। फलों में आंवला, अमरूद, नींबू, चूना, बेल मिर्च और पपीता शामिल हैं। इसी तरह अलवर में कई तरह की सब्जियां उगाई जा रही हैं। किसानों में सौर ऊर्जा के साथ पंप स्थापित करने की प्रवृत्ति रही है। अलवर जिले की बानसूर तहसील के 36 गांवों के क्लस्टर में सभी योजनाएं 75 प्रतिशत अनुदान पर संचालित की जा रही हैं। जिले के अधिकांश किसानों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। कृषि के क्षेत्र में लंबे समय से विशेष शोध नहीं किया गया है, जिसके कारण खेती के व्यवसाय के क्षेत्र में विशेष बदलाव नहीं हुआ है। अलवर जिले में सहगल फाउंडेशन और मोज़ेक इंडिया फाउंडेशन की ओर से अलवर जिले में किसानों के लिए बागवानी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिसके तहत, बाजार की मांग आधारित फसलों जैसे फलों और सब्जियों की खेती आदि के चयन के माध्यम से, किसानों को अच्छे लाभ मिल सकते हैं और उन्होंने किसानों के साथ फलों की फसलों को विकसित करने का प्रयास किया है। ने रामगढ़ और बंसूर ब्लॉकों के 35 किसानों के साथ फालोदान को विकसित किया है। कार्यक्रम से जुड़ी अनुराधा दुबे ने कहा कि उन्नत तरीके से बागवानी की जा रही है। इसमें कई तरीके अपनाए जा रहे हैं। इससे किसानों की आर्थिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव आया है।

अनार कृषि

अब, अलवर में भी नासिक जैसे लाल मीठे अनार पैदा होंगे। इसके लिए, बागवानी विभाग ने राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत जिले के 5 ब्लॉक के 14 गांवों में अनार के बगीचे स्थापित किए हैं। इन बागों में लगे अनार के पौधों में फूल लगने लगे हैं। अलवर अनार की फसल अगले 3-4 महीनों में सितंबर तक बाजार में आ जाएगी। नासिक, महाराष्ट्र के अनार देश भर में प्रसिद्ध हैं। अलवर में केसर-सिंदूरी किस्म के अनार का उत्पादन किया जाएगा। अगर अनार की पैदावार अच्छी होती है, तो किसानों की किस्मत बदल जाएगी। बागवानी विभाग ने लगभग 80 बीघा जमीन में टिशू कल्चर तकनीक से तैयार अनार के बाग स्थापित किए हैं। टिशू तकनीक से तैयार अनार के पौधे लगभग डेढ़ साल में फल देने लगते हैं जबकि कलमी तकनीक से तैयार अनार का पौधा 3 साल में फल लाता है। टिशू कल्चर से प्रयोगशाला में पौधे तैयार किए जाते हैं। बागवानी विभाग ने वर्ष 2015-16 में जिले के लगभग 25 किसानों को अनुदान पर ड्रिप इरिगेशन अनार टिशू कल्चर बागों की स्थापना की है।

उत्पादन क्षेत्र

बागवानी अधिकारी ने बताया कि कठूमर ब्लॉक के गांव सौंख भदीरा, तिजारा के लुहादेरा खिदरपुर, किशनगढ़बास के सेवखेड़ा घासोली, कोटकासिम के माधा का माजरा तथा बानसूर ब्लॉक के गांव कोथल, खोहरी, चतरपुरा, दौलतसिंह की ढाणी, मोठूका, नीमूचाना बासना में अनार के बगीचे लगाए गए हैं। इन बगीचों के अनार सितंबर में बाजार में आते हैं।

अहमदाबाद से अनार के पौधे मंगवाए गए

मार्च 2015 में, बागवानी ने मेसर्स कैडिला फार्म (एग्रो), अहमदाबाद, गुजरात की प्रयोगशाला से लगभग 17 हजार 500 अनार के पौधे खरीदे थे। प्रत्येक पौधे की कीमत 40 रुपये है। उसके बाद इन पौधों को बगीचों में लगाया गया। राज्य के जैसलमेर, जालोर, जोधपुर अजमेर में ऊतक संवर्धन से अनार के बाग लगाए गए हैं। इन स्थानों पर अच्छे परिणाम भी सामने आए हैं और जल्द ही यहां अनार का उत्पादन शुरू हो जाएगा। अलवर में, अनार को बाहर से बुलाया जाता है। अलवर में उत्पादित अनार की खपत जिले में ही होने की उम्मीद है।

एक हेक्टेयर भूमि में पौधे

एक हेक्टेयर भूमि में लगभग 400 अनार के पौधे लगाए जा सकते हैं, जबकि ऊतक संवर्धन अनार के पौधे एक हेक्टेयर भूमि में 833 पौधे लगाए जा सकते हैं। कलमी पौधों की तुलना में टिशू कल्चर अनार का उत्पादन भी अधिक उपेक्षित है। इन अनार की बागवानी किसानों के लिए फायदेमंद साबित हो रही है।

बागवानी का महत्व

जंगल में कई प्रकार के पौधे उगते हैं, लोग अपने घरों या यार्ड में कुछ पौधों, झाड़ियों और झाड़ियों की खेती करते हैं और बढ़ते हैं। इस गतिविधि को बागवानी के रूप में जाना जाता है। हालांकि यह कुछ के लिए एक शौक के रूप में प्रकट हो सकता है, तथ्य यह है कि बागवानी वास्तव में काफी फायदेमंद है और इसलिए, हमारे लिए महत्वपूर्ण है।

बागवानी एक काफी शारीरिक गतिविधि है। इसमें निराई - निराई, पौधों को पानी देना, घास काटना, घास काटना और कटाई शामिल है - इन सभी में माली से श्रम की आवश्यकता होती है। इसलिए, यह आपके व्यायाम दिनचर्या का एक उत्ख्रष्ट जोड़ बन जाता है।

बागवानी भी एक बहुत ही व्यावहारिक गतिविधि है। यह आपको अपनी सब्जियां और फल विकसित करने की अनुमति देता है और यह सुनिश्चित करता है कि आपके पास मेज पर एक स्वस्थ भोजन है। जब आप अपने बगीचे से सब्जियां काटते हैं, तो आप जानते हैं कि आपको सबसे ताज़ी उपज मिल रही है।

सौंदर्यशास्त्र के लिए बागवानी सौंदर्य की मानवीय आवश्यकता की अपील करती है। सजावटी बागवानी हमारे पक्ष में है जो सुंदरता को भाता है। इसके अलावा, फूल अधिकांश अवसरों जैसे जन्म, वर्षगांठ, शादी, जन्मदिन और अंतिम संस्कार का हिस्सा होते हैं।

बागवानी भी समस्या को सुलझाने के कौशल को तेज करने में मदद करती है। अपने बगीचे को विकसित करने के लिए सर्वोत्तम तरीकों पर शोध करना, विभिन्न तकनीकों के साथ प्रयोग करना और सिंचाई प्रणाली को डिजाइन करना जो आपके लिए काम करते हैं, रचनात्मकता, समस्या सुलझाने और योजना बनाने में आपके कौशल को बेहतर बनाने में मदद करते हैं।

अलवर ज़िले की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बागवानी फसलों का बहुत महत्व है। 1950 के बाद से, बागवानी फसलों का उत्पादन लगभग 10 गुना बढ़ गया है। देश के उत्तर-पूर्वी राज्यों के लिए बागवानी फसलें आय का मुख्य स्रोत बन गई हैं। बागवानी के विकास के लिए, सरकार ने विभिन्न योजनाओं का विलय किया है और उन्हें "एकीकृत बागवानी विकास मिशन" के रूप में व्यवस्थित किया है।

अलवर में बागवानी संभावनाएँ और चुनौतियाँ

अलवर में, लगभग 25-30 प्रतिशत फल और सब्जियां कटाई के बाद बेकार हो जाती हैं, जिसके कारण उन्हें उचित बाजार मूल्य नहीं मिल पाता है। इस क्षति को रोकने के लिए उचित भंडारण की सुविधा, विशेष रूप से कोल्ड स्टोरेज का होना आवश्यक है। भारत दुनिया में फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। फसल कटाई के बाद और खाद्य प्रसंस्करण सुविधाओं की कमी के कारण भारत को इनका आयात करना पड़ता है।

प्रसंस्करण सुविधाओं के विस्तार से प्रसंस्ख्रत फलों और सब्जियों के आयात को कम किया जा सकता है। केवल बागवानी फसलों की प्रसंस्करण इकाइयों की संख्या उनके उत्पादन की तुलना में बहुत कम है। उनकी संख्या बढ़ाने के लिए भी प्रयास किए जाने चाहिए। बागवानी फसलें जैसे नीबू, माल्टा, संतरा, अमरूद आदि का उत्पादन पहाड़ी क्षेत्रों में किया जाता है, विशेषकर सरिस्का के दूरदराज के इलाकों में, लेकिन सड़क और बाजार के साथ उचित कनेक्टिविटी नहीं होने के कारण किसानों को सही कीमत नहीं मिल पाती है। पौष्टिक बागवानी फसलों के विकास और खपत को बढ़ावा देना हमारे देश को पोषण सुरक्षा की ओर ले जा सकता है। बागवानी खेती को अधिक लाभदायक बनाने के लिए, किसानों को पारंपरिक खेती के बजाय गहन बागवानी को अपनाना चाहिए।

निष्कर्ष

बागवानी फसलें पर्यावरण को स्वच्छ रखने में मदद करती हैं। इन फसलों के क्षेत्र में वृद्धि करके, वायुमंडल में ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड जैसी गैसों का संतुलन बनाए रखा जाता है। सजावटी पौधों और फलों के पेड़ शहर और गांव के अलावा गैर-कृषि क्षेत्रों में लगाए जा सकते हैं। उनका रोपण अन्य जानवरों और पक्षियों का भी समर्थन करता है और अंततः जैव विविधता को बढ़ावा देता है। देश के कई क्षेत्रों में, मिट्टी और मिट्टी का कटाव जारी है।

मिट्टी के कटाव से बचाने के लिए इन क्षेत्रों में बागवानी फसलें उगाई जा सकती हैं। फल और सजावटी पेड़ों की जड़ें दूर तक फैली हुई हैं, जो मिट्टी को रखती है। इसलिए, बागवानी फसलें मृदा संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अब कई सब्जियों के उत्पादन में जैविक कृषि का उपयोग किया जा रहा है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के बिना उगाई जाने वाली फसलें मनुष्य और पर्यावरण दोनों के स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद हैं। अगले 5 वर्षों में किसानों की आय दोगुनी करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में बागवानी ख्रषि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ेगी, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे। समन्वित प्रयासों से बागवानी क्षेत्र में भारत का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. ए .के. सिंह, उप महानिदेशक, बागवानी प्रभाग, ख्रषि अनुसंधान भवन - II, नई दिल्ली।
2. दत्त, ज्ञानेंद्र और सूर्यमणि मिश्रा (1986): लैंड यूज मैपिंग, नेशनल एटलस एंड थीमैटिक मैनिंग ऑर्गनाइजेशन, कलकत्ता।
3. कमलेश, एस. आर. (1996): कृषि भूगोल, बिलासपुर संभाग में कृषि विकास का स्तर, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. कोली हरिनारायण (1996): पर्यावरण और मानव संसाधन, सूचक प्रकाशक, जयपुर (राज)।
5. कुमार, प्रमिला और श्री कमल शर्मा (1985): कृषि भूगोल, एम.पी. हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

6. कुंडू, अनिल कुमार और सूर्यमणि मिश्रा (1988): लैंड यूज असेसमेंट एंड मैपिंग, नेशनल एटलस एंड थमैटिक मैनिंग ऑर्गनाइजेशन, कलकत्ता।
7. पांडे जेएन और एसआर कमलेश (1999): कृषि भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.)।
8. पांडे, जगत नारायण (1969): पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तर भारत भूगोल जर्नल, गोरखपुर का संयोजन क्षेत्र।
9. शर्मा बीएल (1979): क्रॉपिंग लैंड यूज़ इंटेंसिटी एंड प्रोडक्टिविटी इन राजस्थान, भूदर्शन।
10. शर्मा सुरेश चंद्र (1971): ज़िला इटावा, उत्तर भारत भूगोल जर्नल में भूमि उपयोग।

किशोरियों में प्रजनन स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान एवं यौन सम्बन्धी मिथकों का अध्ययन

अर्पणा सिन्हा

शोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

सारांश

आज के तेजी से बदलते समाज में किशोरियों में प्रजनन स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान का होना अत्यंत आवश्यक है तथा साथ ही हमारे समाज में व्याप्त यौन सम्बन्धी मिथकों को भी दूर किया जाना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन में किशोरियों में प्रजनन स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान एवं उनके बीच व्याप्त यौन सम्बन्धी मिथकों को दर्शाया गया है। अध्ययन के लिए नोट्रेडेम अकादमी, पटना, बिहार की कक्षा 9 एवं 10 की 50 किशोरियों को आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया गया है। आज हमारे समाज के बदलते स्वरुप में किशोरों के लिए ये जानकारियाँ अत्यंत आवश्यक हैं।

शब्द कुंजी: किशोरावस्था, यौन विषय, प्रजनन स्वास्थ्य, भ्रांतियाँ

प्रस्तावना

जीवित प्राणियों का अपनी ही जाति के जीवों को उत्पन्न करना अथवा जन्म देना अगली पीढ़ी के सृजन का आधार है। प्रजनन स्वास्थ्य को अंग्रेजी में Reproductive Health कहा जाता है। प्रजनन स्वास्थ्य की परिभाषा बीमारी की अनुपस्थिति एवं प्रजनन प्रणाली से सम्बन्धित किसी हानि या चोट की अनुपस्थिति के साथ सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य के रूप में की गयी है। अपने समान जीवों को उत्पन्न करने की क्षमता को ही प्रजनन कहते हैं। प्रजनन एवं यौन स्वास्थ्य पुरुषों एवं महिलाओं दोनों के जीवन की गुणवत्ता एवं समग्र स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके बिना स्वस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौन सम्बन्धी विषय के बारे में समाज अनेक भ्रांतियाँ फैली हुई हैं और लोगों में इसका ज्ञान अत्यल्प है। माता-पिता, अभिभावक एवं यहाँ तक कि शिक्षक भी शायद ही लैंगिकता का वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध करा पाते हैं। विभिन्न सर्वेक्षणों के अनुसार शहरी क्षेत्रों में रहने वाले शिक्षित युवाओं में से मात्रा 16.30% युवा ही ऐसे हैं जिन्हें अपने शिक्षकों अथवा माता-पिता से यौन शिक्षा मिलती है। जिन युवाओं को यौन शिक्षा नहीं मिलती है, प्राय: उनमें यौन सम्बन्धी कई प्रकार की भ्रांतियाँ पायी जाती हैं। प्राय: बच्चे अपने माता-पिता से तथा माता-पिता अपने बच्चों से यौन सम्बन्धी विषयों पर बातचीत करने में असहज महसूस करते हैं। इसका मुख्य कारण होता है–हमारा समाज, जो कि इन सभी बातों के बारे में बात करना अच्छा नहीं मानता है तथा इस विषय पर बात करना हमारे समाज में अच्छे चरित्र की निशानी नहीं मानी जाती है। अधिकांश युवाओं में यौन विषयों से सम्बंधित वैज्ञानिक जानकारियों का अभाव होता है फलत: इन विषयों पर अत्यंत गुप्त रूप से ज्ञान प्राप्त करते हैं, इस वजह से इसके विषय में अनेक भ्रांतियों एवं मिथकों का प्रचार-प्रसार होता है। फलत: इसके विषय में वे दिग्भ्रमित हो जाते हैं।

भारत में किशोरावस्था 10-19 वर्ष की अवस्था मानी जाती है। मानव जीवन के क्रमिक विकास की अवस्थाओं में यह एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण अवस्था मानी जाती है। यह गौण यौन लक्षणों एवं प्रजनन परिपक्वता द्वारा परिवर्तन एवं विकास की अवस्था है। किशोरावस्था सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक तथा भावनात्मक सापेक्ष स्वतंत्रता का समय है। यह बाल्यावस्था से किशोरावस्था में

परिवर्तन का समय होता है जिसमें बहुत तीव्रता से शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में किशोर यौन, मानसिक तथा व्यावहारिक रूप से परिपक्व होने लगते हैं। किशोरावस्था के दौरान हारमोन परिवर्तन के कारण यौवनकाल की शुरुआत होती है, शारीरिक वृद्धि तेजी से होती है तथा द्वितीयक यौन लक्षण प्रकट होते हैं। इसके साथ ही भावनात्मक एवं मानसिक परिवर्तन जैसे–किसी प्रकार की रोक टोक पसंद न करना, अपनी पहचान बनाना, यौन ईच्छा तथा विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है।इस अवस्था में किशोर अपने परिवार के अतिरिक्त बाहरी लोगों के संपर्क में आने लगते हैं। वे अपने माता–पिता से दूरी बनाना पसंद करने लगते हैं तथा दोस्तों के बीच अपनी विशेष पहचान बनाने के लिए अपना सामाजिक दायरा बढ़ाने लगते हैं। यदि इस स्थिति में इन किशोरों को उचित मार्गदर्शन प्रदान नहीं किया जाये तो वे कुछ ऐसे निर्णय ले सकते हैं जो उनके लिए बेहद हानिकारक हो सकते हैं। आज तेजी से बदल रहे हमारे समाज एवं पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव ने शहरी तथा अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों में मीडिया ने सामाजिक ताने–बाने को पूरी तरह से तितर–बितर कर दिया है। इन बदलावों का असर ग्रामीण क्षेत्रों में भी देखने को मिल रहा है। हार्मोनल प्रभाव एवं समाज में हो रहे परिवर्तनों की वजह से यौन प्रणाली एवं लैंगिकता किशोरावस्था के प्रमुख अंग बन गए हैं।

आज के युवा विभिन्न लैंगिकता एवं यौन विषयों सम्बन्धी भ्रांतियों के शिकार हैं। आज मीडिया भी यौन सम्बन्धी सही जानकारी देने की बजाय झूठी एवं भ्रामक उत्तेजक सूचनाएं तथा साहित्य को परोसता है जिससे किशोर विशेषकर लड़कियों में प्रजनन स्वास्थ्य, गर्भावस्था, मासिक धर्म, शारीरिक संपर्क बनाने, लैंगिकता तथा यौन सम्बन्धी रोगों के विषय में जानकारी बहुत कम होती है जिसके कारण उन्हें कई भ्रांतियां हो जाती हैं। किशोरावस्था में हार्मोन्स में परिवर्तन के कारण एक तो किशोर ऐसे ही विभिन्न समस्याओं से घिरे रहते हैं साथ ही पश्चिमी सभ्यता के असर ने भी आज किशोरों को दिग्भ्रमित किया हुआ है। आज समाज में अधिक खुलापन आने से किशोरों में होने वाले विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण में पड़कर किशोर अपनी सारी हदें भी पार कर जाते हैं। वे इस बात से बिलकुल अनजान होते हैं कि इन सभी कार्यों का उनके अपने स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ेगा क्योंकि वे प्रजनन स्वास्थ्य से ही अनजान होती हैं। किशोरावस्था में अपनाये गए यौन व्यवहार एवं स्वास्थ्य का आगे की अवस्थाओं में व्यक्ति के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। स्वास्थ्य को बनाये रखने में अनेक शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ प्रजनन स्वास्थ्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। किशोरावस्था में शारीरिक परिपक्वता के कारण उनके यौन अंगों का विकास तो पूरा हो जाता है परन्तु उनमें मनोवैज्ञानिक परिपक्वता की कमी के कारण विभिन्न यौन सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस अवस्था में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण के कारण काम भावना अत्यंत तीव्र हो जाती है तथा किशोर कई बार सारी हदें पार कर जाते हैं। इस अवस्था में किशोरियों के गर्भवती हो जाने से किशोर बालक उनका उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर नहीं ले पाते हैं। फलत: समस्या इतनी गंभीर हो जाती है कि कई बार किशोरियों को आत्महत्या का ही रास्ता नजर आता है एवं अगर वे किसी तरह से इस समस्या का समाधान भी कर लेती हैं तो वे समाज की नजरों में इतना ज्यादा गिर जाती हैं कि उनका सामाजिक, मानसिक विकास असंभव सा हो जाता है। इन सभी समस्याओं से बचने हेतु किशोरों को यौन सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। किशोरावस्था में किशोरों को प्रजनन स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यक जानकारी से अवगत कराना चाहिए ताकि किशोरावस्था में होने वाली भूलों से बचाव हो सके तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अच्छी आदतों को अपनाया जा सके। परन्तु यह सब तभी संभव है जब किशोरों को इन सभी बातों की पूर्ण जानकारी हो।

अध्ययन के उद्देश्य

1. किशोरियों में प्रजनन स्वास्थ्य के लिए उपलब्ध ज्ञान की जानकारी हासिल करना,
2. यौन से सम्बंधित मिथकों एवं गलत धारणाओं का पता लगाना,
3. किशोरियों के यौन सम्बन्धी जानकारियों के स्रोत का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध के लिए नॉट्रेडेम अकादमी, पटना, बिहार की कक्षा 9वीं एवं 10वीं की छात्राओं का आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया गया है।

तालिका–1 किशोरियों में वय:संधि की जानकारी (N ¾ 50)

जवाब	कुल संख्या	प्रतिशत
हाँ	10	20
थोड़ा-थोड़ा	20	40
नहीं पता	20	40
कुल योग	50	100

वय:संधि को overlapping period भी कहा जाता है क्योंकि इसका कुछ भाग बाल्यावस्था तथा कुछ भाग किशोरावस्था में पड़ता है। 20% उत्तरदाताओं को इसकी जानकारी थी जबकि 40% उत्तरदाताओं को इसके बारे में थोड़ी जानकारी थी अथवा उन्होंने इसके बारे में सुन रखा था परन्तु 40% उत्तरदाताओं को इसकी कोई जानकारी नहीं थी।

तालिका 2– उत्तरदाताओं में किशोरवय गर्भावस्था के बारे में विचार (N ¾ 50)

जवाब	कुल संख्या	प्रतिशत
शारीरिक प्रभाव	20	40
मानसिक प्रभाव	12	24
नहीं पता	18	36
कुल योग	50	100

तालिका– 2 के अनुसार 40% उत्तरदाताओं का विचार था कि किशोरवय गर्भावस्था का शारीरिक रूप से प्रभाव पड़ता है, 24% उत्तरदाताओं ने यह माना कि किशोरवय गर्भावस्था का मानसिक रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, वहीं 36% छात्राओं को इस विषय में कुछ पता ही नहीं था। जबकि सच्चाई यह है कि इस उम्र की छात्राओं को इन सब बातों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए थी।

तालिका 3– यौन सम्बन्धी विषय पर बातचीत करने से सामाजिक छवि पर प्रभाव (N ¾ 50)

जवाब	कुल संख्या	प्रतिशत
हाँ	22	44
थोड़ा-थोड़ा	16	32
नहीं	12	24
कुल योग	50	100

तालिका 3 के अनुसार 44% किशोरियों का विचार था कि यौन सम्बन्धी बातचीत खुलेआम करने से सामाजिक छवि खराब होती है वहीं 32% किशोरियों ने माना कि वे अपने हमउम्र भाई-बहनों एवं दोस्तों के बीच बातें करती हैं परन्तु बड़ों से ये सब बातें नहीं कर पाती, उनके विचार में इन सभी बातों का जिक्र करने से थोड़ा-थोड़ा सामाजिक छवि पर प्रभाव पड़ता है एवं 24% किशोरियों ने माना की इस विषय पर बातचीत करने से सामाजिक छवि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

तालिका– 4 उत्तरदाताओं में यौन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के स्रोत (N ¾ 50)

	जानकारी के स्रोत	उत्तर (% में)
1.	मानवीय स्रोत	
	दोस्त	30
	स्कूल	12
	घर के सदस्य (परिवार)	20
	डॉक्टर	6
2.	अमानवीय स्रोत	
	टीववीव	36
	इंटरनेट	68
	सिनेमा	35
	अखबार	16
	पत्रिकाएं	22

तालिका– 4 के अनुसार उत्तरदाताओं को जितनी भी यौन सम्बन्धी जानकारियाँ हासिल थीं वो उन्हें विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हो रही थीं।

तालिका– 5 उत्तरदाताओं में मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याएं (N ¾ 50)

प्रभाव उत्तर (% में)	
पेट दर्द	70
डर	64
अत्यधिक रक्तस्राव	36
कमजोरी	18

किशोरावस्था में किशोरियों में मासिक धर्म का शुरू होना भी एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मासिक धर्म से सम्बन्धी भी विभिन्न समस्याएँ किशोरियों के सामने आती हैं परन्तु झिझक एवं शर्म के कारण वो खुलकर इस पर बात नहीं कर पाती हैं एवं चुपचाप सहन करती रहती हैं। जबकि परिवार के सदस्यों एवं डॉक्टर के परामर्श द्वारा इस समस्या का समाधान संभव है।

तालिका 6– प्रजनन स्वास्थ्य के बारे में जानकारी (N ¾ 50)

1.	कम उम्र में गर्भाधान के प्रभाव की जानकारी	उत्तर (% में)
	हाँ	42
	नहीं	58
2.	संक्रामक यौन रोगों की जानकारी	
	हाँ	34
	नहीं	66

3.	स्कूल में यौन शिक्षा दी जानी चाहिए या नहीं	
	हाँ	96
	नहीं	04
4.	विभिन्न भ्रांतियों को सच मानती हैं या नहीं	
	हाँ	26
	नहीं	74
5.	HIV @AIDS की जानकारी	
	हाँ	68
	नहीं	32
6.	कम उम्र में यौन सम्बन्ध बनाना सही है या नहीं	
	बचाव के साथ हाँ	64
	डॉक्टर की सलाह के साथ हाँ	16
	पता नहीं	20

परिणाम एवं निष्कर्ष

किशोरावस्था जीवन की एक महत्वपूर्ण अवधि है। इस अवधि में होने वाले विभिन्न विकास का प्रभाव मनुष्य के शेष सभी विकास की अवस्थाओं को भी प्रभावित करता है। आज हमारा समाज बदलाव के दौर से गुजर रहा है। पश्चिमी सभ्यता को अपनाकर आज हमारे सामाजिक मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। समाज में खुलापन आने के कारण किशोर विपरीत लिंग के किशोरों से दोस्ती कर लेते हैं जिसे कि आज हमारा बदलता समाज भी स्वीकार करता है परन्तु किशोरावस्था में हार्मोन में परिवर्तन होने के कारण काम भावना की अधिकता पाई जाती है एवं विपरीत लिंग के किशोरों में घनिष्ठता होने से बहुत सारी सीमाएँ पार करने की भी संभावना होती है। इस स्थिति में किशोरों को प्रजनन स्वास्थ्य, विभिन्न यौन रोग, संक्रामक रोग, यौन सम्बन्धों का शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव, जल्दी गर्भाधान, परिवार नियोजन के तरीके, कम उम्र में माँ बनने की हानियाँ इत्यादि का सम्पूर्ण ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। परन्तु एक ओर जहाँ समाज में खुलापन आ रहा है वहीं दूसरी ओर इन विषयों पर किशोरों का खुलकर बात करना समाज में गलत माना जाता है। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में किशोरों के पास प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौन विषयों सम्बन्धी ज्ञान अधूरा ही रह जाता है जिसका खामियाजा उन्हें खराब स्वास्थ्य के रूप में भुगतना पड़ता है। साथ ही आधे-अधूरे ज्ञान के कारण प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौन सम्बन्धी भ्रांतियों की बहुलता पायी जाती है।

अध्ययन के दौरान किशोरों के उत्तरों से कुछ यौन सम्बन्धी मिथक प्राप्त हुए जो निम्नलिखित हैं :

1. यौन संबंधों के बारे में खुलकर बात नहीं की जाती है।
2. कम उम्र की लड़की से यदि यौन सम्बन्ध बनाया जाये तो। IDS की बीमारी ठीक हो जाती है।
3. कम उम्र की लड़की से यौन सम्बन्ध बनाने से लड़का पैदा होता है।
4. मासिक धर्म के दौरान महिलाएँ अपवित्रा होती हैं।

इन सभी भ्रांतियों के कोई मायने नहीं हैं इसलिए समाज में एक व्यापक सुधार की जरुरत है। जब तक समाज में प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौन सम्बन्धी सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं होगा तो किशोरियों में विभिन्न मिथकों की उपस्थिति बनी रहेगी। इस अध्ययन में हमने पाया कि किशोरियों में प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौन विषयों पर सम्पूर्ण जानकारी नहीं थी जबकि आज के बदलते परिवेश में ये जानकारी किशोरियों के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौनशिक्षा को स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल करने से किशोरियों के ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है।

सुझाव

1. विद्यालयों एवं कॉलेजों में यौन शिक्षा को बढ़ावा देकर युवाओं को सही जानकारी उपलब्ध कराना चाहिए। साथ ही बच्चों को यौन सम्बन्धी भ्रांतियों के प्रति जागरूक करना चाहिए जिससे उन्हें यौन सम्बन्धी गलत धारणाओं से छुटकारा मिल सके।
2. किशोरों को जनन अंगों, किशोरावस्था एवं उससे सम्बंधित परिवर्तनों, यौन संचारित रोगों, एड्स आदि के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए। किशोरों को ये जानकारियाँ स्वस्थ प्रजनन सम्बन्धी जीवन बिताने में सहायक सिद्ध होती हैं।

किशोर वर्ग हमारे समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। किशोरों को यौन सम्बन्धी जानकारी बहुत सारे स्रोतों से मिल जाती है परन्तु गलत स्रोतों से प्राप्त जानकारियों के परिणाम अनर्थकारी होते हैं। सही शिक्षा देने से किशोर एक स्वस्थ जीवन बिता सकते हैं। एक ऐसी शिक्षा पाठ्यक्रम का अंग होनी चाहिए जिसमें समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, गृहविज्ञान आदि जैसे महत्वपूर्ण विषयों में यौन शिक्षा को शामिल किया जाए जिससे सकारात्मक परिणाम प्राप्त होंगे एवं किशोर अपराध रोकने में सहायता मिलेगी।

सन्दर्भ सूची

सिंह, बृंदा, मातृकला एवं शिशु कल्याण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
अग्रवाल, नीता एवं निगम, वीणा, मातृकला एवं बाल विकास
कुमार, प्रमोद, जुलाई 1995, द इंडियन जर्नल ऑफ सोशल वर्क
डव्ल्यू एच् ओ रिपोर्ट, द हेल्थ ऑफ यंग पीपल
पाठक, के.बी. एवं राम, एफ.,अडोलेसेन्स मदरहुड प्रॉब्लम्स एंड कोंसेकुएंसेस
द जर्नल ऑफ फॅमिली वेलफेयर, वॉल्यूम 39, No.-1

सोनारगढ़ (जैसलमेर) दुर्ग का स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था का विश्लेषणात्मक अध्ययन

चोथूराम

रिसर्च स्कोलर, इतिहास विभाग
म.द.स. विश्वविद्यालय, अजमेर

सारांश

राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर अवस्थित जैसलमेर नगर में सोनारगढ़ दुर्ग एक त्रिकूटगढ़ पहाड़ी पर अवस्थित है, यह मरूस्थलीय दुर्ग होने के साथ पीले पत्थरों से निर्मित है। जब सूर्योदय के समय किरणें इस दुर्ग पर पड़ती हैं तो वह स्वर्णसा चमकता हुआ नजर आता है, इस कारण इसे स्वर्ण दुर्ग भी कहते हैं। इस संबंध में एक कवि ने इसकी प्रशंसा इन पंक्तियों में की है–

"स्वर्ण प्रस्तर से जड़ायह दुर्ग जैसाण का
दे रहा परिचय सदा भाटियों की आण का।।"[1]

सोनारगढ़ दुर्ग की स्थापत्य कला बेजोड़ व अनूठी है। इस दुर्ग में 99 बुर्ज हैं, जो बिना चूने एवं सीमेन्ट के इस प्रकार पत्थर के खांचो में संयोजित हैं कि पत्थर खिसक नहीं सकते। यह दुर्ग 250 फीट ऊँचा, 1500 गज लम्बा, 750 गज चौड़ा है। दुर्ग में प्रवेश द्वार सहित चार प्रदेश द्वार– सूरज प्रोल, अक्षय प्रोल, गणेश प्रोल तथा हवा प्रोल हैं।[2] दुर्ग में स्थित राजमहल, दुर्ग संग्रहालय, जैसलूकूप, जैनग्रंथालय, जैनमंदिर, गणगौर माता मंदिर अपनी स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। दुर्ग को जल आपूर्ति गड़ीसर तालाब से होती थी। इसके अतिरिक्त जैसलूकूप एवं वर्षा जल संग्रहण से भी पानी उपलब्ध हो जाता था।

प्रस्तूत शोध पत्र में सोनारगढ़ दुर्ग के ऐतिहासिक तथ्यों के साथ ही दुर्ग की स्थापत्य कला, कलात्मक बुर्जो का वर्णन कर दुर्ग में जल संरक्षण पद्धति को उजागर करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर स्थित जैसलमेर रियासत-माडधारा के नाम से प्रसिद्ध रही है। इसकी स्थापना यदुवंशी भाटी महारावल जैसल ने 1155 ई. में की थी तथा स्वयं के नाम पर इसका नाम जैसलमेर रखा। वर्तमान में जैसलमेर अपनी कला, संस्कृति, वास्तुकला, भव्य ऐतिहासिक स्थल तथा मरूस्थल के प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण पर्यटन नगरी के नाम से विख्यात है। दुर्ग निर्माण बाह्य शत्रु आक्रमणों से बचाव, गोला बारूद, हथियारों को सुरक्षित रखने तथा रसद सामग्री के संचय करने के लिए इसका उपयोग किया जाता था। दुर्ग की नींव राजगुरू की सलाह पर तिथि, दिन एवं स्थान को देखकर वास्तुशास्त्र के अनुसार रखी जाती थी।[3]

महारावल जैसल ने एक विशाल दुर्ग बनवाने का निश्चय किया, संयोग से तपस्वी ईसाल नाम के पुष्करणा ब्राह्मण जैसल को गोरहरे त्रिकुट पहाड़ पर ले गया और उस पहाड़ पर बने जलकुण्ड को दिखाते हुऐ कह कि ये जल कूप भगवान श्री कृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की प्यास बुझाने के लिए सुदर्शन चक्र से खोजा था। तथा भविष्यवाणी की थी कि किसी काल में चन्द्रवंशी जैसल नाम का महारावल होगा जो यहाँ पर विशाल दुर्ग बनाकर उस स्थान पर राजधानी स्थापित करेगा। मेहता अजीत ने अपने भाटीनामें में लिखा है कि यहाँ एक शिला थी जिस पर एक भविष्यवाणी इस प्रकार लिखी हुई थी।

"जैसल नाम को जदुपति, यदुवंश में एक थाय।
किसी काल के मध्य में इण था रहसी आय।।"[4]

महारावल जैसल ने विक्रम संवत 1212 में श्रावण शुक्ल द्वादशी बुद्धवार के दिन इस दुर्ग की नींव रखी थी। राजस्थान की उत्तरी सीमा के सजग प्रहरी एवं "उत्तरभड़ किवाड़" की उपाधि धारण करने वाला, यह दुर्ग विश्व के मरूस्थलीय दुर्गों में सर्वश्रेष्ठ होने के साथ प्राचीनतम दुर्ग है।[5] भाटी राजपूतों की वीरता, शौर्य, त्याग और बलिदान का प्रतीक है। इस दुर्ग की दृढ़ता के विषय में राजस्थानी कवि ने कहा है-

"गढ़ दिल्ली, गढ़ आगरो, अधागढ़ बीकानेर।
भलो चुणायों भाटियों, सिरे जो जैसलमेर।"[6]

प्रस्तावना

सोनारगढ़ (जैसलमेर) का दुर्ग पश्चिम राजस्थान में विशाल थार मरूस्थल के मध्य में अवस्थित है। यह सदा से उत्तरी सीमा का प्रहरी रहा है तथा 'उत्तर भड़ किवाड़' का यशस्वी विरूद्ध धारण करने वाले भाटी राजपूतों के शौर्य और बलिदान का प्रतीक है।चन्द्रवंशी रावल जैसल ने संवत 1212 (सन् 1156 ई.) श्रावण शुक्ला द्वादशी बुद्धवार के दिन दुर्ग की नींव रखी। संवत 1219 में यहाँ राजधानी बनाई गयी। नैणसी इस दिवस को बुधावार के बजाय रविवार लिखते हैं। जैसल ने पुष्करणा ब्राह्मण ईशाल को बहुत सा द्रव्य, दो कोस की सीवदी व पांच बेरे दिये। पुरोहितों को दक्षिणा दी गई। दुर्ग में चार महल बनवाये गये, जिनकी लागत 169040 रू. आयी।

"संवत् बारह से बारह सावन मास सुमेर।
जैसल थाप्यो जोरावर महियत जैसलमेर।
लंका जो अगजीत है घणा घात रे घेर।
रघुरहसी भाटियों महियत जैसलमेर।।"

दुर्ग निर्माण जैसल तथा पहाड़ी पर निर्मित होने के कारण मेरू अतः जैसल+मेरू से 'जैसलमेरू' नाम पड़ा, जो कालान्तर में जैसलमेर हुआ। लोकसाहित्य में इसे जैसाणगढ़ कहा गया है। पीले पत्थरों से निर्मित होने तथा स्वर्ण के समान चमकने के कारण सोनारगढ़ या सोणगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दुर्ग की पहाड़ी की आकृति त्रिभुजाकार होने से त्रिकुटगढ़ तथा पहाड़ी का नाम "गोरहरा" होने से "गोरहरागढ़" कहलाया।[7]

"गढ़ दिल्ली गढ़ आगरो अधागढ बीकानेर।
भलो चिणायों भाटियों सिरे जो जैसलमेर।।"

जैसलमेर के सांस्कृतिक इतिहास में यहाँ की स्थापत्य कला का अलग ही महत्त्व है। जैसलमेर में स्थापत्य कला का क्रम राज्य की स्थापना के साथ दुर्ग निर्माण से आरम्भ जो निरन्तर चलता रहा। यहाँ के स्थापत्य को राजकीय तथा व्यक्तिगत दोनों का प्रश्रय मिला। जैसलमेर में हर 20-30 कि.मी. के फासले पर छोटे-छोटे दुर्ग दृष्टिगोचर होते हैं जो विगत 1000 वर्षों के इतिहास के मूक गवाह हैं। दुर्ग में निर्मित गलियां, हाट बाजार, जलकूप, जैन मंदिर, ग्रंथालय स्थापत्य कला के अनूठे उदाहरण है।[8]

यह दुर्ग 250 फीट (76 मीटर) ऊँची तिखुबी पहाड़ी पर बना है, पहाड़ी के आधार की समुद्र तल से ऊँचाई 959 फीट है। पहाड़ी की आकृति त्रिभुजाकार होने से यह त्रिकुट गढ़ कहलाया। पहाड़ी की लम्बाई 1500 फीट तथा चौड़ायी 750 फीट है। दुर्ग मुख्यतः पाषाण निर्मित है, प्रयुक्त पाषाण तीन प्रकार के हैं, रेतीला पत्थर (सेण्ड स्टोन), चूने का पत्थर (लाइम स्टोन) मार्बल तथा फोसिलाइज स्टोन, इन्हें जोड़ने के लिए कहीं भी चूने या सीमेंट का प्रयोग नहीं किया गया है। दुर्ग के साथ-साथ पूरा नगर ही पीले पत्थरों का बना है जिस पर सूर्य की किरणें पड़ने पर यह स्वर्ण के समान चमकता सा प्रतीत होता है, इसलिए जैसलमेर को स्वर्ण नगरी कहा जाता है।

दुर्ग के परकोटे का घेरा डेढ़ मील (3 कि.मी.) के लगभग है। क्षेत्रफल 1500 गुणा 750 वर्ग फीट या 11.28 हैक्टर है। परकोटे की दीवारे 3 से 5 मीटर ऊँची एवं 2 से 3 मीटर चौड़ी हैं। यह दोहरा परकोटा है जो अलग-अलग काल में दुर्ग के विस्तार के समय बनायी गई। सभी बुर्जे गोलाकार हैं, इनके ऊपर सैनिकों के बैठने, तोपे रखने, गोलियां चलाने, गरमतेल, गरम पानी डालने के स्थान बने हुए हैं।

त्रिकूट पर्वत पर बने इस दुर्ग में मुख्य द्वार सहित चार प्रवेश द्वार हैं। अक्षय प्रोल, सूरज प्रोल, गणेश प्रोल (भूता प्रोल), हवा प्रोल (रंग प्रोल) जो अलग-अलग काल में बने थे। प्रथम तथा मुख्य प्रवेश द्वार अक्षय प्रोल है, जो बाद में बनाया गया था। उक्त द्वार से प्रवेश करने व घुमावदार मार्ग से आगे बढ़ने पर रामदेव मंदिर तथा रणछोड़ जी के मंदिर दिखायी देते हैं; सूरज प्रोल के बाहर सूर्य मंदिर है। एक ऊँचे चबूतरे पर गोलाकार सूर्य की प्रतिमा रखी है। गणेश प्रोल के पास गणेश जी की प्रतिमा और त्रिशुल की आकृति दीवार में लगायी गयी है। हवा प्रोल के बाहर अतिथि गृह और नौबत खाने बने हैं। इन नौबत खानों में शहनाई वादक और नक्कारची बैठा करते थे। इस प्रोल में प्रवेश करते ही शीतल हवा दर्शकों की थकावट दूर कर देती है।[9]

हवा प्रोल से भीतर आने पर एक खुले चौक में आते हैं। इसके सामने राजा रानी के महल बने हैं। यह खुला-चौक या मैदान दशहरा चौक है। यहाँ मांगलिक उत्सव आयोजित किये जाते थे। इसी में जौहर स्थल भी है जहाँ रानियों ने जौहर किया था। चौक के एक और घण्टियाली देवी, खुशालराज राजेश्वरी के मंदिर बने हैं। यहीं पर जैन मंदिर बने हुए हैं। सामने राजा का महल है। महल के भीतर जाने के लिए मुख्यद्वार से सीढ़िया चढ़ दर्शक एक चौक में पहुंचता है। सामने स्वांगिया देवी का मंदिर है, यह भाटी राजपूतों की कुल देवी है।[10]

चौक के दोनों ओर बनी परसालें टकसाल के रूप में प्रयोग की जाती थी। चौक के बायीं और सीढ़ियाँ चढ़कर प्रथम मंजिल पर जाया जाता है। प्रथम मंजिल के बांयी तरफ हरराज जी का महल है। इस महल से बायीं तरफ चलने पर दीवाने खास महल आता है जो कि अब बन्द है। दायीं तरफ चलने पर प्रथम मंजिल पर ही शस्त्रगार आता है। शस्त्रगार के भीतर दायीं तरफ दीवान खाना है, जिसमें राजाओं के चित्र तथा चान्दी का सिंहासन रखा है। दीवान-खाना तथा शस्त्रगार से पुनः बाहर आने पर सीढ़ियाँ चढ़कर द्वितीय मंजिल पर आते हैं। जहाँ सर्वप्रथम त्रिपोलिया में प्रवेश करते हैं। त्रिपोलिया के बाहर पत्थर का तख्त लगा हुआ है जो उल्टे कमल की आकृति में कलाकृत है। झरोखों पर काँच जड़े तीन गेट होने से इसका नाम त्रिपोलिया रखा गया था।

त्रिपोलियां को पार कर कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर गज विलास नामक महल आता है। गज विलास से बाहर निकलकर बायीं तरफ कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर रंग चौक आता है। यहाँ रानी-राजा परिवार सहित रंग खेलते थे। रंग चौक से ऊपर की तरफ चढ़ने पर तीसरी मंजिल पर दीवाने-आम नामक महल है। इसमें रंगीन काँच जड़ित तीन द्वार हैं। इसमें जमीन पर गद्दा व मसंद लगी है। दीवाने आम के बायीं तरफ-सर्वोत्तम विलास है। इसकी दीवारों पर नीली टाइलनुमा डिजायन है। कक्ष में पलंग व सोफे रखे हैं। थाली, कटोरी, गिलास व स्टूल हैं। सात फीट की राजा की ड्रेस है। सर्वोत्तम विकास के बाहर सामने की तरफ थोड़ा नीचे उतरने पर गणगौर माता का मंदिर है। कक्ष से बाहर निकलने पर उदय विलास आता है, इसके छोटे चौक में दुर्ग का नक्शा पत्थर पर बनाया गया है।[11]

महलों से बाहर निकलकर बायीं तरफ चलने पर एक अन्य द्वार से दीवाने खास महल में प्रवेश किया जा सकता है। इस स्थान को पहले अमरबाग कहते थे। महारावल अमरसिंह ने अमर महल और अमरबाग बनवाया था। इसके बाद यहाँ महारावल अखेसिंह ने मोती महल बनवाया था। मोती महल की दीवारों पर कृष्ण लीला, मल्लयुद्ध, हाथियों की लड़ायी तथा अन्य चित्र दर्शनीय हैं।

पानी ढूढनें, कुंआ व तालाब का स्थान चयन करने का काम पानी वाले विद्वान करते थे, जिन्हें 'हरवा' गजधार, बुलई, रामनामी आदि कहा जाता था। दुर्ग के जल स्रोतों के अन्तर्गत दुर्ग के बाहर पहाड़ी की तलहटी में एक बड़ा तालाब (घड़सीसर) तथा दुर्ग के भीतर सात पाताल तोड़ कुऐं प्रमुख थे। इनसे दुर्ग को सतत् जल की प्राप्ति होती थी चाहे कुछ वर्ष वारिश ना हो तो भी।[12]

घड़सीसर तालाब दुर्ग के जल स्रोतों में सर्व प्रमुख नाम घड़सीसर (घड़ीसर) का ही आता है। यह दुर्ग से एक कोस दूरी पर स्थित है। स्थानीय लोग इसे घड़ीसर भी कहते हैं। यह कृत्रिम तालाब है जिसका निर्माण जैसलमेर के महाराजा महारावल घड़सी ने वि.सं. 1396 में कराया था। इसमें जल की आवक वर्षा जल संग्रहण प्रणाली (रेन वाटर-हारवेस्टिंग) से होती है। कहते हैं कि घड़सीसर नहीं होता तो जैसलमेर नहीं होता या सोनारगढ़ नहीं होता। यह एक मात्र तालाब नहीं था बल्कि जैसलमेर निवासियों की जीवन रेखा (लाईफ लाइन) था।

इस सरोवर के किनारे अनेक कलात्मक व अलंकृत छतरियां भी दर्शनीय हैं। इन छतरियों को राजपरिवार, सामंत व स्थानीय व्यक्तियों द्वारा अपने पूर्वजों की याद में बनाया गया था। आज भी विदेशी के साथ-साथ भारतीय पर्यटक भी इन छतरियों पर बैठकर मंत्र मुग्धा हो जाता है। सरोवर केकिनारों पर अनेक मंदिर तथा बगीचियाँ बनी हुई हैं। सरोवर के मध्य मार्ग पर एक विशाल गेट बना हुआ है। इसे टीलों की प्रोल कहा जाता है। सरोवर की पाल 8 कि.मी. लम्बी है तथा आगौर कई कि.मी. दूर से वर्षा जल की एक-एक बूंद को समेट कर तालाब में भर देने में सक्षम है। सरोवर के मध्य अनेक जल मण्डप बने हुए हैं। ये सरोवर जल सरोवर जल की मात्रा बताने वाले पैमाने थे।

कुऐं

दुर्ग के भीतर जल प्राप्ति का प्रमुख एवं विश्वसनीय स्रोत दुर्ग के भीतर बनाये गये कुऐं थे। ये कुऐं सदानीरा तथा पातल तोड़ थे। दुर्ग के भीतर कुल सात कुऐं थे। प्रथम कुआं दुर्ग के मुख्य प्रवेश द्वार अखे प्रोल के समीप स्थित है। यह प्राचीन कुआं है, इसकी गहराई असीमित है। इसका पानी कभी नहीं सूखता है। वर्तमान में इसे ऊपर से ढक दिया गया है। द्वितीय कुंआ रामदेव मंदिर के समीप है। तृतीय कुंआ दुर्ग का सबसे महत्त्वपूर्ण कुंआ है। यह जैसल कूप है। इसके संबंध में एक किंवदन्ति प्रचलित है कि इस कूप को भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मित्र अर्जुन की प्यास बुझाने के लिए सुदर्शन चक्र से खोदा था। सभी इतिहासकार इस किंवदन्ति का उल्लेख करते हैं तथा कहते हैं कि इसी कूप के कारण इस पहाड़ी पर राजा जैसल ने दुर्ग का निर्माण कराया तथा उन्हीं के नाम पर इस कुऐं का नाम जैसलू कूप पड़ा। चौथा कुंआ जैन मंदिर के पास व्यास पाड़ा मौहल्ले में बिल्ला कुंआ है। दुर्ग का पाँचवा व छठा कुंआ लक्ष्मीनाथ जी मंदिर के पास कुण्ड पाड़ा मौहल्ले में स्थित है। सातवां कुंआ कोटड़ी पाड़ा मोहल्ले में रानी महल के समीप स्थित है। इस मौहल्ले में रहने वाली प्रजा इसका पानी उपयोग में लेती थी। इसे भी अब ढक दिया गया है तथा इसका पानी उपयोग में नहीं किया जाता है। इनमें से पांच कुऐं प्राकृतिक थे तथा सागरू कूप कहलाते थे। सागरू कूप से तात्पर्य है भाटियों के पूर्वज राजा सगर द्वारा खुदवाये गये।[13]

नन्द किशोर शर्मा जी बताते हैं कि दुर्ग के सभी कुऐं दुर्ग में जल प्राप्ति के विश्वसनीय स्रोत थे। ये पाताल तोड़ कुऐं थे इनमें कभी जल की कमी नहीं आती थी, ये बारह मास जलदायी थे। यही कारण है कि इस दुर्ग पर लम्बे-लम्बे कई घेरों पर भी जल की कोई कमी नहीं आयी। घड़सीसर तालाब भी दुर्ग का विश्वसनीय जल स्रोत था। इस तालाब का पानी दुर्ग में पहुँचाया जाता था। यह तालाब सदानीरा था। इसके निर्माण से लेकर आज तक इसमें कभी पानी समाप्त नहीं हुआ; चाहे राजस्थान में कितने भी अकाल पड़े, वर्षा कितनी भी कम हो। इसका आगौर कई किलो मीटर लम्बा था तथा यह क्रमागत 9 तालाबों से जुड़ा हुआ था। यह तालाब पूरे जैसलमेर वासियों का प्रमुख जल स्रोत था तथा यहाँ सात कोस दूर से भी सभी जाति समुदाय की पणिहारिणें पानी भरने आती थी, जिनकी सुरक्षा करना शासक वर्ग का दायित्व था। यही कारण है कि यहाँ सेना तैनात की गयी।

दुर्ग पर लम्बे घेरे पड़ते रहते थे, अत: संकटकालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर दुर्ग में लम्बे समय तक जल संग्रहित रखने की व्यवस्था की गयी थी। इस हेतु टांके, माटे, पाषाण टंकियों, बर्तन व कुण्डियों का उपयोग किया गया। दुर्ग के महलों में जैसे गज विलास, सर्वोत्तम विलास, हेतु विलास तथ दुर्ग की बस्ती के मकानों में पुराने परम्परागत बर्तन देखे जा सकते हैं। गज विलास महल में गिलास, ताम्बे के चरे, धातु की टोंटीदार गोल टंकी, पानी निकालने का डण्डीदार लौटा आज भी रखे हुऐ हैं। ये बर्तन भोजन करने, पानी पीने व पिलाने, हाथ धोने, स्नान करने, खाना पकाने, परोसने के साथ-साथ स्नान व शौच जैसे दैनिक कार्यों में प्रयुक्त किये जाते थे।[14]

दुर्ग में जल वितरण हेतु छोटी नहरें व धोरें बनाये गये थे किन्तु अब वे समय के साथ नष्ट हो चुके हैं। इसे अतिरिक्त दुर्ग के विभिन्न महलों, देवालयों, भबनों आदि में जल सेवकों, दास-दासियों, पणिहारिणों के माध्यम से पहुँचाया जाता था। इस कार्य में जानवरों की भी मदद ली जाती थी। राणीसर कुऐं का प्रसंग बताता है कि महारावल वैरसी की पुत्री के लिए उसकी दासी-हरजालू कूप का पानी भरने गयी थी, स्पष्ट ह कि जल वितरण का कार्य दास-दासियाँ ही करती थी। जैसलमेर के बुजुर्ग लोग एवं नन्द-किशोर शर्मा बताते हैं कि घड़सीसर से पणिहारियों के सिर पर तथा जानवरों की पीठ पर लाद कर जल दुर्ग के भीतर पहुँचाया जाता था जिन्हें महलों में रखे माटों, टोंटीदार बर्तनों व टेंकों में संग्रहित कर लिया जाता था।[15]

सोनारगढ़ दुर्ग का जल प्रबंधन कई अर्थों में अपना महत्त्व रखता है। दुर्ग ऐसे क्षेत्र में है जो थार के मरूस्थल का एक भाग है, दूर-दूर तक कोई बारहमासी जल स्रोत नहीं हैं ऐसे में दुर्ग के भीतर जल की निर्बाध आपूर्ति बनाये रखना व जल की कमी न आने देना एक चुनौती था, जिसमें दुर्ग का जल प्रबंधन सफल रहा।[16]

दुर्ग में पानी का रिसाव न हो इस हेतु गुट नालियाँ विशेष ज्यामिती से बनायी गयी थी, कि इनसे दुर्ग का अतिरिक्त पानी पूरी तरह से दुर्ग से बाहर निकल जाए। इस उद्देश्य में जल निकास प्रणली सफल रही दुर्ग पर कई बार लम्बे घेरे पड़े, बावजूद इसके दुर्ग में पानी की कोई कमी नहीं आयी। अतः संकटकालीन परिस्थिति में भी जल भण्डारण सफल रहा।[17] यह दुर्ग अपनी स्वर्णिम आभा, बेजोड़ स्थापत्य कला एवं जल प्रबंधन की अनोखी व्यवस्था से पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

वर्तमान में दुर्ग भारतीय पुरातत्व संरक्षण विभाग के संरक्षण में है। यूनेस्कों ने इसे विश्व धारोहर सूची में स्थान दिया है।[18]

शोध के उद्देश्य

1. मरूस्थलीय दुर्गों में सोनारगढ़, दुर्ग की स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था के महत्त्व को उजागर करना।
2. सोनारगढ़ दुर्ग की स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था का अध्ययन वर्तमान प्रासंगिकता के सन्दर्भ में करना।
3. सोनारगढ़ दुर्ग की स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था का विश्लेषण वर्तमान सामरिक उपयोगिता की दृष्टि से करना।
4. सोनारगढ़ दुर्ग की स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था का अध्ययन वर्तमान सामरिक सुरक्षा के सन्दर्भ में करना।

साहित्यावलोकन

शर्मा, नन्द किशोर, त्रिकुटगढ़ जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन, 2005 ई., इसके अध्ययन से सोनारगढ़ दुर्ग की प्रारम्भिक जानकारी मिलती है।

राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार-बीकानेर, रेकार्ड महकमा खास, जैसलमेर, फाईल नं. 8, वोल्यूम 1, वर्ष 1892, बंधक नं. 127, रिपेयर्स ऑफ जैसलमेर खड़ीन्स, से सोनारगढ़ दुर्ग की जल प्रबंधन व्यवस्था की जानकारी मिलती है। शर्मा, नन्दकिशोर, सुनहरा नगर जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन, जैसलमेर, 2011 ई. से भी सोनारगढ़ दुर्ग की स्थापत्य कला की जानकारी मिलती है।

मिश्र, डॉ. रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यकार, 2008 ई. एवं टी.एन. गुप्ता, आर.एस. खंगारोत "आम्बेर जयपुर ए ड्रीम इन दी डेजर्ट" क्लासिक पब्लिशिंग हाउस जयपुर, 1999 ई. के विश्लेषणात्मक अध्ययन से भी सोनारगढ़ दुर्ग की स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था का अवलोकन होता है।

ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिम भारत में जल प्रबंधन, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2012 ई. तथा दूबे, दीनानाथ, भारत के दुर्ग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1999 ई. (द्वितीय संस्करण) के गहन अध्ययन से भी सोनारगढ़ दुर्ग की स्थापत्य व जल प्रबंधन व्यवस्था की जानकारी मिलती है। मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2016 ई. एवं शर्मा, नन्दकिशोर, जैसलमेर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सीमान्त प्रकाशन, जैसलमेर, 1993 ई., के समीक्षात्मक अध्ययन से सोनारगढ़ दुर्ग का स्थापत्य एवं जल प्रबंधन की जानकारी मिलती है। उपर्युक्त पूर्व में किये गये कार्यों से इस शोध कार्य को एक दृष्टि प्राप्त होगी। प्रस्तुत शोध कार्य पूर्णतया नवीनतम और मौलिक है।

निष्कर्ष

प्रस्तावित अध्ययन में सोनारगढ़ (जैसलमेर) दुर्ग का स्थापत्य एवं जल प्रबंधन व्यवस्था का अध्ययन किया गया है। त्रिकूट पर्वत पर बने इस दुर्ग में 99 बूर्ज बने हुए हैं। यह दुर्ग 250 फीट ऊँचा, 1500 गज लम्बा, 750 गज चौड़ा है। दुर्ग में निर्मित गलियां, हाट बाजार, जल कूप, जैन मंदिर, ग्रंथालय स्थापत्य कला के अनूठे उदाहरण हैं। दुर्ग के चार विशाल द्वार अक्षयप्रोल, गणेशप्रोल, भूताप्रोल तथा हवाप्रोल हैं। इनकी नक्काशी व जाली झरोखों की स्थापत्य कला उत्कृष्ट है।

दुर्ग के जल स्रोतों में घड़सीसर तालाब तथा दुर्ग के भीतर सात पाताल तोड़ कुऐं प्रमुख थे। घड़सीसर तालाब का निर्माण महाराजा महारावल घड़सी ने वि.सं. 1396 में कराया था। दुर्ग में जल प्राप्ति के प्रमुख एवं विश्वसनीय स्रोत दुर्ग के भीतर बनाये गये सदानीरा व पाताल तोड़ कुऐं थे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मयंक, मांगीलाल, जैसलमेर राज्य का इतिहास, पृ. 21
2. दुबे, दीनानाथ, भारत के दुर्ग, पृ. 65
3. माहेश्वरी, हरिवल्लभ, जैसलमेर राज्य का इतिहास, पृ. 35
4. शर्मा, नन्दकिशोर, त्रिकुटगढ़, जैसलमेर, पृ. 14, 41
5. हुजा, रीमा, हिस्टी ऑफ राजस्थान, पृ. 32
6. मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 35
7. अग्रवाल, आर.ए., हिस्ट्री, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ जैसलमेर, पृ. 71
8. गाड़ी, डॉ. अशोक, जैसलमेर का रियासत कालीन इतिहास, पृ. 51
9. गुप्ता, डॉ. मोहनलाल, राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्ग, पृ. 80
10. भाटी, हरिसिंह, गजनी से जैसलमेर, पृ. 529
11. मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, पृ. 65
12. रेकार्ड महकमा खास, जैसलमेर, फाईल नं. 8, वोल्यूम-1, वर्ष 1892, बन्धक नं. 127, रिपेयर्स ऑफ जैसलमेर खड़ीन्स, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार, बीकानेर।
13. भाटी, डॉ. रघुवीर सिंह, जैसलमेर राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 65
14. शर्मा, नन्दकिशोर, जैसलमेर राज्य का राजनीतिक इतिहास, पृ. 30
15. जैसलमेर किला पर्यटक सूचना फोल्डर, पृ. 5
16. स्मारिका, पर्यटन परिचय, जिला प्रशासन, जैसलमेर, पृ. 3
17. पुरोहित, पुरुषोत्तमदास, पुष्करणा ब्राह्मणों का इतिहास, पृ. 75
18. दुर्ग के सर्वेक्षण एवं अनुभव से जानकारी, दिनांक 30.12.2019

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में शान्ति शिक्षा की पाठ्यचर्या

अश्विनी कुमार पाठक

शोध छात्रा, शिक्षा संकाय, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रोफेसर एन०पी०भोक्ता

शिक्षा संकाय, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सारांश

शिक्षा एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक जो कुछ भी सीखता है वो सब कुछ शिक्षा के ही अंतर्गत आता है। शिक्षा एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया जिसके एक तरफ अध्यापक और दूसरी तरफ विद्यार्थी और तीसरे ध्रुव पर पाठ्यचर्या आ जाती है। शिक्षा की प्रक्रिया में पाठ्यचर्या एक ऐसे पुल की भांति कार्य करता है जिसपर अध्यापक और विद्यार्थी साथ-साथ चलकर शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं। यद्यपि पाठ्यचर्या को सदैव तीसरे ध्रुव की संज्ञा दी जाती है तथापि यह स्वयं में एक बहुआयामी और अनेकानेक गतिविधियों एवं क्रियाओं की संगठित रुपरेखा होती है। यह एक ऐसी धुरी है जिसके चारो ओर समस्त शैक्षिक व्यवहार और विविध क्रियाकलाप घूमते रहते हैं। इसीलिए पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया को अत्यंत संवेदनशील कहा जाता है जिसके लिए एक वृहद् दार्शनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। दूसरी तरफ आज यदि तत्कालीन वैश्विक परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया जाय तो बदलती हुई आधुनिक परिस्थितियों में न केवल मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है वर-अनेकानेक नकारात्मक प्रवृत्तियों जैसे-इर्ष्या, घृणा, द्वेष, हिंसा, द्वंद्व आदि ने मानवीय व्यवहार को पूरी तरह से अपने प्रभाव में ले लिया है। मनुष्य में विकसित हो रही इस तरह की द्वन्द्वात्मक और हिंसात्मक प्रवृत्तियां परिवार, समाज, राष्ट्र आदि की सीमाओं को लांघ कर अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का रूप लेती चली जा रही हैं। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में संघर्ष एवं शक्ति प्रदर्शन की होड़ सी मची हुई है। इसके लिए सभी राष्ट्रों ने अपने-अपने स्तरों पर अधिकतम आयुधों के आविष्कार, निर्माण एवं भंडारण की सीमाएं तोड़ दी हैं। शुरुआत की एक छोटी सी चिंगारी पूरे विश्व को न केवल तृतीय विश्वयुद्ध के मुहाने लाकर खड़ी करने को तैयार है वर-अपने-अपने देश में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को विध्वंसक आयुधों के ढेर पर खड़ा हुआ महसूस कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में सामाजिक विषमताएं, जातिगत एवं धार्मिक उन्माद, स्वार्थपरक दुष्प्रचार आदि ने भी जहाँ जलती आग में घी का काम किया है वहीं धैर्य, सहिष्णुता, निर्णय क्षमता, संतुष्टि, समायोजनशीलता, विश्वास आदि मानवीय भावनाएं भी समाप्त होती चली जा रही हैं। ऐसी स्थिति में यह नितांत आवश्यक हो गया है कि मनुष्य में उन भावनाओं के विकास को प्रोत्साहित किया जाए जिनसे ऐसी नकारात्मक विचारधाराएं नियंत्रित की जा सके। इसके लिए शिक्षा एक ऐसा सर्वोत्तम हथियार है जिसके द्वारा न केवल मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जा सकता है वरन्परिवार, समाज, राष्ट्र से होते हुए अंतर्राष्ट्रीय परिपेक्ष के दृष्टिकोण में परिमार्जन एवं परिवर्तन लाया जाना संभव है। शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में शिक्षार्थी को केंद्र बिंदु शैक्षिक लक्ष्य एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने का विधि वत प्रयत्न किया जाता है। अत: वांछित एवं अपेक्षित, लक्ष्य व उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु पाठ्यचर्या में ऐसे तत्वों के समावेशन

की आवश्यकता होगी जिनसे वांछित लक्ष्य एवं उद्देश्यों की प्राप्ति को संभव बनाया जा सके। ऐसी स्थिति में 'शान्ति शिक्षा' एक ऐसी अवधारणा के रूप में सामने आयी है जिसके माध्यम से पाठ्यचर्या को न केवल समृद्ध किया जा सकता है वर-आपेक्षित परिणामों की प्राप्ति भी सुनिश्चित की जा सकती है। इसके लिए सर्वप्रथम 'शान्ति शिक्षा' को पाठ्यचर्या में स्थान देकर न केवल प्रारंभिक स्तर से समस्या का नैदानिक समाधान प्राप्त करना संभव होगा वर-सद्भावना, सहिष्णुता और सहअस्तित्व जैसे अनेक मूलभूत मानवीय मूल्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित करना भी सुलभ बनाया जा सकेगा।

भूमिका

शिक्षा मनुष्य जीवन के लगभग सभी पक्षों को प्रभावित करती है। शिक्षा एक व्यापक अवधारणा वाला शब्द है। व्यवहारिक जीवन में शिक्षा अधिकांशत: शिक्षा के जिस रूप की चर्चा की जाती है वह बहुप्रचलित विद्यालय शिक्षा है जो की शिक्षा के संकीर्ण अर्थों को प्रदर्शित करता है। विद्यालय शिक्षा में मुख्य रूप से तीन अंग होते हैं, अध्यापक, विद्यार्थी तथा पाठ्यचर्या। शिक्षा में उद्देश्यों की बात की जाए तो स्वामी विवेकानंद का विचार सबसे प्रासंगिक जान पड़ता है जिसमें कहा गया है कि, शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति करना है। आज विश्व की तत्कालीन परिस्थितियों की ओर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानवीय दृष्टिकोण और मूल्यों में लगातार परिवर्तन आया है। मानवीय मूल्य लगभग सैद्धांतिक विषयवस्तु बनकर रह गए हैं। लोगों में छोटी-छोटी बातों पर द्वंद्व, हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ रही है। एक रिपोर्टमें 'डब्ल्यूएचओ' ने इस बात की ओर इशारा किया है कि द्वंद्व और संघर्ष से जूझते इंसान 'बर्नआउट' जैसी समस्या की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं (जी न्यूज, डीएनए)। धर्य, संतुष्टि, सहनशीलता, निर्णयक्षमता, क्षमाशीलता, करुणा, त्याग, विश्वास, सच्चाई, निष्पक्षता, सदाचार, सामाजिक न्याय आदि मूल्यों का लगातार ह्रास होता चला जा रहा है। अपनी अनुचित बात को ऊपर रखने के चक्कर में लोग सड़कों पर उतर जा रहे हैं। तत्कालीन अनेक ऐसी घटनाएं इस बात का ज्वलंत उदाहरण है, जिनमें धार्मिक-जातिगत उन्माद, सामाजिक विषमताओं, आतंकवाद, हिंसा, विद्वेष जैसी प्रवृत्तियों की विभीषिका को समाज ने झेला है। नकारात्मक प्रवृत्तियां (घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, संघर्ष, असहिष्णुता आदि) मानवीय सोच और व्यवहार पर हावी होती चली जा रही हैं। यह केवल एक व्यक्ति की बात नहीं है बल्कि यह मानसिकता और प्रवृत्ति व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज और राष्ट्रों से आगे अंतर्राष्ट्रीय सीमाएं लांग चुकी है। सभी राष्ट्र शक्तिशाली बनने की होड़ में नित्य नए-नए विध्वंशक हथियारों का आविष्कार करते चले जा रहे हैं।

इस संदर्भ में यदि प्राचीन भारतीय धर्म-दर्शनों पर दृष्टिपात किया जाए तो सनातन, बौद्ध, जैन, सिख्ख आदि ने मनुष्य को अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सद्भावना, भाई-चारा और सहअस्तित्व का न केवल सन्देश दिया वरन संपूर्ण विश्व को शान्ति, सद्भावना और सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया है। भारत में मानव शान्ति के विषय पर आदिकाल से लेकर आज तक चिंतन-मनन होता रहा है। महावीर जैन, गौतम बुद्ध, महावीर जैन, नानक, कबीर, गांधी, टैगोर आदि अनेक महापुरुषों ने सम्पूर्ण विश्व को शान्तिका सन्देश दिया हैं। प्राचीन भारतीय साहित्यों- वेद, उपनिषद, पुराण आदि में अनेक प्रसंगों पर शान्ति की विधिवत चर्चा मिलती है।

जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर ने संसार को पंचशील सिद्धांत का उपदेश दिया। उन्होंने अहिंसा को मनुष्य का सबसे उत्तम गुण माना। महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन के अष्टांग योगके प्रथम पद 'यम' में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर नियंत्रण एवं संयम का मार्ग दिखाया। उन्होंने अष्टांग के माध्यम से मनुष्य को अध्यात्मिक मार्ग के शिखर तक पहुंचने का रास्ता दिखाया। इसी तरह बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध ने बताया कि 'शान्ति भीतर से आती है' अर्थात शान्ति पाने के लिए अपने अंत:करण को शुद्ध करने की आवश्यकता होती है। अंत:करण में स्थित नकारात्मक भावों का त्याग करके ही सकारात्मक भावों की उपज की जा सकती है। मनुष्य जीवन के दुखों का पार पाना केवल तभी संभव है जब 'शान्ति' की प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण किया जाए। टैगोर ने विश्वभारती की स्थापना 'यत्रा विश्वं भवत्ये कनीडम' जैसे वैदिक आदर्श के साथ की। उक्त सूक्ति में संपूर्ण विश्व को एक घोंसले के समान माना गया है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के प्रतीक भारतीय संसद ने अपने प्रवेश कक्ष में 'वसुधैव कुटुंबकम' जैसे वैदिक वाक्य को अंकित कर अपना आदर्श प्रस्तुत किया। जिसका यह तात्पर्य है कि उदार व्यक्तियों के लिए 'पूरा संसार एक परिवार है'। महान विचारक जे कृष्णमूर्ति ने अपने विचारों में हिंसापूर्ण समाज की चुनौतियों, मनुष्य की सुरक्षा, भय, क्रोध , शान्ति जैसे अनेक विषयों पर चर्चा की। उन्होंने मानवता की वास्तविक प्रगति के लिए विश्व के प्रत्येक मानव के जीवन में किए

जाने योग्य परिवर्तन की बात कही। शिक्षा के कार्य और उद्देश्यों के विषय पर 10 जनवरी 1954 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में वार्ता के दौरान जे० कृष्णमूर्ति ने अपने विचार कुछ इस प्रकार प्रकट किये, "मैं सोचता हूं कि यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम स्वयं ही यह पता लगाएं कि शिक्षा का क्या कार्य है। शिक्षा का उद्देश्य क्या है, हम किस लिए जी रहे हैं, इस बारे में अनेक तरह की बातें हैं, कितनी ही पुस्तकें हैं, कितने ही दार्शनिक सिद्धांतों और पद्धतियों का आविष्कार किया गया है और कितने ही लोगों ने इस पर पर विचार किया है। लेकिन यह बिल्कुल साफ है कि हर शिक्षा-पद्धति, चाहे वह एकदम नयी हो या पुरानी, असफल हो चुकी है, क्योंकि वह इस संसार में न तो मनुष्यों के बीच शांति ला पायी है और न उसने कोई गहन सांस्कृतिक उत्थान का काम किया है- अर्थात मन के उन्नयन और सम्पूर्ण विकास में कोई पद्धति मदद नहीं कर पायी है। क्या इस पद्धति की आवश्यकता है? मुझे लगता है कि यह बहुत जरुरी है कि हममें से हर एक इसका पता लगाये कि शिक्षा का कार्य आखिर क्या है- विशेष तौर पर किसी विश्वविद्यालय के अंतर्गत, हमें शिक्षित क्यों किया जाता है, और वर्तमान में हमारी शिक्षा कहां है। जब आप दुनिया में चारो तरफ नजर डालते हैं तो देखते हैं कि शिक्षा असफल रही है क्योंकि इसने युद्धों को रोकने में मदद नहीं की है, न तो इसने संसार में शांति लाने में सहायता की है, और न ही इसने मनुष्य को किसी प्रकार की समझ ही प्रदान की है। इसके विपरीत, हमारी समस्याओं में और अधिक वृद्धि हुई है, और अधिक विध्वंशकारी युद्ध हो रहे हैं तथा पहले से बड़े क्लेश पैदा हो रहे हैं।"

स्टीफेन हॉकिंस की मानें तो अगले 100 वर्षों में दुनिया समाप्ति की ओर जा रही है और इसके पीछे छिपे जिन पांच प्रमुख कारणों को वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन परिणामों में पाया है उनमें से एक विश्व भर में हो रहे लगातार विध्वंसक आयुधों का आविष्कार और निर्माण भी है। आज केवल भारत ही नहीं बल्कि विश्व भर के अनेक चिंतकों के सामने अपनी वर्तमान और अगली पीढ़ी को शान्ति की संस्कृति के प्रति प्रोत्साहन का विषय चिंतनीय बना हुआ है। ऐसी स्थिति को देखकर यह कहने में तनिक भी संदेह नहीं किया जाना चाहिए कि मानवीय सभ्यता के उद्‌भव और पराभव का रहस्य 'शान्ति' में ही छिपा हुआ है और मानवजाति को आज इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। बदलते हुए वैश्विक परिस्थितियों, दृष्टिकोणों और मानवीय प्रवृत्तियों के आधार पर निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि केवल और केवल शान्ति की संस्कृति को प्रोत्साहित करके इन विभीषिकाओं को टाला जा सकता है और एक शांतिप्रिय मानवीय समाज के निर्माण के मार्ग को भी खोला जा सकता है। शान्ति शिक्षा को शिक्षा का एक अंग के रूप में स्वीकार कर उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति को संभव बनाया जा सकता है। इससे छात्रों के मनोमस्तिष्क में शान्ति के बीज को बोने का काम करके शान्ति की संस्कृति रूपी पौधे का विकास किया जा सकता है।

शान्ति शिक्षा

शान्ति मनुष्य के हजारो वर्षों की अध्यात्मिक उन्नति का परिणाम है। शान्ति एक विस्तृत अवधारणा वाला शब्द है जो कि 'शम्' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर बना है, इसका अर्थ होता है 'बुझ जाना' अर्थात नकारात्मक प्रवृत्तियों के बुझने के फलस्वरूप जिसका प्रस्फुटन हो वह 'शान्ति' है। शान्ति में अहिंसा, करुणा, सद्‌भाव, परस्पर, सहअस्तित्व, धैर्य, संतोष, पूर्णता आदि स्वतः समाहित और यह स्वयं में युद्ध, संघर्ष, द्वंद्व, घृणा, अन्याय, इर्ष्या, द्वेष आदि के समाधान के रूप में प्रकट होने वाली भावना है। शान्ति का रहस्योद्‌घाटन और प्रकटन मनुष्य के हजारो वर्षों की अध्यात्मिक उन्नति का परिणाम है।

शिक्षा मानव व्यवहारों के परिमार्जन, परिवर्धन और परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम है। यह न केवल मनुष्य के व्यवहारों को परिष्कृत करता है वरन् सामाजिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक और अध्यात्मिक उन्नति के मार्ग को भी प्रशस्त करता है। यह नवीन मानवीय दृष्टिकोणों का विकास कर मनुष्य में समायोजनशीलता का विकास करता है। इस तरह 'शान्ति' और 'शिक्षा' का संधि इस बात का द्योतक है कि शिक्षा के माध्यम से शान्ति की संस्कृति को विकसित कर मनुष्य के व्यवहार में शान्ति के अपेक्षित तत्वों का विकास किया जा सकता है। शान्ति शिक्षा के माध्यम से मनुष्यों में परस्पर प्रेम, सद्‌भावना, सहअस्तित्व, सहयोग, सहिष्णुता, समंजनशीलता और सामाजिक न्याय जैसे गुणों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस तरह एक ऐसे समाज के निर्माण में सहायता मिलेगी जिसमें, 'अहिंसा परमो धर्मः', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'वसुधैव कुटुंबकम' जैसे वैदिक सूक्तियों में निहित भावों को न केवल विकसित किया जा सके वरन् मानवीय व्यवहार में भी परिणित किया संभव हो सके।

पाठ्यचर्या में शान्ति शिक्षा के समावेशन की आवश्यकता

- शान्ति की संस्कृति को प्रोत्साहित करने हेतु।
- द्वंद्व, युद्ध, संघर्ष, शोषण, अन्याय, हिंसा, विद्वेष आदि नकारात्मक भावनाओं के दमन हेतु।
- 'वसुधैव कुटुंबकम' जैसी वैदिकभावना के विकास तथा शान्ति के अन्य घटक तत्वों को विकसित करने हेतु।
- शान्ति की संस्कृति के विकास हेतु जिसमें, आपसी प्रेम, सद्भाव, सहयोग, धैर्य, परानुभूति, सहानुभूति, सहिष्णुता, सामाजिक न्याय, सामंजस्य आदि भावना को प्रचुर मात्रा में प्रोत्साहन मिल सके।
- सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास एवं पूर्वाग्रहों एवं मानसिक कुंठाओं से मुक्ति हेतु।
- स्वस्थ एवं निष्पक्ष चिंतन-मनन की प्रवृत्ति के विकास हेतु।
- विभिन्न स्तर पर विवादों के स्थाई एवं स्वस्थ समाधान की क्षमता के विकास हेतु।
- प्रतिस्पर्धा के बावजूद,सहअस्तित्व को साथ लेकर चलने की भावना के विकास हेतु।
- आंतरिक हिंसा एवं बाह्य युद्धोंके साथ ही साथ तृतीय विश्व युद्ध के मुहाने पर खड़े विश्व को इसकी विभीषिका से बचाने के लिए।
- शान्ति की संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित करने के उद्देश्य हेतु।
- अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास हेतु।

शिक्षा में शान्ति शिक्षा के समावेशन हेतु सुझाव

- एनसीएफ-2005 के प्रारंभिक सार संक्षेप और अध्याय तीन में वर्णित 'शान्ति के लिए शिक्षा' सम्बन्धी सुझावों पर अमल करने का प्रयास किया जाय।
- शान्ति शिक्षा के विभिन्न पक्षों जैसे-'शान्ति की शिक्षा', 'शान्ति के लिए शिक्षा' आदि को स्पष्ट करते हुए पाठ्यचर्या में स्थान दिया जाय।
- धैर्य, संतुष्टि, निर्णय-क्षमता, निष्पक्षता (पूर्वाग्रहों की अनुपस्थिति) एकाग्रता आदि को प्रोत्साहित करने हेतु प्रशिक्षित किया जाय।
- पाठ्यचर्या में शान्ति शिक्षा की अवधारणा, आवश्यकता एवं महत्व आदि को सम्मिलित किया जाए।
- परिवार, समाज, राष्ट्र और समुदाय के प्रति कर्तव्यों की चर्चा करवायी जाय।
- शान्ति शिक्षा हेतु पाठ्यचर्या के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करते हुए अनेक प्रासंगिक विषयवस्तुओं/पाठ्यवस्तुओं, गतिविधियों एवं क्रियाकलापों को सम्मिलित किया जाय।
- शान्ति से सम्बंधित अनेक महापुरुषों के जीवनवृत्तों एवं संबंधित प्रसंगों को पाठ्यचर्या में स्थान दिया जाय।
- शान्ति से सम्बंधित वेद, उपनिषदों एवं विभिन्न साहित्यों में उपलब्ध प्रसंगों को सम्मिलित किया जाय।
- पाठ्यचर्या के अंतर्गत दैनिक रूप से योग, ध्यान, मौन, प्रार्थना-सभा आदि के आयोजनों को प्रोत्साहित किया जाय।
- शान्ति से सम्बंधितचर्चा, संगोष्ठी एवं विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद का नियमित आयोजन करवाया जाय।
- विभिन्न स्तरों पर शान्तिकी गतिविधियों हेतु सम्मान, पुरस्कार, प्रशस्ति-पत्र आदि प्रदान करने की परंपरा को प्रोत्साहित किया जाय।
- परानुभूति और सहानुभूति की भावना के विकास के लिए विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करवाया जाय।
- दूसरों के साथ ऐसे व्यवहार के लिए प्रोत्साहित किया जाए जैसा कि सब दूसरों से अपने लिए अपेक्षा रखते हो।

- मानसिक द्वंद और संघर्ष के साथ-साथ 'बर्नआउट' जैसी नई-नई मानसिक समस्याओं के कारण, लक्षण, परिणाम एवं उनसे उबरने के तरीकों आदि के विषय में जागरूक किया जाय।
- शान्ति के विभिन्न शीर्षकों एवं उपविषयों पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक विचारों की परिचर्चा आयोजित करवायी जाय।
- जीवन शैली में अध्यात्मिक आयामों को समय देने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।
- मानव की श्रेष्ठता, प्रकृति द्वारा प्रदत्त शक्तिओं और क्षमताओं के सन्दर्भ में उत्तरदायित्व और अन्य जीव-जंतुओं के प्रति कर्तव्यों पर चर्चा आयोजित की जाय।
- धनोंपार्जन एवं संतुष्टि के सहसंबंधों को व्याख्यायित करते हुए उसके सामूहिक एवं सर्वमान्य दृष्टिकोण पर चर्चा आयोजित की जाय।
- धनोंपार्जन के ऐन-केन प्रकारों और अवसरों पर, नैतिक एवं वास्तविक मूल्यांकन के दृष्टिकोण को विकसित करने को प्रोत्साहित किया जाय।
- एकांत और अकेलेपन को परिभाषित करने के साथ ही साथ सामूहिक और एकांकी जीवन के गुण दोषों पर चर्चा करवायी जाय।
- जीवन के सम विषम परिस्थितियों में प्रसन्नता, धैर्य एवं संतुष्टि के लाभों से परिचित करवाते हुए अनेक प्रासंगिक उदाहरणों को प्रस्तुत किया जाय।
- पाठ्यचर्या में विभिन्न पाठ्यवस्तुओं, गतिविधियों एवं क्रियाकलापों को 'शान्ति'से जोड़ते हुए प्रसंगानुकूल छोटी-छोटीचर्चाएँ आयोजित की जाय।
- जाति-धर्म, रंग, क्षेत्र, भाषा आदि पर आधारित दृष्टिकोण को समृद्ध करते हुए मानव अथवा प्राणीमात्रा के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया जाय।
- चर्चाओं एवं वाद-विवाद के लिए चुने गए विभिन्न विषयों पर पक्ष-प्रतिपक्ष, दोनों को बारी-बारी से रखते हुए तदनुभूति की भावना को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाय।
- सेवा सहयोग और सामूहिक हित के कार्यों को जीवन के नियमित एवं अभिन्न हिस्से के रूप में स्वीकार्यता को प्रोत्साहित किया जाय।
- विद्यार्थियों को शान्तिके महत्व वाले विभिन्न संस्थानों, विभागों आदि में शैक्षिक यात्रा/देशाटन पर ले जाया जाय।
- शान्ति से सम्बंधित विभिन्न साहित्यों, वैश्विक स्तर पर हुए समसामयिक गतिविधियों से सम्बंधित पत्र-पत्रिकाओं, फिल्मों/टेली फिल्मों, डॉक्यूमेंट्रीज आदि उपलब्ध करवाया जाय।

उपरोक्त गतिविधियों को शैक्षिक पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाकर न केवल शान्ति की संस्कृति को प्रोत्साहित किया जा सकता है वर-पाठ्यचर्या को और अधिक रुचिकर, समृद्ध, व्यावहारिक एवं उपयोगी भी बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष एवं शैक्षिक निहितार्थ

आज विश्व की बदलती हुई परिस्थितियां, दृष्टिकोण, विचारधाराएं और मनोवृत्तियां मनुष्य को नकारात्मक भावनाओं की ओर धकेल रही हैं। मनुष्य अपने अंदर और बाहर लगातार द्वंद्व, संघर्ष और हिंसा से जूझ रहा है। प्रचलित शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह प्रतिस्पध र्ी, व्यवसायोन्मुखी और लागत व उत्पादन की संस्कृति को प्रोत्साहित करने वाली दिशा में आगे बढ़ रही है। मनुष्य में व्यक्तिनिष्ठता का लगातार अभाव होता चला जा रहा है और वस्तुनिष्ठता का प्रभाव जीवन के सभी पक्षों पर पड़ रहा है। समूह में रहते हुए भी मनुष्य अकेलापन महसूस करने लगा है। मनुष्य छोटी-छोटी बातों पर द्वंद्व, हिंसा, युद्ध आदि की ओर प्रवृत्ति होता चला जा रहा है। मानव जीवन की मूलभूत विशेषता जिसे मानवता, मनुष्यता या इंसानियत कहते हैं केवल सैद्धांतिक बनकर रह गयी हैद्यइस तरह की प्रवृत्ति से व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र और अंतरराष्ट्रीय विचारधाराएं भी प्रभावित हो चुकी हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा के माध्यम

से शान्ति की संस्कृति को प्रोत्साहित करने वाली 'शान्ति शिक्षा' अंधेरे में एक किरण के रूप में दिखायी पड़ती है। शान्ति शिक्षा को पाठ्यचर्या में स्थान देकर न केवल नकारात्मक प्रवृत्तियों पर काफी हद तक अंकुश लगाया जा सकता है वरन् मानव हृदय में अनेक सकारात्मक प्रवृत्तियों एवं भावनाओं के बीज को अंकुरित किया जाना भी संभव बनाया जा सकता है। शान्ति शिक्षा की शुरुआत यदि शिक्षा की पाठ्यचर्या में समावेशन के साथ की जाए तो इसकी प्रभाविता आठैर अधिक, त्वरित तथा उपांतरित की जा सकती है। अतः तृतीय विश्व युद्ध के कगार पर खड़े मानव समुदाय और संपूर्ण सृष्टि के कल्याण के लिए शान्ति शिक्षा आज नितांत आवश्यक एवं प्रासंगिक हो गई है। शान्ति में संपूर्ण मानव समाज के उद्‌भव एवं पराभव का रहस्य छिपा है अतएव शान्ति शिक्षा के माध्यम से शान्ति की संस्कृति को अपनाकर संपूर्ण मानव समाज को कल्याण के मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता हैद्य

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- एडम्स, जॉनएस. (1912), दी इवोल्यूशन ऑफ एजुकेशनल थ्योरी, लन्दन : मैकमिलन एंड को., लिमिटेड पृ. 39
  retrived from https://archive.org/details/evolutionofeduca00adamiala/page/10
- शिक्षा के सिद्धांत UGED-04(N), उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृ. 12
- शर्मा, उमा रानी (2012), शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार, आलोक प्रकाशन, लखनऊ
- कृष्णमूर्ति, जे०, अनुवादक- विनय कुमार वैद्य (2008), शिक्षा क्या है? राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट-दिल्ली
- निगम, शोभा (2011), भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005
  retrivedfrom
  http://www.ncert.nic.in/rightside/links/focus_group.html15DECEMBER 2019 05:30PM
- शिक्षक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2009, पृ. 23-24
  retrivedfrom
  http://ncte-india.org/ncte_new/pdf/NCFTE_2010.pdf15DECEMBER 2019 05:32PM
- इण्डिया न्यूज, 07 MAY 2017 09:30 AM, टी०वी० समाचार चैनल कार्यक्रम
- जी न्यूज, 24 DECEMBER 2019 11:56 PM, डीएनए,टी०वी० समाचार चैनल कार्यक्रम
- गुप्ता, एस०पी० (2009), भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, इलाहबादः शारदा पुस्तक भवन
  जायसवाल, सीताराम (2013), शिक्षा एवं समाज, लखनऊ, प्रकाशन केंद्र, डालीगंज
- त्यागी, गुरुसरन दास एवं पूनम मदान (2015), समसामयिक भारत में शिक्षा, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स
- पाण्डेय, रामशकल (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005),भारत सरकार
- श्रीवास्तव, नित्या एवं अंकुरवर्मा (2016), समसामयिक भारत एवं शिक्षा, आगरा, राखी प्रकाशन प्रा०लि०
  WEBSITES :
  KRISHNAMURTHY. Jhttp://jkrishnamurthyhindi.blogspot.com/2010/03/blog-post_20.html&hl=en-IN
  10DECEMBER 2019 11:30AM
  KRISHNAMURTHY. J
  http://hindi.fristpost.com/culture/jiddu-krishnamurti-the-spritual-guru-who-defined-the-popular-norm-of-keeping-followers-sa-29000.html10DECEMBER 2019 11:30AM

नाट्यानुभूति और रंगानुभूति का अंतर्सम्बन्ध

डॉ० प्रियंका मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर
सत्यवती कॉलेज (सांध्य) पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

जिस तरह व्यक्ति और जीवन एक-दूसरे के पर्याय हैं उसी तरह नाटक और रंगमंच की सार्थकता भी एक-दूसरे पर आधृत है। कहा जाता है कि ब्रह्मा जी ने चारों वेदों और चारों उपवेदों का स्मरण करके उनसे आठ गुणों को प्राप्त किया। उन आठ गुणों से ही उन्होंने पाँचवें वेद के रूप में 'नाट्य वेद' की सृष्टि की। इसकी सृष्टि के उपरान्त ब्रह्मा जी ने यह भी कहा कि नाट्य 'यज्ञ' के समान फल देने वाला होगा और पूजा की भांति पवित्रा होगा। यही कारण है कि साहित्य में नाटक लेखन के लिए भरतमुनि ने नाट्य-शास्त्र का निर्माण किया।

एक साहित्यिक विधा होने के कारण नाट्यकला को रचनाकार की अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में मान्यता मिली। संस्कृत साहित्य में नाट्यकला को समस्त कलाओं में श्रेष्ठ स्वीकार किया गया। इस संदर्भ में कहा गया कि 'अनुभव की गहराई जो प्रवाहित अन्तहीन समय से उपजी है और अभिव्यक्ति जो उस अनुभूति की रचनात्मक प्रस्तुति है, आंतरिक संगीतात्मक स्वर-संगति में समस्त कलाओं में श्रेष्ठ बन जाती है।' यह मानवीय अनुभूतियों के द्वारा मानव जीवन के औदात्य को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन जाती है।

किन्तु नाटक को एक रचनात्मक कला स्वीकार कर लेने से ही उसका औत्कर्ष्य सिद्ध नहीं हो जाता और न ही नाट्यशास्त्र रचनाकार को सृजनात्मकता सिखाता है जिससे वह किसी नाटक की सहजता से रचना कर पाने में समर्थ होता है। नाटककार अपने समय और समाज की गतिशील जीवनधारा में स्थिर-संवेदनाओं के संघर्ष को अनुभूत करते हुए अभिव्यक्ति के स्तर पर लाता है। समय का प्रवाह उसे निरंतर उद्वेलित करता है और उस उद्वेलन के परिणामस्वरूप ही वह जीवन की जटिलताओं का गतिशील और सजीव चित्रांकन करता है। वह भी ऐसा चित्रांकन की शब्दों के भीतर से जीवन की छाया निरन्तर बाहर झलकती रहती है। इस अभिव्यक्ति को ही पाठक अनुभूत करते हुए अपने मस्तिष्क में निर्मित होते हुए देखता है।

नाटक जीवन की जटिलताओं को कलात्मक रूप प्रदान करता है लेकिन उन जटिलताओं में व्याप्त द्वंद्व और संघर्ष का उद्वेलन पाठक को नाटककार की अनुभूति के समानान्तर यथावत् रूप से स्पंदित कर पाता हो, यह सम्भव नहीं। इसीलिए नाटक की सार्थकता रंगमंच पर आकर ही होती है।

रंगमंच एक प्रयोगधर्मी कला है। लेकिन वह केवल कला नहीं है वरन् मनुष्य की अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है जो 'रचनाकार की आंतरिक चेतना तथा सर्जनात्मकता' और 'निर्देशक तथा अभिनेता की रंगानुभूति के अंतर्चिन्तन' से उत्पन्न हुआ है। जहाँ नाट्यानुभूति के स्तर पर नाटककार की समाज को देखने की सौन्दर्यदृष्टि और उसे अभिव्यक्त करने की सृजनशील कलात्मकता का कोई निश्चित मापदण्ड नहीं है। ऐसे में उस नाटक में विद्यमान संवेदनाओं की सार्थक प्रस्तुति के लिए निर्देशक को विभिन्न संसाधनों और नाटक के पाठ में अपेक्षित परिवर्तन का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे में नाट्यानुभूति और रंगानुभूति का अंतर्चिन्तन ही संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का नया दृष्टिकोण उभारता है जो रंगमंच पर ही सम्भव हो पाता है।

वास्तव में नाटक और रंगमंच को लेकर मुख्य रूप से दो प्रश्न उभरते रहे हैं। एक प्रश्न तो नाटक को साहित्यिक रचना मानते हुए नाटककार को उसके लेखन की स्वतंत्रता का है कि क्या नाटककार रंगमंचीय बंधनों से मुक्त होकर नाटक की रचना करे? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या नाटककार बदलते हुए समय और परिवेश के अनुसार नाटक की रंगमंचीय आवश्यकताओं और रूढ़ परम्पराओं को स्वीकार करते हुए नाटक का लेखन करे? वर्तमान दौर में रंगमंच की विराटता और समारोहीय रूप को दृष्टिगत रखते हुए ये प्रश्न आज पुनः प्रासंगिक हो उठे हैं।

इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत रखे हैं। विशेष रूप से लब्धप्रतिष्ठित नाटक लेखक एवं आलोचक डॉ. नरेन्द्र मोहन ने अपने विचारों द्वारा नाटक और रंगमंच की सम्बद्धता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– "नाटक और रंगमंच एक दूसरे के साथ इतने संश्लिष्ट और गहरे रूप से सम्बद्ध हैं कि उन्हें अलग-अलग रखकर देखा-पहचाना नहीं जा सकता। नाट्यालेख नाटकीय शब्द का मूर्त रूप है। इसे रंगकर्म से स्पंदित आलेख भी कह सकते हैं। नाटक से रंग-कर्म तक यह स्पंदन आन्तरिक लय की तरह व्याप्त रहता है। नाटक रचना की यह जान है और प्रस्तुति में इसे पकड़ने के लिए निर्देशक और अभिनेता जी-जान से जुटते हैं। रंग-कर्म का पूरा ताम-झाम इस अमूर्त से स्पंदन को मूर्त करने की प्रक्रिया ही तो है। गति और दृश्य इसके बूते शब्द का हिस्सा बनते हैं और प्रस्तुति में आकार ग्रहण करते हैं। नाटक की अवधारणा के मूल में यही स्पंदन है। इसके बिना नाट्याकृति बेजान और रंगकला अधूरी है।"

सुप्रसिद्ध नाट्य निर्देशक इब्राहिम अल्काजी नाटक और रंगमंच को जीबनानुभूति की यात्रा स्वीकार करते हुए कहते हैं कि – "नाटक को चरित्र की अनुभूति यात्रा कहा जा सकता है और रंगमंच वह स्थल है जहाँ यात्रा की जाती की है।" इसी सम्बन्ध में लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा कि "नाटक में नाटक की आत्मा की अनुभूति और उसके प्रत्यक्ष दर्शन के लिए हमें रंगमंच का सत्यभाव चाहिए।"

रंगमंच और नाटक के लेखन के मध्य इस तरह के द्वंद्व की स्थिति के कारण ही नाटक और रंगमंच दोनों का विकास अवरुद्ध होता चला गया। नाटक लेखक और निर्देशक के बीच संवादहीनता की कमी और अपने-अपने अहं के धरातल पर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की लड़ाई के कारण ही नाटक और रंगमंच दोनों एक-दूसरे से परे दिखाई देने लगे। इस सम्बन्ध में राजेश जोशी का मत स्पष्ट है कि – "मुझे कई बार लगता है कि निर्देशक का ज्यादा जोर और ज्यादा ध्यान नाटक के प्रदर्शन पर होता है, लेखक का ज्यादा ध्यान और ज्यादा जोर नाटक में व्यक्त विचार पर होता है। निर्देशक का पाठ और अभिनेता का पाठक कई बार अपने नाट्यकर्म के कारण और कई बार अपने व्यक्त विचार के प्रति लापरवाही के कारण लेखक की इंटरप्रिटेशन (व्याख्या) को बदल देता है। लेखक के लिए यह स्थिति पीड़ादायक होती है। तकनीक पर जोर, विचार और विश्लेषण के प्रति बहुत बार लापरवाह बनाता है। तकनीक को जानना और उसे उपयोग करने में प्रशिक्षित होना निर्देशक को नाट्यालेखक और उसमें आये विचार या इंटरप्रिटेशन के परत को अहमन्य बना देता है। इस तरह के टकराव के चलते अक्सर नए नाट्यालेखों के प्रति अच्छे नाटक समूहों और निर्देशकों में एक नकारात्मक रवैया दियाई देता है।" लेकिन जब लेखक और निर्देशक के मध्य संवाद की स्थिति आती है तो न केवल नाटक का विचार वरन् निर्देशक की कलात्मकता, दोनों को ही पराकाष्ठा तक पहुँचने का अवसर मिलता है। मोहन राकेश के नाटकों के निर्देशन के समय स्वयं मोहन राकेश की उपस्थिति ने निर्देशक ओम शिवपुरी को लेखकीय प्रतिसंवाद द्वारा उनकी मूल विचारणा से परिचित कराया। जिसके चलते ही मोहन राकेश के नाटक आधे-अधूरे को जो ख्याति मिली उतनी ही प्रतिष्ठा ओम शिवपुरी को भी प्राप्त हुई।

इस तरह यह स्पष्ट है कि नाटक और रंगमंच दोनों कलात्मक विधाएं एक-दूसरे की परिपूरक हैं। नाटककार की अनुभूति और रंग निर्देशक की अनुभूति का आपसी समन्वय ही किसी भी नाटक की श्रेष्ठता का आधार बन जाता है। इसलिए नाट्यनुभूति और रंगानुभूति का अन्तर्सम्बन्ध ही नाटक और रंगमंच दोनों की सफलता की धुरी है। आज के समय में नाटक और रंगमंच की एकांगी कल्पना करना ही असम्भव है और वह भी तब जब सामाजिक जीवन में विसंगतियाँ और कुण्ठायें शब्दों के परे मौन से अधिक मुखर हो पाती हैं। इसलिए असंदिग्ध रूप से नाटक की सार्थकता मंच पर ही है और वह तभी पूर्णता प्राप्त करता है जब नाटक लेखक और निर्देशक के मध्य परस्पर संवाद कायम रहे ताकि नाटक का विचार और निर्देशक की कलात्मकता, दोनों को ही पराकाष्ठा तक पहुँचने का अवसर मिल सके।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. नरेन्द्र मोहन, 'नाट्य-कर्म, रंग-कर्म और नाट्यालोचना', समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृष्ठ 73
2. नागरी पत्रिका, हिन्दी रंगमंच शतावार्षिकी विशेषांक अंक 6-7, पृष्ठ 122
3. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पश्चिम का थियेटर तथा भारत का नाट्य और रंगमंच, पृष्ठ 65
4. राजेश जोशी, नटरंग-69, पृष्ठ 23

पंचायती राज सशक्तिकरण और सुशासन

संतोष कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण विकास की धुरी हैं। पंचायत ग्रामीण पुनर्निर्माण एवं लोकतंत्रा की आधारशिला है। यह ग्रामीण स्तर पर स्वशासी संस्था का स्वरूप है। यह जन-शक्ति को ग्राम सभा से लोक सभा तक समान गति से प्रगति-पथ पर अग्रसर कर उसे नव निर्माण के काम में लगाने का माध्यम है। यह जनता की सोद्देश्यपूर्ण सहभागिता एवं सहयोग हेतु अधिक शक्ति एवं सृष्टि प्रदान करने का स्रोत है।[1]

पंचायत और ग्रामीण व्यवस्था

भारतीय समाज व्यवस्था एवं ग्रामीण व्यवस्था के बीच अविच्छिन्न संबंध है। ग्रामीण व्यवस्था ही भारतीय व्यवस्था है, क्योंकि भारत प्रधानत: गाँवों का देश है। इस देश की समृद्धि गाँवों पर निर्भर करती है। ग्रामीण जन-समुदाय की समुन्नति एवं समृद्धि पर ही राष्ट्रीय समुदाय की समुन्नति एवं समृद्धि निर्भर करती है। ग्राम-पंचायत ग्रामीण समुदाय का सामाजिक, आर्थिक, अध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संगठन है। पंचायत संगठन की सुदृढ़ता राष्ट्रीय संगठन की सुदृढ़ता का परिचायक है।[2]

पंचायतें प्रजातंत्रा की प्राथमिक पाठशाला हैं। इसमें ग्रामीण लोग प्रजातंत्रा की शिक्षा ग्रहण करते हैं, सहिष्णुता का पाठ पढ़ते है तथा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की कला सीखते हैं। इससे उनमें उत्तरदायित्व और स्वावलम्बन की भावना जागृत होती है। पंचायते प्रशासन, न्याय तथा ग्रामीण सुरक्षा के सभी काम करती हैं। पंचायतें सत्ता का लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण हैं। यहाँ समानता एवं सामाजिक न्याय, स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता, जन-जागरण एवं जन-सहभागिता, पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावना, स्थानीय संसाधनों एवं मानवीय शक्ति के सम्यक् ज्ञान एवं सदुपयोग तथा ग्रामीण समुदाय के सर्वतोमुखी विकास का सुलभ अवसर है।[3]

पंचायतें भारतीय संस्कृति और समाज का एक अभिन्न अंग रही हैं। वैदिक काल में पंचायतें अत्यन्त सुसंगठित, सुनियोजित और समृद्ध थीं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पंचायत का विस्तृत उल्लेख है। बुद्ध काल में भी पंचायत का उत्कृष्ट स्वरूप था। मुगल काल में भी पंचायतें अक्षुण्ण रहीं। ब्रिटिश शासन काल में पंचायतों की व्यवस्था ध्वस्त हो गयी और सभी कार्य प्रान्तीय सरकारें करने लगी।[4]

पंचायती राज की स्थापना भी भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का अविभाज्य अंग थी। गाँधीजी की ग्राम स्वराज की कल्पना भी ग्राम पंचायत पर ही आधारित थी। स्वतंत्रता आंदोलन कार्यक्रम में उन्होंने गाँव में पंचायत राज की स्थापना का भी कार्यक्रम चलाया और गाँव गाँव में जनमत के आधार पर पंचायत की स्थापना की जाने लगी।

स्वतंत्रता के पश्चात् पंचायतों की व्यवस्था

स्वतंत्रा भारत के संविधान निर्माताओं ने भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के प्रयासों तथा 1948 में गाँधीवादी पी०के० संथानम के प्रस्तावित संशोधन को संविधान सभा में स्वीकार करते हुए भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद-40 में यह व्यवस्था की जिसके अनुसार, "राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी

शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।"

2 अक्टूबर, 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारंभ हुआ। स्वशासन को प्रभावी बनाने के लिए 1957 में भारत सरकार ने बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया।[5] उस समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु त्रिस्तरीय पंचायती राज की स्थापना की सिफारिश की थी। उसने स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नए ढंग से संगठित करने का सुझाव दिया था। समिति ने स्पष्ट रूप से कहा था कि प्रत्येक राज्य में ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतों, प्रखंड स्तर पर पंचायत समितियों एवं जिला स्तर पर जिला परिषदों की स्थापना होनी चाहिए। उसने यह भी कहा था कि इन स्वायत्त संस्थाओं को स्थानीय मामलों के अतिरिक्त योजना तथा विकास संबंधी कार्य भी सौपने चाहिए। पंचायतों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा हो।

इस समिति के अनुशंसाओं के आधार पर राजस्थान के नागौर जिले में सर्वप्रथम पंचायती राज योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1959 को प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया।[6] तत्पश्चात् इसे आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात आदि अन्य राज्यों में लागू किया गया।

पंचायती राज और विभिन्न समितियों का गठन

जनता पार्टी सरकार ने 12 दिसम्बर, 1977 को पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने एवं प्रचलित ढाँचे में आवश्यक परिवर्तन सुझाने हेतु अशोक मेहता समिति का गठन किया। इसने पंचायती राज संस्थाओं के संगठन के दो स्तर जिला परिषद् और मंडल पंचायत बनाने एवं अन्य सुझावों की अनुशंसा की। 1978 में इसकी रिपोर्ट आयी, परंतु इसे स्वीकार नहीं किया जा सका। समय-समय पर पंचायती राज व्यवस्था में सुधार हेतु कई समितियों का गठन किया गया। जी०वी०के० राव समिति; मार्च 1985, एल० एम० सिंघवी समिति; जून 1986, मुख्यमंत्रियों की बैठक; मई 1989 तथा 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक; 1989। सरकारिया आयोग और थुंगन समिति ने भी जिला स्तर पर तथा उससे नीचे पंचायती राज प्रणाली को सुदृढ़ करने की सिफारिशें की थी।

1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा सिंघवी समिति गठित की गई।[7] 1987 में सिंघवी समिति की रिपोर्ट आयी जिसकी मुख्य सिफारिश यह थी कि स्थानीय प्रशासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान की जाये। 1989 में राजीव गाँधी की सरकार ने लोक सभा में संविधान संशोधन विधेयक पेश किया जो लोक सभा में पारित हो गया परन्तु राज्य सभा में पारित नहीं हो पाया। इन्हीं विधेयकों को पी०वी० नरसिंहा राव की सरकार ने 1992 में पुन: पेश किया जो दोनों सदनों में पारित हो गया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने इस विधेयक को अपनी स्वीकृति प्रदान की और यह विधेयक भारत के संविधान का हिस्सा बन गया। लोगों को अधिकार प्रदान करने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए 24 अप्रैल, 1993 को 73वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम लागू किया गया।

इस संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से संविधान में एक नया हिस्सा भाग-9 "पंचायत" शीर्षक से जोड़ा गया। इसके माध्यम से संविधान में अनुच्छेद 243 और अनुच्छेद 243। से 243० तक तथा 11वीं अनुसूची जोड़ते हुए देश में पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित आवश्यक तत्वों का न केवल समावेश किया गया, अपितु पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान किया गया।[8]

73वें संवैधानिक संशोधन[9] के प्रमुख प्रावधान

73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायती राज सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख प्रावधान किये गये :

1. पंचायती राज त्रि-स्तरीय होगा– सबसे नीचे ग्राम पंचायत, बीच में पंचायत समितियाँ, शिखर पर जिला परिषद्। यदि किसी राज्य की जनसंख्या 20 लाख से कम है तो वहाँ द्वि-स्तरीय व्यवस्था होगी– नीचे ग्राम पंचायतें उनके ऊपर जिला परिषदें।

2. पंचायतों के चुनाव पाँच वर्षीय होंगे– राज्यपाल किसी भी समय इन निकायों को भंग कर सकता है, लेकिन आगामी 6 महीनों में उनके चुनाव होने चाहिए।
3. इन निकायों में अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थानों का आरक्षण दिया जायेगा, लेकिन महिलाओं को 1/3 स्थान आरक्षित होंगे। राज्य के कानून द्वारा इन निकायों में उस क्षेत्र के सांसदों एवं विधायकों को भी प्रतिनिधित्व दिया जा सकेगा।
4. राज्य का चुनाव आयुक्त इन चुनावों को करायेगा। उसे राज्यपाल नियुक्त करेगा, उसका स्तर उच्च न्यायालय के जज के बराबर होगा।
5. राष्ट्रपति की अनुमति से पंचायती राज व्यवस्था किसी संघ-शासित क्षेत्र में लागू हो सकती है।
6. अपनी आय बढ़ाने हेतु ग्राम पंचायत छोटे-मोटे कर लगा सकती है; जैसे-वाहन शुल्क, प्रवेश शुल्क, बाजार शुल्क आदि।
7. राज्य की सरकार के बजट में से इन ग्राम पंचायतों को वित्तीय सहायता व अनुदान दिये जायेंगे। राज्यपाल अपने राज्य के वित्त आयोग का गठन करेगा जिसकी सिफारिशों के आधार पर ग्राम पंचायत को राज्य के बजट में से विशेष अनुदान दिये जायेंगे।
8. संविधान की 11वीं अनुसूची जोड़ी गयी जिसमें ग्राम पंचायतों के 29 कार्यों का उल्लेख किया गया है।

पंचायती राज और सुशासन

भारत मूलत: गाँवों का देश है। यहाँ लगभग 80% जनता गाँवों में रहती है। आजादी के 67 वर्षों के उपरान्त भी विकास के कई मानकों में भारत अभी भी बहुत पीछे है। लगभग 40% जनसंख्या अभी भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। ऐसे में देश का विकास निर्भर है गाँवों के विकास पर, और गाँवों का विकास तभी संभव है, जब ग्रामीण जनसंख्या की विकासगत योजनाओं में सहभागिता बने।[10] अत: जरूरत है एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था की, जो पारदर्शी, जबावदेह, संवेदनशील, अनुक्रियाशील, विक्रेन्द्रीकृत तथा जनोन्मुखी हो। पंचायती राज व्यवस्था इन सभी गुणों से युक्त एक ऐसी ही शासन प्रणाली है जहाँ लोग अपने विकास हेतु योजनाएँ बनाते हैं, उन्हें कार्यान्वित करते हैं एवं लाभान्वित होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पंचायती राज व्यवस्था एवं सुशासन का गहरा सम्बन्ध है।

'सुशासन' शासन के उस व्यवहार से सम्बन्धित है जिसमें राज्य की मशीनरी एवं संस्थाएँ अपनी उत्कृष्टता प्राप्त करती हैं।[11] इस उत्कृष्टता के दायरे के अन्दर मुख्यत: राजनीतिक उत्तरदायित्व, बहुपक्षीय भागीदारी, विधि का शासन एवं मानवाधिकार संरक्षण, प्रशासनिक जबाबदेहता, खुलापन एवं पारदर्शिता, वैचारिक स्वतंत्रता एवं सूचना का अधिकार, प्रशासनिक दक्षता एवं प्रभावशीलता, सरकार एवं सभ्य-समाज के मध्य रचनात्मक सम्बन्ध इत्यादि को शामिल किया जाता है। पंचायती राज व्यवस्था इन सारी विशेषताओं से सन्निहित है। यही कारण है कि बिहार राज्य सरकार पंचायती राज व्यवस्था को सशक्त बनाने हेतु अग्रसर है। बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006 के तहत स्थानीय स्वशासन में आम लोगों की सहभागिता बढ़ाने, पारदर्शिता लाने, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों, समाज के अत्यन्त पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है। बिहार देश का पहला राज्य है जिसने पंचायतों एवं शहरी निकायों में महिलाओं के लिए 50% आरक्षण की व्यवस्था की है। राज्य द्वारा महिलाओं के हित में दिया गया आरक्षण से महिलाओं के अन्दर न सिर्फ आत्म-सम्मान की भावना जागृत हुई है, बल्कि महिलाएँ स्वावलम्बी होकर विकासात्मक कार्यों में अपना महत्वपूर्ण योगदान भी दे रही हैं।

पंचायतों की समस्याएँ एवं संभावनाएँ

विगत छ: दशकों से पंचायती राज संस्थाओं के सशक्तिकरण के प्रयास शुरू किये जा चुके हैं, परन्तु आज तक इनकी कार्य प्रणाली एवं प्रभावशीलता संतोषप्रद नहीं कही जा सकती है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण परम्परागत जाति पंचायतों का विद्यमान होना है। ये जातिगत पंचायतें वैधानिक एवं लोकतांत्रिक रूप से गठित पंचातयों की प्रतिद्वंद्वी बन उनके कार्यों में सबसे बड़ी बाधक हैं।

दूसरी बड़ी बाधा राजनीतिक दलों एवं अफसरसाहों की है जो पंचायतों को स्वतंत्रा रूप से कार्य करने देने में कठिनाईयाँ पैदा करते हैं।[12] राजनीतिक दलों को लगता है कि यदि पंचायतें सशक्त हो गयी तो उनकी सत्ता कम हो जायेगी। बिहार जैसे राज्य में पंचायतों की स्थिति अभी भी गंभीर बनी हुई है। पंचायत चुनाव में ग्रामीणों की भागीदारी तो बढ़ी है, परन्तु उनकी भागीदारी बस कुर्सी तक ही है। कुछ जगहों पर पंचायत जागरूक हुई है, परन्तु लोभ, लालच ने उन्हें बस अपने ही फायदे तक सीमित रखा है। जातिवादी मानसिकता भी पंचायतों को आगे बढ़ने में बाधक बन रही है। बिहार में पंचायतों की समस्याएँ सामाजिक कारणों से ज्यादा हैं। उनमें व्याप्त अशिक्षा भी बहुत बड़ी बाधा है। 50% प्रतिशत महिलाओं को आरक्षण प्रदान कर महिलाओं की भागीदारी तो बढ़ी है, परन्तु अशिक्षा, लज्जाशीलता ने प्रॉक्सी लीडरशीप को बढ़ावा दिया है।[13] इस प्रकार पूरे देश में पंचायतों की समस्याएँ एवं कार्य प्रणाली भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न तरह से है। अत: आवश्यकता है एक ऐसे मान्य प्रतिमान को विकसित करने की जिसे प्राय: सभी राज्यों एवं स्थानों पर लागू किया जा सके। वर्ष 2009 में पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 'मॉडल पंचायत एण्ड ग्राम स्वराज एक्ट' में पंचायती राज के भविष्य की रूपरेखा तैयार की गयी है। यह मॉडल कानून पंचायती राज संस्थाओं के सशक्तिकरण का एक बड़ा प्रयास है। इसी प्रकार न्याय पंचायत विधेयक, 2009 भी एक सार्थक कदम है, जिसके तहत ग्राम स्तर पर ही छोटे-मोटे मुकदमा का निपटारा किया जा सकेगा। इसके अलावे पंचायती राज मंत्रालय द्वारा शुरू किये गये ग्रामीण व्यापारिक केन्द्रों तथा निजी पंचायत भागीदारी मॉडल को भी विस्तारित किया जाना आवश्यक है।[14]

पंचायती राज संस्थाओं को मनरेगा योजना में व्यापक भूमिका निभानी होगी।[15] ग्राम पंचायतों को अपने गाँव में उपलब्ध, लोगों की क्षमताओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर रोजगार के अवसर सृजन कराने में अपनी भूमिका निभानी होगी। उन्हें अपने कार्यों, जिम्मेदारियों, अधिकारों को समझना होगा जिसके लिए उन्हें स्वयं भी जागरूक होकर प्रशिक्षण आदि के लिए आगे बढ़ना होगा। सरकार को भी पंचायत प्रतिनिधियों को जागरूक बनाने हेतु समय-समय पर प्रशिक्षण कार्य सम्पन्न करवाने होगें। सबसे महत्वपूर्ण बात मनरेगा में व्याप्त भ्रष्टाचार को खत्म करना होगा और यह सम्भव है सरकारी तंत्रा एवं पंचायत प्रतिनिधियों के बीच आपसी समझ एवं तालमेल से। मनरेगा के अलावे ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध कराने के स्रोतों में लघु एवं कुटीर उद्योग का भी काफी महत्व है। लघु एवं कुटीर उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं जो बड़ी मात्रा में गाँव के हर वर्ग और तबके को रोजगार से जोड़ता है। लघु एवं कुटीर उद्योग में स्थानीय संसाधनों तथा मानवीय श्रम का अधिकतर उपयोग होता है। किसान अधिकतर मौसमी बेरोजगारी से पीड़ित रहते हैं, क्योंकि उनके पास न तो पर्याप्त भूमि होती है और न ही खेती-बाड़ी के अन्य कार्य। ऐसे में यदि स्थानीय कृषि उत्पादन एवं वहाँ की आवश्यकताओं के बीच तालमेल रखते हुए छोटे उद्योग लगाये जायें तो रोजगार के साथ-साथ गाँवों का आर्थिक विकास भी होगा। इसके लिए ग्राम पंचायत द्वारा विशेषज्ञों के माध्यम से गाँवों में हाट, बाजार लगाकर माल को बेचने का भी प्रबन्ध किया जा सकता है। ग्राम पंचायत भारत निर्माण की दिशा में प्रयास करे तो ग्रामीणों को रोजगार के साथ-साथ गरीबी भी दूर की जा सकेगी।[16]

निष्कर्ष

भारत में पंचायती राज व्यवस्था अभी भी संक्रमण की अवस्था में है। इसमें अभी भी प्रतिनिधित्व, वित्तीय व्यवहारिकता और संचालनात्मक उपयोगिता का अभाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। इसकी सफलता के लिए राजनीतिक इच्छा-शक्ति एवं प्रशासनिक समर्थन अनिवार्य एवं अपेक्षित है।[17]

सन्दर्भ सूची

1. प्रमोद कुमार अग्रवाल, 'भारत में पंचायती राज', ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015, पृ. 15
2. ललिता सोलंकी, 'महिला आर्थिक सशक्तिकरण एवं पंचायती राज', क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2015, पृ. 1
3. सीताराम सिंह, 'बिहार में ग्राम पंचायत एवं सुशासन', बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2012, पृ. 29
4. प्रमोद कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ. 20
5. विश्वनाथ गुप्त, 'भारत में पंचायती राज', सुरभि प्रकाशन, दिल्ली, 2015 पृ. 19

6. ललिता सोलंकी, उपरोक्त पृ. 11
7. प्रमोद कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ. 25
8. सीताराम सिंह, उपरोक्त, पृ. 36
9. विश्वनाथ गुप्त, उपरोक्त, पृ. 24-25
10. कविता पाठक, 'भारत में स्थानीय स्वशासन : दिशा एवं दशा', 'भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष-दशम्, अंक-द्वितीय, जुलाई- दिसम्बर, 2018, पृ. 212
11. इम्तियाज अहमद, 'सुशासन की अवधारणा एवं व्यवहार : एक विश्लेषण (भारत के विशेष संदर्भ में)', भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष-दशम्, अंक-द्वितीय, जुलाई-दिसम्बर, 2018, पृ. 380-381
12. प्रमोद कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ. 82-83
13. सीताराम सिंह, उपरोक्त, पृ. 44-45
14. मंजु मालव, 'पंचायती राज संस्थाओं पर विधायी नियन्त्रण', आर०बी०एस०ए० पब्लिशर्स, जयपुर, 2010, पृ. 123-124
15. नरेन्द्रपाल सिंह, 'सतत ग्रामीण विकास का माध्यम मनरेगा', कुरूक्षेत्र, सितंबर 2018, पृ. 46-47
16. एच० एस० शैलेन्द्र, 'राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन', कुरूक्षेत्र, सितंबर 2018, पृ. 12-14
17. सीताराम सिंह, उपरोक्त, पृ. 47

मलिन बस्तियों की स्वास्थ्य-संबंधी समस्यायेंः बहादुरपुर, पटना के परिप्रेक्ष्य में एक भौगोलिक अध्ययन

निरूपमा सुरभि लकड़ा

शोध छात्रा, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

Introduction

मलिन बस्तियाँ आधुनिक नगरीकरण की महत्वपूर्ण परिघटना है तथा यह एक विश्वव्यापी समस्या है, परन्तु विकासशील देशों में अनियोजित एवं अनियन्त्रित नगरीकरण के परिणामस्वरूप यह एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आयी है। पटना महानगर में अनियंत्रित ग्रामीण-नगरीय प्रवास तथा नगर के सीमित क्षैतिज विस्तार की संभावना के परिणामस्वरूप मलिन बस्तियों की समस्या उत्पन्न हुई है।

मलिन बस्तियाँ वैसे क्षेत्र होते है जहाँ की आवास प्रणाली दोषपूर्ण तथा सामान्य सर्वजानिक सुविधाओं की स्थिति दायनीय होती है। लोगों का जीवन स्तर निम्न तथा साक्षरता भी अपेक्षाकृत कम रहता है। अस्वस्थ्यकर सुविधाओं तथा निम्न जीवन-स्तर के कारण यह क्षेत्र विभिन्न बिमारियों का आश्रय स्थल बन जाता है तथा लोग इससे शीघ्रता से ग्रसित हो जाते है। जो उन लोगों के स्वस्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है।

मलिन बस्तियाँ के विकास में नगरीकरण एवं औद्योगिकरण की महत्वपूर्ण भूमिका है। नगरीकरण और औद्योगिकरण ने जहाँ व्यक्तियों को विज्ञान, शिक्षा, तकनीकी ज्ञान और एक अच्छी वैज्ञानिक समझ दी है वहीं करोड़ों व्यक्तियों को नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिये विवश किया है। नगरीकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन-शैली जो अद्‌भूत रूप से नगरीय विकास से जुड़ी है, को पहचानने के लिये करते है। जिस अनुपात में ग्रामीण जनसंख्या घटती है ठीक उसी अनुपात से नगर की जनसंख्या में वृद्धि होती है और इस नरकीय जीवन को गन्दी बस्ती में देखा जा सकता है। एक छोटी सी झोपड़ी, कच्चे मकान अथवा एक कोठरी में 10-15 व्यक्ति तक रहते है। जल के विकास का यहाँ कोई प्रबन्ध नहीं होता। पानी यहाँ सड़ता रहता है। कूड़े कचड़े का यहाँ ढेर लगा रहता है। शौच का कोई स्थान नहीं होता। बैठने के लिये इसके पास कोई स्थान नहीं है। तंग-संकरी गन्दी बस्तियाँ जहाँ जीवन कम और बीमारियाँ अधिक है। पीले मुर्झाये चेहरे चिपके गाल, उभरी हड्डियाँ, फटे गन्दे कपड़े यहाँ का सौन्दर्य है। इन्हें पता नहीं ये कब जवान होते है और कब बूढ़े हो जाते है। कब इन्हें टी०वी० हो जाती हैं और कब कैंसर। ये तो मौत के मुँह में जन्म लेते है इनका जिन्दा रहना और मरना लोगों के लिये कोई महत्व नहीं रखता (आखिर गरीब के मरने का कोई अर्थ नहीं होता) गन्दी बस्तियों में इनका जीवन नाली के कीड़ों जैसा ही है। इस तरह गन्दी बस्तियों को सीधा संबंध बढ़ती हुई जनसंख्या और आवास व्यवस्था की कमी से है। जो समय के साथ और गहरी होती जा रही है।

मलिन बस्ती व स्वस्थ

मलिन बस्तियों में स्वस्थ्यजनक सुविधाओं का पूर्ण अभाव होता है। इन बस्तियों में दूषित कीड़ों (मच्छर, मक्खी, पिस्सू, खटमल, तिलचट्ठा) से अनेक प्रकार का बिमारियाँ फैलाते है। दूषित जल के प्रयोग से इन लोगों को अनेक बिमारियाँ लग जाती है। जिसमें पेचिश, मलेरिया, पीलिया, टाफाइड आदि प्रमुख है। कुछ मलिन बस्तियाँ गन्दे नाले के किनारों पर बसी हुई होती है। जहाँ से सदा गन्दी बदबू आती रहती है। और मानव स्वस्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है। इन गन्दे नालों तथा कूड़े के ढेर पर लाखों के संख्या में मक्खी-मच्छर पलते है जो विभिन्न बिमारियों का कारण बनते है। इन बस्तियों के निवासी नशीली दवाओं, शराब, सिगरेट, आदि का प्रयोग करते है। जिससे यहाँ के लोगों का स्वस्थ्य प्रभवित होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ के लोगों में होने वाली अन्य बिमारी इस प्रकार है: मौसमी बुखार, पेट खराब, एड्स, कैंसर, एपौंडिक्स, अतिसार (diarrhoea) पीतज्वर (yellow fever) डेंगू तथा (नेत्रशोध) नेत्ररोग आदि प्रमुख है।

अध्ययन क्षेत्र: पटना बिहार की राजधानी है। यह बिहार का सबसे अधिक आबादी वाला प्रमुख नगर है। इसमें 72 मलिन बस्ती है। बहादुरपुर स्थल उनमें से एक है।

इस क्षेत्र से 30 परिवार को अध्ययन के लिये चुना गया जिसमें कुल जनसंख्या 215 है।

बहादुरपुर पटना नगर निगम के पूर्वी भाग में स्थित है। यह एक पुरानी मलिन बस्ती है। जो अनियोजित रूप से विकसित हो गई है। यह मलिन बस्ती मध्य वर्गीय अवासीय क्षेत्र के मध्य में स्थित है।

चूँकि यह पटना राजधानी क्षेत्र के अन्तर्गत होने के कारण यहाँ सड़कें पक्की है। परन्तु यहाँ का अधिकांश अवास झुग्गी झोपड़ी एवं कच्चे मकानों के रूप में है। यहाँ के अधिकांश लोग कचरा चुनने एवं कबाड़ी तथा इसी तरह के निम्न स्तरीय कार्यों में संलग्न है। इसके अतिरिक्त आवासीय क्षेत्र के आस-पास साफ-सफाई का उचित प्रबंध नहीं होने के कारण इनका स्वस्थ्य प्रभावित रहता है।

अध्ययन क्षेत्र: बहादुरपुर, पटना

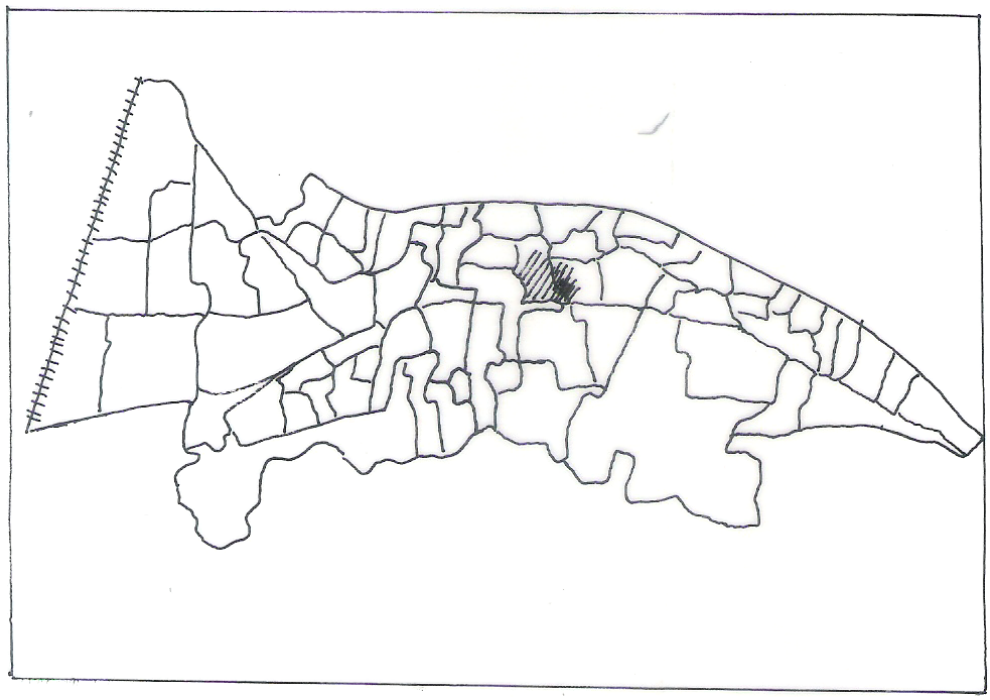

अध्ययन क्षेत्रः-बहादुरपुर

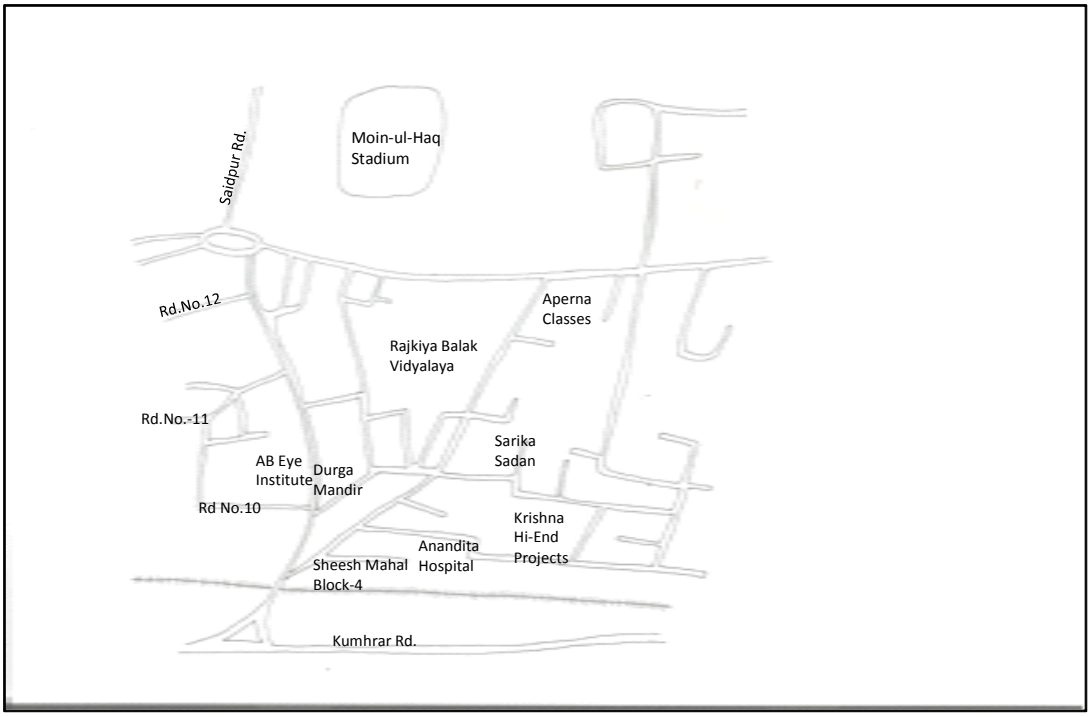

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध का शीर्षक "मलिन बस्तियों की स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें: बहादुरपुर, पटना के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन" इस शीर्षक के आधार पर शोध का उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. अध्ययन क्षेत्र में या बहादुरपुर के मलिन बस्ति में रहने वाले लोगों की पहचान करना।
2. बहादुरपुर के मलिन बस्ती के स्वास्थ्य का अध्ययन करना।
3. अध्ययन क्षेत्र के मलिन बस्तियों के लोगों में होने वाली बिमारियों का पता लगाना।
4. अध्ययन क्षेत्र के लोगों के पोषक स्तर का पता लगाना।
5. प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र के लोगों में बिमारियों के प्रति जागरुकता का पता लगाना तथा यहाँ रहने वाले लोगों को बिमारियों से बचाव की जानकारी देना।
6. प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य स्वस्थ्य से संबंधित अन्य समस्याओं को उजागर करना तथा उसके निवारण की दिशा में ध्यान आकर्षित करना।
7. प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य मलिन बस्तियों में बिमारियों के द्वारा नुकसानों का पता लगाना।
8. प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बिमारियों से मरने वाले लोगों का पता लगाना।

विधियाँ

प्रस्तुत अध्ययन सम्मिलित संकेत विधि (Composite IndexTechnique) पर आधारित है।

जैसा कि वर्त्तमान अध्ययन में शोधकर्त्ता के द्वारा उपयोग में लाये गये कम्पोजिट इण्डेक्स टेकिनिक में 12 मानक चर का उपयोग किया गया है। यह केवल कम्पोजिट इण्डेक्स मेथड पर आधारित नहीं है बल्कि मानक विचलन विश्लेषण पर भी आधारित है। विधि के अन्तर्गत निम्न कार्य किये गये हैं।

1. प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक आँकड़े पर आधारित है जिससे सर्वे द्वारा पूरा किया गया है।
2. अध्ययन क्षेत्र के स्वास्थ्य से संबंधित प्रश्नावली तैयार की गई।
3. प्रस्तुत अध्ययन में 12 मानक चर का चुनाव किया गया है।
4. प्रस्तुत अध्ययन में सांख्यिकीय विधि से प्रत्येक मानक चरों का अलग-अलग मान दिया गया है।
5. प्रत्येक मानक चरों को सूची एक में दिये गये तार्किक वर्णन के लिए उपयुक्त माना गया है।
6. X मान में प्रत्येक मानक चर का कम्पोजिट स्कोर लिया गया।
7. X मान को जोड़ा गया।
8. X मान के द्वारा मानक विचलन निकाला गया।
9. स्थानिक विश्लेषण में संकेंन्द्रण व पृथक्करण को दर्शाया गया है।

सूची-1

मापक	X - मान
परिवार का प्रकार	X^1
मासिक आय	X^2
आवासीय संरचना	X^3
साक्षरता	X^4
कार्यिक संरचना	X^5
स्वास्थ्य संरचना	X^6
पोषक स्तर	X^7
चिकित्सा सुविधा	X^8
बिमारी के कारण मृत्यु	X^9
बच्चों का जन्म	X^{10}
गर्भावस्था में स्वास्थ्य जाँच	X^{11}
बच्चों का टीका	X^{12}

सूची-2: मानक चरों का मूल्य

परिवार का प्रकार		मासिक आय	
संयुक्त	2	2000 से कम	1
एकल	1	2000 से अधिक	2

आवासीय संरचना		साक्षरता	
झोपड़ी	1	76–100%	4 अच्छा
कच्चा	2	51–75	3 सामान्य
पक्का	3	26–50	2 बुरा
		0–25	1 बहुत बुरा
कार्यिक संरचना		स्वास्थ्य का स्तर	
द्वितीयक	1	0–25	4 अच्छा
तृतीयक	2	26–50	3 सामान्य
		51–75	2 बुरा
		76–100	1 बहुत बुरा
पोषक स्तर		चिकित्सा सुविधा	
सब्जी	1	प्राइवेट	2
सब्जी+दूध+फल	2	सरकारी	1
बीमारी से मृत्यु		बच्चों का जन्म	
नहीं	2	दाई	1
हाँ	1	सरकारी	2
प्राइवेट	3		
गर्भावस्था में जाँच		बच्चों का टीका	
हाँ	2	हाँ	2
नहीं	1	नहीं	1

सूची-3: बहादुरपुर मलिन बस्ति के स्वास्थ्य की दशाओं को दर्शाने वाले चर

क्र. सं.	परिवार का प्रकार	मासिक वेतन	आवासीय संरचना	साक्षरता	कर्मिक संरचना	स्वास्थ्य का स्तर	पोषक तत्व	चिकित्सा सुविधा	बिमारी से मृत्यु	बच्चों का जन्म	गर्भभा-वस्था में जाँच	बच्चों को टीका
1	संयुक्त	2000<	पक्का	40%	तृतीयक	40	सब्जी	प्राइवेट	नहीं	प्राइवेट	हाँ	हाँ
2	एकल	2000<	पक्का	40%	तृतीयक	60	दू+फ+स.	प्राइवेट	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ
3	एकल	2000>	झोपड़ी	33.3%	द्वितीयक	66.67	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ
4	एकल	2000<	झोपड़ी	60%	तृतीयक	60	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ
5	एकल	2000<	झोपड़ी	40%	द्वितीयक	40	सब्जी	प्राइवेट	नहीं	दाई	नहीं	हाँ
6	संयुक्त	2000<	झोपड़ी	23.08%	द्वितीयक	46.15	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	नहीं	नहीं

7	संयुक्त	2000<	झोपड़ी	42.86%	तृतीयक	42.86	सब्जी	प्राइवेट	नहीं	दाई	हाँ	हाँ
8	एकल	2000<	कच्चा	33.3%	द्वितीयक	66.67	सब्जी	प्राइवेट	नहीं	दाई	नहीं	हाँ
9	संयुक्त	2000<	पक्का	50%	द्वितीयक	33.33	सब्जी	प्राइवेट	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ
10	संयुक्त	2000<	झोपड़ी	44.44%	द्वितीयक	100	सब्जी	प्राइवेट	हाँ	प्राइवेट	हाँ	हाँ
11	संयुक्त	2000<	झोपड़ी	33.33%	द्वितीयक	88.89	सब्जी	प्राइवेट	नहीं	प्राइवेट	हाँ	हाँ
12	एकल	2000<	झोपड़ी	66.67%	द्वितीयक	66.67	सब्जी	प्राइवेट	नहीं	प्राइवेट	हाँ	हाँ
13	संयुक्त	2000<	झोपड़ी	27.27%	द्वितीयक	63.63	सब्जी	सरकारी	हाँ	प्राइवेट	नहीं	हाँ
14	संयुक्त	2000>	झोपड़ी	33.33%	द्वितीयक	50	सब्जी	सरकारी	हाँ	सरकारी	हाँ	हाँ
15	संयुक्त	2000<	पक्का	33.33%	तृतीयक	33.33	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	नहीं	नहीं
16	एकल	2000<	झोपड़ी	33.3%	द्वितीयक	66.67	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	नहीं	नहीं
17	एकल	2000<	झोपड़ी	60%	तृतीयक	60	सब्जी	सरकारी	हाँ	सरकारी	हाँ	हाँ
18	एकल	2000<	झोपड़ी	60%	द्वितीयक	60	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ
19	संयुक्त	2000<	झोपड़ी	20%	तृतीयक	70	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	हाँ	हाँ
20	एकल	2000<	झोपड़ी	0%	द्वितीयक	66.67	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	नहीं	नहीं
21	एकल	2000<	पक्का	100%	द्वितीयक	60	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	नहीं	नहीं
22	एकल	2000<	झोपड़ी	83.83%	तृतीयक	33.33	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	नहीं	हाँ
23	संयुक्त	2000<	कच्चा	50%	तृतीयक	66.67	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	नहीं	हाँ
24	संयुक्त	2000<	पक्का	41.67%	द्वितीयक	41.67	दू+फ+स.	सरकारी	नहीं	प्राइवेट	हाँ	नहीं
25	संयुक्त	2000<	पक्का	75%	द्वितीयक	62.5	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ
26	संयुक्त	2000<	झोपड़ी	10%	द्वितीयक	60	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	नहीं	नहीं
27	संयुक्त	2000<	पक्का	75%	द्वितीयक	50	सब्जी	सरकारी	हाँ	दाई	हाँ	हाँ
28	एकल	2000<	झोपड़ी	0%	द्वितीयक	71.43	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ
29	एकल	2000<	कच्चा	0%	द्वितीयक	60	सब्जी	सरकारी	नहीं	दाई	हाँ	नहीं
30	एकल	2000<	कच्चा	100%	तृतीयक	33.33	सब्जी	सरकारी	नहीं	सरकारी	हाँ	हाँ

स. – सब्जी, दू – दूध, फ – फल

सूची-4

No.	X^1	X^2	X^3	X^4	X^5	X^6	X^7	X^8	X^9	X^{10}	X^{11}	X^{12}	X		
1	2	2	3	2	2	3	1	2	2	3	2	2	26	5.7	32.49
2	1	2	3	2	2	2	2	2	2	2	2	2	24	3.7	13.69
3	1	1	1	2	1	2	1	1	2	2	2	2	18	–2.3	5.29
4	1	2	1	3	1	2	1	1	2	2	2	2	20	–0.3	0.09

5	1	2	1	2	1	3	1	2	2	1	1	2	19	–1.3	1.69
6	2	2	1	1	1	3	1	1	2	1	1	1	17	–3.3	10.89
7	2	2	1	2	2	3	1	2	2	1	2	2	22	1.7	2.89
8	1	2	2	2	1	2	1	2	2	1	1	2	19	–1.3	1.69
9	2	2	3	2	1	3	1	2	2	2	2	2	24	3.7	13.69
10	2	2	1	2	1	1	1	2	1	3	2	2	20	–0.3	0.09
11	2	2	1	2	1	1	1	2	2	3	2	2	21	0.7	0.49
12	1	2	1	3	1	2	1	2	2	3	2	2	22	1.7	2.89
13	2	2	1	2	1	2	1	1	1	3	1	2	19	–1.3	1.69
14	2	1	1	2	1	3	1	1	1	2	2	2	19	–1.3	1.69
15	2	2	3	2	2	3	1	1	2	1	1	1	21	0.7	0.49
16	1	2	1	2	1	2	1	1	2	2	1	1	17	–3.3	10.89
17	1	2	1	3	2	2	1	1	1	2	2	2	20	–0.3	0.09
18	1	2	1	3	1	2	1	1	2	2	2	2	20	–0.3	0.09
19	2	2	1	1	2	2	1	1	2	1	2	2	19	–1.3	1.69
20	1	2	1	1	1	2	1	1	2	2	1	1	16	–4.3	18.49
21	1	2	3	4	1	2	1	1	2	1	1	1	20	–0.3	0.09
22	1	2	1	4	2	3	1	1	2	1	1	2	21	0.7	0.49
23	2	2	2	2	2	2	1	1	2	1	1	2	20	–0.3	0.09
24	2	2	3	2	1	3	2	1	2	3	2	2	25	4.7	22.09
25	2	2	3	3	1	2	1	1	2	2	2	2	23	2.7	7.29
26	2	2	1	1	1	2	1	1	2	1	1	1	16	–4.3	18.49
27	2	2	3	3	1	3	1	1	1	1	2	2	22	1.7	2.89
28	1	2	1	1	1	2	1	1	2	2	2	2	18	–2.3	5.29
29	1	2	2	1	1	2	1	1	2	1	2	1	17	–3.3	10.89
30	1	2	2	4	2	3	1	1	2	2	2	2	24	3.7	13.69
														609	**203.11**

सूची-5

स्वास्थ्य दशाओं के स्तर	SD मान	कुल संख्या	परिवार की क्रम संख्या
अति उच्च	25.5–28.1	1	1
उच्च	22.9–25.5	5	2, 9, 24, 25, 30
मध्य	20.3–22.9	6	7, 11, 12, 15, 22, 27
निम्न	17.7–20.3	13	3, 4, 5, 8, 10, 13, 14, 17, 18, 19, 21, 23, 28
अति निम्न	15.1–17.7	5	6, 16, 20, 26, 29

बहादुरपुर के स्वास्थ्य दशाओं का स्तर

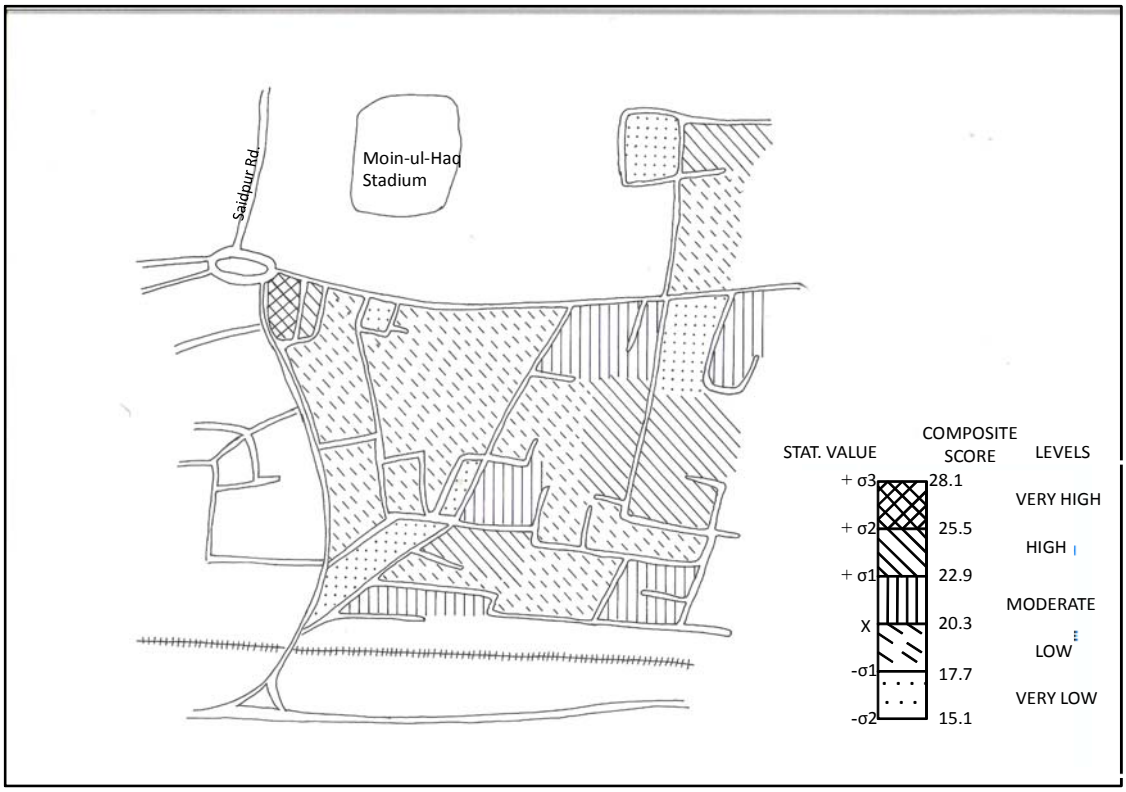

स्वास्थ्य के दशाओं को दर्शाने वाले मापक: प्रस्तुत अध्ययन से संबंधित समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने के लिये 12 चरों में चुनाव किया गया है। सूची में इन चरों को दर्शाया गया है और प्रत्येक चर के लिये अलग-अलग सांख्यिकीय संकेतक मान का उपयोग किया गया है। जैसे X^1, X^2 इत्यादि।

अध्ययन क्षेत्र में स्वस्थ्य का स्तर: प्रस्तुत अध्ययन सांख्यिकीय विश्लेषण के अन्तर्गत मानक विचलन विधि के द्वारा लोगों के स्वस्थ्य के स्तर को निकाला गया है। जहाँ ग मान को जोड़ करके माध्य मान निकाला गया जो 20.3 है।

मानक विचलन (SD) मान $\sqrt{\frac{x-\bar{x}}{N}}$ है।

पुन: मानक विचलन विधि में सूत्र के द्वारा मानक विचलन मान 2.60 आया जिसे सूची-5 में दर्शाया गया है।

अति उच्च: यहाँ परिवार संख्या 1 का स्वास्थ्य अति उच्च स्तर का है। इनका मासिक वेतन 2000 से अधिक है। ये पक्के आवास में रहते हैं, ये चिकित्सा सुविधा प्रावइेट अस्पताल से लेते हैं। बिमारी के कारण किसी सदस्य की मृत्यु नहीं हुई है। बच्चे का जन्म प्राइवेट अस्तपताल में सभी सुविधाओं के साथ हुआ। गर्भावस्था में नियमित जाँच हुई है। बच्चों को बिमारियों से बचाव के लिये सभी प्रकार की टीका दिलवाया गया है। इस कारण अन्य लोगों की तुलना में इस परिवार का स्वास्थ्य स्तर अति उच्च है।

उच्च: परिवार संख्या 2, 9, 24, 25 और 30 का स्वास्थ्य दशा उच्च स्तर का है। इस स्तर के अधिकांश लोगों का मासिक

वेतन 2000 से अधिक है। इन परिवारों के अधिकांश लोग पक्के मकानों में रहते हैं। परिवार के लोग साक्षर हैं। इन परिवारों के सदस्यों का स्वास्थ्य अच्छा है तथा ये मलिन बस्तीयों में होने वाले बिमारियों से कम प्रभावित है। इनके भोजन में पोषक तत्वों की मात्रा अधिक है। चिकित्सा सुविधा प्राइवेट तथा सरकारी दोनों अस्पतालों से लेते हैं। महिलाओं के गर्भावस्था में नियमित जाँच कराई गई है तथा बच्चों को भी बिमारियों से सुरक्षा के लिए टीका दिलवाया गया है। अत: इन परिवारों के लोगों का स्वास्थ्य उच्च स्तर है।

मध्य: मध्य स्तरीय दशाओं के अन्तर्गत परिवार के अधिकांश लोग झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं, साक्षरता स्तर सामान्य है, ये द्वितीयक और तृतीयक दोनों प्रकार के कार्यों में लगे हैं। यहाँ के अधिकांश लोगों का स्वास्थ्य स्तर सामान्य है। इन परिवारों में गंभीर बिमारी नहीं देखने को मिली बल्कि अधिकतर लोग मौसमी बिमारियों तथा शरीर में दर्द आदि बिमारियों से पीड़ित दिखे। इसके भोजन में पोषक तत्वों की मात्रा सामान्य है। हमेशा दूध सब्जी नहीं ले सकते किन्तु तीनों समय का भोजन ले लेते हैं। चिकित्सा सुविध ा के लिए प्राइवेट और सरकारी दोनों का प्रयोग करते हैं। परिवार संख्या 7, 11, 12, 15, 22 तथा 27 के लोग मध्य स्तरीय में आते हैं।

निम्न: बहादुरपुर क्षेत्र में निम्न स्तरीय स्वास्थ्य दशाओं के अंतर्गत अधिकांश परिवार आते हैं। इसमें परिवार संख्या 3, 4, 5, 8 10, 13, 14, 17, 18, 19, 21, 23 तथा 28 है। यहाँ कुछ परिवार में आय 2000 से कम भी है। अधिकांश लोग झोपड़ी में रहते हैं। इन परिवारों के लोग कम पढ़े-लिखे हैं साक्षरता दर निम्न है, तथा स्वास्थ्य स्तर भी निम्न है। इन परिवार के लोग निम्न स्तरीय कार्यों जैसे कचड़ा चुनने, रिक्शा, ठेला चलाने, दाई तथा मजदूर का कार्य करते हैं। साक्षरता निन्त तथा निम्न आय कारण ये अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाते तथा अधिकतर समय गंदगी में रहते हैं इसके कारण अनेक प्रकार की बिमारियों के शिकार रहते हैं।

अति निम्न: परिवार संख्या 6, 16, 20, 26, 29 अति निम्न स्वास्थ्य दशाओं के अन्तर्गत आते हैं, इन परिवार के लोग झोपड़ियों में रहते हैं, तथा इन परिवार के अधिकतर लोग निरक्षर हैं, परिवार का साक्षरता दर अति निम्न है जिस कारण ये निम्न स्तरीय कार्यों में लगे हैं। इनके परिवार में बच्चों का पालन-पोषण अच्छी तरह से नहीं हो पाता है बच्चे भी कचरा चुनने आदि का कार्य करते हैं। इन्हें तीनों समय का भोजन नहीं मिल पाता है। बच्चों को भी बिमारी होने पर समुचित चिकित्सा सुविधा नहीं मिल पाती। अत: उनका स्वास्थ्य हमेशा खराब रहता है। वृद्ध तथा महिलाएँ भी अनेक बिमारियों से पीड़ित रहती हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि लोगों के जीवन को सुचारु रुप से चलाने के लिए रोटी कपड़ा और मकान की आवश्यकता होती है, परन्तु अध्ययन क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों के पास न तो खाने के लिए स्वच्छ भोजन है, न ही पीने के लिए स्वच्छ पानी, न ही रहने के लिए स्वच्छ आवास की व्यवस्था है। यहाँ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यहाँ निवास करने वाले लागों का जीवन जीने का ढंग भी अत्यंत निम्न स्तर का है। यहाँ के मलिन बस्तियों में निवास करने वाले लागों के विभिन्न जानलेवा बिमारियों से ग्रसित होने के कारण स्वास्थ्य का स्तर अत्यंत निम्न है, जो निम्न जीवन स्तर का सुचक है। अध्ययन क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों के अच्छे स्वास्थ्य व स्वच्छ जीवन के लिए राजनैतिक, प्रशासनिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक स्तर पर उचित प्रयास की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. मौर्य, एस. डी. (2009): आवासीय भूगोल, इलाहाबाद, शरदा पुस्तक भवन।
2. तिवारी, आर. सी. (2009): भारत का भूगोल, द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद, प्रयाग पुस्तक भवन।
3. सिंह, आर. एन., मौर्य, एस. डी. (2010): नगरीय भूगोल, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, शरदा पुस्तक भवन।

भारत में महिलाओं की प्रस्थिति : एक ऐतिहासिक अवलोकन

प्रो० (डॉ०) रामानन्द राम

(प्राचार्य), जगलाल चौधरी कॉलेज, छपरा, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध आलेख का सार

सम्पूर्ण विश्व में भारत समाज एवं संस्कृति अपनी विशिष्टता एवं समृद्ध को लेकर प्राचीन समय में प्रथम स्थान को प्राप्त किया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन भारत में वैदिक काल तक महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक रही है, लेकिन उसके बाद से उनकी स्थिति में ह्रास की प्रक्रिया निरन्तर दृष्टिगोचर होती है। भारतीय समाज में उत्तर वैदिक काल से ही नारी जाति शोषण, दमन एवं उत्पीड़न का शिकार हुई है तथा उसे नि:शक्त अबला बनाया गया है। सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण तथा विकास में पुरुष समाज को बराबर की सहयोग देनेवाली स्त्री को निम्न स्थिति एवं द्वितीय प्रकार की नागरिकता का शिकार होना पड़ा है। यदि संक्षिप्त रूप में भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति का अवलोकन किया जाये तो नारी जाति के प्रति व्यवहार में प्रशंसा और श्रद्धा से तिरस्कार और दुर्व्यवहार तक की अस्थिरता दर्ज है, जो लोकतांत्रिक मूल्यों से दूर है। कभी नारी की पूजा की जाती रही है, तो आज उसका देह सम्पूर्ण आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

मूल शब्द: महिला सशक्तिकरण, संस्कृति, सभ्यता, प्राचीन इतिहास, वैदिक संस्कृति, सुधार, विकास, प्रस्थिति।

प्रस्तावना

वैदिक युग में भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति व उत्तराधिकारी के साथ अन्य अधिकार प्राप्त थे। पुरुषों के समान स्वतन्त्रता तथा सम्मान की रक्षा करना एक महान कर्त्तव्य माना जाता था। स्पष्टत: वैदिक युग में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी। अदिति, लोपमुद्रा, गार्गी, मैत्रयी, घोषा और अपाला जैसी असाधारण प्रतिभाशाली महिलाओं की शिक्षा का स्तर उस युग के शिक्षित पुरुषों के समकक्ष एवं समान था।[1] मनीषी याज्ञवालक्य ने वयस्क महिलाओं को अपनी जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता प्रदान किया था। गार्गी ने तो अपनी शर्त्तों पर ही एक मनुष्य को अपने पति के रूप में वरण किया था। स्पष्ट है कि वैदिक काल में भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति और सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त थे। वैदिक साहित्य से पता चलता है कि उस समय का आदर्श, नारी पुरुष की प्रकृति है, जिसके बिना उसका जीवन संभव न था। पत्नी के रूप में उसकी स्थिति ऊँची थी। ऋग्वेद के मतानुसार नारी ही घर है। अथर्ववेद में कहा गया है कि "नववधू, तू जिस घर में जा रही हो, वहाँ की तू साम्राज्ञी है। तेरे ससुर, सास, देव व अन्य तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हैं।"[2] यजुर्वेद से स्पष्ट होता है कि नारी को संध्या करने तथा उपनयन संस्कार के अधिकार प्राप्त थे।[3] इस काल में महिला को शिक्षा एवं साहित्य के अध्ययन करने की पुरुषों के समान स्वतंत्रता थी। धर्म एवं अनुष्ठान के कार्य बिना नारी के पूरे नहीं किए जा सकते थे। नारी अपने पति को दूसरा जन्म देती है, ऐसा उल्लेख 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मिलता है। पी०एन० प्रभु के अनुसार, जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था, स्त्री-पुरुष में कोई विशेष भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्वपूर्ण थी।" इस काल में पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह आदि कुरीतियाँ नहीं थी। महिलाओं को सामाजिक सम्बन्ध बनाने एवं स्वछन्दतापूर्वक विचरण करने पर कोई रोक न थी। स्त्रियों के शील व सम्मान की रक्षा करना सबसे बड़ा धर्म एवं उनका अपमान करना सबसे बड़ा पाप माना जाता था। वंश-विस्तार, पिण्डदान, तर्पण आदि में लड़कों का महत्व होने की वज से पुत्री की अपेक्षा पुत्र जन्म को अधिक महत्व दिया जाता था।

ऋग्वेद में भी बारम्बार पुत्रों की प्राप्ति की कामना की गई है, परन्तु लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार का भी कहीं उल्लेख नहीं है। विधवाओं को अपने देव या अन्य व्यक्तियों के साथ विवाह करने पर कोई पाबन्दी न थी। नियोग के द्वारा सन्तानोत्पत्ति के लिए किसी भी व्यक्ति से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने की छूट थी। इन सब तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में सभी क्षेत्रों में महिलाओं का स्थान पुरुषों के समान था।

वैदिक काल में महिलाओं को, जो सम्मान एवं बराबर का दर्जा प्राप्त था, वह उत्तरोत्तर कम होता चला गया। उत्तर-वैदिक काल के धर्मसूत्रों में बाल-विवाह का निर्देश दिया गया, जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की शिक्षा में बाधा पहुँची एवं शिक्षा का स्तर गिरता चला गया। उनके लिए वेदों का ज्ञान असम्भव हो गया। उत्तर-वैदिक काल में महिलाओं को धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारों से वंचित करने के दो निम्नलिखित प्रमुख कारण थे- प्रथम, कर्मकाण्ड की जटिलता और पवित्रता की धारणा में वृद्धि, जिसकी वजह से यह विश्वास किया जाने लगा कि मंत्रों के उच्चारण में तनिक-सी-भूल भी अनिष्टकारक होती है। इसलिए नारी वर्ग को उनके अध्ययन से अलग कर दिया गया। दूसरी कारण अन्तर्जातीय विवाह था। आर्यों ने अपनी समुदाय में महिलाओं की कमी को पूरा करने के लिए अनार्यों से विवाह किया, जो विधि-विधान आदि से अपरिचित थी। इस कारण इनको धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र से दूर रखना उचित समझा गया। विवाह, स्त्रियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया, विधवा-विवाह पर निषेध जारी किया गया। बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन और बढ़ा। इन सब प्रमाणों से पता चलता है कि उत्तर वैदिक काल के अन्त में सैद्धान्तिक रूप से महिलाओं के अधिकारों पर पाबन्दी लग गई थी, परन्तु व्यावहारिक रूप में वे अधिकारों का उपयोग करती रही थी। स्पष्टत: उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की प्रस्थिति लोकतंत्र से दूरी बनाना शुरू कर दिया।

तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक का काल धर्मशास्त्र-काल कहलाता है। इस काल में 'विष्णु संहिता', 'पाराशर-संहिता' एवं 'याज्ञवल्क्य-संहिता' की रचना हुई, जिसमें 'मनुस्मृति' को ही व्यवहार की कसौटी मानकर वैदिक एवं लोकतांत्रिक नियमों को पूर्णत: तिलांजलि दे दी गई। महिलाएँ इस काल की सामाजिक एवं धार्मिक संकीर्ण विचारधारा की शिकार बनी। वैदिक काल की 'गृह लक्ष्मी', 'माता' एवं 'शक्तिप्रदायिनी देवी' अब याचिका, सेविका व निर्बलता के प्रतीक के रूप में दिखाई देने लगी। वैदिक काल की वह नारी जो अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा देश के साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी, अब परतन्त्र, पराधीन, नि:सहाय और निर्बल बन चुकी थी।"[5] पति स्त्री के लिए देवता है, विवाह ही उसके जीवन का एक मात्र संस्कार है, आदि विचारधाराओं ने इस काल में जन्म लिया। 'मनुस्मृति' में तो स्त्रियों के अधिकारों को छीनते हुए यहाँ तक लिख दिया कि नारी कभी स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है, बचपन में पिता के अधिकार में, युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के नियन्त्रण में रहे।"[6] साथ ही स्त्रियों के कर्त्तव्य की व्याख्या करते हुए लिखा कि उनका परम कर्त्तव्य पति की सेवा ही है, चाहे पति कैसा भी क्यों न हो। प्रो० होपकिंस ने इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है कि एक स्त्री का पति सर्वरूप से निर्गुण होते हुए भी पूज्य देवता के रूप में मान्य है। वही एक मात्र केन्द्र है, जिसके चिन्तन में एक महिला अपने को नियोजित करती है, वही उसके जीवन का ताना-बाना है, सर्वस्व है।"[7] इस युग में महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकारों से वंचित कर दिया गया। साथ ही यह भी कहा गया है कि विवाह का विधान ही महिलाओं का उपनयन है। पति की सेवा ही गुरूकुल का वास है और घर का काम ही अग्नि की सेवा है।"[8] इन सब तथ्यों से स्पष्ट होता है कि इस काल में महिलाओं की स्थिति अधिक खराब हो गई, जिसके फलस्वरूप महिलाएँ वस्तु बन गई, जिसे पुरुष 'अपनी इच्छानुसार किसी भी उपयोग में ला सकता था।'

16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक का समय मध्यकाल कहलाता है। इस युग में विशेषकर मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् महिलाओं की स्थिति जितनी तीव्र गति से पतन की ओर अग्रसर हुई, वह हमारे सामाजिक इतिहास में कलंक के रूप में सदैव याद रहेगा। 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ने से हमारी संस्कृति की रक्षा करना जरूरी हो गया था। इसलिए ब्राह्मणों ने संस्कृति की रक्षा, महिलाओं के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता बनाए रखने के लिए महिलाओं सम्बन्धी नियमों को कठोर बना दिया। 5-6 वर्ष की आयु में ही विवाह होने लगे, जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की शिक्षा एवं सामाजिक स्तर में तेजी से गिरावट आई। पर्दा-प्रथा का विकास तो इस सीमा तक हुए कि परिवार के अन्य सदस्य तो दूर, पति स्वयं भी किसी अन्य के सामने अपनी पत्नी का मुँह नहीं देख सकता था। पति की मृत्यु के बाद पत्नी का पति के साथ सती हो जाना पतिव्रत-धर्म की सर्वोच्च परीक्षा मानी गई। इस प्रथा को धार्मिक आवरण प्रदान कर बढ़ावा दिया गया। सतियों की पूजा की जाने लगी। पहली पत्नी होते हुए भी दूसरा विवाह कर लेना, एक से अधिक पत्नियाँ रखना पुरुषों के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा बन गया। इस प्रकार महिलाएँ अपने अस्तित्व के लिए पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर हो गयी। अज्ञान के वशीभूत भारतीय समाज ने इन्हीं कुरीतियों और मिथ्यावाद को भारतीय संस्कृति का अंग समझा। महिला समाज के लिए लोकतांत्रिक अर्थहीन हो गया। इस युग में स्त्रियों के सम्पत्ति के अधिकारों के सम्बन्ध में थोड़ा-सा सुधार हुआ है। जिन लड़कियों के भाई नहीं थे, उन्हें अपने पिता की सम्पति का उत्तराधिकार मिलने लगा। शुक्र ने तो इस सन्दर्भ में यहाँ तक कह दिया कि जिस लड़की के भाई है, उसे भाई से भी आधा हिस्सा मिलना चाहिए। 11वीं शताब्दी में 'मिताक्षरा' के लेखक विज्ञानेश्वर ने उन सब सम्पत्तियों का स्त्री धन में समावश किया, जो उन्हें उत्तराधिकार एवं विभाजन आदि में मिली। उत्तर-वैदिक काल एवं मध्यकालीन युग की बहुपत्नी-प्रथा, अन्जातीय विवाह, विवाह-विच्छेद का अधिकार न होना आदि कुरीतियाँ उस समय तक मौजूद थी। पारिवारिक और सामाजिक समस्त प्रथा और परम्परा, नियमों और कानूनों को सर्वप्रथम महिला पर ही अधिरोपित किया जाता था। परिवार में दहेज की मात्रा, सदस्यों की सेवा और अन्य धार्मिक कार्यों को लेकर महिला भी इन सबको पूर्व जन्म के कार्यों का फल मानकर इससे सन्तुष्ट रहती थी। इन कारणों से इनकी स्थिति में निरन्तर गिरावट आती गई। डॉ० डी० एन० मजूमदार के शब्दों में, हिन्दू परिवार में सबसे अधिक रूढ़िवादी तत्व महिला है और परम्परागत रूढ़ियों का पालन इनके द्वारा ही कराया जाता है।"[9]

आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की निर्योग्यताएँ सबसे अधिक देखने को मिलती है। महिलाओं को न केवल संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में से हिस्सा देने से वंचित किया गया, अपितु अपने पिता की सम्पत्ति पर भी उसका कोई अधिकार नहीं था। इस युग में

महिला स्वयं एक 'सम्पत्ति' मानी जाती थी, अत: उसे सम्पत्ति के अधिकार किस प्रकार दिए जा सकते थे? सन् 1937 से पूर्व सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई भी अधिकार महिलाओं को प्राप्त नहीं थे, जो लोकतंत्र के लिए कलंक था। डॉ० के० एम० पणिक्कर इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि हिन्दू समाज में पुत्री के अस्तित्व को कानून द्वारा हटा दिया गया, पत्नी पति के परिवार का एक अंग हो गई और विधवाओं को मृततुल्य मान लिया गया।"[10] भारतीय समाज में एक महिला भूख और प्यास से चाहे कितनी भी पीड़ित क्यों न हो, परन्तु कोई आर्थिक क्रिया करना उनके स्त्रीत्व और कुलीनता के विरुद्ध मान लिया गया। इसका परिणाम यह निकला कि बड़े से बड़े अमानवीय व्यवहारों के पश्चात् भी उसे पुरुष की दया पर ही आश्रित रहना पड़ा तथा आत्महत्या ही इसका एकमात्र समाधान था।

लोकतंत्र के लिए महिलाओं की भागीदारी अनिवार्य होती है, परन्तु उनके लिए राजनीतिक क्षेत्र में हिस्सा लेना कल्पना के बाहर की बात है। एक ऐसे समय में जबकि महिला के घर में शोषण होता हो; शोषण करने वाला पुरुष स्वयं अंग्रेजों का गुलाम हो तो वह स्वयं राजनीति में किस प्रकार हिस्सा ले सकती है? सन् 1919 तक महिलाओं को वोट देने का अधिकार पूर्णतया प्राप्त नहीं था। सन् 1937 के चुनाव से पति की शिक्षा और सम्पत्ति के आधार पर बहुत थोड़ी-सी महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया गया। कुछ महिलाओं ने सन् 1919 में महात्मा गाँधी के साथ राजनीति में जरूर हिस्सा लिया, मगर कुलीन परिवार सदैव इसका विरोध करते रहे।

16वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक भक्ति आन्दोलन और सुधार आन्दोलनों की विभिन्न प्रतिक्रियाओं के कारण महिलाओं की स्थिति में थोड़ा सुधार शुरू हुआ, हालांकि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाओं की स्थिति सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में निर्योग्यताओं से दबा हुआ था। जब स्वार्थ, अन्याय और शोषण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गए, तब उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी अवश्य हुई। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू समाज में महिलाओं के शोषण के खिलाफ होने वाले आन्दोलन ने निर्योग्यताओं को चुनौती दी। के० एम० पणिक्कर के अनुसार, वर्तमान में स्त्रियों द्वारा हिन्दू जीवन के सिद्धान्तों का पुन: परीक्षण स्त्रियों की जागृति और सामाजिक दशाओं में परिवर्तन के कारण है।"[12] लेकिन कम्पनी ने भारतीय मनोवृत्ति के विरुद्ध स्त्री-शिक्षा को मानते हुए कोई महत्व नहीं दिया। इनके पश्चात् भारत में भी महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए प्रगतिशील भारतीयों ने प्रयत्न किए, लेकिन ये सभी प्रयत्न व्यक्तिगत स्तर के थे। अत: सरकार द्वारा इन्हें संरक्षण प्रदान नहीं हो सका। 1828 में सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना[13] करके सती प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया, जिसका परिणाम यह निकला कि 1829 में कानूनन इसे समाप्त कर दिया गया। राजा राममोहन राय ने महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार देने, बाल-विवाह समाप्त करने एवं महिलाओं में शिक्षा का प्रचार करने के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किए। इस सम्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि राजा राममोहन राय के प्रयत्नों से ही समाज-सुधार आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हो सका। 1875 में महर्षि दयानन्द ने सबसे पहले आर्य समाज की स्थापना की[14] तथा वैदिक आदर्शों की ओर हिन्दू-समाज को ले जाने का प्रयास किया। इस संस्था ने उत्तरी भारत में महिला शिक्षा का प्रचार करने, पर्दा-प्रथा तथा बाल-विवाह रोकने के क्षेत्र में अच्छा प्रयास किया। महर्षि दयानन्द के समकालीन समाज-सुधारकों में ईश्वरचन्द विद्यासागर थे, जिन्होंने बिना किसी सम्प्रदाय की स्थापना किए व्यक्तिगत स्तर पर महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए विधवा विवाह और बहुपत्नी विवाह सम्बन्धी परम्परागत नियमों का विरोध किया तथा स्त्री शिक्षा को महत्व दिया। विद्यासागर ने अपने लड़के का विवाह एक विधवा स्त्री से कर एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया, जो उस समय अकल्पनीय था। इन्हीं प्रयत्नों से 1856 में 'विधवा विवाह कानून' पास हो गया। 1855 और 1858 के बीच बहुत से कन्या विद्यालय खोलकर महिला शिक्षा के क्षेत्र में तथा उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। प्रो० इरावती कर्वे ने पूना में स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार के लिए विधवा-आश्रम खोले। अनेक प्रगतिशील महिलाओं, जैसे- दुर्गाबाई देशमुख, रमाबाई और रुखमाबाई ने भी इस शताब्दी में पुरानी रूढ़ियों की चिन्ता किए बिना स्त्रियों को अपने अधिकार माँगने और समाज में एक सम्मानपूर्ण पद प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। महात्मा गाँधी ने संगठित आधार पर सर्वप्रथम महिलाओं के अधिकारों को स्पष्ट किया। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी सुधार कार्यों को सम्मिलित किया। राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के पश्चात वे ब्रिटिश सरकार को महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित सुधार प्रतिवर्ष भेजते रहे, जिनसे लोकतंत्र की माँग स्पष्ट रूप में सामने आई।

महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए किए गए आन्दोलनों का दूसरा चरण 1912 से ही महिलाओं के विभिन्न संघों का निर्माण हो गया था, परन्तु प्रथम बार 1917 में 'महिलाओं की भारतीय समिति' मद्रास में स्थापित हुई, जिसमें एनी बीसेन्ट सभापति के रूप में चुनी गई।[15] इसी तरह के अन्य महिला संगठनों, जैसे- 'भारतीय स्त्री मण्डल', 'पूना सेवा सदन', 'सरोजनी दत्त महिला समाज' आदि का विकास हुआ। इन विभिन्न संघों ने 1929 में एक साथ मिलकर कार्य करने के लिए 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' का संगठन बनाया, जिसका प्रथम अधिवेशन पूना में सम्पन्न हुआ। इन सुधार आन्दोलनों के सुखद परिणाम हैं, जिनसे स्पष्ट है कि सामाजिक स्तर पर महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। 1948 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार को एक बिल 'हिन्दू कोड बिल' के रूप में प्रस्तुत किया गया, परन्तु इस नवीन संविधान के निर्माण तक टालने में अनेक रूढ़िवादी तत्वों को सफलता हासिल हुई। 1950 में नवीन संविधान में स्त्री एवं पुरुषों को समान अधिकार दिए गए, परन्तु 'हिन्दू कोड बिल' को लौटा दिया तथा उसकी स्वीकृति पर विचार करने एवं निर्णय का अधिकार 1952 में जनता द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधियों पर छोड़ दिया गया। जब नवनिर्वाचित लोक सभा में इसको प्रस्तुत किया गया, तब अपने स्वार्थों के लिए अनेक राजनीतिक दलों ने उन महिलाओं को ही इसके विरोध में सामने लोकर खड़ा कर दिया, जिनके कल्याण एवं स्थिति सुधार के लिए यह प्रस्तुत किया जा रहा था। फिर समय-समय पर समाज सुधार की आवश्यकता को देखते हुए 'हिन्दू कोड बिल' को खण्डों में विभाजित करके पास

करते हुए चले गए, परिणामस्वरूप सभी परम्परागत निर्योग्यताएँ धीरे-धीरे समाप्ति की ओर अग्रसर होती चली गई और महिला को विवाह, सम्पत्ति संरक्षता और विवाह-विच्छेद के क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होने तथा सामाजिक रूढ़ियों से छुटकारा पाने का अवसर मिला। ऐसे अधिनियमों में 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955', 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 'हिन्दू नाबालिग और संरक्षण अधिनियम, 1956', 'हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम, 1956', विशेष विवाह अधिनियम, 1956', 'दहेज विरोधक अधिनियम, 1961' आदि प्रमुख है।[16]

भारतीय समाज में स्वतन्त्रता के पश्चात् महिलाओं की सामाजिक स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुई हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्त्रियों ने आज हिन्दू जीवन के परम्परागत सिद्धान्तों को केवल अस्वीकार ही नहीं किया है, अपितु उसे एक चुनौती दिया भी है। वह भी इस रूप में कि वे उन सिद्धान्तों को परिवर्तित करके कहेंगी, जो उनकी सामाजिक स्थिति गिराने में सहयोगी सिद्ध होते हैं। इसके परिणामस्वरूप आज महिलाओं की सामाजिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए हैं और आगे होते रहेंगे। स्वतन्त्रता के पश्चात् आज तो स्त्रियों के सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन देखने को मिलते हैं, उनकी कल्पना तो कोई कर सकता था। प्रो० एम०एन० श्रीनिवास ने पश्मीकरण, लौकिकीकरण और जातीय गतिशीलता को इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण माना है।[17] इसके साथ ही शिक्षा के प्रसार तथा औद्योगिकीकरण ने उन्हें आर्थिक जीवन में प्रवेश करने के अवसर दिए हैं। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की आत्मनिर्भरता पुरुषों पर से कम होने लगी और उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास करने के अवसर मिले। महिलाओं ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए समाचार-पत्र, संचार के साधनों, पत्र-पत्रिकाओं को माध्यम के रूप में अपनाया। सामाजिक एवं पारिवारिक अधिकारों में संयुक्त परिवार के विघटन के साथ-साथ वृद्धि होती गई। सामाजिक अधिनियमों ने एक ऐसी सामाजिक वातावरण को जन्म दिया, जिसमें बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, अन्तर्जातीय विवाह जैसी समस्याओं का निदान सम्भव हो गया। इन सभी कारकों के प्रभाव से जो परिवर्तन महिलाओं की स्थिति में आया है, उनसे महिला समाज के विकास को बल मिला है। इतना ही नहीं, भारत में संविधान के द्वारा स्त्री और पुरुष को समान दर्जा प्रदान किया गया है। कानून के द्वारा भी लिंग समानता एवं लिंग न्याय के लिए प्रयास किया गया है। भारत में महिलाओं को जीवन-स्तर में सुधार हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं को निर्धारित एवं क्रियान्वित किया जाता रहा हैं। इन सबके सम्मिलित रूप एवं प्रयास से ही महिला सशक्तिकरण को बल मिला है, जो लोकतंत्र को प्रभावी बनाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक भारत में महिलाओं की प्रस्थिति : एक ऐतिहासिक अवलोकन" है तथा इसी के अनुरूप इस आलेख के अध्ययन का उद्देश्य भी है। इस आलेख में भारत में महिलाओं की प्रस्थिति को ऐतिहासिक रूप में विवेचन किया गया है। इससे इतिहास के प्रत्येक काल खण्ड में महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है। इस आलेख का उद्देश्य लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में महिला समाज की प्रस्थिति को परिवर्तित ऐतिहासिक क्रम में प्रस्तुत करना भी है। इस आलेख का उद्देश्य लोकतंत्र के सन्दर्भ में महिला समाज की इतिहास क्रम में सकारात्मक स्थिति का स्पष्टीकरण भी है।

परिकल्पना

शोध कार्य में परिकल्पना का महत्त्व सर्वविदित है। प्रस्तुत आलेख में शोध परम्परा के अनुरूप परिकल्पना को निर्धारित किया गया है। भारत में महिलाओं की स्थिति उत्तर वैदिक काल से लगातार दैयनीय होती रही है, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से अर्थात् 20वीं शताब्दी के मध्य से उत्तरोत्तर रूप में सुधार हो रहा है। 21वीं शताब्दी के मध्य तक भारतीय महिलाएँ पुरुष समाज के समान स्थिति में आ जायेगी। ऐसी परिकल्पना की जा सकती है।

साहित्य सर्वेक्षण

शोध आलेख का विषय मौलिक है, हालांकि महिला सशक्तिकरण तथा नारीवादी आयाम पर अबतक कई महत्वपूर्ण शोध कार्य सम्पन्न हुए हैं तथा कई महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई है। कुछ महत्वपूर्ण साहित्य का सर्वेक्षण प्रस्तुत शोध आलेख में किया गया है, जिनका विवरण अपेक्षित है।

श्रीमती ममता चन्द्रशेखर एवं चन्द्रशेखर रायकवार ने एक महतत्वपूर्ण पुस्तक का लेखन किया है, जिसका नाम 'महिला सशक्तिकरण की अवधारणा' है। इस ग्रंथ का प्रकाशन यशी-यथार्थ प्रकाशन, इन्दौर (म०प्र०) ने किया है तथा प्रकाशन वर्ष 2002 है। प्रस्तुत पुस्तक में आठ अध्यायों के अन्तर्गत महिला सशक्तिकरण के कई महत्वपूर्ण आयामों को प्रस्तुत किया गया है तथा इसमें संवैधानिक-वैधानिक प्रावधानों का भी विवेचन है।

राजबाला सिंह एवं मधुबाला सिंह ने 'भारत में महिलाएँ' नाम की पुस्तक लिखा है, जो आविष्कार पब्लिशर्स व डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर से प्रकाशित वर्ष 2006 है। इस पुस्तक में प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति का विस्तृत विवरण ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में महिला समाज पर हो रहे अत्याचार को भी दर्शाया गया है।

प्रोमिला कपूर की पुस्तक 'इम्पावरींग, द इंडियन वूमेन' है। यह प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा प्रकाशित किया गया है तथा इसका प्रकाशन वर्ष 2001 है। प्रस्तुत पुस्तक में भारत की महिलाओं

की शिक्षा, स्वास्थ्य, पेशा आदि के सन्दर्भ में महिलाओं की प्रस्थिति का लोकतांत्रिक परिप्रेक्ष्य में अवलोकन, विश्लेषण व प्रस्तुतीकरण है।

डॉ० निशांत सिंह ने भारतीय महिलाएँ-एक सामाजिक अध्ययन नाम का ग्रंथ लिखा है, जिसका प्रकाशन ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली है। इसका प्रथम प्रकाशन वर्ष 2009 है। प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक, वैधानिक एवं शैक्षणिक स्थिति का बहुत ही सुन्दर व व्यवस्थित विश्लेषण-विवेचन है।

निष्कर्ष

21वीं शताब्दी के आगमन ने देश के नियोजित विकास को आधार बनाया गया है। इस अवधि में महिला केन्द्रित योजनाएँ आयी है और महिलाओं के विकास सम्बन्धी मुद्दों को अधिक गम्भीरता पूर्वक लिया गया है। पिछले दो दशकों में विशेषकर नवीं और दसवीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान प्रयासों को तीव्र किया गया है और राष्ट्र के विकास में महिला अधिकारिता को विशिष्ट लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। महिलाओं की शिक्षा हेतु योजनाओं के अतिरिक्त स्वस्थ्य एवं पोषण योजनाएँ महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार योजनाएँ, मजदूरी तथा स्वरोजगार योजनाएँ, गरीब महिलाओं के समूह की आर्थिक गतिविधियों के लिए लघुऋण जैसे निवेश कार्य प्रारम्भ किए गए हैं। महिला संगठनों की गतिविधियों तथा उनके दबाव के द्वारा न केवल आर्थिक और सामाजिक लाभ प्राप्त हुए हैं, बल्कि राजनीतिक स्तर पर भी स्थान प्रदान किया गया है। महिलाओं की अधिकारिता तथा लिंग समानता की दिशा में बढ़ने तथा उनकी स्थिति बेहतर करने पर केन्द्रित राष्ट्रीय विधानों और नीतियों को आकार प्रदान किया है।

भारतीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति के ऐतिहासिक अवलोकन से स्पष्ट है कि वैदिक काल के बाद यानी उत्तर वैदिक काल से वर्तमान तक महिलाओं की स्थिति दयनीय रही है, हालांकि 19वीं शताब्दी से महिला जीवन में सुधार के प्रयास भी किये जाते रहे हैं। स्वतन्त्र भारत में महिला समाज के लिए उपबंधित समान संवैधानिक एवं कानूनी, अधिकारों की व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कदम था, जो अभी भी धरातल पर समान प्रयोग का विषय न होकर अधिकाधिक सैद्धान्तिक ही है। आधुनिककालीन भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों ने भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक मानसिक क्रांति का सूत्रपात किया, जिस पर 21वीं सदी की वट वृक्ष रोपित किया जा रहा है। चूँकि समाज की आधी आबादी महिलाओं की है। महिला एवं पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। परिवार, समाज एवं राष्ट्र के विकास में महिलाएँ महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। इसलिए आज महिलाओं को एक संसाधन के रूप में पहचाना जाने लगा है। इसलिए महिलाओं के सम्पूर्ण विकास हेतु तमाम शासकीय एवं अशासकीय स्तरों पर कोशिश की जा रही है। इन प्रयासों से आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई है। कुछ महिला अपने अस्तित्व की स्थापना करके व्यक्तित्व का विकास कर रही हैं, किन्तु ऐसी महिलाओं का प्रतिशत न्यूनतम है। दुर्भाग्यवश जब कभी हम महिलाओं की प्रगति, स्थिति एवं उत्थान का आंकलन करते हैं तो हमारी दृष्टि समाज की इन्हीं गिनी-चुनी सशक्त महिलाओं के ऊपर जाकर ठहर जाती है, जबकि वास्तव में आज भी अनगिनत महिलाएँ विकास के उजाले से दूर गुमनामी की धुंध में जीवन व्यतीत कर रही हैं। महिला सशक्तिकरण के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सामाजिक सोच, रवैये एवं जीवन शैली में बदलाव करना ही होगा, तभी हम 21वीं सदी की चुनौतियों का सामना करने के लिए विश्व के समक्ष गर्व से सिर ऊँचा उठा सकेंगे। इसके लिए हमें शुरुआत करना होगी- अपने परिवार से....क्योंकि परिवार ही महिला को सशक्त या असशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. मित्तल, डॉ० ए ०के० भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सिन्धु सभ्यता से 1206 ई० तक, 2008 साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ-58
2. अथर्ववेद, 14/14
3. यजुर्वेद, 8/1 सन्दर्भ, राधाकृष्णन, डॉ० धर्म और समाज, पृष्ठ 141
4. प्रभु, पी० एन० : हिन्दु एण्ड सोशल ऑर्गेनाइजेशन, 1958, पृष्ठ-258
5. लखनपाल, चन्द्रावती : स्त्रियों की स्थिति, पृष्ठ-25
6. मनुस्मृति, 5/148
7. हॉपकिन : रिलिजन ऑफ इण्डिया, पृष्ठ-370
8. मनुस्मृति 2/67
9. मजुमदार, डी० एन० : रेस एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, 1958, पृष्ठ-25
10. पणिक्कर, उपर्युक्त
11. कश्यप, सुभाष भारत का संवैधानिक विकास हिन्दु माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2004, पृष्ठ-23

नीमराना में ठोस अपशिष्टों के प्रभाव एवं प्रबंधन तकनीक

अरविन्द कुमार शुक्ला

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, (राज.)

डॉ खेमचन्द शर्मा

सह आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभा राम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

शोध संक्षेप

नीमराना में कचरे में प्लास्टिक, कांच, धातु और कार्बनिक पदार्थ शरीर के लिए खतरा बन रहे हैं। लेकिन शहर में ठोस कचरा प्रबंधन के लिए कोई प्रावधान नहीं है। अध्ययन क्षेत्र के अनुसंधान कार्य से पता चला है कि ठोस अपशिष्ट के कारण वातावरण में हानिकारक पदार्थों की उपस्थिति बढ़ रही है, जिससे लोगों को सिरदर्द, श्वसन, त्वचा और पाचन संबंधी बीमारियां हो रही हैं। नीमराना में शोध के दौरान, ठोस अपशिष्ट की मात्रा पर ध्यान दिया गया, यह पाया गया कि इसमें 35 प्रतिशत कार्बनिक तत्व होते हैं जबकि 4.1 प्रतिशत प्लास्टिक, 1.8 प्रतिशत ग्लास, 1.5 प्रतिशत धातु और 17 प्रतिशत अकार्बनिक तत्व मानव शरीर को नुकसान पहुंचा रहे हैं। शहर के कचरे को चार भागों में विभाजित किया गया था, जिसमें एक नगरपालिका अपशिष्ट, औद्योगिक, कृषि और वाणिज्यिक प्रतिष्ठान और होटल शामिल थे। जिसमें पता चला कि अधिकतम ठोस कचरा नगरपालिका के कचरे में है। जिन रोगों से लोग पीड़ित हैं, उनके प्रबंधन के लिए पंचायत समिति द्वारा कोई इकाई स्थापित नहीं की जा रही है। लगातार बढ़ते औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की तेज गति के कारण नीमराना को अपशिष्ट प्रबंधन की एक बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।

मुख्य शब्द: नीमराना में अपशिष्ट, ठोस अपशिष्ट का अर्थ, अपशिष्ट प्रबंधन के तरीके, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की तकनीक, चयन और प्रभाव, निष्कर्ष

परिचय

ठोस अपशिष्ट (MSW), जिसे शहरी ठोस अपशिष्ट के रूप में भी जाना जाता है, एक अपशिष्ट प्रकार है जिसमें मुख्य रूप से घरेलू कचरा (घरेलू कचरा) और कभी-कभी वाणिज्यिक कचरा शामिल होता है जिसे नगरपालिका किसी दिए गए क्षेत्र से एकत्र करती है। वे या तो ठोस रूप में या अर्ध-ठोस होते हैं और आमतौर पर औद्योगिक खतरनाक अपशिष्ट नहीं होते हैं। अवशिष्ट अपशिष्ट शब्द घरेलू स्रोतों से बचा हुआ कचरा है जिसमें ऐसी सामग्री शामिल है जिसे अलग नहीं किया गया है या पुनः प्रसंस्करण के लिए भेजा गया है।

स्वाभाविक रूप से सड़ सकने वाला कचरा: भोजन और रसोई का कचरा, हरा कचरा, कागज (पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है)।

पुनर्नवीनीकरण सामग्री: कागज, कांच, बोतलें, डिब्बे, धातु, कुछ विशेष प्लास्टिक, आदि।

निष्क्रिय कचरा: निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट, गंदगी, पत्थर, मलबे।

मिश्रित अपशिष्ट: बेकार कपड़े, टेट्रा पैक, बेकार प्लास्टिक जैसे खिलौने।

घरेलू खतरनाक अपशिष्ट (जिसे 'घरेलू खतरनाक अपशिष्ट' के रूप में भी जाना जाता है) और विषाक्त अपशिष्ट: दवाएं, ई-कचरा, पेंट, रसायन, प्रकाश बल्ब, "लोरोसेंट ट्यूब, स्प्रे कैन, उर्वरक और कीटनाशक कंटेनर, बैटरी, जूता पॉलिश।

अध्ययन क्षेत्र

नीमराना (वास्तविक उच्चारण: नीमराना) भारत के राजस्थान के अलवर जिले में एक प्राचीन ऐतिहासिक शहर है, जो दिल्ली से 122 किलोमीटर दूर नीमराना तहसील में दिल्ली-जयपुर राजमार्ग पर है। नीमराना 2°97'97 'उत्तरी अक्षांश और 76°39'62' पूर्वी देशांतर पर स्थित है। यह 1947 तक चौहानों द्वारा शासित 14 वीं सदी के पहाड़ी किले की जगह है। नीमराणा के अंतिम राजा राजेंद्र लसह ने महल पर तिरंगा फहराया था। क्षेत्र को राठ के रूप में जाना जाता है। कहावत है, राठ नवे नाथ पर, इसके अंतिम शासक

और प्रेवी पर्स के उन्मूलन के बाद, वह किले को बनाए रखने में असमर्थ थे और इसे नीमराना होटल्स नामक समूह को बेच दिया। यह एक हेरिटेज होटल में बदल गया। अलवर जिले में एक दूसरा किला, नीमराना से कुछ दूरी पर, केसरोली है, जो सबसे पुराने विरासत स्थलों में से एक है। इतिहासकार इसका उल्लेख महाभारत काल के मत्स्य जनपद के रूप में करते हैं। किसोली में विराटनगर के कुछ हिस्से हैं। बाद्ध विहार के सबसे पुराने अवशेषों को देख सकते हैं, जहां पांडवों ने भाग लिया था और अपने निर्वासन के अंतिम वर्षों में बिताया था, जहां पांडुपोल में हनुमान की मूर्ति के अलावा पुराने जलाशयों में संत शासक भर्तृहरि और तलवृक्ष के मकबरे हैं।

नीमराना किला दुर्लभ, गहरे सींग वाले पत्थर के शिलाखंडों पर स्थित है और इसके प्राचीर हरे-भरे खेतों, 50-65 मीटर ऊंचे आकर्षक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। केसरोली किले की उत्पत्ति का पता छठी शताब्दी से लगाया जा सकता है। यह भगवान कृष्ण के वंशजों, यादवों द्वारा निर्मित होने के लिए प्रसिद्ध है, जो 14 वीं शताब्दी के मध्य में इस्लाम में परिवर्तित हो गए और इसे खानजादा कहा जाने लगा। यह विभिन्न लोगों के कब्जे में रहा, क्योंकि पहले मुगलों ने इस पर विजय प्राप्त की और 1975 में राजपूतों के हाथों में आने से पहले यह जाटों के कब्जे में रहा, जब अलवर राजघराने की स्थापना हुई।

शोध अध्ययन का उद्देश्य

1. नीमराना तहसील में ठोस अपशिष्ट के निस्तारण की तकनीक अध्ययन करना।
2. नीमराना तहसील में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का अध्ययन करना ।

शोध परिकल्पना

1. नीमराना तहसील में मानव विकास के साथ ठोस अपशिष्ट में वृद्धि हो रही हैं।
2. नीमराना तहसील में ठोस अपशिष्ट के निस्तारण की तकनीक अपनाई जा रही है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में, प्राथमिक और माध्यमिक स्रोतों से प्राप्त डेटा का उपयोग किया गया है, जिसके आधार पर, संभावित शोध परिणामों, निष्कर्षों और सुझावों को देने के लिए समस्या का विश्लेषण किया गया है।

आँकड़ो के स्रोत

किसी भी प्रकार के अध्ययन के लिए आँकड़ो की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत अध्ययन में उपयोग के लिए प्राथमिक और माध्यमिक डेटा एकत्र किए गए हैं। विभिन्न विभागों में एकत्र किए गए डेटा को उपखण्ड अधिकारी कार्यालय एवं तहसील मुख्यालय नीमराना , रीको औद्योगिक केन्द्र ,पंचायत भवन और नगरपालिका नीमराना से एकत्र किया गया है।

कचरे का अर्थ

शहरीकरण, औद्योगीकरण और जनसंख्या विस्फोट के साथ, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन 21 वह्व सदी में राज्य सरकारों और स्थानीय नगर निकायों के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गया है।

विशेषज्ञों के अनुसार, अपशिष्ट हमारे उपयोग के बाद शेष अप्रयुक्त पदार्थ को संदल्भत करता है। जब शाब्दिक अर्थ की बात आती है, तो अपशिष्ट 'अवांछित' और 'अनुपयोगी सामग्री' को इंगित करता है।

विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट

1. ठोस अपशिष्ट: ठोस कचरे में घरों, कारखानों या अस्पतालों के अपशिष्ट शामिल हैं।
2. गीला अपशिष्ट: अपशिष्ट जल संयंत्रों और घरों आदि से आने वाले किसी भी तरल पदार्थ आधारित अपशिष्ट को तरल अपशिष्ट के तहत वर्गीकृत किया जाता है।

3. सूखा कचरा: अपशिष्ट जो किसी भी रूप में तरल या तरल नहीं है, सूखे कचरे के अंतर्गत आता है।
4. बायोडिग्रेडेबल अपशिष्ट: कोई भी कार्बनिक पदार्थ जो मिट्टी में जीवों द्वारा कार्बन-डाइऑक्साइड, पानी और मीथेन में संश्लेषित किया जा सकता है।
5. नॉनबोएडग्रेड्बल वेस्ट: कोई भी कार्बनिक पदार्थ जिसे कार्बन-डाइऑक्साइड, पानी और मीथेन में संश्लेषित नहीं किया जा सकता है।

नीमराणा में ठोस कचरा: नीमराणा में विभिन्न प्रकार के ठोस कचरे के भंडार पाए जाते हैं। नीमराना में ठोस कचरे की मात्रा पर विचार करने के बाद, यह पता चला कि इसमें 35 प्रतिशत कार्बनिक तत्व हैं जबकि 4.1 प्रतिशत प्लास्टिक, 1.8 प्रतिशत कांच, 1.5 प्रतिशत धातु और 17 प्रतिशत अकार्बनिक तत्व मानव शरीर को नुकसान पहुंचा रहे हैं। शहर के कचरे को चार भागों में विभाजित किया गया था, जिसमें एक नगरपालिका अपशिष्ट, औद्योगिक, कृषि और वाणिज्यिक प्रतिष्ठान और होटल शामिल थे। जिसमें पता चला कि अधिकतम ठोस कचरा नगरपालिका के कचरे में है।

अपशिष्ट प्रबंधन का अर्थ है

अपशिष्ट प्रबंधन से तात्पर्य उस संपूर्ण सीमा से है जो पूरी प्रक्रिया को समाहित करती है, जिसमें कचरे के निर्माण से लेकर उसके संग्रह और परिवहन के साथ-साथ प्रसंस्करण और निपटान शामिल हैं।

उपरोक्त प्रबंधन तंत्र विभिन्न चरणों जैसे संग्रह, परिवहन, उपचार और निगरानी के साथ निपटान को भी कवर करता है।

अपशिष्ट पदानुक्रम तीन-आर - के रूप में निम्नानुसार है, कमी, पुन: उपयोग और पुनर्चक्रण। ये तीन त अपशिष्ट प्रबंधन रणनीतियों को कचरे में कमी के संदर्भ में उनकी वांछनीयता के अनुसार वर्गीकृत करते हैं।

अपशिष्ट प्रबंधन के लोकप्रिय तरीके

लैंडफिल: यह वर्तमान में अपशिष्ट प्रबंधन के लिए उपयोग की जाने वाली सबसे लोकप्रिय विधि है। इस पद्धति में, शहरों के आसपास खाली स्थानों में अपशिष्ट एकत्र किया जाता है। ऐसा करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि जिस क्षेत्र में अपशिष्ट एकत्र किया जा रहा है वह प्रदूषण से बचाव के लिए मिट्टी से ढका हो। विशेषज्ञों का मानना है कि अगर सही तरीके से डिजाइन किया जाए तो यह तरीका किफायती साबित हो सकता है।

भस्मीकरण: इस विधि में कचरे को उच्च तापमान पर जलाया जाता है जब तक कि यह राख में बदल न जाए। अपशिष्ट प्रबंधन की विधि को व्यक्तिगत, नगरपालिका और संस्थानों के स्तर पर किया जा सकता है। इस विधि की सबसे अच्छी बात यह है कि यह कचरे की मात्रा को 20-30 प्रतिशत कम कर देती है। हालांकि, इस विधि को अपेक्षाकृत महंगा माना जाता है।

पायरोलिसिस: अपशिष्ट प्रबंधन की इस पद्धति के तहत, ठोस अपशिष्ट ऑक्सीजन की उपस्थिति के बिना रासायनिक रूप से विघटित होता है।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की तकनीक

प्लाज्मा निकालने गैसीकरण प्रक्रिया का उपयोग करके ठोस अपशिष्ट उपचार और निपटान पर्यावरण के अनुकूल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का एक विकल्प है, जिसमें अपशिष्ट की मात्रा में 95४ तक की भारी कमी होती है। प्लाज्मा गैसीकरण प्रक्रिया प्लाज्मा रिएक्टर के अंदर उच्च-तापमान प्लाज्मा अर्क (3000 डिग्री सेल्सियस से ऊपर) उत्पन्न करने के लिए बिजली का उपयोग करती है, जो कचरे को कोसिग्नस या संश्लेषित गैस में परिवर्तित करती है। यह उत्पादित सिन्गैस, जब एक उत्प्रेरक कनवर्टर, रेडॉक्स रिएक्टर, साइक्लोन सेपरेटर, स्क्रबर और कंडेनसर से लैस गैस शोधन प्रणालियों की एक श्रृंखला से गुजरा, तो बिजली उत्पादन के लिए एक गैस इंजन में उपयोग करने के लिए तैयार होगा।

इस क्रम में जारी अवशिष्ट राख निर्माण में उपयोग के लिए पुनर्नवीनीकरण ईंटों का उत्पादन करने के लिए सीमेंट के साथ मिलाया जा सकता है। इस प्रकार, विज्ञान 'धन से अपशिष्ट' के अधिग्रहण में मदद करता है।

हालाँकि, यह तकनीक आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं है क्योंकि अपशिष्ट उपचार के लिए इस तकनीक का उपयोग करने के लिए बहुत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है ¼~ 1-5 kWh / kg संसाधित अपशिष्ट छोटे पौधों के लिए (<100 उज क्षमता) और ~ 1.2 kWh / kg संसाधित कचरे वाले पौधों के लिए एक क्षमता के साथ 100 मीट्रिक टन से अधिक)। इसके अलावा, इलेक्ट्रोड खपत की उच्च दर (~ 500 मिलीग्राम / किग्रा संसाधित अपशिष्ट) आवर्ती खर्चों में वृद्धि करते हुए आगे की प्रक्रिया को महंगा बनाती है और यह इसे आर्थिक रूप से तर्कसंगत विकल्प नहीं होने देती है।

विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि भारत में डिस्चार्ज किए गए म्युनिसिपल सॉलिड वेस्ट में ज्यादातर ऑर्गेनिक वेस्ट का बड़ा अंश (> 50þ) होता है। जैविक कचरे के अवैज्ञानिक निपटान से ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन और अन्य वायु प्रदूषक पैदा होते हैं। डंप के अप्रभावी प्रसंस्करण भी कई बीमारियों का मूल कारण है क्योंकि कचरा बवासीर के साथ लैंडफिलपैथोगेंस बैक्टीरिया और वायरस के लिए संदूषण हब में बदल जाता है। सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला 'कंपोस्टिंग' प्रसंस्करण भी उद्यमियों के लिए प्रभावशाली आर्थिक रिटर्न नहीं देता है क्योंकि इसके लिए अधिक भूमि और स्थान, अधिक श्रम, प्रभावी कीटाणुशोधन के लिए पास्चुरीकरण और भारी धातुओं की उपस्थिति के कारण उपयोग को प्रतिबंधित करना पड़ता है। की जरूरत है। बारिश के मौसम में अधिक नमी के कारण खाद या उर्वरक प्रबंधन मुश्किल हो जाता है।

नई तकनीक

सीएसआईआर-सीएमईआरआई द्वारा विकसित ठोस अपशिष्ट प्रसंस्करण सुविधा ने न केवल ठोस अपशिष्ट के विकेन्द्रीकृत कटौती में मदद की है, बल्कि सूखे पत्तों, घास, आदि जैसे बहुतायत से उपलब्ध अपशिष्ट पदार्थों से मूल्य वर्धित उत्पादों को बनाने में भी मदद की है, केंद्रीय पर्यावरण, एमएसडब्ल्यू प्रसंस्करण सुविधाएं। वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा निर्धारित ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम (एसडब्ल्यूएम) 2016 के बाद ठोस तरीके से कचरे के निपटान के लिए वैज्ञानिक तरीके से विकसित किया गया है। CSIR&CMERI का प्राथमिक फोकस आम लोगों को कचरे को अलग करने के लिए उन्नत तकनीक के माध्यम से कचरे के पृथक्करण की जिम्मेदारी के बोझ से बचाना है। मैकेनाइज्ड सेपरेशन सिस्टम में सॉलिड वेस्ट जैसे धातु के कचरे (मेटल बॉडी, मेटल कंटेनर आदि), बायो-डिग्रेडेबल या बायोडिग्रेडेबल कचरे (खाद्य पदार्थ, सब्जियां, फल, घास आदि), नॉन-बायोडिग्रेडेबल या नॉन-बायोडिग्रेडेबल (प्लास्टिक) शामिल हैं। पैकेजिंग सामग्री, पाउच, बोतलें आदिऋ और अक्रिय (कांच, पत्थर आदि) कचरे से अलग हो जाते हैं। जैव-अपघटनीय घटक कचरे का जैव-अपघटन के रूप में जाना जाने वाला अवायवीय वातावरण में विघटित हो जाता है। इस प्रक्रिया में जैविक सामग्री के रूपांतरण के माध्यम से बायोगैस जारी की जाती है। इस बायोगैस का उपयोग खाना पकाने में ईंधन के रूप में किया जा सकता है। इस गैस का उपयोग गैस इंजनों में बिजली उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है। बायोगैस संयंत्र के अवशिष्ट समाधान को वर्मी-खाद बनाने वाली प्राकृतिक प्रक्रिया में केंचुओं का उपयोग करके खाद में परिवर्तित किया जाता है। वर्मी-कम्पोस्ट का उपयोग जैविक खेती में किया जाता है।

बायोमास अपशिष्ट निपटान

सूखे पत्तों, मृत शाखाओं, घास आदि जैसे बायोमास कचरे के निपटान के लिए, कचरे को पहले उपयुक्त आकार के टुकड़ों में विभाजित किया जाता है। इसके बाद, इसे बायोगैस पाचक घोल में मिलाया जाता है। यह मिश्रण कोयला ईंटों या ब्रिकेट के लिए एक फीडस्टॉक है, जिसका उपयोग खाना पकाने के ईंधन के रूप में किया जाता है। इन ईंटों या ब्रिकेट्स का उपयोग गैसीफायर में सिनगैस का उत्पादन करने के लिए भी किया जा रहा है, जिसका उपयोग गैस इंजनों में बिजली बनाने के लिए किया जा सकता है। ईंटों के जलने से उत्पन्न राख को सीमेंट और पानी के साथ मिलाकर उपयुक्त अनुपात में ईंटों का उत्पादन किया जाता है, जिनका उपयोग निर्माण कार्य में किया जाता है।

पॉलिमर अपशिष्ट निपटान

प्लास्टिक, सैनिटरी कचरे आदि से बने पॉलिमर कचरे का दो मुख्य प्रक्रियाओं यानी पायरोलिसिस और प्लाज्मा शोधन के माध्यम से निपटाया जा रहा है। पायरोलिसिस प्रक्रिया के तहत, उपयुक्त अपशिष्टों की उपस्थिति में बहुलक कचरे को अवायवीय वातावरण में 400 - 600°C के तापमान तक गर्म किया जाता है। पॉलिमर कचरे से वाष्पशील पदार्थ के गर्म होने के परिणामस्वरूप संक्षेपण पर पायरोलिसिस तेल मिलता है। शुद्धिकरण के बाद, हीटिंग के लिए अन-कंडेंस्ड सिनगैस और क्रूड पायरोलिसिस ऑयल का पुनः उपयोग किया जाता है और आत्मनिर्भरता की स्थिति प्राप्त करने में मदद करता है। ठोस अवशिष्ट, जिसे चार के रूप में जाना जाता है, को ब्रिकेट बनाने के लिए बायोगैस समाधान के साथ मिलाया जाता है।

स्वच्छता अपशिष्ट निपटान

सेनेटरी आइटम, जिसमें मास्क, सैनिटरी नैपकिन, डायपर आदि शामिल हैं, उच्च तापमान प्लाज्मा का उपयोग करके निपटाए जाते हैं। यूवी-सी रोशनी और गर्म हवा के हस्तक्षेप के तरीकों के माध्यम से कोविद की श्रृंखला को तोड़ने में मदद करने के लिए एमएसडब्ल्यू सुविधा विशेष अंकुरण शोधन क्षमताओं से सुसज्जित है। सीएसआईआर-सीएमईआरआई द्वारा विकसित विकेन्द्रीकृत ठोस अपशिष्ट प्रबंधन संयंत्र में सभी कचरे को वैज्ञानिक रूप से प्रबंधित करने की क्षमता है, जिसमें कोविद और कचरे में मौजूद अन्य वायरस शामिल हैं। एकीकृत MSW पायलट प्लांट भी छत पर सौर पैनलों की स्थापना के माध्यम से ऊर्जा की आवश्यकता के मामले में आत्मनिर्भर है, जो शॉर्ट-ग्रिड पर अधिशेष ऊर्जा आपूर्ति भी प्रदान कर सकता है।

100 जीडब्ल्यू सौर ऊर्जा उत्पादन और 'शून्य-अपशिष्ट और शून्य-लैंडफिल' पारिस्थितिकीय 'प्रसंस्करण में विकेन्द्रीकृत एमएसडब्ल्यू (0.5 से 5.0 टन / दिन) और आयातित डीजल के बोझ को कम करने (कार्बन डाइऑक्साइड प्रदूषण उत्पन्न करने के लिए नगण्य परिवहन) की तकनीक। एक शहर के निर्माण के सपने को साकार करने के लिए अवसरों को संभव बनाता है और यह प्रक्रिया-सगाई और विनिर्माण दोनों के माध्यम से 'रोजगार सृजन का स्रोत' बन सकता है, जो देश में मध्यम और छोटे स्तर का उद्यम है, START -Up और सहायता कर सकता है कई छोटे उद्यमी।

चुनौतियाँ

भारत में अधिकांश शहरी स्थानीय निकाय वित्त, बुनियादी ढांचे और प्रौद्योगिकी की कमी के कारण कुशल अपशिष्ट प्रबंधन सेवाएं प्रदान करने के लिए संघर्ष करते हैं। शहरीकरण की तीव्रता के साथ-साथ, ठोस अपशिष्ट उत्पादन में भी वृद्धि हुई है जिसने ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को काफी बाधित किया है। यद्यपि ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम -2016 कचरे के पृथक्करण को अनिवार्य करता है, इस नियम का अक्सर बड़े पैमाने पर पालन नहीं किया जाता है।

अधिकांश नगर पालिकाएं बिना किसी विशेष उपचार के खुले डंप स्थलों पर ठोस अपशिष्ट एकत्र करती हैं। अक्सर इस प्रकार की साइटें बड़े पैमाने पर बीमारियों के बैक्टीरिया पैदा करती हैं और आस-पास रहने वाले रोग भी इससे बहुत प्रभावित होते हैं। इस प्रकार के स्थानों से भूजल में पाया जाने वाला दूषित रसायन आम लोगों के जीवन को बहुत नुकसान पहुंचाता है। कई विशेषज्ञ भी

वायु प्रदूषण के लिए इन साइटों को जिम्मेदार मानते हैं। एक और समस्या यह है कि अपशिष्ट प्रबंधन के लिए आवंटित अधिकांश वित्त संग्रह और परिवहन के लिए जाता है, जबकि प्रसंस्करण और निपटान के लिए बहुत कम रहता है।

भारत में अपशिष्ट प्रबंधन क्षेत्र मुख्य रूप से अनौपचारिक श्रमिकों द्वारा बनाया गया है, जिनमें से अधिकांश शहरों में रहने वाले गरीब हैं। अनौपचारिक कार्यकर्ता होने के नाते, इन लोगों को कार्यात्मक और सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती है।

प्रभाव

यदि कचरे का प्रबंधन ठीक से नहीं किया जाता है, तो यह समुद्री और तटीय जैसे विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। पिछले कुछ वर्षों में समुद्री कचरे को एक गंभीर लचता के रूप में देखा गया है। यह न केवल समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता को प्रभावित करता है, बल्कि यह कई समुद्री प्रजातियों के जीवन को भी प्रभावित करता है।

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दोनों को बर्बाद करना हमारे स्वास्थ्य और कई तरीकों से कल्याण को प्रभावित करता है। जैसा कि मीथेन गैस जलवायु परिवर्तन में योगदान करती है, स्वच्छ जल स्रोत दूषित हो जाते हैं।

अपशिष्ट न केवल पारिस्थितिक तंत्र और स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि समाज पर आलृथक बोझ भी बढ़ाता है। इसके अलावा, अपशिष्ट प्रबंधन में बहुत पैसा भी खर्च किया जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन-डब्ल्यूएचओ के अनुसार, भारत में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में सुधार करके 22 प्रकार की बीमारियों को नियंत्रित किया जा सकता है।

सीसा, पारा और आर्सेनिक खतरनाक पदार्थ हैं जो भारी धातुओं के अंतर्गत आते हैं।

सीसा एक प्रचुर मात्रा में धातु है और इसे प्राप्त करना अपेक्षाकृत आसान है। इसका उपयोग बैटरी, ईंधन, कीटनाशक, पैंट, पाइप और अन्य सामग्रियों में किया जाता है जहां संक्षारण के प्रतिरोध की आवश्यकता होती है। ज्यादातर सीसा लोगों और वन्यजीवों की हड्डियों में पाया जाता है। लीड ऑक्सीजन को ले जाने के लिए लाल रक्त कोशिकाओं की क्षमता को कम कर सकता है और लाल रक्त कोशिकाओं के जीवन काल को कम कर सकता है। सीसा नसों, ऊतकों को नष्ट कर सकता है, जिससे कई मस्तिष्क रोग हो सकते हैं। पारा कई रूपों में पाया जाता है। पारा का उपयोग क्लोरीन के उत्पादन में किया जाता है। इसका उपयोग प्लास्टिक उत्पादन के मुख्य स्रोत के रूप में भी किया जाता है। औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्पादित क्लोरीन और प्लास्टिक पारा के कारण पर्यावरणीय क्षति के लिए ज्यादातर जिम्मेदार हैं। हमारे शरीर में पारा निकालने की सीमित क्षमता होती है। खाद्य श्रृंखला में, पारा अधिक सांद्र हो जाता है क्योंकि यह विभिन्न जीवों (जो बाद में मनुष्यों द्वारा खाया जाता है) द्वारा निगला जाता है। एक जलीय वातावरण में, पारा प्लवक द्वारा अवशोषित होता है, जिसे बाद में मछली द्वारा खाया जाता है। इसके अलावा, मछली गलफड़ों और पारे से संक्रमित अन्य मछली खाने से पारा को निगलना। विनाइल क्लोराइड एक रसायन है जो प्लास्टिक के निर्माण में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। आम तौर पर, लोग विनाइल क्लोराइड के अत्यधिक ज्वलनशील स्तर का पता लगाने में सक्षम होते हैं, जब वे इसके साथ या उसके पास काम करते हैं, लेकिन विनाइल क्लोराइड गैस का रिसाव भी जान जोखिम में डाल सकता है। विनाइल क्लोराइड जैसे रसायन के साथ लंबे समय तक (1-3 वर्ष) रहने से मनुष्यों में बहरापन, कृष्टि समस्याएं, परिसंचरण विकार और हड्डियों के विकार जैसी बीमारियां हो सकती हैं।

निष्कर्ष

नीमराना में विषैले उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त फिल्टरिंग तंत्र लगाने की आवश्यकता है। भारत की ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नीति के लिए आवश्यक है कि गीला और सूखा कचरा मिश्रित न हो, ताकि केवल गैर-कम्पोस्टेबल और गैर-पुनः उपयोग योग्य अपशिष्ट डब्ल्यूटीई संयंत्रों तक पहुंचे। पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए, स्थानीय लोगों के सहयोग के माध्यम से, उन स्थानों की पहचान की जानी चाहिए और अपशिष्ट प्रबंधन किया जाना चाहिए। कचरा प्रबंधन कार्यक्रमों के लिए जनता को प्रशिक्षित करने, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने और योजना को उचित तरीके से लागू करने की आवश्यकता है। कर प्रबंधन के लिए, उद्योगों, अस्पतालों आदि पर कानूनी प्रावधान 'कर' के साथ प्रदान किए जाने चाहिए। अपशिष्ट प्रबंधन को कुशलतापूर्वक करने के लिए, संबंधित अधिकारियों को कुछ कार्यक्रम और नीति विकास शुरू करना चाहिए। विभिन्न समुदायों, चाहे वे शहरी हों या ग्रामीण, विभिन्न मल्टीमीडिया के माध्यम से बुनियादी ढांचे और प्रबंधन के बारे में शिक्षित होना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. डॉ हरिमोहन सक्सेना, पर्यावरण और पारिस्थितिकीय भूगोल, राजस्थान हिंदी गण अकादमी, जयपुर।
2. डॉ राकेश कुमार शर्मा पर्यावरण प्रशासन और मानव पारिस्थितिकी, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर।
3. डॉ रतन जोशी: शहरी भूगोल 2010: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
4. प्राकृतिक संसाधन 2010: क्रॉसिकल पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड नोएडा।
5. डॉ रामकुमार गुर्जर - पर्यावरणीय समस्याएं: सूचक प्रकाशन, जयपुर।
6. जून 2013 पर्यावरण और सतत विकास की योजना।
7. विश्व फोकस फरवरी 2014 पर्यावरण और सतत विकास
8. विश्व फोकस दिसंबर 2014 जलवायु परिवर्तन
9. कार्यालय, पंचायत समिति, नीमराणा, जिला अलवर
10. कार्यालय, अनुविभागीय अधिकारी, नीमराणा, जिला अलवर
11. रीको औद्योगिक क्षेत्र, नीमराना, जिला अलवर
12. वन और पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार
13. राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, राजस्थान

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० रतन कुमार भारद्वाज

आचार्य, संजय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लाल कोठी योजना, जयपुर

प्रभुदयाल

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

मनुष्य अपने जीवन में स्वयं के द्वारा निर्धारित किये उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयास करता रहता है और उनका पूरा होना या पूरा न होना भी उसके द्वारा किये गये प्रयासों पर निर्भर करता है। आकांक्षा में उपलब्धि की इच्छा संनिहित रहती है। आकांक्षा मनुष्य के लक्ष्य प्राप्ति की सफलता-असफलता का ज्ञान न करवाकर यह स्पष्ट करती है कि वह क्या प्राप्त करना चाहता है व उसका लक्ष्य क्या है? विद्यार्थियों के माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का उद्देश्य उनको स्वयं की शैक्षिक उपलब्धियों तथा शैक्षिक आकांक्षाओं के अनुकूल स्वस्थ जीवन यापन हेतु आजीविका योग्य बनाना होता है। इस शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में भिन्नता पायी गयी।

मुख्य शब्द

शैक्षिक आकांक्षा, मुस्लिम समुदाय, माध्यमिक स्तर।

प्रस्तावना

शैक्षिक आकांक्षा सदैव शैक्षिक उपलब्धि हेतु प्रेरित करती है। अर्थात् शैक्षिक आकांक्षा में उपलब्धि की इच्छा निहित रहती है। शैक्षिक आकांक्षा विद्यार्थी के अपने लक्ष्य प्राप्ति में सफल रहा, कितना सफल रहा या नहीं इत्यादि बातों का उल्लेख न कर केवल इस बात का उल्लेख करती है कि विद्यार्थी क्या प्राप्त करना चाहता है या उसका लक्ष्य क्या है? प्रत्येक विद्यार्थी अपनी लालसाओं की हर इक हद को हासिल कर सके यह जरूरी नहीं। अर्थात् इन आकांक्षाओं को उच्च आदर्श भी कहा जा सकता है। शिक्षा व्यवस्था प्रत्येक स्थान पर काल एवं परिस्थितियों के अनुसार की गई है। शिक्षा के संबंध में प्रत्येक विद्यार्थी की कुछ आकांक्षाएँ होती हैं, जो कि उसके जीवन के किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो सकती हैं।

प्रत्येक विद्यार्थी की इन आकांक्षाओं का स्तर भी अलग-अलग होता है और इन्हीं के आधार पर विद्यार्थियों का वर्गीकरण यथार्थवादी एवं निराशावादी श्रेणी में किया जाता है। विद्यार्थियों को किसी न किसी क्षेत्र में कुछ कर दिखाने या बनने की जो अभिलाषा विद्यमान होती है, उसको आकांक्षा कहा जाता है। आकांक्षा विद्याथियों को लक्ष्य प्राप्ति हेतु आगे कदम बढ़ाने के लिए आधार प्रदान करती है।

जेम्स ड्रेवर (1956) के अनुसार :-

''शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अर्थ है एक व्यक्ति की अपने स्वानुभवों के द्वारा सफलता तथा असफलता की प्राप्ति।''

मानव जीवन में सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा की अहम भूमिका सर्वविदित है। विद्यार्थियों में शिक्षा के क्षेत्र में कुछ अलग कर दिखाने, अपना स्थान बनाने या स्वयं को प्रदर्शित करने की जो अभिलाशाएँ विद्यमान रहती है, उन्हें शैक्षिक आकांक्षा कहते हैं। शैक्षिक आकांक्षा का अर्थ शैक्षिक क्षेत्र में विद्यार्थी की अपनी वर्तमान स्थिति से अपने आप को ऊँचा उठाने की इच्छा अथवा प्रयास से लगाया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान तथा भविष्य में किसी कार्य को बेहतर बनाने के लिए किए गए बेहतरीन प्रयास, जो हमारे द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन बन जाये, वही सही अर्थों में शैक्षिक आकांक्षा होती हैं।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मुस्लिम समुदाय के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा में भिन्नता प्रतीत होती है। माध्यमिक स्तर उच्च शैक्षिक आकांक्षाओं का आधार होता है, इसी स्तरीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इस समस्या का चयन अध्ययन हेतु किया गया।

शोध का उद्देश्य

''माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन करना।''

संबंधित साहित्य अध्ययन

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु निर्मित परिकल्पनाओं का दत्त संकलन के आधार पर सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त परिणामों के अनुसार मुस्लिम समुदाय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा का अध्ययन किया गया। इसके परिणाम शैक्षिक आकांक्षा के आधार पर पूर्व में हुए अलग-अलग शोधकार्यो के अनुक्रम में हैं, जहाँ झा, दिलीप कुमार (2019) ने ''परम्परागत और आधुनिक छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता तथा शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन'' विषय पर शोध कार्य किया जिसके परिणाम दर्षाते हैं कि परम्परागत और आधुनिक छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता में समानता पायी गई तथा आधुनिक छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर परम्परागत छात्र एवं छात्राओं की अपेक्षा उच्च होता है। तिवारी, ऋत्विज (2018) ने ''व्यावसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन'' उच्च माध्यमिक स्तर पर लिंग का प्रभाव के साथ किया और पाया कि व्यावसायिक आकांक्षा पर लिंग का प्रभाव नहीं पाया गया। भटनागर एवं परगाई (2018) ने ''कुमाँऊ मण्डल के बी.टी.सी. एव बी.एड. शिक्षकों के आकांक्षा स्तर, षिक्षण प्रभावशीलता, सुविधास्तर, स्वधारणा एवं कार्यात्मक मूल्यों का समीक्षात्मक अध्ययन'' विषय पर शोध किया और पाया कि बी.टी.सी. एव बी.एड. शिक्षकों की स्वधारणा का उनकी षिक्षण प्रभावशीलता, सुविधास्तर, आकांक्षा स्तर एवं कार्यात्मक मूल्यों से महत्त्वपूर्ण सह-सम्बन्ध है। कुमार, संजीव (2015) ने ''केन्द्रीय विद्यालय के छात्रों की व्यक्तित्त्व आवश्यकताएँ, मूल्य तथा शैक्षिक आकांक्षा के विभिन्न स्तरों पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि'' विषय पर शोध किया और पाया कि केन्द्रीय विद्यालय के छात्रों की व्यक्तित्त्व आवश्यकताएँ, मूल्य तथा शैक्षिक आकांक्षा के विभिन्न स्तरों पर उनके लिंग तथा विद्यालय के भौगोलिक परिक्षेत्र का कोई प्रभाव नहीं है। राय, गीता (2014) द्वारा किये गये शोध अध्ययन के परिणाम उत्तराखण्ड राज्य के माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के आकांक्षां स्तर और अकादमिक प्रदर्शन पर उन विद्यार्थियों के अभिभावकों के प्रोत्साहन प्रभाव का धनात्मक संबंध प्रदर्शित करते हैं। हेन्सन, जना मैरी (2013) ने अपने अध्ययन ''अंडरस्टैंडिंग ग्रेजुएट स्कूल एस्पाइरेसन्श: द इफैक्ट ऑव गुड टीचिंग प्रैक्टिस'' में पाया कि संबंधित संकाय के शिक्षकों के अच्छे शिक्षण अभ्यास का उनके छात्रों के स्नातक शिक्षा में प्रवेश लेने पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। शर्मा, प्रवीण कुमार (2013) ने ''प्राथमिक विद्यालयों के बी.टी.सी. तथा विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के आकांक्षा स्तर, प्रभावशीलता, सुविधा स्तर, स्व-धारणा व कार्यात्मक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन'' किया और पाया कि शिक्षक प्रभावशीलता की स्व-धारणा एवं कार्यात्मक मूल्यों से सहसंबंध की मात्रा औसत स्तरीय है तथा इसकी प्राथमिक विद्यालयी सुविधा स्तर एवं आकांक्षा स्तर से सहसंबंध की मात्रा निम्न स्तरीय है। एलिस, माइल्स एवं रिचर्ड, लिन्ने (2012) ने अपनी रिपोर्ट ''टीचिंग द वे एस्पायर टू टीच: नाउ एण्ड इन द फ्यूचर'' में बतलाया कि शिक्षक अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं, जैसे-शिक्षण के लिए उत्तेजना, छात्रों के लिए समर्पण, उनकी देखभाल, अपने छात्रों को जानना तथा उनके व्यावसायिक निर्णय लेने

में लचीलापन आदि के बारे में एक मत होते हैं। प्रस्तुत शोधकार्य में माध्यमिक स्तर पर मुस्लिम समुदाय के छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर पाया गया जो कि पूर्व में हुए शोध के परिणामों से पुष्ट होता है(जहाँ शर्मा, राजलक्ष्मी (2011) द्वारा किये गये शोध अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा में अन्तर उपस्थित है। दास, अरिआनि एवं मिरदाद (2015),मदरासोवा गेकोवा एट ऑल (2010), बाजपेयी, अमिता एवं कन्नौजिया, आरती (2007), पेटर, एस.ली. एवं अन्य (2007), जेनियार्टो (2004), चौधरी, विनिता (2003) ने अपने अध्ययन शैक्षिक आकांक्षा तथा अन्य भिन्न चरों के साथ किये(किन्तु माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा की तुलना पर आधारित कोई अध्ययन भारत या विदेशों में सम्पन्न अध्ययनों में प्राप्त नहीं हुआ। अतः शोधकर्त्ता द्वारा यह अध्ययन, माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का अध्ययन करने के उद्देश्य से किया गया।

शोध परिकल्पना

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोधकार्य में सर्वेक्षण विधि प्रयुक्त की गई।

शोध उपकरण

डॉ. वी.पी.शर्मा तथा डॉ. अनुराधा गुप्ता (2015) द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा मापनी।

जनसंख्या

राजस्थान राज्य में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान से सम्बद्ध माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत मुस्लिम समुदाय के समस्त विद्यार्थी।

शोध न्यादर्श

शोधकर्त्ता द्वारा इस शोधकार्य हेतु न्यादर्श के रूप में शेखावाटी क्षेत्र के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान से सम्बद्ध माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत कुल 400 मुस्लिम विद्यार्थियों को; 200 ग्रामीण, तथा 200 शहरी को, चुना गया जो कि विभिन्न विद्यालयों का प्रतिनिधित्त्व करते हैं।

शोध में प्रयुक्त चर

स्वतंत्र चरः-मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थी।

आश्रित चरः-शैक्षिक आकांक्षा।

शोध में प्रयुक्त न्यादर्शन विधि

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा सम्भाव्य न्यादर्शन की साधारण यादृच्छिक विधि को प्रयुक्त किया गया है।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रस्तुत शोध में निम्न सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है -

- मध्यमान
- मानक विचलन

- मानक त्रुटि
- स्वतंत्रता अंश
- आलोचनात्मक अनुपात

परिकल्पना-1

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या - 1

(मध्यमान, मानक विचलन, मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि, मध्यमानों का अन्तर, स्वतंत्रता के अंश तथा आलोचनात्मक अनुपात का प्रदर्शन)

मुस्लिम समुदाय	संख्या N	मध्यमान M	मानक विचलन SD	अन्तर की मानक त्रुटि SE_D	मध्यमानों का अन्तर D	स्वतंत्रता के अंश df	आलोचनात्मक अनुपात C.R.
ग्रामीण	200	23.75	4.07	0.378	0.76	398	2.00**
शहरी	200	24.51	3.48				

**0.5 स्तर पर सार्थक

व्याख्या एवं विश्लेषण

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के प्राप्तांकों के मध्यमान क्रमश: 23.75 व 24.51 हैं तथा दोनों समूहों के मानक विचलन क्रमश: 4.07 व 3.48 हैं। दोनों समूहों के मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि 0.378 है तथा मध्यमानों का अन्तर 0.76 है। दोनों समूहों के प्राप्तांकों का आलोचनात्मक अनुपात 2.00 है जो कि स्वतंत्रता के अंश 398 हेतु 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान 1. 96 से अधिक है, अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: **परिकल्पना - 1 को निरस्त किया जाता है।**

लेखाचित्र संख्या - 1

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता का लेखाचित्रीय प्रदर्शन

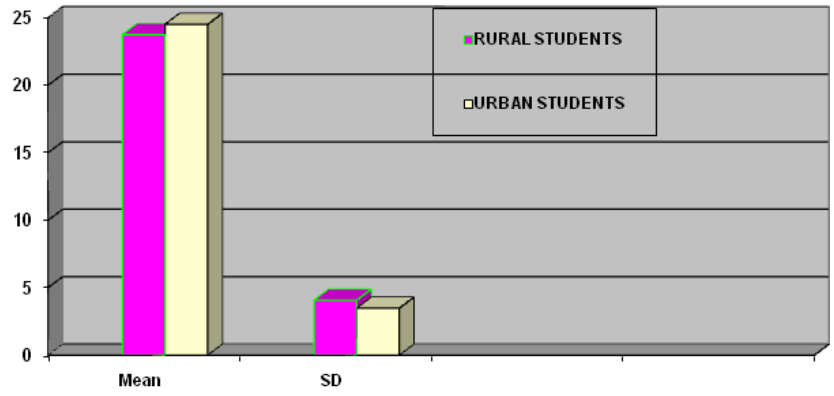

परिणाम :-दत्त विश्लेषणानुसार माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के मध्यमानों में सार्थक अन्तर पाया गया, अर्थात् माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में भिन्नता पायी गयी। हालांकि मुस्लिम समुदाय के शहरी विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान (24.51) मुस्लिम समुदाय के छात्रों के प्राप्तांकों के मध्यमान (23.75) से अधिक है। जो भी अन्तर है, वह संयोगवश नहीं है। उक्त अर्थापन इंगित करता है कि माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थी शैक्षिक आकांक्षा स्तर की ख्रष्टि से समान नहीं हैं, उनकी शैक्षिक आकांक्षा में विशेष अन्तर उपस्थित है। जिसका कारण मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के अभिभावकों का उन पर कम ध्यान दे पाना हो सकता है।

निष्कर्ष

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के मध्यमानों में सार्थक अन्तर उपस्थित है।

सुझाव

मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के अभिभावकों को इन विद्यार्थियों के वांछित लक्ष्यों से अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिए।

- मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों हेतु उनकी आकांक्षा स्तर का ध्यान रखते हुए परामर्श कक्षाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- *गुप्ता एवं गुप्ता (2007), आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।*
- *गैरेट, एच.ई. (1981), मनोविज्ञान एवं शिक्षा में सांख्यिकी, दशम् संस्करण, बी.एफ. एण्ड सन्स, बॉम्बे।*
- *जेनियार्टो (2004), एन इफैक्ट ऑव सोशियो इकोनॉमिक स्टेटस ऑन एजूकेशनल एण्ड वोकेशनल एस्पाइरेशन ऑव यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट्स, सोशियल साइन्स क्वाटरली, 98(4), 1048-1055।*
- *पीटर, एस.ली. एवं अन्य (2007), एजूकेशनल एसपाइरेशन्स एण्ड पोलिसी इम्प्लीकेशन्स: अ स्टडी ऑव यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट्स इन वेस्टर्न चाइना, जनरल ऑव हायर एजूकेशन पोलिसी एण्ड मैनेजमेन्ट, 29(2), 143-158।*
- *शर्मा, प्रवीण कुमार (2013), प्राथमिक विद्यालयों के बी.टी.सी. तथा विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के आकांक्षा स्तर, प्रभावशीलता, सुविधा स्तर, स्व-धारणा व कार्यात्मक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन,पी-एच.डी. शिक्षा विभाग, जैन विश्वविद्यालय, लाडनूँ।*
- *शर्मा, सुरेन्द्र (2007), रिसर्च मैथडोलॉजी-शैक्षिक परिप्रेक्ष्य, नेहा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।*
- *शर्मा, राजलक्ष्मी (2011), स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की आकांक्षा, आत्मविश्वास, सेवा अवधारणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन, डॉक्टरल थीसिस, जैन विश्व भारती यूनिवर्सिटी, लाडनूँ।*
- *हेन्सन, जना मैरी (2013), अंडरस्टैंडिंग ग्रेजुएट स्कूल एस्पाइरेसन्श: द इफैक्ट ऑव गुड टीचिंग प्रैक्टिस, पी-एच.डी. (एजूकेशन) ग्रेजूएट कॉलिज, यूनिवर्सिटी ऑव लोवा, अमेरीका।*
- *तिवारी, ऋत्विज (2018), व्यावसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन,ग्लोबल जर्नल ऑव इंजीनियरिंग साइंस एण्ड रिसर्चेज़, 5(9), 238-242।*
- *भटनागर एवं परगाई (2018), कुमाँऊ मण्डल के बी.टी.सी. एव बी.एड. शिक्षकों के आकांक्षा स्तर, षिक्षण प्रभावशीलता, सुविधास्तर, स्वधारणा एवं कार्यात्मक मूल्यों का समीक्षात्मक अध्ययन, इन्टरनेशनल जर्नल ऑव रिसर्च, 5(5), 382-401।*
- *झा, दिलीप कुमार (2019),*परम्परागत और आधुनिक छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता तथा शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन, *रिमार्किंग एन एनालाईज़ेषन, 3(11), 145-150।*

भारत रुस सम्बन्धः 21वीं शताब्दी के सन्दर्भ में राजनीतिक सम्बन्धों का एक अध्ययन

अमित कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, एम.डी.यू., रोहतक

शोध सार

भारत की विदेश नीति का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि वह दूसरे देशों के साथ अपने सम्बन्धों को बढावा देना चाहते हैं। विश्व की जटिल परिस्थितियों वाले समय में किसी भी देश के दूसरे देश से निर्भरता रूपी अपने राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देने के लिये सम्बन्धों का अच्छे से संचालन करना पड़ता है। भारत रुस के सम्बन्ध पुराने समय से ही प्रगाढता वाले पाये गये हैं। 1922 में सोवियत संघ का गठन होना और उपनिवेशवाद व साम्राज्यवादी विचारधाराओं का विरोध करना इसका शुरू से ही राजनीतिक दृष्टिकोण रहा है। भारत ने भी इनकी समाजवादी विचारों को अपने देश की विदेश नीति में अपनाया है। भारत की स्वतन्त्रता से लेकर सोवियत संघ के विघटन तक दोनों देशों के सम्बन्ध अच्छे रहे हैं। 1971 की भारत रुस मित्रता सन्धि तो दोनों देशों के सम्बन्धों की गहनता को दर्शाती है। 1991 से लेकर 1995 तक सम्बन्धों में कुछ टकराव देखने को मिलता है लेकिन फिर इसके बाद सम्बन्धों का फिर से सुचारु रूप से संचालन देखने को मिलता है। 21वीं शताब्दी में दोनों देशों के बीच विभिन्न क्षेत्रों में सम्बन्धों का संचालन किया जा रहा है। जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रौधोगिकि, रणनीति रक्षात्मक सम्बन्धों पर विशेष बल दिया गया है।

मुख्य शब्द विदेश-नीति, समाजवादी विचारधारा, यू.एन.ओ., वीटो पावर, सैन्यगुट, रुप्या-रुबल।

शोध प्रविधि :- प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णात्मक ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया है। यह शोध द्वितीयक आकड़ों पर आधारित है। इसके लिये विभिन्न पुस्तकों, पत्र, पत्रिकाओं, इन्टरनेट एवं शोधकर्ताओं के स्वयं के अनुभवों को शामिल करते हुए शोध सामग्री को एकत्रित किया गया है।

शोध के उद्देश्यः-

1. भारतीय विदेश नीति का रुस के प्रति दृष्टिकोण को जानना।
2. भारत सोवियत संघ के प्राचीन सम्बन्धों का अध्ययन करना।
3. 21वीं शताब्दी में भारत रुस के सम्बन्धों की परिवर्तनशीलता को जानना।
4. विश्वपटल पर दोनों देशों की आपसी भागीदारी को समझना।

भारत रुस के सम्बन्धों का इतिहास

भारत रुस के सम्बन्धों का इतिहास काफी पुराना माना जाता है। जब सोवियत गणराज्य 1922 में गठन हो गया था उस समय भारत अंग्रेजों का गुलाम था सोवियत गणराज्य की उपनिवेशवाद के विरुद्ध दृष्टिकोण रहा है। भारत के भी महान् स्वतन्त्रता सेनानीयों पर भी समाजवादी विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा था। जब भारत को आजादी प्रदान की गई तो भारत ने अपने सम्बन्धों को सोवियत संघ के साथ बनाये रखा। जब सोवियत संघ का राष्ट्रपति स्टालिन था उस समय सम्बन्धों में कुछ मतभेद भी देखने को मिलते हैं। 1953 में स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ ने खुश्चेव बुलगासिन के नेतृत्व में सता का संचालन किया गया। भारत के प्रधानमन्त्री नेहरू ने 1955 में सोवियत संघ की यात्रा की। फिर नेहरू ने भारत आने के लिये आमन्त्रित किया। इसके बाद खुश्चेव

बुलगासिन ने भारत की यात्रा की। दोनों देशों ने विश्व के उस समय बनने वाले विभिन्न सैन्यगुटों का विरोध किया और विश्व में शान्ति पूर्वक सिद्धान्तों को आगे बढ़ाने पर सहमति प्रकट की गई। जब भारत ने 1961 में गोआ को पुर्तगालियों से स्वतन्त्र कराया गया था तो उस समय सोवियत संघ ने भारत के समर्थन में संयुक्त राष्ट्रसंघ में वीटो पावर का प्रयोग किया था।

जब अक्टूबर 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण किया था तो उस समय सोवियत संघ के लिये वह समय काफी चुनौतियों से भरा हुआ था और चीन पर दबाव बनाते हुए युद्ध विराम के लिये सहमत कर लिया गया था तथा साथ भारत की विभिन्न सैन्य खाद्यान क्षेत्रों में सहायता प्रदान की गई। 1964 में भारत व सोवियत संघ के बीच मिग वायुयान प्रदान करने के लिये समझौते किये गये थे। भारत ने सोवियत संघ से ही पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करने के लिये समाजवादी सिद्धान्तों को अपनाया था। भारत में बोकारो इस्पात कारखाना खोला जाना भी इसका एक अच्छा उदाहरण माना जाता है। उस समय दोनों देशों ने संचार को बढ़ावा देने के लिये कुछ रेडियो स्टेशन भी खोले गये थे। 1965 में जब भारत पाकिस्तान युद्ध हुआ था तब दोनों देशों के बीच सोवियत संघ ने मध्यस्ता करते हुए ताशकन्द समझौता करवाया गया।

1971 में जब भारत पाकिस्तान का युद्ध हुआ तब अमेरिका ने भारत पर दबाव बनाते हुए अपना एक जहाजी बेड़ा समूद्र में उतार दिया तो उस समय सोवियत संघ ने भी भारत की मद्द करते हुए अपना जहाजी बेड़ा भारत की तरफ भेज दिया। 1971 में दोनों देशों के बीच 20 वर्ष के लिये एक शान्ति मित्रता सहयोग सन्धि पर समझौता किया गया। इस समझौते का विश्व के अन्य देशों ने विरोध भी किया और भारत की आलोचना भी की गई। इस सन्धि को लागू करके भारत व सावियत संघ के सम्बन्धों पर एक अमिट छाप छोड़ी गई। इस सन्धि में यह साफ तौर पर कहा गया था कि यदि भारत पर कोई देश हमला करता है तो उस समय सोवियत संघ भारत की मद्द करेगा। इस सन्धि का यह भी प्रभाव था कि इसे चीन, पाक, अमेरिका के बीच बन रहे त्रिध्रुवीय समीकरण को भी आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता था।

भारत में सोवियत संघ ने 1970 के दशक में औद्योगिक योजनाओं, विद्युत उपकरण, तेल उत्पादन की वस्तुओं, तेल प्रतिशोधक प्रयोगशालायें भूगर्भ उपकरण, इस्पात कारखाने आदि के निर्माण में बड़ी भागीदारी निभाई गई। 1973 में ब्रेंजनेव की भारत यात्रा भी इसका ही एक उदाहरण है। 1976 में भारत सोवियत संघ के बीच खनिज तेल कारखानों का निर्माण करने, चाय, कॉफी, पटसन आदि के व्यापार के लिये समझौते किये गये थे। 1976 में भारत व रुस के बीच रुप्या-रुबल को लेकर भी कुछ मतभेद देखने को मिले थे। भारत में 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद भी भारत सोवियत सम्बन्धों का आगे बढ़ाया गया था। 1979 में जब सोवियत संघ ने अफगानिस्तान में अपनी सेना को भेज दिया था तब भारत ने एक सुझ-बूझ का सहारा लेते हुए सोवियत संघ की विश्वशान्ति को बढ़ावा देने के लिये प्रेरित किया गया। 1980 के दशक में श्रीमती इंदिरा गांधी व राजीव गांधी ब्रेंजनेव ने दोनों देशों की आपस में यात्रायें की। तथा विभिन्न प्रकार के समझौते का निर्माण किया गया। सोवियत प्रधान मन्त्री गोर्वाचोव ने भी भारत की यात्रा की। जिन्होंने दो परमाणु बिजलीघरों का निर्माण तमिलनाडु के कुडवगुलम में करने को कहा गया। जब दिसम्बर 1991 में सोवियत संघ का विघटन हो गया तब विश्व पटल पर इस देश की जगह रुस ने ली थी। 1991 से लेकर 1995 के बीच भारत रुस के सम्बन्धों में कुछ कमी भी देखने का मिली थी। क्योंकि उस समय रुस के लोगों के बीच कई तहर के विचार प्रकट किये जा रहे थे। कुछ लोग भारत के साथ रुस के सम्बन्धों में रुकावट पैदा कर रहे थे। लेकिन जब 1994 में भारत के प्रधान मन्त्री पी. वी. नरसिंहराव ने रुस की यात्रा की तब इन दोनों देशों के बीच सम्बन्धों में मतभेद को दूर करने का प्रयास किया गया। 1997 में देवगौड़ा ने भी रुस की यात्रा की। फिर दिसम्बर 1998 में रुस के प्रधानमन्त्री येवगनी प्रियाकोव ने भारत की यात्रा की। ताकि भारत रुस चीन के रूप में एक त्रिकोणीय आपसी सहयोग को बढ़ावा दिया जा सके।

21वीं शताब्दी में सम्बन्धों का अध्ययन

सन् 2000 में रुस के राष्ट्रपति पुतिन ने भारत की यात्रा की। यह यात्रा 21वीं शताब्दी में एक-दूसरे देशों के लिये काफी अच्छी साबित हुई। इस यात्रा के दौरान सामरिक भागीदारी के लिये समझौते किये गये थे। भारत के प्रधानमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी ने 2001 में रुस की यात्रा करके सम्बन्धों को आगे बढ़ाया था। 2003 में रुसी राष्ट्रपति पुतिन व भारत के प्रधान मन्त्री वाजपेयी ने एक दूसरे देशों की यात्रा की। जिसमें सामरिक सहयोग, बहुआयामी क्षेत्रों में सहयोग, आतंकवाद को चुनौती, चीन के प्रति दृष्टिकोण सम्बन्धी बातों पर गहनता के साथ विचार विमर्श किया गया और समझौते की घोषणा की गयी। इसमें मिग 29 लड़ाकू विमान, कामोब 31, कामोव 28, हैलिकॉप्टरों, परमाणु ऊर्जा क्षमता, अकोला वर्ग की पण्डुब्बियों आदि का नाम लिया जा सकता है। मई

2005, नवम्बर 2007 व 2009 में भारत के प्रधान मन्त्री मनमोहन सिह ने भी रुस की यात्रा करके विभिन्न प्रकार के सहयोगी समझौतो पर सहमति प्रकट की गयी। दोनों देशों के बीच 2009 में ब्रिक्स जैसे संगठन का भी निर्माण किया गया था। 2010 में रुस के राष्ट्रपति दमित्री मेदवेदेव ने भारत की यात्रा की थी जिसेक दौरान एक संयुक्त घोषणा पत्र जारी किया गया था। इसमें दोनों देशों के बीच बीस बिलियन डॉलर तक व्यापार बढ़ाना, ऊर्जा क्षेत्र के बढ़ावा देना, सैन्य तकनीक सहयोग करना, संयुक्त विज्ञान व तकनीक केन्द्र की स्थापना करना आदि थे। सितम्बर 2011 में भारत सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन रुस में किया गया। 2011 में ही दोनों देशों के रक्षा मन्त्रियों के द्वारा 11वीं बैठक का आयोजन किया गया। दिसम्बर 2011 में 12वीं शिखर सम्मेलन बैठक का आयोजन मास्को में किया गया था। भारत रुस के बीच इस तरह की शिखर बैठकों के शुरूआत 2000 से मानी जाती है। इस बैठक में शिक्षा, स्वास्थ्य, विमान उत्पादन उपकरण सम्बन्धी परमाणु प्रौधोगिकी और सुखोई टी-50 विमान आदि को बढ़ावा देने पर सहमति बनी। मार्च 2012 में रुसी राष्ट्रपति दमित्री मेदवेदेव भी भारत की यात्रा पर आए। जब ब्रिक्स सम्मेलन का आयोजन किया गया था भारत के प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह ने भी सितम्बर अक्टूबर 2013 में भी रुस की यात्रा की थी जिसमें विभिन्न प्रकार के समझौतों पर सहमति प्रकट की गई। दिसम्बर 2014 में पुतिन ने भी भारत की यात्रा की। जो की दोनों देशों के लिये काफी अहम मानी जाती है क्योंकि भारत में सता का परिवर्तन होते हुए भारत के प्रधानमन्त्री मोदी के नेतृत्व में नई सरकार का गठन किया गया। जुलाई 2015 में भारत के प्रधान मन्त्री मोदी रुस की यात्रा पर गए जहां पर ब्रिक्स सम्मेलन का आयोजन किया गया था। दिसम्बर 2015 में भारत के प्रधानमन्त्री मोदी ने भी मास्को की यात्रा करके दोनों देशों के सम्बन्धों को आगे बढ़ाया था। अक्टूबर 2016 में पुतिन भारत भारत आये। जिसमें आठवें ब्रिक्स सम्मेलन में भाग लिया था। जून 2017 में मोदी ने भी रुस की यात्रा की। जहां पर 18वें भारत रुस वार्षिक शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया था। 2017 में ही रुस के उपप्रधान मन्त्रियों ने भारत की यात्रा करके दोनों देशों के बीच आपसी सम्बन्धों की प्रगाढता के बढ़ावा दिया। मई 2018 में भारत के प्रधानमन्त्री मोदी ने रुस की यात्रा करके विभिन्न प्रकार के आपसी सहयोग वाले समझौतों पर सहमति प्रकट की। अक्टूबर 2018 में रुसी राष्ट्रपति पुतिन ने भारत का दौरा किया था जिसमें एस-400 मिसाइल समझौता किया था। भारत ने लगभग 40 करोड़ रूपये की लागत से एस-400 सिस्टम की 5 बैटरी खरीदने का समझौता किया था। जोकि विश्व का सबसे अच्छा एयर डिफेन्स सिस्टम समझौता माना जाता है। भारत को इस समझौते के तहत 2021 में यह मिसाइल सिस्टम मिलना शुरू हो जायेगा। भारत के प्रधानमन्त्री ने इस समझौते को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। क्योंकि भारत को अपने पड़ोसी देशों से सुरक्षा के लिये इस प्रकार के रक्षात्मक समझौते की बहुत ही आवश्यकता थी। भारत के प्रधान मन्त्री मोदी ने सितम्बर 2019 में रुस की यात्रा की थी जहां पर 20वें भारत रुस शिखर सम्मेलन में भाग लिया था। इसके बाद उसने 5वें पश्चिमी आर्थिक फोरम में भी हिस्सा लिया।

भारत रुस के बीच सम्बन्धों में वर्तमान कालीन समय में कुछ चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। जिसमें सबसे मुख्य भारत का अमेरिका के प्रति बढ़ रहा झुकाव नजर आ रहा है। भारत ने 21वीं शताब्दी में अमेरिका से ऐसे समझौते किये हैं जोकि रक्षा, ऊर्जा व व्यापार आदि क्षेत्रों में किये गये हैं। जिसमें असैन्य 123 समझौता सबसे अहम माना जाता है। जिसके चलते रुस ने इस समझौते को अपनी कूटनीति दृष्टिकोण से अच्छा नहीं समझा भारत के बदलते विश्व में कूटनीतिक सम्बन्धों के कारण ही रुस ने भी अब पाकिस्तान के साथ अपने सम्बन्धों को बढ़ाना शुरू कर दिया है रुस पाकिस्तान के साथ इसलिये सम्बन्धों को बढ़ावा देना चाहता है ताकि भविष्य में उसकी मदद से अफगानिस्तान में अपने प्रभाव को बढ़ावा दिया जा सकें। वर्तमान में अफगानिस्तान की कूटनीति को लेकर अमेरिका को अपनी विफलता साफ नजर आ रही है। इसलिये वह अब अफगानिस्तान से पलायन करना चाहता है। जिसके चलते रुस के लिये एक अवसर बन रहा है ताकि अफगानिस्तान के कुछ आतंकवादी संगठनों पर वह नियंत्रण कर सके। इसके साथ साथ वह दक्षिण एशिया प्रशान्त में भी अपनी पकड़ को मजबुत करना चाहता है। इसलिये भारत को वर्तमान कालीन परिदृश्य को देखते हुए रुस के साथ अपने सम्बन्धों में किसी भी प्रकार की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि भारत के लिये रुस बहुत ही महत्त्वपूर्ण देश है यदि चीन, पाक, रुस एक हो जाते है तो भविष्य में भारत के लिये यह बहुत ही खतरनाक साबित हो सकता है। भारत चीन के साथ कभी भी अच्छे रिश्ते नहीं बना पाया है इसलिये चीन को भी ध्यान में रखते हुए अपने विदेश नीति में एक सन्तुलन बनाना पड़ेगा जिससे अमेरिका से भी हम अपने सम्बन्धों को आगे बढ़ा सके और हमारे सबसे पुराने मित्र रुस की भी अनदेखी न कर सके। भारत को रुस को खुश करने के लिये आपसी व्यापार को बढ़ावा देना पड़ेगा। क्योंकि वर्तमान काल में दोनों देशों के बीच व्यापार की गति धीमी मानी जाती है। भारत और रुस को आपसी सहयोग के ऐसे क्षेत्रों की खोज करने की आवश्यकता है जिसमें वे क्षेत्र शामिल न हो जो मतभेद वाले हों। रुस अपने प्रौधोगिकी क्षमता को भारत तक पहुंचाकर उसके

विकास में अपना योगदान प्रदान कर सकता है। इसी तरह भारत भी अपने बाजार को रुसी वस्तुओं और प्रौधोगिकी के लिए खोल सकता है। रुस को भी यह विश्वास दिलाना पड़ेगा कि वह पाकिस्तान के साथ ज्यादा सम्बन्धों को बढ़ावा नहीं देगा और भारत को भी यह साबित करना पड़ेगा कि वह अमेरिका की हाथों की कटपुतली कभी नहीं बनेगा।

निष्कर्ष :- भारत रुस के सम्बन्धों का 21वीं शताब्दी के सन्दर्भ में अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि दोनों देशों की मित्रता की प्रगाढता पुराने समय से ही देखने को मिलती है। दोनों देशों के बीच सम्बन्धों में कुछ उतार-चढाव तो देखने को मिले हैं लेकिन दोनों देशों की सन्तुलित व सक्रिय कूटनीति के प्रयासों के द्वारा सम्बन्धों को सुचारू रूप से आगे बढावा दिया गया है। अन्त में हम कह सकते हैं कि दक्षिण-पश्चिमी एशिया वाले क्षेत्रों में दोनों देश आपसी सहयोग वाले दृष्टिकोण को बढावा देते हुए अपने विकास को आगे ले जा सकते हैं और विश्व राजनीति में अमेरिका, चीन के प्रभाव पर नियन्त्रण कर सकते हैं। इसलिये दोनों देशों को अपने सम्बन्धों को सुचारू रूप से लगातार संचालित करते रहना चाहिये।

सन्दर्भ सूची

1. मिश्रा, राजेश, 'भारत विदेशनीति भूमण्डलीकरण के दौर में', औरयन्ट ब्लैस्वॉन प्रा. लि. 2018।
2. यादव, एस., आर., 'भारत की विदेशनीति', डॉलिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा. लि. प्रियर्सन ग्रुप नई दिल्ली, 2013।
3. दीक्षित, जे.,एन., ' भारत की विदेशनीति' प्रभात पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2018।
4. वाजपेयी, अरुणादेय, 'समकालीन विश्व एवं भारत के प्रमुख मुददे एवं चुनौतिया', डॉलिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा. लि., 2012।
5. वेददान, सुधीर, 'भारत की विदेशनीति : बदलते सन्दर्भ', नेशनल पब्लिकेशन हाऊस नई दिल्ली।
6. के., सिंह, अजय, 'एशिया, इंडिया रिलेशन इन दा पोस्ट कोल्ड वार एरिया', के. डब्ल्यू. पब्लिकेशन प्रा. लि. 2016।
7. दत, वी., पी., 'स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली 2015
8. सिंह, जसजीत, 'इंडिया रशिया रिलेशन' के. पी. पब्लिशर, प्रा. लि. नई दिल्ली, 2013।
9- https:èèwww.jagranjosh.comèjul.28, 2011.
10- httpsèèwww.nelip.nic.inèè2019.

सन् अठारह सौ सन्तावन और कुँवर सिंह

अरविन्द कुमार सिंह

शोध अध्येता, स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० ओम प्रकाश राय

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, महाराजा कॉलेज, आरा;
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सन् 1857 का वर्ष निर्णायक महत्व रखता है जिसने देश की राजनीति, प्रशासन, समाज, सहित्य, भूगोल सभी क्षेत्रों का भविष्य तय किया। यह वह वर्ष है जिसके अतीत और भविष्य को लेकर वैचारिक दुनिया में अत्यधिक बहसें हुई हैं। आधुनिक भारत के निर्माण में इस वर्ष की महती भूमिका रही है। यही कारण है कि 1857 को लेकर इतिहासकारों के साथ जागरूक भारतीय समाज ने भी गहरा संवाद किया है।

भारतीय इतिहास में 1857 के विद्रोह के स्वरूप का निर्धारण इतिहासकारों ने विविध रूपों में किया है। कुछ इतिहासकार इसे सिपाही विद्रोह मानते है तो कुछ इतिहासकार इसे धार्मिक युद्ध के रूप में देखते हैं। कुछ इतिहासकार इसे सामंतो, देशी शासकों को अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न मानते है। कुछ लोग इसे नागरिक विद्रोह की संज्ञा देते है जिसकी अभिव्यक्ति वे देशी शासकों एवं सिपाहियों का समर्थन देकर करते है। वस्तुतः 1857 का विद्रोह भारतीय इतिहास का वह महत्वपूर्ण अध्याय है जब देश की जनता अंग्रेजी हुकुमत के खिलाफ देशी सिपाहियों तथा देशी राजाओं के साथ मिलकर बगावत करती है तथा ऐसे राष्ट्र का सपना देखती है जो दमन, शोषण अत्याचार से मुक्त हो।

भारत के स्वतंत्रा संग्राम में बिहार का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रेरणादायक रहा है। यह प्रवृति 1857 के विद्रोह के समय भी दिखाई पड़ती है। डॉ राजेन्द्र प्रसाद का कहना है कि ''1857 के विप्लव में बिहार के लोगों ने प्रमुख रूप से भाग लिया। उसकी लपटें प्रांत भर में फैल गई थी। कुँवर सिंह के नेतृत्व में शाहाबाद उसका प्रमुखतम केन्द्र था।'' पटना डिवीजन के आयुक्त सैमुएल्स के शब्दों में ''शाहाबाद में आन्दोलन ने राष्ट्रीय विप्लव की समस्त गरिमा प्राप्त कर ली थी''

सन् 1857 के संघर्ष में दानापुर के विद्रोह सिपाहियों का कुँवर सिंह द्वारा नेतृत्व सम्भालने के संदर्भ में कुछ इतिहासकारों का मानना है कि उन्होनें स्वयं किसी विद्रोह की योजना नहीं बनायी थी। बल्कि अंग्रेजों ने उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली थी और उसे लौटाने की उनकी बार-बार की गयी अपीलों का भी अंग्रेजों पर कोई असर नहीं पड़ा। विपिन चन्द्र का यहॉ तक मानना है कि ''सत्तर साल की उम्र में जमींदार कुँवर सिंह को अंग्रेजों ने दिवालियेपन की कगार पर पहुँचा दिया था। इसलिए वे भीतर ही भीतर अंग्रेजों के दुश्मन हो गए थे। परन्तु, भोजपुरी में रचित जनकाव्य, कुँवर सिंह द्वारा सिपाहियों के नेतृत्व और संघर्ष का यही अर्थ नहीं बताते। बलिया के मंगल पाण्डे (8 अप्रैल,1857), शाहाबाद के पीर अली (3 जुलाई, 1857) को फॉसी के बाद जनता में अंगेजों के विरूद्ध असंतोष था। कुँवर सिंह ने माना कि अंगेजी सरकार ने यह ठीक काम नहीं किया। इसलिए 1857 में जब अंग्रेज प्रशासकों ने कुँवर सिंह को बुलाकर तरह-तरह का लालच देने का प्रयास किया, तो उन्होनें जनभावनाओं का समर्थन किया। यह संयोग है कि इसी समय दानापुर के सिपाहियों के अंन्दर भी असंतोष एवं विद्रोह का भाव पनपता हैं तथा दोनों भाव मिलकर एक हो जाते है।''

सन् 1857 में कुँवर सिंह की आयु लगभग 80 वर्ष थी। उनका स्वास्थ भी अच्छा नहीं था। पटना के कमिश्नर डब्लू0 डेम्पियर ने नवम्बर, 1854 में बताया था कि उसका जीवन कुछ वर्षो का ही और है। कुँवर सिंह की बहुत बड़ी जमीन-जायदाद थी जिससे कम - से - कम तीन लाख रूपये प्राप्त होते थे। वह एक लाख अड़तालीस हजार रूपये सलाना मालगुजारी देता था। डब्लू0 डेम्पियर और विलियम टेलर दोनों यह मानते थे कि उसके बेईमान एजेंटों ने धोखा दिया है। कुँवर सिंह पर तेरह लाख रूपये का कर्ज हो गया था। उसने तथा उसके ऋणदाताओं ने सरकार से प्रार्थना की थी कि वह उनकी जायदाद का प्रबंध अपने हाथ में ले ले और धीरे - धीरे उनका कर्ज चुका दिया जाए। डब्लू0 डेम्पियर और विलियम टेलर ऐसा करने को तैयार थे। राजस्व बोर्ड ने सुझाया कि कुँवर सिंह कहीं से दस लाख रूपये का कर्ज ले ले। इसके लिए विनायक राव के पुत्र किरवी निवासी नारायण राव और माधव राव से बात की गयी लेकिन अनुपयुक्त शर्तो के कारण बातचीत भंग हो गई। कुँवर सिंह को बचाने के विचार से विलियम टेलर ने सुझाव दिया कि जरूरी भुगतान के लिए छोटे कर्ज लिए जाएँ और शाहाबाद के डिप्टी कलैक्टर सैयद अजीमुद्दीन हुसैन खाँ को जायदाद की देखरेख के लिए नियुक्त किया जाए। लेकिन बोर्ड ने टेलर के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और 1857 में कुँवर सिंह ने अपने आप को दिवालिया अनुभव किया।

कर्नल मैलेसन का कहना है कि सिपाहियों से उसकी गुप्त सांठ-गांठ थी और उसके ही आदमियों ने वे नावें दी थी, जिनपर चढ़कर विद्रोहयों ने सोन नदी पार किया। शाहाबाद के मजिस्ट्रेट एच0 सी0 वेक का मत था कि कुँवर सिंह का विद्रोह पूर्व नियोजित था। विलियम टेलर इस बात से आश्वस्त था कि उसकी इस प्रकार की कोई योजना नहीं थी। कुँवर सिंह का एक खास दोस्त और साथी निशान सिंह ने बताया कि हिंसा की धमकी दिये जाने के बाद ही उसने विद्रोहियों का साथ दिया था। फारेस्ट का कहना है कि कुँवर सिंह की मानसिकता विद्रोही थी क्योकि विलियम टेलर ने जब एक आदमी उसे पटना बुलाने के लिए भेजा तो उसने बुढ़ापे और स्वास्थ खराब होने का बहाना बना दिया। मजिस्ट्रेट वेक के खुले दोषारोपण तथा कमिश्नर टेलर के निमत्रंण ने कुँवर सिंह को अवश्य ही सशंकित कर दिया। उसे हिंसा की आशंका थी और उसके स्वामी भक्त कास्तकार अपने सरदार की रक्षा के लिए तैयार थे। कुँवर सिंह के प्रमुख सहायकों ने उसका भाई अमर सिंह, भतीजा रितभंजन सिंह, तहसीलदार हरिकिशुन सिंह, मित्र निशान सिंह, दिलावर खाँ, सरनाम सिंह आदि प्रमुख थे। शाहाबाद के राजपूत इस बात पर तुले हुए थे वे यह सिद्ध कर दें की राजपूती वीरता गुजरे जमाने की बात नहीं है।

जुलाई, 1857 में बिहार में विद्रोह की शुरूआत हुई। 25 जुलार्द, 1857 को दानापुर की 7वीं, 8वीं नम्बर की देशी सेना ने अधिकारियों द्वारा हथियार रखने की आज्ञा देने पर बगावत कर दी। 40 नम्बर की देशी सेना ने भी उनका साथ दिया। अधिकांश सिपाही हरिकिशुन सिंह और रणदलन सिंह के साथ पश्चिम की ओर चले और सोन नदी पार कर आरा पहुँचे।

27 जुलाई, 1857 को दानापुर से आए हुए सैनिकों ने प्रथमत: जेल पर आक्रमण कर कैदियों को छुड़ाया। यह घटना हमें फ्रांसीसी क्रांति के समय के बास्तील के पतन की घटना की याद दिलाती है। उन्होनें सरकारी खजाना से 85,000 रूपये लूट लिये। इसी बीच वे कुँवर सिंह के साथ जुड़े जो जगदीशपुर से एक विशाल उज्जैनिया सेना के साथ आरा पहुँच गए थे। अब आरा का घेरा शुरू हुआ। मजिस्ट्रेट एच0 सी0 वेक नगर के अन्य सभी यूरोपीय नागरिकों को लेकर एक दोतल्ले मकान में आश्रम लिए हुए था। जिसे कम्पनी के रेलवे इन्जीनियर मिस्टर बॉयल ने सुरक्षात्मक व्यवस्था करके एक दुर्ग का रूप दे दिया था। आत्मरक्षा की इस लड़ाई में सिखों मे मुख्य निभाई। घेरे में घिरे हुए डॉक्टर हाल्स का कथन था कि ''यदि सिख भी जो हमारे साथ थे, धोखा दे देते, तो उन्होनें हमारा नश्ता बनाकर खा लिया होता।''

29-30 जुलाई, को दानापुर से कैप्टन डनवर के नेतृत्व में 500 यूरोपीय एवं सिख सैनिक आरा में घिरे हुए अंग्रेज सैनिकों की सहायता के लिए भेजे गये। कुल्हड़िया के पास आम के बाग में कुँवर सिंह के सैनिकों के साथ इनका भीषण युद्ध हुआ। इसमें से केवल पचास आदमी ही बचकर दानापुर की तरफ लौटे। कैप्टन डनवर इस युद्ध में मारा गया। कुँवर सिंह ने आरा में स्वतंत्र शासन-व्यवस्था कायम की। आरा में पूरब और पश्चिम में दो थाने स्थापित किये गये। इनपर शेख गुलाम याहिया को मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। आरा के मिल्की टोला के निवासी शेख मोहम्मद अजीमुद्दीन को पूर्वी थाना का जमादार, दीवान शेख अफजल के पुत्र तुराव अली और खालिम अली को कोतवाल बनाया।

इस समय, बंगाल आर्टिलरी का एक मेजर विन्सेंट आयर कलकत्ता से इलाहाबाद जा रहा था, को बक्सर में आरा की पराजय की सूचना मिली। आयर बक्सर से एक सेना लेकर आरा के निकट पहुँच गया। बीबीगंज नामक स्थान पर 2-3 अगस्त को कुँवर

सिंह की सेना के साथ भीषण युद्ध हुआ तदोपरांत आरा पहुँच कर उसने घीरे हुए अंग्रेज सैनिकों को मुक्त करा दिया। आयर ने 48 घंटे के भीतर आरा के लोगों को निरस्त्र कर दिया। कुँवर सिंह की सत्ता स्वीकार करनेवाले कुछ हिन्दुस्तानी अधिकारीयों को कोर्ट मार्शल किया गया एवं उन्हें उदाहरण के रूप में फॉसी दे दी गयी।

इस बीच, कुँवर सिंह अपने सहयोगियों के साथ जगदीशपुर लौट गए तथा मेजर आयर से मुकाबले की तैयारी शुरू कर दी। परन्तु 12 अगस्त को आयर एक बड़ी फौज लेकर जगदीशपुर पर कब्जा का लिया। वहाँ उसने कुँवर सिंह के लड़ाई के सभी साजो-समान को विनष्ट कर दिया तथा सभी महत्वपूर्ण भवनों को नष्ट कर दिया। कुँवर सिंह द्वारा बनवाये गए नए विशाल मंदिर को भी नष्ट कर दिया गया। क्योंकि उसके बारे में यह मशहूर था कि ''वहाँ के मुख्य पुजारी और कुँवर सिंह के राजगुरू भिखिया दत्त झा तथा अन्य ब्राहम्णों ने विद्रोह के लिए उकसाया था।''

जगदीशपुर के पराजय के बाद कुँवर सिंह ने अपने भाई अमर सिंह, सहयोगियों-निशान सिंह हरिकिशुन सिंह आदि को लेकर जगदीशपुर छोड़ दिया। वे जंगलों में दक्षिण की ओर रोहतास की पहाड़ियों में चले गये। जहाँ से उन्होनें छापामार युद्ध की तैयारी शुरू की। सासाराम के 10 मील उत्तर नोखा पहुँचने पर आस-पास के लोगों ने कुँवर सिंह की काफी बढ़-चढ़कर मदद की। लोगों का विश्वास था कि चारों ओर कुँवर सिंह का शासन हो गया है कि कम्पनी राज्य खत्म हो गया है। इन गतिविधियों से ब्रिटिश इस तरह परेशान हुए कि कुँवर सिंह का पता देने या उसे पकड़वाने के लिए 10 हजार रूपये का पुरस्कार घोषित किया। अमर सिंह के लिए पाँच हतार रूपये, निशान सिंह के लिए एक हजार रूपये, हरिकिशुन सिंह के लिए पाँच सौ रूपये, अन्य विद्रोहियों पर दो-दो सौ रूपये का पुरस्कार घोषित किया गया। परन्तु इतनी बड़ी पुरस्कार राशि के बाद भी कोई विद्रोही नेता नहीं पकड़ा गया।

कुँवर सिंह को सासाराम में यह खबर मिली कि भागलपुर के 5वीं इर्रेगुलर सैनिक टुकड़ी के विद्रोही सैनिक, रामगढ़ के विद्रोही सैनिक उनसे मिलने आ रहे हैं। इन सैनिकों तथा 40वीं रेजिमेन्ट के सैनिकों के साथ कुँवर सिंह मिर्जापुर की तरफ बढ़े। 26 अगस्त, 1857 को वे विजयगढ़ नामक स्थान पर थे। उसके बाद वे रींवा की तरफ चले गये। रींवा के राजा रधुराज सिंह कुँवर सिंह के दूर के संबंधी थे, लेकिन वे अंग्रेजों के प्रति निष्ठावान थे। उन्होनें कुँवर सिंह को रींवा की सीमा में प्रवेश करने से मना किया, परन्तु अस्मत अली, हरचन्द राय जैसे सरदारों ने उनकी मदद की। वहाँ रींवा रेजिमेन्ट के कमान्डर कर्नल हिन्डे तथा कुँवर सिंह के बीच संघर्ष हुआ। कर्नल हिन्डे अपनी स्थिति बनाये रखने में सफल रहा। रींवा के बाद कुँवर सिंह अपनी सेना के साथ वांदा की तरफ चले गए। यहाँ कुँवर सिंह के लिए बड़े दुख की घड़ी थी। कुँवर सिंह तात्या टोपे से मिलने का प्रयास किया ताकि अंग्रेजों के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा बनाया जा सके परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद वे कालपी के लिए रवाना हो गये। कुँवर सिंह को अंग्रेजों के विरूद्ध इस समय कहीं सफलता नहीं मिल रही थी। 7 नवम्बर,1857 को कानपुर में हुए एक संघर्ष में उनके पुत्र दलभंजन सिंह की भी मृत्यु हो गयी।

कुँवर सिंह इसके बाद लखनऊ पहुँचे। जहाँ अवध के शाह ने उन्हें सम्मानजनक पोशाक प्रदान की। इसके अलावा हजारों रूपये नगद तथा आजमगढ़ जिला का मालिकाना हक प्रदान किया। वहाँ से दो हजार अनुयायियों के साथ कुँवर सिंह अयोध्या पहुँचे। कुछ समय बाद ग्वालियर की सैनिक टुकड़ी उनके साथ मिल गयी। कुँवर सिंह ने नाना साहब के साथ दिसम्बर,1857 के कानपुर के युद्ध में भाग लिया, परन्तु अंग्रेजों की श्रेष्ठकर सेना के विरूद्ध उन्हें सफलता नहीं मिली। लगभग 1800 सैनिकों का एक दल कुँवर सिंह के भतीजा रिपुदमन सिंह के नेतृत्व में घाघरा नदी पर बुरनी घाट पर एकत्र हुआ (दिसम्बर,1857)। जहाँ कम्पनी के अधिकारियों ने उसे रोकने की कोशीश की पर इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली।

फरवरी, 1858 के शुरू में कुँवर सिंह के साथ सिपाहियों का एक बड़ा जत्था चार-पाँच तोपों के साथ फैजाबाद पहुँच। आजमगढ़ से 25 मील की दूरी पर 17 मार्च, 1858 के अतरौलिया में कुँवर सिंह और देशी सिपाहियों की टुकड़ियाँ जुटीं। 22 मार्च, 1858 को आजमगढ़ जिले में तैनात कर्नल मिलमैन ने कुँवर सिंह के सिपाहियों पर भारी हमला किया। प्रारम्भ में उन्हें कुछ सफलता मिली परन्तु अन्त में अंग्रेज पराजित हुई। 26 मार्च को कुँवर सिंह ने आजमगढ़ पर अधिकार कर लिया। 27 मार्च को 37वीं रेजीमेंन्ट के कर्नल डेंस के नेतृत्व में अंग्रेजों ने आजमगढ़ मुक्त कराने की कोशीश की, परन्तु उन्हें असफलता हाथ लगी। आजमगढ़ पर कुँवर सिंह के अधिकार ने कम्पनी के शासन की चूलें हिला दी। यह उनके लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी। कुँवर सिंह कम्पनी सरकार के लिए सिरदर्द बन चुके थे। 12 अप्रैल, 1858 को कम्पनी सरकार ने उन्हें जीवित पकड़ने के लिए 25 हजार रूपये का इनाम घोषित किया।

तत्कालिन गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग इन दिनों इलाहाबाद में था। उसने 13वीं लाइट कैवेलरी के कमांडर लार्ड मार्क को अविलम्ब बनारस कूच करने एवं बनारस में उपलब्ध सैनिकों को लेकर आजमगढ़ आक्रमण करने का आदेश दिया। 6 अप्रैल, 1858 को यह फौज आजमगढ़ पहुँची तथा सर ई0 लुगार्ड के साथ आ रही एक बड़ी फौज का इंतजार करने लगी। यहाँ कुँवर सिंह ने एक चाल चली तथा अपने सैनिकों के एक समूह को छोड़कर 13 अप्रैल को गाजीपुर की तरफ निकल पड़े। उनका उद्देश्य था गंगा पारकर जगदीशपुर पहुँचना तथा वहाँ से संघर्ष जारी रखना।

उधर सर एडवर्ड लुगार्ड 15 अप्रैल, 1858 को 700 सिख सैनिकों और 18 तोपों के साथ आजमगढ़ पहुँच। वहाँ कुँवर सिंह के सैनिकों के साथ भारी संघर्ष हुआ। कुँवर सिंह और उनके सिपाही वीरतापूर्वक और पहले की अपेक्षा कहीं अधिक संकल्प के साथ लड़े। पर भीषण युद्ध के बाद उनकी पराजय हुई और उन्हें नगर छोड़ना पड़ा। सर ई0 लुगार्ड ने ब्रिगेडियर डगलस को उनका पीछा करने को भेजा। आजमगढ़ के निकट नघाई नामक स्थान पर डगलस की फौज और कुँवर सिंह के सैनिकों के बीच युद्ध हुआ (17 अप्रैल,1858)। कुँवर सिंह ने युद्ध कौशल का प्रयोग करते हुए 20 अप्रैल की रात में गाजीपुर जिलान्तर्गत मन्नाहार पहुँचे। वहाँ कुँवर सिंह का भव्य स्वागत किया गया। शिवपुर के लोगों ने उनके सम्मान में भोज दिया और गंगा पार करने के लिए बीस नावें मुहैया करवाई। 21 अप्रैल, 1858 को गंगा की उत्तरी तट पर बौसाडीह नामक सथान पर ब्रिगेडियर डगलस के सैनिकों के साथ कुँवर सिंह के फौज की तीखी झड़प हुई। कुँवर सिंह ने उसे परास्त किया और गंगा नदी पार किया। कहा जाता है कि गंगा नदी पार करते हुए कुँवर सिंह की दाहिनी बांह में गोली लगी, जिसे तलवार से काटकर उन्होनें ''गंगा मैया'' को भेंट चढ़ा दिया। 22 अप्रैल, 1858 को कुँवर सिंह जगदीशपुर पहुँचे, जहाँ लोगों ने उनका अभूतूर्व स्वागत किया। दूसरी ओर, दानापुर और आरा स्थित कम्पनी फौजी प्रशासन की नींद उड़ गयी। तत्काल 23 अप्रैल, 1858 को कम्पनी प्रशासन ने कप्तान लीग्रांड के नेतृत्व में तोपों से लैस एक बड़ी फौज को जगदीशपुर भेजा। जिसका संघर्ष कुँवर सिंह की सेना और आम जनता के साथ हुआ। कम्पनी फौज को भारी क्षति उठानी पड़ी। उसकी अनेक तोपें छीन ली गयी। आक्रमणकारियों के 250 से 300 सैनिकों, आधिकारियों में से कुल 25 से 30 सिख जवान तथा 7 अंग्रेज अफसर आरा लौटते हुए दिखाई पड़े।

23 अप्रैल, 1858 को कुँवर सिंह द्वारा जगदीशपुर में कप्तान ली ग्रांड की हार कम्पनी फौज की भारी शिकस्त थी। शाहाबाद गजेटियर में इतिहास लेखक व्हाइट ने कहा है कि यह अंग्रेजों की करारी तथा सबसे बड़ी हार थी। इस दिवस (23 अप्रैल) को बिहार प्रदेश की जनता आज भी प्रति वर्ष ''विजय दिवस'' के रूप में मनाती है। किन्तु कुँवर सिंह का जीवनदीप बुझनेवाला था। थकान और अनवरत युद्ध करते रहने से शरीर इतना जख्मी हो गया था कि हकीम, वैदयों ने भी जवाब दे दिया। लीग्रांड को पराजित करने के तीन दिन बाद यानि 26 अप्रैल, 1858 को कुँवर सिंह वीरगति को प्राप्त हो गये। जगदीशपुर की जनता में उदासी छा गयी। पर कुँवर सिंह के अनुयायी अपने दुर्धर्ष नेता की मृत्यु से विचलित नहीं हुए एवं उनके भाई अमरसिंह, हरिकिशुन सिंह के नेतृत्व में डटे रहे। जिनकी गुरिल्ला युद्धकला की तारीफ फेडरीक एंगल्स जैसे चिंतको ने की।

सन् 1857 के विद्रोह ने यह साबित कर दिया कि देश, मातृभूमि से प्रेम एवं प्रतिबद्धता किसी भी इंसान को कुछ भी कर गुजरने की प्रेरणा देती है। यहाँ तक कि जीवन का बलिदान कर देने की भी। कुँवर सिंह का संघर्ष 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का अभिन्न गौरवमय हिस्सा है। कुँवर सिंह, रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब आदि का संघर्ष, देशी सिपाहियों की बगावत, देशी कारीगरों का शोषण और बदहाली के खिलाफ आक्रोश, सबने सन् सन्तावन के संघर्ष को वह महत्व दिया जिसको लेकर कार्ल मार्क्स जैसे स्वप्नदर्शी बुद्धिजीवी ने टिप्पणी की कि यह ''सिपाही विद्रोह'' नहीं बल्कि सचमुच ''राष्ट्रीय विद्रोह'' है।

देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में कुँवर सिंह की ऐतिहासिक भूमिका आज भी जन-जन के लिए प्रेरणास्रोत है और इतिहास लेखन के लिए नयी दिशाएं देती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सुरेन्द्रनाथ सेन :-अठारह सौ सत्तावन: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली (द्वितीय संस्करण, 2005, पृष्ट 298 - 302।
2. रश्मि चौधरी:-1857 के अमर सेनानी वीर कुँवर सिंह: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण, 2007 पृ0 10 - 22।

3. डॉ के0 के0 दत्त:-बिहार में स्वातंत्रताय आंदोलन का इतिहास भाग - 1, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, द्वितीय संसकरण, जून 1998; पृ0 30 - 37
4. वही - पृ0 49 - 56।
5. ब्रज कुमार पाण्डेय, अनन्त कुमार:- शाहाबाद मुगलों से अंग्रेजों तक 1526 - 1947, जानकी प्रकाशन; पटना; प्रथम संस्करण 1992; पृ0 126 - 127।
6. वही - पृ0 136 - 139।
7. ताराचंद:- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास खंड 2; प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली; चतुर्थ संस्करण, 2007, पृ0 73।
8. स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान :- सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग बिहार, पटना; पृ0 - 3, 4 (तृतीय खण्ड)
9- Prof. Rajiv Nain Prasad :- History of Bhojpur ; K.P.Jayaswal Research institute, Patna : 1987 Page : 144 - 146

बिहार में असहयोग आन्दोलन और राजेन्द्र प्रसाद की भूमिका: एक अध्ययन

अखिलेश कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अप्रैल, 1920 ई. में पटना की एक सार्वजनिक सभा में मौलवी शौकत अली का भाषण हुआ, जहाँ असहयोग का एक कार्यक्रम भी तैयार किया गया। असहयोग के समर्थकों में ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, धरणीधर प्रसाद, मजहरूल हक, शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी मुहम्मद शफी तथा मौलाना नुरुल हसन थे। परन्तु हसन इमाम, नवाब सरफराज हुसेन खाँ तथा सच्चिदानन्द सिन्हा असहयोग के पक्षपाती नहीं थे। फिर भी, बिहार प्रदेश की यह खूबी थी कि मतभेदों के बावजूद आपस में प्रेम-व्यवहार ज्यों-का-त्यों बना रहा।[1]

अगस्त, 1920 ई. बिहार प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन की बैठक भागलपुर में हुई, जिसके सभापति राजेन्द्र प्रसाद थे। इस अवसर पर गाँधीजी ने तार द्वारा यह सूचना दी कि सम्मेलन असहयोग आन्दोलन का समर्थन करे, जिसका कारण पंजाब हत्याकाण्ड तथा खिलाफत था। परन्तु, ब्रजकिशोर प्रसाद के सुझाव पर असहयोग के कारणों में स्वराज्य भी जोड़ दिया गया। भागलपुर सम्मेलन के दो-तीन दिन पहले गुजरात प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन ने भी असहयोग का समर्थन किया था। इस तरह पूरे देश में केवल गुजरात और बिहार ही ऐसे दो प्रांत थे, जिन्होंने प्रांतीय सम्मेलन में कलकत्ता अधिवेशन के पूर्व ही असहयोग का समर्थन किया था।

सच्चिदानन्द सिन्हा तथा हसन इमाम ने 1918 ई. से ही पटना से सर्चलाईट निकालना प्रारंभ किया था। परन्तु, चूँकि यह अखबार असहयोग का समर्थक नहीं था, इसलिये 1920 ई. में सर्चलाईट प्रेस से ही राजेन्द्र प्रसाद ने एक हिन्दी साप्ताहिक देश का प्रकाशन प्रारंभ किया, जिसके सम्पादक वे स्वयं थे। देश असहयोग का समर्थक था। राजेन्द्र प्रसाद ने हसन इमाम तथा सच्चिदानन्द सिन्हा से यह समझौता किया था कि अपने सम्पादकीय लेखों में सर्चलाइट न तो असहयोग का समर्थन करेगा, न विरोध। फिर भी, अन्य लोगों का लेख, चाहे वह असहयोग के पक्ष में होगा या विपक्ष में प्रकाशित करेगा।[2]

इसी बीच बिहार के जनकधारी प्रसाद ने गाँधीजी को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने असहयोग-सम्बन्धी कुछ चिंता व्यक्त की थी। जनकधारी प्रसाद की महत्वपूर्ण शंका यह थी कि अहिंसात्मक ढंग से चलाये गये असहयोग आंदोलन में हिंसा की कुछ संभावना रह जाती है, क्योंकि भावावेश में आकर कोई भी आदमी हिंसा पर उतारू हो सकता है। गाँधीजी ने जनकधारी प्रसाद के प्रश्नों के उत्तर 15 दिसम्बर, 1920 ई. के यंग इंडिया में प्रकाशित किया। अपनी सहमति व्यक्त करते हुए गाँधीजी ने जबाव दिया था कि निश्चय ही अहिंसात्मक आन्दोलन के हिंसात्मक होने की संभावना रहती है, परन्तु जिस तरह स्वाधीनता के दुरूपयोग के खतरे से डरकर स्वाधीनता आन्दोलन से पीछे नहीं हटा जा सकता, उसी प्रकार किसी अहिंसात्मक आन्दोलन के आगे चलकर हिंसात्मक होने की संभावना से डरकर उसे बन्द नहीं किया जा सकता।

असहयोग आन्दोलन के दौरान बिहार में मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, गोरख प्रसाद, धरणीधर प्रसाद तथा मुहम्मद शफी परिषद् की उम्मीदवारी से हट गए। अपनी उम्मीदवारी वापस लेते हुए मौलाना मजहरूल हक ने कहा कि एक मुसलमान के नाते वे उस सरकार से सहयोग नहीं कर सकते, जो इस्लाम को बरबाद करने पर तुली हो तथा एक हिन्दू के रूप में भी वे उस सरकार से सहयोग नहीं करेंगे, जिसके हाथ पंजाबी भाईयों के खून से रंगे हों।[3]

छपरा के अवैतनिक दण्डाधिकारी महेन्द्र प्रसाद ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। नागपुर प्रस्ताव के अनुसार अनुग्रह नारायण सिंह तथा ब्रजनन्दन प्रसाद ने अपनी वकालत छोड़ दी। वकालत छोड़नेवाले अन्य लोगों में पटना से मो. खुरशेद हसनैन, गया से

कृष्णप्रकाश सेन सिंह, मुकुटधारी प्रसाद, छपरा से जकरिया हुसेन हाशमी, मथुरा प्रसाद, विंधेश्वर प्रसाद, रामदयालु सिंह, रामवनमी प्रसाद, दरभंगा से ब्रजकिशोर प्रसाद, धरणीधर, मोतिहारी से गोरख प्रसाद, भागलपुर से दीपनारायण सिंह, मुंगेर से श्रीकृष्ण सिंह, तेजेश्वर सिंह, नामधारी सिंह, पुरुलिया से अतुलचन्द्र घोष, हजारीबाग से रामनारायण सिंह तथा पलामू से शेख साहब थे।

असहयोग से प्रभावित होकर बहुत-से विद्यार्थियों ने महाविद्यालयों का परित्याग कर दिया और इधर-उधर भटकने लगे। एक दिन मो. फजलुल रहमान ने राजेन्द्र प्रसाद से कहा कि सड़कों पर 10 हजार विद्यार्थी पड़े हुए हैं। अब उनकी पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। फलतः, पटना-गया रोड पर एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया। राजेन्द्र प्रसाद उसके प्राचार्य बने और बद्रीनाथ वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद तथा प्रेमशंकर बोस प्राध्यापक। उनलोगों ने क्रमशः बी.एन.कॉलेज, पटना कॉलेज तथा टी.एन.बी.जुबली कॉलेज से त्यागपत्र देकर राष्ट्रीय महाविद्यालय का प्राध्यापक पद स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त जगत नारायण लाल, राम चरित्र सिंह तथा अब्दुल बारी-जैसे लोग भी महाविद्यालय में आ गए।

नागपुर कांग्रेस के बाद महात्मा गाँधी जब 6 फरवरी, 1921 ई. को बिहार आये, तब उन्हीं के हाथों राष्ट्रीय महाविद्यालय के भवन में ही बिहार विद्यापीठ का विधिवत् उद्घाटन हुआ। मजहरूल हक को कुलपति तथा ब्रजकिशोर प्रसाद को उपकुलपति बनाया गया। बिहार विद्यापीठ की स्थापना के पश्चात् सरकारी महाविद्यालयों में पढ़नेवाले छात्र काफी उत्साहित हुए तथा एक दिन पटना महाविद्यालय तथा विज्ञान महाविद्यालय के करीब 60 अच्छे-अच्छे विद्यार्थी भी राष्ट्रीय महाविद्यालय में पढ़ने आ गये। विद्यापीठ के छात्रों में जयप्रकाश नारायण, मृत्युंजय प्रसाद, विशेश्वर प्रसाद कोईराला, श्रीकांत ठाकुर विद्यालंकार, मातृका प्रसाद कोईराला, विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, सुरेश्वर पाठक तथा अनिरूद्ध सिंह थे।

करीब-करीब सभी जिलों में बिहार विद्यापीठ से संबद्ध राष्ट्रीय पाठशालाएँ थीं। इनमें करीब 25 हजार विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। इन विद्यालयों की स्थापना के बाद राष्ट्रीय शिक्षा का नाम समुचित ढंग से चलने लगा।

एक दिन पटना इंजीनियरिंग स्कूल के छात्रों की वहां के प्राचार्य से किसी बात पर अनबन हो गई। विद्यार्थियों ने स्कूल का बहिष्कार कर दिया। उन्होंने मजहरूल हक के पास जाकर कहा कि वे राष्ट्र की पुकार पर अपने विद्यालय की पढ़ाई छोड़ चुके हैं तथा उन्हें बतलाया जाय कि अब वे क्या करें। मजहरूल हक, जो उस समय फेजर रोड पर स्थित सिकन्दर मंजिल में रहते थे, उनसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने ऐशो-आराम की जिन्दगी छोड़कर उन विद्यार्थियों के साथ पटना-दानापुर सड़क पर स्थित अपने एक मित्र मियाँ खैरूद्दीन के एक खपरैल मकान में चले गए। वहाँ चर्खे का एक कारखाना खोल दिया तथा लड़के चर्खे बनाने लगे। मजहरूल हक उन लड़कों को स्वयं पढ़ाते थे तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता की सीख देते थे। इसी जगह का नाम आगे चलकर सदाकत आश्रम पड़ा।

मजहरूल हक के उज्जवल चरित्र पर इस बात से काफी प्रकाश पड़ता है कि उन्होंने एक मुसलमान विद्यार्थी मुहम्मद खलील को आश्रम से निकाल दिया तथा राजेन्द्र प्रसाद के लाख कहने पर भी उसे पुनः नहीं रखा। मुहम्मद खलील ने भी असहयोग प्रारंभ होने पर महाविद्यालय का त्याग किया था तथा राष्ट्रीय गीत ''भारत जननि, तेरी जय तेरी जय हो'' से काफी प्रसिद्ध हो गया था। उसे आश्रम से निकाल दिये जाने पर जब राजेन्द्र प्रसाद मजहरूल हक के पास उसकी सिफारिश लेकर गए, तब हक साहब ने बड़े दुःख के साथ कहा, ''मैं तुम्हारी बात कभी नहीं टालता, पर इस समय मजबूर हूँ। तुम नहीं जानते कि खलील ने कितना बुरा काम किया है। इसलिये तुम सिफारिश कर रहे हो। मैंने जिस चीज को अपने सारे जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया है, जिसके लिये आज तक सब कुछ करता आया हूँ और आज फकीर बन गया हूँ, उस पर इसने ठेस लगाई है। मैंने अबतक की सारी जिन्दगी में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये काम किया है। उसी में आज भी लगा हुआ हूँ। आश्रम में रहकर इसने हिन्दू लड़कों के साथ ऐसा बर्ताव किया है, जिससे वे लड़के, जो मुझ पर विश्वास करके प्रेमवश मेरे पास आए हैं, हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव समझने लगे। इसने मेरे सारे जीवन के बने-बनाये काम को बिगाड़ने का प्रयत्न किया है। इसने इस बात की कोशिश की है कि लड़कों को मुसलमान बनावें। मैं सब कुछ माफ कर सकता हूँ, पर इस तरह इस्लाम के नाम पर विश्वासी लड़कों के साथ विश्वासघात करना बरदाश्त नहीं कर सकता। अब मैं यह जान गया हूँ कि हिन्दी और संस्कृत भी इसने ढोंग के लिए पढ़ी है। एक दिन यह हिन्दू-मुस्लिम फसाद भी करा देगा। मैं इसे आश्रम में हरगिज न रहने दूंगा।[4] आगे चलकर मुहम्मद खलील खलील दास के नाम से मशहूर हुए और कई स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे कराए।

30 सितम्बर, 1921 ई. को मजहरूल हक ने सदाकत आश्रम से ही मदरलैण्ड नामक एक अखबार निकालना शुरू किया, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का प्रसार, असहयोग का प्रचार तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देना था।

प्रसंगवश, यहाँ यह याद दिलाना जरूरी है कि 1919 और 1923 के दरम्यान उत्तरी बिहार में प्लांटर्स के विरूद्ध बहुत से आंदोलन हुए। लेकिन उसके लिए कांग्रेस का समर्थन नहीं था। धनी किसानों और फैक्टरी के अमला रह चुके लोगों ने आंदोलन की अगुआई की। इस आंदोलन को मझोले और गरीब किसानों का भी समर्थन हासिल था जब कि वे गरीब किसान फैक्टरी अमला के जुल्म झेल चुके थे।

यहाँ इस तथ्य को रेखांकित करना प्रासंगिक जान पड़ता है कि चंपारण सत्याग्रह और होमरूल मूवमेंट के बाद कांग्रेस ने अनेकों किसान सभाएं स्थापित की ताकि किसानों की परेशानियों पर ध्यान दिया जा सके। राजेन्द्र प्रसाद ने कथनानुसार संविधान में परिवर्तन कर दिए जाने से उन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। उन्होंने जमींदार प्लांटर्स के बीच ताल-मेल बैठाने की कोशिशें की।[5] स्थायी बंदोबस्त के विरूद्ध प्रस्तावित कानून का विरोध करने के लिए नवंबर 1919 में जमींदार व प्लांटर्स का एक सुंयक्त संगठन बनाया गया जिसके अध्यक्ष थे दरभंगा के महाराजा।

इस बात के मद्देनजर राजेन्द्र प्रसाद ने यह गारंटी दी कि ''कांग्रेस का सबसे योग्य और सक्षम कार्यकर्त्ता स्थायी बंदोवस्त पर किसी भी तरह के हमले का विरोध करेगा।'' इसमें दो राय नहीं कि इस मामले पर कुछ लोग परस्पर विरोध-रुख अख्तियार किए हुए हैं। इस संघर्ष में जो लोग कुछ मदद कर सकते हैं वे जल्द से जल्द आगे आएं, नहीं तो बहुत देर हो जाएगी।[6]

प्रसाद ने इस बात का विस्तृत उल्लेख किया किया कि जो लोग पहले छोटे जमींदार थे, वे ही आज शिक्षित वर्ग हैं। इनकी उस बंदोबस्त को अस्त-व्यस्त करने के व्यर्थ के काम में काई 'खास दिलचस्पी' नहीं है, चूंकि जमींदारों और 'शिक्षित वर्ग' में कोई द्वन्द्व नहीं है। इसलिए यह गठजोड़ किसी 'परछाई' से लड़ रहा है। यदि उसे नहीं तोड़ा गया तो यह 'शिक्षित वर्ग' (यानि कि छोटे जमींदार) और असामियों को जमींदारों के खिलाफ भड़काएगा।

1919 में रौलट सत्याग्रह के दौरान गाँधी के प्रति जनता की सहानुभूति बहत 'सघन और व्यापक' थी। लोग अंग्रेजों को भारत से खदेड़ देने की बातें खुलकर कर रहे थे। यह भी कहा जा रहा था कि सरकारी कर्मचारियों और पुलिस से बात करके उन्हें अपने पक्ष में कर लिया गया था। मुंगेर और शाहाबाद के वकीलों ने भी बहुत अहम भूमिका अदा की। उन्होंने अपने मुवक्किलों के जरिए हर तरह की अफवाहें, फैलाई। बेतिया राज के गुदरी बाजार में दुकानें बंद रही, धनबाद में रह रहे कच्छ मारवाड़ी और पंजाबी के लोगों ने भी सत्याग्रह का समर्थन किया। झरिया, करकेन्द्र और कटरा में आम हड़तालें हुई। कुछ खदानों में लोगों ने कोयला लादने का काम अपने-आप बंद कर दिया। यह आंदोलन झरिया से हजारीबाग में इसरी तक फैल गया। कुछ ऐसी भी मनगढंत कहानियां सुनने में आ रही थीं जिससे यह लग रहा था कि मुसलमानों को सत्याग्रह में हिस्सा लेने के लिए जान-बूझकर ऐसा किया जा रहा था (जैसे कि यह अफवाह फैली हुई थी कि अंग्रेजों की मंशा धार्मिक शहरों में सूअर का मांस परोसने वाले होटल खोलने की है) यद्यपि छोटे मौलवी उत्तर प्रदेश के मौलानाओं से संपर्क में थे। लेकिन फुलवारी के मौलाना और वेहाबी मौलाना फिरंगी महल उलेमाओं के विरूद्ध थे। वे नहीं चाहते थे कि मुसलमान सत्याग्रह में हिस्सा लें।

1920 के शुरू में दरभंगा के महाराजा ने कुछ रियायतें दी। लेकिन ये रियायतें केवल संपन्न असामियों के लिए ही थीं। सारण में एक कब्जेदार संपन्न असामी के पुत्र विद्यानंद 1917 के गाँधी के सत्याग्रह से बहुत प्रभावित हुए (हालांकि गाँधी ने उसके साथ किसी संबंध से इंकार किया)। 1919 और 1920 में दरभंगा राज में एक जबरदस्त आंदोलन में वे संपन्न असामियों के परम्परागत अधिकारों की ही बात करते थे। उन्हें मध्य और निचली जातियों के मझौले और गरीब किसानों का भरपुर समर्थन मिला। क्योंकि ये लोग 'अमला' दमन से बुरी तरह पीड़ित थे। शुरू-शुरू में कांग्रेस ने भी विद्यानंद को समर्थन दिया, लेकिन बाद में समर्थन देना बंद कर दिया। इसकी वजह यह बताई गई कि वह ग्रामीणों में एकता बनाए रखना चाहती है। अप्रैल 1920 में विद्यानंद ने एक मुहिम चलाई कि दरभंगा राज के असामियों की समस्याएं सुलझाने के लिए एक समिति बनाई जाए। लेकिन राजेन्द्र प्रसाद ने इसका विरोध किया क्योंकि उनके अनुसार वह विश्वास करने लायक नहीं था। हालांकि विद्यानंद द्वारा जमा किए गए तथ्यों का दरभंगा जिला कांग्रेस कमेटी ने मुआयना किया (विद्यानंद ने 100 गवाहों से 13 घंटे बात की थी) लेकिन उस रिपोर्ट को दरभंगा जिला कांग्रेस की मीटिंग में पढ़ा भी नहीं गया।[7]

ऐसा लगता है कि कांग्रेस की किसान सभाएं केवल चम्पारण में ही केन्द्रित रहीं। इन सभाओं की स्थापना गोरख प्रसाद की पहल पर हुई। वे ही मोतिहारी, केसरिया और मेहसी की सभाओं के अध्यक्ष थे। इनमें से पहली दो सभाओं में 50-50 सदस्य थे और तीसरी में 100 सदस्य। बेतिया कस्बा और मचेरगांव की सभाओं में क्रमशः दस और सदस्य ही थे। चम्पारण में अपने अनुभव के आधार पर गोरख प्रसाद ने टिनैंसी एक्ट में कुछ संशोधन करने के सुझाव दिए जो उनके कथनानुसार 'अत्यंत' आवश्यक थे। ये संशोधन कब्जेदार असामियों से संबंधित थे (मसलन, नामांतरण शुल्क निर्धारित करना, कब्जे का हस्तांरण, लकड़ी का अधिकार आदि)। उन्होंने यह भी कहा कि उनके सुझाावों को जमींदारी की मुखालफत न समझा जाए क्योंकि अब समय एक जुट होने का आ गया है।

बिहार प्रादेशिक सम्मेलन में राजेन्द्र प्रसाद ने कृषि के सवाल पर कांग्रेस के रूख को जोरदार शब्दों में दुहराया: ''हर एक कांग्रेसी का यह कर्त्तव्य है कि जरूरत की घड़ी में वह आततायी भू-स्वामियों के खिलाफ रैयतों की मदद करे। जहां रैयत आक्रामक हो गए हो वहाँ जमींदारों को समर्थन दें। हमारी विलक्षण सामाजिक संरचना के विविध तत्वों को 'उचित' स्थान पर रख कर ही समाज में सद्भावना बनाए रखी जा सकती है। हमारा संगठन केवल रैयतों के लिए है।''[8]

यह बात साफतौर पर कही गई कि रैयत कांग्रेस की सभाओं में आते रहें ताकि उनकी परेशानियों का पता लगता रहे। लेकिन वे तुरंत किसी हल की उम्मीद न करें। खैर, किसान प्रतिनिधियों के वोट की बदौलत ही बिहार प्रादेशिक सम्मेलन में 'असहयोग' का प्रस्ताव पारित हो सका।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आंदोलन को संगठित करने वाले कांग्रेसियों के लिए बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमेटी जो हिदायतें जारी करती थी उनमें शीर्ष पर वे हिदायतें होती थीं जो रैयतों को अनुशासित करने के बारे में होती थी। असहयोग आंदोलन की सूचना आम राजनीतिक सभाओं के जरिए नहीं प्रचारित की गई बल्कि यह रैयत सभाओं, पंचायतों और सेवा समितियों के जरिए प्रचारित की गई। जनवरी 1921 में मुजफ्फरपुर, भागलपुर, मुंगेर और पूर्णिया में हाट लूटने की लगभग कुल 35 घटनाएं घटी। अपने को गाँधी का चेला कहने वाले लोगों ने बाजार में वस्तुओं की उचित कीमतें लागू करने की कोशिश की और यह बात फैला दी कि दुकानों को लूट लेने के लिए 'गांधी का हुक्म है'। कांग्रेसियों ने मुजफ्फरपुर जिले का दौरा किया और 'हजारों' पर्चे बांटे ताकि गांववालों में यह बात फैल जाए कि 'उनका शांत रहना अत्यंत आवश्यक है।' राजेन्द्र प्रसाद को यह बात बड़ी अजीब लगी कि दुकानें लूटने की घटनाओं के मद्देनजर फैली 'उत्तेजना' को नियंत्रित करने में जिन लोगों ने मदद की, उन्हीं पर अंकुश लगा दिया गया और जिन लोगों ने आंदोलन के नाम का गलत इस्तेमाल किया, इन्होंने मनमानी करते रहे। बगहा थाना के अन्तर्गत चौतेखा नील फैक्टरी को लूटकर उसमें आग लगा देने की घटना को बेतिया के कांग्रेसियों ने एक 'अपदा' की संज्ञा दी। यह घटना मवेशियों को घास चराने के अधिकार को लेकर घटी।

प्लांटर्स और रैयतों के बीच लंबे समय से विवाद चला आ रहा था। उसकी एक वजह यह भी थी कि असहयोग आंदोलन के कार्यकर्त्ता फैक्टरी बाजारों के समानान्तर बाजार स्थापित कराना चाहते थे। पूरे चम्पारण में संप्रभुता को चुनौती देने की घटनाएं बड़े पैमाने पर घटने लगी थी। फैक्टरी की रखावट में गैर कानूनी ढंग से मवेशियों को घास चराने की घटनाएं आम बात हो गई थी। कुछ कारखानों को अपना बकाया वसूलने की प्रक्रिया शुरू करने के प्रमाण पत्र मिल गए थे। मुजफ्फरपुर के प्लांटर्स के कुछ कारखानों का लोगों ने घेराव कर लिया और उसमें काम करने जानेवाले लोगों को रोक दिया। सारण के एक कारखाने का लोगों ने घेराव कर लिया और उसमें काम करने जाने वाले लोगों को रोक दिया। सारण के एक कारखाने पर लोगों ने हमला बोल दिया। साम्यवादियों की तर्ज पर उन्होंने गन्ने पर अपने अधिकार की मांग की थी। असहयोग के प्रचार-प्रसार से प्रेरित होकर सारण के रैयतों में 'कानूनहीनता' की स्थिति आ गई थी। हथुआ राज में लोगों ने लगान देना बंद कर दिया।[9]

आंदोलन क्या शक्ल लेगा, यह बात गांधी के व्यक्तित्व पर निर्भर कर रही थी। यह एक महत्वपूर्ण पहलू था। दूसरी बात यह थी कि कांग्रेस में संगठन का काम करने वाली मशीनरी अत्यंत कारगर थी। ये दोनों बातें ऐसी थीं जिससे प्रशासन भी भयभीत था। इन सबके होते हुए भी कांग्रेस को अपने कार्यक्रमों से विचलित होने से नहीं रोका जा सका। जनवरी 1921 से तिरहुत के अलावा मुंगेर और भागलपुर के बहुत-से देहाती इलाकों में 'भारी असंतोष' के लक्षण दिखाई दे रहे थे। 'भयानक अफवाहें' फैली हुई थी जिसकी वजह से शहर आधारित आंदोलन होने का सरकार का शुरूआती नजरिया ही बदल गया। संथाल परगना के दामिन में एक बंगले पर खैरवारों ने स्वराजी झंडा फहरा दिया। एक बकरी तथा एक मुर्गे की बलि चढ़ाई गई। पाकुर में लगान देना बंद कर दिया

गया। चूंकि खैतवारों का यह स्वभाव था कि वे 'बिना किसी स्पष्ट कारण के अचानक धावा बोल देते थे। इसलिए प्रशासन की भी नींद उड़ गई थी। गोद्दा उपमंडल में सात संथालों को लगान न देने का अभियान चलाने और स्वराज की घोषणा करने के जुर्म में दंडित किया गया। लगान न देने की सलाह दामिन-ए-कोह में भी दी गई। पैदाइशी स्वयंसेवकों के झुंड' को इकट्ठा किया गया। उन्हें लगान देने से छूट, आजादी, और खुलकर शराब पीने देने के झांसे में रखा गया। असहयोग आंदोलनकारियों ने बाजार पर पूरा नियंत्रण स्थापित कर लिया। बिना उनकी इजाजत के कोई भी कारोबार नहीं किया जा सकता था। जिले के दूसरे हिस्सों में भी रैयतों से कहा गया कि वे भी लगान न दें, आंदोलन वापस ले लिए जाने के दो माह बाद अप्रैल 1922 तक भी पाकुर और गोद्दा 'हाथ में' नही थे। संथाल परगना में असहयोग आंदोलन के प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारी वीरभूम (बंगाल) के गैर-जिम्मेदार और निम्न कोटि के उपद्रवियों तथा भागलपुर तथा मुंगेर से आए 'गैर-जिम्मेदार बदमाशों' पर मढ़ दी गई।

निष्कर्ष

असहयोग आंदोलन का आरंभ जनवरी 1921 में हुआ और शुरू में जोर मध्यवर्ग की भागीदारी पर किया गया, जैसे यह कि छात्र स्कूल-कॉलेज छोड़ दें और वकील अपना वकालत का पेशा छोड़ दें। साथ ही, राष्ट्रीय स्कूलों और पंचायती अदालतों की स्थापना, एक करोड़ रूपए का तिलक स्वराज कोष जमा करने और उतने ही सत्याग्रही भरती करने के प्रयास किए गए। धीरे-धीरे विदेशी कपड़ों के बहिष्कार और सार्वजनिक दहन के साथ आंदोलन और भी उग्र बनता गया।

लेकिन असहयोग-खिलाफत आंदोलन ने गाँधीवादी कांग्रेस के नेतृत्व में भारत में जन-आंदोलन की प्रकृति पर अनेक सवाल खड़े किए। जैसा कि ऊपर के पाराग्राफों में हमने देखा, बिहार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इस आंदोलन के अलग-अलग रूप रहे। सभी क्षेत्रों में आंदोलन आरंभ में शहरों और कस्बों तक सीमित रहा और वहाँ यह मुख्यत: मध्यवर्ग की भागीदारी पर निर्भर था, जो धीरे-धीरे कम हो गई। दरअसल, अहसयोग आंदोलन की सफलता के पैमाने से गाँधी को पूरा संतोष तो निश्चित ही नहीं मिलने का था। स्कूलों, कॉलेजों और अदालतों के बहिष्कार के आँकड़ों को देखें, तो मध्यवर्ग की भागीदारी कुछ खास नहीं थी, बल्कि किसानों और मजदूरों की भागीदारी अधिक प्रभावशाली थी।

इस आंदोलन के संबंध में आम राय यह थी कि यह सशक्त किन्तु कड़े ढंग से अनुशासित आंदोलन था। किन्तु साथ ही ऐसी घटनाएं भी घटी जो इस धारणा से मेल नहीं खाती थीं। जनवरी 1921 में मुजफ्फरपुर, भागलपुर, मुंगेर और पूर्णिया में हाट लूटे जाने की 35 घटनाएं हुईं। (गाँधीजी के शिष्य होने का दावा करनेवाले कुछ लोग बलपूर्वक उचित कीमतें लागू करवाने का प्रयास भी कर रहे थे)। 25 अप्रैल 1921 को एक खिलाफत स्वयंसेवक की गिरफ्तारी के बाद गिरिडीह पर हमला हुआ जिसके परिणामस्वरूप गोलियां चलीं। कुछ आदिवासी क्षेत्रों में अवैध शराब की भरपूर खिंचाई जारी रही। चम्पारण और मुजफ्फरपुर में जमींदारों और निलहों द्वारा आदिवासियों के पारंपरिक चरागाहों को हथिया लेने के कारण इन क्षेत्रों में व्यापक तनाव फैला। जनवरी 1921 में भागलपुर के सोनपरसा गांव के भूमिहारों ने एक यूरोपियन के गोरखा सेवकों पर हमला किया। नवम्बर 1921 में चम्पारण में मोतिहारी के निकट चराई के अधिकार को लेकर हुए विवाद के फलस्वरूप चौतरवा नील कारखाने को आग लगा दी गई, जबकि मुजफ्फरपुर का सीतामढ़ी उपसंभाग तूफान के केन्द्र के रूप में विख्यात हुआ और वहां जनवरी 1922 में करों की नाअदायगी के संभावित आंदोलन को रोकने के लिए दंड देने के आदेश से लैस पुलिस बल को भेजा गया। किन्तु वैसा जमींदार-विरोधी किसान आंदोलन फिर नहीं हुआ जिसने 1920 में दरभंगा रियासत की नाक में दम कर दिया था और जिससे बिहार कांग्रेस के नेताओं ने अपने-आपको अलग कर लिया था।

कुलमिलाकर, गाँधीवादी असहयोग आंदोलन के बारे में अपनी प्रामाणिक प्रस्तुति से इन भटकावों को स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने कभी मान्यता नहीं दी। सामाजिक सामंजस्य को नुकसान पहुँचाए बिना अंग्रेजों को विस्थापित करना इस प्रस्तुति का भाव था। पर घटनाओं पर उनका कोई खास नियंत्रण था ही नहीं। जनता से गाँधी की हमदर्दी थी और उन्होंने माना कि ''वे अक्सर स्थितियों को अपने दिल से उस तरह समझते हैं कि हम अपने दिमाग से उस तरह समझने में नाकाम रहते हैं।'' पर उसकी अनुशासनहीनता उन्हें पंसद न थी और वे ''इस स्वाभाविक अनुशासनहीनता से ही अनुशासन पैदा करना चाहते थे।'' फिर जब वे नाकाम रहे तो जनता के इस जोश को उन्होंने भीड़ राज कहकर उसकी निंदा की। इसलिए आंदोलन की आधिकारिक वापसी के बाद भी वह बंगाल, बिहार और उड़ीसा के कुछ भागों में जारी रहा।

सन्दर्भ सूची:-

1. प्रसाद राजेन्द, आत्मकथा, एशियन पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1957, पृ. 116
2. सिंह अनुग्रह नारायण, मेरे संस्मरण, पटना, 1961, पृ. 26
3. राजेन्द्र प्रसाद (1957), पूर्वोक्त, पृ. 116
4. दि स्टोरी ऑफ जलियाँवाला बाग, पब्लिकेशन डिबीजन, नई दिल्ली, 1971, पृ. 1
5. राजेन्द्र प्रसाद (1957), पूर्वोक्त, पृ. 116-117
6. फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेण्ट, दिसम्बर 1920, पृ. 369-403
7. बांधोपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक, ओरियंट लौंगमैन, हैदराबाद, 2007, पृ. 322
8. ब्राउन, ज्यूडिथ, गाँधीज राईज टू पावर : इंडियन पॉलिटिक्स, 1915-1922, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1972, पृ. 93-96
9. जार्डन, रिचार्ड, ''नन-कोऑपरेशन एण्ड कांउशिल इंट्री 1919-1920'' इन जे. गैलहर, जी. जॉनसन एण्ड अनिल सील (एडिटेड) लोकैलिटी, प्रोविन्स एण्ड नेशन: ऐस्से ऑन इंडियन पॉलिटिक्स, 1870 टू 1940, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1973, पृ. 150.

भारतीय राष्ट्रवाद पर औपनिवेशिक इतिहासलेखन

बिपिन कुमार

इतिहास विभाग, ल0 ना0 मि0 वि0 विद्यालय दरभंगा

सार-संक्षेप

आज की भारतीय राष्ट्रवाद का अंग्रेजों द्वारा लाई गई शिक्षा और जनवादी मूल्यों के प्रचार-प्रसार के कारण उत्पन्न और विकसित होने की संकल्पना के पोषक इतिहासकारों की कमी नहीं है। मगर यह स्थापना मिथको पर आधारित भ्रम पैदा करने वाली संकल्पना है। भारतीय राष्ट्रवाद के उद्‌भव और विकास को औपनिवेशिक शासकों की नीतियों के कारण उत्पन्न साम्राज्यवाद/उपनिवेशवाद विरोधी संघर्षों में ही तलाशा जा सकता है।

भूमिका

भारतीय राष्ट्रवाद की संकल्पना के उद्‌भव और विकास के सम्बन्ध में इतिहासकारों और समाज वैज्ञानिकों के बीच के वैचारिक मत भिन्नता का अपना-अपना तर्क है और दलीलें हैं। इन तर्को और दलीलों के पीछे जो राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक स्थितियाँ कार्यशील है उनका आधार प्राय: इसी तथ्य में खोजा जा सकता है कि कौन सी विचारधारा एक वर्ग विभाजि समाज में किस आर्थिक सामाजिक समूह के संदर्भ में अपनी चिन्ता व्यक्त करती है। राष्ट्रवाद की संकल्पना के आधार के रूप में औद्योगिक समाजों जिनका अवतरण सबसे पहले औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यूरोप मे हुआ- के सामने उपस्थित उन स्थितियों में देखा जाना चाहिए जब औद्योगिक उत्पादन के बढ़ते आयाम के परिणाम स्वरूप सामंती और धार्मिक राज्यों की उपयोगिताएँ व्यर्थ साबित होने लगी और एक नई उत्पादन प्रणाली को अपने में समाहित कर आर्थिक-सामाजिक विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की जरूरतों ने राज्यों के चरित्र में एक गुणात्मक बदलाव की स्थितियों को अनिवार्य बना दिया। औद्योगिक क्रान्ति की यह चारित्रिक विशेषता रही है कि अपने शुरूआती दौर में यह समाज के उन सम्पन्न तबके का, जिन्होंने व्यापारिक पूंजीवाद के काल में अतिरिक्त पूंजी जमा कर रखा था, आन्दोलन थी इस कारण नई स्थापित होनेवाली औद्योगिक इकाइयों के स्वामित्व के मामले में यह निजी स्वामित्व पर आधारित आन्दोलन रही। इसने पीछे के हर तरह के सामूहिक स्वामित्व की प्रक्रिया को भंग किया-चाहे वह जमीन के मामले में हो या जंगल के मामले में। इसने उत्पादन प्रक्रिया में पूरी आजादी, नागरिक मामले में पूर्ण स्वतंत्रता की अवधारणा को आगे लाई जो फ्रांसिसी क्रान्ति का मुख्य नारा बने। मगर इस विकास प्रक्रिया का एक एन्टीथेसिस इसी के साथ पैदा हुआ जिसने अपने बाजार विस्तार के क्रम में कमजोर राष्ट्रों को गुलाम बनाया, उपनिवेश कायम किए और औपनिवेशिक जनता की नागरिक आजादी का हनन किया। विकास की इस प्रक्रिया में राष्ट्रवाद की व्याख्यायें इन दो राजनीतिक प्रभागों, उपनिवेशवादी और औपनिवेशिक देशों के लिए अलग-अलग ढंग से आई। भारतीय राष्ट्रवाद की उत्पत्ति और विकास प्रक्रिया में उपर वर्णित तथ्यों का अवलोकन किया जा सकता है- किस तरह राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरूआत भारत का उदीयमान पूँजीपति और व्यवसायिक वर्ग के एक छोटे से तवके ने किया जिसका उद्देश्य अपना निहित स्वार्थ की पूर्ति करना था मगर इतिहास की प्रक्रिया के साथ यह आगे बढ़ा है तथा इसको विभिन्न वर्ग शक्तियों ने अपने-अपने ढंग और अपनी-अपनी वैचारिकता के आधार पर व्याख्यायित किया है।

भारत जैसे एक बहुधार्मिक, बहु-भाषाई और बहु-संस्स्रतियों वाले देश में और जो एक विकसित पूँजीवादी देश इंगलैण्ड का उपनिवेश उसमें शासक और शासित की राष्ट्रवाद की वैचारिकता के बीच का टकराव अवसम्भावी है। भारत की इसी बहुरंगी चारित्रिक विशेषता को, जो परम्परागत रूप से अनेकता में एकता को प्रदर्शित करते हुए संस्स्रतियों के परस्पर मेल-मिलाप के आधार को बनाए हुए था, आधार बनाकर औपनिवेशिक शासकों ने इस एकता को नकारा। उनके इस नाकारात्मक रूख का एक खास मकसद था- भाषा, धर्म, सम्प्रदाय आदि के इस सहमेल को भंग कर देना ताकि भविष्य में किसी तरह के संगठित उपनिवेश उनके औपनिवेशिकता के खिलाफ किसी तरह का संगठित विरोध की संभावना को समाप्त कर दिया जाय। कालान्तर में उपनिवेशवादियों को उनके इस लक्ष्य की पूर्ति में आंशिक सफलता भी मिली। भारत की इस बहुभाषाई, बहुधार्मिक और बहु साम्प्रदायिक एकता से उत्पन्न राष्ट्रवाद की अवधारणा का भारतीय राष्ट्र के शोषण पर आधारित औपनिवेशिक सत्ता की अक्षुणता के साथ एक वैचारिक टकराव का दौर जब शुरू हुआ तब औपनिवेशिक शासकों ने एक ऐसी वैचारिकता को सामने लाया जिसमें भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकृति को ही नकार दिया गया। इस तर्क के लिए आधार ढूंढा गया यूरोपीय देशों, खासकर साम्राज्यवादी मूल्कों में व्याप्त एकल धार्मिकता, एकल भाषाई और एक संस्स्रति की स्थितियों को, जिनसे भारतीय स्थितियाँ भिन्न थी। इसी को आधार बनाकर कहा गया कि: 'भारत के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए पहली और आवश्यक बात है यह जानना कि भारत जैसी कोई चीज या कोई देश न तो है और न कभी होगा जिसमें यूरोपीय विचारों के अनुसार भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक एकता जैसी कोई एकता हो। जिसके बारे में हम इतना कुछ सुनते आए है वैसा न तो कोई भारतीय राष्ट्र है और न कहीं भारत की जनता है।'[1] सर जॉन सीले ने भी इसी सुर में सुर मिलाया और कहा: ''भारत को एक राष्ट्र मानने की धारणा उस भद्दी भूल पर आधारित है जिसको राजनीतिशास्त्र मुख्यतया दुर करना चाहता है। भारत कोई राजनीतिक नाम नहीं है, बल्कि यह यूरोप या अफ्किा की तरह मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह किसी एक राष्ट्र या एक भाषा की सीमारेखा को नहीं, बल्कि अनेक राष्ट्रों और अनेक भाषाओं की सीमा का अंकन करता है।''[2]

19वीं सदी के इन आखिरी दशकों में भारतीय राष्ट्रवाद को नकारने की इस प्रवृति के पीछे 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम तथा उसके बाद के वर्षो में भारत के विभिन्न भागों में उठ रहा किसान विद्रोहों को कुंठित करने की या भविष्य में ऐसी एकताव; लड़ाइयों की, जो 1857 में देखी थी, संभावनाओं को समाप्त करना था। संगठित आन्दोलनों को जन आवाम को विभिन्न समूहों में बाँटकर आसानी से किया जा सकता है और भारत में धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा आदि की विविधता इसके लिए आधार पैदा कर रही थी, जिसका भरपुर दरूपयोग औपनिवेशिक शासक कर सकते थे। इसी उद्देश्य से भारत को इन्होंने एक भौगोलिक क्षेत्र माना-ठीक यूरोप और अफ्किा के समान जिसमें अनेकों राष्ट्र राज्य करायम है। ऐसी दीलालों को आगे बढ़ाते हुए औपनिवेशिक शासक यूरोपीय वास्तविकता को भी भुला दिया था-वे भुला दिये थे कि इन यूरोपीय राष्ट्रों का उदाहरण वे पेश कर रहे थे उनमें भी आजादी का चरित्र जन्मना एकता (Same descent) का नहीं है। इटली एक यूरोपीय राष्ट्र है मगर इटालियन जन्मना (Descent) के आधार पर इट्रकेन्स (Etruscams), रोमन (Roman), सेन्ट (Celts) ट्यूटन (Teutons), ग्रीक (Grecks), और सराकेन्स (Saracens), आज के फ्रांसिसी गाउल्स (Gauls), रोमन (Roman), ब्रिटोन्स (Britons) और ट्यूटन्स (Teutons) और जर्मन ट्यूटन्स (Teitous) सेल्ट्स (Celts) और स्लाव (Slavs) आदि जातियों के सम्मुचय है। इनकी भी एक भाषा या एक संस्कृति नहीं है, फिर भी ये एक राष्ट्र हैं। दूसरी तरफ अंग्रेज, आयालैण्डवासी, डेनमार्कवासी, नार्वे के वासी, सर्व्स और क्रोट्स (Croats) तो एक ही भाषा बोलते है, फिर भी वे एक राष्ट्र नहीं है। यहूदी लोगों की कोई एक भाषा नहीं है, फिर भी वे एक राष्ट्र है।[3] अपने निहित स्वार्थ में औपनिवेशिक शासक इस तथ्य को भुला दिए कि राष्ट्र का आधार भाषा, जन्म स्थान, धर्म आदि जैसे कारक नहीं बनाते बल्कि किसी राष्ट्र का राष्ट्रीय चरित्र होता है[4] और भारत का राष्ट्रीय चरित्र है अनेकता में एकता का।

उपनिवेशवादी शासकों द्वारा भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकृति से इनकार किया जाना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रमिक मगर मजबूती के साथ बढ़ते विकास ने हवा निकाल दी और आन्दोलनों के दौर में विभिन्न आयामों वाली जनता का उपनिवेशवादी शासन के विरोध में बनी एकता ने साम्राज्वादियों की उस दलील का जिसमें वे भारत को एक समुद्र नहीं, एक भौगोलिक अभिव्यक्ति की संज्ञ दे रहे थे- आधार ही समाप्त कर दिया और भारत का वह राष्ट्रीय चरित्र उभरकर सामने आया, जो अनेकता में एकता के आधार पर बना था। जब साम्राज्यवादी शासकों के सामने नये प्रश्न उपस्थित हो गए थे। अब भारत अपनी विभिन्न संस्कृतियों, धर्मो और भाषाओं आदि के बावजूद एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं, बल्कि एक राष्ट्र के रूप में उपस्थित कर दिया थां इस नई परिस्थिति में साम्राज्यवादियों ने एक नये तर्क और नई दलील को उपस्थित किया जिसमें कहा गया कि ''यदि भारतीय राष्ट्र का कही अस्तित्व

है और यदि इसका अस्तित्व मानने की मजबूरी है तो इसे साम्राज्यवाद की गौरवपूर्ण उपलब्धि कहा जाना चाहिए क्योंकि उसने ही भारतीय राष्ट्रीय चेतना का सूत्रपात किया और ब्रिटेन के जनतांत्रिक आदर्शों के बीज भारत में डाले।''[5] प्रथम विश्वयु; के काल में और उसके बाद यु(जनित आर्थिक कठिनाइयों के कुपरिणाम स्वरूप भारत पर पड़ने वाले कुप्रभावों के खिलाफ आन्दोलनों में बनी भारतीय जनता की एकता को साम्राज्यवादी शासक जब नकारने की स्थिति में नहीं रहे तब उन्होंने अपने आर्केस्ट्रा को एक नई धुन दिया। अब कहा गया: भारत के लोगों का वह हिस्सा जिसमें राजनीतिक चेतना है- बौ(िक रूप से हमारी संतान है। उन्होंने उन आदर्शो को आत्मसात कर लिया है जो हमने उनके सामने रखें और इसके लिए हमें उन्हें श्रेय देना चाहिए। वर्तमान बौद्धिक और नैतिक खलबली का अर्थ यह नहीं कि भारतीय जनता हमारी भर्त्सना कर रही है बल्कि यह हमारे कार्यो के प्रति उनकी सराहना है।''[6] इस तरह भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के चरित्र विश्लेषण को एक ऐसा आयाम देने का प्रयास किया गया जिसका मकसद यह दर्शाना था कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का आधार साम्राज्यवाद विरोध का भारतीय जनता का अदम्य उत्साह नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी शासकों की परोपकारितापूर्ण कारवाइयाँ इसका आधार हैं, वही इस राष्ट्रीय आन्दोलन का पथ प्रदर्शन कर रही है। जयसन टिम्स की प्रमुख घोषणा कि: हमने भारतीयों के हित के लिए भारत पर विजय नहीं हासिल की। मुझे पता है कि मिशनरी बैठकों में कहा जाता है कि हमने भारतीयों का स्तर उठाने के लिए भारत पर शासन किया, ऐसा नहीं हो सकता। हमने तलवार के जोर से भारत को जीता है और इसी के जोर से इस पर शासन कायम रखेंगे। यह ब्रिटिश सामानों का सबसे अच्छा बाजार है इसीलिए हम यहाँ बने हुए हैं।

लार्ड रदरमीर का यह कथन कि: अनेक अधिकारियों का यह अनुमान है कि ब्रिटेन का प्रमुख व्यापार, बैंकिग और जहाजरानी व्यापार सीधे तौर पर भारत पर 20 प्रतिशत निर्भर करता है। भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रमुख आधार है। यदि हम भारत को खोते है तो इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य पहले आर्थिक रूप से और फिर राजनीतिक रूप से टूट जाएगा।[7] उपर वर्णित तथ्य दर्शाते है कि औपनिवेशिक शासक लोगों के बीच एक प्रचार कर रहे थे, मगर अपने प्रशासनिक खेमें में भारतीय स्थिति का एक भिन्न मूल्यांकन कर रहे थे- दुसरा मूल्यांकन पहले मूल्यांकन से एकदम भिन्न था जो ब्रिटिश सत्ता के उद्देश्यों का और भारत पर उनके शासन का एक हद तक सटीक विश्लेषण करता था, जब भारतीय राष्ट्रवाद साम्राज्यवादियों ने साम्राज्यवाद की पोषित संतान घोषित किया तब उनकी यह संकल्पना उनकी किसी भ्रान्तिमूलक अवधारणा की उपज नहीं थी, बल्कि एक सोची-समझी राजनीति का हिस्सा थी। क्योंकि उस जनता की जिसकी राजनीतिक चेतना का स्तर पिछड़ा हुआ है उसके अन्दर राष्ट्रीयता की भावना और सम्भाव्य स्वतंत्रता की ललक, जो उपनिवेशकवाद के खात्में के लिए आन्दोलनों को दर्शाता है को आगे बढ़ाने में मदद पहुँचाने में और उस पिछड़ी जनता को सभ्य बनाने में साम्राज्यवादी व्यवस्था को एक प्रमुख कारक की भूमिका में रखने को सबसे पहले मैकडोनाल्ड जैसे साम्राज्यवादी चाकरों और कुछ गद्दार समाजवादियों के एक गुट ने पेश किया था। ठीक उसी तरह भारत में आज भी अमरिकी साम्राज्यवाद को भारत में जनवाद और विकास में सबसे बड़े वाहक के रूप में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, उनकी सरकार और उनके सुर में सुर मिलाने वाले तमाम लोहियावादी समाजवादी कर रहे है। ये भारत की उस साझी संस्कृति का जो जाति, सम्प्रदाय और धर्म के विभिन्नता के बावजूद भी भारतीय राष्ट्रवाद को एक अनेकता में एकता की एक चारित्रिक विशेषता से नवाजा था, उस जाति, सम्प्रदाय और धर्म आदि के आधार पर स्वयं विभाजित कर एक ऐसी राजनीति को वल पहुँचा रहे है जो भारतीय राष्ट्रवाद की संकल्पना को- जिसके आधार पर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को भारतीय जन आवाम आगे बढ़ाई थी, वही खण्डित होता जा रहा है। साम्राज्यवादी चाटुकारों और गद्दार समाजवादियों के उपर वर्णित सै(ान्तिकता को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने लंदन के एक विश्वविद्यालय में दिए गए अपने भाषण में स्वीकृति प्रदान किया जब उन्होंने भारत को ब्रिटेन का इस कारण आभारी माना कि इंगलैण्ड ने भारत को आधुनिक शिक्षा (जिसने राष्ट्रवाद के उदय में अहम् भूमिका अदा किया है) और जनवाद में प्रशिक्षित किया। दूसरी तरफ जातिवादी राजनीति के वाहक लोहियावादी समाजवादियों की वामपंथी आन्दोलनों और राजनीति के खिलाफ की नीति भारतीय जनता पार्टी के हिन्दु राष्ट्रवाद से भी बुरी नजर आती है और वे भारतीय जनता पार्टी की घोर प्रतिक्रियावादी हिन्दुत्व वाली राजनीति से समझौता करते है। आज 21वीं सदी के प्रथम दशक में जब साम्राज्यवाद और उसका पोषक वित्त पूँजी अपनी घोर प्रतिक्रियावादी और नव-उपनिवेशवादी शोषण की रणनीति के साथ वैश्वीकरण के मध्यम से कमजोर राष्ट्रों पर अपना आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व जमाने का अथक प्रयास कर रहा है तब उसे एक उद्धारक की भूमिका में पेश करने की वैचारिकता भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा के साथ एक ऐसी प्रवंचना है जिसे साम्राज्यवादी सिद्धान्तकार गद्दार समाजवादियों के साथ मिलकर रचा था।

वास्तव में भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सारे देशों में राष्ट्रवाद की अवधारणा को बल जनवादी क्रांतियों और प्रतिक्रियावादी में गई आर्थिक-सामाजिक व्यवस्थाओं के खिलाफ संघर्ष से मिला है न कि साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने से। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। जिस तरह यूरोपीय राष्ट्रवाद को जितना बल फ्रांस की महान क्रांति से मिला उसकी तुलना में इंगलैण्ड में संसद और राजा के साथ एक एक समझौता करके नहीं मिल सका। भारतीय राष्ट्रवाद को मजबूती धार्मिक, सम्प्रदायिक, जातिगत आदि एकता के आधार पर उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष से मिली ताकि साम्राज्यवाद के साथ समझौता करके भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में जब-जब साम्राज्यवाद के साथ समझौता किया गया भारत की राष्ट्रीय एकता भंग हुई है- असहयोग आन्दोलन के मौके पर किए गए समझौते ने भारत में साम्प्रदायिक दंगों को बढ़ावा दिया और गांधी-इरविन पैक्ट ने दलित समुदाय को भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्यधारा से अलग करने में मदद की और आगे के दिनों में साम्राज्यवाद के साथ किए गए समझौता का परिणाम ही भारत विभाजन के रूप में सामने आया।

भारतीयों पर अंग्रेजी शिक्षा का थोपा जाना भारतीयों को सभ्य बनाने या इन्हें जनवाद की शिक्षा देना नहीं था, बल्कि अपने उद्देश्य को मैकाले ने स्वयं प्रदर्शित करते हुए कहा था कि अंग्रेजी शिक्षा का भारत में उद्देश्य एक ऐसा विनीत आज्ञाकारी लोगों का एक वर्ग पैदा करना था जो अपनी जनता से पूर्णत: कर अंग्रेजों की इच्छा पूर्ति कर सके, जो रूप-रंग में तो भारतीय दीखे मगर दिमागी और वैचारिकता के स्तर पर पूर्णत: अंग्रेज थे। अंग्रेजी दिशा के प्रचार-प्रसार के वाहक मेकाले का भारत में जनवाद की स्थापना के खिलाफ उसकी वैचारिकता का उदाहरण यही है कि उसने ही यह घोषित किया था कि हमें पता है कि भारत के पास कभी भी एक स्वतंत्र सरकार नहीं हो सकती लेकिन उसके पास एक दुसरे दर्जे की सर्वोत्तम चीज अर्थात् एक दृढ़ और निष्पक्ष तानाशाही हो सकती है। हाँ यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का साम्राज्यवादी मंसूबा तो पूरा नहीं हो सका मगर इसने भारतीयों को भारतीय उपमहाद्वीप में साम्राज्वाद द्वारा चलाए जा रहे शोषण अत्याचार दमन आदि की ही तरह अन्य जगहों में चलाई जा रही ब्रिटिश कारवाइयों के खिलाफ संघर्ष करने वाले मिल्टन, शेली, वायरन आदि कवियों के साहित्य से परिचय जरूर करा दिया। वास्तव में साम्राज्यवाद की समूची प्रणाली में एक ऐसा अन्तर्विरोध सन्निहित था जिसने भारतीयों को साम्राज्यवाद को विरोध करने और अपनी राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष करने को प्रेरित किया।

1853 में ही भारतीय राष्ट्र के सम्बन्ध में अपने एक लेख में कार्ल मार्क्स ने इंगलैंड की भारत में भूमिका पर टिप्पणी करते हुए लिखा था- ''यह सच है कि हिन्दुस्तान में एक सामाजिक क्रांति लाने में इंगलैण्ड अपने निकृष्टतम स्वार्थो से ही प्रेरित होकर काम कर रहा था और अपने इन घटिया हितों की पूर्ति का उसका तरीका मूर्खतापूर्ण था, लेकिन सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि क्या मानव जाति एशिया की सामाजिक व्यवस्था में कोई बुनियादी क्रान्ति लाए बिना अपने उद्देश्य की पूर्त्ति कर सकती है? यदि नहीं, तो इंगलैण्ड ने चाहे कितने भी अपराध क्यों न किए हो, इस क्रांति को सम्पन्न करने में उसने इतिहास के अनभिप्रेत साधन का काम किया है।''[8] मार्क्स की इस उक्ति का कतई अर्थ नहीं कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारत में एक सामाजिक क्रान्ति को अंजाम दे रहे थे, बल्कि उनकी स्थापना में भारत में ब्रिटिश राज्य की दोहरी भूमिका की जरूरत थी- एक विनाशकारी और दूसरी पुनर्जीवन देने वाली। भारतीय राष्ट्र की तरक्की में बाधक उत्पादन की एशियाई प्रणाली या स्वावलम्बी ग्राम व्यवस्था वाली उत्पादन पद्धति जो ऐतिहासिक तौर पर औद्योगिक क्रांति के बाद हुए मशीनीकरण के काल में अपनी समीचीनता ही खो दी थी, की समाप्ति विकास प्रक्रिया को आगे ले जाने के लिए जरूरी था। औपनिवेशिक शासकों ने इस विनाशकारी भूमिका का निर्वहन भारत में बाखूबी किया। मगर उसके ध्वसावशेषों पर एक नई सामाजिक व्यवस्था को खड़ा करने का जिस पुनर्जीवन देने वाली भूमिका की जरूरत थी उसे अंग्रेज शासकों ने नहीं किया। उपनिवेशों में इस भूमिका का निर्वहन उपनिवेशवादी शासक कर भी नहीं सकते थे, क्योंकि यह उनके औपनिवेशिक स्वार्थो के खिलाफ जाता है। मार्क्स का स्पष्ट विचार था कि भारतीय राष्ट्र के सामने पुनर्जीवनकारी भूमिका का निर्वहन दो ही तरह से किया जा सकता है- प्रथम या तो भारत उपनिवेशवादी जुए को उतार फेके और स्वतंत्र हो जाए या फिर दुसरा तरीका था कि स्वयं इंगलैण्ड में मजदूर वर्ग सत्ता में आ जाय और भारत को स्वतंत्र कर दे। इन दोनों ही हालातों में भारतीय राष्ट्र को अपने को पुनर्जीवित करने के लिए स्वतंत्रता एक अनिवार्य शर्त थी। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद को आगे बढ़ने के लिए जिन भौतिक स्थिति की जरूरत थी उसे साम्राज्यवाद ने पैदा कर दिया-मगर जानबुझकर नहीं, अपितु उसकी क्रिया-कलापों के एन्टीथेसिस के रूप में वे परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई। रेलो और दूरसंचार के साधनों को भारत में लाने का अंग्रेजों का स्पष्ट मकसद था दूर दराज के गॉवों तक से कपास या अन्य वस्तुओं को इकट्ठा कर उनका निर्यात इंगलैण्ड को करना, प्रोसेसिंग इन्डस्ट्रीज के द्वारा कच्चे मालों

का प्रोसेसिंग करके कम लागत खर्च पर सामानों को निर्यात करना, मगर उनकी ऐसी कारवाइयों ने भारतीय जन के सम्पर्क सूत्रों को बढ़ा कर उनकी एकता की स्थितियों को बल प्रदान किया, मजदूर वर्ग को जन्म दिया जो आगे चलकर साम्राज्यवाद के खिलाफ समझौताविहीन संघर्षों का आधार बन गया।

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद के उदय और विकास की प्रक्रिया को अंग्रेजों ने नहीं, बल्कि उनके द्वारा औपनिवेशिक शोषण के जिन तरीकों को लागू किया गया उनका लाजमी परिणाम भारतीय राष्ट्रवाद को संघर्षों के माध्यम से आगे बढ़ाया।

संदर्भः

1. सर जॉन स्ट्रैची, इंडिया इट्स एडमिनिस्ट्रेशन ऐंड प्रोग्रेस, 1888, पृ॰5
2. सर जॉन सीले, दि एक्सपेंन्सन ऑफ इंग्लैंड, 1883, पृ॰254-57
3. विस्तृत जानकारी के लिएः ओटो ब्यूवर ''दि नेशन'' (सम्पा.) गोपाल बालकृष्णन, मैपिंग दि नेशन, लंदन, न्यूयार्क, वर्सो (VERSO), 1996, पृ॰39-77
4. उपरोद्धत
5. रजनी पाम दत्ता, आज का भारत, दिल्ली, बम्बई, मद्रास, पटना, मैक्रमिलन इंडिया लि॰, 1985, पृ॰311
6. मौन्टेग्यू- चैम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918, पृ॰115
7. रजनी पाम दत्ता, पूर्वो(त, पृ॰312
8. के॰ मार्क्स, ''दि ब्रिटिश रूल इन इंडिया'', न्यूयार्क डेली ट्रीव्यून, 10 जून, 1853

कुटीर उद्योगों के विकास में बिहार के महिलाओं की भूमिका

चन्द्र किशोर

शोधार्थी (अर्थशास्त्र), ल.ना.मि.वि., दरभंगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था की तरह बिहार राज्य में कुटीर उद्योगों का विशेष महत्व है। बिहार में बड़े पैमाने पर गरीबी व्याप्त है। बड़ी संख्या में लोग बेकारी के शिकार है तथा यहां साधन की कमी है। इस संदर्भ में कुटीर उद्योगों का विशेष महत्व है। अवसरों का सृजन होता है। ये उद्योग राज्य के बहुत अधिक लोगों के जीविका के साधन है तथा उनके विकास से उनकी गरीबी को दूर किया जा सकता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, बिहार की जनसंख्या लगभग 9.29 करोड़ थी। बिहार की आबादी का करीब 88. 4 प्रतिशत गांवों में निवास करता है। करीब 73 प्रतिशत लोग कृषि पर आश्रित है। राज्य में 45.60 प्रतिशत के करीब लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करते है। राज्य के विभिन्न इलाकों में कुटीर उद्योग कार्यरत है। ये उद्योग लाखों लोगों के जीवनयापन के स्रोत है। इन उद्योगों को जीवित बनाये रखने में ग्रामीण महिलाओं का योगदान अविस्मरणीय रहा है।[1]

राज्य में विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योग कार्यरत है। यथा हस्तकरघा वस्त्र उद्योग, बीड़ी उद्योग, साबुन उद्योग, चमड़ा उद्योग, टोकरी, चटाई, फर्नीचर के सामान निर्माण उद्योग, रेशम उद्योग, मधुबनी पेंटिंग इत्यादि। साथ ही अनेक छोटे स्तरीय उद्योग भी है। ये सभी उद्योग अधिकांशत: महिलाओं के द्वारा ही संचालित है।

बिहार के कुछ प्रमुख कुटीर उद्योग-धंधे

1. खादी एवं हथकरघा उद्योग:-बिहार राज्य में खादी तथा हथकरघ उद्योग बड़ा ही प्रमुख कुटीर उद्योग है। यह उद्योग अनेक जिलो में फैला हुआ है, जिनमें ये प्रमुख है- पटना (बिहारशरीफ), गया, भोजपुर, भागलपुर, मधुबनी, मुंगेर, इत्यादि। अविभाजित राज्य में लगभग 2 लाख हथकरघे कार्यरत थे, जिनमें 10 लाख के करीब लोगों को पूर्णकालिक या अंशकालीन रोजगार प्राप्त थी। बिहार राज्य बुनकर सहकारी समितियां इस उद्योग के विकास में लगी है। बिहार राज्य में लगभग 3.66 लाख बुनकर हथकरघा क्षेत्रा में लगे है।[2] राज्य में खादी का भी अपना स्थान है। चंपारण, मधुबनी, दरभंगा खादी उत्पादन के प्रमुख केन्द्र है। खादी तथा ग्रामोधोग ग्रामीण जनता के जीवन स्तर को सुधारने में योगदान करता है। बिहार राज्य खादी तथा ग्रामोधोग बोर्ड खादी के विकास के लिए प्रयत्नशील है। उत्पादन मे नयापन लाने, पोलिस्टर मिश्रित खादी इत्यादि के निर्माण पर बल दिया गया है। बिहार राज्य में खादी ग्रामोधोग की प्रगति की झलक नीचे के तालिका में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका:

	उत्पादन			विक्रय		
विवरण	1989-90	1991-92	1995-96	1989-90	1991-92	1995-96
सूती खादी	262.34	229.16	1.164.94	316.57	328.58	2, 260.66
ऊनी खादी	19.94	23.76	177.53	71.95	104.17	537.58
रेशमी खादी	41.62	59.59	356.79	49.02	73.51	375.17

स्रोत: बिहार आंकड़ों में (विभिन्न वर्ष)

तालिका से स्पष्ट है कि राज्य में खादी के उत्पादन एवं विक्रय में लगातार वृद्धि हो रही है।

2. **रेशम उद्योग:**- रेशम एवं सिल्क उद्योग बिहार का एक प्रमुख कुटीर उद्योग है। यह एक कृषि आधारित एवं श्रम-गहन उद्योग है। भारत में रेशम उत्पादन में बिहार का दूसरा स्थान है। भागलपुर एवं पूर्णिया इसके प्रमुख केन्द्र है। इस उद्योग में कमजोर वर्ग के लोगों, खासकर महिलाओं को रोजगार प्राप्त है। ग्रामीण क्षेत्र में भी यह रोजगार उत्पन्न करता है, जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में प्रवास कम हो जाता है।

रेशम में, बिहार में तीन किस्म के सिल्क तसर, एरी तथा मलबरी का उत्पादन होता है। तसर सिल्क के उत्पादन में बिहार का प्रथम स्थान माना जाता था। इसका उत्पादन छोटानागपुर और संथाल परगना के जंगलों में होता है तथा चाईबासा इसका सबसे बड़ा उत्पादक केन्द्र है। अब ये सभी झारखंड राज्य के अंग है। बिहार में भागलपुर सिल्क बुनाई एवं उत्पादन का बड़ा केन्द्र है। एरी सिल्क के उत्पादन में भी बिहार को लगभग एकाधिकार प्राप्त है। पूर्णिया जिला मलबरी सिल्क का प्रमुख उद्योग केन्द्र है। बिहार में रेशम उद्योग के विकास की संभावनाएं है, जिन्हें पूरी तरह विकसित करने की जरूरत है।[3]

3. लाह उद्योग:- लाह उद्योग बिहार का बहुत पुराना गृह उद्योग है, इस उद्योग के विकास की संभावनाएं मौजूद है। लाह उत्पादन में अविभाजित राज्य का पहला स्थान था तथा इसका उत्पादन मुख्य रूप से पलामू, रांची, हजारीबाग, संथाल परगना, सिंहभूत इत्यादि में होता है, जो अब झारखंड राज्य के अंग है। बिहार में अब यह पूर्णिया, गया जैसे जगहों में ही थोड़ा बहुत उत्पादित होता है। अविभाजित बिहार के जंगलों में बेर, पलास, खैर एवं कुसुम के पेड़ बहुतायत में पाए जाते हैं जिन पर लाहे के कीड़े पाले जाते है। विश्व में सबसे अधिक लाह भारत में उत्पन्न होता है तथा भारत में यह पहले बिहार, अब झारखंड राज्य में उत्पन्न होता है।

4. बटन उद्योग:- सीप के बटन का उत्पादन उत्तरी बिहार के चंपारण जिले में किया जाता हे। बिहार के नदियों एवं तालाबों में सीप बहुतायत में मिलती है, जिसका उपयोग होने पर सीप बटन के उत्पादन में बिहार देश में प्रमुख उत्पादक बन सकता है। इसमें कम विनियोग द्वारा उत्पादन संभव है तथा हजारों लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है।[4]

5. कागज उद्योग:- बिहार में कागज बनाने के लिए कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। राज्य में बांस, सबाई घास इत्यादि बहुतायत में उपलब्ध है, तथा गन्ना का सिट्ठी चपुआ कागज बनाने के काम में आ सकता है। लोगों को हाथ में कागज बनाने की शिक्षा देकर लाखों लोगों के आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

6. कंबल, कालीन एवं दरी उद्योग: बिहार में ऊन के कंबल, कालीन एवं दरी बनाने का कार्य कई स्थानों पर किया जाता है। गया, औरंगाबाद, नवीनगर, भोजपुर एवं रोहतास, पटना, पूर्णिया तथा मुजफ्फरपुर जैसे स्थानों पर इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र है। दरी एवं कालीन बनाने का काम पटना, गया, सिवान, छपरा, भोजपुर, रोहतास जैसे जिलों में किया जाता है।

7. गुड़ एवं खांडसारी उद्योग: राज्य के प्राय: सभी स्थानों पर कुछ-न-कुछ गुड़ एवं खांड बनाने का कार्य होता है। राज्य के विभिन्न जिलों में गन्ने की खेती होती है, जिसके द्वारा गुड़ एवं खांड का निर्माण किया जाता है। राज्य में लाखों ताड़ एवं खजूर के पेड़ है, जिनमें ताड़ी निकाला जाता है, साथ ही गुड़ बनाया जा सकता है। लाखों पासियों को इसमें रोजगार प्राप्त है।

8. **अन्य कुटीर उद्योग:** इन उद्योगों के अतिरिक्त बिहार में दूसरे कार्य भी गृह स्तर पर किए जाते हैं-चटाई एवं टोकरी निर्माण, रस्सी एवं डोर का निर्माण, दूध उद्योग, बंत एवं बांस के सामान, मधुमक्खी पालन, लकड़ी के फर्नीचर, मिट्टी के बर्तन, लोहा के समान-कैंची, छुरी कुदाल, खुरपी इत्यादि।

9. **चमड़ा उद्योग:** बिहार में चमड़ा उद्योग की काफी संभावनाएं है। इसे लघु उद्योग की श्रेणी में रखा जाता है। यहां बड़ी मात्रा में मवेशी का पालन होता है, जिसमें गाय, भैंस, बकरी इत्यादि प्रमुख है। राज्य में अनुमापत: 212 लाख रूपये से अधिक का कच्चा चमड़ा पैदा होता है। चमड़ा सिझाने के लिए बबूल, अमलतास, अमड़ा जैसे पेड़ बहुतायत में मिलते है, जिनके खाल एवं पत्तियों का प्रयोग चमड़ा सिझाने में किया जाता है। भारत के चमड़ा उत्पादन में अविभाविजत बिहार का तीसरा स्थान माना जाता था। बिहार राज्य में चमड़ा उद्योग के विकास के लिए 1974 के मार्च में हिार राज्य चमड़ा उद्योग विकास निगम स्थापित किया गया। इसके सहयोग से राज्य में लगभग 190 लाख अन का वार्षिक उत्पादन संभव हो सका है। निगम के मातहद आठ स्थानों पर टैनरी, Tnneries हैं- सिवान, बेतिया, बिहटा, सकरी, जहानाबाद, लतेहार, गुमला तथा हिरनपुर। बिहटा तथा सकरी में कचरा उपचार प्लांट का निर्माण हुआ है। मोकामा घाट एवं दीया (पटना) में बाटा के जूते का निर्माण कार्य होता है। गया, डालमियानगर में भी चमड़ा उद्योग है।

10. बीड़ी उद्योगः- बिहार में बीड़ी उद्योग भी एक महत्वपूर्ण लघु उद्योग है। बीड़ी बनाने में लाखों की संख्या में लोग लगे हुए है। बीड़ी निर्माण का कार्य जमुई, पटना, गया, नालंदा (बिहारशरीफ), आरा, बक्सर, मुंगेर, लक्खीसराय इत्यादि में बीड़ी निर्माण कार्य होता है।[5]

11. दूध उद्योगः- बिहार में दूध उद्योग भी एक लघु उद्योग है। इस उद्योग पर लाखों किसानों की निर्भरता है। दूध निगम एवं दूध सहकारिता समितियां इस उद्योग के विकास में कार्यरत है। पटना डेयरी, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, बरौनी, गया, मुंगेर, समस्तीपुर इत्यादि दूध एवं उससे संबद्ध उत्पादों के वितरण यथा घी, मक्खन, पेड़े, आइसक्रीम, दही, लस्सी इत्यादि का निर्माण एवं बिक्री करता है।

12. बरतन बनाने का उद्योगः- बिहार में पीतल एवं कांसे के बरतन बनाने का कार्य भी किया जाता है। पीतल के बरतन बनाने का कार्य गया, दाउदनगर, हिसुआ, पटना जैसे स्थानों पर किया जाता है। इन स्थानों के अतिरिक्त पीतल एवं कांसे के बरतन का निर्माण कार्य पूर्णिया, सीवान जैसे स्थानों पर भी होता है।

13. कैंची, छुरी एवं लोहे के समान का उद्योगः- बिहार में पूर्णिया एवं मुंगेर जिलों में लोहे के समान, हथियार, कैंची, छुरी तथा कृषि उपकरणों का निर्माण कार्य होता है।

14. अन्य लघु उद्योगः- राज्य में बिस्कुट, चाकलेट, शराब, उत्पादन, छोटे इंजीनियरिंग वर्कशॉप, प्लास्टिक एवं नायलन उद्योग एवं उसके सामान निर्माण के कारखाने भी है। प्रिंटिंग प्रेस, पुस्तक प्रकाशन से संबंधित उद्योग भी राज्य में कार्यरत है, जिनका प्रमुख केन्द्र राज्य की राजधानी पटना है।

औद्योगिक नीति 1977 में जिला उद्योग केन्द्रों की परिकल्पना प्रस्तुत की गयी। ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रों तथा कस्बों में स्थापित कुटीर व लघु उद्योगों को जिला स्तर पर सहायता पदान करने वाले एक प्रशासनिक केन्द्र के रूप में इनकी स्थापना आवश्यक समझी गयी। लघु उद्यमी को निवेश से पूर्व, निवेश की दौरान तथा निवेश के बाद, जिन सेवाओं तथा प्रोत्साहनो की आवश्यकता होती है, उन सभी को जिला उद्योग केन्द्र पर सहजता से उपलब्ध कराना, इनका प्राथमिक उद्देश्य है। इनमें स्थानीय संसाधनों का आर्थिक अन्वेषण, कच्चे माल की उपलब्धि व, ऋण प्रबंध, विपणन व गुणवत्ता निवेशव, परामर्श व विस्तार सेवाएं सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इनका अन्यतम उद्देश्य, कुटीर उद्योगों को मिलने वाले प्रोत्साहनों को महानगरो व राजधानियों तक सीमितक रखने की अपेक्षा प्रत्येक जनपद मुख्यालय तक पहुंचाना है ताकि वे प्रत्येक कुटीर उद्यमी की परिधि में आ जाए।

जिला उद्योग केन्द्र, जिला स्तर पर कुटीर उद्योगों के लिए एकल संपर्क सूत्र के रूप में कार्य करते है। तथा वांछित सेवाएं व समर्थन देते है। ये केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विभिन्न कार्यक्रमों तथा योजनाओं को क्रियान्वित करते है।

कुटीर उद्योग तथा योजनाएं

स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही कुटीर उद्योगों के विकास के लिए विभिन्न कदम उठाए गए। इस उद्देश्य से 1947 में ही कुटीर उद्योग बोर्ड की स्थापना की गई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में इसे तीन अलग अलग बोर्डो में विभाजित कर दिया गया। नए स्थापित होने वाले बोर्ड थे-

- अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड (अक्टूबर, 1952)
- अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड (नवम्बर, 1952)
- अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड (फरवरी, 1953)[6]

सन 1954 में उन लघु उद्योगों, जो उपरोक्त बोर्डो की सीमाओं से बाहर थे और जिन पर उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 लागू नहीं होता था, को प्रोत्साहन देने के लिए लघु उद्योग बोर्ड की स्थापना की गई। इसके अलावा, 1946 में स्थापित केन्द्रीय रेशम बोर्ड का अप्रैल 1952 में पुनर्गठन किया गया और जुलाई 1954 में नारियल जटा बोर्ड की स्थापना की गई। इस तरह प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर देश में छः बोर्ड काम कर रहे थे और उनकी परिसीमा में सभी लघु और कुटीर उद्योग आते थे। इसके अतिरिक्त सरकार ने चार क्षेत्रीय लघु उद्योग सेवा संस्थान भी स्थापित किए। इनकी देश भर में फैली हुई विभिन्न शाखाओं का लघु उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने वित्तीय साधनों की भी पर्याप्त व्यवस्था की थी।

स्वतंत्रता के पश्चात कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास एवं प्रसार के लिए अनेक प्रकार के राजकीय उपाय किये गए है। विविधि सुविधाओं, रियायतों, उत्प्रेरणाओं एवं मार्गदर्शनों के रूप में इन प्रयासों ने कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं रचनात्मक योग दिया है। अत: वर्तमान भारतीय अर्थ व्यवस्था में लघु क्षेत्र के उद्योगों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गयी है। इस संबंध में महामहिम राष्ट्रपति का यह कथन उल्लेखनीय है कि हम लघु उद्योग को बाजार की बेरहम ताकतों के हवाले नहीं कर सकते जो खत्म हो जाओ या जियो वाले क्रूर सिद्धांत में विश्वास करती है। हम योग्यता के संरक्षण की वकालत नहीं कर रहे है बल्कि बेहतर विकल्पों को सामने लाना तथा सहारा देना हमारा उद्देश्य है। सौभाग्य से आज अनेक योजनाएं है जिन्हें या तो सरकार ने बनाया है या औद्योगिक संस्थाओं ने जिनकी सहायता से उनकी प्रौद्योगिकीय तथा प्रबंध विषयक सामर्थ्य में वृद्धि हो सकती है।

महिला उद्यमियों ने सराहनीय सफलता प्राप्त की हैं लघु उद्योग विकास संगठन, विभिन्न राज्य लघु उद्योग विकास निगम, राष्ट्रीयकृत बैंक तथा गैर सरकारी संगठन भी उद्यमिता विकास कार्यक्रम सहित विभिन्न कार्यक्रम आयोजित कर रहे है। संभावित महिला उद्यमियों जिनके पास पर्याप्त शैक्षिक पृष्ठभूमि और दक्षता नही है, उनकी आवश्यताओं की पूर्ति के लिए टीवी मरम्मत, प्रिटेड सर्किट बोर्ड, चमड़े का समान, स्क्रीन प्रिंटिंग आदि क्षेत्रों में प्रक्रिया/उत्पादोन्मुखी उद्यमिता विकास कार्यक्रम शुरू किया है। विकास आयुक्त के कार्यालय में भी एक महिला प्रकोष्ठ खोला गया है जो उनके सामने आने वाली विशेष समस्याओं का सामना करने में सहायता करता है।[7]

अति लघु महिला उद्यमियों के विकास के लिए देश के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता सहायता और विकास योजना आरंभ की गई है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य उद्योग के संबंध में महिलाओं के सामने आने वाली बाधाओं को दूर करना व उनकी उद्यमिता संबंधी दक्षता का विकास करके आर्थिक रूप में उन्हें सशक्त बनाना है। कुटीर उद्योगों के विकास में महिला उद्यमियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। सरकार के तरफ से भी कुटीर उद्योगों के साथ-साथ महिलाओं के उत्थान के लिए विभिन्न तरह के योजनाएं संचालित की जा रही है, जिससे वे लाभान्वित भी हो रही है। फिर भी कुटीर उद्योगों के समुचित विकास हेतु महिलाओं को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

समाज में पुरूषों के साथ बराबरी के आधार पर औरतों की भागीदारी सुगम बनाने के लिए हमें अपना मानसिक दृष्टिकोण बदलना होगा। औरतों को भी अपनी परंपरागत घर गृहस्थी संभालने और बच्चों का पालन-पोषण करने की भूमिका से थोड़ा हटकर आर्थिक प्रगतिशील, ऐसी भूमिका निभाने की ओर बढ़ना होगा, जिसमें समाज को उनका आर्थिक योगदान सकारात्मक हो। नब्बे के दशक के शुरू से जब से भारत में उदारीकरण की नीति अपनाई गई है, भारत की अर्थव्यवस्था का निरंतर रूपांतरण हुआ है। तेजी से बदलती दुनिया में विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ने की जरूरत थी।

पिछले पांच वर्षो के दौरान उदारीकरण की नीति के अच्छे नतीजे निकले है। सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र खूब फल-फूल रहा है और भारत सूचना प्रौद्योगिकी में विश्व के चोटी के देशों में एक है। वह व्यापार-व्यवसाय प्रस्तावों को संसाधित करने का प्रमुख केन्द्र बन गया है। इसके अलावा निजी क्षेत्र के भाग लेने के फैशन का भी विस्तार हुआ। शिक्षा क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ और निजी क्षेत्र की बढ़ती भागीदारी के कारण उसने उद्योग का रूप ले लिया है।

महिला उद्यमियों की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। फैशन, सौन्दर्य और कैरियर संबंधी सलाह के क्षेत्र मे अनेक महिलाएं कार्यरत है जिनसे से कुछ के अपने 'लेबल' भी है। इनमें रितु बेरी ने कुछ समय फ्रांसीसी फैशन उद्योग में भी बिताया है। रीना ढाका फैशन क्षेत्र का सुपरिचित नाम है। भारतीय फैशन उद्योग इस बात से परिचित है कि अब विदेशों में भी उसके विकास के अवसर है और उसे इसके लिए विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा करनी होगी। सजने-संवरने और सौन्दर्य का परिष्कार करने की विधा ने महिला उद्यमियों के लिए अनेक नए अवसर पैदा किए है। औरतें सफलता के साथ 'सौन्दर्य कला विशेषज्ञ' या 'हेयर स्टाइलिस्ट' आदि का काम कर रही है। कपड़ों के अलावा औरतें डिजाइन से जुड़ी अन्य वस्तुएं भी तैयार कर रही है। भारतीय महिलाओं ने कांतिबर्द्धक, सौंदर्यवर्द्धक वस्तुओं के ब्रांड विकसित किए है। बायोटिक' की विनीता जैन और 'शाहनाज हर्बल्स' की शाहनाज हुसैन आज विश्व प्रसिद्ध ब्रांड है। अब समय आ गया है कि औरतों द्वारा संचालित बड़े और छोटे उद्यमों के बारे में आंकड़े संकलित किए जाएं।

शिक्षा के क्षेत्र में अधिकांश सलाहकार महिलाएं हैं क्योंकि पुरूषज्ञों ने इस क्षेत्र को लाभप्रद नहीं समझा। लोगों की आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप औरंते रेस्तरां आदि खोलने के काम में भी आगे आई है।

एशिया और प्रशांत क्षेत्र के आर्थिक और सामाजिक सर्वेक्षण की 2003 की रिपोर्ट में जो हाल ही में संयुक्त राष्ट्र के एशिया और प्रशांत क्षेत्र के आर्थिक-सामाजिक आयोग द्वारा जारी की गई, यह कहा गया है, भारत के विदेशी ऋण की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, जो विश्व बैंक के वर्गीकरण के अनुसार 'मध्यम रूप से ऋणग्रस्त देश' के स्थान पर '1999 में कम ऋणाग्रस्त देश में बदल गया है, 'उदाहरण के तौर पर भरत, पाकिस्तान और श्रीलंका में गरीबी की स्थिति का अनुमान लगाने के उपाय किए गए है और प्रासंगिक नीतियों और युक्तियों की पहचान की जा रही है। मोटे तौर पर जिन नीतियों और हस्तक्षेप का आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में अनुसरण किया गया है, उन्हें मुख्य रूप से दो प्रमुख विषयो के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

स्वतंत्रता के बाद महिला उद्यमियों की पहली लहर पारिवारिक उद्यमों में लगी। तथापि, उदारीकरा के बाद ऋण प्राप्त करना। आसान हो गया और काफी संख्या में औरतें छोटे काम-धंधों में लग गई। लेकिन एसकेप (एससीएपी) रिपोर्ट में सावधानी बरतने को कहा गया है, अनेक देशे में लिंग असमानता अथवा स्त्री-पुरूषों के बीच भेदभाव की भावना अभी भी गंभीर बनी हुई है। कुछ सकारात्मक उपाय स्त्रियों की शिक्षा को बढ़ावा दे सकते है। इस बात की देश के ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से आवश्यकता है कि बच्चों के माता-पिता को प्रचार अभियान के दौरान लड़कियों की शिक्षा के महत्व के बारे में परिचित लड़कियों को स्कूलों में दाखिला लेने में आकृष्ट कर सकती है। शिक्षा और स्वाथ्य क्षेत्र की प्रबंध व्यवस्था में अधिक औरतों को शामिल करके भी औरतों की चिंताओं को दूर किया जा सकता है।

कपड़ों के निर्यात सदन सरकार की उदारीकरण नीतियों के परिणामस्वरूप फले-फूले है। इसके लिए व्यापारिक समझ और ग्राहकों से निपटने की क्षमता के अलावा कोई अन्य विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है। भारत में अनेक संघ (एसोसिएशन) है जो महिला उद्यामियों को कुटीर उद्योग कैसे शुरू करें, इसका प्रशिक्षण देने का तैयार है।

एसकेप (एईएससीएपी) रिपोर्ट में कहा गया है कि समाज और गैर सरकारी संगठनों की सक्रिय हिस्सेदारी से शिक्षा और स्वास्थ्य के संसाधन बढ़ाए जा सकते है। समाज के सदस्य वस्तुओं के रूप में या नकद अंशदान दे सकते है। गैर सरकारी संगठन काफी समय से शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र में सक्रिय है। वे आंतरिक और बाहरी संसाधन जुटा सकते हैं और इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए नेतृत्व भी प्रदान कर सकते है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि बिहार के विकास में महिलाओं का योगदान अभूतपूर्व है।

संदर्भ स्रोत:

1. आर्थिक सर्वेक्षण 2008, बिहार सरकार, पटना, पृ0 62-68
2. आर्थिक सर्वेक्षण, 2001-07, भारत सरकार, नई दिल्ली,
3. वार्षिक प्रतिवेदन, उद्योग विभाग, बिहार सरकार, पटना, पृ0 19-23
4. जी0 लक्ष्मिया (1997): पैटर्न ऑफ सोसल सेक्टर डेवलमेंट एण्ड प्लानिंग इन इंडिया: ए रिव्यू, वार्ता वाल्यूम, ग्टप्प् - ग्टप्प्प् अप्रील एण्ड अक्टूबर 1996 एण्ड 1997, नं0 1 एण्ड 2. पृ0 71-84.
5. इण्डिया: ह्यूमेन डेवलपमेंट रिपोर्ट: ए प्रोफाइल ऑफ इण्डियन स्टेट्स इन दी 1990 (1999) एन. सी. ए. इ. आर. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ0 56-63
6. झा, टी, एन, (2001): बिहार आफ्टर डिविजन: प्रोमिसेज एण्ड पोटेनिसियल्स, योजना, जून 2001, पृ0 19-23
7. जलान, विमल (1996): इण्डियाज इकोनोमिक पॉलिसी, प्रीपेयर्टिंग फॉर दि ट्वेन्टी फर्स्ट सेंचुरी, पेंग्विन बुक, पृ0 32-45

बौद्ध साहित्य में नारी का स्थान

डॉ० रिंकु कुमारी

पिता-स्व0 किशोरी पासवान, मु0-सुन्दरपुर बीरा, पो0-वासुदेवपुर, जिला-दरभंगा, पिन-846005

इतिहास की नियति सदा से अपने को दुहराने की रही है। ''नार्यस्तु यत्र पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:'' जैसी उक्ति वैदिक काल में भले ही चरितार्थ होती रही हो, लेकिन कालान्तर में आकर नारी के प्रति पुरूषों का दृष्टिकोण बदल गया, जैसे-जैसे गणसत्तात्मक शासन-प्रणाली को लोग भूलते गये और एक सत्तात्मक शासन प्रणाली प्रबल होती गई, वैसे ही वैसे स्त्रियों की स्वतंत्रता भी कम होती गई, शनैः शनैः स्त्रियों को यज्ञाधिकार से वंचित किया जाने लगा।[1]

स्त्री पर सत्तीत्व का दायित्व डालने तथा पुरूष को पुनर्विचार का अधिकार प्रदान करनेवाले एकांगी आदर्शो ने भी नारियों की स्थिति को अधिक गिराया। वंश विस्तार की दृष्टि से पुत्र की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी हिन्दू परिवार में कन्या को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता रहा है।

बौद्ध साहित्य में ऐसे समाज की स्थापना पर बल दिया गया है। जिसमें नारियों को सम्मान खुद मिल जाय। भगवान बुद्ध ने अपने जीवन काल में न तो किसी ग्रंथ की रचना और न करायी है। वे एक सच्चे धर्मोपदेशक थे। वे तत्कालीन जन साधारण की भाषा पालि में अपने सीधे सादे उपदेशों को सुनाते थे, तथागत के उपदेशों को भिक्षु कंठस्थ कर लेते थे और उन उपदेशों का पाठ किया करते थे तथागत के परिनिर्माण के पश्चात उनके उपदेशों को संकलित करने की दृष्टि से राजगृह[2] में 483 ई0 पूर्व प्रथम धर्म संगीति हुई। इसके सभापति महाकाश्यप स्थविर थे तथा संरक्षक मगध नरेश अजातशत्रु थे इस सभा में भिक्षु उपाली ने विनय का पाठ किया तथा भगवान बुद्ध के परमप्रिय शिष्य आनन्द ने सूत्र और अभिधम्म का पाठ किया। सभा में तथागत के सम्पूर्ण उपदेशों को तीन पिटकों अर्थात् भागों में विभक्त किया गया -सुत्रपिटक, विनय पिटक, अभिधम्म पिटक, इस सभा में 500 भिक्षु सम्मिलित हुए तथा सभा सात माह चली। ई0 पू0 377 में वैशाली के वालुकराम में सात सौ भिक्षुओं द्वारा द्वितीय धर्म संगीति हुई, यह सभा आठ माह तक चली। इस संगीति में स्थाविरों तथा महासैगिकों के बीच विवाद का निर्णय हुआ।[3] महासैगिक लोगों का दल ही आगे चलकर महायान सम्प्रदाय कहलाया। अतः इसी संगीति में हीनयान, महायान के भेद का बीज वपन हुआ इस सभा में बक्कुल सुत्र आदि इनके सुत्र तथा गाथा त्रिपिटक में जोड़े गये। सम्राट अशोक की संरक्षता में पाटलिपुत्र में ई0 पू0 246 मे बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति हुई, इस सभा में अनेक सूत्र तथा गाथा त्रिपिटक में जोड़े गये। बौद्ध धर्म की चौथी संगीति महाराजा कनिष्क (ई0 पू0 73-103)[4] के समय हुई इस समय बौद्ध धर्म अठारह सम्प्रदायों में बंटा था। कनिष्क में इन सम्प्रदायों के आपसी भेद को मिटाने के लिए ही धर्म सभा की थी। कनिष्क के समय सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक का संस्कृत में अनुवाद किया गया। इस प्रकार बौद्ध साहित्य का आधार त्रिपिटक माना गया। सुत्रपिटक में सर्वसाधारण जनता के लिए उपदेशों का संकलन है इसमें बुद्धकालीन धर्म, समाज, सभ्यता, संस्कृति दर्शन, इतिहास का उल्लेख है। सुत्रपिटक पाँच निकायों में विभक्त है- दीर्घ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय।

पूर्व मध्यकालीन मिथिला भारतीय इतिहास पटल का एक ऐसा अनुच्छेद है जिसने तत्कालीन भारत में घटित होनेवाले किसी भी आन्दोलन एवं परिवर्तन के प्रति अति संवेदनशीलता के साथ-साथ अपेक्षित दायित्व का सर्वदेशीय रूप प्रस्तुत किया है। खासकर हर्षवर्द्धन के आकस्मिक अवसान के बाद मिथिला में राजनीतिक रिक्तता के कारण सत्ता प्राप्ति का जो संघर्ष हुआ, उसने सम्पूर्ण क्षेत्र को राजनीतिक अराजकता, सामाजिक विभ्रम तथा धार्मिक विश्रृंखलता का केन्द्र बना दिया। पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकुल, गढ़वाल, चेदि कलचुरि आदि अनेकानेक क्षेत्रीय शक्तियाँ मिथिला को रौंदती रहीं। छोटे-छोटे अन्तराल पर सत्ता परिवर्तन होता रहा। इन घटनाओं

से मिथिला के सामाजिक धार्मिक परिवेश में अस्थिरता एवं विखंडन के लक्षण प्रकट होने लगे। वैदिक सामाजिक संरचना की विसंगतियों तथा वर्ग व्यवस्था के निम्नतम वर्ग तथा उसके उपजाति वर्ग के असंतोष के कारण सामाजिक क्षरण आरंभ था। उपरोक्त कालखण्ड में ही अनेक राजपूत जत्थों, लड़ाकू जनजातियों तथा समूहों ने देशान्तरण के पश्चात यहाँ निवास करने लगी जिसके कारण भी मिथिला के समाज तथा धर्म में उथल पुथल हुआ। धार्मिक दृष्टि से तिरस्कृत तथा उपेक्षित समझे जानेवाले समूह को समाज की मुख्यधारा में समायोजन परिस्थितिजन्य मूल आवश्यकता थी। इन्हें धार्मिक कृत्यों में सहभागिता प्रदान कर सामाजिक संतुलन बनाने की आवश्यकता थी। सम्पूर्ण भारत में लगभग समान स्थिति थी।[5] प्रयोजनार्थ भक्ति आन्दोलन की बलवती धारा सम्पूर्ण भारत में बहने लगी। भक्ति आन्दोलन वस्तुतः पूर्व मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलन की परिणति था। ब्राह्मण शास्त्र के प्रणेताओं तथा निबंधकारों ने सामाजिक धार्मिक परिवर्तन को वैधानिक आधार प्रदान करने हेतु हिन्दू धर्म के कठोर बंधन को शिथिल कर दिया। शंकराचार्य द्वारा हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान अभियान आंशिक रूप से सफल रहा। सांख्य दर्शन अनुप्राणित बौद्ध धर्म भी जो एक समय एशिया का लोकधर्म था, पूर्व मध्य काल आते-आते संकुचित एवं प्रभावहीन हो गई। अब हिन्दूधर्म के विरोध की क्षमता उसमें न थी। भक्ति आन्दोलन की धारा ने बौद्ध अनुयायियों को भी एक नई दिशा एवं उर्जा प्रदान किया जिसके आलोक में वे बौद्ध धर्म का पुनरूत्थान कर पूर्व का सामाजिक आधार तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयास किया। किंतु तात्कालिक परिस्थिति में ऐसा हिन्दू धर्म के साथ सामंजस्य से संभव था। परिणामस्वरूप बौद्धधर्म को हिंदू धर्म में स्थान प्राप्त हुआ। अब बौद्ध धर्म हिन्दू बौद्ध धर्म कहलाने लगा। मिथिला में यह प्रभाव अधिक स्पष्ट तथा मुखर रहा। इस परिप्रेक्ष्य में चंडेश्वर का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। धार्मिक समन्वय का बोध इस तथ्य से भी होता है कि बौद्धों के महायान शाखा का प्रवर्त्तक नागार्जुन एक ब्राह्मण तथा ब्राह्मण ग्रंथों का महान ज्ञाता था। महायान मत ने न केवल हिन्दू धर्म के निर्वाण, ब्रह्म तथा ईश्वर की अनुकृति को मात्रा नाम भेद के साथ स्वीकार किया वरन् उसके अवतारवादी सिद्धान्तों का भी अनुशरण किया। वैचारिक, सैद्धान्तिक तथा शास्त्रीय ज्ञान के अधिग्रहण का प्रभाव बौद्धधर्म तथा हिन्दू धर्म को और भी समीप ला दिया। सर्वाधिक महत्वपूर्ण फलाफल बौद्ध धर्म में हिन्दू के समतुल्य तांत्रिक सम्प्रदाय का उद्भव था। निः संदेह पूर्व मध्यकालीन विभिन्न धार्मिक आन्दोलन के बीज निहित थे जिसका अंकुरण बौद्ध एवं हिन्दू धर्म में समान रूप से हुआ।

आठवीं-नौवीं शताब्दी में बौद्धधर्म में तंत्र आधारित 'वज्रयान' शाखा की स्थापना हुई जो बंगाल तथा बिहार खासकर मिथिला में अधिक लोकप्रिय हुआ। भारत की धार्मिक विचारधारा पर तांत्रिक विचारधारा का प्रभावोत्पादक परिणाम था कि हिन्दू और बौद्ध धर्म में शास्त्रीय एवं क्रियात्मक निरूपण बहुतायत से होने लगे। बिहार में विक्रमशिला वज्रयान शाखा का केन्द्र था जो मिथिला की दक्षिणी भौगोलिक सीमा से जुड़ा एवं मिथिला संस्कृति से प्रभावित था।

सहजयान के सिद्धों ने जिनकी संख्या- चौरासी बतायी जाती हैं, मिथिला में तंत्रवाद को इतना लोकप्रिय बनाया कि शूद्रों, अत्यंजों और नारियों ने सामाजिक ताने-बाने में सहज महसूस करना शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त डोम, जुलाहा, कुम्हार, पासी, व्याधा, आदि शूद्र संवर्ग की उपजातियाँ जो समाज में उपेक्षित एवं तिरस्कृत थी, उन्हें तंत्रवाद में सम्मिलित कर एक निश्चित एवं सम्मानपूर्ण सामाजिक आधार प्रदान किया गया। ध्येय, पद्धति एवं साधन में अत्यधिक समानता के कारण बौद्ध एवं शैव-शाक्त तांत्रिक प्रतिपादन एवं अनुपालन मिथिला का लोकधर्म बन गया। देवी देवताओं के रूप गुण की समानता, उपासना, पद्धति के मूल तत्वों की एकरूपता तथा सिद्ध साहित्य के सर्वग्राह्यता के कारण पूर्व मध्यकालीन मिथिला में बौद्ध एवं शैव-शाक्त का विभेद लगभग समाप्त था।[6]

हिन्दू देवी-देवताओं की भांति बौद्ध तंत्र में बुद्ध और बोधिसत्वों की पत्नियों की परिकल्पना की गई। इन देवियों में 'तारा', 'प्रज्ञापारिता' प्रमुख तथा मातंगी, योगिनी, तथा दक्षिणी गौण देवियाँ थी। महायान में हारीति, चंडिका, श्रीमहादेवी, सरस्वती आदि देवियों तथा अक्षोम्य, प्रज्ञा, अभिताभ, अवलोकितेश्वर आदि देवों का प्रवेश पूर्व में हो चुका था। कालान्तर में उपरोक्त सभी देवी-देवताएँ विभेद रहित होकर सम्पूर्ण मिथिला में पूजित होने लगी। बौद्ध तंत्र में इन देवियों को शक्ति के विविध रूप की अनुकृति स्वरूप प्रस्तुत किया गया।

पालशासक जो मूलतः बौद्ध अनुयायी थे, जिन्होंने अपने नाम के साथ ''परम सौगत'' विरूद्ध धारण किया था, ने अपने कालखण्ड में समेकित रूप से धार्मिक उत्थान का प्रयास किया। मिथिला में पाये जाने वाले देव प्रतिमाओं में सर्वाधिक मूत्तियाँ पालकालीन हैं। मूर्त्तियाँ बौद्ध, शैव-शाक्त तथा वैष्णव धर्म से संबंधित है। सिद्धपीठों के उन्नयन में इनके योगदान का उल्लेख विभिन्न अभिलेखों में मिलता है। नारायण पाल का भागलपुर दानपत्र, मिथिला में शिवायतन एवं देव विग्रह की स्थापना हेतु भूमि अनुदान

का उल्लेख करता है। संभवत: उक्त स्थल शैव तांत्रिक पीठ था। विग्रह पाल का मुंगेर दानपत्र पूर्वी मिथिला में किसी देवी के पूजा अर्चना हेतु भूमिदान की चर्चा करते हैं।[7] सहरसा जिला के महिषी स्थित प्रख्यात देवी तारा, बौद्ध। तांत्रिक देवी है जो प्रारंभ से ही सम्पूर्ण मैथिलों द्वारा सम्पुजित हैं। परवर्ती गुप्त शासकों-संग्राम गुप्त का पंचोभ दानपत्र तथा जीवति गुप्त का कटरा अभिलेख भूमिदान द्वारा धार्मिक उन्नयन का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। वर्त्तमान बेगूसराय जिला स्थित चामुंडा, मंगला तथा जयमंगला आदि बौद्ध तंत्र की देवियाँ हैं किन्तु मिथिला की परम्परा प्रमाणित करता है कि आरंभ से ही मैथिलों की आस्था इन देवियों में रही है। ऐसे दृष्टान्त मिथिला में बौद्ध तथा शैव-शाक्त तंत्र के अन्त: संबंधों की ओर संकेत करता है। बसाढ़, नौलागढ़, जयमंगलागढ़ आदि पुरातात्विक स्थलों के उत्खन्न में भी एक ही स्तर निक्षेप से बौद्ध, शैव, शाक्त तथा वैष्णव धर्म से संबंधित प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। मधुबनी जिला के अंधराठाढ़ी से एक साथ बुद्ध, शिव तथा विष्णु विग्रह का प्राप्त होना धार्मिक समन्वय को रेखांकित करता है। इसके अतिरिक्त मिथिला के लोककला एवं लोक संस्कृति में अभिव्यक्त अरिपनों, भित्तिचित्रों तथा लोकगीतों से धार्मिक सामंजस्य स्पष्ट रूप से परिभाषित होता है।

इसके अतिरिक्त सिद्ध साहित्य का वृहत भंडार प्रमाणित करता है कि साधकों द्वारा अभिष्ठ की प्राप्ति हेतु प्रयुक्त तांत्रिक क्रिया एवं पद्धति में मात्र नाम का परिवर्त्तन है, उनके क्रियात्मक रूप समान हैं। तंत्रवाद के उद्‌भव का एक विशिष्ट कारण कृषि आधारित व्यवस्था के विस्तार से जुड़ा माना जाता है। गुप्तकाल से ही व्यापार में ह्रास के कारण शहरों का विघटन प्रारंभ हो चुका था। ब्राह्मणों के जीवन-यापन की वैकल्पिक व्यवस्था बड़े पैमाने पर पुरोहितों एवं मंदिरों को दिये जाने वाले भूमि अनुदान आधारित हो गया। ब्राह्मणों के गाँवों की ओर देशान्तरण का निहितार्थ कृषि, बस्तियों का निर्माण तथा धार्मिक हो गया। नौवीं दसवीं शताब्दी में तीरभुक्ति के कई ब्राह्मणों के देशान्तरण का उल्लेख मिलता है। भूसम्पत्तिधारी ब्राह्मणों की नई बस्तियाँ बसने से पुराने तथा नई आबादियों के मध्य आर्थिक सामाजिक तथा धार्मिक सामंजस्य की समस्या उठ खड़ी हुई। जनजातीय सरदारों तथा जमीन से बँधे जनजातीय लोगों को समाज में उपयुक्त स्थान देने की आवश्यकता हुई। अपनी मातृसत्तात्मक परम्पराओं तथा परिवारिक रीति रिवाजों के साथ ऐसे सारे लोग इस व्यवस्था में शामिल हो गये। निम्न सामाजिक संवर्ग के होने के कारण अध्यात्मिक क्षतिपूर्त्ति द्वारा उन्हें संतुष्ट किया जा सकता था किंतु पारम्परिक कर्मकाण्ड में इसकी अल्प गुंजाईश थी। अत: तंत्रवाद के उद्‌भव को प्रश्रय मिला जिसमें इन सबों का समायोजन संभव हुआ।[8]

हिन्दू समाज में आदिवासियों का समावेश उनके अपने-अपने देवी देवताओं तथा धार्मिक अनुष्ठानों के साथ हुआ। जनजातियों की 'मातृदेवी' हिन्दू तंत्र में शक्ति तथा बौद्ध तंत्र में 'तारा' संज्ञा से प्रख्यात हुई। तांत्रिक सम्प्रदायों में स्त्रियों को उच्च स्थान प्रदान कर उनका उन्नयन किया गया। यही कारण है कि पूर्व मध्यकाल में 'मातृदेवी' की पूजा का उदाहरण सम्पूर्ण भारत में दृष्टिगत होता है। किन्तु नेपाल, आसाम, बंगाल, उड़ीसा तथा मिथिला 'शक्ति पूजा' के गढ़ थे जिसे अधिकाधिक विस्तार ''सिद्ध साहित्य'' की सर्जना से प्राप्त हुआ।

मिथिला में सिद्ध साहित्य की उपलब्धता सीमित है किन्तु कौलाचार तो मिथिला में आज भी विद्यमान है। एक अज्ञात मूलक श्लोक उल्लेख करता है कि तंत्र ने बंगाल में जन्म लिया, मिथिला में प्रबलता प्राप्त की, महाराष्ट्र में कुछ-कुछ प्रचलित हुआ तथा गुजरात में उसका अन्त हो गया। 17वीं-18वीं शताब्दी की तांत्रिक साहित्य की कृतियों में 108 पीठों जिनके अवशेषों के मिथिला में पाये जाने का दृष्टान्त पूर्वमध्यकालीन मिथिला को सर्वतोभावेन तंत्रवाद का समृद्ध केन्द्र प्रमाणित करता है।[9]

पूर्व मध्यकालीन मिथिला में बौद्ध तथा शैव-शाक्त के समन्वय को सशक्त रूप से प्रतिपादित करने में समर्थ हो सकता है जो कई तथ्यपरक अनसुलझे, अज्ञात तथा भ्रामक प्रश्नों के समाधान में सहायक होगा। इसके निष्कर्ष इतिहासकारों की सर्जनाओं को आधार सामग्री प्रदान करेगा तथा मिथिला के इतिहास लेखन के लिए अवदान साबित होगा।

प्रस्तुत शोध आलेख मिथिलांचल के विभिन्न पुरातात्विक[10] स्थलों, पौराणिक ऐतिहासिक महत्व के मंदिरों, विभिन्न पुरातात्विक स्थलों के उत्खनन के प्रकाशित अप्रकाशित प्रतिवेदनों, उपलब्ध अभिलेखों, मुद्राओं मुहरों आदि के रूप में पर्याप्त शोध सामग्री उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त मिथिला लोक साहित्य का विशाल भंडार, प्रचलित लोक रीतियाँ, चित्रकला एवं लोक परम्पराएँ बहुमूल्य स्रोत सामग्री सिद्ध होंगे।

स्रोत संदर्भ सूची -

1. आर0 एस0 शर्मा -अर्ली मेडियावल इंडियन सोयायटी।
2. आर0 एस0 शर्मा- पूर्वमध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति।
3. डा0 जयधारी सिंह -बौद्धगान में तांत्रिाक सिद्धान्त
4. आर0 के0 चौधरी - मिथिला का इतिहास
5. राम प्रकाश शर्मा - मिथिला का इतिहास
6. आर0 आर0 दिवाकर - बिहार थ्रू एजेज
7. ओ0 पी0 शर्मा - कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री आफ बिहार
8. राहुल सांस्कृत्यायन - दोहा कोष
9. हजारी प्रसाद द्विवेदी - बौद्धगान और दोहा
10. डा0 जे0 सी0 झा - माइग्रेसन ऑफ मैथिल पंडित्स

मैथिली भाषाक भौगोलिक रूपरेखा

डॉ० रीता कुमारी

फ्लैट नं0 302, बासुदेवझड़ी अपार्टमेन्ट, वेदनगर रूकनपुरा,
बेली रोड, पटना -800014

मैथिली, भारोपीय भाषा परिवारक भारतीय आर्य भाषासँ निष्पन्न पूर्वाञ्चलीय भाषाक एक आधुनिक स्वतंत्रा ओ समृद्ध भाषा थिक। एहि भाषाक अपन व्याकरण, लिपि, प्राचीन परम्परा गरिमापूर्ण इतिहास ओ विकसित साहित्य अछि। कोनहु समृद्ध भाषा, ओकर व्याकरण भाषा-विज्ञानक कसौटी पर कसल रहैछ। एहन सभ लक्षणसँ सम्पन्न भाषामे मैथिलीक स्थान सराहनीय अछि। एकर अतिरिक्त भाषाक कोमलता मधुरता सहजता व्यापक ओ विपुल शब्दक भण्डार मैथिलीकेँ विश्वक मानचित्रा पर अमिट छाप प्रदान करैत अछि। वर्त्तमान समयमे मैथिली भाषा-भाषीक संख्या पाँच करोड़ सँ बेसी अछि। एकरा दू देशक (भारत-नेपाल) राजकीय भाषा बनबाक गौरब सेहो भेटल अछि।

मैथिलीक प्राचीनतम स्वरूप चारिम शताब्दीक कालिदासक **'विक्रमोर्वशीय'** सँ स्पष्ट रूपेँ भेटैत अछि। परञ्च मैथिली साहित्यक प्रसिद्ध आलोचक प्रो0 रमानाथ झा अपन **'प्रबन्ध-संग्रह'** पोथीमे मैथिली भाषाक प्राचीनतम रूप त्रोतायुगहि सँ मानैत छथि-

वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।
यदिवाचं प्रदस्यामि द्विजारिव संस्कृताम्।।
रावणं मन्यमाना सा सीता भीता भविष्यति।
....
अवश्वमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।।

वस्तुतः मैथिलीक विकास स्पष्ट रूपेँ सिद्धलोकनिक रचनामे दृष्टिगत होइत अछि। ओहि मध्य **कान्हपा** आ **सरहपादक दोहाकोश, बौद्धगान, प्राकृत पैप्पलम् आगकार्णव, महायोगिनी तंत्रा** सँ मैथिलीक आदिरूपक दर्शन होइत अछि जे कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ओ कविकोकिलक अवधिमे अपभ्रंश, अवहठ नामसँ प्रचलित भेल एहि प्रसंग महाकवि विद्यापतिक निज रचना कीर्त्तलताक पंक्तिकेँ देखल जा सकैछ-

सक्कय वाणी बहुअ न भावइ,
पाउअँ रस को मम्म न पावय।
देसिल बअना सब जन मिठा,
तेँ तैसन जम्पउ अवहठा।।[2]

एहि तरहेँ मैथिलीक प्राचीन स्वरूप स्थिर भ गेल छल महाकवि विद्यापतिक समय धरि।*

जाहि भाषाकेँ हमरा लोकनि मैथिलीक नामसँ अभिहित क* रहलहुँ अछि, तकर नामकरण बड़ नवीन थिक। कारण जे पूर्वमे एकरा **'तिरहुतिया'** ओ आनो आन नामसँ जानल जाइत छल। दोसर जे एकरा अखनहुँ बंगलाक संग तँ कखनहुँ हिन्दीक संग जोड़ि क* देखल जाइत छल। **मैथिली** शब्दक प्रयोग प्रथमहि यूरोपीय विद्वान् कोलब्रुक 1801 ई0मे कयलनि। जाहि नामकेँ प्रसिद्धिक श्रेय भाषा साहित्यक आदि उद्धारक डॉ0 जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, कवीश्वर चन्दा झा, ओ डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी के छनि।[3] मैथिली एक भाषा अछि मुदा भाषाक समुचित परिभाषा पर एक दृष्टि देव अत्युक्ति नहि होयत। ''भाषायादृच्छिक, रूढ़, उच्चारित संकेत की वह प्रणाली है जिसके माध्यमसँ मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय, सहयोग अथवा भावाभिव्यक्ति करते है।''[4]

एहिठाम विभाषाकेँ सेहो विलग नहि क* सकैत छी, जे विभाषाक प्रयोग सेहो सामान्यत: लेखन कायकेँ छोड़ि अपन सभ कार्यमे भाषहि जकाँ कयल जाइत अछि। तेँ विभाषाक परिभाषा विद्वानक् मतमे निम्नवत अछि- ''भाषाके स्थानीय भेद से प्रयोग भेद में जो अन्तर पड़ता है उसी के आधार पर विभाषा का निर्माण होता है।[5]

प्रत्येक व्यक्तिक भाषा एक दोसरासँ भिन्न होइत अछि। एहना स्थितिमे असंभव भ* जाइत अछि जे बहुत दूर धरि भाषाक एकरूपता बनल रहय। स्वभावत: एकहि भाषामे किछुए दूर गेला पर ओहि मध्य विभेदताक स्पष्ट दिग्दर्शन होइत अछि। कहलो गेल अछि-

चारि कोश पर पानि बदलय आठ कोश पर वाणी।

उपरोक्त भाषा-विभाषाक मध्य संबंधमे डॉ0 अब्राहम ग्रियर्सन एहि तरहेँ लिखि अपन मत देलनि-

"The two words 'Language' and 'Dialect' are is this respect like 'Mountain' and 'Hill' one has to hesitation in saying that say Everest is a mountain and Holborn hill, a Hill, but between these two the dividing line can not be accurately drown.[6]

भाषाक स्थानीय भेद जे मुख्यत: भौगोलिक कारणसँ प्रेरित होइत अछि, विभाषाक सर्जन करैत अछि। डॉ0 अब्राहम ग्रियर्सन रचित पुस्तक ''मैथिली व्याकरण'' 1881-82ई0क भूमिका मे कहलनि अछि जे मैथिली एक भाषा थिक नहि की बोली। ई एहन लोकक मातृभाषा थिक जे हिन्दी अथवा उर्दू ने बाजि सकैछ आ ने सरलतासँ बुझि सकैछ।[7]

परञ्च वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य मे उपरोक्त कथन ठीक नहि भ* सकैछ, कारण जे मैथिली भाषी क्षेत्रा ओ एकरा बजनिहार मानव समुदाय हिन्दी ओ उर्दू, संस्कृत, बङ्गला अंग्रेजीक संग अन्यान्य भाषा केँ बजबाक संग सुगमतापूर्वक बुझबाक क्षमता सेहो रखैत अछि।

मैथिलीक सीमा क्षेत्राके पश्चिममे भोजपुरी, पूरबमे बङ्गला, दक्षिणमे मगही, आओर उत्तरमे नेपाली (नेवाड़ी सँ) घेटल-बेढ़ल अछि। मानक मैथिलीक स्थान पुरना दरभङ्गा जिला अछि। जे सम्पूर्ण मैथिली भाषी क्षेत्राक 15: प्रतिशत मात्रा अछि। यद्यपि मैथिली भाषा-विभाषाक स्वरकेँ स्पष्ट करबाक हेतु भौगोलिक दृष्टिकोण सँ अब्राहम ग्रियर्सन साहेब मानक मैथिली, दक्षिण बोली, पुरबी बोली, छिका-छिकी, पश्चिमी एवं जोलहा बोलीक उपनामसँ अभिहित कयलनि अछि। परञ्च गोविन्द झा ग्रियर्सन द्वारा कयल मैथिलीक विविध उपभाषा किंवा बोलीक उपर्युक्त वर्गीकरणक प्रति संयुक्ति अपन असहमति प्रकट करैत, एहि निष्कर्ष पर पहुँचल छथि। जे वस्तुत: औपभाषिक भेदक तीन टा प्रमुख आधार अछि-

(क) क्षेत्रा

(ख) सामाजिक वा शैक्षिक स्तर एवं

(ग) जाति तथा एहि तीनूक आधार पर

मैथिलीक विविध उपभाषाक सेहो पृथक-पृथक विभाजन होयबाक चाही। हिनक कथानानुसार मैथिलीक मात्रा पाँच गोट उपभाषा अछि-[8]

(i) पूर्वी

(ii) दक्षिणी

(iii) पश्चिमी

(iv) उत्तरी

(v) केन्द्रीय बोली।

उपरोक्त समस्त वर्णन विश्लेषण सँ ई विदित होइत अछि जे मैथिली भाषाक भौगोलिक स्वरूप क्षेत्रानुसारेँ विविधता सँ परिपूर्ण अछि। एकर नवीन स्वरूपमे तीव्र रूपसँ परिवर्तन सेहो आबि रहल अछि।

सन्दर्भ-स्रोत

1. वाल्मीकि रामायण-सुन्दरकाण्ड सर्ग 10, श्लोक सं0-17-19
2. कीर्त्तिलता- विद्यापति-प्रथम पल्लव।
3. गद्य-गौरव-सं0 शरदिन्दु चौधरी शेखर प्रकाशन पटना-पृ0-36
4. भाषा-विज्ञान की भूमिका-आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा-पृ0-22
5. तत्रौव- पृ0-46
6. डॉ0 अब्राहम ग्रियर्सन-डॉ0 नवीन चन्द्र मिश्र- मैथिली भाषा विज्ञान पृ0-20
7. तत्रौव पृ0-75
8. पं0 गोविन्द झा: डॉ0 दिनेश कुमार झा, मैथिली साहित्यक आलोचनात्मक इतिहास पृ0-18।

भारत में बाल-श्रम और बाल श्रम अधिनियमः एक विश्लेषणात्मक अधिनियम

डॉ० साधना कुमारी

सुन्दरपुर बीरा, दरभंगा (बिहार)

सार

बच्चे राष्ट्र के भावी नागरिक हैं और उनका पर्याप्त विकास देश की सर्वोच्च प्राथमिकता है। दुर्भाग्य से, बाल श्रम दुनिया भर के बच्चों को प्रभावित करता है। दुनिया 10 - 19 वर्ष की आयु के 1.2 बिलियन व्यक्तियों का घर है। हालांकि, विभिन्न रूपों में इसके खतरे के बावजूद, डेटा दुनिया भर में बाल श्रम के प्रसार में भिन्नता दिखाता है और बाल श्रम के बारे में सांख्यिकीय आंकड़े बहुत खतरनाक हैं। दुनिया भर में अनुमानित 186 मिलियन बाल मजदूर हैं। भारत की 2001 की राष्ट्रीय जनगणना में 5 - 14 आयु वर्ग के बाल श्रमिकों की कुल संख्या 12.6 मिलियन थी। छोटे पैमाने पर और समुदाय आधारित अध्ययनों से खतराक व्यवसायों में लगे 12.6 मिलियन बच्चों का अनुमान है। कई बच्चे घरों में या भूमिगत अर्थव्यवस्था में ''छिपे हुए श्रमिक'' हैं। यद्यपि भारत का संविधान 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की गारंटी देता है और 18 खतरनाक व्यवसायों में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाता है, बाल श्रम अभी भी भारतीय अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्रों में प्रचलित है। बाल श्रम मानव अधिकारों का उल्लंघन करता है, और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (अनुच्छेद 32, बाल अधिकार कन्वेंशन अधिकार) का उल्लंघन है। विकासशील दुनिया के लगभग एक तिहाई बच्चे शिक्षा के 4 साल भी पूरे नहीं कर पा रहे हैं। भारतीय आबादी में विभिनन उद्योगों में 17.5 मिलियन से अधिक कामकाजी बच्चे हैं, और संयोग से अधिकतम कृषि क्षेत्रा, चमड़ा उद्योग, खनन और विभिन्न उद्योगों आदि में हैं।

मुख्य-बिन्दु : बाल - श्रम; अवधारणाएं; स्वरूप; परिणाम; कानून; अंतर्विरोध।

परिचय

शब्द ''बाल श्रम'' को अक्सर ऐसे काम के रूप में परिभाषित किया जाता है जो बच्चों को उनके बचपन, उनकी क्षमता और उनकी गरिमा से वंचित करता है, और यह शारीरिक - मानसिक विकास के लिए हानिकारक है। यह उन कामों को संदर्भित करता है जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक या नैतिक रूप से खतरनाक और बच्चों के लिए हानिकारक होते हैं, और उन्हें स्कूल जाने के अवसर से वंचित करके उनकी स्कूली शिक्षा में बाधा उत्पन्न होती है, उन्हें समय से पहले स्कूल छोड़ने के लिए बाध्य करना या स्कूल में उपस्थिति के साथ प्रयास करने की आवश्यकता होती है। अत्यधिक लंबा और भारी काम। विकृ में बाल श्रमिकों के बारे में सांख्यिकीय आंकड़ों में भिन्नता है क्योंकि औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रा में आयु वर्ग की श्रेणियों को परिभाषित करने और बच्चों की सगाई में अंतर के कारण।

बच्चे मानवता के लिए सबसे उपहार हैं और बचपन मानव विकास का एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली चरण है क्योंकि यह किसी भी समाज के भविष्य के विकास की क्षमता रखता है। जिन बच्चों को पर्यावरण में लाया जाता है, जो उनके बौद्धिक, शारीरिक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अनुकूल होते हैं, वे समाज के जिम्मेदार और उत्पादक सदस्य बनते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने बच्चों की वर्तमान स्थिति के साथ अपने भविष्य को जोड़ता है। जब वे कार्य के लिए बहुत छोटे होते हैं, तो काम करके, बच्चे अपने

वर्तमान कल्याण या भविष्य की आय अर्जन क्षमताओं को कम कर देते हैं, या तो अपने भविष्य के बाहरी विकल्प सेटों को सिकोड़कर या अपनी भविष्य की व्यक्तिगत उत्पादक क्षमताओं को कम करके। अत्यधिक आर्थिक संकट के तहत, बच्चों को शैक्षिक अवसरों को कम करने और नौकरियों को लेने के लिए मजबूर किया जाता है जो ज्यादातर शोषक होते हैं क्योंकि वे आमतौर पर अंडरपेड होते हैं और खतरनाक परिस्थितियों में लगे रहते हैं। माता - पिता अपने बच्चे को खराब आर्थिक परिस्थितियों के कारण एक हताश उपाय के रूप में नौकरी में संलग्न करने के लिए भेजने का फैसला करते हैं। बाल श्रम बहुत हानिकारक है और इसे खत्म करने के पूरे प्रयास किए जाने चाहिए।

भारत में बाल श्रम का परिणाम

भारत में बाल श्रम की भयावहता पिछले दो दशकों में, दोनों परिमाण और कार्यबल भागीदारी दर के मामले में भारी गिरावट देखी जा रही है। नेशनल सैंपल सर्वे के आंकड़ों से प्राप्त साक्ष्य बताते हैं कि 2004 - 05 के दौरान भारत के बाल कर्मचारियों की संख्या 1983 में इक्कीस लाख (21.55 मिलियन) के मुकाबले नौ मिलियन (9.07) से कम थी। इस अवधि के दौरान, बाल रोजगार में 12.48 मिलियन की तेजी से गिरावट आई है। लड़कियों की तुलना में लड़कों की तुलना में लड़कों के बीच बाल कर्मचारियों की संख्या में काफी कमी देखी गई है। 1983 से 2004 - 05 के दौरान लड़कों और लड़कियों की समान संख्या क्रमशः 12.06 से घटकर 4.76 मिलियन और 9.49 से 4.31 मिलियन हो गई है। वास्तव में, 1980 के दशक के दौरान लड़कों और लड़कियों (लड़कों के खिलाफ प्रतिकूल) के बीच मौजूद लिंग अंतर हाल के वर्षों में लगभग समाप्त हो गया है, अंतर 2.57 मिलियन से धीमा होकर लगभग 0.45 मिलियन हो गया है। हालाँकि, निरपेक्ष संख्या में, समस्या बड़ी है। 2001 की जनगणना के अनुसार, 5 - 14 वर्ष के आयु वर्ग में 1.26 करोड़ आर्थिक रूप से सक्रिय बच्चे हैं। 1991 की जनगणना में यह 1.13 करोड़ था। एनएसएसओ के सर्वेक्षण 2009 - 10 के अनुसार, कामकाजी बच्चों का अनुमान 49.84 लाख है, जो घटती प्रवृत्ति को दर्शाता है। पिछले साल अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा प्रकाशित बाल श्रम पर वैकृिक रिपोर्ट के अनुसार, 5 - 14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों की गतिविधि दर लैटिन अमेरिका और कैरेबियन क्षेत्र में 5.1 प्रतिशत है, जो दुनिया में सबसे कम है। एशिया - प्रशांत क्षेत्र में, यह 18.8 प्रतिशत है। इसकी तुलना में, भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार बच्चों की गतिविधि दर 5 प्रतिशत है।

कानून और बच्चों का श्रम

बाल श्रम पर अंकुश लगाने वाली नीति मौजूद है लेकिन श्रम प्रतिबंधों के प्रवर्तन में कमी बाल श्रम को रोकती है। यह विभिन्न प्रकार के रोजगार में न्यूनतम आयु प्रतिबंध में भिन्नता से प्रकट होता है। अंतर्राष्ट्रीय क्षय कार्यालय की रिपोर्ट है कि बच्चे सबसे लंबे समय तक काम करते हैं और सभी मजदूरों का सबसे खराब भुगतान करते हैं। भारत में, बाल श्रम (निषेध और विनियम) अधिनियम 1986 और नियम कहता है कि अनुसूची के भाग ए या किसी भी कार्यशाला में निर्धारित किए गए किसी भी व्यवसाय में किसी भी बच्चे को काम पर रखने या काम करने की अनुमति नहीं होगी, जिसमें से कोई भी प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। अनुसूची के भाग ठ में किया जाता है। इस उद्देश्य के लिए, ''बच्चे'' का अर्थ है एक व्यक्ति जिसने अपनी 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। अधिनियम कुछ निर्दिष्ट खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं में बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाता है और दूसरों में काम करने की स्थिति को नियंत्रित करता है। अधिनियम के तहत गठित बाल श्रम तकनीकी सलाहकार समिति की सिफारिश पर खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं की सूची का उत्तरोत्तर विस्तार किया जा रहा है।

भारत में बाल श्रम के लिए कानून

भारत में बाल श्रम के लिए पहला सुरक्षात्मक कानून 1881 में देखा गया था अगर भारतीय कारखानों अधिनियम में 7 साल से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाने के प्रावधान हैं, जो बच्चों के लिए काम के घंटे को 9 घंटे तक सीमित करते हैं और एक महीने में 4 छुट्टियां प्रदान करते हैं। यह वास्तव में सत्तारूढ़ ब्रिटिश सरकार द्वारा कुछ कानूनी प्रतिबंधों के माध्यम से भारतीय उद्योगों में उत्पादन को कम करने के लिए बनाया गया था। यह प्रस्तुत किया जा सकता है कि भारत में बच्चों के लिए सुरक्षात्मक कानून सहित श्रम कानून अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा अपनाए गए विभिन्न सम्मेलनों और सिफारिशों के परिणाम से बहुत प्रभावित हुए हैं। संवैधानिक प्रावधानों के अलावा, कई विधायी कानून हैं जो विभिन्न व्यवसायों में बच्चों को कानूनी संरक्षण प्रदान करते हैं।

बच्चे (श्रम की प्रतिज्ञा) अधिनियम, 1933
बच्चों का रोजगार अधिनियम, 1938
न्यूनतम मजदूरी, अधिनियम 1948 और सरकार द्वारा बनाए गए नियम
कारखानों अधिनियम, 1948
वृक्षारोपण श्रम अधिनियम, 1951
द माइन्स एक्ट, 1952
मर्चेंट शिपिंग अधिनियम, 1958
मोटर ट्रांसपोर्ट वर्कर्स एक्ट, 1961
अपरेंटिस अधिनियम, 1961
परमाणु ऊर्जा अधिनियम, 1962
बीड़ी और सिगार श्रमिक (रोजगार की स्थिति) अधिनियम, 1966
विभिन्न राज्यों में दुकानें और स्थापना अधिनियम, और
बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1966

बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम (1986) उन प्रयासों और विचारों की परिणति था, जो बालश्रम पर विभिन्न समितियों के विचार - विमर्श और सिफारिशों से निकले थे। उनमें से महत्वपूर्ण राष्ट्रीय श्रम आयोग (1966 - 1969), बाल श्रम पर गुरुपदस्वामी समिति (1979) और सनत मेहता समिति (1984) थे। अधिनियम का उद्देश्य बच्चों को खतरनाक व्यवसायों में प्रवेश करना और गैर - खतरनाक व्यवसायों में बच्चों की सेवाओं को विनियमित करना है। विशेष रूप से इसका उद्देश्य (प) बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाना है, अर्थात् जिन्होंने अपना 14 वां वर्ष पूरा नहीं किया है, 18 निर्दिष्ट व्यवसायों और 65 प्रक्रियाओं में (पप) प्रतिबंधित व्यवसायों या प्रक्रियाओं की अनुसूची में परिवर्धन करने के लिए एक प्रक्रिया रखनाय (पपप) उन व्यवसायों में बच्चों की कामकाजी परिस्थितियों को विनियमित करना जहां उन्हें काम करने की मनाही है। (पअ) इस अधिनियम और अन्य अधिनियमों के प्रावधानों के उल्लंघन में बच्चों के रोजगार के लिए दंड देनाय (अ) संबंधित कानूनों में बच्चे की परिभाषा में एकरूपता लाना।

अंतर्विरोध और बाल श्रम

शिक्षा विकास का एक बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा है। बाल श्रम के लिए तैयार बच्चों को मूल रूप से आर्थिक अभाव, स्कूली शिक्षा की कमी और दैनिक जरूरतों के लिए परिवार की व्यस्तता के कारण संचालित किया जाता है। अध्यनों में बाल रोजगार की वृद्धि दर के साथ कम नामांकन पाया गया है। बाल श्रम के खिलाफ शुरुआती हस्तक्षेप के लिए स्कूल एक मंच हैं, क्योंकि यह पुरुषों की नौकरियों में उनकी भागीदारी को प्रतिबंधित करता है। इस दृष्टिकोण में बाधाएं आर्थिक कारण हैं। जब तक आर्थिक बदलाव नहीं लाया जाता, तब तक बच्चे स्कूल नहीं जा पाएंगे। बाल विकास को आर्थिक विकास के बारे में जागरूकता बढ़ाने और सभी स्तरों पर शिक्षा को सस्ती बनाने और बाल श्रम कानूनों के प्रवर्तन द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

भारत सरकार ने बाल श्रम को नियंत्रित करने के लिए कुछ पहल की हैं। राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (एनसीएलपी) योजना देश में उच्च बाल श्रम की समाप्ति के 9 जिलों में शुरू की गई थी। इस योजना के तहत, जिला कलेक्टरों को बाल श्रम के लिए विशेष स्कूल चलाने के लिए धन दिया जाता है। इनमें से अधिकांश स्कूल जिले में गैर सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जाते हैं। इस योजना के तहत, इन बच्चों को व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा और रू0 100 प्रति माह दिया जाता है। उनके लिए स्वास्थ्य परीक्षण भी किया जाता है।

निष्कर्ष

इस समस्या के लिए गरीबी महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। इसलिए, प्रवर्तन अकेले इसे हल करने में मदद नहीं कर सकते। सरकार इन बच्चों के पुनर्वास और उनके परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधारपर बहुत जोर दे रही है। कई एनजीओ जैसे कि केयर

इंडिया, चाइल्ड राइट्स एंड यू, ग्लोबल मार्च अगेंस्ट चाइल्ड लेबर आदि भारत में बाल श्रम को खत्म करने के लिए काम कर रहे हैं। बाल श्रम को तब रोका जा सकता है जब ज्ञान को कानून और कार्रवाई में अनुवादित किया जाता है, बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए अच्छे इरादे और विचारों को आगे बढ़ाया जाता है। छोटे बच्चों का धीरज अधिक होता है और वे भेदभाव का विरोध नहीं कर सकते। बाल श्रम के खिलाफ समुदायों को जुटाने के लिए जमीनी स्तर की रणनीतियों पर ध्यान केंद्रित करना और बाल श्रमिकों को उनके घरों और स्कूलों में पुनः स्थापित करना बाल श्रम के चक्र को तोड़ने के लिए महत्वपूर्ण साबित हुआ है। इस बुराई पर अंकुश लगाने के लिए चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक - मानवशास्त्रीय स्तर के विशेषज्ञों से युक्त एक बहु - विषयक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यह इस संदर्भ में है कि हमें बच्चों के निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा (आरटीई) अधिनियम 2009 के लैंडमार्क पास पर ध्यान देना होगा, जो भारत के बच्चों के लिए एक ऐतिहासिक क्षण है। भारत के इतिहास में पहली बार, बच्चों को परिवारों और समुदायों की मदद से राज्य द्वारा गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा के उनके अधिकार की गारंटी दी जाएगी। हालाँकि स्कूल में सामाजिक रूप से वंचित समूहों के बच्चों के अनुपात में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, फिर भी अंतराल बना हुआ है। लड़कियों को अभी भी लड़कों की तुलना में स्कूल में दाखिला लेने की संभावना कम है। 2005 में, उच्च प्राथमिक विद्यालय (ग्रेड 6 - 8) के लिए लड़कियों का नामांकन अभी भी लड़कों की तुलना में 8.8 अंक कम था, अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए लिंग अंतर 12.6 अंक था और यह अनुसूचित जाति (एससी) के लिए 16 अंक था। वंचित समूहों जैसे बाल श्रमिकों, प्रवासी बच्चों, विशेष जरूरतों वाले बच्चों, या जिनके पास सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई, लिंग या इस तरह के ''नुकसान'' के कारण विशिष्ट प्रावधानों के साथ, बिना पहुंच के एक परिपक्व मंच प्रदान करता है। स्कूल में रहने और सफल होने के समर्थन के साथ आयु - उचित स्तर पर कक्षाओं में 8 मिलियन स्कूली बच्चों को लाना एक बड़ी चुनौती है। असमानताओं को खत्म करने और इक्विटी के साथ गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रयास आवश्यक हैं। अधिनियम का सफल कार्यान्वयन निश्चित रूप से बाल श्रम के उन्मूलन के लिए एक लंबा रास्ता तय करेगा।

संदर्भ

1. बसु के, (2003) द ग्लोबल चाइल्ड लेबर प्रॉब्लम : व्हाट डू वी नो और वी कैन वी डू ? विकृ बैंक ईकॉन रेव 17 : 47 पृ0 73।
2. अंगनिहोत्रम आर. वी. (2005) भारत में व्यावसायिक स्वास्थ्य अनुसंधान का अवलोकन। इंडियन जर्नल ऑफ ऑक्युपेशनल एनकाउंटर मेड, नई दिल्ली, पृ0 10 - 4।
3. यूनिसेफ, (2006) बाल अधिकारों पर कन्वेंशन के लिए गाइड।
4. जिनेवा, स्विट्रलैंड : (2003) अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन शिक्षा 2003 के माध्यम से बाल श्रम का संयोजन।
5. आईएलओ (1997) बाल श्रम : चुनौती कैसे पूरी हो रही है। इंटरनेशनल लेबर रेव 136 : 233 पृ0 57।
6. अली एम, शहाब एस, उशीजिमा एच, डी मुयंक ए (2004) स्ट्रीट पाकिस्तान में बच्चे : सामाजिक परिस्थितियों और पोषण संबंधी स्थिति का स्थितिजन्य विश्लेषण, सोसाइटी विज्ञान मेड 59 : पृ0 1707 - 1717।
7. खान एच, हमीद ए, अफरीदी ए. के. (2007) पेशावर, पाकिस्तान की ऑटोमोबाइल कार्यशालाओं में बाल श्रम पर अध्ययन। ईस्ट मेडिटेर हेल्थ, जे, 13 : 149 पृ0 502।
8. जेनेवा : आईएलओ, (1992) (अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय)। विकृ श्रम रिपोर्ट।

गुप्त काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

डॉ० संजय कुमार

पिता-स्व0 किशोरी पासवान, मु0-सुन्दरपुर बीरा, पो0-वासुदेवपुर, जिला-दरभंगा, पिन-846005

गुप्तकाल में स्त्रियों की स्थिति में कई परिवर्त्तन हुए थे। कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व उसका विवाह कर देने की अवधारण ने जोर पकड़ा। इस प्रथा का सर्वाधिक प्रचलन रुढ़िवादी ब्राह्मण परिवार तक ही सीमित रहा। लड़कियों, महिलाओं की शैक्षिक सुविधायें बहुत कम कर दी गयी थी। जिन लड़कियों का विवाह अल्पायु में नहीं किया जाता था, उनसे से भी अधिकांश को समुचित शिक्षा नहीं दी जाती थी। इस काल में पत्नी पर पति का पूर्ण प्रभुत्व स्वीकार किया गया और पतिव्रता के आदर्श की तथाकथित महत्ता को अनावश्यक सीमा तक उभारा गया। कालिदास बराहमिहीर एवं कतिपय अन्य लेखकों ने पत्नी को समुचित सम्मान देने पर बल दिया। नियोग प्रथा विरोधी अब अधिक मुखकर हो गये, जीवन अत्यधिक कष्टसाध्य बना दिया गया था। सती प्रथा को पहली बार स्पष्ट समर्थन दिया गया था। इन समस्त कारणों के परिणामस्वरूप स्त्रियों की सामान्य अवस्था में स्पष्ट सर्मथन दिया गया था। इन समस्त कारणों के परिणामस्वरूप स्त्रियों की सामान्य अवस्था में नि:संदेह पतन हुआ। किन्तु उनके साम्पत्तिक अधिकारों में पर्याप्त वृद्धि हुई।

पुरूष प्रधान समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[1] पूर्व काल की भाँति गुप्तकाल में भी पुत्रियों को जन्म देनेवाली स्त्री को हेय दृष्टि से देखा जाता था।[2] कुमारी लड़कियाँ अपने पिता/अभिभावक के संरक्षण एवं नियंत्रण में रहती थी।[3] इनका अल्पायु में ही विवाह कर दिया जाता था। गांधर्व एवं स्वयंवर विवाहों (जिनके उदाहरण बहुत कम होते थे) तथा कुछ अन्य विशिष्ट परिस्थितियों[4] को छोड़कर लड़कियाँ विवाह के लिए पूर्णरूपेण अपने पिता/अभिभावक पर निर्भर करती थी। इस काल में कन्या के साम्पत्तिक अधिकारों में वृद्धि हुई थी।[5]

साधारण परिवारों की अधिकांश लड़कियाँ शिक्षा से तो वंचित रह जाती थी उन्हें घर पर ही नृत्य, संगीत, चित्रकला एवं कतिपय शिल्पों का प्रशिक्षण दिया जाता था। यह शिक्षा उनके व्यक्तित्व के विकास का विकास करने तथा उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरुक बनाने के लिए अपर्याप्त थी। मृच्छ नाटक के एक संदर्भ में विदूषक की व्यंगोत्तिक से संकेत मिलता है कि स्त्रियाँ सामान्य: संस्कृत नहीं पढ़ती थी।[6] इसकी अप्रत्यक्षता पुष्टि नारद ने भी की है। महिलाओं को अनपढ़ों तथा बच्चों की कोटी में रखते हुए उन्होंने कहा कि स्त्रियों के जाली हस्ताक्षर बनाकर उनके संबंधी ही उन्हें धोखा दे देते हैं।[7] महिलाओं को शिक्षा एवं शास्त्र ज्ञान के अभाव के कारण उचित अनुचित का निर्णय लेने में अक्षम बताते हुए नारद ने उनकी परतंत्र स्थिति को उचित ठहराया है।[8] राजघरानों, सुसंस्कृत, ब्राह्मण परिवारों एवं धनाद्य वणिजों/व्यापारियों की लड़कियों को ललित कलाओं के अतिरिक्त साहित्यिक एवं उच्च शिक्षा भी दी जाती थी। कामसूत्र में राजकुमारियों को उन लोगों की कोटी में रखा गया है जिनकी बुद्धि शास्त्राध्ययन के कारण परिमार्जित एवं कुशाग्र होती थी।[9] सुशिक्षिता होने पर शासन की बागडोर भी संभालने से नहीं हिचकती थी। इस प्रकार का उदाहरण प्रभावती गुप्ता का है जिसने अपने नाबालिग पुत्रों की संरक्षिका के रूप में कई वर्षों तक शासन किया।[10] कामसूख में महिलाओं को 64 कलाओं का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक बतलाया गया है- गीत, वादन, नृत्य, चित्रकारी।[11] आश्रय में रहने वाली सन्यासिनी एवं धार्मिक जीवन में आसक्ति रखनेवाली महिलाये धर्म, दर्शन तथा कई अन्य गूढ़ विषयों की शिक्षा प्राप्त करती थी। शकुंतला की सहेलियों को इतिहास, पुराण तथा कथा साहित्य का अच्छा ज्ञान था। दुष्यन्त के प्रणय बंधन में बंधी शकुन्तला को देखकर उसकी एक सत्री कहती है 'तुम्हारी अवस्था इतिहास में विर्णित काम पीड़िता जैसी है।[12] अन्यत्र परिव्राजिका को कलाओं के अतिरिक्त चिकित्साशास्त्र में पारंगत कहा गया है।[13] वराहमिहीर ने ब्रह्मवादिनी महिलाओं का उल्लेख किया है जो विज्ञान की सभी शाखाओं

में पारंगत बताई गई है।[14] भागवतपुराण में दाक्षायण की पुत्रियों को दर्शन पंडिता कहा गया है।[15] उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाली महिलाओं लड़कियों का प्रतिशत कम था। गुप्तकाल में नृत्य, संगीत, एवं चित्रकला स्त्री शिक्षा के सर्वाधिक लोकप्रिय विषयों में शामिल थे।[16] वराहमिहीर ने विविध कलाओं के ज्ञान को लड़की के आवश्यक गुणों में शामिल किया है।[17]

पत्नी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए वराहमिहिर ने लिखा है कि मनुष्य धर्म, अर्थ, काम एवं संतान के लिए अपनी पत्नी पर आश्रित होता है।[18] हितोपदेश के अनुसार पुरुष को अपनी सम्पति गंवाकर भी पत्नी की रक्षा करनी चाहिए और (यदि आवश्यक हो तो) पत्नी को खोकर स्वयं अपनी रक्षा करनी चाहिए।[19] सदैव अपने ही विषय में सोचने वाला पुरुष अपनी पत्नी द्वारा त्याग दिया जाता है।[20] जबकि पत्नियों की रक्षा करनेवाले पुरुष समृद्धिशाली होते है।[21] कालिदास ने गृहिणी का पद स्त्री के लिए बहुत महत्वपूर्ण तथ आदरणीय माना है।[22] उन्होंने पत्नी को घरेलू मामलों में सही मतदात्री सखी तथा ललित कलाओं में शिष्य कहा।[23] राजा अज को उन्होंने पत्नी भक्तक के रूप में दर्शाया है।[24] पत्नी अनुपस्थित में धार्मिक यज्ञ नहीं किया जा सकता था। इसलिए राम ने अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न करते समय सीता की अनुपस्थित में उनकी स्वर्ण प्रतिमा को उनके प्रतीक के रूप में अपने समीप रख लिया था।[25] परंतु अधिकांश स्त्रियों की स्थिति इतनी सम्मान नहीं थी और पति का पत्नी पर पर्याप्त प्रभास और प्रभुत्व होता था हितोपदेश में पति को पत्नी का शरणस्थल बताया गया है।[26] शुद्रक के मृच्छकटिक में चेरी अपने पति को ही सर्वोत्तम आभूषण कहती है।[27] पत्नी की स्वतंत्र स्थिति होने का अधिकांश लेखकों ने विरोध किया। सर्वप्रथम धर्मसूत्रकारों ने कहा है कि कौमार्यावस्था में पिता स्त्री की रक्षा करता है, युवावस्था में पति और वृद्धवस्था में पुत्र। वह किसी भी अवस्था में रहने योग्य नहीं है।[28]

इस काल में विधवा स्त्रियों को दो वर्गो में रखा गया है-दूसरा विवाह करनेवाली वैधव्य जीवन व्यतीत करनेवाली। वैदिक युग में विधवा विवाह की अनुमति थी।[29] धमसूत्रों, स्मृतियों तथा अन्य ग्रंथों में पुनंभू[30] (दूसरा विवाह करनेवाली) के विष में विवरण मिलते है। बैधायन[31] तथा वसिष्ट[32] ने विशेष परिस्थितियों में विधवा के पुर्नविवाह को स्वीकृति प्रदान की थी। विष्णु[33] तथा याज्ञवलक्य [34] ने पुनर्विवाह करनेवाली दो प्रकार की विधवाओं का उल्लेख किया है प्रथम पति की मृत्योपरानत दूसरा विवाह करनेवाली तथा जिसका प्रथम प्रति से यौन संसर्ग किन्ही कारणों से न हुआ हो। गुप्तकाल के रूप में यद्यपि विधवा के पुनर्विवाह कर प्रतिबंध नहीं लगाया गया था लेकिन इसे एक स्वस्थ्य परंपरा के रूप में भी नहीं स्वीकार किया गया था। विधवा विवाह के पक्षधरों ने विशेष परिस्थिति में ही इसकी अनुमति प्रदान की थी। सामन्य स्थिति में विधवा विवाह को दूसरे विवाह के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता था।

गुप्तयुग में सती प्रथा का अधिक संख्या प्रचलन नहीं हो पाया था। शासकों तथा लड़ाकू क्षत्रियें के परिवार में भी सती होने वाली स्त्रियों की संख्या नगण्य थी और अन्य जातियों की स्त्रियों के लिए सती होने का प्रावधान कही नहीं था। यद्यपि शास्त्रों में इसका वर्णन हैं विष्णुपुराण में कई स्थानों पर सती होने वाली स्त्रियों के विवरण है।[35] मत्स्यपुराण में दक्ष की पुत्री दाज्ञायणी के सती होने का उल्लेख है।[36] ब्राह्मांडपुराण के अनुसार रेणुका ने अपने पति को मृत पाकर आत्मसमान की रक्षा के लिए सती होने का निश्चय किया था।[37] पति के जीवनकाल में पत्नी से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह पति के सुखदुख को अपना सुख दुख समझे और पति की मृत्योपरान्त उसका जीवन नितान्त निरुदेश्य एवं आर्कषण-विहीन मान जाता था। इसके विपरीत विधुर पति से ऐसा कुछ भी उपेक्षित नहीं था क्योंकि पुरूष प्रावधान समाज में पुरूष की तुला में स्त्रायों को बहुत कम महत्व होता थ। पंचतंत्रा के अनुसार 'स्त्री की इच्छानुकुल कार्यकरने वाला व्यक्ति लघुता को प्राप्त होता है और वह उपहास का पात्र बनता है।[38] इस काल में सती प्रथा के कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य भी मिलते हैं। गुप्त शासक भानुगुप्त के सामंत एवं सेनापति गोपराज की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी सती हो गयी थी।[39] नेपाल के राजा धर्मदेव (पांचवीसदी) की विधवा पत्नी भी अपने मृत पति के साथ मरने के लिए तैयार थी, परंतु उसके पुत्र मानदेव ने उसे ऐसा करने से रोक दिया था।[40] स्त्रियों की अशिक्षा, पति में उनकी भावत्मकता आसक्ति, तथा उसके प्रति अंध भक्ति, पतिव्रता की तथाकथित महत्ता को अत्यधिक प्रशंस्य ठहराया जाना, मृत्योपंरात पति से स्वर्ग में पुनर्मिलन होने की भ्रांति, विधवा विवाह एवं नियोग प्रथा को हतोत्साहित किया जाना आदि सती प्रथा के प्रचलन के प्रमुख कारण थे।

गुप्त काल में स्त्रियों के सांपत्तिक अधिकारों में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए थे। स्त्रीधन के क्षेत्र में विस्तार हुआ, पत्नी को पहली बार पति की सम्पति में पुत्र के बराबर का हिस्सेदार माना गया परित्यक्ता तथा उपेक्षित स्त्रियों के भी साम्पत्तिक अधिकार स्वीकार कर लिये गये और कन्याओं, बहनों, माता तथा विधवा के सांपतिक अधिकारों में वृद्धि हुई। उन प्रावधानों के परिणामस्वरूप महिलाओं की अन्यथा पतोन्मुख स्थिति में कुछ अधिकारों में वृद्धि। इन प्रावधानों के परिणामस्वरूप महिलाओं की अन्यथा पतोन्मुख

स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ। सर्वप्रथम मनु ने स्त्रीधन के 6 प्रकार स्वीकार किये। याज्ञवल्क्य के अनुसार पिता, माता, पति और भाई द्वारा दिया गया धन, विवाह में अग्नि के निकट मिला मिला हुआ धन, स्त्रीधन कहे गये।

भारत में पर्दा प्रथा मध्यकाल में प्रचलित हुई थी। प्राचीन भारत में इसका बहुत सीमित रूप में प्रचलन था। कुमारी लड़कियाँ बिल्कुल पर्दा नहीं करती थी और विवाहिता स्त्रियाँ केवल बड़ों, गुरूजनों के समझ अनुगंठन करती थी। राजघरानों की महिलायें सामान्यत: बाहर नहीं निकलती थी। इसलिए पाणिनि ने उन्हें असूर्यपश्या अर्थात् जो सूर्य को नहीं देखती थी, कही है।[42] रामायण[43] तथा महाभारतों के विवरण से इसकी पुष्टि होती है। गुप्तकाल में अवगुंठन का प्रयोग (सदियों से प्रमाणित है) केवल विवाहीत महिलाओं के लिए था। कुमारी लड़कियाँ अवगुंठन का प्रयोग नहीं करती थी। इसकी पुष्टि प्रियदर्शिका के विवरण से होती है।[44] मालतीमाधव का टीका में जगद्धर ने स्पष्टत: कहा है कि अवगुंठन का आभाव कुमारी होना का द्योतक है।[45]

अन्तत: गुप्तकाल में स्त्रियों की स्थिति में कुल पतन हुआ। लड़कियों के रजस्वला होने से पूर्व उनका विवाह कर देने पर बल दिया गया, यद्यपि इसका अनुपालन मुख्यत: ब्राह्मणों द्वारा किया जाता था। स्त्रियों की शैक्षिक सुविधा में भी गिरावट आई। नारद ने महिलाओं को अनपढ़ों की कोटी में रखा जो वस्तुत: उनकी गिरती समाजिक स्थिति का प्रतीक था। स्त्रियों की स्थिति के संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन उसके साम्पत्तिक अधिकार क्षेत्र में था। इस काल में स्त्री धन को क्षेत्र अधिक व्यापक कर दिया गया जिससे उनके पतोन्मुख स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ।

इस प्रकार हम कह सकते है कि गुप्तकाल नारियों की स्थिति से संबंधित वह काल है जिसके पूर्व समाज एवं परिवार में वह पति के बाद दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्या थी, जिनका समाज में मान सम्मान एवं प्रतिष्ठा था जबकि गुप्त युग के बाद उनकी स्थिति में लगातार तीव्र गति से गिरावट आती गयी एवं समान्ती काल में वह भोग्या के रूप में स्थापित हुई। ज्यो वह शिक्षा एवं समाजिक क्रियाकलापों से कटती गयी उनका स्थान परिवार एवं समाज में गिरता गया। कालान्तर में अनेक कुप्रथाओं सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, इत्यादि ने जोर पकड़ा एवं स्त्रियों की स्थिति को हासिये पर लाकर खड़ा कर दिया।

संदर्भ:

1. चंद्रावती, लखनपाल, पोजीशन ऑफ वीमेन, लखनउ, 1990 पृ.-3.
2. वृहत्संहिता 52/70, विवाहपटल, 34, 69, याज्ञ, 1/73.
3. बौधायन, 2/2/3/4, मनु:9/3(याज्ञ, 1/85(नारद, 13/30-31.
4. दृष्टव्य, 'स्वयंवर विवाह'।
5. दृष्टव्य, 'कन्या के साम्पत्तिक अधिकार'।
6. मृच्छकटिकम, 3, पृ. 105।
7. नारद, 8/21.
8. वही, 13/30, असहाय का टीका।
9. ए0 डी0 पोसालकर एण्ड मुजुमदार, क्लासिकल एज, बम्बई, 1951, पृ. 567।
10. काम शास्त्रा, 1/3/16।
11. चतुर्भाणी (सं.)।

गुरुग्राम जिले की लैंगिक विषमताओं का भौगोलिक अध्ययन

इन्दु

शोधार्थी, भूगोल विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

शोध पत्र सारांश

'समानता एक सुंदर और सुरक्षित समाज की नींव है जिस पर विकास की इमारत खड़ी की जा सकती है।' लैंगिक समानता क्या है? आखिर क्यों यह किसी भी समाज और राष्ट्र के लिए एक आवश्यक तत्व बन गया है? क्या यह बदलते समाज में प्रासंगिक है? लिंग समानता का अर्थ यह नहीं है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति एक लिंग का है, लेकिन लैंगिक समानता का सरल अर्थ समाज में महिलाओं और पुरुषों के समान अधिकारों, जिम्मेदारियों और रोजगार के अवसरों के संदर्भ में है। इसी तथ्य के मद्देनजर, सितंबर 2015 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा की एक उच्च स्तरीय बैठक में एजेंडा 2030 के तहत 17 सतत विकास लक्ष्यों को रखा गया था, जिसे भारत सहित 193 देशों ने स्वीकार किया था। ये लक्ष्य सतत विकास लक्ष्य 5 के तहत लैंगिक समानता के विषय को भी कवर करते हैं। यह स्पष्ट है कि लैंगिक समानता हमारे समाज के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। महिला और पुरुष समाज का मूल आधार हैं। समाज में लैंगिक असमानता एक जानबूझकर खाई है, जो समानता के स्तर को प्राप्त करने की यात्रा को बहुत कठिन बना देती है।

लैंगिक असमानता के विभिन्न क्षेत्रों की बात करें तो वैज्ञानिक क्षेत्र, मनोरंजन क्षेत्र, चिकित्सा क्षेत्र और खेल क्षेत्र के साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र प्रमुख हैं। 28 फरवरी को 'विज्ञान के क्षेत्र में महिलाएं' विषय के साथ राष्ट्रीय विज्ञान दिवस का आयोजन किया गया था। यह विज्ञान में महिलाओं की भूमिका को रेखांकित करने का एक बड़ा प्रयास है, लेकिन लैंगिक असमानता के इस अंतर को दूर करने के लिए हमें मीलों पैदल चलना होगा। इस लेख में, गुरुग्राम जिले में लैंगिक असमानता के कारणों पर न केवल चर्चा की जाएगी, बल्कि इस समस्या का समाधान खोजने का भी प्रयास किया जाएगा।

मुख्य शब्द : लिंग असमानता, गुरुग्राम की जनसंख्या, लिंगानुपात, लैंगिक असमानता के विभिन्न क्षेत्र, लिंग असमानता कारक, असमानता को समाप्त करने के प्रयास, महिला और बाल विभाग, गुरुग्राम और निष्कर्ष।

परिचय

गुड़गांव का पुराना नाम गुरुगाँव था। अब पुनः इसका नाम गुरुग्राम हो गया है। गुड़गांव शहर के साथ, गुरुगांव गांव लगता है, इसलिए इस शहर का नाम गुरुग्राम के नाम पर रखा गया था। महाभारत काल के दौरान, गुरुगांव गाँव को महाराज युधिष्ठर ने अपने धर्म गुरु द्रोणाचार्य को उपहार में दिया था। जिसका प्रतिवाद गुड़गांव गाँव के पास स्थापित किया गया था। यह दिल्ली से 32 किमी दक्षिण पश्चिम में है। 1821 ई। से पहले, इस ज़िले का केंद्र रेवाड़ी के पास भदवास गाँव में था, उन झड़सा परगनों की बेगम समरू की बढ़ती ताकत को देखते हुए, सबसे पहले, सामरिक ख़ष्टिकोण से यहाँ एक रणनीतिक शिविर की स्थापना की गई थी। यही कारण है कि कुछ लोग अभी भी गुड़गांव छावनी को गुड़गांव शहर कहते हैं, इस समय यह हिदायतपुर गांव की भूमि पर स्थित है। इसके अलावा, यह जिला अतीत की कई गैर-ऐतिहासिक और ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ा हुआ है। मुगल सम्राट अकबर के समय, इसे दिल्ली और आगरा डिवीजनों में शामिल किया गया था। 1857 ई। के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, श्री कोई इस जिले के

कलेक्टर थे, जिन्होंने पहले इस जिले में स्वतंत्रता सेनानियों का दमन किया, लेकिन उग्र विरोध के कारण, बाद में उन्हें इस जिले का अतिक्रमण करना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप इस जिले को शामिल किया गया। 1858 ई। में पंजाब प्रांत में। यह लिया गया और यह पंजाब के विभाजन के बाद वर्ष 1966 में हरियाणा राज्य का एक जिला बन गया। इस जिले का क्षेत्रफल 1254 वर्ग किमी है। यह राज्य के क्षेत्रफल का 2.84 प्रतिशत है। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की जनसंख्या 1514085 है जो राज्य की कुल जनसंख्या का 16.74 प्रतिशत है। जिले का जनसंख्या घनत्व 1241 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है जबकि हरियाणा राज्य का जनसंख्या घनत्व 573 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। 2011 की आबादी के अनुसार, जिले में 229 गांव हैं जो चार सामुदायिक विकास खंडों में विभाजित हैं। वर्तमान में, तीन उप-विभाग हैं, पांच तहसील हैं। राजस्व रिकॉर्ड के अनुसार गुड़गांव जिले का क्षेत्रफल 1188 वर्ग किमी है और भारत के सर्वेक्षण के अनुसार जिले का कुल क्षेत्रफल 1258 वर्ग किमी है। 2011 की जनगणना के अनुसार, जिले में कुल 817274 पुरुष और 696811 महिलाएं हैं। जिले का लिंगानुपात 853 और साक्षरता दर 84.44 प्रतिशत है। जिसमें पुरुष 90. 27 और महिलाएं 77.64 हैं। ग्रामीण 877 शहरी 842 है।

भौगोलिक स्थिति

गुरुग्राम जिला हरियाणा के दक्षिण में 27°27'20'' और 28°32'25 उत्तरी अक्षांश और 76°39'39'' और 77°32'50'' देशांतर, दिल्ली के पश्चिम में, इसके पश्चिम में स्थित है उत्तर की दिशा। झज्जर और जिला रेवाड़ी, दक्षिण में जिला मेवात, पूर्व में जिला फरीदाबाद में स्थिति। सर्वे ऑफ इंडिया के अनुसार, गुरुगांव का क्षेत्रफल 1254 वर्ग किमी है, जो कि हरियाणा राज्य का क्षेत्रफल 2.84 प्रतिशत है। गुरुग्राम जिले की 5 तहसीलें गुरुग्राम, सोहना, पटौदी, फरूखनगर और मानेसर हैं।

जिला गुरुगांव में कुल 229 गाँव हैं, जिन्हें 4 विकास खंडों में विभाजित किया गया है, उपमंडल गुरुगाँव में 4 विकास खंड गुरुग्राम, सोहना, पटौदी और फ़रूखनगर हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार जिला गुरुगांव में 7 शहर हैं। 2036 (पंच और सरपंच) की कुल सदस्यता के साथ गुरुगांव जिले में 210 ग्राम पंचायतें हैं। जिला गुरुगांव में कुल 4 मार्केट कमेटी और 3 सब यार्ड हैं। इस जिले में, गुरुगांव नगर निगम जुलाई 2008 में बना था, जिसमें 35 वार्ड हैं। 39 गांवों को इसमें शामिल किया गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार, 200 वर्ग किमी में फैले क्षेत्र की जनसंख्या 9,09,863 है।

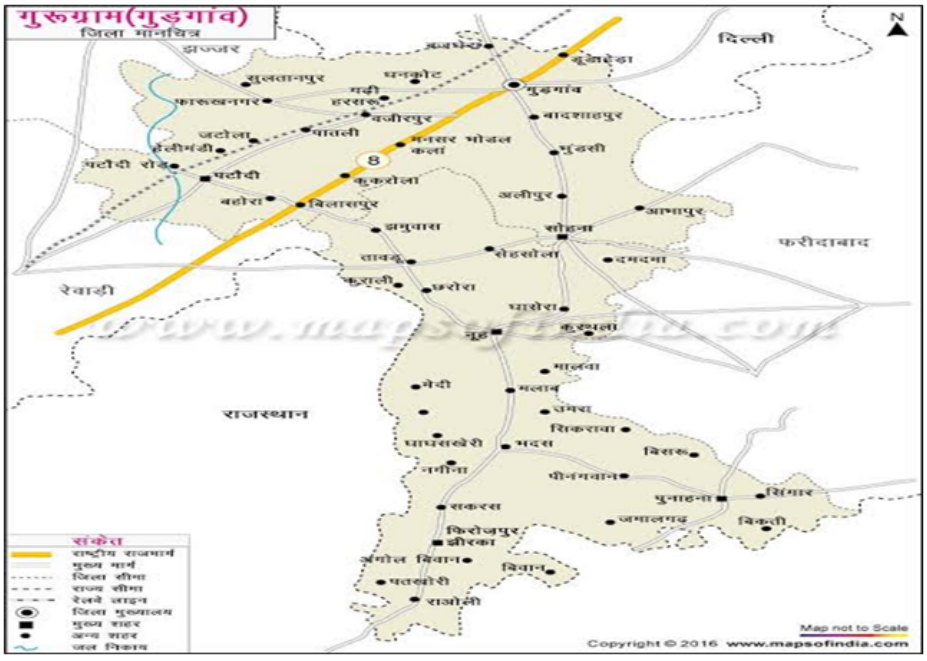

अनुसंधान उद्देश्य

1. गुरुग्राम जिले में लैंगिग विषमताओं का अध्ययन किया गया है।
2. गुरुग्राम में लैंगिक समस्याओं के समाधान बताएं गए हैं।
3. हरियाणा सरकार के महिला एवं बाल विकास हेतु कार्यों के बारे में जानकारी प्रदान की गई।

शोध परिकल्पना

1. गुरुग्राम में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीति क्षेत्र में महिलाओं भागीदारी है।
2. गुरुग्राम शहर में महिला एवं बाल विकास हेतु सरकार कार्य कर रही है।

आँकड़ो का संग्रह

अध्ययन के क्षेत्र के सूक्ष्म अध्ययन के लिए प्राथमिक डेटा एकत्र किया गया है जो गुरुगाँव के शहरी क्षेत्रों से लिया गया है। इसके लिए प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार एवं व्यक्तिगत सम्पर्क किया गया है। द्वितीयक आँकड़ो का संग्रह जिला सांख्यकीय विभाग, गुरुग्राम, सूचना एवं जन सम्पर्क कार्यालय, गुरुग्राम, महिला एवं बाल विकास विभाग, गुरुग्राम, जिला कलेक्टर कार्यालय, गुरुग्राम, समाचार पत्र, पत्रिकाओं एवं पुस्तकों से प्राप्त किये गए है।

लैंगिक असमानता से तात्पर्य

लिंग असमानता लिंग के आधार पर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को संदर्भित करता है। परंपरागत रूप से, महिलाओं को समाज में एक कमजोर वर्ग के रूप में देखा गया है। वे घर और समाज दोनों में शोषण, अपमान और भेदभाव से पीड़ित हैं। दुनिया में हर जगह महिलाओं के खिलाफ भेदभाव प्रचलित है। हमारे देश में लगिंक भेदभाव की जड़ें कितनी मजबूत और गहरी हैं।

1. गुरुग्राम में जनसंख्या: जिला गुरुग्राम की जनगणना 2011 के अनुसार, कुल जनसंख्या 1514085 है, जिसमें 817274 पुरुष और 696811 महिलाएँ थीं। इस प्रकार 1991 से 2011 की अवधि में 44.64 की अवनति वृद्धि की तुलना में 2001 से 2011 तक 73.93 प्रतिशत की गिरावट देखी गई। हरियाणा राज्य की जनसंख्या दर में गिरावट आ रही है। राज्य की यह दर 1991 से 2001 में 28.06 से कम हो गई है और 2001 से 2011 में घटकर 19.90 प्रतिशत हो गई है। लेकिन इस जिले में बहु-राष्ट्रीय कंपनियों के आगमन के परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि अधिक हुई है अन्य जिलों की तुलना में।

2. गुरुग्राम में लिंगानुपात : जिला गुडगांव में जनगणना 2011 के अनुसार प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 853 है जबकि यह अनुपात जनगणना 2001 में 850 था स्पष्ट है कि स्त्री पुरुष अनुपात में 2001 की तुलना में 2011 में वृद्धि हुई है। हरियाणा राज्य में यह अनुपात 877 है। जोकि सभी राज्य की तुलना में सबसे कम स्तर पर पंहुच गया है। जिला गुरुगांव में ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में यह अनुपात क्रमश: 877 तथा 842 है जबकि 2001 में क्रमश: 848 तथा 855 था।

3. लिंगानुपात 0-6 वर्ष की आयु के बच्चों में : 2011 के अनुसार, गुरुग्राम में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में 0-6 आयु वर्ग के बच्चों का लिंगानुपात क्रमश: 797 और 842 है। पिछले 2001 के ग्रामीण क्षेत्रों में, यह अनुपात क्रमश: तहसीलवार पटौदी, गुड़गांव, साहेना में 801, 804 और 843 था, जबकि तहसीलवार शहरी क्षेत्रों में यह अनुपात क्रमश: 794, 792 और 834 था। हरियाणा राज्य में इस आयु वर्ग के बच्चों का लिंगानुपात 830 है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में क्रमश: 831 और 829 हैं।

4. गंदी बस्तियों में 0-6 आयु वर्ग में लिंगानुपात : 2001 की जनगणना के अनुसार, जिले में झुग्गियों की आबादी 16.64 प्रतिशत है। 0-6 आयु वर्ग के बच्चों का लिंगानुपात 677 है, जबकि हरियाणा राज्य में समान आयु वर्ग में लिंगानुपात 639 है।

लैंगिक असमानता के विभिन्न क्षेत्र

1. सामाजिक क्षेत्र : समाज में, महिलाओं को अक्सर घरेलू काम के साथ संगत माना जाता है। घर की महिलाओं का मुख्य कार्य भोजन की व्यवस्था और बच्चों की परवरिश तक सीमित है। अक्सर देखा गया है कि घर में लिए गए फैसलों में महिलाओं की कोई भूमिका नहीं होती है। महिलाओं के मुद्दों से संबंधित विभिन्न सामाजिक संगठनों में महिलाओं की न्यूनतम संख्या भी लैंगिक

असमानता का एक दुर्जेय रूप व्यक्त करती है। गुरुगांव शहर में इस तरह की समस्या बहुत कम पाई जाती है। दिल्ली के गुरुगांव शहर की निकटता और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में विकसित होने के कारण, महिलाओं को पुरुषों के समान सामाजिक अधिकार हैं। वर्तमान में, गुरुग्राम शहर के आसपास सोहना, पटौदी, फरुखनगर और मानेसर तहसील मुख्यालय में व्यक्तिगत सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के अनुसार, महिलाओं को सामाजिक अधिकारों में समान दर्जा दिया जा रहा है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी पारंपरिक सामाजिक प्रथा का पालन किया जा रहा है।

2. आर्थिक क्षेत्र : आर्थिक क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं और पुरुषों के पारिश्रमिक में अंतर है। औद्योगिक क्षेत्र में, महिलाओं को अक्सर पुरुषों के सापेक्ष कम वेतन दिया जाता है। यही नहीं, रोजगार के अवसरों में भी पुरुषों को प्राथमिकता दी जाती है। गुरुगाओ शहर में, महिलाओं को पुरुषों के समान आर्थिक अधिकार हैं। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में गुरुगाओ शहर के विकास के कारण, महिलाओं को पुरुषों के रोजगार के अधिकार और व्यापार करने का अधिकार है। वर्तमान में, गुरुग्राम जिले के सभी 05 तहसील मुख्यालयों पर व्यक्तिगत सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के अनुसार, समय के साथ महिलाओं के आर्थिक अधिकारों में प्रगति हुई है। गुरुग्राम शहर के आस-पास सोहना, पटौदी, फ़रूखनगर और मानेसर में महिलाओं को समान आर्थिक दर्जा दिया जा रहा है, जबकि ग्रामीण इलाकों में अभी भी पुरुष आर्थिक काम में भूमिका निभाते हैं।

3. राजनीतिक क्षेत्र : सभी राजनीतिक दल लोकतांत्रिक होने के कारण समानता का दावा करते हैं लेकिन वे न तो महिलाओं को चुनाव में उम्मीदवार के रूप में टिकट देते हैं और न ही उन्हें पार्टी में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करते हैं।आज के समय में गुरुगाँव शहर में महिलाओं की राजनीति में सक्रिय भूमिका है। यहाँ पर सोहना, पटौदी, मानेसर एवं फरुखनगर में महिलाओं को राजनीतिक पद एवं अधिकार दिए गए। ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं को पंच एवं सरपंच भी बनाया गया है।

4. विज्ञान क्षेत्र : जब हम वैज्ञानिक समुदाय को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि प्रगति की विचारधारा के आधार पर इस समुदाय में लैंगिक असमानता स्पष्ट रूप से मौजूद है। या तो महिलाएं कठिनाई के साथ वैज्ञानिक समुदाय में प्रवेश करती हैं या उन्हें कम महत्व की परियोजनाओं में डाल दिया जाता है। यह विडंबना है कि हमें स्वर्गीय मिस ए मैन कहा जाता है। ऐ पी जे अब्दुल कलाम से परिचित हैं लेकिन मिस्सी वुमन ऑफ़ इंडिया टेस्सी थॉमस के नाम से परिचित नहीं हैं। गुरुग्राम की महिलाएँ विज्ञान में आगे बढ़ी हैं।

5. मनोरंजन क्षेत्र : मनोरंजन में, अभिनेत्रियों को भी इस भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। अक्सर, अभिनेत्रियों को फिल्मों में मुख्य किरदार नहीं माना जाता है और उन्हें अभिनेताओं से कम भुगतान किया जाता है।

खेल के क्षेत्र में- महिला खिलाड़ियों को खेल में मिलने वाली पुरस्कार राशि से कम राशि मिलती है। चाहे कुश्ती हो या क्रिकेट, हर खेल में भेदभाव होता है। इसके अलावा, पुरुषों के खेलों को महिलाओं के खेल से अधिक प्रसारित किया जाता है। हरियाणा में महिलाओं को खेल क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार हैं। यहां की महिलाओं ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है।

लिंग असमानता के कारक

1. सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के बावजूद, पितृसत्तात्मक मानसिकता वर्तमान समाज में एक जटिल रूप में विद्यमान है। इसके कारण, महिलाओं को अभी भी एक जिम्मेदारी माना जाता है। महिलाओं को सामाजिक और पारिवारिक प्रवृत्तियों के कारण विकास के अवसर कम मिलते हैं, जिसके कारण उनका व्यक्तित्व पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाता है। सामाजिक मतभेद सबरीमाला और ट्रिपल तालक जैसे मुद्दों पर पितृसत्तात्मक मानसिकता को दर्शाते हैं।
2. भारत में आज भी, व्यावहारिक स्तर पर (वैधानिक स्तर पर, महिलाओं को सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार संपत्ति पर समान अधिकार है), पारिवारिक संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार प्रचलन में नहीं है, इसलिए उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है।
3. राजनीतिक स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था को छोड़कर, उच्च कानूनी संस्थानों में महिलाओं के लिए कोई आरक्षण नहीं है।
4. वर्ष 2017-18 के लिए नवीनतम आधिकारिक आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण के अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था में कम श्रम बल और कार्य सहभागिता दर है। ऐसी परिस्थितियों में, आर्थिक मापदंडों पर महिलाओं की आत्मनिर्भरता पुरुषों पर बनी हुई है। वर्ष 2011-12 की तुलना में वर्ष 2017-18 में देश के लगभग सभी राज्यों में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर

में गिरावट देखी गई है। इस गिरावट के विपरीत, केवल कुछ राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों जैसे मध्य प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, चंडीगढ़ और दमन-दीव ने महिलाओं की कार्य सहभागिता दर में सुधार किया है।

5. महिलाओं के रोजगार की अंडर-रिपोह्रटग की जाती है, यानी परिवार के खेतों और उद्यमों पर काम करने वाली महिलाएं और घर के अंदर किए गए अवैतनिक काम को जीडीपी में नहीं जोड़ा जाता है।
6. मानकों जैसे शैक्षिक कारकों पर पुरुषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति कमजोर है। यद्यपि पिछले दो दशकों में लड़कियों का शैक्षिक नामांकन बढ़ा है और लैंगिक समानता माध्यमिक शिक्षा का दर्जा हासिल कर रही है, उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं का नामांकन अभी भी पुरुषों की तुलना में बहुत कम है।

असमानता को समाप्त करने का प्रयास

1. समाज की मानसिकता में धीरे-धीरे बदलाव आ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर गंभीरता से चर्चा हो रही है। ट्रिपल तालक, हाजी अली दरगाह में प्रवेश जैसे मुद्दों पर सरकार और अदालती सक्रियता के कारण महिलाओं को उनके अधिकार दिए जा रहे हैं।
2. भारत राजनीतिक भागीदारी के क्षेत्र में अच्छे प्रयास जारी रखता है, मंत्रिमंडल में महिलाओं की भागीदारी पहले से 23४ हो गई है और इसमें भारत को विश्व में 69 वां स्थान मिला है।
3. भारत में 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओं', 'वन स्टॉप सेंटर योजना', 'महिला हेल्पलाइन योजना' और 'महिला शक्ति केंद्र' जैसी योजनाओं के माध्यम से महिला सशक्तीकरण हेतु प्रयास किया जा रहा है।
4. महिला और बाल विभाग, गुरुग्राम :

समाज कल्याण विभाग से विभाजन के बाद महिला एवं बाल विकास निदेशालय 10.02.2018 से गुरुगांव में काम कर रहा है। महिलाओं और बच्चों की उन्नति की निगरानी करने वाली नोडल एजेंसी के रूप में अपनी क्षमता में, विभाग महिलाओं और बाल विकास के क्षेत्र में काम करने वाले सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों दोनों की योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों और कार्यक्रमों को तैयार करता है। विभाग और इसके घटक संगठन महिलाओं और बच्चों के विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सामाजिक संगठनों और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों जैसे यूनिसेफ, विश्व बैंक, यूएनएफपीए आदि के साथ मिलकर काम करते हैं। विभाग राज्य, केंद्रीय और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों की मदद से महिलाओं और बच्चों के समग्र विकास के लिए कई योजनाएं लागू कर रहा है। महिला और बाल विकास विभाग और इसके घटक संगठन महिलाओं के विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सामाजिक संगठनों और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों जैसे यूनिसेफ, विश्व बैंक, यूएनएफपीए के साथ मिलकर काम करते हैं। निदेशालय हरियाणा राज्य महिला आयोग, हरियाणा महिला विकास निगम, हरियाणा राज्य समाज कल्याण सलाहकार बोर्ड के लिए भी जिम्मेदार है।

1. महिलाओं के लिए योजनाएँ :
    i. बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ
    ii. प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना
    iii. आपकी बेटी हमारी बेटी
    iv. ओनिस्टॉप सेंटर
2. बच्चों के लिए योजनाएं :
    i. एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS)
    ii. शिशु और युवा बच्चों के भोजन में सुधार (IYCF)
    iii. आपकी बेटी हमारी बेटी
    iv. समेकित बाल संरक्षण योजना

इन योजनाओं के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप, लड़कियों के लिंगानुपात और शैक्षिक नामांकन में प्रगति देखी जा रही है। आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के लिए मुद्रा और अन्य महिला केंद्रित योजनाएँ चलाई जा रही हैं। लैंगिक असमानता को दूर करने के कानूनी प्रावधानों के अलावा, किसी देश के बजट में महिला सशक्तिकरण और बाल कल्याण के लिए धन के आवंटन का

उल्लेख जेंडर बजटिंग कहलाता है। वास्तव में, पिछले दो-तीन दशकों में जेंडर बजटिंग शब्द वैश्विक स्तर पर उभरा है। इसके माध्यम से महिलाओं को सरकारी योजनाओं का लाभ दिया जाता है।

निष्कर्ष

गुरुग्राम में लैंगिक समानता के उद्देश्य को प्राप्त करना केवल जागरूकता कार्यक्रमों को आयोजित करने और कार्यालयों में कुछ पोस्टर चिपकाने तक सीमित नहीं है। यह मूल रूप से किसी भी समाज - परिवार और धर्म के दो सबसे मजबूत संस्थानों की मान्यताओं को बदलने से संबंधित है। लैंगिक समानता का सूत्र श्रम सुधारों और सामाजिक सुरक्षा कानूनों से भी जुड़ा हुआ है, चाहे कामकाजी महिलाओं के लिए समान वेतन सुनिश्चित करना हो या सुरक्षित नौकरियों की गारंटी देना हो। सरकारी क्षेत्र में लागू मातृत्व अवकाश के कानूनों को भी निजी और असंगठित क्षेत्र में सख्ती से लागू करना होगा। लिंगानुपात और सामाजिक सुधारों के एकीख्र त प्रयास से ही भारत को लैंगिक असमानता के चंगुल से मुक्त किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. जनसंख्या भूगोल, डॉ. चतुर्भुज ममोरिया और डॉ. संतोष कुमार दांगी, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा।
2. जनसंख्या भूगोल, डॉ. राम कुमार तिवारी, प्रवालिका प्रकाशन, प्रयाग राज।
3. जनसंख्या भूगोल, आरसी चंदना, कल्याणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. भारत का भूगोल, सुरेश चंद्र बंसल, मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. आर्थिक भूगोल, डॉ. चतुर्भुज ममोरिया और डॉ. रतन जोशी, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा।
6. सिंह, डॉ. शिव भानु, सामाजिक दर्शन का परिचय, शारदा बुक बिल्डिंग, 1996।
7. वोलस्टोनक्राफ्ट, मीन्स-जस्टिफिकेशन ऑफ राइट्स, ट्रांसलेशन मीनाक्षी राजकमल प्रकाशन प्रा। लिमिटेड, 2003
8. जोशी, गोप, भारत में महिला असमानता, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006
9. आर्य साधना, मेनन निवेदिता, जिनी लोकनिता, नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001
10. जिला कलेक्टर कार्यालय, गुरुग्राम, हरियाणा सरकार।
11. जिला सांख्यिकी कार्यालय, गुरुग्राम, हरियाणा सरकार।
12. सूचना और जनसंपर्क कार्यालय, गुरुग्राम, हरियाणा सरकार।
13. महिला एवं बाल विकास, गुरुग्राम, हरियाणा सरकार।

चिंतकों की दृष्टि में आहार की समस्यायें

डॉ० सुनीला कुमारी

पिता- चन्देश्वर ठाकुर, मुहल्ला-महाराजगंज, नयर हनुमान मंदिर, वार्ड नं0 13,, मधुबनी (बिहार)

''राष्ट्रीय स्वास्थ्य का रहस्य लोगों के घरों में ही है।'' हमारा देश भारत कृषि प्रधान देश है। अधिकांश लोग कृषि और उससे संबद्ध व्यवसायों में लगे हैं। कृषि के संबद्ध होने के कारण, भारत की अधिकांश जनता, खेतों के समीप यानी ग्रामीण अंचलों में रहती है। इतने लोग कृषि में लगे हैं, फिर भी बढ़ती जनसंख्या के लिए आहार जुटा पाना आज बहुत बड़ी समस्या है। स्वास्थ्य एवं विकास, पोषण तथा अन्य पर्यावरण संबंधी स्थितियों; जैसे आवास, जल आपूर्ति, सफाई आदि पर निर्भर करता है कृषि की नवीनतम तकनीकों की खोजों को देखते हुए कहा जा सकता है कि इनके उत्तम प्रयोग द्वारा हम बाढ़ एवं सूखे के प्रकोपों के बावजूद, सब के लिए आहार जुटाने में सफल हो सकेंगे। परंतु आय एवं क्रय शक्ति के सीमित होने के कारण अभी सारे परिवार, उपयुक्त मात्रा में तथा उपयुक्त पौष्टिक तत्वों से युक्त आहार, पाने में सक्षम नहीं हो पाते है।

इसका अनुमान, इस क्षेत्र में होनेवाले वैज्ञानिकों प्रकाशनों से लगाया जा सकता है। 1913 में कुल चार शोध प्रकाशन हुए थे। ये सभी लुंक[1] के ही थे। 1920 में शोध प्रबन्धों क संख्या बढ़कर 73 हो गई। 1930 में 724 लेख प्रकाशित हुए। 1978 में एकाकी पोषक तत्वों पर, नियमित रूप से ''रिव्यु ऑफ करेन्ट लिटरेचर'' के रूप में लेखों कीशृंखला प्रकाशित होती रही जिसमें 200 से 500 तक संदर्भों को शामिल किया गया। गुथेरिक के अनुसार कम-से-कम दस वैज्ञानिक निकालने लगे जो पूरी तरह से, पोषण संबंधी शोध और अनुसंधान की खोजों के बारे में ही रिपोर्टिं करने लगे। इसी समय 1971 में ''न्यूट्रीशन एजुकेशन सोसाइटी''[2] की स्थापना हुई। यह सब कुपोशण को समझने, उसके उपचार तथा निवारण के लिए जरूरी पोषण संबंधी को व्यवहृत करनेवाले व्यावसायिक पोषण शास्त्रियों के काम आने के लिए, एक मंच की जरूरत को, ध्यान में रख कर किया गया।

जनसाधारण की अमेरिका में 1968 से ही पोषण में रुचि उत्पन्न हुई। ये इस बात की संज्ञा होने के फलस्वरूप हुई, कि इतनी समृद्धि के बीच में अभी भी भूख और कुपोषण मौजूद है। स्कूलों में ''न्यूट्रीशन एजुकेशन''[3] चलाई गयी। कुछ अन्य प्रोग्राम जैसे 'स्कूल फीडिंग' आदि आरंभ किए गए। इसी समय, इस पोषण के संबंध में पूरी तरह जागरूक राष्ट्र ने 'हेल्थ फूड' पर होनेवाले बढ़े हुए खर्चों पर और उसके बदले में लिए जा सकने वाली स्वास्थ्य सामग्री के संबंध में चिंता प्रकट की, सोच विचार किया और समाधान खोजने का प्रयास किया। 1969 की कान्फ्रेन्स के फलस्वरूप इस क्षेत्र में बढ़ते हुए क्रियाकलापों के प्रभावकारी असर को देखते हुए 1974 में ''फोलो अप कनफ्रेंस'' हुई और उपब्धिों का मूल्यांकन किया गया।

1977 में चाइल्ड न्यूट्रीशन[4] बिल पास हुआ कि यह तय किया गया कि हर प्रांत में न्यूट्रीशन एजुकेशन प्रोग्राम चलाए जाएँ।

1977 में आर्रंभिक भाग में ''न्यूट्रीशन एण्ड ह्यूमन नीड्स''[5] पर सीनेट कमेटी ने अमेरिका के आहारीय लक्ष्य पर एक विवादास्पद वक्तव्य निकाला। इसे 1978 में संशोधित किया। यह एक ओर साक्ष्य इस बात का है देश के पोषण संबंधी स्वास्थ्य पर सरकार का ध्यान दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। इसी समय में एक प्रश्न यह भी उठाया गया कि इस काम में कानून का योगदान होना चाहिए अथवा यह काम वैज्ञानिक संघटनों का है?

सबसे प्रथम ऐजेन्सी फूड एण्ड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन जिसे एफएओ[6] कहते हैं उसकी स्थापना से यह बात अच्छी तरह से जाहिर हो गई कि राजनीतिक नेता, पोषण को कितना अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्त्व देने लगे हैं। 1944 में इस संस्था को विश्वभर की जनवादी के पोषण संबंधी प्रावस्था में उन्नत बनने के तरीके निकालने की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

विश्वभर की पोषण संबंधी समस्याओं को सुलझानें की दिशा में, विविध प्रयासों में लग गई। डब्लू. एच. ओ.[7] की स्थापना हुई।

इसने अपने संपूर्ण संसाधनों को विश्वभर की पोषण संबंधी समस्याओं को सुलझाने में लगा दिया। कुछ राष्ट्रीय संगठन, जैसे एजेन्सी फॉर इन्टरनेशनल डेवलपमेन्ट ने भी इसी उद्देश्य के काम करना आरंभ किया। कुछ अनेक स्वयंसेवी और स्वयं धनाश्रित संस्थाओं ने तथा फाउंडेशन और ट्रस्ट ने भी विश्वभर की पोषण संबंधी समस्याओं के समाधान में सक्रिय योगदान दिया। अनेकों कान्फ्रेन्स, इस विषय पर हुई कि किस प्रकार विकासशील देशों की बढ़ती आबादी की पोषण प्रावस्था को उन्नत किया जाए। रोम में 1976 में बुलाई गई फूड कान्फ्रेन्स जो 'बर्ल्ड फूड एण्ड न्यूट्रीशन पॉलिसी से संबद्ध थी तथा जिसमें राजनीतिक नेताओं, वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, शिक्षकों तथा जनता का प्रतिनिधित्व था, खाद्य सामग्रियों के साम्यिक वितरण तथा अनुचित अपूर्ण आहार से जुड़ी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के उपशमन के लिए विचार विमर्श करने के लिए अपने को पूर्ण रूप से समर्पित किया।

आज भी विश्व भर में, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बनी हुई है। विश्वभर में पोषक तत्वों के अभावजनित रोगों की अनेकानेक घटनाएँ, इस समस्या के बृहत रूप को दर्शाती है। अमेरिका के इन प्रयासों का तत्क्षण, विश्व भर में प्रभाव पड़ा। आहार सर्वेक्षणों में पाया गया कि भारत के अधिकांश लोगों के लोगों का संगठन निम्न स्तर का है जिसमें अनाज की मात्रा ज्यादा रहती है तथा दाल सब्जी, फल, अंडा, मांस, मछली आदि कम होते हैं। फलतः पोषण न्यूनताजनित रोग सर्वत्र फैले हुए हैं। शिशुओं और छोटे बच्चों में प्रोटीन कैलोरी कुपोषण, विटामीन तथा रिबोफ्लेबिन की कमी से होनेवाले रोग व्यापक रूप से पाए जाते हैं। गर्भवती तथा धात्री अवस्था मे आयरन दिशा में कदम उठाने की और वर्तमान आहार की दयनीय परिस्थिति में सुधार लाने का परामर्श दिया। भारत में 564000 गांव है जिसमें भारत की 80 प्रतिशत आबादी रहती है। यहाँ निरक्षरता, अज्ञानता और गरीबी है। भारत का क्षेत्रफल 806 मिलियन एकड़ है जिसमें 422 मिलियन एकड़ भूमि ही कृषि योग्य हैं। भारत के आहार उत्पादन की दर से पता लगता है कि पशुजन्य प्रोटीन युक्त पदार्थों का अत्यंत अभाव है। वर्तमान की पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपलब्ध आहार की मात्रा अत्यंत अभाव है। वर्तमान जनसंख्या की पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू उपलब्ध आहार की मात्रा अत्यन्त कम है विशेषकर भिन्न आर्थिक वर्ग के लिए। आई. सी. एम. आर.[9] के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जरूरत भर की पोषक तत्वों की मात्रा का मिलना वर्तमान परिस्थितियों में अत्यन्त कठिन है। अतः भोजन का निर्धारण कुछ सीमा तक व्यवहारित होना अत्यंत आवश्यक है। भारत में पोषण संबंधी समस्याओं के समाधान में कुछ अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा स्थानीय संस्थाएँ मदद कर रही है। आहार एवं कृषि संगठन[10] ने आहार संबंधी सभाएँ व सर्वेक्षणों को आरंभ किया। ''फीडम फॉम हंगर'' अभियान आरंभ किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ आपातकालीन विविध (यूनिसेफ) ने मातृ एवं शिशु के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान के कार्यों को लिया। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू. एच. ओ.) ने एफ ए ओ[11] के साथ मिलकर काम किया। इसके काम (1) पोषण स्तर तथा संक्राकम रोगों को रोकने की शक्ति का मूल्यांकन करना, (2) पोषण विज्ञान की शिक्षा का प्रसार करना, (3) आहार सर्वेक्षण करना, (4) व्यावहारिक आहार कार्यक्रमों में सहयोग देना आदि है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों से प्रभावित होकर अनेकानेक राष्ट्रीय संगठन और संस्थाएँ भी इस कार्य भार को लेकर निर्मित हुई। इन में प्रमुख हैं[12] आईसीएमआर, आईसीएआर, एएनपी, इण्डियन कॉन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रीसर्च, सीएफटीआरआई, कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट एण्ड एक्सटेंसन प्रोग्राम, आईसीडीएस, महिला मंडल महिला, समितियाँ, यूथ क्लब[13] आदि। इन सब संस्थाओं में कुछ का, सम्पूर्ण पोषण स्तर के सुधार के लिए निमित कार्यक्रम है जैसे-(1) व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम(एएनपी), अनुपूरक भोजन कार्यक्र (एसएफपी) तथ विद्यालयों में मध्यकालीन व्यवस्था (एसएलपी)। विशेष रूप में न्यूनताजनित रागों की रोकथाम के लिए कार्यक्रम हैं। (1) राष्ट्रीय गलगंड नियंत्रण(एनजीसीपी), (2) विटामिन 'ए' अनुपूरक कार्यक्रम (भीएपीपी), (3)आरयन और फोलिक ऐसिड वितरण कार्यक्रम (आई एण्ड एफ डीपी)। कुछ अन्य समन्वित बाल विकास कार्यक्रम भी हैं(जैसे आईसीडीएस तथा भारतीय जनसंख्या प्रायोजना। वैसे इन सभी कार्यक्रमों ने बड़े व्यापक क्षेत्र पर काम शुरू किया, परंतु व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी के द्वारा या स्थानीय सरकार के सहयोग से हुई। इनमें से कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ हैं। सभी के कार्य सरल प्रकृति के हैं। उनके कई प्रोजेक्ट छोटे-छोटे जगहों पर चल रहे हैं। सभी का एकमात्र उद्देश्य यही है कि हर एक व्यक्ति को उचित पोषण प्राप्त हो सके। शिक्षा, विज्ञान और टेक्नोलॉजी सभी की सहायता जी जा रही है तथा ये सभी अन्तोगत्वा सभी लोगों को पोषण स्थिति में सुधार लाकर उसे उन्नत बनाने में कार्यरत हैं। ''रीचिंग दी अनरीच्ड'' इनका लक्ष्य है। न केवल भारत में, अपितु संपूर्ण विश्व के विकासशील और अविकसित देशों में इस तरह के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जिनसे आहार के आभाव में मानवता कष्ट में न पड़े। आहार में मिलावट को भी रोकने का प्रयास किया जा रहा है, ताकि लोगों का पोषण-स्तर ऊँचा उठे और वे अपने को स्वस्थ्य एवं सक्षम बनाकर अपने देश को समृद्ध बनाने में योगदान दे सकें।

स्रोत एवं संदर्भ :-

1. लुंक-1913
2. न्यूट्रीशन एजुकेशन सोसायटी
3. वही,
4. वही,
5. न्यूट्रीशन एण्ड हयूमन नीड्स
6. एफ. ए. ओ.
7. डब्लू. एच. ओ.
8. फूड कान्फ्रेन्स
9. आई. सी. एम. आर.
10. एफ. ए. ओ.
11. वही,
12. आई. सी. एम. आर, आई, सी, ए, आर,ए, एन, पी.
13. आई. सी. डी. एस.

वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्यिक अनुवाद की व्यावहारिक जटिलताएँ

जितेन्द्र कुमार गिरि

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, एम0बी0पी0जी0 कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

नैसर्गिक रूप से मानव मस्तिष्क की अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति जनित विज्ञान के नित्य-नूतन अनुसंधानों तथा अनुप्रयोगों के परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सार्वभौमिक पटल पर उद्‌भूत भौतिकतावादी चकाचौंध ने शताब्दी के अंतिम दशकों तक के अत्यल्प समय में ही अपने चर्मोत्कर्ष को प्राप्त कर मार्क्स और हेगल की सम्मिलित अवधारणा 'द्वंद्वात्मक भौतिकतावाद' (Dailectical Materialism) को पूर्णत: परिवर्तित प्रकृति में प्रचारित-प्रसारित करना प्रारम्भ कर दिया, जिससे मानव-जीवन के प्रत्येक पक्ष में आमूल-चूल परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। उसकी शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों पर यंत्रों के अत्यधिक नियंत्रण व प्रभाव से मशीनीकरण की एक अलग संस्कृति अस्तित्व में आयी, जिसके मूल में पूँजीवाद तथा बाजारवाद का उत्कर्ष था। इस बाजारवादी व्यवस्था ने सम्पूर्ण विश्व को एक बाजार तथा प्रत्येक व्यक्ति को एक उपभोक्ता मानकर वैश्वीकरण अथवा भूमंडलीकरण (Globalisation) के सिद्धांत को जन्म दिया, जिसका प्रत्येक व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के स्तर पर समान रूप से सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ा। जहाँ भूमण्डलीकरण के इस नये दौर का निराशावादी पहलू यह रहा कि इसमें विकसित देशों द्वारा विकासशील और अल्प विकसित राष्ट्रों पर अपने उत्तरदायित्वों का आरोपण करते हुए उनका आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक रूप से भरपूर शोषण किया गया, वहीं इसके आशावादी प्रभाव के परिणाम में सूचना तकनीकि (Information Technology) के क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व क्रांति को देखा जा सकता है। सूचना अथवा संचार के क्षेत्र में हुए इस बदलाव में इंटरनेट और टेलीविजन ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अंतरजाल (Internet) ने भाषाई परिसीमन को लांघकर सोशल मीडिया के द्वारा भिन्न-भिन्न वर्ग, समुदाय तथा राष्ट्र के लोगों में पारस्परिक सह-संबंध स्थापित कर एक विश्व परिवार का वातावरण निर्मित किया। कुछ इसी तरह की प्रस्तावना दूरदर्शन (Television) की भी रही। कृत्रिम उपग्रहों (Artificial Planetoid) के प्रक्षेपण से उसका आयाम अत्यंत विस्तृत होकर देश-विदेश के अनेक कार्यक्रमों के प्रसारण द्वारा वह लोगों के ज्ञान में वृद्धि के साथ-साथ उनकी सूचना, मनोरंजन तथा विज्ञापन का प्रमुख साधन बन कृत्रिम बौद्धिकता (Artificial Intellectualism) के विस्तार की विस्तृत भूमिका निर्मित की।

इन सबका एकीकृत परिणाम यह रहा कि इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों से ही संवाद, सूचना और ज्ञान की तीव्रता के लिए समाचार पत्रों, पत्रिकाओं एवं रेडियो जैसे प्रिंट-श्रव्य संचार माध्यमों की अपेक्षा सोशल मीडिया तथा टेलीविजन जैसे श्रव्य-दृश्य, सुगम, सरल व तीव्र सूचना स्रोतों पर निर्भरता अत्यधिक बढ़ती गयी, जिसकी सम्यक् सफलता एकाधिक भाषाओं के ज्ञानार्जन पर अवलंबित थी। वैश्वीकरण से आधुनिक संचार माध्यमों पर केवल तीव्र, आवश्यक व उपयुक्त सूचना प्रदान करने का दबाव ही नहीं बढ़ा है, अपितु उसने वर्तमान विश्व में अस्तित्ववान भाषाओं की नैतिक जिम्मेदारियों में भी व्यापक अभिवृद्धि की है। अब उन्हें अपने देश-काल और वातावरण की परिस्थितियों, भावों-अनुभावों, विचारो तथा घटनाओं की अभिव्यक्ति से ऊपर उठकर दूसरे देशों-महाद्वीपों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवसायिक वस्तुस्थितियों से लोगों को अवगत कराना उनकी प्रथम प्राथमिकता बन गई है। इससे न केवल भाषाओं के प्रचलित स्वरूप में परिवर्तन आया, बल्कि उनकी व्याकरणिक संरचना में सुदृढ़ता व सार्वभौमिकता तथा अर्थवत्ता में विविधता, वैज्ञानिकता और जटिलता का समावेश हुआ, जिसकी प्रतिक्रिया

स्वरूप विश्व की प्रमुख भाषाओं ने भी अपनी सीमा का अतिक्रमण करते हुए स्वयं को भूमंडलीकरण से जोड़कर परिवर्तित प्रवृत्तियों के अनुरूप, संसार के सम्मुख दृढ़ता और पूर्णता से अपनी उपस्थिति को सुनिश्चित किया, जिन में हिन्दी भाषा सर्वप्रमुखता से शामिल है।

किसी भी साहित्य का वजूद सर्वथा भाषाओं पर ही आश्रित होता है और वह सर्जक की व्यक्तिगत अनुभूतियों के साथ-साथ उसके स्थान, समय व परिवेश की सामूहिक घटनाओं, विचारों एवं मनोवृत्तियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होता है। इसलिए बदलती हुई चित्तवृत्तियों के अनुरूप वर्तमान साहित्यिक मूल्यों, प्रतिमानों तथा जवाबदेही आदि में वैविध्य का समावेश प्राकृतिक ही है। उत्तर आधुनिकतावादी परिवेश में सृजित आज का साहित्य केवल स्वानुभूतियों और सहानुभूतियों का प्रकटन न होकर किसी दूसरे समाज या राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की बोधगम्यता का पर्याय बन चुका है। जिससे तत्संबंधी समाज अथवा समुदाय की वास्तविक अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर उन्हीं के सदृश्य उनका लाभदायक बाजारीकरण किया जा सके। इसके अतिरिक्त वर्तमान साहित्य बाजारवाद, पूँजीवाद तथा भूमंडलीकरण का अत्यधिक सामीप्य लाभ प्राप्त करने एवं सृजन में किसी निश्चित दृष्टिकोण के नितांत अभाव में संवाद सूचना और संपर्क स्थापित करने का प्रतिष्ठित अभिकरण बन गया है। यही कारण है कि वर्तमान समय में जनसधारण से लेकर पूँजीपतियों तक के लिए विभिन्न भाषा-साहित्यों का अध्ययन आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी माना जाता है। क्योंकि प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक संरचना तथा अर्थ प्रक्रिया दूसरे से पूर्णत: भिन्न होती है, इसलिए अपनी मातृभाषा से इतर भाषा में सृजित साहित्य का अध्ययन-विवेचन करने के लिए निर्विकल्प रूप से अनुवाद का ही सहारा लेना पड़ता है।

''अनुवाद शब्द की व्युत्पत्ति अनु उपसर्ग + वद् धातु + धञ् प्रत्यय से हुई है, जिसका अर्थ पीछे कहना या दुहराना है। किसी बात को एकबार व्यक्त कर दिया जाए उसके बाद उसे फिर दोहराया जाय। दोहराने की प्रक्रिया यथावत भी हो सकती है और भाषान्तर करके भी।''[1] अर्थात अनुवाद शब्द का शाब्दिक अर्थ 'पुन:' कथन' होता है। ''एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में फिर से कहना ही 'अनुवाद' है। इसमें अर्थ की पुनरावृत्ति होती है, शब्द की नहीं। प्रकारांतर से इसे अर्थ का भाषांतरण भी कहा जा सकता है।''[2] चूँकि इतिहास के विविध कालखण्डों में सामाजिक, राजनीतिक अथवा व्यवसायिक कारणों से विश्व के लोगों का पारस्परिक संपर्क अत्यंत प्राचीन काल से ही रहा है, इसलिए सदैव से ही अनुवाद दो देशों के ज्ञान, साहित्य और कला आदि के बीच एक सेतु की भूमिका का निवर्हन करता रहा है। ऐसी मान्यता है कि-''विश्व में प्राचीनतम अनुवाद का कार्य असीरिया में हुआ है..... ..... असीरिया का राजा सारगोन (Sargon) अपने वीरतापूर्ण कार्यों की घोषणाएँ अनेक भाषाओं में करता था क्योंकि उसके साम्राज्य में विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले निवास करते थे। इन घोषणाओं की मूलभाषा असीरियन होती थी, उनका अनुवाद अनेक भाषाओं में किया जाता था।''[3] उपरोक्त विवरणात्मक दृष्टांत से अनुवाद की ऐतिहासिकता तथा मानव जीवन में उसकी उपादेयता को भलीभांति समझा जा सकता है। जब आज से हजारों वर्ष पूर्व अपेक्षाकृत एकांगी, सरल, स्थिर एवं उदासीन परिवेश में शासन व्यवस्था के उपयुक्त व प्रभावशाली संचालन जैसे महत्वपूर्ण कार्यों के लिए अनुवाद की इतनी अधिक अहमियत थी, तब कहीं अधिक अनेकरूपताओं से परिपूर्ण, जटिल, गतिशील, जागरूक, अत्यधिक महत्वाकांक्षी और भौतिकतावादी वर्तमान वातावरण (जहाँ अर्थ ही सामान्य मानव जीवन का आधार तथा उद्देश्य दोनों है) में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से लेकर उच्चाकांक्षाओं की सिद्धि तक अनुवाद की महत्ता सर्वसिद्ध है। यही कारण है कि भाषा एवं साहित्य की अतिजीविता से लेकर वर्तमान समय तक की दीर्घावधि में साहित्य, संस्कृति और अन्य ललितकलाओं के क्षेत्र में वृहत व सर्वतोमुखी अनुवाद व्यापार देखने को मिलता है।

लेकिन साहित्यिक अनुवाद की प्रकृति और प्रक्रिया सामान्यत: ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं कला संबंधी अनुवादों से पृथक होती है। अन्य तरह के अनुवादों में जहाँ अनुवादक शाब्दिक अनुवाद को सर्वाधिक महत्व देता है, वहीं साहित्यिक अनुवाद में शाब्दिक अनुवाद के साथ-साथ यथेष्ट भावानुवाद पर ही उसके अनुवाद कर्म की सफलता निर्भर करती है। ''साहित्यिक अनुवाद को शाब्दिक अनुवाद के रूप में देखेन पर अनुवादक बुरी तरह असफल होगा। दरअसल प्रत्येक कृति में उसके पाठ के साथ ही उसके कर्ता द्वारा सम्प्रेषित अर्थ भी छिपा होता है। अनुवादक का कार्य न केवल प्रदत्त पाठ का रूपांतरण है, बल्कि उस सम्प्रेषित अर्थ का भी लक्ष्य भाषा में पाठ के माध्यम से पुन: प्रस्तुतीकरण है। जो कृतिकार का मूल उत्स है और अन्तत: कृति का अभ्रिप्रेत भी।''[4] अभिकथन का तात्पर्य यह है कि साहित्यिक अुनवाद केवल स्रोत भाषा और लिपि के शब्दों को अक्षरश: लक्ष्य भाषा या प्रतीक में परिवर्तित कर देना मात्र नहीं होता, बल्कि वह उससे कहीं अधिक व्यापक उद्देश्यों तथा उत्तरदायित्वों से परिवेष्ठित होता है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साहित्यिक मीमांसा के क्षेत्र में नव्य विकसित संरचनावाद (Structuralism) तथा उत्तर संरचनावाद (Post Structuralism) जैसी अवधारणाओं ने साहित्यिक कृति में क्रमशः रचनाकार की अनुभूति एवं पाठ के स्वतंत्र और निरन्तर मूल्यांकन के महत्व को प्रतिपादित कर अप्रत्यच्छतः वर्तमान साहित्यिक अनुवाद के सिद्धांत को स्थिर करने का प्रयत्न किया था, जिसमें अनुवाद अपने अनुवाद कर्म के साथ-ही-साथ रचना की समग्र व्याख्या के उत्तरदायित्व का भी निर्वहन करता है। क्योंकि किसी साहित्य सर्जक अथवा मीमांसक की व्यक्तिगत विचारधाराओं या प्राथमिकताओं का उसके रचना और व्याख्या कर्म पर विशेष प्रभाव पड़ता है, इसलिए साहित्यिक अनुवादक को भी वैचारिक एवं व्यवहारिक रूप से तटस्थ रहते हुए प्रस्त्रवण भाषा साहित्य में उद्भूत भावों सहित भाष्य उद्देश्य भाषा में देना उपयुक्त तथा तार्किक होता है। परंतु इक्कीसवीं शताब्दी के वर्तमान उत्तर आधुनिकतावादी युग में जहाँ विज्ञान एवं तकनीकी की पराकाष्ठा से कहीं अधिक व्यावसायिक या वाणिज्यिक परमिता का समय है, वहाँ साहित्य सृजन के भाव पक्ष व कलापक्ष में युगीन प्रवृत्तियों के अनुरूप विविधता का अंतर्भाव अस्वाभाविक नहीं है। साहित्य के स्वरूप में यह वैविध्य उसके कथावस्तु से लेकर भाषाई अर्थवत्ता, व्याकरणिक संरचना लोकोक्तियों-मुहावरो के अनुप्रयोग और शैली आदि तक में सम्मिलित हुआ है। इसके अतिरिक्त वैश्विक फलक पर उत्पन्न भूमण्डलीकरण की परिकल्पना (Hypothesis of Globalization) जो सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनो रूपों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी भारतीय विचारधाराओं की पूर्ण प्रतिरोधी है) ने भी साहित्य के आधारभूत मूल्यों और प्रयोजनों में अभिव्यापक परिवर्तन किया। नितान्त अर्थ पर अवलंबित वैश्वीकरण की इस अवधारणा का स्वभाविक मानवीय मनोवृत्तियों जैसे दया, करुणा, प्रेम, सहानुभूति, मानवता, त्याग अथव विश्व कल्याण आदि से किसी तरह की कोई हमदर्दी नहीं है। यह व्यापार-व्यवसाय पर केन्द्रित विशुद्ध आर्थिक परिकल्पना है जो पूरी दुनिया को बाजार के रूप में तब्दील कर मनुष्य को उपभोक्ता तथा विक्रेता में बदल देने का सामर्थ्य रखती है। यह केवल अर्थव्यवस्था की संरचना को ही प्रभावित नहीं कर रही है, अपितु इससे मानव संस्कृति और सभ्यताओं में भी अमूल-चूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, विचार आदि से लेकर भाषा-साहित्य तक में इसका सकारात्मक प्रभाव अत्यल्प एवं नकारात्मक प्रभाव अत्यधिक परिलक्षित हुआ है।

यह सर्वविदित है कि भूमण्डलीकरण की भाषाई व्यवस्था में अंग्रेजी भाषा का ही सर्वाधिकार सुरक्षित है, जिसके कारण हिन्दी ही नहीं बल्कि अंग्रेजी के अतिरिक्त विश्व में जितनी भी भाषाएँ भावों अथवा विचारों की अभिव्यक्ति या आपसी संवाद के माध्यम के रूप में अस्तित्व में है, उन सभी के विलुप्त प्राय होने की संभावना धीरे-धीरे बढ़ने लगी है। बोलियों या उपबोलियों में तो यह प्रक्रिया अत्यंत सहज बन चुकी है। भाषाओं पर आई इस संकटग्रस्तता का प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक ही है। इस दौर में लिखा जाने वाला साहित्य भी मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं से विमुख होकर अर्थ आधारित विषयों पर केन्द्रित होने लगा है। इस संदर्भ में प्रो0 राजेन्द्र कुमार का निम्न कथन अत्यंत उपयुक्त तथा तर्कसंगत प्रतीत होता है कि-''भूमंडलीकरण का सीधा संबंध क्योंकि व्यापार से है, इसलिए इस दौर में सिर्फ उन विषयों की उपयोगिता रह जायेगी जो अर्थाधारित हैं, जो व्यवसाय और व्यापार बढ़ाने का उपक्रम करते हैं। यानी सबसे बड़ा संकट साहित्य के ऊपर है। अर्थात जो संबंधों की बात करता है, संवेदनाओं की बात करता है, इंसानियत की बात करता है, उसका कोई मतलब नहीं रह जायेगा। सिर्फ उन्हीं विषयों की पूछ रह जायेगी जो व्यापार की बात करेंगे।''[5] भाषा तथा साहित्य में सहजात उपरोक्त परिस्थितियों का एकीकृत परिणाम यह हुआ कि मौलिक एवं स्वतंत्र साहित्य-सृजन के साथ-साथ उसके अनुवाद के क्षेत्र में भी अनेक तरह की चुनौतियों का प्रार्दुभाव हुआ। क्योंकि साहित्यिक अनुवाद किसी व्यक्ति द्वारा स्रोत भाषा के भावों या विचारों का लक्ष्य भाषा में भाषांतरण होता है जिस पर अनुवादक की व्यक्तिगत विचारधाराओं व परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ता है। इसलिए विवेच्य कालावधि में ये जटिलताएँ साहित्यिक अनुवाद में अधिक तत्परता से पाई जाती हैं। इनमें कुछ दुर्बोधताएँ तो परम्परागत अनुवादों में भी देखने को मिलती है लेकिन इनमें से कुछ दुरूहताएँ ऐसी भी हैं जो साहित्यिक अनुवाद में वर्तमान परिस्थितिजन्य कारणों से उत्पन्न हुई हैं। अतएव वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्यिक अनुवाद की व्यवहारिक जटिलताओं (परम्परागत एवं नवोन्मेषी) की यथेष्ट बोधगम्यता हेतु उनका अलग सिंहावलोकन अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

यह संविज्ञात सिद्धांत है कि अनुवाद, एक भाषा व लिपि का दूसरी भाषा में रूपांतरण या लिप्यंतरण है तथा प्रत्येक भाषा और लिपि की ध्वनि व्यवस्था, अर्थप्रक्रिया, व्याकरणिक संरचना एवं प्रतीकात्मकता आदि भिन्न-भिन्न होती है। इसलिए अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष कुछ व्यवहारिक जटिलाएँ स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाती हैं जिनमें चुनौती ध्वनिमूलक असमानताओं से निपटने की होती है। सभी भाषाओं के शब्दों की ध्वनि-प्रणाली या अवसंरचना में अखिल भिन्नता पाई जाती है। उनमें ध्वनि-गठन

की तुलना में ध्वनि-प्रक्रिया में पर्याप्त विभेद देखने को मिलता है। यद्यपि आधार भाषा तथा आधारित भाषा की कुछ ध्वनियों के उच्चारण या लेखन में एकरूपता भी दिखाई देती है। जैसे रोमन लिपि में लिखी जाने वाली अंग्रेजी भाषा के ग, ब, न म, य देवनागरी में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा के ग, ब, न, म, य के समान है तथा इसके अनुवाद में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता, लेकिन फिर भी हिन्दी और अंग्रेजी की अलग-अलग लिपियाँ होने के कारण इनके लेखन तथा उच्चारण दोनों में भ्रान्तियाँ अवश्य पायी जाती हैं। उदाहरण स्वरूप ''हिन्दी 'क' रोमन 'ङ्ग' के बराबर है। रोमन में '।' से अ, आ, ए, ऐ आदि अनेक ध्वनियों की सूचना मिलती है, इसलिए अनुवाद करते समय कठिनाई पैदा होती है। रोमन लिपि की इसी समस्या के कारण ही 'अशोक', को 'ASHOKA', 'बुद्ध' को 'BUDDHA' का उच्चारण चल पड़ा है।''[6] ध्वनिगत समस्याओं के अतिरिक्त लिपियों की निजगत विशेषताएँ भी साहित्यिक अनुवाद को जटिल बनाती है। संस्कृत, हिन्दी और मराठी की एक लिपि 'देवनागरी' होने के कारण इन भाषाओं के आपसी अनुवाद में अधिक दुरूहता नहीं आती, परन्तु जहाँ एक लिपि में सृजित भाषा-साहित्य को पूर्णतः भिन्न दूसरी लिपि के भाषा-साहित्य में अनुदित करना होता है वहाँ अनेक तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर ''अरबी के 'स्वाद' शब्द में प्रयुक्त 'स' देवनागरी के 'स' से भिन्न होता है। इसी तरह जोय, ज्वार, जाल के तीनों 'ज' में भेद है, किन्तु हिन्दी अनुवाद में 'ज' से ही काम चलाया जाता है। कठिनाई वहाँ पैदा होती है, जहाँ स्रोत भाषा में से मिलती -जुलती कोई ध्वनि लक्ष्य भाषा में न हो, तमिल में प्रयुक्त 'स', 'ल' हिन्दी में व, ल, ज तीनों रूपों में प्रचलित है।''[7] यद्यपि मौखिक अनुवाद में लिपिगत यह अन्तर अधिक महत्व नहीं रखता, तथापि साहित्यिक अनुवाद क्योंकि शाब्दिक रूपान्तर के साथ-साथ भावान्तरण भी होता है इसलिए लिपियों के बीच पाए जाने वाले इन सूक्ष्म विभेदों की सर्वथा उपेक्षा नहीं की जा सकती। अलग-अलग लिपियों में ध्वनियों के संयुक्त रूप से बने शब्दों के अंकन तथा उच्चारण में भी अंतर पाया जाता है। देवनागरी लिपि में लिखे गये 'महेन्द्र' को रोमन में 'Mahendra' लिखा जाता है, जबकि रोमन के 'KNIFE' को देवनागरी में 'नाइफ' उच्चारित किया जाता है। इससे जहाँ एक में अतिरिक्त ध्वनि 'आ' का समावेश हो रहा है तो वही दूसरी में 'क' ध्वनि को मूक कर दिया गया है। रोमन लिपि में जो लिखा जाता है, अधिकांशतः उसका उच्चारण परिवर्तित होता है। किन्तु देवनागरी लिपि में यथालेख उच्चारण की प्रवृत्ति पाई जाती है। अन्य भाषाओं की प्रतीकात्मक व्यवस्था में प्रयुक्त नाम, स्थान आदि के विषय में भी मतभेद बना रहता है-''कोई मूल के नजदीक रखकर उसका उच्चारण करता है, कोई रोमन लिपि के अंग्रेजी उच्चारण पर ध्यान केन्द्रित करता है और कोई लक्ष्य भाषा की उच्चारण प्रकृति के अनुसार परिवर्तन कर देता है जैसे- 'JOHN' को जॉन, जोन, जान, 'TOLASTOY' का टोलस्टोय, टालस्टाय, टॉलस्टोय। मूल नाम 'अरस्टोटस' अंग्रेजी में 'एरिस्टाटिल' हुआ तथा हिन्दी में 'अरस्तू'।''[8] लिपियों की स्वरूपगत एवं संरचनागत उपरोक्त भिन्नताओं की अवस्था में साहित्यिक अनुवाद की आधार साहित्य में अभिव्यक्त भावों के साथ-साथ उसकी तत्कालीन अर्थवत्ता को प्राथमिकता देना अधिक सार्थक व विवेक संगत माना जाता है।

एक सफल साहित्यिक अनुवाद में व्याकरणगत विविधताएँ सर्वाधिक चुनौतियाँ जनित करती हैं। सामान्यतयः सभी भाषाओं में आवश्यक रूप से पाई जाने वाली ये भिन्नताएँ रूप-रचना, लिंग, कारक, वचन, शब्द-क्रम व धातु आदि अनेक स्तरों पर पाई जाती हैं। इसलिए किसी साहित्य का अनुवाद करते समय अनुवादक को स्रोत एवं लक्ष्य भाषा के व्याकरण का सम्यक् ज्ञान होना अत्यधिक आवश्यक होता है अन्यथा अनुवाद में भाव और उद्देश्य परिवर्तन की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। इसी तरह से किसी भाषा के शब्दों की अनेकार्थकता भी अनुवादक के लिए वास्तविक व मूल अर्थग्रहण की समस्या उत्पन्न करती है क्योंकि किसी भाषा के शब्दों का अर्थ निर्धारित करने में उसके देशकाल तथा वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है इसलिए किसी एक भाषा में प्रचलित शब्द का परम्परागत अर्थ दूसरी भाषा में भिन्नार्थक हो जाता है। उदाहरणतः-''अंग्रेजी ब्रदर-इन-ला का हिन्दी अनुवाद करते समय 'साला' या 'बहनोई' क्या रखा जाएगा, यदि अनुवादक को संबंध का वास्तविक ज्ञान होगा तभी सही अनुवाद हो सकता है।''[8] यह वातावरण का ही प्रभाव है कि अमेरिका में 'रेस्टरूम' 'पखाना' का बोध कराता है, जबकि भारत में विश्राम कक्ष का। राष्ट्र ही नहीं, अपितु स्थानीय स्तर पर भी कुछ शब्दों के अर्थों में अनेकरूपता देखने को मिलती है। बंगाल में 'दादा' बड़े भाई को कहते हैं जबकि उत्तर प्रदेश में 'दादा' पिता का पिता होता है। इसी तरह गुजरात में अग्रज को 'मोटा भाई' तथा उत्तराखण्ड के कुमाऊँ में ठुल दा विशेषण से संबोधित किया जाता है। तात्पर्य यह है कि साहित्यिक अनुवाद करते समय अनुवादक को स्रोत एवं आधार भाषा की समय व परिवेशगत परिस्थितियों में निर्धारित शब्दार्थों से भलीभांति परिचित होना आवश्यक होता है नहीं तो अर्थ का अनर्थ करने की संभाव्यता बनी रहती है। अनुवादकर्ता को दोनों भाषाओं में प्रचलित शब्दों के मुख्यार्थ के साथ-साथ लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ का भी गहन ज्ञान होना चाहिए जिससे वह अनेकार्थी शब्दों का यथोचित भावानुकूल अनुवाद करने में समर्थ हो सके।

साहित्य में अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए साहित्य-सर्जक अधिकांशतः मुहावरों अथवा लोकोक्तियों का सहारा लेता है, जो प्रायः लाक्षणिक अर्थ का विधान करने वाली तथा परिवेश विशेष से सम्बंधित होती है। इसके अलावा कभी-कभी वह अपने देश-काल की विसंगतियों पर तीक्ष्ण प्रतिक्रिया देने के लिए व्यंजना शक्ति का भी सहारा लेता है। इन सभी का संबंध अभिधामूलक न होकर लक्षणा या व्यंजनामूलक ही होता है, इसलिए इनके शाब्दिक अनुवाद मात्र से अनुवादक की असफलता सुनिश्चित हो जाती है। ऐसी अवस्था में अनुवादक को शब्दों के सामान्य अर्थ पर आश्रित न होकर उनका भावमूलक अनुवाद करना अधिक उपयुक्त होता है। सभी भाषाओं में उनकी अभिव्यक्ति क्षमतानुसार एक ही घटना पर परिस्थिति के लिए अलग-अलग मुहावरों अथवा लोकोक्तियों का प्रचलन होता है। जैसे अत्यधिक की आवश्यकता पर अत्यल्प की उपस्थिति को दर्शाने के लिए हिन्दी में 'ऊँट के मुँह में जीरा' और अंग्रेजी में 'A drop in the Ocean' आदि। इन मुहावरों के प्रयोग में रचनाकार के मूल उद्देश्य को जीवंत रखने के लिए अनुवाद करते समय इनके भावानुवाद पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यद्यपि प्रत्येक भाषाओं में प्रचलित मुहावरों अथवा लोकोक्तियों में कुछ अर्थगत समानताएँ अवश्य पाई जाती है यथा-हिन्दी में, जीवन के उतार-चढ़ाव, सफेद झूठ, काला बाजार अंग्रेजी में UPS and downs of life, White lie, Black market तथा फारसी में कमर बस्टन आदि, परन्तु ज्यादातर स्थितियों में ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए हिन्दी के, नौ दो ग्यारह होना, पानी-पानी होना आदि का समानार्थक मुहावरा अन्य भाषाओं में अनुपस्थित है। यदि अनुवादक इनका शब्दानुवाद-ज्व इमबवउम जंमत जंमतश लिखेगा तो वह न केवल मूल अर्थ 'अत्यधिक लज्जित होना' का दमन करेगा अपितु उसका यह अनुवाद निरर्थक और भावहीन हो जाएगा, जिससे सम्पूर्ण कृति का अभिधार्थ बाधित होगा। यही स्थिति लोकोक्तियों की भी होती है। क्योंकि-''लोकोक्तियाँ भाषिक संस्कृति की अत्यन्त गहराई से प्रस्फुटित होती हैं''[9] इसलिए भाव ही नहीं बल्कि अनुवाद में भी अर्थ की संस्कृति को बचाए रखने के लिए इन लोकोक्तियों का निकटस्थ भावानुवाद आवश्यक होता है। अनुवाद करते समय उत्पन्न ऐसी विषमताओं की स्थिति में अनुवादक को स्रोत भाषा की लोकोक्तियों या मुहावरों से साम्य रखने वाली लक्ष्य भाषा की लोकोक्तियों अथवा मुहावरों का प्रयोग करना अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक होता है।

वर्तमान समय में साहित्यिक अनुवाद में उपरोक्त परम्परागत जटिलताओं के अतिरिक्त कुछ परिस्थितिजन्य नवीन चुनौतियाँ देखने को मिलती हैं। समकालीन उत्तर आधुनिकतावादी दौर में साहित्यिक व दार्शनिक मीमांसा के क्षेत्र में उद्भूत संरचनावाद तथा उत्तर संरचनावाद जैसी अवधारणाओं ने रचना में 'पाठ' और 'रचनाकार' के भावों' को अलग-अलग महत्व देकर बहुआयामी मूल्यांकन का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे प्रत्येक साहित्यिक कृति की अनेक भावों के संदर्भ में व्याख्या और अनुवाद की परम्परा प्रचलन में आयी। इससे एक ही साहित्यिक रचना के विविध भावों को संदर्भित करने वाले अनुवादों की बाढ़ सी आ गयी। प्रत्येक परवर्ती अनुवादक अपने अनुवाद में नये भावों तथा विचारों का जन्म देकर मूल रचना के सर्वाधिक निकट पहुँचने का दावा करने लगा। यही कारण है कि वर्तमान परिवेश में जहाँ विज्ञान, अर्थ, राजनीति और इतिहास विषयक सर्जनाओं के कथ्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक ही अनुवाद पर्याप्त होता है, वहीं साहित्यिक अनुवादों में अधिक से अधिक अनुवाद करने की प्रतियोगिता तथा संघर्ष दिखाई देता है-''यह अनायास नहीं है कि जहाँ विज्ञान विषयक कृतियों के लिए किसी भाषा में सिर्फ एक अनुवाद ही पर्याप्त माना जाता है वहीं साहित्यिक कृतियों के विविध अनुवादों में परस्पर होड़-सी मची रहती है। प्रत्येक परवर्ती अनुवाद मूल के अधिक निकट पहुँचने एवं अपनी भाषा में भी पैठ बनाने के लिए पूर्ववर्ती अनुवादों से संघर्ष करता है, साथ ही प्रेरणा भी लेता है।''[10] अतः स्वाभाविक है कि आज के परिवेश में साहित्यिक अनुवाद न केवल अत्यंत चुनौतियों से परिपूर्ण है, अपतु अनुवादक का अपने कर्म के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। इसी तरह से भूमण्डलीकरण की भाषा अंग्रेजी होने के कारण या तो अन्य भाषा-साहित्यों के अंग्रेजी अनुवाद को महत्व मिल रहा है या फिर अंग्रेजी साहित्य को ही अन्य भाषाओं में अनुवाद करने को प्राथमिकता दी जा रही है। इससे अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषा-साहित्यों का पारस्परिक अनुवाद पूर्णतः परिचर्चा रहित अथवा तिरस्कृत सा हो गया है। अनुवादक भी साहित्यिक अनुवाद में उन्हीं विषयों को वरीयता दे रहे हैं जिनका ताल्लुक किसी न किसी तरह से व्यापार या व्यवसाय के संपोषण से है। परिस्थितियाँ इस तरह से एकांगी हो गई हैं कि वैश्वीकरण ने व्यवसायेत्तर सम्पूर्ण साहित्य एवं अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं को उपयोगिता शून्य घोषित कर दिया है। इस समस्या के यथाशीघ्र निदान के लिए विश्व भर के साहित्य सर्जकों और चिंतकों को एकजुट होकर अपने साहित्य के अस्तित्व को बचाने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब या तो अंग्रेजीतर भाषाओं का साहित्य केवल इतिहासों में पढ़ने को मिलेगा या फिर सम्पूर्ण विश्व में अनुवाद के माध्यम से केवल वहीं साहित्य जीवित रहेगा, जिसका संबंध व्यापार, व्यवसाय, तकनीकी आदि से होगा, न कि मानवीय संवेदनाओं, भावनाओं अथवा मानवता आदि से।

सारांश-

संक्षेप में, साहित्यिक अनुवाद अन्य अनुवादों से स्वरूप एवं संरचना में ही नहीं, अपितु अर्थ और उद्देश्य की दृष्टि से भी पृथक होता है। यह केवल शाब्दिक अनुवाद मात्र न होकर एक तरह का भावांतरण भी होता है। इसमें सदैव ही अनुवादक के समक्ष अनेक तरह की चुनौतियाँ उपस्थित रहती हैं, जिनका सामना करने के लिए उसके पास स्रोत तथा लक्ष्य दोनों भाषाओं की साहित्यिक एवं व्याकरणिक प्रवीणता हासिल करना ही एकमात्र विकल्प होता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों ने भी साहित्य-सृजन के समान अनुवाद को अत्यंत जटिल बना दिया है। पूँजीवाद और बाजारवाद जैसी विचारधाराओं की पोषक भूमण्डलीकरण ने साहित्य में व्यापार-व्यवसाय व उपभोक्ता-विक्रेता का हस्तक्षेप कराकर लेखन को अर्थाघटित तथा अनुवाद को अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य का संभरण करने वाला बना दिया है। साहित्यिक अनुवाद को नितान्त जटिल बनाने में रही-सही कमी को संरचनावाद या उत्तर संरचनावाद जैसी अवधारणाओं ने पूरा कर दिया, जो कृति की अपरिमित मीमांसाओं का अनेक धुव्रों से समर्थन करती हैं क्योंकि इनके सिद्धांत के अनुसार रचना की कोई व्याख्या न तो अंतिम ही होती है और नही पूर्ण। इसलिए उनका अगणित अनुवाद होना प्राकृतिक ही है। इससे साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में मूल के निकटस्थ पहुँचने की एक प्रतियोगिता तो आरम्भ हुई ही, साथ-ही-साथ अनुवादक के लिए एक नये संघर्ष का उद्घोष भी हुआ है।

संदर्भ-सूची

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी, प्रो0 रामकिशोर शर्मा, डॉ0 शिवमूर्ति शर्मा, पृष्ठ सं0-144
2. प्रयोजनमूलक हिन्दी, डॉ0 मुश्ताक अली, पृ0 सं0-116
3. अनुवाद विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृ0 सं0-190
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अनुवाद-कर्म, आनन्द कुमार शुक्ल, फ्लैश बैक
5. प्रयोजनामूलक हिन्दी, डॉ0 मुश्ताक अली, पृष्ठ सं0-129
6. प्रयोजनमूलक हिन्दी, प्रो0 रामकिशोर शर्मा, डॉ0 शिवमूर्ति, पृ0 सं0-151
7. वहीं
8. वही, पृ0 सं0-152
9. वहीं, पृष्ठ सं0-154
10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अनुवाद-कर्म, आनन्द कुमार शुक्ल, फ्लैश बैंक

कोयला उत्खनन एवं ग्रामीण सामुदायः समाजिक विकास का अध्ययन

(छ.ग. के बिलासपुर सभांग के विशेष सदर्भ में)

सुनील कुमार

शोधार्थी, पी.एच.डी. (समाज कार्य), डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, करगी रोड़, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

श्रीमति डॉ० ऋचा यादव

(H.O.D.)

निर्देशकः सहायक प्राध्यापक (समाज कार्य), डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड़, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

परिवर्तन एक गतिमान प्रक्रिया है। परिवर्तन की गती अनेक कारकों पर निर्भर करती है। चूंकी गाँवों में जनसंख्या कम होती है। ग्रामीण समाजिक जीवन व सांस्कृतिक व्यवहारों में गतिशीलता कम होती है। ग्रामीण क्षेत्रों कि अर्थव्यस्था मुख्य रूप से कृषि व वनोपज पर आधारित होती है। गाँवों का पारंपारिक व्यापार हाट-बाजार तक सीमीत होता है। और रोजगार के नवीन अवसर भी बहुधा कम ही होते हैं। इसलिये ग्रामीण समाज में परिवर्तन कि गति धीमी होती है। परंतु जैसे ही किसी ग्रामीण क्षेत्र में कोई औद्यौगिक गतिविधीयाँ शुरू होती है उस क्षेत्र में नये प्रकार के व्यापार के संभावनाऐं बढ़ जाती है तथा रोजगार के भी नवीन अवसर उपलब्ध होने लगते हैं। इन्ही नये प्रकार के व्यापार के संभावनाओं तथा बढ़ती हुई रोजगार के नवीन अवसरों कें आकर्षण सें न केवल स्थानीय लोग चले आते हैं बल्की नगरों व मुख्य शहरों से भी लोग इन ग्रामीण क्षेत्रों में चले आते हैं। इन बाहरी लोंगो में से तो कुछ इन ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवास भी करने लगते हैं। इस प्रकार इन ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का विस्तार होने लगता है। जनसंख्या का विस्तार तथा ग्रामीण समाज का नगरीय समाज व शहरी समाज के संपर्क में आने से ग्रामीण समाज कई पक्ष से प्रभावित होने लगती है। वर्तमान युग विज्ञान व सूचना-प्रौधौगिकी का है। विज्ञान व सूचना-प्रौधौगिकी के क्षेत्र में नित्य नये खोंजो, अविश्कारों तथा इनके प्रसार ने अब गाँवों को भी वैष्वीकरण कि प्रक्रिया में सम्मीलीत कर लिया है। आधुनिक जीवनषैली के प्रति आकर्षण तथा वैष्वीकरण कि प्रक्रिया में सम्मीलीत होने के कारण कोयले के खनन से प्रभावित छ0ग0 ग्रामीण समाज के समाजिक, संस्कृतिक व आर्थिक पक्ष के आंतरीक व बाहरी अर्थात संरचना में परिवर्तन देखने को मील रहे है।

छत्तीसगढ़ के ऐसे ग्रामीण क्षेत्र जँहा कोयले का खनन औद्यौगिक स्तर पर हो रहा है, उन ग्रामीण क्षेत्रों में औद्यौगिकरण की प्रक्रीया में तेजी आई है। चुंकी औद्यौगिकरण की प्रक्रीया समाजिक विकास व परिवर्तन का मुख्य आधार होता है। कोयला खनन से पुर्व ये ग्रामीण क्षेत्र जो कभी केवल स्थानीय नगर के संपर्क तक ही सीमीत हुआ करते थे आज कायले के खनन के कारण ये ग्रामीण क्षेत्र अब बड़े नगरों व मुख्य शहरों के संपर्क में आ गये हैं। इस तरह औद्यौगिकरण से शहरीकरण को बढ़ावा मीला फलस्वरुप वैष्वीकरण का प्रभाव भी इन ग्रामीण क्षेत्रों में पड़ने लगा। इन ग्रामीण क्षेत्रों में कोयले का खनन से औद्यौगिक विकास होने के साथ ही कई प्रकार की समाजिक समस्यायें भी उत्पन्न हुई है। इन समाजिक समस्यायों के उचित अध्ययन किये बिना उसका समाधान नही निकाला जा सकता है।

प्रास्तावना

अतीत के महत्वपूर्ण अध्याय को समेटे हुऐ यह छत्तीसगढ., अविश्वसनीय प्राकृतिक सौदंर्य, विशिष्ट लोक ससंकृती के साथ समाजिक समरसता एवं संहाद्रय से परिपूर्ण छत्तीसगढ. राज्य भारत में ही नही पूरे ससांर में सुप्रसिद्ध है। प्राकृतिक वन सपंदा से भरपूर तथा धान की अच्छी खासी उपज के कारण ''धान का कटोरा'' कहलाता है। साथ ही महत्वपूर्ण खनिज ससांधनों के पर्याप्त भडांर के कारण छत्तीसगढ. को ''खनिजों का संग्रहालय'' भी कहा जाता है। एक नये राज्य के रुप में अस्तित्व में आने के पूर्व यह राज्य अविभाजित मध्यप्रदेश का हिस्सा था। भारत के 26 वें राज्य के रुप में 1 नवबंर 2000 को छत्तीसगढ. राज्य कि स्थापना हुई। खनिज ससांधनों कि उपलब्धता तथा इस पर आधारित उद्योगों कि विकसीत होने कि अपार सभांवना ने शीघ्र ही छत्तीसगढ. को भारत के सबसे प्रगतीशील राज्यों में से एक राज्य के रुप मे प्रतिस्थापित कर दिया। छत्तीसगढ. कि इस विकास गाथा में खनिज ससांधनों कि उपलब्धता तथा इस पर आधारित उद्योगों कि भूमीका महत्वपूर्ण है। जैसा कि विदित है गाँवों मे ग्रामीण समाज और आदिवासी समाज निवास करती है और अपने मूल अधिवास क्षेत्र मे मूल परंपराओ एवं मान्यताओं के साथ फलती-फूलती और समय के अनुसार विकास करती है। परंतु इन क्षेत्रों में खनिज पदार्थो के खनन-दोहन व औद्योगीकरण के बढ़ते परिणाम फलस्वरूप इनके मुल परंपराओ एवं मान्यताओं पर भी प्रभाव पड़ रहा है। सूचना प्रद्योगिकी के नवीन अविश्कारों एवं संचार माध्यमों के विस्तार व अनुप्रयगो ने सामाजिक एवं सास्कृतिक परविर्तन तथा विकास को अंर अधिक बढ़ावा दिया है। इन खनन प्रभवित गांवो व ग्रामीण तथा आदिवासी समुदाय के समाजिक जीवन के साथ-साथ सासंकृतिक स्वरुप, आर्थिक पक्ष व उनके शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य के स्तर में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते है। प्रस्तुत शोध कार्य में कोयला उत्खनन से प्रभावित ग्रामीण समुदाय का समाजिक-आर्थिक परिवर्तन एवं विकास का अध्ययन करना है।

पूर्व उपलब्ध शोध साहित्य, पुस्तकों, एवं शोध पत्रों का पुनरावलोकन

पूर्व उपलब्ध साहित्य, पुस्तकों, एवं शोध पत्रों की समीक्षा से शोधकर्ता को साहित्य संबंधित शोध विषय पर प्रांरभिक जानकारी प्राप्त होती है। साहित्य की समीक्षा में इस तरह के प्राथमिक और द्वितीयक तथ्य के रूप में विभिन्न दृष्टिकोण से किया जाता है जिससे तथ्य के रूप में रिपोर्ट, लेख, पत्रिकाओं, इंटरनेट, डेटा वेबसाइट का शोध कार्य हेतु आवश्यक रूप से सहायता प्राप्त हो, जिससे कि शोधकार्य में अधिक से अधिक परिशुद्धता आ सके।

- पूर्व में किये गये शोध कार्य के अध्ययन से किये जाने वाले शोध कार्य के अध्ययन के लिये एक सही दिशा एवं निर्देष प्राप्त होती है जिससे शोधकार्य को उचित दिशा मीलती है।
- यह शोध कार्य में पूर्व नियोजित योजना के निर्माण में सहायक होती है।
- यह शोधकार्य में वैज्ञानिक ख्रश्टिकोण एवं तथ्यों के आधार पर अध्ययन विषय को समझने में सहायता प्रदान करती है।

प्रस्तुत शोध कार्य का विषय ''कोयला उत्खनन से प्र्रावित ग्रामीण समुदाय का सामाजिक परिवर्तन व विकास का अध्ययन, (छ0ग0 के बिलासपुर सभांग के विशेष सन्दर्भ में)'' के द्वारा खनिज कोयले के खनन व औद्योगीकरण के कारण प्रभावित ग्रामीणों के जीवन में आये परिवर्तन एवं विकास के विभिन्न स्वरुपों का अध्ययन करना है। इस महत्वपूर्ण विषय को वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तथ्यों के आधार पर समझने के लिये पूर्व उपलब्ध साहित्य, पुस्तकों, एवं शोध पत्रों आदि का अध्ययन करना आवश्यक था। अत: प्रस्तुत शोध कार्य में यथा सभंव उचित दिशा में आगे बढ़ने के लिए निम्न वर्णित पूर्व उपलब्ध साहित्य, पुस्तकों, एवं शोध पत्रों आदि का अध्ययन सन्दर्भ सूची के रुप मे किया जायेगा।

पाठक, बबीता (2001)''रायपुर संभाग में खनिज आधारित उद्योगों का विकास, समस्याएं एवं संभावनाएं'' शोधार्थी ने अपने अध्ययन में रायपुर संभाग के खनिज आधारित उद्योगों पर प्रकाश डाला है। राजधानी रायपुर के विकास एवं राजधानी के अनुरूप निर्माण कार्यक्रमों के लिए रायपुर के आस पास उद्योगों का एक बड़ा विस्तार आरंभ हो गया है, जिसमें खनिज आधारित उद्योग शामिल होंगे। विकास की समस्या के रूप में स्थानीय लोगों का विरोध, वन संरक्षण अधिनियम 1980, कोयले की कीमत में नियंत्रण समाप्त कर देने से भिन्न - भिन्न कीमत पर कोयले की उपलब्धता उभर कर सामने आयी। शोधार्थी ने तर्क दिया कि जहां उत्पादन के मुख्य घटक मौजूद हों उन्ही स्थान पर संयंत्रों की स्थापना करनी चाहिए ताकि उत्पादन लागत को कम किया जा सके व एवं मांग में वृद्धि का हो सके।

पारख, सुनयना (2008) ''छत्तीसगढ. के आर्थिक विकास में खनिज संसाधनों एवं उस पर आधारित उद्योगों का योगदान'' में शोधार्थी ने शोध अध्ययन में बताया कि छत्तीसगढ. मे खनिज संसाधन प्रचुर मात्रा में है तथा खनिज आधारित उद्योगों के विकसीत होने कि संभावनाये अत्याधिक है। खनिज के उत्खनन एवं खनिज आधारित उद्योगों से राज्य को राजस्व प्राप्त होता है। इनके शोध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिंदु औद्योगीकरण एवं इसके बढ.ते चरण है, जिनमें खनिज एवं उस पर आधारित उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है।

मी्श्रा, डॉ. निहार रजंन (Project Director), (2015) ''कोयला उत्खनन, भू-विस्थापन, अंर ग्रामीण आजीविका : उड़िसा के महानदी कोलफिल्डस का अध्ययन'' निती आयोग, भारत सरकार को संपे गये अपने शोध अध्ययन में शोध अध्ययन के प्रोजेक्ट डायरेक्टर ने विशेष रुप से कोयले के उत्खनन से प्रभावित ग्रामीण समुदाय के समाजिक-सासंकृतिक संरचना मे परिवर्तन का उल्लेख किया है। इन्होने अपने शोध में कोयले के उत्खनन का प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र मे महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव के भी अध्ययन किया है। उत्खनन प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों के सतत विकास के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

यादव, रजनी (July 2016) ''कोरबा क्षेत्र के श्रमिकों पर कोयला खान उघोग का समाजिक प्रभाव-एक समाजषास्त्रीय अघ्ययन'' में शोधार्थी ने अपने शोध के अध्ययन में खान उघोग में कार्यरत श्रमिकों के खान उघोग में समायोजन के साथ उनके समाजिक पर्यावरण में समायोजन से संबधीत समस्या का अध्ययन किया है।

सिंह, जे.पी. (2017) ''आधुनिक भारत मे सामाजिक परिवर्तन'' इस विषय पर एक संपूर्ण शोध ग्रंथ के समान है। इस पुस्तक के द्वारा सामाजिक, सांसकृतिक व आर्थिक परिवर्तन को चरणबद्ध एवं वैज्ञानिक ढंग से समझने मे सहायता मिलती है।

परवीन, कु. शबाना (2017) ''कोयला उद्योग मे कार्यरत कर्मचारियों कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक दषा का अध्ययन'' जो कि छ0ग0 के सूरजपुर जिले के छः विकासखंड के विशेष संदर्भ में है, शोधार्थी ने अपने शोध के अध्ययन में जमीनी स्तर से प्राप्त आंकडों के आधार पर परिणाम, व्याख्या तथा निष्कर्ष दिया है। प्राप्त आंकड़ों तथा परिणामों का सांख्यिकी एवं चार्ट के रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है जिनसे इन्हे समझने मे आसानी होती है। प्राप्त आंकडों तथा परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन करने में आसानी होती है।

बघेल, डॉ. डी.एस.(2017) ''औद्योगिक समाज शास्त्र'' के लेखक ने उद्योग को एक सामाजिक संस्था माना है। वे लिखते है ''औद्योगीकरण कि प्रक्रिया को गति प्रदान करने मे सबसे बडा योगदान खनिज पदार्थो का है।'' इस पुस्तक के अध्ययन से औद्योगीकरण एवं समाज के बीच संबंध को आसानी से समझा जा सकता है।

दुबे, डॉ.कुमुद (Project Director),(2017)''उत्तर प्रदेश के विन्ध्यन क्षेत्र मे स्थानीय जनसंख्या के आजीविका पर खनन एवं खनन नितीयों का समाजिक आर्थिक प्रभाव का अध्ययन'' निती आयोग, भारत सरकार को संपे गये अपने शोध अध्ययन में शोध अध्ययन के प्रोजेक्ट डायरेक्टर ने विशेष रुप सरकार कि खनन नितीयों का खनन एवं खनन संक्रियायों से प्रभावित क्षेत्रों, परिवारों एवं रोजगाार व आर्थिक पक्ष में इनके खनन पर निर्भरता का अध्ययन किया है।

शोध का महत्व

राज्य के आर्थिक विकास में खनिज कोयले का महत्वपूर्ण योगदान है। कोयले के उत्खनन एवं इसके अद्यंगिकीकरण से राज्य को राजस्व प्राप्त होता है। जो कि राज्य के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण होता है। इस कारण राज्य शासन कोयले के खनन एवं औद्यौगिकिकरण से प्रभावित गाँवों के विकास के लिऐ विशेष ध्यान देती हैं। कोयले खनन से जुड़ी अद्यौगिक इकाईयाँ भी अपने अद्यौगिक समाजिक उत्तरदायीत्व (CSRद्ध के अतंर्गत अपने उत्तरदायीत्व को पूरा करने का प्रयास करती है, तथा इन प्रभावित क्षेत्रों के विकास के लिए विभिन्न योजनाओं व परियोजनाओं को प्रोत्साहन के अलावा विभिन्न समाजिक विकास कार्यक्रम भी चलाती है, जो कि परोक्ष रुप से उस क्षेत्र के विकास में सहायक होती हैं। राज्य शासन ने जिला स्तर पर खनिज संस्थान न्यास विभाग कि स्थापना कि है। यह विभाग जिला प्रषासन के आधिन कार्य करता है, जिसकी निगरानी के लिए राज्य स्तर पर राज्य निगरानी समिति का गठन किया गया है। इस विभाग का मुख्य उद्देश्य खनन एवं खनन से सबंधित संक्रियाओं से प्रभावित व्यक्ति, परिवार, एवं क्षेत्रों के हित व लाभ के लिए कार्य करना है। यह विभाग छत्तीसगढ. जिला खनिज सस्थान न्यास नियम, 2015 के अनुसार कार्य करती है।

प्रस्तुत शोध कार्य कि उपयोगिता का आँकलन इसी तथ्य किया जा सकता है कि निती आयोग, भारत सरकार ने वर्श 2015 में राश्ट्रय प्रद्योगिकीय संस्थान (NIT) Rourkela,Odisha के द्वारा उडिसा के आन्गुल जिले के महानदी कोलफिल्डस क्षेत्र में एक शोध अध्ययन कराया। इस शोध अध्ययन का मुख्य विषय कोयला उत्खनन के कारण प्रभावित क्षेत्र में भू-विस्थापन अंर पुर्नवास कि समस्या तथा ग्रामीणों में आजीविका के साधन के अन्य विकल्पों को पहचान करना था। इस शोघ को NIT,Rourkela ds Department of Huminities and Social Sciences के प्रो. डॉ.निहार रजंन मीश्रा के मार्ग दर्षन में किया गया। निती आयोग, भारत सरकार को संपे गये अपने शोध अध्ययन में प्रो. डॉ.निहार रजंन मीश्रा ने विशेष रुप से कोयले के उत्खनन से प्रभावित ग्रामीण समुदाय के समाजिक-सासंकृतिक संरचना मे परिवर्तन का उल्लेख किया। इन्होने अपने शोध में कोयले के उत्खनन का प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र मे महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव के भी अध्ययन किया। अपने शोध रिपोर्ट कई महत्वपूर्ण सूझाव दिये। इसी तरह का ही एक और शोध अध्ययन वर्श 2017 में निती आयोग, भारत सरकार ने डॉ. कुमुद दुबे, (Project Director), Centre for Social Forestry and Eco-Rehabilitation,Allahabad (UP) के मार्ग दर्षन में कराया। निती आयोग, भारत सरकार को संपे गये अपने शोध अध्ययन में डॉ. कुमुद दुब ने विशेष रुप सरकार कि खनन नितीयों का खनन एवं खनन संक्रियायों से प्रभावित क्षेत्रों, परिवारों एवं रोजगाार व आथिक पक्ष मे खनन पर निर्भरता का अध्ययन किया।

प्रस्तावित शोध का उद्देषय

बिलासपुर सभांग में कोयले का खनन, अद्यौगिक स्तर पर तीव्र गति से हो रहा है। आवश्यकतानुसार कोयले खान के विस्तार ने प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र के प्राकृतिक पर्यावरण एवं समाजिक पर्यावरण को अनेक स्तर पर प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप छ०ग० के ग्रामीण समाज में अनेंको सामाजिक-आर्थिक एवं सास्कृतिक परिवर्तन हो रहे है जिन्हे ठिक से समझने के लिए इनका अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन मे शोध के प्रमुख उदेश्य निम्न अनुसार है -

- छ०ग० के बिलासपुर संभाग मे कोयला उत्खनन से सर्वाधिक प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र के समाजिक-आथिक एवं सास्कृतिक सरंचना मे परिवर्तन का अध्ययन करना।
- छ०ग० शासन कि अद्यौगिक नीति तथा खान एवं खनिज नीति का बिलासपुर संभाग मे कोयला उत्खनन से प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र के समाजिक-आथिक एवं सास्कृतिक सरंचना मे परिवर्तन व विकास में प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों के ग्रामीण समुदाय के आर्थिक सरंचना एवं आजीविका मे परिवर्तन व विकास में शासकीय सस्थाओं एवं विभाग गैर-सरकारी सगंठनों की भूमीका का अध्ययन करना।
- कोयला उत्खनन उद्योग कि अद्यौगिक समाजिक उत्तरदायीत्व (CSR) नीति का प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों के ग्रामीण समुदाय के समाजिक जीवन पर प्रभाव।

शोध परिकल्पना

1. ग्रामीण समाज के आर्थिक विकास के लिये उपलब्ध खनिज संसाधनों का औद्योगीकीकरण बहुत आवश्यक है, क्योकि इससे न केवल उद्योगो का विकास होता है बल्कि रोजगार के नये अवसर उपलब्ध होते है, नये व्यापार के रास्ते खुलते है, कृषि का उन्नतीकरण कि संभावना बढ जाती है। तथा ग्रामीण समाज का नगरीय समाज मे रूपांतरण व परिवर्तन होता है।
2. राज्य कि खान एवं खनिज नीती का खनिज खनन गतिवीधीयों से प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र समुदाय के समाजिक-आथिक एवं सास्कृतिक सरंचना पर प्रभाव पड़ता है।
3. वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण आदि को प्रोत्साहन मिलता है। जिससे समाज मे व्यक्ति, परिवार, समुदाय तथा समाज कि आर्थिक स्थिति में सुधार होता ही है, एवं राश्ट्र की आय मे वृद्धि होती है।
4. शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी मुलभूत सुविधाओ के स्तर में सुधार व सकारात्मक परिवर्तन के साथ विकास देखने को मिलते है।
5. अद्यौगिक स्तर पर कोयला उत्खनन की प्रक्रिया में वन भूमी के अतिरिक्त कृषि योग्य भूमि का भी अधिग्रहण हो जाता है। परिणामस्वरूप खेती योग्य भूमि कि कमी हो जाती है। जिसका सीधा प्रभाव किसान और कृषि उपज पर पडता है। इसके साथ ही प्रभावित क्षेत्र में पुनर्वास एवं स्थापना जैसी समस्याएं उत्पन्न होती है।

6. कार्पोरेट सोषल रीस्पॉन्सिबिलिटी (CSR) के अतंर्गत औद्योगिक ईकाईयॉ प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रो अनेकों सामाजिक विकास कार्यो एवं योजनाओं को विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान करती है। परिणामस्वरूप उन क्षेत्रों के ग्रामीणों के जीवन स्तर में साकारात्मक परिवर्तन आते हैं एवं प्रगति के अनेक अवसर मीलते हैं।

अध्ययन हेतु शोध प्रविधि

शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, उत्खनन कि संक्रियाओं से प्रभावित गाँवों को शोध अध्ययन में शामिल किया जायेगा। चूंकी बिलासपुर संभाग में केवल रायगढ़ एवं कोरबा जिले में ही कोयले का उत्खनन होता है, अत: शोध अध्ययन में इन्ही दोनो जिलों के प्रभावित गाँवो का अध्ययन किया जायेगा। C.S.E (Center for Scince & Enviornment) कि प्रकाशित प्रतिवेदन छत्तीसगढ रिपोर्ट 2018 के अनुसार कोरबा जिले में ग्रामीण क्षेत्र के 202 गाँव तथा श्हरी क्षेत्र के 50 गाँव कोयला उत्खनन से प्रभावित हैं। इस प्रकार कोरबा जिले में कुल 252 गाँव कोयले के उत्खनन से प्रभावित हैं। रायगढ जिले में कुल 83 गाँव कोयला उत्खनन से प्रभावित हैं। शोध अध्ययन हेतू कोरबा जिले के 252 प्रभावित गाँवों से 25 अतिप्रभावित गाँवों का चयन सविचार निदर्षन विधी (Non-Probability Sampling) द्वारा किया जायेगा। रायगढ जिले से 10 अतिप्रभावित गाँवों का चयन भी सविचार निदर्षन विधी (Non-Probability Sampling) द्वारा किया जायेगा। इस प्रकार रायगढ एवं कोरबा जिले के कुल 35 अति प्रभावित गाँवों को शोध हेतू नमूने के रुप में अध्ययन हेतू लिया जायेगा। प्रत्येक चयनीत गाँव में से 40 परिवारों का समाजिक, जातिय संरचना और प्रभावित परिवारों के श्रेणी क्रम के आधार पर चयन प्रश्नावली के लिए किया जायेगा। इस प्रकार दानो जिले मिलाकर कुल 1,400 (चौदह सौ) प्रभावित परिवारों से प्रश्नावली के माध्यम से आँकडे एकत्र किये जायेंगे। इस प्रक्रिया में बहुस्तरीय निदर्शन का उपयोग होगा।

(क) अनुसंधान प्रारूप -

अन्वेषणात्मक शोध :-

जब किसी सामाजिक घटना क पीछे छिपे कारणो को ढुँढ निकालने की कोशीश की जाती है, ताकि किसी समस्या के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष के संबंध मे पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो सके। तब अध्ययन के लिए किसी शोध को सहारा लिया जाता है, उसे अन्वेषणात्मक शोध कहते है। इस प्रकार के शोध का उद्देश्य किसी समस्या के संबंध मे प्राथमिक जानकारी प्राप्त करके परिकल्पना का निर्माण और अध्ययन की रूप रेखा तैयार करना।

(ख) प्रस्तुत शोध के अध्ययन के लिए तथ्यो का संग्रहण प्राथमिक एवं द्वितीय स्त्रोतो का सहायता लिया जायेगा। :-

(अ) अध्ययन के प्राथमिक स्त्रोत

प्राथमिक स्त्रोत के अंतर्गत अवलोकन पद्धति, निर्दशन, तथा साक्षात्कार एवं साक्षात्कार अनुसुची पद्धति का सहयोग लिया जायेगा जिसके माध्यम से उत्तरदाताओ का चयन कर अध्ययन विषय से संबंधित तथ्यो का संलग्न किया जायेगा।

(ब) अध्ययन के द्वितीयक स्त्रोत

प्राथमिक स्त्रोत के अतिरिक्त द्वितीयक स्त्रोत मे शोधार्थी के द्वारा सरकारी दस्तावेज, आकड़े, जनगणना, पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, खनन एवं उद्योगो व औद्योगीकरण से संबंधित प्रकाषित पुस्तकें, शोध कार्य व शोध से संबंधित प्रकाशन, इन्टरनेट आदि का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जायेगा।

अध्ययन क्षेत्र का परिसीमन

चूँकि यह शोध कार्य छ०ग० के बिलासपुर संभाग के विशेष संदर्भ में है, जिसमें कोरबा, कोरिया, बिलासपुर, जाँजगीर-चाँपा एवं रायगढ़ जिले आते हैं। इसमे से कोयले कि उपलब्धता वाले जिले, रायगढ़ एवं कोरबा है। रायगढ़ में खनन-प्रभावित क्षेत्र जिले के नौ विकासखंडो में फैले हुए हैं। जिला खनन अधिकारियों द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार, यहां सात कोयला खदाने संचालित हैं।

रायगढ़ में, खदानों से 10 किलोमीटर की परिधि के भीतर आने वाले गांवों को जिले द्वारा 'प्रत्यक्ष प्रभावित' माना गया है। इस श्रेणी के अंतर्गत जिले के कुल 83 गांव आते हैं *(देखें तालिका 1: रायगढ़ जिले में प्रत्यक्ष प्रभावित गांव)*। रायगढ़ को छोड़कर, जिसमें शहरी जनसंख्या 53 प्रतिशत है, अन्य सभी क्षेत्र प्रमुख तौर पर ग्रामीण है। सबसे अधिक प्रभावित विकासखंड है तमनार, धरमजयगढ़, घरघोड़ा इत्यादि, जिनमें जनजातीय जनसंख्या भी अधिक है।

तालिका 1: रायगढ़ जिले में प्रत्यक्ष प्रभावित गांव

विकास खण्ड का नाम	प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र की संख्या
तमनार	15
खरसिया	12
घरघोडा	10
बारमकेला	12
रायगढ	11
सारंगढ	9
धरमजयगढ	7
लैलूंगा	4
पुसौर	3
कुल	**83**

कोरबा जिले कि जिला खनन अधिकारियों द्वारा प्रदान की गई जानकारी के अनुसार, यहां 15 कोयले खदान संचालित है। खनन प्रभावित क्षेत्र पांच विकासखंडों में फैले हुए हैं- कटघोरा, कोरबा, पौंडी उपरोड़ा, पाली और करतला। इन प्रत्येक विकासखंडों में खदानों से तीन किलोमीटर की परिधि के भीतर प्रत्यक्ष प्रभावित गांवों की पहचान की गई है। इस श्रेणी में कुल 202 गांव हैं। इनमें से ज्यादातर गांव ग्रामीण क्षेत्रों में है, और लगभग 25 प्रतिशत प्रभावित गांव कटघोरा और कोरबा विकासखंडों के शहरी हिस्सों में हैं *(देखें तालिका 2: कोरबा जिले में प्रत्यक्ष प्रभावित गांव)*। कटघोरा सबसे अधिक प्रभावित खनन विकासखंड है, जहां 55 प्रतिशत प्रत्यक्ष प्रभावित गांव हैं, जिसके बाद कोरबा का नाम आता है। कोरबा शहरी क्षेत्र के भीतर कुल 50 गाँवों को खनन से प्रत्यक्ष प्रभावित माना गया है। इस तरह कोरबा जिले में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के गाँवों को मिलाकर कुल 252 ग्रामों को प्रत्यक्ष प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र की सूची में रखा गया है। प्रत्यक्ष प्रभावित गांवों के अलावा, जिले के शेष हिस्से को अप्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित माना गया है। इसके पीछे तर्क यह है कि खनिज का परिवहन ज्यादातर क्षेत्रों में होता है, और वहां निवासरत लोग खनिज की धूल और प्रदूषण के संपर्क में आते हैं।

तालिका 1: कोरबा जिले में प्रत्यक्ष प्रभावित गांव

विकास खण्ड का नाम	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र की संख्या	षहरी क्षेत्रों में प्रभावित ग्रामीण क्षेत्र की संख्या
कोरबा	41	18
कटघोरा	111	32
पोंड़ी-उपरोड़ा	28	0
पाली	17	0
करतला	5	0
कुल	**202**	**50**

अत: इस शोध अध्ययन में रायगड़ एवं कोरबा जिले के केवल उन्ही ग्राम-ग्राम पंचायतों को शामिल किया जाएगा जो कि कोयले

के खनन, दोहन व औद्योगीकीकरण के प्रक्रिया से सर्वाधिक प्रभावित है। इन जिलों के प्रभावित ग्रामीण समुदाय का अध्ययन निर्देषन, अवलोकन, निदर्शन, साक्षात्कार, अनूसूची, प्रश्नावली, व्यक्तिगत अध्ययन से तथा अन्य आवश्यक अध्ययन पद्धितयों से शोध को समपन्न किया जायेगा।

शोध कार्य के संभावित परिणाम से लाभ

- कोयले के खनन से प्रभावित ग्रामीण समाज कि सामाजिक, सासंकृतिक, आथिक, शैक्षणिक, एवं स्वास्थ्य स्तर में परिवर्तन व विकास के अध्ययन से प्राप्त होने वाले संभावित परिणाम से विभिन्न सार्वजनिक अभिकरणों को लक्ष्य आधारित योजना बनाकर कार्य करने में सहायता मिलेगी।
- पूर्व में चल रहे विकास कार्यो व संबंधित योजनाओं से मिलने वाली लाभ का मूल्यांकन किया जा सकेगा।
- रोजगार, षिक्षा, एवं स्वास्थ्य से संबधीत प्राथमिक समस्याओं कों चिन्हित किया जा सकेगा।
- खनिज न्यास मद से हो रहे विकास कार्यो कि समीक्षा कि जा सकेगी।
- इन प्रभवित ग्रामों में विभीन्न सामाजिक समस्याओ के कारण व संभावित निदान प्राप्त हो सकें।
- खनन एवं औद्योगीकरण से प्रभावित गांवो के विकास व सामाजिक परिवर्तन के स्तर पर स्वच्छ भारत योजना, डिजिटल इंडिया योजना, मेक इन इंडिया, स्कील इंडिया, राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना, आयुषमान भारत योजना जैसी प्रधानमंत्री की महत्वकाक्षी योजना का संभावित परिणाम प्राप्त होंगे।
- पर्यावरण के परिप्रेक्षप्य मे भी संभावित परिणाम प्राप्त होंगे। जिसके हानिकारक स्वरूपों, कारणों के साथ-साथ संभावित उपाय भी प्राप्त हो सकेंगे।
- खनन व औद्योगीकरण के फलस्वरूप प्रभावित गांवो मे निवास करने वाले विभिन्न जनजातियों एवं अनुसुचित जनजातियों के जीवन स्तर मे आये बदलावों के कारण उनके सामाजिक स्वरूप मे परिवर्तन के स्तर को जाना जा सकेगा।
- जिला खनिज न्यास मद से मिलने वाली सामाजिक विकास कार्यो का विशलेषण किया जा सकेगा।
- शैक्षणिक स्तर पर इन गांवो के बच्चों के शाला त्यागने को संभावित कारणो, उपायों को खोजा जा सकेगा।
- खनन तथा औद्योगीकरण से प्रभावित गांवो एवं ग्रामीणों (भूविस्थापितों) के पुर्नवास एवं क्षतिपूर्ती से संबंधित अनेक पक्ष जैसे कि -
    - o पुर्नवास की समस्या
    - o पुर्नवास हेतु किये गये उपाय
    - o इन उपायों को लागू करते समय उत्पन्न समस्याओं के बारे मे अवलोकन किया जा सकेगा।

संदर्भ सूची

- Mishra, Dr. Niharranjan(2015) : Research Study on Coal Mining, Displacement and Rural Livelihoods:A Study in Mahanadi Coalfield Odisha. Department of Humanities and Social Sciences National Institute of Technology (NIT) Rourkela,Odisha-769008, India
- Dubey, Dr. Kumud (2017) Socio Economic Impact Study of Mining and Mining Polices on the Livelihoods of Local Population in the Vindhyan Region of Uttar Pradesh.2017., Centre for Social Forestry and Eco-Rehabilitation,Allahabad

- परवीन,कु.शबाना(2017), कोयला उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक दषा के अध्ययन, प्रिंटिंग एरिया (ISSN2394.5303) ख्ेनम.28ए।चतपस.2017ए समाज कार्य, Dr. C.V. Raman University, Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.).
- सिंह,जे.पी.(2016),आधुनिक भारत में समाजिक परिवर्तन, पी.एच.आई.लरनिंग प्राइवेट लि.,दिल्ली, भारत, द्वितीय संस्करण, ISBN:978-81-203-5232-2
- बघेल,डॉ.डी.एस.(2017),औधोगिक समाज शस्त्र, आर.के.ऑफसेट, पंचशील गार्डन, दिल्ली-32,भारत, पाँचवा संस्करण, ISBN:978-81-7004-2143-5
- बघेल,डॉ.डी.एस.(2017), भारत में ग्रामीण समाज शस्त्र, कैलाष पुस्तक सदन, भेपाल, पाँचवा संस्करण, ISBN:978-81-89900-75-5
- मदन,डॉ.जी.आर.(2018),परिवर्तन एवं विकास का समाज शास्त्र, आर.के.ऑफसेट, पंचशील गार्डन, दिल्ली-32,भारत, द्वितीय संस्करण, ISBN:978-81-7004-252-6
- www.ndli.iitkgp.ac.in
- www.ietd.inflibnet.ac.in
- http:èèwww.shodhganga.inflibnet.ac.in

औपनिवेशिक काल में बिहार के किसानों की विभिन्न समस्याएँ एवं आन्दोलनः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मो० शाहनवाज आलम

शोधार्थी, इतिहास विभाग, भू० ना० मं० वि० वि० मधेपुरा (बिहार)

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषणकारी नीति से सर्वाधिक प्रभावित लोगों में किसान ही थे। ब्रिटिश विभाजनकारी नीति के कारण बिहार में किसानों की पंचमुखी वर्गीकरण की स्थिति थी। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा उसके बाद ब्रिटिश प्रशासन ने अधिक से अधिक राजस्व की उगाही हेतु यहाँ के किसानों का अनेक स्तरों पर शोषण किया। जमींदारों, गुमास्तों, साहूकार, महाजनों आदि ने भी कृषकों का भरपूर दोहन किया, जिस कारण बिहार के किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय होती चली गई और आर्थिक कमजोरी के साथ-साथ उनका सामाजिक स्तर भी गिरता चला गया। बिहार के किसानों को कम्पनी एवं जमींदार दोनों के अत्याचारों का सामना करना पड़ता था। भूख, दरिद्रता और शोषण से पीड़ित किसानों ने अनेकों बार विद्रोह किये।

ब्रिटिश सरकार द्वारा यह योजना बनाई गई कि जमींदारों को जमीन की मालिक के रूप में स्वीकृत कर निश्चित अवधि के लिए, निश्चित लगान के बदले उन्हें जमीन दे दी जाय। इस उद्देश्य से जमींदारों के साथ 'दस शाला' प्रबन्धन किया। बाद में बिहार में इस व्यवस्था को चिर-स्थायी व्यवस्था या स्थायी व्यवस्था का स्वरूप प्रदन किया गया। इस व्यवस्था ने जमींदारों को जमीन का मालिक बना दिया, जमीन पर उनका स्वामित्व पैतृक हो गया। अब किसान मात्र रैयत के रूप में जमींदारों पर आश्रित हो गए। किसानों के भूमि संबंधी एवं अन्य पैतृक अधिकार समाप्त कर दिये गए। चिर-स्थायी प्रबंधन ने किसानों के दुर्दिन ला यि, उन्हें अत्याचारी जमीन्दारों की दया पर छोड़ दिया गया। उनके परंपरागत अधिकार (सार्वजनिक चारागाह, जंगल, मछली पालन इत्यादि) छीन लिये गए और उन्हें जमींदारों को व्यक्तिगत रैयत बना दिया गया। इतना ही नहीं, पैदावार पर भी उनका एकाधिकार नहीं रहा। जमींदार उनसे मनमानी राशि वसूल कर कम्पनी को निश्चित रकम देते थे और शेष अपने पास रख लेते थे, साथ ही उन्हें जमींदारों को बेगार, उपहार, नजराना इत्यादि भी देना पड़ता था। फलतः किसानों की स्थिति दयनीय होती गई। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक कुटिर उद्योग विनाश के कगार पर पहुँच चुकी थी। महाजनी व्यवस्था भी मंदा पड़ गया था। अतः महाजनों और साहूकारों ने अपना धन, जमीन में ही लगाना श्रेष्यकर समझा वे ऋण पर किसानों को लगान चुकाने के लिए धन देते थे। जब किसान ऋण अदा नहीं कर पाता था, तब महाजन किसान की जमीन निलाम करवाकर उसपर अपना कब्जा कायम कर लेता था। इस प्रकार धीरे-धीरे महाजन वर्ग भू-पति बन गया और किसान अपनी जमीन खोकर मजदूरों की श्रेणी में आ गया।

अंग्रेजी कम्पनी के द्वारा स्थायी बंदोवस्त लागू किए जाने के उपरांत बिहार में दरभंगाराज, बेतियाराज, हथुआराज, छोटानागपुरराज, बाधीराज, डुमरांव राज और पातेपुराराज जैसे अनेकों राज को जमींदार का दर्जा दिया गया और उनके साथ राजस्व वसूलने का अनुबंध किया गया। एक बार जमीन का मालिक बन जाने पर अन्य जगहों की तरह बिहार के जमींदारों ने किसानों के ऊपर तरह-तरह के जोर-जुल्म करने शुरू किये। उन्होंने अपने दीवान, पटवारी, गुमास्त एवं मुंशियों के माध्यम से लगान वसूलना शुरू किया और किसानों को मजबूर किया कि वे अपने उपज का अधिक से अधिक भाग लगान के रूप में दे। इनलोगों ने अब अपने ही लोगों पर जोर-जुल्म करना शुरू कर दिया और जोर-जबरदस्ती से राजस्व की उगाही करने लगे। समय पर राजस्व नहीं दे पाने पर किसान की जमीन

भी अब नीलाम की जाने लगी, उनकी बहू-बेटियों को जमींदारों द्वारा उठाया जाने लगा। इन जमींदारों ने इस क्षेत्र में महाजनों, व्यापारियों एवं सूदखोरों का प्रवेश करवाया और किसानों के इज्जत के साथा खिलवाड़ शुरू हुआ।

इस प्रकार ब्रिटिशों तथा उनके द्वारा पोषित जमींदारों के अत्याचार से विवश होकर किसानों द्वारा विभिन्न आन्दोलन चलाया गया। 1905 ई0 से 1908 ई0 के मध्य मोतिहारी और बेतिया के निकटवर्त्ती इलाकों में किसानों ने पहली बार आन्दोलन किया, परन्तु इस आन्दोलन का कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। किसानों पर आन्दोलन के लिए मुकदमें चलाये गये, अनेकों को सजा भी हुई, लेकिन किसानों ने भी हार नहीं मानी और उन्होंने अपना संघर्ष जारी रखा। 1907-08 ई0 में निलहों के अत्याचारों के खिलाफ किसानों ने एक गुप्त संगठन कायम किया। 'बिहारी' के संपादक महेश नाराायण ने सरकार की ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। चम्पारण उत्तर बिहार में नेपाल से सटे एक स्थान है जहाँ नील की खेती बहुत दिनों से होती थी। इस क्षेत्र में अंग्रेज बगान मालिकों को रामनगर और बेतिया राज में जमींदारी की ठेकेदारी दी गई थी। इन लोगों ने इस क्षेत्र में ''तीनकठिया'' प्रणाली लागू कर रखी थी, इसके अनुसार प्रत्येक किसान को अपनी खेती योग्य भूमि के 15 प्रतिशत भाग पर नील की खेती करनी पड़ती थी, इतना ही नहीं किसान अपना नील बाहर नहीं बेच सकते थे उन्हें बाजार से कम निश्चित मूल्य पर बगान मालिकों को ही माल बेचनी पड़ती थी। इससे किसानों का आर्थिक शोषण होता था। 1900 ई0 के बाद जब नील की खपत कम होने लगी और इसका मूल्य घटने लगा तब नीलहों ने इस क्षति की पूर्ति भी किसानों से ही करनी चाही। उनपर अनेक प्रकार के नये कर लगा दिए गए। चम्पारण के किसानों से मुड़वन, फगुआही, दशहरी, सट्टा, सिंगराट, घोड़ावन, लटियावन, शरहवेशी, दस्तूरी, तवान, खुशकी समस्त समेत 46 प्रकार के अवैध कर वसूले जाते थे। कर वसूली की विधि भी बर्बर और अमानवीय थी। नील की खेती से भूमि बंजर होने का एक अलग भय था।

अगर कोई किसान नील की खेती से मुक्त होना चाहता था तो उसके लिए आवश्यक था कि वे बगान मालिक को एक बड़ी राशि 'तवान' के रूप में दे। किसानों से बेगारी भी लिया जाता था, उन्हें शारीरिक कष्ट भी भोगना पड़ता था। वस्तुतः चम्पारण में नील की खेती करने वाले किसानों की स्थिति बंगाल के किसानों से भी अधिक दयनीय थी। 10 अप्रैल 1914 को ब्रजकिशोर प्रसाद ने कांग्रेस के बिहार प्रांतीय सम्मेलन में अध्यक्षीय पद से भाषण देते हुए चम्पारण के किसानों पर हो रहे अत्याचारों को समापत करने पर बल दिया। 1916 ई0 के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में ब्रजकिशोर प्रसाद ने चम्पारण के एक मध्यम वर्गीय किसान राजकुमार शुक्ल के साथ महात्मा गाँधी जी से भेंट कर उन्हें सारी बातों से अवगत कराया। गाँधी ने बिहार के नेताओं को आश्वासन दिया कि वे कलकत्ता जाते समय चम्पारण की यात्रा करेंगे। तदनुसार गाँधी जी 10 अप्रैल 1917 ई0 को पटना पहुँचे, उसी दिन वे मुजफ्फरपुर पहुँचे और वहाँ से 15 अप्रैल 1917 ई0 को मोतिहारी पहुँचे। गाँधी जी ने 2900 गाँवों के 13 हजार किसानों की स्थिति का जायया लिया। 1916 में लगभग 21900 एकड़ जमीन पर आसामीवार, जिरात, तीन कठिया आदि प्रथा लागू थी।

उनके साथ राजेन्द्र प्रसाद, रामनवमी प्रसाद, धरनीधर प्रसाद, रामरक्ष ब्रहम्चारी, अनुग्रह नारायण सिंह, ध्वाजा प्रसाद साहू एवं जे. वी. कृपलानी आदि मौजूद थे। स्थानीय प्रशासन ने उनके आगमन पर रोक लगा दी और गाँधी जी को अवज्ञा करने पर गिरफ्तार कर लिया गया। अदालत में उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया, लेकिन इस बात पर जोर दिया कि उन्होंने ऐसा दमन का प्रतिकार करने के लिए किया है, अंततः प्रशासन को झुकना पड़ा। बिहार के उप-राज्यपाल एडवार्ड अल्बर्ट गेट ने एक चम्पारण एग्रेरियन समिति नामक जाँच समिति बनाई जिनमें एक सदस्य गाँधी जी भी थे। इस समिति की अनुशंसा पर ही दमनकारी 'तीन कठिया' व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। किसानों से अवैध रूप से वसूले गये धन का 25 प्रतिशत वापस कर दिया गया। 1919 ई. में चम्पारण एग्रेरियन अधिनियम' पारित किया गया, जिससे किसानों की स्थिति में सुधार हुआ।

बिहार में चम्पारण के अतिरिक्त दरभंगाराज में भी किसान आन्दोलन हुआ। इस आन्दोलन का कारण भी राज्य के अधिकारियों (छोटे जमींदारों) द्वारा किसानों का शोषणा था। जमींदारों के साथ किसानों का चारागाह या लकड़ी संबंधी विवाद भी होते थे। जमींदार किसानों से लगान के अतिरिक्त अन्य प्रकार के करों की वसूली भी जरदस्ती करते थे। इस शोषणों के विरूद्ध किसानों में असंतोष की भावना सुलग चुकी थी। 1919 ई0 से किसान इन शोषणों के विरूद्ध संगठित होने लगे। किसानेां की सभाऐं हुई। विभूति प्रसाद, स्वामी विद्यानन्द के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने मधुबनी सब-डिविजन के 'नरार' गाँव के किसानों को संगठित कर, जून 1919 ई0 में आंदोलन की शुरूआत की। शीघ्र ही यह आंदोलन करीब 17 अन्य गाँवों में फैल गया। उसके बाद यह आंदोलन पूर्णिया, सहरसा, भागलपुर एवं मुंगेर के कुछ इलाकों में फैल गया। स्वामी विद्यानन्द ने कांग्रेस से सहयोग मांगा, शुरू में कांग्रेस ने कुछ

सहानुभूति का प्रदर्शन किया, लेकिन शीघ्र ही दरभगा महाराज ने कांग्रेस के अन्तर्गत अपने प्रभाव का उपयोग किया और कांग्रेस ने इस आंदोलन के प्रति उदासीनता का रूख अपनाया। आंदोलन धीरे-धीरे हिंसात्मक होता चला गया, भयभीत होकर दरभंगा महाराज ने नेतृत्व में 1922 ई0 में 'प्रातीय किसान सभा' का गठन किया गया और इस बात का दावा किया गया कि यही संस्था सही अर्थों में किसानों का शुभचिंतक है। इस संस्था के सचिव के रूप में राय बहादुर शिवशंकर झा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वस्तुतः किसानों ने इस संस्था को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया। दरभंगाराज ने किसानों के असंतोष को दूर करने के लिए कुछ रियायतों की घोषणा की और स्वामी विद्यानंद का आंदोलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1920 ई0 के नागपुर अधिवेशन में 'कर' नहीं दो का नारा दिया गया। बिहार के कुछ स्थानों पर जमींदारों को किसानों द्वारा लगान नहीं दिया गया। किसान सभा और असहयागियों द्वारा आयोजित सभाओं के प्रति किसानों ने काफी उत्साह दर्शाया। उत्तर बिहार के अनेक देशी रियाशतों द्वारा तथा बगान मालिकों को लगान भुगतान नहीं किया गया, सारण जिले की स्थिति ज्यादा गम्भीर थी। अनेक स्थानों पर किसानों ने राजस्व वसूली एवं नीलामी का भी विरोध किया। 1922-23 ई0 में शाह मुहम्मद जुबैर एवं श्रीकृष्ण सिंह द्वारा 'किसान सभा' की स्थापना की गई। 4 मार्च 1928 ई0 को पटना जिला के 'बिहटा' नामक स्थान पर स्वामी शहजानंद सरस्वती ने किसान सभा की औपचारिक स्थापना कर किसान आंदोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण कार्य किया। 1929-33 ई0 के विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी के कारण किसानों पर और अधिक बुरा प्रभाव पड़ा, कृषि उत्पादों के कीमत में कमी आ गई, जिस कारण कृषक वर्ग को अपना लगान चुकाने में असमर्थ हो गये, जमींदारों द्वारा कृषकों की मजबूरियों का फायदा उठाया गया तथा गैर कानूनी तरीके से किसानों की जमीनों पर कब्जा कर लिया गया। अब किसानों के समक्ष अपनी अस्तित्व को बचाये रखने के लिए आंदोलन के अलावा दूसरा और विकल्प नहीं था। किसानों की उग्रता को देखकर जमींदार में भय का माहौल बन गया, जिस कारण उन्होंने दरभंगा महाराज के अध्यक्षतता में 'यूनाईटेड पॉलिटिक्स पार्टी' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य किसान आंदोलन को शिथिल करना था।

1934 ई0 में कांग्रेस पार्टी के अन्तर्गत कुछ युवा समाजवादी विचारधारा वाले जय प्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्द्धन, अशोक मेहता, एम.एल. दंतवाला आदि जैसे नेताओं ने कांग्रेस के भीतर एक सच्चे सम्राज्यवादी विरोधी संगठन के रूप में 'कांग्रेस समाजवादी पार्टी' की स्थापना किया, जिसके प्रथम अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव और महासचिव जयप्रकाश नारायण जी को बनाया गया। इन सामाजवादियों ने स्वामी शहजानंद के नेतृत्व वाले किसान संगठन का स्वागत किया और अपना पूर्ण समर्थन दिया। उन्होंने प्रांतीय कांग्रेस के उपर दबाव डाला कि किसानों की दुर्दशा के लिए एक जाँच समिति का गठन किया जाय। जाँच समिति का गठन डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा किया गया, परन्तु समति की रिपोर्ट पर ईमानदारी से अमल नहीं किया गया। परिणामस्वरूप किसान नेता और कांग्रेस के कार्यकर्ता आमने-सामने आ गये। स्वामी शहजानंद एवं उनके सहयोगियों के कार्यक्रम को कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं द्वारा असफल बनाने की चेष्टा की गई। निश्चित तौर पर कांग्रेस और किसान सभा के बीच सम्बन्ध काफी तनावपूर्ण हो गया, अंततः जवाहर लाल नेहरू को हस्तक्षेप करना पड़ा।

किसानों के समस्याओं का निदान करने हेतु 1936 ई0 में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की गई। अप्रैल 1936 ई0 में लखनउ में स्वामी शहजानंद सरस्वती की अध्यक्षता में अखिल भारतीय किसान सभा का पहला अधिवेशन हुआ। अगस्त 1936 ई0 में किसान घोषणा पत्र जारी किया गया, घोषणा पत्र में किसानों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए उत्प्रेरित किया गया, परन्तु मुख्य माँग किसानों की स्थिति से ही संबंधित रही, जिसमें जमींदारी व्यवस्था समाप्त करने, किसानों को जमीन का मालिक बनाने, बेगारी प्रथा समाप्त करने, कर्ज समाप्त करने, लगान की राशि में पाँच प्रतिशत की कमी करने एवं जंगल संबंधी अधिकार किसानों को देने इत्यादि की मांगे रखी गई। किसानों द्वारा अपनी मांगों के समर्थन में पूरे देश में प्रदर्शन किया गया एवं 1 सितम्बर 1936 ई0 को पूरे देश में 'किसान दिवस' के रूप में मनाया गया। बिहार में जमींदारों के विरूद्ध मुंगेर जिले के बड़हिया में जमींदारों द्वारा किसानों के जमीनों को 'बकाश्त जमीन' में बदले के विरोध में एक बड़ा आंदोलन नवम्बर 1936 ई0 में आरंभ हुआ। बिहार में प्रांतीय किसान सभा के नेतृत्व में मुख्यतः मुंगेर, गया, पटना, दरभंगा, चम्पारण, सारण और शाहाबाद जिले में किसान आंदोलन हुआ। इन संघर्षों का नेतृत्व स्वामी शहजानंद सरस्वती के देख-रेख में पंडित कार्यानन्द शर्मा, पंडित यदुनंदन शर्मा, महापंडित राहुल संकृत्यायन, पंडित यमुना कार्जी एवं पंडित रामनंदन मिश्र जैसे चोटी के नेताओं ने किया था। संघर्षोंपरांत कांग्रेस ने अपने चुनावी

घोषणा पत्र में किसानों का दशा सुधारने का वादा किया। 1937 के चुनाव में बिहार में कांग्रेस को आशतित सफलता मिली और सफलता का श्रेय किसान सभा ने अपने उपर लिया। कांग्रेस के नई सरकार के सामने अब्दुल बारीक एवं रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे नेताओं ने जमींदारी उन्मूलन का मांग रखा। कांग्रेस मंत्री मंडल को एक सीमा के अंतर्गत काम करना था, वह ऐसा कोई कदम नहीं उठा सकती थी, जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का ढ़ांचा चरमरा जाता इससे किसान सभा के नेताओं को घोर निराशा मिली, स्वामी सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व में करीब 50 हजार किसानों ने बिहार विधान सभा को घेरा और प्रधानमंत्री श्रीकृष्ण सिंह एवं कांग्रेस अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद के विरूद्ध नारेबाजी की गई। किसानों के लगान और जलकर घटाने, जमींदारों द्वारा छीनी गई जमीन वापस करने एवं भूमि अधिकार कानून में संशोधन करने की मांग की गई। बाध्य होकर सरकार को लगान विधेयक' पेश करना पड़ा। परिणामस्वरूप बकास्त भूमि अधिनियम, मुजारा अधिनियम इत्यादि से किसानों को कुछ राहत मिली। परन्तु उनकी मुख्य मांग जमींदारी प्रथा की समाप्ति पूरी नहीं हो सकी। कांग्रेस सरकार ने जमींदारों के प्रति समझौतावादी नीति अपनाई।

1938 ई0 तक किसान सभा सश्क्त हो चुकी थी, इसकी सदस्य संख्याँ में आशातित वृद्धि हुई। 1938 ई0 में बिहार में किसान सभा के सदस्यों की संख्या 2 लाख 50 हजार तक पहुँच चुकी थी। 1939 ई0 के अन्त में प्रांतीय सरकार के त्यागपत्र एवं खाद्यान्न मूल्यों में 20 प्रतिशत की वृद्धि के पश्चात आन्दोलन की गति मंद होने लगी द्वितीय विश्वयुद्ध तक आते-आते स्वामी सहजानन्द सरस्वती मार्क्सवादी विचारधार की ओर आकृष्ट होने लगे और वर्ग संघर्ष के आधार पर उन्होंने किसान आन्दोलन को बढ़ाने का निर्णय लिया। इसके कारण जयप्रकाश नारायण ने 'रेड किसान सभा' का गठन किया। समाजवादी आन्दोलन के अस्तित्व में आ जाने के कारण किसान आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा। स्वामी जी एवं उनकी किसान सभा 1942 ई0 के महान जन आन्दोलन से अपने आप को दूर रखा। जयप्रकाश नारायण 1942 ई0 के जन आन्दोलन के सबसे बड़े नायक के रूप में उभरें। उनके नेतृत्व में किसानों ने 1942 ई0 के भारत छोड़ो आन्दोलन को यादगार आन्दोलन के रूप में परिवर्तित कर दिया और भारत की आजादी को काफी करीब ला दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को अब ऐहसास हो गया भारत के गांव में जन आन्दोलन फैल चुका है और उसे कुचलना उसके वश की बात अब नहीं है।

निष्कर्षत: औपनिवेशिक काल में बिहार के किसानों की समस्याओं एवं उकने द्वारा किए गए आन्दोलन से जानकारी प्राप्त होती है कि ब्रिटिश राज के द्वारा किसानों पर विभिन्न प्रकार के लगान एवं कर लगा दिए गए थे और उनकी समस्या दिन व दिन बढ़ती ही चली जा रही थी। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय जमीनदारों एवं साहूकारों के माध्यम से स्थाई बन्दोवस्त, परंपरागत अधिकार (सार्वजनिक चारागाह, जंगल, मछली पालन इत्यादि) से वंचित किया जाना तीनकठिया प्रथा किसानें की भूमि जबरन छीन लेना आदि बर्बरता पूर्ण कार्य करवाया गया। जिससे किसानों की आर्थिक स्थित कमजोर होती चली गई और जो किसान कल तक भूमि का स्वामी हुआ करता था वो ब्रिटिश साम्राज्य में एक खेतिहर मजदूर बनकर रह गया। आर्थिक क्षति के साथ-साथ बिहार के किसानों की सामाजिक अवस्था भी देयनीय हो चुकी थी। समाज के मध्यम वर्ग से नीचे गिरकर वह मजदूर की श्रेणी में आ चुके थे। जिस कारण समय-समय पर किसानों को अपनी अस्तित्व बचाये रखने के लिए किसान आन्दोलन के माध्यम से अपनी हक की लड़ाई लड़नी पड़ी। परन्तु किसानों की समस्याओं का निदान भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही संभव हो सका।

संदर्भ सूची :-

1. वी.डी. महाजन, ब्रिटिश रूल इन इंडिया एण्ड आफटर।
2. पार्था चटर्जी, नेशनल थाउट एण्ड दि कोलोनियल वर्ल्ड : ए डेरिवेटिव डिसकोर्स (दिल्ली, 1986)
3. ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, इकोनोमिक डिस्लोकेशन इन नाइनटिन्थू सेन्च्यूरी यू.पी. सम इम्पलिकेशन ऑफ दि डिकलाइन ऑफ आर्टिशनल इन्डस्ट्री इन कोलोनियल इंडिया इन पी. रोव (इंडि.) रूरल साउथ एशिया।
4. सुभाष चक्रवर्ती दि राज सिन्ड्रोम-ए स्टडी इन इम्पेरियल परसेप्सन्स (दिल्ली, 1989)
5. बी.वी. मजमूदार, इंडियन पॉलिटिकल एसोसिएशन एण्ड रिफोर्म ऑफ लेजीस्लेटर 1818 - 1917 (कलकत्ता-1965)
6. जे. आर. मेकलेन, इंडियन नेशनालिज्म एण्ड द अर्ली कांग्रेस (प्रिंसटन 1977)
7. सुमित सरकार, पोपुलर मुवमेंट्स एण्ड मिडिल क्लास इन लेट कोलोनियल इंडिया: परसेपेक्टिव एण्ड प्रॉवलेम्स ऑफ ए हिस्ट्री फॅम बिलोअ, सेन्टर फॉर स्टडीज इन सोशल साईस कलकत्ता 1983

8. बी.सी. जोशी (एडि.), राममोहन राय एण्ड द प्रोसेस ऑफ मॉर्डन इजेशन इन इंडिया (विकास पब्लिकेशन, दिल्ली, 1975)
9. बीपिन चन्द्र, आधुनिक भारत, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली।
10. प्रसाद, के.एन, बिहार के साधन कृषि और उद्योग।
11. भाले राव, डॉ0 म0 म0, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
12. अकाल जाँच आयोग 1945 का प्रतिवेदन।
13. भारतीय खेत मजदूर यूनियन का पाँचवा राष्ट्रीय सम्मेलन (रिपोर्ट एवं प्रस्ताव), राजगीर, बिहार।
14. कांग्रेस कृषि सुधार समिति, रिपोर्ट, 1939-47
15. प्रथम कृषि श्रम जाँच समिति, 1950-51

मौर्यकालीन समाज में गुलाम वर्गों के जीवन स्तर में आये परिवर्त्तन का समाज पर प्रभाव

डॉ० मनीष कुमार

शोधार्थी (इतिहास विभाग), भू0 ना0 मं0 वि0 वि0, मधेपुरा (बिहार)

भारत में गुलाम वर्ग एवं दास प्रथा का प्रचलन प्राचीन काल से ही रहा है। दास संज्ञा प्राधीनता का द्योतक है और पराधीन व्यक्ति के भाग्य में सुख कहॉ ? दासों के सुख-दु:ख के विधाता तो उनके स्वामी थे। वस्तुत: भारत के प्राचीनतम ग्रंथ वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध ग्रंथ, जैन ग्रंथ में भी उपलब्ध है। ऋग्वेद में आर्यो तथा अनार्यो का वर्णन है। ऋग्वेद में अनार्यो की भर्त्सना की गई है। उन्हें दास, दुस्यु या असुर की संज्ञा दी गई है। अनार्यो की स्थिति अच्छी नहीं थी। आर्यो-अनार्यो का संघर्ष तबतक चलता रहा जबतक कि आर्यो ने अनार्यो को बुरी तरह पराजित न कर दिया। युद्ध में हारने के पश्चात उन्हें दास या गुलाम बना लिया गया। इनमे शेष लोगों को विवश होकर दूर जंगल गिर-कंदराओं की शरण लेनी पड़ी या तो अधिनता स्वीकार करनी पड़ी। फलस्वरूप इस दास या दस्यु जाति के इतने अधिक लोग गुलाम बनाये गए कि दास शब्द का अर्थ ही गुलाम हो गया।

उत्तरवैदिक काल में समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया। ब्राह्मण को सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त था। क्षत्रिय योद्धा वर्ग के प्रतिनिधि, वैश्य कृषि और व्यापार के संचालक तथा शुद्र अर्थात स्त्री एवं दास वर्ग मजदूर और गुलाम बन गए। इस पर तीनों वर्गो का नियंत्रण हो गया जिसे भी दास वर्ग में रखा गया, गुलाम बनाया गया जो ब्राह्मण की सेवा करता था। औरत की तीन व्याधियों में एक व्याधि मानी गई। किसी सभा परिषद् आदि में जाने से रोक दिया गया। दासों की उपस्थिति का प्रमाण एतरेय और गोपथ ब्राह्मण में हुआ है किन्तु गुलाम के अर्थ में नहीं। ध्यान देने कि बात यह है कि निघण्टु में चाकर का काम करने वालों की सूची दी गई है उनमें कहीं भी दासों का उल्लेख नहीं है। यद्यपि चाकर शब्द के 10 प्रत्याय दिए गए हैं। संभवत: दासों की संख्या इतनी कम थी कि उस ओर लोगों का ध्यान नहीं गया होगा।

बौद्धकालीन समाज में भी स्त्री एवं दास वर्ग का चित्रण शुद्र एवं दास के रूप में मिलता है। शुद्र प्रमुखत: सेवक और मजदूर के रूप में कार्य करते थे। जातक कथाओं में भी स्त्री एवं दास का वर्णन मिलता है। दासों के प्रति दासपतियों का व्यवहार सदैव कठोर रहा। दासों का क्रय-विक्रय भी किया जाता था। जैन धर्म के समय में भी स्त्री एवं दास का अस्तित्व कायम था। बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म में निम्न जातियों के प्रति बहुत ही उदार दृष्टिकोण अपनाया। इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध एवं जैन के समय में भी स्त्री एवं दास वर्ग कायम था।

प्राचीन पालिग्रंथों के अन्य प्रसंगों में खेत पर काम करने वालों के रूप में शूद्र को तो नहीं लेकिन दासों और कर्मकारों की चर्चा है। इसमें संदेह की गुजाईश नहीं कि भूमिहीन शुद्र या कर्मकारों के रूप में काम करते थे। ऐसे भी प्रमाण मिले है। कि अधिकांश दास शुद्र वर्ण के थे। यह निष्कर्ष ''सुद्दों वा'' और ''सृदद दासों वा'' वाक्यांशों से निकाला जा सकता है। जिसका प्रयोग बुद्धदेव ने प्रथम तीनों वर्णो की गणना कराने के बाद शुद्र की स्थिति स्पष्ट करने की दृष्टि से किया था। ''सृद्द दासों वा'' का अनुवाद किसी व्यक्ति का गुलाम कहना गलत होगा। यह महत्वपूर्ण वाक्यखण्ड समानाधिकार का स्पष्ट उदाहरण है और इसका तात्पर्य है- शुद्र, जो गुलाम हो। क्षत्रिय, ब्राह्मण और श्रेष्ठि को छोड़कर जिन्हें अन्यत्र गुलामों का मालिक बताया गया है। यहॉ शुद्रों को गुलामों का मालिक कैसे बताया गया। इसकी कोई व्याख्या नहीं है। ओल्डेन वर्ग ने ठीक ही यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रसंगाधिन विवरण शुद्रों और दास में कोई अन्तर नहीं करता है।

मौर्यकालीन समाज के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी कोटिल्य के ''अर्थशास्त्र'' मेगास्थनीज की ''इण्डिका'' एवं अशोक के अभिलेख से मिलती है। कोटिल्य के अर्थशास्त्र में समाज को चार वर्गो में विभाजित किया गया है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। शुद्र ही स्त्री एवं दास वर्ग माने गये। कोटिल्य ने सभी वर्ण के स्वधर्म को स्थापित करते हुए शुद्र के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना ही उसका स्वधर्म बताया। स्त्री एवं दास वर्ग के अन्तर्गत चाण्डाल की भी गिनती होती थी। कोटिल्य ने अर्थशास्त्र में 9 प्रकार के दासों का उल्लेख किया है :- 1. उदर दास, 2. दण्डप्रणीत, 3. दयागत, 4. लब्ध, 5. क्रीत, 6. गृहेजात, 7. आत्मविक्रय, 8. आहितक और 9. ध्वजादृत।

दास प्राय: अनार्य लोग ही होते थे जिसकी खरीद-बिक्री हाती थी। ऋण नहीं चुकाने पर भी दास बनना पड़ता था। परन्तु ऋण चुका देने पर या अपने स्वामी को मूल्य दे देने पर कोई भी दास अपनी दासता से मुक्त हो सकता था। दासों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था। दासों का आर्थिक महत्व था। इसलिए दासों के अस्तित्व को कानूनी स्वीकृति दी गई थी। दासों को कृषि कार्य एवं अन्य आर्थिक व्यवसायों में लगाया जाता था। कुछ दास घरेलु कार्य भी करते थे। स्त्रियों तथा बच्चों को भी दास बनाया जाता था। आजीवन दासों पर स्वामी का असिमित अधिकार था लेकिन आहितकों (अस्थायी दास) को कुछ सुविधायें प्राप्त थी। इनके साथ सामान्य दासों की तुलना में अधिक उदारतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। उन्हें धृणित कार्य करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था और न हीं उन्हें बेचा या बंधक बनाया जा सकता था। अस्थायी दास निश्चित अवधि के बाद स्वामी के इच्छा के बिना भी स्वतंत्र हो सकते थे। स्पष्ट है कि मौर्यकाल में दासों की स्थिति अच्छी थी। मेगास्थनीज और अन्य युनानी लेखकों की धारणा थी कि मौर्यकालीन भारतीय समाज में दास प्रथा प्रचलित नहीं थी। मेगास्थनीज के अनुसार भारत में सभी स्वतंत्र और समान है। उनमें कोई भी दास नहीं है। डायोडोरस भी मानता है कि कानून के अनुसार कोई किसी को दास नहीं बना सकता है।

अर्थशास्त्र में दासों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए धर्मसुत्रों के लेखकों की तरह कोटिल्य ने आर्य को स्वतंत्र माना है और कहा है कि किसी भी स्थिति में आर्य को गुलाम नहीं बनाया जा सकता। इसके परिणाम स्वरूप उन्होंने नियम बनाया कि जो शुद्र जन्मजात गुलाम न हो, व्यस्त नहीं हुआ हो उसका रिश्तेदार बेचे या बंधक रखते हैं तो उन्हें 12 पण जुर्माना किया जाएगा। इस तरह के कार्य से जितने भी लोग संबंधित होंगे उन सबको कठोर दंड दिया जाएगा। कोटिल्य ने युद्ध में बंधी बनाये गये आर्यप्राण को गुलाम बनाये जाने का हवाला दिया है। कोटिल्य ने प्राधिनता से मुक्ति के लिए दो अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया है ''आर्यत्वम'' किन्तु जब आर्योत्तर गुलामों को मुक्त करने का प्रश्न आया तब ''उदास'' शब्द का प्रयोग किया गया। उदाहरण स्वरूप यह बताया गया है कि यदि कोई मालिक अपनी दासी से बच्चा पैदा करे तो मॉ और बच्चा दोनों मुक्त समझे जायेंगे। यदि ऐसी कोई मॉ अपने परिवार के भरण-पोषण के विचार से गुलाम बने रहने का ही निश्चित करे तो उसके मॉ, भाई और बहन को मुक्त कर दिया जाएगा। मालूम होता है कि ये दास गुलाम तो नहीं रह जाते थे किन्तु आर्य नहीं बन सकते थे।

मौर्यकाल ने दास प्रथा में वृद्धि हुई। केवल राजा, सामंत और गृहस्थ के यहॉ ही नहीं वरन बौद्ध मठों, वैष्णव, शैव और शाक्त मंदिरों में भी दास रहते थे। इस युग में दास प्रथा के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए धर्म शास्त्रों के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन ग्रंथों, शिलालेखों तथा विदेशी यात्रियों के वृतांतों से भी सूचना प्राप्त होती है। विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में नारद द्वारा कथित 15 प्रकार के दासों का उल्लेख किया है। इनमें से 7-8 प्रकार के दासों के अस्तित्व की पुष्टि अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों तथा शिलालेखों से होती है। इनमें से गृहज या उदर दास सर्वसाधारण थे। लेखपद्धति के एक लेख में 504 विशलप्रिय (चहमान राजा, विशलदेव के नाम से प्रचलित एक सिक्का) में एक दासी की खरीद के संबंध में क्रयपत्र है जिसमें यह बताया गया है कि इस क्रय की घोषणा सारे नगर में की गई। जैन ग्रंथ समराइच्छ तथा प्रबंधचिन्तामणि में दास व्यापार की अनेक कथाऐं हैं जिनसे पता चलता है कि दास व्यापार नियमित रूप से चल रहा था। इन कथाओं से यह ज्ञात होता है कि दासों का निर्यात भी होता था। कहा जाता है कि बीरधवल के मंत्री तेजपाल ने नाविकों द्वारा मनुष्यों के अपहरण पर रोक लगा दी थी। लेखपद्धति के अनुसार वस्तुओं के विनिमय में दासों का निर्यात समूद्री मार्ग से पश्चिमी देशों को होता था। लेखपद्धति से ही राजस्थान और गुजरात में प्रचलित दास प्रथा की जानकारी प्राप्त होती है। दास-दासियों को दान में देने की प्रथा इस युग में बहुत व्यापक थी। बौद्ध मठों और मंदिरों को दास दान के रूप में दिए जाते थे और इन दासों से मंदिर की सफाई आदि के साथ-साथ अनेक प्रकार की परिचर्या करवाई जाती थी।

समाज का विकाश समाज के सभी जातियों और वर्गो के समन्वित प्रयास से ही संभव होता है। विकास की प्रक्रिया में सभी जातियों का सहयोग आवश्यक है। सभी वर्गो के सहयोग के बिना समाज का विकाश संभव नहीं है। वर्णव्यवस्था प्राचीन काल से

ही भारतीय जीवन की कोढ़ बनी हुई है। यह व्यवस्था ब्राह्मण सिद्धांतों के परिकल्पना के अनुसार ही चलती रही है। इन दृष्टि से प्रथम तीन वर्ग को जो द्विज कहलाते थे शुद्र और अछुतों की तुलना में अधिक अधिकार प्राप्त थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चारो आर्य जनता के अंग थे। समाज में उनकी स्थिति एक समान नहीं थी। लेकिन आर्थिक विकाश में सबों का योगदान था।

आर्थिक संबंधि आयामों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज के विकाश में स्त्री एवं दास वर्ग का वही स्थान था जो स्थान चीनी में ईख का, फसल में बीज का, शरीर में आत्मा का, पेड़ में जड़ का तथा घर में नीव का होता है। अतः कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज के विकास से यदि स्त्री एवं दास वर्ग को निकाल दिया जाए तो समाज अस्तित्व विहीन हो जाता है।

संदर्भ सूची

1. ''प्राचीन भारत एक रूपरेखा'' पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-1980
2. जर्नल आफ द अमेरिकन ओरियेन्टल सोसाइटी सितम्बर 1942, कृष्णा राव एम. वी. कौटिल्य अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण, रतन प्रकाशन देहली 1961
3. धर्म मूलत्वाव काम फलत्वाव वार्धस्य धर्मायं, कामानुबन्ध य अर्थस्य सिद्विः सर्वार्थ सिद्विः। कौटिल्य अर्थशास्त्र
4. कोटिल्य का अर्थशास्त्र वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विधाभवन वाराणसी 1984
5. रोमिला थापर ''भारत का इतिहास'' 1000 ई0 पू0 से 1526 ई0 पू0 तक राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली- 1988
6. कृष्णाराव एम. वी. कौटिल्यीय अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण अनुवादक विश्वेश्वरयया, जी. रतन प्रकाशन मंदिर देहली 1961
7. ''शुद्राण इन एन्शियेन्ट इंडिया'' आर0 एस0 शर्मा, नई दिल्ली-1958
8. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकारण-7 अध्याय-16 कोग्ले आर.पी. द्वारा संपादित बंबई 1958
9. मैक्समूलरः इंडिया हवाट कैन इट टीच अस
10. ज्ञा. डी. एन, प्राचीन भारत एक रेखा, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस नई दिल्ली 1980
11. डा0 भंडारकर- सम आसपेक्ट्स ऑफ हिन्दु पॉलिसी, बम्बई, 1958

कृष्णा सोबती द्वारा रचित ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त कारक बोधक परसर्गों का विवेचन

देवानन्द सिंह

शोध छात्र, एम.ए. हिंदी, यू.जी. नेट
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर, महाविद्यालय बादलपुर गौतमबुद्धनगर
(उ.प्र.) सम्बद्ध चौ. चरणसिंह वि. वि. मेरठ

डॉ० जीत सिंह

शोध निर्देशक
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर, महाविद्यालय बादलपुर गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)
सम्बद्ध चौ. चरणसिंह वि. वि. मेरठ।

शोध सारांश

(''कृष्णा सोबती द्वारा रचित ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त कारक बोधक परसर्गों का विवेचन'' शोध विषय भाषाविज्ञान के विभाग पदविज्ञान से संबंध रखता है। प्रस्तुत शोध कार्य ने कारक परसर्गों के स्वरूप प्रकारों तथा प्रकार्यों का विवेचन किया है। कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त कारक बोधक परसर्गों का विवेचन नामपद भेद के आधार पर किया है। उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त संज्ञापद बोधक परसर्गों एवं सर्वनामपद बोधक परसर्गों का विवेचन किया है। इनके ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त एक परसर्ग एकाधिक कारकों के प्रकाशन में प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी शीर्षक पुस्तक में छह प्रकार के कारक गिनाए है। हिन्दी भाषाविज्ञान में आठ कारक माने गये है। प्रस्तुत शोध कार्य में कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त आठ प्रकार के कारकों का विवेचन किया है।)

कृष्णा सोबती द्वारा रचित ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रयुक्त कारक बोधक परसर्गों का विवेचन करने से पहले कारक और परसर्ग के स्वरूप, प्रकारों और प्रकार्यों का ज्ञान अपेक्षित है। पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' शीर्षक पुस्तक में कारक की निम्नलिखित परिभाषा दी गयी हैं:-

''**क्रियान्वयित्वं कारकतम्**'' अर्थात क्रिया के साथ अन्वय कारक कहलाता है। कारक का सीधा संबंध क्रिया से है। क्रिया के प्रयोग के बिना कारक का भाषा में न कोई अस्तित्व है न कोई महत्त्व है। वास्तव में नामपदों के साथ क्रियापदों का प्रयोग होता है। हिन्दी भाषा विज्ञान में कारक की निम्नलिखित परिभाषा दी गयी है:-

'नामपदों का क्रियापदों के साथ संबंध कारक कहलाता है।' कारक संबंधों को व्यक्त करने वाले माध्यम परसर्ग कहलाते हैं। कारक एक व्याकरणिक कोटि है। इसका संबंध वाक्यविन्यास से है। परसर्ग को विशिलिष्ट विभक्तिप्रत्यय माना गया है। परसर्ग

नामपदों के साथ प्रयुक्त होकर कारक संबंधों को व्यक्त करते हैं। कारक साध्य है तथा परसर्ग साधन। परसर्ग का प्रयोग पदविज्ञान में होता है। अत: दोनों में साधन-साध्य का संबंध है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास ज़िन्दगीनामा की भाषा में प्रयुक्त विभिन्न कारक संबंधों के प्रकाशन में निम्नलिखित परसर्गों का प्रयोग हुआ है:-

(कारक)	(परसर्ग)
1. कर्ताकारक	'ने'
2. कर्मकारक	को
3. करणकारक	से (सहायता से)
4. सम्प्रदान कारक	को, के लिए
5. अपादान कारक	से (अलग होना)
6. संबंध कारक	का, की, के, रा, री, रे
7. अधिकरण कारक	में, पर
8. संबोधन कारक	हे, अरे, ओ

संस्कृत भाषा में निम्नलिखित छह, कारकों का प्रयोग मिलता है।:-

''कर्ताकर्मच करणं च सम्प्रदानं तथैव च

अपादानादि अधिकरणो इति कारकाणि शट।''

अर्थात

कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण छह कारक कहलाते हैं। संस्कृत भाषा में संबंध कारक और संबोधन को कारक नहीं माना गया है। हिन्दी भाषा में संज्ञापदों की रचना मे उपर्युक्त आठ कारकों का प्रयोग मिलता है। हिन्दी भाषा में ही सर्वनाम पदो की रचना में सात कारकों का प्रयोग मिलता है। कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में नामपद भेद से दो प्रकार के कारक बोधक परसर्गों का प्रयोग हुआ हैं- (क) संज्ञापद बोधक कारक परसर्ग (ख) सर्वनाम बोधक कारक परसर्ग

(क) संज्ञापद बोधक कारक परसर्ग:- कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में निम्नलिखित संज्ञापद बोधक कारक परसर्ग प्रयुक्त हुए है:-

(1) 'ने' परसर्ग का प्रयोग:- कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में कर्ता कारक प्रकाशन 'ने' परसर्ग का प्रयोग सकर्मक क्रियाओं के साथ ही मिलता है अक्रर्मक क्रियाओं के साथ नहीं मिलता है। यथा:-

शाहनी **ने** सिरवारना कर झोली में गरी-छुहारे का सगुण डाल दिया।[1]

हीरा **ने** छातिओं को छुआ।[2]

काशी शाह **ने** बड़े भाई से पूछा।[3]

(2) 'को' परसर्ग का प्रयोग:- कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में 'को' परसर्ग कर्ता, कर्म और सम्प्रदान कारक संबंधों को व्यक्त करता है। यथा:-

भाई **को** कन्धे से लगाए भोली बड़ी सोचों में पड़ गई।[4]

मौलू **को** थानेदार बच्चूखाँ की याद आ गई[5]

सुल्तान ने खजूरे **को** कोहनी मारी[6]

मैं वचनों **को** भेजती हूँ।[7]

गौहर शनास और बोद्दे ने भारी हत्थीं सिरों पर मार चपेडे झटापट टैनों **को** गुट्ठे लगा दिया।[8]

बोधे ने अपने पूर मैं से एक कौड़ा निकाल रोडे **को** दिया[9]

उपर्युक्त वाक्यों में दूसरे, चौथे एवं पाँचवे वाक्यों में 'को' परसर्ग का प्रयोग कर्म कारक के प्रकाशन में हुआ हैं। तीसरे वाक्य में 'को' परसर्ग का प्रयोग कर्ता कारक के प्रकाशन में हुआ है तथा छठे एवं सांतवे वाक्य में 'को' परसर्ग का प्रयोग सम्प्रदान कारक के प्रकाशन में हुआ है।

(3) 'से' परसर्ग का प्रयोगः- इनके ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में करण कारक के प्रकाशन मे 'से' परसर्ग का प्रयोग सर्वाधिक संख्या में मिलता है परन्तु 'से' परसर्ग का प्रयोग करण कारक के अतिरिक्त कर्ता, कर्म और अपादान कारक संबंधों के प्रकाशन में भी मिलता है। जैसे-

1. लड़का घर से विद्यालय पहुँचा।
2. मैंने मोहन से कहा।
3. तुमसे यह काम नहीं होगा।
4. बच्चा पैरों से चलता है।

उपुर्यक्त उदाहरणों में पहले वाक्य में 'से' परसर्ग का प्रयोग अपादान कारक के प्रकाशन में हुआ है। दूसरे उदाहरण में 'से' परसर्ग का प्रयोग कर्मकारक के प्रकाशन में हुआ है। तीसरे और चौथे वाक्यों में कर्ता और करण कारकों के प्रकाशनों में हुआ है। इनके ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में 'से' परसर्ग का प्रयोग तुलना और सादृश्य कारकेतर संबंघो के प्रकाशन में भी मिलता है। जैसे-

1. मोहन रोहन से छोटा है।
2. सोहन से बुद्धिमान कम मिलते हैं।

इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जाती है:-

आँचल **से** आँखे छिपा करतारो चाची के साथ जा लगी।[10]

चाची, यह ख़ैरों **से** अभी आधा पूरे है।[11]

शाहदाद खाँ जमीन पर **से** उठा मंजी पर लिटा लिया गया और चार जने मंजी को कंधों पर टिकाए मसीत **से** बाहर निकल चले।[12]

तू तो ख़ैरों **से** पेट **से** है।[13]

कड़कती बिजली ओर घोर घघ्घर बरसात में हीरा साँसी गाँव **से** ऐसे बेखट के बाहर निकल गया ज्यों चिड़िया इस पेड़ **से** उस पेड़ तक उड़ी हो।[14]

(4) को, के लिए परसर्गों का प्रयोगः- कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में सम्प्रदान कारक प्रकाशन में निम्नलिखित परसर्गों का प्रयोग हुआ है:-

1. को, परसर्ग
2. के लिए परसर्ग

उदाहरण के लिए:-

1. राम ने छात्राओं के लिए पुस्तके दी।
2. माँ ने बेटी को फल दिये।
3. वह खाने के लिए होटल गया।

इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जाती है:-

कुदरते-खुदावन्दी का यक़ीन दिलाने **के लिए** मूसा ने बड़े-बड़े

मोज़जे दिखाएं[15]

लक्खी मिरासी ने शारना छूकर यारों **को** दिलासा दिया।[16]

निक्के नयानों **के लिए** दूध हो गया।[17]

(5) संबंध कारक बोधक परसर्गः- कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में संबंध कारक के प्रकाशन में निम्नलिखित परसर्गों का प्रयोग हुआ है:-

1. का, के, की
2. रा, रे, री

इनके ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में प्रथम पुरूष या अन्य पुरूष प्रकाशन में संबंध कारक के बोधक का, के, की परसर्गों का प्रयोग मिलता है। संज्ञा पदों के साथ संबंध कारक प्रकाशन में का, के, की परसर्गों का प्रयोग हुआ है। मध्यम पुरूष तथा उत्तम पुरूष व्याकरणिक कोटियाँ को व्यक्त करने के लिए संबंध कारक बोधक 'रा, रे, री, परसर्गों का प्रयोग हुआ हैं। आचार्य किशोरी दास वाजपेयी ने 'हिन्दी शब्दानुशासन' शीर्षक पुस्तक में का, के, की और रा, रे, री को परसर्ग न मानकर विभक्तिप्रत्यय माना है तथा उन्होंने कहा है कि परसर्ग लिंग और वचन से मुक्त होते हैं। विभक्तिप्रत्यय लिंग और वचन व्याकरणिक कोटियाँ को व्यक्त करते हैं। आचार्य किशोरी दास वाजपेयी का कहना उचित है क्योंकि का, के, की तथा रा, रे, री की रचना में आ, ए, ई लिंग और वचनबोधक विभक्ति प्रत्यय हैं। ने, को, से की तरह परसर्ग नहीं।

अवधी भाषा में संबंध कारक के प्रकाशन में 'क' परसर्ग का प्रयोग मिलता है। मैथिली भाषा में भी संबंध कारक के प्रकाशन में 'क' परसर्ग का प्रयोग मिलता है। 'र' परसर्ग का प्रयोग संबंध कारक के प्रकाशन में बंग्ला, राजस्थानी भाषाओं में मिलता है। जैसे 'आ मार बंग्लादेश' और 'रामेर' बोई' आदि पदबंधों की रचना मे प्रयुक्त 'र' परसर्ग संबंध कारक को व्यक्त करा रहा है। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जाती है:-

बैठ **मेरी** बच्ची, जरा हँस-खेल[18]

करतारों लम्बी इन्तज़ारों के बाद **सासरे** चली है।[19]

महाराजा **का** हुक्म हुआ[20]

बन्दे घोडे **के** साथ-साथ दौड़ते रहे[21]

बूटे ने न किसी दोस्त-**यार की** और ताका न कुछ-सोचा-साचा[22]

(6) अधिकरण कारक बोधक परसर्ग:- कृण्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में अधिकरण कारक के प्रकाशन मे निम्नलिखित परसर्गों का प्रयोग हुआ है।:-

1. 'में' परसर्ग का प्रयोग।
2. 'पर' परसर्ग का प्रयोग।

इनके ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में अन्दर के लिए 'में' परसर्ग तथा 'ऊपर के लिए' 'पर' परसर्ग का प्रयोग हुआ है। जैसे:-

1. लड़का कक्ष में बैठा है।
2. राम छत पर बैठा है।

उपर्युक्त वाक्यों की रचना में अधिकरण कारक के प्रकाशन में 'में' और 'पर' परसर्गों का प्रयोग हुआ है। इसकी पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती है:-

तारेशाह कोठरी **में** दाखिल हुआ।[23]

घोड़े **पर** चढ़ जिन राहों से निकल जाएँ राहे सज-सज जाए।[24]

मुहम्मदीन ने शाहजी के तख्त **पर** खेस बिछाया।[25]

(7) सम्बोधन कारक बोधक परसर्ग:- कृष्णा सोबती के द्वारा रचित ज़िन्दगीनामा उपन्यास में प्रयुक्त शिक्षित एवं अशिक्षित पात्रों ने जिस भाषा का प्रयोग किया उनके संवादों में निम्नलिखित सम्बोधन बोधक कारक परसर्ग प्रयुक्त हुए हैं:-

हे, अरे, ओ।

कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास में अरे, अरी, आदि सम्बोधन बोधक परसर्ग अधिक प्रयुक्त हुए है। हे, ओ, सम्बोधन बोधक परसर्ग कम संख्या मे प्रयुक्त है। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जाती है:-

अरी राबयाँ, कुछ तू भी सुना न।[26]

अरे साहिब सिंह, शुभ-शुभ बोल।[27]

चल **ओ** कोकले, शुरू हो जा।[28]

कम्मो ने धपा मारा **अरी** मोरनी, पाँव देख, अपने पाँव।[29]

(ख) सर्वनाम पद बोधक कारक परसर्ग:- कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में सर्वनाम रूपों के दो रूप मिलते है:-

(1) मूल रूप (2) विकारी रूप।

डॉ. तिलक सिंह ने ''नवीन भाषाविज्ञान शीर्षक पुस्तक में हिन्दी भाषा के मूल और विकारी रूपों निम्नांकित रूप में विवेचन किया है:-

कारक द्योतक:- संज्ञा रूपों की तरह सर्वनाम के मूल या विकारी रूप कर्ता और कर्म कारकों की अभिव्यक्ति करते हैं। विकारी रूप समस्त कारक प्रकार्यों को व्यक्त करते हैं। हिन्दी सर्वनामों के मूल तथा तिर्यक रूपों की व्यवस्था निम्नलिखित है:-

	मूल रूप		**विकारी रूप**
एक वचन	यह , वह	**प्रथम पुरूष**	इस, उस इन
बहुवचन	ये, वे		इन, बिन
एक वचन	तू,	**मध्यम पुरूष**	तु, तैं, तुझ, तो, ते
बहुवचन	तुम		तुम तुम्हें
एक वचन	मैं, हौं, हूँ	**उत्तम पुरूष**	मैं, मुझ, मो, मे,
बहुवचन	हम		हम

'तू' तैं, तथा मैं का प्रयोग 'ने' परसर्ग के साथ केवल कर्ताकारक में होता है। तुझ, तुम, मुझ, हम कर्मकारक में विभक्ति तथा परसर्ग 'के' अलग-अलग प्रयुक्त होते हैं। यथा-मुझे/मुझको, तुझे/तुझको तुम्हें/तुझको, हमें/हमकों पढ़ना चाहिए/तो और मों का प्रयोग कर्मकरण/तुम्हें/तुमको, हमें/हमको पढ़ना चाहिए। तो और मो का प्रयोग कर्म, करण/तुम्हें/तुमकों, हमें/हमको पढ़ना चाहिए। तो और मो का प्रयोग कर्म, करण/ अपादान तथा अधिकरण में होता है। यथा-तो को/तो, कूँ, तो, तें, तो सें। तोसूँ, तो पर/तो में, मोको/मोकूँ, मोंते/मोसें, मोपर/मोमें आदि प्रयोग दृष्टव्य हैं।

'में' और 'ते' का प्रयोग संबंध कारक में होता है। संबंध कारक द्योतक परसर्ग के बाद अन्य परसर्ग जोड़कर अन्य कारक संबंधों की अभिव्यक्ति की जाती है। यथा:-

मेरा, भाई, तेरा भाई (संबंध कारक)

मेरे ने, मेरे को, मेरे से, तेरे ने, तेरे को, तेरे से आदि रूप आज प्रचलन में हैं।[30]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह पता चलता है कि सर्वनाम पदों की रचना में अनेकरूपता और विविधता हैं। कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में मूल एवं विकारी दोनों प्रकार के सर्वनामपदों का प्रयोग हुआ है। इन सर्वनाम पदों में 'इसे' और उसे, इन्हें और उन्हें सर्वनामपदों की रचना में 'से' और 'न्हे' विभक्ति प्रत्यय कर्ता, कर्म और सम्प्रदान कारक संबंधों को व्यक्त करते हैं। इसे-उसे और इन्हें-उन्हें सर्वनामपदों की रचना में 'से' और 'न्हें' संश्लिष्ट विभक्ति प्रत्यय हैं। इनका प्रयोग निश्चित कारक संबंधों के प्रकाशन तक सीमित है। समस्त कारक संबंधों की अभिव्यक्ति 'इन-उन' विकारी पद ही करते हैं। इनको, इनसे, उनको उनसे आदि सर्वनामपदों की रचना में ने 'और' 'से' कारक बोधक परसर्ग हैं। इन्हों और 'उन्हों' विकारी सर्वनामपदों में जुड़कर 'ने' परसर्ग कर्ताकारक को व्यक्त करता है। जैसे:- इन्होंने ,उन्होंने।

ऊपर जिन बहुवचन बोधक सर्वनाम रूपों का विवेचन किया है, उनकी रचना में ब्रज, अवधी और खड़ी बोली के बहुवचन बोधक विभक्तिप्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। इन उन सर्वनामपदों में 'न' विभक्तिप्रत्यय ब्रजभाषा का है। इन्हें और इन्हों, उन्हें और उन्हों सर्वनामपदों की रचना में 'न्ह'+ एँ = 'न्हें और न्ह+ओं' = 'न्हों विभक्तिप्रत्यय अवधी भाषा का है और 'एँ' एवं 'ओं' बहुवचन बोधक विभक्तिप्रत्यय खड़ी बोली का है।

इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जाती है:-

''**तेरे** फैरों'' से पहले **इसने** निकाह पढ़ा लिया-[31]

तुम्हें **मैंने** सौ-सौ लाड़ लड़ाए।[32]

मेवे, बादामों के भंडार रियासत में और **तुमने** मेरे कहे को सच्च मान लिया।[33]

उन्होंने यहाँ क्या कोई कमी थी।[34]

तुम **मुझको** गियान कर सुणावहुं जी।[35]

तैसे ही मनरूप चक्र है।[36]

इससे आपकी बात याद रहेगी चाचा जी।[37]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती के ज़िन्दगीनामा उपन्यास की भाषा में एक ही परसर्ग एकाधिक कारकों का बोध करा रहा है। उपन्यास की भाषा के निर्माण और विकास में मानक हिन्दी की ब्रज, अवधी और खड़ी बोली की महत्त्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका रही है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 39, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
2. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 123, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
3. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 127, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
4. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 23, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
5. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 47, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
6. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 47, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
7. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 71, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
8. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 107, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
9. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 146, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्र. सं.-1979 ई.
10. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 83, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
11. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 89, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
12. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 97, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
13. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 98, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
14. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 121, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
15. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 57, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
16. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 63, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
17. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 104, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
18. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 39, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
19. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 85, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
20. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 153, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
21. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 162, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
22. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 175, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
23. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 191, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
24. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 66, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
25. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 95, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)

26. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 36, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
27. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 55, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
28. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 131, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
29. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 270, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
30. नवीन भाषाविज्ञान डॉ. तिलक सिंह, पृ. सं. 180, राजेश प्रकाशन अर्जुन नगर नई दिल्ली सन् 2004 ई.
31. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 32, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
32. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 119, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
33. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 271, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
34. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 284, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
35. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 301, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
36. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 301, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)
37. ज़िन्दगीनामा, कृष्णा सोबती पृ. सं. 382, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,-दरियागंज नई दिल्ली-110002 (सन्-1979 ई.)

- हिन्दी शब्दानुशासन, आचार्या किशोरीदास वाजपेयी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 2014
- भाषाविज्ञान डॉ. भोलानाथ तिवारी किताब महल प्रकाशन 22-।, सरोजनी नायडू मार्ग इलाहाबाद (सन् 1999 ई.)

परिस्थितिकी पर्यटन का भारत के सामाजिक पर्यावरण पर प्रभाव

सीमा खाड़िया

शोध छात्रा, गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविधालय,
बांसवाड़ा, राज.

सार (Abstract)

दुनिया भर में पर्यटन को सरकारों द्वारा आर्थिक विकास और रोजगार सृजन की उच्च क्षमता वाले क्षेत्र के रूप में मान्यता प्राप्त है। विश्व पर्यटन संगठन (डब्ल्यूटीओ) जैसी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों के लिए पर्यटन की विशाल विकासात्मक क्षमता को रेखांकित किया है। यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत और चीन जैसी अर्थव्यवस्थाएं 2020 तक विश्व पर्यटन में महाशक्तियों के रूप में उभरेंगी। पर्यटन के विकास के प्रतिमान के रूप में पर्यटन की स्थिरता मुख्य रूप से पर्यटन के प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों के कारण है। परिस्थितिकी पर्यटन स्थानीय समुदायों को रोजगार और आय का वादा करता है और प्राकृतिक संसाधनों के आधार के निरंतर अस्तित्व की अनुमति देते हुए राष्ट्रीय सरकारों को विदेशी विनिमय की आवश्यकता है।

भारतीय परिस्थितिकी पर्यटन की समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण करने और भारतीय अर्थव्यवस्था पर परिस्थितिकी पर्यटन के प्रभाव का विश्लेषण करने के उद्देश्य से अध्ययन किया जाता है। अध्ययन माध्यमिक आँकड़ों पर आधारित है। प्रासंगिक जानकारी और डेटा एकत्र करने के लिए प्रकाशित पुस्तकों, पत्रिकाओं और रिपोर्टों का उपयोग किया गया है।

मुख्य शब्दः परिस्थितिकी पर्यटन, पर्यावरणीय प्रभाव, पर्यावरण का सतत् विकास

परिचयः

भारत की गौरवशाली परंपराएं और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत पर्यटन के विकास के साथ निकटता से संबंधित हैं। वैश्विक परिदृश्य में, पर्यटन दुनिया का सबसे बड़ा उद्योग है। परिस्थितिकी पर्यटन को कई स्थानों पर सतत विकास पहलों, संरक्षित क्षेत्र, संरक्षण प्रयासों और क्षेत्रीय और सामुदायिक विकास रणनीतियों से जोड़ा गया है। आज की दुनिया में पर्यावरणीय पर्यटन स्थायी विकास का एकमात्र उपकरण है। परिस्थितिकी पर्यटन में बहुत गुंजाइश है और एक ही समय में पर्यटन के तेजी से विकास ने पर्यावरण और सामाजिक-सांस्कृतिक चिंताओं को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

वर्तमान अध्ययन में, परिस्थितिकी पर्यटन की समस्याओं और संभावनाओं का अध्ययन करने और यह विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि भारत के समृद्ध संस्कृति और पर्यावरण के सतत विकास और संरक्षण के लिए इकोटूरिज्म कितना व्यवहार्य विकल्प है।

भारत में परिस्थितिकी पर्यटनः

भारत में पर्यटन तेजी से बढ़ रहा है। पिछले बीस वर्षों में भारत ने अंतर्राष्ट्रीय आगंतुकों के लिए अपने दरवाजे खोल दिए हैं और अब अपनी अर्थव्यवस्था में मदद करने के लिए विदेशी कमाई में वृद्धि हासिल करने के लिए बड़े पैमाने पर पर्यटन को बढ़ावा

दे रहा है। 2015 में, 8.03 मिलियन अंतर्राष्ट्रीय पर्यटकों ने देश का दौरा किया। भारत अब अपनी अर्थव्यवस्था में मदद करने के लिए विदेशी कमाई में वृद्धि हासिल करने के लिए बड़े पैमाने पर पर्यटन को बढ़ावा दे रहा है। हालांकि भारत की पर्यटन संरचना उद्योग की वृद्धि के साथ बमुश्किल चल रही है और आवास, परिवहन और कार्मिक क्षेत्रों में समस्याएं स्पष्ट हैं।

पारिस्थितिक संरक्षण के लिए, स्थानीय समुदायों के आर्थिक विकास और राजनीतिक सशक्तिकरण को सीधे लाभ पहुंचाने के लिए या विभिन्न संस्कृतियों के लिए और मानवाधिकारों के लिए सम्मान बढ़ाने के लिए 1980 के दशक के बाद से पर्यावरणवादियों द्वारा पारिस्थितिकवाद को एक महत्वपूर्ण प्रयास माना जाता है, ताकि आने वाली पीढ़ियों को मानवीय हस्तक्षेप से अपेक्षाकृत अछूते स्थलों का अनुभव हो सके। परिस्थितिकी पर्यटन भावी पीढ़ियों को प्राकृतिक संसाधनों का भंडार छोड़ने की वकालत करता है, जो पिछली पीढ़ियों द्वारा विरासत में नहीं मिला है।

अध्ययन का उद्देश्य:

- भारतीय परिस्थितिकी पर्यटन की समस्याओं और संभावनाओं का अध्ययन करना।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर परिस्थितिकी पर्यटन के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए।

शोध प्रविधि:

अध्ययन माध्यमिक आँकड़ों पर आधारित है। प्रासंगिक जानकारी और डेटा एकत्र करने के लिए प्रकाशित पुस्तकों, पत्रिकाओं और रिपोर्टों का उपयोग किया गया है। भारत के विदेशी पर्यटकों के आगमन, भारत की विदेशी विनिमय आय और भारत में घरेलू पर्यटकों के आगमन की सीमा का विश्लेषण करके प्रभाव अध्ययन किया गया है।

• *पर्यटन के प्रमुख आधार:*

1. सार्वजनिक क्षेत्र।
2. पर्यटन उद्योग।
3. स्वैच्छिक क्षेत्र के संगठन।
4. मेजबान समुदाय।
5. मीडिया।
6. पर्यटक।

• *परिस्थितिकी पर्यटन की विशेषताएं:*

परिस्थितिकी पर्यटन की कुछ सामान्य विशेषताएं हैं – यह प्रकृति आधारित और पारिस्थितिक रूप से स्थायी होना चाहिए जिसमें स्थानीय समुदाय के लिए उपयुक्त रिटर्न और संसाधनों का दीर्घकालिक संरक्षण शामिल हो। इसे पारिस्थितिक रूप से स्थायी तरीके से प्रबंधित करने के लिए प्राकृतिक वातावरण की शिक्षा और व्याख्या को शामिल करना चाहिए। इसे आर्थिक अवसरों का निर्माण करके और स्थानीय समुदायों के लिए वैकल्पिक रोजगार प्रदान करके प्राकृतिक क्षेत्रों के संरक्षण का समर्थन करना चाहिए। स्थायी परिस्थितिकी पर्यटन प्रथाओं के लिए स्थानीय समुदाय की भागीदारी बहुत महत्वपूर्ण है।

• *परिस्थितिकी पर्यटन के सिद्धांत:*

परिस्थितिकी पर्यटन का मतलब है कि जितना संभव हो उतना कम पर्यावरणीय प्रभाव बनाना और स्वदेशी आबादी को बनाए रखने में मदद करना, जिससे वन्यजीवों और आवासों के संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। यह पर्यटन और पर्यटन विकास का जिम्मेदार रूप है, जो जीवन के हर पहलू में प्राकृतिक उत्पादों को वापस जाने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह स्थायी पारिस्थितिक विकास की कुंजी भी है। इंटरनेशनल इकोटूरिज्म सोसाइटी ने पर्यावरण-पर्यटन को ष्प्राकृतिक क्षेत्रों के लिए जिम्मेदार यात्रा के रूप में परिभाषित किया है जो पर्यावरण का संरक्षण करता है और स्थानीय लोगों की भलाई में सुधार करता है।ष् इसका अर्थ है कि जो लोग परिस्थितिकी पर्यटन गतिविधियों को लागू करते हैं और भाग लेते हैं, उन्हें निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए–

- पर्यावरण और सांस्कृतिक जागरूकता और सम्मान बनाएँ
- आगंतुकों और मेजबानों दोनों के लिए सकारात्मक अनुभव प्रदान करें
- संरक्षण के लिए प्रत्यक्ष वित्तीय लाभ प्रदान करना
- स्थानीय लोगों के लिए वित्तीय लाभ और सशक्तिकरण प्रदान करना
- मेजबान देशों की राजनीतिक, पर्यावरण और सामाजिक जलवायु के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाएँ
- अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों का समर्थन करें

• परिस्थितिकी पर्यटन को चुनौती:

भारत में परिस्थितिकी पर्यटन मुख्य रूप से बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण विभिन्न चुनौतियों का सामना कर रहा है जैसे- सड़क और आवास, रणनीतिक व्यापार योजना, अच्छी तरह से प्रशिक्षित प्रकृति गाइड, सामुदायिक सहमति प्राप्त करने के तरीके और जागरूकता कार्यक्रम आदि। परिस्थितिकी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए प्रकृति पर्यटन, ग्रीन टूरिज्म और बायो-टूरिज्म आदि जैसे कई शब्दों का उपयोग इको-टूरिज्म के नाम से किया जाता है। परिस्थितिकी पर्यटन के विकास और परिचालन गतिविधियों में शामिल होने वाले विभिन्न प्रकार के प्रभाव शामिल हो सकते हैं-

- पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता के लिए खतरारू जैसे वन्यजीव और दुर्लभ प्रजातियों का नुकसान, निवास स्थान का नुकसान और गिरावट,
- तटरेखा क्षरण और प्रदूषण, प्रवाल भित्तियों और मछली के काटने के आधार पर प्रभाव,
- पानी का अधिक उपयोग- पर्यटक मनोरंजक गतिविधियों के परिणामस्वरूप, जैसे गोल्फ कोर्स, स्विमिंग पूल, और होटलों में पर्यटक खपत,
- शहरी समस्याएं- भीड़ और भीड़भाड़, वाहन यातायात में वृद्धि और परिणामी पर्यावरणीय प्रभाव, जिसमें वायु और ध्वनि प्रदूषण और स्वास्थ्य प्रभाव शामिल हैं,
- व्यापक जलवायु परिवर्तन- यात्रा, होटल और मनोरंजक आवश्यकताओं के लिए जीवाश्म ईंधन ऊर्जा की खपत से।
- परिस्थितिकी पर्यटन की समस्याएं और संभावनाएंरू

भारत उन दुर्लभ देशों में से एक है, जिनके पास दुनिया के पर्यटन मानचित्र पर एक सुनहरा सितारा बनाने के लिए आवश्यक सभी संसाधनों का अद्भुत मिश्रण है। प्राकृतिक और मानव निर्मित पर्यटन संसाधनों की समृद्ध विविधता के कारण भारत विश्व के पर्यटकों का केवल 0.5: आकर्षित करता है। स्थायी पर्यटन में स्थानीय लोग भाग नहीं ले रहे हैं। सतत विकास के लिए भारतीय पर्यटन को नए सिरे से विकसित करने की आवश्यकता है। एम.पी. बेजवरुआ के अनुसार इसके कारण निम्न समस्याएं हुई हैं-

- धरोहर वाले स्थान
- वेश्यावृत्ति और ड्रग्स के लिए एक बाजार बनाएं
- जैविक विविधता को कम करना
- वन्यजीवों के आवास को नष्ट करना
- प्रदूषित झीलें
- बहुमूल्य ताजे जल संसाधनों का अति प्रयोग
- ग्लोबल वार्मिंग में महत्वपूर्ण योगदान
- अनिर्दिष्ट वातावरण से प्राप्त आनंद और संतुष्टि को कम करना
- दुनिया भर के अनुभव बताते हैं कि खराब नियोजित और प्रबंधित पर्यटन जो अपने पर्यावरण के आधार का समर्थन करने में विफल रहता है, जिसके परिणामस्वरूप बाजार हिस्सेदारी गिरती है और अपने स्वयं के विनाश के बीज बोते हैं।

परिणाम और विश्लेषण:

वर्ल्ड ट्रैवल एंड टूरिज्म काउंसिल ने गणना की कि पर्यटन ने 2015 में देश की जीडीपी का 6.3: उत्पन्न किया और 37.315 मिलियन नौकरियों, इसके कुल रोजगार का 8.7: का समर्थन किया। इस क्षेत्र के 2025 तक औसत वार्षिक दर 7.5: से बढ़कर 18.36 लाख करोड़ होने का अनुमान है (जीडीपी का 7.2:)। परिस्थितिकी पर्यटकों के अन्य पर्यटकों की तुलना में अधिक पैसा खर्च करने की संभावना है। परिस्थितिकी पर्यटकों के लिए सबसे लोकप्रिय गतिविधियाँ- लंबी पैदल यात्रा, पक्षियों को देखना, प्रकृति के छायाचित्र, वन्यजीव सफारी, डेरा डालना, पर्वतों पर चढना, मछली पकड़ना, रिवर राफ्टिंग और वनस्पति अध्ययन आदि होती हैं। अधिकांश परिस्थितिकी पर्यटक यूरोप, उत्तरी अमेरिका और जापान से हैं, क्योंकि उनके पास अन्य देशों की तुलना में अधिक पैसा और अधिक अवकाश है।

भारत में विभिन्न वर्षों मे आए परिस्थितिकी पर्यटकों की संख्या और भारत के संदर्भ में उनसे हुई आय का विवरण निम्न प्रकार समझा जा सकता हैं-

तालिका-1: भारत में विदेशी पर्यटक आगमन (1999-2016)

वर्ष	भारत में विदेशी पर्यटक आगमन (मिलियन में)	गतवर्ष की तुलना में वृद्धि दर (:)
1999	2.48	5.2
2000	2.65	6.7
2001	2.54	-4.2
2002	2.38	-6.0
2003	2.73	14.3
2004	3.46	26.8
2005	3.92	13.3
2006	4.45	13.5
2007	5.08	14.3
2008	5.28	4.0
2009	5.17	-2.2
2010	5.78	11.8
2011	6.31	9.2
2012	6.58	4.3
2013	6.97	5.9
2014	7.68	10.09
2015	8.03	4.5
2016	4.19	8.9

स्रोत: ब्यूरो ऑफ इमिग्रेशन व पर्यटक मंत्रालय, भारत सरकार

तालिका संख्यारू 1 से यह स्पष्ट है कि 1999 से 2015 की अवधि के दौरान, भारत में विदेशी पर्यटकों के आगमन में 2.3 गुना वृद्धि हुई है। विदेशी पर्यटकों की संख्या में -6.0: और 26.7: के बीच अंतर है। यह विदेशी पर्यटकों को भारत की यात्रा में एक प्रभावशाली सुधार दिखाता है।

तालिका -2: भारत में सभी राज्यों / संघ शासित प्रदेशों को घरेलू पर्यटकों की संख्या
(1999-2016)

वर्ष	राज्यों / संघ शासित प्रदेशों को घरेलू पर्यटकों की संख्या (मिलियन में)	गतवर्ष की तुलना में वृद्धि दर (%)
1999	190.67	13.4
2000	220.11	15.4
2001	236.47	7.4
2002	269.60	14.0
2003	309.04	14.6
2004	366.27	18.5
2005	392.04	7.0
2006	462.44	18.0
2007	526.70	13.9
2008	563.03	6.9
2009	668.80	18.8
2010	747.70	11.8
2011	864.53	15.6
2012	1045.05	20.9
2013	1142.53	9.3
2014	1282.80	12.3
2015	1431.97	11.6

स्रोतरू राज्य ६ केन्द्र शासित प्रदेशों के पर्यटन विभाग

तालिका संख्यारू 2 से पता चलता है कि भारत में घरेलू पर्यटक का दौरा 1999 में 190.67 मिलियन से बढ़कर 2015 में 1431. 97 मिलियन हो गया जो लगभग 7.5 गुना की वृद्धि दर्शाता है। घरेलू पर्यटन के मामले में, देश ने एक महत्वपूर्ण सुधार दिखाया है।

सारणी -3: भारत में पर्यटन से आय (1999-2016)

वर्ष	पर्यटन से आय (करोड़ रूपये में)	गतवर्ष की तुलना में वृद्धि (%)
1999	12959	6.6
2000	15626	20.7
2001	15083	-3.5
2002	15064	-0.1
2003	20729	37.6
2004	27944	34.8
2005	33123	18.5
2006	39025	17.8

2007	44360	13.7
2008	51294	15.6
2009	53700	4.7
2010	64889	20.8
2011	77591	19.6
2012	94487	21.8
2013	107671	14.0
2014	123320	14.5
2015	135193	9.6
2016	73065	14.1

स्रोतरू पर्यटन मंत्रालय, सरकार भारत के लिए, 2011-2016 के लिए

तालिका संख्याः 3 से यह स्पष्ट है कि पर्यटन गतिविधियों से विदेशी मुद्रा की आय रुपये से अधिक हो गई है। 1999 में 12959 करोड़ रु व 2015 में 135193 करोड़ रुपये,जो लगभग 10.4 गुना की वृद्धि दर्शाता है। यह देश में पर्यटन गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि को इंगित करता है। गुणक प्रभाव के माध्यम से यह बड़े पैमाने पर आय और रोजगार पैदा कर सकता है और देश के सतत विकास को जन्म दे सकता है। इन सब के बाद भी भारत विश्व पर्यटन मानचित्र में भारत अभी भी बहुत पीछे है।

- ***उपायः***

1. ऐतिहासिक स्मारकों, कलाकृति, पेंटिंग, नक्काशी आदि का जीर्णोद्धार और संरक्षण।
2. सुधार और मौजूदा गंतव्यों / पैकेजों के लिए मूल्य जोड़ें और नया बनाएं।
3. निजी क्षेत्र के टूर ऑपरेटरों को आगे आने और पर्यटन प्रोत्साहन अभ्यास में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
4. पर्यावरण संरक्षण पर अधिक ध्यान दें, पर्यावरण के अनुकूल टिकाऊ पर्यटन को प्रोत्साहित करने पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। इसके लिए जागरूकता पैदा करनी चाहिए और मिशन में लोगों की भागीदारी होनी चाहिए।
5. भारत के प्राकृतिक और मानव निर्मित संसाधनों के प्रबंधन में सुधार।
6. सरकारी टूर ऑपरेटरों, स्थानीय पर्यटन प्रमोटरों को प्रभावी टिकाऊ पर्यटन विकसित करने में हाथ से काम करना चाहिए।
7. पर्यटन और आतिथ्य क्षेत्र में रोजगार को संचालित करने के लिए भर्ती के मानक निर्धारित करें।
8. एजेंसियों, निगमों, समूहों और व्यक्तियों को मेजबान क्षेत्र की संस्कृति और पर्यावरण के संबंध में नैतिक और अन्य सिद्धांतों का पालन करना चाहिए।
9. पर्यटन प्रवर्तकों और मेजबान लोगों और क्षेत्रों के बीच उचित लाभ और लागतों को वितरित करने के लिए पर्यटन को ध्यान में रखना चाहिए।
10. पर्यटन की प्रकृति पर अच्छी जानकारी, अनुसंधान और संचार उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
11. अवसंरचना का सर्वांगीण विकास, नागरिक उद्यन सहित परिवहन के कुशल साधन।
12. किसी भी बड़ी परियोजनाओं के शुरू होने से पहले एकीकृत पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक नियोजन विश्लेषण किया जाना चाहिए।
13. अब जो आवश्यक है वह यह है कि पर्यटन या पर्यटन उद्योग के हितधारकों को विश्व पर्यटन मानचित्र पर भारत की स्थिति को मजबूत करने वाली योजनाओं और रणनीतियों को लागू करने के लिए सभी संभव कदम उठाने चाहिए।
14. हमें अपनी विरासत और संस्कृति का लाभ उठाने की आवश्यकता है, जो दुनिया में सबसे समृद्ध है। हमें भारत को प्रकृति के विशाल उपहारों का लाभ उठाने की आवश्यकता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची:

- पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार
- ब्यूरो ऑफ इमिग्रेशन, भारत सरकार
- M-P-Bezbaruach (2000¼: ''Indian Tourism beyond the Millennium", Gyan Publishing House, New Delhi-
- Dr-(Mrs-)-A- Bhavani (2016) ^^Imporving Sustainable Devlopment of Ecoturism in India&a view, paripex& Indian Journal of Research, volume; 5, Issuse; 2, feb- 2016-
- Bhatia,A-K-(1997), Tourism Management and marketing, sterling publishers, New Delhi, 39&41-
- Sethi, Praveen (2005), Millennium Trends in Travel and Tourism, Rajat Publications, New Delhi, 31&64-

शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के कक्षा 11वीं मे अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन

सुनीता अग्रवाल

शोध छात्रा (शिक्षाशास्त्र), मा0गाँ0 चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म0प्र0)
नामांकन सं0- 14/06/145

डॉ० योगेश कुमार सिंह

प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र, अधिष्ठाता कला संकाय, मा0गाँ0 चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म0प्र0)

शोध सार

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के कक्षा 11वीं में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना है। शोध के अन्तर्गत जालौन जिला के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र से कक्षा 11वीं के विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है जिसके लिये डॉ0 बी0वी0 पटेल द्वारा निर्मित परीक्षण का प्रयोग किया गया तथा निष्कर्ष व परिणाम वैध रूप से प्रस्तुत करने के लिये माध्य, मानक विचलन, सी0आर0 परीक्षण, सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। शोध अध्ययन के परिणामस्वरूप पाया गया कि विज्ञान वर्ग के शहरी एवं ग्रामीण छात्र-छात्राओं के स्वाध्याय आदत में सार्थक अन्तर पाया गया। शहरी छात्र एवं छात्राओं की स्वाध्याय आदतें मजबूत पायी गयी क्योंकि इन विद्यार्थियों को शैक्षिक सुविधायें, दृश्य श्रव्य सामग्री, शिक्षण सम्बन्धी सुविधायें, अभिभावकों का सुशिक्षित व जागरूक होना, योग्य शिक्षकों का होना पाया गया जो समय-समय पर मार्गदर्शन करते रहते हैं और उनको परामर्श सेवायें भी प्रदान की जाती है।

प्रस्तावना :

सृष्टि के सृजनहार ने इस पृथ्वी पर नाना प्रकार के प्राणियों को जन्म दिया है। इन प्राणियों में मनुष्य भी है और पशु भी है। यदि कोई गुण इन दोनों में विभिन्नता प्रदर्शित करने वाला है तो वह चिन्तन करने की शक्ति आज के आधुनिक विकास और तकनीकी प्रधान देश की स्थिति का आंकलन शिक्षा के स्तर द्वारा किया जाता है और जीवन में प्रसन्न्ता, कुशलता तथा उन्नति अच्छी आदतों पर निर्भर है। अच्छी आदतें मनुष्य के जीवन की कुंजी होती है। शिक्षा तथा व्यक्तित्व के विकास में स्वाध्याय आदतों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। आदतें ही हमारे व्यवहार को उभारती हैं। वर्तमान समय में छात्र अपनी अनियंत्रित आदतों की वजह से कई समस्याओं में उलझता जा रहा है जिससे वे अध्ययन कार्य में अधिक ध्यान नहीं देते हैं। यह एक जटिल समस्या है जो उग्र रूप धारण करती जा रही है जो समाज के हित में नहीं है। विद्यार्थियों की रूचि, स्वाध्याय आदत भिन्न-भिन्न होती है क्योंकि

विद्यार्थी जिस प्रकार के वातावरण में रहते हैं। उसी के अनुरूप अपने आपको समायोजित करने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के वातावरण में बहुत अधिक अन्तर रहता है। शहरी विद्यालयों में पर्याप्त शिक्षण सुविधाएँ, शिक्षण विधि, अभिभावक जागरूक, शिक्षकों की अनुपस्थिति आदि अनेक कारक देखने को मिलते हैं। वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों में इन सभी कारकों का अभाव रहता है।

समस्या कथन

''शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के कक्षा 11वीं में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन''

स्वाध्याय आदत की परिभाषा

रायबर्न के अनुसार- ''सीखना आदतों के निर्माण की प्रक्रिया है।''

क्लैपर के अनुसार- ''आदतें व्यक्तित्व का आवरण है।''

शोध की उपादेयता

इस शोध के द्वारा शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के छात्र एवं छात्राओं की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करके उनकी तर्क शक्ति को विकसित करके भावी जीवन को सफल बनाया जा सकेगा। साथ ही अध्ययन के परिणाम, संस्थाओं और समाज के लिए रचनात्मक एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करने में सहायता मिलेगी और स्वाध्याय आदत के स्तर के आधार पर शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों को समझ सकेगें तथा उचित मार्ग दर्शन दे सकेगें और निर्देशन प्रदान करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में कई निर्देशन एवं परामर्श केन्द्र खोले गये।

अत: वर्तमान समस्या के महत्व और आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुये शोधार्थिनी ने भारतीय परिस्थितियों एवं शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के कक्षा 11वीं में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करने का चुनाव किया।

शोध के उद्देश्य

1. शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के छात्रों की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग की छात्राओं की स्वाध्याय आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाये

1. शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के छात्रों की स्वाध्याय आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग की छात्राओं की स्वाध्याय आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन का सीमांकन

1. शोध हेतु जालौन जिले के शहरी व ग्रामीण विज्ञान वर्ग के क्षेत्रों में स्थित स्कूलों से विज्ञान वर्ग के 100 छात्र व छात्राओं को सम्मिलित किया गया है।
2. शोध हेतु कक्षा 11वीं के विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों को शामिल किया गया है।

अनुसंधान विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध कार्य में साधारण यादृच्छिक चयन विधि का उपयोग किया गया। प्रस्तुत शोध में केवल सामान्य बौद्धिक स्तर के जालौन जिले के 100 (शहरी एवं ग्रामीण) विद्यार्थियों का चयन किया गया। जिसमें 50 शहरी छात्र एवं छात्रायें तथा 50 ग्रामीण छात्र एवं छात्राओं को चुना गया।

अनुसंधान उपकरण

प्रस्तुत शोध में स्वाध्याय आदतों को मापने के लिये डा0 बी0बी0 पटेल द्वारा निर्मित परीक्षण का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी विश्लेषण

प्रस्तुत शोध में संग्रह किये गये प्रदत्तों की प्रकृति के अनुरूप उपयुक्त सांख्यिकी प्रविधियों का उपयोग किया गया।

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. ब्ण्त्ण्

सारणी संख्या-1

शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदत सम्बन्धी योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन

प्रतिदर्श	N	M	Sd	D	σD	C.R.	df	सार्थकता स्तर .01	सार्थकता स्तर .05	परिणाम
शहरी क्षेत्र के विद्यार्थी	50	175.73	12.39	8.45	2.17	4.12	98	2.63	1.98	सार्थक
ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थी	50	166.78	8.93							

उपरोक्त सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदत में अन्तर की सार्थकता हेतु परिगणत ब्ण्त्ण् मान 4.12 प्राप्त हुआ है जो कि .05 स्तर पर सार्थक है, अतः कहा जा सकता है कि शहरी एवं ग्रामीण छात्र एवं छात्राओं की स्वाध्याय आदतों में सार्थक अन्तर है। सारणी संख्या-1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि शहरी विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदत में प्राप्तांकों का मध्यमान 175.73 तथा ग्रामीण विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदत में प्राप्तांकों का मध्यमान 166.78 से अधिक है। अतः कहा जा सकता है कि शहरी विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदत ग्रामीण विद्यार्थियों से श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण विद्यार्थियों को घरेलू कार्य ज्यादा करने पड़ते है। साथ ही उनका अध्ययन की स्तरीय सुविधा नहीं मिल पाती। इसके अतिरिक्त घर के बाहर उपलब्ध अध्ययन सामग्री एवं घर का वातावरण, की अनुपलब्धता रहती है। अतः ग्रामीण विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदत कमजोर होती है।

सारणी संख्या-2

शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग के छात्रों की स्वाध्याय आदत सम्बन्धी योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन

प्रतिदर्श	N	M	Sd	D	σD	df	t	सार्थकता स्तर .01	सार्थकता स्तर .05	परिणाम
शहरी छात्र	25	164-08	9-37	4-08	2-58	48	1-58	2.68	2.01	असार्थक
ग्रामीण छात्र	25	160-52	8-51							

उपरोक्त सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि शहरी छात्रों का मध्यमान 164.08 तथा मानक विचलन 9.37 प्राप्त हुआ तथा ग्रामीण छात्रों का मध्यमान 160.52 व मानक विचलन 8.51 प्राप्त हुआ। दोनों समूहों के मध्य परिगणित ज अनुपात 1.58 व 48 स्वतंत्रता अंश के सार्थकता स्तर .01 पर 2.68 एवं .05 पर 2.01 प्राप्त किया जिससे सिद्ध होता है कि दोनों समूहों के माध्य अन्तर असार्थक है।

सारणी संख्या-3

शहरी एवं ग्रामीण विज्ञान वर्ग की छात्राओं की स्वाध्याय आदत सम्बन्धी योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन

प्रतिदर्श	N	M	Sd	D	σD	df	t	सार्थकता स्तर .01	सार्थकता स्तर .05	परिणाम
शहरी छात्रा	25	160-08	7-66	1-8	6-05	48	-29	2-68	2-01	असार्थक
ग्रामीण छात्रा	25	158-28	9-64							

उपरोक्त सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि शहरी छात्राओं का मध्यमान 160.08 तथा मानक विचलन 7.66 प्राप्त हुआ तथा ग्रामीण छात्राओं का मध्यमान 159.28 तथा मानक विचलन 9.64 प्राप्त हुआ। दोनों समूहों के मध्य सार्थकता स्तर पर परिगणित ज का मान .29 तथा 48 स्वतंत्रता अंश के सार्थकता स्तर पर .01 पर .05 स्तर पर ज का मान 2.68 एवं 2.01 है। गणना द्वारा ज का मान सारणी मान के दोनों समूहों से कम है। अत: दोनों समूहों के मध्य अन्तर असार्थक है।

अध्ययन के निष्कर्ष :

1. शहरी विद्यार्थियों की स्वाध्याय आदतें ग्रामीण विद्यार्थियों को स्वाध्याय आदतों की अपेक्षा स्पष्ट और अधिक सुदृढ़ होती है क्योंकि ग्रामीण विद्यार्थियों को सम्भवत: घरेलू कारणों व सामाजिक रीतियों के कारण समय सारणी के अध्ययन का मौका कम मिल पाता है और शैक्षिक सुविधाओं की कमी का अभाव रहता है।
2. शहरी छात्र की स्वाध्याय आदतें ग्रामीण छात्रों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट व अधिक सुदृढ़ होती है। क्योंकि उनको पर्याप्त शिक्षण सामग्री, घर का वातावरण, शिक्षण विधियां उपलब्ध हो जाती है और समय-समय पर शिक्षित अभिभावकों का मार्गदर्शन मिलता रहता है। इसलिये शहरी छात्रों की स्वाध्याय आदत विकसित नहीं हो पाती है।
3. शहरी छात्राओं की स्वाध्याय आदतें ग्रामीण छात्राओं की अपेक्षा अधिक स्पष्ट व सुदृढ़ है क्योंकि उनको तकनीकीयुक्त शिक्षण सामग्री, घर का वातावरण व अपने माता-पिता का मार्गदर्शन समय-समय पर मिलता रहता है और ग्रामीण छात्राओं को इन सब कारकों का अभाव रहता है। इसलिये स्वाध्याय आदत कमजोर रहती है।

शैक्षिक निहितार्थ

शिक्षा के क्षेत्र में शहरी छात्र एवं छात्राओं की स्वाध्याय आदतें मजबूत पायी गयी क्योंकि उन विद्यर्थियों को शैक्षिक वातावरण, शिक्षण सम्बन्धी पर्याप्त सुविधाएं, अभिभावकों का सुशिक्षित एवं जागरूक होना, योग्य शिक्षकों का होना जो समय-समय पर मार्गदर्शन करते रहते हैं। इस कारण हम कह सकते हैं कि शहरी छात्र एवं छात्राओं की स्वाध्याय आदत अच्छी पायी जाती है। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं को शैक्षिक वातावरण, शिक्षण असुविधायें, निरन्तरता, ध्यान, इच्छा शक्ति का अभाव आदि बातें छात्र-छात्राओं की स्वाध्याय आदतों को कम करते हैं। इस शोध अध्ययन के द्वारा ग्रामीण छात्र-छात्राओं की समय-समय पर उनकी सफलता व असफलता पर उचित मार्गदर्शन और समय-समय पर जागरूक कर सकेगें।

सन्दर्भ सूची

1. गुप्ता, एस0पी0 (1997), आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
2. कपिल, एच0के0 (2003), अनुसंधान विधियां, आगरा, हरप्रसाद भार्गव, पुस्तक प्रकाशक।
3. कपिल, एच0के0 (1997), सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर।
4. सारस्वत, मालती (2003), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊ, आलोक प्रकाशन
5. शर्मा, आर0ए0 (2003), शिक्षा अनुसंधान, मेरठ आर0लाल0 बुक डिपो।
6. शुक्ल, एस0एम0 एवं शिवपूजन सहाय (2000), सांख्यिकी के सिद्धान्त, आगरा, साहित्य भवन प्रकाशन।
7. सिंह, अरूण कुमार (2002), मनोविज्ञान, सामजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, पटना, मोतीलाल बनारसीदास
8. परिहार, अमरजीत सिंह (2010), परामर्श एवं निर्देशन, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ
9. श्रीवास्तव, डी0एन0 (2001), अनुसंधान विधियाँ, आगरा, साहित्य प्रकाशन।
10. सुखिया, एस0पी0 (1973), शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, आगरा, विनोद पुसतक मन्दिर।
11. सुलैमान, मोहम्मद (1997), सांख्यिकी के मूल तत्व, पटल, शुक्ला बुक डिपो।

राग दरबारी का यथार्थ और व्यंग्य की सार्थकता

डॉ० नीलू अग्रवाल

पटना

श्राग दरबारीश एक अत्यंत प्रखर व्यंग्यात्मक उपन्यास है। उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने समाज के संबंध में अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को कारगर अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उपन्यास में हास्य व्यंग्य शैली का सहारा लिया है। विश्व साहित्य की परंपरा में इसका निरंतर प्रयोग होता आया है। हिंदी साहित्य में भी इसकी एक समृद्ध परंपरा अब तक गतिमान रही है। कबीर जैसे प्रखर व्यंग्यकार ने इस अस्त्र के प्रयोग द्वारा बहुसंख्यक जनता को हिला कर रख दिया था।भारतेंदु के बाद निराला, नागार्जुन जैसे सशक्त कवियों ने अपनी कटु-तिक्त मानसिक प्रतिक्रियाओं को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। अब तक हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रविंद्र नाथ त्यागी, केदारनाथ अग्रवाल ,नागार्जुन इस परंपरा को आगे बढ़ाते आए हैं। श्री लाल शुक्ल इसी परंपरा की एक सशक्त कड़ी के रूप में सामने आते हैं। हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को आक्रामकता नहीं, वरन सहानुभूति का उत्कृष्ट रूप मानते हुए लिखा है, श्व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है। विसंगति, मिथ्याचारों और पाखंड का पर्दाफाश करता है।..... अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।श

व्यंग्य की सामाजिक और साहित्यिक उपयोगिता होती है। जब समाज में शोषण, अन्याय और असमानता, स्वार्थपरता आदि बुराइयां अराजकता और मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न करती हैं तो उसके निदान के लिए जिस प्रकार सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन अनिवार्य है, उसी प्रकार साहित्य के मोर्चे से भी आंदोलन अनिवार्य होते हैं।इन साहित्यकारों की व्यंग्य-योजना मात्र सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश कि नहीं करती वरन जागरण और समाज के नवनिर्माण की प्रेरणा भी देती है। व्यंग्यकर्ता का कार्य एक प्रकार से साहित्य के मोर्चे पर धरना या विरोध प्रदर्शन ही है।

श्राग दरबारीश के मुखपृष्ठ पर लिखा गया है, ष्राग दरबारी का संबंध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे हुए गांव की जिंदगी से है जो आजादी के बाद की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है।ष1 यह उसी जिंदगी का दस्तावेज है। इससे स्पष्ट है कि राग दरबारी का विषय शिवपालगंज और उसकी छाती पर सवार वैद्य जी और उनकी बैठक है। इस दृष्टि से यह बैठक ही दरबार है जिसके राग से पूरा गांव समाज संचालित है। सतह पर यह उपन्यास उसी जिंदगी का दस्तावेज दिखाई दे सकता है लेकिन वास्तविकता यह है कि लखनऊ जैसे किसी बड़े शहर से कुछ मील की दूरी पर सड़क के किनारे बसा गांव कस्बा शिवपालगंज हिंदुस्तान के नक्शे में ढूंढने पर शायद ना मिले बावजूद इसके उपन्यास का शिवपालगंज आजादी के बाद विकसित हुए हिंदुस्तान में कहीं भी मिल सकता है। इसलिए वैद्य जी के दरबार का राग अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर समूचे देश का राग बन जाता है।इसलिए दरबार की वास्तविक स्थिति देश के बड़े-बड़े प्रतिष्ठान यहां तक कि संसद और विधानसभाओं द्वारा स्थापित सत्ता प्रतिष्ठानों की चारदीवारी में पहुंच जाती है।

राग दरबारी का आरंभ ही व्यंग्य से होता है। सड़क पर खड़े ट्रक के बाहरी ढांचे का उल्लेख किए बिना ही लेखक एक चित्र के साथ प्रस्तुत करता है, ष्उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।ष2 इसी प्रकार सड़क के किनारे पेट्रोल पंप के पास ही खस्ताहाल दुकानों को देखकर जो व्यंग्यात्मक टिप्पणी लेखक करता है वह सबके बस की बात नहीं ष.....जो दिन-रात मक्खी- मच्छरों के हमलों का बहादुरी से मुकाबला करती थी। वह हमारे देशी कारीगरों के हस्त कौशल और उनकी वैज्ञानिक दक्षता का सबूत देती थी। वह बताती थी कि हमें एक अच्छा रेजर ब्लेड बनाने का

नुस्खा भले ही न मालूम हो, पर कूड़े को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों में बदल देने की तरकीब सारी दुनिया में अकेले हमीं को आती है।ष्3

इन दोनों उद्धरण में प्रत्यक्ष रुप से व्यंग के किसी महत्वपूर्ण उपकरण का सहारा नहीं लिया गया है, फिर भी इन्हें अतिरंजना और अपकर्ष का सुंदर उदाहरण माना जा सकता है। ट्रक और मिठाइयों की स्थिति हमारे सामने उनके यथार्थ को मूर्त कर देती है। इसी प्रकार बस अड्डे की गंदगी, गांव के बगल में तालाब, चमराही बस्ती आदि के यथार्थ को उद्घाटित करने में भी राग दरबारी में लेखक ने इसी पद्धति का सहारा लिया है। गंदगी प्रसार योजना को पूर्णता तक पहुंचाने के लिए बस अड्डे के पीछे एक झीलनुमा पोखर का वर्णन किया गया है जिसका उपयोग सुबह - शाम शौच क्रिया के लिए होता था।पालतू सूअरों के उपयोग या दुरुपयोग से आदमी द्वारा छोड़ी गई गंदगी से गुजरती हुई हवा मुसाफिरों को नाक पर पटी लगाकर कभी जैन धर्म स्वीकार करने को विवश कर रही थी तो कभी सूअरों की गुर-गुराहट उन्हें वाराह -अवतार की कल्पना से अभिभूत करती थी।

श्रीलाल शुक्ल ने राग दरबारी में गृहित तथ्यों की पुष्टि के लिए प्राय: व्यंग्य शैली का सहारा ही लिया है। उदाहरण के लिए वैध जी के आवास की छत के ऊपर वाले कमरे के दृश्य को देखा जा सकता है, ष्छत के ऊपर एक कमरा था जो हमेशा संयुक्त परिवार की पाठडपुस्तक जैसा खुला रहता था।..... परिवार के सभी लोगों में शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का नारा बुलंद करने वाले इस कमरे को देखकर लोगों के मन में स्थानीय संस्कृति के लिए श्रद्धा पैदा हो सकती थी। इसे देख लेने पर कोई भी समाजशास्त्री यह नहीं कह सकता था कि पूर्वी गोलार्ध में संयुक्त परिवार की व्यवस्था को कहीं से कोई खतरा है।ष्4 उपन्यासकार का यह निष्कर्ष एक अपेक्षात्मक टिप्पणी के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस कमरे की आंतरिक सज्जा का विवरण देते हुए कोने में रखी मुगदरों की जोड़ी, कांच और मिटी के बर्तनों में रखे हुए अचार, कमरे के आर-पार बंधी रस्सी पर एक साथ लटके हुए लंगोट और चोलियां, अँगोछे और पेटीकोट, वैद्य जी के दवा खाने की खाली शीशियां तथा इनके साथ ही रुप्पन बाबू का गुप्त साहित्य समान रूप से प्रतिष्ठित था। रुप्पन के गुप्त साहित्य पर टिप्पणी करते हुए लेखक का कहना है कि, ष्बहुत सी दफ्तरी बातों की तरह गुप्त रहकर भी वह गुप्त नहीं रहता। विशिष्ट और जन साहित्य की बनावटी श्रेणियों का अतिक्रमण कर सबके हृदय में समान रूप से प्रतिष्ठित है।ष्5

रंगनाथ जब इस कमरे में रहने आया तो उसने इस कमरे के मूल चरित्र में परिवर्तन कर दिया। रंगनाथ ने आते ही इसमें अपना व्यक्तिवाद फैला दिया था। इसमें एक स्थाई चारपाई पर एक स्थाई बिस्तर डाल दिया गया था। अलमारी में शोध कार्य से संबंधित उसकी किताबें लग गई थी। इसमें गुप्त साहित्य के प्रवेश का निषेध कर दिया गया था। चारपाई से लगी खिड़की खुलने पर बगीचों और खेतों का दृश्य रंगनाथ के व्यक्तित्व को कवित्वमय बना देता था। वह सोचने लगता था कि ष्उसके सामने न जाने कितने वड्सवर्थ, कितने रॉबर्ट फास्ट ,कितने गुरुभक्त सिंह एक ऑर्केस्ट्रा बजा रहे हैं और उनके पीछे अनगिनत आंचलिक कथाकार मुंह में तुरही लगाए ,सांस फुलाए खड़े हैं।ष्6 कटाक्ष और अक्षेप की यह शैली उपन्यास में अंत तक विद्यमान रहती है। जो इस बात का संकेत है कि तत्कालीन समाज का हर व्यक्ति उपन्यासकार को अपना शत्रु ही दिखाई देता है। रंगनाथ के मन में यह भ्रम भी पैदा हो गया था कि गांव में पीढ़ियों को लेकर कोई विवाद नहीं होता। इस पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार पाठक को सामाजिक क्षेत्र से हटाकर क्षण भर के लिए साहित्य के क्षेत्र की ओर ले जाते हुए लिखता है, ष्यह विवाद विशेष रूप से साहित्य और कला के क्षेत्र में ही चल रहा था क्योंकि औरों के मुकाबले वाद विवाद के लिए साहित्य और कला के क्षेत्र ही ज्यादा से ज्यादा फैलावदार और कम से कम हानिकारक हैं। पिछली पीढ़ी के मन में अगली पीढ़ी को मूर्ख और अगली के मन में पिछली को जोकर समझने का चलन वहां इतना बढ़ गया था कि अगर क्षेत्र साहित्य कला का न होता तो अब तक गृह युद्ध छिड़ चुका होता।ष्7 अखाड़े से आ रहे बद्री और छोटे पहलवान जी के असावधानी से लंगोट पहनने पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार लिखता है, ष्जिस तरह कला के नाम पर हेनरी मिलर और डी एच लॉरेंस की अश्लीलता को माफी मिल जाती है उसी तरह भारतीय व्यायाम के नाम पर इन दोनों पहलवानों को यह सब दिखाने की छूट मिल गई थी।ष्8

राग दरबारी में शिक्षा संस्था के रूप में छंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज को कथा का प्रमुख केंद्र बनाया गया है। भारत में शिक्षा की स्थिति विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की शिक्षा संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करने के लिए उपन्यासकार ने ऐसा किया है।छंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज और तमाम ऐसे कॉलेजों की स्थापना के पीछे निहित उद्देश्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, ष्यह कॉलेज प्रायरू किसी स्थानीय जननायक की प्रेरणा से शिक्षा प्रचार के लिए और वास्तव में उसके लिए विधानसभा या लोकसभा के चुनावों की जमीन तैयार करने के उद्देश्य से खोले जाते थे और उनका मुख्य कार्य कुछ मास्टर और सरकारी अनुदानों का शोषण

करना था। यह कॉलेज जमाने के फैशन के हिसाब से बिना आगा-पीछा सोचे हुए चलाए जा रहे थे।ष्9 शिक्षा क्षेत्र की स्थिति की बीहड़ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अध्यापकों पर दफा 107 का मुकदमा दायर है और वे चोर डाकुओं की कतार में खड़े कर दिए गए हैं। वस्तुत: यहां उपन्यासकार ने ग्रामीण क्षेत्रों की विकट और भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था ही नहीं वरन संपूर्ण देश की बौद्धिक क्रीडा और शिक्षण प्रशिक्षण व्यवस्था के यथार्थ की हास्यास्पदता भी प्रकट की है।

उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रशासन के रूप में शिवपालगंज का थाना, थानेदार और सिपाही ही मुख्य रूप से आते हैं। शिवपालगंज के जुआरी संघ के मैनेजिंग डायरेक्टर थानेदार से हाथ जोड़कर कहते हैं कि ष्हुजूर आज मेरा चालान अवश्य कर दें। दुश्मनों ने कानाफूसी शुरू कर दी है। कप्तान के पास गुमनाम चिठी गई है। चालान हो जाता तो सारी झंझट खत्म हो जाती।ष10 इस कथन से जुआरी संघ के साथ थानेदार की मिलीभगत का पता चलता है।स्थूल यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासकार में एक नयी पद्धति अपनाई है। शनिचर द्वारा खोली गई नई दुकान की वास्तविकता का कच्चा चिठा प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं, ष्दुकान पर पान -बीड़ी से लेकर आटा -दाल, चावल, गरम मसाला आदि सब कुछ था, जो खुलेआम खरीदा और पाया- खाया जाता है। यह तो राजनीति का एक पहलू था जो मेनिफेस्टो में लिखा जाता है। इसके बाद वह पहलू आता था जो पार्टी की बैठकों में गुप्त मंत्रणा के रूप में प्रकट होता है और जो सिर्फ विश्वस्त सूत्रों को ही मालूम हो पाता है। उसके भीतर वे चीजें आती थी जो खुलेआम खरीदी तो नहीं जाती थी पर खाई जा सकती थी।इस कोटि के माल में बहुत से अंग्रेजी दवाइयां थी जिनका उद्गम स्थानीय अस्पताल के स्टोर में था। उन्हीं में पाउडर वाले अमेरिकी दूध के डिब्बे थे जिनका उद्गम स्थानीय प्राइमरी स्कूल में था। इस तरह के पदार्थों में कुछ वे पदार्थ आते थे जो सिर्फ छिपाकर खरीदे जा सकते थे और छिपाकर इस्तेमाल हो सकते थे।इनमें गांजा ,भांग और चरस भी थी।ष11 वस्तुतरू इस पद्धति से श्रीलाल शुक्ल ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त यथार्थ को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। पार्टी मेनिफेस्टो और उसके लिए चित्र के माध्यम से लेखक ने सनीचर की दुकान के सभी पहलुओं को बेनकाब कर दिया है।

उपन्यास में भारतीय न्याय - व्यवस्था के यथार्थ पर लेखक ने जो व्यंग्य किया है वह न्याय की दुस्तरता को सामने लाता है- ष्पुनर्जन्म के सिद्धांत की ईजाद दीवानी की अदालतों में हुई है ताकी वादी और प्रतिवादी इस अफसोस को लेकर न मरे कि उनका मुकदमा पड़ा रहा। इसके सहारे वे चौन से मर सकते हैं कि मुकदमे का फैसला सुनने के लिए अगला जन्म तो पड़ा ही है।ष12 कथा पात्र लंगड़ ने लगभग सात वर्ष पहले दीवानी का एक मुकदमा दायर किया था। मुकदमे के लिए उसे एक पुराने फैसले की नकल चाहिए थी, जिसके लिए उसने तहसील में दरख्वास्त दी थी।नकल बाबू को ष्5000 रिश्वत न देकर वह धर्म की लड़ाई से नकल लेने के लिए जीवनपर्यंत जूझता रहा। लेखक उसे कचहरी के दरवाजे पर टंगा हुआ एक भयानक पोस्टर कहता है, जो चीख-चीख कर इस तथ्य की घोषणा करता है कि आज सर्वसाधारण आदमी लंगड़ बना न्यायालयों के लगातार बढ़ते हुए लूट चक्र से आक्रांत होकर त्राहि-त्राहि कर रहा है। एक नेता द्वारा अपने नकल प्राप्त करने के लिए तहसील के सामने झोपड़ी डालकर भूख हड़ताल करने और अखबार में नाम छपने का प्रलोभन देने के सुझाव पर लंगड़ की खुली हंसी पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, ''इस बार जैसे हंसी हंसा वह सिर्फ वैष्णवजन की न थी। उस पर कबीर स्कूल, वर्धा स्कूल और सेवापुरी स्कूल की छाप तो थी ही, कुछ लखनऊ स्कूल का भी असर था, जिसका इसके सिवा कोई जवाब नहीं होता कि आप भी दांत खोलकर हैं हैं करने की कोशिश करें।''[13] यहां केवल लंगड़ की साधारण हंसी ही नहीं वरन नेता के विषय में उनकी समझ भी मूर्त होती है।

तत्कालीन राजनीति पर भी उपन्यासकार के कटाक्ष उजागर होते रहे हैं। इसी संदर्भ में रंगनाथ की मनोदशा का चित्रण करते हुए लेखक ने लिखा है, ष्शनिचर की विजय के दिन उसने बहुत सोच डाला और उस दौरान उसे प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वेद्य जी और मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों की कतार में ना जाने कितने सनीचर घुसे हुए दिख पड़े।ष14 इसके अंतर्गत देश की जनतांत्रिक प्रणाली पर एक गहरा कटाक्ष हुआ है। भारतीय राजनीति के कर्णधारों की गुटनिरपेक्षता की नीति पर भी उपन्यासकार ने इसी पद्धति से कटाक्ष किया है। छोटे पहलवान द्वारा बद्री के सामने गोपनीयता की शपथ पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, ष्छोटे ने निष्ठा पूर्वक गोपनीयता की शपथ ली थी।पर वह शपथ गोपनीयता की उन सभी शपथों जैसी थी जो राजभवनों में ली जाती है।ष15 श्री लाल शुक्ल एक प्रशासनिक अधिकारी रहे हैं।अत: बहुत से राजनीतिक तथ्यों को उन्होंने अत्यंत सांकेतिक ढंग से उजागर किया है। उदाहरण स्वरूप छोटे पहलवान द्वारा डांटे जाने पर ग्राम सभा के प्रधान सनीचर की स्थिति को उन्होंने इस प्रकार संकेतित किया है, ष्जैसे कोई प्राइममिनिस्टर पार्टी प्रेसिडेंट की डांट खाकर एकदम से प्रेस कॉन्फ्रेंस में पहुंच रहा हो, कुछ उसी पोज से उसने (सनीचर ने) अपने चेहरे को निर्विकार करने की कोशिश की।ष16 यहां एक तत्कालीन घटना का संकेत है, जो पार्टी प्रेसिडेंट

कामराज और श्रीमती इंदिरा गांधी के मध्य होने वाले विवाद से संबंधित है। इस प्रकार उपन्यास में तत्कालिक भारतीय राजनीति परोक्ष रूप से प्रस्तुत हुई है। भारत की स्वाधीन सरकार द्वारा अपनाई गई मिश्रित अर्थव्यवस्था की आड़ में देश के विकास के लिए जो पूंजीवादी रास्ता अपनाया गया उसकी और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में उपस्थित आर्थिक बदहाली की चर्चा व्यंग्य के रूप में उपन्यास में की गई है। अपनी अतिशय व्यंग्यात्मकता के कारण कुछ आलोचकों ने श्राग दरबारीश को चुहलबाजी और उपहास की मुद्रा से ओतप्रोत उपन्यास बताया है बावजूद इसके यह एक यथार्थवादी रचना है, जो सार्वजदेशिक भ्रष्ट व्यवस्था की कलई उतारकर नई व्यवस्था की अनिवार्यता को रेखांकित करती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी,राजकमल पेपरबैक,मखपृष्ठ
2. वही,पृ 5
3. वही,पृ 5
4. वही,पृ 46-47
5. वही,पृ 47
6. वही,पृ 48
7. वही,पृ 49
8. वही,पृ 233
9. वही,पृ 232
10. वही,पृ 11
11. वही,पृ 262
12. वही,पृ 31
13. वही,पृ 102
14. वही,पृ 239
15. वही,पृ 237
16. वही,पृ 271

'मैला आँचल' उपन्यास में राजनीतिक यथार्थः एक अध्ययन

जैनेन्द्र चौहान

पीएच.डी. शोध प्रज्ञ
हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय (असम)

किसी समाज को सुचारु रूप से चलाने तथा उसके सर्वांगीण विकास में राजनीति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। समाज और राजनीति में घनिष्ठ सम्बन्ध देखा जाता है। एक तरह से यह दोनों एक दूसरे के पुरक हैं। राजनीति समाज पर निर्भरशील होने के कारण यह मानवजीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है। राजनीति का समाज और व्यक्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण इसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर भी परिलक्षित होता है। हिन्दी साहित्य के आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' भी राजनीति से जुड़े हुए व्यक्ति रहे हैं। उनके व्यक्तिगत जीवन पर राजनीति का गहरा प्रभाव देखा जाता है। समाज पर भ्रष्ट राजनीति का प्रभाव होने के कारण इस क्षेत्र में उन्हें निराशा ही हाथ लगी, पर उनके साहित्य पर राजनीति का पुरा प्रभाव पाया जाता है। 'रेणु' जी राजनीतिक दृष्टिकोण रखने वाले लेखक माने जाते हैं। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन-संघर्षों से राजनीति सम्बन्धी मोती चुन कर निकाला। 'मैला आँचल' उपन्यास में राजनीतिक पृष्ठभूमि को अपनाया गया है, जो इस उपन्यास के पात्रों के व्यक्तित्व को और भी निखारती है। उन्हें बेडियों में जकड़कर उनका गला नहीं घोटती। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उपन्यासकार तत्कालीन राजनीति भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता का वर्णन किया है। जिसमें आम जनता के शोषण, कराह की समस्या, धार्मिक भ्रष्टाचार इत्यादि अमानवियता को चित्रित किया गया है।

आजादी के सात साल बाद भारत के गाँव की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास रेणु जी ने 'मैला आँचल' उपन्यास में किया है। उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से यह दिखाने की चेष्टा की है कि आजादी के पूर्व देश के नेताओं ने सामाजिक सुधार हेतु जो-जो वादे किये थे वह थोथी साबित होती हैं। रेणु जी के व्यक्तित्व में राजनीतिक विचारधारा का निर्माण जीवन के अनुभवों से हुआ था। जिसके कारण उनका विश्वास राजनीतिक पार्टियों की रूढिघ्वादी विचाराधाराओं से हटता चला गया। मधुकर सिंह को दिए एक साक्षात्कार में रेणु जी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि दृ ''राजनीति हमारे लिए दाल-भात की तरह है। अगर आपका मतलब 'राजनीति पार्टी' से हैं तो यह सही है कि अब मैं किसी पार्टी का सदस्य नहीं रहा।'' 1 इनके राजनीतिक यथार्थ के केन्द्र में किसान-मजदूरों का संघर्ष अनिवार्य रूप से उपस्थित है, महज शाब्दिक सहानुभूति के स्तर पर नहीं।

रेणु जी के राजनीतिक यथार्थ में धर्म और जाति के संकीर्ण आग्रहों का कोई स्थान नहीं था। श्मैला आँचल' उपन्यास में रेणु जी ने जातिवादी राजनीति पर जमकर प्रहार किया है। रेणु जी ने मानवीय संवेदना को राजनीति का मुख्य बिन्दु माना और उसके प्रति प्रतिबद्ध रहे। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर राजनीतिक यथार्थ को 'मैला आँचल' उपन्यास में उजागर किया। जिसमें जाति, धर्म, प्रांत हिंसा, भ्रष्टाचार, धन का प्रभूत्य जैसी संकीर्णताओं का विरोध एवम् समानता, न्याय, विकास जैसी विस्तृत उद्देश्यों वाली राजनीति के पक्षधर रहे।

राजनीति का मुल आशय व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा, प्रशासन, व्यक्ति में अन्तर्निहित सम्भावनाओं का विकास करना है। गुटबाजी और षडयन्त्रों का अर्थ राजनीति नहीं होती। 'मैला आँचल' में जिस राजनीतिक चेतना का दर्शन होता है उसमें एक ओर तथाकथित समाजसेवी राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट-चरित्रों को उद्घाटित करने का भाव है और दूसरी ओर शोषित जनता की पक्षधरता को

अभिव्यक्ति मिली है। साथ ही, राजनीतिक यथार्थ के रूप में गांधीवादी आदर्श को भी प्रतिष्ठित किया है। पहले वर्ग के अन्तर्गत बालदेव जैसे कांग्रेसी समाज सेवियों के चरित्र का चित्रण हुआ है। वह बात-बात पर 'महात्मा गांधी की जय' बोलता और बुलवाता है। हिंसा न करने के लिए लोगों को प्रेरणा देता है। लोगों को हिंसात्मक आन्दोलन न करने की सलाह देता है।

बालदेव कांग्रेस का पुराना कार्यकर्ता है। वह स्थान-स्थान पर गांधीजी के आदर्शों और सिद्धान्तों की बात करता है दृ ''वह लोगों को समझाता है - वैष्णव जन उसको कहते हैं जो पीर पराई जानता है।''2 मेरीगंज के लोग गांधीवादी विचारधारा से पूर्णरूप से प्रभावित हैं। वे कहते हैं दृ ''हम मेरीगंज को चन्ननपटी की तरह बनाना चाहते हैं। हम अपने गाँव में मैला खुद साफ करेंगे।''3 उनकी धारणा है कि गांधीजी ने अंग्रेजों को हटाने में बुद्धि के बल का प्रयोग किया था। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वही बालदेव अवसरवादी चरित्र के रूप में प्रकट होता है। वास्तव में यह बालदेव उन असंख्य बालदेवों का प्रतीक है जो आज भी गांधीजी की पूँछ को पकड़कर अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे हैं। समाज सेवा और देश भक्ति के नाम पर राष्ट्र की अशिक्षित, असंस्कारों और भोली-भाली जनता का शोषण कर रहे हैं। राजनीति यथार्थ का यह रूप लेखक द्वारा इसीलिए प्रस्तुत किया गया है कि वह यह निश्चित कर सकें कि जनता अब इस प्रकार के जन-सेवकों को पहचानने लगी है। इनके द्वारा अधिक समय तक व्यक्तियों के आँखों में धूल नहीं झोंका जा सकता।

सच्चे गांधीवादी बावनदास को अवतारी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। उनका चरित्र आदर्शवादी है। स्वतंत्रता के आन्दोलन में वीरता एवं निर्भयता उनके चरित्र की विशेषता है साथ ही स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भ्रष्टाचार रोकने में उनका आत्म-बलिदान अविस्मरणीय है। बामनदास गांधीजी के आदर्शों से प्रभावित है। बैलगाड़ी के नीचे दबकर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को नाप लेता है। संकीर्णता, स्वार्थ और चोर बाजार से भागता है। बावनदास भ्रष्टाचार को रोकने के लिये मृत्यु को अंगीकार करता है दृ ''नागर पार करते समय बामन के गले की तुलसी-माला नागर की बहती हुई धारा में गिर पड़ती है।''4 यहाँ पर रेणु जी पौराणिक बामन की याद दिलाते हैं। पाठक बावनदास को कभी नहीं भूल सकेंगे जो कि राजनीतिक क्षेत्र में एक सच्चे गांधीवादी होने का फर्ज अदा करता है।

रेणुजी के 'मैला आँचल' में राजनीतिक यथार्थ के अन्तर्गत एक और पक्ष है। यह पक्ष सोशलिस्ट पार्टी और उसके साथियों द्वारा प्रस्तुत हुआ है। सोशलिष्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं में शोषित जनता की पक्षधरता का भाव है। कालीचरण सामान्य लोगों के सुख-दुख की आवाज है। वह उनके छीने गए अधिकारों को वापस दिलाने की बात कहता है। कालीचरण कहता है दृ ''मैं आप लोगों के दिल में आग लगान चाहता हूँ। सोये हुए को जगाना चाहता हूँ। सोशलिस्ट पाटी आपकी पाटी है, गरीबों की, मजदूरों की पाटी है। सोशलिष्ट पाटी चाहती है कि आप अपने हकों को पहचाने।''5 कालीचरण केवल बातों में ही नहीं बल्कि व्यवहारों में भी जनता का शुभचिन्तक है। हैजा के समय उसका दल गाँव वालों को घेर कर उन्हें सुई लगवाने के काम में डॉक्टर प्रशान्त की सहायता करता है। एक ओर गरीब व्यक्ति के प्रति कालीचरण में इतनी मानवीयता है तो दूसरी ओर राजनीतिक-सामाजिक स्तर पर वह जमीन जोतने वाले किसानों को उनके अधिकारों का स्मरण कराता है। सोशलिस्ट पार्टी के विषय में अपने साथी वासुदेव को समझता हुआ वह कहता है दृ ''यही पाटी असल पाटी है। गरम पाटी है।''6 गाँव में सोशलिष्ट पार्टी की सभा शोषित संथालों में इतना उल्लास भर देते हैं, जितना अस्पताल खुलने पर उन्हें नहीं हुआ। गाँववासियों की दृष्टि में कालीचरण बड़ा व्यक्ति बन जाता है। वह आधुनिक युग की विश्व-बन्धुत्व की भावना का ज्वलन्त उदाहरण है। उसका व्यक्तित्व सच्ची राजनीति का प्रतीक रूप है। इस वहज से आम लोगों में अपने अधिकारों का अहसास होने लगा है। वे समझने लगे हैं कि कौन उनके हितचिन्तक है और किनका साथ देकर वे अपने अधिकारों की प्राप्ति और उनकी रक्षा कर सकते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यथार्थ मानव जीवन एवं समाज का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य का विषयवस्तु काल्पनिक संसार से न लेकर वास्तविक संसार से लेता है। जिसमें समाज के सुन्दर एवं कुरूप दोनों पक्षों का वास्तविक चित्रण किया जाता है। 'मैला आँचल' उपन्यास के अन्तर्गत राजनैतिक चेतना का जो यथार्थ स्वरूप प्रकट हुआ है, वह चरित्रों को उभारने के साथ-साथ परिवेश की पुष्टि भी करता है। कांग्रेस और सोशलिष्ट पार्टी के अतिरिक्त इसमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा साम्यवादी विचारधारा के भी संकेत मिलते हैं। अनेक मतवादों और संगठनों का संयोजन भी इसमें परिवेशीय सहजता के साथ हुआ है। इन सबसे इसमें सर्वपक्षीय चेतना का आरम्भिक स्तर तो प्रतिष्ठित हुआ ही है साथ ही एक अग्रगामी दृष्टि की संयोजना भी स्वतरू ही हो गई है।

संदर्भ ग्रन्थसूची :

1. भारत यायावर, 'रेणु रचनावली' भाग 4, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, पृष्ठ संख्या - 418
2. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, पृष्ठ संख्या - 36
3. वही, पृष्ठ संख्या - 88
4. वही, पृष्ठ संख्या - 298
5. वही, पृष्ठ संख्या - 148
6. वही, पृष्ठ संख्या - 90

संन्यासवादः शास्त्रीय परम्परा और व्यवहार के सन्दर्भ में

डॉ० सरोज कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि शिक्षक)
राजेंद्र कॉलेज, छपरा, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

प्रस्तुत शोधपत्र के द्वारा संन्यासवाद के व्याकरण सम्मत अर्थ को स्पष्ट करते हुए संन्यास की भारतीय शास्त्रीय परम्परा एवं व्यावहारिकता का एक संक्षिप्त तथ्यपरक विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

संन्यास शब्द सम् एवं नि उपसर्गपूर्वक अस् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करने पर निश्पन्न होता है[1] (सम् + नि + अस् + घञ् = सम् नि आस = संन्यास) जिसका शाब्दिक अर्थ होता है विरक्त होना, प्रपंच छोड़ना।" सम्यक् न्यस्तानि अधार्माचरणादीनि सांसारिक-मायामोहावरणानि येन स संन्यासः" अर्थात् जिसके द्वारा भली-भाँति अधार्मादि कुत्सित आचरण छोड़ दिये जाते हैं वह संन्यास है और "संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी" अर्थात् जिसमें संन्यास है वह संन्यासी है।[2] सांसारिक प्रपंचों जो मुख्यतः पुत्रैशणा, वित्तैशणा और लाकैशणा से सम्बद्ध है उनको भली-भाँति त्याग देने की भावना जिनमें जाग्रत है वह संन्यासी है।[3] इन सभी का त्याग करने वाले व्यक्ति को संन्यासी कहा जाता है।[4]

एक दूसरी मान्यता के अनुसार सत् में न्यस्त व्यक्ति को संन्यस्त कहा जाता है तथा उसे ही संन्यासी का अभिधान मिलता है। इसमें सत् में स्थित होने को संन्यास कहकर अभिप्राय को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है। सत् वह स्थिति है जिसमें राग-द्वेष का तिरोभाव हो जाता है। सत् के गुणों से संपन्न व्यक्ति को सात्विक कहा जाता है। ऐसी स्थिति में संन्यासियों की पहली पहचान उनकी वेष-भूषा, आहार-विहार आदि से बढ़कर उनकी सात्विकता होती है। सात्विकता की यदि कोई संक्षिप्त व्याख्या की जाय तो उसके अनुसार सात्विकता वह भाव है जिसमें राजसिकता और तामसिकता का अभाव होता है।

आरंभ में संन्यास शब्द की दूसरी निरूक्ति को अधिक बोधगम्य मानकर संन्यासी शब्द को सदाचरण से जोड़ा गया है इसकी पुष्टि श्रीमद्भगवद्गीता में होती है-"भौतिक इच्छा पर आधारित कर्मों के परित्याग को विद्वान लोग संन्यास कहते हैं और समस्त कर्मों के फलत्याग को बुद्धिमान लोग त्याग कहते हैं।"[5] संन्यासी शब्द को समझने के लिए गीता में भारतीय दर्शन के निचोड़ को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि-"संन्यासी त्यागी नहीं होता अपितु कर्तव्यशील होता है। संन्यासी को यज्ञ, दान तथा तपस्या के कर्मों का कभी परित्याग नहीं करना चाहिए। गीता की मान्यता है कि संन्यासियों को कर्म त्यागी नहीं होना चाहिए, वस्तुतः किसी भी देहधारी प्राणी के लिए समस्त कर्मों का परित्याग कर पाना असंभव है, लेकिन जो कर्मफल का परित्याग करता है वहीं त्यागी है। इस प्रकार प्राचीन मान्यता के अनुसार संन्यास निश्क्रियता की स्थिति का नाम नहीं अपितु पूर्ण सक्रियता का नाम है जिसमें व्यक्ति समाज के लिए उचित कर्तव्यों को निर्लिप्त भाव से तथा निःसंकोच ढ़ंग से करते हैं ऐसा गीता के आधार पर तो कहा ही जा सकता है।

परन्तु यदि संन्यास शब्द की प्रथम व्याख्या को लिया जाय तो उसके अनुसार संन्यास (सम्यक् आत्म न्यास) परम निश्क्रियता को इंगित करता है।गीता में वैसे संन्यासियों का भी उल्लेख है जो दिव्य पद पर स्थित होते हैं। वैसे संन्यासी के बारे में यह वर्णन है- "अपनी बुद्धि से शुध होकर तथा धैर्यपूर्वक मन को वश में करते हुए इन्द्रिय तृप्ति के विषयों का त्याग कर, राग तथा द्वेष से मुक्त होकर जो व्यक्ति एकान्त स्थान में वास करता है, जो थोड़ा खाता है, जो अपने शरीर, मन तथा वाणी को वश में रखता है,

जो सदैव समाधि में रहता है तथा पूर्णतया विरक्त, मिथ्या अहंकार, मिथ्या शक्ति, मिथ्या गर्व, काम, क्रोध तथा भौतिक वस्तुओं के संग्रह से मुक्त, जो स्वामित्व की भावना से रहित तथा शांत है वह निश्चय ही ब्रह्मभूय होने में समर्थ है।"[6] परन्तु यह ब्रह्मभूयता उच्चतम कोटि के संन्यासी का लक्षण है जिसके कारण वैसा संन्यासी समाज से अपने को पूर्णत: अलग कर लेता है। ये बिरले होते हैं। गीता के अनुसार इनसे इतर संन्यासी सात्विकता के निर्वाह के कारण संन्यासी कहलाते हैं और वे कर्तव्यभाव से समाज के उत्थान के लिए व्यक्तिगत हित को अमान्य करके अत्यन्त सक्रिय रहते हैं। इनकी सक्रियता किसी जाति या अपने परिवार से नाममात्र को भी बँधी नहीं रहती है जिसके कारण इनकी सक्रियता सर्वपूज्य होती है।

प्राचीन भारतीय परंपरा में संन्यास भाव में आने का अधिकार उन व्यक्तियों को ही दिया गया था जो गृहस्थ आश्रम से विरत हो चुके थे। मनु के अनुसार– "अपने वय के तीसरे भाग को तपश्चर्यादि के द्वारा वन में काट कर वय के चौथे भाग में सब विषय सङ्गों का त्याग कर संन्यासाश्रम का पालन करना चाहिए। द्विज को दस लक्षण घृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियों को वश में करना, ज्ञान, विद्या, सत्य, क्रोध का त्याग वाले धर्म का पालन करते हुए ऋणत्रय से छुटकारा पाकर संन्यास ग्रहण करना होता था। ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थाश्रम में और गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थाश्रम का पालन करने के पश्चात् ही द्विज को संन्यासाश्रम ग्रहण करना चाहिए।"[7]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ग्रन्थ में संन्यास ग्रहण करने की तीन परिस्थितियों का उल्लेख किया है। "एक तो यह कि ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम एवं वानप्रस्थाश्रम में अभीष्ट विषयों का ज्ञान प्राप्त कर, उनका उपभोग कर क्रमश: संन्यासाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। दूसरा पक्ष यह है कि जब कभी वैराग्य अर्थात् बुरे कार्यों से चित्त हटकर ठीक-ठीक सत्यमार्ग में निश्चित हो जाय तो उस समय गृहस्थाश्रम से भी संन्यास हो सकता है। तीसरा पक्ष है कि जो पूर्ण विद्वान होकर सब प्राणियों का शीघ्र उपकार करना चाहें वे ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं।"[8]

अपवादस्वरूप ही गृहस्थ या ब्रह्मचारी संन्यासी हो सकते थे। पर सामान्यत: इस प्रकार के संन्यासी दुर्लभ थे। संन्यास आश्रम किसी अवस्था से अधिक मन के सात्विक भाव पर अवलम्बित था जिसे प्राचीन मान्यता के अनुसार सांसारिक भोग से विरत व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता था। गृहस्थ आश्रम के पश्चात् एक वानप्रस्थ आश्रम होता था उसमें भी सात्विकता का पोषण होता था। पर परिवार के साथ रहना उसमें अनुमत था। उन वानप्रस्थियों के सात्विक लक्षणों के कारण जनसामान्य उन्हें भी संन्यासी मान लेता था। पर संन्यास आश्रम वानप्रस्थ आश्रम से कहीं अधिक उच्चतर था। मनुस्मृति में संन्यास आश्रम की स्थिति किंचित स्पष्ट है। वहाँ वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के एक ही प्रकार का लक्षण वर्णित है और उसका संन्यासी समाज से अलग व्यक्ति है।

वस्तुत: संन्यासी शब्द के सामान्य प्रयोग से ही यति संन्यासी कहलाये जाते हैं। शोध के उद्देश्य से नये-नये अपने आलेख में संन्यास शब्द के दूसरे अर्थ को ही प्रयोजनार्थ लिया है और यह पाया है कि दूसरी कोटि के संन्यासी समाज से अत्यन्त जुड़े रहते थे। समाज से जुड़नेवाला जनवर्ग को पथभ्रष्ट होने से रोकने के लिए भी प्रयत्नशील रहता है। दूसरे शब्दों में वह कर्तव्यपथ के संबंध में जागृति भी फैलाता है।उसे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। पर शेश समाज कर्तव्यपथ पर चलता रहे इसके लिए वह व्याकुल रहता है।वह स्थान-स्थान पर उपदेश देता है, तद्विधायक ग्रन्थों की रचना करता है और अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए जनसमुदाय का आह्वान भी करता है।

सात्विक सक्रियता प्रारंभिक संन्यास अवस्था की अनिवार्य विशेशता होती है। इसको आधार तथ्य मानकर प्राचीन भारतीय संस्कृति में संन्यास ग्रहण करने का अधिकार उन्हें ही दिया गया जिनकी राजसी और तामसी प्रवृत्तियाँ शांत हो चुकी हों तथा सात्विक प्रवृत्ति का सुदीर्घ अभ्यास हो चुका हो। इन मानदण्डों के अनुसार गृहस्थ आश्रम पूर्ण कर लेनेवाला ब्राह्मण ही संन्यास का अधिकारी माना गया।ऐसा माना जाता था कि ब्राह्मण अपनी आजीविका के कारण सात्विक गुणों का अभ्यास अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक कर लेता है तथा अपनी राजसी एवं तामसी प्रवृत्तियों का शमन गृहस्थ आश्रम के द्वारा सफलतापूर्वक कर लेता है।

संन्यासाश्रम में प्रवेश के लिए ब्राह्मण मात्र का ही अधिकार है, ऐसा जाबालोपनिषद् में कहा गया है।[9] किन्तु कूर्म पुराण में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को भी संन्यासाश्रम में प्रवेश की अर्हता निर्दिष्ट है।[10] बौधयन स्मृति में कहा गया है कि संन्यास ब्राह्मणों का ही धर्म है, क्षत्रियों एवं वैश्यों का नहीं, ऐसा दत्तात्रेय मुनि का मत है। ऐसा ही मत मल्लिनाथ का भी है। फिर भी संन्यास का प्रचलन

प्राय: ब्राह्मणों में ही अधिक था। संन्यास कौन ग्रहण करे इस संबंध में अंगिरा, हारीत, क्रतु, वृहस्पति तथा व्यासदेव जैसे शास्ताओं ने जिस प्रकार के निर्देश दिये हैं उनसे भली-भाँति उजागर होता है कि ब्राह्मण ही संन्यास के योग्य होते हैं। अंगिरा ऋषि का विचार है कि जब मन में सभी वस्तुओं के प्रति अरूचि का भाव पैदा हो जाए तभी संन्यास लेना चाहिए।[11] हारीत कहते हैं कि बुद्धिमान को चाहिए कि यदि वह संसार से विरक्त हो तो ही संन्यास ग्रहण करे यदि संसार के विषयों के प्रति जरा भी अनुराग मन में हो तो उसे घर में ही रहना चाहिए।[12] क्रतु के अनुसार जिसमें सहन करने की शक्ति है, इन्द्रियां जिसकी शान्त हैं, पवित्रता, सत्य, संतोष और सरलता जैसे गुण जिसमें विद्यमान हैं जो किसी भी वस्तु को अपना नहीं समझता और जो दम्भ नहीं करता वह संन्यास आश्रम का अधिकारी है।[13] वृहस्पति के विचार में जो भोगे हुए विषयों का न तो स्मरण करता है और न ही चिन्तन करता है तथा न ही प्राप्त भोगों का अभिनन्दन करता है, जो अन्दर रहनेवाली इन्द्रियों को अन्दर और बाहर के विषयों को सदा बाहर ही रख सकता है, वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करे।[14] व्यासदेव कहते हैं जिसकी जिह्वा, उपस्थ, उदर और हाथ उसके नियंत्रण में हों वह ब्राह्मण अपनी ब्रह्मचर्यावस्था में ही बिना विवाह किये हुए ही संन्यास ग्रहण कर सकता है। संसार को निस्सार देखकर जिसके मन में परम वैराग्य की भावना जागृत होती है, वे वास्तविकता को जानने की इच्छा से बिना विवाह किये ही संन्यास ग्रहण करते हैं।[15] उपर्युक्त मर्यादाओं का यथार्थ उन्हीं से संभव था जिसने ब्राह्मण वृत्ति और ब्राह्मण जीवन बीता लिया हो।

सारांश स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार ब्राह्मण शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक में ब्राह्मण को ब्राह्मण कहा जाता है और दूसरे में ब्राह्मण आजीविका चलाने वाले को ब्राह्मण कहा जाता है। उसी प्रकार संन्यासी शब्द के भी दो अर्थ- एक में ब्रह्मभूयता को प्राप्त करने के लिए सब कुछ त्याग कर निर्जन स्थान में ध्यानस्थ यति को संन्यासी कहा जाता है तो दूसरे में जाति, परिवार एवं देश छोड़कर सबकी भलाई में निश्काम एवं अपरिग्रह भाव से लगे हुए परिव्राजक व्यक्ति को संन्यासी माना जाता है। ब्राह्मण और संन्यासी दोनों में दूसरे अर्थ को ही समाज ने अधिक प्रयुक्त किया है।

आधुनिक काल में संन्यासियों की जो दसनामी परंपरा है उसका प्रवर्तन आदि शंकराचार्य ने किया था। पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने की आकांक्षा और सर्वत्र समंजस्य धार्मिक व्यवस्था के लिए उन्होंने भारत के चारों दिगन्तों में चार मठों की स्थापना की थी।एक मठ की स्थापना पश्चिम दिशा में द्वारकापुरी में शारदा मठ के नाम से स्थापित हुआ था जिसका प्रभार स्वरूपाचार्य (आचार्य विश्वरूप; सुरेश्वराचार्य) को दिया गया। उनकी देख रेख में तीर्थ और आश्रम नामक संन्यासी रखे गये। दूसरा मठ शंकराचार्यजी ने पूर्व दिशा में जगन्नाथपुरी (पुरुषोत्तम) में स्थापित किया था जिसका संभार उन्होंने पद्मपाद आचार्य को दिया था। इनकी देख-रेख में वन और अरण्य संन्यासी शाखाएँ थीं।तीसरा मठ उत्तर दिशा में बदरी-केदार क्षेत्र (बद्रिकाश्रम) में जोशी (ज्योतिर्मठ) मठ की स्थापना हुई थी जिसके संरक्षक व्रोटकाचार्य (तोटकाचार्य) बनाये गये थे।उनकी देख-रेख में गिरि, पर्वत और सागर नामधारी20 संन्यासी रखे गये।चौथे मठ की स्थापना दक्षिण दिशा मेंश्रृंगेरी में हुई थी जिसका दायित्व पृथ्वीधार आचार्य (हस्तामलक) को दिया गया था और जिसके प्रक्षेत्र में पुरी, भारती और सरस्वती शाखाओं के संन्यासियों को रखा गया था।[16] इस प्रकार संन्यासियों के सभी दस संप्रदाय इन मठों के अन्तर्गत रख दिये गये।

संन्यासियों के जो दस वर्ग बनाये गये थे उनका प्रधान ध्येय था अद्वैतवाद पर प्रवचन देना और इसके लिए वे बहुत से शिश्यों के साथ परिभ्रमण भी किया करते थे।वैसे उनके धार्मिक एवं विद्यागत कर्तव्यों का विशद निर्धारण भी किया गया था।

इन मठों की स्थापना संन्यासियों के लिए हुई थी और संन्यासी अद्वैतवाद के प्रचार व वैराग्य साधन एवं धर्मरक्षण के कर्तव्यों से जोड़े जाते थे। संन्यास धर्म में प्रवेश के लिए कोई जातिगत बंधन था या नहीं, इसमें आधुनिक काल के विद्वानों में मतभेद है। "त्रैवारिक संन्यास सार" नामक अपनी रचना में कैलाश पर्वत ने याज्ञवल्क्य स्मृति और ब्रह्मवैवर्त पुराणों के श्लोकों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि संन्यास धर्म में ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रियों और वैश्य कुल में जन्म-प्राप्त व्यक्तियों को भी प्रवेश करने का अधिकार था।पर गोपाल नन्द परमहंस ने अपनी रचना 'संन्यास-ग्रहण पद्धति' में यही माना है कि केवल ब्राह्मणों को ही संन्यासी होने का अधिकार होता था।[17]

सरस्वती और गिरि शाखाओं के संन्यासी जो बनारस और प्रयाग में अवस्थित हैं एक मौखिक परम्परा का साक्ष्य देते हुए यह बतलाते हैं कि संन्यास परम्परा में बाध्य होकर क्षत्रिय और वैश्यों को सम्मिलित करना पड़ा था। इनके अनुसार यह परम्परा अकबर

के राज्यकाल में आरंभ हुई।उनका वक्तव्य इस प्रकार है- "उन दिनों मुस्लिम फकीर सशस्त्र चलते थे और अपने समय के युद्धों में भाग लेते थे। फकीरों को विशेषाधिकार प्राप्त तो था ही सरकार भी उनकी रक्षा करती थी। जब किसी संन्यासी की हत्या होती थी तो किसी को भी सरकार दण्ड नहीं देती थी जबकि संन्यासी अपने अहिंसा-धर्म के बंधन में आक्रामकों को उग्र प्रत्युत्तर नहीं दे पाते थे। संन्यासियों में एक प्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन, जो बनारस में रहते थे, यह जानने के लिए कि संन्यासी सम्प्रदायों की रक्षा के लिए सरकार कुछ करेगी या नहीं अकबर से मिलने जब गये तो राजा बीरबल ने उन्हें समझाया कि वे इसके लिए संन्यासियों की परम्परा में अब्राह्मण वंशजों को भी ले लें।अकबर ने भी यह मान लिया कि प्रशासन संन्यासियों के कार्यकलापों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।"[18] इसी से प्रेरित होकर मधुसूदन ने दस संन्यासी परम्पराओं में सात में क्षत्रिय और वैश्य वर्ग के लोगों को बहुत अधिक संख्या में ले लिया। इतिहास जो भी रहा हो आधुनिक काल में संन्यासियों में अब्राह्मणों का दीक्षित होना एक सुदीर्घ परम्परास्वरूप स्थापित था।दीक्षित होने के उपरान्त वे जाति बंधन से मुक्त माने जाते थे और उनकी सामाजिक स्थिति सर्वोच्च हो जाती थी। गोपालानन्द की 'संन्यास-ग्रहण पद्धति' और विश्वेश्वर सरस्वती की रचना 'यतिधर्मसंग्रह' में यही बतलाया गया है।[19]

पर इन लक्ष्यों के साथ-साथ कालान्तर में अपने धर्म की रक्षा के लिए संन्यासी शस्त्रास्त्र साधन का भी अभ्यास करने लगे। उपर्युक्त चार मठों से अनेकों मठ भी निकले। एक जिले में सभी मठ मिलकर एक मण्डल बनाते थे जिसका अध्यक्ष मण्डलेश्वर कहलाता था। इसे संन्यासी लोग ही निर्वाचित करते थे। मण्डलेश्वर को सामान्य भाषा में महन्त कहते थे। वह अपनी सहायता के लिए एक कारबारी (मंत्री) और एक कोतवाल (संरक्षक) नियुक्त कर लेता था। महन्त का काम था मण्डल के संन्यासियों को पथभ्रश्ट होने से रोकना और इस हेतु वह न्यायाधीश का कार्य स्वयं करता था। महन्त इस बात की व्यवस्था करता था कि संन्यासी संस्कृत में लिखी धर्म रचनाओं का निरन्तर अध्ययन एवं पालन करें और जब सशस्त्र होने की आवश्यकता हुई तो इस व्यवस्था में 'अखाड़े' भी जोड़े गये। एक अखाड़े में हंस या परमहंस पद पर पहुँचे तीन से चार संन्यासी होते थे। शस्त्रधारी संन्यासियों को नाग (नागा) संन्यासी कहा जाने लगा।वे बहुत शारीरिक तप और हठयोग से अपने शरीर को सुदृढ़ भी करते थे।

आरंभ में तीर्थ, आश्रम, सरस्वती नामक संन्यासी दण्डी कहलाते थे। 'भारती' वर्ग में भी आधो दण्डी माने जाते थे और शेष गोस्वामी। शेष बचे सभी छः संन्यास-सम्प्रदाय भी गोस्वामी कहलाते थे। लोकभाशा में इन्हें गोसांई कहा जाता था। गोसांई लोगों ने कालान्तर में ब्रह्मचर्य का त्याग कर धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त व्यावसायिक कार्य भी अपना लिए।[20] दण्डी संन्यासियों का स्थान फलतः अधिक ऊँचा माना जाने लगा। इन संन्यासियों में भी उच्चावच्च श्रेणियाँ थी। निम्नतम श्रेणी में कुटीचक संन्यासी होते थे, उनसे ऊँची श्रेणी में बाहुदक, बाहुदक से ऊपर की श्रेणी में हंस और सर्वोच्च श्रेणी में परमहंस होते थे।[21]

18वी एवं 19वीं शताब्दी में बहुत से संन्यासी एवं फकीर सांसारिकता में परम्परागत रूप से लिप्त थे और अपने व्यावसायिक हितों के लिए सत्ता का प्रतिरोध करने की क्षमता भी रखते थे। फकीरों की टकराहट तो 16वीं शताब्दी से ही दिख रही थी।[22] राजेन्द्र गिरि गोसांई और उनके उत्तराधिकारी अनूप (हिम्मत) गिरि तथा उमराव गिरि अपनी नागा सेना के साथ सत्ता की लड़ाई में सफदरजंग, शुजाउद्दौला, मीरकासिम, रघुनाथ राव, आसफुद्दौला, मिर्जा नजफ खान आदि का साथ देते रहे। इस दौरान संन्यासी सत्ता का भी सुख भोगते रहे। संन्यासियों के पास विशाल भू-सम्पदा इकट्ठा हो गई थी। गोसांई जमींदार व्याज का धान्धा भी चलाते थे। संन्यासी लगान, व्याज और दानप्राप्ति से अकूत धन इकट्ठा कर रहे थे। महन्त एवं उनके चेले इस धन को व्यापार में लगा देते थे। बिहार एवं बंगाल के अन्य क्षेत्रों से व्यापारिक संबंध मुख्यतः संन्यासियों के माध्यम से होते थे। इन विवरणों से स्पष्ट है कि संन्यासी केवल शब्द रूप में ही रह गया था, अधिकांश संन्यासी (गोसांई) सांसारिकता में गहराई से लिप्त थे। उन्हें न तो धर्म रक्षा से कोई सरोकार था और नहीं देश-रक्षा से। उन्हें बस आमदनी चाहिए थी, भले इसके लिए मुसलमान शासकों की भी सेवा क्यों नहीं करनी पड़े। संन्यासी राजाओं के यहाँ पदधारण भी करने लगे थे। उपर्युक्त विवरण यही इंगित करते हैं कि संन्यासी एवं फकीर आम जीवन से बहुत अधिक जुड़े हुए लोग थे।

20वीं शताब्दी में जनता में यह भाव उत्पन्न हो रहा था कि जीवन सत्य है और जीवन के क्षेत्र में जो नाना कर्तव्य हमारे सामने आते हैं उन्हें सम्यक् विधि से संपन्न करके हम अपनी मुक्ति खोज सकते हैं, इसके लिए जंगलों में जाने, कामिनी और कंचन का परित्याग करके प्राणायाम और समाधि में लीन होने की कोई आवश्यकता नहीं। विवेकानन्द ने संन्यास का नया आदर्श स्थापित किया

जिसमें संन्यासी कौमार्य और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भी बहुत कुछ गृहस्थों के ही समान थे, क्योंकि वे ध्यान और समाधि में थोड़ा ही समय लगाते थे, बाकी उनका काम संसार की सेवा करना था जो परोपकारी गृहस्थ भी करते रहते हैं। महर्षि अरविन्द में आकर संन्यास ने एक और परिवर्तन स्वीकार किया जिससे गैरिक वसन की अनिवार्यता जाती रही और बाल-बच्चों से अलग भागना धर्म-साधाना का प्रधान सोपान नहीं माना जाता है। अरविन्द-आश्रम के संन्यासी और गृहस्थ एकाकार होकर एक ही साध ाना में प्रवृत्त हुए। गांधीजी ने समाज-सेवा एवं उच्च नैतिक आचरण को धर्म का एकमात्र आधार मान लिया तथा संन्यासी और गृहस्थ का भेद मिटाकर यह घोषणा की कि धर्म में वैरागी के लिए एक और संन्यासी के लिए दूसरा मार्ग नहीं है। वैरागी और संन्यासी दोनों का मूल उद्देश्य मानव-स्वभाव को निर्मल बनाकर आज की अपेक्षा अधिक सुन्दर, सुखद और पवित्र विश्व का निर्माण करना है।आदर्श समाज वह होगा जिसके संन्यासी भी गृहस्थ और गृहस्थ भी संन्यासी होंगे अथवा दोनों के बीच कोई भेद नहीं रह जायेगा।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. "भावे" पाणिनीय- अष्टाध्यायी, 3ध3ध18
2. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, 'संस्कार विधि:', आर्श साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 2006, पृ. 190
3. शतपथ ब्राह्मण, का0 14। अ0 7। ब्रा0 2
4. "श्रीमद्भगवद्गीता",गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2021, पृ. 99,100, 5।। 3।।
5. श्री श्रीमद् ए0 सी0 भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, 'श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप', भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई, 1999, पृ. 781, 18।। 2।।
6. वही, पृ. 815, 18।। 51, 52, 53।।
7. श्री पं0 हरगोविन्द शास्त्री, 'मनुस्मृति:', चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2001, 6।।33, 92, 35, 94, 34।। पृ. 289, 290, 304
8. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' सिद्ध योग पीठ ट्रस्ट, कुरूक्षेत्र, हरियाणा, 2008, पृ. 303 एवम् गोयन्दका, हरिकृष्णदास (व्याख्याकार), "वेदान्त दर्शन", गीताप्रेस, गोरखपुर, 2009, पृ. 312, ।। 3। 4। 20।।
9. याज्ञ संन्यास प्रकरण, संन्यासे विप्रस्यैवाधिकार: ब्राह्मण: प्रव्रजन्तीति आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मण: प्रव्रजेत् गृहात्।
10. कूर्म पुराण ब्राह्मण: क्षत्रियोवाथवैश्वो प्रव्रजेत् गृहादिति।
11. सरस्वती, स्वामी सदानन्द, 'यतिधर्मदर्शिनी', द्वारकाधीश संस्कृत एकेडमी एण्ड इण्डोलॉजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, द्वारका, गुजरात, 2010, पृ. 10
12. वही, पृ. 10
13. वही, पृ. 11
14. वही, पृ. 12
15. वही, पृ. 10
16. सरकार, यदुनाथ, "ए हिस्ट्री ऑफ दसनामी नागा संन्यासिज", इलाहाबाद पृ. 53, 54
17. सरकार, यदुनाथ, पूर्वोक्त
18. फरक्यूहार, जे0 एन0, "द ऑर्गेनाइजेशन ऑफ द संन्यासिज ऑफ द वेदान्त", जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोशाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, 1925, पृ. 479 से 486
19. सरकार, यदुनाथ, पूर्वोक्त
20. वही, पृ. 109 से 114
21. वही, पृ. 59 से 62
22. फरक्यूहार, जे0 एन0, पूर्वोक्त

'महाकवि माघ एवं शिशुपालवधम् का वैशिष्ट'

डॉ० मधु बाला मीना

सह आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

संक्षेपण

संस्कृत साहित्य के काव्यकारों में महाकवि माघ का उत्कृष्ट स्थान रहा है। इसी वजह से उनके द्वारा विरचित 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य को संस्कृत की वृहत्त्रयी में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

महाकवि 'माघ' ने काव्य के 20वें सर्ग के अन्त में प्रशस्ति के रूप में लिए हुए पाँच श्लोकों में अपना स्वल्प परिचय अंकित कर दिया है जिसके सहारे तथा काव्य में यत्र-तत्र निबद्ध संकेतों से तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर कविवर माघ के जीवन की रूप रेखा अर्थात् उनका जन्म समय, जन्म स्थान तथा उनके राजाश्रय को जाना जा सकता है।

प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने प्रशस्तिरूप में लिखे इन पाँच श्लोकों की व्याख्या नहीं की है। केवल वल्लभदेव कृत व्याख्या ही हमें देखने को मिलती है। इसी प्रकार 15 वें सर्ग में प्रथम 39वें श्लोक के पश्चात् द्वयर्थक 34 श्लोक रखे गये हैं। इसके पश्चात् 40वाँ श्लोक है। यहीं से मल्लिनाथ ने उनकी व्याख्या नहीं की है उसी प्रकार प्रशस्ति के पाँच श्लोकों को भी प्रक्षिप्त मानकर मल्लिनाथ ने व्याख्या नहीं की है। किन्तु मल्लिनाथ के पूर्ववर्ती टीकाकार वल्लभदेव ने उन 34 श्लोकों तथा कविवंश वर्णन के पाँच श्लोकों की टीका लिखी है।

अत: वल्लभदेव से पूर्ववर्ती होने के कारण यह विश्वास किया जाता है कि कविवंश वर्णन के आदि में जो ''अधुना कविमाघों निजवंशवर्णन चिकीर्षुराहु'' लिखा है, वह सत्य है अर्थात् अन्य द्वारा लिखा हुआ यह कविवंश वर्णन नहीं है।

''कविवंशवर्णन के पाँच श्लोक प्रक्षिप्त है''- वह कहना केवल कपोल कल्पना है।

कवि द्वारा लिखे हुए वंश-वर्णन के पाँचवें श्लोक में स्पष्ट लिखा हुआ है कि दत्तक के पुत्र माघ ने सुकवि-कीर्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा से 'शिशुपालवधम्' नामक काव्य की रचना की है।

जिसमें श्रीकृष्ण चरित वर्णित है और प्रतिसर्ग की समाप्ति पर 'श्री' अथवा उसका पर्यायवाची अन्य कोई शब्द अवश्य दिया गया है। यहाँ ध्यातव्य यह है कि जिस कवि ने 19वें सर्ग के अन्तिम श्लोक (क्र0120) 'चक्रबन्ध' में किसी रूप में बड़ी ही निपुणता से 'माकाव्यमिदम्' शिशुपालवधम्'' तक अंकित कर दिया है।

प्रमुख शब्द : सामान्य परिचय, माघ का स्थिति काल, माघ का पाण्डित्य, माघ व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित, शिशुपालवधम्'का महाकाव्यत्व।

महाकवि माघ का सामान्य परिचय

कविवर माघ का जन्म राजस्थान की इतिहास प्रसिद्ध नगरी 'भीनमाल' में राजा वर्मलात के मन्त्री सुप्रसिद्ध शाक द्वितीय ब्राह्मण सुप्रभदेव के पुत्र कुमुदपण्डित (दत्तक) की धर्म पत्नी ब्राह्मी के गर्भ से माघ की पूर्णिमा को हुआ था। कहा जाता है कि इनके जन्म समय की कुण्डली को देखकर ज्योतिषी ने कहा था कि यह बालक उद्भट विद्वान अत्यन्त विनीत, दयालु, दानी और वैभव सम्पन्न होगा। किन्तु जीवन की अन्तिम अवस्था में यह निर्धन हो जायेगा। यह बालक पूर्ण आयु प्राप्त करके पैरों पर सूजन आते ही दिवंगत हो जायेगा। ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर विश्वास करके उनके पिता कुमुद पण्डित-दत्तक ने जो एक ओष्ठी (श्रेष्ठ धनादिकम् अस्ति यस्य, श्रेष्ठ+इनि) (धनी) थे, प्रभूतधनरत्नादि की सम्पत्ति को भूमि को घड़ों में भर कर गाड़ दिया जाता था और शेष बचा हुआ धन माघ को दे दिया था। कहा जाता है कि 'शिशुपालवधम्' काव्य के कुछ भाग की रचना इन्होंने परदेश में रहते हुए की थी और शेष भाग की रचना वृद्धावस्था में घर पर रहकर ही की। अन्तिम अवस्था में ये अत्यधिक दरिद्रावस्था में थे। 'भोज-प्रबन्ध' में उनकी पत्नी प्रलाप करती हुई कहती हैं कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा आश्रय के लिए ठहरा करते थे आज वही व्यक्ति दाने-दाने के तरस रहा है। क्षेमेन्द्रकृत 'औचित्य विचार-चर्चा' में पं0 महाकवि माघ का अधोलिखित पद्य माघ की उक्त दशा का निदर्शक है-

बुभुक्षितैत्यकिरणं न भुज्यते न पीयते काव्यरस: पिपासितै:।
न विद्यया केनचिदुदूधृतं कुलं हिरण्यमेवार्जयन्हिफल: किया:।।

उक्त वाक्य से ऐसा प्रतीत होता है कि दरिद्रता से धैर्यहीन हो जाने के कारण अत्यन्त कातर हुए माघ की यह उक्ति है। कविवर माघ 120 वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त करके सन् 880 ई0 के आसपास दिवंगत हुए साथ ही उनकी पत्नी सती हो गई। इनकी अन्तिम क्रिया तक करने वाला कोई व्यक्ति इनके परिवार में नहीं था। 'भोजप्रबन्ध' ''प्रबन्धचिन्तामणि'' तथा ''प्रभावकचरित'' के अनुसार भोज की जीवितावस्था में दिवंगत हुए, क्योंकि भोज ने ही माघ का दाह संस्कार पुत्रवत् किया था।

उद्देश्य :

1. महाकवि माघ की विशेषताओं का अध्ययन किया गया है।
2. महाकवि के शिशुपाल वध के वैशिष्ट की जानकारी प्रदान की गई।

विषय सामग्री संकलन :

प्रस्तुत शोध में सामग्री का संकलन महाकवि माघ द्वारा रचित ग्रंथों, शिशुपालवध, संस्कृत साहित्य एवं पुस्तकालय में उपलब्ध शोध ग्रंथो के माध्यम से किया गया है।

माघ का स्थिति काल :

माघ के समय निर्धारण में स्थित काल प्रमाण भी मिलते हैं, जिनकी सहायता से हम उनका समय जान सकते हैं।

नवीं शती के आनन्दवर्धन (840 ई0) ने अपने ध्वन्यालोक (2 उद्योत) में माघ के दो पद्यों को उद्धृत किया है। प्रथम पद्य है- 'रम्याइतिप्राप्तवतीः पताकाः' (3153) तथा द्वितीय है- 'त्रासाकुल' परिपतन् परितो निकेतान्।' (5126) इस प्रकार माघ निःसन्देह आनन्दवर्धन (850 ई0) के पूर्ववर्ती है।

आनन्दवर्धन द्वारा माघ के श्लोक उद्धृत किए जाने के कारण माघ आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती भी हो सकते है या समकालीन भी हो सकते हैं क्योंकि यशोलिप्सा के कारण माघ स्थिर रूप में किसी एक स्थान पर न रहे पाये हों उन्होंने निश्चित रूप से उत्तर भारत में कश्मीर तक भ्रमण किया था जिसका प्रमाण काव्य के प्रथम सर्ग का नारद मुनि की जटाओं का वर्णन है। यहीं पर सम्भव है ध्वन्यालोक में उद्धृत श्लोकों को किसी काव्योष्ठी में श्री आनन्दवर्धन ने माघ के मुख से सुने हो और वे उत्तम होने के कारण आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में उन्हें उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

एक शिखालेख से भी माघ के समय-निर्धारण में सहायता मिलती है। राजा वर्मलात का शिखालेख वसन्त गढ़ (सिरोही राज्य में) से प्राप्त हुआ। यह शिखालेख शक संवत् 682 का है शक संवत् 682 में 78 वर्ष जब जोड़ दिए जाते हैं तब ई0 वी0 सन् का ज्ञान होता है इस प्रकार य शिलालेख सन् 760 ई0 का लिखा हुआ होना चाहिए माघ में 20वें सर्ग के अन्त में 'कविवंशवर्णनम्' में लिखा है कि उसके पितामाह सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजा वर्मल (वर्मलात) थे अतः सुप्रभदेव का समय 760 ई0 के आसपास होना चाहिए। उनके पौत्र कवि माघ का शैशवकाल सन् 780 के आसपास। इतना तो निश्चित है कि माघ आनन्दवर्धन के पश्चात्वर्ती जिस अतीत के इतिहास को अपने काव्य का कथानक बनाता है, उसी अतीत की अन्य स्थितियाँ भी निम्नांकित करने का भरसक प्रयत्न करता है। किन्तु सूक्ष्म ख्रष्टि से देखा जाये तो वहाँ भी उसका वर्तमान समाज झाँकता परिलक्षित होता है, क्योंकि उसका अतीत या भविष्य से सम्बद्ध सम्पूर्ण कल्पनाओं का आधार वर्तमान ही रहता है। कवि की कल्पना वर्तमान की नींव पर अतीत तथा भविष्य के प्रसादों का निर्माण किया करती है। इसलिए माघ में अंकित रीतिबद्धता की बढ़ी हुई प्रवृत्ति तथा समाज का शृंगारिक वातावरण भी हमें माघ की उक्त तिथि निश्चित करने में सहायक है। संक्षेप में माघ एक ऐसे युग की देन हैं। जिसके प्रमुख लक्षण शृंगारिकता, साजबाज के कार्यों में अत्यधिक रूचि और चमत्कार एवं विद्वता प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि है। मदिरा एवं प्रमदा का जो साहचर्य माघ काव्य में देखने को मिलता है। वह आठवी से दसवीं शताब्दी के उत्तर भारतीय राजपूत जीवन का इतिहास है।

इस तरह माघ का काल प्रायः 8वीं और 9वीं शताब्दियों के बीच स्थिर होता है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। भोज प्रबन्ध के अनुसार माघ भोज के समकालीन थे, क्योंकि भोज प्रबन्ध में माघ के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार माघ ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दानकर दी थी। निर्धन स्थिति में उन्होंने एक श्लोक की रचना की। जिसे उन्होंने राजा भोज के सभा में भेजा था। वह श्लोक इस प्रकार है-

''कुमुदवनमपत्रि श्री मदम्भोजखण्डे,
मुदति मुद मूलूकः प्रीतिमारचक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलीसतानां ही विचित्रो विपाकः।।''

जब राज सभा में उक्त श्लोक को पढ़कर सुनाया गया तो भोज अत्यन्त प्रसन्न हुए उन्होंने माघ की पत्नी को बहुत सा धन देकर विदा किया माघ की पत्नी जब वापस लौट रही थी, तो रास्ते में बालक माघ की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए उससे भी कुछ माँगने लगे। माघ की पत्नी ने सारा धन याचकों में बाँट दिया। जब पत्नी रिक्तहस्त घर पहुँची तो माघ को चिन्ता हुई कि अब कोई याचक आया तो उसे क्या देंगे?

माघ की यह चिन्ताजनक स्थिति को देखकर किसी याचक ने यह कहा था-

''आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्त
मुद्दामदामविघुराणि च काननानि।

नानानदीनदशतानि च पुरयित्वा।
रित्कोडसि य.जलद सैव तवोन्तमा श्रीः।।''

डॉ. कीलहार्न को राजपूताने के वसन्तगढ़ नामक स्थान से वर्मलात नामक किसी राजा का 682 विक्रमी अर्थात् 625 ई0 का शिलालेख प्राप्त हुआ था। इसके प्राप्तिकर्ता के अनुसार ये वर्मलात और श्री वर्मल एक ही थे और ये ही माघ के पितामाह सुप्रभदेव के आश्रयदाता थे। इस ख्रष्टि से सुप्रभदेव का समय 628 ई0 के आस-पास और उनके पौत्र माघ का अनुमानित समय 650-757 वि0सं0 से 757 वि0 सं0 (700) के बीच हो सकता है।'' अन्य विद्वानों ने भी इस विषय पर प्रभूत अन्वेषण एवं विचार किया है तदानुसार इनका स्थिति-काल शातवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में माना जाना चाहिए। इसके मत के प्रत्यायक कुछ वाह्य प्रमाणों का सारांश इस प्रकार है-

आनन्दवर्धन (850 ई0)ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में शिशुपालवधम् के दो श्लोक उद्धृत किए हैं।

शिशुपालवध (1992) का एक पद्य, जिसमें माघ ने श्लेष द्वारा राजनीति की तुलना व्याकरणशास्त्र से की है स्पष्टरूप से व्याख्या के दो प्रथित ग्रन्थों, वृत्ति (काशिकावृत्ति) 650 ई0 और 'न्यास' (सम्भवतः जिनेन्द्रबुद्धिविरचित 'न्यास' या 'विवरण-पिद्दजका' समय 700 ई0) का संकेत करता है। इस मत की पुष्टि में एम0 एस0 भण्डार ने कुछ अन्य प्रमाण भी उपस्थित किए हैं। उनका मत है माघ अपने काव्य के अनेक श्लोकों में न्यासकार (जिनेन्द्रबुद्धि) के ही विचारों को प्रकट करते प्रतीत होते हैं। नीचे उद्धृत किए जा रहे न्यासकार के इन वाक्यों की छाया शिशुपालवधम् के एक श्लोक में मिलता है। दोनों तुलनीय प्रसंग इस प्रकार हैं-

न्यास (2/9/9)- 'परितो व्यापृता परिभाषा।'

''परिभाषात्वेकदेशस्थाऽपि सर्वत्तशास्त्रे व्याप्रियते।' शिशुपालवध (9/6/80) 'परितः प्रमिताक्षराऽपि सर्व विषयं प्राप्तवर्ती गता प्रतिष्ठान। न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित परिभोषव गरीयसी यदाज्ञा''

किन्तु इस धारणा का समर्थन सभी विद्वान् नहीं करते। उनका कथन है कि 'अनुत्सूत्रपदन्यासा' आदि पद्य में जो 'न्यास' संकेतित हुआ है वह जिनेन्द्रबुद्धिकृत 'न्यास' नहीं अपितु उससे भी पहले का कोई एतत्वामक व्याकरण ग्रन्थ होना चाहिए क्योंकि स्वयं जिनेन्द्रबुद्धि ने भी अपने से पूर्व अनेक न्यास ग्रन्थों के नाम दिए हैं और जिनेन्द्रबुद्धि से पूर्ववर्ती बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में भी 'न्यास' संज्ञक' व्याकरण ग्रन्थ का संकेत किया है। अतएव माघ का समय सप्तम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही स्वीकारना युक्तिसंगत है।'

माघ का पाण्डित्य

संस्कृत साहित्यकोश में महाकवि माघ एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान हैं जिन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा से संस्कृत जगत् को चमत्कृत किया है। ये एक ओर कालिदास के समान रसवादी कवि हैं तो दूसरी ओर भारवि सख्रश विचित्रमार्ग के पोषक भी। कवियों के मध्य महाकवि कालिदास सुप्रसिद्ध हैं तो काव्यों में माघ अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं-

''काव्येषु माघः कवि कालिदासः।''

माघ अलंकृत शैली के पण्डित कवि माने जाते हैं। जहाँ काव्य के आन्तरिक तत्त्व की अपेक्षा वाह्य तत्त्व शब्द और अर्थ के चमत्कार देखे जा सकते हैं।

इनकी एकमात्र कृति 'शिशुपालवधम्' जिसे महाकाव्य भी कहा जाता है, वृहत्त्रयी में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इस महाकवि के आलोडन के पश्चात् किसी विद्वान् ने इसकी महत्त्वा के विषय में कहा है- 'मेघ माघे गतं वयः। माघ विद्वानों के बीच पण्डित कवि के रूप में भी सुप्रसिद्ध हैं। समीक्षकों का कहना है कि माघ ने भारवि की प्रतिद्वन्दिता में ही महाकाव्य की रचना की क्योंकि माघ पर भारवि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भले ही माघ ने भारवि के अनुकरण पर अपने महाकाव्य की रचना की हो लेकिन माघ उनसे कहीं अधिक आगे बढ़ गए हैं इसीलिए कहा जाता है, ''तावद भा भारवेभीति यावन्माघस्यनोदयः।''

माघ जिस शैली के प्रवर्तक थे उनमें प्रायः रस, भाव, अलंकार काव्य वैचित्य बहुलता आदि सभी बातें विद्यमान् थी। माघकवि की कविता में हृदय और मस्तिष्क दोनों का अपूर्व मिश्रण था। माघकाव्य में प्राख्रतिक वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। इनके काव्य में भावगाम्भीर्य भी है। 'शिशुपालवधम्' में कतिपय स्थलों पर भावागाम्भीर्य देखकर पाठक अक्सर चकित रह जाते हैं। कठिन पदोन्योस तथा शब्दबन्ध की सुश्लिष्टता जैसी महाकाव्य में देखने को मिलती है वैसी अन्यत्र बहुत कम काव्यों में मिलती है। इनके काव्य को पढ़ते समय मस्तिष्क का पूरा व्यायाम हो जाता है।

कलापक्ष की दृष्टि से भी माघ परिपक्व कवि सिद्ध होते हैं। कवि के भाषापक्ष को ही साहित्यकारों ने कलापक्ष नाम दिया है। महाकवि माघ की भाषा के स्वरूप और सौष्ठव को समझने के लिए उनके शब्दकोष, पदयोजना, व्याकरण शब्दशक्ति, प्रयोगकौशल तथा अलंकार आदि सभी को सूक्ष्म रूप से देखना होगा। कालिदास की सरल सुगम कविता की तुलना में माघ की पाण्डित्यपूर्ण कविता में प्रवेश पाने के लिये अध्येता को काव्यशास्त्रीयज्ञान होना आवश्यक है। वाणी के पीछे अर्थ का स्वतः अनुगमन करने (वाचामर्थोऽनुधावति) की जो ख्रष्टि भवभूति की रही है तदनुरूपमाघ का भी कहना है कि रस भाव के ज्ञाता कवि को ओज, प्रसाद आदि काव्यगुणों का अनुगमन करने की आवश्यकता नहीं है। वे तो कवि की वाणी का स्वतः अनुगमन करते हैं-

''नैकमोजः प्रसादो वा रसभावाविदः कवेः।''

माघ के प्रकृति चित्रण में भी उनका वैशिष्टङ देखने को मिलता है। यद्यपि माघ ने सरोवर, वन, उपवन, पर्वत, नदी, वृक्ष, सन्ध्या, प्रातः रात्रि, अन्धकार आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण उद्दीपन के रूप में किया है फिर भी वह इतना सजीव और हृदयस्पर्शी

है कि कोई भी पाठक उसमें डूब जाता है। शिशुपालवधम् का नौंवी और ग्यारहवीं सर्ग इस खष्टि से अवलोकनीय'' है। नवम् सर्ग में संध्याकाल का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि-

सन्ध्याकाल में पश्चिम दिशा नये कदम के समान लाल बादलों से आच्छादित हो गयी है और समस्त दिग्मण्डल भी सूर्य रश्मियों में परिव्याप्त हो गया हे।

इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में कवि प्रातः काल का वर्णन करते हुए लिखता है-

''अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुल मधुपमालाकज्जलेन्दी वरोक्षी।
अनुपतित विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्धा सुतेव।।''

अर्थात् रात्रि की विदाई पर ऊषा उसका अनुगमन करती हुई ऐसी शोभायमान हो रही है जैसे वह रजनी की सद्यः प्रसूता कन्या हो। यहाँ रक्तकमलों की पंक्तियों की तुलना ऊषारूपी नायिका की हथेली से और पंखुड़ियों की तुलना उसकी अंगुली से की गयी है।

इस प्रकार माघ के प्रकृतिचित्रण में वर्ण्यवस्तु के अनुरूप वातावरण और उसके समस्त अंगों का स्वाभाविक वर्णन देखने को मिलता है। अन्य कृतियों की अपेक्षा माघ के प्रकृतिचित्रण में यह वैशिष्टड देखने को मिलता है कि उन्होंने काव्यशास्त्रीय दृष्टि का पूर्ण निर्वाह करते हुए उसे जन सुलभ बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

माघ का श्रृंगार वर्णन भी उच्चकोटि का है। उन्होंने श्रृंगार के संयोगपक्ष का ही विस्तृत वर्णन किया है। वियोगपक्ष का नहीं। संयोग श्रृंगार का वर्णन भी उन्होंने आलम्बन के रूप में ही किया है। शिशुपालवधम् के सातवें सर्ग में इस प्रकार के अनेक सन्दर्भ दिखायी पड़ते हैं। उदाहरणार्थ-

''अतिषयपरिणाहवान् वितेने बहुतरमपितरत्नकिप्रिणीकः।
अलधुनि जहनस्थलेऽपरस्या ध्वनिमधिकं कलमेखलाकलापः।।

उर्युक्त प्रसंग में नायिका का अत्यन्त ही श्रृंगारिक वर्णन किया गया है।

माघ रसवाधि कवि होने के साथ ही विचित्य तथा चमत्कार से अपनी कविता को कलात्मक के उच्च शिखर पर पहुँचा दिया है। एक ही वर्ण में सम्पूर्ण श्लोक की रचना करना उनके पाण्डित्य का परिचायक है-

''दाददो दुद्दुदुहुद्दादी दादादो दूददीददोः।
दुद्दार्द दददे दुद्दे ददाऽददददोऽदद:।।''

इस प्रसंग में महाकवि माघ ने 'द' वर्ण का प्रयोग कर अपनी विद्धता का परिचय दिया है। इसी प्रकार उन्होंने केवल दो वर्णों से भी अनेक श्लोकों की रचना की है जिसका एक उदाहरण प्रस्तुत है।

''वरदोऽविवरो वैरिविवारी वारिराऽऽखः।
विववार वरो वैरं वीरो रविरिवौर्वरः।।

यहाँ केवल 'व' और 'र' वर्णों का प्रयोग कर कवि ने अपने वर्णनचातुर्य को प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त अनेक अनुलोम-प्रतिलोम प्रयोग विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके एकक्षरपादः सर्वतोभद्र गामुत्रिका बन्धःमुरजबन्ध और ज्यर्थवाची तथा चतुरर्थवाची आदि जटिलतम चित्रबन्धों की रचना तत्कालीन कवि समाज की परम्परा की द्योतक है। शिशुपालवधम् के उन्नासवें सर्ग में यही शब्दार्थ कौशल दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार माघ ने चित्रालंकार के द्वारा अपने शब्दकौशल का परिचय दिया है। यद्यपि यह शब्द कौशल कुछ बोझिल हो गया है तथा मम्मट के अनुसार चित्रकाव्य अधम कोटि के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु फिर भी माघ की शब्दकुशलता मानी जा सकती हैं। काव्य के कथानक के वर्णनचातुर्य को देखकर भी माघ एक कल्पनाशील एवं वर्णनप्रधान कवि प्रतीत होते हैं। शिशुपालवधम् की एक छोटी सी घटना को महाभारत के सभापर्व से ग्रहण कर विशालकाय बीस सर्गों के महाकाव्य की रचना माघ के अपूर्व वर्णन कौशल पर परिचायक है। शिशुपालवधम् के तीसरे से तेरहवें सर्ग तक आठ सर्गों में माघ ने अपनी मौलिक कल्पना द्वारा वर्णनचातुर्य को प्रदर्शित किया है जहाँ मुख्य विषय गौण हो गया है। उन्होंने चतुर्थ और पेचम सर्ग में केवल रैवतक पर्वत का वर्णन अत्यन्त ही रोचकतापूर्ण किया है। रैवतक पर्वत को गज के समान तथा दो घण्टे की तुलना चन्द्र और सूर्य से कर माघ ने बहुत सुन्दर निर्दशना प्रस्तुत की है, जिस पर समीक्षकों द्वारा माघ को 'घण्टामाघ' की उपाधि प्रदान की गयी है। रैवतक एक ऐसा पर्वत है जिसका वर्णन माघ के अतिरिक्त किसी दूसरे कवि ने अपने काव्य में नहीं किया है।

वर्णन कुशलता, अलंकारप्रियता, प्रकृति समुपासना के साथ ही माघ एक सफल काव्यशास्त्र भी रहे हैं। उनके महाकाव्य के अनुशीलन से माघ के विविध शास्त्र विशेषज्ञ होने का ज्ञान होता है। उन्होंने अपने महाकाव्य के माध्यम से हृदय पाठकों एवं कवियों को प्रायः सभी शास्त्रों का सूक्ष्म ज्ञान करा दिया है। काव्यशास्त्रीय सभी विषयों में उनकी गति दिखायी पड़ती है। विविध विषयों जैसे- श्रुतिविषय (वेद) व्याकरणशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, योग, वेदान्त, मीमांसा, बौद्ध, सामरिकज्ञान, नाटडशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, पशुविद्या संगीतशास्त्र, कामशास्त्र पाकशास्त्र, साहित्यशास्त्र, व्यावहारिकज्ञान और पौराणिकज्ञान इत्यादि का सूक्ष्म परिचय इस काव्य के अनुशीलन से प्राप्त होता है। उपर्युक्त सभी विषयों के ज्ञान का प्रमाण इस प्रकार है-

महाकवि माघ का श्रुतिविषयकज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है। शिशुपालवधम् के ग्यारहवें सर्ग में प्रात:काल के समय इन्होंने अग्निहोत्र यज्ञ का सुन्दर वर्णन किया है-

''प्रतिषरणमषीर्षज्योतिरग्न्याहितानां
विविधहितविरिब्धै: सामिधेनीरधीत्य।
ख्रतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवयै
र्हुतमयभुपलीढे साधु सात्राध्यमग्नि:।।

अग्नि का आवाह्न करने लगे अग्निहोत्रियों के प्रत्येक घर में प्रचण्ड ज्वाला अग्नि जलने लगी है जिसमें ब्राह्मण पुरोहित वैदिक स्वरों के साथ मन्त्रों का उच्चारण करके हवन करने लगे हैं। इस प्रकार महाकवि माघ का वैदिक ज्ञान शिशुपालवधम् में दिखायी पड़ता है।

माघ व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित

माघ व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे। शिशुपालवधम् का प्रत्येक पद्य उनके व्याकरण के पण्डित का साक्षी है। काव्यशास्त्र का भट्टिरचित 'भट्टिकाव्य' वैयाकरणिक महाकाव्य माना जाता है। तत्पश्चात् काव्यशास्त्र जगत् में माघकाव्य ही पाठकों को व्याकरण की शिक्षा देने वाला ग्रन्थ माना गया है 'शिशुपालवधम्' के द्वितीय सर्ग में वर्णित है कि वह राजनीतिज्ञ काम की जिसमें सब कुछ रहते हुए भी परपश (वर्णन करने वाला मर्मज्ञ गुप्तचर) नहीं है। इसमें शब्दविद्या और राजनीति दोनों का उपमानोंपमेय भाव दिखाते हुए कवि ने अपने वैयाकरणिकज्ञान का परिचय दिया है। यहाँ अपस्पशा के शब्दश्लेष, सद्वृत्ति, सत्रिबन्धना के अर्थश्लेष अनुत्सूत्रपद न्याय के उभयश्लेष और शब्दविहीन के पूर्णिपमा की छटा द्रष्टव्य है-

''अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्ति: सन्निबन्धना।
शब्दविघैव नो भाति राजनीतिरपस्पषा।।

यहाँ परेपश का अर्थ व्याकरण रहस्य है अर्थात् महर्षि पतंजलि द्वारा लिखित महाभाज्य का प्रथम आहिक जिसे पस्पशहिक भी कहा जाता है न्यास और काशिका भी व्याकरण के व्याख्यान ग्रन्थ है इस प्रकार यहाँ कवि ने सम्पूर्ण व्याकरण के सार को राजनीतिज्ञान से सम्बद्ध कर अपने वैयाकरणिक सूक्ष्म ज्ञान का परिचय दिया है। इन्होंने व्याकरण का कहीं सरल रूप में तथा कहीं पाण्डित्यपूर्ण ढंग से प्रयोग किया है। भूतकाल के स्थान पर लोट्लकार सुन्दर प्रयोग 'क्रियासमाभिहारेलोट्' सूत्र के द्वारा माघ ने किया है। इसी प्रकार व्याकरण से सम्बन्ध एक अन्य उदाहरण भी अवलोकनीय है-

''निपातितसुहत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम्
पाणिनीयमिवाऽऽलोकि धीरैस्तत्समराऽजिरम्।।''

वीरगति को प्राप्त होने वाले मित्र स्वामी चाचा भाई और मामा से युक्त उस युद्धाणि को विद्वान लोगों ने पाणिन विरचित 'अष्टाध्यायी' के समान देखा। इस तरह हम देखते हैं कि माघ ने व्याकरण के सूक्ष्म विषय को भी गम्भीरता से दिखाने का प्रयास किया है। नये-नये प्रचलित एवं अप्रचलित शब्दों का निर्माण भी इनके वैयाकरण होने का प्रमाण है। 'नवसर्गगते माघे नवशब्दों न विद्यते' सूक्ति भी इनके शब्द निर्माण कौशल को प्रकट करती है।

'शिशुपालवधम्' का महाकाव्यत्व

'काव्य' शब्द संस्कृत भाषा में बहुत प्राचीन है जिसे 'कवि' के कर्म के रूप में देखा जाता है।

'कवे: कर्म काव्यम' (कवि+व्यत्) यह 'कवि' शब्द च्कु अथवा च्कव् धातु (भ्वादि आत्मनेपद-कवेट) से बना है जिसके तीन अर्थ हैं-

ध्वनि करना, विवरण देना और चित्रण करना।

इस प्रकार शब्दों के द्वारा किसी विषय का आकर्षक विवरण देना या चित्रण करना ही काव्य कहलाता है।

लौकिक संस्कृत भाषा में काव्य-रचना का आरम्भ महर्षि वाल्मीकि से हुआ। इन्होंने राम को नायक बनाकर आदिकाव्य 'रामायण' की रचना की। महर्षि वाल्मीकि ने जिस काव्यपद्धति का आरम्भ किया था उसे कुछ कालतक सर्गबन्ध रचना कहा जाता रहा। बाद में इसे ही महाकाव्य कहा गया। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि संस्ख्रत में 'महाकाव्य' विद्या की कल्पना का मूल 'आदिकाव्य' 'वाल्मीकि रामायण' है जिसके उत्तरकाण्ड में निम्नलिखित श्लोक मिलता है।

''किम्प्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मन:।
कर्ता काव्यस्त महत: क्व चासौ कविपुग।।''

'महाभारत' में भी 'महत्' शब्द के प्रयोग के औचित्य को बताया गया है।

'महत्त्वाद भारत्वाद च महाभारतमुच्यते'

महाकाव्य को विधा के रूप में प्रतिष्ठापित करने वाले आचार्यों की लम्बी परम्परा रही है। जिसमें आचार्य भामह, दण्डी, रूद्रट मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ इत्यादि प्रमुख हैं। लक्ष्यग्रन्थ पहले बना तत्पश्चात् लक्षणग्रन्थ का निर्माण हुआ। आदिकाव्य 'रामायण' तथा कालिदास के काव्यों का अध्ययन करने के पश्चात् समालों-चकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय स्वरूप को तथा आलंकारिको ने उसके लक्षण को अपने अलंकार ग्रन्थों में प्रस्तुत किया।

आलंकारिक मे आचार्य दण्डी का महाकाव्य लक्षण प्राचीनतम् माना जाता है।

आचार्य रूद्रट ने काव्यांलंकार में आचार्य दण्डी द्वारा निर्दिष्ट काव्यलक्षणों कुछ विस्तार से दुहराया है। रूद्रट ने उतने ही विषय के समावेश तथा अलंकार को चित माना है।

जिससे कथावस्तु का विच्छेद न हो सके। इन्होंने रस पर विशेष बल दिया है जो उनकी विशेषता है। वे त्रच्छु, नगर, उद्यानादि वर्णनों को अनिवार्य मानते हैं।

प्रामाणिक रूप में आचार्य विश्वनाथ के लक्षण को स्वीकार किया जाता है। इनके समय 1350 ई0 तक उनके महाकाव्य लिखे जा चुके थे।

'साहित्यदर्पण' में महाकाव्य का लक्षण इन्होंने इस प्रकार किया है।'

''सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः।।
सदूषं क्षत्रियों वापि धीरोदत्तगुणान्वितः।।
एकवंषभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।
श्रृंगारवीरषान्तानामेकोंऽपि रस इत्यते।
अगानि सवैऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्धासज्जनाश्रयम्।
चत्वारतस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्बा वस्तुनिर्देष एव वा।
कवचिन्निन्दा खलादीनाम् सतां च गुणकीर्तनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृष्यत।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।''

महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है जो प्रबन्ध तत्त्व के गुणार्थ सन्धियों से युक्त हो।

उसका नायक पाठकों को संदेश देने वाला धीरोदत्त, क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए।

यह आठ सर्गों से बड़ा और उनके वृत्त्वों (छन्दो) से युक्त होना चाहिए।

महाकाव्य की कथा इतिहास प्रसिद्ध हो जिसमें जीवन जगत तथा प्रफुटित विभिन्न अंगों का चित्रण सुन्दर रूप में किया जाय। श्रृंगार वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अंगी रूप में होता है।

प्रख्रति वर्णन के रूप में नगर, समुद्र पर्वत, सन्ध्या, प्रातःकाल, संग्राम यात्रा तथा ऋतुओं इत्यादि का वर्णन भी अपेक्षित है।

शैली में काव्य-सौष्ठव तथा काव्य के समस्त गुण होने चाहिए।

शिशुपालवधम्' में श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राज सूय यज्ञ में चेदि नरेश शिशुपाल के वध का वर्णन है। इसमें वर्णनों की प्रचुरता को देखकर यदि इसे वर्णन प्रधान महाकाव्य कहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विषय प्रधान काव्य के अन्तर्गत भी यदि इसको लिया जाय तो भी असंगत नहीं होगा। वास्तव में यह काव्य विषय प्रधान ही प्रतीत होता है।

इसके नायक श्रीकृष्ण का चरित एक योद्धा के रूप में है। अन्य पात्रों में भी शौर्य प्रधान गुण अधिक मात्रा में मिलते हैं। इस काव्य के आ।ोपरान्त पारायण से ज्ञात होता है कि उसमें श्रीख्रष्ण के चरित के साथ ही क्षत्रिय जाति के क्रियाकलाप का भी सुन्दर वर्णन है। कथानक की ख्रष्टि से यह उच्चकोटि का महाकाव्य प्रतीत होता है। काव्यशास्त्रीय लक्षणकारों के अनुसार महाकाव्य में महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण प्राप्त होते हैं। काव्य का मुख्य रस वीर है। अन्य रसों का भी यथोचित वर्णन हुआ है। इसका कथानक 'महाभारत' से लिया गया है। यह कथानक श्रीख्रष्ण के जीवन की एक मुख्य घटना है। 120 सर्गों में निबद्ध इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में न तो 50 से न्यून और नहीं 150 से अधिक श्लोक हैं। काव्य का प्रारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से हुआ है-

''श्रियः पतिः श्रीमति शासितु जगज्जगान्निवासों वसुदेवसद्यनि।
वसत्ददर्षावतरन्तमम्बराद्धिख्यगर्भाभिुर्वं मुनि हरिः।।''

''शिशुपालवधम्'' के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द है। तथा एक ही छन्द का प्रयोग मिलता है।

सर्ग के अन्त में लक्षणानुसार छन्द परिवर्तन किया गया है। केवल चतुर्थ सर्ग ही इसका अपवाद है जिसमें अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। 'शिशुपालवधम्' में सूर्योदय, सूर्यास्त इत्यादि का वर्णन भी मिलता है जिसे लक्षणकारों में अपेक्षित माना है। तृतीय सर्ग में द्वारिका नगरी अथवा समुद का वर्णन प्राप्त होता है। सम्पूर्ण चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का मनोहारी वर्णन किया गया है। पंचम सर्ग में मुख्य रूप से श्रीख्रष्ण के शिविर का वर्णन है। शष्ठ, सप्तम और अष्ठम सर्ग सहऋतुओं के वर्णन से चमत्ख्रत है जहाँ पुष्प-चयन और जल-क्रीड़ा का भी प्रसंग आया है। नवम् सर्ग में नायिका नायक एवं चन्द्रोदय को वर्णित किया गया है। दशम सर्ग में रतिक्रीड़ा का वर्णन है। एकादश सर्ग प्राभाविक सौन्दर्य को दर्शाता है। द्वादश सर्ग में श्रीख्रष्ण की सेना का रैवतक पर्वत से इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करने एवं यमुना नदी का वर्णन है। अन्तिम तीन सर्गों में युद्ध का वर्णन है।

'शिशुपालवधम्' में प्रसंगानुसार कहीं-कहीं दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा की गई है। सात्यकि ने भगवान् श्रीख्रष्ण और शिशुपाल के व्याजु से क्रमशः प्रशंसा और निन्दा की है। सज्जन और दुर्जन के गुण दोषों को सोलहवें सर्ग में बताया गया है। महाकाव्य में यज्ञ का भी विवरण मिलता है।

विषय के आधार पर शिशुपालवधम् महाकाव्य का नामकरण किया गया है, क्योंकि शिवपाल का वध करना ही इस महाकाव्य का अभीष्ट है। माघ के पाण्डित्य ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य का नामकरण किया गया है क्योंकि शिशुपाल का वध करना है। इस महाकाव्य का अभीष्ट है।

माघ के पाण्डित्य ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य को आदर्श महाकाव्य का रूप प्रदान कर उसे उच्चकोटि के महाकाव्यों में स्थान दिलाया है। मल्लिनाथ ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य की विशिष्टता को इस प्रकार बताया है-

''तेताऽस्मिन्यदुनन्दनः स भगवा वीरप्रधानोरसः
श्रंगारादिभिरवांन् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।
इन्द्रप्रथ गमाद्युपायविषयष्चैद्यासादः फल धन्यो
महाकविवयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्।।''

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शिशुपालवधम् सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त एक महाकाव्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि लक्षणकारों ने महाकाव्य को आधार बनाकर ही महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किये हैं। इस प्रकार महाकवि माघ का एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ 'शिशुपालवधम्' प्राप्त होता है लेकिन महाकवि माघ की ख्रति सम्पूर्ण संस्ख्रत साहित्य जगत एवं समीक्षकों के समक्ष अमरख्रति बन गयी। एकमात्र रचना से ही महाकवि माघ जीवन के विभिन्न अनुभवों का संदेश पाठकों एवं कवियों के लिए दे गये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तैत्तिरीयोपनिषद् तृतीय वल्ली सप्तम अनुवाक- ईशादिनौ उपनिषद, गीता प्रेस, पृष्ठ संख्या 389
2. श्रीमद्भगवद्गीता 17वाँ अध्याय 17/7 गीताप्रेस गोरखपुर,
3. शिशुपालवध महाकाव्य, अध्याय 12, श्लोक संख्या 42
4. शिशुपालवध महाकाव्य, अध्याय 13, श्लोक संख्या 37
5. शिशुपालवध महाकाव्य, अध्याय 3, श्लोक संख्या 17
6. शशुपालवध महाकाव्य 12/41
7. शिशुपालवध महाकाव्य 11/8
8. शिशुपालवध महाकाव्य 14/25
9. शिशुपालवध महाकाव्य 5/26
10. शिशुपालवध महाकाव्य 10/25
11. शिशुपालवध महाकाव्य 10/13
12. शिशुपालवध महाकाव्य 6/6
13. शिशुपालवध महाकाव्य 12/51
14. शिशुपालवध महाकाव्य, 13/21
15. छान्दोग्यउपनिषद् 7/26/2
16. महाकवि माघ, प्रकाशित शोध ग्रन्थ।

आधुनिक भारतीय शिक्षा और स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन

डॉ० अनिल कुमार तेवतिया

प्रधानाचार्य, मंडलीय शिक्षा एवम प्रशिक्षण संस्थान, दिलशाद गार्डन, दिल्ली, भारत

सार

श्री स्वामी विवेकानंद वेदांत और योग के भारतीय दर्शन की पश्चिमी दुनिया की शुरूआत में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे और उन्हें 19वीं शताब्दी के अंत में आपसी जागरूकता बढ़ाने का श्रेय दिया जाता है। वे दर्शन, धर्म, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, कला और साहित्य इत्यादि कई विषयों के एक उत्साही पाठक थे। स्वामी विवेकानंद का विचार था कि भारत के लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने का एकमात्र तरीका उचित शिक्षा है। स्वामीजी के अनुसार, शिक्षा प्रणाली की सार्वभौमिक प्रकृति बहुत ही अवैज्ञानिक थी और किसी भी तरह से विद्यार्थियों के लिए फायदेमंद नहीं थी। इसका अर्थ है कि एक व्यक्ति न केवल अपने शिक्षक से सीखता है, बल्कि समाज और जिस वातावरण में रहता है, उससे भी शिक्षा प्राप्त करता है। शिक्षा को आधुनिक और तार्किक माना जा सकता है, जब यह व्यक्ति को न केवल वर्तमान के लिए बल्कि इसके अलावा आने वाले अवसर के लिए भी तैयार करे। प्रस्तुत लेख शिक्षा के प्रति स्वामी विवेकानंद के योगदान पर केंद्रित है। यह शिक्षा के विभिन्न घटकों जैसे-शिक्षा के सिद्धांत, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, निश्पादन, स्कूल, शिक्षक और शिष्य का संबंध, अनुशासन आदि के साथ स्वामी विवेकानंद के शिक्षा के दर्शन के महत्व से संबंधित है।

मुख्य शब्द: विवेकानंद, शिक्षा, शैक्षिक दर्शन

परिचय

विवेकानंद ने कहा है "शिक्षा आपके मस्तिष्क में डाली गई सूचनाओं की मात्रा नहीं है जो मस्तिष्क में हलचल करती है, जिससे संपूर्ण जीवन व्यर्थ हो जाता है। हमें जीवन-निर्माण, मानव-निर्माण, चरित्र-निर्माण तथा विचारों को आत्मसात करने की आवश्यकता है। यदि आपने कुछ विचारों को आत्मसात कर उन्हें अपना जीवन चरित्र बनाया तो आप उस व्यक्ति की तुलना में अधिक शिक्षित हैं जिसने पुस्तकालय को पूरे दिल से आतमसात किया है। यदि शिक्षा सूचना के समान है, तो पुस्तकालय दुनिया में सबसे महान संत और विश्वकोश ऋषि होने चाहिए। 18वीं शताब्दी के अंत में विवेकानंद ने सोचा था कि भारत के लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाने का एकमात्र तरीका उचित शिक्षा देना है। उन्हें उस समय से एकमात्र व्यक्ति के रूप में कहा जा सकता है जो शिक्षा की गुणवत्ता के लिए जिम्मेदार है। शैक्षिक नीतियां अभी भी पूरी तरह से स्वामी विवेकानंद के विचारों पर आधारित हैं। भारत की जनता द्वारा उन्हें 'स्वामीजी' के रूप में जाना जाता है। भारतीय शिक्षा के लिए 'स्वामीजी' के विचार मानव-निर्माण की नीति पर केंद्रित थे, जो अंततः समग्र रूप से मानव निर्माण और राष्ट्र के समग्र विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएगा (आर्कहार्ड, 2013)। मौजूदा शिक्षा प्रणाली के बारे में स्वामीजी का मुख्य उद्देश्य आलस्य और अनिच्छा के रवैये की प्रवृत्ति को समाप्त करना था। स्वामीजी के अनुसार, शिक्षा प्रणाली की सामान्य प्रकृति बहुत ही अवैज्ञानिक थी और किसी भी तरह से विद्यार्थियों के लिए फायदेमंद नहीं थी। उस काल की मौजूदा समाज की बाधाएं और अक्षमताएं उनके द्वारा सुर्खियों में लायी गईं (बुश, 2018)। अस्पृश्यता, सती प्रथा,

धार्मिक अंधाता और अन्य अमानवीय प्रथाओं जैसी समस्याओं ने उस समय शिक्षा की गुणवत्ता को खराब किया था। स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि समाज में प्रचलित शिक्षा के मॉडल में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षण को वैज्ञानिक तरीकों के अनुकूल होना आवश्यक है। धर्म के आड में लोग कभी भी अध्यात्मिकता के महत्व को नहीं समझ पाएंगे। विवेकानंद के अनुसार अध्यात्मिकता का मानवीय शिक्षा के लिए अत्यधिक महत्व था। एक भारतीय के रूप में उन्होंने महसूस किया कि अध्यात्मिकता अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है जिसे जनता को अनुभव करना चाहिए।

'शिक्षा' एक लैटिन शब्द, 'एजुकेटम' से बना है जिसका लैटिन में अर्थ है स्वयं को विकसित करना। स्वामी जी ने शिक्षा का उल्लेख केवल अपने आप को अंदर से बाहर तक शुद्ध करने और हमारे बीच छिपी अध्यात्मिकता के सार को महसूस करने के लिए किया। शिक्षा को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, एक संकुचित दृष्टिकोण और दूसरा उदार दृष्टिकोण (बुश, 2018)। शिक्षा का संकुचित अर्थ केवल किताबी ज्ञान के प्रशिक्षण और रटने की प्रक्रिया से है, जो एक अकादमिक पाठ्यक्रम की पूर्ति की दिशा में संस्थानों द्वारा किया जाता है। यह शिक्षा की निर्धारित तकनीक का पालन करने के लिए संदर्भित करता है क्योंकि शैक्षणिक संस्थान ने इसे पूर्व निर्धारित किया है। इस तरह की शिक्षा में जो एकमात्र लाभ बताया जा सकता है, वह केवल व्यावसायिक पाठ्यक्रम की उपलब्धि के लिए एक औपचारिक डिग्री प्राप्त करना है। हालांकि, इस तरह की शिक्षा किसी व्यक्ति को खुद को एक व्यक्ति के रूप में विकसित करने में मदद नहीं करती है। जबकि विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा की उदार भावना को कभी भी कक्षा में कैद नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के उदार अर्थ में, यह एक ऐसी शिक्षा है जिसे कहीं भी या किसी भी इंसान या प्रकृति से से सीखा जा सकता है। इसका अर्थ है कि एक व्यक्ति न केवल अपने शिक्षक से सीखता है, बल्कि समाज और उस वातावरण से भी सीखता है, जिसमें प्रकृति और उसके हजारों तत्व मौजूद होते हैं, जो उस शिक्षा के लिए ज़िम्मेदार होता है, जिसे उस व्यक्ति से शिक्षा दी जा रही है। इस प्रकार, स्वामीजी ने एक सही संतुलन बनाया, जिसमें उदार और संकुचित दृष्टिकोण दोनों शामिल थे, जिसके परिणामस्वरूप एक व्यक्ति का संपूर्ण विकास हुआ।

स्वामी जी देखा कि पश्चिमी दुनिया भारत में प्रचलित काल से बहुत आगे थी। उन्होंने दुनिया के पश्चिमी हिस्से में प्रचलित जीवन की गुणवत्ता की प्रशंसा की। उन्होंने अपनी मातृभूमि भारत में उसी का सपना देखा था। इस प्रकार उन्होंने हमारे देश में मौजूदा शिक्षा प्रणाली में आवश्यक बदलाव हेतु सुझाव दिए। पश्चिमी शिक्षा का दृष्टिकोण सबसे उदार था और उनके अनुसार, शिक्षा या शिक्षा के स्रोत की प्रक्रिया कभी समाप्त नहीं हुई थी (कॉनोली, जेम्स और फर्टिग, 2017)। स्रोत अनिश्चित था और अनंत की ओर बढ़ा। उनके अनुसार, शिक्षा मनुष्य के स्वयं के संपूर्ण विकास के साथ निर्माण करने का प्राख्रतिक तरीका है। शिक्षा के लिए पश्चिमी दृष्टिकोण में केवल नैतिकता थी, लेकिन शिक्षा के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा में नैतिकता के साथ-साथ अध्यात्मिकता का पहलू भी शामिल है। गांधी के अनुसार, शिक्षा ही बच्चे और मनुष्य में श्रेष्ठता लाने का एकमात्र तरीका है। शिक्षा व्यक्ति की आत्मा को जगाने का एक तरीका होना चाहिए जिससे कि व्यक्ति बाधाओं के परे सोच सके तथा समाज में उपयोगी हो सके।

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के चरित्र निर्माण एवं सामाजिक गुणवत्ता हस्तांतरित करने मेंद सहायता करती है। इसलि शिक्षाप्रद प्रतिष्ठानों में युवाओं को प्रशिक्षण, सटीक मार्गदर्शन के माध्यम से प्रदान किया जाता है। अपेक्षाकृत अशिक्षित लोगों को शिक्षित करने के माध्यम से शिक्षा दी जाती है जिसमें प्रशिक्षक और निर्देश के बीच एक व्यक्तिगत संबंध होता है। कॉलेज स्तर पर, जहां लोग सजग समझ रखते हैं वहाँ निर्देषों के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्लेटो ने उल्लेख किया कि शिक्षा का उद्देश्य लोगों में नैसर्गिकता खोजना और उन्हें रोजमर्रा के उपयोग के लिए तैयार करना था। उन्होंने भरोसा किया कि प्रशिक्षण अपने आपको खोजने का सही तरीका नहीं है। स्वामी जी ने भी कहा है कि शिक्षा सेरेब्रम को भरने का तरीका नहीं है। फिर भी जैसा कि प्लेटो ने कहा है कि आत्मा में निष्क्रिय को खोजना सर्वश्रेष्ठ उपहार है (कोनोली, जेम्स और फर्टिग, 2017)। शैक्षिक संस्थाएं समाज की आलोचनात्मक नींव हैं। प्रशिक्षण की इस व्यवस्था की सावधानीपूर्वक जाँच के माध्यम से आम जनता के लक्ष्यों को निर्धारित किया जा सकता है। शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से युवाओं में नए विचारों को सृजित किया जा सकता है। शैक्षिक संस्थान सामाजिक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण संगठन हैं। ये रीति-रिवाजों की कठोरता का खंडन करते हैं और युवाओं में बुनियादी तर्क के लिए प्रवृत्ति सिखाते हैं एवं पूर्व अनुभव को आधार पर तार्किक सोच का निर्माण करते

हैं। पूर्व अनुभवों के साथ-साथ अन्य जटिल मुद्दों की समझ के अनुप्रयोग हेतु रणनीति के साथ युवा समझ हासिल करते हैं। यह बहुत अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि यह मानव की सामाजिक उन्नति में एक आवश्यक कार्य है। यह प्रक्रिया लोगों को विद्वानों के अनुभव और उचित दृष्टिकोण को आत्मसात करने का अवसर प्रदान करती हैं। लोग यह पता लगाते हैं कि अभिनव शिक्षा के महत्वपूर्ण प्रभाव के तहत दूसरों के द्वारा किए गए गुणों के लिए हमेशा के लिए वंदना कैसे होती है। यह मन की मानसिकता थी जिसे स्वामीजी ने प्रशिक्षण के माध्यम से भारतीय संस्कृति में सिखाने की मांग की। एक-दुनिया की पूर्णता को अभिनव शिक्षा के माध्यम से सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है, क्योंकि इस तरह के ढांचे में स्तर, सिद्धांत, धर्म और इसके आगे की योग्यताएं गायब हैं। एक गतिशील संस्कृति में, शैक्षिक नींव सामाजिक प्रतिष्ठानों के मार्गदर्शक के रूप में काम करती है (कोनोली, जेम्स और फर्टिंग, 2017)।

विवेकानंद जी का भारत की शिक्षा प्रणाली के लिए दृष्टिकोण

स्वामीजी ने तदानुभूति से कहा है कि शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए और मुश्किल लक्ष्य से मुक्त होना चाहिए। शिक्षा सभी के लिए होनी चाहिए, और इसमें पहचान के निरंतर विकास, चरित्र की उन्नति और जीवन के व्यक्तिपरक सुधार को शामिल करना चाहिए। शिक्षा में केवल सेरेब्रम की भराई शामिल नहीं करना चाहिए अपितु मानस की तैयारी मानना चाहिए। स्वामीजी ने इस संभावना का समर्थन नहीं किया कि शिक्षा के लिए परीक्षा होनी चाहिए तथा व्यक्ति को रोजगार के लिए तैयार करना चाहिए। उनका विचार था के मानव को हमेशा के लिए तैयार किया जाना चाहिए। शिक्षा की इस दृष्टि को पूर्ववर्ती रूप से अत्याधुनिक बनाया गया था; हालाँकि यह भारतीय शिक्षा की पुरानी व्यवस्था के विषय में अलग-अलग तरह से दिखाई देता है (लेवाइस, 2015)।

प्रथागत शिक्षा की मायावी और शक्तिशाली व्यवस्था एवं स्वामीजी के गतिशील और व्यापक रूप से शिक्षा के विचारों में अंतर रहा। यह ढ़ांचा केवल विशेषाधिकार प्राप्त समाजों की कल्पना के लिए था जिसमें प्रशिक्षकों के कार्य व्यक्तिपरक थे। इस ढांचे ने न्यायोचित औचित्य प्रदान करने की पेशकश नहीं की (लेवेक, 2015)।

शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह की एक विकृत मानसिकता भारतीय संस्कृति के प्रथागत सामाजिक अनुरोध के संबंध में नहीं थी, उदाहरण के लिए, वामाश्रम धर्म। इस प्रतिष्ठान का जन्म के अनुसार समाज के विभाजन का इरादा नहीं था, फिर भी यह लोगों को शैक्षिक क्षमताओं और उनके जन्मजात दृष्टिकोण के रूप में माना जाता है। इस फाउंडेशन का उद्देश्य समाज को सद्भाव और संपन्नता की स्थिति में रखना था (सोफो, 2013)। एक ब्राह्मण को आम जनता के तीन अलग-अलग क्षेत्रों– क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में देखा जाता था। यह स्थिति एक ब्राह्मण द्वारा शिक्षा और तैयारी के माध्यम से पूरी की जाती है, उदाहरण के लिए अपने कर्म के माध्यम से और न केवल ब्राह्मण के समूह में जन्म लेने से। इस प्रकार, यह कहा जाता है कि जब किसी व्यक्ति की आर्थिक भलाई को उसके प्राख्रतिक दृष्टिकोण और कर्म के आधार पर माना जाता है, तो यह एक व्यक्ति के मूल्य की स्वीकार्यता है। इस प्रकार, वर्तमान शिक्षा की व्यवस्था ने वैधता और क्षमता को स्वीकार किया। यह बहुत अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि शिक्षा की उन्नत व्यवस्था के लिए परिचालन तकनीक और पारंपरिक सामाजिक ढांचे में अंतर नहीं था। यह उस अवधि में था, जब प्रकृति ने जन्म पर निर्भर रहने वाले सामाजिक ढांचे को रोशन कर दिया था, जिसमें कई सामाजिक विचार आते थे, जिसमें शिक्षा की व्यवस्था में अनम्यता शामिल थी। स्वामीजी के समय की भारतीय संस्कृति की स्थिति पर एक कटाक्ष करते हुए, यह कहा जाता है कि शिक्षा की एक नई व्यवस्था की आवश्यकता तीव्र थी। यह मौलिक था कि यह रूपरेखा ध्वनि, तार्किक, विस्तारक आधारित और सहायक गुणों की एक व्यवस्था को बढ़ाए। इसी तरह, यह शायद आदमी और समाज की उचित जरूरतों को पूरा करना चाहिए। यह अवसर, एकरूपता, मानवतावाद के सिद्धांतों और सिद्धांतों में विश्वास से इनकार करने के लिए होना चाहिए। उसे मनुष्य के संज्ञान को विस्तृत करना चाहिए। स्वामीजी की इच्छा थी कि उन्नत शिक्षा के लिए मौद्रिक सुधार के लिए समाज को चलाने की क्षमता होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, इसे आम जनता को पुनर्प्राप्त करना चाहिए (सोफो, 2013)।

भारतीय समाज पर नई शिक्षा प्रणाली का महत्व नए शिक्षा ढांचे की पदानुक्रमित संरचना अतिरिक्त रूप से पूर्व की तुलना में अद्वितीय थी। शिक्षा की नई व्यवस्था ने स्कूलों, विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की तरह शैक्षिक रूप से केंद्रित शैक्षिक उद्देश्यों के नए प्रकार के विकास के माध्यम से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को जोड़ा। ये समझ सीखने और सामाजिक वर्गीकरण के फैलाव

के लिए सामाजिक प्रणालियों के रूप में विकसित की गई जो लोकाचार में मौजूद थी (सफो, 2013)। भले ही आधुनिकीकरण को आमंत्रित किया गया था, लेकिन यह पारंपरिक गुणों को बचाने के लिए एक संज्ञानात्मक परिश्रम था। इस परिश्रम ने एक और व्यक्तित्व संज्ञान की शुरुआत को उजागर किया। यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण के दौरान सबसे अविश्वसनीय संपत्ति शिक्षा, विज्ञान और नवाचार पर निर्भर थी। विज्ञान के समय ने प्रोत्साहित किया कि परिश्रम और लगन से काम करने की क्षमता के साथ किसी भी देश की स्थिर उन्नति होगी (झांग, 2014)।

निष्कर्ष

स्वामीजी का विश्वास था कि अकेले शिक्षा से ही भारतीय संस्कृति की उन वित्तीय अवस्थाओं में बदलाव आ सकता है जो अपने समय की आम जनता की अपनी सटीक और तीक्ष्ण धारणा पर निर्भर करती हैं। एक अच्छी शिक्षा, स्कूल में सीखी गई विभिन्न विषयों की विद्वानों की जानकारी या कॉलेज की डिग्री प्राप्त करने के लिए रखी गई थी, जो व्यक्ति के कार्यक्षेत्र के बारे में बताएगी। ऐसा सीखना, जो महत्वपूर्ण था, को सतही माना गया और केवल उद्देश्यों की पूर्ति को बढ़ावा देने वाला माना गया, जिसने मानव की पहचान को अंदर से नहीं बदला। न ही शिक्षा को समय-सीमा के रूप में देखा गया था। यह एक निरंतर लंबी अवधि तक चलने वाली प्रक्रिया थी जिसमें मनुष्य जीवन की संरचना की विशेषता सीखता हैद्धकोनोली, जेम्स और फर्टिग, 2017)। इसलिए यह कहा जाता है कि शिक्षा एक प्रभावी प्रक्रिया है जिसे पृथ्वी के किसी व्यक्ति के गतिशील संबंध के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। शिक्षा को आधुनिकीकरण और तार्किक माना जा सकता है जब यह व्यक्ति को न केवल वर्तमान के लिए तैयार कर सकती है, बल्कि इसके अतिरिक्त आने वाले अवसर के लिए भी तैयार करती है (सोफो, 2013)। इस तरह, सीखने को एक व्यक्ति के व्यक्तिगत अनुभव को समेकित करना चाहिए क्योंकि सीखने के बुद्धिजीवियों का समृद्ध सामना होता है; शैक्षिक प्रतिष्ठानों को केवल सीखने की समझ के लिए विद्वानों की जानकारी देने के लिए नहीं जाना चाहिए क्योंकि जो उपयोग में नहीं लाया जा सकता है उसके पास कोई उपयोगितावादी सम्मान नहीं है। नतीजतन, एक शैक्षिक नींव में शैक्षिक कार्यक्रमों को तय नहीं किया जाना चाहिए, फिर भी इसे विलक्षण विरोधाभासों के अनुरूप परिवर्तनीय रखा जाना चाहिए। एक प्रशिक्षक के प्रमुख तत्वों में से एक है समझने के लिए सीखने को प्रेरित करना (झांग, 2014)।

संदर्भ

* अर्चर्ड, एन. (2013) किशोर नेतृत्व, शैक्षिक प्रबंधन प्रशासन और नेतृत्व, 41 (3), पीपी 336-351
* अबिनाशीलिगम, टी.एस. (1957), स्वामी विवेकानंद, श्री रामकृष्ण मठ, मायलापुर, चेन्नई के भाषण और लेखन से शिक्षा
* बनर्जी, के.ए., मीता, एम। (2015)। स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन। शैक्षिक अनुसंधान और विकास वॉल्यूम के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल। 4(3), पीपी 030-035
* बुश, टी. (2015) निर्देशात्मक नेतृत्व को समझना। शैक्षिक प्रबंधन प्रशासन और नेतृत्व, 43(4), पीपी। 487-489
* बुश, टी. (2018) वितरित नेतृत्व और नौकरशाही: शैक्षिक नेतृत्व में परिवर्तन। शैक्षिक प्रबंधन प्रशासन और नेतृत्व, 47(1), पीपी 3-4स्वामी विवेकानंद, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 1962
* दाश, बी.एन. (1994), फाउंडेशन ऑफ एजुकेशनल थॉट्स एंड प्रैक्टिस, नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स
* कोनोली, एम., जेम्स, सी और फर्टिग, एम (2017)। शैक्षिक प्रबंधन के बीच अंतर .माधवी, बी (2014) भारतीय पौराणिक कथाओं और उसकी कालातीतता में शैक्षिक दर्शन पर एक नज़र। फ्रंटियरियर्स ऑफ इंग्लिश लिटरेचर और ईएलटी के पैटर्न के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, खंड 2, अंक1
* निठिया, पी. (2012) शिक्षा के दर्शन पर स्वामी विवेकानंद के विचार। बहुआयामी अनुसंधान के एशियाई जर्नल टवस.1, अंक 6
* रंगनाथनंद स्वामी (1995) चेंजिग सोसाइटी के लिए अनन्त मूल्य, भारतीय विद्या भवन, मुंबई वॉल्यूम। 3, पीपी 252
* झांग, एल. (2014) पुस्तक की समीक्षा: रचनात्मक शैक्षिक नेतृत्व: रचनात्मकता के रूप में नेतृत्व के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका। शैक्षिक प्रबंधन प्रशासन और नेतृत्व, 42(1), पीपी. 159-160 ऑनलाइन संसाधन

विपिन किशोर सिन्हा के उपन्यास 'क्या खोया क्या पाया' में मूल्य-संक्रमण

विभा रीन

शोध-छात्रा, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

डॉ० सुनील कुमार

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

आधुनिक समय में भौतिकतावाद अपने प्रभावशाली रूप को धारण किए हुए है, इसी कारण समाज में मूल्यों व संस्कारों का निरन्तर हनन होना अपने-आप में ही चिंता का विषय है। भारतीय समाज का प्रमुख आधार मूल्यों व संस्कारों पर आधारित है। इस प्रकार समाज तथा मूल्यों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें नैतिकता का समाज को सभ्य बनाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, क्योंकि मूल्यों व संस्कारों द्वारा ही समाज के आदर्श रूप का निर्माण होता है। मूल्य से तात्पर्य, "ऐसा उद्देश्य जो उसे किसी सामाजिक आदर्श, व्यक्तिगत उच्चता आदि से जोड़े।"[1] इस भांति मूल्य हमारे जीवन का प्रमुख आधार हैं। इनके द्वारा ही समाज और राष्ट्र सभ्य और महान् बनते हैं। अर्थात् इसके द्वारा ही किसी राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता महानता के शीर्ष पर विराजमान होती है। जिससे राष्ट्र अधिक श्रेष्ठतर व मूल्यवान शक्ति से ओत-प्रोत बनता है। नैतिकता, शिष्टाचार, सदाचार तथा उच्च आदर्शों से मिलकर ही मूल्यों का निर्माण होता है। भारतीय समाज में नैतिकता को श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। यहाँ ऐसी धारणा रही है कि मूल्य-संस्कार ही मनुष्य को सही मायने में मनुष्य बनाते हैं। सभ्य मनुष्य के चरित्र व गुणों को मूल्य ही निर्मित करते हैं। परन्तु आज के वैश्वीकरण के दौर में नैतिकता व मूल्यों तथा संस्कारों का निरन्तर विघटन हो रहा है। आज भ्रष्टाचार, अनाचार, शत्रुता, मिथ्याचार, दुराचार इत्यादि का चारों ओर बोलबाला है। आज इससे ही संस्कारों व मूल्यों के पुष्पित पल्लवित होने में बाधा उत्पन्न हो रही है। मनुष्य को जीवन की सार्थकता से जोड़ने के स्थान पर आज केवल भौतिकतावाद की सुविधाओं पर जीने वाला प्राणी मात्र बनता जा रहा है। इस कारण मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन मूल्य विहीनता की ओर बढ़ रहा है। मूल्यों-संस्कारों का निरन्तर ह्रास मुख्यतः समाज में बढ़ रही लोलुपता, स्वार्थपरकता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता के कारण ही उत्पन्न हुआ। इन सबके मूल में नैतिक गुणों के विकसित होने में कमी होना है। मनुष्य अपने मनुष्य त्व के गुणों को भूलकर पशुत्व की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। बदलते समय के साथ आज उच्च आदर्श, मूल्य व संस्कारों में परिवर्तन हो रहा है। समय के अनुसार लोगों की आवश्यकताएँ व सुविधाएँ निरन्तर बदलने के कारण मूल्यों व संस्कारों में संक्रमण की प्रवृति का प्रवेश हुआ है। आज का युग वैज्ञानिक तथा तार्किकता का युग है। संस्कृति, समाज, राजनीतिक, क्षेत्र तथा क्षेत्र के आर्थिक प्रत्येक स्तर पर भौतिकतावाद ने अपनी जड़ें मजबूत कर लीं हैं।

समाज पर मूल्यों का महत्व आज भी अनिवर्चनीय प्रतीत होता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का प्रमुख आयाम मूल्यों पर ही टिका हुआ है। मूल्य प्रायः समाज के सदस्यों के निजी व्यवहार तथा आन्तरिक भावना से सम्बन्ध रखते हैं। जो राष्ट्र के संगठन के लिए भी आवश्यक होते हैं। आधुनिक युग में वैज्ञानिकता के कारण बहुत तेज गति से परिवर्तित होने से निरन्तर मूल्य प्रभावित हो रहे हैं। परिणामस्वरूप मूल्यों में निरन्तर बदलाव, टकराव तथा संघर्ष की स्थिति उभर कर सामने आई है। मूल्य प्रायः काल तथा स्थितियों

पर आधारित होते हैं। इसी कारण मूल्यों के ह्रास के बाद नवीन मूल्यों का उभर कर आना स्वाभाविक ही बन जाता है। इसे 'मूल्य-संक्रमण' की धारणा अस्तित्व में आई। प्राचीन मूल्यों के बदलाव तथा नवीन मूल्यों के स्थिर होने के बीच वाली स्थिति को 'मूल्य-संक्रमण' कहते हैं। अर्थात् मूल्य परिवर्तन की प्रक्रिया ही मूल्य-संक्रमण की जन्मदात्री है। इसमें स्थापित मूल्यों में बदलाव होने के पश्चात् मूल्यों का नवीनीकरण होता है तथा इसे नयी प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। संक्रमण का कोशगत अर्थ है, "संक्रान्ति, अतिक्रमण, गमन, घूमना-फिरना, सूर्य का एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में प्रवेश करना"[2] स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् देश में मूल्य-संक्रमण की समस्या उभर कर सामने आई। स्वाधीनता के बाद नवीन परिस्थितियों में नये मूल्य संदर्भों का आर्विभाव हुआ। इससे मानव मूल्यों में पूर्ण रूप से बदलाव आना प्रारम्भ हुआ। आज का युग संक्रमण का युग है। इसमें सब कुछ परिवर्तित होने का मुख्य कारण धर्म, विश्वास, सामाजिक, मान्यताओं, सिद्धान्तों तथा आस्थाओं का स्थान बुद्धि, विज्ञान तथा तर्क ने ले लिया है। मूल्य-संक्रमण का कारण हम आधुनिकता बोध को भी मान सकते हैं। मूल्यों का बदलना तथा नवीन मूल्यों के स्थापित होने के बीच की प्रक्रिया ही नये मूल्यों के विकास की प्रवृति को ही 'मूल्य संक्रमण' माना जाता है। अर्थात् मूल्य उत्पत्ति तथा मूल्य विघटन के साथ-साथ चलना ही मूल्य संक्रमण है। इसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। साहित्य जगत् भी 'मूल्य-संक्रमण' की प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के साहित्य में इस ज्वलन्त समस्या पर असंख्य साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई। क्योंकि साहित्य समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति है, जिसमें मनुष्य के जीवन का सम्पूर्ण चित्रांकन प्रस्तुत करने का प्रयास होता है। वस्तुतः स्वातंत्रयोत्तर भारत में परिस्थितियों के परिवर्तन से लोगों की मानसिकता में बदलाव आना प्रारम्भ हो गया था। मानवीय रिश्तों में विघटन, सामाजिक-सांस्कृतिक उपक्रमों से विमुखता, अध्यात्मिकता व धर्म का ह्रास, मानवता में से सदाचार परोपकार, सहानुभूति इत्यादि का लुप्त होना 'मूल्य-संक्रमण' की ओर संकेत करते हैं। इसी समस्या को हिन्दी साहित्यकारों ने अपने साहित्य का माध्यम बनाया। विपिन किशोर सिन्हा ऐसे ही प्रतिभाशाली व सशक्त रचनाकारों की श्रेणी में में आते हैं। उन्होंनें अपने साहित्य में आज के युग का यथार्थ चित्रांकन करने का प्रयास किया है, जिसमें आधुनिक वैज्ञानिक युग में प्रवेश करते भारतीय समाज की वास्तविकता को आज के युग के संदर्भ में प्रस्तुत करने का सिद्धहस्त प्रयत्न किया गया है। इसके साथ उन्होंने अपनी रचनाओं में महाभारत से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं को भी अपना विषय बनाया है। उन्होंने उपन्यास, कहानी-संग्रह, काव्य-संग्रह इत्यादि विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर लेखनी चलाई। विपिन किशोर सिन्हा का जन्म 1 सितम्बर, 1954 ई॰ को ग्राम-बालबंगरा, महाराजगंज, जिला-सिवान, बिहार में हुआ। विपिन किशोर सिन्हा जी अधिशासी अभियन्ता के रूप में पावन कॉर्पोरेशन लिमिटिड, वाराणसी में कार्यरत रहे। उनकी विभिन्न साहित्यिक कृतियां, उपन्यास 'कहों कौन्तेय', 'स्मृति' तथा 'क्या खोया क्या पाया', शेष कथित रामकथा, काव्य-संग्रह अभिव्यक्ति संदर्भ एवं अमराई। कहानी-संग्रह– 'फैसला' इत्यादि हैं। उन्हें सारस्वत सम्मान वाराणसी द्वारा सम्मानित किया गया। उन्होंने प्रत्येक कृति में जिस भी विषय को लिया उसके साथ पूर्ण रूप से न्याय किया है। उन्होंने ऐतिहासिक, धार्मिक कथा 'रामायण' से प्रारम्भ करते हुए उसके साथ आज के समाज की सामाजिक समस्याओं को भी उजागर किया। उन्होंने समकालीन युग की कलई खोलने का सफल प्रयत्न किया है। उपन्यास 'क्या खोया क्या पाया' में उन्होंने विज्ञान के विकास से उत्पन्न होने वाले नैतिक मूल्यों के पतन को उजागर किया है। लोगों के व्यवहार में निरन्तर आ रहे दिखावे, पाखण्ड तथा स्वार्थपरकता की भावना को लेखक ने अनुभव किया। स्वतन्त्रता के पश्चात् की स्थितियों की आज की परिस्थितियों से तुलना करते हुए सिन्हा जी ने पाठकों को यथार्थ से अवगत करवाने का प्रयास किया है। उपन्यास की प्रस्तावना से स्पष्ट होता है "सरकार भी लोग लुभावन और वोट बटोरने के तरीकों से समस्या का हल ढूँढ रही है। लेकिन मरते किसान, बिकते गांव, घटती उपज, बाँझ होती माटी, घाटे की खेत और पर्यावरण प्रदूषण का हल किसी के पास नहीं है। हमारी हजारों वर्षों की समृद्ध संस्कृति, सामाजिक समरसता, स्वस्थ परंपरा और परस्परावलंबन को भी तार-तार कर दिया।"3 इससे 'मूल्य-संक्रमण' जैसी गंभीर समस्या ने जन्म लिया क्योंकि मूल्यों, संस्कारों तथा नैतिकता को भौतिकतावाद तथा नये समय की परिस्थितियों ने झकझोर दिया है। प्राचीन मूल्यों में पूर्ण रूप से परिवर्तन होने के कारण आज का युग अपने आप में ही बहुत कठिन हो गया है। जहाँ संयुक्त परिवारों का चलन था, वहाँ एकल परिवारों का अस्तित्व में आना, पति-पत्नी सम्बन्धो में बदलाव, नैतिक मूल्य विघटन, प्रेम का बदलता स्वरूप, सफलता की दौड़ में दौड़ता मनुष्य, मुक्त यौन सम्बन्ध, नारी की अस्मिता की तलाश, अवैध सम्बन्ध, अकेलापन, कुंठा, संत्रास आदि। महानगरीय जीवन की त्रासदी, मानवीय मूल्यों का हनन इत्यादि आज के युग की त्रासदी बन गयी है। विपिन किशोर सिन्हा के उपन्यास 'क्या

खोया क्या पाया' में मूल्य-संक्रमित समाज के अनेक उदाहरण मिलते हैं। लेखक ने आज के संदर्भ में हो रहे बदलावों का बहुत उत्कृष्ट तथा सटीक चित्रांकन किया है। मूल्य संक्रमण की यथार्थ झांकी प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास विपिन किशोर सिन्हा की सफलतम कृति मानी जा सकती है।

समाज मनुष्य के विकास व अस्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनुष्य का व्यक्तित्व मूल्यों पर आधारित होता है। कोई समाज व राष्ट्र मनुष्यों से ही बनता है, परन्तु उसे सभ्य व आदर्श उसके द्वारा अपनाये गये मूल्य-संस्कार ही बनाते हैं। भारत एक ऐसा राष्ट्र है, जहाँ मूल्यों व नैतिकता का अधिक महत्व रहा है। यहाँ के लोगों को अपने व्यक्तित्व, नैतिकता, संस्कारों व मूल्यों पर गर्व रहा है, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् परिस्थितियां कुछ इस भांति उभर कर सामने आई कि प्राचीन मूल्य-संस्कार चरमरा कर टूटने लगे हैं। इसमें पाश्चात्य संस्कृति व आधुनिकता योगदान रहा है क्योंकि प्रत्येक वस्तु व विचार को तर्क की दृष्टि से देखा जाने लगा। आदर्शवादी विचारधारा डगमगाने लगी, प्रत्येक व्यक्ति सुविधा भोगी प्रवृत्ति के साथ-साथ स्वयं के स्वार्थ तक ही सीमित होने लगा। इससे पूर्ण रूप से मूल्यों का पतन तो नहीं हुआ अपितु, मूल्यों का संक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। 'क्या खोया क्या पाया' में सामाजिक मूल्य संक्रमण की बहुत सी समस्याएँ उजागर होती हैं जैसे- आज का दौर संयुक्त परिवारों की टूटन का दौर है, जिसमें एकल परिवारों की ओर रूझान बढ़ा है। लोगों में धैर्य, मिलनसारता, प्रेम, आदर की भावना इत्यादि नहीं रहे। उन्हें केवल स्वतन्त्रता चाहिए क्योंकि जहाँ उन्हें न कोई अनुशासित करे न कोई पाबंदी लगाये। इसका एक सशक्त उदारहण इस प्रकार है, ये संयुक्त परिवारों के बिखराव के दिन थे। मेरे गाँव में एक भी परिवार ऐसा नहीं बचा था जिसमें सारे भाई एक साथ रहे हो। सबने बँटवारा कर लिया था।"[4] इसके साथ ही प्रेम का बदलता स्वरूप आज के समय का सबसे भयानक सत्य बन गया है, जहाँ प्रेम, पवित्रता तथा शाश्वता का प्रतीक होता था। वहाँ आज प्रेम, सम्बन्धों में अवैधता तथा मुक्त यौन सम्बन्धों ने अपना प्रमुख स्थान बना लिया है। आज लोग विवाह प्रद्धति से विमुख होते जा रहे हैं। महानगरीय सभ्यता ने विवाह से पूर्व यौन सम्बन्धों को बढ़ावा दिया है, जिसने लोगों की मानसिकता को पूर्ण रूप से बदल दिया है। इस कृति में अवैधा सम्बन्धों का उदाहरण देखिए- "अपनी बेटी को उसने कान्वेट स्कूल में दाखिला दिलाया। ग्रेजुएशन करने के बाद उसने स्पोकन इंग्लिश के एक काचिंग सेन्टर में शिक्षिका का पद संभाला। उम्र विवाह योग्य हो गयी, लेकिन विवाह करने को तैयार नहीं। कोचिंग इस्टीच्यूट के अधोड़ शादीशुदा मालिक से उसने मधुर सम्बन्ध विकसित कर लिए हैं। घर में पैसे की आमद पहले से बढ़ गई है।"[5] इस प्रकार समाज में मूल्यों आदर्शों का हनन हो रहा है, प्रेम, विवाह जहाँ समाज के लिए पवित्र बन्धन होते थे, वहाँ आज मुक्त रूप से यौन पिपासा हेतु सम्बन्ध स्थापित किये जा रहे हैं। इसका यथार्थ स्वरूप इन पंक्तियों से अभिव्यक्त होता है, "बड़ी लड़की को दस लाख डोनेशन देकर बंगलौर के एक प्रतिष्ठित कॉलेज के एम. बी.ए. कोर्स में एडमिशन करा दिया। वह लड़की एक बार बंगलौर क्या गई, कभी वापिस लौटी ही नहीं। अपने किसी ब्वॉयफ्रैंड के साथ उसने वहीं लिविंग टुगेदर अपना लिया।"[6] विवाह रूपी संस्था का समाज में प्रमुख स्थान माना जाता है। आधुनिकता तथा भौतिकतावाद के युग में विवाह की प्राचीन सांस्कृतिकता का निरन्तर लोप हो रहा हे। पहले जिस भांति रस्मों-रिवाजों से विवाह सम्पन्न होते थे, उनमें पूर्ण रूप से परिवर्तन आने लगे है। विवाह के पश्चात् संतान उत्पति के नज़रीये में बदलाव आने लगे हैं। उन्हें अपनी सुख-सुविधा व स्वतन्त्रता अधिक प्रिय हैं। संतान उत्पति व लालन-पालन को वे बंधन समझने लगे हैं, इसका उदाहरण इस प्रकार है, "नो मम्मी, नहीं। अभी यह सम्भव नहीं है। यहाँ माँ बनने पर कौन देखभाल करेगा। तुमने तो अपना पासपोर्ट भी नहीं बनवाया है। हम इंडिया वापस आने के बाद ही बच्चे प्लान करेंगे।"[7] महानगरीय जीवन की त्रासदी यह है कि इसमें मनुष्य केवल मात्र अपने तक केन्द्रित हो जाता है। सफलता प्राप्ति की दौड़ में दौड़ता हुआ मनुष्य स्वयं के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में ही दिन-रात भागता रहता है। अपने परिवार तथा बच्चों के भीतर संस्कारों तथा मूल्यों का विकास करने की बजाय धन के पीछे भागना उसे सही लगता है जिससे परिवार विघटन की ओर अग्रसर हो जाता है, लेखक के शब्दो में, "भाभी की आधुनिकता और भौतिकता के प्रति समर्पण ने उनके परिवार को न केवल विघटित किया बल्कि तीसरी पीढ़ी में भी कुसंस्कार पनपाने में मदद की।"[8] सांस्कृतिक मूल्य संक्रमण होने से भारतीय संस्कृति को आज बहुत क्षति पहुँची है। भारतीय संस्कृति पर मूल्यों के संक्रिमत होने से बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा है। लोकगीत, लोकनृत्य तथा लोक-कथाओं ने अपना आकर्षण खो दिया है। विवाह, जन्मोत्सव, इत्यादि पर होने वाली प्राचीन रस्में तथा लोकगीतों का गायन इत्यादि समाप्त से होते जा रहे हैं। विवाह में छोटी-छोटी रस्में अपना अस्तित्व खोती जा रही हैं। मेले, उत्सवों व व्रत परंपरा से भी लोग विमुख होते जा रहे हैं, जिसके पीछे आधुनिकता व पाश्चात्य संस्कृति

का अंधाधुंध अनुकरण है। लेखक ने इस भावना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है, "बढ़ती समृद्धि के साथ क्यों परिवार टूट रहे हैं? पश्चिम में भौतिकवाद की आँधी थमती सी दिखाई दे रही है। वहाँ लोग भारतीय संस्कृति, योग, अध्यात्मक एवं शांति का मार्ग पकड़ते दीख रहे हैं, पर हम भारतवासी आत्मघाती भौतिकवाद-पाश्चात्यवादी, श्रणिक सुख वाले उपभोक्तावाद में लिप्त होते जा रहे हैं।"[9] आर्थिक क्षेत्र में मूल्यों में संक्रमण से पैसे को कमाने की दौड़ में सभी जुटे हैं, उन्हें सिर्फ सुविधाओं के लिए धन कमाना है। जिस कारण आज मित्रता, प्रेम, परिवारिक व रिश्तेदारों से लगाव नहीं रहा। प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ अपने एकल परिवार से ही जुड़ा है। जिन मूल्यों व नैतिकता का पाठ माता-पिता द्वारा अपनी संतानों को देना चाहिए, उसके लिए उनके पास समय ही नहीं है। स्त्री के कामकाजी होने पर माँ द्वारा नैतिक शिक्षा की बच्चों को नहीं मिल रही। भौतिकवादी जीवन की चाह ने आपसी प्रेम, मिलनसारता, पारिवारिक उत्सवों से ही व्यक्ति दूरी बनाते जा रहे हैं। धन लोलुपता तथा सुविधाओं और जीवन की कामना ही आज प्रमुख रूप धारण कर चुकी है। इसका सशक्त उदाहरण प्रस्तुत है, "आज एक दुनिया है जहाँ हम धन कमा रहे हैं, भवन बना रहे हैं, यश प्रतिष्ठा को इक्ट्ठा कर रहे हैं, संग्रह कर रहे हैं, परिग्रह कर रहे हैं, लेकिन किस कीमत पर? क्या करोड़ों-अरबों की सपत्ति पचास के दशक के मेरे गाँव जिगना को वापिस मेरे पास ला सकती है, वह आत्मीयता, वह संवेदना, वह निश्छल प्रेम, वह नि:स्वार्थ प्रेम फिर से पाया जा सकता है?"[10] देश की राजनीतिक व्यवस्था का स्तर भी गिर रहा है, देश में भ्रष्टता, बेईमानी, गरीबी, दली-बदली, राजनीतिक दाँव, पेंच, मूल्यहीन अफसरवादी राजनीति, जातिगत-धर्मगत राजनीति इत्यादि ने राजनीतिक मूल्य संक्रमण की स्थिति ला कर खड़ी कर दी है। देश की जनता के कल्याण के स्थान पर स्वयं के स्वार्थों की पूर्ति करने वाले राजनेता राष्ट्र से गद्दारी करते हैं। नेताओं की कलई इन पंक्तियों द्वारा प्रकट होती है, "मंत्रीजी तनिक मुस्कुराये। उन्होंने मेरे करीब आकर उन्होंने तौलिया दिया। पसीना पोंचने के लिए। जिगना मिसिर के बाभन की औकात तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन आप मालवीय जी के विश्वविद्यालय की क्षमता से परिचित नहीं हैं, अरे, हास्टल बनवाने, बाउंड्री ऊँची करवाने और रंग-रोशन से कितना पैसा कमा लेंगे आप? पुराने परिसर से बाहर निकलिए।"[11] धार्मिक मूल्यों में भी परिवर्तन आज के युग की सबसे बड़ी विडम्बना बन गयी है। धर्म, कर्म, आधयातमिक्ता का सम्मान प्रत्येक युग में ही रहा है, परन्तु तर्कशीलता तथा नवीन युग की आधुनिक सोच ने धर्म की आस्था को पूर्ण तो नहीं, कुछ कम तो अवश्य किया है। आज के युग में व्रत-त्यौहारों, रीति-रिवाजों के आस्था के स्थान पर अपने जीवन सुविधाजनक बनाता आदमी धर्म से विमुख होता जा रहा है। उदाहरण देखिए, "आज हमारे गाँव में डीह बाबा के लिए जगह नहीं है। ऐसा नहीं है कि पूरे देश में ऐसा है। परन्तु आज मेरे अपने बच्चे डीह बाबा को दाढ़ी वाला बूढ़ा पुरुष समझते हैं।"[12] समाज से नैतिकता पूर्ण रूप से लोप होती प्रतीत हो रही है, अपने से अधिक मनुष्य आज किसी का नहीं सोचता उसे सिर्फ स्वयं का विकास तथा उन्नति से ही मतलब है। इन पंक्तियों से सत्य प्रतीत होता है कि नैतिकता का आज पूर्ण रूप से समापन हो रहा है, सबकी आँखों पर स्वार्थ की पट्टी बंधी है। दो पैसे की लालच में उन्होंने न कहनी के यादवों और जिगना के बाबा लोगें के बीच चले आ रहे युगों-युगों के मधुर संबंधों का सत्यानाश कर दिया।"[13] जाति व्यवस्था तथा जातिगत भेदभाव, एकता की समस्या, भारतीय संस्कृति का हनन भी मूल्य संक्रमण से ही पनपे हैं। मनुष्य मनुष्य ता से अलग होकर धर्म-जाति को महत्व देता है जिससे जातिगत शत्रुता द्वारा व्यक्ति लड़ रहा है। जहाँ भौतिकतावाद का युग अपने तक सीमित है, वहीं अपनी जाति को श्रेष्ठ सिद्ध करने हेतु अमानवीय कृत्य आज समाज की आवश्यकता बन गया है, लेखक ने इसका वर्णन यूं किया है, "मेरे कालज में भी जातिवाद का नंगा नाच होता था, पांचों विभाग के विभागाध्यक्ष अपनी जाति के लोगों को ही गोल्ड मैडल देते थे।" नारी शोषण नारी के बदलते स्वरूप का वर्णन भी उपन्यास में यत्र-तत्र मिलता है। उपन्यास की भाषा सम्पन्न व उत्कृष्ट है। इमसें वाक्य चुस्त, शब्द सटीक तथा अर्थपूर्ण हैं। ग्रामीण जीवन की झलक कहीं-कहीं से मिलती है तथा पाश्चात्य व आधुनिक जीवन की समस्याओं का वर्णन भी मिलता है। शुध हिन्दी के शब्दों के अतिरिक्त अंग्रेजी के शब्दों का भी वर्णन उत्कृष्ट बन पड़ा है। अत: विपिन किशोर सिन्हा का उपन्यास 'क्या खोया क्या पाया' सशक्त कृति के रूप सामने आता है। जो भारतीय समाज में हो रहे मूल्यों के विघटन-संक्रमण की प्रवृति का सभक्त चित्रांकन करने वाली कृति मानी जा सकती है। इसमें भारतीय समाज में आने वाली गिरावट तथा मूल्यहीनता पर कटाक्ष करत हुए क्षोभ प्रकट किया गया है। मूल्य-संक्रमण होने से गिरती हुई समाज की दशा का यथार्थ चित्र खींचने में विपिन किशोर सिन्हा पूर्ण सफल रहे हैं।

संदर्भ

1. बृहत हिन्दी कोश, कालिका प्रसाद तथा अन्य सम्पादन मण्डल, वाराणसी : ज्ञान मण्डल लिमिटेड, 2014, पृ॰ 312
2. मेगा हिन्दी शब्दकोश, आबिद रिजवी, मेरठ : मारूति प्रकाशन, पृ॰ 954
3. विपिन किशोर सिन्हा, क्या खोया क्या पाया, दिल्ली : संजय प्रकाशन, 2012, पृ॰ प्रस्तावना
4. वही, पृ॰ 130
5. वही, पृ॰ 131
6. वही, पृ॰ 131
7. वही, पृ॰ 137
8. वही, पृ॰ 130
9. वही, पृ॰ 181
10. वही, पृ॰ 21
11. वही, पृ॰ 156
12. वही, पृ॰ 168
13. वही, पृ॰ 166
14. वही, पृ॰ 96

भारतीय लोकतंत्र एवं नई शिक्षा नीति 2020: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० विजय शंकर विक्रम

एसिसटेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, पी0सी0 विज्ञान महाविद्यालय, छपरा, बिहार

संक्षिप्त सार

प्रस्तुत आलेख में भारत की नई शिक्षा नीति 2020 का भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। 21वीं सदी के भारत में शिक्षा का भूख बढ़ता जा रहा है, जो लोकतंत्र की सफलता का सूचक है। भारत में वर्ष 1986 के बाद 34 साल के अंतराल पर नई शिक्षा नीति आई है। इस नीति में शिक्षा में रूपांतरकारी सुधारों एवं शिक्षा के व्यवहारिक पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है। इसमें उच्च शिक्षा में अन्तर-अनुशासनात्मक एवं विश्वस्तरीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं पढ़ाई के साथ-साथ "मल्टीपल एन्ट्री एवं मल्टीपल एग्जिट" की व्यवस्था की गई है। इसमें 'शिक्षा का अधिकार' कानून के दायरा को विस्तृत करने एवं एक राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के स्थापना की भी बात कही गई है। देश में विद्यालय शिक्षा से लेकर महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय शिक्षा तक कई परिवर्तन होने जा रहा है। एम.एच.आर.डी. का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। ऐसे में यह जानना एवं समझना अति आवश्यक है कि सरकार भारत की शिक्षा व्यवस्था को समग्र, गुणवत्तापूर्ण एवं बहु-विषयक बनाने के लिए क्या-क्या बदलाव करने जा रही है? कई शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, सत्तारूढ़ दल एवं उसके सहयोगी राजनीतिक दलों के द्वारा नई शिक्षा नीति का स्वागत एवं सराहना किया जा रहा है। वहीं कई विशेषज्ञों एवं विपक्षी राजनीतिक दलों के द्वारा इस शिक्षा नीति में कई तरह की कमियों की ओर संकेत भी किया जा रहा है। अत: नई शिक्षा नीति की खूबियों एवं खामियों का वर्त्तमान संदर्भ में विश्लेषण करना आवश्यक प्रतीत होता है। इस आलेख में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। यह आलेख द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है।

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी व्यक्ति, परिवार एवं राष्ट्र के निर्माण की आधारशिला होती है। देश में लम्बे समय से शिक्षा नीति को पुन: विश्लेषित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। आज एक तरफ विश्व-व्यापी कोरोना का दहशत है तो दूसरी ओर चीन से सीमा-विवाद पर चर्चा चल रही है। इस बीच केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा 29 जुलाई, 2020 को नई शिक्षा नीति-2020 को स्वीकृत किया गया। भारत में वर्ष 1986 के बाद 34 साल के अंतराल पर नई शिक्षा नीति आई है। कोविड-19 के वैश्विक महामारी के दौर में एवं भारत के प्रधानमंत्री द्वारा 'आत्मनिर्भर भारत बनाने' की घोषणा के बाद आई बहुप्रतीक्षित नई शिक्षा नीति 2020 का बौद्धिक वर्ग में चर्चा जोरों पर है, क्योंकि इससे देश के बच्चों एवं युवाओं का स्वर्णिम भविष्य तय होने वाला है। इस नीति का लक्ष्य भारत के विद्यालयी एवं उच्च शिक्षा प्रणाली में इस तरह के सुधार एवं बदलाव करना है कि देश दुनिया में ज्ञान की 'सुपरपॉवर' कहलाए। शिक्षा नीति में अगर प्रयोगधार्मिता नहीं होगी, कुछ नयी बातें शामिल नहीं होंगी, तो किसी और क्षेत्र में हम न तो चिंतन कर सकते हैं, न प्रयोग कर सकते हैं, इस नाते नयी शिक्षा नीति की बहुत आवश्यकता थी।[1]

यह भारत की तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति होगी। भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति वर्ष 1968 में एवं दूसरी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में आई थी, जिसमें 1992 में कुछ संशोधन किया गये थे।[2] नई शिक्षा नीति 2020 का प्रारूप 2019 में ही तैयार कर लिया गया था। इसरो के पूर्व प्रमुख डॉ. के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में 2017 में ही इस समिति का गठन किया गया था। पिछले तीन-चार वर्षों से हो रहे विचार-विमर्श और लगभग ढाई लाख सुझावों पर मंथन के बाद नई शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी गई है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) का पुनःनामकरण शिक्षा मंत्रालय किया गया है। नई शिक्षा नीति में ढेर सारी किताबों की अनिवार्यता पर जोर कम दिया गया है, दूसरे शब्दों में बस्ता के बोझ को कम किया गया है। 'वॉट टू थिंक' की बजाय 'हॉउ टू थिंक' पर फोकस किया गया है। भारत की नई शिक्षा नीति एक महत्वकांक्षी एवं प्रगतिशील दस्तावेज है। मातृभाषा, भारतीय भाषाओं को सही ढंग से शिक्षा का आधार बनाने और शिक्षा को जीविकोपार्जन की दृष्टि से उपयोगी बनाने के लिए नई नीति में अधिक महत्व दिया गया है। केवल अंकों के आधार पर आगे बढ़ने की होड़ के बजाय सर्वांगीण विकास से नयी पीढ़ी का भविष्य तय करने की व्यवस्था की गयी है।[3]

21वीं सदी के भारत में शिक्षा का भूख बढ़ता जा रहा है। आज समाज के हर वर्ग, जाति, धर्म, क्षेत्र आदि के लोग अपने बेटे एवं बेटियों को अच्छी से अच्छी शिक्षा प्रदान कराना चाहते हैं। इसके लिए वे किसी भी परिस्थिति का सामना करने एवं सामर्थ्य के अनुसार मूल्य अदा करने को तत्पर रहते हैं। लोकतांत्रिक देश होने के कारण ही भारत में सभी को बिना किसी भेद-भाव के शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर मिल रहे है। देश में साक्षरता एवं शिक्षा के बढते प्रतिशत का ही परिणाम है कि आज हमारे देश में मतदान का प्रतिशत पूर्व की अपेक्षा बढ़ा है, लोग सार्वजनिक एवं राष्ट्रहित के मुद्दों को समझ रहे है, राजनीतिक सहभागिता एवं जागरूकता बढ़ी है। यह भारतीय लोकतंत्र के सफलता का परिचायक है। किसी भी देश की राष्ट्रीय शिक्षा उस देश की आवश्यकताओं, लोकतांत्रिक मूल्यों एवं समय की मांगों के अनुकूल होनी चाहिए। वर्तमान शिक्षा नीति पूर्व के शिक्षा नीति से कितना अलग एवं विशिष्ट है, इसे जानने के लिए देश के दो पूर्व नीतियों-राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 का संक्षिप्त विश्लेषण भी आवश्यक है।

प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968

24 जुलाई 1968 को भारत के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति धोषित की गई। यह पूर्ण रूप से कोठारी आयोग (1964-66) या शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन पर आधारित थी। आयोग ने स्कूली शिक्षा की गहन समीक्षा प्रस्तुत की जो भारत के शिक्षा के इतिहास में आज भी सर्वाधिक गहन अध्ययन माना जाता है। भारत के लिए सुसंगठित शिक्षा-नीति की आवश्यकता के संबंध में कोठारी आयोग ने लिखा है कि "यदि राष्ट्र की प्रगति में गति लानी है, तो एक ऐसी नीति की आवश्यकता है जो सुस्पष्ट हो, साहसपूर्ण एवं विवेकपूर्ण हो।"[4] इसके तहत सामाजिक दक्षता, राष्ट्रीय एकता एवं समाजवादी समाज की स्थापना करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसमें शिक्षा प्रणाली का रूपान्तरण कर 10+2+3 पद्धति का विकास, त्रिभाषा-सूत्र एवं प्रादेशिक भाषाओं का विकास, 14 वर्ष तक के समस्त बालक तथा बालिकाओं को निःशुल्क एवं अनविार्य शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल दिया गया, विद्यालय के कार्य का संगठन इस ढंग से किया जाए की कम-से-कम अपव्यय एवं अवरोध न हो, परीक्षाओं में सुधार, खेल-कूद की व्यवस्था, अध्यापकों की संतोषजनक सेवा-दशाएं तथा योग्यता, कार्य-क्षमता एवं प्रशिक्षण को ध्यान में रखकर वेतन सुनिश्चित किया जाए, साक्षरता एवं वयस्क शिक्षा का प्रसार, माध्यमिक स्तर पर तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं का विकास, विश्वविद्यालय स्तर पर अल्पकालिन एवं पत्राचार पाठ्यक्रमों की व्यवस्था, हिन्दी का सम्पर्क भाषा के रूप में विकास, शिक्षा के अवसरों की समानता का प्रयास, विज्ञान व तकनीकी शिक्षा पर बल तथा नैतिक व सामाजिक मूल्यों के विकास पर जोर दिया गया एवं सामान्य स्कूल प्रणाली की अनुशंसा की गयी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में यह निर्धारित किया गया था कि शिक्षा पर होने वाले निवेश को धीरे-धीरे बढ़ाया जाए ताकि वह यथाशीघ्र राष्ट्रीय आय के 6 प्रतिशत पहुंच सके।[5] हालाकि इस शिक्षा नीति के सभी सिफारिशों को शत-प्रतिशत लागू नहीं किया जा सका। फिर भी इस शिक्षा नीति का भारत की शिक्षा व्यवस्था पर सकारात्मक एवं दूरगामी प्रभाव पड़ा।

द्वितीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

सन् 1986 में देश की द्वितीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। वर्तमान समय तक इस शिक्षा नीति के अनुरूप ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था का संचालन हो रहा है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण देश के लिए एक 10+2+3 की संरचना को स्वीकार किया गया। इस ढांचे के तहत पहले दस वर्षों का विभाजन इस प्रकार किया गया- प्रारम्भिक शिक्षा में 5 वर्ष का प्राथमिक स्तर, 3 वर्ष का उच्च प्राथमिक स्तर तथा उसके बाद 2 वर्ष का हाई स्कूल या माध्यमिक स्तर। इसके बाद दो वर्षों का इण्टरमीडिएट एवं तीन वर्षों के स्नातक (प्रतिष्ठा) या स्नातक (सामान्य) को स्वीकार किया गया। इसके तहत लोकतंत्र के मूल तत्वों में से एक समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को समान अवसर ही उपलब्ध नहीं कराए गए बल्कि सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर भी प्रदान कराए गए। ऐसे उपाय किये गए जिससे विद्यार्थी देश के विभिन्न भागों की संस्कृति, परम्पराओं और सामाजिक व्यवस्था को समझ सकें। इस नीति के तहत युवा वर्ग को अपनी कल्पना और सूझबूझ के अनुसार देश की महिमा तथा गरिमा को पहचानने के लिए प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया।[6]

जिन सिद्धांतों पर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना की गई थी, वे हमारे संविधान में निहित हैं। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का मूल मंत्र यह है कि एक निश्चित स्तर तक हर शिक्षार्थी को बिना किसी जात-पात, धर्म, स्थान या लिंग भेद के लगभग एक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा कई वित्तपोषित कार्यक्रमों की शुरुआत की गई। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पूरे देश के लिये एक राष्ट्रीय शिक्षाक्रम के ढांचे पर आधारित किया गया एवं एक "सामान्य केन्द्रिक" (या कॉमन कोर) था। इसमें लचीलापन रखा गया एवं स्थानीय पर्यावरण एवं परिवेश के अनुसार ढाला गया। "सामान्य केन्द्रिक" में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक जिम्मेदारियां तथा राष्ट्रीय अस्मिता से संबंधित अनिवार्य तत्व शामिल किये गये। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयों में पिरोये गये। यह प्रयास किया गया कि नई पीढ़ी में विश्वव्यापी दृष्टिकोण सुदृढ़ हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना बढ़ाने एवं 'वसुधौव कुटुम्बकम्' के आदर्शों को संजोया गया। इस शौक्षिक प्रणाली का मूलभूत लक्ष्य 'जीवन-पर्यन्त शिक्षा' है।[7]

इसका तकाजा है सार्वजनिक साक्षरता। अत: प्रौढ़ों, गृहणियों, कृषकों, श्रमिकों, व्यवसायियों आदि को अपनी पसन्द तथा सुविधा के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई। खुली शिक्षा एवं दूरस्थ शिक्षण को अधिक से अधिक बढ़ावा दिया गया एवं यू.जी.सी. के द्वारा इसे समान दर्जा एवं मान्यता प्रदान किया गया। शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए 'न्यूनतम अधिगम स्तर' निश्चित किया गया तथा शिक्षा में सुधार हेतु भारतीय कक्षाओं में शैक्षिक तकनीकी को लागू कराने का प्रयास किया गया। शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में सुधार की संस्तुतियों को भी लागू किया गया। उच्च शिक्षा, सामान्य तथा खास तौर से तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता रखने वाले प्रत्येक छात्र को बराबर के मौके दिये जाने की व्यवस्था की गई। साथ ही एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाकर अध्ययन करने की सुविधा प्रदान की गई।[8]

इस नीति के तहत विश्वविद्यालयों एवं उच्च शिक्षण संस्थाओं में सार्वदेशिक स्वरूप पर बल दिया गया। शोध, विकास तथा विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के विषयों में देश की विभिन्न संस्थाओं के बीच व्यापक तानाबना स्थापित की गई। व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, अध्यापक प्रशिक्षण, अध्यापकों की भर्ती करने की प्रणाली में परिवर्तन, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना, नये पाठ्यक्रम आदि का निर्माण किया गया, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, कम्प्यूटर साक्षरता कार्यक्रम आदि नवीन प्रयास शुरू किये गये। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आई.सी.ए.आर.), भारतीय चिकित्सा परिषद् (आई.एम.सी.), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.), राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एन.सी.टी.ई.) आदि संस्थाओं को प्रभावशाली और मजबूत किया गया।[9] यह नीति शिक्षा के विकेन्द्रीकरण एवं नई पीढ़ी को इक्कीसवीं शताब्दी में पदार्पण हेतु आवश्यक कौशलों एवं दक्षताओं से सुसज्जित करने में शिक्षा की भूमिका पर विशेष बल भी देती है।

संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992

मई, 1990 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की समीक्षा की गई और उसमें संशोधन के लिए अनुशंसा देने के लिए आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति की संस्तुतियों एवं अन्य शिक्षाविदों की संस्तुतियों के आलोक में

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में संशोधन प्रस्तुत किया गया, जिसे संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 के नाम से जाना जाता है।[10] समिति द्वारा निम्नलिखित संशोधन प्रस्तुत किए गए:-

बालिकाओं, विशेषत: 15 से 35 वर्ष के आयु वर्ग की बालिकाओं/महिलाओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा उपलब्ध कराई जाए। कमजोर वर्गो जैसे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यक वर्गो आदि के विद्यार्थियों के लिए मध्याह्न भोजन योजना, लेखन सामग्री, पुस्तकें और नि:शुल्क शिक्षा के रूप में विशेष प्रावधान किए गए। पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिए छात्रावास सुविधाएं, बहुशिल्पीय, कोचिंग और शिक्षा के मार्ग में आने वाली समस्याओं के समाधान के प्रयास किए गए। गैर-सरकारी संगठनों के लिए नए विशेष विद्यालय खोलने और विद्यार्थियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए इस क्षेत्र में आगे आने के प्रावधान किए गए। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा शिक्षा प्रदान करके उनको आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास किए गए। पूर्व बाल्यकाल देखभाल और शिक्षा से संबंधित आंगनबाड़ियों एवं बालवाड़ियों की स्थापना हेतु प्रावधान किये गये। निम्न जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्रों में प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित प्रावधान किए गए। विद्यालय में नामांकन के अनुसार शिक्षकों की न्यूनतम संख्या का सुझाव दिया गया। नवोदय विद्यालयों की गुणवता में वृद्धि और दूसरे विद्यालयों के लिए एक आदर्श स्थापित करने पर बल दिया गया। व्यावसायिक शिक्षा के प्रावधान, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (ए.आई.सी.टी.ई.) स्थापित करने का प्रावधान, उच्च शिक्षा में, स्व-पोषित विश्वविद्यालयों हेतु प्रावधान किए गए। प्रत्येक राज्य में कम से कम एक मुक्त विश्वविद्यालय खोलने और इग्नू द्वारा इसे तकनीकी सहायता देने और दूरवर्ती शिक्षा परिषद द्वारा इसे नियंत्रित होने का प्रावधान किया गया।[11]

नई शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 की संस्तुतियों को अधिक से अधिक लागू करने का प्रयास किया गया। लेकिन, जिस समय इसे लागू किया गया, उस समय देश की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। इस नीति के लागू होने के 34 वर्ष बाद भी शिक्षा पर देश की जी.डी.पी. का 6 प्रतिशत खर्च नहीं किया जा सका है। सीमित संसाधनों के बावजूद यह शिक्षा नीति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में काफी हद तक सफल रही। लेकिन समय के साथ वैश्वीकरण एवं निजीकरण के दौर में यह शिक्षा नीति प्रभावहीन एवं कांति हीन होती चली गई। दुर्भाग्य से वर्तमान शिक्षा सामान्य जनजीवन उसकी आवश्यकताएं और आकांक्षाओं से सर्वथा असम्बंध होती जा रही थी। अत: इसमें बदलाव की जरूरत महसूस किया जा रहा था। लेकिन, यू.पी.ए.-1 एवं यू.पी.ए.-2 केन्द्र सरकार ने इसमें बदलाव करने की जरूरत महसूस नहीं की। वर्तमान केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बदलाव के लिए वर्ष 2016 से ही मंथन प्रारम्भ कर दिया गया था।

तृतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 या नई शिक्षा नीति, 2020

21वीं सदी की प्रथम शिक्षा नीति के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 निम्नलिखित कारणों से विशिष्ट है[12]:

विद्यालय शिक्षा में बदलाव

* नई शिक्षा नीति 2020 में विद्यालय शिक्षा में निम्नलिखित बदलाव किया गया है: अभी हमारे देश में स्कूली शिक्षा 10+2 के ढांचे में चल रही है, जिसे बदलकर 5+3+3+4 के फॉर्मेट में किया गया है।
* पहले बच्चों की 6 साल में पढ़ाई शुरू होती थी, लेकिन अब नई शिक्षा नीति के तहत 3 साल में ही पढ़ाई शुरू हो जायेगी।
* बच्चों के स्कूली शिक्षा के 15 वर्षों को 4 भागों (5+3+3+4) में विभाजित किया गया है। पहले 5 वर्षों में प्री-स्कूलिंग या आंगनवाड़ी के 3 साल और कक्षा 2 तक की पढ़ाई होगी। उसके बाद 3 वर्षों में 3री कक्षा से 5वीं कक्षा तक की पढ़ाई होगी। उसके बाद के 3 साल 6ठी से 8वीं तक पढ़ाई और अगले 4 साल 9वीं से 12वीं तक की पढ़ाई होगी।
* नई शिक्षा नीति के तहत तीसरी, पांचवीं एवं आठवीं कक्षा में भी परीक्षाएं होंगी। शिक्षा तंत्र द्वारा 3 से 6 साल की उम्र के बच्चों के लिए अलग पाठ्यक्रम बनाया जाएगा, जिसमें खेल-कूद एवं अन्य गतिविधियों को ज्यादा स्थान मिलेगा। कक्षा 1 से कक्षा 3 तक के बच्चों की बुनियादी शिक्षा पर ज्यादा ध्यान दिया जायेगा।

  *अंग्रेजी का हैव्वा कम करने के उद्देश्य से इस नीति के तहत मातृभाषा या स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा में प्रारंभिक शिक्षा दी जायेगी। कक्षा पांचवीं तक या यथासम्भव आठवीं तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय

भाषा में होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि बच्चे द्वारा बोली जाने वाली भाषा और शिक्षा के माध्यम की भाषा के बीच पुल का काम करने हेतु यह अपनाया जा रहा है।

* विदेशी भाषाओं की पढ़ाई द्वितीयक स्तर पर होगी यानी कक्षा नवमी से बच्चे विदेशी भाशा भी ले सकेंगे। विद्यार्थियों को स्कूल के सभी स्तरों में संस्कृत को एक विकल्प के रूप में चुनने का मौका मिलेगा। त्रिभाषा फॉर्मूला के तहत राज्य क्षेत्र और छात्र की पसंद को प्राथमिकता दी जायेगी, जिनमें कम से कम दो भारतीय भाषाएं होंगी। भारत के अन्य पारंपरिक भाषाएं एवं साहित्य भी विकल्प के रूप में रहेंगे।
* 9 साल तक के बच्चों की साक्षरता और संख्या ज्ञान पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा। बच्चों को 6ठी कक्षा से विषयों से परिचय करवाया जायेगा। नई शिक्षा नीति के तहत एक महत्वपूर्ण बदलाव यह किया गया है कि अब कक्षा 6ठी से ही बच्चों को व्यावसायिक शिक्षा के साथ साथ कौशल शिक्षा प्रारंभ कर दी जायेगी। जिसमें स्थानीय शिल्प और व्यापार के बारे में बताया जायेगा और उसे लोकल क्राफ्ट एवं ट्रेड में इंटर्नशिप का भी अवसर दिया जायेगा।
* 9वीं कक्षा के बाद अब साइंस, आर्ट एवं कॉमर्स स्ट्रीम की पढ़ाई की अनिवार्यता नहीं होगी, बल्कि विद्यार्थी अपनी मर्जी से विषय चुन सकेंगे।
* विद्यार्थियों में बोर्ड की परीक्षा का दबाव कम करने का उपाय भी नई शिक्षा नीति में शामिल है। अब यह परीक्षाएं साल में दो बार ली जायेंगी। पहली बार ऑब्जेक्टिव (वस्तुनिष्ठ प्रश्न) और दूसरी बार सब्जेक्टिव (विषय आधारित दीर्घ उत्तरीय प्रश्न) परीक्षाएं ली जायेंगी। बोर्ड परीक्षा में मुख्य बल ज्ञान के परीक्षण पर होगा ताकि छात्रों में रटने की प्रवृत्ति रोका जा सके।
* शिक्षा का अधिकार कानून के दायरे में विस्तार नई शिक्षा नीति के तहत किया जायेगा। पहले आर.टी.ई. के तहत छः वर्ष से लेकर चौदह वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क एवं अनवार्य शिक्षा दी जाती थी, अब आर.टी.ई. के तहत 3 वर्ष से लेकर 18 वर्ष तक के बच्चों कों निःशुल्क एवं अनवार्य शिक्षा दी जायेगी। अब मिड-डे-मिल के साथ-साथ बच्चों को ब्रेकफॉस्ट (नाश्ता) भी दिया जायेगा।
* स्कूलों में शिक्षकों की भर्ती के लिए मजबूत एवं पारदर्शी प्रक्रिया का पालन करना होगा। इसके लिए सरकार शिक्षकों के लिए नए पेशेवर मानक विकसित (एन0पी0एस0टी0) करेगी।
* रिपोर्ट कार्ड के स्वरूप में भी बदलाव किया जायेगा। अब इसमें बदलाव करते हुए समग्र मूल्यांकन पर आधारित रिपोर्ट कार्ड का प्रावधान किया जायेगा।
* एक नयी एवं व्यापक स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 'एनसीफएसइ 2020-2021 एनसीइआरटी द्वारा विकसित की जायेगी। एक राष्ट्रीय सलाह मिशन की स्थापना की जायेगी। इसमें उत्कृष्टता वाले वरिष्ठ/सेवानिवृत संकाय का एक बड़ा पूल होगा, जिसमें भारतीय भाषाओं में पढ़ाने की क्षमता वाले लोग शामिल होंगे।[13]
* निजी स्कूलों की मनमानी पर रोक लगाने का भी प्रावधान नई शिक्षा नीति में की गई है।
* सामुदायिक सेवा, कला, शिल्प, खेल, योग जैसे विषय कोर्स में शामिल किये जायेंगे। जिससे बच्चों को भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों का ज्ञान हो सकेगा।

उच्च शिक्षा में बदलाव

नई शिक्षा नीति 2020 के तहत भारत के उच्च शिक्षा में निम्नलिखित बदलाव किया गया है[14]:-

* उच्च शिक्षा में पहली बार "मल्टीपल एन्ट्री एवं मल्टीपल एग्जिट" की व्यवस्था लागू किया गया है। यह उच्च शिक्षा में सबसे बड़ा परिवर्तन है। किसी विद्यार्थी ने बैचलर कोर्स अगर एक साल पूरा करने के बाद किन्हीं कारणों से छोड़ दिया तो उसे सर्टिफिकेट मिलेगा। 2 साल पूरा करने के बाद छूट गया तो डिप्लोमा मिलेगा और तीन साल सफलतापूर्वक पूरा कर लेने पर बैचलर डिग्री दी जायेगी। जिन्हें नौकरी करनी है, उनके लिए 3 साल की ही डिग्री दी जायेगी। लेकिन शोध के क्षेत्र में जाने वाले विद्यार्थी को 4 साल की डिग्री प्रोग्राम करनी पड़ेगी।

* इन 4 सालों के बाद मात्र एक वर्ष का एम.ए. और फिर सीधो पी.एच.डी. में दाखिला लिया जा सकता है। नई शिक्षा नीति में एम.फिल. कोर्स को समाप्त कर दिया गया है।
* इस नई व्यवस्था से उन छात्रों को फायदा होगा जिनकी पढ़ाई बीच में किसी कारण छूट जाती है। इससे उनका साल बर्बाद नहीं होगा। अगर वह कुछ साल बाद किसी दूसरे कोर्स में प्रवेश लेना चाहता है तो पहले वाले सर्टिफिकेट या डिप्लोमा को इस कोर्स में अहमियत दी जायेगी। इसे क्रेडिट ट्रांस्फर माना जा सकता है। इस तरह, एक कोर्स के बीच में छोड़कर दूसरा कोर्स करने की इजाजत मिलेगी।
* विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थाणों से प्राप्त अंको या क्रेडिट को डिजिटल रूप में सुरक्षित रखने के लिए एक एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट होगा, ताकि अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके। यदि कोई छात्र दो वर्षों में ही इंजीनियरिंग कोर्स छोड़ देता है तो उसे नई शिक्षा नीति के तहत डिप्लोमा प्रदान किया जायेगा। इससे छात्रों को बड़ी राहत मिलेगी।
* उच्च शिक्षण संस्थानों में गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई पर जोर दिया गया है। विश्वविद्यालय व उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए कॉमन इंट्रेस टेस्ट लिया जायेगा।
* अन्तर-अनुशासनात्मक उच्च शिक्षण संस्थानों की स्थापना को बढ़ावा दिया जायेगा। तकनीकी संस्थानों में भी अब कला एवं मानविकी के विषय पढ़ाये जायेंगे।
* उच्च शिक्षा में मुख्य फोकस शोध एवं नवाचार पर रखा गया है। इसके लिए एक नेशनल रिसर्च फाउंडेशन बनाए जाने की बात कही गयी है। जहां भी कोई शोध या नवाचार कर रहा है, उसकी सूचना एक जगह होगी।
* नई शिक्षा नीति में टीचिंग, लर्निंग और एसेसमेंट में तकनीकी को बढ़ावा देने तथा पारदर्शी व ऑनलाइन शिक्षा को आगे बढ़ाने पर बल दिया गया है। शिक्षण में प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए नेशनल एजुकेशन टेक्नोलॉजी फोरम की स्थापना की जायेगी।
* भारतीय उच्च शिक्षा आयोग की स्थापना का प्रस्ताव दिया गया है। अभी तक हमारे देश में उच्च शिक्षा संस्थानों की निगरानी के लिए कई तरह के संस्थान है, अब उसकी जगह उच्च शिक्षण संस्थान के लिए एक ही नियामक होगा। यह रेगुलेशन एवं फडिंग दोनो का कार्य करेगा। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय उच्चत्तर शिक्षा नियामकीय परिषद् (एन.एच.ई.आर.सी.), सामान्य शिक्षा परिषद् (जी.ई.सी.), उच्चत्तर शिक्षा अनुदान परिषद् (एच.ई.जी.सी.) एवं राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद् (एन.ए.सी.) चार परिषद को लाने की बात कही गई है।
* हर प्रकार के विश्वविद्यालय एक समान हो जाएंगे। अभी कोई डीम्ड यूनिवर्सिटी है, तो कोई सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी है। लेकिन अब सब विश्वविद्यालय ही कहे जाएंगे।
* अकादमिक एवं वित्तीय स्वायत्तता की अब तक केवल बात होती थी, लेकिन पहली बार इस शिक्षा नीति में स्वायत्तता का चरण भी बताया गया है। सभी महाविद्यालयों को निश्चित समय-सीमा में स्वायत बनना पड़ेगा। महाविद्यालय या तो स्वायत होंगे या फिर किसी विश्वविद्यालय का हिस्सा होंगे। इससे एफिलेशन संबंधी जो भ्रष्टाचार देखा जाता है, वह खत्म होने जा रहा है।
* नई शिक्षा नीति के तहत अब महाविद्यालय तीन प्रकार के होंगे। पहले वाले शोध पर जोर देंगे। दूसरे वाले स्नातकोत्तर शिक्षण वाले होंगे तथा तीसरे महाविद्यालय में स्नातक स्तर का शिक्षण होंगे। सभी महाविद्यालय किसी दबाव में नहीं होंगे, स्वायत ढंग से अपने फैसले ले सकेंगे।
* दुनिया के बड़े एवं प्रसिद्ध विश्वविद्यालय अब अपना कैम्पस भारत में खोल सकेंगे। इससे भारतीय विद्यार्थियों को विदेश नहीं जाना पड़ेगा। उच्च शिक्षा में विदेशी विश्वविद्यालयों को अनुमति देते समय सरकार को यह बात ध्यान रखना होगा कि अच्छे एवं प्रतिष्ठित कॉलेज व विश्वविद्यालय की शाखाएं खुलें जिससे छात्रों को अधिक से अधिक लाभ मिले। इससे विदेशी मुद्रा की बचत हो सकेगी।

* शिक्षण के लिए चार वर्षीय बी0एड0 होगी न्यूनतम अर्हता– वर्ष 2030 से चार वर्षीय समन्वित बी0एड0 डिग्री शिक्षण कार्य के लिए न्यूनतम अर्हता होगी।
* इस नीति में कहा गया है कि 2022 तक एन0सी0टी0ई. शिक्षकों के लिए एक साझा राष्ट्रीय पेशेवर मानक तैयार करेगी। इसके लिए एन0सी0आर0टी0, एस0सी0आर0टी0, शिक्षकों एवं विशेषज्ञ संगठनों के साथ परामर्श किया जायेगा। नीति के अनुसार, पेशेवर मानकों की समीक्षा एवं संशोधन 2030 में होगा और इसके बाद प्रत्येक 10 वर्ष में होगा।
* इसके अलावा निम्न स्तर के स्वचालित शिक्षक शिक्षा संस्थानों के खिलाफ सख्त कार्यवाही की जायेगी। नई शिक्षा नीति में इसका खाका पेश किया गया है।
* इस नीति में भारत की जी.डी.पी. का 6 प्रतिशत भाग शिक्षा पर खर्च करने का लक्ष्य रखा गया है, जो वर्तमान समय में लगभग 4.35 प्रतिशत है। वहीं वर्तमान समय में भारत नवाचार और अनुसंधान पर देश की जी.डी.पी. का मात्र 0.7 प्रतिशत खर्च करता है, जिसे भी बढ़ाये जाने की संभावना है। वर्ष 2017-2018 अपने का नवाचार एवं अनुसंधान पर इजरायल के द्वारा अपने देश की जी.डी.पी. का **4.23** प्रतिशत खर्च किया गया, जबकि अमेरिका के द्वारा जी.डी.पी. का **2.80** प्रतिशत खर्च एवं चीन के द्वारा जी.डी.पी. का **2.10** प्रतिशत खर्च किया गया।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। नई शिक्षा नीति देश की लोकतांत्रिक स्वरूप के अनुरूप है। साथ ही, शिक्षा का भारतीयकरण किया गया है। अमीर एंव गरीब के बच्चे एक साथ बैठकर शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। भारत के गुरुकुलों में यही सिखाया जाता था। राजा एवं रंक के बच्चे समान माने जाते थे। भारतीय आर्य संस्कृति को तभी श्रेष्ठ माना जाता है।[15] स्कूलों में मूलभूत सुविधाओं को देने के अलावा यह सुनिश्चित किया जाएगा कि शिक्षक अपना पूरा समय शिक्षण कार्य एवं उसमें निपुणता लाने में लगा सकें। हमारे देश में अभिव्यक्ति की आजादी है। आलोचकों के द्वारा इस नई शिक्षा नीति की आलोचना निम्न आधार पर की जा रही है:-

* नई शिक्षा नीति में सरकारी स्कूलों के बेहतरी पर कम ध्यान दिया है एवं शिक्षा के निजीकरण को बढ़ावा दिया गया है। कुछ विशेषज्ञों का यह कहना है कि ब्रिटेन, जर्मनी एवं अमेरिका जैसे देशों में भी स्कूली शिक्षा सरकारी व्यवस्था पर निर्भर है, लेकिन निजी संस्थाओं को भी छूट है। हालाकि अधिकांश लोग कम खर्च वाले स्कूलों में ही पढ़ाते हैं।
* नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के लिए सरकार धन कहां से लायेगी? लेकिन नीति लागू होने पर सरकार और संसद निश्चित रूप से अधिकाधिक बजट का प्रावधान करेगी। जब देश में कंप्यूटर क्रांति, परमाणु शक्ति आदि की नीति तय की गयी थी, तब क्या पहले हिसाब लगाया गया था कि कितना खर्च आयेगा? धीरे-धीरे खर्च एवं बजट की व्यवस्था की गई। लेकिन, खर्च का डर दिखाकर क्या कोई कायक्रम नहीं बनाया जाए?[16]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत की नई शिक्षा नीति महत्वकांक्षी एवं प्रगतिशील है। यह शिक्षा नीति भारत केन्द्रित है। यह भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकार की प्रतिबद्धता को दिखाता है। इसमें सामाजिक विषयों एवं विज्ञान के समन्वय का आदर्श प्रावधान किया गया है। संस्कृत एवं भारतीय भाषाओं के ज्ञान से ही सही अर्थों में जाति, धर्म, क्षेत्रीयता से उपर उठकर संपूर्ण मानव समाज के उत्थान के लिए भावी पीढ़ी को जोड़ा जा सकेगा। बचपन से ही मातृभाषा के साथ जुड़ने से राष्ट्रीय एकता एवं आत्मनिर्भर होने की भावना प्रबल हो सकेगी। कई शिक्षाविदों का यह मानना है कि हर पॉच साल में बच्चों की किताबों की समीक्षा, उसमें समय के अनुसार बदलाव, नए ज्ञान का समावेश होना चाहिए। नए सिरे से पाठ्यचर्या की रूपरेखा एवं नये पाठ्यक्रम का निर्धारण होना चाहिए। समय की मांग, बदली परिस्थितियों एवं भारतीय लोकतंत्र की अपेक्षाओं पर भी नई शिक्षा नीति खरी उतरी दिख रही है। यह उम्मीद किया जा सकता है कि नई शिक्षा नीति रिसर्च एवं एजुकेशन के गैप को खत्म करने में अहम भूमिका निभाएगी। साथ ही, नई शिक्षा नीति अपनी विशिष्टताओं के कारण सर्वथा सफल होगी एवं नये भारत की आवश्यकताओं एवं चुनौतियों का पूरा करने में सक्षम साबित होगी।

सन्दर्भानुक्रम

1. सिंह, श्रीप्रकाश (31 जुलाई, 2020), संपादकीय, प्रभात खबर, पटना, पृ. सं. 10
2. पाठक, आर0 पी0 (2013), भारतीय समाज में शिक्षा, डॉर्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा0 लि., नोएडा, पृ. सं. 113
3. आलोक, एम0 (04 अगस्त, 2020), संपादकीय, प्रभात खबर, पटना, पृ. सं. 10
4. बत्रा, डी0 (2014), भारतीय शिक्षा का स्वरूप, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 73
5. वहीं पर, पृ. सं. 74
6. सिंह, बी0 एन0 एवं अन्य (2009), भारतीय शिक्षा का इतिहास, न्यू बी0एड0 गाइड, नवदीप पब्लिकेशन्स, पटना, पृ. सं. 154-156
7. वहीं पर, पृ. सं. 157
8. बत्रा, डी0 (2014), भारतीय शिक्षा का स्वरूप, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 102
9. वहीं पर, पृ. सं. 103
10. स्वरूप, देवेन्द्र (2007), राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन का इतिहास, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 59
11. वहीं पर।
12. नई शिक्षा नीति, 2020
13. प्रभात खबर (31 जुलाई, 2020), पटना, पृ. सं. 01
14. नई शिक्षा नीति, 2020
15. आलोक, एम0 (04 अगस्त, 2020), संपादकीय, प्रभात खबर, पटना, पृ. सं. 10
16. वहीं पर।

महिला कुपोषण में महिला स्वयं जिम्मेवार: एक अध्ययन

खुशबू कुमारी

अतिथि शिक्षिका एस. बी. एस. कॉलेज, बेगुसराय, गृह विज्ञान विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा, बिहार

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में महिला कुपोषण की दिन-प्रतिदिन बढ़ती समस्या को दर्शाया गया है। अध्ययन के लिए महिलाओ को जमला पुल, तुलसिया का पुल, महुआ नगर, आम घाट कॉलनी गाजीपुर सिटी उत्तर प्रदेश से लिया गया है, जिनका चयन उद्देश्यपूर्ण निर्दशन द्वारा किया गया एवं आकड़ो का संग्रहन साक्षात्कार प्रविधि एवं विश्लेषण प्रतिशत के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन के उत्तरदाताएँ महिलाए थी जो शिक्षित और अशिक्षित दोनो थी, जो शिक्षित थी उनसे दो बाते अपेक्षित थी, कि पहला वे कम-से-कम महिला कुपोषण के प्रति सचेत होंगी। दूसरा एक यह कि वे लिंग भेद के सख्त खिलाफ होंगी, लेकिन ऐसा नहीं था, क्योंकि वे आसान जीवन शैली को अपनाकर चलती थी जिसके लिए वे पैकेट एवं रेडिमेड खाद्य पदार्थो पर पूर्णत: आश्रित थी जो कही-न-कही कुपोषण को बढ़ावा दे रहा है, तथा वे पुत्र एवं पति प्रेम में वे स्वयं ही लिंग भेद को अज्ञानतावश बढ़ावा देती आ रही थी। अध्ययन में कुपोषण वृद्धि में अशिक्षित महिलाओं का भी अहम् भूमिका हैं। इस अध्ययन को व्यापक स्तर पर करने से प्राप्त सुझावों के आधार पर महिला कुपोषण एवं लिंग भेद पर अंकुश लगाया जा सकता है। जो शिक्षित और अशिक्षित दोनो महिलाओं के हित मे होगा।

शब्द कुंजी: कुपोषण, महिला कुपोषण, शिक्षित महिला, अशिक्षित महिला, लिंग-भेद।

प्रस्तावना

भारत की अधिकतम जनता में कुपोषण की स्थिति पाई जाती है चाहे वह गरीब हो या अमीर, वृद्ध हो या युवा, स्त्री हो या पुरुष, गर्भवती हो या धात्री माता, इन सबमें किसी-न-किसी पौष्टिक तत्त्वो की अधिकता या कमी रहती है। कुपोषण वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति के भोजन में लगातार किसी-न-किसी पोषक तत्त्वों की कमी या अधिकता बनी रहती है ये दोनो ही स्थिति कुपोषण कहलाती हैं।

कुपोषण को इस प्रकार उल्लेखित कर सकते है-

कुपोषण की स्थिति में व्यक्ति के स्वास्थ्य में गिरावट आने लगती हैं। यह एक या एक से अधिक पोषक तत्त्वों की कमी और अधिकता दोनो ही वजह से हो सकती है।

अल्पपोषण: अगर आपको पर्याप्त पोषक तत्त्व प्राप्त नही हो रहे हो तो उम्र के हिसाब से आपकी ऊचाँई और वनज कम हो जाता है इसके अलावा ऊचाँई के हिसाब से वजन कम होना अल्पपोषण के लक्षण हैं।

अतिपोषण: अधिक पोषक तत्त्वों को प्राप्त करने से आपको मोटापा, अधिक वजन, और आहार से संबंधित गैर-संचारी रोग हो जाते हैं।

कुपोषण के मायने होते हैं आयु और शरीर के अनुरूप पर्याप्त शारीरिक विकास न होना, एक स्तर के बाद यह मानसिक विकास की प्रक्रिया को भी अवरूद्ध करने लगता है। कुपोषण वास्तव में घरेलु खाद्य असुरक्षा का सीधा परिणाम है। सामान्य रूप में खाद्य का अर्थ है सब तक खाद्य की पहुंच, हर समय खाद्य की पहुंच और सक्रिय और स्वस्थ्य जीवन के लिए पर्याप्त खाद्य। जब इनमें से एक या सारे घटक कम हो जाते हैं तो परिवार खाद्य असुरक्षा में डूब जाते हैं।

कुपोषण	
अल्पपोषण	अतिपोषण
स्कर्वी	अतिभार
बेरी- बेरी	मोटापा
गॉयटर	ह्रदय रोग
रक्त अल्पता	विटामिन
रिकेट्स	ए की अधिकता
मैरास्मस	विटामिन
अंधाता	डी की अधिकता
पेलाग्रा	यकृत रोग
घेंघा	गुर्दे रोग
आस्टोमेलेशिया	उच्च
रतौंधी	रक्तचाप

स्वास्थ्य खराब एवं रोगग्रस्त शरीर

भारत में कुपोषण की समस्या से अधिकांत महिलाएं ही जुझती हैं क्योंकि यहां भोजन के वितरण में लड़को और लड़कियो के बीच असमानता और लड़कियो की सामान्य उपेक्षा कुपोषण में योगदान करती है, इसलिए प्रजन्न आयु वर्ग में 60 प्रतिशत भारतीय महिलाओं में खून की कमी होती हैं। लैंगिक असमानता के चलते महिलाओं के भोजन की मात्रा और गुणवता दोनों निम्न हैं परिणामस्वरूप उनके बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। हमारे देश में लैंगिक असमानताओं के चलते आज भी लड़की व लड़के के खाने में अंतर किया जाता है खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में या गरीब परिवारों में। जहां बेटे को दूध, दही खाने को मिलता है कई जगह बेटियों के लिए ये जरूरी नही समझा जाता। महिलाएं घर के पुरुष सदस्यों को तो सब्जी, दाल सब परोस देती हैं लेकिन खुद जो बचता है वही खाती हैं जबकि महिलाओं को पुरुषों से ज्यादा पोषण की जरूरत होती हैं। महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा कैलोरी की जरूरत होती हैं।

कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ दिमाग का वास होता है। स्वस्थ शरीर के लिए आवश्यक होता है पोषक आहार यानी संपूर्ण विटामिनयुक्त भोजन। भोजन के अभाव में इंसान को कई बिमारियां घेर लेती है। रोगों का जमावड़ा शरीर में हो जाता है पर असर तन मन, और धन सब पर पड़ता है। यों तो जीवन भोजन के बिना संभव नही, लेकिन भोजन की कमी के ज्यादा शिकार बच्चे और महिलाएं होते है। बच्चों की देखभाल तो उनके मां-बाप फिर भी कर लेते हैं। लेकिन उन महिलाओं की यह बीमारी दूर नही हो पाती जिनके ऊपर पूरे घर को संभालने का भार होता हैं। इसी कारण महिलाएं सबकी पसंद-नापसंद का ख्याल रखते– रखते अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाती या खुद के प्रति लापरवाह बनी रहती है। ऐसे में कुपोषण महिलाओं में बढ़ता जा रहा है, जिससे उनका स्वास्थ्य खराब होने लगा है और वक्त से पहले झुर्रिया, बुढ़ापा, मानसिक कमजोरी, थकान, जैसे लक्षण उनके शरीर में दिखने लगते हैं। आज भले ही महिलाओं की जीवन शैली पुरषों से थोड़ी मिलती-जुलती हो गई है, पर एक समय था जब महिलाओं का

समय अधिकतर चूल्हा-चौकी में ही व्यतीत होता था। ऐसा भी देखा जाता है कि जब परिवार किसी आर्थिक तंगी या मानसिक उलझन से गुजरता है तो ऐसे वक्त में महिलाएं भोजन का ही सर्वप्रथम त्याग तर देती है।

गांव में रहने वाली महिलाओं की जीवन शैली शहरो से हटकर होती है। परंपरागत और पुरानी शैली के अनुसार आज भी बहुत घरों में बड़े-बुजंर्गो, बच्चो और घर के बाकी के सदस्यों को खिलाने के बाद ही महिलाएं स्वंय खाने बैठती है। खाना है तो ठीक वरना जो बचा हुआ खाना खाकर संतुष्ट हो जाती है। आमतौर पर किसानों का परिवार ग्रामीण इलाकों में रहता हैं। फसल अच्छी हुई तो किसान-परिवार का पेट भर पाता है। वरना गरीबी और भुखमरी की चपेट में महिलाओं का जीवन शेष हो जाता हैं। महिलाओं में खून की कमी जल्दी होती है। एक अध्ययन के मुताबित भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली 56 प्रतिशत महिलाएं कुपोषण की शिकार हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :

* यह पता लगाना कि किस प्रकार शिक्षित महिलाओं द्वारा कुपोषण वृद्धि में योगदान मिल रहा हैं।
* यह पता लगाना कि किस प्रकार अशिक्षित महिलाओं द्वारा कुपोषण वृद्धि में योगदान मिल रहा हैं।
* यह पता लगाना कि किस प्रकार महिला द्वारा लिंग भेद से कुपोषण वृद्धि में योगदान मिल रहा है।

संदर्भ स्त्रोत का पुर्नावलोकन

वैश्विक पोषण रिपोर्ट (Global Nutrition Report- 2018) में प्रस्तुत की गई, जो कुपोषण के सभी रूपों में प्रसार और उसकी सर्वव्यापकता को दर्शाता हैं। रिपोर्ट के प्रमुख निष्कर्ष के रूप में पाया गया है कि कुपोषण को कम करने के लिए कुछ प्रगति हुई है लेकिन यह प्रगति काफी धीमी है और कुपोषण के सभी रूपो में तक इसकी पहुँच नही है।

शैलेन्द्र सिन्हा 2016 में झारखण्ड राज्य पोषण मिशन के तहत सितंबर में बच्चों प्रति संवेदनशीलता दिखाते हुए सरकार ने पोषण के संबंण में नयी नीति बनायी है। इस नीति के तहत यह पाया गया कि पाँच साल से नीचे के बच्चे वलन कम एवं ऊचाँई में कमी थी। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानक के अनुरूप बच्चों का विकास नहीं हो पा रहा हैं।

ऊपर के संदर्भो को देखने से यह पता चलता है कि शोध तो बहुत हुए है लेकिन **"महिला कुपोषण में महिला स्वयं जिम्मेवार एक अध्ययन"** पर शोध करना आवश्यक है, इसलिए शोधकर्ता ने अपने शोध के लिए इस विषय का ही चयन किया।

शोध प्रविधियाँ

अध्ययन का क्षेत्रः प्रस्तुत शोध के लिए जमला पुल, तुलसीया का पुल, महुआ बाग, आम घाट कॉलोनी गाजीपुर सीटी का चयन किया गया है।

निदर्शन आकार एवं निदर्शन तकनीकः अध्ययन के लिए कुल 50 महिलाओं का चयन किया गया है, जिसमें से 25 ग्रामिण क्षेत्रों सें अशिक्षित महिलाओं को लिया गाया है, तथा 25 शहरी क्षेत्रों में से शिक्षित महिलाओं का चयन किया गया है। इन सभी का चुनाव आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया है।

आँकड़ों का संग्रहणः आँकड़ों का संग्रह के लिए साक्षात्कार प्रविधि का चुनाव किया गया हैं।

आँकड़ो का विश्लेषणः आँकड़ो का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया हैं।

इस शोध कार्य के दौरान सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए अध्ययन इकाईयों का चयन उद्देश्यपूर्ण निर्दशन द्वारा किया जाएगा। इसके अंतर्गत साक्षात्कार अनूसुचि का उपयोग किया जाएगा तथा संकलित तथ्यो का विश्लेषण प्रतिशत के आधार पर किया जाएगा।

परिणाम एवं परिचर्चा

प्रस्तुत अध्ययन महिला कुपोषण में महिला स्वयं जिम्मेवार एक अध्ययन के सही गलत के आकलन हेतु किया गया था। इस अध्याय में अध्ययन से प्राप्त आकड़े एवं उनके विश्लेषण का वर्णन है।

तालिका– 1 शिक्षित महिलाओं द्वारा कुपोषण को बढ़ावा (न.=50)

क्र.स.	शिक्षित महिलाओं द्वारा कुपोषण को बढ़ावा	उत्तरदाताओं द्वारा उत्तर (%) में
1	पैकेट फ्रूड को अधिक महत्त्व देने से	90
2	सप्ताह में दो बार रेस्टोरेंट एवं होटल जाने से	66
3	जंक फ्रूड एवं फास्ट फ्रूड को अधिक महत्त्व देने से	78
4	गुणवत्तापूर्ण भोजन बनाने नही आने से	50
5	अधिक डाइटिंग करने से	67
6	विभिन्न पाक कलाओं की विधि के अभाव से	50
7	खाद्य पदार्थो से संबंधित गलत भांत्तियों से	45
8	कामकाजी महिला होने की वजह से	75
9	एंकाकी जीवन व्यत्तीत करने की वजह से	40
10	होस्टल में रहने की वजह से	78

तालिका 1 के अनुसार शिक्षित महिलाओं के माध्यम से कुपोषण को काफी हद तक बढ़ावा दिया जा रहा है। शिक्षित महिलाएं अधिकांशत: पैकेट फ्रूड पर निर्भर रहती है। उनके लिए इस तरह के फ्रूड इजी तू कुक एंड इजी तू इट होता है। अध्ययन में भी देखा गया कि शिक्षित महिलाएं एवं लड़कियां सप्ताह में दो बार रेस्टोरेंट एवं होटल जाना पसंद करती है इससे भी कुपोषण को बढ़ावा मिल रहा है। हर महिलाओं के भोजन में सभी तरह के पोषक तत्त्वो का होना जरूरी है, परंतु ये सभी कारक है जिससे कुपोषण को बढ़ावा मिल रहर है। शिक्षित महिलाओं में ज्ञान का स्तर उत्तम होना स्वाभाविक है लेकिन उपयोग का प्रतिशत कम होना एक चिंतनीय तथ्य है।

तालिका– 2 अशिक्षित महिलाओं द्वारा कुपोषण को बढ़ावा (न.=50)

क्र.स.	अशिक्षित महिलाओं द्वारा कुपोषण को बढ़ावा	उत्तरदाताओं द्वारा उत्तर (%) में
1	लिंगभेद की वजह से	96
2	अधिक उपवास रखने की वजह से	89
3	खाने में स्वयं को अधिक प्राथमिकता नही देने से	98
4	साग-सब्जियों को बिना धौए पकाने से	86
5	स्वयं भी अस्वच्छ रहने से	76
6	धार्मिक अंधविश्वास की वजह से	82
7	परिवारिक पाक कला के पालन से	68
8	अधिक समय तक बच्चे को स्तनपान कराने से	85
9	कम उम्र में मां बनने से	45
10	बार-बार मां बनने से	55

तालिका– 2 के अनुसार अशिक्षित महिलाओं के माध्यम से भी कुपोषण वृद्धि में बहुत बढ़-चढ़ कर सहयोग मिल रहा है जो एक गंभीर समस्या है। महिलाएं उपवास आवश्यकता से अधिक करती है, भोजन ग्रहण करने में स्वयं को प्राथमिकता भी नही देती

है, पारिवारिक समस्या एवं उलझन में ग्रामिण एवं अशिक्षित महिलाएं सर्वप्रथम आहार की त्याग कर देती है जिससे महिला कुपोषण की समस्या बढ़मी जा रही हैं। महिलाएं न स्वयं स्वच्छ रहती और न ही स्वच्छता से भोजन बनाती है जिससे खाद्य पदार्थो के पोषक तत्त्वों को प्रभाव पड़ता है। सबसे निराशाजनक विषय यह था आज के आधुनिक समय में भी लिंग भेद की वजह से भी काफी हद तक महिला कुपोषण को बढ़ावा मिल रहा हैं।

तालिका– 3 लिगं भेद के माध्यम से महिला द्वारा कुपोषण को बढ़ावा (न.=50)

क्र.स.	जानकारी के विभिन्न सत्रोत	उत्तरदाताओं का उत्तर (%) में
1	माताओं एवं पिता द्वारा अधिक पुत्र प्रेम की वजह से	80
2	घर के पुरुषों को स्वयं की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता देने से	96
3	घर में बेटियों की संख्या बेटो के तुलना में अधिक होने से	56
4	घर के पुरुषों को अधिक परिश्रमी समझने से	86
5	पुरानी ख्यालात की वजह से	45
6	वंश लोभ की वजह से	60
7	बेटियो को दूसरे के घर की संपत्ति समझने की वजह से	67
8	आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाएंगे लड़के इस तरह की मानसिकता की वजह से	40

तालिका– 3 के अनुसार महिलाएं चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित दोनो ही स्वयं लिंग भेद को बढ़ावा दे रही है जिससे स्वत: ही महिला कुपोषण में वृद्धि हो रही है। मां द्वारा अपने पुत्र को अधिक प्रेम में आकर पोषणिय खाद्य पदार्थो की मात्रा अधिक दी जाती है जिससे पुत्रियों के भी हिस्से की हकमारी हो जा रही हैं। चिंतनीय विषय यह है की महिलाएं पुरुषों को स्वयं की तुलना में अधिक परिश्रमी समझती है जबकि ऐसा सभी काम करने वालों के साथ नही है। यूं तो महिलाएं हर समय लिंगभेद का नारा लगाती फिरती है परंतु स्वयं ही घरेलु स्तर से लिंगभेद की शुरूवात करती है। जब तक लिंग भेद की जड़ घरेलु स्तर तक रहेंगी तब तक इसे समाज एवं देश से नही हटाया जा सकता हैं।

निष्कर्ष

* भारत में कुपोषण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जरूरी नही कि दुबले पतले लोग ही कुपोषण का शिकार होते है। मोटे लोग भी इसकी चपेट में आ जाते है। एक अध्ययन के मुताबित भारत के ग्रामिण क्षेत्रों में रहनेवाले 56 प्रतिशत महिलाएं कुपोषण की शिकार होती है। महिला कुपोषण में निराशाजनक बात यह थी कि महिलाएं अज्ञानतावश स्वयं ही कुपोषण वृद्धि में सहयोग दे रही थी। यहां आश्यर्चजनक तथ्य यह था कि महिलाएं लिंग भेद के माध्यम से कुपोषण को बढ़ावा देती आ रही है।
* शिक्षित महिलाओं द्वारा कुपोषण को नजर अंदाज करने से कुपोषण पोषित हो रही हैं। निराशाजनक तथ्य यह था कि शिक्षित होकर भी वे इन अनुचित कारको की वजह से लिंग भेद को सहयोग मिल रही हैं।
* एक महिला होने के नाते महिला के स्वाथ्य को हल्के में लेना यह विषय अशोभनिय है, महिला सृष्टि की रचना करने वाली होती है उनका स्वस्थ होना बहुत जरूरी हैं। ऐसे में अगर महिला अस्वस्थ रहेंगी तो सृष्टि भी अस्वस्थ रहेगी तो पूरी सृष्टि बिनाश की ओर अग्रसर हो जाएंगी।
* अध्ययन का सबसे आश्चर्यजनक और अवश्य ही असंतोषजनक परिणाम था कि कुछ महिलाएं शिक्षित होने के बावजूद वे डाइटिंग के चक्कर में सिल्मि दिखने के वजह से कुपोषित होती जा रही है लेकिन वे इस बात से अज्ञात रहती है।

प्रस्तुत शोध अत्यंत छोटे स्तर पर किया गया है। स्तर को ओर वृहद करने से एक बड़े वर्ग से जानकारी मिलने पर आगे का कदम उठाना और सरल हो पाएगा। शिक्षित एवं अशिक्षित महिलाओं में तुलनात्मक अध्ययन से कई ओर नए विचार सामने आएँगे जो महिला कुपोषण में सुधार लाने में अत्यंत लाभकारी सिद्ध होंगे।

संदर्भ-सूची

पुस्तकः

- सिंह बृंदा डॉ., ***आहार विज्ञान एवं पोषण***।
- संह बृंदा डॉ., ***आहार नियोजन***।

बेबसाइटः

www.jansatta.com/sunday-magazine/malnutrition-in-women/128383
www.gaonconnection.com /desh/women-and-child-malnutrition servey-2018
https://hi.m.wikipedia.org
www.myupchar.com/disease/malnutrition

असम में भक्ति साहित्य और श्रीमन्त शंकर देव

डॉ० विश्वजीत कुमार मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश

शोध-सारांश

असमिया समाज में व्याप्त सामाजिक-धार्मिक अव्यवस्था को विषम परिस्थिति में महापुरुष शंकरदेव ने समझ लिया था कि असम के विविध मतावलम्बियों के मध्य एकता, अध्यात्मिक भाव, सामाजिक उन्नति के एक सहज धर्म की आवश्यकता है। उनका विश्वास था कि साधारण लोगों की समझ में आने के लिए दार्शनिक, अध्यात्मिक आलोचना से अलग एक सहज पंथ के रूप में वैष्णव भक्ति का मार्ग बनाना होगा। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने बारह वर्ष तक समग्र भारतवर्ष का भ्रमण किया। विभिन्न तीर्थ, मठ-मंदिरों के दर्शन किए तथा वैष्णव संप्रदाय के विभिन्न कार्य-कलापों को देखा-समझा और तब जाकर असम के परिस्थिति और समाज के अनुसार एक नये धर्म का प्रवर्तन किया। उन्होंने बहुदेववाद के स्थान पर सरल भगवती धर्म का प्रवर्तन किया। अपने धर्म के प्रचारार्थ उन्होंने संस्त्रत के विविध ग्रंथों का असमिया में अनुवाद किया और अपने शिष्यों के द्वारा भी विविध ग्रंथों का अनुवाद करवाया। साथ ही उस युग के अन्य कवियों को भी रचना कार्य में प्रवृत्त किया शंकरदेव ने ब्राह्मण और चांडाल की जाति पूछने से मना किया है। उनके अनुसार ब्राह्मण और चाण्डाल की कोई जाति नहीं होती है। जो भी संत है, संत हैं। शंकरदेव के अनुसार भक्ति आचारविहीन है, भक्ति मानसिक उत्कर्ष करने का ही एक साधन है। इसलिए शंकरदेव ने- **"मूलूक रजक तुरुक कुवाच गोवाल"** कहकर भक्ति में सबका समान अधिकार घोषित किया है। उस समय सामाजिक मर्यादा न पाने वाले कछारी, बराही, मरान, राभा, बोड़ो आदि अनार्य जनगोष्ठी समूह सहित विभिन्न जनगोष्ठियों के बीच एक धर्मीय वैष्णव धर्म योगसूत्र को मजबूत बनाने का काम किया। इन जाति-जनजातियों का भेद मिटाने तथा एक करने में शंकरदेव प्रवर्तित नववैष्णव धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही

पूर्वोत्तर के राज्य असम की अध्यात्मिक परिस्थिति के निर्माण में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव जी का महान योगदान है। बारहवीं शताब्दी में आचार्य रामानुज के समय तक वैष्णव धर्म का आंदोलन तेजी से उत्तर भारत में फैलने लगा था, परंतु इसे सर्वभारतीय रूप नहीं मिला था। बारहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक लगभग समूचे भारत वर्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक वैष्णव भक्ति आंदोलन प्रबल रूप से देखा जा सकता है। वैष्णव भक्ति का अनेक वैशिष्ट समाज में अनेक रूपों में प्रतिबिम्बित हुआ। प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और उदार दृष्टि इस भक्ति का आधार है। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से पल्लवित वैष्णव भक्ति के उत्कर्ष का यह युग भारतीय साहित्य में भी स्वर्ण युग कहलाता है।

उत्तर भारतीय समाज और साहित्य में निर्गुण तथा सगुण मार्गी धारा स्पष्ट रूप से प्रवाहित होने लगी थी। माधव कंदलि, हरिवर विप्र आदि पूर्व कवियों ने रामायण, महाभारत और वैष्णव वामन पुराण आदि के पदों का अनुवाद, समसामयिक कवि दुर्गावर के गीति रामायण तथा पीताम्बर द्वारा भागवत के दशम स्कंध की पदों का असमिया में अनुवाद आदि रचना के कारण असम में श्रीमंत शंकरदेव के नववैष्णव आंदोलन की पूर्व पीठिका तैयार हो गयी थी। हेम सरस्वती ने वामन पुराण के आधार पर 'प्रह्लाद चरित्र' रचना करके असुर दैत्य हिरण्यकशिपु के घर में भगवान नारायण के प्रवेश की कहानी को जनसाधारण के सामने रखा। 'जैमिनी अश्वमेध' की विषयवस्तु का निरुपण वैष्णव धर्म के आदर्श पर लिखे गए 'जयद्रथ वध' में दिखाई दिए। माधव कंदली ने 'रामायण'

की रचना करके वैष्णव धर्म के एक और अवतारी पुरुष राम की महिमा बखान की। महान गुरु शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित एकशरण भगवती धर्म किसी के अनुसरण या किसी से दीक्षा लेकर शंकरदेव ने असम में प्रचार-प्रसार नहीं किया। एकशरण भागवती धर्म महान गुरु शंकरदेव के शास्त्र-भागवत अध्ययन, तीर्थ भ्रमण, सतसंग आदि के ही परिणाम हैं। महानपुरुष शंकरदेव ने अपने जीवन काल में शास्त्र-अध्ययन, तीर्थ-भ्रमण, सतसंग में रहकर जो भी जाना-सीखा उसी के आधार पर एकशरण भगवती धर्म का प्रचार किया। शंकरदेव प्रवर्तित एकशरण भागवती धर्म उनके मौलिक प्रयास का ही परिणाम है और बाह्य प्रभाव से मुक्त है।

पूर्व शंकरी काल के प्रमुख कवि हेम सरस्वती के 'प्रह्लाद चरित्र' में वैष्णव भक्ति का एक अनूठा रूप देखने को मिलता है। 'प्रह्लाद चरित्र' में विष्णु की महिमा वर्णन होने के कारण वैष्णव धर्म तथा विष्णु भक्ति का वर्णन मिलना स्वाभाविक है। हेम सरस्वती लिखते हैं कि-

'माधवेसे पिता-माता माधवेसे प्रान
माधवत परे कुन बंधु आसे तान।'

अर्थात हेम सरस्वती लिखते हैं कि माधव ही सबकुछ हैं। माधव यानि भगवान विष्णु ही हमारे पिता हैं, माता हैं, वही माधव हम सबके प्राण हैं। इस संसार से मुक्ति की एक मात्र राह भी माधव ही हैं। माधव ही इस मायायुक्त संसार से जीवों को मुक्ति प्रदान कर सकते हैं। उनके बिना इस भव-संसार में समस्त जीवों का कोई दूसरा बंधु नहीं है।

इसके पश्चात माधव कंदली कृत 'रामायण' में राम-भक्ति का सुंदर निदर्शन मिलता है। इस कृति में राम भक्ति के साथ-साथ प्रेम भावना का चित्रण मिलता है। काम के पीड़ा से पीड़ित राम को सीता से एक दिन की दूरी एक वर्ष के समान लगती है। **'काम अतिरेक रामर एकगोटो दिने जाय एक वषिरेक'।** इस कृति में राम भगवान विष्णु के अवतार होने के साथ-साथ सामान्य मानव भी है, जो सामान्य-जन के तरह काम से पीड़ित हैं। राम को अपने पत्नी से दूरी के कारण एक दिन का समय भी एक वर्ष के समान लगता है।

वैष्णव साहित्य के विद्वान डॉ. के. डी. गोस्वामी ने श्रीमंत शंकरदेव के युग को असमिया साहित्य के इतिहास में स्वर्णयुग की संज्ञा देते हुए कहा है कि पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में असम सहित पूर्वोत्तर भारत में शंकरदेव को ही नववैष्णव भक्ति आंदोलन चलाने का श्रेय मिलता है। महान गुरु शंकरदेव की प्रेरणा से ही असम में नववैष्णव आंदोलन की धारा प्रवाहित होने लगी।[1]

महान गुरु शंकरदेव के मूल आदर्श भक्ति है। शंकरदेव के अनुसार तन, मन, धन से ईश्वर की आराधना करके अपना सबकुछ ईश्वर पर अर्पित कर देना ही सत्य है। ईश्वर को प्राप्त करने की एकमात्र उपाय ईश्वर की साधना ही है। नवधा भक्ति के सभी लक्षण मिलने पर भी शंकरदेव ने श्रवण और कीर्तन को ही अधिक महत्त्व दिया है। **"ब्राह्मनर चांडालर निबिसारि कुल"** कहकर शंकरदेव ने ब्राह्मण और चांडाल की जाति पूछने से मना किया है। उनके अनुसार ब्राह्मण और चाण्डाल की कोई जाति नहीं होती है। जो भी संत है, संत हैं सभी ब्राह्मण हैं। शंकरदेव के अनुसार भक्ति आचारविहीन है, भक्ति मानसिक उत्कर्ष करने का ही एक साधन है। इसलिए शंकरदेव ने **"मूलूक रजक तुरुक कुवाच गोवाल"** कहकर भक्ति में सबका समान अधिकार घोषित किया है। उस समय सामाजिक मर्यादा न पाने वाले कछारी, बराही, मरान, राभा, बोड़ो आदि के जनगोष्ठी समूह सहित विभिन्न जनगोष्ठियों के बीच एक धर्मीय वैष्णव धर्म योगसूत्र को मजबूत बनाने का काम किया। इन जाति-जनजातियों का भेद मिटाने तथा इन्हें एक करने में शंकरदेव प्रवर्तित नववैष्णव धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही। डॉ. सत्येंद्रनाथ शर्मा लिखते हैं- **"वामाचारी तांत्रिक प्रथार भयावह आचारे स्थान विशेषे आरु लोकविशेषे खोपनि पूति लैसिल।"**[2] अर्थात वामाचारी तांत्रिक प्रथा का प्रभाव असम में विभिन्न स्थान तथा जनसाधारण में अपना स्थान बना लिया था। असम के अनेक स्थानों पर तंत्रिक प्रथा का प्रभाव देखा जा सकता है। अलख निरंजन सहाय के अनुसार **"सदिया का तामेश्वरी मंदिर, कामरुप का कामाख्या मंदिर तांत्रिक साधना का केंद्र था। नाना मत, नाना देव-देवी की उपासना और नाना प्रकार के आचार-विचार जनसाधारण के मन को सनातन धर्म के प्रति संशय और भय से भर दिया था।"**[3]

इस विषम परिस्थिति में महापुरुष शंकरदेव ने समझ लिया था कि असम के विविध मतावलम्बियों के मध्य एकता, अध्यात्मिक भाव, सामाजिक उन्नति के एक सहज धर्म की आवश्यकता है। उनका विश्वास था कि साधारण लोगों की समझ में आने के लिए

दार्शनिक, अध्यात्मिक आलोचना से अलग एक सहज पंथ के रूप में वैष्णव भक्ति का मार्ग बनाना होगा। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने बारह वर्ष तक समग्र भारतवर्ष का भ्रमण किया। विभिन्न तीर्थ, मठ-मंदिरों के दर्शन किए तथा वैष्णव संप्रदाय के विभिन्न कार्य-कलापों को देखा-समझा और तब जाकर असम के परिस्थिति और समाज के अनुसार एक नये धर्म का प्रवर्तन किया। उन्होंने बहुदेववाद के स्थान पर सरल भगवती धर्म का प्रवर्तन किया। अपने धर्म के प्रचारार्थ उन्होंने संस्ख्रत के विविध ग्रंथों का असमिया में अनुवाद किया और अपने शिष्यों के द्वारा भी विविध ग्रंथों का अनुवाद करवाया। साथ ही उस युग के अन्य कवियों को भी रचना कार्य में प्रवृत्त किया। डॉ. अलख निरंजन सहाय के अनुसार-**"धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महापुरुष शंकरदेव ने असमवासियों को एक नया धर्म दिया, ज्ञान और कर्म के बीच रहने वाली अखंड शक्ति दी और दिया भागवत ख्रष्ण पर अखंड विश्वास।"**[4]

डॉ. लीला गोगोई के अनुसार- **"शंकरदेवे नाम, देव, आरु भकत एइ तिनिमुठि बस्तुहे मूल बुलि कैछिल। माधवदेवे एइ तिनिमुठि बस्तुर लगते गुरु संजोजित करे। शंकरदेवे गुरु आरु भक्ति अभिन्न बुलि धारणा करिछिल, कितु माधवदेवे गुरु ईश्वर वुलि तुलि चारिमुठि वस्तु पुर करे।"**[5] अर्थात शंकरदेव ने भक्ति के लिए नाम, देव और भक्त को ही प्रधान माना था, परंतु माधवदेव ने नाम, देव और भक्त के आलावा गुरु को भी उन तीनों तत्वों में जोड़ दिया। माधवदेव के अनुसार गुरु ईश्वर से भी बड़ा है, भक्ति के लिए गुरु का होना आवश्यक है। गुरु ही भक्तों को भक्ति की ओर ले जाते हैं। भागवत के ब्रह्मसूत्र और कर्मसूत्र के आधार पर सत्र, नामघर की स्थापना करके वैदिक कर्मकांड का विरोध करते हुए शंकरदेव ने अपने शिष्यों को वैष्णव धर्म में दीक्षित किया था। निश्चित रूप से तब तक 'शरण' एक रीति नहीं बने थे। फिर शरण का शाब्दिक अर्थ है गुरु महिमा, गुणों से मुग्ध होकर शिष्यों का गुरु के सामने झुक जाना या उनके लिए अपना सबकुछ अर्पण करना। माधवदेव ने शंकरदेव से वैदिक कर्मकांडीय शास्त्रार्थ में हारकर शंकरदेव के सामने हार मान लिए थे और उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया था। शायद शंकरदेव ने माधवदेव को इसिलिये पहले शरण दिया था यानि अपने शिष्यों में श्रेष्ठ रूप में स्वीकार किया था। यहीं से शरण लेने की प्रथा का प्रारंभ हुआ। जो आज एक रूढ़ि बन गए हैं। बिना शरण लिए कोई भी व्यक्ति पवित्र नहीं हो सकते यह मान्यता बाद के महान गुरुओं की देन है।

महापुरुष श्री मंत शंकरदेव ने बनगया गिरि, रामराय के सहयोग से भक्ति धर्म आचरण, प्रवर्तन और प्रचार के लिए असम की पूण्यभूमि पर नामघर और मणिकूट की स्थापना की। असमिया संस्कृति को एक नये रूप देने में श्री मंत शंकरदेव की महत्वपूर्ण भूमिका है। डॉ. लीला गोगोई के शब्दों में- **'असम के महान संत श्रीमंत शंकरदेव ने भागवत पुराण के कृष्ण चरित्र और कृष्ण भक्ति शाखा को विशिष्टाद्वैतवाद की ओर मोड़ दिया, जिसके फलस्वरूप नाम, देव, गुरू और भक्त की एक रूपरेखा तैयार हुई। इस पद्धति में लोगों द्वारा समुदाय के रूप में ताली बजाकर नाम कीर्तन किया जाता ह। यह विशिष्ट रूप असम में ही देखने को मिलता है। भारत के अन्य स्थानों में महज मंदिर एवं उनमें मूर्तियाँ हैं परन्तु असम में मंदिर और मूर्तियों के अलावा नामघर भी हैं, परन्तु नामघर में मूर्तियाँ नहीं होती है। नामघरों में भागवत पुराण को ही चैतन्य मूर्ति मानकर नाम-कीर्तन करते हैं।'**[6] श्री मंत शंकरदेव ने असम को उस समय एक नयी राह दिखाए थे जिस समय असमिया समाज और संस्कृति प्राय: मृतप्राय थे। सभी लोग धार्मिक कर्मकाण्ड, अंध विश्वास, पाखण्ड आदि में फँसकर धर्म के मूल रूप को भूल गए थे। उस समय श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्य श्रीमंत माधवदेव ने असम और असमिया समाज-संस्कृति को बचाने का कार्य किया। असम में नामघरों की स्थापना श्रीमंत शंकरदेव ने किया था। माजूली में सत्र की स्थापना किया, सत्र में विविध धार्मिक शिक्षा देने के साथ-साथ कला संबंधी शिक्षा भी दिया जाता है, जिनमें शात्रीय संगीत और शास्त्रीय नृत्य प्रमुख हैं इनके अलावा वहाँ विविध असमिया वाद्ययंत्र बजाने की भी शिक्षा दी जाती है। **'नामघरों में धार्मिक कार्य के साथ-साथ विविध अवसरों पर गाँव समिति द्वारा सभा भी आयोजित किया जाता हैं। नामघरों के साथ-साथ शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित 'कीर्तनघोषा'[7] असमिया संस्कृति की मूल धरोहर है।'**[8] 'कीर्तन' शंकरदेव द्वारा रचित भागवत का अनुवाद है तथा 'नामघोषा' माधवदेव द्वारा रचित एक हजार पदों का संग्रह है। जिस कारण से नामघोषा को हजारी घोष भी कहा जाता है। असमिया समाज और संस्कृति में कीर्तन-घोष का उतना ही महत्व है जितना उत्तर भारत में रामचरित मानस का। असमिया समाज में सुबह-शाम ईश्वर की अराधना के लिए नामघोष के पदों को ही गाया जाता है। **"श्री मंत शंकरदेव के कवित्व प्रतिभा का श्रेष्ठ निदर्शन जहाँ कीर्तन घोष**

में मिलता है, वहीं यह वैष्णव भक्ति साहित्य के कीर्तिस्तम्भ के रूप में भी परिचित है।"[9]

वैष्णव भक्ति ख्रष्ण नाम का श्रवण और कीर्तन की प्रधानता दी गई है। मान्यता है कि हरि नाम कीर्तन और श्रवण से ही जीव को इस संसार से मुक्ति मिल सकती है। श्रवण और कीर्तन की सुविधा के लिए नाम प्रसंग के सुविधानुसार कीर्तन घोष में घोष के साथ-साथ पदों की भी रचना हुई है। अलख निरंजन सहाय के अनुसार- **"कीर्तन घोष की विषयवस्तु के अंतर्गत कृष्ण लीला का माहात्म्य है। इसी लीला के माध्यम से महापुरुष ने उपदेश, तत्वज्ञान, प्रार्थना प्रभृति, अन्योन्य तत्व प्रधान वस्तुओं का निदर्शन किया है। कृष्ण कथा को कीर्तन घोष के विभिन्न सोपानों पर जीवन काव्य की विषयवस्तु बनाने के निमित्त ही जहाँ एक और उन्होंने पौराणिक संवादशैली अथवा वक्ता-श्रोता द्वारा कथा वर्णन की शैली अपनायी है, वही कथा की विस्तृत भूमिका चतुर्विंशति अवतार, नाम अपराध आदि भागों में तथा लम्बा उपसंहार-भागवत के तात्पर्य को भी समेटा है।"**[10] इसी क्रम में साहित्यरथी लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ जी का एक कथन उद्धृत है- **"भाषार लालित्य, छन्दर झंकार, सूरर लावण्य, भावर माधुर्य, भक्तिर दृढ़ता, चितार उच्चता आदिर समष्टिरे शंकरदेवर कीर्तन रचित।"**[11] अर्थात साहित्यरथी लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ ने कहा है कि महापुरुष शंकरदेव की कीर्तन में भाषा की लालित्य के साथ भक्ति भावना और उच्च विचार से भरपूर है। जिससे शंकरदेव ने अपने कीर्तन को एक अलग रूप दिया है।

नामघर और सत्र शंकरी संस्ख्रति के दो प्रमुख तत्व हैं। प्राकशंकरी युग में असम के बौद्धों के बीच बौद्धविहार नामक एक सामूहिक उपासना गृह देखने को मिलता है। नामघर देखने में बौद्धविहार की तरह ही एक सामूहिक अनुष्ठान होने पर भी शंकरदेव ने नामघर को एक बहुमुखी प्रतिष्ठान के रूप में असमिया समाज के सामने रखा। असम में नामघर केवल एक धार्मिक अनुष्ठान न होकर एक सामाजिक अनुष्ठान भी है। नामघर में विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के साथ-साथ वायन-गीत के साथ भाउना का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। **"नामघर में हर साल एक नाटक अभिनय किया जाता है जिसे 'भाउना'**[12] **कहा जाता है, जो विविध धार्मिक कथाओं पर आधारित होते हैं। भाउना के लिए नाटक सर्वप्रथम श्रीमंत शंकरदेव ने लिखा था और उन्होंने 'अंकीया नाटक' नामक नाटक को अभिनीत करके भी दिखाया था। भाउना के लिए लिखे गए दो-तीन नाटकों के नाम निम्नलिखित हैं- 'बलि बध नाटक', 'राम-सीता मिलन' और 'रावन बध', 'प्रह्लादर ईश्वर प्राप्ति', 'शिवर लति-घति', 'बकासुर बध' आदि। इस तरह के पौराणिक कथाओं पर आधारित नाटक ही नामघर में भाउना के रूप में अभिनीत किए जाते हैं। भाउना में केवल लड़के ही अभिनय करते हैं, लड़कियों का अभिनय करना वर्जित है। भाउना एक सांस्कृतिक कार्यक्रम है, जिससे असम की संस्कृति को एक अलग पहचान मिली है"**।[13] नामघर असमिया समाज के ऐक्य और एकता का केंद्र है। नामघर में वैष्णव पूजा-पर्व आयोजित करने के साथ-साथ लोक-उत्सव भी आयोजित किया जाता है। डॉ. लीला गगोई के अनुसार- **"एकोता नामघरे एके रीति-नीति, ध्यान-धारणावाही समाजक प्रतिनिधित्व करे। असमर प्रतिखन गाँवते खेर-बाहर जुपुरि हलेउ एकोता नामघर आछे। केतबोर नामघरत केवल बैष्णव पर्वसमूह के पालन करा नहय, थलुवा ध्यान-धारणार लोकौत्सव समूहो समान गुरुत्वरेइ पालन करा हय।"**[14]

भारतीय संस्कृति में सत्र शब्द नया नहीं है। सत्र शब्द असमिया में संस्कृत से आया है। जिसका अर्थ है दीर्घकालीन यज्ञ। बारह दिन से भी अधिक समय तक आयोजित की जाने वाली यज्ञ को सत्र यज्ञ कहा जाता था। डॉ. सत्येंद्रनाथ शर्मा के अनुसार- **"जिहेतुके सत्रक उपलक्ष्य करि भागवत चर्चा हैछिल आरु हरि भक्तिर महात्म्य प्रकाश हैछिल, सेइ कारणे असमिया वैष्णवसकले नैमिषा सत्रर लाक्षणिक अर्थके प्रधानभावे ग्रहण करि वैष्णव भक्तिर केंद्र आरु भक्तसकलर सन्योगस्थल अर्थट शब्दटो प्रयोग करिबलै धरे।"**[15] अर्थात सत्र की स्थापना का मूल उद्देश्य था भागवत धर्म का प्रचार और प्रसार। इसी उद्देश्य से सत्र में सभी भक्त मिलकर ईश्वर की आराधना करते थे। नाम कीर्तन को ही प्रमुख मानते थे। इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस स्थान में वैष्णव भक्तों के द्वारा देवता और ईश्वर की आराधना किया जाता है, उसी स्थान को सत्र कहा जाता है। श्रीमदभागवत में ब्रह्म सत्र और कर्म सत्र नाम के दो सत्रों का उल्लेख मिलता है। शंकरदेव ने धर्म चर्चा के उद्देश्य से ही सत्र की स्थापना की थी। सत्र में नियमित रूप से नाम-प्रसंग, नाट-भाउना, धर्म चर्चा किया जाता है। सत्र के अधिकारी गाँव-गाँव जाकर शिविर बनाकर रहते थे और धर्म प्रचार करते थे। अनेक सत्राधिकारियों ने गीत, नाट-पुथि रचना करके धर्म प्रचार में सहायता प्रदान की थी। डॉ. लीला गगोई के अनुसार-**"शंकरी-संस्कृति की सवातोकै डांगर गुण हैछे उदारता और गुणग्राहिता। मानसिक उत्कर्ष साधन आरु**

मानवताबोधेइ यदि संस्कृतिर मूल वस्तु हय, तेनेहले शंकरी-संस्कृतिक यथार्थते संस्कृति बुलिब पारि"[16]

इस प्रकार हम असमिया समाज में अध्यात्मिक परिवेश की पुन:स्थापना में श्रीमंत शंकरदेव के योगदान को भूल नहीं सकते। असम को अखिल भारतीय अध्यात्मिक परिवेश प्रदान करने वाले संत शंकरदेव जी असमिया समाज को एकता के सूत्र में पिरोने का भी कार्य बड़ी कुशलता के साथ करते हैं।

सन्दर्भ

1. असमिया साहित्य का परिचयात्मक इतिहास, अलख निरंजन सहाय, पृष्ठ – 87
2. असमिया साहित्य का परिचयात्मक इतिहास, अलख निरंजन सहाय, पृष्ठ 89
3. वही, पृष्ठ – 88
4. असमिया साहित्य का परिचयात्मक इतिहास, अलख निरंजन सहाय, पृष्ठ – 90
5. असमर संस्कृति, पृष्ठ – 130-131
6. गद्य कथा आलोक, सं. अलख निरंजन सहाय, पृष्ठ ...
7. शंकरदेव द्वारा रचित कीर्तन और माधवदेव द्वारा रचित नामघोषा मिलाकर कीर्तनघोषा नाम से प्रकाशित किया गया था।
8. असम की लोक संस्ख्रति और जीवन दर्शन (प्रकाशित लेख), बर्णाली गोगोई, शोध शौर्यम, अंक – 1, 2019, पृष्ठ 128
9. असमिया साहित्य का परिचयात्मक इतिहास, अलख निरंजन सहाय, पृष्ठ 108
10. असमिया साहित्य का परिचयात्मक इतिहास, अलख निरंजन सहाय, पृष्ठ 108
11. वही, पृष्ठ – 108
12. पोराणिक कथा पर आधारित नाटक, जिसमें सभी पात्र पुराण से लिए जाते हैं
13. असम की लोक संस्कृति और जीवन दर्शन (प्रकाशित लेख), बर्णाली गोगोई, शोध शौर्यम, अंक – 1, 2019, पृष्ठ 136-137
14. असमर संस्कृति, लीला गोगोई, पृष्ठ 90
15. असमर संस्कृतिर कणिका, सं. नारायण दास, परमानंद राजबंशी, पृष्ठ – 305
16. असमर संस्कृति, लीला गोगोई, पृष्ठ – 90-91

अद्वैत वेदान्त एवं सफ़ी मतः सापेक्षी मूल्यांकन

डॉ० कुमार वरुण

हिन्दी विभाग, सहायक प्राध्यापक
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

अनेक दार्शनिक चिंतन काल विशेष की भाव संवेदना में सीमित होने के कारण कालगत विशेषताओं के समाप्त होते ही अप्रासंगिक हो जाते हैं। इनके शीघ्र काल बाह्य होने का मुख्य कारण होता है, दार्शनिक मतवाद का शाश्वत जीवन मूल्यों से अपरिचय, संतुलित चिंतन का अभाव और इतिहास बोध से अलगाव। परन्तु अद्वैत वेदांत और सूफी दर्शन कालगत संवेदनाओं से संपृक्त भारतीय समाज के लिए आज भी प्रासंगिक है।

अद्वैत वेदांत भारतीय दर्शन परम्परा की अंतिम और सर्वाधिक सशक्त अभिव्यंजना है। पूर्ववर्ती समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों के खण्डन-मण्डन का चरमोत्कर्ष अद्वैत वेदांत आठवीं शताब्दी में जब अखिल भारतीय मानस प्रतिभा को चुनौती प्रस्तुत कर रहा था ठीक उसी समय अरब प्रायद्वीप इस्लाम की स्वच्छंद वैचारिकी के सूफी नामकरण का साक्षी बना। अद्वैत वेदांत और सूफी मत अपनी-अपनी परम्पराओं का निकष प्रस्तुत करते हुए काल समता के बावजूद पर्याप्त दिशा-भाव प्रदर्शित करते हैं। जहाँ अद्वैत वेदांत भारतीय दर्शन के बुद्धिवादी विचलन को दर्शाता है। वहीं सूफी मत का मजमून इस्लाम की हृदयवादी वृत्तियों को संचयन है। जीवन और जगत के प्रति इस दृष्टिभेद के रहते भी जब दसवीं शताब्दी में इस्लाम का भारतीय उपमहाद्वीप में प्रभावी प्रवर्तन हुआ तब अचानक एक-दूसरे के बरख्श खड़ी इन दो विपरीत विचारधाराओं ने कहीं से भी अंतर्भेद का परिचय नहीं दिया। बजाय इसके इस्लाम और हिंदू संस्कृतियों के सम्मिलन अथवा टकराहट के रूप में घटित प्रारंभिक मध्यकाल की इस महान घटना से उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक ऊर्जा को तत्समय में भारत के सामाजिक निर्माण के लिये प्रयुक्त करके अद्वैत वेदांतियों और सूफी संतों ने महत भूमिका का निर्वाह किया। आज भारत की वैश्विक पहचान के महत्वपूर्ण घटक के रूप में चिह्नित समरस एवं सामासिक संस्कृतिक का बीजारोपण दर्शन की इन्हीं दोनों धाराओं से माना जा सकता है। अपने मूल इस्लाम की बजाय सूफी दर्शन इसलिये भी अधिक कृतकार्य हुआ क्योंकि भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जलवायु के लिए यह विदेशी पौधा अधिक अनुकूल सिद्ध हुआ।

समकालीन समय में हम अधिकतर हिन्दू और मुसलमान जैसे शब्दों को धार्मिक समुदायों का निश्चित द्योतक मान लेते हैं। किन्तु सच तो यह है कि इन शब्दों का बहुत समय तक कोई प्रचलन नहीं था। जिन इतिहासकारों ने आठवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य संस्कृत ग्रंथों और अभिलेखो का अध्ययन किया है वे इस तथ्य को उजागर करते हैं कि इनमें मुसलमान शब्द का शायद ही कहीं प्रयोग हुआ हो। इसके विपरीत लोगों का वर्गीकरण उनके जन्म स्थान के आधार पर किया जाता था। इसी तरह तुर्की मुसलमानों को तुरूष्क कहा गया। तजाकिस्तान से आये लोगों को ताजिक और फारस के लोगों को पारसीक नाम से संबोधित किया गया। यदा-कदा अन्य लोगों का दिये गए नामों को नए प्रवासियों के साथ जोड़ा गया। उदाहरणतः तुर्क और अफगानों को शक और यवन भी कहा गया।

इन प्रवासी समुदायों के लिए एक अधिक सामान्य शब्द म्लेच्छ था। जो इस बात की ओर इंगित करता है कि वह वर्ण नियमों का पालन नहीं करते थे और ऐसी भाषाएँ बोलते थे जो संस्कृत से नही उपजी थी। हालांकि ऐसे शब्दों में हीन भावना निहित थी किन्तु उन्हें एक ऐसे विशिष्ट मुसलमान धार्मिक समुदाय के लिए शायद ही प्रयुक्त किया जाता था जो हिन्दू समुदाय के विपक्ष मे

हो। इसी प्रकार हिन्दू शब्द अनेक तरह से इस्तेमाल किया जाता था और उसे धार्मिक समुदाय के एक मात्र अर्थ में सीमित नहीं किया जा सकता।

प्राचीन भाषाओं का हिन्दू शब्द मध्यकाल में अरबी और फारसी भाषाओं से ग्रहण किया गया। सिन्धु के लिए प्राचीन भारतीय शब्द 'हिन्दू' मिलता है। इसी शब्द से यूनानी शब्द इण्डिया का भी विकास हुआ। संस्कृत या किसी अन्य भारतीय भाषा में कोई शब्द नहीं है जो उस व्यक्ति को परिभाषित कर सके जिसकी आस्थाएं आधुनिक हिन्दू के सदृश थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू धर्म या उसके उपासक हिन्दू की छवि प्राचीन काल में नहीं देखी जा सकती। प्राचीन काल में ब्राह्मणवाद, भारतीय धार्मिक इतिहास का एक आधारभूत तथ्य रहा है जो ब्राह्मण पुरोहितों और दार्शनिकों की विभिन्न शाखाओं की भिन्न-भिन्न विचारों का समुच्चय था। ब्राह्मणवाद इस समय भी बौद्ध, जैन और पारसी धर्म से भिन्न था। किन्तु 'धर्म' तथा 'आचारसंहिता' का मूलाधार वह 'जातिव्यवस्था' तथा समाजिक रीतिरिवाज थे जिसका प्रभाव ब्राह्मण, बौद्ध, जैन और पारसी धर्म उपासकों और अनुयायियों पर समान रूप से था। इस प्रकार एक धर्म विशेष के रूप में हिन्दू धर्म के जन्म लेने की प्रक्रिया मध्यकाल में घटित हुई, क्योंकि एक अर्थ में इसकी चरम परिणति आधुनिक काल में दिखाई पड़ती है। हिन्दूत्व का एक धार्मिक श्रेणी के रूप में प्रयोग ईसाई मिशनरियों एवं ब्रिटिश प्रशासकों के लेखन में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है[1]। उन्नीसवीं सदी में हिन्दू धर्म को सनातन धर्म के रूप में व्याख्यायित किया जाने लगा। उस शब्द को विभिन्न रूप से प्रस्तुत किया गया जैसे- स्थायी धर्म या अपरिवर्तनशील कानून[2] पूज्य क्रमबद्धता[3], प्राचीन और सतत निर्देशित[4] या स्थाई जीवन जीने का तरीका[5]। हिन्दू धर्म से सम्बन्धित उपरोक्त अर्थों को सुधार आन्दोलन के नेता दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द जैसे नव हिन्दूत्ववादियों ने भी पर्याप्त रूप से प्रचारित किया।

इस्लाम के सन्दर्भ में समान्यत: इसके अनुयायियों के बीच यह विचार प्रचलित रहा कि हिन्दुस्तान में इस्लाम समानता की ताजा हवा लेकर आया। आर0 सी0 मजूमदार ने यह कहा कि जनतान्त्रिक विचारों पर आधारित मुसलमानों की आश्चर्यजनक पारस्परिक समानता ने हिन्दू धर्म की छुआछूत तथा जाति व्यवस्था की तुलना में एक विचित्र वैषम्य प्रस्तुत किया[6]। किन्तु, इस काल के धर्म शास्त्रियों तथा विद्वानों के लेखन मे इस प्रकार की समानता के प्रति कोई निष्ठा नहीं मिलती। मिन्हाज-उस-सिराज जो कि स्वयं एक प्रख्यात धर्म शास्त्री था, कुलीन तुर्कों अथवा श्रेष्ठ कुल के ताजिकों के आधार पर निर्मित शासक वर्ग के महत्व को रेखांकित करता है[7]। जियाउद्दीन बर्नी ने भी अपने ग्रन्थ तारीख-ए-फिरोजशाही में कठोर श्रेणीबद्धता की मुखर तथा समझौता विहीन व्याख्या की है। अत: स्वभाविक रूप से जहां एक ओर हिन्दुओं को काफिर, बहुदेववादी तथा बुतपरस्त घोषित कर दिया गया, वहीं दूसरी ओर समूचे मध्यकालीन इस्लामी साहित्य में जातिव्यवस्था, छुआछूत के सिद्धान्त तथा अछूतों के अत्याचारों के विषय में आलोचना का कोई शब्द नहीं मिलता, जबकि यह मध्यकालीन हिन्दू धर्म की एक विशेष पहचान थी। सोलहवीं सदी में अब्दुल कादिर बदायूंनी धर्म शास्त्र सम्बन्धी अपनी एक पुस्तक में मुसलमानों की सामाजिक नैतिकता को दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ घोषित नहीं करता अपितु यह स्वीकार करता है कि मुसलमानों में कुछ अतिरिक्त बुराइयां होती हैं जैसे कि वे स्वतंत्र लोगों को दास बना कर बेचते हैं। हालांकि वह यह भी स्थापित करता है कि उसके काल में यह प्रवृत्ति कम हुई है। वस्तुत: इस्लामी कानून के अन्तर्गत पूर्णदास प्रथा को दी जाने वाली स्वीकृति के आधार पर ऐतिहासिक इस्लाम में समानता की अवधारणा को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उपरोक्त् संक्षिप्त विवरण के आधार पर हम देखते हैं कि इस्लाम के आगमन से भारतीय समाजिक व्यवस्था में कोई खास परिवर्तन नहीं होता है, बल्कि आधुनिक काल तक आते-'आते साम्प्रदायिकता के रूप में एक नई समस्या उभर कर सामने आती है। सरसरी तौर पर साम्प्रदायिकता के पीछे मज़हब को माना जाता है। लेकिन ऐसी बात नहीं है। जैसा कि हम जानते हैं कि हर मजहब के दो पहलू होते हैं पहला शरीयत दूसरा रहस्यवाद्। शरीयत उस मुल्क की आबोंहवा के हिसाब से बनाया जाता है जहाँ धर्म का उद्भव होता है। लिहाजा धर्म के बाहरी आवरण में विभिन्नता पाई जाती है जिसे धर्म के पोंगापंथियों और कठमुल्लाओं ने वास्तविक धर्म माना। वहीं रहस्यवाद उस मज़हब के दार्शनिक तत्वों की व्याख्या करता है। मानववाद की बात करता है, जो सभी धर्मो में एक (उदाहारणत: संसार के सभी धर्मो में दया, प्रेम, दान, असहायों, गरीबों की सेवा करना जैसे नैतिक नियम पाए जाते हैं) है। हिन्दुओं का दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत दर्शन है जिसका उल्लेख उपनिषदों में मिलता है। मध्यकाल में इसका फारसी में अनुवाद दाराशिकोह ने सिर्र-ए-अकबर नाम से करवाया तथा कहा कि पहले किताब का दर्जा हिन्दुओं को हासिल हैं। अद्वैत दर्शन पर लेखन

कार्य की एक सतत परंपरा हमें प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक दृष्टिगत होती हैं। वहीं इस्लाम के दार्शनिक तत्वों की विवेचना हमें सूफी साहित्य में स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है।

भारतीय रहस्यवाद को अद्वैत वेदान्त कहते हैं। इसके प्रथम साक्ष्य हमें उपनिषद् से प्राप्त होते हैं। उपनिषद् वेद के ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत आता है। अद्वैत वेदान्त में केवल ईश्वर को ही सत्य माना गया हैं। भारत में जितनें भी दार्शनिक सम्प्रदाय हैं वे सभी वेदान्त दर्शन से सीधो प्रभावित हैं। यह दर्शन उस विशाल पुरातन आर्य साहित्य से उद्गत हुआ है, जिसे वेदों के नाम से जानते हैं। इस दर्शन की ख़ास विशेषता है कि यह पूर्णरूपेण अव्यैक्तिक हैं। इसकी उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष या धर्म गुरू से नहीं हुई। परन्तु जो दर्शन किसी व्यक्ति विशेष (प्राचीन भारत में बौद्ध, जैन इत्यादि) को केन्द्रित करके प्रतिपादित हुए हैं, उनके विरूद्ध अद्वैत वेदान्त में कुछ भी नहीं कहा गया है। अद्वैत वेदान्त सभी धर्मो की पृष्टभूमि में दृष्टिगत होता है। इसका विश्व के किसी भी धर्म से कोई झगड़ा या मतभेद नहीं है[8]। अद्वैत वेदांत में भक्ति स्वरूपानुसंधान का ज्ञानात्मक साधन है।

अद्वैत वेदान्त का एक उसूल है जो विश्व के सारे धर्मों में पाया जाता है। वह उसूल है कि मनुष्य दिव्य है तथा हमारे चारो तरफ जो दिख रहा है उसी दिव्यता का अंशमात्र हैं। मूलत: मनुष्य के बीच कोई तफरका (भेद-भाव) नहीं है, सभी समानरूपेण दिव्य है। उस दिव्यता की अभिव्यक्ति की न्यूनाधिक शक्ति से ही हम लोगों में विभिन्नता उत्पन्न होती हैं। अतएव वेदान्त का कहना है कि उसके आधार पर उससे व्यवहार नहीं करना चाहिए, जिसे वह प्रगट करता है, बल्कि उसके अनुसार जिसका वह प्रतिनिधि है। मनुष्य दिव्यता का प्रतिनिधि है लिहाजा हर धर्म शिक्षक को मनुष्य में व्याप्त उस दिव्यता को प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए। राधाकृष्णन मानते हैं कि अतीत का उत्कृष्ट शंकर के दर्शन में ही प्राप्त किया जा सका है, वे लिखते हैं कि– "वैष्णवाद, शैववाद, शक्तिवाद आदि के अनुयायी एक-दूसरे के साथ झगड़ रहे थे, शंकर ने इन प्रचलित विश्वासों को खंडन-मंडन के विवाद से निकलकर शाश्वत सत्य के सुबोध वातावरण में रखा। उन्होंने जोर दिया कि सत्य धर्म की जड़े अध्यात्मिक आंतरिकता में निहित हैं। समस्त धर्मों द्वारा जिस सत्य की तलाश है, वह आत्मा है, जब तक हम उस यथार्थ के साथ स्वयं की एकता नहीं मानते जो इन सभी अपूर्ण विशेषताओं से ऊपर है, तब तक हम इस संसार-चक्र में भटकते रहेंगे अपने दार्शनिक दृष्टिकोण में वे घोषित करते हैं कि परम के दर्शन के हालाँकि कई तरीके हैं, परन्तु उनकी अंतर्निहित यथार्थता एक समान है यथार्थता की विभिन्न श्रेणियाँ नहीं है, यद्यपि सत्य की श्रेणियाँ है, अर्थात् यथार्थ समझने वाली पद्धतियों की श्रेणियाँ।

अद्वैत वेदान्त का कहना है कि हर मनुष्य उस विश्वात्मा का प्रतिनिधि है। अत: संसार की हर जीवात्मा तुम्हारी आत्मा है। हर शरीर तुम्हारा ही शरीर है, इसलिए दूसरे को चोट पहुँचाना अपने को ही चोट पहुँचाना है और दूसरे से प्रेम करना अपने आप से प्रेम करना है। वेदान्त का कहना है कि हमें लोगों के धार्मिक विचारों की अनंत विविधता को स्वीकार करना चाहिए और हर एक को एक ही विचारधारा के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न नही करना चाहिए, क्योंकि सारे लोगों का लक्ष्य एक ही है। इस प्राचीन दर्शन ने अपने प्रभाव के द्वारा बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम सबको प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। बौद्ध धर्म उपासक सम्राट अशोक के शिलालेख में उद्धृत वाक्य धर्म की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करती है "सभी धर्मों का आधार एक है, जहां कहीं भी वे हो; जितना तुमसे हो सके, उतना उनकी सहायता करो तथा उन सबको शिक्षा दो, परन्तु उनको हानि न पहुँचाओ।" भारतीय लोगों का सब धर्मों के प्रति आदर है। यहाँ विभिन्न प्रकार के धर्मों के मानने वाले लोग हैं जैसे यहूदी, पारसी, ईसाई, बौद्ध, जैन, इस्लाम, सिक्ख आदि। सभी धर्मों के प्रति समन्वय प्रवृत्ति ही वेदांत का मूल उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता स्थापित करने की प्राचीन परंपरा रही है। सामंजस्य के अभाव में सांप्रदायिक संघर्षों और संकीर्ण मनोवृत्तियों के पनपने का खतरा निरंतर बना रहता है। भारतीय अद्वैत दर्शन और सूफी मत में सामंजस्य की क्षमता विद्यमान है, जिससे कि समाज के विघटनकारी तत्वों से लड़ने का साहस मिलता है।

मजहब से मुसलमान, हृदय से उदार, भक्ति सन्तों की तरह जिन्दगी गुजारने वाले सूफी वसुन्धारा को केवल वीरभोग्या ही न रखकर प्रेमभोग्या बना रहे थे। सूफी मत का आगाज़ अरब प्रदेश में मुहम्मद साहब के इन्तकाल के बाद हुआ। इस सम्बन्ध में डा0 युसूफ हुसैन का कहना है कि, "विश्व के हर भाग में धर्म का एक अपरिहार्य अंग रहस्यवाद है। मानव जाति की संस्कृति और हिन्दू धर्म जैसे प्राकृतिक धर्मों के रूप में इसकी शुरूआत हुई जबकि रचित धर्मों (जैसे : इस्लाम और ईसाई आदि) की दशा में

रूढ़िवादी अथवा संस्थाकृत मतों के विरूद्ध यह एक भिन्न सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुआ। इस्लामी रहस्यवाद, जिसे तसाऊ अथवा सूफ़ीवाद के नाम से जाना जाता है, उतना ही प्राचीन है, जितना कि इस्लाम स्वयं। इसमें कोई शक नहीं कि उसका जन्म इस्लाम से हुआ[9]।" भारतीय रहस्यवाद अथवा भक्ति सुधारकों की तरह, इन लोगों ने आत्म समर्पण, समाधि तथा मानव सेवा में पूर्ण समर्पण द्वारा उससे (खुदा) व्यक्तिगत संपर्क बनाना चाहा। रहस्यवाद को शिया और सुन्नी दोनों मुस्लिम रूढ़िवादियों द्धारा नज़रन्दाज किया गया, परिणामस्वरूप कभी-कभी सूफ़ी लोग उत्पीड़ित भी किये गए। उनमें से कुछ का इस्लाम धर्म के त्याग के आरोप में सिर कलम किया गया। रूढ़िवादियों और सूफ़ी लोगों में सामंजस्य बैठाने का श्रेय एक अरब दार्शनिक, अल-गजाली (1057 ई0-1112 ई0) को दिया जाता है। इसने इस्लामिक रहस्यवाद को एक धार्मिक आधार उपलब्ध कराया। भारत में सूफ़ी मत के पैरोकारों का आगमन उस समय में हुआ जब सूफ़ीमत इस्लाम का खास अंग बन चुका था। अब सूफ़ी साधक ही नहीं, इस्लाम के प्रचारक भी हो गये थे। अधिकांश सूफ़ी सन्त यबनों की सेना के साथ या उसके आगे पीछे आये।

सूफीवाद का एकतत्व दर्शन वहदत-उल-वजुद के सिद्धांत मानव जाति की एकता पर आधारित था, जिसके अनुसार स्रष्टा (हक) और सृष्टि (खल्क) एक समान है। दूसरे शब्दो में, सभी घटना चक्रों के पीछे वास्तविकता और सभी अनेकतत्ववाद के पीछे एकता का कारण ईश्वर है। इस सिद्धांत के लेखक शेख मुहुउद्दीन इब्न अल अरबी (1165 ई0-1248 ई0) इन शब्दो मे व्याख्या करते हैं-"ईश्वर के सिवाय यहाँ कुछ नहीं है, उसको छोड़कर किसी का अस्तित्व नहीं हैं। ऐसा कोई स्थान भी नहीं है जहां सभी वस्तुओं का सार एक न हो"।

सूफ़ी शब्द को लेकर काफ़ी मतभेद है, क्योंकि 'सूफ़ का अर्थ यूनानी भाषा में प्रज्ञा (सोफिया) है। यही कारण है कि युनानी भाषा में फिलॉसॅफर (दार्शनिक) को पीलासोपा (फिलॉसॉफ्स) अर्थात प्रज्ञा भी कहा जाता हैं। जब इस्लाम में लोगों ने इन्हीं दार्शनिकों के सिद्धांतों से मिलते-जुलते सिद्धांत अपनाए तो उन्होंने नाम भी उन्हीं का अपना लिया। लेकिन कुछ लोगों की समझ में इस शब्द का अर्थ नहीं आया और उन्होंने गलती से इसे अरबी के शब्द 'सफ़ा' के साथ जोड़ दिया, मानों सूफ़ी (यूनानी फिलॉसॉफाई) और तथाकथित 'अहल-उस्सूफ्फा' जो मुहम्मद के साथियों में थे एक ही हो। कालान्तर में गलत बर्तनी के कारण यही शब्द विकृत हो गया और अंततोगत्वा इसे सूफ़ से व्युत्पन्न मान लिया गया (सूफ़ का शाब्दिक अर्थ है बकरियों का ऊन)। अबुलफ़तह अलबुस्ती ने इस गलती से बचने के लिए बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया और कहा, "प्राचीन काल से लोगों में 'सूफ़ी' शब्द के अर्थ के बारे में मतभेद रहा है और वे इसकी व्युत्पत्ति सूफ़ शब्द से मानते आ रहे हैं। यूसुफ हुसैन के अनुसार इस शब्द का अर्थ पवित्रता से संबद्ध हैं। यही 'साफ़ी' सूफ़ी बन गया और इसी रूप में दार्शनिकों (यानी सूफ़ी) के वर्ग का नाम बन गया[10]।" शेख अल असलम जकारियाह अंसारी ने उपरोक्त व्याख्याओं का बड़ा ही सुन्दर सम्मिश्रण अपनी परिभाषा में इस प्रकार किया है-"सूफ़ीवाद हमें सीखाता है कि स्वयं को कैसे शुध बनाकर, अपने चरित्र को, अपने अन्तःकरण और बाह्य जीवन को सुधार कर हमें चिरस्थायी परमानन्द की प्राप्ति हो सके। सूफ़ीवाद का विषय है-आत्मा की शुधता और उसका अन्तिम लक्ष्य है, चिरस्थायी आनन्द व सौभाग्य (वेदान्त का सच्चिदानन्द) की प्राप्ति[11]।"

हिन्दुस्तानी परिवेश में सूफी मत का विकास मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ होता है[12]। थोड़े ही समय में सूफी सिलसिला तथा खानकाह का विस्तार मुल्तान से लखनौती तथा पंजाब से देवगिरि तक हो गया[13]। इतनी शीघ्र सफलता का कारण था कि सूफी साधकों ने भारतीय सामाजिक तथा धार्मिक वातावरण के अनुकूल अपने को ढालने का निश्चय किया। भारतीय वातावरण के अनुकूल सूफी साधकों ने अपने को अनुकूल बनाकर सूफी धर्म को प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया। इन सूफी साधकों ने भारतीयों के साथ सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाकर अपने धर्म के प्रति भारतीयों को आकर्षित किया। इसके लिये इन्होंने भारतीय हिन्दुओं के संस्कारों एवं रीति-रिवाजों को भी अपनाया। सूफी साधकों का दार्शनिक वर्ग वेदान्त से बहुत अधिक प्रभावित था, यही कारण था कि इन्होंने धर्म परिवर्तन को अनावश्यक समझा[14]। सूफी साधकों का दूसरा वर्ग अशिक्षित था अतः इन लोगों ने तन्त्र- मन्त्र तथा बाह्याडम्बरों को अपनाया। उनके चमत्कारिक क्रियाओं से बहुत से हिन्दू आकृष्ट हुये[15]।

इस काल के सूफी सन्तों ने अपने धर्म प्रचार के द्वारा हिन्दू और मुस्लिम जाति में बढ़ती हुई विद्वेष की भावना को दूर करने का भरपूर प्रयास किया जबकि दिल्ली के सुल्तान जबर्दस्ती या प्रलोभन देकर अधिक से अधिक हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का

प्रयत्न कर रहे थे। उस समय इन सन्तों ने अपनी प्रेममय वाणी द्वारा हिन्दू और मुसलमानों के बीच समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की।

भारत में सूफीमत का प्रवेश हुज्वेरी के आगमन के साथ हुआ[16]। ये अफगानिस्तान के गजनी के रहने वाले थे। भ्रमण के दौरान ये भारत आये और लाहौर में रहने लगे। वहीं 1026 ई. में इनकी मृत्यु हो गयी। भारत पर मुसलमानों द्वारा विजय के बाद विभिन्न सूफी सम्प्रदायों की स्थापना हुयी[17]। विशेष रूप से चिश्ती और सुहरावर्दी सूफी सिलसिलों ने देश के विभिन्न भागों में अपनी जड़ें जमा ली। कादरी, नक्शबन्दी, शत्तारी अंर मदारी सम्प्रदायों ने भी उसी प्रकार अपना कार्य शुरू किया। जिस सम्प्रदाय को सबसे अधिक सफलता मिली वह था चिश्ती सम्प्रदाय।

अद्वैत वेदान्त व सूफ़ी दर्शन के दार्शनिक पहलूओं का अध्ययन कर उसकी तात्विक विवेचना को एक मानने वाले, जनसाधारण के बीच बिना किसी भेद-भाव के मानवता का उपदेश देने वाले सूफी कवि सही अर्थो में सामाजिक समन्वय के सच्चे पुरोध थे। सूफी कवि जायसी ने मानवतावादी मूल्यों के उत्कर्ष के लिए लिखा है कि– **"मानुष प्रेम भयेउ बैकुण्ठी"**। उनकी पुस्तक अखरावट में सूफी दर्शन की स्पष्ट व्याख्या की गयी है:

कै दरपन अस रचा बिसेखा। आपन दरस आप मँह देखा।

जो यह खोज आप मँह किन्हातेइ आपुहि खोजा सब चिन्हा।।

अध्यात्मिक विकास के द्वारा आत्मिक ज्ञान की जानने के लिए आचार्य शंकर की तरह सूफी कवियों ने भी लोक कल्याणार्थ उन्मुख हुये। सूफी कवियों ने शंकर के अद्वैत वेदांत को प्रेमरूपी जल की बूंदों से सिक्त कर आस्वादन योग्य बना दिया। वे लिखते हैं कि–

बुंदहि समुद्र समान, यह अचरज कसौं कहौं,।

जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपहि आपु महँ

(इस वाक्यांश में अद्वैत दर्शन और सूफियों की चिन्तनधारा के समन्वय दृष्टिगत होता है।)

प्रेम के बिना सूफी दर्शन में ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है। प्रेम की चरम परिणति अद्वैत की स्थिति में निष्पन्न होती है। अत: यह कहना समीचीन है कि अद्वैत वेदांत और सूफी दर्शन एक दूसरे का पूरक है।

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि 'सब धर्मो को छोड़कर मेरी शरण में आओ', कुरान शरीफ में एक आयत है जिसमें कहा गया है कि 'ऊ तब्तल अल्लाह तब्तल अल्लाह' यानि सबको छोड़कर उसी का हो रहो। कमोबेश यही बात बौ़द्ध मत में भी कहा गया है कि 'बुद्धं शरणंम् गच्छामि'। हिन्दुओं में मनुष्य के मन की पाँच अवस्था का वर्णन किया गया है-जाग्रत, स्वप्नवत, सुषुप्ति, तुरिया, तुरीयातीत। इसी को सूफ़ी संतो ने नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहुत (फना), बक़ा कहा है। इसी तरह उपनिषदों में आया है कि पहले आत्मा एक थी। उसने सोचा कि मैं बहुत हो जाऊँ और वह हो गया। इस्लाम में कहा गया हैं कि 'कुन फ्यकुन' अर्थात खुदा ने हुक्म दिया कि दुनिया हो जाए और वह हो गई। ईसाई कहते है कि खुदा ने कहा कि 'रोशनी हो जाए' और रोशनी हो गई। वेदान्त में ज्ञानियों के तीन दर्जे होते हैं- ब्रह्म सर्वज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ एवं ब्रह्म संतुष्ट। इसे सूफ़ी सन्तों ने इल्मलयक़ीन, ऐनुलयक़ीन एवं हक़उलयक़ीन कहा हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सारे मजहबों में एक ही बात की गई है बस भाषा का फर्क है[18]। अंतत: यह कहना समीचीन होगा कि समकालीन भारतीय परिवेश में यदि दर्शन की कोई भूमिका हो सकती है तो उसे इसी समरसता के मार्ग का अनुकरण करना पड़ेगा।

(Footnotes)

1. Bernard S.Cohn, An Anthropologist among the Historians and Other Essays, Delhi,1987, pp.224-254
2. Klaus Klostermaier,A Survey of Hinduism, Albany, 1989, pp. 31
3. Halbfass, India and Europe, p. 344
4. Julius Lipner, Hindus; Their Religious Beliefs and Pratices, London, 1994, p. 221

5. Julius Lipner, On Hinduism and Hinduisms, The Way of the Banyan, in Sushil Mittal and Gene Thursby, eds The hindu World, New York, 2004, Indian Reprint, Chennai,2005, p. 19
6. History and Culture of the Indian People, edited by R. C. Majumbar, VI, Bharatiya Vidya Bhayan, p. 624
7. Minhag Siraj, Tabqat-i-Nasiri edited by Adul Hai Habibi.
8. विवेकानन्द साहित्य, नवम खण्ड, प्रकाशन, अद्वैत आश्रम हिमालय, पृ. 199
9. इस्लामिक कल्चर, जि0 19, न0 1-4 1945, पृ. 374
10. Yusuf Hussain, Glimpses of Medieval Indian Culture, p 33
11. अल-बिरूनी, हिन्दी अनुवाद, नूर नबी अब्बासी, पृ. 11
12. Valiuddin, In the Cultural History of India. p-221
13. डॉ0 ताराचन्द, इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, पृ. 95
14. डॉ0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 68
15. मुहम्मद यासीन, इस्लामिक भारत का सामाजिक इतिहास, अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1888, पृ. 139
16. वही, पृष्ठ 140
17. रामपूजन तिवारी, सूफीमत साधाना और साहित्य, पृष्ठ 44318
18. वही पृ. 233 भाग– 2

भारत में कृषि श्रमिकों की परिस्थिति

दिपेन्द्र सिंह[1]

कृषि श्रमिक वर्ग की उपधारणा का जन्म अंग्रेजों के भारत आगमन के बाद ही हुआ था, क्योंकि अंग्रेजों के भारत आगमन से पूर्व भारत में कृषि श्रमिक जैसा कोई वर्ग अस्तित्व में नहीं था। **सर थॉमस मुमरो**[2] ने 1842 में कहा था कि "भारत में एक भी भूमिहीन मजदूर नहीं है।" किन्तु वर्तमान में स्थिति बहुत निराशाजनक हो चुकी है क्योंकि पिछले दशक[3] में किसानों की संख्या में 8.6 लाख से अधिक की गिरावट आई है जो सम्भवतया कृषकों के औद्योगिक श्रमिक या कृषि श्रमिक बनने की ओर इंगित करता है। जिसका मुख्य कारण समय बीतने के साथ-साथ किसानों के पास जमीन का निरंतर कम होते जाना है। रिपोर्ट[4] के अनुसार 263 लाख लोग खेती सम्बन्धी कार्यों में लगे हुए है एवं इसके आधो कृषि-श्रमिक के रूप में इस क्षेत्र में जुड़े थे। भारत में कृषि-श्रमिक 92 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत है।

इन कृषि-श्रमिकों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है यथा–

1. पारिवारिक कृषि श्रमिक–इस वर्ग में वे छोटे किसान आते है जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते है और मजदूरी देने में असमर्थ होते है। ये छोटे किसान बुआई, निराई व कटाई के समय में मजदूरी पर कार्य करते है। जब परिस्थितियाँ ऐसी हो कि कार्य को जल्द पूरा करना हो और श्रमिकों की अधिक संख्या में आवश्यकता हो तो ऐसे समय में पारिवारिक श्रमिक भी मजदूरी करने लगते है।

2. मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिक–इसमें मजदूरों के दो उपवर्ग होते है यथा संगठित मजदूर व संलग्न श्रमिक।

संलग्न श्रमिक कुछ समय या पूरे समय के लिए मालिकों से संविदा पर काम करते है, जबकि आकस्मिक श्रमिक जरूरत पड़ने पर काम पर आते है। आकस्मिक श्रमिक दैनिक मजदूर होते है। इनकी संविदा मालिकों के साथ मौखिक होती है। यह संविदा तिमाही, छ:माही या वार्षिक हो सकती है।

3. बंधुआ मजदूर–इस प्रकार के श्रमिक सबसे निचले स्तर के माने जाते है और जिनका जीवन स्तर भी बहुत दयनीय होता है ये श्रमिक मजदूर अपने कर्ज को चुकाने के लिए किसी परिवार के सदस्य या किसी मालिक के बंधक बनकर काम करते है। उसका कर्जा अदा न होने तक निरंतर श्रमिक बना रहता है।

प्रथम कृषि श्रम जाँच समिति[5]–ये वे श्रमिक होते है जो मजदूरी भुगतान के बदले फसल उगाते है। भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल इस परिभाषा को नहीं माना जा सकता क्योंकि भारतीय श्रमिकों की एक बहुत बड़ी संख्या इसमें नहीं आती है। इस परिभाषा को अपूर्ण मानते हुए समिति ने इसे पुन: परिभाषित करते हुए कहा कि उन लोगों को कृषि श्रमिक के रूप में माना जाना चाहिए जो 50 प्रतिशत या उससे अधिक दिन के लिए मजदूरी के भुगतान पर काम करते हो।

द्वितीय कृषि श्रम जाँच समिति[6]–इस समिति ने कृषि श्रमिकों का दायरा बढ़ाया और उसमें खेतों में काम करने वालों के अलावा उन लोगों को शामिल किया जो पशुपालन, डेयरी, मुर्गीपालन, सुअर-पालन आदि इस प्रकार के कार्यों में लगे हुए है।

प्रथम कृषि श्रम-जाँच समिति ने ही कृषि-श्रमिकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया यथा-

1. संगठित मजदूर: वे मजदूर जो कृषक घर से किसी लिखित या मौखिक समझौते के तहत जुड़े होते है। उनके लिये यह रोजगार स्थाई और नियमित होता है।

2. आकस्मिक मजदूरः वे मजदूर जो किसी भी किसान के खेत पर काम करने के लिए स्वतंत्र होते है और उनका भुगतान आमतौर पर प्रतिदिन के हिसाब से दिया जाता है।

इस प्रकार कृषि श्रमिक वह शक्ति है जो किसी व्यक्ति की भूमि पर केवल एक श्रमिक के रूप में कार्य करता है तथा अपने श्रम या कार्य के प्रतिफल स्वरूप रूपये या फसल (अनाज) के रूप में मजदूरी प्राप्त करता है, ऐसा श्रमिक कार्य के देखरेख, संचालन या लाभ-हानि के जोखिम के प्रति उत्तरदायी नहीं रहता है और न ही उस भूमि के सम्बन्ध ऐसा श्रमिक कोई अधिकार धारण करता है।

मजदूर या श्रमिक शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। जिससे मुख्य रूप से परिश्रम करके अथवा अपने हाथ-पांव चलाकर (शारीरिक क्रिया) अपनी आजीविका कमाने वाले व्यक्ति सम्मिलित माने जाते है। वर्कर या लेबर अंग्रेजी शब्द भी इन्हीं के समानार्थी माने जाते है। जिनका अर्थ भी काम करने वाला अथवा मेहनत करने वाले व्यक्ति के रूप में माना जाता है, मजदूर या श्रमिक शब्द में वे सभी व्यक्ति शामिल है जो खेती, दिहाड़ी पर कारखाने या किसी संगठन का मजदूर हो।

सामान्यतया कृषि-श्रमिक को भी मजदूर/श्रमिक शब्द में समाहित माना जाता है। जिन्हें विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है, यथा–सेवकियाँ (झारखण्ड़), कमियाँ (बिहार), मूनिस/घरभतुआ (मानभूमि हजारीबाग) हाली /दुबला (गुजरात), सीरी या हाली (राजस्थान)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और कृषि हमारे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। भारत में कृषि केवल खेती करना नहीं है, बल्कि जीवन जीने की एक कला है। कृषि पर सम्पूर्ण राष्ट्र निर्भर रहता है। यह शासन व्यवस्था की रीढ़ की हड्ड़ी का काम करती है। कृषि से ही मानव सभ्यता का विकास सम्भव हो सका। भारत में कृषि आय राष्ट्रीय आय का 1987-88 में 30. 3 प्रतिशत था जो कि 75 प्रतिशत से अधिक लोगों को रोजगार देती है। 2007 तक यह आंकड़ा 52 प्रतिशत तक पहुँच गया था। मुख्य आर्थिक गतिविधि होने के बावजूद विकसित राष्ट्र की तुलना में कृषि में शामिल उत्पादन के कारणों की उत्पादकता बहुत कम है। यह और भी अधिक चिन्तनीय है कि लोगों का पेट भरने वाले किसान को हमारे देश में हीन भावना से देखा जाता है।

कृषि श्रमिकों की संख्या वृद्धि के कारण–

1. जनसंख्या वृद्धि
2. कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प उद्योग में मन्दी
3. ऋणग्रस्ता में वृद्धि
4. विनिमय दरों में वृद्धि
5. अलाभकारी कम्पनियों की वृद्धि
6. नशाखोरी की प्रकृति में वृद्धि

कृषि श्रमिकों की समस्याएँ

1. **अधिकांशतः पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित–**भारत के अन्दर कृषि-श्रमिक विशेषतः एक पिछड़े और उपेक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यह समाज में सर्वथा दबा-कुचला वर्ग रहा है। जिसे सामाजिक रूप से विकलांग भी कहा जा सकता है। कृषि-श्रमिकों की यह एक मुख्य समस्या है।

2. **असंगठित–**कृषि-श्रमिको की एक अन्य प्रमुख समस्या उनका असंगठित होना भी है जो अन्य कई समस्याओं को उत्पन्न करता है एवं उन्हें विकसित भी करता है। असंगठन के प्रमुख कारण जागरूकता अभाव, अशिक्षा, साधानों का अभाव, अन्य सामाजिक व आर्थिक विसंगतियाँ होना है।

3. **मौसमी रोजगार–**कृषि श्रमिक जिस समस्या से सर्वाधिक पीड़ित है वह समस्या "मौसमी रोजगार'' है। जब खेतों में बुआई और कटाई का काम रहता है तो इन्हें रोजगार मिल जाता है और वर्ष में अन्य समय रोजगार उपलब्ध न होने पर इनका जीवनयापन

करना बहुत मुश्किल हो जाता है। एक साल में इन्हें लगभग 200 दिन ही काम मिल पाता है। कृषि श्रमिकों को इस कारण से वर्षभर रोजगार नहीं मिल पाता जो इनकी दयनियता में और अधिक वृद्धि करता है।

4. **गैर-कृषि रोजगार का अभाव**–भारतीय कृषि-श्रमिक के पास कृषि सम्बन्धित कार्य के अलावा अन्य विकल्पनात्मक गैर-कृषि रोजगार नहीं होता जिससे वह कृषि-कार्यों में रोजगार न मिलने की स्थिति में अपना जीवनयापन कर सके। इसे मुख्यत: कृषि कार्य के रोजगार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यदि इन श्रमिकों को एक विकल्प भी अन्य किसी गैर कृषि वाले कार्यों में नियोजन का मिल जाता तो वर्तमान में इनकी इतनी दयनीय स्थिति नहीं होती और विषम से विषम परिस्थितियों में भी ये कर्मशील बनकर डटे रहते।

5. **ऋणग्रस्तता**–कृषि-श्रमिकों वह समस्या जो सबसे विकराल रूप में बदल जाती है वह "ऋणग्रस्तता" है। कृषि-श्रमिक इससे सर्वाधिक पीड़ित रहते है। जिसका प्रमुख कारण उन्हें रोजगार उपलबधा न होना है। उन्हें अपनी आवश्यकताओं और अन्य सामाजिक क्रियाकलापों के लिए धन की आवश्यकता होती है। तब उन्हें सेठ-साहूकार ही याद आते है और वो इनकी मजबूरी का पूरा-पूरा फायदा भी उठाते है। जिसमें वे अमानवता की सारी हदें भी लांघ जाते है। इस उधार दी गई धानराशि पर वे अमानवीय रूप से अत्यधिक ब्याज वसूलते है और ये ब्याज दर इतनी अधिक होती है कि कृषि-श्रमिकों द्वारा मूल उधार लिया धन चुकाने के बाद भी अपनी मृत्यु हो जाने पर भी वह ब्याज नहीं चुकाया जा सकता। इस स्थिति का नाजायज फायदा उठाते हुए सेठ-साहूकार श्रमिक और उसके पूरे परिवार से जीवन्त पर्यन्त काम करवाता रहता है।

6. **अत्यधिक बड़ा परिवार**–कृषि-श्रमिकों की अज्ञानता की वजह से इनकी समस्याएँ भी बढ़ जाती है। ऐसी ही एक समस्या इनका अत्यधिक बड़ा परिवार होना भी है। इनकी अतार्किक सोच रहती है कि जितने परिवार में सदस्य होंगे उतनी ही मजदूरी अधिक प्राप्त होगी। ऐसी अवस्था में इनका परिवार और अधिक अभावों से ग्रसित हो जाता है जिससे इन्हें भोजन, शिक्षा, चिकित्सा और अन्य भौतिक सुख-सुविधाओं से उपेक्षित रहना पड़ता है। इनकी संतानों में 'कुपोषण' एक बड़ी समस्या बन जाता है और इस कारण मृत्यु दर भी बढ़ जाती है।

7. **बेरोजगारी**–कृषि-श्रमिकों को बेरोजगारी की समस्या से निरन्तर जूझना पड़ता है। इसका कारण तकनीकी विकास भी है और अत्यधिक कृषि-श्रमिकों की उपलब्धता भी है। आज वर्तमान समय में कृषि कार्यों में अत्यधिक मशीनी-यंत्रों का प्रयोग होने लगा है और जो निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। जिससे मानव संसाधनों के प्रयोग का प्रतिशत कम होता जा रहा है। ये मशीन एवं यंत्र इतने प्रभावशाली होते है कि ये 100 श्रमिकों के बराबर का कार्य एक मशीन ही कर लेती है और इस एक मशीन का संचालक एक तकनीकी व्यक्ति कर सकता है। इसके अलावा जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि-श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। जिससे कृषि-कार्यों मेंइनके अनुपात के अनुसार कार्य नहीं मिल पाता।

8. **निम्न मजदूरी दर**–कृषि-मजदूरों को अन्यश्रमिकों की तुलना में अत्यधिक कम मजदूरी का भुगतान किया जाता है। इसके अलावा बालकों और महिलाओं का इससे भी अधिक शोषण किया जाता है। कृषि-श्रमिकों को रोजगार की अनुपलब्धता के कारण मजबूरीवश अत्यधिक कम मजदूरीपर भी कार्य करना पड़ता है।

9. **अशिक्षा**–कृषि-श्रमिकों को प्रारम्भ से ही ऐसा वातावरण मिला या ऐसी विकट परिस्थितियाँ रही कि 'शिक्षा' उनके लिये दूर के ख्वाब बनकर रह गई। अशिक्षित रहने के कारण वे अपने मानवीय अधिकारों के प्रति उदासीन रहे और अपने हक के लिए अपनी आवाज उठाने में सक्षम भी नहीं हुये। इनकी अशिक्षा इनके लिए एक अभिशाप बन गई। जिसका अवैधा फायदा समाज के प्रभावशाली वर्ग ने उठाया और ये और भी अधिक शोषित ही होते चले गये।

10. **विकट कार्य-परिस्थितियाँ**–अधिकांश कृषि-श्रमिकों को अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में रहना और कार्य करना पड़ता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत खतरनाक परिणाम उत्पन्न कर देती है। कई परिस्थितियों में इन्हें जानवरों के साथ भी रहना पड़ता है। इनके कार्यस्थल जोखिम पूर्ण रहते है और इन जोखिमों के विरूद्ध कोई भी सुरक्षा संसाधन इन्हें उपलब्ध नहीं रहते है। ये घातक परिस्थितियाँ कई बार इनकी मौत का कारण भी बन जाती है।

11. **बंधुआ मजदूरी**–कृषि-श्रमिकों का जीवन अभावों से ग्रस्त रहता है। पूरे वर्ष रोजगार न मिलने पर ये आर्थिक रूप से टूट जाते है और अपनी आवश्यकताओं के लिए न चाहते हुए भी इन्हें ऊँची ब्याज दर पर पूंजीपति साहूकारों से राशि उधार लेनी पड़ती है। इस उधार ली गई राशि का ब्याज कुछ समय में ही मूल उधार ली गई राशि से कई गुणा हो जाता है। जिसे वह कृषि-श्रमिक चुकाने में असमर्थ रहता है और उसे उस ऋणदाता साहूकार के हमेशा बंधुआ रहकर ऋण न चुकने तक मजदूरी कार्य करना पड़ता है किन्तु ये कृषि-श्रमिक इस ब्याज के जाल से कभी नहीं निकल पाता। इसके विपरीत कई बार ऐसे श्रमिक का पूरा परिवार भी बंधुआ मजदूरी की भेंट चढ़ जाता है।

12. **कार्य-घंटों की समस्या**–कृषि-श्रमिक प्रत्येक कदम पर शोषण का शिकार होना पड़ता है। उन्हें चाहे मजदूरी कम दर सेदी जाती हो किन्तु उन्हें अधिक से अधिक समयावधि तक काम में नियोजित रखा जाता है। भूमि स्वामी या नियोक्ता इन्हें मात्र एक सस्ता साधन मानकर अधिक से अधिक दोहन करना चाहता है। चाहे यह मानवता के कितना ही विपरीत क्यों न हो।

13. **बाल-मजदूरी को बढ़ावा**–कृषि-श्रमिकों को पर्याप्त रोजगार उपलब्ध नहीं होने पर इन्हें अपने बच्चों को भी अपने काम में संलग्न करना पड़ता है जो कि ये अधिक भुगतान प्राप्ति की चाह में करते है। इनकी ऐसी विकट स्थिति हो जाती है कि ये अपने नाबालिक बच्चों को भी अपने कार्यों में नियोजित कर लेते है। कई बार नियोक्ता का दबाव रहता है कि वे कम समय व कम लागत में कार्य करवाने में बालकों को भी कार्यों में लगाये। बाल मजदूरी की समस्या कृषि श्रमिकों की समस्या से विकराल रूप धारण कर लेती है। जिसके दूरगामी परिणाम बहुत घात सिद्ध होते है।

14. **आवास समस्या**–कृषि-श्रमिकों के स्वास्थ्य हित पर अत्यधिक बुरा प्रभाव ड़ालने वाली समस्या इनकी आवास समस्या है। इनके लिए कोई रहने की उपयुक्त व्यवस्था नहीं रहती है, इन्हें कार्यस्थल, खेत, कृषि भूमि पर ही झुग्गी-झोपड़ी बनाकर रहना पड़ता है। जहाँ धूप, बारिस, आँधी-तूान की तो हमेशा समस्या रहती ही है इसके अलावा वहाँ का वातावरण भी बहुत प्रदूषित रहता है जो इनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव ड़ालता है। इन्हें अमानवीय परिस्थितियों में पशु-पक्षियों के साथ भी रहना पड़ता है जिस कारण ये कई गम्भीर बीमारियों के आसानी से शिकार हो जाते है।

15. **छंटनी की समस्या**–कृषि-श्रमिकों की अत्यधिक संख्या के कारण इनको कार्यों में से हटा भी दिया जाता है। बिना कारण किसी भी समय इन्हें कार्य से हटाने या इनकी छंटनी करने से इनके जीवन में अस्थिरता बनी रहती है। जिस कृषि-श्रमिक ने हमेशा कृषि सम्बन्धित कार्य किया हो और अंत में उसेहटा दिया जाता है तो वह अन्य कार्य भी सहजता से नहीं कर पाता और अपने को असक्षम समझने लगता है।

इसके अलावा कृषि-श्रमिकों की कई समस्याएँ और भी है यथा–

i. सामाजिक स्तर
ii. प्रवासी श्रमिकों की बढ़ोतरी
iii. महिला एवं बालकों का अत्यधिक शोषण
iv. व्यावसायिकजोखिमों से रक्षा के प्रावधानों का अभाव
v. स्वास्थ्य उपेक्षा
vi. धार्मिक अंधविश्वास
vii. अवैज्ञानिक दृष्टिकोण
viii. जातिवाद एवं धार्मिकवाद

कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति में सुधार

1. **कृषि-श्रमिकों हेतु न्यूनतम मजदूरी**–भारत में प्रारम्भ में कृषि-मजदूरों के लिए कोई भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं थी। जिसके कारण उनका अधिकाधिक शोषण किया जाता था, इनकी न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण न होना ही इनके लिए एक बड़ी

समस्या बन गया था, किन्तु "न्यूनतम मजदूरी अधिनियम'[7] इस क्षेत्र में मजदूरी निर्धारण हेतु मील का पत्थर साबित हुआ। सभी कृषि-श्रमिकों को अन्य मजदूरों एवं श्रमिकों के समान न्यूनतम मजदूरी भुगतान का प्रावधान किया गया। यदि न्यूनतम मजदूरी भुगतान सम्बन्धी प्रावधानों का प्रभावी क्रियान्वयन किया जायें तो इस पीड़ित कृषि-श्रमिक वर्ग की एक प्रमुख समस्या का समाधान हो सकता है जो इनके शोषण का मुख्य आधार है।

2. **बंधुआ मजदूरी प्रथा का उन्मूलन**–कृषि-श्रमिकों के लिए बंधुआ-मजदूरी एक अभिशाप बन चुका है, कृषि-श्रमिक बंधुआ मजदूर बन एक पशुतुल्य अवस्था में पहुंच जाता है जहां से मुक्ति उसे उसकी मृत्यु ही दिला पाती थी, भारतीय संसद ने बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम[8]पारित करके एक सकारात्मक पहल करके कृषि-श्रमिकों के जीवन में एक नई आशा की किरण का संचार किया। जिससे समाज के कमजोर एवं शोषित वर्ग की शोषण से रक्षा की जा सके। इस अधिनियम द्वारा सभी बंधुआं मजदूरों को आजाद कर दिया गया एवं उनके कर्जो को भी समाप्त मान लिया गया। इसके साथ ही ऐसे कार्य को दण्डनीय संज्ञेय अपराध घोषित किया गया[9] और दण्ड का प्रावधान किया गया।[10]

ऐसे कारगर अधिनियम के होते हुए भी पिछले दशकों में हरियाणा, उत्तरप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक में कई मामले बंधुआ मजदूरी के देखने को मिले। जिसमें 2019 का कांचीपुरम् (कर्नाटक) के काशी नामक वृद्ध बंधुआ मजदूर का मामला बहुत चर्चा में रहा। केन्द्रीय सरकार द्वारा 2016 में बंधुआ मजदूर पुनर्वास योजना बनाकर इनके लिए प्रतिकर (1 लाख से 3 लाख रूपये), आवास सुविधा, जमीन आवंटन एवं अन्य आजीविका साधन प्रदान करने के प्रावधान बनाये गए। भारत में अभी भी 1 करोड़ 17 लाख के करीब बंधुआ मजदूर है।[11] इसलिए प्रशासन तंत्र को अभी और प्रभावी कदम उठाने होंगे।

3. **कृषि-श्रमिकों हेतु आवास व्यवस्था**–कृषि-श्रमिकों को आवास सम्बन्धी समस्या का सामना भी करना पड़ता था। जो उनकी स्थित को और भी कष्टदायक बना देता था, किन्तु केन्द्रीयसरकार और राज्यों की सरकारों ने इस समस्या के निदान के लिए इनके निवास हेतु मकान निर्माण करवाने हेतु कई योजनाएँ प्रारम्भ की है।

4. **कृषि-श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराना**–कृषि-श्रमिकों के हित वृद्धि हेतु बहुत-सी रोजगार योजनाएँ प्रारम्भ की गई। जिनमें जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY) राष्ट्रीय खाद्य के लिए कार्य योजना (NFFWP), महात्मा गाँधी ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), काम के बदले अनाज योजना इत्यादि प्रमुख योजनाएं है। इसके अलावा बीस सूत्री कार्यक्रम ने भी इनके हितों में संवर्धान हेतु कई कार्यक्रम एवं योजनाएँ बनाई है। एजेंसी

5. **कृषि-श्रमिकों के विकास हेतु विशेष एजेंसियों का गठन**–कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति सुधार हेतु सरकार द्वारा कई एजेंसियों का गठन किया गया है और जो सुचारू रूप से इनके कल्याण हेतु कार्यरत भी है। इन एजेंसियों में लघु कृषक विकास एजेंसी (SFDA) सीमांत किसान और कृषि श्रमिक विकास एजेंसी (MFAL)[12] प्रमुख है।

6. **ऋण योजनाएं**-कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति में सुधार हेतु सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों को भी महत्व प्रदान कर प्रोत्साहन प्रदान किया। प्रारम्भ में व्यावसायिक बैंकों द्वारा अपनी ऋण-नीतियाँ इस प्रकार नहीं बनाई गई थी। जिससे कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण सुविधाएं उपलब्ध हो सके। अत: इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इन क्षेत्रों में ग्रामीण बैंकों की स्थापना अति आवश्यक थी। इसलिए कई ऋण नीतियाँ और ऋण योजनाएँ बनायी गई यथा–

i. लघु एवं सीमांत कृषकों एवं कृषि श्रमिकों को ऋण योजना
ii. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के ग्रामीणों को ऋण योजना
iii. ग्रामीण कारीगरों एवं लघु व्यवसायी को ऋण योजना

7. **भूमि वितरण योजना**–केन्द्रीय सरकार द्वारा बंधुआ मजदूर पुनर्वास योजना[13] बनायी। जिसके अन्तर्गत ही ऐसे कृषि-श्रमिक जिनको बंधुआ बनाकर कार्य करवाया जा रहा था, उन्हें मुक्त करवाकर भूमि का आवंटन करने का प्रावधान भी किया गया है। जिससे ऐसे कृषि-श्रमिक की स्थिति सुधार सकें और वो अपना जीवन यापन भी सरलता से कर सके। इनके अतिरिक्त अन्य सुधार के प्रयत्न यथा है–

i. कृषि-श्रमिकों की मोल-भाव क्षमता का विकास करना
ii. पुर्नवास व्यवस्था का विस्तार
iii. विकल्प रोजगारों में वृद्धि करना
iv. कार्य के घण्टे निश्चित करना
v. सहकारी कृषि को प्रोत्साहन
vi. न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम चलाना
vii. कृषि-श्रमिक सहकारिता संगठन को बढ़ावा देना
viii. कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास
ix. ऋण मुक्ति हेतु प्रावधान

निष्कर्ष

भारत राष्ट्र के विषय में महात्मा गाँधी ने भी कहा है कि "भारत गाँवों की भूमि है।" यदि गाँवों मे स्वस्थ स्वरूप विकसित करना है तो भारतीय किसान की दशा सुधारने पर सर्वप्रथम चिन्तन करना होगा। भारतीय किसान और कृषि कार्य में लगे श्रमिक की दशा में सुधार करके ही राष्ट्र के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया जा सकता है। कृषि-श्रमिक के जीवन-स्तर में सुधार हेतु समन्वित कार्यक्रमों का तत्परता से संचालन किया जाना अतिआवश्यक है। कृषि श्रमिक समाज का एक अभिन्न हिस्सा है और अन्य नागरिकों के समान ही इनका भी सभी अधिकारों पर समान रूप से अधिकार है। इसलिए सरकार द्वारा इनकी प्रास्थिति में सुधार हेतु सतत् प्रयास करने होंगे।

सरकार द्वारा इनके हित में जो कार्यक्रम और योजनाएँ बनायी जा रही है, उनका यथोचित समय में इन्हें लाभ मिलना भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इनकी शिक्षा, चिकित्सा, भोजन, आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति सरकार ने सराहनीय कदम भी उठाये है। केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को कृषि-श्रमिकों की समस्याओं के स्थायी निदान हेतु गम्भीर होकर कठोर कदम उठाने होंगे। जिससे कोई इस वर्ग के शोषण करने के विषय में सोच भी न सके। जिन संस्थाओं की स्थापना और व्यक्तियों की नियुक्ति कृषि-श्रमिकों समाज की मूलधारा में लाने के लिए की गई है। उन्हें और अधिक शक्ति एवं साधन सम्पन्न बनाना होगा जिससे वे और भी अधिक प्रभावी तरीके से इस समस्या के निदान हेतु प्रयास कर सके।

कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति सुधार हेतु न्यायपालिका ने भी सक्रिय भूमिका निभाई है। जिसने दिल्ली के रेहाना के मामले में 1. 80 लाख रूपये का मुआवजा दिलवाया। न्यायपालिका ने बंधुआ मजदूरों को मुक्त करवाने के बाद इनके पुर्नवास एवं इनकी आजीविका संचालन के साधन उपलब्ध करवाने पर भी बल दिया है। 2017 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के सदस्य न्यायमूर्ति डी. मुरूगेसन ने कहा कि "बंधुआ मजदूरी उन्मूलन की जिम्मेदारी जिलाधिकारियों के कन्धों पर है। इन्हें मजदूरों को मुक्ति प्रमाण पत्र देने के साथ-साथआरोपी पक्ष के विरूद्ध अभियोजन चलाने में भी सशक्त भूमिका निभानी है।"

इस प्रकार की स्थिति में केन्द्रीय सरकार की बंधुआ मजदूर पुनर्वास योजना[14] एक महत्वपूर्ण योजना है। जिसके द्वारा इन्हें मुआवजे का अधिकारी मानकर 1 से 3 लाख रूपये इनके खाते में जमा करवाये जा रहे है। इसके साथ ही इन हेतु आवास निर्माण, खेती हेतु जमीन आवंटन एवं अन्य आजीविका संचालन हेतु साधन उपलब्ध करवाये जा रहे है। राष्ट्र द्वारा सभी शोषित वर्ग के कल्याण एवं विकास हेतु भागीरथ-श्रम करना होगा, तभी समाज के सभी वर्गो के लिए एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की सच्चे अर्थ में उपादेयता होगी।

(Footnotes)

1. दिपेन्द्र सिंह, शोधार्थी विधि विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. रूलर्स ऑफ इण्डिया
3. वर्ष 2011 जनगणना रिपोर्ट
4. तत्रैव
5. वर्ष 1950-19
5. 1
6. वर्ष 1956-1957
7. वर्ष 1948
8. वर्ष 1976
9. धारा 22
10. धारा 16
11. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन रिपोर्ट
12. वर्ष 1970-1971
13. वर्ष 2016
14. वर्ष 2016

महाकाव्य परम्परा और श्रीहर्ष : एक समीक्षण

प्रो० प्रसून दत्त सिंह

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यलय,
मोतिहारी, बिहार

श्रीहर्ष संस्कृत वाङ्मय में पाण्डित्यपूर्ण रचनाओं के प्रतिनिधि कवि हैं। बृहत्त्रयी (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् तथा नैषधीयचरितम्) के रचयिताओं में श्रीहर्षकी नैषध को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। नैषधीयचरितम् अत्यन्त विशालकाय काव्यग्रन्थ है जिसमें 22 सर्ग तथा लगभग तीन हजार श्लोक (2830) हैं। महाभारत और हरविजय के उपरान्त नैषधीयचरितम् की गणना सर्वाधिक विषद् महाकाव्य के रूप में होती है[1]।

कालिदासोत्तर कलावादी कवियों में श्रीहर्ष सर्वोत्तम हैं जिन्होंने सुकुमार– मार्ग की सरसता और विचित्र-मार्ग की प्रौढि का समन्वय करके एक अद्भुत महाकाव्य की रचना की। दूरारूढ कल्पनाओं के साथ गम्भीर चिन्तन का, अलङ्कारों के साथ ध्वनि का एवं शास्त्रगत पाण्डित्य के साथ लोकानुभव का समन्वय करने में श्रीहर्ष की प्रतिभा अद्वितीय है। भारवि ने जिस महाकाव्य–पद्धति का प्रवर्तन किया और माघ ने जिसे आगे बढ़ाया उसे आंशिक रूप से ही श्रीहर्ष ने स्वीकार किया; वर्णनों की विपुलता में श्रीहर्ष उन कवियों से आगे बढ़ गये- एक एक विषय पर पर्याप्त कल्पना का निवेश उन्होंने किया। उदाहरण के लिए प्रथम सर्ग में नल का वन– विहार (1/74-115) या द्वितीय सर्ग का कुण्डनपुर– वर्णन (2/73-105) द्रष्टव्य है जो पूर्ववर्ती दोनों कवियों के वन विहार-वर्णन या नगर-वर्णन की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट और नयी कल्पनाओं से समन्वित है। महाकाव्य के आरम्भ में राजा नल का वर्णन (1/1-30) बिल्कुल नये ढंग का जिसमें श्लेष के द्वारा शास्त्रीय प्रौढि कवि ने दिखायी है, कल्पना की ऊँचाई तो है ही।

"नैषधीयचरित" का कथानक यद्यपि महाभारत के नलोपाख्यान का ही रूपान्तर है, जिसमें नल-दमयन्ती के प्रणय से परिणय तक की साङोपाङ्ग वर्णित है, किन्तु श्रीहर्षकी वैदग्धपूर्ण लेखनि ने इसे अत्यन्त सरस तथा मनोरम बना दिया है।

वस्तुत: श्रीहर्ष न केवल एक उच्चस्तरीय महाकवि थे अपितु एक प्रगल्भ तार्किक तथा प्रकाण्ड पण्डित भी थे। अपने पाण्डित्य के बल पर इन्होंने न केवल प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य को पराजित किया अपितु अनेक दार्शनिक ग्रन्थों की रचना कर, वे दर्शन-जगत् में भी प्रबुद्ध वेदान्ती के रूप में विख्यात हुये। 'खण्डन खण्डन खाद्य' नामक ग्रंथ में उन्होंने विभिन्न दार्शनिक मतों का तार्किक खण्डन कर अद्वैत वेदान्त की स्थापना की है।

संस्कृत भाषा पर श्रीहर्ष का असाधारण प्रभुत्व है। शब्द प्रयोग में श्रीहर्ष का कोश माघ और वाण से किंचित मात्रा भी न्यून सिद्ध नहीं होता। किन्तु शब्द प्रयोग से भी अधिक विकसित और विस्तृत है उनके नित-नूतन अर्थों का कल्पना लोक। उन्होंने कई बार एक ही विषय का अनेक श्लोकों में वर्णन किया है, किन्तु अर्थ का पुनरावर्तन लेशमात्रा भी कहीं प्रतीत नहीं होता।

श्री हर्ष ने 'एकागत्यज तो नवार्थघटनाम्' की जो प्रतिज्ञा की है, उसे निश्चय ही पूर्ण करके दिखाया है। नैषध में एक ओर कल्पना जगत की अलोक सामान्य ऊंचाई है। तो दूसरी ओर दर्शन की तार्किक गहनता। वास्तव में इसी वैशिष्ट्य ने श्रीहर्ष को अन्यतम बना दिया है। श्लेष की दुरूह जटिलता को कल्पना की अलौकिकता ने सरस बना दिया है। श्रीहर्ष ने स्वयं अपने काव्य को 'शृंगारामृतशीतगु:' (शृंगार रूपी अमृत के लिये चन्द्रमा) कहा है[2]।

श्रीहर्ष की महत्ता उनके एक अन्य वैशिष्ट्य के कारण भी है और वह है उनका अपने पूर्ववर्ती कवियों से नूतन प्रेरणा। उन्होंने पुरातन पद्धति का अन्धनुकरण नहीं किया है। कालिदास से उन्होंने प्रसाद गुण नहीं अपितु कल्पना, भारवि से चित्रालङ्कार आदि नहीं अपितु अर्थगौरव और माघ से कथा शैथिल्य नहीं, अपितु पाण्डित्य प्रदर्शन और वाग्वैशारदा आदि गुणों को अपनाया है।[3]

अलंकारों में 'श्लेष' श्रीहर्ष का प्रिय अलंकार है, और उसमें उन्हें असाधारण पटुता भी प्राप्त है। उनकी श्लेषमूलक पञ्चनली तो प्रसिद्ध ही है जिसमें एक ही श्लोक में नलरूपधारी पंचदेवों का वर्णन कर दिया गया है। श्रीहर्ष की इस श्लेषमूलक शैली ने ही संस्कृत काव्यों रीति काल में द्वयर्थक तथा त्रायर्थक पद्य-रचना की नवीन शैली को जन्म दिया।

रावपाण्डवीयम्, राघवनैषधीयम आदि द्वयर्थक और त्र्यर्थक रचनाओं के प्रेरणास्रोत निश्चय ही श्रीहर्ष ही रहे हैं।

नैषध श्रृंगार रस प्रधान महाकाव्य है और इसमेंश्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग तथा विप्रलंभ का प्रचुर प्रयोग है। दोनों ही पक्षों का वर्णन पर्याप्त एवं सुदीर्घ है।

इस श्रृंगार रस सिक्त काव्य का उन्होंने उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, श्लेषादि अलंकारों से जो श्रृंगार किया है उससे काव्य की रसमयता द्विगुणित हो जाती है।

सम्पूर्ण महाकाव्य में तीन चीजें विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करती हैं प्रथम श्लेषमयता द्वितीय कल्पना प्रगल्भता और तृतीय वर्णनपटुता श्रीहर्ष के समान कल्पना की ऊंची उड़ान बहुत कम कवियों में दीख पड़ती है। इस उड़ान में स्वभावतः अतिशयोक्ति की केन्द्रीय भूमिका हो जाती है। अन्य उपमादि अलङ्कार प्रायः श्लेष या अतिशयोक्ति का ही आश्रय लेकर चलते दिखते हैं। वस्तुतः अलौकिक सुन्दरी दमयन्ती का सौन्दर्य अतिशयोक्ति के प्रयोग से विशेष रूप से दमक उठता है।

किन्तु, कई बार तो ऐसा भी लगने लगता है कि सम्पूर्ण वर्णन कृत्रिमता का एक आवरण ओढ़े हुये है। श्रीहर्ष की दमयन्ती में वह स्वाभाविक सुन्दरता नहीं रह जाती, जो कालिदास की शकुन्तला में हमें दिखती है। राजा नल की कीर्ति, उसका प्रलाप, उसका शौर्य सभी इस प्रतिरञ्जना में झूठे से लगने लगते हैं।

लेकिन अन्ततः, इस कल्पना का धनात्मक पक्ष इतना प्रबल है कि उपर्युक्त दोष गौण हो जाते हैं। उनकी कल्पनाओं से जो नितनूतन अर्थ अभिव्यजित होते हैं, उनकी मञ्जुलता उसकी अस्वाभाविकता को आवृत कर देती है। कहा भी गया है-

'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्क'। (कुमारसम्भवम्)

श्रीहर्ष के पद विन्यास में केवल पाण्डित्य ही नहीं दिखते अपितु लालित्य भी दिखते हैं। पदलालित्य की दृष्टि से नैषध पंचमहाकाव्यों (रघुवंशम्, कुमारसंभवम्, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालबधम्, नैषधीयचरितम्) में सर्वश्रेष्ठ है। अतः दण्डी की ही भांति नैषध के भी विषय में यह उक्ति कही जाती है– 'नैषधे पदलालित्यम्'। यह अलग बात है कि पाण्डित्य के शौर्य-प्रदर्शन में लालित्य का सौन्दर्य दर्शन प्रतिद्धत हो जाता है। श्रीहर्ष की यह प्रगल्भता सर्वतोमुखी है चाहे भाव हो या भाषा, शब्द हो या अर्थ सभी में उनकी असाधारण पटुता झलकती रहती है। उनकी इस साहित्यिक प्रगल्भता में उनकी दार्शनिक तार्किक पटुता विशेष भूमिका निभाती है। लेकिन अनेकशः उनकी यह दार्शनिकता उनके कवित्व पर हावी दिखती है। उनकी काव्यकला प्रायशः उनके पाण्डित्य से बोझिल हो जाती है। कलापक्ष के उन्नयन में भावपक्ष का अपनयन हो गया है।[4] दार्शनिक सिद्धान्तों और दृष्टांतों का बारम्बार प्रयोग भारतीय संस्कृति के विचारकों के लिये भी जटिलता उत्पन्न कर देता है और उसमें भी उनके श्लेषमूलक प्रयोग जटिलता को द्विगुणित कर देते हैं।

श्रीहर्ष प्रयोगधर्मा कवि है और इस प्रयोगधर्मिता के क्रम में उन्होने न केवल अनेक अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है अपितु नवीन शब्दों का भी सृजन कर डाला है। उराहरणार्थ– भूजानि (राजा), सूननायक (कामदेव), अधिगामिका (ज्ञाता स्त्री), हसस्पृशम् (हंसते हुये), अगदंकारः (वैष), अपार (समुद्र) इत्यादि।

वार्तालाप आदि के प्रसंगों में भी उन्होंने अनेक प्रकार से वाक्य-विन्यास द्वारा स्वाभाविक प्रभाव उत्पन किया है, और यह इतना प्रभावी हुआ कि ये तत्कालीन विद्वद् समाज में आम बोलचाल में प्रयुक्त होने लगे थे जैसे– आसितुं नादत (बैठने नहीं दिया), बीक्षितुं नादत्त (देखने नहीं दिया), कथमास्य दर्शविताहे (मैं कैसे मुंह दिखाऊंगा), इत्यादि।[5]

छन्द प्रयोग में भी श्रीहर्ष को विशेष दक्षता प्राप्त थी। उन्होंने "नैषध" में 19 छन्दों का प्रयोग किया है।[6] 7 सगों में उपजाति छन्द है अतः यह उनका सबसे अधिक प्रिय छन्द ज्ञात होता है। 4 सगों में वंशस्थ वृत्त का प्रयोग है। इनके अतिरिक्त अनुष्टुप, वसन्ततिलका, स्वागता का दो– दो सर्गों में प्रयोग हुआ है। न्यूनाधिक रूप में अचलधृति, तोटक, मन्दाकान्ता, शिखरिणी, स्रग्धरा आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है।[7]

1. जटिल पाण्डित्य प्रदर्शन जैसे- (क) अप्रचलित शब्दों का प्रयोग। (ख) नवीन शब्दों का सृजन। (ग) दार्शनिक दृष्टान्तों एवं शास्त्रीय सन्दर्भो की दुरूहता। (17वां सर्ग दार्शनिकतापूर्ण) (घ) कल्पनाओं की क्लिष्टता। (ङ) श्लेष की जटिलता। (च) वर्णन में अनुचित विस्तार जैसे– दमयन्ती का सौन्दर्य विस्तार

   द्वितीय सर्ग में हंस के मुख से सौन्दर्य-वर्णन हो जाने के बावजूद सम्पूर्ण सप्तम सर्ग उनके नख-शिख वर्णन से भरा हुआ है। पुनः दसवें सर्ग में भी स्वयंवर के समय इस वर्णन का पिष्टपेषण हुआ है[8]।
2. श्रृंगार का आवश्यकता से अधिक अश्लील वर्णन[9]। महाभारत में नल-दमयन्ती के प्रेम का पवित्रा और सात्विक रूप वर्णित है। पर श्रीहर्ष ने उसे वासना एवं विलास के रंग में रंग कर चित्रित किया है। यह वर्णन अनेकशः अश्लीलता की सीमायें छूने लगता है[10]।
3. एक ही भाव का शब्दभेद से अनेक स्थलों पर आवृत्ति[11]।
4. एकाँगिताः जीवन के अन्य विविध पक्षों की उपेक्षा। श्रीहर्ष चरित्र-चित्रण तथा कथानक की कलात्मक दृष्टि से निपुण नहीं कहे जा सकते। सम्पूर्ण कथानक मानव जीवन के केवल श्रृंगारिक पक्ष का चित्रण करता है[12]।
5. श्रीहर्ष के सम्बन्ध में एक अन्य तथ्य भी खटकने वाला है और यह है उनका दर्प[13]। उनकी आत्म-श्लाघा केवल पाण्डित्य प्रदर्शन में ही नहीं छिपी रह सकी है, अपितु प्रत्यक्षतः उनको गर्वोक्तियों में भी अभिव्यक्त हुई[14]। आत्मश्लाघा की पराकाष्ठा तो वहां हो गयी है जहां भी अपने को चतुर्दशरत्न उत्पन्न करने वाला क्षीरसागर कहा है[15] जबकि अन्य कवियों को दो-चार दिनों में सूख जाने वाली नदियों को उत्पन्न करने वाला पहाड़।

श्रीहर्ष ने कम-से-कम नौ ग्रन्थों की रचना की जिनका उल्लेख उन्होंने नैषध में किया है। जिस प्रकार 'खण्डनखण्डखाद्य' उनके दार्शनिक ग्रन्थों में मुकुटमणि है, उसी प्रकार नैषध उनके काव्य ग्रन्थों की चूड़ामणि हैं।

सन्दर्भ सूची

1. नैषधीयचरितम, निर्णयसागर संस्करण, भमिका पृष्ट संख्या- 52, 54
2. नैषधीयचरितम- 22/142
3. नैषधीयचरितम- 2/64
4. संस्कृत का इतिहार- डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि, पृष्ट संख्या- 310
5. वहीं- पृष्ट संख्या- 286
6. वहीं- पृष्ट संख्या-287
7. वहीं- पृष्ट संख्या-290
8. वहीं- पृष्ट संख्या-298
9. नैषधीयचरितम- 1/4
10. नैषधीयचरितम- 3/20
11. संस्कृत साहित्य का इतिहास – हिन्दी रूपान्तरण, पृष्ट संख्या- 175
12. संस्कृत साहित्य का इतिहास- हिन्दी रूपान्तरण, पृष्ट संख्या- 178
13. नैषधीयचरितम- 4/11
14. वहीं- पृष्ट संख्या-12/10
15. वहीं- पृष्ट संख्या-22/18
16. नैषधीयचरित- निर्णयसागर संस्करण की भूमिका, पृष्ट संख्या- 74

परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में भारत-बांग्लादेश सहयोग

दीपा कुमारी

शोध छात्रा, विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भारत और बांग्लादेश दो ऐसे पड़ोसी राष्ट्र है, जिनकी अपनी साझा सांस्कृतिक, सामाजिक व ऐतिहासिक विरासत है। बांग्लादेश के निर्माण से लेकर अब तक दोनों के बीच आपसी संबंध समय सापेक्ष की दृष्टि से काफी उतार चढ़ाव भरे रहे हैं। इन परिस्थितियों में भारत ने सदैव ही एक जिम्मेदार पड़ोसी होने के नाते बांग्लादेश के आंतरिक विकास के साथ-साथ उसके अंतराष्ट्रीय छवि को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। वर्तमान समय में दोनों देश के राष्ट्राध्यक्षों ने आपसी संबंधों को नई ऊँचाई देने के उद्देश्य से ऐतिहासिक द्विपक्षीय परमाणु समझौता किया, जो 21वीं सदी में किसी भी पड़ोसी राष्ट्र के साथ भारत के द्वारा अबतक किए गए समझौता ज्ञापनों में सबसे अहम् है। इस समझौते के तहत भारत रूस के सहयोग से बांग्लादेश की जमीं पर महत्वाकांक्षी, बहुउद्देशीय परमाणु ऊर्जा संयंत्र का निर्माण करेगा। इस परमाणु परियोजना में 'जेनरेशन 3-प्लसश तकनीक के साथ 'मेक इन इंडिया' प्रोगाम के तहत 'नॉन केटेगरी' के उपकरणों और सामग्रियों का प्रयोग किया जाएगा, जिसका उद्देश्य परमाणु विखंडन से विद्युत ऊर्जा का उत्पादन करना है। बांग्लादेश के साथ भारत का यह परमाणु करार आपसी सामरिक, आर्थिक एवं सुरक्षा हितों को मजबूत बनाने के साथ-साथ दक्षिण एशिया में चीन के बढ़ते प्रभाव को कम करने में भी महत्वपूर्ण साबित होगा।

Keywords (प्रमुख बीज शब्द): सामरिक हित, द्विपक्षीय संबंध, नाभिकीय, कूटनीतिक संतुलन, ऊर्जा भंडार, बेंचमार्क, डिप्लोमेसी, समझौता ज्ञापन, वैश्विक केन्द्र, कट्टरपंथ, प्रतिबद्ध।

भारतीय उपमहाद्वीप में भारत-बाग्लादेश संबंधों को मजबूत बनाने की बात सदैव ही सामयिक एव सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहे हैं। भारत ने बांग्लादेश के साथ अपने संबंधों को आगे बढ़ाते हुए महत्त्वपूर्ण परमाणु करार किया है। अपने 'नेबर्स फर्स्ट थ्योरी' का पालन करते हुए भारत ने पड़ोसी देश बांग्लादेश के साथ संबंधों को नई ऊँचाई देने की दिशा में पहल किया है, जो 21वीं सदी में ऊर्जा और सुरक्षा के क्षेत्र में अहम साबित होगा।[1] एक ओर जहाँ दोनों देशों की सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषायी पृष्ठभूमि बहुत हद तक एक-दूसरे से मिलती-जुलती है, वहीं दूसरी तरफ पड़ोसी देश के साथ सहयोग एवं सामंजस्य बढ़ाने की मुहिम भारत के लिए कोई नई बात नहीं है।

यह सुखद संयोग है कि वर्तमान समय में दोनों देशों की सरकारें प्रचण्ड बहुमत का प्रतिनिधित्व कर रही हैं और आपसी रिश्तों को मजबूत बनाने के लिए साहसिक निर्णय लेने से भी नहीं कतरा रही हैं। पिछले कुछ वर्षों में दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंध प्रगाढ़ हुए हैं। अप्रैल 2017 में भारत यात्रा पर आयी शेख हसीना के साथ द्विपक्षीय संबंधों पर जोर देते हुए भारत बांग्लादेश को 50 करोड़ डॉलर का ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग के लिए कर्ज देने पर सहमत हुआ।[2] भारत का बांग्लादेश के साथ परमाणु करार करने का यह निर्णय न केवल बांग्लादेश के साथ संबंधों को मजबूती प्रदान करेगा बल्कि 21वीं सदी में ऊर्जा एवं सुरक्षा के नए विकल्पों के साथ दक्षिण एशिया में चीन की विस्तारवादी नीतियों को कम करने में महत्त्वपूर्ण कदम साबित होगा।

भारत बांग्लादेश दक्षिण एशियाई पड़ोसी हैं और बांग्लादेश तीन ओर से भारतीय सीमा से घिरा हुआ है। ऐसे में बांग्लादेश के लिए भी यह जरूरी है कि वह अपने आर्थिक विकास एवं सामरिक सुरक्षा के लिए भारत के साथ सौहार्द्रपूर्ण रिश्ता बनाए रखे।

हालांकि बांग्लादेश समय-2 पर भारत और चीन के साथ कूटनीतिक संतुलन बनाने का प्रयास करता रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि चीन में बांग्लादेश को कई तरह के आर्थिक मदद एवं निवेश करने का वादा किया है लेकिन यह वादा सिर्फ व्यापारिक एवं आर्थिक कारणों से है। राजनयिक सूत्रों के मुताबिक भारत और बांग्लादेश के राजनीतिक एवं सामरिक हित आपस में जुड़े हुए

हैं इसलिए सुरक्षा के मुद्दे पर भी दोनों देश संवदेनशील हैं। यह भारत की कूटनीतिक क्षमता है कि बांग्लादेश का लाभ उठाकर वह बंगाल की खाड़ी में चीन व पाकिस्तान की बढ़ती शक्ति को काउन्टर करने में सफल हो सकता है।[3]

9 अप्रैल, 2018 को दोनों देशों के बीच छः महत्वपूर्ण समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर हुए, जिसमें सबसे अहम समझौता परमाणु बिजली संयंत्र को लेकर है। बांग्लादेश में ढाका से 160 ाउ उत्तर-पश्चिम में पद्मा नदी के किनारे रूपपुर में परमाणु ऊर्जा संयंत्र के निर्माण में भारत रूस के साथ मिलकर बांग्लादेश का सहयोग कर रहा है।[4] इस परियोजना की दो इकाइयाँ हैं, जिसके तहत कुल 2400 मेगावाट बिजली उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया है। यूनिट-1 का निर्माण 2023 तक तथा यूनिट-2 का निर्माण 2024 तक कर लिया जाएगा। दोनों इकाइयों के चालू होने से दक्षिण एशिया में भारत और पाकिस्तान के बाद बांग्लादेश तीसरा देश होगा, जो परमाणु विखण्डन से ऊर्जा का दोहन करेगा। विशद् हो कि दिसम्बर 2014 में रूस और भारत के मध्य एक परमाणु करार हुआ था जिसके अनुसार परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग में परस्पर सहयोग तथा सामरिक दृष्टि से भी दोनों पक्ष तीसरे राष्ट्र को सहयोग करने पर सहमत हुए थे।[5]

परमाणु ऊर्जा साझेदारी के लिए परमाणु ऊर्जा विभाग के वैश्विक केन्द्र (GCNEP) और बांग्लादेश परमाणु ऊर्जा आयोग (BAEC) ने एक अंतर-एजेंसी समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसी करार के तहत रूसी डिजाइन एवं तकनीक वाले परमाणु ऊर्जा संयंत्र के निर्माण के लिए भारतीय उद्योगों से सामग्री, उपकरण एवं सेवाएं प्रदान करने के करार सम्पन्न हुए हैं, जिसके तहत भारतीय कम्पनियाँ बांग्लादेश के इस महत्त्वाकांक्षी प्रोजेक्ट में सहयोग की ओर अग्रसर है।[6] यह बांग्लादेश का प्रथम परमाणु प्रोजेक्ट है। इस परमाणु ऊर्जा प्रोजेक्ट का कुल अनुमानित लागत 825 अरब रूपये है। इसकी लागत का 90ः रूस के द्वारा वहन किया जाएगा, जिसका भुगतान बांग्लादेश को 10 वर्षों की रियायत अवधि के साथ 30 वर्षों में करना है। जबकि इस परियोजना में 'मेक इन इंडिया प्रोगाम' को आगे बढ़ाते हुए 'नॉन क्रिटिकल केटेगरी' के उपकरणों एवं सामग्रियों की आपूर्ति में भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग एवं संबंधित भारतीय कम्पनी सहयोग करेगी। इस परमाणु बिजली संयंत्र में ''जेनेरेशन 3-प्लस" परमाणु रिएक्टर के निर्माण की परिकल्पना की गई जो VVER -1200 उन्नत ईंधन द्वारा संचालित होगा।[7] भारत की बदौलत रूस के सहयोग से स्थापित होनेवाले इस परमाणु संयंत्र का उपयोग ऊर्जा के भण्डारण के रूप में किया जाएगा।

भारत और बांग्लादेश के बीच परमाणु समझौते के माध्यम से विकास की उन संभावनाओं को जमीन पर उतारने की कोशिश की जा रही है, जिसके द्वारा कट्टरपंथ, आतंकवाद, अलगावाद जैसी समस्याओं से निपटा जा सकेगा। भारत की तरफ से बांग्लादेश में किए जानेवाले निवेश में निरन्तर वृद्धि हो रही है, हाल ही में भारत द्वारा बांग्लादेश को दिये जाने वाले स्पदम वि बतमकपज को 3 अरब डॉलर से बढ़ाकर 5 अरब डॉलर करने का निर्णय लिया गया। जिसका उद्देश्य बांग्लादेश में व्यापार असंतुलन को कम करना तथा रोजगार सृजन करने में सहायता करना है। दोनों राष्ट्रों के बीच परमाणु करार का हवाला देते हुए भारत के विदेश सचिव विजय गोखले ने कहा-भारत बांग्लादेश का ''प्रतिबद्ध विकास साझेदार" है।[8] सुरक्षा सहयोग के क्षेत्र में दोनों देशों के बीच संबंध को मजबूत बनाने मे शेख हसीना की नेतृत्व वाली अवामी लीग पार्टी की भूमिका निर्णायक है।

बांग्लादेश को त्वरित सहयोग करने के लिए दोनों देशों के बीच इससे संबंधित एक असैन्य परमाणु समझौता सहित दो अन्य समझौते अप्रैल 2017 में हुए जिसके तहत दोनों पक्ष परमाणु ऊर्जा संयंत्र के लिए उपकरणों और सामग्रियों की आपूर्ति एवं सहयोग कर सकते हैं तथा संबंधित देशों के परमाणु ऊर्जा विभाग यूरेनियम की खोज एवं उत्खनन के लिए एक-दूसरे का सहयोग करेंगे।[9] 'परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह' (NSG) का सदस्य नहीं होने के बावजूद भी रूपपुर नाभिकीय विद्युत संयंत्र के विकास में रूस के साथ भारत की साझेदारी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अंतराष्ट्रीय मंच पर यह एक उत्तरदायी परमाणु साझेदार के रूप में भारत की पहचान में वृद्धि करता है।

भारत-रूस-बांग्लादेश के मध्य यह त्रिपक्षीय समझौता अंतराष्ट्रीय मंचों पर मील का पत्थर साबित होगा। एक तरफ रूस को दक्षिण एशिया में प्रभावी भूमिका निभाने का मौका मिलेगा और अमेरिका के बढ़ते प्रभाव को कम किया जा सकेगा। दूसरी तरफ दक्षिण एशिया में चीन की विस्तारवादी नीतियों को चुनौती मिलेगी।[10] हाल के वर्षों में चीन द्वारा बांग्लादेश को भारत के खिलाफ एक मोहरे के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। चीन वर्तमान समय में बांग्लादेश के 25 ऊर्जा परियोजनाओं का वित्त पोषण कर रहा है। इसके अलावे वह बांग्लादेश में विभिन्न क्षेत्रों में अपना निवेश लगातार बढ़ा रहा है। परिणाम स्वरूप आज बांग्लादेश की भूमि पर भारत के निकट कई सैनिक अड्डो का निर्माण कर चीन भारतीय सुरक्षा गतिविधियों पर नजर रख रहा है। इस महत्त्वाकांक्षी

परियोजना के सफलीभूत होने से बांग्लादेश की चीन पर निर्भरता घटेगी और स्वाभाविक निकटतम पड़ोसी होने के नाते भारत का महत्त्व बढ़ेगा।

इस परियोजना की प्रभावशीलता का आकलन अगर करें तो दोनों राष्ट्रों के बीच यह एक उपयोगी बेंचमार्क साबित होगा। इसका दायरा न सिर्फ ऊर्जा क्षेत्रों में होगा बल्कि इसकी धमक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं कूटनीतिक क्षेत्रों में भी देखने को मिलेगी। दिलचस्प यह भी होगा कि हाल के वर्षों में बांग्लादेश में जो भारत विरोधी कट्टरपंथ का प्रसार हुआ है, उसकी मनःस्थिति में परिवर्तन होगा। पीपुल-टू-पीपुल डिप्लोमेसी कारगर साबित होगी और मुजीवुर्रहमान के समय जिन संबंधों की परिकल्पना की गई थी, पुनः उसकी आधारशिला तैयार होगी।[11] विकास की राह में कट्टरपंथ स्वतः ही निस्तेज हो जाएगा। मौजूदा परिस्थितियों में दोनों राष्ट्रों के मध्य सहयोग से तरक्की का एक नया अध्याय शुरू होगा। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भी इस सहयोग को 'स्वर्णिम अध्याय' की संज्ञा दी है। दक्षिण एशिया में भारत का सहयोग अन्य छोटे पड़ोसी राष्ट्रों के लिए भी नजीर पेश करेगा और भारत की प्रभावशीलता को नया मुकाम देगा। संभव है कि यह 'परियोजना परमाणु आपूर्तिकर्ता समूहश (NSG) तथा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता के लिए भारत की स्थिति को मजबूती प्रदान करेगा।[12]

आशा की जानी चाहिए कि दोनों राष्ट्र अपने निरन्तर प्रयासों से सहयोग का एक नया वातावरण तैयार करेंगे और आपसी विश्वास के आधार पर संबंधों को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करेंगे।

संदर्भ सूची -

1. Jayanta kr. Ray, Muntassir Momoon - India – Bangla-desh Relations, Current Perspective ist -33-36
2. करेंट अफेयर्स - समसामयिकी, अंक-4, जून 2018, पेज-72
3. Aneek Chatterjee- Neighbours Major Powers And Indian foreign Policy, ist & 101&103
4. न्यूज टाइम्स - विश्व परिदृश्य, अंक-5, पेज-18
5. संजय कु0 पाण्डेय - भारत-बांग्लादेश संबंध, पेज-228
6. K.K. घई - भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंध, पेज-179
7. इंडिया टूडे - हिन्दी पाक्षिक, अंक-12, मई-2017, पेज -48
8. प्रतियोगिता दर्पण- समसामयिकी, नवम्बर-2018, पेज-111
9. दैनिक जागरण- सम्पादकीय, पेज-10
10. वीजन IAS - समसामयिकी, अक्टूबर - 2019, पेज-15
11. गुप्ता, के. आर. - इन्डियाज इंटरनेशनल रिलेशन्स (2016), वॉल्यूम II, पेज - 559-60
12. चक्रवर्ती, त्रिदीब-शेख हसीनाज इण्डिया मिशन : फ्रॉम डिस्टन्स टू प्रॉक्सिमटि, वॉल्यूम-3, अंक-4, फरवरी - 2018, पेज - 38-39

राजभाषा हिन्दी का कार्यान्वयन

डॉ० गीता सहाय

हिन्दी विभाग, गया कॉलेज, गया

राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन को समझने से पहले भारत राजभाषा नीति क्या है उसे समझना आवश्यक है। संविधान के अंतर्गत जितने विस्तार से राजभाषा हिंदी के विषय में लिखा गया है उतने विस्तार से किसी अन्य विषय पर नहीं लिखा गया है। संघ की राजभाषा हिन्दी घोषित होने के इतने वर्षो बाद भी हिन्दी को राजभाषा हिन्दी का दर्जा दिलाने में हम लगभग असफल ही है। यदि सरकार ने पंद्रह वर्षो की अवधि के तुरंत बाद ही पूर्ण रूप से हिन्दी को राजभाषा लागू कर दिया होता तो आज भारत की राजभाषा हिन्दी होती उसे अँग्रेजी भाषा की बैसाखियों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

किसी भी लोकतान्त्रिक देश में राजकाज की भाषा उसकी जनता की भाषा होती है। जनता की भाषा के रूप में हिन्दी भाषा को यह स्थान प्राप्त है। हिन्दी भाषा अपनी सरलता, सरसता, सुगमता के कारण आसानी से ग्रहण होने वाली भाषा है। हिन्दी भाषा को जैसा बोला जाता है वैसे ही लिखा भी जाता है। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण हिन्दी बहुसंख्या लोगों की दूसरी भाषा और संपर्क भाषा बनी हुई है। भारत लगभग 1652 भाषाएँ बोली जाती है, जिनमें से 22 भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया हे। संघ सरकार के राजकाज के कार्य तथा केन्द्र एवं राज्यों के बीच संपर्क भाषा की भूमिका निभाने का उत्तरदायित्व हिन्दी भाषा को प्राप्त है, क्योंकि भारत के अधिकांश लोग हिन्दी बोलते और समझते हे।

संविधान के अंतर्गत राजभाषा हिन्दी का उल्लेख रू

1. संविधान में अनुच्छेद 343 से 351, तक राजभाषा हिन्दी से संबंधित है। संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार देवनागरी में लिखित हिन्दी संघ की राजभाषा है और

संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा, लेकिन अनुच्छेद 343 (2) के अंतर्गत यह भी व्यवस्था की गई है कि संविधान के लागू होने के समय से 15 वर्ष की अवधि तक, अर्थात सन 1950 से सन 1965 तक संघ के सभी सरकारी कार्यों के लिए पहले की भांति अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रहेगा। अहिंदी भाषी कर्मिकों को ध्यान में रखते हुए यह व्यवस्था इसलिए की गई थी कि इस बीच हिन्दी न जानने वाले हिन्दी सीख जायेंगे और हिन्दी भाषा को प्रशासनिक कार्यो के लिए सभी प्रकार से सक्षम बनाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त 5 वर्षो की अवधि में भी, अर्थात 1965 के पहले भी राष्ट्रपति के आदेश द्वारा किसी काम के लिए अंग्रेजी के अलावा हिन्दी के प्रयोग की अनुमति दे सकते थे। (2) अनुच्छेद 344 में यह कहा गया कि संविधान प्रारंभ होने के 5 वर्षो के बाद और फिर उसके ,10 वर्ष बाद राष्ट्रपति एक आयोग बनाएँगे, जो अन्य बातों के साथ-साथ संघ के सरकारी कामकाज में हिन्दीं भाषा के उत्तरोत्तर प्रयोग के बारे मे और संघ क राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर रोक लगाए जाने के बारे में राष्ट्रपति को स्किारिश करेगा।

आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए अनुच्छेद के खंड 4 के अनुसार 30 संसद सदस्यों की एक समिति के गठन की भी व्यवस्था की गई। जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे और दस राज्य सभा के सदस्य होंगे जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों और राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

प्रारम्भिक राजभाषा कार्यान्वयन के लिए तैयारी :

1950 में हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किए जाने पर यह अनुभव किया गया कि हिन्दी के माध्यम से प्रकाशन का कार्य चलाने के लिए कुछ प्रारंभिक तैयारियों की आवश्यकता पड़ेगी, जैसे- प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं विधि-शब्दावली का

निर्माण, प्रशासनिक एवं विधि-साहित्य का हिन्दी में अनुवाद, अहिन्दी भाषा सरकारी कर्मचारियों का हिन्दी प्रशिक्षण और हिन्दी टाइपराइटरों एवं अन्य साधानों की व्यवस्था आदि।

इस प्रकार से हम देखते है कि सरकार के द्वारा राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन के लिए दूर दृष्टि अपनाई गई थी। जिसका अनुपालन करना हमारा संवैधानिक दायिव्य है। इसके अतिरिक्त राजभाषा कार्यान्वयन के लिए शब्दावली की भी आवश्यकता है। शब्दावली निर्माण की योजना को भी मूर्त रूप देने के लिए विभिन्न निर्णय लिए गए जैसे कि शिक्षा मंत्रलय ने 1950 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी बोर्ड की स्थापना की। इसके मार्गदर्शन में शिक्षा मंत्रलय के हिन्दी विभाग ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य आरंभ किया। इसके बाद सन् 1960 में केंन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना हुई। और कुछ समय बाद 1961 में राष्ट्रपति के आदेशानुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की भी स्थापना की गई। हिन्दी निदेशालय तथा आयोग ने अब तक विज्ञान, मानविकी, आयुर्विज्ञान, अभियात्रिकी, कृषि, पेट्रोलियम तथा प्रशासन आदि के लगभग 4 लाख अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय प्रकाशित कर दिए हैं। इसी प्रकार राजभाषा (विधायी आयोग) तथा राजभाषा खंड ने विधि शब्दावली का निर्माण कार्य पूर्ण किया है। इसी के साथ राजभाषा विभाग की साइट पर ई-महाशब्दकोश को भी अपलोड किया गया।

प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद

शब्दावली निर्माण के साथ ही प्रशासनिक साहित्य के अनुवाद की भी आवश्यकता महसूस की गई। केंन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रलयों, विभागों निगमों, उपक्रमों, बैंको आदि के मैनुअलों, संहिताओं, फार्मों आदि का अनुवाद कार्य पहले शिक्षा मंत्रलय के केंद्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा किया जाता था। बाद मे मार्च, 1971, में यह कार्य गृह मंत्रलय के अधीन स्थापित केंद्रीय अनुवाद व्यूरो को सौंपा गया। अनुवाद ब्यूरो ने निदेशालय द्वारा अनूदित साहितत्य के अतिरिक्त अब तक अनेक मैनुअलों, फार्मों, रिपोर्टो आदि का अनुवाद करके विभिन्न मंत्रलयों को उपलब्धा कराए है। अनुवाद ब्यूरो की सहायता से मंत्रलयों, विभागों के अतिरिक्त अन्य सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों, बैंकों आदि के मैनुअलों या रिपोर्टों के अनुवाद में सहायता प्रदान करता हैं। अनुवाद में सरलता, सहजता और शब्दावली की एकरूपता सुनिश्चित करने तथा अनुवाद-कौशल विकसित करने के लिए वर्ष 1973 से अनुवाद प्रशिक्षण का कार्य ब्यूरो को सौंपा गया।

इस प्रकार ब्यूरो अनुवाद प्रशिक्षण देने काय कार्य भी करता है। केंद्र सरकार के स्तर पर असांविधिक प्रक्रिया साहित्य के अनुवाद और अनुवाद कौशल-विकास के प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो भारत सरकार की एकमात्र मानक संस्था हे। केन्द्रीय कार्यालयों, उपक्रमों, निगमों, बैंको इत्यादि के कार्मिकों को अनुवाद का प्रशिक्षण भी संस्था के द्वारा दिया जाता है। राजभाषा विभाग के अंतर्गत इस अनुवाद ब्यूरो को रखा गया है। राजभाषा कार्यान्वयन ओर अनुपालन में इस संस्था का योगदान महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। तकनीकी संस्थाओं की सहायता से अनुवाद करने के लिए कई सॉफ्टवेयर बनाए गए हें जैसे कंठस्थ, मशीनी अनुवाद, मंत्र इत्यादि। इस सभी सक्र"टवेयर की सहायता से प्रशासनिक अनुवाद के अतिरिक्त तकनीकी अनुवाद करना भी सरल हो गया हे।

राजभाषा कार्यान्वयन में हिन्दी शिक्षण योजना का योगदान

राजभाषा कार्यान्वयन में हिन्दी शिक्षण योजना के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। राजभाषा से संबंधित अधिनियमों और नियमों का अनुपालन कार्मिक तब तक नहीं कर सकता जब तक वह हिन्दी लिख और पढ़ नहीं सकता। इस संस्था का कार्य केन्द्रीय सरकार के हिन्दी न जानने वाले सरकारी कर्मचारियों के हिन्दी शिक्षण का कार्य शिक्षा मंत्रलय की देखरेख में 1952 में प्रारंभ हुआ था, किंतु बाद में लिए गए निर्णय के अनुसार अक्टूबर,1955 से यह कार्य गह मंत्रलय के राजभाषा विभाग के तत्वावधान में हो रहा है। प्रारंभ में यह प्रशिक्षण पाठडक्रम उन लोगों के लिए था, जो स्वेच्छा से हिन्दी पढ़ना चाहते थे। बाद में अप्रैल, 1960 में राष्ट्रपति क आदेश के अधीन हिन्दी का सेवा कालीन प्रशिक्षण उन सभी केंद्रीय सरकारो कर्मचारियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया जो 01.01.1961, को 45 वर्ष के नहीं हुए थे। इसी प्रकार टंककों और आशुलिपिकां के लिए भी टाइपिंग ओर हिन्दी आशुलिपिक का प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया। इस समय देश भर में हिन्दी प्रशिक्षण, हिन्दी टाइपिंग तथा हिन्दों आशुलिपि प्रशिक्षण के लगभग 50 केंद्र चल रहे है। भारत सरकार का 2025 तक का लक्ष्य हे कि सभी अहिंदी भाषी कार्मिकों को हिन्दी प्रशिक्षण दिला कर पारंगत की श्रेणी मे लाना। प्रशिक्षण संस्था के द्वारा 4 पाठ्यक्रम पूर्णकालिक और अंशकालिक चलाए जाते है। जिनके नाम इस प्रकार है- प्रबोधा, प्रवीण, प्राज्ञ और पारंगत। यह प्रशिक्षण प्राप्त करना प्रत्येक कार्मिक के लिए अनिवार्य हे। अंतिक

प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले कार्मिक को नगद पुरस्कार और एक वर्ष की वेतन वृद्धि भी दी जाती है। हिंदी शिक्षण योजना के दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई एवं गुवाहाटी में पाँच क्षेत्रीय कार्यालय हैं। उपर्युक्त प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दी के विकास एवं प्रसार में रही प्रगति को अनदेखा नहीं किया जा सकता हे। हाँ उसकी गति थोड़ी धीमी जरूर है।

राजभाषा कार्यान्वयन एवं अनुपालन के संबंधा में संवैधानिक व्यवस्था, अधिनियम एवं नियम इस प्रकार से है :

1. राजभाषा अधिनियम की धारा 3 के अनुसार (क) संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था और (ख) संसद में कार्य निष्पादन के लिए 26 जनवरी, 1965 के बाद भी अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा।
2. केन्द्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्रचार अंग्रेजी में होगा, बशर्ते उस राज्य ने इसके लिए हिन्दों का प्रयोग करना स्वीकार न किया हो। उसी प्रकार, हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें ऐसे राज्यों की सरकारों के साथ अंग्रेजी में पत्रचार करेंगी और यदि वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती हैं तो साथ-साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेंगी। पारस्परिक समझौते से यदि कोई भी दो राज्य आपसी पत्रचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो इसमे कोई आपत्ति नहीं होगी।
3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन जब तक संबंधित कार्यालयों, उपक्रमों, निगमों आदि के कर्मचारी हिन्दी का कार्यसाधाक ज्ञाप प्राप्त न कर लें, तब तक पपत्रदि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्धा कराया जाता रहेगा।
4. राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) के अनुसार निम्नलिखित कागज-पत्रें का द्विभाषी (हिन्दी और अंग्रेजी) होना अनिवार्य है। यह ध्यान रखा जाए कि हिन्दी भाषा ऊपर और अँग्रेजी भाषा नीचे तथा फॉन्ट भी समान होना चाहिए। धारा 3(3) के अंतर्गत द्विभाषी जारी किए जाने वाले कागजात इस प्रकार है :
    1. संकल्प,
    2. सामान्य आदेश,
    3. नियम,
    4. अधिसूचनाएँ,
    5. प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट ,
    6. प्रेस विज्ञप्तियाँ,
    7. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट एवं
    8. सरकारी कागज-पत्र,
    9. संविदाएँ,
    10. करार,
    11. सुनज्ञप्तियाँ,
    12. अनुज्ञापन,
    13. टेंडर नोटिस और,
    14. टेडर फार्म।

    उक्त कागजातों के संबंध में बने नियमों का उल्लंघन होने पर हस्ताक्षर करने वाले अधिकारी के खिलाफ कानूनी कार्रवाई भी की जा सकती है।
5. राजभाषा (संशोधान) अधिनियम, 1967 द्वारा अधिनियम को धारा 3(5) के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपयुक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक जारी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाली सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग खत्म करने के लिए आवश्यक संकल्प पारित न करें और इनके संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद का प्रत्यक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारित न कर दे।

6. अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए अथवा पारित किसी निर्णय, डिक्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा, हिन्दी अथवा राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है। तथापि यदि कोई निर्णय, डिक्री या आदेश अंग्रेजी से भिन्न किसी भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ-साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी किया जायेगा।
7. राजभाषा अधिनियम पारित करने के साथ-साथ दिसम्बर 1967 में संसद के दोनों सदनों ने सरकार की भाषा नीति के संबंध में एक सरकारी संकल्प भी पारित किया। इस संकल्प के पैराग्राफ-। के अनुसार केंद्रीय सरकार हिन्दी के प्रसार तथा विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए, उसके प्रयोग में तेजी जाने के लिए अधिक गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी। इसके अतिरिक्त इस संबंधा में किये गए उपायों तथा उसमें हुई प्रगति का ब्यौरा देते हुए एक वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों के सभा पटल पर पस्तृत करेगी। सब 968 से निरंतर वार्षिक कार्यक्रम बनाया जा रहा है, जिसमें केंद्रीय सरकार के मंत्रलयों, विभागों, उपक्रमों, निगमों, बैंकों आदि से अनुरोधा किया जाता है कि हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए, उसके अनुसार कार्रवाई करें। साथ ही उसकी प्रगति रिपोर्ट राजभाषा विभाग को अनिवार्य रूप से भेजें।

राजभाषा नियम 1976

सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग के लिए 976 में राजभाषा नियम बनाए गए। यह एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसमें हिन्दी के प्रयोग में काफी सहायता मिली है। इस नियम के अंगर्तत भारत को भाषयी दृष्टि से 3 क्षेत्रों में विभाजीत किया गया है। इस नियम की महत्वपूर्ण व्यवस्थाएँ इस प्रकार है-

* केन्द्र सरकार के कार्यालयों से "क'' क्षेत्र के किसी राज्य/संघ राज्य क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, बिहार राज्य और संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली) को या ऐसे राज्यों मं स्थित किसी अन्य कार्यालय या व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्र आदि हिन्दी में भेजे जायेगें। यदि किसी खास मामले में ऐसा कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता हे तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ में भेजा जायेगा। ''क'' क्षेत्र से ''क'' क्षेत्र को भेजे जाने वाले पत्रें का लक्ष्य 100 प्रतिशत रखा गया है।
* केन्द्र सरकार के कार्यालायों से ''ख'' क्षेत्र के किसी राज्य संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालायों या प्रशासनों को भेजे जाने वाले पत्र आदि सामान्यतारू हिन्दी में भेजे जायेगें। इस क्षेत्र के अन्तर्गत महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह आदि राज्य आते है। इन राज्यों के द्वारा यदि ऐसा कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ भेजा जायेगा। इन राज्यों में रहने वाले किसी व्यक्ति की भेजे जाने वाले पत्रदि हिन्दी या अंग्रेजी, किसी भाषा में हो सकते हैं। ''ख'' क्षेत्र से ''ख'' क्षेत्र को भेजे जाने वाले पत्रें का लक्ष्य 90 प्रतिशत रखा गया है।
* केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में ''ग'' क्षेत्र के किसी राज्य संघ क्षेत्र (''क'' और ''ख'' क्षेत्र में शामिल न होने वाले सभी राज्य और संघ राज्य क्षेत्र) के किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रदि अंगेजी में भेजे जायेगें। यदि ऐसा कोई पत्र हिन्दी में भेजा जाता है तो उसका अंगेजी अनुवाद भी साथ भेजा जायेगा।
* केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रलय या विभाग और दूसरे मंत्रलय या विभाग के बीच पत्र व्यवहार हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकता है। किन्तु केंद्र सरकार के किसी मंत्रलयधविभाग और ''क'' क्षेत्र में स्थित सम्बद्द और अधीनस्थ कार्यालयों के बीच होन वाला पत्र व्यवहार सरकार द्वारा निर्धारित अनुपात में हिन्दी होगा।
* नियम 5 के अनुसार हिन्दी में प्राप्त पत्रदि के उत्तर अनिवार्य रूप से हिन्दी में ही दिए जायेगें। हिन्दी में लिखे या हिन्दी में हस्ताक्ष: किये गये आवेदनों या अभ्यावेदनों के उत्तर भी हिन्दी में दिए जायेंगें।
* केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी फाईलों में हिन्दी या अंगेंजी में टिप्पणी या मसौदे लिख सकता है उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में भी प्रस्तुत करे। फाइलों में हिन्दी कार्य का प्रतिशत 50 निर्धारित किया गया है।

* केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएँ और अन्य प्रक्रिया साहित्य हिन्दी और अंग्रजी, दोनों में द्विभाषिक रूप में तैयार और प्रकाशित किए जायेंगें। सभी ठार्मो और रजिस्टरों के शीर्ष, नामपट, स्टेशनरी, विजिटिंग कार्ड, बैनर आदि हिन्दी और अंगेंजी द्विभाषिक रूप में होंगी।
* जिन कार्यालयों के 80 प्रतिशत या उससे अधिक कर्मचारियों को हिन्दी का कार्यसाधाक ज्ञान है, उन्हें अधिसूचित किया जायेगा। इस प्रकार अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट करके उनमें काम करने वाले हिन्दी में प्रवीण कर्मचारियों को नोटिंग, ड्राफ्टिग आदि में केवल हिन्दी का इस्तेमाल करने के लिए कहा जा सकता हे। प्रवीनता प्राप्त कार्मिकों को कार्यालय प्रमुख के हस्ताक्षर से व्यक्तिशरू ओदश जारी किया जाएगा। जिन में लिखा होता है कि आपको हिन्दी में प्रवीनता प्राप्त है, आपको अपना कार्यालय का शत प्रतिशत कार्य हिन्दी में ही करना हे।
* प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह दायित्व होगा कि वह राजभाषा अधिनियम और उसके अधोन बने नियमों का समुचित रूप से अनुपालन सुनिश्चित करें।

राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी भारत सरकार के सभी मंत्रलयों, विभागों, निगमों, उपक्रमों, बेंकों इत्यादि पर है। इस नीति के समन्वय का कार्य राजभाषा विभाग करता है। यह विभाग समन्वय के लिए वाषिक कार्यक्रमों को जारी करने के साथ-साथ कार्यान्वयन, निरीक्षण के देख रेख के लिए समितियों का गठन किया गया है। जिनका विवरण इस प्रकार है-

1. केंद्रीय हिन्दी समिति- हिन्दी के विकास और प्रसार तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के संबंध में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रलयों, विभागों, बैकों, उपक्रमों, निगमों आदि के द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यकमों का समन्वय करने और नीति संबंधों दिशा-निर्देश देने वाली यह सर्वोच्च समिति है। प्रधानमंत्री की अधयक्षता में गठित इस समिति के केंद्रीय सरकार के 11 मंत्री एवं राज्य मंत्री, राज्यों के 8 मुख्यमंत्री, 7 संसद सदस्य तथा हिन्दी के 10 विशिष्ट विद्वान शामिल है। राजभाषा विभाग के सचिव एवं भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार इसके सदस्य सचिव हें।
2. हिन्दी सलाहकार और आलेख एवं साक्ष्य समितियाँ-सरकार का यह निर्णय है कि राजभाषा नीति का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने और इस संबंधा में आवश्यक सलाह देने के लिए जनता के साथ अधिक संपर्क में आने वाले विभिन्न मंत्रलयोंध विभागों में हिन्दी सलाहकार समितियाँ गठित की जाए। इस समितियों में संसद सदस्यों तथा हिन्दी विद्वानों के अतिरिक्त मंत्रलय विशेष के वरिष्ठ अधिकारी शामिल होते हैं। वे अपने-अपने मंत्रलय में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के संबंधा में आवश्यक विचार-विमर्श करके निर्णय लेते है।
3. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति और राजभाषा कायान्वयन समितियाँ- केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों की संख्या (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को छोड़कर) 25 या इससे अधिक है, वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाई गई है। 1976 में लिए गए एक निर्णय के अनुसार ऐसे 58 नगरों में भी, जहाँ 10 या इनसे अधिक केंन्द्रीय कार्यालय है, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया हे। मंत्रलयों, विभागों, बैंको, निगमों, उपक्रमों, आदि में राजभाषा कार्यान्वयन समिति बनाई गई है। यह समिति कार्यालय स्तर पर होती है। जिसकी बैठक प्रत्येक तिमाही के प्रथम सप्ताह में करनी अनिवार्य है। इस समिति के अध्यक्ष कार्यालय प्रमुख और सदस्य विभाग या अनुभाग प्रधान या प्रभारी होंगे। यह समिति राजभाषा के कार्यान्वयन और अनुपालन में आने वाली समस्याओं पर आंतरिक रूप से विचार करके उनका समाधान करती है। राजभाषा के प्रयोग, प्रचार और प्रसार में यांत्रिक साधनों का अत्यन्त महत्व है। अब तक ये साधान केवल अंग्रेजी के लिए ही उपलब्धा थे, परंतु राजभाषा विभाग के सतत् प्रयास से इस क्षेत्र में आशाजनक प्रगति हुई है। तकनीकी क्षेत्र के कम्प्यूटर में यूनिकोड के आ जाने से हिन्दी टाइपिंग आसार हो गई है। इसी के साथ स्पीच नोटस, गूगल वक्इस टाइपिंग, डिक्टेशन डॉट आई आदि सक्‍"टवेयर के प्रयोग ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उपयुक्त प्रावधानों को देखते हुए भी राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए अभी तक मंत्रलयोंधविभागों, कार्यालयों आदि में सकारात्मक व्यवस्था नहीं दिखाई देती है। राजभाषा के कार्य को द्वितीय स्तर के कार्य के रूप में देखा जाता है। हिन्दी में काम करने के लिए जिस वातावरण आवश्यकता हे वैसा वातावरण नहीं बन पाया है और प्राय: सभी कार्मिक यह सोचते हें कि हिन्दी का कार्य केवल राजभाषा अधिकारी के द्वारा किया जाना चाहिए है। जबकि ऐसा नहीं है प्रत्येक कार्मिक को अपना कार्य हिन्दी में करना चाहिए यह सभी का संवैधानिक दायित्व है जिसको किसी भी प्रकार से अनदेखा नहीं किया जा सकता। इन कठिनाईयों के बावजूद, विविधा प्रयासों के परिणामस्वरूप, हिन्दी का प्रयाग दिन पर दिन बढ़ रहा है। भारत सरकार के सभी मंत्रलयों विभागों, कार्यालयों, उपक्रमों आदि से बराबर यह अनुरोधा किया जा रहा है कि वार्षिक कार्यक्रमो को पूरा करने का भरसक प्रयास करें और प्रत्येक

तिमाही की राजभाषा प्रगति रिपोर्ट ऑनलाइन अपने क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय को अनिवार्य रूप से भेजें। प्रत्येक वर्ष 14 सितम्बर को हिन्दी में सर्वाधिक काम करने वाले मंत्रालयों, विभागों, उपक्रामों, निगमों, बैंको आदि को राजभाषा कीर्ति पुरस्कार और अन्य पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है। वैज्ञानिक या तकनीकी पुस्तक हिन्दी भाषा में लिखने वाले कार्मिक को एक लाख तक का पुरस्कार देने का प्रावधान भी है। अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी में सरकारी काम करने के लिए आशुलिपिकों तथा टाइपिस्टों को प्रोत्साहन भत्ता देने के आदेश जारी किए गए हैं। प्रत्येक तिमाही में कम-से-कम एक हिन्दी कार्यशाला आयोजन करना अनिवार्य वे जिससे अधिकारियों और कर्मचारियों की हिन्दी में कार्य करने की झिझक को दूर किया जा सके। राजभाषा विभाग तथा अन्य मंत्रलयों आदि के अधिकारियों द्वारा भिन्न-भिन्न कार्यालयों में जाकर वहाँ हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने और कार्यान्वयन के विषय में अनुभव की जाने वाली कठिनाईयों के सामाधान का निरंतर प्रयास किया जा रहा है। साथ ही संसदीय समिति, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस समिति, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय आदि के द्वारा कार्यालयों का राजभाषा का निरीक्षण भी किया जाता है। इस प्रकार हिन्दी में काम करने का वातावरण बनाने के लिए हर संभव उपाय एवं प्रयास राजभाषा विभाग के द्वारा किए जा रहे है। हिन्दी राजभाषा का पूर्ण दर्जा जब तक नहीं मिल सकता जबतक अंग्रेजी की मानसिक गुलामी से हम पृथक नहीं होते।

संदर्भ ग्रंथ :

1. राजभाषा नियमावली- प्रकाशन राजभाषा विभाग
2. Rajbhasha.gov.in lkbV

भारतीय संस्कृति और श्रीरामकथामृत की सांस्कृतिक परम्परा

कुमारी लुसी

हिन्दी विभाग, शोध छात्र, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

भारतीय संस्कृति में रामकथा की परम्परा प्राचीनकाल से प्रचलित है। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि पहले रामकथाकार रहे हैं। इन्होंने रामायण जैसा ग्रंथ लिखकर इस भूमण्डल पर रामकथा का प्रचार किया था। इसके पश्चात ही भारत की तमाम भाषाओं और उपभाषाओं और लोकभाषाओं में अनेकों रामायण लिखे जा चुके हैं। इसी कड़ी में महात्मा रामचन्द्रवीर जी महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण और तुलसीदास विरचित रामचरितमानस से प्रेरणा प्राप्त करके 20वीं शताब्दी में खड़ी बोली हिदी में श्रीराम कथामृत महाकाव्य की रचना की। इस तरह से रामकाव्य परम्परा में इनका स्थान भी बड़ा महत्वपूर्ण है। उनके इस महाकाव्य को आधुनिक काल की रामकथा काव्य परम्परा में एक गौरव ग्रंथ कहा जा सकता है। आज के वैश्वीकरण, सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में इस ग्रंथ की अत्यंत आवश्यकता है। मनुष्य के आदर्शों उसके आचारों, विचारों कार्यों, अनुष्ठानों और जीवन के मूलभूत सत्यों को संस्कृति के रूप में ही जाना जाता है। वस्तुत: संस्कृति शब्द अपने आप में एक व्यापक अवधारणा को समाहित किए हुए है। यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव समाज की आन्तरिक उपलब्धियों की ही सूचक है।

संस्कृति हमारे मानव समाज की वह विशिष्टता है जो उसे अन्य प्राणियों से पृथक करती है। संस्कृति का प्रयोजन जीवन को परिष्कृत एवं परिवर्धित करना होता है। इससे हमारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन शिष्ट एवं सभ्य बनता है।

संस्कृति से ही मानव जीवन में सत्य, अहिंसा और सहानुभूति आदि गुणों का भी विकास होता है, जिससे मनुष्य स्वंय उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर समाज को उन्नत करने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदन करता है। अत: समस्त सामाजिक जीवन की समाप्ति संस्कृति में ही होती है। विभिन्न: सम्यताओं का उत्कर्ष तथा अपकर्ष संस्कृति के द्वारा जांचा परखा जाता है, उसके द्वारा ही लोगों को संगठित भी किया जाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का दर्शन, धर्म, सभ्यता, पौराणिकता, साहित्य, प्रकृति, भौगोलिक परिवेश समाज और राजनीति के साथ गहरा संबंध होता है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है, इसकी अपनी गौरवशाली परम्परा रही है, इसका इतिहास रहा है। युगों के थपेड़े खाकर अनेकों झंझावातों से टकराकर भी भरतीय संस्कृति ने अपनी प्राणवत्ता को अक्षुण्ण रखा है। भारतीय संस्कृति उत्तरोत्तर विकासशील संस्कृति है। यह जीवन्त परम्परा की भांति ही हमारे बीच विद्यमान है। भारतीय संस्कृति एक आदर्शवादी संस्कृति है, इसमें मर्यादा और आदर्शों को सर्वोपरि माना गया है।

दर्शन का तात्पर्य है तत्वों की खोज करना तत्व की खोज के लिए आकृष्टि मनन एवं चिन्तन की आवश्यकता होती है। इस चिन्तन से प्राप्त मूल्य, जीवन की महान उपलब्धि है। श्री रामचन्द्रवीर जी ने श्रीरामकथामृत में भारतीय दर्शनों का वर्णन भी किया है। पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव श्रीरामकथामृत पर शून्य रहा है। इसमें भारतीय दर्शन के लगभग सभी तत्वों को व्यक्त किया गया है। धर्म भी संस्कृति का ही अभिन्ना अंग है, वह मनुष्य को दिव्यता के मार्ग पर ले जाता है। जो उसकी आत्मा को निर्मल एवं अन्त:करण की शुद्ध बनाता है। श्रीरामकथामृत जैसे ग्रंथ में कर्म को ही धर्म माना गया है, कवि ने धर्म को सत्य पर आधारित माना है। श्रीरामकथामृत में धर्म की प्रमुख विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया हैं। मनु द्वारा बताए गए धर्म के सभी लक्षण इसमें समाहित है। भाषा के सभी लक्षण रस, छंद, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, शब्दशक्ति और काव्य गुण आदि इसमें ही समाहित हैं। इनके मिश्रण से ही इस ग्रंथ में शिल्पों का निर्माण भी होता है। श्रीरामकथामृत एक महाकाव्य होने के कारण सभी तत्वों की इसमें प्रचुरता है।

महाकाव्यों का सृजन एक साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रयास भी है। इसके सृजन की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। महाकाव्य में भी संस्कृति के लगभग सारे गुण मौजूद होते है। महाकाव्यों के सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक लक्षणों का उल्लेख किया है। श्रीरामकथामृत उन सभी लक्षणों पर खरा उतरता है। इस काव्य ग्रंथ में महाकाव्य के लगभग सारे लक्षण समाहित है। यह आधुनिक युग का महान ग्रंथ है, इसमें भारतीय संस्कृति को ही उजागर किया गया है। भाषा भावों और विचारों की ही वाहिका है, कवि ने इस महाकाव्य में प्रांजल भाषा का प्रयोग बड़ी ही कुशलता के साथ किया है। भाषा और संस्कृति का संबंध भी अत्यंत घनिष्ठ रहा है। श्रीरामचन्द्र वीर ने तत्सम, तद्भव, और देशज शब्दों के साथ-साथ अपनी भाषा में लोक शब्दावली का प्रयोग करके इस कागव्यग्रंथ को और भी रमणीयता प्रदान की है। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्र में किया है। वे एक बहुमुखी शैलीकार भी है उन्होंने अपनी इस रचना में विभिन्नच प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है।

अत: वास्तव में इस महाकाव्य की भाषा शैली का सांस्कृतिक वैभव अत्यंत कलात्मक एवं हृदयग्राही भी है।

हर रचनाकार सामान्यत: अपने समसामयिक परिवेश में न्युनाधिक रूप से प्रभावित होता है। साहित्य में युगीन यथार्थ को आधार बनाये बिना वह श्रेष्ठ साहित्यकार नहीं बन सकता। साहित्य वस्तुत: साहित्यकार की अपने सारे वातावरण की अनुभूतिमय अभिव्यक्ति है। युग से कटकर साहित्यकार कुछ भी नहीं रच सकता है। युगीन परिवेश प्रकाशविहीन को महत्व न देने से साहित्य प्रकाशविहीन और महत्वविहीन हो जाता है।साहित्यकार जीवन की विसंगतियों, विकृतियों और जटिलताओं आदि पर विचार करे ने समुचित हल की खोज करता है। वस्तुत: युगबोध से ही उसका मूल्य बोध विकसित होता है। साहित्यकार समकालीन जीवन एवं चतुर्दिक परिवेश के अनुभवों को चेतना के स्तर पर ग्रहण करता है। जिसे अपने साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष स्थान देता है, वही युगबोध है। इस प्रकार युगबोध और संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। श्रीरामकथामृत का अपना युग बोध है। कवि ने अपने इस महाकाव्यात्मक कृति में वाल्मीकि रामायण कालीन समय से लेकर आधुनिकता कालीन युगबोध को भी चित्रित किया है। वास्तव में कवि त्रिकालदर्शी होता है। श्रीरामचद्रवीर का युग बोध भी बहुआयामी है, क्योंकि वे भारतीय संस्कृति की सामाजिक राजनीतक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से भली भाँति परिचित थे। उन्होंने इस समाज के यथार्थ को अपनी आंखों से स्वयं देखा और भोगा था। भारतीय समाज में अनेकों परिवर्तन होते भी देखे थे। उन्होंने इस युगबोध को श्रीरामकथामृत महाकाव्य में भी दर्शाया है। इस प्रकार कवि के युगबोध ने प्राचीन और आधुनिक भारतीय संस्कृति को जोड़ने का बड़ा ही वंदनीय कार्य किया है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आज के सूचना, मशीनीकरण और भूमण्डलीकरण जैसे युग में हिन्दी रामकाव्य परम्परा में स्वामी रामचन्द्रवीर एक महान युग पुरूष के रूप में दिखाई पड़ते हैं, और इनके द्वारा विरचित श्रीरामकथामृत महाकाव्य को एक गौरव ग्रंथ की संज्ञा दी जा सकती है। यह महाकाव्य भारतीय संस्कृति की उस वैमवशाली पीठिका पर ही स्थापित है जो विशुद्ध रूप से भारतीय है। महाकवि भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म के प्रशंसक तथा समर्थक रहे हैं। इन्होंने भारतीय संस्कृति के सभी पक्षों को अपने महाकाव्य में समेटा है।

वर्तमान युग की परिस्थितियों को देखते हुए इस महाकाव्य की प्रासंगिकता और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है, क्योंकि आधुनिक युग में बहुत ही कम ऐसे महाकाव्य रचे गये हैं जो भारतीय संस्कृति के भी पोशक रहे हों। श्रीरामकथामृत एक मौलिक रचना है, जिसके माध्यम से श्रीरामचंद्र वीर जी आधुनिक भौतिकवादी एवं वैज्ञानिक युग में श्रीरामकथामृत जैसे विषय पर प्रकाश डालकर नयी पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक एवं धार्मिक विरासत से जोड़ने का श्रेष्ठ कार्य किया है। वर्तमान समय में जब सारे मूल्य बिखर रहे हैं, सामाजिक ताना-बाना अस्त व्यस्त हो रहा है, ऐसे में श्रीरामकथामृत का सांस्कृतिक अध्ययन नवीन मापदण्डों पर किया जा रहा है और श्री रामकथामृत का सांस्कृतिक पक्ष इस युग को नयी दिशा दिखाने में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। आज के सन्दर्भ में श्रीरामकथामृत की प्रासंगिकता यह है कि लेखक ने इसके कथ्य को आधुनिक और उत्तर आधुनिक विमर्शों से जोड़कर भी देखा है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. श्रीरामकथामृत महाकाव्य श्रीरामचद्र वीर, पंचखंड पीठाधीश, जयपुर राजस्थान, संवत 2062
2. समकालीन दर्शन-अजीत कुमार सिन्हा-हरियाणा हिन्दी ग्रंथ अकादमी चंडीगढ़, सं0 1973
3. तुलसी दर्शन मीमांसा, उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ संवत, 2018
4. प्राचीन भारतीय संस्कृति कला एवं दर्शन, एम0पी0 श्रीवास्तव, एशिया बुक कंपनी इलाहाबाद भारतीय संस्कृति, एस0एल0 नागौरी, बोहरा प्रकाशन जयपुर, संस्करण, 1985।

युवा और महिला सशक्तिकरण में शिक्षक शिक्षा की भूमिका

श्री सच्चिदानन्द पाठक

असिस्टेंट प्राफेसर, मगध कॉलेज ऑफ एजूकेशन, दुबहल-गया (बिहार)

किसी राष्ट्र के निर्माण में एक शिक्षक की भूमिका ओर योगदान बहुत ही बड़ा और प्रशंसनीय होता है। शिक्षक को हमारी संस्कृति में आदर और सम्मान दिया गया है। शिक्षक समाज में उच्च आदर्श स्थापित करने वाला व्यक्तित्व होता है। किसी भी देश या समाज के निर्माण में शिक्षा की अहम भूमिका होती है। कहा जाय तो शिक्षक ही समाज का आइना होता है।

हिन्दू धर्म में शिक्षक के लिए कहा गया है कि 'आचार्य देवो भव:' यानि कि शिक्षक या आचार्य ईश्वर के समान होता है। यह दर्जा एक शिक्षक को उसके द्वारा समाज में दिये गये योगदान के बदले स्वरूप दिया जाता है। शिक्षक का दर्जा समाज में हमेशा से ही पूजनीय रहा है। कोई उसे गुरू कहता है, कोई शिक्षक कहता है, कोइ आचार्य कहता है, तो कोई अध्यापक कहता है। ये सभी शब्द एक ऐसे व्यक्ति को चित्रित करते हैं, जो सभी को ज्ञान देता है, सिखाता है और जिसका योगदान किसी भी देश या राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करना है। सही मायनों में कहा जाय तो एक शिक्षक ही अपने विद्यार्थो का जीवन गढ़ता है, और शिक्षा ही समाज की आधार शिला है। एक शिक्षक अपने जीवन के अन्त तक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है और समाज को राह दिखाता रहता है, तभी शिक्षक को समाज में उच्च दर्जा दिया जाता है। माता-पिता बच्चे को जन्म देते है। उसका स्थान कोई नहीं ले सकता, उनका कर्ज हम किसी भी रूप में नहीं उतार सकते, लेकिन एक शिक्षक ही है, जिसे हमारी भारतीय संस्कृति में माता-पिता के बराबर दर्जा दिया जाता है, क्योंकि शिक्षक ही हमें समाज में रहने योग्य बनाता है, इसलिए ही शिक्षक को समाज का शिल्पकार कहा जाता है।

गुरू या शिक्षक का सम्बन्ध केवल विद्यार्थियों को शिक्षा देने से नहीं होता बल्कि वह अपने विद्यार्थी को हर मोड़ पर राह दिखाता है, और उसका हाथ थामने के लिए हमेशा तैयार रहता है। विद्यार्थी के मन में उमड़े हर सवाल का जबाव देता है और विद्यार्थी को सही सुझाव देता है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए सदा प्रेरित करता है। एक शिक्षक या गुरू द्वारा अपने विद्यार्थियों को स्कूल में जो सिखाया जाता है या जैसा वे सिखाते है वे वैसा ही व्यवहार करते है। उनकी मानसिकता भी कूछ वैसी ही वन जाती है, जैसा कि जे अपने आस-पास होता देखते हैं। इसलिए एक शिक्षक या गुरू ही अपने विद्यार्थी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

एक सफल जीवन के लिए शिक्षा बहुत उपयोगी हैं, जो हमे गुरू द्वारा प्रदान की जाती है। विश्व में केबल भारत ही ऐसा देश हैं, जहाँ पर शिक्षक अपने शिक्षार्थी को ज्ञान देने के साथ-साथ गुणवत्ता युक्त शिक्षा भी देते हैं, जो कि एक विद्यार्थी में उच्च मूल्य स्थापित करने में बहुत उपयोगी है।

जब अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश का राष्ट्रपति आता है तो वे भारत की गुणवक्तायुक्त शिक्षा का तारीफ करता है। किसी भी राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक सांस्कृति विकास उस देश की शिक्षा पर निर्भर करता है अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी है तो उस देश को आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता है। अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी नहीं होगी तो वहाँ की प्रतिभा दबकर रह जायेगी। किसी भी राष्ट्र की शिक्षा नोति वेकार हो, लेकिन एक शिक्षक बकार शिक्षा नीति को भी अच्छी शिक्षा नीति में तब्दील कर देता है। शिक्षा के अनेक आयाम है, जो किसी भी देश में शिक्षा के महत्व को अधोरेखांकित करते हैं। वास्तविक रूप में ज्ञान ही शिक्षा का आशय है ज्ञान का आकाक्षी है- विद्यार्थी और इसे उपलब्धा कराता हे शिक्षक। एक शिक्षा द्वारा दी गई शिक्षा ही शिक्षार्थी के

सर्वागाण विकास का मल आधार है। प्राचीन काल से आजपयत शिक्षा की प्रासंगिकता एवं महता का मानव जीवन में विशेष महतव है। शिक्षा के द्वारा प्रारम्भ से ही पाठ्यक्रम के साथ ही साथ जीवन मूल्यों की शिक्षा दी जाती है। शिक्षा हमे ज्ञान, विनम्रता, व्यवहार, कुशलता और योग्यता प्रदान करती है। शिक्षक को ईश्वर तूल्य माना जाता है। आज भी शिक्षक, शिक्षकीय आदों पर चलकर एक आदर्श मानव समाज की स्थापना में अपनी महती भूमिका का निर्वहन कर रहे है। लकिन इसक साथ-साथ ऐसे भी शिक्षक है, जो शिक्षक और शिक्षा के नाम को कलंकित कर रहे हैं, और ऐसे शिक्षकों ने शिक्षा को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है ओर धन के अभाव में अपनी पढाई छोड़नी पड़ती है।

आधुनिक युग में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षक वह पथ प्रदर्शक होता है जा हमे किताबी ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला सिखाता है। आज के समय में शिक्षा का व्यवसायीकरण और वाजारीकरण देश के समक्ष बड़ी चुनौती है। पुराने समय में भारत में शिक्षा कभी व्यवसाय का धांधा नहीं था। इससे वर्तमान छात्रों में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षक ही भारत को शिक्षा के व्यवसायीकरण और बाजीकरण से स्वतंत्र कर सकते हैं। देश की शिक्षा पथ प्रदर्शकम बनकर मारत में शिक्षा जगत को नई बुलंदियों पर ले जा सकते हैं। गुरू एवं शिक्षा ही है जो एक विद्यार्थी में उचित आदर्शों की स्थापना करते हैं ओर सही मार्ग दिखाते हैं। एक विद्यार्थी को अपने शिक्षक या गुरू के प्रति सदा आदर और कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए।

किसी भी राष्ट्र का भविष्य निर्माता कहे जाने वाले शिक्षक का महत्व यहीं समाप्त नहीं होता, क्योंकि वे न सिर्फ हमको सही आदर्श मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं बल्कि प्रत्येक शिक्षार्थी के सफल जीवन की नींव भी उन्हीं के हाथों द्वारा रखी जाती है। किसी भी देश या राष्ट्र के विकास मे एक शिक्षक द्वारा अपने शिक्षार्थी को दी गयी शिक्षा और शैक्षिक विकास की भूमिका का अत्यंत महत्व है।

शिक्षा वर्तमान शताब्दी की वह सबस महत्वपूर्ण संस्थागत प्रक्रिया है जो व्यक्ति और समाज के जीवन को विविधा रूपों में प्रभावित करती है। शिक्षा और समाज में गहरा सम्बन्ध है। एक ओर शिक्षा परम्परागत धारोहर को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ो तक पहुँचाती है और इस तरह संस्कृति की निरन्तरता बनाये रखने में सहायक होतीं है। दूसरी ओर पारिस्थितिक परिवर्तन उसे अनुकूलन का साधान बनाने में सहायक होते हैं। इस परिपेक्ष्य में शिक्षा, परिवर्तन तथा गतिशीलता का माध्यम बनती है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति और हर एक वर्ग के लिए शिक्षा आवश्यक हे लेकिन महिलाओं के निए इसका महत्व अधिक है। शिक्षा एक ऐसा सशक्त उपकरण है जो नई सामाजिक व्यवस्था का सृजन करने के लिए महिलाओं को सक्षम बनाता है। शिक्षा महिलाओं को सभी क्षेत्रों में प्रति का एकमात्र आधार व साधान है। बिना शिक्षा के महिलाओं की प्रगति संभव नहीं है। महिलाएं किसी भी समाज का महत्वपूर्ण भाग होती है। कोई भी समाज महिलाओं की प्रगति शिक्षा के बिना सम्भव नहीं है। सामान्य शिक्षा सिर्फ पुरूषों के लिए ही नहीं बल्कि महिलाओं के भी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सामान्य शिक्षा ग्रहण करके ही व्यक्ति समाज का जिम्मेदार सदस्य बनता ही वर्तमान में भारतीय महिलाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक सभी क्षेत्रों में परिजन दिखाई दे रहा हे इन सब क्षेत्र में परिवर्तन दिखाई दे रहा है इन सब क्षेत्रों में परिवर्तन के लिए शिक्षा महत्वपर्ण भूमिका निभा रही है। सामान्यत: जो लड़कियाँ निम्न आर्थिक पृष्ठभूमि वाले परिवारों से सम्बन्ध रखती है उनमें शिक्षा का स्तर भी सामान्यत: निम्न ही होता है और जो लड़कियाँ उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर से सम्बन्धित परिवारों से आती है उनमें नामांकन का प्रतिशत व शिक्षा का स्तर भी उच्च पाया जाता है। महिलाओं में शिक्षा का निम्न स्तर उनके निम्न सामाजिक-राजनैतिक सशक्तिकरण व ज्ञान निम्न स्तर के लिए जिम्मेदार होता है। वर्तमान में महिला शिक्षा का उन्नयन व गुणात्मक आर्थिक विकास में धानात्मक सहसम्बन्ध है। अत: जैसे- जैसे समाज में महिलाओं का शैक्षिक स्तर ऊँचा उठता है। महिलाओं की आर्थिक अधिकारिता के लिए महिलाओं आर लड़कियों को शिक्षा के समान अवसर सुनिश्चित कर उन्हें आधानिक व्यवसायों की अनिवार्य कौशलतायं प्रदान करनी चाहिए। जिससे वे आर्थिक रूप में आत्मनिर्भर बन सके।

सशक्तिकरण का अभिप्राय शक्ति प्रदान करने मानसिक अथवा शारीरिक गतिविधियों के सम्पादन की क्षमता प्रदान करने में विस्तार पाता है। वर्तमान में महिलाओं का सवविकास उनके सशक्तिकरण की ओर इशारा करता है। वास्तव में महिलाओं का सशक्तिकरण उन्हें एक नया क्षितिज दिखाने का प्रयास है, जिसमें व नई-नई क्षमतओं को प्राप्त करके स्वयं को नये तरीके से देखेगी, घरेलू सम्बन्धों का बेहत्तर तरिके से समायोजन करेगी ओर घर तथा पर्यावरण से स्वायत्तता को अनुभूति कर सकेगी। महिला सशक्तिकरण का मुख्य पक्ष महिलाओं के अस्तित्व का अधिकार और समाज द्वारा उनकी स्वीकार्यता है। महिलाओं द्वारा स्वयं के शरीर पर, प्रजनन क क्षेत्र में, आय पर, श्रम शद्धि पर, सम्पति पर, सामुदायिक संसाधानों पर नियंत्रण कर पाना उसका सबलीकरण

है और यही सशक्तिकरण का उद्देश्य है। सशक्तिकरण एक गतिशील प्रक्रिया है जो लोगों में सभी प्रकार की जागरूकता उत्पन्न करती है व तुरन्त निर्णय लेने तथा कार्यान्वित करने हेतु तत्पर करके जीवन को नियंत्रित करने में मदद करती है।

भारतीय समाज में आज भी महिलाओं को लेकर दोहरे मापदण्ड है। एक तरफ तो उन्हे पूज्यनीय की उपमाए देते हैं तो दूसरी तरफ उनका शोषण करने में भी पीछे नहीं रहता है। भारत में महिला अस्मिता और उनकी सुरक्षा, अधिकारों और सम्मान को लेकर आन्दोलन हुए है, परन्तु उन्हें पुरूष समाज की ओर से जितना समर्थन मिलना चाहिए नहीं मिला। घर परिवार और समाज में वाजिब सम्मान के लिए उन्हे लम्बा संघर्ष करना पड़ता है। बाहर एवं घर परिवार में हो रही हिंसा को मिटाए बिना समाज में महिला सशक्तिकरण का स्वप्न कभी पूरा नहीं हो सकता है। नये आर्थिक पर्यावरण के उद्‌भव नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक शिक्षा पद्धति और चिन्तन शैली के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत में महिला सशक्तिकरण का आरम्भ हुआ।

1. महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिलाओं के आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास जागत करना है। महिला सशक्तिकरण के लिए वर्तमान में सबसे बड़ी अवश्यकता उनको अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग और आत्मनिर्भर है, तो उसका आत्मसम्मान अवश्य ऊँचा होगा और वे देश की विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। कोई भी राष्ट्र तभी विकास कर सकता है, जब उसकी लगभग आधी आबादी जो कि महिलाओं की है. को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक व धार्मिक आदि समस्त और सशक्त किया जाय। अरस्तू के शब्दों में ''किसी भी राष्ट की स्त्रियों की उन्नति व अवनति पर ही उस राष्ट्र की उन्नति व अवनति निर्भर है।''
2. महिलाओं का समर्थ होना निरन्तर विकास की बुनियाद है। समर्थ होने पर ही महिलाए अपने जीवन की सभी पहलुओं पर पूरा नियंत्रण पर सकती है। अतएवं उनके जीवन और आजोविका के भातिक आधार को सुदृढ नहीं किया जाता तब तक महिलाए समर्थ नहीं हो सकेगी।
3. समाज के सन्दर्भ में नारी का स्थिति युगानयुग परिवर्तनशील बनी रही है। नारी की महत्त और गौरव एवं उसका वर्चस्व और गरिमा कभी उस्च से उच्चतर हो रही है तो कभी उसमें हास परिलक्षित होता है। एक सा स्वरूप उसका कभी नहीं रहा। आज नारी की जो सामाजिक और स्थिति है कल वैसी न थी, यह अन्य बात है कि नारी अपनी विद्यमान अवस्था को अतीत की अपेक्षा उन्नत मानती है।
4. प्रत्येक रूप में नारी की भांति-भांति की पात्रा अभिनीत करनी पड़ती है। चूंकि आज के नारी का कार्य क्षेत्र परिवार तक ही सीमित नहीं रह गया है। उसे अपने कार्यस्थल पर भी अनेक रूपों में अपना दायित्व भाँति भाँति निर्वहन करना पड़ता है इस प्रकार एक ही नारी को एक ही दिन में कई प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है। आज कल की कामकाजी नारी को एक ही दिन में कई प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है। आजकल की कामकाजी नारी के रूप में अत्याधिक विस्तृत हो चुके है। अत: स्पष्ट है कि नारी शक्तिरूपा, जगत जननी है। नारी के सम्बन्धा में यहाँ तक कहाँ गया है, कि पृथ्वी के समान क्षमा, सूर्य क समान तेज, समुद्र के समान गम्भीरता, चन्द्रमा के समान शीतलता एवं पर्वत के समान उच्चता के दर्शन होते है, अतय कहा जा सकता है कि संसार की तरक्की नारी के विकास पर ही आधारित है।
5. समाज में जब तक नारी को उचित आदर प्राप्त नहीं होगा, उसका विकास सम्भव नहीं है, उसके विचार में नारी को ऐसी स्थिति में लाना होगा जहाँ वह अपने समस्याओं को अपने तरीके से समाधान स्वयं कर सके और भारत की नारी ऐसा करने उतनी ही समर्थ है जितनी विश्व की अन्य देशों की महिलाएं। भारत में इन्दिरा गाँधी और अहिल्यावाई जैसी निर्भिक नारी का परम्परा को जारी रखना होगा। नारी शिक्षा को विस्तार और धर्म को केन्द्रीय स्थान देकर इसका चरित्र निर्माण और ब्रह्मचर्य रक्षा में दूर तक प्रभाव पड़ेगा।
6. महिला सशक्तिकरण में सबसे मुख्य भूमिका शिक्षा निभा सकती है। शिक्षा मनुष्य के आचार-विचार व्यवहार सभी में परिवर्तन कर देती है। शिक्षा स्त्यों के सर्वागीण विकास, समाज की चतुर्भुजी उन्नति ओर सभ्यता की बहुमुखी विविधा क्षेत्रें में परिवर्तन कर देती है। शिक्षा महिला सशक्तिकरण में मील का पत्थर साबित हो सकती है। महिला शिक्षा, शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हेतु अनेक उपाय बताए। इसके बाद महिला शिक्षा के सम्बन्धा में पुन: विस्तार से सुझावदेते हुए 1962 में हंसामेहता समिति का गठन किया गया। इसके बाद कोठारी आयोग ने प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा हेतु आघारभुत पाठयचर्च

प्रस्तत की। इसका प्रभाव यह हुआ कि भिन्न - भिन प्रांतों में सत्रे शिक्षा को मिल भिन्न रूप में संगठित किया गया। इन सब विशेषताओं को पूरा करने के लिए 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। शिक्षा में कोई भेद-भाव नहीं किया जायेगा, नारी को पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा इसके अलावा स्त्रियों को विज्ञान, तकनीकि और मैनेजमेंट की शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।

7. महिलाओं को सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है, इनके बिना परिवार या समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। परिवार एवं समाज में इनका योगदान अतुलनीय है। महिला समाज व परिवार की मार्गदर्शक है, युवा पीढ़ी की सफलता की श्रोताधार है। परिवार ही पथ मार्गदर्शक है, अविष्कारी मस्तिष्क तो नारी के पास सदैव रहा है। परन्तु समय के साथ - साथ मस्तिष्क इस प्रकार के विचार करने पर विराम लगा दिया। अब उन्हें इस अविष्कारी विचार को पुनः प्रारम्भ करना होगा एवं अपने द्वारा उत्पन्न समाज को फिर से उन्हें राह बताना होगा तभी समाज में समानता आयेगी।

प्रत्येक विकसित समाज के निर्माण में स्त्री एवं पुरूष दोनों की सहभागिता आवश्यक है भावी पीढ़ी के रूप में व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज तथा राष्ट्र तक के चहुमुखी विकास की जिम्मेदारी में पुरूषों के साथ स्त्रियों की अपेक्षाख्रत अधिक भागीदारी है। इस भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए ही परिवार की धुरी, महिला सशक्तिकरण जरूरी है ओर सशक्तिकरण के लिए शिक्षा।

शिक्षा आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण के लिए, पहला ओर मूलभूत साधान है। शिक्षा ही वह उपकरण है। जिससे महिला समाज में अपनी सशक्त, समान व उपयोगी भूमिका दर्ज करा सकते हैं। दुनिया के जो भी देश आज समृद्ध और शक्तिशाली है बे शिक्षा के बल पर ही आगे बढ़े हैं। इस लिए समाज की आधी आबादी अर्थात महिलाएं जो कि विकास की मुख्य धारा से बाहर हैं, उन्हें शिक्षित बनाना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में राधाकृष्णन आयोग न कहा है। ''स्त्रियों के शिक्षित हुए बिना किसी समाज के लोग शिक्षित नहीं हो सकते। ''यदि सामान्य शिक्षा स्त्यों या पुरूषों में से किसी एक को देने की विवसता हो, तो यह अवसर स्त्रियों को ही दिया जाना चाहिए। क्योंकि ऐसा होने पर निश्चित रूप से वह शिक्षा उनके द्वारा अगली पीढ़ी तक पहुँच जायेगी, इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षानीति में यह बात स्वीकार की गई है कि महिला शिक्षा का महत्व न केवल समानता के लिए, बल्कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया को तेज करन के लिए भी जरूरी है।

स्वतंत्रता के बाद सरकार, महिला संगठनों, महिला आयोगों आदि के प्रयासों से महिलाओं के लिए विकास के द्वार खूले, उनमें शिक्षा का प्रसार बढ़ा जिससे उनमें जागृति आई, आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ परिणाम स्वरूप वे प्रगतिपथ पर आगे बढ़ी। आज महिलाएं राजनीति, समाजसुधार शिक्षा. पत्रकारिता. साहित्य, विज्ञान, उद्योग, व्यवसायिक प्रबन्धान, शासन-प्रशासन चिकित्सा इंजीनियरिंग, पुलिस, सेना, कला संगीत खेलकूद आदि क्षेत्रें में पुरूषों के साथ कंधो से कंधो मिलाकर कार्य कर रही है। एक और यह परिकृश्य पर कृष्टि डालने से पता चलता है कि आज भी शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओ की स्थिति सनत्तोषजनक नहीं है। परी दनिया में स्कूल न जाने वाले 121, मिलियन बच्चों में 65% लड़कियां है। दुनिया के 875 मिलियन निरक्षर वयस्कों में दो तिहाई महिलाएं है। इसी प्रकार 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में महिला साक्षरता 53.67% है, जिसमें नगरीय क्षेत्रों की महिला साक्षरता दर 72.99% तथा ग्रामीण क्षेत्र की महिला साक्षरता 46.58% है अर्थात भारत में 50: महिलाएं अभी तक शिक्षा से वंचित है। इसी प्रकार प्राथमिक स्तर पर प्रवश लेने वाले बालिकाओं में से 24.82% कक्षा 5 तक की पढाई पूरी नहीं कर पाती है और उन्हें विद्यालय छोड़ना पड़ता है। उच्च प्राथमिक स्तर पर 50.76% बालिकाओं को बीच में ही विद्यालय छोड़कर घरेलू कार्यों में संलग्न होना पड़ता है। स्कूल का दूर होना, यातयात की अनुपलब्धाता, घरेलू काम, छोटे भाई बनो के देख-रेख आर्थिक व विभिन्न समस्या आदि कुछ ऐसे कारण है जो कि बालिका शिक्षा की राह के बाधा उत्पनन करते हैं।

आज बालिका शिक्षा का प्रसार ग्रामीण क्षेत्रें में करने की महती अवश्यकता है। सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के माधयम से इस दिशा में निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। देश की विकासशीलता के परिवेश में विचार करना आवश्यक है कि महिलाओं की शिक्षा किस प्रकार कही हो? महिलाओं को मात्र साक्षर न बनाया जाय बल्कि उन्हें अपने पैरां पर खडे होने में मददगार सिद्ध हो। यदि महिलाए शिक्षित होकर आत्मनिर्भर हो सके तो उनको स्वयं का महत्व समझते देर नहीं लगेगी तथा धीरे-धीरे दूसरों की नजरों में भी उनका स्थान महत्वपूर्ण हो जायेगा। शिक्षित, आत्मनिर्भर, सशक्त महिलाओं के द्वारा ही भारत को एक सशक्त व विकसित देश के रूप में निर्माण कर पाना सम्भव हो सकंगा।

आज आजादी 70 वर्षो बाद भी भारत में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। आधुनिकता के विस्तार के साथ-साथ देश में दिन-प्रतिदिन बढ़ते महिलाओं के प्रति अपराधों की संख्या के आंकड़े चौकाने वाले हैं उन्हें आज भी कई प्रकार

के धार्मिक रीति - रिवाजों, कुत्सित, रूढ़ियों, यौन, अपराधो, लैंगिक भेदभावों, घरेलू हिंसा, निम्न स्तरीय जीवनशैली अशिक्षित कुपोषण दहेज उत्पीड़न, कन्या भुणहत्या, सामाजिक असुरक्षा तथा उपेक्षा का शिकार होना पड़ रहा है। हालांकि पिछले कुछ दशकों में रक्षा और प्रशासन सहित लगभग सभी सरकारी तथा और- सरकारी क्षेत्रें में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, उनकी स्वायत्तता तथा अधिकारों का कानूनी एवं राजनैतिक संरक्षण तेजी से बदलते सकारात्मक सामाजिक नजरिए, सुधारने शैक्षणिक स्तर पर अंतराष्ट्रीय खेल प्रतिस्पर्धाओं में उनकी प्रतिभागिता एवं कोशल तथा सिनेमा, रचनात्मक, व्यापार संचार, विज्ञान तथा तकनीकि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रें में कई बड़े बदलाव भी देखने में सामने आये है। लेकिन यह महज शुरूआत भर है। जब तक समाज के प्रत्येक वर्ग में महिलाओं की पूरूषों के बराबर भागीदारी सनिश्चित नहीं हो जाती, वे हर प्रकार से शिक्षित, सुरक्षित और संरक्षित नहीं हो जाती. तब तक हमारी आजादी अधुरी मानी जायेगी।

वैदिक युग में स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार प्राप्त थ। उन्हें यज्ञों में सम्मिलित होने, वेदों का पाठ करने तथा शिक्षा हासिल करने की आजादी थी। ऋग्वद् और उपनिशद, गार्गी अपाला, घोषा, मैत्रेयी जेसी कई महिला बिदुषियों के बारे में जानकारी प्रदान करते है। जैसे की प्राचीन भारत में कहा जाता रहा है कि यंत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता। अर्थात जहाँ स्त्रीर्यों का सम्मान होता है। वहां देवता निवास करते है। स्मृतियों ने स्त्रीर्यों पर पाबादया लगा किया। यही से महिलाओं की स्थिति में गिरावट आना शुरू हो गई। भारत पर इस्लामी आक्रमण बाद तो हालात बद से बदत्तर हो गया। इसी समय पर्दा प्रर्था, बाल विवाह, सत्ती प्रथा वाल विवाह, सती प्रथा, जौहर और देवदासी जैसी घणित धार्मिक रूढिया प्रचलन में आयी। मध्ययुग में भक्ति आन्दोलन ने महिलाओं के स्थिति को सुधारने का प्रयास जरूर किये पर वो उस हद तक सफल नहीं रहे। स्कि चुनिंदा स्त्यिं जैसे कि मीरावाई, अक्का महादेवी रामी जानावई और लालदेव ही इस आन्दोलन का सफल हिस्सा बन सकी। इसके तरनन्त बाद सिख-धर्म प्रादुर्भाव में आया। इसने भी युद्ध नेतृत्व एवं धार्मिक प्रबन्धा समितियों में महिलाओं एवं पुरूषों की बराबरी के उपदेश दिये। अंग्रेजी शासन ने अपनी तरू से महिलाओं की स्थिति को सुधारने के कोई विशेष प्रयास नहीं किये, लेकिन 19वीं सदी के मध्य में उपजे अनेक धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन जेसे वह्मयसमाज थियोसोगिकिल सोसाइटी, रामकृष्णन मिशन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर (स्त्री-शिक्षा), महात्मा ज्योतिवाफुल, सावित्रिवाई फूल (दलित स्त्रियों) की शिक्षा आदि ने अंग्रेजी सरकार की सहायता से महिलाओं के हित में सती प्रथा का उन्मूलन 1829 सहित कई कानूनी प्रावधान पास करवाने सफलता हासिल की। इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद इस दौर में युद्ध, राजनीति, साहित्य शिक्षा और धर्म कुछ सुप्रसिद्ध स्त्रियों के नाम उभरकर सामने आते हैं, जिनमें से रजिया सुल्तान, गोंडवाना की महारानी दुर्गावती, जीजाबाई, किन्तूर की रानी चेन्नम्मा, कर्नाटक की महारानी-अब्बक्का, अवधा की सह शासिका-वेग हजरत महल, आगरा की रानी -नूरजहां तथा झाँसी की रानी महारानी लक्ष्मीवाई के नाम प्रमुख है। भारत का पहला महिला महाविद्यालय बिथमून कालेज 1879 में खूला। जिससे चन्द्रमुखी कांदविनी गागुली ओर आनदी गोपाल जोगी ने वर्ष 1886 में शुरूआती शैक्षणिक डिग्रीया प्राप्त की थी।

1 जनवरी 1997 से पूरे प्रदेश में 'शिक्षा गारण्टी योजना' शुरू की। इस योजना का सफल क्रियान्वयन हों, इसका जिम्मा पंचायती राज व्यवस्था को सौपा गया। पंचायती राज व्यवस्था द्वारा किये गये प्रयासों से प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। आजादी के बाद के वर्षो में महिलाओं के लिए समान अधिकार (अनु0-14), राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं करने (अनु0-15) अवसरों की समानता (अनुद्र-16) समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुद्र-- 39) अपमानजनक प्रथाओं के परित्याग के लिए (अनुद्र- 51ऋक्षद्धक्ष्द्ध) प्रसूति सहायता के लिए (अनु0-42) जैसे आदि अनेक प्रावधान भारतीय संविधान में किये गये। इसके अतिरिक्त 73वाँ और 74वाँ संशोधानों द्वारा स्थानीय निकायों में उनके लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। तथा अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम-1956, दहेज प्रतिषेध अधिनियम - 1961, कूटुम्ब अन्यायालय अधिनियम - 1984. महिलाओं का अशिष्ट रूषण प्रतिषिथ अधिनियम - 1994, घरेल हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम - 2005 बाल विवाह प्रतिषेधा अधिनियम-2006, कार्य स्थल पर महिलाओं का लैगिक उत्पीडन प्रतिबंधा - अधिनियम-2013, निर्भया कोष अधिनियम व भारत सरकार द्वारा नारी शाक्ति को बल देने हेत कई योजनाओं जो सबला योजना-2010, जननी सुरक्षा योजना-2005, सुकन्या समृद्धि योजना, लाडली योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना, तजस्वी योजना, किशोरी शक्ति योजना-2000-01, स्वशक्ति परियोजना- 2002 स्वयं सिद्ध योजना 2002-03. स्वावलम्बन कार्यक्रम-1996, नन्दादेवी कन्या योजना- 2009, मोनाली परियोजना, महिला कल्याण कोष आदि का सफल संचालन किया जा रहा है।

भारतीय महिलाओं को अपराधों के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करते तथा उसकी आर्थिक एवं सामाजिक दशा में सुधार करने के लिए बनाए गये प्रमुख कानूनी प्रावधान है। कई राज्यों की ग्राम व नगर पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान भी

किया गया है। लेकिन महिला आरक्षण विधोयक लागू नहीं होने से लोक सभा एवं विधान सभाओं में महिलाओं को 33% आरक्षण देने के लिए चक्रानुक्रम पद्धति का प्रावधान किया गया है। जब तक राजनीति में नारी भागीदारी नहीं बढेगी तब तक सही अर्थों में उसका सशक्तिकरण नहीं हो सकेगी।

यह सही है कि सरकार द्वारा अपने स्तर पर नारी सशक्तिकरण के संदर्भ में अनेक प्रयास किये गये है किन्तु सरकार के यह पहल तब तक सकल नहीं हो सकते जब तक धारातल पर पुरूष मानसिकता या पुरुष प्रधान समाज की सोच में बदलाव नहीं आ जाता। आज भी घटता लिंगानुपात बालिका भ्रुण हत्या, दहेज उत्पीड़न बन्धुआ मजदूरी, बाल तस्करी जैसी कुरीतियां हमारे देश के सामने एक विकट समस्या बनी हुई है।

वर्तमान समय में जन-जन तक संदेश पहुँचाने की आवश्यकता है कि महिला सशक्तिकरण देश के विकास की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। आज महिलाओं को पुरूषों के बराबर वैद्यानिक राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रें में उनके परिवार, समुदाय समाज एवं राष्ट्र की संस्खति पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता प्रदान करने की आवश्यकता है। नारी को सशक्त बनाये बिना हम मानवता को सशक्त नहीं बना सकते। संवेदना करूणा, वात्सल्य, ममत्व, प्यार स्नेह, सहनशीलता, विनप्रता आदि नारी के ये गुण है, जिनसे वह मानवता को निखार आर संवार कर उसे सम्पूर्ण एवं सशक्त बना सकती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हर क्षेत्र में महिला की सम्मान जनक एवं पर्याप्त हिस्सेदारी हो उन्हें साक्षर बनाया जाय, हर क्षेत्र में उनकी नेतृत्वकारी भूमिका को प्रोत्साहन देते हुए उन्हें सुरक्षा दी जाय, उन पर हो रही हिंसा का अन्त हो तथा उन्हे शान्ति के प्रत्येक पहलू एवं सुरक्षा और विकास की अनेकानेक कार्यों में सम्मिलित किया जाय। हर देश या राष्ट्र को चाहिए कि आर्थिक सशक्तिकरण एवं राष्ट्रीय विकास की योजनाओं में महिलाओं को केन्द्र में रखा जाए। राष्ट्रों के सलाना बजट में जेंडर बजटिंग का प्रावधान करना चाहिए। जिसकी पहल भारत वर्ष में की जा चुकी है। भारत में युवाओं की संख्या बहुत अधिक है. हर तीन में एक व्यक्ति युवा है यानि 15 से 24 वर्ष के बीच ओर देश की जनसंख्या में बच्चों की जनसंख्या 37% के करीब है। भारत की आर्थिक वृद्धि को संभावनाएं और उपलब्धियां बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि युवाओं में कौशल ऊर्जा और सलताकी कितनी इच्छा है तथा क्या नेतृत्व भागीदारी और स्वेच्छा को पोषित करने वाली प्रभावशाली प्रक्रिया उपलब्धा है उचित अवसर मिलने पर युवावर्ग देश का सामाजिक व आर्थिक भाग्य बदल सकता है लेकिन इस परिवर्तन के लिए सतत निवेश ओर भागीदारी की जरूरत है, साथ ही युवाओं के स्वास्थ्य शिक्षा रोजगार से सम्बन्धित मुद्दो पर व्यापक रूप से काम करना भी है। युवाओं का मनोबल बढ़ाया जाना चाहिए। और जिन सत्रं में प्रत्यक्ष प्रभाव उनके भविष्य पर पड़ने वाला है, विशेष रूप से उन क्षेत्रें से सम्बन्धित फैसला में उन्हें सहभागी बनाया जाना चाहिए।

महिलाएं एक हिंसा मुक्त परिवेश में सम्मानपर्वक जीवन जी सके इसके लिए उन्हें सहयोग देने के साथ - साथ उनका आर्थिक सशक्तिकरण भी जरूरी है। बात लिंगानुपात में गिरावट पक्षपातपूर्ण तरिके से लिंग चयन की परम्परा और बाल-विवाह, इन सभी से पता चलता है कि लेंगिक भेदभाव और लेंगिक असमानता किस हद तक भारत के लिए एक चुनौती बनी हुई है। महिलाओं के साथ घरेलू हिंसा की घटनाएं भी होती है। विशिष्ट अल्पसंख्यक समूहों की महिलाएं अपने जीवनसाथी की हिंसा का सर्वाधिक सामना करती है। पिछले 10 वर्षो में भारत में महिलाओं के खिला घरेलू हिंसा, देश का सबसे अधिक हिंसक अपराधा रहा है। चूंकि हर पांच मिनट घरेलू हिंसा की एक घटना दर्ज होती है। हिंसा भी समाज का युवावर्ग ऐसा दृष्टिकोण, प्रभाव कौशल और आचरण विकसित कर सकता है जो सूचनाओं और सेवाओं को सुरक्षित स्वस्थ रखने की मांग करे, भेदभाव ओर हिंसा समाप्त हैं। विशेष रूप से बालिकाओं के खिलाफ और ऐसा नागरिक समाज तैयार हो जिसका परिवेश सभी को समान रूप से दक्षता हासिल करने का मौका दे। ऐसी नीतियां बनाने और आचरण विकसित करने में उन्हें भागीदार बनाया जाना चाहिए। जिनमें सभी लोगों को मान्यता मिले ओर लैंगिंक रूढ़ियों और मानदण्डों को चुनौती दी जा सके।

सरकार ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा को समाप्त करने को अपनी प्राथमिकता बनाया है। साथ ही उनकी तस्करी, घरेलू हिंसा तथा यौन शोषण रोकने के लिए विशेष उपाय किये गये है। नीतिगत कार्यक्रमों में लेंगिकता को प्रस्तावित और एकीकृत करने के लिए प्रयास भी किये गये है जनवरी 205 में बालिकाओं का संरक्षण ओर सशक्तिकरण करने वाले अभियान 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान की शुरूआत की गई, जिसे राष्ट्रीय स्तर पर संचालित किया जा रहा हैं वित्त पोषण सेवाओं के साथ महिलाओं के दक्षता और रोजगार कार्यक्रम देश के कोने - कोने में सुविधाओं से वंचित ग्रामीण महिलाओं तक पहुँच रहे हैं। योवन शोषण, घरेलू हिंसा, और असमान परिश्रमिक से सम्बन्धित कानूनों को भी मजबूती दी जा रही है।

राष्ट्रीय युवा नीति 204 में युवाओं को सशक्त बनाने का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है इस नीति में सुपरिभाषित प्रत्येक के लिए नीतिगत हस्तक्षेप का सुरक्षा है। प्राथमिक क्षेत्रों में शिक्षा, दक्षता, विकास और रोजगार, उद्यमिता, स्वास्थ्य और स्वस्थ जीवनशैली, खेल, सामाजिक मूल्यों का प्रचार, सामुदायिक भागीदारी, युवाओं का जुड़ाव समावेश और समाजिक न्याय शामिल है। सरकार ने रोजगार बाजार में पूर्ण भागीदारी और रोजगार सेवाओं की उपलब्धाता हासिल करने के लिए युवाओं को सक्षम बनाने की पहल की है। सरकार ने ग्रामीण युवाओं की क्षमता निर्माण दक्षता विकास कार्यक्रम शुरू किये है खासतौर से गरीबी रेखा सेनीचे जीवनयापन करने व अनुसूचित जातियों एवं अनुसचित जनजातियों के अन्तर्गत आनेवाले युवाओं के लिए सम्बन्धी मुद्दे, शारीरिक विकास, डिजिटल समावेश, किशोर अपराध और बाल अपराधा, नशीली दवाओं के दुरूपयोग युवतियों के प्रति भेदभाव और अन्य युवा विशिष्ट विषयों पर कार्य करने के प्रयास किये गये हैं।

अतः शिक्षा व परिषद् तब गौरव होगी तब राष्ट्र गोरवशाली होगा ये राष्ट्र गौरवशाली तब होगा, जब राष्ट्र अपने जीवन मूल्यों की परम्पराओं को निवर्हन करने में सफल एवं सक्षम होगा पे राष्ट्र सफल एवं सक्षम तब होगा, जब शिक्षक अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में सफल होगा और शिक्षक सफल तब कहा जायेगा, जब वह प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने में सफल हो। यदि व्यक्ति राष्ट्रभाव से शून्य है, राष्ट्रभाव से हीन है, अपनी राष्ट्रीयता के प्रति सजग युवा ओर महिला का सशद्विकरण होने के लिए शिक्षक की भूमिका अहम है। जब तक राष्ट्र की महिला व युवा वर्ग शिक्षित नहीं होगा तब राष्ट्र विकास के रास्ते को प्रशस्त नहीं कर सकता है। शिक्षक इसे चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए राष्ट्र के नवनिर्माण करने के लिए दृढसंकल्पित होकर विजय पानी होगी तथा शिक्षक उन्हें अपने सामर्थ्य का परिचय अवश्य दे तभी युवा और महिला का सशक्तिकरण सम्भव होगा।

भारतीय कृषि क्षेत्र में व्यापार उदारीकरण का प्रभाव

सोनी कुमारी

शोधा छात्रा, अर्थशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सार

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। भारत की लगभग 58 प्रतिषत आबादी के लिए कृषि आजीविका का प्राथमिक स्रोत है। इस पत्र का मुख्य उद्देष्य भारत में कृषि वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात/आयात पर व्यापार उदारीकरण नीति के प्रभाव की जाँच करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र में व्यापारी उदारीकरण के माधयम से कीमतों में बदलाव करके और इन क्षेत्र में सार्वजनिक और निजी निवेष के लिए प्रोत्साहन प्रदान करके कृषि उत्पादन और निर्यात को बढ़ाने की उम्मीद थी। हालांकि, उम्मीदों के विपरीत उदारीकरण (पोस्ट-डब्ल्यूटीयों) की अवधि ने कृषि आय की वृद्धि दर और कृषि वस्तुओं की उत्पादन और उपज में महत्वपूर्ण गिरावट का अनुभव किया है। व्यापार अधिषेश बढ़ने के साथ कृषि उत्पादों के और आयात में लगातार वृद्धि हुई है। कृषि उत्पादों के निर्यात और आयात की संरचना में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। कृषि आय और विश्व कृषि व्यापार के लिए कृषि व्यापार के बढ़ते अनुपात के साथ कृषि वस्तुओं के घरेलू और अंतर्राश्ट्रीय कीमतों के बढ़ते एकीकरण के साथ भारतीय कृषि धीरे-धीरे वैष्विक बाजारों के साथ एकीकृत हो रही है।

Key words कृषि, अर्थव्यवस्था, व्यापार, आयात, निर्यात्, डब्ल्यूटीओं

परिचय

विश्व व्यापार संगठन वर्ष 1995 में थापित हुआ जो कि विश्व के व्यापार उदारीकरण में बहुत बड़ी भूमिका निभा रहा है। विश्व व्यापार संगठन को भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण और पुनः औपनिवेशीकरण (re-colonization) का सबसे बड़ा प्रतीक माना जाता है। इन सभी प्रक्रियाओं को विशालकाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा आगे धाकेला जा रहा है जो लगातार अपने व्यापार को बढ़ाने, धान कमाने के मार्ग में आगे है। इन्हें कोई ऋर्क नहीं पड़ता कि इससे गरीबों, असहाय और दबे कुचले किसानों के जीवन और रोजगार पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

व्यापार उदारीकरण का अर्थ व्यापार को हर तरह के अवराधों से मुक्त करना है। इसे मुक्त व्यापार भी कहा जाता है। दूसरे अर्थ में, यह प्रतिबन्धों तथा अवरोधों को हटाना या उनमें कटौती करना जिससे देशों के बीच माल और सेवाओं का प्रवाह आसान और सहज बनाया जा सके।

इसमें दो तरह के अवरोधों को शामिल किया गया है।

i. प्रशुल्क (चुंगी, सरचार्ज और निर्यात सब्सिडी)

ii. गैर-प्रशुल्क अवरोध (लाइसेंस के नियम और विनियम, कोटा और अन्य आवश्यकताएँ इत्यादि)

व्यापार उदारीकरण के लिए घरेलू नीतियों को अपनाना पड़ता है, जो कि निम्नलिखित हो-

1. स्थानीय मुद्रा का अवमूल्यन
2. लाइसेंस आवश्यकताओं में ढील

3. सरकारी नियमों को कमजोर बनाकर निवेश के अवसर खोलना

4. खाद्य फसलों के बजाय निर्यात फसलों को बढ़ावा देना, घरेलू बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोलना, इत्यादि।

निजीकरण, व्यापार उदारीकरण में अहम भूमिका निभाता हो, जिससे कि व्यापार को बढ़ावा मिले और धान का लाभ हो। जहाँ तक किसानों की स्थिति का सवाल है तो उदारीकरण से भारत जैसे देशों में जहाँ तो किसानों की स्थिति बहुत ज्यादा प्रभावित हो कृषि वस्तुओं का व्यापार होने से सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है। कृषि के क्षेत्र में व्यापार को उदारीकरण किया गया जिससे कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में चला गया।

कृषि पर उदारीकरण का प्रभाव

भारत जैसे दशों कृषि पर सबसे ज्यादा जीवन निर्भर करती है यह कहना गलत नहीं होगा कि भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि क्षेत्र में व्यापार उदारीकरण से खासतौर पर मात्रत्मक प्रतिबन्धों को हटाने के कारण भारत के आयाम में बाढ़ आ गई है साथ में कृषि संबंधित वस्तुओं के दाम को मजबूरन घटाना पड़ा है। भारतीय उत्पादकों के अनुसार सस्ते आयातित उत्पादों की वजह से स्थानीय किसान प्रतिस्पर्धा से बाहर होते जा रहे हैं और उनका कृषि सम्बन्धित व्यवसाय नष्ट हो रहा है। अब भारत बाहर के आयात पर निर्भर होता जा रहा है। भारत की खपत का करीब 70 प्रतिशत से भी ज्यादा वनस्पति तेल हमें विदेशी विक्रेताओं से प्राप्त होता जा रहा है।

खाद्य तेल में व्यापार उदारीकरण

भारत में हो रहे व्यापार उदारीकरण का सबसे गम्भीर भारत खाद्य तेल के क्षेत्र और तिलह क्षेत्र में देखने को मिले हैं। भारत में जहाँ 'आत्मनिर्भर' की बात कही जा रही थी जो अब धीरे-धीरे 'आयात- निर्भरता' बनती जा रही है। छोटे 'उद्यम आधारित अर्थव्यवस्था' से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अधिपत्य होता जा रह है। भारत में जहाँ पहले खुला तेल विक्रय होता था वहीं अब पैकेट बंद ब्रान्डेड तेल का भरपूर इस्तेमाल किया जा रहा है।

उपभोक्ता अब पारम्परिक तेलों के अलावा ताड़ का तेल जैसे खाद्य तेलों को भी स्वीकार करने लगे थे। भारत में यही हाल रहा तो बहुत जल्द ये बहुराष्ट्र कम्पनियाँ कारगिल (Cargill), कोन आगरा (Con Agra), बुने (Bunge) जैसे कम्पनियों के कब्जे आ जायेगी।

वनस्पति तेल परिदृश्य में पिछले वर्ष से खाद्य तेलों की घरेलू खपत में भारी मात्र में वृद्धि हुई है और वर्ष 2016-17 में 23 मिलियन तन से अधिक खाद्य तेल की खपत हुई है।

तिलहन का वर्षवार क्षेत्र, उत्पादन और ऊपज

वर्ष	*खरीफ*			*रबी*			*कुल*		
	क्षेत्र	*उत्पादन*	*उपज*	*क्षेत्र*	*उत्पादन*	*उपज*	*क्षेत्र*	*उत्पादन*	*उपज*
2004-05	17.24	14.15	820	10.28	10.20	993	27.52	24.35	885
2014-15	18.20	19.19	1055	7.40	8.32	1125	25.60	27.51	1075
2015-16	18.86	16.68	884	7.22	8.57	1186	26.08	25.25	968
2016-17*	18.85	22.40	1188	7.35	9.70	1318	26.20	32.10	1225
2017-18**	17.42	20.68	1187						

स्रोत: वाणिज्य विभाग

तेल सम्बन्धी कृषि फसलों का उत्पादन

(उत्पादन मिलीयन टन में)

क्र.सं.	*फसल*	*औसत-11वी योजना*	*12वी योजना*			*2017.18***		
		(2007-08 से 2011-12)	*2012.13*	*2013.14*	*2014.15*	*2015.16*	*2016.17**	
1	मूंगफली	7.40	4.70	9.71	7.40	6.73	7.56	6.21

2	एरंड	1.38	1.96	1.73	1.87	1.75	1.42	1.40
3	तिल	0.74	0.69	0.71	0.83	0.85	0.78	0.66
4	रामतिल	0.11	0.10	0.10	0.08	0.07	0.08	0.10
5	आर एंड एम	6.89	8.03	7.88	6.28	6.80	7.98	
6	अलसी	0.16	0.15	0.14	0.15	0.13	0.15	
7	कुसुम	0.18	0.11	0.11	0.09	0.05	0.08	
8	सूरजमुखी	0.93	0.54	0.50	0.43	0.30	0.24	0.09
9	सोयाबीन	11.16	14.67	11.86	10.37	8.57	13.79	12.22
कुल तिलहन		28.93	30.94	32.75	27.75	25.25	32.10	20.68

स्रोत: वाणिज्य विभाग

दाल पर उदारीकरण का प्रभाव

भारत विश्व में दाल का सबसे बड़ा उत्पादक भी है और उपभोगता भी। पूरे विश्व का 25 प्रतिशत दाल का उत्पादन भारत में होता है, और विश्व के 27 प्रतिशत दाल की खपत भी भारत में होती है। मजेदार बात तो यह है कि दालों का सर्वाधिक आयात (15 प्रतिशत) करने वाला देश भी भारत ही है।

'वाणिज्यिक सूचना और सांख्यिकी के महानिदेशालय' (Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics)के अनुसार वर्ष 200-02 में भारत ने 22 लाख टन दालों का आयात किया, जो वर्ष 2004-05 में घट कर 13 लाख टन हो गया। वर्ष 2004-05 के बाद से दालों का आयात लगातार बढ़ा है, और वर्ष 2012-13 तक यह बढ़कर 38 लाख टन हो गया। मूल्य के आधार पर, वर्ष 2001-02 में कुल 70 करोड़ अमेरिकी डॉलर की दालों का आयात हुआ। यह वर्ष 2012-13 में बढ़कर 230 करोड़ अमेरिकी डॉलर हो गया। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाया क्योंकि दालों को खुले सामान्य लाईसेंस की श्रेणी में डाल दिया गया। भारत पिछले 37 वर्षों से दालों का आयात करता आ रहा है। करीब 25 वर्ष पहले मात्र 4 लाख टन दालों का आयात हुआ था। पूरी सम्भावना है कि इस वर्ष यह बढ़ कर 55 लाख टन हो जाएगा। इनती अधिक मात्र में दालों का आयात इसलिए भी सम्भव हो पाया क्योंकि भारत ने अपना आयात प्रशुल्क काफी कम कर दिया है। जून 2001 में यह आयात प्रशुल्क 5 प्रतिशत था। यह बढ़कर मार्च 2003 में 10 प्रतिशत हो गया। पर जून 2006 के बाद से इसे पूरी तरह से खत्म कर दिया गया। आयात प्रशुल्क नहीं होने की वजह से वर्ष 2014-15 में सबसे ज्यादा 41 लाख टन दालों का आयात हुआ जो अपने आपमें एक रिकॉर्ड है। इतनी बड़ी मात्र में दालों का आयात होने के बावजूद भी दाल की कीमतें आसमान छू रही हैं। पिछले 2-3 वर्षों में दालें 3 गुना ज्यादा मंहगी हो गई हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली में नवम्बर 2015 के महीने में अरहर दाल 205 रु. प्रति किलो बिक रही थी। ज्यादा दाम होने के कारण और अधिक मात्र में दालों का आयात किया गया है, यह जानते हुए भी कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में दालों की कमी है और ज्यादातर दाल उत्पादक देश महंगी दाल बेच रहे हैं। दालों के दाम बढ़ने की वजह से गरीबों को उनके एकमात्र प्रोटीन के स्रोत से वंचित रहना पड़ रहा है। इस वजह से देश की बड़ी जनसंख्या के ऊपर पोषण की असुरक्षा का खतरा मंडरा रहा है।

चावल पर उदारीकरण का प्रभाव

विश्व में दूसरी स्तर पर चावल सर्वाधिक क्षेत्रफल पर उगाई जाती है। विश्व के लगभग 15 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर 45 करोड़ टन चावल का उत्पादन होता है। भारत विश्व में चावल का सबसे बड़ा उत्पादित देश है। भारत विश्व के कुल ऊपज चावल का 20: हिस्सा है। भारत में 4.2 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर 9.2 करोड़ मीट्रिक टन चावल का उत्पादन होता है। परन्तु यह उदारीकरण के प्रभाव के कारण पैकेट बन्द तरीकों से बेचा जा रहा है और इसका भरपूर फायदा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ उठा रहे हैं।

भारत आज चावल, कपास, गन्ना, काजू एरण्ड बीज और मूंगफली में आयात करने वाला देश के रूप में उभरा है। डब्ल्यू.टी. ओ. की व्यापार सांख्यिकी के अनुसार वर्ष 2015 में विश्व कृषि व्यापार में भारत के कृषि निर्यात और आयात की हिस्सेदारी क्रमश: 2.26: और 1.74: थी और कृषि जी.डी.पी. के प्रतिशत के रूप में कृषि निर्यात वर्ष 2012-13 के अनुसार 13.56: से घटकर वर्ष 2015-16 में 9.90: हो गया हो और वर्ष 2015-16 के दौरान कृषि जी.डी.पी. के रूप में कृषि आयात 5.71: से बढ़कर 6.45:

हो गया है।

कृषि में निर्यात और आयात

कृषि वस्तुओं का निर्यात विस्तृत अंतर्राष्ट्रीय बाजार का लाभ उठाने में उत्पादकों की सहायता करता है, जससे उनके घरेलू उत्पादन की भागीदारी बढ़ती है। आज निर्यातक फसलों में चावल, कपास और मक्का क्षेत्र है। इन कृषिगत फसलों के विकास और उत्पादन की वृद्धि दर पर कमी आई है।

कृषि निर्यात वर्ष 2012-13 के 13.90 से घटकर वर्ष 2016-17 में 12.27: हो गया है।

भारत की 10 प्रमुख कृषि जिसं (निर्यात)

क्र.स.	जिस	2012-13	2013-14	2014-15	2015-16	2016-17
1.	चावल (बासमती)	19409	29292	27599	22719	21604
2.	मसाले	15177	15146	14842	16630	19442
3.	चावल (बासमती के अलावा)	14449	17795	20336	15483	17145
4.	कच्चा कपास	20277	22338	11643	12821	10982
5.	चीनी	8576	7179	5327	9825	8678
6.	ताजा सब्जियाँ	3407	5384	4612	5237	5772
7.	कॉफी	4711	4799	4973	5125	5668
8.	मूंगफली	4065	3187	4675	4075	5454
9.	तैलीय भोजन	16519	17070	8128	3599	5371
10.	काजू	4067	5095	5566	5028	5303
कुल कृषि और संबद्ध निर्यात		**227193**	**262779**	**239471**	**215396**	**227554**

स्रोत: वाणिज्य विभाग

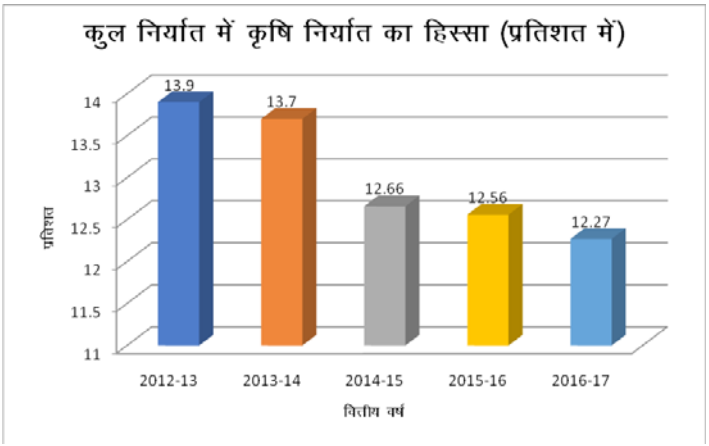

स्रोत: वाणिज्य विभाग

कृषिगत आयात

भारत में कृषि आयात वर्ष 2012-13 में 95,719 करोड़ रुपये से बढ़कर वर्ष 2016-17 में 72: वृद्धि के साथ 164680 करोड़

रुपये हो गया है। इस आयात में मुख्यत: वनस्पति तेल, दलहन, ताजे ग्ल, काजू, मसाले, चीनी आदि हो। भारत के कुल आयात में कृषि आयात का हिस्सा वर्ष 2012-13 में 3.59: थी जो वर्ष 2016-17 में 6.42: हो गई, जो कि कृषि आयात में दोगुना वृद्धि है।

भारत की 10 प्रमुख कृषि जिंस (आयात)

क्र. सं.	जिंस	2012.13	2013.14	2014.15	2015.16	2016.17
1.	वनस्पति तेल	53562	44038	64894	68677	73047
2.	दलहन	13345	11037	17063	25619	28523
3.	ताजा फल	6180	7716	9544	11072	11241
4.	काजू	5434	4668	6600	8701	9027
5.	गेहूँ	6	27	61	873	8509
6.	चीनी	3094	2287	3668	4038	6868
7.	कच्चा कपास	2467	2376	3101	2566	6337
8.	मसाले	2716	3452	4392	5400	5758
9.	विविध प्रसंस्कृत वस्तुएं	1268	1474	1749	1811	2116
10.	कोको उत्पाद	1049	1072	1551	1399	1540
	तैलीय भोजन	210	200	273	430	975
भारत का कुल कृषि और संबद्ध आयात		95719	85727	121238	140311	164680

स्रोत: वाणिज्य विभाग

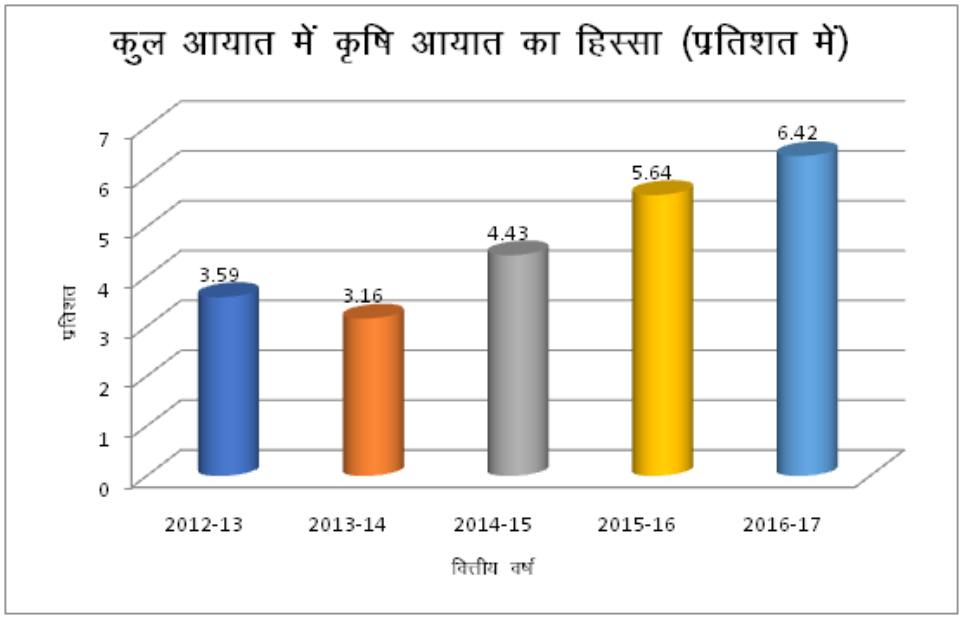

स्रोत: वाणिज्य विभाग

वर्ष 2016-17 के दौरान निर्यात और आयात में कृषि उत्पादों की हिस्सेदारी।

वर्ष 2016-17 में निर्यात का हिस्सा (10 प्रमुख वस्तुएँ)

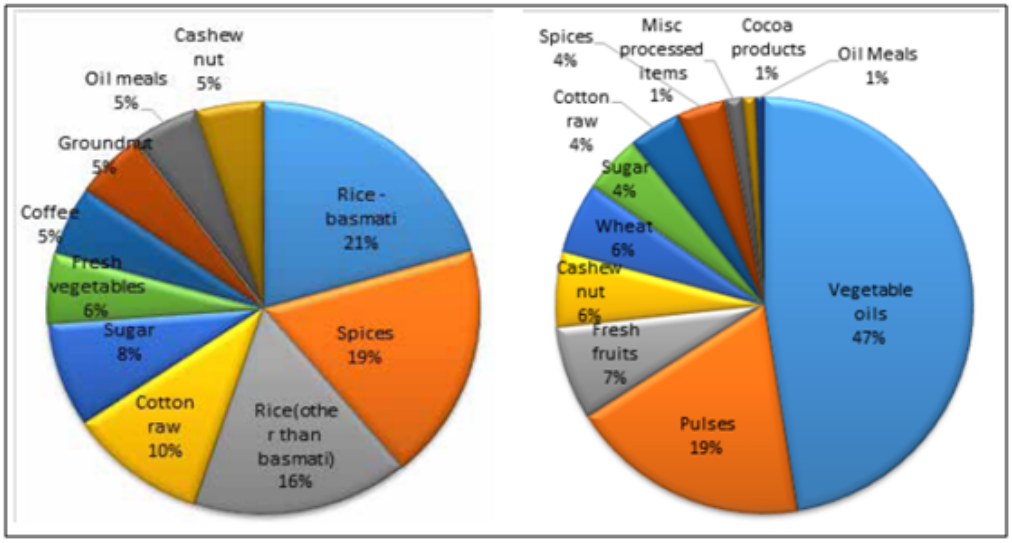

वर्ष 2016-17 में आयात का हिस्सा (10 प्रमुख वस्तुएँ)

स्रोत: वाणिज्य विभाग

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत तेल में आयात निर्भरता ज्यादा हो रहा है, जो कि बदलने की आवश्यकता है। आत्मनिर्भर भारत बनने के लिए कृषि क्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाना जरूरी हो। इसके लिए विदेशी मुद्रा अर्जित करने की आवश्यकता है, जिसके लिए कृषि निर्यात को बढ़ावा देना जरूरी है। विश्व के विकासशील देश उदारीकरण का भरपूर लाभ उठा रहे हैं, परन्तु आज भारत आयात में आगे हो रहा है, जबकि उदारीकरण का लाभ उठाकर निर्यात में वृद्धि करने की आवश्यकता थी, इसके लिए सरकार को अनेकों प्रयास करने की जरूरत है।

सुझाव

भारत में उदारीकरण से जो कृषि के क्षेत्र में आयात में वृद्धि हुई है, उसे कम करके निर्यात को प्रोत्साहित करना चाहिए। अगर कृषि आयात में वृद्धि बढ़ती रही तो भारत आयात पर निर्भर हो जायेंगे जो कि उचित नहीं है। कृषि में निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए किसानों को सुविधा उपलब्धा करना प्राथमिक कार्य है, जिसमें मुख्यत: -

* बिजली की अनियमितता को ठीक करना
* बुनियादी सेवाएँ उपलब्धा करना
* सब्सिडी में बढ़ोत्तरी करना
* पैकेट बन्द उत्पाद का उपयोग कम करना
* देश में स्वदेश निर्मित भावना होने की आवश्यकता है, जिसके तहत घरेलू कृषि उत्पाद का भरपूर उपयोग कर सकते हैं।

भारत को बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मांसा ज्ञात होनी चाहिए। यह पैकेट बंद उत्पादों का इस्तेमाल बंद कर के लोकल से व्होकल की तरफ रूख करना है, जिससे देश का विकास हो सके। साथ ही इस बात पर ध्यान केन्द्रित करना है कि देश कृषिगत उत्पाद उपयोग ज्यादा से ज्यादा करें, जिससे कि देश के स्वामित्व में वृद्धि हो।

संदर्भ-सूची

1. Dr. Somesaekhar, कश्मीर, "भारतीय कृषि एवं चुनौतियां पर वैश्वीकरण का प्रभाव : एक गंभीर समीक्षा", कला वाणिज्य और साहित्य के इंटरनेशनल जर्नल, वॉल्यूम 1, अंक 20, फरवरी 2013, आईएसएसएन 2320-4370
2. गुप्ता, चंदन सेन, "भूमंडलीकरण कंसेप्चूअलाइजिंग", आर्थिक और च्वसपजपबंसॅममासल, 18 अगस्त, 2001
3. ठाकुर, एस, "भूमंडलीकरण के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था", तीसरा अवधारणा, जून, 1997
4. यादव, एस.एस. (2001), "विश्व व्यापार संगठन और भारतीय कृषि पर इसका प्रभाव", योजना, वॉल्यूम-45
5. कौशिक, संजय, भारद्वाज सुनील और राजीव गोयल, "वैश्वीकरण और भारतीय कृषि पर इसका प्रभाव भारत में", इंटरनेशनल जर्नल आफॅ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज, वॉल्यूम 2, नंबर 1, जनवरी 2013, आईएसएसएनः 2278-6236

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में नारी के विविध रूप

डॉ० नारायण

हिन्दी विभाग, तिरुपति विश्वविद्यालय

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की रचनाकार एक लेखिका हैं। इस उपन्यास में लेखिका का भोगा हुआ यथार्थ चित्रित हुआ है। ऐसा करना लेखिका की एक स्वाभाविक-सी प्रवृत्ति है। लेखिका ने अपने अनुभव से नारी जीवन के विविध पक्षों पर बड़ी कुशलता से कलम चलाई है। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में नारी की सूक्ष्म अनुभूतियों, सुकोमल भावनाओं तथा संवेदनाओं का बड़ी बारीकी से अंकन किया है। लेखिका ने उपन्यास में नारी के विविध रूपों को दर्शाया है। उषा जी ने इस उपन्यास में नारी के जिन रूपों का अंकन इस उपन्यास में किया है वे इस प्रकार हैं

3.1 कन्या

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में राधिका का पहला रूप कन्या के तौर पर सामने आता है। वह एक प्रतिष्ठित व्यक्तित्व (अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान) हैं। वह अपने के साथ भावात्मक रूप से जुड़ी हुई है। माँ की मृत्यु के बाद उसका स्नेह और सम्मान पिता के प्रति द्विगुणित हो जाता है। वह हर छोटे-बड़े कामों में पिता का हाथ बँटाती है। किंतु जब उसके पिता राधिका की हम उप्र लड़की विद्या से विवाह कर लेते हैं तब राधिका अंदर से टूट जाती है। वह विद्या को अपनी माँ के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती। विद्या ने राधिका को समझाने का प्रयास किया, किंतु इस प्रयत्न में वह असफल रहती है।

अपने पिता से अत्यंत स्नेह करने वाली पुत्री राधिका पिता के दूसरे विवाह से खिन्न हो जाती है। वह पिता से घृणा करने लगती है। वह मन ही मन अपने पिता से बदला लेने की ठान लेती है। वह बीस साल की है। उसके पिता तेड्स वर्ष की विद्या से विवाह कर लेते हैं। अपनी हम उम्र लड़की को वह माँ कह कर संबोधित नहीं कर पाती। पिता के इस कार्य का बदला लेने के लिए वह तलाकशुदा विदेशी आदमी डेनियल से विवाह कर लेती है।

3.2 बहन

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में राधिका छोटी बहन है। उसका एक बड़ा भाई है। प्रारंभ में राधिका का लगाव माँ के साथ रहा है। माँ की मृत्यु के बाद लंबे समय तक वह पिता के वात्सल्य स्नेह से जुड़ी रहती है। जब राधिका का बड़ा भाई विवाह योग्य हो जाता है, तब वह एक धनी व्यवसायी की पुत्री के साथ विवाह कर लेता है। वह अपनी छोटी बहन की जिम्मेदारी लेने के बजाए अपने ससुराल में ससुर के व्यापार में हाथ बँटाने लगता है। वह प्रेम-विवाह कर चुका है अत: उसका झुकाव सदैव पत्नी और अपने ससुराल के प्रति बना रहता है। राधिका अपने परिवार में कन्या और बहन के रूप में उपेक्षित ही रहती है। हालाँकि वह अपने भाई से स्नेह की अपेक्षा करती रही किंतु उसका भाई प्रेम विवाह से प्रसन्न होकर ससुराल के वैभव तथा ऐश्वर्य में कहीं खो-सा गया।

कुल मिलाकर राधिका को कन्या के रूप में न तो माँ का स्नेह लंबे समय तक मिल पाया और न ही पिता का। हैरत की बात यह कि उसे अपने बड़े भाई से भी आवश्यक स्नेह नसीब नहीं हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में राधिका की 'सहेली' भी विद्या की बहन है। इस प्रकार ये दो युवतियाँ 'सहेली और विद्या' भी बहन के रूप में चित्रित हुई है। उपन्यास में दोनों की भूमिका बहन के रूप में 'न' के बराबर है।

3.3 पत्नी

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में लेखिका ने पत्नी के रूप में कई स्त्री पात्रों को चित्रित किया है। उपन्यास में पहली स्त्री पात्र राधिका की माँ है जो उसके पिता की पत्नी हैं। पत्नी के रूप में वह लंबे समय तक अपने पति के साथ जीवन यापन नहीं कर पाती। उसकी जल्दी मृत्यु हो जाने के कारण उसके पति अर्थात राधिका के पिता विधुर का जीवन अठारह वर्ष तक व्यतीत करते हैं।

जब राधिका के पिता दूसरा विवाह विद्या से करते हैं तब विद्या पत्नी के रूप में अपनी भूमिका अदा करती है। विद्या सिर्फ 23 वर्ष की है। उसके पति आयु में उससे काफी बड़े हैं। ऐसे में पत्नी के रूप में विद्या का विवाह बेमेल विवाह है। इस बेमेल विवाह के कारण वह अपना दांपत्य सुख प्राप्त नहीं कर पाती। उसका मानसिक तथा भावात्मक स्तर अपने पति से भिन्न होता है। उसके पति एक परिपक्व और दो बच्चों के पिता हैं। जबकि विद्या राधिका से महज तीन वर्ष बड़ी हैं। विद्या अपनी सौतेली पुत्री राधिका के साथ असहज महसूस करती है। राधिका का बड़ा भाई एक बिजनेस मैन की बेटी से विवाह कर अलग रहता है। यदि वह भी अपने ही परिवार में रहता तो परिवार में विद्या के लिए स्थिति और अधिक असहज हो जाती। इस तरह विद्या का दांपत्य जीवन दो कारणों से दुखी है-पहला, उसके पति उप्र में लगभग उसके पिता के समान हैं। दूसरा दो सौतेली संतानें समवयस्क हैं। इस तरह वह न तो खुलकर अपने पति से बातें कर सकती है और न ही स्वतंत्र जीवन जी सकती है। भौतिक रूप से संपन्न होने पर भी वह मानसिक तथा भावनात्मक रूप से संत्रास झेलती है। इस मनोवैज्ञानिक समस्या को रेखांकित करना केवल उषा प्रियंवदा जैसे रचनाकारों के बस की ही बात है।

उधर अपने पिता के प्रतिशोध में राधिका जानबूझ कर अपनी उप्र से बीस-पच्चीस वर्ष बड़े पुरुष डैनियल पीटरसन से विवाह करती है। अब चूँकि यह विवाह पिता बदला लेने के लिए किया गया था, अत: कुछ ही वर्ष बाद यह विवाह टूट जाता है। डैनियल स्वयं एक बार विवाह कर चुका है। ऐसे में राधिका उसकी दूसरी पत्नी के रूप में अधिक समय तक इस वैवाहिक बंधन में बँध ाकर नहीं रह सकती है। जब वह डेनियल के साथ रहती थी तब भी आयु के अंतर के कारण सुखी जीवन यापन नहीं कर सकी। पत्नी के रूप में उसके लिए यह विवाह एक बेमेल विवाह था। साथ ही पति- पत्नी की सांस्कृतिक भिन्नता के कारण पत्नी को दुखी होकर अलग होना पड़ा। कुल मिलाकर राधिका और डेनियल का विवाह आयु की भिन्नता और सांस्कृतिक वैषम्य के कारण खंडित हो जाता है। यह विवाह पत्नी के रूप में राधिका के लिए एक बुरे सपने जैसा है।

डेनियल से अलग होने के बाद विद्या के जीवन में अक्षय तथा मनीष दो पुरुष आते हैं। अक्षय के प्रति वह आकर्षित होती है किंतु बह राधिका के बीते हुए समय के कारण उसे हृदय से स्वीकार नहीं कर पाता। दूसरी ओर मनीष राधिका को उसके विगत के साथ स्वीकार करने की हिम्मत दिखाता है, किंतु राधिका मनीष को टॉम बॉय के कारण उसके प्रति संशकित रहती है। इस तरह राधिका के जीवन में तीन पुरुष आते हैं किंतु वह किसी भी पुरुष से अपेक्षित प्रेम प्राप्त नहीं कर पाती। उसका दांपत्य जीवन असफल ही माना जाएगा।

इस तरह लेखिका ने वर्तमान दौर में पत्नी के रूप में नारी की असफलता उसके मानसिक द्वन्द्र को मनोवैज्ञनिक धरातल पर रेखांकित करने का सार्थक प्रयास किया है। उच्च मध्यम वर्गीय परिवार में पत्नी की यह समस्या केवल और केवल मानसिक है। कहने का अर्थ यह है कि सर्वसाधन संपन्न होने के बावजूद स्त्री भावनात्मक दृष्टि से स्वदेश तथा विदेश दोनों स्थानों पर अतृप्त ही रहती है।

3.4 भाभी

बड़ी भाभी को भारतीय संस्कृति में माँ का दर्जा प्राप्त है। भारतीय परिवारों में ननद और भाभी के रिश्ते भी बड़े चर्चित रहे हैं। रूकोगी नहीं राधिका उपन्यास में राधिका की बड़ी भाभी का राधिका के बड़े भाई के साथ प्रेम विवाह हुआ है। राधिका की भाभी एक बड़े व्यापारी की बेटी है। उसके पास धन, दौलत और अन्य सुख सुविधाओं की कोई कमी नहीं है। वह विवाह के बाद अपना अधिकांश समय अपने पति के साथ अपने पिता के घर में व्यतीत होता है। अब चूँकि ननद और भाभी के बीच एक निश्चित दूरी बनी रहती है अत: यह रिश्ता चर्चा का विषय नहीं बन पाया।

मनोवैज्ञनिक दृष्टि से अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि विवाह के बाद ननद के मन में अपने बड़े भाई को लेकर एक असुरक्षा की भावना जागृत हो उठती है जिसके कारण ननद के मन में हीन भावना उत्पन्न होने लगती है परिणामस्वरूप वह भाई के साथ अपने स्नेहिल रिश्ते को लेकर संशकित रहती है। दूसरी ओर भाभी के मन में ननद को लेकर एक आतंक का भावना रहती है। उसे लगता है कि उसके पति पर केवल उसी का अधिकार है। वह अपने पति पर शतप्रतिशत अपना अधिकार चाहती है। वह अपने पति के प्रेम को किसी अन्य के साथ साझा हरगिज नहीं कर सकती। ऐसा करने से पति पर उसका एकाधिकार कम हो जाता है।

कुल मिलाकर ननद, भाभी का यह रिश्ता एक अधिकार और शक्ति का खेल जान पड़ता है। इस संबंध के निर्वाह में ननद-भाभी के बीच एक अदृश्य रस्साकस्सी चलती है। जिससे भाई को कभी बहन अपने पक्ष में करना चाहती है तो कभी पत्नी अपने पति को अपने पक्ष में रखकर सुरक्षित महसूस करती है। कई अवसरों पर पुरुष इन दो रिश्तों के बीच सैण्डविच बन जाता है। संबंध को लेकर ननद भाभी तभी सुखी रह सकते हैं जब दोनों मर्यादा में रहकर अपने अधिकार का उपयोग करें।

3.5 नानी

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में स्त्री के विविध रूपों के अंतर्गत 'नानी' का भी चित्रण हुआ है। यह नानी उपन्यास की नायिका राधिका की नानी है। नानी के तीन बेटे हैं, किंतु बह बारी-बारी से तीनों बेटों के साथ रहती है। जब राधिका अमेरिका से लौटने के बाद अपनी नानी से मिलने जाती है तब वह नानी के लिए फल, मिठाईयाँ और शीतल पेय की कई बोतलें लंकर जाती है। इस पर नानी पूछती हैं-''इन सभी वस्तुओं की विनय के घर से लाई? क्या विनय के पापा ने दिए?''[1] इसका उत्तर देती हुई राधिका कहती है-नहीं नानी मैंने अमरीका में नौकरी करके कुछ रुपए बचाए थे उन्हीं में से कुछ रुपए खर्च किए हैं।''[2] दरअसल, राधिका ने इतने रुपए जमाकर रखे हैं कि वह यदि एक साल नौकरी न करे तब भी वह आराम से अपना खर्च उठा सकती है।

राधिका जब नानी से मिलने जाती है, तब नानी उसे देखकर बहुत प्रसन्न होती हैं। उन्हें राधिका में अपनी बेटी अर्थात राधिका की माँ की प्रतिछाया दिखाई पड़ती है। नानी राधिका को देखती ही अपनी बेटी की याद में खो जाती है। नानी राधिका के लिए घी में भूनकर सूजी का हलवा पकाती हैं। सूजी बहुत मीठी थी। इसलिए राधिका थोड़ी सी सूजी खा पाती है। नानी की उप्र अड़सठ वर्ष हो गई है। राधिका ने ध्यान दिया कि तीन-चार सालों के अंतराल में ही नानी के सारे दाँत झड़ चुके हैं। नानी का शरीर तो दुर्बल हो ही गया है उसकी साड़ी भी जगह-जगह फट गई है। नानी ने साड़ी को कई स्थानों पर हाथ से सिल रखा है।

नानी बेईमानी से धन कमाने के विरुद्ध है। उसे पता है कि विनय ने काली कमाई के बहुत से रुपए लॉकरों में जमा किए हैं, लेकिन वह अपनी बहन का खर्च भी नहीं उठा पाता। इससे नाराज होकर वह कहती है-''विनय से इतना भी नहीं होता कि बहन का खर्चा भी उठा ले-भले ही लॉकरों में ब्लैक का रुपया सड़ता रहे।''

इस पर राधिका कहती है-क्या कहती हो नन्ना?'' ''बड़ दा...''

नानी राधिका को जवाब देती हुई कहती है-''मैं सब जानती हूँ। सारा शहर जानता है। आजकल ब्लैक कहाँ नहीं चल रहा है? नानी राधिका को सूजी का हलवा खिलाने के बाद चाय पिलाना चाहती है। गर्मी का हवाला देकर राधिका चाय पीने से इंकार कर देती है। अब तक नानी अलमारी से चाय के प्याले निकाल चुकी थी। राधिका की बात सुनकर वह चाय छोड़कर आम की दो-एक फाके खाने लगती है। इसके बाद राधिका नानी को मिल्क पुडिंग खिलाती है। नानी को यह मूँग की दाल की-सी बर्फी लगती है।

भारतीय समाज की हर नानी की तरह राधिका की नानी भी यह चाहती है उसकी आँखों के सामने राधिका का विवाह हो जाए। नानी कहती हैं-''मुझे तो चिंता लगी रहती है। चाहती हूँ, मेरे सामने ही तुम्हारा ब्याहकाज हो जाए, तो चौन आए। तेरी माँ कम उम्र में चली गई। विनय की शादी में हमें पूछता ही कौन? बस तू है, तेरे लिए दो-एक चीजें दबा कर रखे हूँ।''

ऐसा सुनकर राधिका को लगा कि नानी भावुक और उदास हो गई हैं। उनका दिल रखने के लिए वह कहती है- ''अच्छा? क्या रखा है?'' ''अरे, ऐसी कया बड़ी चीज है। मगर बहुओं को पता नहीं है। तेरे नाना के कुर्ते के बटन हैं, तेरे लिए एक बाजू बंद है।''

बातें करते-करते इस बीच नानी को हिचकी आ जाती है। राधिका नानी से कोकाकोला पीने का आग्रह करती है। नानी कहती है-''गाँव की उस हवेली की तो तुम्हें याद होगी राधिका। अब तो कुछ भी नहीं रहा, सुना है सरकारी स्कूल खुल गया है। कैसी

धूम से तेरे पापा की बारात चढ़ी थी। कानपुर से तीन नाचने वालियाँ आई। आसपास के कई गाँवों के असंख्य लोग आकर जमा हो गए थे। तेरे बाबा भी शाहदिल थे, शाहदिल। तेरी माँ पर भी उस दिन जैसे रूप बरस रहा था। पर भाग्य को क्या किया जाए चार-पाँच बरस ही जी पाई उसके बाद। अब तो दुनिया ही बदल गई। जमीन गई, जायदाद गई, पुरखों की वह हवेली भी बेचनी पड़ी। सत्तावन के गदर में उस हवेली के बाहर जमकर मोर्चा हुआ था। दो-एक बंदूकें चाहे अब भी पड़ी हों।''[7]

बात करते-करते नानी हड़बड़ा कर उठी और राधिका को कोठरी की ओर आने का इशारा करके अलमारी का ताला खोलकर उन्होंने एक पुराना-सा रूमाल निकाला। उस रूमाल में दो अठन्नियाँ थीं। उन्होंने राधिका की ओर बढ़ाते हुए कहा-''ये लो, सामान लाई हो न? ''नन्ना, उस सबके पैसे लूँगी?''

राधिका ने नाराज होकर कहा। इस पर नानी बोली-''अरे, तो क्या हुआ? बेटी का पैसा खाते अच्छा नहीं लगता। बुढ़ापे में यही बचा है।'' नानी के विशेष आग्रह पर राधिका ने एक अठन्नी उठा ली, मुट्ठी बाँधती हुई बोली, ''बस, यह काफी है।'

नानी ने अधिक आग्रह न करते हुए राधिका को बाहर तक छोड़ दिया और समझाते हुए कहा-रात को कहारी सोने आएगी। तुम फिक्र मत करना।''[10]

नानी की दी हुई अठन्नी को कसकर मुट्ठी में ताबीज की तरह दबाए राधिका गाड़ी में बैठी और कहा-''नानी, कभी उधर आओ न।'' ''गाड़ी भेजोगी तो आ जाऊँगी।''[11] पोपली हँसी से नानी ने कहा। इस तरह इस उपन्यास में एक ऐसी नानी का स्वाभाविक चित्रण हुआ है, जो मूलधन से अधिक व्याज से स्नेह करती हैं। राधिका की माँ की मृत्यु हो जाने के उपरांत नानी राधिका से अधिक स्नेह करने लगती हैं। कुल मिलाकर इस उपन्यास में भारत की एक परंपरागत नानी का चित्रण किया गया है, जो नई पीढ़ी की मानसिकता को भली-भाँति जानती-समझती है।

3.6 माता

''रूकोगी नहीं राधिका'' उपन्यास में माँ के रूप में दो स्त्रियों को चित्रित किया गया है। पहली स्त्री राधिका की माँ थी। वह विवाह के समय एक सुंदरतम स्त्री थी। दो बच्चों के जन्म के बाद उनकी मृत्यु जल्दी हो जाती है। उनकी पहली संतान विनय तथा दूसरी संतान राधिका थी। माँ के रूप में वह अपनी पुत्री राधिका को अधिक स्नेह नहीं दे पाई।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवलोकन करने पर पता चलता है कि माँ का वात्सल्य प्रेम न पा सकने के कारण बचपन से ही राधिका एक छोड़ी हुई बच्ची की तरह बड़ी हुई। हालांकि समृद्ध परिवार में जन्म लेने के कारण उसे खाने-पीने तथा पहनने-ओढ़ने की कभी कोई कमी नहीं रही। परिणाम स्वरूप राधिका का झुकाव माँ की मृत्यु के पिता की ओर हो गया। इसका दुष्प्रभाव उसे जीवनपर्यत झेलना पड़ा।

माता के रूप में प्रेमा अर्थात् शंकर की पत्नी का भी चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। प्रेमा दो बच्चों की माँ है। प्रेमा की बड़ी बेटी का नाम अनिला है तथा छोटी बेटी का नाम नीना।

माँ के रूप में ''प्रेमा'' अपनी दोनों बेटियों को सजने-सँवरने की बहुत छूट देती है। अनिला और नीना दोनों कोश्रृंगार करना अच्छा लगता है। ''प्रेमा'' एक खुले विचारों की माँ है। वह अपने पति शंकर के साथ मिलकर अक्षय तथा अनिला को मिलने जुलने की खूब छूट देती हैं। वैसे वह चाहती हैं कि अक्षय से उनकी बेटी का विवाह हो। एक आम भारतीय माँ की तरह वह यह भी चाहती हैं कि अक्षय को वे विवाह के बाद अपना घर जबाई बना ले।

प्रेमा किसी भी बात को अपने मन में छिपाकर नहीं रह सकती हैं। एक बार जब अक्षय प्रेमा-शंकर से मिले बिना सीधे ऊपर राधिका के कमरे में चला जाता है जब आँगन में आकर वह कहती हैं-''अच्छा, तो अब चोरी-चोरी ऊपर जाने लगे।!''

यद्यपि उनकी इस बेबाकी पर अक्षय थोड़ा नाराज हो गया। उधर राधिका की अप्रत्यक्ष रूप से यह अहसास हो गया कि अक्षय का यहाँ आना लोगों को अच्छा नहीं लगेगा। कारण, ''यह बह देश नहीं है जहाँ दो अविवाहित व्यक्तियों की मैत्री बहुत असहजता से एक नार्मल चीज की तरह ली जाती है।''[13]

हालाँकि उपन्यास में विनय की पत्नी को भी एक माँ के रूप में दर्शाया गया है किंतु उसका चरित्र-चित्रण विस्तारपूर्वक नहीं हो पाया है। वह दो बच्चों वीणा और की माँ है। वीणा के नाम पर एक सिनेमाघर का नाम रखवा दिया जाता है। वह मायके से संपन्न है। उसकी कई मिलें, फैक्ट्रियाँ और सिनेमाघर चलते हैं। एक समृद्ध परिवार में मायका होने के कारण वह एक ऐसी पत्नी

है जो अपने पति विनय को मायके के सारे कारोबार की देखरेख करने के लिए मना लेती है। वह एक ऐसी माँ है जो अपनी सारी भौतिक सुख-सुविधाओं के साथ अपनी संतानों का पालन-पोषण करती हैं।

3.7 विमाता

प्रस्तुत उपन्यास में विमाता के रूप में जिस स्त्री पात्र का चरित्र-चित्रण हुआ है, उसका नाम विद्या है। विद्या राधिका की सहेली रमा की बड़ी बहन है। राधिका के पिताजी अपनी पत्नी की मृत्यु के कई वर्षों बाद तक अकेले रहे। राधिका लंबे समय तक अपने पिता के कार्यों में हाथ बँटाली रही। धीरे-धीरे पापा के साथ राधिका का मित्रवत व्यवहार हो गया।

इस बीच जब पापा ने विद्या के साथ दूसरा विवाह किया तब राधिका के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। इसका कारण यह था कि विद्या उम्र में राधिका से मात्र तीन वर्ष बड़ी थी। राधिका की उम्र लगभग 20 वर्ष रही होगी तभी उसके पापा 23 वर्ष की लड़की विद्या से व्याह रचा लेते हैं।

समवयस्क होने के नाते राधिका विद्या को कभी माँ कहकर संबोधित नहीं कर पाई। वह सदेव विद्या का नाम लेकर उसे संबोधि त करती है।

यद्यपि विद्या का व्यवहार राधिका के साथ सदैव शालीन रहा किंतु राधिका अपने पापा के इस रिश्ते से नाराज हो गई। उसमें एक प्रकार की हीन भावना घर कर गई। वह सदैव यही सोचती कि इस उम्र में पापा को दूसरा विवाह करने की क्या आवश्यकता थी?

जब पापा ने राधिका को अपने विवाह की सूचना दी तब उसने कुछ इस तरह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी- ''बेटी, अगले सप्ताह विद्या और मैं विवाह करने जा रहे हैं।'' यह सुनकर उसके सिर के ऊपर से एक तूफान गुजर गया। यह बात राधिका को मसूरी के दौरे के दौरान कही गई थी। राधिका की कॉटेज के पास ही उसकी सहेली 'रमा' उसकी बड़ी बहन 'विद्या' और वृद्ध माँ ठहरे हुए थे। पिता के मुँह से दूसरे विवाह की खबर सुनते ही राधिका ने बाहर देखा। बाहर पहाड़ों के ऊपर गहरा नीला आकाश था। बरामदे के बाहर जीनिया के बड़े-बड़े फूल, कुर्सी की बेतों में उंगलियाँ फँसाकर राधिका ने अपने को संयत किया। थोड़ी देर बाद वह उठी और अपने कमरे में चली गई। कुछ देर बैठने के बाद वह पुनः उठी अलमारी से कपड़े निकालकर पलँग पर रखने लगी।

अक्सर वह जब पापा से नाराज होती, तभी घर छोड़कर भाग जाने की धमकी देती। वह कभी मौसी के पास कभी बड़ दा (बड़े भाई विनय) के पास हॉस्टल चली जाएगी। वह कभी पापा के पास नहीं रहेगी। वह अलमारी के नीचे से अटैची निकालती है अपने कपड़े और साबुन, तौलिया, ब्रश आदि अटैची में पैक करने लगती है। जब पापा उठकर उसे मनाने लगते तब वह एक आध आँसू गिराकर मान जाती। उसे मनाने के लिए कुछ-न-कुछ उपहार भेंट करते।

इस बार जब जब वह जाने लगी तब विद्या आकर सामने खड़ी हो गई। विद्या कहती है-''मेरे कारण तुम्हें घर छोड़कर जाने की जरूरत नहीं है। क्या हम अच्छे मित्रें की तरह नहीं रह सकते।''[14] इससे यह पता चलता है कि विमाता के रूप में विद्या एक समझदार स्त्री है। विद्या अपनी सौतेली संतान के साथ मित्रवत व्यवहार करना चाहती है। उसके मन में राधिका के प्रति सौतेला भाव नहीं है। जिस उच्च मध्यम वर्ग से राधिका आती है, उस वर्ग में खाने-पीने या पहनने- ओढ़ने को लेकर कोई समस्या नहीं है। भौतिक समृद्धि के कारण इस तरह का कोई भेदभाव नहीं है।

विद्या एक शिक्षित स्त्री है। वह पेशे से प्राध्यापिका है। उसके मन में अपनी सौतेली संतान राधिका के प्रति कोई ईर्ष्या भाव नहीं है। वह एक समझदार विमाता है। इस बात की पुष्टि इस घटना से होती है कि जब राधिका 'इलेक्ट्रा कांप्लेक्स' से ग्रसित होकर अमरीका में डेनियल से संबंध रखती है, यह जानते हुए भी कि डेनियल पहले से विवाहित है। कुछ वर्ष बाद अमरीका से जब राधि का लौटती है तब उसे एअरपोर्ट पर रिसीव करने के लिए अक्षय को भेजती है। विमाता के रूप में यदि वह चाहती तो राधिका को 'इगनोर' कर सकती थी। किंतु उसने इसके विपरीत अक्षर को राधिका का ध्यान रखने का निर्देश देकर एअरपोर्ट भेजा।

3.8 तवायफ

''रूकेगी नहीं राधिका'' उपन्यास में नारी को तवायफ के रूप में भी चित्रित किया गया है। यह चरित्र नारी जीवन का एक काला पक्ष है। राधिका उच्च मध्यम परिवार से ताललुक रखती है। उसके बाबा के पास अपार धन-संपत्ति थी। वह अपने भौतिक

संसाधनों का भरपूर उपभोग करते थे। जैसे उच्चवर्ग या उच्चमध्यम वर्ग के कई लोग। आमतौर पर भोग- विलास में लिप्त रहते हैं। ठीक वैसे ही राधिका के बाबा के जीवन में भी ऐसे पल आते हैं, जब वह भोग-विलास में डूब जाते हैं। इसके लिए कुछ हद तक उनकी पारिवारिक स्थिति भी जिम्मेदार है। गंगा पार वाली हवेली में तवायफ के संपर्क में आते हैं। इस संदर्भ में कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-''राधिका ने सुना था कि अपने युवा दिनों में बाबा ने उस कोठी में एक तवायफ को रख छोड़ा था। कोठी भी उन्होंने उसी के लिए शहर से दूर एकांत में बनवाई थी। उस तवायफ की मृत्यु के बाद यह मुद्त तक खाली पड़ी रही और राधिका के बचपन में ही पापा ने गर्मियों में वहाँ जाना शुरू कर दिया था। एक विंग को सुधरवाकर अच्छे ढ़ग से सजाया गया और वहाँ जो राधिका का कमरा था, उसका द्वार यदि खुला होता तो दूर गंगा पर लंबा पुल दिखाई पड़ता। अक्सर रात में, बरामदे में बैठे रहने पर पुल पर से गुजरती रेल की रोशनियों और निस्तब्धता को बेघती हुई उसकी घड़घड़ाहट। अब वहाँ पापा को अकेले रहते हुई कैसा लगता होगा? मुमताज, जिसे बाबा ताजो कहकर बुलाते थे, पापा की युवावस्था तक जीवित थी, माँ को उसने मुँह-दिखाई में जड़ाऊ कंगनों की भेजी थी। बचपन में एक बार पापा से पूछने पर कि वह कैसी थी, पापा ने संक्षेप में कहा था, सुंदर। खूब गोरी, हँसमुख. ..।''

इस तरह प्रस्तुत उपन्यास में मुमताज नाम की तबायफ का भी संक्षिप्त चरित्र चित्रण हुआ है। तवायफ भी हमारे समाज की एक स्त्री है जो दूसरों के मनोरंजन के लिए अपना सारा जीवन होम कर देती है। यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि स्त्री के विविध रूपों माँ, बहन, बेटी, पत्नी, प्रेमिका, भाभी, विमाता तथा तवायफ आदि में तवायफ भी एक आवश्यक रूप है। वह समाज तथा परिवार में अपनी सम्मान विहीन किंतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जहाँ तक मानवीय भावनाओं का प्रश्न है उसमें भी एक आम पारिवारिक स्त्री के गुण मौजूद है तभी तो वह नई बहू को सोने के कंगन उपहार में देती है। ऐसी आत्मीयता तथा ऐसा त्याग किसी सामान्य स्त्री में दुर्लभ है। जहाँ आम स्त्रियाँ वस्त्र- आभूषण को लेकर बहुत शौकीन और बहुत कृपण दिखाई पड़ती हैं वहीं मुमताज की आत्मीयता तथा त्याग अन्य स्त्रियों के लिए एक प्रेरणा है।

3.9 प्रेमिका

''रूकोगी नहीं राधिका'' उपन्यास में स्वयं राधिका एक प्रेमिका के रूप में चित्रित है। उसके अतिरिक्त तीन ऐसी सुंदरियों का चित्रण हुआ है जो प्रेमिका के रूप में वर्णित हुई हैं। ये तीन सुंदरियाँ उपन्यास में बाग्दत्ताविजया, नयन तारा और कारिन नाम से पहचानी गई हैं। ये तीनों मनीश की प्रेमिकाएँ हैं। इस संदर्भ में कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं-''मनीश को कभी किसी कुरूप युवती के साथ आज तक नहीं देखा गया। उसकी वाग्दत्ताविजया, जो भारत से भागी-भागी उसके पीछे पहुँची थी, उत्तर भारत के माप से सुंदर थी फिर नयनतारा, उसकी दूसरी मित्र, जिसके कारण मनीश ने अपनी वाग्दत्ता से संबंध विच्छेद कर लिया था। वह किसी प्राचीन मंदिर के स्तंभ पर खुदी यक्षिणी सी दिखती थी, और अब यह कारिन।''

इस तरह मनीश तीन-तीन प्रेमिकाओं के संपर्क में रहने के बाद अब नई प्रेमिका की तलाश में है। उसे नई प्रेमिका के रूप में राधिका का साथ मिलता है।

दरअसल, राधिका इस उपन्यास में निरंतर एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा पुरुष बदलती रहती है। अफसोस की बात यह है कि वह सदैव भावनात्मक घरातल पर अतृप्त ही रहती है। राधिका की भावनात्मक अतृप्ति का सबसे बड़ा कारण है, उसका इलेक्ट्रॉकाप्लेक्शन से ग्रसित होना। वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक प्रकार की ग्रंथि का अर्थात हीन भावना का शिकार है।

राधिका के जीवन में तीन पुरुष आते हैं, किंतु बह किसी भी पुरुष के साथ संतुष्ट नहीं रह पाती। वह सदेव 'कुछ' पाने की लालसा में अपने वर्तमान पुरुष को खो देती है।

राधिका की सबसे बड़ी भावनात्मक समस्या यह है कि वह प्रत्येक पुरुष में अपना प्रेमी नहीं बल्कि प्रत्येक पुरुष में बह अपने पिता को खोजती है। वह सदैव अपने प्रेमी में पिता की-सी परिपक्वता और रिश्ते में एक दृढ़ता चाहती रही किंतु दुर्भाग्य से ऐसा हो न सका। यह बात सच है कि पिता से बदला लेने के लिए उसने अपनी आयु से कई वर्ष बड़े विदेशी पत्रकार डेनियल पीटरसन से रिश्ते बनाए। डेनियल पीटरसन पहले से शादीशुदा था। उसकी एक संतान भी थी। बावजूद इसके वह बिना विवाह के कई महीनों तक डेनियल के साथ समय बिताती है। डेनियल के साथ रहकर उसे एक वैचारिक वैषम्य का शिकार होना पड़ता है। जबकि वह डेनियल के साथ देर रात तक काम करते हुए उसी प्रकार खुश थी जिस प्रकार अपने पिता के साथ वर्षों से खुशी महसूस करती आई थी। राधिका अमेरिका के समाज तथा डेनियल के संपर्क में रहकर एक प्रकार के कल्चरल शॉक का अनुभव करती है।

कुछ ही महीनों बाद उसका डेनियल पीटरसन से संबंध विच्छेद हो जाता है। इसका कारण यह कि राधिका को समवयस्क पुरुष सदैव अपरिपक्व6 लगते हैं।

डैन से अलग होने पर राधिका के जीवन में एक बड़ा बदलाव यह आता है कि वह अब पहले की अपेक्षा अधिक पकापन, अनुभव तथा साहस आ जाता है। इस संदर्भ में कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं-''कुछ वर्षों पहले राधिका में बचपना था, भावावेग और उग्रता तभी तो उसने कभी भी, एक क्षण भी पापा के एकाकी जीवन के बारे में कभी नहीं सोचा।

पापा को छोड़कर, डैन के संग रहते हुए उस एक वर्ष में राधिका में जैसे कई वर्षों का अनुभव, पकापन एकाएक आ गया था, और तभी डैन से अलग होने का साहस उसमें था। अब मैं स्वतंत्र हूँ, परिपक्व भी और गढ़ सकती हूँ अपना जीवन, अपना भविष्य''

इस तरह राधिका डेनियल से अलग होते समय तक इतना तो समझ ही लेती है कि पापा ने इस उप्र में दूसरा विवाह क्यों किया। एकाकीपन क्या होता है। कुल मिलाकर उसके इस विद्रोह ने राधिका को इतना अनुभव तो दे ही दिया है कि एकाकीपन मनुष्य को कितना बदल सकता है।

राधिका के जीवन में डेनियल पीटरसन के बाद एक पुरुष आता है। उस पुरुष का नाम है-मनीश। मनीश एक स्वच्छंद प्रकृति का नवयुवक है। राधिका से पहले उसके जीवन में कई सुंदर लड़कियाँ आ चुकी हैं। इस संदर्भ में कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं-राधिका को लग रहा था कि मनीश भूल कर रहा है। कुछ दिनों बाद जब उसका उत्साह फीका पड़ जाएगा, तो शायद वह ऊबने लगेगा। बँधाकर रहना उसका स्वभाव नहीं है। वह तो स्वच्छंद यायावरी प्रकृति का है।

इस पर मनीश ने कहा-लगता है तुम्हें कुछ विशेष प्रसन्नता नहीं हुई। मनीश की इस बात का उत्तर देती हुई राधिका कहती है-''मेरी प्रसन्नता या अप्रसननता से क्या बनता है, मनीश मैं तुम्हारे जीवन में आती ही कहाँ हूँ।''

इससे यह सिद्ध होता है कि मनीश अपनी स्वच्छंद प्रकृति के कारण किसी एक व्यवसाय या किसी एक स्त्री के साथ लंबे समय तक टिके नहीं रह सकता है। वह अपनी प्रेमिका राधिका को सोचने का पर्याप्त समय देता है उसके बाद ही निर्णय लेने की सलाह देता है। अपनी प्रेमिका राधिका से मनीश द्वारा इस संदर्भ में की गई बातचीत के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

''मैं चाहता हूँ कि तुम समय लेकर सोचो, राधिका। हम दोनों में एक सख्य-भाव है। हमारे संबंधों में एक सहजता। मैं तुम्हें पूर्ण रूप से स्वीकार करूँगा। तुम्हारे मूड्स, तुम्हारी समस्याओं, तुम्हारे बिगत सहित। क्या तुम अक्षय को बचन दे चुकी हो?'' इस तरह राधिका के जीवन में तीन पुरुष क्रमशः डेनियल पीटरसन, मनीश और अक्षय आते हैं। राधिका की सौतेली माँ विद्या ने अक्षय का परिचय राधिका से करवाया। जब राधिका कुछ वर्ष अमेरिका में रहकर वापस स्वदेश लौटती है तब उसे एअरपोर्ट पर रिसीव करने कोई नहीं जाता। न भाई विनय, न भाभी न ही पापा उसे लेने आते है। हाँ, सौतेली माँ विद्या जरूर एक अक्षय नामक नवयुवक को उसे रिसीव करने एअरपोर्ट जरूर भेजती है।

यद्यपि अक्षय भी कभी देवकी, कभी अनिला तथा कभी नीना की ओर आकर्षित होता रहा है, किंतु उसे सबसे अधिक अच्छी तो राधिका ही लगती है।

इस संदर्भ में अक्षय से संबंधित कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-अक्षय को देवकी की त्वचा, अनिला की आँखें, यहाँ तक कि अल्हड़ नीना भी बार-बार आकर्षित करती है, पर सबसे अधिक बांछनीय तो राधिका लगती है। राधिका उसे प्रिय भी है, उसके साथ जीवन बिताया भी जा सकता है। कई बार उसके निकट होने पर अक्षय की उसे भुजाओं में घेर लेने की उन्मत्त इच्छा हुई है, परंतु एक बार किसी अनाम अज्ञात झिझक ने उसे रोक लिया है। सच तो यह है कि वह भुला नहीं सकता कि एक वर्ष तक राधिका उस पत्रकार की पत्नी बनकर रह चुकी है। ठीक इसी प्रकार मनीश और राधिका का सहज खुला मैत्रीपूर्ण आचरण देखकर प्रायः अक्षय के मन में यह विचार आ जाता है कि क्या मनीश भी राधिका का प्रेमी रह चुका है? किंतु अक्षय को राधिका कभी-कभी बहुत पुनीत सी लगती है। अनछुई-सी, कौमार्य की लज्जा से भरपूर। अक्षय कभी-कभी उसके मुख की सौम्यता को देखकर भ्रम में पड़ जाता है। उसे लगता है कि जो कुछ राधिका के बारे में सुना वह मिथ्या था। यथार्थ है राधिका की गंभीर, निश्छल मुद्रा। माथे के पीछे सँवारे गए बाल चिकना उघड़ा मस्तक, घनुषाकार पर हल्की-हल्की भौंहे, और आँखें, जो बहुत बड़ी होते हुए भी असाधारण रूप से दीप्तिवान लगती हैं। छोटी-सी खड़ी नाक, अपेक्षाकृत लंबा मुँह। तब भी राधिका को पूर्ण रूप से उसके अतीत सहित ग्रहण करने का साहसा अक्षय अपने में नहीं पाता। अब आयु बढ़ने पर उसे ऐसी ही पत्नी की कामना होती है, जो कि संपूर्ण रूप से अक्षय की हो। कोई छोटी आयु की, थोड़ी पढ़ी-लिखी लड़की-जैसे नीना या देवकी।''[21]

अमेरिका से भारत लौटने के बाद राधिका दो पुरुषों मनीश तथा अक्षय के करीब आती है। मनीश एक ऐसा पुरुष है जो राधिका को उसकी समस्त समस्याओं के साथ स्वीकार करने के लिए तैयार है। इस संबंध में यह समस्या आड़े आती है कि राधिका मनीश को एक प्लेब्यॉय मानती है। वह कई लड़कियों के साथ "लर्ट करता है। जिस कारण राधिका मनीश के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं कर पाती। राधिका अक्षय को एक बेहतर प्रेमी मानती है। राधिका का मन मनीश के बजाए अक्षय में अधिक रमता है किंतु अक्षय स्वयं मन-ही-मन राधिका को लेकर संशय में है। हालाँकि वह राधिका के समक्ष कोई नकारात्मक प्रस्ताव नहीं रख पाता, किंतु मन-ही-मन कल्पना करता है कि ''पत्नी के रूप में तुम्हारी कामनभी आरंभ में मेरे मन में दबी रही है, पर तुम्हें पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता। तुम्हारे अतीत को लेकर मेरे मन को कुछ निरंतर काटता रहता है। सच कहा राधिका, कया मनीश भी तुम्हारा प्रेमी...?''[22]

इस प्रकार यदि राधिका के पहले प्रेमी डेनियल पीटरसन के किरदार को छोड़ भी दें तो अक्षय और मनीश नाम के दो पुरुष पात्र राधिका के जीवन को अलग-अलग कोणों से प्रभावित करते हैं। इस प्रेम कहानी में राधिका, अक्षय तथा मनीश के बीच एक प्रेम त्रिकोण की स्थापना होती है। एक ओर राधिका अपने प्रेमी अक्षय से स्थाई रूप से जुड़ना चाहती है दूसरी ओर उसका प्रेमी मनीष उसे उसके कड़वे विगत सहित स्वीकार करना चाहता है। इस स्थिति में राधिका अक्षय के साथ स्थायीत्व स्थापित करना चाहती है किंतु अक्षय भी उसे लेकर उहापोह में है, इस तरह राधिका अक्षय और मनीष के बीच सैंडविच बनकर रह जाती है।

भारत आने से पहले अमेरिका में राधिका को डेनियल पीटरसन यह कहकर छोड़ चुका है कि वह पुरुष में अपने प्रेमी को नहीं, बल्कि अपने पिता की छवि को खोजा करती है। परिस्थितियों के तूफान में वह एक पुरुष को छोड़कर दूसरे पुरुष को पकड़ना चाहती है किंतु हर पुरुष पहले से ही किसी अन्य स्त्री की कलाई थाम कर खड़ा है ऐसे में उसे हर कोई थोड़ी देर के लिए तो अपनाने के लिए तैयार है, किंतु उसे अपना स्थाई मित्र बनाने के लिए कोई भी मानसिक रूप से तैयार नहीं हो पाता।

कुल मिलाकर प्रेमिका के रूप में राधिका एक असफल प्रेम कहानी की सफल नायिका है। उसके पूरे चरित्र का विस्तृत अध्ययन करने से यह भी ज्ञात होता है कि पूरे उपन्यास में वह सारी भौतिक सुविधाओं के बावजूद केवल फाइन आर्ट्स में एम. ए. करने के सिवा जीवन में और कुछ नहीं कर पाती।

निष्कर्श रूप में यह कहा जा सकता है कि उपन्यास में राधिका अपने प्रेम में असफल होने तथा फाइन आर्ट्स में एम. ए. करने के अतिरिक्त कोई बड़ा कार्य नहीं कर पाती। अत: वह उपन्यास की एक मुख्य पात्र तो है, किंतु एक महत्वपूर्ण पात्र कदापि नहीं।

निष्कर्ष

''रूकोगी नहीं राधिका'' नामक इस उपन्यास में नारी के विविध रूपों से संबंधित इस अध्याय तीन में नारी के अनेकानेक रूपों की चर्चा हुई। यह उपन्यास नायिका प्रधान उपन्यास है। नायिका राधिका के जरिए कथावस्तु का विस्तार होता है। इस अध्याय में प्रमुख स्त्री पात्र राधिका तो पुत्री बहन तथा प्रेमिका के रूप में चित्रित है, किंतु पत्नी के रूप में राधिका की माँ का बहुत थोड़ा चित्रण हो पाया है। लेखिका ने भाभी के रूप में विनय की पत्नी और राधिका की भाभी का चित्रण हुआ है। वह एक रईस पिता की संतान है। उसके पारिवारिक जीवन में उच्च वर्ग की संपन्नता है। वह अपने माइके की समृद्धि के कारण ही विनय को एक प्रकार से घर जवाई बनवाने में सफल हो जाती है।

नानी के रूप में राधिका और विनय की नानी का भी प्रसंगानुसार स्वाभाविक चित्रण हुआ है। नानी अपने परंपरागत रूप में वर्णित है जो अपनी पोती के विवाह हेतु कुछ आभूषण छिपाकर रखती है। वह भावात्मक रूप से अपनी तीसरी पीढ़ी के साथ घनिष्ट संबंध रखती है।

विमाता के रूप में विद्या का चरित्र-चित्रण किया गया है। वह एक शिक्षित स्त्री है। कॉलेज में प्राध्यापिका होने के कारण एक प्रकार की गंभीरता उसके चरित्र में दिखाई पड़ती है। वह एक ऐसी विमाता है जो उच्च मध्यवर्गीय परिवार के अनुरूप अपनी समवयस्क सौतेली बेटी राधिका के साथ व्यवहार करती है। वह अक्षय को एअरपोर्ट इसलिए भेजती हैताकि राधिका हर संभव ख्याल रखा जा सके। भौतिक संपन्नता तथा शिक्षित होने के कारण उसमें सौतेली माँ की सी ईर्ष्या या द्वेष भावना नहीं दिखाई पड़ती है।

स्त्री के विविध रूपों के अंतर्गत लेखिका ने उपन्यास में तबाफ का भी चरित्र-चित्रण किया है। इसका नाम मुमताज है। राधिका के बाबा ने इसके लिए गंगा पार एक कोठी बनवा रखी थी। वह अपने रुपयों में से कुछ रुपये बचाकर नई नवेली दुल्हन राधिका

की माँ को सोने के आभूषण भेंट करती है। यदि वेश्यावृत्ति दुनिया का सबसे पुराना गुप्त धंधा है तो तबायफ या वेश्या उस गुप्त धंधो की प्रमुख पात्र है। लेखिका ने तबायफ के रूप में समाज की इस अनिवार्य बुराई को दिखाकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्त्री सदैव पुरुष को कुछ-न-कुछ देती आई है कभी शरीर, कभी मन, कभी भावनात्मक प्रेम तो कभी वात्सल्य स्नेह आदि। इस तरह स्त्री दात्री है तथा पुरुष भिक्षुक।

इस उपन्यास में मामी का भी चरित्र-चित्रण हुआ है। रज्जू मामा की पत्नी इसका उदाहरण है। बहन के रूप में रमा तथा नीना को बहुत संक्षेप में चित्रित किया गया है। जहाँ तक प्रेमिका का प्रश्न है इस उपन्यास में राधिका तीन पुरुषों से प्रेम करनेवाली प्रेमिका हैं। मनीष के जीवन में भी तीन महिलाएँ आती हैं। ठीक इसी तरह अक्षय के जीवन में भी तीन- तीन स्त्रियाँ आ चुकी हैं।

लेखिका उषा प्रियंवदा ने प्रस्तुत लघु उपन्यास में जारी के विविध झूपों के अंतर्गत कन्या बहन, पत्नी, भाभी, जानी, माता, विमाता तवायफ तथा प्रेमिका आदि का यथार्थ चित्रण किया है। इज सबके बीच लेखिका को स्त्री के प्रेमिका रूप के चित्रण में विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

1. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 104
2. वही, पृ. 104
3. वही, पृ. 104
4. वही, पृ. 104
5. उषा प्रियंबदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 106
6. वही, पृ. 106
7. वही, पृ. 106
8. वही, पृ. 107
9. उषा प्रियंबदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 107
10. वही, पृ. 107
11. वही, पृ. 107
12. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 58
13. वही, पृ. 106
14. वही, पृ. 59
15. उषा प्रियंबदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 37
16. वही, पृ. 38
17. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 33
18. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 66
19. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 111
20. वही, पृ. 111
21. वही, पृ. 111
22. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 93
23. वही, पृ. 96

दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण की प्रासंगिकता

मंदीप कुमार चौरसिया

शोधार्थी सह अतिथि सहायक प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सार

भारत के पौराणिक एवं धार्मिक ग्रंथों में जिस प्रकार रामायण की हिन्दू जनमानस के बीच प्रासंगिकता है। उसी प्रकार से दक्षिण-पूर्व एशिया के मुस्लिम देशों की संस्कृति में भी भगवान राम रचे बसे है। वहाँ राम कथा विभिन्न रूपों में प्रचलित है और लोक-जीवन से इतनी गहराई तक जुड़ी है कि वह उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग बन गई है।

भारत की जीवंत संस्कृति, अध्यात्म संस्कृति और आत्मशक्ति के प्रतिनिधि राम और उसकी रामकथा में है, राम की कथा चतुर्दिक है। दक्षिण-पूर्व एशिया तक राम के मूल्य की प्रासंगिकता और आदर्श किसी न किसी रूप में मौजूद है, जो भारत की आध्यात्मिक पहचान से सांस्कृतिक पहचान को जोड़ते हैं। वाल्मीकि की रामायण अपने अलग-अलग रूपों में कई देशों में मौजूद है, जैसे रामवत्थु (बर्मा), रामकियेन अथवा रामकीर्ति (थाइलैंड), रामकोर (कम्बोडिया), मलेराज कथाव (सिंहली), काकविन रामायण इण्डोनेशिया, रामकेर्ति-रियामकेर (कम्बोडिया), काव्यादर्श (तिब्बती), फ्लक-फ्लाम (लाओस), हिकायत सेरीराम (मलेशिया), आदि ये ग्रंथ यह संदेश देती है कि राम और उनके आदर्श किसी न किसी रूप में मौजूद है।

दक्षिण-पूर्व एशिया में काव्यों के साथ-साथ पत्थर की शिलाओं पर भी राम कथा की व्यंजन अपने वैभवशाली रूपों में हुई है। इस दृष्टि से इण्डोनेशिया की प्रम्बनान की शिला चित्रकारी सबसे उपर है, जहाँ संपूर्ण रामकथा का अंकन किया गया है। इसके अलावा कम्बोडिया के अंकोरवाट, अन्कोरथाम आदि स्थानों पर रामकथा शिलाओं पर उकेरी गई है। अंकोरवाट का महत्व इसलिए है क्योंकि इसकी प्रस्तुति वाल्मीकि रामायण के अनुरूप हुई है। दक्षिण पूर्व एशिया के उन देशों में जहाँ धर्म इस्लाम होने के बाद भी संस्कृति में राम ही रचे बसे हैं। राम का चरित्र उनके लोकजीवन में इतना गहराई तक जुड़ा है कि राम उनकी संस्कृति का मूल आधार बन गए हैं।

Key Word: रामकथा, रामायण, रामवत्थु, रामकियेन, रामकीर्ति, रामकोर, मलेराज कथाव, काकविन रामायण, काव्यदर्श, फ्लक-फ्लाम, हिकायत सेरीराम।

भूमिका (Introduction)

प्राचीन समय से ही व्यापार एवं धर्म प्रचार के कारण भारत का सम्बंधा दक्षिण-पूर्व एशिया से था। जातक, कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं संस्कृत कला साहित्य से इस संदर्भ में बहुत ही अच्छी जानकारी मिल पाती है। अदम्य उत्साही, स्वर्ण प्राप्ति के उद्देश्य से ही भारतीय व्यापारियों ने अपनी भारतीय सीमा से दूर जाकर अज्ञात स्थलों की ढूँढा। इन सुदूर दक्षिण-पूर्व एशियाई प्रदेशों की अपनी आर्थिक सम्पन्नता के कारण ही ये भारतीयों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहे।[1] सर्वप्रथम द्वितीय विश्व युद्ध के समय बर्मा, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, मलाया, बोर्नियो, जावा, सुमात्र, बाली आदि देशों को संयुक्त रूप से दक्षिण पूर्व एशिया की संज्ञा दी गई। ये देश भारत से दक्षिण-पूर्व में स्थित थे। देश अपनी समृद्धि और प्राकृतिक सम्पदा एवं सुदृढ़ भौगोलिक स्थिति के कारण प्राचीन काल से ही धानी थे। इन देशों में सदियों तक भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव खास कर रामायण की प्रासंगिकता रही और अब भी यहाँ भारतीय संस्कृति के अवशेष उपलब्धा है।

वाल्मीकि रामायण में भी दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक द्वीपों का उल्लेख हुआ है। इसमें एक श्लोक आया है, जो महत्व का है-

यत्नवन्तो भवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।

सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णार्फरमण्डितम्।

यही श्लोक कुछ पाठ भेद के साथ हरिवंश पुराण, क्षेमेद्रकृत रामायणमंजरी और सद्धर्मस्मृत्युपस्थानसुत्र में भी पाया जाता है। इन ग्रंथों में जिन भवद्वीप का उल्लेख है, वह वर्तमान समय का जावा है, जो इण्डोनेशिया के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण द्वीप है। प्राचीन साहित्य में अन्य जगह भी जावा को यवद्वीप कहा गया है। इसके अलावे मंजूश्रीमूलकल्प में भी दक्षिण-पूर्वी एशिया के कतिपय द्वीपों के नामों का उल्लेख मिलता है।[2]

भारत प्राचीन काल से ही एक सांस्कृतिक गौरव का राष्ट्र रहा है। भारत के प्राचीन वैदिक ग्रंथों से लेकर पुराण, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों में वर्णित संस्कृति का अपने यहाँ पालन करते हुए ही अपनी संस्कृति का विकास अभूतपूर्व हुआ है। इन दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में अधिक देश मुस्लिम आबादी वाले है फिर भी हमारे भारत देश की संस्कृति का असर इन देशों पर इस प्रकार हुआ है कि प्राचीन काल तो प्राचीन काल वर्तमान के आधुनिक युग में भी इन मुस्लिम आबादी वाले दक्षिण-पूर्व एशिया देश भारतीय संस्कृति को अपने दीनचर्या का अभिन्न अंग बना लिया है। सांस्कृतिक विकास में मुख्य भूमिका भारत के अत्यंत प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ रामायण दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में विभिन्न आयामों के आदर्शों का अपने जीवन शैली में अपनाना है।

जहाँ तक रामायण की बात है तो यह भारत का सबसे बड़े महाकाव्यों में से एक हैं। इसमें प्रभु श्रीराम के आदर्शों तथा जीवन आदि घटनाओं का विशद ज्ञान प्राप्त होता। भारत में रामायण को इतना पवित्र हिन्दू महाकाव्य माना जाता है कि यह हरेक हिन्दू परिवार में किसी-न-किसी रूप में उपलब्ध रहता ही है। बहुत से परिवार में आज भी लोग रामायण को रोज पढ़ा करते हैं और प्रभु श्री राम के आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते हैं यह महाकाव्य प्राचीन काल से ही पुरी हिन्दू संस्कृति का स्तंभ रहा है।

प्राचीन काल में भारत के व्यापारियों, शासकों आदि के दक्षिण-पूर्व एशिया में व्यापार तथा उपनिवेश के उद्देश्य की पुर्ति के लिए ही इन देशों पर अधिकार किया गया। भारतीयों का इन देशों में जाकर बसना और अपनी संस्कृति के अनुरूप ही सभी कामों को करना, जिससे धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति इन दक्षिण-पूर्व एशियाई देश में फैल गयी और आज के वर्तमान में भी खास कर रामायण में वर्णित रामकथा तथा इसके नायक प्रभु श्रीराम को ही अपना आदर्श बना दिया। क्योंकि पुरे संसार के जिन महाकाव्यों को सर्वाधिकता, सार्वकालिकता और गौरव प्राप्त है उनमें रामायण का विशिष्ठ स्थान है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों से ही एशिया के विभिन्न देशों में रामायण का प्रचार प्रसार आरंभ हो गया था। उससे प्रभावित होकर अनेक एशियाई भाषाओं में रामकथा पर आधारित उत्कृष्ट मौलिक रचनाओं का सृजन हुआ, जो वर्तमान काल में भी अपने-अपने देश के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गौरव के प्रतीक है।

उद्देश्य :- जैसा कि दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण की प्रासंगिकता शीर्षक से ही पता चलता है कि रामायण की प्रासंगिकता केवल भारत जैसे हिन्दू राष्ट्र में नहीं बल्कि भारत के सुदुर पूर्व देशों में भी है। जिस प्रकार से वाल्मीकि रामायण इन देशों में अलग-अलग रूपों में मिलती है। जैसे रामवत्थु, रामकियेन अथवा रामकीर्ति, रामकोर, मलेराज कथाव, काकविन रामायण, रामकेर्ति, फ्लक- फ्लाम, हिकायत सेरीराम आदि ये ग्रंथ भी किसी न किसी रूप में दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में रामायण का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत होती है। भारतीय संस्कृति का विकास सुदूर पूर्व देशों में अनेक प्रकार के सांस्कृतिक विषयक कार्यों का आदान-प्रदान कर मजबुत करने के उपर बल देना होगा। जिससे भारतीय संस्कृति का प्रभाव इनके दैनिक जीवन में भी देखने को मिले और रामायण के प्रतिनिधि राम और उनके आदर्शों, विचारों आदि को स्थापित करना है। यहाँ हमारा मुल उद्देश्य दिए गए शीर्षक को पूरी तरह सार्थकता के साथ प्रस्तुत करना है।

इंडोनेशिया की रामायण काकवीन

इण्डोनेशिया के नब्बे प्रतिशत निवासी मुसलमान हैं फिर भी उनकी संस्कृति में रामायण की गहरी छाप है। रामकथा पर आधारित जावा की प्राचीनतम कृति 'रामायण काकवीन' है। यह नौवीं शताब्दी की रचना है। रामकथा पर आधारित परवर्ती रचनाओं में

सेरतकांड, रामकेलिंग और 'सेरीराम' का नाम उल्लेखनीय है। रामायण काकवीन की रचना कावी भाषा में हुई है। यह जावा का प्राचीनतम शास्त्रीय भाषा है। काकवीन का अर्थ ही होता है महाकाव्य। कावी भाषा में लिखे सभी महाकाव्यों में रामायण का स्थान सर्वोपरी है।[4] रामायण का कावीन छब्बीस अध्यायों में विभक्त एक विशाल ग्रंथ है, जिसमें महाराजा दशरथ को विश्वरंजन की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इसी में विश्वामित्र दोनों राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा, ताड़का वधा, सीता विवाह, परशुराम का क्रोधा फिर राम का धानुष तोड़ना, अयोध्या में राज्याभिषेक की तैयारी आदि का वर्णन हुआ है। रामायण काकवीन में शुर्पणखा प्रकरण से सीता हरण तक की घटनाओं का वर्णन वाल्मीकि परम्परा के अनुसार हुआ है। राम का चरित्र जीवन की संपूर्णता का प्रतीक है तथा राम के महान आदर्श का अनुकरण जनजीवन में हो, इसी उद्देश्य से इस महाकाव्य की रचना की गयी है।

थाइलैंड की रामकियेन

थाइलैंड को एक स्वतंत्र राज्य के अस्तित्व में आने के पहले ही इस क्षेत्र में रामायणीय संस्कृति विकसित हो गई थी। अधिकतर थाईवासी परंपरागत रूप से रामकथा से सुपरिचित थे।[5] 1238 ई. में स्वतंत्र थाई राष्ट्र की स्थापना हुई। उस समय उसका नाम स्याम था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि तेरहवीं शताब्दी में राम वहाँ की जनता के नायक के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे।[6] सम्राट राम प्रथम (1782-1809 ई.) ने अनेक कवियों के सहयोग से जिस रामायण की रचना करवाई उसमें 50188 पद हैं। यही थाई भाषा का पूर्ण रामायण है।[7]

रामकियेन का आरंभ राम और रावण के वंश विवरण के साथ अयोध्या और लंका की स्थापना से होता है। तद्उपरान्त इसमें बालि, सुग्रीव, हनुमान, सीता आदि का जन्म कथा का उल्लेख हुआ है। रामकियेन वस्तुत: एक विशाल कृति है जिसमें अनेक उपकथाएँ सम्मिलित है। इसकी तुलना हनुमान की पूँछ से की जाती है। रामकियेन की अनेक ऐसे भी प्रसंग है जो थाइलैंड को छोड़कर अन्यत्र अप्राप्त है। संपूर्ण 'रामकियेन' अनेक प्रकार की विभिन्न आख्यानों से परिपूर्ण है।

मलेशिया की हिकायत सेरीराम

तेरहवीं शताब्दी के आस-पास मलेशिया का इस्लामीकरण हुआ। मलय रामायण की प्राचीनतम पांडुलिपि बोडलियन पुस्तकालय में 1633 ई. में जमा की गयी थी। इससे इस बात का पता चलता है कि इस्लामीकरण होने के बाद भी रामायण का इतना प्रभाव था कि लोग उसका परित्याग नहीं कर सके। मलेशिया में रामकथा पर आधारित एक विस्तृत रचना है, 'हियाकत सेरीराम'। इसका लेखक अज्ञात है। इसकी रचना तेरहवीं से सत्रहवी शताब्दी के बीच हुई थी। हिकायत सेरीराम विचित्रताओं का अजायबघर है इसका आरंभ रावण की जन्मकथा से हुआ है। यद्यपि इसमें वाल्मीकिय परंपरा का बहुत हद तक निर्वहन हुआ है। इसमें सीता के निर्वासन और पुनर्मिलन की कथा में भी विचित्रता है। यहाँ पर भी राम कथा मलेशिया के लोगों में रचा बसा है।[8]

फिलीपींस की महालादिया लावन

इंडोनेशिया और मलेशिया की तरह फिलीपींस के इस्लामिकरण के बाद वहाँ की राम कथा को नये रूप रंग में प्रस्तुत किया गया। ऐसा माना जाता है अथवा संभावना है कि इसे बौद्ध तथा जैनियों की तरह जानबुझ कर विकृत किया गया। डॉ. जॉन आर. फैंसिस्को ने फिलिपींस की मारनव भाषा में संकलित एक विकृत राम कला की खोज की है जिसका नाम मसलादिया लासन है। इसकी कथा वस्तु पर सीता के स्वयंवर, विवाह, अपहरण, अन्वेषण और उद्धार की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।[9]

कंपुचिया की रामकेर्ति

कंपुचिया की राजधानी "नाम-पेंह में एक बौधा संस्थान है, जहाँ ख्मेर लिपि में दो हजार ताल पत्रों पर लिपिबद्ध पांडुलिपियाँ संकलित है। इस संकलन में कंपुचिया की रामायण की प्रति भी है। "नाम-पेंह बौद्ध संस्थान के तत्कालीन निदेशक एस. कार्पेल्स द्वारा रामकेर्ति के उपलब्धा सोलह सर्गों (1-10 तथा 76-80) का प्रकाशन अलग-अलग पुस्तिकाओं मे हुआ था। इसकी प्रत्येक पुस्तिका पर रामायण को वहाँ के लोग 'रिआमकेर' के नाम से जानते हैं, किंतु साहित्य जगत में यह 'रामकेर्ति' के नाम से विख्यात है।[10] 'रामकेर्ति' ख्मेर साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। ख्मेर कंपुचिया की भाषा का नाम है। इसके प्रथम खंड की कथा विश्वामित्र यज्ञ से आरंभ होती है। इसमें सीता त्याग की घटना के साथ एक नया आयाम जुड़ गया है। सीता द्वारा रावण का चित्र बनाना। राम

द्वारा लक्ष्मण को सीता वधा का आदेश देना। अंत में सीता के स्वयं पृथ्वी में प्रवेश तथा हनुमान द्वारा सीता से लौटने का अनुरोध करना वर्णित है।

बर्मा की रामवत्थु

बर्मा वासियों को प्राचीन काल से ही रामायण की जानकारी थी। ऐतिहासिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं सदी के पहले से ही अनेक रूपों में वहाँ के जन-जीवन को प्रभावित कर रही थी। ऐसी संभावना है कि लोकआख्यानों और लोक गीतों के रूप में राम कथा की परंपरा वहाँ पहले से विद्यमान थी, किन्तु बर्मा की भाषा में राम कथा साहित्य का उदय अठारहवीं शताब्दी में ही दृष्टिगत होता है।

राम कथा पर आधारित बर्मा की प्राचीनतम गद्यकृति 'रामवत्थु' है। इसकी तिथि अठारहवीं शताब्दी निर्धारित की गयी है। इसमें अयोध्या कांड तक की कथा का समावेश चार अध्यायों में ही हो गया है। रामवत्थु में जटायु, संपाति, गरुड़, कबंध आदि प्रकरण का अभाव है। रामवत्थु की कथा बौद्ध मान्यताओं पर आधारित है, किंतु इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण वाल्मीकिय आदर्शों के अनुरूप हुआ है। कथाकार ने इस कृति में बर्मा के सांस्कृतिक मूल्यों को इस प्रकार समाविष्ट कर दिया है कि वहाँ के समाज में यह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है।[11]

श्रीलंका की मलेराज कथाव

सिंहली साहित्य में राम कथा पर आधारित कोई स्वतंत्र रचना नहीं है। श्रीलंका के पर्वतीय क्षेत्र में कोहंवा देवता की पूजा होती है। इस अवसर पर मलेराज कथाव (पुष्पराज की कथा) कहने का प्रचलन है।[12] इस अनुष्ठान का आरंभ श्रीलंका के सिंहली सम्राट पांडुवासव देव के समय ईसा के पांच सौ वर्ष पूर्व हुआ था।[13]

मलेराज की कथा के अनुसार राम के रूप में अवतरित विष्णु एक बार शनि की साढ़े साती के प्रभाव क्षेत्र में आ गये। उन्होंने उसके दुष्प्रभाव से बचने के लिए सीता से अलग हटकर हाथी का रूप धारण कर सात वर्ष व्यतीत किया। समय पुरा होने में जब एक सप्ताह बाकी था, तब दानवराज रावण ने सीता का अपहरण कर लिया। उसने सीता को भ्रष्ट करना चाहा, सीता ने कहा कि वे तीन महीने के व्रत पर है। व्रत की अवधि खत्म होने के बाद उसकी इच्छा पूर्ति करने का प्रयत्न करेगी।[14] इस प्रकार राम की कथा का प्रारंभ होने के बाद बहुत मार्मिक ढंग से इस कथा का अंत होता है।

तिब्बत की काव्यदर्श

तिब्बत मे कब राम कथा की धारा प्रसारित हुई यह सुनिश्चित नहीं है। किंतु वहाँ के लोग प्राचीन काल से वाल्मीकि रामायण की मुख्य कथा से सुपरिचित थे। तिब्बत की सबसे प्रामाणिक राम कथा किरंस-पुंस-पा की है जो 'काव्यदर्श' की श्लोक संख्या 297 तथा 289 के संदर्भ में व्याख्यायित हुई है।[15] किरंस-पुंस-पा की राम कथा के आरंभ में कहा गया है कि शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण द्वारा दसों सिर अर्पित करने के बाद उसकी दश गर्दने शेष रह जाती है। इसी कारण उसे दशग्रीव कहा जाता है। इस राम कथा में दशरथ, राम, सीता, हनुमान, सुग्रीव आदि का अंकन है। इसका अंत सीता सहित राम के पुष्पक विमान से अयोध्या लौट आने तथा भरत के द्वारा उनका भव्य स्वागत से होता है।

लाओस की राम जातक

लाओस के निवासी और वहाँ की भाषा को 'लाओ' कहा जाता है जिसका अर्थ है 'विशाल' अथवा 'भव्य'।[16] लाओ जाति के लोग स्वयं को भारतवंशी मानते हैं। लाओस की संस्कृति चाहे कितनी पुरानी हो, संसार के राजनीतिक मानचित्र पर वह मध्यकाल में अस्तित्व में आया। लाओस की रामकथा पर आधारित कई रचनाएँ है जिनमें मुख्य रूप से फ्लक-फ्लाम (रामजातक), ख्वाय थोरफी, पोम्मचक (ब्रह्म चक्र) और लंका नाई उल्लेखनीय है। 'राम जातक' के नाम से विख्यात 'फ्लक फ्लाम' की लोकप्रियता का रहस्यमय उसके नाम के अर्थ 'प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम' में समाहित है। राम जातक लाओस के आचार-विचार, रीति-रिवाज, स्वभाव, विश्वास, वनस्पति, जीव-जन्तु, इतिहास और भुगोल का विश्वकोश है।[17] राम जातक दो भागों में विभक्त है। इसके प्रथम भाग में दशरथ पुत्री चंदा और दूसरे भाग में रावण तनया सीता के अपहरण और उद्धार की कथा है।

इसके अलावे भी दक्षिण-पूर्व एशियाई देशो के अनेक मंदीरो आदि जगहो पर रामायण का अंकन अनेक शैलचित्रे के रूप में हुआ है। दक्षिण-पूर्व एशिया में काव्यों के साथ-साथ पत्थर की शिलाओं पर भी राम कथा की व्यंजन अपने वैभवशाली रूपों में हुई है। इस दृष्टि से इण्डोनेशिया की प्रम्बनान की शिला चित्रकारी सबसे उपर है, जहाँ संपूर्ण रामकथा का अंकन किया गया है। इसके अलावा कम्बोडिया के अंकोरवाट, अन्कोरथाम आदि स्थानों पर रामकथा शिलाओं पर उकेरी गई है। अंकोरवाट का महत्व इसलिए है क्योंकि इसकी प्रस्तुति वाल्मीकि रामायण के अनुरूप हुई है। दक्षिण पूर्व एशिया के उन देशों में जहाँ धर्म इस्लाम होने के बाद भी संस्कृति में राम ही रचे बसे हैं। राम का चरित्र उनके लोकजीवन में इतना गहराई तक जुड़ा है कि राम उनकी संस्कृति का मूल आधार बन गए हैं।

निष्कर्ष

दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण की प्रासंगिकता इस प्रकार से वहाँ के लोगों में रचि बसी है कि राम उनकी संस्कृति का आधार बन गये है। इन देशों में रामायण के विभिन्न नामों से रामकथा का अंकन किया गया है। जैसे बर्मा में रामवत्थु, थाइलैंड में रामकियेन अथवा रामकीर्ति, कम्बोडिया में रामकोर, श्रीलंका में मलेराज कथाव, इण्डोनेशिया में काकविन रामायण, तिब्बती में काव्यदर्श, लाओस की फ्लक-फ्लाम, मलेशिया की हिकायत सेरीराम आदि। इन कथाओं में राम को अनेक भूमिका का निर्वहन करते दिखाया गया है। काव्यों के साथ-साथ पत्थर की शिलाओं पर भी राम कथा का अंकन अत्यंत वैभवशाली रूपों में हुआ है। क्योंकि इसकी प्रस्तुति वाल्मीकि रामायण के अनुरूप हुई है। राम का चरित्र यहाँ के लोगों में इस प्रकार जुड़ा है कि राम उनकी संस्कृति का मूल आधार बन गये हैं।

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय, विद्यानंद (1987). *दक्षिण-पूर्व एशिया का राजनीतिक इतिहास*, पृ॰ 1. पटना, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी
2. विद्यालंकार, सत्यकेतु (1974). *दक्षिण-पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति*, पृ॰ 17. नई दिल्ली, श्री सरस्वती सदन
3. वही, पृ. 9
4. पालीवाल, चंद्रदत्त (1980) रामायण काकवीन, इन वी. राघवन (Ed.), द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 106-9, 26-42. नई दिल्ली, साहित्य आकदमी.
5. सरपड़नुके, चामलोंग (1980). द रामायण इन थाई थियेटर, इन वी. राघवन (Ed.)), द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 245. नई दिल्ली, साहित्य आकदमी.
6. कडेट, जे. (1980). रामकियेन, इन वी. राघवन (Ed.), द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 31-32. नई दिल्ली, साहित्य आकदमी.
7. राघवन, वी. (1980). (Ed.), द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 247. नई दिल्ली, साहित्य आकदमी.
8. हुसैन, इस्माईल (1980). द रामायण इन द मलेशिया, इन वी. राघवन (Ed.). द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 143. नई दिल्ली, साहित्य आकादमी.
9. फ्रानसिस्को, जॉन आर. (1980). द रामायण इन द फिलीपींस, इन वी. राघवन (Ed.), द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 163-164. नई दिल्ली, साहित्य आकदमी.
10. राघवन, वी., द रामायण इन ग्रेटर इण्डिया, पृ. 50
11. हान, यू. थीन (1980). द रामायण इन बर्मीज लिटरेचर एण्ड आर्टस्, इन वी. राघवन (Ed.), द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 303. नई दिल्ली, साहित्य आकदमी.
12. गोड्कुम्बरा, सी. ई. (1980). द रामायण इन श्रीलंका एण्ड लंका ऑफ द रामायण, इन वी. राघवन (Ed.), द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 445. नई दिल्ली, साहित्य अकादमी.
13. वही, पृ. 445
14. गोडकुम्बुरा, सी. ई. पुर्वोक्त, पृ. 445
15. फ्रांसिस्को, जॉन आर. पुर्वोक्त, पृ. 163
16. रतनाम, कमला (1980). द रामायण इन लाओस, इन वी. राघवन (Ed.). द *रामायण ट्रेडिशन इन एशिया*, पृ. 260. नई दिल्ली, साहित्य अकादमी.
17. वही, पृ. 298

तुलसी की रामकथा के नवीन आयाम

डॉ० सुनीता चौहान

संत विरागी बाबा पी.जी. कॉलेज, मुइया, घाटमपुर, कानपुर

रामकथा भारतीय जनमानस की आत्मा में रची-बसी है। आसेत, हिमालय तक विविध रूपों में राम कथा सदियों से भारतीय मनीशा को उद्वेलित करती रही है। रामकथा में जनमानस के जीवन का राग स्पंदित होता है। राम को आदर्श मानकर उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर भारतीय चिंतन पद्धति आकार ग्रहण करती रही है। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के चरित्र को अपने जीवन में उतारना भारतीय जीवन शैली का अमीष्ट बन गया हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं में एक प्रदेषिक भाषाओं में रामकथा के शताधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जो उसकी महनीयता एवं महार्घता को रेखांकित करते हैं। प्रश्न उठता है कि जब तुलसी से पूर्व रामकथा को आधार मानकर अनेकष: ग्रंथों का प्रवचन हो चुका था तो गोस्वामी जी को मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के आर्दशों से अनुप्राणित होकर रामचरित्र मानस की रचना की आवश्यकता क्यों पड़ि? ऐसे कौर से कारक थे जिन्होंने गोस्वामी जी को राम के जीवन के विविध राम कथाओं की भांति उन्होंने महज रामकथा का हिंदी संस्करण प्रस्तुत करने के निमित्त रामचरितमानस का प्रणयन किया?

अंग्रेज के मूर्धन्य जॉन मिल्टन के महाकाव्य पाराडाइज लॉस्ट के संबंध में भी कुछ ऐसी भी भ्रांतियां फैली थीं। जहाँ तक कि अठारवीं शताब्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. जॉनसन ने भी अगस्टन विचारधारा से प्रभावित होने के कारण पाराडाइज लॉस्ट के काव्य सौश्ठव को नजर अंदाज कर उसे महज धार्मिक ग्रंथ तक सीमित कर दिया। उनके शब्दों में.....

उन्होंने अपने आलोचनात्मक ग्रंथ " Live the Poets" में अपने विचार रखते हुए आगे लिखा.....
.....

डॉ. जॉनसन की टिप्पणी का असर यह हुआ कि वर्शो मिल्टन को गुमनामी के अंधेरे में डुबा रहना पड़ता तथा एक महान कवि की उपलब्धियों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया। बीसवीं शताब्दि में ई. एम.डब्ल्यू हीलयार्ड ने अपनी पुस्तक Miltonic Setting एवं टी.एस. एलिएट ने अपने निबंध Milton Iiw में मिल्टन के विरूद्ध डॉ. जॉनसन के आक्षेपों को सिरे से खारीज कर मिल्टन को पुनर्जीवित किया तथा उनकी प्रतिभा का लोहा साहित्य जगत को मनवाया।

गोस्वामी जी की रामकथा का उद्देश्य पूर्ववर्ती रामकथाओं की कड़ी में एक और योगदान करना मात्र नहीं था। इससे इतर उन्होंने रामकथा को युगीन परिवेश की अपेक्षाओं के अनुरूप एक शस्त्र के रूप में प्रयोग करने की एक अभिनव पहल की। उनका यह मिशन काफी हद तक सफल भी रहा। ग्रियर्सन ने उनकी मंशा को भांपते हुए ही उन्हें बुद्धदेव के बाद एशिया का सबसे बड़ा लोकनायक माना।

वस्तुत: विदेशी शासकों को आक्रान्त भारतीय समाज एक लोकनायक की अधीरता से प्रतीक्षा कर रहा था जो उनकी दूरभिसंघयों के विरूद्ध भारतीयों को मजबूती से एक प्लेटफॉर्म पर ला सके। गोस्वामी जी की यह स्पष्ट मान्यता थी कि यह मध्य अनुष्ठान तभी सम्पन्न हो सकता है जब विभिन्न वर्गों एवं समुदायों में बंटे लोगों को आपसी भेदभाव को मिटाकर एक सुत्र में आबद्ध कर सके।

श्री राम के आर्दशों को सामने रखकर मानस की रचना करने के पीछे उनकी यही मानसिकता रही थी। तुलसी ने श्री राम के चरित्र में रूपाचित्र उन सारे गुणों को तुलसी एक ऐसे लोकनायक की खोज में थे जो टुकड़ों में बंटे भारतीय समाज के लिए उमीद की किरण दिखा सके। श्री राम के चरित्र में उनके आदर्शों में तुलसी को वे सारी संभावनाएं दिखीं जो समस्त आर्यावर्त्त को एकता के सुत्र में आवद्ध कर विदेशी आक्रमणकारीयों की दुरभीसेधियों से मुक्ति दिलान में सक्षम हो गये। देश की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखने मं मर्यादा पुरूषोत्तम का व्यक्तित्व ही उन्हें उपयुक्त दिखाई पड़ा। मानस में कई स्थलों पर गोस्वामी जी न अखंड

भारत के प्रती अपनी धोर प्रतिबद्धता दिखाई। साथ ही उन कारकों को प्रमुखता से रेखांकित किया है जो उनकी अभीष्ट सिद्धि में सहायक हो सके।

सर्वप्रथम गोस्वामी जी द्वारा चयन किए गए श्री राम कथा के श्रोता एवं वक्तावों को ही लिया जा सकता है। गोस्वामी जी ने चार श्रोता व वक्तावों को देश के चारों दिशावों में राम कथा का अनुश्रवण करते दिखया है। उत्तर में भगवान शंकर कैलाश पर्वत के शिखर पर माता पार्वती को राम कथा का अनुश्रवण कराते हैं। दक्षिण में अस्क पक्षीराज गरूड कागभुसुंडी जी को राम का मर्म बतातें हैं। पश्चिम में महर्षी अगस्त्य परम विदुशी लोपामुद्रा को रामकथा क गुढार्य से अवगत करातें हैं। इससे गोस्वामी जी इस तथ्य की पुष्टि करना चाहते है राम जी की ही ऐसी कथा है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से अनुश्रवण की जाती है। सम्पूर्ण भारत में राम कथा समान रूप से प्रचलित है। अत: गोस्वामी जी यह मानते थे कि राम कथा के माध्यम से सम्पूर्ण भारत वर्ष को एकता एवं अखंडता के बंधन में आबद्ध किया जा सकता है। विभिन्न भाषाओं और बोलियां बोलने के बावजूद राम कथा संभ के दिलों में प्राणवायु की तरह विद्यमान् है। राम कथा उदत्त व्यक्तियों अखंड भारत की अवधारणा को मूर्त स्वरूप प्रदान करने में सक्षम है। राम कथा ही अखंड भारत के अस्तित्व को नवीन कलेवर प्रदान करती है। चूकि भारत की चारो दिशाओं में राम कथा का अनुश्रवण हो रहा है। अत: इससे यह तथ्य अभिवयंजित होता है कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक एवं असम से गुजरात तक के विशाल भू-भाग में फैला सम्पूर्ण भारत सुभौगोलिक इकाई के रूप में विश्व के मानचित्र पर अपनी पहचान कायम रखने मे सफल रहा है और यह एकता राम कथा के माध्यम से ही संभव हो सकी है। चारों दिशाओं में भारत की सीमा निर्धारण का आधार राम कथा रही है।

गोस्वामी जी ने एक कदम आगे बढ़कर विभिन्न वर्गो एवं संप्रदायों को एकजुट करने मे भी राम कथा का ही आश्रय लिया। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि भारत की पराधीनता का मुख्य कारण था विभिन्न वर्गो एवं सम्प्रदायों के बीच परस्पर मैत्रीपूर्ण संबंध का आभाव। विदेशी आक्रमणकारियों ने उनकी इस कमजोरी का भरपूर लाभ उठाया तथा विभिन्न वर्गो, जातियों, रजवाड़ों एवं सम्प्रदायों को दूसरे से उलझकर अपनी सियासत बरकरार रखी। परस्पर बंटे होने के कारण उनमें इतनी क्षमता नहीं थी कि आक्रमणकारियों का डटकर सामना कर सके। विदेशी आक्रमणकारियों से दो-दो हाथ करना तो दूर वे आपस में लड़कर अपनी शक्ति गंवा बैठे। फलस्वरूप देश लंबी अवधि तक विदेशी दासता के अधीन रहा। उनके आपसी भेदभाव एवं फुट का फायदा उठाकर कभी पश्चिम एवं मध्य एशियाई लुटेरों ने तो कभी यूरोपीय शासकों ने भारत पर पर अपनी हुकूमत कायम की।

गोस्वामी जी ने लोगों का आह्वान किया कि वे आपसी भेदभाव को भुला कर एकता सुत्र मे आबध हो जाए। जबतक विभिन्न वर्गों एवं सम्प्रदायों के बीच एकता कायम नहीं होगी विदेशी हुकूमत से लोहा लेना संभव नहीं होगा। तत्कालीन भारतीय समाज शैव, वेष्णव, सॉक्त एवं अन्याय कडू सम्प्रदायों में विभक्त था। वे एक दूसरे को फूटी आँख नहीं सुहाते। एक दूसरे पर अपना वर्चस्व कायम करने के लिए हर तरह के हथकंडे अपनाने से उन्हें कोई परहेज नहीं था। टूकड़ों में बंटे होने के कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गयी। उनकी पहचान समाप्त होने लगी तथा में मुख्य धारा से पूरी तरह कटकर हाशिये पर आ गए थे। इस विषय परिस्थिति में टुकड़ों में बंटे भारतीय समाज को एकजुट करने के लिए एक ऐसे शलाका पुरश की आवश्यकता थी कि जो उनके दिलों के बीच की दरारों को पाटकर उन्हें एक मंच पर ला सके। गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरशोत्तम श्री राम में ऐसे ही महामानव की झलक पायी जो विभिन्न वर्गों, जातियों एवं संप्रदायों को आपसी भेदभाव भुलाकर एक बैनर तले लाने की अद्भूत क्षमता रखता हो। श्रीराम ने स्वयं पहले करके वैष्णवों, शाक्तों एवं शवों के बीच की खाई को पाटकर उनके बीच की दुरियां समाप्त करने हेतु आश्रान्त काम किया। उनके भगीरथ प्रयासों का प्रक्तिल यह हुआ कि उनके बीच दूरियां मिटने लगी तथा व्यक्तिगत हितों का परित्याग कर वे समष्टि क हित साधन हेतु पूरी निष्ठा से प्रतृत्त हुए।

लंका विजय हेतु समुद्र पर सेतु बनाने के क्रम में रामश्वरम् में बालुका राशि से शिवलिंग की स्थापना की तथा भगवार शंकर की आराधाना कर वैष्णवों एवं शैवों को एक मंच पर लाने की शुरूआत की। गोस्वामी जी ने श्री राम के मुख से शिव द्रोही भमदास कहावा कहकर यह स्पष्ट कर दिया कि भगवान शंकर से शत्रुता रखने वाला कदापि उनका सेवक या अनुयायी नहीं हो सकता। भगवान शिव उनके आराध्य है तथा उनकी कृपा एवं आर्षीवाद के बिना महापराक्रमी रावण को पराजित कर लंका विजय के सुनहरे सपने सजोना महज दिवा स्वप्न ही होगा। शिव की कृपा प्रसाद प्राप्त करके ही यह दुष्कर कार्य सम्पादित किया जा सकता है। इस प्रकार श्री राम ने अपनी दूरदर्षिता से शैवों एवं वैश्णवों के बीच की गहरी खाई को पाटकर उनके बीच प्रेम एवं सहयोग की भावना विकसित करने में निर्णायक भूमिका अदा की।

ठीक इसी प्रकार देवी सीता ने भी पुष्प्-वाटिका में श्री राम की झलक पाकर म नही में उन्हें अपने मन-मंदिर में अधिष्ठित कर लिया। इस पुनीत कार्य को निर्निधन सम्पन्न करने के लिए वे तुरंत गौरी भवानी के मंदिर को चली गई तथा उनकी अराधना करने लगी ताकि उनका मरोरथ सिद्ध हो सके-

गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरण बोली का झोरी जै जै गिरीवर राज किशोरी। जय महेश मुख चंद चकोरी।

देवी सीता ने अपनी अराधना में माता गौरी को प्रसन्न का अभीषट सिद्धि हेतु उनसे आशीर्वाद गृहण किया। उन्हें यह ज्ञात था कि माता गौरी की आर्शीवाद के बिना श्री राम को पति के रूप मं प्राप्त करना संभव नहीं था। माता को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने कोई करार नहीं उठा रही। वह यह भी जानती थी कि माता गौरी की इच्छा के विरूद्ध के धनुष को कोई मात्र भी हिला नहीं सकता। विरूद्ध शिव के धनुष को कोई लेश मात्र भी हिला नहीं सकता। उसपन प्रत्यंचा चढ़ाना तो दूर की बात थी। माता गौरी उनकी आराधना से अतिप्रसन्न होकर बोली।

मनु जाहि राखेउ मिलिहि बहु बिधि सहज सुंदर करूना निधान सुजान सै।

कहि भांति गौरी अशीश सुनिसिय सहित हि हरसी अलि

तुलसी भवानी पूजी पुनि-पुनि मुदित मन मंदिर चलि।

देवी सीता इस बात से पूरी तरह आश्वस्त थी कि माता गौरी का आशीश उनके कार्लक सिद्ध होने की गारंटी है। यहाँ पर भी गोस्वामी जी ने वैष्णव एवं शावतों को परस्पर मेहभाव मिथकर एक दूसरे के निकट लाने की अनी जिजीविशा का मूर्त्त स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया है।

गोस्वामी जी यह मानते थे कि छुआछुत, ऊँच-नीच की भावना से भी भारतीय समाज काफि मनुष्यों के साथ भेदभाव करता है वह ईश्वर की संरचना में हस्तक्षेप करता है। समस्त चर-अचर प्राणी ईश्वर की संतान है। अत: उनसे भेदभाव करना स्वयं ईश्वर की रचना प्रश्न चिन्ह लगाने के लगाने के बराबर है। तुलसी ने स्वयं बालकांड में लिख-नाना पुराण निगमांगम-सम्मतयुद्ध उन्होंने इसी विचारधारा को आगे भी दुहराया।

यहाँ तक पक्षपात् कहु शैवों, वेद-पुराण संतमत गारंथों इस प्रकार गोस्वामी जी ने जाति, धर्म, सम्प्रदाय एवं वर्ग की संकीर्ण मान्यताओं से उपर उठकर समस्त भारतवासियों का एक-दूसरे के प्रति प्रेम, दया एवं करूणा क भाव का संप्रेशण करने की सलाह दी, जो देश की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखने में निर्णायक भूमिका अदा कर सकेगा।

सीतान्वेशण के क्रम में प्रभु श्री राम जब दंडकारण्य स्थित भगत ऋषि के आश्रम में पहुंचते हैं तो उन्हें अपनी अनन्य, भक्त शबरी से भेंट हुई जो जाति की मील थी। कहाँ दशरथ नंदन अयोध्या नरेश श्री राम और कहाँ समाज के शोशित एवं दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली शबरी श्री राम ने शबरी के अनन्य प्रेम के आगे इस दूरी को पुरी तरह से मिटा दिया। शबरी भावा वेश हो श्री राम को चख कर भी बेर खिलाती रही और भक्ति का वत्सल श्री राम सारे भेदभाव को भुलकर बड़े चाव से शबरी के जूठे बेर खाते रहें। शबरी के जूठे बेर में ही उन्हें अनन्त सुख की अनुभूति हुई और बड़ चाव से उसका आस्वादन करने लगे। इस तुलसीदास ने यह मत अभिव्यंजित किया कि प्रेम के आगे सब कुछ फीका है। प्रेम के वषीभूत हो भगवान भी सब कुछ भूलकर भक्त को स्वयं में आत्मसात् कर लेते है। अत: उचित यही है कि हम भी जाति, धर्म एवं वर्गो की संकीर्ण दीवारों को ध्वस्त लोगो के दिलों में प्रेम एवं उम्मीद के दिए जलाए एवं परस्पर संबंधों को मजबूती प्रदान करें।

राष्ट्र भाषा हिंदी के प्रति भी तुलसी दास में अगाध श्रद्धा थी। उन्होंने हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के 400 साल पूर्व ही उसकी शक्ति को पहचान लिया था तथा राष्ट्रभाषा के रूप मं उसकी क्षमताओं का उदघोश किया था। वे माानते थे कि हिंदी के माध्यम से ही देश की एकता एवं अखंडता को मजबूती प्रदान की जा सकती है। हिंदी देश की बड़े भू-भाग में बोली जाने वाली भाषा हैं अत: राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी दावेदारी को कम करके नहीं आंका जा सकता है। हिंदी प्रेम, ररूणा एवं सहिष्णुता की भाषा है। यह भारत की आत्मा इसमें अनुगुंजी होती है। भारत के जन-जन की आकांक्ष के रूप में हिंदी ने अपनी पहचाान कायम की है। इस तरह से अन्य भाषाओं की अपेक्षा राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी भूमिका निर्णायक होती है। तुलसीदास जी कहते हैं-

भाषाबद्ध करब में सोई, मोरे मन प्रतति अति होई।

तुलसीदास की स्पष्ट मान्यता था की समस्त भारतीय की भावनाओं की सेवा कर सकती है। हिंदी माध्यम से ही सभी भारतवासीयों को एकसुत्र में पिरोया जा सकता है। हिंदी कइस जादूगारी रो तुलसीदास नें सदियों पहले पहचाान कर उसे रामचरित्रमाानस के लेखन का माध्यम बनाया।

इस प्रकार तुलसीदास के रामचरित्रमानस को महज धार्मिक भावना से ओतप्रोत ग्रंथ नेमानकर नवीन भारत की दिशानिर्देशिका के रूप में देखा जा सकता है। आ. रामचंद्र ने भी शब्द शोधन स व्यापार शोधन में तुलसी की महार्धाता की ओर इशारा किया था।

संदर्भ

1. Milton, Jha - Paradise work.
2. Dr. Johnson - Lines of the English poets.
3. तुलसीदास, गोस्वामी-रामचरित्रमानस।
4. तुलसीदास, गोस्वामी-विनय पत्रिका।
5. शुक्त, रामचंद्र-त्रिवेणी।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूप

डॉ० प्रदीप कुमार सिंह

अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, साठये महाविद्यालय (मुंबई विद्यापीठ), मुंबई-महाराष्ट्र

प्रयोजनमूलक हिन्दी साहित्य की हिन्दी से अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग करती है। भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम बोलते है तथा अपने विचारों को व्यक्त करते है। भाषा शब्द संस्कृत शब्द ''भाष'' धातु से बना है जिसका अर्थ है, बोलना या कहना। अपने मन के भावों और विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा का इस्तेमाल किया जा रहा है। भाषा सम्प्रेषण का सशक्त साधन है और उसका प्रकार्य समाज केन्द्रित होता है। भाषा के जिस रूप से हम अपने विचार एवं भाव व्यक्त करते हैं यानि दूसरों के विचार एवं को सुनकर ग्रहण करते हैं, उसे मौखिक भाषा कहते हैं। आधुनिक सभ्यता के विकास में भाषा का व्यापक योगदान है और वह समाज में अनेक रूपों में प्रचलित है। भाषा के अनेक रूप होते हैं जिनका विस्तार से भाषा विज्ञान में अध्ययन और विश्लेशण किया जाता है।

व्यक्ति द्वारा विभिन्न भावों, विचारों और रूपों में बरती की जाने वाली भाषा को भाषा-विज्ञानियों ने मुख्य रूप से सामान्य और प्रयोजनमूलक इन दो भागों में विभाजित किया है। भाषा-विभाषा और बोली के रूप में समाज की अभिव्यक्ति को अंकित करती है पर जब उसका मानकीकरण हो जाता है तब वह भाषा के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। साहित्य में जिस प्रकार की हिन्दी का प्रयोग होता है उस तरह की हिन्दी का प्रशाशन, जनसंचार या विज्ञापन में उपयोग नहीं होता। समाज में भाषा जितनी जगह प्रयोग में लाई जाती हैं उसके शब्द और सम्प्रेषण का स्वरूप अलग-अलग होता है। प्रयोजनमूलक हिन्दी को अंग्रेजी में Functional Hindi बोलते है। प्रयोजनमूलक हिन्दी से तात्पर्य प्रशासनिक, वैज्ञानिक तकनीकी, विधि संचार एवं अन्य गतिविधियों में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी से हैं। प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रयोग आज सरकारी एवं केंद्र सरकारी कार्यालयों में बड़े फलक और धरातल पर प्रयुक्त हो रही है।

भाषा मानव समाज में सामाजिक रूप से आर्जित है और व्यक्ति उसे सीखता है। भाषा के प्रयोजन की दृष्टि से स्टीवर्ट ने कहा है कि इसके सात प्रयोजन होते हैं जिनके लिए प्रयोजनमूलक भाषा का प्रयोग किया जाता है राजभाषा वर्ग भाषा, शैक्षिक भाषा संपर्क भाषा साहित्यिक भाषा, धार्मिक भाषा, तकनीकी भाषा और राज भाषा द्य आज भाषा के रूप में संविधान हिन्दी का अपना विशेष महत्व है। जब कोई भाषा क्षेत्रीय सीमाओं से निकलकर सारे राष्ट्र में स्वीकृति प्राप्त कर लेती

है और उसका एक व्यापक रूप बन जाता है तब उसे राष्ट्रभाषा कहा जाता है। यह भाषा संपर्क भाषा के रूप में भी विकसित ही जाती है। इस अर्थ में हिन्दी को संपर्क और राष्ट्रभाषा दोनों ही रूपों में स्वीकृत किया जा सकता है किन्तु भारतीय संविधान के अनुसार वह केवल राजभाषा है। राजभाषा और राष्ट्रभाषा की संकल्पना के बीच अंतर करना आवश्यक होता है। राजभाषा आर्थिक विकास और प्रशासनिक प्रयोग से जुड़ी होती है, वह राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है होती है जबकि राष्ट्रभाषा में सामाजिक और सांस्कृतिक एकता का आधार होता है और वह राष्ट्रीयता से जुड़ जाती है। वह भाषा जो एक पूरे राष्ट्र अथवा देश द्वारा बोली और समझी जाती है; तथा उस राष्ट्र की संस्कृति से संबन्धित होती है। यह पूरे देश की होती है।

राज भाषा राज अर्थात शासन के द्वारा प्रयोग की जाती है। यह सरकारी भाषा होती है, और सरकारी कार्यालयों में इसका प्रयोग मुख्य रूप से होता है। यह कामकाजी भाषा होने के कारण इसका अपना अलग प्रभाव होते है। यह भाषा केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार के आधार पर एक ही अथवा भिन्न-भिन्न भी हो सकती है। भारत में अनेक भाषाएं हैं जिनको राष्ट्रभाषा कहा जाता है। यही कारण है कि केवल हिन्दी को राष्ट्रभाषा नहीं कहा जा सकता। वैसे 1949 में राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद ने इसका समर्थन किया था पर अनेक चर्चाओं के बाद देवनागरी लिपि में

लिखित हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

सन् 1946 में संविधान सभा बनी और उसमें कहा गया कि कामकाज की भाषा हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी होगी किन्तु 14 जुलाई ,1947 को एक संशोधन प्रस्तुत किया गया जिसमें हिन्दुस्तानी के स्थान पर हिन्दी शब्द रखा गया। फरवरी, 1948 में जो संविधान का प्रारूप सामने आया उसमें राजभाषा विधेयक की कोई धारा नहीं थी केवल यही कहा गया कि संसद की भाषा अंग्रेजी या हिन्दी होगी। आगस्त से सितंबर, 1949 में यह स्वीकार किया गया कि अखिल भारतीय कामकाज के लिए भी कोई राजभाषा हो। पहले हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए 15 वर्ष की अवधि का प्रस्ताव था पर इसे असीमित रूप से निरंतर करने के कारण अभी भी अंग्रेजी भी हिन्दी के साथ चल रही है। जिसके कारण नियम के अनुसार हिन्दी राजभाषा और अंग्रेजी सहभाषा है पर वास्तविकता में अंग्रेजी अभी तक राजभाषा बनी हुई है। वस्तुत:राजभाषा संभन्धी जो भी अधिनियम बने हैं उसके अनुसार सांविधिक स्थिति इस प्रकार है –

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा। संविधान के अनुच्छेद 343 (2) में 15 वर्ष की अवधि तक अर्थात 26 जनवरी, 1965 तक सरकारी कामकाज में अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखने की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुच्छेद 343(3) के अनुसार संसद को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह अधिनियम पारित करके 26 जनवरी,

1965 के बाद भी सरकारी कार्य में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रख सकती है। संविधान के अनुच्छेद 344 में यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति एक आयोग बनाएँगे जो हिन्दी के उत्तरोत्तर प्रयोग के बारें में राष्ट्रपति को सिफारिश करेगा। आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए इस अनुच्छेद में एक संसदीय समिति के गठन की भी व्यवस्था की गई है। वर्ष 1955 में राजभाषा आयोग की स्थापना हुई जिसमें अपनी रिपोर्ट 1956 में दी। आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए 1957 में एक संसदीय समिति बनाई गई। आयोग और संसदीय समिति दोनों का यह मत था कि 1965 के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग चलता रहा।

राजभाषा आयोग और संसदीय समिति की सिफारिशों को कार्यरूप देने के लिए राजभाषा अधिनियम,1963 पारित किया गया। इस अधिनियम का वर्ष 1967 में संशोधन किया गया। दिसम्बर,1967 में संसद के दोनों सदनों ने सरकार की राजभाषा नीति के संभन्ध में एक सरकारी संकल्प पारित किया जिसे 18 जनवरी, 1968 को अधिसूचित किया गया। इसके पश्चात राजभाषा अधिनियम, 1963 के अंतर्गत राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम 1967 बनाये गये।

रचनात्मक और प्रयोजनमूलक भाषा

भाषा का एक स्वरूप रचनात्मक भी होता है। जिसका प्रयोग साहित्य में किया जाता है। साहित्य सौंदर्यबोध से जुड़ा है और वह किसी भी भाषा वर्ग की संस्कृति को भी व्यक्त करता है। साहित्य में व्यापक रूप से जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है उसे रचनात्मक भाषा कहा जाता है। रचनारमक लेखन में लेखक को विषय की पूरी जानकारी होती है। वह उससे जुड़े हुये तथ्यों को पूरी तरफ से एकत्र करता है और उसको अपने शब्दों में सरल रूप से अभिव्यक्त करता है। वह किसी विषय पर कितनी रोचकता या नीरसता से लिखता है यह उसके लेखन कला और लेखन शैली पर आधारित होते है। रचनात्मक लेखन में एक ही विषय

पर अपना अलग-अलग विचार होते है। भाषाओं की एकरूपता की बात करने का विशेष अर्थ नहीं है क्योंकि जब उनका हित्य और समाज में प्रयोग होता है तभी उनमें एकरूपता संभव है। अत:मानक भाषा का रचनात्मक प्रयोग ही किया जाता है। साहित्य की भाषा में विदेशी शब्दों का भी प्रयोग हो सकता है और उसमें नये शब्द और उसकी संरचनाओं का भी प्रयोग किया जाता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के संदर्भ में 'प्रयोजन' शब्द के साथ 'मूलक' उपसर्ग जोड़ने से प्रयोजनमूलक पद बनता है। प्रयोजन से तात्पर्य है उद्धेश्य अथवा प्रयुक्ति। 'मूलक' से तात्पर्य है आधारित। अत: प्रयोजनमूलक भाषा से तात्पर्य हुआ किसी विशिष्ट उद्देश्य के अनुसार प्रयुक्त भाषा। इस प्रकार प्रयोजनमूलक हिन्दी से तात्पर्य हिन्दी का वह

प्रयुक्तिपरक और शैलिपरक विशिष्ट प्रयोजन होता है। समग्र रूप में हिन्दी के प्रायोजनमूलक रूपों को अलग-अलग ढंग से रखा जा सकता है:-

बोलचाल की हिन्दी

यह सामान्य हिन्दी है और हर भाषा में जनभाषा का स्वरूप होता है। इसका प्रयोग उस भाषा को जानने वाले करते हैं। बोलचाल की यह हिन्दी हर क्षेत्र में कई बोलियों के रूप में भी बोली और समझी जाती है।

व्यावसायिक हिन्दी

इसे व्यावसायिक या व्यावहारिक हिन्दी भी कहा जाता है। विशेष रूप से व्यापार में इसका प्रयोग होता है। लिखित रूप में न भी सही पर व्यापार संपर्क में इसका व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है।

प्रशासकीय हिन्दी

यह हिन्दी सरकार और अन्य संस्थागत कार्यालयों में प्रयोग में लाई जाती है। प्रयोग के क्षेत्र के अनुसार इसके शब्द भी अलग-अलग होते हैं। विधि और बैंक में अलग-अलग प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार अन्य सरकारी कार्यालयों में भी इस हिन्दी का प्रयोग होता रहा है।

तकनीकी हिन्दी

इस हिन्दी का प्रयोग तकनीकी क्षेत्रों में होता है। आजकल टेक्नालजी का व्यापक विकास हुआ है और इसके लिए कम्प्युटर की हिन्दी भी अलग शब्दों के साथ निर्मित हुई है। इंजिनियरी के साथ ही कम्प्युटर के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता रहा है। इसी प्रकार यंत्र निर्माण में विभिन्न यंत्रों के जो भी शब्द होते हैं वे इस हिन्दी में शामिल होते हैं।

ज्ञान क्षेत्र की हिन्दी

ज्ञान विज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं साहित्य जुड़े संगीत, नृत्य, चित्रकला, काव्यशास्त्र, भाषा विज्ञान, दर्शन जैसे अनेक क्षेत्र हैं। इनमें हिन्दी का पयोग होता है और उसकी शब्दावली भी अलग-अलग होती है।

सामाजिक हिन्दी

समाज में विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों, यज्ञ, अराधना तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों में इस भाषा का प्रयोग होता है। समाज के व्यापक क्षेत्र हैं। उन सबमें भाषा का पारिभाषिक प्रयोग किया जाता है। एक क्षेत्र ज्यतिष है। इस तरह सामाजिक हिन्दी का व्यापक रूप सामने आता है।

साहित्य की हिन्दी

साहित्य में अनेक विधायें हैं जिनमें कविता, कला नाटक, उपन्यास, कहानी और गद्य के विभिन्न रूप हैं। इन सबकी रचना में भी भाषा के विविध प्रयोग सामने आते हैं। कविता और गाध्य की भाषा भी कई मानकों की दृष्टि से अलग-अलग होती है। इस तरह भाषा के प्रयोग का यह भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

प्रयोजनमूलक भाषा के आयाम

प्रयोजनमूलक भाषा उच्च शिक्षा संस्थानों में यदि प्रायोग में लायी जाती है तो उसका तेजी से विकास होता है। अभी भारत के विश्वविध्यालयों में अधिकतर अंग्रेजी ही चल रही है। यह कहना कि हिन्दी का विकास नहीं हुआ इसलिए उसका प्रयोग नहीं किया जाता सही नहीं है। हर भाषा अपनी व्यापक संभावनाएं होती हैं पर जब तक इनका प्रयोग नहीं किया जाता तब तक इसकी पहचान नहीं हो पाती।

प्रयोजनमूलक भाषा को सबसे महत्वपूर्ण अर्थ में अनुप्रयुक्त या एप्लाइड कहा जाता है। भाषा का विशिष्ट रूप हिन्दी में विकसित हुआ है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसका विकास इस कारण हुआ है कि प्रांतीय भाषाओं के रूप में उनका प्रयोग इज्ञान किया जा रहा है। अब साहित्य

से बाहर निकलकर भी प्रशासन विज्ञान और प्रौद्योयोगिकी के रूप में इसका प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष

आज के युग में हर तरह का अध्ययन एक वैज्ञानिक पद्धति से ही किया जाता है। अत: हम इस युग को वैज्ञानिक-तकनीकी अध्ययन का युग कह सकते हैं। प्रयोजनमूलक भाषा से तात्पर्य हुआ किसी विशिष्ट उददेश्य के अनुसार प्रयुक्त भाषा। इस तरह प्रयोजनमूलक हिन्दी तात्पर्य हिन्दी का वह प्रयुक्तिपरक विशिष्ट रूप या शैली है जो विषयगत तथा संदर्भगत प्रयोजन के लिए विशिष्ट भाषिक संरचना द्वारा प्रयुक्त की जाती है।

संदर्भ सूची

* पयोजनमूलक हिन्दी और जनसंचार- डॉ. राजेन्द्र मिश्र, तक्षाशिला पब्लिकेशन नई दिल्ली-110002।
* प्रयोजनमूलक हिन्दी का अध्ययन जयभारती पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
* प्रयोजनमूलक हिन्दी प्रक्रिया और स्वरूप, कैलाशचन्द्र भाटिया, तक्षशिला पब्लिकेशन।
* प्रयोजनमूलक हिन्दी प्रासंगिकता एवं परिदृश्य, डॉ. रुनागलक्ष्मी, जवहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र.)-281001।
* प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूप, राजेन्द्र मिश्र और राकेश शर्म, तक्षशिला प्रकाशन, 98-ए, हिन्दी पार्क, दरियागंज, नई दिल्ली -1100021

हिंदी उपन्यासों में स्त्री विमर्श

डॉ० कोल्हे डी०बी०

हिन्दी विभाग, न्यू आर्टस् कामर्स अण्ड सायन्स कॉलेज, अहमदनगर- 414001 महाराष्ट्र

स्त्री विमर्श पुरुषों के साथ स्त्रियों की राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षणिक समानता का वह आंदोलन है, जिसे पहले नारीवाद की संज्ञा से अभिहीत किया जाता था। यह पितृसत्तात्मक और लिंगभेद पर आधारित मूल्यों और मान्यताओं के प्रति कहीं न कहीं विद्रोह भी है। इसकी शुरूआत मुख्यत: ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई। इसकी जड़े 17वीं सदी के मानवतावाद और औद्योगिक क्रांति में दिखाई पड़ती हैं। कानून और धर्मशास्त्र दोनों ने ही नारी को पराधीन बना रखा था। उसे पुरुषों की तुलना में शारीरिक और बौद्धिक रूप से हीन माना जाता था सम्पत्ति रखने और व्यवसाय करने की सुविधा तो दूर उनका अपने बच्चों और स्वयं पर भी अपना अधिकार नहीं था। स्त्रीवादी आंदोलन का आरम्भ 1747 में हुआ, जब न्यूयार्क में कुछ महिलाओं ने एक सम्मेलन आयोजित कर नारी स्वतंत्रता पर एक घोषणापत्र जारी किया,

जिसमें पूर्ण कानूनी समानता, पूर्ण शैक्षिक और व्यावसायिक अवसर, समान मुआावजा, मजदूरी कमाने और वोट देने के अधि कार की माँग की गई थी। यह आन्दोलन बड़ी तेजी से फैला और शीघ्र ही पूरे यूरोप में व्याप्त हो गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1946 में नारी स्थिति पर एक आयोग गठित किया, जिसका दायित्व विश्व भर की महिलाओं के लिए समान राजनीतिक अधिकार, समान आर्थिक आधार और समान शैक्षणिक अवसर का अधिकार दिलाना था।

1970 के आसपास अमेरिका के स्त्री अस्मिता से जुड़े आंदोलन में बहुत बड़ा भटकाव आया। स्त्रियों के लिए यौन सुख का प्रश्न असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण हो गया था, महिलाओं की यौन स्वतंत्रता को ही उनकी मुक्ति मान लिया गया। स्त्री विमर्श ने इस अवधारणा को भी चुनौती दी कि स्त्रियों और पुरुषों के शरीर में थोड़ा फर्क होने के कारण उनके कार्य स्थिति, सत्ता और स्वभाव में भी फर्क जरूरी और उचित है। एशिया में 19वीं और 20वीं सदी में विदेशी शासन और सामंती शासकों की निरंकुशता के विरूद्ध उठ खड़े हुए आंदोलनों के दौरान स्त्रीवादी अवधारणा को अधिक बल मिला। इस युग में स्त्री अधीनता के विरूद्ध उठी आवाजों ने अनेक माँगों का रूप ले लिया। जैसे -विधवा पुनर्विवाह, बहु विवाह, सती और परदा प्रथा पर रोक स्त्रियों के लिए शिक्षा व संवैधानिक स्वतंत्रता भारत में नारीवादी आन्दोलन का प्रारम्भ पंडिता रमाबाई और सावित्रीबाई फुले द्वारा हुआ। पंडिता रमाबाई ने स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया, हिंदू धर्म की रूढ़िवादिता आघात किया। 19वीं शताब्दी के 9वें दशक में स्त्रियों के स्वतंत्रता की बात की। सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। उनके लिए अलग स्कूल भी खोला। यह सच है कि पिछले दो सौ वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। संविधान और कानून उनकी रक्षा एवं समान व्यवहार दिलाने के लिए आगे आए हैं। लेकिन कुल मिलाकर हर देश और हर जगह पर पुरुष सत्ता का ही बोलबाला रहा है।

स्त्रियों के प्रति हमारा यह व्यवहार गैर बराबरीपूर्ण इसलिए भी रहा है, क्योंकि अभी तक सामंती मानसिकता पूर्ण रूप से टूट नहीं सकी है। पारिवारिक स्तर पर आज भी उनके साथ सामंती किस्म का क्रूर व्यवहार होता है। महज इतना ही नहीं जो लोग मंचों पर नारी मुक्ति का प्रचार-प्रसार करते हैं, वही लोग अपने घरों की स्त्रियों के साथ बर्बरतापूर्ण पक्षपातपूर्ण सामंती व्यवहार करते है। भारतीय समाज के कदम-कदम पर ऐसे तीखे विरोधाभास मौजूद हैं, जिनके कारण स्त्रियों के प्रति हमारा व्यवहार पक्षपातपूर्ण, हिंसक एवं उत्पीड़नकारी रहा है। पितृसत्तात्मक समाज ने उनके लिए ऐसे मूल्य, नैतिक सिद्धांत इतने सुनियोजित ढ़ंग से गढ़े है, जिनमें आजीवन उनकी बेटियाँ और बहुएँ गलती-ढ़लती रहती है। प्रख्यात बांग्लादेशी रचनाकार तसलीमा नसरीन के मत में यह पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था का सबसे शड्यंत्र है कि स्त्री अपने अंधकार में रहे, सेविका बनी रहे, उसके शोषण को वह कभी न पहचाने। अत: स्त्री ने अपने घर की दहलीज लाँघने की जुर्रत की या बाहरी दुनिया को झाँककर देखने की। शायद

इसीलिए फेडरिक एंगेल्स ने कहा कि - ''मातृसत्ता का विनाश स्त्री जाति की विश्व ऐतिहासिक पराजय था। अब घर के अंदर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया।''

स्त्री को सौंदर्य की वस्तु, पुरुष के उपभोग की चीज के रूप में समझा गया। उसकी मेधा को, उसकी काबिलियत को अनदेखा कर दिया गया। इसलिए स्त्री को देह के स्तर पर समझा जाने लगा। हिंदी साहित्य में स्त्री मुक्ति आंदोलन एक संगठित आंदोलन के रूप में सन् 1970 के बाद ही रूप लेता है। इसका मूल कारण स्त्री के अपने स्वत्व की पहचान ही है। स्त्री पुरुष दोनों सचमुच समाज में ही नहीं सब कहीं समान अधिकार के हकदार हैं। किन्तु हर कहीं स्त्री हाशिए पर छोड़ दी गई है। पुरुषो को अपनी मनमानी करने की पूरी छूट दी गई। किन्तु स्त्रियों को बेड़ियो में जकड़ दिया गया। अरविंद जैन लिखते है कि ''पुरुष सत्ता ने उसे मर्यादाओं के संकट जाल में-बाँधे रखा, मर्यादाओं के संकट जाल में स्त्री के लिए "प्राइवेट लाइफ" का मतलब है। व्यभिचार और सिन्दूरी संबंधों से बाहर, हर संबंध अनैतिक, पाप और अक्षम्य अपराध। एकल विवाह या संबंध के सारे प्रतिबंध सिर्फ स्त्री के लिएद्य पुरुष के लिए व्यभिचार की खुली वैधानिक छूट। रखैल, रक्षिता वेश्या, कॉलगर्ल सब इसी के आनंद की संस्थाएँ है।''[2]

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि भारत में स्त्रियों को स्वतंत्र कराने का बीड़ा पुरुषों ने ही उठाया, और उन्होंने स्त्रियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए उसके जीवन की बेड़ियों को तोड़ने का कार्य किया। उनका उद्देश्य सचमुच स्त्री-पुरुष समानता ही था। भारतीय साहित्य में भी इसकी झलक दिखाई देती है। हिंदी साहित्य भी इससे अछूता बिल्कुल नहीं रहा। आदिकाल से लेकर यद्यपि स्त्री लेखन का तथा स्त्री विद्रोह का स्वर मुखरित है, तथापि एक आंदोलन के रूप में स्त्री मुक्ति को लक्ष्य बनाकर लिखे गए साहित्य की शुरूआत सन् 1970 के बाद ही दिखाई देती है। आदिकाल मध्यकाल और रीतिकाल में स्त्री का भोग्या रूप ही चित्रित हुआ है। आधुनिक काल में ही स्त्री को लेकर बदली हुई मानसिकता का विकास हुआ था। वह सचमुच नवजागरण का परिणाम था। स्त्री को मुक्त करके उसके जीवन को सुधारने का कार्य ही इस प्रकार की रचनाधर्मिता का प्रमुख लक्ष्य रहा है। सन 1970 के बाद का नारी लेखन स्त्री की आत्मपहचान और आत्मबल को उद्घोषित करने वाला अवश्य है। हिंदी साहित्य में स्त्री रचनाकारों में प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, गीतांजलीश्री, अनामिका, मंजुल भगत, कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा, चित्रा मुदगल, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग इत्यादि नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी लगभग सभी रचनाओं में स्त्री का विद्रोह रूप ही दिखाई पड़ता है। अपने ऊपर किये जाने वाले विभिन्न अत्याचारों, एवं अन्यायों के खिलाफ विद्रोह इनकी रचनाओं में मुखरित हुआ है।

वैसे तो परिवार को सुरक्षा का प्रतीक माना जाता है, परंतु अधिकांश स्त्रियों के लिए परिवार बेहद असुरकश्चित है, वह उत्पीड़न एवं शोषण का केंद्र है। क्योंकि स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को अपने ही नियमों में ढाल लेना चाहता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास "बेतवा बहती रही" के प्रमुख स्त्री पात्र उर्वशी के खिलाफ घर में ही उसका शोषण होता है। बड़ा भाई ही उसका दैहिक शोषण करता है, पर बह विद्रोह तक नहीं कर पाती है, क्योंकि उसे बचपन से ही सिखाया गया है कि बेटी को अपनी जुबान को काबू में रखना चाहिए। गीतांजलिश्री के 'माई' उपन्यास में सुनैना की वेशभूषा संबंधी टिप्पणी करते हुए उसे सलाह दी जाती है कि सुनैना को फ्रॉक ही पहननी है। पर उसे पूरी लंबाई का फ्रॉक पहनने की सलाह दी जाती है। लड़की का बदन तनीक भी न दिखे इस पर लगभग सभी लोग सहमत हैं। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' में उपन्यास की पात्रा महरूख की चाल चलन पर उसका चाचा नियंत्रण रखना चाहता है। अपनी दादी से पूछता भी है कि महरूख क्यों पैर फेंक फेंककर चलती हैं जो लड़कियों के योग्य सही चाल चलन है, उसे सिखा क्यों नहीं देती। पुरुष वचस्ववादी समाज ने लड़कियों की चाल-चलन को निर्धारित कर रखा है। पर पुरुष जैसा चाहे वैसा चल और उठ-बैठ सकता है, उस पर कोई नियंत्रण ही नही। ठीक इसी प्रकार "छिन्नमस्ताश की माँ हमेशा अपनी पुत्री प्रिया को ही डाँटती रहती है कि लड़कियों को आवाज किये बिना चलना चाहिए, पैरों की ठक ठक आवाज करके चलना ठीक नहीं है। आजकल तो लड़के लड़कियों के खिलौने भी अलग-अलग है, पुराने जमाने में भेदभाव कम था परंतु आज के इस बाजारीकृत समाज में यह भेदभाव काफी ज्वलंत है। बेटा - बेटी में भेद भारतीय समाज में हर जगह दिखाई देता है। यह माना जाता है कि लड़का वंश पोषण के लिए है अतः उसे शिक्षित करना अनिवार्य है। परंतु लड़की सिरफक गृहस्थी संभालने के लिए ही है। इसलिए घर का कामधंधा सीखना ही पर्याप्त है। यह सचमुच नारी को अस्वतंत्र बनाये रखने के शड्यंत्र के ही परिणाम है।

इस भेदभाव की रूढियों के कारण स्त्री घर की चारदीवारी के भीतर दम घुटती रह रही है। इस अमानवीय स्थिति को समकालीन स्त्री रचनाकारों ने अपना विषय बनाया और उसके खिलाफ अपनी आवाज भी बुलन्द की है। किसना सोबती के उपन्यास "ऐ लड़की" में बेटे को कॉलेज में भेजा जाता है, और लड़की को पंडित और मौलवी के पास भेजा जाता है। इस उपन्यास की अम्मू

कहती है कि वह अपनी भाई के समान पढ़ती तो क्या से क्या बन जाती, उसके मन में पढ़ने, नौकरी करने और अच्छी हैसियत पाने की अदम्य लालसा है। परंतु घर में उससे कह दिया जाता है कि भाई पढ़ रहा है, उसे दूध दे आओ, उसका बिस्तर ठीक करके उसे कंबल ओढ़ा दो। ये सारी बातें जो पुरुष वर्चस्ववादी समाज की मानसिकता से उपजी हुई है। कृष्णा सोबती इस मानसिकता के खिलाफ अपना आक्रोश व्यक्त करती हैं। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आँवा' की पात्र कुंती माँ कहती है कि अंग्रेजी स्कूल में फीस ज्यादा है, इसलिए छत्रु अंग्रेजी स्कूल में पढ़ेगा और तुम हिंदी स्कूल में क्योंकि बेटा छुत्रु बुढापे का सहारा है। यहाँ मतलब स्पष्ट है कि बेटे को विशेष ध्यान देना अनिवर्य है। 'माई' उपन्यास की सुनैना भी किसी अच्छे स्कूल में जाकर पढ़ना चाहती है, पर उसके दादा-दादी कहते हैं। कि यहीं पढना अच्छा है। इनका विचार है कि लड़की पर ज्यादा पैसा फुँकने की जरूरत नहीं हैं क्योंकि वह पराए घर जाने वाली है। इसीलिए शायद जायदाद भी अधिकांश पिता अपने पुत्रों को ही देना चाहते हैं।

'चाक' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने एक सच्चाई की ओर इशारा किया है कि जो माता बेटी को जानती है कि वह जिंदगी भर काँटों में उलझती रहेगी, वह सुख की नींद बिल्कुल भी नहीं सो पाती है। इस प्रकार का भेदभाव वर्तमान समाज का सच है। इसके खिलाफ समकालीन उपन्यासकार या कहानीकार अपनी आवाज उठा रहे हैं। परिवार को कहीं न कहीं सुरक्षा का प्रतीक माना जाता है, पर यह भी सोचना चाहिए कि आखिर किसके लिए? नारी के संदर्भ में परिवार उसके लिए कभी भी सुरक्षा प्रदान नहीं करता बल्कि उसे अति असुरक्षित और शोषित बनाकर ही दम लेता है। भारतीय स्त्री का अधिकांश समय परिवार के लिए ही छोड़ दिया जाता है। जो इस प्रकार अपने को पूर्णत: परिवर्तन के लिए कुर्बान कर देती है, चाहे वह वहाँ पर असुरक्षित एवं शोषित ही क्यों न हो? उसे आदर्श गृहिणी नाम देकर समाज अत्यधिक शोषण के करीब ला खड़ा करता है। यह समाज नारी को दासी के रूप में देखने का हिमायती रहा है। जिसके मूल पुरुष वर्चस्ववादी दृष्टि ही सक्रिय है। स्त्री विमर्शवादी लेखक या लेखिका इस मानसिकता को सिरे से खारिज करते हुए उसका विरोध भी करते हैं।

वर्तमान युग की स्त्रियों ने यह पहचान लिया है कि शादी हमारे समाज में शोषण का हथियार बन चुकी है। उसको अपने आत्मसमर्पण के बढ़ते अवज्ञा ही हासिल होती हे। "सात नदियाँ एक समंदर" की तय्यबा शादी को स्त्री के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप स्वीकारती है। उसका मानना है कि एक स्त्री का शोषण और पतन शादी के पश्चात ही आरम्भ होता है। इसलिए आधुनिक संदर्भ में बहुत सी स्त्रियाँ विवाह या दाम्पत्य जीवन को कठोर बंधन मानते हुए अविवाहित ही रहने का निर्णय ले लेती है। यहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों में अधिकार की अपेक्षा मित्रता का भाव होना जरूरी हो जाता है। नहीं तो वैवाहिक जीवन पराजय में परिणत हो ही जाएगा। पति-पत्नी को एक दूसरे को उपयोग या उपभोग की दृष्टि से नहीं वरन् मित्रता की दृष्टि में समझना, उसे स्वीकारना और साथ देना चाहिए। किंतु अधिकांश पुरुष, पत्नियों के साथ मालिकाना अधिकार ही रखते हैं। "एक जमीन अपनी" के शुधांशु के लिए स्त्री शरीर तो उपभोग की ही वस्तु है। वह उस दृष्टि से ही अंकित को देखता है। समकालीन उपन्यासों में पुरुष को लेकर स्त्री की मानसिकता में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। वह पति को परमेश्वर मानने के लिए कदापि तैयार नहीं, पुरुष या पति को जीवन के लक्ष्य प्राप्त करने के रूप में बिल्कुल भी तैयार नहीं। राकेश कुमार लिखते है कि ''समकालीन स्त्री लेखन में स्त्री अपनी स्थिति को नियति मानकर नहीं देखती, अपितु इन स्थितियों के जिम्मेदार तत्वों, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के अन्तर्विरोधों, कारणों को भी तलाशती है कि उनकी निष्क्रिय, कमजोर, उपेक्षित, उत्पीड़ित स्थिति किसने बनाई और क्यों? यही स्त्री लेखन की सोच में बुनियादी बदलाव है।''[3]

गृहस्थ की चक्की चलाने वाली स्त्री हो पर उसका अलग कोई अस्तित्व ही नहीं, वह किसी की पत्नी के नाम, बहू के नाम, माँ के नाम, नानी या दादी के नाम से हीजानी-पहचानी जाती है। सचमुच उसकी अपनी कोई जगह नही। यह साहित्य नहीं, यही सच है। परिवार को लेकर अपना जो दृष्टिकोण है वह कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' के ईशान के मुँह से स्पष्ट करती है। हर स्त्री सचमुच ऐसे ही घर परिवार की चाह में हैं-''मानवीय मन के आवेग और आवेश को परिवार ही नियंत्रित करता है। असंख्य डरों से वह समाज से जुड़ा है, इसी में रहकर स्त्री पुरुष दोनों अपनी-अपनी अंत:शक्तियों को अंकुरित कर सकते हैं।'' यह एक सच्चे घर की परिभाषा है। यही बात हर स्त्री अपने मन में सँजो कर चलती है, पर जो परिवार संबंधी यथार्थ वर्तमान है उससे नाखुश होकर उसको नकारते हुए स्त्री अपने लिए बिखरे हुए घर को छोड़ने तथा अपनी मानसिकता के मुताबिक नए विचारों को गढ़ने में निर्णय से जुड़ी हुई है। स्त्री विमर्श के अधिकांश नारी पात्र अपने ढंग के घर की तलाश में जुटी हुई हैं। वर्तमान परंपरागत घर से वे आतंकित एवं नाखुश है। उसमें उनका प्रतिरोध निहित रहता है। समकालीन संदर्भों में तलाकशुदा एवं विधवाओं की स्थिति निरंतर बढ़ती ही जा रही है, यह भी आपसी पहचान के अभाव का ही परिणाम है। आधुनिक शिक्षित नारी अपमानजनक समझौते

के लिए कदापि तैयार नहीं होती। वह प्रश्न करती है-अपने अधिकार एवं हैसियत के लिए लड़ने को तैयार हो उठती है। वह दाम्पत्य जीवन में बराबरी की भी माँग करती है।

ठीक यही स्थिती विधबाओं के जीवन को लेकर भी है। कोई भी विधुर समाज में निंदा का अनुभव नहीं करता है। वह अपनी इच्छा के अनुसार दूसरी या तीसरी शादी करके जीवन को आगे बढ़ाने में स्वतंत्र हैं। पर स्त्री की स्थिति बिल्कुल दयनीय है। वह विधवा होती ही निंदा का पात्र बन जाती है। समाज उस पर बहुत सारी पाबंदियाँ लगा देता है। वह एक प्रकार का नारकीय जीवन बिताने के लिए विवश हो जाती है। यह पुरुष सत्तात्मक समाज के नियमों की कठोरता है जो बिल्कुल एकपश्षीय दृष्टिकोण को उजागर करता है।

इस प्रकार भारतीय विधवाओं के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए स्त्री उपन्यासकार यह कहना चाहती है कि उन्हें अपने अतीत से उभर कर नए सिरे से जीवन को सँवारना चाहिए नहीं तो वह आगे भी शोषण का पात्र ही बनकर रह जायेगी। किन्तु समकालीन संदर्भों में स्त्री रचनाकारों ने इस स्थिति को पहचान लिया, और उसके खिलाफ अपनी अलग मानसिकता को स्पष्ट करके दिखा भी दिया। इसका परिणाम है स्त्री लेखन में सेक्स यानी कि स्त्री-पुरुष संबंधों के यथार्थ का नंगा चित्रण। इसमें उनका विद्रोह स्पष्ट परिलक्षित होता है। यह भी सच है कि स्त्री का उपयोग ही नहीं बल्कि सुविधानुसार उसका उपभोग भी किया जा रहा है। इसके लिए स्त्री का पुरुष वर्चस्ववादी समाज ही नहीं वरन् मीडिया और पूँजीवादी व्यवस्था मिलकर शड़यंत्र रच रहे हैं। उस शड़यंत्र को समझने और उनके द्वारा फैलाए गए जाल से मुक्त होने का प्रयास स्त्री पक्ष की रचनाकार बड़ी ही बारीकी से कर रही है।

पंचायती राज व्यवस्था का ऐतिहासिक दृष्टिकोण

स्वीटी रानी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सार

भारत में पंचायतों का इतिहास बहुत पुराना है। परन्तु सही अर्थों में संविधान के 73वें और 74वें संषोधनों के क्रमषः 24 अप्रैल और पहली जून 1993 को कानून बन जाने पर हमारे यहाँ मौजूदा पंचायती राज प्रणाली की शुरूआत हुई। 73वें संविधान संषोध ान ने मृतप्रायः पंचायतों को जीवन प्रदान किया। संवैधानिक दर्जा दिये जाने से उसका अस्तित्व सुरक्षित हो गया। इससे पंचायतों को न केवल प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए बल्कि वित्तीय संसाधानों की गारंटी भी प्राप्त हुई। जिससे ग्रामिण विकास में सहायता प्राप्त हो।

शब्द कुंजीः पंचायती राज, विकेन्द्रीकरण, लोकतंत्र, प्रशासनिक, वित्तीय ईत्यादै

परिचय

पंचायती राज व्यवस्था लोकतंत्र की प्रथम पाठशाला है। ''लोकतंत्र विकेन्द्रीकरण की प्रकिया पर आधारित व्यवस्था है शासन की उपरी सतह पर केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर कोई भी लोकतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तककि निचले स्तर पर लोकतोंत्रिक मान्यतायें एवं मूल्य शक्तिषाली नहीं है।''[1] लोकतंत्र में पंचायती राज वह माध्यम है जो राजनीतिक व्यवस्था को शासन के द्वारा राज व्यवस्था व्यक्तियों के जीवन से जुड जाती है।ताकि वे स्वयं अपनी समस्याओं का सामान्य पद्धति के द्वारा निदान कर सके। वस्तुतः पंचायती राज व्यवस्था का मूलभूत लक्ष्य ग्रामीण विकास को गति प्रदान कर एक सुखद भारत का निर्माण करना है। सुप्रसिद्ध अर्थषास्त्री रजनी कोठारी कहते है कि ''हमने पंचायती राज को विकास का संवाहक बनाने के बजाय विकास को पंचायती राज का अभिकर्ता मान लिया है।'' पंचायती राज के माधयम से ही लोकतंत्र के राष्ट्रीय भवन का निर्माण किया जा सकता है। शाब्दिक दृष्टि से 'पंचायती राज्' शब्द हिन्दी भाषा के दो पंचायत और राज से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है पांच जनप्रतिनिधि यों के समुह का शासन। एक प्रसिद्ध कहावत यह भी है-पांच पंच मिल कीजे काजा, हारे जीतै हो न लज्जा। अर्थात् पंचों के निर्णय से हार में लज्जा या शर्मिंदगी नहीं होती हैं।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर सत्ता में भागीदारी करने के लिये, अपना विकास स्वयं के लिए तथा अपना न्याय स्वयं करने के लिए जो व्यवस्था अपनायी गई उसे पंचायती राज व्यवस्था कहते हैं। इसके द्वारा जन-जन को साा में भागीदारी का पूर्ण अधिकार होता है। किसी भी राश्ट में लोकतंत्र का उन्नयन तभी संभव है। जब स्थानीय स्तर से लेकर चोटी तक के शसन में सामान्य जन की भागीदारी हों। यह भागीदारी ही लोकतंत्र का मापदण्ड निश्चित करती है। यह सब पंचायती राज व्यवस्था के द्वारा सफल कार्यों के सम्पादन एवं क्रियान्वयन से ही संभव हो सकता है।

हमारे देश के राष्ट्रपिता स्व. श्री महात्मा गांधी आधुनिकता के आधार पर भारत में ग्राम स्वराज के लिए ग्राम पंचायतों के सबसे बड़े पक्षधार थे। उन्होंने अपने मत को व्यक्त करते हुए लिखा है कि स्वतंत्रता स्थानीय स्तर से प्रारंभ होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक

गांव गणराज्य अथवा पंचायत राज होगा। प्रत्येक गांव के पास पूर्ण सत्ता और शक्ति होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भर होना चाहिए और अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करना चाहिये ताकि वह सम्पूर्ण व्यवस्था चला सके।[2]

हमारे देश के प्रधानमंत्री स्व0 श्री जवाहन लाल नेहरू ने एक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा था कि "स्थानीय शासन लोकतंत्र की किसी भी व्याक्ष्या का सच्चा आधार है और होनी भी चाहिए। हमारा कुछ ऐसा स्वभाव पड़ रहा है कि यदि उच्च स्तर पर ही लोकतंत्र का निर्माण किया गया और स्थानीय स्तर पर न किया गया तो लोकतंत्र सफल न हो सकेगा।[3]

उपरोक्त कथनों का विवेचन करने के उपरांत हम यह कह सकते है कि लाकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर सत्ता में भागीदारी करने के लिए अपना विकास स्वयं करने के लिए जो व्यवस्था करते है। इसके द्वारा जन-जन को सत्ता में भागीदारी का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है और सत्ता का विकेन्द्रीकरण लोकतंत्र का महत्वपूर्ण सोपान है।

ऐतिहासिक दृष्टि से ग्राम पंचायतों की जड़े प्राचीन भारत में लोगों के गणराज्यों की परम्पराओं में देखी जाती है। प्राचीन काल में ग्राम पंचायतें वर्तमान जैसी राजकीय मान्यता के साथ औपचारिकता पूर्ण स्वरूप गठित होने वाली पंचायते नहीं थी। बल्कि आसानीपूर्वक सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन शैली के विभिन्न अंगों के रूप में विकसित होने वाली संस्थायें थी। जिसमें गांव के सर्वमान्य पांच विवकेषील लोागों को सामान्य सहमति के साथ चुना जाता था। पंचायतों के स्वरूप तथा कार्यप्रणाली में समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी होता रहता था। इस दृष्टि से यह एक लचीली संस्था मानी जाती है।

भारत में ग्रामीण परम्परा के आधार पर पंचायती राज व्यवस्था को सुचारू रूप में चलाने के लिए स्थानीय स्वषासन के परिणाम स्वरूप लक्ष्यों की सुदूर अन्वेशित किया जा सकता है। 'इस दृष्टिकोण में वैदिक साहित्य, महाकाव्य, स्मृति ग्रन्थ, कौटिल्य का अर्थषास्त्र, शुक्रनीति सार जैसी अमर कृतियाँ सहयोग कराती है कि प्राचीन भारत में किसी न किसी रूप मे स्थानीय स्वशासन विद्यमान रहा है।[4]

पूर्व वैदिक साहित्य में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संगठित व्यवस्था के संदर्भ में कुछ अभिलेखों से ज्ञात होता हैं कि वैदिक युग में स्थानीय स्वषासन कैसे कार्यरत रहता था। ग्राम संस्थाओं का पूर्ण उल्लेख रामायण और महाभारत मे भी स्पष्ट रूप से मिलता है। क्योंकि इस ग्रन्थों में सत्य लिखने वाले परिस्थितियों के बारे में जानकारी प्राप्त करके ही लिखते थे। अनेक स्मृति ग्रन्थों में भी स्थानीय संस्थाओं के बारे में जानकारी मिलती है। कौटिल्य का अर्थषास्त्र मौर्य काल में प्रचलित ग्रामीणों की व्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

कौटिल्य के अनुसार- प्रत्येक ग्राम का शासन पृथक-पृथक होता था ग्राम के शासन प्रमुख को ग्रामिक कहते थे। ग्रामिक ग्राम के अन्य निवासियों के साथ मिलकर अपराधियों को दण्ड देता था और किसी अपराधी व्यक्ति को ग्राम से बहिश्कृत भी कर सकता था।[5] कौटिल्य का मत था कि 10 ग्रामों के मध्य संग्रण 200 ग्रामों के मध्य खविटिक, 400 ग्रामों के मध्य द्रोणमुख तथा 800 ग्रामों के मध्य स्थानीय नामक स्थानों की स्थापना की जानी चाहिए।

मध्यकाल में भारतीय ग्रामों की क्षेत्रीय परिस्थितियों के मध्य ग्रामों की एक सभा होती है जो अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण कानूनों के तहत शासन का सम्पूर्ण कार्य संभालती थी। मुगल कालीन शासन प्रणाली क्षेत्र की व्यवस्था के प्रति जागरूक अधिक हासेती थी। इस प्रकार वित व्यवस्था में हर पांचवें वर्श में संषोधान कई बार लाए गये। फिर भी वित्तीय व्यवस्था में सुधार नहं हुआ। भूमि राजस्व का मुख्य साधान था। जिसका कुछ प्रतिषत सरकारें अपनें आप में पूर्ण नहीं थी।

एस0वी0 सामन्त ने कहा है कि "मुस्लिम काल में ग्राम पंचायतों के न्यायिक पहलू में कहा गया है कि गांव की सभाओं को राज्य का समर्थन प्राप्त था। क्योंकि हम यह दखतें हैं कि मुस्लिम शासकों के काल में शासको द्वारा पंचायतों के निर्णयों को लागू किया जाता था। यह एक ऐसा प्रमाण है, जो यह सिद्ध करता है कि शक्ति हमेशा गांव की सभा में निहीत रहती थी।''

प्राय: मध्युगीन भारत में देखने से प्रतीत होता है कि आम जनता की आवस्यकताओं के प्रति क्षेत्रीय संस्थाओं के प्रति आभार व्यक्त करने के साथ-साथ उसके कर्तव्य और अधिकारों के द्वारा कार्य करती थी। "प्रारंभ में अंग्रेजी शासकों द्वारा पंचायतों को नकारते रहना था। क्योंकि उन्हें उन पंचायतों के महत्व का ज्ञान नहीं था। किन्तु कालान्तर में पंचायती राज संस्थाओं को शक्ति शाली बनाने के लिये प्रयास किये गये है।[6]

अंग्रेजी शासकों ने ग्रामीण स्वशासन के स्थान पर जनता के विपरीत कार्य करने के लिये अधिकारी तंत्र जागरूक किया। ताकि भारतीय जनता का अधिक से अधिक शोशण किया जा सके। वस्तुत: प्रशासन के अन्तर्गत गांवों की आत्मनिर्भरता की व्यवस्था नष्ट

हो गयी थी। इसलिए पंचायती राज व्यवस्था भी पूर्णत: शिथिल हो गयी थी। सन् 1882 से 1919 ई0 तक भारत में पूर्व परिस्थितियों के अनुसार अंग्रेजी शासकों के अन्तर्गत क्षेत्र की कार्यप्रणाली व वहाँ की जनता के ऊपर थोपे अधिकारों को लागू करती थी। जनता उनके पूर्ण दबाव में आ गयी थी।

कालान्तर में अंग्रेजी शासकों द्वारा क्षेत्रीय स्वशासन को मजबूत करने के लिए सार्थक प्रयास किये गये। इन प्रयासों में वायसराय लार्ड रिपन का सन् 1882 का प्रस्ताव उल्लेखनीय है। जिसके द्वारा ब्रिटिश शासक के अधीन समस्त गांवों तक कानूनी रूप से स्थानी स्वशासन का विस्तार किया गया इस प्रस्ताव के फलस्वरूप विभिन्न राज्यों में नये अधिनियम पारित किये गये। किन्तु शक्तिषाली नौकरषाही ने इसे प्रस्ताव को किल कर दिया। सन् 1919 से 1947 ई0 तक भारतीय दृष्टिकोण के प्रति जनता की अभिरूचि उनकी कर्तव्यनिष्ठा पर निर्भर करती थी। क्योंकि आम जनता के जानते हुए भी प्रशासन और प्रबन्धानकर्ताओं पर आश्रित होते हुए विकेन्द्रीकरण एक शक्तिषाली रूप में पूर्णत: नहीं उभर सका। सन् 1907 ई0 नियुक्त शाही आयोग ने भी पंचायतों को ग्रामीण प्रशासन एवं प्रबंध के लिए आवश्यक बताया। किन्तु आयोग के प्रस्ताव क्रियान्वित नहीं हो सके। इसी श्रृंखला क द्वारा ग्रामीण जनता में विकेन्द्रीकरण की प्रथा लागू करने के लिए प्रशासन और क्षेत्रीय अभाव के कारण असफल हो जाते थें। जिससे आम नागरिक पर इसका विपरीत प्रभाव प्रड़ता था। वस्तुत: भारत सरकार अधिनियम 1919 में पंचायतों के विकास के लिए वर्णन किया गया था। किन्तु धानाभाव, राजनीतिक हस्ताक्षेप आदि विभिन्न कारणों से क्षेत्रीय स्वायत शासन के क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं हो सकी। [7]

तत्पष्चात् सन् 1935 ई0 में भारत सरकार अधिनियम 1935 के पारित होने के पश्चात् प्रान्तीय स्वायतता का श्रीगणेश हुआ। देष में स्वतंत्रता की दिशा में एक शक्तिशाली पहल हुई। जिसका स्थानीय संस्थाओं पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

संदर्भ-सूची

1. शर्मा, बी0ए0, पंचायती राज की भूमिका, योजना, जून 1996, पृ0सं0-17
2. शर्मा, बी0एस0, पंचायती राज, योजना जून 1996, पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली पृ0सं0-17-18
3. माहेश्वरी, एस0आर0, भारत मं स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल हॉस्पिटल रोड, आगरा-3, पृ0 सं0-18-22
4. त्रिपाठी, राजमणि एवं सिंह सुनीता, योजना, अक्टूबर 1998, सम्पादित कार्यालय संसद मार्ग, नई दिल्ली, पृ0सं0-40
5. शर्मा, वी0एम0 लोकतंत्र के उन्नयन में पंचायती राज की भूमिका, योजना, जून 1996, पृ0सं0-19
6. वीरकेश्वर, भारत का संवैधानिक एंव राष्ट्रीय विकास, आरा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0सं0-20
7. वरीकेश्वर, भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, आरा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0सं0-21

होड़ोपैथी: झारखंड के आदिवासियों की पारंपरिक चिकित्सा व्यवस्था

ममता कुमारी

शोधार्थी (ICSSR), डॉ जॉनी रूफीना तिर्की, मानवविज्ञान विभाग, वि0भा0वि0, हजारीबाग

सूचक शब्दः होड़ोपैथी, मुण्डा, चिकित्सक, औषधीय पौधे, एथनोमेडिसिन

सारांश

होड़ोपैथी झारखंड में प्रचलित जड़ी बूटियों द्वारा चिकित्सा व्यवस्था का नाम है। यह मौखिक परंपरा पर आधारित है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। ग्रामीण जीवन प्राथमिक स्वास्थ्य हेतु औषधीय पौधों का उपयोग किया जाता है साथ ही परिवार के लोगों को **प्रशिक्षित** भी किया जाता है ताकि भविष्य में इसकी निरंतरता बनी रहे।

होड़ोपैथी मध्य पूर्व भारत में रहने वाले मुंडा आदिवासियों के समूह की **देशज** स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी है। मुंडा समूह मुख्य रूप से झारखंड में केंद्रित है। भाषाई तौर पर वे औस्ट्रोलॉयड एशियाटिक भाषाई समूह में आते है। वैसे तो यह लोक औषध का ही एक भाग है, किंतु इस विद्या को एक अलग पहचान बनाने के लिए इसका नाम 'होड़ोपैथी' रखा गया है। आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जड़ी बूटियों के लाभों को देखकर वैज्ञानिक तौर पर विश्व के कुछ देशों ने इसका नामकरण एथनोमेडिसिन के रूप में किया है। 1895 में जे0 डब्ल्यू हार्शबर्गर नामक अमेरिकन वैज्ञानिक ने एथनोबॉटनी की पहचान कर एथनोमेडिसिन को एक अलग विषय के रूप में चिन्हित किया और उसके विकास के लिए सत्त **प्रयत्नशील** हैं।

उपचार के इस पारंपरिक तरीके को पुनर्जीवित करने का प्रयास प्रतिष्ठित जनजातीय विशेषज्ञ एवं मानव शास्त्री डॉ0 रामदयाल मुण्डा द्वारा 2005 में स्थापित 'तोरंग ट्रस्ट' की स्थापना की गई। जिनमें डॉ. पी. पी. हेम्ब्रम तथा डॉ0 वासवी किड़ो का महत्वपूर्ण स्थान है। झारखंड में हेमंत सोरेन मंत्रिमण्डल ने आयुष के तहत होड़ोपैथी को मान्यता देने का प्रस्ताव रखा था लेकिन इसके बाद यह ठंडे बस्ते में चला गया। होड़ोपैथी पूरी तरह से प्रकृति पर आधारित देश की सबसे पुरानी पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में से एक को जीवन का नया आधार प्रदान करेगा।

परिचय

मुण्डा जनजाति झारखण्ड के प्रमुख तथा बड़ी जनजातियों में से एक है। यह खूँटी जिला के अतिरिक्त राँची, हजारीबाग, पलामू, गुमला, गिरिडीह, सिहभूम में भी पाई जाती है। इस जनजातीय समूह की मौलिकता जातीयता जीवन के विभिन्न आयामों में भी देखने को मिलती है, जिसमें होड़ोपैथी भी एक है। "होड़ो" + पैथी अर्थात होड़ो = मानव एवं पैथी = उपचार पद्यति है। वास्तव में होड़ोपैथी पारम्परिक रोग उपचार पद्यति है। लेकिन आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था, वनों के ह्रास के कारण औषधीय पौधों की अनुलब्धता और शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण लोगों का इस चिकित्सा व्यवस्था से विश्वास धीरे-धीरे खत्म होते जा रहा है। जो पारम्परिक चिकित्सीय ज्ञान के समक्ष एक विक्राल चुनौती के समान खड़ी है।

यह शोध पत्र, खूटी जिला के मारंगहदा पंचायत के क्षेत्र अध्ययन पर आधारित है। इस शोध पत्र के माध्यम से होड़ोपैथी के चिकित्सकों के समस्याओं को सरकार के समक्ष उजागर करने की कोशिश की जा रही है ताकि इस ज्ञान को लिपिबद्ध कर संरक्षित किया जा सके।

ठसमें नाड़ि परिक्षण के माध्यम से रोगों की पहचान की जाती है तथा पेड़-पौधों के पत्तों, छालों, फल, फूल, बीज, जड़ आदि के माध्यम से उपचार किया जाता है। इस तत्वों को प्रयोग रोग के स्तर के आधार पर निर्धारित की जाती है।

झारखण्ड में होड़ोपैथी का प्रचलन काफी तेजी से बढ़ रहा है इस संदर्भ में कई प्रलेख लिखे गये हैं तथा इसके चिकित्सक भी संगठित हो रहे है।

डॉ0 पी0 पी0 हेम्ब्रोम को होड़ोपैथी चिकित्सा का जन्मदाता माना जाता है। जो 30 वर्षों से स्वतंत्र रूप से इसका अभ्यास कर रहे हैं, इनका मानना है कि 'इस पद्धति के द्वारा जटिल से जटिल रोगों जैसे- कैंसर, एड्स का इलाज काफी कम खर्च में किया जा सकता है। डॉ0 हेम्ब्रोम द्वारा कई बीमारियों जैसे- डायबिटीज, उच्च रक्त चाप, मलेरिया, अरक्तता, निम्न रक्त दाब, पथरी, पीलिया, चर्म रोग का शत-प्रतिशत इलाज किया गया है। अपने आख्यान में डॉ हेम्ब्रोम ने दवाओं के मिश्रण को साझा किया है- डायबिटीज के लिए महुआ छाल के चूर्ण, बार के पेड़ एवं गुल्लर के पेड़ के छाल का प्रयोग के बारे में बताया है। डॉ0 हेम्ब्रोम इन जड़ी-बूटियों को हबाब के जंगलों से प्राप्त करते हैं, जो की रांची से 20 किलोमीटर दूर दशम् फॉल के नजदीक अवस्थित है। 300 से भी अधिक जड़ी-बूटियों को इकट्ठा कर वे उनसे विभिन्न प्रकार की दवायें निर्मित करते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, पारंपरिक चिकित्सा पद्धति को मानक नहीं मानती, इस कारण पारंपरिक रूप से यह जनजातियों में प्रचलित तो है परंतु सशक्त माध्यम एवं सरकारी उदासीकरण के कारण आम जनों के पहुंच से दूर तथा अलोकप्रिय भी 'होडोपैथी' चिकित्सा पद्धति का प्रचलन कम होने के कुछ कारण सामने आते हैं जो इस प्रकार है

1) वैज्ञानिक आधार का ना होना।
2) पश्चिमी चिकित्सा पद्धति का अधिक प्रभाव।
3) वनस्पतियों की पहचान एवं उपलब्धता की कमी।
4) सरकारी उदासीनता।
5) कारगर शोध एवं परीक्षण का अभाव।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध के लिए साक्षात्कार, सहभागी अवलोकन, प्रश्नावली, व्यक्तिगत सम्पर्क, व्यक्तित्व अध्ययन को आधार बनाया गया है।

शोध क्षेत्र

इस अध्ययन में झारखंड के सूंटी जिला के खूटी प्रखण्ड के भूत ग्राम को लिया गया है।

भूत गाँव खूँटी शहर से 9 किलोमीटर की दूरी पर स्थित बहुत ही सुन्दर गाँव है जहाँ की सुन्दरता मन मोह लेती है इस गाँव का मूल नाम बुनुहतु है परन्तु अंग्रेजों के समय अपभ्रंशित होकर इसका नाम भूत के रूप में प्रचलित हो गया। इस गाँव में पांच टोले हैं

1. पिरिडीह,
2. कचाभूत,
3. मानकुटोली,
4. भूतटोला तथा
5. टांकाटोली।

भूत गाँव की जनसंख्या अनुसार तालिका

क्रम सं0	विवरण	कुल	पुरूष	महिला
1.	कुल घर	228		
2.	जनसंख्या	1070	505	565
3.	बच्चे (0-6)	184	92	92
4.	अनुसुचित जनजाति	981	471	510
5.	साक्षरता	65.12	80.87	51.37

स्त्रोत :- khunti.nic.in

तथ्य विश्लेषण

भूत गाँव में पांच टोले हैं सभी में सरना धर्म को माना जाता है, इस गाँव में मिशनरी का बिलकुल भी प्रभाव नहीं है। यदि कोई व्यक्ति ईसाई या किसी अन्य धर्म को अपना लेता है तो गाँव के लोग उसे अपने समाज, टोला तथा गाँव से बाहर निकाल देते हैं, किसी अन्य धर्म को अपना लिए गए व्यक्ति तथा उसके परिवार को गाँव छोड़कर बाहर जाना पड़ता है। इस प्रकार के सामाजिक व्यवहार तथा सांस्कृतिक संरक्षण की विचारधारा यहाँ पाई गयी है, यहाँ के लोग अपनी संस्कृति तथा प्राकृतिक सम्पदा को बचाए रखने के लिए प्रारंभ से ही संघर्षशील रहे हैं।

खूटी जिले पाये जानेवाले कुछ औषधिय पौधों के नाम

क्रमांक	हिन्दी नाम	मुण्डारी नाम	जैविक नाम
1.	शतावर	कैसागो (Kaisago)	Asparagus race mosus
2.	बबूल	जानुम दारू (Janum Daru)	Acacia milatica
3.	नीम	नीम दारू (Neem&Daru)	Azadirachta Indica
4.	वृदधदारूक (leqædikr)	मारंगरीन (Marangarin)	Argyreia nerhosa
5.	कुपी	खोकली (Khokali)	Acalypha Indica
6.	पलाश	पलाश-वा (Palash&Ba)	Acalypha Indica
7.	ब्राम्ही	पलाश-वा (Palash&Ba)	Butea Monosperma
8.	बाँस	काटंगरीमाड(Katangari&Mad)	Batopa Monnieri
9.	बाँस	हाटुख्रमाड (Hatu&Mad)	Bambusa&Bamos
10.	राहड़	रहड़ी (Rahari)	Bambusa&Vulgaris
11.	अमलतास	बांदरलती-दारू (Banburlati&Daru)	Cajanus Cajan
12.	सदाबहार	मारची आरा (Marchi&Ara)	Cassin Fishtula
13.	अपराजित	अरेटेजारसुल (Otejarsul)	Catharanthus roseus
14.	बेंग साग द्धब्रम्हीऋ	थोलकनी-बा (Tholkuni&Ba)	Cliteria Ternatea
15.	अबुता, अकन्दी, पाड़ा	हुरींग पीटुसींग (Huring Pitusing)	Centella Asiatica
16.	कुंदरू	तीलकरी-बा (Tilkari&Ba)	Cissampelos Pareira
17.	पीपल	जीतीया (Jitia)	Coccinia Grandis
18.	करेला	करैला (Karila)	Ficus Religiosa
19.	बीलारी	बनकरेला (Bankarala)	Momordica Charantia
20.	जामुन	जामुन-दारू (Jamun&Daru)	Mukiya Maderaspatana
21.	हर्रा	रोला-दारू (Rola&Daru)	Syzygium Cuminu
22.	पीट पटिनी	सेंगल सींग (Sengel Singh)	Terminalia Chebula
			Tragia Involhcrata

उपयोग की विधि

जड़ी-बूटी दवाई साधारणत: खाली पेट में सेवन की जाती है। ठंडा पानी, गरम पानी, शहद, घी, मट्ठा आदि पदार्थों के साथ दवाई ली जाती है। ये वाहक दवाई के असर को तेज कर देते हैं।

दवाई की मात्रा सबों के लिए एक नहीं होती है। मरीज की हालत, बीमारी की तीव्रता आदि के आधार पर मात्रा तय की जाती है। इसलिए जो मात्रा मोटे तौर पर इस शोध पत्र में दी गई है उसको इस सिद्धांत के अनुसार ही अपनाना चाहिए।

मेथी, धनिया, गाजर आदि भोजन की वस्तुएँ हैं। इनको 'फ्री डोज' के रूप में दिया जाता है। हींग, गोलमिर्च, ईशोरमूल, गोरबोच आदि बहुत ताकतवर या तीव्र दवाइयाँ हैं। इनका बहुत कम मात्र में (एक चुटकी) सेवन करना चाहिए। नीम पारिजात आदि कड़वी चीजें अधिक मात्र में सेवन करने से शरीर में 'ग्लूकोज' का संतुलन बिगड़ने की संभावना होती है।

जो पौधे जहरीले हैं उनका प्रतिपादन इस शोध पत्र में नहीं है। ग्रामीण लोगों को जहरीले पेड़-पौधों के बारे में जानकारी होती है। जब दवाई के लिए वनस्पतियाँ जमा करते हैं, तब ठीक पौधों के चुनने में सावधानी बरतना चाहिए।

कुछ दवा का उपयोग

1. स्थानीय नाम- करंज

त्वचा रोग के लिए बाहरी रूप से बीजों का उपयोग किया जाता है, त्वचीय संक्रमण, दाद और खाज में बीज से तेल, गठिया में भी इस्तेमाल किया जाता है, पौधे की ताजा छाल का उपयोग रक्तस्त्राव के लिए आंतरिक रूप से किया जाता है। छाल को पीसकर एक छोटी सी गेंद बनाएं, छाल की गेंद को सुबह खाली पेट पानी के साथ खाएं।

2. स्थानीय नाम- सिंदवार,

सुगंधित, वर्मीफ्यूज सूख जाता है जो सिरदर्द से राहत के लिए, तीव्र गठिया से जोड़ों की सूजन को दूर करने और सूजाक को दबाने वाले वृषण में उपयोगी उपयोगी। इसकी पत्तियां सफेद प्याज, हल्दी और पेस्ट के साथ मिश्रित होती हैं, सरसों का तेल है और उन्हें पेस्ट से बनाया जाता है, इसका उपयोग सिरदर्द से राहत के लिए किया जाता है।

3. स्थानीय नाम- साल

राल कसैले, डिटर्जेंट, पेचिश में इस्तेमाल किया और धूमन और मलहम के लिए, सप्ताह पाचन, सूजाक और कामोद्दीपक के लिए दिया

4. स्थानीय नाम- जामुन

फल खाया जाता है और पके फल का रस एक सिरका के रूप में पेट के लिए बनाया जाता है, बीज का उपयोग मधुमेह के इलाज के लिए किया जाता है। छाल का उपयोग दस्त और पेचिश के लिए भी किया जाता है।

5. स्थानीय नाम- लाजवंती

बजरी की शिकायतों में जड़ का काढ़ा (पत्तियों और जड़ों का उपयोग बवासीर और फिस्टुला में किया जाता है, पत्तियों और तने का उपयोग बिच्छू-डंक में किया जाता है।

6. स्थानीय नाम- टेंदु

फल और तना छाल दस्त और पेचिश में दिए गए बीजों के कसैले तेल के रूप में। एपाथे और कुछ गले में गार्गल में उपयोग किए जाने वाले ग्लों का जलसेक। बीज का रस घाव और अल्सर के लिए आवेदन के रूप में उपयोग किया जाता है।

7. स्थानीय नाम- गमहार

छाल कसैले, गोनोरिया, खांसी में इस्तेमाल होने वाले पत्तों के रस, और फोड़े-फुसियों और कीड़ों को दूर करने के लिए। पौधे की छाल का उपयोग सांप के काटने और बिच्छू के डंक मारने में किया जाता है।

8. स्थानीय नाम- बेर

रक्त को शुद्ध करने के लिए सुगंधित, फल 'लेष्मा प्रदर, स्टाइलिक, को पचाने में मदद करता है और पाचन में मदद करता है, जड़ का उपयोग बुखार में और पाउडर के रूप में पुराने घाव और अल्सर के लिए किया जाता है।

निष्कर्ष

मंडा समाज में उपरोक्त प्रकार की अदभूत उपचार प्रणाली पायी जाती है। हालाँकि बढ़ते बाह्य जगत के सम्पर्क, घटते वन व आधुनिक चिकित्सीय सुविधाओं के प्रसार व उपयोग के परिणाम स्वरूप परम्परागत उपचार के प्रचलन पर प्रभाव पड़ा है। जो मुंडा समाज के परम्परागत चिकित्सक के मूल्य व्यवस्था को विकृत ढंग से प्रभावित किया है जिससे परम्परागत चिकित्सक के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। वह दिन दूर नहीं, जब यह व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।

अत: इससे स्पष्ट होता है कि अभी भी लोक औषधि एवं उसकी उपयोगिता से संबंधित बहुत से शोध कार्य अभी भी बाकी है। झारखण्ड के खुंटी जिले के विशेष संदर्भ में कहा जा सकता है कि 'होड़ोपैथी' जैसी चिकित्सीय विधा पूर्णत: अछुता है। इसके स्थानीय समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अपने शोध कार्य के दौरान मैं लोक औषधि एवं उसकी चिकित्सीय उपयोगिता पर केन्द्रित शोध-कार्य करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

* वासवी (2003) : ताबेन जोम जमीन का हिस्साऋ, आधार प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 189, शर्मा, डॉ. ए. एन. शर्मा, डॉ. निवेदिता : सामाजिक - सांस्कृतिक मानव विज्ञान, अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 265, 266.
* हेम्बरोम, पी. पी. (2011): होड़ पोथी, आई. डी. पब्लिशिंग, राँची, पृष्ठ संख्या-14,15
* शर्मा, डॉ. बिमला चरण एवं कीर्ति विक्रम, 2006 रू जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन
* राय, एस. सी, 1970 रू मुंडा एंड देयर कंट्री
* सचिदानंद : 1979 : दा चेन्जिंग मुंडा, नई दिल्ली, क्नेसेवट पब्लिसिंग कंपनी

देवकवि

डॉ० सी०एल० सोनकर

(शोध-छात्र), आफिसर्स कॉलोनी भुजौटी, मऊ

उत्तर प्रदेश के इटावा जिले की धारती पर मध्यकाल में गंग कवि निवासी एकनौर, महाकवि देव या देवदत्त दूबे निवासी पंसारी टोला, मधुसूदन माथुर कवि निवासी इश्टकापुरी आदि प्रमुख कवियों ने मध्यकाल में अपनी कविता के माध्यम से समाज को धर्म और कर्म तथा श्रंगार के क्षेत्र में अति उपयोगी योगदान किया। इस कड़ी में देव कवि ने अपनी विलासपूर्ण रचनाओं के माधयम से विभिन्न व्यवसायिक जातियों की स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए उनके द्वारा जातिगत वस्तुओं के लाने व लेकर जाने सहित उनकी शारीरिक बनावट, उनके द्वारा शरीर पर किए गए श्रृंगार तथा पुरुषों के आकर्शण के केन्द्र बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए उनको लुभाने वाले दृष्टिकोण से काफी रोचक श्रृंगारिक वर्णन किया है।

देव कवि का उपराम देवदत्त था। देव या देवदत्त द्विवेदी देवसरिया (दुसरिहा) कान्यकुब्ज ब्राहम्ण थे और इटावा के पंसारी टोला लालपुरा (बलालपुरा) में रहते थे। देव की मृत्यु सन् 1767ई. में मैनुपरी के कुसमरा गाँव में हुई। इनके प्रथम आश्रयदाता औरंगजेब के पुत्र आजमषाह थे। उनका जन्म 1673ई. में हुआ था तथा उनके पिता का नाम बिहारीमल दूबे था। उनकी प्रथम कृति भावविलास है, जिसकी रचना उन्होंने सोलह वर्शकी अवस्था में की थी। उन्होंने अपने जातिविलास नामक ग्रन्थ में यहाँ की भिन्न –भिन्न जाति की ललनाओं का चित्र है।

देव जी दादरीपति सीताराम के भतीजे भवानीदत्त वैश्य के आश्रय में भवानीविलास तथा फफूँद के राजा कुषलसिंह के आश्रय में कुशलविलास की रचना की। बाद में भोगीलाल व उसके बाद इटावा के निकट ड्यौढ़िया खेराके राजा मर्दनसिंह और दिल्ली के रईसरजा जो सुजानमणि के आश्रय में रहे, उन्होंने प्रेमचन्द्रिका तथा सुजान विनोद का प्रणयन किया। इसके उपरान्त देव अपने ग्राम कुसमरा लौट आए। देव अब वृद्ध हो गए थे। इनके अन्तिम आश्रयदाता महमदी राज्य के अधिपति अकबर अली खाँ थे। इनको 94 वर्ष की अवस्था में देव ने अपरी समस्त रचनाओं का सार संग्रहीत कर समर्पित किया था।इसके दो वर्षा बाद 96 वर्ष की अवस्था द्ध1769ई.ऋ में देव की मृत्यु हो गई। लगभग संवत् 1765 (1728ई) में राजा कुषलसिंह के आश्रय से किसी कारण विमुख होकरदेव के देषाटन में चले जाने की मान्यता है। इनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ रसविलास, कुमिलविनोद, सुमिलविलास, काव्य रसायन, जयसिंह विनोद, अश्टयामा, वैराग्यषतक, देवचरित्र, देवयात्र प्रपंच तथा सुखसागर तरंग है।

देव के ग्रन्थ रसविलास तथा संशोधित रूप जातिविलास में रहीम के ग्रन्थ नगर शोभा की भाँति विभिन्न प्रान्तों और जातियों की स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन मिलता है।

रसविलास की अपेक्षा जातिविलास में प्राप्त छंदों में कुछ कर्मशील स्त्रियों के लिए तेरह छंद केवल जातिविलास में मिलते है। इनमें भी बढ़इन, लुहारिन भरभूजिन, जुलाहिन तथा चमारिन से सम्बन्धिात ये पाँच छंद इन्हीं शीर्शकों के नीचे आए हुए छंदों से भिन्न हैं। जाति तथा रसविलास में वारिन, डोमिन तथा चंडारि शीर्शकों के नए छंद आए हैं।

देवल रावल राजपुर, नागर तीन निवास।
ताके लच्छन भेद सब, वरनत जाति विलास।।

देव के वर्णन से स्पष्ट होता है, कि उस समय छह प्रकार की बस्तियाँ विद्यमान थीं- नगर, पुर, ग्राम, वन, सेना और पथ। बाजार के दो भागों में एक अन्दर की ओर तथा दूसरा बाहर की ओर होने का उल्लेख करने हूए देव ने कहा है, कि वेष्याएँ प्रायः बाहर की ओर ही रहा करती थीं।

सुश पुरूश ताकी प्रजा, बहु विधि ताकी जाति।
ताहु में पुरवासिनी, सूद्र त्रिया बहु भाति।।

नायिका भेद में देव ने जाति, कर्म, गुण, देश, वय, क्रम, प्रकृति व सत्व इन आठ भेदों का वर्णन किया है-

जाति, कर्म, गुण देश अरुकाल वयः क्रम जानु।
प्रकृति, सत्व नायिका कै आठो भेद बखानु।।

देव ने कुल -धर्म त्यागकर रूप-यौवन से धनी रसिकों के लुभाने का कार्य बताते हुए नारी के यौवन व कामुक दृष्टिकोण का वर्णन अपने ग्रंथ रस विलास में किया है। रस विलास में दर्जिन आदि कुछ छोटी जाति की स्त्रियों को नगर के बाहर रहने का उल्लेख किया गया है।

रूप उम्हार कुम्हार की जाइ के,
जीवन को नत चामो तवा सौ।

उच्च जातियों में क्षत्रणी के सम्बन्ध में देव का कथन है-

सूहौ पैन्हैं आवति सुहागिनी उमंग भरी,
सोहैं मृगनैनी कीव वेनी की सगमगनि।
भौहन की मोर गोरे गात की मरोर देव,
नैनन की कोर अनुराग की रगमगनि।।
घाघरे घुमरि छवि छाई है छवनि पर,
गूजरी जराऊ वाजै डोलति डगमगनि।
पाइन अमोल मशमल की लपेटा लाल,
जरकसी पटी वाल जूती की जगमगति।।

राजपूतों के सम्बन्धा में देव का कथन है-

जो रक्षै गो विप्र को, छितपति पुर पुरहूत।
रज राशै रनदान भट, सो कहिये रजपूत।।

देव अनेक जातियों के बारे में कहते हैं-

तहा विप्र क्षत्रिय वनिज, काइधा कुल अस सूद्र।
नाई माली रजक ए, पुरवासी निरदूद।
तहाँ विप्र छत्री वनिज, भट कायस्थ किरार।
नाउ अरु बारी वसै, धोबी डोम चमार।।

वनैनी के सम्बन्ध में देव कहते हैं-

वैस्य कहीए साहू सो, ता त्रिय वैसिन नारि।
गुन संपति दीपति भरी, सीलवंत सुकुमारि।।

दर्जिन व अन्य कर्मकार जातियों की महिलाओं के बारे में देव कहते हैं-

दर्जिन आदि अनेक लघु, जाति चहैरी अंत।
नगर द्वार गनिका बसै, सो चाहैं धानवंत।
गंधिन मालिन तमोरिन, बढइन और लुहारि।
दरजिन तेलिन कुम्हारी, भरभूजिन मनिहारि।
धुनिन जुलाहिन कटेहरी, और शटकिन नारि।
भटियारी सिकलीगरनि, और चूहरी चमारि।
ये कहिये सब हटवइन, नृपपुर नगरी वाम।
पुरद्वार गनिका बसै, नागरि अति अभिराम।।

एक पद में कहा गया है-

गन्धानि तेलनि तमोरनि, कांदुनि वनिनि कुम्हारिं।

जौहरनी आदि के सम्बध में देव कहते हैं-

जौहरानी छीपिनी कहौ, कसहेरनी सुरारि।
औपइन हलवाइन वनिनख और पसारिनि नारि।।

कायस्थिन के सम्बन्ध में देव कहते हैं-

रीझै रिझवारि इंदु बदनी उदार खुर,
रूख की सी डार डौलै रंग रखियन में।
सांवली सलौनीगुनवती गजगौनी महा,
सुन्दर सुघर लाख-लाख लखियनि में।।

अर्थात् कायस्थिन अपने रूप यौवन पर रीझती है तथा यह चन्द्रमुखी देववृक्ष की डाली की भाँति हमेशा रंग में डूबी डोलती है। यह सांवली सलोनी और गजगामिनी है।

किरारिन के सम्बन्ध में देव लिखते हैं-

नेह सो निचौरे चित चोरे डीठि जोरे कौन,
डोरैं लाग्यो डौरैं डारि सुरति अहार की।
सोने के सरोज से उरोज उमगो है,
गरे अंग में सुहार्द देव सूही जरतार की।।

अर्थात् यह कुंआरी किरारिन अपने नेह से सबको निचाड़ लेती है तथा चित्त चुराकर उसका सर्वस्व छीन लेती है। ऐसा कौन है, जिससे इसने दृष्टि मिलाई या जोड़ी हो, और डगमगाया न हो।

नाइनि के बारे में उल्लेख किया गया है-

घर-घर डोलति सुघरि नर माहिबे को,
उघरी फिरति सनमुख सुख दैनिया।
अस्न सवन वय तरुन-चुवत,
रस कुलटा कुटिल कुल जुवतिन जैनिया।।

अर्थात् देव जी कहते हैं, कि नाइनि का कार्य घर-घर जाकर राजकुमारी का साज-श्रृंगार करना होता है, लेकिन वास्तव में सुन्दर-सुन्दर पुष्ट और सुडौल पुरुषों को मोहने के लिए घर-घर डोलती फिरती है। यह सबके सामने उघड़ी हुई घूम-फिरकर सबको

सुख देती है। इस नवयौवना ने लाल रंग के वस्त्र रखे हैं,जिसके अंग प्रत्यंग से निरन्तर सौन्दर्य रस गिरता है। यह कुलटा और कुटिल कुल की स्त्रियों को जीतने वाली है। यह महावर लगाने के बहने स्त्रियो में काम जागृत करती है।

मालिन के बारे में देव कहते हैं-

बीनत फिरत फूल दारयो दल से दुकुल क्षुले,
मुजमूल लेटे घूमें ज्यों मलिनिया।
चौसर चमेली चारु-महिरे सिंगारहार,
लची कुच भार जीति लीन है फलिनिया।।

अर्थात् देव जी कहते हैं, कि बाग में यह जिस समय मालिन अनार अमर के फूलों को चुनती, बीनती फिरती है, उस समय इसका दुपऋा स्वयँ की बगल से फिसल जाता है और इसके घुँघराले बाल काले भंवरे के समान लगते हैं। इसने चमेली का हार पहना हुआ है। इस प्रकार इस मालिनि ने पुष्पाभूशणोंसे अपना श्रृंगार किया हुआ है। इसके वक्ष इतने उन्नत एवं भारी है कि जब वह चलती है, तो अपरी इस लचक पर दूसरों को भी जीत लेती है।

धोबिन के विशय में देव द्वारा कहा गया है-

घाट पर ठाढ़ी बाट पारति बटोहिन की,
चटक सी डीठि मन काको न हरति है।
लटकी पटकि पट छियोकरि मटकति देव,
भुज भूलनि ते ऩूल से झरति है।

अर्थात् देव जी कहते हैं, कि यह धोबिन घाट पर खड़ी होकर बटोहिनी की भाँति राह देखती है। वह अपनी जादू भरी दृष्टि से सबका मन हर लेती है। ऐसा कोई नहीं है, जिसका मन इसने न हरण किया हो। यह झुकी हुई कपड़ों को पटक-पटक कर उनका मैल दूर करती है, अर्थात् उन्हें पखारती है।

देव ने ग्राम की विभिन्न उपयोगी वस्तुओं की आपूर्ति करने वाली अधिकांष नीची जातियों जैसे अहीरिन, काछिन, कलारिन, कहारिन व नुनेरिन का वर्णन किया है। यहाँ स्पष्ट हो जाता है, कि इस समय ब्राह्मण आदि उच्च वर्ग में आते थे। अहीरिन को दूध, दही बेंचने वाली, वारिनि को तालाब में मछली आदि पकड़ने वाली, कलारिन को शराब पिलाने वाली, कहारिन को पानी लाने वाली तथा नुनेरिन को नमक बनाने वाली के रूप में चित्रित किया है।

अहीरिन के सम्बन्धा में देव का कथन है-

माखन सो मन दूध सो जोवन है, दधि ते अधिकै उद ईठी।
जा छवि आगे छपाकर छाप, विलोकि सुधा वसुधा सब सीठी।
नैननी नेह चुपै कवि देव, बुझारत वैन वियोग अंगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहे, कहौ क्यों न लगे मनमोह में मीठी।

अर्थात् देव जी ग्रामीण अहीरनी के रूप सौंदर्य के विशये में बताते हैं, कि इस ग्वालिनी के सुन्दर शरीर के सभी अवयव दूध, दही, आदि जैसे ही बने हैं। ग्वालिन का मन मक्खन जैसा मृदु-मधुर है और असके यौवन का तो कहना ही क्या? शरीर उज्ज्वल, निर्मल, धावल तथा यौवन उसका दुग्धा के समान स्निग्धा शीतल और जैसा चाहिए, वैसा स्वच्छ भी है।

काछिन के सम्बन्ध में देव उल्लेख करते हैं-

राखी समाधिरत समाधान कै दिख्यानि को ईगुर सी अंगनि गुराई।
देव कहैं जगमग्यो जीवन जुन्हाई ऐसी एते पै जुन्हाई।
बैठी है गंवारि सरोवर वारि में वारिनि सुखावति उघारि।
सीस गावति लुभावति सी लोगनि फिरति चहुपारि।

अंचल अंगौछै ओछे कुच पोछै लिए कोछे में।
कमल डोले काछिनि कछार में।

अर्थात् देव जी कहते हैं, कि यह काछिनि इतनी प्रभावी, सुन्दर व गुणवती है, कि यह सभी समाधिरत साधाकों को विचलित करने की क्षमता रखती है। यह गंवारी, गौरवर्ण की है और इसके अंग लालिमायुक्त हैं।इसके यौवन में जगमगाहट हैं। ऐसे जगमगाते यौवत को लेकर यह काछिनि नहाने के लिए सरोवर के पाती में उतर गई। स्नानोपरान्त वह अपने केषों को सुखाती है तथा चारो ओर घूम-घूम कर लोगों को गाकर लुभाती है। वह आँचल के अंगोछे से अपने कुचों को पोछकर उसे कोधा में लिपटाकर कमल के समान वह कछार में भ्रमण कर रही है।

कलारिन का देव अत्यन्त मनोहारी वर्णन करते हैं-

आपु पिवै अरु औरनि प्यावति, लाज के तूल ज्यों तमति डौलैं।
जोबन जब जकी सी कलारि, छकी मद सौ झुकि झूमति डोलैं।।

अर्थात् देव जी कलारिन का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि यह शराब बेंचने वाली कलारिन स्वय यह शराब बेंचने वाली कलारिन स्वयँ शराब बेंचने वाली कलारिन स्वयँ शराब पीती है और औरों को भी पिलाती है।यह अपनी लज्जा को कपास (रूई) की भाँति उघाड़ती घूमती है। अपने यौवन के सौंदर्य की धुन में यह कलारिन मद से छकी तृप्त झुकी-झुकी झूमती फिरती है।

कहारिन के बारे में वे कहते है-

चाहेउ न चाहै चहूं ओर ते गहत बाहे।
गाहक उमाहे रोकि राहै चित हार की।
देखत ही मुख विश लहरिसी आपै लगी,
जहर सो नैन करै कहर कहार की।

अर्थात् देव जी कहते हैं, कि कोई ग्राहक इस कहारिन से चाहे मछली ले या न ले, लेकिल उमंग में भरकर ये ग्राहक चारों ओर से उस चित चुराने वाली कहारिन की बाँहें पकड़कर उसकी राह रोकने का प्रयास करते है। लेकिन इस कहारिन का रूप इतना घातक है, कि इसका मुँह देखते ही देखने वालों के हृदय में विश की लहर सी आ जाती है।

नुनेरिन के सम्बन्ध में देव का कथन है-

हाथनि लखौटा पाई चूरा पचमनी गरे,
गोरी की जुगल जाती है उन्हारि केष।
गजगौनी नौनी धारे नोन की डरैया सीस,
नील से नैन नारि निरखी नुनेरा की।

अर्थात् देव जी कहते हैं, कि नमक बनाने वाले की स्त्री नुनेरिन ने अपने हाथों-पावों पर अंगराग लगाया हुआ है और चूड़ा डाला हुआ है। इसने गले में पाँच मणियों वाली माला महनी हुई है। इस गोरी नुनेरिन की दोनों जांघें इतनी सुडौल और पुष्ट हैं, कि केले के पेड़ के तने के सदृश्य दिखाई देती हैं। इस सलोनी व लावण्यमयी नुनेरिन की चाल हथिनी की भाँति है। यह गजगायिनी नुनेरिन सिर पर नमक का ढेला रखकर कमलमयी नेत्रों से सबको आकर्शित करती है।

देव ने वनवासी जातियों के रूप में मुनि की पत्नी, व्याधावधू व भीलनी का उल्लेख किया है, जबकि बंजारा जातियों में घूम-घूमकर जीवकोपार्जन करने वाली जातियों में चार सम्प्रदायों यथा बंजारिन, जोगिन, नटी और कंगहेरिन का वर्णन किया है। ये स्त्रियाँ भी आचार की दृष्टि से बहुत उच्च नहीं थीं। बंजारिन के द्वारा बैलों की गाड़ी पर अनाज लादकर घूम-घूम कर कलात्मक चमत्कारिक खेल दिखाना व कंगहेरिन को सम्भवत: देव ने पुरुषों के आभूषण बेंचने वाली कोई निम्न जाति की स्त्री माना है।

वनवासी जाति की स्त्रियों का भी उल्लेख देव ने किया है, -

बनाया बनवासिनि बाधूकी, ताहू त्रिविधि बखानि।
मुनि त्रिय अरु त्रिय व्याधा की, और भीलनी जानि।

अर्थात् देव जी कहते हैं, कि वन में वास करने वाले पुरुषों की स्त्रियों को वनया कहा जाता है। यें तीन प्रकार की बनाई गई है। जैसे मुनि की स्त्री और भील की स्त्री।

भीलनी के बारे में वह कहते हैं-

उराझति झारनि में मुरझि परारनि में।
गाढ़ी गूढ़, छैल भीलनी छकी फिरैं।

अर्थात् इस पद में देव जी कहते हैं, कि जब इस मोहिनी बीन तान का शोर सारे वन के बीचों-बीच फैल जाता है, तब वहाँ कोई भी बड़े से बड़ा तपस्वी भी अपने स्थान पर स्थिर नहीं रह सकता है। व्याधिन अर्थात् शिकारी की इस स्त्री ने बिना बाणों के ही अपनी तिरछी तीखी चितवन से अनेकों के हृदय को बींधाकर उनका वधा कर दिया हैं

बंजारिन के बारे में देव कहते हैं-

ऊँचे उरोज हरा घुघुचीनि के, है कहि हांकति बैल निहारी।
गत नहीं दिखराइ बटोहिन, बात नहीं बनिजै बनिजारी।।

देव जी कहते हैं, कि इसके ऊँचे उठे वक्षों पर घुघुचियों की माला शोभायमान है और यह ड़ैलों को देखकर हा-हा की ध्वनि से हकारती है। यह बँजारिन इस प्रकार अपने अधाखुले शरीरांगों को दिखाकर बातों ही बातों ही बातों में सबको लुभा लेती है।

जोगिन के सम्बन्ध में देव उल्लेख करते हैं-

मोहे महा पन्नण अनेक अनगन खन,
कान दै दै कोल भील केते झीझि रहे हैं।
ठाढ़े ढ़िग बाघ चीते चितवत दृग,
झांक मृगसाखा मृग रोझ रीझ रहे हैं।

देव जी कहते हैं, कि जोगिन तानपुरा बजाती है और मधुर सुर में गाती है, तो इसकी मधुर मोहिनी ध्वनि को सुनकर सभी अनेक विशधार साँप तथा तमाम पशु-पक्षी मोहित हो गए। जब से कान लगाकर इसने कोलों और भीलों ने इसकी ध्वनि को सुना है, तब से वे परेशान हैं। इस जोगिनी की मधुर ध्वनि से मोहित होने के कारण बाघ, भेड़िए, और चीते अपने पास खड़े हिरणों। हिरण के शावकों और नीलगायों को मारने की जगह रीझने लगते हैं।

नटी की कला का उल्लेख करते हुए देव कहते हैं-

कौल से नैन कलानिधि सो मुख, को गनै कोटि कला गहिरी की।
बांस के सीस अकस में नाचति, को न छके छवि सोन चिरी की।।

देव जी कहते हैं, किनटी के नेत्र कमल के समान व मुख चन्द्रमा की भाँति कांतिमयी है। उसके इस अद्‌भुत मनोरम सौंदर्य के समक्ष सुन्दरता की प्रतीक रति की करोड़ों कलाओं का भी कोई नहीं है। वह बाँस के सिरे को पकड़कर आकाश में नाचती-फिरती है। इस सोन चिड़ियां की छवि को देख ऐसा कौन होगा? जो इसकी छवि से तृप्त न हुआ हो।

कंगहेरिन के सम्बन्ध में देव का कथन है-

सांवरे अेग सरो से नैन, उरोज उठे अठिलात कपोलै।
ऐठति सी भुजमूल उठाय, अंगूठनि चालि चबाय सो बोलै।।

देव जी कहते हैं, कि रस्सी बेचने वाली कंगहेरिन के अंग साँवले हैं। इसके नेत्र कमल की भाँति सुन्दर हैं तथा ऊँचे उठे उरोज गोल व अठलाहत भरे हैं। यौवन के ऐंठ में बगल को उठाए अँगूठे के बल चलती है।

कसहेरिन के बारे में देव कहते हैं-

वेला यही तव लैहैं कहाँ उठि जैहैं छरा करछी लै गुमानी।
है सुथरा अरु झारी परात सु, रीझ की थारी पियाले ते जानी।

हारी सु दै दै गई करि चिन्तहि, लोटी न येकहु याम सयानी।
काम विलासनि सो कसहेरिन, बासन बेंचत आप बेकानी।।

पसारिन के सम्बन्ध में देव कहते हैं-

पीपरि सुपारी साथ सोंठ कही गहे कहे,
गरी मरी चैन नाही डारी ज्यौं उशारिकै।
नारिअर धारै लौंग जाफ़र देति ताहि,
सदारचीनी के ही इलायची निहारिकै।
ए कुरंगमद सो अनेक पूरे पूरे रस,
ताको सरि कौन घना साफै सी विचारिकै।
हरदी सी अधार सहत प्यावै पसारिन,
लेत है पसारि वैठी भुजन पसारिकै।।

बढ़इन के सम्बन्ध में देव कहते है-

वंक निहारिनी आरनी सो उर, लरज किवारनि फारनि ठीकी।
भौंह कुठारनि विवेकहि राशति, धीर न जीरन जी की
छेव रहे छवि छेनी लिए छिन, में मति छोलति है सबही की।
छेद करै तरुनी वरमा, वरुनीन में वेट पुरै बढ़इन की।।

लुहारी के सम्बन्ध में देव का कथन है-

लगी चावन लोगन को मन, काम की आच मचाइ अचैननि।
देव कटाक्ष किये सनसी गहि, ताई बुझाझ हनै घन वैननि।
सोहनी भैहनि सो हनि, राशै शरी शरसान दै सैननि।
लोहु गहे लुहसारी में बैठी, गुहारि लगाइ कै देखत नैननि।

भरभूजिन के बारे में देव कहते हैं-

सवरे अंग लसै पियरे पट, कंचुकी कारी कसी कुच सोहनि।
भूजत धान गुमान सो सुंदरि, रूप छटा छछटैं कर दोहनि।
पेम की डोरि बंधो कहि देवजू, वाही गली को न छोड़त मोहनि।
डीठि परी जवते भरभूजिन, भार भयो घर बाट बटोहनि।।

चुरहेरिन के सम्बन्ध में देव कहते हैं-

हाटकलता से बैठी हाट के कपाट शोलि,
वाट के वटोहिन को ओना वितरति है।
रूप की सी रासी जो अनूपरस की सी रासि रुचि,
को प्रकासि कित रंभा कित रति है।
लाश में लपेटि लोक लोचन लचाय गरे,
लेति अंग ईगुर के रंग हितरती है।
चंचल लशन चित चोरि चुरहेरि चित,
चूरि चूरि करि करि चूरी चितरति है।

धुनिन के सम्बन्ध में देव का कथन है-

पीतम पास कपास को ओटति, हाथ की ओट बसै दिसि चार्यो।
चंचल नैन की चोट सो मारि, वटा करि रूश्यो बटोही विचार्यो।
कानन वारी हलै उछलै कुच, दैल निहारि हार्यो।
भौहन की धानुही करिकै, धुनिया की बहू हियरा धुनि डार्यो।।

जुलाहिन के सम्बन्ध में देव ने कहा है-

लाज जंजीरन जोर सो तोरि, चलै चहु ओर चुवो निसिपंदहि।
घूमत झूम महामद की हद, काहू डरै न को वहु छंदहि।
हाथ लिए चरशी हरशी हिय, फेरति अंकुर सो गुन ंदहि।
चंदमुशी गति मंद सिशावै, जुलाहे की जोब मत्त गयंदहि।।

कटेरिन के सम्बन्ध में देव कहते हैं-

जीत लियो सिगरो जग जाहि सो, काम की मौजै रहें घर घेरी।
भौहैं कमान चढ़ाइ दिशावति, देव कहे गुन सो मुश जेरी।
मारति जाहि सम्हारत सो नहि, को न भयो गिरि मोह की ढेरी।
माड़ति रंग सो शाड़ति है मनु, छाड़ति काट कटाछ कजेरी।

शटकिन के सम्बन्ध में देव का कथन है-

मोहति हजारिन बजार बीच बैठि रहे, रीझ रिझवारनि की हाकति हरकति है।
हाथ में तराजू भुज वूबंद झमकत, उरज उतंग अंग अंग फरकति है।
मूल दल फूल फल बेंचति सकल कंग, लाग लगी डीठि अनुराग ढरकति है।
बीछी विश लहरि तिरीछी चितवजि देव, मन में शटीकिनी शरीये शरकति है।।

भठियारी के सम्बन्ध में देव ने कहा है-

चाड परै भठियारी त्रिया, हठियारी के बोल बनावति झूठै।
काज सरै विसु ज्यों विसरै मुश, रूशी ह्वै रोश दिशावति रूठे।
ठाढी परोसिनि संग लौं अंग, अंग तरंग उठावै अनूठे।
चंचल के अंगुरीनु द्रगांचल, हाथ नचावै लचाय अंगूठै।।

सिकलीगरनि के सम्बन्ध में देव कहते हैं-

चित चोरति से चितवै तिरछे, कटि ने कटि मानौ परै लरकी।
नवजोवन जोर जमात जगी, अंगरात उतै अंगिया दकी।
कवि देव कहे छिन दशतही, किहिकी न कहो छतिया करकी।
द्रगवानन में शरसान धारै, सुशरी शरकै सिकलीगर की।।

चमारिन के सम्बन्ध में देव ने कहा है-

जोबल जोम सो बैठी जभाति, निहारत नेह नयो उपजावै।
रंग भरै सब अंगनि में करि, भंग अनंतरंग उठावै।
तारकसी की निासै वुटी की, लीन्हे पवाई के पत्रे वनावै।
चंचलनैनी चमार की ज्याई, चितौन में चाम के दाम चलावै।।

डोमिन के सम्बन्ध में देव कहते है-

तान सुजान की कान परी, तवते धारि ध्यान हियो रस पागति।
साझ में भोर लौ मत्त चकोर, लौ चंद की ओर चितै निसि जागति।
बीन बजावै वेई सुर रागिनी, देव छकी पलु आपि न जागति।
आपुही रागति रीझाति औरहि। जाति कछू मुसक्याइ औ रासति।।

चंडारी के सम्बन्ध में देव का कथन है-

सांवरे सार की सांट मनो, सटकीली लटै अटकी मृदु वैननि।
जोवन के मद छाकी समोद, चितै चहू कोद चली चित चैननि।
भौह कमान सी तानि अचानक, चुकै न वेझो की सर सैननि।
शाडी न कौन की लाज कहो इहि, चाडी चंडारि के कटासे नैननि।।

देव कहते हैं-

है उपजै रजबीजुहिं ते दिन, से हूँसबे छतिछार के छाँड़े।
एक से देखु कछू न विसोधि, ज्यौं एक उन्हें कुंभकार के भाड़े।
तापर ऊँच और नीच विचारी, वृथा बकवास बढ़ावता चाड़े।
वेदनि मूद कियो इन दुन्द, कि सूद अपावन पावन पांडे।।

देव कवि को बाह्ययाचारों में बिल्कुल विश्वास नहीं था। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है-

कथा मै न क्था मैं, न तीरथ के पंथा मैं,
न पोथी मैं न पाथ मैं, न साथ की बसीति मैं।
जप मैं न मुंडन न, तिलक-त्रिपुड न,
नदी कूप कुंडल अन्हान दान रीति मैं।
पीठ मरू मंडल न कुंडल कमण्डल न,
माला दण्ड मैं न देव देहरे की भीति मैं।।

देव ने अपने वर्णन में छः प्रकार की सामाजिक बस्तियों का उल्लेख करते हुए अन्दर-बाहर के नर व नारियों के बाजारों का भी वर्णन किया है। उन्होंने उच्च जातियों की ललनाओं में ब्राह्मण को छोड़ते हुए क्षत्रणी, रजपूती, बनैनी व वैसिन का भी बड़ा मनोहारी उल्लेख दर्शाया है। इसी प्रकार उत्होंने कर्मशील जातियों में जौहरिन, कायस्थिन, किरारिन, नाइन, कलारिन, नुनेरिन, मालिन, धोबिन, अहिरिन, काछिन का श्रृंगारिक वर्णन करने हुए वनवासी जाति स्त्रियों में भिलनी, व्याधिन, जसेगिन, नटी को भी अपनी लेखनी में शामिल किया है। इनके अलावा देव ने कंगहेरिन, कसहेरिन, बढ़इन, भरभूजिन, चुरहेरिन, धुनियाइन, जुलाहिन, कटेरिन, भठियारिन, खटकिन, चमारिन, डोमिन व चंडालिन आदि के पेषे के साथ यौवन की विभिन्न गतिविधियों को बहुत रसीले ढंग से दिखाने का प्रयास किया है।

देव ने कारीगरी का कार्य करने वाली जौहरिन को आभूषण कार्य, पटवाइन को रेशम की डोरी बुनते व मोती पोहने का कार्य, तमोलिन को पान बेंचने का व्यवसाय, छीपिनि के लिए कपड़े रंगने व छापने का कार्य, सुनारिन व गंधिनी तथा तेलिन के निज कार्य, कांदुनि अर्थात् हलवाइन के कार्य, बनिआइन के आटा-दाल बेंचने के कार्य, कुम्हारिन के मिट्टी के बर्तन बनाने का कार्य, दर्जिन के कपड़े सिलने आदि के कार्य, चूहरिन के कार्य तथा गणिका के कार्यों व उनके हाव-भावों व लच्छन-भेदों तथा उनके वरूत्र-विन्यासों का बड़ा ही रसमय वर्णन किया। यहाँ का समाज में इस प्रकार का इतना विस्तृत रूप में विभिन्न प्रकार के जातिगत-व्यवसायगत विवरणइतने श्रृंगारिक व आकर्शणपूर्ण ढंग से सौन्दर्य का किसी अन्य कवि द्वारा नहीं किया गया है। देव ने अपने पदों में गागर में सागर भरने जैसा कार्य किया है। इस विधा में देव अद्वितीय हैं और आगे भी ऐसे साहित्य की चर्चा में तथा कामगारों की स्त्रियों के अनुपम चित्रंकन के लिए युगों-युगों तक उन्हें याद किया जाता रहेगा।

सन्दर्भ सूची

1. जायसवाल, पुष्परानी, देवग्रन्थावली, भाग 1, इलाहाबाद, पृ. 49.
2. आयंगर रामस्वामी निवासाचारी श्री, मध्यकालीन भारत (1001-1526 ई.) सं. गोरखनाथ चौबे, इलाहाबाद 1949, पृ. 170.
3. मानव, विशम्भर, प्राचीन कवि, इलाहाबाद, 2011, पृ. 165.
4. बृज गोकुलप्रसाद, दिग्विजय-भूषण, सं. भागवती प्रसाद सिंह, लखनऊ, 1858, पृ. 47.
5. किंकर, कवि, देवरत्नावली, इलाहाबाद, 1950, पृ.1.
6. सारंग फूलचन्द्र जैन, हिन्दी और उसके कलाकार, आगरा, 1959 पृ. 182,183.
7. नगेन्द्र, देव और उनकी कविता, इलाहाबाद, 1974, पृ. 59.
8. जायसवाल, पुष्परानी, देवग्रन्थावली, भाग 1, इलाहाबाद, पृ. 7.
9. देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, खण्ड-2 सं. लक्ष्मीधर मालवीय, नई दिल्ली 2002, पृ. 122.
10. देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, खण्ड-2 नई दिल्ली 2002, पृ. 122, रस विलास 3-13.
11. देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, खण्ड-2 सं. लक्ष्मीधर मालवीय, नई दिल्ली 2002, पृ. 123, रस विलास 1-14.
12. देव और उनका रसविलास, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 62, 63.
13. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 3-10 जा. 01, पृ. 244.
14. देव रसविलास, 5. 2. 2, चौधरी, भारतभूषण, आलम और उनका काव्य, दिल्ली, 1976, पृ. 69.
15. देव और उनका रस विलास पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 63-64 (देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, सं. लक्ष्मीधर मालवीय, नई दिल्ली, 2002, खण्ड 2, पृ. 122, रस विलास, 2-5.
16. देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, सं. लक्ष्मीधर मालवीय, नई दिल्ली 2002, खण्ड-2, पृ. 123, रसविलास 2-16.
17. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 3-9 जा. 01, पृ. 243-244.
18. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 3-6 जा. 01, पृ. 243.
19. देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, सं. लक्ष्मीधर मालवीय, नई दिल्ली 2002, खण्ड-2, पृ. 123, रसविलास 3-2.
20. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 3-9 जा. 02, पृ. 244.
21. देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, सं. लक्ष्मीधर मालवीय, नई दिल्ली 2002, खण्ड-2, पृ. 122, रसविलास 2-6.
22. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 2. 5. जा. 02, पृ. 241.
23. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 2. 5. जा. 03, पृ. 241.
24. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 2. 5. जा. 04, पृ. 241.
25. देव सम्पुर्ण ग्रन्थावली, सं. लक्ष्मीधर मालवीय, नई दिल्ली 2002, खण्ड-2, पृ. 122, रसविलास 2-5.
26. देव ग्रन्थावली, भाग दो, 2. 5. जा. 01, पृ. 241.
27. दीनदयाल, देव और उनका रस विलास, दिल्ली, 2004, पृ. 170.
28. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 171.
29. दीनदयाल, देव और उनका रस विलास, दिल्ली, 2004, पृ. 171-72.
30. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 173.
31. दीनदयाल, देव और उनका रस विलास, दिल्ली, 2004, पूर्वनिर्दिष्ट,पृ. 174.
32. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 65.
33. देव और उनका रसविलास, दिल्ली, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 177.
34. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 178.
35. देव और उनका रसविलास, दिल्ली, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 179.
36. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 180.
37. देव और उनका रसविलास, दिल्ली, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 67.
38. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 180.
39. देव और उनका रसविलास, दिल्ली, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 182.
40. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 183.
41. देव और उनका रसविलास, दिल्ली, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 188.
42. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 189.
43. देव और उनका रसविलास, दिल्ली, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 190.
44. पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 190.
45. देव ग्रन्थावली भाग दो, 2. 8 जा. 01, पृ. 241.
46. पूर्वनिर्दिष्ट, 2. 9. जा. 01, पृ. 241.
47. देव ग्रन्थावली भाग दो, 2. 13. जा. 01, पृ. 241.
48. पूर्वनिर्दिष्ट, 2. 9. जा. 01, पृ. 242.
49. देव ग्रन्थावली भाग दो, 2.-8- जा. 02, पृ. 242.
50. पूर्वनिर्दिष्ट, 2.-16- जा. 03, पृ. 242.
51. देव ग्रन्थावली भाग दो, 2.-16- जा. 02, पृ. 242.
52. पूर्वनिर्दिष्ट, 2.-16- जा. 04, पृ. 242..
53. देव ग्रन्थावली भाग दो, 2.-16- जा. 05, पृ. 242-43.
54. पूर्वनिर्दिष्ट, 2.-16- जा. 06, पृ. 243.
55. देव ग्रन्थावली भाग दो, 2.-16- जा. 07, पृ. 243.
56. पूर्वनिर्दिष्ट, 2.-16- जा. 08, पृ. 243.
57. देव ग्रन्थावली भाग दो, 2.-18- जा. 01, पृ. 243.
58. पूर्वनिर्दिष्ट, 3-15- जा. 07, पृ. 244.
59. देव ग्रन्थावली भाग दो, 3-15- जा. 02, पृ. 244.
60. हिन्दी कविता में दलित चेतना एक अनुशीलन, गाजियाबाद, 2009, पृ. 67.
61 कवित्रयी, रामफेर त्रिपाठी, लखनऊ, 1965, पृ. 92.

अलवर ज़िले में मूलभूत सुविधाओं का विकास का मूल्यांकन

सत्यदेव

सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

डॉ० विजय कुमार वर्मा

सह आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभा राम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

शोध सारांश

किसी देश के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास में, उस देश में उपलब्ध मूलभूत सुविधाओं अथवा आर्थिक रूप से क्रियाशील जनसंख्या की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मानव को उपलब्ध सुविधाओं का आकार तथा उसका गुणात्मक स्वरूप देश के विकास के पथ को निर्धारित करती है। स्वस्थ एवं कुशल मानव ही उत्पादन का साधन बन कर आर्थिक विकास को गति प्रदान करता है। मूलभूत सुविधाएं उन जन सुविधाओं को संदर्भित करती हैं, जो लोगों को जीने की जरूरत को पूरी करती हैं। स्वच्छता, पानी, बिजली, सार्वजनिक परिवहन और स्कूल आदि जैसी सुविधाएं हमारे जीवन के लिए बहुत आवश्यक हैं, उनके बिना जीवन बहुत मुश्किल हो जाता है! उदाहरण के लिए पानी लेते हैं, स्वच्छ पानी की उपलब्धता सभी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मानव परिवहन और परिवहन के साधनों को सुविधाजनक बनाना भी आवश्यक है। इसी प्रकार, चिकित्सा सुविधा, शिक्षा, बिजली, स्वच्छता और स्वच्छ पर्यावरण मनुष्य के लिए आवश्यक है, इसलिए इस शोध पत्र में, अलवर जिले में सार्वजनिक सुविधाओं के विकास एवं सम्भावनाओं का अध्ययन किया गया है।

शब्द कुंजी : अलवर जिले में मूलभूत सुविधाएं, शिक्षा व्यवस्था, चिकित्सा सेवाएं, पेयजलापूर्ति, विद्युत आपूर्ति, जिला उद्योग केन्द्र, औद्योगिक परिख्रश्य एवं आधारभूत सुविधाएं, रोजगार, परिवहन विभाग, रेल परिवहन, सार्वजनिक निर्माण विभाग, भारतीय डाकतार विभाग, संचार सेवाएं एवं बैंकिंग सुविधा, अलवर जिले का विकास का मूल्यांकन।

परिचय

सार्वजनिक उपयोगिताओं में उन सभी मूलभूत सुविधाओं का उल्लेख है जो मानव के लिए आवश्यक हैं जैसे कि स्वच्छता, पानी, बिजली, सार्वजनिक परिवहन और स्कूल इत्यादि। ये सार्वजनिक सुविधाएं हमारे जीवन के लिए बहुत आवश्यक हैं, उनके बिना जीवन बहुत मुश्किल हो जाता है। उदाहरण के लिए, पानी लें, स्वच्छ पानी की उपलब्धता सभी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अगर साफ पानी उपलब्ध नहीं है, तो डायरिया, पेचिश और हैजा आदि जैसी कई बीमारियाँ फैलने का डर है। भारत में प्रतिदिन 1600 लोग पानी से संबंधित बीमारियों के कारण मरते हैं और उनमें से अधिकांश बच्चे हैं, जिस देश में सार्वजनिक सुविधाएं पहुँचेंगी अधिक लोग, लेकिन लोगों के अंदर की बीमारियां भी कम हैं और मृत्यु दर भी कम है। अलवर शहर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण जिला है, जो अरावली पर्वत श्रृंखला की प्राख्रतिक घाटी में सुंदर झीलों और घने जंगलों से घिरा हुआ है। इसे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की विकास नीतियों के कार्यान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका माना गया है। दिल्ली और जयपुर जैसे दो महत्वपूर्ण महानगरों के बीच स्थित, शहर में दोनों महानगरों से सटे एक महत्वपूर्ण शहर के रूप में कार्य करने की क्षमता है। अलवर के महत्व को देखते हुए, इसे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना 2021 के तहत एक क्षेत्रीय शहर के रूप में पहचाना गया है और इसे भौतिक, आर्थिक और नागरिक बुनियादी ढांचे के समुचित विकास द्वारा इसे और अधिक कुशल बनाने के लिए सुझाव दिया गया है। अलवर शहर में शहरी विकास के साथ-साथ सार्वजनिक सुविधाओं का भी विकास हुआ है, इसलिए इस शोध पत्र में अलवर जिले में बुनियादी सुविधाओं के विकास का भौगोलिक विश्लेषण किया गया है।

भौगोलिक स्थिति

जिला अलवर राजस्थान के उत्तर पूर्व में अरावली पर्वत श्रृंखलाओं में 27°4" से 28°4" उत्तरी अक्षांश और 67°4" से 77°13" पूर्वी देशांतर में स्थित है। यह आकार में काफी द्विघात है। जिले की सीमाएँ पूर्व में भरतपुर, दक्षिण में जयपुर, दक्षिण में जयपुर, दौसा, उत्तर में जिला और उत्तर में हरियाणा राज्य से घिरी हुई हैं।

क्षेत्रफल और भौतिक प्रकृति

जनगणना 2011 के अनुसार, जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8380 वर्ग किलोमीटर है। यह राजस्थान के भौगोलिक क्षेत्र का 2.45 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से जिले का आकार लगभग चौकोर है। जिले के दक्षिण-पश्चिमी हिस्सों में, घाटियों की घाटी मुख्य अरावली पर्वतमाला की निरंतरता को बनाए रखते हुए पठारों के रूप में मौजूद है। जिले के मध्य भाग में उत्तर से दक्षिण तक अरावली पहाड़ियों की ऊँचाई 456 मीटर से 700 मीटर है। जिले का यह क्षेत्र वनों से भरा है। जिले का पश्चिमी भाग रेतीला है जबकि मध्य भाग में पहाड़ी और पठारी इलाके हैं।

शोध अध्ययन का उद्देश्य :

1. अलवर जिले में मूलभूत सार्वजनिक जन सुविधाओं का अध्ययन किया गया।
2. अलवर जिले में सार्वजनिक जन सुविधाओं की भौतिक प्रगति प्रस्तुत की गई है।

शोध परिकल्पना :

1. अलवर जिले में मानव विकास के साथ साथ पर्याप्त सुविधाएं विकसित की जा रही हैं।
2. अलवर जिला जन सुविधाओं के निरंतर विकास की ओर अग्रसर है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में, प्राथमिक और माध्यमिक स्रोतों से प्राप्त डेटा का उपयोग किया गया है, जिसके आधार पर, संभावित शोध परिणामों, निष्कर्षों और सुझावों को देने के लिए समस्या का विश्लेषण किया गया है।

आँकड़ो के स्रोत

किसी भी प्रकार के अध्ययन के लिए सांख्यिकी की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत अध्ययन में उपयोग के लिए प्राथमिक और माध्यमिक डेटा एकत्र किए गए हैं। विभिन्न विभागों में एकत्र किए गए डेटा को जनसांख्यिकी विभाग, अलवर, जिला कलेक्टर कार्यालय, अलवर, अलवर नगर विकास प्राधिकरण, परिवहन विभाग, चिकित्सा विभाग, शिक्षा विभाग, जल आपूर्ति विभाग और बिजली वितरण निगम से एकत्र किया गया है।

अलवर ज़िले में मूलभूत सुविधाएं

शिक्षा व्यवस्था : अलवर जिले में कुल स्कूल 2034, निजी कॉलेज 168 और 10 सरकारी कॉलेज वर्तमान में संचालित हैं। इसमें 15 पॉलिटेक्निक कॉलेज, 08 इंजीनियरिंग कॉलेज, 10 नर्सिंग कॉलेज, 01 मेडिकल कॉलेज, 65 टीचिंग ट्रेनिंग कॉलेज, 15 एसटीसी कॉलेज, 02 निजी विश्वविद्यालय और 01 सरकारी विश्वविद्यालय हैं।

चिकित्सा सेवाएं : चिकित्सा और स्वास्थ्य विभाग जिले और ग्रामीण क्षेत्रों और नगरपालिका क्षेत्रों में चिकित्सा एलोपैथिक तरीके प्रदान करते हैं। यह विभाग एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली से बीमारियों से छुटकारा पाने और उनका इलाज करके उन्हें स्वस्थ रखने के लिए प्रतिबद्ध है। अलवर जिले में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में निम्नलिखित सुविधाएं उपलब्ध हैं।

तालिका संख्या 1: अलवर में चिकित्सा सेवाएं

जिले में चिकित्सा परिदृश्य एक नजर में :–

1. जिले की अनुमानित जनसंख्या	: 4086708
2. कुल ब्लॉक	: 14
3. शहरी स्वास्थ्य क्षेत्र	: 02
जिला चिकित्सालय जिला मुख्यालय पर	: 01
महिला चिकित्सालय MCH Wing जिला मुख्यालय पर	: 01
शिशु चिकित्सा ईकाई जिला मुख्यालय पर	: 01
शहरी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	: 08
सैटेलाईट हॉस्पिटल जिला मुख्यालय पर	: 01
जिला क्षय रोग चिकित्सालय जिला मुख्यालय पर	: 01
जिले के शहरी क्षेत्र में डिस्पेनसरी की संख्या	: 03
शहरी निकाय (NUHM) (अलवर व भिवाडी)	: 02
4. सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	: 35
प्रथम रैफरल केन्द्र	: 17
ब्लड स्टोरेज केन्द्र	: 06
5. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	: 123
6. आदर्श प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	: 30
7. एक्सीडेन्टल ट्रोमा यूनिट (बहरोड ,जिला अस्पताल)	: 02
8. कुल उप स्वास्थ्य केन्द्र	: 688
देवनारायण योजना में स्वीकृत	: 86
अन्य उप स्वास्थ्य केन्द्र	: 602
9. जिले मे निजी क्षेत्र में संचालित Clinical Establishment Act 2010 मे पंजीकृत चिकित्सालयों की संख्या	: 78
10. भामाशाह स्वास्थ्य बीमा योजना मे पंजीकृत निजी चिकित्सालयों की संख्या	: 29
11. पीसीपीएनडीटी एक्ट के तहत कार्यशील निजी चिकित्सालयों की संख्या	: 65
12. जननी सुरक्षा व मुख्यमंत्री राजश्री योजना मे पंजीकृत निजी चिकित्सालयों की संख्या	: 08
13. 104 जननी एक्सप्रेस	: 27
14. 108 एम्बुलेन्स सेवा	: 39
15. मेडिकल मोबाइल यूनिट / मेडिकल मोबाइल वैन	:12 (9+3)

आयुर्वेदिक औषधालय

जिले में, रोगों का इलाज आयुर्वेदिक पद्धति से भी किया जाता है, दूर-दराज के इलाकों में इन औषधालयों से जनता को बहुत लाभ मिलता है और विभाग से मुफ्त दवाएँ भी दी जाती हैं।

तालिका संख्या 2: अलवर ज़िले में आयुर्वेद चिकित्सालय में स्वीकृत सुविधाएं 2017-18

क्रमं.	पंचायत समिति	स्वीकृत शय्याऐं	आयुर्वेदिकऔषधालय			पं0स0का नाम/नगर पालिका क्षेत्र	स्वीकृत शय्याएँ	आयुर्वेदिकऔषधालय		
			'अ' श्रेणी	ब'श्रेणी	योग	नगरीय क्षेत्र		अ	ब	योग
1	उमरैण	15	1	15	16	अलवर	15	1	2	3
2	कठूमर	0	0	15	15	तिजारा	0	1	0	1
3	किशनगढ़	5	1	12	13	खैरथल	5	1	0	1
4	कोटकासिम	0	1	7	8	खेडली	0	0	1	1
5	नीमराणा	0	0	13	13	राजगढ	5	1	1	2
6	तिजारा	0	1	14	15	बहरोड	0	0	1	1
7	थानागाजी	0	0	18	18	मुण्डावर	5	1	0	1
8	बानसूर	0	0	22	22	रामगढ	0	1	0	1
9	बहरोड	0	0	17	17	कोटकासिम	0	1	0	1
10	मुण्डावर	5	1	22	23					
11	राजगढ	5	1	19	20					
12	लक्ष्मणगढ	0	1	18	19					
13	रामगढ	0	0	11	11					
14	रैणी	0	0	11	11					
		30	7	214	221		30	7	5	12

पेयजलापूर्ति

ग्रामीण क्षेत्र : अलवर जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार, 2021 रहने योग्य गाँव हैं जो सभी विभिन्न पेयजल योजनाओं से लाभान्वित हैं। इसमें 1248 ग्राम हैंड पंप योजना, 469 ग्राम पंप और टैंक योजना, 22 ग्राम टीएसएस योजना, 202 ग्राम पाइप योजना और 80 ग्राम क्षेत्रीय योजना से लाभान्वित हुए हैं। उपरोक्त योजनाओं में से 212 विभागीय पेयजल योजनाएं जनता जल योजना पैटर्न पर संचालित की जा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 11817 हैंडपंप काम कर रहे हैं।

शहरी क्षेत्र : अलवर जिले के अंतर्गत 09 शहरी जल योजनाएँ हैं, जिनमें से भिवाड़ी शहर की पेयजल आपूर्ति यू आई टी / रीको / आवासन मंडल द्वारा की जाती है। शहर तिजारा में 12 घंटे के अंतराल से और खैरथल, बहरोड़, अलवर, गोविंदगढ़, खेड़ली में 24 घंटे और शहर राजगढ़ में 48 घंटे के अंतराल से पीने के पानी की आपूर्ति की जा रही है।

वरिष्ठ भूजल वैज्ञानिक (सर्वेक्षण और अनुसंधान)

वर्ष 2017-18 के दौरान, अलवर, भरतपुर, और धौलपुर जिलों में इस कार्यालय द्वारा भूजल सर्वेक्षण कार्य किया गया था, जिसमें कार्यालय ने पूर्व-बरसात के मौसम के बाद और आदेशों के साथ सिंचाई के बाद तीन जिलों के बुनियादी कुओं का सर्वेक्षण किया था। राज्य सरकार का।

सर्वेक्षण के दौरान, जल स्तर माप, पानी के नमूनों का संग्रह और क्षेत्र से संबंधित अन्य जानकारी एकत्र की गई थी, जिनका जयपुर में रासायनिक प्रयोगशाला में विश्लेषण किया गया था। तीन जिलों में भूभौतिकीय सर्वेक्षण के माध्यम से, अछूते और कठिन क्षेत्रों में भूजल का पता लगाने का काम गहराई से किया गया था। वर्ष के दौरान तीन जिलों में एमजेएसए के तहत चल रहे काम की तकनीकी जानकारी प्रदान करना। इस कार्यालय द्वारा जन स्वास्थ्य विभाग अभि विभाग और अन्य विभागों और आम जनता के नलकूपों / हैंडपंपों के लिए भूजल उपलब्धता के बारे में जानकारी प्रदान की गई। इस कार्यालय द्वारा वर्ष के दौरान भूजल कृत्रिम पुन:पूर्ति के लिए तकनीकी जानकारी भी प्रदान की गई है। विभाग ने आवश्यकतानुसार सभी पंचायत समितियों को भूजल की स्थिति की जानकारी प्रदान की।

विद्युत आपूर्ति

किसी भी देश / राज्य / जिले के विकास का माप उसके नागरिकों द्वारा खर्च की जाने वाली प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत से किया जाता है। बिजली आज विकास की धुरी है। बिजली के बिना, विकास की कल्पना करना असंभव है। समाज के विकास में विद्युत निगम के योगदान को ध्यान में रखकर ही योजनाएँ बनानी पड़ती हैं और बिजली योजनाओं के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

तालिका संख्या 3: अलवर जिले में विद्युत विकास

क्र.स.	विवरण	लक्ष्य 2017–18	उपलब्धि 2017–18
1	ग्रामों का विद्युतीकरण	–	–
2	हरिजन बस्तियो का विद्युतीकरण	–	–
3	कृषि हेतु कनेक्शन अनु0 जाति को शामिल सहित	3564	4850
4	विद्युतीकरण कूप अब तक	–	116731
5	कृषि हेतु अनु0 जाति के उपभोक्ताओं को कनेक्शन	–	657
6	औद्योगीकरण (उद्योग हेतु) अनु0 जाति के उपभोक्ताओं को कनेक्शन	–	–

1. विद्युतीकृत नगर संख्या में 9 दिनांक 31.03.2018
2. विद्युतीकृत ग्राम (2001 की जनगणनानुसार) 2029 दिनांक 31.03.2018 है।
3. कुल ऊर्जा की खपत लाख यूनिटों में वर्ष 2017–18

1. घरेलू उपयोग	:	5998.96
2. व्यवसायिक व अवस्थी उपभोग	:	1987.09
3. औद्योगिक उपभोग	:	31409.06
4. सार्वजनिक प्रकाश	:	190.94
5. सिंचाई कृषि	:	16686.48
6. जल प्रदाय	:	617.49
7. रेल्वे ट्रेक्शन	:	0
8. अन्य उपभोग	:	235.51
योग	**:**	**57125.52**

जिला उद्योग केंद्र, अलवर

अलवर जिला राजस्थान के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित है। जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 8.38 लाख हेक्टेयर है, जो राज्य के क्षेत्रफल का 2.45 प्रतिशत है। अलवर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थित है। दिल्ली और हरियाणा के उद्यमी रेल या सड़क मार्ग से 2 से 2.30 घंटे में अलवर औद्योगिक क्षेत्रों तक पहुँच सकते हैं। जिले में भारी औद्योगीकरण के कारण, दो जिला उद्योग केंद्र स्थापित किए गए हैं।

1. जिला उद्योग केंद्र, अलवर
2. जिला उद्योग केंद्र, भिवाड़ी

जिला उद्योग केंद्र, अलवर के अधिकार क्षेत्र में, 09 पंचायत समितियाँ उमरैण, थानागाजी, राजगढ़, लक्ष्मणगढ़, कठूमर, रैणी, रामगढ़, किशनगढ़ और बानसूर हैं। जिला उद्योग केंद्र, भिवाड़ी पाँच पंचायत समितियों, अर्थात् तिजारा, कोटकासिम, नीमराना, मुंडावर और बहरोड के अधिकार क्षेत्र में आता है। जिले में अरावली पर्वतमाला के स्थान के कारण प्रचुर खनिज संपदा उपलब्ध है। खनिजों में बैराईट्स, मार्बल, भवन निर्माण सामग्री, डोलोमाईट, फायर क्ले, सोपस्टोन, क्वार्टज आदि मुख्य हैं। अलवर जिला कृषि संपदा से भी भरपूर है। प्रमुख रबी फसलें गेंहू, जौ, चना एवं सरसों तथा खरीफ की प्रमुख फसलें बाजरा, मूंग, ज्वार एवं ग्वार है। अत: जिले में खनिज आधारित उद्योग, कृषि आधारित उद्योग तथा अन्य विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना की प्रबल संभावनाऐं हैं। जिले में निम्न औद्योगिक क्षेत्र स्थापित हैं।

तालिका संख्या 4: अलवर ज़िले उद्योगों की सूचनाएं 2017-18

क्रम संख्या	उद्योगों का वर्गीकरण	औद्योगिक इकाईयों की संख्या	कुल उद्योग	कर्मचारियों की संख्या
1	कृषि आधारित	88	88	1180
2	वन आधारित	242	242	2620
3	खनिज आधारित	08	08	156
4	वस्त्र आधारित	21	21	235
5	अभियांत्रिकी आधारित	282	282	2831
6	रसायन आधारित	80	80	811
7	पशुधन आधारित	164	164	1644
8	भवन सामग्री	93	93	938
9	अन्य	630	630	8183
	योग	1608	1608	18598

औद्योगिक परिख्रश्य एवं आधारभूत सुविधाएं

जिले की अधिकांश औद्योगिक इकाइयाँ, औद्योगिक प्रयोजन के लिए परिवर्तित भूमि के साथ, रीको द्वारा विकसित औद्योगिक क्षेत्र में स्थित हैं। जिला उद्योग केंद्र, अलवर के क्षेत्राधिकार के तहत कुल 3911 लघु उद्योग और मध्यम इकाइयाँ पंजीख्रत की गईं। इसके अलावा, 20 बड़ी और मध्यम औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की गई है।

मत्स्य क्षेत्र

मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र की स्थापना वर्ष 1971 में हुई थी, यह औद्योगिक क्षेत्र राजस्थान का एक बड़ा, पुराना और प्रतिष्ठित औद्योगिक क्षेत्र है। औद्योगिक क्षेत्र MIA में 2340.64 एकड़ भूमि पर फूड्पार्क और विस्तार सहित कुल 1193 भूखंडों की योजना बनाई गई है। जिसमें विभिन्न मापों के 1090 भूखंड आवंटित किए जाते हैं। औद्योगिक क्षेत्र डप में फूड पार्क सहित कुल 1090 औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित की गईं। जिसमें से वर्तमान में 893 इकाइयाँ उत्पादित की जाती हैं। औद्योगिक क्षेत्र में स्थापित इकाइयों के प्रमुख उत्पाद संगमरमर के स्लैब और टाइलें, ग्रेनाइट टाइल्स, रसायन, वनस्पति घी और तेल, मिट्टी के बर्तन, सिरेमिक सेनेटरी वेयर और इंजीनियरिंग और पैकिंग सामग्री, गोंद पाउडर, पीवीसी केबल और तार, मसाले, सूक्ष्मजैविक खाद हैं।

जिला उद्योग केंद्र, भिवाड़ी

जिला उद्योग केंद्र भिवाड़ी तिजारा, केतकासिम, नीमराना, मुंडावर और बहरोड़ पंचायत समितियों के अधिकार क्षेत्र में आता है, जिसमें 16 औद्योगिक क्षेत्र स्थापित हैं और रीको द्वारा नए औद्योगिक क्षेत्र स्थापित किए जा रहे हैं। भिवाड़ी के लिए भूमि का बंटवारा किया जा रहा है। इस तरह, आने वाले वर्षों में भिवाड़ी और नीमराणा क्षेत्र में बड़ी संख्या में उद्योग स्थापित किए जाएंगे। जिसमें लगभग रु 20000 करोड़ लगभग रुपये का निवेश 48000 और रोजगार मिलेगा। इस क्षेत्र में निम्नलिखित क्षेत्र स्थापित हैं।

परिवहन विभाग

अलवर जिले में क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय 1982 से प्रचालन में है।

अलवर क्षेत्र के अंतर्गत निम्नलिखित कार्यालय हैं-

1. जिला परिवहन कार्यालय, जयपुर
2. जिला परिवहन कार्यालय, भिवाड़ी
3. कर संग्रह केंद्र, शाहजहाँपुर
4. उप परिवहन कार्यालय, बहरोड़

जिला परिवहन कार्यालय, अलवर में दो जिला परिवहन अधिकारी हैं - जिला परिवहन (प्रथम) और जिला परिवहन अधिकारी (प्रवर्तन) और एक जिला परिवहन अधिकारी जिला परिवहन कार्यालय, भिवाड़ी और कर संग्रह केंद्र, शाहजहाँपुर में कार्यरत है। जिला अलवर कार्यालय के तहत, कर संग्रह केंद्र नौगवां तहसील रामगढ़ और नारदकलां तहसील बहरा है। भिवाड़ी के अंतर्गत चार कर संग्रह केंद्र हैं- 1. अखाड़ा मैदान 2. भिवाड़ी मैदान 3. धारूहेड़ा मोड और 4. तावडू मैदान।

क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय, अलवर और जिला परिवहन कार्यालय, भिवाड़ी में अन्य राज्यों के लिए पंजीकरण, स्थानांतरण, वाहनों के लाइसेंस, परमिट से संबंधित, कर भुगतान प्रमाणपत्र, एनओसी से संबंधित सभी कार्य। आदि कार्य किया जाता है।

राज्य में क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय, अलवर ने भी राजस्व प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वित्तीय वर्ष 2017-2018 में अलवर क्षेत्र में 233.64 करोड़ के राजस्व लक्ष्य के मुकाबले 246.21 करोड़। प्राप्त कर लिया। जाएं कि राजस्व लक्ष्य 105.38 प्रतिशत है। वित्तीय वर्ष 2017-2018 में, क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय, अलवर को राजस्थान में राजस्व राजस्व में तीसरे स्थान पर रखा गया है।

तालिका संख्या 5 : अलवर जिले वाहनों का पंजीयन वर्ष 2017 - 18

वाहनो का पंजीयन वर्ष 2017–2018

क्र. सं.	वाहन का प्रकार	कुल वाहन पंजीकृत वर्ष 2017–18 तक
1	निजी कार / जीप	59279
2	बस / मिनी बस	4037
3	स्कूटर / मोपेड / मोटर साईकिल	658969
4	ऑटो रिक्शा	4314
5	टैक्सी	3315
6	सार्वजनिक / निजी भार वाहन	30009
8	ट्रैक्टर	69462
9	अन्य	1803
	योग	**825188**

राजस्व लक्ष्य एवं प्राप्तियां वर्ष 2017–2018

क्र.सं.	परिवहन विभाग	लक्ष्य	कुल प्राप्तियां	प्राप्त प्रतिशत
1	अलवर	13084	13991.06	106.93
2	शाहजहाँपुर	6197	6102.44	98.47
3	भिवाडी	4083	4527.85	110.90
	कुल :	**23364**	**24621.35**	**105.38**

जिले में रेल परिवहन

अलवर जिला भारत के राजस्थान प्रांत के सिंहद्वार और अरावली पर्वतमाला से घिरा हुआ अलवर में रेल यात्रियों और माल परिवहन के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिले की सीमा में पड़े सभी स्टेशनों पर बड़ी लाइनें हैं।

दिल्ली / अहमदाबाद मेनलाइन पर जिले की सीमा के सभी स्टेशन उत्तर पश्चिम रेलवे के अंतर्गत आते हैं और रेवाड़ी / फुलेरा डिवीजन और अलवर-मथुरा डिवीजन और बांदीकुई-आगरा, मथुरा के मध्य जिले में स्थित स्टेशन उत्तर मध्य के अंतर्गत आता है। रेलवे।

उत्तर पश्चिम रेलवे के जयपुर मंडल पर जयपुर के बाद अलवर का महत्वपूर्ण स्थान है। इस स्टेशन को एक आदर्श स्टेशन के रूप में बनाया गया है। अलवर के अलावा, राजगढ़ और खैरथल को आदर्श स्टेशन के रूप में परिवर्तित करने का कार्य भी प्रगति

पर है और जल्द ही इन दोनों स्टेशनों पर यात्रियों को अधिक सुविधाएं प्रदान की जाएंगी और अलवर स्टेशन पर फूड प्लाजा और दूध पार्लर और रेलवे खानपान सुविधाएं नियमित होंगी। दिया जा रहा है एजेंट को अलवर, राजगढ़ और खैरथल स्टेशनों पर अनारक्षित टिकट जारी करने के लिए अधिकृत किया गया है। दैनिक यात्रियों की संख्या को देखते हुए, पैसेंजर ट्रेन इस स्टेशन से राजधानी ट्रेन को छोड़ देती है और वे सभी अलवर स्टेशन पर होती हैं। साप्ताहिक ट्रेनों का भी विस्तार किया गया है। अलवर-मथुरा रूट पर एक ट्रेन भी परिचालन में है। वह प्रतिदिन इलाहाबाद से जयपुर और वापस जयपुर से इलाहाबाद जाती है। इसके अलावा, जयपुर अलवर स्पेशल एक्सप्रेस ट्रेन संचालन का विस्तार जयपुर-खैरथल और वापस खैरथल-जयपुर तक किया गया है। अलवर शहर में छापे की संख्या को देखते हुए, तिजारा गेट, इटाराना गेट, आर्ट्स कॉलेज और अग्रसेन स्क्वायर मदरसा के पास ऊपरी सड़क का डामरीकरण पूरा हो गया है। अलवर मथुरा और अलवर-रेवाड़ी विद्युतीकरण का काम पूरा हो चुका है और अलवर-मथुरा, अलवर-रेवाड़ी, अलवर-बांदीकुई में, जहां आरयूबी की आवश्यकता थी। निर्माण कार्य पूरा हो चुका है, जिसने आसपास और आरयूबी की बहुत सारी कॉलोनियों की सुविधा प्रदान की है। इससे रेल और सड़क यात्रियों की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

सार्वजनिक निर्माण विभाग

जिले में 11 विधानसभा क्षेत्र और 10 सा निवाड़ कार्यालय है। जिले में 6137.55 किमी लंबाई की डामर सड़कें हैं। कुल लंबाई में 151.10 किमी। राष्ट्रीय राजमार्ग, 840.00 किमी। स्टेट रोड, 289.65 किमी। मुख्य जिला सड़क, 480.95 किमी। अन्य जिला सड़कें और शेष 4375.85 किमी। सड़कें ग्रामीण हैं। जिले में 326.30 किमी। अलवर ज़िले में 6 टोल वाली सड़कें हैं :

तालिका संख्या 6: अलवर ज़िले में टोल सड़को की लंबाई

क्र.स.	सडक का नाम	लम्बाई (कि.मी.)	संबन्धित ऐजेन्सी
1	स्टेट हाईवे 25 राजगढ भिवाडी सडक	130.00	रिडकोर
2	भरतपुर अलवर बहरोड नारनौल सडक स्टेट हाईवे 14	89.80	आर.एस.आर.डी.सी.
3	किशनगढ खैरथल तातारपुर बानसूर कोटपूतली सडक एम.डी. आर.25	55.50	आर.एस.आर.डी.सी.
4	अलवर रामगढ सोहना एस.एच.13	34.80	मै0 विशेष इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा.लि.
5	खेरली कटूमर नंदबई सडक एस.एच. 22	6.20	आर.एस.आर.डी.सी.
6	बूढीबावल से बीरनवास चौकी	10.00	रिडकोर

भारतीय डाकतार विभाग, अलवर

यह विभाग जिले में एक जगह से दूसरी जगह संदेश पहुंचाने के लिए काम कर रहा है। विभाग द्वारा वर्ष 2017-18 में कार्यरत इकाइयों का प्रगति विवरण

1. जिले में प्रधान डाकघर 02
2. जिले में मुख्य डाकघर (एमडीजी) 01
3. विभागीय उप-कार्यालय 58
4. अतिरिक्त विभागीय शाखा डाकघर 423
5. पूरी तरह से कम्प्यूटरीकृत प्रधान डाकघर 02
6. पूरी तरह से कम्प्यूटरीकृत मुख्य डाकघर (एमडीजी) 01
7. बहुउद्देशीय कम्प्यूटरीकृत डाकघर 58
8. जिले में कार्यरत फ्रेंचाइजी आउटलेट 05
9. जिले में वेस्टर्न यूनियन मनी ट्रांसफर सर्विस सेंटर 09
10. वरिष्ठ अधीक्षक डाक मंडल अलवर 01
11. जिले में कुल पत्र बॉक्स 734

भारत संचार निगम लिमिटेड अलवर

जिले में एक स्थान से दूसरे स्थान तक संदेश पहुंचाने के लिए, भारत संचार निगम लिमिटेड, भारत सरकार का उपक्रम, जिला टेली संचार भवन मैत्री डूंगरी में स्थापित है।

तालिका संख्या 7: अलवर जिले में संचार प्रगति

संचार विभाग की 31.3.18 तक की प्रगति विवरण

क्र सं	विवरण	शहरी	ग्रामीण	योग
1	कुल कार्यरत कर्मचारी	—	—	374
2	कुल कार्यरत दूरभाष केन्द्र	14	77	91
3	कुल दूरभाष क्षमता	27452	16640	44092
4	कुल कार्यरत दूरभाष	11594	4332	15926
5	कुल उपभोक्ता प्रतीक्षा सूची	0	0	0
6	दूरभाष सुविधायुक्त ग्राम पंचायत	0	204	204
7	कार्यरत ग्रामीण सार्वजनिक दूरभाष	0	70	70
8	कुल एस टी डी पीसीओ	38	47	85
9	एसटीडी पीसीओ	43	8	51
10	आई एस डी एन कनेक्शन	291	19	310
11	ब्राडबैण्ड कनेक्शन	4293	1672	5964
12	कुल उपभोक्ता पीसीओ केन्द्र	7	5	12
13	कुल लीज्ड लाईन	0	0	709
14	डब्ल्यू एल एल दूरभाष क्षमता	8250	9750	18000
15	डब्ल्यू एल एल दूरभाष कनेक्शन	125	551	676
16	कुल वीएसएटर कनेक्शन कार्यरत	0	0	347625
17	दूरभाष कार्यालयों की संख्या	11	5	16

बैंक जिला प्रबंधक (बैंकिंग और वित्तीय संस्थान)

वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय बैंक, अलवर केंद्रीय सहकारी बैंक, प्राथमिक भूमि विकास बैंक, राजस्थान वित्तीय निगम और खादी विकास उद्योग केंद्र और निजी बैंक 389 बैंक शाखाओं के नेटवर्क के साथ जिले के प्रमुख वित्तीय संस्थान हैं। इनमें से 294 वाणिज्यिक बैंक, अलवर केंद्रीय सहकारी बैंक की 17 शाखाएँ और प्राथमिक भूमि विकास बैंक की 7 शाखाएँ हैं। जिले में बैंक ऑफ बड़ौदा द्वारा प्रायोजित बड़ौदा राजस्थान क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक नामक एक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी है। वर्तमान में इसमें 71 शाखाओं का नेटवर्क है। वर्ष 2017-18 की प्रगति रिपोर्ट इस प्रकार है :

तालिका संख्या 8: अलवर ज़िले में बैंकिग विकास

क्रमांक	मद	संख्या
01	एसीसीबी	17
02	पी एल डी बी	5
03	टार एफ सी	2
04	वाणिज्यिक बैंक	377
05	योग	401

अलवर जिले का विकास का मूल्यांकन

अलवर जिले में विकास के कई चरण निर्धारित किए गए हैं, लेकिन कई उनका पूर्णत विकास नही हुआ हैं। अगर ये उम्मीदें बरकरार रहीं, तो अलवर जिला विकास की नई ऊंचाइयों हासिल कर लेगा। बेहतर स्वास्थ्य के लिए अलवर में हो मेडिकल कॉलेज की शुरुआत हो गई है। जिले में पेयजल और सिंचाई की समस्या के निदान के लिए चंबल का पानी अलवर में आने का योजना चल रही इस योजना का पानी भरतपुर जिले में अलवर की सीमा तक आ गया है। अलवर ज़िले को शिक्षा के क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान स्थापित करने में सक्षम बनाने के लिए, राजर्षि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय के नए भवन का निर्माण कार्य चल रहा है। अलवर ज़िले में उच्च स्तरीय शोध एवं अध्ययन सुविधाएं विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जा रही हैं। अलवर जिले में बड़ी औद्योगिक इकाइयां स्थापित की जा रही हैं जिससे स्थानीय युवाओं को रोजगार प्रदान किया जा रहा है। अलवर जिले में सड़कों की स्थिति में सुधार किया जाना बहुत आवश्यक है, ताकि सड़क दुर्घटना कम हो और लोगों की जान बचाई जा सके। अलवर शहर सहित पूरे जिले में सफाई व्यवस्था लागू होनी चाहिए, कूड़े के ढेर कहीं नजर नहीं आने चाहिए। उद्योगों से निकलने वाले दूषित पानी के उपचार के लिए अलवर, भिवाड़ी में सीईपीटी संयंत्र शुरू किया जा चुका है। अलवर में शहर की यातायात व्यवस्था को सुधारने के लिए ट्रैफिक प्लान तैयार किया जाना बहुत आवश्यक है। अलवर में सुचारू शहरी परिवहन की व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि लोगों को सड़कों पर चलने वाले वाहनों से पैदल यात्रियों को सुरक्षा मिल सके।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अलवर जिले में मूलभूत सुविधाओं का विकास तो हुआ, लेकिन हम विशेष रूप से उन क्षेत्रों में पिछड़ गए जहाँ चिकित्सा सुविधाएं मिलनी चाहिए थीं। अलवर जिले में पर्यटन, खेल, स्कूल, कॉलेज, चौड़ी सड़कें, बड़ी टाउनशिप और औद्योगिक क्षेत्रों के विकास न होने के कारण, रोजगार और बढ़ते शहर की राह बंद हो गई है। यहां की सड़कों पर अतिक्रमण बहुत है। बड़ी इमारतों में सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। छोटी-छोटी कॉलोनियों में बहुमंजिली इमारतें बन गईं। अस्पताल और स्कूल भी आवासीय क्षेत्र के अंदर आ गए। अलवर ज़िले में पर्यटन क्षेत्रों का विकास नहीं हुआ। इन सभी कारणों से अलवर जिला विकास के स्थान पर पिछड़ता जा रहा है। एनसीआर योजना को अलवर जिले को पूर्ण लाभ प्रदान करना चाहिए, जो जिले के विकास को पंख दे सकता है। अत: सरकार को जिले के विकास हेतु आवश्यक नीतियों का निर्धारण करके सही ढंग से क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कार्यालय रीको मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र, अलवर।
2. जिला कलेक्टर कार्यालय, वार्षिक प्रतिवेदन रिपोर्ट 2017-18
3. जनसांख्यिकी विभाग, जिला अलवर।
4. कार्यालय, जिला शिक्षा अधिकारी, अलवर।
5. कार्यालय, भूजल विभाग, अलवर।
6. जिला सतत विकास कार्यक्रम, अलवर।
7. विद्युत वितरण निगम लिमिडेट, अलवर।
8. सार्वजनिक निर्माण विभाग, जिला अलवर।
9. जिला परिवहन कार्यालय, अलवर।
10. डांक तार एवं संचार कार्यालय, अलवर।
11. भारत संचार निगम लिमिटेड, अलवर।
12. अग्रणी बैक जिला प्रबंधक (बैंकिंग एवं वित्तिय संस्थायें)

महात्मा गांधी का स्वच्छता अभियान

डॉ० सुनिता कुमारी

एम.ए., पीएच.डी., इतिहास विभाग, एल.एन.एम.यू., दरभंगा

आधुनिक इतिहास में महात्मा गांधी की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह वह व्यक्तित्व है जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन भारत की स्वतंत्रता आंदोलन को दे दिया। महात्मा गांधी को एक क्रांतिकारी के रूप में नही बल्कि एक समाज सुधारक के रूप मे भी जाना जाता है। उन्होंने समाज के कई जटिल विंदुओं को इंगित किया, जो बाकि के राजनेताओं के समझ से परे था। उन्होंने समाज में घटित कई मुद्दो को हथियार बनाया और स्वतंत्रता आंदोलन के जरिए उनमें सुधार लाने की कोशिश की।

20वीं सदी के द्वितीय दशक में उनका राजनीति में पार्दुभाव हुआ। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के कार्यक्रमों द्वारा सार्वजनिक सेवा के लिए लोगों को जाग्रत किया तथा समाज के कुरीतियों से सावधान कर उनके सद्गुणों को व्यापक बनाने और आर्थिक स्वालंबन, साहस एवं उत्तरदायित्व के साथ ऊँचा उठाने का प्रयास किया।[1]

गांधीजी ने एक बार कहा था कि हिंदुस्तानियों पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि उनकी आदते बहुत गंदी होती है और वे अपने घर तथा आस-परोस को साफ-सुथरा नहीं रखते है लेकिन मुझे कई कड़े अनुभव थे। मैंने देखा कि जनता को सफाई के प्रति उनके कर्तव्यों को उतनी आसानी से नहीं गिना पा रहा था जितनी आसानी से उनको उनके अधिकारो के बारे मे बता रहा था। कुछ जगहों पर तो मेरा तिरस्कार भी किया गया, पर कुछ जगहों पर मुझे विनम्र उदासीनता मिली।

वह अपनी छोटी उम्र में ही यह जान गए थे कि पूरी जिंदगी ऐसा महसूस करते रहेंगे। उनको पता था कि भारत मे सफाई और स्वच्छता की स्थिति वास्तव मे अच्छी नहीं है और ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों मे पर्याप्त शौचालय की कमी के लिए उतने ही प्रयास किए जाने जाहिए जितने स्वराज्य प्राप्त करने के लिए। उन्होंने आगे कहा कि जब तक हम लोग "अपनी गंदी आदतों से छुटकारा नही पा जाते, तब तक स्वराज्य का कोई महत्व नही हो सकता" उन्होंने पहले दक्षिण अफ्रिका और फिर भारत में स्वराज्य के लिए संघर्श करते हुए सफाई, स्वच्छता और कचरे के प्रभावी प्रबंधन के लिए अपना संघर्श जारी रखा। सन् 1947 में आजादी हासिल करने के एक साल बाद गंधीजी की हत्या कर दी गई लेकिन सफाई और स्वच्छता के उनके विचार को लिखित और भावात्मक दोनों रूपों में लगातार फैलाते रहे।

स्वच्छता को लेकर गांधीजी के विचार:

1. महात्मा गांधी ने कहा था कि राजनीतिक स्वतंत्रता से ज्यादा जरूरी स्वच्छता है।
2. यदि कोई व्यक्ति स्वच्छ नही है तो वह स्वस्थ नहीं रह सकता है।
3. बेहतर साफ-सफाई से ही भारत के गाँवों को आदर्श बनाया जा सकता है।
4. शौचालय को अपने ड्रांइग रूम की तरह साफ रखना जरूरी है।
5. नदियों को साफ रखकर हम अपनी सभ्यता को जिंदा रख सकते है।
6. अपने अंदर की स्वच्छता पहली चीज है जिसे पढ़या जाना चाहिए।
7. मै किसी को गंदे पैर के साथ अपने मन से गुजरने नहीं दूँगा।

8. अपनी गलती को स्वीकारना झाड़ू लगाने के सामान है, जो सतह को चमकदार और साफ कर देता है।
9. स्वच्छता को अपने आचरण मे इस तरह अपना लो कि वह आपकी आदत बन जाए।

पहले तो यह केवल एक विचार था लेकिन सन 2014 मे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा इसको एक स्वच्छ भारत अभियान के रूप मे शुरू करने के बाद इसने राष्ट्रीय जन आंदोलन का आकार ले लिया। सन् 2014 में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री ने अपने भाशण में कहा "हम महात्मा गांधी की 150वीं वर्शगाठ का जश्न कैसे मनाते है? सफाई और स्वच्छता महात्मा गांधी के दिल के करीब थी।" इस राष्ट्रव्यापी स्वच्छता अभियान स्वच्छ भारत अभियान को 2014 को लागू कर दिया गया था, इस योजना का उद्देश्य 2019 तक भारत को पूरी तरह से स्वच्छ बनाना था। उनके इस विचार ने लोगों के विचारों को गांधी के स्वच्छता के विचारों मे बदल दिया।

2014 तक केवल 39 प्रतिषत भारतीयों को ही शौच की सुरक्षित सुविधा उपलब्ध थी। 60 करोड़ लोगो के व्यवहार को प्रभावित करना एक ऐसी चुनौती है, जिसका सामना करने की अभी तक संसार मे किसी ने कोशिश भी नहीं की है।

विश्व बैंक का एक अधयन बताता है कि मुलत: स्वच्छता की कमी के चलते भारत के 40 फीसदी बच्चों का शारीरिक और बौद्धिक विकास नहीं हो पाता। वर्ल्ड बैंक का भी अनुमान है कि स्वच्छता के अभाव से भारत को उसकी जीडीपी का 6 फीसदी का नुकसान होता है।

एक कदम स्वच्छता की ओर खुले में शौच जाने की परांपरा

मानव सभ्यता में शौच जाने की परंपरा मानव सभ्यता के प्रारंभ जितनी ही पुरानी है। भारत के करोड़ो लोगों के लिए यह सदियों से जीवन शैली का हिस्सा है। 1980 के दशक से ही हमारे यहां सारी सरकारें राष्ट्रीय स्वच्छता कार्यक्रम संचालित करती आ रही है।

कहते है, जिस विचार का समय आ गया हो, उसे कोई रोक नही सकता। एक रक्तरंजित विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि मे, जब सिपाही युग की पहचान हुआ करती थी, भारत ने अहिंसा, सविनय अवज्ञा आंदोलन, सत्याग्रह के जरिए स्वतंत्रता हासिल की। पूरा देश महात्मा के अहवान के पीछे आ गया और अपनी स्वतंत्रता के रूप मे भारत ने संसार के सामने एक मिषाल पेष की। यह एक ऐसा विचार था, जिसका समय आ चुका था, इसी तरह आज जब भारत का नाम खुले में शौच करने वालों की सबसे बड़ी तादाद के साथ इसके लिए बदनाम देषों की सूची मे सबसे ऊपर है। 2 अक्टूबर 2019 तक पूर्ण स्वच्छता प्राप्ति के लक्ष्य के साथ प्रधानमंत्री द्वारा किया गया स्वच्छ भारत का आहवान एक ऐसा विचार है, जिसका समय आ गया है।

1980 के दशक से ही हमारे यहाँ सारी सरकारे राष्ट्रीय स्वच्छता कार्यक्रम संचालित करती आ रही है।

स्वच्छता का उद्देश्य

स्वच्छ भारत अभियान का उद्देश्य केवल आसपास की सफाई करना ही नही है अपितु नागरिकों की सहभागिता से अधिक से अधिक पेड़ लगाना कचड़ा मुक्त वातावरण बनाना, शौचालय की सुविधा कराकर एक स्वच्छ भारत का निर्माण करना है। यह अभिमान न केवल नागरिकों को स्वच्छता संबंधी आदतें अपनाने बल्कि हमारे देश की छवि स्वच्छता के लिए तत्परता से काम कर रहे देश के रूप मे बनाने मे भी मदद करेगा।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के स्वच्छ भारत के सपने को पूरा करने के लिए प्रधानमंत्री मोदी ने 20 अक्टूबर 2014 को स्वच्छ भारत अभियान शुरू किया और इसके सफलता हेतु भारत के सभी लोगों को इस अभियान से जुड़ने की अपील की इस अभियान का उद्देश्य पाँच वर्श में स्वच्छ भारत का लक्ष्य प्राप्त करना है ताकि बापू की 150वीं जयंती को इस लक्ष्य की प्राप्ति के रूप मे मनाया जा सके। स्वच्छ भारत अभियान सफाई करने के लिए लोगों को प्रेरित करता है।

प्रधानमंत्री के मृदुला सिन्हा, सचिन तेंदूलकर, बाबा रामदेव, शषि थरूर, अनिल अम्बानी, कमल हसन, सलमान खान, प्रियंका चोपरा और तारक मेहता का उलटा चष्मा की टीम जैसी नामचीन हस्तियों को आमंत्रित किया कि वे भी स्वच्छ भारत अभियान मे अपना सहयोग प्रदान करें।

सोषल मीडिया पर हैषटैग माई क्लीन इंडिया लिखकर अपने सहयोग को साझा करने के लिए कहा गया।

बापू के नारे थे क्विट इंडिया और क्लीन इंडिया, मोदी का कहना है कि राष्ट्रपिता ने क्विट इंडिया और क्लीन इंडिया का नारा दिया था। बापू का क्लीन इंडिया का सपना अधूरा है। प्रधानमंत्री ने स्वच्छ अभियान मे सबको अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने की अपील की। उन्होंने कहा कि इस देश को गंदगी से मुक्त करना सिर्फ सरकारी कर्मचारियों का काम नहीं है। सबा सौ करोड़ देषवासी जैसे भारत माता की संतान है।

गंदी जगहों को साफ करें विडियो अपलोड करें।

पी0 एम0 नरेन्द्र मोदी ने कहा हमने सोषल मिडिया में भी इस अभियान की शुरूआत की है। उनका कहना है कि आप किसी गंदी जगह की फोटो अपलोड करे फिर उसकी सफाई कर वीडियो अपलोड करे। राजनित से जुड़कर इस अभियान को न देखे। यह राष्ट्र से प्रेरित अभियान है। महात्मा गांधी हर गली मे सफाई अभियान के विरूद्ध नहीं गए थे लिकिन उनकी प्रेरणा ने ऐसा कराया। ये काम सिर्फ सरकार का मंत्रियो का नहीं है बल्कि जनसामान्य का भी है।

शहरी क्षेत्रों के लिए स्वच्छ भारत मिशन

सरकार के इस मिशन का उद्देश्य 1.04 करोड़ परिवारों को लक्षित करते हुए 2.5 लाख सामुदायिक शौचालय, 2.6 लाख सार्वजनिक शौचालय और प्रत्येक शहर मे एक ठोस अपषिश्ट प्रबंधन की सुविधा प्रदान करना है। इस कार्यक्रम के जरिए आवासीय क्षेत्रों मे जहाँ व्यक्तिगत घरेलू शौचालयों का निर्माण करना मुश्किल है वहाँ सामुदायिक शौचालयों का निर्माण करना। पर्यटन स्थल, बाजारों, बस स्टेशन, रेलवे स्टेशनों जैसे प्रमुख स्थानों पर भी सार्वजनिक शौचालय का निर्माण किया जाएगा। यह कार्यक्रम पाँच साल की अवधि में 4401 शहरों में लागू किया जाएगा। कार्यक्रम पर खर्च किए जाने वाले 62009 कारोड़ रुपये में से केंद्र सरकार की तरफ से 14623 करोड़ रुपये उपलब्ध करायें जाएंगे। केन्द्र सरकार द्वारा प्राप्त 14623 करोड़ रुपया मे से 7366 करोड़ रुपये मे से शोध अपशिष्ट प्रबंधन पर 4165 करोड़ रुपये व्यक्तिगत घरेलु शौचालय पर 1828 करोड़ रुपये जागरूकता पर और सामुदायिक शौचालय बनाए जाने पर 655 करोड़ रुपये खर्च किए जांएगे। इस कार्यक्रम मे स्कूलो शौच, अस्वच्छ शौचालयों को फलष शौचालयों मे परिवर्तित करने, मैला ढोने की प्रथा का उन्मूलन करने, नगरपालिका ठोस अपषिश्ट प्रबंधन, और स्वस्थ एंव स्वच्छता से जुड़ी प्रयासों के संबंध में लोगों के व्यवहार में परिवर्तन लाना आदि शामिल है।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए स्वच्छ भारत मिशन

निर्मल भारत अभियान कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा चलाया जा रहा ग्रामीण क्षेत्रों मे लोगों के लिए मांग आधारित एवं जनकेंद्रित अभियान है, जिसमें लोगों की स्वच्छता संबंधी आदतो को बेहतर बनाना जिसमे ग्रामीणों के जीवन स्तर को और भी बेहतर बनाया जा सके।

इस अभियान का उद्देश्य पाँच वर्षो में भारत को खुले शौच से मुक्त देश बनाना है। इस अभियान के तहत देश मे लगभग 11 करोड़ 11 लाख शौचालयों के निर्माण के लिए 1 लाख 34 हजार करोड़ रुपये खर्च किए जाएगें। बड़े पैमाने पर प्रौधोगिकी का उपयोग कर ग्रामीण भारत मे कचरे का इस्तेमाल उसे पूंजी का रूप देते हुए जैव उर्वरक और उर्जा के विभिन्न रूपों मे परिवर्तन करने के लिए किया जाएगा।

ग्रामीण आवादी और स्कूल शिक्षकों और छात्रों के बड़े वर्गो के अलावा प्रत्येक स्तर पर इस प्रयास में देश भर की ग्रामीण पंचायत, पंचायत समिती और जिला परिशद को भी इससे जोड़ा जाएगा। इस अभियान के एक भाग मे प्रत्येक परिवारिक इकाई के अंर्तगत व्यक्तिगत घरेलू शौचालय की इकाई लागत को 10,000 से बढ़ाकर 12,000 रुपये कर दिया गया है। इसमे हाथ धोने, शौचालय की सफाई एंव भंडारण को भी शामिल किया गया है।

जम्मू एवं कश्मीर एवं उत्तर पूर्व राज्यों एवं विशेष दर्जा प्राप्त राज्यों को मिलने वाली सहायता 10,800 रुपये होगी, जिसमे राज्य का योगदान 1200 रुपये होगा।

स्वच्छ भारत–स्वच्छ विद्यालय अभियान

मनव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन स्वच्छ भारत-स्वच्छ विद्यालय अभियान केंद्रीय 25 सितंबर 2014 से 31 अक्टूबर 2014 के बीच केंद्रीय विद्यालयों और नवोदय विद्यालय संगठन मे आयोजित किया गया।

इस दौरान की जाने वाली गतिविधियों मे शामिल है। स्कूल को स्वच्छता और अच्छे स्वास्थ्य से जुड़ी शिक्षाओं के संबंध मे विचार विमर्ष किया गया।

- कक्षा, प्रयोगशाला और पुस्तकालयों आदि की सफई की गई।
- स्कूल मे स्थापित किसी भी मूर्ति या स्कूल की स्थापना करने वाले व्यक्ति के योगदान के बारे मे बात की गई और इस मूर्ति की सफाई करवाई गई।
- शौचालयों और पीने के पानी वाले क्षेत्रों की सफाई करवाई गई।
- स्कूलों की सफाई और सामान वगैरह की सफाई
- खेल के मैदानों को साफ किया गया।
- स्कूल बगीचों का रखरखाव और सफाई की गई।
- स्कूल भबनों का वार्षिक रख-रखाव, रंगाई एवं पुताई पर ध्यान दिया गया।
- स्कूलों मे निबंध, वाद विवाद, चित्रकला, सफाई और स्वच्छता पर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

इसके अलावा फिल्म शो, स्वच्छता पर निबंध, पेंटिग और अन्य प्रतियोगिताएँ, नाटको आदि के आयोजन द्वारा स्वच्छता एवं अच्छे स्वास्थ का संदेश प्रसारित करने पर जोर दिया गया। शिक्षा मंत्रालयों ने इसके अलावा पाठशालाओं के छात्रों, शिक्षकों, अभिभावकों और समुदाय के सदस्यों को शामिल करते हुए सप्ताह मे दो बार आधो घंटे सफाई अभियान शुरू करने का परस्ताव रखा।

प्रधानमंत्री ने की स्वच्छ भारत अभियान की शुरूआत 02 अक्टूबर 2014 से करते हुए इसे देश भक्ति की भावना से जोड़कर देखा जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि एक भारतीय नागरिक होने के खातिर यह हमारी समाजिक जिम्मेदारी है कि हम वर्श 2019 मे महात्मा गांधी की 150वीं जयंती मनाए जाने तक उनके स्वच्छ भारत के सपने को पूरा कर सके।

संदर्भ

1. सुषिला सहाय गुप्त– गांधीजी का नारी दर्शन , म.ज.स. पत्रिका, र.ज, अंक पृष्ठ 110
2. MDWS Intensifier efforts with states to important Swachchh Bharat Mission, Business standard, 18 March 2016
3. Time to clean up your act, Hindustan Times
4. Nirmal BharatAbhiyan failed to achieve to ass, CAG, Hindustan, 16 Dec. 2015
6. Institute of Development Studies: community - led total senatigation: India
7. Swachchh BharatAbhiyan: P.M. Modi Government build 7.1 lakh toilets in january
8. Press Information Bureau, Government of India, 8 Nov. 2014
9. Birendra Gupta on TV 10/07/2014 (author Sudarshan ayangar, source – yojana, Oct 2014
10. Sushila Sahay Gupta - गांधीजी का नारी दर्शन

अलवर मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण का भौगोलिक अध्ययन

प्रतिभा बैरवा

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राज.) 301001

डॉ० महेन्द्र कुमार जाजोरिया

सह आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.) 301001

शोध सार

प्रस्तर युग से लेकर वर्तमान समय तक मानव समाज के विकास में प्रौद्योगिकी की सदा अहम भूमिका रही है परन्तु प्रारम्भिक युगों में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी अधिक विनाशकारी नहीं थी क्योंकि उन दिनों प्रौद्योगिकी के प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य आम जनता को जीवन निर्वाह के लिए मात्र आवश्यक न्यूनतम वस्तुओं को सुलभ कराना था परंतु वर्तमान प्रौद्योगिकी अधिक खतरनाक और विनाशकारी हो गयी है क्योंकि अब आधुनिकी प्रौद्योगिकी के प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य है- संसाधनों का तीव्र गति से विदोहन करना तथा मानव समाज के भौतिक स्तर को बढ़ाने के लिए इन संसाधनों से विभिन्न प्रकार का उत्पादन करना। अलवर के मत्स्य क्षेत्र में जनसंख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है। इस के कारण अन्न, जल, घर, बिजली, सड़क, वाहन और अन्य वस्तुओं की माँग के भी वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप हमारे प्राख़तिक संसाधनों पर काफी दबाव पड रहा है और वायु, जल तथा भूमि प्रदूषण, बढता जा रहा है।

मुख्य शब्द : मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण, उत्सर्ग जल, पर्यावरण प्रदूषण एवं मत्स्य उद्योग क्षेत्र, मत्स्य उद्योग क्षेत्र में प्रदूषण का स्रोत, मत्स्य क्षेत्र में औद्योगिक प्रदूषण के कारण, मत्स्य क्षेत्र में उद्योग प्रदूषण के प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय।

प्रस्तावना

राजस्थान के अलवर मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में पिछले दो दशकों से औद्योगिक विकास के साथ साथ पर्यावरणीय समस्याओं ने जन्म लिया है। मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक इकाईयों के बढ़ते सांद्रण से तथा इनसे निकले अपशिष्ट पदार्थों से पर्यावरण अवनयन की समस्याएं उत्पन्न हुई है। प्रदूषण कंट्रोल बोर्ड की तरफ से सालभर में औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले पानी के 197 सैम्पल अलवर मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र और आस-पास के एरिया के है। इनमें से 7 औद्योगिक इकाई के सैम्पल फेल हुए थे। इसी तरह जिले की औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले प्रदूषित पानी के ट्रीटमेंट के लिए भिवाड़ी में ब्रन्च्ज् स्थापित किया गया। वहां भी प्रदूषित पानी का उचित तरीके से शोधन नहीं हो पा रहा है। मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र, अलवर में एसपीएम का सांद्रण 370 (−/m...)पाया गया। अत: औद्योगिक विकास पर्यावरण के साथ सामंजस्य बैठाकर हो। कारखानों में विद्युत का उपयोग बढ़े, धुएं की चिमनी की ऊंचाई अधिक, अपशिष्ट जल को नदी में छोड़ने की बजाय ख़त्रिम तालाबों में उपचारित किया जाए तथा ज्यादा प्रदूषण निस्तारित करने वाले उद्योग आबादी व कृषि भूमि से दूर खुले में स्थापित किए जाए।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय

भौगोलिक ख़ष्टि से अलवर जिला राजस्थान के उत्तर-पूर्व में स्थित है इसकी अवस्थिति 27°4' से 28°4' उत्तरी अक्षांश तथा 767' से 77°13' पूर्वी देशांतरों के मध्य है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में शामिल व राजस्थान के सिंहद्वार के नाम से प्रसिद्ध यह जिला

उत्तर में हरियाणा के रेवाड़ी जिले से, पूर्व में हरियाणा के मेवात जिले व भरतपुर जिले से, दक्षिण में दौसा तथा पश्चिम में जयपुर जिले से प्रशासनिक सीमा बनाता है।

ऐतिहासिक रूप से मत्स्य संघ अलवर की प्राचीन राजधानी भी रह चुकी है इसी कारण यहां विकास प्राचीन समय से होता आ रहा है। इस जिले का उत्तर से दक्षिण विस्तार 137 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम विस्तार 110 किलोमीटर है। जिले का आकार खड़े आयत के समान है। यह क्षेत्र राज्य के अर्ध शुष्क जलवायु क्षेत्र में आता है। औसत वार्षिक वर्षा 62 सेंटीमीटर व औसत दैनिक तापमान 32 डिग्री सेल्सियस है। रूपारेल यहां की प्रमुख नदी है। जिले का क्षेत्रफल 8580 वर्ग किलोमीटर है जो राजस्थान के कुल भूभाग का 2.44 प्रतिशत है अलवर जिले की जनसंख्या 36.74 लाख है जो राजस्थान की कुल जनसंख्या का 5.30 प्रतिशत है जनसंख्या की दृष्टि से अलवर राजस्थान का तीसरा सबसे बड़ा जिला है। यहां का लिंगानुपात 895 महिलाएं प्रति हजार पुरुषों पर तथा जन घनत्व 438 व्यक्ति वर्ग किलोमीटर है। यहां की साक्षरता दर 70.7 प्रतिशत है। दिल्ली से 165 किमी. दूरी पर तथा जयपुर से 150 किमी. दूरी पर स्थित है।

शोध समस्या का चयन

किसी भी शोध कार्य के लिए अध्ययन क्षेत्र का चयन उसकी स्थिति व विस्तार को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इस शोध कार्य हेतु अलवर मत्स्य औद्योगिक प्रदेश का चयन भी इसी बात को ध्यान में रखते हुए किया गया है। अलवर क्षेत्र की बढ़ती जनसंख्या (2011) 3,15,379 तथा बढ़ती जनसंख्या की मांग को पूरा करने के लिए औद्योगिकरण हुआ है। मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में पर्यावरणीय समस्याएं विकट रूप धारण कर रही है। मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में एसपीएम का सांद्रण 116 (–/M...) है जो बढ़ते वायु प्रदूषण की ओर इशारा है। क्षेत्र के जल में जिंक की मात्रा 800 तक पहुंच गई हैं। प्रदूषण के कारण ख्रषि उत्पादन पर भी विपरित प्रभाव पड़ा हैं। भूमि की उर्वरता समाप्त होकर बंजर भूमि में बदल रही हैं। यातायात साधनों मे वृद्धि के कारण वायु प्रदूषण के साथ ध्वनि प्रदूषण भी हो रहा है। जल में आर्सेनिक, लेड, "लोराइड के सांद्रण की अधिकता से मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा हैं। अत: उपयुक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने शोध कार्य हेतु इस विषय का चयन किया है।"

शोध कार्य के उद्देश्य :

1. मत्स्य क्षेत्र में उद्योग जनित पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रभाव का अध्ययन किया गया है।
2. अलवर के मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण का अध्ययन किया गया है।

शोध कार्य की परिकल्पना :

1. औद्योगिकरण से अध्ययन क्षेत्र में पर्यावरण संतुलन लगातार बिगड़ रहा हैं।
2. अलवर मत्स्य क्षेत्र में औद्योगिकरण के विपरीत प्रभाव पड़ रहे हैं।

शोध विधि तंत्र एवं आंकड़ों का संकलन

किसी भी शोध कार्य के लिए शोधकर्ता को तथ्यों का संकलन, संकलन की विधियों व आंकड़ों का वर्गीकरण, विश्लेषण व शोध प्रतिवेदन हेतु एक निश्चित प्रारूप का अध्ययन करना होता है। अध्ययन को विभिन्न क्षेत्रों में तुलनात्मक व विश्लेषणात्मक बनाने के लिए दो प्रकार की विधियां स्वीकृत की गई है, आनुभाविक विधि व सांख्यिकी विधि। प्रस्तावित शोध कार्य आनुभाविक व मानचित्रण दो प्रकार के विश्लेषणों द्वारा किया गया है। प्रदेश के सभी प्रकार के द्वितीयक आंकड़ों का संकलन राजस्थान सरकार व भारत सरकार द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं व सम्बन्धित विभागों से लिए गए हैं।

1. प्राथमिक आंकड़ों की प्राप्ति के स्त्रोत :

प्रश्नावली

अनुसूची

प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा

2. द्वितीयक आंकड़ों की प्राप्ति के स्त्रोत :

प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, राजस्थान सरकार

सूचना केंद्र, अलवर

आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग, राजस्थान सरकार

इंडस्ट्रीयल डेवलपमेंट डिपार्टमेंट, अलवर

मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण

अलवर के मत्स्य क्षेत्र में जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई है। इसके कारण भोजन, पानी, मकान, बिजली, सड़क, वाहन और अन्य वस्तुओं की मांग भी बढ़ गई है, परिणामस्वरूप, हमारे प्राकृतिक संसाधन काफी दबाव में हैं और वायु, जल और भूमि प्रदूषण बढ़ रहा है।

हमें आज भी आवश्यकता है कि विकास की प्रक्रिया को रोके बिना, हमारे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन बिगड़ें और गिरावट को रोकें और इसे प्रदूषित होने से बचाएं। प्रदूषण और उद्योग दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जहां उद्योग होंगे, वहां प्रदूषण होगा। उद्योग स्थापित करना अपने आप में एक महत्वपूर्ण कार्य है। उद्योग प्रत्येक देश में अर्थव्यवस्था का मूल आधार हैं। इसका सीधा संबंध जीवन की सुख-सुविधाओं, रहन-सहन, शिक्षा और चिकित्सा से है।

इन सुविधाओं के लिए, मनुष्य लगातार नए वैज्ञानिक आविष्कारों और नए उद्योगों को बढ़ावा देने में व्यस्त है। औद्योगिकीकरण एक ऐसा चरण है, जो देश को आत्मनिर्भरता प्रदान करता है और व्यक्तियों में समृद्धि की भावना जागृत करता है। भारत इसका अपवाद नहीं है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1958-61) ने देश में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत की, जो लगातार बढ़ती रही (आर्थिक मंदी के कारण यह भी धीमा हो गया)। अलवर में उद्योग कुछ प्रकार के उत्सर्जन का उत्पादन करते हैं, जो प्रदूषण का कारण बनता है। आमतौर पर, उत्सर्जन निम्नलिखित में से एक या अधिक होते हैं:

उत्सर्जक पानी

विभिन्न उद्योगों से विभिन्न प्रकार के डिस्चार्ज पानी निकलते हैं।

सामान्य गुणों के आधार पर तीन प्रकार के निर्वहन पानी होते हैं।

1. उत्सर्जित जल जिसमें ठोस निलंबित अवस्था में होता है।
2. ठोस घोल युक्त पानी।
3. अधिक संकेंद्रित विलयन के साथ पानी निकलना।

डिस्चार्ज पानी की प्रख्रति और संगठन उद्योग पर आधारित है।

आमतौर पर विभिन्न प्रकार के संगठन विभिन्न उद्योगों से पानी का उत्सर्जन करते हैं:

(ए) कार्बोहाइड्रेट, जल-पेपर बोर्ड, स्टार्च आदि की अधिकता।

(इ) सायनाइड, क्रोमियम, निकल, जल-विद्युत उद्योग की अधिकता।

(ब) विभिन्न रसायनों, पानी-डिटर्जेंट, कीटनाशकों, उर्वरकों, प्लास्टिक, पेट्रोलियम उद्योगों की अधिकता।

(क) नाइट्रोजन युक्त जल-डेयरी उद्योग।

अधिकांश उद्योगों में डिस्चार्ज वाटर के उपचार के लिए उपयुक्त सुविधाएं नहीं हैं, जो प्रदूषण के दृष्टिकोण से खतरनाक है। पानी या कंक्रीट, विभिन्न उद्योगों के उत्सर्जन को क्रम में सूचीबद्ध किया जा रहा है।

पर्यावरण प्रदूषण और मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र

भारत सरकार ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थित मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में जल प्रदूषण की समस्या को हल करने के लिए कुछ प्रयास किए हैं, जिसमें प्रमुख पर्यावरण योजना और समन्वय के लिए राष्ट्रीय समिति का गठन, वर्तमान जल प्रदूषण समस्या को स्थापित करना शामिल है। भविष्य। आयोजित की जाने वाली औद्योगिक इकाइयों की स्थिति का निर्धारण करेगा। प्रदूषण नियंत्रण की इन आवश्यकताओं के मद्देनजर, भारत सरकार ने 1974 में जल प्रदूषण नियंत्रण और रोकथाम अधिनियम के तहत केंद्रीय जल प्रदूषण बोर्ड का गठन किया।

मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में प्रदूषण का स्रोत

1. तेल रिफाइनरी उद्योग : अलवर के मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में मलत्याग के पानी में तेल। क्षार, अमोनिया, फिनाइल, हाइड्रोजन, सल्फाइड और कार्बनिक रसायन हैं। वे जलीय जीवों के लिए हानिकारक हैं। इसके कारण, गंध और स्वाद भी खराब हो जाता है।

2. टैनरी उद्योग : अलवर में मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में, क्रोमियम बाल, मांस, आदि उत्सर्जित जल में हानिकारक रसायनों के अलावा कोलाइडल अवस्था में पाए जाते हैं।

3. स्टील मिल उद्योग : अलवर के मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में उत्सर्जित जल में अमोनिया, फिनाइल, कार्बनिक अम्ल, सायनाइड आदि होते हैं। इस उत्सर्जन में ठोस पदार्थ भी बड़ी मात्रा में निलंबित रहते हैं।

4. आसवनी उद्योग : मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में जल का मुख्य रूप से घोल के रूप में कार्बनिक पदार्थ होता है। यह भारत में सबसे अधिक प्रदूषण फैलाने वाला उद्योग है, क्योंकि यह प्रचुर मात्रा में पानी का उत्सर्जन करता है।

5. विद्युत उद्योग : अलवर में मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में छोड़ा गया पानी प्रख्रति में अम्लीय है और इसमें रसायनों का घोल भी पाया जाता है। इस उत्सर्जन जल में निलंबित ठोस पदार्थ बहुत कम हैं।

मत्स्य क्षेत्र में औद्योगिक प्रदूषण के कारण

यह स्वयं औद्योगिक क्रांति थी, जिसने पर्यावरण प्रदूषण को जन्म दिया। बड़ी मात्रा में बड़े कोयले और अन्य जीवाश्म ईंधन की खपत के कारण उद्योग के अप्रत्याशित रूप से संचालित होने पर भी प्रदूषण होगा।

किसी उद्योग से संबंधित कम से कम निम्नलिखित प्रक्रिया है:

i. चिमनी से विषाक्त गैसों का उत्सर्जन,
ii. चिमनी में एकत्रित सूक्ष्म कण
iii. उद्योगों में काम के बाद शेष
iv. चिमनी में इस्तेमाल होने वाले ईंधन के अवशेष और
v. उद्योगों में उपयोग किए जाने वाले पानी का उपयोग।

ये सभी दृष्टिकोण औद्योगिक प्रदूषण के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। उद्योगों के कारण होने वाला प्रदूषण – वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, औद्योगिक उत्सर्जन, पेड़ों की असमय हानि और फसलों का नुकसान। उद्योगों से होने वाले प्रदूषण के तहत, साइड इफेक्ट्स और प्रदूषण पर नियंत्रण की धारावाहिक सोच को यहां प्रस्तुत किया गया है।

मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में उद्योग प्रदूषण के प्रभाव

1. उद्योगों के खराब होने के कारण पेड़ों और फसलों की बर्बादी: कई प्रकार के उद्योग, जिनमें पानी का उपयोग बड़ी मात्रा में किया जाता है, अपने कारखानों के अपशिष्टों को नदियों में, खाली जमीन पर, खेतों में, बिना उपचार के ही छोड़ देते हैं। जब अनुपचारित पानी खेतों में पहुँच जाता है, तो यह वहाँ की फसल को नष्ट कर देता है और किसान असहाय रहता है।

2. उद्योगों से सार्वजनिक नुकसान : आज न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में, उद्योगों की संख्या लाखों में है और इसमें काम करने वाले लोगों की संख्या करोड़ों में होगी। विभिन्न उद्योगों के उत्सर्जन से विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं और बहुत से लोग अपने जीवन के बारे में नहीं जानते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 1992 में परिचालित एक रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया में एक वर्ष में लगभग 3.27 करोड़ औद्योगिक दुर्घटनाएँ होती हैं। इनमें से 1,46,000 लोग मर जाते हैं, यह भी अनुमान है कि औद्योगिक कारीगरों को कौन से रोग हैं। अलवर के मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में एनीमिया, नेत्र रोग, हड्डी रोग, वायुजनित रोग, श्वसन रोग आदि प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसलिए, उद्योगों में काम करने वाले लोग हमेशा अस्वस्थ रहते हैं।

मत्स्य क्षेत्र में उद्योग प्रदूषण को कम करने के उपाय

1. उद्योगों का स्थान बहुत सावधानी से चुना जाना चाहिए। न तो कोई अधिकृत वन क्षेत्र होना चाहिए, न ही ख़ृषि और आवासीय भूमि इतनी व्यापक होनी चाहिए कि वहां वृक्षारोपण किया जा सके, ताकि वहां का वातावरण प्रदूषित न हो। अच्छे पर्यावरण के लिए, ऐसे पेड़ वहां लगाए जाने चाहिए, जो विशेष गैसों को अवशोषित कर सकें। पेड़ों की घनी धारियाँ भी ध्वनि-अवशोषित होती हैं।
3. कारखानों में उनकी चिमनी में 'बैग फिल्टर' स्थापित होना चाहिए। जब धुआं इस फिल्टर से गुजरता है, तो उसे फिल्टर के सिलेंडर से होकर गुजरना पड़ता है, जिससे धुएं का पार्टिकुलेट मैटर बाहर निकल जाता है, जबकि गैस बेलनाकार बैग से होकर बाहर निकलती है, यह गैस पार्टिकुलेट मैटर से मुक्त होती है, इसलिए वातावरण कम प्रदूषित है।
3. गैसों और सूक्ष्म पोषक तत्वों को उत्सर्जित करने वाले उद्योगों और चिमनियों में काम करने वाले ऊर्जा संयंत्रों को प्रदूषकों की मात्रा को कम करना चाहिए, ताकि प्रचलन में अवशोषित अवशोषक, चक्रवात, इलेक्ट्रोस्टैटिक अवक्षेपक, बैग फिल्म निर्माता पौधों का उपयोग किया जा सके।
4. ओजोन की कमी वाले रसायनों के स्थान पर वैकल्पिक रासायनिक यौगिकों का उपयोग किया जाना चाहिए।
5. सभी श्रमिकों को उद्योगों से संबंधित घटनाओं के बारे में सूचित किया जाना चाहिए।
6. जलीय और ठोस कचरे का जल्द से जल्द उपचारात्मक संचालन उनके क्षेत्र में विसर्जित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से निष्कर्ष में, हम कह सकते हैं कि अलवर मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र में प्राकृतिक प्रदूषकों का इलाज प्राकृतिक तरीकों से किया जाना चाहिए, लेकिन मनुष्य की औद्योगिक गतिविधियों से उत्पन्न प्रदूषकों के उपचार के लिए न तो प्रकृति में कोई व्यवस्था है और न ही मानव। परिणामस्वरूप, अलवर में मनुष्यों के लिए प्रदूषित वातावरण में रहने के लिए बीसवीं सदी के इन अंतिम वर्षों में पर्याप्त प्रयास किया जा रहा है। यद्यपि हम पर्यावरण को 100 प्रतिशत प्रदूषण मुक्त नहीं बना सकते, लेकिन हम ऐसे प्रयास कर सकते हैं कि वे कम से कम हानिकारक हों। ऐसा करने के लिए, प्रत्येक मनुष्य को पर्यावरण संरक्षण के लिए उतनी प्राथमिकता देनी चाहिए जितनी कि वह अन्य भौतिक आवश्यकताओं को देता है।

सन्दर्भ पुस्तक सूची

1. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. रतन जोशी, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
2. पर्यावरण प्रदूषण एक अध्ययन डॉ. रविंद्र कुमार
3. पर्यावरण भूगोल, डॉ. एच एम सक्सेना, पूजा सक्सेना,रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
4. पर्यावरण भूगोल, प्रो सविन्द्र सिंह, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।
5. सूचना एवं जन सम्पर्क कार्यालय, जिला अलवर।
6. रीको औद्योगिक कार्यालय, जिला अलवर
7. मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों का सर्वेक्षण।

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में अभिव्यक्त लैंगिक असमानता: एक विश्लेषण

डॉ० उमा देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
मनोहारी देवी कनोई महिला महाविद्यालय, डिब्रूगढ़ 786001 (असम)

सारांश

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा वर्ण व्यवस्था, छुआछूत की त्रासदी, पितृसत्ता का दमन और उससे उत्पन्न चिंतन-मनन, नकार और विद्रोह की कहानी है। पूर्वाग्रहों को तोड़ते हुए एक निम्न और अयोग्य मानी जाने वाली स्त्री की आत्मप्रतिष्ठा की संघर्ष गाथा है। वे दलित तथा स्त्री होने की दोहरी सजा पाती रहीं। बाल्यकाल से मर्यादा, मान-सम्मान, आदर्श तथा संस्कार के नाम पर स्त्रियों पर कई पाबंदियाँ लगाई जाती हैं। फलत: उनमें आत्मविश्वास की कमी, असुरक्षा की भावना तथा भय घर कर जाती हैं। जिनके दुष्परिणाम जीवन पर्यन्त वह शोषण, अत्याचार और उत्पीड़न के रूप में सहती हैं। लेखिका भी कभी अपने पति द्वारा किए गए अन्यायों का विरोध नहीं कर पायी थीं। स्त्री के शोषण में हमारी मान्यताएँ, परंपराएँ तथा धर्मग्रंथों की अहम भूमिका रहती हैं। पाप-पुण्य, भाग्य, धर्म-अधर्म जैसे शब्दों के शिकंजे में उसे जकड़कर अशिक्षा और अंधविश्वास के गहरे गर्त में धाकेलकर पितृसत्ता उस पर राज करती है। मूलत: इसमें पितृसत्ता और रूढ़ियों के प्रति विद्रोह तथा नकार की भावना प्रमुख हैं। यह लिंग के अधार पर बनी-बनाई एक पक्षीय समाज व्यवस्था तथा हमारे संस्कार के मानकों पर पुन: विचार करने की आवश्यकता पर जोर देती है।

बीज शब्द: दलित स्त्री, पितृसत्ता, परंपरा, शोषण, उत्पीड़न, आक्रोश, संघर्ष, मुक्ति।

प्रस्तावना

स्त्री और दलित दोनों ही समुदाय सदियों से उपेक्षित, तिरस्कृत तथा अपमानित समुदाय हैं। दलित जहाँ वर्ण के आधार पर तिरस्कार तथा शोषण का शिकार हैं, वहीं स्त्री लिंग के आधार पर। दलित स्त्री की पीड़ा और गहरी है। वह वर्ण तथा लिंग दोनों के आधार पर शोषित और पीड़ित है। भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अंतर्विरोधें से भरी हुई है। भारतीय संस्कृति में उसे शक्ति का रूप माना गया है, परन्तु आम मानसिकता में वह 'अबला' है। एक ओर 'यत्र नार्यस्तु पूँज्यंते रमन्ते तत्र देवता' कहकर उसकी महिमा बढ़ा दी गई। दूसरी ओर 'ताड़न की अधिकारी' कहकर पशुतुल्य बना दिया गया है। समय और परिस्थितियाँ बदलती रही हैं, परन्तु स्त्री के लिए स्थिति तथा पुरुष की मानसिकता में अधिक अंतर नहीं आया है। संवैधानिक समानता और अधिकारों के बावजूद भी वह दोयम दर्जे की प्राणी है। अत: आज स्त्री-चिंतन का लक्ष्य ही स्त्री-मुक्ति से है। यह स्त्री-जीवन के अनछुए, अनजानें, उपेक्षित पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर प्रदान करता है। इसका उद्देश्य स्त्री की स्थिति पर आँसू बहाने के बजाय उसके कारकों को उखाड़ फेंकना है।

सभी स्त्रियों की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ एक जैसी नहीं हैं। अत: उनकी समस्याएँ तथा संघर्ष का रूप भी भिन्न होगा। फलस्वरूप समाज तथा साहित्य दोनों क्षेत्रों में स्त्री-चिंतन के भी अनेक रूप देखें जाते हैं, जैसे दलित स्त्री-चिंतन। उच्चवर्णीय

स्त्री केवल लिंगीय शोषण को झेलती है, जबकि दलित स्त्री लिंगीय तथा वर्णीय दोनों आधारों पर शोषण और उत्पीड़न की शिकार होती है। अत: उसका संघर्ष दोहरे उत्पीड़न से मुक्ति का है। इसी परंपरा की सशक्त कवयित्री, नाटककार, समाज सेविका, लेखिका डॉ. सुशीला टाकभौरे हैं। सुशीला टाकभौरे का जीवन वर्णव्यवस्था, जात-पांत, छुआछूत की त्रासदी, पितृसत्ता का दमन और उससे उत्पन्न चिंतन-मनन, नकार और विद्रोह की कहानी है। पूर्वाग्रहों को तोड़ते हुए एक निम्न मानी जाने वाली स्त्री की आत्मप्रतिष्ठा की संघर्षगाथा है। अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में उन्होंने समाज, परिवार, परंपराओं द्वारा लगाए गए शिकंजे के दर्द को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है।

शिकंजा अर्थात् बंधन, जकड़न, जहाँ व्यक्ति को कैद कर लिया जाए। शिकंजे में उसे ऐसे जकड़ लिया जाए कि वह निर्बल, नि:सहाय और लाचार हो जाए। उसे पीड़ा, दर्द का अहसास हो, लेकिन उसके खिलाफ विद्रोह करने का साहस न हो। लेखिका का जीवन भी वर्णवादी और पुरुषवर्चस्ववादी शिकंजे से उत्पन्न पीड़ा से मुक्त होने के लिए छटपटाता रहा। यह छटपटाहट गुलामी की पीड़ा को और बढ़ा देती है। यह आत्मकथा उसी तड़प और छटपटाहट का परिणाम है। जिसमें भारतीय जातिवादी मानसिकता, पुरुष पूर्वाग्रह और दलित समाज में स्त्री की स्थिति का विस्तृत चित्रण और विश्लेषण हुआ है। इस विषय में सुशीला जी स्वयं लिखती हैं- "शिकंजे का दर्द संताप है दलित होने का, स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। स्त्री होना ही जैसे व्यथा की बात है। चाहे हमारा देश हो या विश्व के अन्य देश, हर जगह शोषण, उत्पीड़न की शिकार स्त्री ही रही है। जिस देश में वर्णभेद जातिभेद की कलुषित परंपराएँ हैं वहाँ दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है। सदियों से तिरस्कृत और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किए गए दलित जीवन की व्यथा-कथा का दर्द 'शिकंजे के दर्द' में समाहित है। 'शिकंजे का दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।"[1]

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा केवल उनकी ही नहीं उनकी तरह लाखों दलित स्त्रियों का दर्द है, पीड़ा है और उनकी मुक्ति का आगाज है। वास्तव में किसी भी स्त्री की आत्मप्रतिष्ठा की कहानी के पीछे तथाकथित परंपराओं, रूढियों और मान्यताओं का बहिष्कार प्रमुख होता है। कुंठित पुरुष मानसिकता और अवैज्ञानिक सोच के खिलाफ विद्रोह का साहस ही उसे नई पहचान देती है। यह आत्मप्रतिष्ठा किसी भी स्त्री के लिए पुनर्जन्म से कम नहीं हो सकता। सुशीला टाकभौरे अपने संघर्ष को अन्य दलित स्त्रियों से जोड़ते हुए कहती हैं- "नारी किसी भी जाति, धर्म की हो, वह कष्टों से घिरी होती है। संघर्ष से ही वह जीवन में सुख और सम्मान पाती है। इसके लिए मेरा जीवन भी एक उदाहरण हो सकता है, यह नारी मुक्ति और नारी उत्थान के लिए प्रेरणा बन सकता है।"[2]

आलोच्य आत्मकथा में लेखिका ने तत्कालीन समाज में व्याप्त अशिक्षा तथा, अंधविश्वास के कारण उत्पन्न अनेक गंभीर समस्याओं का उल्लेख किया है। जात-पाँत और छुआछूत के भेदभाव ने दलितों को पशुतुल्य बना दिया था। बिडंबना है हमारी जिस संस्कृति में नदी, पहाड़, पेड़-पौधो, पशु, पक्षी सभी पूँजे जाते हैं। मिट्ठी, पत्थर से बनी मूर्तियों को ईश्वर माना जाता है। उसी संस्कृति में समाज का एक समुदाय मनुष्य की श्रेणी में गिना नहीं जाता। उसे मनुष्य होने के सारे अधिकारों से वंचित रखा गया है। आजादी के कई दशकों बाद भी दलितों की ऐसी स्थिति अत्यंत पीड़ादायक है। उन्हें गुमराह करके वोट बैंक की राजनीति मात्र खेली जाती है।

सन् 1950-60 के दशक में समाज, स्त्री-शिक्षा के प्रति उदासीन था। बड़े-बुजुर्गों का मानना था कि लड़की पराया धन है। उसे शिक्षा और विकास के अवसर प्रदान करना व्यर्थ है। लेखिका को अपनी शिक्षा के लिए सवर्ण समाज के साथ-साथ दलित समाज का भी विरोध सहना पड़ा था। उस समय लड़कियों को अधिक नहीं पढ़ाने के पीछे कई कारण थे, जैसे अधिक पढ़ाने पर उसके योग्य वर बिरादरी में मिलना मुश्किल था। दूसरा, कहीं लड़की के साथ ऊँचनीच हो जाए तो परिवार की नाक कट जाएगी। अत: दसवीं के बाद लेखिका को भी आगे की पढ़ाई के लिए रोका गया। लड़कों को लेकर समाज की ऐसी मानसिकता न थी। लड़कियाँ लिंगीय आधार पर भेदभाव की अधिक शिकार होती थीं। मर्यादा, इज्जत, आदर्श और संस्कार के बहाने उन पर अनेक पाबंदियाँ लगाई जाती थीं। श्रम और संघर्ष के बावजूद उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। समाज की इस मानसिकता के पीछे पारंपरिक धर्म ग्रंथों और पुरुष मानसिकता का प्रभाव अधिक देखा जाता है। धर्म और आदर्श के बहाने त्याग, बलिदान, संयम की शिक्षा के

साथ उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से हमेशा कमजोर रखा जाता है। उनकी तार्किक शक्ति ही छिन ली जाती है। लेखिका बचपन से स्त्री की सुरक्षा के लिए उसे पिता, पुत्र और पति के अधीन रखकर अबला बनाने की परंपरा का उल्लेख करती हैं- "पाबंदियों का सिलसिला कहीं सुरक्षा के नाम पर था, तो कहीं परंपरा के रूप में ढालने के लिए। मुझे एक आदर्श लड़की के रूप में ढालने का उनका साँचा सदियों पुराना था। मैं लड़की हूँ इसलिए मुझ पर अनेक बंदिशें लगा दी गयीं- हँसो मत, गाओ मत, बोलो मत, हर बात की मनाही थी। किसी बात का उल्टा जवाब नहीं देना, नये अनजान लोगों से अकेले नहीं मिलना..... अपनी नजरें हमेशा नीची रखना, झुककर चलना, तर्क-वितर्क नहीं करना। ऐसी अनेक बातें थीं जो प्रतिदिन के आदेश और आज्ञा पालन के रूप में आदत बन गई थी।"[3]

'शिकंजे का दर्द' से ज्ञात होता है कि लेखिका पर बाबा साहब अंबेडकर के 'शिक्षित बनों, संगठित रहों और संघर्ष करों' मंत्र का पूर्ण प्रभाव है। वे मानती हैं कि बिन शिक्षा दलित स्त्री की मुक्ति संभव नहीं है। शिक्षा के लिए उन्हें बहुत संघर्ष करना पड़ा था। बाबा साहब अंबेडकर ने भी स्त्री शिक्षा को पुरुषों से अधिक महत्वपूर्ण माना है, क्योंकि स्त्री पारिवारिक व्यवस्था की धूरी होती है। एक स्त्री शिक्षित होती है तो दो परिवार शिक्षित होता है। उसे नकारा नहीं जाना चाहिए।

पितृ सत्ता स्त्री की उपेक्षा का महत्वपूर्ण कारण है परन्तु उसे जीवित रखने में स्वयं स्त्रियाँ ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। 'शिकंजे का दर्द' में यह तथ्य उजागर हुआ है। स्त्रियाँ पितृसत्ता द्वारा लगाई गई पाबंदियों, बनाये गए नियमों को अपना धर्म मानकर निभाती रहती हैं। सही-गलत, उचित-अनुचित का प्रश्न ही नहीं होता। उन्हीं परंपराओं की शिक्षा अपनी बेटी को भी देती हैं। उसे अहसास दिलाया जाता है कि पुरुष ही उसकी रक्षा कर सकता है। वरना समाज में स्त्री अकेली असुरक्षित है। पति बूढ़ा, बीमार, कोढ़ी, कलंकी, वेश्यागामी क्यों न हो पूँजनीय होता है। इस तरह की शिक्षा बेटी को देकर उसे अबला, आत्म-विश्वासहीन बनाने में घर की स्त्रियाँ ही अहम भूमिका निभाती हैं। इसी का प्रभाव था कि लेखिका विवाह के पश्चात भी स्वयं को कमजोर व असुरक्षित मानकर पति के सारे अत्याचार सहती रहीं। इस तरह जाने-अनजाने में स्त्रियाँ पुरुषवादी संस्कृति की संवाहिका ही बनती हैं और अपनी बेटी को चुपचाप सारे जुल्म, अत्याचार सहने का प्रशिक्षण देती हैं। इस संदर्भ में लेखिका लिखती हैं- "हमारे पूर्वजों का यह डर और संस्कार ही हमें पीढ़ी-दर पीढ़ी पंगु बनाकर रखता रहा। नानी डरती थी इसलिए माँ डरती थी, इसलिए मुझे भी डराकर रखा गया। यह क्रम सदियों से चल रहा था।"[4]

सुन्दरलाल टाकभौरे के साथ उनका अनमेल विवाह हुआ था। शिक्षित, नौकरीशुदा नागपुर के रहने वाले व्यक्ति के साथ लेखिका कई सपने संजोकर घर से विदा होती हैं। परन्तु ससुराल में उनके सारे सपने चूर हो गए। पति क्रूर और अत्याचारी, ऊपर से सास तथा ननद द्वारा उत्पीड़न। घर में वह केवल एक नौकरानी थीं। जिसकी भावनाओं, अभिलाषाओं से किसी का कोई लेना-देना न था। घर का वातावरण आतंकपूर्ण बनाकर रखा जाता था। पति स्वयं कहते- "मुझे बहुत गुस्सा आता है, गुस्से में मैं कुछ भी कर सकता हूँ..... तु मेरे सामने कुछ नहीं है। तेरी औकात सिर्फ बर्तन माँजने वाली नौकरानी के बराबर है।"[5]

दूसरों के सामने सम्मानपूर्ण व्यवहार करते, परन्तु घर पर उपेक्षा, अपमान, व्यग्य-कटाक्ष, झगड़ा, मारपीट आम बात थी। पति क्रूर तरीके से पिटते थे। कई-कई दिनों तक शरीर पर दाग रहते। स्कूल से आकर पति जूते-मोजें तक खुलवाते। अत्याचार तथा उत्पीड़न का यह सिलसिला तब भी चलता रहा, जब वह पीएच.डी कर कॉलेज में प्राध्यापिका थी। कमाते हुए भी वह आर्थिक निर्भरता के लिए तड़प रही थी। लेखिका को अपनी कमाई पर प्रश्न करने का भी अधिकार न था। खर्च के अधिकार के अभाव में वे अभावपूर्ण जीवन जीने को विवश थीं। छोटी-छोटी बातों पर पैर में सिर रखकर माँफी मांगना पड़ता- "हमेशा भयभीत रखकर, डरा-धामकाकर, अपने शासन सत्ता को कायम रखना, यह पुरुषसत्ता की कूटनीति है। परुषसत्ता बनी रहे इसीलिए स्त्रियों को शुरु से कमजोर बनाकर रखा जाता है। समाज की परंपराएँ स्त्री विरोधी हैं। इन्हें तोड़कर ही स्त्री स्वतंत्रता, समता और सम्मान पायेगी, तब यह अबला नहीं रहेगी, सबला बन जायेगी।"[6]

लेखिका अपनी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति पर लिखती हैं कि स्त्रियाँ हर जगर शोषित-पीड़ित हैं। फिर भी एक-दूसरे की पीड़ा नहीं समझना चाहतीं। स्त्री ही स्त्री के दुखों की वृद्धि में अहम भूमिका निभाती हैं। अगर वे मिलकर रहें तो स्त्री समाज को शोषण, अत्याचार तथा पुरुषसत्ता की गुलामी से मुक्ति दिला सकती हैं। लेखिका को अपने ही घर में स्वतंत्रता न थी। उनके

दमन और उत्पीड़न में घर की स्त्रियों की अहम भूमिका रही है। वह स्पष्ट कहती हैं- "जो संघर्ष मुझे घर से बाहर, दूसरों के साथ करना पड़ा, वैसा ही संघर्ष घर में अपनों से भी करना पड़ा"[7] स्वयं स्वीकारती हैं कि उनकी कमजोरियों के कारण ही उन्हें इतनी पीड़ा सहनी पड़ी। आरंभ में ही अगर पति व ससुराल वालों का विरोध कर पाती, तो शायद उन्हें शोषण तथा अन्याय के लंबे दौर से गुजरना ना पड़ता। अपनी स्थिति को लेकर उनकी जो बेबसी, अन्तर्द्वन्द्व व आक्रोश रहा है। वह उनकी रचनाओं में प्रतिफलित हुआ है। सवर्ण स्त्रियों में अपने अस्तित्व व आत्मसम्मान को लेकर चेतना का प्रसार हो चुका था। ऐसी ही सहकर्मियों द्वारा भी उन्हें विद्रोह और संघर्ष की प्रेरणा मिली- "अन्याय के सामने सिर झुकाना गलत है। गलत परंपराओं को बदलना चाहिए। कई बार लोग गलत बातों को परंपरा मानकर चलाते रहते हैं। जब तक कि उन्हें सही बात न बताई जाये। मैंने इस बात को उस समय समझा था, मगर विरोध करने की क्षमता मुझमें नहीं थी।"[8]

लेखिका पूर्वाग्रह और पुरुषदंभ से ग्रसित व्यक्ति के अत्याचारों की शिकार थीं। जिसकी दृष्टि में वह अल्पबुद्धि, बदसूरत तथा अयोग्य थी। उनकी उच्चशिक्षा, सेवा और विनम्रता का कोई मूल्य न था। धयातव्य है कि प्रत्येक पुरुष पुरुषसत्ता से ग्रसित होकर स्त्रियों पर अन्याय नहीं करता। दलितों में भी स्त्रियों का साथ देने वाले पुरुषों से वे मिली थीं। आलोच्य आत्मकथा में जहाँ सुन्दरलाल टाकभौरे की घिनौनी मानसिकता का चित्रण हुआ है, वहीं उनके चरित्र के कुछ उज्ज्वल पक्ष भी लेखिका ने उजागर किए हैं। लेखिका विवाह तक केवल स्नातक थीं। विवाह के पश्चात् पति ने ही उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित किया। इसके पीछे आर्थिक जरूरत मुख्य रही हैं। फिर भी पति के सहयोग के बिना बी.एड., पीएच.डी. कर कॉलेज में प्राध्यापिका बनना संभव न था। पति अपने साथ लाइब्रेरी, शिक्षित सवर्णों के घर ले जाते, ताकि उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिले। सामाजिक कार्यक्रमों से भी पति ने ही जोड़ा था। एक ग्रामांचल से आई लड़की को नागपुर जैसे शहर में उन्नति का पथ पति ने ही दिखाया था। लेखिका की लगन और महत्वाकांक्षा को पति ने ही आत्मविश्वास रूपी पंख दिये हैं। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। लेखिका लिखती हैं- "टाकभौरे जी ने मुझे बहुत सहयोग दिया था, इसके बिना नागपुर जैसे बड़े शहर में अकेले कुछ कर पाना मेरे लिए कठिन था।"[9]

लेखिका में आती विद्रोह तथा संघर्ष की चेतना ने उनके वजूद को एक नई पहचान दी। उन्हें पति से नहीं पुरुषसत्तामक शोषण, उत्पीड़न तथा अत्याचार वाली मानसिकता से समस्या थी। पुरुष को श्रेष्ठ, सर्वेसर्वा तथा स्त्री को निम्न, अयोग्य घोषित करने वाली व्यवस्था से विद्रोह था। किसी भी स्त्री के उत्पीड़न में केवल पुरुष दोषी नहीं होता, क्योंकि अन्याय करने वाले के समान अन्याय सहने वाला भी दोषी होता है। स्त्री में आत्मविश्वास तथा अन्याय का विरोध करने की क्षमता हो तो वह अनेक पीड़ाओं से स्वयं को मुक्त कर सकती है। उसे समझना होगा कि पुरुष को सम्मान देने का तात्पर्य उसका दासत्व स्वीकार करना नहीं है। किसी भी पारिवारिक कलह का अंतिम परिणाम संबंध विच्छेद नहीं है। आपसी सुलह तथा क्षमा दान रिश्तों को पुनः जीवंत कर सकता है। अतः जीवन के संध्याकाल में पति में आए परिवर्तनों को लेखिका स्वीकार करती हैं। वह अपने परिवार को टूटने से बचाने का निर्णय लेती हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा दलित स्त्री के दोहरे-तिहरे शोषण के यथार्थ की कथा है। दलित समाज पुरुषसत्तात्मक होने के कारण दलित स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। अपमान, उपेक्षा, शोषण तथा उत्पीड़न ही उनका जीवन है। अशिक्षा, अज्ञानता तथा अंधविश्वासों के चलते उनमें अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव देखा जाता है।

हमारी परंपराएँ और संस्कृति भी स्त्री को निर्बल और अपाहिज बनाने में अहम भूमिका निभाती हैं। स्त्री को बाल्यकाल से ही संयम, धैर्य, सहनशीलता, त्याग तथा समझौतें की शिक्षा दी जाती हैं। पाबंदियों के नाम पर उसमें कमजोरी तथा असुरक्षा की भावना पैदा की जाती हैं। समाज की दृष्टि में ये संस्कार हैं। जिनके दुष्परिणाम स्त्री जीवन पर्यन्त भोगती है। जिस तरह समाज और परिवार को संयमित तथा अनुशासित रखने के लिए हम बेटियों को संस्कारित करना आवश्यक मानते हैं, बेटों के लिए भी वही आवश्यकता महसूस करते तो समाज की तस्वीर कुछ अलग होती। बेटी की तरह बेटों को भी माँ, पत्नी तथा हर स्त्री का सम्मान करना सिखातें तो कोई पत्नी पितृसत्ता के मार से तड़पती नहीं। लेखिका की तरह किसी की भी बेटी, बहन शोषण, अन्याय और उत्पीड़न की शिकार

नहीं होती। घरेलू हिंसा की कहानियाँ लिखी नहीं जाती। अत: अपनी बेटियों के सुरक्षित और उज्जवल भविष्य के लिए हर बेटे को संस्कारित करने की परंपरा का श्रीगणेश होना चाहिए। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा पितृसत्ता को चुनौती देती है। स्त्री अपने साथ हुए अन्याय और उत्पीड़न का हिसाब मांगती है। इसमें पितृसत्ता के प्रति नकार, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह देखा जाता है। आज पुन: अपने संस्कार, परंपरा के मानकों पर विचार करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. शिकंजे का दर्द : सुशीला टाकभौरे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2011, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 9
3. वही, पृष्ठ 111
4. वही, पृष्ठ 80
5. वही, पृष्ठ 146, 200
6. वही, पृष्ठ 144
7. वही, पृष्ठ 207
8. वही, पृष्ठ 143
9. वही, पृष्ठ 141

शिक्षा का आन्तरिक और बाह्य स्वरूप (संस्कृति और सभ्यता के संदर्भ में शिक्षा)

डॉ० रामावतार

(सहायक प्राध्यापक) शिक्षा संकाय, उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान (मानित् विश्वविद्यालय)
गाँ. वि. म., सरदारशहर (राज.)

सारांष

संस्कृति समूह के सदस्यों द्वारा भागीकृत एवं उनके बीच हस्तांतरित सीखे गए व्यवहार की प्रणाली है। मनुष्य जन्म से ही सीखना आरम्भ कर देता है। उनके जन्म लेने से पूर्व ही व्यवहार के नियम जो वर्तमान में प्रचलित हैं निर्धारित रहते हैं वे इनको कार्यशैली में ढ़ालना सिखाते हैं। संस्कृति को ग्रहण करके तथा अपनी पुरातन विरासत से लाभ उठाकर मनुष्य विशिश्ट रूप से मानव बन जाता है। अत: व्यक्ति को 'संस्कृति धारक' जीव कहा गया है। संस्कृति प्रकृति की देन नहीं, अपितु समाज की देन है। संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है। प्राय: सभ्यता और संस्कृति को समानार्थी समझ लिया जाता है, जबकि दोनों अवधारणाएँ अलग-अलग हैं, तथापि विभेद ठीक वैसा ही है, जैसे हम एक फूल को सभ्यता और उसकी सुगन्धा को संस्कृति कहें। सभ्यता से किसी संस्कृति की बाह्य चरम अवस्था का बोध होता है। संस्कृति विस्तार है, तो सभ्यता कठोर स्थिरता। सभ्यता में भौतिक पक्ष प्रधान है, जबकि संस्कृति में वैचारिक पक्ष प्रबल होता है। यदि सभ्यता शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा। शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में वयस्क की भूमिका निभाने हेतु समाजीकृत करती है तथा समाज का सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। शिक्षा समाज की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तान्तरण का प्रयास है। जिस समाज में उचित शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा प्रणाली होती है, उस समाज या राष्ट्र की संस्कृति यथा-समय परिमार्जित होती रहती है और उसकी सभ्यता पुनर्संरचित होती रहती है।

मुख्य शब्द: संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा, समाज, राष्ट्र

'संस्कृति' मानवीय समाज के विकासकाल में अब तक के आचरण और सीखे गये व्यवहारों की समष्टि का योग है। आदिकाल से वर्तमान तक मानव ने रहन-सहन, आचार-व्यवहार, धर्म-अध्याम इत्यादि से जिन मान्यताओं को परम्पराओं के रूप में अर्जित एवं प्रचारित किया है, वे ही संस्कृति के मूल तत्त्व हैं। ये मूल तत्त्व परम्परा रूप में अविच्छिन रूप से अनवरत् चलते रहते हैं, तथा आदर्शों की प्रतिष्ठा करते रहते हैं। जिनके कारण संस्कृति को सनातन् व्यवस्था का समाजनिष्ठ् बौद्धिकता की परिचायक माना गया है। इस प्रकार संस्कृति किसी समाज के जातीय जीवन द्वारा युगों से किये गये आचारात्मक क्रिया-कलापों की निष्पत्ति होती है। किसी जाति या समाज के महापुरुषों के विचार, कार्य, वचन, व्यवहार, आदर्श, एवं उनके द्वारा स्थापित परम्पराएँ ही निरन्तर प्रचलित रहने से उस जाति या समाज की संस्कृति का निर्माण करती हैं। प्रत्येक विशिष्ट समाज अथवा भौगोलिक परिवेश से आबद्ध देश की संस्कृति अपने देश-काल की सीमाओं से अपना अलग अस्तित्व सूचित करती हैं। "भारतीय जन-जीवन के समस्त तत्त्वों के साथ धर्म-दर्शन , कला-कौशल, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, एवं मानवीय मूल्यों आदि की सनातन् परम्पराएँ आर्य संस्कृति की परिचायक हैं, तथा इन सभी से भारतीय संस्कृति की महानता, जीवन्तता का परिज्ञान होता है।"[1] व्युत्पति की दृष्टि से 'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग

पूर्वक 'कृ' धातु से बना है। जिसमें 'सम्' सम्यक् तथा 'कृति' शब्द चेष्टाओं या क्रियाकलापों का वाचक है। इस व्युत्पति के आधार पर संस्कृति का आषय उन विशिष्ट क्रियाकलापों एवं सनातन् उपलब्धियों से है, जो मानव समाज द्वारा युगों से आदर्श रूप में अपनाये जा रहे हैं। "श्री वाचस्पति गैरोला ने इस सम्बध में लिखा है, कि संस्कृति = सम् (उत्तम) + कृति (चेष्टाएँ) का अर्थ उत्तम कृति या सम्यक् चेष्टा सिद्व होता है। ये चेष्टाएँ देह, प्राण, मन्, बुद्धि आदि किसी इन्द्रिय की हो सकती है, इनका क्षेत्र लौकिक या पारलौकिक हो सकता है।"[2] "संस्कृति मानवीय आचरण, आचार-व्यवहार एवं जीवनशैली को उत्तरोतर परिश्कृत अथवा परिमार्जित करने की द्योतक है।"[3] संस्कृति, मानव की सहज स्वाभाविक प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों के परिश्करण की प्रक्रिया है। "संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी अंत:स्थ प्रकृति की अभिव्यक्ति है। संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज तथा एक देश से दूसरे देश मे बदलती रहती है। इसका विकास एक सामाजिक अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में होने वाली ऐतिहासिक एवं ज्ञान सम्बंधि प्रक्रिया व प्रगति पर आधारित होता है। संस्कृति परम्पराओं, विश्वासों, जीवनशैली, अध्यात्मिक और भौतिक पक्ष से निरन्तर जुड़े रहकर मानव को मानवीय स्वरूप में ढ़ालती है।"[4]

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा और झंझावतों के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं, किन्तु भारतीय संस्कृति आदिकाल से ही अपने परम्परागत अस्तित्त्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। अत: पाश्चात्य विद्वान भी अपने देश की संस्कृति को समझने हेतु भारतीय संस्कृति को पहले समझने का परामर्श देते हैं। सामान्य अर्थ में संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों की सम्पूर्णता है। परन्तु संस्कृति की अवधारणा इतनी विस्तृत है, कि उसे एक वाक्य में परिभाषित कर पाना सम्भव नहीं है। वास्तव में मानव द्वारा अप्रभावित प्राकृतिक शक्तियों को छोड़कर जितनी भी मानवीय परिस्थितियाँ हमें चारों ओर से प्रभावित करती हैं, उन सभी की सम्पूर्णता को संस्कृति कहते हैं। **टॉयलर** के अनुसार- "संस्कृति एक ऐसा जटिल समग्र है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के द्वारा अर्जित अन्य दूसरी समर्थताएँ सम्मिलित हैं।"[5]

डॉ. **सत्यकेतु विद्यालंकार** के अनुसार,- "मनुष्य अपनी सम्पूर्ण बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसे संस्कृति कहते हैं।"[6] **हार्सकोविट्ज** के अनुसार,-"संस्कृति प्यार्वरण का मानव-निर्मित भाग है।"[7] **पं. जवाहर लाल नेहरू** के अनुसार- "संस्कृति का अर्थ मनुष्य का आन्तरिक विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, पारम्परिक सद्व्यवहार है और एक-दूसरे को समझने की शक्ति है।"[8] **ओसवालड स्पेनलर** के अनुसार- "सभ्यता संस्कृति की अनिवार्य परिणति है। सभ्यता से किसी संस्कृति की बाहरी चरम एवं कृत्रिम अवस्था का बौद्ध होता है। संस्कृति विस्तार है, तो सभ्यता कठोर स्थिरता।"[9] **डॉ. सम्पूर्णानन्द** के अनुसार- "संस्कृति वह आधारशिला है, जिसके आश्रय से जाति, समाज व देश का विशाल भव्य प्रासाद निर्मित होता है।"[10] **रेडफिल्ड** के अनुसार- "संस्कृति कला और उपकरणों से अभिव्यक्त परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है, जो परम्परा के द्वारा संगठित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।"[11]

सारांशत

हम कह सकते हैं कि संस्कृति समूह के सदस्यों द्वारा भागीकृत एवं उनके बीच हस्तांतरित सीखे गए व्यवहार की प्रणाली है। मनुष्य जन्म से ही सीखना आरम्भ कर देता है। उनके जन्म लेने से पूर्व ही व्यवहार के नियम जो वर्तमान में प्रचलित हैं निर्धारित रहते हैं वे इनको कार्यशैली में ढ़ालना सिखाते हैं। संस्कृति को ग्रहण करके तथा अपनी पुरातन विरासत से लाभ उठाकर मनुष्य विशिश्ट रूप से मानव बन जाता है। अत: व्यक्ति को 'संस्कृति धारक' जीव कहा गया है। संस्कृति प्रकृति की देन नहीं, अपितु समाज की देन है। संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है। यथा प्रकृति मिट्ठी प्रदान करती है, परन्तु जब मानव मिट्ठी से बर्तन बनाता है तो वह उसकी संस्कृति को अभिव्यक्त करती है। संस्कृति दो प्रकार की होती है-(अ) भौतिक संस्कृति- दृश्यमान तत्त्व इसमें शामिल होते हैं। (ब) अभौतिक संस्कृति- प्रथाऐं, रीति-रिवाज, कला, साहित्य एवं परम्पराएँ इसमें शामिल हैं।

अत: संस्कृति का सृजन मानव मस्तिष्क में ही होता है। मानव द्वारा पूर्व स्थापित इन वांछित मानकों जिन्हे समझ पैदा होते ही व्यक्ति अपने व्यवहार में लेना आरम्भ कर देता है और विगत अनुभवों तथा जनकों द्वारा विरास्त में मिली मानसिक संचेतना जिन्हें

उचित और अनुचित में वर्गीकृत कर पर्यावरण को और अधिक सुन्दर बनाता है, इस प्रकार के व्यवहार और अभिव्यक्ति को सांस्कृतिक दृष्टिकोण कहेंगे। हम जानते है कि संस्कृति का संरक्षण एवं स्थानान्तरण शिक्षा द्वारा संभव है, क्योंकि शिक्षा संस्कृति के घटकों को समझने और अपनाने के लिए व्यक्ति में विवेक जागृत करती है, अत: सांस्कृतिक दृष्टिकोण से शिक्षाक्रम में पाठ्यवस्तु स्वदेशी समाज की विरासत कालीन संस्कृति के अनुसार निर्धारित कर प्रस्तुत की जानी चाहिए। *संस्कृति के आधाभूत लक्षण*– (1) संस्व्रति सीखी गई योग्यता है, नैसर्गिक नही। (2) संस्कृति मनुष्य की सामाजिक विरासत होती है, व्यक्तिगत नही। (3) संस्कृति में समूह के आदर्श, नियम और विचारों का समावेश होता है। (4) संस्कृति विरासतकालीन परम्पराओं का हस्तानांतरण है। (5) संस्कृति समूह के सदस्यों में अन्योन्याश्रितता विकसित करती है। (6) संस्कृति एक समन्वित प्रणाली है।

सभ्यता शब्द का प्रयोग मानव समाज के एक सकारात्मक, प्रगतिशील और समावेशी विकास को इंगित करने के लिये किया जाता है, जो मनुष्य के भौतिक-सांस्कृतिक क्षेत्र की प्रगति की द्योतक है, सभ्य समाज अक्सर उन्नत कृषि, लंबी दूरी के व्यापार, व्यावसायिक विशेषज्ञता और नगरीकरण आदि की उन्नत स्थिति का द्योतक है। इन मूल तत्वों के अलावा, सभ्यता कुछ माध्यमिक तत्वों, जैसे विकसित यातायात व्यवस्था, लेखन, मापन के मानक, संविदा एवं अनुंबधा पर आधारित विधि-व्यवस्था, कला के महान शैलियों, स्मारकों के स्थापत्य, गणित, उन्नत धातुकर्म एवं खगोलविद्या आदि की स्थिति से भी परिभाषित होती है। प्राय: सभ्यता और संस्कृति को समानार्थी समझ लिया जाता है, जबकि दोनों अवधारणाएँ अलग-अलग हैं, तथापि विभेद ठीक वैसा ही है, जैसे हम एक फूल को सभ्यता और उसकी सुगन्ध को संस्कृति कहें। सभ्यता से किसी संस्व्रति की बाह्य चरम अवस्था का बोध होता है। संस्कृति विस्तार है तो सभ्यता कठोर स्थिरता। सभ्यता में भौतिक पक्ष प्रधान है, जबकि संस्कृति में वैचारिक पक्ष प्रबल होता है। यदि सभ्यता शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा। सभ्यता और संस्कृति में मौलिक अन्तर यह है कि, सभ्यता का सम्बन्ध जीवनयापन या सुख-सुविधा की बाहरी वस्तुओं से है, जबकि संस्कृति का सम्बन्ध आन्तरिक वस्तुओं से। सभ्यता की माप की जा सकती है, लेकिन संस्कृति की माप नहीं की जा सकती।

जैसे: साइकिल की अपेक्षा मोटरगाड़ी अधिक उपयोगी है, किन्तु प्रमाण प्रस्तुत करना कठिन है, कि पश्चिमी संस्कृति की अपेक्षा भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ है। इसके लिए कोई भी मापदण्ड नहीं है। सभ्यता की उन्नति अल्पकाल में होती है, जबकि संस्कृति विस्तृतकालीन सभ्यता की परिणति है। सभ्यता का प्रसार तीव्र गति से होता है, किन्तु संस्कृति का प्रसार धीरे-धीरे, लेकिन लगातार होता है। सांस्कृतिक वस्तुएँ प्रतियोगिता रहित होती हैं, किन्तु सभ्यता का आधार प्रतियोगिता है, दो आविष्कारों में प्रतियोगिता होती है, किन्तु अध्यात्मिकता में कोई प्रतियोगिता नहीं होती। सभ्यता साधन है, जबकि संस्व्रति साधय है। साधय का तात्पर्य अन्तिम लक्ष्य से है, जिसमें असीम सन्तुष्टि का अनुभव होता है और इस असीम सन्तुष्टि की प्राप्ति के लिए जो विधि अपनाई जाती है, उसे साधन कहते हैं।

काण्ट ने सभ्यता और संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है- "कि सभ्यता बाह्य व्यवहार की वस्तु है, परन्तु संस्कृति नैतिकता की आवश्यकता होती है तथा यह आन्तरिक व्यवहार की झलक है।"[12] **बर्ट के** अनुसार, "सभ्यता बताती है कि, हमारे पास क्या है?, और संस्कृति यह बताती है कि, 'हम क्या हैं?'"[13] सभ्यता में एका-एक सुधार किया जा सकता है, किन्तु संस्कृति में परिमार्जन शिक्षा के माध्यम से द्विर्घ में ही सम्भव है। साधारण व्यक्ति भी श्रेष्ठ आविष्कारों में सुधार कर सकता है, किन्तु प्रतिष्ठित कवि और कलाकार की कविता व कलाकृति में साधारण व्यक्ति सुधार नहीं कर सकता। संस्कृति में गहराई होती है, जबकि सभ्यता में गहराई का अभाव होता है। मोटर और ट्रैक्टर की मशीन का ज्ञान सभी को हो सकता है, किन्तु संस्कृति की गहराई तक सब व्यक्ति नहीं पहुँच सकते। ग्रीन ने सभ्यता व संस्कृति के मध्य अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "एक संस्कृति तब ही सभ्यता बनती है, जबकि उसके पास एक लिखित भाषा, दर्शन, विशेषीकरणयुक्त श्रम विभाजन, एक जटिल विधि और राजनीतिक प्रणाली हो।"[14]

शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में वयस्क की भूमिका निभाने हेतु समाजीकृत करती है तथा समाज का सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। शिक्षा समाज की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तान्तरण का प्रयास है। यह व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती

है। बालक शिक्षा द्वारा समाज के आधारभूत नियमों, व्यवस्थाओं, समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों को सीखता है। बालक समाज से तभी जुड़ पाता है जब वह उस समाज विशेष के इतिहास से अभिमुख होता है। शिक्षा से सीधा मतलब ज्ञान और तथ्यों की समझ जागृत करना है। हम जानते हैं कि शिक्षा विकास का आधारमूलक सत्य है। शिक्षा विहीन समाज से विकसित राष्ट्र की कल्पना करना किसी भी देश के लिए संभव नहीं है। षिक्षित समाज ही राष्ट्र विकास की अवधारणा को साकार करने में समर्थ है। इंसान जन्म से लेकर अपने अस्तित्व के धूमिल होने तक शिक्षारत् रहते हैं बस यदि कुछ बदलाव है तो वह है "शिक्षा का स्वरूप" और यहीं से शिक्षा की भूमिका की शुरूआत होती है। जो किसी भी देश के लिए काल निरपेक्ष नहीं वरन् काल सापेक्ष होती है। सभ्य जगत की भव्य और आकर्षक दिखने वाली समस्त वस्तुएँ शिक्षा की ही देन हैं। शिक्षा ही सुसंस्कृत मानव को मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, अध्यात्मिक एवं शारीरिक संतुष्टि प्रदान करती है। मानव की उन्नति और सभ्यता की प्रगति का यही एकमात्र साधन है। शिक्षा का प्रादुर्भाव मानवीय चेतना के आरम्भ से ही होता है। चेतन अवस्था प्राप्त करने के समय से ही मानव अपनी संतति को शिक्षा देता आया है, शिक्षा प्राणी मात्र की एक सहज क्रिया है। यह क्रिया मानव-जाति की ही नहीं; व्यापक रूप से जीव मात्र-पशु, पक्षी आदि की भी है। यही जीवों के अस्तित्व में सहायक है। इसी से जातिगत विभिन्नता के अनुसार प्राणियों की दैनिक क्रियाओं में न्यूनाधिक विशिष्टता आती है। यही कारण है, कि मानवेत्तर प्राणियों में शिक्षा की महत्ता जहाँ केवल उनके अस्तित्व को बनाये रखने में है, वहाँ मानव इससे बुद्धि, चिन्तन एवं शक्ति भी प्राप्त करता है। यह शिक्षा की ही विशेषता है कि जीवन के सामान्य व्यवहारों में समान होने पर भी मनुष्य 'विवेकशील प्राणी' के रूप में अन्य समस्त प्राणियों से विशिष्ट है, अतएव मानव सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। शिक्षा अपने परिष्कृत एवं शुध रूप में मानव को विवेकशील बनाती है। आज हमें ऐसी संस्कारी शिक्षा की आवश्यकता है, जो स्वयं के विकास के साथ-साथ स्वदेशी समाज एवं राष्ट्र का विकास करने वाले तथा विश्व कल्याण की ओर अग्रसर होने वाले सुयोग्य नागरिक तैयार कर सके। ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे जीवन में स्वानुशासन आये, नैतिक गुणों का विकास हो, ईमानदार व जिम्मेदार नागरिक तैयार हो सकें। **डॉ. राधाकृष्णन** के अनुसार "शिक्षा वह है, जो मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उसके हृदय में पवित्रता का भाव लाए, शिक्षा मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास करे।"[1515].

गढ़वाल, दिनेश. (2016, फरवरी). सुसंस्कारी शिक्षा शिविरा पत्रिका बीकानेर: माध्यमिक शिक्षा निदेशालय अंक-8

वर्तमान शिक्षा में संवेदनशीलता तो लगभग समाप्त होने की ओर अग्रसर है। हम जितनी अधिक उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उतने ही अधिक संवेदनहीन होते जा रहे हैं। हमें अपने यहाँ हमारा जो चिन्तन है, उसी का विचार करना चाहिए। उसी का सतत् चिन्तन करते रहना चाहिए। हमारे सारे शैक्षिक चिन्तन का आधार संस्कृति है। शिक्षा संस्कृति का परिमार्जन तथा सभ्यता का सृजन करने वाली अनवरत् प्रक्रिया है।

निष्कर्ष

संस्कृति मानव के व्यवहार का परिमार्जित स्वरूप है, जो मानव को अन्य मानवीय इकाईयों से जोड़ने एवं उनके साथ समरूप व्यवस्थाएँ स्थापित करने के सोपान स्थापित करती है। संस्कृति के परिमार्जन से सभ्यताएँ सृजित होती हैं। शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता का त्रिवेणी संगम होता है, क्योंकि शिक्षा जब संस्ख्रति का परिमार्जन कर भौतिकता की ओर अग्रसर होती है, तो भौतिक-संस्कृति की निश्पत्ति होती है, जो सभ्यता की द्योतक है। सभ्यता, किसी भी समाज या राष्ट्र की ढ़ाँचागत संरचना होती है। जो बाह्य प्रभाव के कारण विकृत हो सकती है, लेकिन संस्कृति मनुष्य की आंतरिक मानवीय व्यवस्थाओं का पुंज होता है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में सुशुप्त हो जाती है और अनुकूलन आने तक कालिख में आवृत रहकर पुनर्प्रस्फुटित होती है, और अपना स्वरूप प्रदर्षित करती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में शिक्षा एक आधार होता है, जो सुशुप्त संस्कृति को जागृत करने के लिए उसका परिमार्जन करने का चिन्तन और दर्शन प्रदान करती है तथा विध्वंसित सभ्यता के पुनर्निमाण के लिए विज्ञान और तकनीकी का ज्ञान प्रदान करती है। अत: जिस समाज में उचित शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा प्रणाली होती है, उस समाज या राष्ट्र की संस्कृति यथा-समय परिमार्जित होती रहती है और उसकी सभ्यता पुनर्संरचित होती रहती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शास्त्री, डॉ. प्रभाकर. (2008), भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, जयपुर: श्याम प्रकाशन. पृ. सं. 01
2. वही पृ. सं. 01
3. पारीक, डॉ. मथुरेश्वर, (2008), उदीयमान भारतीय समाज एवं शिक्षा, जयपुर: शिक्षा प्रकाशन. पृ. सं. 23
4. http// hi.m.wikipedia.org > संस्कृति-विकिपिडिया
5. गोस्वामी, बुद्धि प्रकाश. (2006), उदीयमान भारतीय समाज एवं शिक्षा. जयपुर: स्वाति पब्लिकेशन 72
6. वही पृ. सं. 75
7. वही पृ. सं. 01
8. भाटिया, अर्चना. (2013), भारत की राष्ट्रीय संस्कृति. नई दिल्ली: रोहित पब्लिकेशन पृ. सं. 03
9. वही पृ. सं. 04
10. गोयल, प्रीति प्रभा. (2008), भारतीय संस्कृति. जोधपुर: राजस्थानी ग्रन्थागार, पृ. सं. 1-2
11. सक्सेना, एन.आर. स्वरूप (2007), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ: आर.लाल. बुक डिपो, पृ. सं. 328
12. http://www.bharatdiscovery.org ›india › सभ्यता एवं संस्कृति में अन्तर- भारतकोश.....
13. वही
14. वही
16. डॉ. रामावतार (2020, जनवरी), भारतीय संस्कृति की अवधारणा, महत्त्व और घटक. दृष्टिकोण, नई दिल्ली; पालमगाँव Vol. 12, Issue 01 Pp 438-449 (ISSN 0975-119X)

भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में सामजिक समस्याओं का अवलोकन

रुमैसा नजीर

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

साहित्य को समाज का दर्पण के रूप में जाना जाता है, इसमें समाज की सम्पूर्ण विसंगतियों, अंतर्विरोधें तथा विविध जैविकीय व्यवहारात्मक तथ्यों का समावेश रहता है। समाज का अभिन्न अंग होने के नाते एक साहित्यकार भी समाज से पृथक होकर नहीं रह सकता, अत: समाज से प्रभावित हुए बिना वह स्वयं को वंचित नहीं रख पाता जिसका परिणाम उनके साहित्य में देखा जा सकता है। साहित्यकार केवल सुखद रचनाएँ नहीं लिखता वरन वह जो वास्तविक जीवन में भोगता है उसी का यथावत चित्रण उसके साहित्य में परिलक्षित होता है।

साहित्यकार के लिए समाज सामग्री का कार्य करता है, वह उसे ऐसी सामग्री प्रदान करता है जिसे वह लिपिबद्ध करने को लालायित रहता है। अत: देश और समाज के सपंदन को साहित्यकार अपने साहित्य का माध्यम बनाकर उसे चित्रित करता है। अत: कहा जा सकता है कि साहित्य साहित्यकार के लिए एक माध्यम की भूमिका निभाता है, ठीकइसी के अनुरूप भगवानदास मोरवाल जी ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज के विविध पहलुओं को आत्मसात करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में भारतीय समाज में व्याप्त विविध समाजगत समस्याओं को अपनी लेखनी का आधार बनाकर प्रखर रूप से अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। यह बात सर्वविधित है कि भारतीय संविधान में स्वतंत्रता के पश्चात सभी नागरिकों को सामान अधिकार दिए गये हैं लेखिन सामाजिक दरातल पर वस्तु स्थिति ठीक इसके विपरीत है। भगवानदास मोरवाल ने समाज की उन्हीं कड़वी सच्चाइयों को समाज के समुख अनावृतकर चित्रित किया है। उपन्यासकार यह मानते हैं कि सामाजिक उत्थान के लिए इन समस्याओं का निर्मूलन अनिवार्य है, वह अपने उपन्यास साहित्य के द्वारा अपने समकालीन समाज का चित्रण इस प्रकार करते हैं: कहीं वह समाज में व्याप्त कट्ठरपंथिता को सामाजिक रूढ़ि मानते हुए पाठकको सचेत करते हैं तो कहीं भ्रष्ट प्रशासन के नग्न रूप को सरेआम नीलाम कर देते हैं।

दहेज प्रथा: दहेज लेना तथा दहेज देना प्राचीन काल से ही हमारे समाज में एक रीति की तरह चलती आ रही है और आज आधुनिक युग में भी इस प्रथा को भलीभांति देखा जा सकता है। प्राचीन काल में दहेज देने का अर्थ था कि वर-वधु अपनी घर-ग्रहस्ती अच्छे से तथा सुविधाओं से लेस जिन्दगी जिए। उस समय दहेज में सोना, चांदी नहीं बल्कि गाय, वस्त्रा, इत्यादि दिए जाते थे परन्तु जहाँ आज आधुनिक तथा शिक्षित समाज है वहीं दहेज प्रथा तथा लेन-देन का आश्य ही विपरीत हो चुका है। आज जब तक दहेज में सोना, चाँदी, बंगला, मोटर घाड़ी आदि नहीं होगा, तो लड़की की शादी टूट जाती है और यदि शादी के बाद इन माँगों को पूरा न किया जाए तो एक स्त्री को ससुराल से मायके वापस भेज दिया जाता है या उसे जिंदा जला दिया जाता है। आज इस कुप्रथा ने एक विकराल रूप धारण कर लिया है जिससे समाज के मध्य तथा निम्न वर्ग के परिवार वालों को बेटी का होना अभिशाप से कम नहीं।

भगवानदास मोरवाल जी ने दहेज प्रथा के कई नग्न रूप अपने उपन्यासों के माध्यम से पाठक के समक्ष प्रस्तुत किए है। जिनसे समाज में व्याप्त कुरीतियों को देखा-परखा जा सकता है। मोरवाल जी के उपन्यासों का धरातल मेवात क्षेत्र रहा है, और वह मेवात

का आईना/दर्पण के रूप में कार्य करते हैं। 'काला पहाड़' में इस प्रथा का चित्रण तब मिलता है जब सलेमी की शादी के समय दहेज देने तथा लेने का वर्णन होता है। "सलेमी के लिए बहुत कुछ दिया बेटीवाले ने। इतना दिया कि भूरे खां का सीना मारे खुशी के चौड़ा होता चला गया। पलंग-पीढ़ी, साइकिल, पाँच बर्तन, पाँचों कपडे और धौण रुपया। भूरे खां के लिए भी समधी ने कोई कसर नहीं छोड़ी यानी समधी का एक कम्बल और इक्यावन रुपए से मान किया गया"।[1]

जहाँ इस उपन्यास में प्राचीन काल की रीति को बड़े ही सहजता के साथ दर्शाया गया है वहीं इस कुप्रथा के घिनौने तथा पशुता को भी पाठक के समक्ष बिना किसी डर-दबाव के प्रस्तुत किया है। मोरवाल जी ने भारत देश में उन सभी कुरीतियों से पर्दा उठाने का प्रयास किया है, जिससे आम जनता कहीं न कहीं अज्ञात थी या यूँ कहे कि आम आदमी तक बात को पहुँचने ही नहीं दिया जाता था। 'बाबल तेरा देस में' जैनब के पति मौलवी अख्तर अली उससे उससे दूर रहते, जब जैनब अपने मायके लौट आती हैं तो सब इस बात से परेशान रहते हैं कि आखिर ऐसा क्या हो गया कि जैनब के शौहर उसे पूछते तक नहीं हैं और अंततः जब मुमताज जैनब को याद करने पर जोर देती है, तब जैनब उन्हें इस बात से अवगत कराती है कि उन्हें मोटर साइकिल चाहिए थी। "हाँ, एक दिन मेरी सास और नन्द में कुछ ऐसी बात ही तो रही के अगर बिहा में मोटर साईकिल और मिल जाती तो...."।[2] और अंत में मोटर साइकिल मिलने पर वह जैनब को हमेशा के लिए अपने पास रखने लगे। 'रेत' उपन्यास में दहेज प्रथा का अलग ही रूप हमें देखने को मिलता है। कंजर समाज में दहेज बेटीवालों की जगह लड़केवालों को देना पड़ता है और इसका उदाहरण तब मिलता है जब कमला बुआ के बेटे मंगल की शादी के समय बेटी-वालों के साथ पौने तीन लाख देने की बात तय होती है, जिसे अंत में लड़की वाले साढ़े तीन लाख पर अड़ जाते हैं इस सब को देख वैद्यजी सोंचते हैं- "अपने तथाकथित सभ्य समाज की दहेज की रेह ने न जाने कितनी ललनाओं को लील लिया, जबकि इस समाज की ये परम्पराएँ?"।[3] 'वंचना' उपन्यास में उपन्यासकार ने दहेज प्रथा के दुष्परिणामों को भी यथासंभव प्रस्तुत किया है। नसीम को उसके ससुराल वालों के साथ-साथ उसका पति उसे जिंदा जला देते हैं, उनका अंतर्मन उन्हें किस प्रकार यह सब करने के लिए तैयार होता है, एक बार भी उनके हाथ नहीं काम्पते। "उसे अब भी यकीन नहीं हो रहा है कि कोई लालच में इतना क्रूर और अँधा भी हो सकता है कि एक औरत जो माँ बननेवाली हो, दहेज के लोभी उसकी जलाकर हत्या कर देंगे"।[4] 'शकुन्तिका' उपन्यास में भी दहेज प्रथा का छोटा सा प्रसंग देखने को मिलता है। दहेज देने की चिंता में डूबी सिया की दादी उसे आगे न पढ़ाने का कारण बताती है कि- "खाली पढ़े-लिखे होने से काम नहीं चलने वाला। लेन-देन भी तो उसकी हैसियत के मुताबिक होना चाहिए"।[5] अर्थात् समाज में उस लड़की के लिए वर ढूँढना अति कठिन हो जाता है जो ज्यादा पढ़ी-लिखी हो और यदि लड़का मिल भी जाए तो उनकी माँग भी कुछ कम नहीं होती, जिसके कारण कई परिवार ऐसे हैं जो बेटी को ज्यादा पढ़ने पर प्रतिबंध लगाते हैं ताकि उन्हें दहेज देने में थोड़ी-बहुत रियायत मिल जाए। बुलबुल की शादी होने के बाद उसके ससुराल वाले उसे रोज तंग करते जिसके कारण बुलबुल मायके में रह रही थी। परन्तु जैसे ही यह बात सिया और गार्गी को पता चलती है तो वह आग बबूला हो जाती हैं और बुलबुल के ससुराल वालों को सबक सिखाने का प्रण लेती है। गार्गी भगवती को इस वास्तविकता से अवगत कराती हैं कि "लालची आदमी का न कोई धर्म होता है, न जात-बिरादरी। न कोई ईमान होता है, न कोई नीयत"।[6] इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री जन्म से लेकर बिहा तक, इतना ही नहीं बल्कि शादी के बाद भी माता-पिता की चिंता का कारण बन कर रह जाती है। उसका भविष्य सुरक्षित नहीं रह पाता।

जातिभेद की समस्या: जाति शब्द अंग्रेजी भाषा शब्द के बेंजम का हिंदीरूपांतरण है जिसकी उत्पत्ति लेटिन शब्द बेंजनेसे मानी जाती है और जिसका अर्थ है "विशुद्धता या अनुवांशिकता"।[7] जाति को यदि समझें तो यह वंशानुक्रम पर आधारित है और इसका प्रमुख आधार जन्म है। इसी जन्म के आधार पर एक व्यक्ति की जाति को निर्धारित किया जाता है अर्थात पिता जिस जाति से संबंध रखता है वही उसके बच्चों की जाति बन जाती है। जाति-व्यवस्था में जन्म सिद्धांत को अधिक महत्ता प्रदान की गई है, जिससे समाज का संतुलन बिगड़ गया है और इसके संतुलित विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। व्यक्ति को उसकी योग्यता से नहीं बल्कि उसकी जाति के आधार पर कार्य दिया जाता, जिसके कारण समाज की सबसे बड़ी आबादी वाली जाति के लोग यानि 'शूद्र' अपनी इच्छानुसार कार्य करना तो दूर उन्हें किसी प्रकार की स्वतंत्रता की भी प्राप्ति नहीं हैं।

प्रारम्भ में व्यक्ति के कर्मों के अनुसार उसकी जाति निर्धारित की जाती थी जैसे– लोहे का कार्य करने वाले को लुहार, मिटटी के बर्तन बनाने वाले को कुम्हार, इत्यादि अतः इस प्रकार व्यक्ति के कर्मों से समाज में उसकी पहचान होने लगी। वर्त्तमान समय में व्यक्ति चाहे किसी भी कार्य से जुड़ा रहे परन्तु उसकी पहचान उसकी जाति विशेष से की जाती है।

यद्यपि इस जाति-व्यवस्था को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए समय-समय पर समाज सुधारकों ने आवाज उठाई परन्तु आज भी समाज में इसे देखा जा सकता है, इसके परिवर्तन में बहुत कम अंतर पाया गया है। हमारे भारतीय संविधान में जाति-व्यवस्था को मान्यता प्राप्त नहीं है, वह किसी भी तरह के भेदभाव को संरक्षण नहीं देता अपितु उसके विरुद्ध खड़ा है परन्तु इसके पश्चात भी भारत में इस व्यवस्था ने अपनी जड़े इतनी मजबूत कर ली हैं कि निम्न जाति के व्यक्ति को अपने अस्तित्व पर घिन्न आती है। कई ऐसे भी है जो स्वयंके साथ-साथ अपने बच्चों तक की हत्या कर देते हैं केवल समाज से प्रताड़ित होने के डर से। यदि जाति-व्यवस्था को कोई तोड़ पाया है तो वह है प्रेम-विवाह। जहाँ समाज में जातिगत परम्परा विघटित की ओर जाती दिख रही हैं वहीं दूसरी तरफ जाति को बनाए रखने के लिए आवश्यक कदम भी उठाए जा रहे हैं। एक ही जाति के लोग आपस में शादी-बिहा कर अपनी जात को बनाए रखते हैं। भारत देश में जाति-व्यवस्था को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है, जहाँ निम्न जाति के हाथ से पानी पीना भी पाप समझा जाता है।

वर्त्तमान समय में जहाँ नई सोंच, नए विचारों ने अपनी अलग जगह बना ली है वहीं आज भी कहीं न कहीं जातिभेद की सोंच हमारे अंतर्मन में विद्यमान है, जिसके परिणामस्वरूप समाज की सबसे बड़ी इकाई (शूद्र) शोषित तथा पीड़ित हैं। 'बाबल तेरा देस में' जहाँ मोरवाल जी ने पारो के माध्यम से समाज में व्याप्त तुच्छ मानसिकता को दर्शाने का सफल प्रया किया है। जब पारो की बेटी कुम्हार के घर पर पुआ खाती है तो वह देख कर आग बबूला हो जाती है, "ढेडणी, ना चिमार ए देखे है ना चूहड़ा ए....बस जो कोई दे देए वाहे मूं में उड़स्ती होवे है"।[8] इतना ही नही जब पारो अपनी सास के साथ कुँए पर से पानी लाने जाती है तो गफोंदी उसे यह कह कर रोकती है कि "असगरी, एक बात तो बता जा बीरबानी की ना जात को पता है ना बिरादरी को, वाहे कैसे अपणा कुआँ पे चढ़ जाण देए"।[9] यहाँ तक कि वह यह तक कह देती है कि "कहा पतो ई कोई चिमार-चुहाड़ी होए!"।[10] इसी उपन्यास में मोरवाल जी ने समाज के कटुसत्य तथा अनकही बातों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। मोरवाल जी ने नसीब खां के माध्यम से बहुत ही व्यंग्य तथा चुबनेवाला सत्य कहा है कि- "ये हरिजन बिलकुल ही उजबक है के? अरे, तिहारा हिंदून में छोटी घणी जात तलक तो इनका हाथ को खाएँ ना है, ये ऊँची जात जरूर खाएँगी"।[11] 'रेत' कंजर जाति पर आधारित बहुचर्चित उपन्यास है जिसमे देह-व्यापार करने वाली इस कंजर जाति को नीच समझा गया है। साथ ही इन्हें अपराधी जनजाति का नाम देकर इन्हें मूलभूत सुविधाओं से कोसों दूर रखा गया है। इनके लिए कई सख्त कानून बनाए गए हैं, यहाँ तक कि इन्हें 'क्रिमिनल ट्राइब्स' कहा जाने लगा। उपन्यास में इन कंजरों के साथ कई तरह के शोषण होते हैं और पुलिस भी इनका शोषण करने में पीछे नहीं रहती। "मजा तो तब है जब सारी रजिस्ट्रियों को थाणे में ही बुलाकर एक बार परेड कराई जाए"।[12] 'वंचना' में जब अपराजिता एक कुम्हार लड़के के साथ घर से भाग जाती है और उनके मिलने पर अदालत उन दोनों का विवाह करने की सहमति देती है तो अपराजिता की माँ कहती हैं- "यानी अब हमें उस कुम्हटटे के संग अपनी अपरा की भाँवरे डालनी होंगी?"।[13] उपन्यासकार ने ब्रजनंदन के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि इतने बड़े वकील होने के बावजूद उसकी जातिगत मानसिकता बदल नहीं पायी है। जब रहमत उसे कुछ ठण्डा या गरम लेने को कहते हैं तो वह मना करते है और रहमत उन्हें समाज की कड़वी सच्चाई/वास्तविता से अवगत कराते हैं कि "मैं तो ऐसे ही कह रहा हूँ। वैसे भी आप ठाकुर लोग हम मुसलमानों का कहाँ खाते हैं"।[14]

अत: कहा जा सकता है कि जहाँ व्यक्ति सफलताओं एवं पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर एक नए समाज का निर्माण कर रहा है वहीं जातिगत मानसिकता उसका पीछा नहीं छोडती। अत: भारत देश के कई शहरों तथा गाँव में आज भी जात-पात का भेद विद्यमान है। देश कितनी भी उन्नति क्यों न करे लेकिन पुरानी सोच इतनी आसानी से पीछा नही छोड़ती। समाज में जात-पात के नाम पर कई लड़ाइयाँ देखने को मिलती है, जो एक मनुष्य को सोचने पर विवश करता है कि वह किस स्थिति में जी रहा है और उसका परिणाम आगे जाके क्या हो सकता है। यदि हम सब इस जातिभेद तथा धर्मभेद को समाप्त करने में जरा सा भी योगदान दें तो समाज का प्रत्येक व्यक्ति सर उठाकर जी सकता है और अपने अस्तित्व को निखार सकता है। साथ ही एक सभ्य समाज तथा देश को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है।

यौन उत्पीड़न: वर्तमान समय में यौन उत्पीड़न एक गंभीर समस्या के रूप में उभर कर हमारे समक्ष प्रस्तुत हो चुकी है। जब एक व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध कोई गतिविधि होती है तो उसे यौन उत्पीड़न कहा जाता है या यूँ कह सकते है कि जब एक व्यक्ति के साथ किसी तरह के शारीरिक संपर्क को स्थापित करने के लिए विवश किया जाए तो वह यौन उत्पीड़न की श्रेणी में आता है।

यौन उत्पीड़न मानवता के विरुद्ध होने वाले जघन्य अपराधें में से एक है और इस अपराध से किसी भी आयु का व्यक्ति अछूता नहीं रहा है। हमारे समाज में विकृत मानसिकता वाले लोगों के कारण ऐसे कार्य को अंजाम दिया जाता है, जिससे एक सभ्य समाज को दूषित होने में जरा सा भी समय नहीं लगता। यौन उत्पीडन करने वाला व्यक्ति अधिकतर या तो कोई जानकार होता है या फिर दोस्त या रिश्तेदार और कोई अजनबी भी होता है।

यौन उत्पीड़न शोषित व्यक्ति के स्वास्थ्य पर कई प्रकार के प्रभाव डालता है। इससे शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक समस्याओं को जन्म मिलता है। भारत देश के वर्त्तमान परिवेश में यौन उत्पीड़न का शिकार हुए अधिकतर लोगों में जागरूकता के अभाव का कारण पाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह/पीड़ित व्यक्ति अपने साथ हुए दुरव्यवहार के खिलाफ आवाज नहीं उठा पाता, वह समाज में खोखली शान को बनाए रखने के गरज से शोषण को सहन करते हैं। यहाँ तक कि पीड़िता के परिवार वाले भी कानून-कचहरी से दूर रहने में ही भलाई समझते हैं, जिसके कारण अपराधियों को ओर साहस मिलता है, वह खुले में सांस लेते कतराते नहीं जबकि पीड़िता स्वयं का दोष न होते हुए भी घुट-घुटकर जीने को विवश हैं।

यौन उत्पीड़न के दुनिया में यदि भारत का स्थान देखें तो दुनिया भर में भारत का चौथा स्थान है यहाँ तक कि भारत में हर एक घंटे तकरीबन यौन उत्पीड़न की तीन घटनाएँ होती रहती हैं। और हर दिन तकरीबन ७५ मामले यौन उत्पीड़न के दर्ज किये जाते हैं। वर्ष २०१३ में इस मामले के करीब 95,731 मामले विचाराधीन हुए हैं यदि यौन उत्पीड़न को साफ तौर पर देखा जाए तो इसके कई प्रकार हमें देखने को मिलते हैं। उदाहरणत: बलात्कार, वैवाहिक बलात्कार, यौन शोषण, अश्लील हरकतें तथा बच्चों को यौन क्रियाओं के लिए उकसाना, इत्यादि।

आए दिन हमें ऐसी सूचनाएं मिलती रहती है कि देश के जाने माने इस राज्य में शर्मनाक हादसा। आज यह कोई नई बात नहीं है कि यौन उत्पीड़न ने अपनी एक ऐसी जगह बना ली है जिसे चाह कर भी पूर्ण रूप से रोका नहीं जा सकता। जहाँ हम इन घटनाओं के बारे में टी.वी, रेडियो, इंटरनेट, समाचार पत्रों आदि पर देखते हैं वहीं साहित्य में भी इसने अपनी जगह बना ली है। भगवानदास मोरवाल ने यौन उत्पीड़न के दिल-दहलाने वाले प्रसंगों को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जहाँ उन्होंने यौन उत्पीड़न के कई विषयों को उजागर किया है वहीं इस समस्या से झूझ रही नारियों की मन:स्थिति को भावात्मकता के साथ वाणी प्रदान की है। नारी जो कभी पूजनीय रही आज उसे पैर की जूती समझा जाता है, उसके अस्तित्व को कुछ कर उसे विकलांग कर दिया जाता है। वह अपने साथ हुए दुष्कर्मों के विरुद्ध आवाज नहीं उठा पाती क्योंकि समाज में किसी भी तरह का शोषण या दुरव्यवहार का उत्तरदायी स्त्री को ही माना जाता है। आज नारी को देवी, माता के स्थान पर कुलाक्षणी, कलमूही, अर्थात भोग की वस्तु, आदि नामों से पुकारा जाता है। वह अपने भाग्य को ईश्वर की मार समझकर सहन करने को विवश है।

भगवानदास मोरवाल ने स्त्री के साथ हो रहे शोषण को सहजता के साथ वाणी दी है। 'बाबल तेरा देस में' जहाँ चांदमल की हवेली को कथा का केंद्र निर्धारित किया गया है वहीं इस हवेली में रह रही स्त्रियों के साथ यहाँ के पुरुष यौन संबंध बनाने को लालायित है। जब जुम्मी के साथ उसका ससुर जबरदस्ती करता है तो वह लाख कोशिशें करती है परन्तु खुद को इस जकड़न से आजाद नहीं करा पाती और स्वयं को असमर्थ पाती है। वह सोंचती है कि वह शोर मचाए परन्तु उसमे भी वह विफल हो जाती है, "एक बार सोची भी के रौल मचा दूँ पर फिर ई सोच के चुप लगागी के या मरद को तो कुछ ना बिग्ड़ेगो... उल्टी दुनिया मेरो ही मुँह कालो करेगी के जब खसम सू पेट ना भरो तो ससुरा जा पकड़ो। बस, याही बदनामी का डर सू खून को घूँट पीके रहगी. .."।[15] एक नारी जो अपना घर-परिवार छोड़ दूसरे परिवार की शोभा बनती है, एक बेटी बहु के रूप में परिवर्तित हो जाती है, अपनी पहचान बदल देती है और अंत में उसके साथ उस परिवार में क्या मिलता है शोषण, उस त्याग की कीमत। इस प्रसंग का जुम्मी परिवार में से किसी भी सदस्य से जिक्र नहीं करती, वह इस बात से भलि-भांति परिचित है कि ये वह किसी से कहेगी तो उसका कहना व्यर्थ सिद्ध होगा। "वली मोहम्मद को कहा बिगडतो ऊ तो तीन बार तलाक-तलाक कहके पिंड छुडा लेतो। जुम्मी बिचारी कहाँ जाती, मरनो तो हर तरफ सू या जुम्मी को ही हो"।[16]

प्रस्तुत उपन्यास में ऐसा ही एक और प्रसंग हमें देखने को मिलता है जहाँ चंद्रकला उर्फ पारो की बड़ी भाभी भी अपने ससुर की हवस का शिकार हो जाती है। वह जब अपने पति से इस घटना का वर्णन करती है तो उसका पति उसे अविश्वसनीय उत्तर

देता है कि "तू तो बस मेरी नाम की ब्याहता है, लुगाई तो तू मेरे बाप की ही है"।[17] उपन्यासकार ने आज के ऐसे ही पुरुषों का मुखोटा उतार कर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उपन्यास में केवल बहु ही इस शोषण का शिकार नहीं है बल्कि चंद्रकला अपने ही पिता से भयग्रस्त जीवन जीने पर विवश है। वह आश्चर्यजनक है कि उसका बाप हवस का पुजारी बनकर उसे बर्बाद करने पर तुला हुआ है, जिससे चंद्रकला को रह-रहकर ख्याल आता है कि "उसका भी कोई भरोसा नहीं कि कब दो मजबूत पंजे चीरते हुए आएँ और इसे छिन्न-भिन्न कर जाएँ"।[18]

'रेत' उपन्यास में भी यौन-उत्पीड़न का सशक्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है। रुक्मिणी जो जाति से कंजर है और उसका कार्य देह-व्यापार करना है परन्तु वह यह व्यापार अपनी मर्जी से करती है और यदि कोई उनके साथ जबरदस्ती करें तो वह चंडी का रूप धारण करने में जरा सा भी समय नहीं गंवाती। मुरली बाबू का रुक्मिणी को धोखे से रेस्ट हाउस बुलाना और फिर उसके साथ जबरन संबंध बनाना चाहता है परन्तु वह विफल हो जाता है। "मुरली के शिकंजे से मुक्त होने के प्रयास में उसे पहली बार अहसास हुआ कि हिंस्र आदमखोर जानवर और आदमी में कितनी समानता होती है। इस बीच पता नहीं रुक्मणी का हाथ कब मेज के नीचे सरककर, वहां रखी बोतल तक पहुँचा? कब वह बोतल उसके हाथ में आई और कब वह टूटकर मुरली के पेट में समा गई"।[19] 'वंचना' उपन्यास में जानकी जो कि एक समाज सुधारक के रूप में कार्यरत थीं, बाल विवाह को रोकने का भरपूर प्रयास करती नजर आतीं हैं परन्तु यह शुभकार्य ही उसके जीवन में ग्रहण बन जाता है। जब वह रामकरन को समझाने उसके घर जातीं हैं तो वह उसे अपना अपमान समझकर उससे बदला लेने की ठान लेता है और अंत में रामकरन अपने भाई के साथ मिलकर उसके घर जाते हैं और उसके पति को बुरी तरह मारते-पीटते हैं और उसे एक कोने में बाँध देते हैं और जानकी की अस्मत लूटते है "इसके बाद तेरे ससुर और ताएसरे रामकरन जानकी की तरफ मुड़े और बारी-बारी से उसके साथ मुंह काला किया"।[20] समाज में ऐसे भी व्यक्ति है जो अपनी गलती मानना तो दूर सुधरने का भी नाम नहीं लेते, वह अपनी शान इसी में समझते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में बलविंदर ऐसा व्यक्ति है जिसे सहवास की लत लग चुकी है, वह मनोरोग से ग्रस्त हुआ सा प्रतीत होता है, जिसका परिणाम एक स्त्री को भुगतना पड़ता है। बलविंदर घुमन्तओं की लड़की को जबरन उठा कर ले जाकर उसके साथ बलात्कार करता है और जब वह न्याय मांगने अदालत का दरवाजा खटखटाती है तो वहां मुजरिम को सजा देने के बजाए उलटा उसे ही धंधा करने वाली साबित किया जाता है। "वकील साब, आप जो यह कह रहे हैं कि कोई औरत अपनी इज्जत को ताक पर रख झूठा और शर्मनाक बयान नहीं देगी, यह बात आत्मस्वाभिमानी, प्रतिष्ठित और इज्जतदार घरों की औरतों पर लागू होती है। ऐसी पर नहीं जिन्होंने अपनी देह को इनकम का जरिया बना लिया हो"।[21] अर्थात बलविंदर को अदालत बाइज्जत भरी करती है और उसे ओर जुर्म करने की छूट प्रदान करता है जिसका परिणाम यह हुआ कि बलविन्दर रुबीना नाम की एक ओर लडकी को उठाकर उसका शोषण करने में सफल हो जाता है साथ ही इस जुर्म में सजा मिलने के बदले अदालत अपना फैसला इस प्रकार सुनाती है "एंड बलविन्दर विन्स द अपील"।[22] यह हमारी न्याय-व्यवस्था है जिसने अपनी आँखों पर पट्ठी बाँध दी है जिससे वो सच को नहीं देखना चाहती और मुजरिम को आजाद छोड़ देती है। एक के बाद एक जुर्म कर बलविन्दर को रिहा किया जाता इतना ही नहीं बल्कि उसे बाइज्जत रिहा किया जाता। सहवास का आदि बलविन्दर यह तक नहीं देखता-सोंचता कि वह क्या कर रहा है और किस लिए और यही कारण बनता है कि उसके हवस की शिकार सात-आठ साल की मुन्नी बन जाती है। मुन्नी की हालत देख वहां उपस्थित सभी लोगों के रोंगटे खड़े हो गए। "सुदामा की मुन्नी नंग-धडंग जमीन पर पड़ी हुई है। साड़ी जांघ खून से सनी हुई है। पूरा प्राइवेट पार्ट ऐसे कुचला हुआ था, जैसे सिल पर किसी ने बट्ठे से प्याज कुचल रक्खी हो। आसपास पांच-छह टॉफी और बिस्कुट के बिना खुले दो पैकट बिखरे पड़े थे"।[23]

इतने संगीन जुर्म करने पर भी अदालत उसे वह दण्ड देने में विफल हो जाती है जो एक बलात्कारी को मिलना चाहिए। इस सब में कहीं न कहीं हमारी न्यायपालिका दोषित है, जो समय पर दोषी को सजा देने में नाकाम सिद्ध हुई है। मोरवाल ने जहाँ समाज में व्याप्त दुष्कर्मो का पर्दाफाश किया है वहीं हमारी न्याय-व्यवस्था पर भी करारी चोट की है।

अत: कहा जा सकता है कि घर से लेकर बाहर निकलने तक एक स्त्री शोषण का शिकार होती है। न वह घर में सुरक्षित है ना घर से बाहर, उसके सामने 'आगे कुआँ पीछे खाई' जैसी स्थिति बनी हुई है, जहाँ दोनों ही सूरतों में उसे शोषित तथा पीड़ित होना पड़ता है। यदि घर में देखे तो पिता-भाई एक आदमखोर भेडिये की तरह घर की स्त्रियों पर जपट्ठा मारने को तत्पर रहते हैं

और यदि घर से बाहर झाँक कर देखें तो चील-गिद्धों के मानिंद उन्हें नोच खाने को मंडराते-फिरते हैं। नारी अब पूजनीय नहीं बल्कि संभोग की वस्तुमात्रा बन कर रह गयी है, जिसे शोषण सहन करने पर विवश किया जाता है, जिसका परिणाम आज साफ तौर पर झलकता है। किस तरह न्याय न मिलने पर या समाज के डर से कई लडकियां आत्महत्याएँ करती हैं। वह न्याय-व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है।

वर्तमान समय में समाज के हर पहलु को भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यासों में जगह दी है, यहाँ तक कि उन्होंने समाज की एक ऐसी इकाई को प्रस्तुत कर उन्हें साहित्यिक मंच प्रदान किया है जिसे अपराधी जाति के नाम से जाना जाता है। जिन्हें समाज में वेश्या नाम से संबोधित किया जाता है, और इनका पेशा देह बेचना है।

वेश्यावृति

वेश्यावृति का जन्म विवाह संस्था की उत्पत्ति के साथ ही साथ कुछ अवैध सम्बन्ध तथा विवाह पूर्व यौन-संबंध तथा विवाह के अतिरिक्त को जब अवैध करार दिया तो वेश्यवृति ने जन्म लिया। वेश्यावृति की समस्या पर जियोफ्रे अपनी पुस्तक 'Encyclopaedia of the social sciences' में लिखते हैं कि "वेश्यावृति विश्व का सबसे पुराना व्यवसाय है और यह तभी से चला आ रहा है जब से किसी समाज के लोगों की काम-भावनाओं को विवाह और परिवार में सीमित किया गया है"।[24]

अर्थात कहा जा सकता है कि "यौन इच्छाओं की संतुष्टि के लिए समाज द्वारा साधनों को अपनाना ही वेश्यावृति है"।[25] वेश्यावृति को अनैतिक कार्य की श्रेणी में रखा जाता है जिसे समाज में उचित नहीं माना जाता साथ ही इसकी निंदा करते हैं। वेश्यावृति को विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है:

इसी वेश्यावृति को आधार बना कर भगवानदास मोरवाल ने 'रेत' उपन्यास की रचना की है, जिसमें कंजर जाति का मुख्य तथा प्रमुख धंधा देह-व्यापार है और यह इस व्यवसाय को घृणा की दृष्टि से नहीं देखते अपितु अमीरों की मेहनत की तरह, यह भी देह बेचने को मेहनत मानते हैं। "दरोगा जी, जैसे ये इज्जतदार अपनी मेहनत बेचते हैं न, वैसे ही हम अपनी देह बेचते हैं। हमारे लिए तो हमारी यह देह ही हमारी मेहनत है। हमारे लिए तो यह दूसरे कामों की तरह आम काम है"।[26]

इस समाज में नारी की खरीद-फरोख्त को जुर्म न मानकर व्यापार का एक हिस्सा माना जाता है- "अभी तक खेत-खलिहान तो उसने बंटाई पर उठते देखे हैं लेकिन किसी खिलावडी के रूप में किसी स्त्री को बंटाई पर लेन-देनकी बात पहली बार सुन रहा है"।[27] कंजर समाज में देह-व्यापार करने वाली स्त्रियों का ठाठ से जीना तथा अपने ग्राहक को फुल पैसा वसूल कराने, साथ ही धन की वर्षा करते दर्शाया गया है। इस समाज में भाभी यानी जिसे बिहा कर लाया गया हो की स्थिति नरक भोगने से कम नहीं होती, उनका काम केवल घर संभालना तथा बाकी सदस्यों की चाकरी करना मात्रा है, जिसके कारण वह भी इस वेश्या-व्यवसाय में जाने पर विवश होती है। जहाँ उन्हें धन वर्षा के साथ-साथ गौरव महसूस होता है। इस समाज की एक रीति यह है जो ग्राहक किसी कंजरी की मथा-ढकाई करता है तो वह आजीवन उसकी हो जाती है और उस ग्राहक को दामाद जैसा समझा जाता है तथा उसे कभी भी आने-जाने की आज्ञा होती है। "बैद्धजी, हमारे यहाँ जो इज्जतदार मत्था ढकाई करता है, उमर भर उसका जमाई की तरह मान किया जाता है। एक ब्याहता मर्द की तरह अपनी खिलावाडी के पास आने-जाने की पूरी छूट होती है। उससे कभी पैसे नहीं लिए जाते हैं बल्कि जमाई की तरह पूरे नेग-दस्तूर के साथ उसकी बिदाई दी जाती है"।[28]

शिक्षा, समाज एवं संस्कृति

डॉ० अरूण कुमार पंडित

पूर्व शोध-छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग
भू0 ना0 मंडल विश्वविद्यालय, मधोपुरा (बिहार)

शिक्षा समाज एवं संस्कृति तीनों पृथक शब्द नहीं अपितु एक ही शब्द के समनार्थी है, इन तीनो शब्दो में बहुत ही गहरा संबंध हैं। हम सब जानते हैं कि विकास के सभी पैमानों में शिक्षा का स्थान सर्वोपरी हैय क्योंकि शिक्षा हमें सदगुणी, नीतिवान चरित्रवान, संयमी तथा विवके शील इत्यादि गुणो में निपूण बनाती है। शिक्षा के माध्यम से ही हम प्रेम से घृणा को, सत्य से असत्य को, कष्ट सहन से हिंसा को जीतना सींखते हैं। शिक्षा का मुल उद्देश्य है। 'चरित्र निर्माण'। एक चरित्रवान व्यक्ति ही सुव्यवस्थित समाज तथा संस्कृति का पोषाक हो सकता हैं। एक शिक्षित व्यक्ति कभी 'कूपमंडुक बनना पसंद नहीं करते, उनके समक्ष तो पूरी ब्रह्मांडं ही ज्ञान संचय का आधार होता है कहा भी गया है कि जो जितने ज्ञानी होते हैं, उन्हें उतना ही ज्यादा अज्ञानता का बोध होता हैं।

प्राचीन काल में शिक्षा का अर्थ व्यापक रूप में लिया जाता था। शिक्षा–आत्मविकास, आत्मंथन तथा स्वंय सुधार की प्रक्रिया थी, जो जीवन पर्यंत चलती रहती थी। एक शिक्षक भी जीवनभर छात्र ही बने रहते हैं। शिक्षा ज्ञान का वह भंडार हैं, जो मनुष्य को मानव बनाती है तथा मानव को महामानव। एक ओर यदि यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा में परिवर्तन करता है तो दूसरी ओर यह भी सत्य है, कि शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन होते हैं। शिक्षा द्वारा मनुष्य अपनी जाति की भाषा रहन-सहन, खान-पान के तौर तरीके और रीती-रिवाज सीखता हैं। उसके मूल्यों एवं मान्यताओं से परिचित होता हैं। जिससे उसका मानसिक विकास होता है समाज मे रह कर वह नए-नए अनुभव प्राप्त करता है, तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समास्याओ के हल के लिए वह मंथन करता है और उनका हल खोजता हैं, कभी–कभी एक व्यक्ति पूरे समाज को बदल देता हैं।

राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती एवं स्वामी विवेकानंद ऐसे महापुरुष हुए जिन्होने सामाज की दशा एवं दिशा दोनो बदल दी। इनके अलावे भी ऐसे अनेक महापुरुष हुए जिन्होंने सामाजिक परिवर्तन किए हैं, और करते रहेगे। शिक्षा के अभाव में यह सब संभव नही है। सामाजिक क्रांति के लिए शिक्षा ही वह मूल तत्व हैं। शिक्षा हमें न केवल ज्ञानी बनाती है, बल्कि हमारे दुर्गुणों को भी दूर करती है, जब हम शिक्षा के माध्यम से नैतिक ज्ञान सीखते है, तो नैतिकता हमें सदगूणी बनाती है। एक सदगूणी व्यक्ति ही शूभता की पृष्टभूमि तैयार करते हैं। शूभता हमें संस्कारी बनाती हैं जिसमें हम यह सीखते हैं कि क्या अचछा हैं? क्या बूरा? क्या ग्राह्य है? क्या व्याज्य है। 'संस्कारी हम केवल शिक्षित हो लेने या किताबी ज्ञान अर्जन कर लेने मात्र से हमारे अंदर प्रस्फुटित नहीं होते, अपितु संस्कारवाम होने के लिए निरंतर प्रयास करते रहना पड़ता है। हमें हमारे अंदर के दुगुर्णो की नष्ट करते हुए सदगूण का वरण करते रहना होगा। अच्छी ज्ञान जो भी हम सीखें उसे अपना स्वाभाव बना लें। जब सदगुण हमारा स्वभाव बन जाएगा, तो दुर्गुण स्वयं विलूप्त हो जाएगा।

महात्मा बुद्ध ने कहा था- अप्प दीपो भव: अर्थात (स्वयं प्रकाश बनो)।

संस्कृति मनुष्य के भूत वर्तमान एवं भावी जीवन का अपने में पूर्ण विकसित रूप हैं। यह अपने-आप में एक अखण्ड तत्व हैं जिसका विभाजन नहीं किया जा सकता। किंतु हमारी भारतीय परम्परा में दो प्रकार की संस्कृति विकसित हुई है। ब्राह्मण परम्परा एवं श्रमण परम्परा।

ब्राह्मण परम्परा–इस परम्परा का मूल आधार वैदिक साहित्य रहा हैं जिसकी धूरी ब्रह्म हैं। वेदों में जो कुछ भी आदेश एवं उपदेश उपलब्ध हैं–यज्ञए पूजाए स्तुतिए ईश्वर सभी ब्रह्मण परम्परा के अंतर्गत हैं।

श्रमण परम्परा–इस परम्परा ने वेदों को प्रमाणित न मानकर अध्यात्मिक ज्ञान आत्मविजय एवं आत्म-साक्षात्कार पर विशेष बल दिया। श्रमण 'श्रम' धातु से बना शब्द है जिसका अर्थ है परिश्रम करना। श्रम शब्द के आधार पर यह बताया गया है कि व्यक्ति अपना विकास अपने ही परिश्रम द्वारा कर सकता है। मनुष्य अपने सुख-दु:ख उत्थान एवं पतन सभी के लिए वह स्वंय उत्तरदायी हैं। ब्राहम्ण परम्परा ने जहाँ मीमांसाए वेदान्तए वैशेषिक और न्याय दर्शन को जन्म दिया, वही श्रमण परम्परा ने चार्वाकए सांख्यए योग, बौद्ध तथा जैन परम्परा को जन्म दिया। हमारी अपनी भारतीय संस्कृति भी इतने रत्न-भंडार से भरी हुई है, जिसके तुलना अन्य किसी संस्कृतियो से नहीं की जा सकती।

आत्मनुभूति-हमारी भारतीय संस्कृति तथा सनातन घर्म का मूल भाव भी यही है–"वसुधौव कुटुम्बकम"। सारी दुनिया ही एक परिवार के सदस्य है। चर-अचर सभी प्राणी इसके अंग हैं। हमें इस बात का फक्र है कि मै भी इस भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म का ही अमिन्न अंग हुॅ। मै बहुत गौरवान्वित हुॅ, कि हमारी संस्कृति हमें "वसुधौव कुटुम्बकम" जैसी अवधारणाओ से हमें पोषित करती है। इन अवधारणाओं को सुनकर कर हमारे शरीर का रोम-रोम पुलकित हो उठता हैं, हमारे मन से भाव से तथा विचार से भी इसी प्रकार के भाव प्रस्फुटित हों मेरे विचार का यह स्वरूप बने तथा हम अपने आचरणा में "वसुधौव कुटुम्बकम" को आत्मसात कर लें। यही हमारी इच्छा भी है तथा दुढ़ संकल्प भी।

21वीं सदी में भारत और अमेरिका के संबंध

अरबिंद कुमार

एक्स. असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), रिसर्च एसोसिएट
गांधीयन स्टडी सेंटर, डीएवी कॉलेज, अबोहर, पंजाब

सारांश

भारत और अमेरिका के संबंध को आज नये पहलू के रूप में देखा जा रहा है। इन दोनों देशों के रिस्तो में लगातार बदलाव लेकर आने की कोशिश की जा रही है। आज से 72 वर्ष पहले जब भारत आज़ाद हुआ, तब दोनों देशों रिस्तो को शुरुआत भर थी। भारत में अभी साम्राज्यवादी से अलग नए लोकतंत्र का जन्म हुआ था। पहले थोड़ी खिट-पिट चलती रही। अमेरिका ने भी हम से ज्यादा हमारे पड़ोसी मुल्क को तवज्जो दी। भारत अपनी आर्थिक उन्नति के लिए खुद रस्ते तलाश रहा था। वह किसी भी नए झमेले में ना पड़ कर निरंतर विकास करना चाहता था। भारत के परमाणु परिक्षण के कारण अमेरिका के साथ रिस्तो में कड़वाट आ चुकी थी। जिसे दूर करने में दोनों देशों को काफ़ी समय लगा। पर आज समय में दोनों देशों के बीच मधुर संबंध बनाऐ रखना एक-दूसरे कि जरूरत बन चुकी है।

भारत व अमेरिका दोनों एक लोकतंत्रीय देश है। दोनों देशों में काफ़ी समानता पायी जाती है। एक तरफ अमेरिका का लोकतंत्र सबसे पुराना लोकतंत्र माना जाता है, वहीं भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रीय देश है। दोनों देशों का संविधान' हम..... लोग' शब्दों से शुरू होता है। दोनों ही देशों में लिखित रूप में संविधान पाया जाता है। 1947 में भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद से आज़ाद होकर अपने आपको विश्व में एक संम्पूर्ण प्रभुसत्तामत्क देश के रूप में स्थापित किया। आज़ाद होने के बाद भारत ने अपने आप को किसी भी सैनिक गुट में शामिल ना करके, गुटनिरपेक्षता कि निति अपनाई। पर भारत ने आपने आप को विश्व राजनीती से तथस्ट कभी नहीं रखा। अमेरिका व रूस जैसे शक्तिशाली देशों में अपनी पहचान कायम करना भारत के लिए कोई आसान कार्य नहीं था। भारत ने गुटनिरपेक्षता को अपनी विदेश निति का अंग बना लिया। जो भारत के अन्य देशों के साथ रिश्ते मजबूत करने में काफ़ी सहायक सिद्ध हुआ। आज़ादी के लिए शंघर्ष और दो विश्व युद्ध देखने के बाद भारत ने पंचशील के सिद्धांत को अपनाया। जो उस समय शांति पसंद देशों के लिए एक निर्णायिक कदम साबित हुआ। यहां अब भारत को अन्य देशों के साथ अपने संबंध अपनी विदेश-नीति और हित्तों को ध्यान में रख कर स्थापित करने थे। ताकि भारत के लिए अपनी आर्थिक, राजनितीक और सामाजिक उन्नति करने में कारगर साबित हो।

उस समय भारत ने अपने अमेरिका के साथ सबन्धों को सही व आगे सकारात्मक दिशा में ले जाने का प्रयास किया। आरम्भ में भारत व अमेरिका का संबन्ध सांझेदारी और सहयोग वाले नहीं रहे। भारत को आपने पड़ोसी देश पाकिस्तान से जब युद्ध लड़ना पड़ा, उस समय अमेरिका ने सीधे रूप से पाक का समर्थन किया था। पर भारत को साम्यवादी रूस का सहयोग प्राप्त हुआ था। इस युद्ध के बाद भी भारत व अमेरिका के सबन्धों में रणनीतीक सांझेदारी कायम करने में नाकामयाब रहे। पर सबंधों को सुधारने के प्रयत्न लगातार भारत अपनी तरफ से करता रहा। दोनों देशों के बीच यह आपसी खायी और ज्यादा बढ़ गयी, जब भारत ने भूमिगत परमाणु परीक्षण किये। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंद्रा गाँधी ने 18 मई 1974 के दिन राजस्थान के पोखरण में यह परमाणु परीक्षण किया था। इस परीक्षण को स्माइलिग बुद्धा के नाम से जाना गया। क्योंकी इस परीक्षण से खुद को एक परमाणु शक्ति के साथ-साथ परमाणु शक्ति का शांति के लिए प्रयोग का संदेश देना था। पुरे विश्व को भारत के इस कदम ने चोका दिया। अमेरिका ने भारत की इस निति का विरोध करते हुए, भारत पर कई प्रकार के आर्थिक प्रतिबंध थोप दिए। उस समय अमेरिका के राष्ट्रपति निक्शन

थे। पर इस समय भी पहले की तरह सोवियत रूस ने भारत का समर्थन किया। इसके बाद भारत ने 11 व 13 मई 1998 को दो और परमाणु परीक्षण पोखरण में लिए। इन दो परीक्षण के बाद भारत ने खुद को पूरी तरह से एक परमाणु शक्ति संम्पन राष्ट्र घोषित कर दिया भारत के इस कदम से अमेरिका और जापान जैसे देशों को निराशा हुई और अमेरिका ने भारत पर एक बार फिर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए। पर भारत का होंसला डगमगाया नहीं और निरंतर अपना विकास करता गया। पर इस समय भारत और अमेरिका के आपसी संबंध अच्छे नहीं रहे। दोनों देशों के रिश्तों में नया मोड़ तब आया जब 2006 में डॉ. मनमोहन सिह और अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश के साथ वाशिगटन में नागरिक परमाणु समझौते पर दस्तखत किये गए। यहां से भारत व अमेरिका के बीच एक नए युग की शुरुआत हुई। इस समझौते के बाद भारत को अब एक परमाणु शक्ति संपन्न देशों में गिना जाने लगा। इसके बाद न्यूक्लियर सप्लायर ग्रुप (एनएसजी) में भारत को छूट प्रदान को गयी। अब भारत परमाणु शक्ति से संबंधित चीज़ों का अन्य देशों के साथ लेन-देन कर सकता था। यह समझौता भारत व अमेरिका सबंधो के लिए एक ऐतिहासिक समझौता साबित हुआ। इसके बाद दोनों देश मिल कर व्यापारिक, राजनितिक, रणनीतीक भागेदारी, सैनिक व आंतकवादी गतिविद्धियों से निपटने के लिए एक साथ मिलकर कार्य करने के प्रयास कर रहे है और काफ़ी हद तक दोनों देश इसमें कामयाब भी रहे है।

अगर हम शुरुआती समय से लेकर अब तक अमेरिकी राष्ट्रपति के भारत यात्रा कि बात करे तो भारत की आज़ादी के बाद ड्वाइट आइजनहावर सन् 1959 में भारत यात्रा पर आये। पर इस यात्रा पर अमेरिका का दिल पाक के लिए धड़कता नज़र आया। उसके बाद 1969 में रिचर्ड निक्सन व 1978 में जिमी कार्टर भारत आये। पोखरण के बाद हालत सही करने के लिए यह यात्रा की गयी थी। पर इस यात्रा के ज्यादा अच्छे नतीजे सामने नहीं आये। सन् 2000 में राष्ट्रपति बिल किलटन भारत आये। इन्होंने सभी गीले सिक्वे दूर करने का प्रयास करते हुए भारत पर लगे आर्थिक प्रतिबंध हटा दिए गए। भारत व अमेरिका के ऐतिहासिक समझौता करने वाले जॉर्ज डब्ल्यू बुश अपने कार्यकाल में सिर्फ एक बार भारत यात्रा पर आये पर इनके कारण ही भारत के साथ रिश्तों को गति प्राप्त हुई। अमेरिका के एक स्वेत और अधिक बुद्धिमान राष्ट्रपत्ति माने जाने वाले बराक ओबामा अपने दोनों कार्यकाल में भारत कि यात्रा पर आये। अपनी हर यात्रा पर वह अलग-अलग प्रधानमंत्रियो से मिले। इन्होंने भारत की सयुंक्त राष्ट्र संघ में स्थायी सीट के लिए भी स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया। इनके कार्येकाल में ही दोनों देशों के बीच 1 लाख करोड़ के समझौते हुए। और दोनों देशों के मध्य सकारात्मक संबन्धों का जन्म हुआ।

भारत और अमेरिका के रिश्तों में आते बदलावों को हम पिछले वर्ष अमेरिका की सरजमीं पर 'हाउडी मोदी' कार्येक्रम में देख चुके है। अमेरिका के ह्यूस्टन प्रांत में 22 सितंबर 2019 को मोदी के साथ राष्ट्रपत्ति डोनाल्ड ट्रंप ने मंच सांझा किया। वहां के भारतीय-अमेरिकी लोगों को संबोधित किया। पर एक वो समय था जब किसी भारतीय प्रधानमंत्री को सफेद घर (वाइट हाउस) में मिलने के लिए इंतज़ार करना पड़ा था। और एक आज के समय में भारत ने खुद को इस कदर काबिल बना लिया कि वो अमरीका के साथ मंच साँझा कर सके। यह भारत के लगातार प्रयासों और अपनी मजबूत विदेश निति का ही परिणाम है। अमेरिका भी अब समज चूका है कि भारत एक विश्व महाशक्ति बनने की तरफ बढ़ रहा है। एशिया में लगातार भारत की ताकत बढ़ रही है। सीधे तौर पर भारत चीन और जापान जैसे देशों कि श्रेणी में आ खड़ा हुआ है। इस ह्यूस्टन रैली से भारत-अमेरिका ने पुरे विश्व को यह संदेश दिया है कि यह दो एक विकसित और दूसरा विकासशील देश (बहुत जल्द विकसित) अब साथ मिलकर हर क्षेत्र में कार्य करेंगे। चाहे वो सैनिक– गैरसैनिक, आर्थिक, व्यापारिक या फिर तकनीकी भागीदारी हो, हर प्रकार के सबंधों को मजबूत करने का लक्ष्य होगा।

अब मौका था राष्ट्रपत्ति डोनाल्ड ट्रंप का भारत में भंवयह स्वागत का। जहां ह्यूस्टन में 50 हज़ार लोग शामिल हुए थे, वही भारत में ट्रंप के स्वागत के लिए एक लाख से ज्यादा लोग शामिल हुए। 25 फरवरी 2020 के दिन राष्ट्रपत्ति ट्रंप, पत्नी मेलानिया ट्रंप, बेटी इवांका ट्रंप और उनके पति जेरेड कुशनर पुरे परिवार सहित भारत पहुंचे। जहां अहमदाबाद के मोटेरा स्टेडियम में उनका बहुत बड़ी भिड़ के द्वारा स्वागत हुआ। यह शायद विश्व इतिहास में पहली बार हो रहा था जब किसी दूसरे मुल्क के राष्ट्रपत्ति के लिए इतनी संख्या में लोग आये हो। यहां मोदी और ट्रंप ने बारी–बरी लोगों को संबोधित किया। ट्रंप ने अपने भाषण में 10 बार मोदी, 41 बार इंडिया, 22 बार इंडियन शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने प्रधानमंत्री मोदी की तारीफ के साथ-साथ भारत के एक आर्थिक महाशक्ति बनने की भी तारीफ की। स्वामी विवेकानंद से लेकर बॉलीवुड तक का जिक्र किया। ट्रंप ने जहां इस्लामी आंतकवाद का जिक्र कर भारत के साथ मिलके इसे खत्म करने के बारे में भी कहा। अब की बार पाक का नाम लेकर उसको चेतावनी देते हुए,

सीमा-पार आंतकवाद के खिलाफ ठोस कदम उठाने के लिए भी कहा। दूसरी तरफ ट्रंप ने इमरान को अपना दोस्त बताया पर आंतकवाद के मसले पर भारत पाक को बेनकाब करने में सफल रहा। आंतकवाद और व्यापार कभी भी एक साथ नहीं चल सकते। कश्मीर को भारत का एक अंदरूनी मसला बताया पर यह भी कहा कि अगर दोनों देश चाहें तो वह मध्यस्ता करने के लिए तैयार है। नागरिकता संशोधन अधिनियम पर भी ट्रंप ने कुछ नहीं बोला। आज तक किसी भी अमेरिकी राष्ट्रपत्ति का ऐसा रवैया कभी भी देखने को नहीं मिला। पर यह बदलता हुआ रवैया कहि ना कहि भारत के बढ़ते हुए कद को दर्शाती है।

अगर हम इस निजी दौरे के परिणामों कि बात करे तो भारत के साथ 3 बिलियन डालर यानि कि 22 हज़ार करोड़ का रक्षा समझौता हुआ। भारत, अमेरिका से 24 एमएच-60 रोमियों सी-हॉक हेलीकॉप्टर और 6 एएच-64 ई अपाचे हेलीकॉप्टर भी ख़रीदेगा। भारत व अमेरिका के बीच रक्षा समझौते और व्यापार को बढ़ाने पर बात हुई। भारत इस समय अमेरिका का सब से बड़ा व्यापारिक सांझेदार है। अमेरिका ने भारत में 5 जी नेटवर्क सुरक्षित बनाने पर बात की। ट्रंप ने भारतीय कम्पनियों के सीग्रओ के साथ बैठक करने के बाद भविष्य में बड़ी ट्रेड डील होने कि संभावना जताई। अफगानिस्तान में तालिबान और अमेरिका के बीच शांति स्थापित करने पर भी मोदी और ट्रंप के बीच बातचीत हुई।

इस पुरे दौरे की अगर समीक्षा की जाये तो हम यही कह सकते है कि अमेरिका अब भारत को एशिया के साथ-साथ पुरे विश्व में एक बड़ी आर्थिक और सैनिक ताकत के रूप में देख रहा है। इस लिए अमेरिका का नज़रिया भारत के प्रति बदला-बदला सा नज़र आ रहा है। अमेरिका खुद आंतकवाद की त्रासदी को झेल चूका है। एक दूसरा बड़ा कारण यह भी है कि अमेरिका और चीन के बीच ट्रेड वॉर चल रहा है। तो अमेरिका एशिया में चीन के सामने भारत को खड़ा कर, उसकी ताकत को एक दायरे में रखना चाहता है। क्योंकि आने वाले समय कि भारत एशिया में सबसे बड़ी ताकत साबित हो सकती है। इस उभरते हुए नए रिश्ते से भारत के साथ-साथ अमेरिका को भी फायदा होगा। दोनों देश मिलकर आर्थिक और सैनिक शक्ति के रूप में तेज़ी से आगे बढ़ सकते है।

निष्कर्ष

हम इस नई जय और वीरू (ट्रंप और मोदी) की जोड़ी से यही आशा कर सकते है कि यह निरंतर इसी प्रकार इतनी तेज़ी और पूरी मजबूती से आगे बढ़ेगी। इसे और आगे लेकर जाने के लिए इस वर्ष अमेरिका में होने वाले राष्ट्रपत्ति चुनावों के नतीजों पर भी निर्भर करेगा। यह दोनों देश मिल कर सैनिक-गैरसैनिक और आर्थिक ताकत को और मजबूती दे सकते है। भारत अपनी विदेशी मुद्रा के भंडार को और बड़ा कर सकता है। विश्व में भारत कि साख़ और अधिक ऊँची होगी। जैसे पूरा विश्व भारत को आने वाले समय कि एक बड़ी महाशक्ति के तौर पर देख रहा है, ऐसे ही भारत की आवाम, मुल्क में बड़े आर्थिक और सकारात्मक राजनितिक सुधार होने की आशा रखती है।

संदर्भ सूची

- https://www.bhaskar.com/international/news/defence-deal-us-approves-sale-of-13-naval-guns-worth-1-billion-to-india-01691771.html
- भारतीय प्रधानमंत्री अधिकारिक वेबसाइट (https://www-pmindia-gov-in)
- राजनितिक सिद्धांत और भारतीय राजनितिक प्रणाली-वी.के. पूरी, सुनीता पूरी, पृ 231-232, पब्लिकेशन मल्होत्रा बुक डिपू
- अंतर्राष्ट्रीय संबंध-वी.एन. खन्ना, पब्लिकेशन विकास पब्लिशिग हाउस
- अंतर्राष्ट्रीय संबंध-तपन बिश्वाल, पब्लिकेशन दी ओरिएंट ब्लैकस्वान
- ,,ƒवी संताब्दी के अंतर्राष्ट्रीय संबंध-पुषोप पंत, पब्लिकेशन मेक ग्राव हिल एजुकेशन
- अंतर्राष्ट्रीय संबंध-पवनीत सिह, पब्लिकेशन मेक ग्रॅव्हिलल टी पी
- अंतर्राष्ट्रीय राजनीती-डॉ. बी.एल. फड़िया पब्लिकेशन साहित्य भवन
- अंतर्राष्ट्रीय संबंध-यु.आर. घई
- https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/India_US_brief.pdf

सिवान जिला के अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान का प्रभावः एक भौगोलिक अध्ययन

रमेश कुमार रजक

शोधर्थी, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

परिचय

"अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान का प्रभावः सिवान जिला का एक भौगोलिक अध्ययन'' शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध प्रबंध मानव भूगोल के क्षेत्र में एक विशिष्ट एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इस शोध अध्ययन में सिवान जिला में अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्वशिक्षा अभियान के प्रभावों के फलस्वरूप शैक्षिक स्तर में आए परिवर्त्तन का विश्लेषण किया गया हैं। इस शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में प्रस्तुत शोध विषय का परिचय, शोध के उद्देश्य, शोध परिकल्पना, शोध विधि तथा पूर्व के अध्ययन की समीक्षा के साथ ही प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है।

सर्व शिक्षा अभियान की योजना प्ररम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभिकरण के निमित्त मिशन पद्धति अपनाएँ जाने के सम्बन्ध में अक्टूबर 1998 में आयोजित राज्य शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन की सिफारिशों का परिणाम है। सर्वशिक्षा अभियान की योजना को मंत्रिमंडल द्वारा 16 नवम्बर 2000 को हुई बैठक में अनुमोदित किया गया। सर्वशिक्षा अभियान भारत सरकार का प्रमुख कार्यक्रम है जिसकी शुरूआत तात्कालीन प्रधानमंत्री भारत रत्न स्वण अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा वर्ष 2001 में एक निश्चित समयावधि के तरीके से प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिकरण प्राप्त करने के लिए किया गया। इसके अन्तर्गत 6-14 वर्ष तक के बच्चो को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान को मौलिक अधिकार बनाया गया है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शिक्षा में गुणवत्ता लाना तथा संतोषजनक गुणवत्ता वाली प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिकरण को प्राप्त करना है।

सिवान जिला में सर्व शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन के फलस्वरूप यहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण परिवर्त्तन देखने को मिला है। इसके अन्तर्गत वर्ष 2004 में सिवान जिला के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भिक शिक्षा के कई केन्द्र खोले गए, जिसके तहत सभी के लिए शिक्षा के साथ राज्य सरकार की सहायता से गरीब बच्चों में मध्यान्ह भोजन योजना के चलते साक्षरता दर तथा नामांकन वृद्धि में उल्लेखनीय प्रगति देखने को मिला है। 2011 के जनगणना के अनुसार सिवान में अनुसूचित जाति की कुल आबादी 3 लाख 86 हजार 685 है, जहाँ अनुसूचित जाति का साक्षरता दर 49 प्रतिशत है।

इस शोध अध्ययन के तहत सिवान जिला के 19 प्रखण्डों के शहरी और ग्रामीण प्रतिदर्शो को कवर किया गया है। शिक्षा की पहुँच की दृष्टि से इस शोध अध्ययन से बहुत कुछ उपलब्धि देखने को मिला है। ग्रमीण बस्तियो के 78 प्रतिशत से अधिक प्रतिदशों के आधार पर 3 किलोमीटर में बुनियादी स्कूलों पर पहुँच का सार्वजनिकरण हो गया है, जबकि 83 प्रतिशतगंदी बस्तियों के बच्चों के लिए 1 कि.मी. के पड़ोस में स्कूल की सुविधा सुलभ है। जिले से लिए गए प्रतिदर्शो में 2003 में पंजीकरण 69 प्रतिशत थे, जो 2007 में 83 प्रतिशत हो गए। गन्दी बस्तियों के स्कूलों के प्रतिदर्शो के आधार पर इस अवधि में पंजीकरण में 180 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अध्ययन में यह स्वीकारात्मक तस्वीर भी उभरकर आई है जो सामाजिक और जेंडर समानता के बारे में है। यह

भी देखा गया है कि जेंडर असमानता के बाबजूद भी लड़कियो के पंजीकरण में वृद्धि हुई है और ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रतिदशों में जेंडर असानता अनुपात मे 0.89 और शहरी गन्दी बस्तियों के स्कूलों में 0.82 का अनुपात देखा गया है। सिवानजिला के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अध्ययन के अन्तर्गत लिए गए स्कूलों में जेंडर समानता संबंधी पंजीकरण प्राप्त कर लिया गया है। अन्यथा रूप से योग्य बनाए बच्चों के पंजीकरण में भी प्रभावी वृद्धि देखी गई और उनकी हिस्सेदारी में कुल पंजीकरण में 0.43 प्रतिशत की और ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिवर्ष में 1.17 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तावित शोध कार्य के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है:-

सिवान में अनुसूचित जाति की जनसंख्या पर सर्व शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन के फलस्वरूप आए शैक्षिक स्तर मे परिवर्त्तन का अध्ययन करना।

1. सिवान में अनुसूचित जाति के बच्चो ड्राप आउट का विश्लेषण करना।
2. सिवान में अनुसूचित जाति के बच्चों के नामाकंन में वृद्धि का अध्ययन करना।
3. सिवान में अनुसूचित जाति के शैक्षिक विकास में आने वाले बाधाक तत्वों का पता लगाना।
4. सिवान में अनुसूचित जाति के शैक्षिक उन्नति के लिए सुझाव देना।

परिकल्पना

परिकल्पना शोध विषय के बारे मे एक प्रयोगात्मक सामान्यीकरण है, जिसकी वैद्यता की जाँच शोध कार्य के द्वारा की जाती है। यह विषय के वास्तविक ज्ञान पर आधारित है और इसकी सच्चाई का पता लगाने के लिए की जाती है।

प्रस्तावित शोध प्रबंध के द्वारा निम्नलिखित संकल्पनाओं की सत्यता की जाँच की जाएगी–

1. सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के क्रियान्वयन अनुसूचित जाति के के नामांकन में वृद्धि हुई है।
2. सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के क्रियान्वयन के फलस्वरूप अनुसूचित जाति के बच्चों के ड्राप आउट में कमी आई है।
3. सिवान में अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम के क्रियान्वयन के फलस्वरूप शिक्षा के स्तर में परिवर्त्तन हुआ है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तावित शोध प्रबंध में बिहार के सिवान जिला में अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान का प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन के विश्लेषण हेतु सिवान जिला को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयन किया गया है। जो 2219 किमी^{2} क्षेत्रफल पर विस्तृत है, यह जिला 19 प्रखण्डों में विभक्त है। यहाँ ही अनूसूचित जाति की आबादी 386685 है एवं कुल आबादी 3330464 है जहाँ भरतीय जनगणना के अनुसार साक्षरता दर 69.45 प्रतिशत है।

भौगोलिक पृष्ठभूमि

सिवान जिला 25°54' उत्तरी अक्षांश से 26°23' उत्तरी अक्षांश तथा 84°1' पूर्वी देशान्तर से 84°47' पूर्वी देशान्तर के बीच 2219 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में फैला हुआ है। दक्षिण में घाघरा नदी से निर्मित प्राकृतिक सीमा के अतिरिक्त उत्तर-पूर्व एवं पश्चिम से यह एक भू-बंद जिला हैं, उत्तर एवं पूरब से इसकी सीमायें बिहार राज्य की क्रमश: गोपालगंज एवं सारण जिलों से मिलती है जबकि पश्चिम में इसकी सीमा उत्तर प्रदेश के देवरिया जिला से चिह्न्त है, उल्लेखनीय है कि पश्चिमोत्तर बिहार में सीमावर्ती उत्तर प्रदेश से मिलती इसकी अवस्थिति इसके अर्थतंत्र और संस्कृति को संक्रमणात्मक स्वरूप प्रदान करती है। जिला का संपूर्ण धारातल जलोढ़ीय मैदान का है। राज्य स्तर पर जलप्रवाह का घनत्व भी जिला की तुलना में अधिक है, बिहार के पूर्वी भाग में जहां नदियों

का जाल सघन है सिवान जिला के केवल दक्षिणी सीमावर्ती भाग में घाघरा नदी प्रवाहित होती है जिला के पश्चिमी भाग से मात्र दाहा और झरही जैसे अंतर्स्तरीय प्रवाह वाली नदियां विद्यमान हैं।

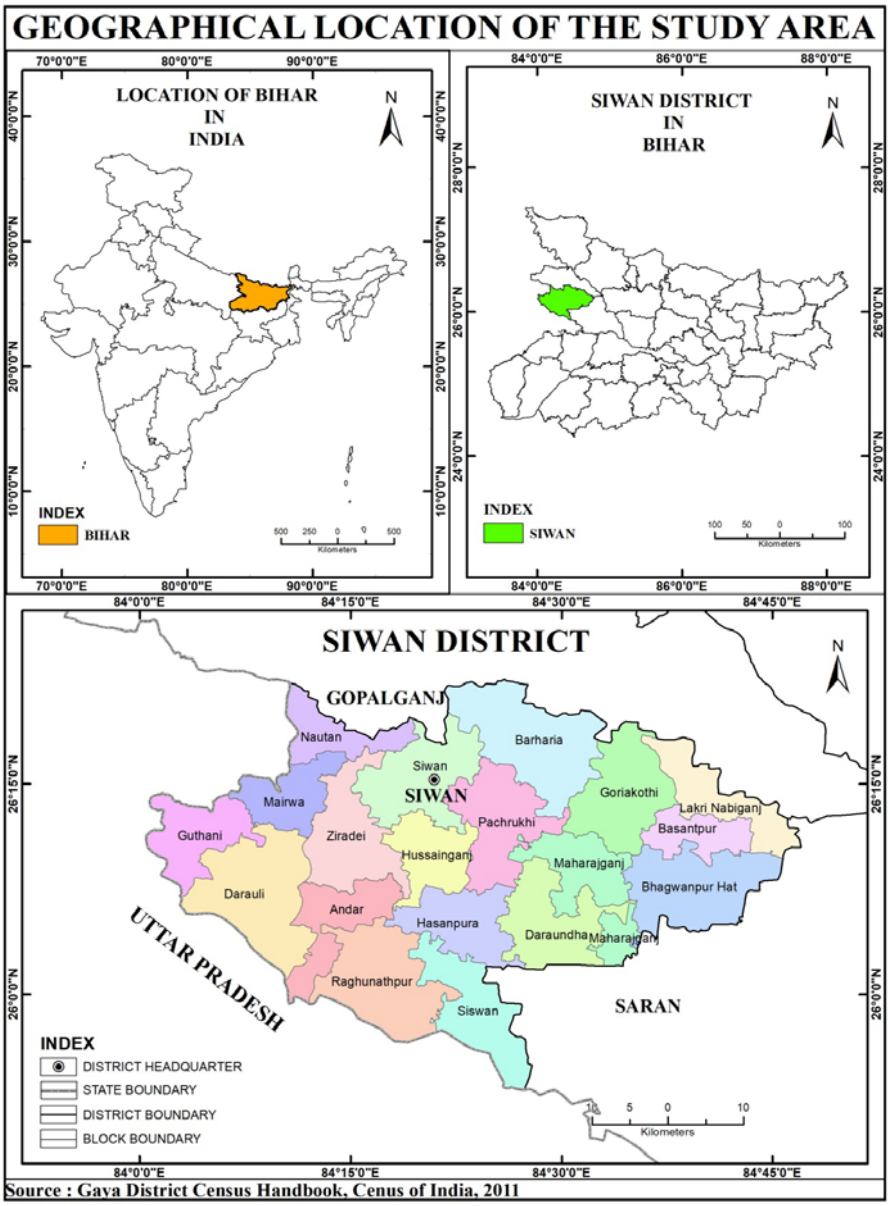

आर्थिक पृष्ठभूमि

सिवान जिले की अर्थव्यवस्था में लगभग 85 प्रतिशत आबादी अपनी आजीविका के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर करती है। कृषि से सम्बन्धित गतिविधियों में व्यापार और लघु व्यवसाय, सेवा, खुदरा व्यापार आदि शामिल है। अन्य आर्थिक गतिविधियों में डेयरी, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन किसानों को रोजगार/आय के एक अच्छे अवसर के रूप में उभर रहा है।

सिवान जिला 2219 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैला है, जो सम्पूर्ण देश में अपनी मिट्ठी की उर्वरता और रवी फसलों समेत तम्बाकू की उत्कृष्ता के लिए प्रसिद्ध है। गंगा नदी के किनारे बसे इस जिलें में कुछ चौर भी है। यहाँ की मिट्ठी में रेत का मिश्रण है।

जनसंख्या का वितरण एवं वृद्धि

2011 की जनगणना के अनुसार सिवान जिले की कुल जनसंख्या 3330464 थीं, जिसमें 1,675,090 पुरुष एवं 1,655,374 महिलाएं है, इसमें 11.61 प्रतिशत अनुसूचित जाति एवं 2.61 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति है। मानव विकास सूचकांक में यह जिला काफी नीचे है। जनसंख्या वृद्धि दर 1.89 प्रतिशत वार्षिक, घनत्व 1501 प्रति वर्ग किलोमीटर और महिला पुरुष का अनुपात 988/1000 था-दस वर्षीय जनसंख्या वृद्धि दर 22.70 प्रतिशत था।

ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या–(2001-2011), दशकीय वृद्धि दर

	कुल क्षेत्र	ग्रामीण व्यक्ति	नगरीय पुरुष	कुल महिला	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय
सिवान	22.70	25.57	19.13	26.54	26.90	17.92	24.00	24.13	20.50
बिहार राज्य	25.07	23.90	32.11	25.30	24.33	33.40	24.81	23.43	37.07

स्त्रोतः भारत की जनगणना, 2001 तथा 2011.

तालिका-2 में बिहार राज्य तथा सिवान जिला के ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या वृद्धि-दर 2001-2011 दशक के लिए दर्शाया गया है। 2001-2011 के दशक में दशकीय वृद्धि-दर बिहार राज्य के लिए 25.07 था जबकि सिवान जिला के लिए 22.70 था, ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर राज्य औसत से अधिक था जबकि इस जिले में नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर राज्य औसत 32.11 से काफी कम 19.12 पाया गया, जो इस जिले में मंद नगरीकण की प्रवृति की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। पुरुष तथा महिलओं के नगरीकरण की प्रवृति भी इसी प्रकार रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि दर महिला तथा पुरुष दोनों वर्गों में इस जिले के लिए करीब-करीब समान ही रहा है जबकि नगरीय क्षेत्रों में पुरुषों के मुकाबले सिवान जिला में महिलाओं की जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई अतएव यह स्पष्ट होता है कि सिवान जिला में महिलाओं में नगरीकरण की पवृत्ति बढ़ी है, साथ ही सम्पूर्ण बिहार में भी महिला वर्ग में शहरों में रहने की अभिलाषा अधिक सुदृढ़ हुई है।

अनुसूचित जाति के जनसंख्या की वर्तमान शैक्षिक स्थिति

शिक्षा मानव विकास के प्रमुख आधार स्तम्भों में से एक है। शिक्षा के द्वारा ही मानव का सर्वांगीण विकास होता है तथा मानव के सर्वांगीण विकास के द्वारा ही सामज एवं राष्ट्र का विकास होता है। 2011 के जनगणना के अनुसार सिवान में अनुसूचित जाति की कुल आबादी 3 लाख 86 हजार 685 है, जहाँ अनुसूचित जाति का साक्षरता दर 49 प्रतिशत है।

विभिन्न जनांकिकीय श्रेणियों के बीच में 1991-2011 के दौरान साक्षरता उपलब्धि, जिला सिवान (प्रतिशत) में

श्रेणियाँ	1991	2001	2011
अनुसूचित जाति (स्त्री)	19.5	37.6	59.3
गैर अनुसूचित जाति (स्त्री)	35.4	50.2	57.8
अनुसूचित जाति (पुरुष)	46.0	53.7	64.7
गैर अनुसूचित जाति (पुरुष)	42.3	57.5	62.9
कुल साक्षरता	37.9	47.5	63.8

स्त्रोतः भारत की जनगणना 1991-2011

उपर के आकड़ों से स्पष्ट होता है कि सिवान जिला में विभिन्न जनांकिकीय श्रेणियों की बीच साक्षरता दर में वृद्धि के फलस्वरूप वर्ष 1991 से 2011 में साक्षरता दर में उपलब्धि का मुख्य कारण सरकार द्वारा चलाएँ जा रहे विभिन्न प्रकार के समाजिक आर्थिक विकास के क्रार्यक्रम तथा सरकार द्वारा शैक्षिक विकास को बढ़ावा देने के लिए चलाए गए कार्यक्रम का भूमिका महत्वपूर्ण है।

सर्व शिक्षा अभियान का प्रभाव

मुख्य रूप से सुविधा वंचित समूह में- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के व्यक्ति आते हैं। ये आर्थिक, राजनितिक तथा सामाजिक से सदियों से शोषित तथा उत्पीड़ित रहे है। सुविधा प्राप्त समूहों की तुलना में उनकी स्थिति बड़ी दयनीय रही है। उत्तरवैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक उनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थित बड़ी दयनीय रही है। इसीलिए स्वतंत्रता के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार ने अनूसूचित जाति की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए अनेक कार्यक्रम बनाए उनकी सामाजिक दशा सुधारने के लिए भारतीय संविधान में शोषण के विरूद्ध आरक्षण का प्रावधान किया गया। इन समूहों के बालक-बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय खोले गए जहाँ उन्हें मुफ्त भोजन, वस्त्र पुस्तकें तथा अन्य शैक्षणिक सुविधाएँ उपलब्ध हो रही है।

अनुसूचित जाति के साक्षरता दर में वृद्धि

शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में बिहार में हाल के दिनों में उल्लेखनीय उपलब्धि दर्ज की गयी है। बिहार में साक्षरता दर 2001 में 47.0 प्रतिशत थी जो 2011 मे बढ़कर 63.8 प्रतिशत हो गयी। एक दशक में यह बढ़ोतरी 16.8 प्रतिशत की है। एक दशक में यह बढ़ातरी देश के सभी राज्यों के बीच सर्वाधिक है। इस दिशा में निम्नलिखित तथ्ये उल्लेखनीय है–

1. वर्ष 2001 में पुरुष साक्षरता दर 60.3 प्रतिशत थी और महिला साक्षरता 33.6 प्रतिशत। इनके बीच 26.7 प्रतिशत का अंतर था। वर्ष 2011 में पुरुष साक्षरता दर 73.4 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर 53.3 प्रतिशत हो गयी। लैंगिक विषमता घटकर 20.1 प्रतिशत हो गयी।
2. वर्ष 2002-03 से 2009.410 के बीच प्रारंभिक कक्षाओं में नामांकन 8.2 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ा।
3. 2002-03 से 2009-10 के बीच उच्च प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन 22.1 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है।
4. उच्च शिक्षा के मामले में अनुसूचित जाति के बच्चों का नामांकन 22.1 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है जो सामान्य तबके की अपेक्षा अधिक है।
5. छात्राओं के नामांकन की गति ने तेजी पकड़ रखी है। उच्च प्राथमिक कक्षाओं में छात्रों का नामांकन 17.9 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ रहा है जबकि छात्राओं के नामांकन में 23.7 प्रतिशत की वार्षिक बढ़ोतरी दर्ज हो रही है।
6. सिवान जिला में साक्षरता दर में वृद्धि आगे वर्णित तालिका से स्पष्टत: ज्ञात होता है।

सिवान जिला साक्षरता दर

	कुल साक्षरता	महिला साक्षरता
1991	36.4	21.2
2001	51.65	36.88
2011	69.45	58.66

स्त्रोत: भारत की जनगणना, 1991, 2001 और 2011

अनुसूचित जाति के बच्चों का नामांकन दर, जिला-सिवान

प्राथमिक स्तर–कक्षा 1-5

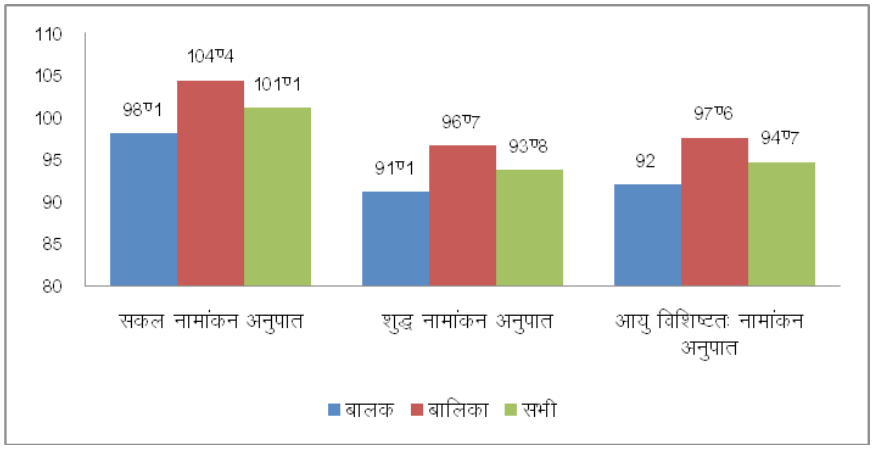

उच्च प्राथमिक स्तर (6-8)

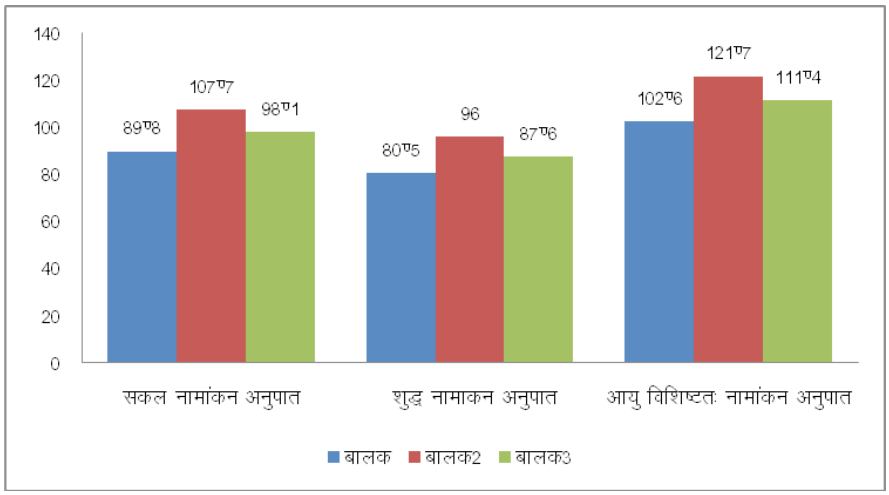

तालिका में दर्शाए गए आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2015-16 में सिवान जिला में अनुसूचित जाति के कुल 147740 विद्याार्थियों का नामांकन सरकारी विद्यालियों में प्राथमिक स्तर पर हुआ जबकि यह आँकड़ा 2002-03 में 121641 था। इस शैक्षणिक सत्र में सिवान जिला के सरकारी विद्यालयों के प्राथमिक स्तर पर 74303 छात्र तथा 73437 छात्राओं का नामांकन हुए। यह संतोषजनक स्थिति है कि अनुसूचित जाति नामांकित छात्र छात्राओं की संख्या करीब-करीब बराबर रह जबकि 2002-03 में यह 2 : 1 था। यह स्थिति सरकार के द्वारा सर्व शिक्षा अभियान के तहत चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों के प्रतिफल के रूप में सामने आया है। उच्च प्राथमिक स्तर पर भी सिवान जिला के सरकारी विद्यालयों में 590489 छात्र तथा 572600 छात्राओं का नामांकन 2015-16 में हुआ। यह भी बालक तथा बालिकाओ के नामांकन दर के समरूपता को दर्शाता है।

ड्रॉप आउट में कमी

शिक्षा राज्य में पिछले छह वर्षो में छठी, नौवीं व 12वीं कक्षा में के पहले स्कूल छोड़नेवाले बच्चों की संख्या ड्रॉप आउट रेट में निरंतर गिरावट दर्ज की गयी है। पर, अब भी चुनौति है। प्राथमिक विद्यालय में नामांकित आधो से अधिक बच्चे माध्यमिक कक्षा

में जाने से पहले स्कूल छोड़ देते है। वर्ष 2012-13 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 2006-07 में 62 फीसदी व 2010-07 में 62 फीसदी व 2010-11 में 55 फीसदी बच्चे नौंवी कक्षा में जाने के पहले स्कूल जाना छोड़ देते थे।[12] छह सालों में माध्यमिक स्तर में छीजन दर से सात फीसदी की कमी आयी है। कमोवेश यही स्थिति प्राथमिक, मध्य व उच्च माध्यमिक शिक्षा छीजन दर की है।

बिहार राज्य में प्राथमिक शिक्षा में ड्रॉप आउट रेट

वर्ष	ड्रॉप आउट
2006-07	46.1
2007-08	45.4
2008-09	45
2009-10	42.5
2010-11	**39.27**

स्त्रोतः बिहार शिक्षा परियोजना प्रतिवेदन, 2011

सिवान जिला में प्राथमिक शिक्षा में ड्रॉप आउट रेट

वर्ष	ड्रॉप आउट प्रतिशत
2006-07	42.9
2007-08	43.3
2008-09	39.0
2009-10	41.8
2010-11	37.9

स्त्रोतः बिहार शिक्षा परियोजना कार्यालय, जिला सिवान

उपर के तालिका के बिहार राज्य में प्राथमिक शिक्षा ड्राप आउट रेट तथा सिवान जिला में प्राथमिक शिक्षा में ड्रॉप आउट रेट के विश्लेषणों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2006-07 में जहाँ बिहार में प्राथमिक शिक्षा में ड्रॉपआउट दर 46.1 प्रतिशत था वही सिवान जिला में प्राथमिक शिक्षा के ड्रापआउट दर 2.9 प्रतिशत हैं। यही आकड़ाँ क्रमशः घटता जा रहा है। अतः स्पष्ट है सर्वशिक्षा अभियान के क्रियान्वनयन के फलस्वरूप ड्रापआउट में कमी आई है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सूचक है। शिक्षा समाज में एक एकीकृत बल के रूप में कार्य करती है जो समाजिक एकजुटतो एवं राष्ट्रीय पहचान का बढ़ावा देने वाले मूल्य प्रदान करती है, जिससे समाजिक, आर्थिक और राजीतिक परिवर्तन तथा समाज में समानता द्वारा कोई राष्ट्र उन्नति करता है।

"अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान का प्रभवः सिवान जिला का एक भौगोलिक अध्ययन" शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध प्रबंध मानव भूगोल मे क्षेत्र में एक विशिष्ट एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन हैं। इस शोध प्रबंध में सिवान जिला में अनुसूचित जाति के शैक्षिक स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान के प्रभावों के फलस्वरूप शैक्षिक स्तर में आए परिवर्तन का विश्लेषण

किया गया है, जिसके फलस्वरूप सिवान में अनुसूचित जाति के बच्चों के नामांकन में वृद्धि, साक्षरता दर में वृद्धि ड्राप आउट में परिवर्त्तन देखा गया है।

मानव भूगोल का मूल तत्व शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। यह मानव को सुसंस्कृत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसके द्वारा मुनष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास किया जाता है और उसे सभ्य सुसंस्कृत एंव योग्य नागरिक बनाया जाता है। शिक्षा किसी भी देश राष्ट्र व समाज का प्रतिविम्ब होती है। नई शिक्षा नीति, 2019 में कहा गया है कि "किसी समाज की संस्कृति व सामाजिक दृष्टि का पता उस समाज में शिक्षा के स्तर से लगाया जाता है।" राष्ट्र के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए राज्य की शासन व्यवस्था, क्रियाशीलता, सक्षमता तथा उत्तरदायित्व की भावना को जन्म देने के लिए शिक्षा ही आगे बढ़ती है। किसी भी राष्ट्र के पुन: निर्माण के लिए शिक्षा सर्वोत्तम साधन है। अत: राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा आवश्यक है तथा शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी व्यक्तियों को समान रूप से मिलना चाहिए। सब व्यक्तियों की शिक्षा अथा जनसाधारण की शिक्षा ही राष्ट्रीय प्रगति का मूल आधार है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है कि "मेरे विचार से जनसाधारण की शिक्षा की अवहेलना राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन के कारणों में से एक है।"

उपर्युक्त तथ्यों के विवरणों एवं विश्लेषणें से साफ तौर पर स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति के शैक्षक विकास की स्थिति स्वतंत्रता के बाद धानात्मक रही है तथा राष्ट्र की प्रगति में इन्हे समाज के मुख्य धारा में जोड़ने के लिए आप भी सरकार द्वारा इन पर ध्यान देने की जरूरत है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे कई कार्यक्रम ऐसे है जो जानकारी के अभाव के कारण सरकारी योजनाओ का लाभ नहीं ले पाते है इसके लिए आवश्यक है कि इन्हे जागरूक किया जाय तथा इनके विकास के लए जो सरकारी योजना/नीतियाँ है उसका लाभ अनुसूचित जाति अपने शैक्षिक विकास क लिए कर सके तभी इनका समाजिक– आर्थिक विकास सम्भव हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

* आनंद, सी.एल., एट ऑल : द टीचर एण्ड इजूकेशन इन इंडियन सोसायटी, एन. सी. ई. आर. टी, नई दिल्ली, 1983
* अग्रवाल, यश : एन एससेमेंट ऑफ ट्रेंडस इन एक्सेस एण्ड रिटेन्सन, नीपा, नई दिल्ली, 2020
* भारत सरकार : सेंसस ऑफ इंडिया; मेनेजर ऑफ पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991
* भारत सरकार : सबसे लिए शिक्षा, मानव विकास संसाधन मंत्रालय, नई दिल्ली, 2000
* भारत सरकार: प्रोग्राम ऑफ एक्शन: ए पॉलिसी पर्सपेक्टिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, अगस्त 1995
* राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF), (2005) एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
* बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा (BCF), (2006) एन.सी.ई.आर.टी., पटना
* एन.सी.ई.आर.टी., अनूसुचित जाति के शैक्षिक विकास की प्रशिक्षित सामग्री सन्दर्भ ग्रंथ व्यक्ति, नई दिल्ली, (1993)
* वार्षिक रिपोर्ट कार्ड : शिक्षा विभाग, बिहार सरकार (2016)
* वार्षिक रिपोर्ट कार्ड : अनुसूचित जाति/जनजाति कल्याण विभाग, बिहार, पटना 2015
* वार्षि रिपोर्ट कार्ड : बिहार शिक्षा परियोजना कार्यालय, सिवान 2018
* सिन्हा, बी. एन. पी एवं नाजिम, मो0 बिहार का भूगोल, 2012
* वार्षिक रिपोर्ट कार्ड, शिक्षा विभाग, बिहार सरकार, पटना, 2016
* वार्षिक रिपोर्ट कार्ड, अनुसूचित जाति/जनजाति कल्याण विभाग, बिहार सरकार, 2015
* वार्षिक रिपोट कार्ड, बिहार शिक्षा परियोजना, कार्यालय सिवान, 2018

बाजार की अवधारणा के क्षेत्र में हिंदी और प्रयोजनमूलक हिन्दी की आश्यकता और अनुप्रयोग

डॉ० प्रशांत प्रसाद गुप्ता

कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी, भारती;
फिल्म और टेलीविजन संस्थान, पुणे

सारांश

आज उद्योग और व्यापार के क्षेत्र की मुख्य भाषा हिंदी है। उद्योग और व्यापार किसी राष्ट्र की समृद्धि के सशक्त आधार स्तम्भ होते हैं। इसी क्षेत्र की प्रगति से देश की आर्थिक प्रगति और जनता की खुशहाली का अनुमान लगाया जा सकता है। उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में जो भी कार्य-कलाप किए जाते हैं, उससे जनता का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, जो भी कार्यकलाप होते हैं वे जनता की भाषा में ही की जाती है और भारतवर्ष की जन-प्रचालित भाषा हिंदी है। किसी वस्तु का निर्माण से बाजार और बाजार से जनता तक पहुंचाया जाता हैं, उन प्रक्रियों में जो भाषा इस्तेमाल किया जा रहा है वे अंग्रेजी नहीं होकर स्थानीय भाषा अथवा हिंदी होती है। वर्तमान समय में सभी उत्पाद पर और उत्पाद के निर्माण की प्रक्रिया, उसमें प्रयोग होने वाला पदार्थों का विवरण हिन्दी और अंग्रेजी द्विभाषी के रूप में दिया जा रहा है। इससे यहीं जानकारी मिलती हैं कि सभी उत्पाद पर और उत्पाद के निर्माण की प्रक्रिया, उसमें प्रयोग होने वाला पदार्थों का विवरण हिन्दी और अंग्रेजी द्विभाषी में लिखे जाने वाले व्यक्ति को सम्पूर्ण रूप से हिंदी के साथ अंग्रेजी की जानकारी होती है। इस प्रकार यह बाजार की मुख्य भाषा बनकर इसने बाजार का मानचित्र और पद्धति तो बदल ही है, यह केवल देश में ही सीमित नही रहा बल्कि विदेश में भी अपना पाँव फैलाया है। लोकमान्य तिलक मराठी भाषी थे उनकी हिंदी सुनकर लोगों को पता नहीं भी चलता था कि वे मराठी भाषा है या हिंदी भाषी। सर्वप्रथम वे अपने आपको एक भारतीय मानते थे और उन्होंने स्पष्ट कहा है कि "राष्ट्रीय स्वाभिमान और सुविधा की दृष्टि से हिन्दी ही सबसे उपयुक्त संपर्क भाषा होगी।"

प्रस्तावना

भारत के परतंत्रा होने के पहले देश का उद्योग और व्यापार देशी भाषाओं के माध्यम से किया जाता था। परतन्त्रा युग में भी यह प्रक्रिया किसी न किसी रूप में चलती रही, किन्तु जैसे अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार होता गया, वैसे अंग्रेजी भाषा का भी प्रसार होता गया और हमारी देशी भाषाएं दबती गई। यद्यापि भारत को स्वतंत्रा हुए 72 वर्ष हो गये हैं और सभी क्षेत्रों में जनता को आजादी का लाभ प्राप्त होता हैं, किन्तु उद्योग और व्यापार का भाषा के बड़े पैमाने पर अभी भी अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ हैं। अब भी अधिकांश उद्योगपति औरे व्यापारी विदेशी भाषा के सहारे अपना काम कर रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में सरकारी नियमों के तहत औद्योगिक में हिन्दी का विकास बेहतर हुआ है। यह एक चिंतनीय स्थिति है हमारे राष्ट्र प्रेमी और राष्ट्र के जनता के लिए चुनौती भी। किन्तु आई.आई.टी जैसे संस्थानों में भी अब हिंदी का प्रयोग बहुत तीव्र से की जा रही है। भारत में भारतीय सिनेमा उद्योग विशाल उद्योग है अधिकतर फिल्में हिंदी में तैयार की जाते है और उसे देखने के लिए लोग आते है, चाहे वे लोग बंगली हो या तेलुग। वे फिल्मों की भाषा को बहुत ही आसानी से समझ लेते है और हिंदी सरल होने के कारण फिल्म उद्योग के क्षेत्र में हिन्दी की आश्यकता

और अनुप्रयोग देख जा सकती है। "आज के बाजारवादी और तिजारती समय में जब जीवन की आर्द्रता सूख रही है, जहाँ विश्व की ढेरों भाषाएँ" किचेन लैंग्वेज अर्थात् रसोई की भाषा में तब्दील होने की स्थिति में पहुंच रही हैं, वहाँ हिन्दी ने विखडनवादियों और विरोधियों द्वारा समय-समय पर उत्पन्न यंत्राणाओं और संतापों को डरावने रूपकों की तरह झेलती अपने भीतर जीवन जीने की लय और अपनी अस्मिता को बचाए रखा, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि तमाम तरह के ताप-मलूक को झेलती हिन्दी ने अपने भीतर की रचनात्मक आँच और ऊष्मा के बल पर अपनी अखिलदेशीय पहचान बना ली। विशिष्ट राष्ट्रीय-सांस्कृतिक मूल्यों को जीने की अपनी ताकत के आधार पर पहले यह भारतीय गाँवों के खेत-खलिहान की भाषा थी, कल-कारखानों की भाषा थी, साधु-सन्तों की भाषा थी, फौजियों की भाषा थी, फिल्मों की भाषा थी और आज यह अपने लचर और वैविध्य-भरे स्वभाव के कारण विश्व-बाजार की भाषा बन गयी है, भूमंडलीकरण यानी विश्वग्राम की गुलाबी भाषा बन रही है, साफ शब्दों में यह विचार की भाषा है, विमर्श की भाषा है और एक ठोस शब्द में आज यह बाजार पर राज करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अनिवार्य भाषा हो गयी है, बाजार और विज्ञापन के लिए इसके बरक्स विकल्प के रूप में चिराग से तलाशने पर भी दूसरी कोई भाषा दिखाई नहीं देती।"

उद्योग और व्यापार के विविध क्षेत्र में हिन्दी की आश्यकता और अनुप्रयोग

आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में हिन्दी का वर्चस्व बढ़ा रहा है, वही कई अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के उद्योगपति अपना व्यापार का विस्तार भारत में करना चाह रहे हैं क्योंकि भारत देशी भाषा के क्षेत्र में सबसे बड़ा बाजार बन चुका हैं। इस बजार में अपने उत्पादों को बचाने के लिए विक्रेता हर तरह की जोखिम उठाने को तैयार हैं, बात देशी का क्यों ना हो? आज विदेश से आने वाली उत्पादों में विवरण अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में शामिल है। जबकि देशी उत्पादों में यह प्रतिशत की मात्रा बेहद कम हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के समय जितनी भी महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाएँ थीं, उन सबने अपने कार्यक्रमों में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान दिया। ब्रहम समाज, आर्यसमाज, सनातन धर्म सभा, थियोसोफिकल सोसाइटी, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन तथा राधास्वामी सम्प्रदाय आदि ने अपना संदेश लोगों तक पहुंचाने के लिए हिन्दी का आश्रय लिया। दक्षिण भारत में इसका विकास 'दक्खिनी हिन्दी' के नाम से हुआ। अंग्रेजों ने दक्षिण भारत पर अपने राज्य का प्रसार करते समय गोरे फौजी अफसरों के लिए यह जरूरी कर दिया था कि वे हिन्दी सीखें। जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार उन दिनों कुछ अंग्रेज सौदागर नि:संदेह धड़ल्ले से हिन्दुस्तानी बोल सकते थे कुल मिलाकर हिन्दी इस देश की संस्कृतिक एकता की भाषा रही है– ¶Thus we see that the installation of Hindi as the national language is merely a regeneration brought about through a removal of the adverse conditions created by political subjugation- Indeed this regeneration may justifiably be called self&deliverance] for the rise of Hindu ñññ In the background] there is the Sanksrit vocabulary] well organized and abundant in meaning and several dialects] spoken over a wide and eñtensive region ñññ The timeµ honored common speech of Madhyadesh is once again fast growing to be a medium of the cultural unity of India-"[2]

राष्ट्रीयता का तकाजा है कि हम अपना कार्य हिन्दी अथवा राजभाषा हिन्दी अथवा प्रयोजनमूलक हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं में करें, ऐसा करने में हमें कोई भी कठिनाई नही उठानी पड़ेगी क्योंकि देश के अधिकांश लोग जमीन स्तर पर हिन्दी पढ़ना व समझना और लिखना भी जानते है।

यह बड़ा ही ज्वलंत और समसामयिक प्रश्न है कि भारत कई देशों के साथ मिलकर आयात-निर्यात करता है। आयात और निर्यात-आयात का अर्थ है भारत के बाहर से माल भारत में लाना। इसी प्रकार माल का निर्यात का अर्थ है भारत के बाहरी स्थानों पर माल को ले जाना है। इसी प्रकार भारत कई सारे वस्तुओं का निर्यात करता है जैसे कि सब्जी, गेहू, चावाल, फल, दवाइयाँ, अस्त्र-शास्त्र आदि। उन सभी निर्यात की जा रही है वस्तुओं के गुणवता के बारे में और उन वस्तुओं में किन-किन कच्चा मालों का प्रयोग किये गये है उनका सम्पूर्ण विवरण हिंदी और अंग्रेजी सहित उसे देश की भाषा में की जाती है। वस्तुओं को प्रयोग करने वाले व्यक्ति आसानी से समझ सके। इसी प्रकार भारत में विदेशों से आयात किये जाने वाले सभी वस्तुओं के विवरण हिंदी और अंग्रेजी भाषा सहित उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध होती है। वस्तुओं के गुणवता के बारे में और उन वस्तुओं में किन-किन कच्चा मालों का प्रयोग किये गये है उनका सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाता है। यहाँ तक आजादी के 70 साल बाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारा औद्योगिक ढाँचा मजबूत हुआ हैं। सुई से लेकर अंतरिक्ष यान तक देश अपनी तकनीक को विकासित करने के लिए कोई

भी कसर नहीं छोड़ा, आज राष्ट्र के पास वे सभी चीजें उपलब्ध है, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बड़े-बड़े देशों के पास हैं। आज स्थिति ऐसी हैं कि, अमेरिका, फ्रांस, रूस, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया और अन्य बड़े देश भारत के साथ व्यापार करना चाहता है, चाहे वहाँ किसी भी औद्योगिक क्षेत्र में क्यों ना हो। परंतु एक समय था जब हमारे उद्योग धन्धों और तकनिकी मदद के लिए विदेशी विशेषज्ञ का सहारा लेना पडता था, यहाँ तक की उसी राष्ट्र पर निर्भर भी रहना पड़ता था। उनसे परस्पर विचारों का आदान प्रदान, संपर्क- व्यवहार में भी विदेशीपन का ही बोलाबाला रहा, नतीजा यह हुआ कि अनेक विदेशी फर्मो के साथ काम करते हुए हमने उन्हीं की भाषा का सहारा लिया परिणाम स्वरूप स्वदेशी भाषा का क्रमशः लोप होता चला गया।

यदि आज की परिस्थिति देखें तो पता चलता है कि अनेक छोटी-छोटी व्यावसायिक इकाइयों में बोल-चाल में तो अधिकतर हिन्दी अथवा क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग होता है। साथ-साथ दुकान का हिसाब किताब भी हिन्दी में ही रखा जाता है। कभी कभार इन इकाइयों को पत्र लिखने की आवश्यकता होती है तो यह पत्राचार भी हिन्दी में ही किया जाता है। यही नही, बाहर के थोक व्यापारी भी चाहे वे कपडे के हो, गल्ले के हो या और किसी आम आवश्यकता की वस्तु अपना लगभग सारा काम हिन्दी अथवा प्रान्तीय भाषाओं के माध्यम से पत्राचार करती है, तथा विक्री-कर, बिजली तथा अन्य विभागो के सूचना पत्र आदि भी हिन्दी में ही आते है।

हिन्दी की आश्यकता और अनुप्रयोग–संपर्क भाषा और राजभाषा के रूप में–

हिन्दी शताब्दियों से, इस देश की सम्पर्क भाषा रही है। कबीर, नामदेव, नानक, दादु, संतो ने जो चाहे वे महाराष्ट्र के रहे, पंजाब के या राजस्थान के हिन्दी में ही उन्होंने अपना उपदेश दिया क्योंकि उन्हें जनसाधारण तक अपनी बात पहुंचानी थी। साधु सन्तों के उपदेश की यह भाषा मुगल काल में दूर-दूर के सिपाहियों की सम्पर्क भाषा बनीं। देशी रियासतों में भी इसी भाषा में सरकारी कामकाज होते थे, महाजनी बही खाते और हुण्डियां भी लिखी जाती थी और विभिन्न प्रदेशों का आपसी पत्राचार भी होता था। उस समय सह भाषा सही मायनों में श्श भाषा श्श थी अर्थात् इसमें देशी भाषाओं के शब्द भी शामिल रहते थे, भांति- भांति की बोलियां रहती थी पर लिपी देवनागरी थी। देशी भाषा भी देवनागरी में लिखी जाती थी। लिपि का चाहे थोड़ा बदलता रहा हौ पर भाषा हिन्दी के आस-पास रहती थी। शताब्दियों से उत्तर भारत के तीर्थ यात्री दक्षिण में रामेश्वरम् तक पश्चिम में, द्वारका तक, पूर्व में गंगासागर संगम तक जाते थे और वहां के तीर्थ यात्री उत्तर भारत में बद्रीनारायण तक आते थे। ये सब आपस में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का इस्तेमाल करते थे। जिसे इन औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्रों भाषा संबंधित कोई भी प्रकार समस्या उत्पन्न नहीं होती थी, क्योंकि उस समय सम्पर्क भाषा हिन्दी में ही सारा कोराबार और जनता की भाषा थी, इसलिए तीर्थयात्री हो अथवा व्यापारी किसी को भी भाषा संबंधित समस्याओं समाना नही करना पड़ता था, जिससे उनका उद्योग–धंधों भी बड़े पैमाने पर कोराबार करता था।

इस प्रकार हिन्दी सम्पर्क की भाषा भी रही और बहुत वर्षो से राजभाषा भी। किन्तु 1880 से 1947 तक की अवधि में ब्रिटिश क्राउन के शासन के कारण अंग्रेजी सारे देश में जम गई। संविधान ने 1950 से हिन्दी को राजभाषा और सम्पर्क भाषा का रूप पुनः दिया। उसके बाद छः राज्यों और एक केन्द्र शासित प्रदेश (दिल्ली) ने इसे अपनी राजभाषा घोषित किया और सारे कामकाज इसमें होने लगे। पिछले 30 वर्षो से भाषा परिवर्तन की प्रक्रिया इस देश में बराबर रही है। 30 वर्षो पूर्व जहाँ सारा कामकाज अंग्रेजी में होता था वहाँ अब बहुत बडे क्षेत्र में हिन्दी में होने लगा हैं। राज्यों में राजकीय स्तर पर हिन्दी के विकास के और समस्त कार्यो में लागू करने के प्रयत्न हो रहे है। हिन्दी के विकासर्थ अकादमियां तथा विभाग काम कर रहें हैं। इसी प्रकार पिछले 30 वर्षो में देश के बहुत बड़े भाग में शिक्षा के माध्यम के रूप में भी हिन्दी प्रतिष्ठित हो गई है। प्रायः सारे हिन्दी क्षेत्र में कला, वाणिज्य आदि की उच्चतम स्तर तक की पढ़ाई हिन्दी माध्यम से होने लगी है। विधि और विज्ञान सहित सभी जगह हिन्दी माध्यम स्वीकृत है। विज्ञान की स्नातकोत्तर परीक्षाओं में और डाक्टरी, इंजीनियरी के तकनीकी पाठ्यक्रमों की परीक्षाएं अब अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में उपलब्ध होती है। अब हिन्दी भाषी राज्यों की भर्ती परीक्षाएं हिन्दी माध्यम से होने लगी हैं गत कई वर्षो से अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षाओं के माध्यम भी अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी है इसी प्रकार राज्य सेवाओं की परीक्षाओं के माध्यम भी अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी और उनके राज्य की भाषाओं में होती है।

कर्मचारी व प्रबन्धकों के बीच हिन्दी भाषा के प्रयोग से विचार संचार का कार्य बहुत ही सरलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है जो कि आज के युग में एक विशेष महत्व रखता है। विचारों का आदान-प्रदान बहुत सी समस्याओं को उत्पन्न होने से रोकता

है। एक विशेष बात यह है कि हिन्दी के प्रयोग की हम सभी केवल बात ही करते है, एसे कार्यान्वित नहीं करते। अरब उद्योगपतियों ने यह नियम बना लिया है कि वे आयात किये गये माल का विवरण अपनी ही भाषा में लिखेगें। वे समस्त कार्यविधी भी अपनी उद्योग व्यापार अधिक से अधिक बेच कर लाभ कमाना चाहता है। यह भी उल्लेखनीय है कि इन देशों में उत्पादित वस्तु का विवरण केवल अरबी भाषा में ही लिखा होता है। यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि आज अमेरिका जैसा बहु-उद्योगी देश जापान जैसे छोटे से देश के आगे अपना उत्पादन नहीं बेच पा रहा है। विशेषकर इलैक्ट्रोनिक्स और इंजीनियरिंग का जैसा श्रेष्ठ स्तर का सामान जापान प्रस्तुत करता है वह अमेरिका में स्वप्न की बात है। यह मात्रा अपनी भाषा अपनाने का श्रेय है। जापानी भाषा के प्रयोग से हर तकनीक जानकारी वहां के छोटे से छोटे कर्मचारी तक को उपलब्ध है जो कि हमारे यहां बहुत ही सीमित मात्रा में कुछ व्यक्तियों में निहित हैं।

विदेशी भाषा के माध्यम से उपलब्ध होने वाला ज्ञान, शुद्ध अर्थों में हम तक नहीं पहुंचता। वह परिवर्तित रूप में ही प्राप्त होता हैं। मात्रा एसे सुनने से ही पूर्णता का ज्ञान कभी नही हो पाता।

पहले भी तो अंग्रेजों से इस देश का उद्योग-व्यापार होता था और व्यापार आदि का स्तर ढाके की मलमल के रूप में विश्व विख्यात था। क्या उस समय अंग्रेजी थी? तब फिर यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि भाषा नहीं बल्कि उत्पादन की श्रेष्ठता ही फलदायक होती है। संस्कृति का एक श्लोक हैं:

ष्गुणाः सवर्त्पूज्यन्ते
पितृ वंशों निरर्थकः
वासुदेवम्र नयस्यन्ति
वसुदेवम न मानवाः

गुणों की सर्वत्रा पूजा होती है पिता के वंश की नहीं। सभी लोग कृष्ण की पूजा करते हैं वासुदेव का नाम तक नहीं लेतें।

उपसंहार

निष्कर्तः हम कुछ इस मनोवृत्ति के भी हो गया हैं कि हर बात का नियम बने, कानून हो। अगर आज यह नियम हो जाये कि राजसत्ता के आदेशानुसार प्रार्थना पत्र और समस्त कार्य हिन्दी में होगा तब फिर क्या होगा? हम स्वयं विवेक से कार्य करने की मनोवृत्ति खो चुके है। आज्ञा और आदेश ही हमें अनुशासन के अनुपालन के लिये प्रेरित करते है। भारतीयों को स्वयं अपने विवेक से और राष्ट्रीय एकता के निर्मित्त हिन्दी में कार्य करना चाहिये। उद्योग-व्यापार के द्वारा राष्ट्रीय एकता का स्वरूप और भी अधिक सुदृढ़ होगा। आज धर्म का स्थान उद्योग व व्यापार ने ले लिया है। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक देवपूजा के मंत्रा एक ही हैं। बद्री विशाल की पूजा केरलवासी नम्बूदरीपाद भी उसी भांति करेगा जैसे काशी का पंडित। कश्मीरवासी अमरनाथ और रामेश्वरम् की पूजा में शिव स्तुति एक ही रूप से करेगा। इसी प्रकार राष्ट्रीय एकता के लिये यदि हम संकल्प कर लें कि हम उद्योग और व्यापार में हिन्दी का प्रयोग करेंगे तो समस्याएं ही हल होती चली जायेंगी।

दृढ़ संकल्पों से ही विघ्न बाधाएं हारतीं।
भाग्य सहारे बैठे रहते काम चोर आलसी।।

आज हम 'दैवदैव आलसी पुकारा' की स्थिति में हैं और करने से पहले ही हतोत्साहित हो जाते हैं कि कैसे होगा? समस्या और समाधान कह कर हम काम छोड़ देते हैं, जबकि हमें चाहिये कि कार्य प्रारम्भ कर दें, समास्याएं अपने आप हल होती जायेंगी। अगर भगीरथ भी समस्या और समाधान की बात गंगा लाने से पूर्व सोचते तो सम्भवतः गंगा अवतरण न होता तथा भागीरथी जाहनवी न कहलातीं। समस्या तो यह भी थी पर इस का निराकरण बाद में हुआ पहले नहीं।

इस प्रकार इन सारे क्षेत्रों में हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने के कारण एक नया युग आरम्भ हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि इस युग के अनुरूप भाषा परिवर्तन बड़े उद्योगों, बैंकों और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के क्षेत्र में भी हो। आज की स्थिति यह है कि बैंको में भी सरकारी भाषा नीति का अनुसरण जरूरी होने के कारण हिन्दी का प्रयोग तेजी से होने लगा है।

अनेक ऐसे क्षेत्रों में हिन्दी की आवश्यकता और अनुप्रयोग आश्चर्यजनक रूप से आगे बढ़ी है जिनमें उसके प्रतिष्ठित होने की भाषा अधिक नहीं थी, जैसे अन्तर्राष्ट्रीय खेलों, क्रिकेट, हॉकी आदि की कमेन्ट्री में तथा टेलीप्रिंटर आदि तकनीकी यंत्रों में। आज क्रिकेट कमेन्ट्री हिन्दी में भी उसी ही चाव से सुनी जाती है जितनी अंग्रेजी में। हिन्दी टेलिप्रिंटर सेवा देश के बहुत बड़े भाग में समाचार भेज रही है। अब तो हिन्दी में कम्प्युटर भी बनने वाला है। पतालेखी (एड्रेसोग्राफ) हिन्दी में बन गया है। इन सब क्षेत्रों में जब हिन्दी बढ़ सकती है और उसका प्रयोग गौरव की वस्तु बन सकता है तो फिर बड़े उद्योगों में क्यों नहीं? इस मनोवृत्ति को यदि धीरे-धीरे निकाल दिया जाए कि फर्राट से अंग्रेजी बोलना और सुट पहनना अधिक शिक्षित या प्रतिष्ठित होने का प्रतीक है, तो वह हीन भावना समाप्त हो जायेगी। जो गुलामी के दिनों की देन है, वे धीरे-धीरे ऐसा होने भी लगा है शायद आज से 10 वर्षो पूर्व खोटी अंग्रेजी बोल कर भी रौब जमाया जा सकता था। कोट-पैन्ट पहन कर बड़ा आदमी दिखने की परम्परा भी थी। अब तो जब कतरे भी सुट और टाई पहनते हैं, तस्कर भी। अंग्रेजी बोलने वाले भी अनेक तस्कर और अपराधी मिल जायेंगे। गांधीजी के स्वदेशी आंदोलन की कृपा से सादा परिधान और धोती कुर्ता भी अब प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है। सूट जरूरी नहीं। इसी प्रकार धीरे-धीरे यह स्थिति आ रही है कि किसी भी भाषा का शुद्ध और प्रभावोत्पादक रूप से प्रयोग करना प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जायेगा, किन्तु खोटी भाषा चाहे वह अंग्रेजी ही क्यों न हो, किसी को प्रतिष्ठित नहीं बना सकती।

उद्योग और व्यापार की अवधारणा के क्षेत्र में हिन्दी की आश्यकता और अनुप्रयोग का विश्लेषण इसी माध्यम से की जा सकती है कि उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में हिंदी का आवश्यकता और अनुप्रयोग किस कदर बढ़ रही है, हमें आसानी से देख सकते है।

भाषा राष्ट्र की संस्कृति का प्रतीक होता है। मातृ-भूमि का सम्मान हम तभी कर सकते हैं जबकि हमें अपनी संस्कृति का मूल स्त्रोत ज्ञात हो और यह मातृभाषा, अर्थात राष्ट्रभाषा को जिसे हम हिन्दी के नाम से पुकारते हैं, जानने से ही प्राप्त होगा। अपनी संस्कृति का ज्ञान होने पर राष्ट्र भक्ति और राष्ट्रीय सम्मान की सुरक्षा की भावना स्वंयमेव उत्पन्न होगी। जापान ने देशभक्ति का जो परिचय दिया है वह कहीं नहीं मिलता। उसका कारण यह है अपनी भाषा द्वारा संस्कृति की पूर्ण जानकारी। हमें अन्य देशों से यह गुण सीखना चाहिये कि राष्ट्र का सम्मान किस प्रकार सुरक्षित रह सकेगा तभी हम भारतीय कहलाने का गौरव सुरक्षित रख पायेंगे।

कुल मिलाकर राजभाषा का दर्जा देते समय शायद यह किसी ने सोचा भी न होगा कि हिन्दी में पचास हजार से लेकर पॉच लाख रूपए से अधिक की नौकरियाँ भी मिल सकेगी। आज हर मामले में हिन्दी की आश्यकता और अनुप्रयोग बढ़ा है। सच तो यह है कि हिन्दी कई विभिन्न धाराओं का समाहार है। उद्योग और व्यापार की अवधारणा के क्षेत्र में हिन्दी की आश्यकता और अनुप्रयोग बढ़ते कारोबार से इस बात का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है कि हिन्दी कितनी जीवंत भाषा है। बहरहाल, कई विरोधभासों के बावजूद हिन्दी अब पराजित और विफल भाषा नहीं, बल्कि उद्योग और व्यापार की आश्यकता और अनुप्रयोग में जीवंत भाषा बन चुकी है।

सन्दर्भ-ग्रंथ

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी की नयी भूमिका, डॉ. कैलाश नाथ पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1, प्रथम संस्करण– 2006, पुनर्मुद्रण– 2014, पृ.277-78
2. समकालीन साहित्य समाचार में डॉ. शंकर दयाल शर्मा का लेख, पृष्ठ 10, किताब घर, अक्तूबर–1997

डॉ० बी० आर० अम्बेडकर के जाति प्रथा का उन्मूलन

डॉ० अंशुल पाण्डेय

असिसटेन्ट प्रोफेसर, यूनाइटेड इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, नैनी, प्रयागराज
डॉ० स्वयम प्रकाश पाण्डेय, एसोसिएट प्रोफेसर, ईश्वर शरण पी.जी. कालेज, प्रयागराज

शोध सारांश

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू समाज की जाति प्रथा पर जैसा कठोर प्रहार किया वैसा उनसे पूर्व किसी समाज सुधारक एवं विचारक ने नहीं किया था। उनके पूर्ववर्ती या समकालीन अन्य दलितों द्वारा केवल उच्च जातियों के जातीय अहंकार और विभिन्न जातियों के बीच ऊँच-नीच की भावना का विरोध करते थे, लेकिन वे भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था को बनाए रखना चाहते थे। जो विचारक एवं समुदाय जाति व्यवस्था का विरोध भी करते थे उनके विरोध का स्वर अत्यन्त नरम था। डॉ. अम्बेडकर कहते थे कि यह चातुरवर्णा व्यवस्था ही है जिसने हिन्दू समाज व्यवस्था में जाति व्यवस्था एवं अस्पृथ्यता को जन्म दिया है। जातिव्यवस्था एवं अस्पृथ्यता हिन्दू समाज का सर्वाधिक अमानवीय एवं विख्रत चहेरा है। वे अछूतों की समस्या का क्रान्तिकारी सामाजिक समाधान चाहते थे जो जातिव्यवस्था के समग्रतः उन्मूलन से ही सम्भव है।

मुख्य शब्दः वर्णव्यवस्था, सामाजिक समाधान, जाति व्यवस्था उन्मूलन

प्रस्तावना

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत जाति प्रथा या वर्णव्यवस्था चिरकाल से चली आ रही है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत समाज चार वर्णों या जातियों में बँटा रहा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण का कार्य अध्ययन अध्यापन और विविध संस्कार सम्पन्न कराना है। क्षत्रिय का कार्य युधद करना और शासन चलाना है, वैश्य का कार्य उद्योग व्यापार करना और शूद्र का कार्य सब वर्णों की सेवा करना है। शूद्र शुरु में मनुष्य की जाति उसके गुण (A Character), कर्म (Action) और स्वभाव (Temperament) पर आश्रित होती थी, जन्म पर नहीं। परन्तु धीरे-धीरे इसका तर्कसंगत आधार लुप्त हो गया और व्यक्ति की जाति उसके जन्म से ही निर्धारित होने लगी। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही अपनी जाति से जुड़े हुए कार्य के साथ बँधा गया, इससे सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) समाप्त हो गई। सामाजिक गतिशीलता वह प्रक्रिया है जिससे कोई व्यक्ति या परिवार एक सामाजिक स्तर या स्थिति से दूसरे सामाजिक स्तर या स्थिति की ओर अग्रसर होता है।[1] जैसे जब कोई अकुशल कामगार (Unksilled Worker) उपयुक्त प्रशिक्षण या अनुभव अर्जित करके कुशल काम (Skilled Workers) का दर्जा प्राप्त कर लेता है तो इस परिवर्तन को सामाजिक गतिशीलता की संज्ञा दी जाती है।

जाति भेद का घनिष्ठ संबंध जातिवाद से है। जातिवाद जातिप्रथा से संबंधित है। यह एक गम्भीर सामाजिक समस्या है। यहाँ जातिवाद ही एक अर्थ में विभिन्न जातियों में स्तरीकरण एवं श्रेणीकरण को बढ़ाकर जाति विभेद की नींव रखता है। जिसकी अभिव्यक्ति एक दूसरे के प्रति घृणा, द्वेस या प्रतिस्पर्धा के रुप में होती है। अपनी ही जाति के हित को सर्वोपरि समझना जातिवाद का सबसे सामान्य रुप है। जातिवाद में समाज या व्यक्ति की बजाय केवल अपनी जाति के हित को ध्यान में रखा जाता है। इस

रुप में जातिवाद मानव भावनाओं का संकुचित रुप है।[2] यह बसुधौव कुटुंबकम और सर्वे भवन्तु सुखिन: की अवधारणा पर चोट करता है। सर्वोदयी समाज के निर्माण में यह घातक है।

अपने लम्बे अनुभव के आधार पर डॉ. अंबेडकर को यह विश्वास हो गया था कि हिन्दू धर्म में रहकर न तो अस्पृथ्यता का निवारण से पाएगा और न अस्पृथ्य जातियों का उत्थान ही हो पाएगा। अत: वे 1935 से ही हिन्दू धर्म को त्याग का विचार कर रहे थे। वे हिन्दू धर्म की जातिप्रथा से अपने को इतना अधिक प्रताड़ित मानते थे कि उन्होंने आखिरकार हिन्दू धर्म को छोड़कर 14 अक्टूबर 1956 में बौद्धधर्म को ही अपनी लिया था क्योंकि बौद्ध धर्म में कोई जातिप्रथा मान्य नहीं है।[3]

डॉ. अंबेडकर की कृतियों में एनीहिलेशन ऑफ कास्ट (जाति प्रथा का उन्मूलन) जो 1936 में प्रकासित हुई, हू वर द शूद्राज? (शूद्र कौन थे) जो 1946 तथा द अनटचेबन्स (अस्पृथ्य जातियों) जो 1948 में प्रकासित हुए विशेष से प्रसिधद है। इन कृतियों में मानव समानता के प्रति डॉ. अम्बेडकर के गहरे सरोकार की झलक मिलती है।[4] उन्होंने विशेष रुप से अस्पृथ्य जातियों को अमानवीय जीवन से मुक्त कराने और उन्हें मानवोचित गरिमा प्रदान करने के लिए भागीरथ प्रयास किया। उनके अनुसार दलितों की पीड़ा केवल वही समझ सकता है जिसने स्वयं इस पीड़ा का अनुभव किया हो।

जाति व्यवस्था का सामाजिक अवलोकन

डॉ. अम्बेडकर जाति प्रथा को हिन्दू समाज का कोढ़ मानते थे। उनके अनुसार जाति प्रथा कोई स्वाभाविक संस्था नहीं है, यह कृत्रिम है और विकास का परिणाम है। उनका मत है कि हिन्दू समाज में प्रारम्भ में जाति प्रथा नहीं थी। समाज में उच्च स्तर पर स्थित कुछ स्वार्थी लोगों ने कमजोर लोगों से उनकी इच्छा के विरुधद जबरन काम कराना प्रारम्भ किया। उन्होंने हम कमजोर लोगों को शिक्षा ग्रहण करने की मनाही, दूसरों से विवाह करने में मनाही, अस्त्र-शस्त्र रखने की छूट नहीं, सार्वजनिक तालाबों व कुओं के उपयोग की मनाही, मंदिर में प्रवेश को लेकर पाबंदियाँ, किसी राजकीय पद पर इनकी नियुक्ति नहीं, पृथक आवासीय क्षेत्र आदि के अधिकारों से वंचित करके उनकी दासता और पराधीनता को शाश्वत करने का प्रयास किया।[5] इस प्रक्रिया में जाति व्यवस्था अस्तित्व में आयी और क्रमश: कठोर होती गयी।

डॉ. अम्बेडकर ने जाति आधारित भेदभाव को दूर करने के लिए कई रचनात्मक उपाय किये है जिसमें मुख्यत: अंर्तजातीय विवाह को प्रोत्साहन, शिक्षा व्यवस्था पर ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त कर उसे सर्वव्यापी बनाया जाए, अस्त्र शस्त्रों एवं सेना में भर्ती से संबंधित मामलों पर से क्षत्रियों का एकाधिकार समाप्त किया जाए। भर्ती योग्यतानुसार हो आदि। उनकी दृष्टि में खून का मिलन ही विभिन्न जातियों की दीवार को तोड़कर उनमें अपनापन ला सकता है।

डॉ. अम्बेडकर ने अछूतों से अपील किया कि वे अपनी बुरी आदतों एवं प्रस्तुतियहीन भावना का परित्याग करके आत्म सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत करें। उन्होंने अछूतों से स्वाभिमानपूर्ण जीवन जीने, स्वतन्यता एवं समानता के आदर्शों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा ग्रहण करने, संगठित होने और अत्याचार के विरुधद संघर्ष करने की अपील किया।

उन्होंने दलितों के लिए सार्वजनिक स्थानों को खोलने पर बल दिया और इसकी स्पष्ट झलक संविधान के अनुच्छेदों 14, 15, 16, एवं 17 में प्राप्त होता है। यदि आज मन्दिरों, कुओं, तालाबों समेत सभी सार्वजनिक स्थलों के उपभोग का अधिकार दलितों को मिला है तो उसका बड़ा श्रेय डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों को जाता है। उन्होंने सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश दिलाने के लिए सत्याग्रह भी किया। इस सन्दर्भ में महद, तालाब सत्याग्रह, रामगढ़ के गंगा सागर तालाब जलपान सत्याग्रह, कालाराम मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह उल्लेखनीय है। डॉ. अम्बेडकर ने ऐसे धार्मिक रीति रिवाजों का भी विरोध किया जो मनुष्य मनुष्य में भेद करता है। उनके अनुसार धर्म व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति धर्म के लिए नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर और महात्मा गाँधी दोनों समाज सुधार और दलितों द्वारा प्रतिबधद थे। लेकिन दोनों में अनेक बिन्दुओं पर विवाद है, जैसे-

1. गाँधी जी वर्ण व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे जबकि डॉ. अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था के कट्ठर आलोचक थे।
2. गाँधी जी वर्ण व्यवस्था को समाज के लिए उपयोगी माना इससे श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण को बढ़ावा मिलता है,

जबकि डॉ. अम्बेडकर के अनुसार वर्ण व्यवस्था अवैज्ञानिक, अमानवीय, अलोकतान्त्रिक, अनैतिक, अन्यायपूर्ण एवं शोषणकारी सामाजिक योजना मानते है। इसलिए वे इसका पूर्ण उन्मूलन चाहते थे।

3. गाँधी जी के अनुसार छुआछूत का वर्ण व्यवस्था से सीधा संबंध नहीं है अर्थात् छुआछूत वर्ण व्यवस्था की अनिवार्य विख्र ति न होकर बाह्य विकृति है। अत: छुआछूत को दूर करने के लिए वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि इसमें रचनात्मक सुधार की आवश्यकता है जबकि डॉ. अम्बेडकर के अनुसार अस्पृथ्यता या छुआछूत वर्णव्यवस्था का अनिवार्य परिणाम है। इसलिए बिना वर्ण व्यवस्था का उन्मूलन किये छुआछूत को दूर नहीं किया जा सकता।
4. गाँधी जी छुआछूत को दूर करने के लिए आदर्शवादी, दीर्घकालिक उपायों की बातें करते है जबकि डॉ. अम्बेडकर छुआछूत को दूर करने के लिए व्यावहारिक, त्वरित एवं ठोस उपायों पर बल देते है।
5. गाँधी जी के अनुसार सवर्ण हिन्दुओं के दृष्टिकोणों में परिवर्तन के माध्यम से अछूतों के प्रति भेदभाव को दूर करने का प्रयास करना चाहिए इसके लिए वे धर्म परिवर्तन की आवश्यकता को नहीं मानते जबकि डॉ. अम्बेडकर के अनुसार हिन्दू धर्म के अन्तर्गत अछूतों का उधदार नहीं हो सकता। अत: इसके लिए धार्मान्तरण द्वारा दलितों के उधदार का प्रयास किया जाना चाहिए।
6. गाँधी जी के अनुसार हिन्दू धर्मशास्त्र अस्पृथ्यता का समर्थन नहीं करता। अत: धर्मशास्त्रों की मूल मान्यताओं से विद्रोह करना उचित नहीं है जबकि डॉ. अम्बेडकर के अनुसार हिन्दू धर्मशास्त्रों में ही अस्पृथ्यता के बीज विद्यामान है। अत: अस्पृथ्यता को दूर करने के लिए हिन्दू धर्मशास्त्रों की मूल मान्यताओं से विद्रोह करना होगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार संक्षेप में स्वातन्तयोत्तर भारत की सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण में डॉ. अम्बेडकर के विचारों की गम्भीर छाप पड़ी। उन्हें दलितों के मसीहा के रुप में जाना जाता है। उन्होंने दलितों के लिए वही कार्य किया जो अमेरिका में अब्राहम लिंकन ने दासों की मुक्ति के लिए एवं पाल राबसन ने नीग्रो लोगों की मुक्ति के लिए किया। इसीलिए उन्हें भारत का लिंकन, मार्टिन लूथर, पाल राबसन भी कहा गया।

सन्दर्भ सूची

1. द एनीहिलेशन ऑफ कास्ट– डॉ. बी. आर. अम्बेडकर
2. जातिभेद का उच्छेद- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर
3. बोधित्व डॉ. अम्बेडकर अवदान- डॉ. अंगने लाल
4. संत रैदास- प्रो. संगम लाल पाण्डेय
5. सन्त रैदास- डॉ. अंगने लाल

स्त्री का जीवन संघर्ष

डॉ० भगवती देवी

लेक्चरर, हिन्दी विभाग (कन्ट्रेक्चुअल), हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, जम्मू-कश्मीर

वैदिक समय में नारी की स्थिति सुदृढ़ थी, स्त्री जीवन गौरवमयी, उन्नत एवं परिष्कृत था। परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र धर्म, साहित्य, कला, संस्कृति, नृत्य, गायन आदि में हिस्सा लेने के लिए स्त्रियों को पुरुषों के समान सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वैवाहिक सम्बन्ध केवल शारीरिक मात्र ही नहीं, अपितु अध्यात्मिक भी थे। वैवाहिक सम्बन्धों में बंधने के लिए कन्या के साथ किसी भी प्रकार की जबरदस्ती नहीं की जाती थी। "वैदिक समय में स्वयंवर भी होते थे नारी को स्वयं अपनी इच्छा से वर का चुनाव करने का अधिकार था।"[1] ससुराल में पुत्र-वधु को "ससुर गृह की सम्राज्ञी बनों।... अधिकार से रहो, अधिकार से बोलो, कल्याणी सिद्ध होओ।"[2] का आर्शीवाद इस बात का द्योतक है कि स्त्री के प्रति सम्मान था। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण इस समय पुत्र प्राप्ति का प्राधान्य था। पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान करवाये जाते थे "श्रेष्ठ पुत्र-प्राप्ति के लिए देवताओं से प्रार्थनाएं ही नहीं की जाती थीं, इसके लिए अश्वमेघ यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ, नियोग भी कराए जाते थे, लेकिन इसका विशेष कारण था युद्धों में पुरुष-हानि की क्षति-पूर्ति, जाति वृद्धि और वंश-वृद्धि कामना।"[3] पुत्र प्राप्ति हेतु कन्या का तिरस्कार कदापि नहीं किया जाता था। कन्या के प्रति शिक्षा-दिक्षा एवं लालन-पालन के समय किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं रखा गया। इस काल में स्त्रियों द्वारा; चाओं की रचना करना सिद्ध करता है कि लड़कियाँ ज्ञानार्जन कर सकती थीं। स्त्रियों को लौकिक एवं अध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएं दी जाती थी। "लौकिक शिक्षा के भीतर ललित कला के साथ-साथ सैन्य विद्यमान रहता था और अध्यात्मिक शिक्षा के भीतर धार्मिक विद्या, ऐतिहासिक परम्परा एवं मिथकों की भूमिका रहती थी।"[4] इस समाज में विदुषियों के दो वर्ग थे– ब्रह्मणवादिनी एवं सद्योवदाह। ब्रह्मणवादी उच्च शिक्षा को प्राप्त करने के साथ-साथ जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहकर अध्यात्मिक कार्यों की उन्नति में लगी रहती थी लेकिन इन्हें संसारिक भौतिक सुखों से अलग नहीं रखा गया था ये चाहती तो विवाह कर सकती थी। "विवाहित स्त्रियां अपने 'स्त्री-धान' को इच्छानुसार खर्च कर सकती थी।"[5] नारी; चाओं की रचना करने वाली विदुषियों में गार्गी, मैत्रेयी, विश्म्भरा, आपाला, घोष इत्यादि आती हैं।

वैदिक स्त्री शक्ति एवं सौन्दर्य की पूर्ण प्रतिमा है वह केवल परिवार, समाज एवं धार्मिक अनुष्ठानों में हिस्सेदारी नहीं दिखाती थी बल्कि शास्त्रविद्या का ज्ञान प्राप्त कर युद्धों में भी परांगत होती थी। "द्रविड़ों की हार के साथ युद्ध क्षेत्र में पकड़ी जाने वाली वीर लड़ाकू द्रविड़ नारियाँ जब आर्य-परिवार में दासियों के रूप में शामिल हुई तो इनमें से योग्य, गुणी व बहादुर स्त्रियों ने आर्यों के दिल जीत लिए।"[6]

वैदिक काल की स्त्री की स्थिति पर विचार विमर्श कर डॉ. अमरनाथ कहते हैं कि "ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 2006 मंत्रों में से मात्र तीन मन्त्रों का नारियों द्वारा रचित होना बताया है।"[7] ऋग्वेद के 'प्रथम मडल के 2006' मन्त्रों में से लोपामुद्रा द्वारा दो और रोमशा द्वारा एक मन्त्र कहा गया है। इन मन्त्रों में विशेष रूप से स्त्री यौन इच्छा से सम्बन्धित बिन्दुओं को ही अभिव्यक्ति दी है लोपामुद्रा अपने एक मन्त्र में इसी सन्दर्भ में कहती है कि "काम का प्रभाव इतना तीक्ष्ण है कि इसके प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं रहा। बड़े-बड़े महार्षि भी ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ रहे। उन बलवान और वीर्य-सिंचन में समर्थ ऋषियों से उनकी पत्नियों ने सम्भोग किया। तब साधारण मनुष्यों की बात ही क्या?"[8] वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर हमें स्पष्ट होता है कि इस काल की मन्त्र लेखिकाएं कितनी सशक्त थीं जो पुरुष प्रधान समाज में बेखौफ होकर यौन से जुड़े मुद्दों को अपनी कलम के माध्यम से उकेरती थीं। इसी के साथ ही लोपामुद्रा अपने मन्त्र के द्वारा सम्भोग के सन्दर्भ में पश्चाताप करती हुई कहती है कि

"अनेक वर्षों तक दिन-रात और उषाओं में काम करती हुई अब बूढ़ी हो जाने के कारण मैं थक गयी हूँ। अब बुढ़ापा मेरे अंगों की शोभा को नष्ट कर रहा है इसलिए तरुण और वीर्यवान व्यक्ति अपनी पत्नियों के साथ सहवास करें, अर्थात् जवानी में जो लोग सम्भोग का पूरा आनन्द नहीं उठा पाते उन्हें वृद्धावस्था में मेरी तरह पछताना पड़ेगा।"[9]

स्त्री चाहे किसी भी काल की क्यों न हो लेकिन पुरुष प्रधान समाज को यह कदापि गवारा नहीं कि स्त्री प्रश्न करना सीख जाए या प्रश्न करे। स्त्री को ज्ञानार्जन के लिए बहुत पहले से ही संघर्ष करना पड़ा था ज्ञार्नाजन के उपरान्त स्त्री द्वारा उठाये जाने वाले सवालों से पितृसत्तात्मक समाज का सिंहासन ढोलने लगा था। याज्ञवल्कय एवं गार्गी के शास्त्रार्थ के प्रसंग में याज्ञवलक्य द्वारा डाँटकर गार्गी को सभा में चुप कराने का प्रयास करना इस बात की पुष्टि करता है। गार्गी के इस सन्दर्भ से पुष्ट होता है कि स्त्री प्रश्न करने पर या ज्ञानार्जन करने पर पुरुष प्रधान समाज द्वारा अवहेलना की शिकार भी होती थी। वैदिक साहित्य का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक मानसिकता परिवार, व्यक्तिगत नीजी सम्पति के दौरान ही पनप चुकी थी लेकिन अभी वह पूर्ण रूप से स्थापित नहीं हो पाई थी इसलिए इस समय स्त्री पर पुरुष प्रधान समाज का वह वर्चस्व नहीं है जो उत्तर वैदिक में मिलता है। स्त्री को वस्तु समझे जाने के प्रमाण रामायण काल तथा महाभारत काल में देखने को मिल जाते हैं। रामायाण काल में स्त्री गृहस्वामिनी होने के बावजूद पुण्य की अनुगामिनी मानी जाती थी। स्वयंवर प्रथा होते हुए भी कन्या का पति वही हो सकता था जो पिता द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा कर सकता था "सीता का विवाह राजा जनक की शर्तों को पूरा करने वाले राम से ही होता है।"[10]

पति सेवा के सर्वोच्च आदर्शों के उदाहरण हमें इस काल में दिखाई देते हैं चाहे वह सीता के समक्ष पति का कोई भी आदेश हो, उसे मानना वह पतिधर्म समझती थी। अत: राम के अयोध्या त्याग के समय कौशल्या सीता को कहती है कि "राम की सेवा सधान तथा निर्धन, सभी अवस्थाओं में करना और मुख्यत: स्त्री के लिए तो पति ही देवता है।"[11]

पतिव्रत्य धर्म का पालन करना स्त्री का चरम लक्ष्य माना जाता था और नारी जीवन को विशेष रूप से सार्थक समझा जाता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैदिक काल से लेकर उत्तर वैदिक के उपरान्त रामायण तथा महाभारत काल में स्त्री के पत्नी रूप, कन्या रूप को, माँ रूप को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है लेकिन वहीं सम्मानित स्त्री महाभारत के समय में सामग्री में परिवर्तित हो जाती है स्त्री को वस्तु समझा जाना विशेषत: इस काल की देन नहीं है, बल्कि प्रजनन के आधार पर उसे मशीन ही समझा जाता रहा। पुरुष प्रधान समाज में पुरुष के लिए अपना अहं बहुत मूल्यवान रहा है और अपने अहं की तुष्टि के लिए अपनी संगिनी को जुए में दांव तक पर लगा सकता है और जब भी हम स्त्री के वस्तु रूप में परिवर्तित होने की बात करते हैं तो सम्भवत: हमारे समक्ष द्रौपदी का नाम स्मरण हो आता है। 'द्रौपदी को पति युधिष्ठिर द्वारा जुए में दांव पर लगाया जाना इस बात का प्रमाण है कि पुरुष के समक्ष स्त्री का अस्तित्व शून्य था। मध्यकाल को जागरूकता की दृष्टि से 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। भारत में मुगलों के आक्रमणों तथा इनकी शासकीय सत्ता में स्त्री के लिए जीवन का निर्वाह करना अत्यन्त कठिन हो गया। स्त्री के लिए बनाए गए कड़े नियम यहाँ आकर और मजबूत हो जाते हैं, जिनमें स्त्री के समक्ष स्वतन्त्रता एवं अधिकार जैसे शब्द काल्पनिक हो गए। इस सामन्ती व्यवस्था में स्त्रियों का अपहरण, लैंगिक भेदभाव, भ्रूण हत्या, कौमार्य के मिथक के कारण बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती एवं जौहर प्रथा, देवदासी प्रथा इत्यादि का चलन आरम्भ हुआ। चाहे हिन्दु स्त्री थी चाहे मुस्लिम लेकिन सामाजिक बन्धनों में वह पीसी जा रही थी। पर्दा प्रथा का पालन हिन्दु एवं मुस्लिम दोनों स्त्रियों को करना पड़ता था और यदि कोई इस सिद्धान्त का अनुपालन नहीं करती तो उसकी स्थिति और शोचनीय हो जाती। अकबर ने यह सिद्धान्त स्त्रियों के लिए अनिवार्य कर दिया था कि 'यदि एक नवयुवती सड़कों या बाज़ारों में दौड़ती पाई गई और इस अवस्था में वह पर्दों में न हुई या जानबूझकर बटन खोल दिया तो उसे वेश्याओं के डेरों की ओर जाना पड़ेगा और उन्हीं का रोज़गार करना पड़ेगा।'

कन्या का जन्म इस काल में अशुभ एवं चिन्तनीय माना जाने लगा। इसके लिए कारण चाहे स्त्री का बलात् अपहरण हो, दहेज, असुरक्षा से जुड़े मुद्दे हों लेकिन सत्य यह था कि कन्या को जन्म देने वाली स्त्री से घृणित व्यवहार किया जाता था। इस कारण से कन्या शिशु की हत्या का प्रचलन आरम्भ हुआ और विशेष रूप से 'राजस्थान में जहाँ लगातार युद्धों का सामना सामान्य सी बात थी। स्त्रियों की सुरक्षा व अप्रतिष्ठा के प्रश्न ने कन्या शिशु हत्या के आँकड़ों में वृद्धि की।'

सती प्रथा का घोरतम क्रूर रूप इस काल में देखने को मिला। सती प्रथा के उग्र प्रचलन का कारण विधावा स्त्री के लिए बनाए गए कड़े नियम हो सकते थे जिसमें विधावा स्त्री के समक्ष सामाजिक व्यवस्था ने तीन विकल्प रखे थे। पति की मृत्यु के पश्चात् वैधाव्य जीवन जीती हुई परिवार पर निर्भर रहे या फिर पति के साथ स्त्री अपनी देह को आग की लपटों में कुर्बान कर दे। इस विकल्प में से सती प्रथा एवं जौहर प्रथा का प्रचलन जोरों पर था। 'आठवीं शताब्दी से सती प्रथा में स्पष्ट वृद्धि दृष्टिगत होती है जिनमें सर्वाधिक संख्या राजस्थान में थी। मध्यकाल विशेषकर 17वीं शताब्दी में स्वामी की मृत्यु के बाद पत्नियों के साथ दासियों, पातुर व नौकरों के चिता में आत्मोसर्ग के प्रमाण मिलते हैं।'

जो भी स्त्री सती होने के लिए इन्कार करती थी तो उसे समाज में विभिन्न प्रकार के अपमानों को झेलना पड़ता था और पण्डितों द्वारा उन्हें गुमराह भी किया जाता था कि "सती होना कितना महान काम है, दुनिया में नाम अमर हो जाएगा। तुम्हें मोक्ष मिलेगा। स्वर्ग में पति के साथ रहेगी।"[15] कौमार्य के मिथक के कारण समाज में बाल-विवाह आरम्भ हो गए। जिसमें स्त्रियों की शिक्षा पर रोक लग गई और स्त्री केवल घर की चारदीवारी के भीतर समेट दी गई और घर के भीतर भी पर्दे में ही रहती थी। कुल मिलाकर उसका जीवन दम घोंटू बना दिया गया। ऐसा जीवन जीते-जीते स्त्री सुलभ बनाए गए सिद्धान्तों की सलाखों में महिलाओं को कैद कर दिया गया। शिक्षा का प्रचलन उच्च परिवारों में था लेकिन सामान्य परिवार सामाजिक सिद्धान्तों की आड़ में दब चुके थे। मीराबाई, गवरीबाई, दयाबाई, सहजोबाई द्वारा लिखा गया साहित्य इस बात का प्रमाण देता है कि स्त्रियाँ शिक्षित थीं लेकिन विशेष प्रकार के बड़े घरानों की। परिवार द्वारा निष्कासित मीराबाई ने ज्ञार्नाजन का सही प्रयोग करते हुए मध्यकाल में एक आदर्शात्मक इतिहास रचा था और महिलाओं के समक्ष एक नई मिसाल कायम की थी। संतों एवं भक्तों ने जातिवाद पर सवाल खड़ा किया, जातिगत सम्बन्धी आधार संहिता को बदलने के लिए वह विरोध का बिगूल बजा रहे थे लेकिन स्त्रियों के अधिकारों एवं उसकी इच्छाओं को इन्होंने साहित्य में विशेष स्थान नहीं दिया। इस दौर में स्त्रियों के लिए एक तरफ पर्दा प्रथा का प्रचलन था तो वहीं दूसरी ओर पर्दे के भीतर 'मीना बाज़ार' लगाये जाते थे जिसमें विशेष प्रकार के व्यक्ति ही जा सकते थे। इस सन्दर्भ में आशारानी व्होरा लिखती हैं कि "उन बाज़रों में राजा, नवाब और कुछ चुने हुए जागीरदार ही जा सकते हैं और यह लोग सुंदरियों के चुनाव के उद्देश्य से ही वहां जाते थे।"[16] इसी कारण विलासिता की प्रवृति के कारण वेश्यावृति को भी बढ़ावा मिला। "अकबर द्वारा बसाई गई शैतानपुरी इसका ज्वलन्त प्रमाण है।"[17] इन वेश्याओं की स्थिति कुल बंधुओं से भिन्न थी मुख्यत: पुरुषों ने अपने स्वैच्छाचार के लिए स्त्रियों के कुछ विशेष वर्ग को स्वच्छन्द रखा था।

इस काल में बनी बनाई परम्परा को तोड़ने वाली बोल्ड स्त्रियों के भी दर्शन होते हैं जिन्होंने सामन्ती व्यवस्था में संघर्ष के उपरान्त अपने अस्तित्व को बनाए रखा। इस दृष्टि से चाहे वह मीराबाई हो, रजिया सुल्तान, रानी दुर्गावती, अहमद नगर की चाँद बीबी नूरजहाँ, महाराष्ट्र की ताराबाई शिन्दे हो मुख्य रूप से यह राजघराने की स्त्रियाँ हैं लेकिन राजघराने की सभी स्त्रियों के पास ऐसे अधिकार नहीं थे बल्कि इन्हें अधिकार छीनने पड़े थे। प्रशासन के क्षेत्र में भी अपने होने के प्रमाण दिये तथा अपने व्यक्तित्व का अच्छा निर्माण कर आज तक स्त्रियों के लिए मिसाल रूप में जीवित हैं और रहेंगी भी। 19वीं शताब्दी से पूर्व स्त्री जीवन की दुर्बलता अपनी चरम सीमा पर थी। सती प्रथा, विधावा विवाह, कन्या भ्रूण, हत्या, शिक्षा इत्यादि कुरीतियों का उग्र रूप मिलता था, इन कुरीतियों का कोई सकारात्मक समाधान निकालना असम्भव लगता था। स्त्री को पत्नोन्मुखी स्थिति से उभारने में राजा राममोहन राय, ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती इत्यादि ने सफल प्रयास किए। स्त्रियों के उत्थान के लिए शिक्षा पर बल दिया गया। सामाजिक क्षेत्र के अतिरिक्त स्त्रियों में राजनीतिक जागृति आने लगी थी। सन् 1917 ई. में श्रीमती बेसेंट के कांग्रेस के अध्यक्ष बनने से भारतीय शिक्षित नारियों में एक नई चेतना जागृत हुई। सरोजिनी नायडू तथा अम्मन बीबी भी इस काल में राष्ट्रीय आन्दोलन की अगली पंक्ति में आ डटी थीं। स्त्रियाँ राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु साहित्यिक क्षेत्र में भी अपनी छाप छोड़ने लगी थीं। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रा कुमार सिन्हा का नाम आदर से लिया जा सकता है। इन्होंने चिकित्सालय, न्यायालय, विश्वविद्यालय इत्यादि स्थलों में अपनी सफलता का परचम लहराया। प्रतिभाओं की धानी स्त्रियों ने अपनी योग्यता से साबित कर दिखाया कि वह भी समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। स्त्री के उत्थान के लिए सरकार ने तलाक, दहेज, बलात्कार, विवाह, सम्पत्ति अधिकार, समान वेतन इत्यादि अधिनियमों को पारित किया। सरकार द्वारा स्त्री उत्थान के लिए कई कानूनों का निर्माण हुआ।

सुधारकों के साथ ही स्त्रियों के अस्तित्व तथा अधिकारों की मांग की लड़ाई स्वयं स्त्रियों द्वारा भी आरम्भ हुई थी। स्त्रियों ने निर्णय लेने की स्वतन्त्रता के अधिकार की लड़ाई तो लड़ी परन्तु कहीं भी धर्म ग्रन्थों का सहारा नहीं लिया। पं. रमाबाई के विषय में कहा जाता है कि "प्रथम कोटि के समाज सुधारकों में महाराष्ट्र को संस्कृत की महापंडिता रमाबाई (1858-1922) के रूप में प्रथम महिला सुधारिका उत्पन्न करने का गौरव प्राप्त है।"[18]

इन्होंने केवल जमीनी स्तर पर ही लड़ाई नहीं लड़ी बल्कि "उन्होंने अमरीकी स्त्रियों से भारतीय विधावाओं की स्थिति सुधारने में सहायता की अपील की। भारतीय स्त्रियों की हालत का बयान उन्होंने अपनी पुस्तक 'द हाई कास्ट हिंदू वीमेन' में किया। अमरीकी महिलाओं के सहयोग से 'अमरीकन रमाबाई एसोसिएशन' बना। इसका उद्देश्य भारत में विधावा आश्रम चलाने के लिए निरंतर धन की व्यवस्था करना था।"[19] 1882 ई. में रमाबाई ने समाज सुधारकों के सहयोग से आर्य महिला सभाओं की स्थापना भी की। 1882 ई. में विधावा आश्रम खोलने का विचार 12 वर्ष की विधावा की दुर्दशा को देखकर आया। 1889 ई. में समाज सुधारकों की सहायता से विधावा आश्रम की स्थापना की। रमाबाई ने राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन में हिस्सा लिया तथा पुरुषों को स्त्रियों को हाशिए पर रखने के लिए लताड़ा। इन्होंने विधावाओं के जबरदस्ती सिर मुंडवाने का विरोध भी किया। रमाबाई विधावा स्त्रियों को विवाह के अलावा आर्थिक स्वावलंबन जैसे अध्यापिका, डॉक्टर, कृषि-पशुपालन इत्यादि पेशे को अपनाकर विधावाओं को समाज का हिस्सा बनने की स्वतन्त्रता देने की पक्षधार थी। स्त्री विमर्शकारों की मान्यता है कि सुधारों के समय में पुरुषों ने स्त्रियों के उत्थान के लिए पहल की लेकिन वह उन कारणों को ढूँढ नहीं पाए जिसके कारण स्त्री के समक्ष विभिन्न परिस्थितियाँ उभरी। आधुनिक समय में आगे चलकर स्त्री को 'स्वत्व' का बोध हुआ। वह अपने 'होने' को जान पाई। स्त्री के लिए आचार संहिता का जो तलीस्म खड़ा किया गया था वह वर्तमान समय में महिला चिन्तकों द्वारा तोड़ा गया। इस दौर में पितृसत्ता की संस्कृति को समझा गया। वह किस तरह से अलग-अलग हत्कण्डे अपनाकर स्त्री को पुरुष के अधीन बना डालती है। इस सत्ता ने किस तरह स्त्री को शालीनता के नाम पर ठगा। यौनशुचिता, पतिव्रत्य, सतीत्व इत्यादि मूल्यों को स्त्री के लिए आदर्श माना गया। आधुनिक स्त्री ने सवाल खड़ा करना प्रारम्भ किए हैं।

21वीं सदी में स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो रही है और साथ सरकार भी स्त्री के उत्थान के लिए विभिन्न योजनाओं का निर्माण कर रही है। सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं जैसे- बेटी बचाओं और बेटी पढ़ाओ, वन स्टाप सेंटर स्कीम, वर्किंग वुमन हॉस्टल, स्वाधार गृह, महिला शक्ति केन्द्र योजना, महिला ई हाट, उज्जवला योजना के तहत स्त्रियों के रास्ते आसान किए हैं। लेकिन शोषण की प्रक्रिया आज भी चल रही है। स्त्री चाहे नौकरी करने वाली हो, चाहे चारदीवारी में कैद उसे निरन्तर असुरक्षा का बोध घेरे रखता है। पितृसत्तात्मक समाज अभी भी खुले दिल से स्त्री के सशक्त स्वरूप को अपना नहीं पा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि कानूनी दृष्टि से स्त्री को पूर्ण समानता मिली है परन्तु कानूनों को व्यवहारिक धारातल अपनाने में अभी भी ज़मीन और आसमान का अंतर है। स्त्री विमर्श के माध्यम से नारी के अधिकारों के लिए लड़ा जा रहा है वरन् वह अपने अस्तित्व एवं मनुष्य त्व को भी स्थापित करने में संघर्षरत है।

सन्दर्भ सूची

1 अथर्ववेद, 2.36.5
2 आशारानी बोहरा, नारी शोषण आइने और आयाम, पृ. सं. 4
3. वही, पृ. सं. 5
4. रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृ. सं. 55
5. आशारानी बोहरा, नारी शोषण आइने और आयाम, पृ. सं. 5
6. वही, पृ. सं. 5
7. डॉ. अमरनाथ, नारी मुक्ति का प्रश्न, पृ. सं. 51
8. वही, पृ. सं. 50
9. ऋग्वेद, 1.179.1

10. वाल्मीकि रामायण, 1 77 26
11. वही, 25 31
12. डॉ. अमरनाथ, नारी मुक्ति का प्रश्न, पृ. सं. 80-81
13. आशारानी बोहरा, नारी शोषण आइने और आयाम, पृ. सं. 15
14. उद्धृत, डॉ. सावित्री डागा, आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य, पृ. सं. 23
15. डॉ. शीला रजवार, हिन्दी कथासाहित्य में नारी, पृ. सं. 71
16. डॉ. गोपा जोशी, स्त्री असमानता एक विमर्श, पृ. सं. 84

भारत के आजादी के पश्चात से वर्तमान तक चीन के साथ सम्बन्ध

महेश कुमार पिन्टू

अतिथि सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग
बी0एन0एम0यू0ए, मधोपुरा

भारत कि आजादी द्वितीय विश्वयुद्व के बाद हुई। द्वितीय विश्वयुद्व से पूर्व चीन को 'एशिया का मरीज' कहा जाता था। चीन की गिनती द्वितीय श्रेणी की शक्तियों में की जाती थी। किन्तु चीन में साम्यवादी क्रांति के बाद विश्व राजनीति में चीन का उदय एक महाशक्ति के रूप में हुआ। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में आधुनिक चीन के जन्मदाता सन्यात सेन को माना जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य चीन में विदेशी शोषण को समाप्त करना तथा चीन का चहुँमुखी विकास करना था।

नई शताब्दी में भारत और चीन के बीच सम्बन्ध जटिल रहे हैं। द्विपक्षीय स्तर पर दोनों देश लगातार विस्तृत सीमा विवाद को लेकर अवसरजन्य तनाव का सामना कर रहे हैं जबकि दोनों देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध लगातार स्थिर गति से आगे बढ़ रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, जबकि दोनों देश एक-दूसरे को भूराजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखतें हैं, दोनों देश अनेक अन्तर्राष्ट्रीय फोरम पर विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन और WTO वार्ता पर सहयोगात्मक भी हैं। इसलिए यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि भारत-चीन सम्बन्ध आपस में जटिल हैं और कहीं-कहीं से विपरीत खींचतान पूर्ण और दबाव में हैं।

भारत और चीन के बीच सम्बन्धों में तनाव सन् 1962 में चीन–भारत युद्ध के समय से हुए हैं जिसमें चीन विजयी हुआ था। भारत और चीन एक बहुत लम्बी सीमा साझा करते हैं और दोनों के बीच उबलता हुआ सीमा विवाद विशेष रूप से जम्मू और कशमीर तथा अरूणाचल प्रदेश से सम्बन्धित है। हालांकि 20वीं सदी के अंतिम दो दशकों से, दोनों देशों के बीच सम्बन्धों में सुधार हुआ है। चीन में विगत 1970 के दशक के बाद अपनी आर्थिक स्थिति को आगे की ओर ले जाने की प्रक्रिया शुरू की थी और इसने अपनी विदेश नीति में व्यावहारिक दृष्टिकोण का संचार करना शुरू कर दिया जो भारत-चीन के सम्बन्धों में पिघलाव आने का प्रमुख कारण है। सन् 1980 के दशक में मध्य में, प्रधानमंत्री राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में उन्होंने चीन का दौरा किया और सीमा पर एक संयुक्त कार्यकारी समूह स्थापित करने पर और आर्थिक संबंधों, व्यापार और विज्ञान को लेकर कार्यसमुह स्थापित करने के लिए समझौते पर हस्ताक्षर किया। यह एक ऐतिहासिक यात्रा थी क्योंकि यह 34 वर्षों में चीन आने वाले प्रथम भारतीय प्रधानमंत्री थे। इसी प्रकार 31 वर्षों के लम्बे अन्तराल के बादल उस समय के चीन के प्रीमियर ली पेंग ने दिसम्बर, 1991 में भारत की यात्रा की और मित्रवत विचार-विमर्श के माध्यम से सीमा विवाद प्रश्न का समाधान करने का वचन दिया। इसके बाद भारत के प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने 1993 में चीन की यात्रा की और चीन पर शान्ति स्थापन हेतू एक समझौतां पर हस्ताक्षर किया और संयुक्त कार्यसमूह के कार्य में सहायता के लिए भारत-चीन विशेषज्ञ समूह के राजनयिक और सैन्य अधिकारी समूह की स्थापना की गयी। नंवबर, 1996 में चीन के राष्ट्रपति जिआंग जेमिन ने भारत का एक ऐतिहासकि दौरा किया। यह दूसरी ऐतिहासिक यात्रा थी क्योंकि चीन के राष्ट्र अध्यक्ष की यह प्रथम भारत यात्रा थी। दोनों देशों ने सीमा से संबंधित सैन्य क्षेत्र में विश्वास निर्माण मानदंड स्थापित करने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किया। यह दिलचस्प बात है कि दोनों समझौते 1993 और 1996 में पांच सिद्धांतों का सन्दर्भ दिया गया था जो 1954 के पंचशील समझौतों में मौजूद थे जो सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध से पूर्व आधार थे। एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत मुख्य रूप से दोनों देशों के लिए प्रमुख विषय था, जैसे– चीन तिब्बत के मामले में भारत

का हस्तक्षेप नहीं चाहता था और भारत ने ठीक उसी प्रकार के शिष्टाचार की मांग चीन से कश्मीर के विषय में की। सन् 1998 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण के बाद चीन ने भारत की दृढ़तापूर्वक निन्दा की और भारत तथा पाकिस्तान कोछच्और सी.टी.बी. टी. में सम्मिलित होने को कहा। भारत ने चीन की स्थिति एक कपटी की पायी। जैसा कि चीन ने पाकिस्तान का समर्थन किया था और पाकिस्तान की परमाणु हथियार योजना में सहायता की थी। इसके अतिरिक्त चीन को पता था कि परमाणु हथियार का परीक्षण मुख्य रूप से चीन को डराने के लिए था ना कि पाकिस्तान को। भारत पाकिस्तान के साथ परम्परागत युद्व में सदैव पाकिस्तान पर सैन्य श्रेष्ठता व्यक्त करता आ रहा है, इस प्रकार पाकिस्तान द्वारा थोपे गए खतरे से निपटने के लिये परमाणु हथियारों की आवश्यकता नहीं थी। भारत के परमाणु हथियार कार्यक्रम का उद्वेश्य चीन के साथ परमाणु समानता देना था जिसकी कमी से सन् 1962 में भारत को हार का सामना करना पड़ा था।

अगस्त सन् 1998 में लद्दाख-कैलाश-मानसरोवर मार्ग को पुनः चालू करने के लिए वार्ता प्रारम्भ हुई। जब सन् 1999 में करागिल विवाद इतवाम.वनजहो गया, पाकिस्तान के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी कम से कम सार्वजनिक रूप से चीन ने उदासीन रवैया अपनाया। यह विश्व की प्रमुख शक्तियों, जैसे अमेरिका जो कि स्पष्ट तौर पर भारत के समर्थन में खड़ा हुआ, के पूरी तरह तुलनात्मक रूप से भिन्न था। तिब्बत और दलाई लामा के आस-पास के मुद्दों ने दोनों देशों के बीच सम्बन्धों में संघर्श पैदा किया हुआ था। सितम्बर, 1999 में चीन ने भारत को चेतावनी दी कि वह दलाई लामा के साथ मिलकर विभाजन की गतिविधि यों को रोके जिससे द्विपक्षीय सम्बन्धों में और सुधार हो। तथ्यों को और भी खराब बनाने के लिए, जनवरी, 2000 में कर्मपा लामा जो कि तिब्बत के तीसरे सर्वोच्च अध्यात्मिक विशेषज्ञ थे चीन से भारत पलायन पर गये और यह सम्बन्धों में दूसरें संधार्ष का कारण बना।

चीन की चिन्ताओं के परिप्रेक्ष्य में, भारत ने उन्हें एक वर्ष बाद शरण दी और उन्हें सिक्कम में रूमटेक मठ में लागू सम्प्रदाय की पारम्परिक पद भी लेने की अनुमति नहीं दी। तनाव 2000 में और बढ़ गया जब चीन की लिबरेशन सेना ने एक स्थायी सड़क नेटवर्क स्थापित किया था। और भारत कीस्ब्की ओर लद्दाख की अकसई चीन क्षेत्र में बंकर स्थापित किए थे। हांलाकि इस समस्या के बावजूद, फरवरी, 2000 में भारत और चीन में द्विपक्षीय व्यापार समझौते पर बीजिंग में हस्ताक्षर किए थे, जो चीन के विश्व व्यापार संगठन और डब्ल्यू में प्रवेश की सुविधा प्रदान करता था, साथ ही स्टील पर संयुक्त कार्यकारी समूह की स्थापना के लिए भी समझौते पर हस्ताक्षर किया था। जनवरी, 2002 में तत्कालीन चीन प्रीमियन जू रोंगजी ने भारत का दौरा किया और इसके बाद बीजिंग में मार्च, 2002 में एक समझौते के बाद एक उचित समय-सीमा के भीतर सीमा विवाद को सुलझाने के लिए एल.ए.सी. आलेखन की गति को तेज करने की मांग की गई थी। दूसरे वर्ष के जून में भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने चीन की ऐतिहासिक यात्रा की। यह यात्रा दस वर्षो बाद भारत के सरकार प्रमुख की पहली यात्रा थी।

मनमोहन सिंह कि सरकार सन् 2004 में सत्ता में आई और चीन से सतत् रचनात्मक जुड़ाव की नीति अपनाई अप्रैल 2005 में चीन के प्रीमियर वेन जिआबाओ ने भारत की यात्रा की और बेंगलूरू का विशेष रूप से दौरा किया। यह यात्रा दोनों देशों के बीच हाईटेक सेक्टर में सहयोग बढ़ाने के क्रम में की गयी थी। 6 जुलाई 2006 को भारत और चीन ने नाथू ला पास को पुनः खोल दिया जो सन् 1962 भारत-चीन युद्व के बाद बन्द कर दिया था। यह अभूतपूर्व निर्णय भारत-चीन के सम्बन्धों को लेकर मील का पत्थर साबित होता हुआ दिखाई दे रहा था। उसी वर्ष भारत और चीन ने BTICS (ब्राजील, रशिया, भारत, चीन) की भी स्थापना की जो बाद में उभरती अर्थव्यवस्थाओं के बीच सहयोग को बढ़ावा देने के लिए सन् 2010 में दक्षिण अफ्रीका के जुड़ जाने से BTICScu गई। ब्रिक्स में शामिल देश प्रति वर्ष वार्षिक शिखर सम्मेलन में मिलने हैं तथा विकास सम्बंधी कार्यक्रमों एवं योजनाओं के क्रियान्वयन करते समय अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर युद्ध, राजनीतिक, व्यापार, उद्योग आदि में सफलता प्राप्ति की योजना सम्बन्धी सहयोग पर विचार-विमर्श करते हैं और रणनीति बनाते हैं। ब्रिक्स की स्थापना से यह पता चलता है कि भारत और चीन दोनों देश अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग से होने वाले लाभों को अच्छी तरह समझाते हैं। ब्रिक्स एक ऐसी संस्थानों के निर्माण का प्रयास है जो विकसित देशों के प्रभावित संस्थानों, जैसे विश्व बैंक और आई.एम.एफ. के बाहर भारत और चीन जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं द्वारा सामना किए जाने वाले विशिष्ट मुद्दों और चिन्ताओं को सम्बोधित करते हैं। पश्चिम के विभिन्न पर्यवेक्षकों द्वारा पाश्चात्य आर्थिक वर्चस्व को चुनौती देते हुए देखा गया है।

यद्यपि इस प्रकार के प्रगतिशील कदमों के बावजूद भारत-चीन के बीच सीमा विवाद सतत् जारी है जो भारत-चीन के सम्बन्धों में कठिनाई उत्पन्न कर रहा है। मई, 2007 में चीन ने अरूणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री को वीजा जारी करने से यह कहते हुए इन्कार कर दिया चूंकि अरूणाचल प्रदेश चीन का एक हिस्सा है, इसलिए उन्हें चीन में प्रवेश करने के लिए वीजा की कोई आवश्यकता नहीं है। भारत, चीन के इस उत्तेजक ब्यान से उत्तेजित हो गया। जनवरी, 2009 में भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने चीन की यात्रा की वह बहुत रचनात्मक यात्रा रही। दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार 50 बिलियन डॉलर से अधिक हो गया। चीन के निर्माण में, भारत का वह सबसे बड़ा व्यापार साझीदार हैं। अक्टूबर 2009 में दोनों देशों के बीच तनाव फिर बढ़ गया। जब चीन ने भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अरूणाचल प्रदेश के दौरे पर आपत्ति जाहिर की। भारत ने इसे अपने आन्तरिक मामले में चीन का हस्तक्षेप माना। अगस्त, 2010 में चीन द्वारा एक दूसरी उत्तेजक गतिविधि अपनाई गई जब उसने लेफ्टिनेंट जनरल बी.एस. जसवाल उत्तरी कमान के प्रमुख को वीजा देने की अनुमति नहीं दी क्योंकि उन्होंने जम्मू और कश्मीर के विवादित भू-क्षेत्र को नियंत्रित किया था। बाद में भारत ने चीन के दो रक्षा अधिकारियों को दिल्ली की यात्रा करने के लिए आज्ञा देने से मना कर दिया। साथ ही चीन के साथ रक्षा-सम्बन्धी आदान-प्रदान को रद्द कर दिया। उसी वर्ष नवम्बर में चीन ने जम्मू और कश्मीर के लोगों को स्टेपल किए गए वीजा देने का अभ्यास प्रारम्भ किया। अप्रैल 2013 में चीन की सेनाएं अनुचित रूप से पूर्वी लद्दाख के डेपसैंग बल्ज में भारत की सीमा मेंसब्के लगभग 19 किमी. तक घुस गई। चीन ने दावा किया कि यह भू-क्षेत्र जिन जिआंग प्रदेश का एक हिस्सा था।

सन् 2014 की मई में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी चुने गये। उसी महीने में मोदी ने अरूणाचल प्रदेश की यात्रा की जिसके विरूद्ध चीन ने विरोध प्रदर्शन किया। जुलाई, 2014 में मोदी ने बीजिंग में आयोजित ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग से मुलाकात की। उसी वर्ष बाद में सितम्बर 2014 में चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने भारत का दौरा किया और अहमदाबाद में मोदी से मुलाकात की। इस मुलामात के बाद मोदी और शी जिनपिंग के बीच व्यक्तिगत मित्रवत संबंध विकसित हुए। मोदी चीन के राष्ट्रपति से प्रोटोकॉल को दर किनार करते हुए व्यक्तिगत रूप से स्वागत करने के लिए अहमदाबाद पहुंच गए। चीन ने पांच वर्षो के दौरान 20 बिलियन डॉलर का निवेश करने का वायदा किया। मई, 2015 में मोदी ने चीन की दूसरी यात्रा की जिसके दौरान चीनी यात्रियों के लिए वीजा प्रक्रिया आसान बनाई गयी। अक्टूबर, 2016 में मोदी, चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग से गोवा में आयोजित ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में पुनः मिले। इस बीच सन् 2013 में चीन ने वन रोड वन बेल्ट (ओ.बी.ओ.आर) इनीशिएटिव का अनावरण किया था जो यूरेशियायी देशों के बीच कनेक्टिविटि और सहयोग को विकसित करना चाहता है। ओ.बी.ओ.आर. यूरेशियन देशों की एक सबसे बड़ी और ऐतिहासिक इंफ्रास्टक्चर और निवेश परीयोजना है। इसके अन्तर्गत विश्व के 68 देश आते हैं जिसमें 60 प्रतिशत से अधिक विश्व की जनसंख्या रहती है और उनकी जी.डी.पी वैश्विक जी.डी.पी. की 40 प्रतिशत है। यह चीन की विशाल महत्तवाकांक्षाओं की साक्षी है। जब कि भारत ने ओ.बी.आर. का सैद्धांन्तिक रूप से स्वागत किया है किन्तु यह एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है कि कहीं चीन इसके माध्यम से दक्षिण एशिया एवं उसके परे के क्षेत्र पर हावी तो नहीं होना चाहता है। इसे अतिरिक्तव्ठव्क्का एक वर्ग, चीन और पाकिस्तान आर्थिक कॉरीडोर (सी.पी.इ.सी) भारत और पाकिस्तान के बीच विवादग्रस्त सीमा में से जाना भारत को स्वीकार्य नहीं था। इस चिंता से भारत ने मई, 2017 में आयोजित रोड इनीशिएटिव शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए चीनी आमन्त्रण को अस्वीकार करने का निर्णय लिया। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया था, भारत पहले से ही चीन के हिन्द महासागर क्षेत्र पर हावी होने के लिए China's String of Pearls Policy से चिंतित था। चीन भारत की Indian's East Policy जिसमें दक्षिण एशियायी दशों से घनिष्ट सम्बन्ध को उन्नत करना शामिल है, दक्षिण कोरिया के साथ-साथ जापान से मित्रता का प्रयास भारत द्वारा चीन के प्रभाव में अतिक्रमण करते देखता है। जून, 2017 में चीन के समर्थन के चलते भारत ने पाकिस्तान के साथ शंघाई सहयोग संगठन की पूर्ण सदस्यता स्वीकार कर ली। मोदी ने चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग को चीन का भारत को पूर्ण सदस्यता का समर्थन करने के लिए धन्यवाद दिया। यद्यपि यह ध्यान देने योग्य है कि चीन ने परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (एन एस जी) के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता के रूप में प्रवेश की अनुमति देने के लिए लगातार आपत्ति व्यक्त करता आ रहा है। डोकलाम गतिरोध सन् 2017 के जून और अगस्त महीने तक भारत और चीन दोनों देशों के बीच सीमाओं पर तनाव का एक और संकेत है जिसमें दोनों देशों की सेना सीमापार तैनात हैं। सितम्बर, 2017 में मोदी, चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग से चीन में आयोजित ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में मिले और दोनों नेताओं ने सीमा विवाद को शन्तिपूर्ण ढ़ंग से समाधान करने का वचन दिया।

भारत और चीन के सम्बन्ध एशिया और विश्व के भविष्य का निरूपण करेंगे। यही कारण है कि भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रणव मुखर्जी की चीन यात्रा के दौरान उन्होंने भारत-चीन के सम्बन्धों को 21वीं सदी की साझेदारी के रूप में परिभाषित किया। दोनों देशों के साथ एक व्यापक बाजार है और उदीयमान मध्यम वर्ग है, दोनो के बीच विपुल आर्थिक समता है और कुछ लोगों ने इसे पहले से ही महसूस कर लिया है। हालाँकि भारत चीन की महत्वाकांक्षा के प्रति सावधान है, विशेष रूप से मौजूदा समय में चीन की बढ़ती हुई आक्रामकता को लेकर भारत इसके लिए भी सावधान है कि चीन की पाकिस्तान के साथ रणनीतिक घनिष्ठता का लक्ष्य दक्षिण एशियायी स्तर पर भारत को व्यस्त रखना है जिससे वह वैश्विक शक्ति के रूप में न उभर सके। चीन पाकिस्तान की रक्षा के लिए अपनी वीटो शक्ति और अन्तर्राष्ट्रीय रसूख का भी प्रयोग करने को तैयार है। उदाहरण के लिए नवम्बर, 2017 में चीन ने पाकिस्तान के आंतकी संगठन जैश-ए-मोहम्मद के नेता मसूद अजहर को जो कि भारत के पठानकोट आक्रमण का दोषी होने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आतंकी घोषित करने के विरूद्ध अपने वीटो शक्ति का उपयोग किया। पाकिस्तान के खराब परमाणु प्रसार रिकॉर्ड के बावजूद चीन का पाकिस्तान के लिए परमाणु सहयोग जारी है और सन् 2010 में पाकिस्तान के साथ हस्ताक्षीत परमाणु डील जो कि ठीक उसी तरह है जैसे भारत ने अमेरिका से प्राप्त किया था। पाकिस्तान में परमाण्विक हाथियारों और मिसाइल प्रोग्राम के विकास के साथ सैन्य सहायता में चीन की भूमिका प्रमुख रूप से प्रलेखित है जिसे पाकिस्तान चीन से प्राप्त करता है। पिछले दो दशकों से भारत के साथ अमेरिका के बढ़ते आर्थिक सम्बन्धों के साथ और पाकिस्तान द्वारा आतंकवाद के समर्थन करने के कारण उसके प्रति बढ़ती क्षुब्धाता को देखते हुए पाकिस्तान चीन के समर्थन के लिए उसकी ओर देख रहा है। चीन पाकिस्तान को सहायता करने के लिए हरदम तैयार है क्योंकि वह भारत के बढ़ते प्रभाव का सामना करने के लिये पाकिस्तान को एक महत्वपूर्ण सहयोगी के रूप में देख रहा है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, चीन भारत को एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में संदर्भित कर सकता है न कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रमुख शक्ति के रूप में। यही कारण है कि चीन भारत को यूनाइटेड नेशन की सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बन जाने के लिए समर्थन करने से इन्कार कर रहा है। भारत 'लुक ईस्ट' जैसी नीतियों के माध्यम से चीन को नियंत्रण में लाने का प्रयास कर रहा है जो बाद में अमेरिका और जापान जैसे देशों से जो चीन के बढ़ते प्रभाव की आत्मसात करने के प्रयास में लगे हैं के साथ घनिष्ठ मित्रवत और सामरिक सम्बन्धों को बढ़ावा देने के द्वारा "Act East" बन गया है। हालांकि ठीक उसी समय भारत लगातार चीन के साथ रचनात्मक सम्बन्ध भी स्थापित करने में लगा है क्योंकि चीन भारत का सबसे बड़ा व्यावसायिक सहयोगी है। साथ ही अत्यधिक आर्थिक क्षमतावान भी। चीन अगले दशक तक वैश्विक महाशक्ति के रूप में स्थापित होने को तत्पर है, चीन के साथ भारत का सम्बन्ध बहुत महत्वपूर्ण है जैसे भारत का सम्बन्ध अमेरिका से है।

डोकलाम विवाद का मुख्य कारण उसकी अवस्थिति है। यह एक ट्राई-जंक्शन है, जहॉ भारत, चीन, और भूटान कि सीमा मिलती है। वैसे तो भारत का इस क्षेत्र पर कोई दावा नहीं है। दरअसल इस क्षेत्र को लेकर चीन भूटान के बीच में विवाद है। वर्तमान में यहॉ चीन का कब्जा है और भूटान उस पर दावा करता है। भूटान और भारत के बीच 1949 से ही परस्पर विश्वास और स्थायी दोस्ती का करीबी संबंध है, दोनों देशों के बीच सैन्य सहयोग का करार 2007 में भारत और भूटान द्वारा हस्ताक्षर किए गये मैत्री संधि के अनुच्छेद-2 में कहा गया है। "भूटान और भारत के बीच घनिष्ठ दोस्ती और सहयोग के संबंध को ध्यान में रखते हुए भूटान गणराज्य की सरकार निकट सहयोग के संबंधों को ध्यान में रखते हुए भूटान की साम्राज्य की सरकार और भारत गणराज्य की सरकार निकट सहयोग करेगी अपने-अपने राष्ट्रीय हितों से संबंधित मुद्वो पर एक दूसरे के साथ है।"

1988 के बाद से चीन, भूटान के कुछ क्षेत्र पर अतिक्रमण करता आ रहा है। लेकिन डोकलाम में अभी तक पी.एल.ए की कोई स्थाई उपस्थिति नहीं थी। पहली बार चीन डोकोला से जूमली में भूटान आर्मी शिविर की ओर एक सपाट सड़क का निर्माण कर रहा था। चुँकि यह कार्य उसने पहले भी कर चुका था और भूटान विरोध करने में सक्षम नहीं दिखा और यह स्पष्ट भी था कि भूटानी पी.एल.ए के सैनिकों को निर्माण बंद कराने की स्थिति में नहीं थे, भले ही उन्होने चीनी पक्ष को जमीनी और राजनयिक चैनलो के माध्यम से कई बार विरोध जता चूका था, कि भूटानी क्षेत्र के अंदर सड़क का निर्माण पहले के समझौतों का उल्लंघन है।

इस क्षेत्र को लेकर भारत के पास दो प्रमुख मुद्वे है, जो भारत के लिए प्रत्यक्ष चिंता का कारण बना हुआ है। चीन एक तरफा ट्राई-जंक्शन बिंदु बदल रहा है। भारत इसे 2012 के एक आपसी समझोतें का उल्लंघन मानता है। जैसा कि विदेश मंत्रालय के वक्तव्य

में उल्लेख किया गया है कि चीन के सड़क बनाने से इलाके की मौजूदा स्थिति में अहम् बदलाव आएगा, भारत की सिक्यूरिटी के लिए गंभीर चिंता का विषय है। रोड लिंक से चीन को भारत पर एक बड़ी सैन्य लाभ हासिल होगी। इससे पूर्वोतर राज्यों को भारत से जोड़ने वाला कॉरिडोर चीन की जद में आ जाएगा। जहाँ चीन का मानना है कि इस क्षेत्र पर उनका अधिकार है, यह रोड उसके तिब्बत-सिलक रोड का एक हिस्सा है भारत को तुरन्त पीछे हटना होगा। वही भारत और भूटान चाहते थे कि जब तक इस विवादित क्षेत्र का कोई फैसला नहीं होता रोड निर्माण का कार्य रोकना चाहिए।

यह गतिरोध 16 जून 2017 को शुरू हुआ, इसके लिए 270-300 भारतीय सैनिक दो बुलडोजर्स के साथ भारत-चीन सीमा पार कर डोकलाम में सड़क बनाने से रोक दिया, जिस कारण दोनों देशों के सैनिकों के बीच गतिरोध उत्पन्न हो गई। दोनों देशों के राजनायिकों ने समझौता कर 28 अगस्त 2017 को दोनों देशों ने अपनी सेनाएं पीछे हटाने का निर्णय लियज़ं वर्ष 2019 के अंतिम माह में चीन के वुहान शहर में हुए कोविड-19 संक्रमण से आज पूरा विश्व इस महामारी के चपेट में आ गया है। पूरे विश्व में कोविड-19 से लाखों लोगों कि कि मृत्यु तथा लगभग करोड़ों लोगा संक्रमित हुए है। कोविड-19 से भारत को भी काफी प्रभाव पड़ा है। इससे भारत में लगभग दस हजार लोगों कि मृत्यु दिनांक हो चूकी है।

इस महामारी के काल में भी चीन अपने सीमा विस्तार को लेकर भारत-चीन की सीमा पर लद्दाख की गलवान घाटी में 15 जून 2020 की रात दोनों देशों के सैनिकों के बीच हुए हिंसक झड़प के कारण भारत के 20 जावांज सैनिक शहीद हो गयें जिस कारण पूरे भारत में चीन के प्रति गुस्सा भड़क गया और सरकार ने चीन के अधिकांश चायनीज मोबाईल ऐप्पस पर प्रतिबंध लगा दिया।

एशिया महादेश के दो बड़े देश भारत और चीन एक पड़ोसी देश है। शुरूआती समय से ही चीन के साथ सीमा समस्या तथा दलाई लामा को लेकर दोनों देशों के संबंधा में कटुता का भाव देखा गया है, जबकि भारत हमेंशा अपने पडोसीं देशों के साथ मित्रवत व्यवहार करता रहा है। चीन हमेशा से अपनी सीमा को विस्तार करने के लिए भारत पर अपनी बुरी नजर बनाये रखा है। चीन-भारत का संबंध पिछले दशकों से तनाव पूर्ण रहा है। वर्तमान समय में कोविड-19 के महामारी के काल में भी चीन अपनी तानाशाही का प्रर्दशन कर भारत को गलवान घाटी कि समस्या देकर भारत को अपनी शक्ति का प्रर्दशन करने के लिए मजबूर कर दिया है। इसकों लेकर भारत अपनी सैनिको को चीन से सटे सीमा पर तैनात कर अपनी प्राक्रमता का परिचय दिया है। इस सभी घटनाओं के होने से भारतीय नागरिक चीनी समान खरीदने से कतरा रहे है, जिससे चीन को भारी नुकसान का सामना करना पड़ रहा है। इस कारण वर्तमान समय में दोनों देशों के बीच का संबंध तनाव से ग्रसित है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. डॉ. सुरेश चन्द्र सिंहल–अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 2017, पृष्ट संख्या 554
2. वी.एन. खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, लैस्ली कुमार– भारत कि विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि., नोएडा, 2019, पृष्ट संख्या 343-347
3. भारत, चीन समझौता 2007
4. भारत, भूटान मैत्री संधि, 15 अगस्त 2017
5. प्रभात खबर, 18 जून 2020
6. आरोग्य सेतु ऐप्प, भारत सरकार
7. hi.m.wikipedia.org
8. bhugannewsonline.com

ममता कालिया की बोलने वाली औरतों में : शादीशुदा नारी

डॉ० सिजू पी वी

अतिथि अध्यापिका, निर्मला कॉलेज, मुवाट्टूझा, केरल

पुरुषवर्चस्ववादी समाज के कायदे कानून के अनुसार ही नारी की जिंदगी चलती है। घर और ससुराल में बंधनों से मुक्ति के लिए वह छटपटाती रहती है। अब नारी के सामने मात्र घर बसाने का ही प्रश्न नहीं है, वह जिंदगी से बहुत कुछ पाना चाहती है। स्त्रियों में आई जागरूकता से वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है और उनकी प्राप्ति के लिए आवाज भी उठातीहैं। ममता कालिया की 'बोलनेवाली औरतें' में भी इस प्रकार की आवाज बुलंद है। 'बोलनेवाली औरत' नारी की यथार्थ जिंदगी की कहानी है। कहानी में शादी से पहले और बाद में 'नारी जीवन किस प्रकार है' यह दिखाने की कोशिश की गयी है।

'बोलनेवाली औरत' एक दीपशिखा नामक लड़की की कहानी है। वह खुद को अग्निशिखा कहती है। कोई उससे नाम पूछने पर वह महज अपना नाम दीपशिखा ही नहीं बताती– "लेकिन कोई नाम पूछता तो वह महज नाम ही नहीं बताती– मेरे माता-पिता ने मेरा नाम गलत रखा है। मैं दीपशिखा नहीं अग्निशिखा हूं।"[1] अग्निशिखा की तरह वह हमेशा प्रज्वलित रहती है। कभी किसी बात पर, कभी किसी सवाल पर।

बीएससी में पढ़ने वाली दीपशिखा किसी बात पर, या किसी सवाल पर हमेशा अग्निशिखाकी तरह प्रज्वलित रहती है। उसके इस स्वभाव से प्रभावित होकर ही कपिल ने उससे शादी किया था। कपिल की आत्मनिर्भरता, खूबसूरती और स्वतंत्र सोच पर शिखा भी प्रभावित हुई। शादी के बाद उसे पता चला कि प्रेम और विवाह दो अलग-अलग संसार हैं। एक मैं भावना और दूसरे में व्यवहार की जरूरत होती है। शादी के बाद शिखा की जिंदगी बदल जाती है। उसका नाम भी ससुराल में आकर दीपशिखा से सिर्फ शिखा बन जाता है। यहां पर ममता कालिया शादीशुदा औरत की जिंदगी के संबंध में शिखा कि मुंह से यह बताती है कि "दुनिया भर में विवाहित औरतों का केवल एक ही स्वरूप होता है। उन्हें सहमति प्रधान जीवन जीना होता है। वे अपने घर की कारा में कैद रहती हैं। हर एक की दिनचर्या में अपनी-अपनी तरह की एकरसता रहती है। हर एक के चेहरे पर अपनी-अपनी तरह की ऊब। हर घर का एक दर्रा है जिसमें आपको फिट होना ही होना है।"[2] शिखा कहती है कि कुछ औरतें अपनी जिंदगी की एकरसता से मुक्ति के लिए इसके ऊपर श्रृंगार का मुलम्मा चढ़ा लेती हैं, पर उनकी श्रृंगार में भी एकरसता होती है। उसके अनुसार– "अधिकांश औरतों को तो इस बात की कोई चेतना भी नहीं है कि हर दिन अपनी जिंदगी को तमाम करने के लिए वह छोड़ दी जाती है। वही काम,वही एकरसता पूर्ण जीवन..." दुख कीबात यह थी कि अधिकांश औरतों को इस ऊब और कैद की कोई चेतना नहीं थी। वह रोज सुबह साढ़ेनौ बजे सासों, नौकरों, नौकरानियों, बच्चों, माली और कुत्तों के संगघरों में छोड़ दी जातीं, अपना दिल तमाम करने के लिए। वही लंच पर पति का इंतजार, टीवी पर बेमतलब कार्यक्रमों का देखना और घर भर के नाश्ता खाना, नखरों की नोक, पलक संवारना, चिकनी महिला पत्रिका के पन्ने पलटना, दोपहर को सोना, सजे हुए घर को कुछ और सजाना, सास की जी हुजूरी करनाऔर अंत मैं रात को एक जड़ नींद में लुढ़क जाना।"[3] शिखा की जिंदगी भी इससे अलग नहीं है। शादी के बाद दीपशिखा सिर्फ शिखा बनकर एकरसतापूर्ण जिंदगी बिताने के लिए विवश हो गई है। वह इस हालत से दुखी हो गयी है।

ससुराल में सास, ससुर यहां तक पति भी उसके प्रतिपक्ष में है। झाड़ू को खड़ी रखने से लेकर सब बात में सब उसे ही दोषी ठहराते रहते हैं। ऐसे हालत में तर्क वितर्क करने को शिखा विवश हो जाती है। बहुत जल्द कोई ना कोई ऐसा प्रसंग उपस्थित हो

जाता है कि वह ज्वालामुखी की तरह फटपड़ती और एक बार फिर बदतमीज और बदजुबान कहलाई जाती। तब शिखा बेहद तनाव में पड़ जाती है। घर के झगड़े में कपिल का गुस्सा हमेशा शिखा पर ही होता है। वह बिना कुछ पूछे शिखा को ही दोषी ठहराता है। उसके अनुसार... "शिखा को अच्छी पत्नी की तरह चुप रहना चाहिए। खासतौर पर मां के आगे।"[4] कपिल की इन बातों से पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता व्यक्त हो जाता है। समाज को बोलने वाले अच्छे नहीं लगते। उनकी राय में अच्छी पत्नी का गुण चुप रहना है। अपने ऊपर होने वाले आरोप के प्रति आवाज उठाने पर वह बदजुबान कहलाती है। शिखा को लगता है कि "घर मैं जैसे टॉयलेट होता है, ऐसे एक चॉकलेट भी होना चाहिए। जहां खड़े होकर वह अपना गुबार निकाल ले। जंजीर खींचकर बातें बहा दे और एक सभ्य शांत मुद्रा में बाहर आ जाए।"[5] शिखाको बड़ा अजीब लगा कि औरत को ससुराल में रहने के लिए "इस भारी-भरकम शब्दकोश की जरूरत ही नहीं है। घर को सुचारू रूप से चलाने के लिए सिर्फ दो शब्दों की दरकार थी– जी और हाँ जी।"[6] समाज के सामने अच्छी पत्नी बनने के लिए हां में हां मिलाना जरूरी है। शिखा को दूसरी बार अजीब सा तब लगा जब उसने अपनी जैसी औरतों से बात की तो सब अपने पति और बच्चे के बारे में डींग मारने में तुले थे। हमारे तो ऐसे हैं, हमारे तो वैसे हैं, हमारे जैसा कोई नहीं हो सकता। हमारा बेटा तो पढ़ने में इतना तेज़ है कि पूछो ही मत। ऐसे में शिखा को लगाकि उसी में शायद कोई कमी है जो वह इस तरह संतोष से लबालब भर कर 'मेरा परिवार महान' का राग नहीं अलाप सकती। शिखा के अनुसार हमारे समाज में ऐसी भी महिलाएं हैं जिनका खुद का सपना नहीं वह अपनी जिंदगी का तनाव भी पहचानने में सक्षम नहीं हैं।

शिखा शादी के बाद भी अपनी मौलिकता बनाए रखना चाहती है। लेकिन कपिल उसके अस्तित्व को मानने के लिए तैयार नहीं है। कपिल अपनी पत्नी से यह उम्मीद रखता था कि "शिखा एक अनुकूल पत्नी की तरह रूटीन का बड़ा हिस्सा अपने ऊपर ओढ़ ले और उसे अपने मौलिक सोच विचार के लिए स्वतंत्र छोड़ दें।"[7] शिखा भी अपने पति से यही उम्मीद रखती है। लेकिन कपिल जैसे पुरुषवर्चस्ववादी समाज को पत्नी की ओर से "एक परंपरा चाहिए जी हुजूरी का, उसे एक गांधारी चाहिए जो जान-बूझकर न सिर्फ अंधी बनी रहे बल्कि गूंगी और बहरी भी।"[8] घर की घुटन से शिखा को लगता है कि काश गोदरेज का कोई ताला होता जो उसका मुंह बंदकर उसके मुंह पर लगा दिया जाता। जिसे ससुराल वाले उसके मुंहपर जड़कर चाभी स्के में डाल देते। इस प्रकार एकरसता और तनाव उसकी जिंदगी का हिस्सा बन गया है। साल बीत गये। बच्चे भी हुए पर उसकी जिन्दगी की नीरसता कम नहीं हुई।

ससुराल में उसके प्रति व्यवहार देखकर बच्चे भी शहजादों की तरह उससे बर्ताव करते हैं। बच्चे भी शिखा की कोई बात नहीं मानते हैं। वह बच्चों से जूठी प्लेट भी उठाने को कहती तो बच्चे 'मां का काम है' कहकर टाल देते है। बेटे को डांटने का हक भी उस घर में शिखा को नहीं था। एक बार जूठी प्लेट उठाने के संबंध में मां और बेटे के बीच झगड़ा होता है। शिखा बच्चे को मारती है। बदले में बच्चा भी वापस मां के चेहरे पर थप्पड़ मारता है। लेकिन परिवार के सब लोग मिलकर शिखा को ही दोषी ठहराते हैं। कपिल ने आरोप भी लगाया कि शिखा बच्चे का और मेरा शिकार करती है– "पहले मेरा शिकार करती थी, अब बच्चे का करती है।"[9] सच्चाई यह है कि ज्यादातर घरों में औरतें ही शिकार बनती हैं।

अंत में, शिखा ने पायाकि वह परिवार की शर्तों परजीते-जीते न सिर्फ अपनी शक्ल खो बैठी है वरन उसकी अभिव्यक्ति भी खो गई है। लेकिन उसके अंदर छुपे शब्द चीख रहे थे। वह आशा करती है कि किसी न किसी दिन, कभी ना कभी इस तरह छुपाए गई हजारों औरतों के शब्द अभिव्यक्ति बन कर जरूर निकलेंगे। ससुराल में शादीशुदा औरतों की जिंदगी का यथार्थ चित्रण कर ममता कालिया ने औरतों को सोच-विचार करने को प्रेरित किया है। पढ़ी-लिखी होने के बाद भी स्त्री आज भी अपने संबंधों को बचाए रखने के लिए अपना अस्तित्व दाव पर लगा देती है। संबंधों में चाहे कितनी भी कड़वाहट भरी हो पर नारी कभी साथ नहीं छोड़ती। लेखिका ममता कालिया ने नारी जीवन में दाम्पत्य संबंधों में विवशता का रूप प्रकट किया है, विवशता भी इतनी गहरी कि स्त्री का संपूर्ण जीवन उसे सँवारने एवं बचाने में लगा रहता है।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. ममता कालिया, बोलनेवाली औरत : पृ 126
2. ममता कालिया, बोलनेवाली औरत : पृ 126

3. ममता कालिया, बोलनेवाली औरत : पृ 127
4. ममता कालिया, बोलनेवाली औरत : पृ 127
5. ममता कालिया, बोलनेवाली औरत : पृ 128
6. ममता कालिया, बोलनेवाली औरत : पृ 128
7. ममता कालिया,बोलनेवाली औरत : पृ 128
8. ममता कालिया,बोलनेवाली औरत : पृ 130
9. ममता कालिया, बोलने वाली औरत : पृ 131

भारतीय जीवन बीमा निगम के समाजोमुख्य कार्यों का विश्लेषाणात्मक अध्ययन

डॉ० नवीन अग्रवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, कॉमर्स किशोरी रमन पीजी कॉलेज, मथुरा

डॉ० अजय कुमार उपाध्याय

असिस्टेंट प्रोफेसर, कॉमर्स किशोरी रमन पीजी कॉलेज, मथुरा

परिचय

जीवन बीमा वह संविदा है जिसमें एक पक्षकार बीमादाता दूसरे पक्षकार बीमादार को एक निश्चित प्रतिफल प्रीमियम के बदले में बीमा की निश्चित अवधि बीतने या मृत्यु होने पर बीमादार को अथवा उसके द्वारा नामांकित व्यक्ति वैध उत्तराधिकारी को बीमित राशि देने का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। भारतीय जीवन बीमा निगम जीवन बीमा की एक विशाल संस्था है। उसी के अनुरूप इसका संगठन संरचना भी विशाल हैं यह संगठन संरचना जीवन बीमा निगम की सम्पूर्ण संगठनात्मक व्यवस्था व कार्यरत कर्मचारियों के सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। निगम का प्रधान कार्यालय मुम्बई में हैं। इस कार्यालय को केन्द्रीय कार्यालय कहते हैं। इस कार्यालय द्वारा निगम की उच्च स्तरीय नीतियां निर्धारित की जाती हैं और प्रबन्ध संगठन व्यवसाय विनियोग आदि से सम्बन्धित निर्णय लिए जाते हैं। भारतीय जीवन बीमा अधिनियम 1956 की धारा 43 के अनुसार निगम का गठन किया गया है भारतीय जीवन बीमा अधि नियम 1956 के अनुसार निगम में अधिक से अधिक सोलह सदस्य हो सकते हैं इन सभी सदस्यों को केन्द्रीय सरकार नियुक्त करती है। 2013 में भारतीय जीवन बीमा निगम में 11 निदेशक मण्डल के सदस्य थे इनमें एक सदस्य को भारतीय जीवन बीमा निगम का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है अध्यक्ष नियुक्त का कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा ही की जाती है। भारतीय जीवन बीमा निगम के कार्यों के संचालन के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा दो प्रबन्ध निदेशक नियुक्त किये जाते हैं। प्रबन्ध निदेशक भारतीय जीवन बीमा निगम का पूर्णकालिक अधिकारी होता है। भारतीय जीवन बीमा निगम के कार्य संचालन के लिये अनेक विभाग होते हैं इन विभागों के संचालन के लिये कार्यकारी निदेशक की नियुक्ति भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा की जाती है। भारतीय जीवन बीमा निगम अधि नियम 1956 की धारा 19 के अनुसार दो समितियां अनिवार्य हैं– 1. कार्यकारी समिति 2. विनियोग समिति इनके अतिरिक्त निगम का सदस्य बोर्ड आवश्यकतानुसार अन्य समितियाँ भी गठित कर सकता है। भारतीय जीवन बीमा निगम के आठ क्षेत्रीय कार्यालय हैं। जो दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, भोपाल, हैदराबाद, बंगलोर तथा कानपुर में हैं। वर्तमान में हमारे देश में 113 मण्डलीय कार्यालय हैं। इसके अतिरिक्त निगम के मण्डलीय कार्यालय विदेशों में भी कार्यरत हैं। अपने अपने विभागों में विभागों से सम्बन्धित सम्पूर्ण बीमा कार्य विभागीय या मण्डलीय कार्यालय करते हैं। संगठन का विकास करना, नये व्यापार के लिए योजना तैयार करना, बीमा धारको की सेवा करना तथा नये व्यापार का अभिगोपन करना आदि अनेक कार्य विभागीय कार्यालयों के कार्य क्षेत्र के अर्न्तगत सम्मिलत किये जाते हैं। विभागीय कार्यलय में हिसाब किताब भी रखे जाते हैं। मण्डल कार्यालय में एक वरिष्ठ मण्डल प्रबन्धक होता है और इस कार्यालय के संचालन के लिये अनेक विभाग होते हैं। इन प्रत्येक विभागों में एक-एक प्रबन्धक होते हैं और इन प्रबन्धकों के अन्दर एक प्रशासनिक अधिकारी (ए0ओ0) एक सहायक प्रशासनिक अधिकारी (ए0ए0ओ0) उच्च श्रेणी सहायक,

सहायक, रिकार्ड क्लर्क और उप कर्मचारी कार्यरत रहते हैं। प्रथम वर्ग में वरिष्ठ मण्डल प्रबन्धक, विभागीय प्रबन्धक, प्रशासनिक अधिकारी, सहायक प्रशासनिक अधिकारी, तथा तृतीय वर्ग में उच्च श्रेणी सहायक, सहायक, रिकार्ड क्लर्क और चतुर्थ वर्ग में उप कर्मचारी आते है और मण्डल कार्यालय पर द्वितीय वर्ग के कर्मचारी नहीं होते हैं। इस समय हमारे देश में विभिन्न मण्डलीय कार्यालयों के अर्न्तगत लगभग 2,048 शाखा कार्यालय कार्य कर रहे हैं। प्रत्येक शाखा के अर्न्तगत अनेक एजेण्ट एवंविकास अधिकारी होते हैं। ये सभी अधिकारी एवं एजेण्ट शाखा कार्यालय निगम के लिए नवीन व्यवसाय जुटाते हैं एवं बीमा कराने वालो से आवश्यक लिखा पढ़ी कराते हैं। शाखा कार्यालय का मुखिया शाख प्रबन्धक कहलाता हैं। शाखा कार्यालय का मुखिया शाखा प्रबन्धक कहलाता हैं। इस विभाग का अपना विशिष्ट महत्व होता हैं क्योंकि जीवन बीमा निगम में वास्तव में यही धन अर्जित करने वाला विभाग हैं। यही से नया व्यवसाय आता हैं तथा पुराना निरन्तर चलता रहता हैं। यही वह केन्द्र हैं जहाँ बीमित, प्रस्तावक,विकास अधिकारी एवं अभिकर्ता विभिन्न कार्यो के लिए आते हैं। कार्यालय में कार्यरत विभिन्न अधिकारी व कर्मचारी प्रस्ताव पत्र से दावों के भुगतान तक की सारी कार्यवाही में पूर्ण तत्परता से सहयोगपूर्वक कार्य करते हैं।

मुख्य शब्द : एजेण्ट, जोखिम, प्रीमियम पूँजी, दीर्घजीवी, व्यवसायिक संस्था, निवेशक, उपार्जन शक्ति

जीवन बीमा की आवश्यकता

जीवन बीमा एक सम्बन्धित जोखिमों के दुष्परिणामों से सुरक्षा प्रदान करने की एक उत्तम व्यवस्था हैं। मनुष्य के अनेक प्रकार के पारिवारिक उत्तरदायित्व होते हैं जिनको पूरा करने के लिए समुचित धानराशि चाहिए। इसलिए मनुष्य प्रयत्न और उद्यम करता हैं धन कमाता हैं तथा अपनी आय से परिवार के भरण पोषण और सुख सुविधा की व्यवस्था करता हैं। उसे केवल न वर्तमान के लिए ही बल्कि भविष्य के लिए भी समुचित प्रबन्ध करना होता हैं। जिसके लिए वह नाना प्रकारों से धन अर्जित करता हैं। तथा बचाता हैं। उसका जीवन उस पर निर्भर आश्रितों के लिए वास्तव में मूल्यवान हैं। यदि वह पर्याप्त समय तक जीवित रहे और यदि उसकी आय उपार्जन शक्ति कायम रहे तब वह स्वयं ही अपने आश्रितों की सुरक्षा का सहारा हो सकता हैं। लेकिन वह कब तक जीवित रहेगा तथा उसकी उपार्जन शक्ति कब तक कायम रहेगी कोई नहीं जानता हैं। जीवन नश्वर हैं एवम मृत्यु निश्चत हैं। पता नही किस क्षण उसकी जीवन लीला समाप्त हो जायेगी और उसकी मृत्यु होते ही उसके परिवार के भरण पोषण की आय भी समाप्त हो जायेगा तब आश्रितों का सहारा होगा। मृत्यु के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति के सामने दुर्घटना की भी जोखिम रहती है। यदि परिवार का भरण पोषण करने वाला दीर्घजीवी हो तब भी किसी दुर्घटना के कारण उसके असमर्थ हो जाने पर उसकी आय सहसा घट सकती है। जीवन से सम्बन्धित सभी जोखिमों का प्रभाव यह होता है जाती हैं। आय उपार्जन शक्तिमूलरूप से मृत्यु के कारण अथवा असमर्थता या निशक्तता के कारण क्षीण या समाप्त हो सकती हैं। और इन्हीं जोखिमों के प्रति जीवन बीमा की आवश्यकता होती हैं।

जीवन बीमा का प्रधान कार्य मृत्यु वृद्धावस्था या असमर्थता द्धारा उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों से सुरक्षा प्रदान करना हैं। किन्तु सुरक्षा के साथ साथ जीवन बीमा एक संपदा भी हैं जीवन बीमा द्वारा धन संचय होता हैं। इस प्रकार जीवन बीमा में सुरक्षा और विनियोग दोनों तत्व हैं। यह जीवन बीमा की शाखा हैं।

जीवन बीमा निगम के उद्देश्य

जीवन बीमा निगम के निम्नलिखित उद्देश्य हैं जो इस प्रकार हैं।

1. देश के सभी योग्य व्यक्तियों तक पहुचँ ने की दृष्टि से विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों और सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो में और दूर तक बीमा का प्रसार करना और इन्हें उचित मूल्य पर आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना।
2. बीमा से जुड़ी बचतों को अधिकतम गतिशील बनाना।
3. समग्र रूप से समाज के हितों को दृष्टि में रखते हुए और यह स्मरण रखते हुए कि निधियों के निवेश में प्राथमिक दायित्व उस पालिसी धारक के प्रति हैं जिसका धन न्यास के रूप में रखा गया हैं तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताएं तथा आकर्षक लाभ की बाध्यताँए दृष्टि में रखते हुए निवेशकता के तथा समग्र रूप से समाज के अधिकतम लाभ हेतु निधियों का निवेश करना।

4. पूर्णतया यह समझते हुए कि यह धन पॉलिसी धारकों का हैं अधिकतम मितव्ययिता से व्यवसाय चलाना।
5. बीमित जनता की व्यक्तिगत और सामूहिक हैसियत में न्यासी के रूप में कार्य करना।
6. परिवर्तनशील सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण में उत्पन्न होने वाली समाज की विभिन्न जीवन बीमा आवश्यकताओं को पूरा करना।
7. विनम्रता के साथ कुशल सेवा प्रदान करते हुए बीमित जनता के हितों की अभिवृद्धि के लिए निगम मे कार्यरत सभी लोगों को उनकी अधिकतम क्षमताओं के अनुरूप सन्निहित करना।
8. निगम उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में निगम के सभी अभिकर्ताओं तथा कर्मचारियों में सहभागिता की भावना गर्व तथा अपने कर्तव्यों से प्राप्त कार्य संतुष्टि की भावना को प्रोन्नत करना।

जीवन बीमा का महत्व

जीवन बीमा की उपादेयता को इसके विभिन्न रूपों में समझा जा सकता है।

(क) सुरक्षा के साधन के रूप में : जीवन बीमा आर्थिक सुरक्षा का साधन हैं जिसमें– 1. पारिवारिक सुरक्षा 2. संतान हेतु व्यवस्था 3. वृद्धावास्था की व्यवस्था 4. व्यावसायिक सुरक्षा 5. सम्पदा कर की व्यवस्था शामिल हैं।

1. जीवन बीमा मृत्योपरान्त पारिवारिक सुरक्षा का अनुपम साधन हैं। परिवार का कर्ताधार्ता अपने जीवन का बीमा कराकर यह प्रबन्ध कर लेता है कि उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके आश्रितों के लिए आर्थिक हो जाए। अत: बीमा पारिवारिक सुरक्षा की उन्नत व्यवस्था हैं। परिवार के भविष्य के लिए चिंतित बीमादार को जीवन बीमा निश्चितता देता हैं और उसे आश्वस्त करता हैं कि उसके न रहने पर परिवार के लोग पराश्रित या असहाय नहीं रहेगें क्योंकि उन्हें आर्थिक संकट से सुरक्षा मिल जायेगी।जीवन बीमा एक निश्चित मूल्य की सम्पदा हैं जो बीमा कराते ही उत्तराधिकारियों के लिए निर्मित हो जाती हैं।
2. जीवन बीमा संतान के लिए भी व्यवस्था करता हैं। आज के भौतिक युग में बच्चों की उच्च शिक्षा या कन्या के विवाह का जब समय आता हैं तब द्रव्य की विकराल समस्या खड़ी होती हैं। चालू आय में से इसके लिए व्यवस्था कर सकना सबके लिए सहज या सरल नहीं होती। अत: पहले से ही बचत द्वारा इसके लिए प्रबन्ध करना होता हैं। किन्तु यदि परिवार के कर्ताधार्ता की अल्प आयु में मृत्यु हो जाती हैं तब ऐसी बचत से काम नहीं चल सकता। इसलिए संतान की शिक्षा, विवाह आदि के लिए जीवन बीमा बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ हैं। इसके लिए विशेष प्रकार की जीवन बीमा पालिसी ली जाती हैं जिसके अर्न्तगत निश्चित समय आने पर निगम शिक्षा के लिए किश्तों में एवं विवाह के लिए एक मुश्त रकम देती हैं। यदि इसी बीच बीमादार की मृत्यु हो जाए तब प्रीमियम नही देना पड़ता और नियत समय पर बीमा की रकम प्राप्त हो जाती हैं।इस प्रकार जीवन बीमा द्वारा मृत्यु की जोखिम संवृत्त हो जाती हैं। संतान का भविष्य सुरक्षित हो जाता हैं और उनके लिए एक निश्चित धानराशि संचित हो जाती हैं।
3. मनुष्य के दीर्घजीवी हाने पर आर्थिक संकट उपस्थित हो सकता है ऐसे सौभाग्यशाली लोग बहुत कम होंगे जिन्होंने अपनी कमाई से धन संचित किया हों जिससे बुढ़ापा सुख सुविधा से कट सके। वृद्धावस्था में मनुष्य सेवानिवृत होकर शांति और सुख सुविधा से रहना चाहता हैं। यह थकान की उम्र होती हैं।इसके अतिरिक्त दीर्घजीवी हाने पर अस्वस्थता का जोखिम रहता हैं। क्योंकि इन्द्रियाँ धीरे धीरे शिथिल होती जाती हैं और रोग व्याधि से संघर्ष करने की शारीरिक क्षमता क्षीण हाने लगती हैं यदि ऐसे में आय का कोई साधन न हो तब उसे औरों के सहारे रहना पड़ सकता हैं जो बुढ़ापे के लिए अत्यन्त दयनीय स्थिति हैं। इसके लिए जीवन बीमा बहुत उपयोगी और व्यावहारिक सिद्ध हुआ हैं।
4. जीवन बीमा व्यावसायिक सुरक्षा प्रदान करने का सरल साधन हैं। व्यावसायिक कार्य कलाप में केवल सम्पत्ति बीम या दायित्व बीमा की विभिन्न प्रणालियों का ही महत्व नहीं हैं। व्यावसायिक सुरक्षा की व्यवस्था जीवन बीमा द्वारा अनेकों प्रकार से की जा सकती हैं। इसे निम्नलिखित उदाहरणों से समझा जा सकता हैं:

- एक महाजन अपने ऋणी का जीवन बीमा कराकर ऋण की रकम सुरक्षित कर सकता हैं।
- जीवन बीमा पॉलिसी के आधार पर ऋण भी प्राप्त किया जा सकता हैं। कोई व्यवसायी अपने जीवन बीमा की प्रतिभूति पर व्यवसाय के लिए ऋण प्राप्त कर सकता हैं।
- कोई व्यावसायिक संस्था अपने महत्वपूर्ण कर्मचारी का जीवन बीमा पॉलिसी लेकर उसकी मृत्यु होने पर निश्चित रकम प्राप्त कर सकती हैं। और इससे काफी हद तक उस आर्थिक हानि की पूर्ति हो सकती हैं जो ऐसे अनुभवी गुणी और योग्य कर्मचारी की मृत्यु के कारण पँहुचती हैं।
- साझेदारी फर्म में अनेक साझेदारों की पूँजी लगी होती हैं। यदि किसी साझेदार की मृत्यु हो जाती है तब उसकी पूँजी वापस करने की दशा उपस्थित होने से व्यापार में वित्तीय संकट उत्पन्न हो सकता हैं। किन्तु यदि साझेदारों का संयुक्त जीवन बीमा करा लिया गया हो तब किसी साझेदार की मृत्यु हाने पर उसकी पूँजी वापस करने के लिए एक निश्चित रकम बीमाकम्पनी से मिल जाती है और इस प्रकार व्यवसाय में अस्थिरता का आर्थिक संकट नहीं आने पाता हैं।
- जीवन बीम निगम संपदा पर लगी हुई कर के लिए भी व्यवस्था करता है।बहुधा सरकार अपने राजस्व के लिए सम्पदा कर भी लगाती है यह सम्पदा कर मृतक की चल अचल सम्पत्ति पर उत्तराधिकारियों में बंटने के पहले ही वसूल किया जाता हैं। धानिक वर्ग की सम्पदा भी आपार होती हैं इसलिए इस कर की रकम बड़ी हो सकती हैं और इसे अदा करने के लिए बहुधा सम्पत्ति को बेचने का संकट उपस्थित हो सकता हैं। इस संकट से सुरक्षा प्रदान करने के लिए जीवन बीमा महत्वपूर्ण हैं जिससे उसकी मृत्यु हाने पर बीमित राशि से सम्पदा कर चुकाया जा सके। धानिक वर्ग के लोगो के लिए आर्थिक सुरक्षा का सुंदर साधन हैं।

(ख) विनियोग के रूप में जीवन बीमा निगम का महत्वः जीवन बीमा की यह विशेषता हैं कि इसमें सुरक्षा का तत्व भी हैं और विनियोग का तत्व भी हैं। अन्य सभी बीमों में केवल सुरक्षा का तत्व हैं। यदि बीमादार को बीमा अवधि में कोई हानि न पँहुचे तब उसको बीमा कम्पनी से कोई रकम नही मिल सकती क्योंकि बीमें क्षतिपूर्ति सिद्धान्त पर आधारित हैं। यदि क्षति न हुई तो कोई भुगतान नहीं होगा। किन्तु जीवन बीमा संस्था को दिये गये प्रीमियमों द्वारा सुरक्षा की भी व्यवस्था होती हैं और साथ ही साथ विनियोग भी होता हैं। जीवन बीमा के लिए बीमादाता जो प्रीमियम देता हैं उसमें बीमा की लागत के अतिरिक्त विनियोग की रकम भी सम्मिलित रहती है। और इस विनियोग भाग कि निधि कोष उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं।विनियोग के रूप में जीवन बीमा एक उत्तम कोटि की जोखिम रहित प्रतिभूति हैं। इसकी प्रतिभूति पर ऋण लिया जा सकता हैं।इस सम्पत्ति को हस्तान्तरित भी किया जा सकता हैं। हमारे देश में जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण हो चुका हैं और जीवन बीमा पालिसी की रकम के प्रति सरकार की गारंटी है। साथ ही जीवन बीमा के लिए दिये गये प्रीमियमों पर एक निश्चित तक आय कर की धारा 88 के अन्तर्गत छूट मिल सकती हैं। इन सभी दृष्टिकोणों से जीवन बीमा बहुत आकर्षक और सुरक्षित विनियोग माना जाता हैं।

(ग) विनियोजक संस्था के रूप में जीवन बीमा का महत्त्वः विनियोग करने वाली विभिन्न प्रकार की संस्थाओं में जीवन बीमा संस्थाएँ बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। जीवन बीमा के कारोबार से ये संस्थाएँ प्रीमियम के रूप में लाखों बीमादारों की बचतों को एकत्र करती हैं और उन्हें विकास योजनाओं तथा अन्य उत्पादक क्षेत्रों में विनियोजित करती हैं। इस प्रकार जीवन बीमा पूँजी निर्माण करता हैं और औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के लिए पूँजी सुलभ कराता हैं। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में जहाँ पूँजी समान्यतः दुर्लभ हाती है जीवन बीम की संस्थाएँ अपनी विनियोजन क्षमता तथा पूँजी निर्माण शक्ति के फलस्वरूप राष्ट्रीय आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

(घ) जीवन बीमा के अन्य लाभ तथा महत्त्वः जीवन बीमा के अन्य लाभ निम्नलिखित हैं

1. जीवन बीमा व्यक्तियों को चिन्ता मुक्त करके उनकी दक्षता बढ़ाता हैं। चिंता तो चिता हैं। यह मनुष्य को घुला देती हैं। जीवन बीमा कराने से निश्चिंता और मानसिक शांति मिलती हैं आत्मबल बढ़ता हैं जिससे मनुष्य अपनी शक्ति का भरपूर प्रयोग करता हुआ अपनी कार्य क्षमता में अपेक्षित वृद्धि कर सकता है।

2. जीवन बीमा मितव्ययिता और बचत को बढ़ावा देता हैं। बीमादार जानता है कि उसे नियमित रूप से प्रीमियम अदा करते रहना हैं। इसके लिए उसे बचत करना आवश्यक होता है क्योंकि प्रीमियम वस्तुतः अनिवार्य व्यय की भाँति हो जाता हैं। इसलिए जीवन बीमा अनिवार्य बचत का साधन माना जाता हैं। किन्तु मृत्यु की जोखिम रहने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में कब कितनी रकम एकत्र हो जायेगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से धन बचाना मुश्किल हैं और उसको खर्च कर देना आसान है। जीवन बीमा बचत संजोता हैं औरफिजूलखर्ची से बचाता हैं।
3. जीवन बीमा एक उत्कृष्ट कोटि की सामाजिक सेवा भी हैं। यह परिवार को विघटित होने से बचाता है आश्रितों को अपने सहारे खड़े होने की शक्तिप्रदान करता है इसके अतिरिक्त जीवन बीमा व्यक्तियों में उत्तरदायित्त्व के प्रति जागरूकता उत्पन्न करता है और आश्रितों के भविष्य को सुरक्षित रखने का भाव जाग्रत करता हैं जो समाज के दृष्टिकोण से बहुत मूल्यवान गुण माना जाता हैं।

(ड़) आयकर अधिनियम 1961 और जीवन बीमा से कर लाभः जीवन बीमा निगम की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत किये गये निवेश पर निम्नलिखित हितलाभ हैं:

जीवन बीमा प्रीमियम भुगतान के लिए आयकर से कटौती (धारा 80सी)

(अ) जीवन बीमा प्रीमियमः कर निर्धारित के जीवन पर अथवा उसकी/उसके पत्नी के जीवन पर अथवा उसके जीवन पर जीवन बीमा लेने अथवा बीमे को चालू रखने के लिए भुगतान किया गया प्रीमियम। हिन्दू अविभाजित परिवार होने की स्थिति में परिवार के किसी भी सदस्य के जीवन पर भुगतान किया गया प्रीमियम कटौती के लिए पात्र होगा वशर्ते कि ऐसा भुगतान किया गया प्रीमियम पूँजी बीमा धन के 20 प्रतिशत से अधिक न हो।

(ब) विलम्बित वृत्तिक योजनाओं के लिए अंशदानः एक व्यक्ति द्वारा अपने जीवन पर अथवा अपनी/अपने पत्नी/पति अथवा बच्चे के जीवन पर विलम्बित वृत्ति हेतु अनुबन्धा लेने के लिए अथवा उसे चालू रखने के लिए भुगतान की गयी कोई धानराशि वशर्ते कि ऐसे अनुबंधा में बीमादार द्वारा वृत्ति भुगतान के बदले में नकद भुगतान लेने के किसी विकल्प का प्रावधान न हो।

(स) पेंशन/वृत्तिक योजनाओं के लिए अंशदान– भारतीय जीवन बीमा निगम की नई जीवन धारा– और नई जीवन अक्षय- योजनाओं के लिए किया गया अंशदान इस धारा के अन्तर्गत छूट के लिए अर्हता प्राप्त हैं।

निष्कर्ष

बीमा व्यवसाय का प्रारम्भ प्राचीन काल से ही हुआ और इसमें प्रारम्भ में विदेशी कम्पनियों ने व्यसाय प्रारम्भ किया तत्पश्चात भारतीयो की उपेक्षा किये जाने के कारण एवम् स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित होकर भारतीय कम्पनियों की स्थापना हुई। सन् 1912 में भारतीय जीवन बीमा कम्पनीज एक्ट कानून एवं प्राविडेन्ट फण्ड भविष्य निधि बीमा सोसायटी एक्ट 1912 पारित किया गया। भारत के बीमा व्यवसाय को नियन्त्रित करने के लिए वृहद कानून परित किया गया था परन्तु भारतीय कम्पनीज एक्ट के प्रावधान इस उद्देश्य की पूर्ति नही कर पा रहे थें, अतः सन् 1938 में बीमा अधिनियम एक नए रूप में पास हुआ जो जुलाई 1939 से लागू किया गया। इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के बीमा व्यवसायों को विनियमित और नियन्त्रित करने की व्यवस्था हुई। सन् 1950 में बीमा अधिनियम में व्यापक संशोधन करके बीमादारों के हितों को ध्यान में रखते हुए बीमा कम्पनियों पर प्रतिबन्ध लगाये गये। भारत में बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण 19 जनवरी 1956 में हुआ था इस तिथि को जीवन बीमा व्यवसाय 154 भारतीय कम्पनियों तथा 75 प्रोविडेन्ट सोसायटीज कुल 254 कम्पनियों द्वारा किया जा रहा था। 19 जनवरी, 1956 को राष्ट्रपति के आपातकालीन अध्यादेशों के द्वारा भारतीय कम्पनियों को विदेशी जीवन बीमा व्यापार तत्कालीन केन्द्रीय सरकार के अधीन आ गया। संसद में 18 जून 1956 को भारतीय जीवन बीमा अधिनियम 1956 पारित किया गया और 1 जुलाई 1956 को लागू किया गया। भारतीय जीवन बीमा निगम ने 1 सितम्बर 1956 को अपना कार्य प्रारम्भ किया। भारतीय जीवन बीमा निगम का कार्यकलाप इसी अधिनियम द्वारा नियन्त्रित किया जाता हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम विश्व की एक व्यवसायिक संस्था है। जिसका आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान

है। भारत में भारतीय जीवन बीमा निमग के राष्ट्रीयकरण के पश्चात भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा अनेक प्रकार के उत्पादों का विकास किया जाता है और भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा विभिन्न प्रकार के उत्पादों का व्यवसायिकरण किया जाता हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम ग्राहकों की आवश्यकताओं के अनुसार बीमा उत्पादों का विकास करता है और उत्पादों के माध्यम से लोगो की सेवा करता हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम के विभिन्न बीमा उत्पाद समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों को ध्यान में रखकर निर्मित की गयी है। इन उत्पादों में समाज के प्रत्येक वर्ग के हित को ध्यान में रखा गया हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम अपनी विभिन्न बीमा उत्पादों के माध्यम से आम जनो की सेवा एवं सुरक्षा हेतु तत्पर है। प्रस्तुत शोध में यह जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है कि भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा विकसित किये गये उत्पाद बीमा कम्पनी और लोगो के लिए किस स्तर तक प्रभावशील रहे है।

संदर्भ-सूची

1. अग्रवाल ए.एन.-इन्श्योरेंस इन इण्डिया पे. न.-58, 59, 85।
2. शर्मा आर. एस.–प्रिंसिपल्स एण्ड प्रेक्टिसेस ऑफ इन्श्योरेंस, पे. न.-113,114,115।
3. श्रे आर. एम.-लाइफ लाइफ इन्श्योरेंस इस इण्डिया,पे. न.-205, 217, 219।
4. वैलफोर्ड–इन्श्योरेंसइन साइक्लोपिडिया।
5. कुरूक्षेत्र-ग्रामीण आवासरोजगार मंत्रालय, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, मई 2019।
6. याजना-सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, मई 2019।
7. रूरल इण्डिया-नाना चौक, मुंबई-7।
8. भारतीय जीवन बीमा निगम, मुंबई-1991 रिपोर्ट तथा लेख।
9. भारतीय जीवन बीमा निगम, मुंबई-2001 रिपोर्ट तथा लेख।
10. भारतीय जीवन बीमा निगम, मुंबई-2011 रिपोर्ट तथा लेख।
11. भारतीय जीवन बीमा निगम, मुंबई-2019 रिपोर्ट तथा लेख।

नवादा जिला के फसल प्रतिरूप पर आधुनिक कृषि पद्धति का प्रभावः एक भौगोलिक विश्लेषण

डॉ० अमर कुमार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक)
भूगोल विभाग, सी0एम0जे0 कॉलेज, दोनवारीहाट खुटौना, मधुबनी

निबंध सार

नवादा जिला बिहार के विशाल गंगा के मैदान के दक्षिणी भाग में स्थितहै। इसका फैलाव 2492 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर है। जिले के अधिकांश उत्तरी भाग मैदानी है जबकि दक्षिणी भाग (मेसकौर एवं नरहट) पठारी है। इसके अधिकांश भाग पर दोमट मिट्ठी पायी जाती है। जिले के 63 प्रतिशत भू-भाग पर कृषि कार्य किया जाता है। यहाँ मानसूनी वर्षा के द्वारा 125-150 से0 मी0 वार्षिक वर्षा भी होती है। इसके अलावे नदियों में बाँधा-बाँधाकर पइन एवं नहरे निकाली गयी है। इस जिला के कई प्रखंडों में बड़े-बड़े आहार एवं तालाब है। जिन का उपयोग सिंचाई के लिये किया जाता है। साथ ही नवादा जिला में प्रचुर मात्रा में भूगर्भिक जल भी उपलब्ध है, जिनका उपयोग सिंचाई कार्य में किया जाता है। बढ़ती आबादी को देखते हुये यहाँ के किसानों पर हरित क्रांति का प्रभाव पड़ा है। लोगों में शिक्षा का विकास हुआ है। शिक्षित किसान बैंक से भी सहायता प्राप्त कर नये कृषि यंत्र, उच्च उत्पादन क्षमता वाले बीज, सिंचाई के उपकरण, हार्वेस्टर इत्यादि की व्यवस्था किये है और इनके प्रयोग के द्वारा कृषि के पद्धति का भी उपयोग कर रहे है। इसके अलावा आधारभूत संरचनाओं का विकास हुआ है। कृषि बाजार व्यवस्थित किया गया है और कृषि पर आधारित उद्योग भी लगाये गये है। जिससे जिला का पकरीबरावाँ, वारिसलिगंज, हिसुआ, अकबरपुर, गोबिन्दपुर, रजौली, नारदीगंज, रोह, कौआकोल इत्यादि प्रखंडों के कृषि व्यवस्था में अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ है। और उत्पादन भी बढ़ा है।

मुख्य शब्द : नवीन कृषि पद्धति, फसल प्रतिरूप, रबी फसल, पान की खेती, जापानी विधि

अध्ययन का उद्देश्य

नवादा जिला के फसल प्रतिरूप पर आधुनिक कृषि पद्धति एवं कृषि यंत्रों के प्रभाव को समझना है। जिसमें निम्नलिखित तथ्यों का अध्ययन किया गया है:

नवादा जिला के फसल प्रतिरूप पर आधुनिक कृषि पद्धति एवं कृषि यंत्रों के प्रभाव को समझना है। जिसमें निम्नलिखित तथ्यों का अध्ययन किया गया है:

1. नवादा जिला के फसल प्रतिरूप का अध्ययन।
2. नवादा जिला के कृषि कार्य में व्यवहृत कृषि पद्धति का अध्ययन
3. नवादा जिला में कृषि मजदूरों के पलायन तथा शिक्षित नौजवान को नौकरी एवं नयी कृषि प्रणाली के उपयोग एवं उनका प्रभाव का अध्ययन करना है।

भौगोलिक पृष्ठभूमि

नवादा जिला बिहार के विशाल गंगा के मैदान के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसका फैलाव 2492 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर है। इसकी भौगोलिक स्थिति 24°88' उत्तरी अक्षांश तथा 88°53' पूर्वी देशांतर पर है। इसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई 80 मीटर है। जिले का अधिकांश भाग मैदानी है। जबकि दक्षिणी भाग (मेसकौर और नरहट) पठारी है। प्रमुख नदियाँ सकरी, पंचाने, खुशी तथा तिलैया है। यह उत्तर में नालंदा एवं शेखपुरा जिला, पूरब में जमुई जिला पश्चिम में गया जिला तथा दक्षिण में झारखंड द्वारा घिरा हुआ है। इसके अधिकांश भाग पर दोमट मिट्ठी पायी जाती है। यह बिहार राज्य का एक उपजाऊ कृषि क्षेत्र है। जिले के 63 प्रतिशत भू-भाग पर कृषि कार्य किया जाता है। यहाँ की आबादी अत्यंत सघन है। अतः खाद्यान्न की आपूर्ति के लिए सघन कृषि कार्य किया जाता है। यह जिला मुख्य रूप से कृषि प्रधान है यहाँ की जलवायु मानसूनी है। प्रमुख मिट्ठियाँ-बांगर (केवाल मिट्ठी) और बल्थर (लाल-पीली मिट्ठी) है। यहाँ मुख्य रूप से आम, सखुआ, बरगद, पीपल, शीशम नीम वनस्पति के रूप में पायी जाती है। जिले के कृषि भूमि के लिये सिंचाई का प्रधान स्त्रोत नहरेंएवं नलकूप है। जिले के उत्तरी भू-भाग में सिंचाई सुविधाओं का अधिक विस्तार है। यह सम्पूर्ण जिला खरीफ, रबी और गरमाफसलों के लिये काफी उपयुक्त है। प्रमुख फसल धान, गेहूँ, मक्का, मूंग, चना, मटर, मसूर, सरसो, सूर्यमुखी है।

प्रारंभिक कृषि परंपरागत विधि से होती थी जिसमें खाद्यान्न के रूप में चावल, मक्का, चना, ईख, मसूर सब्जियाँ की खेती की जाती थी जो लाभप्रद नहीं परन्तु जीवन निर्वाहन खेती होती थी। परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक युग में कृषि पद्धति में परिवर्तन हुआ है। वैज्ञानिक तरीके से कृषि की जाती है। उन्नत बीज एवं रासायनिक खाद, समुचित सिंचाई एवं जैविक उर्वरकों का प्रयोग किया गया है। नये कृषि यंत्रों के प्रयोग से मजदूरों की कमी की समस्या का अंशतः समाधान किया जा रहा है। हरित क्रांति का प्रभाव नवादा जिला के कृषि पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। गेहूँ, चना, मसूर, दलहन एवं तेलहन के उत्पादन के अलावे नवादा जिला में सब्जियाँ एवं फलों के उत्पादन के अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

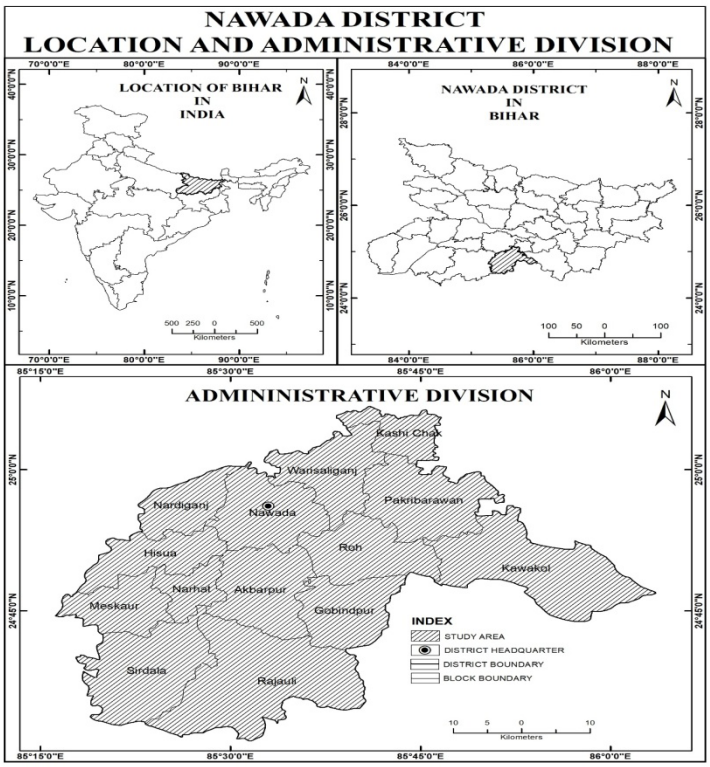

नवादा जिला का फसल प्रतिरूप

नवादा जिला में फसलों का उत्पादन में मुख्य रूप से चार मौसमों में किया जाता है। यहाँ के फसलों को मौसम के अनुसार निम्नलिखित वर्गो में रखा गया है।

* खरीफ फसल
* रबी फसल
* गरमा फसल
* भदई फसल

1. खरीफ फसलः नवादा जिला में उत्पादित फसलों में खरीफ फसल का महत्वपूर्ण स्थान है। ये फसलें वर्षा ऋतु के प्रारंभ अर्थात जून-जुलाई में बोई जाती है और अक्टूबर-नवंबर महीने में काटी जाती है। खरीफ फसल के अंतर्गत धान, मक्का, अरहर, उड़द तिल, सूर्यमुखी एवं अन्य दलहनी फसलों का उत्पादन किया जाता है। जिले के लगभग सभी प्रखड़ों में खरीफ फसलों का उत्पादन किया जाता है। 2017 के प्राप्त आंकड़ों के आधार पर नवादा जिला में धान-85942 हेक्टेयर, मक्का-2000 हेक्टेयर, अन्य फसलों का 6620 हेक्टेयर क्षेत्र में उत्पादन किया गया है।

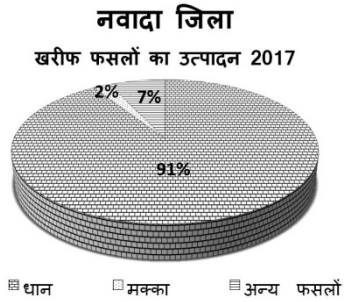

स्त्रोत– जिला सांख्यिकी विभाग, नवादा

इस प्रकार नवादा जिला में खरीफ फसलों का कुल आच्छादन क्षेत्र 94562 हेक्टेयर है। धन खरीफ मौसम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल है और इसके लिये पर्याप्त वर्षा 100-150 से.मी. एवं पर्याप्त धुप की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की जलवायु नवादा जिला में पायी जाती है। यहाँ की जलोढ़ मिट्ठी, पर्याप्त संख्या में कृषि मजदूर, उर्वरक एवं कृषि यंत्र इत्यादि यहाँ सुविधा से उपलब्ध हो जाते हैं। जापानी विधिया श्रीविधि से धन की खेती भी की जाती है। उच्च उत्पादन क्षमता वाले का बीज का प्रयोग कर अधिकतम उपजप्राप्त की जाती है। साथ ही अन्य खरीफ फसल का उत्पादन इस जिला में अच्छी तरह किया जाता है। और उपज भी पर्याप्त मात्रा में होती है। जिला में खरीफ फसलों का भविष्य अच्छा है।

2. रबी फसलः ये फसलें नवंबर-दिसम्बर में बोई जाती है और मार्च-अप्रैल के आरंभ में ही काटी जाती है। नवादा जिले में रबी के मौसम में मुख्य रूप से गेहूँ, जौ, चना, मसूर, खेसारी, मटर, राय, तीसी, सुर्यमुखी सरसो आलु एवं अन्य सब्जियाँ की खेती की जाती है। इस मौसम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल गेहूँ है। हरित फसल गेहूँ है हरित क्रांति के सबसे अधिक अच्छा परिणाम गेहूँ के उत्पादन पर ही पड़ा है। इसके लिये उच्च उत्पादन क्षमता वाले बीज, आधुनिक कृषि यंत्र, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई के उपर्युक्त साधन इत्यादि के व्यवस्था के द्वारा गेहूँ का उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। चना, मसूर एवं आलू के फसलों पर कीटनाशक एवं पाला से सुरक्षा प्रदान करने वाले दवाओं का भी प्रयोग किया जाता है। 2017 के आँकड़ों के अनुसार नवादा जिला में गेहूँ 55,000 हेक्टेयर, जौ 1500 हेक्टेयर, मक्का 2000 हेक्टेयर, तेलहन 4800 हेक्टेयर एवं दलहन 11300 हेक्टेयर क्षेत्र में उत्पादन किया गया है। नवादा जिला के लगभग सभी प्रखंडों में गेहू, मक्का, चना, अन्य दलहनी, आलू एवं अन्य सब्जियों के उत्पादन में प्रत्याशित वृद्धि हुई है। हिसुआ, नारदीगंज, रोह, रजौली, नरहट एवं वरिसलींगज इत्यादि प्रखंडों में गेहूँ, चना, आलू एवं सब्जियां की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। हरित क्रांति के प्रभाव से नवादा जिला में रबी फसलों के प्रति किसानो का रूझान बढ़ा है। खरीफ

फसल में धन के कटाव के बाद उन खेतों में भी गेहूँ का उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार नवादा जिले में 2017 में 85000 हेक्टेयर क्षेत्र में रबी फसलों का उत्पादन किया गया है। कृषि कार्य सम्पादन के लिए नये कृषि यंत्र, ऊँच उत्पादन क्षमता वाले बीज एवं नयी तकनीक के विकास के बाद नवादा जिला में रबी फसलों के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है।

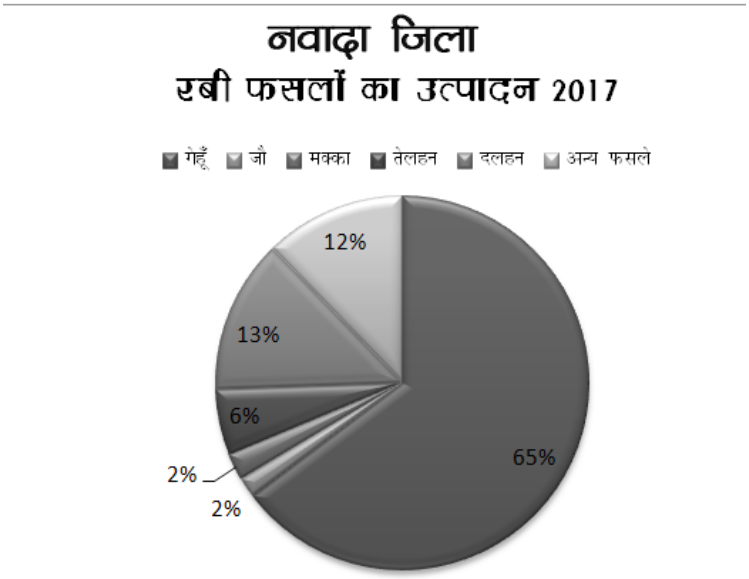

स्त्रोत– जिला सांख्यिकी विभाग, नवादा

गरमा फसलः गरमाफसल के अंतर्गत वे फसलें आती है। जिनकी बुआई जनवरी-फरवरी माह में की जाती है और और अप्रैल-मई में काटी जाती है। इस जिला में गरमा फसलों का उत्पादन बहुत ही कम क्षेत्र में किया जाता है। इस प्रकार के फसलों के लिये सिंचाई की मुक्कमल व्यवस्था के साथ साथ फसलों की अवारे पशुओं से सुरक्षा की सख्त आवश्यकता होती है। गरमा फसलों में मूँग, सब्जी, तरबूज, खिरा एवं अन्य सब्जियों का उत्पादन किया जाता है। 2017 के आँकड़ों के अनुसार इस जिला में केवल 1020 हेक्टेयर भूमि में गरमा फसलों की खेती की गयी जो सम्पूर्ण कृषित भूमि का मात्रा 1.2 प्रतिशत है। इसकी खेती मुख्य रूप से वारिसलिगंज, हिसुआ, पकरीबरावाँ रोह एवं रजौली प्रखडों में की जाती है।

भदई फसलः नवादा जिला में भदई फसलों की बुआई वर्षा ऋतु के आरंभ के साथ हो जाती है और जुलाई महीने में काटी जाती है। इसके अंतर्गत मक्का, तेलहन, सब्जियाँ एवं हरा चारा का उत्पादन किया जाता है। नवादा जिला में भदई फसलों का उत्पादन 1275 हेक्टेयर भूमि में किया जाता है। यह नवादा जिला के सम्पूर्ण कृषित भूमि का 1.5 प्रतिशत है। पकरीबरावाँ, वरिसलिगंज, काशीचक, कौवाकोल एवं सिरदल्ला प्रखंडों में भदई फसलों का उत्पादन किया जाता है।

पान की खेतीः यहाँ नवादा जिला में सालों भर पान की खेती की जाती है। पान उत्पादन में अग्रगणी गाँवों में मुख्यतः छतरवार,डोला, तुंगी, मंझबे, बेलदारी, हड़ीया, पचिया, धोओरी है।

नवादा जिला के कृषि पर नवीन कृषि पद्धति का प्रभाव

नवादा जिला में पारम्परिक कृषि पद्धति में बदलावकर अनेकों किसान वैज्ञाकिन विधि द्वारा कृषि कार्य सम्पादन कर रहे है। फलस्वरूप कम लागत एवं मेहनत के द्वारा अधिक उपज प्राप्त कर रहे हैं। इनमें निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया जा रहा है।

श्रीविधिद्वाराधान और गेहूँ का उत्पादन

नवादा जिला में श्रीविधि द्वारा धन और गेहूँ उत्पादन का नया तकनीक का विकास हुआ है। इस विधि से कम लागत एवं मेहनत के बाद भी धन और गेहूँ के उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। अत: नवादा जिला के किसान श्रीविधि द्वारा धन एवं गेहू के उत्पादन को बढ़ावा दिये है।

जापानी विधि से धन की खेती: जापानी विधि से भी यहाँ धन की खेती की जाती है। इसमें लागत एवं मेहनत कम आती है लाईन से धानरोपण का कार्य किया जाता है। इसमें उत्तमबीज, पर्याप्त मात्रा में संतुलित खाद एवं समुचित जल की व्यवस्था के बाद बहुत ही अच्छा उत्पादन होता है।

जीरोटिलिंग विधि से गेहू एवं मक्का का उत्पादन: नवादा जिला में गेहूँ एवं मक्का का उत्पादन काफी मात्रा में किया जाता है। जीरोटिलिंग विधि से गेहूँ और मक्का लगाने में खेत की जुताई की लागत बिल्कुल बच जाती है। साथ ही सिंचाई के लिये कम पानी की आवश्यकता होती है और फसलों का उत्पादन भी अधिक होती है।

स्प्रिंकल सिचाई: नवादा जिला के हिसुआ, अकबरपुर, रजौली, रोह इत्यादि प्रखंडों में स्प्रिंकल विधि से सब्जियों के फसलों की सिंचाई की जाती है। इसमें सिंचाई लागत भी कम आता है और उत्पादन भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

पंक्ति में फसलों की बुआई एवं रोपने की विधि: सब्जी, ईख, मक्का इत्यादि फसलों को पंक्ति में लगाने का कार्य किया जाता है। इससे फसल के लिये बीज भी कम लगते हैं और उत्पादन भी अधिक होता है। यह विधि का काफी लाभदायक है।

फसल विविधता का व्यवहार

नवादा जिले के किसान एक मुख्य फसल के साथ-साथ सहायक फसल भी लगाते है जिससे उन्हें एक खेत से एक ही साल में कई फसलों का उत्पादन हो जाता है और यदि किसी कारण से एक फसल का उत्पादन कम हुआ तो अन्य दूसरे फसलों के उत्पादन से क्षतिपूर्ति हो जाती है। इस प्रकार नवादा जिला के कृषि के जीवन पद्धति में फसल विविधता को भी सम्मलित किया गया है।

नवादा जिला के कृषि पर आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रभाव: नवादा जिला के फसल प्रतिरूप पर आधुनिक कृषि यंत्रों का भी प्रभाव पड़ा है। जिनमें निम्नांकित महत्वपूर्ण है-

1. कृषि मजदूरों के कमी को पुरा करना: वर्तमान समय में कम मजदूरी होने के कारण यहाँ मजदूरों की कमी हो रही है। इस समस्या से निजात पाने के लिए बड़े पैमाने पर ट्रैक्टर, पावरटिलर, थ्रेसर, सिंचाई के पम्पिंग सेट, हार्वेस्टर इत्यादि कृषि यंत्रों के प्रयोग से मजदूरों की कमी की क्षतिपूर्ति की जाती है। एक मशीन कई मजदूरों का कार्य निष्पादन करता है। अत: आधुनिक कृषि यंत्रों के उपयोग से एक ओर कृषि मजदूरों की क्षतिपूर्ति हुई है तो दुसरी ओर उत्पादन में भी वृद्धि हुआ है।

2. समय पर कृषि कार्य का निष्पादन: आधुनिक कृषि यंत्रों के द्वारा जो कार्य सम्पादन में बहुत अधिक समय लगता था वह समय पर पुरा हो जाता है। साथ ही किसानों के कार्य क्षमता में वृद्धि हो रही है।

3. उत्पादन में वृद्धि: आधुनिक कृषि के प्रयोग से नवादा जिला में फसलों के उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि दर्ज की गयी है। क्योंकि मशीनों के द्वारा खेतों की तैयारी अच्छी तरह से की जाती है तथा समुचित सिंचाई के परिणाम स्वरूप फसलों का उत्पादन में वृद्धि हुई है।

4. कृषि का आधुनिकीकरण: कृषि कार्य में आधुनिक कृषि यंत्रों के प्रयोग से आधुनिक ढंग से फसलों का उत्पादन आरंभ हुआ है। फलस्वरूप अधिक उत्पादन के लिये किसान कृषि को आधुनिक तरीके से करना प्रारंभ किये हैं। इस कार्य में आधुनिक कृषि यंत्रों का अप्रत्याशित सहयोग है।

5. यंत्रीकरण: नवादा जिला में कृषि के आधुनिक यंत्रों के उपयोग से गेहूँ, मक्का, सब्जियाँ, दलहनी चना, मसूर इत्यादि के अलावाधान, अरहर इत्यादि फसलों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है। हमारा देश भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश के एकल

घरेलु उत्पादन का लगभग 19 प्रतिशत भाग प्रतिशत भाग कृषि से ही प्राप्त होता है। यहाँ अति प्राचीन काल से परम्परागत जीवन यापन कृषि से किया जाता है। उपजाऊ भूमि, मौनसून जलवायु, सस्ते मजदूर, परम्परागत बीज, कम्पोस्टखाद, इत्यादि का उपयोग के साथ-साथ बैल, भैंस, घोड़ा इत्यादि का भी कृषि कार्य में सहयोग लिया जाता था। इसी कड़ी में बिहार राज्य का नवादा जिला भी है। यहाँ भी पूर्व में परम्परागत कृषि की जाती थी। धान, गेहूँ, चना, मसूर, खेसारी, सब्जी, दलहनी फसलों का उत्पादन किया जाता था लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जीवन निर्वाहक कृषि करते थे। आजादी के बाद हमारे देश एवं राज्य के रहनुमाओं ने पंचवर्षीय योजना के तहत कृषि में सुधार की बात सोची और उसको अमली जामा पहनाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप सिंचाई की व्यवस्था में कुछ सुधार आया और फसलों का उत्पादन भी बढ़ा। शिक्षा के प्रति सम्मान बढ़ा और कृषि के प्रति सजग होने लगें। बिहार में 1966-67 के सुखाड़ के बाद लोगों में जागरूकता और सिंचाई के लिए पम्पिंगसेट, डीजल इंजन, मोटर, लोहे का हल, रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग शुरू हुआ। नवादा जिला भी इसी कड़ी में शामिल हुआ। स्वामिनाथन साहब के हरित क्रांति के प्रचार के बाद जिला में कृषि कार्य, फसलोत्पदन, ऊँची उत्पादन क्षमतावाले बीज, आधुनिक कृषि यंत्र, रसायनिक उर्वरक का प्रयोग बढ़ा और गेहूँ, धान, दलहन एवं सब्जी के उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। इसके साथ फसलों के उत्पादन की नयी पद्धति भी अपनायी जाने लगी।

फलस्वरूप नवादा जिला के कृषि कार्य में बड़े पैमान पर परिवर्तन हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यहाँ की आबादी में तीव्र गति से वृद्धि हुई। क्योंकि शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन इत्यादि में सुधार हुआ। बढ़ती आबादी ने भोजन की व्यवस्था की समस्या हमारे राजनेताओं, समाज सेवियों एवं किसानों का ध्यान आकृष्ट किया। प्रारंभ में परम्परागत रूप से धान, गेहू, खेसारी की कहावत प्रचलित थी। यहाँ की खेती मौनसून पर पूर्णत: आधारित थी। मौनसून कभी समय से पूर्वक भी समय पर और कभी समय के बाद आता है। फलस्वरूप मौनसून यदा-कदा धोखा देते रहता है। पूर्व के वर्षो में फसल मारी जाती थी। सिंचाई की समुचित एवं सुदृढ़ व्यवस्था नहीं थी। इस प्रकार कहा जाता है "Indian agriculture is the gamble of chance with the monsoon." अर्थात मौनसून के साथ भारतीय कृषि जुए का खेल है। यह कहावत चरितार्थ होती रही है। बढ़ती जनसंख्या के लिये खाद्यान्न की व्यवस्था हो गई है। देश के खाद्यान्न संकट से उवारने के लिये कृषि के विकास पर बल दिया गया। भूतपूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने जय जवान जय किसान का नारा दिये। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गाँधी ने तो यहाँ तक कहा की खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता के अभाव में हम स्वतंत्र कहलाने के अधिकारी नहीं है। एस.एम. स्वामिनाथन साहब के नेतृत्व में भारत वर्ष में हरित क्रांति का सुत्रपात हुआ। फलस्वरूप परमपरागत कृषि से परम्परागत रूप से व्यवहार किये जाने वाले, खाद्य, कृषि, रसायनिक उर्वरक, नवीन कृषि यंत्र, सिंचाई की व्यवस्था, समुचित बाजार विपणन प्रणाली इत्यादि का विकास किया गया और फसलोत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि दर्ज की गयी। खाद्यान्न के मामले में देश लगभग स्वावलंबनकी ओर पहुँच चुका है। इसके बावजूद अभी भी दाल एवं तेल का आयात किया जाता है। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम साहब बने जो भारत में दूसरी हरित क्रांति की आवश्सकता पर बल दिया है। इस प्रकार हम कह सकते है किन नवीन कृषि पद्धति एवं आधुनिक कृषि यंत्रों के प्रयोग ने नवादा जिला के फसल प्रतिरूप को प्रभावित किया है। सब्जी, चना, दलहन, तलहन एवं अन्य फसलों का उत्पादन बढ़ा है। गरमा फसलों में मूँग सब्जी एवं हरा चारा का उत्पादन बढ़ा है।

निष्कर्ष

नवीन कृषि पद्धति आधुनिक कृषि यंत्रों के प्रयोग से नवादा जिला के उत्साहित किसान गेहूँ एवं धन के उत्पादन में विश्व प्रतिमान स्थापित किये है। जो बिहार के अन्य जिलों के किसानों के लिये प्रेरण का स्त्रोत है। इस विधि के अनुसरण से राज्य और देश का कल्याण संभव है। हमारा राज्य राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न के मामले में स्वावलंबी नहीं बल्कि निर्यातक बनेगा। इस मुकाब तक पहुँचने में नवीन कृषि एवं आधुनिक कृषि यंत्रों के प्रयोग की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही किसानों की सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक दशाओं में भी परिवर्तन हुआ है।

संदर्भ-सूची

1. तिवारी, आर.सी. एवं सिंह ब्रम्हानंद, (1994) : 'कृषि भूगोल', प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद पृष्ठ 67
2. कुमार, एन. (2009) : गया जिला में कृषि के विकास एवं संभावनाएँ ज्यॉग्रफीकल पर्सपेक्टिवटवस 10, पृष्ठ 90-94
3. हुसैन, एम. (1978) : स्टडीज इन एग्रीकल्चर ज्योग्राफी, हेरिटेज पब्लिशर्स, नई दिल्ली पृष्ठ 87.
4. कुमार ए. ((2016) : सौवेनियर रीसर्च एंड स्मॉल फर्मस इंडिया जर्नल एग्रीकल्चर इकोनॉमिक्स, भौल्युम 56, पृ. 2-231
5. अताउल्लाह मो. एवं मुस्लिमुद्दिन, मो0 (2002) : बिहार का आधुनिक भूगोल, ब्रिलिएंट प्रकाशन, पटना पृष्ठ 42
6. एस. एस. (1884) एग्रीकल्चर ज्योग्राफी, टाटामैकग्रोहिल पब्लिकेशन कम्पनी, नई दिल्ली पृष्ठ 102
7. दयाल, पी. (1950) : एग्रीकल्चरल रीजन्स ऑफ बिहार टवस. 52
8. कौशिक, के. एन एंडराय, एस.सी (2014) एनाल्स प्रोणरीजन्स ऑफ इंडिया, डिपार्टमेंट ऑफ ज्योग्राफी, हेल्दी स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, पृष्ठ 95

मिश्रित विचारधारा के पुंज : डॉ. सत्येन्द्र नन्दा

सोमा देवी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, देश भगत यूनिवर्सिटी मंडी पंजाब
राजिंदर नगर, नजदीक सीनियर स्कॉलर, स्कूल, कॉलज रोड, पठानकोट–145001
तहसील और जिला पठानकोट (पंजाब)

जन्म एवं पारिवारिक परिचय–गुरदासपुर जनपद के गाँव बहरामपुर में डॉ. सत्येन्द्र प्रकाश नन्दा 'आस' का जन्म 10 सितंबर 1942 में हुआ। कवि 'आस' का बचपन का नाम महेंद्र है। नाम के अनुरूप ही वे सत्य के उपासक और उसी के अनुयायी हैं। 'आस' इनका साहित्यिक नाम है जो उनकी कविता 'आशा' का प्रतीक है। पिता स्वर्गीय लाला मूलराज नन्दा अपने माता-पिता की एक मात्रा संतान थी। वे ठेकेदारी का काम करते थे। गुजरांवाला और लाहौर उनका कार्यक्षेत्र था। सन 1947 ई. में अपने अधूरे ठेके छोड़कर उन्हें भारत आना पड़ा। तब उन्हें आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा। डॉ. 'आस' की माता का नाम श्रीमती शांति देवी है जो महिला कल्याण समिति पंजाब की प्रधान भी रही।

'आस' की रचनाएँ–

पद्य भाग–

1. वीणा के तार (काव्य)
2. यादों के साँप (गजल संग्रह)
3. आग और आँसू (गजल संग्रह)
4. देवव्रत भीष्म (महाकाव्य)
5. 'गंगा' प्रबंध काव्य (महाकाव्य)

गद्य भाग–

6. महर्षि दयानन्द सरस्वती (जीवन, कार्य और दर्शन)
7. स्वामी स्वतन्त्राता नन्द– एक युग पुरुष
8. सुभाषचंद्र बॉस– संक्षिप्त जीवन और विचार

विविध लेख–

9. (क) आधुनिक बोध– अशलीलता और शलीलता का प्रश्न (पंजाब-सौरभ)
   (ख) मुंशी प्रेमचंद का कहानी संसार– एक अंतर्यात्रा (भाषा, पंजाब सौरभ)
   (ग) भारतीय संस्कृति और साहित्य पर लेखमाला (स्वामी ज्योति)
   (घ) 'संसार कभी एक ही भाषा बोलता होगा' (स्वामी ज्योति)
   (ड.) गुरु नानक देव संबंधी धारणा (पंजाब सौरभ)
10. **संस्मरण–** श्री कृष्ण जी (पंजाब सौरभ)
11. **कहानी–** अहसान (स्वामी ज्योति)

विचारधारा– मानव हृदय पर पड़े सूक्ष्म प्रभावों का कलात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण ही कविता कहलाता है। डॉ. सत्येन्द्र नन्दा के शब्दों में– "कविता भावनाओं की पुंज है, संवेदनाओं का शिखर है, हृदय पर पड़े प्रभावों की प्रतिक्रिया है, अनुक्रिया है, अनुगूँज है।"[1]

घर में पिता, नाना, अनुज भाई और फिर एक प्रिय सहभागी की मृत्यु ने डॉ. सत्येन्द्र नन्दा को विरह, दर्द, पीड़ा का कवि बना दिया। आप ने उनकी यादों को 'यादों के साँप' काव्य संग्रह मे पिरो दिया। वे 1975 से 1996 तक कुछ अज्ञात कारणों से साहित्य सृजन से वंचित रहे। सन 1996 में पुनः काव्य में लीन हो गए। अब उनके साहित्य सृजना के विषय में परिवर्तन आया। अस्तित्ववाद,यथार्थवाद, आदर्शवाद,अध्यात्मवाद को अपने प्रसिद्ध काव्य 'गंगा' और 'देवव्रत भीष्म' में उजागर कर आप ने 'महाकवि' की उपाधि ग्रहण की। उन्होने नारी की गहनता को पहचाना और समाज में उसे उचित स्थान दिलाने का प्रयत्न अपने काव्य के द्वारा किया। उनकी साहित्यिक प्रवृति सदका ही डॉ. हुकुम चंद राजपाल ने उन्हें 'महाकवि' कहा है।"2

डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल' ने उन्हें सफल अस्तित्ववादी और श्रेष्ठ कवि की संज्ञा दी है। उन्होने अपने एक पत्र में कहा है– "गुरदासपुर में आसपुर सपना सँजोए बैठा एक व्यक्ति किस प्रकार वीरान जग की गलियों में सुंदर का पहरेदार बना हुआ है। यह देख, सुन और जानकार मुझे आश्चर्य हुआ है।"3

"बरोह साहित्यिक त्रौमासिकी के संपादक डॉ. शुभ दर्शन ने भी उन्हें 'महाकवि' की संज्ञा प्रदान की है।"4

संक्षिप्त में डॉ. नन्दा की विचारधारा को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

अस्तित्ववादी– अस्तित्ववाद अध्यात्मिक संकट, गतिरोध अथवा संक्रांति का दर्शन है। संकटापन की स्थिति ही इस विचारधारा के प्रति आकर्षण पैदा करती है। इसके अनुसार हमारी अध्यात्मिक स्थिति के मूल में संकट विद्यमान होता है। प्रत्येक सत्य जो अनेक अनुभवों से ज्ञात होता है, वह भी सहस्रो अनावश्यक सत्यों से आवेष्टित रहता है, परिणामतः वह जल्दी ही लुप्त हो जाता है। लक्ष्य विहीन अंतश्चेतना अशांत रहती है और आंतरिक ज्ञान अंधकारमयी हो जाता है। जिस कारण अन्य श्रद्धा को ही कार्य का आधार मान लिया जाता है। अस्तित्ववाद इस अध्यात्मिक संकट की व्याख्या कर प्रतिभा से दूर रहने का प्रयत्न करता है। इसके प्रभाव से लिखा गया काव्य भावात्मकता की ओर अधिक झुका होता है, यद्यपि इसमें तर्क की भी प्रधानता रहती है।

अस्तित्ववाद में व्यक्ति का चित्रण साधारण की अपेक्षा विशेष होता है और यह आत्मगत विवेक पर विशेष बल देता है। लेकिन साथ ही इसमें जो उत्तरदायित्व हीनता पाई जाती है, उसके कारण वह श्रृंखलता को ही जन्म देता है, फिर भी यह निर्विवाद है कि इस दार्शनिक सिद्धान्त ने साहित्य को पर्याप्त प्रभावित किया है और अपने शुद्ध रूप से यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है क्योंकि यह व्यक्ति को अपने निर्माण और आदर्श निर्धारित करने के लिए स्वतंत्रता प्रदान करता है। अस्तित्वबोध से ही व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप का पता चलता है। अस्तित्ववाद की सर्वोत्तम उपलब्धि व्यक्ति स्वातंत्रय ही नहीं है बल्कि उसके आगे की वस्तु है। यह उन प्रवृत्तियों या तत्वों से मुक्ति पाने की तत्परता भी है जिनसे व्यक्ति के आंतरिक रूप का निर्माण होता है जो प्रत्येक प्रकार के निर्णय के अवसर पर जाने-अनजाने उसकी नियति का निर्णय किया करते हैं। वही व्यक्ति की स्वतन्त्राता का सच्चा प्रामाणिक उद्घोषक होता है।

कवि डॉ. सत्येन्द्र नन्दा 'आस' जी अस्तित्ववादी कवि हैं। उन्होने अपनी सभी रचनाओं में अस्तित्ववाद को प्रमुख स्थान दिया है। अनेक प्रसिद्ध विद्वानो द्वारा इस तथ्य की पुष्टि भी हो चुकी है। उनके काव्य-ग्रंथ 'देवव्रत भीष्म' में अम्बा भी अपने संदर्भों में ईश की मृत्यु स्वीकार करती है–

मेरे संदर्भों में मृत्यु हुई क्या उसकी?

कवि के अनुसार जीवन सफलता से धन्य नहीं होता बल्कि सार्थकता से होता है। सार्थकता का संबंध कर्म से, कर्मठता से, संघर्ष से, संघर्ष की अनिवार्यता से होता है। यथा–

"कर्मों के अश्वों पर चढ़कर
सत्य-धर्म-दया-प्रेम-अनुराग
श्रद्धा-आस्तिकता मिलता आवास।" (गंगा प्रबंध काव्य, पृष्ठ 1)

अस्तित्ववादी व्यक्ति सर्व प्रकार की आस्तिकता से पीछे हट जाने के कारण जीवन की समग्रता के निकट अधिक सरलतापूर्वक, अधिक सहज ढंग से पहुँच सकता है। उसे पाप-बोध से मुक्त होने तथा सुख-दु:ख से ऊपर उठने की अवस्था अल्पकाल में ही प्राप्त हो जाती है। अस्तित्ववादी विचारकों में से कुछ ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं और कुछ नहीं। लेकिन कवि 'आस' ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं, जीवन मूल्यों के क्षेत्र में भी यह आस्थावादी है। इनके काव्य में व्यक्ति-स्वातंत्राय, क्षण की महत्ता, जीवन की सार्थकता और उसे उसके समग्र रूप में जीने की लालसा आदि तत्व देखने को मिलते हैं। यथा–

(क) स्वतंत्रा-रह पाता कब नर?

मोहजाल से जब बंधता है वर?

अकर्मण्यता कुछ बढ़ जाती। (गंगा, पृष्ठ 104)

(ख) सुख विघ्न रहित होता कब?

पर दु:ख में दु:ख सच्चा सुख। (गंगा, पृष्ठ 3)

उनके अस्तित्ववाद में टिप्पणी दर्शन के दृष्टिकोण से कवि ने आधुनिक भाव बोध, विचार बोध, का पूर्ण परिचय दिया है। 'भीष्म' पूर्णत: अस्तित्ववादी रचना है। आज का मानव इन विपदाओं, विरोधी परिस्थितियों के बीच अपने अस्तित्व रक्षण हेतु संघर्षरत्त है, महाकाव्यकार की लेखनी इसी तथ्य का साक्ष्य बनी है और इन स्थितियों को मानवीय अवस्थाओं से जोड़कर सशक्त प्रस्तुति प्रदान की है।

आदर्शवादी–आदर्शवादी साहित्यकार प्राय: स्वप्न-द्रष्टा होता है। वह संसार में ईश्वरीय न्याय और सत्य की विजय देखना चाहता है। आदर्शवादी विचारक का यह स्पष्ट मंतव्य है कि यह संसार दु:खशाला है पर इसके बाद परलोक में सुख प्राप्त करने के प्रयत्न करने चाहिए। वह भविष्य की उज्ज्वल झांकी प्रस्तुत करता है और सदैव सत्य, न्याय, दया आदि की ही विजय देखता है। इसलिए आदर्शवाद में आशावादिता को गहनता से माना गया है। साहित्य में आदर्शवाद से आशय है– एक ऐसी विचारधारा जो मनुष्य को अपने जीवन में किन्हीं उदात्त तत्वों के माध्यम से प्राप्त उपलब्धियों की ओर चलने की प्रेरणा देती है। यह मनुष्य की संतोषवृति को सजग करता है और बाह्य रूप से संयम, त्याग तथा आत्मनियमन को श्रेष्ठ बताता है। आदर्शवाद में स्पष्ट रूप में यह माना गया है कि बाह्य सुखों से मनुष्य को कभी सुख और संतोष नहीं मिलता। इसके लिए आंतरिक सुख और संतोष की खोज आवश्यक है। यह खोज सत्य, न्यायतथा आस्था के पाठ पर चलकर ही प्राप्त हो सकती है।

आदर्शवादी विचारकों के अनुसार शरीर तथा सभी बाह्य उपकरण नाशवान हैं, केवल आत्मा ही अमर तथा शाश्वत है।

'गंगा' प्रबंध काव्य के माध्यम से नारी के महान त्याग और वैदिक संस्कृति को आदर्श मानने के लिए कवि ने यथार्थ, व्यंग्य, मुहावरों आदि का सटीक वर्णन किया है। आधुनिकता में नारी और पुरुष दोनों ही अपने आदर्शों से भटक रहे हैं। यथा–

सतियों का रहा न आदर्श आज,
धन की पूजा नारी समाज
सुख-सुविधा-वैभव-अहंपोषण?
पतित्व ही भ्रष्ट हुआ ऐसा
देवलोक वर्णन न कर सकती
बहु पत्नीक बन रहा नर। (गाना, पृष्ठ– 32)

स्वार्थ, व्यक्तिवाद, भ्रष्टाचार आदि में फँसकर मानव ने आदर्श को ही बदल दिया है। आज 'नचिकेता' को मूर्खता का पर्याय समझा जाने लगा है। एक राजा के गुण बताकर कवि ने नेता का आदर्श प्रस्तुत किया है–

न कोई अथाह संपत्ति स्वामी,
और भूखा कोई न मारता।
जग के चारों वर्णों में
ऐसी ले आए समता। (गंगा, पृष्ठ– 70)

आदर्श शासन की उदाहरण शांतनु के राज्य द्वारा प्रस्तुत करते हुए कवि 'आस' लिखते हैं–

राज्य न सत्ता है
निस्वार्थ सेवा का बल है।
संस्कार सहित सु-राज्य
शक्ति- सम्मति, सह उत्तरदायित्व
तीनों साथ थे चलते।
आदर्श व्यवस्था ही का
प्रजा बन जाती है पालक। (गंगा, पृष्ठ– 70)

आठ वसुओं की कथा, गंगा का स्वेच्छा से स्वर्ग छोड़ धरती पर आना, महाभिषक से शाश्वत सौंदर्य के दर्शन एवं दंड के रूप में मृत्यु लोक का सहर्ष वरण करना, गंगा के मर्यादित मौन रूप को बताना, सुख-दुख-संघर्ष को जीवन का अंग समझना, परोपकार की भावना, आत्मिक सुख की प्राप्ति आदि अनेक घटनाओं को कलात्मक एवं पारंपरिक रूप से चित्रित करना, कवि को महान आदर्शवादी सिद्ध करता है।

सौंदर्य की परख, उसे यथोचित सम्मान देना, सुंदरता को ही शाश्वत प्रेम की संज्ञा देना, कवि की सौंदर्यवादी विशाल दृष्टि की उदाहरण हैं। इसी आदर्श को कायम करने के लिए कवि ने ब्रह्म-सभा में सुंदरता पर लगे कड़े प्रतिबंध का भी खुले शब्दों में विरोध किया है–

"इससे तो मृत्युलोक बेहतर
कुसूमों पर भ्रमर सदा गुंजरित
दीपक पर आते परवाने, जलजाने की नहीं परवाह
मन मोहित-दृष्टि करे पूजा
'सुंदर-शिवम-सत्य' तो है पूजा।" (गंगा, पृष्ठ– 46)

'गंगा' प्रबंध काव्य में कवि ने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदर्श प्रस्तुत कर समाज के गिरते हुए आदर्शों को ऊपर उठाने का शलाघ्य प्रयास किया है। डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल' के अनुसार– गंगा' यथार्थ और आदर्श के श्रेष्ठ महाकाव्य है।

यथार्थवादी– यथार्थवाद का शाब्दिक अर्थ है– जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना। दर्शन, मनोविज्ञान, सौंदर्य-शास्त्र, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में वह दृष्टिकोण को सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल को, काल्पनिक की अपेक्षा वास्तविक को, भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को, आदर्श के स्थान पर यथार्थ को ग्रहण करता है, यथार्थवादी दृष्टिकोण कहलाता है।

जहां आदर्शवादी साहित्यकार आदर्श व्यक्तियों के आदर्श क्रिया-कलापों एवं उच्च भावनाओं का चित्रण आदर्श शैली में करता है, वह यथार्थवादी मानव जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का चित्रण सहज-स्वाभाविक माध्यम से प्रस्तुत करता है। कोई भी साहित्यकार चाहे वह कितना ही यथार्थवादी क्यों न हो, कल्पना के पंखों पर सवार हुए बिना भाव जगत का भ्रमण नहीं कर सकता। अत: किसी न किसी स्तर पर यथार्थवादी साहित्यकार को भी आदर्शवादिता से संबन्धित तत्वों का सहारा लेना पड़ता है। भाव और कल्पना का संबंध आदर्श से है और बुद्धि एवं शैली का यथार्थ से है।

कवि 'आस' का व्यक्तित्व आदर्श और यथार्थ का सुमेल है। केवल आदर्शों की सृष्टि करने वाला साहित्य अस्वाभाविकता और असाधारणता से इस प्रकार युक्त हो जाता है कि उसका साधारणीकरण होना असंभव हो जाता है। काव्य में दोनों का समन्वय हो, यह भी एक आदर्श है। यथार्थ यह है कि ऐसा होना मुश्किल है। लेकिन डॉ. सत्येन्द्र प्रकाश नन्दा 'आस' का व्यक्तित्व आदर्श और यथार्थ का अनोखा सुमेल है–

"भ्रष्टाचारों का है सरदार
आदर्श-मूल्य सब उलट दिए
दंडित करता दंड विधान
सिंह को ही बनाएँ हिरण पालक?
सर्पों पर छोड़ा जहर त्याग?
दीमक को काष्ठ गृह सौंपा?
बगुलों को दे दिए मीन-ताल?
मूर्ख निर्णायक प्रज्ञा-ज्ञान?
दैहिक-दैविक-भौतिक ताप
मृत्यु लोक रहे अब लताड़।
कारण-कार्य-संबंध अटल
परिणाम भयंकर देव विपर।
मन आत्म मेरा प्रताड़ित।" (गंगा, पृष्ठ– 31)

'गंगा' प्रबंध काव्य में जीवन क्या है? इसका चित्रण भी स्थान-स्थान पर किया है–

"अनु-परमाणुओं निर्मित रक्त मांस
पंचभूत चले इनके साथ-साथ।
रक्षित केवल न मन से हो
सूक्ष्म या कारण जगत सृजत विधाता।" (गंगा, पृष्ठ– 6)

अतीत और भविष्य की अपेक्षा वर्तमान का अधिक चित्राण, असंगतियों, कटुताओं एवं विषमताओं का चित्राण, परिस्थितियों का मानव पर प्रभाव आदि घटनाओं का वर्णन कर कवि ने यथार्थ का प्रस्तुतीकरण किया है। वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग है। कवि ने आदर्शवादिता को सम्मुख रखकर यथार्थ चित्रण किया है।

धर्म और सौंदर्य दोनों की रक्षा रक्षा उचित ढंग से की है। शाश्वत प्रेम को ही सौंदर्य और धर्म के पालन को ही सुंदरता कहा है। अपने कर्तव्यों को निष्ठापूर्वक निभाना व सत्यकर्म करना ही परमधर्म है। गंगा और महाभिषक का प्रेम आदर्श है लेकिन वह आत्मिक है। मांसलता का वरन नहीं किया। कवि ने बड़ी सजगता से गंगा के पवित्रा जीवन को नारी जगत का आदर्श बताया है और वर्तमान युग का यथार्थ प्रस्तुत किया है।

कवि 'आस' का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है अर्थात उन्होने यथार्थ का चित्रण तो किया ही है, साथ में आदर्श प्रस्तुत करने की भी चेष्टा की है। मानव समाज की दुर्दशा, नैतिक मूल्यों की गिरावट, अविद्या, अहंकार, हिंसा, स्वार्थलिप्सा आदि विकारों का नग्न चित्रण कवि ने किया है–

"अविद्या में डूब गए सारे
घोर अंधकार हैं भोग रहे।
आत्मतत्व को भूल चुके
ढका सत्य पात्रा का मुख
अहंकार दंभ से हैं पीड़ित
वर मांग रहे 'यम' से कैसे?

बिन खाए तीन दिन न बीते?
'यम' से ही सब कुछ ग्रहण किया
न नमस्कार ऊपर अकल्याण
उलटे वर मांग रहे देखो।" (गंगा, पृष्ठ– 29)

पृथ्वी पात्रा के माध्यम से मृत्युलोक का यथार्थ चित्रण कर मानव द्वारा (महाभिषक, शांतनु, प्रतीप आदि) ही इसका आदर्श प्रस्तुत कर काव्य जगत में यथार्थ और आदर्श का साथ-साथ चित्रण कर अद्‌भुत कल्पना, बुद्धि एवं शैली का प्रमाण दिया है।

प्रगतिशीलता– कवि 'आस' के व्यक्तित्व पर अनेक घटनाओं के प्रभाववश मिश्रित व्यक्तित्व सामने आया है। कहीं भी कट्‌ठरता नहीं है। समय और परिस्थिति के अनुसार ढलने वाला व्यक्तित्व है। मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव सदका वे क्रांतिकारी समाज सुध ारक भी हैं। बचपन से कार्लमार्क्स की किताबों का अध्ययन और समाज में हो रहे शोषण, अनाचार, वेदना, पीड़ा ने उन्हें प्रगतिशील बना दिया। डॉ. 'आस' ने 'राहुल सांकृत्यायन' के उपन्यासों पर 'लघु शोध-प्रबंध' लिखा जो पूरी तरह मार्क्सवादी थे। तत्पश्चात 'डॉ. रांगेय राघव के काव्य का अध्ययन' विषय पर शोध कार्य उनकी प्रगतिशीलता का प्रमाण है। 'वीणा के टूटे तार' प्रथम काव्य संग्रह में वेदना, करुणा, समाजवाद, गरीबी आदि विषयों को लेकर काव्य सृजना कर सामाजिक समस्याओं को उजागर तो किया ही है, समाधान भी बताया है। गांधी के खोखले समाजवाद का विरोध करते हुए कवि ने लिखा है–

"जलती मोहर लगी, अंतिम
समाजवादी की।
पड़ी जंजीर धर्म की।
मरनेवाले मरे,
अरे गो-दान शेष है।
रहा अभी तक सांस, क्यों निर्धन में शेष है?
गांधी तेरा राम-राज्य देखा है मैंने?
गल-सड़ रहा, इस नगर के एक कोने में।" (वीणा के टूटे तार, कविता– समाजवाद)

कवि नारी को समाज का सबसे शोषित वर्ग मानता है। प्रत्येक घर में किसी न किसी रूप में नारी का सामाजिक, आर्थिक, ध ार्मिक शोषण हो रहा है। आज के युग में नारी को पुरुष के समान कहकर पुचकारा जा रहा है, वास्तविक स्थिति पर पर्दा डाला जा रहा है। कवि 'आस' ने नारी के अस्तित्व की मांग की है। नारी को गंगा के समान पूजनीय स्थान दिया है। नारी की महनीयता को पहचानने के लिए समाज को मजबूर कर दिया है। अपने काव्य में यथार्थ प्रस्तुत कर वैदिक काल की नारी की तरह सम्मान देने को कहा है जो आज की मांग है–

"स्त्री के मानसिक बल की पराकाष्ठा
जिसे तो गंगा ने वरण किया था
यह कहना नारी तो अबला है
है झुठलाती इसे प्रबला है।" (गंगा, पृष्ठ– 107)

नारी को पदार्थ समझना, चेतना पर सामाजिक प्रतिबंध लगाना, स्वत्व के अधिकार को छीनना आदि कुआदर्शों, कुप्रथाओं का विरोध, देवव्रत भीष्म में कर समाज-सुधार काव्य का सृजन किया है-

बलि पशु तो कभी नारी नहीं?
देवता ने भी जिसे हो ठुकरा दिया?

स्वर्ण माला की है मनके जो छूटते,
धूलि में मिल क्यों मूल्य खो रहे?
टूटी हुई माला बनकर क्यों रहूँ?
नर पगों के नीचे क्यों दाब कर रहूँ?
मेरा अपना भी तो एक अस्तित्व है? (देवव्रत भीष्म, पृष्ठ– 160)

महाभारत काल की हारी हुई द्रोपदी घायल सिंहनी की तरह तड़प उठती है–

नारी कब से वस्तु हुई चौसर की?
रथवान! जाकर हारने वाले से पूछो
पहले जुए में स्वयं हारे या मुझको
भरी सभा में इस प्रश्न का उत्तर लाओ?
नारी को पराजित नर की वस्तु न बनाओ। (देवव्रत भीष्म, पृष्ठ– 192)

जाति भेद-भाव के विरोध में भी कवि 'आस' ने आवाज उठाई। उनके विचार से व्यक्ति कर्म से ऊंचा-नीचा नहीं हो सकता लेकिन हमारे समाज में जन्म के आधार पर उसे जातिओं में बाँट दिया है। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही कहलाता है, काम चाहे उसके नीच हों, यह कहाँ की बिडम्बना है।

"चारों वर्णों के कर्म निश्चित,
जन्मों से जोड़ रहे हैं व्यर्थ।
भीतर मसक चुका है सब।
धरती बैठी थी चिंतातुर।" (गंगा, पृष्ठ– 17)

कवि पूंजीवादी व्यवस्था के कट्ठर विरोधी है। समतवाद के समर्थक हैं। 'निराला', 'नारी', 'झुक गई कमर', 'समाजवाद, इनके प्रगतिशील दृष्टिकोण को उभारने वाली कविताएं हैं। 'निराला' कविता में भारत के निर्धनों को जगाने का प्रयत्न करता हुआ कवि लिखता है–

"समाजवाद के थोथे नारे
पहाड़ों से टकराएँगे क्या?
चरित्रहीन राष्ट्र नायक,
कुछ भला कर पाएंगे क्या?
जाग तू भारत के निर्धन,
और बना तकदीर अपनी।
अधिकार खोया ण मिलेगा, किसी के दिलाने से
लोग कहते मैं निराला हूँ जमाने से।" (कविता– निराला, पृष्ठ– 5)

निष्कर्षत

कहा जा सकता है कि डॉ. सत्येन्द्र प्रकाश नन्दा 'आस' की साहित्यिक विचारधारा में अस्तित्ववाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद एवं प्रगतिशीलता का अनुपम मिश्रण है।

संदर्भ-संकेत

1. आग और आँसू–भूमिका, डॉ. सत्येन्द्र नन्दा, पृष्ठ– 5
2. गंगा–भूमिका, डॉ. हुकुम राजपाल
3. गंगा–भूमिका, डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल'
4. बरोह त्रौमासिकी, अक्तूबर-दिसंबर 1999, संपादक–डॉ. शुभ दर्शन, पृष्ठ 36

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और इतिहास लेखन : एक समग्र दृष्टिकोण

डॉ० चन्दन कुमार

पी.एच.डी (इतिहास), नेट (यू.जी.सी.), पूर्व शोध-छात्र, सी.एम.जे. यूनिवर्सिटी, जोराबाट (मेघालय)

शोध सार

भारत के स्वतंत्रता संग्राम की गिनती आधुनिक समाज के सबसे बड़े आन्दोलनों में की जाती है। विभिन्न विचार धाराओं और वर्गों के करोड़ों लोगों को औपनिवेशिक सम्राज्य को घुटने टेकने के लिए विवश किया। इसलिए जो लोग मौजूदा सामाजिक और राजनतिक ढांचे को बदलना चाहते हैं, उनके लिए ब्रिटिश, फ्रांसीसी, रूसी, चीनी, क्यूबाई और वियतनामी क्रांतियों की तरह इसकी भी प्रासंगिकता है। भारत का स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न पहलू-खास तौर से गांधीवादी राजनीति की रणनीति-उन समाजों में चलाए जाने वाले आंदोलनों के लिए विशेष रूप से सार्थक है, जो समाज कानूनी ढांचे के अन्तर्गत कार्य करते हैं तथा लोकतांत्रिक और मूलत: नागरिक स्वतंत्रता वाली राज्यव्यवस्था जिन समाजों की विशेषता मानी जाती है। लेकिन दूसरे समाजों के लिए भी इसकी सार्थकता है।

मुख्य बिन्दु: उपनिवेशवाद; साम्राज्यवाद; ऐतिहासिक दृष्टिकोण; मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य।

भूमिका

विभिन्न युगों और विभिन्न लोगों में ऐतिहासिक साहित्य की प्रकृति, गुणवत्ता और मात्रा में अंतर हैं। ये अंतर सामाजिक जीवन में परिवर्तन, समाज में विश्वास, इतिहास की भावना की उपस्थिति या अनुपस्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं। परिवर्तन की गति तब से अधिक है जब से अतीत का अध्ययन विभिन्न विचारों के प्रभाव में तेजी से आया। इस प्रकार हिस्टोरियोग्राफी इन बदलावों को सदियों से जानने की कोशिश कर रही है। आर्थर मार्विक का कहना है कि इतिहास अतीत का इतिहासकार पुनर्निर्माण है जबकि इतिहास लेखन न तो केवल सिद्धांत है और न ही केवल अभ्यास है, बल्कि यह ऐतिहासिक विचारों का वास्तविक इतिहास है। इतिहास लेखन की शुरुआत प्राचीन यूनानियों और चीनियों की शुरुआती रचनाओं के कारण हुई, जिन्हें कालक्रम की अनुपस्थिति और आलोचना की पद्धति के कारण कई कठिनाइयों और अनिश्चितता का सामना करना पड़ा था, फिर भी इतिहास लेखन की इस कच्ची शुरुआत ने जबरदस्त प्रगति की है। यह पता लगाना उचित है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास लेखन कैसे अस्तित्व में आया। क्या समस्याएं थीं और उन्हें कैसे हल किया गया था। पूर्वगामी विवरण, विश्लेषण और उनके द्वारा दिए गए एक विवरण खाते का सर्वेक्षण किया जाता है। यद्यपि भारत का इतिहास बहुत पुराना और समृद्ध है, लेकिन भारतीय इतिहास लेखन हाल के मूल की तुलना में है। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, नए शोध पत्रों, लेखों, पत्तों और मोनोग्राफ के उद्‌भव ने अनुसंधान में नई दिशाएँ निकालीं, जिसके कारण भारतीय इतिहास लेखन का विकास हुआ, जिसमें राष्ट्रवादी स्कूल सबसे महत्वपूर्ण दृष्टिकोणों में से एक है। राष्ट्रीय संस्व्रति और राष्ट्रीय चरित्र के प्रति जुनून और राष्ट्रों की प्रतिभा के सिद्धांत पर रूस के तनाव ने राष्ट्रवाद के दर्शन का गठन किया। हेरडर का कहना है कि प्रत्येक राष्ट्रीय संस्कृति अपने स्वयं के निहित चरित्र के साथ एक अनोखी इकाई है। राष्ट्रीय चरित्र अपनी भाषा, साहित्य, कला और अपने नैतिक कोड में व्यक्त किया जाता है, जो लोगों के इतिहास को निर्धारित करता है। राष्ट्रवाद एक शक्तिशाली भावना है, यह अनिवार्य रूप से चरित्र में अध्यात्मिक है और यह लोगों की एक साथ रहने की इच्छा

है। एकता की यह भावना समुदाय, भाषा, धर्म, भौगोलिक एकता, सामान्य राजनीतिक आकांक्षाओं और सामान्य ऐतिहासिक विकास की दौड़ से उत्पन्न होती है। राष्ट्र राज्य आधुनिक दुनिया में राजनीतिक संगठन का सामान्य रूप है। राष्ट्रवादी इतिहासकार सबसे पहले राष्ट्रों की भावना का आह्वान करते थे, वे राज्य के बजाय लोगों पर जोर देते थे, जिसने राजनीतिक इतिहास के विशिष्ट विचार को बदल दिया और समाज में मनुष्य के भौतिक और अध्यात्मिक विकास को अपनाया। पुनरुत्थानवादी राष्ट्रवाद की भावना ने ऐतिहासिक अध्ययनों को एक प्रेरणा दी और ऐतिहासिक जांच के लिए एक शक्तिशाली मकसद प्रदान किया जहां तक लोगों ने अपनी राष्ट्रीय पहचान की जड़ों का पता लगाने का प्रयास किया। इस कारण से उन्नीसवीं सदी यूरोप में राष्ट्रवाद की सदी थी और राष्ट्रीय आंदोलनों के महान इतिहास लेखन की सदी थी।

भारत का स्वतंत्रता संग्राम अर्धालोकतांत्रिक या लोकतांत्रिक पद्धति के राजनीतिक ढांचे की अकेली वास्तविक ऐतिहासिक मिशाल पेश करता है, जिस ढांचे को सफलतापूर्व बदला या रूपांतरित किया जा सकता है। अपने तरह का यह एकमात्र आन्दोलन है जिसमें दृष्टिकोणों के टकराव का ग्राम्शी द्वारा सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य सफलतापूर्वक अमल में लाया गया; जहां राजसत्ता पर क्रांति के जरिए एक खास ऐतिहासिक क्षेत्र में कब्जा नहीं किया गया बल्कि इसके विपरीत, नैतिक, राजनीतिक और विचारधारात्मक, तीनों ही स्तरों पर लंबे जन संघर्ष चलाकर इसको हासिल किया गया; जहां अनेक वर्षों में धीरे-धीरे जवाबी राजनीतिक नेतृत्व की शक्ति संचित की गई तथा जहां संघर्ष और शांति के दौर बारी-बारी से आते-जाते रहे।

उपनिवेशवाद

रूढ़िवादी औपनिवेशिक प्रशासक और कैंब्रिज संप्रदाय के नाम से विख्यात इतिहासकारों का साम्राज्यवादी खेमा भारत में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक ओर सांस्कृतिक संरचना के रूप में उपनिवेशवाद के अस्तित्व को नकारता है। उनके लिए उपनिवेशवाद मुख्यत: विदेशी शासन से अधिक कुछ नहीं है। वे या तो इस बात को समझते नहीं या इसका पुरजोर खंडन करते हैं कि भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृति और राजनीतिक विकास के लिए उपनिवेशवाद शासन को उखाड़ फेंकना जरूरी था। इस प्रकार उनके द्वारा किया गया राष्ट्रीय आंदोलन का विश्लेषण भारतीय जनता और उपनिवेज्वाद के आपसी हितों के आधारभूत अंतर्विरोंध ों को अस्वीकरण पर टिका हुआ हे। इसलिए वह इस बात को भी नकारता है कि राष्ट्रीय आंदोलन के उद्भव के पीछे यह महत्वपूर्ण कारण था। नतीजतन परोक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वे इस बात को भी नहीं मानतें कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम इस अंतर्विरोधा के भारतीय पक्ष को प्रस्तुत करता है अथवा यह कि यह आंदोलन उपनिवेशवाद विरोधी था अर्थात् भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का इस आन्दोलन ने विरोध किया था। साम्राज्यवाद के खिलाफ भारतीय जनता के संग्राम को वे नकली लड़ाई बताते हैं, जैसे दशहरा में कागज के दो पुतलों की लड़ाई हो, नकली, दिखावे की लड़ाई। यह वास्तविक लड़ाई थी ही नहीं। केंद्रीय अंतर्विरोध को अस्वीकार करने के कारण इन विद्वानों का पूरा दृष्टिकोण दूषित हो गया है जो कि उनके द्वारा किए गए सूक्ष्म अनुसंधान से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री को दूसरे परिप्रेक्ष्य में रखकर उसका उपयोग करने में मदद मिलती है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण

साम्राज्यवादी इतिहासकार नहीं मानते कि भारत राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में था। उनका मानना है कि जिसे भारत कहा जता है वास्तव में धर्मों, जातियों, समुदायों ओर अलग-अलग हितों का समुंच्च भर था। इस तरह भारतीय राज्य व्यवस्थाओं के वर्गीकरण को ये इतिहासकार "भारतीय राष्ट्र" अथवा "भारतीय जाति" या सामाजिक वर्गों की अवधारणाओं के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि इन कोटियों की जगह यहां पर पहले से लोगों की पहचान हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-गैर ब्राह्मणवाद, आर्य, भद्रलोक और इसी प्रकार दूसरे समूहों के रूप में की जाती थी। उनका कहना है कि जाति और धर्म के आधार बने सदियों से चले ओ रहे ये समूह राजनीतिक संगठन के मुख्य आधार थे। इसलिए जाति और धर्म पर आधारित राजनीति ही यहां पर मुख्य है, राष्ट्रवाद तो इसका ऊपरी आवरण मात्र है। अनिल सील ने इसी बात को इस तरह पेश किया है, "दूर से देखने पर जो राजनीतिक संघर्श जान पड़ता है, उसका नजदीक से निरीक्षण करने पर प्राय: पता चलता है कि वे अपने पुराने समुदाय की स्थिति की रक्षा कर रहे हैं, या उसकी स्थिति सुधार रहे हैं।" सील का यह भी कहना है कि इसकी वजह से चीन, जापन, मुस्लिम देशों और अफ्रीकी देशों के राष्ट्रवाद से भारत का राष्ट्रवाद भिन्न हो जाता है।

यदि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारतीय जनता के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो प्रश्न उठता है कि यह किसके हित का प्रतिनिधित्व करता है? एक बार पुनः 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध औ 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटिश अधि कारियों और साम्राज्यवाद के प्रवक्ताओं ने इसके तर्क और उत्तर प्रस्तुत किए। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने इस बात पर जोर दिया कि भारत का राष्ट्रीय आंदोलन जन आंदोलन नहीं था बल्कि यह अभिजन समूहों की जरूरतों और हितों की उपज था। इन समूहों ने इसका उपयोग या तो संकीर्ण स्वार्थों के लिए किया अथवा अपने पुराने समुदाय के गुट की स्वार्थ सिद्धि के लिए किया। इस प्रकार राष्ट्रवादी विचार, विचारधारा और आन्दोलन के आविर्भाव और प्रेरणा के पीछे मुख्य शक्ति अभिजन समूह तथा उसकी जरूरतें और हित हैं। इन समूहों का गठन कभी–कभी धार्मिक और जातिगत पहचान के आधार पर और कभी– कभी संरक्षण के ईर्द–गिर्द बने राजनीतिक संपर्कों के आधार पर होता था। लेकिन दोनों ही मामले में, चाहे ब्रिटिश हुकूमत के विरूद्ध का मामला था या आपस में एक–दूसरे का विरोध हो, इस विरोध के पीछे उनका संकीर्ण निजी स्वार्थ ही काम करता था। यहां पर राष्ट्रवाद को मूलतः एक ऐसी विचारधारा माना गया है, जिसका इस्तेमाल वे अभिजन समूह अपनी संकीर्ण महत्वाकांक्षाओं को न्यायोचित ठहराने और जनसमर्थन जुटाने के लिए करते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन तो सिर्फ एक उपकरण था जिसका उपयोग अभिजन समूह जनता को लामबन्द करने और अपनी स्वार्थों को पूरा करने के लिए किया करता था।

सील, गैलाघर और इनके छात्रों ने इस दृष्टिकोण में इजाफा किया है। जहां डफरीन, कर्जन, चिरोल, लोवेटफ मैक्लू और वी. वी. मिश्र ने हताश शिक्षित मध्य वर्गों की बात की थी जो "परोपकारी ब्रिटिश राज्य के विरूद्ध लड़ने के लिए राष्ट्रवाद का इस्तेमाल कर रहा था। वहां सील ने इस दृष्टिकोण के समानांतर एक दृष्टिकोण विकसित किया जिसके सूत्र चिरोल और रॉलेट कमिटी के रिपोर्ट में विद्यमान थे। इस दृष्टिकोण के मुताविक ब्रिटिश राज की कृपादृष्टि पाने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन एक अभिजात गुट के विरूद्ध दूसरे अभिजात गुट के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है। वे अपनी बात इस बात रखते हैं" यह मानना काफी भ्रामक होगा कि देश की जनता की यह लामबन्दी मुख्य रूप से विदेशी शासन के विरूद्ध संचालित थी। साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद के बीच ऊपर से दिखने वाले संघर्ष पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है, लेकिल उनके बीच आपसी भागीदारी व अध्ययन भी उतना ही लाभदायक होगा तो फिर राष्ट्रीय आन्दोलन के उद्भव और विकास में ब्रिटिश राज्य का मुख्य योगदान यह रहा कि उसने भारतीय लोगों के बीच ईर्श्या और संघर्ष को तेज किया और आपसी शत्रुता के लिए नए क्षेत्र और नई संस्थाओं का निर्माण किया।

सील, गैलाघर और उनके छात्र उस आधार को थोड़ा और व्यापक बना देते हैं जिसके चलते भारत के अभिजन गुट संगठित हुए थे। इन लोगों में ब्रिटिश इतिहासकार लेविनस नेवियर का दृष्टिकोण अपनाते हुए उसमें कुछ और जोड़ा और यह तर्क प्रस्तुत किया कि इन गुटों की रचना 'मालिक–आसामी' जैसे संबंधों के आधार पर हुए थे। अपनी बात को सैद्धांतिक जामा पहनाते हुए वे कहते हैं कि जैसे ही ब्रिटिश शासन ने प्रशासनिक, राजनीतिक सत्ता का विस्तार निचले स्तर तक अर्थात् प्रांतीय, जिला या उसके भी निचले स्तर तक किया, स्थानीय राजाओं ने मालिकों और आसामियों को एकत्र कर आयोजन आरंभ कर दिए। ये दोनों ही एक–दूसरे के हित में काम करते थे। भारतीय राजनीति की रचना इस प्रकार 'स्वामी और आसामी' के पारस्परिक संघर्षों की श्रृंखला के रूप में शुरू हुई। धीरे–धीरे बड़े नेता उभरने लगे। इन नेताओं ने स्थानीय मालिकों की राजनीति को आपस में जोड़कर दलाली का काम अपने हाथ में लिया क्योंकि ब्रिटिश शासन सारे भारत में था, इसलिए अन्ततः अखिल भारतीय स्तर के दलालों का आविर्भाव हुआ। सफलतापूर्वक कार्य संचालन के लिए इन अखिल भारतीय स्तर के दलालों को निचले स्तरों पर यानि प्रांतीय स्तर के दलालों की जरूरत थी जो अपने आसामियों को राष्ट्रीय आंदोलन में लगा सके। दूसरे स्तर के इन नेताओं को नायाब ठेकेदार भी कहा गया है। अनिल सील का कहना है कि गांधी, नेहरू और पटेल मुख्य दलाल थे। इन इतिहासकारों का मानना है कि जिस जनता का भाग्य सत्ता की इस दलाली में प्रभावित हुआ था वह 1918 में आकर इस आंदोलन से जुड़ी थी। इसके बाद हमकों यह बताया जाता है कि जनता के अस्तित्व से जुड़ी हुई परेशानियों, जैसे युद्ध, मुद्रास्फीति, बीमारी, सूखा अथवा मंदी जिनका उपनिवेशवाद से कोई लेना–देना नहीं है, को बहुत चालाकी से लागों की आंखों में धूल झोंकने में इस्तेमाल किया गया था ताकि इन दलालों की सिद्धान्तहीन लड़ाई में उनको भागीदार बनाया जा सके।

इस तरह से इतिहासकारों का यह संप्रदाय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को सत्ता के लिए संघर्ष का बहाना मानता है। यह सघर्ष भारतीय अभिजन के विभिन्न गुटों के बीच है तथा इसके साथ ही यह संघर्ष उनके तथा विदेशी अभिजात वर्ग के बीच भी है। इस

प्रकार, साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने और स्वतंत्र राष्ट्र राज्य की स्थापना के लिए भारतीय जनता के आंदोलन के रूप में वे इसके अस्तित्व और औचित्य दोनों को ही अत्यन्त जोरदार ढंग से नकारते हैं। उनके द्वारा किए गए राष्ट्रीय आंदोलन के विश्लेषण में राष्ट्र, वर्ग, लामबंदी, विचारधार जैसी विश्लेषण की कोटियां प्राय: गयाब हैं जिसका इस्तेमाल यूरोप, एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रीय आंदोलनों और क्रांतिकारी प्रक्रियाओं के विवेचन में इतिहासकार अक्सर करत हैं। इतिहास लेखन की यह दृष्टि न सिर्फ उपनिवेशवादी शोषण, अल्पविकास अैर केंदीय अंतर्विरोध को नकारती है, बल्कि उन लोगों के आदर्श तथा त्याग को भी अस्वीकारती है जिन लोगों ने उपनिवेशवाद विरोधी संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दी। डॉ. सर्वपल्ली गोपाल ने इस बात को इन शब्दों में पेश किया है, "नैपियर पर आरोप लगाया गया था कि उसने राजनीति से अकल को बाहर निकाल दिया। लेकिल यह संप्रदाय उससे और कई कदम आगे बढ़ गया है और इन्होंने न केवल दिमाग को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से अलग कर दिया बल्कि शालीनता, चरित्र, ईमानदारी और नि:स्वार्थ प्रतिबद्धता को भी उससे बाहर कर दिया।" बहरहाल, विश्लेषण की यह पद्धति मजदूरों, किसानों, निम्नमध्य वर्ग तथा महिलाओं की किसी भी तरह की जागरूक अथवा सक्रिय साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका को अस्वीकारती है। इस विश्लेषण में उनको बच्चों जैसा या मूक बधिर जैसा माना गया है जिनके पास अपनी जरूरत और अपने हित की कोई परिकल्पना न रही हो। ताज्जुब तो इस बात का है कि यदि ऐसा ही था तो उपनिवेशवादी शासक इस मूक बधिर अबोध भारतीय जनता को अपनी राजनति के पीछे लामबंद करने में क्यों नहीं सफल हुए?

कुछेक इतिहासकारों में अभी हाल में एक नया रूझान दिखाई पड़ा है। इसके प्रस्तावकों ने इसका नाम सबाल्टर्न अध्ययन (यानी निचले स्तर की जनता का अध्ययन) रखा है अर्थात् जनाधारित इतिहास का अध्ययन। इसने पहले के सारे अध्ययन को, सारे इतिहास लेखन को खारिज कर दिया है। खारिजों की सूची में मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य वाला इतिहास लेखन भी शामिल है जिसे अभिजात वर्ग का इतिहास-दर्शन कहा गया है और इस पुराने सीमित दृष्टि वाले इतिहास–दर्शन की जगह, उसको सीमित करने की बात कही गई, जो नई, जनोन्मुखी या सबाल्टर्न (आम जनता की) दृष्टि है।

इन इतिहासकारों के लिए उपनिवेशवादी काल में भारतीय समाज में मुख्य अंर्विरोध अभिजात वर्ग (भारतीय तथा ब्रिटिश दोनों) और निचले स्तर के बीच था, उनिवेशवाद और भारतीय जनता के बीच नहीं था। उनका मानना है कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को लेकर भारतीय जनता में कभी कोई वजूद नहीं था। इसकी जगह वे इस बात पर जोर देते हैं कि आनदोलन में दो स्पष्ट धाराएं थीं या दो अलग तरह के आंदोलन थे–निचले तबके की जनता का साम्राज्यवाद–विरोधी वास्तविक संग्राम तथा अभिजन वर्ग का नकली राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम। आंदोलन की अभिजन शाखा के अगुआ भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिकारी नेता था। उनका आंदोलन अभिजन वर्ग के बीच सत्ता पर कब्जा करने का एक आवरण था। सबाल्टर्न द्वारा किया गया स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण साम्राज्यवादी तथा नव-साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए राष्ट्रीय आंदोलन को दो हिस्सों में नहीं बांटता, बल्कि सारे आंदोलन को उसी रूप में चित्रित करता है, सबाल्टर्न इतिहास दर्शन पहले इस आंदोलन को दो हिस्सों में बांटता है तथा नव साम्राज्यवादियों द्वारा प्रस्तुत किए गए चित्र आंदोलन की अभिजन धारा के साथ चस्पा कर देता हे। इस दृष्टिकोण की खूबी यह है कि यह अनैतिहासिक है और हर तरह की लोकप्रिय दुस्साहसिकता और हर तरह की चेतना को महामंडित करता है ओर प्रबुद्ध वर्ग, संगठित दलीय नेतृत्व ओर दूसरे अभिजन समूहों की हर पहल और हर गतिविधि के प्रति इसमें एक अनैतिहासिक तिरस्कार भाव मौजूद है। इसके परिणामस्वरूप यह दृष्टिकोण भी भारतीय जनता के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के ओचित्य को नकारता है। इस नए संप्रदाय ने जनचेतना को केंद्र में रखकर इतिहास लेखन का वायदा किया था लेकिन इसने अपने लिए अभी तक कोई नया स्रोत नहीं तलाशा है जिससे इनकी लोकप्रिया कल्पना को अधिक विचारशीलता मिल सके। इनके 'नए' लेखन का आधार अभी भी वही पुराने अभिजन स्रोत हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण दृष्टिकोण राष्ट्रवादी इतिहास दर्शन है। उपनिवेशवादी युग में लाला लाजपतराय, ए. सी. मजुमदार, आर. जी. प्रधान, पट्ठाभिसीतारमैया, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, सी. एफ. एंड्रयूज और गिरिजा मुखर्जी जैसे सक्रिय राजनति से जुड़े लोग इसके प्रतिनिधि थे। अभी हाल में बी. आर. नंदा, विश्वेश्वर प्रसाद और अमलेश त्रिपाठी ने इस दृष्टिकोण से इतिहास लेखन में काफी महत्वपूर्ण योगदान किया है। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने और खासतौर से हाल के इतिहासकारों ने, उपनिवेशवाद के शोषणकारी चरित्र के प्रति विशेष जागरूकता का परिचय दिया है लेकिन कुल मिलाकर उनको ऐसा महसूस होता है कि राष्ट्रीय आंदोलन, राष्ट्रीय चेतना या

स्वतंत्रता की चेतना अथवा स्वतंत्रता के विचार के प्रसार का नतीजा है। उनको इस बात का पूरा एहसास है कि भारत राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को ये लोग जनता का आंदोलन मानते हैं।

बहरहाल, इन इतिहासकारों की मुख्य कमजोरी यह है कि वर्ग और जाति के रूप में भारतीय समाज के भीतरी अंतर्विरोध को या तो नजर अंदाज करने की अथवा कम महत्व देने की प्रवृत्ति उनके लेखन में स्पष्ट है। इनलोगों ने इस तथ्य को अनदेखा करने की प्रवृत्ति है कि जहां स्वतंत्रता संग्राम समूची भारतीय जनता या सम्पूर्ण राष्ट्रीय हित का प्रतिनिधित्व करता है (यानि उपनिवेशवाद के खिलाफ भारतीय जनता के सभी वर्गों का) वही इसमें ऐसा एक विशेष वर्गीय परिप्रेक्ष्य में किया है, और यह कि परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक और विचारधारात्मक परिप्रेक्ष्यों के बीच आंदोलन के राजनीतिक नेतृत्व के लिए बराबर संघर्ष चलता रहा। राष्ट्रीय आंदोलन के दक्षिणपंथी व्याख्याकारों की सैद्धांतिक स्थिति को वे प्रायः अपनाते हैं तथा इसकी बराबरी संपूर्ण आंदोलन से करते हैं। आंदोलन की रणनीति और विचारधारा वाले पहलू का इनके द्वारा किया गया विश्लेषण भी अपर्याप्त है।

मार्क्सवादी इतिहासकारों का आगमन बाद में हुआ। जहां राष्ट्रीय आंदोलन का सवाल है इसकी नींव ए. आर. देसाई और रजनी पाम दत्त ने रखी। लेकिन कई सालों से कुछ अन्य लोगों ने भी इसका विकास किया है। साम्राज्यवादी दृष्टि के इतिहास– लेखकों के विपरीत मार्क्सवादी इतिहास लेखक अपने विवेचन में मुख्य अंतर्विरोध तथा रूपाकार ग्रहण कर रहे राष्ट्रवाद की प्रक्रिया दोनों का ध्यान रखते हैं और राष्ट्रवादी इतिहासकारों की तरह वे भारतीय समाज के अंदर के अंतर्विरोधें को भी नजर अंदाज नहीं करते।

बहरहाल, इनमें से भी कई इतिहासकार, खासतौर से रजनी पाम दत्त, उपनिवेशवाद विरोधी मुख्य अंतर्विरोध और भारतीय समाज के भीतर के गौण अंतर्विरोधें के विश्लेषण में, एक– दूसरे के साथ सामंजस्य नहीं बैठा सके हैं और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की वर्ग संघर्ष अथवा सामाजिक संघर्ष से बराबरी करने की प्रवृत्ति इनमें भी दिखाई पड़ती है। इस समूचे आंदोलन को बुर्जुआ आंदोलन के सांचे में रखकर देखने की प्रवृत्ति भी इनमें है। यद्यपि वे इसको सिर्फ बुर्जुआ वर्ग का आंदोलन नहीं मानते हैं। इसका मुख्य स्वरूप और सर्ववर्गीय विशेषता उनके विश्लेषण में गायब हो जाती है। उनकी समझ के मुताबिक इस आंदोलन में बुर्जुआ वर्ग की भूमिका प्रभावशाली है। बुर्जुआजी (पूंजीपति वर्ग) के साथ राष्ट्रीय नेतृत्व की समानता दर्शाते हैं अथवा इन दोनों को एक साथ मिला देने के प्रवृत्ति इनमें है। इस आंदोलन के संघर्ष के आधार पर ही ये लोग इस वर्गीय स्वरूप का विवेचन करते हैं (जैसे, इस आंदोलन का अहिंसात्मक स्वरूप), और इस तथ्य के आधार पर की इस रणनीति के तहत यह पीछे भी हटा और इसने समझौते भी किए। इनमें से कुछ इतिहासकारों का दृष्टिकोण इससे भी संकीर्ण है। उनका सुझाव है कि वित्तीय संसाधनों तक पहुंच से राष्ट्रीय राजनीति का रास्ता तय करने और उसको दिशा देने की शक्ति निर्धारित होती थी। बहुत से मार्क्सवादी इतिहासकार भी राष्ट्रीय आंदोलन की रणनीति, कार्यक्रम, विचारधारा, उसने किस सीमा तक आम जनता को लामबंद किया गया है तथा रणनीति एवं कार्यनीति संबंधी दांवपेंच आगे की वास्तविक, विस्तृत और ऐतिहासिक छानबीन नहीं करते हैं।

वास्तव में, स्वतंत्रता संग्राम मूलतः भारतीय जनता और ब्रिटिश उपनिवेशवाद के हितों के बीच आधारभूत अंतर्विरोधें का नतीजा था। एकदम शुरू से ही भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने इन अंतर्विरोध को समझा था। इस बात को समझने की उनमें क्षमता थी कि भारत अल्प विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है। समय रहते उन्होंने उपनिवेशवाद के वैज्ञानिक विश्लेषण की पद्धति का विकास किया। 19वीं शताब्दी के वे सचमुच पहले लोग थे जिन्होंने उपनिवेशवाद की आर्थिक समीक्षा का विकास कर इसकी जटिल संरचना का रहस्य लोगों के सामने रखा। वे उपनिवेशवादी नीति और उपनिवेशवादी ढांचे की अनिवार्यताओं के अन्तर को भी समझने में सक्षम थे। औपनिवेशिक प्रजा के रूप में भारतीय प्रजा का अनुभव लेकर और उपनिवेशवाद के विरूद्ध भारतीय जनता के सामान्य हितों को पहचान कर राष्ट्रीय नेताओं ने एक सुस्पष्ट उपनिवेशवाद विरोधी विचारधारा विकसित की जिसको उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बनाया। आंदोलन को व्यापक जनाधार प्रदान करने वाले चरण में उपनिवेशवाद विरोधी इस विचार धारा और उपनिवेशवाद की आलोचना को प्रचारित किया गया।

ऐतिहासिक प्रक्रिया राष्ट्रीय आंदोलन की केंद्रीय भूमिका थी जिसके माध्यम से भारतीय जनता ने अपने को राष्ट्र के रूप में संगठित किया। दादा भाई नौरोजी, सुरेंद्र नाथ बनर्जी और तिलक से लेकर गांधी जी और जवाहर लाल नेहरू तक राष्ट्रीय नेताओं ने स्वीकार किया कि भारत पूरी तरह से सुसंगठित राष्ट्र नहीं है, यह ऐसा राष्ट्र है जो बनने की प्रक्रिया में है और उन लोगों ने यह भी माना कि आंदोलन का एक प्रमुख उद्देश्य और कार्य उपनिवेशवाद विरोधी आम संघर्ष के जरिए भारतीय जनता की बढ़ती

हुई एकता को आगे ले जाना था। दूसरे शब्दों में कहें तो, राष्ट्रीय आंदोलन उभरते हुए राष्ट्र के प्रक्रिया का परिणाम और उस प्रक्रिया का सक्रिय कारण दोनों ही था। भारत की क्षेत्रीय, भाषाई, प्रजातीय पहचान कभी भी इसके राष्ट्र बनने की प्रक्रिया के विरोध में नहीं खड़ी हुई। इसके ठीक विपरीत राष्ट्रीय अस्मिता के उत्थान के साथ ही ये अन्य छोटी अस्मिताएं भी उभरीं और इन दोनों से एक दूसरे को शक्ति प्राप्त हुई।

निष्कर्ष

भारत का राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम मूलत: औपनिवेशिक शासन और भारतीय जनता के हितों के बीच मौजूद केंद्रीय या बुनियादी अंतर्विरोध का नतीजा था। यह अंतर्विरोध इस बात से पैदा हुआ था कि ब्रिटिश सत्ता भारत पर अपने राजनीतिक प्रभुत्व का प्रयोग ब्रिटिश समाज और अर्थव्यवस्था की जरूरतों के मुताबिक भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था का शोषण करने के लिए कर रही थी। राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने धीरे-धीरे इस बुनियादी अंतर्विरोध की साफ और वैज्ञानिक समझ विकसित की तथा उसी को अपना आधार बनाया। उन्होंने इसे समझा कि आर्थिक दृष्टि से देश समग्रत: पिछड़ रहा है। अपने इस विश्लेषण व निष्कर्ष के आधार पर उन्होंने भारतीय वास्तविकता के सभी पहलुओं का वास्तविक चित्रण किया ओर तदनुसार एक समग्र व सुस्पष्ट प्रति–उपनिवेशवादी नीति एवं विचारधारा को विकसित किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपनिवेशवाद–विरोधी विचारधारा और उसके साथ जुड़े हुए नागरिक अधिकारों के हिमायती, लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, सामाजिक रूप से क्रांतिकारी, आर्थिक रूप से विकासशील, स्वतंत्र और ऐक्यबद्ध राजव्यवस्था तथा समाज के विजन एवं गरीबों के प्रति पक्षधार क्रांतिकारी सामाजिक–आर्थिक रूझान के कारण राष्ट्रीय आंदोलन में यह शक्ति आई कि वह राजनीतिक रूप से जागृत तथा सक्रिय जनसाधारण एवं उसकी हिस्सेदारी पर निर्भर हो सका और जन आंदोलन का स्वरूप ले सका। यह विचारधारा, यह विजन तथा जन साधारण की यह सक्रिय राजनीतिक भूमिका ही भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम की सही विरासत है।

संदर्भ

* गुप्ता, पार्थसारथी, 1983, इम्पेरियलिज्म स्ट्रेट्जी एण्ड ट्रांसफर ऑफ पावर, नई दिल्ली।
* चंद्रा, विपिन, 1988, इंण्डियन नेशनल मूवमेंट: द लौंग टर्म डायनामिक्स, नई दिल्ली।
* बुच, एम. एस., 1976, राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन लिबरलिज्म, बड़ौदा।
* महाजन, सुचेता, 1987, ब्रिटिश पॉलिसी, नेशलिस्ट स्ट्रेटजी एण्ड पॉपुलर नेशनल अपसर्ज, नई दिल्ली।
* सरकार, सुमित, 1982, पॉपुलर मूवमेंट्स एण्ड नेशनल लीडरशिप, नई दिल्ली।
* जेम्स, एल. राज, 1997, मेंकिंग एण्ड अनमेंकिंग ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, नई दिल्ली।
* मजुमदार, बिमनबिहारी, 1966, मिलिटैंट नेशनलिज्म इन इण्डिया इन इण्डिया एण्ड इट्सृशोसियो–रिलीजियस बैक ग्राउण्ड, नई दिल्ली।
* मजुमदार, रमेश, सी. 1975, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया, नई दिल्ली।
* शोभा, लाहिरी, 2000, इण्डियंस इन ब्रिटेन : एंग्लो–इण्डियन एंकाउंटर्स, रेस एण्ड आइडंटिटी, साइकोलॉजी प्रेस, नई दिल्ली।
* कामा, मैक्लीन, 2015, ए रिवॉल्यूशनरी हिस्ट्री ऑफ इंटरवार इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
* गुप्ता, अमित कुमार, 1997, डिफाइंग डेथ: नेशनलिस्ट मूवमेंट इन इण्डिया, सोसल साइंटिस्ट।
* मजुमदार, आर. सी., 1988, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, साउथ एसिया बुक्स, नई दिल्ली।
* सील, अनिल, 2007, इमरजेंस ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म: कम्पीटीशन एण्ड कोलेबोरेशन इन द लेट नाइंटीज सेंचुरी, कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
* हीज, पीटर, 1998, इण्डियाज फ्रीडम स्ट्रगल : ए शॉर्ट हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
* चंद्रा, बिपिन, 2008, कम्युनलिज्म इन मॉडर्न इण्डिया, हर आनंद, नई दिल्ली।

मन्नू भंडारी के उपन्यासों में नारी का संघर्ष

डॉ० मिनाक्षी

पी-एच.डी., स्नाकोत्तर विभाग, हिन्दी विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

यथार्थ जीवन-जगत का वास्तविक चित्र है और यथार्थ बोध जीवन-जगत की वास्तविक अनुभूति जिसमें व्यक्ति अपने जीवन में घटित राग-विराग, सुख-दुख और अन्य भावनाओं का अनुभव प्राप्त करता है। इस यथार्थ अनुभव के कारण व्यक्ति को अपने वातावरण और परिस्थिति का सच्चा बोध होता है और वह चेतना के स्तर पर आत्मनिर्भर होता है। चेतना के स्तर पर आत्मनिर्भर व्यक्ति अपने अस्तित्व एवं अपनी अस्मिता के प्रति पूर्णत: सजग हो जाता है तथा अपने अस्तित्व एवं अपनी अस्मिता की रक्षा का प्रयास करता है और अपने सम्मान तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिए भी कटिबद्ध हो उठता है। यहीं से प्रारम्भ होता है संघर्ष जिसे नारी के संदर्भ में नारी का संघर्ष कहा जाता है।

पुरुष प्रधान व्यवस्था में नारी परम्परा से दोयम् दर्जे की मानी जाती है। धयातव्य है कि यथार्थबोध, चेतना और संघर्ष तीनों नारी-स्वातंत्रय की श्रृंखला में क्रमिक कड़ी का कार्य करते हैं।

नारी के आत्मबोध, आत्म-निर्भरता एवं आत्मविश्वास के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों में जो नारी-चरित्र उभरकर आए हैं उन्हें तीन वर्गों में–उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग में विभाजित कर देखा जा सकता है। नारी इनमें से किसी भी वर्ग-चरित्र में हो वह अपनी पहचान स्वयं बना ही लेती है। पहले वर्ग में यदि वह डॉक्टर, प्राध्यापक, अधिकारी आदि है तो वह विद्रोह और रूढ़ियों को चुनौती देती हुए महत्वकांक्षिणी के रूप में चित्रित है। मध्यवर्गीय चरित्र में नारी दोहरें मानदंडों से जूझती हुए झूठी इज्जत के कारण अनेक कष्ट भोगने के लिए बाध्य है, यद्यपि वह शिक्षित है परन्तु समाज की झूठी रूढ़ियों में फंसकर अपनी बौद्धिकता से दूर रहकर समाज के अनुरूप खुद को ढ़ालने के लिए विवश है किन्तु तीसरे वर्ग का नारी चरित्र आज सर्वाधिक सशक्त है, वह विद्रोह और रूढ़ियों को खुलकर चुनौती दे रही हैं तथा समाज के बंधनों और मर्यादाओं की परवाह न करके अपनी आत्म और स्वाभिमान की रक्षा करती है।

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति तथा वैज्ञानिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण सामाजिक बंधनों की शिथिलता और स्वतंत्र चिंतन ने मानव व्यक्तित्व में परिवर्त्तन भी दर्शाया है तथा आदमी का अहं भी व्यापक हुआ है। परिणामत: नारी की अहमता बढ़ती दिखाई देती है इसलिए इन नारी चरित्रें में नौकरी की ललक, वैवाहिक संबंधों की शिथिलता, पारिवारिक विघटन का उद्‌वर्धान समाहित हो गया है। समाज में यथार्थ और आदर्श दोनों की अपनी विशेषताएँ हैं।

वैयक्तिक रूचि, स्वतंत्र चेतना, महत्वकांक्षाओं का आग्रह, शिक्षा का प्रभाव और अति अंहवादिता ने आधुनिक उपन्यासों के नारी चरित्रें को अपेक्षाकृत अधिक संघर्षशील और विद्रोही बना दिया है। परिणामत: पारस्परिक संबंधों में अन्तर्विरोधा झलकता है। अर्थ प्रधानता के कारण पति-पत्नी संबंध, पिता-पुत्री संबंध सब पर इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। 'एक इंच मुस्कान' की शकुन को पिता आश्रय नहीं देता तो रंजना और अमला का पति-पत्नी संबंध विच्छिन्न हो जाता है। 'आपका बंटी' की 'शंकुन' का भी अपने पति 'अजय बत्रा' से संबंधा-विच्छेद हो जाता है। आधुनिक काल में पुरुष के प्रति नारी का भाव बदल गया है और नारी अपने स्वातंत्रय की घोषणा करते हुए समाज से दया के स्थान पर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष के मार्ग पर अग्रसर हो चली है।

मन्नू भंडारी के उपन्यासों में चित्रित नारी-चरित्र व्यक्तिगत रूचि, महत्वकांक्षा, स्वतंत्र चेतना, अस्तित्व और अस्मिता की पहचान से कहीं अधिक जीवन के दुखों एवं संघर्षों से परिपूर्ण है और उसके समानान्तर पीढ़ियों का मोहभंग, टूटन, विघटन और वर्ग संघर्ष की समानान्तर चेतना एवं जीवन का अर्थबोध व्यापक हो गया है।

आधुनिक युग में नारी अपने अस्तित्व एवं अपनी अस्मिता के प्रति सचेत है। संकटग्रस्त जीवन में भी अपने को बचाते हुए जीना चाहती है। इस जिजीविषा के कारण कई बार वह आत्मछलना का भी शिकार होती है और कई बार मन पर पड़े गहरे संस्कारों की छाप भी उसकी मुक्ति के मार्ग में आड़े आ जाती है, तब भी आज की नारी ने हथियार डालना नहीं सीखा है। भारतीय सन्दर्भ में अधिकांश स्त्री और पुरुष रूदि प्रधान विचारों की रस्सियों में ही बंधो हुए है किन्तु आधुनिक युग की परिस्थितियों और विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों ने नारी का दृष्टि-परिवर्त्तन भी कर दिया है। "बदलते सामाजिक परिवेश में अपने स्वतंत्र अस्तित्व तथा अस्मिता के प्रति सचेत होकर नारी अपने को पुरुष के समकक्ष स्थापित करने लगी है। आज की नारी अपने कार्य, व्यवहार एवं वैचारिक चिन्तन में नई मानसिकता लिए हुए है, इसलिए परम्परा के सारहीन संदर्भ उसे स्वीकार्य नहीं है।"[1] इसके अलावा भी आज "स्त्री न घर का अलंकार मात्र बनकर जीवित रहना चाहती है, न देवता की मूर्ति बनकर प्राण-प्रतिष्ठा चाहती है। कारण वह जान गई है कि एक का अर्थ अन्य की शोभा बढ़ाना है तथा उपयोग न रहने पर फेंक दिया जाना है तथा दूसरे का अभिप्राय दूर से उस पुजापे को देखते रहना है जिसे उसे न देकर उसी के नाम पर लोग बाँट लेंगे।"[2] यहीं कारण है कि "भूमंडलीकरण बाजारवाद के साथ स्त्री स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और शक्तिशाली हुई है। व्यवसाय में, सेना में, फिल्मों में, मॉडलिंग और विज्ञापनों में मुक्त स्त्री को बड़ा स्पेस मिलने लगा है। आर्थिक आजादी का ही करिश्मा है कि युवतियाँ परिवार की वर्जनाएँ तोड़कर सहजीवन (मित्र, साथी) की अभ्यस्त हो रही है।"[3] और "परिवार, विवाह और नैतिकता जैसे संस्कारों को अपनी अधीनता के लिए उत्तरदायी मानते हुए स्त्रियों ने उन्हें कठघरे में खड़ा कर आक्रामक जिरह शुरू कर दी है।"[4] कारण "हमारा परिवार हमें कुछ नहीं देता और वास्तव में ज्यादातर को कुछ नहीं देता है।"[5]

इतिहास से लकर वर्त्तमान तक की स्थितियों के आकलनों से ज्ञात होगा कि स्त्री पर हो रहे अत्याचार का एक बहुत बड़ा कारण स्त्री देह ही है।"[6] इसलिए "जरूरत है देह को पुरुष के स्वामित्व से मुक्त करके अपने अधिकार में लेने की क्योंकि यौन शुचिता, पतिव्रता, सतीत्व जैसे मूल्य स्त्री के सम्मान का नहीं, अपितु पुरुष के अहंकार की दीनता और असुरक्षा का पैमाना है। पितृसत्ता के मूल्य हैं..... स्त्री की बेड़ियाँ।"[7] 'एक इंच मुस्कान' की अमला पति-परित्यक्ता है। अमर उसके चेहरे पर विषाद की हलकी-सी छाया भी नहीं देखता। अमर की इस स्थिति पर अमला खिलखिलाकर हँस पड़ती है और हँसते-हँसते ही कहती है- "यह कैसी विचित्र नारी है जो अपने दुर्भाग्य पर हँस रही है पर तुम्हीं बताओ, आज से दस साल पहले जो घटना, घट गई, उसे लेकर क्या उम्र भर ही रोती हूँ? कोई कुछ भी कहे, मुझसे रोया नहीं जाता।"[8]

अमला जैसी नारी की स्पष्ट समझ में पति ही नारी के जीवन को पूर्ण नहीं बनाता। "पति के अतिरिक्त भी संसार में बहुत कुछ ऐसा होता है जो नारी-जीवन को पूर्ण बना सकता है।"[9] अमला जैसी नारी पति द्वारा परित्यक्त किए जाने की घटना को ही अपनी नियति नहीं मान लेती और न ही भविष्य की किसी योजना में उसका विश्वास है। उसका विश्वास है, उसका अपना दर्शन कहता है कि जीवन की निरूद्देश्यता में ही जीवन का आनंद है और जीवन के एक-एक वर्त्तमान क्षण को जी लेना ही जीवन का उद्देश्य "भविष्य के बारे में कौन दावे के साथ कुछ कह सकता है भला? मन की बनाई योजनाएँ पूरी हों, न हों। इससे तो बेहतर है कुछ बनाओं ही नहीं। बस निरूद्देश्य जीते चलो और जो कुछ भी सामने आ जाए उसे स्वीकार करते चलो। ऐसा करने से मन के बहुत-से क्लेश, बहुत-सी निराशाओं और असफलताओं का बोझ तो यों ही हट जाता है।"[10]

किन्तु रंजना ने अमर को पागलों की तरह प्यार किया था और आज वहीं अमर रंजना से विवाह नहीं करने की बात कह आया और फिर मंदा की सक्रिय मध्यस्थता से रंजना और अमर विवाह-सूत्र में बँधाते है लेकिन विवाह के बाद रंजना अमर का नया ही रूप देखती है। दरअसल अमर की पूरी जिन्दगी तीन खानों में बँटी हुई है– रंजना, लेखन और नारी-मित्र। अमर का झुकाव रंजना से अधिक लेखन की ओर है और लेखन से अधिक नारी मित्रों की ओर। एक दिन अमर के हाथ से अमला का पत्र पढ़कर रो पड़ी थी रंजना– "अनजान, अपरिचित अमला का अमर को ऐसी आत्मीयता, निकटता और अपनत्व भरा पत्र।"[11] फिर अमर के समझाने पर भी वह उससे बहुत लड़ी थी और अमर को अमला से संबंध तोड़ लेने का आग्रह किया और जब अमर का रवैया वैसा ही बना रहा तो रंजना उससे संबंध तोड़ने में भी कोई गुरेज नहीं करती। तात्पर्य यह है कि आज की नारी भला है, बुरा है, जैसा भी है, मेरा पति मेरा देवता है यह मानकर उसकी पल्लू से चिपकी रहने वाली नारी नहीं है और शकुन तो रंजना से भी चार कदम

आगे है। तपेदिक की रोगी थी शकुन जब पति ने मार-पीट कर घर से बाहर निकाल दिया था। पिता ने शरण देना अस्वीकार कर दिया। तब उस परिस्थिति में एक संबंधी लड़की की मदद से उसने संगीत विद्यालय प्रारम्भ किया और आज उसकी प्रिसिंपल बनी ठाठ से रहती है।

आज शकुन जैसी नारी ने अपने कर्म-संघर्ष से पुरुष-वर्चस्व को समाप्त कर दिया है यदि अजय विवाह कर लेता है तो शकुन क्यों नहीं। यदि अजय को बंटी की फिक्र नहीं तो अकेले शकुन ही बंटी की फिक्र क्यों करें? यह अलग बात है कि पति-पत्नी की लड़ाई के दो पाटो में बंटी जैसा निर्दोष बालक आज पिस रहा है। "बंटी के पास समाज से पूछने के लिए कई प्रश्न है लेकिन उससे पहले बंटी स्वयं एक प्रश्न है जिसका उत्तर न समाज के पास है न लेखिका के पास"[12] और उसे जन्म देने वाली माँ शकुन के पास तो है ही नहीं। पुरुष-प्रधान समाज में रहकर पुरुष-वर्चस्व की समाप्ति में प्राणपण से संघर्ष करनेवाली नारी के रूप में शकुन की स्पष्ट छवि उभरकर सामने आती है।

'डॉ. जोशी के आने से पहले या तो शकुन थी, या कॉलेज था, या फिर बंटी था, या अजय के दिए हुए तनाव का दर्द। इसके अतिरिक्त उसकी जिन्दगी में ऐसा कुछ नहीं था "जो क्षण भर भी उत्तेजना पैदा कर सके।"[13]

डॉक्टर को पाकर उसे पहली बार लगा कि एक पुरुष का साथ जिन्दगी को भरा-पूरा बना जाता है, यह तो उसने कभी सोचा ही नहीं था.....अजय के साथ रहकर भी नहीं। "लगता है उम्र जाने से ही कैशोर्य और यौवन नहीं बीत जाता। ये भावनाएँ तो केवल तृप्त होकर ही मरती है वरना और अधिक बलवती होकर आदमी को मारती रहती है।"[14] "स्त्री होने के नाते शकुन की यह इच्छा न तो बंटी पूरी कर सकता है और न समाज में उसकी सम्मानीय स्थिति ही।"[15] यहाँ शकुन का नारी-संघर्ष इस दृष्टि से कदापि अनुचित नहीं प्रतीत होता।

'स्वामी' की मिनी भी शकुन का ही एक रूप है। पत्नी ही कब तक पति का मुँह देखती रहे, उसे खिलाए-पिलाए, आदर-सत्कार, करें, मान-मनौवल के साथ मनुहार करें, अंततः कबतक? मिनी पुरुष व्यक्तित्व की ही तरह अड़ी रहती है और घनश्याम नारी व्यक्तित्व की तरह वह सब करता है जो अबतक एक औरत करती आ रही थी।

जिन्दगी इतनी पेचीदी है कि कितने ही निर्णयों को ठीक या गलत कहना मुश्किल हो जाता है। वास्तव में आज के भारतीय समाज में पारिवारिक विसंगतियों और बिखराव का मुख्य कारण प्राचीन संस्कारों और आधुनिकता के बीच का द्वन्द है।

वस्तुतः मन्नू भंडारी के सभी उपन्यासों की नारियाँ समस्याओं की मार सहती आहत और त्रस्त नारियाँ है। "औरत की विडम्बना यह होती है कि वह न केवल अपना श्रम बल्कि कई बार अपनी प्रतिभा या शिक्षा परिवार के लिए होम कर देती है लेकिन उसके इस कार्य का उचित मूल्यांकन नहीं होता।"[16] इसलिए एक दिन वह पाती है कि उसे स्वतंत्र रूप से खड़ी होने के लिए जमीन भी नहीं मिल रही। शकुन और रंजना इसके उदाहरण है। ऐसी स्थिति में दो ही रास्ते बचते हैं उनके पास एक तो यह कि वह अत्याचार को चुपचाप सहती रहे अथवा पति से संबंध-विच्छेद कर नई जमीन की तलाश करें। इस संघर्ष की पुष्टि मन्नू भंडारी के उपन्यास बखूबी करते दिखाई पड़ते हैं।

सन्दर्भानुक्रम

1. सम्मेलन पत्रिका : (सं.) विभूति मिश्रः पृ. 170-71
2. श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा : पृ. 112
3. आलोचना : (प्र.सं.) नामवर सिंह : जनवरी– मार्च 2009 पृ. 62
4. वागर्थ नवम्बर 2009 : एकान्त श्रीवास्तव : कुसुम खेमानी : पृ. 73
5. नया ज्ञानोदय जुलाई 2008 : (सं.) रवीन्द्र कालिया : पृ. 15
6. आजकल : मई 2008 : (सं.) सीमा ओझा : पृ. 34
7. हंस, जनवरी-फरवरी 2000 (सं.) राजेन्द्र यादव पृ. 5

8. सम्पूर्ण उपन्यास : मन्नू भण्डारी : पृ. 29
9. वहीं पृ. 29
10. वहीं पृ. 32
11. वहीं पृ. 53
12. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : डॉ. रोहिणी अग्रवाल : पृ. 153
13. वहीं पृ. 34
14. वहीं पृ. 105
15. मन्नू भण्डारी और आपका बंटी : मालविका पृ. 43
16. कथादेश : नारीवाद के छद्म के खिलाफ : सुनीता सृष्टि की समीझा : पृ. 90-91

गांधी का चंपारण सत्याग्रह एवं पंडित राजकुमार शुक्ल

डॉ० संजय कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

पंडित राजकुमार शुक्ल का जन्म 23 अगस्त 1875 ईसवी में बिहार के पश्चिम चम्पारण (बेतिया) जिला के चनपटिया के निकट सतवारिया नामक गाँव के कुलीन भऋ ब्रह्मभऋ परिवार में हुआ था। इनके पिता कोलाहल शुक्ल सम्पन्न किसान थे जिनकी जमीन सतवरिया, मुरली भरहवा, दुमदुमवा, कटहरी, रमपुरवा (रामनगर राज), गौनाहा-रूपौलिया, हरपुर सहित अन्य कई मौजों में था। राजकुमार शुल्क की शिक्षा प्राथमिक स्तर तक हुई थी। भोजपुरी भाषा और कैथी लिपि का इन्हें अच्छा ज्ञान था। शुक्ल जी की शादी मीनापुर थाना स्थित भटवलिया ग्राम के केवला कुँवर के साथ हुई।[1] इनसे दो पुत्रियाँ क्रमशः रामसुन्दर कुँवर एवं देवपति कुँवर हुई। शुक्लजी धार्मिक एवं संवेदनशील प्रवृति के धानी इन्सान थे। वे मानव के कष्टों को दूर करने में अपना सर्वस्व न्योच्छावर करने से भी पीछे नहीं हटते थे।

चम्पारण में तिनकठिया प्रथा के अंतर्गत किसानों को बदोबस्ती की गई। जमीन में से तीन कट्ठा प्रति विद्या नील की खेती करना अनिवार्य था। जिस खेत में एक बार नील की खेती होती थी वह जमीन कई-कई वर्षों तक बंजर रह जाती थी। इस कारण किसान नील की खेती नहीं करना चाहते थे। उधार अंग्रेज निलहे जबर्दस्ती किसानों से नील की खेती कराते थे। किसानों के शोषण के लिए अंग्रेज निलहों ने कई गैर कानूनी तरकीबे अपना ली थी। अंग्रेजों के अत्याचार के कारण बहुत से रैयत स्वर्ग सिधार चुके थे। बहुतों को निकाल बाहर किया गया। कई तो स्वयं ही भाग गये और बहुत सारे लोग नेपाल की तराई में जाकर बस गये। स्वयं मेरे गाँव सतवरिया के करीब 200 लोग नील अत्याचार के कारण नेपाल तराई के मौजा जिउलिया और मौजा लिपानी चल गये। मेरे पास 60 भैंस, 300 गाये थी। अभी मेरे पास कुल 3 भैंसे, 8 गायें तथा 6 बैल है। मैं नील उपजाना पसन्द नहीं करता था। लेकिन जब मैंने देखा कि नील की खेती से इन्कार करने के कारण धानी मानी लोग भी बर्बाद हो गये हैं तब मैं एक साधारण किसान कब तक विरोध कर सकता था। फैक्ट्री का अत्याचार इतना था कि नील उपजाने की बात ही असंभव थी।[2]

राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है[3] "किसी भी रैयत की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह नील बोने से इनकार करे। अगर कोई हिम्मत करता, तो उस पर हजार तरह के जुल्म करके उसको मजबूर कर दिया जाता। घर और खेत लूट लिये जाते, खेत मवेशियों से चरा दिये जाते, जुर्माना वसूल किया जाता। पीटा भी जाता। इस डर के मारे प्रायः सभी रैयत तीनकठिया मानकर बीघा पीछे तीन कट्ठा नील बो दिया करते। उनके खेतों में जो सबसे बेहतर खेत होते, नीलवर उन्हीं को चुनकर नील बोने के लिए कहते।

शोषण से मुक्ति पाने के लिए चम्पारण के किसान छटपटा रहे थे। तंग आकर कितनी बार किसानों ने बगावत भी की, परंतु सभी आन्दोलन निर्दयतापूर्वक दबा दिये गये। 1907-08 ईसवी में निलहों के अत्याचारों के खिलाफ किसानों ने एक गुप्त संगठन कायम किया। अत्याचार इतना अधिक था कि 1908 ईसवी में बलवा तक हो गया। चम्पारण जिले में सरकार ने आतंक का राज्य कायम कर दिया। करीब 350 आदमी जेलों में डाल दिये गये।[4] परंतु सरकार को अपनी करवट बदलनी पड़ी और डब्लू. आर. गुर्ले तहकीकात करने के लिए नियुक्त किये गये। जांच-पड़ताल में गुर्ले साहब को 5 वर्ष लगे, परंतु उनकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की गई,[5] क्योंकि उनकी रिपोर्ट निलहों के खिलाफ जाती थी।

1907 ईसवी में तेल्हाड़ा कोठी के मैनेजर ब्लूमफिल्ड की हत्या के बाद चम्पारण अशांत हो उठा। उस समय राजकुमार शुक्ल की उम्र महज 32 वर्श थी। निहलों के विरूद्ध चलाए गए संघर्ष का नेतृत्व साठी के शेख गुलाब कर रहे थे और संगठन का भार शुक्ल जी के कंधों पर ही था। 1908 ईसवी के दशहरा मेला में हुई सभा के पूर्व शुक्ल जी लौरिया, पिपरहिया, लौकरिया, जोगापट्टी, लौहिअरिया, टिकुलिया, धोकराहा और कुड़िया कोठी के गाँवों में किसानों को संगठित किया। इस कार्य में उन्हें मठिया के शीतल राय का सबसे अधिक सहयोग मिला। शेख राजबली, शेख मुनब्बर, हाजी मोहिउद्दीन, जगन लाल, सरयू तिवारी, विधयांचल तिवारी, पीर मुहम्मद मुनिस, पशुपति लाल, हरवंश सहाय, लोमराज सिंह आदि के सहयोग से इन लोगों ने साठी, परसा, बैरिया और महलिया आदि क्षेत्रों से नील की खेती बंद करवा दिया था।[6] किसानों पर चलाए गए दमनचक्र में सैकड़ों लोगों पर मुकदमा दायर हुए, कई लोगों को प्रताड़ित किया गया, जेलों में बंद कर दिया गया। निलहों एवं अग्रेज हाकिमों के दुश्चक्र में फसे चम्पारण के किसान त्राहि-त्राहि कर रहे थे। उन्हें लगभग 46 प्रकार के अबबाव गैर कानूनी टैक्स देने होते थे जिनमें प्रमुख–पैन खर्चा, सलामी, तीनकठिया, बाँधा-बेहरी, बेठमाफी, बपही-पुतही, मड़वच, सगौड़ा, बाटछपी, धोड़ही, आमदी सलामी, मुखदेखी, दीवान भेंटी, गुरूभेंटी, जमुनही इत्यादि।[7]

किसानों पर चलाए गए मुकदमों की पैरवी करने के लिए राजकुमार शुक्ल बेतिया, मोतिहारी, मुजफ्फरपुर, दरभंग, पटना एवं कलकता आदि शहरों में जाकर प्रमुख वकीलों से मिलते थे और न्यायालय के चंगुल से किसानों को निकालने का हर संभव प्रयास करते थे। इस क्रम में शुक्ल जी की जान-पहचान गोरख प्रसाद, रामनवमी प्रसाद, गया प्रसाद सिंह, रामदयालू बाबू, ब्रजकिशोर प्रसाद एवं राजेन्द्र प्रसाद आदि से हुई। इनमें से अधिकत्तर वकील उन दिनों काँग्रेस की राजनीति से जुडे हुए थे। इन लोगों के सम्पर्क में आकर शुक्लजी किसानों एवं नेताओं के बीच की कड़ी बनते चले गए। उन्होंने चम्पारण के किसानों की दुर्दशा का वर्णन इन नेताओं के सम्मुख करना शुरू कर दिया। किसानों के आपसी विवादों में पंचैती कर शुक्ल जी इन्हें अंग्रेज निलहें एवं न्यायालय के उलझनों से बचाने की कोशिश करने लगे। शुक्लजी की इन सब गतिविधियों के कारण वे निलहों एवं अंग्रेज हाकिमों के आँखों की किरकिरी बनते चले गये।[8]

बेलवा कोठी के निलहे ए.सी. ऐमन के क्षेत्र में राजकुमार शुक्ल की जमीन मुरली भरहवा में थी। ऐमन किसी भी स्थिति में शुक्ल जी को नियंत्रित करना चाहता था एवं इसके लिए उसने तरह-तरह का हथकंडा अपनाया। शुक्ल जी को प्रताड़ित एवं अपमानित करने के लिए कई झूठे आरोप लगाए गए। बासडीह के आगे 'कोला' में उपजी आलू की फसल की कोठी द्वारा माँग की गई जिसे शुक्ल जी ने इनकार कर दिया। 1914 ईसवी में बेलवा कोठी के निलहे ऐमन को पइन खर्चा देना बन्द कर दिया और वायसराय, लेफ्निंट गवर्नर और कलक्टर से इसकी शिकायत भी की। इससे ऐम्मन और चिढ़ गया। गाँव के खेत में मछली मार लेने के लिए पलकधारी लोहार नामक व्यक्ति से शुक्ल जी के विरूद्ध झूठा मुकदमा दायर करवाया गया और रोज मियां और राजवली सहित राजकुमार शुक्ल को 21 दिनों की जेल की सजा मिली। जेल से वापस आने के बाद राजकुमार शुक्ल ने संकल्प लिया कि जब तक इन निलहों को चम्पारण से भगा नहीं देंगे, चैन से नहीं बैठेंगे।[9]

चम्पारण में किसानों के शोषण से संबंधित समाचार तत्कालीन 'बिहारी' अखबार में प्रकाशित होते थे। बाद में अखबार के सम्पादक महेश्वर बाबू को बर्खास्त कर दिया गया और बिहारी अखबार भी बंद हो गया। उसके बाद ऐसा कोई समाचार पत्र नहीं था जो किसानों के पक्ष में समाचार छापता। 9 नवम्बर, 1913 को कानपुर से साप्ताहिक 'प्रताप' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। जिसके संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी थे। राजकुमार शुक्ल कानपुर जाकर प्रताप अखबार में विद्यार्थी जी से मिलना आरंभ कर दिए और इस प्रकार 'प्रताप' का ध्यान चम्पारण के किसानों के शोषण की ओर आकृष्ट किया। इतना ही नहीं चम्पारण के प्रथम ग्रेजुएट हरवंश सहाय एवं स्कूल शिक्षक पीर मुहम्मद मुनिस को प्रताप अखबार के साथ संबद्ध भी किया। प्रताप अखबार द्वारा सबसे पहले 24 नवम्बर, 1914 को चम्पारण के किसानों के शोषण के संबंध में समाचार छापा गया।[10] उसके बाद तो इस अखबार में खतरों की झड़ी ही लग गई। 1914 से 1916 ईसवी में कुल 12 अंकों में चम्पारण से संबंधित अखबार छपे।

रैयतों के ऊपर निलवरों के अत्याचार से कुप्रभावित होकर राजकुमार शुक्ल ने कोठीवालों के विरूद्ध किसानों की मदद करने तथा उन्हें जड़ से उखाडने का प्रण कर लिया। इस कार्य के लिए उन्होंने घुम-घुमकर नीलवरों के विरूद्ध किसानों में जागृति उत्पन्न की। इस कार्य के निश्पादन के क्रम में नीलवरों के अत्याचारों का उन्हें विभिन्न प्रकार से सहना पड़ा। इस सिलसिले में उन्हें आभास

हुआ कि जिस काम को समाप्त करने का बीड़ा उन्होंने उठाया है, वह किसी असाधारण पुरुष की सहायता के बिना पूर्ण नहीं हो सकता।[11] शुक्ल जी बार-बार कानपुर जाते थे और विद्यार्थी जरी मिलते थे। इसी क्रम में विद्यार्थीजी ने ही शुक्ल जी से कहा कि महात्मा गांधी जो दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों के खिलाफ सत्याग्रह का सफल प्रयोग करके अपने स्वदेश भारत लौट आये हैं। यदि उन्हें चम्पारण ले जाया जाए और किसानों के संघर्ष का नेतृत्व उनके हाथ में दे दिया जाए तो समस्या का समाधान निकल सकता है। इसके बाद शुक्ल जी के जीवन का एकमात्र उद्देश्य गांधीजी को चम्पारण लाना रह गया।[12]

10 अप्रैल, 1914 को बाकीपुर में हुए बिहार प्रान्तीय सम्मेलन और 13 अप्रैल 1915 को छपरा में हुए काँग्रेस सम्मेलन में भाग लेकर शुक्ल जी ने चम्पारण के किसानों की स्थिति का वर्णन कर दिया था। उन्हें पता चला कि मोहनदास करमचंद गांधी जो दक्षिण अफ्रीका से आकर इस समय साबरमती आश्रम अहमदाबाद में है, उनसे मिलने के लिए वे किसी प्रकार निलहे साहबों के जासूसों से बचते हुए अहमदाबाद पहुंचें लेकिन गांधी जी उस समय पुना गये हुए थे। अतएव शुक्ल जी निराश हो चम्पारण लौट आए। परंतु जब उन्हें यहा पता चला कि लखनऊ में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का 31वां अधिवेशन होने वाला है और उसमें गांधी जी अवश्य आएंगे, तो निराशा के अन्धकार में आशा की ज्योति जाग जाती है। अचानक उन्हें ध्यान आया कि वे तो अधिक शिक्षित नहीं है, गांधीजी उनकी बोली कैसे समझेंगे। अचानक उनके मानस पटल पर 1915 के बिहार प्रांतीय सम्मेलन का दृश्य घूम गया और याद आये बाबू ब्रज किशोर प्रसाद, जिन्होंने निलहों के विरूद्ध उनकी सहायता करने का वचन दिया था। शुक्ल जी दरभंगा गए। उनको चम्पारण के विषय में विस्तारपूर्वक जानकारी दी। उनके विचारों से प्रभावित होकर ब्रजकिशोर बाबू ने उन्हें अखिल भारतीय काँग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में चलने का वचन दिया।[13]

26 से 30 दिसम्बर, 1916 में लखनऊ में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का अधिवेशन अम्बिका चरण मजूमदार के सभापतित्व में प्रारंभ हुआ। इस अधिवेशन में सारे देश के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। काँग्रेस के इतिहास में यह पहला अवसर या जबकि दो हजार तीन सौ से अधिक प्रतिनिधि एक राष्ट्रीय मंच पर इक्ट्ठे हुए थे। बिहार से इस अधिवेशन में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद; राजकुमार शुक्ल के अतिरिक्त अनेक लोग भाग लेने के लिए पहुँचे थे। फलत: शुक्ल जी गाँधी जी से मिले और चम्पारण के अत्याचारों का पूरा विवरण उन्हें कह सुनाया। गाँधीजी को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि गाँधी जी की धारणा थी कि इस तरह के अत्याचार अंग्रेजी राज्य में सम्भव नहीं है।[14] गाँधीजी को विश्वास दिलाने के लिए राजकुमार शुक्ल ने ब्रजकिशोर प्रसाद को उनसे मिलाया, परंतु ब्रजकिशोर बाबू भी उस समय गाँधीजी को प्रभावित नहीं कर सकें। इस विषय पर काँग्रेस में एक प्रस्ताव पेश करने के लिए गाँधीजी से कहा गया, परंतु गाँधीजी ने इससे इनकार कर दिया। गाँधीजी ने ब्रजकिशोर प्रसाद से कहा कि चम्पारण की जनता पर हो रहे अत्याचारों को बिना अपसी आँखों से देख इस विषय पर वे अपना विचार व्यक्त नहीं कर सकते। वे इस विषय पर प्रस्ताव पेश करें; परंतु उन्हें छोड़ दे।[15]

महात्मा गाँधी के आदेश पर ब्रजकिशोर प्रसाद ने काँग्रेस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया "काँग्रेस सरकार से प्रार्थना करती है कि उत्तर बिहार के अंग्रेज नीलवरों और उनके रैयतों के बीच वैमनस्य और कृषि सम्बन्धी अशांति के सम्बन्ध में जांच करने और उनके दु:ख दूर करने के उपाय बताने के लिए वह सरकारी और गैर सरकारी लोगों की एक कमिटी नियुक्त करें। इस प्रस्ताव के समर्थन में राजकुमार शुक्ल ने सभा मंच से चम्पारण के किसानों की दु:ख भरी गाथा सभा में सुनायी। यह पहला अवसर था, जब भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन में किसानों की दु:खद कहानी एक किसान द्वारा सुनने का अवसर मिला है।[16]

अधिवेशन में चम्पारण से सम्बन्धित प्रस्ताव की स्वीकृति प्रदान की गयी। चम्पारण के किसानों की हार्दिक इच्छा थी कि उनकी शोचनीय स्थिति को देखने के लिए महात्मा गाँधी स्वयं चम्पारण आएँ और उन्हें दु:खों से मुक्ति दिलाये। चूंकि राजकुमार शुक्ल चम्पारण के किसानों के प्रतिनिधित्व की है, लखनऊ गये थे। राजकुमार शुक्ल चाहते थे कि गाँधीजी जल्द से जल्द चम्पारण जाकर अपनी आँखों से ही सबकुछ देख ले। उन्होंने गाँधीजी से एक समय निर्धारित करने के लिए आग्रह किया। गाँधीजी ने उनसे कहा कि अप्रैल में उन्हें कलकता जाना है और वहीं से वे चम्पारण चलेंगे। गाँधीजी ने यह भी बतलाया था कि कलकता में वे भूपेन्द्रनाथ वसु के घर ठहरेगें।

गाँधीजी के कलकता पहुँचने के पहले ही राजकुमार शुक्ल भूपेन्द्रनाथ वसु के घर पहुँच गये। 10 अप्रैल, 1917 ईसवी को गाँधीजी राजकुमार शुक्ल के साथ पटना पहुँचे। राजकुमार शुक्ल उनको राजेन्द्र प्रसाद के घर पर ले गये, परंतु राजेन्द्र बाबू उस समय

पुंरी गये थे। तत्पश्चात् मौलाना मजहरूल हक को अपने आने की खबर दी। मजहरूल हक से गाँधीजी का पूर्व परिचय था और वे गाँधीजी से पहले भी आग्रह कर चुके थे कि जब कभी वे पटना आये, उनका आतिथ्य स्वीकार करें। खबर मिलते ही मजहरूल हक आकर गाँधीजी को अपने घर ले गये।

10 अप्रैल 1917 संध्या को गाँधीजी मुजफ्फरपुर के लिए रवाना हुए। गाँधीजी ने आने की खबर आचार्य कृपलानी को भेज दी थी, जो उस समय मुजफ्फरपुर में ही रहते थे। मुजफ्फरपुर के लोगों ने गाँधीजी का भव्य स्वागत किया। गाँधीजी के आने की सूचना पाते ही दूसरे दिन सुबह मुजफ्फरपुर के वकील जैसे रामनवमी प्रसाद, बिन्देश्वरी प्रसाद वर्मा, रामदयालु सिंह वगैरह गाँधीजी के पास पहुँचे और चम्पारण के रैयतों की दु:ख भरी कहानी सुनाई। उनलोगों ने यह भी कहा कि आचार्य कृपलानी के यहाँ रहकर जांच का काम ठीक से नहीं हो सकता है, इसलिए वे उनलोगों के सहयोगी गया बाबू वकील के घर पर चले गये। उन्होंने गांधीजी से कहा कि वे भी सरकार से भयभीत हैं, फिर भी वे अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार चम्पारण की जांच में उन्हें सहयोग देंगे। फलत: गांधीजी गया बाबू के घर चले गये।[17] दरभंगा से ब्रजकिशोर प्रसाद तथा पूरी से राजेन्द्र प्रसाद को भी तार देकर बुला लिये गये। उनलोगों ने इसकाम में पूरी तरह सहयोग करने का गाँधीजी को आश्वासन दिया।

मोतिहारी जाने से पहले गाँधीजी ने नीलवर संघ के मंत्री जे. एम. विल्सन तथा तिरहुत मण्डल के आयुक्त एल. एफ. मोशर्ड से मुलाकात की। इन दोनों ने गाँधी के काम में कोई दिलचस्पी नहीं दिखलाई और उनसे अविलम्ब तिरहुत छोड़ देने को कहा। नीलवरों के सचिव ने उनसे साफ-साफ कहा कि वे एक बाहरी आदमी हैं और उन्हें निलहों और रैयतों के बीच में पड़ने का कोई अधिकार नहीं है। हाँ, अगर वे कोई ज्ञापन देना चाहतें, तो उसे लिखित रूप में दे सकते हैं। गाँधीजी ने विन्रमतापूर्वक जबाव दिया कि वे अपने को बाहरी व्यक्ति नहीं समझते और अगर रैयत जांच करना चाहती है तो उसे ऐसा कराने का पूरा अधिकार है।[18]

इन सभी घटनाओं से गांधीजी का विश्वास जम गया कि चम्पराण के किसानों की हालत जैसा वे सुन चुके थे, उससे भी बदतर है। उन्होंने अविलम्ब मोतिहारी जाने का निष्चय कर लिया। परंतु इसके पहले उन्होंने मुजफ्फरपुर के पास के ही किसी गाँव को देखने की इच्छा व्यक्त कीह, जिससे वे जनता की कठिनाईयों से अवगत हो सकें। रामनवमी प्रसाद ने लिखा है : उनकी इच्छानुसार पास ही के एक गाँव में इसकी व्यवस्था की गई। मैं उनके साथ दुभाशिया के रूप में गया। वहां जाकर हमलोग एक मुसहर के घर पहुंचे। औरतें हमलोगों को इस तरह अनायास और अचानक आता देखकर भयभीत हो गई। पर जब उन्हें बताया गया कि वे और कोई नहीं, केवल एक महात्मा है, तब उनकी जान में जान आई और वे बिना किसी हिचकिचाहट के महात्माजी के सभी प्रश्नों का उत्तर देने लगी। उनकी दशा देखकर महात्मा जी के मन में आया कि बिना स्त्रियों की दशा में सुधार किये देश में वास्तविक स्वराज्य नहीं आ सकता। पर, महात्मा जी के दूरदर्शी पर्यवेक्षण को समझना हमलोगों के लिए उस समय कठिन था।[19]

15 अप्रैल 1918 को गांधीजी ने रामनवमी प्रसाद तथा धारणीधार प्रसाद के साथ मोतिहारी के लिए प्रस्थान किया। उनलोगों के ठहरने का प्रबन्ध गोरख प्रसाद वकील के यहाँ हुआ। वहाँ पहुँचने पर गाँधीजी को मालूम हुआ कि जसउली पट्टी नामक एक गांव में एक धानी किसान को लोगों ने निलहें साहब के बहकावे में आकर लूट लिया है। गांधीजी ने 16.04.1918 को उस गांव में जाने का निश्चय कर लिया। निश्चित समय पर गांधीजी रामनवमी प्रसाद तथा धारणीधार के साथ पैदल ही चल पड़े। इधार जब गांध ीजी ने आधा दूरी तय कर ली, तब पुलिस का एक उपाधीक्षक उनसे मिला, जो उनके लिए 144 धारा की नोटिस लिए था। उस नोटिस में जिलाधीश ने गांधीजी को आदेश दिया था कि वे अविलम्ब मोतिहारी छोड़कर चले जाये। परंतु गांधीजी ने उस आज्ञा का उल्लंघन कर दिया और फल भुगतने को तैयार हो गये।

उस दिन गाँधीजी रातभर जगे रहे। उन्होंने मदन मोहन मालवीय, एच. एस. प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद तथा सी.एफ. एण्ड्रूज को तार भेजा तथा ब्रजकिशोर प्रसाद को आवश्यक आदेश लिखा। उन्होंने अपने गिरफ्तारी के बाद के कार्यक्रमों को भी तैयार किया, जिसकी एक-एक प्रति रामनवमी प्रसाद तथा धारणीधार प्रसाद को दे दी। पटना से पोलक, मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह तथा शम्भूशरण मोतिहारी आए। उनलोगों ने गांधीजी के जेल जाने के बाद के कार्यक्रमों पर विचार विमर्श किया। तय हुआ कि गांधी जी के जेल चले जाने के बाद क्रमश: मौलान मजहरूल हक तथा ब्रजकिशोर प्रसाद आन्दोलन का नेतृत्व करेंगे और उनके जेल जाने के बाद धारणीधार, रामनवमी प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रहनारायण सिंह तथा शम्भू शरण।

गाँधीजी को 18 अप्रैल 1918 को मोतिहारी के अनुमण्डलाधिकारी के अदालत में उपस्थित होना था। इस बात की सूचना आग की लहरों की तरह सम्पूर्ण चम्पारण में फैल गयी कि गांधीजी को अदालत में उपस्थित होना है। चम्पारण के सारे किसान, मजदूर, रैयत, महिलाएं आदि लोगों ने सुबह से ही अदालत में आना शुरू हो गए। अदालत खचाखच चम्पारण के किसानों एवं रैयतों की अपार जनसमर्थन से भरी हुई थी जिसे देखकर गांधीजी भी घबरा गये थे। इन जनसमर्थन का सहयोग को उन्हें आशा नहीं थी। यह तो राजकुमार शुक्ल के कार्यों का परिणाम था जो गांवों-गांवों में धुमकर जनता तक संदेश पहुंचाया था कि मैं वहीं महात्मा को लाया हूँ जो दक्षिण अफ्रिका में अंग्रेजों के खिलाफ सत्याग्रह का सफल प्रयोग किया है। अदालत में गांधीजी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और अपने कार्य को न्यायोचित साबित करने की कोशिश की। महात्मा गांधी के बयान से अनुमण्डलाधिकारी तथा सरकारी वकील दोनों घबरा गये। उन्होंने इस सम्बन्ध में जिलाधीश से आदेश लिया। जिलाधिश को पहले ही उपराज्यपाल का संवाद आ चुका था कि वह साधारण व्यक्ति नहीं है, इस व्यक्ति ने दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों के खिलाफ सत्याग्र का प्रयोग करके दिखा चुका है। अत: उनके खिलाफ मुकदमा वापस ले लिया जाय तथा उनके जांच पड़ताल में उनकी पूरी मदद की जाय। गांधीजी ने 18 अप्रैल 1918 में न्यायालय में उपस्थित होकर उन्होंने जो बयान दिया वह चम्पारण सत्याग्रह के नाम से इतिहास मके पन्ने पर उद्धृत है। इस दिन उन्होंने चम्पारण की धारती पर सत्याग्रह का सफल व्यवहारिक प्रयोग करके अपने देशवासियों को अंग्रेजों के डर से भयमुक्त कर दिया।[20]

गाँधीजी जब चम्पारण आए उन्हें बहुत कम लोग ही जानते थे। उधार गाँधी को लाने के पूर्व राजकुमार शुक्ल ने चम्पारण के किसानों को संगठित कर अनुकूल माहौल तैयार कर दिया था। इतना ही नहीं, चम्पारण के कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, बिहार के बड़े वकीलों एवं काँग्रेस के नेताओं आदि को जोड़कर गांधीजी के आंदोलन की जमीन भी तैयार कर दी थी। यही कारण है कि गांध ीजी को चम्पारण में अपेक्षित सफलता मिली और वे भारत ही नहीं पूरे विश्व के आदरणीय नेता बनकर उभरे। जब गांधीजी ने चम्पारण में रचनात्मक कार्य शुरू किये तो शुक्ल एवं उनका परिवार गांधीजी के साथ कंधा से कंधा मिलाकर काम किया। बड़हरवा लखनसेन और भितिहरवा आश्रम की स्थापना में तो शुक्ल जी ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। कस्तूरबा गांधी के साथ भी शुक्ल जी ने काफी दिनों तक कार्य किया। गांधीजी के चम्पारण से जाने के बाद भी वे गांधी के बताए गए रास्ते पर समाज-सेवा करते रहे।

उधर गांधीजी को चम्पारण लाने एवं उनके सत्याग्रह आंदोलन को सफल बनाने में किए गए योगदान के कारण निलहों ने उन्हें मटियामेट करने की कोई कसर बाकी नहीं रखा। लखनऊ अधिवेशन से वापस लौटने के तुरंत बाद ही शुक्लजी के मुरली भरहवा के 12 एकड़ में लगी फसल को पशुओं चरा लिया गया। उनके घर को ढाह दिया तथा बर्बाद कर दिया और घर में पड़े अन्न को नष्ट कर दिया गया। गांधीजी के साथ देने के कारण राजकुमार शुक्ल एक सम्पन्न किसान से कंगाल बन गए। हालांकि 1917 ईसवी के बाद और मृत्यु के पूर्व तक शुक्लजी विभिन्न आंदोलनों, कांग्रेस सम्मेलनों और अन्य सामाजिक कार्यों में सक्रिय रहे परंतु निलहों ने उन्हें एक तरह से बर्बाद कर दिया था। मृत्यु पूर्व वे गांधीजी से मिलना चाहते थे और यही कारण है कि 1929 के लाहौर काँग्रेस अधिवेशन से लौटते हुए वे गांधीजी से मिलने साबरमती आश्रम गए। उस समय वे इतन खशकाय हो चुके थे कि कस्तुरबा उन्हें देखकर रोने लगी। कुछ दिनों बाद गांधी से मुलाकात हुई। शुक्लजी ने गांधीजी से यही पूछा कि देश कब आजाद होगा? कहा ने कहा कि अभी थोड़ा समय लेगा। शुक्ल जी ने कहा कि तब तो शायद वे देश की आजादी नहीं देख पाएंगे। साबरमती से वापस आकर वे अपने घर, नहीं गए बल्कि मोतिहारी के केडिया धर्मशाला के उसी कमरे में गए जहां गांधी जी रहा करते थे। अत्यंत गरीबी में 20 मई 1929 ईसवी को शुक्ल जी मृत्यु हो हुई। यहां तक कि अंतिम संस्कार करने के लिए घरवालों के पास पैसे नहीं थे। रैयतों अर्थात् किसानों ने चन्दा इकट्ठा कर शुक्ल जी का अंतिम संस्कार किया और उनक बेटी देवपति देवी ने मुखग्नि दी।

20 मई 1929 का दिन ..... 54 वर्ष की आयु में मोतिहारी में पंडित राजकुमार शुक्ल ने बीमारी की अवस्था में अपना शरीर त्याग दिया। उनकी मृत्यु की सूचना उनके सबसे बड़े विरोधी, बेलवा कोठी के अंग्रेज अधिकारी ऐमन को मिली। वह स्तब्ध रह गया और उसके मुंह से इतना ही निकला कि "चम्पारण का मर्द इस दुनियां से चला गया।" उसने तुरंत अपने चपरासी को बुलया और 300 रूपया दिया और कहा कि शुक्ल जी के घर पर जाओ और पैसा देकर आओ। इस मर्द ने तो सारा काम छोड़कर देश सेवा और गरीबों की सहायता में अपना 25 वर्ष लगा दिया। रहा सहा मैंने सब सब छीन लिया। अभी उनके पास होगा ही क्या? सदमा ऐसा लगा कि ऐमन की मृत्यु भी 3 महीने के बाद हो गयी।[21] सतवरिया गांव में जब राजकुमार शुक्ल का श्राद्धकर्म हुआ

तो उसमें डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिन्हा, बृज किशोर प्रसाद समेत कई प्रमुख काँग्रेसी नेताओं के साथ गोरा मालिक ऐमन भी शामिल हुआ। वह एक अविस्मरणीय पल रहा होगा जब एक संघर्ष पुरुष का सबसे बड़ा विरोधी उसकी संघर्ष धार्मिता के पक्ष में नतमस्तक हुआ।

संदर्भ-सूची

1. रविभूषण राय (स्वर्गीय शुक्ल की नाती) का लेख, भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अमर-सेनानी, संपादक- कमलनयन श्रीवास्तव, पंडित राजकुमार शुक्ल स्मारक न्यास, पटना, 23 अगस्त 2018, पृ. 67.
2. बी. बी. मिश्रा; महात्मा गांधी मूवमेंट इन चम्पारण, दी गवर्नमेंट ऑफ बिहार, 1963, पृ. 273-279.
3. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ. 90.
4. सर्चलाईट, 2 अक्टूबर, 1972.
5. प्रताप, 6 अप्रैल, 1916.
6. भैरव लाल दास, गांधी जी के चम्पारण आन्दोलन के सूत्रधार राजकुमार शुक्ल की डायरी, महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह कल्याणी फाऊन्डेशन, दरभंगा (बिहार), पृ. 49-52.
7. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, चंपारण में महात्मा गांधी, प्रभात प्रकाशन, 2011, पृ. 102-105.
8. पूर्वोद्धित, रविभूषण राय, पृ. 68.
9. भैरवलाल दास, पूर्वोद्धृत, 48-53.
10. प्रताप, 24 नवम्बर, 1914
11. ब्रजकिशोर सिंह, नील-संघर्श और गांधी, प्राच्य प्रकाशन, पटना, पृ. 55.
12. कमलनयन श्रीवास्तव; बिहार का अख्यात गांधी, पंडित राजकुमार शुक्ल, पंडित राजकुमार शुक्ल स्मारक न्याय, पटना, 2018, पृ. 70.
13. पूर्वोद्धृत ब्रजकिशोर सिंह, पृ. 56.
14. अनुग्रह नारायण सिंह, 'मेरे संस्करण', पटना (1961), पृ. 8.
15. एम. के. गांधी, "दी स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेण्ट् विथ टूथ", अहमदाबाद (1929), पृ. 356-357.
16. पूर्वोद्धृत, वज्रकिशोर सिंह, पृ. 57.
17. एम. के. गाँधीर, "दि स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेण्ट्स विथ टूथ", पृ. 363-364.
18. एम. के. गांधी, पूर्वोद्धृत, पृ. 369-370.
19. रामनवमी प्रसाद, महात्मा गांधी के साथ चम्पारण में, बिहारी समाचार, 15 अगस्त 1972, पृ. 10.
20. डॉ. एन. एम. पी. श्रीवास्तव, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृ. 54-55.
21. विंधयाचल प्रसाद, नील के धाब्बे, संवाद प्रकाशन, बेतिया (चम्पारण), 1986, पृ. 14.

भूमि उपयोग का वर्गीकरण तथा प्रतिरूपः भागलपुर जिला के संदर्भ में

रवीन्द्र कुमार प्रकाश

शोध छात्र, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

निबंध सार

भूमि एक ऐसा प्राकृतिक भौतिक संसाधन है जिसका उपयोग मानव न सिर्फ अपनी सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता है, बल्कि यह प्रत्यक्षतः पर्यावरण को भी प्रभावित करता है। सभ्यता के शैशव काल में कम जनसंख्या और विस्तृत क्षेत्र के बीच कोई नियोजित अंतर्संबंधा नहीं था, परन्तु आज के वैश्विक संदर्भ में जनसंख्या में अप्रत्याशित अभिवृद्धि और विकासपरक मानवीय क्रियाओं ने पृथ्वी पर भूमि-क्षेत्र को अपेक्षाकृत परिसीमित कर दिया है, क्योंकि मानवीय आवश्यकताओं की परिमाणात्मक वृद्धि के साथ भूमि के रूप में प्राप्त सीमित संसाधन का विस्तार नहीं हो सकता। इस नूतन वैश्विक परिदृश्य में इस संसाधन के अधिकतम उपयोग द्वारा वृद्धिरत मानवीय आवश्यकताओं को तुष्ट करना एक महती कार्य है और इस दिशा में संभावनाओं को तलाशने में भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन और विश्लेषण सकारात्मक परिणाम देता है। इसका अध्ययन जनसंख्या विस्तार और मानवीय क्रियाओं की अभिवृद्धि के फलस्वरूप भू-संसाधन पर पड़ने वाले दबावों के आकलन के लिये भी अनिवार्य है।

भौगोलिक विशिष्टताओं और प्राकृतिक संरचना की दृष्टि से गंगा का मैदानी क्षेत्र विश्व के उन गिने-चुने क्षेत्रों में से एक है, जो अपनी पर्यावरणिक स्थिति और महत्व के लिये भूगोलविदों के लिए आकर्षण और अनुशीलन के केन्द्र हैं। आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि अपनी इसी विशिष्टता के कारण जनसंख्या की दृष्टि से यह क्षेत्र सर्वाधिक सघन है, क्योंकि उन्नत कृषि उत्पादन वाले इस क्षेत्र में न सिर्फ मानव-क्षुधा को तृप्त करने की क्षमता है, बल्कि कृषि क्षेत्र में रोजगार के व्यापक अवसर ने भी इस क्षेत्र को सघन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। परन्तु क्षेत्र में जनसंख्या की बढ़ती सघनता से मानवीय आवश्यकतायें और क्रियायें भी बढ़ी हैं और इसका सीधा प्रभाव क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप पर पड़ा है।

मुख्य शब्दः निक्षेपण, मानव-क्षुधा, प्रतिवेदित क्षेत्र, अपवाहतंत्र, क्षेत्रीय सर्वेक्षण, भू-संरचना, भूमि उपयोग प्रतिरूप

विधि तंत्र

शोध कार्य चयनित जिला भागलपुर के विभिन्न प्रखंडों के क्षेत्रीय सर्वेक्षण द्वारा संग्रह किए गए प्राथमिक आँकड़े तथा जिला एवं राज्य स्तर पर संग्रह किए गए द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है तथा व्यक्तिगत अवलोकन, परिभ्रमण, प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों के संग्रह, आंकड़ों के सरणीकरण, मानचित्रण एवं आलेख के निर्माण तथा विश्लेषण पर आधारित है।

अध्ययन क्षेत्र का चयन

भागलपुर जिला बिहार के विशाल गंगा के मैदान के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसका फैलाव 2569 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर है। इसकी भौगोलिक स्थिति 25°07' से 25°30' उत्तरी अक्षांश तथा 86°37' से 87°30' पूर्वी देशांतर पर है। इसकी समुद्र तल

से औसत ऊँचाई 80 मीटर है। जिले का अधिकांश भाग मैदानी है। प्रमुख नदियाँ गंगा, कोसी, भदुआ तथा, चंदन है। यह उत्तर में मल्लोपुरा, पूर्णियाँ एवं कटिहार जिला, पूरब में झारखण्ड राज्य एवं पश्चिम में मुंगेर, खगया जिला तथा दक्षिण में बांका द्वारा घिरा हुआ है। इसके अधिकांश भाग पर दोमट मिट्ठी पायी जाती है। यह बिहार राज्य का एक उपजाऊ कृषि क्षेत्र है। जिले के 63 प्रतिशत भू-भाग पर कृषि कार्य किया जाता है। यहाँ की आबादी अत्यंत सघन है। अत: खाद्यान्न की आपूर्ति के लिए सघन कृषि कार्य किया जाता है। यह जिला मुख्य रूप से कृषि प्रधान है यहाँ की जलवायु मानसूनी है।

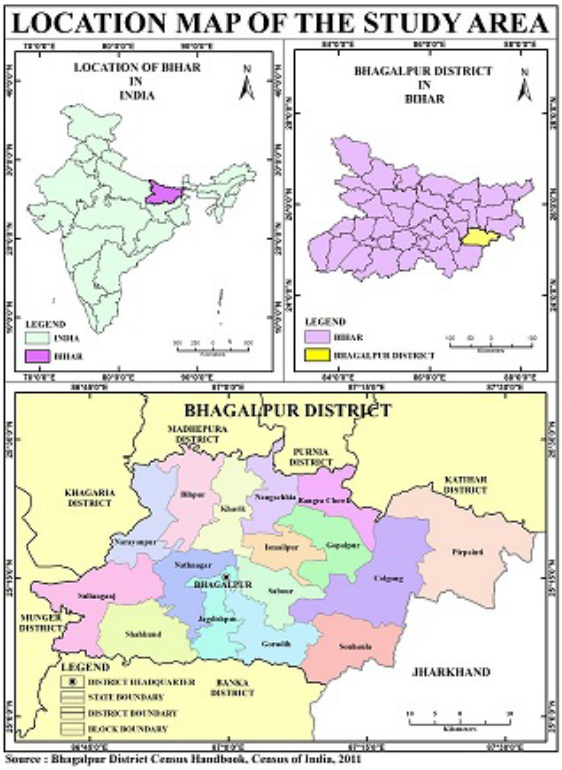

Source : Bhagalpur District Census Handbook, Census of India, 2011

भूमि उपयोग का वर्गीकरण तथा प्रतिरूप

भूमि एक ऐसा प्राकृतिक भौतिक संसाधन है जिसका उपयोग मानव न सिर्फ अपनी सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता है, बल्कि यह प्रत्यक्षत: पर्यावरण को भी प्रभावित करता है। सभ्यता के शैशव काल में कम जनसंख्या और विस्तृत क्षेत्र के बीच कोई नियोजित अंतर्सम्बंधा नहीं था, परन्तु आज के वैश्विक संदर्भ में जनसंख्या में अप्रत्याशित अभिवृद्धि और विकासपरक मानवीय क्रियाओं ने पृथ्वी पर भूमि-क्षेत्र को अपेक्षाकृत परिसीमित कर दिया है, क्योंकि मानवीय आवश्यकताओं की परिमाणात्मक वृद्धि के साथ भूमि के रूप में प्राप्त सीमित संसाधन का विस्तार नहीं हो सकता। इस नूतन वैश्विक परिदृश्य में इस संसाधन के अधिकतम उपयोग द्वारा वृद्धिरत मानवीय आवश्यकताओं को तुष्ट करना एक महती कार्य है और इस दिशा में संभावनाओं को तलाशने में भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन और विश्लेषण सकारात्मक परिणाम देता है। इसका अध्ययन जनसंख्या विस्तार और मानवीय क्रियाओं की अभिवृद्धि के फलस्वरूप भू-संसाधन पर पड़ने वाले दबावों के आकलन के लिये भी अनिवार्य है।

भौगोलिक विशिष्टताओं और प्राकृतिक संरचना की दृष्टि से गंगा का मैदानी क्षेत्र विश्व के उन गिने-चुने क्षेत्रों में से एक है, जो अपनी पर्यावरणिक स्थिति और महत्व के लिये भूगोलविदों के लिए आकर्षण और अनुशीलन के केन्द्र हैं। आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि अपनी इसी विशिष्टता के कारण जनसंख्या की दृष्टि से यह क्षेत्र सर्वाधिक सघन है, क्योंकि उन्नत कृषि उत्पादन वाले इस क्षेत्र में न सिर्फ मानव-क्षुधा को तृप्त करने की क्षमता है, बल्कि कृषि क्षेत्र में रोजगार के व्यापक अवसर ने भी इस क्षेत्र को सघन

बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। परन्तु क्षेत्र में जनसंख्या की बढ़ती सघनता से मानवीय आवश्यकतायें और क्रियायें भी बढ़ी हैं और इसका सीधा प्रभाव क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप पर पड़ा है।

किसी भी प्रदेश या क्षेत्र की भूमि उपयोग प्रतिरूप को निर्धारित करने वाले मूलत: दो मुख्य कारक होते हैं, प्रथम भू-संरचना के रूप में भौतिक कारक तथा जलवायु और मिट्टी जो भूमि की क्षमता को विस्तार प्रदान करते हैं और द्वितीय मानवीय कारक जैसे रोजगार की सीमायें, जनसंख्या घनत्व, सामाजिक और आर्थिक संस्थायें आदि जो भूमि संसाधन के उपयोग के प्रतिरूप को विनिर्धारित करते हैं। अध्ययन क्षेत्र भागलपुर जिले के लिये भी यही मापदंड लागू होते हैं। मध्यवर्गीय गंगा मैदान के दक्षिण में स्थित यह जिला पूर्व में छोटा नागपुर पठार की उत्तरी सीमाओं से घिरा हुआ हैं। शेष भाग प्राय: समतल मैदान है जो पुरानी जलोढ़ मिट्ठी के निक्षेपण से निर्मित होने के कारण काफी उपजाऊ है। इस जिले में भूमि-उपयोग प्रतिरूप परिवर्तनशील रहा है और इस प्रवृत्ति का अभिप्रेरक यहाँ की जनसंख्या में निरंतर अभिवृद्धि रही है।

अध्ययन क्षेत्र की भूमि की निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. वन
2. कृषि योग्य बंजर भूमि
3. गैर कृषि कार्यों में लगी भूमि
4. कृषि योग्य परती भूमि
5. चारागाह
6. विविध पेड़ एवं बगीचा के अंतर्गत भूमि
7. अन्य परती भूमि
8. चालू परती भूमि और
9. शुध बोया गया क्षेत्र

सन् 2015-16 में जिले में भूमि उपयोग के प्रतिरूप के विश्लेषण के अनुसार जिले के कुल क्षेत्रफल 254300 हेक्टेयर भूमि को निम्नलिखित तालिका (1) के अंतर्गत उपयोग की दृष्टि से वर्गीकृत किया गया है।

तालिका-1: भागलपुर जिला : भूमि उपयोग प्रतिरूप (हेक्टेयर में) 2015-2016

क्र. स.	उपयोग वर्ग	क्षेत्र हेक्टेयर में	कुल क्षेत्र का प्रतिशत
1.	वन	100	0.30
2.	कृषि योग्य बंजर-भूमि	22400	8.80
3.	गैर-कृषि कार्यो में लगी भूमि	70800	27.84
4.	कृषि योग्य परती भूमि	2300	0.90
5.	विविध पेड़ एवं बगीचा	6800	2.67
6.	चारागाह	600	0.23
7.	अन्य परती भूमि	4900	1.92
8.	चालू परती भूमि	15400	6.05
9.	शुध बोया गया क्षेत्र	131000	51.51
10.	कुल प्रतिवेदित क्षेत्र	254300	100

स्त्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय, भागलपुर-2016

भागलपुर जिलाका भूमि उपयोग

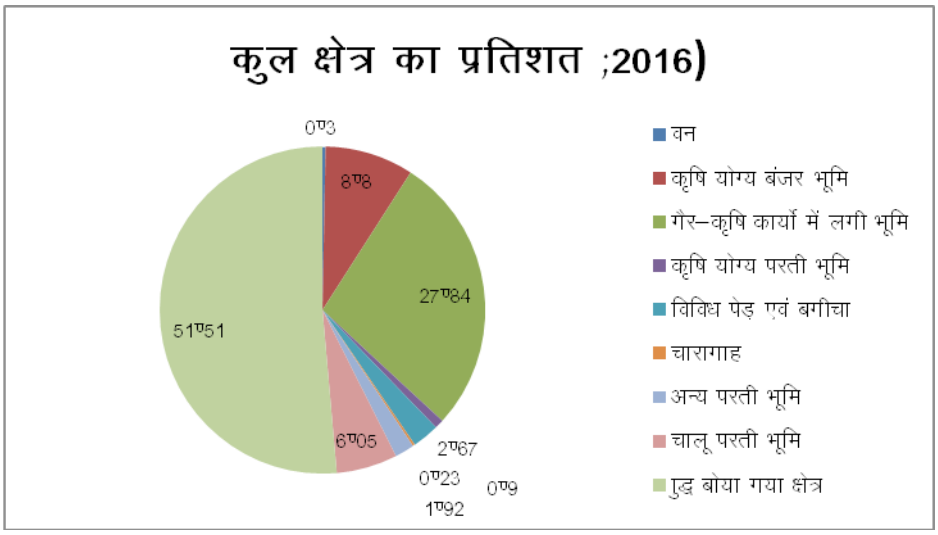

तालिका–1 से स्पष्ट है कि जिले में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 254300 हेक्टेयर है जिसमें बनों का क्षेत्रफल मात्रा 100 हेक्टेयर अर्थात 0.30 प्रतिशत है जिसकी उपस्थिति संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि सम्पूर्ण बिहार में बनों का प्रतिशत मात्रा लगभग 6.64 प्रतिशत है वहीं देश का यह प्रतिशत 22 है।

जिले में फसलोत्पादन हेतु केवल 6800 हेक्टेयर (2.67 प्रतिशत) क्षेत्र ही उपलब्ध है अर्थात शेष प्रतिशत क्षेत्र अन्य शीर्षकों के अंतर्गत प्रयुक्त हो रहा है जिसमें कृषि योग्य बंजर भूमि, चालू परती भूमि तथा अन्य परती भूमि का ही हिस्सा 16.77 प्रतिशत है जो कि एक अत्यंत महत्वपूर्ण भाग है इसे यदि कृषि कार्यो हेतु प्रयोगों में लाया जा सके तो जिले का शुध कृषि क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है। कृषि की नई तकनीकी के परिणाम स्वरूप इस क्षेत्रफल को कृषि के अंतर्गत लाना कोई कठिन कार्य नहीं है। कृषि योग्य परती भूमि का क्षेत्रफल 2300 हेक्टेयर (0.90 प्रतिशत) है परन्तु यदि इस भूमि का ऊसर सुधार करके वृक्षारोपण ही किया जा सके तो इस भूमि का उपयोग किया जा सकता है चारागाह शीर्षक के अंतर्गत 600 हेक्टेयर (0.23 प्रतिशत) भूमि जिले में उपलब्ध है जो कि संतोषजनक स्थिति में नहीं है। इसी प्रकार विविध पेड़ एवं बगीचे वाली भूमि का क्षेत्रफल 6800 हेक्टेयर है जो कुल क्षेत्रफल का 2.67 प्रतिशत है।

कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि का हिस्सा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि जिले में शुध बोये गये क्षेत्र के अतिरिक्त सर्वाधिक क्षेत्रफल 70800 हेक्टेयर अर्थात 27.84 प्रतिशत भूमि गैर कृषि कार्यो में लगी है।

निष्कर्ष

जनसंख्या वृद्धि से भूमि उपयोग में परिवर्तन होता जा रहा है। जहाँ प्रारंभ में कृषि में खाद्यान्न की प्राथमिकता थी, वहीं धीरे-धीरे मानव अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बागानी कृषि, व्यापारिक और नकदी फसल पर अधिक जोर देने लगा है। मानव की सुविधा विस्तार के लिए सड़के, रेल, डाक-तार, आवास निर्माण, शहर एवं आवासीय कोलोनियों के विकास के लिए नयी भूमि की मांग बढ़ती जा रही है। इसके फलस्वरूप भूमि उपयोग में परिवर्तन होता जा रहा है। मानव के प्रयासों से अनुपजाऊ भूमि उपयोग में भी परिवर्तन होता जा रहा है। चारागाह, परती व बागान के अंतर्गत आनेवाली भूमि का उपयोग कृषि के लिए तथा कृषि का प्रयोग दूसरी आवश्यकताओं के लिए हो रहा है।

संदर्भ-सूची

- Alam Tanweer (2014), लखीसराय जिला में बदलते भूमि उपयोग का सतत् कृषि विकास पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन (1981-2001)
- Kumar Ranjeey, भोजपुर जिला के वातावरण पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव का स्थानिककालिक विश्लेषण (एक भौगोलिक अध्ययन)
- Maltiar, K.K.- Landuse andAgricultural Pattern in Ghaghra-Gandal Doar in Bihar, 1987 (Unpublished Thesis P.U)
- Patna University, Journal Geographical Perspective : TheAssoication of Geographer Bihar Jharkhand (A.G.B.J),2015
- Sinha V.N.P andAhmad Prince Fioz (2014) "Bihar Land PeopleµEconomics Rajesh Publication New Delhi.
- Shafi, M. "Productiivity Regions of the Great Plains of India", Geographer, 1974, 14-16
- Stamp, L.D . "The Measurement of Land Resources, " Geographical Review, 48 (1958), 21-29

भरतपुर ज़िले में औषधीय पौधों का चिकित्सा भौगोलिक अध्ययन

देवेन्द्र कुमार शर्मा

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

सारांश

भरतपुर की प्राचीन मान्यताओं के अनुसार, दुनिया में पाए जाने वाले हर पेड़-पौधे में कुछ औषधीय गुण होते हैं, यह बात अलग है कि दवा के अत्याधुनिक होने के बावजूद, ऐसे हजारों पौधे हैं जिनमें औषधीय गुण हैं। कोई नहीं जानता। आमतौर पर यह माना जाता है कि छोटी जड़ी-बूटियों या जड़ी-बूटियों में अधिक औषधीय गुण पाए जाते हैं, जबकि ऐसी सोच उदासीन, मध्यम आकार के पेड़ और बड़े पेड़ हैं और उनके सभी अंग महान औषधीय गुणों से भरपूर हैं। प्रकृति ने हमें औषधीय पौधों के रूप में बहुमूल्य धन दिया है। अधिकांश औषधीय पौधे जंगली में पाए जाते हैं। हमारे घर के आसपास सड़क के किनारे कई पौधे उगते हैं, जिनमें औषधीय गुण होते हैं। आम शहरी लोग उनके गुणों से अनभिज्ञ हैं और उन्हें अनदेखा करते हैं। आदिवासी और ग्रामीण उन्हें पहचानते हैं। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस ज्ञान का संग्रह और उपयोग करते रहे हैं। इस लेख में, हमने उन्हीं औषधीय पौधों को लिया है जो हमारे घर के आस-पास पाए जाते हैं लेकिन उनकी उपेक्षा की जाती है। इस लेख में, हम प्रसिद्ध मध्यम आकार के पेड़ों और पेड़ों के बारे में बताएंगे। इस शोध पत्र में भरतपुर ज़िले में औषधीय पौधों का चिकित्सा भौगोलिक अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द : औषधीय पौधे, कंटकारी/कंटेली/भटकटैया, पीली कंटेली (आर्जीमोन मैक्सिकाना), अजगंधा (क्लीओम विस्कोसा), छोटी दूदी (यूफोर्बिया थाइमिफोलियाब), वज्रदंती (बार्लेरिया प्रायोनाइटिस), खूबकला/जंगली सरसों (सिसिम्ब्रियम इरियो), नीम, पीपल, बरगद, लेसुए के बाग, अन्य ओशधीय पौधे, भरतपुर में औषधीय पौधों का विकास एवं निष्कर्ष।

परिचय

प्रकृति को दिए गए वरदानों में पौधों और पेड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन चक्र में पौधे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें न केवल खाद्य आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है, बल्कि वे जीवित दुनिया के साथ एक नाजुक संतुलन बनाने में भी नेतृत्व करते हैं - चाहे वह कार्बन चक्र हो या खाद्य श्रृंखला के पिरामिड हों, वे भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं। उनकी उपयोगिता को देखते हुए, उन्हें कई श्रेणियों में विभाजित किया गया है। औषधीय पौधों में न केवल उनका औषधीय महत्व है, बल्कि वे आय का स्रोत भी बनते हैं। हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में औषधीय पौधों का बहुत महत्व है और यही कारण है कि इसके उपयोग के कई प्रमाण भारतीय पुराणों, उपनिशदों, रामायण और महाभारत जैसे प्रामाणिक ग्रंथों में पाए जाते हैं। इससे प्राप्त जड़ी बूटियों के माध्यम से, न केवल हनुमान ने भगवान लक्ष्मण के जीवन को बचाया, बल्कि आज भी डॉ.क्टरों को मानव चिकित्सा के लिए लाया जाता है। यही नहीं, जंगलों में अपने दम पर उगने वाले अधिकांश औषधीय पौधों के अद्‌भुत गुणों के कारण, लोग उनकी पूजा करने लगे हैं जैसे तुलसी, पीपल, आक, बरगद और नीम आदि। प्रसिद्ध विद्वान चरक ने भी कई प्रकार के औषधीयों का विश्लेशण किया है। पौधों और बीमारियों के इलाज के लिए कई कीमती पुस्तकों का निर्माण किया है, जिनका उपयोग आजकल मानव के कल्याण के लिए किया जा रहा है।। इस लेख में कुछ औषधीय गुणों के बारे में जानकारी दी गई है।

अध्ययन क्षेत्र की स्थिति एवं विस्तार

राजस्थान के पूर्वी सिंह द्वार के नाम से प्रसिद्ध भरतपुर जिला अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण राज्य का एक महत्त्वपूर्ण जिला है। आकार में चपटे धरातल का विशेष रूप से कटा-फटा तथा टेढ़ा-तिरछा अनोखी आकृति वाला भरतपुर जिला अपने नैसर्गिक सौंदर्य, ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्व महत्त्व के कई स्थलों से बरबस पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यहाँ का केवलादेव

राष्ट्रीय उद्यान विश्व प्रसिद्ध है। ब्रज क्षेत्र के निकट होने के कारण इसकी अपनी विशिष्ट परम्परा, कला एवं संस्कृति है। राजस्थान के पूर्वी भाग में स्थित होने के कारण भरतपुर को राजस्थान का 'प्रवेश-द्वार' कहा जाता है। यह जिला 2622' उत्तरी अक्षांश से 27°58' उत्तरी अक्षांश तक तथा 76°53' से 78°17' पूर्वी देशान्तर के मध्य अवस्थित है। हरियाणा व रेवाड़ी जिले इसकी उत्तर-पूर्वी, उत्तर प्रदेश के मथुरा व आगरा पूर्वी, मध्यप्रदेश का ग्वालियर, राजस्थान के जयपुर, दौसा व सीकर पश्चिमी सीमा रेखा से जुड हुए है। भरतपुर जिला दक्षिण पश्चिम में राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से 184 कि.मी. की दूरी पर तथा राज्य की राजधानी जयपुर से 180 कि.मी. पूर्व में तथा उत्तरप्रदेश के आगरा शहर के पश्चिम दिशा में है। जिले का क्षेत्रफल 5066 वर्ग किलोमीटर है जो कि राजस्थान के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 1.48 प्रतिशत है। यह समुद्र तल से 178.37 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। जिले का सामान्य ढ़ाल दक्षिण से उत्तर की ओर 10 तथा कुम्हेर तहसील के पास 10 का ढाल है। जबकि जिले में अधिकांश क्षेत्र पर 0° से 2° का ढाल है, जहाँ जिले की भरतपुर व नदबई तहसीले मैदानी व समतल है वहीं बयाना व रूपवास तहसीलों का क्षेत्र पहाड़ियों के विस्तार के कारण भिन्नता लिए हुए हैं। भरतपुर, बयाना व डीग उपखण्डों की भूमि उपजाऊ है और यह क्षेत्र सामान्यत: समतल है। सामान्यत: यह क्षेत्र मैदानी, मैदानी वन प्रदेश व विभक्त पहाड़ियों से युक्त है।

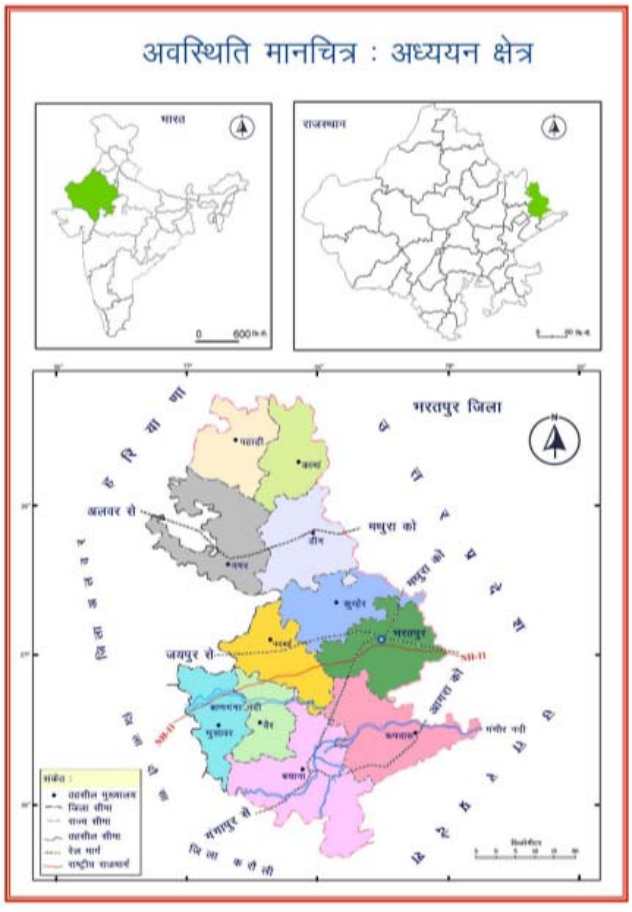

प्रमुख उद्देश्य

1. भरतपुर में औषधीय पौधों के महत्व का अध्ययन किया गया है।
2. औषधीय पौधों के रोगों के उपचार में उपयोग बताया गया है।
3. भरतपुर जिले में औषधीय पौधों के विकास का अध्ययन किया गया है।

शोध परिकल्पना

1. औषधीय पौधे प्राचीन काल से ही रोगों की रोकथाम में उपयोगी रहे हैं।
2. भरतपुर में औषधीय पौधों का उपयोग दैनिक जीवन में किया जा रहा हैं।

अध्ययन विधि

अध्ययन पद्धति के रूप में प्राथमिक सूचनाओं का संग्रह प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र भरतपुर, कृषि अनुसंधान केंद्र भरतपुर, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, आयुर्वेद भवन और औषधि अनुसंधान केंद्रों के माध्यम में किया गया है। द्वितीयक सूचनाएं जैसे पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्र, सरकारी अभिलेख, मीडिया और टेलीविजन समाचार चैनल साक्षात्कार आदि का उपयोग किया गया है। यह अध्ययन वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति पर आधारित है।

नोट : इस शोध पत्र में प्रस्तुत आयुर्वेद पौधों के घरेलू उपायों को बिना चिकित्सकीय सलाह के उपयोग नही करें। इस शोध का उद्देश्य औषधीय पौधों की भरतपुर ज़िले के सन्दर्भ में सामान्य भौगोलिक जानकारी प्रदान करना है।

भरतपुर के औषधीय पौधे

भरतपुर की भूमि में विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधे पाए जाते हैं। वे संक्षिप्त रूप में निम्नानुसार अध्ययन कर रहे हैं।

1. कंटकारी/कंटेली/भटकटैया (सोलनम Ûanthocarpum) : यह एक छोटा हरा कांटेदार झाड़ी है। गर्मियों में, यह खाली जमीन और सड़क के किनारे आसानी से देखा जाता है। इसके पत्ते लंबे होते हैं, किनारों से कटे होते हैं और दांतेदार होते हैं। तना छोटा, हल्का हरा होता है। तने और पत्तियां जघन होते हैं। पत्तियों की नसों पर बड़े कांटे होते हैं। फूल नीलवर्ण, बैंगनी और संयुक्त होते हैं। फल गोलाकार 0.5 से 1 इंच व्यास के होते हैं और पकने पर पीले दिखाई देते हैं। यह एक उष्णकटिबंधीय और शुष्क जलवायु संयंत्र है और पूरे भरतपुर में पाया जाता है। मुख्यत: यह पौधा बयाना, भुसावर, डीग, कुम्हेर, नगर एवं सीकरी के आस पास अधिक मिलता है।

फायदे : इसके औषधीय गुण इसमें मौजूद ग्लूको-एल्कलॉइड्स और स्टेरोल्स के कारण हैं। पूरे पौधे में औषधीय गुण होते हैं। पौधे का सूखा पाउडर अकेले या अस्थमा, कफ और बुखार में अन्य दवाओं के साथ प्रयोग किया जाता है, इसकी गर्म और कठोर प्रकृति के कारण, यह अस्थमा के लिए एक शक्तिशाली दवा है। माइग्रेन होने पर पत्तियों के रस को नाक में इंजेक्ट किया जाता है। फल कब्ज नाशक है। इसकी जड़ दशमूलारिष्ट औषधि का हिस्सा है।

2. पीली कंटेली (आर्जीमोन मैक्सिकाना) : यह एक कांटेदार एक साल की जड़ी बूटी है जो शुष्क परिस्थितियों में बढ़ती है। भरतपुर ज़िले में यह वनस्पति नदबई, नगर, सीकरी, गुलपड़ा, कांमा, वैर, भुसावर, सेवर, डीग एवं कुम्हेर आदि स्थानों पर मिलता है। यह पौधा खरपतवार के रूप में कहीं भी पनप जाता है। यह 1 मीटर तक लंबा है। पत्ती कांटेदार है, पौधे में लेटेक्स का एक पीला दूधिया पदार्थ पाया जाता है। इसके बीज सरसों के बीज जैसे दिखते हैं।

फायदे : इसके औषधीय गुण अल्कलॉइड बरबेरीन और प्रोटोपिन के कारण हैं। इसका दूध जीवाणुरोधी होता है और घाव को जल्दी भरने में मदद करता है। इसका उपयोग त्वचा रोगों में भी किया जाता है। इसका दूध पारंपरिक रूप से कुछ जनजातियों और ग्रामीणों द्वारा मोतियाबिंद के उपचार में उपयोग किया जाता है और बिच्छू अपनी जड़ को गोबर के ऊपर काटता है।

इसका रूट पाउडर एक सही डिटर्जेंट है। बीज जहरीले होते हैं। वे मच्छर से बचाने वाली क्रीम और कृषि में उपयोग किए जाते हैं।

बीजों में मौजूद तेल को आर्गेमोन तेल कहा जाता है। इसे सरसों के तेल में भी मिलाया जाता है, इस तेल के कारण स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्याएँ होती हैं।

3. अजगंधा (क्लीओम विस्कोसा) : यह एक साल का वनस्पति पौधा है। बारिश के मौसम में यह फूल जाता है और फलित होता है और सड़कों पर फुटपाथ पर आसानी से देखा जा सकता है। यह पौधा भरतपुर जिले में सेवर, वैर, भुसावर, बयाना, नगर, डीग, कुम्हेर, कांमा, पहाड़ी आदि स्थानों पर आसानी से मिलता है।

पौधे की ऊंचाई लगभग 1 मीटर है। पत्तियां 5 लोबों में विभाजित होती हैं और प्यूब्सेंट होती हैं, फूल पीले होते हैं। पुंकेसर स्पष्ट और लंबे होते हैं। फल लंबे होते हैं जैसे फली, केशिकाओं के साथ।

यह एक उष्णकटिबंधीय जलवायु का पौधा है और जंगली में प्राख्रतिक रूप से बढ़ता है। पौधे में विशिष्ट गंध होती है। इसमें क्लोमाइन और विस्कोसिन एल्कलॉइड होते हैं।

पत्तियां खाने योग्य और पौष्टिक होती हैं। वे कड़वा स्वाद लेते हैं, इसलिए अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर आहार में जोड़ा जा सकता है।

फायदे : जुकाम में, पत्तियों का भाप लेना फायदेमंद है। खांसी में, पत्तियों का ठंडा काढ़ा लिया जाता है। घाव और जहरीले कीड़े के काटने पर पीसने के बाद पत्तियां लगाई जाती हैं। बवासीर में, इसके बीज के काढ़े से बवासीर को धोया जाता है और उनकी सूजन समाप्त हो जाती है। इसकी सब्जी गर्भवती महिलाओं के लिए एक पौष्टिक आहार है।

4. छोटी दूदी (यूफोर्बिया थाइमिफोलियाब): यह छोटा सा शाकाहारी पौधा दीवारों के साथ नम स्थानों पर बढ़ता है। यह पौधा भरतपुर जिले में बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। प्रत्येक तहसील के ग्रामीण भागों में आसानी से पनपता है। मुख्यत: डीग, नगर, सीकरी, बेरु, गुलपड़ा, पहाड़ी, कांमा, कुम्हेर आदि में घर के बगीचे में घास के साथ देखा जा सकता है। पौधा चिकना है। पत्ते गहरे हरे, छोटे अंडाकार और विपरीत होते हैं। तना पतला, मुलायम और रक्त पतला होता है। लेटेक्स, एक सफेद दूधिया पदार्थ, पौधे से पाया जाता है। यह एक साल की जड़ी-बूटी है।

फायदे : भरतपुर के ग्रामीण इस पौधे को कोच घास के साथ पीसते हैं और इसका रस गर्भाशय के रोगों और ल्यूकोरिया के उपचार में उपयोग किया जाता है। जिल्द की सूजन में, इसकी पत्तियों को रगड़कर लगाया जाता है। इसका रस दस्त और पेचिश में दिया जाता है। यह कीड़ा मौत है। यह कफ और दमा की अच्छी दवा है। यह एक एंटीवायरल दवा भी है।

5. वज्रदंती (बार्लेरिया प्रायोनाइटिस) : यह एक शुष्क जलवायु पौधा है, यह सामूहिक रूप से जंगलों और चट्टानों को बढ़ता है। इसे घरों और बगीचों में एक खूबसूरत पौधे के रूप में भी उगाया जाता है। भरतपुर ज़िले में यह पौधा बाग बगीचों में आसानी से देखा जा सकता है।

यह 1–1.5 मीटर ऊंचा होता है, पत्तियों के आधार पर 3–5 तेज, हल्के पीले कांटे होते हैं। फूल हल्के पीले, हल्के नारंगी–पीले होते हैं।

पूरे पौधे में औषधीय गुण होते हैं। यह एंटीएलर्जिक, एंटीबायोटिक और एंटीवायरल है, इसमें एल्कलॉइड, ग्लूकोसाइड और साइटो–स्टेरोल्स होते हैं। पौधों में पोटेशियम प्रचुर मात्रा में होता है।

फायदे : पत्तियों और जड़ का रस खांसी, बुखार और अस्थमा में उपयोगी है। त्वचा में संक्रमण होने पर पत्तियों के रस का उपयोग किया जाता है। बालों के झड़ने और सफेद होने की स्थिति में, पत्तियों को पीसकर लगाया जाता है। पत्तियों और जड़ों का पाउडर दांतों और मसूड़ों की एक अच्छी दवा है।

6. खूबकला/जंगली सरसों (सिसिम्ब्रियम इरियो) : यह एक शाकाहारी पौधा है। यह लगभग 50 सेमी की ऊँचाई तक पहुँच जाता है। भरतपुर के वन क्षेत्रों एवं जंगलों में यह पौधा विकसित होता है। पौधा सरसों के पौधे जैसा दिखता है। यह जंगली में एक खरपतवार के रूप में बढ़ता है। पत्तियां रॉकेट के आकार की होती हैं, जो किनारे से कटी होती हैं। यह सर्दियों के अंत में फूलता है। फूल छोटे, पीले रंग के और गोलाकार होते हैं।

सल्फर यौगिकों की उपस्थिति के कारण पौधे में मजबूत गंध है। इसके पत्ते पौष्टिक और खाद्य होते हैं। बीज छोटे, नारंगी–भूरे, सरसों जैसे होते हैं। बीजों का औषधीय महत्व है। इनमें "लैनोनॉइड, लिनोलिक और ओलिक एसिड भी पाए जाते हैं।"

फायदे : बीज अपने गर्म प्रख्रति के कारण कफ और अस्थमा में उपयोग किया जाता है। उनका उपयोग बुखार और टाइफाइड बुखार को कम करने के लिए भी किया जाता है। लंबे समय तक रहने वाले पुराने बुखार में, इसके बीज को सूखे अंगूर और पीपल के साथ पीस लिया जाता है।

7. नीम : प्राचीन आर्यों से लेकर ऋषि, आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान नीम के औषधीय गुणों का पालन करते रहे हैं। नीम पूरे भरतपुर में व्यापक रूप से दिखाई देता है। नीम का वानस्पतिक ukeAzadirachta इंडिका है। नीम में मार्जोसिन, निंबिडिन, निम्बॉस्टरोल, निम्बिनिन, स्टीयरिक एसिड, ओलिव एसिड, पामिटिक एसिड, अल्कलॉइड्स, ग्लूकोसाइड्स और फैटी एसिड्स आदि होते हैं।

फायदे : नीम के बीजों को पीसकर रस तैयार करें और इसे बालों पर लगाएं, तो जूँ मर जाती है। डांग- गुजरात के आदिवासियों के अनुसार, नीम की गुलाबी कोमल पत्तियों को चबाने और रस चूसने से मधुमेह में आराम मिलता है।

8. पीपल : पीपल का पेड़ भरतपुर जिले में सर्वत्र मिलता है। पीपल के औषधीय गुणों को आयुर्वेद में भी देखा जा सकता है। पीपल का वानस्पतिक नाम फिकस धर्मियोसा है।

फायदे : मुंह में छाले होने की स्थिति में यदि पीपल की छाल और पत्तों का चूर्ण कुल्ला किया जाए तो इससे आराम मिलता है। पीपल की एक खासियत यह है कि यह त्वचा के विकारों जैसे कुष्ठ, फोड़े-फुंसी, खुजली और खुजली को खत्म करता है। डांगी आदिवासी ने पीपल की छाल को घिसकर त्वचा रोगों पर लगाने की सलाह दी। कुष्ठ रोग में, पीपल के पत्तों को कुचलकर रोगग्रस्त स्थान पर लगाया जाता है और पत्तियों का रस तैयार किया जाता है और खिलाया जाता है।

9. बरगद: बरगद का वट वृक्ष भरतपुर जिले में सभी स्थानों पर आसानी से देखा जा सकता है। बरगद को 'अक्षय वट' भी कहा जाता है, क्योंकि यह पेड़ कभी नष्ट नहीं होता है। बरगद का पेड़ घना और फैला हुआ होता है। बरगद का वानस्पतिक नाम फिकस बेंघालेंसिस है। गाय के ताजे दूध के साथ बरगद की एरियल जड़ों का दस ग्राम पाउडर, सफेद जीरा और इलायची (दो-दो ग्राम) एक साथ पीने से पेशाब की जलन में बहुत लाभ होता है। पातालकोट के आदिवासियों के अनुसार बरगद की जटा के बारीक रेशों को पीसकर दाद-खाज पर लगाने से लाभ होता है।

10. लेसुए के बाग : भरतपुर में लेसोड या लेसू के औषधीय गुणों के कारण, बाजार की मांग बढ़ने लगी है। इसके कारण, किसानों ने लसोर के बाग लगाने में रुचि बढ़ाई है। आमतौर पर लसोड़ा के फल 30-35 रुपये प्रति किलो आसानी से बिक जाते हैं। लसौर के एक हेक्टेयर में लगाए गए बगीचे से, किसान प्रति वर्ष लगभग 4.5 लाख रुपये कमा सकते हैं।

भरतपुर ज़िले में लेसुए के बाग वैर, भुसावर, बयाना के इलाकों में लगाए जा रहे हैं, जहाँ पानी की उपलब्धता बहुत कम है। एक साल में लासोड को 4 पानी देने के बाद ही फल आने लगते हैं। कुछ किसान पौधे लगाने के बजाय मेढ़ों पर पौधे लगाते हैं। लेसुए के बाग लगाने से पहले, गर्मियों में, लगभग डेढ़ से दो फीट चौड़े ॠ खोदकर उसमें बराबर मात्रा में मिट्टी और गोबर की खाद भर देते हैं। जब जुलाई-अगस्त में बारिश होती है, तो ये ॠ पानी से भर जाते हैं। पानी सूख जाने के बाद, इसे फिर से खुदाई की जाती है और इसके पौधों को 6-6 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। एक हेक्टेयर में लगभग 177 पौधों की आवश्यकता होती है।

फायदे : लसोड़ा के फल में चिकनी गूदे में कई लाभकारी तत्व होते हैं। डायरिया, हैजा, कफ आदि रोगों की रोकथाम में ये ल्यूकोरिया उपयोगी होते हैं, इसका अचार भी बनाया जाता है।

11. अन्य औषधीय पौधे : आयुर्वेद में ऐसे कई पौधे बताए गए हैं जिनकी पत्तियों और जड़ों से कई तरह की बीमारियों जैसे मलेरिया, चिकिनगुनिया, डेंगू, सर्दी, जुकाम, वायरल, कैंसर एवं एलर्जी आदि का इलाज किया जाता है। इनमें से कुछ पौधों को घर के गार्डन में उगा सकते हैं। इन्हें लगाना भी आसान है और अधिक देखभाल की जरूरत भी नहीं होती। बागवानी एवं आयुर्वेद विशेषज्ञ से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार हम आपको बताते है कि भरतपुर ज़िले में घर के बगीचे में औषधीय पौधे कैसे लगाएं, इन्हें कैसे इस्तेमाल करें और ये कितनी तरह से फायदा पहुंचाते हैं।

(1) ब्राह्मी : दिमाग तेज करती है और बच्चों में एकाग्रता बढ़ाती है। इसका पौधा जमीन पर फैलकर बड़ा होता है, यह आसानी से किसी भी मिट्टी में लग जाता है। यह पौधा भरतपुर जिले के आयुर्वेदिक चिकित्सालयों, कांमा वन क्षेत्र, पूँछरी के लौठा, ब्रज क्षेत्र एवं केवलादेव घना राष्ट्रीय उद्यान में आसानी से देखा जा सकता है।

फायदे : इसकी 4-5 पत्तियों को सुबह खाली पेट चबाकर, पानी पिएं। रस निकालकर भी ले सकते हैं। इसकी तासीर ठंडी होती है इसलिए सर्दी में पत्तियों के रस को काली मिर्च के साथ लें। ब्राह्मी दिमाग के लिए अधिक फायदेमंद है। बच्चों में एकाग्रता की कमी और बड़ी उम्र में भूलने की बीमारी में इसकी पत्तियों को चबाकर खाते हैं तो फायदा होता है।

(2) गिलोय : डेंगू-चिकनगुनिया के मरीजों के लिए फायदेमंद होता है। गिलोय बेल है जो कटिंग से हर तरह की मिट्टी में लग जाती है। यह भरतपुर ज़िले के अधिकांश घरों में आसानी से मिलने वाला औषधीय बेल है। यह बेल डीग, नगर, कांमा, पहाड़ी, सीकरी, नगर, नदवई, हलैना, वैर, भुसावर, बयाना सेवर, भरतपुर शहर में देखा जा सकता है।

फायदे : गिलोय बेल की डालियां कूटकर पानी में उबालकर पी सकते हैं। जिन्हें डायबिटीज नहीं है, वे इसमें थोड़ा शहद डालकर भी पी सकते हैं। गिलोय रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ाने वाली औषधि है। ऐसे लोग जिन्हें बार-बार जुकाम होता है, उनके लिए फायदेमंद है। सांस के रोग, आर्थराइटिस, डेंगू या चिकनगुनिया, मधुमेह में फायदा मिलता है।

(3) कालमेघ यह कैंसर और संक्रमण से बचाता है।यह आसानी से बीज या कटिंग से गमले या क्यारी में लग जाता है। बुखार और खराश होने पर इसकी पत्तियों की चाय या जूस बनाकर पी सकते हैं लेकिन ध्यान रहे कि यह नीम से सौ गुना अधिक कड़वा होता है, इसलिए इसे 'किंग ऑफ बिटर' के नाम से भी जानते हैं। यह भरतपुर के ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा मार्ग के जंगलों में मिलने वाला दुर्लभ औषधीय पौधा है। यह कांमा के वन क्षेत्र, केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, पूँछरी के लौठा में गोवर्धन पर्वत एवं डीग के आस पास मिलता है।

फायदे : यह संक्रमण, बैक्टीरिया, कैंसर और सूजन से बचाता है। डायबिटीज के रोगियों के लिए भी यह फायदेमंद है। इसीलिए इसको कोविड-19 संक्रमण से लड़ने में मददगार भी कहा जा रहा है। दवाइयों में इसके प्रयोग भी किए जा रहे हैं। यह हैजा, दमा, ज्वर, मधुमेह, हाई ब्लड प्रेशर, खांसी, गले में छाले और पाइल्स में फायदेमंद है।

(4) पिप्पली : यह हृदय रोगियों और पेट की समस्याओं में फायदेमंद होता है। पिप्पली का पौधा कटिंग या बीज रोप करके लगा सकते हैं। पिप्पली को लॉन्ग पेपर भी कहते हैं। इसमें लम्बे फल लगते हैं, जिनका चूर्ण बनाकर सेवन किया जाता है। उसी तरह जड़ को सुखाकर भी इसका चूर्ण लिया जा सकता है। भरतपुर में यह पौधा आयुर्वेदिक चिकित्सा केंद्रों, नर्सरी, कांमा वन क्षेत्र, भरतपुर आगरा राजमार्ग के आस पास एवं पूँछरी के लौठा में देखे जा सकते हैं।

फायदे : यह दिल के रोगों में फायदेमंद है। इसके फल के एक ग्राम चूर्ण को शहद के साथ खाली पेट लेने पर दिल के रोगों में राहत मिलती है। इसी तरह पेट के रोगों के लिए भी यह चूर्ण फायदेमंद है।

(5) अश्वगंधा : अश्वगंधा खांसी और अस्थमा में राहत देता है, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। इसका पौधा बीज की मदद से गमले या क्यारी में लगाया जा सकता है। इसकी जड़ों का पाउडर खांसी और अस्थमा से राहत प्रदान करता है। पत्तियों की चाय बनाकर पी सकते हैं। दूध में एक चम्मच अश्वगंधा की जड़ का पाउडर मिलाकर पीने से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। यह पौधा भरतपुर के सभी क्षेत्रों में आसानी से मिल जाता है। यह जंगलों एवं खेतों की मेड़ पर स्वत: ही पनपने वाला औषधीय गुणों से युक्त पौधा है। भरतपुर में नगर, बेरु, डीग, कांमा, पहाड़ी, सीकरी, वैर, भुसावर, बयाना, कुम्हेर, सेवर एवं भरतपुर शहर में मिलता है।

फायदे : अश्वगंधा शरीर की काम करने की क्षमता को बढ़ाता है। इसके पत्तों को रेग्युलर खाते हैं और प्राणायाम करते हैं तो मोटापा कम किया जा सकता है।

(6) वन तुलसी : तुलसी के पौधे के बारे में कौन नहीं जानता होगा। तुलसी को हिंदू धर्म में एक बहुत ही पवित्र पौधा माना जाता है। लगभग हर घर में तुलसी की पूजा भी की जाती है। आमतौर पर लोग तुलसी के पौधे के बारे में ज्यादा नहीं जानते हैं। आप शायद यह भी नहीं जानते होंगे कि तुलसी एक नहीं बल्कि कई प्रकार की होती है। बर्बरी तुलसी भी एक प्रकार का तुलसी का पौधा है, जिसके बारे में आप नहीं जानते होंगे। बारबारी तुलसी को जंगली तुलसी के रूप में भी जाना जाता है, जो एक बहुत ही उपयोगी औषधि है। आप कई बीमारियों को ठीक करने में बर्बरी तुलसी का लाभ ले सकते हैं।

आयुर्वेदिक पुस्तकों के अनुसार, वात-पित्त-कफ विकार दोशों को दूर करने, भूख बढ़ाने और हृदय को स्वस्थ बनाने में तुलसी बारबारी के लाभ पाए जाते हैं। आप खुजली, रक्त विकार, कुष्ठ, इरिस्लीप और मूत्र संबंधी कई रोगों में तुलसी बारबारी का लाभ भी ले सकते हैं।

तुलसी 60-90 सेंटीमीटर ऊँची, सीधी और कई शाखाओं वाली होती है। इसके तने बैंगनी रंग के होते हैं, जो हमेशा बने रहते हैं। इसके पत्ते सीधे, विपरीत, 2.5-5 सेमी लंबे होते हैं। इसके फूल सुगंधित, सफेद-गुलाबी या बैंगनी रंग के होते हैं। इसके फल 2 मिमी लंबे, थोड़े नुकीले, चमकदार रंग के, चिकने या लगभग झुर्रीदार होते हैं। इसके बीज गहरे रंग के, अंडाकार और आयताकार होते हैं। तुलसी बरबरी के पौधे में पूरे साल फूल और फल लगते हैं। भरतपुर में यह सभी स्थानों पर मिलती है। यह पौधा भरतपुर जिले में नगर, बेरु, गुलपड़ा, कांमा, पहाड़ी, सीकरी, डीग, रसिया, बेढम, वहज, कुम्हेर, वैर, भुसावर, बयाना, नदबई, छोकरवाड़ा, पथेना एवं हलैना आदि के घर घर मे मिलती है।

फायदे : वन तुलसी की पत्तियां इन्फ्लुएंजा के इलाज, सिरदर्द, गले की खराश, खांसी और बुखार में फायदा पहुंचाती हैं। सिरदर्द, गले की खराश और बुखार में फायदा करती है। इसको बीज या कलम से बड़े गमले में लगा सकते हैं लेकिन क्यारी में बेहतर उगती है। इसकी पत्तियों से मसाला चाय बना सकते हैं। चाय बनाते वक्त इसकी कुछ पत्तियां साथ में डालने से चाय भी कड़क बनेगी। रसोई में मौजूद मसालों की तरह वन तुलसी का उपयोग कर सकते हैं। इसकी दो-तीन पत्तियां मसालों के साथ पीसकर उपयोग कर सकते हैं।

(7) लेमनग्रास : इसमें एंटीऑक्सीडेंट्स और बैक्टीरिया को खत्म करने वाले गुण होते हैं जो कई प्रकार के रोगों से बचाता है। इस घास में विटामिन-ए और सी, फोलेट, फोलिक एसिड, मैग्नीशियम, जिंक, कॉपर, आयरन, पोटेशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम और मैगनीज़ होते हैं। यह घास भरतपुर जिले में नगर, कांमा, पहाड़ी, सीकरी, डीग, बेरु, रसिया, बेढम, वहज, कुम्हेर, वैर, भुसावर, बयाना, पथेना हलैना आदि के खेत खलियानों में मिलती है।

फायदे : इसकी चाय पिएं, संक्रमण से बचे रहेंगे। इसे नींबूघास भी कहते हैं। इसे छोटे गमले या क्यारी में लगा सकते हैं। इसकी पत्तियां लेमन टी बनाने में इस्तेमाल कर सकते हैं। गर्म पानी में अजवाइन और लेमनग्रास की कुछ पत्तियां डालकर उबाल लें। इसे दो मिनट तक रखें और फिर हल्दी डालकर अच्छी तरह से मिलाकर पिएं।

भरतपुर ज़िले में औषधीय पौधों का विकास

आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए राज्य सरकार ने अब एक और कदम उठाया है। अब राज्य सरकार भरतपुर में पूँछरी का लौठा सहित राज्य भर में 14 वेलनेस सेंटर स्थापित करने जा रही है। इन केंद्रों का इलाज आयुर्वेदिक के साथ-साथ प्राख्रतिक चिकित्सा और योग से भी किया जाएगा। इसके लिए राज्य सरकार ने आयुर्वेद विभाग को आदेश जारी किए हैं। इसके साथ ही वेलनेस सेंटर स्थापित करने के लिए जमीन की तलाश शुरू कर दी गई है।

वेलनेस सेंटर परिसर में औषधीय पौधे उगेंगे

आयुर्वेद विभाग के उप निदेशक निरंजन सिंह ने बताया कि राज्य सरकार द्वारा लगभग 1 करोड़ 21 लाख रुपये की लागत से यह कल्याण केंद्र और योग केंद्र स्थापित किया जाएगा। इस केंद्र में आयुर्वेदिक, प्राकृतिक चिकित्सा और योग सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। इसके अलावा, वेलनेस सेंटर परिसर में औषधीय पौधों का एक बगीचा भी विकसित किया जाएगा। इन पौधों का उपयोग उपचार में किया जाएगा।

50 बीघा जमीन में स्थापित होगा केंद्र

सहायक निदेशक संजीव तिवारी ने बताया कि राज्य सरकार के निर्देशानुसार वेलनेस सेंटर के लिए 50 बीघा जमीन की आवश्यकता है। इसके लिए पूँछरी का लौठा में विभाग द्वारा जमीन को देखा गया है, लेकिन एनजीटी के कारण निर्माण पर प्रतिबंध

है, इसलिए 10 किमी के दायरे में जमीन की तलाश की जा रही है। जमीन के लिए, जिला कलेक्टर को विभाग की ओर से लिखा गया है और कलेक्टर की ओर से स्थानीय प्रशासन को निर्देश जारी किए गए हैं। जमीन की मंजूरी के तुरंत बाद वेलनेस सेंटर के निर्माण का काम शुरू कर दिया जाएगा।

पूँछरी का लौठा भरतपुर का एक धार्मिक और पर्यटन स्थल है, जो गोवर्धन परिक्रमा मार्ग में पड़ता है। ऐसे में यहां वेलनेस सेंटर और योग सेंटर की स्थापना से पर्यटकों को आयुर्वेदिक, प्राकृतिक और योग थेरेपी का लाभ मिलेगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि औषधीय पौधे प्रकृति का वरदान हैं। इन वृक्षों का आयुर्वेद में महत्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन चक्र में पौधे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वर्तमान में, वैज्ञानिक औषधीय पौधों का विश्लेषण करके रोगों के उपचार के लिए दवाएं बना रहे हैं। आयुर्वेद की कई बहुमूल्य जानकारियों का उपयोग आजकल मानव के कल्याण के लिए किया जा रहा है। भरतपुर जिले में औषधीय पौधों का उपयोग घरेलू चिकित्सा के रूप में मलेरिया, चिकुनगुनिया, डेंगू, एवं सर्दी जुकाम के उपचार में किया जा रहा है। इस अध्ययन से हम कह सकते है कि भरतपुर ज़िले की जलवायु एवं भौगोलिक वातावरण औषधीय पौधों के उत्पादन के लिए अनकूल है अतः भरतपुर जिले में इन पौधों के उत्पादन को महत्व दिया जाना चाहिए ताकि जिले में रोगों की रोकथाम के साथ साथ आर्थिक विकास भी हो सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. औषधीय पौधे, सुधांशु कुमार जैन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. चमत्कारिक जड़ी बूटियाँ, डॉ. उमेश पाण्डे।
3. प्रकृति द्वारा स्वास्थ्य मेवे एवं औषधीय पौधे, डॉ. राजीव शर्मा।
4. दिव्य औषधीय सुगन्धित एवं सौदर्यीकरण पौध, दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट।
5. A Hand Book Of Medicinal Pant] Narayan Dass Prajapati] Dr- S- S- Purohit] Arun K- Sharma & Tarun Kumar ISBN% 9788177541342 YEAR% 2003
6. Recent Progress in Medicinal Plants] Volume 35% Phytoconstituents and Biochemical Processes ¼9781933699257½% NHBS & JN Govil] Lalit Tiwari-
7. Medicinal Plants of the World ¼9781786393258½% An Illustrated Scientific Guide to Important Medicinal Plants and their Uses% NHBS
8. चिकित्सा भूगोल, डॉ. मुकेश कुमार शर्मा एवं डॉ. स्नेहलता, एम बी पब्लिकेशन, जयपुर 2012
9. पादप परिस्थितिकी, पादप भूगोल एवं जैव सांख्यकीय, प्रो एन एल व्यास इत्यादि, हिमांशु पब्लिकेशन, हिरण मगरी, उदयपुर, राजस्थान।
10. स्वदेशी चिकित्सा, डॉ. चम्बल मल चोरड़िया।
11. Medical Pant Geography, Dr- Sharma M-K-, Rachana Publication, Jaipur 2007

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० बृजेश चन्द्र त्रिपाठी

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, रामा महाविद्यालय, चिनहट, लखनऊ

सारांशिका

प्रस्तुत शोध के माध्यम से माध्यमिक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया। कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों को देखने पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया। विज्ञान एवं कला वर्ग दोनो ही वर्गो की छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों का स्तर छात्रों के अध्यात्मिक मूल्यों से अधिक पाया। इससे विद्यार्थी अपने जीवन में अध्यात्मिक मूल्यों का महत्व समझ पाएगें एवं हम जैसे उच्च आदर्शो से युक्त समाज की कल्पना करते हैं, उस प्रकार के समाज का निर्माण हो सकेगा। विभिन्न प्रकार के अध्यात्मिक मूल्यों जैसे-दया, धर्म, निष्ठा, ईमानदारी, विनम्रता, मित्रता, उदारता, स्नेह इत्यादि का विकास किया जा सकता है।

प्रस्तावना

प्राचीन काल से आधुनिक युग तक जैसे-जैसे देश नें सामाजिक एवं आर्थिक तरक्की की है, वैसे-वैसे समाज में मूल्यों का ह्रास देखने को मिला है, जिसके फलस्वरुप में व्यक्तियों का नैतिक पतन होता जा रहा है। मूल्य ही वह आधार है, जिस पर मनुष्य अपने जीवन का दृष्टिकोण बनाता है। यह ही मानव जीवन का अर्थ, उच्चता तथा श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। अत: मूल्यों के आधार पर व्यक्ति के वर्तमान और भविष्य के अनुमानित गव्यात्मक एवं परिवर्तनशील होते हैं। जो परिस्थिति एवं समय के अनुसार बदलते रहते हैं। व्यक्ति के ऐसे सामान्य व्यवहार जो जीवन को एक दर्शन के रुप में जीने के लिए प्रेरित करते हैं, अध्यात्मिक मूल्य कहलाते हैं। मूल्य व्यक्ति के मानवीय आचरण तथा व्यवहार का मापदण्ड होते हैं। इनका आधार मनुष्य के अनुभव, सामाजिक संस्कृतियाँ एवं सामाजिक परम्पराएँ होती हैं। मानव के जीवन में अध्यात्मिक मूल्यों का बहुत अधिक महत्व है। उसके जीवन का प्रत्येक कार्य किसी न किसी अध्यात्मिक मूल्य से सम्बन्धित होता है। यदि बालक का पालन पोषण एवं शिक्षा उत्तम वातावरण में हुई है, जहाँ उच्च नैतिक मूल्य जीवन के लक्ष्य प्रतिपादित होते हैं, तो वह उन्हे ही अपने अन्तर में आत्मसात् कर लेता है, और यदि ऐसा नहीं है तो वह किसी भी अध्यात्मिक मूल्यों को ग्रहण नहीं कर पाता या निम्न श्रेणी के अध्यात्मिक मूल्यों को अपने जीवन का आधार मान लेता है। अध्यात्मिक मूल्यों की श्रेष्ठता निर्धारित करने में तथा उन्हें आत्मसात् करने में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है। अध्यात्मिक मूल्य व्यक्ति में जन्म से विद्यमान नही होते हैं। ये वे अनुभव हैं जो समय के साथ-साथ बढ़ते जाते हैं। ये मानव व्यवहार को निर्देशित करते हैं तथा सत्य, असत्य में अन्तर करने में सहायता करते हैं। आज बालक में ऐसे अध्यात्मिक के विकास की आवश्यकता है जो उसके लिए, समाज के लिए तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए लाभकारी हो। कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी इस बात पर बल दिया कि छात्रों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाना चाहिए। जान डीवी (1975) के अनुसार- "मूल्यों

का सम्बन्ध भीतरी पसन्द के साथ होता है, फिर भी प्रत्येक पसन्द के साथ नहीं होता, बस केवल उनके साथ होता है, जिसे निर्णय की मान्यता मिली होती है। यह सम्बन्ध उस परीक्षा के पश्चात होता है जिस पर पसन्द की गई वस्तु पर निर्भर करती है।"

अध्यात्मिक मूल्यों के विभिन्न स्त्रोतः किसी भी समाज की धारणाएँ, मान्यताएँ, आदर्श एवं उच्चतर आकाक्षाएं ही वहाँ के जीवन मूल्यों का सृजन करती है, और ये देश, काल व परिस्थिति सापेक्ष होती है।संस्कृति एक मानव समूह या समुदाय की जीवन शैली होती है। यह उनकी समान विरासत होती है। यह मानव जीवन की आवश्यकताओं को दी गयी भौगोलिक परिस्थितियों में कैसे पूरा करें, उसके समाधान प्रदान करती है।

धर्मः प्रत्येक धर्म अपने अनुयायियों के लिए विशेष मूल्यों की प्रस्तावित किए हुए हैं, यथा-**हिन्दू धर्म** में आत्मा, भगवान, कर्म-पूनर्जन्म के सिद्वान्त में विश्वास करना, विविधता में एकता को मानना, सहनशीलता, दया, अवतारवाद, जाति-प्रथा, भाग्यवादिता, मोक्ष-प्राप्ति, अतिथि सत्कार प्रमुख अध्यात्मिक मूल्य **हैं। बौद्ध धर्म** में अष्ट मार्ग पर चलना, इच्छाएँ न रखना, अहिंसा, यज्ञ-कर्म काण्ड न करना, जाति भेद न मानना, अहिंसा, ईश्वर को न मानना प्रमुख अध्यात्मिक मूल्य है। **जैन धर्म** में जाति भेद न मानना, अहिंसा, ईश्वर को न मानना प्रमुख मूल्य है। ईसाई धर्म में प्रेम, आशावाद, सज्जनता, एक पत्नी/पतिव्रत होना कृतज्ञ होना, सहयोग व दया प्रमुख अध्यात्मिक मूल्य है। **सिख धर्म** में नाम-स्मरण, भजन-कीर्तन करना, सामुदायिक एकता रखना, गुरु ग्रन्थ साहिब को ही गुरु मानना, **इस्लाम धर्म** में एक ही ईश्वर को मानना, समानता, मूर्ति पूजा को न मानना, गरीबों को दान देना, व्रत करना, हज करना, सहानुभूति करना, सच्चाई प्रमुख अध्यात्मिक मूल्य हैं। कुरान और हदीस ग्रन्थों में इस्लामी मूल्यों को विषद रुप से उल्लेख/वर्णन मिलता है। भारतीय जनजातियों के धर्म में स्त्री-पुरुषों में समानता, स्वतन्त्रता, कर्मठता, पूर्वज पूजा, बलि आदि अध्यात्मिक मूल्य है।

दर्शनः हम जानते हैं कि कई प्रकार के दर्शन फले-फूले हैं, और आज प्रचलित है। यथा-आदर्शवाद, प्रकतिवाद, प्रयोजनवाद, मानववाद, आदि। उनमें से प्रत्येक दर्शनशास्त्र नें कई विशेष अध्यात्मिक मूल्यों, आदर्शो तथा प्रतिमानों पर बल दिया है। वे उसके अध्यात्मिक मूल्य हैं।

साहित्यः भक्ति साहित्य से अध्यात्मिक, धार्मिक व नैतिक मूल्य निकलते हैं। वीर साहित्य से शूरवीरता, देशभक्त, स्वदेश के लिए प्राणों का त्याग करना, रक्त की पवित्रता को बनाए रखना, स्वतन्त्रता, प्रेम आदि मूल्य उजागर होते हैं। श्रंगार प्रधान साहित्य से कामुलता, विलासिता, आनन्द, सौन्दर्य सम्बन्धी, उपभोगवादी मूल्य निकलते है।

विज्ञानः विज्ञान नें वस्तुनिष्ठा, तर्क, कारण-परिणाम सम्बन्ध, परिश्रम, लगन, अन्धविश्वास का त्याग, नए विचारो का स्वागत, प्रगति, परीक्षा/प्रयोग, सत्यता के मूल्यों को बढ़ाया और प्रसारित किया है। बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी विज्ञान की शताब्दीयां हैं, जिनमें अनेकानेक वैज्ञानिक हुए हैं, जिन्होनें इन वैज्ञानिक मूल्यों को दिया है, जिसमें मानवता को अन्धविश्वासों, अतार्किकता व पिछड़ेपन से छुटकारा मिला है।

संविधानः प्रत्येक देश का संविधान उन आदर्शो का उल्लेख करता है, जिनके अनुसार राज्य को जनता के हित, विकास व प्रगति के लिए कार्य करना होगा, जिनसे न्याय व्यवस्था कार्य करेगी, जो सभी के लिए पथ-प्रदर्शक कार्य व्यवहार के प्रतिमान होंगे। स्वतन्त्र भारत के संविधान में स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र, समाजवाद, सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्षता, नागरिको के समान आधार, नागरिकों के समान कर्तव्य, प्रमुख आदर्श या मूल्य हैं, जिनके अनुसार राज्य, संसद, न्यायपालिका तथा जनता को व्यवहार व कार्य करना आवश्यक है। भारतीय संविधान धर्म निरपेक्षता का आदर्श रखता है।

सामाजिक प्रथाएँ/परम्पराएँः प्रत्येक समाज का अपना ढ़ाचा होता है, जो प्रजातियों, धार्मो, जातियों, वर्गों, राजनैतिक समुदायों, ग्रामीण शहरी लिंगभेद, आदि सामाजिक स्तरणों से बनता है। जिनके अनुसार उनके अलग-अलग प्रकार के विविध, अध्यात्मिक मूल्य होते हैं।

इतिहासः इतिहास में जो प्रमुख घटनाएँ घटित हुई हैं, उनसे कई महत्वपूर्ण अध्यात्मिक मूल्य निकलते हैं, समाज के लोगों के लिए अनुकरणीय आदर्श बन जाते हैं, और वे उन आदर्शों को पालने के लिए प्रेरित होते हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का मूल वैदिक साहित्य अर्थात वैदिक संहिताओं, ब्राम्हणों आरण्यकों तथा उपनिशदो में खोजा जा सकता है। वास्तव में, उक्त रचनाएँ शिक्षा

पद्धति की ही उपज हैं। जिसकी जानकारी उनसे मिलती है। इस पद्धति की मुख्य लक्ष्य मस्तिष्क का प्रशिक्षण, ज्ञान के साधन के रुप में हैं न कि इसे केवल वस्तुपरक जानकारी प्रदान करना। प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा पद्धति नें मनुष्य को उसके ज्ञानोदय के लिए तैयार करने के लिए प्रयास किए है।

इस देश में अनेक महान विद्धान और रहस्यवादी संत हुए है। इनमें शंकराचार्य (नवीं शताब्दी ईसवी), रामानुजाचार्य (1137 ईसवी), संत ज्ञानेश्वर (1271 से 1296 ईसवीं), कबीर (1440 से 1518 ईसवी), गुरुनानक (1469 से 1539 ईसवी), गोस्वामी तुलसीदास (1532 से 1623 ईसवी) और कई अन्य संतो नें अध्यात्मिकता से प्रेरित होकर जनता के साथ सीधो सम्पर्क से एक नई शैक्षिक जाग्रति पैदा की। इस जाग्रति नें मूल्य बोध के क्षेत्र में नव चिन्तन का द्वार खोल दिया। तक्षशिला, नालन्दा, मिथिला, अवन्ती, पुरी, बल्लभी विक्रमशिला और कुछ अन्य चिन्तन के केन्द्रों नें सुदूर-पूर्व और महाद्वीप के अन्य भागों से ज्ञान के जिज्ञासुओं की अपनी और आकृष्ण किया।

अध्यात्मिक मूल्यों की विशेषताएँ

अध्यात्मिक मूल्य अपने मूल रुप में नैतिक नियम ही होते हैं, पर इन्हे व्यक्ति अपने आप स्वीकार करता है। अतः व्यक्ति स्वतः अपनी आन्तरिक शक्ति से संचालित होकर मूल्यों का पालन अपनी आन्तरिक शक्ति से संचालित होकर मूल्यों का पालन करता है। अध्यात्मिक मूल्यों की कुछ विशिश्ठताएँ इस प्रकार हैं:

अमूर्तता: अध्यात्मिक मूल्य अमूर्त सम्प्रत्यय है, इनका सम्बन्ध मनुष्य के अन्तर्मन से होता है।

समाज–स्वीकृत: अध्यात्मिक मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत आदर्शो, सिद्धान्तों, नैतिक नियमों व व्यवहार प्रतिमानों से सम्बद्ध होते हैं। समाज द्वारा अस्वीकृत व्यवहार कभी भी अध्यात्मिक मूल्य नहीं बन सकते।

व्यक्ति द्वारा चयनित: समाज में अनेक आदर्श विश्वास, नियम व व्यवहार होते हैं। व्यक्ति इन सबको बराबर का महत्व नहीं देता। किसी को कम महत्व देता है, किसी को ज्यादा। किसी को बिल्कुल भी नहीं स्वीकारता है। इस प्रकार व्यक्ति स्वयं अपनें अध्यात्मिक मूल्यों का चयन करता है।

व्यवहार नियन्त्रक: अध्यात्मिक मूल्य व्यक्ति को नियन्त्रित करते हैं, उनका मार्गदर्शन करते हैं। व्यक्ति अपने अध्यात्मिक मूल्यों के अनुसार ही व्यवहार करता है।

मानव के दीर्घकालीन अनुभवों के परिणाम: अध्यात्मिक मूल्यों का निर्माण एक दिन में नही होता। समाज दीर्घकाल तक जब किसी विश्वास आदि पर स्थिर रहता है, तब वे अध्यात्मिक मूल्य का रुप धारण कर व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमान बन जाते हैं।

परिवर्तनशील: अध्यात्मिक मूल्य सदैव स्थिर नहीं रहते हैं। ये परिवर्तनशील हैं। व्यक्ति अपनें अनुभवों के आधार पर इनमें परिवर्तन कर लेता है। समाज भी गतिशील है। नई परिस्थितियाँ नए मूल्यों को जन्म देती हैं। व्यक्ति उनमें से अपनी इच्छाओं के अनुरुप नए मूल्यों को स्वीकार कर लेता है।

समाज की पहचान: किसी भी समाज के मूल्य उस समाज की पहचान होते हैं। इसलिए हर समाज अपनें मूल्यों की रक्षा करना चाहता है। जैसे-सत्यम, शिवम, सुन्दरम, भारतीय समाज की पहचान हैं। और इनकी रक्षा के लिए प्रत्येक भारतीय करबद्ध है।

सामाजिक अध्यात्मिक मूल्य: ये मनुष्य के सामाजिक व्यवहार को निर्देशित करते हैं-यथा भ्रातत्व, सहयोग आदि।

सांस्कृतिक अध्यात्मिक मूल्य: ये अध्यात्मिक मूल्य संस्कृति को जीवित रखनें में सहायक होते हैं। लोक कल्याण की भावना वसधौव कुटूम्बकम की भावना, कर्तव्यपरायणता हमारी भारतीय संस्कृति के अमर अध्यात्मिक मूल्य है।

धार्मिक अध्यात्मिक मूल्य: प्रत्येक धर्म के कुछ मूलभूत आदर्श व आचार के प्रतिमान होते हैं। उनका पालन उस धर्म के अनुयायियों के लिए आवश्यक होता है। जैन धर्म में अहिंसा आधारभूत मूल्य है, जो सभी जैनियों के व्यवहार को नियंत्रित करता है। इन्हीं धार्मिक मूल्यों में नैतिक मूल्य भी समाहित है।

आर्थिक अध्यात्मिक मूल्य: आर्थिक अध्यात्मिक मूल्य मनुष्य को आर्थिक क्षेत्र में दिशा–निर्देश देते हैं। ये अध्यात्मिक मूल्य एक कसाई के लिए अलग होते हैं, और एक मन्दिर में नियुक्त पुजारी के लिए अलग, पर दोनो आर्थिक अध्यात्मिक मूल्यों के क्षेत्र में आते हैं क्योंकि वे व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन से सम्बन्धित होते हैं।

राजनैतिक अध्यात्मिक मूल्यः वे अध्यात्मिक मूल्य व्यक्ति के राजनैतिक व्यवहार को निर्देशित करते हैं। राजनीति के क्षेत्र में कोई किसी का भी शत्रु नहीं होता और सत्ता के लिए साम-दाम, दण्ड-भेद किसी का भी प्रयोग जायज माना जाता है। इस दृष्टि से राजनीति के क्षेत्र में "अध्यात्मिक मूल्य" जैसा कुछ भी नहीं हो सकता है। अपना लाभ व अपनी महत्वाकांक्षा की प्राप्ति किसी भी साधन द्वारा करना ही इकलौता राजनैतिक अध्यात्मिक मूल्य होता है।

राष्ट्रीय अध्यात्मिक मूल्यः राष्ट्रीय अध्यात्मिक मूल्यों का महत्व व प्रयोग आधुनिक युग की देन है। भारत जैसे देश के लिए इन अध्यात्मिक मूल्यों का बहुत महत्व है। ये राष्ट्र के नागरिकों के व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं।

प्रस्तुत शोध में अध्यात्मिक मूल्य से तात्पर्यः प्रस्तुत शोध में अध्यात्मिक मूल्य का तात्पर्य व्यवहार करनें के ढ़ंग से लिया गया है। इस शोध में अध्यात्मिक मूल्य के निम्नलिखित प्रकारों को सम्मिलित किया गया है:-धार्मिक अध्यात्मिक, मूल्यए नैतिक, अध्यात्मिक मूल्य, सामाजिक अध्यात्मिक मूल्य, नेतृत्व अध्यात्मिक मूल्य तथा स्वास्थ्य अध्यात्मिक मूल्य।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

अनुसंधान की समस्या से संबंधित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञानकोशो, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबंधे एवं अभिलेखों आदि से है। अतः संबंधित साहित्य के अध्ययन के बिना शोधकार्य का कार्य लक्ष्यहीन प्रक्रिया से सादृश्य होगा।

पाण्डेय ए0ए0 (1977) कम्परेटिव स्टडी ऑफ वैल्यूज बिटवीन इन्टलेक्चुअल ब्राइट एण्ड एवरेज हाईस्कूल इण्डियन स्टूडेण्टस में इन्होनें बुद्धिमान एवं सामान्य हाईस्कूल स्तर के भारतीय किशोरों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया। परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि बुद्धिमान छात्रों नें सामान्य छात्रो की तुलना में धार्मिक, सैद्धान्तिक, आर्थिक मूल्यों में अधिक अस्थितरता थी।

उपाध्याय एस0एन0, मुखर्जी एम0 (1979) ने अपने शोध "वैल्यूज सिस्टम एक्रॉस इन इनकम सर्वेक्षण द्वारा पाँच तरह की आय वाले समूह पर उनके मूल्यों से भिन्नता का अध्ययन किया। विभिन्न समूहो नें अंतिम एवं साधन मूल्य के महत्वों के आध ार पर विभिन्नता प्रदर्शित की। अंतिम मूल्यों के अर्न्तगत आत्मसम्मान को सर्वोच्च फिर राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अंतिम स्थान उत्तेजना पूर्ण जीवन को दिया गया। साधन मूल्यों के अन्तर्गत ईमानदार, आत्मनियंत्रण को सर्वोच्च स्थान दिया गया तथा ताक्रिकता व काल्पनिकता को निम्न सीान दिया गया। विभिन्न आय समूहो नें जिन मूल्यों नें वास्तविक भिन्नता प्रदर्शित की थी, वे थे-आन्तरिक, सौन्दर्य, मोक्ष, आत्म सम्मान, बुद्धि अंतिक मूल्य में तथा साधन मूल्य में साहस, स्वतन्त्रता, क्षमता, आत्म नियंत्रण।

कुमार सुबोध (1987) वैल्यू पैटर्न ऑफ हाई स्कूल स्अूडेन्ट एण्ड दियर टीचर्स के अध्ययन में इन्होनें हाई स्कूल छात्रों एवं उनके अध्यापकों के मूल्यों का अध्ययन किया। उन्होनें 1000 छात्रों एवं 206 अध्यापकों पर रॉकीच मूल्य सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन किया जिसमें यह परिणाम पाया कि छात्रों के मूल्य उनकें अध्यापकों की अपेक्षा अधिक निम्नवत होते हैं।

भारती, प्रीति माथुर, प्राची (2000) इस शोध का उद्देश्य रोजगार का महिलाओं के विभिन्न मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। न्यादर्श के रुप में कुल 65 महिलाओं (35 सेवारत तथा 30 असेवारत) की मूल्य प्रश्नावली को प्रकाशित किया। मध्यमान के अंतर की सार्थकता की जांच के लिए टी-परीक्षण लगाया गया। प्राप्त परिणामों से ज्ञात हुआ कि सेवारत तथा असेवारत महिलाओं के विभिन्न महिलाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे यह पता चलता है कि मूल्य एक व्यक्तिगत गुण हैं जो परिस्थिति के चरों के अनुसार नहीं बदलता है।

डॉ. अर्चना कपूर (2000) ने पारिवारिक परिवेश का बालक एवं बालिकाओं के मूल्य विकास पर प्रभाव अध्ययन के फलस्वरुप यह निष्कर्ष निकला कि सकारात्मक पारिवारिक परिवेश में रहने वाले बालक एवं बालिकाओं के आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, परिवार प्रतिष्ठा मूल्य तथा सुखवादी मूल्य अधिक विकसित पाये गए। दोनो पारिवारिक परिवेश में बालकों में धार्मिक एवं प्रभुत्ववादी मूल्य अधिक है जबकि बालिकाओं में सामाजिक, प्रजातांत्रिक एवं ज्ञानात्मक मूल्य अधिक विकसित पाए गए। सकारात्मक परिवेश की बालिकाओं में स्वास्थ्य मूल्य अधिक विकसित था।

पारुल भल्ला और अजय पाण्डेय (2012) माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों का एक अध्ययन किया और पाया कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों के मध्य पाये जाने वाले अन्तरों को ज्ञात करनें के लिए तथा उनमें व्याप्त विभिन्नता

का पता लगाने के लिए और दोनो वर्गो के विद्यार्थियों में व्याप्त विभिन्न मूल्यों को ज्ञात करनें के लिए यह अध्ययन आवश्यक है। इसलिए माध्यमिक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों के मध्य अन्तर ज्ञात करनें के लिए यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

मानव जीवन में अध्यात्मिक मूल्यों का महत्व

अध्यात्मिक मूल्यों के अनुकूल आचरण करनें के लिए उनका ज्ञान जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है उसे अपनें भावों में सम्मिलित करना। आज के युग में व्यक्तियों कों मूल्यों का ज्ञान है, पर वे उसे अपनी भावनाओं से जोड़कर आचरण में नहीं उतारते हैं।प्रत्येक समाज के प्राय: अपनें कुछ अध्यात्मिक मूल्य एवं आदर्श होते हैं, जिन्हें वह उचित व वांछनीय मानते हैं। समाज अपनी नई पीढ़ी को उन्हें हस्तांतति करनें का प्रयास करता है।

अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अध्यात्मिक मूल्य हमारे जीवन का आधार है। वह प्रेरणा व सत्य जिनके द्वारा विभिन्न विकल्पों में सही विकल्प, सही लक्ष्य और सही मार्ग, उचित भाव, और विचार चुन पाना व्यक्ति के लिए सम्भव है।व्यक्ति के आंतरिक अर्न्तद्वन्दों के समाधान में और सही लक्ष्य के चुनाव में अध्यात्मिक मूल्य की भूमिका महत्वपूर्ण है।

अध्यात्मिक मूल्य एवं शिक्षा

अध्यात्मिक मूल्य से सम्बन्धित शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं:

संज्ञानात्मक उद्देश्य के अनुसार शिक्षार्थी को शिक्षण की विषयवस्तु का ज्ञान दिया जाता है। भावात्मक उद्देश्य के अनुसार शिक्षार्थी ज्ञान पर विचार कर उसे अपनें अन्तर्मन में स्थान देता है। यह ज्ञान अब उसकी भावनाओं से जुड़ जाता है। क्रियात्मक उद्देश्य के अनुसार व्यक्ति उसे अपनें व्यवहार में स्थान देने लगता है। जब शिक्षार्थी क्रियात्मक प्रक्रिया तक पहुँच जाता है, तो उसका व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। इसी के साथ शिक्षा प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। परिवार के बाद समुदाय मुल्यों के पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परन्तु स्वस्थ अध्यात्मिक मूल्यों के विकास के लिए विद्यालय का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा की दृष्टि से जिन अध्यात्मिक मूल्यों का विकास परिवार और समुदाय नहीं कर पाते हैं, उन अध्यात्मिक मूल्यों का विकास विद्यालय में शिक्षा द्वारा किया जा सकता है।जब हम अपनी संस्कृति व मूल्यों पर विचार करते हैं तो अत्यन्त दु:ख होता है, कि अध्यात्मिक मूल्यों की दृष्टि से हमारा दिन-प्रतिदिन पतन होता जा रहा है। आज हमारे सामनें बहुत ही विषम परिस्थितियाँ हैं, जैसे–अध्यात्मिक मूल्यों के प्रति किसी समाज के वे विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त नैतिक नियम, और व्यवहार मापदण्ड, जिन्हें समाज के व्यक्ति महत्व देते हैं, और उसमें उसका व्यवहार नियन्त्रित एवं निर्देशित होता है, उस समाज एवं उसके व्यक्तियों के मूल्य होते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. माध्यमिक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्र-छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना:

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. विज्ञान वर्ग तथा कला वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर सार्थक अन्तर नहीं है।
2. कला वर्ग के छात्र तथा छात्राओं में अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर सार्थक अन्तर नहीं है।
3. विज्ञान वर्ग के छात्र तथा छात्राओं में अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन का परिसीमन

शोध में लखनऊ में स्थित यू0 पी0 बोर्ड से मान्यता प्राप्त दो इण्टरमीडिएट विद्यालयों में अध्ययनरत 16-18 आयु वर्ग के छात्र-छात्राओं के कला वर्ग के 25 छात्रों (25 कला वर्ग एवं 25 विज्ञान वर्ग) एवं 25 छात्राओं (25 कला वर्ग 25 विज्ञान वर्ग) को लिया गया है।

शोध अध्ययन विधियां

शैक्षिक अनुसंधान वह प्रक्रिया है जो शैक्षिक परिस्थितियों में एक व्यवहार सम्बन्धी विज्ञान के विकास की ओर अग्रसर होती है। अनुसंधान का सुचारु और व्यवस्थित रुप से पूर्ण करनें के हम अनेक प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।सर्वेक्षण अध्ययन या अनुसंधान से अभिप्राय उस वर्णनात्मक या नैतिक सर्वेक्षण अनुसंधान से होता है जिसमें अनुसंधान कर्ताओं द्वारा व्यक्तियों के किसी विशेष समूह संस्थानों या प्रणालियों के चर या विशेषताओं को जानने और वर्णन करने में सर्वेक्षण तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

जनसंख्या: जनसंख्या का अर्थ अध्ययन की इकाईयों के समूह के रुप में दिया गया है। अध्ययन की इकाईयाँ मनुष्य, पशु, कोई वस्तु, कोई परीक्षण या कोई प्रयोग कुछ भी हो सकता है। "समग्र" उन समस्त लोगों, वस्तुओं अथवा तथ्यों का समूह है जो किसी परिभाषित व पूर्व निश्चित विशेषताओं के क्षेत्र में आते हो। प्रस्तुत शोध में जनसंख्या के रुप में लखनऊ जनपद के माध्यमिक विद्यालयों के 11वीं तथा 12वीं कक्षा में अध्ययनरत (कला एवं विज्ञान वर्ग) विद्यार्थियों को लिया गया है।

न्यादर्श: प्रत्येक अनुसंधान में न्यादर्श का विशेष महत्व होता है। न्यादर्श के बिना कोई शोध कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। न्यादर्श के बिना कोई अनुसंधान सम्भव नहीं है। अनुसंधान का कार्य सम्पूर्ण जनसंख्या पर सम्पन्न करना सम्भव नहीं होता है। इसके लिए लखनऊ जनपद के माध्यमिक विद्यालयों के 50 छात्रों (25 कला वर्ग 25 विज्ञान वर्ग), 50 छात्राओं (25 कला वर्ग 25 विज्ञान वर्ग) का चयन किया गया है।

शोध उपकरण का वर्णन

फौजिया नजम, अकबर हुसैन तथा एस0एम0 खान द्वारा निर्मित अध्यात्मिक मूल्य मापनी प्रपत्र (ये 27 शब्द अध्यात्मिक मूल्य से 5 व्यवहारिक मूल्यों से सम्बन्धित मूल्य है।) का प्रयोग अध्यात्मिक मूल्य मापन हेतु किया गया है। अध्यात्मिक मूल्य मापनी में प्रत्येक कथन के लिए 5 विकल्प दिये गए हैं। 27 प्रश्नों के लिए पूर्णत: सहमत के 5, सहमत के लिए 4, अनिश्चित के लिए 3, असहमत के लिए 2, तथा पूर्णत: असहमत के लिए 1 अंक प्रदान किए जाएगें।

प्रदत्त संकलन

प्रदत्तों के संकलन के लिए यादृच्छिकृत वर्गीकरण विधि द्वारा विद्यार्थियों का चयन किया गया। तत्पश्चात कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों को अपने शोध से सम्बन्धित जानकारी दी। तत्पश्चात उनको अध्यात्मिक मूल्य मापनी प्रपत्र दिया गया। अध्यात्मिक मूल्य मापनी से सम्बन्धित निर्देश भी दिये उनसे यह भी अनुरोधा किया कि प्रपत्र की शीघ्रता शीघ्र भरकर वापस कर दें, तथा भरे हुए प्रपत्रों को संकालित कर लिया गया।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ

प्रस्तुत शोध में विद्यार्थियों के मध्य अध्यात्मिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के माध्यमिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन उनके मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात की सहायता से किया गया।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

सांख्यिकीय आकड़ों के संकलन, वर्गीकरण, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण तथा विवेचन से सम्बन्धित होता है। मापन तथा मूल्यांकन के क्षेत्र में जो सांख्यिकीय के ज्ञान का अत्यन्त महत्व है। मापन तथा मूल्यांकन के क्षेत्र में जो सांख्यिकी एक अत्यन्त विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

तालिका संख्या-1: माध्यमिक स्तर के कला तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों का अध्ययन

संख्या	कला वर्ग मध्यमान	विज्ञान वर्ग मानक विचलन	टी परीक्षण संख्या	परिणाम मध्यमान	मानक विचलन	शून्य परिकल्पना अस्वीकृत
50	106.28	9.36	50	101.36	8.19	2.81

सार्थकता स्तर (0.05) परसार्थक

तालिका सं.-1 तालिका के अध्ययन से पता चलता है कि अध्यात्मिक मूल्यों के लिए कला वर्ग तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों का टी अनुपात 2.81 है, जो सार्थकता स्तर 0.05 पर सार्थकता स्तर पर सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। कला वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्य विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्य विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों से अधिक कारण पाये जाने का कारण विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो जाता है। जिसके कारण वह हर बात वैज्ञानिक रुप से सोचते हैं। इस प्रकार कला वर्ग के विद्यार्थियों का अध्यात्मिक मूल्य विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्य से अधिक पाया गया है।

तालिका संख्या-2: माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्र तथा छात्राओं में अध्यात्मिक मूल्यों का अध्ययन

संख्या	कला वर्ग छात्र मध्यमान	कला वर्ग छात्राएं मानक विचलन	टी परीक्षण संख्या	परिणाम मध्यमान	मानक विचलन	शून्य परिकल्पना अस्वीकृत
25	103.16	8.15	25	109.40	9.48	**2.44**

सार्थकता स्तर (0.05) पर सार्थक

उपरोक्त तालिका संख्या-2 में कला वर्ग के छात्र एवं छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों के कुल प्राप्तांको के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात को प्रदर्शित किया गया है तथा कला वर्ग के छात्र एवं छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों के मध्यमानों की तुलना करनें पर टी-अनुपात 2.44 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक स्तर पाया गया। अत: यह कह सकते हैं कि कला वर्ग के छात्र एवं छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों में छात्रों की तुलना में अध्यात्मिक मूल्य अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है। कला वर्ग के छात्राओं में अध्यात्मिक मूल्यों का अधिक पाए जाने के कारण हो सकते हैं, उनमें दया, संस्कार, विनम्रता, मार्यादा का पालन करना इत्यादि गुण छात्रों की तुलना में अधिक होते हैं।

तालिका संख्या-3: माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्र तथा छात्राओं में अध्यात्मिक मूल्यों का अध्ययन

संख्या	विज्ञान वर्ग छात्र मध्यमान	विज्ञान वर्ग छात्राएं मानक विचलन	टी परीक्षण संख्या	परिणाम मध्यमान	मानक विचलन	शून्य परिकल्पना अस्वीकृत
25	98.24	7.56	25	104.28	8.25	2.64

सार्थकता स्तर (0.05) पर सार्थक

उपरोक्त तालिका संख्या-3 से ज्ञात होता है कि विज्ञान वर्ग के छात्र एवं छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों के मध्यमानों की तुलना करने पर टी परीक्षण 2.64 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 पर सार्थक अन्तर पाया गया। इससे ज्ञात होता है कि विज्ञान वर्ग की छात्राओं में छात्रों की तुलना में अध्यात्मिक मूल्य अधिक पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है। इसका प्रमुख कारण विज्ञान वर्ग के छात्रों में भावनात्मकता का स्तर जैसे: संस्कार, विनम्रता इत्यादि छात्राअें की तुलना में कुछ कम होता है।

अध्ययन के निष्कर्ष

कला वर्ग तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर है। कला वर्ग के छात्र एवं छात्राओं के मध्य अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर है। छात्राओं में छात्रों की तुलना में अध्यात्मिक मूल्यों का स्तर अधिक है। विज्ञान वर्ग के छात्र एवं छात्राओं के मध्य अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर है। छात्राओं में छात्रों की तुलना में अध्यात्मिक मूल्यों का स्तर अधिक प्राप्त हुआ। विज्ञान वर्ग तथा कला वर्ग दोनों ही वर्गो में छात्राओं के अध्यात्मिक मूल्यों का स्तर अधिक है। कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर है। अत: उनके पाठ्यक्रम में निहित अध्यात्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर है।

शैक्षिक महत्व: अध्यात्मिक मूल्यों के अध्ययन के फलस्वरुप शैक्षिक प्रशासन शिक्षण संस्थाओं में अच्छे वातावरण का निर्माण कर सकेगें, जिससे सभी शिक्षक अपना कार्य लगन से कर सकेगें। आज तक समाज नैतिक पतन की ओर अग्रसर है, क्योंकि समय नहीं पाते कि किस मूल्य को प्राथमिकता दें किसे नहीं। ऐसे समय में यदि परामर्शदाता को अध्यात्मिक मूल्यों का उचित ज्ञान है तो वह विद्यार्थियों का उचित मार्ग निर्देशित कर सकता है। सामाजिक मूल्य के विकास द्वारा विद्यार्थियों में दया, सहानुभूति एवं सहयोग जैसी भावनाओं का विकास हो सकेगा। जिससे उत्तरदायित्व निर्वाह करनें की क्षमता भी उत्पन्न होगी। अध्यात्मिक मूल्यों के अध्ययन के आधार पर विद्यार्थी जीवन में ही उनमें अच्छे नागरिक बनने के मूल्यों का विकास किया जा सकता है, जिससे वे भावी जीवने में एक अच्छे व सुसंस्कृत नागरिक बन सकते हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. अस्थाना, विपिन निधि अस्थाना शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. गुप्ता, एस0पी0, सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. लाल, रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक सिद्धान्त, रस्तोगी प्रकाशन मेरठ
4. पाण्डेय, राम शकल, मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य, आर0 लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कालेज, मेरठ।
5. पाण्डेय, राम शकल, करुणा शंकर मिश्र, मूल्य शिक्षण, बिनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. रुहेला, सत्यपाल मूल्य शिक्षा क्या, क्यों, कैसे? अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
7. सिंह मधुरिमा, शुक्ला रमा, शिक्षा के दार्शनिक आधार, आलोक प्रकाशन, लखनऊ, इलाहाबाद।
8. टण्डन उमा, गुप्ता अरुणा, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षण आलोक प्रकाशन, लखनऊ।
9. पाण्डेय, ए0ए0 (1977) "ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ वैल्यूज बिटवीन इन्टलेक्चुअल ब्राइट एण्ड एवरेज हाईस्कूल इण्डियन स्टूडेण्टस" इण्डियन साइकोलाजिकल रिव्यू, वॉल्यूम-15 (2), पेज सं.-35-37
10. उपाध्याय, एस0एन0, मुखर्जी एम0 (1979) "वैल्यूज सिस्टम एक्रॉस इन इनकम लेवल्स" जर्नल ऑफ साइकोलॉजिकल रिसर्ज, वॉल्यू-21 (2, पेज सं.-105-114
11. कुमार, सुबोध (1987) "वैल्यू पैटर्न ऑफ हाई स्कूल स्टूडेन्ट एण्ड दियर टीचर्स" पी0एच0डी0, डिपार्टमेण्ट ऑफ एजूकेशन, लखनऊ यूनिवर्सिटी, लखनऊ

12. भारती, प्रीति माथुर, प्राची, (2000) सेवारत और असेवारत महिलाओं के कुछ मूल्यों का अध्ययन- जर्नल ऑफ साइको कल्चरल डाइमेंन्शन, वाल्यूम 16, अंक-1, अप्रैल 2000.
13. कपूर, डॉ. अर्चना (2009) पारिवारिक परिवेश का बालक एवं बालिकाओं के मूल्य विकास पर प्रभाव-भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका वर्ष 28, अंक-2, जुलाई-दिसम्बर 2009
14. भल्ला, पारुल और पाण्डेय, अजय (2012) व्यवसायिक समर्पण और मूल्य तंत्र-माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों का एक अध्ययन-भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष-31, अंक-1, जनवरी-जून 2012

प्राचीन भारत में पशुपालन-विधि एवं उपसंहार : एक अवलोकन

डॉ० केशव कुमार रंजन

तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

भूमिका

प्राचीन भारत में पशुपालन के अध्ययन के लिए हमें विभिन्न प्रकार के साधान-स्त्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है। साहित्य में कई बातों का उल्लेख हुआ है और अनेक प्रसंगों में पशुओं से सम्बन्धित बातें वर्णित हैं। हम इन साधान-स्त्रोतों का अध्ययन करें, इसके पहले यह जान लेना आवश्यक है कि वर्त्तमान शोध विषय के अध्ययन काल में कैसी ऐतिहासिक स्थिति थी और कौन-कौन से आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक तत्त्व थे जिनके कारण पशुपालन का विकास हुआ या पशुओं के प्रति धारणा में परिवर्त्तन हुए।

पशुपालन के अध्ययन के लिए यह भी देखना आवश्यक है कि इसका मुख्य क्षेत्र कौन-सा था? पार्श्ववर्त्ती क्षेत्र का विस्तार कहाँ तक था? उन क्षेत्रों में पशुओं के विकास के लिए कौन-सी सुविधाएँ थी? उपर्युक्त दृष्टिकोण से सिन्धु-घाटी का क्षेत्र बहुत ही उपयुक्त था, क्योंकि उस क्षेत्र में कई नदियाँ बहती थी और पर्याप्त वर्षा होने के कारण वहाँ घने वन भी थे। उत्तर-पश्चिम भारत में भी घोड़ों, बकरियों, भेड़ों और ऊँटों के पालन के लिए समुचित जलवायु थी। वैदिक-साहित्य में इस क्षेत्र के पशुओं की बार-बार प्रशंसा की गई है और उन्हें उत्तम कोटि का माना गया है। इनमें सिन्धा के अश्वों, मद्र की गायों और गांधार की भेड़ों के बार-बार उल्लेख मिलते हैं। आर्यों से आगमन के पूर्व भी यह क्षेत्र पशु-पालन का मुख्य था। गंगा-यमुना की घाटी का विशाल क्षेत्र जलवायु की दृष्टि से पशुपालन के लिए सर्वथा उपयुक्त था। घने जंगलों के होने के कारण यहाँ हाथियों, एवं हरिणों की संख्या अधिक थी। आर्य लोग अपने पशुओं के साथ विभिन्न में जाते थे। उत्तर-वैदिक काल में विदेह तक इनका मुख्य क्षेत्र था और पार्श्ववर्त्ती क्षेत्र वे थे जहाँ इनके राज्यों की स्थापना नहीं हुई थी। पर उन स्थानों में ये पशुओं का पालन करने के लिए जाते थे। जातक आख्यानों में हम दक्षिण भारत तक के क्षेत्रों का उल्लेख पाते हैं जहाँ विभिन्न प्रकार के पशुओं का पालन होता था। व्यापारी गांधार से मगध तक अश्व बेचने के लिए जाते थे। मौर्य-युग में पशुपालन के कई केन्द्र थे। कौटिल्य ने सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से यह गिनाया है कि कहाँ के हाथी, अश्व, वृशभ, ऊँट, गायें, भेड़ एवं अज उत्तम होते है।

भारत में जितने भी पालतू पशु हैं उनमें सबसे तेज गति से दौड़ने में अश्व की अपनी विशेष महत्ता है। सिन्धु-घाटी के उत्खननों से हमें किसी भी स्थान से प्राप्त अश्व के मृदभाण्ड पर चित्र या उनकी मूर्त्तियाँ या अस्थि-अवशेष उपलब्ध नहीं हुए हैं, यद्यपि कुछ पुराविद् यह मानते हैं कि सैंधाव लोग अश्वों से परिचित थे।

ऋग्वेद से विदित होता है कि आर्यों ने असुरों एवं दासों के जिन नगरों को धवस्त किये संभवत: वे सिन्धु घाटी के ही नगर रहे होंगे। सिन्धा और पंजाब में आर्यों का असुरों से प्रबल संघर्ष हुआ जिसका प्रभाव पशुपालन पर भी पड़ा। इस समस्या से आर्य लोग बहुत क्षुब्धा और बेचैन थे। सिन्धु घाटी के विशाल क्षेत्र में यह सैनिक संघर्ष दीर्घ अवधि तक चलता रहा जिसके कारण पशुपालन पर भी हम प्रभाव देखते हैं। इन्द्र अपनी कुतिया सरमा को बार-बार पणियों द्वारा चुराई गयी अपनी गायों को पता लगाने के लिए भेजते हैं। आर्यों ने जब सिन्धु-घाटी के विशाल क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया और अपेक्षाकृत शांति की स्थिति बनी तो पशुपालन के लिए समुचित स्थिति उत्पन्न हुई। उनलोगों को न केवल इस क्षेत्र में रहने वाले किरातों और निषादों से ही

युद्ध करने पड़े जो अपना जीवन-यापन आखेट, मछली पकड़ने, आरण्य अन्नों का संग्रह करके सीमित अर्थ में खेती और पशुपालन करते थे अपितु अपने उन लोगों से भी युद्ध करने पड़े जो उन क्षेत्रों में उनसे पहले आ चुके थे। इस ऐतिहासिक वस्तुस्थिति की ओर शतपथ ब्राह्मण में निर्देश किया गया है कि वही विजय की हुई भूमि को अपने अधिकार में रखता है और उसमें विचरण करता है जो स्वयं अपने लोगों एवं शत्रुओं पर विजय पाता है।

यास्क रचित निरुक्त भी पशुपालन के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण साधान-स्रोत है, क्योंकि इसमें विभिन्न शब्दों की व्युत्पत्ति सम्बन्धी व्याख्या की गई है जिनसे शब्दों के अर्थ स्पष्ट होते हैं। अपने पक्ष की पुष्टि के लिए उन्होंने वैदिक मन्त्रों को उद्धृत किया है तथा ब्राह्मण, उपनिषद एवं आरण्यकों से भी उनकी पुष्टि की है। इस संदर्भ में उन्होंने कई पशुओं के नामों की भी व्याख्या की है जिससे उनका अर्थ स्पष्ट होता है पर उन्होंने कभी-कभी कल्पना में अर्थ का अनर्थ भी कर दिया है। अतः पशुओं के नामों की व्युत्पत्ति की व्याख्या सम्बन्धी अध्ययनों में हमें सावधानी बरतनी चाहिए। सामान्यतः यह कहा जाता है कि निरुक्त की रचना यास्क ने पाणिनि से पूर्व की थी। यह अनुमान किया जाता है कि वे 700 से 500 ई. पू0 में रहे होंगे।

पशुपालन-विधि

मानव की भौतिक समृद्धि में पशुओं का विशेष योगदान है। वैदिक ग्रन्थों में पशुपालन की विधि पर पर्याप्त विवरण मिलता है। अवेस्त के अनुसार ईरान में भी पशुओं के पालन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। यह कहा गया है कि उनसे उतना ही काम लेना चाहिए जितना कर सकने में वे सक्षम हैं।

वैदिक सन्दर्भों से इस बात की जानकारी होती है कि भारद्वाज गोत्र के लोग पूषण् की उपासना विशेष रूप से करते थे क्योंकि पशुपालन इनकी जीविका का मुख्य साधन था। पणि लोग उन्हें कष्ट देते थे, अतः वे सुरक्षा के लिए उनकी प्रार्थना करते थे। पूषण् के साथ पशुओं का घनिष्ठ सम्बन्ध इस तथ्य से समझा जा सकता है कि पूषण् का अर्थ है 'पोषण एवं उत्पादक' तथा पशु उत्पादन एवं पोषण के प्रतीक थे।

रुद्र भी पशुओं के संरक्षक देवता है। प्रारंभ में ये कष्टदायक देवता थे जो पशुओं में रोग उत्पन्न कर उन्हें हानि पहुँचाते थे। उनकी प्रार्थना की जाती थी कि वे उन्हें कष्ट न दें। उनके कल्याणार्थ पशु स्वामी उनके नाम से उपवास करता था और उनको प्रसन्न करता था। रुद्र अपने अभिकर्त्ताओं यथा मकड़ों, जीवाणुओं, कुत्तों, श्रृगालों, गिद्धों, मक्खियों एवं काकों के द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट देते थे। वैदिक ग्रन्थों में उनको प्रसन्न कर पशुओं को नीरोग रखने के लिए प्रार्थनाएँ हैं। मूलरूप से रुद्र झंझावात के प्रतीक थे, अतः आकाशीय देवों में उन्हें स्थान दिया गया था। यह माना जाता था कि बिजली की चमक, वज्रपात एवं प्रचण्ड वायु इनके क्रोध के अभिव्यक रूप हैं जिनसे वे मानव और पशु दोनों पर घातक प्रहार करते थे, पर वे उनके रक्षक और स्वामी भी थे। वे रोगों से उन्हें मुक्त करते थे। ज्ञात होता है कि वैदिक आर्यों ने "पशुपति" की धारणा को सिन्धुघाटी के निवासियों से प्राप्त किया क्योंकि वे उनकी आराधाना करते थे जिसकी पुष्टि वहाँ से प्राप्त पशुपति की मुद्रा से होती है। उस पर पशुपति शिव की आकृति खुदी हुई है। सामान्य लक्षण उनके कौतूहलपूर्ण है। उनके मस्तक पर दो श्रृंग हैं। उनके दोनों ओर दो-दो पशु हैं। उनकी दाहिनी ओर हाथी और एक व्याघ्र है एवं बायीं ओर एक गैड़ा और एक भैंस अंकित है। पीठासन के अधोभाग में दो हिरण अंकित हैं। इन पशुओं के साहचर्य से स्पष्ट होता है कि वे आरण्य और ग्राम्य दोनों ही प्रकार के पशुओं के देवता थे। वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य में शिव का वाहन वृशभ वर्णित है जिसका चिन्तण पशुपति के साथ नहीं है। वे हाथी या हिरण या व्याघ्र के चर्म पहनते थे।

अग्नि को भी पशुओं के संरक्षक देवों में एक माना गया है। रात्रि के अंधोरे में यदि पशु भटक जाते थे या चोर उन्हें चुराकर ले जाते थे तो अग्नि की प्रार्थना की जाती थी कि वे उन्हें पशुस्वामी के पास पुनः भेज दें या प्राप्ति में सहायक बनें। एक विशिष्ट प्रकार की प्रार्थना विभिन्न देवों से विभिन्न कार्यों के लिए की जाती थी जैसे उनके खो जाने या घायल होने पर वायु की, जल में डूबने पर वरुण की, सर्पों द्वारा डंसे जाने पर रुद्ध की एवं गर्त्त में गिर जाने पर नृति की।

वैदिक ग्रन्थों में ईला को पशुओं की संरक्षिका देवी कहा गया है। ऋग्वेद में इन्हें नदियों से भी सम्बन्धित किया गया है एवं इन्हें पशुओं की माता कहा गया है। डावसन नेऋ ग्वैदिक ईला को दूध के हविष् के प्रतीक के रूप में माना है। मेकडोनल का भी अभिमत है कि ईला दुग्ध के उत्पादनों यथा नवनीत, दधि एवं घृत का भी प्रतिनिधित्व करती थी, अतः इन्हें नवनीत-हस्ता और

नवनीत पादा कहा गया है। यह विचार प्रकट किया गया है कि ईला अनार्य देवी हैं। हैविट्ज के अनुसार वह अकादियन देवी है जो इर्व से सम्बन्धित थी जो पवित्र साँढ़ था।

पशुओं के पालने के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो उनकी देख-भाल कर सकते थे। वे गोप और गोपाल नाम से जाने जाते थे। जंगली पशुओं और विषैले जीवों से उनकी रक्षा करने का भी भार उन पर था। अत: वे डण्डा हाथ में लिये रहते थे। पशु इसके संकेत पर चलते थे। वे उनकी आदतों से परिचित थे। पशुप भी पशुपालक का द्योतक था। अविपाल भेड़िहारा था। अजपाल बकरे-बकरियाँ चराते थे। अश्वप का पालन करते थे एवं हस्तिप हाथियों का।

पशुओं को चरानेवाले उन पर ध्यान रखते थे। संहिताओं और उत्तरवैदिक ग्रन्थों में इनके द्वारा किये जानेवाले कार्यों पर प्रकाश पड़ता हैं यदि उनकी असावधानी के कारण उनके पशु किसी की फसल की क्षति करते थे तो उसके लिए वे ही उत्तरदायी माने जाते थे। पशु गोपालकों को भी हानि पहुँचाते थे, अत: वे उनके सामने से होकर बिना डण्डा लिये हुए नहीं जाते थे एवं मारने वाले पशुओं से सदा सावधान रहते थे। गोपालकों को भी जंगली पशुओं के खतरों का सामना करना पड़ता था।

धोनुओं के समूह को धानुक कहा जाता था। गाँवभर के पशुओं को चराने के कारण गोप को मासिक-शण्मासिक वृत्ति मिलती थी। गोपाल को आगवीन कहा जाता था। पाणिनि के अनुसार यह वह व्यक्ति होता था जो खोये हुए पशुओं के खोजने के क्रम में उनके प्राप्त हो जाने तक का कार्य करता था। जिस प्रदेश में गायें चरती थीं उसे गोष्पद एवं जहाँ नहीं चरती थीं उसे अगोष्पद कहा जाता था। खोई गायों को ढूँढ़ने वाली क्रिया अनुपदी कहलाती थी। पाणिनि ने तन्तिपाल की चर्चा की है।

मेगास्थनीज के विवरण से विदित होता है कि मौर्यकाल में गोपालकों या पशुपालकों की एक जाति ही बन गयी थी। ये लोग पशुओं को पोसते तथा अन्य लोगों को भारवाहक पशुओं को भाड़े पर देते या उनके हाथ उन्हें बेचते थे। ये पर्यटन करते रहते थे और शिविरों में निवास करते थे।

चरागाह में पशु चरते समय एक दूसरे से मिल जाते थे। उस समय उन्हें पहचानना कठिन हो जाता था। इसलिए पशुओं को चिह्नित कर दिया जाता था। पशुओं पर स्वामित्व दिखलाने के लिए स्वामी उनपर अपना चिह्न लगा देता था। यह प्रथा बड़ी प्राचीन है। अष्टकर्णा ऐसी गाय को कहा जाता था जिसके कान को आठ संख्या के अंक से चिह्नित किया जाता था। उत्तर वैदिक संहिताओं में इसके सम्बन्ध में रोचक विवरण मिलते हैं। लक्षण का तात्पर्थ चिह्न से है पर अंक का अर्थ चिह्न बनाने से है। कुछ गायों के शरीर पर मिथुन का चिह्न बनाया जाता था जिसका मूल अर्थ उत्पादकता से सम्बन्धित था। अन्य लक्षणों यथा कमल, हँसिया एवं सीढ़ी के चिह्नों से भी उन्हें अंकित किया जाता था। कुछ पशुओं के कानों को छेद दिया जाता था। पशुओं के कानों पर चिह्न लगाने के लिए उन्हें मोड़ दिया जाता था जो कष्टदायक था, अत: ऐसा करना पापकर्म माना गया है। उत्तरवैदिक काल के उपरान्त भी पशुओं के शरीरों पर लक्षण अंकित किये जाते थे।

गायों को रेवती नक्षत्र में अंकित किया जाता था क्योंकि इसे शुभ माना जाता था। गृह्यसूत्रों में फाल्गुनी पूर्णिमा के उपरान्त प्रतिपदा के दिन ऐसा करने का उल्लेख है। लोहे या तांबे की छड़ को तप्त कर पशुओं को चिह्नित किया जाता था। तीर की नोक एवं तप्त ईक्षुदण्ड से भी ऐसा किया जाता था। पशुओं की पहचान के लिए सींगों को रंगा भी जाता था और कभी-कभी उन्हें छील भी दिया जाता था। पूँछों के बालों को काटा भी जाता था तथा गले में विशेष प्रकार की घंटियाँ या रस्सी बाँधी जाती थीं।

पशुओं के शुभ एवं अशुभ लक्षण पहचानने के लिए गौलाक्षणिक होते थे। पाणिनि के कर्णे लक्षणस्यादि सूत्र में नौ लक्षणों के नाम दिये गये है। विष्टकर्णा अगस्त्य की गायों का नाम था। जमदग्नि की गायों के कानों पर कर्करी या वीणा के चिह्न अंकित थे। पशुओं पर जो चिह्न अंकित किये जाते थे, इनमें से कुछ चिह्न भारत के प्राचीन आहत सिक्कों पर भी बने हैं, यथा, स्त्रव, स्वस्तिक, अंकुश, कुण्डल, वाण और मिथुन के चिह्न भी बनाये जाते थे। इनके अतिरिक्त पाणिन ने विष्ट, अष्ट, पंच, मणि, हिद्र, सुव, स्वस्तिक, स्थूणा का भी उल्लेख किया है।

पशुओं के उचित विकास के लिए उन्हें भरपूर चारा देना आवश्यक था। शस्य एवं यव आरण्य पशु भी चर जाते थे, अत: उसकी भी रक्षा करना आवश्यक था। पशुओं को पर्याप्त चारा देने की महत्ता इस बात से समझी जा सकती है कि कुछ यज्ञों में वेदी पर दूर्वा से निर्मित ईंटे यज्ञीय पशु के पोषण के लिए रखी जाती थीं। कुछ यज्ञों में यजमान देवों से बार-बार प्राथना कर उन्हें इसलिए

प्रसन्न करता था कि वे उसे प्रभूत संतान, संपत्ति एवं यश देगे। इस क्रिया की तुलना उस व्यक्ति से की गयी है जो अपनी गाय या अपने अवश को बार-बार घास एवं पानी देता है कि गाय अधिक दूध देगी एवं अश्व को तीव्रगामी बनेगा। अग्नि द्वारा बलिप्रदत अज के मांस भक्षण की तुलना किसी पशु के द्वारा घास खाने से की गयी है। अवेस्त में भी पशुओं को भरपुर चारा देने के कार्य को पुण्यकर्म माना गया है।

पशुपालन में गोचर भूमि का महत्त्व था जहाँ पशु स्वच्छन्द विचरण कर सकते थे। अत: ऐसी भूमि के स्वामी होने की कामना की जाती थी। पशुओं को लवणयुक्त पानी भी पिलाया जाता था। गायों या बैलों का बार-बार रंभाना यह सूचित करता था कि वे भूखे हैं एवं स्वामी को उन्हें चारा देना चाहिए। जिस वन में पशु चराने के बाद उन्हें दूसरी जगह हटा लिया जाता था तो उस स्थान को आशितंगवीन कहा जाता था।

कौटिल्य ने राजकीय पशुओं को चारा देने के सम्बन्ध में कहा है कि उसकी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। रथ खींचनेवाले नाथे गये बैलों को दस तुला हरी घास देनी चाहिए। भूसी की मात्रा उससे दुगुनी चाहिए तथा पाँच पल नमक भी देना चाहिए। उनकी नाक में एक कुडव तेल डालना चाहिए और एक प्रस्थ तेल पिलाना, चाहिए। ऐसे प्रत्येक बैल को एक सौ पल माँस, एक आढ़क दही तथा एक द्रोण जौ या उड़द का मिथण बनाकर देना चाहिए। इसी प्रकार एक द्रोण दूध या आधा आढ़क सुरा, एक प्रस्थ तेल या घी, दस पल गुड़ और एक पल सोंठ को मिलाकर प्रत्येक बैल को खिलाना चाहिए। राजकीय गोशालाओं में रहनेवाले बैलों के लिए यह चारा ठीक लगता है पर जनसामान्य के लिए ऐसी व्यवस्था करना सम्भव नहीं था। सामान्य बैल घास, पुआल, भूमी, नमक और पानी पर पाले जाते थे।

कौटिल्य ने सर्वप्रथम मादा पशुओं के झुण्डों में रखे जाने वाले गर्भस्थापक पशुओं के अनुपात का उल्लेख किया है, जैसे एक सौ गदहियों तथा घोड़ियों के झुण्ड में पाँच-पाँच घोड़े तथा गदहे, सौ भेंड़-बकरियों में 10 मेष एवं अज, सौ-सौ गाय, भैंस तथा ऊँटों के झुण्डों चार-चार साँढ़, भैंसे तथा ऊँट रखे जाएँ। मेगास्थनीज ने लिखा है कि वसन्तऋतु में हाथी मदमस्त हो जाते हैं। हथिनियों के गण्डस्थल के निकट एक छिद्र होता है जिसमें से चर्बी के समान कोई पदार्थ निकलता है एवं इसी अवसर पर हथिनियों के गर्भाधान की राह खुल जाती है। वे सोलह से अठारह महीनों तक गर्भ में शिशु को रखती है एवं बच्चों को छह वर्षों तक दूध पिलाती हैं।

गाय एक बार में एक बछड़े या बछिया को जन्म देती थी पर कभी-कभी उससे युम्म भी उत्पन्न होते थे। ऐसा होना गाय के लिए अमांगालिक माना जाता था क्योंकि इससे उसके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता था। इसके निवारण के लिए कुछ धार्मिक क्रियाएँ की जाती थी। युग्म बछड़ों का उचित विकास भी नहीं हो पाता था। यह माना जाता था कि उत्तम प्रकार के बछड़े या बछिया के जन्म के लिए गाय का उत्तम प्रजाति के साँढ़ द्वारा संयोग कराना आवश्यक है। ऐसे साँढ़ का दान ब्राह्मण को करना पुण्यकर्म समझा जाता था जो अपनी गोशाला में पशुओं की वंश-वृद्धि में प्रतिफलित हुआ समझा जाता था।

पशुओं का विकास एवं उनकी उपयोगिता उनके स्वास्थ्य पर निर्भर करती थी। अत: रोगों से उन्हें मुक्त करना आवश्यक था। सैंधाव सभ्यता के लोगों ने भी पशु-चिकित्सा-पद्धति का विकास अवश्य किया होगा, पर उसकी जानकारी हमें नहीं है। वैदिक ग्रन्थों में देवताओं की उपासना इसलिए भी की जाती थी कि उपासक के पशु रोगमुक्त रहें। रुद्र को उनके दिव्य चिकित्सक के रूप में माना जाता था। शूलगव एक वैदिक यज्ञ था जिसमें पशुओं के कल्याण हेतु क्षीरोदन रुद्र को अर्पित किया जाता था। बौद्ध बिहार में एक पाक्षिक क्रिया की जाती थी जो शूलगव का ही एक भाग था। इसमें पलाश-पत्रों का वितरण किया जाता था। इसका उद्देश्य रुद्र को प्रसन्न करना था ताकि यजमान के पशु स्वस्थ एवं संकटमुक्त रह सकें। पलाश पत्रों से निर्मित टोकरी में भात रखकर उसे रुद्र को अर्पित किया जाता था। अग्नि और अश्विनी कुमारों को दिव्य चिकित्सक माना जाता था जो अनेक प्रकार के रोगों से पशुओं को मुक्त करते थे। अनेक कीट एवं अन्य विषधार जीव भी पशुओं को दंश कर उन्हें हानि पहुँचाते थे। अत: उनके नाश के लिए कई प्रकार के जादू-टोने भी किये जाते थे। पशुओं की रोग-मुक्ति के लिए कुम्भ में जल रख कर एक क्रिया की जाती थी। एक अन्य क्रिया में पुरोहित अग्नि को स्वर्ण अर्पित करता था एवं पशुओं की अभिवृद्धि की कामना करता था क्योंकि स्वर्ण अमरत्व का प्रतीक माना जाता था। यदि अश्वमेध यज्ञ का अश्व रुग्ण हो जाता था तो पूषण् को बलि अर्पित की जाती थी। पशु के नेवरोग से मुक्ति के लिए सूर्य की आराधाना की जाती थी।

कौटिल्य ने भी पशु-रोगों की चिकित्सा के लिए दैवी शक्तियों की पूजा का विधान किया है। उसने कहा है कि यदि पशुओं में महामारी फैल जाय या रोगों से वे पीड़ित हों तो गाँवों में शान्ति कर्म करवाना चाहिए। पशुओं के संरक्षक देवी-देवताओं की आराधना करनी चाहिए, यथा हाथियों के लिए सुब्रह्मण्य की, अश्वों के लिए अश्विनी की, गौओं के लिए पशुपति की, भैंसों के लिए वरुण की तथा बकरियों के लिए अग्नि की।

पशुओं की चिकित्सा के लिए राजकीय चिकित्सकों की नियुक्ति अशोक ने की थी एवं विभिन्न स्थानों से औषधि के लिए जड़ी-बूटियाँ भी उसने मँगवार्ड एवं अपने राज्य में उनकी वाटिकाएँ भी लगवाई।

उपसंहार

प्राचीन भारत में पशुपालन को वार्त्ता का एक प्रमुख अंग माना गया है, जो लोगों की आर्थिक समृद्धि का एक कारण है। परन्तु इसके सर्वांगीण अध्ययन के लिए विभिन्न साधान-स्रोतों का उपयोग करना आवश्यक है। साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक दोनों स्रोतों से सूचना एकत्र की गयी है। एत्दर्थ पुरातात्त्विक उत्खननों से प्राप्त पशुपालन सम्बन्धी सूचना-सामग्रियों का उपयोग किया गया है जिनमें पशुओं के अस्थि-अवशेष, चित्रित मृदभाण्ड, मुहरें, सिक्के, मूर्त्तियाँ एवं प्रस्तरों पर उभारी गई उनकी आकृतियाँ मुख्य है। अल्प से अल्प सूचना का भी संग्रह किया गया है और सबों को उनको यथोचित स्थान पर रखकर इस विषय का अध्ययन किया गया है ताकि उसका पूर्ण रूप हमारे समक्ष उपस्थित हो सके। इतिहास में महापुरुषों ने अपने व्यक्तित्व से घटनाओं को प्रभावित किया है। गौतम बुद्ध एवं महावीर की अहिंसा की धारणा एवं अशोक की अहिंसा-नीति ने पशुपालन को किस प्रकार प्रभावित किया, इस पर भी विवेचन किया गया है।

प्राचीन भारत में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की बलि दी जाती थी। उत्तरवैदिक काल में बलि-प्रथा अव्याहत रूप से चलती रही। पशुओं के प्रति निष्ठुरता भी बढ़ती गई। धर्मशास्त्रों में भी इसका समर्थन है। समाज के बुद्धिजीवी तथा सुधारक इसकी कटु आलोचना करने लगे। पशु-बलि से किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं थी। उपनिषदों में व्यक्ति के लिए दयावान और विचारवान होने की बात कहीं गयी है। अवेस्त में भी पशुओं के प्रति हिंसा के भाव की निन्दा की गई है। वैदिक युग के अन्त में बुद्ध और महावीर ने पशुओं के प्रति हिंसा की भावना की निन्दा की। उनकी अहिंसा की शिक्षा ने लोगों को प्रभावित किया। कृषि में उनकी उपयोगिता के कारण उनकी सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। मज्झिमनिकाय में इसका विशद् वर्णन है।

राज्य, जिसमें राजा प्रमुख था, ने भी पशुपालन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। राजा का काम प्रजा के जीवन एवं धन की रक्षा करना था जिसको वह दो प्रकार से करता था। प्रथम, यह कि वह बाह्य आक्रमणों से प्रजा को सुरक्षा प्रदान करता था ताकि वे निश्चित होकर पशुपालन कर सकें उनसे वह उनके पशुओं की भी रक्षा करता था। वैदिक युग में हम ऐसे अनेक उदाहरण पाते हैं कि आक्रमक लोग आक्रांत क्षेत्र से पशुओं को भी पकड़ ले जाते थे। द्वितीय, यह कि वह राज्य में चोरों, व्यालों एवं रोगों से भी उनकी रक्षा करता था। राजकुमार के पाठ्यक्रम में भी अश्वारोहण एवं हस्त्यारोहण सम्मिलित थे। राजा समय-समय पर ब्रजों एवं घोषों में जाकर पशुओं की स्थिति का अध्ययन करता था। हाथी सेना के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे इसलिए हस्तिवन सुरक्षित रखे जाते थे और जो उनका आखेट करते थे उनको मृत्यु-दंड तक दिया जाता था। पशु राजकीय आय के साधन भी थे। इसलिए इस दृष्टि से पशुओं की रक्षा एवं उनका वर्द्धन करना राजा का कार्य था। वह जहाँ उनकी रक्षा करता था वहीं उन आरण्य पशुओं के वधा के लिए भी उपाय करता था जा प्रजा के खेतों को हानि पहुँचाते थे या उनके पालतू पशुओं के लिए भी संकट उत्पन्न कर देते थे। अशोक ने अपनी अहिंसा की नीति के कारण कई पशुओं का वधा बन्द कर दिया। उनकी चिकित्सा का भी प्रबन्ध किया तथा अपनी प्रजा को यह आदेश दिया कि वे पशु-पक्षियों की हत्या नहीं करें। पशु-पालन के क्षेत्र में अशोक की यह राजाज्ञा अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण थी।

पशु विभिन्न आर्थिक दृष्टियों से अत्यन्त उपयोगी थे। समाज में कई वर्ग ऐसे थे जो उनकी पालकर अपनी जीविका चलाते थे। कुछ ऐसे भी वर्ग थे जो पशुओं को पकड़ने, उनका वधा तथा उनका माँस विक्रय करके जीविका चलाते थे। शिल्प के क्षेत्र में भी पशुओं का योगदान कम नहीं था। भेड़ों की ऊन से अनेक प्रकार के कम्बल और अन्य वस्त्र बनाये जाते थे जिनकी माँग देश के विभिन्न भागों में थी। अन्य पशुओं के बाल भी वस्त्रों को बनाने के काम में आते थे। उनके चर्म पर भी कई शिल्प आधृत थे।

चर्म-शिल्पियों का एक वर्ग ही था जिसको चर्मकार कहते थे। ये विभिन्न युद्धोपयोगी एवं नागरिक उपयोग उपयोग के लिए चर्म से वस्तुएँ बनाते थे। पशुओं की अस्थियाँ भी व्यर्थ नहीं जाती थीं। गजदन्त से अनेक प्रकार के आभूषण तथा उपस्कर भी बनाये जाते थे। दूसरी सदी ईस्वी पू. में विदिशा में गजदन्त-शिल्पियों की एक श्रेणी ही थी। अन्य पशुओं की अस्थियों, से भी आभूषण एवं तीर के अग्रभाग बनाये जाते थे। बछड़ों के दाँतों को तीर के अग्रभाग में लगाया जाता था। अत: ऐसे तीरो को वत्सदन्त कहा जाता था।

भारत के अनेक स्थानों, विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों से कई प्रागैतिहासिक गुफाएँ मिलती हैं। ये शैल-गुफाएँ विशेषकर मध्य प्रदेश के कई स्थानों पर पायी गई हैं, जहाँ पहले आदि मानव रहा करते थे। इन शैल-चित्रों में आखेट के कई दृश्य दिखलाए गए हैं जिनके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार के पत्थर के टुकड़ों, भाला-बर्छी एवं तीर-धनुष से आदि मानव पशुओं पर प्रहार करते थे। अधिकतर वे सामूहिक रूप से यह कार्य करते थे। शिकार के पशुओं में विशेषकर हरिणों, भैंसो और बारहसिंहों को दिखलाया गया है। मृत पशुओं को काटने का भी दृश्य अंकित है।

लोगों को पशुओं के शरीर की बनावट के सम्बन्ध में जानकारी थी। इसका कारण यह था कि वे आरण्य पशुओं का शिकार करते थे और उनका माँस खाते थे। यज्ञों में भी विभिन्न प्रकार के पशुओं का वधा करते थे। समितृ पुरोहित यज्ञों में बलि दिये गये पशुओं के विभिन्न अंगों को काटता था, अत: वह उनके सम्बन्ध में जानकारी रखता था।

विभिन्न स्थानों से पशुओं की अस्थियों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं जिनके अध्ययन से लोगों के आर्थिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। यदि किसी पशु का पूर्ण अस्थि-अवशेष नहीं मिलकर उसका एक अंश भी मिलता है तो वैज्ञानिक परीक्षणों से यह मालूम कर लिया जाता है कि यह किस पशु की अस्थि है। यदि अस्थियों पर शस्त्रों से काटने के चिन्ह पाए जाते हैं तो यह अनुमांन लगाया जाता है कि इनका वधा मांस प्राप्ति के लिए किया जाता होगा। पशुओं के दाँतों एवं उनकी जीर्ग अस्थियों से भी उनकी प्रजाति का पता लगा लिया जाता है। अस्थियों से यह भी मालूम किया जाता है कि ये पशु किन-किन क्षेत्रों रहते थे। इनका परीक्षण उनके काल-निर्धारण पर भी प्रकाश डालता है। गजदन्त और अन्य विभिन्न पशुओं की अस्थियों से बने हुए आभूषण भी हमें उपलब्ध होते हैं और कुछ मूर्त्तियाँ भी मिलती है। इनसे यह विदित होता है कि हड्डियों का उपयोग किस प्रकार किया जाता था और शिल्पी किन औजारों का प्रयोग उनके निर्माण में करते थे।

पशु विभिन्न आर्थिक दृष्टियों से अत्यन्त उपयोगी थे। समाज में कई वर्ग ऐसे थे जो उनकी पालकर अपनी जीविका चलाते थे। कुछ ऐसे भी वर्ग थे जो पशुओं को पकड़ने, उनका वधा तथा उनका माँस विक्रय करके जीविका चलाते थे। शिल्प के क्षेत्र में भी पशुओं का योगदान कम नहीं था। भेड़ों की ऊन से अनेक प्रकार के कम्बल और अन्य वस्त्र बनाये जाते थे जिनकी माँग देश के विभिन्न भागों में थी। अन्य पशुओं के बाल भी वस्त्रों को बनाने के काम में आते थे। उनके चर्म पर भी कई शिल्प आधृत थे। चर्म-शिल्पियों का एक वर्ग ही था जिसको चर्मकार कहते थे। ये विभिन्न युद्धोपयोगी एवं नागरिक उपयोग उपयोग के लिए चर्म से वस्तुएँ बनाते थे। पशुओं की अस्थियाँ भी व्यर्थ नहीं जाती थीं। गजदन्त से अनेक प्रकार के आभूषण तथा उपस्कर भी बनाये जाते थे। दूसरी सदी ईस्वी पूव्र में विदिशा में गजदन्त-शिल्पियों की एक श्रेणी ही थी। अन्य पशुओं की अस्थियों, से भी आभूषण एवं तीर के अग्रभाग बनाये जाते थे। बछड़ों के दाँतों को तीर के अग्रभाग में लगाया जाता था। अत: ऐसे तीरो को वत्सदन्त कहा जाता था।

वास्तव में पशुओं ने प्राचीन भारतीयों के जीवन के विभिन्न पक्षों को जहाँ समृद्ध बनाया वहीं उन्होंने उनकी धार्मिक प्रवृत्तियों के निरूपण में भी योगदान किया तथा धार्मिक विचारों ने पशुपालन के विभिन्न पक्षों को भी प्रभावित किया। वैदिक काल में पशुओं को प्रिय समझकर यज्ञों में उन्हें देवताओं के लिये बलि दी जाती थी तथा ब्राह्मण भी इनका माँस रुचि से खाते थे पर गौतम बुद्ध और महावीर ने अपने अहिंसा धर्म के कारण यज्ञों में पशुओं के वधा या उनको कष्ट देने का कड़ा विरोध किया। समाज पर इसका प्रभाव अवश्य ही पड़ा। यज्ञों में इनका वधा सर्वथा बन्द नहीं हुआ तो भी कम अवश्य हो गया। अशोक ने राजाज्ञा द्वारा यज्ञों में पशुओं का वधा बन्द करवाया, राजकीय पाकशाला में वधा किये जाने वाले हजारों पशुओं की संख्या घटा कर तीन कर दी तथा पशु-पक्षियों के कल्याण के लिए अनेक कार्य किये। यह उसकी अहिंसा-नीति का परिणाम था। पर शुंग युग में ब्राह्मण राजसत्ता के स्थापित होने के साथ ही वैदिक यज्ञ पुन: शुरू हो गये जिनमें पशु-वधा भी होते थे। नरक की धारणा भी हिंसक पशु-पक्षियों के स्वभाव के

आधार पर बनी। इस प्रकार हम देखते हैं कि पशुपालन ने भारतीयों के जीवन के बहुविधा क्षेत्रों में अमूल्य योगदान किया तथा उनके महत्त्व को उनलोगों ने भी समझकर उनके संरक्षण एवं पालन की ओर ध्यान दिया।

उपर्युक्त विभिन्न साधान-स्रोतों का उपयोग कर हम प्राचीन भारत में पशुपालन का अध्ययन कर सकते हैं। ऐसा करते समय हमें ऐतिहासिक तथ्यों को नहीं भूलना चाहिए और न कल्पना का अनुचित प्रयोग ही करना चाहिए। इन स्रोतों में उल्लिखित सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को भी ध्यान में रख कर प्रत्येक सूचना को उसके उचित स्थान पर रखना उचित है तभी हम इस दिशा में पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास कर सकते हैं। ऐसा करते समय कल्हण की यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इतिहासकार को न्यायधीश के समान होकर न तो किसी के प्रति पूर्व धारणा बनानी चाहिए एवं न हठधार्मिता ही दिखानी चाहिए बल्कि साक्ष्यों के आलोक में किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. रान्धावा, एम0 एस0 ए0, हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन इंडिया भाग 1, पृ. 109
2. सोवर, कार्ल, एग्रीकल्चर औरीजिन्स एण्ड डिस्पर्सल्स पृ. 86
3. जिवनर, एफ0 ई. ए0, हिस्ट्री ऑफ डोमिस्टीकेटेड एनिमल्स पृ. 130–140
4. ऋग्वेद 10, 19, 8, अथव. 19, 6, 14, बाज. सं. 31, 6
5. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2, 22, 2, 26; 2, 29; 2, 30; 2, 31; 2, 32
6. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पतंजलिकालीन भारत, पृ. 290
7. अग्रवाल, वासुदेव शरण, पाणिनिकालीन भारत, पृ. 218-19
8. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2, 31
9. मिश्र, योगेन्द्र, मेगास्थनीज का भारत विवरण, पृ. 56, आरण्यक, 69/11-14
10. आरण्यक, 69/25
11. वही, 24, 25
12. द्वितीय शिलालेख
13. अष्टाधयायी : पाणिनि, वाराणसी, 1967।
14. अर्थशास्त्र (कौटिल्य) : अनु0 आर0 शामशास्त्री, दूसरा सं. मैसूर, 1919, 1956।
15. आपस्तम्ब धर्मसूत्र : अनु0 ए0 महादेव शास्त्री और के0 रंगाचार्या, मैसूर, 1898, जी0 ब्यूलर, बम्बई, 1932।
16. ईशावास्योपनिषद् : अनु0 थर्टीन प्रिंसिपल उपनिषद में, आर0 ए0 ह्यूम, ऑक्सफोर्ड, 1921।
17. ऐतरेय ब्राह्मण : अनु0 ए0 बी0 कीथ, हारवर्ड ओरियन्टल सीरिज, खण्ड 25, 1920।
18. ऋग्वेद : अनु0 सातवेलकर, 1971।
19. गौतम धर्मसूत्र : अनु0 जी0 ब्यूलर, सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, खण्ड 2, ऑक्सफोर्ड, 1898।

वाजपेयी नीति की प्रासंगिकता

डॉ० रोहित कुमार

इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

बदलते वैश्विक परिवेश अन्तराष्ट्रीय घटनाक्रम व दिनों-दिन परिवर्तित हो रहे अन्तराष्ट्रीय राजनीतिक के मद्देनजर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि विदेश नीति आज के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दों में एक है। विदेश नीति न केवल एक देश का दूसरे देशों के साथ सम्बंधों को सुसंचालित और नियन्त्रित करती है, बल्कि एक सन्तुलित विश्व के विकास में मददगार भी होती है। यदि किसी देश की विदेश नीति ठीक न हो तो उसे अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संकटों का सामना करना पड़ता है।

भारतीय विदेश नीति स्वतन्त्रता के पूर्व से लेकर बीसवीं सदी की समाप्ति तक अनेक मंजिलों को तय करती हुई आगे बढ़ रही है। आज भारत के समक्ष विश्व में अपनी पुख्ता पहचान कायम करने के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत को दिशा देने का भी महत्वपूर्ण कार्यभार है।

वाजपेयी की विदेश नीति व गृह नीति उक्त तथ्य की ओर ही इंगित करता है। वाजपेयी की नीति में सम्मान के साथ सद्भाव स्थापित करना, राष्ट्र की सुरक्षा को सर्वोपरि रखना, समन्वय, शान्ति व अहिंसा के मूल तत्व को ध्यान में रखकर विवादों को सुलझाना आदि था, जिसकी जरूरत आज के दौर में भी कायम है।

श्री अटल विहारी वाजपेयी ने विदेश मंत्री और प्रधानमंत्री के तौर पर पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्ण ढ़ंग से बेहतर सम्बंध स्थापित किया था, वर्तमान मोदी सरकार ने भी वाजपेयी के इसी नक्शे कदम चलते हुए उनकी इसी नीति का अनुसरण किया। 26 मई 2014 को प्रधानमंत्री पद के शपथ ग्रहण समारोह में नरेन्द्र मोदी ने अपनी सभी पड़ोसी देशों के राष्ट्राध्यक्षों को आमंत्रित किया था, जिसमें पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नवाज शरीफ ने भी शिरकत की थी।

इसके अलावे श्रीलंका के राष्ट्रपति महिन्द्र राजपक्षे, मारीशस के प्रधानमंत्री नवीन रामगुलाम, भूटान के प्रधानमंत्री ल्यूनछेन त्शेरिंग ताब्गे, बांग्लादेश की स्पीकर शिरीन चौधरी, अफगानिस्तान के राष्ट्रपति हामिद करजई, नेपाल के प्रधानमंत्री सुशील कोइराला, और मालदीव के राष्ट्रपति अब्दूल्ला यामीन अब्दूल गयूम ने भी शपथ ग्रहण समारोह में शामिल हुए थे। यह पहली बार था जब किसी भारतीय प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में दक्षेस देशों को आमंत्रित किया गया था। उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ भी पहली बार किसी भारतीय प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने भारत आये थे। अपने प्रस्थान से पहले शरीफ ने लाहौर में संवाददाताओं से कहा था कि 'पाकिस्तान भारत के साथ अच्छे सम्बंध चाहता है और मैं शान्ति का संदेश लेकर नई दिल्ली जा रहा हूँ। राजनैतिक पर्यवेक्षक मोदी सरकार के इस फैसले को एक साकारात्मक कदम एवं महत्वपूर्ण शुरूआत मानते है।[2]

प्रधानमंत्री मोदी ने वाजपेयी के कदम का अनुसरण करते हुए अपनी पहली विदेश यात्रा भुटान से की थी। 15 जून 2014 को अपने पहले दो दिवसीय विदेश यात्रा पर भूटान पहुँचे, जहाँ उन्होंने अपने इस छोटे से मगर सामरिक दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण पड़ोसी देश के साथ ज्यादा प्रभावी सहयोगात्मक सम्बंध बनाने पर जोर दिया। यात्रा पर प्रस्थान होने से पूर्व मोदी ने कहा था कि भूटान उनकी पहली विदेश यात्रा के लिए स्वाभाविक स्थल था, क्योंकि उसके साथ भारत के अनोखे और विशिष्ट संबंध है। साथ ही उन्होंने भूटान के साथ 'अद्वितीय और अद्भूत सम्बंधों की वजह से उसे एक स्वाभाविक पसंद बताया। अपनी यात्रा से पूर्व भारत की विदेश नीति पर जोर देते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि भूटान के साथ संबंध उनकी सरकार की महत्वपूर्ण विदेश नीति की

प्राथमिकता होगी। उन्होंने कहा, "मैं भूटान की अपनी पहली यात्रा एवं भूटान के साथ भारत के विशेष सम्बंधों को और भी अधिक गहरा बनाए जाने को लेकर उत्सुक हूँ। मैं पहले से भी मजबूत सम्बंधों को और मजबूत करने के लिए अत्यन्त खुशी और दृढ़ इच्छा के साथ भूटान जा रहा हूँ।"

अपनी पहली विदेश यात्रा में भूटान को चुने जाने के सवाल पर जबाब देते हुए उन्होंने कहा था कि समान हितों और साझा समृद्धि से बंधो भारत और भूटान के बीच आद्वितीय और खास सम्बंध है, जो भूगोल, इतिहास और संस्कृति के रिश्तों से बने है, इसलिए प्रधानमंत्री के रूप में मेरी पहली विदेश यात्रा के गंतव्य के रूप में भूटान एक स्वाभाविक पसंद है।

उल्लेखनीय है कि विदेश मंत्री रहते हुए श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी अपनी पहली विदेश यात्रा अपने पड़ोसी राष्ट्र यथा भूटान, बर्मा, अफगानिस्तान, नेपाल तथा पाकिस्तान से की थी। उन्होंने अपने इस यात्रा को सद्भावना यात्रा की संज्ञा दी थी। उनका मानना था भारत सरकार की विदेश नीति का मुख्य जोर भारत और उसके पड़ोसियों के बीच जितना ज्यादा संभव हो, मित्रतापूर्ण सम्बंध बनाना है।[3]

भूटान के बाद मोदी ने नेपाल की राजकीय यात्रा की। उनकी यह यात्रा 3-5 अगस्त की थी। मोदी ने 11-13 नवंबर 2014 तक म्यांमार की यात्रा की। पड़ोसियों से सम्बंध सुधारने के दिशा में प्रयास करते हुए वे 2015 में 13-14 मार्च को श्रीलंका पहुँचे जहाँ से वे मॉरीशस और सेशेल्स गए। श्रीलंका में जहाँ उनका पड़ोसी देश के साथ सम्बंधों को सामान्य बनाने पर जोर था तो मॉरीशस की यात्रा उन भारतीय प्रवासियों से दिलों के तार जोड़ने का उपक्रम थी जो कि सदियों पहले बिहार और उत्तरप्रदेश से वहाँ गन्ने की खेतों में मजदूरी करने के लिए गए थे। भारत-मॉरीशस के सम्बंध तीन शताब्दी पुराने है। इस द्वीप को सजाने और सँवारने में शुरू से ही भारतीयों को अहम योगदान रहा है। यही वजह है कि यह आज पूरी दुनिया में छोटे भारत के रूप में मशहूर है।

भारत की समुद्री सुरक्षा सुनिश्चित करने की रणनीति में सेशेल्स एक अहम क्षत्रप की भूमिका में है। प्रधानमंत्री मोदी ने राजधानी विक्टोरिया में उम्मीद जताई कि यह द्विपीय देश जल्द ही भारत, मालदीव और श्रीलंका के बीच नौवहन सुरक्षा सहयोग के क्षेत्र में पूर्ण भागीदार होगा, इसी के साथ प्रधानमंत्री मोदी ने सेशेल्स के लोगों को नि:शुल्क वीजा की सौगात दी। प्रधानमंत्री मोदी ने अपने एक दिन के संक्षिप्त दौरे के दौरान भारत द्वारा सेशेल्स में स्थापित पहले तटीय निगरानी रडार (सीएनआर) का उद्घाटन किया। भारत की योजना सेशेल्स में ऐसे आठ सीएनआर स्थापित करने की है ताकि इस क्षेत्र में गुजरने वाले जहाजों पर कड़ी नजर रखी जा सके। साथ ही प्रधानमंत्री मोदी ने सेशेल्स की एक बार फिर भरोसा दिलाया कि भारत सेशेल्स की सुरक्षा, विकास और सहयोग में हर तरह की मदद करेगा।

वाजपेयी की विदेश नीति में राष्ट्रीय हित सर्वोपरि था। वे हमेशा से स्वहित से उपर राष्ट्रहित को रखते थे। विपक्ष में रहते हुए भी उन्होंने सरकार को राष्ट्रहित का राह दिखलाया करते थे। उनका मानना था कि राजनीति राष्ट्रहित के लिए होना चाहिए न कि अन्य हित साधाने के लिए। 9 दिसम्बर 1992 को विदेश नीति में राष्ट्रीय हित के परिप्रेक्ष्य में संसद में उन्होंने कहा था:[4]

"उपाध्यक्ष महोदय, विश्व के बदलते हुए मानचित्र से एक बार फिर यह बात स्पष्ट हो गई कि अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में आज न कोई स्थाई मित्र होता है और न कोई स्थाई शत्रु होता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ का विचार करता है। यह बात अलग है कि स्वार्थ को शान्ति, लोकतंत्र स्वतंत्रता या कम्युनिज्म के आवरण में लपेटकर रखा जाता है। चीन और अमेरिका का निकट आना कुछ वर्ष पहले एक अकल्पनीय घटना थी। लेकिन यह घटना संभव हो गई।"

वाजपेयी ने चीन से भारत को हमेशा सतर्क रहने की सलाह दी। उन्होंने कहा था कि "मुझे सन्देह है कि चीन भारत के साथ सामान्य सम्बंध स्थापित करना चाहेगा।"[5]

उन्होंने सरकार को चेताया कि चीन पाकिस्तान का इस्तेमाल भारत में अस्थिरता फैलाना चाहता है और चीन पाकिस्तान के इशारे पर बंग्लादेश का प्रवेश युनाइटेड नेशन में रोक दिया।

अटल बिहारी वाजपेयी ने रूस पर भी पूरी तरह से निर्भर रहने की भारत की नीति को अच्छा नहीं माना है। उन्होंने कहा कि:[6]

"केवल सोवियस रूस पर निर्भर रहना अच्छी नीति नही है। सोवियत रूस हमारा मित्र है, मित्रता के इन बंधनों को हम सुदृढ़ करना चाहेंगे, लेकिन सोवियत रूस की मित्रता का अर्थ यह नही हो सकता कि हम अपने सभी विकल्प बंद कर दे, सारे दरवाजे

अपने लिए रोक दें और केवल रूस की दया-दृष्टि पर निर्भर रहें। यह देश के हित में अच्छी नीति नहीं होगी। जो रूस समर्थक हमारे मित्र ऐसी सलाह देते है, वे रूस का हित भले ही करते हो, लेकिन भारत का हित-संवर्धान नही करते।"[7]

उन्होंने कहा कि हमारी विदेश नीति का लक्ष्य होना चाहिए राष्ट्र के हितों का रक्षण और राष्ट्र का हित इसी में है कि हम आर्थिक दृष्टि से सबल हो, सैन्य दृष्टि से स्वावलम्बी हो। हम भारत को रूस, चीन और अमेरिका की पंक्ति में खड़े रहने लायक बनाएँ। अगर विदेश नीति इसमें सहायक होती है तो वह सफल है, और अगर इसमें सहायक नही होती तो किल है।[8]

वर्तमान मोदी सरकार की भी विदेश नीति का मूल मंत्र यही है। राजनीतिक नफा-नुकसान से परे राष्ट्र की सुरक्षा और उसके हितों का संरक्षण एवं संवर्धन मोदी की विदेश नीति का आधार रहा है। इस कड़ी में मोदी ने राष्ट्रीय हित को तरजीह देते हुए इजराइल के साथ मधुर सम्बंध स्थापित करने का प्रयास किया। मोदी दो बार इजराइल की यात्रा पर गये और उसके आर्थिक और तकनीकी प्रगति से बड़े प्रभावित हुये। मोदी ने इजराइल के साथ अधिक आर्थिक सहयोग और आतंकवाद पर खुफिया जानकारी साझा करने की नीति को तरजीह दी। मोदी का मानना है कि भारत की परम्परागत रूप से फिलीस्तनी समर्थक नीति से भारत को अरब जगत में बहुत कम सद्भावना मिली है। वही अरब देश महत्वपूर्ण अवसरों पर भारत के खिलाफ पाकिस्तान का समर्थन करते रहे है। अत: अपनी नीति में यू अर्न लेते हुए मोदी सरकार ने इजराल को तरजीह दी। उल्लेखनीय है कि विदेश मंत्री रहते हुए श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इजराइल के साथ सम्बंध स्थापित करने की महत्ता को समझा। उन्होंने तेल-अवीव के साथ सामान्य महत्व के सुरक्षा सम्बंधी मुद्दों पर विचार करने तथा राजनीतिक सम्पर्क स्थापित करने की दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिए। इजराइल के साथ सम्बंध स्थापित करने की जो प्रक्रिया 1978 में आरम्भ हुई, जनवरी 1992 में उस समय आगे बढ़ी जब भारत ने इजराइल के साथ पूर्णरूपेण औपचारिक कूटनीतिक, राजनीतिक और आर्थिक सम्बंध स्थापित किए थे।[9]

इजराइल के सम्बंध स्थापित करने का प्रयास वाजपेयी के नवीन सोच एवं खतरे उठाने का शौक को दर्शाता है। उन्होंने बिना कुछ परिणाम सोचे देशहित में इजराइल के साथ सम्बंध स्थापित करने का फैसला किया। वाजपेयी भले इसमें ज्यादा सफल न हो सके थे, परन्तु उन्होंने जो आधार तैयार किया था मोदी सरकार आज उसे आगे बढ़ाने को तत्पर है। वाजपेयी का नीति का अनुसरण करते हुए नरेन्द्र मोदी ने इजराइल की यात्रा की थी। यह 70 साल के इतिहास में किसी भी प्रधानमंत्री की पहली इजराइल यात्रा थी। मोदी ने इजराइल यात्रा के दौरान इजराइल के साथ आर्थिक, कारोबारी, सुरक्षा, कृषि, आपदा प्रबंधन, सिंचाई और जल प्रबंधन जैसे विषयों पर महत्वपूर्ण सन्धियाँ की। भारत और इजराइल दोनों ही आतंकवाद से पीड़ित है अत: दोनों ने इस मुद्दे पर मिलकर लड़ने का फैसला किया। इजराइल का मौसम खेती के लायक नही है, फिर भी आधुनिक तरीको से खेती को मुमकिन बनाया। इजराइल ने ऐसी तकनीक इजाद की जिससे बहुत ही कम पानी में सब्जियाँ और फल उगाए जाते है। इजराइल ने ऐसे आलू को विकसित किया है, जो काफी गर्म मौसम में भी उग सकता है और खाड़े पानी से भी उसकी सिंचाई हो सकती है। मोदी ने अपनी यात्रा के दौरान इजराईल से ऐसी तकनीक सीखने की सन्धि की।[10]

इजराइल का जल प्रबंधन के मामले में भी कोई जोड़ नही है। समुद्र से घिरे इस देश ने खारे पानी को पेय जल बनाने की तकनीक विकसित की है। सिंचाई में भी इजराइल अति आधुनिक तकनीक इस्तेमाल करता है। इस प्रकार भारत जल प्रबंधन में इजराइल की विशेषज्ञता का लाभ उठा सकता है। इस प्रकार मोदी ने राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते हुये राष्ट्र के जनकल्याण के लिए इजराइल के साथ सम्बंध वृहद करते हुए आगे बढ़ाने का फैसला किया।

अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी विदेश नीति में देश की प्रतिष्ठा को सदैव ऊपर रखा। उन्होंने इस बात पर संतोष व्यक्त किया था कि हमने बंग्लादेश की मुक्ति के महासंग्राम में अपना योगदान देकर भारत की प्रतिष्ठा को अंतरर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऊँचा उठाया।[11] उन्होंने अपनी विदेश नीति के लक्ष्य को इंगित करते हुए कहा था कि "हमारी शक्तियाँ पड़ोसियों को भयभीत करने के लिए नही होगी, हमारी शक्ति पड़ोसियों को सहायता देने के लिए होगी। प्राचीन काल से आतताइयों का दमन और साधुओं का संरक्षण यह हमारा मिशन रहा है। भविष्य में भी भारत इसी मिशन का निर्वाह करना चाहता है। हम एक शक्ति केन्द्र के रूप में उभरें, यह हमारी विदेश नीति का राष्ट्रीय लक्ष्य होना चाहिए।"[12]

देश की प्रतिष्ठा को कायम रखते हुए वाजपेयी के नीति का अनुसरण करते हुए मोदी सरकार ने 29 सितम्बर 2016 को पाकिस्तान के खिलाफ 'सर्जिकल स्ट्राइक' जैसी घटना को अंजाम दिया, जिससे भारत की प्रतिष्ठा एक बार पुन: दुनिया में कायम

हो गये। मोदी सरकार के इस कदम की लगभग सभी राजनीतिक दलों ने समर्थन दिया था, देश की सुरक्षा और सम्प्रभुता का समुचित ध्यान में रखते हुए मोदी सरकार ने बिना बाहरी व अन्तरराष्ट्रीय दबाव में आये इस साहसिक घटना को अंजाम दिया था, मोदी सरकार का यह कदम भारत के सफलतम विदेश नीति का परिचायक है।[13]

अटल बिहारी वाजपेयी का यह भी मानना था कि विदेश नीति परिणामकारी होनी चाहिए।[14] कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही विदेश नीति बनाई जाती है, आचरण किया जाता है तथा लागू की जाती है। एक देश की विदेश नीति केवल जोर-शोर की घोषणाओं पर आधारित नही हो सकती, यह स्थिति की वास्तविकता पर आधारित होनी चाहिए। हमारे उद्देश्य बहुत ऊँचे हो सकते है, लेकिन हमारे पैर जमीन पर मजबूती से गढ़े होने चाहिए।

विदेश मंत्री के रूप में 8 अगस्त 1978 में राज्यसभा में विदेश नीति पर चर्चा के दौरान कहा था कि:

"राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा हमारी विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य है। हम सक्रिय रूप से उस उद्देश्य की प्राप्ति की ओर बढ़ रहे है। निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित विदेश नीति, राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होनी चाहिए। इस राय से न तो सदन में और न ही देश में कोई मत भिन्नता है। भारत की जनता उस सरकार को कभी क्षमा नही करेगी जो देश के हितों की बलि देने की गलती करेगी। विदेश नीति केवल सरकार द्वारा अपनाई जानेवाली नीति ही नही, भारत की 60 करोड़ जनता का भविष्य इसमें बंधा हुआ है। राष्ट्रीय सम्मान और राष्ट्रीय हितों को नकारने वाली कोई भी पार्टी इस देश में नही पनप सकती।"

वर्तमान मोदी सरकार की विदेश नीति भी परिणामकारी है। मोदी सरकार की कुटनीति और सफलतम विदेश नीति का ही परिणाम है कि सर्जिकल स्ट्राइक, डोकलाम आदि जैसे मुद्दों पर दुनियां भारत के साथ खड़ी थी।

मोदी सरकार अटल बिहारी वाजपेयी के विजन और नीति पर काम कर रही है।[15] जब देश को अटल बिहारी वाजपेयी के रूप एक दूरदर्शी सर्व समावेशी, संवेदनशील, गरीब का दुख समझने वाले प्रधानमंत्री मिले थे तो अनेक नये विभाग, मंत्रालय और कार्यक्रम शुरू किये गये थे। उत्तर पूर्व के राज्यों के लिये अलग मंत्रालय हो या आदिवासी कल्याण मंत्रालय, सर्व शिक्षा अभियान हो या स्वर्णिम चतुर्भुज योजना के जरिये देश को सड़को के द्वारा जोड़ने का अभियान थे सब अटल जी की ही देन थे।

अटल जी ने देश में व्याप्त असंतुलन को दूर करने का महायज्ञ शुरू किया था। अटल जी द्वारा किये गये ये कार्य और मंत्रालय 21वीं सदी के शुरूआती वर्षों में भारत में सामाजिक असंतुलन समाप्त करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहे थे, लेकिन दुर्भाग्यवश बाद में इन कार्यों को वैसी गति और निरूतप्ता नही मिली जैसी मिलनी चाहिए थी। उदाहरण के तौर पर अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा स्थापित सामाजिक और अधिकारिता मंत्रालय ने दिव्यांग जनों के लिए सहायता शिविरों की परम्परा शुरू की। लेकिन 2014 तक स्थिति ये रही कि ऐसी सिर्फ 56 शिविरों का ही आयोजन हो सका। वही 2014 में मोदी सरकार के गठन के बाद सामाजिक और अधिकारिता मंत्रालय ने औसतन हर महीने एक सौ चालीस शिविरो का आयोजन किया है। साथ ही साथ मोदी सरकार ने सुगम्य भारत अभियान चलाकर 1000 से ज्यादा सरकारी इमारतों और 650 से ज्यादा रेलवे स्टेशनों को दिव्यांग जनों के लिये सुगम्य बनाया है।[17]

अटल जी ने गरीबों को ध्यान में रखकर उनके लिए नीतियों का निर्माण किया। उदाहरण के लिए अन्तोदय अन्य योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण स्वरोजगार योजना, सामाजिक सुरक्षा योजना, महिलाओं के लिए जननी सुरक्षा योजना, प्रधानमंत्री स्वास्थ सुरक्षा योजना, गरीब परिवारों के शिक्षा के लिए सर्व शिक्षा अभियान आदि की शुरूआत अटल जी की साकार में हुई। वर्तमान मोदी सरकार ने भी अपनी नीतियों का निर्माण समाज के सबसे अन्तिम व्यक्ति व परिवार को ध्यान में रखकर एवं उनका सर्वांगिण विकास हो इस दृष्टिकोण से किया जा रहा है। मोदी सरकार ने एक गरीब परिवार को इकाई मानकर उनके सर्वांगिण विकास के लिए कई योजनाओं की शुरूआत या पुर्नगठन किया। उदाहरण के लिए गरीब परिवारों को आवास उपलब्ध कराने के लिये 2016-17 में प्रधानमंत्री आवास योजना, बिजली के लिए, सौभाग्य योजना, गैस कनेक्शन के लिए उज्जवला योजना, जीवन स्तर उच्च बनाने हेतु स्वच्छ भारत अभियान, स्वास्थ्य बीमा हेतु आयुष्मान भारत योजना आदि की शुरूआत की गई। इसके अलावा सुकन्या समृद्धि योजना, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना शुरूआत की गई। गरीब परिवारों के सामाजिक सुरक्षा हेतु अटल पेंशन योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना। गरीब किसानों के लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सिंचाई योजना आदि का क्रियान्वयन किया जा रहा है। है।[18]

'श्री अटल बिहारी वाजपेयी की छवि उदारवादी रही है। उनकी सोच और विचारधारा के अनुरूप ही उनकी नीति और सिद्वांत मानवता तथा इंसानियत के करीब रहा है। तथाकथित सम्प्रदायिक पार्टी के प्रधानमंत्री होते हुए भी वे सर्वधर्म सम्भाव और धर्मनिरपेक्षता में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे। वाजपेयी के इसी गुण से प्रभावित होकर जम्मु कश्मीर लिबरेशन फ्रंट के प्रमुख और अलगावादी नेता यासीन मलिक ने कहा था–

"These was a time when People thought thatAtal Bihari Vajpayee would resolve the issue using good phrases and vesses".

वाजपेयी की कश्मीरियत, ज्महूरियत और इंसानियत की नीति ही कश्मीर समस्या का समाधान हो सकता है। वर्तमान मोदी सरकार भी इसी नीति की पक्षधार है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी कहा है कि "अलगावादियों और कश्मीरी युवाओं को पत्थर फेंकने नही बल्कि पत्थर तरासने की कला सीखनी चाहिए। हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं है।"

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी बार-बार इस बात को दोहरा चुके है कि हमारी सरकार अटल के रास्ते पर ही चलेगा चाहे वो विदेश नीति के मामले, गृह नीति या प्रशासकीय नीति हो। हाल ही में 2019 के बजट पूर्व भाषण में राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने कहा था–

"जब देश को अटल बिहारी वाजपेयी के रूप दूरदर्शी, समावेशी, गरीबों का दुख समझने वाले प्रधानमंत्री मिले थे, तो अनेक नये विभाग, कार्यक्रम, मंत्रालय और योजनाएँ शुरू किये गये थे। उत्तर-पूर्व राज्यों के लिए अलग मंत्रालय हो या आदिवासी कल्याण मंत्रालय, सर्व शिक्षा अभियान या स्वर्णिम चतुर्भुज जैसे देश को सड़को के माध्यम से जोड़ने का अभियान ये सब अटल जी की देन थी।

अटल जी ने देश में व्याप्त समाजिक असंतुलन को दूर करने के लिए महायज्ञ शुरू किया था। अटल जी द्वारा शुरू किये गये ये कार्य और मंत्रालय 21वीं सदी शुरूआती वर्षों में समाजिक असंतुलन समाप्त करने में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहे थे, लेकिन दुर्भाग्यवश बाद इन कार्यों को वैसी गति और निरन्तरता नही मिल सकी जैसी मिलनी चाहिए। 2014 से हमारी सरकार अटल जी के विजन पर चलना प्रारम्भ किया।"

सन्दर्भ

1. डा॰ बी॰ सिंह गहलौत, भारतीय विदेश नीति, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 10 से 25
2. khabar.ndtv.com
3. डॉ॰ ना॰मा॰ घटाटे, मेरी संसदीय यात्रा, अटल बिहारी वाजपेयी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार (भाग-4), पृष्ठ सं॰-275
4. वही, पृ॰-64
5. वही, पृ॰ 94-99
6. वही, पृ॰ 94-99
7. वही, पृ॰ 94-99
8. वही, पृ॰ 93
9. जे॰एन॰ दीक्षित, भारतीय विदेश नीति प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 450-463
10. द हिन्दू
11. सं॰ डा. ना. मा. घटाटे, मेरी संसदीय यात्रा, अटल बिहारी वाजपेयी (भाग-4, विदेश नीति), पृष्ठ सं॰ 89
12. वही, पृ॰ 91
13. वही, पृ॰ 93
14. वही, पृ॰ 64
15. 31.10.2019 को संसद में राष्ट्रपति महोदय का बजटीय अभिभाषण
16. वही,
17. वही

संवैधानिक विकास के प्रक्रिया के दौरान बैवेल योजना एवं कैबिनेट मिशन के महत्व का एक अवलोकन

डॉ० सुधांशु कुमार

(यूजीसी-नेट) इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के बाद भारत में संविधान निर्माण हेतु राष्ट्रीय आंदोलन और अधिक उग्र होता गया। जिस प्रकार से ब्रिटिश को भारतीय नेताओं का असहयोग मिलता जा रहा था जिससे अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश सरकार पर भारत के पक्ष में स्वतंत्रता को लेकर दबाव बढ़ता जा रहा था। फलत: ब्रिटिश सरकार ने 1945 में बैवेल योजना तथा 1946 में कैबिनेट मिशन प्लान लाया जो कि संवैधानिक विकास का मूर्त रूप देखने को मिलने लगा।

शोध आलेख का उद्देश्य

ब्रिटिश संसद के द्वारा 20वीं शताब्दी में संवैधानिक विकास समय-समय पर किया गया जिसमें 1945 में कैबिनेट मिशन का आगमन देखा जा सकता है।

अत: प्रस्तावित शोध प्रबंध का मूल उद्देश्य यह पता लगाना है कि भारत में संवैधानिक विकास के प्रक्रिया में बेवेल योजना, कैबिनेट मिशन का क्या प्रभाव रहा? तथा इनका उद्देश्य क्या था? अपेक्षाएं क्या थीं? इसमें क्रमिक बदलाव कैसे आया? इसकी सफलताएँ एवं असफलताएँ क्या है?

शोध कार्य का उपकल्पना

उपर्युक्त शोध विषय की वैज्ञानिकता की सुनिश्चितता के लिए शोधकर्ता द्वारा अपने वैज्ञानिकता की सुनिश्चितता के लिए अपने अध्ययन क्षेत्र के संबंध में कतिपय संकल्पनाओं को निर्धारित किया गया है।

संवैधानिक विकास के प्रक्रिया में बेवेल योजना तथा कैबिनेट मिशन का क्या दृष्टिकोण रहा।

20वीं शताब्दी में राष्ट्रीवादी आंदोलनकारियों का नजरिया संवैधानिक सुधार करवाना तथा भारतीय हित के लिए संविधान निर्माण का पहल करवाना।

अध्ययन क्षेत्र का विवरण

अक्टूबर,1943 को लिनलिथगो की जगह लार्ड वेवल (Lord Wavell¼ भारत के वायसराय बन कर आये। इस समय भारत की स्थिति अत्यधिक तनावपूर्ण थी। वेवल स्थिति को सामान्य बनाने की दिशा मे प्रयास करते हुए सर्वप्रथम भारत छोडो आंदोलन के समय गिरफ्तार काँग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों को रिहा किया।

14 जून, 1945 को वेवल ने वेवेल योजना प्रस्तुत की, जिसकी प्रमुख शर्ते इस प्रकार थी। 1945 ई. के पूर्वाद्ध तक भारत और विदेशों में घटनाक्रम तेजी से बदल रहा था। अक्टूबर, 1943 ई. में लॉर्ड लिनलिथगो (Lord Linlithgow) की जगह लॉर्ड वैवेल

(Lord Wavell) भारत के नए वायसराय बने। जैसा कि आप जानते हो कि 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध (Second World War) खत्म हो चुका था। इंग्लैंड में नए चुनाव होने वाले थे। इंग्लैंड में लेबर दल (संइवनत चंतजल) का प्रभाव बढ़ रहा था। चर्चिल, जो स्वयं ब्वदेमतअंजivम चंतजल के थे, लेबर पार्टी के इस बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर भारत में फिर से संवैधानिक सुधारों का नाटक करने की फिराक में थे। बेनतबीपसस ने मार्च, 1945 में विचार-विमर्श हेतु वैवेल (Wavell) को लन्दन बुलाया। चलिए देखते हैं आगे क्या होता है? क्या है यह अमसस योजना और शिमला सम्मलेन (Simla Conference)?

इस प्लान के तहत जब तक संविधान नहीं बने तब तक केन्द्रीय शासन में अंग्रेज वायसराय और अंग्रेज प्रधान सेनापति के अलावा बाकी सभी विभाग भारतीयों की मिलेंगे। यह एक कार्यकारिणी परिषद (Executive Council) कहलाई जाएगी। योजना यह थी कि इसी तरह का कौंसिल राज्यों तथा प्रान्तों में भी बनाई जाएगी।

चर्चिल से कपेबनेपवद कर के लॉर्ड वैवेल भारत पहुँचे। जून, 1945 में वैवेल ने संवैधानिक सुधारों की रुपरेखा प्रस्तुत की। इस योजना पर विचार करने के लिए 25 जून, 1945 को भारतीय प्रतिनिधियों का एक सम्मलेन शिमला (Simla Conference) में बुलाया गया। इस सम्मलेन में भाग लेने के लिए सभी राजनीतिक बंदियों को रिहा किया गया और गाँधी जी पर से नजरबंदी हटाई गई। 25 जून, 1945 को शिमला में वैवेल की अध्यक्षता में सम्मलेन शुरू हुआ जिसमें काँग्रेस और मुस्लिम लीग के अलावे सिख, दलित वर्ग और केन्द्रीय विधानसभा के European दल के representatives को भी आमंत्रित किया गया।

प्रस्ताव

1. साम्प्रदायिक समस्या का निराकरण किया जाए।
2. हिन्दू (high castes) और मुस्लिम को बराबर-बराबर प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।
3. शूद्र और सिखों को भी प्रतिनिधित्व दिया जायेगा।
4. नई परिषद् में वायसराय और प्रधान सेनापति के अलावे सभी भारतीय सदस्य रखे जायेंगे।
5. सभी विभाग भारतीयों को सौंपे जायेंगे (रक्षा विभाग को छोड़कर)।
6. नए बवनदबपस के कार्य, प्रशासन और संविधान निर्माण पद्धति को निश्चित करना था।
7. वायसराय के अधिकारों में कोई कटौती नहीं की जायेगी पर वह विवेकहीन तरीके से अपने अधिकारों का उपयोग नहीं करेगा।

कार्यकारिणी परिषद् के गठन को लेकन विवाद खड़ा हो गया। अनुसूचित जाति के नेताओं ने पृथक नामांकन करने का अधि कार माँगा। जिन्ना ने मांग की कि सूची तैयार करने का अधिकार सिर्फ मुस्लिम लीग को ही मिले। इस आधार पर अबुल कलाम आजाद भी कार्यकारिणी के सदस्य नहीं हो सकते थे। जिन्ना की जिद और वैवेल की अदूरदर्शिता से शिमला सम्मलेन असफल रहा। 14 जुलाई, 1945 को वायसराय ने सम्मलेन को असफल कह कर समाप्त कर दिया।

जुलाई, 1945 में इंग्लैंड में चुनाव हुए जिसमें Labour Party को बहुमत प्राप्त हुआ। चर्चिल हार गए और एटली इंग्लैंड के प्रधानमंत्री बने। Labour Party भारत के प्रति उदार दृष्टिकोण रखती थी। उसने भारत की समस्या को solve करने के लिए वैवेल को इंग्लैंड बुलाकर उनसे बातचीत की। एटली ने भारत में प्रांतीय और केन्द्रीय विधानसभाओं के लिए चुनाव करवाने की भी घोषणा की। 1945-46 के elections में सामान्य स्थानों पर Congress को और मुसलामानों के लिए आरक्षित स्थानों पर Muslim League को सफलता मिली। केन्द्रीय विधानसभा में काँग्रेस को 57 और लीग को 30 seats मिले। इस प्रकार प्रान्तों में भी काँग्रेस को बहुमत मिला। फलस्वरूप, हिन्दू बहुल प्रान्तों में काँग्रेसी मंत्रिमंडल बने। बंगाल और सिंध में मुस्लिम लीग की सरकार बनी पर पंजाब में खिजर हयात के नेतृत्व में मिली-जुली सरकार बनी।

शिमला सम्मेलन आशापूर्ण वातावरण में प्रारंभ हुआ, लेकिन दो दिन के उपरान्त ही स्थगित कर दिया गया। इसका कारण यह था कि वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के निर्माण पर कोई समझौता नहीं हो सका। मौलाना आजाद ने काँग्रेस की ओर से

कार्यकारिणी की जो सूची प्रस्तुत की, उसमें तीन मुस्लिम लीग के सदस्यों के साथ दो राष्ट्रीय मुसलमानों को भी सम्मिलित किया गया। जिन्ना ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि कार्यकारिणी परिषद के पांचों मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग के ही प्रतिनिधि मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग के ही प्रतिनिधि होने चाहिए. जिन्ना के इस दावे को काँग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार जिन्ना के इस हठधार्मी से टकराकर वैवेल योजना समाप्त हो गयी। 14 जुलाई, 1945 को वायसराय ने सम्मलेन को असफल कहकर समाप्त कर दिया।

शिमला सम्मेलन ने दो बातें स्पष्ट कर दी। प्रथम, ब्रिटिश सरकार अनिच्छा से ही सही भारतीयों को भारत का शासन सौंपना चाहती है तथा दूसरा भारत की संवैधानिक समस्या का समाधान तब तक संभव नहीं है, जब तक कि साप्रदायिक समस्या का निराकरण न हो जाए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त हो जाने पर काँग्रेसी नेताओं को जेल से छोड़ दिया गया। उसी वर्ष, अर्थात् जून 1945 में लॉर्ड वैवेल (Lord Wavell) ने अपनी घोषणा में कहा कि ब्रिटिश सरकार भारत को पूर्ण स्वराज्य देना चाहती है और इसके लिए कार्यकारिणी में प्रधान सेनापति को छोड़कर अन्य सभी सदस्य भारतीय होंगे। पर, मुस्लिम लीग इससे असहमत थी। अत:, यह घोषणा कार्यान्वित नहीं की जा सकी।

अंग्रेजी सेना के 70 हजार से अधिक भारतीय सैनिकों ने जापानी सेनाओं के समक्ष पराजित होकर आत्मसमर्पण कर दिया था। जापान की सरकार द्वारा सहायता पाकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में इन 70 हजार सैनिकों ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की।

19 फरवरी 1946 को भारतमंत्री लॉर्ड पेथिक लौरेंस (Lord Pethicμ Lawrence) ने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार भारत में एक मंत्रिमंडल मिशन भेजेगी, जो भारतीय नेताओं से मिलकर भारतीय स्वाधीनता की समस्या पर विचार करेगा। उसी दिन वायसराय ने भी यह घोषित किया कि मिशन में भारतमंत्री लॉर्ड पेथिक लौरेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा ए.बी. अलेक्जेंडर हैं। 15 मार्च 1946 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने यह घोषणा की– "परिस्थिति पूरी तरह से बदल चुकी है और उसके समाधार के लिए कोई नया फॉर्मूला स्वीकार करना होगा। प्राचीन उपायों से समस्या का समाधान संभव न होकर गतिरोध की संभावना अधिक है।" इस घोषणा में भारतीयों की पूर्ण स्वतंत्रता की माँग स्वीकार कर ली गयी और यह घोषित किया गया कि बहुमत द्वारा समर्थित राष्ट्रीय राजनीतिक प्रगति के निषेध का अधिकार अल्पमत को नहीं दिया जायेगा।

मंत्रिमंडल मिशन का आगमन इस घोषणा के अनुसार मंत्रिमंडल मिशन 23 मार्च 1947 को भारत पहुँचा। लॉर्ड पैथिक लौरेंस ने बताया– "ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश राष्ट्र अपने उन वादों और वचनों को पूरा करना चाहते हैं, जो उन्होंने भारत को दिए हैं और हम विश्वास दिलाते हैं कि अपनी वार्ता के बीच हम ऐसी बाधा तथा शर्त उपस्थित न करेंगे, जो भारत के स्वाधीन अस्तित्व के मार्ग में बाधा उत्पन्न करे। अभी भारतीय स्वाधीनता की ओर उत्पन्न करे। अभी भारतीय स्वाधीनता की ओर जाने की राह निषकंटक नहीं हैय किन्तु स्वाधीनता का जो दृश्य हमें दृष्टिगोचर हो रहा हो, उससे हमें सहयोग के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा प्राप्त होगी।" सर स्टैफोर्ड क्रिप्स ने बताया कि मिशन का उद्देश्य भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंपने का उपाय ढूँढना है। भारत के लिए एक नए संविधान की रचना और केंद्र में एक अंतरिम सरकार की स्थापना करना ही मिशन का उद्देश्य बताया गया। मिशन के सदस्यों ने गवर्नर-जनरल, प्रांतीय गवर्नरों और विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों से मिलकर विचार-विमर्श किया। इससे स्पष्ट हो गया कि भारत की वैधानिक रुपरेखा, संविधान परिषद के निर्माण और अंतरिम सरकार के संगठन में भारतीय दलों में पर्याप्त मतभेद है।

मंत्रिमंडल मिशन ने अपनी एक योजना प्रस्तुत की परन्तु उसे स्वीकार नहीं किया गया। अंत में माउंटबेटन ने अपनी एक योजना प्रस्तुत की और भारत की स्वतंत्रता के लिए रास्ता साफ हो गया। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित किया गया और इसी के प्रावधान के अनुसार भारत को 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र घोषित कर दिया गया। इस तरह, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का अंतिम परिणाम भारत की आजादी माना जाता है। भारत आजाद हुआ, परन्तु उसे बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी. भारत दो टुकड़ों में बँट गया।

संदर्भ-सूची

1. आचार्य, विजय किशोर, कोडीफिकेशन ऑफ ब्रिटिश इंडिया, कलकत्ता : एस. के. बनर्जी एण्ड सन्स, 1914।
2. अधिकारी, जी. एड. डाक्यूमेन्टस ऑफ द हिस्ट्री ऑफ द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, 1917–22, नई दिल्ली।
3. अहमद अजीज, इस्लामिक मॉडर्न इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान, लंदन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सी प्रेस, 1967।
4. गाँधी एज. महात्मा, गोरखपुर डिस्ट्रीक्ट इस्टर्न यू.पी., 1921–22, सबल्टर्न स्टडीज राइटिंग ऑन साउथ एशियन हिस्ट्री एण्ड सोलायत इडिटेड बाई आर. गुहा, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सी प्रेस, 1984।
5. इम्पीरीयल मेरीडीयन, द ब्रिटिश इम्पायर एण्ड द वर्ल्ड लंदन, लंगमन, 1989।
6. विश्वास के.पी. युक्ता बंगलर शेष अध्याय, कलकत्ता, 1966।
7. सुभाष कश्यप, भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
8. बिपिन चन्द्र, हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, 2001।
9. के.सी. जैन, आधुनिक भारत का इतिहास, 2015, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
10. गुप्ता, सुभद्रा, अशोका, पेनग्यून पुस्तक, नई दिल्ली, 2009।
11. चौधरी के.के., नेशनल मूवमेंट एण्ड इंडियन नेशनल काँग्रेस पेनग्यून पुस्तक, लंदन, 1985।
12. गोस्वामी, ए., फ्रीडम स्ट्रगल ऑफ इंडिया क्वीण बुक, डायमण्ड पौकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2006।

अनुच्छेद 370 और 35-ए की समाप्ति का निहितार्थ

डॉ० अबिनाश प्रताप सिंह

राजनीतिशास्त्र विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

सार-संक्षेप

अखण्ड भारत का सपना साकार करने में संविधान से अनुच्छेद 370 और 35-ए की समाप्ति मील का पत्थर साबित होगी। श्री नरेन्द्र मोदी सरकार ने सुविचारित रीति से अनुच्छेद 370 और 35-ए को भारतीय संविधान से हटा कर जम्मू-कश्मीर को आतंकवाद और अलगाववाद से मुक्त करने का प्रभावी प्रयास किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय के बाद से ही जम्मू-कश्मीर तुष्टीकरण का शिकार हो गया। यदि सरदार वल्लभभाई पटेल को जूनागढ़ और हैदराबाद को भारत में विलय कराने जैसी स्वतन्त्रता होती तो शायद जम्मू-कश्मीर की समस्या का समाधान उसी समय हो गया होता। सभी देशी रियासतों के लिए विलय-पत्र का प्रारूप एक समान था तो जम्मू-कश्मीर के विलय में अलग परिस्थिति क्यों बनायी गयी? विशेष राज्य का दर्जा, स्थायी नागरिकता, अलग संविधान इत्यादि बातें स्वाभाविक रूप से जम्मू-कश्मीर को शेष भारत से एक सीमा तक अलग कर देती थी। जम्मू-कश्मीर की यह विषम परिस्थिति देश की सुरक्षा और अखण्डता के सामने हमेशा चुनौती बनी रही। आश्चर्य की बात है कि यह कदम पहले क्यों नहीं उठाया गया? स्वयं नेहरू भी अनुच्छेद 370 को अस्थायी कहते रहे। एक अस्थायी अनुच्छेद कैसे स्थायी समस्या बन गया? अब इस स्थायी समस्या का स्थायी समाधान करने की प्रक्रिया में संविधानिक तरीके से एक बड़ा कदम उठा लिया गया है। अनुच्छेद 370 और 35-ए की समाप्ति से जम्मू-कश्मीर आतंकवाद, अलगाववाद, पत्थरबाजी से हमेशा के लिए मुक्त हो सकेगा तथा साथ ही साथ विकास की नयी धारा का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

महत्त्वपूर्ण शब्दावली: राष्ट्रीय एकीकरण, तुष्टीकरण, अलगाववाद, विकराल, रियासत, कुशल प्रबन्धन, विलय-पत्र, दिल्ली समझ, दिल्ली समझौता, ड्राफ्ट, सदर-ए-रियासत, वजीर-ए-आलम, विस्थापित नागरिक, स्थायी नागरिकता, अनुच्छेद 370, अनुच्छेद 35-ए।

कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा सौराष्ट्र से कामरूप तक भारत एक है, अखण्ड है। भारत की अखण्डता और एकता की यह भावना देश की स्वतन्त्रता के समय प्रत्येक भारतीय के मन-मस्तिष्क में भी रहा होगा। सरदार वल्लभभाई पटेल के दृढ़ इच्छाशक्ति, अदम्य साहस और कुशल प्रबन्धन ने जूनागढ़ और हैदराबाद सहित ज्यादातर देशी रियासतों को भारत में विलय कराकर राष्ट्रीय एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। भारत के राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रियासत जम्मू-कश्मीर यद्यपि कि अन्ततः भारत का हिस्सा तो बना लेकिन 1947 से लेकर अगस्त 2019 तक भारत की एकता और अखण्डता के लिए निरन्तर चुनौती भी प्रस्तुत करता रहा। जम्मू-कश्मीर को उस समय विशेष राज्य का दर्जा प्रदान करते हुए भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 और बाद में 35-ए तथा जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए अलग संविधान का प्रावधान कर हमेशा-हमेशा के लिए समस्या को निमन्त्रण दे दिया गया जिसके परिणामस्वरूप आजतक भारतीय सेना और आम भारतीय के जीवन की सुरक्षा लगातार संकट में है। इन्हीं प्रावधानों के कारण जम्मू-कश्मीर में सदैव अराजकता का वातावरण सृजित रहा है। अलगाववादी नेताओं को जिस प्रकार पुष्पित-पल्लवित किया जाता रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। विशेष राज्य की स्थिति के नाम पर पत्थरबाज और

आतंकवादी किस प्रकार क्रूरता और अमानवीय कृत्य करते थे वह आज भी आम भारतवासी के हृदय को द्रवित कर देता है। इन परिस्थितियों के कारण जम्मू-कश्मीर लगातार हिंसा और बर्बादी की जद में था। सड़क से संसद तक और सुप्रीम कोर्ट तक जम्मू-कश्मीर का यह मसला कानूनी दाँव-पेंच में किस प्रकार उलझा था, उससे प्रत्येक सजग नागरिक परिचित है। जम्मू-कश्मीर की यह विराट समस्या जो लगातार राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए चुनौती बन गयी थी और जिसका समाधान अब असम्भव सा प्रतीत होने लगा था उसे जिस साहस और कौशल के द्वारा वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली केन्द्र सरकार ने समाधान किया है वह भारत के राजनीतिक एवं संवैधानिक इतिहास में हमेशा याद किया जाता रहेगा। राष्ट्रीय एकीकरण के इतिहास में अनुच्छेद 370 एवं 35-ए की समाप्ति तथा जम्मू-कश्मीर राज्य को जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख के रूप में दो केन्द्रशासित प्रदेश के रूप में गठन स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया है। राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी के रूप में सामान्य प्रश्न मन में उठता है कि यदि जम्मू-कश्मीर की समस्या इतनी विकराल थी जिसके कारण लाखों निर्दोष लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी फिर भी अनुच्छेद 370 एवं 35-ए को समाप्त करने का साहस अभी तक की सरकारें क्यों नहीं कर पायीं? लम्बे समय तक जम्मू-कश्मीर प्रदेश और केन्द्र में एक ही दल की सरकार थी तो भी क्यों नहीं इस प्रकार के समाधान का स्थायी रास्ता चुना गया। तात्कालिक सुविधा के लिए क्यों दीर्घकालीन समस्या को स्वीकार्य किया गया? जूनागढ़ और हैदराबाद जैसी असम्भव प्रतीत हो रहे रियासतों को हमेशा के लिए भारत का अभिन्न अंग बना दिया गया तब जम्मू-कश्मीर के लिए क्यों नहीं सम्भव हो पाया, इत्यादि अनेक प्रश्न हैं जिन पर विचार किया जाना न केवल समीचीन है वरन् 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' के भविष्य के लिए आवश्यक भी है।

आखिरकार दशकों के इन्तजार के बाद जम्मू-कश्मीर के भारत में पूर्ण एकीकरण की दिशा में बड़ा कदम उठा लिया गया। इससे एक ऐतिहासिक गलती को ठीक किया गया।[1] इस ऐतिहासिक गलती को अथवा परिस्थिति को ठीक से समझने के लिए 1947 से 2019 तक के जम्मू-कश्मीर राज्य की सामाजिक, राजनीतिक और संवैधानिक परिस्थिति को समझना पड़ेगा या यह कहें कि 2019 को 1947 के परिप्रेक्ष्य में समझना होगा। यह विदित है कि 1947 के अधिनियम के माध्यम से भारत अंग्रेजों से स्वतन्त्र हुआ था। इस अधिनियम की व्यवस्था के अनुसार तत्कालीन लगभग 565 रियासतों को अपनी इच्छा से भारत अथवा पाकिस्तान में विलय करना था अथवा अपने को स्वतन्त्र रखने का भी विकल्प उन्हें प्राप्त था। रियासत मन्त्रालय का प्रभार सरदार वल्लभभाई पटेल को दिया गया। उनके ही कुशल प्रबन्धन और कठोर निर्णय-शक्ति के कारण अधिकतर रियासतें, राजे-रजवाड़ों का भारत में विलय सम्भव हो पाया। जूनागढ़ और हैदराबाद का भारत में विलय के मामले में सरदार वल्लभभाई पटेल के निर्णय-शक्ति और प्रबन्धन से सभी परिचित हैं। इन दोनों रियासतों के शासकों ने अपनी भौगोलिक स्थिति के प्रतिकूल पाकिस्तान के साथ लगभग विलय कर ही लिया था लेकिन सरदार पटेल के स्वतन्त्र निर्णय के नाते अन्ततः इन दोनों रियासतों का भारत में पूर्ण विलय हो गया और वे भारत के अभिन्न अंग बन गये। जूनागढ़ में तो सरदार पटेल ने जनमतसंग्रह कराकर उसे भारत का अटूट हिस्सा बना दिया।[2] जबकि हैदराबाद में फिरकापरस्त ताकतों को सेना के माध्यम से कुचलते हुए भारत में हमेशा के लिए सम्मिलित कराने का ऐतिहासिक कार्य किया।[3] यद्यपि कि जम्मू-कश्मीर के विषय में सम्भवतः सरदार पटेल के समक्ष जूनागढ़ और हैदराबाद जैसे निर्णय लेने की स्वतन्त्र स्थिति नहीं थी। हालाँकि कश्मीर की भौगोलिक स्थिति भी भिन्न थी और इस दृष्टि से वह भारत के राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र भी था। सीमावर्ती क्षेत्र होने के कारण सामरिक दृष्टि से जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय अत्यन्त आवश्यक भी था, उधार पाकिस्तान भी जम्मू-कश्मीर को अपने में विलय कराने के लिए विविध प्रकार के पैंतरेबाजी कर रहा था। भारत के लिए जिस रियासत का इतना सामरिक और सांस्कृतिक महत्त्व रहा हो, जूनागढ़ और हैदराबाद की तरह उसका भारत में विलय न हो पाना दुर्भाग्यपूर्ण था। जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन महाराजा स्वयं अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की लालसा में फँसे थे लेकिन जब पाकिस्तानी कबायलियों के भेष में पाकिस्तानी सेना ने जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण कर दिया तब जाकर महाराजा हरिसिंह ने जम्मू-कश्मीर को भारत में सम्मिलित करने की सहमति विलय पत्र पर 26 अक्टूबर 1947 को हस्ताक्षर किया तथा 27 अक्टूबर 1947 को लार्ड माउण्टबेटन ने उस पत्र पर हस्ताक्षर किया।[4] तब भारतीय सेना ने अदम्य साहस का परिचय देते हुए जम्मू-कश्मीर के दो-तिहाई हिस्सों से कबाइलियों तथा पाकिस्तानी सेना को पीछे धाकेल दिया। सम्भवतः तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू थोड़ा और साहस दिखाये होते तो आज सम्पूर्ण जम्मू-कश्मीर भारत का अटूट और अभिन्न हिस्सा होता।

जम्मू-कश्मीर के विलय-पत्र की शर्तों को लेकर लगातार भ्रम की स्थिति बनायी गयी। सभी रियासतों, राजे-रजवाड़ों के विलय के लिए एक ही तरह के प्रारूप बनाये गये थे। उस पर सिर्फ रियासत का नाम, विलय की तिथि और शासक का हस्ताक्षर होता

था, शेष सभी बातें पहले से टाइप हुई रहती थीं। वही विलय-पत्र जम्मू-कश्मीर के लिए भी प्रयुक्त हुआ था। ऐसे में जम्मू-कश्मीर के लिए विशेष राज्य का दर्जा, अलग संविधान, अलग सभी प्रकार की रियायतों का प्रश्न कैसे आ गया, यह विचार का विषय है। दूसरी ओर युद्ध के समय लार्ड माउण्टबेटन की इच्छा थी कि युद्धोपरान्त जम्मू-कश्मीर में जनमतसंग्रह के आधार पर निर्णय किया जाना ठीक है। लेकिन दुर्भाग्य से इसी बीच तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने सार्वजनिक रूप से अपने वक्तव्य में कहा कि जम्मू-कश्मीर में शान्ति स्थापित हो जाने के बाद हम जनमतसंग्रह कराएँगे। यहीं से जम्मू-कश्मीर में जनमतसंग्रह की माँग तीव्र होने लगी। इसी के साथ एक और घटना जम्मू-कश्मीर के सम्बन्ध में ऐतिहासिक भूल के रूप में देखी जाती है। भारत इस मसले को 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद् में लाकर आन्तरिक मसले को अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया। 21 अप्रैल 1948 को प्रस्ताव संख्या 47 में जनमतसंग्रह पर सहमति बनी। शर्त यह थी कि पाकिस्तानी कबायली और सेना जम्मू-कश्मीर से वापस चले जाएँ। लेकिन भारत ने यह कहते हुए इससे दूरी बना ली कि पाकिस्तानी सेना पूरी तरीके से जम्मू-कश्मीर से नहीं हटी है।[5] यहाँ थोड़ा सन्तोष अवश्य था कि भारत ने सुरक्षा परिषद् में यह मसला चार्टर के भाग 6 के अधीन उठाया था जो कि बाध्यकारी नहीं होता है। यद्यपि कि जम्मू-कश्मीर के विषय को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने का कोई औचित्य ही नहीं था, जम्मू-कश्मीर अन्य रियासतों की तरह ही संवैधानिक तरीके से विलय-पत्र के माध्यम से भारत का अभिन्न अंग बना था।

जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय हो जाने के बाद भारत सरकार का अगला कदम वहाँ के लिए विशेष प्रावधान करना था। इस क्रम में जून 1949 में पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और जम्मू-कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्ला के मध्य दिल्ली में बैठक हुई जिसे हम 'दिल्ली समझ' के नाम से जानते हैं। इस बैठक में जम्मू-कश्मीर के लिए भारतीय संविधान में जबतक कि जम्मू-कश्मीर का अपना अलग संविधान न बन जाय तबतक के लिए अस्थायी तौर पर प्रावधान करने की सहमति बनी। इसके लिए जम्मू-कश्मीर से शेख अब्दुल्ला, मिर्जा अफजल बेग, मसूदी तथा मोतीराम बागड़ा को भारतीय संविधान सभा का सदस्य बनाया गया। संविधान सभा ने आम सहमति से संविधान में जम्मू-कश्मीर के लिए अनुच्छेद 306(1) के अन्तर्गत विविध प्रावधान निर्धारित किया। यह अनुच्छेद संविधान लागू होने से पूर्व अनुच्छेद 370 के रूप में परिवर्तित हो गया।[6] भारत का संविधान लागू होते ही अनुच्छेद 370 के माध्यम से जम्मू को विशेष राज्य का दर्जा प्राप्त हो गया। यद्यपि कि भारत के संविधान की पहली अनुसूची में जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न हिस्सा उल्लिखित है। वहीं संविधान का भाग-21 जिसमें अनुच्छेद 370 को सम्मिलित किया गया है वह अस्थायी और संक्रमणकालीन शीर्षक के रूप में संविधान में उल्लिखित है। फिर भी अनुच्छेद 370 में जम्मू-कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा दिया गया है। इसके अनुसार भारतीय संविधान के सभी उपबन्ध इस पर लागू नहीं होंगे।[7] अनुच्छेद 370 के उपबन्धें के परिणामस्वरूप राष्ट्रपति ने 'संविधान आदेश (जम्मू-कश्मीर के लिए अनुप्रयोग) नामक आदेश, 1950 में केन्द्र का राज्य पर अधिकार क्षेत्र उल्लिखित करने के लिए जारी किया।[8] भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 की व्यवस्था जम्मू-कश्मीर में संविधान निर्माण और नयी सरकार गठन तक के लिए ही किया गया था, परन्तु उसके बाद भी अनुच्छेद 370 की व्यवस्था समाप्त नहीं की गयी। स्वाभाविक है कि अनुच्छेद 370 हमेशा यह अहसास दिलाता रहा कि जम्मू-कश्मीर भारत से अलग है।[9] दरअसल जम्मू-कश्मीर के लिए विशेष प्रावधान प्रदान किये जाने पर डॉ. भीमराव अम्बेडकर और सरदार वल्लभभाई पटेल ने न केवल असहमति दर्ज करायी वरन् उसका विरोध भी किया। इस सम्बन्ध में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने शेख अब्दुल्ला से कहा कि 'मैं कानून मंत्री हूँ, अपने देश के साथ गद्दारी नहीं कर सकता।' डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में शेख अब्दुल्ला द्वारा प्रस्तुत ड्राफ्ट जोड़ने से यह कह कर स्पष्ट रूप से मना करते हुए कहा कि वे देश के साथ विश्वासघात नहीं कर सकते तब पं. नेहरू ने गोपालस्वामी आयंगर को भारत के संविधान में अनुच्छेद 370 का ड्राफ्ट बनाने का आदेश दिया। शेख अब्दुल्ला के साथ अनुच्छेद 370 को अन्तिम रूप देने के बाद पं. नेहरू ने गोपाल स्वामी आयंगर को बिना विभाग का मंत्री बनाकर जम्मू-कश्मीर से सम्बन्धित कार्य करने का रास्ता साफ किया, जिस पर सरदार पटेल ने आपत्ति जताई तब पं. नेहरू ने कहा कि आयंगर मेरी पहल पर कश्मीर के मामले में हस्तक्षेप कर रहे हैं। सरदार पटेल के निजी सचिव रहे वी.शंकर ने उस दौर की सारी गतिविधियों को विस्तारपूर्वक लिखा है। उन्होंने लिखा है कि जब अनुच्छेद 370 का मसौदा संविधान सभा में रखा गया तब इसकी धज्जियाँ उड़ा दी गयीं। उस समय पं. नेहरू विदेश में थे। उन्होंने सरदार पटेल से फोन करके अनुच्छेद 370 के प्रस्ताव को पारित कराने का आग्रह किया। अन्ततः न चाहते हुए भी सरदार पटेल ने इस प्रस्ताव को संविधान सभा में पारित करवाया। वी.शंकर के मुताबिक पटेल ने यह भी कहा, 'जवाहरलाल रोएगा।' वी.शंकर ने यह भी लिखा है कि इस मुद्दे पर काँग्रेस की बैठक में खूब हंगामा हुआ। उनके शब्दों में 'मैंने इतनी हंगामेदार बैठक कभी नहीं देखी।'[10]

काँग्रेस की सिद्धान्तत: राय थी कि अन्य राज्यों की तर्ज पर कश्मीर को मूलभूत संवैधानिक व्यवस्थाओं के तहत स्वीकार्य किया जाना चाहिए।[11] वास्तव में पं. नेहरू की जिद से जुड़ा था अनुच्छेद 370। इससे कम ही लोग अपरिचित हैं कि किस तरह सरदार पटेल, काँग्रेस कार्यसमिति के तमाम सदस्यों और साथ ही संविधान सभा की अनिच्छा के बावजूद यह अनुच्छेद निर्मित हुआ और संविधान का हिस्सा बना।[12]

1952 में भारत सरकार और जम्मू-कश्मीर राज्य अपने भविष्य के सम्बन्धों के लिए राजी हुए जिसे 'दिल्ली समझौता' के नाम से जाना जाता है। जम्मू-कश्मीर की ओर से शेख अब्दुल्ला और मिर्जा अफजल बेग तथा पं. जवाहरलाल नेहरू के मध्य इस समझौते में जो सहमति बनी उसमें सर्वप्रमुख राजा को सदर-ए-रियासत तथा प्रधानमंत्री को वजीर-ए-आलम का नाम दिया गया तथा बाहरी लोगों को जम्मू-कश्मीर में बसने की मनाही का प्रावधान सम्मिलित है। इस समझौते में जम्मू-कश्मीर को विविध प्रकार की स्वायत्तता प्रदान कर राष्ट्रीय एकीकरण की नींव को कमजोर कर दिया गया। इसी क्रम में 14 मई 1954 को भारत के राष्ट्रपति का एक आदेश निकला जो कि 'संविधान (जम्मू-कश्मीर को लागू होना) आदेश 1954 था। इस आदेश में सबसे महत्त्वपूर्ण उल्लेख अनुच्छेद '35-ए' का है। यद्यपि कि अनुच्छेद 35-ए को संविधान में जगह नहीं दिया गया। भारतीय संविधान में उल्लिखित अनुच्छेद 35 संसद को मूल अधिकार के विषय में फाइल बनाने से सम्बन्धित अधिकार प्रदान करता है। इस अनुच्छेद के अपवादस्वरूप अनुच्छेद 35-ए लाया गया। इस अनुच्छेद के तहत जम्मू-कश्मीर की सरकार को वहाँ का स्थायी नागरिक तय करने का अधिकार प्राप्त हो गया। स्थायी नागरिक को ही जमीन खरीदने, कारोबार करने, नौकरी करने, आरक्षण सम्बन्धी विशेष अधिकार दिये गये। इसमें स्त्रियों को सम्पत्ति से बेदखल करने के कई प्रावधान रखे गये। राष्ट्रपति के आदेश 1954, को आगे चलकर कई बार 1963, 1964, 1966, 1972, 1974 और 1986 में संशोधित किया गया। यद्यपि कि जम्मू-कश्मीर को भारत का अभिन्न हिस्सा घोषित किया गया है,[13] 1964 में संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 को जम्मू-कश्मीर के लिए भी प्रभावी बना दिया गया। पहली बार 1987 में अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया गया। 1965 में संविधान संशोधन करके सदर-ए-रियासत (राष्ट्रपति) को राज्यपाल तथा वजीर-ए-आजम (प्रधानमंत्री) को मुख्यमंत्री का नाम दिया गया।[14] 26 जून 2000 को जम्मू-कश्मीर की विधानसभा ने राज्य की स्वायत्तता का विधेयक पारित कर दिया।[15] भारत विरोधी माहौल को और गति प्रदान कर दी। इस प्रकार 1947 से 2019 तक जम्मू-कश्मीर में संवैधानिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ भारत के एकीकरण के मार्ग में निरन्तर बाधा उत्पन्न कर रही थीं। इसका प्रमुख कारण वोट बैंक की राजनीति एवं वर्षों से चली आ रही मुस्लिम तुष्टीकरण की प्रवृत्तियाँ मूल रूप से काम कर रही थीं। दूसरी ओर राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ भारत की एकता और राष्ट्रीय एकीकरण का भी पुरजोर प्रयास कर रही थीं। स्वयं काँग्रेस के कई सांसद संसद के अन्दर भी अनुच्छेद 370 की समाप्ति के लिए विधेयक के समर्थन के पक्ष में थे।[16]

लेकिन काँग्रेस ने शेख अब्दुल्ला और पाकिस्तान के भय के कारण विधेयक को पारित नहीं होने दिया।[17] जम्मू-कश्मीर की भयावह परिस्थिति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 1947 में पाकिस्तान से आये विस्थापित नागरिकों तक को जम्मू-कश्मीर में स्थायी नागरिकता प्राप्त नहीं हुई थी।[18] इस प्रकार जम्मू-कश्मीर के लोग स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अबतक इन्हीं प्रावधानों विशेषकर अनुच्छेद 370 और 35-ए के कारण लगातार असुरक्षा, असमंजस और अव्यवस्था के माहौल में जीवन जीने के लिए मजबूर थे। अब अनुच्छेद 370 और 35-ए की समाप्ति हो जाने पर जम्मू-कश्मीर शेष भारत के लोगों के साथ विकास की मुख्य धारा का सहगामी बन सकेगा।

वास्तव में दशकों बाद जम्मू-कश्मीर में नासूर बन चुके अनुच्छेद 370 और 35-ए को समाप्त कर केन्द्र की सरकार ने ऐतिहासिक निर्णय लिया है। इसी के साथ जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन का विधेयक भी राज्य के विकास और शान्ति व्यवस्था में मील का पत्थर साबित होगा। यह निर्णय एक ऐसा सुखद आश्चर्य है जो ज्यादातर लोगों के लिए अकल्पनीय है। ऐसा असम्भव प्रतीत हो रहा कार्य किस प्रकार व्यवस्थित ढंग से सम्भव हो गया वास्तव में यह प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और गृहमंत्री अमित शाह के दृढ़ इच्छाशक्ति और कुशल प्रबन्धन का ही परिणाम था। ऐसे ही निर्णय और नेतृत्व की अपेक्षा आचार्य कौटिल्य शासक के सम्बन्ध में करते थे। चाणक्य ने कहा है कि 'जब किसी काम को करना शुरू करो तो असफलता से मत डरो और उसे छोड़ो मत। शासक के अन्दर असफलता का डर नहीं होना चाहिए। काम करते रहो परिणाम की चिन्ता मत करो।' जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 370 और 35-ए हटाते समय शायद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और गृहमंत्री अमित शाह चाणक्य की इसी नीति पर चले। आजाद भारत के इतिहास

में इसका कोई सानी नहीं है। अनुच्छेद 370 के मुद्दे पर देश सत्तर साल से एक चक्रव्यूह में फँसा हुआ था। इस चक्रव्यूह को तोड़ना तो दूर इसको तोड़ने के बारे में सोचने से भी देश की सरकारें और सत्तारूढ़ पार्टियाँ कतराती थीं। इतिहास आपको इस बात के लिए याद नहीं रखता कि आपकी पैदाइश क्या है?[19] इतिहास इस बात को याद रखता है कि आपने किया क्या? वास्तव में अनुच्छेद 370 और 35-ए की समाप्ति इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया है।

जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 370 एवं 35-ए की समाप्ति को लेकर तथाकथित राजनीतिक दल एवं लोकतन्त्रवादी सरकार की आलोचनाएँ भी कर रहे हैं। अनुच्छेद 370 कश्मीर को भारत के संविधान के तहत विशेष और स्वायत्त राज्य का दर्जा देने की पृष्ठभूमि में तैयार किया गया। फारुक अब्दुल्ला, महबूबा मुफ्ती जैसे मुख्य धारा के राजनेताओं के साथ अन्य ने चेताया था कि अनुच्छेद 370 को खत्म करने का अर्थ राज्य और भारत के मध्य सम्बन्ध टूटना होगा।20 यह भी आरोप लगाया गया कि केन्द्र सरकार ने बहुत चतुराई से घाटी की भू-राजनीतिक परिस्थिति को परिवर्तित कर वहाँ गैर-कश्मीरियों की भूमिका बढ़ाने का प्रयास किया है। आरोप में कहा गया कि इसमें कोई किसी को शक नहीं रह जाना चाहिए कि दूरगामी योजना, जमीनों पर गैर-कश्मीरियों के बढ़ते कब्जे के लिए घाटी की आबादी की संरचना को ही बदलने और वहाँ कश्मीरी मुसलमानों का बोलबाला ही खत्म करने की है। यह कश्मीर को कश्मीरियों से ही आजाद कराने का खेल है। कश्मीर की जनता के साथ भारत के संविधान निर्माताओं द्वारा किये गये वादे के साथ सरासर विश्वासघात है।[21] इसी क्रम में कहा गया है कि संवैधानिक दृष्टि से देखें तो याचिकाकर्ता सहित इसके आलोचकों को लगता है कि सरकार का यह कदम देश के संघीय ढाँचे पर प्रहार है। वे महसूस करते हैं कि यह विलय की सन्धि में कश्मीरियों के साथ किये गये वादे का शर्मनाक तरीके से किया उल्लंघन है। वे इस कदम को 'संवैधानिक विद्रूपता' की संज्ञा भी दे रहे हैं।[22] कोई राष्ट्रवाद देश को सामाजिक स्तर पर विभाजित करके राष्ट्रीय एकता का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। यह भी कहा गया कि भूखण्ड को मिला लिया, आबादी को गँवा दिया।[23] जम्मू-कश्मीर से सम्बन्धित अनुच्छेद 370 और 35-ए को समाप्त करने तथा जम्मू-कश्मीर राज्य को लद्दाख एवं जम्मू-कश्मीर दो केन्द्रशासित प्रदेश बनाने का संसद के निर्णय पर ऐसी आलोचनाएँ स्वाभाविक हैं। आलोचना हो भी तो क्यों नहीं, यही अनुच्छेद अबतक वहाँ अलगाववादियों, आतंकवादियों और पड़ोसी देश पाकिस्तान को जम्मू-कश्मीर में अशान्ति पैदा करने का सुनहरा अवसर जो दे रहा था। भारत का यह ऐसा आन्तरिक मामला था जिस पर हमेशा बाहरी देशों के हस्तक्षेप का पाकिस्तान राग अलापता था। संयुक्त राष्ट्र महासभा सुरक्षा परिषद् से लेकर सार्क, जी-20 इत्यादि मंचों पर भारत को परेशान करने की नीयत से किये जा रहे कुत्सित प्रयास का अवसर हमेशा हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

वास्तव में जम्मू-कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने वाला, उसे स्वायत्त स्वरूप प्रदान करने वाला अनुच्छेद 370 और अनु. 35-ए की समाप्ति स्वतन्त्र भारत के राष्ट्र जीवन में एक युगान्तकारी एवं ऐतिहासिक पड़ाव है। हम यह सहज अनुभव कर सकते हैं कि जो-जो सवाल अनुच्छेद 370 को लेकर किये जा रहे थे वे अब समाधान के रास्ते बता रहे हैं। आजादी के बाद से ही जम्मू-कश्मीर पर विवाद की छाया रही। पहला अनुसलझा प्रश्न यही बना रहा कि क्या जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है? इसे संविधान के प्रावधान का हवाला देकर उठाया जाता रहा है। एक संवैधानिक प्रक्रिया से जम्मू-कश्मीर की स्थिति अब भारत में अन्य राज्यों के समान हो गयी है। जो असम्भव दिखता था वह सम्भव हो गया है। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह युगान्तकारी एवं निहायत जरूरी कदम पहले क्यों नहीं उठाया गया। अनुच्छेद 370 अस्थायी है, इसे नेहरू भी कहते रहे। एक अस्थायी अनुच्छेद कैसे स्थायी समस्या बन गया था, जिसका समाधान दिग-दिगन्त के लिए नरेन्द्र मोदी की सरकार और 17वीं लोकसभा और राज्यसभा ने कर दिया है। यह निर्णय भारत की एकता, अखण्डता एवं राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत करने में मील का पत्थर साबित होगा।

सन्दर्भ

1. सोती, दिव्यकुमार, दुरुस्त हुआ एक ऐतिहासिक गलती, पृष्ठ 12, 06 अगस्त 2019, दैनिक जागरण।
2. अनुच्छेद 370 के बहाने कश्मीर–कल, आज और कल, पृष्ठ 7, सितम्बर-अक्टूबर 2019, समसामयिक घटनाक्रम।
3. उपर्युक्त
4. लक्ष्मीकान्त, एम., भारत की राज्य व्यवस्था, पृष्ठ 32.1, मैग्राहील एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली-2016
5. भारत इस मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ परिषद्..., पृष्ठ 3, 10 अगस्त 2019, हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा

6. drishtiias.com/hindi/daily/-update/daily/news-editorials/article 370 अनुच्छेद 370 निरस्त होने का निहितार्थ
7. लक्ष्मीकान्त, एम., भारत की राज्य व्यवस्था, पृष्ठ 32.1, मैग्राहील एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली-2016
8. उपर्युक्त, पृष्ठ 32.2
9. देर आए दुरुस्त आए, पृष्ठ 4, 7 सितम्बर 2019, हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा
10. थपलियाल, शेरू; नेहरू की जिद से जुड़ा था अनुच्छेद 370, पृष्ठ 10, 7 अगस्त 2019, दैनिक जागरण
11. उपर्युक्त
12. भारत का संविधान, पृष्ठ 617, सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2011
13. लक्ष्मीकान्त, एम., भारत की राज्य व्यवस्था, पृष्ठ 32.3, मैग्राहील एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली-2016
14. उपर्युक्त, पृष्ठ 32.5
15. उपर्युक्त
16. न्यूज डेस्क, अमर उजाला, 10 अगस्त 2019, नयी दिल्ली
17. https://m.facebook.com/Jammu Kashmir Now/posts/1380225178797762
18. सोती, दिव्यकुमार, दुरुस्त हुई एक ऐतिहासिक गलती, पृष्ठ 12, 06 अगस्त 2019, दैनिक जागरण।
19. सिंह, प्रदीप, मोदी शाह ने बनाया असम्भव को सम्भव, पृष्ठ 12, 10 अगस्त 2019, दैनिक जागरण
20. हबीबुल्लाह वजाहत, कश्मीरियत के मर्म पर चोट, पृष्ठ 1, 10 अगस्त 2019, हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा
21. शर्मा, राजेन्द्र, मरीजमार इलाज, पृष्ठ 2, 10 अगस्त 2019, हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा
22. कुमार, अश्विनी, संवैधानिक कसौटी पर कितना खरा दाँव, पृष्ठ 12, 14 अगस्त 2019, दैनिक जागरण
23. तिवारी, अजय, राष्ट्रवाद का छद्म, पृष्ठ 1, 7 सितम्बर 2019, हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा

भारतीय दार्शनिकों का शिक्षा में योगदान

डॉ० मधु सिंह

अतिथि शिक्षक (दर्शनशास्त्र), आर. बी. एस. कॉलेज, अंदौर, समस्तीपुर (बिहार)

शिक्षा के प्रयोगशाला में अनेक दार्शनिकों ने अपने विचारों एवं सिद्धान्तों का परीक्षण किया। अगर हम इतिहास को देखें तो ऐसे अनेक दार्शनिक मिल जायेगें, वो शिक्षाशास्त्री भी थे और जिन्होनें अपने विचारों के माध्यम से एक शिक्षा योजना प्रस्तुत की। उनमें से रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, श्री अरविन्दो घोष, महात्मा गाँधी आदि प्रमुख हैं, जिनके शिक्षाशास्त्री विचार से न केवल भारत बल्कि पूरा विश्व प्रभावित रहा है।

प्राचीन शिक्षा दर्शन से अब तक के शिक्षा दर्शन पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो हम पायेगें कि शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है, बल्कि उसकी रेखा में परिवर्त्तन आया है। इसका मुख्य कारण है समय की माँग। अलग-अलग दार्शनिकों में थोड़ा बहुत अन्तर है। यही विचारक शिक्षा के प्रति आधुनिक जगत में विचारधारा के मुख्य प्रतिनिधि भी हैं।

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द का सम्पूर्ण जीवन अध्यात्मिक ताने-बाने में गुँथा हुआ है। अध्यात्म उनके रोम-रोम में व्याप्त था। उनमें भारतीयता कूट-कूट कर भरी थी। इसलिए उनकी शिक्षा नीति भी अध्यात्म पर ही आधारित थी।

'मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है'[1]

अर्थात् उनका मानना था कि ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है, कहीं भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अन्दर ही है। हम जो कहते है कि मनुष्य जानता है यथार्थ में, मानसशास्त्र संगत भाषा में हमें कहना चाहिये कि वह 'आविष्कार' करता है, अनावृत या 'प्रकट' करता है। मनुष्य जो कुछ सीखता है, वह वास्तव में आविष्कार करना ही है। स्वामी जी ने आविष्कार का अर्थ है– मनुष्य का अपनी अनन्त ज्ञान स्वरूप आत्मा के उपर से आवरण को हटा लेना है (अर्थात् समस्त ज्ञान चाहे वह लौकिक हो अथवा अध्यात्मिक मनुष्य के मन में है। बहुधा वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है और जब आवरण धीरे-धीरे हटता जाता है, तो हम कहते हैं कि हम सीख रहें है। ज्यों-ज्यों इस आविष्करण की क्रिया बढ़ती जाती है, त्यों– त्यों हमारे ज्ञान की वृद्धि होती जाती है जिस मनुष्य पर से यह आवरण पूरा हट जाता है, वह सर्वत्र, सर्वदर्शी हो जाता है। सभी ज्ञान और सभी शक्तियाँ.... है जो शक्तियाँ भीतर है उन शक्तियों को हम प्रकृति के रहस्य या बल कहते हैं। मनुष्य की आत्मा से ही सारा ज्ञान आता है जो ज्ञान सनातन काल से मनुष्य के भीतर निर्हित है, उसी को वह बाहर प्रकट करता है अपने भीतर देख पाता है।

स्वामी जी भारत में ऐसी शिक्षा चाहते थे जिससे व्यक्ति चरित्रवान बने साथ ही आत्मनिर्भर भी बने। उनके शब्दों में:

"'हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है, जिसके द्वारा चरित्र निर्माण होता है, मस्तिक की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।'[2]

स्वामी जी ने प्रचलित शिक्षा को निषेधात्मक बताते हुए कहा कि आप उस व्यक्ति को शिक्षित मानत हैं जिसने कुछ परिक्षाएँ उर्त्तीण कर ली हों तथा जो अच्छे भाषण दे सकता है, पर वास्तविकता यह है कि जो शिक्षा जनसाधारण को जीवन संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर सकती, जो चरित्र निमार्ण नहीं कर सकती, जो समाज सेवा की भावना को विकसित नहीं कर सकती तथा वो शेर

जैसा साहस पैदा नहीं कर सकती, ऐसी शिक्षा से क्या लाभ है, वे सैद्धान्तिक शिक्षा की तुलना में व्यवहारिक शिक्षा पर बल देते हुए सुझाव दिया कि तुमको कार्य करने के सब क्षेत्रों में व्यवहारिक बनना पड़ेगा, सिद्धान्तों के ढेरों ने. सम्पूर्ण देश का बिनाश कर दिया है। वे कहते हैं कि व्यक्ति में समाज सेवा और विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करना भी बताया।

स्वामी जी अपने देश की स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति बड़े सचेत में इन्होनों बताया की नारी का सम्मान करो, उन्हें शिक्षित करो और उन्हें आगे बढ़ने के अवसर दो।

"स्त्रियों की बहुत सी कठिन समस्याएँ हैं, पर उनमें एक भी ऐसा नहीं, जो उस जादू भरे शब्द 'शिक्षा' के द्वारा हल न हो सके।"[3]

स्वामी जी नारी शिक्षा पर जोर देते हुए स्पष्ट करते हैं कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं कर सकते और जब तक समाज को शिक्षित नहीं करते, तब तक समाज व राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते। नारियों की समस्त समस्याओं का एकमात्र कारण शिक्षा का अभाव माना है।

रविन्द्र नाथ टैगोर

रविन्द्र नाथ टैगोर ने शिक्षा के आदर्शों तथा उद्देश्यों में स्वतंत्र, रचनात्मकता, अभिव्यक्ति, सामाजिक, व्यक्तित्व का आदर, क्रियाशीलता तथा सामाजिक क्रियाएँ आदि तत्वों का शामिल करने पर जोर दिया है।

"शिक्षा मस्तिक को अन्तिम सत्य खोजने योग्य बनाती है, जो सत्य हमें पार्थिव बन्धनों से मुक्त करता है और हमें वह धन देता है, जो सांसारिक वस्तु नहीं है, बल्कि आन्तरिक प्रकाश है, जो शक्ति नहीं है, बल्कि प्रेम है और जिसके कारण मानव उस सत्य को अपना बना लेता है और उसे ढंग से प्रकट करता है"[4]

उनका मानना था कि शारीरिक विकास के साथ-साथ उन्होनें बौद्धिक विकास पर भी बल दिया और शिक्षा का उद्देश्य बौद्धिक विकास करना बताया है, परन्तु बौद्धिक विकास के लिए उन्हानें पुस्तकीय शिक्षा का विरोध किया एवं जीवन तथा प्रख्रति से प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक बताया। टैगोर जी का कथन है:

"सर्वोत्तम शिक्षा वह है, जो हमें सूचना तथा ज्ञान ही प्रदान नहीं करती, वरन् हमारे जीवन में विश्व के समस्त जीवों के साथ मेल उत्पन्न करती है।"

गुरूदेव जी तत्काल निष्क्रीय शिक्षा विधि का विरोध किये है उन्होनें शिक्षा की कृतिमता को भी अस्वीकार किये है। उन्होनें इस बात का बल दिया है कि शिक्षा की प्रक्रिया जीवन से परिपूर्ण होनी चाहिए। बालक का विकास उसकी रूचियाँ तथा आवेगों के अनुसार होना चाहिए। उन्होनें इस बात पर बल दिया कि शिक्षा जीवन की वास्तविकता पर आधारित होनी चाहिए। बालक को ऐसे अवसर दिए जाने चाहिए कि वह स्वतंत्र प्रयासों से ज्ञान प्राप्त कर सके।

महात्मा गाँधी

गाँधी जी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन-दर्शन पर आधारित है। उनकी सत्य, अहिंसा, त्याग, निष्ठा एवं सहानुभुति आदि मानवीय गुणों में श्रद्धा थी और जीवनपर्यन्त रही। इन मानवीय गुणों को शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, गाँधी जी के जीवन में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं आध्ययात्मिक सभी पक्षों को स्थान मिला। गाँधी जी का शिक्षा दर्शन इनके जीवन दर्शन का गतिशील पक्ष है। गाँधीजी ने शिक्षा का अर्थ समझते हुए लिखे थे:

"शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के उत्कृष्ट एवं सर्वागींन विकास से है। साक्षरता शिक्षा की न तो अन्तिम सीढ़ी है और न ही प्रथम सोपान। यह तो पुरुष– स्त्री को शिक्षित करने का एक साधन है, साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं कही जा सकती है।"[5]

वे मानते थे कि शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों का विकास करना चाहिए, जिससे वह पूर्ण मानक बन जाएँ। पूर्ण मानव का अर्थ बालक के व्यक्तित्व के चारों तत्वों शरीर, ह्रदय मन तथा आत्मा के समुचित विकास से है।

ठल मकनबंजपवद उमंदं द सस तवनदक कतूंपदह वनज वि जीम इमेज पद बीपसकं दक उंद इवकल उपदकं दक ेचपतपज।[6]

गाँधीजी बुनियादी शिक्षा (Basic Education) की बात करते हैं, इस प्रकार की शिक्षा में बच्चे को यह सीख दी जाती है कि वह 'स्वयं- करके कार्यकुशलता प्राप्त कर सके।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने शिक्षा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया। वे शिक्षा का महत्व बताते हुए कहा कि केवल जानकारी देना या लेना शिक्षा नहीं है, इसमें बौद्धिक झुकाव व उसकी लोकतांत्रिक भावना का भी समावेश होना अत्यंत आवश्यक है, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक युग में तकनीक की जानकारी महत्वपूर्ण भी है। शिक्षा का महत्व तभी है, जब व्यक्ति एक उत्तरदायी नागरिक बने। उन्होनें कहा है कि:

"शिक्षा का उद्वेश्य न तो मात्र जानकारी हासिल करना है हालांकि यह भी महत्वपूर्ण है, और न केवल तकनीकी कौशल प्राप्त करना ही है जब कि आधुनिक समाज में यह भी अनिवार्य है, अपितु शिक्षा का उद्वेश्य चित में ऐसी अभिरूचि का विकास करना, ऐसी तार्किक, प्रवृति विकसित करना तथा इसप्रकार की लोकतांत्रिक भावना पैदा करना है जो हमें एक जिम्मेदार नागरिक बनाए।"[7]

श्री अरविन्दो घोष

श्री अरविन्दों के अनुसार हमारी शिक्षा को आधुनिक जीवन की आवश्यकतानुसार होना चाहिए। जो बालकों को कर्मठ नागरिक बनाये तथा आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा कराने में समर्थ हो। उनके शब्दों में:

"सच्ची शिक्षा को मशीन से बना हुआ सूत नहीं होना चाहिए, अपितु इसको मानव के मस्तिक तथा आत्मा की शक्तियों का निमार्ण अथवा जीवित उत्कर्ष करना चाहिए।"[8]

श्री अरविन्दों शिक्षा को मुख्य अंग के रूप में अन्त:करण को स्वीकार करते हैं। अंत:करण के उन्होनें चार स्तर बताए। चित्त, मानव, बुद्धि, ज्ञान। इन व्यक्तियों का क्रमिक विकास होता है। अत: शिक्षा का प्रमुख दायित्व है, अत:करण की इन शक्तियों का विकास करना इनके अनुसार:

"शिक्षा मात्र ज्ञान की प्राप्ति नहीं वरन् शिक्षा वह है, जो मानव का पूर्ण विकास करने की क्षमता रखती है।"9

निष्कर्षत

इस तरह भारतीय दार्शनिक का शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदानों को हम पाते हैं। अर्थात् ये वैसी शिक्षा की बात करते हैं जो मनुष्य को 'कठपूतली' न बनाकर 'मनुष्य' बनाये। उनके अंत:करण को शुध करे। उनके अन्दर व्यक्तित्व, एकाग्रता को उजागर करे। मनुष्य अपने चरित्र का निमार्ण करे। जो शिक्षा देश, समाज के हित के लिए हो। अर्थात् जो शुभत्व, की भावना को प्रेरित करें जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए।

असतो माँ सद्गमय।
तमसो माँ ज्योतिगर्मय।
मृत्योर्मामृतं गमय।[10]

संदर्भ सूची

1. शिक्षा– स्वामी विवेकानन्द' पृ. सं. 8
2. शिक्षा– स्वामी विवेकानन्द' पृ. सं. 8
3. शिक्षा– स्वामी विवेकानन्द' पृ. सं. 8

4. रविन्द्रनाथ टैगोर
5. हरिजन
6. हरिजन
7. शिक्षा का अधिकार– जे0 के0 वर्मा
8. श्री अरविन्दो घोष
9. वृहदारण्यक उपनिषद

महात्मा गाँधी और राष्ट्रः एक अध्ययन

डॉ० प्रियंका सिंह

पी-एच० डी०, राजनीति विज्ञान विभाग, बी० एन० एम० यू० मधेपुरा, बिहार

महात्मा गाँधी और राष्ट्र सबसे पहले मेरा ध्यान शोध आलेख हेतु प्रस्तुत विषय पर गया और मैंने देखा कि अधिकांश विषय-वस्तु में सबसे पहले राष्ट्र आया है लेकिन "महात्मा गाँधी और राष्ट्र" में महात्मा गाँधी को पहले रखा गया है। मैंने इसके बारे में बहुत जानकारी हासिल की और मेरे सवाल का जवाब मिल गया कि महात्मा गाँधी एक ऐसे महापुरुष के रूप में उभरे कि विश्व में हमारे देश (भारत) को महात्मा गाँधी का देश कहा जाने लगा। गाँधी ने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह को जमीन पर उतारकर उसे अपना हथियार बना लिया और भारत ही नहीं वरन पूरे विश्व में इस हथियार का प्रयोग किया और सफल भी रहे।

सरलता की पराकाष्ठा का व्यक्तित्व एवम् जीवन, वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महात्मा गाँधी उतने ही प्रासंगिक है जितना सौ साल पहले थे। हम विकास के पथ पर कितने भी आगे क्यों ना बढ़ जाए किन्तु भी के दर्शन का भूल पाना असंभव है। जब भी भारतीय दर्शन की बात होती है गाँधी दर्शन के बिना अछूती रहती है। महात्मा गाँधी के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक है, जितने अपने वक्त में थे। गाँधी का बचपन, उनके सामजिक एवम् राजनीतिक विचार, सर्वोदय, सत्याग्रह, खादी, ग्रामोद्योग, महिला शिक्षा, अस्पृश्यता, स्वाबलम्बन एवम् अन्य सामाजिक चेतना के विषय शोध और शिक्षण के प्रमुख क्षेत्र है। भारतीय युवा एवम् समाज हमेशा से गाँधी के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु रहा है। वर्तमान युवा पाश्चात्य प्रभावों से संचालित है उसकी सोच निरंकुश है, वह अपने उपर किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहता है। ऐसी परिस्थितियों में गाँधी के विचारों की सर्वाधिक जरूरत युवाओं को है। गाँधी जी हमेशा युवाओं से सहयोग की अपेक्षा रखते थे। गाँधी जी ने उस पीढ़ी के युवाओं को निडर बनकर अंग्रेजों के दमन का सामना करने का अद्‌भूत साहस किया था। वे हमेशा युवाओं को सही मार्ग एवम् दिशा देने की बात करते थे।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय उन्होंने कहा था हमारा आन्दोलन हिंसा का अग्रदूत ना बन जाय, इसके लिए मैं हर दंड सहने को तैयार हूँ। यहाँ तक की मैं मृत्यु का वरण करने को तैयार हूँ। गाँधी ने हमेशा से युवाओ को वंचित समूहों के उत्थान के लिए प्रेरित किया। वे व्यक्तिगत घृणा के हमेशा विरोधी रहे थे। उनका कहना था शैतान से प्यार करते हुए शैतानी से धृणा करनी होगी। उन्होंने हमेशा युवाओ को आत्मप्रशंसा से बचने की सलाह दी। उनका कथन है कि "जनता की विचारहीन प्रशंसा हमे अहंकार की बीमारी से ग्रसित कर देती है।" गाँधी ने हमेशा पूँजीवादी और सामाजवादी विचारधारा का विरोध किया। उनका मानना था कि देश की अर्थव्यवस्था कुछ पूँजी पतियों के पास गिरवी नहीं रहनी चाहिए। उनकी अर्थव्यवस्था की केन्द्र बिन्दु गाँव थे। उनके अनुसार जब तक गाँव के युवाओं को गाँव में ही रोजगार नहीं मिलता हैं तब तक उनमें क्षोभ एवम् असंतोष रहेगा गामीण बेरोजगारों का शहर की ओर पलायन जो कि भारत की एक ज्वलंत समस्या है का निराकरण कुटीर उद्योग लगाकर किया जा सकता है।

मनुष्य प्रजाति के उत्पति से लेकर आज तक की सारी मानवता व्यक्तिगत, सामाजिक, जातीय, राष्ट्रीय एवम अन्तराष्ट्रीय स्तर पर शांति को लिए प्रयासरत रही है। गाँधी का मानना था कि समाज में शांति की स्थापना तभी संभव है जब व्यक्ति भावनात्मक सामानता एवम आत्म-संतोष को प्राप्त कर लेगा। गाँधी के अनुसार शांति प्राप्ति प्रत्येक युवा का भावनात्मक एवम् क्रियात्यक लक्ष्य होना चाहिए तभी उसकी उर्जा गति शीलता एवम् उत्साह राष्ट्रीय हित में समर्पित होगें।

गाँधी जी युवाओं को सामाजिक परिवर्तन का सबसे बड़ा औजार मानते थे। वे हमेशा चाहते थे कि सामाजिक परिवर्तनो, सामाजिक कुरीतियो सती प्रथा, बाल विवाह, अस्पृश्यता, जाति व्यवस्था के उन्मूलन के विरूद्ध युवा आवाज उठाये। उनका मानना

था कि शोषण मुक्त स्वावलम्बी एवम् परस्पर पोधक समाज के निर्माण में युवाओं की अहम् भूमिका है, एवम् भविष्य में भी होगी। वर्तमान युवा प्रजातांत्रिक मूल्यों एवम तथ्य परक सिद्धांतों के पक्षघर है। अहिंसा और सत्यनिष्ठा में भी उनका विश्वास है। गाँधी हमेशा आत्मनिरीक्षण के पक्षधर थे, गाँधी के सिद्धांत लोकतंत्रा एवम् सत्य की कसौटी पर खरे सिद्धांत है। गाँधीजी की असहमति उनका बोला गया सत्य आज की युवाओ को बैचेन कर देता है। गाँधी अपनी आस्थाओं पर सदा अडिग रहे। उन्होंने हर विश्वास को जाँच परख कर व्रत की तरह धारण किया था। उन्होंने युवाओं के लिए स्वराज को सबसे बड़ा आत्मानुशासन, सत्याग्रह को सबसे बड़ा व्रत, अहिंसा को सबसे बड़ा अस्त्रा एवम् शिक्षा को सबसे बड़ी नैतिकता माना है। गाँधी की पुस्तक "सत्य के साथ मेरे प्रयोग" सबके अंदर आत्मबल एवम् उर्जा का संचार करने वाला है।

गाँधी को ठेठ पुरातन का सर्वथा प्रवर्तन का अभिलाषी नहीं कहा जा सकता। किंतु वे परम्परा पर बहुत अधिक बल देते रहे है। वे व्यवस्था को बनाये रखने के इच्छुक थे, कितुं साथ ही वे व्यवस्था में व्याप्त कुरीतियों के उन्मूलन के भी पक्षधर थे। गाँध ी एक करिश्माई व्यक्तित्व थे।

वेबर की अवधारणा में करिश्माई ऐसे व्यक्ति की होती है जो व्यावस्था को यथावत बनाये रखने की अपेक्षा नये परिवर्तनों का प्रवर्त्तीक तथा सृजनहार होता है। करिश्मा संपन्न नियों में वेबर जिन व्यक्तियो को परिगणित करता है, वे मुख्यत: धार्मिओ से संबद्ध व्यक्ति होते है। वेवर के अनुसार करिश्मा संपन्न व्यक्तिों पैगम्बर तथा रहस्यवादी होते है और उनके कार्य सहज रूपेण समझ में न आते। यह स्पष्ट है कि गाँधी को करिश्मा संपन्न व्यक्ति की वेवर की अवधारण के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। गाँधी ना तो व्यवस्था विध्वंकषक है और ना ही सर्वथा नवीन परिवर्तनों के प्रवर्त्ताक यहाँ तक की जहाँ उनमें मौलिकता का अभाष भी होता है वे उसका मूल अतीत के साथ जोड़ते है।

गाँधी जी का करिश्मा तथा इसके विशिष्ट स्वरूप को समझने। के लिए गाँधी के जीवन दर्शन का यथोचित ज्ञान आवश्यक है। उनके विविध कालों की विशिष्टता उनके जीवन दर्शन से ही प्रकट होती है। गाँधी को उनके जीवन काल में ही महात्मा कहा गया अर्थात ऐसा व्यक्ति जिसने परम् सत्य का साक्षात्कार कर लिया है। और जीवन के रहस्यों को जान चुका है। टॉयनबी ने गाँधी को एक हिन्दू रजनीतिज्ञ संत कहा है। गाँधी के विचारो और कार्यों को समझने के लिए ये शब्द विश्लेषण बड़े ही अर्थपूर्ण है। अपने बाल्य काल में ही गाँधी ने सत्य को अपने कार्यों का दिशा निर्देशक बनाया। जिससे उनका संपूर्ण जीवन ही सत्य के प्रयोग की एक कथा बन गया। उनकी मान्यता थी कि नैतिकता सभी चीजो का आधार है। गाँधी के अनुसार अहिंसा का मूल सत्य में निहित हैं और इस प्रकार सत्य और अहिंसा को संयुक्त रूप से वह कसौटी माना जा सकता है। जिस पर गाँधी अपने सभी कार्यों की परीक्षा करना चाहते थे। उनकी आंतरिक चेतना इन्हीं दो अवधारणाओं से अनुप्राणित और प्रेरित होती थी। सत्य और अहिंसा में विश्वास के कारण ही वे संकुचित भेदभाव की बात से उपर उठ पाते थे एवम् संपूर्ण मानवता के साथ जाना तादात्म्य स्थापित करने में उन्हे किसी प्रकार की कठिनाई महसूस नहीं होती थी। उनका विश्वास था कि ईश्वर परायणता कष्ट से परे मानव की सेवा का ही दूसरा नाम है। सत्य और अहिंसा पर आधारित संपूर्ण मानव जाति से लगाव के कारण ही गाँधी की आस्था राष्ट्रवाद के संकुचित स्वरूप में नहीं थी।

गाँधी समाज में व्याप्त उन सभी कुरीतियों एवम् व्याधियों का उन्मूलन करना चाहते थे, साथ ही उनकी इच्छा थी कि हिन्दू समाज का मौलिक ढाँचा अव्यवस्थित नहीं हो। इस स्थिति का स्पष्टीकरण अस्पृश्यता की स्ष्टता के प्रसंग में उनके दृष्टिकोण से होता है। जहाँ डॉ. अम्बेडकर का विचार था कि हिन्दू समाज के अंतर्गत रहते हुए दलितों के उद्धार की कोई आशा नहीं है और इसी कारण वे इनके हिन्दू धर्म एवंम् समाज से संबंध विच्छेद के पक्ष में थे। गाँधी इसके विपरीत अधूतों या हरिजनों की समस्या का समाध ान समाज के अंदर से चाहते थे। गाँधी अलगाव वादी प्रवृत्ति के विरूद्ध थे। भारतीय समाज में आदिकाल से प्रचलित वर्ण व्यवस्था में गाँधी का विश्वास था। किन्तु वे इसकी उदारवादी व्याख्या को रेखांकित करते थे। 2 मई 1933 को पंडित नेहरू को लिखे उनके पत्र से स्ष्ट होता है कि हिन्दू धर्म मे उन की दृढ़ आस्था थी और इसके बिना वे अपने जीवन की कल्पना तक नहीं कर सकते थे किंतु इसके साथ ही उनका यह भी कहना है कि वे इसे अस्पृश्यता ऊँच-नीच के भेदभाव की वृति के साथ ग्रहण नहीं कर सकते। उन्होंने हिन्दू समाज के अस्पृश्य वर्ग और सवर्ण जातियों के बीच विधमान खाई को पाटने का अथक प्रयास किया। उन्हें

गलत ना समझा जाए इस उद्देश्य से स्वयं को सनातनी कहते थे। किंतु इसके साथ ही उन्होंने परम्परावादी हिन्दुओं से यह आग्रह किया कि अस्पृश्यता को शास्त्रों का अनमोदन प्राप्त नहीं है। वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हृदय परिवर्तन के माध्यम से करना चाहते थे। गाँधी ने कहा कि "यदि अस्पृश्यता की गंदगी को दूर नहीं किया गया तो यह गंदगी हिन्दू समाज को निगल जाएगी। इसे मिटाने के लिए असंख्य हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन आवश्यक है।

गाँधी की एकता स्थापना करने की भूमिका केवल हिन्दू समाज तक की सीमित नहीं थी। गाँधी द्वारा चलाये गये राष्ट्रीय आन्दोलन से समाज के सभी वर्गो का सहयोग एवम विश्वास आवश्यक था। गाँधी के वक्तव्यों एवम् कार्यों से स्प्ट है कि उनका दृष्टि कोण मानवतावादी था और वे सर्वधर्म सम्भाव के पक्ष पाती थे। उनके कारण उनके मन में सभी धर्मो . के प्रति आदर का भाव था। उन्होंने मुस्लिम हितो का भी पूरा ध्यान रखा उन्हे सम्प्रदायिकता से धृणा थी। एक धर्मान्ध हिन्दू द्वारा उनकी हत्या ही मुसलमानों के प्रति उनकी संवेदनशील एवम सहानूभूति परक भावना का प्रमाण है। उन्होंने सभी धर्मो के अनुयायियों में सोहाद्र पूर्ण भावना को बनाये रखने पर बल दिया उन्हे उन दंगाग्रस्त क्षेत्रो में जाने में भी भय का अनुभव नहीं हुआ जहाँ हिन्दुओं की संख्या नगण्य थी। वास्तव में उनके लिए इस प्रकार के विचार ही अर्थहीन थे। हमारे देश में दलितों एवम् शोषितो की संख्या आज भी करोड़ो में है। हरिजनो भारतीय स्त्रियों की पूर्व तथा वर्तमान स्थितियों में आश्चर्यजनक समानता है। केवल उनके शोषण एवम् उत्पीड़न की विधियों में अंतर रहा है। यधपि साधन एक से रहे है। उन्हें सामाजिक अलगाव अशिक्षा, अधिकार शून्यता आर्थिक असमर्थता, व्यवहारिक घृणा द्वेष एवम् हिसात्मक दमन प्रक्रिया का भागी बनाया गया है। महात्मा गाँधी ने दोनो के ही उत्थान के लिए जीवन पर्यन्त कार्य किया। स्वतंत्रा भारत के संविधान एवम् कानून ने दोनो को ही संपूर्ण मानवीय अधिकार प्रदान किये है। लेकिन अब भी भारतीय समाज के कुछ अंचलो में यदि उन्हें शोषण एवम् उत्पीड़न का भागी बनाया जा रहा है तो उसके लिए संविधान या कानून का उतना दोष नहीं जितना कि स्वयं उनका है। उनमें ज्ञान पिपासा एवम् कर्म लिप्सा का अभाव है। उनमें से अधिकतर कायर एवम् आलसी है। सत्य एवं अहिंसा के ज्ञान से वो कोसो दूर है एवम् महात्मा गाँधी के आत्मशुद्धि के आदर्श के बारे में वे कुछ नहीं जानते। उनमें से अधिकांश न तो भारतीय संविधान का ज्ञान रखते है और न ही गाँधी के संधर्षमय जीवन के बारे में उन्हें कुछ ज्ञान है। केवल भौतिक सुख सुविधाओं को अपने से अधिक शक्तिशालियों से भीख माँगने वालो की स्थिति प्राप्त कर वे बड़े दयनीय बन जाते है और उन्हे अनेक प्रकार की यातनाओ का भागी बनना पड़ता है।

महात्मा गाँधी राजनीति दर्शन के क्षेत्र में शास्त्रीय ढ़ंग से विचार करने वाले चिंतक नहीं थे। वे एक अनप्रेरित शिक्षक तथा संदेश वाहक थे। विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ने न तो उन्हें आदि शंकराचार्य में रखा और न पश्चिमी विचारक काण्ट की कोटि में। बल्कि उन्हें सुकरात और बुद्ध के समान माना। महात्मा गाँधी ने अपनी गंभीरतम भावनाओं तथा सत्य के संबंध में अपनी अत्यधिक निष्ठापूर्ण अनभूतियों को उद्गारों के रूप में व्यक्त किया है। उनकी 1908 से आगे कि सम्पूर्ण रचनाओं में हमें विचारो की एक श्रृंखला देखने को मिलती है और उनमें अंतर्विरोधे की कमी पायी जाती है। गाँधी की आत्मकथा में कहीं-कहीं बाइबिल की प्रतिध्वनि मिलती है। महात्मा गाँधी ने सदैव अपने को विश्व का नागरिक समझा और उस रूप में अपने कार्यो को बहुत महत्व दिया। दक्षिण अफ्रीका तथा भारत की राजनीति उनकी प्रयोगशाला थी। जिसमें उन्होंने अपने सत्य तथा अहिंसा संबंधी सिद्धांतों का परीक्षण किया।

वर्तमान युग में यह सामूहिक संहार के शक्तिशाली बाह्यअस्त्रों ने मानवीय व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया है। गाँधी जी मानवीय मूल्यों का संदेश देते हैं। गाँधी जी अपने विचारों में पाश्चात्य विचारकों प्लेटो और सिसरो से मिलते-जुलते दिखाई देते है। क्योंकि राजनीति की समस्याओं के समाधान के लिए उन्होंने अध्यात्मिक और नैतिक मार्ग का समर्थन किया। 1893 से 1914 तक गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में जातीय समानता के लिए बहुत कार्य किया। यद्यपि वे भारतीय की दशा सुधारने के लिए कार्य कर रहे थे किन्तु उनका संघर्ष संकीर्ण और राष्ट्रवादी नहीं था। उन्होंने इस गंभीर सत्य की रक्षा के लिए संघर्ष किया। सब मनुष्य समान तथा स्वतंत्रा है। 1915 से 1948 तक देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य किया। वे भारत की मुक्ति अधिक थे। उनका यह आग्रह कि राजनीति में मनुष्य का ही काम लेना चाहिए। हर युग श्रेष्ठ मानव की आकांक्षा करता है। वे सदैव सत्य पर दृढ़ रहे और उन्होंने "पूर्णतावादी स्वप्नों को अपने तथा समाज के जीवन में साकार निरंतर तथा दृढ़ संकल्प के साथ प्रयत्न किया। इसलिए उनका विश्व के इतिहास में ऐसा अनोखा स्थान है, जिसे संकीर्ण विचारों वाला देशभक्त और शक्ति का पुजारी, राजनीतिज्ञ कभी उन विचारों को नहीं अपना सकते। महात्मा गाँधी अपनी आत्मा की आवाज को सुनते थे। उन्हें अन्य किसी भी चीख-पुकार से कोई मतलब नहीं

था। उन्होंने आत्मा की शांति तथा व्यक्तित्व का ऐसा एकत्व उपलब्ध कर लिया था। जैसा थोड़े से धन्य पुरुषों के भाग्य में हुआ करता है। उनके सम्पूर्ण जीवन में पूर्ण निश्छलता और ईमानदारी व्याप्त थी। जिस कारण वे "पैगम्बर" बन गये।

गाँधी जी का जीवन भागवत गीता तथा मानव जाति के अन्य धर्म शास्त्रों के इस महान सत्य की अभिव्यक्ति है कि "सत्य का एक कण। असत्य के पर्वत से भी अधिक शक्तिशाली होता है।" उन्होंने कहा था "मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि यदि एक भी सच्चे सत्याग्रही हों तो वह पर्याप्त हैं, मैं वैसा ही सच्चा सत्याग्रही होने का प्रयत्न कर रहा हूँ।" सत्य तथा अहिंसा के प्रति गाँधी की भक्ति आश्चर्यजनक की आदत भावना इससे व्यक्त होती है कि उन्होंने बंगाल में नोआखा के दंगों से प्रभावित क्षेत्रों की अकेले ही यात्रा की थी।

ईश्वर अथवा एक सर्वव्यापी आधार की अध्यात्मिक सत्ताध में विश्वास गाँधीवाद का मूल तत्व है। ईश्वर सम्पूर्ण विश्व में ज्योति है और उसे सच्चिदानंद, ब्रह्म, राम तथा केवल सत्य का है। वह स्वत: विद्यमान, सर्वज्ञान-संपन्न, जीवत शक्ति है, अन्य सब शक्तियों में अंतर्निहित है। एक गूढ अध्यात्मिक गाँधी को अपने परिवारिक वातावरण से, विशेषकर अपनों से विरासत में मिला था। टॉलस्टाय की रचनाओं, बुद्ध के जीवन और गीता के सम्पर्क ने उनकी नैतिक आस्थाओं को अधिक गंभीर और दृढ़ बना दिया था। गाँधी एक आदर्शवादी थे। उन्होंने लिखा है "मुझे एक भी एसा उदाहरण याद नहीं जब अंतिम क्षण उसने (ईश्वर) मुझे असहाय अवस्था में छोड़ दिया हो। गाँधी जी का कहना है कि अध्यात्मिक सत्य का साक्षात्कार तर्क एवम् वाक्पटुता से नहीं किया जा सकता। उसके साथ अध्यात्मिक अनुभूति, शुद्ध, पवित्रा तथा तप:पूत जीवन और अपने उद्देश्यों तथा कार्यों में अहिंसा के आदेश को साकार करने की आवश्यकता है। प्रलोभनों के बीच बुद्धि बहुत दुर्बल सिद्ध होती है। बुद्धि के परे पहुँचने वाला विश्वास ही हमारा एक मात्रा तारण हार है। अत: गाँधी के विचारों में हमें वेदान्ती, अध्यात्मिक तत्वज्ञान तथा जैनों, बौद्धों और वैष्णवों की अहिंसामूलक नैतिकता का समन्वय देखने को मिलता है।

गाँधी जी का कोई इतिहास दर्शन नहीं था। इतिहास के संबंध में यत्रा-तत्रा बिखरे उनके विचारों को देखने से स्पष्ट होता तांत्रिक नियतिवाद में विश्वास करते थे। गाँधी ने कहा था श्श्उसकी इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता, और उसकी इच्छा की अभिव्यक्ति शाश्वत अपरिवर्तनशील नियम में होती है और यह नियम ही वह (ईश्वर) है।श्श गाँधी जी कहा करते थे कि मेंरा अक्षरश: विश्वास कि ईश्वर की अनुमति का बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। गाँधी जी का कहना था कि इतिहास अहिंसा की श्रेष्ठता की उत्तरोत्तर पुष्टि कर रहा है। उन्होंने लिखा है मेरा दृढ़ विश्वास है कि "मनुष्य स्वभावत: ऊँचा उठ रहा है। अहिंसा पाप के सामने समर्पण करने का नाम नहीं है और न अपनी कमजोरी को छिपाने का ढ़ोंग अहिंसा है। वह उस वीरआत्मा की दृढ़ शक्ति की परिचायक है जो किसी जीवित प्राणी को इसलिए कष्ट नहीं पहुँचाता कि हर प्राणी तत्वत: आत्मा है और स्वयं उसके साथ एक रूप है। वह सर्वोच्च नैतिक तथा अध्यात्मिक शक्ति की प्रतीक है। अहिंसा के लिए अनिवार्य है कि इसमें जो सबसे दुर्बल और अकिंचन है उसके भी अधिकारों की बड़ी सावधानी के साथ रक्षा की जाय। सत्य का साक्षात्कार करने की आकांक्षा रखने वाला उसके कारण हर प्रकार के कष्ट सह लेता है। अहिंसा का अर्थ है अनंत प्रेम और अनंत कष्ट सहन की अनंत क्षमता। गाँधी जी कहा करते थे कि सत्य और अहिंसा का रक्षा करना आवश्यक मेरे धमका है और वही मेरे कर्म का अंतिम सिद्धांत भी है।

गाँधी जी सत्य और अहिंसा में विश्वास करते थे कि भूमिका को भी वे महत्वपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार धन विश्वास करते थे। इसलिए धर्म है कि विश्व व्यवस्थित रूप में नैतिक नियमों के अनुसार धर्म का अर्थ यहाँ विश्वाआस है कि उन्होंने हिन्दू ध र्म के नैतिक तथा अध्यात्मिक सार को ग्रहण किया। उनका कहना था कि यहूदी ईसाई, इस्लाम, पारसी आदि धर्मों का भी सार वही है। आत्मा के रूप में मनुष्य का नैतिक मूल्य ही धर्म है। नैर्धतिक आधार के बिनाश होते ही मानव की धार्मिकता भी नष्ट हो जाता है। सब धर्म समान नैतिक नियमों पर आधारित है। गाँधी का मानना है कि मेरा नैतिक धर्म उन नियमों से बना है जो विश्व भर के मनुष्यों को एकता के सूत्र में बाँधते हैं।

गाँधीजी कहा करते थे, मैं धार्मिक इस अर्थ में हूँ कि मुझे मोक्ष की कामना है। किंतु गाँधी के लिए मोक्ष का अर्थ संन्यास नहीं था। उसका अर्थ यह भी नहीं था कि मनुष्य समाज तथा मानव जाति के प्रति अपने कर्तव्यों की अवहेलना करें। गाँधी जी ने कहा था कि, धर्म केवल निजी शुद्धिकरण का साधक नहीं है। बल्कि वह एक अत्यधिक शक्तिशाली सामाजिक बंधन है। भविष्य का अहिंसक समाज जिसे गाँधी जी पंचायत राज अथवा रामराज भी कहा करते थे, धर्म पर आधारित होगा। उनका यह मानना था कि

समाज से धर्म का उन्मूलन करने का प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता और यदि कभी भी सफल हो सका तो उससे समाज का बिनाश हो जायेगा।

गाधी को आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की कृत्रिमता, औद्योगिक प्रगति, धर्मनिरपेक्षता, आक्रमकता तथा लोलूपता से घृणा थी। पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता दुर्बल राष्ट्रों के शोषण पर आधारित है। उसका जटिल भौतिक जीवन उच्च प्रकार के चिंतन के प्रतिकूल है। इसलिए वह अंधकार तथा महामारी के सदृश है। उन्होंने प्रकृति की ओर लौटने का संदेश दिया और कहा कि सच्ची सभ्यता भोग सामग्री का संचय करना नहीं है, जानबूझकर और स्वेच्छा से अपनी आवश्यकताओं को कम करना ही वास्तविक सभ्यता है। उन्होंने पश्चिमी सभ्यता के पतन और बिनाश की। भविष्यवाणी पहले ही कर दी थी।

गाँधी जी राजनीति, समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र को अध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि सत्य और अहिंसा को समाजवाद के रूप में मूर्त्तिमान होना चाहिए। क्योंकि अहिंसा की पहली शर्त यह है कि सर्वत्रा तथा जीवन के हर क्षेत्र में न्याय की स्थापना की जाय, किंतु समाजवाद का पाश्चात्य सिद्धांत हिंसा के वातावरण से उत्पन्न हुआ है। सत्याग्रह ही सच्चा समाजवाद लाने का एकमात्रा साधन है।

गाँधीजी ने जिन बुराइयों के विरूद्ध संघर्ष किया उनमें नस्लवाद, साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद तथा अस्पृश्यता मुख्य थी। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने श्वेतों की जातीय भेदभाव के नीति के विरुद्ध संघर्ष चलाया। भारत में एक समाज सुधारक के रूप में उन्होंने सामाजिक अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न का घोर विरोध किया। उनके अनुसार यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति सक्रिय रूप से अहिंसक हो और फिर भी सामाजिक अन्यायों के विरुद्ध विद्रोह न करें। उन्होंने भारत के दलित निम्न वर्गों की भक्ति के लिए जो धर्मयुद्ध चलाया, उससे स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय का आदर्श के साथ उनका कितना लगाव था। किन्तु उनका पहला काम भारत के अन्यायपूर्ण आर्थिक तथा राजनीतिक शोषण का अंत करना था। उन्होंन ब्रिटिश साम्राज्य की निंदा इसलिए की कि उसके कारण भारत आर्थिक एवम् राजनीतिक पतन के गर्त में आ गिरा था।

महात्मा गाँधी अपने जीवन के प्रारंभ से ही परम्परावादी थे और वर्णाश्रम में विश्वास करते थे। वर्णाश्रम का तात्पर्य उस वैदिक व्यवस्था से है। जिसमें मनुष्य के गुण, कर्म एवम् स्वभाव के अनुसार उसके धर्म का निर्णय किया जाता है। परम्परावादी होने के कारण गाँधी जी वर्ण को स्वीकार करते थे। यह बिल्कुल ठीक है कि महात्मा गाँधी के वर्णाश्रम में कहीं भी ऊँच-नीच के भाव की गंध नहीं थी। तथापि जो लोग जन्म से तथाकथित छोटे वर्णो में पैदा होते है, उनकी दृष्टि में जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था को मानने का तात्पर्य यह होगा कि तथाकथित उच्च वर्णो में उन्नति प्राप्त करने के लिए उनके पास कोई अवसर नहीं रहेगा। यदि गाँधी जी की विचारधारा लागू की जाती तब तो डॉ. भीमराव अम्बेडकर को भारत का। कानून मंत्री नहीं बनना चाहिए था और न कामराज को काँग्रेस का अध्यक्ष बनना चाहिए था।

वैदिक वर्णाश्रम के समर्थक होने के कारण वर्तमान भारत में जो जातिगत संकीर्णता है, उसका गाँधी ने बड़ा जोरदार खंडन किया है और कुरीतियों और कुव्यवहारों के प्रति बड़ी ही जोरदार आवाज उठाई है। जीवन के अंतिम दिनों में महात्मा के सामाजिक विचार अत्यंत उग्र हो गये थे। यद्यपि सैद्धांतिक दृष्टि से उन्होंने वर्णाश्रम का विरोध नहीं किया और न इसके समर्थन में लिखे गये अपने लेखों का संशोधन ही किया। तथापि वे वर्गहीन, जातिविहीन समाज के समर्थक हो गये। पीछे उनकी उग्रवादिता इतनी बढ़ गई कि वे हरिजनों और सवर्णो के विवाह का समर्थन करने लगे और ऐसे विवाहों के अवसर पर ही वे अपना आशीर्वाद देते थे। गाँधी जी की यह उग्रवादिता उनकी परम्परावादिता से काफी आगे है। महात्मा के समाजदर्शन का अंतिम प्रतिपादय यही माना जाएगा कि भारत में जाति। रहित हिन्दू समाज बने। सम्प्रादायिक झगड़ों को भी गाँधी जी सैद्धांतिक नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक आधारों पर दूर करना चाहते थे। किसी भी सम्प्रदाय के लिए उनके हृदय में द्वेष नहीं था। लेकिन अंतर सम्प्रदायिक विवाहों का उन्होंने कही समर्थन नहीं किया।

विश्व समाज में गाँधी जी समस्त कृत्रिम बंधनों को दूर कर अहिंसात्मक, शोषण रहित नीति मूलक समाज की स्थापना करना चाहते थे। इस समाज को नैतिक आधारों पर उन्होंने अत्यधिक बल प्रदान किया है। उनका दृढ़ विश्वास था कि सत्य और अहिंसा को साधन बनाने से जो आर्थिक और राजनीतिक विषमताएँ है, वे स्वत: दूर होने लगेगी। हिन्दू समाज, भारतीय समाज और विश्व

समाज के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गाँधी जी सर्वदा सत्य और कल्याण का ही समर्थन करते थे। सामाजिक शोषको के प्रति हिंसात्मक संघर्ष उन्हें मंजूर नहीं था। सांसारिक सत्ताधारियों और अत्याचारियों के धर्म को उन्हें प्रेम, दया, करूणा और शील के द्वारा परिवर्तन। करने में अटूट विश्वास था। गाँधी जी का सामाजिक दर्शन स्वतंत्रता समानता, निर्विघ्नता और अधिकार का दर्शन है। समाज में यदि अन्याय और अत्याचार है तो एक व्यक्ति भी सत्य का सहारा लेकर इसका विरोध कर सकता है, ऐसा गाँधी जी मानते थे। संख्या बल पर उनका उतना बल नहीं था, जितना अध्यात्मिक एवम् नैतिक बल पर। आज समस्त विश्व में दिशा-संघर्ष, द्वेष, लिप्सा, दंभ, राजनीतिक अधिकारवाद और सत्तावाद की आग सुलग रही है। घमंड से चूर राजनीतिक एवम आर्थिक सत्ताधारी सामाजिक मूल्यों को तोड़ रहे है। गाँधी यह चाहते थे कि व्यक्ति अपनी। आवश्यकताओं को कम-से-कम कर निडर बनकर अहिंसात्मक तरीके से सामाजिक अन्याय का विरोध करें। गाँधी की यह पद्धति बड़ी ही क्रांतिकारी सिद्ध हुई।

गाँधी की दृष्टि में व्यक्तियों के समूह का नाम ही समाज है। अत: उनका जोर व्यक्तियों में नैतिकता का प्रसार करना था। वे यह नहीं मानते थे कि सामाजिक क्रॉति के द्वारा सुधार हो सकता है। उनका विश्वास था कि व्यक्तियों के सुधार द्वारा ही समाज का सुधार हो सकता है। इस अर्थ में गाँधी को व्यक्तिवादी कहा जा सकता है। गाँधी के व्यक्तिवाद में कुछ दूर तक हिन्दू धर्म का प्रभाव भी देखा जा सकता है। गाँधी यह मानते थे कि अनेक जन्मों के अच्छे और बुरे संस्कार व्यक्ति के जीवन में रहते है। और व्यक्ति को हम जैसे चाहे वैसे मोड़ सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक आंतरिक संस्कार पर आधारित धर्म होता है और उसी के अनुसार वह आगे बढ़ सकता है। कोशिशों के द्वारा सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता है। यह विचार आधुनिक प्रभाव का संकेत देता है। यदि वर्णाश्रमवाद और पुनर्जन्मवाद गाँधी जी के परम्परागत विरासत के सूचक हैं तो समानतावाद और सामाजिक परिवर्तनवाद उनकी आधुनिकता का सूचक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तेंदुलकर, डी0 जी0 (1960), महात्मा– लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद्र गाँधी, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, दिल्लीं, खण्डत-2, पृष्ठ 255
   In teñt references (तेंदुलकर, 1960)
2. कुशवाहा, रेणु कुमारी (2011), गाँधी दर्शन के पाँच सुत्रा, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 86, 87
   In teñt references (कुशवाहा, 2011)
   Book with TwoAuthors
3. रूडोल्फ, लॉयल आइ और रूडोल्फा होबर (1967)– दि मेडिनिटी ऑफ ट्रेडिशन– पॉलिटिकल डेवलपमेंट इन इंडिया, शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, भाग-2, पृष्ठ 155 से 249
   In teñt references (रूडोल्फल– रूडोल्फद, 1967)

पत्रिका–

1. यंग इंडिया, 11 अगस्त 1920 सम्पा दक– महात्माड गाँधी
2. सफाई मार्गदर्शिका– ईश्वअरी भाई पटेल

PostalAddress % Dr- Priyanka Singh] W@oµ Pranit Singh (S@oµ Brajraj Singh)] Prem Niwas] Ward No&17] Gangjala] Saharsa] Pin Code&852201 (Bihar)

व्यावसायिक शिक्षा के प्रति लड़कियों के अभिभावकों का दृष्टिकोण

डॉ० शादाब नवाज़

असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. एस.पी. सिंह कॉलेज ऑफ टीचर एडुकेशन, लक्ष्मीपुर, तुरकौलिया, पू. चम्पारण, बिहार

सार

व्यक्ति के व्यवहार में वाँछनीय परिवर्तन करने के लिए व्यवस्थित शिक्षा की परम आवश्यकता है। सच तो यह है कि शिक्षा से इतने लाभ है कि उनका वर्णन करना कठिन है। शिक्षा माता के समान पालन पोषण करती है, पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने कार्यों में लगाती है तथा पत्नी की भांति सांसारिक चिंताओं को दूर करके प्रसन्नता प्रदान करती है, शिक्षा के ही द्वारा हमारी कीर्ति का प्रकाश चारों ओर फैलता है तथा शिक्षा ही हमारी समस्याओं को सुलझाती है एवं हमारे जीवन को सुसंस्कृत बनाती है। हम देश मे रहें या विदेश मे प्रत्येक स्थान पर शिक्षा हमारी सहायता करती है। इस प्रकार कल्पलता की भांति शिक्षा हमारे लिए क्या-क्या नही करती, जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल उठता है तथा सूर्य अस्त होने पर कुम्हला जाता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर प्रत्येक व्यक्ति कमल के फूल की भांति खिल उठता है तथा अशिक्षित होने पर दरिद्रता, शोक एवम् कष्ट के अंधकार में डूबा रहता है। संक्षेप मे शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा व्यक्तियो की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है इससे वह समाज का उत्तरदायी घटक एवम् राष्ट्र का प्रखर चरित्र-सम्पन्न नागरिक बनकर समाज की सर्वांगीण उन्नति में अपनी शक्ति का उत्तरोत्तर प्रयोग करने की भावना से ओत-प्रोत होकर संस्कृति और सभ्यता को पुनर्जीवित एवं पुनः स्थापित करने के लिए प्रेरित हो जाता है।

प्रस्तावना

आज समाज तीव्र गति से बदल रहा है। स्वतन्त्रता से पहले यह देश उन्नति की दौड़ में अन्य देशों से पीछे ही रहा परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। विभिन्न धर्मों में सामाजिक परिवर्तन हुए हैं, जाति-भेद की दीवारें टूटी हैं, नारियों को पुरुषों के समान अधिकार मिल रहे हैं, आदिवासी जातियाँ भी अब सभ्यता के मार्ग पर आ गयी हैं। पहले स्त्रियों को केवल भोग-विलास की वस्तु समझकर घर की चारदीवारी में बन्द करके रखा जाता था परन्तु आज की नारी घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर पुरुष के समान ही उन्नति और आत्मनिर्भरता के पथ पर अग्रसरित हो गयी है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में शिक्षक की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। विविध आयाम वाले इस विषय की विषयवस्तु का क्षेत्र अन्य विषयों की तुलना में अधिक विस्तृत है। शिक्षक को ही इस बात का निर्णय करना पड़ता है कि कौन से सामाजिक विज्ञान की कौन सी विषय वस्तु शिक्षार्थी के लिए उपयोगी है तथा किस विषय की कौन सी विषयवस्तु शिक्षार्थी को किस सीमा तक किस पद्धति से पढ़ाने की आवश्यकता है। इस विषय के अध्यापक का पूरे पाठ्यक्रम पर अपना पूर्ण अधिकार नहीं होता। अतः कई अंश पढ़कर पढ़ाने की आवश्यकता बनी रहती है। विद्यार्थी को अपने कर्त्तव्य एवं अधिकार तथा सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थापन की शिक्षा इसी विषय के अध्ययन से मिलती है। आदर्श शिक्षक ही अपने शिक्षार्थियों में आदर्श चरित्र, कर्त्तव्य परायणता,

राष्ट्र प्रेम एवं आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थापन जैसे गुणों का विकास करने में सफल हो सकता है। इसी समय शिक्षार्थियों में सामाजिक चेतना, सहृदयता, सहानुभूति, सहिष्णुता और समाज जैसे गुणों का उदय होता है, इसलिए शिक्षार्थियों को प्रत्येक कदम पर मार्ग दर्शन देने एवं आदर्श प्रस्तुत कर सकने की आवश्यकता बनी रहती है। इस प्रकार शिक्षक को पर्याप्त सतर्क रहने की आवश्यकता बनी रहती है। सामाजिक अध्ययन के अध्यापक के लिए पाठ्य पुस्तकों का भी महत्व है। पाठ्य पुस्तकें संस्कृति एवं परम्पराओं में बदलाव लाने में महत्वपूर्ण साधन का कार्य करती हैं। यद्यपि यह पुस्तकें माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा राष्ट्रीयकृत पाठ्य-पुस्तक मण्डल एवं कुछ लेखक व्यक्तिगत रूप से भी लिखते हैं, प्रकाशित कराई जाती हैं। शिक्षक एवं अधिकारी वर्ग को विद्यालय के लिए पुस्तकों का चयन करते समय सतर्कता बरतनी चाहिए।

शिक्षा का महत्व स्त्री और पुरुष दोनों के ही लिए अनेक दृष्टियों से है। इसका कार्यक्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत वे सभी कार्यक्षेत्र आ जाते हैं जिनकों पूरा करने से व्यक्ति अपने जीवन को सुखी तथा सफल बनाते हुए सामाजिक कार्यों को उचित समय पर पूरा करने के योग्य बन जाता है। सामान्य रूप से शिक्षा व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों का नियन्त्रण मार्गान्तीकरण तथा शोधन करते हुए उसकी जन्मजात शक्तियों के विकास में इस प्रकार सहायता प्रदान करती है कि उसका सर्वांगीण विकास हो जाये। यही नहीं, शिक्षा व्यक्ति में चरित्रिक तथा नैतिक गुणों एवम् सामाजिक भावनाओं को विकसित करके उसे प्रौढ़ जीवन के लिए इस प्रकार तैयार करती है कि वह अपनी संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण करते हुए उत्तम नागरिक के रूप में सामाजिक सुधार करके राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अपने प्राणों की आहूति देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता संक्षिप्त रूप में शिक्षा मानवीय जीवन में व्यक्ति को जहाँ एक ओर वातावरण से अनुकूलन करने तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुये भौतिक सम्पन्नता को प्राप्त करते हुए चरित्रवान, बुद्धिमान, वीर तथा साहसी उत्तम नागरिक के रूप में आत्म निर्भर बनाकर उसका सर्वांगीण विकास करती है। वही दूसरी ओर शिक्षा राष्ट्रीय जीवन में व्यक्ति के अन्दर राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता, सामाजिक कुशलता तथा राष्ट्रीय अनुशासन आदि भावनाओं को विकसित करके उसे इस योग्य बना देती है कि वह सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता देने के लिए ओत-प्रोत हो जाता हैं। संक्षेप में शिक्षा सामान्य तथा राष्ट्रीय जीवन में इतने कार्य करती है जिससे व्यक्ति तथा समाज निरन्तर उन्नति के शिखर पर चढ़ते रहते हैं। परिवार के स्वस्थ विकास के लिए स्त्री और पुरुष दोनों का ही शिक्षित होना आवश्यक है। स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए मुदालियर कमीशन ने लिखा है-**'एक पुरुष को शिक्षित करना केवल एक ही पुरुष को शिक्षित करना है जबकि एक महिला को शिक्षा देना पूरे परिवार को शिक्षा देने के बराबर होता है'** अतः शिक्षा, स्त्री और पुरुष को एक आदर्श मानव, एक आदर्श नागरिक बनाती है तथा उनके व्यक्तित्व का विकास करती है।

प्रस्तुत समस्या के अन्तर्गत लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण के उद्देश्य द्वारा यह ज्ञात करना है कि वर्तमान में अभिभावक अपनी लड़कियों को किस स्तर तक शिक्षा देने के पक्ष में हैं और वे अपनी लड़कियों का सेवारत रहना पसन्द करते हैं अथवा नहीं। भारतीय समाज में मूलतः इसके पुरुष प्रधान होने के कारण असमानताएँ निरन्तर उपस्थित हैं। अनेक कानून बनने के बाद भी स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार की घटनाएँ होती रहती हैं। यद्यपि दहेज लेना व देना अपराध है परन्तु दैनन्दिन अनेक लड़कियाँ आज भी इसका शिकार बनती हैं। इसी प्रकार बलात्कार, सेवारत लड़कियों अथवा स्त्रियों का यौन उत्पीड़न आदि मामले बराबर सामने आते रहते हैं। इस प्रकार अनेकों कारणवश कुछ अभिभावक अपनी लड़कियों को शहर से दूर भेजनें अथवा उन्हें व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में नहीं होते। इसी प्रकार मुस्लिम समुदाय में आज भी पर्दा प्रथा है यदि कुछ शहरी क्षेत्रों को छोड़ दिया जाए तो ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति के फलस्वरूप मुस्लिम समुदाय अपनी लड़कियों को व्यावसायिक शिक्षा देने से हिचकिचाते हैं फलतः उनका दृष्टिकोण भी भिन्न होता है।

प्रस्तुत शोध कार्य में यही जानने का प्रयास किया गया कि:

* हिन्दू शहरी अभिभावकों का अपनी लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के प्रति क्या दृष्टिकोण है?
* हिन्दू ग्रामीण इस सम्बन्ध में क्या सोचते हैं?
* मुस्लिम शहरी अभिभावकों का अपनी लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के प्रति क्या दृष्टिकोण है?
* मुस्लिम ग्रामीण अभिभावकों का इस सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण है?

प्रस्तुत समस्या 'लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण' हेतु शून्य परिकल्पना का प्रयोग करते हुए माना गया है कि:

न्यादर्श

* मेरठ जिले के हिन्दू और मुस्लिम परिवारों को ही सम्मिलित किया गया है।
* 150 ग्रामीण एवं शहरी मुस्लिम एवं हिन्दू परिवारों को ही लिया गया है।

1. हिन्दू और मुस्लिम अभिभावकों के अपनी लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. मुस्लिम शहरी और मुस्लिम ग्रामीण अभिभावकों के अपनी लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. हिन्दू शहरी व मुस्लिम शहरी अभिभावकों का अपनी लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के तथ्य-संकलन हेतु लिंकर्ट मापनी प्रविधि का प्रयोग किया गया। जिसके अन्तर्गत बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण, सहशिक्षा एवं लड़कियों की स्वतन्त्रता सेवारत लड़कियों या स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण, लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा का प्रभाव, व्यावसायिक शिक्षा के मार्ग में कठिनाईयों प्रत्येक प्रकार के शीर्षक में पाँच-पाँच प्रश्न सम्मिलित किये गए हैं, इस प्रकार कुल प्रश्नों की संख्या 25 है।

तालिका 1.1

	हिन्दू अभिभावक	मुस्लिम अभिभावक	स्तर	तालिका से प्राप्त टी का मान	गणना से प्राप्त टी का मान	परिणाम
मध्यमान	88.97	81.71	0.05	1.97	7.73	सार्थक
एस0डी0	8.07	4.70	0.01	2.6	7.73	सार्थक

तालिका 1.2

	हिन्दू शहरी	मुस्लिम ग्रामीण	स्तर	तालिका से प्राप्त टी का मान	गणना से प्राप्त टी का मान	परिणाम
मध्यमान	86.98	78.46	0.05	1.98	2.51	सार्थक
एस0डी0	17.00	16.90	0.01	2.63	2.51	असार्थक
एन	50	50				

तालिका 1.3

	मुस्लिम शहरी	मुस्लिम ग्रामीण	स्तर	तालिका से प्राप्त टी का मान	गणना से प्राप्त टी का मान	परिणाम
मध्यमान	74.06	68.58	0.05	1.98	1.36	असार्थक
एस0डी0	22.5	17.6	0.01	2.63	1.36	असार्थक
एन	50	50				

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मुस्लिम शहरी अभिभावक लड़कियों के लिए उनके व्यक्तित्व के विकास हेतु सह-शिक्षा भी आवश्यक मानते है। इन अभिभावकों के अनुसार लड़कियों को अपनी रूचि के अनुसार किसी भी व्यवसाय को अपना लेना चाहिये तथा व्यावसायिक स्तर पर लड़कियों को सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी भाग लेना चाहिए। इनके अनुसार लड़कियों का सेवारत रहना सम्मान का विषय है लगभग सभी अभिभावक पूर्णत: सहमत हैं कि लड़के व लड़कियों के पाठ्यक्रम पृथक होने चाहिये। अधिकांश अभिभावक इस बात के लिये अनिश्चितता प्रकट करते हैं कि व्यावसायिक शिक्षा दहेज प्रथा की समाप्ति में सहायक होती है। व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त लड़कियों में आत्मविश्वास की वृद्धि होती हैं, उनमें फैशन भी बढ़ता है।

मुस्लिम ग्रामीण अभिभावक लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा हेतु पूर्णत: समहत है परन्तु उन्हें व्यावसायिक शिक्षा दिलाने हेतु क्षेत्र से बाहर भेजे जाने की सहमति व्यक्त नहीं करते। कुछ अभिभावकों का मत है कि व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त लड़कियों में अनैतिकता का विकास होता है। व्यावसायिक शिक्षा खर्चीली होती है तथा सुरक्षा की दृष्टि से भी व्यावसायिक शिक्षा उचित नहीं है। इन अभिभावकों के अनुसार लड़कियों को धार्मिक शिक्षा, घरेलू काम काज की शिक्षा दी जानी चाहिये। सह शिक्षा पर लगभग सभी अभिभावक असहमति व्यक्त करते हैं। लड़कियों को खुली स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए सहशिक्षा से उनमें अनैतिकता का विकास होता है।

सुझाव

* लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित किया जाना चाहिये। ये उद्देश्य लड़कियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास और परिवार की आर्थिक स्तर को सुधारने की दृष्टि से निर्धारित किये जाने चाहिये।
* लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा में सुधार लाने हेतु पाठ्यक्रम का पुनर्संगठन आवश्यक है इस पाठ्यक्रम में कम्प्यूटर शिक्षा, फैशन डिजाइनिंग, अर्थशास्त्र, गृहविज्ञान, शिक्षा आदि समावेश की सम्भावना है।
* केन्द्रीय सरकार व राज्य की सरकारों को व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त लड़कियों के लिये रोजगार के अधिक से अधिक अवसर जुटाने चाहिये।
* व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं के अभाव में बहुत से अभिभावक इच्छा रखते हुए भी उन्हें व्यावसायिक शिक्षा नहीं दिला पाते। अत: लड़कियों के लिए अलग से प्रत्येक ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक शिक्षा संस्थायें खोली जायें।
* ग्रामीण क्षेत्रों में मुसलमानों की स्थिति आज भी दयनीय बनी हुई है, अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों के मुसलमान निर्धनता, बेरोजगारी तथा अशिक्षा से घिरे हुये हैं। शिक्षा की कमी निर्धनता, बेरोजगारी तथा बेकारी आदि के कारण ही अनेकों सामाजिक कुरीतियाँ जन्म लेती हैं। अत: भारत सरकार को इनके शैक्षिक व आर्थिक विकास हेतु हर सम्भव प्रयास करना चाहिये तभी देश उन्नति के मार्ग पर अग्रसरित हो सकेगा।
* व्यावसायिक स्तर पर शिक्षा बहुत खर्चीली होती है। अधिकतर जितने भी प्राईवेट संस्थान हैं वहाँ शुल्क इतना अधिक होता है कि निर्धन अभिभावकों के लिए खर्चा बर्दाश्त करना अत्याधिक कठिन होता है तथा जिन संस्थाओं का शुल्क कम होता है वहाँ शिक्षा का स्तर अच्छा नहीं होता। अत: प्रत्येक ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र में नि:शुल्क सरकारी व्यावसायिक संस्थान खोले जाने चाहिये।
* आजकल बालक बालिकाओं के पाठ्यक्रम में समानता के कारण समाज में बड़ा असंतोष है। यह प्राय: सैद्धान्तिक, पुस्तक प्रधान तथा अव्यावहारिक है और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता। उसमें उनकी रूचि की अवहेलना होती है। पाठ्यक्रम प्राय: बोझिल हैं। अत: इसमें लिंग भेद के आधार पर अन्तर आवश्यक है। कुशल लड़कियों का निर्माण पाठ्यक्रम का उद्देश्य होना चाहिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. ए0 पी0 शर्मा : भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, अशोक पब्लिशिंग हाऊस, 83, गांधीनगर, मेरठ
2. डॉ. आर0ए0 शर्मा : शिक्षा और मनोविज्ञान में प्रारम्भिक सांख्यिकी, आई. पी0 एच0, मेरठ
3. ऑल इण्डिया बोमन कांफ्रेंस : वोमन एण्ड सोशल इन जस्टिस, नव जीवन प्रेस, अहमदाबाद
4. बुच एम0 वी0 (एडी) : थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0 (1987)
5. बुच एम0 वी0 (एडी) : ोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0 (1991)
6. बुच एम0 वी0 (एडी) : फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0 (1995)

आचार्य श्री विद्यासागरजी की शैक्षिक संकल्पना

श्रीमती प्रेरणा जैन

शोधार्थी, (डी. ए. वि.वि., इन्दौर)

डॉ० दीपा जैन

(प्राचार्य) , 79, कर्मचारी कॉलोनी ब्यावरा, जिला राजगढ़ (म.प्र.) पिनकोड़ 465674

शोध सार

आचार्य श्री विद्यासागरजी की शैक्षिक संकल्पना को वर्तमान में लागू करना अति आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा के गिरते स्तर को यदि सुधरना है तो आचार्य श्री ने शिक्षा का जो मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है उसकों भलीभांति समझकर शिक्षा के उदात्त पाठ्यक्रम में लाया जा सकता है, वर्तमान में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में आचार्य श्री को स्थान मिलना और उनकी सलाह को मानकर पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना हम सभी के लिए अत्यन्त गौरव की बात है, निश्चित ही इससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार आयेगा प्राचीन समय में शिक्षा का स्तर गुणवत्ता बहुत सुदृढ़ एवं अर्थपूर्ण एवं संस्कारवान स्वरूप में परिलक्षित थी दिनदूनी रात चौगुनी उन्नति का बोलबाला था परंतु अंग्रेजों के शासन के बाद से आज तक शिक्षा का स्तर गिरता ही जा रहा है। अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति को आधुनीकरण के साथ-साथ पाश्च्यातीकरण की ओर मोड़कर पतन की राह पर धाकेल दिया है जिससे चारों ओर का वातावरण दूषित हो चुका है जीवन के हर क्षेत्र में गिरावट आई है हमारी शिक्षा में नर से नारायण बनाने वाली परंपरागत बाते तो है सब कुछ ठीक प्रकार से होते हुए भी विद्या अर्जन को भारत में ग्रहण करके विदेशों में नौकरी करना पेकेज की होड़ में आकर व्यक्ति व्यवहारिक आचरण से दूर होकर कृत्रिमता की और आकर्षित हो रहा है, क्योंकि यह कहा जाता है जीवन में विकास एवं परिवर्तन लाना है तो उसका माध्यम शिक्षा ही है। शिक्षा देश की रीढ़ है। शिक्षा भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों का मिश्रण है। अतएव शिक्षा के मूलभूत अर्थ को समझने के लिये आचार्य श्री विद्यासागरजी की शिक्षा की संकल्पना को वर्तमान में लागू करके देश की शैक्षिक ज्वलंत समस्याओं एवं चुनौतियों का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

आचार्य विद्यासागरजी की शैक्षिक संकल्पना

1. प्रस्तावना– सामान्यत: अगर परितर्वन या विकास होता है तो यह माना जाता हे कि उसका माध्यम शिक्षा ही है। मानव विकास की त्वरितगति मूल में उसके योजना बद्ध प्रयास है जो कम समय में अधिक से अधिक सीख सकें। सीखने एवं सिखाने की प्रक्रिया जहाँ भी हो वहाँ शिक्षा की अवधारणा समाहित है। समाज एवं व्यक्ति को संस्कारवान बनाने वाली शक्ति के रूप में शिक्षा को जाना जाता है। शिक्षा मूलत: ज्ञान, अनुभव या सीख है जो व्यक्ति के व्यवहार एवं आचरण को परिभाषित करती है। वह शिक्षा, शिक्षा नहीं है जिसे प्राप्त करने के बाद भी व्यक्ति वैसा ही व्यवहार करे जैसा कि वह पहले करता था। शिक्षा में ज्ञान एवं क्रिया दोनों का समावेश जरूरी है किसी एक के न होने पर शिक्षा अधूरी है।

प्राचीन समय में जो शिक्षा पद्धति थी वह इतनी सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ थी की व्यक्ति के आचरण में नैतिकता के दर्शन दिखाई देते थे। भारत की ही स्थिति को देखे तो आजादी के पूर्व गुरूकुल शिक्षा व्यवस्था होती थी, उसमें अध्यात्मिकता की शिक्षा बहुत अनिवार्य थी, परंतु बाद में हम परतंत्र हो गये और अंग्रेजों की रणनीति एवं शिक्षा पद्धति (अंग्रेजी माध्यम) में फलीभूत हो गये जो, आज तक विद्यमान है। इसी का परिणाम है कि स्वतंत्र भारत में आज सर्वत्र अंग्रेजी एवं पाश्च्यातीकरण का बोलबाला है जिससे हर बालक, पालक, शिक्षक अपने आप में भटकाव के मार्ग पर अग्रसर है। आज शिक्षा जीविकालक्ष्यी में बदल गई है। पहले भारतभूमि महात्मा गांधी, बिनोबा भावे, तिलक, टैगोर, नेहरू, तुलसी, कबीर, नानक, राम, महावीर, कृष्ण जैसे संत महात्मा, महापुरुषों से सजी थी, जिन्होंने भारत में ही नहीं बल्कि सर्वत्र विश्व में संस्कृति, नैतिक मूल्यों का प्रचार प्रसार किया। वर्तमान में शिक्षा की अनेक विसंगतिया उत्पन्न हो चुकी है, ऐसे में जब कभी असाधारण मानव विशेषकर इतिहास की गंभीर समस्याओं को देखते है तो अपने विशिष्ट ज्ञान द्वारा उसे समझने सुलझाने का प्रयास करते है तब युग प्रर्वतक विचार एवं विचारधाराएं उत्पन्न होती है।

ऐसी ही विचार धाराओं में महापुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है, दिगम्बर **जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज** का, जिन्होंने अपने ज्ञानोदया चक्षु से शिक्षा की विसंगति को दूर कर नई चेतना जागृत करने का सफल एवं सार्थक प्रयास अपनी साहित्यिक कृतियों द्वारा किया जो वर्तमान में प्रासंगिकता पूर्ण है, क्योंकि आचार्य श्री रचित महाकाव्य मूकमाटी को नवीं कक्षा में माध्यमिक शिक्षा मण्डल भोपाल (म.प्र.) की हिन्दी की पाठ्यपुस्तक में एक छोटी सी कविता के रूप में समाविष्ट किया गया है, और साथ ही देंश के प्रमुख वि.वि. में पाठ्यक्रम के रूप में शामिल किया जा चुका है।

2. प्राचीन शैक्षिक संकल्पना– प्राचीन समय में जो शिक्षा मिलती थी वह यथार्थतापूर्ण होती थी हम उसके माध्यम से कुछ सीखते थे। शिक्षा के साथ-साथ नैतिक मूल्यों, संस्कारों का समावेश होता था। हमारे देश में मातृभाषा का ही बोलबाला था सारे कार्य हिन्दी में ही होते थे। व्यक्ति के अंदर स्व की भावना दिखलाई देती थी। भारत में बहुत महान लोग हुए जिन्होंने भारतीय संस्कृति एवं आर्दशों का प्रचार-प्रसार किया एवं अपना जीवन सफल बनाया। तक्षशिला, नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों में विदेशी लोग अध्ययन करने आते थे। गुरूकुल, आश्रम व्यवस्था द्वारा शिष्यों को अध्यापन के साथ-साथ संस्कृति, धार्मिक, नैतिक, शैक्षिक, सामाजिक गतिविधियों का ज्ञानार्जन कराया जाता था इसीलिए उस समय का दृष्टिकोण खंडन का नहीं मंडन का होता था। महापुरुषों को जन्म देनेवाली भारतमाता सदैव वंदनीय, पूज्यनीय रही। सम्पूर्ण विश्व में भारत ही में एक ऐसा देश है जिसमें शिक्षक का सम्मान होता है।

शिक्षा शब्द संस्कृत के ***"शिक्ष"*** धातु से बना है अर्थात सीखना और प्रेरक के रूप में सिखाना। अलग-अलग दार्शिनिक, कवि, संत, महात्मा, वेद, पुराण, शिक्षाविद् सभी ने शिक्षा शब्द को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया।

ऋग्वेद के अनुसार– "शिक्षा मनुष्य को आत्मविश्वास एवं स्वार्थहीन बनाती है।"

उपनिषद् के अनुसार– "शिक्षा वह है जिसका प्रमुख साधय मुक्ति है।"

कालिदास के अनुसार– "प्रबोध वह ज्ञान है जो बुद्धि के द्वारा प्राप्त किया जाता है।"

भारतीय दर्शन ने– "ज्ञान को तृतीय नेत्र माना है।"

महाभारत में– ***"नास्ति विद्या समं चक्षुः"*** माना है।

गांधी जी के अनुसार– "शिक्षा से मेरा अभिप्राय है- बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का विकास है।"

जैन दर्शन के अनुसार–

* सृष्टि या जगत अनादि और अनंत है यह स्वाधीन है, इसकी रचना किसी अन्य सत्ता ने नहीं की है इसका पालन और संचालन करने वाला भी अन्य कोई नहीं है।
* शरीर भौतिक पदार्थ है और आत्मा चेतन है।
* शरीर और आत्मा का संयोग ही जीवन है।

* सांसारिक राग द्वेष के कारण मनुष्य सुख-दु:ख का अनुभव करता।
* मनुष्य अपने कर्मो का फल भोगता है।
* जीवन का लक्ष्य है– "मुद्रि" अर्थात सांसारिक सुख-दु:ख से मुक्त होकर परम ज्ञान और आनंद की स्थाई अवस्था को प्राप्त करना।
* मुक्ति का सूत्र है- सम्यक् दर्शन + सम्यक् ज्ञान + सम्यक् आचरण

आचार्य श्री विद्यासगार जी के अनुसार– "शिक्षा जीवन का वह पवित्र संस्कार है जो हमको मानवतावादी सिद्धांतों पर चलना सिखलाती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से तात्पर्य शिक्षा को जीवन के क्षेत्र में मानव का प्रकाशपुंज माना जाता है जिसका उददे्श्य अनुभव एवं ज्ञान के माध्यम से चारित्र निर्माण करना था।

3. नवीन/वर्तमान शैक्षिक संकल्पना– शिक्षा वर्तमान एवं भविष्य के लिए विशिष्ट पूंजी निवेश है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ट संबंध शिक्षा का है उतना किसी ओर का नहीं। सर्वसुलभ एवं सार्थक शिक्षा प्रजातंत्र की सफलता की प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। शिक्षा तंत्र की भव्य अट्ठालिका शिक्षा की नींव पर ही टिकी होती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने सभी प्रकार के सृजन के सपनों को साकार करने के साथ-साथ अपने आप को पूर्ण बना सकता है। शिक्षित होकर ही वह घर, समाज, देश यहा तक की विदेशों में भी उन्नति की मिसाल खड़ी कर अपनी स्वयं की एवं उन्नत देश की पहचान हासिल कर सकता है जिसका एक मात्र माध्यम शिक्षा ही है।

आज हमारा भारत अनेक शैक्षिक समस्याओं से जूझ रहा है क्योंकि मैंकाले की शिक्षा पद्धति का अनुसरण करके हमने हमारे सोने की चिड़िया कहलाने वाले भारत को ही विदेशी ढांचे में ढाल दिया जिसका परिणाम हमारे सामने है। शिक्षा एक व्यवस्था के रूप में परिलक्षित हो रही हैं। शिक्षा में वास्तविकता की जगह कृत्रिमता आ गई है। भारतीय संस्कृति पूरे विश्व में संस्कार एवं संवध र्न के लिए प्रचलित थी जिसका आज सर्वत्र अभाव है। शिक्षा केवल वर्तमान से वर्तमान की यात्रा नहीं बल्कि भूत से भविष्य तक का ऐसा मार्ग है जिसे वर्तमान के पुल पर से होकर जाना होता है, इसीलिए वर्तमान में शिक्षा के प्राण कहे जाने वाले नैतिक मूल्यों का हनन हो रहा है। आज की शिक्षा यांत्रिकता या तकनीकी ज्ञान तो दे रही है परंतु दिशा विहिन लक्ष्य के अभाव में बिनाश का कारण बनती जा रही है। बेरोजगारी, तनाव, कलह, उपद्रव, मनमुटाव, एकल परिवार, भ्रष्टाचार सभी शिक्षा की विसंगति के कारण उत्पन्न हो रहे है। ज्यों-ज्यों शिक्षा का विस्तार हो रहा है त्यों-त्योंद्वंद आ रहे है। मुद्दा यह है कि आज शिक्षा का उद्देश्य बुरा नहीं है फिर भी यह सब क्यों हो रहा है? वर्तमान में जो शैक्षिक समस्याये है उनका कारण क्या है?

शिक्षा की कुछ परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट है–

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार– "शिक्षा को मनुष्य और समाज का निर्माण करना चाहिए।"

शिक्षा आयोग के अनुसार– "शिक्षा एक तिहरी प्रक्रिया है, जो ज्ञान देती है, योग्यता का विकास करती है और उचित रूचि अभिवृत्ति और मूल्य संबंधित भावना जागृत करती है।"

इंदिरा गाँधी के अनुसार– "शिक्षा मानव को बंधनो से मुक्त करती है आज के युग में यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुये मनुष्य को सबसे ऊपर उठाती है।"

ग्रोबेल के अनुसार– "शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की आंतरिक शक्तियों को बाहर लाया जाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं का निष्कर्ष भी यही है कि आत्म साक्षात्कार द्वारा बंधनों से मुक्ति एवं सदगुणों का विकास।

4. आचार्य श्री जी की शैक्षिक संकल्पना– आचार्य श्री का कहना है कि **"शिक्षा जीवन का वह पवित्र संस्कार है जो हमको मानवतावादी सिद्धांतो पर चलना सिखलाती है।"** आचार्य श्री की शिक्षा की इस अवधारणा में दो तत्व दृष्टिगत होते है- **संस्कार** एवं **सिद्धांत**। जो कि प्रत्यक्षत: अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्ध होते है। दोनो शब्दों में जो विशेषता है **पवित्र** संस्कार एवं **मानवतावादी** सिद्धांत ने शिक्षा को किताबी ज्ञान से मुक्त कर दिया। शिक्षा और संस्कार दोनो में अंतर है एक संस्कारित व्यक्ति ही समझ और सोच से बता सकता है कि कौनसा पौधा फलदायी है या नही। अतएव आचार्य प्रवर ने शिक्षा के साथ-साथ संस्कार

एवं मानवीयता पर भी जोर दिया है, क्योंकि शिक्षा का अर्थ तथ्यों एवं जानकारियों का भंड़ार नहीं वरन् उसे अपनी आत्मा में सद्गुणों का विकास करना है।

वह प्रत्येक अनुभव जिससे हम अपने जीवन में प्रतिपल कुछ न कुछ सीखते हैं। वह ज्ञान हमें सीमितता से हटाकर व्यापकता की ओर ले जाकर जीवन निर्माण में सहायक होता है।

गुणों के साथ
अत्यंत आवश्यक है
दोषों का बोध होना भी,
किन्तु
दोषों से द्वेष रखना
दोषों का विकसन है। (पृ.74)

मूकमाटी महाकाव्य की उपरोक्त पंक्तियों के अनुसार जीवन उपयोगी शिक्षा बालक को गुणग्राही, हितग्राही दृष्टि तथा दोषकारी, अहितकारी दृष्टि के मध्य अंतर करना सिखाती है। संसार में दो प्रकार के लोग हैं- अच्छे व बुरे। हितकारी दृष्टि गुणीजनों से गुणों को ग्रहण कर अपने जीवन में आत्मसात करने की प्रेरणा प्रदान करती है तथा स्व में विद्यमान दोषों को छोड़ने त्यागने की समझ विकसित करती है।

आचार्य श्री कहते है **"आदर्श सभ्यता एवं संस्कृति शिक्षा का सौंदर्य हैं।"** संस्कृति की विरासत शिक्षा के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती। संस्कृति यदि पथ प्रदर्शक है, तो सभ्यता उस पथ पर चलना सिखलाती है। अर्थात् संस्कृति एवं सभ्यता का संबंध मनुष्य के आचार-विचार से है। मनुष्य के उच्च विचार ही जीवन में उच्च आचार को लाते है तथा उच्चतम स्थान दिलानें में कारण होते है।

उन्होंने सत्य एवं अहिंसा को भी शिक्षा में समावेश करते हुये कहा है, **"प्रजा की रक्षा और राष्ट्र की उन्नति के लिये अहिंसा ही एक मात्र सच्चा साधन है, सत्य को छोड़कर अहिंसा नही और अहिंसा को छोड़कर सत्य नहीं। हमारे जीवन में सत्य एवं अहिंसा दोनों होना चाहिये।"** अतएव सच्ची शिक्षा वहीं है जो मानव को अहिंसक एवं सत्यवादी बनाये।

शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करते हुये श्री विद्यासागर गुरु कहते हैं, **"कर्तव्य, नैतिकता, उदारता, सेवा, त्याग एवं समर्पण शिक्षा के संस्कारो का ही परिणाम है।"** शिक्षा के द्वारा मानव अपनी मानवीय गुणों को प्राप्त करता है। आचार्य श्री ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपों से व्यक्ति में शिक्षा के इन गुणों पर महत्व देते हुये संस्कारित बनाने का आव्हान किया है।

सभी अध्यापकों की ओर इशारा करते हुये आचार्य श्री कहते हैं, **"हित का सृजन व अहित का विसर्जन ही शिक्षा का सही लक्षण हैं।"** हित सृजन शिक्षा का ऐसा माध्यम है जिसमे शिक्षा की सम्पूर्ण परिभाषायें एवं सम्पूर्ण उद्देश्य सम्मिलित हो जाते है। शिक्षा मात्र सफलता की ओर ही न ले जाये बल्कि उसमें सच्चाई भी झलकें। हित सृजन में सच्चाई पहले हो, फिर बाद में सफलता। वर्तमान में यह बिल्कुल विपरीत है। मानव का हित मूल्य परक शिक्षा से जुड़ा हो ताकि उसे शांति का अनुभव हो इसीलिये आचार्य श्री ने शिक्षा को हित सृजन से जोड़ा है।

आगे भी कहते है कि **"शिक्षा का अर्थ मात्र शब्द पढ़ना नही, शब्द के माध्यम से अर्थ तक, अर्थ से भाव तक पहुँचाने का नाम शिक्षा है।"** महत्वपूर्ण बात है कि आचार्य श्री ने केवल शब्द सूचना को ही शिक्षा का अंग नही बल्कि भाव, वात्सल्य, श्रद्धा, प्रेम, आत्मा, आस्था, को भी शिक्षा के अंग के रूप में व्याख्यातीत किया है।

ओर साथ ही यह भी कहा है, **"अंधो-बहरे, मूक क्या बिना शब्द शिक्षा न पाते।"** वे शिक्षा को भाषात्मक नही भावात्मक मानते है।

आचार्य श्री ने ओर भी बहुत सी शिक्षाप्रद बाते कहीं है, **"शिक्षा का प्रयोजन ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाना है।"** अर्थात् शरीर से आत्मा की ओर जाना शिक्षा है। क्योंकि शरीर ज्ञात है और आत्मा अज्ञात है। स्वबोध ही सम्पूर्ण शिक्षा है। यहीं शिक्षा का प्रारंभ है और यही अंत है।

वे ये भी कहते है **"बोध के सिंचन के बिना शब्दों के पौधों कभी लहलहाते नहीं।"** तात्पर्य जीवन में कई रहस्यों को समझने के लिये अनुभवों की गहराई में डूबना आवश्यक है।

प्रत्येक व्यक्ति का निर्माण केवल काया से नहीं है बल्कि अंर्तात्मा से होना चाहिये। इसी आत्मा को पहचाना अध्यात्मिकता की सीढ़ी है। आचार्य श्री ने शिक्षा को अध्यात्मिकता से जोड़ते हुये कहा है, **"शिक्षा अर्थकारी नही परमार्थकारी होना चाहिये।"**

आचार्य प्रवर शिक्षा को मात्र जीविकोपर्जन का साधन नहीं मानते है यह सत्य है कि जीविका के लिये अर्थ की जरुरत होती है पर मात्र अर्थ को ही जीवन नहीं मानना चाहिये।

आचार्य श्री कहते है, **"शिक्षा जीवन का निर्वाह नहीं निर्माण है।"** मनुष्य में विकास की अनंत संभावनाएं छिपी है। अत: उसका ध्येय मात्र जीवन निर्वाह न होकर जीवन निर्माण होना चाहिये क्योंकि निर्वाह रूप की ओर ले जाता है और निर्माण स्वरूप की ओर।

उपरोक्त शैक्षिक विचारों के बाद मुख्य साहित्यिक कृति **"मूकमाटी"** में आचार्य श्री ने स्पष्टत: कहा है-

मै निर्दोष नहीं हूँ
दोषों का कोष बना हुआ हूँ.....
जब तक उनका जलना नहीं होगा
मैं निदोष नहीं हो सकता.....
मैं कहाँ कह रहां हूँ
कि मुझे जलाओं
हाँ, मेरे दोष को जलाओं।
मेरे दोषो को जलाना हीं
मुझे जिलाना है
स्व-पर दोषो को जलाना
परम-धर्म माना है सन्तो ने।
दोष अजीव है,
नैमित्तिक है,
बाहर से आगत है कथंचित्
गुण जीवगत है। (पृ.277)

उपरोक्त काव्य के अनुसार कुंभ कहता है अनुग्रह करना शक्ति का सदुपयोग है। धर्म है। मैं दोषपूर्ण हूं जब तक दोष दग्धा न होंगे मैं निर्दोष नही होऊंगा। मेरा दोषो को जलाना मुझे जिताना है अर्थात् जीवन देना है। दोष तो निर्जीव हैं, नैमित्तिक है, पर गुण जीवगत है। दोष बहिरगत है और गुण स्वयं मैं ही तो हूं अत: दोषो को मिटाकर मेरे गुणो को अभिव्यक्ति दो। इस प्रकार मूकमाटी काव्य के माध्यम से आचार्य श्री ने शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट किया है कि बालक के अन्दर के गुणों को बाहर लाना और दोषों को बहिर्गत करना। जैसा कि हमे विदित है, **"शिक्षा की परिभाषा अनुसार व्यक्ति, बालक की आंतरिक शक्ति याने कि गुणो को बाहर लाना ही शिक्षा है।"**

5. निष्कष– आचार्य श्री की शिक्षा की संकल्पना संबंधी विचार बहुत ही प्रभावशाली है, क्योंकि उन्होंने शिक्षा के गूढ़ अर्थों को समझाने का प्रयास किया है। उनके अनुसार शिक्षा जीवन का वह पवित्र संस्कार है, जो मनुष्य को मानवतावादी सिद्धांतों पर चलना सिखलाती है। कर्तव्य, नैतिकता, उदारता, सेवा, त्याग एवं समर्पण यह सब शिक्षा के संस्कारों का एक परिवार है, जो व्यक्ति

के आचार-विचारों को शुध कर उसे हित-अहित का ज्ञान करा के उसे कर्तव्यनिष्ठ मानव बनाती है। वे शिक्षा को जानकारी या तथ्यों का संग्रह नहीं, वरन् अंतस् चेतना में सद्गुणों का विकास, कषायों की हानि, राग-द्वेष को कम करके आचरण रूप में धारण करना मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षा जीवन का निर्वाह नहीं निर्माण है। आचार्य श्री ने शिक्षा को ज्ञान से बढ़कर उस ज्ञान को सच्चे अर्थों में जीवन में उतारने पर बल दिया और उन्होंने शिक्षा को इंद्रिय ज्ञान से लेकर अतीन्द्रिय ज्ञान व भौतिक जगत से अभौतिक जगत तक विस्तृत कर दिया। यह ही पूर्ण मानव के विकास की चरम सीमा है, जो उसे स्व की पहचान कराती है। इस संकल्पना को सफलीभूत बनाने के लिए आचार्य प्रवर ने शिक्षा में अध्यात्मिकता का मूल मंत्र दिया।

6. शैक्षिक निहितार्थ– शोध निष्कर्षो के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य श्री की शैक्षिक संकल्पना-विद्यार्थी, शिक्षक, अभिभावक, प्रशासक, समाज के लिए काफी उपयोगिता लिए हुए है।

विद्यार्थी वर्ग के लिए– प्रस्तुत शोध के निष्कर्षो के आधार पर शिक्षा के सही अर्थ, उद्देश्यों को समझ सकेंगे और अपने जीवन में एक नवीन परिवर्तन कर सकते है। वे शिक्षा को मात्र नौकरी का साधन न मानकर अर्थ अर्जन की दौड़ में शामिल न होकर शिक्षा के मार्मिक अर्थ को अपने जीवन में उतार कर सयंमित जीवन जीना सीख सकेंगे।

शिक्षक वर्ग के लिए– आचार्य प्रवर की शिक्षक की अवधारणा से प्रभावित होकर शिक्षक अपने शैक्षिक कार्य के वास्तविक उद्देश्य को जान सकते हैं और एक आदर्श शिक्षक बनने की प्रेरणा ले सकते हैं। शिक्षा को मात्र नौकरी का जरिया न मानकर ज्ञानदान की एक पवित्र प्रक्रिया बनाकर शिक्षा के क्षेत्र में एक नया अध्याय जोड़कर शिक्षक अपने गिरते स्तर को ऊँचा उठा सकेंगे।

अभिभावकों के लिए– आचार्य श्री के शैक्षिक विचारों से प्रेरित होकर अभिभावक अपने बच्चों की योग्यता पहचान कर उनकी रूचि के अनुसार उन्हें शिक्षण में सहायता प्रदान कर सकेंगें। अपने बालकों को संस्कारयुक्त शिक्षा प्रदान कर देश को एक श्रेष्ठ नागरिक प्रदान कर सकेंगें।

प्रशासक वर्ग के लिए– आचार्य प्रवर की शैक्षिक विचारधारा से अभिभूत होकर प्रशासक शैक्षिक नीतियां, पाठ्यक्रम निर्माण, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, जीवन उपयोगी विचार धाराएं, समस्त विषयों का समावेश, व्यक्तिगत भिन्नता एवं छात्रों की रूची के आधार पर विचार करके शिक्षा को सरल बना सकेंगें। पाठ्यक्रम में आचार्य प्रवर के साहित्य के कुछ अंशों को रखकर उनके विचारों को अपनाकर वर्तमान स्वरूप में गुणवत्ता लाई जा सकती है।

समाज के लिए– आचार्य श्री के विचारों के माध्यम से समाज से जुड़े व्यक्तियों को अपनी भारतीय संस्कृति गौरवशाली परंपरा एवं जीवन मूल्यों का भान हो सकेगा तथा भारतीय संस्कृति में पढ़ रहे नकारात्मक विचारों को दूर करने हेतु प्रयत्नशील रहेंगे।

7. उपसंहार– वर्तमान समय में आचार्य श्री विद्यासागरजी की शैक्षिक संकल्पना बहुत सटिक है, चूँकि अंग्रेजों के शासन के पहले भारत की शिक्षा पद्धति जिसे प्राचीन शिक्षा पद्धति के नाम से जाना जाता है, आचार्य श्री शैक्षिक पद्धति से परिपूर्ण मेल रखती है। कहने का तात्पर्य है कि आचार्य श्री की शैक्षिक संकल्पना और शैक्षिक विचारों को वर्तमान में लागू करें तो हमारा देश भारत पुनः सोने की चिड़िया की तरह जगमगाने लगेगा। साथ ही देश की समस्याओं एवं चुनौतियों का निदान व उपचार संभव है। इस शोध पत्र के द्वारा यही दर्शाने का प्रयास किया गया है। आचार्य श्री की शैक्षिक संकल्पना समृद्ध एवं प्रासंगिक है तथा सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक महत्ता रखती है। यह निश्चिन्त, तनाव रहित ओर समरसपूर्ण जीवन जीने की सही दिशा निर्धारित करती है।

यही कारण है कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में आचार्य श्री को स्थान देकर उनकी सलाह को मानना ओर पाठ्यक्रम में उनकी साहित्यिक कृतियों के अंशो का समावेश करना एक बहुत ही विशिष्ट एंव सराहनीय पहल है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- त्यागी, गुरूशरण एंव कुमार नंद, "उदीयमान भारत में शिक्षा''
- सिहं, रामगोपाल (1987), "शिक्षा और समाज", विवेक प्रकाशन, दिल्ली

- आचार्य विद्यासागर (1988), "मूक-माटी महाकाव्य", भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, मानस तरंग
- जैन, डॉ. नीलम (1988), "माटी का सौरभ", श्री दिगंबर साहित्य प्रकाशन समिति बरेला (म.प्र.)
- जैन, प्रेरणा (2012), "शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाईयों का अध्ययन एंव उनका निदानात्मक सुझाव", लघु शोधप्रबंध, भोज मुक्त वि.वि. भोपाल
- जैन, सपना (2013), "आचार्य श्री विद्यासागर जी के शैक्षिक विचार : एक अध्ययन", शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राजस्थान)
- पाठक, पी. डी. मंगल, के. पी. (2014), "उदीयनम भारतीय समाज में शिक्षा के आधार एंव विकास", अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- आर्यिका, अंतर्मति (2017), "आत्मदर्शी", जैन विद्यापीठ, सागर (म.प्र.)
- सुंदरलाल (2018), "भारतीय शिक्षा का सर्वनाश", शांति विद्याज्ञान संवर्धान समिति, सांगली
- सं. मुनि सागर जी, "सागर बूंद समाय"

महिलाओं में कैल्शियम की कमी की समस्या एक अध्ययन

चेतना

शोधर्थी, विश्वविद्यालय गृह विज्ञान विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ० चन्द्रा कर्ण

सहायक प्राध्यापिका, गृह विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी महाविद्यालय, दरभंगा

सारांश

भारत के ग्रामीण व शहरी दोनों ही क्षेत्रों की महिलाओं में कैल्शियम की कमी एक आम समस्या बनती जा रही है। यह खानपान की बदलती आदतों के कारण हो रहा है। विशेष रूप से शहरी महिलाओं में पिछले कुछ दशकों में भोजन संबंधी आदतों में बड़ा बदलाव आया है। एक ताजा अध्ययन में इसका खुलासा हुआ है। इंडियन मेडिकल एसोसिएशन (आईएमए) के मुताबिक, लोग प्रसंस्कृत और पैक किए हुए खाद्य पदार्थो पर तेजी से निर्भर होते जा रहे हैं, जिस कारण शरीर को संपूर्ण आहार नहीं मिल पा रहा है। सलाह दी गई है कि कैल्शियम की मात्रा आहार से लेनी चाहिए न कि सप्लीमेंट से। आँकड़ों के मुताबिक, 14-35 साल आयु वर्ग की लगभग 20 प्रतिशत महिलाएँ एवं किशोरियों में कैल्शियम की कमी पाई गई है। हमारी हड्डियों का 70 प्रतिशत हिस्सा कैल्शियम फॉस्फेट से बना होता है। यही कारण है कि कैल्शियम हमारी हड्डियों की अच्छी सेहत के लिए सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व होता है। महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक कैल्शियम की आवश्यकता होती है क्योंकि वे उम्र के साथ हड्डियों की समस्याओं से अधिक जूझती हैं।

भूमिका

महिलाओं की सुदृढ़ता एवं सम्मानजनक स्थिति एक उन्नत समृद्ध एवं मजबूत समाज की पहचान होती हैं। समाज में नारी की स्थिति जितनी मजबूत होगी समाज उतना ही विकसित और प्रभावपूर्ण होगा क्योंकि महिलाएँ समाज की आधी जनशक्ति होती है अत: भारतीय सामाजिक परिवेश में महिलाओं का अद्धितीय स्थान रहा है। प्रारंभ में महिलाएँ पारिवारिक जिम्मेदारी, शिशु प्रजनन एवं लालन-पालन की भूमिका के निर्वहन में घर के चार दीवारी में बंधाकर रह जाते थे किन्तु शिक्षा के विस्तार एवं आर्थिक क्रियाओं में महिलाओं की बढ़ती माँग ने श्रमशक्ति में उनकी सहभगिता का मार्ग प्रशस्त किया है। इस प्रकार पारिवारिक दायित्व एवं घर के बाहर आर्थिक क्रियाओं में पुरुष के बराबर की भागीदरी ने महिलाओं के दिनचर्या को प्रभावित किया। इस दोहरे उत्तरदायित्व के निर्वहन में ग्रामीण महिलाओं को पारिवारिक असंगतियों के साथ-साथ व्यावसायिक असंगतियों का भी सामना करना पड़ता हैं। ग्रामीण महिलाओं में अशिक्षा, गरीबी निम्न सामाजिक-आर्थिक दशा, निम्न आवासीय दशाएँ एवं निम्न पोषण दशाएँ ने न सिर्फ महिलाओं को उद्देलित किया, अपितु उन्हें रोगी भी बना दिया, फलस्वरूप महिलाओं के समक्ष विभिन्न प्रकार की समस्याएँ उभर कर आई जिनका निवारण करना अति आवश्यक है।

महिलाएँ जो भोजन प्रयुक्त करती हैं वह शारीरिक आवश्यकता की ख्रष्टि से पर्याप्त, अपर्याप्त अथवा सन्तुलित हो सकता है। भारतवर्ष में अधिकांश महिलाओं को उनकी शारीरिक आवश्यकता के अनुकूल सभी भोज्य तत्वों से युक्त आहार नहीं मिल पाता। यहाँ तक कि कुछ महिलाओं को क्षुधा सन्तुष्टि के लिए तो पर्याप्त आहार मिलता है, परन्तु पोषक तत्वों की शारीरिक आवश्यकता की ख्रष्टि से बहुत कम महिलाओं को ही उपयुक्त आहार मिल पाता है। पर्याप्त ऊर्जा प्रदान करने वाला तथा शरीर भार में कमी न करने वाला आहार शरीर की वृद्धि और विकास के लिए तो उपयुक्त हो सकता है। भोजन ऊर्जा प्रदान करने वाला एवं वृद्धिकारक हो उतना ही पर्याप्त नहीं होता, शरीर के विभिन्न अवयवों को क्रियाशील, पूर्णत: निरोग एवं स्वस्थ्य बनाये रखने वाला भी होना चाहिये। जिससे की महिलाएँ निरोग हो सकें।

भोजन तथा भोजन के तत्वों के सम्बन्ध में अनेक खोजें की गई हैं, इन खोजों के फलस्वरूप यह पता लगाया गया है कि शरीर के ताप, गति और विकास के लिए प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा खनिज लवण के अतिरिक्त शरीर को स्वस्थ्य और निरोग बनाये रखने के लिए जल तथा विटामिन की आवश्यकता होती है। इन तत्वों के अभाव में शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है, और महिलाओं की कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

कैल्सियम की कमी से उत्पन्न बीमारियाँ

यह तत्व हड्डी तथा दाँतों को पूर्णत: स्वस्थ्य एवं शक्तिशाली बनाये रखने के लिए आवश्यक है। यह रक्त को जमाने में सहायता देता है, हृदय की गति को नियंत्रित करता है तथा मांसपेशियों को क्रियाशील बनाये रखता है। भोजन में इस तत्व के अभाव के कारण हड्डियाँ कमजोर व विख्रत हो जाती हैं। बच्चों में रस तवं की कमी से रिकेट्स, स्त्रियों में मृख्रलास्थित तथा प्रौढ़ों में इस तत्व की कमी से उत्पन्न होने वाले रोगों को आस्ट्रियोमलेशिया कहते हैं।

कैल्शियम हड्डियों की मजबूती के लिए जरूरी है। यह रक्त के थक्के जमने (ब्लड क्लॉटिंग) में भी मदद करता है। यह शरीर के विकास और मसल बनाने में भी सहायक होता है। हरी सब्जियां, दही, बादाम और पनीर इसके मुख्य स्रोत हैं।

हार्ट केयर फाउंडेशन ऑफ इंडिया के अध्यक्ष और इंडियन मेडिकल एसोसिएशन (आईएमए) के मानद सचिव डॉ. के.के. अग्रवाल के अनुसार कैल्शियम की कमी को हायपोकैल्शिमिया भी कहा जाता है। यह तब होता है, जब आपके शरीर को पूरी मात्रा में कैल्शियम नहीं मिलता। उन्होंने कहा कि लोगों को अच्छी सेहत के लिए कैल्शियम के महत्व के बारे में पता होना चाहिए। जिनके शरीर में कैल्शियम की कमी हो, उन्हें अपने आप दवा नहीं लेनी चाहिए और ज्यादा मात्रा में फूड सप्लीमेंट भी नहीं लेने चाहिए। डॉक्टर से सलाह लें और सेहतमंद खानपान के साथ ही सप्लीमेंट लें। डॉ. अग्रवाल ने बताया कि उम्र बढ़ने के साथ कैल्शियम की कमी आम बात है। शरीर का ज्यादातर कैल्शियम हड्डियों में संचित होता है। उम्र बढ़ने के साथ हड्डियां पतली और कम सघन हो जाती हैं। ऐसे में शरीर को कैल्शियम की जरूरत पड़ती है। कैल्शियम के स्रोत वाली वस्तुएं खाते रहने से इसकी कमी पूरी की जा सकती है।

अधिक समय तक महिलाओं के भूखे रहने और कुपोषण, हार्मोन की गड़बड़ी, प्रिमैच्योर डिलीवरी और मैलएब्जरेब्शन की वजह से भी कैल्शियम की कमी हो सकती है। मैलएब्जरेब्शन उस स्थिति को कहते हैं, जब हमारा शरीर उचित खुराक लेने पर भी विटामिन और मिनरल को सोख नहीं पाता।

कैल्शियम की कमी के कुछ लक्षण

मसल क्रैम्प : महिलाओं के शरीर में होमोग्लोबिन की पर्याप्त मात्रा रहने और पानी की उचित मात्रा लेने के बावजूद अगर नियमित रूप से मसल क्रैम्प (मांस में खिंचाव या ऐंठन) का सामना कर रहे हैं तो यह कैल्शियम की कमी का संकेत है।

लो बोन डेनस्टि : शहरी एवं ग्रामीण महिलाओं की जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, कैल्शियम हड्डियों की मिनरलेजाइशन के लिए जरूरी होता है। कैल्शियम की कमी सीधो हड्डियों की सेहत पर असर करती है और ऑस्टियोपोरोसिस व फ्रैक्चर का खतरा बढ़ सकता है।

कमजोर नाखून : नाखून के मजबूत बने रहने के लिए कैल्शियम की जरूरत होती है, उसकी कमी से वह भुरभुरे और कमजोर हो सकते हैं।

दांत में दर्द : शरीर का 90 प्रतिशत कैल्शियम दांतों और हड्डियों में जमा होता है उसकी कमी से दातों और हड्डियों का नुकसान हो सकता है।

मासिक धर्म में दर्द : कैल्शियम की कमी वाली महिलाओं को मासिक धर्म के दौरान काफी तीव्र दर्द हो सकता है, क्योंकि मांसपेशियों के काम करने में कैल्शियम अहम भूमिका निभाता है।

एम्युनिटी में कमी : कैल्शियम शरीर में रोग प्रतिरोधाक क्षमता बनाए रखता है। कैल्शियम की कमी होने पर शरीर में पैथगॉन अटैक से जूझने की क्षमता कम हो जाती है।

नाड़ी की समस्याएं : कैल्शियम की कमी से न्यूरोलॉजिक्ल समस्याएं, जैसे कि सिर पर दबाव की वजह से सीजर और सिरदर्द हो सकता है। कैल्शियम की कमी से डिप्रेशन, इनसोमेनिया, पर्सनैल्टि में बदलाव और डेम्निशिया भी हो सकता है।

धाड़कन : कैल्शियम दिल के बेहतर काम करने के लिए आवश्यक है और कमी होने पर हमारे दिल की धाड़कन बढ़ सकती है और बेचौनी हो सकती है। कैल्शियम दिल को रक्त पम्प करने में मदद करता है।

निष्कर्ष

महिला परिवार की जन्मदाती होती है अत: परिवार व समाज को स्वस्थ्य, सशक्त व मजबूत बनाने के लिए महिलाओं को स्वस्थ्य रखना आवश्यक हैं। इसके लिए महिलाओं को सुव्यवस्थित, सुविधा युक्त, आरामदायक आवास, तथा संतुलित भोजन की उपलब्धता आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है। इसके साथ साथ संतुलित मात्रा में कैल्सियम युक्त भोजन का भी सेवन करना महिलाओं के लिए अत्यंत आवश्यक है जिससे की वे इससे होने वाली बीमारियों से बच सके। महिलाएँ यदि इनमें से किसी लक्षण का सामना कर रहीं हैं तो अपने डॉक्टर से संपर्क करें एवं रक्त जांच करवाएँ।

संदर्भ

1. आहार एवं पोषण विज्ञान, डॉ. आशा कुमारी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा (2013)
2. आहार एवं पोषण विज्ञान, डॉ. आशा कुमारी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा (2013)
3. पोषण एवं पोषाहार, श्रीमती मंगला कानगो, पंचशील प्रकाशन, जयपुर (2005)
4. आहार एवं पोषण विज्ञान, डॉ. प्रमिला वर्मा एवं कान्ति पाण्डेय, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना (2012)

धर्म आधारित लैंगिक विभेद के प्राचीनतम ऐतिहासिक एवं पारंपरिक परिप्रेक्ष्य

आशुतोष पाण्डेय

(शोधर्थी) समाज विज्ञान अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

भारत एक ऐतिहासिक एवं धर्मप्राण देश के रूप में जाना जाता है। धर्म यहाँ के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलू में इतने गहरे अनुपूरित हैं कि उसे अलग संदर्भों में देखना संभव नहीं है। आधुनिक परिवेश में जब स्त्री अधिकारिता या सशक्तिकरण की बात होती है तो कहीं न कहीं परम्परायें, आस्था अथवा धार्मिक रीति-रिवाज उन पर प्रश्न चिन्ह उठाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में हमें कई ऐसे उदाहरण देखने को मिले, जहाँ परम्परा और विश्वास के नाम पर विवाद न्यायालय की सीमा तक जा पहुँचे। सबरीमाला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश के विरोध में चलने वाले आंदोलन को इसी स्वरूप में देखा जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद भी परम्परा और आस्था के नाम पर धार्मिक समूह/संगठन/दल विरोध कर रहे हैं। नारी के लिए धार्मिक ग्रंथों में तो यहाँ तक कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' (मनुस्मृति)। एक तरफ हम स्त्री को देवी का दर्जा देते हैं एवं उसकी उपासना करते हैं; वहीं ऐसे अनेक संदर्भ मिलते हैं, जहाँ लैंगिक आधार पर धार्मिक विभेद भी किये जाते हैं। वस्तुतः कर्तव्य और परम्परा की बेड़ियों की जकड़न सर्वाधिक स्त्रियों ने ही सहा है।

आधुनिक संदर्भ में स्त्री अधिकारिता एवं सशक्तिकरण के प्रश्नों पर विचार करते समय हमें भारतीय परम्परा तथा उसके ऐतिहासिक संदर्भों को समझना आवश्यक है, जो कई संदर्भों में रूढ़ियाँ बनकर धार्मिक आधार पर लैंगिक विभेद को जन्म देती हैं। अगर हम आधुनिक संदर्भ में देखते हैं तो ये रूढ़ियाँ या परम्परायें भारतीय समाज के मूल एवं ऐतिहासिक विकास में छिपी हुई हैं। भारतीय संदर्भ में प्रागैतिहासिक काल से ही हमें मातृदेवी की उपासना की विशिष्ट अवधारणा मिलती है। उच्च पुरापाषाण काल में बेलन नदी घाटी के लोहन्दा नाला एवं सोन नदी घाटी के बाघोर-3 से कुछ ऐसे पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त होते हैं, जिनसे हम प्रागैतिहासिक मानव के कुछ वैचारिक आयामों की संभावना प्रकट कर सकते हैं। विशेष संदर्भों में लोहन्दा नाला से प्राप्त हड्डी की मातृदेवी को संदिग्धा माना गया है, परन्तु बाघोर-3 से प्राप्त सफेद पट्ठियों से युक्त त्रिभुजाकार की पट्ठी निःसंदेह मातृदेवी की उपासना से संबंधित थी क्योंकि उत्खनन के समय कार्य में संलग्न बैगा जनजाति के लोगों द्वारा टूटे पत्थर की उस आकृति को देखकर भयाक्रांत होकर रह जाना तथा बाद में पुराविदों द्वारा वर्तमान समय में भी उस तरह की आकृति को पूजा करते हुए देखा गया। बैगा जनजाति के धार्मिक मुखिया द्वारा इसे मातृदेवी के रूप में समेकित किया गया है। वाह्य संदर्भ में पुरातात्विक साक्ष्य मातृदेवी की प्राचीनतम् जानकारी उत्तर एवं मध्य भारत के क्षेत्र में कम से कम उच्च पुरापाषाण काल तक जाती है।

वर्तमान में पश्चिमोत्तर भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा ईरान के कुछ क्षेत्रों में फैली प्रथम नगरीय सिंधु सभ्यता से भी हमें समाज में स्त्रियों की विशिष्टता से संबंधित अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। मुहरों पर कई सन्दर्भों के चित्रण तथा मृण्मूर्तियों की अधिकता सामाजिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों की महत्ता का परिचायक है। स्त्री के पेट से निकलता हुआ वृक्ष तथा वृक्ष में अधिष्ठात्री स्त्री के सम्मुख कुछ अर्पित करते दृश्य कहीं न कहीं मातृदेवी की उपासना से संबंधित है। मुहरों पर इन चित्रांकनों के धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भों पर मतभेद हो सकते हैं, परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सिंधु काल में स्त्रियों के संदर्भ में कुछ विशिष्ट मान्यताएं प्रचलित थीं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त कांस्य की नर्तकी की प्रतिमा अपने कलात्मक संदर्भों में प्रसिद्ध है। एक नवीनतम शोध पत्र में इस प्रतिमा को आदि शिव से संबंधित 'आदिपार्वती' के रूप में बताया गया है (वर्मा, ठाकुर प्रसाद, 2016)।

उपरोक्त संदर्भ हमें भारतीय सामाजिक संगठन के बिल्कुल प्रारम्भिंक स्तर से ही स्त्रियों की विशिष्टता के संदर्भ में साक्ष्य उपलब्ध कराते हैं, परन्तु लिखित साक्ष्यों के अभाव में इनके विशिष्ट और वास्तविक संदर्भों को उद्घाटित करना संभव नहीं है। प्रारंभिक प्रकृतिवादी समाज (ऋग्वैदिक काल) जब बदलाव के दौर से गुजर रहा था, तब राजनीतिक तथा सामाजिक प्रसार ने कई स्तरों पर प्रभावित किया। प्रारंभिक प्रकृतिवादी समाज में हमें कई संदर्भों में समान अधिकारिता का उल्लेख दिखाई पड़ता है। कबीलाई समाज के तत्व स्त्री-पुरुष भेद/नियमन से परे दिखाई पड़ते हैं। प्रारम्भिक उभरती राजनीतिक संस्थाओं में हमें स्त्री-पुरुष की अधि कारिता को लेकर कमोबेश समानता दिखाई पड़ती है। वैदिक; चाओं की रचयिता के रूप में विश्वास, घोषा, अपाला इत्यादि के नाम तथा सभा एवं समिति की बैठकों में लैंगिक प्रतिबंध का कोई तत्व न दिखाई देना, इस बात की पुष्टि करता है। ऋग्वेद में पत्नी के संदर्भ में 'जायेदस्तम्' शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ "पत्नी ही गृह है'' कहकर तथा पति के साथ यज्ञीय कर्मकाण्डों में इसे सहभागिता की अनुमति प्रदान कर स्त्रियों के महत्व को स्वीकारा गया है। पुनर्विवाह तथा नियोग प्रथा का प्रचलन, कुछ विशिष्ट संबंधों, अन्तर्जातीय विवाह (अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह), स्त्रियों के पुरुषों के समान अधिकारिता को स्वीकार करते हैं। समग्र रूप से अपेक्षाकृत ऋग्वैदिक काल काफी हद तक प्रकृतिवादी समाज का पालन करता था। इस काल में स्त्रियों की स्थिति परम्परा तथा रूढ़ियों द्वारा उतनी जकड़ी नहीं दिखाई देती, जितना परिवर्ती काल में दिखाई देती है। वस्तुत: इस काल का अंतिम चरण बदलते समाज का ऐसा परिदृश्य प्रस्तुत करता है, जिसमें स्त्रियों को पुरुषों से कमत: स्वीकार किया जाने लगा।

परन्तु सामाजिक विकास की दूसरी अवस्था उत्तरवैदिक काल की स्थिति कुछ भिन्न दिखाई पड़ती है। बदलती प्रशासनिक (युद्ध) एवं सामाजिक आवश्यकताओं ने स्त्रियों की अधिकारिता पर नकारात्मक प्रभाव डाला। पूर्व काल की सक्रिय सहभागिता तथा समानता अब केवल प्रतीकात्मक स्तर पर नजर आती है। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्री मृत पति के साथ चिता पर लेटती थी तथा संबंधियों के आग्रह करने पर उठ जाती थी। अपने प्रारम्भिक स्वरूप में सती प्रथा का यह प्रतीकात्मक उल्लेख हमें स्त्रियों की गिरती हुई स्थितियों का परिचय देती है।

सामाजिक नियमों की बढ़ती कठोरता स्त्रियों की स्थिति को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। उन्हें पैतृक सम्पत्ति के अधि कार से वंचित कर दिया गया। सबसे महत्वपूर्ण बात ऋग्वैदिक काल में राजनीतिक जीवन को प्रभावित करने वाली सभा एवं समिति जैसी संस्थाओं में स्त्रियों को जो अधिकार मिले थे, उससे उन्हें इस काल में वंचित कर दिया गया। साथ ही साथ उपनयन संस्कार का निषेध उनके शिक्षा के अधिकार कोभी सीमित कर देता है। इसकी चरम नकारात्मक परिणति हमें मैत्रायणी संहिता में दिखाई पड़ती है, जहाँ स्त्री को सुरा और द्यूत के समान बुराई के रूप में चित्रित किया गया है। इसी ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि सभा में केवल पुरुष जा सकते है, स्त्रियाँ नहीं। परन्तु ऐतिहासिक संदर्भों में देखा जाए तो पनपती सामाजिक संस्थाओं तथा बदलती राजनैतिक परिस्थितियों ने स्त्रियों को पहली बार समान अधिकारिता से पदच्युत कर, पुरुषों के संरक्षण में रखने की परम्पराओं के बीज हमें इसी काल में दिखायी देते है। अथर्ववेद में पुत्री के जन्म को अच्छा नहीं माना गया है। यहाँ कुछ ऐसे मंत्रों का भी उल्लेख है, जो स्त्री भ्रूण को पुरुष में बदल दे। इसी तरह ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री के जन्म को समस्त दु:खों का स्रोत मानते हुए उसके जन्म को अपशकुन बताया गया है।

बहुविवाह का प्रचलन स्त्रियों के सामाजिक अधिकारों को सीमित करने वाला प्रतीत होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि एक व्यक्ति अनेक पत्नियाँ रख सकता है, जबकि स्त्री के लिए एक पति ही श्रेष्ठ है। स्वयं ऋषि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियों का उल्लेख मिलता है। विवाह के संदर्भ में प्रतिलोम विवाह की अस्वीकार्यता, प्रख्रतिवादी समाज से पुरुषवादी समाज की तरफ विचलन के प्राथमिक संदर्भ साक्ष्य के रूप में देखा जाता है। उत्तरवैदिक काल में विधावा विवाह तथा जाति प्रथा का उद्भव मिलता है तथा इसके परवर्ती काल में उसकी कठोरता मिलती है, जो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की सामाजिक एवं पारिवारिक अधिकारों को सीमित करने वाली सिद्ध हुई।

छठीं शताब्दी ई.पू. के वैचारिक एवं आर्थिक परिवर्तनों ने सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक स्थिति को बहुत गहरे तक प्रभावित किया। लोहे के प्रयोग तथा ख्रषि कार्य में नवीनतम् तकनीकों के प्रयोग ने उत्पादन क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि की। इस अतिरेक वृद्धि ने नगरीकरण, शिल्प तथा व्यापार-वाणिज्य जैसे गतिविधियों को जन्म दिया। वहीं दूसरी तरफ उत्तर वैदिक काल की बढ़ती धार्मिक एवं कर्मकाण्डी कठोरता ने बौद्ध, जैन तथा आजीवक आदि 64 नये वैचारिक आंदोलनों के उद्भव की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। इन

सब कारणों का सम्मिलित प्रभाव मानव जीवन के सभी क्षेत्रों पर दिखाई पड़ता है। गृह, शिल्प इत्यादि कार्यों में स्त्रियों की सहभागिता ने उन्हें कुछ आर्थिक अधिकार जरुरप्रदान किये, लेकिन दूरस्थ व्यापार-वाणिज्य जैसी गतिविधियों ने जीवन के आर्थिक पक्ष पर पुरुषों की श्रेष्ठता सुनिश्चित कर दी। बौद्ध ग्रंथों में हमें थेरीगाथा के रूप में भिक्षुणियों की कविताओं का संग्रह मिलता है। यदि हम इसकी विवेचना करें तो यहाँ भी हमें दिखाई पड़ता है कि पुरुष भिक्षुओं को अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त थे। पुनश्च स्वयं बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द से कहा था-"यदि संघ 1000 वर्ष तक जीवित रहता तो अब स्त्रियों को भिक्षुणी का दर्जा देने से 500 वर्ष तक ही जीवित रहेगा"।

महाजनपद तथा साम्राज्यों के युग ने कठोर सैन्यतन्त्र को जन्म दिया। सामाजिक जीवन प्रकृतिवादी स्वरूप से बदलकर पूरी तरह से राजतंत्र के कठोर परिवेश में जकड़ दिया गया। इन परिवर्तनों ने राजनीतिक एवं सामाजिक संदर्भों में स्त्रियों को बिल्कुल अधि कारविहीन कर दिया।

मौर्य कालीन प्रशासनिक व्यवस्था अपने वृहत्तर स्वरूप में केन्द्रीकृत साम्राज्य की अवधारणा को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान कर रही थी। दूरस्थ क्षेत्रों में प्रशासनिक प्रसार कई संस्कृतियों के सम्मिलन का कारण बन रहा था, परन्तु सूक्ष्म अवलोकन से ज्ञात होता है कि समन्वय की यह प्रक्रिया केवल ऊपरी स्तर तक ही थी। निचले स्तर की सामाजिक संरचना प्रायः अपने स्थानीय विशेषीकृत परिवेश के आधार पर ही संचालित हो रही थी।

प्राचीन भारत की प्रशासनिक अवस्था का सर्वश्रेष्ठ चिंतन करने वाले ग्रंथ अर्थशास्त्र में भी हमें स्त्रियों की अधिकारिता में संकुचन दिखाई पड़ता है। इसमें स्त्रियों के लिए असूर्यपश्या, अनिष्कासिनी जैसे शब्द मिलते हैं, जो समाज में स्त्रियों की गिरती स्थिति के सूचक हैं। पश्चिम तथा दक्षिण के क्षेत्र अभी भी प्रारंभिक मातृसत्तात्मक सामाजिक परिप्रेक्ष्यों में ही संचालित हो रहे थे। इसका विशेषीकृत स्वरूप हमें काफी हद तक सातवाहन साम्राज्य के सदंर्भ में दिखाई देता है।

हम परवर्ती काल के ग्रंथों का उदाहरण लें तो स्त्रियों की स्थिति में और भी गिरावट नजर आती है। मनुस्मृति में जहाँ प्रतीकात्मक देवीतुल्य दर्जा दिया गया है, वहीं इसी ग्रंथ में स्त्रियों की विवाह योग्य आयु तथा उनके सामाजिक जीवन के संदर्भ में अनेक प्रतिबन्ध दिखाई पड़ते हैं। स्त्री के सम्पूर्ण जीवन को पुरुष पर निर्भरता की अवधारणा ने स्त्रियों के सामाजिक जीवन को पूरी तरह संकुचित कर दिया (बचपन में पिता, यौवन में पति, वृद्धावस्था में पुत्र के नियंत्रण में रहे)। समाज में संतान के रूप में पुत्र की चाह ने इस स्थिति में और गिरावट उत्पन्न की।

सातवाहनों के काल में हमें कुछ दानपत्रों तथा राजा के नाम के साथ माता के नाम जोड़ने की प्रवृत्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री अधिकारिता में कुछ सुधार हुआ, परन्तु यह केवल प्रतीकात्मक तथा समाज के ऊपरी स्तर तक ही था।

गुप्तों के समय राजनीतिक और सामाजिक प्रसार में हमें एक नयी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इस समय दूरस्थ भौगोलिक क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष प्रशासनिक प्रभाव से मातृसत्तात्मक संस्कृतियों के कुछ तत्व मुख्य धारा के धर्म तथा समाज में शामिल होते दिखाई पड़ते हैं। यह प्रत्यक्ष प्रशासनिक प्रभाव मौर्य काल के ऊपरी स्तर की अपेक्षा समाज के निचले स्तर पर गतिशील दिखाई देता है। प्रशासनिक विस्तार की इस प्रक्रिया ने सामाजिक एवं धार्मिक स्तरों पर दो धाराओं को जन्म दिया। मुख्य धारा राजकीय तथा धार्मिक परिरक्षण में व्यक्त हो रही थी तथा एक निचली धारा नवीन क्षेत्रों की स्थानीय धारा थी। टकराव एवं समन्वय की इस प्रक्रिया ने धर्म तथा समाज के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया। प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण से दूर ये नवीन संस्कृतियाँ भी मुख्य धारा द्वारा आच्छादित कर ली गईं, जिसके परिणामस्वरूप लगभग प्रत्यक्ष नियंत्रण के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों के अधिकार सीधो तौर पर परम्परा में चली आ रही व्यवस्थाओं से समीकृत हो गई। हालाँकि कुछ उदाहरणों में मातृसत्तात्मक संस्कृतियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। राजसत्ता तथा प्रशासनिक नियंत्रण के प्रत्यक्ष प्रभावों ने अभी तक अलग-थलग पड़े सांस्कृतिक समूहों की प्रवृत्तियों को शामिल करते हुए अपना विस्तार किया। प्रारंभिक अवस्था के संक्रमणकालीन परिदृश्य के बाद अंततः मुख्यधारा की सांस्कृतिक धारा प्रभाविकता स्थापित करने में सफल रही।

धर्म तथा समाज में बढ़ती देवियों की संख्या, शिव के साथ शक्ति का समन्वय (अर्धानारीश्वर), शाक्त तथा वामाचारी तांत्रिक समुदायों के उदय की परिघटना को इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है। परंतु हम प्राचीन काल के ग्रंथों तथा साहित्य का अवलोकन करें तो पता चलता है कि उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः घर की चहारदीवारी तक सीमितकर दिया गया था।

गुप्तों के बाद की बढ़ती विकेन्द्रीकरण और सामंतवादी प्रवृत्तियों ने समाज में स्त्री की अधिकारिता पर अनेक सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबंध लगाये, परवर्ती काल के बाह्य आक्रमणों ने इस परिघटना को चरम पर पहुंचा दिया। बाह्य आक्रमणों से उपजी अव्यवस्था ने भारतीय धर्म तथा संस्कृति की गतिशीलता को कुछ समय तक रूढ़ कर दिया। यही वह काल है, जब हम प्रतीकात्मक कर्मकाण्डों तथा प्रथाओं को प्रत्यक्ष रूप से कार्यरूप में देख सकते हैं। 510 ईस्वी के एरण अभिलेख में हमें सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य मिलता है। तत्पश्चात् प्रभाकर वर्धान की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी तथा हर्षवर्धन की माँ सती हो जाती है। हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री भी पति की मृत्यु के बाद सती होने जा रही थी, जिसे बचा लिया गया था। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बदलती परिस्थितियों में स्त्रियों पर सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था।

हर्षवर्धन के पश्चात् भारत का इतिहास राजनैतिक रूप से सामंत काल केनाम से जाना जाता है। इस समय सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक गतिशीलता रुक सी गयी थी। लगातार आपसी युद्धों तथा क्षेत्रीय संघर्षों ने भारतीय समाज को अन्धकार युग में धाकेल दिया और यह स्थिति पूर्व से ही अंधकारमय स्त्री अधिकारिता के लिए नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाला साबित हुआ।

इस तरह से शिक्षा, संपत्ति तथा सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों को प्राप्त दोयम दर्जे ने भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव को जन्म दिया, जिससे आज भी भारतीय समाज पीड़ित है। समय-समय पर उठने वाले ये वैचारिक तथा सामाजिक आन्दोलन कहीं न कहीं हमारी प्राचीन परम्परा की रूढ़ियों के विरोध में ही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अल्तेकर, अनंत सदाशिव (1978), पोजीशन आफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड.
2. काणे, पी. वी. (1941), दी हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पूना, भंडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट.
3. क्लार्क, जे. डी. एंड डेरिमेन (1983), एन अकरेन्स विथ स्माल ब्लेड टेक्नोलॉजी इन द अपर मेम्बर ऑफ बाघोर फार्मेशन एट द बाघोर-3 लोकेलिटी इन पेलिओ इनवायर्नमेंट्स एन्ड प्रीहिस्ट्री इन द मिडिल सोन वैली, एडिटेड बाइ जी. आर. शर्मा एंड जे.डी. क्लार्क, इलाहाबाद, अबिनाश प्रकाशन.
4. गुप्त, परमेश्वरी लाल (2011), गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन.
5. पाण्डेय, विमलचन्द्र (1994), प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद: सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस.
6. बिनफोर्ड, एल.आर. (1981), बोन्स: एन्शियंट एंड मॉडर्न मिथ्स, न्यूयार्क.
7. ब्रिजेट एंड अल्चिन रेमण्ड (1982), द राइज ऑफ सिविलाइजेशन इन इंडिया एंड पाकिस्तान, कैम्ब्रिज, न्यूयार्क, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
8. मजूमदार, आर.सी. (1977), एंशियंट इंडिया, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड.
9. मजूमदार, रायचौधरी एवं दत्त (1970), भारत का वृहत् इतिहास भाग-1, नई दिल्ली: मैकमिलन इंडिया लिमिटेड.
10. मनुस्मृति, 2.67
11. रायचौधरी, एस.सी. (2007), सोशल, कल्चरल एण्ड इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, दिल्ली: सुरजीत पब्लिकेशंस.
12. वर्मा, ठाकुर प्रसाद (2016), वैदिक सभ्यता का पुरातत्व (इतिहास), नई दिल्ली, भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, वोल्यूम-2, पेज संख्या (11-46).
13. वशिष्ठ स्मृति 1.2
14. विश्वास, अत्रेयी (1989), प्राचीन भारत का राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, नई दिल्ली, उप्पल पब्लिशिंग हाउस.
15. शर्मा, रामशरण (2015), भारतीय सामंतवाद, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन.

विश्व शांति के परिप्रेक्ष्य में गाँधी जी का धर्म एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी विचार

डॉ० अमरजीत कुमार

कॉपरेटिव एक्टेंसन ऑफिसर, वैशाली, बिहार

गाँधी जी ऐसे व्यापक धर्म को ही मानव जीवन के लिए अनिवार्य मानते थे जो बिना किसी भेद-भाव के सभी धर्मो में एकता स्थापित करता है हो। किसी साम्प्रदायिक धर्म को उन्होंने धर्म के रूप में नहीं स्वीकार किया। उनका विचार था कि यदि किसी मनुष्य के हृदय में सच्चाई और पवित्रता है तो वह किसी भी धर्म में निष्ठा रखते हुए अध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। गाँधी जी धर्म को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए मानव जीवन के लिए उसे अनिवार्य मानते थे, किन्तु वे सभी प्रकार के धार्मिक असहिष्णुता अथवा कट्ठरता के विरोधी थे। वे सगुण वैष्णववाद, निर्गुण रहस्यवाद और पाश्चात्य मानवतावाद के सम्मिलित सिद्धान्त के समर्थक थे। एक ओर गाँधी जी ईश्वर को परोपकारिता, शुभत्व, सर्वज्ञता अत्यादि गुणों से विभूषित करते थे तो दूसरी ओर इसकी प्राप्ति के लिए किसी विशेष पद्धति का आग्रह नहीं रखते थे। हिन्द स्वराज में उन्होंने लिखा है कि "हर व्यक्ति अपने-अपने माध्यम से कएक ही ईश्वर की उपासना कर सकता है।"[1] गाँधी जी ने अपनी पुस्तक ¶Ashram observanaces inAction** मे लिखा है कि "वह ईश्वर हमसे इतना ही सन्निकट है जितना सन्निकट हमारे हाथों की उंगलियाँ हैं बल्कि यों कहा जाय ईश्वर इससे भी अधिक हमसे समीप है।"[2] पुनः वे हरिजन पत्रिका में लखा है कि ¶Prayer is remainder to ourself that we are helpless without his support**[3] कहने का तात्पर्य यह है कि एक ओर गाँधी जी ने ईश्वर को उपास्य मानकर उसकी प्रार्थना करते हैं तथा उसकी कृपा की भी अपेक्षा रखते हैं। लेकिन दूसरी ओर फिर वे कहते हैं कि प्रार्थना द्वारा अपनी अन्तर्रातमा की ही खोज करनी चाहिए। इसी प्रकार जब वे कहते हैं कि ईश्वर के प्राप्ति प्रेम के द्वारा ही सम्भव है, दीन-दुखिया की सेवा ही इस प्रेम की अभिव्यक्ति है, तो ऐसा कहने से गाँधी जी के इन विचारों में हमें मानवतावाद की झलक रखने को मिलती है जो विश्व शांति के परिप्रेक्ष्य में आज भी प्रासंगिक है।

हम देखते है कि गाँधी धर्म का सच्चा सार नैतिकता में निहित था। नैतिकता के लिए धर्म का वही स्थान है, जो जमीन से बीज उगाने के लिए जल का होता है। गाँधी जी की धर्म भावना विभिन्न धर्मो के महान् संतो एवं उपदेशों से अनुप्राणित थी। उन्होंने धर्म की व्याख्या करते हुए उद्‌गार व्यक्त किया था कि– "धर्म से मेरा अभिप्राय औपचारिक या रूढ़िगत धर्म से नहीं परन्तु उस धर्म से है, जो सब धर्मो की बुनियाद हे और उसमें अपने सृजनहार का साक्षात्कार कराता है।"[4]

सभी धर्मो के प्रति समान भाव गाँधी जी के धर्म की अपनी निजी विशेषता थी। गाँधी जी एक कट्ठर हिन्दू थे, फिर भी सभी धर्म उनके लिए आदरनीय थे। यंग इण्डिया में उन्होंने लिखा है कि "मैं ऐसी आशा नहीं करता हूँ कि मेरे सपनों के आदर्श भारत में केवल एक ही धर्म रहेगा, यानी यह सम्पूर्णतः हिन्दू या ईसाई या मुसलमान बन जायेगा। मैं यह चाहता हूँ कि वह पूर्णतः उदार और सहिष्णु बने और उसके सब धर्म साथ-साथ चलते रहें।"[5]

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि गाँधी जी एक धार्मिक पुरुष थे। उन्हें मानवता की एकता में अटूट विश्वास था। उनका कहना था कि हम उन्हें मानवता की एकता में अटूट विश्वास था। उनका कहना था कि हम किसी भी धर्म, जाति, सम्प्रदाय या देश का नागरिक क्यों न हो, हम सभी एक ही ईश्वर के संतान है। एक ही परमेश्वर के पास जाने के लिए हमारे विभिन्न धार्मिक

मार्ग है। इसलिए प्रेम, स्नेह और सहयोग की भावना से ओतप्रोत होकर हमें भीषण परिस्थिति में एक दूसरे का मदद करना चाहिए। उनके दुख:-दर्द में हाथ बाँटना चाहिए। उनके दुख निवारण का मार्ग ढूंढ़ना चाहिए। यही मानवता का संदेश है जिसके द्वारा विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है।

गाँधी विचार के सन्दर्भ में हम कह सकते है कि धर्म सत्य का प्रतिस्थापक है। तामसी वृत्ति का अवरोधक हे। चरित्र निर्माण का संदेश वाहहक है। सुख-शांति एवं समृद्धि का स्त्रोत है। दया, प्रेम, करूणा, श्रद्धा और भाईचारे का प्रतीक है। पूजरा-अर्चाना, स्नान-ध्यान, व्रत-त्यौहार के माध्यम से धर्म श्रद्धा का उत्प्रेरक हे। इसी धार्माचरण के कारण समाज में लोंगों को कुकर्मो के प्रति भय होता है। इसी भय के कारण ही समाज में व्यक्ति सदाचरण के लिए विवश होता है। लोग अत्याचार और अन्नाचार कार्य करने से मूकर जाते है और मानवता के आड़ में आकर विश्व की जनकल्याण हेतु अनेक कार्य करते है। इस प्रकार धर्म विश्वशांति के परिप्रेक्ष्य में आज भी प्रासंगिक है।

गाँधी जी के नीतिशास्त्र में स्वधर्म की चर्चा की गयी है। नीतिशास्त्र की समस्या केवल उचित अनुचित कर्मो के विवेचना से समाप्त नहीं होती है बल्कि इसकी मुख्य समस्या है- "व्यावहारिक जीवन में उचित-अनुचित के भ्रम में पड़ने वाले नैतिककर्त्ता का दिशा निर्देश करना।"[6] कभी-कभी व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में आ जाता है जब उसे उचित अनुचित समझ में नहीं आता है। जब तक यह मानसिक संघर्ष की स्थिति बनी रहती है, तब तक उसे शांति नहीं मिलती और किसी कार्य की ओर वह प्रवृत नहीं होता। रणक्षेत्र में अर्जुन के सामने भी ऐसी ही समस्याएँ थी। ऐसी स्थिति में नैतिककर्त्ता का प्रश्न होता हैं-उसे क्या करना चाहिए? नैतिक चिन्तक इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न ढंग से देते है। गाँधी विचार के अनुसार वैसा कर्म नहीं करना चाहिए जो आशक्ति के बिना कभी उत्पन्न ही नहीं होता हो जैसे अत्याचार, हिंसा, व्यविचार, झूठ इत्यादि।[7] परन्तु अनासक्ति पूर्वक स्वधर्म का पालन ईश्वरीय वृति से करनी चाहिए। स्वधर्म से शायद गाँधी जी का अभिप्राय वर्णाश्रम धर्म के पालन[8] अथवा योग्यता के अनुसार दिये गये दायित्वों के पालने से है।[9] गाँधी के अनुसार स्वधर्म के पालन के पीछे उपयोगिता[10] की दृष्टि तो है ही, इससे मोक्ष की भी सिद्धि होती है। क्योंकि ईश्वर की दृष्टि में सभी कर्मो का मूल्य बराबर है।[11] जो व्यक्ति स्वधर्म का त्याग करता है वह नैतिक दृष्टि से गलत काम करता है।[12] अत: नैतिक जीवन का आरम्भ ही स्वधर्म के पालन से होता है। गाँधी विचार के अनुसार स्वधर्म के पालन से ही विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि धर्म और नैतिकता की समस्याओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है-वस्तुगत नैतिकता, आत्मगत नैनिकता और पारमार्थिक नैनिकता। तीनों प्रकार के सिद्धान्त का तीन आधार हैं। वस्तुगत नैतिकता का अध्ययन वाह्य नियम संहिताओं के आधार पर कर्मो के औचित्य-अनौचित्य के निर्धारण की दृष्टि से की जाती है। आत्मगत नैतिकता का आधार मनोवैज्ञानिक है। इसमें मानव की आन्तरिक प्रवृत्तियों और निवृत्तियों के आधार पर किसी कार्य के औचित्य और अनौचित्य का निर्धारण होता है। पारमार्थिक नैनिकता का अध्ययन मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में किया जाता है। गाँधी जी भी अपने धर्म, नैतिकता एवं साम्प्रदायिकता के परिप्रेक्ष्य में उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों का व्यापक वर्णन किये है। क्योंकि उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों के अनुपालन करने पर ही विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है।

धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है बनाये रखना अथवा धारण करना। यही वह मापदण्ड है, जो विश्व को धारण करता है या जिसके द्वारा विश्व में शांति व्यवस्था कायम किया जा सकता है। वेदों में इस शब्द का प्रयोग धार्मिक विधियों के अर्थ में किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद में धर्म की तीन शाखाओं का उल्लेख किया गया है, जिनका संबंध गृहस्थ, तपस्वी और ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों से है।[13] जब तैत्रीय उपनिषद हमें धर्म का आचरण[14] करने को कहते है, तब उसका अभिप्राय जीवन के उस सोपान के कर्त्तव्यों के पालन से होता है, जिसमें कि हम विद्यमान है। इस अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग भगवद्गीता और मनुस्मृति दोनों मे हुआ है। ऋग्वेद में भी धर्म शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद के समय परलोक की कल्पना नहीं थी। यह आर्यो का संघर्ष का काल था। उस समय सारा ध्यान लौकिक सुख-समृद्धि पर ही केन्द्रित था।[15] ईश्वर, पुण्य और परलोक की भावना से धर्म शब्द के अर्थ शब्द नहाने, धोने, चन्दन, लगाने, माला जपने, तीर्थ दर्शन करने और कथा सुनने एवं सुनाने आदि कार्यो तक सीमित रह गया है। पहले धर्म का अर्थ था कर्त्तव्य, सामाजिक उन्नति के लिए किये गये कार्य अर्थात धर्म वे सामाजिक, नियम है जो व्यक्ति को सामाजिक कार्य करने हेतु प्रेरित करते है। इन्हीं नियमों के सहारे ही मनुष्य समाज और राष्ट्र के उन्नति करते है। समाज एवं

जनकल्याण हेतु विभिन्न कार्यो को करते हुए वे विश्वशांति के कार्य करते है। इसलिए धारण करने वाले नियमों का नाम ही धर्म है।[16] इन नियमों को स्पष्ट करते हुए मनु ने लिखा है कि-धैर्य, क्षमा, इन्द्रियों को अपने वश में करना, चोरी नहीं करना, पवित्र रहना, दूसरों का निन्दा नहीं करना, बुद्धि, विद्या, सत्य भाषण के साथ-साथ क्रोध नहीं करना ये सब धर्म के लक्षण है।[17] मनु ने संक्षेप में चारों वर्णो को धर्म के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा का पालन करना, क्रोध नहीं करना और इन्द्रियों को अपने वश में रखना बताया है। वैशेषिक सूत्रों में धर्म को परिभाषित करते हुए बतलाया गया है कि जिससे आनन्द (अभ्युदय) और परमानन्द (निःश्रेयस) की प्राप्ति हो,वीं धर्म है। वैशेषिक सूत्रो से स्पष्ट होता है कि धर्म चारों वर्णो और चारों आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार प्रयोजन (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के संबंध में पालन करने योग्य मनुष्य का सम्पूर्ण कर्त्तव्य है। सामाजिक व्यवस्था का सर्वोच्च लक्ष्य यह है कि मनुष्य को अध्यात्मिक पूर्णता और पवित्रा की स्थिति तक पहूँचाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाय, वही इसका एक आवश्यक लक्ष्य है। इन्हीं लक्ष्यों के द्वारा संसार के सामाजिक व्यवस्था के दिशा एवं दशा में परिवर्तन किया जा सकता है। उसके विकास के मार्ग को निर्देशित किया जा सकता है। समाज के बीच व्याप्त जनसमुदाय के नैतिक, भौतिक और बौद्धिक जीवन स्तर को उच्चा उठाकर सबों की सुख शांति और समृद्धि के अनुकूल वातावरण तैयार करके विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है।

सभी धर्मो का मूल सिद्धान्त यह है कि परमात्मा प्रत्येक जीवित प्राणी के हृदय में निवास करता है अर्थात् प्रत्येक मानवीय आत्मा में ईश्वर का वास है यही धर्म का सार है। हमें दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए, दूसरों को भी अपने जैसा समझना चाहिए। अपने मन, कर्म और वचनों से सदा दूसरों की सेवा करनी चाहिए, यही धर्म है। इस क्रिया से विश्व बन्धुत्व की भावना कायम होगी जो विश्वशांति का प्रतीक है।

धर्म की उत्पत्ति के संबंध में सर्वप्रथम टायलर महोदय के जीववादी सिद्धान्त का नाम आता है। जीववाद का अर्थ है वह विश्वास जिसके आधार पर विश्व के सभी विषयों में जीव अर्थात आत्मा का निवास है। जिस प्रकार मानव में आत्मा व्याप्त है, उसी प्रकार विश्व मानव की तरह चेतनापूर्ण है। टायलय महोदय का कहना है कि धर्म की उत्पति जीववादी विचार से हुआ है। मनुष्य जीववाद में अपने और प्रकृति के विभिन्न जीवों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है। भयप्रद जीवों से बचने की कामना ही इस प्रकार की आराधाना का एकमात्र प्रयोजन था। कितन्तु इस सिद्धान्त को संतोषजनक नहीं माना गया है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने पूर्वज आराधाना को धर्म की उत्पत्ति माना है। आदिम मनुष्य अपने पूर्वजों को भूत-प्रेत के रूप में देखा करते थे। उनके मन में धारणा बनी हुई थी कि मृत्यु के बाद भी किसी न किसी रूप में उसका अस्तित्व रहता हे। वे भय की भावना के फलस्वरूप पूर्वजों को प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। यहाँ तक कि वे जीवों की बलि देने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करते थे। आदिम मानव के उपर्युक्त व्यवहारों के फलस्वरूप पूजा पद्धिति तथा धार्मिक कर्म का विकास हुआ जो धर्म की उत्पत्ति में सहायक सिद्ध हुआ। कुछ विद्वान धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या टोटमवाद से करने का प्रयास किया है। उन्होंने टोटम के प्रति आदि मानव के श्रद्धा एवं आदर की भावना का स्पष्टीकरण किया है। प्रत्येक सम्प्रदाय का सदस्य सामान्य पूर्वज की सन्तान माना जाता है, जिसके फलस्वरूप उनके बीच प्रेम, सहिष्णुता, सहनशीलता का भाव पैदा होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार धर्म की उत्पत्ति भय के कारण हुई है। मनुष्य को धार्मिक बनाने में भय की भावना का बहुत बड़ा हाथ रहा है। किन्तु सभी प्रकार के भय धार्मिक नहीं होते हैं। धार्मिक चेतना का विकास तभी होता है, जब भय के साथ-साथ आश्चर्य, प्रशंसा, कृतज्ञता और भक्ति की भावना विद्यमान रहती है। धर्म में साधक ईश्वर के प्रति भय की भावना का ही प्रकाशन नहीं करता, उनके प्रति प्रेम, आसक्ति, आत्मसमर्पण तथा आश्चर्य की भावना का भी प्रकाशन करता है। राबर्टन स्मिथ का कथन है कि अज्ञात शक्तियों के प्रति अस्पष्ट भय की अपेक्षा धर्मो का विकास ज्ञात ईश्वरों के प्रति जो अपने भक्तों से तादात्म्य है, सप्रेम भक्ति के फलरूवरूप हो सका है। यह कही अधिक सत्य एवं युक्तिसंगत प्रतीत होता है।[18]

उपर्युक्त कथनों के आधार पर हम देखते हैं कि धर्म में निरन्तर परिवर्तन के साथ-साथ इसके परिभाषा में भी परिवर्तन होता रहा है। ऐसी स्थिति में धर्म को परिभाषित करना कठिन है। धर्म जीवन के हर क्षेत्र एवं पहलू को समाविष्ट करता है। इसका क्षेत्र वैदिक कर्मकाण्ड से लेकर गाँधी जी के ईश्वर प्रेम और मानव प्रेम तक है। यह ईश्वर के प्रति बौद्धिक प्रेम के साथ-साथ व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों है। यह चमत्कारिक कर्म तथा नैतिक कर्म दोनों हैं। यह विश्वास और आचरण, बुद्धि और भावना सभी से संबंधित है। धर्म की सही परिभाषा वही हो सकती है जो धर्म के तीनों पहलुओं-ज्ञान, भावना और कर्म पर प्रकाश डालती है। जो विश्वातीत

एवं गुणयुक्त होता है तथा माव के प्रति जिनमें दया एवं सहानुभूति सम्मिलित है। प्रो0 फिलण्ट ने कहा है कि धर्म का निर्माण तब तक नहीं हो सकता, जब तक ज्ञान में भावना और अनुभूति का समावेश नहीं होगा।"[19] एम॰ सेलोमन रेनाक ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि "धर्म उन अवशेषों का योग है, जो हमारी शक्तियों के स्वतंत्र प्रयोग पर अंकुश रखता है।" धर्म की सफल परिभाषा देते हुए गैलवे ने कहा है कि "धर्म मानव का अपने से परे शक्ति में विश्वास है। जहाँ वह अपनी भावनात्मक आवश्यकता एवं जीवन की स्थिरता को प्रापत करना चाहता है, जिजसे वह पूजा एवं सेवा में अभिव्यक्त करता है।[20] इस परिभाषा में धार्मिक चेतना के अंगो का विवेचना हुआ है। धर्म के द्वारा व्यक्ति आत्मरक्षा के लिए प्रयत्नशील रहता है। धर्म का यह स्वरूप जीवन को स्थिरता प्रदान करने का प्रयत्न करता है। इस परिभाषा के अंतर्गत धर्म की विभिनन अवस्थाओं को परिभाषित किया गया है। इसलिए अन्य परिभाषा की तुलना में इस परिभाषा को अपेक्षाकृत सफल माना गया है।

महात्मा गाँधी महान आस्तिक और हिन्दू धर्म के अनुयायी थे फिर भी वे सभी धर्मो को आदर की दृष्टि से देखते थे। उनका कहना था कि संसार के सभी धर्मो में कुछ दोष होते हुए भी सत्य निहित है। इसलिए अपने धर्म से प्रेम रखते हुए भी अन्य धर्मो के प्रति भी आदर भाव रखना चाहिए।[21] राजनीति मे अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी वे निरन्तर मौन, उपवास, ईश्वर-स्मरण और नित्य (प्रतिदिन) प्रार्थना किया करते थे। उनका कहना था कि प्रार्थना से मुझे शांति मिलती है। यदि मैं अपने कार्यो में परमात्मा की अन्त: प्रेरणा सत्य की शक्ति, अहिंसा की क्षमता और प्रार्थना की समुत्पन्न शांति न प्रापत करता तो यह कटु राजनीति मुझे अशांति और नरक के द्वार में ढकेल देती।[22] इसलिए उन्होंने कहा था कि प्रत्येक मिनट परमात्मा के साक्षात्कार की भावना एक नेता के लिए अत्यन्त आवश्यक गुण है। उपर्युक्त तथ्यों का जो नेता अनुशरण करेंगे वे ही अत्याचार और भ्रष्टाचार से दूर रहकर मानव सेवा के साथ-साथ जन कल्याण के कार्य कर सकेंगे। देश में शांति स्थापित करने साथ-साथ सम्राट अशोक की तरह विश्व में शांति कायम करने का संदेश देंगे।

गाँधी जी का धर्म कुंठाओ, दिखावे और कर्मकाण्ड पर आधारित धर्म नहीं था। उन्होंने धर्म के अध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित नैतिक पक्ष को महत्त्व दिया था। साथ ही साथ उन्होंने अपने प्रयोगों के केन्द्र को 'आश्रम' की सांा दी थी, क्योंकि सेवा और त्याग-तपस्या की परम्परागत साधकों के केन्द्र यहाँ आश्रम को ही माना गया है।"[23]

राजनीति को गाँधी जी ने बदलाव और सेवा का ही महत्त्वपूर्ण माध्यम मानाथा। इसी कारण स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सम्पूर्ण भारत में आजादी के लड़ाई के साथ-साथ स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण की रणनीतियाँ जहाँ तय हुआ वे प्राय: आश्रम ही कहलाये। अत: उनके सार्वजनिक जीवन में आश्रमों का क्या महत्त्व रहा होगा इसका अनुमान हम उनके जीवन दर्शन से ही लगा सकते है। उन आश्रमों में प्रतिदिन नियमित रूप से प्रार्थना होती थी, पर किसी आश्रम में मंदिर नहीं बने, किसी देवता की मूर्तियाँ नहीं रखी गयी। किसी भी धर्म को वहाँ विशेष दर्जा नहीं दिया गया। खुली जगह पर वह सामूहिक रूप से सर्वधर्म प्रार्थना किया करते थे और सब धर्मो के धर्मग्रंथों का वहाँ पाठ होता था, क्योंकि उन्होंने एक अच्छा हिन्दू होने के नाते खुद को एक अच्छा मुस्लमान, ईसाई और सिक्ख भी माना था। उनका कहना था कि कोई भी धर्म तभी सही अर्थो में धर्म कहलाने का अधिकारी है जब वह प्रेम और शांति की शिक्षा देता है। इस्लाम का अर्थ ही शांति है और इसी प्रकार हिन्दू धर्म की उत्कृष्टता उसकी सहिष्णुता में निहित है क्योंकि यह सभी धर्मो की सार्वभौमिकता का प्रतिदान करता है। इसी आधार पर गाँधी ने इस निष्कर्ष पर पहूँचे थे कि धर्म के नाम पर लड़ना बुद्धिहीनता का परिचायक है। गाँधी जी ने लिखा है कि "मै इस्लाम को भी ठीक उसी प्रकार शांति की शिक्षा प्रदान करने वाला धर्म मानता हूँ जिस प्रकार ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख और हिन्दु धर्म को।[24]

बीसवीं शताब्दी में भारत के मुस्लिम वर्ग ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वे देश की सम्पूर्ण जनसंख्या का सिर्फ पाँचवा भाग है और हिन्दुओं की संख्या उनसे कई गुणा अधिक है, अत: प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना होने पर वे हिन्दू बहुमत की कृपा पर आश्रित रह जायेंगे। इस शंकालुभावना से ग्रस्त मुसलमानों को अपने पक्ष में करने के लिए अंग्रेजी सरकार तरह-तरह का प्रकरण अपनाने लगे। वह बराबर मुसलमानों को सुरक्षा का आश्वासन देते थे और प्रत्येक संवैधानिक सुधार के अवसर पर उनहें सांत्बना के रूप में कुछ सुविधाएँ प्रदान कर देते थे, ताकि उनमें यह विश्वास सदा बना रहे कि सरकार उनकी हित चिन्तक है। अल्पसंख्यक वर्ग की समस्या पर विचार व्यक्त करते हुए गाँधी जी ने कहा था कि हिन्दू कोई बहुसंख्यक वर्ग नहीं है। यह समाज के कई छोटे-छोटे वर्गो से मिलकर बना हुआ है। हिन्दू एकरूपात्मक जनवर्ग नहीं है जैसा कि मुसलमान और ईसाई समाज मे देखा जा सकता

है। जो लोग हिन्दुओं को बहुसंख्यक और मुसलमानों को अल्पसंख्यक होने की बात करते है, वह भारत की शांति व्यवस्था को भंग करके यहाँ अशांति फैलाना चाहते हैं। भारत में केवल राजनीतिक दल हो सकते हैं लेकिन कोई अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक जनवर्ग नहीं हो सकते है।[25] अल्संख्यक और बहुसंख्यक की बात जो लोग करते है वह भारत को विखण्डित करना चाहते है और इसे कमजोर बनाकर गुलामी की जंजीर में जकड़ना चाहते है। अगर हमें भारत और भारतीयों की हित की रक्षा करनी है, तो सभी वर्गो एवं कॉम के लोगों को एक जुट होकर अंग्रजी सत्ता के खिलाफ आवाज उठाना होगा।

गाँधी जी के नेतृत्व में देश की जो फिजा बनी थी, उसमें हर एक हिन्दुस्तानी ने आत्मसम्मान के साथ हिन्दुस्तानी होने का गौरव महसूस किया था। उस समय कट्ठरता पर आधारित धर्म, जात-पात और क्षेत्रवाद से जुड़ी मानसिकता को नकारा गया। साथ ही एक आत्मविश्वासी सेक्यूलर देश का सुनहरा सपना भी देखा गया था। गाँधी जी ने जो अध्यायत्म पर आधारित राजनैतिक पहल की थी वह कोई सामान्य कोशिश नहीं थी। हिन्दुस्तान ही नहीं, विश्व स्तर पर सत्ता की राजनीति को मूल्यों पर आधारित मानव कल्याण के लिए सेवामुखी बनाने की पहल ने सबको चौंका दिया था। कुंठित विचारधारा में विश्वास रखनेवालो को हिन्दुस्तान में कमी नहीं रही है। उन्होंने गाँधी जी के इस पहल को कभी पसन्द नहीं किया। जहाँ ऐसे तत्त्व मौजूद नहीं थे, वहाँ अग्रेजों ने बड़ी चतुराई से ऐसा तत्त्व गढ़े और मुखाल्फत करने के लिए उन्हें मैदान में सक्रियता से उतारा। नतीजा यह हुआ कि भारतीय हिन्दू-मुस्लिम समाज के बीच आपसी खींचातानी ही सिलसिला निरन्तर चलता रहा। जब इस खीचातानी ने शुध सत्ता की राजनीति और सत्ता में भागीदारी का रूप ले लिया तब वह कटुता भरी कशमकश में तब्दील हुई इस तब्दीली को अंग्रेजो ने एक दुरगामी और खतरनाक रणनीति के तहत नफरत की खाई में बदल दिया। मुख्यत: हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी रिश्तों में धीरे-धीरे कमी आती गयी और गर्माहट भरी कटुता में उसे बदलने के लिए बहुत हद तक अंग्रेजो को कामयाबी मिली। अंग्रजों की कामयाब कोशिश में कुंठित एवं संकीर्ण विचार रखनेवाले हिन्दुस्तानियों की भी अहम् भूमिका रही है।

लगातार चली आ रही अशुभ कोशिशों के नतीजे अन्ततोगत्वा 1920 के दशक में बहुत खराब रहा। भारतीय रंगमंच पर कुछ ऐसे लोग सामने आये जिन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को दो अलग समुदाय ही नहीं 'राष्ट्र' की संज्ञा दे दी और 'दो राष्ट्र' की अवधारणा के राजनीतिक इस्तेमाल ने हिन्दुस्तान को दो हिस्सों में बाँट कर ही दम लिया। परिस्थिति के इस बदलाव ने न सिर्फ देश को बाँटा, वरना सदियो के साथ रह रहे बहुत से हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों को भी बहुत हद तक बाँद दिया। समय बीतने के साथ-साथ ऐतिहासिक वासतविकताओं के मद्देनजर बंटवारे के जिस जख्म को भर जाना चाहिए था उसे राजनीतिज्ञों ने कुरेद कर हमेशा जाता बनाये रहा।

गाँधी जी की जिन्दगी के अंतिम दिन उनके लिए अग्निपरीक्षा जैसे थे। कुर्सी एवं सत्ता के खेल के परिणाम स्वरूप दूसरे महायुद्ध के अलावे, मानव इतिहास का एक दर्दनाक अध्याय उनकी मौजूदगी में ही हिन्दुस्तान में लिखा गया। हिन्दुस्तार बँटा और साम्प्रदायिक दंगों ने हिंसा का विकराल प्रलयकारी ताण्डव यहाँ दिखाया। लाखों हिन्दुस्तानी मारे गये, लाखो-लाख शरणार्थी के रूप में इधर-उधर विस्थापित हुए और अरबों-खरबों की सम्पत्ति नष्ट हुई।

साम्प्रदायवादी शड्यंत्र के नतीजे के चलते देश बँटा और पाकिस्तान का जन्म हुआ। देश का विभाजन नहीं हो इसके लिए गाँध ी जी ने अथक प्रयास करते रहे किन्तु इनके प्रयास को सत्ता के राजनीतिों ने नकाम बना दिया। इतना ही नहीं, कुछ दिनों के अंदर ही उनकी हत्या कर दिये गये। इस जघन्य अपराध पर दुनिया स्तब्धा रह गयी। हिन्दुस्तान का साम्प्रदायिक दंगा थम गया। आजाद होते ही विश्व बिरादरी के सामने इसका सर शर्म से झुक गया। सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में गम और मायूसी के बादल छा गये और जहाँ-जहाँ दंगे हो रहे थे, वे तुरन्त रूक गये। प्रार्थना-सभा के माध्यम से जन संवाद देने वाले महात्मा का दिल्ली के एक प्रार्थना सभा में एक उन्मादी युवक ने गोली चला कर हत्या कर दी थी। इस हत्यारा ने सत्य, अहिंसा और विश्व शांति के पुजारी महात्मा गाँधी की हत्या करके मानवता के माथे पर कलंक का टीका लगा दिया। गाँधी की शहादत ने नैतिक विश्वास, कर्त्तव्यपरायणता, सत्य अहिंसा और विश्व शांति के सिद्धान्त को अमरता प्रदान की तथा सही कार्य करने के लिए कष्ट सहन करने वाली मानवीय चेतना को शक्ति प्रदान किया। उनके अहिंसा, कल्याण एवं शांति के संदेश ने विश्व के विचारशील भावुक जनता के हृदय को झकझोर दिया और उसे नैतिक आदर्शवाद के लिए उत्प्रेरित किया।

महात्मा गाँधी के शरीर का अन्त भले ही 62 वर्ष हो गया हो, लेकिन उनके सिद्धान्तों एवं विचारों का विलक्षण नेतृत्व और दिशा-निर्देश का अनत कभी नहीं होगा। ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है त्यों-त्यों भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के लिलए विश्व शांति के रूप में उनके विचारों की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। इसीलिए अलबर्ट आईस्टीन ने ठीक ही कहा है कि आनेवाली पीढ़ियाँ शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेगी कि गाँधी जी जैसा हाड़-माँस का पुतला कभी इस धारती पर पैदा हुआ होगा।

सन्दर्भ सूची

1. गाँधी जी– हिन्द स्वराज, पृ. 36-37
2. गाँधी जी– Ashram observances inAction, P-36-37
3. गाँधी जी– हरिजन, 08 जून 1935, पृ. 132
4. पाण्डेय रच0 एल0-गाँधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर, पृ. 24
5. गाँधी जी– यंग इण्डिया, 22 दिसम्बर, 1927
6. Kurt Baier - The Moral Point of view, (Newyark, cornelt University Press, 1964)4th edn. P-57
7. मोहन दास कर्मचन्द गाँधी– अनासक्ति योग, सस्ता साहित्य मंडल, प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1957, पृ. 8
8. वही, पृ. 29
9. वही, पृ. 46
10. वही, पृ. 29
11. वही, पृ. 46
12. वही, पृ. 46
13. छान्दोग्य उपनिषद 1-2-23 त्रयों धर्मस्कन्धा
14. तैत्रिरीय उपनिषद 1-11 धर्मचर
15. ऋग्वेद 1-22-18
16. शांति पर्व 109/21
17. मनुस्मृति 1-22
18. स्मिथ डब्लू आर– दि फिलोसफी ऑफसिमिटीज, पृ. 55
19. प्रो0 फिलण्ट : थीइज्म, पृ. 2
20. गैलवे– फिलोसफी ऑफ रिलीजन, पृ. 184
21. यंग इण्डिया, 19-01-1928
22. रंगनाथ प्रसाद, आभा अखैरी, नूतन सिन्हा– गाँधी दर्शन विश्व शांति की ओर, पटना, पृ. 34
23. कुमार ईश्वर चन्द्र - गाँधी दर्शन की वर्त्तमान प्रासंगिकता, आरा, पृ. 17
24. यंग इण्डिया, 20 जनवरी, 1927, हरिजन, 22 सितम्बर 1940
25. हरिजन 21 अक्टूवर 1939

शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 का प्रभाव (ऑनलाइन शिक्षा के विशेष संदर्भ में)

राकेश शर्मा

प्रिंसिपल, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, पीथरावास, रेवाड़ी, हरियाणा

सारांश

कोरोनो वायरस बीमारी (कोविड-19) के प्रकोप को सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल घोषित किया गया है और यह वायरस अब दुनिया के लगभग हर देश में फैल चुका है। कोविड-19 के भयावह और गंभीर प्रभाव ने दुनिया को जड़ से हिला दिया है। भारत में, वायरस के आगमन और प्रसार को अब तक सफलता के साथ नियंत्रित किया गया है, लेकिन जैसा कि अब तक कोई इलाज या टीका नहीं है, हालत खराब होने की संभावना है। सबसे बुरी तरह से प्रभावित क्षेत्र शिक्षा क्षेत्र है। मार्च के दूसरे सप्ताह में कुछ समय के लिए, देश भर की राज्य सरकारों ने स्कूलों और कॉलेजों को अस्थायी रूप से बंद करना शुरू कर दिया, क्योंकि कोरोनो वायरस के प्रसार को रोकने के उपाय के रूप में कोई निश्चितता नहीं थी। जिसके परिणामस्वरूप, स्कूल जाने वाले बच्चों से लेकर स्नातकोत्तर छात्रों तक के शिक्षार्थी प्रभावित हुए। जब स्कूल बंद हो जाते हैं, तो कई बच्चे और युवा सामाजिक संपर्क से चूक जाते हैं जो सीखने और विकास के लिए आवश्यक है। अब तक कोई भी यह अनुमान नहीं लगा सकता है कि यह महामारी कब समाप्त होगी, और हम सभी जानते हैं कि एक लॉकडाउन सिर्फ एक उपाय है और एक स्थायी समाधान नहीं है। इसलिए विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में नवीन तरीकों को अपनाकर वायरस के साथ रहना सीखना समय की आवश्यकता है।

ई-लर्निंग आधारित ऑनलाइन शिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से दूरस्थ छात्रों को दूरस्थ शिक्षा का एक मौका मिलता है, जो नवीन शिक्षण उपकरण वाले प्रशिक्षक, ऑनलाइन कक्षाओं और पाठ्यक्रमों के माध्यम से, भौगोलिक क्षेत्र की परवाह किए बिना, किसी भी समय कहीं से भी शिक्षण कार्यक्रमों को पुरा करता है। कोविड–19 का प्रकोप हमें इस बात का एहसास कराता है कि प्रशिक्षण प्रक्रिया जहां भी होती है, वहां स्कूलों को सबसे आगे निकलने में सक्षम होना चाहिए। कॉलेज के लिए ईआरपी सिस्टम जैसी तकनीक में निवेश बेहद जरूरी है। प्रस्तुत शोध पत्र में शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 के प्रभाव को विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्दः शिक्षा प्रणाली, कोविड-19, ऑनलाइन शिक्षा, प्रौद्योगिकी अवसंरचना, शैक्षिक संस्थान।

परिचय

कोविड-19 महामारी ने इतिहास में शिक्षा प्रणालियों का सबसे ज्यादा व्यवधान पैदा किया है, जिससे 190 देशों और हर एक महाद्वीप में लगभग 1.6 बिलियन शिक्षार्थी प्रभावित हुए हैं। संकायों और अन्य शिक्षण स्थानों के बंद होने से दुनिया की 94 प्रतिशत छात्र आबादी को प्रभावित किया है, जो निम्न और निम्न-मध्यम आय वाले देशों में 99 प्रतिशत तक है। इस संकट ने कमजोर बच्चों, युवाओं और वयस्कों के कई अवसरों को कम कर दिया गया है। 23.8 मिलियन अतिरिक्त बच्चे और युवा (प्री-प्राइमरी से लेकर तृतीयक) अकेले महामारी के आर्थिक प्रभाव की बदौलत अगले साल हाई स्कूल तक पहुँच छोड़ सकते हैं। जैसे-जैसे राजकोष पर दबाव बढ़ता है, और विकास क्रम न्यूनतम स्तर पर आती है तो, शिक्षा का वित्तपोषण भी चुनौतियों का सामना करता है। निम्न आय वाले देशों और निम्न-मध्यम आय वाले देशों के लिए, उदाहरण के लिए, यह अंतर प्रति वर्ष 148 बिलियन तक पहुंच गया था और

अब यह एक तिहाई तक बढ़ सकता है। दूसरी ओर, इस संकट ने शिक्षा क्षेत्र में नवाचार को बढ़ावा दिया है। हमे शिक्षा और प्रशिक्षण निरंतरता के महत्वपूर्ण दृष्टिकोण भी देखने को मिले है। सरकारों और भागीदारों द्वारा हर जगह शिक्षा निरंतरता को बढ़ावा देने के लिए तकनिकी को दूरस्थ शिक्षा के लिए विकसित जा रहें है। स्कूली शिक्षा आवश्यक शिक्षा प्रदान करता है और जब स्कूल बंद होते हैं, तो बच्चे और युवा विकास के अवसरों से वंचित रह जाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने कोविड-19 के मद्देनजर सोशल डिस्टेंसिंग को ध्यान में रखते हुए विभिन्न भाषाओं में ऑनलाइन लर्निंग मॉडयूल विकसित किए हैं। आईआईटी एवं आईआईएम सहित कई भारतीय संस्थान ऑनलाइन मोड में शिक्षा दे रहे हैं। विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों ने सामाजिक दूरी सुनिश्चित करने के लिए छात्रों को घर बैठे ऑनलाइन कक्षाओं में भागलेने की अनुमति दी है। कोरोना ने ऑनलाइन शिक्षा को आवश्यकता बना दिया है और हमें ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली की संभावना और लाभों के बारे में सोचने के लिए मजबूर किया है। ऑनलाइन शिक्षा आधुनिक इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण बदलावों में एक है। पिछले दशक में इंटरनेट की उपलब्धता काफी बढ़ गई है। ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के लिए विश्वसनीय और सुरक्षित ब्रॉडबैंड इंटरनेट कनेक्शन की आवश्यकता होती है, ताकि विभिन्न सॉफ्टवेयरों के माध्यम से वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की जा सके। उन्नत संचार सॉफ्टवेयर बेहतर ख्रश्यता के साथ लगातार सामने आ रहे हैं और दूरस्थ संचार को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए एक दूसरे से होड़ कर रहे हैं। केपीएमजी और गूगल द्वारा किए गए एक अध्ययन ऑनलाइन एजुकेशन इन इंडिया: 2021 के मुताबिक, भारत में ऑनलाइन शिक्षा का बाजार 2021 तक बढ़कर लगभग 1.96 अरब डॉलर होने की उम्मीद है और विभिन्न ऑनलाइन शिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए नामांकित छात्रों की संख्या 2021 के अंत तक बढ़कर करीब 96 हो जाने की उम्मीद है।

कोरोना वायरस ने मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। दूसरे क्षेत्रों पर इसके व्यापक प्रभाव धीरे-धीरे सामने आएंगे, लेकिन शिक्षा व्यवस्था में तो अभी से असर दिखने लगा है। हालांकि इसके नुकसान को कम से कम करने के लिए केंद्र सरकार ने 'भारत पढ़े ऑनलाइन योजना' पर काम शुरू कर दिया है। इसे और बेहतर बनाने के लिए उसने जनता से सुझाव भी मांगे हैं। इसके तहत स्कूली शिक्षा से लेकर कॉलेज स्तर के इंजीनियरिंग और व्यावसायिक सहित सभी पाठ्यक्रम यथासंभव ऑनलाइन शुरू हो रहे हैं।

एक बार स्कूल बंद होने के बाद सभी छात्रों के दोबारा स्कूल लौटने के चुनौती के कारण स्कूल छोड़ने का सीमा बढ़ जाता है। स्कूल, सामाजिक गतिविधि और मानव संपर्क के केंद्र माने जाते हैं। स्कूल बंद होने के अलावा, बड़ी चिंता बेरोजगारी दर का बढ़ना भी है। भारत में, वर्तमान स्थिति के कारण कॉर्पोरेट्स से नौकरी की पेशकश को वापस लेने से डर युवाओं को सता रहा है। मार्च के मध्य में बेरोजगारी का स्तर केंद्र के अनुमानों के मुताबिक 8.4 प्रतिशत से 23 प्रतिशत और शहरी बेरोजगारी दर 30.9 प्रतिशत तक पहुंच गई। कोविड-19 के कारण ने कक्षा की शिक्षा के लिए विशेषज्ञों को शिक्षा के पारंपरिक तरीके पर फिर से विचार करने के लिए प्रेरित किया है। संक्रमण काल को देखते हुए कक्षा शिक्षा के लिए डिजिटल शिक्षा ही एक व्यवहार्य समाधान प्रतीत होता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने भारत में डिजिटल शिक्षा के केंद्र बिंदु परिधीय मुद्दे को भी केंद्र में लाया है। आगे बढ़ने पर, डिजिटल शिक्षा को मुख्यधारा की शिक्षा में एकीख्रत करने की संभावना है। यह भारत में विविध भौगोलिक क्षेत्रों में सीखने की सुविधा प्रदान करके समावेशी शिक्षा प्रदान करेगा। इसके अलावा, यह शिक्षकों को हर छात्र के लिए अनुकूलित शिक्षण समाधान के साथ आने का अवसर प्रदान करेगा। विश्व स्तर पर, ऑनलाइन शिक्षा कुछ सफलता के साथ दृष्टिगत होती है। भारत के मामले में, हमारे पास डिजिटल शिक्षा को मुख्यधारा की शिक्षा के रूप में देखने से पहले अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है, क्योंकि शहरी क्षेत्र में रहने वाले छात्रों के पास डिजिटल शिक्षा का विकल्प चुनने की सुविधा है, हालाँकि, ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों के लिए आवश्यक बुनियादी ढाँचा नहीं है और न ही डिजिटल शिक्षा के लिए आवश्यक संसाधनों का लाभ उठाने के लिए आर्थिक रूप से मजबूत हैं। स्मार्टफोन अभी भी ज्यादातर घरों के लिए एक लक्जरी है। हालांकि, लगभग 80 प्रतिशत आबादी के पास मोबाइल कनेक्शन है। यह अभी भी उन बड़े प्रतिशत परिवारों को पीछे छोड़ देता है जिनके पास किसी भी तकनीकी उपकरण तक पहुंच नहीं है। सरकारी स्कूल के छात्रों को उच्च-गुणवत्ता वाली सीखने की सामग्री और डिजिटल बुनियादी ढांचे तक पहुंच में एक बड़ी खाई का सामना करना पड़ता है। हालाँकि, भारत सरकार द्वारा स्कूल शिक्षा के लिए एक-राष्ट्र, एक-डिजिटल प्लेटॉर्म सुविधा शुरू करने की घोषणा की गई है, प्रत्येक वर्ग (एक वर्ग, एक चैनल) के लिए एक-एक टीवी चैनल का स्वागत किया जाना चाहिए।

कोविड–19 महामारी से पूर्व भारतीय के अधिकांश शिक्षण संस्थानों को ऑनलाइन शिक्षा का कोई विशेष अनुभव नहीं रहा है, ऐसे में शिक्षण संस्थानों के लिये अपनी व्यवस्था को ऑनलाइन शिक्षा के अनुरूप ढालना और छात्रों को अधिक-से-अधिक शिक्षण सामग्री ऑनलाइन उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती होगी। वर्तमान समय में भी भारत में डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर की बहुत कमी है, देश में अब भी उन छात्रों की संख्या काफी सीमित है, जिनके पास लैपटॉप या टैबलेट कंप्यूटर जैसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अत: ऐसे छात्रों के लिये ऑनलाइन कक्षाओं से जुड़ना एक बड़ी समस्या है। शिक्षकों के लिये भी तकनीक एक बड़ी समस्या है, देश के अधिकांश शिक्षक तकनीकी रूप से इतने प्रशिक्षित नहीं है कि औसतन 30 बच्चों की एक ऑनलाइन कक्षा आयोजित कर सकें और उन्हें ऑनलाइन ही अध्ययन सामग्री उपलब्ध करा सकें। इंटरनेट पर कई विशेष पाठ्यक्रमों या क्षेत्रीय भाषाओं से जुड़ी अध्ययन सामग्री की कमी होने से छात्रों को समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। कई विषयों में छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा की आवश्यकता होती है, अत: दूरस्थ माध्यम से ऐसे विषयों को सिखाना काफी मुश्किल होता है।

कोविड-19 महामारी के कारण देश भर में ऑनलाइन शिक्षा का महत्त्व काफी बढ़ गया है, किंतु सामाजिक असमानता और डिजिटल डिवाइड ऑनलाइन शिक्षा के समक्ष अभी भी बड़ी चुनौती बने हुए हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग के अनुमानानुसार, महामारी के कारण बंद हुए स्कूलों को फिर से खोलने के लिये स्वच्छता और क्वारंटाइन उपायों हेतु प्रति स्कूल 1 लाख रुपए तक खर्च करने की आवश्यकता होगी। लगभग 3.1 लाख सरकारी स्कूलों, जिनके पास सूचना व संचार तकनीक सुविधाएँ नहीं हैं, को ऐसी सुविधाओं से लैस करने के लिये केंद्र सरकार 55,840 करोड़ रुपए का बजट प्रस्तावित करेगी।

एमएचआरडी ने आगामी पाँच वर्षों में डिजिटल पाठ्यक्रम सामग्री और संसाधनों के विकास एवं अनुवाद पर 2,306 करोड़ रुपए खर्च करने का प्रस्ताव किया है। केंद्र सरकार ने वर्ष 2026 तक देश भर के विभिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले लगभग 4.06 करोड़ छात्रों (देश की कुल छात्र संख्या का लगभग 40 प्रतिशत) को लैपटॉप और टैबलेट प्रदान करने की भी योजना बनाई है तथा इस कार्य के लिये कुल 60,900 करोड़ रुपए का बजट निर्धारित किया गया है। स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग के अनुसार, केंद्र और राज्य उपकरण उपलब्ध कराने की लागत को फिलहाल 60:40 के अनुपात में साझा करेंगे।

शिक्षण क्षेत्र पर कोविड-19 और लॉकडाउन के प्रभाव ने शिक्षण संस्थाओं को शिक्षण माध्यमों के नए विकल्पों पर विचार करने हेतु विवश कर दिया है। भारत में ई-शिक्षा अपनी शैशवावस्था में है, आवश्यक है कि इसकी राह में मौजूद विभिन्न चुनौतियों को संबोधित कर ई-शिक्षा के रूप में एक नए शिक्षण विकल्प को बढ़ावा दिया जाए। टेलीविजन और रेडियो कार्यक्रमों के माध्यम से देश के दूरस्थ भागों में स्थित ग्रामीण क्षेत्रों में भी लॉकडाउन के दौरान शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित की जा सकती है।

डिजिटल लर्निंग के कई लाभ और चुनौतियां हैं, उनमें से कुछ पर एक नजर डालते हैं–

1. जाति, लिंग, यौन अभिविन्यास, धर्म, राष्ट्रीयता, आयु, पोशाक, शारीरिक उपस्थिति आदि के कारण छात्रों के बीच कोई भेदभाव नहीं।
2. कोई आने और जाने का समय नहीं।
3. एक परिसर में सीखने के विकल्प का चयन करने में कोई भौगोलिक स्थिति बाधा नहीं है
4. कोई सीखने की गति बाधा नहीं है, आप अपनी गति से सीख सकते हैं और अपनी सुविधानुसार अध्ययन कर सकते हैं।
5. कोई मौखिक रूप से व्यक्त बाधा नहीं है, आप मौखिक रूप से कोर्स वर्क की तुलना में लेखन में खुद को व्यक्त कर सकते हैं।
6. निर्देश आपके क्षेत्र और विषय क्षेत्र के लिए अत्यधिक अनुकूलित किए जा सकते हैं, ये पाठ्यक्रम उन लोगों के लिए बेहतर है जो अंतर्मुखी हैं और जो दृश्य संकेतों के माध्यम से सीखते हैं और सामग्री को समझने में अधिक समय की आवश्यकता होती है।
7. संसाधनों तक पहुंच-दुनिया भर के संसाधनों और सूचना के लिए अतिथि विशेषज्ञों या अन्य संस्थानों के छात्रों के साथ-साथ संसाधनों तक पहुंच को शामिल करना आसान है।

8. उच्च गुणवत्ता वाला संवाद-शिक्षार्थी अगले विषय पर प्रतिक्रिया देने या आगे बढ़ने से पहले प्रत्येक टिप्पणी पर अपनी गुणवत्ता की सोच को ध्यान से देखने में सक्षम है।
9. सहक्रिया-प्रशिक्षक और छात्रों के साथ-साथ स्वयं छात्रों के बीच उच्च स्तर की गतिशील बातचीत। विचारों और संसाधनों को साझा किया जाता है, और सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से निरंतर तालमेल बनाया जाएगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सहपाठियों के काम पर चर्चा और टिप्पणियों में योगदान देता है।
10. रचनात्मक शिक्षण: इंटरैक्टिव शिक्षा के माहौल में वयस्क शिक्षा वर्ग में आत्म-दिशा और महत्वपूर्ण सोच में योगदान कर सकते हैं। विशेष रूप से आभासी कक्षा की अर्धा-स्वायत्त और स्व-निर्देशित दुनिया की प्रकृति निर्देशन के लिए अभिनव और रचनात्मक दृष्टिकोण को और भी महत्वपूर्ण बनाती है।
11. छात्र केंद्रित- छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने सभी सहपाठियों के योगदानों को पढ़ें, लेकिन वे सक्रिय रूप से केवल उन्हीं भागों में संलग्न हो सकते हैं जो उनकी आवश्यकताओं के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक हैं।

चुनौतियां

1. व्याकुलता की संभावनाएं उच्च- बातचीत के लिए कोई संकाय नहीं होने के कारण और कोई सहपाठी जो लंबित असाइनमेंट के बारे में लगातार याद दिलाने में मदद कर सकता है, इस कारण विचलित की संभावना अधिक है।
2. छिपी हुई लागत- कुछ शुरुआती खर्च होते हैं जैसे कंप्यूटर या टैबलेट, प्रिंटर, वेब कैमरा और एक विश्वसनीय इंटरनेट कनेक्शन इन सभी चीजों के लिए कुछ खर्चों की आवश्यकता और पुनरावृत्ति हो सकती है- जैसे रखरखाव और बिजली की लागत।
3. जटिल तकनीक- यदि कोई छात्र कंप्यूटर और तकनीक का जानकार नहीं है, तो उसके सीखने का अनुभव असंतोषजनक हो सकता है। तथा सॉफ्टवेयर या हार्डवेयर में खराबी के कारण सीखने की प्रक्रिया को बाधित कर सकता है।
4. व्यावहारिक के बजाय सिद्धांत पर ध्यान केंद्रित- ई-लर्निंग सामाजिक विज्ञान और मानविकी के लिए अधिक उपयुक्त है, लेकिन चिकित्सा विज्ञान और इंजीनियरिंग जैसे विषयों के लिए व्यावहारिक की की आवश्यकता होती है।
5. सीमित सामाजिक सहभागिता- ऑनलाइन शिक्षण में शिक्षक और छात्रों के लिए आमने-सामने बातचीत करने का एक सीमित अवसर है, सामाजिक संपर्क बनाने के लिए कोई परिसर का माहौल नहीं है।
7. पारंपरिक प्रशिक्षकों के लिए समस्या- पारंपरिक प्रशिक्षकों के लिए सिस्टम और सॉफ्टवेयर को अपनाने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। जैसे-जैसे सॉफ्टवेयर अधिक से अधिक उन्नत हो रहा है, पारंपरिक प्रशिक्षकों को लगातार पडेगा। चाहिए कि कैसे बनाए रखना है।

कोविद–19 के बाद हमारी शिक्षा प्रणाली को बदलने का एक अवसर है। लाइन शिक्षा भूमिकाओं और जिम्मेदारी के लिए शिक्षण पद्धति बदल रही है। शिक्षकों को ऑनलाइन शिक्षण के समय यह ध्यान रखना चाहिए- डिजाइन + वितरण = शिक्षण।

ऑनलाइन शिक्षा को अधिक कारगर बनाने के सुझाव

1. मीडिया की विविधता– हमारी सामग्री में वीडियो, ऑडियो, एनिमेशन, टेबल और प्रिंट करने योग्य सामग्रियों जैसे मीडिया का संयोजन होना चाहिए। एक प्रकार के मीडिया पर निर्भरता की तुलना में मीडिया का मिश्रण अधिक प्रभावी है क्योंकि यह कई प्रकार की सीखने की वरीयताओं को संतुष्ट करता है।
2. संगठन– सामग्री, गतिविधियाँ और अनुभव क्रमबद्ध, संचयी और सुसंगत होना चाहिए। उन्हें अत्यधिक इंटरैक्टिव होना चाहिए और सीखने के स्तर, सीखने के प्रवेश बिंदु और अनुभवों की एक सीमा के लिए अनुमति देना चाहिए। सरल से जटिल तक क्रमिक रूप से आगे बढ़ते हुए विषय वस्तु को यमाप्त करना चाहिए।

3. डिजाइन स्पष्टता– इसमें पहुंच और नेविगेशन में आसानी होती है। इस तरह की स्पष्टता और सामग्रियों का सहज संगठन शिक्षार्थियों की संतुष्टि और ऑनलाइन शिक्षण वातावरण में पाठ्यक्रम सामग्री के कथित प्रभाव को काफी प्रभावित करता है।
4. सीखने के अनुभवों के प्रकार– लचीले ढंग से डिजाइन किए गए पाठ्यक्रम अच्छी तरह से समझने में सहायक होते है। इससे पाठ और व्याख्यान गतिविधियों को सीखने में ख्रष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं
5. डिजिटल उपकरण– जटिल अवधारणाओं की समझ बनाने के लिए प्रौद्योगिकी केवल डिलीवरी का माध्यम नहीं होनी चाहिए बल्कि एक सीखने की समाग्री है जो ठोस, प्रासंगिक रूप से सार्थक अनुभवों के लिए अवसर प्रदान करती है। जिसके माध्यम से आप स्वयं के मॉडल, अवधारणाओं और रणनीतियों का निर्माण कर सकते हैं।

सीखना एक सतत और विकसित होने वाली प्रक्रिया है। भारत में शैक्षिक संस्थान, स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक, इस वर्तमान प्रतिकूलता के बावजूद डिजिटल शिक्षा को भविष्य में सभी शिक्षार्थियों के लिए सीखने की प्रक्रिया का एक प्रमुख हिस्सा बना रहे है। यह महामारी भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए बहुत बड़ा अवसर है। शिक्षा क्षेत्र में एक क्रांति लाने के लिए, ऑनलाइन शिक्षण को सराहा भी जा रहा है। हमें बस नई तकनीक को अपनाना है, जो आसान नहीं है, क्योंकि हमारे सामने बहुत सारी चुनौतियाँ हैं, लेकिन शिक्षा के इस नए चरण को चर्मोत्कर्ष पर पहुचाना हमारी जिम्मेदारी है।

निष्कर्ष

वर्तमान में किसी के लिए भी यह कहना कठिन है कि कोरोना कहर थमने के बाद दुनिया कैसी होगी, क्योकि जहां कुछ चीजें बदलती हुई साफ दिख रही है वहीं यह भी दिखाई दे रहा है कि काफी कुछ जस का तस रहने वाला है या बडी मुश्किल व मेहनत से बदलने वाला है। इस बदलते स्वरूप ने ऑनलाइन शिक्षा संस्कृति को प्रासंगिक बना दिया है तथा दुसरी तरफ भारतीय समाज में ऑनलाइन शिक्षा को स्वीकार करने की प्रवृत्ति आंशिक रही है। भारत के शहरों और गावो में शिक्षा के स्तर में फर्क आसानी से देखा जाता है। किसी भी तकनीकी, चिकित्सा या प्रबंधन पाठयक्रम की पढाई तथा शोध कार्य के लिए हम अपनी सरंचना में शहरो पर ही आधारित है। उच्च शिक्षा में गावों को सक्षम नहीं बनाया गया है। हमारे सामने प्रश्न यह खडा है कि ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से समावेशी शिक्षा का लक्ष्य कहां तक प्राप्त कर पायेगे। प्राथमिक विद्यालय स्तर पर इस पद्धति का क्रियान्वयन महत्वपूर्ण चुनौति है। ऐस में अगर आज हम ऑनलाइन शिक्षा की बात करते है, तो सोचना होगा कि हम इनमें से कितने प्रतिशत ग्रामीण बच्चो तक अपनी पहुंच बना पाने में सक्षम हो पायेगें हमें इसकी कमीयो को दुर करते हुए सकारात्मक दृष्टि कोण से आगे बढना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- https://www.hashmicro.com/blog/5-benefits-of-erp-for-home-based-learning-during-covid-19-pandemic/
2- 773 million according to most recent UIS data: http://uis.unesco.org/en/topic/literacy.
3- UIS 2017 Fact Sheet, available at http://uis.unesco.org/sites/default/files/documents/fs46-more-than-half-children-not-learning-en-2017.pdf.
4- UNESCO (forthcoming): "The impact of Covid-19 on the cost of achieving SDG 4", GEM Report Policy Paper 42.
5- United Nations Development Programme (UNDP). COVID-19 and human development:Assessing the crisis, envisioning the recovery. 2020 Human Development Perspectives, 2020, New York: UNDP, available at http://hdr.undp.org/en/hdp-covid.
6- UNESCO, "COVID-19 Education Response: How many students are at riks of not returning to school?" advocacy paper, June 2020.
7- 258 million in 2018, UNESCO Institute for Statistics (UIS), "Out-of-School Children and Youth",available at http://uis.unesco.org/en/topic/out-school-children-and-youth.
8- UNESCO, "Education: From disruption to recovery", available at https://en.unesco.org/covid19/educationresponse..
9- GEM Report, "Policy Paper 41", available at https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000373844/PDF/373844eng.pdf.multi.

10. द हिंदू, नई दिल्ली
11. टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
12. योजना, मई 2020
13. हिंदुस्तान, पटना
14. दैनिक जागरण राष्ट्रीय संस्करण, नई दिल्ली

वैश्विक महामारी कोविड-19 से उपजे संकट से निपटने में गाँवों की भूमिका

देवेन्द्र कुमार सिंह

शोधर्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

इस लेख में मैं कोविड-19 से उपजे वैश्विक संकट में भारतीय गाँव को एक आशा की किरण के रूप में परखने की कोशिश करूँगा। इसमें गाँव तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्पष्ट करते हुए कोविड-19 से उपजे संकट का ग्रामीण क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभाव की विवेचना की गई है। साथ ही, इस बात की पहचान की गई है कि धवस्त हो चुके अर्थव्यवस्था को संभालने में हमारे गाँव एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था किस प्रकार सहायक हो सकते हैं। आज विश्व जब जीवन एवं जीविका हेतु संघर्ष कर रहा है, ऐसे में गाँव एक संभावना के रूप में हमारे सामने है, जिसका सही इस्तेमाल कर हम इस वैश्विक संकट से काफी हद तक निपटने के साथ-साथ अपनी अर्थव्यवस्था को भी बचा सकते हैं।

भारतीय गाँव

मानव के सबसे प्रमुख अविष्कारों में से एक कृषि है, जिसने मानव के जीवन को पूरी तरह से बदल कर रख दिया। कृषि के अविष्कार के फलस्वरुप मानव ने खानाबदोश जीवन का त्याग कर स्थाई रूप से रहना प्रारंभ कर दिया। स्थाई जीवन ने सुन्दर सभ्यता एवं संस्कृति को जन्म दिया और इसकी शुरुआत गाँव से होती है।

"यथा शूद्र जन पराया समृद्धि कृषि कला।
क्षेत्रेप योग भूमध्यं बस्ती ग्राम संजिका।।"

मार्कण्डेय पुराण में उद्धृत यह लोक जीव की विशेषता को बताता है, जिसमें कहा गया है कि जहाँ ख्रषि कार्य किया जाता है एवं जहाँ कृषि क्षेत्र समूह है, वह गाँव है।

आधुनिक युग में गाँव छोटी-छोटी बस्तियों को कहते हैं, जिनकी जनसंख्या कुछ 100 से लेकर कुछ 1000 तक होती है। प्राय: गाँव के लोग कृषि या कोई अन्य परम्परागत काम करते हैं। परम्परागत रूप से गाँवों में शहरों की अपेक्षा कम सुविधाएँ (शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, रोजगार) होती हैं। गाँव के घर आस-पास एवं अव्यवस्थित होते हैं। भारत के राष्ट्रपिता मोहनदास करमचंद गांधी इन्हीं गांवों को 'भारत की आत्मा' कहते थे।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आसान शब्दों में गाँव की अर्थव्यवस्था कह सकते हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाएँ एवं रोजगार कृषि और उससे जुड़ी क्रियाओं, जैसे– दुग्ध उत्पादन, मछली पालन, शहद उत्पादन, बागवानी पर निर्भर होती है। शुरुआती दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी, लेकिन औद्योगीकरण के साथ-साथ शहरी अर्थव्यवस्था का विकास होता गया और वैश्वीकरण के विचार को अपनाने के बाद शहरी अर्थव्यवस्था का प्रभाव बढ़ गया। देश के जी.डी.पी. (सकल घरेलू उत्पाद) में सेवा क्षेत्र एवं उद्योगों का योगदान कृषि क्षेत्र की अपेक्षा बढ़ता गया। हालांकि इन बदलावों के बाद भी भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य स्थान है। उद्योगों एवं सेवा क्षेत्र के व्यापक विस्तार के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था अपनी प्रकृति से मूलत: कृषि आधारित ही है। आंकड़ों के लिहाज से भी भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था ही है। 2011

की जनगणना के अनुसार लगभग 69 प्रतिशत आबादी गाँव में निवास करती है। वहीं नीति आयोग के अनुसार राष्ट्रीय आय में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का योगदान 46 प्रतिशत है। आज देश की 70 प्रतिशत आबादी ख़्रषि एवं इससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। इतना महत्वपूर्ण स्थान होने के बाद भी गाँव में कृषि एवं ख़्रषक दोनों उपेक्षित हैं। वहीं कोविड-19 के प्रभाव से उपजे इस वैश्विक संकट का असर देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी पड़ रहा है।

कोविड-19 का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर असर

चीन से प्रारंभ हुए कोविड-19 वायरस के विश्वव्यापी प्रसार के फलस्वरुप इसके घातक प्रभाव से बचने के लिए 22 मार्च, 2020 को लॉकडाउन लगाया गया, जिसका गहरा प्रभाव ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। अचानक सभी गतिविधियों के रुक जाने के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी चरमरा गई। कृषि मंडियों के बंद होने या कम क्षमता पर काम करने के कारण फसलों की खरीद-बिक्री की प्रक्रिया बाधित हुई। साथ ही किसानों को आज फसलों का सही दाम नहीं मिलने के कारण उनके आय पर प्रभाव पड़ा, जिसके कारण कृषि कार्य पर व्यापक असर पड़ा है। किसी भी राष्ट्र के लिए अपने देश के लोगों को भोजन मुहैया कराना सबसे बड़ी चिंता का विषय होता है। इसके लिए देश में कृषि कार्य एवं इससे जुड़ी क्रियाकलापों का निर्बाध रूप से संचालन बहुत आवश्यक है। आपूर्ति श्रृंखला टूटने एवं परिवहन बंद होने के कारण फलों एवं सब्जियों को बागानों एवं खेतों में सड़ना पड़ा था। उन्हें औने-पौने दाम पर बेचना पड़ा। वहीं कोविड-19 का प्रसार चिकन से होने के अफवाह के कारण चिकन, मछली, अंडा इत्यादि की खपत में व्यापक कमी आई। आपूर्ति की कमी के कारण दूध की मांग में व्यापक कमी आयी, जिससे दुग्ध उत्पादक किसानों की आय प्रभावित हुई। होटल, रेस्तरां, भोजनालय आदि बंद होने एवं शादियों एवं समारोहों के रुक जाने के कारण इनमें खपत होने वाले कृषिगत उत्पादों की मांग में व्यापक कमी हुई, जिससे इनके भाव तेजी से गिरे। लॉकडाउन की वजह से आवश्यक सामग्री ढोने वाले वाहनों को रोका जा रहा है, वहीं ऑनलाइन आपूर्ति करने वालों की भी यही शिकायत है। इन सभी अड़चनों के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था सीधो तौर पर प्रभावित हो रही है। इससे आयात-निर्यात भी प्रभावित हो रहे हैं, जबकि भारत कृषिगत वस्तुओं के बड़े निर्यातकों में शामिल है। वहीं लॉकडाउन की वजह से प्रवासी मजदूर पुनः अपने गाँव की तरफ लौट रहे हैं, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर दबाव और बढ़ गया है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रवासी मजदूर

गाँव से शहरों में गए ज्यादातर कामगार असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। गाँव में ये जहाँ परम्परागत कार्य करते थे, वहीं ये शहरों में विनिर्माण, परिवहन, खुदरा एवं थोक व्यापार इत्यादि गतिविधियों में लगे हुए हैं। ये कामगार जहाँ शहरों के विकास के आधार स्तंभ हैं, वहीं ये गाँव के आमदनी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये कामगार अपनी आमदनी का एक बड़ा हिस्सा अपने परिवार को भेजते हैं, जिससे करोड़ों ग्रामीण परिवारों की आजीविका चलती है। प्रवासी मजदूर ज्यादातर पिछड़े हुए राज्यों, जैसे– उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश, उड़ीसा आदि राज्यों से आते हैं। इन मजदूरों के हाथों में से रोजी-रोटी छिन जाने के कारण जहाँ इनका शहरों में रहना दूभर हो गया है, जिससे ये अपने गाँवों की तरफ कूच कर रहे हैं, वहीं इनके हाथों से आमदनी निकल जाने के कारण गाँवों की तरफ होने वाले धन का प्रवाह भी रुक गया है। संभावना यह है कि इससे गाँवों का संकट और बढ़ जाएगा। वैसे सरकार ने जन-धन खातों में पैसा डालकर गाँवों में नकदी की समस्या को कम करने का प्रयास किया है। उपरोक्त तमाम समस्याओं के बावजूद ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मौजूद संभावनाओं को देखते हुए यह उम्मीद की जा रही है कि कोविड-19 में उपजे संकट में हमारे गांव ही संकट मोचक बनेंगे।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में निहित संभावनाएँ

ग्रामीण अर्थव्यवस्था लम्बे समय तक उपेक्षा का शिकार रही है, जिसके कारण यहाँ संरचनात्मक ढांचा, वितरण व्यवस्था, आपूर्ति श्रृंखला, तकनीक कौशल एवं पूंजी इत्यादि का अभाव रहा है। इन्हीं अभाव के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था आज तक विकसित नहीं हो पाई है। कोविड-19 से उपजे संकट में गांवों के पास ज्यादा जगह, उचित संस्कृति एवं काम की प्रकृति उसे एक संभावना प्रदान करती है। जागरूकता एवं सामाजिक दूरी बनाकर गांव अपनी पूर्ण क्षमता के साथ काम कर सकते हैं, क्योंकि गांवों में ज्यादातर काम

सामाजिक दूरी बनाकर करना संभव है। कोरोना के कम प्रभाव का एक कारण ग्रामीण संस्कृति एवं रहन-सहन भी है। गाँव के लोग अपने घरों से ज्यादा जुड़े होते हैं, जो अपने यहाँ उत्पादित वस्तुओं से अपने घर में भोजन बनाकर खाते हैं, जबकि शहरों में होटल एवं रेस्तरां का चलन ज्यादा है। कोविड-19 से उपजे संकट से बाजार एवं मांग की प्रकृति में बदलाव आना लाजिमी है। ऐसे में खाद्य पदार्थों, मछली, अंडा, दूध एवं अन्य कृषिगत वस्तुओं की मांग बढ़ने की संभावना है, जिसमें गाँव खाद्य पदार्थों एवं कृषिगत वस्तुओं की आपूर्ति व्यापक रूप से कर सकते हैं। खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को बढ़ावा देकर टिकाऊ खाद्य पदार्थों का उत्पादन किया जा सकता है। वहीं आज जब विश्व में भुखमरी की संभावना व्यापक रूप से बढ़ी है, ऐसे में खाद्य पदार्थों एवं कृषिगत वस्तुओं का निर्यात कर विश्व के लिए गाँव रोटी की टोकरी बन सकते हैं। प्रवासी मजदूर, जो अभी तक मनीआर्डर का काम करते थे वे, कुशल एवं उर्जा से भरपूर हैं। इस कार्यशील मानवशक्ति का उपयोग कर हम गाँव के मनिआर्डर अर्थव्यवस्था को उत्पादक एवं निर्यातक अर्थव्यवस्था में बदल सकते हैं, जिससे भारत न सिर्फ अपनी अर्थव्यवस्था को बचा सकता है, बल्कि आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का निर्माण कर सकता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने का उपाय

कोविड-19 से उपजे इस वैश्विक संकट से हमारा देश भी बुरी तरह से प्रभावित हुआ है, जिसका सीधा असर भारत के निवासियों के जीवन एवं जीविका पर व्यापक रूप से पड़ा है। ऐसी स्थिति में भारत की आत्मा गाँव ही हमारे खेवनहार हो सकते हैं। ऐसे में भारत को अपनी धवस्त हो रही अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाना चाहिए। इसके लिए सरकार को कृषि, कृषिगत वस्तुओं के उत्पादन, वितरण एवं भंडारण की व्यवस्था को मजबूत बनाना होगा। ग्रामीण अवसंरचना में व्यापक निवेश के साथ-साथ कृषि उत्पादों का निर्बाध आवागमन पर जोर देना होगा। किसानों को जहाँ फसलों के उत्पादन के लिए प्रेरित करना होगा, वहीं उन्हें फसलों का उचित मूल्य दिलाने पर ध्यान देना होगा, जो न्यूनतम समर्थन मूल्य के बराबर होना चाहिए, ताकि बाजार में वस्तुओं का मूल्य सामान्य बना रहे हैं एवं लोग महंगाई को झेलने के लिए मजबूर न हों। सरकार को मंडी शुल्क को माफ करने तथा विपणन कानून में संशोधन करना होगा। साथ ही, सामाजिक दूरी का ख्याल रखते हुए खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का व्यापक विकास करना होगा। किसानों को उचित तकनीक मुहैया कराने के साथ-साथ कर्ज की व्यवस्था, दिए गए कर्जों में ब्याज माफी, सभी किसानों को के.सी.सी. मुहैया कराने तथा उनकी सीमा बढ़ाने की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके अलावा अन्य उपायों से भी गाँवों में मुद्रा की तरलता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। इसका अच्छा उदाहरण किसान सम्मान निधि में वृद्धि करना तथा डी.बी.टी. के माध्यम से जन-धन खातों में और पैसा डालना हो सकता है। महात्मा गांधी नरेगा योजना को और व्यापक तथा प्रभावी बनाकर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन एवं आधारभूत संरचना के निर्माण का प्रयास करना चाहिए। छोटे उद्योग, कुटीर उद्योग, हस्तकरघा, हस्तशिल्प एवं अन्य कृषिगत उद्योगों से संबंधित कानूनों को उदार बनाकर तथा इसके लिए धन उपलब्ध कराकर इन्हें प्रभावी बनाना चाहिए। दूध एवं मांस उद्योग को व्यापक आधार प्रदान करते हुए इसके लिए अच्छी आपूर्ति श्रृंखला का निर्माण एवं इसके निर्यात के अवसर तलाशने चाहिए। प्रवासी मजदूर जो कुशल, कार्यशील एवं अनुभवी हैं, इनकी ऊर्जा का पूरा उपयोग कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत आधार देना चाहिए, क्योंकि यह अमूल्य पूंजी कोविड-19 के संकट में पुनः शहर नहीं जाना चाहेंगे।

हम इन्हें पूंजी उपलब्ध कराकर इनसे गाँवों में छोटे-छोटे उद्योग खड़ा करवा सकते हैं। सरकार सही नीतियों को बनाकर एवं उनका क्रियान्वयन कर हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के साथ-साथ भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूत एवं आत्मनिर्भर बना सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द हिंदू, नई दिल्ली।
2. टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
3. योजना, मई 2020।
4. हिंदुस्तान, पटना।
5. दैनिक जागरण राष्ट्रीय संस्करण, नई दिल्ली।

भारत में आदिवासी वन अधिकारों का एक समाजशास्त्रीय विश्लेशण

दीपक कुमार खरवार

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

सदियों से वन एवं आदिवासी एक-दूसरे से घनिष्ट रूप से जुड़े हुए है। जनजातियों का जीवन वन संसाघनों पर निर्भर रहा है। इसलिए पारिस्थितिकी एवं आर्थिक दृष्टि से जनजातियों को वन एवं वन्य जीवन से अलग नही किया जा सकता हैं। लेकिन विकास के नाम पर सरकार ने ऐसी नीतियों का निर्माण किया जिससे वन एवं वन भूमि पर से आदिवासियों के अधिकार को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया गया एवं सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा मनमाना दोहन किया गया। औपनिवेशिक काल में भी अपने हितों को पूरा करने के लिए ऐसी नीतियों का निर्माण किया गया जिससे बनों पर से आदिवासियों के प्रथागत अधिकार को सीमित किया जा सके एवं दीकूओं को विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का मनमाना दोहन करने के लिए छूट दे दिया गया। हालांकि उत्तर-औपनिवेशिक कानून एवं नीतियों के द्वारा आदिवासियों को सम्मानजनक दर्जा प्रदान किया गया लेकिन उसके बाद भी भूमि अधिग्रहण, विकास प्ररित विस्थापन एवं शोषण जैसी अनेक समस्याए आज भी उनके सामने मौजूद हैं। इस शोध पत्र में वन नीतियों तथा इसका आदिवासियों पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्दः आदिवासी, वन-अधिकार, वन-नीतिया, कानून, विस्थापन, शोषण

प्रस्तावना

भारत विशाल आदिवासियों वाला देश हैं। अफ्रीका के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी आदिवासी आबादी भारत में निवास करती है। 2011 की जनगणना के अनुसार, देश की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की हैं जो भारत के लगभग 15 प्रतिशत भोगौलिक क्षेत्रों में फैले हुए है। सदियों से जनजातियों का निवास स्थान जंगल रहा है। इसलिए जनजातीय समुदाय का जीवन, बनों और वन्य जीवन के साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। जंगल, जनजातियों के निवास स्थान के साथ-साथ उनके जीविका का साधन भी रहा है। इसलिए पारिस्थितिकी और आर्थिक दृष्टि से जनजातियों को बनों से अलग नही किया जा सकता। जंगलो से ही जनजातियों को फल-फूल, कन्द-मूल, स्वच्छ हवा, जड़ी बूटिया, घर बनाने का समान और अन्य अनेक प्रकार की छोटी-मोटी उपयोगी वस्तुए मिलती है। वन आदिवासियों के जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। क्योंकि इसका केवल आर्थिक महत्व ही नहीं है बल्कि सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और धार्मिक भी है। जनजातियों के कूल देवता या टोटम पेड़-पौधो, जानवर, पक्षी, झाड़िया, नदी या अन्य प्रकृति से ही संबंधित होता है, जिसकी वे पूजा करते है। जनजातियों का मानना है कि उनके पूर्वजो की आत्माए इन प्राकृतिक चिजो में ही निवास करती है। इसलिए आदिवासी कभी भी इनको हानि नहीं पंहुचाते है, बल्कि अपने पारंपरिक तरिके से इसका संरक्षण करते है। इसका मतलब यह है कि आदिवासी न केवल आस-पास के वन क्षत्रों में रहना पसंद करते है, बल्कि इन प्राकृतिक संसाधनों का संरंक्षण भी करते है। लेकिन औपनिवेशिक तथा उत्तर-औपनिवेशिक दौर की नीतियों ने जंगलों पर निर्भर आदिवासियों के जंगल के साथ संबंधो को पूरी तरह बदल दिया। औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी हितो को पूरा

करने के लिए वन विभाग की स्थापना किए और वन से संबंधित अनेक प्रकार की नीतियों को बनाया। अपने मंसूबों को पूरा करने के लिए बनों को रिर्जव घोषित कर दिया और उसका लागातार दोहन करते रहे और आदिवासियों को जंगल से संबंधित उनके प्रथागत अधिकार को खत्म कर दिया। जिसमें जंगल में प्रवेश करने, वहां पशुओं को चराने, झूम खेती आदि कई कामो पर रोक लगा दिया गया। जिसके कारण उनको अपना मूल स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने के लिए एवं अपना पारंपरिक व्यवसाय छोड़कर दूसरा व्यवसाय अपनाने के लिए मजबूर होना पड़ा। स्वतंत्रता के बाद भी औपनिवेशिक दौर की नीतियों को कायम रखा गया और कहा गया कि जंगल के संबंध में औपनिवेशिक नीतियाँ को बुनियादी संकल्पनाएँ ठीक थी, उन्हे सिर्फ नई दिशा देने की जरूरत है (पाठक 1994; गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1952; झा 1992)। इन नीतियों ने आदिवासियों के सामने गरीबी, भूखमरी, शोषण, विस्थापन जैसी अनेक समस्याए को उत्पन्न कर दिया।

पूर्व-औपनिवेशिक काल

पूर्व-औपनिवेशिक काल में, भारत में ब्रिटिशों के आगमन से पूर्व वन संसाधनों का उपयोग जंगलो के निवासियों द्वारा किया जाता था और उस समय भारतीय शासकों का बनों भूमि में कोई ज्यादा रूचि नही था। वे जंगलो से अपनी जरूरत भर की कुछ चिजे लेकर संतुष्ट रहते थे। गाडगिल और गुहा (1992) के अनुसार अंग्रेज़ों के आगमन से पहले भारत में 'पारिस्थितिक-समानता' की स्थिति थी। औपनिवेशिक काल से पहले के दौर में जंगलो पर ग्रामिण समुदायों का नियंत्रण था और वे ही इसकी देखभाल करते थे। शासकों का बनों की तरफ ध्यान बहुत कम था। उस समय तीन ही ऐसे वर्ग थे जो जंगलों पर अपना अधिकार होने का दावा प्रस्तुत करते थे। उनमें से पहला ग्रामीण समुदाय था जो जंगल की ज़मीन पर लकड़ी काटने, मवेशियों के लिए चारा इकट्ठा करने और अपने खेती के विस्तार के लिए अपने अधिकार का दावा करते थे। दूसरा वर्ग ज़मीदारों एवं सामंती ज़मीदारों का तथा तीसरा वर्ग सरकार का था। मद्रास प्रेसीडेंसी के 5 अगस्त 1871 के राजस्व समिति के कार्यवाही में कहा गया कि वे सभी, बिना किसी अपवाद के, आदिवासी या सामुदायिक अधिकारों के अधीन हैं, जो कि अनादिकाल से अस्तित्व में हैं एवं ग्रामीण आबादी के लिए बहुत आवश्यक हैं, उन्हे परिभाषित करना बहुत मुश्किल है। यहाँ के जंगल हमेशा से ही सामान्य संपत्ति रहे है।

ईस्ट इंडिया कम्पनी और वन नियम

ब्रिटिश सरकार अपने शुरूवाती दिनों में वन संरक्षण के प्रति उदासीन रही और बनों का अंधाधुन दोहन करती रही। अंग्रेज़ों के आगमन के शुरूआती दौर में लकड़ियों की आपूर्ति और खेती के लिए ज्यादा-से-ज्यादा ज़मीन हासिल करने के मक़सद से जंगलों की काफी बड़ी मात्रा में कटाई की गयी, (रंगाराजन, 1996)। इसी समय, अंग्रेज़ी साम्राज्य के नीति-निर्धारक यह महसूस करने लगे थे कि भारतीय वन रणनीतिक एवं व्यवसायिक रूप से काफ़ी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए उन्हानें राजस्व उद्देश्यों, कृषि एवं वाणिज्यिक शोषण के पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में बनों को नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों के आगमन और भारत के वन संसाधनों के शोषण के कारण भारतीय वन उत्पादन में एक नया मोड़ आ गया। यद्यपि वनवासियों एवं ग्रामीणों को उनके वन के संसाधनों से वंचित नहीं किया गया, लेकिन इस समय तक राज्य द्वारा देश के बनों एवं बंजर भूमि पर अपना वास्तविक स्वामित्व स्थापित करने की कवायद शुरू हो चुकि थी, (प्रसाद, 2011)।

19वीं शताब्दीं के मध्य तक ब्रिटिश सरकार को यह महसूस हुआ कि भारतीय वन संसाधनों में भारी मात्रा में गिरावट हुई है। बनों की इस क्षति ने ब्रिटिश सरकार को वन संसाधनों के संरक्षण के लिए एक नियम बनाने के लिए विवश किया, (सलदानहा, 1966)। 1853 में रेलवे नेटवर्क के निमार्ण के आरंभिक वर्षों में अधिक सुलभ बनों पर अभूतपूर्व हमला हुआ। रेलवे स्लीपर की मॉग को पूरा करने के लिए जंगल के बड़े हिस्से को नष्ट कर दिया गया और इस दौरान बनों की कटाई पर किसी तरह के रोक-टोक की व्यवस्था नहीं की गयी जिसके कारण बहुत सारे पेड़-ज़मीन पर पड़े-पड़े बर्बाद हो गये। 1856 में लार्ड डलहौज़ी ने रेलवे में बड़ी मात्रा में लकड़ी के उपयोग के कारण हो रहे वन बिनाश के प्रभाव को महसूस किया और एक वन नीति बनाने का फैसला किया जिससे बनों को नष्ट हाने से बचाया जा सके, (स्मिथिज, 1925)।

ब्रिटिश राज के समय की वन नीतियां

इतिहास के सभी दौरों में वनवासी, बनों और इसके उत्पादों का प्रयोग करते रहे। इसलिए भले ही सरकारी नोटिस आने के बाद उन्होनें वन भूमि और इसके संसाधनों पर अपना दावा पेश नहीं किया, लेकिन उन्होनें इसका प्रयोग जारी रखा। भारत के औपनिवेशिक शासक इस स्थिति को ख़त्म करना चाहते थे। इसलिए ब्रिटिश सरकार द्वारा वन प्रशासन का स्थापना किया गया जो अपने प्रकृति में अधिकारवादी थे। अपनी औपनिवेशिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंग्रेजों ने जंगल को राष्ट्रीय संपदा के रूप में परिभाषित किया और स्थानीय वनवासी एवं ग्रामीण समुदायों पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगा दिये। इस प्रकार ब्रिटिशों ने वाणिज्यिक उद्देश्यों एवं राष्ट्रीय विकास के नाम पर बनों पर नियत्रण स्थापित कर लिया। आगे ब्रिटिशों के द्वारा बनायी गयी वन नीतियां एवं उसका आदिवासियों के सामाजिक-आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, का कालानुक्रमिक वर्णन किया गया है।

1865 का पहला वन-कानून

1865 के भारतीय वन अधिनियम द्वारा राज्य के एकाधिकार की दावेदारी करने का पहला प्रयास किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य उन वन क्षेत्रों के अधिग्रहण करने में मदद करना था, जिन्हे रेलवे की आपूर्ति के लिए चिन्हित किया गया था। राज्य को यह अधि कार दिया गया कि वह वृक्षों से आच्छादित किसी भी भूमि को जंगल घोषित करे और अधिसूचना द्वारा विनियमित करे, बशर्ते कि इस तरह की अधिसूचना से किसी व्यक्ति या समुदाय के मौजूदा अधिकारो का हनन न हो, (धारा-2)। इस प्रकार वनवासी लोगों के सामाजिक रूप से विनियमित प्रथाओं को कानून द्वारा प्रतिबंधित किये जाने का पहला प्रयास था, (हसनैन, 2009)। इस कानून के माध्यम से वन उत्पाद के उपयोग करने के प्रथागत अधिकार को विशेषाधिकार में बदल दिया गया।

1878 का वन-कानून

1874 में वन अधिकारियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। इसमें 1865 के अधिनियम की कमियों और नये प्रस्तावित अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों पर विस्तार से इस सम्मेलन में विचार-विमर्श हुआ। जिसके आधार पर ब्रेंडिस ने 1875 में वन अधिनियम से संबंधित अपना स्मरण-पत्र (मेमोरंडम) तैयार किया। जिसके परिणामस्वरूप 1878 का भारतीय वन अधिनियम सामने आया। यह बनों पर अपनी सत्ता लागू करने वाला भारत सरकार द्वारा दूसरा कदम था जिसमें आदिवासियों एवं स्थानीय लोगों को जंगल में प्रवेश करने, वहां पशुओं को चराने आदि कई कामों पर रोक लगा दी गयी, (हसनैन, 2009)।

1878 के वन अधिनियम द्वारा बनों को तीन भागों में बाटा गया, (गाडगिल और गुहा, 1992)। पहले प्रकार के बनों को आरक्षित वन (रिजवर्ड फ़ॉरेस्ट), दूसरे प्रकार के बनों को संरक्षित बनों (प्रोटेक्टेड फ़ॉरेस्ट), और तीसरे प्रकार के बनों को ग्राम बनों का नाम दिया गया। दरअसल, वन विभाग के गठन और 1878 के वन अधिनियम द्वारा अंग्रेजों ने एक साथ दो लक्ष्यों को पूरा किया- पहला, उन्होंने वनवासी समूहों के जंगल और उसके संसाधनों पर अधिकार को नकारा और दूसरा जंगल के संसाधनों के दोहन के लिए एक स्पष्ट व्यवस्था कायम की। इस प्रकार अंग्रेजों ने जंगलों को पूरी तरह से राज्य की सम्पत्ति में बदल दिया। इस व्यवस्था के कारण सदियों से जंगल में रहने वाले आदिवासी समूह 'अतिक्रमक' बन गये। साथ ही, जंगल में उनके सारे परंपरागत अधिकार 'छूट' में तब्दील हो गये, (सिंह, 1986; गुहा, 1989)।

1894 की पहली राष्ट्रीय वन-नीति

1894 की वन नीति भारत की पहली औपचारिक नीति थी, जिसके माध्यम से वन उत्पादों, राज्य संरक्षकता और स्थायी खेती के वाणिज्यिक दोहन को ज्यादा महत्व दिया गया। यह नीति मुख्य रूप से डॉ. वोएलकर द्वारा 1893 में दिए गये रिपोर्ट 'भारतीय कृषि में सुधार' के सिफारिशों पर आधारित था। इस नीति के माध्यम से ब्रिटिश प्रशासन ने जमींदारों को राज्य की राजस्व आय बढ़ाने के लिए खुले जंगलों को कृषि भूमि में परिवर्तन करने लिए प्रोत्साहित किया। वास्तव में इस नीति ने लोगों के हितो के स्थान पर राज्य के हितों के ज्यादा प्रमुखता दिया। इस वन-नीति के अन्तर्गत पहली बार वन-क्षेत्र का इस्तेमाल करने वालों के लिए पहले उन्हें चाहे कितनी ही आजादी क्यों न प्राप्त हो; उनके अधिकारों, सुविधाओं और प्रतिबन्धें की व्यवस्था की गयी। 1894 में पहली बार वन-अधिकारियों ने जनजातियों के अधिकारों को नियमित और सीमित करने के लिए सत्ता का इस्तेमाल किया (हसनैन, 2009)।

भारतीय वन अधिनियम-1927

1927 का भारतीय वन अधिनियम, 1878 के वन अधिनियम का संशोधित ही रूप था। यह अधिनियम वन-भूमि और वन उत्पादन पर आदिवासियों एवं स्थानीय ग्रामीण लोगों के अधिकारों को विनियमित करने का प्रयास था। इसके अन्तगर्त जंगलों पर राजकीय नियंत्रण बढ़ाने के उद्देश्य से विस्तृत नियम-कायदों की व्यवस्था की गयी। इसने न केवल बनों पर लोगों के अधिकारों को विनियमित किया बल्कि वन अधिकारियों के लिए सभी नियम-कानूनों को भी सहिताबद्ध किया। इस कानूनी व्यवस्थाओं के कारण वन-विभाग के रेंजरो, चौकीदारो एवं अधिकारियों ने अपने शक्ति का मनमाने ढ़ग से इस्तेमाल जनजाति एवं ग्रामीण लोगों पर किया। जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय लोगों को अपना मूलस्थान छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। 1878 में जो अधिकार बनों पर स्थानीय समुदायों को मिला था, उसको 1927 के भारतीय वन अधिनियम के द्वारा समाप्त कर दिया गया। अब कोई भी समुदाय वन अधिकारी के जाँच-पड़ताल के बिना वन भूमि पर अपना अधिकार हाने का दावा नही कर सकता था। इसके माध्यम से झूम खेती पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। इस तरह इस कानून के माध्यम से राज्य को बनों को व्यवसायिक रूप से इस्तेमाल करने का स्पष्ट अधिकार मिल गया और बनों के सामुदायिक स्वामित्व को समाप्त कर दिया गया। इन विभिन्न प्रतिबंधे के कारण जनजातियों एवं स्थानीय लोगो के सामने व्यवसाय और आजीविका जैसी समस्याऐं उत्पन्न हो गयी, जिसने बहुत से लोगो को अपना पारंपरिक व्यवसाय बदलने एवं आजीविका के लिए अपना मूल स्थान छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़ा। वास्तव में इस नीति ने आदिवासियों एवं स्थानीय लोगो के अधिकारों को सरकार के हाथों में स्थानांतरित कर दिया। अब सामान्य सम्पत्ति राज्य सम्पत्ति बन गयी।

स्वतंत्रता के बाद की वन नीतियां एवं कानून

राष्ट्रीय वन-नीति 1952: स्वतंत्र भारत की वन नीति में औपनिवेशिक दौर की विरासत कायम रखी गयी। 1952 की वन नीति इसका प्रमुख उदाहरण है। 1952 की वन नीति में यह घोषित किया गया कि जंगल के संबंध में औपनिवेशिक नीतियों की बुनियादी संकल्पनाएँ ठीक थीं, केवल उन्हे नयी दिशा देने की जरूरत है (पाठक 1994; गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1952; झा 1992)। इसलिए नई नीति में 'सार्वजनिक हित' की जगह 'राष्ट्रीय हित' को महत्व दिया गया। राष्ट्रीय-हित के नाम पर स्थानीय समुदायों को वन प्रबंधन से अलग-थलग रखने की नीति को वैधता प्रदान की गयी। इसमें यह कहा गया कि किसी जंगल के फायदे से संपूर्ण राष्ट्र को सिर्फ इसलिए वंचित नही किया जा सकता है कि 'क्योकि संयोगवश कोई गाँव एक जंगल के नजदीक बसा है' (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1952)। इससे प्रमुख रूप से आदिवासी ही प्रभावित हुए। इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि देश के कुल जंगल का 60 प्रतिशत क्षेत्र आदिवासी बहुल जिलों के अन्तगर्त आता है (कैम्पेन 2004)। इसका नतीजा यह हुआ कि अशिक्षित एवं पारम्परिक आदिवासी समाज अपनी भूमि या अधिकारों का दावा नही कर पाये। वन विभाग द्वारा इन आदिवासियों को 'अतिक्रमक' घोशित कर दिया गया। आदिवासी समुदाय जिस जमीन का उपयोग झूम खेती के लिए करते थे उसे भी जंगल मान लिया गया। इसका मतलब यह हुआ कि ये लोग जिस जगह पर पीढ़ियो से रह रहे थे, वहाँ अब इनका रहना गैर कानूनी बन गया। वास्तव में इस नीति में जंगल और इसके संसाधनों पर निर्भर समुदायों के हितों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। बनों संसाधनों के प्रबंधन में इनकी इच्छाओं और विचारों को महत्व नही दिया गया (गाडगिल और गुहा 1992)। आदिवासियों के 'अधिकार' जो औपनिवेशिक काल में 'विशेषाधिकार' में परिवर्तित कर दिए गये थे, उन्हे 1952 की वन नीति द्वारा 'रियायत' में बदल दिया गया। यह स्वतंत्र भारत के वन नीति के अलोकतांत्रित स्वरूप को दिखाता है।

भारत सरकार ने इस नीति का एवं इसका आदिवासियों पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए 1960 में यू. एन. ढेबर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। छह सदस्यीय इस समिति ने अपने रिपोर्ट में यह बताया कि आदिवासियों की मुख्य समस्या वन अधिकारों का न मिलना, ज़मीन का छीन जाना और विकास परियोजनाओं के कारण हाने वाला विस्थापन है (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1961)। आयोग ने अपने रिपोर्ट में सरकार से सिफारिश किया कि 1952 की वन नीति पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए और आदिवासियों को वन भूमि पर खेती करने के लिए अनुमति देनी चाहिए।

नैशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर 1976 की रिपोर्ट और जनजातियों के अधिकार

एन0 सी0 ए0 1976 द्वारा किया गया सिफारिश आदिवासियों के दृष्टिकोण से बिनाशकारी था। इस आयोग में बनों का व्यवसायीकरण करने पर जोर दिया गया और बनों एवं वन उत्पादनों पर जनजातीय लोगों के अधिकारों को सीमित करने की सिफारिश की गयी। इसमें यह कहा गया कि स्थानीय लोगों को वन-उत्पादनों की नि:शुल्क आपूर्ति, उनके अधिकारो और उन्हे दी गयी रियायतों की वजह से जंगलो को भारी क्षति पहुंची हैं, इसलिए इस प्रक्रिया को बदल देना चाहिए। क्योंकि स्थानीय लोगों ने जंगलों के रख-रखाव और उससे संबंधित नियम कानूनों के पालन की दिशा में कोई भी योगदान नही दिया है। इस आयोग ने समान वन कानूनों की भी सिफारिश की जिससे राज्यों के बीच वन कानूनों से संबंधित जो असंगतिया व्यापत है उनको दूर किया जा सके तथा साथ में यह भी सिफारिश किया गया कि कार्यात्मक रूप से सभी वन भूमि को संरक्षित बनों, उत्पादक बनों एवं सामाजिक बनों के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

1976 में एक बड़ा बदलाव हुआ जिसमें संविधान के 42वें संशोधन द्वारा बनों के विषय को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित कर दिया गया। जिससे वन से संबंधित कानून बनाने का अधिकार अब केन्द्र को प्राप्त हो गया। परिणामस्वरूप अक्टूबर, 1980 में फारेस्ट कंजरवेशन आर्डीनेन्स लागू किया गया। बाद में उसे संसद में स्वीकृत होने के बाद कानून बना दिया गया।

वन-संरक्षण अधिनियम 1980

एन0 सी0 ए0 की सिफारिशो के आधार पर 1980 में एक वन विधेयक का मसौदा तैयार किया गया। इस विधेयक में वन भूमि और वन उत्पादन पर लोगों के अधिकारों को सीमित करने का प्रावधान किया गया। सरकार को भी इस अधिनियम की उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी भी भूमि को वन भूमि में घोषित करने का अधिकार दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा राज्य सरकारों को यह निर्देश दिया कि केन्द्र सरकार के अनुमति के बिना राज्य किसी भी आरक्षित वन या अनारक्षित वन के हिस्से को अपने किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवंटित या इस्तेमाल नही करेगा और इसमें स्थानीय लोगों के अधिकारों के विपरित भी एक विशेष प्रावध ान किया गया। इस तरह केन्द्र सरकार ने वन एवं वन उत्पादन से संबंधित सारे अधिकार अपने हाथों में ले लिए। बाद में इस विधेयक को संसद द्वारा पारित करके एक अधिनियम बना दिया गया।

आदिवासियों एवं बनों से संबंधित बी0 के0 रॉयबर्मन समिति

गृह मंत्रालय ने 1980 में जनजातीय अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए वन नीति को पुन: परिष्कृत करने के उद्देश्य से नृविज्ञानी श्री बी0 के0 रॉयबर्मन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति ने 1982 में अपनी रिपोर्ट पेश की। अपने रिपोर्ट में समिति ने जनजातियों के जीवन में बनों के महत्व पर जोर दिया। नि:शुल्क ईंधन, चारा, और घर बनाने के लिए लकड़ी के अलावा आदिवासी लोग आय का एक तिहाई हिस्सा जंगल से ही प्राप्त करते है। समिति ने अपने रिपोर्ट में यह भी अंकित किया कि जंगलों से संबंधित समस्त सरकारी कारवाई कुल मिलाकर राजस्व उपार्जित करने की है। वन नीति के पैरामीटर में आदिवासियों की अर्थव्यवस्था का कोई महत्वपूर्ण स्थान नही है, ज्यादा से ज्यादा आदिवासियों से मजदूरी पर काम ले लिया जाता है। समिति ने यह महसूस किया कि एक वन नीति ऐसी होनी चाहिए जो वन निवासियों के साकारात्मक भूमिका एवं महत्व को समझे, जो बनों की कटाई, संरक्षण, उत्पादन और भूमि का प्रबन्धन जैसी समस्याओं से निपटने में निपुड़ है।

राष्ट्रीय वन नीति 1988 और जनजातियों के अधिकार

भारतीय वन नीति 1988, स्वतंत्र भारत की दूसरी वन नीति थी और पहली ऐसी वन नीति थी जिसने सामुदायिक आजीविका में सुधार प्राप्त करने के उद्देश्य से बनों के संरक्षण एवं प्रबंधन में स्थानीय लोगों की भूमिका को महत्व दिया (बेहेरा और ऐन्जल, 2006)। इस वन नीति का सर्वप्रमुख उद्देश्य प्राकृतिक विरासत के रूप में बनों के संरक्षण के माध्यम से पर्यावरण संबंधी स्थायित्व और पारिस्थितिक एवं वातावरण संबंधी संतुलन को बनाए रखना था, जो सभी जीव स्वरूपों, मानव, पशु और वनस्पति को जीवित और कायम रखने क लिए जरूरी था। इन वन नीति की सबसे ज्यादा खास बात यह थी कि जो बनों के साथ जनजातियों के सन्दर्भ

में कही गयी। उसमें कहा गया कि आदिवासियों का जंगलों के साथ जो प्रतिकात्मक संबंध रहा है उसका सम्मान करते हुए वन-प्रबन्ध की सभी एजेंसियों और वन विभागों का बुनियादी कर्त्तव्य यह है कि बनों के संरक्षण, उनके पुनर्विकास और उनकी स्थितियों में सुधार करने के सभी कार्यों में आदिवासियों को घनिष्ठता के साथ जोड़ा जाए, वन और उसके आस-पास रहने वाले लोगो को अच्छे रोजगार उपलब्ध कराए जाए तथा साथ ही उन लोगों की परम्पराओं, अधिकारों और हितो को सुरक्षित रखा जाए। जंहा तक आदिवासियों के अधिकारों और उन्हे मिलने वाली रियायतों का संबंध है तो इस नीति में स्पष्ट कहा गया कि जो भी अधि कार और रियायतें आदिवासियों को पहले से प्राप्त हैं वे उन्हे मिलते रहेगे।

वन-अधिनियम 2006

एक लंबे संघर्ष के बाद वर्श 2006 में एक महत्वपूर्ण अधिनियम पारित हुआ जिसे "अनुसूचित जनजाति तथा अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम", 2006 कहा गया। यह अधिनियम आदिवासी समुदाय के लिए सरकार द्वारा बनाया गया एक एतिहासिक अधिनियम है। इस अधिनियम में वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत वन निवासियों के मान्यता प्राप्त अधिकारों में दीर्घकालीन उपयोग के लिए जिम्मेदारी और प्राधिकार, जैव विविधता का संरक्षण और पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखना और वन में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत वन निवासियों की जीविका तथा खाद्य सुरक्षा को सुरक्षित करते समय बनों की व्यवस्था को सुदृढ़ करना भी सम्मिलित किया गया है।

निष्कर्ष

सदियों से आदिवासी समुदाय बनों में अपना जीवन व्यतीत करते रहे है। जंगलों से ही आदिवासियों को अपने जीविकोपार्जन के लिए चीजे जैसे फल-फूल, कंद-मूल, जड़ी बुटियों, शहद आदि प्राप्त होता रहा है। जनजाति झूम खेती के माध्यम से अनाज उगाते थे तथा उन्हे अपने पशूओं के लिए चारा जंगलों से ही प्राप्त करते थे। आदिवासियों का सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन घनिष्ट रूप से बनों से जुड़ा हूआ था। लेकिन औपनिवेशिक तथा स्वतंत्रता के बाद की नीतियों ने बनों के साथ जो आदिवासियों के संबंध थे उसको पूरी तरह से बदल दिया। अपने साम्राज्यवादी हितो को पूरा करने के लिए बनों का लागातार दोहन किया गया और उसके लिए बकायदा वन-विभाग की स्थापना तथा नियम भी बनाये गए, जिसमें जनजाति अधिकारों की तरफ कोई ध्यान नही दिया गया। जिन वनवासियों का जंगलो पर वास्तविक अधिकार था, जहाँ से उनकी अर्थव्यवस्था संचालित होती थी तथा जो खुद बनों का संरक्षण करते थे, उनको इस प्रथागत अधिकार को कानून बनाकर समाप्त कर दिया गया। जिसके कारण आदिवासियों के सामने गरीबी, भूखमरी, शोषण, विस्थापन जैसी अनेक समस्याए को उत्पन्न हो गयी। इसतरह से आदिवासियों को बनों से अलग करके ना ही बनों या किसी भी प्राकृतिक संसाधनों का बचाया जा सकता है और ना ही उनकी समस्याओं को समाप्त किया जा सकता है। भारत सरकार द्वारा बनाया गया 2006 का अधिनियम आदिवासियों के लिए एक आशा का किरण ले कर आया जिसमें फिर से आदिवासियों को बनों एवें वन्य उत्पादनों पर उनके अधिकार को देने का प्रयास किया गया।

सन्दर्भ सूची

1. कैम्पन फॉर सर्वाइवल ऐंड डिग्निटी 'कैम्पन', (2004) *एन्डेन्जर्ड सिमबाययोसिस: इविक्शन्स ऐंड इंडिया फॉरेस्ट कम्युनिटीज, रिपोर्ट ऑफ द जन सुनवाई*, जुलाई 19-20, 2003, नई दिल्ली।
2. गाडगिल, माधाव और रामचंद्र गुहा (1992) *दिस फिस्सर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
3. गुहा, रामचंद्र (1989) द *अनक्विट वुड्स: इकोलॉजिकल चेंज एडं पीजेन्ट रेजिस्टेंस इन द हिमालया,* नयी दिल्ली: ऑक्सफोड युनिवर्सिटी प्रेस।
4. गाडगिल, माधाव और गुहा, रामचन्द्र. (2018) *यह दरकती ज़मीन, भारत का पारिस्थितिकी इतिहास* (अनुवाद, कमल नयन चौबे) नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1952) *रेज़ोल्यूशन ऑन द नैशनल फॉरेस्ट पॉलिसी,* शिमला: मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन।

6. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1961) *रिपोर्ट आफ द शेड्यूल्ड एरियाज ऐंड शेड्यूल्ड ट्राइब्स कमिटी*, नई दिल्ली।
7. चौबे, कमल नयन (2015) *जंगल की हकदारी, राजनीति और संघर्ष*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
8. झा, एल. के. (1992) *इंडियाज़ फॉरेस्ट पॉलिसिज,* नई दिल्ली: आशीष पब्लिकेशन।
9. पाठक, अखिलेज़्वर (1994) कॉन्टेस्टेड डोमेन्स: द स्टेट, पीजेन्ट्स ऐंड फॉरेस्ट्स इन कॉन्टेम्पररी इंडिया, नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन।
10. प्रसाद, एस डी जे एम (2011) *फॉरेस्ट इडिजिनस पीपुल ऐंड इंस्टीट्यूशन्स: ए स्टडी ऑफ राम्पा कंट्री,* (डाक्टरल डिजरटेशन) https:shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/1876?mode=kfull
11. हसनैन, नदीम. (2016) *जनजातिय भारत,* (आठवा संस्करण), नई दिल्ली: जवाहर पब्लिशर्स।
12. बेहेरा, बी. और ऐन्जल, एस, 'इंस्टीट्यूशन्स एनालिसिस ऑफ एवोल्यूशन ऑफ ज्वाइंट फॉरेस्ट मैनेजमेट इन इंडिया: ए न्यू इंस्टीट्यूशन्ल इकोनॉमिक्स एप्रोच', फॉरेस्ट पालिसी ऐंड इकोनॉमिक्स, vol.8, No.4, 2006, pp.350-362.
13. स्मिथिज, ई. ए. (1925) *इंडियाज फ़ारेस्ट वेल्स,* लंदन: हर्की मिलफोर्ड।
14. सिंह, छत्रपति (1986) *कॉमन प्रॉपर्टी ऐंड कॉमन पावर्टी: ऐंड द लॉ,* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
15. रंगाराजन, महेश (1996) *फेंसिग द फॉरेस्ट कंज़रवेशन ऐंड इकोलॉजिकल इन इंडियाज सेन्ट्रल प्रोविन्सेज (1860-1914),* दिल्ली: ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
16. सलदान्हा, आई. एम. (1996) कॉलोनियलिज्म ऐंड प्रोफेशनलिज्म: ए जर्मन फॉरेस्ट्री इन इंडिया, *इकोनॉमिक ऐंड पोलिटिकल वीकली।*
17. एनएआई, फॉरेस्ट्स, बी प्रोग्स, मेंबर 37-47, दिसम्बर 1875, 'एक्सप्लेनेटरी मेमोरेंडम ऑन ड्राफट फॉरेस्ट बिल', बाई ब्रैंडिस, आईजीएफ, 3 अगस्त, 1869।

भारतीय युवाओं में विवाह पूर्व यौनिक व्यवहार : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सुबोध कान्त

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सारांशिका

प्राकृतिक स्वरूप में किसी भी व्यक्ति एवं समाज में प्रेम एवं यौन सम्बन्धों का उपजना एक सामान्य प्रघटना है, परन्तु प्रत्येक समाज में यौन सम्बन्धों के नियमन एवं नियंत्रण के लिए कुछ सामाजिक नियम एवं प्रावधान बनाए जाते हैं। यह यौन व्यवहार नियंत्रणकारी प्रावधान अधिकतम समाजों में विवाह से पूर्व यौन सम्बन्ध व व्यवहार करने की अनुमति नहीं प्रदान करते, परन्तु सामाजिक सांस्कृतिक विकास तथा व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकारों पर अत्यधिक बल देने के फलस्वरूप आधुनिक एवं समकालीन समाज में विवाह से पूर्व यौन सम्बन्धों को धीरे-धीरे मूकस्वीकृति प्रदान की जाने लगी है; परन्तु भारतीय समाज परम्पराओं, प्रथाओं एवं रूढ़ियों द्वारा अनौपचारिक तौर पर संचालित होने के कारण वर्तमान समय में भी अधिकांश समुदायों, समाजों एवं क्षेत्रों में किसी भी युवक या युवती द्वारा विवाह के पूर्व प्रेम एवं मुख्यत: यौन सम्बन्ध स्थापित करना एक घृणित सामाजिक अपराध माना जाता है। विवाह से पूर्व प्रेम एवं यौन सम्बन्ध स्थापित करने के प्रकरण में स्त्रियों पर अत्यधिक प्रतिबंध आक्षेपित किए जाते हैं। विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करने वाली स्त्री कोकुलटा, कुलक्षिणी और वेश्या तक भी कह कर सम्बोधित किया जाता है। समाज के रूढ़िवादी रवैये तथा सामाजिक प्रतिबंधें के कारण विवाह पूर्व प्रेम एवं यौन सम्बन्धों में रहने वाले युवा सामाजिक तौर पर अपने सम्बन्धों को स्वीकार नहीं करते; परन्तु नैसर्गिक रूप से भारत में भी ऐसे सम्बन्ध लगातार बढ़ रहे हैं। किशोरों एवं युवाओं में विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध बनाना उनके मित्र मंडली व समकक्ष समूह में क्षमता एवं कौशल से जोड़कर देखा जाता है तथा कई बार मित्रों द्वारा ऐसे सम्बन्धों को अपनाने के लिए डेयर भी दिया जाता है। मित्र मंडली, समकक्ष समूह तथा संदर्भ समूह के प्रभाव के कारण भी अधिकांश युवा ऐसे सम्बन्धों में आने के लिए प्रेरित होते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध प्रविधि द्वारा युवाओं से विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों एवं व्यवहारों के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण, वैचारिकी, मनोवृत्ति एवं अन्य समाजशास्त्रीय पहलुओं पर मत एवं परिप्रेक्ष्यों को जानने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द: विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध, यौनिक व्यवहार, युवक एवं युवतियां, सामाजिक अपराध, संदर्भ समूह, यौनाचार

परिचयात्मक पृष्ठभूमि

यौनिक सम्बन्ध एवं व्यवहार किसी भी समुदाय व समाज में चर्चाओं एवं विचार मंथन का केंद्र बिंदु बना रहता है। भारतीय समाज एवं संस्कृति में विभिन्न परम्पराओं, प्रथाओं, एवं रूढ़ियों द्वारा यौन व्यवहारों पर अत्यधिक नियंत्रण होने के कारण यह विषय युवाओं को अत्यधिक आकर्षित करता है। भारत में परम्परात्मक रूप से विवाह पूर्व किसी भी व्यक्ति से यौन सम्बन्ध स्थापित करना या उससे सम्बन्धित कोई अन्य व्यवहार करना अतिशय स्वरूप में निषिद्ध है और इसे सामाजिक अपराध माना जाता है; परंतु भारतीय समाज के आधुनिकीकरण के कारण लोगों द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अत्यधिक बल देने, परम्पराओं, प्रथाओं, एवं रूढ़ियों को अत्यधिक महत्व न देते हुए आधुनिक मूल्यों को आत्मसात करने तथा वैश्वीकरण व पश्चिमीकरण के प्रभाव के कारण पश्चिम के

देशों की जीवन शैली व यौन सम्बन्धी व्यवहारों को आत्मसात करने के फलस्वरूप भारतीय समाज की नयी पीढ़ी अपने यौन व्यवहारों को भी बिना किसी बाधा के जीना चाहती है और इसे टैबू की तरह नहीं देखती; परंतु एक जैसी विचारधारा व व्यवहार प्रतिमान सम्पूर्ण भारतीय समाज में नहीं है, बल्कि यह विविध समुदायों और समाजों में विविध प्रकारों से नियंत्रित एवं नियमित हैं।

भारत के जिन समाजों व समुदायों में युवाओं द्वारा प्रेम सम्बन्ध के साथ-साथ यौन व्यवहार एवं यौनिक सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं, वह सामाजिक अपराध एवं निषिद्ध व अनुचित व्यवहार होने के कारण छिपे तौर पर संपादित किए जाते हैं। यहां किसी भी व्यक्ति की यौन सुचिता उस के इज्जत एवं प्रतिष्ठा से सम्बन्धित करके देखा जाता है। यौनिक सुचिता का नियम स्त्रियों पर आज भी कड़ाई के साथ अधिरोपित एवं प्रक्षेपित किया जाता है और पूर्णत: पालन करवाने का प्रयास किया जाता है। भारतीय समाज की रूढ़िवादी तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था व मर्दवादी मानसिकता के कारण स्त्रियों की यौन सुचिता को न सिर्फ उनकी प्रतिष्ठा से जोड़कर देखते हैं, बल्कि उस के परिवार, समुदाय व जाति के प्रतिष्ठा से भी सम्बन्धित करके देखा जाता है। यही मुख्य कारण है कि यौन व्यवहारों के संदर्भ में स्त्रियों पर अत्यधिक नियंत्रण स्थापित किए जाते हैं और साथ ही मुख्यत: स्त्रियां ही यौन अपराधें का शिकार होती हैं।

उपर्युक्त स्थितियों एवं रूढ़िवादी विधानों की परवाह न करते हुए वर्तमान भारतीय समाज का अधिकांश युवा यौन सम्बन्धी निषिद्धता को पूर्णत: मानने से इन कारकरता प्रतीत होता है। अधिकांश युवक-युवतियां अपने व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए प्रेम सम्बन्ध में आते हैं और यौनिक सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। अनेक अध्ययन सिद्ध करते हैं कि ऐसे सम्बन्ध एवं व्यवहार बड़े शहरों (मेट्रोपॉलिटन सिटीज) में अत्यधिक है, क्योंकि वहां के समाजों में यौन सम्बन्धी रूढ़िवादिता कम है या नहीं है।

भारत में विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध : एक सामाजिक अपराध

भारत में आधुनिकीकरण व पश्चिमीकरण के अत्यधिक प्रभाव एवं भारतीय लोगों द्वारा उसके व्यवहार प्रतिमानो को आत्मसात करने के पश्चात भी व्यावहारिक स्तर पर यौन रूढ़िवादिता से मुक्ति नहीं मिली है। कानूनी रूप से वयस्क व्यक्ति आपसी सहमति से प्राकृतिक यौन व्यवहार एवं यौनिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, यह स्वतंत्रता भारतीयों को बहुत पहले ही क्यों न मिल गई हो परंतु भारतीय समाज अनौपचारिक रूप से मूलत: परम्पराओं, प्रथाओं, रूढ़ियों आदि द्वारा संचालित होने के कारण वह विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को स्वीकार नहीं करता और इसे एक सामाजिक अपराध ही समझा जाता है। प्राकृतिक रूप से यौन आवेगो के कारण सभी समाजों में किशोर एवं युवा स्वभावत: प्रेम सम्बन्धों एवं यौन सम्बन्धों में आते हैं, परंतु यह क्रिया समाज से छिपकर की जाती है। कोई भी व्यक्ति अपने ऐसे सम्बन्धों को उजागर कर अपनी, अपने परिवार व समुदाय की प्रतिष्ठा दांव पर नहीं लगाना चाहता। जिन समुदायों व समाजों में यौन व्यवहार पर अत्यधिक नियंत्रण है या फिर कुछ विशेष वर्ग या जाति से यौन एवं प्रेम सम्बन्धों पर नियंत्रण है, उनके अनेक प्रकरणों में ऑनर किलिंगत कभी कर दिया जाता है। भारत के पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा अन्य राज्यों से ऑनर किलिंग की खबरें वर्तमान कथित उत्तर-आधुनिक एवं सभ्य समाज में भी लगातार आती रहती हैं। अपेक्षाकृत स्त्रियों एवं लड़कियों की यौनिकता पर अत्यधिक नियंत्रण स्थापित किया गया है, जिसके केंद्र में यौन सुचिता है। रूढ़िवादी समाज व मर्दवादी मानसिकता द्वारा स्त्री यौन शुचिता को शडङंत्रकारी रूप से इतना महत्व दिया गया है कि यदि समुदाय के लोगों को यह ज्ञात हो जाए कि कोई लड़की विवाह पूर्व ही इसी प्रकार से किसी भी व्यक्ति से यौन सम्बन्ध स्थापित की है तो उसको कुलटा एवं वेश्या के समान देखा जाने लगता है और समाज में उसका व उसके परिवार की प्रतिष्ठा मिट्ठी में मिल जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उनका घर से बाहर निकलना दूभ रहो जाता है तथा सम्मान के साथ सामान्य जन जीवन व्यतीत करने का अधिकार समाज द्वारा छीन लिया जाता है।

संदर्भ व समकक्ष समूह एवं यौन व्यवहार

समाजीकरण की प्रक्रिया में संदर्भ एवं समकक्ष समूह की अतिमहत्वपूर्ण भूमिका होती है। संदर्भ समूह एक ऐसा समूह होता है जिसके कार्य व्यवहारों का व्यक्ति बचपन से तब तक अनुसरण करता है, जब तक कि वह स्वयं उस समूह के समकक्ष न हो जाए। इसी अनुसरण की प्रक्रिया में हम प्रेम एवं यौन सम्बन्धी व्यवहारों का भी अनुसरण करते हैं, जो हमें उन्हीं के अनुरूप व्यवहार करने

के लिए प्रोत्साहित एवं दिशा निर्देशित करता है। किशोरों एवं युवाओं के संदर्भ समूह सामान्यत: कोई फिल्म स्टार या सीनियर्स होते हैं, जिनके फैशन व अन्य गुणों के साथ प्रेम सम्बन्धों में आने और विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों सम्बन्धी व्यवहार का भी किशोर एवं युवा अनुसरण करते हैं या इसका प्रयास करते हैं। ऐसा वह इसलिए करते हैं क्योंकि वह उन्हें रोल मॉडल समझते हैं।

इसके अलावा मित्र मंडली या समकक्ष समूह भी किसी भी किशोर या युवाको अत्यधिक प्रभावित करता है। किशोरावस्था एवं युवावस्था किसी भी युवक व युवती की जिंदगी का एक ऐसा काल होता है, जिसमें उसका अहम् उच्चतम स्तर पर होता है।वह किसी भी पक्ष में किसी भी व्यक्ति से कमतर नहीं दिखना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में जब प्रेम सम्बन्धों में आने और विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करने या अन्य यौन सम्बन्धी व्यवहारों को संपादित करना सम्बन्धित व्यक्ति के मित्र मंडली या समकक्ष समूह में क्षमता एवं कौशल से जोड़कर देखा जाता है और उसे अपेक्षाकृत अधिक प्रतिष्ठित माना जाता है तो यह वैचारिकी व क्रियाकलाप सभी युवाओं को विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों की तरफ सामाजिक प्रभाव के कारण भी आकर्षित करती है; क्योंकि वह भी यह सिद्ध करना चाहता है कि उसके पास भी क्षमता व कौशल है और वह भी विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों का उपभोग कर सकता है।

किशोरावस्था एवं युवावस्था में व्यक्ति की ऐसी प्रवृत्ति अत्यधिक होती है कि वह सामाजिक विचलन आसानी से कर सकता है और ऐसा करने के लिए मित्रों द्वारा टास्क या डेयर भी दिया जाता है। मित्रों द्वारा दिया गया डेयर पूर्ण न कर पाना मित्र मंडली में उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाती है और उसकी महत्ता को न्यूनतम करती है। यही कारण है कि किशोर या युवा कोई भी रिस्क लेकर डेयर पूरा करने के क्रम में भी यौन सम्बन्धों एवं उससे संबंधित अन्य व्यवहारों को भी अपनाते हैं और इसी प्रक्रिया व समाजीकरण के तहत दूसरे किशोरों एवं युवाओं को प्रभावित करते हैं।

अध्ययन प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन में अनुसंधानकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य को अध्ययन क्षेत्र के रूप में स्वीकार करते हुए उसमें निवास करने वाले युवाओं से विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध एवं व्यवहार के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण, वैचारिकी, मनोवृति तथा अन्य समाजशास्त्रीय पहलुओं पर मत एवं परिप्रेक्ष्यों कोजानने का प्रयास किया गया है तथा समग्र के रूप में अठारह से पैतीस वर्ष आयु वर्ग के युवक एवं युवतियों को चुना गया है। अध्ययन को पूर्ण करने के लिए शोध के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अनुसंधानकर्ता द्वारा वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। इस शोध कार्य में आंकड़ा संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों का प्रयोग किया गया हैं। प्राथमिक आंकड़ा संकलन के लिए अनुसंधानकर्ता द्वारा असंभाव्यता मूलक प्रतिचयन के तहत स्वैच्छिक प्रतिचयन विधि को अपनाते हुए गूगल फॉर्म की मदद से प्रश्नावली तैयार कर आंकड़ा संग्रहित किया गया है। आंकड़ों के द्वितीयक स्रोत के रूप में अनुसंधानकर्ता ने शोध विषय पर लिखी गई पुस्तकों, शोध पत्रों, वेबसाइट्स आदि का उपयोग किया है।

प्रस्तुत अनुसंधान में कुल 150 प्रतिदर्शों से सूचनाएं ली गई हैं, जिसमें 67.3 प्रतिशत उत्तरदाता पुरुष, 32 प्रतिशत महिलाएं एवं 0.7 प्रतिशत अन्य लिंग से सम्बन्ध रखते हैं। शोध में शामिल होने वाले उत्तरदाताओं में 18 से 21 वर्ष आयु वर्ग के 9.3 प्रतिशत, 22 से 25 वर्ष आयु वर्ग के 27.3 प्रतिशत, 26 से 30 वर्ष आयु वर्ग के 28 प्रतिशत तथा एक 30 से 35 वर्ष आयु वर्ग के 35. 3 प्रतिशत उत्तरदाता हैं। यदि हम उत्तरदाताओं को उनकी शैक्षिक स्थिति के आधार पर वर्गीकृत करें तो 40 प्रतिशत शोधर्थी, 17. 3 प्रतिशत परास्नातक विद्यार्थी, 10.7 प्रतिशत स्नातक विद्यार्थी तथा 32 प्रतिशत जॉब या नौकरी करने वाले उत्तरदाता शोध में सम्मिलित हुए। वहीं उनकी वैवाहिक स्थिति पर गौर करें तो 58 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित, 30 प्रतिशत विवाहित व 11.3 प्रतिशत विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्ध में है तथा 0.7 प्रतिशत तलाकशुदा है।

युवाओं में विवाह पूर्व यौन व्यवहार : बिंदुवार शोध परिणाम

1. सर्वाधिक 66.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि भारतीय समाज व संस्ख्रति में यौनिक व्यवहारों के सम्बन्ध में रूढ़िवादिता है, वहीं 24 प्रतिशत उत्तरदाता कुछ हद तक यौन सम्बन्धी रूढ़िवादिता की विद्यमानता को स्वीकार करते हैं; जबकि 6.7 प्रतिशत उत्तरदाता भारतीय समाज में किसी भी प्रकार की यौन रूढ़िवादिता को स्वीकार नहीं करते हैं और 2.7 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ रहे।

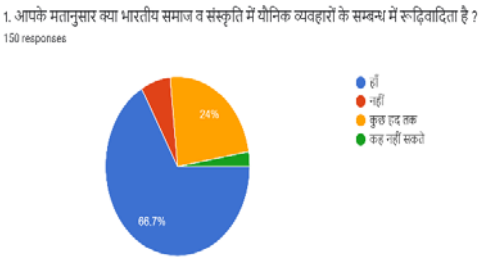

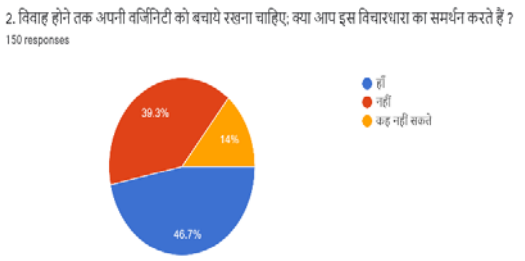

2. विवाह होने तक अपनी वर्जिनिटी को बनाए रखना चाहिए, इस विचारधारा का समर्थन 46.7 प्रतिशत उत्तरदाता करते हैं, जबकि 39.3 प्रतिशत ऐसी वैचारिकी का समर्थन नहीं करते, वहीं इस संबंध में 14 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचने में असमर्थ रहे।
3. विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों का समर्थन 35.3 प्रतिशत उत्तरदाता करते हैं, वहीं 21.3 प्रतिशत उत्तरदाता विवाह करने की शर्त पर ऐसे सम्बन्धों का समर्थन करते हैं, जबकि 38 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी स्वरूप में विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों का समर्थन नहीं करते। 5.3 प्रतिशत उत्तरदाता कोई भी स्पष्ट उत्तर देने में असमर्थ रहे।

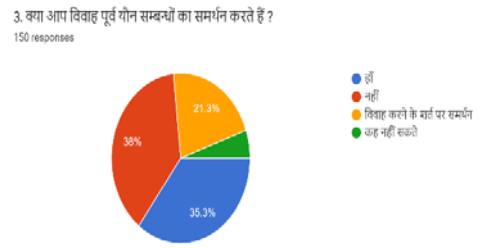

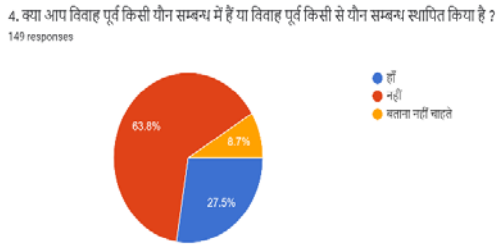

4. शोध के परिणामों से परिलक्षित होता है कि सर्वाधिक 63.8 प्रतिशत उत्तरदाता विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध में नहीं हैं या विवाह पूर्व किसी भी प्रकार से यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है, जबकि 27.5 प्रतिशत उत्तरदाता विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों में है या विवाह से पहले किसी भी व्यक्ति से यौन सम्बन्ध स्थापित किया है, वहीं 8.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा।
5. 51.3 प्रतिशत उत्तरदाता विवाह से पहले यौन सम्बन्धों में रहने के इच्छुक नहीं हैं, जबकि 31.3 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसी इच्छा रखते हैं। 12 प्रतिशत उत्तरदाता इस सम्बन्ध में किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच सके एवं 5.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा।
6. सर्वाधिक 41.4 प्रतिशत उत्तरदाता अपने प्रेम एवं यौन सम्बन्धों को परिवार, मित्र मंडली एवं संपूर्ण समाज में कहीं भी स्वीकार नहीं करना चाहते, जबकि 26.9 प्रतिशत उत्तरदाता अपने प्रेम एवं यौन सम्बन्धों को सभी जगह स्वीकार करते हैं, वहीं 26.9 प्रतिशत उत्तरदाता सिर्फ मित्र मंडली में स्वीकार करते हैं एवं 4.8 प्रतिशत उत्तर दाता सिर्फ परिवार में स्वीकार करते हैं।
7. 37.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि यदि उनका भाई या बहन विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध रखें तो उनको स्वीकार्य नहीं होगा, जबकि 34 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि उनके भाई या बहन द्वारा ऐसे सम्बन्धों में आने से उनको कोई परेशानी नहीं है; जबकि 25.3 प्रतिशत उत्तरदाता कोई भी निर्णयात्मक उत्तर देने में अक्षम रहे, वहीं 3.3 प्रतिशत उतरदाता इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझे।

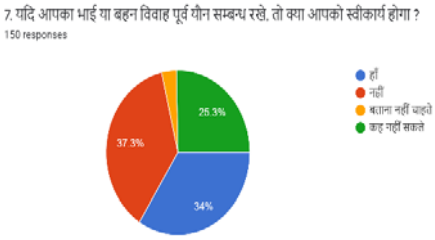

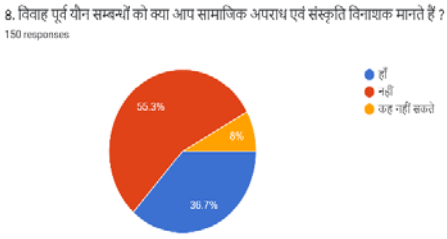

8. सर्वाधिक 55 प्रतिशत उत्तरदाता विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को सामाजिक अपराध एवं संस्कृति बिनाशक नहीं मानते हैं, जबकि 36.7 प्रतिशत उत्तरदाता विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को सामाजिक अपराध एवं संस्कृति बिनाशक मानते हैं; वहीं 8 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निष्कर्ष तक पहुंचने में असमर्थ रहे।
9. विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध विवाह संस्था की महत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं, इस वैचारिकी से 42 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत एवं 21.3 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: सहमत है (कुल 63.3 प्रतिशत सहमत), जबकि इस वैचारिकी से 27.3 प्रतिशत उत्तरदाता असहमत एवं 9.3 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण तरह असहमत हैं।
10. 44.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं को परिवार या शिक्षण संस्थान द्वारा कभी भी यौन सम्बन्धी शिक्षण नहीं दिया गया, वहीं 28. 7 प्रतिशत उत्तरदाताओं को मामूली ज्ञान दिया गया, जबकि 24 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि परिवार एवं शिक्षण संस्थान द्वारा उनको यौन शिक्षण दिया गया है। 2.7 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच सके।
11. 33.3 प्रतिशत उत्तरदाता विवाह में अत्यधिक देरी होने को विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों के लिए उत्तरदायी मानते हैं, वहीं 38. 7 प्रतिशत उत्तरदाता कुछ हद तक इस कारक को उत्तरदायी मानते हैं, जबकि 22.7 प्रतिशत उत्तरदाता इसे उत्तरदायी नहीं मानते तथा 5.3 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निष्कर्ष तक पहुंचने में असमर्थ रहे।
12. विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध वैवाहिक जीवन को बर्बाद कर देते हैं, इस तथ्य से 46 प्रतिशत उत्तरदाता असहमत एवं 15.3 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: असहमत है, जबकि 30 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत एवं 8.7 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: सहमत है।

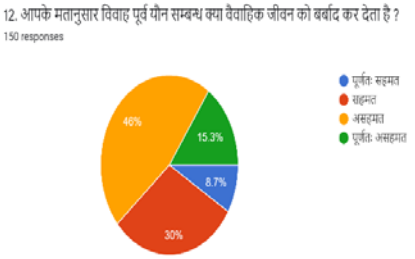

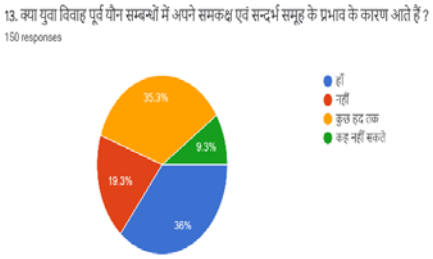

13. 36 प्रतिशत युवा इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि वे विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों में अपने समकक्ष एवं संदर्भ समूह के प्रभाव के कारण आते हैं, वहीं 35.3 प्रतिशत उत्तरदाता कुछ हद तक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं, जबकि 19.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते और 9.3 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच सके।
14. विवाह पूर्व यौनिक सम्बन्ध बनाना मित्र मंडली एवं समकक्ष समूह में प्रतिष्ठा कौशल एवं क्षमता से जोड़कर देखा जाता है, इस विचार से 39.3 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत तथा 8.7 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: सहमत है (कुल 48 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत) जबकि 44 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत एवं 8 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: असहमत है (कुल 52 प्रतिशत उत्तरदाता असहमत)।
15. सर्वाधिक 45.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध रखने की इच्छा स्त्री और पुरुष दोनों में समान होती है जबकि 28.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि यौनिक सम्बन्ध रखने की सबसे ज्यादा इच्छा पुरुषों में होती

है, वहीं 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि सबसे ज्यादा इच्छा स्त्रियों में होती है। 18 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच सके।

16. प्रेम सम्बन्ध को विश्वसनीय बनाए रखने के लिए यौन सम्बन्ध बनाना आवश्यक है, इस विचारधारा से 36.7 प्रतिशत उत्तरदाता असहमत तथा 23.3 प्रतिशत पूर्णत: असहमत है (कुल 60 प्रतिशत उत्तरदाता असहमत), जबकि 30.7 प्रतिशत सहमत एवं 9.3 प्रतिशत पूर्णत: सहमत है।

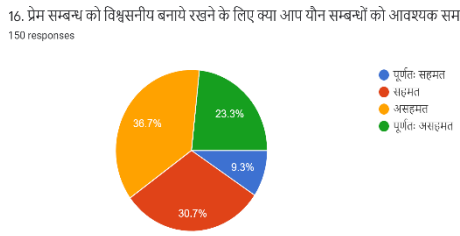

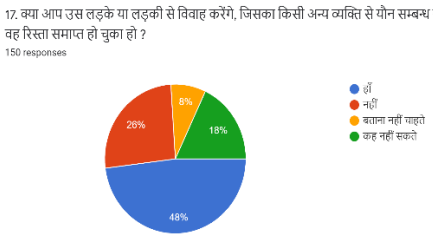

17. सर्वाधिक 48 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे लड़की या लड़के से विवाह करने के लिए तैयार है, जिसका पहले किसी अन्य व्यक्ति से यौन सम्बन्ध रहा हो, परन्तु वर्तमान समय में समाप्त हो चुका है; जबकि 26 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे लड़के या लड़की से विवाह सम्बन्ध स्वीकार्य नहीं करना चाहते, वहीं 18 प्रतिशत उत्तरदाता कोई निर्णायक उत्तर देने में असमर्थ रहे और 8 प्रतिशत उत्तरदाता ने इस प्रश्न का जवाब देना पसंद नहीं किया।

18. भारतीय कानून द्वारा वयस्कों को दिए गए विवाह पूर्व सहमति से यौन सम्बन्ध बनाने के अधिकार का 39.3 प्रतिशत उत्तरदाता समर्थन एवं 27.3 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: समर्थन करते हैं, जबकि 33.3 प्रतिशत उत्तरदाता उसका समर्थन नहीं करते।

19. 34 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लगता है कि विवाह पूर्व सहमति से यौन सम्बन्ध बनाने की आयु को कानूनी रूप से बढ़ा देना चाहिए, जबकि 39.3 प्रतिशत उत्तर दाताओं को ऐसा नहीं लगता, वहीं 26.7 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ रहे।

20. सर्वाधिक 42 प्रतिशत उत्तरदाता यौन सम्बन्धों के नियमन के सन्दर्भ में परम्परागत नियमों का समर्थन नहीं करते और न ही वर्तमान समय में उसे लागू करना चाहते हैं जबकि 31.3 प्रतिशत उत्तरदाता परम्परागत नियमों का समर्थन कर उसे वर्तमान समय में भी लागू रहने देना चाहते हैं, वहीं 26.7 प्रतिशत उत्तरदाता कोई भी निश्चित उत्तर देने में असमर्थ रहे।

21. सर्वाधिक 46.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस विचार से असहमत तथा 16.7 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: असहमत है कि यदि विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को समाज द्वारा पूर्णत: स्वीकृति दे दीजाए तो बलात्कार के प्रकरणों को कम किया जा सकता है, जबकि 27.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस विचार से सहमत तथा 12.7 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: सहमत हैं।

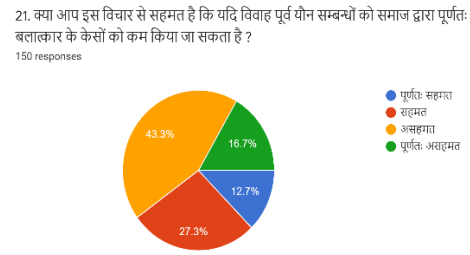

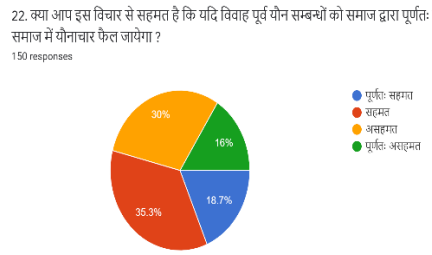

22. इस विचार से 35.3 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत तथा 18.7 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: सहमत हैं कि यदि विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को समाज द्वारा पूरी तरह स्वीकृति दे दी जाए तो समाज में यौनाचार फैल जाएगा, जबकि 30 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत तथा 16 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णत: असहमत हैं।

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरप्रदेश के युवाओं पर किए गए शोध के परिणामों से यह परिलक्षित होता है कि भारतीय समाज व संस्कृति में यौनिक व्यवहार के सम्बन्ध में रूढ़िवादिता वर्तमान समय में भी कायम है। जब तक वैवाहिक जीवन की शुरुआत न हो, तब तक लगभग लगभग आधो युवा अपनी वर्जिनिटी को बनाए रखने की विचारधारा का समर्थन करते हैं, परन्तु एक अन्य दृष्टिगत रखने योग्य तथ्य यह भी है कि लगभग 35 प्रतिशत युवा विवाहपूर्व यौन सम्बन्धों का समर्थन करते हैं तथा लगभग 21 प्रतिशत युवा विवाह करने की शर्त पर विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को शिकार करने का विचार व्यक्त करते हैं। सामान्यत: समाज मुख्यत: युवा वर्ग में यह भ्रांति फैली रहती है कि अधिकांश युवक एवं युवतियां विवाह पूर्व किसी ना किसी व्यक्ति से प्रेम एवं यौन सम्बन्ध में अवश्य रहते हैं, परन्तु प्रस्तुत शोध के परिणाम इस भ्रांति का खण्डन करते हुए बताते हैं कि लगभग 64 प्रतिशत युवक एवं युवतियां विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध में नहीं है या विवाह पूर्व किसी भी प्रकार से यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है और साथ ही लगभग आधो युवा विवाह से पहले यौन सम्बन्धों में आने की इच्छा भी व्यक्त नहीं करते हैं। जो युवा विवाह पूर्व प्रेम एवं यौन सम्बन्धों में है, उनमें से अधिकतम भारतीय समाज की रूढ़िवादी एवं संकुचित विचारधारा के कारण मित्र मंडली, परिवार, समाज आदि किसी के भी समक्ष अपने सम्बन्धों को स्वीकार नहीं करना चाहते। अधिकतम युवा (55.3 प्रतिशत) विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को सामाजिक अपराध एवं संस्कृति बिनाशक के रूप में नहीं देखते और सर्वाधिक (63.3 प्रतिशत) युवाओं का यह भी मानना है कि विवाह पूर्व स्थापित किए जाने वाले यौन सम्बन्ध विवाह संस्था की महत्ता पर नकारात्मक प्रभाव नहीं डालते। साथ ही वह इस विचारधारा का भी खंडन करते हैं कि विवाह पूर्व स्थापित किए जाने वाले यौन सम्बन्ध वैवाहिक जीवन को बर्बाद या किसी भी प्रकार से विघटित करते हैं। 48 प्रतिशत युवक एवं युवतियां इस वैचारिकी को स्वीकार करते हैं कि विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध बनाना किशोरों एवं युवाओं में उनके मित्रमंडली या समकक्ष समूह में प्रतिष्ठा, कौशल एवं क्षमता से जोड़कर देखा जाता है। युवतियों की अपेक्षा युवकों में विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा अत्यधिक होती है, इस मिथ्या परक विचार का भी शोध के परिणामों द्वारा खंडन होता है। अधिकतम युवा यह स्वीकार करते हैं कि यह इच्छा दोनों लिंगों में समान होती है।सर्वाधिक (60 प्रतिशत) युवाओं द्वारा इस विचार का भी खंडन किया जाता है कि प्रेम सम्बन्धों में विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए यौन सम्बन्ध बनाना आवश्यक है। अधिकतम युवा ऐसे लड़के या लड़की से विवाह करने के लिए तैयार हैं, जिसका पहले किसी अन्य व्यक्ति से यौन सम्बन्ध रहा हो, परन्तु वर्तमान समय में वह सम्बन्ध समाप्त हो चुका हो। सर्वाधिक (63 प्रतिशत) युवा इस विचार से असहमति जताते हैं कि यदि विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को समाज द्वारा पूर्णत: स्वीकृति दे दीजाए तो बलात्कार के प्रकरणों को कम किया जा सकता है, बल्कि अधि कतम के मतानुसार ऐसा करने से समाज में यौनाचार की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। शोध के परिणामों से परिलक्षित होता है कि अधिकांश युवा विवाह से पूर्व यौन सम्बन्धों के नियमन से सम्बन्धित कानूनों से संतुष्ट हैं और वर्तमान परिदृश्य में उसमें कोई परिवर्तन नहीं चाहते।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

* दुबे, अभय कुमार (2018) फुटपाथ पर कामसूत्र, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन
* बेल, रोबर्ट (1966), प्रीमैरिटल सेक्सइन अ चेंजिंग सोसाइटी. इंगलेवुडक्लिफ्स, एन.जे. : प्रेन्टिस
* होबार्ट, चार्ल्स डब्ल्यू. (1958), इमैन्सि पेसन फ्रॉम पेरेंट्स एंड कोर्ट शिप इन अडोलेसेंट्स, पसिफिक सोशियो लॉजिकल रिव्यु 1 (समर) : 25-29
* मिरांडे, अल्फ्रेड एम. (1968), रिफरेन्स ग्रुप थ्योरी एंड एडोल सेंट सेक्सुअल बिहेवियर, जर्नल ऑफ मैरिज एंड द फॅमिली, 30 (नवंबर) : 572-577.
* न्यूकाम्ब, थिओडोर एम. (1965), द जनरल नेचर ऑफ पीर ग्रुप इन्फ्लुएंस, इनटी. एम. न्यू काम्ब एंड इ. के. विल्सन (मके.), कॉलेज पीर ग्रुप्स. शिकागो: अलडैनप्रेस.
* रेस, इरा (1967), द सोशल कॉन्टेक्स्ट ऑफ प्री मैरिटल सेक्सुअल पेर्मिसिवनेस. न्यू यॉर्क होल्ट.
* रीनहार्ट एंडविंस्टन (1970), प्री मैरिटल सेक्स ऐज डेवियंट बिहेवियर : एन एप्लीकेशन ऑफ करंट अप्रोचेस टूडे वियन्स. अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यु 35 (फेब्रुअरी) : 78-87.

* सुजय, आर (2005), प्री मैरिटल सेक्सुअल बिहेवियर अमंगअन मैरिड कॉलेज स्टूडेंट्स, हेल्थ एंड पापुलेशन इनोवेशन फेलोशिप प्रोग्राम 10: 15.
* सेमे ऐ, वर्चुडी (2006), प्री मैरिटल सेक्सुअल प्रैक्टिस अमंग स्कूल अडोलेसेंट्स. एथिओपजे. हेल्थ डेवलपमेंट, 22: 167-173
* अधिकारी. आर, तमांग, जे. (2009), प्री मैरिटल सेक्सुअल बिहेवियर अमंग कॉलेज स्टूडेंट्स ऑफ काठमांडू, नेपाल. पब, मेड. 9: 243.
* हुबर्टएम, बाजोस एन, सैंडफोर्टटी (1998), सेक्सुअल बेहेवियर एंड HIV/AIDS इन यूरोप. लंदन: यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन प्रेस.
* साठे ए.जी. (1994), इंट्रोडक्शन ऑफ सेक्स एजुकेशन इन स्कूल्स. परसेप्शन ऑफ इंडियाज सोसाइटी. द जर्नल ऑफ फॅमिली वेल फेयर, वॉल्यूम. 40 (1), 3-30.
* जेजीभॉय एस.जे. (1998), एडोलसेंट सेक्सुअल एंड रिप्रोडक्टिव बिहेवियर: ए रिव्यु ऑफ द एविडेन्सेस फ्रॉम इंडिया. सोशल साइंस एंडमेडिसिन, 46 (10), 1275-1290
* वेल्स, बी. इ., त्वंगे, जे. एम. (2005), चेंज इन यंग पीपल सेक्सुअल बिहेवियर एंड एट्ठिट्यूड्स, 19431999: ए क्रॉस-टेम्पोरलमेटा-एनालिसिस. रिव्यु ऑफ जनरल साइकोलॉजी, 9 (3), 249-261.
* एलेग्जेंडर एम. (2006), रोमांस एंडसेक्स: प्रेमरिटल पार्टनरशिप फार्मेशन अमंग यंग वीमेन एंडमेन, पुणे डिस्ट्रिक्ट, इंडिया, रिप्रोडक्टिव हेल्थ मैटर्स, 14 (28) : 144-155.
* मेहरा एस, सावित्री आर एंडकोटिन्हो एल. (2002), सेक्सुअल बेहेवियर veax unmarried अडोलेसेंट् सइन डेल्ही, इंडिया: ओप्पोर्तु निटीज डेस्पाइट पैरेंटल कंट्रोल्स, पेपर प्रेसेंटेड ऐट द इंटरनेशनल यूनियन फॉर द साइंटिफिक स्टडी ऑफ पापुलेशन रीजनल पापुलेशन कांफ्रेंस, बैंकाक, जून 10-13,
* भुगरा डेटल (2007), सेक्सुअल एट्ठीट्यूड सैंड प्रैक्टिसेज इन नार्थ इंडिया : अ क्वालिटेटिव स्टडी, सेक्सुअल एंड रिलेशनशिप थेरेपी, 22 (1) : 83-90.
* शर्मा वि. एंड शर्मा ए. (1997), एडोलसेंट बॉय सिन गुजरात, इंडिया: देयर सेक्सुअल बिहेवियर एंड देयर नॉलेज ऑफ अक्वायर्ड इम्यूनोडिफिशिएंसी सिंड्रोम एंड अदर सेक्सुअली ट्रांसमिटेड डिजीजेज, जर्नल ऑफ डेवलपमेंटल एंड बिहेवियरल पीडिया ट्रिक्स, 18 (6) : 399-404.
* शिबूतानी, तामोत्सू (1962), रिफरेन्स ग्रुप्स एंड सोशल कण्ट्रोल. Pp- 128-147 इन अर्नाल्ड रोज (मक.), ह्यूमन बिहेवियर एंड सोशल प्रोसेसेज. बोस्टन: हॉगटन.

समकालीन भ्रष्टाचार की यथार्थ की व्यंग्यपरक अभिव्यक्तिः नाट्य साहित्य के संदर्भ में

गुरमीत सिंह

शोध-छात्र, हिन्दी विभाग, एल.पी.यू, जलंधार, गाँव-हौजखास, डाक-चिमनेवाला, जिला-फाजिल्का (पंजाब)

नाटक को आम आदमी से जोड़ने और आम आदमी तक पहुँचाने के लिए 'आम आदमी की तकलीफ' को वस्तु-विधान में संयोजित करना ही समकालीन नाटककारों का प्रमुख उद्देश्य है। किसी भी भाषा का साहित्य वहाँ के समाज का दर्पण और मार्गदर्शक होता है। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से ही प्राप्त की जा सकती है। साहित्य लोक जीवन का अभिन्न अंग होता है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन-सहन, खान-पान, प्रशासनिक व्यवस्था व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं, नाट्य-विधान में भ्रष्टाचार के गंभीर अभिप्रायों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो सबसे पहले भ्रष्टाचार के विषय में जानते हैं। भ्रष्टाचार का अर्थ भ्रष्ट आचरण या व्यवहार से है जो स्वार्थ से लिप्त होकर कोई भी किया गया गलत कार्य भ्रष्टाचार होता है। भ्रष्टाचार का क्षेत्र बहुत विशाल है और इसके कई रूप है जैसे रिश्वत, कमीशन लेना, काला बाजारी, मुनाफाखोरी, मिलावट, कर्त्तव्य से भागना, चोर अपराधियों को सहयोग करना और इसके अतिरिक्त गलत कार्य में रूचि लेना आदि सभी अनुचित कार्यों को भ्रष्टाचार कहा जाता है। भारतीय समाज में भ्रष्टाचार की स्थिति एक आंतक जैसी है, जहाँ प्रशासनिक से लेकर शैक्षिक तक और सामाजिक से लेकर धार्मिक तक आदि सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का राज चलता है। धन की तृष्णा में जलता हुआ आदमी बाहरी सज्जा-सजावट एवं भोग विलास के लिए पैसा कमाना चाहता है और इसके लिए सबसे लघुतम साधन है, भ्रष्टाचार। आदमी इतना स्वार्थी हो गया है कि वह भ्रष्टाचार फैलाकर दुनियां भर की सम्पत्ति अपने घर में भर लेना चाहता है।

21वीं शताब्दी के नाटकों में भ्रष्टाचार का रूप देखने से पहले हम इनके अतीत के नाटक देखतें हैं जिससे बदलाव को प्रस्तुत किया जाए। अतीत के हिन्दी नाटकों में शंकर शेष का नाटक 'नई सभ्य नये नमूने' की कथा भ्रष्टाचार से संबंधित है जिस में 'कृष्ण' नामक पात्र के माध्यम से नाटककार पौराणिक मिथक के द्वारा सामाजिक व्यवस्था एवं मनुष्य के चरित्र के पतन का प्रश्न उठाते हुए समकालीन परिप्रेक्ष्य में कृष्ण की वास्तविक स्थिति को उदघाटित किया है। नाटक का नायक पात्र कृष्ण काफी सुशिचित है। उसके पिता पर झूठे आरोप लगाकर नौकरी से हटा दिया जाता है। माँ ने कष्ट सहन करके ख्रष्ण को पढ़ाया। उसने प्रथम श्रेणी में स्नातक किया। वह नौकरी के लिए दर-दर भटकता रहा लेकिन उसे नौकरी नहीं मिली। उसका दोष यही था कि वह किसी सेठ-साहूकार, आला-अफसर का रिश्तेदार नहीं था। इसी बीच उसकी प्यारी बहन को क्षय की बीमारी हो जाती है। बहन के इलाज के लिए उसके पास रुपये नहीं थे। वह रुपयों के लिए अनेक लोगों के सामने गिड़गिड़ाया लेकिन उसे किसी ने मदद नहीं की। डॉ. सर्वराव जाधाव ने अपनी रचना 'शंकर शेष का रचना संसार' नामक रचना में इस नाटक के विषय में लिखा है कि वह ख्र ष्ण का रूप धारण कर लेता है। अपनी बहन को अस्पताल में भर्ती करके अपने दोस्त ऊधो के यहाँ रहकर वह मुर्ख तथा बेईमान लोगों को लूटता रहा। वह गगन बिहारी, भुलवू प्रसाद, स्मृति, धारनी को लूटकर पच्चीस हजार रूपये ऐंठता है। (शेष 65)

इसके आलावा नाटककार बृजमोहन शाह की रचना 'त्रिशंकु' कथ्य और शिल्प की कृष्टि से नयी उद्भावना को प्रस्तुत करती है। 'त्रिशंकु' नाटक में भ्रष्ट सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए युवा पीढ़ी का संघर्ष और निरर्थकता बोध प्रस्तुत करता है। युवा वर्ग शिक्षित होकर भी बेरोजगारी के कारण इधर-उधर भटक रहा है और कुण्ठित जीवन जी रहा है। शासन व्यवस्था उस पर कोई ध्यान नहीं दे रही है और हर स्तर पर निराशा का सामना ही करना पड़ता है। युवा वर्ग इस विसंगत वर्तमान से ऊब

गया है वह दिशाहीन हो गया है। भ्रष्टाचार का समाज के सभी अंगो पर प्रहार करते हुए नाटककार यह दिखाना चाहता है कि देश, समाज, धर्म, ईमान आदि त्रिशंकु के समान लटक रहें हैं। इस समस्या से संबंधित नरेंद्र पाल का नाटक 'भ्रष्टाचार' भी है। जैसा समाज होगा व्यक्ति भी वैसा ही आचरण करेगा इस नाटक में मुरलीधार कह रहा है-

मुरलीधाररू राज अवतार जी, आजकल तो समाज का बेड़ा गर्क हो गया है। किसी भी सरकारी दफ्तर चले जाओ बगैर कुछ लिए दिए काम नहीं होता। अब तो बैंक में लोन भी कमिशन दिए बगैर नहीं मिलता। (पाल 16)

अतीत के भ्रष्टाचार विषय से संबंधित हिन्दी नाटकों की तुलना यदि 21वीं शताब्दी के आधुनिक हिन्दी नाटकों से करें तो इस समस्या से संबंधित नाटककार अजय शुक्ला का नाटक 'ताज महल का टेंडर' है। यह काल्पनिक सामाजिक नाटक है इसमें नाटककार कल्पना करता है कि आधुनिक दिल्ली दरबार के शासन पर शाहजहाँ आ कर बैठ जाता है और अपनी बेगम के लिए ताज महल बनाने की इच्छा प्रकट करता है लेकिन आधुनिक भ्रष्ट सिस्टम ने ताज महल बनाने में 50 वर्ष लगा दिए। जिस दिन ताज महल का टेंडर पूरा हुआ था उस दिन शाहजहाँ की मृत्यु हो जाती है। इस नाटक में शाहजहाँ ही ऐतिहासिक पात्र है अन्य सभी पात्र आधुनिक युग के हैं। इसमें गुप्ता नामक एक भ्रष्ट पात्र जिसके द्वारा आधुनिक भ्रष्टाचारी स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

कथा के अनुसार शाहजहाँ दरबारियों को ताजमहल बनाने का ऐलान कर देता है और गुप्ता जी नामक पात्र को इस निर्माण का कर्ता-धार्ता बना दिया जाता है। गुप्ता जी इतना भ्रष्ट हैं कि ताज महल का कांट्रेक्ट अपने भ्रष्ट संबंधी भईयाजी नामक व्यक्ति को देता है। कांट्रेक्ट मिलने की खुशी में वह गुप्ता से मिलने आता है और अडवांस रिश्वत की प्रस्तुतकारी करता है।

भइयाजी: बधाई हो गुप्ता जी बधाई हो।

गुप्ताजी: बधाई तो आपको हो भइयाजी जो कांट्रेक्ट आपको मिला है।

भइयाजी: वो तो आपके रहते .....

सुधीर: पता है, सिंगल टेंडर पर काम आपको दे दिया, और पेमेंट भी एडवांस ही पूरा कर दूँ, तो पता चला आप जहाँ दफ्तर आ गए हैं। (ब्रीफकेस देता है।)

गुप्ताजी: अरे ऐसी भी क्या जल्दी? अब काम शुरू हो गया है तो ये सब हो ही जाएगा। (ब्रीफकेस सुधीर को देते हैं।) (शुक्ल 26)

इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने यह भी प्रस्तुत किया है कि आधुनिक भ्रष्ट अफसर अपना खजाना भरने के बाद सबूतों को भी मिटा देना चाहते हैं भ्रष्ट पात्र गुप्ता जी भइयाजी को कहता है।

गुप्ताजी: अरे भइयाजी देखिए, पहली बात तो ये है कि अगर जहाँ आग लग जाए तो सारी फाइलें जल जाएगी, फिर किसी चीज का कोई एविडेंस ही नहीं रहगा। क्यों, फिर कोई क्या एक्सपोज करेंगा? और दूसरी ये है कि दफ्तर को नई बिल्डिग बनाने का ठेका मुझे तुरंत आपको देना पड़ेगा? है न? बोलो।

भइयाजी: मान गए गुप्ताजी, आप इन्सान नहीं फरिश्ता हैं। (शुक्ला 73)

यह समस्या आज के प्रत्येक मंत्रालय में देखी जा सकती है हमारे देश का कोई भी शासक यदि विकास करना चाहे तो इस भ्रष्ट प्रशासन में नहीं कर सकता। नाटककार ने एक नाटक के माध्यम से बताया है कि कोई भी सरकारी कार्य को सम्पूर्ण होने में कितने-कितने साल लग जाते हैं और उस में कितना पैसा हड़प कर लिया जाता है। पचास वर्ष बाद यदि ये टेंडर पूरा होता है तो उस दिन शाहजहा पूरे हो जाते हैं नाटककार अंत में संदेश देता हुआ कहता है कि

"गुप्ताजी: सुधीर, मैं तुमको एक बात बताता हूँ, सुन लोद्य वक्त गया बात गई पर हम नहीं जाएँगे। फिर कोई ताजमहल का ख्याब देखेंगा, तब हम फिर बुलाए जाएँगे।" (शुक्ल 80)

यदि हिन्दी के आधुनिक और अतीत नाटकों की तुलना हम पंजाबी नाटकों से करें तो पंजाबी नाट्य साहित्य में भी काफी नाटकों की रचना हुई जिस में इसका यथार्थ रूप देखा जा सकता है। अतीत के पंजाबी नाटकों में इस समस्या को देखें तो संत सिंह सेखों के अपने कई नाटकों में भ्रष्टाचार जैसी समस्या का प्रत्यक्ष वर्णन किया है। उसके द्वारा रचित नाटक 'नारकी' जो 1952 ई में प्रकाशित हुआ था। नारकी नाटक का सिरलेख अपने आप में ही इसकी महत्ता को प्रस्तुत करता है। नारकी शब्द का अर्थ है, पाप करना,

नरक भोगने वाला व्यक्ति आदि से है। इस नाटक का मुख्य पात्र घनपत राय है। जो के एक भ्रष्ट व्यक्ति है, सेखों ने नारकी नाटक के द्वारा भ्रष्टाचार का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। व्यापारी वर्ग से संबंधित होने के कारण इसमें निम्न वर्ग की लूट, टैक्स चोरी, जुल्म, रिश्वतखोरी, समलिंग धोखे को प्रस्तुत किया है। घनपत राय ने पैसे से अपने से आधी आयु की ललित नामक लड़की से शादी की है जो घनपत से भी भ्रष्ट है और घनपत की चालाकियों को देख कर कहती है-

ललित: (नखरे से) खेल क्यों नहीं होती? तुम कौन से बूढ़े हो? (सेखों 7)

वर्तमान के पंजाबी नाटकों में भ्रष्टाचार की तुलना करें तो इस विषय से संबंधित अजमेर सिंह औलख का नाटक 'ऐऊ किवे खोहलोंगे जमीने साड़ीयां?' है। इस नाटक की कथा पंजाब के किसी गाँव की है जहाँ पर कोई विदेशी कम्पनी सरकार की मदद से बिजली का ग्रेंड लगा रहीं है जिस के लिए काफी एकड़ जमीन की जरूरत है। इस जमीन को प्राप्त करने के लिए गाँवों के लोगों को कोई संदेश नहीं दिया जाता बल्कि सरकार के बल पर जमीन को हड़प करने का प्रयास करते हैं। जमीन का जो मूल्य होता है वे किसानों को नहीं दिया जाता बल्कि उसको भ्रष्टाचार सिस्टम के द्वारा बहुत घटा दिया जाता है। एक वार्तालाप के अनुसार-

म: (सिर्फ आवाज) अच्छा मंत्री साहब, यह बताईए आप किसानों को कितना दे-गें एक एकड़ का? ज्यादा से ज्यादा बीस-तीस लाख ही ना? बाकी का पैसा?

रंधावा: (पार्टी का एक मंत्री) (जानबूझ कर रूखापन दिखाते हुए) इस से आप का क्या मतलब? हम किसानों को बीस-तीस लाख दे या एक करोड़ दे? पैसा क्या सिर्फ किसानों को ही तो नहीं देना पड़ता है!? वह जमीन देने से किसान इन्कार नहीं करेंगे क्या? वह छतीसगढ़, यू.पी, महाराष्ट्र राजस्थान, हरियाणा में क्या हुआ और क्या हो रहा है, उसे भूल गए आप? हजारों लाखों की गिनती में जब किसान संघर्ष करने के लिए निकल पड़ते हैं, उन को कैसे रोकना पड़ता है? (आप ही उत्तर देते हुए) सरकार को! किसान क्या ऐसे ही रुक जाते हैं? उनकों रोकने के लिए गोली चलानी पड़ती है चतुर्वेदी जी! गोली से किसान मारने भी पड़ सकते हैं, उसकों मारेगा कौन? (आप ही उत्तर देते हुए) हमारी पुलिस! और जो अफसर गोली चलाने, किसानों को मारने की जिम्मेदारी लेगा, उसे सरकार कुछ नहीं देगी क्या? और चतुर्वेदी साहब इसके अलावा जो डिप्टी कमिशनर, तहसीलदार आप को जमीन दिलवाने के लिए रास्ता साफ करेंगे वो मुफ्त में ही करेंगे क्या? जिन ऐजंटो को जमीन बेचने के लिए गाँवों-गाँवों जा कर किसानों को भरमाना पड़ता है, वह मुफ्त में ही ऐसा कर ... दें-गए क्या? चतुर्वेदी साहब, किसनों की जमीन छीनने के लिए तरह-तरह के पापड़ वेलने और नाटक करने पड़ते हैं सरकार को!? किसी अफसर को दो करोड़, किसी को डेड और किसी को करोड़ देना पड़ता है और फिर जा कर। (औलख 39)

अत: हम कह सकते हैं कि वर्तमान के भारतीय माज में भ्रष्टाचार एक संक्रामक रोग की तरह है। समाज में विभिन्न स्तरों पर फैला भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कठोर दंड-व्यवस्था की जरूरत है। आज भ्रष्टाचार की स्थिति इस प्रकार है कि व्यक्ति रिश्वत के मामले में पकड़ा जाता है और रिश्वत देकर ही छूट जाता है। सरकार ने तो इस भ्रष्टाचार के लिए 'भ्रष्टाचार निवारण अधुनियम, 1988 बना दिया है जिसके तहत सरकारी तंत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में भ्रष्टाचार को कम किया जा सके। लेकिन यदि हम लोग स्वयं में ईमानदारी को विकसित करेगे तभी हमारे राष्ट्र के नाम पर यह बदनामी का कलंक दूर होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जाधाव, डॉ. सर्वराव: 'शंकर शेष का रचना संसार' चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपूर, 2000
2. पाल, नरेंद्र: 'भ्रष्टाचार' वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियांगज, नई दिल्ली, 2009
3. शुक्ला, अजय : 'ताज महल का टेंडर' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2016
4. सेखों, संत सिंह: 'नारकी' लोकगीत प्रकाशन, चंडीगढ़
5. औलख, अजमेर सिंह: 'ऐऊ किवे खोहलोंगे जमीने साड़ीयां?' लोकगीत प्रकाशन, चंडीगढ़, 2008

महिलाओं में सशक्तिकरण : एक प्रभावशाली परिवर्तन

डॉ० निखिल कुमार

अतिथि व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, एम0एच0एम0 महाविद्यालय, सोनवर्षा, बी0एन0एम0यू0, मधेपुरा

शोध-सारांश

भारतीय स्त्री के इतिहास को एक सांचे में ढ़ालना दुरूह कार्य है क्योंकि स्त्री की सामाजिक आर्थिक स्थिति एक समान नहीं रही है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री की स्थिति और समाज में उसकी भूमिका परिवर्तित होती रही है। ऋग्वैदिक काल के सम्मानजनक जीवन से मध्यकाल के अंधकार और आधुनिक पुनर्जागरण के मध्य स्त्री ने बहुत कुछ सहा है। आधुनिक युग के स्वतंत्र भारत में स्त्री आज अपनी भूमिका की तलाश में है।

मुख्य शब्द : महिला सशक्तिकरण, भाग्यविधाता, हिंदू विवाह अधिनियम, दहेज, वेश्यावृति, बाल विवाह

प्रस्तावना

प्रकृति ने महिला और पुरुष को एक दूसरे का पूरक बनाया है। इसमें किसी तरह का भेद्भाव या असमानता परिवार और समाज के दूरगामी हितों सहित भावी पीढ़ी पर भी नकारात्मक प्रभाव डालेगी। हमारा समाज पुरुष प्रधान है और सदैव पुरुष ही सशक्त अवस्था में रहे है। स्वाधीनता, स्वच्छंदता और समानता का अधिकार महिलाओ को कम ही प्राप्त होता है।

प्राचीन काल मे वेदों धर्म ग्रंथों में महिलाओं को उच्च स्थान दिया गया हैं परन्तु उस काल में भी महिलाओं की स्थिति सशक्त थी यह एक भ्रम मात्र हैं। वास्तव में प्रेम, करूणा, उदारता, क्षमाशीलता, सेवा, समर्पण जैसे गुणों को महिला की पहचान बता कर उन्हे देवी का स्थान दे, महिलाओं को ठगा ही गया है। महिलाओं के सशक्तिकरण और समानता की राह में कई ऐसे क्रूर सत्य है जो काल दर काल प्रकट हुए है। भ्रुण हत्या, दहेज, वेश्यावृति, बाल विवाह, पर्दाप्रथा जैसे कई धृणित कृत्य है जिनसे महिलायें प्रताड़ित की गयी है। परन्तु इन सभी नकारात्मकता केबावजूद भी महिलाओं ने अपनी स्थिति को सशक्त करने के लिए निरंतर प्रयास की है।

हर युग में सशक्त और प्रभावशाली महिलायें रही हैं जिन्होंने पुरुष प्रधान समाज में रहते हुए अपनी प्रतिभा और योग्यता से समाज में उदाहरण प्रस्तुत की है। जैसे सीता, सावित्री, द्रौपदी, आदि पौराणिक देवियों से लेकर रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्या बाई, होल्कर, रानी पद्मिनी आदि महान् रानियों के अतिरिक्त इंदिरा गांधी, किरण बेदी सुषमा स्वराज आदि आधुनिक समय की महिलाओं ने विश्व भर मे अपनी सशक्त और अमिट छाप छोड़ी है। वर्तमान समय में तो सुनीता विलियम्स, और कल्पना चावला जैसी महिलाओं ने अंतरिक्ष में भी अपना परचम लहराया है।

अधिकांश पुरुषों ने महिलाओं को अपना साथी या मित्र न मानकर स्वयं को उसका स्वामी ही माना हैं। महिला के जन्म के साथ ही पुरुष पिता, भाई, पति और पुत्र के रूप में भाग्यविधाता बन जाते है, महिलाओं को शिक्षा का अवसर न देकर–उनका स्वयं के प्रति आत्मबोध भी समाप्त कर दिया जाता है। शिक्षा में कभी एवं विकृत सामाजिक मानसिकता के कारण ऊँचे पदों पर पहुँचने वाली महिलाओं की संख्या नगण्य है। समाज में विचारधारा बनी हुई है कि औरतों का जन्म ही पुरुषों की सेवा करने और धारेलू

कार्य करने के लिए हुआ है। इन सभी अवरोधें के बावजूद महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन एवं सुधार कई क्षेत्रों मे परिलक्षित हो रहा है। दमन और उत्पीड़न से मुक्त हो महिला सशक्त हो रही हैं।

सशक्तिकरण से अभिप्राय

वास्तव में सशक्तिकरण एक सक्रिय तथा बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें आन्तरिक कुशलताओं और शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि अधिकारों एवं शक्तियों का समावेश होता है। महिलाओं की स्थिति को सशक्त बनाने में हमारे देश के कई महान विभूतियों जैसे राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, कर्वे, महात्मा गाँधी इत्यादि का बड़ा योगदान रहा हैं। राजा राममोहन राय के प्रयासों से ही गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिक दारा 4 दिसम्बर 1829 को बंगाल सती रेग्यूलेशन एक्ट पास किया गया था। इस कानून के माध्यम से पुरे भारत में सती प्रथा पर रोक लगा दी गई। साथ ही बाल-विवाहतथा डायन प्रथा जैसे धृणित रूढ़ियों पर भी इन्होनें प्रहार किया। भारत की महिलाओं को पर्दे से बाहर निकाल पुरुषों के साथ कंधो से कंधो मिलाकर चलने के लिए महात्मा गाँधी ने अप्रतिम भूमिका निभायी महात्मा गाँधी ने महिलाओं को शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाने के लिए कई क्रांतिकारी प्रयास किये।स्वतंत्रता आंदोलन में भी उन्होने महिलाओं को पुरुषों के समान अवसर दिये।

महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु वैधानिक प्रयास

महिलाओं को समाज मे सुरक्षित और सशक्त बनाने के लिए सरकार ने भी कई कानून निर्मित किये है। धारेलू हिंसा अधिनियम (2005), दहेज निषेध अधिनियम (1961) हिंदू विवाह अधिनियम (1955), भारतीय संविधान मे भी महिलाओं को सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर अधिकार प्रदान किये है, महिलाओं की स्थिति बेहतर करने के लिए 1994 में गर्भ में लिंग परीक्षण पर रोक लगा दी गयी है। कामकाजी महिलाओं को प्रसूति अवकाश प्रदान कर उन्हें आर्थिक सुरक्षा प्रदान की गयी है। विकृत मानसिकता वाले व्यक्ति यौन हिंसा को ही महिलाओं के उपर हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। इसलिए कानून मे छोड़खानी, मौखिक, शारीरिक सभी प्रकार के दुर्व्यवहारों के लिए कठोर सजा कानिर्धारण किया गया है। महिलाओं के अधिकरों एवं कानूनी रक्षा के लिए वर्ष 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई, वर्ष 2001 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय महिला सशाक्तिकरण नीति को लागू किया। हाल में ही हिन्दू उतराधिकार अधिनियम 2005 के आलोक में सर्वोच्च न्यायालय ने हिन्दू महिलाओं की पैतृक संपति पर बराबर हक को और मजबूती प्रदान की है।

सरकार और सजग समाजशास्तियों द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए समय-समय पर कई प्रभावशाली प्रयास किये गये है। इन प्रयासों के सकारात्मक प्रभाव समाज के सभी वर्गो औरक्षेत्रों में देखने को भी मिले है। भारतीय सन्दर्भ में महिला सशक्तिकरण का लक्ष्य एक और वैधानिक व संवैधानिक प्रावधानों तथा सामाजिक व आर्थिक यर्थाथ के बीच के अन्तराल को कम करना है तथा दूसरी ओर शिक्षा के प्रसार के साथ महिलाओं में बढ़ती चेतना व महत्वकाक्षाओंके साथ सामाजिक व राजनीतिक संरचनाओ मे समुचित परिवर्तन लाना है।

निष्कर्ष

आधुनिक युग के भारत में भी स्त्री पुरुष के अधीन है। वह आर्थिक, सामाजिक,राजनैतिक, बौद्धिक आदि सभी क्षेत्रों में पुरुष के सामने स्वयं को असहाय पाती है। पुरुष ने समाज की इन सभी संस्थाओं पर अपना एकाधिकार कायम रखा है। स्त्री इतिहास लिखने वाले या इसकी वकालत करने वाले विद्वानों एवं विदुषियों ने स्त्री असमानता की उत्पत्ति के कारण तो बता दिये है परन्तु आज भी स्त्री पुरुष भेद को समाप्त करने की कोई ठोस योजना किसी के पास नहीं है। समाज में निरंतर बलात्कार हो रहे है, भ्रूण हत्याएँ हो रही है, दहेज के लिए औरतों को जलाया जा रहा है, कामकाजी महिलाओं का हतोत्साहन हो रहा है। भारत के आजादी के 70 साल पूरे हो चुके है परन्तु आज का भारत भौतिक रूप से सम्पन्न हो रहा है और नैतिक रूप से पतित्। आज के भारत में जितना भौतिक परिवर्तन हुआ है उतना सांस्कृतिक नहीं और इसी कारण यहाँ सांस्कृतिक विलम्बन की स्थिति उत्पन्न हो गई है। पितृसतात्मक मानसिकता आज भी सर्वव्याप्त है। अत: इस मानसिकता को ध्वस्त कर स्वयं स्त्रियों को ही आगे आने के प्रयास करने होंगे।

संदर्भ-सूची

1. आहुजा राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था
2. शर्मा प्रज्ञा, महिला लैंगिक असमानता एवं अपराध
3. शर्मा रमा, महिला विश्व कोश
4. साधाना, मारीवादी राजनीति
5. वर्मा कुमार सरोज, सशक्तिकरण के भारतीय संदर्भ
6. सिंह एम.एन., मानवधिकार एवं महिलायें

भारतीय समाज में प्रौढ़ कुमारियाँ और अकेली स्त्रियाँ

डॉ० विकास कुमार

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, आदर्श महाविद्यालय, राजधनवार, गिरिडीह, झारखण्ड

आज ज्ञानार्जन को समर्पित वैदिक काल की ऋषिकाओं की बात छोड़ दें तो आधुनिक भारतीय समाज में भी एक नया उभरता वर्ग है प्रौढ़ कुमारियों का, जिसकी अपनी सीमाएँ एवं समस्याएँ हैं और अपनी उपलब्धियाँ भी। यूं अकेली महिलाओं में विधावाएँ हैं, परित्यक्ताएँ हैं, तलाक शुदा महिलाएँ हैं, जिन्हें नियति की शिकार या परिस्थिति की उपज कह सकते हैं। प्रौढ़ कुमारियों के साथ जरूरी नहीं कि ऐसी कोई विवशता जुडी हो। यह सोच समझकर चुनी गई जीवन शैली हो सकती है, एक विशेष मानसिकता की चयन प्रक्रिया से सृजित स्थिति हो सकती हैं, स्वतंत्रता की उत्कट चाह की परिणति हो सकती है और विशेष परिस्थिति के कारण विवशता में स्वीकारी गई अथवा थोपी गई नियति भी हो सकती है। उसी के अनुसार आजीवन कौमार्य को सहज स्वीकारने या झेलने की स्थितियाँ भी बन जाती है।

आज के संदर्भ में मनुष्य की महत्वकांक्षा एक उसे आगे बढ़ाती है, दूसरी ओर, उसे अपने आसपास को काटकर अकेली भी करती है। लेकिन स्त्री के साथ महत्वाकांक्षा की एक दूसरी विडंबना भी जुड़ी है। पुरुष अपनी शिक्षा दीक्षा में, योग्यता, में पद प्रतिष्ठा में जितना आगे बढ़ा होगा, विवाह के बाजार में उसका मूल्य उतना ही ज्यादा आंका जाएगा, पर स्त्री के साथ हमारे समाज में अब तक इसके विपरीत प्रतिक्रिया ही देखने को मिलती रही है। आजादी के बाद ऐसी अनेक युवतियाँ एक संकल्प लेकर आगे आई, जिन्होंने विवाह की चिन्ता किए बिना ही अपनी तरूणाई के कई वर्ष उच्च शिक्षा, साहित्य, नौकरी, राजनीति या समाज सेवा में बिता दिए, कि विवाह का क्या है, वह तो हो ही जाएगा, पहले शिक्षा, कैरियर यह कर लें। सोलहवें साल के आसपास अपने लावण्य को बनाए रखने के बजाय उन्होंने अपना बौद्धिक स्तर उठाने और व्यक्तित्व निखारने की ओर अधिक ध्यान दिया और समय पर जीवन साथी की अचेतन खोज के बावजूद, उन्होंने इस और विशेष ध्यान नहीं दिया। कई बार चूजी तक कहा गया, पर उन्होंने अपने ध्येय पर दृष्टि टिकाए रखें और इन बातों की परवाह तक नहीं किया।

जैसे ही तीस की उम्र पार करती, न करती उन्हें लगा जैसे-आसपास की दुनिया उनके लिए बदल गई है। शिक्षा, कला, गुणवत्ता, पद–प्रतिष्ठा, के साथ, विवाह का बाजार में उनका मूल्य उसी स्तर पर बढ़ने के बजाए घट गया है। इसके बाद जितना समय आगे सरकता गया, उसी अनुपात में उन्हें या तो अपने स्वाभिमान से नीचे उतरकर पसंद, कल्पना और अपेक्षा के कम स्तर के जीवन साथी को स्वीकारने के लिए समझौता करना पड़ा। या फिर अपने अस्तित्व, अनी अस्मिता की रक्षा के लिए उन्हें विवाह न करके आजीवन कुमारी रहने का निर्णय लेना पड़ा। यहाँ भी उन्हें समाज की विपरीत प्रतिक्रिया का वैसा ही सामना करना पड़ा। पुरुष किसी उद्देश्य को समर्पित हो, विवाह ना करे तो समाज उसे आदर सम्मान देकर सिर आँखों पर बिठा लेगा, जबकि स्त्री कैसे भी उच्च उद्देश्य को क्यों न समर्पित हो, समाज उसे शंका भरी निगाहों से देखेगा और उसे सहज ढंग से जीने नहीं देगा। ऐसी स्थिति में यदि ज्योति प्रतिभाएँ बुझ जाएँ असाधारण योग्यताएँ कुंठित हो जाएँ तो भी समाज उन्हें क्षमा करने को तैयार नहीं होगा। वे प्रौढ़ कुमारियां सनकी या सिस्टर कहलाएंगी। वे वैसा होने या बनने से इंकार करें, तब भी अनेक मामलों में यह आरोपण सचमुच उन्हें इस रूप में ढाल लेता है। बहुत कम प्रतिभाएँ होती हैं जो इन सारी बाधाओं कंटीली राहों से पार जा अपने जीवन में बुलंदियाँ छू पाती हैं।

पर जब छू लेती हैं तो फिर समाज की कोई ताकत उन्हें रोक नहीं पाती और वे अपने जीवन में ऊंचे उठकर, नए कीर्तिमान स्थापित कर, दिखाती है, जिस पर महान कहे जाने वाले पुरुषों को भी रश्क होने लगता है।

आज अपनी महत्वाकांक्षा के चलते समय पर विवाह न कर पाने वाली प्रौढ़ कुमारियों का जीवन इस समस्या का केवल एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है, आर्थिक या सामाजिक विवशतावश समय पर विवाह न हो पाना। कहीं दहेज के कारण उम्र आगे निकलती गई और फिर विवाह नहीं हो पाया। कहीं किशोरावस्था में नामसझी या भूलवश उठाया गया कोई गलत कदम आगे चलकर राह का रोड़ा बन गया। कहीं घर में पिता या बड़े भाई का साया न होने से या बीमार मां बाप की खातिर परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी घर की बड़ी लड़की पर आ गई और वह छोटे भाई बहनों को ही पढ़ाने ब्याहने में लगी रही। फिर उम्र ज्यादा हो जाने से स्वयं उसका विवाह नहीं हो पाया। ऐसा भी देखा गया है कि जब तक वह इन जिम्मेदारियों से निबटी, अपने लिए सोचना शुरू किया, बुढ़े माँ बाप को अकेले असहाय न छोड़ सकने की लाचारी उनके सामने आ गई और उसे अपने विवाह का विचार स्थगित कर देना पड़ा। ऐसा बहुत कम हो पाया है कि कमाऊ पत्नी के माता-पिता को भी उसके पति या ससुराल वाले स्वीकार कर लें या विवाहिता अपनी आय का एक अंश उन्हें देना चाहे तो उसकी पति परिवार की सहज स्वीकृति उसे मिल पाया हो।

अब तीसरी स्थिति भी प्राय: देखी सुनी जा रही है कि परिवार की कमाऊ लड़की पर निर्भर उसके माता-पिता अपनी लड़की के लिए योग्य वर तलाशने का नाटक तो करते रहते हैं लेकिन जब कोई अपनाने के लिए सामने आता है तो किसी ने किसी बहाने उसी अयोग्य ठहराकर रिश्ता ठुकरा दिया जाता है। कभी जाति बाहर शादी करने पर बिरादरी के ऐतराज की बात तो, कभी लड़के की आर्थिक स्थिति या ओहदा कम बताकर। अब या तो लड़की अपने माँ-बाप से विद्रोह करे और बुरी कहलाए या मन मसोसकर रह जाए और अपना निर्णय बदल दे। हाँ, लड़की के परिवारवाले रिश्तेदारी में यही कहते फिरेंगे कि क्या बताएँ इतने रिश्ते आते हैं हमारी बेटी के लिए वर उसके योग्य कोई मिले तभी तो मंजूर करें। लाखों में एक अपनी बेटी को ऐसे किसी को सौंप दें? पर वास्तव में बेटी के विवाह के बाद उसकी कमाई छिन जाने का भय ही इन बहानों के पीछे होता है अक्सर। परिणाम होता है कि किसी दिन लड़की द्वारा माता-पिता की सहमति के बिना स्वयं विवाह कर लेना या फिर भावुकतावश आजीवन कुमारी रह जाना पड़ता है।

पर कुछ स्वप्नजीवी लड़कियाँ सचमुच इतनी चुजी या आस्थावान होती है कि अपने सपनों के राजकुमार की प्रतीक्षा में सालों-साल गुजार देती है और इसी में उनकी उम्र आगे बढ़ जाती है। कुछ वैभव विलास की अभिलाषी तितलियाँ एक के बाद अमीरजादों को पटाकर कुछ समय मौज-मस्ती में डूबी रहती हैं और इस बदनामी के चलते उनका विवाह नहीं हो पाता, न उन्हें इसकी परवाह ही होती है। उनकी नजर में जिंदगी बंधने में नहीं, मौज-मस्ती के लिए आजाद रहने में है। एक पति नाम के पुरुष की गुलाम बनकर क्यों रहें वे? पर उनका यह फलसफा अधिक दिनों तक उनकी आंखे बंद नहीं रखता। लेकिन जब तक आँखे खुलती हैं, देर हो चुकी होती है। तब तक वे या तो शराब में डूबकर बरबाद हो चुकी होती हैं या एक दिन आत्महत्या में सुकून पाती है। मन-चिकित्सकों की फाइलों में भी ऐसे अनेक केस मिल जाऐंगे, जिसमें से कुछ ही ठीक होकर नई जिंदगी शुरू कर पाती हैं। कथित नारी मुक्ति की चाह में अकसर ऐसे परंपरा विरोधी कदम उठाए जाते हैं और जब स्थिरता की तलाश में भटकती जिंदगी को विवाह से थाम लेने की चाह भीतर से उमड़ती है, तब तक जिंदगी उनके हाथ से फिसल चुकी होती है।

परन्तु आज वक्त बदलने के साथ अब ये स्थितियां कम सामने आ रही हैं और परंपरा से हटकर, बिना विवाह साथ रहने वाले प्रबुद्ध जोड़े भी समाज द्वारा स्वीकृत होने लगे है। स्वयं उनके हक में भी यह स्थिति हो जाती हैं कि जब तक निभे, साथ रह लें, जब न निभे तो परस्पर समझौते से अलग हो जाएँ, तलाक आदि जैसे किसी कानूनी झंझट की जरूरत नहीं। हां, इस बीच संतान पर रोक रखनी होती है। पर ये मिसालें अभी भारतीय समाज में अपवाद रूप में मात्र हैं। शायद निकट भविष्य में विवाह का यह विकल्प अधिक व्यापक रूप में सामने आने की संभावना अधिक है।

अभी इन सबसे अलग ध्येयवादी, आत्मविश्वासी किस्म की प्रबुद्ध युवतियों का एक ऐसा वर्ग भी उभरकर सामने आ रहा है, जिनके लिए विवाह ही सब कुछ नहीं जिंदगी में करने के लिए और भी बहुत कुछ है। बहुत से महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र हैं, जहाँ जीवन की सार्थकता पाई जा सकती है। अपने सपनों को यथार्थ की जमीन पर उतारा जा सकता है। अत: अकेलापन उनके लिए अभिशाप

नहीं, वरदान है। जीवन कठिनाईयों और संघर्ष से भरा नहीं, केवल चुनौतियां से भरा हैं, अपने-आप में भरा पूर है और इस भरे पूरे में ही जिंदगी का आनंद है। कर्मठता उनके स्वभाव का अंग होती है तो अकेलापन उनके लिए कोई समस्या खड़ी नहीं करता और खालीपन शब्द की तो शब्दकोश में कोई जगह ही नहीं होती है।

साथ ही अपने आसपास के जीवन से भी उसका कटाव नहीं, प्राय: लगाव ही होता है। दूसरों का दु:ख दर्द बांटना उनके स्वभाव का अंग बन चुका होता है, तो अपनी निजी जिंदगी में छिपाव दुराव के लिए वे कोई स्थान नहीं छोड़ती। जब, सारा जहाँ हमारा, जैसी भावना विकसित हो जाए तो उन्हें ना तो समाज का भय सताता है, ना भय का भूत, कि कोई क्या कहेगा तब मैत्री संबंध भी उनके लिए सहज ही होते हैं, जिन पर कोई उंगली नहीं उठती। पारदर्शिता में कैसे उठेगी। ऐसे सधो व्यक्तित्व के सामने जब सार्थकता की तलाश में, ध्येय पर चलते जाने की राह ही होती है तो उनकी जिंदगी में अन्य दुनियावी चिंताओं और खुराफातों विसंगतियों के लिए भी कोई जगह नहीं बचती, न ही शोषण का दैत्य ही अपने जबड़े फैलाए उनके आसपास घूमता दिखाई देता है इसलिए निर्भय हो, वे अपने रास्ते बढ़ती चली जाती हैं। इस तरह की दो अविवाहित कामकाजी महिलाओं को मैं जानता हूँ, जिन्होंने जिंदगी अपने ढंग से बिताई और सोच समझकर बाकायदा, योजनानुसार अपनी नौकरी से अवकाश प्राप्ति के दस-बारह वर्ष पूर्व एक-एक अनाथ बच्चे को गोद ले लिया। तब-तक उनके पास इतने पैसे जमा हो गए थे कि वे एक पढ़ी लिखी अच्छी आया नियुक्त कर बच्चे की ठीक ढंग से संभाल सकें और उनकी शिक्षा दीक्षा का भी उचित प्रबंधा कर सकें। मातृत्व भावना की तृप्ति, अपने पालित किशोर बेटे बेटी की, रिटारयमेंन्ट में बाद, स्वयं देखभाल करने का संतोष, उसके सन्निधाय में अपना अकेलापन बांटने का सुख, बुढ़ापे के सहारे की निश्चिंतता, अपने बाद अपनी जमा पूंजी व जायदाद का वारिस पाने और एक अनाथ बच्चे की जिंदगी संवारने का आत्मसंतोष इतने सारे लाभ एक साथ ही देश की जनसंख्या समस्या का भी एक सार्थक समाधान रहा है।

भारत में आधुनिक जीवन की प्रतियोगिता में आगे निकलने की होड़। जिंदगी की दिनोंदिन तीव्र होती रफ्तार के साथ दौड़। आपाधापी घोर व्यस्तता के बावजूद एक शून्य या खालीपन में मन के भटकाव के बीच घर से बाहर संबंधों की तलाश और जीवन की सार्थकता की तलाश। इन सबके बीच एक कशमश, की बैचैनी। आसपास सुविधाओं के अंबार के बीच भी निरंतर एक अभाव का अहसास। मित्र मंडलियों और पार्टियों से घिरकर भी जैसे भीड़ में अकेले होने का अहसास यह है आज के कथित समुन्नत या प्रगतिशीलों की जिंदगी। उस पर प्रौढ़ कुमारी या अकेली महिला के साथ तो चारों ओर के महौल में संदेह, अंधविश्वास, ईर्ष्या-द्वेष, और लिप्ट न देने पर कभी-कभी बदले की क्रुर भंगिमा की गंधा भी घुली रहती है। भीड़ में अपने सिद्धान्तों के साथ अकेले होने का अहसास यहीं से पैदा होता है और प्राय: यह अकेलापन उन्हें सताने लगता है।

पर जरूरी नहीं कि सबके साथ ऐसा हो। कोई अकेली महिला इस स्थिति को किस तरह स्वीकारती या झेलती हैं, उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। अत: मानना होगा कि अकेलापन एक स्थिति है और अकेलेपन का अहसास दूसरी स्थिति है। अन्यथा क्या कारण है कि एक महिला अकेलेपन को अभिशाप मानकर स्वयं को संसार की सर्वाधिक दु:खी स्त्री समझें और दूसरी इसी स्थिति को अपने लिए वरदान मानकर या कम से कम सहज स्वीकार्य मानकर जिंदगी को अपने ढंग से भरपूर जीने में विश्वास करें। इसे प्रतिभा विकास के लिए आंतरिक सजा माने और एक सार्थक जीवन के लिए इसका पूरा-पूरा लाभ ले। इसलिए जरूरी है, इन दोनों स्थितियों का विश्लेषण कर, स्वयं को स्थिति के अनुकूल स्थापित करने की या स्थिति को अपने अनुकूल बनाने की। यह भी अपनी व्यक्तित्व साधाना से जुड़ी प्रक्रिया ही कही जा सकती है।

युवतियाँ अकेलेपन के क्षणों में ही हम अपना विश्लेषण कर जिंदगी के अहम निर्णय ले सकते हैं। सही निर्णयों से ही फिर महत्वपूर्ण क्षेत्रों या दिशाओं की राहें खुलती हैं। हमारे तत्वदर्शी ऋषि मुनियों ने, दार्शनिकों ने, संतो महात्माओं ने एकांत साधाना से ही उन महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की जो युगों से मानवता को राह दिखाते आ रहे हैं। लेखक, कलाकार, शिल्पकार, भी एकाग्रचित होकर ही सुंदर रचाना कर पाते हैं। यह अकेलेपन या तनहाई का एक अहम रचनात्मक पक्ष है।

दूसरी दु:खदायी अंधेरा पक्ष है-तनहाई का तनाव, जो किसी को मनोरोगी तक बना सकता है, किसी को खाली दिमाग, शैतान का घर भी। पर हम दो अतियों या छोरों से अलग सामान्य जिंदगियों की ही बात करें। तनहाई नहीं, तनहाई का भय और तनाव ही इनके रचनात्मक पक्ष का क्षय करता है और जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को उभारता है, इसलिए जरूरत है, भय एवं तनाव से निजात पाने की है।

अतंत: आज हमारे चारों और प्रकृति का वैभव बिखरा पड़ा है, उसमें रूचि लेकर अपने भीतर प्राकृतिक आनंद की उतारें। हमारे अपने भीतर जो शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं, उन्हें पहचानें, किसी दिशा में लगाने के लिए उन्हें प्रेरित करें, किन्हीं हॉबियों में, कलाओं में विकसित करें। इससे न केवल अवकाश का समय सार्थक ढंग से कटेगा, बल्कि जीवन के प्रति उत्साह व उल्लास भी भरेगा। आपको अतीतजीवी या अंर्तमुखी होने से बचाकर अपने आसपास के जीवन में रूचि लेने के लिए प्रेरित करेगा, फिर वह पास-पड़ोस में, दूर-पास की रिश्तेदारी में मेलजोल बढ़ाकर आपके भीतर मिल बांट की प्रवृति विकसित करने में हो या संपर्क में आने वाली गरीबों की, समीप की बस्तियों के गरीब व जरूरतमंदों की सेवा करने में हो। किसी संस्था की सदस्यता लेकर, महिला मंडल, क्लब आदि की गतिविधियों में भाग लेकर स्वयं की दूसरों में बांटने में हो। किसी योग कक्षा में जाकर, यौगिक क्रियाएँ सीखकर घर में नित्यप्रति कुछ समय मन की एकाग्रता में लगाने व इस माध्यम से मन के भीतर अध्यात्मिक शांति पाने के रूप में हो। आशय होना चाहिए, मन को केवल सोचते रहने और सोच-सोच कर परेशान होते रहने के लिए खाली नहीं छोडना चाहिए। ऐसा हो सके तो अकेलेपन या खालीपन की कोई समस्या न रहेगी। आप कुछ सार्थक कर रहे हैं-यह अहसास ही आपके जीवन को भरपूर आनंदमय बनाए रखेगा और आपके व्यक्तित्व की जीवंत लोकप्रिय बनाये रखेगा।

मुख्यत: जीवन में अपना कोई ध्येय लेकर चलना और अपना एक जीवन-दर्शन विकसित करना। इस व्यक्तित्व साधाना के बाद न आपको मित्रों की कमी रहेगी, न आपकी मित्रता का कोई दुरूपयोग ही कर सकेगा। यह मानकर चलना होगा कि आप दुनिया को नहीं बदल सकते, आपको ही अपना नजरिया बदलना होगा, यानी वे जो हैं, उन्हें उनकी ही पृष्ठभूमि में रखकर समझना होगा। यह समझ अपने भीतर विकसित कर लेने के बाद आप किसी को भी अपना दृष्टिकोण समझा सकेंगी। किसी भी माहौला में से अपनी राह निकाल सकेंगी और अपनी अस्मिता की रक्षा के साथ, अपनी गरिमा बनाए रखने में सफल होंगी। बात केवल अपनी मानसिकता को दृढ़ बनाने और जरूरत एवं परिस्थिति के अनुसार उसे बदलने की है जिससे मानव के पुरे जीवन सुखमय हो।

संदर्भ-ग्रंथ

1. सीमा श्रीवास्तव, मुक्ति के स्वर, देहरादुन, मार्च 2001.
2. हरिकृष्ण रावत, समाजशास्त्र कोश, रावत पब्लिकेशन जयपुर।
3. आई0फ्रोलोव, दर्शनशास्त्र का शब्दकोष, प्रोग्रेस पब्लिशर, मास्को।
4. वीमेन सहयोग, कोलकता 2004
5. रमाशर्मा एवं एम.के. मिश्रा, महिला और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2012
6. कंबल भारती, उत्तरार्द्ध, जनवरी, 2003
7. भारत-2009
8. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली

इतिहास-लेखन में लैंगिक विमर्श : एक अध्ययन

डॉ० रागिनी दीप

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग आदर्श कॉलेज, धैलाढ-जीवछपुर, मधेपुरा, बी०एन० मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सारांश

पितृसत्ता के प्रतिरोध द्वारा महिला के समान सामाजिक अधिकार एवं आधी आबादी की सशक्त पहचान वर्तमान अकादमिक विमर्श के ज्वलंत पक्ष के तौर पर देखा जा सकता है। विगत चार-पाँच दशकों से महिला सशक्तीकरण की दिशा में नारीवादी विचारधारा, समाज में महिलाओं की गरिमा, स्थान और सभ्य समाज में उनकी स्मिता के लिए उल्लेखनीय कार्य हुए हैं। विभिन्न क्षेत्रों में इसके लिए आंदोलन देखने को मिलते हैं, जिन्हें एक खास सिद्धांत एवं विचारधारा के द्वारा संचालित होते हुए देखा जा सकता है। सिल्विया वाल्बव ने इस क्रम में लिंग की अवधारणा को एक नए रुप में किया है। इस लिंग की अवधारणा को 1970-80 के दशक से महिला अध्ययन के एक उत्पाद के रुप में देखा जा सकता है। जूडिथ बटलर के अनुसार लिंग और लिंग से जुड़ी पहचान अर्थात जेंडर में कोई स्थाई अंतर मौजूद नहीं है। यह एक दूसरे के साथ जुड़े हैं। यदि हमें इन दोनों के बीच के अंतर को देखना है तो हमें इनके दैनिक जीवन की क्रियाओं एवं उसके अंतर को समझना चाहिए। नारीवादी मानवशास्त्री माग्रेट मीड के अनुसार विभिन्न संस्कृतियों में पुरुष स्त्री को अलग-अलग तरीके से समझा जा सकता है। इन मान्यताओं को उदारवादी, मार्क्सवादी, संरचनावादी, पर्यावरणवादी आदि अलग-अलग ढंग से देखते हैं, जो वाद या सिद्धांत का हिस्सा बनकर ऐतिहासिक विमर्श एवं अकादमिक चिन्तन में देखे जा रहे हैं। प्रस्तुत आलेख इस संदर्भ में विभिन्न विचार विमर्श को दर्शाने की कोशिश है।

कुँजी शब्द : नारीवाद, लैंगिक विमर्श, पितृसत्ता, समाज-संस्कृति, प्रतिरोध, पर्यावरणवादी, संरचनावादी।

इतिहास-लेखन में लैंगिक विमर्श वर्तमान का एक ज्वलंत पक्ष है। इतिहास-लेखन में लैंगिक विमर्श का अर्थ है, वर्तमान के इस महत्वपूर्ण विषय एवं समस्या के स्पष्ट समझ व समाधान हेतु अतीत से तथ्यों की तलाश, उनकी प्रमाणिकता-प्रासंगिकता की पुष्टि, उनका विश्लशेण-व्याख्या और इसकी प्रस्तुति द्वारा निराकरण के सम्भावनाओं की तलाश। आधुनिक भारतीय इतिहास-लेखन 18वीं सदी के अंतिम चरण से माना जाता है। भारत में नारीवादी इतिहास-लेखन का प्रारंभ 20वीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ। इस विषय पर अल्तेकर, पार्थ चटर्जी, उमा चक्रवर्ती, कुमकुम संगरी, अरुंधति राय, गर्डा लर्नर, शाहिद अमीन आदि विद्वानों के प्रभावी लेखन से अकादमिक विमर्श में महत्वपूर्ण प्रभावी भूमिका सामने आया है।

आधुनिक भारत में लैंगिक भेदभाव एक महत्वपूर्ण मुद्दा के रूप में उभरा है। गर्डा लर्नर के अनुसार, स्त्री के अनवरत दमन शोषण का एक कारण स्त्री का इतिहास न होना, उसके अपने नायकों का नहीं होना आदि-आदि है।[1] इतिहास-लेखन एवं चिन्तन विकास प्रतिमान को चुनौती देने के साथ-साथ सामाजिक-राजनीतिक बहसें नारीवाद के नियामक विषय अर्थात् मध्य-वर्ग, उच्च वर्ग जाति, बहुलैंगिक, विवादित हिन्दू महिलाओं की अवधारणा को चुनौती दे रही हैं। सबाल्टर्न स्वर की बढ़ती हुई उपस्थिति और उनका प्रतिरोध उच्च वर्ग और उच्च जाति नारीवादी चर्चाओं के वर्चस्व को चुनौती दे रहा है।[2]

समाजशास्त्रीय अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महिलायें पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत रही है एवं समाज इसी व्यवस्था के आधार पर संचालित होती है। बीसवीं सदी के आठवें दशक के मध्य से नारीवादी विशषेज्ञों ने 'पितृसत्ता' शब्द का प्रयोग और उसे

विशिष्ट अर्थ में परिभाषित करना आरंभ किया।[3] गर्डा लर्नर ने पितृसत्ता को परिभाषित करते हुए बतलाया कि "परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुषों के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व विस्तार है। इनका अभिप्राय है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएं ऐसी सत्ता में पहुँच से वंचित रहती है।" वह यह भी कहती है कि इसका अर्थ नहीं है कि "महिलाएं या तो पूरी तरह शक्तिहीन हैं या पूरी तरह अधिकारों, प्रभाव और संसाधनों से वंचित हैं।[4] प्राक् ब्रिटिश भारत में, संभवत: वैदिक युग के प्रारंभिक काल को छोड़कर सदैव नारी पुरुष की अधीनता में रहती आई थी। धर्म और विधि में पुरुषों और स्त्रियों और उनके अधिकारों को समान नहीं माना गया था। समाज में पुरुषों को कुछ ऐसे अधिकार थे उनकी स्वतंत्रताएं थी, जिनसे स्त्रियां वंचित थी। स्त्री और पुरुष के निजी और सामाजिक आचरण की अच्छाई-बुराई के मानदंड भिन्न थे।[5]

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन सिर्फ राजनैतिक रूप से स्वतंत्रता आन्दोलन नहीं था, बल्कि उससे बढ़कर सामाजिक भेद-भाव के खिलाफ संघर्ष था। संघर्ष ने विचारों के विभिन्न आयामों को खोला। जाति-भेद से लेकर वर्ग-भेद, लिंग भेद पर विचार करने हेतु विवश कर दिया। पितृसत्तात्मक समाज में 'लैंगिक भेदभाव' होना स्वभाविक था, परन्तु सुसंस्कृत समाज में इस भेदभाव को खत्म करना भी आवश्यक है।

नारीवादी-इतिहास लेखन को निम्नलिखित काल-खंडों में विभाजित करते हैं-

1. औपनिवेशिक काल में इतिहास लेखन
2. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इतिहास-लेखन।

औपनिवेशिक शासन काल में 19वीं सदी के आखिरी दो दशकों में भारत में महिलाओं के प्रश्न पर विचार होने लगे थे क्योंकि इसके पूर्व सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलनों के कारण कई प्रकार की रूढ़ीवादिता खत्म हुई थी। पंडित रमाबाई ने द *हाई कास्ट हिन्दू विमेन* (1887) में लिखकर भारत में उच्च वर्ग की महिलाओं विशषेकर 'विधवा' महिला की दयनीय स्थिति को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने का प्रयास किया। कैथेरिन मेयो ने भारतीय सभ्यता में महिलाओं की दयनीय परिस्थितियों की कड़ी आलोचना अपनी पुस्तक *मदर इंडिया* (1927) में किया।

नारीवादी इतिहास-लेखन औपनिवेशिक शासन में साम्राज्यवादियों एवं राष्ट्रवादियों के बीच मंदगति से चल रहा था। बी॰ सी॰ लॉ ने *विमेन इन बुद्धिस्ट* (1927), आई॰ बी॰ हार्नर ने *विमेन अन्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म* (1930) में बौद्ध साहित्यों के अवलोकन कर महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला है। नारी की स्थिति परिवार समुदाय के दायरे से बाहर समाज में देखती हैं, जो स्पष्ट तौर पर दूसरे इतिहासकारों से इनकी दृष्टिकोण भिन्न है। ए॰ एस॰ अल्तेकर ने द *पोजिशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन फ्रॉम द प्रिहीस्टोरिक टाइम्स* टू द *प्रेजेन्ट* की रचना 1938 में की जिसमें उन्होंने भारतीय सभ्यता में महिलाओं की स्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है।

अल्तेकर द्वारा हिन्दू सभ्यता में महिलाओं की स्थिति पर अध्ययन, महिलाओं के विषय में किए गए अध्ययनों में सर्वाधिक चर्चित और सम्यक राष्ट्रवादी कृति है। यह अध्ययन मौटे तौर पर ब्राह्मणवादी स्रोतों पर आधारित है और इसमें महिलाओं की स्थिति पर, बेहद प्राचीन काल से लेकर बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक तक के घटनाक्रम का ब्योरा दिया गया है, जब हिन्दू कोड बिल पर चर्चा जोरों पर थी। अल्तेकर की कृति इतिहास में महिलाओं के अध्ययन के विषय में हमारे पास उपलब्ध संभवत: सबसे सुंदर कृति है, लेकिन यह पुस्तक, बड़े तीखे ढंग से, परंपरागत दृष्टिकोण की सीमितताएँ भी उजागर कर देती है। हालांकि इस पुस्तक में, महिला शिक्षा, विवाह और तलाक, विधवा की स्थिति, सार्वजनिक जीवन में महिलायें, स्त्रियों के संपत्ति अधिकार, और आम समाज में औरतों की स्थिति पर कानून निर्माताओं के तमाम दृष्टिकोण को प्रकाशित किया गया है। यह पुस्तक महिला प्रश्न की राष्ट्रवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। अल्तेकर की अवधारणा को उमा चक्रवर्ती ने चुनौती दिया है। अपने लेख "अल्तेकेरियन अवधारणा के परे : प्रारंभिक भारतीय इतिहास में जेंडर संबंधों की नई समझ" में अल्तेकर के लेखन से निकलने के लिए प्रेरित करती हैं। इनके अनुसार, प्रारंभिक भारत में महिलाओं की स्थिति से संबंधित सामग्री की गंभीर सीमाएँ हैं। ये सीमाएँ तब विशषेकर उभरकर सामने आती है जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि इस प्रकार के कार्यों से इतिहास में महिलाओं की स्थिति की वास्तविक समझ पर कितना नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

महिलाओं की स्थिति से संबंधित परंपरागत लेखन का एक पक्ष और यह था कि यह लेखन पूरी तरह ब्राह्मणवादों स्रोतों पर आधारित था। यदि इन स्रोतों को विश्वसनीय मान भी लिया जाए, जिस पर काफी संदेह है, तो भी इनमें कई समस्याएं हैं, जैसे (क) इनमें ब्राह्मणों के प्रति अंतर्निहित पक्षधरता है, (ख) यह आम जनता के व्यवहार के बजाय ब्राह्मणों के उपदेशों को प्रतिबिंबित करते हैं, और (ग) यह उच्च जातियों के अनुकूल हैं। इस आधार पर, मौजूदा अध्ययनों को हद से हद आंशिक दृष्टिकोण का दर्जा दिया जा सकता है।[6]

नारीवादी समस्या का ध्यान से अवलोकन किया जाये तो निम्नांकित मुख्य समस्याएं दृष्टिगोचर होती है:

वर्ग व जाति विभेद,

धार्मिक विभेद,

जनजातीय समुदाय में नारी समस्या,

प्रव्रजन से प्रभावित महिलाओं की स्थिति,

विधवा महिलाओं की स्थिति,

सेक्स वर्कर (वेश्याओं) की स्थिति।

उपर्युक्त समस्याओं के आलोक में शोध व लेखन कार्य हो रहा है। नारीवादी आन्दोलन और 1975 में 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' की शुरूआत होने के बाद महिला आंदोलन के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति से लेखन कार्य में भी प्रगति हुआ। बी॰ आर॰ नंदा के संपादन में निकली पुस्तक *इंडियन विमेन : फ्रॉम पर्दा टू मॉडरनिटी* (1976) इस दिशा में प्रमुख पहल थी। परन्तु जल्द ही नारीवादी इतिहास लेखन का आधार विस्तृत हुआ और लैंगिक भेदभाव का रूप लेने लगा। महिलाओं का अलग से अध्ययन करने के बजाए इतिहासकारों ने समाज में स्त्री और पुरुष के बीच शक्ति-संबंधों के संदर्भ में इस समस्या का अध्ययन करना आरंभ किया।

सन् 1980 में कैनेथ बालासेट ने अपनी पुस्तक *रेस, सेक्स एंड क्लास अंडर दि राज : इम्मोरियल, एटीट्यूड्स एंड पॉलिसिज एंड देयर क्रिटिक्स, 1793-1905* का प्रकाशन किये। इनमें सैनिकों के स्वास्थ्य विषय की सरकारी रिपोर्टों का उल्लेख किया गया है। इन रिपोर्टों में दो बिन्दु को साफ दर्शाया गया है। पहला, अंग्रेजी सरकार अस्पतालों में आने वाले खर्च और सैनिकों को विवाह की इजाजत देकर उनके परिवारों पर आने वाले अतिरिक्त व्यय की तुलना कर रही थी। दूसरा, तमाम कोशिशों के बावजूद अंग्रेज सैनिकों के यौन रोगों का दर कम नहीं हो रहा था जबकि भारतीय सैनिकों में जो अधिकांश विवाहित थे यह दर बहुत कम थी। यह बात, इन रिपोर्टों में चिन्ता का मुख्य विषय के रूप में व्यक्त की गई। इसका कारण ढूंढ़ने के साथ ही वेश्याओं की जाति और वर्ग की भी विवेचना की गयी है। सरकारी रिपोर्टों में सैनिकों को ऊँची जाति की वेश्याओं से ही शारीरिक संबंध रखने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक कदमों की चर्चा भी है, साथ ही छावनी तथा उसके आसपास के इलाके से गरीब दलित वेश्याओं को दूर रखने के उपायों की भी चर्चा है।

"अंडरस्टैंडिंग फिमेल माइग्रेसन : एक्सपेरियेन्स ऑफ हाउस मेड" लेख एस॰ इरूदया राजन की संपादित पुस्तक *गर्वनेंस एंड लेबर माइग्रेसन* (2010) में है, इसमें लैंगिक प्रश्नों पर विचार किया गया है।

सबाल्टर्न स्टडीज के अंतर्गत भी नारीवादी इतिहास-लेखन का कार्य हुआ है जिसमें प्रमुख रणजीत गुहा, पार्थ चटर्जी आदि इतिहासकार हैं। रणजीत गुहा का लेख "चन्द्रा की मौत" भ्रूण हत्या या गर्भवती महिलाओं की मौत को एक गैर-जिम्मेदार प्रेमी और एक तानाशाह समाज की दोहरी भूमिका वाली पितृसत्ता के रूप में मूल्यांकन का कार्य करते हैं।[7]

पार्थ चटर्जी का लेख "राष्ट्र और उसकी महिलाएँ" नारीवादी इतिहास-लेखन को नवीन दृष्टि से देखता है। अपने लेख में परंपरागत एवं राष्ट्रवादी दृष्टिकोण में महिलाओं की स्थिति पर विचार करते हुए महिला प्रश्न को राष्ट्रवादी आन्दोलनों की सार्वजनिक कार्यसूची से गायब रखने का कारण महिला प्रश्न को औपनिवेशिक राजसत्ता के साथ राजनीति विचार-विमर्श का प्रश्न बनाने से राष्ट्रवाद के इंकार में निहित है।[8] स्त्री की राष्ट्रवादी धारणा के संबंध में पार्थ चटर्जी का विश्लेषण है कि औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी संवादों के टकराव में अध्यात्मिक/भौतिक, घर, दुनिया और स्त्रियोचित / पुरुषोचित जैसे भेद उपनिवेशवाद के संवाद से भिन्न एक राष्ट्रवादी संवाद के विकास में सहायक होकर भी किस तरह इसी की झूठी मूलभूत विशषेताओं के ढाँचे में बंधे रह जाते हैं।[9]

कुमकुम संगरी और सुदेश वैद के संपादन में निकली पुस्तक *रिकास्टिंग विमेन : एस्सेज इन कोलोनियल हिस्ट्री* (1989) से एक महत्वपूर्ण लेखन का सूत्रपात हुआ। इसके बाद के कई संग्रह निकले जिसमें लैंगिक भेदभाव को नए परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में जे॰ कृष्णामूर्ति (संपा॰) *विमेन इन कोलोनियल इंडिया: एस्सेज ऑन सरवाइवल, वर्क एण्ड द स्टेट* (1989), भारती राय (संपा.) *फेम द सीम्स ऑफ हिस्ट्री : एस्सेज ऑन इंडियन विमेन* (1995) और अर्पणा बसु और अरुण तनेजा (संपा॰) *ब्रेकिंग आउट ऑफ इनविजिबिलिटी : विमेन इन इंडियन हिस्ट्री* (2002) है। सुजी थारू और के॰ ललिता (संपा॰) *राइटिंग इन इंडिया 600 बी॰सी॰ टू द प्रेजेन्ट*, (खंड-2, 1991-93) में विभिन्न युगों में महिलाओं की अभिव्यक्तियों को शामिल किया गया है।

जेफ्री पैन की पुस्तक *फादर इंडिया* आई, जो पुरुषों में कार्यों की व्याख्या के साथ महिलाओं की स्थिति पर भी ध्यान केन्द्रित करती है। भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में ब्रिटिश नीति के संबंध तथा योगदान पर केन्द्रित है।

महिला आंदोलन में बंगाल ने अगुवाई की इसलिए औपनिवेशिक भारत में बंगाल में लैंगिक भेदभाव से संबंधित कई पुस्तकें निकली। इन कृतियों में महत्वपूर्ण हैं- उमा चक्रवर्ती, *कंडिशन ऑफ बंगाल विमेन एराउंड द सेकेन्ड हाफ ऑफ द नाइनटीन्थ सेंचुरी* (1963); गुलाम मुरशिद, *रिलेक्टेन्ट डेब्यूटेन्ट : रेस्पॉन्स ऑफ बंगाली विमेन टू मॉडरनाइजेशन 1849-1905*, प्रिंसटन; मालविका कर्लेकर, *वायसेज फेम विदिन* (1991); बारबरा साउथर्ड, *द विमेन्स मुवमेंट एण्ड कोलोनियल पोलिटिक्स इन बंगाल, द क्वेस्ट फॉर पॉलिटिकल राइज, एडकुेशन एण्ड सोशल रिफॉर्म लॉजिसलेशन* (1996) और सोनिया निशात आमीन, *द वर्ल्ड ऑफ मुस्लिम विमेन इन कोलोनियल बंगाल 1876-1939* (1996)। इसके अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी कार्य हुए जिसमें प्रमुख रूप से प्रेम चौधरी, *द वेल्ड विमेन: शिफ्टिंग जेन्डर इक्वेशन्स इन रूरल एरिया हरियाणा 1888-1990* (1994); सीता अनन्यारामन, *गेटिंग गर्ल्स टू स्कूल: सोशल रिफॉर्म इन द तमिल डिस्ट्रिक्ट्स 1870-1930* (1996) और *गेल मिनॉल्ट शिड्युल्ड स्कॉलर्स : विमेन्स एडकुेशन एण्ड मुस्लिम सोशल रिफॉर्म इन कोलोनियल इंडिया* (1998); *द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया सीरीज: जेराल्डीन फोर्ब्स, विमेन इन मॉडर्न इण्डिया* (1996) में आधुनिक काल में भारतीय महिलाओं का गहन अध्ययन किया गया है।

हाल में भेदभाव के इतिहास को और व्यापक बनाया गया है और इसमें केवल महिलावाद पर ही विचार नहीं किया गया। बल्कि पुरुषत्व पर भी विचार किया गया। मृणालिनी सिन्हा की पुस्तक *कोलोनियल मैसकुलिनिटी, द मैनली इंगलिशमैन ऐंड द इफेमिनेट बंगाल इन द लेट नाइनटीन्थ सेंचुरी* (मैनचेस्टर, 1995) इसका उदाहरण है। *मेमसाहिबस् राइटिंग्स : कोलोनियल नैरेटिव्स ऑन इंडियन वीमेन* इंद्राणी सेन के संपादन में 2012 में प्रकाशित कृति है। इसमें महिलाओं के विभिन्न रूपों की चर्चा की गयी है। इसके अतिरिक्त लैंगिक भेदभाव पर लता सिंह का लेख भी उल्लेखनीय है।

निष्कर्षत

भारतीय इतिहास-लेखन नारीवादी इतिहास लेखन से प्रारंभ होकर लैंगिक भेदभाव के रूप में विस्तृत आधार के साथ परिणत हो गया है। उमा चक्रवर्ती ने नारीवादी इतिहास-लेखन को अल्तेकर की छाया से मुक्त होने की वकालत की है।

वास्तव में भारत में नारीवादी आन्दोलन की शुरूआत 19वीं शताब्दी में ही हो चुकी थी। महाराष्ट्र में दलित समुदाय से आनेवाली महिला सावित्री बाई फूले ने अपने पति ज्योतिबा फूले एवं ताराबाई शिंदे की सहायता से देश का प्रथम बालिका विद्यालय की स्थापना 01 जनवरी 1848 को पुणे के भीड़ेबाड़ी में की थी। बालिकाओं को शिक्षित करने के लिए उन्हें तत्कालीन समाज का कड़ा विरोध झेलना पड़ा था। सावित्री बाई फूले को देश की प्रथम महिला शिक्षिका होने का गौरव प्राप्त है। सावित्री बाई फूले ने स्कूल में छात्राओं को पढ़ाने के साथ-साथ समाज में व्याप्त बुराईयों के खिलाफ भी लड़ाई लड़ी। उन्होंने 1853 में 'बाल हत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना की थी। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह सभा का भी आयोजन किया था।

नारीवाद की विचारधारा को अपनी लेखनी के माध्यम से प्रभावशाली ढ़ंग से उजागर करने में स्वातंत्रोत्तर भारत की अग्रणी लेखिकाओं में इश्मत चुगताई, अमृता प्रीतम, महाश्वेता देवी, कृष्णा सोबती शामिल हैं।

समकालीन भारतीय अंग्रेजी साहित्य में भी कई लेखिकाओं ने नारीवादी सोच एवं विचारधारा को मुखरता के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करने का कार्य किया है, जिनमें प्रमुख हैं: कमला मार्कण्डेय, अनिता देसाई, शशि देशपांडे, नयनतारा सहगल, कमला दास,

अरूंधति राय, शोभा डे, झुम्पा लाहिरी, अनिता नायर, मंजू कपूर, भारती मुखर्जी एवं गीता हरिहरण। इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता, पुरुषोचित दंभ एवं आधिपत्य को नकारते हुए स्वतंत्रा नारी के अस्तित्व एवं पहचान की मुखर वकालत की है।

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 21वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में पुरुष सत्तात्मक समाज को नकारते हुए आधुनिक नारी के स्वतंत्रा सोच एवं पहचान को मान्यता मिली है। परम्परागत सोच के विपरीत आज की महिलाएँ पिता, पति एवं पुत्र पर आश्रित न होकर अपना अलग अस्तित्व, बोध, पहचान एवं स्थान पाने में समर्थ हैं। वे किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं हैं। भारतवर्ष की महिलाओं ने समाज के हर क्षेत्र में यथा- शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन, राजनीति, व्यवसाय, खेल-कूद, पुलिस प्रशासन, भारतीय सेना एवं अंतरिक्ष विज्ञान आदि क्षेत्रों में अपना अमूल्य योगदान दिया है। उदाहरणस्वरूप- डॉ. सरोजिनी नायडू, इन्दिरा गाँधी, किरण बेदी, सुषमा स्वराज, पी०टी० उषा, कल्पना चावला, मेरीकॉम, संतोष यादव, सानिया मिर्जा, गीता फोगात आदि महिलाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में भारत को नई पहचान दी एवं विश्व स्तर पर गौरव पताका फहराने का कार्य किया है।

'लैंगिक असमानता' के विरोध में विश्व भर में आवाज बुलंद करनेवाली 2014 की नोबल पुरस्कार विजेता पाकिस्तान की सुश्री मलाला युसुफजई की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए अपने विमर्श का समापन करना चाहूँगी-

"Do not wait for someone else to come and speak for you.

It's you who can change the world."

संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. गर्डा लर्नर, द *क्रियेशन ऑफ पैट्रियार्की*, न्यूयार्क, ओ.यू.पी., 1986, पृ॰ 318.
2. पी॰ के॰ शुक्ला, *इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ*, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, पृ॰ 382.
3. उमा चक्रवर्ती, 'पितृसत्ता पर एक नोट', *नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2001, पृ॰ 01.
4. गर्डा लर्नर, द *क्रियेशन ऑफ पैट्रियार्की*, न्यूयार्क, ओ.यू.पी., 1986.
5. ए॰ आर॰ देसाई, *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*, मैकमिलन, दिल्ली, प्र॰ सं॰ 1976, पुनर्मुद्रण 2007, पृ॰ 218.
6. उमा चक्रवर्ती, *पूर्वोद्धृत*
7. शाहिद अमीन एवं ज्ञानेन्द्र पांडेय, *निम्नवर्गीय प्रसंग*, राजकमल प्रकाशन, 2002, 2010, पृ॰ 43.
8. शाहिद अमीन एवं ज्ञानेन्द्र पांडेय, *वही*, पृ॰ 70.
9. शाहिद अमीन एवं ज्ञानेन्द्र पांडेय, *वही*, पृ॰ 72.

प्रो० हरिमोहनझाक मैथिली साहित्यमे व्याप्त दार्शनिक विचार

डॉ० रश्मि कुमारी

अतिथि शिक्षक, मैथिली विभाग, टी.पी. कॉलेज, भू0ना0मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा

प्रो0 हरिमोहन झा एकहि संग उपान्यासकार, कथाकार, कवि दार्शनिक आ चिन्तक सब छलाह। अपन दार्शनिक विचारसँ ओ मैथिलि साहित्यक विभिन्न विधाकेँ भरवाक प्रयत्न कयलन्हि। हिनक दार्शनिक विचारक बड़ पै। छाप हिनक मैथिली कृतिमे देखबामे भेटैत अछि। हिनक मैथिली रचनामे दार्शनिक विचार कोनरूपमे विद्यमान अछि ताहि लेल सबसँ पहिने दर्शन आ दार्शनिक विचार की अछि एहि पर विचार करबाक आवश्यकता अछि तत्पश्चात् हरिमोहन झाक मैथिली साहित्यमे दार्शनिक विचार कोन रूपमे भेटैत अछि ओहि पर विचार करब अपेक्षित।

'दर्शनक नाम बस संसारक व्याख्येटा करब नहि ओकरा बदलबाक सेहो अछि। आम आदमीक जीवनसँ जुटिएकेँ दर्शन अपनाकेँ चरितार्थ कऽ सकैत अछि।' [1]

'जीवनक अर्थवत्ताक हेतु मनुष्य क चिंता दर्शन आ दार्शनिक चिंतनक स्रोत मानल जा सकैत अछि। एहि विराट विश्वकेँ जानबा-बुझबाक प्रयास करब आ ओहिमे मनुष्यकेँ परिज्ञान करायब दर्शनक मुख्य काज थिक।'

जेना की बड्रेंड रसेल कहने अछि दर्शनक एकटा प्रयोजन जँ सृष्टि विधान संबंधित सैद्धांतिक ज्ञानकेँ उपलब्ध करायब अछि ओतहि दोसर अछि सभसँ उत्तम संभव जीवन पद्धित्त के ताकब आ ओहिमे अंतनिर्वेश प्राप्त करब। बेकारक सिद्धांत चर्चा आओर बेकारक व्यवहार दर्शन आ दार्शनिक चिंतनकेँ ओकर सार्थकतासँ बंचित करब अछि। कोनहुँ दार्शनिक चिंतनक सार्थकता एहि मे अछि कि ओ संसारक लेल एक एहेन धारणाक निर्माणमे सहायक होअय जकर अनुरूप व्यवहारिक नीति निर्धारित भऽ सकय।

दार्शनिककेँ एहि लेल सम्पूर्ण 'काल' आ सम्पूर्ण सत्ताक द्रष्टा कहल गेल अछि एहिलेलजे ओकर दृष्टि सर्वामिनिवेशी होइत अछि, ओ एतहिटाकेँ नहि देखि सतहक पार सेहो देखैत अछि, खाली अपने युगक सन्दर्भ आ प्रश्नक प्रति सजग नहि रहि भविष्यक प्रश्नक सेहो देखैत अछि, खाली अपने युगक सन्दर्भ आ प्रश्नक प्रति सजग नहि रहि भविष्यक प्रश्नक सेहो समाधान करैत अछि, जकर विचार सर्वग्रासी अमानवीचताक विरूद्ध एकटा धारगर हथियारक रूपमे चमकैत अछि आ जे जीवनक गूढ़ प्रश्नक सार्थक उत्तर ताकि विराट विश्वमे मानवीय जीवनके नव अर्थवत्ता धारि ओकर बास्तविक प्राप्य धारि पहुँचाबैत अछि।

एहि प्रकारेँ दर्शन आ दार्शनिक चिंतनक सार्थकता ओकर एहि तरहक दर्शन बनबामे अछि जकरा जियल जा सकय आओर जे कर्मक आख्यनेटा नहि होअय, एक नीक समाज आ संसारक रचनामे सक्रिय भागीदारीक निर्बहन करैत ओहि बाट पर चलबाक नियमों सिखाबय।[2]

दर्शन मुक्त विचारक जीवन साधाना थिक। विचार व्योमव्यापी अछि, ई नहि तँ प्राचीन अछि आ नहि तँ अर्वाचीन। दर्शनक स्वरूप सार्वदेशिक, सार्वभौमिक, चिरनवीन, शास्वत आ सनातन अछि। पक्षपातसँ पूर्णतया मुक्त भऽ जीवन आ जगतक व्याख्यता प्रस्तुत करब दर्शन थिक।[3]

प्रो0 हरिमोहन झाक रचना मे हरिमोहन झाक सामाजिक दर्शन प्राप्त होइत अछि कियैक तँ ओ सामजमे व्याप्त रूढ़ि ओ जर्जन विचार पर प्रहार करैत नारीक समस्याक निदान लेल रचना कयलनि जे कोना नारी घरसँ बाहर भऽ शिक्षा प्राप्त करय कियैक तँ ओकरा दाबिकेँ राखल जाइत अछि। जकरे अन्यतम उदाहरण थिक हिनक औपन्यासिक रचना "कन्यादान" ओ 'द्विरागमन'।

'भारतीय दर्शनक प्रमुख विशेषता व्यवहारिकता अछि। भारत मे जीवनक समस्याक निदानक लेल दर्शनक सृजन भेल अछि। जखन मनुष्य अपनाकेँ दु:ख सँ दुखित होइत देखलनि तँ ओ दु:ख क्लेशसँ छुटकारा पयबाक कामना कयलनि आ एहि प्रकारक दु:खसँ निवारणक हेतु ओ दर्शनकेँ अपनौलनि।'[4]

हरिमोहन झाक मैथिली रचना दर्शन शास्त्रक एहि विचारक परिचायक थिक। समाजमे व्याप्त जे दु:ख दर्द आ पीड़ा अछि तकरा ध्यान मे राखि दार्शनिक दृष्टिसँ विचार कयलनि।

दर्शनशास्त्रक क्षेत्रमे सुविख्यात प्रो0 हरिमोहन झा राष्ट्रीय स्तर पर महाकवि विद्यापतिक बाद मैथिलीक सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाकार बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व, हास्य-व्यंग सम्राट मैथिली साहित्यहिटामे नहि अपितु भारतीय मानसमे तर्कशास्त्रक महान पंडित होयबाक कारणे चिरस्मरणीय रहताह।

प्रो0 हरिमोहन झा रचित `Trends of Languistica nalysis पद Indian philosophy' ध्रुवतारा जेना एखनो चमकृत भऽ रहल अछि, पाश्चात्य जगत्मे प्रत्ययवाद (Idealism) जे 'लेटोक" चिंतनसँ प्रारम्भ होइत 'ब्रेडले'धारि आबैत-आबैत चरमोत्कर्ष पर पहुँचि गेल रहैक, बीसम् सताब्दीक मध्यमे अथवा ओहिसँ पहिनहि पाश्चात्य दर्शनमे एक आन्दोलन शुरू भेल जे पद्धति तत्वमीमांसाक निरसन नामसँ प्रसिद्ध भेल। फलस्वरूप तत्वीमीमांसक निरर्थकताकेँ पाश्चात्य दर्शनमे स्वीकार कयल गेल आओर अनुभव कयल गेल जे भाषाक अस्पष्ताक कारणे कतेक साल धारि दार्शनिकगण दिग्भ्रमित होइत रहला। बंड्रेड रसेल, विरंगेस्टाइन, ए.ज. एयर एहि बात पर विशेष बल देलनि जे दर्शनशास्त्रक केन्द्रमे भाषा विश्लेषणकेँ पाश्चात्य दर्शनमे भाषा विश्लेषण एकटा मुख्य धाराक रूपमे उभरिकेँ आयल। दर्शन शास्त्रक विभिन्न प्रत्ययक अवगाहनक लेल भाषा विश्लेषण अत्यंत उपयोगी सिद्ध भेल। एकरा एक उदाहरणसँ स्पष्ट कयल जा सकैत अछि-

'अगर पूछल जाय जे

आकाश- कुसुमक रंग केहेन अछि?

भाषा विश्लेषण सभ सभ सँ पहिने एहि बातक परीक्षण करैत अछि जे ई प्रश्न सार्थक अछि अथवा नहि

आब देखल जाय-

: आकाशक अस्तित्व अछि?

: हाँ अछिं।

: आकाश कुसुमक अस्तित्व अछि?

: नहि अछि।'[5]

आकाश-कुसुमक अस्तित्वे नहि अछि तँ रंगक सम्बन्धमे प्रश्न करब समीचीन नहि होयत। एहि लेल ई प्रश्न निरर्थक होयत आ एहि पर चिन्तन-मनन करब व्यर्थ होयत।

तत्वमीमांसा सम्बन्धित बेसी प्रश्न निरर्थके होइत अछि, यैह कारण अछि जे भगवान बुद्ध मौन रहि गेलाह। यद्यपि भारत वर्षमे भाषाक स्पष्टताक सम्बन्धमे व्याकरण, दर्शन, भर्तृहरिक वाक्यपदीय मीमांसादर्शन नवन्याय आ काव्यमीमांसामे सिद्धांतक निरूपण भेल अछि, अक्षर, शब्द ओ वाक्यक विश्लेषणक प्रवृत्ति समन्वित रूपसँ उपलब्ध नहि रहैक मुदा प्रो0 हरिमोहन झाक 'Trends of languistica nalysis पद Indian philosophyश नि:सन्देह एहि अभावक पूर्ती कयलक, एहि कारणे समकालीन चिन्तनमे ई ग्रंथ भारतीय भाषा विश्लेषणक क्षेत्रमे प्रस्थान ग्रंथ मानल गेल अछि।

प्रो0 हरिमोहन झाक साहित्य आ दर्शनक अवगाहनक पश्चात् ई नि:संकोच कहल जा सकैत अछि जे ओ आडम्बरपूर्ण तथाकथित धार्मिक क्रियाकलापक विरोधी रहथि। पाखंड पर प्रहार करब ओ अपन कर्त्तव्य बुझैत रहथि आओर अंधविश्वास पर आधारित आचरणकेँ निषेध बुझैत रहथि। कहल जाय सकैत अछि जे जिविका धातु निर्मातासँ अभिप्रेरित त्रिपुण्ड भष्मगुंठनकेँ बुद्धि पौरुष हिममां बुझैत रहथि। इहलोकसँ बेसी परलोकक विषयमे तर्क-वितर्ककेँ उर्जाक छरन मानैत रहथि।

'गीतानिगति लोकोक' स्थान पर– यस्तिनास्ति स्वंयप्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् क समर्थक रहथि। हिनक कलाकार प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक भव्य सौंदर्य पर मुग्धा रहनि मुदा हुनक इतिहासकार कलंकपूर्ण प्रभाव सँ दु:खी। हरिमोहन झा स्वंय लिखलन्हि अछि- भारतीय जीवनदृष्टिमेज जे विशालता व्यापकता अछि, जे भव्यता आ महत्ता अछि ओ मानव संस्कृतिक अक्षय धारोहर थिक। भारतक अध्यात्मवाद, आशावाद, आत्मविश्वास ध्रुवतारा जकाँ मानवजीवनकेँ दिशा संकेत दैत रहत।

मैथिली भाषा साहित्यमे हरिमोहन झाक दार्शनिक विचार बड़ चिताकर्षक ढँगसँ देखबामे भेटैत अछि। हरिमोहन झाक मैथिली रचनामे खट्ठरककाक तरंगमे 'सर्वशास्त्रनां'आ तीक्ष्ण तर्कक जे झलक देखबामे अबैत अछि ओ निश्चित रूपसँ दर्शन शास्त्रेक प्रभाव थिक। उदाहरणस्वरूप देखल जा सकैत अछि–

'खट्ठर कका– हौ हँसी नहि करैत छिऔह। वृद्धिऋषि लोकनि अन्हरौखे उठि जंगल-मैदान जाइ छलाह। बाटमे जौर वा जुन्ना देखि साँपक भ्रम भऽ जाइन्ह। ताहि अनुभवसँ बुझलन्हि जे सम्पूर्ण संसारे भ्रम थीक। रज्जौ यथाहेर्भ्रम:। हुनका लोकनिक दृष्टिदोयें अथवा हमरालोकनिक अदृष्यदोवें वैह अदर्शन एहिठाम दर्शन बनि गेल। वैह भ्रम एखन धरि वेदान्तक नामसँ सभ्रम पाबि रहल अछि।

हम- खट्ठरकका अहाँ जे ने सिद्ध कऽ दी!

कहाँ रस्सी, कहाँ दर्शनशास्त्र!

खट्ठर कका– हौ दूनूमे घनिष्ठ सम्बन्ध छैक। रस्सिए देखि कऽ सांख्यवला त्रिगुणक कल्पना कैन छथि, तार्किक लोकनि उभयत: पाशा रज्जु बनौने छथि, आस्तिक लोकनि कर्मबन्धनक जाल रचने छथि .....

हम-त कि कर्महुक सिद्धांत मनगढ़न्ते छैक?

खट्ठरकका– हौ सामाजिक परिस्थितिएक अनुसार दर्शन बनैत छैक। एहि कृषिप्रधान देशमे रोपनी ओ कटनी देखि कर्मफलक सिद्धांत निर्मित भेल। ई सभ कल्पना खेतीक अनुभव पर आधारित छैक। तहिना कुम्हारकेँ देखि ब्रहमांड कुलाल (सृष्टिकर्त्ता) क कल्पना कैल गेल। धुमैत चाककेँ देखि भवचक्रक कल्पना कैल गेल। लोहारक निहाइ देखि कुटस्थ ब्रहमक कल्पना भेले। कोनो ठग्गिन युवतीकेँ देखि मायाक कल्पना भेल।[6]

पुन: द्रष्टवय–

हम- खट्ठर कका सांख्य दर्शन मे देखियौक, केहन सूक्ष्म विवेचन भरल छैक।

खट्ठर कका– देखाबह

हम- सत्कार्यवाद लियऽ। कतेक तथ्यपूर्ण छैक।

खट्ठर कका– हौ जी हम छी स्थूलबुद्धि लोक। कनेक फरिछा कऽ कहह।

हम- कट्ठर कका, अहाँ त सभटा जनितहि छी।

सत्कार्यवादक अर्थ जे कोनो कार्यक उत्पत्ति नहि होइ छैक।

खट्ठर कका– तखन तोहर उत्पत्ति कोना भेलौह?

हम- आशय जे प्रत्येक कार्य पूर्वहि सँ कारणमे विद्यमान रहैत अछि।

खट्ठर कका– तखन त गर्भाधानसँ पहिनहि गर्भ रहैत छैक।

हम- खट्ठर कका, अहाँ त तेहन ठाँइपटाका कहि दैत छिऐक जे लोकक मुँहे बंद कऽ दैत छिऐक।

खट्ठर कका– हौ, एही खातिर त हम बदनाम छी। हमरा अनटोटल गप्प नहि सोहाइत अछि।

हम- खट्ठर कका, सांख्यक पुरुष .....

खट्ठर कका– हौ, सांख्यक पुरुष नाम नहि लैह। हमरा त तेहन तामस चढ़ैत अछि जे कसि।

कऽ एक भंगघोटना लगावी।

हम- से किऐक, खट्ठर कका?

खट्ठर कका उत्तेजित होइत बजलाह– हौ, प्रकृति नाच करौ, क्रीड़ा करौ, सभ किछु करौ, और पुरुष चुपचाप पड़ल टुकुर-टुकुर रहथु। एहनो पुरुष कतहु पुरुष कहाबय। माउगि ने मरद, बलिगोबिना। सांख्यक पुरुष सन नपुंसक संसार कतहु नहि भेटतौह। यदि समस्त भारतवासी ओहने पुरुष बनि जाथि त देशक की हाल हो!

हम- परंच एहन पुरुषक कल्पनामे किछु करण त अवश्ये हैतेक?

खट्ठर कका– कारण यैह जे सांख्यकार अपनहुँ द्रष्टे पुरुष टा छलाक। स्त्री त छलथिन्हे नहि। तखन प्रकृति कैं सुन्दरी मानि संतोष करैत छलाह– प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।

हम- परन्तु सांख्यमे प्रकृतिक अर्थ स्त्री त नहि छैक?

खट्ठर कका– हौ, हमरा त सांख्क प्रकृति और स्त्री, दूनू एक्के बूझि पड़ैत अछि। दुहू सृष्टिकर्त्री, दुहू पुरुष कैं रिझैबामे प्रवीण, दुहू अनादिकाल सँ पुरुष कैं आकर्षण- पाशमे बन्हने। पुरुषक संयोग भेने दुहूक साम्यावस्था भंग भऽ जाइ छैन्ह।

हम- परन्तु प्रकृति त त्रिगुणात्मिका होइ छथि। सत्त्व, रज, तम .....

खट्ठर कका– ई तीनू गुण स्त्रीओमे रहैत छैन्ह। प्रेममे सत्त्वगुण, कलहमे रजोगुण ओ रुसवामे तमोगुण प्रकट होइ छैन्ह। नारीक नेत्रोमे तीनू गुण छैन्ह-अमिय हलाहल मदभरे, श्वेत श्याम रतनार। श्वेत सत्त्वगुण, श्याम तमोगुण, लाल रजोगुण। नारीक ई तीनू गुण-अमृततत्त्व, विषतत्त्व ओ मद्तत्व, समय-समय पर हर्ष, विषाद ओ मोह उत्पन्न करैत अछि। यैह त्रिगुणात्मिका प्रकृतिक रहस्य थिकैक। बुझलहौक?

हम- धन्य छी, खट्ठर कका। अहाँ सांख्यक प्रकृति कैं साड़ी पहिरा कऽ स्त्री बना देलिऐन्ह।

खट्ठर कका– हम किऐक बनैवेन्ह? साख्यकारिका वला तिरंगी चुनरी पहिरा कऽ नट्ठिन बना देलथिन्ह अछि। रंगस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात्!

हम- परन्तु प्रकृति पुरुषमे त अंधा-पंगु बला सम्बन्ध कहल गेल छैन्ह?

खट्ठर कका– नहूँ नहूँ बजलाह– एकर गूढ़ार्थ यैह जे स्त्री कामान्धा होइ छथि और पुरुष पंगु अर्थात लाचार होइ छथि। देखियो कऽ किछु कऽ नहि सकै छथि। ई सभ रूपक थिकैक। द्रष्टा लोकनि कैं जीवनमे जेहन अनुभव होइ छलैन्ह तेहने तेहन दृष्टान्त दऽ गेल छथि।

हम- खट्ठर कका, अहाँ हँसी करै छी।

खट्ठर कका– हँसी नहि करै छिऔह। प्रकृति वेश्या जकाँ नव नव रूप धारण कय छमकैत छथि। पुरुष सफर्दा जकाँ निर्विकार तकैत रहे छथि। चित् स्वरूप। किन्तु जखन प्रकृति ऊपर चढ़ैत छथिन्ह त चित् चित्त भऽ जाइ छथि। हौ, असलमे बूझह त सांख्यमे विपरीत रतिक भावना छैक।[7]

'खट्ठर ककाक तरंग' एक मात्रा खट्ठर ककाक बुद्धि विलासताक प्रतीक थिक। हिनक बुद्धि तर्कसँ तर्कक आकाट्य-भेदी वाण तिलमिला दैछ केहनो सद्ध केहनो तार्किककेँ हिनक एक-एक तर्क तथ्यपूर्ण तथा ग्वेषणापूर्ण रहैछ संगहि कुतूहलवर्द्धक जे शास्त्रीय सिद्धांतकेँ चरमरा दैत अछि। हास्यक चासनी दए तीक्ष्ण प्रहार करबामे हिनक सफलता– सिद्धहस्तता द्योतित होइछ।[8]

प्रो0 हरिमोहन झा दर्शनक महान पंडित रहथि। ओ दर्शनकेँ मैथिली साहित्यक विभिन्न विद्याकेँ गौरवान्वित करबामे लगेलन्हि जाहिसँ मैथिली साहित्यक गरिमा चहुँदिश विकसित भेल। दर्शनक क्षेत्र मे ओ पं0 रामावतार शर्माक दर्शनसँ प्रभावित रहल छथि जकर छाप मैथिली साहित्यमे सेहो देखबा लेल भैटेत अछि। अपन भारतक सभ्यता ओ संस्कृति अति प्राचीन अछि एतय समय-समय पर वाह्य संस्कृतिक जे प्रभाव पड़ल आ ओहि सभक प्रभावसँ जे संस्कृति आइ विकसित भेल अछि वैह समन्यवादी संस्कृति थिक। प्रो0 हरिमोहन झा दर्शन शास्त्रक पंडित होयबाक कारणे अपन मैथिली लेखनमे सभ स्थान पर समन्यवादी संस्कृतिक आश्रय ग्रहण कयने छथि, जकर उदाहरण 'खट्ठर ककाक तरंग'अछि जाहिमे समन्यवादक दर्शन होइत अछि। खट्ठर कका बिनोदी व्यक्ति थिक। ताहिलेल हिनक गप्प बिनोदपूर्ण होइत अछि। खट्ठर कका भौतिकवादक समर्थक छथि एही कारणसँ लोग हुनका अभिनव चार्वाक कहैत छन्हि।[9]

प्राचीन भारतीय साहित्यमे जड़वादक लेल प्राय: चार्वाक शब्द व्यवहृत होइत रहैक। चर्वाक शब्दक मूल अर्थ की एकर पता नहि अछि। किछु विद्वानक मत छल जे– चार्वाक एक ऋषि नाम रहथि जे जड़वादक प्रतिवादन कयने रहथि। अत: हुनक अनुयायी सेहो चार्वाक कहलन्हि। एहि तरहेँ जड़वादीक नाम चार्वाक पड़ल। किछु विद्वानक कथन अछि जे चार्वाक कोनो व्यक्तिक नाम नहि रहैक। चार्वाक शब्द चर्व धातुसँ निष्पन्न अछि। चर्वक अर्थ चबायब अथवा भोजन करब होइत अछि, कियैकतँ चावकि शब्दमे खयब–पीयबा पर विशेष जोड़ देल जाइत अछि एहि लेल एकर नाम चार्वाक पड़ल।[10]

'खट्ठर ककाक सिद्धांत अछि यावत् जीवेत सुखं जीवेत्'।

हुनका जँ सूर चढ़ैत छनि तँ स्वर्ग–नर्क, इहलोक–परलोक, पुनर्जन्म–मोक्ष, धर्म–अधर्म सबकेँ भाँगक तरंगमे बहा दैत छथि, वेद–पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद सभक धाज्जी उड़ाकेँ राखि दैत छथि। भगवानोसँ हास–परिहास करबामे पाछू नहि रहैत छथि।

प्रो0 हरिमोहन झाकेँ पाखंडक खंडन करबामे विशेष रसक प्राप्ति होइत छन्हि तँ खट्ठर कका सामाजिक रूढ़ि वा अंधविश्वासपर प्रहार करबाकलेल सदिखन तत्पर रहैत छथि। तर्कक दाँव–पेंचसँ अपन प्रतिपक्षकेँ चित्तकऽ दैत छथि।

दर्शनशास्त्रमे वाद–विवाद ओहि विचाकेँ कहल जाइत अछि जाहिमे सभटा प्रमाण आ तर्कक सहयातासँ विपक्षीकेँ निष्फल करबाक प्रयास कयल जाइत अछि।

जितबाक इच्छासँ तर्क करब 'जल्प' कहल जाइत अछि। एहिमे वादी वा प्रतिवादीक उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करबाक बदलामे विजयकेँ शिरोधार्य करब होइत अछि।[11]

एतावता उपर्युक्त विवेच्य विषयक आधार पर निष्कर्षत: यैह कहल जा सकैत अछि जे प्रो0 हरिमोहन झाक मैथिली कृतिमे दर्शनक अद्भुत स्वरूप दृष्टिगोचर होइत अछि, एहि लेल ई स्पष्टत: कहल जाइत अछि जे हरिमोहन झा मैथिली साहित्यकेँ बड़ अद्भुत ढ़ंगसँ अपन दार्शनिक विचारसँ रंगैक काज कयलन्हि जाहिसँ मैथिली साहित्य आइ गौरवान्वित भऽ चुकल अछि।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. दर्शन साहित्य और समाज– शिवकुमार मिश्र– वाणी प्रकाशन 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली– 110002, संस्करण– 2000, पृष्ठ भूमिका।
2. तत्रौव, पृष्ठ 2
3. भारतीय दर्शन एवं संस्कृति, सम्पादक– डॉ. ईश्वर चन्द्र–प्रकाश–एस.के.पब्लिशिंग
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, प्रकाशक नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोती लाल वाराणसी दास, बगलो रोड, दिल्ली– 110007, पंचम संशोधित संस्करण, दिल्ली–1995, पृष्ठ 2
5. विश्वविद्यालय मैथिली विभाग शोध पत्रिका–7–2012, सम्पादक वीणा ठाकुर, प्रकाशक–मैथिली साहित्य परिषद विश्वविद्यालय मैथिली विभाग नरगौना पैलेस, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय कामेश्वर नगर, दरभंगा। पृष्ठ 108
6. खट्ठर ककाक तरंग, लेखक हरिमोहन झा, प्रकाशक शेखर प्रकाशन, पटना–24, पृष्ठ 197, 198
7. तत्रौव, पृष्ठ 200–201
8. मैथिली विश्वविद्यालय मैथिली विभाग शोध पत्रिका–3, प्रकाशक मैथिली साहित्य परिषद् विश्वविद्यालय मैथिली विभाग नरगौना पैलेस, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय कामेश्वर नगर, दरभंगा, प्रकाशक वर्ष 2008, पृष्ठ 129
9. प्रो0 हरिमोहन झा, अभिनन्दन ग्रंथ 1889 ई0, प्रकाशक मैथिली गोष्ठी पटना, पृष्ठ 233
10. भारतीय दर्शन, सम्पादक सतीश चंद्र चट्ठोपाध्याय, प्रकाशक पुस्तक भंडार पटना, पृष्ठ 34
11. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, लेखक प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, बंगाली रोड, दिल्ली–110007, पंचम संशोधित संस्करण दिल्ली–1993, पृष्ठ 167

गाँधी और सत्याग्रह : एक अध्ययन

बिपिन कुमार

अतिथि व्याख्याता, इतिहास विभाग, महंत दर्शनदास महिला महाविद्यालय,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

दया धारम को मूल है पापमूल अभिमान
तुलसी दया न छाडिये, जब लग घट मे प्रत्न

सत्य व अहिंसा को वास्तविकता में लागू करने या सत्य हेतु अहिंसक संधार्ष के गाँधीवादी तरीके ज्ञत्याग्रह' का अध्ययन मात्र गांधी के विचारों के व्यवहारिक रूप में समझने हेतु ही नहीं अपितु सामयिक रूप से भी महत्वपूर्ण है। जबकि मार्च 1996 में उसी महात्मा के प्रपौत्र तुषार अरूण गाँधी ने महात्मा के अस्थि कलशों हेतु उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर में सफलता पूर्वक सत्याग्रह द्वारा राज्य से अपनी मांगे मनवायी।

सत्याग्रह शब्द का निर्माण गांधी ने दक्षिण अफ्रिकी अभियान में 1906 में मगनलाल गांधी के शब्द सदाग्रह को सुधार कर किया था यह शब्द सत्य और आग्रह शब्दों से मिलाकर बना है जिसका अर्थ है सत्य के लिए आग्रह करना। यदि कोई व्यक्ति स्वार्थ रहित होकर निष्पक्ष रूप से विचार करने के बाद किसी विचार कार्य या सिद्धान्त को सत्य मानता है तो कष्टो तथा कठिनाइयों की चिंता किए बिना उसे उसी सिद्धान्त या विचार के अनुरूप दृढ़तापूर्वक आचरण करना चाहिए। इसमें बाधा डालने वाले व्यक्तियों व संगठनों का अहिंसात्मक उपायों द्वारा सक्रिय रूप से प्रतिरोध करना चाहिए। अत: भय व प्रलोभन से प्रभावित हुए बिना स्वंय कष्ट सहते हुए केवल अहिंसात्मक उपायों की मदद से सदैव सत्य पर दृढ़ रहना और मन, वचन कर्म से उसी के अनुसार आचरण करना सत्याग्रह है।

गाँधी का सत्याग्रह दर्शन सत्य के सर्वोच्च आदर्श पर आधारित है। यदि सत्य ही चरम शक्ति है तो उसके पुजारी का चरम पुनीत कत्तर्व्य है कि सत्य की कसौटी पर खड़ा उतरे। उसके आधारों का पोषण करे। समाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में अन्याय व अत्याचार के विरूद्ध सत्याग्रह करने की प्रेरणा गांधी को भ्मदतल कंअपक जीवतमंन के बंivपस क्पेवइमकपमदबम नामक पुस्तक से मिली जिसे उन्होने अपने अनुसार विकसित किया। गाँधी हेतु सत्याग्रह मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार ही नहीं अपितु पुनीत कत्तर्व्य भी है। सब प्रकार के अन्याय उत्पीड़न व शोषण के विरूद्ध शुध आत्म बल का प्रयोग ही सत्याग्रह है। कष्ट सहना वह विश्वास आत्मबल के गुण है, सक्रिय अहिंसात्मक प्रयोग विरोधी को जोखिम नहीं डालना चाहता बल्कि वह उसे अपनी निर्दोशिता की प्रचंड शक्ति से अभिभूत कर देना चाहता है।

सत्याग्रह सामाजिक व राजानीतिक विघटन का सूत्र नहीं था। सत्याग्रही वही हो सकता जिनसे पहले स्वेच्छा से वुद्धिमानी के साथ वह स्वस्थ्य राज्य के कानूनें का पालन किया है क्योंकि तभी वह निर्णय कर पाएगा कि कौन सा कानून अच्छा व न्यायोचित है व कौन सा अन्यायपूर्ण व अनुचित मनुष्य राज्य के नागरिक व नैतिक कानूनों का पालन करके अनुशासन सीख ले तभी उसमें सविनय प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न हो सकती है। पर सत्याग्रह अनेक प्रकार से परिवार समाज, प्रशासकों, अधिकारी समुदाय असमाजिक तत्वों तथा अंतत: राज्य किसी के विरूद्ध भी सत्य हेतु हो सकता है क्योंकि अलग-2 संदर्भो में सत्य के अलग-2 रूप हो सकते है। सत्याग्रह की पूर्व शर्ते देखें तो

1. एक गलत लक्ष्य हेतु को कोई सत्याग्रह नहीं हो सकता क्योंकि यह परिभाषा से ही सत्य को बनाए रखने के प्रति समपर्ण

है अत: लक्ष्य उचित हो।

2. सत्याग्रह परिभाषा से ही किसी भी आकार या स्वरूप मन वचन व कर्म में हिंसा के प्रयोग के विरूद्ध है।
3. सत्याग्रह राज्य के कानूनों के प्रति तर्कपूर्ण इच्छुक समर्पित व निर्भय पालन चाहता है क्योंकि जिन परिस्थितियों में लोग प्रकृति से ही आजादी के प्रेमी हो मात्र वही सत्याग्रह लागू हो सकता है।
4. सत्याग्रह सहने की क्षमता व इच्छा चाहता है।
5. अनुशासन आवश्यक है।
6. सत्याग्रह उन लोगों की विनयपूर्ण दीनता चाहता है जिनकी शक्ति उनकी स्थिति के सही होने में निहित है।
7. सत्याग्रह व्यक्तिगत लाभ हेतु नही अपितु मात्र दूसरे के भले हेतु प्रयोग हो सकता है।

सत्याग्रह का स्वरूप सत्याग्रही की क्षमता पर निर्भर है किवह इसे किस प्रकार प्रयोग करता है इसके सैकड़ो रूप हो सकते हैं जैसे उपवास धरना, प्रदर्शन, अहिंसक हड़ताल अन्तत: असहयोग।

आत्म शुद्धि हेतु उपवास सामाजिक अन्याय व राज्य के विरूद्ध हड़ताल जैसे तरीकों से सत्यग्रही निरंतर सत्य हेतु आग्रह बनाये रख सकता है यही पर हम निष्क्रिय प्रतिरोध वह सत्याग्रह में अन्तर भी देखा जा सकता है जिसे 'हिन्द स्वराज' के समान रूप से प्रयोग करने के बावजूद उन्होनें अन्तर स्पष्ट किया:

1. यदि हम स्वयं व दूसरों को मानने कि हम कमजोर व नि:सहाय है। व इसलिए निष्क्रिय प्रतिरोध करते हैं तो हमारा प्रतिरोध कभी हमें मजबूत नही बनाता जबकि सत्याग्रह हमारे शक्ति दिनप्रतिदिन हमारे विश्वास के समान बढ़ती जाती है। तथा हमारा सत्याग्रह भी अधिक प्रभावी बन जाता है।
2. निष्क्रिय प्रतिरोध में प्यार हेतु कोई स्थान नही हैं तो सत्याग्रह में नफरत एवं धृणा का कोई स्थान नहीं है।
3. सत्याग्रह में अस्त्र–शास्त्र का प्रयोग व हिंसा का किसी भी स्थिति में कोई स्थान नहीं है पर निष्क्रिय प्रतिरोध में हिंसा के प्रयोग की संभावना बनी रहती है।
4. सत्याग्रह अपने नजदीकियों व धानिष्ठ लोगों के साथ प्रयोग हो सकता है पर निष्क्रिय, प्रतिरोध में नहीं।
5. निष्क्रिय प्रतिरोध में दूसरों को परेशान करने का लक्ष्य रहता है। पर सत्याग्रह में शायद ही इसकी कोई संभावना है। सत्याग्रह का सभी स्थानों व परिस्थितियों में प्रयोग हो सकता है। पर निष्क्रिय प्रतिरोध विरोधी के विरूद्ध ही हो सकता है।
6. सत्याग्रही को नेतृत्व चरित्र पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। निष्क्रिय प्रतिरोध में नैतिक चरित्र का कोई महत्व नहीं है।

गाँधी मानते थे कि सत्याग्रही मात्र अस्त्र है जिसके द्वारा बुराई और अन्याय का प्रतिरोध संभव है वह एक साफ सुथरा व अहानिकारक व अन्याय का प्रतिरोध संभव है। यह एक जीवन पद्वति भी है। जीवन के अनेकता में जो एकता होती है सत्याग्रह उसमे सम्पूर्ण आस्था रखती है। सामाजिक जीवन में भी सत्याग्रह की भी वही महत्वपूर्ण भूमिका है जो व्यक्तिगत जीवन में है। सामाजिक कुरीतियों के निराकरण में सत्याग्रह सबसे प्रभावशली अस्त्र है। Indian Opinion गाँधी ने लिखा था हम जिसे हम सत्य समझते हैं उसे मरते दम तक नहीं छोड़ना सत्य के लिए चाहे कितनी तकलीफें उठानी पड़े। शस्त्र उठाना कष्ट किसी को नहीं पहुँचाना क्योंकि कष्ट पहुँचाने से सत्य का उलंघन होता है। इतना सब शक्ति का आ जाना ही सच्ची जीत है एक बार और उन्होने कहा था कि सत्याग्रह एक ऐसी तलवार है जिसके सब ओर धार है उसे जैसा चाहे वैसा काम में लाया जा सकता है। उसे काम में लाने वाला तथा जिसपर वह काम में लाई जाती है दोनों सुखी होते है।

सत्याग्रह एक अध्यात्मिक तरीका है जिसमें अपने अत्याचारियों के विरूद्ध कोई भी हेय भाव न रखते हुए अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज का अनुसरण किया जाता है। वह किसी भी हालत में सत्य के प्रतिपादन को पीछे नही हटा जाता। यदि सत्याग्रही के संघ र्ष में मृत्यू भी हो जाए तो भी उसकी अन्त नहीं होता बल्कि विरोधी को सत्य के दर्शन कराने के लिए कभी–2 सत्याग्रहीं का भरना आवश्यक हो जाता है। सत्यग्रह का उद्देश्य है विरोध का अन्त करना न कि विरोधी का इस आदर्श की पूर्ति तभी संभव है जब

व्यक्ति पूर्ण अहिसा के मार्ग पर चले। यदि व्यक्तिगत जीवन में सत्याग्रहवादी अहिंसावादी नहीं है तो वह सार्वजनिक विषयों में भी अहिंसावादी नहीं बन सकता। सत्याग्रह के सार्वजनिक प्रयोग से पहले जरूरी है व्यक्ति पहले अपने दिल को टटोलकर देख ले व उसपर विजय प्राप्त कर ले आन्तरिक चरित्र के अभाव में सत्याग्रही प्रभावहीन रहेगा Indian opinion गांधी ने कहा था कि सत्याग्रह के तरीके से लड़ने वालों के रास्ते में बाहरी कारणों से बिल्कुल बाधा नहीं आ सकती इनके लिए तो इनकी कमजोरी ही बाधाक होती है। सत्याग्रह दूर्बल एवं कायर व्यक्ति का हथियार नहीं है क्योंकि इसके लिए महान धैर्य संयम एवं नैतिक बल की जरूरत होती है जो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य के पालन अस्तेय का व्यवहारिक प्रयोग अपरिग्रह तथा आत्मानुसरण व अनुशासन से प्राप्त होती है।

संविधानवादी गाँधी बिना किसी अस्थिरता के सत्याग्रह को नागरिक के संवैधानिक अधिकार के रूप में स्थापित कर रहे थे जिसमें सत्याग्रही ब्लैकमेलिंग नहीं अपितु सत्य हेतु आग्रह करता था कि मैं सह रहा हूँ अत: मुझे समझों तथा वार्ता की सीमा तक आओ जिससे सहमति उभर सके क्योंकि सत्य तो एक है जिस तक दोनों को आना होगा। दोनों ओर से सत्य उभरेगा व सामना होगा वो टकराव के स्थान पर उच्च स्तरीय सामंजस्य उभरेगा। संविधानवादी होने की नीति को गाँधी अंतिम हल के रूप में समझते को महत्वपूर्ण हल मानते थे क्योंकि उनका लक्ष्य दूरगामी सह अस्तित्व था ताकि एक स्थिर समाज की स्थापना हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

* गाँधी जी के पेपर
* एम. के गाँधी– हिन्द स्वराज
* एम. के गाँधी– स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेन्ट विद टूथ अहमदाबाद–1927
* सुधीर धोष– गांधीजी एम्मसरी लंदन 1967
* जे.बी कृपलानी– गाँधी, हिज लाइफ एण्ड थॉट-1981
* बी. आर नंदा– महात्मा गांधी ए वायोग्राफी–1981-गांधी एण्ड हिज क्रिटिक्स
* डी जी तेंडुलकर– दि महात्मा गाँधी दिल्ली– 1960

भारत व नेपाल के बीच सामारिक सम्बन्ध

डॉ० मंजूषा रानी

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जैन कन्या पाठशाला पी.जी कॉलेज, मुजफ्फरपुर

प्रस्तावना

भारत और नेपाल भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक रूप से एक दूसरे से नजदीकी से सम्बन्धित है। नेपाल की सीमा भारत के साथ करीब 2000 कि0मी0 की है। नेपाल के उत्तर में चीन है। चीन और भारत जैसे दो बड़े देशों के बीच एक छोटे देश के रूप में स्थित नेपाल की स्थिति एक (बफर स्टेट) अन्तस्थ राज्य जैसी है। नेपाल एक स्वतंत्र राज्य है और इसकी अन्तस्थ स्थित के कारण इसकी विदेश नीति तथा रक्षा का भारत से गहरा सम्बन्ध है। नेपाल व भारत के बीच का अधिकतर इलाका मैदानी है। इसलिए नेपाल और भारत के लोगों को आपसी व्यापार करने में सुविधा होती है। नेपाल व भारत के लोगों के बीच सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकरूपता पायी जाती है। भारत की सुरक्षा नेपाल के साथ जुड़ी हुई है। भारत और नेपाल की सीमा खास तौर पर, नए चीन के उभर कर आने के बाद भारत की सुरक्षा नेपाल के साथ और अधिक प्रभावित हो रही है। आधुनिक नेपाल के निर्माता पृथ्वी नारायण शाह ने नेपाल की विदेश नीति निर्मित करते हुए कहा है कि, "यह देश दो चट्ठानों क` बीच खिले हुए फूल के समान है। वास्तव मे ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से निकटस्थ देश सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के सूत्र सदैव एक समान व पास्परिक राजनीतिक व सामरिक हितों की अन्तकरण से प्रभावित होते रहे हैं जिनकी पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय सुरक्षा ही रही है।

भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् भी भारत ने समानता के सिद्धान्त के आधार पर नेपाल से अपने मैत्री सम्बन्धों को प्राथमिकता देते हुए नेपाल के आर्थिक पुर्ननिर्माण में पर्याप्त सहायता के परिणामस्वरूप नेपाल के तत्कालीन शासक वर्ग राजाओं ने सन् 1923 की सन्धि को स्थितिगत परिवर्तन लाते हुए इसे सन् 1950 को शान्ति और मैत्री सन्धि का रूप प्रदान किया क्योंकि दोनों देश हिमालय के पार बदलते राजनीतिक संदर्भ एवं चीन में साम्यवादी शक्ति के अभ्युदय के परिणामों तथा तिब्बत में उसकी गतिविधियों से सुपरिचित थे। शांति और मैत्री सन्धि 1950 में भारत इस बात के लिए इच्छुक था कि प्रभुसत्ता सम्पन्न समानता तथा अच्छे पड़ौसी के सम्बन्धों के आधार पर भारत नेपाल सम्बन्धों की पुनः व्याख्या की जाएं। लगभग नौ मास की क ूटनीतिक गतिविधियों और आपसी बातचीत के परिणामस्वरूप 31 जुलाई 1950 को भारत और नेपाल ने शाति और मित्रता की सन्धि पर हस्ताक्षर किए। इस सन्धि में यह स्पष्ट प्रावधान किया गया था कि दोनों देशों में से कोई भी देश दूसरे देश पर किसी विदेशी आक्रमण या उसकी सुरक्षा के लिए उत्पन्न संकट को सहन नहीं करेगा। भारत और नेपाल ने एक दूसरे को वचन दिया कि किसी तीसरे (अन्य) देश की ओर से उत्पन्न सं कट या धामकी का प्रभावी सामना करने तथा सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पारस्परिक सहयोग करेंगे। 31 जुलाई 1950 को भारत और नेपाल ने अन्य संधि पर भी हस्ताक्षर किए। इस व्यापार और वाणिज्य सन्धि स` भारत-नेपाल सम्बन्ध और भी प्रगाण हुए और यही से भारत-नेपाल आर्थिक सहयोग का सुखद युग आरम्भ हुआ। यद्यपि सन् 1950-51 में राजाशाही का नेपाल में जबरदस्त विरोध होने पर भारत ने पूर्ण समर्थन किया था तथापि नेपाल के आंतरिक अस्थिर परिस्थितियों के कारण भारत व नेपाल के सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न होने लगी। तत्कालीन नेपाल नरेश महेन्द्र एवं प्रधानमंत्री वी0पी0 कोइराला के मध्य उत्पन्न संघर्ष की स्थिति तथा नेपाल द्वारा भारत विरोधी प्रचार युद्ध के परिणाम स्वरूप भारत-नेपाल सम्बन्ध काफी बिगड़ गये। 11-12 जनवरी 1961

को नेपाल के विदेशमंत्री डॉ. तुलसी गिरी की नई दिल्ली यात्रा से भारत-नेपाल के सम्बन्धों में सौहार्दपूर्ण वातावरण में वृद्धि हुयी। 3 किन्तु राजा महेन्द्र सिंह की अगस्त 1961 में नई दिल्ली यात्रा के पश्चात् सितम्बर 1961 में चीन यात्रा के समय चीन से सम्पन्न समझौतों के परिणाम स्वरूप भारत-नेपाल सम्बन्धों में पुनः गतिरोध उत्पन्न हो गया। सन् 1962 में भारत-चीन युद्ध के समय नेपाल ने तटस्थता की नीति का अनुसरण करके कोई भी भारत विरोधी कदम नहीं उठाया। लेकिन भारत की चेतावनी देने के बाद भी नेपाल ने काठमांडू-ल्हासा मार्ग बनवाने के लिए चीन से समझौता करके भारत के लिए खतरा उत्पन्न किया। परन्तु भारत ने इसे पसन्द नहीं किया। सन् 1962 के बाद भारत-नेपाल सम्बन्धों में सुधार होने लगा। सन् 1968-69 में भारत ने नेपाल को 14.5 करोड़ रू0 की सहायता प्रदान की जो नेपाल को मिलने वाली नेपाल सहायता का 50 प्रतिशत थी। सन् 1970-71 में जहाँ एक ओर भारत सरकार द्वारा 37388 लाख रू0 त्रिशूल हाइड्रोइलेक्ट्रिक व गण्डक परियोजनाओं हेतु व्यय किए गये, इतनी अधिक सहायता राशि प्रदान कर भारत द्वारा उसकी परियोजनाओं को पूर्ण करने का सराहनीय प्रयास किया। 1972 से आरम्भ में महाराजा महेन्द्र सिंह के निधान के पश्चात् उनके पुत्र नरेश वीरेन्द्र नए नेपाल नरेश बने। उनके सत्ता में आते ही नेपाल ने भारत के साथ सामान्य सम्बन्धों की स्थापना के लिए उपाय आरम्भ किए। सन् 1974 में भारत व नेपाल के मध्य सिंचाई, विद्युत संचार, उद्योग व कृषि आदि क्षेत्रें में सहयोग हेतु समझौते सम्पन्न हुए। सन् 1974 में ही भारत व सत्तारूढ. जनता सरकार के शासन काल में भी नेपाल के साथ सम्बन्धों को सुधारने का प्रयास तो हुआ ही साथ ही 17 मार्च 1978 को दोनों देशों के मध्य एक व्यापार सन्धि, एक पृथक पारगमन सन्धि और पारस्परिक अवैधानिक व्यापार को रोकने के लिए एक सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर सम्पन्न हुए जिसके अन्तर्गत नेपाल को आपसी व्यापार मे अनेक शुल्क सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त हुई।

1.2 भारत-नेपाल संबंध

भारतीय गणतंत्र और संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य ने शांति और मित्रता की 1950 की भारत-नेपाल संधि और दोनों देशों के बीच सुरक्षा संबंधों को परिभाषित करने वाले गुप्त पत्रों के साथ अपने संबंधों की शुरुआत की, और दोनों द्विपक्षीय व्यापार और भारतीय क्षेत्र में व्यापार को नियंत्रित करने वाला एक समझौता हुआ। 1950 की भारत सरकार और नेपाल के राणा शासकों के बीच हुई संधि और पत्र में कहा गया है कि न तो सरकार किसी विदेशी आक्रमणकारी द्वारा दूसरे की सुरक्षा के लिए किसी भी खतरे को बर्दाश्त करेगी और दोनों पक्षों को बाध्य किया कि वे एक दूसरे को किसी गंभीर बीमारी के बारे में सूचित करें या किसी भी पड़ोसी राज्य के साथ गलतफहमी के कारण दोनों सरकारों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों में कोई दरार पैदा हो सकती है। इन आरोपों ने भारत और नेपाल के बीच एक विशेष संबंध को मजबूत किया। संधि ने नेपाली को भी भारत में भारतीय नागरिकों के समान आर्थिक और शैक्षणिक अवसर प्रदान किए, जबकि नेपाल में अन्य राष्ट्रीयताओं की तुलना में भारतीय नागरिकों और व्यवसायों के लिए अधिमान्य व्यवहार के लिए लेखांकन। भारत-नेपाल सीमा खुली है नेपाली और भारतीय नागरिक बिना पासपोर्ट या वीजा के स्वतंत्र रूप से सीमा पार जा सकते हैं और दोनों देशों में रह सकते हैं और काम कर सकते हैं। हालाँकि, भारतीयों को नेपाल में सरकारी संस्थानों में जमीन-जायदाद या काम करने की अनुमति नहीं है, जबकि भारत में नेपाली नागरिकों को भारतीय सरकारी संस्थानों में काम करने की अनुमति है। 2014 में नेपाली सरकार द्वारा भारत के असंतोष के बाद, वर्तमान वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करने के लिए संधि को संशोधित और समायोजित करने के लिए सहमत हुए। हालाँकि, समायोजन के तौर-तरीके दोनों ओर से स्पष्ट नहीं किए गए हैं।

भारतीयों और नेपाली के बीच लोगों के स्तर पर घनिष्ठ भाषाई, वैवाहिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संबंधों के बावजूद, 2015 के अंत से, राजनीतिक मुद्दों और सीमा विवादों ने सरकार के बीच बढ़ती भारतीय विरोधी भावना के साथ दोनों देशों के बीच संबंधों को तनावपूर्ण बना दिया है। दोनों देशों के बीच सीमा विवाद के कारण, सरकार द्वारा अभी तक एक सीमा समझौते की पुष्टि नहीं की गई है।

भारत और नेपाल के बीच संबंधों की नींव 1950 में भारत-नेपाल मैत्री संधि के साथ रखी गई थी। 1950 के दशक में, नेपाल के राणा शासकों ने भारत के साथ घनिष्ठ संबंधों का स्वागत किया, उनके (राणा) निरंकुश शासन को उखाड़ फेंका। उद्धरण वांछित नेपाल में राणा शासन हालांकि 1950 की भारत-नेपाल संधि पर हस्ताक्षर करने के 3 महीने के भीतर ही ढह गया, जिसे उस समय की एकमात्र भारतीय समर्थक पार्टी—नेपाली काँग्रेस ने बदल दिया। जैसे-जैसे नेपाल के तराई क्षेत्र में रहने और काम करने वाले

भारतीयों की संख्या बढ़ी और नेपाल की राजनीति में भारत की भागीदारी 1960 के दशक में और उसके बाद और गहरी हुई, इसलिए विशेष रिश्ते के साथ नेपाल की बेचैनी भी बढ़ गई। उद्धरण वांछित, नेपाल पर भारत का प्रभाव 1950 के दशक में बढ़ा। 1952 के नेपाली नागरिकता अधिनियम ने भारतीयों को नेपाल में बसने और नेपाल में नागरिकता हासिल करने में आसानी के साथ अनुमति दी-नेपाल में भारी नाराजगी का स्रोत (यह नीति 1962 तक नहीं बदली गई जब नेपाली संविधान में कई प्रतिबंधत्मक धाराएं जोड़ी गईं)। इसके अलावा 1952 में, एक भारतीय सैन्य मिशन नेपाल में स्थापित किया गया था, जिसमें एक मेजर जनरल और ,,- अन्य भारतीय सेना के जवान शामिल थे, उसी समय, भारत के बढ़ते प्रभाव से नेपाल के शाही परिवार का असंतोष उभरने लगा और चीन द्वारा भारत को प्रतिहस्ताक्षरित करने के लिए चीन की ओर से पहल की गई। आगे नेपाली सरकार ने नेपाल की विदेश नीति में संयुक्त राज्य अमेरिका के झुकाव को दिखाने के लिए एक सोची समझी कोशिश के रूप में, 1 जून, 1960 में इजराइल राज्य के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किए, जबकि भारत सरकार ने फिलिस्तीन का समर्थन किया और समर्थक बनी रही।

1962 के चीन-भारतीय सीमा युद्ध के बाद, काठमांडू और नई दिल्ली के बीच संबंध काफी महत्वपूर्ण हो गए। भारत ने भारत-आधारित नेपाली विपक्षी ताकतों (राजा महेंद्र द्वारा लोकतांत्रिक सरकार के विघटन का विरोध) को अपना समर्थन निलंबित कर दिया। 1962 में भारतीय सेनाओं की हार ने नेपाल को राहत की सांस दी और नेपाल ने व्यापार में कई रियायतें दीं। बदले में, एक गुप्त समझौते के माध्यम से 1965 में संपन्न हुआ, 1963 में निलंबित कर दी गई व्यवस्था के समान, भारत ने नेपाल को हथियारों की बिक्री पर एकाधिकार जीता।

1969 में संबंध फिर से तनावपूर्ण हो गए क्योंकि नेपाल ने मौजूदा आपसी सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती दी और पूछा कि भारतीय सुरक्षा चौकियों और संपर्क समूह को वापस ले लिया जाए। 1950 के दशक के टीपीएफ के खिलाफ भी आक्रोश व्यक्त किया गया था। भारत ने 1970 में नेपाल से 23 सैन्य कर्मियों से युक्त अपने सैन्य चौकियों और संपर्क समूह को वापस ले लिया था, हालांकि इस संधि को अस्वीकार नहीं किया गया था।

1970 के दशक के मध्य में तनाव सिर पर आ गया, जब नेपाल ने व्यापार और पारगमन संधि में पर्याप्त बदलाव के लिए दबाव डाला और भारत द्वारा सिक्किम की 1975 की घोषणा की खुले तौर पर आलोचना की। 1975 में नेपाल के करीबी पड़ोसी ज्ञपदहकवउ द किंगडम ऑफ सिक्किम के भारतीय अनाउंसमेंट की पृष्ठभूमि में राजा बीरेंद्र बीर बिक्रम शाह देव ने नेपाल को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक वजिोन ऑफ पीस के रूप में मान्यता देने का प्रस्ताव रखा, जहां सैन्य प्रतिस्पर्धा सीमा से बाहर होगी। नेपाल के प्रस्ताव को तुरंत पाकिस्तान और चीन का समर्थन मिला, लेकिन भारत का नहीं। नई दिल्ली के विचार में, यदि राजा के प्रस्ताव में 1950 की उस संधि का खंडन नहीं किया गया था, जो तत्कालीन भारत सरकार ने नेपाल के राणा शासकों के साथ हस्ताक्षर की थी, तो यह अनावश्यक था यदि यह विशेष संबंध का प्रतिकार था, तो यह भारत की सुरक्षा के लिए संभावित खतरे का प्रतिनिधित्व करता था और इसका समर्थन नहीं किया जा सकता था। 1984 में नेपाल ने प्रस्ताव को दोहराया, लेकिन भारत की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। नेपाल ने लगातार अंतर्राष्ट्रीय मंचों में प्रस्ताव को बढ़ावा दिया और 1990 तक इसने अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस सहित 112 देशों का समर्थन हासिल कर लिया।

1970-1980

1978 में भारत एक लंबी अवधि की नेपाली मांग को पूरा करते हुए अलग-अलग व्यापार और पारगमन संधियों के लिए सहमत हुआ। हालाँकि, नेपाली रॉयल पैलेस की नाराजगी और 1950 के पीएफटी के लगातार उल्लंघन में, भारत ने लगातार नेपाल के विपक्षी दलों को नेपाली सरकार के खिलाफ आंदोलन शुरू करने के लिए भारतीय मिट्ठी का उपयोग करने की अनुमति दी और नेपाल को शांति क्षेत्र के रूप में समर्थन देने से इनकार कर दिया। 1988 में, जब दोनों संधियाँ नवीकरण के लिए उठ रही थीं, नेपाल ने एक भी व्यापार के लिए भारत की इच्छाओं को समायोजित करने से इनकार कर दिया और कहा कि यह 'व्यापार के लिए स्वतंत्रता के सिद्धांत का उल्लंघन करता है। तत्पश्चात, भारत और नेपाल दोनों ने एक कठिन स्थिति में ले लिया जिससे भारत-नेपाल संबंधों में गंभीर संकट पैदा हो गया। नेपाली नेताओं ने कहा कि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार, पारगमन विशेषाधिकार भूमि-बंद देश का एक मौलिक और एक स्थायी अधिकार था और इस प्रकार एक संधि के लिए भारत की मांग अस्वीकार्य थी। इसलिए, दो

एक्सटेंशन के बाद, 23 मार्च 1990 को दोनों संधियों की समय सीमा समाप्त हो गई, जिसके परिणामस्वरूप नेपाल की एक आभासी भारतीय आर्थिक नाकाबंदी हुई जो अप्रैल 1990 के अंत तक चली। जब नेपाल में भारतीय आर्थिक प्रतिबंधें को समय के साथ व्यापक रूप से चौड़ा किया गया। उदाहरण के लिए, भारत में प्रवेश (या आयात या निर्यात) से गुजरने वाले या गुजरने वाले नेपाली सामानों पर तरजीही सीमा शुल्क और पारगमन कर्तव्यों को बंद कर दिया गया था। इसके बाद भारत ने नेपाल को मिलने वाले सामानों के लिए कलकत्ता में तेल प्रसंस्करण और वेयरहाउस स्पेस से संबंधित समझौते किए। इन प्रतिबंधें के अलावा, भारत ने पूर्व में नेपाल में नियमित रूप से बढ़ाए गए सभी व्यापार ऋणों को रद्द कर दिया था।

1990 के दशक का

नई दिल्ली और काठमांडू के बीच विशेष सुरक्षा संबंध जून 1990 में नेपाल के प्रधान मंत्री कृष्ण प्रसाद भट्ठराई और भारतीय प्रधान मंत्री वीपी सिंह की नई दिल्ली बैठक के दौरान फिर से स्थापित किया गया था, जब भारत ने नेपाल की 13 महीने की लंबी आर्थिक नाकेबंदी को समाप्त कर दिया था। नेपाल के प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोइराला की दिसंबर 1991 की भारत यात्रा के दौरान, दोनों देशों ने नेपाल के अतिरिक्त आर्थिक लाभ के समझौते के लिए नए, अलग व्यापार और पारगमन संधियों और अन्य आर्थिक समझौतों पर हस्ताक्षर किए।

भारतीय-नेपाली संबंध तब और अधिक आश्वस्त हो गए, जब नेपाल के प्रधान मंत्री मन मोहन अधिकारी ने अप्रैल 1995 में नई दिल्ली का दौरा किया और 1950 की शांति और मैत्री संधि की एक प्रमुख समीक्षा पर जोर दिया, जो नेपाल का मानना था कि नेपाल के तराई क्षेत्र में जारी जनसांख्यिकीय बदलाव को सक्षम कर रहा है।। संधि से संबंधित अपने भारतीय मेजबानों द्वारा सौम्य बयानों का सामना करते हुए, अधिकारी ने चीन के साथ संबंधों को सुधारने के लिए एक साथ प्रयास करते हुए अपने भूस्वामी राष्ट्र के लिए अधिक आर्थिक स्वतंत्रता की मांग की।

जून 1990 में, एक संयुक्त काठमांडू-नई दिल्ली विज्ञप्ति को द्विपक्षीय संबंधों के सभी पहलुओं को कवर करने, नेपाल के आयात के लिए पारगमन मार्गों को फिर से खोलने और एक-दूसरे की सुरक्षा चिंताओं को औपचारिक रूप देने के लिए एक व्यापक व्यवस्था को अंतिम रूप देने के लिए जारी किया गया था। अनिवार्य रूप से, साम्प्रदायिकता ने यथास्थिति की बहाली और सभी सीमा बिंदुओं को फिर से खोलने की घोषणा की और नेपाल भारत के वाणिज्यिक विशेषाधिकारों के बारे में विभिन्न रियायतों के लिए सहमत हुआ। काठमांडू ने यह भी घोषणा की कि चीन से हथियारों और कार्मिकों की खरीद में कम लागत निर्णायक कारक थी और नेपाल अंतिम शिपमेंट के वितरण के लिए चीन को सलाह दे रहा था।

2000 का

2005 में, राजा ज्ञानेंद्र के सत्ता संभालने के बाद, भारत के साथ नेपाल के संबंधों में खटास आ गई। हालाँकि, लोकतंत्र की बहाली के बाद भी, 2008 में, नेपाल के प्रधान मंत्री प्रचंड ने सितंबर 2008 में, केवल चीन का दौरा करने के बाद, नेपाली पीएम की लंबे समय से चली आ रही परंपरा को तोड़ते हुए भारत को अपना पहला बंदरगाह बताया। जब भारत में, उन्होंने दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में एक नई सुबह की बात की। उन्होंने कहा, मैं एक संतुष्ट व्यक्ति के रूप में नेपाल वापस जा रहा हूं। मैं नेपाली नागरिकों को घर वापस बताऊंगा कि एक नया युग पैदा हो गया है। द्विपक्षीय संबंधों में क्रांतिकारी बदलाव आने का समय आ गया है। नई सरकार की ओर से, मैं आश्वासन देता हूं। आप हम एक नई शुरुआत करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।"

2006 में, नेपाल की नवगठित लोकतांत्रिक संसद ने विवादास्पद नागरिकता विधेयक, पारित किया, जिसके कारण नेपाल के तराई में लगभग 4 मिलियन अप्रवासी आप्रवासियों को प्राख्नतिकरण के आधार पर नेपाली नागरिकता का वितरण किया गया। जब भारत सरकार ने सुधारित नागरिकता कानून का स्वागत किया, तो नेपाली लोगों के कुछ वर्ग ने नए नागरिकता अधिनियम के बारे में गहरी चिंता व्यक्त की और आशंका जताई कि नया नागरिकता कानून नेपाली संप्रभुता के लिए खतरा हो सकता है। 2006 में नेपाली संसद द्वारा पारित नागरिकता बिल वही बिल था जिसे 2000 में स्वर्गीय राजा बीरेंद्र ने खारिज कर दिया था, इससे पहले कि वह अपने पूरे परिवार के साथ नरसंहार कर रहे थे।

दोनों ने 22-सूत्रीय बयान जारी किया, जिसमें 1950 की संधि, शांति और मित्रता की समीक्षा, समायोजन और अद्यतन करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया। भारत नेपाल को पेट्रोलियम उत्पादों की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए नेपाल को 15 मिलियन डॉलर तक की क्रेडिट लाइन भी प्रदान करेगा, साथ ही नेपाल के लिए सहमत राशियों के लिए चावल, गेहूं, मक्का, चीनी और सुक्रोज के निर्यात पर प्रतिबंध लगाएगा। भारत तत्काल बाढ़ राहत के रूप में +2 मिलियन भी प्रदान करेगा। बदले में, नेपाल भारतीय निवेशकों को नेपाल में भारतीय निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कारोबारी माहौल को सक्षम करने, निवेशक हितैषी को बढ़ावा देने के लिए उपाय करेगा।

2010 का

2010 में भारत ने US +50 मिलियन और 80,000 टन खाद्यान्न की एक पंक्ति का विस्तार किया। इसके अलावा, दोनों पक्षों के बीच जल संसाधनों के विकास पर आगे की चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए मंत्री, सचिव और तकनीकी स्तर पर एक त्रिस्तरीय तंत्र बनाया जाएगा। राजनीतिक रूप से, भारत ने नेपाल में शांति की दिशा में प्रयासों को बढ़ावा देने की इच्छा को स्वीकार किया। भारतीय विदेश मंत्री प्रणब मुखर्जी ने नेपाली प्रधानमंत्री प्रचंड से वादा किया कि वह शांति और विकास के लिए हर संभव मदद करेंगे।

हालाँकि, हाल के वर्षों में, नेपाल की घरेलू राजनीति में माओवाद का बढ़ता वर्चस्व, चीन के जनवादी गणराज्य के आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव को मजबूत करने के साथ नेपाली सरकार को धीरे-धीरे दूरी पर ला दिया है। भारत के साथ अपने संबंध, हालांकि नेपाल अभी भी संयुक्त राष्ट्र में भारत का समर्थन करता है। भारत के प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने अगस्त 2014 में नेपाल का दौरा किया, 17 वर्षों में किसी भारतीय प्रधानमंत्री की पहली आधिकारिक यात्रा। अपनी यात्रा के दौरान, भारत सरकार विभिन्न विकास उद्देश्यों और एक HIT फार्मूले के लिए रियायती लाइन ऑफ क्रेडिट के रूप में नेपाल को 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर प्रदान करने पर सहमत हुई, लेकिन उन्होंने जोर देकर कहा कि नेपाल में भारतीय अप्रवासी नेपाल की संप्रभुता के लिए खतरा पैदा नहीं करते हैं और इसलिए खुली सीमा नेपाल और भारत को एक पुल होना चाहिए न कि एक अवरोध। नेपाल और भारत ने 25 नवंबर 2014 को एक महत्वपूर्ण समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसके अनुसार भारत एक अन्य 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर की लागत से 900 मेगावाट जलविद्युत संयंत्र का निर्माण करेगा। भूकंप के बाद के पुनर्निर्माण के लिए 22 फरवरी 2016 को हुए समझौतों के एक हिस्से के रूप में 250 मिलियन अमेरिकी डॉलर की राशि नेपाल को दी गई है।

1.3 व्यापार

भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार और विदेशी निवेश का सबसे बड़ा स्रोत है, इसके अलावा नेपाल के लगभग पूरे तीसरे देश के व्यापार के लिए पारगमन प्रदान करता है। भारत नेपाल के व्यापारिक व्यापार का दो-तिहाई से अधिक, सेवाओं में लगभग एक-तिहाई व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का एक-तिहाई, पेट्रोलियम आपूर्ति का लगभग 100%, और पेंशनरों, पेशेवरों के खाते में आवक प्रेषण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। भारत में काम करने वाले श्रमिक वर्ष 2017-2018 में, भारत के साथ नेपाल का कुल व्यापार लगभग 8.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर थाय भारत को नेपाल का निर्यात लगभग +446.5 मिलियन थाय और भारत से आयात 7.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर था।

भारत से नेपाल के मुख्य आयात पेट्रोलियम उत्पाद (28.6%), मोटर वाहन और कलपुर्जे (7.8%), एमएस बिललेट (7%), दवाएँ (3.7%), अन्य मशीनरी और पुर्जों (3.4%), कॉइल में कोल्डड्रिंक शीट हैं। 3.1%), विद्युत उपकरण (2.7%), कॉइल (2%), एमएस तार, सड़क, कॉइल और बार (1.9%), सीमेंट (1.5%), कृषि उपकरण और भागों (1.2%), रासायनिक उर्वरक में हॉट्रोल्ड शीट (1.1%), रसायन (1.1%) और धागा (1%)। भारत में नेपाल के निर्यात की टोकरी में मुख्य रूप से जूट का सामान (9.2%), जिंक शीट (8.9%), कपड़ा (8.6%), धागे (7.7%), पॉलिएस्टर यार्न (6%), जूस (5.4%), केट्यू (4.4%) शामिल हैं। इलायची (4.4%), तार (3.7%), टूथ पेस्ट (2.2%) और एमएस पाइप (2.1%)।

1.4 मानव तस्करी

नेपाल में मानव तस्करी एक गंभीर चिंता है। माना जाता है कि भारत में 100,000-200,000 नेपाली की तस्करी की गई है। सेक्स की तस्करी विशेष रूप से नेपाल और भारत के भीतर व्याप्त है, जिसमें हर साल 5000-10000 से अधिक महिलाएं और लड़कियां अकेले भारत में तस्करी करती हैं। भारत में नेपाली लड़कियों की तस्करी की गंभीरता को सीएनएन फ्रीडम प्रोजेक्ट की डॉक्यूमेंट्रीरू नेपालज स्टोलेन चिल्ड्रन ने उजागर किया था। मैती नेपाल ने 1993 से 12000 से अधिक चुराए गए नेपाली बच्चों को यौन तस्करी से बचाया है।

नेपाल ने 2015 में अपने नए संविधान का प्रचार किया लेकिन मधोशियों, जनाजितियों और थारुओं, जिन्हें हाशिए के समूहों के रूप में माना जाता है, उन्हें लगा कि उन्हें नए संविधान में छोड़ दिया जा रहा है। इन समूहों, विशेष रूप से मधोशी ने फिर सीमा बिंदुओं को अवरुद्ध कर दिया। नेपाली सरकार ने आरोप लगाया कि भारत जानबूझकर वाहनों को चेक-पॉइंट्स से गुजरने की इजाजत नहीं दे रहा है, जहां कोई विरोध प्रदर्शन नहीं किया गया था, यह सवाल करते हुए कि मुट्ठी भर प्रदर्शनकारियों ने संभवत: 1100 किलोमीटर लंबी भारत-नेपाल सीमा को कैसे अवरुद्ध किया भारत सरकार ने हालांकि नाकाबंदी में किसी भी संलिप्तता के सभी आरोपों से इनकार किया।

1.5 सुगौली संधि और नेपाल-भारत के बीच बंटवारे की गाथा

जब भी बंटवारे का जिक्र आता है, जेहन में पाकिस्तान बनने की तस्वीर उभरती है। इसके साथ ही इतिहास को याद करते हुए आज की पीढ़ी बंगाल और पंजाब की विभीषिका को याद कर लेती है। बता दें कि बंटवारे का दंश बंगाल और पंजाब के लोगों से बहुत पहले मिथिला के लोगों ने भी झेला, जिसे इतिहास ने भी कहीं किसी पन्ने पर दफना रखा है।

इस संधि के तहत अंग्रेजों ने मिथिला (तराई) का एक बड़ा भू-भाग नेपाल के अधीन कर दिया था। लिहाजा मिथिला की राजधानी जनकपुर अब नेपाल में अवस्थित है, जहां हाल ही में भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी होकर आए हैं।

नेपाली राजा विस्तारवादी सोच के पोषक थे। उन्होंने उत्तर में चीन और हिमालय के होने की वजह से दक्षिण की ओर बढ़ना शुरू कर दिया था। दशकों से नेपाल भारत की भूमि को अपने कब्जे में ले रहा था।

जब ईस्ट इंडिया कंपनी को इसकी भनक लगी तो गोरखा युद्ध छिड़ गया। सुगौली संधि के फलस्वरूप नेपाल ने अपने कब्जे वाली भारतीय भूमि को मुक्त किया, तो मैत्री को बढ़ाने के एवज में अंग्रेजों ने उसे मिथिला (तराई) के भू-भाग को ईनाम के तौर पर दे दिया।

1816 की इस संधि पत्र पर नेपाल की ओर से राजगुरु गजराज मिश्र और अंग्रेजों की ओर से लेफ्टिनेंट कर्नल पेरिस ब्रैडशॉ ने हस्ताक्षर किए थे। इसके बाद काठमांडू में एक ब्रिटिश प्रतिनिधि की नियुक्ति हुई और ब्रिटेन की सेना में गोरखाओं की भर्ती की जाने लगी।

1.6 सुगौली में सुलगी 1857 के विद्रोह की आग

उन दिनों सुगौली में ब्रिटिश सेना की छावनी रहा करती थी। मंगल पांडे द्वारा शुरू किया गया विद्रोह छावनी दर छावनी सुगौली तक पहुंच गया था। नेपाल के राजा त्वरित सैन्य मदद पहुंचाकर इस विद्रोह को दबाने में कंपनी की मदद करने लगे।

ये भी कहा जा रहा है कि नेपाल की तत्कालीन मजबूरी ने उसे अंग्रेजों की कठपुतली बना दिया था। लिहाजा वह ब्रिटिश शासन को मदद पहुंचाने की तनिक कोताही नहीं करता था। इस बात से खुश होकर ब्रिटिश ने उसे फिर से मिथिला की भूमि दान में दी।

क्षेत्र के लोगों में जो विखंडन का दु:ख था, वो फिर से हरा और बड़ा हो गया। प्राचीन मिथिला की राजधानी जनकपुर सहित एक बड़ा भू-भाग एक अलग देश में चला गया। उल्लेखनीय है कि इस बार-बार के बंटवारे के बावजूद क्षेत्र के लोगों ने किसी भी प्रकार का विरोध नहीं किया।

1.6 दोस्ती के नए नियम

नवनिर्वाचित ओली ने भारत की यात्रा इसलिए की ताकि 2015 से दोनों देशों के बीच आ गई कड़वाहट का अंत किया जा सके। रिश्ते तब खराब हुए जब भारत ने अनौपचारिक व्यापार प्रतिबंध लागू करके संविधान में संशोधन करने के लिए नेपाल को मजबूर करने की कोशिश की। इस यात्रा के दौरान, ओली ने भारत की ओर दोस्ती का हाथ तो बढ़ाया पर यह भी बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि यह दोस्ती आपसी सम्मान और एक दूसरे की गरिमा और संप्रभुता के प्रति सम्मान पर आधारित होगी।

1950 के भारत-नेपाल शांति एवं मैत्री समझौते के कारण और भारत के बड़े पड़ोसी होने से, परंपरागत रूप से नई दिल्ली का प्रभाव काठमांडू के घरेलू मामलों पर पड़ा है। पर अब नेपाल में कई लोगों का मानना है कि इस संधि ने नेपाल की संप्रभुता को कमजोर कर दिया है और समय आ गया है कि नेपाल एक पूरी तरह स्वतंत्र देश के रूप में उभरे। चुनाव में बड़ी जीत प्राप्त करने के बाद और ,,‰‡ सदस्यीय संसद के दो-तिहाई समर्थन के साथ, ओली इस भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं और उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि नेपाल और भारत दोनों को एक दूसरे की चिंताओं और संवेदनाओं के बारे में अवगत होना होगा।

सीमा के पार बिजली व्यापार का मुद्दा इसका एक उदाहरण है। यात्रा के दौरान, ओली ने साफ कहा कि भारत के साथ सीमा पार बिजली व्यापार 2014 के द्विपक्षीय समझौते के अनुसार किया जाना चाहिए जो आम बिजली मार्किट में सभी अधिकृत / लाइसेंस प्राप्त प्रतिभागियों के लिए सीमा पार इंटरकनेक्शन की गैर-भेदभावपूर्ण रसाई देता है, और यह बिजली व्यापार भारतीय विद्युत मंत्रालय द्वारा 2016 में जारी की गई दिशा निर्देशों के अनुसार नहीं होना चाहिए जो दूसरे देशों के हाइड्रो पॉवर डेवलपर्स को एक बार की मंजूरी के साथ भारत में बिजली निर्यात करने से रोकती हैं। नेपाल ने पहले भी कहा था कि ये नियम भेदभावपूर्ण हैं और 2014 के समझौते की भावना के विपरीत हैं, और इस चिंता को ओली ने अपने नई दिल्ली की यात्रा के दौरान दोहराया।

ऐसा लगता है कि भारत अब नेपाल की चिंताओं के प्रति अधिक ग्रहणशील है, क्योंकि ओली का चीन के साथ घनिष्ठ संबंध है, और बीजिंग पिछले कुछ सालों से काठमांडू के साथ दोस्ती बढ़ा रहा है। 2015 की नाकाबंदी के बाद एक विकल्प की तलाश में, नेपाल अपने उत्तरी पड़ोसी चीन की तरफ झुका। चीन और नेपाल ने 2016 में व्यापार और पारगमन संधि पर हस्ताक्षर किया और पिछले साल तो नेपाल बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) से भी जुड़ गया। पनबिजली परियोजनाओं से लेकर अवसंरचना के निर्माण तक के लिए, चीन नेपाल में अपनी जगह बना रहा है और साथ ही नेपाली राजनीतिक नेतृत्व के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध भी बना रहा है।

1.7 संपर्क बढ़ाने पर बल

ओली की यात्रा के दौरान, दोनों प्रधानमंत्रियों ने अमलेखगानु-मोतिहारी तेल पाइपलाइन के साथ साथ बीरगंज में एकीख्रत चेकपोस्ट (आईसीपी) का उद्घाटन किया। चूंकि नेपाल का 58 प्रतिशत आयात भारत से आता है, इसलिए आईसीपी का संचालन एक योग्य कदम है, क्योंकि उम्मीद है कि यह लोगों के आवाजाही के साथ-साथ सीमा पार व्यापार के पारगमन को बढ़ाएगा। और पेट्रोलियम पाइपलाइन सड़क से ईंधन परिवहन के लिए एक विकल्प हो सकती है।

लेकिन द्विपक्षीय वार्ताओं में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा था नेपाल और भारत के बीच संपर्क बढ़ाना। जबकी ओली ने मुख्य रूप से नई परियोजनाओं की घोषणा करने के बजाय पिछली परियोजनाओं को समय पर पूरा करने पर बल दिया, तीन नए समझौतों में से दो रेल और अंतर्देशीय जलमार्ग के माध्यम से संपर्क बढ़ाने से संबंधित थे।

यह महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत नेपाल से संपर्क बढ़ाने के लिए चीन के कदमों पर चल रहा है। फिलहाल, भारत से सीधी नेपाल तक कोई कार्यात्मक रेल लिंक नहीं है। भारत के जयनगर और नेपाल के जनकपुर के बीच जो अंग्रेजों के जमाने का रेल लिंक था उसका उन्नतीकरण चल रहा है, जिसमें काफी देरी हुई है। बीजिंग के काठमांडू के साथ संपर्क बढ़ाने और आर्थिक जुड़ाव के निरंतर प्रयासों को नई दिल्ली नेपाल में अपने सामरिक महत्व के लिए गंभीर खतरा मानता है, और इसलिए वह चीन की पहल का मुकाबला अपनी खुद की पहल से करने की कोशिश कर रहा है। ओली की भारत यात्रा के दौरान जिस काठमांडू-रक्सौल रेल परियोजना की घोषणा हुई है वह चीन की नेपाल-तिब्बत रेल परियोजना की बराबरी करने की कोशिश हो सकती है। यह भारत

की चाल है जिससे नेपाल सरकार को सावधान रहने चाहिए। भारत और चीन दोनों के लिए नेपाल में और नेपाल के साथ काम करने के लिए पर्याप्त जगह है। जब तक नई दिल्ली नई परियोजनाओं के साथ साथ पिछली प्रतिबद्धताओं को पूरा करती है, तब तक इसका नेपाल-भारत संबंधों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

1.8 भारत-नेपाल संबंधों को प्रभावित करने वाले कारक

भारत को नेपाल के भीतर घरेलू राजनीति को प्रभावित करने के लिए देखा गया है ताकि इसे अपने प्रभाव क्षेत्र के भीतर रखा जा सके ताकि वह अपनी सुरक्षा को बनाए रख सके। नई दिल्ली ने अतीत में राजतंत्र की संस्था का समर्थन किया, फिर लोकतांत्रिक ताकतों को अपने समर्थन को पुनर्निर्देशित किया और कथित रूप से कम्युनिस्ट पार्टियों के उदय को कम करने में शामिल किया गया। जबकि नई दिल्ली ने दावा किया कि नेपाल का नया संविधान मधोशी आबादी के साथ भेदभाव कर रहा था– जिसने भारत के भीतर लोगों के वर्गों के साथ सामान्य जातीयता साझा की– इसे काठमांडू में राजनीतिक प्रभाव में लाने के लिए एक दबाव के रूप में (अनौपचारिक) आर्थिक नाकेबंदी का इस्तेमाल करने के लिए दोषी ठहराया गया था। जिसने 1989-90 में नाकाबंदी की तरह 2015 के अंत तक द्विपक्षीय संबंधों में खटास पैदा करने में योगदान दिया।

नेपाल न केवल अपने जल संसाधनों को विकसित करने के लिए चीनी वित्त और सहयोग की मांग कर रहा है, हाल के वर्षों में चीन के साथ नेपाल के आर्थिक संबंधों में महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई है। नेपाल के मुकाबले भारत का निवेश चीन की तुलना में अधिक है, जो नेपाल का सबसे बड़ा विदेशी निवेशक है।

यहां तक कि जब नई दिल्ली ने 2015 में नेपाल में भूकंप आने के तुरंत बाद मानवीय सहायता को बढ़ाया, तो भारत के बारे में विषम धारणा को दूर करने के बजाय इस तरह की गैर-सैन्य और सहायक भूमिका ने कई तिमाहियों से आलोचनाओं को हवा दी, क्योंकि भारतीय मीडिया पर असंवेदनशील और पक्षपाती होने का आरोप लगाया गया था।

कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि बीजिंग के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में तेल (आर्थिक नाकेबंदी के दौरान) का समर्थन न केवल नेपाल के ईंधन आयात पर भारत के एकाधिकार को समाप्त करने के उद्देश्य से था, इसने चीन को काठमांडू के साथ रणनीतिक संबंध बनाने में मदद की।

नेपाल के साथ भारत के संबंध 2019 में उच्च-स्तरीय द्विपक्षीय यात्राओं के साथ बढ़ते रहे और ऊर्जा सहयोग में वृद्धि हुई, जिसमें दक्षिण एशिया में पहली बार क्रॉस-बॉर्डर पेट्रोलियम पाइपलाइन का उद्घाटन भी शामिल था, जिसमें भूमिहीनों में चीन के भारी निवेश के बीच था।

नेपाल अपनी भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों के कारण भारत की विदेश नीति में एक विशेष महत्व रखता है। दोनों देशों के लोग विवाह और पारिवारिक संबंधों के माध्यम से घनिष्ठ संबंध बनाए रखते हैं, जिन्हें रोटी-बेटी का रिश्ता (भोजन और परिवार का संबंध) भी कहा जाता है।

दोनों पक्षों ने आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक विरासत क्षेत्रों में परियोजनाओं के बाद के पुनर्निर्माण की प्रगति की भी समीक्षा की। भारत ने पुनर्निर्माण परियोजनाओं के लिए नेपाल को 250 मिलियन अमरीकी डालर की सहायता का वादा किया है। भारत ने गोरखा और नुवाकोट जिलों में झीलों में क्षतिग्रस्त हुए घरों के पुनर्निर्माण के लिए नेपाल को 1.6 अरब रुपये का दान दिया। यह 2015 के भूकंपों के बाद नेपाल को 50,000 घरों के निर्माण के लिए भारत द्वारा दान किए गए कुल 450 अरब रुपये का हिस्सा था, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के साथ भागीदारी।

उन्होंने द्विपक्षीय संबंधों को और मजबूत बनाने और दोनों पक्षों के पारस्परिक लाभ के लिए सभी संभावित क्षेत्रों में सहयोग को आगे बढ़ाने के लिए दोनों देशों के बीच उच्च स्तरीय यात्राओं के नियमित आदान-प्रदान के महत्व को रेखांकित किया। ओली ने मोदी को हिमालयी देश की यात्रा के लिए भी आमंत्रित किया।

दोनों नेताओं ने संयुक्त रूप से सितंबर में वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से 69 किलोमीटर लंबी मोतिहारी-अमलेखजंग तेल पाइपलाइन का उद्घाटन किया। 324 करोड़ रुपये की भारतीय सहायता से पाइपलाइन का निर्माण किया गया था। यह दक्षिण एशियाई क्षेत्र में निर्मित पहली सीमा पार पेट्रोलियम पाइपलाइन थी।

नेपाल-भारत संयुक्त आयोग की पांचवीं बैठक में भाग लेने के लिए विदेश मंत्री एस जयशंकर ने नेपाल का दौरा किया, जहां संपर्क, आर्थिक साझेदारी, व्यापार, पारगमन, शक्ति और शक्ति के क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने के साथ द्विपक्षीय संबंधों के संपूर्ण सरगम की समीक्षा की।

नेपाल आतंकवाद के खिलाफ अपनी लड़ाई में भारत के साथ खड़ा था क्योंकि उसने पुलवामा में फरवरी के आतंकवादी हमले की कड़ी निंदा की जिसमें 40 सुरक्षाकर्मियों की मौत हो गई, यह कहना कि आतंकवाद के ऐसे जघन्य कृत्य को उचित नहीं ठहराया जा सकता।

भारतीय पर्वतारोहियों ने पहली बार दुनिया की सबसे ऊंची चोटी को शिखर पर ले जाने की कोशिश करने वालों की सूची में शीर्ष स्थान पर रहे क्योंकि 78 नागरिकों को माउंट पर चढ़ने की अनुमति दी गई थी। चीन, जो हाल के वर्षों में भू-आबद्ध राष्ट्र में भारी निवेश कर रहा है, ने नेपाल के साथ उच्च-स्तरीय यात्राओं के साथ अपनी भागीदारी जारी रखी।

अपनी यात्रा के दौरान, चीन ने काठमांडू को तिब्बत से जोड़ने वाले अरनिको राजमार्ग को अपग्रेड करने पर सहमति व्यक्त की जो 2015 के भूकंप के बाद से बंद हो गया था और नेपाल के अनुरोधा के अनुसार जल्द से जल्द ट्रांस-हिमालयन रेलवे की व्यवहार्यता अध्ययन का आयोजन किया गया था।

यह व्यापक रूप से महसूस किया गया है कि नेपाल की कम्युनिस्ट सरकार अपने उत्तरी पड़ोसी को बंद कर रही है। नेपाल ने अपने क्षेत्र के अंतर्गत कालापानी और लिपुलेक क्षेत्रों को दिखाते हुए भारत के अद्यतन राजनीतिक नक्शे पर भी आपत्ति जताई, जिसमें दावा किया गया कि ये क्षेत्र नेपाली क्षेत्र के भीतर स्थित हैं।

इसने कहा कि दोनों मित्र देशों से संबंधित किसी भी सीमा मुद्दे को ऐतिहासिक दस्तावेजों और साक्ष्यों के आधार पर राजनयिक चैनलों के माध्यम से हल करने की आवश्यकता है।

Bibliography

1. व्हेल्टन जॉन (2005), ए हिस्ट्री ऑफ नेपाल, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 64-66। आईएसबीएन 978-0521804707
2. हचेथु के (2007), मधोशी राष्ट्रवाद और नेपाली राज्य का पुनर्गठन, नेपाल और एशिया अध्ययन केंद्र, 3, 10 अक्टूबर 2018)
3. झा कल्प (2017), द मधोशी अपसर्ज एंड द कंटेस्टेड आइडिया ऑफ नेपाल, सिंगापोर स्प्रिंगर, 28-36। आईएसबीएन 978-9811029257
4. घिमिरे युबराज (2017), मधोसी मुद्दे पर इंडियस यू टर्न ने बेतेल की भावना को जन्म दिया। द इंडियन एक्सप्रेस।
5. गेग एफएच (1975), नेपाल में क्षेत्रवाद और राष्ट्रीय एकता, बर्कलेरू कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, 106-107। आईएसबीएन 978-0520027282
6. झा प्रशांत (2012), माओवादी मधोसिस फॉर्म द न्यू एलायंस, द हिंदू।
7. सेन पूजा (2016), नेपल्स मधोसी फाइटिंग फॉर क्या हैं?, द वायर (21 अक्टूबर 2018)
8. नेपाल में संयुक्त राष्ट्र मिशन (2007) द्वारा मूल नेपाली से अनौपचारिक अनुवाद, नेपाल सरकार और मधोसी पीपल्स राइट फोरम, नेपाल के बीच समझौता। (30 अगस्त 2007),
9. सुरखेत (2015) में सिक्स प्रोविंस मॉडल के खिलाफ प्रोटेस्ट में थ्री किल्ड। द हिमालयन टाइम्स।
10. नेपाल प्रमोशन (2016) के चार महीने बाद अपने संविधान का पहला संशोधन करता है। हिमालयन टाइम्स, से 5 अक्टूबर 2018 को पुनः प्राप्त, अपरिभाषित
11. पराशर सचिन (2016), नेपाल में भारत के साथ रोटी-बेटी का रिश्ता हैरू दीप उपाध्याय, द टाइम्स ऑफ इंडिया।
12. झा प्रशांत (2016), मधोशी नाकाबंदी का अंतरू नेपाल के लिए इसका क्या अर्थ है, हिंदुस्तान टाइम्स।
13. संयुक्त राष्ट्र, भारत (2015), फर्स्ट पोस्ट, (2015, 5 नवंबर), 24 अक्टूबर 2018 को, अपरिभाषित, अपरिभाषित
14. घिमिरे युबराज (2016), नेपाल और भारत एक नए निम्न स्तर पर संबंधा? इंडियन एक्सप्रेस।
15. भट्ठाचर्जी के (2016), काठमांडू ने दिल्ली को सरकार से अलग करने की साजिश का आरोप लगाया। द हिंदू।

16. रंजन प्रतिम (2016), नेपाल में संविधान में बदलाव प्रांतों के सीमांकन का प्रमुख मुद्दा है। द हिंदू (बिजनेस लाइन)।
17. ओझा हेमंत (2015), भारत-नेपाल संकट, द डिप्लोमैट, 12 अक्टूबर 2018 से प्राप्त
18. चेरैन जॉन (2009), किण्वन राज्य, फ्रंटलाइन, 26 (11)।
19. कुमार एस। („-ƒ‡), नेपाल ने इण्डिया की बहुत ज्यादा पड़ोस की कूटनीति का परीक्षण किया। द डिप्लोमैट ऑनलाइन जर्नल, सितंबर, „^, से प्राप्त) 1 अक्टूबर 2018 को टाउट-पड़ोस-कूटनीति
20. झा प्रशांत (2015), नेपाल पर भारत सही और गलत दोनों कैसे था, हिंदुस्तान टाइम्स
21. नेपाल प्रमोशन (2016, 23 जनवरी) द हिमालयन टाइम्स के चार महीने बाद अपने संविधान का पहला संशोधन करता है।
22. घिमिरे युबराज (2017), मधोसी मुद्दे पर इंडियस यू टर्न ने बेतेल की भावना को जन्म दिया। द इंडियन एक्सप्रेस।
23. बराल विश्वास (2018), क्या यह नेपाल पर इंडिया प्रभाव का अंत है, द डिप्लोमैट.
24. भट्ठराई कमल देव (2018), भारत-नेपाल संबंधों को फिर से संवारना। द डिप्लोमैट

गाँधीजी का महिला दर्शन : एक विश्लेषण

डॉ० पूनम डागर

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, भगिनी निवेदिता कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

19वीं सदी के प्रारम्भ से ही महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए विभिन्न समाज-सुधारकों तथा संगठनों ने महत्वपूर्ण प्रयास किए। पश्चिम के नवजागरण के प्रभाव के फलस्वरूप निजी स्वतंत्रता, व्यक्तिगत विकास, शिक्षा, महिलाओं के सामाजिक और मानवीय अधिकारों ने बुद्धिवाद और मानवतावाद के आधार पर भारत के तत्कालीन शिक्षित वर्ग को प्रभावित किया। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, राणाडे, गोखले आदि ने महिला-उत्थान के लिए पृष्ठभूमि तैयार की, किन्तु गाँधीजी ने सही मायने में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के आन्दोलन को आगे बढ़ाया।

गाँधीजी न केवल एक महान राजनीतिक थे, अपितु मानवता के परम प्रेमी भी थे। अन्याय और असमानता के तो वे घोर शत्रु ही थे। इसलिए स्त्रियों तथा दीन-हीन जनों के प्रति उनके हृदय में सर्वाधिक अनुराग था। स्त्रियों और उनकी समस्याओं की उनमें एक सहज समझ थी और साथ ही उनके प्रति चिरन्तर एवं गम्भीर सहानुभूति भी। गाँधीजी ने केवल राष्ट्रीय आन्दोलन को ही गति प्रदान नहीं की बल्कि नारी की दशा में सुधार और स्फूर्ति को भी बल दिया। उनके स्वर में विश्वास दिलाने की वह शक्ति थी, वह प्रेरणा थी। जिसने नारी में चेतना जगायी और उसे घर की चहार-दीवारी से बाहर निकलने का साहस प्रदान किया। वह प्रमुख व्यक्तियों में से थे जिन्होंने स्त्री जाति को प्रछन्न शक्ति, आत्मिक उत्साह और नैतिक क्षमताओं के विषय में सार्वजनिक रूप से बहुत कुछ कहा। गाँधीजी ने समाज में स्त्रियों की साझेदारी स्वीकार करते हुए कहा कि, "स्त्री पुरुष की सहचरी है। उसकी मानसिक शक्तियाँ पुरुष से कहीं भी कम नहीं है। उसे पुरुष के हर एक काम में हाथ बंटाने का उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को। अपने क्षेत्र में उसकी सर्वोच्चता उसी प्रकार स्वीकार की जानी चाहिए जिस प्रकार पुरुष को उसके क्षेत्र में।"[1] "मैं स्त्रियों के अधिकारों के संबंध में कोई भी समझौता करने के तैयार नहीं हूँ। मेरी राय में स्त्रियों पर कोई भी ऐसी कानूनी पाबन्दी नहीं लगायी जानी चाहिए जो पुरुषों पर भी न लागू होती हों। मैं लड़के और लड़कियों के साथ पूर्ण समानता के बरताव का पक्षपाती हूँ।"[2] अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अपनी धारणा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए गांधीजी ने कहा "मैं पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं करता। मेरी दृष्टि में इस प्रकार का भेद करना द्वेषबुद्धि का परिचायक और गलत है। पुत्र तथा कन्या के जन्म का समानरूपेण स्वागत किया जाना चाहिए।"[3] सही अर्थों में अद्वैतवादी भावना का संप्रकाशन करते हुए उन्होंने कहा कि दोनों में उसी आत्मा का वास है, दोनों एक ही जीवन को जीते है और दोनों की भावनाएँ समान है। वे स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे का पूरक मानते हैं।[4] उनके विचार से दोनों ही एक-दूसरे की सक्रिय सहायता की अपेक्षा रखते हैं।

परिवार तथा समाज में महत्व की दृष्टि से गाँधीजी स्त्री और पुरुष के पूर्णत: समान अधिकारों में विश्वास करते हैं। उनका विचार है कि मनुष्य होने के नाते स्त्री और पुरुष की मूल समस्याएँ और आवश्यकताएँ समान है। वे समान रूप से सुख-दु:ख तथा सभी मूल संवेगों और भावनाओं का अनुभव करते हैं। इस दृष्टि से स्त्री और पुरुष एक-दूसरे से पृथक न होकर परस्पर पूरक हैं। वे एक दूसरे के सक्रिय सहयोग के बिना जीवित नहीं रह सकते। ऐसी स्थिति में स्त्री को पुरुष की अपेक्षा किसी भी दृष्टि से निम्न अथवा निकृष्ट समझना गाँधीजी बहुत अनुचित एवं निंदनीय मानते हैं। उन्होंने बहुत खेदपूर्वक इस तथ्य का उल्लेख किया है कि युगों से पुरुष स्त्री को अपने अधीन तथा अपने सुख का साधन मात्र समझता रहा है। भौतिक वस्तुओं की भाँति स्त्री को भी उसने अपनी ऐसी सम्पत्ति मान लिया है जिसका वह अपने सुख के लिए इच्छानुसार उपयोग कर सकता है। पुरुष के इस स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण

को स्वीकार कर लेने के कारण स्वयं स्त्री में भी आत्महीनता की भावना उत्पन्न हो गई है और वह अपने आप को उसकी अपेक्षा हीन समझने लगी है।[5] परन्तु गाँधीजी स्त्री के लिए इस आत्महीनता की भावना से मुक्त होना बहुत आवश्यक मानते हैं। इसी कारण उन्होंने स्त्री के उन महान गुणों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया है जो उनके विचार में स्वाभावत: उसमें पाए जाते हैं। इन गुणों में स्नेह, करुणा, सहनशीलता, कष्ट, सहिष्णुता आदि का गाँधीजी ने विशेष रूप से उल्लेख किया है जो उनके अनुसार स्त्री के स्वभाव का अभिन्न अंग बन चुके हैं। इन्हीं सद्गुणों के कारण स्त्री को महान मानते हुए वे कहते हैं कि "स्त्री अहिंसा का अवतार है। अहिंसा का अर्थ है असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ है कष्ट सहने की असीम शक्ति। स्त्री-जो पुरुष की माता है- के अतिरिक्त अधिकतम मात्रा में यह महान शक्ति और किस में है? ..... उसे अपना यह प्रेम सम्पूर्ण मानव-जाति को प्रदान करना चाहिए उसे यह भूल जाना चाहिए कि वह कभी पुरुष की वासना-तृप्ति की वस्तु थी अथवा हो सकती है। तभी वह पुरुष की माता और उसके भाग्य का निर्माण तथा उसका नेतृत्व करने वाली शक्ति के रूप में उसके समक्ष अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकती है। वही युद्ध और संघर्ष से पीड़ित संसार को शांति की कला सिखा सकती है।"[6] इस प्रकार गाँधीजी स्त्री को पुरुष के समान ही नहीं, बल्कि मानवीय सद्गुणों की दृष्टि से उसकी अपेक्षा अधिक महान भी मानते हैं।

अपनी इसी उदार विचारधारा के अनुसार गाँधीजी वैवाहिक जीवन में स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों को स्वीकार करते हैं। उनका विचार है कि पति-पत्नी जीवन के सभी क्षेत्रों में परस्पर पूरक होने के कारण एक-दूसरे के साथी अथवा सहयोगी है, अत: पत्नी को पति के अधीन समझना बहुत बड़ी भूल है। गाँधी ने जिस रामराज्य की कल्पना की थी वह उनके सत्य, अहिंसा, परोपकार, सादगी, सदाचार, सहिश्णु जैसे मानवीय अध्यात्मिक एवं समतामूलक समाज का रूप है, जिसमें स्त्री-पुरुष समान रूप से विचार करेंगे। गाँधीजी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की समानता की बात की जैसे- पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर समानता की स्थापना।

परन्तु गाँधीजी स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी उन दोनों के नैसर्गिक अंतर की अपेक्षा नहीं करते। गाँधीजी का विश्वास था कि स्त्री और पुरुष में कुछ मूलभूत भिन्नताएं हैं और इस कारण वे दोनों के बीच अपनी विशिष्टताओं के अनुरूप कार्य-विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। उनका विचार था कि स्त्री आत्मबलिदान एवं अहिंसा का मूर्तिमान रूप होती है और इस कारण इसके कार्य का चयन इन विशिष्ट गुणों के अनुरूप किया जाना चाहिए। गाँधीजी ने कहा कि, "स्त्री और पुरुष की समानता का अर्थ यह नहीं है कि इनके पेशे भी समान हों। स्त्री द्वारा शस्त्र धारण किए जाने पर कानूनी रोक नहीं हो सकती किन्तु उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ऐसे काम न करने की होगी जो पुरुषों की शोभा हैं। प्रकृति ने दोनों को एक-दूसरे के पूरक के रूप में सृजित किया है। उसकी शारीरिक संरचना के समान ही उसके कार्य भी सर्वथा परिभाषित है।"[7] मातृत्व से संबंधित दायित्वों का निर्वाह तथा घर की देखभाल करना स्त्री के प्रमुख कर्त्तव्य है और ये कार्य किसी भी प्रकार पुरुष द्वारा किये जाने वाले कार्यों से कम महत्वपूर्ण नहीं है। स्त्रियों को घुड़सवारी करने अथवा बंदूक थामने के लिए कहने में उन्हें कोई बुद्धिमानी नहीं दिखाई देती है। अलग-2 कार्यों को करते हुए स्त्री और पुरुष वास्तव में एक-दूसरे के पूरक का काम करते हैं और स्त्रियों को इस कारण किसी प्रकार की हीन भावना से ग्रस्त होने का कोई औचित्य नहीं है।[8]

गाँधी ने स्त्री-पुरुष की समानता अर्थात लैंगिक समानता की स्थापना के लिए स्त्रियों की शिक्षा को आवश्यक माना। गाँधीजी का विश्वास था कि शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियाँ अपने प्राकृतिक अधिकारों को प्राप्त करने, उनकी रक्षा करने तथा उनमें सुधार और अपेक्षित परिवर्तन करने में सक्षम हो पाएँगी। अपनी बुनियादी शिक्षा योजना में गाँधीजी ने लैंगिक समानता के आधार पर 7 से 14 वर्ष तक बालक और बालिका के लिए मुफ्त और आवश्यक शिक्षा का समर्थन किया है। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि गाँधीजी पाठ्यक्रम का निर्धारण स्त्री और पुरुष की भावी जिम्मेदारियों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए करना चाहते है। गाँधीजी ने शिक्षा को स्त्रियों और गृहदायित्वों के प्रति परम्परागत व्यहार को परिवर्तित करने का माध्यम बनाया। गाँधीजी के अनुसार स्त्रियों और पुरुषों को गुहकार्यों में समानरूप से शिक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि घर का संबंध दोनों (स्त्री-पुरुष) से है।

गाँधीजी इस बात से पूर्णत: आष्वस्त थे कि शिक्षा स्त्रियों में जागरूकता को बढ़ाएगी। उन्होंने कहा कि शिक्षित महिलाओं को स्त्रियों में शिक्षा तथा उनकी स्थिति के प्रति जागरूगता लाने और व्यवस्था में सुधार करने हेतु अपना सक्रिय सहयोग देना चाहिए।

गाँधीजी ने स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए पुरुषों का सहयोग भी आवश्यक माना। गाँधीजी ने कहा कि पुरुषों ने ही स्त्रियों को निम्नता के स्तर पर पहुंचया है। अत: अब अपनी भूल में सुधार करने की दृष्टि से तथा अपना कर्त्तव्य मानते हुए पुरुषों को इस क्षेत्र में कार्य करना चाहिए। पति द्वारा पत्नी को शिक्षित किया जाना न केवल स्वयं उसके हित में होगा वरन् पूरे परिवार तथा समाज के हित में होगा।

गाँधीजी ने भारतीय समाज में प्रचलित कुरीतियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया। बाल-विवाह, विधावाओं की स्थिति, पर्दा प्रथा ऐसी कुप्रथाएँ थीं जिन्होंने स्त्री के साथ असमानता के व्यवहार को अन्याय तथा शोचनीय स्थिति में पहुँचा दिया था। गाँधीजी ने पुनर्विवाह के सम्बन्ध में कहा कि विधावा स्त्री और विधुर पुरुष दोनों को ही पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए, यदि उनका विवाह परिपक्व आयु में हुआ हो। किन्तु वे बाल-विधावा के पुनार्विवाह के पक्ष में थे। इस संदर्भ में यह रेखांकित करना आवश्यक है कि गांधीजी ने विधावा और विधुर के प्रति समान दुष्टिकोण अपनाया और समाज में प्रचलित दोहरे मापदण्डों की तीव्र आलोचना की। गाँधीजी का प्रयास विधावाओं के पुनर्विवाह की अपेक्षा बाल-विवाह के उन्मूलन की ओर उन्मुख था। बाल-विवाह को गाँधीजी एक 'अनौतिक और अमानवीय' कृत्य मानते थे। स्त्रियों में शिक्षा के अभाव का मुख्य कारण पर्दा-प्रथा का प्रचलन था, जिसके कारण वे सदैव घर की चारदीवारी में ही रहती थी। गाँधीजी इस तर्क के भी आलोचक थे कि पर्दा स्त्रियों की चारित्रिक पवित्रता बनाए रखने में सहायक है। गाँधीजी की दृष्टि से पर्दा एक बर्वरतापूर्ण प्रथा है जिसने देश को क्षति पहुँचायी है तथा स्त्रियों की स्वतंत्रता और कार्यक्षेत्र को सीमित करने में सबसे अधिक बाधाक रही है। गाँधीजी की दृष्टि में पर्दा स्त्री के साधवीपन तथा धर्म की रक्षा करता है, मानना गलत है। उनके शब्दों में, "पवित्रता पौधों के समान गरम-घर में उत्पादित होने वाली चीज नहीं है। .... इसकी रक्षा पर्दे की दीवारो के भीतर नहीं की जा सकती, इसका जन्म तो अन्दर से होना चाहिए।"[9] गाँधीजी के अनुसार पर्दा प्रथा ने स्त्रियों के विकास को रोका है, स्त्रियों के शरीर पर ही नहीं, उनकी मौखिक अभिव्यक्ति पर भी पर्दे ने प्रतिबंध लगाए हैं। अत: इसे समाप्त किया जाना चाहिए।

साथ ही गाँधीजी ने उन सभी प्रथाओं का विरोध किया जो स्त्री की गरिमा को ठेस पहुँचाती हैं। उन्होंने दहेज-प्रथा को अनुचित माना। गाँधीजी ने कहा कि दहेज लेने वाले युवकों को समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर दूसरे क्षेत्र तथा जाति में सुपात्र वर से लड़की का विवाह करना चाहिए। इसी प्रकार गाँधीजी ने आभूषणों के प्रति स्त्री के मोह को गलत माना तथा कहा कि स्त्री का सच्चा आभूषण उसक चरित्र और उसकी पवित्रता होनी चाहिए, न कि सोने-चाँदी तथा कीमती पत्थर से निर्मित जेवर। गाँधीजी के अनुसार सीता, सावित्री, मीराबाई आदि महान स्त्रियों को हम उनकी चारित्रिक महानता तथा दृढ़संकल्पता के कारण सदियों उपरांत भी पूजनीय मानते हैं, न कि उनके आभूषणों के कारण। गाँधीजी ने प्राचीन भारतीय स्त्रियों के स्वतंत्र विचार और आत्माद्योगी उदाहरणों को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। गाँधीजी ने कहा कि यदि भारतीय स्त्री अपने साहस और शक्ति तथा स्वतंत्र विचारों की भावना को खो चुकी है जोकि "मैत्रयी, गार्गी और सावित्रीह में थी तो उन्हें उसे प्राप्त करना होगा। यह स्थिति सामाजिक अत्याचार का परिणाम है तथा इसकी समाप्ति के लिए स्त्री-पुरुष सभी को प्रयत्न करने होंगे। वास्तव में गाँधीजी ने स्त्रियों की स्वतन्त्रता को मूलभूत मुद्दे के रूप में लिया।

स्त्री-पुरुष समानता अर्थात लैंगिक समानता के लिए गाँधीजी जन चेतना जाग्रत करने के पक्षधार थे। गाँधीजी का विश्वास था कि समानता की स्थिति प्राप्त करने तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए स्वयं स्त्रियों को ही उपक्रम करने होंगे। सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों को भी गाँधीजी समानता की स्थापना तथा कुरीतियों के उन्मूलन में सहायक मानते हैं। किन्तु सामाजिक कानून के प्रभाव की वे सीमित मानते हैं। उनके अनुसार स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए जनसाधारण तक यह बात पहुँचाती होगी। गाँधीजी ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया कि मात्र भाषण देने, लेख लिखने से समानता की स्थिति प्राप्त नहीं होगी वरन् इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रियता लानी होगी। गाँधी जी के नेतृत्व में चल रहे तत्कालीन स्वतन्त्रता आन्दोलन में स्त्रियों की दशा सुधारने की दिशा में बहुत से प्रयत्न किए गए। उनके नेतृत्व में पहली बार स्त्रियों ने पुरुषों के साथ देश की स्वतंत्रता के लिए अहिंसक संघर्ष तथा आन्दोलन के रचनात्मक कार्यक्रमों में बड़ी संख्या में भाग लिया। सत्याग्रह के प्रारम्भिक चरण में गाँधीजी ने मुख्य रूप से धरना, पिकेटिंग तथा खादी कार्यक्रम के लिए स्त्रियों को संगठित किया। गाँधीजी की मान्यता थी कि स्त्रियों में अधिक

सहनशीलता है, अत: इन गतिविधियों को आयोजित करने में वे सफल होंगी। गाँधीजी द्वारा स्त्रियों को सत्याग्रह में सम्मिलित करने के आश्चर्यजनक परिणाम आए। स्त्रियों का कार्य प्रभावशाली सिद्ध हुआ जिसने स्त्रियों में आत्माविश्वास की भावना को जन्म दिया।

गाँधीजी की इस प्रेरणादायक भूमिका के फलस्वरूप स्त्रियों की सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्रियाशीलता ने स्त्रियों की 'अबला' की छवि को बदलते हुए समाज के सम्मुख उसे 'सबला' के रूप में प्रस्तुत किया। परम्परागत रूप से स्त्रियों को आश्रित और कमजोर माना गया किन्तु आन्दोजन में सहभागिता से उनमें आत्मविश्वास की भावना से उनके बिम्ब में परिवर्तन आया। आन्दोलन के दौरान ही स्त्री शिक्षा तथा समाज सुधार के प्रयत्न भी होते रहे तथा शिक्षित स्त्रियों ने नारी उत्थान तथा नारी कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

गाँधीजी के नेतृत्व में सामूहिक भागीदारी ने स्त्रियों को पुरुषों से समानता का बोध दिया। एक ऐसी समानता जो परम्पराबद्ध भारतीय समाज के लिए नई थी, अनुसनी थी। नि: सन्देह महिलाओं में त्याग, समर्पित कार्य की क्षमता, आन्तरिक शक्ति और योग्यता की पहचान से स्त्रियों के लिए एक नये युग का विहान हुआ।[10] गाँधीवादी आन्दोलन में स्त्रियों की सक्रियता के फलस्वरूप स्त्रियाँ घर से बाहर आकर सार्वजनिक स्तर पर राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़ी। यह निर्विवाद है कि गाँधीजी स्त्रियों के लिए वैयक्तिक तथा सार्वजनकि कार्यक्षेत्र की विभाजन रेखा को समाप्त करने में सफल रहे। गाँधीजी के आन्दोलन के फलस्वरूप स्त्रियों की नई भूमिका और कार्यक्षेत्र को सामाजिक मान्यता प्राप्त हुई। सबल महिला के बिम्ब के विकास को दृष्टि से समाज की इस स्वीकृति का विशेष महत्व है। स्पष्ट है गाँधीजी स्त्रियों को अबला और असहाय की अपेक्षा सबल और सशक्त बनाना चाहते थे।"[11]

गाँधीजी ने स्त्री की कमजोरी को शक्ति में परिवर्तित किया। 'सत्याग्रह' को कमजोर के शक्तिशाली के विरूद्ध साधान' के रूप में प्रस्तुत किया तथा इसीलिए 'सत्याग्रह' को स्त्रियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना। गाँधीजी ने बार-2 दोहराया "स्त्री शारीरिक रूप से कमजोर हो सकती है किन्तु वह आत्मिक रूप से शक्तिशाली है। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के धारातल पर स्त्री के एक नवीन रूप को समाज के सम्मुख रखा। एक ऐसी स्त्री जोकि शक्ति, साहस, धैर्य तथा आत्मपीड़न की क्षमता से युक्त अहिंसा तथा शांति का प्रतीक बन सकती है।

अत: गाँधीजी के विचारों ने भारतीय स्त्री की स्थिति को सुधारने और उसमें चेतना जागृत करने में बहुत सहायता की। उन्होंने जो भी रचनात्मक कार्यक्रम चलाए और जो भी सामाजिक आर्थिक और शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित की उसमें सदैव स्त्रियों और पुरुषों को समान उत्तरादायित्व एवं स्थान प्राप्त हुआ। स्त्रियों के प्रति उनकी ऐसी निष्ठा और विश्वास की भावना थी कि उनके अधीन काम करते हुए स्त्रियों ने आत्मविश्वास एवं दृढ़ निश्चय के साथ गम्भीर दायित्वों के पालन की शिक्षा प्राप्त की।

वास्तव में गाँधीजी ने स्त्रियों के जीवन में जो शुभ, श्रेष्ठ, श्रेयस्कर है, उसके उन्मेश में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आज भी स्त्रियों को उनसे अपने भविष्य निर्माण में प्रकाश एवं मार्गदर्शन मिल सकता है, क्योंकि जिस अहिंसक वीरता की उन्होंने जीवन भर साधाना की, उसे वे स्त्रियों में सहज मानते हैं। गाँधीजी मानते हैं, "अहिंसक लड़ाई अधिक से अधिक कष्ट-सहन की अपेक्षा रखती है और स्त्रियों से अधिक शुध और उदात्त कष्ट-सहन और कौन कर सकता है।"[12] ऐसे अहिंसक सत्याग्रह की प्रेरणा भी गाँध ीजी को स्त्रियों से ही प्राप्त हुई थी, गाँधीजी की इस समग्र दृष्टि एवं दर्शन को समझकर 21वीं सदी की नारी अपनी भूमिका का आत्मनिर्धारण कर सकती है तथा सच्ची सभ्यता का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

सन्दर्भ

1. एम. के गाँधी, स्त्रियाँ और उनकी समस्याएँ, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1959, पृ. 4
2. यू. एस. मोहन राव (सम्पादक), महात्मा गाँधी का सन्देश, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1969, पृ. 105
3. हरिजन, दिनांक 5.6.1937
4. वही, दिनांक 24.2.1940
5. निर्मल कुमार बोस (सं), सलैक्शनस फ्राम गाँधी, पृ. 271

6. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, भारा-45, पृ. 533
7. हरिजन, दिनांक 2.12.1939
8. वहीं, दिनांक 24.2.1940
9. कमलेश्वर चौधरी, "वूमन्स आपरेशन इन इण्डिया: द गाँधीयन व्यू", गाँधी मार्ग, जनवरी-मार्च 1998 पृ. 468
10. मीरा कांत, अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक और हिन्दी पत्रकारिता, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1994, पृ. 87
11. राजन महान, वीमन इन इण्डियन नेषनल काँग्रेस रावत पब्लिकेशन, जयपुर 1999 पृ. 85

ब्रिटिश कालीन भारत में अर्थ नीति का लेखा जोखा

प्रज्ञा शिखा

शोध-छात्रा, इतिहास विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

सारांश

यद्यपि भारत में अंग्रेजों तथा अन्य पश्चिमी जातियों का आगमन 15-16वीं शताब्दी में होना प्रारंभ हो गया था किंतु पारस्परिक प्रतियोगिता में सफल होकर पश्चिमी की एक जाति अंग्रेजों ने 18वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में दो निर्णायक लड़ाई लड़कर यहां अपने राज्य की नीव डालने में सफलता प्राप्त की थी। भारत के शासन की बागडोर लगभग एक सौ बरस 1757 से कंपनी के हाथ में रहे और इस अवधि में भारत की राजनीतिक और सामाजिक संरचना के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में भी अभूतपूर्व परिवर्तन आए। अंग्रेज भारत में व्यापारी बनकर आए थे और सर्वदा व्यापारी रहे ब्रिटेन के आर्थिक हितों की पूर्ति करना उनका प्रमुख कर्तव्य रहा। उन्होंने भारत के संपूर्ण आर्थिक साधानों का प्रयोग ब्रिटेन के व्यापारी उद्योगपति वर्ग के आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए किया इस कारण अंग्रेजों के शासन काल की प्रमुख विशेषता भारत का आर्थिक शोषण तथा उसका एक गंभीर परिणाम भारतीयों को अत्यधि क निर्धनता रहा। ब्रिटेन ने भारत पर अपनी राज सत्ता और शासन स्थापित करने के बाद पूंजीवादी साम्राज्यवाद का स्वरूप ग्रहण कर लिया, इस साम्राज्यवादी देश ने प्राचीन भारत के प्रति जो अर्थ नीति अपनायी, उसे भारत को बहुत आघात पहुंचा। औपनिवेशिक शासन की शुरुआत के पहले तक भारतीय अर्थव्यवस्था अपने सामाजिक वर्गों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में आत्मनिर्भर एवं सक्षम थी। अंग्रेजी हुकूमत ने भारतीय अर्थव्यवस्था की क्षमता एवं आधुनिकता पर कड़ा प्रहार किया तथा अर्थव्यवस्था की संरचना को छिन्न-भिन्न कर दिया।

मुख्य शब्दः ब्रिटिशकालीन भारत, अर्थ, रेल परिवहन, सरकारी उद्योग, कर नीति, साम्राज्यवादी विभेद।

प्रस्तावना

औद्योगिकरण के बाद ब्रिटेन का साम्राज्यवाद पूंजीवादी होता जा रहा था। भारत में ब्रिटिश सत्ता और प्रशासन पूर्ण रूप से स्थापित हो जाने के बाद ब्रिटेन का यह लक्ष्य था कि भारत में ऐसी अर्थ नीति के व्यवस्था स्थापित कर उनका विकास किया जाए जिससे ब्रिटिश पूंजी संचय ही नहीं हो, अपितु उस का विनियोग भी हो यह अर्थ नीति की अर्थव्यवस्था ऐसी भी हो जिससे ब्रिटेन का अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य व्यापार चलता रहे। भारतीय मंडी और बाजार बिना किसी व्यवधान के ब्रिटेन के औद्योगिक पदार्थों से भरे रहें। भारत में कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि हो ब्रिटेन को उसका निर्यात हो और भारत में ब्रिटिश पूंजी के लिए सुविधाएं बढ़े। जब अंग्रेज भारत आए तब यहां विभिन्न उद्योग स्वचालित थे- वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, आभूषण निर्माण, उद्योग, मिट्ठी और कांच उद्योग, सीता उद्योग तथा अन्य कई मिश्रित उद्योग भारत की संपदा वृद्धि में सहायक है।

ब्रिटिश शासकों ने प्रधानतः राज्य सत्ता का दुरुपयोग कर भारत के प्राचीन उद्योग धंधों को नष्ट कर दिया। सबसे पहले कपड़ा उद्योग पर पहले ज्यादा शुल्क लगा कर और फिर कानून बनाकर उन्होंने भारतीय कपड़ों को ब्रिटेन के बाजार से निकाला फिर यूरोप और अन्य देशों के बाजार से और आखिर में खुद भारत के अंदर भी बर्बाद कर दिया। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप

एक नए औद्योगिक वर्ग का उदय हुआ, जिसे भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार समाप्त हो गया। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का रूप परिवर्तन हुआ। ब्रिटिश सरकार ने अपने उपनिवेश हित में तकनीक कानूनों में सुधार किया तथा ऐसे अनेक कानूनों का निर्माण किया जिससे भारत में वाणिज्य का विकास हुआ। ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग की सहायता करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था का इस तरीके से विकास किया जिससे ब्रिटिश निजी पूंजी का निवेश भारत में संभव हो सके। ब्रिटिश पूंजी के निवेश के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास एकांकी तथा विरोधभासी ही रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था के शोषण के लिए ऐसे व्यापारिक उद्योगों का विकास किया गया जो उत्पादन वस्तुओं का आयात करते थे इसी संदर्भ में बैंक और बीमा कंपनियों के विकास को प्रोत्साहित किया गया। इसके अतिरिक्त अर्थनीति से जुड़ा हुआ है यह राजनीतिक पहले भी था कि भारत में ब्रिटिश सेनाओं को सामरिक स्थानों में लाने ले जाने के लिए और विद्रोह के दमन हेतु परिवहन के प्रगामी साधानों की भी अधिक आवश्यकता थी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रेल, डाक और टेलीग्राफ की व्यवस्था की गई।

धन निर्गम और भारत

भारत में ब्रिटिश राज आर्थिक शोषण के लिए सभी तरह के कानूनों का भरपूर प्रयोग किया। इस राज्य के काल में देश के उद्योग, व्यापार, कृषि आदि का शोषण हुआ और भारत की विपुल संपदा का परिवहन इंग्लैंड की ओर होता रहा। भारत से इंग्लैंड के लिए परिमाण में धन का निष्कासन हुआ कि यह देश उत्तरोत्तर निर्धनता का शिकार होता रहा उसकी आय के साधानों पर अंग्रेजों का नियंत्रण कायम होता गया। धन निष्कासन का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉक्टर ताराचंद ने लिखा है कि "भारत से ब्रिटेन के लिए माल का निर्यात ही भारत से धन का निष्कासन है, जिसमें भारत और इंग्लैंड दोनों की अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ा"। उन्होंने लिखा है कि "ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल में एकत्र राजस्व से भारतीय वस्तु में खरीदकर उन्हें इंग्लैंड भेज देने की नीति अपना ली। उन खरीदो को निवेश कहा जाता था, उनके रूप में भारत से धन निकासी हो रही थी"।

भारत के मुख्य दो नेताओं दादा भाई नौरोजी तथा महादेव गोविंद रानाडे ने धन पर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर की। नौरोजी ने 'पावर्टी इन इंडिया' और 'अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया' नामक अपनी पुस्तक में धन निर्गम के संबंध में अपने जो विचार व्यक्त किए हैं, उनसे भारत के समाज और अर्थव्यवस्था में एक क्रांति आई। उन्होंने सप्रमाण यह बतलाया कि भारतीय अर्थतंत्र भारी आर्थिक निर्गम का शिकार है। भारत से धन निर्गम के संबंध में अपने विचार व्यक्त करने के उपरांत दादाभाई नौरोजी ने सरकार को चेतावनी भी दी और अंत में यह कहा कि, 'भारत और इंग्लैंड के बीच वित्तीय संबंधों की समुचित जांच पड़ताल की जानी चाहिए तथा उन्हें नैतिक और न्याय पूर्ण आधार पर रखा जाना चाहिए'। भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन की उदारवादी परंपरा के एक प्रमुख स्तंभ महादेव गोविंद रानाडे ने भी धन निर्गम पर अपने मत व्यक्त किए। उन्होंने भी यह स्वीकार किया कि भारत की समस्त आएगा 33 प्रतिशत से भी अधिक भाग किसी न किसी रूप में इंग्लैंड जाता रहा।

बंगाल के राजस्व तथा खर्चे विषय के एक विवरण के अनुसार कंपनी प्रशासन के पहले 6 वर्षों में भारत का शुध राजस्व 13 करोड़ 66 हजार से अधिक और कुल खर्च 90 लाख 27000 पाउंड था और इस तरह 40 लाख से भी ज्यादा पाउंड का शुध अधिशेष रह जाता था। अधिशेष की यह रकम वस्तुओं के रूप में इंग्लैंड भेज दी जाती थी। भारत के धन निकलने के कारण जहां इंग्लैंड में औद्योगिक उत्पादन बढ़ा वहीं दूसरी तरफ भारत में घट गया। भारत के औद्योगिक उत्पादन में कई बाधाएं उत्पन्न हो गई। कहने का तात्पर्य यह है कि धन निर्गम ने भारत को आर्थिक दृष्टि से खोखला बना दिया।

रेल का निर्माण और नीति

बिपिन चंद्र अपनी पुस्तकें 'भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास' में लिखते हैं कि, "रेल के निर्माण का भारतीय जनता के जीवन संस्कृति और अर्थव्यवस्था पर एक क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा। रेलों की स्थापना से पूर्व अंग्रेज यथार्थ में भारतीय जीवन में प्रवेश पा सके थे ना भारत को विकासशील विश्व मंडी के साथ जोड़ सके थे और ना ही भारत को पूंजीवादी विकास पद की दिशा पर डाल सके थे। देश के विदेशी शासकों ने समय रहते रेलों के निर्माण को देश के सभी रोगों की रामबाण औषधि के रूप में किया तथा अन्य सभी योजनाओं से उसे प्राथमिकता देते हुए उसके विकास पर शक्ति तथा तीव्र बल दिया है"।

1853 में ब्रिटिश शासकों ने भारत में रेल पथ का निर्माण शुरू किया इसके निर्माण का प्रधान उद्देश्य भारत के कच्चे माल को अंदर के हिस्सों से बंदरगाहों तक पहुंचाना और ब्रिटेन से आए तैयार माल को बंदरगाहों से देश को अंदर के हिस्सों में ले जाना था। रेलवे निर्माण का दूसरा लक्ष्य सेना को दूर दूर तक ले जाना था ताकि ब्रिटिश शासकों के प्रति किसी भी विद्रोह को आसानी से दबाया जा सके। यह भी कहा गया था कि रेलों से आंतरिक क्षेत्र परस्पर जुड़ जाएंगे एवं एकता में बंधा जाएंगे। आवागमन बढ़ेगा नवीन उद्योगों के खुलने का मार्ग प्रशस्त होगा। देश में नई तकनीक लाई जाएगी, उद्योग व्यवसाय बढ़ेंगे और आधुनिक औद्योगीकरण होगा। भारत में रेल परिवहन को प्रारंभ करने के लिए इंग्लैंड के पूंजीपतियों ने भी अपनी सरकार पर दबाव डाला। भारतीय रेल पथ परिवहन इंग्लैंड के पूंजीपतियों के अतिरिक्त पूंजी के विनियोग के लिए अच्छा अवसर था। इस संबंध में ए. आर. देसाई महोदय का कथन है, "ब्रिटिश पूंजीवाद के सामने यह समस्या भी थी कि ब्रिटेन में अधिक पूंजी एकत्र की जा रही थी और उसका वहां लाभदायक इस्तेमाल संभव नहीं था, इस पूंजी के लिए विकास की जरूरत थी। रेलवे निर्माण का कार्यक्रम शुरू करने पर भारत सरकार को पूंजी की जरूरत होती थी। ब्रिटेन में एकत्र पूंजी भारतीय सरकार को कर्ज रूप में दिया जा सका और इस तरह इस का विकास संभव हुआ। भारत में पूंजी निवेश के लिए ब्रिटिश पूंजीपतियों को और अधिक आकर्षित करने के लिए रेलवे परिवहन के आर्थिक लाभ का भी प्रलोभन दिया गया।"

रेल कंपनियों को रेल से लाभ ना भी हो तब भी पूंजी लगाने वालों को 5 प्रतिशत ब्याज दिया जाएगा। इस प्रणाली के कुछ दोष भी ख़ष्टिगत होते हैं 5 प्रतिशत ब्याज के प्रलोभन से रेल के निर्माण और विकास में वित्त व्यवस्था से व्यय करने की अपेक्षा धन का अधिक व्यय हुआ। रेलों का निर्माण अधिक की फिजूलखर्ची से हुआ क्योंकि अंग्रेजों की जो भी अधिकाधिक पूंजी लगती थी, उस पर उसे गारंटी के रूप में ब्याज तो निश्चित प्राप्त होता था। धन के अधिक खर्च होने से निर्माण में लागत उस समय अमेरिका के निर्माण में जो हुआ था उसका भारत जैसे गरीब देश में हुआ। दूसरा भारत में रेल के निर्माण के उद्योग और वहां के करखानों के स्वामी लाभान्वित हुए। भारत में उपजाऊ प्रदेशों में रेल मार्गों को फैला कर वहां से कच्चा माल विशेषकर रुई, चमड़ा और ख़षि की व्यवसायिक फसलें जैसे- चावल, तिलहन आदि प्रमुख व्यापारिक नगरों केंद्रों तथा बंदरगाहों तक रेलवे द्वारा लाई जाती थी और फिर वहां से ब्रिटेन के कल कारखानों और उद्योगों को भेजी जाती थी, इसके बदले ब्रिटिश कल कारखानों में उत्पन्न माल और वस्तुएं विशेषकर सूती कपड़े और लोहे की वस्तुएं भारत के आंतरिक क्षेत्रों के बाजारों में खरीदारों के लिए रेल द्वारा लाई जाती थी। रेलों से ख़षि उपज और खाद्यान्नों को बंदरगाहों तक रेल से देश का निर्यात किया जाता था, उसे देश में खाद्यान्न का भारी अभाव होता गया और खाद्यान्न के भाव बढ़ते चले गए। रेलवे से पहले भारत-इंग्लैंड के लिए वस्त्र भेजता था पर अब रेलों और मुक्त व्यापार के परिणामस्वरूप इंग्लैंड भारत के लिए वस्त्र भेजा था इससे भारतीय उद्योग हथकरघा उद्योग नष्ट हो गए। तीसरा, ब्रिटेन के इस्पात कारखानों में निर्मित होकर भारत भेजा जाता था। ब्रिटेन के इस्पात कारखानों में निर्मित रेलों की मशीनों के लिए कलपुर्जे, जेसीबी मशीनों के स्थान पर नवीन आधुनिक मशीनें डिटेल में निर्मित की जेती थी। रेल की पटरिया, रेल इंजन और उनके कल पुर्जे तथा रेलों के कारखानों में उपयोग में आने वाले लौह एवं इस्पात की अनेक वस्तुएं रेलों द्वारा द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पहुंचाई जाती थी। सन 1940 तक भारत में ब्रिटेन से रेल के इंजन और उसके कलपुर्जे आयातित होते रहे इससे रेलों से संबंधित विभिन्न प्रकार के सहायक उद्योग जिनसे भारत को लाभ होता भारत में स्थापित नहीं किए जा सके। फलों के निर्माण और विकास से भारत का औद्योगिकरण नहीं हुआ देश की समृद्धि नहीं बढी। रेलों के निर्माण से तो ब्रिटिश पूंजीपतियों और उद्योगपतियों के आर्थिक हितों का संवर्धान हुआ।

सरकारी उद्योग और ब्रिटिश हित संवर्धन

जिस प्रकार भारत में अंग्रेज सरकार ने ब्रिटेन के आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए रेल मार्ग बनाए और रेल चलाई इसी प्रकार अंग्रेज सरकार ने ब्रिटेन के हित के लिए भारत में उद्योग व्यवसाय प्रारंभ किए। सरकार ने व्यक्तिगत स्वामित्व वाले उद्योग स्वयं प्रारम्भ किए अंग्रेजी सरकार की नीति का यह अलग दुखद स्वरूप है। 18वीं सदी के अंतिम चरण से चीन में उत्पादन चाय यूरोप के देशों में और ब्रिटेन में अधिक लोकप्रिय हो गई थी। 19वीं सदी के प्रारंभिक चरणों में ब्रिटिश व्यापारी चीन से चाय मांगते थे और लाभान्वित होते थे इसलिए चाय के व्यापार से अधिक लाभ अर्जित करने के लिए कंपनी की अंग्रेजों और अधिकारियों ने भारत

में चाय की खेती प्रारंभ की। सन 1833 में कंपनी के सरकारी स्वामित्व में असम में चाय के बगीचे लगाए गए थे और इनका विकास किया गया। चाय उत्पादन और उसके व्यापार पर एक समीक्षात्मक दृष्टि डाली जाए तो कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं प्रथम तथ्य यह है कि ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार ने ही स्वयं चाय का उद्योग और व्यापार अपने देश के हित में भारत के लाभार्थी नहीं प्रारंभ किया इस उद्योग का स्वामित्व ईस्ट इंडिया कंपनी के पास था सरकार के लिए किसी उद्योग का स्वामित्व होना अर्थनीति के विरुद्ध है। द्वितीय, ब्रिटिश पूंजीपतियों को चाय उद्योग में पूंजी निवेश के लिए प्रोत्साहित किया गया उन्हें मुख्य भूमि और सस्ते श्रमिक सरकार की ओर से उपलब्ध कराए गए चाय बागान के अंग्रेज स्वामियों के पक्ष में सरकार ने श्रमिक बाजार में हस्तक्षेप किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने लोहे और इस्पात के उद्योग में धन अर्जित करने के लिए सन 1830 के बाद लोहे और इस्पात के कारखाने स्थापित किए, कुछ स्थानों पर ऐसे करखानों ने निर्माण करने में सहयोग दिया, निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे प्रारंभिक प्रयास बंगाल में वीरभूमि इलाके में उत्तर प्रदेश के मांगों के पहाड़ी क्षेत्र में तथा मद्रास प्रांत के पोर्टोनोवा क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा किए गए। ब्रिटिश हित के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीय लघु उद्योग को नष्ट कर दिया और यदि वह कहीं बचा भी रहा तो मरणासन्न अवस्था में ही रहा। कालक्रम में भारत ब्रिटिश उत्पादों का एक मुख्य बाजार बन गया। 19वीं शताब्दी के दौरान यूरोपीय लोगों द्वारा भारत में एक आधुनिक विनिर्माण उद्योग के निर्माण के लिए कई प्रयास किए पर सरकारी समर्थन व प्रोत्साहन के अभाव में यह किल रहे। कंपनी ने चार अन्य उत्पादन केंद्रों का निर्माण किया लेकिन पूंजी के अभाव व ईंधन के रूप में इस्तेमाल किए जाने वाले काठ कोयले की दुर्बलता के कारण एक-एक करके सारे उत्पादन केंद्र बंद हो गए और इसके बाद कंपनी का अस्तित्व ही समाप्त हो गया।

युद्ध में काम आने वाली युद्ध सामग्री जैसे गोला, बारूद, बंदूकें, गोलियां, पशु आरोही सेना में काम आने वाली चमड़े की वस्तुएं, चमड़े के बूट थैले आदि की आवश्यकता और साथ-साथ उनकी मांग भी अधिकाधिक बढ़ती गई। इनकी आपूर्ति के लिए सरकार ने स्वयं के स्वामित्व के कारखाने स्थापित किए इस प्रकार उद्योग स्थापित करने में अंग्रेज सरकार का लक्ष्य भारत का औद्योगिक विकास करना भारत का आधुनिक औद्योगीकरण करना नहीं था। अपितु अंग्रेज पूंजीपतियों का ही पूंजी निवेश का मार्ग प्रशस्त करना था। दूसरे शब्दों में अंग्रेजी सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए उद्योगों से भारत में जनसाधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति का भारत के आर्थिक विकास का उनकी समृद्धि का कोई संबंध नहीं था।

आयात-निर्यात संबंधी कर नीति

भारत में उपनिवेशवाद प्रशासन जो ब्रिटेन के हितों के संवर्धान के लिए एक यंत्र था, कर नीति की भूमिका निभाने के लिए हमेशा से तत्पर था। ब्रिटेन के साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद ने हर संभव तरीके से यह प्रयास किया कि ब्रिटेन के लिए भारत केवल कच्चे माल प्राप्त करने का एक स्त्रोत और ब्रिटिश औद्योगिक उत्पादन की बिक्री के लिए मंडी बना रहे। 19वीं सदी के प्रारंभ तक ईस्ट इंडिया कंपनी का भारतीय व्यापार पर एकाधिकार था जो सन 1813 तक विद्यमान रहा। 1813 चार्टर एक्ट द्वारा ब्रिटिश नागरिकों को भारत से व्यापार करने की छूट मिलने के फलस्वरुप भारतीय बाजार एवं मशीन निर्मित आयात से भर गया दूसरी ओर भारतीय उत्पादों के लिए यूरोपीय बाजारों में प्रवेश करना अत्यधिक कठिन हो गया। 1820 के बाजार भारतीय उत्पादों के लिए लगभग बंद ही हो गए ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी और उद्योगों का विकास होने लग गया था तथा वहां के कल कारखानों में औद्योगिक माल का अधिक उत्पादन होने लगा था। उत्पादन के लिए भारत से कच्चे माल की अत्यधिक आवश्यकता होती थी इसीलिए 1833 के बाद भारत से कच्चा माल ब्रिटेन में आयात होने लगा और जो भारत से निर्यात होने लगा था उस पर किसी प्रकार का कर न तो ब्रिटेन में था और न भारत में। इसी प्रकार ब्रिटेन के कल कारखानों में निर्मित तथा माल भी भारत के बाजारों में बिक्री के लिए आने लगा था इस माल पर भारत में कोई कर नहीं लगाया जाता था यह मुक्त व्यापार की नीति थी।

सन 1857-58 में सैनिक विद्रोह के दमन से भारत सरकार के सामने आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। सेना द्वारा विद्रोह का विभिन्न स्थानों में निरंतर दमन करने से सरकारी व्यय और ऋण में वृद्धि हुई इसका सामना करने के लिए अंग्रेज सरकार को बाध्य होकर अपनी आय में वृद्धि करनी पड़ी और उसने भारत में आयातित औद्योगिक पदार्थों पर विशेषकर सूती वस्त्रों पर आयात कर बढ़ा दिया। भारत में आने वाली वस्तुओं पर 3.5 से 5 प्रतिशत का आयात कर लगाया गया। कुछ समय बाद इसे बढ़ाकर 10 प्रतिशत

कर दिया गया। यह एक आपातकालीन व्यवस्था थी जो इंग्लैंड के औद्योगिक हितों के विरुद्ध थे भारत से बाहर विदेशों में जाने वाली वस्तुओं पर निर्यात कर लगाया जाता था, इससे इंग्लैंड में भारत से पहुंचने वाला कच्चा माल महंगा बहुत ज्यादा था। फलत: ब्रिटेन के हित में यह निर्यात कर कम करके 3.5 प्रतिशत रखा गया जिससे कि बजट में आय व्यय का संतुलन बनाया रखा जा सके और घाटा नहीं हो। तत्कालीन गवर्नर जनरल पर इंग्लैंड की सरकार ने आयात निर्यात नीति में परिवर्तन करने के विषय में दबाव डाला।

लॉर्ड लॉर्ड रिपन के कार्यकाल में इंग्लैंड के हित में शराब, अस्त्र-शस्त्र और नमक को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर से जो भी मामूली आयात कर बचा हुआ था उसे भी समाप्त कर दिया गया। तंबाकू पर लगे आयात कर को 20 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया और बाद में इसे भी निरस्त कर दिया गया इसके बाद इंग्लैंड के आर्थिक परिस्थितियों में बड़ा परिवर्तन आया, आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। इंग्लैंड में सूती मिलों और कल कारखानों में उत्पादन कम होता गया बेरोजगारी बढ़ती गई, आर्थिक लाभ और विदेशी विनियोग में गिरावट आई इसलिए इंग्लैंड से अधिकाधिक औद्योगिक पदार्थों का निर्यात करके इस आर्थिक घाटे की भरपाई की गई। इसी क्रम में विदेशों से भारत में आयात होने वाली अनेक वस्तुओं पर बहुत ही निजी दर पर उन्हें आयात कर लगा दिए। इन सूती कपड़ों पर भी मामूली आयात कर लगाया गया इस नीति से सरकार के पास कर से प्राप्त धन भी बढ़ा और मुक्त व्यापार नीति भी बनी रही। अंग्रेज सरकार की यह आयात-निर्यात नीति इंग्लैंड के हित में थी इससे भारत का अत्यधिक आर्थिक शोषण हुआ। इंग्लैंड से आयातित कपड़ों तथा अन्य वस्तुओं पर आयात कर जो ब्रिटिश सरकार द्वारा निरस्त किए जाने पर देश में चारो ओर आक्रोश उत्पन्न हो गया। उद्योगों में श्रमिकों की हड़तालओं से उद्योग घाटे में आ गए ऐसी दशा में भारतीय उद्योगपतियों ने विभिन्न आवेदनों और प्रतिवेदन द्वारा आयात-निर्यात नीति में परिवर्तन करने के लिए ब्रिटिश सरकार को बाध्य किया।

अंग्रेजी विभेद-नीति

भारतीय उद्योगों के विकास में ब्रिटिश सरकार की आयात-निर्यात नीति निरंतर व्यवधान उत्पन्न कर रही थी। इसमें परिवर्तन करने के लिए तथा भारतीय उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के लिए भारतीय उद्योगपति निरंतर मांग कर रहे थे। प्रथम वित्त आयोग को कार्यान्वित करने के लिए टैरिफ बोर्ड की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य था संरक्षण प्राप्त करने के इच्छुक उद्योगों के आवेदनों का परीक्षण कर उन को संरक्षण देने की अनुशंसा करना। समकालीन परिस्थितियां उत्पन्न होने के बावजूद कपड़ा उद्योगपतियों के निरंतर दबाव के कारण सन 1925 में समतुल्य कानुनों को समाप्त कर दिया गया।

सन 1929-30 की भीषण मंदी के कारण ब्रिटेन को विश्व बाजारों में जर्मनी, जापान और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मशीनों से बने सामान और वस्तुओं के उत्पादन और बिक्री से बिनाशकारी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। उनकी आर्थिक समृद्धि को गहरा आघात पहुंचा। इस भीषण आर्थिक संकट से उबरने के लिए ब्रिटेन ने साम्राज्यवादी विभेदकारी नीति अपनाई। इस नीति के अंतर्गत यह निश्चित किया गया कि अन्य देशों में बने सामान को भारत में आयात करने की अपेक्षा ब्रिटेन में और उसके उपनिवेश में बने सामान को ही भारत में आयात किया जाए। फलत: भारतीय उद्योगों को ब्रिटेन से आयातित सामान के विरुद्ध कड़ी और कुछ प्रतिशत अदा करनी पड़ी। भारत के उद्योगों के विकास में विशेषकर सूती वस्त्र उद्योग तथा लौह और इस्पात उद्योग के विकास में बड़ी बाधाएं उत्पन्न हो गई, इससे भारत का औद्योगिक और आर्थिक विकास धीमा हो गया।

निष्कर्ष

भारत में ब्रिटिश शासन के परिणाम स्वरूप औद्योगिक विकास बड़ा धीमा और एकांगी रहा । भारत में उद्योग तब विकसित हुए जब इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हो चुके थे। टैरिफ बोर्ड की स्थापना और सुरक्षा प्रदान करने वाले करों के लगाने के बाद भी भारतीय उद्योगों को कोई विशेष मदद नहीं मिली, क्योंकि औपनिवेशिक अधिमान के सिद्धांत के सामने सुरक्षा के सिद्धांत का महत्व बहुत कम था। भारतीय उद्योगों के हाथ के लिए पूर्ण रूप से ब्रिटिश नीतियां ही मुख्य रूप से जिम्मेदार थी। भारत की शुल्क नीति के निर्धारण में भारत की अंग्रेज सरकार ने यहां के शासक वर्ग ने भिन्न-भिन्न हितों का पक्ष लिया उनका समर्थन किया। भारत की प्रजा का तथा भारत के औद्योगिक हितों का कभी समर्थन नहीं किया। फलत: जो

निर्णय होते थे वह प्राय: अंग्रेज निहित स्वार्थों के पक्ष में होते थे जिस प्रकार अर्थशास्त्र की सिद्धांत जैसे मुक्त व्यापार अंग्रेज सरकार की कर नीति को प्रभावित करते थे, उसी प्रकार विभिन्न निहित स्वार्थों के दल भी सरकारी नीति निर्धारण में अपना प्रभाव और दबाव स्पष्ट दिखाते थे। वह सब भारत के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करते थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एल. सी. ए. नॉलेस, इकोनामिक डेवलपमेंट ऑफ द ब्रिटिश ओवरसी एंपायर, लंदन, 1928, पार्ट 2.
2. वी इंसटै, द इकोनॉमिक डेवलपमेंट ऑफ इंडिया, लंदन, 1952.
3. एच.जे. हैबकक, द हिस्टोरिकल एक्सपीरियंस ऑन द बेसिस कंडीशन ऑफ इकोनामिक प्रोग्रेस, लॉयवेन, 1955.
4. ए. मुखर्जी, द रिटर्न ऑफ द कोलन ईयर इन इंडिया इकोनामिक हिस्ट्री- द लास्ट एज ऑफ कॉलोनियलिज्म इन इंडिया, इन सोशल साइंटिस्ट, वॉल्यूम 36, मार्च-अप्रैल 2008.
5. मिश्रा एवं पूरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय प्रकाशन, 2011.
6. एस. सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, 2005.
7. बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 2001.
8. ए. आर. देसाई, सोशल बैकग्राउंड आफ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर बुक डिपो, मुंबई, 1959.
9. शिवानी किनकर चौबे, भारत में उपनिवेशवाद स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 2000.
10. आर. पी. दत्त, इंडिया टुडे, मनीषा प्रकाशन, कोलकाता, 1979.
11. अमिया कुमार, प्राइवेट इन्वेस्टमेंट इन इंडिया, ओरियंट लोंगमैन, नई दिल्ली 1975.
12. ताराचंद, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया खंड 1.

भारतीय चेतना में सांस्कृतिक राष्ट्रवादः एक अध्ययन

दिवाकर पासवान

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, टी.एम.बी.यू. भागलपुर

सारांश

राष्ट्रीयता की अवधारणा का सूत्रपात 18 शताब्दी में हुआ। राष्ट्र निर्माण की ऐतिहासिक प्रक्रिया देश और काल की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थिति के अनुसार विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न रही है। 18वीं शताब्दी में राष्ट्रीयता शासक वर्ग की आकांक्षा और प्रयास का विषय थी। 19वीं शताब्दी की राष्ट्रीयता ने मध्यम वर्ग के अभ्युदय के साथ-साथ बुर्जुआ आंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया। बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता जनसामान्य का आंदोलन है जिसके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में सहभागीता का दवा करता है। 19वीं शताब्दी के राष्ट्रीय आंदोलन अपने को सामाजिक आर्थिक न्याय के प्रश्न से पृथक रखते थे परंतु बीसवीं शताब्दी की अवधारणा के अनुसार राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और समान न्याय मिलना चाहिए। भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास अति प्राचीन है यद्यपि इसके क्रमबद स्वरूप का उल्लेख 1857 की क्रांति के पश्चात ही प्राप्त होता है। यहां भाषा धर्म जाति और रीति-रिवाजों की विविधता के होते हुए भी एक आधारभूत एकता विद्यमान रही है। जब हम राष्ट्र के आगे सांस्कृतिक शब्द का प्रयोग करते हैं तब तत्काल हमारा ध्यान राष्ट्र जनों के जीवन मूल्यों की ओर जाता है जो शाश्वत ही नहीं राष्ट्र जीवन को अहम् से वहम् की ओर तथा संयम से ओम तत्सत की ओर ले जाने वाले हैं। राष्ट्र जीवन को पूर्ण एवं सार्थक बनाने वाले हैं इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था जनित निष्ठा ही राष्ट्र जनों को राष्ट्रीय बनाती है। इस तरह राष्ट्रीयता का मूल स्वरूप राजनीतिक ना होकर सांस्कृतिक ही है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय चेतना में संस्कृति राष्ट्रवाद को समग्र रूप से समझने के लिए समीक्षा किया गया है।

मुख्य शब्दः भारतीय राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद सांस्ख्रतिक, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय संस्कृति।

परिचय

राष्ट्र और राष्ट्रवाद के प्रमुख स्वरूपों की एक सांस्कृतिक अवधारणा भी रही है। इसमें जातीय और धार्मिक पक्ष पर जो रहा है, इसमें एक राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में आने के लिए एक केंद्रीय सत्ता की आवश्यकता नहीं समझी जाती। इसमें राष्ट्रीयता राज्य से पहले की स्थिति को माना जाता है, क्योंकि इसमें धर्म और जाति तत्व का महत्व है ना कि राजनीतिक रूप से राज्य के संगठित होने का। इस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्र का आधार समान ऐतिहासिक धार्मिक और सांस्कृतिक अनुभव होता है और धीरे-धीरे अपना राज्य बनाने की प्रवृत्ति इसमें घर करने लगती है, इसमें व्यक्ति की इच्छा का ज्यादा महत्व नहीं होता, वह किसी सांस्ख्रतिक राष्ट्र का सदस्य होता ही है। उसके राष्ट्रीय विशेष का फैसला प्रकृति और इतिहास के माध्यम से पहले ही हो चुका होता है। अक्सर राजनीतिक राष्ट्र की तुलना में सांस्कृतिक राष्ट्रीय प्रतीक होता है इसमें दूसरे समूहों को समाहित करने की क्षमता होती है, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि सांस्कृतिक राष्ट्र में लोगों की सुरक्षा का कोई स्थान नहीं होता है। वस्तुतः राजनीतिक या सांस्कृतिक हर हालत में राष्ट्रीय में संघर्ष की भावना बनी रहती है क्योंकि अल्पसंख्यकों में असुरक्षा का भाव विद्यमान रहता है।

राष्ट्रवाद की अवधारणा

राष्ट्रवाद से संबंधित समसामयिक अध्ययनों ने हाल के वर्षों में राष्ट्र की अवधारणा राष्ट्र निर्माण की जटिल एवं बहुयामी प्रक्रियाओं उनकी विशेषताओं, उनके संघर्षों, आत्म अभिव्यक्ति एवं आत्मा स्थापना के स्वरूप को उभारा है। राष्ट्रवाद की अवधारणा का विश्लेषण विचारकों ने पृथक-पृथक स्वरूपों में किया है। रेहान के शब्दों में, "राष्ट्र एक अध्यात्मिक संपूर्णता है एवं राष्ट्रवाद उससे संबंधित एक आवेग है।" कार ने 'राष्ट्र को गैर राष्ट्रीय समुदाय से पृथक करते हुए राष्ट्र की अवधारणाओं का प्रयोग मानव समूह के लिए किया है'। 19वीं शताब्दी के मध्य में मिलने राष्ट्रवाद की नियमित विशेषताओं का उल्लेख किया, जिसमें प्रमुख है संतति की एकरूपता, भाषा एवं धर्म की सामुदायिकता, भौगोलिक सीमा, राजनीतिक स्थिति की एकरूपता। इस प्रकार राष्ट्र की परिभाषा यह दी जा सकती है कि यह एक प्रकार का समूह है किंतु आरंभिक यायावर समूह राष्ट्र नहीं बना सके। उन्होंने जनजातियों का निर्माण किया ग्रीस एवं रोम के नगरीय राज्य जनजातियों के व्यवस्थित एकीकरण थे। पश्चिमी विश्व का आविर्भाव जनजाति से नगर निगम से तथा साम्राज्य से राष्ट्र के रूप में हुआ। यदि एक राजनीतिक संवेग के रूप में राष्ट्रवाद का उदय पुनर्जागरण काल से माना जाता है किंतु राष्ट्र राज्य का प्रभाव नेपोलियन के आक्रमण के स्वरूप प्रतिक्रियाओं के रूप में राज्य की अवधारणा के अंतर्गत एक राष्ट्रीय सदस्य की अपने राज्य के प्रति अनुरक्त स्थाई हो जाती है। इस दृष्टि से एक राष्ट्रीय का अपने राज्य के प्रति अधिकार एवं कर्तव्य का संबंध होता है।

यदि भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्राचीन काल से ही विद्यमान थी, किंतु राष्ट्रीयता की यह अवधारणा प्रयुक्त परिवर्तनशील रहे। वैदिक काल में छोटे-छोटे राज्यों और जनपदों के लिए प्रयुक्त राष्ट्र शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि इस काल में राष्ट्रीय दृष्टिकोण व्यापक नहीं था। वैदिक कालीन राष्ट्रीयता की अवधारणा का मूलाधार धर्म था। वैदिक उत्तर काल में राष्ट्रीय दृष्टिकोण में विस्तार हुआ विशाल राज्यों की स्थापना कर राजा बाजपेई राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ के आयोजन करते थे। राष्ट्र के विभिन्न भागों में तीर्थों की स्थापना से अखंड भारत की धारणा परिलक्षित होती है। धर्म और संस्कृति इस राष्ट्रीयता के मूलाधार रहे, राष्ट्रीयता की मध्यकालीन अवधारणा संकीर्णता से युक्त थी। राष्ट्र रक्षा का उत्तरदायित्व आत्मरक्षा की परिधि में सीमित हो गया।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विभिन्न कारक

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है यदि संसार की कोई संस्कृति अमर कही जा सकती है तो नि:संदेह भारतीय संस्ख्रति है जो अपनी समस्त आभा और प्रतिभा के साथ चिरकाल से अस्थाई है। हजारों बरस बीत जाने पर भी भारत की संस्कृति आज भी जीवित है भारतीय संस्कृति का मूल आधार आज भी वही है जो प्राचीन भारत में थे। सदियां बीत गई न जाने कितने उत्थान और पतन आए, विदेशी आक्रमण हुए किंतु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रकाश में दीपक आज भी प्रज्वलित है। उसका अतीत वर्तमान में जीवित है भारतीय संस्कृति की उदार एवं प्रकृति के कारण हैं इसमें विभिन्न संस्कृतियों का मिलन हो पाया है।

इसे भली-भांति समझ लेना चाहिए कि यह सर्व व्यापक रूप से स्वीकार किया जा चुका है कि भारत की संस्कृति चिरंतन है जो 5000 वर्षों से भी अधिक पहले विकसित हुई। इसने आने वाली भारतीय पीढ़ियों के मानसिक क्षितिज, मूल्य व्यवस्था और जीवन शैली को विकसित किया, जो आज भी अनेक विदेशी आक्रांताओं के बाद जनक रूप से बरकरार है। यह आज भी भारतीयों व भारत के मूल लोगों को एक अलग व्यक्तित्व प्रदान करती है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. प्रदीप जैन के मामले में इस वास्तविकता की पहचान की है जब न्यायाधीश भगवती ने टिप्पणी की 'इतिहास का यह रोचक तथ्य है कि राष्ट्र के रूप में भारत का निर्माण न तो एक समान भाषा के आधार पर हुआ और ना ही इसके भूभाग पर एक राजनैतिक सत्ता के निरंतर अस्तित्व के कारण बल्कि इसका आधार सदियों से विकसित हुई एक समान संस्कृति के कारण हुआ। यह एक सांस्कृतिक एकता है देश के लोगों को एकजुट रखने वाले दूसरे बंधुओं से ज्यादा मजबूत व आधारभूत जिसने इस देश को राष्ट्र में पिरोया। इतिहासकार सर विसेंट स्मिथ लिखते हैं 'बिना किसी संदेह के भारत के पास अंतर्निहित मूलभूत एकता है जो राजनीतिक प्रभुता या भौगोलिक बिग्लन से ज्यादा शक्तिशाली है यह एकता, जाति, धर्म, वंश, रंग, भाषा व रीति-रिवाज की तमाम विभिन्नता को पार करती है।

यद्यपि राष्ट्र संबंधी चिंतन एवं दृष्टिकोण 5 आधारभूत समानताएं पर विशेष बल देते हैं- यह हैं- समान देश, समान जाति, समाज, संस्कृति, समान भाषा एवं समान मजहब या पंथ। जनसमूह को राष्ट्र की मान्यता प्राप्त करने के लिए इनका मौजूद होना आवश्यक माना गया है, किंतु राष्ट्रों के विकास का इतिहास यह प्रभावित करता है कि राष्ट्र के लिए मुक्त समानता में एवं राष्ट्रीय राष्ट्रीयत्व के उद्‌गम में सहायक तो हैं किंतु उनमें कई तत्व अनिवार्य नहीं है। राष्ट्रीयता के उद्‌गम के मूल में सबसे अधिक मातृत्व है एक राष्ट्र होने की दृढ़ इच्छाशक्ति का होना, यह दृढ़ इच्छा भूतकाल साझी संस्ख्रति एवं उपलब्धियों और सारे उज्जवल भविष्य की आकांक्षा से पैदा होती है। इसी कारण रैनन ने 'मानव के हृदय में एक होने की अनुभूति और चेतना को राष्ट्रीयता का मूल आधार बताया है'।

हिंदुस्तान के राजनीतिक मानस पर इसके भौगोलिक एवं सांस्ख्रतिक एकता की अनुभूति का गहरा प्रभाव होना स्वभाविक है। सांस्कृतिक एवं जातीय एकता अथवा समरसता का भाव भारतीय मानस में अति प्राचीन काल से अंकित है। जैसे दुनिया का कोई भी देश अपने लिए शुध जाति या नस्ल का दावा नहीं कर सकता, वही बात हिंदुस्तान के बारे में सत्य है। इस प्रकार हिंदू समाज का वर्तमान ताना-बाना भी अनेक जातियों के लोगों के समावेश से बना। जिसमें विदेशी उद्‌गम के लोग भी शामिल हैं। हिंदू समाज के अंतर्गत आने वाली अनेक जातियों एवं तत्वों की किसी समय अलग जीवन पद्धति एवं संस्ख्रति रही होगी किंतु कालांतर में वैदिक आर्य संस्कृति एवं संस्कृतियों के घालमेल से सारे हिंदुस्तान और हिंदू समाज की एक साझी संस्कृति एवं जीवन पद्धति का विकास हुआ। बाद में जब तक कुशाण इत्यादि विदेशी लोग पक्ष की ओर से हिंदुस्तान में आए तो हिंदू समाज ने उनको आत्मसात कर लिया। उन सब का भारतीय करण अथवा हिंदू करण इस प्रकार हुआ कि अब उनको हिंदू समाज से भिन्न करना असंभव हो गया। इनकी तुलना यमुना इत्यादि गंगा की सहायक नदियों से की जा सकती है जिसका जल गंगा में मिलने के बाद गंगाजल बन जाता है और उसमें गंगाजल के सारे गुण जाते हैं।

हिंदू समाज की मूलभूत संस्कृति एकता की अभिव्यक्ति से होती है। भारत के पवित्र नदियों और भौगोलिक स्थिति तथा विद्वान लोगों को समान रूप से मिलता रहा है परंतु इस सांस्कृतिक एकता का सबसे प्रभावी स्त्रोत और माध्यम से संस्कृत और संस्कृति से अन्य भारतीय भाषाएं और उनका साहित्य है। संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली ताजी कड़ी है उनमें से अधिकांश की जननी भी है। दक्षिण भारत की कुल भाषाओं का संस्कृत से स्वतंत्र हो रहा है परंतु उनमें भी संस्कृत से किए गए तत्सम और तद्‌भव शब्दों का अंश बहुत अधिक है। वैदिक साहित्य की और कालिदास द्वारा रचित संस्कृति के महान काव्य नाटक और अन्य ग्रंथ सारे हिंदुओं की ताजी धारोहर है और सभी उन पर गर्व करते हैं। यह महान लेखक तथा रामायण और महाभारत जैसे उनकी महान कृतियां, जाति, पंथनिरपेक्ष सारे भारत की सांस्कृतिक धारोहर है। उनका अनुभव भी भारत की सभी भाषाओं में हो चुका है। भारत देश मुलत: संस्कृति प्रधान है। यह संस्ख्रति का ही जादू है कि यूनान, मिश्र और रोम नक्शे से मिट गए पर भारत का अस्तित्व या यूं कहें कि भारतीयता बनी रहे। हर दौर में यहां पर संस्ख्रति बार-बार अपने मूल स्वरूप की ओर लौटते रहे। इसका कारण सिर्फ इतना है कि हम भारतीयों ने इस देश की मिट्‌ठी, नदियों, पर्वतों, मैदानों, पठारों, परंपराओं, देवी-देवताओं से ऐसा तारतम्य स्थापित कर लिया है कि कोई बाहरी ताकत इस को प्रभावित करने की चाहे जितनी भी चेष्टा कर ले। हम अपनी जड़ों को विस्मृत नहीं करते राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के राष्ट्रवाद संबंधी विचार उनकी पुस्तक हिंद स्वराज में लिखा हुआ है, जिसमें उन्होंने भारतीय संस्ख्रति की प्रशंसा करते हुए लिखा है "हिंदुस्तान में जिस धर्म के आदमी चाहे रह सकते हैं, उससे यह राष्ट्र मिटने वाला नहीं है जो लोग उस में दाखिल होते हैं। वह उसकी प्रजा का तोड़ नहीं सकते वह उसकी प्रजा में घुल मिल जाते हैं। हिंदुस्तान ऐसा था और आज भी हिंदुस्तान ऐसा ही है।"

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मूल्य उसकी संस्कृति में है जो कि शेष दुनिया में प्रचलित राष्ट्र राज्य की अवधारणा में सर्वथा अनुपस्थित है। संस्कृति मुल्क राष्ट्र भाव का जिक्र वेदों में कई जगह आया है। यजुर्वेद में एक राष्ट्रीय गीत का उल्लेख भी मिलता है जिसमें ऋषि ने राष्ट्र में तेजस्वी, विद्वानों, कर्मी, योद्धाओं, दुधारू पशुओं की और सोमवती नारियों और हरी-भरी कृषि की कामना की है, साथ ही इस गीत में राष्ट्र के योग्य की कामना चाही गई है। प्रांतर से आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को इसके शिशु के रूप में विकसित किया जा सकता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की धारणा राष्ट्रीय हितों को सिर्फ आर्थिक सरोकारों नहीं देखती अध्यात्मक तौर पर मानवीय सरोकार के लिए अधिक मायने रखते हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र के लिए सिर्फ राजनैतिक व स्थानिक एकता और संपूर्णता को उधार नहीं मानती बल्कि सांस्कृतिक एकता को उसका प्रमुख आधार मानती है। इसके अनुसार सांस्ख्रतिक राष्ट्र के अस्तित्व के लिए कोई खतरा नहीं है जबकि भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक मूल्यों के बीच अस्तित्व की भावना के आधार पर यह राष्ट्र मूल्य की बात करता है। बहुत सारे विद्वान भारत को एक राष्ट्र के रूप में मौजूदा स्थिति के पीछे उसकी देवी शक्ति को मानते हैं यह देवी शक्ति कुछ और नहीं बल्कि इसके सांस्कृतिक मूल्य ही हैं जो इसे अखंड राष्ट्र के तौर पर पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक बनाए हुए हैं।

स्वामी विवेकानंद भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के जनक थे। उन्होंने धर्म का परिष्कार भारतीयों की आवश्यकता के अनुसार किया और संस्कृति का परिष्कार भारतीय राष्ट्रीयता के अनुरूप किया। वह हिंदुत्व की शुद्धि के लिए उठ खड़े थे, अत: उनका प्रध ान क्षेत्र कर्म था परंतु धर्म और संस्कृति के अविभाज्य संबंध और भारत के सांस्कृतिक पतन ने उन्हें सांस्ख्रतिक जागरण के लिए खड़ा कर दिया भारतीय संस्ख्रति को संकट के दायरे में बंधा देखकर उन्होंने कहा था, "युगों से ब्राह्मण भारतीय संस्कृति का दीदार रहा है अब उसे इस संस्ख्रति को सबके सामने विकिरण कर देना चाहिए। उसने इस संस्कृति को जनता में जाने से रोक रखा। इसलिए भारत पर मुसलमानों का आक्रमण संभव हो सका। ब्राह्मणों ने संस्कृति के भंडार पर ताला लगा रखा। जनसाधारण को उसमें से कुछ भी लेने नहीं दिया इसलिए हजारों साल तक जो भी जातियां भारत में घुस पड़े हम उसके गुलाम होते गए। हमारे पतन का कारण ब्राह्मण की और उदारता रही है"। भारत के पास जो सांस्कृतिक है उसे स्वामी जी ने भारत की उन्नति के लिए यहां के लोगों की शारीरिक उन्नति, साहस, सेवा और कर्म पर बल दिया। उन्होंने अक्सर कहा कि भारत का कल्याण उसकी शक्ति में है।

उन्होंने भारतीयों में वीरता, निर्भयता और बलिदान की भावना को जागृत करने का यथाशक्ति प्रयास किया। विवेकानंद जी ने लिखा है कि "भारत के बुरे दिन उस समय से शुरू हो गए जब हमने मलेच्छ शब्द का अविष्कार किया और हम दूसरों के संपर्क से दूर होने लगे"। क्या हमें पश्चिम से कुछ भी नहीं चाहिए? हमें बहुत सी बातें सीखनी है हमें जीवन भर अच्छी और ऊंची बातों के लिए संघर्ष करना है जो व्यक्ति और समाज दूसरों से कुछ नहीं सकता वह मौत के मुंह में बहुत जाता है। उन्होंने संकीर्णता से भारतीयों को मुक्त करते हुए जागृत किया। स्वामी जी को भारत से अनन्य प्रेम था पर वह सार्वभौम मानवता के भी अनन्य भक्त थे। उन्होंने कहा कि निसंदेह मैं भारत से प्रेम करता हूं, किंतु प्रतिदिन मेरी दृष्टि निखरती जाती है। स्वामी जी की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के मार्ग को भलीभांति प्रशस्त करती है।

निष्कर्ष

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र की आत्मा और जीवन शक्ति को पुनर जागृत करने का सशक्त माध्यम है। वह राष्ट्रीय जीवन की समस्त गतिविधियों, अनुभव, अनुभूतियों, जागृतियों का दर्पण है। हमारे देश की एकता का मुख्य आधार हमारी संस्कृति है। यही कारण है कि हमारे देश के राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ही संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार शरीर बिना आत्मा के निरर्थक है, उसी प्रकार संस्कृति से रहित देश निष्प्राण हो जाता है। भारत देश मूलत: संस्ख्रति प्रधान देश है। हमारे यहाँ जीवन मूल्यों का महत्त्व है, हमारे राष्ट्र का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद अजर-अमर है। हमारे राष्ट्र की मूल अवधारणा का केंद्र-बिंदु ही सांस्ख्रतिक राष्ट्रवाद है। हमारी संस्कृति विश्व को जोड़ने का कार्य करती है। भारतीय आत्मा की सृजनात्मक अभिव्यक्ति सबसे पहले दर्शन, धर्म व संस्कृति के क्षेत्रों में हुई। भारत को 'भारतमाता' कहना ही हमारे 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के संस्कार को दर्शाता है। हमारी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ही यह देन है कि हम अपने देश में पत्थर, नदियाँ, पहाड़, पेड़-पौधो, पक्षी और संस्कृति पोषक को सदैव पूजते हैं। हमारी उदारता, संवदेनशीलता, मानवता के साथ-साथ सहिष्णुता का मूल कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत ही है।

संदर्भ सूची

1. हचिंसन, जॉन और एंथनी, एस.डी., नेशनलिज़म-क्रिटिकल कसेप्ट इन पॉलिटिकल साइंस, खंड-1, न्यूयॉर्क, 2000, पृ. 64.
2. मधोक, बी., हिन्दू राज्य- हिन्दू राष्ट्र, पृ. 26.

3. उपाध्याय, दीनदयाल, राष्ट्र जीवन की दिशा, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ 1979, पृ. 40.
4. ऋग्वेद, 10.191.3-4.
5. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 1999, पृ. 323.
6. झा, प्रभात (सं.), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 32.
7. लूनिया, बी.एन., प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2020, पृ. 471.
8. वर्मा, वी. पी., मार्डन इंडियन पोलिटिकल थॉट, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1961, पृ. 683.
9. लूनिया, बी.एन., युग प्रवर्त्तक शिवाजी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1982, पृ. 489.
10. झा, डॉ. सीताराम, भारतीय स्वतंत्र संग्राम की रूपरेखा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2000, पृ. 41.
11. राधेश्याम, भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूल तत्व (आदिकाल से 1950 ई. तक), मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1990, पृ. 324.
12. विश्व शान्ति का सन्देश : स्वामी विवेकानंद, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ. 135.
13. सरकार, एस., कलियुग, चक्री और भक्ति, रामकृष्ण मिशन एण्ड हिज टाइम्स, इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, 18 जुलाई 1992, पृ. 1543.
14. देसाई, ए.आर., भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, ट्रिनीटी प्रेस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 264.
15. कैशमेन, आर.आई., दि माइथ ऑफ दि लोकमान्य, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस, लंदन, 1975, पृ. 81.
16. पाल, विपिन चन्द्र, स्वदेशी और स्वराज्य, कलकत्ता, 1946, पृ. 88.

तिरहुत प्रमण्डल में जनसंख्या वितरण का भौगोलिक अध्ययन

डॉ० चाँदनी चावला

पोस्ट रिसर्च स्कॉलर, भूगोल विभाग, बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर

शोध-सारांश

तिरहुत शब्द तिरभुक्ति से लिया गया है क्योंकि यह नदियों के तट पर स्थित है। तिरहुत की भूमि राजा मिथिक द्वारा गिरवी रखी गई थी, इसलिए इसे मिथिला भी कहा जाता है और वह रामायण का केंद्र बिंदु है। पटना डिवीजन से तिरहुत डिवीजन को बाहर निकालने से पहले, एक बड़े क्षेत्र पर अपने कर्तव्यों के निर्वहन में आयुक्त की सहायता करने के लिए एक अतिरिक्त आयुक्त की नियुक्ति करने के लिए कई वर्षों से प्रथा थी। हालांकि, पटना डिवीजन, सर एंड्रयूज फ्रेजर के हिस्से में अकाल की स्थिति के प्रसार के कारण, बंगाल के उपराज्यपाल ने पटना डिवीजन के प्रशासनिक आयुक्त के रूप में दो आयुक्तों के बैचों में विभाजन के लिए बहुत ख़ढ़ता से महसूस किया। जनवरी, 1908, के विभाजन का प्रस्ताव पटना कमिश्नरशिप को परिचालित किया गया। आलोचनाओं और सुझावों को आमंत्रित किया गया था और विधिवत रूप से विचार करने के बाद सरकार ने फैसला किया कि पटना, गया और शाहबाद के जिलों को गंगा (गंगा) के दक्षिण में पटना डिवीजन के रूप में पटना मुख्यालय और सारण, चंपारण, मुजफ्फरपुर और दरभंगा के जिलों के रूप में जाना जाता है। गंगा नदी के उत्तर में मुजफ्फरपुर में मुख्यालय के साथ तिरहुत डिवीजन के रूप में जाना जाता है। लॉर्ड मॉर्ले ने अपने आयुक्त सं। 65, दिनांक 15 मई, 1908, भारत कार्यालय, लंदन से जारी- इस प्रकार तिरहुत विभाग का जन्म हुआ। वर्तमान में संभाग में छह जिले हैं जैसे मुजफ्फरपुर, वैशाली (हाजीपुर), सीतामढ़ी, शिवहर, पूर्वी चंपारण (मोतिहारी) और पश्चिम चंपारण (बेतिया)। इस शोध आलेख में तिरहुत प्रमण्डल के जनसंख्या वितरण के बारे में भौगालिक अध्ययन का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य-बिन्दु: तिरहुत प्रमण्डल; मुजफ्फरपुर; पश्चिम चंपारण; पूर्वी चंपारण; वैशाली; सीतामढ़ी; शिवहर।

परिचय

तिरहुत प्रमण्डल भारत में बिहार की एक प्रशासनिक-भौगोलिक इकाई है। मुजफ्फरपुर संभाग का मुख्यालय है। मंडल में छह जिले शामिल हैं– मुजफ्फरपुर, पश्चिम चंपारण (बेतिया में मुख्यालय), पूर्वी चंपारण (मोतिहारी में मुख्यालय), वैशाली (हाजीपुर में मुख्यालय), सीतामढ़ी और शिवहर।तरहुत डिवीजन के प्रशासनिक प्रमुख एक आयुक्त, भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक वरिष्ठ अधिकारी हैं। खुदी राम बोस, भगवान दास, जुबा साहनी, राज कुमार शुक्ला, रामदयालु सिंह, मथुरा सिंह, बिंदा बाबू और महेश बाबू तिरहुत के स्वतंत्रता सेनानियों में से कुछ थे।महात्मा गांधी ने 1916 में इस मंडल के पूर्वी चंपारण या मोतिहारी जिले से आज़ादी के लिए अपने संघर्ष की शुरुआत की। यह डॉ0 राजेंद्र प्रसाद, आचार्य जेबी ख़पलानी और जय प्रकाश नारायण की कर्मभूमि थी। मोतिहारी प्रसिद्ध लेखक जॉर्ज ऑरवेल का जन्म स्थान है। तिरहुत संपूर्ण उत्तर बिहार का प्राचीन नाम है।

मुजफ्फरपुर जिला: जनगणना 2011 के आँकड़े

मुजफ्फरपुर, बिहार के एक जिले की एक आधिकारिक जनगणना 2011 का विवरण बिहार में जनगणना संचालन निदेशालय

द्वारा जारी किया गया है। बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में जनगणना अधिकारियों द्वारा प्रमुख व्यक्तियों की गणना भी की गई थी। 2011 में, मुजफ्फरपुर की जनसंख्या 4,801,062 थी, जिनमें से पुरुष और महिला क्रमशः 2,527,497 और 2,273,656 थे। 2001 की जनगणना में, मुजफ्फरपुर की आबादी 3,746,714 थी, जिनमें पुरुष 1,951,466 थे और शेष 1,795,248 महिलाएँ थीं। मुजफ्फरपुर जिले की आबादी कुल महाराष्ट्र की आबादी का 4.61 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना में, मुजफ्फरपुर जिले के लिए यह आंकड़ा महाराष्ट्र की आबादी का 4.51 प्रतिशत था।

2001 की तुलना में जनसंख्या में 28.14 प्रतिशत का परिवर्तन हुआ। भारत की पिछली जनगणना 2001 में, मुजफ्फरपुर जिले में 1991 की तुलना में इसकी जनसंख्या में 26.74 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

मुजफ्फरपुर जनसंख्या विवरण

क्र. सं.	विवरण	2011	2001
1	जनसंख्या	48.01 लाख	37.47 लाख
2	वास्तविक जनसंख्या	4,801,062	3,746,714
3	पुरुष	2,527,497	1,951,466
4	महिला	2,273,565	1,795,248
5	जनसंख्या वृद्धि	28.14%	26.74%
6	क्षेत्रफल (वर्ग कि. मी.)	3,172	3,172
7	घनत्व	1,514	1,181
8	बिहार जनसंख्या समानुपात	4.61%	4.51%
9	लिंगानुपात (प्रति 1000)	900	920
10	बच्चे का लिंगानुपात (0-6 वर्ष)	915	928
11	साक्षरता औसत	63.43	47.95
12	पुरुष साक्षरता	71.28	59.10
13	महिला साक्षरता	54.67	35.81
14	कुल बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	845,335	741,706
15	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	441,339	384,741
16	स्त्री बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	403,996	356,965
17	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	2,509,232	1,440,954
18	पुरुषसाक्षर	1,487,117	925,975
19	महिला साक्षर	1,022,115	514,979
20	बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	17.61%	19.80%
21	पुरुष बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	17.46%	19.72%
22	महिला बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	17.77%	19.88%

पूर्वी चंपारण जिला

पूर्वी चंपारण जिला 2 नवंबर 1972 से कार्य कर रहा है। जिले का मुख्यालय मोतिहारी में है। यह 26°16' से 27°1' उत्तरी अक्षांश और 84°30' से 85°16' पूर्वी देशांतर पर स्थित है। नेपाल अपनी उत्तरी सीमा, सीतामढी और शेहर को पूर्वी बनाता है जबकि मुजफ्फरपुर दक्षिण और गोपालगंज के हिस्से के साथ इसे पश्चिमी हिस्से में बांधता है। चंपारण नाम की उत्पत्ति चंपा-अरण्य या चंपकटनी से हुई है। चंपा या चंपक का अर्थ है मैगनोलिया और अरण्य का अर्थ है वन। इसलिए, चंपारण्य का अर्थ है वन ऑफ मैगनोलिया पेड़। जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार 50,82,868 की आबादी वाले 1344 गांवों के साथ 3968.0 किमी 2 का क्षेत्र शामिल है। जिले की प्रशासनिक स्थापना 6 उप-मंडल, 27 ब्लॉक, 27 मंडल, 3 नगर परिषद (मोतिहारी, रक्सौल और ढाका), 6 नगर पंचायतों और 405 पंचायतों में विकेंद्रीकृत है। बौद्ध स्तूप, केसरिया, अशोकन स्तंभ, लौरिया, अरेराज, गांधी मेमोरियल, सोमेश्वर शिव मंदिर, अरेराज, ओरवेल का जन्मस्थान, रक्सौल-नेपाल का रास्ता।

जिले में 3969 किमी 2 का क्षेत्र है और इसकी आबादी 3,933,636 (2001 तक) है। पूर्वी चंपारण तिरहुत डिवीजन (तिरहुत) का एक हिस्सा है। यह वर्तमान में रेड कॉरिडोर का एक हिस्सा है। 2011 तक, यह पटना के बाद बिहार का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला जिला है।

भूगोल

पूर्वी चंपारण जिले में 3,968 वर्ग किलोमीटर (1,532 वर्ग मील) का क्षेत्र है, जो वानूआतू के एस्पिरिटुसेंटो के बराबर है। गंडक, बुरही गंडक और बागमती इस क्षेत्र से होकर बहने वाली महत्वपूर्ण नदियाँ हैं। बिहार में जनगणना संचालन निदेशालय द्वारा बिहार के एक जिले, पूर्बी चंपारण (पूर्वी चंपारण) का एक आधिकारिक जनगणना 2011 विवरण जारी किया गया है। बिहार के पूर्बी चंपारण जिले में जनगणना अधिकारियों द्वारा प्रमुख व्यक्तियों की गणना भी की गई थी। 2011 में, पूर्बी चंपारण की जनसंख्या 5,099,371 थी, जिसमें से पुरुष और महिला क्रमशः 2,681,209 और 2,418,162 थे। 2001 की जनगणना में, पूर्बी चंपारण की आबादी 3,939,773 थी, जिनमें पुरुष 2,077,047 थे और शेष 1,862,726 महिलाएं थीं। पूर्बी चंपारण जिले की आबादी कुल महाराष्ट्र की आबादी का 4.90 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना में, पूर्बी चंपारण जिले के लिए यह आंकड़ा महाराष्ट्र की आबादी का 4.75 प्रतिशत था। 2001 की तुलना में जनसंख्या में 29.43 प्रतिशत का परिवर्तन हुआ। भारत की पिछली जनगणना 2001 में, पूर्बी चंपारण जिले ने 1991 की तुलना में अपनी जनसंख्या में 29.27 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की।

जनसांख्यिकी

2011 की जनगणना के अनुसार पूर्वी चंपारण जिले की आबादी 5,099,371 है, जो संयुक्त अरब अमीरात या अमेरिकी राज्य कोलोराडो के बराबर है। यह इसे भारत में 21 वें (कुल 640 में से) की रैंकिंग देता है। जिले का जनसंख्या घनत्व 1,281 प्रति वर्ग किलोमीटर (3,320/वर्ग मील) है। 2001-2011 के दशक में इसकी जनसंख्या वृद्धि दर 29.01 थी। पूर्बी चंपारण में हर 1000 पुरुषों पर 901 महिलाओं का लिंग अनुपात है, और साक्षरता दर 55.79 है।

क्र. सं.	विवरण	2011	2001
1	जनसंख्या	50.99 लाख	39.40 लाख
2	वास्तविक जनसंख्या	5,099,371	3,939,773
3	पुरुष	2,681,209	2,077,047
4	महिला	2,418,162	1,862,726
5	जनसंख्या वृद्धि	29.43%	29.27%
6	क्षेत्रफल (वर्ग कि. मी.)	3,968	3,968

7	घनत्व	1,285	993
8	बिहार जनसंख्या समानुपात	4.90%	4.75%
9	लिंगानुपात (प्रति 1000)	902	897
10	बच्चे का लिंगानुपात (0-6 वर्ष)	933	937
11	साक्षरता औसत	55.79	37.54
12	पुरुषसाक्षरता	65.34	49.31
13	महिला साक्षरता	45.12	24.27
14	कुल बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	1,018,297	837,642
15	पुरुषबच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	526,835	432,523
16	स्त्री बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	491,462	405,119
17	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	2,276,957	1,164,670
18	पुरुष साक्षर	1,407,603	810,950
19	महिला साक्षर	869,354	353,720
20	बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	19.97%	21.26%
21	पुरुष बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	19.65%	20.82%
22	महिला बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	20.32%	21.75%

उप-विभाजन

- मोतिहारी सदर
- अरेराज
- रौआल
- शिकरना (ढाका)
- पकड़ी दयाल
- चकिया

कुछ गाँव: ढेक़ान, बारीडीह बैरिया, कुंडवा, रामपुर, करहन, कुशहर, सिहोरवा, रानीगंज, चकिया, पहाड़पुर, पिपरा कोठी, उज्जैन लोहियार, गायघाट, यादवपुर आदि। ई। चंपारण: मोतिहारी में तीन नगर परिषद हैं। रक्सौल, ढाका और घोड़ासहन। ढाका और घोड़ासहन, ढाका के साथ एक नए शहर के रूप में उभरा है, रक्सौल के बाद दूसरी सबसे महंगी जमीन है।

पश्चिम चंपारण

बिहार में जनगणना कार्य निदेशालय द्वारा बिहार के एक जिले, पश्चिम चंपारण (पश्चिम चंपारण) का एक आधिकारिक जनगणना 2011 विवरण जारी किया गया है। बिहार के पश्चिम चंपारण जिले में जनगणना अधिकारियों द्वारा प्रमुख व्यक्तियों की गणना भी की गई थी। 2011 में, पश्चिम चंपारण की जनसंख्या 3,935,042 थी, जिनमें से पुरुष और महिला क्रमश: 2,061,110 और 1,873,932 थे। 2001 की जनगणना में, पश्चिम चंपारण की आबादी 3,043,466 थी, जिनमें पुरुष 1,600,839 थे और शेष 1,442,627 महिलाएं थीं। पश्चिम चंपारण जिला की आबादी कुल महाराष्ट्र की आबादी का 3.78 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना में, पश्चिम चंपारण जिले का यह आंकड़ा महाराष्ट्र की आबादी का 3.67 प्रतिशत था।

2001 की तुलना में जनसंख्या में 29.29 प्रतिशत का परिवर्तन हुआ। भारत की पिछली जनगणना 2001 में, पश्चिम चंपारण जिले में 1991 की तुलना में अपनी जनसंख्या में 30.40 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

क्र. सं.	विवरण	2011	2001
1	जनसंख्या	39.35 लाख	30.43 लाख
2	वास्तविक जनसंख्या	3,935,042	3,043,466
3	पुरुष	2,061,110	1,600,839
4	महिला	1,873,932	1,442,627
5	जनसंख्या वृद्धि	29.29%	30.40%
6	क्षेत्रफल (वर्ग कि. मी.)	5,228	5,228
7	घनत्व	753	582
8	बिहार जनसंख्या समानुपात	3.78%	3.67%
9	लिंगानुपात (प्रति 1000)	909	901
10	बच्चे का लिंगानुपात (0-6 वर्ष)	953	953
11	साक्षरता औसत	55.70	38.93
12	पुरुष साक्षरता	65.59	51.08
13	महिला साक्षरता	44.69	25.23
14	कुल बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	776,031	648,358
15	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	397,418	331,977
16	स्त्री बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	378,613	316,381
17	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	1,759,481	932,347
18	पुरुष साक्षर	1,091,226	648,173
19	महिला साक्षर	668,255	284,174
20	बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	19.72%	21.30%
21	पुरुष बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	19.28%	20.74%
22	महिला बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	20.20%	21.93%

पश्चिम चंपारण जिला घनत्व

भारत की जनगणना 2011 द्वारा जारी प्रारंभिक अनंतिम आंकड़ों से पता चलता है कि 2011 के लिए पशिम चंपारण जिले का घनत्व 753 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। 2001 में, पश्चिम चंपारण जिला घनत्व 582 लोग प्रति वर्ग किलोमीटर था। पश्चिम चंपारण जिले में 5,228 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र हैं।

साक्षरता दर

2011 में पश्चिम चंपारण की औसत साक्षरता दर 2001 की 38.93 की तुलना में 55.70 थी। यदि लिंग के लिहाज से देखा जाए तो पुरुष और महिला साक्षरता क्रमशः 65.59 और 44.69 थी। 2001 की जनगणना के लिए, वही आंकड़े पश्चिम चंपारण जिले में 51.08 और 25.23 थे। पश्चिम चंपारण जिले में कुल साक्षरता 1,759,481 थी, जिनमें से पुरुष और महिला क्रमशः 1,091,226 और 668,255 थे। 2001 में, पश्चिम चंपारण जिला अपने जिले में 932,347 था।

सीतामढ़ी जिला

सीतामढ़ी जिला 2,294 वर्ग किलोमीटर (886 वर्ग मील) के क्षेत्र में है, जो तुलनात्मक रूप से ऑस्ट्रेलिया के ग्रोट लैंडलैंड के बराबर है। यह बाढ़ के मैदान क्षेत्र में स्थित है। अगस्त 2019 तक पूरे जिले में सीतामढ़ी जिले में भारी बाढ़ आ गई थी।

उप-विभाजन

सीतामढ़ी जिले में 3 उप-मंडल शामिल हैं:

- सीतामढ़ी सदर,
- बेलसंड
- पुपरी

बिहार में जनगणना संचालन निदेशालय द्वारा बिहार के एक जिले सीतामढ़ी का आधिकारिक जनगणना 2011 विवरण जारी किया गया है। प्रमुख व्यक्तियों की गणना जनगणना अधिकारियों द्वारा बिहार के सीतामढ़ी जिले में भी की गई थी। 2011 में, सीतामढ़ी की जनसंख्या 3,423,574 थी, जिसमें पुरुष और महिला क्रमश: 1,803,252 और 1,620,322 थे। 2001 की जनगणना में, सीतामढ़ी की आबादी 2,682,720 थी, जिनमें पुरुष 1,417,611 और शेष 1,265,109 महिलाएं थीं। सीतामढ़ी जिला की आबादी कुल महाराष्ट्र की आबादी का 3.29 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना में, सीतामढ़ी जिले के लिए यह आंकड़ा महाराष्ट्र की आबादी का 3.23 प्रतिशत था।2001 की तुलना में जनसंख्या में 27.62 प्रतिशत का परिवर्तन हुआ। भारत की पिछली जनगणना 2001 में, सीतामढ़ी जिले में 1991 की तुलना में अपनी जनसंख्या में 32.58 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

क्र. सं.	विवरण	2011	2001
1	जनसंख्या	34.24 लाख	26.83 लाख
2	वास्तविक जनसंख्या	3,423,574	2,682,720
3	पुरुष	1,803,252	1,417,611
4	महिला	1,620,322	1,265,109
5	जनसंख्या वृद्धि	27.62%	32.58%
6	क्षेत्रफल (वर्ग कि. मी.)	2,294	2,294
7	घनत्व	1,492	1,170
8	बिहार जनसंख्या समानुपात	3.29%	3.23%
9	लिंगानुपात (प्रति 1000)	899	892
10	बच्चे का लिंगानुपात (0-6 वर्ष)	930	924
11	साक्षरता औसत	52.05	38.46
12	पुरुष साक्षरता	60.64	49.36
13	महिला साक्षरता	42.41	26.13
14	कुल बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	663,227	556,582
15	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	343,555	289,273
16	स्त्री बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	319,672	267,309
17	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	1,436,794	817,711

18	पुरुष साक्षर	885,188	556,936
19	महिला साक्षर	551,606	260,775
20	बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	19.37%	20.75%
21	पुरुष बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	19.05%	20.41%
22	महिला बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	19.73%	21.13%

वैशाली जिला

वैशाली के एक आधिकारिक जनगणना 2011 के विवरण, बिहार के जनगणना संचालन निदेशालय द्वारा बिहार के एक जिले को जारी किया गया है। बिहार के वैशाली जिले में जनगणना अधिकारियों द्वारा प्रमुख व्यक्तियों की गणना भी की गई थी।2011 में, वैशाली की जनसंख्या 3,495,021 थी, जिसमें पुरुष और महिला क्रमश: 1,844,535 और 1,650,486 थे। 2001 की जनगणना में, वैशाली की आबादी 2,718,421 थी, जिनमें पुरुष 1,415,603 थे और शेष 1,302,818 महिलाएं थीं। वैशाली जिले की आबादी कुल महाराष्ट्र की आबादी का 3.36 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना में, वैशाली जिले के लिए यह आंकड़ा महाराष्ट्र की आबादी का 3.28 प्रतिशत था।2001 की तुलना में जनसंख्या में 28.57 प्रतिशत का परिवर्तन हुआ। भारत की पिछली जनगणना 2001 में, वैशाली जिला ने 1991 की तुलना में अपनी जनसंख्या में 26.39 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की।

क्र. सं.	विवरण	2011	2001
1	जनसंख्या	34.95 लाख	27.18 लाख
2	वास्तविक जनसंख्या	3,495,021	2,718,421
3	पुरुष	1,844,535	1,415,603
4	महिला	1,650,486	1,302,818
5	जनसंख्या वृद्धि	28.57%	26.39%
6	क्षेत्रफल (वर्ग कि. मी.)	2,036	2,036
7	घनत्व	1,717	1,335
8	बिहार जनसंख्या समानुपात	3.36%	3.28%
9	लिंगानुपात (प्रति 1000)	895	920
10	बच्चे का लिंगानुपात (0-6 वर्ष)	904	937
11	साक्षरता औसत	66.60	50.49
12	पुरुष साक्षरता	75.41	63.23
13	महिला साक्षरता	56.73	36.58
14	कुल बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	601,893	543,235
15	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	316,129	280,442
16	स्त्री बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	285,764	262,793
17	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	1,926,740	1,098,151
18	पुरुष साक्षर	1,152,576	717,734
19	महिला साक्षर	774,164	380,417

20	बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	17.22%	19.98%
21	पुरुष बच्चे का समानुपात (0-6 वर्ष)	17.14%	19.81%
22	महिला बच्चे का जनसंख्या (0-6 वर्ष)	17.31%	20.17%

वैशाली जिला घनत्व

भारत की जनगणना 2011 द्वारा जारी प्रारंभिक अनंतिम आंकड़ों से पता चलता है कि 2011 के लिए वैशाली जिले का घनत्व 1,7,000 लोग प्रति वर्ग किमी है। 2001 में, वैशाली जिला घनत्व 1,335 लोग प्रति वर्ग किमी था। वैशाली जिले में 2,036 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र हैं।

शिवहर जिला

शिवहर भारत में बिहार राज्य का एक प्रशासनिक जिला है। जिला मुख्यालय शेहर में स्थित है, और जिला तिरहुत डिवीजन का एक हिस्सा है। पूर्व केंद्रीय मंत्री रघुनाथ झा के अत्यधिक प्रयासों के कारण 1994 में इस जिले को सीतामढ़ी जिले से बाहर किया गया था। प्रख्यात हिंदी उपन्यासकार, डॉ0 भगवती शरण मिश्र, शेहर के पहले जिलाधिकारी थे।जिले का क्षेत्रफल 443 वर्ग किमी है और इसकी आबादी 656,246 (2011 के अनुसार) है। मनोहर हरियाली और स्वच्छता के लिए जाना जाता है। कदंब और सागौन इस जिले के सिद्धांत वृक्ष हैं। नीलगाय या नीला बैल इस क्षेत्र का क्षेत्रीय जानवर है।इस जिले में हिंदुओं और मुसलमानों की मिश्रित आबादी है। ख़्रषि मुख्य प्रवास है। बागमती और बूढ़ी गंडक नदियों की बाढ़ के कारण यह बिहार के सबसे अधिक बाढ़ प्रभावित जिलों में से एक है। देवकुली भगवान शिव के प्राचीन मंदिर के लिए एक पवित्र स्थान है। 2011 तक यह बिहार का दूसरा सबसे कम आबादी वाला जिला है (39 में से), शेखपुरा के बाद।

भूगोल

शिवहर जिले में 443 वर्ग किलोमीटर (171 वर्ग मील) का क्षेत्र है। यह उत्तर और पूर्व सीतामढ़ी, पश्चिम पूर्वी चंपारण और दक्षिण मुजफ्फरपुर से तीन जिलों द्वारा सीमाबद्ध है

अर्थव्यवस्था

इस जिले के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। सभी प्रकार की फसलों का उत्पादन होता है। चावल, गेहूं, और कई रबी फसलों का उत्पादन किया जाता है। कस्बे में दैनिक जरूरतों की छोटी-छोटी दुकानें हैं। शिवहर के लोगों के लिए आकर्षण का स्रोत 'कॉकरो', जिला न्यायालय के सामने स्थित वी-मार्ट शॉपिंग सेंटर है। कई निजी संस्थान हैं जैसे केएनएस स्कूल, ज्ञानलोक स्कूल, एचएस ग्रुप ऑफ इंस्टीट्यूशंस शिवहर। सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थान हैं जैसे अंगीभुत डिग्री कॉलेज, गवर्नमेंट पॉलिटेक्निक कॉलेज, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान। 2006 में पंचायती राज मंत्रालय ने शिवहर को देश के 250 सबसे पिछड़े जिलों (कुल 640 में से) में से एक नामित किया। यह बिहार में 36 जिलों में से एक है जो वर्तमान में पिछड़े क्षेत्र अनुदान निधि कार्यक्रम से धन प्राप्त कर रहा है।

उप-मंडल

जिले में केवल एक सब-डिवीजन शामिल है, जिसका नाम है, शिवहर, जिसे आगे पांच खंडों में विभाजित किया गया है: शिवहर, तरियानी, पिपराही, डुमरी-कटसरी, पूर्णहिया।

जनसांख्यिकी

2011 की जनगणना के अनुसार, शिवहर जिले की जनसंख्या 656,246 है, लगभग मोंटेनेग्रो देश या अमेरिकी राज्य वर्मोंट के बराबर है। इससे उसे भारत में 511वीं रैंकिंग मिली (कुल 640 में से)। जिले का जनसंख्या घनत्व 1,882 प्रति वर्ग किलोमीटर

(4,870/वर्ग मील) है। रामपुर केशो एक ऐसा गाँव है जो अपनी उच्चतम साक्षरता दर के लिए जाना जाता है। 2001–2011 के दशक में इसकी जनसंख्या वृद्धि दर 27.32 थी। हर 1000 पुरुषों पर शेहर का लिंगानुपात 890 महिलाओं का है, और साक्षरता दर 72 है। भारत की 2011 की जनगणना के समय, जिले में 71.89 लोगों ने हिंदी और 27.78 उर्दू अपनी पहली भाषा में बोली थी।

जनसंख्या वितरण

बिहार में जनगणना संचालन निदेशालय द्वारा बिहार के एक जिले, बिहार के एक जिले की आधिकारिक जनगणना 2011 का विवरण जारी किया गया है। बिहार के शिवहर जिले में जनगणना अधिकारियों द्वारा प्रमुख व्यक्तियों की गणना भी की गई थी।2011 में, शिवहर की जनसंख्या 656,246 थी, जिनमें से पुरुष और महिला क्रमश: 346,673 और 309,573 थे। 2001 की जनगणना में, शिहर की जनसंख्या 515,961 थी, जिनमें पुरुष 273,680 और शेष 242,281 महिलाएँ थीं। शिवहर जिले की जनसंख्या कुल महाराष्ट्र की जनसंख्या का 0.63 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना में, शिवहर जिले का यह आंकड़ा महाराष्ट्र की जनसंख्या का 0.62 प्रतिशत था। 2001 की तुलना में जनसंख्या में 27.19 प्रतिशत का परिवर्तन हुआ। भारत की पिछली जनगणना 2001 में, शिवहर जिले में 1991 की तुलना में 36.16 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

क्र. सं.	विवरण	2011	2001
1	जनसंख्या	6.56 लाख	5.16 लाख
2	वास्तविक जनसंख्या	656,246	515,961
3	पुरुष	346,673	273,680
4	महिला	309,573	242,281
5	जनसंख्या वृद्धि	27.19%	36.16%
6	क्षेत्रफल (वर्ग कि. मी.)	349	349
7	घनत्व	1,880	1,478
8	बिहार जनसंख्या समानुपात	0.63%	0.62%
9	लिंगानुपात (प्रति 1000)	893	885
10	बच्चे का लिंगानुपात (0–6 वर्ष)	929	916
11	साक्षरता औसत	53.78	35.27
12	पुरुष साक्षरता	61.31	45.28
13	महिला साक्षरता	45.26	23.86
14	कुल बच्चे का जनसंख्या (0–6 वर्ष)	128,698	106,442
15	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0–6 वर्ष)	66,728	55,551
16	स्त्री बच्चे का जनसंख्या (0–6 वर्ष)	61,970	50,891
17	पुरुष बच्चे का जनसंख्या (0–6 वर्ष)	283,698	144,444
18	पुरुष साक्षर	171,645	98,775
19	महिला साक्षर	112,053	45,669
20	बच्चे का समानुपात (0–6 वर्ष)	19.61%	20.63%
21	पुरुष बच्चे का समानुपात (0–6 वर्ष)	19.25%	20.30%
22	महिला बच्चे का जनसंख्या (0–6 वर्ष)	20.02%	21.00%

निष्कर्ष

इस प्रकार बिहार में तिरहुत प्रमण्डल 6 जिलों से बना है। 2011 में, मुजफ्फरपुर की जनसंख्या 4,801,062 थी, जिनमें से पुरुष और महिला क्रमशः 2,527,497 और 2,273,656 थे। 2001 की जनगणना में, मुजफ्फरपुर की आबादी 3,746,714 थी, जिनमें पुरुष 1,951,466 थे और शेष 1,795,248 महिलाएँ थीं। मुजफ्फरपुर जिले की आबादी कुल महाराष्ट्र की आबादी का 4.61 प्रतिशत है। पूर्वी चंपारण तिरहुत डिवीजन (तिरहुत) का एक हिस्सा है। यह वर्तमान में रेड कॉरिडोर का एक हिस्सा है। 2011 तक, यह पटना के बाद बिहार का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला जिला है। 2001 की तुलना में जनसंख्या में 29.43 प्रतिशत का परिवर्तन हुआ। भारत की पिछली जनगणना 2001 में, पूर्बी चंपारण जिले ने 1991 की तुलना में अपनी जनसंख्या में 29.27 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की।2011 में, पशिम चंपारण की जनसंख्या 3,935,042 थी, जिनमें से पुरुष और महिला क्रमशः 2,061,110 और 1,873,932 थे। 2001 की जनगणना में, पश्चिम चंपारण की आबादी 3,043,466 थी, जिनमें पुरुष 1,600,839 थे और शेष 1,442,627 महिलाएं थीं। 2011 में, सीतामढ़ी की जनसंख्या 3,423,574 थी, जिसमें पुरुष और महिला क्रमशः 1,803,252 और 1,620,322 थे। भारत की जनगणना 2011 द्वारा जारी प्रारंभिक अनंतिम आंकड़ों से पता चलता है कि 2011 के लिए वैशाली जिले का घनत्व 1,7,000 लोग प्रति वर्ग किमी है। 2001 में, वैशाली जिला घनत्व 1,335 लोग प्रति वर्ग किमी था। वैशाली जिले में 2,036 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र हैं। 2011 में, शिवहर की जनसंख्या 656,246 थी, जिनमें से पुरुष और महिला क्रमशः 346,673 और 309,573 थे।

संदर्भ

* श्रीवास्तव, दयावंती एट अल. (2010), "राज्य और केंद्र शासित प्रदेशः बिहारः सरकार", भारत 2010: एक संदर्भ वार्षिक (54 वां संस्करण)। नई दिल्ली, भारतः अतिरिक्त महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय (भारत), भारत सरकार। पीपी. 1118-1119।
* ताई वी. टू टूः इ मिनिस्ट्री ऑफ पंचायती राज (8 सितंबर, 2009)। "बैकवर्ड रीजन ग्रांट फंड प्रोग्राम पर एक नोट", राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान 5 अप्रैल, 2012 को मूल (पीडीएफ) से संग्रहीत।
* अमेरिकी खुफिया निदेशालय, "देश की तुलनाः जनसंख्या"। 27 सितंबर 2011 को मूल से संग्रहीत।
* "2010 निवासी जनसंख्या डेटा", यू.एस. जनगणना ब्यूरो। 2013-10-19 को मूल से संग्रहीत।
* 2011 भारत की जनगणना, जनसंख्या से मातृभाषा

समकालीन हिन्दी कहानी में मानवीय संवेदना

डॉ० विनय कुमार

टीजीटी इंग्लिश, जीबीएसएसएस नं. 3, नजफगढ, नई दिल्ली-110043

समकालीन हिन्दी काहनी के क्षेत्र में कई पीढ़ियों के रचनाकार एक साथ सक्रिय रहे हैं। ऐसा पहले भी रहा है, पर इस दशक में जितनी पीढ़ियाँ एक साथ सक्रिय रही हैं, उतना वैविध्य शायद पहले नहीं था। कृष्ण सोवती से लेकर अखिलेश तक की रचनाशीलता के मद्देनजर पीढ़ी की दृष्टि से भी इस दौर को समृद्ध कहा जा सकता है।

समकालीन कहानी के विकास क्रम में इस नये दौर के प्रस्थान बिन्दु के तौर पर कुछ कहानियों को रंखांकित किया जा सकता है। इस दृष्टि से इब्राहिम शरीफ की कहानी 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' मधुकर सिंह की 'दुश्मन' और काशीनाथ सिंह की 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' गौरतलब है। ढेर सारी समकालीन कहानियों के बीच से कुछ कहानयिों का उदाहरण के तौर पर चुनकर इन्हें नये दौर के प्रस्थान बिन्दु के रूप में रेखांकित करने के पीछे तर्क यह है कि समकालीन कहानी में यथार्थ की विजव दिखाई पड़ती है। यहाँ विजय कलात्मक शब्द नहीं है। बावजूद इसके यथार्थ की विजय कहने का तात्पर्य यह है कि आज यथार्थ चित्रण के नये सिरे से यह प्रमाण प्रस्तुत किया है कि इसके जरिये ही श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी जा सकती है। स्मरणीय है कि यथार्थ वह वस्तुसता है, जिसका अस्तित्व हमारी चेतना से बाहर है, वह हमारी चेतना पर निर्भर नहीं करता, लेकिन जो हमारी चेतना को प्रभावित करता है। वस्तुत: इधर नये दौर से श्रेष्ठ हिन्दी कहानी रचनाकारों की मनोदशा, उनकी मानसिक बुनावट या उनकी मानसिक वैचारिक कल्पना के मुताबिक नहीं, बल्कि हमारे समय के यथार्थ के आग्रह से प्रेरित व प्रभावि तथा प्रेमचंदीय वृत्तात्मक यथार्थवाद से मुक्त होकर लिखी जा रही है। इसी अर्थ में यथार्थ की विजय का दौर है।[1]

इसका दूसरा पहलू यह है कि वैयाविक्त चित्रण के नाम पर कहानी से जिस कहानीपन को एक जमाने में छीनने की कोशिश की गई, वह इस दौर में बहुत प्रासंगिक नहीं रह गयी है। कहना न होगा कि वैयाक्तिकता का चित्रण एक सीमा तक महत्त्वपूर्ण है और वह अपनी जगह यथार्थवादी कहानियों में भी है, क्योंकि कोई भी वाद, कथ्य, जीवन-प्रसंग व सामाजिक संदर्भ रचना में व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त होता है। इसलिए किसी रचना में वैयक्तिकता का महत्त्व तो स्वभाविक है, पर वह सामासिकता की कीमत पर नहीं होना चाहिए। नामवर सिंह ने 'नयी कहानी' की चर्चा के दौरान चाहे उसकी जितनी भी तारीफ की हो, पर एक अभाव की ओर उन्होंने ध्यान दिलाया था कि उसका सामाजिक परिप्रेक्ष्य नहीं था। समकालीन कहानियों में सामाजिक परिप्रेक्ष्य व सामाजिक संघर्षशीलता स्पष्ट दिखाई पड़ती है और वह कही से भी कहानी पर थोपी हुई नहीं, बल्कि जीवन-प्रसंगों व संदर्भों के चित्रण के माध्यम से स्वभाविक रूप से विकसित मालूम पड़ती है।[2]

उपर्युक्त विमर्श के आलोक में तीन कहानयों को प्रस्थान बिन्दु के तौर पर रखकर चिचारने से स्पष्ट होता है कि इब्राहिम शरीफ की कहानी 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' सामाजिक प्रक्रिया में जीवन जीने के साधनों और आधार में ही नहीं, बल्कि आदमी के नजरिये में भी जो परिवर्तन आ गया है, उसे स्पष्ट करती है। यह कहानी बताती है कि जमीन पर आधाारित पारिवारिक जीवन जीने का दौर किस प्रकार खत्म हो रहा है और कैसे परिवार की जरूरतों के चलते ही धीरे-धीरे जमीन बिकती गयी तथा अंतत: उसका आखिरी टुकड़ा भी बिक गया इसका क्षोभ अगर किसी को है तो सिर्फ माँ को है। कहानी में आये तीनों बेटों के लिए वह जमीन एक ऐसी अतीत है, जो आज के जीवन को चलाने में किसी भी रूप में सहायक नहीं है। वे इसे अतीत के मोह से मुक्ति के तौर पर देखते हैं।

मधुकर सिंह की कहानी 'दुश्मन' एक राजनीतिक कहानी है। जाहिर है कि हमारे समय में राजनीतिक प्रक्रिया काफी जटिल होती जा रही है, जिसके पीछे एक सामाजिक जागण भी है। कारण यह कि समाज के दबे-कुचले लोग अब जग रहे हैं तथा अपने

स्वत्व के लिए सामने आ रहे हैं। 'दुश्मन' कहानी का जगेसर ऐसे ही लोगों के बीघ से नेता के रूप में उभरता है और मंत्री बन जाता है। यह खबर मिलते ही उसके गाँव के दलित टोले में उत्सव का माहौल छा जाता है और लोग जगेसर को मंत्री के रूप में अपने बीच देखना चाहते हैं। पर ऐसे मौके पर मंत्री जी की गाड़ी सवर्णटोला की ओर मुड़ जाती है। इतना ही नहीं, गाँव के लोग जब एक जगह पर जुटते हैं, वही उसकी विरादरी के तमाम लोगों को जमीन पर नीचे बैठाया जाता है। इस घटना से दलितों में अचानक एक बोध जाग्रत होता है कि जिसे उन्होंने अपना आदमी समझा था, पद प्राप्त होते ही उसका चरित्र बदल गया और अंततः वह दुश्मन साबित हुआ।[3] यह वस्तुतः मधुकर सिंह की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है और इसके बाद उन्होंने संभवतः ऐसी कोई महत्त्वपूर्ण कहानी नहीं लिखी है।

काशीनाथ सिंह की कहानी 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' एक दूसरे संदर्भ को सामने लाती है। जाहिर है कि हमारे समय में यदि एक और बदलाव की आकांक्षा एवं प्रक्रिया तीव्र हुई है, वहीं दूसरी ओर अपनी सुख-सुविधा व व्यक्तिगत उपलब्धि के लिए खुशामद करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है, जो बदलाव के विरोधी हैं, वे इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देते रहे हैं। इस कहानी में एक पुराना रईस है, जिसने ऐलान कर रखा है कि जो अपने शरीर पर उसके पान की पीक फेंकवाने के लिए तैयार बैठे हैं उन पर वह पीकना नहीं चाहता। उसकी दिलचस्पी अपने बिरोधियों को खुशामदी बनाने में है।[4] दूसरे शब्दों में वह अपने प्रतिरोधियों के तेजहरण में विश्वास करता है।

वर्तमान सामाजिक प्रक्रिया की तीन प्रवृत्तियों को रेखांकित करने वाली ये तीन कहानियाँ यद्यपि हमारे समय के युवा कहानीकारों के थोड़ा पहले ही पीढ़ी के लेखकों द्वारा रचित हैं, पर हमारे समय की मानसिकता से इन कहानियों का गहरा संबंध है, इसलिए इन्हें इसदौर की कहानियों के प्रस्थान बिन्दु के रूप में उद्धृत करना गैर वाजिब नहीं है।

यथार्थ-चित्रण के प्रसंग में गौरतलब है कि समकालीन हिन्दी कहानी का एक बड़ा हिस्सा विचारधारा वे यथार्थ के आतंक से मुक्ति का साहित्य है। कथा साहित्य के क्षेत्र में इस आतंक को समझाने के लिए एक बंगला कहानी 'कम्युनिस्ट परिवार' की बतौर उदाहरण चर्चा की गई है, जिसमें वर्णन है कि कैसे दो नक्सलवादी भाइयों में से एक पर संगठन को संदेह हो गया और उसकी हत्या कर दी गई। हत्या का फैसला जिस बैठक में किया गया था, उसमें उसका बड़ा भाई मौजूद था। बाद में वह सोचता है कि केवल संदेह के आधार पर उसके भाई की हत्या कर दी गई, उसने विरोध क्यों नहीं किया? वस्तुतः उसने बुजाटिल कहे जाने के डर से वहाँ इस फैसले का विरोध नहीं किया। यह अतिक्रांतिकारिता है, जो विचारधारात्मक आतंक के चलते पैदा होती है। यथार्थ के इस इस आतंक से कहानी की कला को भी नुकासान पहुँचता है, क्योंकि जीवन की स्वाभाविकता, विश्वसनीयता की रक्षा भी कला का अंग है।[5]

सच तो यह है कि विचारधारा उसी हद तक रचना या आलोचना के लिए उपयोगी है, जहाँ तक वह जिंदगी की सचाई को समझने-समझाने में हमारी मदद करती है। दूसरी बात यह है कि किसी भी रचना को कुछ मुख्य सिद्धांतों में घटाकर नहीं देखा जा सकता, कारण यह है कि कोई भी कलाकार पहले से सारी बातें तय करके अपने समय की वास्तविकता का चित्रण या अनुभूतियों की अभिव्यक्ति नहीं करता। जो लोग ऐसा करते हैं, उनका लेखन लुकाच की शब्दावली में कहे तो 'स्कीमैटिक' या योजनाबद्ध हुआ करते हैं, जो कला की शर्त का अनुपालन नहीं करता। यही बात यथार्थ और तथाकथित यथार्थवाद के संदर्भ में भी सच है। इस संदर्भ में निर्मल वर्मा ने लिखा है–''जब कोई कहानी में यथार्थ की चर्चा करता है, तो हमेशा दुनिया होती है–वह एक पक्षी की तरह झाड़ी में छिपा रहता है। उसे वहाँ से जीवित निकल पाना उतना ही दुर्लभ है, जितना उसके बारे में निश्चित रूप में कुछ कह पाना जब तक वह वहाँ छिपा है। अंग्रेजी में एक मुहावरा है–''बीटिंग एबाउट द बुश।' कहानीकार सिर्फ सही कर सकता है–उससे अधिक कुछ करना असंभव है....यह अभिशाप हर उस लेखन के लिए है, जो कलाकार भी है, जो सही मायने में यथार्थवादी है, उसके लिए यथार्थ हमेशा झाड़ी में छिपा रहता है।''[6]

वस्तुतः जब तक क्रांतिकारिता की मुद्रा जीवन स्थितियों से स्वभाविक तौर पर विकसित होती हुई मुद्रा नहीं बनती तब तक वह विश्वसनीय नहीं होती।

कहना न होगा कि समकालीन हिन्दी कहानी में आत्यंतिक विचारधारात्मक आग्रह के चलते उत्पन्न यथार्थ के आतंक के तहत रचित 'बीच का समर' (विजयकांत) दुनिया की सबसे हसीन औरत (संजीव) एक बनिहार का आत्म्म-निवेदन (सुरेश कांटक) जैसे अनेकानेक फार्मूलाबद्ध कहानियाँ लिखी गई हैं। दुनिया की सबसे हसीन औरत में 'कथानायक का वक्तव्य है–'मैं निहायत

विद्दी किस्म का इंसान था। लेकिन उस वक्त मुझमें जान कहाँ से बला की ताकत आ गयी थी। मेहनत ईमान, इंसानियत, शराफत, दिलेरी जैसे शब्द देश का इतिहास और भूगोल और ज्ञान अब तक मेरे लिए खयाली बातें थीं लेकिन उस दिन उस मौके पर उनकी हकीकत का जादू मेरे सिर पर चढ़कर बोल रहा था.....वह एक जूनून था जूनून।[7]

'सलाम' के रचयिता ओमप्रकाश वाल्मीकि सरीखे कुछेक अपवादों को छोड़कर ज्यादातर दलितवादी व स्त्रीवादी कहानीकारों की रचनाओं में किसी आइडिया को कहानी बनाने की जिद्द दिखाई पड़ती है। नतीजतन, कूतूहल और घटनाओं आदि की धकापेल के बावजूद ऐसी कहानियों का कथातत्त्व दोहराव और कई बार संवदनशून्यता की मिशाल होता है। स्मरणीय है कि अकहानी आंरोलन के दरम्यान ऐसी बहुत-सी कहानियाँ लिखी गयी थीं और आज भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। राजेन्द्र यादव की 'हासिल' व 'मरा हुआ चूहा', लवलीन की 'चक्रवात', दूधनाथ सिंह की 'नमो अंधकारम', आविर सुरती की 'कोरा कैनवास' मनोहर श्याम जोशी की 'ट-टा प्रोफेसर जैसी कहानियों में मानवीय संबंधों के अजीबो-गरीब और कई बार वीभत्स रूप दिखाई देते हैं। हमारे समय में बड़ी संख्या में लिखी जा रही इन कहानियों की रुचि का संचार निर्वासित मध्यवर्गीय जीवन से हो रहा है और ये रचनाकार इस विकृत्ति रुचि का पोषण भर कर रहे हैं।

समकालीन हिन्दी कहानीकारों में कुछ ऐसे भी हैं, जिसकी रचनाओं में विस्मय की व्याख्या करते हुए विश्वास तक पहुँचने के बजाय छद्म आधुनिकता के दबाव के तहत विस्मय से संशय व निराशा-हताशा की कलह-कोलाहलपूर्ण गलियों से होते हुए अंततः अविश्वास तक पहुँचने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। और कहना न होगा कि ऐसी कहानियों में मानवीय संवेदना की खोज की जा सकती है। चूंकि विस्मय से अविशस तक की यह सात्रा आुनिकता की तमाम तथाकथित शर्तों-अलगाव, संत्रास, मूल्य-विघटन आदि को न सिर्फ पूरी करती है, बल्कि कई बार ठसे महिमामंडित भी करती है, इसलिए इसके तहत रचित कहानियाँ हमारी संवेदना को सकारात्मक रूप में समृद्ध करने के बजाय हमें डराती हैं।

समकालीन हिन्दी कहानी में मानवीय संवेदना तथा संसक्ति को रेखांकित करते वक्त याद रखना जरूरी है कि कई बार महान रचना का सामाजिक परिप्रेक्ष्य अत्यंत प्रच्छन्न होता है। नतीजतन कुछ रचनाएँ पूरी तरह समझ में आने के पूर्व महसूस होती हैं। स्पष्ट ही यह गहरे तादात्मा की स्थिति हुआ करती है, जिसके तहत कहानी की अंतवस्तु संपूर्णता के साथ पाठकीय संवदना का हिस्सा बनकर उसे अपना भागीदार बना लेती है और कालांतर में रचनानुभव के साथ यही भागीदारी पहल की चेतना व चिंतन में सकारात्मक परिवर्तन का कारण बनती है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. हिन्दी-गद्य साहित्य–रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2018, पृ.. 367
2. वही. पृ. 369
3. हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास–डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1971 ई., पृ. 210
4. हिन्दी कहानी : समीक्षा और संदर्भ–डॉ. विवेकी राय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ. 68
5. हंस, संपा. संजय सहाय, जनवरी, 2011, पृ. 9
6. वही. पृ. 11
7. हिन्दी कहानियाँ और फैशन–उवेन्दुनाथ 'अश्क', नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978 ई. पृ. 302

अपने लिंग के संबंध में बिहार के हाईस्कूल के छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन

अदनान अहमद

जूनियर रिसर्च फेलो, आईआईटी खरगपुर, खरगपुर, वेस्ट बंगाल

हाई स्कूल के छात्रा आमतौर पर अपने करियर की शुरुआत में होते हैं। यह यहां है कि वे विकल्प बनाते हैं और निर्णय लेते हैं जो जीवन भर उन के साथ रहेगा। किसी की पहचान का सार उसे जीवन में बनने के लिए जाता है। इस प्रकार यह अनिवार्य है कि कोई व्यक्ति एक अच्छा निर्णय लेता है और उससे चिपक जाता है। प्रत्येक छात्रा अपने आपको अपने अतीत के इतिहास के साथ वहन करता है, भाग में यह इतिहास एक भूमिका निभाता है कि एक छात्रा कैसे निकला और वह अपने कैरियर की पसंद को और प्रभावित करेगा।

यह वास्तव में एक प्रसिद्ध तथ्य है कि एक बच्चे की आकांक्षाएं, रुचियां, अभिरुचि बड़े पैमाने पर माता-पिता, पर्यावरण और समाज से प्रभावित होती हैं। विकासात्मक मनोविज्ञान पर अपने काम में ब्रोंफेन ब्रेनर (1979) ने हमें यह समझाते हुए एक बहु-स्तरीय दृष्टिकोण दिया कि कैसे एक बच्चे का जीवन विभिन्न स्तरों के अधीन होता है और प्रत्येक स्तर बच्चे को कैसे प्रभावित करता है। यदि कोई छात्रा अपने पसंदीदा हित में उसकी शिक्षा का पीछा करता है, तो यह अत्यधिक संभावना है कि उसे पेशे से नौकरी की संतुष्टि मिल सकती है और छात्रा को अच्छी तरह से रखा जाएगा। व्यक्ति की आकांक्षाएँ उस व्यक्ति की दक्षता को बढ़ाती हैं जो उसे नौकरी में सर्व श्रेष्ठ देने के लिए प्रेरित करता है।

चुनाव करना कोई छोटी बात नहीं है। यह यहां है कि यह आवश्यक है कि एक छात्रा अपने मानसिक संकाय का अच्छी तरह से उपयोग करता है, अपने पिछले हित, पिछले प्रदर्शन और योग्यता का न्याय करता है। किसी विशेष पेशे में रुचि एक स्थिर पहलू नहीं है। निर्णय लेने के संबंध में एक बच्चे के संज्ञानात्मक संकाय एक महत्वपूर्ण पहलू है। संज्ञानात्मक शैली को आमतौर पर एक निश्चित तरीके से जानकारी प्राप्त करने और संसाधित करने के लिए एक व्यक्ति की प्रवृत्ति के रूप में वर्णित किया जाता है। पिछले अध्ययनों ने अनुभूति में व्यक्तिगत अंतरों की पहचान करने की कोशिश की है जो स्थिर हैं और व्यक्तित्व और सामाजिक वातावरण से प्रभावित हैं।

अतीत में कुछ अध्ययन हुए हैं लेकिन वर्तमान में यह क्षेत्र एक गतिरोध पर पहुंच गया है। यह इस प्रकार बिहार के वरिष्ठ माध्यमिक छात्रों के बीच मानसिक संकाय में अनुसंधान को आगे ले जाने के उद्देश्य से है, जो इस शोध का उद्देश्य है।

कार्यप्रणाली

इस शोध को पुरुष और महिला वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की संज्ञानात्मक शैली में अंतर और संबंध की जांच करने के लिए किया गया था।

प्रतिभागियों: वर्तमान अध्ययन के कुल नमूने में 73 प्रतिभागी (34 = लड़कियां, 39 = लड़के) शामिल थे। अध्ययन के विषय उद्देश्यपूर्ण नमूना विधि का उपयोग करके तैयार किए गए थे। अध्ययन के विषय 16 वर्ष से 18 वर्ष (औसत आयु = 17) की सीमा

में थे। अधिकांश विषयों को कक्षा 12 से लिया गया था बिहार के दो स्कूलों की। विषयों की आर्थिक स्थिति निम्न मध्य से ऊपरी मध्यम आय वर्ग तक थी।

टूल: कॉग्निटिव स्टाइल इंडेक्स (एलिन्सन एंड हेस, 1996): कॉग्निटिव स्टाइल इंडेक्स काफी हालिया इंस्ट्रूमेंट है जो कॉग्निटिव स्टाइल के व्होलिस्ट-एनालिटिकल डायमेंशन से संबंधित एक आयाम का आकलन करता है। ब्वै एक 38 आइटमस्व-रिपोर्ट प्रश्नावली है जिसमें यादृच्छिक क्रम में रखी गई वस्तुओं को ट्राइकोटोमस पैमाने पर बनाया जाता है जिसे 5 से 10 मिनट के भीतर पूरा किया जा सकता है। आइटम विश्लेषण में, 2 का स्कोर सच की प्रतिक्रिया के लिए सौंपा गया है, 1 अनिश्चित के लिए और 0 झूठे के लिए। आइटम में से एक को इस तरह से शब्दबद्ध किया जाता है कि श्सत्यश की प्रतिक्रिया, विश्लेषण अभिविन्यास का संकेत देती है। शेष 17 (सहज बयानों) के स्कोरिंग को उलट दिया जाता है, इसलिए, कि लगभग सीएसआई कुल सीएसआई स्कोर को सैद्धांतिक अधिकतम 76, अधिक विश्लेषणात्मक प्रतिवादी और लगभग शून्य के सैद्धांतिक न्यूनतम करने के लिए कुल स्कोर होता है। प्रतिवादी अधिक सहज।

प्रक्रिया: वर्तमान शोध पिछले साहित्य के गहन अध्ययन के बाद किया गया था। प्रिंसिपल से उचित अनुमति मिलने के बाद डेटा संग्रह शुरू हुआ। उपर्युक्त उपकरण में प्रश्नावली के माध्यम से डेटा एकत्रा किया गया था। फिर छात्रों के बीच प्रश्नावली वितरित की गई।

सांख्यिकीय विश्लेषण: अध्ययन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण टी वैल्यू और मीन स्कोर के लिए किया गया था।

परिणाम और चर्चा: वर्तमान अध्ययन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए डेटा कोटी मूल्य और औसत स्कोर के अधीन किया गया था। चर दो प्रकार के संज्ञानात्मक शैलियों का विश्लेषण करते हैं। विश्लेषण के निष्कर्ष नीचे चर्चा कर रहे हैं।

मूल्य: 12 कक्षा के लड़कियों और लड़कों के बीच तुलना करने के लिए उनकी संज्ञानात्मक शैलियों पर, संज्ञानात्मक शैली सूचकांक पर उन के स्कोर टी परीक्षण से गुजरने के लिए बनाया गया था। परीक्षण के निष्कर्ष नीचे तालिका–1 में प्रस्तुत किए गए हैं:

तालिका–1

Variable	N	df	Category	Mean	SD	t Value
Cognitive Styles	73	71	Girls	48.24	9.20	0.24
			Boys	49.12	11.71	

तालिका–1 पर एक सावधान नजर रखने के बाद, यह यह अच्छी तरह से स्पष्ट है कि दोनों लड़कियों और 12 कक्षा के लड़कों के औसत स्कोर में बहुत करीब थे मूल्य क्रमश: 48.24 और 49.12 रहा। यद्यपि उनके माध्य स्कोर बहुत निकटता में थे, लेकिन अंकों का फैलाव पैटर्न में थोड़ा भिन्न था। हालांकि, कुल मिलाकर, संज्ञानात्मक शैली सूचकांक पर उनके स्कोर ने अध्ययन के इस अपेक्षाकृत छोटे नमूना आकार के साथ सामान्यता से बहुत अधिक विचलन नहीं किया।

छात्राओं की संज्ञानात्मक शैली के लिए औसत अंक 48.24 के साथ उनके एस डी 9.20 के रूप में निकला। इसी तरह, संज्ञानात्मक शैली सूचकांक पर, पुरुष छात्रों का औसत स्कोर 49.12 था जो मानक विचलन के साथ 11.71 था।

माता पिता की अपेक्षा हाल के दिनों में शिक्षा और कैरियर दोनों बच्चों की शिक्षा से जुड़ा हुआ है। यह बहुत अच्छी तरह से देखा जा सकता है कि दोनों लिंगों के औसत स्कोर के बीच कम अंतर में, उनके माता-पिता की भूमिका सर्वोपरि रही है। यह तथ्य कि दोनों जेंडर के लिए अधिक से अधिक रास्ते खुल रहे हैं, महिला छात्रों में उनके करियर की शुरुआत में लड़कों के संबंध में समान रूप से विश्लेषणात्मक होने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका है और माता-पिता की उच्च उम्मीदों ने भी आकांक्षाओं को बढ़ाया है छात्रों।

जैसा किस ज्ञानात्मक शैली सूचकांक पर पाया गया है, यह दर्शाता है कि विषयों के पुरुष समूह ने अपनी महिला समकक्षों की तुलना में संज्ञानात्मक शैली की माप पर बहुत अधिक अंक प्राप्त किए हैं। हालाँकि, इन 2 समूहों के बीच प्राप्त अंतर महत्वपूर्ण होने के लिए बहुत कम था। उपरोक्त निष्कर्ष पिछले अध्ययनों की पिछली टिप्पणियों के विपरीत हैं, जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि दो समूहों के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है, जिसे इस तथ्य के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है कि कुछ दशक पहले लड़कियों ने केवल पारंपरिक करियर के लिए चुना था।

संदर्भ

- एलिन्सन, सीडब्ल्यू, औरहेस, जे (1996), संज्ञानात्मक शैली सूचकांक: संगठनात्मक अनुसंधान के लिए अंतर्ज्ञान विश्लेषण का एक उपाय,जर्नल ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज, 33, 119-135.
- ऑसबर्न, एलजे, और ऑसबर्न, एफबी (1978), संज्ञानात्मक शैलियों: कुछ जानकारी और निर्देशात्मक डिजाइन के लिए निहितार्थ, शैक्षिक संचार और प्रौद्योगिकी, 26, 337-354.
- ब्रोंफेन ब्रेनर, यू. (1979), मानव विकास की पारिस्थितिकी: प्रकृति और डिजाइन द्वारा प्रयोग, कैम्ब्रिज, एम ए: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- गोडिया, जी आई (2009), स्कूलों के लिए शिक्षा कैरियर गाइड बुक मंत्रालय, ऑनलाइन www-Education-go-ke उपलब्ध 10/8 / 09
- होलज मैन, पीएस, औरक्लेन, जीएस (1954), संज्ञानात्मक प्रणाली-स्तर निर्धारण और पैनापन: दृश्य समय-त्रुटि में आत्मसात प्रभाव में व्यक्तिगत अंतर, पत्रिका मनोविज्ञान का, 37, 105-122.

महर्षि अरविन्द घोष के अनुसार नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय शिक्षा की उपादेयता

डॉ० ममता सक्टा

(सहायक प्रोफेसर एशिक्षाशास्त्र), पेस्टल वीड कॉलेज ऑफ इनफॉरमेशन टेक्नोलॉजी, देहरादून, उत्तराखण्ड

डॉ० विनय कुमार

प्राचार्य, स्वदेशी कॉलेज ऑफ एजुकेशन, पूर्णियां, बिहार

सारांश

हमारी संस्कृति पाश्चात्यवादिता का शिकार होती जा रही है। शिक्षा मूल्यपरक, सद्चरित्र, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, समाजसेवी नागरिकों का सृजन नहीं कर पा रही है। दिन-प्रतिदिन शिक्षापाश्चात्य संस्कृति, विचारों एवं मूल्यों को आत्मसात करती जा रही है। आज शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की आवश्यकता है, ताकि उसमें व्याप्त कमियों को दूर किया जा सके। आज भौतिकवाद अपनी चरम सीमा पर है। मनुष्य का प्रमुख प्रयोजन केवल भौतिक संसाधन जुटाना है और मानवीय मूल्यों, नैतिकता, अध्यात्मिकता आदि का ह्रास हो रहा है। भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था एक संक्रमण काल से गुजर रही है। शिक्षक-शिक्षार्थी, अभिभावक और सरकार सभी इससे असन्तुष्ट हैं। वर्तमान शिक्षा का स्वरूप मनुष्य को शान्ति, नैतिकता तथा मूल्यपरक शिक्षा नहीं दे पा रही है। शिक्षा का निम्न स्तर जीवीकोपार्जन की समस्या को हल करने में असमर्थ है। बेरोजगारी, चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता शिक्षा के अव्यवहारिक एवं एंकाकी होना आदि ऐसी समस्यायें हैं जिनको हल करना अति आवश्यक है। अत: मानव कल्याण एवं सुखी भविष्य हेतु महर्षि अरविन्द के शैक्षिक, नैतिक, धार्मिक राष्ट्रीय सम्बन्धी विचारों का अध्ययन आवश्यक है। वास्तिवक शिक्षा वही है जो बालक की अन्तर्निहित सभी शक्तियों का इस प्रकार विकास करती है जिससे वह पूर्णतया लाभान्वित होता है। महर्षि अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत ही प्रासांगिक हैं। यदि हमें अपने देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन करना है तो इन विचारों के आधार पर कुछ मूलभूत सुधार किया जा सकता है। समस्त ज्ञान मनुष्य के भीतर निहित है। शिक्षा का प्रमुख कार्य इस ज्ञान का उद्घाटना करता है। शिक्षा का मूलभूत बालक का शारीरिक; मानसिक; संवेगाात्मक नैतिक तथा आधात्मिक विकास कर उसे पूर्ण मानव बनाना है।

मुख्य शब्द: संस्कृति, संसाधन नैतिकता, परिप्रेक्ष्य, जीवकिोपार्जन, मूलभूत।

प्रस्तावना

भारत वर्ष में धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल है। यही राष्ट्र की नींव है। भारत में हजारों वर्ष से धार्मिक व राष्ट्रीय एकता की धारा प्रवाहित होती आ रही है। हमारी मातृ भूमि भारत वर्ष का मेरूदण्ड धर्म है। हमारी संस्कृति पाश्चात्यवादिता का शिकार होती जा रही है। शिक्षा मूल्यपरक, सद्चरित्र, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, समाजसेवी नागरिकों का सृजन नहीं कर पा रही है। दिन-प्रतिदिन शिक्षा पाश्चात्य संस्कृति, विचारों एवं मूल्यों को आत्मसात करती जा रही है। आज शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की

आवश्यकता है, ताकि उसमें व्याप्त कमियों को दूर किया जा सके। वर्तमान शिक्षा प्रणाली को प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के विचारों के अनुरूप ढालने की आवश्यकता है। शिक्षा से तात्पर्य है कि भारतीय लक्ष्यों की ओर ले जाने वाली ऐसी शिक्षा पद्धति जो भारत की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं के अनुरूप हो। भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता, शैक्षिक, नैतिक, धार्मिक राष्ट्रीय व आवश्यकताओं पर आधारित हो। भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक व सांस्कृतिक सभी दृष्टि से भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हो, जिससे चरित्रवान, नैतिक, ईमानदार तथा देशभक्त नागरिकों का निर्माण किया जा सके। ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण भारत के विभिन्न महापुरुषों व शिक्षाविदों के द्वारा विचार, प्रस्तुत किए गए है। आज शिक्षा उद्देश्यविहीन हो चुकी है। स्वयं बुरी तरह भटक चुकी है। दुखी, तनावग्रस्त, परेशान, दिशाहीन और श्रम की हीन भावना से ग्रस्त इन्सानों का जन्म करने में शिक्षा अब महती भूमिका निभाने लगी है। शिक्षा की सार्थकता, गुणवत्ता व मूल्यपरकता जैसे गुणों के कारण ही है। शिक्षा व्यवस्था में 3 चक्र प्रध ान होते हैं- शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षा। ये तीनों ही महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि इन्हीं से समाज की नींव बनती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था के मूल आधार तत्व गुणवत्ता व मूल्यपरकता है। इसी से हमारे द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य उत्कृष्ट, सुव्यवस्थित तथा आत्मसुख करने वाला होता है। शिक्षा में गुणवत्ता से तात्पर्य है- हमारे द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन। शिक्षा द्वारा हमारे ज्ञान का विस्तार होता है। विवेक जाग्रत होता है। तथा प्रत्येक कार्य को उत्कृष्ट, सुनियोजित व सुव्यवस्थित तरीके से करना सिखाया जाता है। जिससे हमारे द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य में गुणवत्ता की झलक दिखाई देती है। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक कार्य को कुशलतापूर्वक करने का कौशल विकसित होता है। अर्थात् शिक्षा का पर्याय गुणवत्ता है। अब हम मूल्यपरकता के अर्थ पर विचार करेंगे। मूल्यपरकता से तात्पर्य उन जीवन मूल्यों से है जो हमारे नैतिक व चारित्रिक बल को ऊँचा उठाते हैं। सत्य, ईमानदारी, धैर्य, संयम, प्रेम, सद्भाव, सच्चरित्रता, सद्विचार, कर्तव्यनिष्ठता व उत्तरदायित्व की भावना आदि गुणों का विकास मूल्यपरक शिक्षा के द्वारा होता है जो हमारा नैतिक विकास करते हैं। मूल्यपरक शिक्षा हमें एक अच्छा इंसान बनाती है। इसीलिए मूल्यपरक शिक्षा महत्वपूर्ण है।

आज शिक्षा उद्देश्यविहीन हो चुकी है। स्वयं बुरी तरह भटक चुकी है। दुखी, तनावग्रस्त, परेशान, दिशाहीन और श्रम की हीन भावना से ग्रस्त इन्सानों का जन्म करने में शिक्षा अब महती भूमिका निभाने लगी है। शिक्षा की सार्थकता, गुणवत्ता व मूल्यपरकता जैसे गुणों के कारण ही है। शिक्षा व्यवस्था में 3 चक्र प्रधान होते हैं- शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षा। ये तीनों ही महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि इन्हीं से समाज की नींव बनती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था के मूल आधार तत्व गुणवत्ता व मूल्यपरकता है। इसी से हमारे द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य उत्कृष्ट, सुव्यवस्थित तथा आत्मसुख करने वाला होता है।

शिक्षा में गुणवत्ता से तात्पर्य है- हमारे द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन। शिक्षा द्वारा हमारे ज्ञान का विस्तार होता है। विवेक जाग्रत होता है। तथा प्रत्येक कार्य को उत्कृष्ट, सुनियोजित व सुव्यवस्थित तरीके से करना सिखाया जाता है। जिससे हमारे द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य में गुणवत्ता की झलक दिखाई देती है। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक कार्य को कुशलतापूर्वक करने का कौशल विकसित होता है। अर्थात् शिक्षा का पर्याय गुणवत्ता है। अब हम मूल्यपरकता के अर्थ पर विचार करेंगे। मूल्यपरकता से तात्पर्य उन जीवन मूल्यों से है जो हमारे नैतिक व चारित्रिक बल को ऊँचा उठाते हैं। सत्य, ईमानदारी, धैर्य, संयम, प्रेम, सद्भाव, सच्चरित्रता, सद्विचार, कर्तव्यनिष्ठता व उत्तरदायित्व की भावना आदि गुणों का विकास मूल्यपरक शिक्षा के द्वारा होता है जो हमारा नैतिक विकास करते हैं। मूल्यपरक शिक्षा हमें एक अच्छा इंसान बनाती है। इसीलिए मूल्यपरक शिक्षा महत्वपूर्ण है।

आवश्यकता एवं महत्वः वर्तमान युग में विज्ञान और उन्नति का युग है। इस युग में मानव सुख शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता है। वर्तमान शिक्षा का स्वरूप मनुष्य को शान्ति, नैतिकता व मूल्यपरक शिक्षा नहीं दे पा रही है, वास्तिवक शिक्षा वही है जो बालक की अन्तर्निहित सभी शक्तियों का इस प्रकार विकास करती है जिससे वह पूर्णतया लाभान्वित होता है। सम्पूर्ण शिक्षा मानव के स्वभाव एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुकूल होनी चाहिए। आज भौतिकवाद अपनी चरम सीमा पर है। मनुष्य का प्रमुख प्रयोजन केवल भौतिक संसाधन जुटाना है और मानवीय मूल्यों, नैतिकता, अध्यात्मिकता आदि का ह्रास हो रहा है। अतः मानव कल्याण एवं सुखी भविष्य हेतु महर्षि अरविन्द सम्बन्धी विचारों का अध्ययन आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक कार्य को कुशलतापूर्वक करने का कौशल विकसित होता है। मूल्यपरकता से तात्पर्य उन जीवन मूल्यों से है जो हमारे नैतिक व चारित्रिक बल को ऊँचा उठाते हैं। सत्य, ईमानदारी, धैर्य, संयम, प्रेम, सद्भाव, सच्चरित्रता, सद्विचार, कर्तव्यनिष्ठता व उत्तरदायित्व की भावना आदि गुणों का विकास मूल्यपरक शिक्षा के द्वारा होता है जो हमारा नैतिक विकास करते हैं। मूल्यपरक शिक्षा हमें एक अच्छा इंसान बनाती है। इसीलिए मूल्यपरक शिक्षा महत्वपूर्ण है। आज समाज में मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता अधिक है जो हमारा नैतिक विकास करें।

महर्षि अरविन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन: महर्षि अरविन्द का जन्म 15 अगस्त सन् 1872 को कलकत्ता में एक धानी बंगाली परिवार में हुआ था। अरविन्द के पिता पश्चिमी सभ्यता के पुजारी थे। 1889 ई. में उन्हें कैम्ब्रिज के क्रिम्स कॉलेज द्वारा सर्वोच्च छात्रवृत्ति प्रदान की गई। यहाँ पर इन्होंने अंग्रेजी भाशा के अतिरिक्त फ्रेंच, इलेलियन, स्पेनिष, जर्मन भाशाओं का भी अध्ययन किया। 1982 से 1902 ई. तक भारतीय संस्कृत भाशा तथा धर्म के अध्ययन का काल: सर्वप्रथम उन्हें फ्रेंच के प्रवक्ता के रूप में नियुक्त किया गया, वहाँ पर वे सन् 1885 तक सेवा करते रहे। 1901 में इनका विवाह हुआ। 1901 से 1910 तक राष्ट्रीय सेवाकाल– 1906 ई. में श्री अरविन्द ने बड़ौदा राज्य की नौकरी त्यागी दी और कलकत्ता में राष्ट्रीय विद्यालय प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्त किये गये। 1910 से 1950 ई. तक का साधाना एवं सिद्धि का काल: जेल में रहते हुए अरविन्द को आधात्मिक प्रेरणा प्राप्त हुई और भगवान कृष्ण के दर्शन हुए।

महर्षि अरविन्द का जीवन-दर्शन अत्युत्तम मानव जिसे पुरुषोत्तमक या 'ईश्वर' या 'भगवान' कहकर सम्बोधित किया गया है। उसे ही अरविन्द अत्युत्तम मानव की संज्ञान प्रदान करते हैं। इसका अत्युत्तम 'मन' तथा 'चेतना' भी होती है। **पुरुष**- पुरुष का तात्पर्य विश्व मानवों एवं अन्य प्राणियों से है। अरविन्द का विचार है कि प्रत्येक मनुष्य में एक आत्मा होती है जो कि अमर एवं अजर होती है। **योग**–श्री अरविन्द ने अपनी पुस्तक 'लाईफ डिवाइन' में लिखा है कि 'योग' व्यक्ति में छिपे हुए शक्तियों द्वारा विधि और नियम के अनुसार आत्मपूर्णत की ओर प्रयास करना है। **शिक्षा दर्शन** श्री अरविन्द एक महान दार्शनिक के साथ-साथ उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्री भी थे। उन्होंने मानव जाति को सर्वोच्च अध्यात्मिक विकास का मार्ग दिखाया। श्री अरविन्द के अनुसार मन अथवा अन्त:करण शिक्षक का मुख्य साधन है। अन्त:करण के चार स्तर होते हैं- चित्त, मानस, बुद्धि तथा ज्ञान। शिक्षा को बालक के चारों स्तरों को अधिक से अधिक विकास करना चाहिये। पहला स्तर चित्त अथवा स्मरण शक्ति का बाकी तीन स्तरों की आध ारशिला है। चित्त ही वह है जिससे क्रियाशील स्मरण शक्ति समय पर आवश्यक वस्तु को खोज निकालती है। दूसरे स्तर मानस का कार्य यह होता है कि वह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भेजी गयी प्रतिमाओं को ग्रहण करे और उनको विचारों में बदल दे अतएव शिक्षक का यह मुख्य कार्य समझा जाता है बुद्धि तीसरा स्तर है इसके द्वारा ही विचार होता है यह ज्ञान को संगठित करती है। श्री अरविन्द बुद्धि को शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। अन्त:करण की चौथी सतह सत्य का सहज ज्ञान बोध अथवा चेतना की शक्ति वर्णन की जाती है।

श्री अरविन्द घोष के अनुसार नैतिक शिक्षा–महर्षि अरविन्द घोष कहते हैं, **संस्कृति का भंडार संस्कृत:** मैं संस्कृत भाषा को मानव जाति के अत्यन्त प्राचीन, सार्वभौमिक तथा गूढ़ चिंतन के भार को वहन करने वाली अनुपम भाषा मानता हूँ। आज से सहस्रों साल पहले यह भाषा अपनी पूर्ण, अभिव्यक्ति क्षमता, भाषागत सौंदर्य, समृद्ध शब्द-भंडार और ध्वनिगत लालित्य के साथ हमारे सामने थी। संस्कृत के महत्व को स्पष्ट करते हुए महर्षि अरविन्द घोष कहते हैं– "यह अध्यात्मिकता का पहला स्रोत है। विज्ञान की धारोहर है। नैतिक मूल्यों की आधारशिला, समस्त कलाओं की विकास भूमि और राष्ट्रीय एकता की भावना की संस्थापिका है। यह हमारी संस्कृति का मूल है-जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थों को औचित्य के अनुसार महत्व दिया गया है। इस संस्कृति में धर्म और मोक्ष, इन दो तटों के मध्य में अर्थ और काम की धारा बहती है और यह अर्थ और काम की धारा धर्म और मोक्ष का उल्लंघन नहीं करती।" महर्षि अरविन्द घोष संस्कृत को उच्च मूल्यों की जननी मानते हैं, वे कहते हैं- "संस्कृत भाषा को उन उदात्त और महान् विचारों की गोद समझता हूँ, जिसमें मानवता के महान् जीवन-मूल्य पले और बड़े हुए हैं। ये महान् मूल्य हैं- समानता के बहुलवाद के और एकत्व के, समन्वय के, विचार-स्वातंत्रय तथा मानव-प्रेम के।" महर्षि घोष कहते हैं मुझे यह लगता है संस्कृत भाषा वह केन्द्रीय भाषा है, जिसके माध्यम से देश की अन्य भाषाओं को आसानी से सीखा जा सकता है।

श्री अरविन्द घोष के अनुसार धार्मिक शिक्षा-श्री अरविन्द ने शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में बालक की नैतिकता और अध्यात्मिकता के विकास को सम्मिलित किया है। इनके विकास के लिए इन्होंने जो साधन बताए हैं, उनमें धार्मिक शिक्षा को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। अत: श्री अरविन्द की धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य बालक का नैतिक और अध्यात्मिक विकास करना है। धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में श्री अरविन्द का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक है। उनके अनुसार धार्मिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसका व्यावहारिक जीवन में उपयोग हो सके। वे किसी धर्म विशेष की शिक्षा के पक्ष में नहीं थे, जो बालकों में संकीर्णता की भावना पैदा करें। ध ार्मिक शिक्षा के द्वारा वे बालकों को इस योग्य बनाना चाहते थे कि वे एक-साथ अपना, समाज का और राष्ट्र का कल्याण कर

सकें। उन्होंने लिखा है कि "धर्म की किसी भी रूप में पृथक शिक्षा दी जाती हो या नहीं, किन्तु ईश्वर के लिए जीना, दूसरों के लिए जीना और अपने लिए जीना यही धार्मिक शिक्षा का सार है। प्रत्येक राष्ट्रीय विद्यालय के सामने यही आदर्श होना चाहिए।"

श्री अरविन्द घोष के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा महर्षि अरविन्द घोष का मानना है कि "राष्ट्र के भाग्य का निर्धारण करने के केंद्र में सबसे महत्वपूर्ण तत्व हैं- राष्ट्रीय मूल्य और आदर्श, नागरिक के रूप में हमारा उत्तरदायी चिंतन, हमारी अनुभूत आवश्यकताएं और प्राथमिकताएं, हमारी आकांक्षाएं, राष्ट्रीय वातावरण, नीतियों का विकास तथा हमारे राष्ट्रीय जीवन एवं संस्थाओं की कार्य प्रणाली। हमें दृढ़ निश्चयी बनना है और यह तय करना है कि हम राष्ट्रहित की दिशा की ओर चलें, न कि दूसरे कार्यक्रमों से प्रभावित हों।" इस बारे में हमें पूरी तरह सचेत, सतर्क और ध्येयपूर्ण होना है।

राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा: गणतंत्र दिवस पर हम भारत की आत्मा के जीवंत तत्व-बहुलवाद, एकत्व, समन्वय तथा सद्भाव का उत्सव मनाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम सब हमारी राष्ट्रीयता को बनाने वाले इन मूल्यों को पूरी तरह आत्मसात करें।

राष्ट्रोन्नति का संकल्प: महर्षि अरविन्द घोष का मानना है कि "राष्ट्र के भाग्य का निर्धारण करने के केंद्र में सबसे महत्वपूर्ण तत्व हैं- राष्ट्रीय मूल्य और आदर्श, नागरिक के रूप में हमारा उत्तरदायी चिंतन, हमारी अनुभूत आवश्यकताएं और प्राथमिकताएं, हमारी आकांक्षाएं, राष्ट्रीय वातावरण, नीतियों का विकास तथा हमारे राष्ट्रीय जीवन एवं संस्थाओं की कार्य प्रणाली। हमें दृढ़ निश्चयी बनना है और यह तय करना है कि हम राष्ट्रहित की दिशा की ओर चलें, न कि दूसरे कार्यक्रमों से प्रभावित हों।"

उपसंहार

महर्षि अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत ही प्रासांगिक हैं। यदि हमें अपने देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन करना है तो इन विचारों के आधार पर कुछ मूलभूत सुधार किया जा सकता है। समस्त ज्ञान मनुष्य के भीतर निहित है। शिक्षा का प्रमुख कार्य इस ज्ञान का उद्घाटना करता है। शिक्षा का उद्देश्य बालक का शारीरिक; मानसिक; संवेगाात्मक नैतिक तथा आधात्मिक विकास कर उसे पूर्ण मानव बनाना है। अत: मानव कल्याण एवं सुखी भविश्य हेतु महर्षि अरविन्द के शैक्षिक, नैतिक, धार्मिक राष्ट्रीय सम्बन्धी विचारों का अध्ययन आवश्यक है। वास्तिवक शिक्षा वही है जो बालक की अन्तर्निहित सभी शक्तियों का इस प्रकार विकास करती है जिससे वह पूर्णतया लाभान्वित होता है। महर्षि अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत ही प्रासांगिक हैं।महर्षि अरविन्द घोष कहते हैं, **संस्कृति का भंडार संस्कृत:** मैं संस्कृत भाषा को मानव जाति के अत्यन्त प्राचीन, सार्वभौमिक तथा गूढ़ चिंतन के भार को वहन करने वाली अनुपम भाषा मानता हूँ। आज से सहस्रों साल पहले यह भाषा अपनी पूर्ण, अभिव्यक्ति क्षमता, भाषागत सौंदर्य, समृद्ध शब्द-भंडार और धवनिगत लालित्य के साथ हमारे सामने थी। संस्कृत के महत्व को स्पष्ट करते हुए महर्षि अरविन्द घोष कहते हैं- "यह अध्यात्मिकता का पहला स्रोत है। विज्ञान की ध ारोहर है। नैतिक मूल्यों की आधारशिला, समस्त कलाओं की विकास भूमि और राष्ट्रीय एकता की भावना की संस्थापिका है। यह हमारी संस्कृति का मूल है-जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थों को औचित्य के अनुसार महत्व दिया गया है। श्री अरविन्द ने शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में बालक की नैतिकता और अध्यात्मिकता के विकास को सम्मिलित किया है। इनके विकास के लिए इन्होंने जो साधन बताए हैं, उनमें धार्मिक शिक्षा को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। अत: श्री अरविन्द की धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य बालक का नैतिक और अध्यात्मिक विकास करना है। महर्षि अरविन्द घोष का मानना है कि "राष्ट्र के भाग्य का निर्धारण करने के केंद्र में सबसे महत्वपूर्ण तत्व हैं- राष्ट्रीय मूल्य और आदर्श, नागरिक के रूप में हमारा उत्तरदायी चिंतन, हमारी अनुभूत आवश्यकताएं और प्राथमिकताएं, हमारी आकांक्षाएं, राष्ट्रीय वातावरण, नीतियों का विकास तथा हमारे राष्ट्रीय जीवन एवं संस्थाओं की कार्य प्रणाली। हमें दृढ़ निश्चयी बनना है और यह तय करना है कि हम राष्ट्रहित की दिशा की ओर चलें, न कि दूसरे कार्यक्रमों से प्रभावित होंमहर्षि अरविन्द के जीवन दर्शन के अध्यात्मिकता को आज भी शिक्षा पद्धति में अपनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। विश्व शान्ति की स्थापना हेतु महर्षि अरविन्द की दार्शनिक विचारों विस्तार हेतु अध्ययन किया जा सकता है। छात्रों में शैक्षिक, नैतिक, धार्मिक राष्ट्रीय सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करके बौद्धिक व अध्यात्मिक विकास के लिए महर्षि अरविन्द से सम्बन्धित विचारों को अपनाया जाना चाहिए शिक्षार्थियों की आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाये। महर्षि अरविन्द के विचारों में उन सभी विषयों के अध्ययन पर बल दिया जाय जो कि मनुष्य की शैक्षिक, नैतिक, धार्मिक राष्ट्रीय संस्कारिक समृद्धि और अध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

* लाल बिहारी रमन : "शिक्षा के दार्शनिक तथा समाज शास्त्रीय सिद्धान्त", प्रथम संस्करण 1970-80
* मिश्र आत्मानन्द : "भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक", बिनोद पुस्तक मन्दिर आगरा 1972
* बालिया एस0 जे0 : "शिक्षा के सिद्धान्त तथा विधियॉ पाल", पब्लिशर्स, जालंधार 1984
* माथुर, एस.एम. : "शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक सुधार", बिनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 2008
* पचौरी गिरीश : "शिक्षा के सामाजिक आधार", आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ 2008
* पचौरी, गिरीश : "विश्व के महान शिक्षा शास्त्री", लायल बुक डिपो, मेरठ 2008
* रूहेला, सत्यपाल एवं देवेन्द्र : "शिक्षा के समाजशास्त्री परिपेक्ष्य", सूर्याप्रकाशन मेरठ, 2010
* लाल बिहारी रमन : "शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग", आर लाल बुक डिपो, मेरठ 2012
* शर्मा ए0 आर0 : "शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार", आर0 लाल0 बुक डिपो, मेरठ, 2013
* शर्मा भूषण ब्रज डा0 : "मानववाद तथा मानवतावाद" श्री कला प्रकाशन, दिल्ली,

एचआईवी/एड्स और गर्भावस्था

डॉ० अरूणा कुमारी

गृह विज्ञान विभाग, एम0 एच0 एम0 महाविद्यालय, सोनवर्षा (बिहार)

शोध सारांश

एचआईवी एक तरह का वायरस है जो इम्यून सिस्टम पर बुरा असर डालता है। एचआईवी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैल सकता है, लेकिन ये जरूरी नहीं की एचआईवी पीड़ित गर्भवती महिला को एड्स हो। एड्स एक तरह का सिंड्रोम है और यह एचआईवी वायरस के अत्यधिक बढ़ जाने के बाद होता है। एड्स एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में नही फैलता है, लेकिन ऐसे लोग जिन्हें एचआईवी है उन्हें एड्स होने की संभावना ज्यादा होती है। एचआईवी या एड्स होने पर ऐसा नहीं है कि गर्भधारण नहीं किया जा सकता है लेकिन शिशु में संक्रमण का खतरा बना रहता है। हलांकि इसके रिस्क को कम किया जा सकता है।

मुख्य शब्दः एचआइवी/एड्स और एचआइवी पॉजिटिव दांपति को जानने योग्य जरूरी बातें।

प्रस्तावना

एचआइवी एक विषाणु होता है जो मानव शरीर में बाहरी रोगों से लड़ने वाली कोशिकाओं को नष्ट कर देता है। कुछ समय पहले तक एचआईवी पॉजिटिव मरीज आपस में शादी तो कर सकते थे, लेकिन गइडलाइन के अनुसार बच्चे पैदा नहीं कर सकते थे। वहीं नई दवाओं के आने के बाद से माता–पिता से इन्हें संतान में जाने से रोका जा सकता है। इस कार्यक्रम का नाम है। प्रीवेन्शन पेरेन्ट टू चाइल्ड ट्रंसमिशन (पी वी टी सी टी) है।

एचआईवी/एड्स होने पर ऐसा नहीं है कि गर्भधारण नहीं किया जा सकता है, लेकिन शिशु में संक्रमण का खतरा बना रहता है, हलांकि इसके रिस्क को कम कर एचआईवी पॉजिटिव दंपति भी दे सकते है स्वस्थ्य बच्चे को जन्म किंग जॉर्ज चिकित्सा विश्वविधालय, लखनऊ के एआरटी सेंटर (एंटी रेट्रोवायरल ट्रीटमेंट) के डॉ. सौरभ पॉलीवाल बताते है,एच, आईवी कोई आनुवांशिक बीमारी नहीं है, इसलिए एचआईवी संक्रमित दंपति के बच्चे के स्वस्थ होने की संभावनाएँ बहुत अधिक रहती है। अक्सर देखने में आता है कि एचआईवी संक्रमित माताओं के ज्यादातर बच्चे स्वस्थ (एचआईवी निगेटिव) होते है। जिस तरह से ब्लड प्रेशर या मधुमेह से पीड़ित मरीज एक गोली खाकर सभी काम करता है। उसी तरह एचआईवरी (एड्स) पीड़ित व्यक्ति भी रोज एक गोली खाकर स्वस्थ रह सकते है।

एवर्ट की साल 2017 के एक रिपोर्ट अनुसार प्रेग्नेंसी के 2 हफ्ते बाद ही गर्भ में पल रहे शिशु में एचआईवीकी जानकारी मिल जाती है। साऊथ में 17 प्रतिशत, ईस्टर्न यूरोप एंड सेंट्रल एशिया में 51 प्रतिशत, लेटिन अमेरिका और कैरिबियन में 45 प्रतिशत, मिडिल ईस्ट और नार्थ अफ्रीका में 28 प्रतिशत, ईस्ट और साऊथ अफ्रीका में 52 प्रतिशत और वेस्ट और सेंट्रल अफ्रीका में 20 प्रतिशत तक शिशु गर्भवस्था में एचआईवी से झ्रैक्टेड हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि ये आँकड़े बढ़ते जा रहे है। गर्भवस्था में एचआईवीऔर एड्सदोनों से कैसे बचा जाए इस पर रिसर्च जारी है। गर्भावस्था व एच, आई, वी/एड्स से पीड़ित महिला के लिए गर्भावस्था जोखिमपूर्ण हो सकती है। गर्भावस्था तथा प्रसव के दौरान ऐसी महिलाओं को निम्नलिखित में से कुछ ऐसी समस्याएँ हो सकती है जो एच0 आइ0 वी0; एड्स से मुक्त महिलाओं को नहीं होती है:

* स्वत: गर्भपात (मिस्केरेज)।
* बुखार, संक्रमण व खराब स्वास्थ।
* प्रसव के पश्चात ऐसी गंभीर संक्रमण हो जाना जो उसकी जान के लिये खतरा बन सकते है।
* प्रसव समय से पहले हो सकता है।

इन सब संभावित समस्याओं को जानते हुए भी कुछ संक्रमित महिलाएँ गर्भधारण करना चाहती है तो अगर वो समय रहते एचआईवी पॉजीटिव गर्भवती महिला अपना ईलाज शुरू करवा लेती है तो होने वाले बच्चे को एचआईवी के खतरे से बचाया जा सकता है।

गर्भवती महिला से उसके होने वाले बच्चे को ये संक्रमण होने का सबसे ज्यादा आशंका होती है। एच0आई0वी0 संक्रमित दंपति को शुरू से ही एआरवी एंटी रेटरी वायरल थेरेपी देकर दवा दी जाती है। रात में खाने के बाद रोजाना एक गोली खाई जाती है। गर्भवती महिलाओं को लगातार यह खानी होती है। बच्चा पैदा होने के बाद भी महिला की दवा चलती रहती है। इससे नवजात में कई प्रकार के संक्रमण से बचाव होता है। आने वाले समय में भी बच्चे को एच0आई0वी0 होने का खतरा बहुत कम होती है।

* **अगर आप गर्भधारण करना चाहें:** अगर दंपति को स्वयं का व अपने साथी के एच.आई.वी. संक्रमित होने का विश्वास नहीं है तो अपना एच.आई.वी.टेस्ट कराएँ टेस्ट कराने के पहले 6 महीनों में गर्भधारण न करें और इस काल में जब भी आप सहवास करें कंडोम का प्रयोग अवश्य करें और सहवास केवल एक दूसरे के साथ ही करें।
* प्रजनन काल को छोड़कर सहवास करते समय कंडोम का प्रयोग करें।
* जब एस टी0 डी0 के लक्षण हो तो कदापि सहवास न करें।
* अगर आप में प्रजनन क्षमता नहीं है तो भी सुरक्षित यौन व्यवहार अपनाएँ।
* एच.आई.वी. संक्रमित माताओं को होने वाले हर 3 बच्चों में से एक संक्रमित हो जाता है।
* अगर आप एचआइवी टेस्ट नहीं करा सकती है तो आप इन सुझावों का पालन करके अपना जोखिम कम कर सकती है। निम्नलिखित कुछ बातों को फॉलो करें अगर प्रेग्नेंसी में एचआईवी और एड्स की समस्या है तो:-
* डॉक्टर को इसकी जानकारी अवश्य दें। हेल्दी प्रेग्नेंसी और शिशु को संक्रमण से बचाने के लिए हर संभव मदद् कर सकते है
* अगर एचआईवीसे पीड़ित है, तो एचआईवीकी दवा नियमित रूप से और समय पर खाया करें। एचआईवी पेशेंट होने के बावजूद भी अगर समय पर दवा और ठीक तरह से इलाज करबाया गया तो शिशु में इसकी संभावना कम हो सकती है।
* अगर महिला (wife) या पुरुष (Husband) दोनों में से काई एक एचआईवीध एड्स से पीडित है, तो ऐसी स्थिति में महिला गर्भधारण कर सकती है, लेकिन हेल्थ एक्सपर्ट्स से सलाह लेकर।

एच.आई.वी. संक्रमीत माता हमेशा अपने शिशु को एंटीबॉडीज संचारित करती है। इसका अर्थ यह है कि टेस्ट करने पर ऐसा नवजात शिशु हमेशा एच.आई.वी. पॉजिटिव पाया जाएगा लेकिन तत्पश्चात उनके बच्चों में यह टेस्ट नेगेटिव ही जाती है। इसका अर्थ यह है कि उन्हें वास्तव में एच.आई.वी. संक्रमण नहीं हुआ था। 18 महीने की आयु से पहले यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता है कि जन्म के समय एचअइवी पॉजिटिव बच्चा वास्तव में संक्रमित है या नहीं। उस आयु तक के बच्चे में रक्त में से प्राप्त एंटीबॉडीज समाप्त हो जाती है।

* **प्रसव के समय:** अगर आप समझती है कि आपका प्रसव कराने वाली दाई या प्रसव सहायक समझ सकेगी तो आप उसे अपनी एच.आई.वी. संक्रमित अवस्था के बारे में बता दें ताकि वह आपको और आपके नवजात शिशु को संक्रमण से बचा सके।
* **स्तनपान के दौरान:** एचआईवी संक्रमण बच्चे को कभी–कभी दूध के माध्यम से भी संचारित हो सकता है इसलिए कुछ माताएँ ऐसी कोई मित्र या रिश्तेदार ढूंढ लेती है। जो एचआइवी संक्रमित नहीं है और उसके बच्चे को अपने स्तनों से दूध

पीला सकती है। यह आपके बच्चे के लिए सबसे सुरक्षित तरीका हो सकता हैं। लेकिन अगर आप एचआईवी संक्रमित है तो भी अपने स्तनों से बच्चे को दूध पिलाना अन्य दूध या पाउडर दूध पिलाने से कहीं बेहतर है उनके समुदायों में अन्य दूधों के माध्यम से बच्चे को दस्तों तथा कुपोषण हानि का खतरा, एचआइवी संक्रमण होने के खतरे से कहीं अधिक है। ऐसा होने बच्चे के जीवन के शुरू के 6 महिनों में और भी खतरनाक हो सकता है। क्योंकि 6 महिने की आयु के पश्चात् आप उसे अन्य दूध व उपरी खाद्य पदार्थ देना शुरू कर सकती है।

* **एआरवी थेरेपी:** एआरवी के तहत सीडी–4 काउंट के कम होने का इंतजार किये बिना एचआईवी पॉजिटिव गर्भवती महिला को एआरवी थेरेपी शुरू कर दी जाती है, जिससे गर्भावस्था में पूरी होने तक वायरल लोड कम हो जाता है। वहीं बच्चे के पैदा होने के बाद भी उसकी भी थेरेपी चलाई जाती हैं अगर बच्चा एचआइवी निगेटिव होता है तो उसके बाद से बच्चा नॉर्मल की श्रेणी में माना जाता है। गर्भावस्था से मां के एआरवी थेरेपी लेने से बच्चे में एचआईवी संक्रमण की संभावना 90 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको) के अनुसार भारत में वर्ष 2017 में करीब 21.4 लाख लोग एचआईवी से ग्रस्त थे जिनमें करीब 40 प्रतिशत महिलाएँ थीं। वर्ष 2000 के बाद से एचआईवी संक्रमण में सलाना नये मामलों में 60 प्रतिशत से अधिक की कमी आई है, लेकिन 2010 और 2017 के बीच गिरावट की दर 27 प्रतिशत रही। जो संक्रमण के नये मामलों में 2020 तक 75 प्रतिशत कमी लाने के लक्ष्य पर पहुंचने के लिहाज से बहुत पीछे है।

एचआईवी/एड्स से निपटने का एकमात्र उपाय है, इसकी रोकथाम भारत का 99 प्रतिशत जनसंख्या अभी एड्स से मुक्त है, बाकि एक प्रतिशत जनसंख्या में इसके फैलने की प्रवृति के आधार पर इस महामारी की रोमथाम एवं इस पर नियंत्रण करने संबधी नीतियाँ बनाई जा रही है।

संदर्भ-सूची

- एवर्ट एवर्टिंग एच.आई.वी. और एड्स www.avert वतह
- मुक्त एच0 आई. वी हैल्पलाइन w.w.w. mukta ahivhelpling . org.
- राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको)A w.w.w. naco. gov in
- एलायंस इंडिया www.a llianceindia. org/ourwork / vi haanl
- lkFkhwww saathii. org/ helplines- referrals
- Hello swasthya 29 July, 2020
- The Healthsite 05Dec, 2017
- Helth News 19 May, 2017

भारत छोड़ो आन्दोलन में शाहाबाद आर्य समाज का योगदान

डॉ० बिनोद कुमार

इतिहास विभाग, महंथ महादेवानन्द महिला महाविद्यालय, आरा

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत 1942 ई. के "भारत छोड़ो आन्दोलन" को अत्यन्त ही गरिमापूर्ण स्थान प्राप्त है। "भारत छोड़ो आन्दोलन" भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक ऐसी महत्वपूर्ण राजनीतिक और क्रांतिकारी घटना है, जिसने देशव्यापी आन्दोलनात्मक स्वरूप ग्रहण कर अंग्रेजों का भारतीय राष्ट्रवाद की अद्‌भुत शक्ति का परिचय दिया[1] वस्तुतः ब्रिटिश शासन की अन्यायपूर्ण नीतियाँ और झूठे आश्वासनों के प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय जनमानस में उत्पन्न व्यापक आक्रोश का प्रतिफल था– "1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन" इस आन्दोलन में आर्य समाज का सर्वाधिक योगदान था।

गाँधी जी ने "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पारित होने के पूर्व 70 मिनट तक विनम्रतापूर्ण व जोषीला भाषण देते हुए कहा था– प्रतीक्षा नहीं कर सकता। यह मेरे जीवन का अंतिम संघर्श है। या तो हम विजयी होंगे या फिर नष्ट हो ही जाएंगें। गाँधी जी ने "भारत छोड़ो आन्दोलन" का आह्‌वान करते हुए– "करो या मरो" का मंत्र दिया[2], जिसका व्यापक असर शाहाबाद पर पड़ा।

9 अगस्त 1942 को गाँधी जी तथा अन्य सभी काँग्रेस नेताओं को बन्दी बना लिया गया। सरकार ने काँग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया। "गाँधी जी और अन्य महान नेताओं की गिरफ्तारी का सामाचार पाते ही समस्त जनता में क्रोध की ज्वाला उमड़ गई तथा वह विदेशी शासन के विरूद्ध उठ खड़े हुए।" इस प्रकार अगस्त 1942 का "भारत छोड़ो आन्दोलन" आरम्भ हो गया।[3]

सम्पूर्ण भारत में फैले भारत छोड़ो आन्दोलन से बिहार प्रान्त का अत्यन्त ही संवेदनशील और क्रान्तिकारी शाहाबाद जिला अछुता नहीं रहा। अगस्त क्रांति ने शाहाबाद के जनपद को झकझोरा और शाहाबाद के आर्य समाज ने 1942 के भारत-छोड़ो आन्दोलन को अपना नेतृत्व प्रदान कर ब्रिटिश शासन की ईंट से ईंट बजा दी।

देश में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ होते ही शाहाबाद जिले के सभी वर्गों में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध बगावत की भावना उमड़ने लगी जिसके परिणाम स्वरूप शाहाबाद के सभी भागों में हड़तालों और जुलुसों का सिलसिला आरम्भ हो गया। 11 अगस्त 1942 को शाहाबाद में कई स्थानों पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया।[4]

आरा की जनता ने आरा के श्री विंधयाचल प्रसाद, श्री रंग बहादुर लाल, श्री रमायण प्रसाद, शाहपुर के हर गोविन्द मिश्र, आरा के श्री दीप नारायण सिंह और श्री जगजीवन राम, खजूरिया के डा. राम सुभग सिंह, सिनहा के श्री राम विलास सिंह, जमीरा के श्री रघुवंश नारायण सिंह, श्री द्वारिका सिंह और हरिनन्दन पाठक अगिआॅव के श्री जगत नारायण लाल की पत्नी श्रीमती रामपियारी देवी, लसाड़ी के श्री रामप्रीत सिंह, चाँदी के चन्द्रमणि सिंह, केशोपुर के श्री बलिराम सिंह, महुली के श्री रमाकांत दुबे, बिनगाँव के श्री ईश्वर दयाल सिंह, पिपरा के श्री गया सिंह, करजा के श्री राम चन्द्र सिंह, बलिगाँव के नन्दगोपाल सिंह, आरा के श्री छठु पाण्डेय और श्री इन्द्रदेव प्रसाद के नेतृत्व में जिलाधीश के कार्यालय, कचहरी और जिला परिषद् पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने की कोशिश की, छात्रों और शिक्षकों में भी इस अभियान में बड़ी संख्या में भाग लिया। बहुत प्रयत्नों के पश्चात् आन्दोलनकारी किसी तरह जिला परिषद् के भवन पर तिरंगा लहराने में सफल हो सके। क्रांतिकारी "वीर कुँवर सिंह" की जय "महात्मा गाँधी की जय" के नारे लगा रहे थे।[5]

ध्वजारोहरण के पुनित कार्य डुमराँव में भी किया गया। डुमरॉव की जनता सरदार हरिहर सिंह के नेतृत्व में डुमरॉव के नगरपालिका भवन पर झंडा फहराने के लिए एकत्रित हुई। सरकारी अधिकारियों के आवरोध के बावजूद भी आन्दोलनकारियों की भीड़ से एक वीर ने नगरपालिका भवन पर तिरंगा लहराने में सफलता प्राप्त की। इस ध्वजारोहरण समारोह में भाग लेने वालों में चौगाई के श्री शिव कुमार प्रसाद, श्री बिहारी सिंह जो सरदार हरिहर सिंह के पुत्र थे सावाँ के श्री शिवकेदार सिंह और श्री नथुनी पाण्डेय सेमरा के श्री लाखी पाण्डेय और श्री लाल बिहारी सिंह की पत्नी श्रीमती संध्या रानी रघुनाथपुर के श्री चतुर्भुज सिंह और श्री हरिहर चंद साह, कोआथ के श्री अब्दुल बन्नीमियाँ, डुमराँव के चतुर चौधरी एवं श्री कुमारी तिवारी के नाम प्रमुख है।[6]

बक्सर क्षेत्र के निवासियों ने भी अनुमण्डलाधिकरी के कार्यालय और नगरपालिका भवन पर झंडा फहराने के प्रयत्न किए। नगरपालिका भवन पर ध्वजारोहण करते समय पुलिस के प्रहार से कुछ क्रान्तिकारी घायल हो गए। लेकिन झंडा फहराने में उन्हें सफलता मिल गई। तिवारीपुर के श्री नन्द किशोर तिवारी, खानी के श्री नन्दलाल सिंह और श्री केदार सिंह तथा श्री सिद्धेश्वर सिंह बोगाई के पुराने नेता चन्द्रशेखर सिंह वकील के निर्देशन में बक्सर में जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे।

भभुआ में राजकुमार लाल विश्वनाथ सिंह वर्मा बद्री प्रसाद आर्य, राम गोविन्द प्रसाद, बेचू सिंह, श्री द्वारिका सिंह, गणेशानन्द, चन्डी प्रसाद, जमुना लाल, देवव्रत सिंह वर्मा, लक्ष्मी सिंह, परमानन्द मिस्त्री, अर्जुन सिंह, गुप्तेज्वर पान्डेय, राम नगिना सिंह, मंगल सिंह, मानिक चंद जो भभुआ निवासी थे। चन्द्रशेखर प्रसाद आर्य के नेतृत्व में कार्यक्रम किया गया था। इन्हीं के नेतृत्व में अनुमण्डल कार्यालय पर ध्वज फहराया गया। अनुमण्डल कार्यालय और नगरपालिका कार्यालय साथ ही आर्य समाज भवन पर झंडा फहराते समय पुलिस के प्रहार से उपर्युक्त सभी आर्यसमाजी जेल गये। हालांकि नगरपालिका भवन के बगल में ही आर्य समाज भवन है जो कि "भभुआ कचहरी रोड'' मुख्य मार्ग से थोड़ा पीछे स्थित है। उपर्युक्त सभी लोगों को फुलवारी शरीफ सेन्ट्रल जेल में रखा गया था, लेकिन नेतृत्वकर्त्ता भभुआ के आर्य समाजी नेता श्री चन्द्रशेखर प्रसाद आर्य उस समय ब्रिटिश पुलिस के गिरफ्त से फरार हो गये। भभुआ शाहाबाद जिला का अनुमंडल था लेकिन भभुआ अब "कैमूर'' जिला के नाम से विख्यात है।[7]

ससाराम क्षेत्र में कचहरी भवन के ऊपर राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। शेरशाह के ऐतिहासिक मकबरा के निकट कई लोग बड़ी संख्या में एकत्रित हुए और अंग्रेजो भारत छोड़ो के नारे लगाते हुए कचहरी भवन की तरफ प्रस्थान किए। सासाराम के श्री दरगाही राम और जितनारायण सिंह नासरीगंज के श्री निवास, तिलौथू के श्री विपिन बिहारी सिन्हा, करथ के श्री बबन सिंह, श्री राम ताल्युक्य तिवारी और श्री कृष्ण बहादुर श्री प्रद्युम्न मिश्र के निर्देशन में इस साहसिक संघर्ष में भाग ले रहे थे। अनुमण्डलाधिकारी एच. बी. मोरटिन ने प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। अनेक प्रदर्शनकारी घायल हुए और अनेक घटनास्थल पर ही मारे गये। इस दुखद घटना के बावजूद भी श्री दरगाही राम कचहरी भवन पर झंडा फहराने में सफल हुए।[8]

इसी समय शाहाबाद जिला के बहुत नजदिकी जिला पटना में आन्दोलनकारियों का दमन करते हुए भयानक हत्याकांड किया गया। उसका प्रभाव शाहाबाद के राजनीतिक आन्दोलन पर जबर्दस्त पड़ा।

11 अगस्त के सचिवालय गोली कांड में छात्रों की शहादत ने प्रान्त भर में आजादी की लड़ाई में एक नई जान डाल दी। सचिवालय के फाटक पर शहीद होने वाले छात्र वस्तुत: "करो या मरो'' के प्रतीक बन गये। इस घटना से प्रान्त व्यापी जन-विप्लव सा फूँट पड़ा और अब से उसने किंचित् हिंसात्मक रूप ले लिया।[9]

उपर्युक्त घटना ने शाहाबाद के राजनीतिक आन्दोलन का एक नया मोड़ दे दिया। अब "भारत छोड़ो आन्दोलन" के आन्दोलनकारी काफी उग्र रूप से शाहाबाद के आर्य समाज के नेतृत्व में क्रांति की आग फैलाने लगे।

12 अगस्त 1942 को विद्यार्थियों और जनता के संयुक्त मोर्चा आरा रेलवे स्टेशन पर आक्रमण करने के लिए चला। पद्युम्न मिश्र 11 अगस्त को ही गिरफ्तार कर लिए गये थे और शहर में कोई दूसरा प्रभावशाली कार्यकर्त्ता नहीं रह गया था, इसलिए इस आक्रमण का स्वार्थ कुछ लूट-पाट जैसा हो गया। इसी दिन गाँगी पुल के पास प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने गोली चला दी, जिससे दो व्यक्तियों की जाने गई।[10]

12 अगस्त को बक्सर मे लोगों ने डाकघर के कागज जलाए। उसी दिन ब्रह्मपुर थाने पर काँग्रेसी झंडा फहराया गया। 12 अगस्त से 23 अगस्त तक जगदीशपुर थाना में जो स्वराज्य कायम हो गया। 9 अगस्त को पुलिस ने काँग्रेस कमिटी के सामान के साथ-साथ मंत्री के कुछ सामान को भी जब्त कर लिया था।

काँग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने मंत्री का सामान लौटाने के लिए पुलिस पर इतना जोर डाला कि दूसरे दिन उसे वैसा करना पड़ा। फिर कार्यकर्त्ताओं ने पुलिस इन्सपेक्टर की पिस्तौल छीन ली, जिस पर पुलिस ने इन्द्र कुमार, अली इमाम और वंशीधार को गिरफ्तार कर लिया, किन्तु तीनों को जन समूह ने छीन लिया। इसके बाद जगदीशपुर थाना काँग्रेस के अधिकार में आ गया और श्री रामदयाल पान्डेय थाना के व्यवस्थापक नियुक्त किए गये।[11]

13 अगस्त को बिहियाँ में दोपहर का रेलगाड़ी रोक दी गई। सड़क तोड़ फोड़ दी, रेल पटरी उखाड़ दो के नारे लगाने लगे। गाड़ी में जा रहे अंग्रेजों पर रोड़े बरसाए गए। जवाब में अंग्रेजों ने गोली चलायी जिससे तीन जाने गई और कई घायल हुए।[12] 14 अगस्त को शाहाबाद जिले में फतेहपुर मठिया मिडिल स्कूल के शिक्षक तथा छात्रों ने काँग्रेस कार्यकत्ताओं का साथ देकर तोड़-ोड़ के कामों को आगे बढ़ाया। क्रान्तिकारियों ने नहर ऑफिस के सामान को बरामद कर दिया और उसमें आग लगा दी। वहाँ से वे डाकघर गये और उसकी चीजों को भी जला दिया। फिर उनका धावा शराब की दुकान पर हुआ और बरबाद कर दी गई। वही दल वहाँ से बरूही गया जहाँ के नहर ऑफिस के बंगले पर उसने घावा किया। बंगले के कागजात जला डाले गए और सामान भी बर्बाद कर दिया गया।[13]

बनवारी गाँव के स्कूल के लड़कों का एक दल खूटहाँ पहुँचा और डॉक्टर के कागज पत्रों को जला दिया फिर वहाँ गाँजा, दारू की दूकानों को बरबाद कर दिया। फिर वह दल औवरसियर और नहर तहसीलदार के ऑफिस पहुँचा और लसाढ़ी और वहाँ के आस-पास रहने वालों के तार वगैरह को काट दिया। लसाढ़ी और वहाँ के आस-पास रहने वालों के एक दल ने अगिऑव पहुँच कर डाकघर के सारे कागजात जला दिए। वहाँ खजाना लूट लिया गया और खजाने के रुपया को जला दिया गया। फिर वहाँ गाँजा-दारू की दूकानों को बरबाद करता हुआ चेनारी की ओर बढ़ा और वहाँ के डाक बंगला के समान को नष्ट कर दिया। फिर पुनः अगिऑव के नहर ऑफिस को भी जला दिया गया। कई जगहों पर नहर रोड को काट डाला। लाइन के तार उखाड़ फेका गया।[14]

14 अगस्त को ही पीरो में छात्रों का एक जत्था आया और उसके स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से स्टेशन पर चढ़ाई कर आग लगा दी। पीरो में डाकघर की जीपों को जलाकर खाक कर दिया। नहर के तहसीलदार के कार्यालय को जला डाला गया। आन्दोलनकारियों ने गड़हनी से हसन बाजार तक की आरा सासाराम रेलवे की लाइन कई जगहों पर उखाड फेंकी।[15]

क्रांतिकारियों ने ब्रह्मपुर थाने के रघुनाथपुर स्टेशन पर दो तीन दिनों तक हमला कर बहुत नुकसान पहुँचाया। स्टेशन के टिकट जलाये गये, किवाड़ तथा खिड़कियाँ निकाल दी गई और सामान बरबाद कर दिए गए। पन्द्रह दिनों तक लाइन उखाड़ने और तार काटने का काम होता रहा।

14 अगस्त को बक्सर थाने के बरुना और चौसा आदि स्टेशनों के कुछ सामान और कागजात जला दिए गये। बक्सर डाकघर के कुछ रुपये भी लूट लिए गये। थाने और डाक्टर के सारे कागजात जला दिए गए। इटाढ़ी, चौसा और बक्सर की अबकारी की दुकाने नष्ट कर दी गई।

14 अगस्त को सासाराम में एस.डी.ओ. के ऊपर रोड़ेबाजी कर रहे आन्दोलनकारियों की भीड़ पर पुलिस ने गोली चलाई। कोप में रहने वाले जयराम सिंह यादव ने एक अंग्रेज को लाठी से घायल कर दिया, तभी उसे गोली लगी और वह शहीद हो गया। सासाराम के महंगू पासी, आलमगंज के जगन्नाथ पनेरी पुलिस की गोली से शहीद हो गये।

14 अगस्तम को कुदरा में क्रांतिकारियों ने डाकघर को जला दिया, पुनः कुदरा स्टेशन में आग लगा दी। कुदरा स्टेशन से 17 गाठे कपड़े एवं घी के कुछ टीन लूट लिए गए। इसके बाद क्रांतिकारी रेलवे लाइन उड़ाने में जुट गए। तभी अंग्रेज सैनिकों की पाइलट ट्रेन ने पहुँचकर गोली बरसानी शुरू कर दी, इसमें शहरी गाँव के रामजनम राय तत्काल शहीद हो गए।

15 अगस्त को नासरीगंज में क्रांतिकारियों के एक दल ने नहर ऑफिस के कागजात में आग लगा दी। इसके बाद डाकघर के कागजातों में आग लगा कर डाकघर पर राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया गया। विक्रमगंज से नासरीगंज आने वाली सड़क पर जगह-जगह गढ्ढे खोद कर यातायात को अवरोध कर दिया गया। आबकारी की दुकानों को भी नष्ट कर दिया गया।

15 अगस्त को डेहरी ओन सोन रेलवे स्टेशन पर आन्दोलनकारियों ने बहुत सी चीजों में आग लगा दी। डिहरी के डाकघर पर भी लोगों का घावा हुआ जहाँ कागजात जलाकर खजाने को लूट लिया गया। साठ-सत्तर जगहों पर तार और टेलीफोन का सम्पर्क

छिन्न-भिन्न कर दिया गया। बाँक और करबंदिया के पुल नष्ट कर दिए गए। पहलेजा के पास रेलवे लाइन लगभग एक हजार आन्दोलनकारियों के द्वारा उखाड़ दी गई। वहाँ बाबू कैलाश सिंह ने भींड पर गोली भी चलाई। अकोढ़ी गोला, आयर कोठा में शराब की दुकाने बन्द कर दी गई।[16]

16 अगस्त सेन्ट्रल जेल को तोड़ने की कोशिश हुई। पहले हजारो स्वतंत्रता सेनानियों ने फाटक पर राष्ट्रीय झंडा फहराया, फिर सभी फाटक पर प्रहार करने लगे। भीड पर लाठी चार्ज के परिणाम स्वरूप सैकड़ो को चोट लगी और सबसे अधिक घायल हुए, अहीरौली के स्वामी मनोज्ञानन्द। वे जेल में सात रोज तक बेहोस रहे। पड़री के नर्मदेश्वर सिंह भी काफी घायल हुए। दस व्यक्ति जेल तोड़ने के अपराध में गिरफ्तार हुए।

16 अगस्त को काव के पुल का एह हिस्सा तोड़ा जा रहा था। उस वक्त एक हवाई जहाज ने झपट्ठा मारकर भीड़ को तितर-बितर कर दिया। 16 अगस्त को सशस्त्र घोड़सवार पुलिस सैनिक का एक दल दानापुर से आरा आया, सशस्त्र पुलिस ने अहिरपुरवा मुहल्ला में नहर की सड़क काटते हुए एक भीड़ पर गोली चलाई। उसमें कुछ लोग हताहत हुए। लोगों ने पुलिस पर आक्रमण किया, किन्तु लाठी चार्ज करके उन्हें भी तितर-बितर कर दिया गया। आरा नगर में कर्फ्यू लगा दिया गया। तब भी सदर अनुमंडल में 4 डाकघरों पर आक्रमण हुआ और शाहपुर थाना लूटने की कोशिश की गई। बक्सर में कई सड़कों को क्षतिग्रस्त कर दिया गया, आबकारी की दुकानें नावानगर थाना, नहर इन्सपेक्शन बंगला और केन्द्रीय जेल पर क्रान्तिकारियों ने आक्रमण किया। जेल के बाहरी फाटक को खोलकर भीड़ प्रवेश कर गई किन्तु गोली चलाए जाने पर तितर-बितर हो गई। डुमरॉव थाना के समीप भी पुलिस की गोली से 4 व्यक्ति मारे गये और 18 घायल हुए।[17]

डुमरॉव गोली कांड में शहीद हुए कपिल मुनी कमकर, गोपाल कमकर, रामदास बढ़ई और रामदास सोनार की लाशों को लेकर 17 अगस्त को एक बड़ा जुलुस निकाला। बक्सर के सभी नगर निवासी अर्थी के साथ गए। रामरेखा घाट "अमर शहीद जिन्दाबाद'' के नारे लगाते हुए शहीदों का अंतिम संस्कार किया गया। उसी दिन चार बजे शाम को डुमरॉव थाने पर जनता की क्रुद्ध भीड़ इकट्ठी हो गई। थानेदार और सिपाही थाने छोड़कर भाग खड़े हुए। 18 अगस्त को डुमराँव स्टेशन का माल गोदाम लूट लिया गया।[18]

16 अगस्त को भभुआ के कार्यकत्तोओं ने थाना पर हमला किया। क्रान्तिकारी "इन्कलाब जिन्दाबाद'' का नारा बुलन्द कर रही थी। तभी पुलिस ने गोलियाँ चलानी शुरू कर दी। अनेक घायल हुए और एक क्रांतिकारी अन्तुराम शहीद हो गया। 17 अगस्त को 'पीरो' के कार्यकर्त्ताओं ने कॉलेज के विद्यार्थियों की सहायता से थाना पर हमला कर यहाँ की सामग्री को जलाने के बाद थाने में डाकघर के रखे 1760 रु. ले लिया। पुनः पीरो थाना पर राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया गया।

17 अगस्त को क्रान्तिकारीयों ने जबर्दस्ती पीरो 'जगदीशपुर' बक्सर थाने पर आक्रमण कर तिरंगा लहरा दिया। 17 अगस्त को 'बक्सर' थाने पर भी हमला कर राष्ट्रीय ध्वज फहरा गया। थाने के कागजातों में आग लगा कर काँग्रेसियों ने सात दिनों तक थाने पर अपना अधिकार जमा लिया। 18 अगस्त को 'नासरीगंज' थाना पर चढ़ाई हुई। थानेदार और जमेदार भीड़ के अगुआ श्री राम अशीष सिंह से मिले और सारी बातें जान-बूझ कर उन्होंने आत्म सम्पर्ण कर दिया। आन्दोलनकारियों ने थाने पर झंडा फहराया, जिसका अभिवादन गाँधीटोपी पहन कर दारोगा ने किया। नासरीगंज थाने का दारोगा भी देश शक्ति ज्वार में अपना टॉप फेक चुका था और गाँधीजी तथा आजाद भारत की जय-जयकार मना रहे थे।

18 अगस्त को नोखा थाना को कब्जे में लाने के लिए उस पर बार-बार हमले के पष्चात झंडा फहराने में सफलता प्राप्त की। 18 अगस्त को डिहरी थाना के आन्दोलनकारियों ने चारो तरफ से घेर लिया थाना के अधिकारी बन्दूक और पिस्तौल के साथ आन्दोलनकारियों का मुकाबला करने के लिए आगे आए। आन्दोलनकारियों ने उन्हें अगस्त क्रांति का संदेश दिया और उनसे देश का साथ देने के लिए अपील की। दारोगा साहब मान गए और उन्होंने आन्दोलनकारियों के साथ स्वयं भी झंडातोलन में भाग लिया।[19]

18 अगस्त को पुलिस ने सहसराम में दो बार गोली चलाई, जिसमें कुछ क्रान्तिकारी मारे गये और कुछ घायल हुए। 19 अगस्त को अंग्रेज सैनिकों की एक टुकड़ी ने सरकारी अनुमान के अनुसार 17 व्यक्तियों को गोली मार कर हत्या कर दी। इस दिन भभुआ में भी गोली चली। इससे कुछ लोग हताहत हुए। अगस्त क्रांति के दौरान सम्पूर्ण शाहाबाद में क्रांति की रणभेदी बज उठी जिसमें स्वतंत्रता प्रेमी आर्य समाजियों ने सर्वाधिक योगदान किया। 19 अगस्त को डुमरॉव थाना अन्तर्गत कोरान सरईया में अंग्रेजों के अन्धधुन गोलियाँ चलाई। सुखारी लोहार गोली से मारे गए एवं भिखारी कमकर को बांह में गोली लगने से उनका शरीर बेकार हो गया।[20]

20 अगस्त को डुमरॉव हाईस्कूल के हेडमास्टर पर भी कुन्दा की मार पड़ी। 20 अगस्त को गोरों का एक दल संझौली गया और सड़क मरम्मत करने के लिए लोगों को बुलवाया और उनके नहीं आने पर दो व्यक्तियों को गोली मार कर प्राण ले लिए, इन दो व्यक्तियों के नाम है-गुलजर घोबी और झड़ी महतो ये दोनों व्यक्ति संझौली ग्राम के निवासी थे, जो कि आर्य समाज से काफी प्रभावित थे।[21]

13 सितम्बर को कुरमुरी के मुखिया राजेश्वर के रेडियो द्वारा लसाड़ी के ग्रामीण जनता को सूचना प्राप्त हुई कि 15 सितम्बर को लसाड़ी गाँव का घेराबन्दी गोरों द्वारा किया जाएगा। लेकिन उसकी प्रवाह नहीं करते हुए लोगों ने गड़ास भाला, बरक्षा आदि हथियार पजाकर तैयार किया ओर मरचाई भुन रहे थे, मरचाई को अंग्रेजों के मुँह पर फेका जाएगा जिससे ये अंधा हो जाएगा और हथियार से लड़ा जाएगा। इससे सम्पूर्ण गाँव में एकजुटता दिखाई।[22]

15 सितम्बर को 14 गाड़ियों में सवार होकर अंग्रेज सैनिकों ने लसाड़ी गाँव को सुबह चार बजे घेर लिया और मशीनगन से हवाई फायर करने लगें उन्होंने एक बुढ़े से स्वराजियों के घर का पता पूछा और जब बूढ़ा अनजान बन गया तब सैनिकों ने उसे एक कुएँ में धाकेल दिया। अंग्रेज घर-घर घुसने लगे। सैनिकों ने गाँव की बौखलाई भीड़ पर गोली चलाई जिससे गिरबर सिंह और एक स्त्री की जान चली गई। इसी समय अनगिनत लोग लाठी, भाला, गड़ास और तलवार भाँजते अंग्रेजों से अपने भाई बन्धुओं की हत्या का बदला लेने के लिए आ पहुँचे।

लसाड़ी के पश्चिम मे डुमरिया, बेरथ और रतनगढ के लोग थे, पूरब में वासी बनौली के, सब के सब किसान अपने देश की मिट्ठी के लिए मर-मिटने को तैयार थे। सैनिकों ने भीड़ पर गोलियाँ दागते हुए भीड़ को खदेड़ा और दक्षिण तक पहुँच गए। सैनिक जैसे ही एक घर में घुसे महादेव सिंह ने भाला मार कर तीन अंग्रेज सैनिकों को बुरी तरह घायल कर दिया। ये घायल अंग्रेज सैनिक मरते-मरने वीर महादेव सिंह को गोली से मार कर संगीन से उसके पेट फाड़ डाला। यहाँ तक लसाड़ी के चौकिदार गिरवर सिंह को अंग्रेज सैनिकों ने नहीं छोड़ा। इस प्रकार लसाड़ी गोली कांड में बारह व्यक्ति शहीद हुए।[23] राम कवल सिंह ने ही लसाड़ी गोली कांड का नेतृत्व किये। ये अपने क्षेत्र के आर्य समाज के नेता थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 1942 में क्रिप्समिशन की असफलता के बाद भारत में संवैधानिक गतिरोध का अंत न होने की स्थिति में व्यापक जन असंतोष के परिणामस्वरूप गाँधी जी के नेतृत्व में जिस "अगस्त क्रान्ति" का सूत्रपात किया गय उसका प्रसार भारत के कोने-कोने में हुआ। बिहार पर भी अगस्त क्रांति का व्यापक प्रभाव पड़ा। शाहाबाद जिले ने अपने क्रांतिकारी स्वरूप के अनुरूप "भारत छोड़ो आन्दोलन" में जमकर हिस्सा लिया। शाहाबाद के आर्य समाज ने शाहाबाद में "भारत छोड़ो आन्दोलन" का व्यापक जनांदोलन का स्वरूप प्रदान करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। न केवल शहरों में बल्कि शाहाबाद के दूरवर्त्ती इलाकों में भी क्रान्ति की आग की लपट फैल गई। वृहत पैमाने पर तोड़-फोड़ एवं आगजनी की घटना के कारण शाहाबाद में "भारत छोड़ो आन्दोलन" का स्वरूप बहुत ही हिंसात्मक रहा। वस्तुतः इस समय शाहाबाद की आर्य समाज अपने चरमोत्कर्ष पर थी। ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ो आन्दोलन को कुचलने के लिए जो दमन चक्र चलाया, उससे शाहाबाद भी बुरी तरह प्रभावित हुआ। शाहाबाद में सरकार ने निर्दयतापूर्वक आन्दोलन के दमन हेतु प्रयत्न किए। प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलायी गयी। शाहाबाद जिले के लगभग सैकड़ो आर्य समाजियों को जेल में ठुस दिया गया और सम्पूर्ण जिले में लगभग 79 व्यक्ति शहीद हुए।[24] इसके बावजूद भी शाहाबाद अभूतपूर्व आर्य समाज के बल पर 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में डटा रहा और ब्रिटिश प्रशासन की चिन्ता का विषय बना रहा। इस में आर्य समाजियों का व्यापक योगदान रहा। भारत छोड़ो आन्दोलन में शाहाबाद के आर्य समाज ने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, वह भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगी।

सन्दर्भ

1. टोटेनहम- काँग्रेस रिसपॉनसेबिलिटि फार डिस्टरभेंस (भूमिका भाग)
2. डॉ. कालिकिंकर दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग-3)
3. वइ, बी. माथुर, "भारत छोड़ो आन्दोलन" (प्रगति प्रकाशन, दिल्ली 1979, पृ. 28-30)
4. पी.सी. राय चौधरी- डिस्ट्रीक गजेटियर ऑफ शाहाबाद, (इतिहास अध्याय में उल्लेखित)

5. अखौरी राम नरेश सिन्हा, स्वतंत्रता संग्राम में शाहाबाद का योगदान, पृ. 64-64
6. पूर्वोक्त
7. वयोवृद्ध आर्य समाजी श्री चन्द्रशेखर प्रसाद आर्य द्वारा 11-6-98 को दिया गया वक्तव्य।
8. श्री जित नारायण सिंह, स्वतंत्रता सेनानी द्वारा 20-10-1976 को दिया गया वक्तव्य।
9. डॉ. कालिकिंकर दत्त, बिहार में स्वतंत्र आन्दोलन का इतिहास, भाग-3, पृ. 43
10. प्रोफेसर बलदेव नारायण, अगस्त क्रान्ति, पृ. 65
11. पूर्वोक्त, पृ. 246
12. पूर्वोक्त, पृ. 87
13. पूर्वोक्त, पृ. 87
14. पूर्वोक्त, पृ. 88
15. पूर्वोक्त, पृ. 88
16. प्रोफेसर बलदेव नारायण, अगस्त क्रान्ति, पृ. 91
17. डा. कालिकिंकर दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 92
18. ब्लदेव नारायण, अगस्त क्रान्ति, पृ. 156
19. बलदेव नारायण, अगस्त क्रान्ति, पृ. 157
20. बदलेव नारायण, अगस्त क्रान्ति, पृ. 288
21. उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि संझौली ग्रामीण जनता द्वारा की जाती है, साथ ही बिक्रमगंज अंचल में शिलापट्ठ पर उल्लेखित है।
22. उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि लसाड़ी के ग्रामीण जनता द्वारा हुई एवं आर्यसमाजी रामप्रीत सिंह दिनांक 9-8-98 का साक्षात्कार
23. बदलेव नारायण, अगस्त क्रान्ति, पृ. 289
24. अखौरी राम नरेश सिन्हा– स्वतंत्रता संग्राम में शाहाबाद का योगदान, पृ. 80-83

गुटनिरपेक्षता का वर्तमान समय में प्रासंगिता

नरेन्द्र ठाकुर

एम.ए. (राजनीतिक विज्ञान), नेट (यू.जी.सी.),
सहायक शिक्षक, +2 राजकीय अंबेडकर आवासीय उच्च विद्यालय बक्सर, बिहार

परिचय

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने स्वतन्त्र विदेश नीति का सिद्धान्त देकर और नवोदित देशों को एक मंच उपलब्ध करा कर सैनिक टकराव की दिशा में सम्भावित व्यापक रुझान को रोक दिया और शीत-युद्ध का तनाव कम करने तथा शान्ति स्थापना की दिशा में प्रोत्साहन दिया। आपसी विचार-विमर्श द्वारा समझा-बुझाकर और जोरदार प्रचार करके आन्दोलन ने उपनिवेशवाद उन्मूलन की प्रक्रिया को भी गति प्रदान की। 1960 के बाद यह महसूस किया गया कि राजनीतिक उपनिवेशवाद का तो उन्मूलन हो रहा है लेकिन नव-स्वाधीन राष्ट्र आर्थिक ख्रष्टि से बहुत कमजोर हैं और औद्योगिक देशों पर निर्भर हैं जिससे लगता है कि निर्धन देशों पर धानी देशों की चौधाराहट बराबर बनी हुई है। अत: नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था स्थापित करने की मांग की जाने लगी। अब अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ता के विषय आर्थिक समस्या और पर्यावरण प्रदूषण रोकने की समस्या रह गए। लुसाका और अल्जीयर्स सम्मेलनों में नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का प्रस्ताव रखकर आन्दोलन ने अब विश्व में प्रदूषण की समस्या पर ध्यान केन्द्रित किया है। इससे सिद्ध होता है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन शान्तिपूर्ण, समतावादी विश्व व्यवस्था स्थापित करके विकासशील देशों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के प्रयासों में निरन्तर प्रयास करता है। बाली (इण्डोनेशिया) में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के समन्वय ब्यूरो की बैठक (14-15 मई 1992) में सदस्य देशों ने आशंका व्यक्त की कि पूरब-पश्चिम टकराव की समाप्ति से उत्तर-दक्षिण टकराव शुरू हो सकता है। शीत-युद्ध समाप्ति की परिणति उत्तर-दक्षिण टकराव में हो सकती है अत: बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता और बढ़ गई है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को संस्था का रूप धारण किए पांच दशक से अधिक का समय हो चुका है। उसकी सदस्य संख्या 120 तक पहुंच गयी है, जो इस बात का सूचक है कि इस आन्दोलन का बल और प्रभाव बढ़ रहाहै। प्रासंगिक बने रहने के बावजूद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अपने महत्व व प्रभावी होने की क्षमता को धीरे-धीरे खोता जा रहा है जिसे भविष्य के लिए शुभ संकेत नहीं माना जा सकता है। शिखर सम्मेलन को अब पहले की तरह गम्भीरता से नहीं लिया जा रहा है इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कार्टागेना सम्मेलन में केवल 43 राष्ट्रों के शासनाध्यक्ष सम्मिलित हुए। शिखर सम्मेलन में यह भी देखने को मिलता है कि सदस्यों का एक बड़ा हिस्सा संयुक्त राज्य अमरीका का पक्षधार है तथा उसका पुरजोर विरोध करने के स्थान पर की भाषा में बात करता है। सदस्य राष्ट्रों की इस अमरीका परस्ती के चलते अमरीका के ऊपर अंकुश के रूप में 'नाम' की भूमिका सीमित हो जाती है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक स्थायी तत्व है और राष्ट्रों के अस्तित्व की भांति इसका अस्तित्व और प्रासंगिकता निरन्तर बनी रहेगी। इसका मूल कारण यह है कि गुटनिरपेक्षता का सम्बन्ध विकास शील राष्ट्रों की स्वतन्त्रता, उसको अक्षुण्ण बनाये रखने की आवश्यकता और विकास से है, न कि शीतयुद्ध या उसकी समाप्ति अथवा गुटबद्धता से।

मूख्य शब्द : उपनिवेशवाद, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन, चौधाराहट, शासनाध्यक्ष, पर्यावरण प्रदूषण

गुटनिरपेक्षता का अर्थ

'गुटनिरपेक्षता' शब्द को सर्वप्रथम जार्ज लिस्का द्वारा वैज्ञानिक अर्थ प्रदान किया गया, बाद में अन्य विद्वानों ने इसे अलग-अलग रूप में परिभाषित किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसे पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा व्यवस्थित रूप दिया गया जिसको कर्नल

नासिर तथा मार्शल टीटो ने भी स्वीकार कर लिया। जवाहर लाल नेहरू ने गुटनिरपेक्षता को परिभाषित करते हुए कहा है–"गुटनिरपेक्षता का अर्थ है अपने आप को सैनिक गुटों से दूर रखना तथा जहां तक सम्भव हो तथ्यों को सैनिक दृष्टि से न देखना। यदि ऐसी आवश्यकता पड़े तो स्वतन्त्र दृष्टिकोण रखना तथा दूसरे देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना गुटनिरपेक्षता के लिए आवश्यक है।" स्पष्ट है कि केवल आंख बंद करके विश्व घटनाक्रम को देखते रहना गुटनिरपेक्षता नहीं है। यह सही और गलत में अन्तर करते हुए सही का पक्ष लेने की भी नीति है। गुटनिरपेक्षता का सरल अर्थ है कि विभिन्न शक्ति गुटों से तटस्थ या दूर रहते हुए अपनी स्वतन्त्र निर्णय नीति और राष्ट्रीय हित के अनुसार सही या न्याय का साथ देना। आंख बंद करके गुटों से अलग रहना गुटनिरपेक्षता नहीं हो सकती। गुटनिरपेक्षता का अर्थ है– सही और गलत में अन्तर करके सदा सही नीति का समर्थन करना। जार्ज लिस्का ने इसका सही अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि सबसे पहले यह बताना जरूरी है कि गुटनिरपेक्षता तटस्थता नहीं है। इसका अर्थ है– उचित और अनुचित का भेद जानकर उचित का साथ देना। गुटनिरपेक्षता का सही अर्थ स्पष्ट करने के लिए यह बताना जरूरी है कि गुटनिरपेक्षता क्या नहीं है?

इसके सकारात्मक पहलू-

1. विश्व शांति हेतु कार्य करना।
2. विश्व में स्वतंत्रता के प्रसार को बढ़ाना
3. उपनिवेशवाद की समाप्ति एंव स्वतंत्र राष्ट्रों के उदय कोसमर्थन।
4. राष्ट्र के मध्य सहयोग के दायरे मे विकास करना। उक्त विश्लेशण से स्पष्ट है कि भारत का गुटनिरपेक्षता से क्या अभिप्राय रहा है परन्तु इसके सही अर्थ को लेकर विशेषज्ञों में मतभेद है शायद इसीलिये कई लेखक इसे अलगाव वाद, गैर सम्बद्धता, तटस्थता, तटस्थीकरण, एकलवाद, अहिस्सेदारी आदिधारणाओं से जोड़ते है।

भारत और गुटनिरपेक्षता

1949 में अमेरिकी काँग्रेस ने नेहरू जी ने कहा था कि भारत अपने विदेशी सम्बन्धों में गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन करेगा, लेकिन वह अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति मूकदर्शक बनकर भी नहीं रहेगा। वह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में गुट राजनीति से दूर रहकर भूमिका निभानेको प्राथमिकता देगा। एक गुटनिरपेक्ष देश के रूप में भारत की भूमिका को निम्न प्रकार सेसमझा जा सकता है–

1. कोरिया संकट के समय भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के उस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमें उत्तरी कोरिया को दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण के लिए दोषी ठहराया गया था।भारत ने 1950 के अन्त में संयुक्त राष्ट्र की सेनाएँ जब चीन की तरफ बढ़ने लगी तो भारत ने अमेरिका की आलोचना की। कोरिया संकट के समय भारत द्वार स्वतन्त्र फैसला लेने कीक्षमता को सर्वत्र सराहा गया। युद्ध की समाप्ति के बाद वह तटस्थ राष्ट्रों के प्रत्यावर्तन आयोग का अध्यक्ष भी बन गया। इस युद्ध में उसकी गुट निरपेक्ष देश के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका रही। उसने आक्रमणकारी देश की आलोचना करने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई।
2. उसने 8 दिसम्बर 1951 को जापान-अमेरिका शांति संधि की शर्तो पर आपत्ति करके अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण का ही परिचय दिया, भारत ने इस सन्धि को अन्यायपूर्ण बताकर इस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।
3. भारत ने हिन्द चीन क्षेत्र में 1954 में अमेरिकी हस्तक्षेप की भी निन्दा की। भारत ने विश्व को स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि यह साम्राज्यवाद की पुनः स्थापना का बिगुल है। इससंकट के समाधान के लिए भारत ने जेनेवा समझौते का स्वागत किया और भारत की सकारात्मक भूमिका के लिए प्रशंसा की गई।
4. 1954 में भारत ने 'पंचशील के सिद्धान्तों' का प्रतिपादन करके विश्व में अपनी विश्व शान्ति की स्थापना वाले देश के रूप में भूमिका को सिद्ध कर दिया। भारत को एक शांति प्रिय देश मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई। उसके पंचशील के सिद्धान्तों को विश्व शान्ति के लिए आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

5. भारत ने 1954 में सीटों संगठन की सदस्यता अस्वीकार कर दी। पाकिस्तान इसका सदस्य बन गया। भारत ने इस पर आपत्ति की तो अमेरिका ने उसे आश्वस्त किया कि इससे भारत को कोई खतरा नहीं होगा। एक शान्ति प्रिय देश के रूप में भारत का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। इससे भारत का झुकाव सोवियत संघ की ओर बढ़ गया लेकिन भारत ने सोवियत संघ से कोई औपचारिक समझौता न करके गुट निरपेक्षता की ही नीतिका पालन किया।
6. 1954 में नेहरू जी ने हिन्दी-चीनी समझौते द्वारा अपनी शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीतिको मजबूत आधार प्रदान किया।
7. 1955 में वाण्डुंग सम्मेलन में भारत ने एशियाई अफ्रीकी एकता पर बल दिया। इससे गुट निरपेक्षता को व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। तृतीय विश्व के देशों में एकता के प्रयास तेज हुए।
8. 1956 में स्वेज नहर संकट के समय भारत ने पश्चिमी राष्ट्रों की आलोचना की। उसने इजराइल तथा मिस्र के बीच गाजापट्ठी में अस्थाई युद्ध विराम के लिए संयुक्त राष्ट्र सेना केलिए एक टुकड़ी भी भेजी थी।
9. भारत ने 1956 में ही हंगरी में सोवियत हस्तक्षेप पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की। इससे उसकी गुट निरपेक्षता की कार्यप्रणाली पर आरोप लगाए जाने लगे। आलोचकों ने इसे अवसरवादी नीति कहा।
10. 1960 में कांगों संकट के समय भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रार्थना पर अपनी सेना भेजी। इस तरह उसने विश्व शांति के लिए अपना पूरा सहयोग दिया। उसने अपनी सक्रिय गुटनिरपेक्षता का पालन करके विकसित देशों को अपने प्रति सोचने को विवश कर दिया।
11. भारत ने 1961 के बेलग्रेड सम्मेलन तथा 1964 के काहिरा सम्मेलन में शीतयुद्ध केतनाव को दूर करने के लिए निर्गूट देशों के साथ मिलकर विचार किया। भारत नेगुटनिरपेक्ष आन्दोलन को अंतर्मुखी बनाने का विचार प्रस्तुत किया। इस तरह भारत ने गुटनिरपेक्षता को ही मजबूत बनाने के प्रयास किए।
12. 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के समय गुट-निरपेक्ष देशों से कोई सहायता नहीं प्राप्त हुई। इससे उसकी गुट निरपेक्षता को गहरा धक्का लगा। लेकिन भारत को दोनों महाशक्तियों से ही सहायता प्राप्त हुई। अनेक देश ऐसा विश्वास करने लगे थे कि अब भारत गुटों की राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने लगेगा लेकिन उनका अनुमान गलतनिकला। भारत ने आक्रमणकारी देशों के विरुद्ध शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर सम्बन्धों को सुधारने को प्राथमिकता दी।
13. 1965 में भारत-पाक युद्ध में भारत की गुट-निरपेक्षता की अग्नि परीक्षा फिर से हुई। भारत ने जिस तरह बिना किसी अन्य देश की सहायता के इस युद्ध में विजय प्राप्त की, इसने विश्व को यह दिखा दिया कि भारत के पास एक विश्व शक्ति बनने की योग्यता है।

इस दौरान भी भारत ने अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति का समुचित पालन किया।

14. 1968 में चेकोस्लोवाकिया में हुए विद्रोह को दबाने के लिए सोवियत संघ के हस्तक्षेप की भारत द्वारा आलोचना की जाने लगी। अनेक देशों ने मांग की भारत को इस नीति कात्याग कर ही देना चाहिए।
15. 1971 में भारत-पाक युद्ध में भारत ने पाकिस्तान को करारी मात दी। इस दौरान उसने अगस्त 1971 में सोवियत संघ के साथ एक मैत्री सन्धि भी की। भारत ने इस दौरान गुटनिरपेक्षता को नए सिरे से परिभाषित करके अपनी इस नीति को ओर अधिक सुदृढ़ बनाया। भारत ने कहा कि यह कोई सैनिक सन्धि नहीं है, जिसका युद्ध में प्रयोग किया जा सके।
16. 1977 में भारत में सत्ता परिवर्तन से यह आशा की जाने लगी कि भारत इस नीति का परित्याग करके किसी न किसी गुट के साथ अवश्य शामिल हो जाएगा। लेकिन नई सरकार ने भी अपनी पुरानी नीति को ही व्यापक आधार प्रदान किया।
17. 11 मार्च, 1983 को भारत को गुट-निरपेक्ष आंदोलन का अध्यक्ष बनाया गया, वह लगातार गुटनिरपेक्षता को सुदृढ़ बनाने की दिशा में कार्य करता रहा। 1990 में शीत युद्ध की समाप्ति पर इसकी प्रासांगिकता पर प्रश्न चिन्ह लग गया। लेकिन भारत आज भी गुटनिरपेक्ष देश के रूप में एक सक्रिय भूमिका निभा रहा है। भारत ने 2002 में अफगानिस्तान में अमेरिका द्वारा की गई आतंकवादी विरोधी कार्यवाही पर मिली-जुली प्रतिक्रिया की। आज भी भारत इस नीति को मजबूत बनाने के लिए निरन्तर प्रयासरत है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुटनिरपेक्षता का महत्व

गुटनिरपेक्षता विश्व राजनीति में राष्ट्रों के लिए एक नए विकल्प के रूप में निश्चय ही स्थायी रूप धारण कर चुकी है। इसने विशेषत: राष्ट्र समाज के छोटे-छोटे और अपेक्षाकृत कमजोर सदस्यों के सन्दर्भ में, राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और समता बनाए रखने में योग दिया है। इसने विश्व के पूर्ण धुंवीकरण को रोककर, विचार धारागत शिविरों के विस्तार को और प्रभाव को संयत करके तथा गुटों के अन्दर भी स्वतन्त्रता की शक्तियों को प्रोत्साहन देकर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने तथा उसे बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योग दिया है। इसने संयुक्त राष्ट्र संगठन के भीतर और बाहर दोनों जगह बहुत-से कल्याणकारी क्षेत्रों में, जैसे कि उपनिवेशों को स्वतन्त्र कराने, प्रजातीय समता को साकार करने तथा अल्प-विकसित देशों के आर्थिक विकास के क्षेत्र में बहुत बड़ा योग दिया है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ के दो-तिहाई देश गुटनिरपेक्षता के दायरे में आ चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न मंचों से गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने विश्व-शान्ति, उपनिवेशवाद के अन्त, परमाणु अस्त्रों पर रोक, नि:शस्त्रीकरण, हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करना, नयी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के निर्माण, आदि विषयों पर संगठित रूप से कार्यवाही की है और सफलता हासिल की है। यह भी प्रश्न किया जाता है कि आज गुटनिरपेक्षता का क्या औचित्य रह गया है। गुटनिरपेक्षता की सार्थकता द्वितीय विश्व-युद्ध के-बाद शीत-युद्ध वातावरण में तो थी, किन्तु पिछले 15-20 वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बहुत सारे परिवर्तन हुए हैं। मसलनशीत-युद्ध का अन्त हो चुका है, सोवियत संघ का विघटन हो चुका है, पूर्वी यूरोप के देशों में साम्यवाद को कब्र में दफनाया जा चुका है, वारसा पैक्ट भंग कर दिया गया है, नाटो की भूमिका में परिवर्तन आ रहा है जर्मनी का एकीकरण हो चुका है। सभी प्रमुख शक्तियों के बीच एक-दूसरे के प्रति सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हैं। अमरीका और रूस मिलकर अंतरिक्ष स्टेशन का संचालन कर रहे हैं और नाभिकीय ऊर्जा पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को उन्होंने नया आयाम दिया है। अमेरिका और चीन के बीच 300 अरब डॉलर का व्यापारहै। रूस वर्तमान समय में पश्चिमी यूरोप, चीन और जापान के लिए ऊर्जा के प्रमुख आपूर्तिकर्त्ता के रूप में उभरा है। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि आखिर किसके खिलाफ गुट निरपेक्ष देश अपनीगुट निरपेक्षता प्रदर्शित करेंगे? गुटनिरपेक्षता का उदय शीत-युद्ध के सन्दर्भ में हुआ था और आज शीत-युद्ध के अन्त हो जाने के कारण गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अप्रासंगिक हो गया है। आर्थिक दृष्टि से समृद्ध राष्ट्रों के गुट उभरकर स्वयं ही प्रतिस्पर्द्धाकर लेंगे और इससे विकासशील राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और हितों को खतरा पहुंचेगा। इस खतरे को नियन्त्रित करने के लिए उत्तर-दक्षिण सम्बाद को बनाए रखने में दक्षिण-दक्षिण सहयोग और नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बनाने के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन और जी-77 को एक होकर कार्य करना होगा। आज निम्नलिखित क्षेत्रों में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता नजर आती है:

- नव-औपनिवेशिक शोषण का विरोध किया जाए।
- नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की पुरजोर माँग करना।
- आणविक निरस्त्रीकरण के लिए दबाव डालना।
- दक्षिण-दक्षिण सहयोग को प्रोत्साहन देना।
- एक-ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमरीकी दादागिरी का विरोध करना।
- विकसित और विकासशील (उत्तर-दक्षिण संवाद) देशों के बीच सार्थक वार्ता के लिए दबाव डालना।
- संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन के लिए दबाव डाला जाए ताकि बड़े राष्ट्र प्रस्तावित पुनर्गठन के लिए राजी हो सकें यानीउनके 'वीटो' परिषद् की सदस्यता में पर्याप्त प्रयोग की जासके या महासभा को और अधिकार दिए जा सकें।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध मुख्य रूप से गुटनिरपेक्षता, गुटनिरपेक्ष आंदोलन उसका बदलता स्वरूप एंव वर्तमान प्रांसगिकता से संबन्ध रखता है। इस क्रम में यह कहा जा सकता है कि गुटनिरपेक्ष शब्द का विभिन्न अर्थो में प्रयोग किया गया है। इस शब्द का 1945 के पश्चातवर्ती काल में प्रादुर्भाव हुआ, पश्चिमी देशों में अक्सर तटस्थवाद शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है ओर इन्ही दोनो शब्दो की सहायता से ही गुट निरपेक्षता को समझने की कोशिश की जाती रही है। इसका कारण संभवत यह है कि पश्चिमी दशों को केवल तटस्थता

का ही अनुभव है। इसलिये वो गुटनिरपेक्षता को तटस्थता का एक प्रकार समझते रहे है। भारत ने नवोदित राष्ट्रों की स्वतंत्रता एंव विकास में सहयोग दिया। परमाणु शक्तियों के शोषण से बचाव करने का प्रयास किया। तृतीय विश्व के देशों के लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया। नई आर्थिक विश्व अर्थव्यवस्था के प्रयास किये। और आर्थिक विश्व व्यवस्था की स्थापना पर बल दिया। इसका प्रमुख कारण यही रहा कि जब तक इन देशों में भूख, गरीब, बेकारी व बीमारियाँ रहेगीं तब तक एक स्थाई व समता व न्याय पर आधारित विश्व की स्थापना नहीं की जा सकती। अत: विशेषकर 1970 के दशक से ही नई आर्थिक विश्वव्यवस्था के प्रयास आरंभ्भ हो गये थे। शीत युद्धोत्तर युग में भारत ने ही निरन्तर इसको बचाया, व यह तर्क दिया कि भारत का मानना है कि अब इस संगठन की प्राथमिकताओं को बदलने की आवश्यकता है जब तक तीसरी दुनिया की मूलभूत समस्याऐं बनी रहेगीं, इस संगठन का महत्व बना रहेगा। अत: स्पष्ट है कि भारत ने इस आंदोलन को विश्वव्यापी स्वरूप प्रदान करने में विशिष्ट कार्य किया। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नही है कि अंर्तराष्ट्रीय राजनीति को भारत की यह एक विशिष्ट देन है।

संदर्भ-सूची

1. या, बी. एल., "अन्तरर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धान्त एवं मुख्य मुद्दे," साहित्य भवन, 2010
2. घई, यू.आर. (1) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", (2) "भारत की विदेश नीति" जालंधर, 2008
3. जैन, बी. एम., "प्रमुख देशों की विदेशी नीतियां" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1996-97
4. जौहरी, जे. सी., "विश्व राजनीति के बदलते आयाम" जालन्धर, 2008
5. पंत, पुष्पेश और जैन, श्रीपाल, "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1997-2007
6. अग्रवाल एवं पनसानिया, "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध नवीन परिप्रेक्ष्य", आस्था प्रकाशन, जयपुर, 2010
7. देव बाला, शान्ति, "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धान्त", उत्तरप्रदेश, हिन्दी सस्थान, 1997
8. फडिया बी. एल. "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धान्त व मुख्य मुद्दे" आगरा 2010
9. ग्हलोत बी. सिंह "भारत की विदेश नीति" अर्जुन पब्लिक हाउस, नई दिल्ली 2004
10. जौहरी जेसी "विश्व राजनीति के बदलते आयाम" जालन्धर 2008
11. मोरगेन्थ्यू हंस जे, "राष्ट्रों के मध्य राजनीति" हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ 1976
12. पंत, पुष्पेश और जैन, श्रीपाल, "प्रमुख देशों की विदेश नीतियाँ", मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1996-2005
13. पंत, पुष्पेश और जैन, श्रीपाल, "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1996-2007
14. पाण्डे, दिनेशचन्द्र, "द्वि-ध्रुवीयता मे गुट- निरपेक्षता", भाग-1 व भाग-2, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, 1991
15. न्यू स्टेटमैन, लन्दन 68 (1751), 2 अक्टूबर 1964 पृ. 418
16. एम0एस0 राजन, गुटनिरपेक्षता: भारत और भविष्य, पृ. 77-82
17. डॉ. वेदप्रताप वैदिक: भारतीय विदेश नीति: नए दिशा संकेत, पृ. 123

गुरुमुखी लिपि एवं ब्रजभाषा में रचित पंजाब का अल्पज्ञात कृष्ण काव्य (भाई गुरदास पुस्तकालय में सुरक्षित पांडुलिपियों का संदर्भ)

डॉ. सुनीता शर्मा

सहायक प्रोफेसर, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, पंजाब

पंजाबी भाषा की विशिष्टता इसी में है कि वो गुरुमुखी लिपि में लिखी जाती है। गुरुमुखी लिपि की उत्पत्ति 'टक्क' लिपि से मानी गई है। दसवीं शताब्दी में डुग्गर क्षेत्र के टक्क राज्य में 'टाकरी लिपि' का प्रयोग डोगरी भाषा के लिए आरंभ हुआ और उस समय यह लिपि कश्मीर, डुग्गर और पंजाब के समस्त क्षेत्रों में प्रयोग होने लगी। धीरे-धीरे इसका रूप संशोधित हुआ और अपने संशोधित रूप में यह कश्मीर में 'शारदा लिपि' कहलाई। पंजाब में टाकरी का विकृत रूप 'लंडे' अक्षरमाला के रूप में चला। 'लंडे लिपि' में लिखते समय स्वर चिह्न अकसर छूट जाते थे इसलिए 16वीं शताब्दी में गुरु अंगद देव जी ने नागरी लिपि से कुछ स्वर चिह्न लिए और लंडे के वर्णों का संशोधन कर 'गुरुमुखी' लिपि बनाई जो आज पंजाबी की लिपि है। मध्यकाल में दरबारों का प्रचलन होने के कारण राजाओं के आश्रय में इस लिपि ने खूब विकास किया। दरबारों में रहने वाले हिन्दी कवियों ने राजाओं की रूचि और प्रसन्नता को देखते हुए अपनी कृतियों की रचना के लिए ब्रजभाषा को गुरुमुखी लिपि में प्रस्तुत किया। इसलिए समस्त दरबारी गुरुमुखी में मिलता है। तद्युगीन रचित विपुल पांडुलिपियां भाषा विभाग, पटियाला, केन्द्रीय पुस्तकालय पटियाला, साधुराम आश्रम पुस्तकालय, होशियारपुर, सिख रैफरेन्स पुस्तकालय, अमृतसर, गुरु रामदास पुस्तकालय, अमृतसर, भाई गुरदास पुस्तकालय, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर तथा अन्य कई निजी पुस्तकालयों में संग्रहित हैं। इन कृतियों के विषय राज्याश्रय और राज्य महिमा के साथ-साथ राम और कृष्ण भक्ति से भी संबंधित हैं।

भारतीय जनमानस के समान ही पंजाब के कवियों को भी राम और कृष्ण की अद्भुत लीला ने प्रभावित किया। रामायण और महाभारत दोनों की कीर्ति की अक्षुण्णता पंजाब में आरंभ से ही बनी रही। कृष्ण भक्ति के अंतर्गत पंजाब में भागवत के प्रचलन के संकेत 11वीं 12वीं शताब्दी से मिलते हैं। 12वीं शती में गीतकार जयदेव के प्रपितामह पुजारी पण्डित गिरधारी लाल ने पुत्रोत्पत्ति के लिए 'श्रीमद् भागवत' का पारायण किया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में बद्दौकी, गुजरांवाला में भागवत दर्शन को अपनाकर 'गोसाई मत' की स्थापना हुई और पंजाब के कई स्थानों पर इसके डेरे स्थापित हुए। इसी प्रकार धीरे-धीरे रामायण और महाभारत कथात्मक एवं लीलात्मक रूप में पंजाब की विचारधारा में आच्छादित होती रही जिसका परिणाम पंजाब में कृष्ण संबंधी रचित विपुल साहित्य है। कृष्ण काव्य की प्राचीनता के संदर्भ में डॉ. मनमोहन सहगल का कथन है- "पंजाब के ऐतिहासिक स्थानों, स्त्री-पुरुषों, पर्वोत्सवों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं कमें कृष्ण-कथा की संज्ञाएं एवं व्यावहारिक पक्ष बहुत दूर तक व्याप्त हैं। अत: इसी नाते पंजाब के साहित्य में कृष्ण-काव्य के संयोग को भी उसी समय से स्वीकार किया जा सकता है, जब से व्यास मुनि ने 'महाभारत' का प्रणयन किया था।" कृष्ण चरित्र ने पंजाब के कवियों को इतना प्रभावित किया कि कृष्ण के पूर्ण जीवन व उनके जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंग भी कवियों की लेखनी के विषय बने। पंजाब के इन कवियों ने कृष्ण चरित के लिए कृष्ण लीला के अतिरिक्त श्रीमद्भगवत पुराण व श्रीमद् भागवत गीता का अनुवाद व टीकाएं लिखकर कृष्ण जीवन को समग्रत: को पंजाब वासियों तक पहुँचाने के प्रयास किए। पंजाब के कवियों द्वारा रचित समग्र कृष्ण काव्य को इस आरेख के द्वारा समझा जा सकता है-

लीलात्मक कृष्ण काव्य

श्रीमद् भागवत पुराणाधारित कृष्ण काव्य

श्रीमद् भागवत् गीताधारित कृष्ण काव्य

प्रमुख जीवन प्रसंगों पर आधारित कृष्ण-काव्य

सुदामा-कृष्ण मैत्री

प्रसंग

रुक्मिणी-कृष्ण

विवाह प्रसंग

गोपी उद्धव

संवाद प्रसंग

रासलीला प्रसंग

होली

प्रसंग

राधाकृष्ण प्रेम प्रसंग

पंजाब में रचित कृष्ण-काव्य

पूर्ण जीबनाधारित

कृष्ण काव्य

1. लीलात्मक कृष्णकाव्य

इसके अंतर्गत कृष्ण जीवन से सम्बन्धित लीला को पंजाब के कवियों ने मौलिक कृतियों में लिपिबद्ध किया है। इन रचनाओं में कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित करते हुए कुछ कवियों ने उनके जन्म से लेकर द्वारका गमन तक के प्रसंगों को महाकाव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जबकि कई रचनाआकरों ने खण्डकाव्यों के रूप में उनक जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को लेखन का आधार बनाया। पंजाब में रचित इन काव्य-ग्रंथों की सूची निम्नलिखित है-

पूर्ण जीबनाधारित कृष्ण काव्य		
कृष्णावतार	-	गुरु गोबिंद सिंह
कृष्ण कौतूहल	-	साहिब सिंह मृगेन्द्र
कथा किष्ण चन्द्र जी	-	सोढी मिहिरबानु
ब्रजचरित्र	-	चरणदास
श्रीकृष्ण साहित्य सिंधु	-	अमीरदास
रास विलास	-	हरिदास गुप्त
क्रस्म औतार	-	नंदलाल

प्रमुख जीवन प्रसंगों पर आधारित कृष्ण-काव्य		
राधाकृष्ण प्रेम प्रसंग		
खग मंजरी	–	गंगाराम
गीत गोबिंद	–	ऋतह चंद
राधा माधाव	–	बुधा सिंह
राधा माधाव	–	हरिराम निरंजनी
सुदामा-कृष्ण मैत्री प्रसंग		
सुदामा चरित्र	–	हृदय राम भल्ला
सुदामा चलित्र	–	साहिबदास
सुदामा मंगल	–	जातिदास
सुदामा चरित्र	–	उमादास/भवानीदास
सुदामा चलितरि	–	साधुजन
सुदामा चरित	–	सुदामा जी की बाराखड़ी
रास प्रसंग		
रास विलास	–	रामदास मिश्र
रास मण्डल	–	बाबा रामदास
रास मण्डल लीला	–	साहिब सिंह मृगेन्द्र
होली प्रसंग		
फाग पचीसी	–	आचार्य अमीरदास
वृंदावन शतक	–	चन्द्रशेखर वाजपेयी
गोपी उद्धव प्रसंग		
संवाद ऊधो तथा गोपियाँ	–	मस्तराम
स्नेह लीला	–	मोहनदास
गोप चलित्र	–	घनैया
रुक्मिणी कृष्ण विवाह प्रसंग		
रुक्मिणी मंगल	–	बाबा रामदास
रुक्मिणी मंगल	–	जातिदास
रुक्मिणी मंगल	–	हृदय राम भल्ला
रुक्मिणी मंगल	–	गुलाब कवि
स्याम स्नेही	–	आलम
रुक्मिणी मंगल	–	निहाल

रुक्मिणी मंगल लीला बिनोद	–	नवीन कवि
रुक्मिणी मंगल	–	चंदू राम
रुक्मिणी मंगल	–	छज्जू लाल
द्रोपदी चीरहरण प्रसंग		
द्रोपदी चरित्र	–	बाबा रामदास

2. श्रीमद् भागवत पुराणाधारित कृष्ण काव्य

दशम स्कन्धा	–	कवि निहाल
भागवत के ग्याहरवें	–	चतुरदास
स्कन्धा का अनुवाद		
भागवत दशक स्कन्धा	–	कृस्मदास

3. श्रीमद् भागवत् गीताधारित कृष्ण काव्य

गोविंद गीता	–	कृष्ण लाल
परमानंद प्रबोध	–	आनंदराम

इस प्रकार पंजाब के रचित कृष्ण काव्य की एक दीर्घ परंपरा व विस्तृत सूची मिलती है। प्रस्तुत शोध लेख कृष्ण जीवन से सम्बन्धित अल्पज्ञात पांडुलिपियों पर आधारित है गुरु नानक देव विश्वविद्यालय में भाई गुरदास पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस पुस्तकालय के पांडुलिपि विभाग में कृष्ण से सम्बन्धित लगभग बाईस पूर्ण एवं खंडित पांडुलिपियां मिलती हैं। इनमें कृष्णाष्टकम्, श्रीकृष्णलीलामृतं, नागिन कृष्ण संवाद, रुक्मिणी मंगल, पूतना विर्धन, गोप चरित्र, अरजनगीता, गीता भाष्य, सुदामा जी की बाराखड़ी, सप्तश्लोकी गीता, चतुश्लोकी भागवत, अवधूत गीता, शेष विरंच गीता, भीष्म स्तवराज स्तोत्र, गजेन्द्र मोक्ष आदि शीर्षक लिए हुए हैं। गुरुमुखी लिपि में रचित इन दुर्लभ अल्पज्ञात कृष्ण संबंधी पांडुलिपियों का परिचय निम्नलिखित है–

1. क्रस्म औतार: नंदलाल (MS 694-ग): उक्त पांडुलिपि चार रचनाओं का संग्रह है जिनमें से पहली विक्रम अवतार शरणं दूसरी 'जनक सगाई' का 'क्रस्म औतार' तथा अन्तिम 'राम महिमा' शीर्षक से है। पांडुलिपि में दोनों ओर से लिखे गये सैंतालीस पृष्ठ हैं। जिल्द का आकार 2१14 स.मी. है जबकि पृष्ठों का आकार 1912 स.मी. है। लेखनार्थ कवि ने काली और लाल स्याही का प्रयोग किया है। हर वर्ण अलग-अलग लिखा गया है जिसे शोधर्थी को जोड़कर पढ़ना पड़ता है। जनक सगाई में कवि ने रचना काल सवत् ङ्कद्धद्धछ्ठ, माघ महीना लिखा है। 'क्रस्म औतार' अठठाईस पृष्ठों की रचना है जो संग्रह के पृष्ठ सत्रह से चवालीस तक चलती है। पृष्ठ पुराने पड़ चुके हैं। रचना के अंत में कवि का नाम नंदलाल मिलता है यथा- **'लिखत हरसेवग नंदलाल'।** पंजाब के साहित्येतिहासों में नंदलाल नाम के तीन चार कवि मिलते हैं उक्त कवि का समय, रचना शैली, लिपि तथा भाषा उसे गुरु गोविंद सिंह का दरबारी कवि सिद्ध करती है इन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह के दरबार में रहते हुए 'दीवान-ए-गाथा', 'जीत विकास', और 'जंगनामा' आदि कृतियों की रचना की जो ज्ञात हो चुकी हैं। 'क्रस्म औतार' उनकी अल्पज्ञात पांडुलिपि है। इसकी भाषा और लिपि भी इनके पंजाबी भाषा ज्ञान को संकेतित करती है।

रचना की विषयवस्तु कृष्ण जन्म से लेकर कंस वधा तक चलती है। वीनायक एवं चण्डी स्तुति से रचना का आरंभ कर कवि ने लिखा है कि वह कान्ह अवतार की कथा सुना रहा है और फिर इसके सुनने का महत्व भी बताया है यथा-

"कन्हु औतार की कथा सुनैहै सौ बैकुंठे वासा लेही।।
किश्र कंस का कहु वलाती।। सौ निरमन्न भा गोत पुराणं।।"

वसुदेव-देवकी के विवाह से कथा आरंभ करते हुए कवि ने लिखा है कि विदाई के अवसर पर आकाशवाणी सुनकर कंस उन

दोनों को विदा न कर कारावास में डाल देता है। स्वरक्षा हेतु वह उन दोनों के सात बालकों को मार डालता है। कृष्ण जन्म पर उसे पता चलता है कि कन्या का जन्म हुआ है तो वह क्रोधित होकर पंडित को ही घर बुला लेता है और उस पर गलत भविष्यवाणी का आरोप लगाता है ज्योतिशी पुनः मुहूर्त साधा कर विश्वासपूर्वक कहता है:

''जै कन्या जऐै देवकी नारि। तौ अपरै हाथै गरदन मारै।।
हमारो जोउल सांचो होयो। सुत जायो तस कर ले गयो।।
विप्र कहे कोइ क्षलवल भयो।। बालक निहचै गोकल गयो।।"

उक्त पांडुलिपि की भाषा पंजाबी लिए ब्रज भाषा है पर लिपि में देवनागरी के साथ गुरुमुखी वर्णों का प्रयोग हुआ है। कवि की यह रचना संवादात्मक शैली में है तथा सभी पात्र गुरुमुखी लिपि तथा पंजाबी भाषा के हैं। जैसे- करूर ज्वचै, कन्हुवां उवाचै, कंस उवाचे, क्रहन ज्वाचे, सिरी क्रिष्ण ज्वाचै, राधारानी ज्वाचै आदि।। ए, ख, उ, श्री आदि वर्णों के लिए पंजाबी के ल, ञ, सिरी, कृष्ण के लिए क्रिहम, क्रह्म, कन्हुवां, क्रिश्र आदि शब्दों का प्रयोग किया है जो कवि के गुरुमुखी ज्ञान का संकेत करता है। इसके अतिरिक्त- 'कुख' (गर्भ) 'राये' (राजा) लाठी (वखान) 'गोत' (गोत्र) 'औतार' (अवतार) आदि पंजाबी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी सराहनीय है।

2. भागवत दशम स्कन्धा भाषा : कवि कृस्मदास (कृष्णदास डै.695) पांडुलिपि के 182 पृष्ठ हैं। जिल्द का आकार 2924 स.मी. है जबकि लिखित पृष्ठों का आकार 2018 स.मी. है, पृष्ठ के दोनों ओर लाल स्याही से हाशिया खींचा है। प्रत्येक पृष्ठ में 20 पंक्तियाँ हैं और रचना में कुल नब्बे अध्याय हैं। कृति पर रचनाकाल संवत् ङ्क्ष्ट्व0ल्ल दिया है। पांडुलिपि का आरंभ माघ मास की नवमी तिथि को तथा समाप्ति चैत्र मास की दशमी तिथि को हुई है। जैसे- **''संवत ङ्क्ष्ट्व0ल्ल चेत्रवदि दशमी चंद्रवासरा लिज़्यंत लक्ष्मनदास भणेत गोते मध्य पउनार्थ भगवानदास।"** कथा के आरंभ और अंत में ही कवि का नाम कृस्म दास (कृष्णदास) मिलता है। जबकि लिपिकार लक्ष्मणदास है जिसने भगवानदास के पठनार्थ इसका लिप्यंतरण किया है। ऐसा लगता है कि कृति की रचना किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए की गई है।

रचना का आरंभ गणेश वंदना से करते हुए- **"अथ भागवत दशम स्कंद भाषा कृस्म दास कृति लिख्यते''** कवि ने स्वयं के विषय में बताया है कि पहले वह निर्गुण विचारधारा से सम्बन्धित था पर अब सगुणवादी हो गया है। जैसे-

ह्दो मति घट महि परसपर बोलत एक समान।
इक गावै गुण स्याम के इक वर्जे सुर ज्ञान।।"

इस कृति की यह विशिष्टता है कि इसमें कृष्ण स्वयं अपने अवतार का कारण उस अनंत प्रभु की आज्ञा बताते हैं यथा:

''आज्ञा भई अनंत की मानु धारों शरीर।
जदुकुल महि अवतार धारसकल उतारो पीर।।"

कवि द्वारा कृष्ण जन्म का यह प्रसंग गुरू गोबिन्द सिंह के विचित्र नाटक से प्रभावित है क्योंकि गुरु गोबिंद सिंह भी कहते हैं कि यह कीट उस अनंत प्रभु की आज्ञा से ही इस जगत में अवतार लेता है। तत्पश्चात् कृष्ण लीला के विविध प्रसंगों जैसे बचपन में अनेक राक्षसों का वधा करने के पश्चात् कृष्ण का मथुरा आना, कंस वधा तत्पश्चात् द्वारका प्रस्थान और फिर कृष्ण-अर्जुन का संवाद व अंततः सूर्य ग्रहण के अवसर पर सभी यादववंशियों का कुरुक्षेत्र में एकत्र होना आदि पर प्रकाश डाला है। यथा:

''सूर्य ग्रहण जगत महि आयो।। जोत कीयां कहि प्रगटि सुनायो।।
हरि कहियो कुरुक्षेत्र जाहिं।। करहि दानु सति कर्म कमाहि।।"
''चली सभो ही यादव जाति। तिनि सो सैना नाना भांति।।
प्रधाम्न आदि हरिपूत सुजान। तिन वी जीवन श्री भगवान।।"
''चले क्षेत्र को श्री भगवान।। चले राम जी पुर्ल पुराना।।

चले पिता वसुदेव महान।। हरि के पूत चले सुद ज्ञान।।"

इस अवसर पर कृष्ण द्वारा सब व्रजवासियों को उपदेश देने के साथ ही कवि रचना का अंत करता है।

रचना की भाषा ब्रज है जिस पर पंजाबियत का प्रभाव है। दोहा-चौपाई शैली में रचित इस कृति में कवि ने सिठनियों का समावेश भी किया है जो विवाहादि के अवसर पर वधु पक्ष की ओर से वर-पक्ष को दी जाती हैं और पंजाब की संस्कृति की यह विशिष्टता है। गेय शैली में रचित यह पांडुलिपि भागवत् के दशम स्कन्धा से प्रभावित होने पर भी कवि की मौलिकता की परिचायक है।

3. श्री भगवते महापुराण दसम स्कन्धा : कृहमदास (डै.1037 ड.): पांडुलिपि के अंतर्गत संग्रह की पांचवीं पन्द्रह पृष्ठों कृति है। जिल्द का आकार 12ग16 स.मी. है जबकि पृष्ठों का आकार 8ग13 स.मी, है लिखाई साफ एवं पठनीय है। रचनाकार का नाम कृहमदास (कृष्णदास) है यह कवि सिंधा क्षेत्र के रहने वाला था जो आजकल पाकिस्तान में है रचना के आरम्भ में कवि ने स्वयं को सिंधा क्षेत्र का निवासी बताया है यथा-

"षीरसिंधा वासी सुषरासी सदा विगासी किर्पा करो।।
वासदेव लील्हा जो कीनी सो हमारे घर माह करो।।"

कृति की रचना श्रीमद् भगवत पुराण के दशम स्कन्धा को आधार मानकर की गई है।

गणेश स्तुति से पांडुलिपि का आरंभ करते हुए उस परम पुरुषोत्तम को भी स्मरण किया है और रचना के महात्म्य पर प्रकाश डाला है। इस रचना की यह विशिष्टता है कि इसमें कृष्ण अपने जन्म का उद्देश्य बताते हुए कहते हैं कि अंनत प्रभु की आज्ञा से ही मैंने जदुकूल में अवतार लिया है यथा-

"वानी भई अंनत देव की जद्कुल में औतार धारों।।
दृष्ट संघार उधारो सभ जन जग में परम आनंद करो।।"

कृष्ण अपने अवतार ग्रहण से पूर्व देवताओं को धारती पर अवतरित होने की आज्ञा देते हुए कहते हैं-

"सभी देव जदकुल में पृगटो पृगट हमारी टहल करो।
हौं होवो देवकी सुत नंदन चलो वचन ले सीस धारो।।"

वसुदेव-देवकी के विवाह अवसर पर आकाशवाणी और फिर दोनों को बंदी बनाना और फिर देवकी की अष्टम संतान के जन्म पूर्व प्रभु द्वारा उन्हें साक्षात् दर्शन देकर यह कहना कि आपके गर्भ से मेरा जन्म आपके तप का ही परिणाम है आदि ऐसी घटनाएं हैं जो कथा को गति देती हैं। तत्पश्चात ब्रज में कृष्ण लीलाओं पर संक्षिप्त रूप प्रकाश डालते हुए अक्रूर का ब्रज में आना और कृष्ण को लेकर जाते समय यमुना स्नान और स्नान करते हुए कृष्ण दर्शन प्रसंग भी बहुत ही प्रभावशाली बन पड़ा है। सर्वज्ञ होते हुए भी कृष्ण अक्रूर से पूछते हैं-

"प्रभु बोले क्यु चकत चाचा जी कछु देषयो जलमांही।
जन बोले तुम पूज जगत के तुम तें ऐ अचरज नांही।।"

तत्पश्चात् कंस वधा उद्धव का ब्रज आना, मथुरा को त्याग कर कृष्ण का द्वारका में बस जाना आदि प्रसंग इतने चित्रात्मक ढंग से वर्णित है कि पाठक के सम्मुख फिल्म का सा दृश्य आ जाता है। जैसे सुदामा प्रसंग का उदाहरण प्रस्तुत है-

"संत सुदामां प्रभु कीसर्न दुआर्का माह गया।
सचुखा लोक ते सुंदर अत ऊँचे द्वुज को ग्रह प्रभ दान किया।।"

कृष्ण द्वारा सभी राजाओं को भयरहित कर व्रजवासियों के साथ कुरुक्षेत्र में सबका मिलन व सबको याद करते हुए कृष्ण का पुनः द्वारका आना भी विशेष महत्व रखता है जैसे-

"गोपी भूप विदया सभ कीने तब ही हरि पुन फिर आए।
बीच दुआरका आन विराजे नारद हरि के जस गाए।।"

अंत में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

"बहम्न के बालक सब आने अरजन की कीरत कीनी

जल करोडा तीया संग पुन माधो वह विधा कीनी।।"

इसके साथ ही कवि ने रचना के अंत में प्रेम भक्ति के विकास हेतु प्रार्थना की है यथा- **"कृहमदास की यही याचना प्रेम भगती वधाती जाये॥"**

भाषा-लिपि की दृष्टि से उक्त पांडुलिपि सरल ढंग से दोहों में लिखी गई है देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हुए भी पंजाबी लहजा अपनाया गया है। गुरुमुखी लिपि का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है पूर्ण दशम स्कंन्धा को एक फिल्म की तरह पाठकों के सम्मुख रखा है कृष्ण का पूर्ण जीवन सहसा चित्र पट की तरह आँखों के आगे आ जाता है।

4. गोप चलित्र : कवि घनैया (डएैण 576 क) रचना की जिल्द का आकार 1423 स.मी. है जबकि पृष्ठों का आकार 11.518 स.मी. है। कवि घनैया द्वारा रचित चार पांडुलिपियों का संग्रह इस ग्रंथ में है। देसी कागज पर लाल स्याही से हाशिया बनाकर कवि ने लेखनार्थ काली स्याही का प्रयोग किया है। संग्रह की पहली रचना 'गोप चरित्र' है जबकि अन्य तीन रचनाओं में 'पावसरुत', 'मुकरनी' तथा 'पटियाला दरबार की महिमा' आती है। 'गोप चरित्र' छः पृष्ठ छियालीस पदों की रचना है जिसका रचना काल संवत् *f‹f*0 है।

कवि घनैया के जीवन संबंधी सूचनाएं साहित्येतिहासों में केवल कहीं-कहीं नाम के रूप में ही मिलती है पर इस पांडुलिपि के आधार पर पता चलता है कि कवि घनैया पटियाला के महाराज नरिंद्र सिंह के दरबारी कवि एवं पंडित थे जैसे- **"ग्रंथ गुरु भगवत कथा प्रिथम पहर करकार, श्री महाराज नरिंद्र सिंघ धारमनीत दरबार"** कवि ने इस ग्रंथ में महाराज नरिंद्र सिंह का यशोगान तो किया ही है इसके साथ ही उसके समकालीन राजाओं, पूर्वजों तथा पड़ोसी राजाओं की सूचना भी दी है।

कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित इस रचना का आरंभ चण्डी स्तुति से होता है। चार पदों में चण्डी का स्तवन करने के पश्चात् कवि ने 'गोप-चरित्र लिख्यते' से कथा का आरंभ किया गया है और कृष्ण कथा ऊधो के ब्रज पहुँचने के साथ आरंभ होती है। जैसे-

ऊधो जी ब्रिज आइ के गयो यशोदा धाम।

चरणवंदना निज करी कहो किस्ण प्रणाम।। दोहा।।

उद्धव के वहां पहुँचने पर माँ यशोदा कृष्ण के खानपान एवं सुख सुविधाओं की चिंता व्यक्त करते हुए उद्धव से पूछती है-

"अब कौन गईआ दोवतो कौन देतो छाछ।

कौन माखन की चाट देते कौन दधामाट।।"

यशोदा उद्धव के सामने सारी कृष्णलीला को याद करती है और रोती है। यशोदा को दिलासा देने के पश्चात् जब उद्धव गोपियों के पास आता है तो वह गोपियों के साथ खड़ी राधा को योग की विभूति देने के बहाने कृष्ण का पत्र देता है-

"कंज काली मन मोहिनी ललत वसाला साथ।

वटुया दीओ भवूत को पाती दीनी हाथु।। दोहा।।

राधा कृष्ण को संदेश भेजते हुए कहती है केवल गोप-गोपियां ही नहीं गोकुल की गईयां भी घास नहीं खाती, बछड़े दूध नहीं पीते मोर भी वन में नाचते नहीं हैं। इस पांडुलिपि की यह विशिष्टता है कि उद्धव से योग शिक्षा सुनने के पश्चात् अंततः अपने प्रेम की दृढ़ता स्पष्ट करती हुई गोपियां भी कृष्ण को पत्र लिख भेजती हैं और कहती है-

"गोपी पाति लिख दई, दई द्वारका भेज।

वृजवालन के रिदै मैं सरगुण ब्रह्म हमेज।। दोहा ।।"

अंत में रचना का महत्व बताते हुए लिखा गया है-

"गोपचलित्र विचित्र को पढ़े सुने चितलाई।

ताको कार्य श्री क्रिस्म करे सद मनुलाई। दोहा ।।"

भाषा एवं लिपि-प्रस्तुत पांडुलिपि की भाषा ब्रज है जिसके साथ बहुत से गुरुमुखी लिपि के वर्ण भी प्रयुक्त किए है जिससे गुरुमुखी में रचना करने का आभास मिलता है यथा- कवि के लिए 'कव' कविता के लिए 'कवता' आदि कवि के गुरुमुखी प्रेम की ओर इंगित करते हैं। कवित और दोहा छन्द की इस रचना में कवि ने जो विरह के प्रभावशाली चित्र खींचे हैं।

5. स्नेह लीला : श्री मोहनदास (MSG- 46 घ) : संग्रह की चौथी रचना है जो पृष्ठ 47 से 57 तक चलती है। रचना का आकार 1614 स.मी. है जबकि पृष्ठों का आकार 1111 स.मी. है। लेखनार्थ काली स्याही का प्रयोग किया गया है तथा पूर्ण विराम एवं रचना के आदि अंत के लिए लाल स्याही का प्रयोग हुआ है। पृष्ठों के ऊपर-नीचे कालीलाल स्याही के फूल दार बार्डर बने हैं जबकि चारों ओर लाल स्याही का हाशिया बना है। एक सौ पच्चीस पदों वाली इस पांडुलिपि के अंत में कवि का नाम श्रीस्वामी मोहनदास मिलता है यथा- "इति श्री स्नेह लीला श्री मोहनदास कृत संपूर्ण।।" जबकि रचना स्थान मुजफ्फरनगर मिलता है। इस पांडुलिपि का लिपिकार मिश्र अनूपराय है जिसने मुजफ्फरनगर में इसे लिपिबद्ध किया। रचना में श्री स्वामी मोहनदास ने श्री मुकंद दास को स्मरण किया है यथा- **"श्री मुकंद भने मधुप्रजा सकल संत अनुराग।"** इससे यह भी लगता है कि उक्त पांडुलिपि की रचना सम्प्रदाय विशेष के लिए की गई है।

रचना की विषयवस्तु उद्धव के ब्रज जाने से लेकर स्नेहलीला के महत्व पर समाप्त होती है। कथा का आरंभ गणेशवदंना के पश्चात् **"अथ स्नेह लीला लिख्यते।"** से होता है तथा सीधो रूप से कथाआगे बढ़ाते हुए कवि ने लिखा है-

"एक समै ब्रजवास की सुरति करी हरिराय।।
निज जन अपनो जानि के ऊधो लिया बुलाय।।"

कृति यह विशिष्टता है कि इसमें कृष्ण उद्धव को अपने वस्त्र किरीट मुकुट पहनाने के पश्चात् अपने ही रथ पर ही ब्रज भेजता है यथा-

"बागो अपने अंग को किरीट मुकट पहिरानि।
श्री कुंडल माला इर्द अपनो वेणु वषानि।
अह अपनो रथ साजि कै संग सारथी दीन्ह।
ऊधो चरन प्रणाम करि रथ आरोहन कीन्हा।। "

ऊधो द्वारा गोपियों को समझाने पर गोपियाँ अपने जन्म का कारण बताती हुई कहती हैं-

"देह धारी जा कारनै लगिये जाके काम।
मन वरया रस सौ भयो नहीं योग सौ ठाम।।"

अंतत: गोपियों से प्रभावित होकर ऊधो भी कृष्ण स्तृति करते हैं और अन्त में मथुरा आकर कृष्ण को ब्रज की सारी स्थिति से परिचित करवाता है तब कृष्ण अपना गोपी प्रेम और अपने जन्म का उद्देश्य बताते हुए कहते हैं-

"तब हरि ऊधो सौ कहै जानत हौ सब अंग।।
मैं कबहूं छोड़ा नहीं ब्रज वासिन को संग।।"
ह्ब्रज तजि अंत न जाय हौं मेरे तोय हु टेक।।
भूतल भार उतारि हौ धारि हौ रूप अनेक।।"

भाषा-लिपि की दृष्टि से प्रस्तुत पांडुलिपि ब्रजभाषा में लिखी गई है। सारी रचना दोहा छंद में है। लिपि देवनागरी है शैली संवादात्मक है। सारे प्रसंग में कवि की मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। जैसे ऊधो को ब्रज भेजने का कारण, गोपियों के जन्म का उद्देश्य, कृष्ण अवतार का लक्ष्य तथा स्नेह लीला नामकरण की विशिष्टता आदि स्थल दृष्टव्य हैं।

6. रुकमनि मंगल लीला बिनोद: नवीन कवि (डैण 933): प्रस्तुत हस्तलिखित पांडुलिपि की मोटाई 1.2 स.मी. और जिल्द का आकार 10ग6स.मी. है। पृष्ठों का आकार 9.7 स.मी. और 5.5 स.मी. है। देसी कागज पर काली स्याही से साफ व स्पष्ट लिखा

है। छन्द, शीर्षक तथा विशेष कथन लाल स्याही से लिखे गये हैं। रचना के कुल 86 पृष्ठ तथा 490 दोहे हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर पंक्तियों की संख्या 12 से 17 तक है। कृति के अंत में कवि ने पुनः गणेश वंदना करके ईश्वरीय कृपा का गुणगान किया है। इसकी दोहा संख्या एवं अध्याय संख्या देखकर लगता है कि यह 'रुकमनि मंगल लीला बिनोद ग्रंथ' का एक अंश है जिसे कवि ने स्वयं 'रुकमनि मंगल' शीर्षक के अंतर्गत रखा है जैसे कि पांडुलिपि के अध्याय समाप्ति से भी पता चलता है:-

"इति श्री लीला बिनोद ग्रंथे आदी रुकमनि मंगल नृपबंस वर्णन रुकमनि बाललीला बरनन उनीसओधयाय।"

प्रस्तुत पांडुलिपि का रचनाकाल रचना में कहीं स्पष्ट नहीं होता अपितु जिल्द पर इस का रचनाकाल संवत् *f*‹„0 और सन् *f*Š^… दिया गया है। कथा में किसी शासक अथवा महत्वपूर्ण व्यक्ति का संकेत मात्र भी नहीं है जिससे समय का कोई अनुमान लगाया जा सके पर रचना की लिपि के वर्णों की बनावट देखकर हम इसका समय निर्धारण करने में कुछ सफल होते हैं जैसे- 'ञ' वर्ण की संरचना। यह वर्ण 19वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखा जाने लगा था अतः प्रस्तुत कृति का रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी का ही हो सकता है।

कृति की जिल्द पर रचनाकार का नाम 'नवीन' कवि वृंदावन अंकित है। इससे कवि का पूर्ण परिचय नहीं मिल पाता। विषयवस्तु में नवीन कवि का नाम एक दो स्थानों पर इस प्रकार मिलता है- "छंदगिध नवीन कृत" तथा 'पुन नवीन कृत सवैये। जैसे कि अंकित नाम के साथ लिखा गया है नवीन कवि वृंदावन, इसके अनुसार लगता है कि कवि वृंदावन का रहने वाला है पर कृति की भाषा उसे पंजाबवासी बताती है क्योंकि पंजाबी शब्दावली के साथ गुरुमुखी लिपि भी अपनाई गई है। अतः यह अनुमान भी है कि नवीन कवि वृंदावन का रहने वाला होगा और रीतिकालीन कवि आलम के बुलाने पर वृंदावन से पंजाब आ गया होगा क्योंकि कृति में आलम की 'श्याम स्नेही' का प्रसंग भी आया हैं जैसे-

"आलम स्याम सनेही की मोपे कही न जाय।
पठे सुने जो को कथा मनवांछित फल पाय।।"

कृष्ण कथा से संबंधित इस कृति की मुख्य घटना रुक्मिणी विवाह की है जिसे कवि ने विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से दर्शाया है। कथा का आरंभ राजा भीखमसेन द्वारा वंशवृद्धि हेतु शिव-पार्वती की आराधाना से होता है। शिव के आशीर्वाद से राजा के चार पुत्र तथा पुत्री रुक्मिणी का जन्म होता है। अल्प समय में गुरु से ज्ञान प्राप्ति कर वह अपनी सखियों सहित राजा को गौरी मंदिर बनाने के लिए प्रेरित करती है। उसकी सखी उसके मन में कृष्ण के प्रति आकर्षण पैदा कर देती है तो रुक्मिणी नित्यप्रति गौरी मां से कृष्ण प्राप्ति की प्रार्थना करती है। उसे शादी योग्य देखकर उसके पिता कृष्ण को रुक्मिणी के लिए योग्य कर जानकर द्वारका पुरोहित को तिलक लेकर भेजते हैं पर उसका बड़ा भाई रुक्म कृष्ण को गौएं चराने वाला कहकर अपने मित्र शिशुपाल को रुक्मिणी के योग्य जानकर चंदेर नगरी टीका भिजवाता है। यह समाचार प्राप्त कर रुकिमणी ब्राह्मण द्वारा पत्र भिजवाकर कृष्ण को कुंदनपुर बुलवा लेती है। गौरी पूजा हेतु गई रुक्मिणी का कृष्ण अपहरण कर लेता है। शिशुपाल, दंतब्रक, दमघोष, जरासंधा तथा स्वयं रुक्म कृष्ण को रोकते हुए युद्ध करते हैं और पराजय का मुख देखते हैं। तब राजा भीखमसेन स्वयं कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह कर एवम् समुचित दहेज देकर द्वारका के लिए विदा करते हैं। यथाः पुनः सूर्य ग्रहण के पर्व पर कृष्ण कुरुक्षेत्र जाते हैं। कृष्ण के वहां जाने का समाचार सुन सभी राजा, पांडव तथा ब्रजवासी भी वहीं पहुंच जाते हैं। सबसे मिलने के पश्चात् कृष्ण रुक्मिणी को राधा से परिचित करवाते हैं। ग्रहण के अवसर पर सभी राजा कृष्ण की स्तुति कर अपने-अपने राज्यों को लौट जाते हैं और गणेश स्तुति के साथ ही कथा का अंत होता है।

"गज हये महि खरू गोधान जोई।। भाजन मुखन वसतर सोई।।
विविध भांत का दाज जो कीना।। सोसभ रुकमणि संगहु दीना।।"

भाषा एवं लिपि की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो गेयता से परिपूर्ण इस पांडुलिपि की भाषा मूलतः ब्रज है पर पंजाब प्रांत में रहने के कारण कृति पर पंजाबी का प्रभाव भी है। यद्यपि कवि ने ब्रज भाषा और देवनागरी लिपि का प्रयोग किया है तो भी पंजाबी शब्द तथा गुरुमुखी लिपि भी कई स्थानों पर मिल जाती है। पंजाबी भाषा के प्रभावातंर्गत राजा भीष्मसेन को भीखमसेन, कुंवर को कंउर, अमृत को अंवृत, कृष्ण को क्रीसन, कृहम, कृन्स शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ विशेष वर्णो की सरंचना हेतु देवनागरी

के स्थान पर गुरुमुखी को ही अपनाया है जैसे: उ के लिए ज, ड के लिए अ, ख के लिए ल, झ के लिए ड, आदि। पंजाबी रूप देते हुए 'सिंहासन' को 'संघासन', 'ध्वजा' को 'दुजा', 'आभूषण' को 'भुखन', 'सरस्वती' को सारसुती, देत वखत आदि के साथ-साथ पंजाबी शब्द दाज, मिलती, साला, दहना, कंगना, धानुष, फंवारों आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। विश्लेषण करने पर यह शब्दावली कवि की बहुज्ञता को तो स्पष्ट करती ही है साथ ही ऐसा लगता है कि कवि अपनी रचना को पंजाब प्रदेश में रहते हुए पंजाबी गुरुमुखी रूप देने में सफल हुआ है।

7. **श्री सुदामा जी की वारालरी : रचनाकार अज्ञात (MS 1159 ट)** संग्रह की ग्यारवीं दस पृष्ठीय पांडुलिपि। हर पृष्ठ पर काली एवं संतरी स्याही से हाशिया बना है। लिखित पृष्ठों का आकार 12×7 स.मी. हैं। पैंतीस दोहों की इस रचना की लिखाई साफ एवं सुन्दर इस पांडुलिपि की यह विशिष्टता है कि इसमें 'क' से लेकर 'ह' तक एक व्यंजन के साथ एक दोहा लिखा है जैसे-

"जजा जयों जगतपति ईसा।। जाकों धयावे सुर तैंतीसा।।"

तथा

"ददा देखन ही को जग व्योहारा।। माया जाल बधयो संसारा।।"

और

"भभा भोलेमन समझावौ।। जामै भवजल फिरि नहीं आवै।।
ऐसी भक्ति करो मन मोरा।। जासे जरा मरन होय न तोरा।।"

दोहों में लिखी गई इस रचना में गेय, लय और तुकांत शैली का प्रयोग हुआ है। इसमें ज्ञान-गुणों का वर्णन किया गया है तथा मानव को आत्मा परमात्मा का भेद बताते हुए गुरु के महत्व का परिचय दिया है।

प्रादेशिकता

गुरुमुखी लिपि का प्रयोग करने पर भी इन कवियों के प्रदेश विशेष के उच्चारणगत प्रभाव को भी देखा जा सकता है। पंजाब में पंजाबी के दो तीन रूप मिलते हैं और इन दोनों तीनों रूपों के दर्शन इस पांडुलिपियों में मिल जाते हैं जैसे कवि नंदलाल की 'क्रस्म औतार' की भाषा पूरा पंजाबी का प्रभाव लिए हुए हैं: **"कन्हु औतार की कथा सुणेहे सौ बैकुठे वासा लेहे।"** तथा **"ईत लग जात कहा तेरो जाय''** आदि तथा कवि घनैया की भाषा उसे पटियाला क्षेत्र की मलवई पंजाबी सिद्ध करती है जैसे **"वृजवालन के विरै मैं सरगुण ब्रह्म हमेज॥"** जबकि कवि माधोदास की भाषा का उच्चारण लहजा उसे लाहौर में बोली जाने वाली पंजाबी की सिद्ध करती है यथा- **"मात कुसल्या हरलया देले राजा राम''**

इतिहासकारी

कृष्ण संबंधी रचनाकार कृतियों की रचना करते हुए भी तत्कालीन इतिहासकारी का भी जटिल प्रयास कर रहे थे जैसे माधोदास अपनी रचनाओं के माध्यम से एक ओर संवत् में महाराज दलीप सिंह के राज्य का वर्णन कर रहे हैं तो दूसरी ओर राजा की पत्नी व्याल देवी तथा अपने समकालीन कवि प्रहलाद का संकेत भी दे रहे हैं इसी प्रकार कवि घनैया संवत् में पटियाला सिंहासन पर महाराज नरेन्द्र सिंह के आसीन होने का संकेत दे रहे जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक बैठता है। फिर कवि नंदलाल गुरु गोबिंद की शासन प्रणाली का संकेत करते हैं जैसे- **"ग्रंथ गुरु भगवत कथा प्रिथम पहर फरकार, श्री महाराज निरंद्र सिंह, धारमनीत दरवार॥"** किसी न किसी तरह इन कृतियों के माध्यम से उक्त कवि अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पालन भी कर रहे थे और सम्प्रदाय के विकास हेतु रचना भी कर रहे थे।

सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवेश का चित्रण

इन पांडुलिपियों के अध्ययन से पंजाब के सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश का पता भी चलता है जैसे नवीन कवि का रुकिमणी मंगल में कन्या के विवाह पर उन सब रीतियों का पालन किया गया है जो पंजाब में स्त्रियों द्वारा सम्पन्न की जाती है। दाज देने

की प्रथा, विवाह के समय पंजाब में सयानी स्त्रियों को वैवाहिक गीत गाने के लिए बुलाया जाता है। विवाह संबंधी सभी रीतियों के उपलक्ष्य में वो गीत गाती है। रुक्मिणी के विवाह में भी यह कार्य किया जाता है यथा- **"नगर नार सेयानी भली।। गावत गीत बधाई चली।।"** इसी प्रकार पंजाब के धार्मिक वातावरण का भी पता चलता है कि पंजाबवासी यदि स्वयं वीर एवं साहसी थे तो उन्होंने अपने धार्मिक नेताओं राम एवं कृष्ण में भी उन गुणों को देखा है और उनका गुणगान भी अपनी कृतियों में किया है।

ओजगुण प्रधान काव्य

क्योंकि पंजाब मध्यकाल में निरंतर युद्धों के कारण संघर्षशील संस्कारों का प्रदेश रहा है इसलिए कवियों पर भी इस संघर्ष का प्रभाव परिलक्षित होता है जिसके कारण इन कवियों ने कृष्ण के ओजस्वी और प्रेमापरक काव्य की रचना की है। इस क्षेत्र में लिखे जाने वाले कृष्ण काव्य में युद्ध प्रसंगों का चित्रण अधिक मिलता है। यह युद्ध प्रसंग कृष्ण-कंस, कृष्ण-जरासंधा, रुकम, शिशुपाल-कृष्ण तथा कंस द्वारा भेजे जाने वाले दैत्यों जो कृष्ण को समाप्त करने के लिए आते हैं उनके साथ दिव्य युद्धों की प्रस्तुति है। इसके अतिरिक्त गोवर्द्धन धारण तथा कालीय दमन भी वीरता के उद्‌बोधक रचनाएं हैं।

श्रद्धा-भक्ति व प्रेम की प्रधानता

कृष्ण भारतीय जनमानस की तरह पंजाब वासियों की असीम श्रद्धा का उत्स है। भक्ति का आधार है, प्रेम की व्यापकता का अंश है। समग्र गुणों से सम्पन्न कृष्ण के माध्यम से कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के गुणों का गान किया हैं वे अपने आश्रय दाता में कृष्ण के समान औदात्य स्वरूप का चित्रण करते हैं ताकि प्रजाजनों की श्रद्धा एवं आस्था आश्रयदाता में बनी रहे।

निष्कर्षत

कहा जा सकता है कि कृष्ण का चरित्र जहाँ कवियों की मनस चेतना को उर्वरा बना रहा था वहीं पंजाब में कृष्ण भक्ति धरा की अजस्र धारा को भी प्रवाहित करता था। कृष्ण के दिव्य चरित्र में एक ओर तो पंजाबी समाज का मार्गदर्शन किया दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलूओं ने तत्कालीन कवियों को इतना प्रभावित किया कि मध्यकाल एवं आरम्भिक आधुनिक काल में अपार संख्या में लिखी गई कृष्ण चरित्र संबंधी यह पांडुलिपियाँ लिखी गईं। कृष्ण काव्य के संदर्भ में सत्यपाल गुप्त का कथन है- "हमें यह लिखते हुए विशेष गौरव होता है जहाँ इस प्रदेश के कवियों ने श्री कृष्ण चरित, बाल लीला और रास लीला को अपना विषय बनाया है वहाँ गीता और भागवत जैसे महान ग्रंथों की रचना कर अपनी कृष्ण भक्ति का परिचय दिया है।"

संदर्भित ग्रंथ

1. डॉ. मनमोहन सहगल, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : पंजाब का संदर्भ, दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 1985, पृ. 220.
2. क्रस्म औतार: नंदलाल (MS 694-ग), पांडुलिपि सैक्शन, भाई गुरदास पुस्तकालय, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।
3. भागवत दशम स्कन्धा भाषा : कवि कृस्मदास (कृष्णदास MS 695), वही।
4. श्री भगवते महापुराण दसम स्कन्धा : कृहमदास (MS 1037 M.), वही।
5. गोप चलित्र : कवि घनैया (M.S. 576 क), वही।
6. स्नेह लीला : श्री मोहनदास (MSG- 46 घ), वही।
7. रुकमनि मंगल लीला बिनोद: नवीन कवि (MS 933), वही।
8. श्री सुदामा जी की वारारी : रचनाकार अज्ञात (MS 1159 ट), वही।
9. सत्यपाल गुप्त, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, अम्बाला : अग्रवाल प्रकाशन, 1984, पृ. 137.

भारत-बांग्लादेश का मित्रवत संबंध एवं व्यापार: एक राजनीतिक विश्लेषण

अवधेश कुमार सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, देशबंधु कॉलेज विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

भारत और बांग्लादेश का संबंध एशिया महाद्वीप का सबसे जटिल द्विपक्षीय रिश्ता है, जो 1971 से उसकी आजादी के बाद से चला आ रहा है। 1972 में यद्यपि शांति एवं मित्रवत की संधि के बावजूद कभी भी दोनों देशों को अपने संबंधों के बेहतरीनता के लिए कभी भी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ी, लेकिन दशकों से पुरानी भूमि विवाद, जल, अवैध प्रवास और सीमा सुरक्षा संबंधी मामले लंबित हैं, यद्यपि की वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने दोनों देशों के बीच जल संसाधन, शिक्षा, तटीय निगरानी और युवा मामले समेत संस्ख्रति क्षेत्र में समझौते किए हैं, इससे दोनों देशों को मजबूती भी मिली है। तथा ऐसा विश्वास किया जा रहा है कि भविष्य में भी रिश्ते की प्रगाढ़ता बरकरार रहेगी।

प्रस्तावना

1947 ईस्वी में भारत विभाजन के फलस्वरुप बांग्लादेश पूर्वी पाकिस्तान के रूप में पाकिस्तान का एक अंग घोषित किया गया लेकिन 17 दिसंबर 1971 ईस्वी को बांग्लादेश के नाम से यह के सार्वभौम स्वतंत्र देश घोषित हुआ।यद्यपि1971 से वर्तमान समय तक भारत और बांग्लादेश के बीच द्विपक्षीय व्यापार साझी विरासत, भाषा, संस्ख्रति तथा साथ ही क्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्दे हमेशा से एक दूसरे में सदाबहार मित्रता की झलक को दर्शाया है। भारत और बांग्लादेश की सीमा की लंबाई करीब 4096.7 किलोमीटर है जो अन्य पड़ोसी देशों की अपेक्षा सर्वाधिक है। शेख मुजीबर्रहमान (1971-75) ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से 25 वर्षीय मैत्री एवं शांति संधि के अलावा अन्य कई विशेष मुद्दे लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, राष्ट्रवाद तथा एक दूसरे का समर्थन एवं सहयोगात्मक रवैया पर हस्ताक्षर किए गए फिर 1972 के बाद से ही द्विपक्षीय व्यापार की शुरुआत हुई।

शेख मुजीब के बाद मुस्ताक अहमद और बाद में अबु सादत मोहम्मद सलेम दो तनाशाह सरकार का कार्यकाल (1975 से 90 ईसवी) के दौरान कई बार तख्ता पलट, हत्या, लूट, भ्रष्टाचार के दौर से गुजरी। यद्यपि कई सारी नई पार्टियां बनती रही और बिगड़ती रही लेकिन उनकी कार्यशैली में कोई भी परिवर्तन स्पष्ट नजर नहीं आया तथा साथ ही 1977 ईस्वी के बाद से जनरल रियाऊर रहमान ने सत्ता पर जैसे काबिल हुआ उसने भारत के खिलाफ रणनीति बनाने लगा तथा साथ ही बांग्लादेश को इस्लामीकरण करने पर जोर देने लगा इसके साथ ही वह अपने संबंधों की प्रगाढ़ता चीन, अमेरिका और दूसरे मुस्लिम देशों से बढ़ाने लगा। ध्यान देने योग्य बात है कि जनरल जिया उसी पाकिस्तान से उसने मित्रवत व्यवहार बनाना चालू किया एवं 1976 ईस्वी में गंगा नदी जल विवाद शुरू हुआ जिसमें उसने नेपाल को भी शामिल करना चाहा। लेकिन भारत पूर्णत: मना कर दिया बाद में उसने स्कूल मुददे् को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले रोया इससे दोनों देशों के रिश्ते में दरार उत्पन्न होने लगा।

बेगम खालिदा जिया (1991 से 96 ईसवी) के शासनकाल के दौरान बांग्लादेश में भयंकर तूान ने तबाही मचाई तब भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री चंद्रशेखर ने सहायता की। फिर पी.वी. नरसिम्हा राव प्रधानमंत्री बने तो संबंधों में प्रगाढ़ता बढ़ो और अन्य

आवश्यक दैनिक वस्तुओं की व्यापार में अग्रणी भूमिका बढ़ी। इसके बाद शेख हसीना (1996 से 2000 ईस्वी) के कार्यकाल में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री इंद्र कुमार गुजराल एवं एच डी देवगौड़ा प्रधानमंत्री बने जिन्होंने दोनों देशों की मौलिक वस्तुएं की द्विपक्षीय व्यापार पर जोड़ देने पर सहमति बनी। फिर भारत में चुनाव हुआ और एनडीए के जीत के बाद सरकार बनी प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेई बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना तथा बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने आपस में बैठकर महत्वपूर्ण बिंदुओं पर चर्चा किए बातचीत के दौरान दोनों देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर आम सहमति बनी यद्यपि यह ध्यान भी देने योग्य तथ्य है कि इसके साथ ही साथ उन्होंने द्विपक्षीय क्षेत्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय मामलों मामलों पर भी विस्तार पूर्वक चर्चा हुई और अन्य महत्वपूर्ण समझौता हुआ।

बेगम खालिदा जिया (2001 से 2006 ईस्वी) के कार्यकाल में तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी ने पड़ोसी जोड़ों नीति पर काम किया लेकिन बेगम खालिदा जिया का झुकाव चीन एवं पाकिस्तान पर कुछ ज्यादा ही रहा बांग्लादेश में इस समय इस्लामीकरण पर विशेष बल दिया जाने लगा और अल्पसंख्यक हिंदुओं पर हमले किए जाने लगे जिसके कारण वहां के हिंदुओं ने भारत पलायन करने लगी। इससे क्षुब्धा भारतीय सरकार ने कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर रुकावट उत्पन्न करने लगी। भारत-बांग्लादेश संबंध के बीच व्यापार असंतुलन सीमा विवाद, जल विवाद अवैध घुसपैठ, उग्रवादी, हिंदू विरोधी कार्यवाही मुख्य विवादास्पद कारण बने रहें। सन 2007-08ई. के बीच बांग्लादेश में कार्यवाहक सरकार बने जो अपने कार्यकाल में विशेष सहयोगात्मक रुख नहीं अपनाया। और फिर शेख हसीना 2009 से वर्तमान समय के दौरान भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह लगातार दूसरी बार प्रधानमंत्री की शपथ ली जिन्होंने पड़ोसियों से मित्रवत व्यवहार रखने पर विशेष बल दिया। भारत में 2014 ईस्वी में चुनाव हुए और यहां के सरकार में बदलाव हुआ फिर नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने, शपथ के दौरान ही सार्कके सदस्यों को बुलाकर इन्होंने यह साबित करने का प्रयास किया कि पड़ोसी राष्ट्रों से संबंधों में मजबूती लाएंगे।

राजनयिक संबंध

भारत बांग्लादेश में वर्तमान समय में 36 द्विपक्षीय दस्तावेजों पर समझौता हुआ है, जिसमें मुख्य रुप से असैन्य परमाणु ऊर्जा, उच्च तकनीक, अंतरिक्ष सूचना प्रौद्योगिकी, रक्षा क्षमता निर्माण आदि शामिल है।

रक्षा संबंध

सुरक्षा की दृष्टि से दोनों देशों के बीच अद्वितीय संबंध है। सर्वोच्च स्तर पर बांग्लादेश के नेतृत्व ने आश्वासन दिया है कि भारत को किसी भी दृष्टिकोण से नुकसान पहुंचाने के लिए बांग्लादेश की भूभाग का इस्तेमाल करने की इजाजत किसी भी कीमत पर नहीं दी जाएगी। इस लिहाज को ध्यान में रखते हुए 2011 में ही समन्वित सीमा प्रबंधन योजना (सी.बी.एम.पी.) दोनों देशों के बीच आम सहमति बनी। समन्वित सीमा प्रबंधन योजना का उद्देश्य सीमा पार से गैरकानूनी गतिविधियों और अपराधों के नियंत्रण के लिए दोनों देशों के बीच हमेशा संतुलन बना रहेगा।

आर्थिक संबंध

भारत बांग्लादेश के रिश्ते में निरंतर द्विपक्षीय व्यापारको लेकर संतुलन बना रहता है। 2016-17 में भारत द्वारा बांग्लादेश को निर्यात का मूल्य 4489 मिलियन अमेरिकी डॉलर था जबकि बांग्लादेश से आयात का मूल्य 672 मिलियन अमेरिकी डॉलर था। 2017-18 में दोनों देशों के बीच कुल व्यापार में 19% की वृद्धि दर्ज की गई। साफ्टा और आफ्टा के तहत बांग्लादेश को डड्यूटी में पर्याप्त छूट प्रदान की गई। इसके अलावा अन्य मदों को दरकिनार करके भी कई नकारात्मक सूची को हटा दिया गया तथा साथ ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2 बिलियन अमेरिकी डॉलर ऋण देने की घोषणा की, जिसकी सहायता से सड़क, रेलवे, विद्युत, जहाजरानी, सेजद्धैर्म्द्ध स्वास्थ्य, चिकित्सा क्षेत्र के साथ-साथ शिक्षा क्षेत्र में भी सुधार की परियोजनाएँ शामिल होगी।

संयोजकता कनेक्टिविटी

भारत-बांग्लादेश सीमा पर 38 से अधिक लैंड कस्टम स्टेशन है, जिनके माध्यम से सड़क मार्ग से सामानों की आवाजाही होती है। अंतर्देशीय जल व्यापार पर प्रोटोकॉल सन 1972 से ही लागू है। ढाका-कोलकाता, ढाका-अगरतलाढाका-शिलांग-गुवाहाटी के

बीच बस सेवाओं की भी शुरुआत हो गई है। कोलकाता और ढाका के बीच एक यात्री ट्रेन सेवा मैत्री एक्सप्रेस शुरू की गई है दोनों देशों के बीच राष्ट्रीय एयरलाइंस तथा कुछ निजी एयरलाइंस ढाका-चटगांव-नई दिल्ली कोलकाता एवं मुंबई के बीच अपनी सेवाएं प्रदान करती है।

भारत-बांग्लादेश के बीच विवादित विभिन्न मुद्दे

सीमा विवाद-सुरक्षा संबंधी दृष्टिकोण से देखें तो भारत की सीमा के साथ करीब 4351 किलोमीटर की भूमि बांग्लादेश से लगी हुई है जिससे भारत के विभिन्न राज्यों की सीमाएं लगी है जिनमें पश्चिम बंगाल, असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्य जुड़े हुए हैं। पोरस बॉर्डर को अक्सर भारत से बांग्लादेश तक खाद्य वस्तुएं, मवेशी, औषधियों और दवाइयों की तस्करी के लिए एक मार्ग के रूप में उपयोग किया जाता है। बांग्लादेश हजारों अवैध अप्रवासियों ने पिछले कुछ वर्षों में रोजगार की तलाश और अपने जीवन निर्वाह के लिए भारत सीमा में आए हुए हैं।

शरणार्थी समस्या-1971 के पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा पूर्वी पाकिस्तान परढ़ाये जूल्म के कारण लगभग 1500000 की संख्या में बांग्लादेशी शरणाथीयों ने भारत के विभिन्न राज्यों में शरण ली है इसी कारण वर्तमान असम सरकार अवैध प्रवासियों के चलते असम में एनआरसी लागू किया है जिसमें लगभग 1900000 लोगों को बाहर कर दिया गया है। यदि गृह मंत्रालय की रिपोर्ट पर गौर करें तो पाएंगे कि लगभग 40,000 रोहिंग्या शरणार्थी भारत में अवैध रूप से रह रहे हैं। भारत सरकार ने तो म्यांनमार सरकार से रोहिंग्या शरणार्थियों को वापस लेने की अपील भी की है इसके अलावे भारत और बांग्लादेश सीमा पर कटीली तारों को लगाने का काम चालू है।

जल विवाद की समस्या-भारत एवं बांग्लादेश के बीच लगभग 50 से भी अधिक नदियां बहती हैं इनमें गंगा, तीस्ता नदी जल-विवाद की समस्या सर्वाधिक विवादास्पद है। गंगा, ब्रह्मपुत्र और मेघना नदी के बाद तीस्ता भारत एवं बांग्लादेशसे होकर बहने वाली चौथी सर्वाधिक वृहद नदी है बांग्लादेश का लगभग 14% क्षेत्र की सिंचाई तीस्ता नदी की जल पर निर्भर है तथा 8% आबादी प्रत्यक्ष रूप से इस नदी जल पर रोजगार द्वारा जुड़ा हुआ है।

बांग्लादेश में चीन का बढ़ता वर्चस्व-हाल के समय में चीन भारत के कई पड़ोसी देशों को बहला-फुसलाकर अपना वर्चस्व बढ़ाने में लगा है। इसी कड़ी में चीन ने नेपाल, बांग्लादेश और पाकिस्तान को समय-समय पर भारत के खिलाफ भड़काना रहता है। बांग्लादेश चीन की महत्वकांक्षी परियोजना बी.आर.आई. का साझेदार देश होने के कारण बांग्लादेश में चीन द्वारा बंदरगाह का निर्माण कार्य चल रहा है तथा साथ ही चीन द्वारा बांग्लादेश को पनडुबी की भी आपूर्ति की जा रही है जिससे भारत के रिश्ते में दरार होने लगा है।

आतंकवाद और भारत-भारत दक्षिण एशिया में विशेषकर आतंकवाद के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी है जिसमें कई बिंदुओं पर कार्य किया भी है ऐसे में विशेषकर पड़ोसी देशों की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो जाती है इसी कड़ी में इस्लामाबाद में होने वाले सार्क सम्मेलन में हिस्सा लेने से मना कर दिया था।

अनुच्छेद 370 हटाने पर बांग्लादेश की प्रतिक्रिया-जम्मू कश्मीर से 370 हटाने जाने पर बांग्लादेश ने इसे भारत का आंतरिक मामला बताया तथा साथ ही ऑर्गेनाइजेशन आफ इस्लामिक को ऑपरेशन (OIC) में बांग्लादेश ने भारत को पर्यवेक्षक राष्ट्र का दर्जा दिए जाने की वकालत कर रहा है।

निष्कर्ष

दक्षिण एशिया में बांग्लादेश की स्थिति काफी बेहतर होने की दृष्टिकोण से इसे टाइगर की संज्ञा दी जा रही है क्योंकि बांग्लादेश की अर्थव्यवस्थाकी वृद्धिदर लगभग 8 फ़ीसदी है वहीं भारत की अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर घटकर 5 फ़ीसदी पर पहुंच गई है। वर्ष 2009 में बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने डिजिटल बांग्लादेश प्रोग्राम की शुरुआत कर दी है और यहां कपड़ों का निर्यात 17 फीसदी तक बढ़ा दिया गया है। बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था में विदेशों में काम करने वाले लगभग 2500000 बांग्लादेशियों की भी भूमिका महत्वपूर्ण है।भारत और बांग्लादेश के मध्य काफी गहरे एवं प्रागढ़ संबंध हैं भारतीय राष्ट्रपति के अनुसार भारत और

बांग्लादेश के संबंध अपने स्वर्णिम युग में हैं लेकिन समय काल के परिपेक्ष्य में समस्याएँ आती रहती है इनको सुलझाना आवश्यक है ताकि दोनों पड़ोसी देशों के बीच संबंध बेहतर रखा जा सके।

संदर्भ सूची

1. जयपालन, एन., 2000, इंडिया एंड हर नेवर, अटलांटिक पब्लिशर्स, पृष्ठ 120-21
2. गुप्ता के.आर., 2009, इंडिया इंटरनेशनल रिलेशंस, वॉल्यूम-2 अटलांटिक पब्लिशर्स पृष्ठ 559-60
3. बाम्मी, लो. जनरल वाई.एम., 2010 इंडिया बांग्लादेश रिलेशंस द वे अहेड, (BIJ) बुक्स इंडिया, पृष्ठ 83
4. खन्ना बीएन एंड लीपाक्षी अरोड़ा, 2008, भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग इंडिया, पृष्ठ 209
5. चक्रवर्ती एंड वीरेंद्र नरेन, 1988, बांग्लादेश ग्लोबल पॉलिटिक्स
6. कुमार, पवन, 2006, भारत की विदेश नीति, विज्ञान तथा तकनीकी आयोग शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 120-21
7. हक, सैमुअल, 1998, बांग्लादेश ग्लोबल पॉलिटिक्स, हिमालय पब्लिकेशन, पृष्ठ 120-21
8. पटनायक, समुखी, न्यू डाउन इन indo&bangladesh रिलेशन, वर्ल्ड फोक्स 31, अंक 2 फरवरी 2010 पृष्ठ 42
9. शर्मा, प्रभु दत्त, 2003, अंतरराष्ट्रीय राजनीति सिद्धांत एवं व्यवहार

पंडित जवाहर लाल नेहरु : आधुनिक भारत के निर्माता

पल्लवी

एम.ए. (इतिहास), नेट (यू.जी.सी.), मगध यूनिवसिटी, बोध गया

सरांश

पंडित जवाहर लाल नेहरु न केवल भारतीय नेता ही थे बल्कि विश्व के प्रमुख नेता भी थे। उन्हांने संसार में भारत के नाम को अपनी शान्तिमय नीतियों और अद्वितीय महान कार्यों को ऊँचा किया। उन्होने संसार के पराधीन देशों के स्वतंत्रता आन्दोलनों को अपना नेतिक समर्थन दिया और परमाणु परीक्षणों को रोकने पर बल दिया। तटस्थ नीति, पंचशील लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता, मानव-समानता, समाजवाद, विश्व-बंधुता इत्यादि में उनका अडिग विश्वास था। वे संकुचित भावनाओं और धार्मिक झगड़ों के सख्त विरुद्ध थे। वे नवीन भारत के निम्राता, स्वतंत्रता के प्रतीक, जनता के प्रिय नेता और विश्व के सच्चे हितैशी थे। आर्थिक क्षेत्र में नेहरु समाजवादी थे और उन्होने आर्थिक योजना की आवश्यकता पर बल दिया। 1939 में काँग्रेस के नियोजित राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष भी थे। स्वतंत्रता के पश्चात् वह राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष भी थे। स्वतंत्रता के पश्चात वह राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष भी थे। स्वतंत्रता के पश्चात् वह राष्ट्रीय योजना आयोग के प्रधान थे। यह इन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि भारत में आर्थिक योजना का उद्देश्य समाज का समाजवादी ढ़ाँचा स्वीकार किया। वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थक थे और भारत की उन्नति के लिए वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक ढ़ंगों का प्रयोग करना चाहते थे। उन्होंने कई बार भारतीय विज्ञान काँग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण दिये भारत के भिन्न-भिन्न भागों में स्थापित वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के अनेक केन्द्र उनकी दूरदर्शिता के स्पष्ट प्रतीक है। स्वतंत्रता संग्राम के विशेष सेनानी, पण्डित नेहरु ने लोगों के दिलों का जीत लिया और वह जीवन पर्यन्त उनके स्नेह और श्रद्धा के पात्र बनें रहे।

मुख्य शब्दः पंडित जवाहर लाल नेहरु, आधुनिक भारत, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, स्वतंत्रता संग्राम।

प्रस्तावना

पण्डित नेहरु की अन्तर्राष्ट्रीय भावना से प्रेरित व्यक्ति थे और सदा पददलित मानवता के प्रति साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध विचार व्यक्त करने और सहायता देने को उद्यत रहते थे। उन्होंने एशिया, अफ्रीका और अमरीका महाद्वीपों में सभी उदारवादी आनदोलनों को अपना नैतिक समर्थन दिया। वह शान्ति में दृढ़ विरूवास रखते थे और अंतर्राष्ट्रीय संगठन के समर्थन थे। अनगिनत अनतर्राष्ट्रीय संकटों में जैसे स्वेज नहर, कोरिया, कोगो, वियतनाम, अरब-इजराइली झगड़े सभी में नेहरु का यही प्रयत्न रहा कि शान्ति पुनः स्थापित हो जाए और अपनी सधयस्थता देनें का प्रस्ताव किया। अपने राजनेतिक दर्शन में वह गाँधीजी के सच्चे शिष्य और अहिंसा के अनुयायी थे। गाँधीजी को नेहरु जी में पूर्ण विश्वास था और वह इस तथ्य को प्रकट रूप से कह चुके थे कि पण्डित नेहरू उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी हैं। और उन्हे विश्वास था कि उन्के पश्चात् भी वह देश को अहिंसा के मार्ग पर चलाते रहेगें। गाँधी युग के महान नेता जवाहर लाल नेहरू भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के वीरो मे केवल गाँधी से ही कम थे। वास्तव मे गाँधीजी के अतिरिक्त जवाहर लाल नेहरु ही ऐसे व्यक्ति थे जिनका जीवन भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् पण्डित नहरू भारत राजनैतिक रंगमंच पर ऐसे छा गए कि भारत नेहरू था और नेहरू भारत था।

पंडित जवाहर लाल नेहरु का जन्म प्रयाग में 14 नवम्बर 1889 ई. को हुआ। ये पंडित मोती लाल नेहरु के सुपुत्र थे। इन्होने अपनी शिक्षा इंग्लैंड में प्राप्त की थी और वहीं से बी0 ए0 आनर्स तथा बैरिस्टरी पास की। उनहोनें 1912 ई. में पटना के काँग्रेस अधिवेशन में भाग लिया। इसके बाद वे काँग्रेस के सभी अधिवेशनों में भाग लेते रहे। 1914 ई. में उनहोंने गोखले की अपील पर 50 हजार रुपया इकट्ठा किया और उनको प्रवासी भारतीयों की सहायता के लिए अफ्रीका भेजा। इसके बाद उन्होंने 1916 में होमरुल आन्दोलन में पूरे जोरों से भाग लिया। 1919-20 में उन्होंने अवधा के किसाानों की हालत को सुधारने के लिए आन्दोलन में भाग लिया और सफलता प्राप्त की। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और जेल काटी। उन्होंने बाद के सभी युवक आनदोलनों किसान आनदोलनों और स्वतंत्रता आन्दोलनों में लिया। 1923 ई. से 1925 ई. तक प्रयाग नगरपालिका के प्रधान रहे। 1927 ई. में ब्रुसेल्स में दलित राष्ट्रों के सम्मेलन में शामिल हुए। उस समय तक ये कई बार काँग्रेस के मंत्री रहे। उन्होंने 1928 ई. में नेहरु कमेटी की रिपोर्ट का घोर विराधा किया क्योंकि इसमें स्वाधीनता की बजाय औपनिवेशिक स्वराज्य भारत का लक्ष्य घोषित किया गया था। वे पूर्ण स्वाधिनता के समर्थक थे। 1929 ई. में इनकी अध्यक्षता में ही कॉग्रेस ने पूर्ण स्वाधिनता का प्रस्ताव पास किया। उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा 1942 के आन्दोलन में भाग लिया और जेल गए। वे कई बार काँग्रेस के प्रधान कनें। 1946 ई. में ये अन्तरिम सरकार में पहली बार प्रधान मंत्री बनें और उस समय से लेकर आप 27 मई, 1946 ई. तक इसी महान पद पर प्रतिष्ठित रहे।

स्वतंत्रता के बाद उन्होने देश के पुनर्निर्माण के लिए बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। समाजवादी विचारों में विश्वास रखते थे। इनके प्रयासों से हीं काँग्रेस ने अवादी अधिवेशन में अपना पहला लक्ष्य सहकारी कामनवेल्थ बदला और उसकी बजाए समाजवादी समाज की स्थापना अपनाया। शहकारी खेती, पंचायती राज और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में दृढ़ विश्वास था। उन्होने, भारत के विदेश मंत्री होनें के नाते भारत की विदेश नीति बनाने में प्रमुख भाग लिया है। वे भारत को किसी भी गुट में शामिल होने के पक्ष में नहीं थे और तटस्थ रहना चाहते थे। उनकी विदेश नीति का मुख्य आधार पंचशील था। उन्होने साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, जातिवाद, छुआछुत और उपनिवेशवाद के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होने नि:शस्त्रीकरने के लिए संसार में अनुकुल वातावरण कायम किया। अपने तटस्थ राष्ट्रों के बाण्डुेण और बेलग्रेड सम्मेलनों में प्रमुख भाग लिया। उन्होने भारत के सभी बड़े छोटे देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न किया और इस हेतु अनेक देशों की यात्रा की और उनके प्रतिनिधियों को भारत में बुलाया। उन्होंने भारत की निर्धनता और गरीबी को दूर करने तथा भारत का सब तरह से पूर्ण विकास करने के लिए सामुदायिक विकास-योजनाएँ तथा तीन पंच-वर्षीय योजना बनाई। वे अपनी मृत्यु तक योजना आयोग के चेयरमैन रहे। वे साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता के विरोधी थे और उन्होंने भारत के भबनात्मक एकता स्थापित करने के लिए एक महान कार्य किया उन्होने भारत में जमींदारी उन्मूलन और अस्पृश्यता निवारण तथा नशाबंदी की दिशा में सराहनीय कार्य किया। उन्होने अपना सारा जीवन हिन्दू-मुस्लिम एकता में लगा दिया और वे साम्प्रदायिक झगड़ों को बुरा समझते थे। वे वास्तव में सच्चे मानव में विश्वास करते थे। वे सहिष्णुता और समानता तथा स्वतन्त्रता के समर्थक थे। वे केवल स्वतंत्रता आनदोलन के महान सेनानायक हीं नहीं बल्कि उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ और राष्ट्र-निर्माता भी थे। ऊपर लिखे हुए सिद्धांतो के आधार पर अपने तीन आम चुनावों में हजारों मीलों की यात्रा करके काँग्रेस को जितवाया। ये वास्तव में सच्चे अर्थों में विश्व नागरिक थे और इनहोनें विश्व शान्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र-संघ को सब प्रकार का सहयोग दिया। ये वास्तव में शान्ति के दूत थे।

जवाहरलाल जी ने भारत के पड़ोसी देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करनें का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंनें कोरिया, हिन्द-चीन, मिस्र तथा कोगो में भारतीय सेनायें संयुक्त राष्ट्र-संघ के नेतृत्व में शान्ति स्थापना के लिए भेजी। उन्होनें चीन से तिबत के संबंध में झगड़ा निपटाने के लिए पहली जून 1954 ई. को वहाँ के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई के साथ पंचशील पर हस्ताक्षर किए। परन्तु चीन ने इन सिद्धान्तों का पालन नहीं किया और उसने जून 1955 ई. से ही भारत की सीमाओं का अतिक्रमण आरम्भ कर दिया और ऐसी परिस्थिति उसने जुन-जूलाई 1962 तक रखी।[1] 8 सितम्बर, 1962 ई. से चीन ने घुसने की योजना बनाई और 20 अक्टूबर, 1962 को भारत पर बड़े पैमाने पर आक्रमण कर दिया। इस बड़े आक्रमण का सामना करनें के लिए हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री ने प्रत्येक प्रकार की तैयारी की। 22 अक्टूबर, 1962 ई. की रात्रि को बाकाषवाणी के दिल्ली केन्द्र से भारत की सीमा पर चीनी हमले के कारण उत्पन्न परिस्थिति के संबंध में राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित करते हुए दृढ़ता के साथ श्री जवाहर लाल नेहरु नें कहा,

"दुश्मन के हमले के साने हम अपना सिर कभी नहीं झुका सकते चाहे उसका नतीजा कुछ भी हो"।[2] उन्होंने इसी संदेश में आगे कहा, "अब वक्त आ गया है कि हम इस खतरे को पूरी तरह समझ लें। देश की आजादी कायम रखने के लिए हमें अपनी हर चीज न्यौछावर करनें को तैयार रहना चाहिए। इस समय हमें आपसी झगड़े और खुदगर्जी में नहीं पड़ना चाहिए और हम एक होकर दुश्मन का मुकाबला करें। चाहे प्रारंभ में कुछ चौकियाँ क्यों न खोनी पड़े परन्तु अन्त में विजय हमारी ही होगी। हम एसी स्थिति में भी किसी गुट में शामिल न होने की निति को नहीं छोड़ेगे।"[3]

श्री जवाहरलाल की अपील पर जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा और लोगों ने कराड़ो रुपया तथा कई मन सोना प्रतिरक्षा कोष में दिया। लाखों लागों ने सीमाओं पर देश की आजादी की रक्षा के लिए लड़ने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की। 29 अक्टूबर, 1962 ई. को सार्वजनिक प्रशासन की भारतीय संस्था में भाषण देते हुए श्री जवाहर लाल नेहरु ने कहा कि "राष्ट्र नें जो शानदार योग दिया है, उससे भारत की जीत में मेरा विश्वास दुगुना हो गया है।" उन्होंने आगे कहा कि "लड़ाई का सामना करनें के लिए तैयार रहना चाहिए। लड़ाई चाहे कितनी ही लम्बी क्यों न चले, किन्तु मुझे सकीन है कि अन्त में विजय हमारी होगी।"[4] 8 नवम्बर, 1962 ई. को लोकसभा में तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उन्होनें घोषणा की कि "चीन साम्राज्यवादी हमलावरों की चुनौती हमें मंजूर है चाहे उसका कोई भी परिणाम क्यों न निकले। हमारा यह दृढ़ संकल्प है कि भारत हमारा प्यारा देश, किसी भी हमलावर के आगे नहीं झुकेगा और उसे निकाल कर ही दम लेगा भारत की लाखों-कड़ो जनता ने संगठित रुप से यह दिखा दिया कि उसे चीन की यह चुनौती मंजूर है। आज देश में जो एकता और जोशों खरोश का वातावरण दिखाई दे रहा है, यह शायद ही कभी दिखाई दिया हो।"[5]

डनकी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि के अतिरिक्त उनमें एक ऐसे भारतीय समाज का दृश्य भी था जो स्वतंत्रता का अनुसरण करे तथा जहाँ से अनगिनत वर्षो की निर्धनता तथा रोग को समाप्त अथवा कम किम किया जा सके। और इन दोनों चित्रों ने जवाहर लाल नेहरु को भारतीय युवा पीढ़ी और समस्त बुद्धिजीवी लोगों की भावनाओं को साकार करने वाला बना दिया। नेहरु एक मनुष्य के रुप में और राजनीजिज्ञ के रुप में महापुरुष है। यदि महानता घटनाओं के दिशा निर्देशन से मापी जाती है अथवा लहरों के सिरों से ऊपर उठाने में जनता के मार्गदर्शन में है, ओर प्रगति के लिए उत्प्रेरक बनने में है तो निश्चित हीं नेहरु उस महानता का अधिकारी है।[6] उन्होंनें कहा कि यदि मुझे इस जीवन से पुनः गुजरना पड़े मेरे वर्तमान ज्ञान और अनुभव समेंत, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि मैं अपने जीवन में अनेक परिवर्तन लाना पसन्द करुंगा। जैसे मैं पहले करता था एससे अधिक उत्तम ढ़ंग से काम करुंगा परन्तु लोक जीवन में मेरे मुख्य निर्णय अस्पुश्य हीं रहेगें। वास्तव में मैं उन्हे नहीं बदलूंगा क्योंकि सब मुझ से कहीं अधिक शक्तिशाली है और मेरे वश से परे एक शक्ति नें मेरी ओर धाकेल दिया है।[7]

निष्कर्ष

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रुप में देशवासियों ने इन्हें 17 वर्ष तक अपरिमित समर्थन दिया। वह राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रों में गतिदर्शक थे। उनका विशेष बल धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, और प्रजातन्त्रवाद पर था और ये आज हमारे भारत में गहरे जड़ पकड़ गए हैं और भारत के आदर्श हैं। बीसवीं शताब्दी के इतिहास में नेहरु ने भारतीयों के नेता के रुप में और एशिया की नवीन पद्धति के रुप में और अन्तराष्ट्रीय आत्मा के प्रवक्ता के रुप में एक निर्णयक भूमिका निभाई है।[8]

सन्दर्भ सूची

1. 'नवभारत टाइम्स', दिल्ली, 24 अक्टूबर 1962 पृष्ठ 8, कालम 2-3
2. 'नवभारत टाइम्स', दिल्ली, 23 अक्टूबर 1962 पृष्ठ1, कालम 1-3
3. 'नवभारत टाइम्स', दिल्ली, 24 अक्टूबर 1962 पृष्ठ1, कालम 1-3
4. 'हिन्दुस्तान', दिल्ली, पृ. 1, तिथी 30 अक्टूबर, 1962 कालम–4
5. 'हिन्दुस्तान', दिल्ली, पृ. 1, तिथी 09 नवम्बर, 1962 कालम 4-6
6. Brecher, M : Nehru :A Political Biography.
7. Nehru, J.L. :Autobiography.
8. Gopal, S. : Jawahar Lal Nehru,A Biography.

सारण जिले के कृषि उत्पाद एवं भंडारण की व्यवस्था का अध्ययन

डॉ० पंकज कुमार

अर्थशास्त्र विभाग, पटना विश्व विद्यालय, पटना

सारांश

प्रस्तुत शोध कार्य के द्वारा पाया गया कि छपरा जिले में कृषि उत्पादन में तीव्रतर वृद्धि हो रही है। वैसी अवस्था में उत्पादित उत्पादों को भंडारित करने के लिए आधुनिक उपकरणों से लैस शीतगृह भंडारण में पर्याप्त वृद्धि की आवश्यकता है। समय एवं काल के परिपेक्ष्य में बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए कृषि उत्पादों के सालों भर खाद्यान्न उपलब्धता के लिए शीतगृह भंडारण की अति आवश्यकता को देखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र को तैयार किया गया है। शोध कार्य विधि के द्वारा सारांशत: कहा जा सकता है की सारण जिले के ख़षि उत्पादों की भंडारण की व्यवस्था अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई है। अभी इस पर और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि खाद्य सुरक्षा मिशन में अहम भूमिका निभा सके।

परिचय

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है देश के उद्योग-धंधे, विदेशी व्यापार, विदेशी मुद्रा अर्जन विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों की सफलता अथवा असफलता यहां तक कि इसका राजनीतिक स्थायित्व भी कृषि पर ही निर्भर है, केवल प्याज की महंगाई से हम दो सरकारों का पतन देख चुके हैं।

दुर्भाग्यवश भारतीय कृषि को आज भी हमारी अर्थव्यवस्था में यथोचित महता प्राप्त नहीं हो पाई है तथापि इस की गौरवशाली परंपरा स्तुत्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक पुनर्निर्माण के प्रयासों से कृषि को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में पुन: गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। आज शुध राष्ट्रीय उत्पादन का तिहाई भाग कृषि संबद्ध उत्पादन का है। विकसित देशों ने अपने यहां कृषि को समर्थन मूल्य देकर बाजार में कृषि उत्पादों का मूल्य 40% तक कम कर दिया है, जिससे भारत जैसे विकासशील देशों को निर्यात से यथोचित लाभ नहीं मिल पा रहा है तथापि कुल निर्यात का 14% से अधिक भाग कृषि का है, इसमें समुद्री उत्पाद का अधिकांश भाग है निर्माण और सेवा क्षेत्र में विकास के कारण भी कुल निर्यात में कृषि उत्पाद का अंश कम होता जा रहा है।

भारत सरकार के कठिन प्रयासों एवं कृषि नीतियों के फलस्वरुप पंचवर्षीय योजनाओं एवं वार्षिक बजट निर्धारित निवेश एवं व्यय को राशि के द्वारा उत्पादन के लक्ष्य में वृद्धि हो रही है लेकिन वृद्धि के अनुपात में भंडारण की उपलब्धता नगण्य है जिसकी वजह से प्राप्त उत्पादों को सुरक्षित रखने की समस्या उठ खड़ी हुई है तथा इन्हें सुरक्षित ससमय उपभोक्ता तक पहुंचाना उससे भी बड़ी समस्या है, सामान्यत: ऐसा देखा जाता है कि उत्पादों का एक बड़ा हिस्सा उपभोक्ता तक पहुंचने से पूर्व ही विनष्ट हो जाता है, कई बार वार्षिक रिर्पोट एवं स्त्रोतों से स्पष्ट देखा गया है कि देश में प्रति वर्ष लगभग 48000 करोड रूपये की कृषि उत्पाद, अनाज, फल, सब्जी इत्यादि भंडारण की उचित व्यवस्था के अभाव में विनष्ट हो जाती है। अंतत: कृषि उत्पादन के अनुरूप यदि समुचित भंडारण की व्यवस्था एवं प्रबंधन हो तो देश में भुखमरी एवं कुपोषण की समस्या को बहुत हद तक रोका जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र

सारण जिला बिहार राज्य का एक महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक जिला है। यह अपनी उपयुक्त जलवायु पर्याप्त सिंचाई उपजाऊ जलोढ़ मिटट्ी आर्द्रता सिंचाई के उपलब्धता के कारण द्वि फसला एवं तीन फसला उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। यह दिनोंदिन कृषि उत्पादन में वृद्धि कर रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य-प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य सारण जिले के कृषि उत्पादों के लिए भंडारण का व्यवस्था करना एवं उससे संबंधित समस्याओं को प्रकाश में लाना है।

परिकल्पना-सारण जिले में कृषि उत्पादों के लिए भंडारण की व्यवस्था अभी विकासशील की अवस्था में है।

शोध प्रविधि-प्रस्तुत शोध कार्य में मुख्यत: प्राथमिक एवं द्धितीयक दोनों प्रकार के आंकड़ों का उपयोग किया गया है। तथा साथ ही व्याख्यात्मक एवं अवलोकनात्म का विधियों का सहारा लेकर शोध कार्य पूरा किया गया है।

व्याख्या एवं विस्तार-सारण जिले की 70% से अधिक आबादी कृषि कार्यों पर ही निर्भर है। झारखंड के अलग हो जाने के बाद से बिहार के लोगों के लिए कृषि का महत्व और अधिक बढ़ गया है। जिले की भौगोलिक परिस्थिति, उपजाऊ मिट्ठी, वर्षा, आद्रर्ता, सिंचाई के विकासशील साधन उपज में वृद्धि करती है।

सारण जिले में मुख्यत: 4 फसलें भदई, अगहनी, रबी एवं गरमा लगाई जाती है। भदई की शुरुआत मई-जून से होती है और अगस्त सितंबर में कटाई कर ली जाती है। भदई धान, ज्वार, बाजरा, मकई के अतिरिक्तजूट और सब्जी की खेती इस समय से की जाती है। अगहनी जिले की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। यह फसल मध्य जून से अगस्त तक लगाई जाती है और नवंबर-दिसंबर में काट ली जाती है। धान, ज्वार, बाजरा, अरहर, गन्ना इस फसल की मुख्य पैदावार है। इसमें अरहर और गन्ना साल भर में तैयार होता है। रबी की फसल को अक्टूबर-नवंबर के मध्य में लगाया जाता है और अप्रैल में काट लिया जाता है। गेहूँ जौ दलहन-तिलहन इस फसल की खास उपज है। गरमा फसल को गर्मी के मौसम में उन क्षेत्रों में लगाया जाता है जहां सिंचाई की समुचित व्यवस्था है या फिर निच्च भूमि में यहां स्थानीय जल-स्त्रोतों से मिट्ठी गीली रहती है। इस फसल में गरमा धान और ग्रीष्म कालीन सब्जियां उगाई जाती है। जिले की प्रमुख फसलों में धान, गेहूं, मकई, जौ, गन्ना, तंबाकू, महुआ, ज्वार, दलहन और तिलहन है। इसके अतिरिक्त सब्जियों फल-फूल की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। इन सभी उपजों से प्राप्त उत्पादों को संग्रहित एवं भंडारण करने के लिए भारतीय खाद्य निगम एवं निजी भंडारण गृहों की व्यवस्था उपलब्ध है।

1. कृषि उपज- सारण जिले की कृषि उपज को आंकड़ों की उपलब्धता के आधार पर मुख्यत: खरीफ एवं रबी दो भागों में बांट सकते हैं, खरीफ की फसल पूर्णत: वर्षा जल पर आधारित होती है इस फसल की बुवाई 12 जून से 15 जुलाई के मध्य होता है तथा फसल की प्राप्ति सितंबर अक्टूबर माह में होती है।खरीफ के फसल के अंतर्गत मुख्यत: फसलों में मक्का, ज्वार, दलहन एवं तिलहन की फसलों को शामिल किया जाता है।

तालिका-1: सारण जिले में खरीफ की फसल का उत्पादन

वर्ष	खरीफ की फसल (मैट्रिक टन में)							
	अनाज		तिलहन			दलहन		
	चावल	मक्का	तिल	सरसों	चना	मूंग	उड़द	अरहर
2012	14768	2900	64	859	85	782	48	70
2013	15460	2245	65	345	42	482	42	79
2014	6540	1868	78	782	58	382	122	182
2015	4875	1632	56	578	62	487	278	252
2016	5439	1121	67	662	58	542	178	317

स्त्रोत- जिला सांख्यिकी कार्यालय सारण, छपरा।

जिले की रबी फसल की अवधि माह अक्टूबर-नवंबर से प्रारंभ होकर मार्च-अप्रैल तक होती है, जो मुख्यत: वर्षा पर आधारित एवं भूमिगत जल द्वारा पोषित होता है। रबी की फसलों की सिंचाई नलकूप, तलाब, नहर, कुए आदि के द्वारा होता है।

अध्ययन जिले की खरीफ एवं रबी की फसल की उपज में अनाज, तिलहन एवं दलहन में बांटा जा सकता है-

तालिका-2: सारण जिले की कुल उपज (मैट्रिक टन में)

वित्तीय	खरीफ की फसल/ ऊपज			रवि की फसल / ऊपज			अन्य फसल	
वर्ष	चावल	मक्का	तिलहन	गेहूं	दलहन	तिलहन	आलू	गन्ना
2012-13	19241	1875	54720	283642	1784	1143	704	720
2013-14	9242	1472	47245	342703	1345	987	690	678
2014-15	7243	1742	63120	401293	1432	293	763	547
2015-16	10343	1947	54723	343073	1120	587	543	478
2016-17	6743	1378	47632	47632	1043	647	624	359

स्त्रोत: जिला सांख्यिकी कार्यालय, सारण, छपरा

2. **भंडारण की सुविधा**-शोध अध्ययन के द्वारा जिले की उत्पादित ऊपजों के लिए भंडारण की सुविधा महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में जो भंडारण की सुविधा उपलब्ध है वह पर्याप्त नहीं है। जिले में भंडारण की सुविधा ख़्रषि उपज मंडी भारतीय खाद्य निगम, शासकीय भंडार गृह निजीभंडार गृह के द्वारा पुरा किया जाता है। कृषक, व्यापारी, सहकारी समिति, नागरिक आपूर्ति निगम भंडार गृह की सुविधा का उपयोग कर कृषि उपज की मांग व पूर्ति के मध्य संतुलन स्थापित करने हेतु प्रयत्नशील है।

(क) कृषि उपज मंडी– राज्य सरकार द्वारा संचालित जिले की चार कृषि उपज मंडी एवं विभिन्न पंचायतों में पैक्स द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के द्वारा फसलों का क्रय-विक्रय करते हुए फसलों का संग्रहण करना तथा साथ ही इनकी भंडारण करना भी इनका काम है। मंडी परिसरों में स्थित भंडार गृहका उपयोग व्यापारी वर्ग द्वारा उपज के क्रय बाद विक्रयतक की अवधि के लिए किया जाता है। इन भंडार गृहों का नियम एवं प्रबंधन कार्यालय द्वारा किया जाता है।

(ख) भारतीय खाद्य निगम (FCI)– सारण जिले में निगम का एकमात्र भंडार गृह छपरा में है प्राय:। इसका उपयोग केंद्र सरकार द्वारा संचालित योजनाओं के लिए प्रदेश सरकार द्वारा तय की गई उपज के लिए होता है।

(ग) निजी भंडार गृह- किसानों के ख़्रषि उत्पादों को संग्रहण करने के लिए भंडारण की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है, लेकिन उपज के अनुपात में भंडारण की व्यवस्था नहीं हो पाई है इसलिए निजी भंडार गृह की संख्या जिला में अधिक है। जिले के प्रत्येक अनुमंडल एवं प्रखंड में जहां-तहां निजी भंडार गृह खोले जा रहे है,ताकि उपजों को सुरक्षित किया जा सके।

निष्कर्ष– प्रस्तुत शोध के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है सारण जिले में रबी एवं खरीफ फसलों में आधुनिक तकनीक एवं उच्च तकनीक क्षमता, अधिक उपज वाली फसलों के बीज सिंचाई की आधुनिक तकनीक, फसलों की आधुनिक शैली से बुवाई, आधुनिक जैविक खाद, कंपोस्ट इत्यादि के द्वारा उपज में पर्याप्त वृद्धि देखने को मिल रही है। वैसी स्थिति में आधुनिक भंडारण एवं शीतगृह भंडारण की समस्या आती है, जो उत्पादित उपजों को सुरक्षित किया जा सके। अध्ययन के द्वारा गेहूं, चावल, तिलहन एवं दलहन तथा आलू के लिए भंडारण गृह की आवश्यकता है जो जिले में इसे और बढ़ाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. मिश्रा, जयप्रकाश (2006): कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
2. मित्तल, आर.एल. (2006): भारत में भंडार गृह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. सिंह, रमेश (2018): भारतीय अर्थव्यवस्था, मैकग्राहील एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई।
4. वर्मा, संजीव (2017): भारतीय अर्थव्यवस्था, यूनिक पब्लिशी इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

अरावली में अवैध खनन की समस्या का भौगोलिक अध्ययन (भरतपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में)

चन्द्र शेखर

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, (राज.)

डॉ० गायत्री यादव

सह आचार्या, भूगोल विभाग, बाबू शोभा राम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

शोध संक्षेप

पर्यावरण को बचाने के लिए अरावली पर्वत श्रृंखला क्षेत्र में खनन पर अंकुश लगाने के लिए प्रशासनिक मशीनरी की सकल किलता पर सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी देश में कानून के शासन के खतरे का संकेत है। एक संवैधानिक कानून-नियंत्रित प्रणाली लोकतंत्र की पहली शर्त है। लेकिन जब कार्यपालिका अपनी जिम्मेदारियों से दूर हो जाती है और लोक सेवक कानून तोड़ने वालों से हाथ मिला लेते हैं, तो कानून का राज कम होने लगता है। अरावली क्षेत्र में पूर्ण प्रतिबंध के बावजूद, अवैध खनन का बड़ा कारोबार रुक नहीं रहा है, क्योंकि जैसा कि इस अदालत ने कहा है, जो लोग अवैध खनन में लिप्त हैं, उनका अधिकारियों के साथ समर्थन है। इसीलिए सुप्रीम कोर्ट के बार-बार आदेश के बावजूद अरावली क्षेत्र में अवैध खनन जारी है। अरावली में खनन रोकना केवल कानून का विषय नहीं है, बल्कि उस पर्यावरण को बचाने का है जिस पर मानव जीवन का भविष्य टिका है। उत्तर भारत की इस भूमि के लिए अरावली पर्वत श्रृंखला एक जीवन रेखा रही है, लेकिन अब धन का लालच प्रकृति को नष्ट करने पर तुला हुआ है। ये स्थितियाँ लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए भी खतरनाक हैं क्योंकि उनमें कानून की परवाह न करने की धृष्टता है। अदालत के आदेशों की परवाह किए बगैर कार्यपालिका उसके चेहरे की धुनाई कर रही है।

प्रमुख बिंदु: - अरावली क्षेत्र में खनन, पहाड़ों को बचाने के बाद प्रदूषण से बचना होगा, खनन माफिया, राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 08, भरतपुर में अवैध खनन, अवैध खनन का पर्यावरणीय प्रभाव, निष्कर्ष और सुझाव।

परिचय

अरावली भारत के पश्चिमी भाग, राजस्थान में स्थित एक पर्वत श्रृंखला है। राजस्थान में Adavala पर्वत के रूप में भी जाना जाता है, अरावली भारत की भौगोलिक संरचना में सबसे पुरानी पर्वत श्रृंखला है, जो गोडवाना भूमि का अस्तित्व है। यह दुनिया की सबसे पुरानी पर्वत श्रृंखला है, जो राजस्थान को उत्तर से दक्षिण में दो भागों में विभाजित करती है। इसकी उत्पत्ति प्रीकाम्बियन युग (4.5 मिलियन मिलियन वर्ष) में हुई थी। अरावली की सबसे ऊंची पर्वत चोटी सिरोही जिले में गुरुशंख (1722/1727 मीटर) है, जो माउंट आबू (सिरोही) में है। भील जनजाति सदियों से अरावली पर्वतमाला के आसपास के इलाकों में रहती है। अरावली पर्वत श्रृंखला की अनुमानित आयु 570 मिलियन वर्ष है। यह गुजरात से दिल्ली तक लगभग 692 किमी, अरावली पर्वत श्रृंखला के लगभग 79.49 की कुल लंबाई के साथ एक अवशिष्ट पर्वत का एक उदाहरण है। 4 विस्तार राजस्थान में है, दिल्ली में राष्ट्रपति भवन रायसीना पहाड़ी पर स्थित है जो अरावली पर्वत श्रृंखला का हिस्सा है, अरावली की औसत ऊंचाई 930 मीटर (NCRT के अनुसार 1000 मीटर) है, और ऊंचाई और चौड़ाई अरावली का दक्षिण सबसे ऊँचा है। है, अरावली या अरावली उत्तर भारतीय पर्वतमाला है। 550 किलोमीटर की दूरी तय करने वाले इस पर्वत की कुछ चट्टानी पहाड़ियां, जो राजस्थान राज्य के उत्तरपूर्वी क्षेत्र से होकर गुजरती हैं, दिल्ली के दक्षिण भाग में चली गई हैं। चोटियों और कटिंग की सीमाएं, जो 10 से 100 किलोमीटर तक फैली हुई हैं, आम तौर पर 300 से 900 मीटर ऊंची होती हैं। इस श्रेणी को दो भागों में विभाजित किया गया है - सांभर-सिरोही पर्वतमाला - जिसमें गुरु शिखर (अरावली पर्वतमाला का शिखर, माउंट आबू की ऊंचाई (1,722 मीटर) और (5649.606 फीट) सहित अधिकांश उच्चतम पर्वत हैं। विभिन्न त्वचीय क्षेत्र हैं। अरावली रेंज प्राकृतिक संसाधनों (और खनिजों) से भरी हुई है और पश्चिमी रेगिस्तान के विस्तार को रोकने का काम करती है। अरावली पर्वतमाला के पश्चिमी भाग को मारवाड़ और पूर्वी भाग को मेवाड़ कहा जाता है। कई प्रमुख नदियाँ हैं - बनास, लूनी। , सखी और साबरमती की उत्पत्ति का बिंदु है। इस क्षेत्र में केवल दक्षिणी क्षेत्र में घने जंगल हैं, अन्यथा अधिकांश क्षेत्रों में यह विरल, रेतीले और पथरीले (गुलाबी गुलाबी) हैं।

शोध का उद्देश्य

1. अरावली पर्वतीय क्षेत्र में अवैध खनन का भौगोलिक अध्ययन करना।
2. अरावली पर्वतीय क्षेत्र में अवैध खनन के रोकथाम के प्रयासों का अध्ययन करना।
3. भरतपुर ज़िले में अवैध खनन के प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

शोध परिकल्पना

1. अरावली पर्वतीय क्षेत्र में अवैध खनन निरन्तर बढ़ता जा रहा हैं।
2. अरावली पर्वतीय क्षेत्र में अवैध खनन का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ रहा है।

आँकड़ो के स्रोत

किसी भी प्रकार के अध्ययन के लिए आँकड़ो की आवश्यकता होती है। इस शोध अध्ययन में प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आँकड़ो का उपयोग किया गया है। ये आंकड़े विभिन्न विभागों में एकत्र किए गए हैं । वन एवं पर्यावरण विभाग राजस्थान, खनन एवं भूमाफिया प्रकाशित रिपोर्ट एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण, प्रश्नावली, अनुसूची एवं समाचार पत्रों में प्रकाशित रिपोर्ट से एकत्र किया गया है।

अरावली क्षेत्र में खनन

अरावली क्षेत्र में अवैध खनन में ठेकेदार, राजनेता और नौकरशाह बड़ी भूमिका निभाते हैं। किसी भी रंग के राजनेता, उन्हें इस क्षेत्र के खनन माफिया समूहों से धन शक्ति की मदद मिलती है। इसीलिए अदालत के आदेशों की परवाह न करने का साहस भी निकल जाता है और स्थिति बद से बदतर होती चली जाती है। सीएजी की रिपोर्ट पर कोई आंदोलन नहीं है, जिससे पता चलता है कि सरकारी फाइलों के द्वारा 98.87 लाख टन खनिज अवैध रूप से राजस्थान के इस क्षेत्र के केवल पांच जिलों में पांच साल में निकाले गए हैं। यह भी पता चला है कि 128 में से 31 पहाड़ियों को खनन के कारण पूरी तरह से साफ कर दिया गया था। यदि ऐसा होता है, तो इस क्षेत्र की भूमि में पानी नहीं होगा, रेगिस्तान फैल जाएगा और जीवन खतरे में पड़ जाएगा। अफसोस की बात है कि यह गंभीर मुद्दा कभी भी राजनीतिक बहस का हिस्सा नहीं बनता है और कभी भी चुनावी मुद्दा नहीं बन पाता है क्योंकि सभी के हित निहित होते हैं। ये हित इतने शक्तिशाली हैं कि कानून के शासन को धता बताने का अहंकार रखते हैं। सरकारी अधिकारियों के पास बहाने की कोई कमी नहीं है। इस बार, उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के सामने यह दिखावा किया कि चुनावी आचार संहिता के कारण वह कुछ नहीं कर सकते, जिसे अदालत ने सही माना। सुप्रीम कोर्ट का आदेश कानून है। यदि यह मौजूद नहीं है, तो सामान्य कानूनों की परवाह कौन करेगा? कानून की पालना का यह मसला केवल अरावली को बचाने के लिए ही नहीं है, बल्कि कानून की परवाह किए बिना संवैधानिक रूप से गठित राज्य व्यवस्था में चली आ रही प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए भी है।

दिल्ली से हरियाणा, राजस्थान और गुजरात तक फैली अरावली पर्वत श्रृंखला लगभग 800 किमी लंबी है। ये पहाड़ियाँ लगभग 35 मिलियन वर्ष पुरानी हैं। अरावली पहाड़ियाँ हिमालय के पहाड़ों से भी पुरानी हैं। ये पहाड़ियां न केवल थार के रेगिस्तान को फैलने से रोकती हैं बल्कि भूजल को वापस जमीन में भी भेजती हैं। इसके अलावा, यहां जैव विविधता का भंडार है। इन पहाड़ियों के जंगलों में 20 पशु अभयारण्य हैं। लेकिन अब ये पहाड़ियां खतरे में हैं।

राजधानी दिल्ली से महज 40 किलोमीटर की दूरी पर अरावली में खनन का काम चल रहा है। स्टोन क्रशर, ट्रक, ट्रैक्टर-ट्रॉलियां और बड़ी मशीनें इन पहाड़ियों पर सवार हैं। इसका कारण निर्माण कार्यों में उपयोग की जाने वाली सामग्रियों की आवश्यकता है। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने 2002 में ही इस 10 किलोमीटर लंबे पहाड़ी क्षेत्र में खनन पर प्रतिबंध लगा दिया था, लेकिन कई लोग अब भी यहां खनन का काम कर रहे हैं। मुन्ना मेव, जो अपनी बकरियों के लिए भोजन एकत्र कर रहे हैं, का कहना है कि सुप्रीम कोर्ट के प्रतिबंध का कोई प्रभाव नहीं है। खोदी गई पहाड़ी के एक हिस्से को दिखाते हुए, वह कहते हैं कि तीन-चार साल पहले हरियाली से भरा एक पूरा पहाड़ हुआ करता था, जो अब केवल अछूता रह गया है, 'यह पूरी तरह से बंजर भी है।'

स्थानीय पर्यावरणविद् विजय धस्माना कहते हैं कि यह जगह बढ़ती आबादी और शहरीकरण से प्रभावित हो रही है। डीडब्ल्यू से बात करते हुए उन्होंने कहा, 'हम वन्यजीवों, पौधों की प्रजातियों को नष्ट कर रहे हैं। ग्रामीणों के लिए चरने वाले जानवरों के चरने गायब हो रहे हैं। पहाड़ियों का खत्म होना जैव विविधता के लिए एक बड़ा नुकसान है।' यह देश के लिए बहुत हानिकारक है। सच्चाई यह है कि पहाड़ियों की खुदाई दिल्ली के बाहर एक बड़ा व्यवसाय बन गया है। इसके बिना कुछ लोग काम नहीं करेंगे। वास्तव में, 2018 में, सुप्रीम कोर्ट ने अरावली पर्वत की वर्तमान स्थिति जानने के लिए एक केंद्रीय समिति का गठन किया। समिति ने पाया कि पिछले 50 सालों में 128 में से 31 पहाड़ियों की पहचान की गई है।

क्रिएटिव प्रोजेक्ट्स और कॉन्ट्रैक्ट कंस्ट्रक्शन कंपनी चलाने वाले गिरधारी सिंह का कहना है कि घर पहाड़ की तरह ही महत्वपूर्ण हैं, 'विकास के लिए बदलाव की जरूरत है। अगर लोगों के लिए घर नहीं बनाए जाते हैं तो पहाड़ों का क्या फायदा होगा?'

आई ए एम नामक गुड़गांव एक NGO की संस्थापक प्रीति शंका के अनुसार, अरावली पहाड़ियाँ रेगिस्तान से दिल्ली-एनसीआर के क्षेत्र की रक्षा कर रही हैं। उनका एनजीओ इस क्षेत्र में जंगल फिर से लगाने के लिए काम कर रहा है। वह कहती है, 'यहां एकमात्र ऐसी जगह है जहां ताजे पानी उपलब्ध है। जब मानसून में बारिश होती है, तो पहाड़ी से पानी जमीन में चला जाता है जो भूजल स्तर को बढ़ाता है। यह स्थान प्रदूषण को कम करता है। क्योंकि यह कार्बन डाइ ऑक्साइड को अवशोषित करता है।'

पहाड़ों के बचाकर रुकेगा प्रदूषण

ये पहाड़ियां दिल्ली की ओर आने वाले प्रदूषण को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दिल्ली में पहले से ही वायु की गुणवत्ता बहुत खराब है। सेंटर फॉर इकोलॉजी में पिछले 10 वर्षों से अरावली पर शोध कर रहे चेतन अग्रवाल का कहना है कि अरावली पहाड़ियों में अवैध खनन से वातावरण में धूल फैलती है। धूल के कण वायु को प्रदूषित करते हैं। वह कहते हैं, 'प्रदूषण के मामले में दिल्ली और गुड़गांव दुनिया में सबसे प्रदूषित क्षेत्र हैं। अरावली इन क्षेत्रों के लिए एक फेफड़े के रूप में कार्य करता है और इन क्षेत्रों में वायु से प्रदूषण को अवशोषित करता है।' 2017 में प्रकाशित इंडियन ऑडिट इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट के अनुसार, राजस्थान में जनवरी 2015 से फरवरी 2017 के बीच धूल के सिलिकोसिस के कारण फेफड़ों की बीमारी के 7,959 मामले सामने आए। राजस्थान में, पांच जिलों में बीमारी के कारण 449 लोगों की मौत हुई। इसी रिपोर्ट में, यह बताया गया कि 2,548 खदानें हैं जहां काम करने वाले मजदूरों को सिलिकोसिस का खतरा है।

दलेर सिंह अरावली के क्षेत्र में एक डॉक्टर हैं, जहां अवैध खनन हो रहा है। 'इस क्षेत्र में फेफड़े से संबंधित बीमारियां बढ़ रही हैं। खनन धूल का उत्सर्जन करता है जो वातावरण में मिश्रित हो जाता है। यह बहुत खतरनाक है,' वे कहते हैं। अरावली इसके आसपास के लाखों लोगों के लिए ताजे पानी का एक स्रोत है क्योंकि यह भूजल स्तर को बढ़ाता है। अरावली में खनन भी स्थानीय लोगों के लिए ताजे पानी के संकट का कारण बन रहा है।

चेतन अग्रवाल कहते हैं, 'अरावली में बहुत दरारें हैं और भूजल को रिचार्ज करने के लिए कार्य करता है। अरावली में भूजल रिचार्ज की दर जमीन की तुलना में बहुत अधिक है। यह रेगिस्तान की वृद्धि को भी रोकती है, जैव विविधता का निर्माण करती है। वायु गुणवत्ता बनी रहती है और पर्यावरण संतुलित रहता है। पर्यावरणविद् विजय धस्माना इसे यहां रहने वाले लोगों की जीवन रेखा कहते हैं। उनका कहना है कि अरावली को बचाना उनका काम है और वह इसे करने में गर्व महसूस करते हैं।

राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या -8

अरावली पर्वत श्रृंखला, जो एक ऊंट के रूप में उगती है, राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 के साथ राजस्थान की राजधानी जयपुर को देश की राजधानी दिल्ली से जोड़ती है। लेकिन हम जिस रास्ते की तलाश कर रहे हैं, वह जयपुर से दो घंटे की दूरी पर पावटा शहर से खुलता है। यह सीकर का जिला है, जो राजस्थान में अवैध खनन और पर्यावरण विनाश का एक प्रमुख केंद्र है। यहां के दुर्गम मार्गों से 45 किमी दूर नीम का पुलिस स्टेशन (सीकर की एक तहसील) की ओर बढ़ते हुए, यह ज्ञात है कि सफेद पत्थरों से लदे ट्रकों के एक काफिले को देखकर, आपको आगे बड़े पैमाने पर खनन दिखाई देगा। और आधे घंटे के बाद, आप 15 किलोमीटर तक फैले बजरी (बारीक पत्थर) फिल्टर प्लांट के नेटवर्क के साथ, बुकहाड़ा नदी का किनारा भी पाते हैं। यहां बुचाधा बांध से सटे पहाड़ों पर कभी-कभार होने वाले विस्फोटों के कारण क्षेत्र में चल रहे काले खनन के कारोबार को देखा जा सकता है। मशीन के पंजे के माध्यम से अरावली की छाती से पत्थरों को हटाकर बड़ी मशीनों को जगह-जगह एकत्र किया गया है। और उनके परिवहन के लिए बड़ी संख्या में ट्रक भी तैनात हैं। मशीनों पर न तो सर्दी या गर्मी का असर होता है और न ही दिन और रात का। इसलिए खुदाई से लेकर परिवहन तक का काम बेरोकटोक जारी है।

खनन माफिया अपने पूरे जोश के साथ पत्थरों को इतना खोदता है कि कुछ भी ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता। यह एक प्रारंभिक खनन दृश्य है। यह भयावह रूप पहाड़ियों के बीच छिपा हुआ है। गांव टोडा से लेकर भराला और रायपुर तक पाटन और कोटपूतली क्षेत्र की पहाड़ियों में बदल जाता है, कचरे का आलम कई किलोमीटर तक टुकड़ों में बिखरने लगता है।

अरावली भारत के सबसे पुराने पहाड़ों में से एक है। उत्तरी दिल्ली से गुजरात तक लगभग 692 किलोमीटर लंबी यह पर्वत श्रृंखला बीच में टूट गई है। राजस्थान का यह जिला इसके पश्चिमी भाग में बालेश्वर पर्वत श्रृंखला की गोद में स्थित है। दिल्ली और हरियाणा के पास स्थित, इस क्षेत्र को वर्तमान में लूट की गहरी खदानों में बदल दिया गया है। स्थानीय मानवाधिकार कार्यकर्ता कैलाश मीणा कहते हैं, 'इस क्षेत्र की स्थिति सड़क पर पड़े ट्रक की तरह है जिसमें लोग भरवां संतरे बचाने के बजाय लोगों से लूट रहे हैं। यहां तक कि कुछ दिल्ली और गुड़गांव निवासियों के लिए, यह क्षेत्र अब लूट का एक गढ़ बन गया है।

यहां पत्थरों से सोना बनाने का खेल कई पर्यावरण नियमों के साथ खेला जा रहा है। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मानदंडों के अनुसार, जनसंख्या से 1,500 मीटर और स्कूलों से 500 मीटर की दूरी पर कोई विस्फोट नहीं किया जा सकता है। लेकिन यहां, बमुश्किल 100 मीटर की आबादी और स्कूलों में ब्लास्ट होता है। इन धमाकों से कई घरों में आग लग गई और कई पत्थर स्कूल की दीवारों से जा टकराए। कुठियाला गाँव में खनन माफिया के खतरे का डर ऐसा है कि यहाँ स्कूल खाली है। वर्तमान में, माफिया का कार्यालय इस विद्यालय में खुला है। वहीं, रामलीलास गाँव में स्कूल के प्रधानाध्यापक ब्रजमोहन कहते हैं कि एक या दूसरे कमरे में विस्फोटों की भरमार रहती है। छत की बार-बार मरम्मत के बाद भी जिसके तहत बच्चे पढ़ाई करने आते हैं, हालत इतनी खराब है कि पता नहीं कब गिर जाए।

सवाल यह है कि धमाकों में इस्तेमाल की गई बारूद कहां से आती है? आरटीआई के तहत प्राप्त जानकारी में, भारत सरकार के पेट्रोलियम और विस्फोटक सुरक्षा संगठन ने कहा कि उसने सीकर जिले में केवल पाँच लोगों को प्रतिदिन 70 से 250 किलोग्राम विस्फोट करने का लाइसेंस दिया है। इलाके के लोगों का कहना है कि यहां हर दिन लगभग 100 से 150 विस्फोट होते हैं और एक विस्फोट में कम से कम 120 किलो बारूद की आवश्यकता होती है। इसके अनुसार, यहां प्रतिदिन कम से कम 12,000 किलोग्राम बारूद का उपयोग किया जा रहा है। इसका सीधा सा मतलब है कि अवैध रूप से यहां की खदानों में कई क्विंटल विस्फोटक का इस्तेमाल किया जाता है। अवैध विस्फोटकों को पुलिस ने कई बार यहां जब्त किया है, लेकिन खानापूर्ति के बाद ज्यादातर मामलों में, मामले को खारिज कर दिया गया है। जबकि विस्फोटक अधिनियम, 1908 विस्फोटकों को रखने के लिए दस साल के सश्रम कारावास का प्रावधान करता है जो जीवन या क्षति संपत्ति को खतरे में डालते हैं। दो साल पहले, स्थानीय लोगों के अभियान पर, पाटन पुलिस चौकी के पास उच्च गुणवत्ता वाले विस्फोटकों से भरा एक ट्रक पकड़ा गया था। लेकिन सिविल जज ने ड्राइवर को केवल एक हजार के जुर्माने पर छोड़ दिया। हालांकि न्यायाधीश ने पाटन थानाधिकारी को विस्फोटकों को नष्ट करने का आदेश भी दिया, लेकिन आरटीआई से मिली जानकारी से पता चला है कि बाद में पुलिस ने विस्फोटकों को ट्रक के मालिक को भी सौंप दिया।

सवाल यह भी है कि इन पहाड़ियों से निकलने वाला सामान ट्रकों के जरिए अपने गंतव्य तक कैसे पहुंचता है। डाबला पहाड़ी क्षेत्र के किसान मालीराम का कहना है कि उनके गांव में हर दिन 40 ट्रकों का इस्तेमाल होता है। कई व्यापारियों का कहना है कि यह माल पड़ोसी राज्य हरियाणा की सीमा से परे पहुंचता है। पाटन से सटे हरियाणा के महेंद्रगढ़ जिले की दूरी सिर्फ आठ किलोमीटर है और धूल उड़ाने वाले ट्रकों का रास्ता भी पाटन पुलिस स्टेशन के माध्यम से सीधे हरियाणा की ओर जाता है। ऐसे में पुलिस के कुछ नहीं करने के कारण उनकी भूमिका संदिग्ध हो जाती है। लेकिन सीकर कलेक्टर धर्मेंद्र भटनागर कहते हैं, हर चौकी की कड़ाई से जांच की जाती है।' उनका तर्क है कि यहां पर्याप्त पद नहीं हैं और अगर कोई ट्रक किसी तरह हरियाणा सीमा में चला जाता है तो कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

विडंबना यह है कि अवैध खनन गतिविधियों को रोकने में किल साबित हुए कई विभागों के पास इससे जुड़ी बुनियादी जानकारी भी नहीं है। उदाहरण के लिए, जब आरटीआई के तहत तहसीलदार, बिजली विभाग और प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा नीम का थाने में कुल स्टोन क्रशर की संख्या पूछी गई, तो सभी ने अलग-अलग आंकड़े दिए। तहसीलदार ने 52, बिजली विभाग ने 173 और प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने 34 स्टोन क्रशर दिए। कुछ मामलों में, सूचना मिलने के बाद भी प्रशासनिक कार्रवाई नहीं की गई। हालांकि, भूमि राजस्व अधिनियम, 1991 की धारा 6 के अनुसार, यदि कोई अधिकारी या कर्मचारी सरकारी भूमि पर अतिक्रमण की सूचना के बावजूद कार्रवाई नहीं करता है, तो वह भी सजा का हकदार है। लेकिन आरटीआई से प्राप्त जानकारी से पता चलता है कि राजस्व विभाग के अधिकारियों को इस क्षेत्र में नदियों और नदियों सहित चारागाहों की सरकारी भूमि पर खनन माफियाओं द्वारा किए गए अतिक्रमण की जानकारी है। लेकिन खनन माफिया नौकरशाही पर इतना भारी है कि किसी पर कोई कार्रवाई नहीं की गई।

भरतपुर में अवैध खनन के प्रभाव

राजस्थान को रेगिस्तान के रास्ते से जाना जाता है। लेकिन अरावली की श्रृंखलाएं इसके एक बड़े हिस्से में भी फैली हुई हैं। अब तक, अरावली की इन जंजीरों को हराने के नाम पर वन विभाग अकेले देश के धन और विदेशी मदद का उपयोग कर रहा है। अब सरकार और सरकार के दर्जनों विभागों द्वारा इन जंजीरों से पत्थरों और लकड़ी का शोषण किया जा रहा है। एक रिपोर्ट राजस्थान के भरतपुर जिले में अवैध खनन रैकेट की जांच करती है

नमक का दरोगा मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी है। स्वतंत्रता आंदोलन के युग में, जब देश में देव-समान वस्तुओं के व्यापार पर प्रतिबंध था। लेखक ने मुंशी बंशीधर जैसा चरित्र बनाया जो रात के अंधेरे में पूरी ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करता है। उसी समय, दूसरा चरित्र पंडित अलोपीदीन का है, जो लक्ष्मी के बल पर अपना राज्य चलाते थे, उनका मानना था कि धरती पर स्वर्ग में भी लक्ष्मी का शासन है। एक दिन अलोपेदीन की लक्ष्मी और बंशीधर के धर्म, धर्म की जीत के बीच युद्ध होता है। कहानी के नायक, बंशीधर, घर से काम करने जाते हैं, पिता बताते हैं कि बेटे का वेतन पूर्णिमा का चाँद है, ऊपरी आय एक बहता हुआ स्रोत है। मनुष्य वेतन देता है, भगवान ऊपरी आय देते हैं। कहानी के पिता मुंशी बंशीधर को अपने पिता की यह शिक्षा समझ में नहीं आती और वह रात के अंधेरे में डयूटी करते हुए लक्ष्मी से नफरत करता है।

राजस्थान के भरतपुर जिले के अवैध खनन क्षेत्रों में भी, कई विभागों के शीर्ष अधिकारी रात में ड्यूटी कर रहे हैं, लेकिन अब वे प्रेमचंद के नायक की तरह लक्ष्मी से नफरत नहीं कर रहे हैं। उनका नाइट ड्यूटी वह कार्य है जिसमें वह प्रकृति के साथ खुलकर खेल रहे हैं। पहाड़ों का अस्तित्व हमें खतरे में डाल रहा है। हरे पौधे खून के आंसू रोने को मजबूर हैं। एक तरफ, राज्य में hand हरित राजस्थान 'जैसा अभियान हो सकता है, लेकिन यहां सैकड़ों पेड़ अवैध खनन से कट रहे हैं। जंगल संरक्षित क्षेत्र वीरान हैं। प्रकृति रो रही है, पहाड़ों से पैसा नीचे की ओर ऊपर की ओर बह रहा है। हर कोई बहती नदी में स्नान कर रहा है। प्रकृति के आंसुओं से उन्हें क्या मिला, वे पैसों की बरसात में नहाए खुश हैं। यह देखते हुए कि पिछले दस वर्षों में कई पहाड़ों का अस्तित्व गायब हो गया है, कुछ सैकड़ों फीट गहरे गढ्ढों में परिवर्तित हो गए हैं। एक प्रमुख दैनिक समाचार पत्र ने भरतपुर जिले के रुदावल शहर से एक समाचार प्रकाशित किया। जो इस प्रकार है। 'कार्यवाही के नाम पर आगे बढ़ने के नाम पर, रुदावल पुलिस थाना क्षेत्र में अवैध खनन और लकड़ी के वाहनों से अवैध वाहनों को निकाला जा रहा है। कार्रवाई के शिकार लोगों को संदेह है कि इस रात जीप में उपखंड क्षेत्र के दो सरकारी कर्मचारी हैं जो बनाते हैं भारी वसूली। यह खबर में आगे लिखा गया है, मजेदार बात यह है कि क्षेत्र में स्थित सफेद पत्थर की खदानों से 15 किलोमीटर दूर स्थित रीको क्षेत्र में बेशकीमती अवैध पत्थर के परिवहन में कई विभागों की निर्धारित वसूली के बाद भी, ये अज्ञात लोग रात में ठीक हो सकते हैं।

इस पूरी खबर में, अज्ञात लोगों की इस बरामदगी से दो चीजें ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। जिन्होंने जानबूझकर अनजान बनने की कोशिश की है। एक - 'अवैध खनन द्वारा निकाले गए कीमती टिम्बर।' दो - 15 किमी की दूरी पर स्थित किलाना में स्थित रिको क्षेत्र में अवैध पत्थर के परिवहन में कई विभागों की निर्धारित वसूली के बाद भी। इसका सीधा सा मतलब है कि पत्थर का अवैध खनन क्षेत्र में हो रहा है और इसके होने के पीछे की सच्चाई यह है कि सरकार के जिन विभागों पर इसे रोकने की सख्त जिम्मेदारी है। यह वन क्षेत्र को संरक्षित करने, इसे और अधिक हरा बनाने और पर्यावरण को और अधिक सुखद बनाने का काम है। वे इसे बनाने की कीमत वसूल रहे हैं। अखबार ने इन दोनों बातों को सीधे कहा है।

3 जून, 2020 को, हाल ही में संभाग मुख्यालय में नियुक्त आयुक्त मधुकर गुप्ता जिले भर के शीर्ष अधिकारियों की एक बैठक करते हैं और अवैध खनन के संबंध में सख्त निर्देश देते हैं। गुप्ता अधिकारी को खनिज संपदा के महत्व को समझना चाहिए और अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वहन करना चाहिए। लापरवाही पाए जाने पर कड़ी कार्रवाई करने के निर्देश भी देते हैं। जिसके अनुसार पर्यावरण संरक्षण के लिए उच्च न्यायालय द्वारा जारी आदेशों की अनुपालना सुनिश्चित करने की भी बात की गई थी। बैठक में संभागीय आयुक्त ने गांव के पटवारी, वन विभाग के रेंजर, पुलिस अधिकारी सहित शीर्ष अधिकारियों की जिम्मेदारी तय की। वैसे, इस तरह के निर्देश और बैठकें यहां सामान्य प्रक्रिया का एक हिस्सा हैं। यदि इस पूरे रैकेट से जुड़े लोगों पर विश्वास किया जाए, तो प्रक्रिया का हिस्सा बनने वाले प्रत्येक अधिकारी को उसकी गहराई को समझना होगा ताकि उसमें उसका क्या हिस्सा हो और वह अपने स्तर से कहीं नीचे हो।

5 जून 2018 को, पुलिस, प्रशासन और वन विभाग द्वारा बड़े पैमाने पर छापे मारे गए। अवैध खनन क्षेत्र के मजबूत मोबाइल नेटवर्क के बावजूद, या दबाव में कि कुछ आदेश ऊपर से जब्त करने हैं, आधा दर्जन मशीनों को जब्त कर लिया गया है। जिसमें तीन मशीनें, एक जनरेटर, एक कंप्रेसर और एक ट्रैक्टर-ट्रॉली जब्त की गई। इस घटना के बीच एक बड़ी घटना हुई। उप-विभागीय अधिकारी रूपवास को इतना गुस्सा

आया कि उसने ज़ब्त सामान को आग लगाने का आदेश दिया। मौके पर एक केग केरोसिन भी खरीदा गया था। ग्रामीणों को गुस्सा करने और विरोध करने से रोकना संभव था और उपस्थित अधिकारियों के कहने पर उन्हें ऐसा करने से रोका गया। यहां एक बड़ा सवाल यह उठता है कि उपखंड अधिकारी को इतना गुस्सा क्यों आया? लोगों के अनुसार, रात में अवैध वसूली सामने आने के बाद उपखंड अधिकारी का मूड कुछ गड़बड़ा गया है।

भरतपुर जिले में 7 विधानसभा क्षेत्र हैं। जिसमें से 4 अवैध पत्थर खनन का कारोबार अपने चरम पर है। यही वजह है कि इन जगहों पर आने के लिए राज्य भर के बाबू से लेकर आला अधिकारी तक की होड़ लगी रहती है। जिन लोगों को इन क्षेत्रों में आने और रहने का अवसर मिलता है वे धन्य महसूस करते हैं। जिसमें, अधिकांश चर्चाओं में, बयाना-स्वरूप एक युद्ध क्षेत्र बना हुआ है। पत्थरों को लूटने वाले क्षेत्रों में बयाना, वायासुर का ऐतिहासिक शहर, कान्मा, कृष्णा के कामवन के लिए प्रसिद्ध, छोटी काशी वैर, इतिहास में विद्वानों के लिए प्रसिद्ध, जलमहल शहर, डेग शहर और रूपवासंत शामिल हैं। रूपवास शहर। इन सब के बीच, रीको बयाना के कारण सबसे अधिक चर्चित क्षेत्र रूपस-बयाना है। जहां से कीमती बलुआ पत्थर, गुलाबी पत्थर और सफेद पत्थर निकाले जाते हैं। इस व्यवसाय से जुड़े लोगों के अनुसार, पिछले 20 वर्षों में, देश के किसी भी प्रमुख सरकारी भवन, भवन, मंदिर, होटल, पार्क और किसी भी अन्य प्रकार में कोई निर्माण कार्य नहीं हुआ है, जिसमें सफेद, बलुआ पत्थर और के रूप में प्रसिद्ध है गुलाबी पत्थर। यदि पत्थर सेट किया गया है, तो यह यहाँ से चला गया है। इस तरह के निर्माण कार्यों में राजस्थान की अपनी विधानसभा, मायावती के पार्क, मूर्तियां, निवास, दिल्ली का अक्षरधाम मंदिर और इसी तरह के हजारों निर्माण कार्य हैं जिनमें यह पत्थर अपनी महिमा में चंद्रमा पर रखा जा रहा है। यह काम आज भी उसी स्तर पर जारी है।

सरोवर रूपवास तहसील में बंशी पहाड़पुर के पास एक गाँव है। जहां खनिज विभाग की कुछ लीज है। इसके अलावा, महलपुर चुरा और बसई मोर में दो पट्टे जारी हैं। इन वैध क्षेत्रों में लाल पत्थर निकलता है जिसे हटाया नहीं जाता है। इस क्षेत्र के सफेद, बलुआ पत्थर और गुलाबी पत्थर की मांग है जो वन विभाग के अधीन है। बांधा वरैथा फौना अभयारण्य भी इस अवैध खनन क्षेत्र के अंतर्गत आता है। रुदावल से पहाड़पुर के बीच 22 नंबर रेलवे फाटक है। वैसे यह द्वार पहाड़पुर गाँव तक पहुँचने का रास्ता है। लेकिन अब यह सड़क पूरी तरह से बंद है। जब हमने गेट मैन से इसका कारण जानने की कोशिश की, तो उसने बताया कि यहाँ खाने के लिए पत्थर हैं और यह केवल उस साधन के लिए खोला जाता है जिसमें पत्थर जाता है। पास में अपने जानवरों को खिलाने वाले एक युवक ने कहा, 'उनके लिए गेट मुफ्त में खुलता है, हर उपकरण को हटाने की पेशकश की जाती है। जहां तक गेट नंबर 22 के अंदर देखा जा सकता है, पत्थर के पहाड़ दिखाई देते हैं। इस प्रतिबंधित क्षेत्र में लगभग 180 सफेद पत्थर के भोजन हैं। जिससे पत्थर निकाला जाता है। इस संबंध में, जब हमने वन विभाग के अपने कार्यालय में एक तखत पर पड़े फॉरेस्टर सूर्यपाल सिंह से सच्चाई जानने की कोशिश की, तो उन्होंने कहा कि 'गेट नंबर 22 के अंदर का इलाका वन संरक्षित है, इसमें खनन हो रहा है।' हम क्या कर सकते है?' हमारे पास संसाधन नहीं हैं। 'जब उनसे लेन-देन के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने खुद को साफ बताया और स्वीकार किया कि आग के धुएं के बिना, यह दिखाई नहीं देता है'। रेंजर ईश्वर सिंह मीणा ने कहा कि 'अवैध खनन करने वाले लोग सामूहिक रूप से इस काम को अंजाम देते हैं, कभी-कभी स्थिति हमारे लिए घातक हो जाती है।' हमारे लिए सुरक्षा जोखिम भी है, फिर भी हम कार्रवाई करने की कोशिश करते हैं। हमें शायद ही कभी स्थानीय पुलिस का समर्थन मिलता है। रेलवे के गेट को गार्ड के साथ मिलकर 22 को बंद रखा जाता है, ताकि खनिकों को किसी भी कार्रवाई के बारे में सूचित किया जा सके।

अवैध खनन का पर्यावरण पर प्रभाव

अरावली में नदी की धारा के साथ अत्यधिक रेत खनन से नदी का कटाव हो सकता है। इससे नदी का तल गहरा हो जाता है, जिसके कारण बैंकों का क्षरण बढ़ सकता है। धारा और बैंकों के नीचे से रेत (बालू) निकालने के कारण नदियों की गहराई बढ़ जाती है, जिससे नदी के विस्तार और तटीय प्रवेश द्वार का विस्तार होता है। । इसके कारण, पास के समुद्र से खारा पानी भी प्रवेश कर सकता है। अत्यधिक खनन के कारण, जल स्तर में वृद्धि का नदियों पर अधिक प्रभाव पड़ेगा। अतिरिक्त रेत खनन पुल, किनारे और आस-पास की संरचनाओं के लिए खतरा पैदा कर सकता हैं। यह संलग्न भूमिगत जल पारिस्थितिकी तंत्र को भी प्रभावित करता है। अत्यधिक सुव्यवस्थित खनन के कारण एक्वाकल्चर और तटीय आवास क्षतिग्रस्त हैं। इसके प्रभावों में नदी के बिस्तर का क्षरण, नदी के तल का सख्त होना, नदी के तल के पास जल स्तर में कमी और जलग्रहण की अस्थिरता शामिल हैं। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा जारी ये दिशानिर्देश आशाजनक प्रकृति के हैं। उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, सख्त विनियमन और विभिन्न हितधारकों की भागीदारी की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष और सुझाव

अरावली पर्वत श्रृंखला रेगिस्तान को फैलने से रोकने के साथ-साथ मीठे पानी का स्रोत है। इसके अलावा, पहाड़ी के किनारे फैले जंगल लाखों जीवों का घर बने हुए हैं। लेकिन धीरे-धीरे ये पहाड़ खत्म होते जा रहे हैं। समय-समय पर राजस्थान में अवैध खनन को रोकने के लिए अरावली क्षेत्र में नदियों का सर्वेक्षण किया जाता है। सभी खनन क्षेत्रों की विस्तृत सर्वेक्षण रिपोर्ट को सार्वजनिक किया जाना चाहिए और ऑनलाइन उपलब्ध कराया जाना चाहिए। नदी तल की स्थिति का बार-बार अध्ययन किया जाना चाहिए। ड्रोन को हवाई सर्वेक्षण और जमीनी सर्वेक्षण के माध्यम से खनन क्षेत्रों की लगातार निगरानी करनी चाहिए। जिला स्तरीय समलपत कार्य बलों की स्थापना की जानी चाहिए। रेत और अन्य नदी सामग्रियों की ऑनलाइन बिक्री को पारदर्शी बनाया जाना चाहिए। नाइट-विजन ड्रोन के माध्यम से खनन गतिविधियों की निगरानी करें। मानसून के दौरान, किसी भी नदी के तट पर खनन की अनुमति नहीं होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पर्यावरण भूगोल, सविन्द्र सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. राजस्थान का भूगोल, प्रो एच एस शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. न्यूज़ 18 रिपोर्ट 06 फरवरी 2019 राजस्थान।
4. न्यूज़ 18 रिपोर्ट 24 अक्टूबर 2018 राजस्थान।
5. राजस्थान पत्रिका रिपोर्ट, 5 दिसम्बर 2019।
6. दकजअ इंडिया न्यूज़, 30 अक्टूबर 2018।
7. वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, राजस्थान सरकार।
8. जिला कलेक्टर कार्यालय, भरतपुर।

आधुनिक भारत में औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि : एक अध्ययन

डॉ. अनामिका ब्रजवंशी

पी-एच0 डी0, (इतिहास विभाग), बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

1833 के चार्टर अधिनियम ने भारत में आधुनिक उद्योगो के विकास के द्वार खोल दिये जिसके कारण भारत में उद्योग तथा व्यापार का विकास करने के लिए यूरोप के व्यापारियों को अवसर मिला और बगान उद्योग एवं पटसन, रेलवे आदि जैसे एकाधि कारी उद्योगों में विदेशी पूंजी तथा साहस का आगमन होने लगा। अब भारत से कोई भी देश स्वतंत्र रूप से व्यापार कर सकता था साहस का आगमन होने लगा। अब भारत से कोई भी देश स्वतंत्र रूप से व्यापार कर सकता था क्योंकि अधिनियम ने अंग्रेजों की कंपनी के व्यापार पर लादे गये एकाधिकार को समाप्त कर दिया था।

20वीं सदी में यूरोप में कई प्रकार के संकट आए गृह युद्ध के अतिरिक्ताउसे विश्वयुद्ध का भी सामना करना पड़ा। इन संकटो में यूरोप के देश उलझ गये जिसके फलस्वरूप भारत को आधुनि उद्योगों को विकसित करने का अवसर मिल गया। इन संकटो के दौर काल में ही भारत ने पुनः सूति वस्त्रों एवं जुट उद्योगको फलित करने का कार्य किया।

शब्द कुंजी: औद्योगीकरण, संस्थागत निवेश, धन का प्रवाह, मानवतावादी मुखौटा, स्वदेशी आंदोलन, सम्राज्यवाद।

परिचर्चा

19वीं सदी में जो औद्योगिक विकास की धारा भारत में उभरी उसमें लघु शिल्प उद्योगे का ह्रासीकरण तथा आधुनिक उद्योग का विकासोन्मुख रूख दिखता है, लेकिन जर्मनी, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशो में तद्युगीन औद्योगीकरण की धारा को यदि देखें तो भारतीय औद्योगिक विकास की गति मध्य दिखती है। 19वीं सदी के अंत तक केवल 4 लाख भारतीय लोग उद्योगों से संबद्ध थे जो जर्मनी, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों की तुलना में नगण्य दिखता है। उपरोक्त स्थितियों के आलोक में हम औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को यदि देखे तो औद्योगिकीकरण के कुछ आधारभूत तत्व होते है जो निम्न है-

1. वित्त
2. प्राकृतिक संसाधन
3. श्रम
4. पूंजी
5. तकनीक

इनसे हुए उत्पादन की ढुलाई के लिए यातायात के साधन के साथ बाजार एक आधारभूत आवश्यकता होती है। इन सबके बगैर कोई औद्योगिक क्रांति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त भी कुछ तत्व होते है, जैसे वित्त के साथ उद्यमशीलता की प्रवृति भी चाहिए। समाज की संरचना और संस्कृति के साथ धर्म के तत्व भी प्रबल होते है, जैसे ब्राह्मण धर्म में समुद्रपारीय व्यापार का निषेध, बौद्ध

धर्म का अपरिग्रह तथा इसी से संपृक्त जैन धर्म भी। ऐसे में ही राजाराममोहन राय एवं विवेकानंद की वह धारा निकलती है, जिसमें सन्यासी की इच्छा औद्योगिक क्रांति से जुड़ती है। वस्तुतः भारतीय औद्योगिक विकास को औद्योगिकीकरण के उपरोक्त आधारभूत तत्वों के आलोक में देख सकते है।

वित्त

1850 तक वित्त को लागातार प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर रहा और 1850 के बाद यह प्रवृति और भी तेज हो गई। यह भारत में पूंजी के संस्थागत निवेश के लिए एक भारी दोष रहा। पूंजी की समस्या जर्मनी, जापान, यू0 एस0 ए0 में भी रही, लेकिन वहा की सरकारो ने बैंकिंग संस्थाओं के माध्यम से पूंजी को उद्योगों के लिए सुनिश्चित किया। अर्थात् अप्रयुक्त वित्त को लाभदायक वित्त में वहां की सरकारों ने तब्दील किया, लेकिन ऐसा कोई प्रयास ब्रिटिश सरकार द्वारा इस युग में नहीं दिखता है और पुनः सरकार भारतीय उद्योगों की साख को मान्यता दे सकती थी, जिससे उन्हें ऋण के रूप में वित्त प्राप्त हो सकता था, लेकिन सभी भी धन का प्रवाह भारत से बाहर की ओर हो रहा था और कुछ धन ऐसा भी था जो इंग्लैण्ड से भारत की ओर आ रहा था, जिसमें सबसे बड़ा माध्यम सार्वजनिक ऋणों का था, जिसका प्रयोग रेलवे, सेना, सड़क तथा ऐसे ऋण के ब्याज चुकाने में किया जाता था, जिसका कोई भी प्रतिफल भारत या भारतीयों को अप्राप्य था। इनमें से कोई ऐसा ऋण नहीं है, जो भारतीय उत्पादन व्यवस्था को सुदृढ़ करे, फलस्वरूप इन ऋणभारों के माध्यम से पूंजी का बहाव जारी ही रहा। पुनः कुछ विदेशियों ने अपने उद्योग स्थापित किये जिससे अर्जित लाभ को इंग्लैण्ड भेज देते थे। बैंकिंग, मैनेजिंग, हाउसेज, इंश्योरेनस संस्थाओं आदि में आनेवाल वित्त का प्रयोग अंग्रेजों को अपने उद्योग स्थापित करने के लिए उपलब्ध थे, भारतीयों को नहीं। परिणामतः भारत में उद्योगों की स्थापना में भारतीय वित्त की समस्या ग्रस्त रहे।

प्राकृतिक संसाधन

19वीं सदी का भारतीय उद्योग वस्त्र एवं खनन तक ही सीमित रहा, जबकि उसी समय जर्मनी, अमेरिका आदि लौह व इस्पात क्षेत्र में बड़ी तेजी से आगे बढ़े। वस्त्र एवं खनन उद्योग को भी यदि देखे तो खनन उद्योगों पर तो नियंत्रण अंग्रेजों का ही था एवं वस्त्र उद्योग के कॉटन व जूट क्षेत्रों में से भी जूट उद्योग पर अंग्रेजी नियंत्रण विद्यमान था, साथ ही कॉटन में भी कच्चे माल के निर्यात की प्रवृति ही ज्यादा थी। ऐसे में भारतीय उद्योगपतियों का उत्पादन लागत महंगा होता था, क्योंकि उद्योगपतियों को कच्चा माल महंगा मिलता था।

श्रम

भारत में अधिक जनसंख्या व गरीबी के कारण श्रमिक इतने है कि श्रम कम कीमत पर उपलब्ध हो जायेगा, जिससे भारतीय उद्योगपतियों के उत्पादन लागत में कमी आयेगी, जो मैनचेस्टर के लिए एक चुनौती है। ऐसे में सरकार द्वारा 'लेबर लॉ' बनाया जाने लगा, जिसके तहत् बच्चे व स्त्री को काम करने से रोका गया यानि कि यह साम्राज्यवादी उद्देश्य का वह मानवतावादी मुखौटा था, जिसके तहत् मैनचेस्टर को लाभ पहुंचाने का वास्तविक उद्देश्य शामिल था।

तकनीक

भारत में उद्योगों के इस महत्वपूर्ण आधार को आयात के माध्यम से पूरा किया जाता था, जबकि जर्मनी ने सरकारी संरक्षण में 30 वर्षो में पिछले 150 वर्ष के इंग्लैण्ड के विकास को पीछे छोड़ दिया और इस अवधि में भारत में एक भी अनुसंधान केन्द्र सरकार द्वारा नहीं खोला गया था,क्योंकि सही अर्थो में सरकार भारत को उसी रूप में ढ़ालना चाहती थी, जिस रूप में वह अमेरिका को नहीं ढ़ाल सकी थी। यानि कि इंग्लैण्ड के औद्योगिक उत्पाद का ऐसा बाजार जो खुद औद्योगिक विकास को कानून के माध्यम से रोकने का प्रयास किया गया और भारत में औद्योगिक विकास को दुज़्कर बनाने का प्रयास किया गया। मॉरिश-डी- मॉरिश जैसे इतिहासकार ने तो इसे अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन का सैद्धांतिक रूप भी दे दिया जिसके तहत् भारत को कच्चे माल का निर्यातकर्ता के रूप में लाभान्वित घोषित किया गया और इंग्लैण्ड में होने वाले विनिर्माण उद्योग के विकास को भारत के लिए लाभदायक बताया

गया तथा उनके अनुसार तो भारत और इंग्लैण्ड के बीच उत्पादन प्रक्रिया का यह विभाजन कुद इसी तरह का था जैसे कि उत्तरी और दक्षिणी इंग्लैण्ड में था, जिसका उत्तरी भाग औद्योगिकीकृत और दक्षिणी भाग कृषकीय था। लेकिन अपने सिद्धांत की रचना करने के वक्त मॉरिस-डी-मॉरिस भारतीयों के घटते हुए प्रतिव्यक्ति आय और आकाल की भयावहता की लीपा-पोती कर गये, जबकि दक्षिणी इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था लगातार उन्नत हो रही थी और यही स्थिति दक्षिणी अमेरिका भी थी।

सरकार के द्वारा पैदा किए गए समस्याओं का एक सैद्धांतिक आधार था 'मुक्त अर्थव्यवस्था का सिद्धांत' जिसके तहत प्रशुल्क नीति को इस तरह विकसित किया गया था कि वह भारतीय उद्योगों का नवजातावस्था में ही गला घोट दे। इससे भारतीय उद्योग अंग्रेजी प्रतिस्पर्धा का शिकार हो बाजार से वंचित रह जाते थे। बावजूद इसे अगर विकास हुआ तो--

19वीं सदी तक भारत ने पश्चिमी जगत से जो संपर्क स्थापित किया, उसे यह प्रेरणा उभरी की आज की सभ्यता इतनी आगे बढ़ चुकी है कि तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगिक निवेश ही सबसे उत्तम मार्ग है। 19वीं सदी में चूंकि भारत को जबरन विश्व पूंजीवाद से सरकार ने जोड़ दिया तो उसके नुकसान के साथ-साथ कुछ फायदे भी हुए। जिसमें भारतीयों ने विश्व पूंजीवाद की प्रक्रिया को प्रेरणा के तौर पर ग्रहण किया। महाजनों ने अपने संग्रहित धन को औद्योगिक विकास में लगाया। 19वीं सदी की भारतीय, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास की धारा औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार कर रही थी, पुनश्च समाज सुधार की धारा सबसे प्रगतिशील रही बंगाल व बंबई में, लेकिन जिस वर्ग का सुधार की इस धारा और अंग्रेजी शिक्षा से ज्यादा संपर्क हुआ, वह औद्योगिक विकास से प्रायः नहीं ही जुड़ा, क्योंकि भारतीय औद्योगिक विकास में वित्त लगाने वाले आरंभिक लोगों में से ज्यादातर मारवाड़ी और साहूकार आदि थे, जिनका सामाजिक दृष्टिकोण परंपरावादी ही था, लेकिन इतनी बात तो कही ही जा सकती है कि भारतीय समाज में औद्योगिक विकास को एक सामाजिक स्वीकृति मिल गई और इसी कारण आरंभिक राष्ट्रवादी नेताओं ने जिन मुद्दों पर सरकार पर सबसे ज्यादा प्रहार किये, उनमें से एक था औद्योगिक विकास के प्रति सरकार की प्रतिकूल नीति, जैसे कि असंरक्षण या प्रशुल्क नीति।

औद्योगिक विकास में भारतीय पूंजी

भारतीय उद्योगो को आगे बढ़ने में जिस अतिरिक्त तत्व ने भूमिका निभाई वह थी 'स्वदेशी', जिसकी सबसे पहली मांग प्रभाकर पत्रिका के संपादक देशमुख ने की। इसी क्रम में रानाडे ने उत्पादन व्यवस्था को राष्ट्रनिर्माण से जोड़कर देखा था। इसी धारा का विकास आगे चलकर जब संगठित राष्ट्रीय राजनीति से संबद्ध हो जाता है, तो 1905 ई. के बंगाल के विभाजन का विरोध करने के लिए जिस स्वदेशी आंदोलन का आयोजन किया गया, उसमें विदेशी वस्तुओं और संस्थाओं का बहिष्कार कर देशी का विकल्प रखा गया, जिसमें स्वदेशी शिक्षा संस्थान, स्वदेशी कला, स्वदेशी वैज्ञानिक संस्थान की दिशा में तो प्रयास हुए ही, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार ने भारतीय उत्पादको के लिए मांग की एक जमीन भी तैयार की। इस दौरान उद्योगों के विभिन्न क्षेत्र आगे बढ़े, जैसे- कागज, रबर, आटा-चक्की, शोरा आदि से संबंधित उद्योग। इन सब में विज्ञान एवं तकनीक तो थी लेकिन उन्नत न होकर मझोले स्तर की, जो किसी औद्योगिक क्रांति का कारण बननेमें सक्षम नहीं थी। प्रथम विश्वयुद्ध ने औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को गति दी- भारत का औद्योगिक विकास तब-तब गति पकड़ लेता था, जब-जब इसका विश्व पूंजीवाद से संपर्क टूटता था। इसमें प्रथम विश्वयुद्ध ने अंग्रेजी विनिर्मित माल के आयाम के साथ कच्चे माल के निर्यात को भी बाधित किया, जिससे निर्माण लागत में कमी आई और बाजार की वृद्धि से अच्छी कीमत वसूल हुई और फिर इस दौरान खाद्यान्न के निर्यात में आयी कमी ने भी स्म्मरणी है कि अब तक भारतीय पूंजीपतियों की आर्थिक व सामाजिक शक्ति में हुई वृद्धि ने राष्ट्रीय आंदोलन को एक शक्ति भी प्रदान किया और चूंकि 20वीं सदी के आरंभ से ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद के विरूद्ध राष्ट्रवाद की धारा सशक्त हो रही थी तो इस धारा को विश्वयुद्ध ने और भी मजबूत कर दिया, जिसके तहत भारत में स्वराज की मांग पहले से ज्यादा मुखर बनकर उभरी। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने अपने उपर पड़ने वाले राष्ट्रीय दबाव से समझौता करते हुए भारतीय उद्योग जगत को संरक्षित करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि भारत की सरकार भारत में अमेरिका और जापान के बाजार को संरक्षणात्मक नीति के माध्यम से रोकने के लिए भी सचेष्ट थी। इसी संदर्भ में हमें 'हॉलैण्ड कमीशन' या फिर रॉयल फिसकल कमीशन और इसकी अनुशंसा पर गठित होने वाले 'टैरिफ बोर्ड' को देखना चाहिए, जिसने विभेदात्मक संरक्षण की नीति के तहत कुछ भारतीय

उद्योगों को सर्शत संरक्षण देने की नीति अपनाई, जिसके तहत यह प्रावधान था कि सरकार उन उद्योगो को संरक्षण देगी जो आरंभिक संरक्षण के बाद स्वत: अपने पांव पर खड़ा हो सकने में सक्षम हो। इसके तहत वस्त्र उद्योग, लोहा और इस्पात उद्योग तथा माचिस उद्योग को विशेष तौर पर संरक्षण मिला। यहां स्मरणीय है कि माचिस उद्योग, लोहा और इस्पात उद्योग तथा माचिस उद्योग को विशेष तौर पर संरक्षण मिला। यहां स्मरणीय है कि माचिस उद्योग में अंग्रेजी वित्त ही ज्यादा लगा हुआ था और फिर कागज, रबर या सीमेंट उद्योग को इस तरह का संरक्षण नहीं दिया यगा। यहां धयातव्य है कि टैरिफ बोर्ड की क्रियाविधि लालफीताशाही का शिकार भी थी या फिर यह कह सकते है कि सरकार राष्ट्रीय आंदोलन के दबाव से निपटने के लिए एक अनिच्छापूर्ण प्रयास कर रही थी और इसी संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि सरकार की मुद्रा विनिमय की नीति प्राय: भारतीय उद्योग जगत के लिए हानिप्रद रही, जिसका नुकसान है कि सरकार की मुद्रा विनिमय की नीति प्राय: भारतीय उद्योग जगत के लिए हानिप्रद रही, जिसका नुकसान 1922-1927 के बीच प्राय: भारतीय वस्त्र उद्योग को उठाना पड़ा। अभी भी भारतीय उद्योगपतियों को कच्चे माल की जरूरत थी और बदली हुई प्रशुल्क नीति से कच्चे माल के निर्यात में जो ह्रासीकरण आया, उसने इस समस्या की कुछ हद तक भरपाई की। श्रम की तो काई समस्या रही नहीं क्योंकि 1930 तक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने मुखर रूप से भारतीय पूंजीपति लोगों के उद्योग में श्रम को कभी भी मुद्दा नहीं बनाया। 20 के दशक में भारत में समाजवाद की जो धारा मजबूत हुई इससे श्रम पर होने वाले लाभ में वृद्धि हुई।

तकनीकी विकास सरकारी संरक्षण के अभाव में प्राय: पिछड़ा ही रहा। 1894 के बाद से ही कुछ स्वायत संस्थाओं के माध्यम से इक्के-दुक्के अनुसंधान संस्थान स्थापित किये गए जैसे- कलकत्ता में 'इंडिया लीग' या फिर बॉबे आदि में ऐसे संस्थान स्थापित हुए, लेकिन अभी भी भारतीय उद्योग को तकनीक के लिए ज्यादातर विदेशों पर आरित रहना पड़ता था, जो न सिर्फ उत्पादन को हतोत्साहित करता था, वरन उत्पादन लागत को भी बढ़ा देता था। यहां स्मरणीय है कि 1940 ई. तक आते-आते भी भारत में उच्च तकनीकी शिक्षा पाने वाले स्नातकों की संख्या 1000 से कम थी।

जहां तक पूंजी का प्रश्न है, तो उद्योग जगत के बढ़ते आधार ने उनकी अवस्था में कुछ सुधार किया और फिर भारतीयों के बीच से उभरने वाले बैंकिंक व्यवस्था ने उन्हें सहयोगात्मक आधार दिया, जैसे- अवध कमर्शियल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, इलाहाबाद बैंक आदि। इन सबके परिणामस्वरूप 1914 ई. में भारतीय वस्त्र उद्योग जहां भारतीय मांग का 1/4 उत्पादित करता था वहीं 1934-35 ई. तक जाकर वह भारतीय मांग का 3/4 उत्पादित करने लगा और यहीं आंकड़ा लौह इस्पात उद्योग के संबंध में भी सही है। 1935-36 ई. में भारत में 8 लाख 79 हजार टन लौह इस्पात का उत्पादन हुआ जो भारतीय इतिहास का एक रिकार्ड रहा, लेकिन यहां स्मरणीय है कि विकास की इस गति को भारतीय आधार के छोटा होने के कारण ज्यादा तेज होते देखते हैं। यहां हमें यह ध्यान देना होगा कि भारत से जिस साल रिकार्ड लोहे का उत्पादन किया था। उस साल भी भारत की 1/10 आबादी वाला हॉलैण्ड भी भारत से ज्यादा लोहा उत्पादित किया था। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग के विकास की गति में कमी आई थी। 1914 ई. के आसपास भारत में चीन ओर जापान से दोगुना सूती वस्त्र का उत्पादन होता था और 1934 ई. में जाकर इन दोनों का उत्पादन भारत से ज्यादा हो गया। अर्थात् भारत के उत्पादन में तो वृद्धि हुई, लेकिन उत्पादन के दर में कमी आई इसका एक बड़ा कारण यह था कि भारत में उद्योग जगत को सहयोग देने वाली मैनेजिंग एजेंसियां प्राय: ब्रिटिश प्रभुत्व मेंकाम करती थी, जिसमें 'एंड-यूल-एंड' या फिर 'जॉडॅन-एंड- स्कीनर' प्रमुख थी। पुन: भारत में विकासमान बैंकिंग व्यवस्था पर भी अंग्रेजी प्रभुत्व बना ही रहा। 1934 ई. में विश्वश्वरैया ने अपने रिपोर्ट में लिखा है कि भरतमें बहुत कम ही ऐसी बैंकिंग संस्थाएं है, जिसपर भारतीयों का प्रभुत्व हो। भारतीय बैंकिंग व्यवस्था के चार प्रमुख आधार थे, जिसमें 1920 ई. का इम्पीरियल बैंक, 1934 ई. का रिजर्व बैंक, फिर एक्सचेंज बैंक- इन तीनों पर विदेशी प्रभुत्व स्पष्ट रूप से लक्षित होता है और फिर द इंडिरून्ज्वाइंट स्टॉक बैंक में ही भारतीयों की भूमिका महत्वपूर्ण हुआ करती थी, जिसमें विदेशियों की भागीदारी भी थी और इन बैंकिंग संस्थाओं की सामान्य क्रियाविधि यह थी कि ये ऋण दने मेंनस्लवादी व्यवहार करते थे जो इंडियन सेन्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी के अल्पमत रिपोर्ट से मालूम होता है जो टी0 के0 गोस्वामी के रिपोर्ट से बिल्कुल मिलता जुलता है। परिणामत: भारत में इंग्लैण्ड और दुनिया की बड़ी-बड़ी कंपनियो ने अपनी उपशाखा खोल ली और उसे इंडिरूा लिमिटेट के नाम से रजिस्टर करा लिया। जिसमे 'लीवर ब्रदर्स', 'इम्पीरयिल केमिकल्स' या डनलप का नाम महत्वपूर्ण है और ये कंपनियां अपना लाभांश विदेश भेज देती थी। इस काल तक भारत में बैंकिंग क्षेत्र में विकास को निम्न तरीके से समझा जा सकता है--

कुल मिलाकर देखे तो भारतीय औद्योगिक विकास की गति ज्यादा तेज नहीं हो सकी, लेकिन जब इंग्लैण्ड में उद्योग जगत का दबाव सरकार के उपर बढ़ा तो सरकार ने संरक्षणात्मक प्रशुल्क नीति को भी संशोधित करते हुए साम्राज्यिक वरीयता का मार्ग पकड़ लिया। तात्पर्य कि 1920-21 ई. में सौहार्द्र की धारा एक बार फिर से साम्राज्यिक शोषण का रूप धारण करने लगी, क्योंकि अंग्रेजी उद्योग जगत विश्व स्तरीय महामंदी के दौर से गुजर रहा था और उसे भारत के बाजार की सख्त आवश्यकता थी। इस वरीयता सिद्धांत के तहत भारत को कॉमनवेल्थ के एक सदस्य के रूप में व्याख्यायित करते हुए अंग्रेजी साम्राज्य के विविध अंगों के बीच आपस में एक-दूसरे को वरीयता देने वाले शर्तो के साथ व्यापार की नीति अपनाई गई। यहां वरीयता से तात्पर्य यह था कि यू0 एस0 ए0 और जापान से आने वाली वस्तुओं पर जहां 50 प्रतिशत टैरिफ लगाया जा सकता है वहीं इंग्लैण्ड से आने वाली वस्तुओं पर मात्र 20 प्रतिशत, ताकि भारतीय बाजार पर बढ़ते हुए विश्व पूंजीवादी शिकंजे को रोका जा सके और इंग्लैण्ड के लिए भारतीय बाजार सुलभ कराया जा सके।

इसी वरीयता की नीति को 'ओटावा सम्मेलन' में तमाम भारतीय विरोध के बावजूद व्यापक स्तर पर लागू करने की नीति अपनाई गई। लेकिन स्मरणीय है कि जिस क्रम में राष्ट्रीय आंदोलन की धारा मजबूत हो रही थी, भारत में अंग्रेजी उद्योग एवं वित्त जगत की रूचि भी घटने लगी थी और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की रणनीति इसके लिए विशेष घातक सिद्ध हुई। यहां यह भी स्मरणीय है कि उभरता हुआ समाजवाद विदेशी पूंजीपतियों के लिए एक अतिरिक्त चुनौती बन रहा था और फिर कच्चा माल के प्राकृतिक स्रोतों की जगह विकासमान कृत्रिम स्रोतों ने भारत में कई विदेशी उद्योगपतियों के आधार की समाप्त कर दिया, विशेषत: नील उद्योग। कुल मिलाकर देखे तो 1940 तक आते-आते भारतीय उद्योग व वित्त जगत पर भारतीयों का प्रभुत्व स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया, लेकिन हम इसे भारतीय औद्योगिक क्रांति नहीं कह सकते, क्योंकि अल्प औद्योगिक विकास, एकांगी औद्योगिक विकास, विषम क्षेत्रीय औद्योगिक विकास, भारी उद्योगों एवं तकनीकी विकास की कमी रही।

निष्कर्ष

19वीं सदी के अंतिम दशक तक भारत के आधुनिक उद्योगो में विदेशी पूंजी की ही प्रबलता कायम रही। 20 वीं सदी के आरंभिक दशकों में भारत की आंतरिक परिस्थितियों के साथ अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी भारतीय उद्योगो में भारतीय पूंजी निवेश का अवसर प्रस्तुत किया। भारतीय पूंजीपतियों ने इस अवसर को भूनाया और इस प्रकार भारत के आधुनिक उद्योगो को नवनी आध ार एवं स्वरूप प्राप्त हो सका।

संदर्भ

1. सरकार, सुमित, राजकलम प्रकाशन दिल्ली, पृ. सं. 274-282
2. भट्ठाचार्य, सब्यसाची, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं 205-225
3. सिंह, अयोध्या, मैकमिलन इंडिया, पृ. सं. 167-209

भारत में क्रांतिकारी आंदोलन एवं उसकी प्रमुख गतिविधियां (बिहार के विशेष संदर्भ में)

डॉ० अनंता कुमारी

पी-एच० डी० (इतिहास विभाग), बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

ब्रिटिश शासन के विरूद्ध आंदोलन में बिहार की भूमिका काफी अग्रणी रहा। भारत की जनता ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन शुरू किया। ब्रिटिश शासन के विरोध में सत्याग्रह गांधी जी के द्वारा सर्वप्रथम आंदोलन चम्पारण में शुरू किया गया। सन् 1947 ई. के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार का महत्वपूर्ण योगदान रहा। प्रारंभ में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध राष्ट्रीय आंदोलन के उद्देश्यों में अंतर देखा जा सकता है। शुय का संघर्ष असंतोष एवं समस्याओं का परिणाम था। 1857 ई. के विद्रोह को छोड़कर सभी प्रयासों का प्रभाव बहुत ही क्षेत्रों में रहा। 1857 ई. के विद्रोह का प्रभाव उत्तरी एवं मध्य भारत तक ही सीमित रहा। इस विद्रोह का उद्देश्य अंग्रेजी सत्ता के स्थान पर पुराने नवाब जमींदार और अन्य प्रभाव को पुनः बहाल करना था। राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य लक्ष्य ब्रिटिश शासन से भारत को स्वतंत्र कराना था और साथ-ही-साथ जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में सत्ता को सौंपना था। इस आंदोलन का मुख्य कार्य शिक्षित और मध्यम वर्गो के हाथों से होता था। इस आंदोलन में राष्ट्रीय चेतना की भावना स्पष्ट रूप से झलकती थी और इससे यह भी पता चलता था कि भारत की जनता में एकता बरकरार है। अतः भारतीय की समस्या का निराकरण एकांतिक ढंग से हो पाना संभव नहीं था। बल्कि सम्पूर्ण भारत को स्वतंत्र कराना अनिवार्य हो गया था। इस आंदोलन का प्रचार-प्रसार पूरे भारत में हुआ। इस संघर्ष में हिंसा की अपेक्षा संवैधानिक साधानों द्वारा राजनैतिक स्वरूप को प्राप्त करने की चेष्टा की गई। 19वीं शताब्दी के बाद नई राष्ट्रीयता की चेतना समस्त भारत में जगी। इस राष्ट्रीय भावना में बिहार भी अपनी भूमिका कायम रखी।

प्रस्तुत अध्ययन में विशेषकर बिहार के संदर्भ में प्रमुख क्रांतिकारी गतिविधियों का विशलेषण किया गया है।

शब्द कुंजीः क्रांतिकारी आतंकवाद, अनुशीलन समितियों, समाजवाद, काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, भारत रक्षा अधिनियम, भूमिगत आंदोलन।

परिचर्चा

भारत में हुए क्रांतिकारी आंदोलनों का स्वरूप और क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इसकी शुरूआत 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक से ही देखी जा सकती है, 20वीं शताब्दी का पूर्वाद्ध भारत में क्रांतिकारी आंदोलनों की निरंतरता का काल माना जा सकता है। उत्तर भारत में क्रांतिकारी आंदोलनों का प्रभावी विस्फोट बंगाल विभाजन के बाद हुए मुजफ्फरपुर बम कांड से बिहार की धारती से हुई मानी जा सकती है।

बिहार में राष्ट्रीय जागृति 19वीं शदी के आरंभ में ही शुरू हो चुकी थी। राष्ट्रीय स्तर पर जब इस भावना का विकास हो रहा था तो इस भावना का अनेक कारण मौजूद थे। सर्वप्रथम बिहार अधिक समय से ब्रिटिश सत्ता के विरोध का केन्द्र रहा था। वहाबी आंदोलन, जनजातीय विद्रोह एवं 1857 का विद्रोह बिहारवासियों के मस्तिष्क पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ा। दूसरी तरफ पाश्चात्य

शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने नए राजनैतिक विचार व राष्ट्रीय चेतना में योगदान दिया। ब्रिटिश प्रशासनिक नीतियों से जन्में असंतोष अपना अलग स्थान बना लिया था। बंगाल इस समय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख केन्द्र बनता जा रहा था। बिहार-बंगाल के नजदीक था। इसलिए इन भावनाओं का बिहार में भी प्रचार-प्रसार हो रहा था। भारतीय जनता राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर 1880 से सार्वजनिक संगठन की नींव रखकर देश के विभिन्न भागों में इस आंदोलन को सक्रिय रूप से चलाने का निर्णय लिया। 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना राष्ट्र के लिए एक निर्णायक पड़ाव था। 1886 ई. में कोलकाता कांग्रेस अधिवेशन में बिहार के कई प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके बाद काँग्रेस के सभी अधिवेशनों में बिहारी कार्यकर्तौ सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। दरभंगा के महाराजा लक्ष्मेश्वर सिंह ने भी काँग्रेस को आर्थिक रूप से सहायता प्रदान की। राष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाले संगठनों ने बिहारवासियों में राष्ट्रीय चेतना को जगाया। इसी क्रम में बिहार को बंगाल से अलग करके ऐ अलग प्रांत बनाने की मांग उठने लगी थी।

19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में बिहार प्रांत की अलग मांग शिक्षित वर्गो द्वारा की जाने लगी। 1984 में बिहार टाइम्स नामक एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका के द्वारा बिहार को अलग प्रांत बनाने की मांग रखी गयी। इस पत्रिका के सम्पादक महेश नारायण और सच्चिदानंद सिन्हा थे। इसी वर्ष बिहार के उपराज्यपाल सर चार्ल्स इलियट को बिहार प्रांत को बंगाल से अलग करने का ज्ञापन सौंपा गया। लेकिन इस ज्ञापन पर गौर करने के बाद उपराज्यपाल ने स्वीकृति नहीं दी। मुगलकाल में बिहार एक अलग राज्य था। मुगल सत्ता की समाप्ति के पश्चात बिहार, बंगाल के नवाबों के अधीन आ गया था। ब्रिटिश शासन में बिहार बंगाल जुड़ा रहा। इस कारण बिहार में प्रशासन और शिक्षा पर बंगालियों का बहुत अधिक वर्चस्व था। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार से बिहार के लोग भी रोजगार की संभावनाओं के लिए इच्छुक होने लगे। बिहार के बुद्धिजीवी बिहार को बंगाल से अलग करना चाहते थे। इस कारण बिहार को अलग प्रांत बनाने का जोड़ पकड़ता जा रहा था। इस मांग में शिक्षित मुस्लिम एवं कायस्थ ने काफी योगदान दिया। कुछ वर्षो के पश्चात् 1905 ई. में बंगाल के विभाजन का फैसला लॉर्ड कर्जन ने किया। बंगाल को दो भागों में करने के पीछे प्रशासनिक सुविधा बताया गया। लेकिन वास्तविक उद्देश्य बंगाल में जोर पकड़ रहे राष्ट्रीय आंदोलन को खत्म करने का था एवं इस प्रांत को साम्प्रदायिकता के आधार पर हिन्दू क्षेत्र और मुस्लिम क्षेत्र में बांटना था। इस निर्णय का राष्ट्र के लोगों ने जमकर विरोध किया।

1905 में बंगाल विभाजन के बाद स्वदेशी आंदोलन के जरिए बंगाल में राष्ट्रीय आंदोलन का रूप काफी उग्र हो गया। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में नरमपंथी नेताओं के जगह पर गरमपंथी नेताओं का धीरे-धीरे पदार्पण होने लगा। बंग-भंग विरोधी आंदोलन ने जब जोर पकड़ा तो बिहार भी इसके प्रभाव में आ गया। बिहार के लोगों ने गौर किया कि बंगाल का विभाजन मात्र प्रशासनिक सुविध ा के लिए नहीं किया गया है बल्कि प्रशासनिक सुविधा के नजरिए से बंगाल को विभाजित करने के बदले बिहार के क्षेत्र को बंगाल से अलग कर प्रशासनिक इकाई बनाना कहीं उत्तम था। बिहार प्रांत के अलग होने की मांग पहले भी की गई थी। बंग-भंग विरोध ी आंदोलन ने बिहार में दो दृष्टिकोण से राजनैतिक परिवर्तन लाने में सहयोग दिया।

इस विभाजन के वैकल्पिक प्रारूप में पृथक प्रांत के गठन की मांग ने जोर पकड़ा एवं बिहार में क्रांतिकारी आतंकवाद का विकास धीरे-धीरे शुरू हो गया।

बंग-भंग विरोधी आंदोलन के क्रम में बंगाल में क्रांतिकारी आतंकवाद का बोलवाला हो गया। अनुशीलन समितियों के जरिए सरकार के विरूद्ध आतंकवादी उपायों की प्रेरणा दी जाने लगी। इस प्रेरणा का प्रभाव बिहार पर भी पड़ा। बिहार में इस विचार के अग्रणी नेता डॉ. ज्ञानेन्द्र नापथ, केदारनाथ बनर्जी एवं बाबाजी ठाकुरदास थे। बाबाजी ठाकुरदास पटना में 1906-07 में रामकृष्ण सोसायटी की स्थापना की और समाचार-पत्र दि मदरलैण्ड का संपादन एवं प्रकाशन शुरू किया। इस समाचार-पत्र के द्वारा के क्रांतिकारी विचारों का समाज में प्रचार-प्रसार किया जाने लगा। 1908 ई. में खुदीराम बोस और फ्रुल्ल चाकी नामक दो युवक मुजफ्फरपुर के जिला जज डी0 एच0 किंग्सफोर्ड की हत्या के प्रयास में इनके फिटन पर बम फेंका। धोखे में दो महिलाओं की हत्या हो गयी जो फिटन पर सवार थी। यह मुजफ्फरपुर के नामी वकील प्रिंग्स कैनेडी की पत्नी एवं बेटी थी। खुदीबोस बोस को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। जबकि फ्रुल्ल चाकी गिरफ्तारी से बचने के लिए खुद को गोली मार ली। खुदीराम पर मुकदमा चलाया

गया और 11 अगस्त 1908 को उसे फांसी दी गई। बिहार में क्रांतिकारी आतंकवाद की लहर व्यापक रूप से इस प्रांत को प्रभावित नहीं कर सका। फिर भी मुजफ्फरपुर बम कांड की घटना से यहां के युवकों में राष्ट्र को स्वतंत्र कराने के प्रति भावनाएं प्रबल हो उठी। रेवती नाग, चुनचुन पांडेय, बटेश्वर पांडेय, छोटन सिंह, नलिन बागची एवं अन्य युवकों ने इस क्रम में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शचिन्द्र नाथ सान्याल द्वारा 1913 में अनुशीलन समिति की नींव पटना में रखी। ढ़ाका अनुशीलन समिति के सदस्य रेवती नाग ने भागलपुर में और यदुनाथ सरकार बक्सर में युवा क्रांतिकारियों को प्रशिक्षित करने का अनेक व्यवस्था किया।

1942 के भारत छोंड़ों आंदोलन के दौरान चलाए जाने वाले भूमिगत आंदोलन का नेतृत्व जय प्रकाश नारायण जैसे नेताओं द्वारा किया गया।

जयप्रकाश नारायण एक जन्मजात क्रांतिकारी, आजादी के दीवाने तथा एक समाजवादी विचारक थे। वे एक महान व्यक्ति थे। महात्मा गांधी के शब्दों में, "वे (जयप्रकाश नारायण) साधारण कार्यकर्ता नहीं हैं। वे समाजवाद के एक आधिकारिक पुरुष है। यह कहा जा सकता है कि वे पश्चिमी समाजवाद के बारे में जो कुछ नहीं जानते उसे भारत में कोई भी नहीं जानता। वे देश के लिए अपना सब कुछ छोड़ दिए हैं। वे अथक परिश्रमी हैं। दुख सहने की उनकी क्षमता अद्‌भूत है।"

जयप्रकाश नारायण का जन्म 1 अक्टुबर 1902 को बिहार के सारण जिले के सिताबदियारा गांव में हुआ तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा गांव के स्कूल, पटना कालेजिएट स्कूल तथा पटना कॉलेज में हुई। 1919 में वे प्रथम श्रेणी से मैट्रीक पास किए तथा पटना कॉलेज में आई. एस0सी0 में दाखिला लिए। परंतु 1921 में अंतिम वर्ष की परीक्षा के तीन सप्ताह पूर्व महात्मा गांधी द्वारा शुरू किए गए असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। बाद में उन्होंने आई. एस0सी0 की पढ़ाई पटने में महात्मा गांधी द्वारा खोले गए बिहार विद्यापीठ से पूरी की।

जयप्रकाश नारायण ने चम्पारण आंदोलन के महात्मा गांधी के सहयोगी ब्रजकिशोर प्रसाद की पुत्री प्रभावती से शादी की। शादी के बाद जयप्रकाश नारायण राष्ट्रवादी विचारों के संपर्क में आये। उन्होंने दुनिया के क्रांतिकारी आंदोलन तथा उसके तौर-तरीकों का अध्ययन किया। वे भारत में चल रहे क्रांतिकारी आंदोलनों के संपर्क में भी आये किन्तु उसमें सहयोग नहीं कर पाये। अजित भट्‌ठाचार्य ने लिखा है, "जयप्रकाश जब स्कूल में पढ़ते थे तथा बहुत छोटे थे तभी उनका एक सहपाठी छोटन सिंह ने उनका परिचय बंगाल के एक नौजवान क्रांतिकारी से कराया था। वे गंगा के किनारे एक गुप्त सुनसान जगह में मिले थे। उस क्रांतिकारी ने जयप्रकाश नारायण को बंगाल के क्रांतिकारियों के कार्यकलापों से अवगत कराया तथा कुछ पर्चे तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त एक किताब "देश की बात'' जिसमें अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के शोषण पर प्रकाश डाला गया था, पढ़ने के लिए दिया। जयप्रकाश नारायण ने उस किताब को घर पर पढ़ा तथा युवकों के क्रांति के प्रवेशोत्सव से काफी प्रभावित हुए जिसमें जलती मोमबती के उपर नवागंतुक की एक ऊंगली रख दी जाती थी तथा वह चुपचाप बिना चूं किए सब कुछ बर्दाश्त करता था। वह क्रांतिकारी जयप्रकाश नारायण से अनेकों बार मिला परंतु एक दिन वह अदृश्य हो गया। उसके तुरंत बाद छोटन सिंह गिरफ्तार कर लिए गये। कई वर्षो के बाद छोटन सिंह ने बताया कि किस तरह पुलिस उनका हाथ-पांव बांधाकर थाने ले गयी थी। परंतु इन सब बातों का जयप्रकाश नारायण ने अपनी पढ़ाई पर कोई असर नहीं पड़ने दिया।"

1922 में जयप्रकाश अमरीका गये जहां उन्होंने छुट्‌ठियों में कारखानों में मजदूरी तथा भ्रमणशील विक्रता का काम करके कॉलेज की पढ़ाई पूरी की। वे अमरीका में सात वर्षो तक रहे, पांच विश्वविद्यालयों में पढ़े तथा विस्कोंसिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम0 ए0 की डिग्री हासिल की।

1929 में वे स्वदेश लौट आये तथा काँग्रेस के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी के श्रम-शोध प्रकोष्ट का प्रभारी बनाया। 1932 में सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के कारण वे जेल गये। उन्हें नासिक केन्द्रीय कारा में रखा गया। वहां उन्हें कुछ समाजवादी नेताओं से जैसे- अच्युत पटवर्द्धन, अशोक मेहता, एम0 आर0 मसानी, एन0 जी0 गोरे तथा एम0 एल0 दांतवाला से मुलाकात हुई तथा उनके प्रभाव में आ गये।

जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने 1934 में काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की जो काँग्रेस पार्टी का अभिन्न अंग था तथा इसके महासचिव बने। काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन का जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस दोनों ने स्वागत किया। 1936

में जब जवाहरलाल नेहरू अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी के अध्यक्ष बने तब उन्होंने तीन सोशलिस्ट नेता–जयप्रकाश नारायण, नरेन्द्र देव तथा अच्युत पटवर्द्धन को अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी का सदस्य मनोनीत किया।

मार्च 1940 में जयप्रकाश नारायण को नौ महीने के कठिन कारावास की सजा दी गयी जिसका कारण 18 फरवरी, 1940 को जमशेदपुर में दिया गया उनका भाषण था। उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने अपने भाषण में लोगों को उकसाया था कि वे युद्ध से फायदा उठावें, अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का शोषण रोकें, सरकारी कर्ज तथा राजस्व की अदायगी न करें, अपनी कचहरी, अपना थाना तथा अपना शासन स्थापित करें, ब्रिटिश प्रशासन का बहिष्कार करें, रेलवे तथा कचहरी में आम हड़ताल कराकर शासन का अपना अधिकार स्वयं कायम करें, जर्मनी के युद्ध में किसी तरह की मदद तथा सहयोग सरकार को न दें तथा युद्ध में टाटा आयरन तथा स्टील कम्पनी को, जो एशिया का सबसे बड़ा स्टील कम्पनी है, भेजे जानेवाले लोहे पर रोक लगावें।'

1940 के अखिल भारतीय काँग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में काँग्रेस के नेताओं ने जयप्रकाश नारायण की गिरफ्तारी की भर्त्सना की तथा इस आशय का एक सर्वसम्मत प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव में कहा गया, "काँग्रेस की यह सभा जो रामगढ़ में बुलायी गयी है भारत रक्षा अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तारी के लिये जयप्रकाश नारायण को धान्यवाद देती है तथा उन्हें गिरफ्तार करने के लिए सरकार की कड़ी भर्त्सना करती है। यह सभा इस अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तार मंजर रिजवी, वसावन सिंह, अली अशरफ, सज्जद जहीर, अशरफ अली चौधरी, अनिल मित्र, सुनील मुखर्जी तथा अन्य साथियों को भी धान्यवाद देती है तथा उन्हें गिरफ्तार करने के लिए सरकार की भर्त्सना करती है।"

14 मार्च 1940 को पूरे बिहार में "जयप्रकाश नारायण दिवस'' मनाया गया। रामगढ़ के झंडा चौक पर जयप्रकाश नारायण दिवस को संबोधित करते हुए राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, "जब काँग्रेस ने सत्ता संभाली तब यह समझा गया कि वह स्वराज्य प्राप्त कर लेगी। लेकिन इस तरह की घटना बताती है कि हमारी मंजिल अभी काफी दूर है। जयप्रकाश नारायण को गिरफ्तार करने की सरकारी नीति स्वस्थ नहीं है उन्हें गिरफ्तार करके सरकार ने अच्छा नहीं किया है क्योंकि अधिकांश काँग्रेस नेताओं को इससे क्षोभ हुआ है।"

जयप्रकाश नाराया को हजारीबाग जेल में रखा जहां से वे 28 नवम्बर 1940 को छूटे। उसके तुरंत बाद उन्हें दिसम्बर में गिरफ्तार कर लिया गया तथा देवल डिटेंसन कैंप रखा गया।

जयप्रकाश नारायण ने अपनी पत्नी प्रभावती के द्वारा काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गुप्त क्रांतिकारी दस्तावेज की प्रति जिसपर सरकार ने रोक लगा दी थी देवली डिटेंसन कैंप से बाहर भेजने का प्रयास किया जब प्रभावती जयप्रकाश नारायण से 17 अक्टुबर 1941 को मिलने गयी थी। अधिकारियों ने इस दस्तावेज को पकड़ लिया तथा इस घटना का काफी प्रचार किया गया। इस दस्तावेज में **रिव्युलुशनरी सोशलिस्ट पार्टी** तथा **हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन** की मदद से काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की मजबूत बनाने की योजना थी। इस दस्तावेज में बसावन सिंह को सलाह दिया गया था कि वे भूमिगत होकर पार्टी के लिए नये सदस्य बनावें तथा क्रांतिकारियों के पुराने ढंग से कोष का निर्माण करें। इस दस्तावेज में यह अंकित था कि इस प्रस्ताव से योगेन्द्र शुक्ल भी सहमत थे। इसमें गंगा शरण सिंह को सलाह दिया गया था कि वे पार्टी के अखिल भारतीय संयुक्त सचिव के रूप में काम करें और पार्टी के कार्य से पूरे देश का भ्रमण करें।

सरकार ने जयप्रकाश नारायण तथा काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की भर्त्सना करने का प्रयास किया परंतु महात्मा गांधी ने जयप्रकाश नारायण के समर्थन में एक बयान जारी कर परिस्थिति को संभाल लिया। गांधी जी ने अपने बयान में कहा, "अखबारों में जयप्रकाश नारायण के तथाकथित बयान का सरकार द्वारा प्रकाशन तथा उनपर अभियोग लगाने का प्रयास करना कि वे डिटेंसन कैंप से दस्तावेज को बाहर भेज रहे थे, इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। अगर सरकार की मंशा उस संगठन को बदनाम करना है, जिसमें जयप्रकाश नारायण एक प्रसिद्ध सदस्य है, तो सरकार इसमें सफल नहीं होगी।

देवली कैंप जेल की दुर्व्यवस्था के खिलाफ जयप्रकाश नारायण ने 31 दिनों का भूख–हड़ताल किया जिसके फलस्वरूप 1942 में उन्हें हजारीबाग जेल में स्थानान्तरित कर दिया गया। 8 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी ने अपने बंबई अधि वेशन में "भारत छोड़ों'' प्रस्ताव पारित किया जिसके फलस्वरूप पूरे देश में अंग्रेजी राज को समाप्त करने के लिए खुला विद्रोह शुरू हो गया। जयप्रकाश नारायण भारत छोड़ों आंदोलन में भाग लेने के लिए बेचैन हो गये तथा जेल के अन्य क्रांतिकारी नेताओं

के साथ मिलकर जेल से भागने की एक योजना बनाये। इस योजना के अनुसार 9 नवम्बर 1942 को दिवाली की रात जयप्रकाश नारायण अपने अन्य सहयोगियों--रामनंदन मिश्र, योगेन्द्र शुक्ल, सूरज नारायण सिंह, गुलाबचंद गुप्त तथा शालीग्राम सिंह के साथ जेल से भाग गये। यह एक सघन जंगलों के बीच की कठिन यात्रा थी। रास्तें में जयप्रकाश नारायण के पैरों का **साइटका** दर्द शुरू हो गया लेकिन वे रूके नहीं। उनके सहयोगी उन्हें कंधों पर लेकर चल पड़े। दो दिन की पैदल यात्रा के बाद वे लोग गया जिले के सरहद में आ गये तथा वहां से दो दलों में विभक्त होकर चल पड़े--जयप्रकाश नारायण, रामनंदन मिश्र तथा शलिग्राम सिंह बनारस की ओर चल पड़े तथा योगेन्द्र शुक्ल, सूरज नारायण सिंह तथा गुलाब चन्द गुप्त उत्तर बिहार की ओर।

रामनंदन मिश्र तथा जयप्रकाश नारायण साथ-साथ रहे। वे 15 नवम्बर 1942 को मुगलसराय पहुंचे। जयप्रकाश नारायण ने रामनंदन मिश्र को राम मनोहर लोहिया तथा अच्युत पटवर्द्धन को उनके जेल से भागने की खबर देने तथा 15 दिसम्बर को बनारस में मिलने के लिए बम्बई भेज दिया। रामनंदन मिश्र ने बम्बई पहुंचकर पटवर्द्धन को सारी सूचना दे दी।

फलत: 29 दिसम्बर 1942 को दिल्ली में अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी की भूमिगत केन्द्रीय निदेशालय की सभा हुई जिसमें काँग्रेस के अधिकाधिक संगठन को पुनर्गठित किया गया। इस सभा में भाग लेनेवालों में थे जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, उत्तर प्रदेश के पूर्व काँग्रेस संसदीय सचिव, युगल किशोर, देवदास गांधी, अच्युत पटवर्द्धन तथा पटना के बी0 पी0 सिन्हा।

सभा में देश के राजनैतिक समस्या की समीक्षा की गयी तथा काँग्रेस के कार्यकलापों के प्रसार के लिए देश को पांच क्षेत्रों में बांटा गया--उत्तर-पश्चिम क्षेत्र (पंजाब, सिंधा, एन0 डब्लु एफ0 पी0 तथा दिल्ली), पूर्वी क्षेत्र (आसाम, बंगाल तथा उड़ीसा़, केन्द्रीय क्षेत्र (बिहार, उत्तर प्रदेश तथा सी0 पी0), दक्षिणी क्षेत्र (मद्रास प्रेसिडेंसी) तथा पश्चिमी क्षेत्र (बम्बई प्रेसिडेंसी) अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी के केन्द्रीय निदेशालय का मुख्यालय बम्बई रखा गया। जयप्रकाश नारायण क हाथों में कांग्रेस का नेतृत्व दिया गया तथा क्षेत्रीय प्रमुखों को यह अधिकार दिया गया कि वे स्थानीय लोगों के हित को सर्वाधिक ध्यान देकर आंदोलन का संचालन करें।

जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया, क्रांतिकारी आंदोलन के प्रथम चरण की असफलता का अवलोकन किया, काँग्रेसजनों को निर्देश दिया तथा क्रांतिकारी अभिवादन के साथ आजादी की लड़ाई लड़ने वालों को, विद्यार्थियों को तथा अमरीकी सैनिकों को पत्र लिखा।

निष्कर्ष

भारत में हुए क्रांतिकारी आंदोलनों का स्वरूप और क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इसकी शुरूआत 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक से ही देखी जा सकती है, 20वीं शताब्दी का पूर्वाद्ध भारत में क्रांतिकारी आंदोलनों की निरंतरता का काल माना जा सकता है। उत्तर भारत में क्रांतिकारी आंदोलनों का प्रभावी विस्फोट बंगाल विभाजन के बाद हुए मुजफ्फरपुर बम कांड से बिहार की धारती से हुई मानी जा सकती है एवं जो विभिन्न रूपों में आगे भी जारी रही तथा जिसकी सर्वाधिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति 1942 के भारत छोड़ों आंदोलन एवं विशेषकर बिहार में उसकी प्रभावशीलता के रूप में देखी जा सकती है।

संदर्भ

1. दिलीप एम0 मेनन; आधुनिक भारत का इतिहास
2. मित्तल, डॉ. ए0 के0; भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास; साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृ. सं. 226-247
3. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत; राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ. सं. 362-364
4. राय, सत्या; भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद; हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. सं. 368-370
5. भट्ठाचार्य, सब्यसाची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 205-225
6. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, मैकमिलन इंडिया, पृ. सं. 167-209

राष्ट्रीय आंदोलन एवं प्रजामंडल आंदोलन का अन्तर्सम्बन्धः प्रगति, प्रभाव व सीमाएँ

डॉ० अरुण कुमार निराला

पी-एच० डी०, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम लंबी अवधि तक चलने वाली प्रक्रिया रही है, कंपनी शासन की स्थापना के काल से ही इसके विरूद्ध छिट-पुट प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की जाने लगी थी। 1857 में प्रथम बार इस प्रतिक्रिया का स्वरूप संगठित व सामूहिक हो पाया। 1857 ई. के आंदोलन के पश्चात् स्थानीय व राष्ट्रीय स्तर पर विभिन मुद्दो को लेकर विभिन्न वैचारिक धारातलो पर अनेक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। भारत में देशी रियासतों की प्रजा द्वारा चलाया गया आंदोलन इसी श्रृंखला की एक कड़ी थी।

वस्तुतः देशी रियासतो की प्रजा का आंदोलन राजसी शोषण के विरूद्ध था। लेकिन, चूँकि ब्रिटिश साम्राज्य की वफादारी व संरक्षण के शर्त्त पर इन रियासतो के शासको को साम्राज्य की ओर से भी वैधता व संरक्षण प्राप्त था, अतः स्वाभाविक रूप से प्रजा मंडल आंदोलन की दिशा राजसी शोषण के साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध भी हो गयी।

रियासतो में चल रहे आंदोलनों के कारण शासकों द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की गई, लेकिन इससे आंदोलन की गति थमने के बजाए और भी तीव्र हो गयी। अब प्रजा द्वारा की जाने वाली माँगो में रियासतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की माँग भी जुड़ गयी। रियासतो की प्रजा के आंदोलनों की तीव्रता को देखते हुए राष्ट्रीय नेतृत्व ने इसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। इसी कड़ी में हरिपुरा काँग्रेस अधिवेशन 1938 में काँग्रेस ने प्रजा आंदोलन को नैतिक समर्थन देने का प्रस्ताव पारित किया था। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में काँग्रेस ने देशी भारत रियासतों की प्रजा से आंदोलन में शामिल होनने का आग्रह किया तथा रियासतो को भारत का अभिन्न अंग मानने का प्रस्ताव दबाव ब्रिटिश सत्ता पर डाला। इस तरह से विविन्न रियासतो व ब्रिटिश भारत का जन संघर्ष एकीकृत हो गया।

अब आम जनता सभी प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़कर ब्रिटिश सरकार से प्रत्यक्ष टकराव के चरण में प्रवेश कर चुकी थी। राष्ट्रीय आंदोलन से प्रजामंडल आंदोलन का जुडाव होने से जहाँ एक ओर ब्रिटिश साम्राज्य का सुरक्षा कवच भंग हुआ तथा सरकार आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से कमजोर हुई, वही दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन को भी इससे शक्ति प्राप्त हुई। इसी परिस्थिति ने भारतीय स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। लेकिन इस आंदोलन की सबसे बड़ी सीमा यह रही की इसकी साकारात्मक शक्तियों का प्रयोग भारत विभाजन के विरूद्ध नहीं हो सका।

Key-words : विऔपनीवेशीकरण, रक्षाकवच, धार्मिक पुनरूत्थान जनस्वाभाविक नेता, अनुकूलतम उपयोग, प्रजातंत्रीकरण, आधुनिकीकरण, उत्तरदायी शासन, प्रजामंडल, जन राष्ट्रवाद, नव-उपनिवेशवाद

परिचर्चा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम लंबी अवधि तक चलने वाली एक प्रक्रिया रही है। यहाँ जबसे साम्राज्यवादी विस्तार शुरू हुआ, तभी से आम जनता इसके विरूद्ध छिट-पुट प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करने लगी थी। 1857 की क्रांति के रूप में प्रथम सामुहिक व संगठित

प्रतिक्रिया व्यक्त की गई थी। इस प्रतिक्रिया ने देशी रियासतों को हड़पने की प्रक्रिया पर विराम लगा दिया। इस क्रांति के पश्चात् भारत में एक ही समय में आंदोलन की कई धाराएँ सक्रिय रही। इनमें उदारवादी, उग्रवादी, क्रांतिकारी, सुधारक समूह व आम जनता की स्थानीय प्रतिकुलताओं के विरूद्ध प्रतिक्रियाएँ प्रमुख थी। राष्ट्रीय स्तर के अधिकांश आंदोलनों में ब्रिटिश प्रतिरोध भी शामिल था, जबकि स्थानीय आंदोलनों में परिवर्तन की कल्पना थी, भले ही इसके कई जातीय गुट थें। स्थानीय आंदोलनो के विभिन्न गुटो में एकता स्थापित करना तथा उसे ब्रिटिश प्रतिरोध के साथ जोड़ना एक कठिन कार्य था, किन्तु विऔपनिवेशीकरण के लिए यह अत्यंत आवश्यक था।

1920 ई. से इस दिशा में प्रयास शुरू हुआ एवं 1940 के दशक में इसके सफलीभूत परिणाम सामने आने लगे। इस दशक में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। अब आम जनता सभी प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलनो से जुड़कर ब्रिटिश सरकार से प्रत्यक्ष टकराव के चरण में प्रवेश कर चुकी थी। यह परिवर्तन देशी रियासतों की प्रजा की माँगों को राष्ट्रीय स्वर मिलने से संभव हुआ था। राष्ट्रीय आंदोलन से देशी रियासत के आंदोलनो का जुड़ाव होने से एक ओर तो ब्रिटिश साम्राज्य का सुरक्षा कवच भंग हुआ, जिससे ब्रिटिश सरकार आर्थिक व राजनीतिक दोनों दृष्टि से कमजोर हुयी। वही दूसरी ओर स्वतंत्रता आंदोलन को इससे शक्ति मिली। राष्ट्रीय आंदोलन व रियासत के प्रजा आंदोलनो के एकीकरण में क्रांतिकारीयों, काँग्रेस के सोशलिस्ट ग्रुप, वाम पंथी गुट और गैर राजनीतिक संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। सरदार वल्लभभाई पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, महात्मा गाँधी, विट्ठलभाई पटेल जैसे राष्ट्रीय नेता तथा लाखनजी जैसे जागरूक राजा व कई दीवानों ने व्यक्तिगत रूप से इस प्रक्रिया में सराहनीय भूमिका निभायी। आधुनिक उद्योग व संचार साधानों के विकास ने भी एकीकरण की प्रक्रिया को तेज किया।

देशी रियासते भारतीय उपमहाद्वीप के 40 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करती थी। यहाँ के शासक ब्रिटिश सत्ता को सर्वोच्च मानते थे तथा इनकी स्थिति अधीनस्थ की थी। ये केवल प्रजा के साथ अपना संबंध निर्धारित करने के संदर्भ में स्वतंत्रा थे। ब्रिटिश सरकार इन क्षेत्रों से वित्तीय संसाधन व मानवीय शक्ति प्राप्त करती थी, जिसके सहारे उसने भारत के शेष 60 प्रतिशत भाग पर प्रत्यक्ष शासन किया। ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध होने वाले विद्रोहो का दमन भी इन रियासतो के सहयोग से ही किया। इस प्रकार देशी रियासते ब्रिटिश 'रक्षा कवच' के रूप में प्रयुक्त हो रही थी।[1]

रियासतों की प्रशासनिक संरचना में निरंकुशता व समाज में पिछड़ापन विद्यमान था। यहाँ निवास करने वाली प्रजा का जीवन स्तर निम्न था। प्रजा अपनी दयनीय स्थिति के लिए राजा को जिम्मेवार मानती थी। अतः प्रजा राजसी शोषण के विरूद्ध आवाज उठाती रहती थी। 1930 के दशक में यह आंदोलन तेज हो गया। प्रजा के इन आंदोलनों को कमजोर करने के लिए राजाओं ने 'धार्मिक पुनरूत्थान' की सहायता ली। विभिन्न समुदायो द्वारा संचालित शैक्षणिक केन्द्रों, हिन्दू युनिवर्सिटी, दक्कन एजूकेशनल सोसायटी, सिक्ख खालसा कॉलेज, मोहम्मद एंग्लो– ओरिंएटल कॉलेज आदि को अनुदान देना शुरू किया। इस प्रकार उन्होंने स्वयं को आधुनिकीकरण का पोषक साबित करने का प्रयास किया।

पटियाला, मैसूर एवं हैदराबाद के शासको ने 1857 के विद्रोह के दौरान भारत में ब्रिटिश सत्ता को जो सहयोग दिया था, वह बाद तक जारी रहा। ब्रिटिश साम्राज्य को चीन के बाक्सर विद्रोह के दमन और दोनो विश्वयुद्धों के दौरान यहाँ से सैन्य सहायता मिली। अधिकांश रियासत के शासको ने ब्रिटिश सत्ता को नैतिक समर्थन के साथ-साथ सेना व वित्त से भी सहयोग दिया। हैदराबाद के शासक ने अकेले 35 लाख रूपये दिए। साथ ही अपने रियासत से लोगों को ब्रिटिश सेना में भर्ती करने की अनुमति भी दी। पटियाला के भूपिन्दर सिंह ने ब्रिटिश सेना भर्ती अभियान में सबसे सक्रिय योगदान दिया। इसके बदले में रियासतो के राजाओं को ब्रिटिश सत्ता ने 'जन स्वभाविक नेता' के रूप में मान्यता मात्रा दी। हॉलाकि रियासतों में शासक के इन निरंकुश निर्णयों के विरूद्ध चल रहे आंदोलनो से स्पष्ट था कि ये जनता के स्वाभाविक नेता नहीं थे। राजाओं को इस प्रकार की वैद्यता देकर ब्रिटिश सत्ता उनका इसतेमाल अपने हितो के अनुकूल करती थी। इन रियासतों की इस मदद से दोनों विश्वयद्धो के दरम्यान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन जिस लक्ष्य को पाना चाहती थी, उसमें सफल नहीं हो सकी। इस प्रकार राष्ट्रवादी राजनीतिक एकजुटता के विरूद्ध देशी रियासतो ने एक ढ़ाल का काम किया जिससे ब्रिटिश सत्ता को संरक्षण प्राप्त हुआ।[2]

देशी रियासतों के प्रति ब्रिटिश सत्ता की नीति 'अनूकुलतम उपयोग' की रही। जब भारतीय बाजार पर ब्रिटिश उत्पादको का प्रभाव बढ़ा तथा रेलवे का विस्तार शुरू हुआ तब संधि के माध्यम से, प्रशासनिक मामलो में निर्णय लेने हेतु रियासतो के शासकों को रेजीडेंट

की सलाह पर निर्भर बना दिया गया। नमक के उत्पादन व इसके निर्यात पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। रियासतों से गुजरने वाले ब्राँडगेज रेलवे व्यवस्था को भी उनके प्रशासनिक व न्यायिक क्षेत्र से बाहर रखा गया। 19वीं सदी के अंत तक ब्रिटिश भारतीय मुद्रा ही रियासतों में विधि मान्य हो गयी तथा रियासतो को अपना सिक्का ढ़ालना भी बंद करना पड़ा। यहाँ भी ब्रिटिश नौकरशाही व्यवस्था को लागू किया गया। इतने बंधनों के बावजूद भी राजागण ब्रिटिश सत्ता के प्रति कादार बने रहे क्योंकि ब्रिटिश सत्ता ने राजाओं की राजनीतिक शक्ति को कम करने तथा प्रजा से राजस्व वसूली के उनके अधिकार को कभी बाधित नहीं किया। इस प्रकार राजाओं की शक्ति व विलासिता के संरक्षण के बदले ब्रिटिश साम्राज्य उनसे राष्ट्रीय हितो से समझौता करवाती रही।[3]

देशी रियासतो व ब्रिटिश सत्ता के इस प्रकार के उलझे संबंधो को अप्रत्यक्ष परिणाम के रूप में रियासतो में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का आरंभ हुआ। कई रियासती राज्यो की सेवा में अच्छे प्रशासक भी थे, जिन्होने प्रशासन को उत्तरदायी बनाने की दिशा में पहल की। मैसूर बड़ौदा, त्रावणकोर जैसे रियासतो ने शिक्षा के विकास की पहल की। सन् 1894 में बड़ौदा के गायकवाड़ शासको ने अपने रियासत में मुक्त व अनिवार्य शिक्षा लागू की। 1881 में मैसूर एवं 1887 में ट्रावनकोर ने विधायी समिति का गठन किया। कुछ राज्यों ने औद्योगिक विकास के लिए पूँजी को आकर्षित किया। 1843-44 तक 5 करोड़ रूपये की पूँजी इन क्षेत्रे में निवेश की गयी। उदाहरण स्वरूप मैसूर ने ऊनी वस्त्रा, मोटरकार एवं हवाई जहाज निर्माण की अगुआई की। बड़ौदा वस्त्र उत्पादन का प्रमुख केन्द्र बना। हैदराबाद में सीमेंट एवं रासयनिक उर्वरक उद्योग का विकास हुआ। ग्वालियर में सूती वस्त्र मिल, तेल मिल, पावर स्टेशन, ईंट भट्ठे आदि उद्योगो का विकास हुआ।

रियासतों में एक ओर शिक्षा व आधुनिक उद्योग के विकास की प्रक्रिया चल रही थी, तो दूसरी ओर प्रजा उत्तरदायी सरकार की माँग को लेकर आंदोलन कर रही थी। इन परिस्थितियों में राष्ट्रीय नेतृत्व को रियासतो के प्रति विशेष रणनीति का पालन करना पड़ा। रियासतो के राजा, ब्रिटिश शासन से अपने भविष्य के लिए सांवैधानिक गारंटी चाहते थे, अतः राष्ट्रीय नेतृत्व ने जनता की लोकप्रिय आंदोलनो को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया।[4] हरिपुरा काँग्रेस अधिवेशन, 1938 में काँग्रेस ने प्रजा आंदोलन को नैतिक समर्थन देने का प्रस्ताव पारित किया था। इसके पूर्व क्रांतिकारी, उग्रपंथी एवं अन्य समाजसेवी संस्थाओं ने यहाँ की जनता को प्रेरित करने तथा उनके आंदोलन को संरक्षित करने का कार्य किया था। चूँकि, काँग्रेस ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध एक प्रमुख राजनीतिक 'दबाव समूह' था, अतः उसके समर्थन से प्रजा आंदोलन मजबुत बना। दूसरी ओर प्रजा आंदोलन के राष्ट्रीय आंदोलन से मिल जाने से राष्ट्रीय आंदोलन भी सशक्त हुआ। यही कारण था की स्वतंत्रता के पश्चात् इन रियासतो में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करके 'प्रजातंत्रीकरण' के माध्यम से भारत का एकीकरण किया गया। ब्रिटिश साम्राज्य के इस ढ़ाल को भारतीय राष्ट्रवादियों ने जैसे– जैसे स्वतंत्रता आंदोलन के पक्ष में किया, ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति उसी अनुपात में कम होती गयी।

देशी रियासतो में प्रजा को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में 'जन राष्ट्रवाद' के विकास के पश्चात् देशी रियासतो की जनता इनकी ओर आकर्षित हुयी। वस्तुतः ब्रिटिश भारत में आतंकवादी घोषित होने के बाद क्रांतिकारी विभिन्न रियासतो में ही शरण लेते थे। यह भी एक कारण था जिससे रियासतो की रियासतो की जनता का जुड़ाव राष्ट्रीय विचारो से हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान रियासतो की जनता का जुड़ाव बाह्य विश्व से भी हुआ, जहाँ उनका परिचय स्वशासन, प्रजा का अधिकार, स्वतंत्रता जैसे विचारों से हुआ। अतः यहाँ भी उत्तरदायी सरकार की स्थापना की माँग शुरू हो गयी। 1920-22 के बीच यहाँ खिलाफत आंदोलन व असहयोग आंदोलन के प्रभाव स्वरूप विभिन्न जन संगठनो का उदय हुआ। 1920-30 के बीच लोगों में राजनीतिक जागरूकता आयी तथा 1930 के पश्चात् इसका स्वरूप प्रजा आंदोलन जैसा होने लगा था। 1935 के एक्ट की संघीय योजना तथा ब्रिटिश प्रांतो में काँग्रेस द्वारा सरकार बनाए जाने से प्रजा आंदोलन प्रेरित हुआ। क्योंकि काँग्रेस अब तक विरोधी आंदोलन से परिवर्तित होकर एक सत्ताधारी दल बन गयी थी, जो उत्तरदायी सरकार की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण विजय मानी जा सकती है। जनता में आयी इस जागरूकता के बाद काँग्रेस प्रजा आंदोलन के पक्ष में खुलकर सामने आ गयी। 1942 के आंदोलन में काँग्रेस ने देशी रियासतो की प्रजा से इस आंदोलन में शामिल होने का आग्रह किया तथा रियासतो को भारत का अभिन्न अंग मानने का दबाब ब्रिटिश सत्ता पर डाला। इस तरह से विभिन्न रियासतो व ब्रिटिश भारत का जनसंघर्ष एकीकृत हो गया।

1920 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने देशी रियासतो के प्रति अपनी नीति घोषित की, जिसमें प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से बचना व अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन देने की नीति अपनायी गयी थी। 1921 के बाद से रियासतों में व्यक्तिगत रूप से सक्रिय लोग काँग्रेस से जुड़ने लगे थे। मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, जामनगर, इंदौर, नवानगर, कठियाबाड़ व दक्कन में खिलाफत व असहयोग आंदोलन को सहयोग दिया गया।[5]

रियासतों में चल रहे आंदोलन को सुसंगठित स्वरूप देने के उद्देश्य से बबई में दिसम्बर 1927 में 'ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस' नामक एक केन्द्रीय संगठन की स्थापना की गयी। बलबंतराय मेहता, मणिलाल कोठारी व जी0 आर0 अभ्यंकर इसके सक्रिय कार्यकर्ता थे। इस कांग्रेस के प्रथम सत्र में 700 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमे प्रजा की आकांक्षाओं के अनुसार प्रशासन में सुधार का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस संगठन ने ऐसे प्रतिनिधि सरकार की माँग की जो सामान्य प्रशासन व वित्त पर नियंत्रण रखे, साथ ही राजा के निजी व्यय एवं रियासत के राजस्व को अलग– अलग करने तथा स्वतंत्र व सर्वोच्च न्यायपालिका के स्थापना की भी माँग की। 11 जुलाई 1928 को ए0आई0एस0पी0सी0 का प्रतिनिधि मंडल संवैधानिक राजतंत्र की माँग को लेकर ब्रिटेन भी गया। लेकिन ब्रिटिश सरकार रियासतो के संदर्भ में उत्तरदायित्व लेने को तैयार नहीं हुयी। इसी वर्ष हुए सर्वदलीय सम्मेलन में यह घोषणा की गयी कि संघीय संविधान अंगीकृत होने पर रियासतो में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना की जाएगी। 1928–29 के काँग्रेस अधिवेशनों में जनता के मूल अधिकारों की घोषणा की गयी। इस प्रकार काँग्रेस रियासती प्रजा के मांगो के निकट होती जा रही थी। उधार गोलमेज सम्मेलन में भी ए0 आई. एस0 पी0 सी0 की मांग को ब्रिटिश सरकार द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। 1934 के बाद काँग्रेस पर सोशलिस्ट ग्रुप का प्रभाव बढ़ने लगा, इसके बाद काँग्रेस प्रत्यक्ष रूप से प्रजा आंदोलन के पक्ष में आने लगी। 1936 में ए0आई0एस0पी0सी0 ने कृषि संबंधी माँग भी प्रस्तुत की। जिसमें भू–राजस्व में 1/3 कमी, कम करना आदि प्रमुख था। इसके साथ–साथ मूल अधिकार व स्वतंत्रता की बात भी यह संगठन करने लगा।

इधार विभिन्न रियासतों में प्रजा आंदोलन सक्रिय हो रहा था। 1938 में सरदार पटेल ने इस अवसर का लाभ उठाकर, मैसूर में वहॉ के दीवान से समझौता करके कांग्रेस को वहाँ वैद्य घोषित करवाया। उड़ीसा एवं हैदराबाद में सत्याग्रह तथा आदिवासी व रियासती सेनाओ में संघर्ष हुआ। उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्रो ने वंदेमातरम् आंदोलन चलाया। प्रजा द्वारा चलाए जा रहे, इस आंदोलन की सराहना 1939 के त्रिपुरी काँग्रेस अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस ने की तथा ए0 आई. एस0 पी0 सी0 से मिलकर कार्य करने का प्रस्ताव भी पारित करवाया। इस कदम से प्रजा आंदोलन व काँग्रेस दोनों मजबुत हुआ। सरदार वल्लभभाई पटेल, जमनालाल बजाज, जवाहरलाल नेहरू, जे0बी0 कृपलानी आदि नेता रियासतों में विशेष रूप से सक्रिय हुए। गाँधी जी ने भी इन प्रयासों को नैतिक समर्थन दिया।

प्रजा आंदोलन व भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का सम्मिलन किस प्रकार हुआ, इसे राजकोट व हैदराबाद में चले आंदोलनो के अवलोकन से समझा जा सकता है। वस्तुतः राजकोट, पश्चिम भारतीय रियासती एजेंसी था, अतः यहाँ चले आंदोलन का असर संपूर्ण पश्चिम भारत पर हुआ। यह पहली रियासत थी, जहाँ शासन में जनता को प्रतिनिधित्व दिया गया था। लाखाजी राज यहाँ के प्रबुद्ध शासक थे, जिन्होने न केवल रियासत के शैक्षणिक व औद्योगिक उन्नति पर ध्यान दिया था, बल्कि राष्ट्रवादी गतिविधियों को भी प्रोत्साहित किया था। यहाँ 1921 में प्रथम काठियावाड़ राजनीतिक सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसकी अध्यक्षता विट्ठभाई पटेल ने की थी। लाखाजी राज गाँधी व नेहरू का अपने दरबार में स्वागत करते थे। इतना ही नहीं उन्होने स्वयं खादी भी धारण किया था तथा स्कूलो को भू–अनूदान दिया। इस प्रकार राजकोट के शासक स्वयं आधुनिकीकरण व राष्ट्रवादी गतिविधियों के पोषक थे। लेकिन 1930 में इनकी मृत्यु के पश्चात् यहाँ उनके द्वारा संचालित गतिविधियों पर रोक लग गया। अब राजा की ओर से राष्ट्रवादी व आधुनिक तत्वो को प्रोत्साहन देना बंद हो गया। लेकिन प्रजा अपने स्तर से आंदोलन चलाती रही। यू0 एन0 धोबर ने यहाँ गाँध ी द्वारा निर्देशित रचनात्मक कार्यो का संचालन किया। 1936 में जेठलाल जोशी व यू0एन0 धोवर में यहाँ मजदूर यूनियन बनाया। इस प्रकार आंदोलन का फलक विस्तृत होता गया। 1937 में काठियाबाड़ राजनीतिक परिषद् कांफ्रेंस का आयोजन किया गया। जिसमें पन्द्रह हजार लोगो ने उत्तरदायी सरकार की माँग की। इन माँगो के पक्ष में हुए प्रदर्शन में शासन द्वारा प्रदर्शनकारीयों पर लाठीचार्ज किया गया। इसके विरूद्ध सरदार पटेल के नेतृत्व मे सभा की गयी जिसमें कर में 15 प्रतिशत तक की कटौती करने तथा रियासत के राजस्व पर शासक का अधिकार सीमित करने की माँग की गयी। लेकिन दरबार ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। फलतः यहाँ सत्याग्रह शुरू हो गया, मजदूर हड़ताल करने लगे, छात्रो ने शिक्षण संस्थान व वस्तु बहिष्कार किया, लोगों ने कर चुकाने से इंकार कर दिया तथा बैंक से अपनी राशि वापस ले ली। इस प्रकार रियासत के वित्तीय स्रोतों को आंदोलनकारियों ने रोक दिया। इस आंदोलन का संगठन व नियोजन इतना मजबुत था कि एक नेता के गिरफ्तारी के बाद तुरंत उसका स्थान दूसरा नेता ले लेता था। अगर, आंदोलनकारीयो के माँगो को मान लिया जाए तो इससे काँग्रेस के प्रभाव में वृद्धि हो सकती है, इस संभावना को भाँपते हुए,

ब्रिटिश सरकार ने दरबार पर समझौता ना करने का दबाब बनाया। लेकिन 26 दिसम्बर 1938 को राजकोट दरबार सरकार पटेल से समझौता करने को विवश हो गयी। इस समझौते के अनुसार रियासत ने राजनीतिक कैदियो को रिहा किया तथा कुछ सुधार योजनाएँ लागू करने की भी घोषणा की। शासन में 10 राज्याधिकारी जनता के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करने की भी घोषण की गयी। इन दस राज्याधिकारीयों में से सात की सूची पटेल द्वारा दी जानी थी। पटेल द्वारा दी गयी सूची को ब्रिटिश दबाब में आकर दरबार में अस्वीकार कर दिया। दरबार में बताया कि इस सूची में केवल ब्राह्मण और बनिया का नाम है। राजपूत, मुस्लिम एवं दलित इस सूची में नहीं है। अत: यह सूची जातिगत व सांप्रदायिक रूप से भेद भावपूर्ण है, अत: दरबार इसे नहीं मान सकती। दरबार के इस विश्वासघात के विरूद्ध 26 जन 1939 से पुन: सत्याग्रह शुरू किया गया। देशभर में दरबार के इस निर्णय के विरूद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी। गाँधी जी ने सरदार वल्लभभाई पटेल के पक्ष में अनिश्चित कालीन अनशन की घोषणा कर दी। काँग्रेस ने भी प्रांतीय सरकारो से इस्तीफे की धामकी दी। इस प्रकार इस छोटे से रियासत में हुए इस बड़े बदलाव से ब्रिटिश सत्ता इतनी आतंकित हो गयी कि वाइसराय को इस मामले में स्वयं हस्तक्षेप करना पड़ा। वाइसराय के आश्वासन के बाद गाँधी जी ने अपना अनशन समाप्त किया। संपूर्ण मुद्दे की छानबीन करने के लिए मारिस गायर आयोग बनाया गया। इस आयोग ने 3 अप्रैल 1939 को अपने रिर्पोट में पटेल के पक्ष को सही ठहराया। इसके पहले कि दरबार पटेल के समक्ष झुकती, जिन्ना व अंबेडकर दरबार के पक्ष में आ गये। इन्होने गाँधी जी का विरोध शुरू कर दिया। गाँधी जी ने विवश होकर समझौते से दरबार को मुक्त कर दिया तथा वाइसराय से क्षमा भी मांगी। इस तरह से यह आंदोलन अपेक्षित उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सका। इस बार सांप्रदायिक राजनीति व दलित उत्थान आंदोलन प्रजा आंदोलन के विरूद्ध खड़ा हो गया। वस्तुत: इस संदर्भ में जिन्ना एवं अम्बेदकर दोनो ही राजतंत्र व ब्रिटिश सत्ता के द्वारा उनके पक्ष में प्रयुक्त हो गए।[6]

इस (एक राजकोट रियासत के) उदाहरण से कई चीजे एक साथ स्पष्ट होती है। जैसे– राजशाही निरंकुशता के विरूद्ध एक सुसंगठित आंदोलन चल रहा था, जिसे स्थानीय प्रजा व राष्ट्रीय नेतृत्व दोनो का सहयोग प्राप्त था। सांप्रदायिकता तथा दलित उत्थान आंदोलन की विकृतियाँ इसके समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ थी। हैदराबाद में भी इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा गया है, जहाँ आर्य समाज के प्रभाव को रोकने के लिए उस पर तरह– तरह की पाबंदीयाँ लगायी गयी। 1938 में मराठी संत रामतीर्थ ने इसके विरूद्ध सत्याग्रह किया। वंदेमातरम् पर लगे प्रतिबंध के विरूद्ध 'वंदेमातरम् आंदोलन' हुआ। सरोजनी नायडु ने यहाँ आंदोलन हेतु महिला दस्ता भी तैयार किया था। गाँधी जी के रचनात्मक आंदोलन के प्रभाव स्वरूप यहाँ नशाबंदी आंदोलन चला, पुस्कालय खुले, समाचार-पत्र– पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया गया। विदित है कि इन आंदोलनो के विरूद्ध वहाँ के निजाम ने सांप्रदायिक राजनीति का सहारा लिया था।

राजकोट व हैदराबाद के उदाहरण से देश के सारे रियासतो व ब्रिटिश भारत की समान समस्याएँ तथा आंदोलनो के बीच की समानता को भी समझा जा सकता है। ये समान समस्याएँ थी– 1 भारी कर, 2 निरक्षरता, 3 पिछड़पन आदि। आंदोलन के स्वरूप में जो समानताएँ थी, उनमें भूमिगत गतिविधियाँ, आंदोलन का हिंसात्मक स्वरूप, क्रांतिकारी आंदोलन के बाद वामपंथ के प्रभाव में वृद्धि आदि को गिना जा सकता है।[7]

राजकोट के आंदोलन की तीक्षणता का संदेश रेलवे, टेलीग्राम व समाचार पत्रो के माध्यम से संपूर्ण देश भर में फैल गया था, जिससे रियासतो में चल रहे प्रजा आंदोलन को बल मिला था। क्योंकि राजकोट आंदोलन की प्रतिरोध की शक्ति ने रियासतो में हस्तक्षेप ना करने वाले ब्रिटिश सरकार के वाइसराय को, हस्तक्षेप करने को बाध्य कर दिया था। अत: अन्य रियासतो में भी आंदोलन तेज हो गया, तथाा काँग्रेस भी अब खुलकर इन आंदोलनो के पक्ष में आ गयी। 1942 तक काँग्रेसी आंदोलन व प्रजामंडल आंदोलनो में कोई फर्क नहीं रह गया। अब जनता सीधो टकराव की स्थिति में आ चुकी थी।[8]

1942 के आंदोलन में सभी प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं के गिरफ्तारी के बाद भी यह लंबे समय तक चलता रहा। 'इंडियन नेशनल आर्मी' के गिरफ्तार अफसरो पर चल रहे मुकदमों के विरूद्ध जनता सड़कों पर आ गयी। फरवरी 1946 में आजाद हिन्द फौज के कैदियो की रिहाई की माँग को लेकर नौसैनिको ने विद्रोह किया, तो इन्हे भी जनता का समर्थन मिला। इस जनसंघर्ष कि सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह सांप्रदायिकता से परे था। तभी तो जिन्ना व पटेल दोनों एक साथ इस आंदोलन के पक्ष में आए थे। 1946 में 1,629 बार मजदूरों ने काम ठप्प किया तथा 60 लाख किसान भी आंदोलन में सहभागी बने।

स्थितियाँ बड़ी तेजी से बदल रही थी। द्वितीय विश्वयुद्ध से हुयी आर्थिक क्षति से त्रस्त ब्रिटेन को भारत में भी इन आंदोलनों की वहज से गंभीर आथिकि क्षति उठानी पड़ी। दूसरी ओर भारतीय अर्थव्यवस्था में आंतारिक व्यापार तेजी से बढ़ा तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर उसकी निर्भरता कम हो गयी। अब भारत एक ऋणग्रस्त देश नहीं रह गया था। भारतीय बाजार के 72 प्रतिशत हिस्से पर भारतीय उद्योगो का कब्जा हो गया था। वही दूसरी ओर, बदल रहे वैश्विक परिदृश्य में साम्राज्यवाद की समाप्ति व लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना का दबाव भी ब्रिटेन पर था। भारत में 1945– 47 ई. के बीच जनता जिस प्रकार से प्रत्यक्ष टकराव की स्थिति में आ गयी थी। इससे यह स्पष्ट था कि प्रजा आंदोलनो ने यहाँ लोकतंत्र की स्थापना के लिए धारातल तैयार कर दिया है। दूसरे शब्दो मे कहे तो, प्रजा आंदोलनो व भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने मिलकर ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा अपनी रक्षा के लिए संरक्षित रखे गए सामंतशाही के अवशेष को पराजित कर दिया था। इस प्रकार से अब ब्रिटिश साम्राज्य का आर्थिक व राजनीतिक दोनों आध ार खिसक गया था। अब भारत में उनका एक शासक के रूप में बना रहना संभव नहीं था। अतः उन्होंने 15 अगस्त 1947 को सत्ता हस्तांतरण का निर्णय लिया।[9]

भारतीय इतिहास कि यह विडंबना ही है कि देशी रियासतों के जिस प्रजा आंदोलन ने काँग्रेस को प्रजातंत्रीकरण के लिए बल प्रयोग का साहस दिया था, उस संघर्ष की साकारात्मक शक्तियों का प्रयोग भारत विभाजन के विरूद्ध नही हो सका। वस्तुतः शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण की तीव्र इच्छा के कारण ऐसा हुआ। ब्रिटिश शक्ति परिस्थितियों व भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दबाव स्वरूप भारत को स्वतंत्रता देने को तैयार तो हो गयी थी, किन्तु भारत में छिपे अपने आर्थिक लाभ का मोह वह छोड़ नहीं पायी थी। अत : वह भारत में सांप्रदायिकता व विभाजनकारी शक्तियों को भी बढ़ावा दे रही थी। किन्तु 1946 में उसने जनसंघर्ष की वह शक्ति देखी, जो सांप्रदायिक व जातिगत भेद-भाव से उपर थी। इसमें विभाजनकारी शक्तियों को सामाप्त करने की भी क्षमता थी, जो मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक राजनीति को किल कर सकती थी। ऐसा हो जाने से भारत 'नव उपनिवेशवादी' दुष्प्रभावों से सुरक्षित हो सकता था। लेकिन, इससे पहले की जनसंघर्ष में छिपी इस संभावना को समझ कर इसे भारत विभाजन के विरूद्ध खड़ा किया जाता, ब्रिटिश सरकार ने नियत समय से पूर्व ही भारत को सत्ता हस्तांतरित करने की घोषणा कर दी।

संदर्भ–ग्रंथ

1. आर0 एल0 शुक्ला, आधुनिक भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987, पृ. सं. 747।
2. आर0 एल0 शुक्ला, आधुनिक भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987, पृ. सं. 752।
3. इंपेरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, वाल्युम- 4, 1907, पृ. सं. 60।
4. आर0 एल0 हान्डा, हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम मुवमेन्ट इन प्रिन्सली स्टेटस, नई दिल्ली, 1968, पृ. सं. 11-12
5. पी0 सीतारमैया, हिस्ट्री ऑफ इंडिया नेशनल काँग्रेस, बॉम्बे, 1936, वाल्युम-2, पृ. सं. 301-02
6. आर0 एल0 हान्डा, हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम मुवमेन्ट इन प्रिन्सली स्टेटस, नई दिल्ली, 1968, पृ. सं. 34-54
7. हरिजन पत्रिका में महात्मा गांधी के लेख- स्टेटस एण्ड द पीपुल्स- 3 दिसम्बर 1938
8. हरिजन पत्रिका में महात्मा गांधी के लेख-राजकोट- 4 फरवरी 1939
9. आर0 एल0 शुक्ला, आधुनिक भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987, पृ. सं. 762-64।

शैक्षणिक विकास

डॉ० राजीव रंजन वर्मा

लोक प्रशासन, मण्डलीय प्रबंधक-कम्यूनिटी प्रोसेस, गोरखपुर और बस्ती, मण्डल, एन.एच.एम. यू.पी.

समूचे विश्व समुदाय ने सर्व शिक्षा को सहस्राब्दी विकास लक्ष्य के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकार किया है। जी-आठ देशों का कहना है कि वर्तमान आर्थिक संकट से पार पाने के लिए इस क्षेत्र में निवेश नितांत आवश्यक है। इधर, भारत भी देश में शिक्षा के पुनर्गठन और पुनरूद्धार के अपने एजेंडा को आगे बढ़ाने में सक्रिय रूप से लगा हुआ है। निश्चित रूप से, ऐसा बहुत कुछ है जिसको पुनर्गठित करने और नये सिरे से संगठित करने की आवश्यकता है।

सर्वशिक्षा अभियान

अंधकार को कोसने से अच्छा है, एक दीपक जला दियाजाए और शिक्षा ही एक ऐसा दीप है जो अज्ञानता रूपी अंधकार को हमेशा के लिए खत्म कर सकता है। सर्वशिक्षा अभियान के रूप में सरकार इसी लक्ष्य पर काम कर रही है। इस अभियान का उद्देश्य है उन सभी पिछड़े बच्चों को शिक्षित करना जो कल तक अक्षर और किताबों की दुनिया से अनजान थे। जहां वर्ष 1951 में हमारे देश में साक्षरता की दर सिर्फ 18ण्33 प्रतिशत थी वहीं वर्ष 2001 में यह दर 64ण्84 प्रतिशत आंकी गई। बावजूद इसके आज भी हमारे राष्ट्र के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण कारण निरक्षरता ही है। हमारे **बिहार** राज्य में आधी से ज्यादा महिलाएं आज भी निरक्षर हैं। यहां तक कि आदिवासी इलाकों और दुर्गम ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली औरतों का अभी भी शिक्षा से कोई वास्ता नहीं हैं।

सर्व शिक्षा अभियान को राज्य सरकार की भागीदारी से 6.14 वर्ष के आयु के बच्चों की आवश्यकताओं पर ध्यान देने हेतु कार्यान्वित किया गया है। सर्व शिक्षा अभियान के हस्तक्षेप के कारण विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में उल्लेखनीय गिरावट आई है।

ऐसे ही लोगों को शिक्षित करने के लिए सरकार ने अपने आठ प्रमुख कार्यक्रमों में सर्वशिक्षा कार्यक्रम को शामिल किया है। इस कार्यक्रम के तहत समेकित बाल विकास योजना, आँगनबाड़ी तथा प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को प्रशिक्षण देकर स्कूल-पूर्व शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाता है। सर्वशिक्षा अभियान प्रारम्भिक शिक्षा को सामुदायिक स्वामित्व वाली स्कूल प्रणाली के साथ सर्वव्यापी बनाने का एक प्रयास है।

सर्वशिक्षा अभियान को और अधिक कारगर बनाने के लिए प्राथमिक स्कूलों में कंप्यूटर सहायक अध्ययन पद्धति को अपनाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत सार्वजनिक-निजी साझेदारी को प्रोत्साहित किया जाता है। ऐसी भागीदारी की सुविधा के लिए राज्य परियोजना निदेशकों और निजी उद्यम के प्रतिनिधियों के साथ शहरों में कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं। शिक्षा की गुणवता में सुधार के लिए उच्च प्राथमिक स्तर पर कंप्यूटर की सहायता से शिक्षा और बच्चों के स्वतंत्र प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जाती है।

समन्वय की आवश्यकता

हालांकि सर्वशिक्षा अभियान देश के कई राज्यों में पिछले कई वर्षो से चलाया जा रहा है, प्रदेश का हर बालक-बालिका शिक्षित हो, इसके लिए सरकार द्वारा मोटी धन राशि भी व्यय की जा रही है, लेकिन इस योजना में कहीं-न-कहीं समन्वय की कमी देखने को मिलती है। कई स्वयंसेवी संस्थाएं भी इस अभियान को सफल बनाने में योगदान कर रही हैं, परन्तु अभी भी शिक्षा का प्रवाह

गांवों मे पूरी तरह नहीं हो पाया है। गौर से देखा जाए तो इसमें कुछ दोष नजर आता है। प्राथमिक विद्यालय अपेक्षित रूप से अपने काम का दायित्व पूरा नहीं कर पा रहे हैं। ये विद्यालय अपनी अभिगम एवं जनसंपर्क में आने वाली कठिनाइयों पर विचार-विमर्श न कर के सरकारी परिपत्रों के वाचन एवं विश्वविद्यालय प्रदत विभिन्न मदो की राशि के उपयोग एवं उनकी प्रगति का प्रतिवेदन एकत्र करने पर जोर देते है। फलत: विद्यालय के शिक्षक अपने शिक्षण अनुभवों के आदान-प्रदान से प्रशिक्षण प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। होना यह चाहिए कि इन बैठकों में विद्यालय शिक्षा समिति के अध्यक्षों को भी आमंत्रित किया जाए तभी इस शिक्षा अभियान में जनता की भागीदारी संभव है। जो शिक्षक प्रशिक्षित और योग्य है उनके विद्यालय में पुस्तके नहीं है। 'डायट' जैसी संस्थाओं को पूर्ण सक्रिय होकर कई चरणों में प्रत्येक शिक्षक को प्रशिक्षित करना चाहिए ताकि शिक्षकों पर किया गया व्यय व्यर्थ न जाए। शिक्षा की गुणवता के लिए शिक्षकों की कार्यक्षमता एवं प्रशिक्षण के विभिन्न आयामों के प्रबंधन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

विद्यालय शिक्षा समिति एवं पंचायत के वर्चस्व की लड़ाई नहीं बल्कि समन्वय की बात होनी चाहिए। स्वैच्छिक संस्थाओं एवं विभागों के बीच आपसी तालमेल की भी आवश्यकता है।

यदि इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाए और समीक्षा की जाए तो वह दिन दूर नहीं जब इस अभियान की सफलता देश के हर गांव में देखने को मिलेगी।

सर्वशिक्षा अभियान का मुख्य उद्देश्य ऐसी बस्तियों में स्कूल खोलना है जहां करीब एक किलोमीटर के दायरे में एक भी स्कूल नहीं है। इन स्कूलों में ऐसे बच्चों को शिक्षा दी जाती है जो स्कूल नहीं जाते हैं या फिर गरीबी के कारण जिनकी पढ़ाई बीच में ही छूट जाती है। इस अभियान का लक्ष्य वर्ष 2007 तक सभी बालक-बालिका को शिक्षा उपलब्ध कराना था और वर्ष 2010 तक सामाजिक भेदभाव दूर कर सभी को प्राथमिक स्तर की शिक्षा से जोड़ना है। बेहतर शिक्षा के अलावा कंप्यूटरयुक्त अध्ययन और बच्चों की देखभाल तथा इसके साथ ही लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करना भी निहित है।

विद्यालयों में राष्ट्रीय मध्याहन भोजन कार्यक्रम

इस कार्यक्रम में प्राथमिक अवस्था में बच्चों को 450 कैलोरी और 12 ग्राम प्रोटीन का मध्याहन् भोजन मुहैया कराया जाता है। प्राथमिक अवस्था से ऊपर के बच्चों के लिए 700 कैलोरी और 20 ग्राम प्रोटीन का पोषाहार मूल्य निर्धारित किया गया है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत पर्याप्त मात्रा में लौह, फोलिक एसिड और विटामिन-ए जैसे सूक्ष्म पोषाहार की यथेष्ट मात्रा की भी सिफारिश की गई है। 1 अप्रैल, 2008 से इसमें संपूर्ण देश के सभी क्षेत्रों के शिक्षा गारंटी योजना/वैकल्पिक एवं नवप्रवर्तक शिक्षा केंद्रों तथा सरकारी, स्थानीय निकायों और सरकारी सहायता प्राप्त प्राथमिक और प्राथमिक विद्यालयों से ऊपर की कक्षाओं में अध्ययन करने वाले सभी बच्चों को शामिल किया गया है।

प्रारंभिक शिक्षा के स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम

इसे उन शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े ब्लॉकों (ईबीबीद्ध में कार्यान्वित किया गया है जहां ग्रामीण महिला साक्षरता का स्तर राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा कम है और पुरुष-महिला अनुपात अंतर राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा अधिक है। साथ ही उन ब्लॉकों में भी लागू किया गया है जहां न्यूनतम 5 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जाति/जनजाति की है तथा इन महिलाओं की साक्षरता दर 10 प्रतिशत से कम है। इसे चुनिंदा शहरी मलिन बस्तियों में भी कार्यान्वित किया गया है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय

अनुसूचित जाति/जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक समुदायों से संबंधित बालिकाओं के लिए ऊपरी प्राथमिक स्तर पर आवासीय विद्यालयों की स्थापना के लिए जुलाई 2004 में यह योजना आरंभ की गई थी। अप्रैल 2007 को सर्व शिक्षा अभियान (एसएसएद्ध के साथ केजीबीवी योजना का विलय कर दिया गया। भारत सरकार द्वारा 31 मार्च, 2009 तक 2ए573 केजीबीवी की स्वीकृति दी गई थी। 31 मार्च, 2009 को राज्यों में 2ए460 केजीबीवी कार्य कर रहे हैं (अर्थात 95ण्61 प्रतिशतद्ध और इनमें 2ए15ए269 बालिकाएं पंजीकृत हुई हैं- 53ए503 अजा की बालिकाएं (24ण्85 प्रतिशतद्धए 74ए487 अजजा की बालिकाएं (34ण्60 प्रतिशतद्धए 54ए201 अन्य पिछड़े वर्ग की बालिकाएं (25ण्18 प्रतिशतद्धए 18ए647 गरीबी रेखा से नीचे की बालिकाएं (8ण्66 प्रतिशतद्ध और 14ण्431 अल्पसंख्यक बालिकाएं(6ण्7 प्रतिशतद्ध हैं।

बालिका शिक्षा पर जोर

बिहार सर्वशिक्षा अभियान में बालिकाओं के लिए कई महत्वकांक्षी योजनाएं शामिल की गई हैं। आठवीं कक्षा तक की बालिकाओं के लिए मुफ्त पाठ्य-पुस्तकें और अधिक उम्र की बालिकाओं के लिए सेतु पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। इनके अध्यापन के लिए 50 प्रतिशत महिला शिक्षकों की नियुक्ति का प्रावधान रखा गया है। लड़के-लड़कियों में एक समान शिक्षा देने के लिए शिक्षकों को संवेदनशील बनाने पर जोर दिया जा रहा है। स्कूल से बाहर की बालिकाओं को विद्यालय में लाने के लिए शिविर का आयोजन भी किया जाता हैं।

बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए चलाई गई एक और योजना का नाम है- कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना। सन् 2004 में इस योजना की शुरूआत की गई थी जिसका उद्वेश्य लड़कियों को उच्चतर प्राथमिक स्तर पर शिक्षा हासिल करने के लिए प्रोत्साहित करना है। सर्वशिक्षा अभियान के तहत कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों का वितपोषण 1 अप्रैल, 2007 से एक घटक के रूप में किया जाता है। बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने का नतीजा हमारे बिहार प्रदेश में भी देखने को मिल रहा है।

अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अल्पसंख्यक वर्गो के लिए विशेष प्रावधान

सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत देश में करीब दो सौ जिलों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। जहां इनकी संख्या अधिक है वहां पर्याप्त संख्या में स्कूल खोले जा रहे हैं। इनके लिए नि:शुल्क पाठ्य पुस्तकें भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के शिक्षकों की भर्ती के लिए आरक्षण की व्यवस्था है। इन वर्गो की लड़कियों को भी शिक्षा उपलब्ध कराने में प्राथमिकता दी जाती है।

सर्वशिक्षा अभियान में मुस्लिम बहुल राज्यों पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। स्कूलों में नामांकन के लिए मुस्लिम समुदाय के लिए अलग से श्रेणी रखी गई है। मदरसों और मकतबों में दी जाने वाली शिक्षा को भी सर्वशिक्षा अभियान में शामिल किया गया है। मुस्लिम समुदाय की लड़कियों को कक्षा एक से आठ तक मुफ्त किताबें उपलब्ध कराई जाती है और जहां उर्दू माध्यम स्कूल है वहां उर्दू पाठ्य पुस्तकें भी मुहैया कराई जाती हैं। अल्पसंख्यक बहूल पिछड़े इलाकों में केवल लड़कियो के लिए कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय बहुतायत से खोले गए हैं।

माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करती है और 14.18 वर्ष के आयु समूह के बीच के युवा को उच्च शिक्षा और कार्य करने के लिए तैयार करती है। हाल के वर्षों में उच्चतर शिक्षा की केंद्रीय संस्थाओं में भी महत्वपूर्ण विस्तार हुआ है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम

संसद में अगस्त, 2009 को बच्चों का नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित हो गया है। इसके साथ ही देश के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त हो गया है। यह ऐतिहासिक विधान 6 से 14 वर्षो तक के प्रत्येक बच्चें को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के केंद्र और राज्य सरकारों के दायित्व को रेखांकित करता है।

अधिनियम में इस बात का प्रावधान किया गया है कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चे को अपने पड़ोस के विद्यालय में आठवीं कक्षा तक बुनियादी शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य रूप से पाने का अधिकार है। यदि कोई बच्चा 6 वर्ष की आयु पर किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं ले पाता है तो वह बाद में अपनी उम्र के अनुरूप कक्षा में प्रवेश ले सकता है। उसे अपनी कक्षा के स्तर पर आने के लिए नि:शुल्क प्रशिक्षण पाने का भी अधिकार होगा। किसी भी बच्चे को प्रवेश से इंकार नही किया जाएगा और जब तक उसकी बुनियादी शिक्षा पूरी नही हो जाती, उसे न तो विद्यालय से निकाला जाएगा और न ही उसे रोका जाएगा। यदि वह निर्धारित 14 वर्ष की आयु तक बुनियादी शिक्षा पूरी नहीं कर पाता, तो उसके बाद भी पढ़ाई पूरी होने तक, उसे नि:शुल्क शिक्षा दी जाती रहेगी।

इस कानून में कई क्रांतिकारी उपाय किए गए है जिनमें निजी स्कूलों में गरीबों और वंचितों के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटों का आरक्षण और बच्चों को हर साल की परीक्षाओं से मुक्ति शामिल है। मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल ने स्वीकार किया कि यह लक्ष्य पाना आसान नहीं है और कानून बनते ही सब कुछ ठीक नही हो जाएगा, लेकिन उन्होंने भरोसा दिलाया कि इसे अंजाम तक ले जाने के लिए केंद्र अपनी पूरी जिम्मेदारी निभाएगा जिसमें धन की कमी नही होगी। उन्होने कहा कि जो राज्य इस मामले में अपने हिस्से का खर्च उठाने की स्थिति में नहीं होंगे उनका मामला वित्त आयोग के सामने रखा जाएगा और उन्हें अतिरिक्त धन मुहैया कराया जाएगा। अधिनियम में हर तरह की विकलांगता से प्रभावित बच्चों की शिक्षा का प्रावधान भी किया

गया है। उन्होंने कहा कि जो बच्चे सामान्य स्कूलों में शिक्षा ले सकते हैं उन्हें वहां मौका मिलेगा जबकि विशेष स्कूलों की आवश्यकता होने पर ऐसे बच्चों के लिए वहां भी व्यवस्था की जाएगी।

शिक्षा के स्तरीकरण तथा गुणवता को बढ़ाने एवं सबों को समान अवसर और सामाजिक न्याय के संवैधानिक दायित्वों के तहत शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों की एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया है। विद्यालयों, विशेषकर प्रारम्भिक स्तर के बच्चों को समान अवसर प्रदान करना, इसकी कार्य-व्यवस्था में सुधार लाना तथा बदलते परिवेश में पाठ्यक्रमों की गुणवता में बढ़ोतरी लाना इसका मुख्य उद्देश्य है। दोहरी शिक्षा प्रणाली को दूर कर अमीर-गरीब सबके लिए समान स्कूल प्रणाली हेतु सुझाव देने के लिए।प्रतिभा/मेधा पलायन को रोकने तथा शैक्षणिक संस्थानों के सुदृढ़ीकरण/विस्तारीकरण को ध्यान में रखकर निवेशकों को जमीन की उपलब्धता एवं सिंगल विन्डो क्लीयरेंश, आदि सुविधा देने की व्यवस्था की गई है।

सर्व शिक्षा अभियान, बक्सर द्वारा जिले में संचालित कार्यक्रमों का विवरण निम्न प्रकार है :-

- असैनिक कार्य
- बक्सर जिले में प्रारम्भिक औपचारिक शिक्षा (EFE)
- एन0पी0ई0जी0ई0एल (NPEGEL)
- विद्यालय से बाहर के बच्चे
- विद्यालय शिक्षा समिति/मीडिया संभाग
- बक्सर जिले में साईकिल योजना

शिक्षा के क्षेत्र में जहां हर दिन नये-नये प्रयोग, सपनों को साकार करने के लिए प्रौद्योगिकी, कानून, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों की स्थापना हो रही है वहीं मौजूदा विश्वविद्यालय स्तर पर गुणवतापूर्ण शिक्षा दान करने के प्रति हमारी लापरवाही भी छुपी नहीं है। लेकिन इस स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

प्रतिवेदन एवं सुझाव

सबसे पहले यह देखना होगा कि आखिर विद्यार्थी महाविद्यालय/ विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए तो बहुत उत्सुक होते हैं, पर पढ़ने के लिए क्यों नहीं जाते? विद्यार्थी जानते है कि बाजार में दो चीजों की मांग है। पहला - विषय विशेष से संबंधित डिग्री, जो पासपोर्ट का कार्य करती है। दूसरा - उस विषय का ज्ञान जो उसे डिग्री पाने के बाद करना पड़ता है। हमारी शिक्षण संस्थाओं में प्रयुक्त पाठ्यक्रम सामान्य रूप से सैद्धान्तिक प्रकृति का होता है जिसे यदि विद्याार्थी सही ढ़ग से समझ ले, तो आवश्यकता पड़ने पर कहीं भी प्रयोग कर सकता है। आज न तो शिक्षक विषय को सही रूप में प्रस्तुत करने की स्थिति में है और न ही विद्यार्थियों में इतना धैर्य होता है कि चीज को बारीकी से समझ सकें। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियों को सतही शिक्षा दी जाती है जिसका व्यवहारिक जीवन में कोई भी उपयोग दिखाई नहीं देता। हमारे पाठ्यक्रम में वही पुरानी बातें अलग-अलग तरीके से प्रस्तुत की जाती हैं। कभी एक विषय घटा दिया जाता है तो कभी एक विषय को जोड़ दिया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि पढ़ाई और पाठ्यक्रम दोनों में आमूलचूल परिवर्तन लाया जाए।

यदि वास्तव में देश के सारे बच्चों को अच्छी, गुणवतापूर्ण शिक्षा देना है, तो सरकार को ऐसे कानून और ऐसी नीतियां बनानी चाहिए जिसमें निम्नलिखित बातें सुनिश्चित हों -

- देश में समान स्कूल प्रणाली लागू हो, जिसमें एक जगह के सारे बच्चे अनिवार्य रूप से एक ही स्कूल में पढ़ेगे।
- शिक्षा के व्यवसायीकरण और शिक्षा में मुनाफाखोरी पर प्रतिबंध हो। जो निजी स्कूल फीस नहीं लेते हैं, परोपकार (न कि मुनाफे) के उद्देश्य से संचालित होते है, और समान स्कूल प्रणाली का हिस्सा बनने को तैयार हैं, उन्हें इजाजत दी जा सकती है।
- देश में विदेशी शिक्षण संस्थाओं के प्रवेश पर रोक लगे। हम विदेशों से ज्ञान, शोध, शिक्षण पद्धतियों और शिक्षकों-विद्यार्थियों का आदान-प्रदान एवं परस्पर सहयोग कर सकते हैं, किंतु अपनी जमीन पर खड़े होकर।
- शिक्षा में समस्त प्रकार के भेदभाव और गैरबराबरी समाप्त की जाए।
- पूर्व-प्राथमिक से लेकर कक्षा बारहवीं तक की शिक्षा का पूरा खर्च सरकार उठाए। स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक, भवन, शौचालय, पेयजल, खेल मैदान, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री, खेल सामग्री, उपकरण, छात्रावास, छात्रवृतियों आदि की पूरी व्यवस्था के लिए सरकार जरूरी संसाधन उपलब्ध कराए।

- शिक्षकों को स्थायी नौकरी, पर्याप्त वेतन और प्रशिक्षण सुनिश्चित किया जाए। शिक्षकों से गैर-शिक्षकीय काम लेना बंद किया जाए। मध्याहन भोजन की जिम्मेदारी शिक्षकों को न देकर दूसरों को दी जाए। कर्तव्य निर्वाह न करने वाले शिक्षकों पर कार्यवाही की जाए।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी का वर्चस्व खत्म किया जाए। स्कूलों का प्रबंध स्थानीय स्वशासन संस्थाओं द्धारा और जनभागीदारी से किया जाए।
- गलाकाट प्रतिस्पर्धा का माहौल समाप्त किया जाए। निजी कोचिंग संस्थाओं पर पाबंदी हो। प्रतिस्पर्धाओं के द्धारा विद्यार्थियों को छांटने के बजाए विभिन्न प्रकार की उच्च शिक्षा, प्रशिक्षण एवं रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाएं।
- शिक्षा को मानवीय, आनंददायक, संपूर्ण, सर्वांगीर्ण, बहुमुखी, समानतापूर्ण एवं संवेदनशील बनाने के लिए शिक्षण पद्धति और पाठ्यचर्या में आवश्यक बदलाव किए जाएं। बस्ते का बोझ कम किया जाए। किताबी एवं तोतारटंत शिक्षा को बदलकर उसे ज्यादा व्यावहारिक, श्रम एवं कौशल प्रधान, जीवन से जुड़ा बनाया जाए।
- बच्चों के भीतर जिज्ञासा, तर्कशक्ति, विश्लेषण शक्ति और ज्ञानपिपासा जगाने का काम शिक्षा करें। बच्चों के अंदर छुपी विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं व क्षमताओं को पहचानकर उनके विकास का काम शिक्षा का हों। शिक्षा की जड़े स्थानीय समाज, संस्कृति, देशज परंपराओं और स्थानीय परिस्थितियों में हो। शिक्षा को हानिकारक विदेशी प्रभावों एवं सांप्रदायिक आग्रहों से मुक्त किया जाए। संविधान के लक्ष्यों के मुताबिक समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक भारत के प्रबुद्ध एवं जागरूक नागरिक तथा एक अच्छे इंसान का निर्माण का काम शिक्षा के माध्यम से हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अवस्थी, ए. एण्ड अरोड़ा, रमेश, के., ब्यूरोक्रेसी एण्ड डिवेलपमैंट : इण्डियन पर्सपेक्टिव, नई दिल्ली, ऐसोसिएटेड पब्लिशिंग हाऊस, 1978
2. अवस्थी, ए. एण्ड रंगाराव, एस. पी., क्राईसेस एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, स्टरलिंग, 1983
3. अरोडा़, रमेश के, तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1975
4. अग्रवाल, एच.एन., द एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ नेपाल, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1976
5. इनामदार, एन.आर.एण्ड क्षीर वी.के., डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच., नई दिल्ली, 1985
6. उपाध्याय, देवेन्द्र, पंचायती राज व्यवस्था, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
7. एत्जिओनी, अमिताई, मॉडर्न आर्गनाइजेशन्स, एन्गलवुड किल्फ्स : प्रेन्टिस हॉल, 1964
8. कटारिया, सुरेन्द्र, आर्थिक नीति एवं प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2006
9. कटारिया, सुरेन्द्र, भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2005
10. कटारिया, सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2006
11. कटारिया, सुरेन्द्र, सामाजिक (कल्याण) प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2005
12. कानवा, योगेश एवं कटारिया, सुरेन्द्र, भारत में निर्धनता, आर्थिक विकास एवं मीडिया, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2006
13. कोहली, अतुल, डेमोक्रेसी एण्ड डिसकंटेण्ट : इण्डियाज ग्रोइंग क्राइसिस ऑफ गवर्नेब्लिटी, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1990
14. खान, आई.एच., गवर्नमेण्ट इन रूरल इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1969
15. खान, जियाउद्धीन, वर्मा, एस.एल., प्रशासनिक विचारधाराएँ, भाग- प्रथम व द्धितीय, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1979
16. गॉधी, महात्मा, नये युग का सूत्रपात (प्रस्तुति-शरद कुमार साधक), आचार्यकुल, वाराणसी, 2003
17. गैन्ट जॉर्ज, एफ., डिवेलपमैंट एडमिनिस्ट्रेशन : कन्सेपस्ट, गोल्स मैथर्डस, मैडिसन, विसकोन्सिन : यूनिवर्सिटी आफ विसकोन्सिन प्रेस, 1979
18. गिल, रिचर्ड टी., इक्नौमिक डिवेलपमैंट : पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, इंगल वुड किल्फस : प्रैन्टिस, 1967

19. घोश, रतन एण्ड प्रमाणिक ए.के., पंचायत सिस्टम इन इण्डिया : हिस्टोरिकल, कॉन्स्टीट्यूशनल एण्ड फाइनेंशियल एनालिसिस, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1999

अन्य

1. ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित गामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग तथा अन्य विभागों की योजनाएँ एवं गतिविधियॉ, इन्दिरा गॉधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर, 2005
2. पंचायती राज संस्थाओं का सशक्तिकरण, इन्दिरा गॉधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर, जून-जुलाई, 2003
3. पंचायती राज के प्रभारी मंत्रियों के सात गोलमेज सम्मेलनों के प्रस्तावों का संकलन, जुलाई-दिसम्बर, 2004, पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार
4. ओवरव्यू ऑफ डिसेण्ट्रेलाइजेशन इन इण्डिया, विश्व बैंक, नई दिल्ली, सितम्बर, 2000
5. द योरोपा इयर बुक, 1984, अवर्ड सर्वे वोल्यूम- प्रथम व द्धितीय, लन्दन योरोपा पब्लिकेशन्स, 1984
6. इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, त्रैमासिक पत्रिका नई दिल्ली,
7. फिलिपिन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, मनीला, फिलिपीन्स ब्यूरों ऑफ प्रिटिंग
8. पंचायती राज संस्थाओं का सशक्तिकरण, इन्दिरा गॉधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर, जून-जुलाई, 2003
9. पंचायती राज के प्रभारी मंत्रियों के सात गोलमेज सम्मेलनों के प्रस्तावों का संकलन, जुलाई-दिसम्बर, 2004, पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार
10. ओवरव्यू ऑफ डिसेण्ट्रेलाइजेशन इन इण्डिया, विश्व बैंक, नई दिल्ली, सितम्बर, 2000
11. इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, त्रैमासिक पत्रिका नई दिल्ली,
12. फिलिपिन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, मनीला, फिलिपीन्स ब्यूरों ऑफ प्रिटिंग
13. एडमिनिस्ट्रेटिव चेंज, त्रैमासिक पत्रिका जयपुर, जवाहर नगर
14. लोक प्रशासन, भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, त्रैमासिक पत्रिका
15. बिहार समाचार, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, बिहार सरकार
16. दैनिक जागरण, बिहार, पटना, बक्सर संस्करण, दैनिक समाचार पत्र
17. हिन्दुस्तान, बिहार, पटना, बक्सर संस्करण, दैनिक समाचार पत्र
18. प्रभात खबर, बिहार, पटना, बक्सर संस्करण, दैनिक समाचार पत्र
19. राष्ट्रीय सहारा, बिहार, पटना, बक्सर संस्करण, दैनिक समाचार पत्र
20. श्री नीतीश कुमार, माननीय मुख्यमंत्री, बिहार की विश्वास यात्रा, न्याय के साथ विकास के साढ़े चार वर्ष, रिर्पोट कार्ड, जिला - बक्सर 2010
21. न्याय के साथ विकास यात्रा का पांचवा वर्ष, रिर्पोट कार्ड- 2010

आधुनिक भारत में आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में औपनिवेशिक पहलः एक अध्ययन

दिलीप कुमार

शोधरत, (इतिहास विभाग), बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारत में आयुर्विज्ञान की एक सतत् एवं समृद्ध देशी परंपरा रही हैं। इसकी समृद्धि एवं प्रभावशीलता का आकलन इदस बात से लगाया जा सकता है कि आधुनिक आयुर्विज्ञान में तमाम शोधें एवं तकनीकी विकास के बावजूद आज भी देश की एक बड़ी आबादी देशी चिकित्सा पद्धति का ही अनुसरण करती है। भारत की देशी चिकित्सा पद्धति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान 'आयुर्वेद' का रहा है। इसके अलावे युनानी चिकित्सा पद्धति एवं अन्य अन्य अनेक स्थानीय पद्धतियों विद्यमान रही है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ पाश्चात्य शिक्षा एवं आधुनिक वैज्ञानिक चेतना का भी विकास प्रारंभ हुआ। आधुनिक वैज्ञानिक विकास ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर प्रभाव डाला।

प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय आयुर्विज्ञान पर पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रगति के प्रभावों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक दृष्टि से वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविधियों का प्रयोग करते हुए निष्कर्ष की प्राप्ति की गयी है।

शब्द कुंजी: आयुर्विज्ञान, आयुर्वेद, देशी चिकित्सा, सांस्कृतिक पुनरोत्थान, मृत्यु दर, शाही अनुसंधान।

परिचर्चा

हेनरी वांडाइक कार्टर भारत में सूक्ष्मदर्शिकी का अग्रदूत था और उसने कुष्ठ और आवर्ती ज्वर पर शोध किया था, इसी प्रकार टी0 आर0 लेविस और डी0 डी0 कनिंघम ने हैजे की हेतुकी की खोजबीन की थी। लेविस तो 1833 ई. में भारत से चला गया, लेकिन कनिंघम कलकत्ता में शरीर-विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में 1897 ई. तक कार्यरत रहा और भारत के इने-गिने प्रयोगशालाओं में से नए जीवाणु-विज्ञान का प्रतिरोध किया और हैजे के रोगाणुओं पर शंकाएं प्रकट की, लेकिन आसन्न परिवर्तन के उत्सावर्द्धक लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगे। पशु-चिकित्सा-विज्ञान की आवश्यकताओं के मद्देनजर 1890 ई. में पूना में इम्पीरिअल बैक्टिरिॲलॅजिकल लेबोरेटरी (शाही जीवाणु-विज्ञानी प्रयोगशाला) की स्थापना की गई। 1892 ई. में पश्चिमोत्तर प्रांतो के लिए रासायनिक परीक्षक के रूप में ई. एच0 हैंकिन की नियुक्ति से भारत को एक ऐसा मौलिक विज्ञान कर्मी मिला जो पास्चर और कॉच के जीवाणु-विज्ञान संबंधी मतों और सीखों से ओत-प्रोत था। हैकिन ने, जो कलम का बहुत धानी था, भारत में चिकित्सा व्यवसाय को इसकी जड़ता से निकालकर इसे शिक्षित और उत्प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसकी तथा कुछ अन्य लोगों की पहल पर लाहौर में 1895 ई. में एक बैठक हुई जिसमें भारत में अलर्क रोग विरोधी (एंटि-रैबीज) पास्चर इंस्टिट्यूट के निर्माण पर जोर दिया गया (अंततः 1900 में कसौली में इसकी स्थापना हुई)। रसिया में जन्मा और पेरिस में प्रशिक्षित जीवाणु-विज्ञानी वाल्देमर हैफकिन एंटि-रेबीज सीरम की जाँच करने 1893 ई. में भारत आया। 1896 ई. में जब प्लेग का प्रकोप हुआ तो हैफकिन ने जो भारत में अकेला पूर्णकालिक जीवविज्ञानी था, बंबई में अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला में प्लेग-प्रतिरोधी सीरम का ईजाद किया। इस प्रकार 1890 ई. के दशक तक परिवर्तन के स्पष्ट लक्षण दिखने लगे, यद्यपि यह महत्वपूर्ण बात है कि हैकिन और हैफकिन दोनों

में से कोई भी आई. एम0 एस0 अथवा रॉयल आर्मी मेडिकल कौर्प्स के सदस्य नहीं थे। मलेरिया के संक्रमण में एनोफिलीज मच्छर की भूमिका की रॉस द्वारा की गई महत्वपूर्ण खोज ने सिद्ध कर दिया कि आई. एम0 एस0 पदाधिकारी अंतर्राष्ट्रीय स्तर का शोध करने में सक्षम थे। इस कार्य को पूरा करने में रॉस के सामने कई अड़चनें आई लेकिन लंदन के मैंसन से उसे इसके लिए पर्याप्त प्रोत्साहन मिला जबकि उसके भारतीय सहकर्मी पूर्णत: निष्क्रिय रहे। रॉस के एक सहकर्मी ने एक बार उसे कहा था, 'हम आई. एम0 एस0 के लोग महज चिकित्सक हैं, हमें शोध-कार्य से कुछ लेना-देना नहीं है।' लेकिनयह नई मन: स्थिति का संकेत था। जब भारत में चिकित्साकर्मियों ने 1894 ई. के दिसंबर में कलकत्ता में अपना सम्मेलन किया तो वायसराय एल्गिन उसमें शरीक हुआ और उसकी सरकार ने अखिल भारतीय चिकित्सा-संस्थान और टाइफाइड (आंत्रिक ज्वर) और हैजे की जाँच के लिए केंद्रीय और प्रांतीय प्रयोगशालाओं की स्थापना-संबंधी प्रस्तावों को गंभीरता से लिया।

भारत सरकार पर अन्य, अधिक आवश्यक, दबाव भी थे। 1898 ई. में बंबई में ब्यूबोनिक (गिल्टीदार) प्लेग के प्रकोप ने पूरे भारत में नई तबाही मचा दी। 1900 ई. के अंत तक सारे देश में 400,000 से अधिक मौतें दर्ज की गई और 1914 ई. के अंत तक और अस्सी लाख लोग मौत के शिकार हो गए। पूर्व में हैजे की भाँति प्लेग भी अंतर्राष्ट्रीय विस्तार की संभावनाओं से भरा था। दशकों तक ब्रिटेनवासी अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्मेलनों में इस बात के लिए आलोचना के शिकार होते रहे कि उन्होंने हैजे के भारत के पड़ोसी देशों और बाद में यूरोप और उत्तर अमेरिका तक फैलने से रोकने के लिए समुचित उपाय नहीं किए थे। अब 1896-97 ई. में यह आशंका पैदा हो गई कि प्लेग भी भारतीय पत्तनों से मध्य-पूर्व और यूरोप तक फैल जाएगा और **ब्लैक डेथ** का तांडव शुरू हो जाएगा। फरवरी 1897 ई. में वेनिस में आयोजित स्वास्थ्य सम्मेलन में भारतीय पत्तनों से जहाज द्वारा माल ढोए जाने पर तब तक प्रतिबंध लगाने पर गंभीरता से विचार किया गया जब तक भारत सरकार प्लेग पर प्रभावी नियंत्रण के ठोस उपाय नहीं करती। समुद्रपारीय व्यापार में क्षति के भय से सरकार ने इसके प्रत्युत्तर में एपिडेमिक डिजीजेज ऐक्ट (महामारी रोग अधिनियम) लागू कर दिया। यह औपनिवेशिक भारत में स्वास्थ्य-संबंधी निर्मित क्रूरतम कानूनों में एक था। इस अधिनियम के द्वारा सरकार को प्लेग के संदेहास्पद रोगियों को अनिवार्य रूप से अस्पताल में भरती करने, प्रभावित घरों और संपत्ति को नष्ट करने, रेलयात्रियों की शारीरिक जाँच करने और मेलों तथा तीर्थयात्राओं पर रोक लगाने का अधिकार मिल गया। इन उपायों से अंतर्राष्ट्रीय संत्रास तो शांत हो गया लेकिन पश्चिम और उत्तर भारत के कस्बों और नगरों में इस पर इतनी व्यापक प्रतिक्रिया हुई कि सरकार दुविधा में पड़ गयी कि आखिर महामारियों और सामूहिक मृत्यु-दर की चुनौती से कैसे निपटा जाए। स्थिति और भी जटिल हो गई जब 1902 ई. में हैफकिन के बंबई स्थित प्रयोगशाला के प्लेग-प्रतिरोधी सीरम का टीका दूषित सूई से दिए जाने के फलस्वरूप उत्पन्न टेटनस के कारण पंजाब के मालकोवल में 19 ग्रामीणों की मौत हो गई। इस **विपदा** के लिए सीधो हैफकिन का जिम्मेदार ठहराया गया और 1904 ई. में उसे पदच्युत कर दिया गया। कई साल बीत जाने के बाद उसे निर्दोष घोषित किया गया लेकिन उसके बाद वह भारत में जीवाणु-विज्ञान संबंधी शोध में कोई महत्वपूर्ण अवदान नहीं कर सका। जनश्रुति के विपरीत प्लेग-प्रतिरोधी टीकाकरण अनिवार्य नहीं बनाया गया था, लेकिन यह प्लेग को नियंत्रित करने के अत्यंत प्रभावी उपायों में एक था।

अंतत: 1898-99 ई. में सरकार ने अधिक व्यावहारिक नीति अपनाई। और अधिक प्रतिरोध से बचने के लिए उसने प्लेग नियंत्रण के अधिक कठोर उपायों को मृदुल कर दिया और स्वीकार किया कि महामारी के फलस्वरूप अधिकांश मौतें अपरिहार्य तो हैं, किंतु स्वैच्छिक उपायों के प्रति जन-समर्थन प्राप्त कर और स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूकता पैदा कर उसे रोका जा सकता है। भारत सरकार चिकित्सा और स्वास्थ्य पदाधिकारियों द्वारा लिए जाने वाले वैसे निर्णयों के प्रति सावधान हो गई। जो राज्य और उसकी प्रजा के बीच संबंधों पर दूरगामी प्रभाव डाल सकते थे। चिकित्सा-नीति पर राजनीतिक नियंत्रण में उसका विश्वास और दृढ़ हो गया। इसके बावजूद, सफाई और स्वास्थ्य के अधिक कठोर नियमों का परित्याग, भारतीय प्लेग आयोग द्वारा 1901 ई. में प्रस्तुत प्रतिवेदन और ब्रिटेन के चिकित्सा प्रतिष्ठान के दबाव के कारण सरकार चिकित्सा-अनुसंधान को गंभीरता से लेने पर राजी हो गई। मलेरिया और प्लेग के कारणों और उनके संक्रमण की विधियों की लगभग एक ही साथ खोज के फलस्वरूप भारत में प्रयोगशाला-आधृत विज्ञान को तो बढ़ावा मिला ही, कीट-विज्ञान, कृमि-विज्ञान, मलेरिया सर्वेक्षणों समेत पिस्सुओं, मच्छरों और अन्य रोगवाहक कीटों के जीवन-चक्र और वासस्थानों पर भी व्यापक वैज्ञानिक अनुसंधान किए जाने लगे।

1900 ई. और 1914 ई. के बीच सरकार ने उन सांस्थानिक ढ़ाँचों और अभिकरणों को व्यवस्थित किया जो आगामी दशकों में भारत में चिकित्सा-अनंसंधान संचालित करने वाले थे। इन अनुसंधानों को विश्वविद्यालयों के बदले राज्य के अधीन रखा गया। अनेक दोहरे काम वाली विशेषज्ञ संस्थाएँ खड़ी की गई जो एक ओर प्लेग, हैजा और दूसरे उष्णकटिबंधों रोगों में अनुसंधान करती थीं और दूसरी ओर उनके निवारण के लिए टीके का उत्पादन भी करती थी। अन्हीं संस्थाओं में 1906 ई. में पंजाब के कसौली में निर्मित सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट थी जो मलेरिया पर अनुसंधान कार्य करती थी। अलर्क रोग के उपचार के लिए और अलर्क-प्रतिरोध ी सीरम बनाने के लिए चार राजकीय सहायता प्राप्त पास्चर इंस्टिट्यूट और दो प्रांतीय जीव-विज्ञानी प्रयोगशालाएँ बंबई (इसे 1925 ई. में हैफकिन इंस्टिट्यूट का नाम दिया गया) और मद्रास के गुंडी में थीं जहाँ 1904 ई. में किंग इंस्टिट्यूट ऑफ प्रिवेंटिव मेडिसिन की स्थापना की गई। इन संस्थाओं के संचालन का निरीक्षण करने और शोध-कार्य चलाने के लिए 1906 ई. में जीवाणु-विज्ञान विभाग खोला गया (जिसे बाद में मेडिकल रिसर्च डिपार्टमेंट कहा जाने लगा)। इसमें सिर्फ आई एम0 एस0 के सेवाकर्मी ही भरती नहीं होते थे। स्थापना के समय इसमें तेरह पद थे जो शीघ्र ही बढ़कर तीस हो गए। 1911 ई. में वायसराय की परिषद के शिक्षा सदस्य सर हार्कोर्ट बटलर और महाशल्य चिकित्सक सर पार्डी ल्यूकिस की पहल पर इंडियन रिसर्च फंड एसोसिएशन (आई. आर0 एफ0 ए0) की स्थापना की गई। इसका काम था चिकित्सा शोधकर्ताओं को नियुक्त और प्रशिक्षित करना तथा लोक हितैषियों और सरकार से प्राप्त कोष को चिकित्सा-अनुसंधान के अनुमोदित कार्यक्रमों पर खर्च करना। आई. आर0 एफ0 ए0 भारत के लिए एक नये किस्म का अभिकरण था (बाद में इसी के तर्ज पर ब्रिटेन में मेडिकल रिसर्च कौंसिल की स्थापना की गई)। यह आंशिक रूप में पुराने आई. एम0 एस0 का विकसित रूप था, लेकिन इसमें कर्जन के शाही विज्ञान के कई पक्ष विद्यमान थे। वैज्ञानिक अनुसंध ान का राजकीय नीति और व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा प्रतिष्ठा में जो महत्वपूर्ण स्थान था, आई. आर0 एफ0 ए0 उसी का प्रतीक था। यह पाँच लाख रुपये (37,500 पौंड के बराबर) के सालाना सरकारी अनुदान से शुरू किया गया था और 1927-28 ई. के अपने उत्कर्ष-काल में भारत में चिकित्सा अनुसंधान पर ग्यारह लाख रुपये खर्च कर रहा था। 1913 ई. से आई. आर0 एफ0 ए0 के अधीन किए गए शोध 'इंडियन जॅर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च' में प्रकाशित होने लगे। यह पत्रिका मलेरिया, हैजा, कालाजार, प्लेग और हुकवॅर्म (अंकुशकृमि) पर अग्रगामी रचनाएँ प्रकाशित करती थीं और शीघ्र ही इसकी ख्याति अग्रणी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के रूप में हो गई।

इन सारे घटनाक्रम ने संयुक्त रूप से चिकित्सा अनुसंधान के क्षेत्र में भारत की कमजोर छवि को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और 1920 ई. के दशक के मध्य तक इसके 'उष्णकटिबंधी बीमारियों को प्रकाश में लाने में अति विशिष्ट योगदान' के दावे को पुष्ट किया। उदाहरणस्वरूप, बंबई में ग्लेन लिस्टन द्वारा प्लेग पर अथवा एस0 आर0 क्रिस्टोर और कसौली के आई. एम0 एस0के मलेरिया वैज्ञानिक की युवा पीढ़ी द्वारा किए गए अनुसंधान ने प्रमाणित कर दिया कि भारत चिकित्सा के क्षेत्र में अगली पंक्ति का अनुसंधान कर्ता बनने की क्षमता रखता है। लेकिन नतीजा शत-प्रतिशत भावात्मक नहीं था। संस्थानों और उनकी सीमित संख्या वाले अनुसंधानकर्ताओं के काम में सीरमों के उत्पादन की भारी माँग से बाधा पड़ती थी, खासकर युद्धकाल में उनकी सारी शक्ति हथियार बंद सैनिकों के लिए टीका बनाने में खत जाती थी और अनुसंधान-कार्य लगभग ठप हो जाता था। अनुसंधान के अग्रणी संस्थानों के सारे भारत में बिखरे होने के कारण उनके बीच समन्वय स्थापित करना कठिन था और यह कर्जन के अखिल भारतीय उपादेयता वाले केंद्रित अनुसंधान के आदर्श के अनुकूल नहीं था। फिर पुराने सेवा-आचार की अपेक्षाएँ भी कम प्रबल नहीं थीं। लोग यह तो मानते थे कि औपनिवेशिक चिकित्सा प्रतिष्ठान से बाहर रहकर हैंकिन और हैफकिन ने 1890 ई. के दशक में चिकित्सा अनुसंध ान को काफी आगे बढ़ाया था, लेकिन मालकोवल घटना की याद अभी भी ताजा थी। लोग मानते थे कि हैफकिन एक प्रतिभाशाली जीवाणुवैज्ञानिक, लेकिन कमजोर प्रशासक है और कतिपय अपवादों को छोड़कर किसी अनुसंधानिक संस्थान को चलाने की अपेक्षित वैज्ञानिक निपुणता और प्रशासकीय अधिकार सिर्फ आई. एम0 एस0 स्वयं तो अनुसंधान नहीं करता था, लेकिन स्थितियाँ तेजी से बदलीं और उसने चिकित्सा-क्षेत्र की प्रखर प्रतिभाओं को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उष्णकटिबंधी रोगों पर अनुसंधान करने और संभव हो तो नोबेल पुरस्कार जीतने (रॉस ने मलेरिया पर शोध करने कि लिए 1902 ई. में यह पुरस्कार जीता था) की संभावना उनके समक्ष प्रस्तुत की। 1917 ई. में आई. एम0 एस0 के महानिदेशक ल्यूकिस ने घोषणा की कि भारत में चिकित्सा-अनुसंधान की अपूर्व 'सुविधाएँ और अवसर' उपलब्ध है : 'भारत में शायद ही कोई ऐसा संक्रामक रोग है जिसमें अनुसंधान करना लाभकर नहीं होगा।

इसका एक उलटा परिणाम यह हुआ कि चिकित्सा-अनुसंधानकर्मी अपने सामान्य स्वास्थ्य और चिकित्सा-कार्य से दूर होते गए। आई. एम0 एस0 की वर्गीय श्रेष्ठता न सिर्फ उसकी व्यावसायिक और उससे भी अधिक जातीय अनन्यता से अपितु इस बात से भी जाहिर होती थी कि अनेक चिकित्सा अनुसंधान संस्थान और प्रयोगशालाएँ घनी आबादी वाले इलाकों और अनुसंधान किए जाने वाले रोगों से काफी दूर पर्वतीय प्रदेशों, **समशीतोष्ण** जलवायु वाले स्थानों में थी। समुद्र की सतह से 6,000 फीट ऊँचाई पर बसा कसौली इस अलगाव का स्पष्ट उदाहरण था। लेकिन इसके पक्ष में यह तर्क आश्वसितकारक था कि शिमला से सड़क मार्ग से मात्र तीन घंटों का सफर होने के कारण भारत सरकार के स्वास्थ्य आयुक्त इस पर निगाह रख सकते थे। अनुसंधान प्रयोगशालाओं और टीका प्रतिष्ठानों को सुदूर पर्वतीय प्रदेशों में रखने के अन्य कारण भी थे। पशुओं पर किए जाने वाले प्रयोग और उनकी चीर-फाड़ के सार्वजनिक विरोध के कारण इंपीरिअल बैक्टिरियॉलॅजिकल लेबोरेटरी को पूना से हटा कर कुमायूँ की तराई में 7,000 फीट पर अवस्थित मुक्तेश्वर में ले जाया गया। पर्वतीयस्थलों के पक्ष में एक बात यह भी कि कलकत्ता और बंबई का गरम जलवायु उन्नत जीवाणु-विज्ञान संबंधी कार्य के लिए प्रतिकूल था; गंभीर, वैज्ञानिक शोध शीतल स्थानों में और **मातदिल** जातियों के अनुसंधानकर्मियों द्वारा ही किए जा सकते थे। 1891 ई. में वायसराय लार्ड लैंस्डोन ने राज्यसचिव को कहा था कि मौलिक वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए जैसी 'मानसिक और शारीरिक अर्हताएँ अपेक्षित हैं वे 'उष्णकटिबंध में जन्में-पले लोगों में उतनी नहीं होती जितनी उत्तरी अक्षांश की अधिक सबल जातियों में होती हैं। दो साल बाद ग्रांट मेडिकल कॉलिज के प्रिंसिपल ने आने प्रतिवेदन में लिखा कि स्कॉटलैंड में मेढक का हृदय शरीर से अलग किए जाने के 48 घंटे बाद तक धड़कता रहता है जबकि बंबई के गर्म और आर्द्र जलवायु में इसकी धाड़कन सिर्फ पाँच मिनट बनी रहती है। मतलब यह कि संवेदनशील शारीरिक प्रयोग सिर्फ पर्वतीय प्रदेशो में ही किए जा सकते हैं। ऐसे दावे गंभीरता से लिए गए और इसके परिणामस्वरूप चिकित्सा अनुसंधानकर्ताओं की एक पृथक् जाति ही कायम हो गई, चिकित्सा-अनुसंधान पर गोरों का विशेषाधिकार हो गया और संस्थान अल्प वित्त-पोषित विश्वविद्यालय विभागों के बदले सुदूर पर्वतीय क्षेत्रों में स्थापित किए जाने लगे।

दरअसल, अनेक शाही अनुसंधान संस्थानों के अलगाव से ऊब, कटु व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता और सामाजिक तथा जातीय तनाव पैदा हुए और जिस तरह विज्ञान को सार्वजनिक छानबीन और जिम्मेवारी से अलग रखा जा रहा था उसे भारतीयों ने भी पसंद नहीं किया। जब 1900 ई. में ब्रिटेन के महाशल्य-चिकित्सक से पर्वतीय प्रदेशों में एक केंद्रीय जीवाणु-विज्ञानी संस्थान स्थापित करने के बारे में राय माँगी गई तो उसने टिप्पणी की कि मुक्तेश्वर जैसे स्थान में छोटी संख्या में यूरोपियों को रखकर उन्हें 'सभ्य जगत के, अधिकांश लाभों और सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता था, 'जो उनके लिए बड़ा ही कष्टदायक' था। उसने देहरादून के वन-संरक्षण विद्यालय का हवाला देते हुए प्रमाणित किया कि, 'जो यूरोपीय लंबे समय तक एकाकी स्थानों में रहते हैं, उनके मानसिक संताप के शिकार होने की संभावना रहती है'। इसके बावजूद अल्पकालीन लाभों के मद्देनजर पर्वतीय प्रदेशों में निवास की खूबियों के प्रति जागरूक सरकार ने ऐसी टिप्पणियों की उपेक्षा कर दी।

1878 ई. में पहला आयुर्वेदिक औषद्यालय कविराज चंद्र किशोर सेन ने कलकत्ता में खोला। 1898 ई. में डी0 गोपालचारू ने मद्रास में औषद्यालय खोला। इन्हें नगर परिषद से सब्सिडी मिलता था। ये विज्ञापन, निबंध व पुस्तिका के माध्यम से देशी उपचार व पेटेंट औषधि के बारे में जन समुदाय को परिचित करवाया।

निष्कर्ष

आधुनिक विज्ञान का स्वरूप भारत में पराश्रित विज्ञान का था। यह वैसे केवल संगठन व संरचनाओं का समूह मात्र नहीं था, जहाँ केवल आर्थिक लाभ वाले ाोधा पर बल दिया गया व मौलिक अनुसंधान पर कम या फिर केवल विज्ञान शिक्षा व शोध पर कम ध्यान दिया गया हो बल्कि यह एक आर्थिक व सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापना का साधन भी था, जहाँ विज्ञान का प्रयोग भारतीय संसाधनों से आर्थिक लाभ प्राप्त करने हेतु किया गया। इस उद्देश्य से भारत में वैज्ञानिक विकास की स्वाभाविक गति को बाधित भी किया गया एवं भारतीय वैज्ञानिक परंपरा को महत्वहीन घोषित करते हुए यूरोपीय ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास भी साथ-साथ किया गया। इस प्रकार, भारत में आधुनिक विज्ञान का विकास पराश्रित विज्ञान के रूप में ही हुआ। यहाँ 19 वीं-20वीं शताब्दी में साम्राज्यवादी सरकार थी, जिनका भारतीय संसाधनों पर नियंत्रण था, उनकी आवश्यकताएँ भिन्न थी। अत: उन्होंने अपनी आवश्यकता व संसाधन की उपलब्धता के अनुसार भारत में विज्ञान को नियंत्रित रूप से विकसित होने दिया।

संदर्भ

1. कुरैशी, एम0 ए0, सुदर्शन पृथी, 'साइंस एंड टेक्नॉलोजी इंन इंडिया', दिल्ली 1973 ई0, पृ. सं. 1-23
2. कुमार, दीपक, 'साइंस एंड दी राज', पृष्ठ संख्या 33।
3. एन0 ऑब्जेक्ट्स स्टिलमोर सल्लाइम : कॉलिन मैकेंजीस सर्वे ऑफ मैसुर (1799-1810), जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 8 (1998), पृ. सं. 181-206
4. कुमार, दीपक, 'साइंस एंड दी राज', पृ. सं. 1-3।
5. कुमार, दीपक, 'पैटर्नस ऑफ कॉलोनियल साइंस इन इंडिया', 'इंडियन जनरल ऑफ हिस्ट्री ऑफ साइंस', 5 मई 1980 ई. में प्रकाशित शोध पत्र, पृष्ठ संख्या 105-13।
6. जार्ज, बासल्ला, 'द स्प्रेट ऑफ वेस्टर्न साइंस' पृष्ठ संख्या 612-22।
7. कुमार, दीपक, 'सांइस एंड दी राज', पृष्ठ संख्या 4-5।
8. मित्र, 'हिस्ट्री', पृष्ठ संख्या 4-5।

भारत में दलित आंदोलन एवं पेरियार की भूमिका : एक अध्ययन

डॉ० प्रज्ञा कुमारी

पी-एच0 डी0, (राजनीतिशास्त्र विभाग), बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

ई. वी0 रामास्वामी 'नायकर' 20वीं शताब्दी के तमिलनाडु के एक प्रमुचा राजनेता थे। इन्होंने जस्टिस पार्टी का गठन किया जिसका सिद्धांत रूढ़िवादी हिन्दूत्व का विरोध था। हिन्दी भाषा के अनिवार्य शिक्षण का भी इन्होंने घोर विरोध किया। भारतीय एवं विशेषकर दक्षिण भारतीय समाज के शोषित-दलित वर्ग के लोगों की स्थिति को सुधारने का प्रयास करने वाले नायको में इनका नाम शीर्षस्थ है। सी0 राजगोपालाचारी के अनुरोध पर 1919 में काँग्रेस की सदस्यता लेकर उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत की। लेकिन काँग्रेस में व्याप्त जातीय भेद-भाव की स्थिति से नाराज होकर उन्होंने कांग्रेस का परित्याग कर दिया एवं जस्टिस पार्टी की स्थापना की। 1944 में जस्टिस पार्टी का नाम बदलकर 'द्रविड़ कड़गम' कर दिया गया। कालांतर में इसी से विभाजित होकर एक नया राजनीतिक दल 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' (डी0 एम0 के0) अस्तित्व में आयी।

प्रस्तुत अध्ययन में पेरियार की चिंतन दृष्टि एवं उनके सामाजिक-राजनीतिक कार्यो के आलोक में भारत में दलित आंदोलन में उनकी भूमिका का परीक्षण किया गया है।

शब्द कुंजी: बुद्धिवाद, धार्मान्तरण, जस्टिस पार्टी, छूआछूत, आर्य ब्राह्मण, आत्मसम्मान।

परिचर्चा

पेरियार का व्यक्तित्व: ई. वी0 रामस्वामी का जन्म 17 सन् 1879 ई. को इरोद नगर (तलिमनाडु) में एक समृद्ध व्यापारी परिवार में हुआ था। उनके पिता वेंकटसनफ्या नायकर के पूर्वज विजयनगर साम्राज्य से कई सदी पूर्व आकर कर्नाटक में बस गये थे। वे कन्नडिका वलिया जाति के थे जो बाद में नायकर कहलाये। उनकी माता का नाम चिन्नामथाई अमाल था।[1]

बचपन में रामास्वामी का लालन-पालन उनकी नानी के देखरेख में हुआ था। नानी के यहाँ घूमने की पूरी छूट थी। वे गरीबों अछूतों के यहां आते-जाते रहते थे। यह तत्कालीन सामाजिक नियमों के बिलकूल विपरीत था। यह सूचना जब उनके पिता को मिली तो वे उन्हे अपने पास बुला लिया। कड़े नियंत्रण से भी उन पर कुछ फर्क नहीं पड़ा। 8 वर्ष की उम्र में उन्हें स्कूल की पढ़ाई भी 10 वर्ष की अवस्था में समाप्त हो गयी। उसके बाद रामास्वामी पैतृक व्यवसाय में लग गये, जिसमें वे काफी सफल रहे। साथ ही धार्मिक व्यक्तियों से चर्चा के लिए धार्मिक पुस्तकों का अच्छा अध्ययन किया। 19 वर्ष की उम्र में उनकी शादी 13 वर्षीय नागमाई से हुई। सन् 1911 में पिता की मृत्यु के बाद उनके ओर उनके बड़े भाई कृष्णस्वामी के हाथ में एक बड़ी जायदाद आ गयी।[2]

सी0 राजगोपालाचारी की सलाह पर, जो उन दिनों सलेम नगरपालिका के चेयरमैन थे। रामास्वामी इरोद नगरपालिका के चेयरमैन के पद को त्याग कर काँग्रेस में शरीक हो गये। काँग्रेस आंदोलन की उन्हें तन-मन से पूरी सहायता की। उन्होंने उसके चलते आर्थिक हानि भी उठाई। शराबबंदी आंदोलन के दौरान उन्हें एक कठिन स्थिति से गुजरना पड़ा। उनके निजी बगीचे में एक हजार नारियल के पेड़ थे, जिनको ऊँचे दाम पर ताड़ी निकालने के लिए ठेके पर दिये जाते थे। दोहरी नैतिकता से बचने के लिए रामास्वामी ने

अपनी सभी नारियल के पेड़ कटवा दिये। उसी प्रकार 50,000 रूपयों के हैराड नोटों को भी कचहरी के बहिष्कार को सार्थकता प्रदान करने के लिए फाड़ फेका।[3]

सन् 1949 ई. में 72 वर्ष की अवस्था में उन्होंने एक 30 वर्षीय निजी सचिव मनियामाई से दूसरी शादी की। असमान उम्र के इस विवाह से एक विवाद उठ खड़ा हुआ और द्रविड़ कड़गम में भी फूट पड़ गयी। अन्ना दोराई के नेतृत्व में एक दूसरी पार्टी डी0 एम0 के0 बनी।[4]

वेलोर क्रिश्चियन अस्पताल में 25 दिसम्बर सन् 1973 को प्रातः काल उनकी मृत्यु हुई। वे कुछ दिनों से बीमार थे।

चलने-फिरने में अपनी असमर्थता के बावजूद पेरीयार अपनी मृत्यु के हफ्ते भर पूर्व तक सभा सम्मेलनों में भाग लेते रहे। 25 तारीख को जब उनका शव मद्रास पहुंचा तो घंटों से तीन मील के मार्ग पर हजारों लोग कतार बांधो खड़े थे। भीड़ के अलावा बरामदे तथा खिड़कियों से खड़े लोग शव पर पुष्प वर्षा रहे थे। लगभग 5 लाख लोग शव-यात्रा में सम्मिलित हुए थे। लोगों के दर्शनों के लिए शव राजाजी हाल में रखा था। संध्या 5 बजे के बाद विशेष तौर से टीक की बनी शवपेटी में शव को गड्ढे में उतारा गया। तत्कालीन मुख्यमंत्री करूणानिधि तथा के0 कामराज काँग्रेस (ओ0) अध्यक्ष, शवपेटी की डोर पकड़ने वालों में थे। राज्य पुलिस ने अंतिम सलामी दी।

तमिल राज्य में दो दिन का शोक मनाया गया। राज्य के सभी कार्यालय और शिक्षण संस्थाएं भी दिन बंद रहीं। इसी तरह का शोक पांडेचेरी में भी मनाया गया। शोक संदेश भेजने वालों में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्री, तमिलनाडु और आसपास के राज्यों के राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा मंत्री थे।

राष्ट्रपति वी0 वी0 गिरी ने पेरियार को सजीव नेता और योद्धा निरूपित किया और कहा कि वे प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी और समाज सुधारक थे। प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने भी उन्हें सजीव व्यक्ति बताते हुए कहा कि विवादों में ही उन्हें आनंद आता था। इंदिरा गांधी ने आगे बताया कि अनेक विश्वासों को पेरीयार ने चुनौती दी। सर्वोदय नेता जय प्रकाश नारायण ने बताया कि पेरियार की मृत्यु से भारत के पर्दे से एक पितामह उठ गया। हिन्दू समाज के दलितों और पतितों में प्रतिष्ठा की भावना जगाने के लिए किया गया उनका प्रयास ही उनके जीवन और कार्यो का कीर्तिस्तंभ है। तत्कालीन तमिलनाडु के राज्यपाल ने उन्हें प्रबल समाज सुधारक कहा। मुख्यमंत्री करूणानिधि ने पेरियार को अग्रिम पंक्ति के सामाजिक क्रांतिकारियों में एक बताया। तमिलनाडु के मुख्यमंत्री और उस समय के अन्ना डी0 एम0 के0 नेता रामचंद्र ने कहा कि पेरियार की मृत्यु से तमिल समाज का संरक्षण उठ गया। पांडेचेरी के मुख्यमंत्री ने कहा कि पेरियार की मृत्यु से देश ने एक महान नेता खो दिया है। जिसने प्रगतिशील विचारों की शिक्षा दी और तमिलों को आत्मा सम्मान से जीना सिखाया।

पेरियार की गतिविधियां एवं उसका प्रभाव

काँग्रेस का परित्याग करने के बाद पेरियार एक पृथक पार्टी बनाने के विषय में सोच रहे थे जो कि पूरी तरह से समाज उत्थान के कार्यो में समर्पित हो। पेरियार थोड़ा खुश थे क्योंकि तमिलनाडु में अब्राह्मणों में समाज जागृति निरंतर विकसित हो रही थी। मीटिंग और सम्मेलन भी हो रहे थे। मगर उनके पास ऐसी कोई पार्टी या समिति नहीं थी जो कि उनकी मांगों को लगातार संघर्षरत रखे और लगातार रचनात्मक सामाजिक कार्य चलता रहे। पलगल राजा नेतृत्व में जस्टिस पार्टी अब्राह्मणों में जागृती लाने तथा उनका विकास करने के लिए बहुत हद तक अच्छा कार्य कर रही थी। मगर पनगल राजा की मृत्यु के बाद पेरियार तत्काल काई निर्णय लेने पर मजबूर हो गये कि कोई संस्था अवश्य बनायी जाये। यद्यपि पेरियार जस्टिस पार्टी को समर्थन दे रहे थे। वह चाहते थे कि वह ऐसी पार्टी हो जो सामाजिक समता के लिए, उनके विचारों और कार्यक्रमों एवं आंदोलन के लिए स्वतंत्र रूप से कार्य करे। और अंततः इसका परिणाम आत्म-सम्मान आंदोलन था।[8]

अतः पेरियार ने 'आत्म-सम्मान संघर्ष समिति' का गठन किया। लक्ष्य की सिद्धि के लिए पहले भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस, तदन्तर जस्टिस पार्टी और फिर उसके बाद आत्म-सम्मान संघर्ष समिति। यदि आलोचनात्मक ढ़ंग से देखें तो पेरियार कभी एक दल में नहीं रहते थे। वे दल बदलते रहते थे। मगर यदि हम उनके दल बदलने को देखे तो मालुम पड़ेगा कि जाति एवं वर्ण व्यवस्था के आर्य-ब्राह्मणी विष वृक्ष को उखाड़ फेकने के लिए वह बहुत व्यग्र और व्याकुल थे वह चाहते थे कि कैसे भी हो मगर अछूतों

और पिछड़ों के उत्थान का उनका लक्ष्य पूरा हो अर्थात् वह आर्य ब्राह्मणों की गुलामी से मुक्त हो। यही कारण था कि दो पार्टियों से विमनस्क होकर पेरियार को तीसरी पार्टी का गठन करना पड़ा।

17-18 फरवरी 1929 ई. को चेनगल पाटटू में आत्म-सम्मान संघर्ष समिति का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। पी0 टी0 राजन ने इस अधिवेशन का ध्वजारोहण करते हुए कहा कि 'इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य आर्य-ब्राह्मणों द्वारा उत्पन्न की गई सामाजिक बुराईयों का निराकरण है। हम देखते है कि समाज में एक वर्ग (आर्य-ब्राह्मण) अन्य सभी वर्गो अथवा जातियों से अपने को श्रेष्ठ मानता है। इस प्रकार की नीति से समाज में सामान्य व्यक्तियों के साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया जाता है। उसी जाति एवं वर्ग के आधार पर अछूतों एवं पिछड़ों का मंदिर प्रवेश से रोका जाता है। स्त्रियां तो ग्रहणी के बर्तनों के तुल्य समझी जाती है। यह आंदोलन इन अपमान जनक व्यवहारों से मुक्ति दिलाने के लिए कृतसंकल्प है। हम वर्षो से ऐसे स्वस्थ्य एवं लाभकारी आंदोलन की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब हम सभी (अछूत-पिछड़ों) ने आशाएं छोड़ दी थी तो पेरियार रामास्वामी का प्रादुर्भाव ऐसे ही हुआ जैसे घने अंधकार में दीप का। अछूतो-पिछड़ों ने अपनी दुर्बलताओं, स्वार्थ भावनाओं, प्रसाद, आत्मविश्वास और हीनता का अनुभव करना प्रारंभ कर दिया है और अब इसमें कठिन कार्यो को करने का विश्वास, आशा और निस्वार्थ आकांक्षाओं का प्रादुर्भाव हो रहा है। यह हमारे युवा वर्ग पर निर्भर करता है कि वह पेरियार रामास्वामी के नेतृत्व में लाभ उठाये तथा हर दशा में ऊपर उठे।'[9]

इस धारा में मद्रा के मुख्यमंत्री डॉ. सुब्बारायन ने अपने उद्घाटन भाषण में कह कि 'हम अपने देश को अन्य देशों की तुलना में तब तक विकसित नहीं कर सकते जब तक जातिगत भेदभाव बना रहेगा, बाल-विवाह होते रहेंगे, हम आर्य-ब्राह्मणों को अपने ऊपर शासन करने की छूट देते रहेगें, भले ही हमें राजनैतिक स्वतंत्रता क्यों न मिल जाये।'[10]

इस सम्मेलन में लगभग 6 हजार लोग उपस्थित थे। इनमें आधो अत्यंत साधारण लोग थे जो अपने नेताओं के सामाजिक समानता संबंधी व्याख्यान सुनने आये थे। इस सम्मेलन की विशेष बात यह थी कि इस सम्मेलन में स्त्रियां भी अच्छी संख्या में भाग ले रही थी। इस सम्मेलन की भोजन की व्यवस्था विरूद्धनगर के नायर जाति के लोग कर रहे थे। नायरद्धशूद्रद्ध जाति थी, इनके हाथ का पकाया भोजन अन्य जाति के लोग ग्रहण नहीं करते थे। इस सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये-

वर्णाश्रम व्यवस्था के नाम पर समाज पर लगे प्रतिबंध बिल्कुल समाप्त कर दिये जाये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा पंचमा के आधार पर समाज का विभाजन घोर आपत्तिजनक है। इससे समाज को मुक्त किया जाये तथा अस्पृश्यता मानव सभ्यता के विरूद्ध एक जघन्य अपराध है। अत: इससे समाज को मुक्ति मिलनी चाहिए। सड़कों पर चलने तथा कुओं, तालाबों, बावड़ी आदि का प्रयोग करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए।

लोगों को मंदिरों में पूजा करने के लिए कोई पैसा खर्च नहीं करना चाहिए तथा पूजा- उपासना में किसी भी दलाल को मान्यता नहीं मिलनी चाहिए। कहने का आशय यह है कि पुरोहिती प्रथा समाप्त होना चाहिए। पूजा प्रार्थना में आर्य-ब्राह्मणी भाषा संस्कृत अथवा उत्तर भारत की किसी भी भाषा के प्रयोग से मुक्ति मिलनी चाहिए। नये मंदिर, मठ, धार्मिक पाठशाला, वैदिक पाठशाला बनवाने से लोगों को हतोत्साहित अर्थात् इंकार करने के लिए तैयार करना चाहिए। लोगों को चाहिए कि वे अपने नामों के साथ जातिबोधक उपनाम लिखना बिल्कुल बंद कर दें। सार्वजनिक धन का उपयोग शिक्षा कार्यो तथा कामकाज के अवसरों के सर्जन में होना चाहिए। पेरियार के उदभवशील व्यक्तिगत की यह विशेषता थी कि वह जिस कार्य को हाथ लगा देते उसमें एक भावशाली गति उत्पन्न हो जाती थी। जस्टिस पार्टी के बाद उनका आत्म सम्मान आंदोलन भी तेजी से आगे बढ़ रहा था।

10 मई सन् 1930 ई. को ईरादु में इस समिति का दूसरा सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन के प्रस्ताव का सार यह था कि आर्य-ब्राह्मणों द्वारा उत्पन्न किये गये मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव समाप्त किये जाये। सभी जातियों के लोगों को समान-अधि कार मिलने चाहिए। आर्य-ब्राह्मणों अर्थात् मंदिर के पुजारियों को नि:शुल्क भूमि का दान नितांत अवांछनीय (गलत) है तथा इसे तुरंत समाप्त किया जाये। इस सम्मेलन के कुछ प्रस्तावों में मूर्ति पूजा का खण्डन किया गया और कहा गया कि हर नागरिक के पास अनके प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं है। अत: उसका समय मंदिरों में अनावश्यक रूप से नष्ट होता है। मंदिर आर्य-ब्राह्मणों द्वारा उनके लाभ के लिए उत्पन्न किये गये है। पाषाणी ईश्वर (पत्थर) मनुष्यों की समस्याओं का समाधान कभी नहीं कर सकते।

इस प्रकार पेरियार ने लोगों को यह समझाने का तार्किक प्रयास किया कि मंदिर और देवता आर्य-ब्राह्मणों ने व्यवसाय के रूप में उनके लाभ के लिए उत्पन्न किये है। इनेस जहां उनकी प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक एवं सामाजिक लाभ होता वहीं दूसरी ओर यह अछूतों-पिछड़ों को मानसिक गुलाम बनाये रखने का सबसे शसक्त माध्यम है। अछूतों- पिछड़ों की तमाम समस्याएं आर्यो-ब्राह्मणों की देन है। मगर ईश्वर की रचना करके वह मूलनिवासी बहुजनों को इस भ्रम में डालते है कि तुम्हारी समस्याएं तुम्हारे पूर्व के कार्यो का फल है या ईश्वर की इच्छा है। इससे यहां एक ओर वह अपनी अछूतों-पिछड़ों के प्रति की गई बदमाशियों और शडयंत्रों को छिपाने में कामयाब होते है। वहीं दूसरी ओर मंदिर-मठ रूपी व्यवसाय से वह हजारों करोड़ों रूपये का नगद मुनाफा कमाते है तथा हजारों-करोड़ों एकड़ भूमि पर बिना एक पैसा खर्च किये कब्जा रखने में कामयाब रहते है। जबकि अछूतों-पिछड़ों के पास ने रहने के लिए घर है और न ही पेट भरने के लिए दो वक्त की रोटी।

10 मई सन् 1930 ई. में ईराडु में हुए इस सम्मेलन में पेरियार ने कहा कि "भारतीय लोगों के आपसी फूट का क्या कोई दूसरा कारण है? क्या ब्राह्मणी धर्म अर्थात् तथाकथित हिन्दूधर्म इन लोगों में इतने अधिक मतभेद और विभाजन के लिए जिम्मेवार नहीं है? और विभाजन भी ऐसा जहां कुछ लोग ऊंचे तथा कुछ लोग नीचे है। जिनको वे घृणा और नफरत से नीच कहते है। आर्य-ब्राह्मणों के वेदों-शास्त्रों से भी यही साबित होता है। यदि हम जातिवाद और छुआ-छूत को खत्म करना चाहते है तो क्या ब्राह्मणी धर्म, वेद और शास्त्रों को खत्म किये बगैर यह संभव है? कल्पना करो कि क्या कोई अछूत-पिछड़ा आदमी दूसरे धर्म में धार्मान्तरण किये बगैर छुआ-छूत से मुक्ति पा सकता है? सोचों कि क्या आर्य-ब्राह्मणों क अलावा कोई दूसरा व्यक्ति सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में इतनी सुविधाएं और आजादी पा सकता है? इसके अलावा और कौन सा सबुत ब्राह्मणी धर्म अर्थात् हिन्दु धर्म को खत्म करने के लिए चाहिए। जैसे ही धर्म का नाम लिया जाता है, यहां पर केवल धार्मान्धाता ही पैदा होती है। कोई भी व्यक्ति यह नहीं सोचता कि धर्म ने मानवता के साथ क्या खिलवाड़ किया है। नशीली शरीब की बुराईयां कम प्रभावी है, शराब के तो केवल पीने से बुराई पैदा होती है, मगर धर्म से सभी बुराई पैदा होती है। जब हम उसके बारे में सोचते है।'

पेरियार ने आर्य-ब्राह्मणों के शड्यंत्रों का पर्दाफास करते हुए जिनसे कि उन्होंने अछूतों-पिछड़ों को गुलाम बनाकर रखा है, प्रश्न उठाया कि-"क्या आप लोगों ने कभी पशुओं में ब्राह्मण गधा, ब्राह्मण कुत्ता, ब्राह्मण बंदर अथवा ब्राह्मण भैसा सुना है? तो फिर केवल मनुष्यों ने (केवल भारत में, बाकि के लगभग 200 छोटे-बड़े अन्य देशों में नहीं) अपने कुछ लोगों को ब्राह्मण कहलाने की छूट क्यों दे रखी है? वस्तुत: धर्म के कारण ही ऐसा हुआ है। यदी धर्म का प्रयोग मुट्ठी भर आर्य-ब्राह्मणों के उन्नयन के लिए किया गया है तो फिर ऐसे धर्म को अछूत-पिछड़े क्यों माने? धर्म के नाम पर ब्राह्मणों की मार्फत हमें अपने मृत पूर्वजों की दालभात सब्जी दान करने के लिए कहा जाता है। जो लोग यह मानते है कि ब्राह्मणों को दिया गया दान हमारे मृत पूर्वजों को प्राप्त हो जायेगा, क्या उनके इस विश्वास में कोई सत्यता या तर्क है? कृपया आप लोग यह कदापि न सोचें कि मैं पूर्वजों के प्रति आदर सम्मान रखने के विचार का विरोधी हूं कि आप लोगों से केवल यह प्रश्न कर रहा हूं कि आप लोग ब्राह्मणों को कब तक यह दान, दक्षिणा भेंट करते रहेंगे? और कब तक यह मानते रहेंगे कि यह भेंटें आपके मृत पूर्वजों को मिल जायेगी? हमारे सभी उत्सवों में उदाहरणार्थ विवाह, गृह प्रवेश, दाह संस्कार में ब्राह्मण पुरोहित तथा आचार्य बनता है। क्या हमें अपनी बुद्धि से विचार नहीं करना चाहिए और मुर्खतापूर्ण कृत्यों से मुक्त नहीं होना चाहिए? मैं तो यहां तक कहता हूं कि ब्राह्मणी धर्म बहुसंख्यक मनुष्यों को पतन की ओर ले जाता है और अल्पसंख्यक (आर्य-ब्राह्मणों) लोगों द्वारा शोषण को प्रोत्याहित करता है, इसलिए हमें इस धर्म से मुक्त होना ही चाहिए।"

पेरियार ने बताया कि जानवरों में भेदभाव नहीं है लेकिन इंसानों में है क्यों? क्या इसका कारण ब्राह्मणी धर्म नहीं है? कितना पुराना है ब्राह्मणी अर्थात तथाकथित हिन्दू धर्म? इस धर्म ने समाज के साथ आज तक कौन सी अच्छाई की है? राम के जमाने में भी नीच कही जाने वाली जातियां थी और राम को भगवान का अवतार माना गया है। राजा हरिश्चन्द्र के समय में भी मशान घाट पर परिया (अछूत ही) हुआ करता था। अपनी पत्नि को बेचने की प्रथा मौजूद थी। आज भी समाज में यह बुराई पायी जाती है। हम कैसे कह सकते है कि धर्म ने इंसान के विकास करने मे सहायता की है।

अगस्त सन् 1931 ई. में विरूद्धनगर में आत्म सम्मान संघर्ष समिति का सम्मेलन हुआ। जिसके अध्यक्ष सर आर0 के0 पण्मुखम् चेट्ठी थे जो स्वतंत्र भारत में पहले वित्तमंत्री बने। इस सम्मेलन में छूआ-छूत के विरोध में तथा अंतर्जातीय विवाह के समर्थन एवं

प्रोत्साहन में प्रस्ताव पास हुए। आत्म-सम्मान संघर्ष समिती के प्रस्तावों का इतना दूरगामी प्रभाव पड़ा कि सम्मेलन के बीच ही कई अंतरजातीय विवाह तथा विधावा विवाह सम्पन्न हुए। बच्चों की शिक्षा पर भी सामान्य जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ। आदि द्रविड़ बच्चे जो स्कूल कभी नहीं जाते थे उनके लिए स्कूलों की व्यवस्था की गई। अब शूद्र जातियों के बच्चे नि:शुल्क शिक्षा पाने लगे। आत्म सम्मान संघर्ष समिति ने समूचे तमिलनाडु में अछुतों-पिछड़ों में विकासोन्मुखी उत्कर्ष का ध्वज लहरा दिया। इस आंदोलन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि इससे आर्य ब्राह्मणों के निर्मम तथा क्रूर व्यवहारों में कमी आयी। अछूतों तथा पिछड़ों ने यह भी अनुभव किया कि उनके बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।

सामाजिक सामानता के लिए राष्ट्रपिता ज्योतिराव फुले ने तदन्तर छत्रपति शाहू जी महाराज ने और उसके बाद डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने लगातार संघर्ष किया। डॉ. अम्बेडकर तथा पेरियार ई. वी0 रामास्वामी लगभग समयुगीन थें शोषित, पीड़ित जातियों के इन महापुरुषों ने अन्याय, असमानता एवं अमानवीय रूढ़ियों पर आधारित आर्य-ब्राह्मणी व्यवस्था को धवस्त करने का तथा अछुत-पिछड़ों के उत्थान एवं स्वतंत्रता के लिए अपनी अंतिम सांस तक संघर्ष किया।

निष्कर्ष

ई. वीं रामास्वामी नायकर को पेरियार नाम से भी जाना जाता है। पेरियार का वास्तविक अर्थ होता है- सम्मानित व्यक्ति। वस्तुत: पेरियार ने आजीवन समाज के दलितों-शोषितों के लिए संघर्ष किया। दक्षिण भारत में वंचित समुदायों में नवीन जागृति का सूत्रध र पेरियार ही थे। उन्होंने सामाजिक जागरण के रास्ते राजनीतिक चेतना का प्रवाह समाज के निम्न तबके तक किया। अपने कार्यो के कारण उन्हें दक्षिण भारत में पूज्य माना गया है। भारत के दलित आंदोलन में पेरियार की भूमिका नि:संदेह महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. बौद्ध, शांति स्वरूप; पेरियार : सचित्र जीवनी, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली 2006, पृ. सं. 1
2. वही, पृ. सं. 2
3. वही, पृ. सं. 5
4. वही, पृ. सं. 8
5. दि हिन्दू (अंग्रेजी दैनिक), दिनांक 26.12.1973 (संपादकीय)
6. इण्डियन एक्सप्रेस (अंग्रेजी दैनिक), दिनांक 25.12. 1973
7. वेंज, अर्नेस्ट; बुद्धिज्म एंड कम्युनिज्म, पृ. सं. 60
8. रंजन, प्रमोद; पेरियार के प्रतिनिधि विचार द मार्जिनालाइज्ड (वर्ध/दिल्ली), पृ. सं. 22
9. वही, पृ. सं. 31
10. वही, पृ. सं. 35

भारत में औपनिवेशिक शिक्षा के विमर्श बिन्दु, स्वरूप एवं नीतियाँ : एक अध्ययन

डॉ० संतोष कुमार

पी-एच० डी० (इतिहास विभाग), बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत में अंग्रेजी शिक्षा की शुरूआत, इस देश में ब्रिटेन की राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक आवश्यकताओं से प्रेरित थी। यह मात्र संयोग नहीं था कि भारत में आधुनिक शिक्षा का उद्घाटन लार्ड डलहौजी के समय हुआ था। चूँकि इस समय तक भारत के एक बड़े भू-भाग को ब्रिटेन अपने राज्य में मिला चुका था। अब विजित भू-भाग को प्रशासित करने के लिए ब्रिटिश सरकार को एक विशाल, व्यापक तंत्र की आवश्यकता थी। राजनीतिक नियंत्रण के इस विशाल तंत्र के संचालन हेतु बड़ी संख्या में शिक्षित लोगों की आवश्यकता थी। जिसकी पूर्ति ब्रिटेन से शिक्षित लोगों को लाकर नहीं की जा सकती थी। अत: भारत के लोगों को शिक्षित करना आवश्यक था। इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु यहीं स्कूल-कॉलेजों की स्थापना करना ब्रिटिश सरकार की विवशता थी।

इन शिक्षण संस्थानों में सरकारी क्लर्क, नई कानूनी प्रणाली के ढाँचे और प्रक्रिया के जानकार वकील, आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान में प्रशिक्षित डॉक्टर, तकनीशियन, अध्यापक आदि तैयार करने थे। इसके पीछे उद्देश्य यह भी था कि भारत का अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा सांस्कृतिक रूप से अंग्रेजीकरण किया जाए ताकि भारत का राजनीतिक एकीकरण बाधा रहित संभव हो पाए। मैकाले इस मत का प्रबल समर्थक था। ट्रेवेल्यान ने 1838 में अपनी पुस्तक में लिखा था कि "अंग्रेजी शासक एवं शासित के बीच उपयोगी रिश्ता कायम करेगी, जिससे ब्रिटिश राज को स्थिरता व स्थायित्व की प्राप्ति होगी। शिक्षा के कारण जो प्रबोधन होगा, वह भारत के लोगों का अंग्रेजी राज से मेल करवा देगा, जिससे एक जुड़ाव की भावना पैदा होगी। अत: 'अंग्रेजी' शिक्षा ब्रिटिश सरकार की राजनीतिक आवश्यकता है।" इस प्रकार यह स्पष्ट हैं कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार इस विश्वास से प्रेरित था कि अंग्रेजी शिक्षा ब्रिटिश संस्कृति का प्रचार करेगी, जिससे पूरी दुनिया सभ्य एवं एकताबद्ध हो पायेगी। इसी अवधारणा को मूर्त्त रूप देने के लिए 1854 के 'वुड्स डिस्पैच' में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का एक व्यवस्थित ढाँचा प्रस्तुत किया गया था।

इसके पूर्व से भारत में शिक्षा के माध्यम व विषय पर लम्बी बहस चली थी। जिसका पटाक्षेप मैकाले नोट से हुआ था। 1813 के चार्टर एक्ट में शिक्षा के लिए किए जाने वाले सरकारी प्रयासों की चर्चा की गयी थी। जिसके आधार पर विभिन्न प्रांतों में विभिन्न प्रकार के प्रयास किए गए। शिक्षा के विकास का आरंभिक प्रयास 'अनुवादों के काल' के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। इससे पूर्व 1812 तक ब्रिटिश शासकों ने 'शिक्षा' के मामले में उदासीनता व अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया था।

इससे पूर्व समाज के विभिन्न वर्ग को समकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के अनुकूल व पक्ष में बनाने के लिए 'हिन्दू कॉलेज' व मदरसे इत्यादि के स्थापना की गयी थी। तत्पश्चात् यह बहस आरंभ हुआ कि भारत में प्राच्य शिक्षा को जारी रखा जाए, अथवा अंग्रेजी माध्यम से पश्चिमी शिक्षा का आरंभ किया जाए। इस विषय पर मत भिन्नता के कारण 1823-53 ई. के बीच बंगाल, बंबई, मद्रास, उत्तर पश्चिमी प्रांतों तथा पंजाब आदि प्रेसिडेंसीयों में शिक्षा के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के प्रयोग किए गए। अंग्रेजी माध्यम से पश्चिमी ज्ञान को शिक्षा का अंग बनाए जाने की मांग को भारतीयों का समर्थन प्राप्त था। समर्थन देने वालों में 'राजा राम मोहन राय' प्रमुख थे।

इस बीच इंग्लैंड में जेम्स मिल की उपयोगितावादी विचारों के प्रभाव स्वरूप पश्चिमी व अंग्रेजी शिक्षा की धारणा को बल मिला। मैकाले का शिक्षा प्रारूप ब्रिटिश शिक्षा नीति के विकास की दृष्टि से केन्द्रीय बिन्दु ही बन गयी। कम्पनी सरकार की शिक्षा नीति में जन-शिक्षा एवं गाँव के देशी स्कूलों की उपेक्षा की गयीं। अपनी नीति को तार्किक रूप देने हेतु उन्होंने 'अद्योमुखी निस्यंदन सिद्धांत' दिया। यह सिद्धांत व्यवहारिक रूप से अधिक सफल नहीं हो पाया। अत: 1854 में शिक्षा के मैकालेवादी पाठ्यक्रम की समीक्षा के लिए वुड्स समिति बनी। जिसने शिक्षा के संदर्भ में चले आ रहे। विवादों के समाधान का प्रयास किया। इसने अद्योमुखी निस्यंदन सिद्धान्त को अस्वीकार करके, जनसाधारण के शिक्षा का दायित्व सरकार को स्वीकार करने को कहा; तथा शिक्षा की श्रेणीबद्ध प्रणाली तैयार कर, इस प्रयास में निजी क्षेत्र को सहकारी बनाने की सिफारिश की।

एक व्यापारिक कंपनी से बंगाल में शासक की भूमिका में आने के पश्चात्, ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के अन्य भागों में अपनी राजनीतिक शक्ति को मजबूत करना आरंभ किया। लेकिन 1812 तक इसने शिक्षा के मामले में उदासीनता की नीति का पालन किया 1772 में बंगाल का गवर्नर बनने के पश्चात् वारेन हेस्टिंग्स ने संपन्न मुस्लिम वर्ग को राज्य के लाभकारी पद के योग्य बनाने के उद्देश्य से इस दिशा में सर्वप्रथम कदम उठाया। 1781 मे उसने कलकत्ता मे मदरसा की स्थापना की। इसका प्रभाव लाभकारी सिद्ध हुआ कि 'कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स' ने इसे स्थायी रूप से अपने नियंत्रण में ले लियाा। इस दिशा में अन्य कदम बनारस के रेंजीडेंट 'जोनाथन डंकन' ने उठाया। उसने 1791 ई. में बनारस संस्कृत कॉलेज (बनारस) की स्थापना की। इस कॉलेज की स्थापना हिन्दू कानून एवं दर्शन के अध्ययन के लिए लॉर्ड कार्नवालिस की अनुमति से की गयी थी। इन दोनों संस्थानों की स्थापना के पीछे उद्देश्य यह था कि भारतीय इस योग्य बने कि वे कंपनी के न्यायालयों में कानून के प्रवक्ता तथा प्रशासन में सहयोगी सिद्ध हो सके।

प्राचीन भारतीय कला, विज्ञान, साहित्य, विधि आदि के अध्ययन के लिए हेस्टिंग्स ने तीन विद्वानों को प्रोत्साहित किया। ये थे– सर चार्ल्स विलकिंस, सर विलियम जोन्स, एच. टी. कोलेब्रुक। 1784 ई. में विलियम जोन्स ने 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की स्थापना की। 1794 ई. में उन्होंने धर्मशास्त्र का अनुवाद किया। 1797-98 ई. कोलेब्रुक ने चार खंडों में 'ए डायजेस्ट ऑफ हिन्दू लॉ ऑन कॉंटेक्ट्स एंड सेक्सेशंस' की रचना की। विलकिंस ने 'भगवत्गीता' का अंग्रेजी अनुवाद किया। 1800 ई. में लॉर्ड वेलेजली ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश नागरिकों को प्रशासक के तौर पर प्रशिक्षित करना था। इसके पाठ्यक्रम में (प्राच्य विद्या) का अध्ययन भी शामिल था। उनको पढ़ाने के लिए प्राच्य विद्या के विशेषज्ञ व पंडितों की नियुक्ति की जाती थी।

ग्रांट, मैकाले इस मत के समर्थक थे कि भारत में पश्चिमी ज्ञान अंग्रेजी के माध्यम से फैलाया जाए। इसे राजा राममोहन राय जैसे भारतीयों का समर्थन प्राप्त था। वही कुछ लोग प्राच्य विद्या के समर्थक थे, जो भारत में पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ संस्कृत व अरबी साहित्य को प्रोत्साहन देने की वकालत करते थे। इस मत वाले भी शिक्षा के माध्यम को लेकर दो गुटों में बंटे थे। एक गुट में बंगाल में कम्पनी के पुराने अधिकारी थे, जो मानते थे कि भारत में पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा संस्कृत व अरबी माध्यम से दी जानी चाहिए। वारेन हेस्टिंग्स व मिंटों इस मत के समर्थक थे। जबकि मुनरो, एलफिंस्टन तथा बंबई के प्रभावशाली लोगों के नेतृत्व में दूसरा गुट यह मानता था कि पश्चिमी शिक्षा आम लोगों तक तभी पहुँच सकती हैं, जब यह देशी या आधुनिक भाषाओं में दी जाए।

विभिन्न मतों एवं विचारों के चलते 1823-53 ई. के बीच विभिन्न प्रेसीडेंसियों में विभिन्न प्रकार के प्रयोग हुए। बंगाल में प्राच्य शिक्षा को बड़े स्तर पर प्रोत्साहन मिला। संस्कृत एवं अरबी भाषा में पुस्तकों का प्रकाशन करवाया गया तथा अंग्रेजी पुस्तकों का शास्त्रीय भाषाओं में अनुवाद भी करवाया गया, इसके साथ-साथ भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों का भी अंग्रेजी अनुवाद करवाया गया। बंबई में सरकार ने संस्कृत, अंग्रेजी व आधुनिक भारतीय भाषाओं तीनों के साथ-साथ अध्ययन को प्रोत्साहित किया। बंबई के गवर्नर एलफिंस्टन ने 13 दिसम्बर 1823 ई. के अपने नोट में कहा था कि "हमारा उद्देश्य देशी स्कूलों की संख्या बढ़ाना हैं।" मद्रास के गवर्नर मुनरो ने अपने नोट दिनांक 25 जून 1822 ई. में कहा था कि उसका इरादा "देशी स्कूलों में किसी तरह के हस्तक्षेप की सिफारिश करने की नहीं हैं।" लेकिन बाद में उसने 1826 ई. में प्रत्येक कलेक्टरेट में दो प्रधान स्कूल स्थापित करने का प्रस्ताव रखा था– एक हिन्दुओं के लिए और दूसरा मुसलमानों के लिए। लेकिन इस प्रस्ताव पर अमल नहीं किया जा सका और अंग्रेजी

शिक्षा अधिक स्वीकार्य हो गयी। उत्तर पश्चिमी प्रांत में देशी स्कूलों को आगे बढ़ाकर जन शिक्षा व्यवस्था बनाई गयी। पंजाब में अमृतसर के स्कूल में हिन्दी, फारसी, अरबी, संस्कृत और गुरूमुखी विभाग थे।

आरम्भ में बंगाल, बंबई और मद्रास के प्रांतों में शास्त्रीय भाषाओं या आधुनिक भारतीय भाषाओं को बढ़ावा मिला, परन्तु बाद में यह मांग तेज हो गयी कि पश्चिमी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जानी चाहिए। 5 अगस्त 1832 को अपने नोट में बंबई के गवर्नर एलफिंस्टन ने अंग्रेजी के अध्ययन को बढ़ावा देने के पक्ष में तर्क दिया कि "यह ईसाई धर्म के विकास एवं भारत को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करने का प्रभावशाली उपकरण हैं।" उसने यह लिखा था कि "मेरा विचार हैं कि अंग्रेजी के अध्ययन को हर तरह से बढ़ावा देना चाहिए, जो मूल निवासियों को समझाने और हमारे निकट लाने में सहयोगी होगी।"

अंग्रेजी माध्यम से पश्चिमी ज्ञान की शिक्षा की माँग को समर्थन देने वाले प्रबल प्रवक्ता राजा राम मोहन राय थे। उन्होंने यह घोषणा की थी कि शिक्षा की संस्कृत प्रणाली इस देश को अंधोरे में रखने के लिए सबसे अच्छी होगी। 1823 में उन्होंने गवर्नर जनरल को एक स्मृत्ति पत्र प्रस्तुत कर, सरकार से यह आग्रह किया था कि वह शिक्षा को अधिक उदार व प्रबुद्ध बनाए। जिसमें गणित, दर्शन, रसायन विज्ञान, शरीर संरचना व अन्य उपयोगी विज्ञान पाठ्यक्रम का हिस्सा हो।

इस दौरान इंग्लैंड में भी राजनीतिक परिवर्तन हुआ। यहाँ 'जेम्स मिल' के विचारों के प्रभाव में 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' ने पश्चिमी शिक्षा की पैरवी की। 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' की विज्ञप्ति (18 फरवरी 1824 ई.) पश्चिमी शिक्षा के पक्ष में थी। 1829 ई. तक यह यह घोषणा कर दी गयी थी कि ब्रिटिश सरकार की नीति अंग्रेजी को धीरे-धीरे और अंतत: पूरे देश की सार्वजनिक गतिविधि याँ चलाने की भाषा बनाने की हैं।

भारत में भाषा और शिक्षा का पहला औपचारिक प्रारूप चार्ल्स ग्रांट ने 1792 ई. में तैयार किया था। इस शोध प्रबंध का शीर्षक था "आबजरवेशंस ऑन दि स्टेट ऑफ सोसायटी अमंग दि एशियन सब्जेक्ट्स ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, पार्टीकुलरली विथ रेसपेक्ट टू मोरल्स : एंड मींस ऑफ इंप्रूविंग इट।" इसमें अंग्रेजी भाषा, शिक्षा व ईसायत के प्रचार का पक्ष रखा गया था। इसमें शासक एवं शासित के बीच संवाद के लिए, सरकारी भाषा के रूप में 'अंग्रेजी' को अपनाने का समर्थन किया गया था। इससे पूर्व ईसाई मिशनरियां इस कार्य में लगी थी, अपने इस कार्य में सरकार का सहयोग चाहती थी। 1813 ई. के चार्टर एक्ट के द्वारा मिशनरी की माँग को स्वीकार किया गया। इस एक्ट में उन्हें उनकी इच्छानुसार धर्मोंतरण कराने व शैक्षणिक गतिविधियाँ चलाने की अनुमति मिल गयी। 1813 ई. के चार्टर एक्ट की धारा 43 में प्रावधान था कि जो लोग उपयोगी ज्ञान तथा धार्मिक एवं नैतिक सुधार लाने के उद्देश्य से भारत जाना अथवा रहना चाहते हो, वे 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' से अनुमति ले सकते हैं। यहाँ से अस्वीकृति मिलने पर वे इस विषय को 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के पास ले जा सकते हैं।

भारतीय प्रजा के प्रति ईस्ट इंडिया कंपनी की शिक्षा नीति के संदर्भ में 1813 ई. का चार्टर एक्ट आरंभिक बिन्दु था। इसके अन्तर्गत कम्पनी ने पहली बार शिक्षा के क्षेत्र में अपनी जिम्मेवारी स्वीकार की थी। इस अधिनियम के द्वारा भारत के गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया था कि "किसी भी अधिशेष में से एक राशि जो 1 लाख रूपये से कम ना हो, अलग रखी जाए और इसका इस्तेमाल भारत में नवजागरण व साहित्य के विकास व शिक्षित मूल निवासियों को बढ़ावा देने तथा ब्रिटिश भारत के निवासियों के बीच विज्ञान के ज्ञान को आगे बढ़ाने के लिए किया जाए।" इसके पश्चात् कम्पनी के डायरेक्टर्स ने निर्देश दिया कि इस पैसे का प्रयोग शास्त्रीय भाषाओं में लिखित पुस्तकों के साथ-साथ कानून, नीतिशास्त्र, चिकित्सा आदि की पुस्तकों के प्रकाशन पर किया जाए। परन्तु संसदीय अनुमोदन के बावजूद शैक्षणिक गतिविधियाँ ठप्प रही और पैसे का इस्तेमाल 1823 ई. तक नहीं हुआ।

1823 ई. में एक सार्वजनिक शिक्षा महासमिति की नियुक्ति की गयी। इस समिति ने कलकत्ता मदरसे व बनारस संस्कृत कॉलेज का पुर्नगठन किया। 1823 ई. में लार्ड एम्हर्स्ट ने कलकत्ता संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। दो प्राच्य विद्यालय आगरा एवं दिल्ली में भी खोले गए। समिति ने संस्कृत व अरबी ग्रंथों को तथा पूर्व की शास्त्रीय भाषाओं में उपयोगी जानकारी वाली अंग्रेजी पुस्तकों का भी अनुवाद करवाया।

1829 ई. में विलियम बेंटिक भारत आया, इसने भारत आने से पूर्व ही यह मान लिया था कि साम्राज्य के सशक्तिकरण की कुँजी ब्रिटिश भाषा ही हैं। 1834 ई. में थॉमिस वार्बिगटन मैकाले के भारत आने से उसकी स्थिति मजबूत हुई। भारत पर सांस्कृतिक

विजय की प्राप्ति हेतु अब वे पराधीन जनता को मनोवैज्ञानिक तरीके से रूपांतरिक करने में लग गए। मैकाले की भारतीय लोगों के प्रति यह स्पष्ट धारणा थी कि "भारतीय शक्तिशाली द्वारा रौंदे जाने के इतने आदि हैं कि वे 'मानववाद' को कमजोरी मानते हैं।"

मैकाले साम्राज्यवाद के वाणिज्यिक स्वार्थों के अनुकूल यह मानता था कि "सभ्य लोगों के साथ व्यापार करना, असभ्य लोगों पर राज करने से अधिक लाभदायक हैं। वह मानता था कि अगर एक ब्रिटिश भारत जो असभ्य हो और एक स्वतंत्र भारत जो अंग्रेजीकृत हो, तो वह बाद वाले को चुनेगा।" इस समय यह माना जा रहा था कि भारत स्थायी रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का पराधीन अंग बना रहेगा। अपने संस्मरण में मैकाले ने लिखा था कि "भारत की अपनी स्वतंत्र सरकार नहीं हो सकती हैं, लेकिन सर्वश्रेष्ठ विकल्प के तौर पर उसके पास मजबूत' निज़पक्ष, निरंकुशतावादी शासन हो सकता हैं। भारत इंग्लैंड के अधीन राष्ट्र के रूप में हमारे शत्रु से लड़ेगा और सहयोगियों के साथ अमन से रहेगा। अंग्रेजी सेना व नौसेना इसकी रक्षा करेगा। अंग्रेजी राज को बनाए रखने में अंग्रेजी शिक्षा की प्रभावशीलता और शक्ति के बारे में मैकाले के विचार बहुत स्पष्ट थे। उसने सार्वजनिक शिक्षा महासमिति के अध्यक्ष के तौर पर भारतीय की जगह पश्चिमी संस्कृति के विकास की वकालत की थी। शिक्षा के लक्ष्य के रूप में उसने भारतीयों का एक ऐसा वर्ग पैदा करना तय किया था, जो रक्त और रंग से तो भारतीय होंगे पर पसंद और विचार नैतिक मूल्यों व बुद्धि से अंग्रेज। इसने उच्च शिक्षा के उचित माध्यम के तौर पर अंग्रेजी शिक्षा की सिफारिश की; प्राच्य भाषाओं व साहित्यों की उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लगाए और यह माना कि उस पर खर्च करना बेकार हैं। उसने संस्कृत की घोर आलोचना की और अंग्रेजी की प्रशंसा की। उसने कहा था कि "संस्कृत ने ऐसी नस्ल पैदा की हैं जो यह मानता था कि उनकी विद्वता उन पर भार हैं।" क्योंकि शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् उसे या तो दूसरे पर निर्भर होना होगा या भूखे मरना होगा। अत: संस्कृत को दिए जाने वाले सारे प्रोत्साहन वापस ले लिए गए। बेंटिक ने मैकाले के शिक्षा प्रारूप को स्वीकार किया तथा एडम के प्राच्य शिक्षा को जीवित करने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजी व प्राच्य ज्ञान के बीच के विवाद का निपटारा 7 मार्च 1835 ई. को अंगेजी समर्थकों के पक्ष मे हुआ, जब विलियम बेंटिक ने मैकाले के प्रस्ताव को स्वीकार करने का निर्देश जारी किया।

इस निर्देशानुसार अब शिक्षा अंग्रेजी माध्यम में यूरोपीय विज्ञान एवं साहित्य की दी जाएगी। प्राचीन ग्रंथ के प्रकाशन पर कोई धन खर्च नहीं किया जाएगा। इस प्रकार 1835 ई. में अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बन गयी। 24 जनवरी, 1839 को अपने नोट के जरिए भारत के तात्कालीन गवर्नर लॉर्ड ऑकलैंड ने प्राच्य व अंग्रेजी दोनों के लिए धन आवंटित कर, प्राच्य व अंग्रेजी के बीच के विवाद को समाप्त कर दिया। 1844 ई. में हार्डिंग ने यह घोषणा की कि सरकारी नौकरी में आधुनिक पश्चिमी ज्ञान में शिक्षित अभ्यर्थियों को ही लिया जाएगा। इस तरह अंग्रेजी का ज्ञान नौकरी तलाशने वालों की प्रमुख शर्त्त बन गयी। अंग्रेजी शिक्षित वर्ग ऐसे वर्ग के रूप में उभरा जिसको देशवासियों से सहानुभूति नहीं थी। अत: शिक्षा का व्यापक प्रसार संभव नहीं हो सका। शिक्षा उच्च वर्ग तक ही सीमित रही।

अत: 1854 ई. में भाषा और शिक्षा के मैकालेवादी व्यवस्था की समीक्षा के लिए 'वुड समिति' बनायी गयी। इसकी सिफारिशों को 'भारतीय शिक्षा का महाधिकार पत्र' भी कहा जाता था। इसमें पिछली शिक्षा की नीतियों की समीक्षा की गयी और भावी नीति की रूपरेखा दी गयी। इसमें उस समय तक शिक्षा पर चल रहे तमाम विवादों के समाधान को स्पष्ट रूप से रखा गया। इसकी विज्ञप्ति के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ईस्ट-इंडिया कंपनी को भरोसेमंद व योग्य जनसेवक मुहैया कराना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विज्ञप्ति में भारत के मूल निवासियों को पश्चिमी ज्ञान से प्रवाहित होने वाले वरदानों को देने का निर्णय किया गया, जिससे लोगों का बौद्धिक व नैतिक विकास हो सके। पश्चिमी शिक्षा से यह आशा की गयी थी कि 'उससे इंग्लैंड के लिए उन चीजों की बड़ी और अधिक सुनिश्चित आपूर्ति हो सकेगी, जो उसके विनिर्माण के लिए जरूरी हैं। इसके साथ-साथ इससे ब्रिटिश श्रम के उत्पादों के लिए लगभग कभी खत्म न होने वाली माँग भी मिलेगी।' विज्ञप्ति में यह विचार प्रकट किया गया कि पूर्वी शिक्षा, विज्ञान, दर्शन,गंभीर त्रुटियों से भरी पड़ी हैं और पूर्व का साहित्य आधुनिक खोजों व सुधारों के मामले में बेहद अपूर्ण हैं। चर्चा का समापन इस घोषणा के साथ किया गया कि "हमें दृढ़तापूर्वक यह घोषणा करनी चाहिए कि भारत में हम उस तरह की शिक्षा का प्रचार चाहते हैं, जिसका उद्देश्य यूरोपीय ज्ञान को फैलाना हैं।'

शिक्षा के माध्यम के संदर्भ में इस विज्ञप्ति में यह निर्णय लिया गया था कि उच्च शाखाओं अर्थात् कॉलेज स्तर पर शिक्षा अंग्रेजी में दी जानी चाहिए। माध्यमिक शिक्षा अंग्रेजी व आधुनिक भारतीय भाषाओं दोनों में दी जानी चाहिए। विज्ञप्ति का लक्ष्य यह नहीं

था कि अंग्रेजी भाषा देशी का स्थान ले। बल्कि यह सोचा गया था कि जहाँ जरूरी हो, वहाँ अंग्रेजी पढ़ाई जाए। यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिए अंग्रेजी व भारतीय दोनों भाषाओं को महत्वपूर्ण माना गया था। किन्तु यह विज्ञप्ति भी उस बुनियादी तनाव को दूर करने मे सफल नहीं रही जो अंग्रेजी व भारतीय भाषाओं के समर्थकों के बीच चल रहा था। हालांकि क्लासकीय भाषाओं की परम्परागत भूमिका को स्वीकार किया गया था। परन्तु शिक्षा की उच्च शाखाओं में अंग्रेजी को अधिक महत्व दिए जाने से देशी भाषाओं की स्थिति दोयम दर्जे की अवश्य हो गयी थी।

इस विज्ञप्ति में एक महत्वपूर्ण कार्य यह किया गया था कि शिक्षा के 'अधोमुखी निस्यंदन सिद्धांत' को खारिज करके, सरकार को जनसाधारण व महिलाओं की शिक्षा का सीधा उत्तरदायित्व लेने हेतु आगे आने को कहा गया था। इसमें श्रेणीबद्ध शिक्षा प्रणाली के सिद्धांत तय किए गए, जिसमें सबसे नीचे देशी और प्राथमिक स्कूल थे और शीर्ष पर विश्वविद्यालय आते थे। शिक्षा प्रणाली को सुनियोजित किया गया था। सम्पूर्ण देश में देशी प्राथमिक स्कूल, माध्यमिक स्कूल, हाई स्कूल, कॉलेज व विश्वविद्यालय खोले जाने थे।

शिक्षा के क्षेत्र में निजी उपक्रमों को बढ़ावा देने के लिए विज्ञप्ति में सहायता अनुदान प्रणाली की सिफारिश की गयी थी। यह सोचा गया था कि सरकार के पास धन के अभाव में शिक्षण- संस्थानों का संचालन निजी हाथों में देना आवश्यक हैं। इस कार्य में मिशनरी या भारतीय किसी को भी साझेदार बनाया जा सकता था। लेकिन सहायता अनुदान प्राप्त करने की आवश्यक शर्त यह थी कि इन संस्थानों में अध्यापक योग्यता प्राप्त हो और वे शिक्षण के समुचित स्तर को बनाए रख सके।

शिक्षा प्रणाली की व्यवस्थित देख रेख के लिए सिफारिश की गयी थी कि सूबे में 'सार्वजनिक शिक्षा विभाग' बनाए जाए। विभाग के कामकाज की जिम्मेवारी इसके निदेशक पर होगी। इसे हर साल अपने प्रांत में शिक्षा की प्रगति पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी।

इस विज्ञप्ति में विश्वविद्यालयी शिक्षा पर भी मूल्यवान सुझाव दिए गए थे। इसने सिफारिश की थी कि कलकत्ता, मद्रास, बंबई के तीन प्रेसीडेंसी नगरों में तीन विश्वविद्यालय लंदन के नमूने पर स्थापित किए जाए। विश्वविद्यालयी व्यवस्था के ढाँचे के लिए एक सीनेट, एक कुलपति और एक उपकुलपति का प्रावधान किया गया था। इन सबकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जानी थी। विश्वविद्यालय को परीक्षाएँ करानी और उपाधियाँ प्रदान करनी थी। शिक्षा की विभिन्न शाखाओं के लिए विश्वविद्यालय प्रोफेसरशिप स्थापित कर सकते थे। 1857-59 ई. के बीच कलकत्ता, बंबई, मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इसके साथ-साथ इंग्लैंड के नमूने पर तकनीकी स्कूल व कॉलेज स्थापित करने पर भी जोर दिया गया था।

वुड डिस्पैच के आदर्श व पद्धति का शिक्षा के क्षेत्र पर पाँच दशक तक प्रभाव रहा। भारत की शिक्षा प्रणाली का तेजी से पश्चिमीकरण हुआ। अधिकतर शिक्षण संस्थानों का संचालन शिक्षा विभाग के अधीन यूरोपीय हेडमास्टर, प्रिंसपिल द्वारा किया जाता था। भारतीयों के द्वारा इस दिशा में किए गए। निजी प्रयास धीरे-धीरे सामने आए। इसके पश्चात् सरकारी, निजी दोनों स्तर पर भारतीयों के द्वारा भी शैक्षणिक केन्द्रों की स्थापना हेतु विभिन्न प्रयास किए गए जो इस प्रकार थे–

- 1835– में स्कूल, कॉलेज, मेडिकल कॉलेज की स्थापना।
- 1836– हुगली कॉलेज की स्थापना (मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा हेतु)
- 1837– सार्वजनिक शिक्षा समिति के अधीन 48 संस्थान कार्यरत।
- 1842– सार्वजनिक शिक्षा समिति का 'शिक्षा परिषद' के रूप में परिवर्तन।

बंबई/मद्रास

- 1835– बाम्बे एलफिंस्टन संस्थान की स्थापना।
- 1840– बॉम्बे बोर्ड ऑफ एजुकेशन का गठन।
- 1845– ग्रांट मेडिकल कॉलेज की स्थापना।
- 1837– मद्रास अंग्रेजी स्कूल की स्थापना।
- 1847– इंजीनियरिंग कॉलेज (रूड़की)।

भारतीय प्रयास

- 1816– इंग्लिश स्कूल (कलकत्ता)
- 1817– हिन्दू स्कूल
- 1864– गाजीपुर में इंग्लिश स्कूल
- 1869– विज्ञान समाज
- 1877– अलीगढ़– एंग्लों ओरिंटल स्कूल

1835 तक केवल 14 स्कूल एवं कॉलेज थे। किन्तु बेटिंक द्वारा मैकाले के शिक्षा प्रारूप की स्वीकृति के पश्चात इसमें तेजी आयी थी। 1881-82 तक इनकी संख्या इस प्रकार थी–

कॉलेज	छात्र संख्या
माध्यमिक स्कूल	2,14,077
माध्यमिक स्कूल	3,916
कला एवं व्यवसायिक कॉलेज	720
विभिन्न प्रकार के स्कूल/कॉलेजों की कुल संख्या	5,403

इनमें से सरकारी सहायता प्राप्त मात्र 11 संस्थान थे।

भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास ब्रिटिश साम्राज्यवादी आवश्यकताओं से प्रेरित था। ब्रिटेन की भारत में बदलती आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा का माध्यम एवं पाठ्यक्रम परिवर्तित हुआ। 1835 ई. के वुड डिस्पैच ने भारत में आधुनिक शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। किन्तु इस प्रक्रिया में तेजी हंटर आयोग की सिफारिशों के बाद ही आ सकी।

संदर्भ ग्रंथ

1. देसाई, ए. आर.– सोशल बैक ग्राऊंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, (पापुलर प्रकाशन), मुम्बई 1976, पृ. 269, 290, 197,141
2. बासु, अपर्णा– दि ग्रॉथ ऑफ एजुकेशन एंड पोलिटिक्ल डेवलपमेंट इन इंडिया (1929-1920) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1974, पृ. 197, 297-99, 270, 177.
3. कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमिटी 1920 की रिपोर्ट, पृ. 17
4. इंडियन यूनिवर्सिटी कमिटी 1902 की रिपोर्ट, पृ. 24
5. फ्रीडम मूवमेंट– ताराचंद, खंड . प्प्ए पृ. 511
6. बासु, अर्पणा– एस्सेज इन दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन एजुकेशन, (कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी) ई दिल्ली 1982, पृ. 28, 7, 17, 91-93.

औपनिवेशिक मनोवृतियों के विरूद्ध भारतीय वैज्ञानिक समुदाय का संघर्ष, तकनीक व सफलताएं : एक अध्ययन

डॉ० वेदवती

पी-एच0 डी0, इतिहास विभाग, बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

ब्रिटिश कालीन भारत में विज्ञान को पाश्चात्य प्रविधियों के प्रसार के रूप में दिखाया गया। भारतीय विज्ञान व वैज्ञानिको का उल्लेख तर्कहीन व असंगत प्रगति विरोधी के रूप में किया गया। औपनिवेशिक सत्ता की वैधता स्थापना के लिए भारतीयों को अवैज्ञानिक, अंधविश्वासी व परिवर्तन विरोधी घोषित कर दिया गया था। इससे औपनिवेशिक मनोवृति का भारतीय वैज्ञानिक समुदाय के द्वारा विरोध किया गया। 1890-1914 ई. के बीच भारतीय वैज्ञानिक समुदाय का प्रखरतापूर्ण उदय हुआ। इस समुदाय ने आधुनिक विज्ञान को प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक परंपरा से जोड़ने, आम जन में वैज्ञानिक मनोवृति का विकास करने, नवीन खोज करने के साथ-साथ वैज्ञानिक विकास एवं राष्ट्रीय आंदोलन को एक-दूसरे से अंर्तसंबंधित करने का कार्य किया।

प्रस्तुत शोधपत्र में इस विषय को समझने का प्रयास किया गया हैं कि औपनिवेशिक सत्ता से संघर्षरत वैज्ञानिक समुदाय का प्रमुख नेतृत्व कर्ता कौन था, इनके प्रमुख उपकरण क्या थे, इनकी विचारधारा क्या थी तथा राष्ट्रीय आंदोलन से इन्होंने किस प्रकार विज्ञान को जोड़ा। इस शोधपत्र में इस तथ्य का भी विश्लेषण किया गया हैं कि वैज्ञानिको ने 'विज्ञान' को शुष्क किताबी ज्ञान की पहचान से निकाल कर आमजन के लिए रोचक व प्रिय बनाने का कार्य किया। जिससे विज्ञान व जनकल्याण भी एक दूसरे से जुड़े। इस प्रयास से राष्ट्रीय आंदोलन को भी प्रेरणा व दिशा मिली। वैज्ञानिक समुदाय के प्रखर प्रणेता के रूप में महेन्द्र लाल सरकार, जे0 सी0 बोस, फ्रुल्लचंद्र राय का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है।

KEYWORDS

1. वैज्ञानिक समुदाय
2. संत वैज्ञानिक
3. औपनिवेशिक विज्ञान
4. साकारात्मक विज्ञान
5. वैज्ञानिक मनोवृति

प्रस्तावना

ब्रिटिश कालीन भारत में विज्ञान को मूलत: पाश्चात्य व्यवहार, प्रविधियों के प्रसार के रूप में चित्रित किया जाता है। अगर देशी विज्ञान व वैज्ञानिकों का उल्लेख भी किया गया तो इस रूप में कि वे तर्कहीन, असंगत होने के साथ-साथ युक्ति-युक्त विज्ञान के

प्रगति के विरोधी है। अपने शासन की वैधता स्थापित करने के लिए, ब्रिटिश शासकों के द्वारा, भारतीयों को अवैज्ञानिक, अंधविश्वासी एवं परिवर्तन विरोधी घोषित कर दिया गया था। अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए, खगोलशास्त्र, चिकित्साशास्त्र में हुए नवीन खोजों को सामने रखा तथा भारतीय खगोलशास्त्र व चिकित्सा विज्ञान की उपेक्षा की। इस औपनिवेशिक प्रवृति के विरूद्ध भारतीयों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की, जिसे एक प्रकार का 'सांस्कृतिक मुढ़भेड़' माना जाता है। 1890-1914 ई. के बीच भारतीय वैज्ञानिक समुदाय का प्रखरता के साथ उदय हुआ। जिन्होंने नवीन वैज्ञानिक ज्ञान को स्वीकार्य बनाने, भारत के पुनरूत्थान हेतू नवीन खोज करने तथा औपनिवेशिक प्रवृतियों से मुक्ति का प्रयास किया।

इस प्रक्रिया में वे ब्रिटिश शासकों की मौलिक योजना से परिचित हुए। तत्पश्चात् विज्ञान के स्वतंत्र विकास तथा वैज्ञानिक विकास से स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ने का कार्य आरंभ किया। इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को मजबुत बनाने के लिए आम जनता में वैज्ञानिक चेतना के प्रसार का कार्य भी किया। उनके प्रयासो से जनता के मनोबल में वृद्धि हुयी। भारत में वैज्ञानिक मनोवृति का विकास करने वालो में जे0 सी0 बोस, पी0 सी0 राय, राजेन्द्र लाल मित्र, प्रमथनाथ बोस, आशुतोष मुखर्जी प्रमुख थे। एक प्रखर वैज्ञानिक समुदाय का निर्माण करने में महेन्द्र लाल सरकार की भूमिका अभुतपूर्ण रही है। इनके प्रयास व प्रेरणा से भारतीय वैज्ञानिक समुदाय ने एक साथ आकर भारतीय विज्ञान के इतिहास को पाश्चात्य परंपरा के सापेक्ष रखने तथा उसके वृहत्तर व विशिष्ठ चरित्र को सामने लाने में अभूतपूर्ण भूमिका निभायी।

प्रथम पीढ़ी के भारतीय वैज्ञानिको ने 'विज्ञान' को अपनी बौद्धिक विरासत के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने इस बात का दावा किया कि उनकी बौद्धिक-वैज्ञानिक परंपरा औपनिवेशिक पूर्वाग्रह से परे हैं। यह आधुनिक विज्ञान के समरूप भी है। परंपरा के प्रति खिंचवा तथा आधुनिक प्रगति के जड़ को प्राचीन में ढुढ़ना इस काल की प्रमुख विशेषता थी। इस पीढ़ी के वैज्ञानिको ने अपनी शर्तो पर पहचान बनाते हुए स्वतंत्र अस्तित्व बनाने का प्रयास किया। इनमे अक्षय कुमार दत्त का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। जिन्होंने 'आधुनिक विज्ञान' का भारतीयकरण किया, तथा विज्ञान के प्रचार व प्रसार के लिए संवाद-प्रभाकर, तत्वबोधित, विविधर्त संग्रह आदि का प्रकाशन भी किया।

भारतीय वैज्ञानिको के प्रयास से विज्ञान समाजिक विकास एवं राष्ट्रीयता के उदय का प्रमुख कारक बना। इस प्रकार विज्ञान का स्वरूप औपनिवेशिक उपकरण से परिवर्तित होकर जनकल्याण के साधन का हो पाया।

प्रमुख वैज्ञानिक व उनका उपकरण तथा योगदान

महेन्द्र लाल सरकार: इन्होंने भारतीय वैज्ञानिको का एक समुदाय निमार्ण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। 1868 ई. में कलकत्ता में जर्नरल ऑफ मेठिसिन के माध्यम से इन्होंने इस बात का प्रचार किया कि विज्ञान पश्चिम की सर्वश्रेष्ठता स्थापित करने का अंतिम स्त्रोत है। साथ ही साथ भारत के लिए प्रगति एवं स्वाभिमान स्थापना का साधन भी है। अत: 'विज्ञान' के विकास में भारतीयों की अधिक से अधिक भागीदारी आवश्यक है। 1869 ई. इन्होंने विज्ञान के संवर्द्धन पर लेख भी लिखा। जिसमे इन्होंने भारतीयों से आग्रह किया कि वे स्वयं में विद्यमान निष्क्रियता व उदासीनता त्याग दे एवं अपनी प्रगति के लिए सरकार पर निर्भर ना हो।

इसके साथ-साथ ही वे एक ऐसी संस्था की स्थापना भी करना चाहते थे, जो सार्वजनिक व्याख्यान और प्रदर्शन के द्वारा जनसाधारण को प्रशिक्षित कर सके, जो पूर्णतया देशी प्रबंधन व नियंत्रण में हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 1876 ई. में 'इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन साइंस' की स्थापना की। 1875 ई. में भारतीय विज्ञान सभा की नींव भी रखी, जिसका कार्य-विज्ञान पर चर्चा करना, विज्ञान शिक्षा को बढ़ावा देना व विज्ञान के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्ति का प्रयास करना था।

अपने इन प्रयासो से इन्होंने कलकत्ता को राष्ट्रीय विज्ञान का केन्द्र बना दिया। ये जे0 सी0 बोस, पी0 सी0 राय, सी0 वी रमन के प्रेरणा स्त्रोत थे। इनके प्रयास व प्रेरणा ने स्वदेशी आंदोलन की पृष्ठ भूमि तैयार की थी।

बालशास्त्री जाम्भेकर: इन्होंने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने हेतू अंग्रेजी के साथ-साथ मराठी भाषा को भी साधन बनाया। ये गणित व खगोलशास्त्र के प्रोफेसर बनने वाले प्रथम भारतीय थे। उन्होंने एलफिन्सटन कॉलेज बंबई में पढ़ाया था। इनके शिष्यों में 'दादा

भाई नौरोजी' प्रमुख थे, जिन्हें भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का जनक माना जाता है। उनकी उच्च वैज्ञानिक मनोवृति का कारक जाम्मेकर को माना जा सकता है।

1836 ई. में इन्होंने गणितीय भूगोल पर लिखी अंग्रेजी कृति का मराठी अनुवाद किया। तथा 'ऐसे ऑन द सिस्टम ऑफ भास्कराचार्य' नामक निबंध भी लिखा। 1842 ई. मराठी में दो पुस्तक 'द थ्योरी ऑफ इकवेशन्स और द डिफरैन्शियल एण्ड इन्ट्रीगल कैल्कुलस' का प्रकाशन भी किया। इन रचनाओं के माध्यम से उन्होंने भारत की प्राचीन कालीन गणितीय ज्ञान को लोगों के सामने रखा।

मास्टर रामचंद: मास्टर रामचंद्र ने दिल्ली में बीजगणित की भारतीय भावना को पुर्नजीवित करने की कोशिश की ताकि राष्ट्रीयता की भावना का विकास हो सके। इन्होंने भास्कराचार्य के बाद गणित के क्षेत्र में हुयी प्रगति को अपने शोध प्रबंध 'प्राबलम्स ऑफ मैकसीमा एंड मिनिमा' में 1850 ई. में प्रकाशित किया।

राजेन्द्र लाल मिश्र: राजेन्द्र लाल मिश्र ने यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दावली को देशी भाषा में प्रस्तुत करने का कार्य किया।

जे0 सी0 बोस: ये एक भौतिक शास्त्री थे। यह अंतर्विषयी शोध करने वाले प्रथम आधुनिक वैज्ञानिक थे। इन्होंने रॉयल इंस्टीट्यूट, लंदन में अपने प्रयोग का प्रदर्शन करके भारतीय विज्ञान की प्रतिष्ठा स्थापित की थी। ये एक ऐसे वैज्ञानिक थे, जिन्होंने इस बात का प्रचार किया कि भारत में धर्म एवं विज्ञान के बीच कोई अंर्तद्वन्द नहीं है। भारतीय संस्कृति में विज्ञान का अभूतपूर्व मिश्रण है। उन्होंने जनसमूह व वैज्ञानिक समुदाय को भारत के गौरवशाली अतीत की जानकारी अपनी बंग्ला कृतियो के माध्यम से दी। इन्होंने वैज्ञानिक समुदाय के साथ होने वाले नस्लभेद का विरोध किया। इन्होंने तीन साल तक कम वेतन को स्वीकार नहीं किया। इन्होंने भारतीयों में आत्मसम्मान जगाने के उद्देश्य से अपने यंत्रो के नाम संस्कृत में रखे।

भले ही देश व विदेश में इनकी आलोचना हुयी, लेकिन इनके प्रयासो ने भारतीय विज्ञान को आधुनिक विज्ञान से जोड़ने व उसके समकक्ष लाने का कार्य किया। इनकी गणना उन लोगों में होती है, जिन्होंने 'साइबरनेटिक' विज्ञान का पूर्वानुमान किया था। इन्हें आचार्य/संत वैज्ञानिक के रूप में भी देखा जाता है। क्योंकि इन्होंने अपने जैव-भौतिकी तथा पौधा पर किये गए अनुसंधानों के द्वारा, तथा परिक्षणों और अनुभवों पर आधारित परिणामों को, विविधता में एकता के वैदिक सिद्धांत में समायोजित करने का अध्यात्मिक प्रयास किया था। इन्होंने भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण को पश्चिम की विश्लेषणात्मक विज्ञान पद्धति में मिलाकर प्रकाशित किया।

वे विज्ञान के प्रचारक थे। इन्होंने सामान्य पाठकों के बीच वैज्ञानिक विचारों को यथासंभव सरल एवं स्पष्ट ढ़ंग से प्रसारित भी किया। मातृभाषा बंग्ला में 1890 ई. से ही ये लेख लिख रहे थे। 1921 ई. में अपने बंग्ला लेखो को (अव्यक्त) शीर्षक से प्रकाशित किया। वैज्ञानिक शोध को वे दार्शनिक व कलात्मक दृष्टिकोण से लोगों के समक्ष प्रस्तुत करते थे-

"मैने विधुत तरंगो के ध्रुवण के लिए एक तरीका दृढ़ निकाला। यद्यपि अदृश्य प्रकाश महिलाओं के केश गुच्छो में बेतरहीब तौर पर प्रवेश करता है, लेकिन केश में फँस कर बाहर नहीं निकल पाता है। मैने ब्यूटी पार्लर में विभिन्न केश गुच्छो को इकट्ठा किया। उनमे फ्रांसीस महिला के गुच्छ प्रभावी, जर्मन के घटिया सिद्ध हुए, जब इस तथ्य को उद्घाटित किया तो फ्रेंच अपनी श्रेष्ठता सिद्ध होने से प्रसन्न हुए। इससे प्रयोग को बर्लिन में नहीं दिखाया।"

उन्होंने इस प्रकार की सरल एवं हास्य जनक उदाहरण पाठकों को केवल गैर तकनीकी भाषा में समझाने के लिए नहीं, बल्कि सामान्य पाठकों में विज्ञान के प्रति सच्ची रूचि पैदा करने के लिए भी दिया।

विज्ञान के प्रचार के लिए इस प्रकार की सरलता को उन्होंने इस प्रकार से समझाया- भारतीयों के बीच चाय का प्रचार करने के लिए क्या किया गया? सस्ते दामों पर चाय बेचने के लिए सारे देश में व्यवस्था की गयी, ताकि अधिक से अधिक व्यक्ति को चाय का स्वाद मिले व इसके आदि हो जाए, इसके प्रचार के लिए अच्छी चाय ऊँची दामों में नहीं बेचा।

अत: विज्ञान का प्रचार इस प्रकार किया जाए कि लोंग इसमें दिलचस्पी ले। क्योंकि वैज्ञानिक बुद्धि केवल कठिन परीक्षाओं में उर्त्तीण होने व शुष्क किताबी ज्ञान से नहीं आती।

बोस एक ऐसे संस्थान की सथापना करना चाहते थे, जहाँ पश्चिमी विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक प्रणाली व पूर्व की कल्पना के लाभकारी संयोग से ज्ञान की विधाओ का महान संश्लेषण हो सके।

यह स्वप्न 30 नवम्बर 1917 ई. को बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट के रूप में साकार हुआ। इस अवसर के लिए टैगोर ने उद्घाटन गीत लिखा, नंद लाल बोस ने चित्र बनाया। भाषण कक्ष में अजंता की चित्रकारी थी। यह संस्थान 10 शोध छात्र, 8 शोध सहायक, 8 ट्रस्टी, 9 बोर्ड प्रबंधक, 2 विजिटर एवं 8 अवैतनिक सदस्य से प्रारंभ किया गया था। मुख्य ट्रस्टी रवीन्द्र नाथ टैगोर थें। संस्था के अवैतनिक सदस्यो में एस0 पी0 सिंह, अबला बोस व पी0 सी0 राय शामिल थे।

इस संस्थान के लिए जनता से दान मिला था। बंबई की जनता से पर्याप्त दान गाँधी जी के आह्वान से प्राप्त हुआ था। जे0 सी0 बोस ने उद्घाटन भाषण में इस संस्थान का उद्देश्य ज्ञान का उत्थान व विस्तार बताया था। अत: यहाँ किए सारे अविज़्कार जन संपप्ति बन जाएंगे। किसी भी अविज़्कार का पेटेंट नहीं करवाया जाएगा। मैं नालंदा व तक्षशिला जैसे प्राचीन ज्ञान केन्द्रो का अनुसरण का प्रयास कर रहा हूँ। यहाँ के अनुसंधान का प्रकाशन (ट्रांजक्शनल ऑफ दि बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट) में किया जाता था।

फ्रुल्ल चंद्र राय: एक रसायनशास्त्री थे। इन्होंने 'हिस्ट्री ऑफ हिंदू मिस्ट्री' नामक ग्रंथ दो खंडो में प्रकाशित किया। इसके माध्यम से प्राचीन हिंदूओ की वैज्ञानिक पहचान को पुन: प्रतिष्ठित किया। इसने प्राचीन भारतीय ज्ञान को आधुनिक जगत में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारतीय वैज्ञानिक परंपरा को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति दिलाने का प्रयास किये।

इन्होंने स्वदेशी आंदोलन के औपचारिक शुरूआत के पूर्व ही 'बंगाल केमिकल एंड फार्मास्युटिकल वकर्स' की स्थापना कर राष्ट्रवादी सिद्धांत को व्यवहारिक रूप दिया था। जिसमें प्रथम विश्वयुद्ध के समय सफल व्यवसायिक उद्यम बना। इस कार्य का उद्देश्य भारत की वैज्ञानिक व औद्योगिक क्षमता का प्रदर्शन करना था।

इन्होंने विज्ञान को देश भक्ति पूर्ण कार्य बताकर भारतीय विज्ञान को राष्ट्रवादी भावना से जोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़कर साथ-साथ काम करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार औपनिवेशिक विज्ञान को चुनौती दी। वे एक ऐसा शैक्षणिक नेटवर्क तैयार करना चाहते थे, जो राजकीय सेवा की तरह ही प्रभावकारी हो परंतु स्वतंत्र व आत्मनिर्भर हो।

इन्होंने यूनिवर्सिटी कॉलेज में रसायनशास्त्र की निजी शाखाएँ खोली। मेधावी छात्र को विज्ञान शिक्षा हेतू प्रोत्साहित भी किया।

इन्होंने रसायन शास्त्र को क्रांतिकारी विज्ञान का रूप दिया। जो शुध विज्ञान था। जिसमें प्राय: भारतीयों को अयोग्य माना जाता था। उन्होंने यह भी बताया था कि इसकी प्रेरणा उन्हें प्राचीन धातु विज्ञान से ही मिली थी। इन्होंने दुर्लभ भारतीय खनिज खोजकर मेडलिफ आवर्त सारणी में जोड़ने का कार्य किया एवं 1895 ई. मर्क्यूरस नाइट्रेट की खोज की।

पी0 सी0 राय के विचारों का समर्थन ब्रजेन्द्र नाथ सील ने किया। उन्होंने द पॉजेटिव साइंसेज ऑफ व एनसीऐंट हिंदुज सिविलाइजेशन में हिंदूओ की वैज्ञानिक विधियों का वर्णन किया। भास्कराचार्य के सिद्धांत को न्यूटन के सिद्धांत का पूर्वानुमान बताया तथा कणाद के अणु-परमाणु के सिद्धांत को डाल्टन के परमाणु सिद्धांत की पृष्ठभूमि के रूप में स्थापित किया।

ये बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट में अवैतनिक कर्मचारी थे। साथ-साथ आशुतोष मुखर्जी के कल्कत्ता की यूनिवर्सिटी कॉलेज में भी विज्ञान शिक्षण का कार्य किया करते थे।

निष्कर्ष

भारतीय वैज्ञानिक के प्रयास से भारत को उपनिवेशवाद के द्वारा लादी गयी पहचान से बाहर निकलने का आत्मबल प्राप्त हुआ, तथा विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति का संभावित अवसर भी दिखने लगा। इसके पश्चात् भारत के 'अध्यात्मिक-चिंतन का वैज्ञानिक विश्लेषण' विमर्श का बिंदू बना। इस कार्य में कई साहित्यकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिसमें वकिंमचंद्र चटर्जी का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। जिन्होंने डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धांत को त्रिदेव की अवधारणा के साथ जोड़कर प्रस्मुत किया था।

सांस्कृतिक मुठभेड़ के प्रयास में अनुवाद कार्य भी हुआ तथा वैज्ञानिक सभाओं का निर्माण भी किया गया। इस प्रयास से वैज्ञानिक धारणाओं को मातृभाषा में प्रस्तुत कर लोकप्रिय बनाना संभव हो सका। इन्होंने विज्ञान को विदेशी आयात मानने से इंकार किया। विज्ञान को धर्म से जोड़कर इस प्रकार प्रस्तुत किया कि 'विज्ञान' आमजन के लिए सहज ही स्वीकार्य हो गया। औपनिवेशिक सांस्कृतिक हमले के विरूद्ध इस प्रकार तीव्र प्रतिक्रिया करने वालो में बालशास्त्री जाम्भेकर, मास्टर रामचंद्र, अक्षय कुमार दत्त आदि प्रमुख व्यक्ति थे।

एक प्रखर वैज्ञानिक समुदाय का साकार रूप अखिल भारतीय विज्ञान सभा के रूप में आया। जिसके प्रेरणा स्त्रोत 'महेन्द्र लाल सरकार' थे। यह संगठन भारतीय मानस के द्वार स्वयं के पैरो पर खड़ा होने के दृढ़निश्चय का प्रतीक था। इसने स्वदेशी आंदोलन को भी प्रेरित किया, तथा देश के औधोगीकरण एवं भौतिक विकास का माध्यम भी बना। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के तीसरे अधि वेशन से ही तकनीकी व वैज्ञानिक शिक्षा का मुद्दा उठना अखिल भारतीय विज्ञान सभा के प्रयासों का ही परिणाम था।

वैज्ञानिकों ने यह विशेष रूप से प्रयास किया कि आधुनिक विज्ञान व प्राचीन भारतीय विज्ञान परस्पर विरोधी नहीं समझे जाए। भारतीय में 'आत्मसम्मान' जाग्रत करने व पुनरूत्थानवादी आंदोलन को जगदीश चंद्रबोस व फ्रुल्ल चंद्र राय के कार्यो से प्रेरणा मिली। जगदीश चंद्र बोस ने इस बात को खूब प्रचारित किया कि भारत में धर्म व विज्ञान के बीच कोई अंर्तद्वन्द नहीं हैं। भारतीय संस्कृति में विज्ञान का अभूतपूर्व मिश्रण हैं। इन्होंने सामान्य पाठकों के बीच वैज्ञानिक विचारों को यथा संभव सरल भाषा में प्रचारित किया। ये वैज्ञानिक शोध को भी कलात्मक दृष्टि से लोगों के समक्ष रखते थे। वहीं फ्रुल्ल चंद्र राय ने विज्ञान के विकास को देशभक्तिपूर्ण कार्य बताकर भारतीय विज्ञान व राष्ट्रवाद को जोड़ने का कार्य किया था। जो राष्ट्रवाद व विज्ञान को अंर्तसंबंधित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य था।

भारतीय वैज्ञानिकों के सामुहिक प्रयास से 'विज्ञान' का औपनिवेशिक स्वरूप समाप्त हुआ, भारत में वैज्ञानिक मनोवृति का निर्माण हुआ, आधुनिक वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से भी भारत को कई उपलब्धियाँ प्राप्त हुयी। महेन्द्र लाल सरकार, जे0 सी0 बोस व पी0 सी0 रॉय भारतीय वैज्ञानिक समुदाय के आधार स्तंभ रहे।

संदर्भ

1. पैट्रिक गिडिस, एन इंडियन पायनिर ऑफ साइंस : द लाइफ एंड वर्क ऑफ सर जगदीश सी0 बोस, लंदन 1880, पृ. सं. 469
2. गिडिस, पायनिअर, जोगेशचन्द्र बागल, प्रमथनाथ बोस, नई दिल्ली 1955; फ्रुल्ल चंद्र रास, एसेज ऐड डिस्कोर्सेज, मद्रास 1918; फ्रुल्ल चंद्र राय, लाइफ एंड एक्सपीरिअंसेज ऑफ ए बंगाल केमिस्ट, 1 (कलकत्ता,1932), शरत चंद्र घोष, लाइफ ऑफ महेंद्रलाल सरकार, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1935; एल0 एफ0 रशब्रुक-विलियम्स (सं.), ग्रेट मेन ऑफ इंडिया, लंदन 1919।
3. इंडियन साइंटिसट्स : बायोग्रॉफिकल स्केचेज, मद्रास 1929, पृ. सं. 34
4. महेंद्रलाल सरकार, ऑन द डिजाइअरेबिलिटि ऑफ कल्टिवेशन ऑफ द साइंसेज बाइ द नैटिव्ज ऑफ इंडिया, कलकत्ता जॅर्नल ऑफ मेडिसिन, 2 (1969), पृ. सं. 286-291
5. जे0 सेन गुप्ता, पी0 सी0 राय, नई दिल्ली, 1972, पृ. सं. 79
6. गिडिस, पायनिअर, पृ. सं. 33
7. विश्वप्रिया मुखर्जी, सम हिस्टॉरिक अस्पेक्ट्स ऑफ जगदीशचंद्र बोसेस माइक्रोवेव रिसर्च ड्यूरिंग 1895-1900 आई. जे0 एच0 एस0, 14 (1979), पृ. सं. 87-104
8. गिडिस, पासनिअर, पृ. सं. 62
9. सर जगदीशचंद्र बोस, हिज लाइफ एंड स्पीचेज, मद्रास 1920, पृ. सं. 90
10. जे0 सी0 घोष, सर जगदीशचंद्र बोस, देखे रशब्रुक विलियम्स (सं.), ग्रेटमेन, पृ. सं. 588-589
11. घोष, बोस, पृ. सं. 589; तुलना करें डैविड नाइट, रोमांटिसिज्म एंड द साइंसेज, देखे एंड्रू कनिंघम एंड निकोलस जार्डिन (सं.), रोमांटिसिज्म एंड द साइंसेज, कैम्बिज 1990, पृ. सं. 13-24
12. डेविड अनरोल्ड, पृ. सं. 196-206, 208-212

श्री अरविन्द का विकास सिद्धान्त

डॉ० वीरेन्द्र कुमार सिंह

(सहायक प्रध्यापक), दर्शनशास्त्र विभाग, जामताड़ा महाविद्यालय, जामताड़ा

विकास सिद्धान्त महर्षि अरविन्द के दर्शन का एक अतिमहत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का आधार भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही दर्शन में देखने को मिलता है। भारतीय दर्शन में जहाँ इस सिद्धान्त का स्त्रोत सांख्य वेदान्त उपनिषद वेद एवं गीता है, वहीं पाश्चात्य दर्शन में डार्विन का विकासवाद प्रतीत होता है। डार्विन विकास के केवल आरोहण की व्याख्या करते हैं, जबकि अरविन्द मानते हैं विकास का अर्थ होता है- निम्नतर का उच्चतर में विकसित होना जो उच्चतर का निम्नतर में अवतरण से ही संभव हो सकता है। अरविन्द का मानना है कि विकास अवतरण को मानकर अग्रसर होता है और सत्ता के आठ स्तरों के क्रम में ये दोनों प्रक्रियाएँ चलती हैं। अरविन्द सृष्टि रचना का प्रारंभ अतिमानव के अवतरण से मानते हैं जो उतरते क्रम में जड़ बनता है जिसे अवरोहण की संज्ञा दी है। फिर अवरोहण के पश्चात यह प्रक्रिया आरोहण की ओर अग्रसर होती है और तब तक चलती है जब तक अतिमानस की स्थिति न आ जाये। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है आरोहण के पूर्व परम चेतना का अवरोहण जरूरी है। क्योंकि जड़ में प्राणिक एवं मानसिक चेतना तभी आ सकती है जब ये चेतनाएँ पूर्व में इनमें मौजूद हो। जैसे बीज से पौधा तभी निकलता है जब पौधा तत्व चेतना बीज में पहले से विधामान हो। वेदान्त दर्शन में भी इस संदर्भ में कहा गया है कि प्राण जड़ तत्व में और मन प्राण में है। इसका मुख्य कारण है कि सारात्मना जड़ तत्व आवृत प्राण का रूप है और आवृत्त चेतना का रूप है। सांख्य और वेदान्त इस बात को स्वीकार करता है कि तिलहन में तेल विद्यमान होता है। तभी इससे तेल की प्राप्ति होती है। अगर इसे रेत या बालू से निकालने का प्रयास किया जायेगा तो यह नहीं निकाला जा सकता है। इस बात को अरविन्द भी स्वीकार करते हैं और प्राण में मन पहले से ही अन्तर्लिन रहता है इस बिन्दू पर अरविन्द का दर्शन उन्मेषवादी हो जाता है, क्योंकि भारत की वैचारिक परम्परा ऋग्वेद से आरम्भ होकर उपनिषद, गीता, सूत्र साहित्य एवं अनेक भाष्यों में उन्मेंषवादी विचार का ही सर्मथन करती है। यह बात समीचीन प्रतीत होती है कि मनस का विकास अतिमानस में हो सकता है इसका कारण है कि जड़ का विकास जीवन में हुआ और जीवन का विकास मानव में हुआ है। अगर विकास का प्राचीनतम संकेत देखा जाय तो ऋग्वेद में मिलता है जहाँ यह क्रमहीन रूप में देखा जा सकता है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णित है, "पुरुष के सहस्त्र शीर्ष हैं, सहस्त्र नेत्र हैं, सहस्त्र पाद हैं,पृथ्वी को उन्होने सभी दिशाओं से घेर रखा है और उससे दस अंगुली आगे भी अपने को फैला दिया है।" उक्त विचार को देखने से यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी के साथ उस परम पुरुष का तादात्मय नहीं हो सकता है, क्योंकि दोनो क्रम बद्ध नहीं है। अतरू यह क्रमहीन विकास का संकेत मात्र है। इस संबंध में डॉ. मेत्र ने ठीक ही कहा है कि यह हमारे देश में उन्मेंषात्मक विकासवाद की आधारशिला है। चूँकि पुरुष इस विश्व में अपने को पूर्णतया निरूशेषित नहीं करते इसलिए विश्व का विकास उनकी उच्च से उच्चतर चेतना के क्रमिक उन्मेंष से ही संभव हो सकता है। यह उन्मेंष वास्तव में दिव्य चेतना का ही अवतरण है।

उपर्युक्त के आधार पर सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शन की प्रमुख आधारशिला के रूप में उन्मेंषवादी मत को स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में भी इस बात को स्वीकार किया गया है कि विकास या आरोहण, अवरोहण के द्वारा ही संभव है। इतना ही नहीं गीता में भी विकास के इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। गीता में परमतत्व के रूप में पुरुष या ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया है। यह पुरुष अपनी प्रकृति या स्वरूप से विश्व की सृष्टि करता है। इस परमतत्व का दो स्वरूप है- पहला पराप्रकृत्ति और दूसरा अपराप्रकृति। यह जगत अपराप्रकृति की रचना है। गीता में कहा गया है- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और

आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार इन सब से ईश्वर की आठ प्रकार से विभक्त प्रकृति बनी हुई है जो अपराप्रकृति है। इससे भिन्न दूसरी पराप्रकृति जीव रूप 'धारण करती है। जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है। गीता के इस विचार से यह स्पष्ट होता है कि जीवात्माएँ परमतत्व का वास्तविक स्वरूप है लेकिन जहाँ तक जड़ जगत या अपराप्रकृति का सवाल है यह परमतत्व से पूर्णतया विछन्न नहीं है। श्री अरविन्द भी इस मत से पूर्णतया सहमत हैं और बताते हैं कि जड़प्राण में भी ब्रह्म है। अतरू उनका अपमान तिरस्कार निषेध है। गीता भी इस बात को बताती है जो सर्वभूतों में ईश्वर को देखता है और सर्वभूतों को ईश्वर में देखता है उसके लिए ईश्वर नष्ट नहीं और नहीं देखने वाला ईश्वर के लिए नष्ट होता है। गीता में स्पष्ट बताया गया है कि योगमाया से ही जगत की सृष्टि हुई है। अवरोहण के क्रम में विकास की प्रक्रिया परमसत्ता की अपराप्रकृति से निरूसृत बुद्धि से प्रारंभ हाती है। बुद्धि से अहंकार, अहंकार से मनस फिर, मनस से दस विशिष्ठ इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है। लेकिन आरोहण का क्रम इससे विपरीत है इन्द्रियों से बुद्धि तक के आरोहण के बाद कौन सा स्तर आता है इस संबंध में बतलाया गया है वह उच्चतर चेतना बुद्धि से भिन्न है एवं वह सत्ता का स्वरूप इन्द्रिय, बुद्धि से परे है। इनमें से किसी एक में या इन सब में उस स्वरूप का ज्ञान होना असंभव है। गीता के अनुसार वह ज्ञान मानव के लिए एक नवीन उन्मेंष के रूप में प्राप्त हो सकता है जो गीता के अनुसार जगत के विकास का अंतिम परिणाम है। महर्षि अरविन्द के अनुसार भी दिव्यलोक के उन्मेंष के साथ ही यह मनुष्य जीवन दिव्य जीवन में रूपांतरित हो जायेगा। इस स्थान पर अरविन्द के विकास वाद पर गीता का प्रभाव स्पस्टतरू दीख पड़ता है।

श्री अरविन्द के विकास सिद्धान्त में सात क्रम बतलाया गया है जो उपनिषद से प्रभावित दीख पड़ता है। उपनिषद में कहा गया है अज्ञान और ज्ञान दोनों का ही आधार सात चरण है। अरविन्द के भी विकास क्रम में सात चरण हैं वो इस प्रकार हैं– सत, चित, आनन्द, अतिमन, मन, प्राण और भैतिक तत्व। उपनिषद में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष की बात कही गई है। हिन्दू धर्म में वर्णित दशावतार की बात एक विकास क्रम की ओर संकेत देता है। अरविन्द के अनुसार संपूर्ण सृष्टि पूर्णता की ओर विकसित हो रही है। विकास आगे की ओर बढ़ती जा रही है और पूर्णता पीछे की ओर हटती जा रही है। यही कारण है पूर्णता की प्राप्ति के लिए आत्मा बार ख़ बार जन्म ग्रहण करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विकास प्रक्रिया सृष्टि के क्रमिक विकास की प्रक्रिया है जिसका प्रारंभिक बिन्दु 'पूर्णज्ञान शून्यता' तथा उसकी परिणति 'पूर्णज्ञान' है। विकास प्रक्रिया की गति इन दोनों के मध्य होती है। अरविन्द के अनुसार विकास की यह प्रक्रिया अब तक जड़तत्व, प्राणतत्व, मन से होती हुई मानस के स्तर तक आई है। अब मानस का अतिमानस के स्तर पर उठना बाकि है। यह विकास अभी रूप नहीं ले पाया है। और यही उत्थान विकास प्रक्रिया का अन्तिम चरण होगा जहाँ पहुँचते ही निरपेक्ष सत् की चेतना स्पष्ट हो जायेगी।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

- ऋग्वेद, पुरुष सूक्त (10/90)
- श्रीमद्भगवत गीता (7/4,5–6/30)
- दिव्य जीवन (श्री अरविन्द) . भाग. I, अनुवाद–केशवदेव आचार्य (पृ. 30,387)
- श्री अरविन्द एण्ड हेगल. डॉ. एस. क. मेत्र (पृ. 56)
- श्री अरविन्द दर्शन. डॉ. ए. सी. भट्ठाचार्य, (पृ. 73)
- दि फिलॉसफी ऑफ अरविन्द– डॉ. एस. के. मेत्र (पृ. 66, 67)

श्रीमद्भागवत गीता में ज्ञान मार्ग

डॉ० अजय कुमार सिंह

पीएच.डी.-नेट, देवघर

श्रीमद्भागवत गीता भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है। यह धर्म ग्रंथ महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत के भीष्म पर्व का एक अंश है। महाभारत का अंश होने के बावजूद भी इसकी लोकप्रियता इतनी अधिक है कि इसे एक स्वतंत्रा ग्रंथ के रूप में महत्व मिला है। गीता में यद्यपि मुक्ति की प्राप्ति के लिए भक्ति मार्ग, कर्म मार्ग, सन्यास मार्ग आदि का विवेचन हुआ है। तथापि गीता में ज्ञान मार्ग का जैसा विवेचन प्राप्त होता है वैसा कहीं और देखने को नहीं मिलता है और यही कारण है कि कुछ विद्वान गीता का लक्ष्य निवृत्ति मार्ग के द्वारा ज्ञान योग का प्रतिपादन मानते हैं। उपनिषदों में भी बताया गया है कि ज्ञान मोक्ष का साधन है और यही बात गीता में भी स्पष्ट रूप से बताई गई है।गीता में श्रीकृष्ण ने आत्मा की अमरता तथा ब्रह्म एवं आत्मा के पूर्णता में शुद्ध ज्ञान को ज्ञान योग का मूल आधार कहा है। सच्चिदानंद ब्रह्म शुद्ध ज्ञान स्वरूप है ब्रह्म ही आत्मा है आत्मा ही ब्रह्म है इसका दर्शन ही ज्ञान योग का स्वरूप है।

गीता में श्री कृष्ण अर्जुन को ज्ञान योग की दीक्षा देते हुए कहते हैं कि है अर्जुन इस अबिनाशी ऑफ प्रमेय एवं नृत्य शरीर या आत्मा के संपूर्ण संसार में जितने भी शरीर हैं, वे सभी नाशवान है। पुनः श्री कृष्ण शरीर की क्षमता का अलौकिक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग कर नए वस्त्र को ग्रहण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नए शरीर को धारण करती है किंतु आत्मा अपरिवर्तित रहती है। वस्तुतः इस अलौकिक संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर को ही साध्य समझ कर संपूर्ण जीवन उसके उपभोग की पुष्टि में युक्त रहता है। इस प्रकार वह कभी भी शरीर को आत्मा से पृथक नहीं समझ पाता है सच्चा ज्ञान योगी वही है जो यह भली-भांति समझ ले कि शरीर जन्म जरा व्याधि मृत्यु आदि के कारण अनित्य हैं, जबकि आत्मा जन्म जरा व्याधि नृत्य आदि से रहित होने का कारण नित्य है। आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है, यह अबिनाशी है, अजन्मा है, अपरिवर्तनशील है शरीर का नाश होने के बाद भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है।

गीता का सिद्धांत जो कुछ भी है उसका अपना एक खास महत्व है क्योंकि गीता को जिस समय और जिस स्थान पर कहा गया उसका भी विशेष महत्व है। महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन अपने संबंधियों की मृत्यु की आशंका से विशेष शोकाकुल थे तब उस शोक को दूर करने के लिए श्री कृष्ण ने ज्ञान योग की महिमा का वर्णन किया है। श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि इस शरीर के नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता है जो व्यक्ति इस आत्मा को मरने वाला समझता है एवं जो इसको मरा हुआ समझता है वह दोनों ही सत्य को नहीं जानते क्योंकि आत्मा जन्म और मृत्यु से परे है। अगर गौर किया जाए तो एक बात स्पष्ट होता है कि गीता में जो ज्ञान योग को प्रतिपादित किया गया है वह उपनिषद एवं आरण्यक साहित्य में प्रतिपादित ज्ञान योग से अलग नहीं है। कठोपनिषद के यम नचिकेता संवाद को ज्ञान योग का वर्णन कहा जा सकता है, जिसमें यह कहा गया है कि यह शरीर कभी शरीर या इंद्रियों से युक्त नहीं होता है, बल्कि चित्स्वरूप यह आत्मा देह के साथ देहवान प्रतीत होता है। अतः देह के नाश होने पर आत्मा का भी नाश मान लिया जाता है किंतु अविकारी एवं अपरिवर्तनशील होने के कारण यह आत्मा ना तो मृत्यु को प्राप्त होता है और ना ही शरीर के नाश होने पर इस आत्मा का नाश होता है। जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार जान लेता है वह अपनी मृत्यु के भय से एवं अन्य की मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने ज्ञान योग का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने आत्मा को शरीर की पृथकता के साथ ही आत्मा की अमरता को विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से समझाया है। यह सारी सृष्टि

पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश का विस्तार है। भगवान श्रीकृष्ण इन पंच भूतों से आत्मा को अलग बताते हैं।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं इस आत्मा को शस्त्रा काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकता, जल इसको गिला नहीं कर सकता, वायु इसको सुखा नहीं सकता। इससे स्पष्ट होता है कि आत्मा इन पंचमहाभूत से पृथक एवं अजर तथा अमर है। ज्ञान योगी सभी प्राणियों में अपने स्वरूप को ही स्थित देखता है, संपूर्ण प्राणियों को अपने अंतर्गत देखता है अर्थात अपने सर्वव्यापक का स्वरूप में जो कि सच्चिदानंद स्वरूप है संपूर्ण संसार को देखता है। ऐसे ज्ञान योगी की अनुभूति को गीता में सम दर्शन अथवा समत्व योग कहा गया है तथा समत्व योग ज्ञान योग की सबसे बड़ी विशेषता है जिसकी चर्चा गीता में की गई है। गीता में समत्व योग के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया गया है जिसका एक स्वरूप स्थितप्रज्ञ भी है। स्थितप्रज्ञता कि अवस्था वह है जिसमें मन की सभी कामनाएं एवं वासनाएं समाप्त हो जाती है और व्यक्ति परमात्मा में संतुष्ट रहता है। वह दुख, क्ले"ा, ताप इत्यादि से उद्विग्न नहीं होता है तथा भोग वासना से संबंधित सुख की भी इच्छा नहीं रखता है। सुख दुख में अविचल चित्त वाला तथा प्रीति या राग क्रोध एवं भय से रहित मुनि स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। वस्तुतः सांसारिक पदार्थों एवं भोग वासनाओं के प्रति आसक्ति ही राग का कारण होती है जिसके पाने खोने के प्रति चिंतित होने के कारण उसमें भय तथा क्रोध उत्पन्न होता है। अतः स्थितप्रज्ञ इस सांसारिक विषयों के प्रति अनुराग से निष्क्रिय हो जाता है एवं उसकी बुद्धि में इन कामनाओं के प्रति न तो अनुराग उत्पन्न होता है नहीं किसी प्रकार का भय तथा क्रोध की भावना होती है। ऐसे समदर्शी स्थितप्रज्ञ ज्ञानयोगी सर्वत्रा समान भाव से देखता है।

गीता में कहा गया है कि ऐसे ज्ञानीजन विद्या और विनय युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चांडाल में भी समत्व से देखने वाले होते हैं। गीता में कहा गया है कि समदर्शी ज्ञानयोगी विद्या एवं विनय युक्त ब्राह्मण को हाथी, कुत्ता एवं चांडाल इन प्राणियों में परमात्मा भाव से समान रूप से देखता है ऐसा समदर्शी ज्ञानयोगी जिस काल में संपूर्ण प्राणियों के अलग-अलग भावों को एक ही परमात्मा में स्थित एवं उसी परमात्मा से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार देखता है उसी क्षण वह परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। और यही ज्ञान योग की चरम परिणति है जिसकी साधना से आत्मा एवं परमात्मा में एकता का संबंध हो जाता है। गीता में वर्णित ज्ञान योग की साधना से ज्ञान योगी के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इस प्रकार गीता में वर्णित ज्ञान योग विचार प्रधान तथा बौद्धिक तार्किक क्षमता से युक्त ज्ञानमार्गीयों के लिए सर्वथा ग्रहणीय है।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. श्रीमद्भागवत गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. कठोपनिषद, चौखंभा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. गीता रहस्य, बाल गंगाधर तिलक।
4. बृहदारण्यक उपनिषद, तिलक ब्रॉस, पुणे।
5. लोकमान्य तिलक पांडुरंग गणेश देशपांडे सत साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली।
6. गीता बोध, मोहनदास करमचंद गांधी, नई दिल्ली।
7. गीता अकॉर्डिंग टू गांधी, मोहनदास करमचंद गांधी, अहमदाबाद।

धर्म एवं धर्म दर्शन

डॉ० रामाशीष मालाकर

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, ए.एस. कॉलेज, देवघर

'धर्म' एक अति विस्तृत शब्द है, जिस का अंग्रेजी रूपांतरण 'रिलीजन' होता है। 'रिलीजन' का अर्थ पुनः बांधना होता है। रिलीजन लैटिन भाषा के 'रैलीगेयर' से व्युत्पन्न है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'रिलीजन' का अर्थ है– री + लीगेयर। जिसमें ' री' का अर्थ वापस तथा 'लीगेयर' का अर्थ बांधना होता है। इस प्रकार व्युत्पत्तिमुलक अर्थ के दृष्टिकोण से 'रिलीजन' का अर्थ है– जो मनुष्य को परस्पर जोड़ता हो, जो मनुष्य के मानसिक एवं भौतिक पक्ष को संगठित करता हो, जो मनुष्य को ईश्वर से संबंध स्थापित कराता हो। रिलीजन के 'री' से यह बोध होता है कि ससीम और असीम, मानव और ईश्वर मूल रूप से एक ही है, केवल अस्थाई रूप से पृथक हो गए हैं। यहां उल्लेखनीय है कि 'रिलीजन' शब्द के पहले दोनों संदर्भ भारतीय परंपरा के 'धर्म' शब्द में सम्मिलित है। मनुष्य की धार्मिक चेतना के तीन पक्ष होते हैं– ज्ञानात्मक क्रियात्मक और भावनात्मक। धर्म की वहीं परिभाषा व्यापक रूप से मान्य होगी जिसमें यह तीनों तत्व सम्मिलित है। पाश्चात्य दार्शनिक गैलवे धर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि–

"धर्म मनुष्य का अपने से परे शक्ति में विश्वास है जहां मनुष्य अपनी संवेगात्मक अवश्य करता हूं की संतुष्टि करता है और जीवन में स्थिरता को प्राप्त करता है तथा जिसे वह पूजा सेवा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।"

जेम्स के अनुसार–

"धर्म चिरंतन ईश्वर में विश्वास और उसकी आराधना है यह धर्म अति मानस और देवी संकल्प रूप है जो अखिल ब्रह्मांड पर शासन करता है और मानवता को नैतिक सूत्रों से संबंध करता है।"

धर्म की पाश्चात्य दर्शन की परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि धर्म के लिए ईश्वर का होना आवश्यक है ऐसी स्थिति में जैन और बौद्ध धर्म को लेकर समस्याएं उत्पन्न हो जाती है।

समकालीन धर्म दार्शनिक एरी फ्रॉम, विलियम ब्लैक स्टोन आदि ने धर्म की परिभाषा एक नए रूप में दी है, जहां किसी अतिंद्रीय अध्यात्मिक अति प्राकृतिक या अलौकिक सत्ता का उल्लेख नहीं है। दार्शनिक धर्म की परिभाषा में निष्ठा और आत्ममुग्धता पर बल देते हैं। इनके अनुसार धार्मिक विश्वास वह है जो किसी निष्ठा के विषय के प्रति संपूर्ण आत्मबंधन के आधार पर जीवन की समस्याओं की ओर सर्वव्यापक रीति से व्यक्ति को अभिमुख करें। निष्ठा शब्द भक्ति से अलग है भक्ति भाव व्यक्तित्व सत्ता के प्रति ही संभव है जबकि निष्ठा का विषय कोई भी पवित्रा मूल्य आदर्श या ईश्वर भी हो सकता है। भारतीय संदर्भ में धर्म पाश्चात्य संदर्भ में प्रचलित रिलीजन से भिन्न है। भारतीय संदर्भ में धर्म को शाश्वत सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के रूप में देखा गया है। यहां धर्म का आशय है कर्तव्य पालन एवं सदाचरण है। आचार्य मनु ने धर्म के लक्षणों को बताते हुए धैर्य, क्षमा, दम, असतेय, इंद्रिय निग्रह, सत्य, अक्रोध आदि का उल्लेख किया है। वैशेषिक दर्शन में यह कहा गया है कि जिससे भौतिक कल्याण और अध्यात्मिक कल्याण दोनों हो वही धर्म है। धर्म को चार पुरुषार्थ में प्रथम स्थान दिया गया है तथा अर्थ और काम की प्राप्ति धर्म के अनुरूप ही करने की बात कही गई है। यही कारण है कि जब पाश्चात्य अवधारणा सेक्युलरिज्म का भारतीय संविधान की प्रस्तावना में हिंदी रूपांतरण किया गया तब इसके विकल्प के रूप में पंथनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग किया गया धर्मनिरपेक्षता का नहीं, क्योंकि भारतीय संदर्भ में धर्म के अर्थ को ध्यान में रखकर धर्म से निरपेक्ष या तटस्थ नहीं हुआ जा सकता। हम जैन और बौद्ध धर्म को ध्यान में

रखकर धर्म को व्यापक एवं समसामयिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि धर्म वह सर्वव्यापक अभिवृत्ति है जो अलौकिक आदर्श पूर्ण विषय के प्रति आस्था पर आधारित होती है और जिसके प्रति आत्मबंधन और वचनबद्धता उपासना या समाधि के द्वारा अभिव्यक्त तथा दृढ़ किया जाता है।

जहां तक धर्म दर्शन का सवाल है, धर्म और दर्शन के बीच संबंध है। शाब्दिक सीमित एवं प्रचलित साधारण अर्थ को छोड़ कर दार्शनिक दृष्टि से धर्म को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि धर्म मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली वह व्यापक अभिवृद्धि है जो सर्वाधिक मूल्यवान पवित्र, सर्वत्रा तथा शक्तिशाली समझे जाने वाले आदर्श या अलौकिक उपास्य विषय के प्रति अखंड आस्था एवं पूर्ण प्रतिबद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। और जो मनुष्य के दैनिक आचरण तथा प्रार्थना पूजा पाठ जप तप आदि वाह; कर्मकांड में अभिव्यक्ति होती है। दर्शन की मूल विषय वस्तु को ध्यान में रखकर हम इसे परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि दर्शन मनुष्य का वह निष्पक्ष बौद्धिक प्रयास है जिसके द्वारा वह जीवन और जगत तथा उससे संबंधित मूल तत्व, मौलिक प्रश्नों अथवा आधारभूत मान्यताओं को उनकी समग्रता में समझने का प्रयास है। और इसके लिए वह इन सब की तार्किक व्याख्या समीक्षात्मक विवेचना एवं निष्पक्ष विश्लेषण करता है। धर्म और दर्शन के स्वरूप निरूपण से स्पष्ट है किसी धर्म से संबंधित विभिन्न विषयों का सुव्यवस्थित एवं तर्कसंगत अध्ययन ही धर्म दर्शन है। यह किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक मान्यता का विवेचन नहीं है बल्कि धार्मिक अनुभूति के स्वरूप कार्य मूल्य और सत्य का दार्शनिक विवेचन है। धर्म दर्शन धर्म की बौद्धिक व्याख्या की खोज का एक प्रयास है यह धर्म का संबंध अन्य अनुभूतियों से बदलकर धार्मिक विश्वासों की सत्यता, धार्मिक मनोवृति;ों के आधारों का मूल्य स्पष्ट करता है।

"धर्म-दर्शन धर्म की सत्यता तथा धर्म के व्यवहारों एवं विश्वासों की मूल विशेषताओं का संपूर्ण जगत की दृष्टि से विवेचन करता है तथा धर्म का संबंध तत्व से निश्चित करता है।" प्रोफेसर ब्राइटनेस।

"धर्म दर्शन धार्मिक अनुभूति के स्वरूप व्यापार मूल्य तथा सत्यता की दार्शनिक खोज है।" प्रोफेसर राइट।

"दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि धर्म दर्शन दर्शन की वह शाखा है जो समस्त धार्मिक विश्वासों अनुभव समस्याओं तथा सिद्धांतों के सत्य एवं मिथ्या होने की सुव्यवस्थित तर्कसंगत और निष्पक्ष मूल्यांकन करता है।" प्रोफेसर डी एम ऐडवड।

धर्म दर्शन में विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनमें विद्यमान सामान्य तत्व की खोज की जाती है और उनमें समन्वय स्थापित करने का सैद्धांतिक प्रयास किया जाता है। यह धार्मिक प्रत्यय के विश्लेषण से उनके वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं धर्म का दार्शनिक विवेचन ही धर्म दर्शन है। समकालीन धर्म दर्शन धार्मिक भाषा के विश्लेषण पर विशेष बल देता है। इस क्रम में धर्म दर्शन का लक्ष्य धार्मिक प्रत्ययों का विश्लेषण हो जाता है। ईश्वर, आत्मा, मुक्ति, उपासना सृष्टि, धार्मिक प्रत्यय हैं जिनका विश्लेषण धर्म दर्शन करता है। धर्म-दर्शन धर्म संबंधी इतिहास धर्म संबंधी मनोविज्ञान आदि से संबंधित होते हुए भी इन सब से भिन्न है। धर्म संबंधी इतिहास और धर्म संबंधी मनोविज्ञान से यह दोनों वर्णनात्मक विज्ञान है। इतिहास धर्म के तथ्यात्मक पहलू यथा धर्म की उत्पत्ति कब कैसे और कहां हुई इसका वर्णन करता है दूसरी और मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक दृष्टि से धर्म का वर्णन करता है। जबकि धर्म दर्शन धार्मिक मान्यताओं, समस्याओं एवं सिद्धांतों का तार्किक मूल्यांकन एवं निष्पक्ष विश्लेषण करता है।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. ऋग्वेद: 1/187
2. महाभारत: अनुशासन एवं उद्योग पर्व
3. मनुस्मृति
4. इंडियन फिलॉसफी (वॉल्यूम वन): डॉ. एस राधाकृष्णन
5. द फिलोसोफी ऑफ रिलीजन: जॉर्ज गैलोवे

महिला उद्यमिता : समस्या समाधान एवं विकास की संभावनाएँ

डॉ० मणि भूषण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), अर्थशास्त्र विभाग, एम.पी.एस. साईंस कॉलेज, मुजफ्फरपुर

सारांश

बहुत दशक पहले तक हमारे देश में महिलाएँ अपने घर से बाहर रोजगार की तलाश में बहुत कम निकलती थी। किन्तु अब स्थिति बहुत तेजी से बदल रही हैं। आधुनिकरण, शहरीकरण, शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के क्षेत्र में होने वाले युगातिरकारी परिवर्तनों से राष्ट्रीय परिदृश्य में जो उथल-पुथल पैदा हुई है उससे महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों में असाधारण वृद्ध हुई है। साथ ही उनकी अपेक्षाओं का स्तर भी दिन प्रतिदिन बेहतर होता जा रहा है साथ ही विस्तृत भी।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से देखा जाए तो भारतीय समाज बहुधा महिला स्वतंत्रता के विरुद्ध ही रहा है तथा उसका यहीं दृष्टिकोण महिलाओं द्वारा स्वतंत्र रूप से व्यवसाय स्थापना के प्रति भी रहा है। जिक्र चाहे मनु स्मृति का हो या तुलसीदास की काव्य-रचना का सभी में महिलाओं को पुरुषों से कम महत्व दिया गया है इसका प्रभाव भारतीय समाज में स्पष्ट रूप से इस प्रकार देखा जा सकता है कि अभी भी उत्तरी भारत में मात्र 6 प्रतिशत से 12 प्रतिशत तक महिलाएँ व्यवसायिक गतिविधियों में संलग्न है जबकि दक्षिण भारत में 18 प्रतिशत से 27 प्रतिशत तक महिलाएँ व्यवसायिक गतिविधियों का संचालन कर रही है। इसके विरुद्ध देखा जाए तो पूर्वी नाइजीरिया में संपूर्ण देश का कम-से-कम 50 प्रतिशत व्यवसाय महिलाओं द्वारा किया जाता है तथा धाना में कुल व्यवसायियों में से 80 प्रतिशत महिलाएँ हैं। इस वस्तु-स्थिति के लिए जहाँ एक तरफ भारतीय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है वहीं कई अन्य कारण भी है जो महिलाओं के इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार है। ऐसे ही किन्हीं सामान्य कारणों पर चर्चा करने का प्रयास इस आलेख में किया गया है।

इस आलेख का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को उन परेशानियों का पूर्वाभास कराना है जो कि उद्यमीय जीवन अपनाने की दशा में उनके सामने आने की संभावना है। क्योंकि इनमें से अधिकांशत: स्थितियाँ ऐसी हैं जिनके संदर्भ में उचित रणनीति अपनाकर उन पर नियंत्रण पाया जा सकता है। अत: यह महिला उद्यमियों के लिये विशेष हित में होगा यदि वह इन स्थिति से निपटने हेतु पहले से ही तैयार रहे। जैसे एक प्रमुख अवरोधाक है–पति तथा सास द्वारा खड़ी की जाने वाली परेशानियाँ। परंतु यहाँ भी प्रमुख समस्या 'इगो' की है। यदि महिला उद्यमी सही रणनीति अपनाकर सास व पति की 'इगो' को संतुष्ट करने में सफल हो जाए तो उसकी समस्या अपने आप ही दूरी हो जाएगी। अपने पति या किसी पुरुष संबंधी को अपनी इकाई में महत्वपूर्ण स्थान देकर गतिशीलता की समस्या को समाप्त कर सकती है। इसी प्रकार अन्य कई सुझाव सफलता प्राप्ति हेतु बताये गये हैं। साथ ही महिलाओं को बैंक द्वारा किस प्रकार वित्त प्रदान किया जा सकता है, उसे विस्तार से तालिका द्वारा समझाया गया है। यदि इस लेख से महिला उद्यमी बैंकों द्वारा दी गयी सुविधा का सही उपयोग कर सके एवं महिला उद्यमियों में पति/संबंधियों/समाज के नजरिए में कुछ भी परिवर्तन हो सके तो निश्चित तौर पर यह उनके स्वयं के परिवार, समाज व देश के प्रति महत्वपूर्ण योगदान होगा।[1]

बढ़ती जनसंख्या और घटते रोजगार के अवसर देश की सबसे बड़ी व गंभीर समस्या बन चुकी है, इसलिए रोजगार के अवसर बढ़ाने व देश के विकास के लिए हर क्षेत्र में उद्यम स्थापित करने की आवश्यकता है। वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में महिलाओं का समाज को उन्नत बनाने में अथक एवं अविश्वसनीय सहयोग है। जहाँ एक ओर महिलाएँ अपने घर में एक गृहिणी की भूमिका का निर्वाह

करती है वहीं दूसरी ओर घर के बाहर भी अपना कार्य अपने-अपने क्षेत्र में दक्षतापूर्वक निभा रही है। आज महिलाओं की कार्यक्षमता एवं कार्य-कुशलता पुरुषों को भी मात कर रही है। दरअसल जिम्मेदारी की भावना और कार्य के प्रति ईमानदारी ही महिलाओं की सक्षमताओं का कारण है।[2]

महिला उद्यमियों की समस्या

इसे विधि की विडंबना ही कहेंगे कि हम 21वीं सदी में पहुँच गये हैं इसके बावजूद प्रत्येक प्लेटफॉर्म पर महिला उत्थान तथा महिला स्वतंत्रता की बात करने के बावजूद, महिलाओं हेतु दिन-प्रतिदिन नयी-नयी योजनाएँ घोषित होने के बावजूद तथा महिलाओं की भागीदारी के बिना देश व समाज की सफलता असंभव मानने के बावजूद, जब महिला उद्यमियों की समस्याओं एवं परेशानियों की बात आती है, तो आज भी वही स्थिति देखने को मिलती है जो आज से कई दशक पूर्व देखने को मिलती थी। यही वजह है कि महिलाओं के आर्थिक उत्थान हेतु प्रस्तुत की गयी कई योजनाओं के संचालन में इसके संचालक इसलिए हिचकिचा रहे हैं क्योंकि महिलाएँ इन योजनाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पा रही है। कुछ महिलाओं को अपवादस्वरूप छोड़ दिया जाए तो अधिकांश महिला उद्यमी नाममात्र की महिला उद्यमी है तथा उनमें से भी अधिकांश का कार्यक्षेत्र पापड़बड़ी, रेडीमेड गारमेंट्स निर्माण तक ही सीमित है। यही वजह है कि महिला उद्यमियों द्वारा प्राय: यह शिकायत की जाती है कि उन्हें 'सीरियसली' नहीं लिया जाता है।[3]

वैसे यह तो सभी जानते हैं कि 21वीं सदी की महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं है। उनमें प्रबंधन का गुण तो जन्मजात होता ही है क्योंकि जितनी बखूबी से वे घर का प्रबंधन करती है उससे सभी परिचित है ही तो ऐसे क्या कारण है जिनकी वजह से महिला उद्यमी कुछ को छोड़कर उतनी सफल नहीं हो पा रही है जितना कि पुरुष उद्यमी, परिणामस्वरूप समाज का 50 प्रतिशत भाग समस्त क्षमताएँ होने के बावजूद, समाज के आर्थिक विकास में वह योगदान नहीं दे पा रहा है जितना कि अपेक्षित है। संभवत: इसका प्रमुख कारण महिलाओं की वे विशेष जिम्मेदारियों एवं कठिनाइयाँ हैं जो कि पुरुष उद्यमियों के सामने न हीं होती।

महिला उद्यमी के विकास हेतु सुझाव एवं समाधान

इस लेख में मैंने कई सफल महिला उद्यमियों से विचार विमर्श कर उनकी सफलता के उन कारणों को जानने का प्रयास किया जिस कारण वे सफल हो सकी, यदि एक महिला उद्यमी इन सुझावों को अमल में लाती है, तो ऐसा मानना है कि कोई कारण नहीं जो वह अपने उद्योग में सफल नहीं हो सकती–

1. छोटे स्तर से कार्य प्रारंभ करें।
2. जिज्ञासु प्रवृत्ति रखे।
3. उत्तम स्वभाव एवं प्रेरणास्पद वाणी।
4. अपने जीवन और अपने कार्य में रूचि रखें।
5. उद्योग शुरू करने से पहले संबंधित उत्पाद की मार्केटिंग करके देखें।
6. प्रथम तीन वर्षों तक अपने आपको कतई उद्योगपति न समझे।
7. उत्पाद कन्ज्यूमर प्रोडक्ट होना चाहिए।
8. इकाई में विकल्प उत्पाद बनाये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।
9. किसी एक ग्राहक पर निर्भर नहीं रहे।
10. सरकारी ऑर्डर पर पूर्ण निर्भरता न बनाये रखें।
11. क्रय और नकद खुद संभालें।
12. अपने उत्पाद के बारे में गंभीरता से सोचें।
13. अनुशासन बद्धता तथा व्यावसायिक दृष्टिकोण रखें।

14. स्पर्धा अपने आप से करें औरों से नहीं।
15. अपने शक्तियों का उपयोग कीजिए।
16. सफलता अर्जन कीजिए और बाँटिये।
17. दृढ़ इच्छा-शक्ति और मजबूत इरादें रखे।
18. उद्योग के प्रति पूर्ण समर्पण।

महिलाओं के चहुमुंखी विकास एवं प्रगति के लिये जहाँ एक तरफ महिलाएँ स्वयं प्रयास कर रही है। वही दूसरी तरफ विभिन्न तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ भी इस प्रयास में अपना योगदान दे रही है। परंतु इन सबके बावजूद भी आशातीत प्रगति नहीं हो पा रही है। महिलाओं के उत्थान हेतु यह आवश्यक है कि परिवार में आय अर्जित करने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं में उनको शामिल किया जाए, जिससे वे परिवार में पुरुषों के साथ मिलकर काम कर सके। इससे जहाँ एक तरफ आय अर्जन में वृद्धि होगी, दूसरी तरफ उनको अपने ऊपर विश्वास होगा कि वे भी कुछ कर सकती है। इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए पहला प्रयास तो घर के अन्य सदस्यों, खासकर अविवाहित महिलाओं के लिए माता-पिता तथा शादीशुदा महिलाओं के लिये उनके पति व अन्य सदस्यों द्वारा मानसिक तौर पर मजबूत बनाने में सहयोग देना चाहिए। इनके अलावा स्वयंसेवी व समाजसेवी संस्थाएँ तथा विभिन्न सरकारी संस्थाएँ महिलाओं को आगे लाने में अपना योगदान प्रदान कर सकती है। इस तरह की बात केवल कागजों में न रह जाए, इसके लिए आवश्यक है कि महिलाओं की रूचि तथा भविष्य में आगे बढ़ने की संभावनाओं को देखते हुए सहायता प्रदान करने की बात की जाए।[4]

इनके लिए विशेष उद्यमिता जागरूकता शिविर आयोजित किये जाए। वही दूसरी तरफ विधिवत प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए महिला उद्यमिता विकास कार्यक्रम भी आयोजित किये जाए। महिलाओं की अपने उत्पादों की बिक्री व्यवस्था ठीक करने के लिए विभिन्न मेलो, प्रदर्शनियों आदि में भाग लेने के लिए भी बढ़ावा दिया जाए। विभिन्न प्रचार-प्रसार माधयमों, खासकर रेडियों, टीवी कार्यक्रमों तथा पत्र-पत्रिकाओं में सफल महिला उद्यमियों के बारे में विधिवत चर्चा करायी जाए व उनके लेख प्रकाशित किये जाए, जिससे आम महिलाओं को उद्यमीय जीवन के अलावा सामाजिक जीवन में भी सफलता पाने हेतु प्रेरणा मिल सके।

महिलाओं द्वारा स्थापित किया जा सकने वाले कुछ सामान्य उद्यम

वैसे तो यह धारणा बनाना ही गलत है कि महिलाएँ किन्हीं विशेष प्रकार के उद्योग में ही सफल हो सकती है इस तथ्य के कई साक्षी है कि महिलाएँ किसी भी प्रकार का उद्योग स्थापित कर सकती है तथा उनमें सफल भी हो सकती है। किन्तु इनके साथ-साथ एक अन्य प्रमुख तथा जिसे किसी भी स्तर पर नहीं भुलाया जा सकता वह है महिलाओं की घरेलू जिम्मेदारियाँ चाहकर भी महिलाएँ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्ति नहीं पा सकती तथा यह कहना शायद अतिश्योक्ति नहीं होगी कि भारतीय परिवारों में जो संगठन तथा अपनापन देखने को मिलता है उसके पीछे मुख्य भूमिका उन महिलाओं की है जो अपने व्यक्तिगत हितों को न्यौछावर करके परिवार रूपी पौधे को सींचती है। अत: यह काफी कठिन होगा कि महिलाएँ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को किसी दूसरे के सहारे छोड़कर स्वयं पूरा समय किसी उद्योग या व्यवसाय को दे सके। ऐसी वस्तु-स्थिति में यदि वे कुछ ऐसे व्यवसाय अपना सके जिन्हें वे पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ-साथ संचालित कर सके तो यह आदर्श स्थिति होगी, इनमें प्रमुख रूप से[5]–

1. बेबी क्रेश की इकाई प्रमुख रूप से
2. टिफिन सप्लाई कार्य
3. लेडीज हेल्थक्लब
4. ब्यूटी पार्लर की इकाई
5. हॉबी कक्षाओं का संचालन
6. स्क्रीन प्रिंटिंग की इकाई

7. डेको आर्ट्स
8. बुटिक प्रिंटिंग की इकाई
9. ज्वैलरी डिजाइनिंग
10. एम्प्लायमेंट ब्यूरो का संचालन
11. डिटरजेंट पाउडर, हर्बल शैम्पू, क्लीनिंग पाउडर बनाना
12. मसाला उद्योग
13. बेकरी की इकाई
14. मिठाई एवं नमकीन निर्माण
15. डेयरी उद्योग
16. महिला सौंदर्य प्रसाधन निर्माण
17. फैशन डिजाइनिंग

महिला उद्यमियों हेतु बैंक योजनाएँ

प्राय: विभिन्न बैंकों द्वारा उद्योग स्थापित करने हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही है परन्तु दुर्भाग्यवश इन योजनाओं में महिलाओं की भागीदारी प्रभावी नहीं हो पाई है। कारण महिलाओं की अपनी विशिष्ट समस्याएँ आड़े आ जाती है तथा पुरुष उद्यमियों की तुलना में महिला उद्यमी के प्रकरणों को बराबरी का महत्व नहीं दिया जाता। यही कारण है कि विभिन्न वित्तीय संस्थानों द्वारा महिलाओं हेतु विशिष्ट योजनाएँ प्रतिपादित की गयी है ताकि उनके माध्यम से महिलाओं को लाभ पहुँचाया जा सके यहाँ मैं प्रमुख रूप से केवल तीन बैंक योजना के बारे में विस्तार से चर्चा करना चाहूँगा।

1. सेंट्रल बैंक आफॅ इंडिया की सेंट कल्याणी योजना

इस योजना का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को लघु उद्योगों की स्थापना, व्यवसायिक एवं स्वनियोजित कार्यों, फूटकर व्यापार, ग्रामीण व कुटीर उद्योग तथा कृषि एवं संबंद्ध क्रियाकलापों की स्थापना हेतु आसान शर्तों पर वित्तीय सहायता प्रदान करना है ताकि महिलाएँ विभिन्न क्षेत्रें में अपने उद्योग स्थापित कर स्वावलंबी बन सके और देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान दे सके।

1. निम्न लघु व्यवसायों के अंतर्गत स्थापित किये जा सकने वाले प्रमुख क्रियाकलापों के लिए-

ब्यूटी पार्लर केंटीन, बेबी क्रैश इकाई, पापड़ अचार, फैशन डिजाईनिंग, बेकरी, कोचिंग कक्षाएँ, टाईपिंग, इंस्टीट्यूट की इकाई वास्तुविद/इंटिरियर डेकोरेटर, प्रबंधन विशेषज्ञ, कमर्शियल आर्टिस्ट, कम्प्यूटर सर्विसेस, मिट्टी के बर्तन व मूर्तियाँ बनाना, रेडियो, टीवी मैकेनिक, कृत्रिम फूल बनाना, प्रकाशक सह पुस्तक विक्रेता इत्यादि हेतु-

Øमांक	ऋण की सीमा	अपेक्षित मार्जिन मनी	उद्यमी से अपेक्षित प्रतिभूति
1.	25000 रुपये तक	कोई मार्जिन मनी नहीं	बैंक ऋण से स्थापित की जाने वाली आस्तियों को बंधक रखना होगा
2.	25000 रुपये से 200000 रुपये तक	15 प्रतिशत मार्जिन मनी	25000 रुपये से अधिक ऋण पर संपत्ति को गिरवी रखना होगा, सामान्य मापदण्डों के अनुसार प्रत्येक मामले की योग्यता के आधार पर सपार्श्विक प्रतिभूति (कोलेटरल सिक्यूरिटी) ली जा सकती है।
3	200000 से अधिक ऋण राशि पर	20 प्रतिशत मार्जिन मनी	25000 रुपये से अधिक ऋण पर आस्तियों को गिरवी रखना होगा, सामान्य मापदण्डों के अनुसार प्रत्येक मामले की योग्यता के आधार पर सपार्श्विक प्रतिभूति (कोलेटरल सिक्यूरिटी) ली जा सकती है।

2. हस्तशिल्प, कटलरी की दुकान, मछली पालन, जेनरल स्टोर, उपभोक्ता सहकारी भण्डार, हस्तकरघा बुनाई, दस्तकारी व शिल्पकला, खाद्य संसाधन, फैंसी वस्तुओं का निर्माण इत्यादि हेतु-

Øमांक	ऋण की सीमा	अपेक्षित मार्जिन मनी	उद्यमी से अपेक्षित प्रतिभूति
1.	25000 रुपये तक	कोई मार्जिन मनी नहीं	कोई प्रतिभूति नहीं
2.	25000 रुपये से 200000 रुपये तक	20 प्रतिशत मार्जिन मनी	बैंक के सामान्य नियमों के अनुसार प्रतिभूति/सिक्यूरिटी /गारंटी देय होगी
3	200000 से अधिक ऋण राशि पर	25 प्रतिशत मार्जिन मनी	बैंक के सामान्य नियमों के अनुसार प्रतिभूति/सिक्यूरिटी /गारंटी देय होगी

3. इस योजना में ऐसी औद्योगिक इकाई की स्थापना हेतु जिसमें प्लांट एवं मशीनरी की अधिकतम लागत 60 लाख रुपया तक हो, वित्तीय सहायता प्रदान की जा सकती है-

Øमांक	ऋण की सीमा	अपेक्षित मार्जिन मनी	उद्यमी से अपेक्षित प्रतिभूति
1.	25000 रुपये तक	कोई मार्जिन मनी नहीं	बैंक ऋण से इकाई द्वारा बनायी गयी संपत्ति बैंक के पास बंधक रहेगी।
2.	25000 रुपये से 5.00 रुपये लाख तक	20 प्रतिशत मार्जिन मनी	25000 रुपये से अधिक ऋण के संदर्भ में सामान्य नियमों के अनुसार वस्तुओं का गिरवी रखना साथ ही अन्य तरह की गारंटी या कोलेटरेल सिक्यूरिटी भी ली जा सकती है।
3.	5 लाख से अधिक ऋण राशि पर	मार्जिन मनी की मात्र बैंक द्वारा निर्धारित की जायेगी।	25000 रुपये से अधिक ऋण के संदर्भ में सामान्य नियमों के अनुसार वस्तुओं का गिरवी रखना साथ ही अन्य तरह की गारंटी या कोलेटरेल सिक्यूरिटी भी ली जा सकती है।

4. इस योजना में महिलाओं को कृषि एवं कृषि से संबद्ध क्रियाकलापों हेतु ऋण प्रदान किया जाता है इसमें फल एवं सब्जी उगाने से संबंधित कार्य, मछली, सुअर, बत्तख भेड़-बकरी पालने से संबंधित व्यवसाय, मशरूम, की खेती, रेशम उत्पादन, नर्सरी की स्थापना, कृषिगत निर्विष्टियों का व्यापार आदि हेतु-

Øमांक	ऋण की सीमा	अपेक्षित मार्जिन मनी	उद्यमी से अपेक्षित प्रतिभूति
1.	15000 रुपये तक	कोई मार्जिन मनी नहीं	कोई प्रतिभूति नहीं
2.	15000 रुपये से अधिक ऋण राशि पर	15 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक	कोई प्रतिभूति नहीं प्रतिशत मार्जिन मनी

उपरोक्त योजनाओं का लाभ प्राप्त करने की इच्छुक महिला उद्यमी सेंट्रल बैंक आफॅ इंडिया की किसी भी शाखा में संपर्क करके इन योजनाओं का लाभ उठा सकती है।

2. बैंक आफॅ इंडिया की प्रियदर्शनी योजना

इस योजना के अंतर्गत बैंक आफॅ इंडिया द्वारा मुख्य रूप से 6 प्रकार की गतिविधियों हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है।

Øमांक	उद्योग का स्वरूप	ऋण की सीमा	मार्जिन मनी
1.	कुटीर व ग्रामीण उद्योगों के संदर्भ में	25000 रुपये तक	कोई मार्जिन नहीं।
2.	अन्य उद्योगों के संदर्भ में	25000 रुपये तक	कोई मार्जिन नहीं
3.	लघु उद्योगों के संदर्भ में	(अ) 25000 रुपये से 5.00 लाख रुपये तक (ब) 5.00 लाख से अधिक ऋण राशि पर	10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत मार्जिन मनी 20 प्रतिशत से 45 प्रतिशत तक मार्जिन मनी

3. महिलाओं को रोजगार और वित्त प्रदाय के लिए महिला नागरिक बैंक-

महिला उद्यमियों को वित्त प्राप्ति सुलभ कराने का सशक्त माध्यम है–महिला नागरिक सहकारी बैंक। जहाँ कहीं भी महिलाएँ जागरुक और संगठित हों महिला नागरिक सहकारी बैंक का गठन किया जा सकता है महिला नागरिक सहकारी बैंक के गठन के लिए सर्वप्रथम 20 या अधिक इच्छुक महिलाओं को एकत्रित करके एक बैठक बुलानी होती है। बैंक के संचालन मंडल में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित कुल 12 संचालक होते हैं। इस बैठक में बैंक के गठन का प्रस्ताव पास किया जाता है। इस बैठक में बैंक के गठन का प्रस्ताव पास होने की सहमति के लिये सभी उपस्थित सदस्यों के नाम व पते सहित हस्ताक्षर होने चाहिए। इसके बाद मनोनीत मुखिया के द्वारा उप-पंजीयक सहकारी समितियों को बैंक गठन की स्वीकृति के लिए प्रोजेक्ट तैयार करने व अन्य प्रपत्रों की पूर्ति में मदद के लिए एक संगठक नियुक्त करने के लिए आवेदन करना होता है। जहाँ से प्रकरण पंजीयक सहकारी संस्थाएँ मध्य प्रदेश भोपाल के पास जाँच हेतु प्रस्तुत होता है। वहाँ से प्रस्ताव अनुमति हेतु रिजर्व बैंक के पास भेजा जाता है प्रस्ताव उचित पाये जाने पर रिजर्व बैंक अनापत्ति पत्र प्रदान कर देता है। अनापत्ति पत्र प्राप्त होने के तीन माह की अवधि में अंशपूंजी एकत्र कर जिला सहकारी बैंक में खाता खोलकर उसमें जमा कर दी जाती है। कुछ समय पश्चात् रिजर्व बैंक द्वारा इस बैंक को प्रारंभ करने के लिए लाइसेंस दे दिया जाता है।

महिला नागरिक सहकारी बैंक सिर्फ महिलाओं को ही ऋण देती है। इस बैंक द्वारा महिलाओं को आसान शर्त पर वित्त प्रदान करके उनके आर्थिक विकास और स्वावलंबन की एक बहुत बड़ी रुकावट दूर कर दी जाती है।[6]

भावी संभावनाएँ

बढ़ती जनसंख्या और सीमित रोजगार के अवसरों के कारण देश में बेरोजगारी की समस्या ने विकरालरूप धारण कर लिया है। केवल सरकारी एवं गैर-सरकारी क्षेत्र में उपलब्ध नौकरियों से बात नहीं बनने वाली है। अत: इस संबंध में गंभीरता से विचार करना होगा आपको और आनेवाली पीढ़ी को कि क्यों हम रोजगार ढूँढ़े? अब हमें रोजगार ढूँढ़ने वाला नहीं बल्कि दूसरों को रोजगार देने वाला बनना है।

यह तभी संभव हो सकता है जब आप दृढ़ इच्छाशक्ति से स्वरोजगार या अपना स्वयं का छोटा ही सही एक उद्यम की शुरुआत करें।

यदि महिला उद्यमी अपने मन में यह विचार ले आये-कि हमें समाज में अपने लिए एक सम्माननीय स्थान सुरक्षित करना है, तो अलग हटकर कुछ करना चाहिए स्वरोजगार अपनाना चाहिए। इस प्रकार कोई भी महिला उद्यमी उपरोक्त विचार अपनाकर पति व सास के इगो को बिना ठेंस पहुँचाए, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं का सहयोग पाकर अपने लक्ष्य की ओर सतत् व निरंतर प्रयास करते रहे। कहते हैं कि कठिनाईयाँ चाहे जितनी भी आए संघर्षशील व्यक्ति एक-न-एक दिन सफलता प्राप्त करके ही रहता है।

महिलाओं ने घरेलू प्रबंधन में सिद्ध किया है और कुछ महिलाओं ने उद्यमिता के क्षेत्र में भी अपना वर्चस्व स्थापित किया है। यदि अब भी महिलाएँ नहीं जागी तो आनेवाली पीढ़ी को हम भूख, पीड़ा और कुंठा के अलावा कुछ नहीं दे सकेंगे।

निष्कर्ष: स्वतंत्रता प्राप्ति के पचास वर्ष पश्चात् औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं अन्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधि यों के फलस्वरूप समाज के परंपरागत ढांचे में मूलभूत बदलाव आए हैं। चूंकि महिलाएँ भी इस समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं

इसलिए कुछ तो इन गतिविधियों की और कुछ विभिन्न सरकारी, गैर-सरकारी संगठनों तथा मीडिया के सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप उनकी मनोदशा में काफी बदलाव आया है। उनकी सामाजिक भूमिका पहले की अपेक्षा बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है। भारतीय पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों द्वार स्थापित मान्यताओं और अंकुशों को तोड़ते हुए, महिलाओं ने अपने ऊपर लगी लघुता की सीमा को तोड़कर पुरुषों को चुनौती देना शुरु कर दिया है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा पूजा, महिला विकास और सशक्तीकरण, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ. 52.
2. एस.के. धमीजा, वूमेन एन्टरप्रिन्यर्स, दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001, पृ. 81.
3. बी.एस.पी. राव एवं डी. नागाईजी, स्मॉल इंडस्ट्री डेवलपमेंट इन इंडिया, डिस्कवरी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1991, पृ. 102.
4. एम.सी. गुप्ता, एन्टरप्रिन्यरशिप इन स्मॉल स्केल इंडस्ट्रीज, अनमोल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1987, पृ. 56.
5. जी.एस. सुधा, व्यावसायिक उद्यमिता का विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 1998, पृ. 77.
6. डॉ. अंशुजा तिवारी, ''वूमेन एन्टरप्रिन्यरशिप : ऐन एनालिटिकल स्टडी'', वूमेन एन्टरप्रिनियरशिप एण्ड इकोनॉमिक डेवलपमेंट, स्वरूप एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2007, पृ. 64.

भारत में एकता

डॉ० अर्चना कुमारी

इतिहास विभाग, तिलकामॉझी, भागलपुर, विश्वविद्यालय, भागलपुर

भारत जैसे विशाल देश में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के लिए एकता का होना अत्यंत महत्वपूर्ण था। इस बात को समझते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने भारत में एकता की भावना को विकसित करने के लिए हर संभव उपाय किए। राष्ट्रीय नेता इसे अपना पहला कर्त्तव्य मानते थे। वे जानते थे कि अलग अलग धर्मों के मानने वालों को मिलाकर ही एक सूत्र में बांधा जा सकता है। इसी से कांग्रेस के नेताओं ने कोई भी ऐसा कार्य नही करना चाहा जिसके लिए सभी वर्ग और संप्रदाय तैयार न हो। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इटली की सकता का उदाहरण देते हुए कहा कि ''जब समूचा भारत प्रेम सद्रभाव और सम्मान के तीन बंधकों में जुड़ जाएगा तो भारतीय महत्ता का दिन दूर नहीं होगा।''

दादा भाई नौरोजी ने भी विभिन्न धर्मों के अनुयाचियों के बीच की दूरी को खत्म करने पर जोर दिया। इसके परिणाम स्वरूप पढ़े लिखे भारतीयों में एकता की भावना पैदा हुई। देश के हर भाग में समय-समय पर कांग्रेस के अधिवेशन किये जाते थे ताकि संपूर्ण देश के लोग इस आंदोलन के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के प्रति जागृत हो।

आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन से जो अनुभव हुआ उससे भारतीय नेताओं में परिपक्वता तथा स्थायित्व आया। उनमें आत्मविश्वास और आत्म सम्मान बढ़ा। तिलक के नेतृत्व में महाराष्ट्र में नए राष्ट्रवाद ने भारत के सांस्कृतिक अतीत को जागृत किया। शिवाजी के संघर्श की याद तथा गणपति पूजा को राष्ट्रीय रूप दिया गया। इन लोगों को स्वेदशी में बढ़ी गाढ़ी आस्था थी।

राष्ट्रीय आंदोलन में यह उग्रधारा इस समय और जोर पकड़ गई जब 1905 में लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया। प्रशासनिक सुविधा के विचार से किया गया यह विभाजन राजनैतिक उद्देश्य से प्रेरित था क्योंकि बंगालियों में एकता बढ़ती जा रही थी, और अंग्रेज इसे खत्म करना चाहते थे। स्वंय एक अंग्रेज अधिकारी ने कहा संयुक्त बंगाल एक भालि है और हमारा उद्देश्य इसे अलग करना है ताकि हमारे शासन के विरोधी लोगों के संगठन को कमजोर किया जा सकें। लेकिन अंग्रेज अधिकारियों के ये सारे प्रयत्न असफल रहे। सभी बंगालियों ने जिनमें जमींदारों वकील, व्यापारी, गरीब और मनुहर सभी शामिल थे, मिलकर इसका विरोध किये। जिस एकता को कर्जन ने खत्म करना चाहा था वह लगभग विरोधी आंदोलन से ओर भी स्पष्ट रूप में सामने आई।

अनेक राष्ट्रवादी भारत राष्ट्र की वास्तविक इकाई किसी न किसी धार्मिक समुदाय को मानते थे। उनकी यह धारणा बिना किसी संदेह के बनी थी। राष्ट्रीय चेतना के आविर्भाव के समय ही यह मान लिया गया था कि इस बहुधर्मी समाज में राजनीतिक दृष्टि से फुट डालकर घातक सिद्ध होने वाले मदभेदों को पहले पाटा जाए किन्तु दरारें खोजने और समान राजनीतिक मोर्चा बनाने की अनिवार्यता में ही ऐसी मांगे उठ खड़ी हुई जिनकी पूर्ति करना तत्कालीन परिस्थितियों में अनुकूल नहीं थी। इन्हीं परिस्थितियों से पार जाने के लिए प्रताप नारायण मिश्र जैसे अनुभवी लेखक ने हिंदी, हिन्दू हिन्दुस्तानी का नारा दिया। किन्तु हिन्दी और हिन्दू की चिन्ता करते हुए उन्होनें जो कुछ लिखा वह हिन्दुस्तान के बारे में उनके विचारों के अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि हिन्दूस्तान की एकता के लिए हिन्दुओं ओर मुसलमानों के बीच एकता होना आवश्यक था। सैय्यद अहमद ने हिन्दुओं और मुसलमानों को सुंदर दुलहन की दो आँखे बतायें। और उनके अनुसार हिन्दुस्तान ही वह सुंदर दुलहन है।

स्वामी विवेकानंद भारतीय इतिहास के रंगमंच पर एसे समय में आये जब उनके गतिशील नेतृत्व ने हिन्दू धर्म के सुधार एवं राष्ट्रीय जागरण में अभूतपूर्व काम किया। विवेकानंद के धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों के पीछे मूल उद्देश्य भारतीय संस्कृति की सोयी हुई आत्मा को जगाकर सक्रिय बनाना था। स्वामी विवेकानंद ने भी देश की एकता पर जोर दिया। धनिष्ठ व्यक्तिगत संपर्क के द्वारा

धर्म भाषा एवं प्रांत के विभेदो को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना कांग्रेस का एक प्रमुख उद्देश्य था। राष्ट्र के देशभक्तों ने अपनी गतिविधि से देशवासियों को यह सिखलाया की वे एक देश के निवासी हे। अत: देश प्रेम की भावना को शक्तिशाली बनाकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना उनका परम कर्त्तव्य है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रणेतओं के सामने पहला लक्ष्य यह था कि भारतीयों को एक राष्ट्र के रूप में जोड़ने और भारतीय जनता के रूप में उनकी पहचान बनाने को यह प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाए। उपनिवेशवादी प्रशासक और उनके अनुयायी यह अक्सर कहा करते थे कि भारत एक नहीं हो सकता या आजाद नहीं हो सकता, क्योंकि यह एक राष्ट्र नहीं है, बल्कि यह महज एक भौगिलिक शाब्दावली है और सैकड़ों अलग-अलग धर्मो व जातियों के लोगों का समूह है। भारतीयों ने इसका खंडन नहीं किया बल्कि यह कहा कि वे एक राष्ट्र बनाने की दिशा में अग्रसर है। तिलक सुरेद्रनाथ बनर्जी और कई अन्य लोग अक्सर यह कहा करते थे कि भारत एक बनता हुआ राष्ट्र है। कांग्रेस के नेताओं को इसका एहसास था कि देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ देश के लोगों को एक दूसरे के करीब ला रही थी। लेकिन वे ये भी जानते थे कि लोगों को इस प्रक्रिया के बारे में जागरूक करना होगा और उनमें राजनीतिक चेतना पैदा करनी पड़ेगी तभी भारतीय राष्ट्र का लक्ष्य पाया जा सकेगा। और इसलिये यह जरूरी है कि लोगों में राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया जाए। 1885 में कांग्रेस को स्थापना के बीस साल बाद 1905 में भी गोपाल कृष्ण गोखले ने इसी बात पर फिर जोर दिया कि जहाँ तक हो सके, हमें ज्यादा से ज्यादा लोगों में राष्ट्रीय चेतना राष्ट्रीय एकता पैदा करनी चाहिए। इसे बढ़ाना चाहिए, ताकि धर्म, जाति और वर्ग को विभिन्नताओं को परे रखकर वे एकजुट हो सके।

स्वामी विवेकानंद ने ''समस्त धर्मों की एकता की शिक्षा दी। उन्होंने हिन्दुओं से सच्चा हिन्दू मुसलमानों से सच्चा मुसलमान तथा ईसाइयों से सच्चा ईसाइ बनने को कहा। उन्होंने भारतीय विचारधारा को पश्चिमी लोगों में व्याख्या को और पूर्व तथा पश्चिम में एक पुल को व्यवस्था को। उन्होंने अपने भाषणों तथा लेखों में दीन भाषा का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने राष्ट्रहित सर्वोपरि माना तथा एकजुटता पर जोर दिया।

बंग-भंग विरोधी आंदोलन बंगाल के प्रत्येक वर्ग और राष्ट्रीय नेताओं का कार्य था। आरंभ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे उदारवादी नेताओं ने इसे शुरू किया और बाद में इसकी बागडोर विपिन चन्द्र पाल, अश्विनी कुमार दत्त और अरविंद घोष जैसे उग्रवादी नेताओं के हाथ में आई। इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए बॉयकाट और हड़ताल जैसे शास्त्रों का इस्तेमाल किया गया और वंदेमातरम् गीत से सभी दिषाएँ गूंज उठी। रवींद्र नाथ टैगोर के स्वेदशी गीतों ने जनता की भावनाओं को स्वर दिया। उस समय सारे विरोधों को भूलकर उदारवादी और उग्रवादी नेताओं ने मिलकर कदम बढ़ाया। लगभग विरोधी आंदोलन ने स्वदेषी आंदोलन का रूप धारण (किया) कर लिया और सारी बिखरी हुई भाक्तियाँ इकट्ठी हो गई। बंगाल में होने वाली घटनाओं ने कांग्रेस के कई नेताओं के अंग्रेजों भासन में विश्वास को हिला दिया।

उदारवादी नेता भारतीयों में राष्ट्रीयता और एकता की भावना को जागृत एवं प्रबल बनाना चाहते थे। क्योंकि बिना इन भावनाओं के किसी भी देश की प्रगति व उन्नति होना असंभव है। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने एकता पर जोर देते हुए कहा कि ''क्या भारत की महानता एकता के बिना सम्भव है? पूरे भारत को स्नेह के बंधन में बांधना है ताकि शीघ्र ही भारत की महानता को पहचाना जा सकें।'' इसी प्रकार दादा भाई नौरोजी ने भी कहा कि देश की प्रगति के लिये विभिन्न धर्मों को मानने वाली जनता में एकता का होना अत्यंत आवश्यक है। उदारवादी युगीन नेताओं के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भारत में राष्ट्रीयता एवं एकता की भावना जागृत हुई। उदारवादी नेताओं ने न केवल राष्ट्रवाद की नींव डाली वरन राष्ट्रीय आंदोलन को ऐसे मार्ग पर प्रशस्त किया जिसकी परिगति स्वतंत्रता के रूप में हुई। जब 1877 में इंग्लैड में होने वाली सिविल सिर्विस परीक्षा के लिये आयु सीमा घटा कर 21 से 19 वर्ष कर दी गई तो सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इसके विरूद्ध आंदोलन संगठित किया। उनके अनुसार सरकार ने यह काम जान बूझकर किया था ताकि प्रशासन में ऊँचे ओहदों पर भारतीय न आ सकें। इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य भारत की जनता में एकता की भावना को जन्म देना था। उन्होंने दिखा दिया कि जाति भाषा आदि के भेदों के बावजूद भारतवासी आम राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिये एक साथ मिल सकते है। और एक हो सकते है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत में राजनैतिक जागृति को नया मोड़ दिया। इस संगठन के मंच से देश के सभी प्रतिभाशाली बृद्धिजीवियों ने अपनी न्यायोचित मांगों पर आपस में विचार-विमर्श किया तथा देश में नवचेतना जागृत की तथा देश में एकता को मजबूती प्रदान की।

गाँधीजी सामाजिक एकता पर जोर देते थे। उनका मानना था कि समाज में एकता के बल पर ही समाज में एकजुटता रहेगी। और हम कुछ नया सोच पायेगें। गाँधीजी के द्वारा किये गये हर एक आंदोलन चाहे वह चम्पारण के सत्याग्रह हो या असहयोग आंदोलन या सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन सभी में भारत के लोगों की एकता ही थी जो अंग्रेजों को भारत से बाहर निकलने के लिये मजबूर कर दी। गाँधी जी के भारत छोड़ो आंदोलन ने देश की जनता को एक मजबूत मंत्र दिया और वह मंत्र था करो या मरो का। गाँधी जी के करो या मरो के आह्वान पर पूरा भारत एकजुट हो गया। गाँधीजी के इस आह्वान ने भारत की एकता को एक साथ प्रदर्शित किया।

इस प्रकार भारत की एकता ने अंग्रेजों को भारत से बाहर एकता ने अंग्रेंजों को भारत से बाहर निकालकर यह सिद्ध कर दिया कि भारत एकजुट है और रहेगा। चाहे कितनी भी कुर्बानियाँ क्यों न देनी पड़े। वर्तमान समय में भी भारत की एकता विश्व में चर्चित और प्रसिद्ध है। एकता वह अस्त्र और शस्त्र है जिसके बल पर किसी को भी पराजित किया जा सकता है और कुछ भी हासिल किया जा सकता है। भारत की एकता आज विश्व ने प्रशासनीय हो रही है। एकता के साथ ही हम आज कदम से कदम मिलाकर चल रहे है। अत: एकता सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ है। हमारी नीति ईमानदारी की होनी चाहिए। ईमानदारी से त्याग और समर्पण से ही एकता मजबुत होती है। अत: एकता मनमोहक है तथा एकता आकर्षक है।

अत: इस प्रकार हम यह कह सकते है कि एकता ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वनिष्ठ है। एकता ही अचूक अस्त्र और शास्त्र भी है।

संदर्भ

1. शुक्ल राम लखन-आधुनिक भारत का इतिहास-पृ0 सं0-395
2. वही - आधुनिक भारत का इतिहास- पृ0 सं0-405
3. वही- आधुनिक भारत का इतिहास- पृ0 सं0-405
4. शुक्ल राम लखन - आधुनिक भारत का इतिहास द्वितीय संस्करण- पृ0 सं0-517
5. पाठक डॉ. सुशील माधव - भारत एवं विश्व का इतिहास- पृ सं0-148,175
6. प्रो0 विपिन चन्द्र - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष - पृ सं0-40
7. महाजन विद्याधर - आधुनिक भारत का इतिहास- पृ सं0-733
8. शुक्ल राम लखन - आधुनिक भारत का इतिहास - पृ सं0-288
9. मित्तल डॉ. ए0 के - भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास- पृ सं0-516, 519
10. शुक्ल रामलखन - आधुनिक भारत का इतिहास - पृष्ठ सं0-389
11. शुक्ल रामलखन - आधुनिक भारत का इतिहास - पृष्ठ सं0-394

बिहार में महिला सशक्तीकरण का स्वरूप एवं महिला आरक्षण : चुनौतियां एवं संभावनाएं

डॉ० शशि रंजन कुमार

पी-एच. डी., बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

आधुनिक भारत में चलाए गये समाज सुधार आंदोलनों द्वारा विभिन्न भारतीय महिलाओं के लिए एक नए युग की शुरूआत हुई। इस युग में महिला नेता स्थानीय स्तर पर महिलाओं की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने वाली साबित हुई। स्थानीय स्तर पर महिलाओं की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने वाली साबित हुई। स्थानीय महिलाओं के जुड़ाव से महिला शिक्षा, कामगार महिलाओं के लिए बेहतर जीविकापार्जन, नीतियों के निर्माण पर जोर दिया गया। साथ ही, राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम आंदोलनों की संगठनात्मक गतिविधियां भी चलती रहीं। गांधीजी के नेतृत्व में ऑल इंडिया वूमेन कांफेंस, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़ी। यह लहर इसलिए भी महत्वपूर्ण थी क्योंकि इस लहर के द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन ने महिलाओं को घर की चारदीवारी से निकाल कर सार्वजनिक सरोकार से जोड़ा। इस लहर ने, राष्ट्रीय आंदोलनों की चेतना को अग्रसर किया और गांधी, अंबेडकर इत्यादि नेताओं के साथ मिलकर सहयोग की भावना को बढ़ाया। कई प्रसिद्ध महिला सुधारकों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर अपना सहयोग दिया और भारत की हर महिला को आंदोलन में शामिल करने के लिए प्रेरित भी किया। इन महिलाओं का बलिदान इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा। यह लहर महिलाओं की स्थिति के सांस्कृतिक पुनरुथान के रूप में देखी जा सकती है।

नि:संदेह सुधार आंदोलन के प्रवर्तकों राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, ऐनीबेसेन्ट आदि ने अपनी संस्थाओं के माध्यम से तथा दक्षिण सुधार आंदोलन के प्रबुद्ध नेताओं ने महिलाओं को जो अंधविश्वासों और रूढ़ियों में जकड़ी हुई थी, मुक्ति दिलाने का प्रत्येक सम्भव प्रयास किया था। फलत: महिलाओं की स्थिति में सुधार के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। कुरीतियों और कुप्रथाओं में जकड़ी भारतीय नारी को मुक्ति में आशा दिखाई देने लगी थी परंतु फिर भी उसकी दृष्ठि में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं दिया। अत: महिलाओं ने स्वयं अपने लिए महिला आंदोलन का सूत्रपात किया ताकि अपनी क्षमता और प्रयासों से वह स्वयं के लिए कुछ कर सकें। अत: उन्होंने शांतिपूर्ण महिला आंदोलन का देश में सूत्रपात किया।

धीरे-धीरे भारतीय महिला आंदोलन ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थान बनाया। इस आंदोलन के मूल में दलित, कार्यकारी, श्रमिक, निम्न, मध्यम और उच्च सभी वर्ग की महिलाओं का सहयोग व समर्थन विद्यमान है। यद्यपि उनकी परिस्थितियां अलग-अलग है। किन्तु फिर भी उन्होंने एक-दूसरे की समस्याओं, संघर्षो एवं प्राथमिकताओं की चुनौती को समझा और एक संयुक्त मंच की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

प्रस्तुत शोध-पत्र में स्वातंत्र्योत्तर बिहार में महिला सशक्तीकरण का स्वरूप एवं इसमें महिला आरक्षण के प्रभावों का फलाफल विश्लेषित करते हुए इस दिशा की चुनौतियां एवं संभावनाओं की उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

शब्द कुंजी- पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक बंधन, सशक्तीकरण, वैश्वीकरण, पंचायतीराज व्यवस्था, आत्मनिर्भरता।

परिचर्चा

महिला सशक्तीकरण का स्वरूप

महिला सशक्तीकरण बहुआयामी और बहुमुखी होता है। यह पुरूष निरपेक्ष नहीं, बल्कि सापेक्ष विमर्श होता है और इसके लिए महिलाओं को पुरूषों से भी आगे निकलना होगा। महिला सशक्तीकरण से अभिप्राय ऐसी शक्ति से है जो महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और कानूनी रूप से सोचने, समझने और जीने की स्वतंत्रता देती है। सशक्तीकरण का संबंध महिलाओं के जीवन के आत्म-निर्भर से है। सशक्तिकरण का संबंध महिलाओं के जीवन के आत्म-निर्णय से है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया समाज को पारंपरिक पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागरूक बनाती है। महिला सशक्तीकरण, भौतिक या आध्यात्मिक, शारीरिक या मानसिक, आंतरिक या बाहरी सभी स्तरों पर महिलाओं में आत्मविश्वास जागृत करता है। महिला सशक्तीकरण में महिला की आत्म अभिव्यक्ति और उनके व्यक्तित्व की आत्मा सम्मिलित है। सशक्तीकरण के द्वारा महिला अपने अंदर एक चेतना, संवेदनशीलता, सकारात्मक छवि, रचनात्मकता, पूर्णता महसूस करती है। महिलाओं की स्थिति में सुधार तथा उनके सशक्तिकरण के विषय में सर्वत्र चिंतन, मनन तथा जागरूकता आज के समय की आवश्यकता भी है और जरूरत भी।

महिला सशक्तीकरण आज के समय का सबसे ज्वलंत विषय और आज के समाज की सबसे बड़ी चुनौती है क्योंकि पुरूषों के मुकाबले महिलाए ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा कार्य करने वाली और आर्थिक रूप से पुरूष पर निर्भर करने वाली और सांस्कृतिक बंधनों की जंजीरों में बंधी होती है। किसी भी देश की आर्थिक गतिविधि में महिलाओं की उचित भागीदारी के बिना सामाजिक प्रगति की आशा रखना गलत है। पैलिनी थूराई के अनुसार, 'महिला सशक्तीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के विकास की प्रक्रिया में राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा महिलाओं को पुरूषों के बराबर मान्यता दी जाती है।' लीला मीहेन के अनुसार, 'महिला सशक्तीकरण निडरता, सम्मान और जागरूकता-तीनों शब्द महिला सशक्तीकरण में सहायक है। यदि डर से आजादी महिला सशक्तीकरण का पहला कदम है, तो तेजी से न्याय से उसकी आवश्यकता पूरी हो सकेगी। यदि महिलाओं को वास्तव में न्याय दिलाना है तो उनकी जांच-परख प्रणाली को और अधिक कार्य कुशल बनाना होगा तथा अराजकता फैलाने वाले तत्वों को सजा देनी होगी।' महिला सशक्तीकरण का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति और उनमें आत्मविश्वास का संचार करना है। क्या वास्तव में महिलाएं अशक्त है? और कौन इतना शक्तिशाली है जो उसे शक्ति प्रदान कर सके। नारी पुरूष को जन्म देती है, संस्कार देती है, पालन-पोषण करती है। ऐसे में पुरूषों को नारी जाति का सम्मान करना चाहिए। नारी पुरूष की सहगामिनी और सहचरी होती है। इसलिए दोनों को बराबरी का हक देना चाहिए। समकालीन विश्व में नारी को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक अधिकार दिए बिना बेहतर जीवन की कल्पना भी नही की जा सकती। क्योंकि महिलाएं विश्व की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है। संभवत: राष्ट्र के विकास के कार्य में महिलाओं की भूमिका और योगदान को सही दृष्टिकोण से समझकर ही राष्ट्र निर्माण की कल्पना की जा सकती है। देश की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व देश की प्रगति के लिए बेहद अहम है।

जहां वैश्वीकरण से भारत की संस्कृति में बहुत अधिक बदलाव आया है। वहीं महिलाओं की स्वतंत्रता, अस्तित्व और रोजगार में बड़े पैमाने पर विस्तार की संभावनाएं बढ़ी है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों, बहुराष्ट्रीय बैंकों, अंतर्राष्ट्रीय होटल उद्योग, एयरलाइन, इत्यादि क्षेत्रें में महिलाओं के अत्यधिक योगदान के कारण भारत की अर्थव्यवस्था में बड़े स्तर पर बदलाव देखा गया है। भारतीय स्त्री अपनी परंपरागत कार्य संस्कृति से बाहर निकलकर आधुनिक और नए उद्देश्यों और विकासात्मक कार्यो में बढ़-चढ़ कर अपना योगदान दे रही है। परिवर्तन संसार का नियम है और परिवर्तित संसार में महिलाओं की स्थिति में भी तेजी से बदलाव हो रहा है। अपने स्तर पर आज हर महिला अपने जीवन की नई से नई चुनौतियों को स्वीकार कर आगे बढ़ रही है।

भारत में बैंकिंग, आईटी, मेडिकल, शिक्षा, वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी, अनुसंधान, इंजीनियरिंग, बिजनेस, खेल, उद्यमिता हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी योग्यता का लोहा मनवाया। देशभर में लड़कियों के दसवीं, बारहवीं की परीक्षा के नतीजे लड़कों के मुकाबले ज्यादा अच्छे रहते है। निजी कंपनियो के भारत में आ जाने के बाद आर्थिक उदारीकरण में भी महिलाओं के रोजगार और व्यवसायों के अवसरों में अधिक बढ़त देखी गई है।

महिलाएं नित नए शिखरों को छू रही है। आज महिलाएं बस में कंडक्टर और ऑटों चालक भी है। और पेट्रोल पंप पर भी काम कर रही है। मुंबई में, विशेषकर महिलाएं खाने का डिब्बा बनाने और ऑफिस पहुंचाने का कार्य भी कर रही है। इनके अलावा, प्रीति कुमारी पश्चिम रेलवे की पहली महिला ड्राईवर है। वहव पहली बार अक्टुबर, 2010 में मोटरवूमेन बनी। उनसे पहले सुरेखा यादव

एशिया की पहली महिला मोटरवूमेन बन चुकी थी। वह मध्य रेलवे की लोकल ट्रेन चलाती है। सुशीला बेन शाह, मुंबई में महिलाओं की टैक्सी सेवा शुरू करने वाली पहली महिला थी। जिन्होंने 100 महिला ड्राईवरों को लाइसेंस के लिए आवेदन पेश किए थे। वीरा कैब्स की प्रीति शर्मा मेनन भी महिला ड्राईवरो को काम देनो में सहायता दे रही है इसके अलावा, मुंबई में बेस्ट बसों में और दिल्ली की कलस्टर बसों में महिला कंडक्टर कार्यरता है। आज के समय में महिलाओं की व्याख्या शारीरिक नहीं, उनके व्यक्तित्व, योग्यता, हौसलों, आत्मनिर्भरता, पूर्ण स्वायत्ता परिप्रेक्ष्य और स्वावलंबी के रूप में होनी चाहिए।

पंचायती राज व्यवस्था का अतीत और वर्तमान

स्वाधीनता के 70 वर्षों के बाद भी हमारी प्रशासनिक संस्कृति, स्थानीय स्वशासन के प्रति साम्राज्यवादी अविश्वास को ढो रही है।

प्रशासन में जन-भागीदारी एवं समग्र विकास के लिये स्थानीय स्वशासन सबसे उत्तम व्यवस्था है, इस बात को वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया जाता है। इसीलिये जब 23 दिसम्बर, 1992 को 73वें संविधान संशोधान विधेयक के जरिये संविधान में पंचायतों की खास विशेषताओं को शामिल किया गया तो इसी एक ऐतिहासिक कार्य के रूप में प्रशंसा की गई।

पंचायतों को एक संवैधानिक निकाय का दर्जा दिया जाय या नहीं, संविधान के संस्थापकों के सामने यह एक बड़ा मुद्दा था। हालाँकि महात्मा गाँधी पंचायतों के सबसे बड़े समर्थक थे लेकिन यह निराशा की बात है कि पंचायतों का जिक्र सिर्फ संविधान के प्रस्तावना में हुआ था। संविधान में स्थान पाने के लिये पंचायतों को 43 वर्षों का समय लगा।

आमतौर पर ऐसा समझा जाता है कि पंचायतें संविधान के हासिये पर खड़ी निकाये हैं। इसका मुख्य कारण राजनीतिक है। जब कोई राजनैतिक पार्टी सत्ता से बाहर होती है तो वह पंचायतों के पक्ष में खड़ी हो जाती है और सत्ता प्राप्त करने के बाद वह इन निकायों को कमजोर करने में लग जाती है।

कांग्रेस के गठन के तीन वर्ष पूर्व 1882 में वाइसराय रिपन के स्थानीय स्वशासन के प्रस्ताव में स्थानीय स्तर पर ही नहीं राष्ट्रीय स्तर पर स्थानीय स्वशासन की कल्पना की गई थी। भारत की स्वतंत्रता की प्राप्ति तक कांग्रेस लगातार दृढ़तापूर्वक स्थानीय स्वशासन के लिये संघर्ष करती रही। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी 1920 से 1947 तक ग्रामीण पंचायतों के हाथ में स्वशासन एवं वास्तविक प्रशासनिक शक्ति के लिये लगातार कार्य करती रही। गाँधी के नेतृत्व में ग्राम-स्वराज राजनैतिक विमर्श के केन्द्र में था। लेकिन जब भारत को स्वाधीनता मिल गई उसके बाद कांग्रेस पंचायती राज के प्रति सिर्फ दिखावा करती रही।

जवाहरलाल नेहरू ने ही पंचायती राज नाम गढ़ा था। 1957 से 1664 तक पंचायती राज को दृढ़ आधार प्रदान करने के लिये एस. के. डे जैसे सहयोगियों के साथ मिलकर एक जेहादी की तरह संघर्ष करते रहे। उन्हें इस बात का पता था कि आमतौर पर उनका दल पंचायतों के हाथ में प्रशासनिक ताकत देने के प्रति उनकी तरह उत्साही नहीं था और कांग्रेस के अन्दर प्रशासन के विकेन्द्रीकरण का बड़ा भारी विरोध था। उनकी मृत्यु के बाद बिना किसी विरोध के पंचायती राज एवं सहयोग वाली मंत्रालय को एक झटके में समाप्त कर दिया गया।

1977 में जब पश्चिम बंगाल में वाल मोर्चा सत्ता में आया तो स्थानीय प्रशासन ने एक छलांक लगाया। पश्चिम बंगाल के मार्क्सवादी नेताओं द्वारा पंचायती राज को नया जन्म देने के पीछे इ.एम.एस. नम्बूदरी पाद की प्रेरणा थी। केरल के पूर्व मुख्यमंत्री की समझ थी कि जनतंत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की जरूरत है और इस सिलसिले में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की जरूरत है और इस सिलसिले में ''चौखम्बा'' जनतंत्र स्वीकार किया जाना चाहिए। वह पूरी तरह राम मनोहर लोहिया के चौखम्बा राज का समर्थन करते थे जो गाँव, जिला, राज्य से होकर संघीय प्रशासन पर आधारित होगा।

नेहरू के अलावे अगर किसी दूसरे कांग्रेसी प्रधानमंत्री ने पंचायती राज के सिलसिले में कारगर कदम उठाया तो वह राजीव गाँधी थे। अपनी यात्राओं के दौरान उन्होंने महसूस किया कि जिला प्रशासन अकर्मण्य एवं कभी-कभी निर्दयी भी है क्योंकि यह प्रतिनिधि मूलक संस्था नहीं है। इसे देखते हुए उन्होंने 15 मई 1989 को पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिये 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक लाया। लेकिन यह विडम्बना ही है कि जब कर्नाटक में कांग्रेस सत्ता में आयी तो इसने पंचायती राज के अन्दर से कमजोर करने की कोशिशें शुरू कर दी। दिग्विजय सिंह को छोड़कर जिन्होंने 1994 में 73वें संविधान संशोधन कानून के मातहत पहला पंचायत चुनाव कराया। कांग्रेस शासित कोई भी राज्य पंचायतों के हाथ शक्ति देने के लिये प्रमुख भूमिका निभाने के लिये आगे नहीं आया।

राजीव गाँधी के बाद संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के 2004 में सत्ता में आने के बाद पंचायती राज मंत्रिमंडल का गठन किया गया। मणिशंकर अय्यर के नेतृत्व में इस मंत्रिमंडल ने राज्य एवं निचले स्तरों पर उन विचारों एवं कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जिससे पंचायतों को स्वशासन की संस्था बनाया जा सके और विकेन्द्रित प्रशासन को नई गति प्रदान की। इसके बावजूद हम देखते हैं कि राजनैतिक नेतागण शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अन्दर से कमजोर करने में लगे रहते है। इस सिलसिले में एम. एल. दांतेवाला की टिप्पणी गौर करने लायक है कि राजनीतिज्ञों की लंबी-चौड़ी चाहे जितनी भी बातें हो लेकिन ये राजनीतिज्ञ अपने प्रतिद्वन्द्वी राजनैतिक ताकतों के उदय से भयभीत है।

जब सभी तरह के राजनैतिक दल स्थानीय स्वशासन में विश्वास नहीं करते हैं तो इससे किन तत्वों को खुशी मिलती है? गाँव से लेकर उच्च स्तरों के नौकरशाह ही इससे सबसे ज्यादा खुश है।

वर्ष 1882 से ही नौकरशाह स्थानीय स्वशासन के आदर्शों को अन्दर से कमजोर करने में लगे हुए है। 66 वर्षों की आजादी के बावजूद हमारी प्रशासनिक संस्कृति आज भी साम्राज्यवादी शासन प्रणाली के तौर-तरीके को अपनाए हुए है और स्थानीय प्रशासन के प्रति अविश्वास का भाव आज भी कायम है। आज भी समाहर्त्ता (जिला पदाधिकारी) प्रखंड विकास पदाधिकारी एवं जनसेवक राज कायम है।

नेहरू द्वारा 11 अक्टूबर 1959 में दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश में उद्घाटित पहले पंचायत शादनगर का 1995 में अध्ययन किया गया। पूछा गया कि आखिर पंचायतें क्यों नहीं कार्य करती है। एक बूढ़े आदमी ने बताया कि असल में सरकारी अधिकारी जनप्रतिनिधियों के हाथों में अधिकार सौंपना नहीं चाहते हैं। इस काम में वे राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर पूरी तरह मिले हुए है। नौकरशाहों एवं राजनीतिज्ञों के इस मानसिक अवस्था को बदलने में हम नाकामयाब रहे हैं और इसीलिये पंचायती राज एक दिवास्वप्न बनकर रह गया है।

पंचायती राज संस्थाओं का स्थानीय स्वशासन संस्था में बदलने की अयोग्यता को आसानी से समझा जा सकता है। जैसा कि एनी बेसेन्ट ने 1917 में कोलकाता में कहा था कि एक बच्चे का हाथ-पैर बाँधा दे और उसके बाद उसे चलना सीखने के लिये छोड़ दे, अगर बच्चा सफल नहीं होता है तो बच्चा दोषी है। स्वतंत्र बच्चा गिरता-पड़ता चलना सीख लेगा, लेकिन हाथ-पाँव बँध बच्चा लकवा-ग्रस्त हो जायगा और चलना नहीं सीख पायेगा।

बिहार में स्थानीय स्वशासन एवं महिला आरक्षण

21 वीं सदी के प्रारंभिक दशक में बिहार में हुए सत्ता परिवर्तन ने इस दिशा में निःसंदेह ऐतिहासिक कदम उठाया है। बिहार की सरकार ने पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान कर दिया।

बिहार में महिलाएं एक खामोश क्रांति को अंजाम दे रही हैं। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने आधी आबादी को पंचायतों में पचास फीसदी आरक्षण की व्यवस्था की तो समाज की तस्वीर ही बदलने लगी। विधानसभा चुनाव में 53 फीसदी महिलाओं ने वोट डालकर नई जागृति का इजहार किया और अब महिलाओं ने पूरे सूबे में सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जंग छेड़ दी है। शराब और जुए के खिलाफ महिलाओं के आंदोलन शुरू हो गए हैं। महिला जनप्रतिनिधि गांवों में शिक्षा के प्रसार में भी अहम भूमिका निभा रही हैं।

महिलाएं जब बड़ी संख्या में स्थानीय निकायों और पंचायतों में चुनकर आईं तो उन्हें कई मोर्चों पर जंग लड़नी पड़ी। पतियों के प्रभाव से बाहर निकलना मौजूदा सामाजिक संरचना में एक मुश्किल काम था इसलिए एमपी (मुखिया पति) और एसपी (सरपंच पति) जैसे अघोषित पद पैदा हो गए। महिलाएं पंचायतों के पदों पर काबिज हुई लेकिन असली सत्ता उनके पतियों या करीबी रिश्तेदारों के हाथों में सिमटने लगी। महिला जनप्रतिनिधियों के पति सरकारी बैठकों में भी हिस्सा लेने लगे, लेकिन अब स्थिति बदली है।

इस मामले में मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की ही पहल पर सुधार हुआ। महिला जनप्रतिनिधियों की जगह उनके पतियों और रिश्तेदारों के बैठकों में शामिल होने पर पाबंदी लगा दी गई। नतीजतन बदलाव का असर दिखने लगा। विधानसभा चुनाव में कई स्थानों पर ऐसे उदाहरण मिले जब महिलाओं ने पतियों के इशारे पर वोट डालने से इनकार कर दिया। नीतीश को पिछले विधानसभा में मिले जबर्दस्त जनादेश में महिलाओं की भूमिका अहम रही। पंचायतों में भी महिला जनप्रतिनिधि खुद फैसले लेने लगी हैं।

बिहार में 8463 पंचायतें हैं। इतनी ही ग्राम कचहरियाँ हैं। इसके अलावा 531 पंचायत समितियाँ और 38 जिला परिषद हैं जिनमें महिलाओं के लिए पचास फीसदी सीटें आरक्षित हैं। पंचायत चुनाव में लगभग दो लाख जनप्रतिनिधि चुने जाएँगे। मुखिया, सरपंच, पंचायत समिति सदस्य और प्रखंड प्रमुख से लेकर जिला परिषद सदस्य तक के चुनाव में महिलाएं बतौर प्रत्याशी शिरकत करती हैं।

पिछले चुनाव में महिलाओं ने अनारक्षित पदों पर भी जीत का परचम लहराया था। प्रदेश में 1881 महिलाओं ने पुरुषों को उन सीटों पर हराया जो उनके लिए आरक्षित नहीं थीं। इस तरह 55 फीसदी सीटों पर महिलाओं ने कब्जा जमाया था।

वर्तमान में पंचायतों को 31 विभागों के काम सौंपे गए हैं जिसमें सड़क निर्माण से लेकर पशुपालन तक की योजनाएं शुमार हैं। इन योजनाओं के कार्यान्वयन में महिला जनप्रतिनिधि अहम भूमिका अदा कर रही हैं। विकास योजनाओं में भूमिका के कारण बिहार में महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ा है।

नीतीश ने पंचायतों में महिलाओं को पचास फीसदी आरक्षण की व्यवस्था करते वक्त भावी तस्वीर की झलक महसूस कर ली थी। किसी भी घर को संवारने में महिलाओं की भूमिका अहम होती है। इसी खूबी को समझते हुए नीतीश ने महिलाओं को पंचायतों में आधी भागीदारी सौंपी। इसके अच्छे असर दिखे। महिला जनप्रतिनिधियों ने शौचालय निर्माण जैसी बुनियादी जरूरतों पर जोर दिया और अब सूबे के अधिकांश गांव इस सुविधा से लैस हो गए हैं। मधुबनी, मोतिहारी, गोपालगंज, बक्सर जिलों की पंचायतों में शौचालयों का निर्माण के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

नीतीश ने अपने कार्यकाल की शुरुआत से ही बालिका शिक्षा पर जोर दिया। बालिकाओं के लिए साइकिल योजना के उत्साहजनक परिणाम आए और स्कूलों में लड़कियों की संख्या बढ़ी। नीतीश की प्रेरणा से पंचायतों की महिला जनप्रतिनिधियों ने भी इसमें अहम भूमिका निभाई है। हालांकि महिला जनप्रतिनिधियों में शिक्षित महिलाओं की संख्या कम ही है लेकिन कई पंचायतों ने बच्चों को स्कूल भेजने की मुहिम चलाई जिसके अच्छे परिणाम सामने आए हैं।

महिला जनप्रतिनिधियों ने भ्रष्टाचार पर अंकुश और नशामुक्ति के लिए भी अभियान शुरू किया है। कैमूर जिले के अघौरा, मधुबनी के बनकट्टा, पूर्णिया के बेलौरी और बेगूसराय के मटिहानी पंचायतों में जनप्रतिनिधियों की पहल पर महिलाओं ने अवैध शराब की फैक्ट्रियां बंद कराई। जागरूक महिलाओं ने कई स्थानों पर शराब की दुकानें ध्वस्त कीं। इतना ही नहीं पंचायतों ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए टिकुली और चूड़ी निर्माण का प्रशिक्षण भी शुरू किया है।

पंचायतों में महिलाओं को मिले आरक्षण ने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जंग को प्रोत्साहित किया और महिला सशक्तीकरण का अभियान भी जोर पकड़ा। इन सफलताओं ने महिलाओं में नया जोश भरा है।

हालांकि इस बदलाव के बावजूद अब भी महिला जनप्रतिनिधियों को पूरे तौर पर सभी अधिकार हासिल नहीं हो पाए हैं। महिला विधायक बीमा भारती के साथ कुछ ही दिनों पहले उसके पति ने मारपीट की और उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। जब महिला विधायक के सामने इस प्रकार की दिक्कतें आती हैं तो पंचायत स्तर की महिला जनप्रतिनिधियों की समस्याएं सहज ही समझी जा सकती हैं। इस्लाइमपुर के धोबाडीह पंचायत की मुखिया मालो देवी की अपराधियों ने हत्या कर दी। महिलाओं के बीच आई जागरूकता को समाज का सुविधाभोगी वर्ग पचा नहीं पा रहा है।

नतीजतन कई स्थानों पर महिला जनप्रतिनिधियों को विरोध भी झेलना पड़ा है। सरकारी अफसरों में भी महिला जनप्रतिनिधियों की योग्यता को लेकर संदेह आम बात है। नतीजतन महिला जनप्रतिनिधियों को कई मुश्किलें झेलनी पड़ती हैं। रिश्तेदार और पंचायत सचिव महिला जनप्रतिनिधियों को मुहर की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं। कागजातों और चेकबुक पर महिला जनप्रतिनिधियों से सिर्फ हस्ताक्षर करने की उम्मीद की जाती है। दबंग लोग कई स्थानों पर इन्हें झूठे मामलों में फंसाते रहे हैं। नवादा के लोहरापुर और मधुबनी के औंसी बभनगामा में ऐसी घटनाएं सामने आई। इन बाधाओं के बावजूद महिला जनप्रतिनिधियों ने खुद फैसले लेने और बेहतर तरीके से स्थानीय सरकार चलाने में मिसाल कायम की है।

जब स्वतंत्र-सोच के परिवारों की महिलाएं चुनाव-प्रचार में जोर-शोर से लग गई तो इन मालिक लोगों को अपनी औरतों को वोट मांगने के लिए बाहर भेजना पड़ा। घूंघट तो सिकुड़े ही महिलाओं की अपनी पहचान भी बनी।

अस्सी के दशक में शिवमूर्ति की एक कहानी तिरिया चरित्तर चर्चित रही जिसमें ग्राम पंचायत ने शिउली नाम की औरत को व्यभिचारिणी घोषित कर उसके माथे को दाग दिया था, जबकि बलात्कारी उसका ससुर था। नब्बे के दशक में मैत्रेयी पुष्पा के चर्चित

उपन्यास चाक में नायिका सारंग सारी सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ती हुई प्रधान का चुनाव जीतकर दिखाती है। शिउली से सारंग तक का यह चित्रण नारी के अशक्त से सशक्त की ओर बढ़ने का संकेत है। मैत्रेयी पुष्पा का यह उपन्यास समाकालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवेश में नारी सशक्तीकरण को नये रूप और अर्थ में ढालने का प्रयास है। इक्कीसवीं सदी के बिहार की औरतें भी अपने आप को इस नये रूप में ढालने के लिए तैयार हुईं। पंचायत-राज कानून लागू हुआ। विलम्ब से ही सही सन् 2001 में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण तो मिला, पर मुखिया, प्रखंड-प्रमुख अथवा जिला परिषद् अध्यक्ष आदि पदों के लिए कोई आरक्षण नहीं दिया गया, बल्कि इन्हें एकल-पद घोषित कर दिया गया।

राजनीतिक सत्ता के बदलाव के साथ सन् 2006 में बिहार में पंचायत के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा के साथ चुनाव सम्पन्न हुए। निश्चित रूप में नई सरकार की इस पहल ने महिला-सशक्तीकरण की आशा को बल प्रदान किया। इस चुनाव में महिलाओं के बीच काफी उत्साह देखने को मिला। ग्रामीण समाज में एक हलचल पैदा हो गई। एकल पदों पर आरक्षण ने ग्रामीण महिलाओं में ऐसा उत्साह भर दिया कि वे चुनाव की तैयारी, उम्मीदवारी और प्रचार को लेकर घर-आंगन, गली-मोहल्लों और खेत-खलिहानों में इस पर चर्चा करती नजर आई।

आरक्षण के प्रावधान के अनुसार कुल 4232 मुखिया और इतनी ही सरपंच चुनी जानी थीं। लगभग 2 लाख 32 हजार वार्ड सदस्यों पंचों तथा 11,612 पंचायत समिति और 1162 जिला परिषद् सदस्यों में आधी संख्या महिलाओं की होनी थी। चुनाव परिणाम इससे अधिक संख्या में महिलाओं के पक्ष में गये। इस स्तर पर महिलाओं का राजनीतिकरण-देश के क्रिया-कलापों में उनकी भूमिका को चिन्हित करना साबित हुआ। घर परिवार चलाने वाली महिलाएं पंचायत भी बखूबी चला पाने में समर्थ हैं-यह बिहार के बाहर महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान की महिलाएं सिद्ध कर चुकी हैं। परंतु बिहार में इन चुनावों में पितृसत्तात्मक सोच और मूल्यों की दखलंदाजी खुलकर सामने आई। बिहार का ग्रामीण सत्ताधारी वर्ग यानी जमीन्दार, कुलक एवं दबंग अब अपने बदले अपने परिवार की औरतों को चुनाव लड़वाकर परदे के पीछे से सत्ता पर काबिज होने का खेल खेलने लगे। जो लोग अपनी महिलाओं को जुलूस-प्रदर्शन-धरना आदि में नहीं जाने देते थे तथा ऐसी महिलाओं पर फब्तियां कसते थे, आज अपने परिवार की औरतों को चुनाव में खड़ा कर रहे हैं। परन्तु इनकी सामंती पुरूषवादी सोच ने उन्हें चारदीवारी से बाहर आने की इजाजत नहीं दी। बड़े घरों की औरतें वोट मांगने कैसे जा सकती हैं? यह उनका तर्क होता था। परन्तु जब स्वतंत्र-सोच के परिवारों की महिलाएं चुनाव-प्रचार में जोर-शोर से लग गईं तो इन सामंती सोच के लोगों को अपनी औरतों को वोट मांगने के लिए बाहर भेजना पड़ा। घूंघट तो सिकुड़े ही महिलाओं की अपनी पहचान भी बनी। किसी की घरवाली अथवा किसी की महतारी के सम्बोधन के स्थान पर अब वे सुखिया देवी, हीरामणी, लीलादेवी, सीता देवी आदि नामों से पुकारी जाने लगीं। उनकी अपनी पहचान बनी।

यही नहीं, महिलाओं को अपने मुद्दे भी समझ में आने लगे। गांव में अस्पताल, स्कूल, सड़क, पानी से लेकर विकास जैसे मसले उनकी जुबान पर चढ़ गये। रोजी-रोटी का सवाल प्रमुख होकर उभरने लगा। महिलाओं पर बढ़ती हिंसा, उत्पीड़न... के विरोध में स्वर उठने लगे।

सन् 2006 में बिहार में महिलाओं की इस उथल-पुथल ने उनकी मुक्ति के दरवाजे पर एक दस्तक अवश्य दी है। यह दरवाजा कब खुलेगा, यह प्रश्न अभी बरकरार है। चुनाव के बाद गांधी समिति की एक कार्यशाला में चयनित महिलाओं ने जो अनुभव सुनाए उनसे क्षणिक निराशा होती है। इन महिलाओं के घर के पुरुषों ने उनकी तरफ से शपथ ली तथा पंचायत का काम-काज भी संभाल लिया। औरतों की पारिवारिक जिम्मेदारी जस की तस रही। बच्चे पालना, खाना पकाना, खेत-खलिहान और पशुओं की देखभाल सब कुछ पहले जैसा ही रहा। उन्हें मीटिंग तक में जाना मयस्सर नहीं हुआ। पंचायत चुनाव उनके पतियों के लिए अपना रूआब-रूतबा बढ़ाने का अवसर बन गया। उनकी नजर तो विकास के नाम पर मिलने वाली रकम पर रहती है। अंग्रेजी के एक राष्ट्रीय दैनिक की एक खबर के अनुसार पश्चिमी चम्पारण और बेतिया की जिला परिषदों में चयनित महिला सदस्यों के स्थान पर उनके पतियों ने मीटिंग में शिरकत की-भाषण भी दिए। विडंबना यह है कि इन लोगों को पार्षद-पति कहकर सम्बोधित किया गया।

पिछले कुछ सालों में-सशक्तिकरण की 'थीम' पर कई फिल्में बनी। 'बसुमती की चिट्टी' जैसी डाक्यूमेण्ट्री 'हू-तू-तू', 'गॉडमदर' और 'सत्ता' जैसी फिल्मों के माध्यम से हिंदी सिनेमा में नारी-शक्ति के राजनीतिक उदय की दस्तक सुनाई दी। दूसरी ओर मिर्च-मसाला, मृत्यु-दंड और दमन में संगठन की शक्ति को स्थापित किया गया तथा पितृसत्ता को तोड़ने का प्रयास हुआ। जाहिर है कि औरतों के बढ़ते सशक्त कदमों की पदचाप रचनात्मक कृतियों-कहानी, उपन्यास और सिनेमा में सुनाई देने लगी है।

यह यूं ही नहीं है कि सानिया मिर्जा या शबाना आजमी-कठमुल्लों के फतवे और प्रतिबंधों को मानने से इंकार कर रहीं हैं। मुस्लिम समाज की महिलाएं भी राजनीतिक सशक्तीकरण के लिए छटपटाहट महसूस कर रही हैं। मुस्लिम औरतों का वोट देने जाना, फोटो-पहचान पत्र बनवाना, चुनाव लड़ना आदि मुस्लिम समाज में पर्दा अर्थात् चहार-दीवारी को तोड़कर स्वतंत्र होने की कसमसाहट की ओर इशारा है।

प्राय: हर क्षेत्र में आज महिलाएं पुरुषों को चुनौती दे रही हैं। उनसे बेहतर कर रही हैं। देश के विभिन्न परीक्षा परिणाम इसके साक्षी हैं। फिर भी आज क्यों औरतें स्वयं को असुरक्षित, परनिर्भर और कमजोर महसूस करने लगती हैं? एक के बाद एक अनेक घटनाएं-शाहबानो के हक, रूपकुंवर सती कांड, भंवरी देवी बलात्कार, शिवपतिया और मुखली की निर्वस्त्र परेड, शिल्पी जैन, नैना साहनी, प्रियदर्शनी मट्ट, जेसिका लाल जैसे अनगिनत कांड हमारे सामने प्रश्न खड़े करते हैं। शायद इसीलिए औरत के हक में खड़ी एक सशक्त आवाज तसलीमा नसरीन को औरतों तथा प्रगतिशील पुरुषों का समर्थन भी नहीं मिल पा रहा है। अनेक बिहारी लड़कियां भी पावरविमेन बनने के लिए देश-विदेश में संघर्षरत हैं। परन्तु दूसरी ओर वापस-घर के सामंती मूल्य अपना पावर दिखाने से नहीं चूकते।

हालांकि इन सभी पितृसत्तात्मक मूल्यों को तोड़ने की मुहिम खुल चुकी है। खेत-खलिहानों में जमींदारों, लठैतों और सवर्णों के खिलाफ लगातार संघर्ष करती दबी-कुचली दलित महिलाएं अपनी पहचान बना रही हैं। यही है असली फेमिनिज्म, जो तेजी से उभर रहा है। नारीवाद का अर्थ केवल देह या कोख पर अधिकार मात्र नहीं है बल्कि पितृसत्ता के मजबूत चक्रव्यूह को तोड़ना है जो प्रच्छन्न तरीके से औरत को घेरे हुए है। संघर्ष की आग में तपकर निकली निम्न वर्ग की औरतों में जो आत्म-विश्वास देखने को मिल रहा है, वही सोच मध्यम वर्ग की महिलाओं में जब तक प्रवेश नहीं करेगी-पुरूषवादी सोच परास्त नहीं हो सकेगी।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पंचायतों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण उनकी मुक्ति द्वार के खुलने जैसा है। अब आवश्यकता है ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा के माध्यम से एक राजनीतिक समझ का विकास करने की। उस सोच से लड़ना जो उनकी देह पर हमला कर उनके मनोबल को तोड़ती है। बलात्कार, हिंसा, डायन-चुड़ैल कहकर प्रताड़ित करना ऐसे हथकंडे हैं जिन्हें औरतों की ताकत को तोड़ने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

हरियाणा की एक पंचायत में एक महिला प्रधान का बाल पकड़कर पिटाई और मध्य प्रदेश में शूद्र महिला प्रमुख को झंडा नहीं फहराने देना और उस स्थान को अपवित्र कहकर धुलवाना जैसी सवर्ण मानसिकता के विरूद्ध संघर्ष नारी मुक्ति अथवा सशक्तिकरण का रास्ता खोलेगा। बिहार की महिलाओं की मुक्ति संघर्षों से होगी, आरक्षण उसमें उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

निष्कर्ष

इस सृष्टि का निर्माण स्त्री के द्वारा हुआ है। ईश्वर ने भी स्त्री को एक अद्‌भुत शक्ति प्रदान की है जो कि पुरूषों को नहीं दी गई। स्त्री के अंदर एक जन्मदायिनी शक्ति के साथ-साथ सहनशीलता, लगन, मनोबल, सौदर्य, अनुभव, पुरूषों के मुकाबले अधिक होता है। जब से सृष्टि का निमार्ण हुआ है, तब से स्त्री और पुरूषों के बीच शक्ति संतुलन का खेल जारी है। इसमें कभी पुरूष अपनी शारीरिक शक्ति के बलबुते पर आगे रहे तो कभी स्त्री अपनी मान, मर्यादा, सहनशीलता या जन्मदाता के रूप में पुरूषों से आगे रही है। लेकिन आज के समय में अपनी निरंतरता, लगन और चेतना द्वारा स्त्रियां समाज में पुरूषों से आगे निकलती जा रही है। पुरूषों ने ऐसे नियम और संस्कारों से स्त्रियों को बांध दिया था जिसके चलते स्त्रियों का संसार बहुत ही सीमित रहा गया था। परंतु आज के समय में स्त्रियां अपनी रचनात्मकता और विकसित सोच के द्वारा अपनी सीमित दायरों को तोड़कर आगे निकल गई है। समाज में ऐसा कौन सा क्षेत्र है जहां महिलाओं ने अपनी योग्यता और दक्षता का परिचय न दिया हो। बदलते समय के साथ जहां मनुष्य ने संसार में अनेक वस्तुओं का अविष्कार किया है, वहीं महिलाओं ने भी अपने परंपरागत सीमित क्षेत्रें से बाहर निकलकर अपनी योग्यता का परिचय दिया है। परिवार और समाज की जिम्मेदारियों को बखूबी निभाते हुए उन्होंने अपने अन्य लक्ष्यों की पूर्ति की है। हर क्षेत्र में अपने प्राफेशनलिज्म को बनाए रखा है। चाहे शिक्षा का हो या नर्सिंग का क्षेत्र, चाहे चांद पर जाने की बात हो या समुंद्र के इंग्लिश चैनल का पार करने की, कम्प्यूटर में महारत हासिल करनी हो या न्यायालय की सर्वोच्च अधिकारी बनने की, कविता का जिक्र हो या फैशन डिजानिंग का, महिला आज हर क्षेत्र में सफल है। आज के समय हम महिला सशक्तीकरण की बात करते है। हम अपने आप से पूछते है कि क्या भारत कभी महिलाओं को सशक्त कर पाएगा? या नहीं? सरकार की विभिन्न योजनाओं और नीतियों के तहत बहुत सारी ग्रामीण और अर्द्ध ग्रामीण महिलाओं को लाभ पहुंचा है। और शहरी महिलाओं को विकास के

सुअवसर भी प्राप्त हुए है। परिवर्तन महिलाओं की सोच में, जीवन में परिवार में और मानसिकता में हुआ है जिसका सीधा प्रभाव महिलाओं के समकालीन जीवन में देखा जा सकता है। एक तरफ जहां महिलाओं ने पहले स्वयं को बदला फिर अपनों को बदला और अब अपने आस-पास और अपने से संबंधित महिलाओं के जीवन की दिशा को भी सकारात्मक सोच देने के लिए अग्रसर है। महिलाओं ने अपनी रचनात्मकता और एकाग्रता के बलबूते पर समाज को एक नई दिशा दी है।

जहां वैश्वीकरण से भारत की संस्कृति में बहुत अधिक बदलाव आया है। वहीं महिंलाओं की स्वतंत्रता, अस्तित्व और रोजगार में बड़े पैमाने पर विस्तार की संभावनाएं बढ़ी है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों, बहुराष्ट्रीय बैंकों, अंतर्राष्ट्रीय होटल उद्योग, एयरलाइन, इत्यादि क्षेत्रें में महिलाओं के अत्यधिक योगदान के कारण भारत की अर्थव्यवस्था में बड़े स्तर पर बदलाव देखा गया है। भारतीय स्त्री अपनी परंपरागत कार्य संस्कृति से बाहर निकलकर आधुनिक और नए उद्देश्यों और विकासात्मक कार्यो में बढ़-चढ़ कर अपना योगदान दे रही है। परिवर्तन संसार का नियम है और परिवर्तित संसार में महिलाओं की स्थिति में भी तेजी से बदलाव हो रहा है। अपने स्तर पर आज हर महिला अपने जीवन की नई से नई चुनौतियों को स्वीकार कर आगे बढ़ रही है।

तमाम कमियों एवं विसंगतियों के बावजूद यह सुखद स्थिति ही मानी जाएगी कि बिहार की महिलाएं भी इस दिशा में अपने लक्ष्य की ओर कदमताल करते हुए अग्रसर हो रही है।

संदर्भ

1. शुभ्रा परमार: नारीवादी सिद्धांद और व्यवहार, ओरयंटल ब्लैक स्वान, पृ0 सं0 89-126
2. सुशीला नैयर, कमला मनकेकर; भारतीय पुनर्जागरण में अग्रणी महिलाएं; नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ0 सं0 154-162
3. नीरा देसाई, ऊषा ठक्कर; भारतीय समाज में महिलाएं; नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ0 सं0 3-13
4. आशारानी व्होरा; महिलाए और स्वराज्य; प्रकाशन विभाग (सूचना एवं प्रसारण मंत्रलय भारत सरकार), पृ0 सं0 244-246
5. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत; राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 362-364
6. खुराना एवं चौहान; भारतीय इतिहास में महिलाएं, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा 2015, पृ0 सं0 123-130
7. भारती, प्रो0 एस0, बिहार में खामोश क्रांति, पृ. 141.
8. वही, पृ. 15.
9. वही, पृ. 16.
10. वही, पृ. 16.
11. वही, पृ. 17

बिहार के जिलों में स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं में स्थानिक असमानता

अल्पना कुमारी

शोधार्थी, भूगोल विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

भारत ने वर्ष 1978 में अल्मा अता घोषणा पर हस्ताक्षर में किया था जिसके तहत वर्ष 2000 तक HEALTH FOR ALL मिशन को पूरा करना था परुन्तु तक चार दशक खत्म हो चुके हैं लेकिन मिशन को अभी तक अपनी पूर्ण उपलब्धि का संकेत नहीं है। हालांकि, 1950 के दशक से स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का व्यापक विस्तार हुआ है, लेकिन जीवित आबादी के लिए स्वास्थ्य देखभाल सेवा का अनुपात मुस्कुराने और संवारने के लिए पर्याप्त नहीं है। वर्तमान अध्ययन में स्वास्थ्य देखभाल सुविधा के बारे में भारत की जनगणना (2011) में उपलब्ध द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर बिहार के सभी जिलों में स्वास्थ्य देखभाल सुविधा की जांच की गयी है। स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के सूचकांक के निर्माण के लिए 14 चर के तहत स्वास्थ्य देखभाल के कुल 58 संकेतक चुने गए हैं। ये चर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य उप केंद्र, अस्पताल एलोपैथिक अस्पताल वैकल्पिक चिकित्सा, औषधालय, परिवार कल्याण केंद्र, मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र, मातृत्व गृह, टीबी क्लिनिक, नर्सिंग होम, मोबाइल स्वास्थ्य क्लिनिक, गैर-सरकारी चिकित्सा सुविधाएं तथा अन्य स्वास्थ्य सुविधा है। स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक में शेखपुरा जिला बिहार के सभी जिलों में पहले स्थान पर है क्योंकि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र राज्य में तीसरे स्थान पर है, जबकि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के लिए डॉक्टर की कुल संख्या हर एक लाख आबादी उप्लाब्धता के अनुसार बिहार के सभी जिलों में पहले स्थान पर है। बिहार का सहरसा जिला स्वास्थ्य देखभाल सूचकांक में अंतिम स्थान पर है क्योंकि जिले की हर एक लाख की आबादी के लिए कोई सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, नर्सिंग होम और मोबाइल क्लिनिक नहीं है।

मुख्य शब्दः स्वास्थ्य देखभाल सुविधा, सूचकांक मूल्य, जीआईएस

परिचय

स्वास्थ्य देखभाल मानव जीवन के भौतिक और जैविक जीवन चक्र की गुणवत्ता को सुधारने और बढ़ाने के लिए मानव जीवन के आवश्यक अभ्यासों में से एक है। यह आम तौर पर सामान्य और विशिष्ट शब्दों में लोगों के बेहतर और स्वस्थ सामान्य जीवन के लिए है। इसके अनुप्रयोगों ने निश्चित रूप से लंबे समय से विभिन्न स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के माध्यम से व्यक्ति के जीवन काल में एक बड़ा सुधार लाया है। चिकित्सा भूगोल के प्रतिमान में बेहतर स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली के माध्यम से मनुष्य के जीवन चक्र को बहुत फायदा हुआ है।

स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं स्वास्थ्य और संबद्ध सेवाओं को सुनिश्चित करने के बारे में हैं जो प्रत्येक मनुष्य के मन और शरीर के लिए अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह बीमारियों की रोकथाम के लिए बेहतर शारीरिक, सामाजिक और पारिवारिक वातावरण में सुधार लाने, रोगों के उपचारात्मक सिद्धांतों और सभी के लिए शारीरिक रूप से अच्छे स्वास्थ्य की बहाली पर केंद्रित है। इसलिए, स्वास्थ्य को किसी व्यक्ति की शारीरिक संरचना और उसकी ध्वनि संबंधी गतिविधियों के संदर्भ में या बीमारी की मौजूदगी में अनुपस्थिति के रूप में माना जाता है।

अध्ययन क्षेत्र

बिहार राज्य, अपने गौरवशाली इतिहास के साथ, 94163 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला भारत का तीसरा आबादी वाला राज्य है। भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से बिहार भारत का 13 वां सबसे बड़ा राज्य है और भारत की कुल भूमि का केवल 2.86% हिस्सा है। सरकार द्वारा प्रकाशित जनसंख्या जनगणना 2011 के अनुसार भारत के बिहार राज्य में दशक (2001- 2011) 25.42% जनसंख्या कि वृद्धि हुई है। चालू दशक में बिहार राज्य का घनत्व 2863 प्रति वर्ग मील है। बिहार राज्य की जनसंख्या 104,099,452 है। बिहार राज्य का घनत्व 1,106 प्रति वर्ग किमी है।

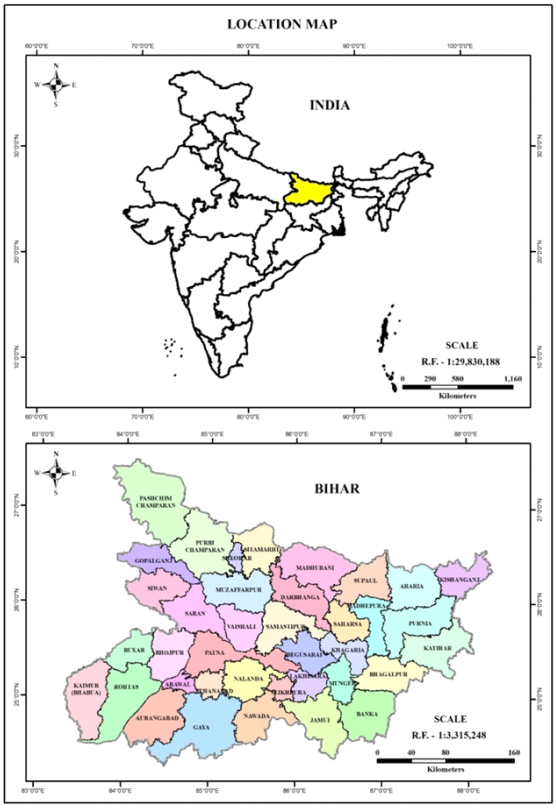

चित्रः 1 अध्ययन क्षेत्र का मानचित्र

बिहार राज्य लगभग एक आयताकार आकार में है। यह 24 21 '10 एन से 27 31'15 ''एन (उत्तरी अक्षांश) और 83 19 '50 ई से 88 17'4'' ई (पूर्वी देशांतर) तक फैला हुआ है। अधिकतम खिंचाव उत्तर से दक्षिण सीमा तक लगभग 345 किमी और पूर्व से पश्चिम दिशा में लगभग 483 किमी है। इस राज्य के उत्तर में नेपाल, इसके पश्चिम में उत्तर प्रदेश, इसके दक्षिण में झारखंड और इसके पूर्व में पश्चिम बंगाल है। उत्तरी सीमा नेपाल के हिमालयी राज्य द्वारा बनाई गई है। यह अंतर्राष्ट्रीय सीमा मुख्य रूप से चावल उगाने वाले क्षेत्र के माध्यम से पूर्व से पश्चिम तक चलती है। यह कुछ हद तक लहरदार रेखा है, जो गंगा के मैदान के उत्तरी किनारों से होकर गुजरती है, लेकिन चरम पश्चिम (पशिमी और पूर्वीचंपारण के जिलों में) की ओर उत्तरी सीमा से सटे हिमालय की तलहटी से होकर गुजरती है, जो बिहार के पहाड़ी क्षेत्र में सोमेश्वरतथा डन पर्वतमाला के नाम से जानी जाती है। राज्य की पश्चिमी सीमा काफी अनियमित है। दक्षिणी सीमा छोटानागपुर पठार के उत्तरी स्कार्पियों द्वारा सीमांकित की जाती है। चरम दक्षिण-पश्चिम में, सोन नदी इस राज्य के रोहतास के जिलों को झारखंड के पलामू और गढ़वा से अलग करती है। चरम पूर्व में दक्षिणी सीमा गंगा नदी द्वारा बनाई जाती है जहाँ झारखंड का साहिबगंज बिहार के कटिहार जिले से अलग होता है। गंगा नदी पश्चिम

से पूर्व की ओर वास्तव में मध्य से बहती है; यह बिहार राज्य को उत्तर बिहार और दक्षिण बिहार के दो असमान हिस्सों में विभाजित करता है। गंगा नदी की सहायक नदियाँ सोन, बुधिगंडक, गंडक, ओरहानी और फल्गु हैं। हालांकि, हिमालय उत्तरी बिहार की तलहटी में शुरू होता है, पहाड़ों ने नियमित अंतराल पर बिहार राज्य की भूमि, जलवायु, जल विज्ञान और संस्कृति को प्रभावित किया है। बिहार के मध्य भागों में राजगीर की पहाड़ियों के रूप में कुछ छोटी पहाड़ियाँ हैं लेकिन बिहार के दक्षिणी भाग में छोटा नागपुर पठार है जो वर्ष 2000 तक बिहार का हिस्सा था, लेकिन अब, यह झारखंड राज्य का हिस्सा है जो 15 नवंबर, 2000 को बनाया गया था। समुद्र तल से बिहार की औसत ऊँचाई 173 फीट (53 मीटर) है।

उद्देश्य

अध्ययन के मुख्य उद्देश्य का बिहार की स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं में स्थानिक असमानताओं का विश्लेषण करना है।

क्रियाविधि

स्वास्थ्य अवसंरचना का अर्थ है अस्पताल, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और स्वास्थ्य उप-केंद्र तथा उसमे कार्यरत स्वास्थ्य चिकित्सा अधिकारी, प्रशिक्षित चिकित्सक, पैरा-मेडिकल स्टाफ, पुरुष और महिला नर्सिंग स्टाफ और स्वास्थ्य सेवाओं से संबंधित अन्य सहायक कर्मचारियों कि संख्या से हैं। इन चरों का आधार पर इस अध्ययन को किया गया है तथा इससे संबधित आकंड़ा को बिहार की स्वास्थ्य सेवाओं (2011) और भारत की जनगणना (2011) से प्राप्त किया है।

स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित 58 संकेतकों के माध्यम से पहचाने जाने वाले स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के पर्याप्त संकेतक स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के सूचकांक का निर्माण करने के लिए 14 चर के तहत कुल 58 संकेतकों से संबंधित स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित हैं। ये चर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य उप केंद्र, अस्पताल एलोपैथिक अस्पताल वैकल्पिक चिकित्सा, औषधालय, परिवार कल्याण केंद्र, मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र, मातृत्व गृह, टीबी क्लिनिक, नर्सिंग होम, मोबाइल स्वास्थ्य क्लिनिक, गैर-सरकारी हैं।

बिहार के विभिन्न जिलों में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता की असमानता की जांच करने के लिए समग्र सूचकांक को तैयार किया गया है। जिसमें अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, रोगी बिस्तर की संख्या, पैरा मेडिकल स्टाफ, चिकित्सा अधिकारी, आदि की उप्लाब्धता एक लाख के आबादी के संदर्भ में, को शामिल किया गया है। इन सभी की गणना, मूल्यांकन, और समग्र संरचना में स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे और स्वास्थ्य सेवाओं का विश्लेषण तथा मानचित्रण किया गया है जिसे चित्र संख्या 2 से समझा जा सकता है।

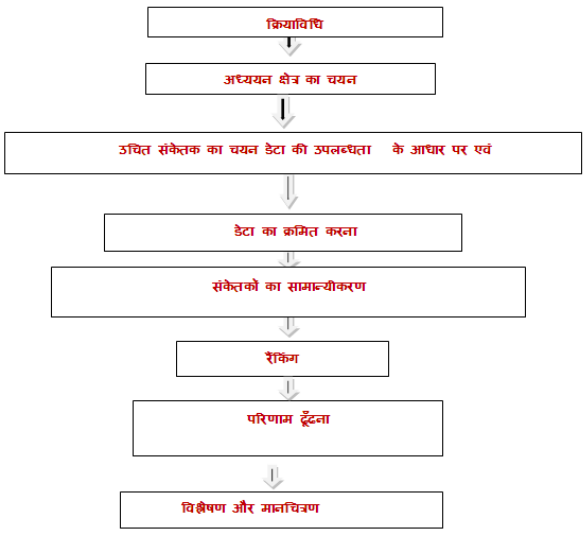

चित्र 2: वर्तमान अध्ययन की विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं को दर्शाने वाले फ्लो चार्ट।

परिणाम और चर्चा

उपर्युक्त सभी चर की मदद से, बिहार के सभी जिले का एक स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक तैयार किया गया है। स्वास्थ्य देखभाल सुविधा का समग्र सूचकांक नीचे सूचीबद्ध पांच श्रेणियों में विभाजित किया गया है: -

(I) बहुत उच्च स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.37-0.46)

(II) उच्च स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.30 -0.37)

(III) मध्यम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.22 -0.30)

(IV) कम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.15 -0.22)

(V) बहुत कम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.07 -0.15)

तालिका: 1 बिहार के जिले के स्वास्थ्य सुविधा सूचकांक का वर्गीकरण

क्रम संख्या	श्रेणी	रेंज	जिला नाम
1	अति ऊच (2)	0.37-0.46	शेखपुरा, कैमूर (भभुआ)
2	ऊच (5)	0.30 -0.37	रोहतास, बक्सर, अरवल, नवादा, पटना
3	मध्यम (10)	0.22 -0.30	जहानाबाद, लखीसराय, बंका, कटिहार, पूर्वीचंपारण, नालंदा, किशनगंज, गोपालगंज, मुंगेर, खगरिया
4	निम्न (17)	0.15 -0.22	गया, सीतामढ़ी, भोजपुर, सारण, औरंगाबाद, समस्तीपुर, जमुई, भागलपुर, सुपौल, वैशाली, शिवहर, मुजफ्फरपुर, पश्चमी चंपारण, सिवान, मधेपुरा, मधुबनी, दरभंगा
5	अतिनिम्न (4)	0.07 -0.15	अररिया, बेगूसराय, पूर्णिया, सहरसा

(I) बहुत उच्च स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.37-0.46)

0.37-0.46 की सीमा इस पैमाने पर बहुत उच्च स्वास्थ्य देखभाल आंकड़े दिखाती है (चित्र संख्या 3)। बिहार के शेखपुरा और कैमूर नाम के दो जिले केवल एक लाख जनसंख्या के अनुसार स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की उपलब्धता के साथ इस श्रेणी में हैं। भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य मानकों (IPHS) मानदंडों के अनुसार स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के मामले में कैमूर जिला बिहार के सभी जिलों में दूसरे स्थान पर है, जबकि शेखपुरा जिला सबसे ऊपर है। जिला में प्रति लाख आबादी पर 3.22 PHCs, 8.91 डॉक्टर और 14.79 पैरा मेडिक्स हैं (चित्र संख्या 4)।

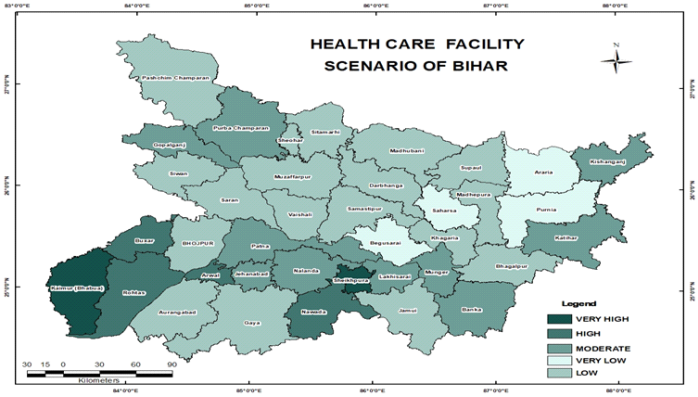

चित्र: 3 स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं बिहार के जिलों का परिदृश्य।

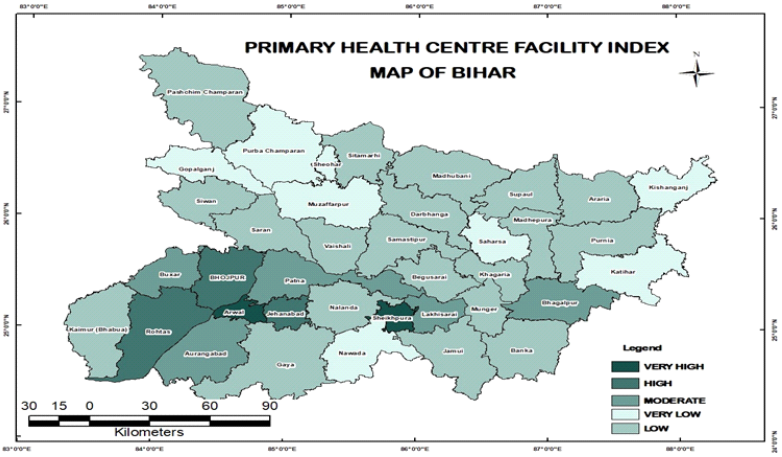

चित्रः 4 प्राथमिक सामुदायिक स्वास्थ्य सुविधाएं का बिहार के जिलों में परिदृश्य।

शेखपुरा जिले में, 3.03 डॉक्टर और 35.65 पैरा मेडिकल कर्मचारी क्रमशः जिले की एक लाख आबादी के अनुसार 17.83 उप-प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में पाए जाते हैं। प्रति एक लाख की आबादी पर डिस्पेंसरियों की संख्या 2.99 है जिसमें 33.03 बेड हैं, 7.86 संख्या पैरा मेडिकल कर्मियों तथा 3.93 डॉक्टर हैं। शेखपुरा जिले की एक लाख आबादी के अनुसार 15.56 परिवार कल्याण केंद्रों के लिए डॉक्टर की संख्या 0.63 है। मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र की संख्या एक लाख आबादी पर 15.71 ,0.63 डॉक्टरों तथा पैरा मेडिकल स्टाफ की संख्या 29.23 है। टीबी क्लिनिक की संख्या 3.14 तथा डॉक्टरों की 3.14 है। शेखपुरा जिले की एक लाख आबादी के लिए गैर सरकारी चिकित्सा सुविधा दवा की दुकान की संख्या 17.29 है।

कैमूर (भभुआ) जिले की स्वास्थ्य देखभाल सुविधा का सूचकांक 0.43 है तालिका 2 के अनुसार। जो बिहार के सभी जिलों में दूसरे स्थान पर है। इस जिले में सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र उपलब्ध नहीं है, जबकि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की संख्या 1.48 है जिसमें पैरा मेडिकल स्टाफ की संख्या 2.82 है, तथा डॉक्टरों की संख्या एक लाख की आबादी पर 2.82 है। एक लाख आबादी पर एलोपैथी अस्पताल की संख्या 0.12, 213.51 बेड, डॉक्टरों की 1.05 संख्या तथा 20.9 की संख्या में पैरा मेडिकलकर्मी है। जिले में परिवार कल्याण केंद्रों की संख्या 13.53 है, जिसके लिए 9.10 की संख्या में पैरा मेडिकल कर्मियों तथा 20.24 डॉक्टरों की संख्या एक लाख की आबादी पर मौजूद है। कैमूर जिले में प्रति एक लाख की आबादी पर मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र की संख्या 7. 13 ,डॉक्टरों की संख्या 13.16 है, तथा उसमे 39.11 संख्या में पैरा मेडिकल कर्मी है। 6.76 संख्या में पैरा मेडिकल कर्मियों के साथ टीबी क्लिनिक 2.89 संख्या है। .30।

(II) उच्च स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.30-0.37)

इस श्रेणी के अंतर्गत, पांच जिले रोहतास, बक्सर, अरवल, नवादा और पटना को समूहीकृत किया गया है जो कि दक्षिण बिहार में है।

रोहतास जिले का स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक 0.31 हैतालिका के अनुसार2। जो बिहार में स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक में चौथे स्थान पर है। सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य उप केंद्र, एलोपैथिक अस्पताल, वैकल्पिक अस्पताल चिकित्सा, औषधालय, परिवार कल्याण केंद्र, मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र, टीबी क्लिनिक, नर्सिंग होम, मोबाइल हेल्थ क्लिनिक और मेडिसिन शॉपकी संख्या इस जिले मेंहर एक लाख की आबादी पर 0.04, 2.88, 7.17, 0.10, 0.07, 3.51, 6.59, 6.55, 3.21, 2.81, 0.03 और 16.79 है। सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र के लिए डॉक्टरों की संख्या 0.12 है जिसमें पैरा मेडिकल वर्कर्स की संख्या 0.24 है (चित्रः 6 के अनुसार)। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र संख्या रोहतास जिले में 9.32 प्रति एक लाख कि आबादी पर। यहां प्राथमिक स्वास्थ्य उप केंद्र में पैरा मेडिकल कर्मियों संख्या 12.52 तथा 2.57 डॉक्टर पाए जाते हैं। इस जिले की हर एक लाख की आबादी पर 34.6 बिस्तर वाले एलोपैथी अस्पताल के लिए डॉक्टरों की संख्या 0.37 है, तथा पैरा मेडिकल कर्मियों की संख्या 2.06 है।

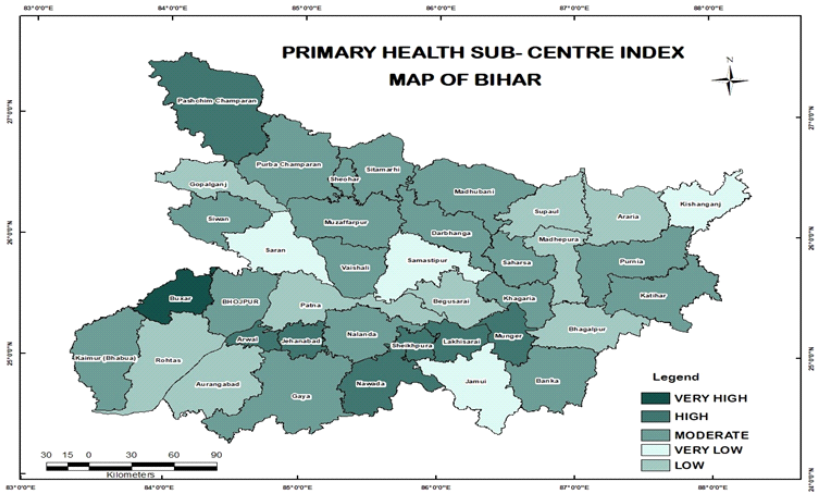

चित्रः 5 प्राथमिक स्वास्थ्य उप केंद्र सुविधाएं का बिहार के जिलों में परिदृश्य।

स्वास्थ्य देखभाल सुविधा में पटना जिला सातवें स्थान पर है। स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक 0.30 है। पटना जिले में, हर एक लाख की आबादी पर प्राथमिक स्वास्थ्य उप केंद्र की संख्या 7.8, 14.38 की संख्या में पैरा मेडिकल कर्मियों तथा 5.9 डॉक्टरों की संख्या है। पटना जिले में, हर एक लाख की आबादी परप्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की संख्या 2.9,2.9 डॉक्टर तथा 5.3 पैरा मेडिकल कर्मियों की संख्या है। एक लाख की आबादी पर डिस्पेंसरी की संख्या 2.2, 2.02 पैरा मेडिकल स्टाफ के संख्या है। पटना जिले में, परिवार कल्याण केंद्र की संख्या 2.02, चिकित्सक के 1.81 की संख्या तथा 4.14 इसके लिए पैरा मेडिकल कर्मियों की संख्या है। एक लाख की आबादी पर 2.48 की संख्या में मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र है 2.48 की संख्या में डॉक्टरों तथा 4.96 मेडिकल कर्मियों की संख्या है। यहां टीबी क्लिनिक की संख्या 1.7 है जिसमें 3.63 संख्या के पैरा मेडिकल कर्मी हर एक लाख की आबादी पर 0.5 डॉक्टरों के तहत काम करते हैं। दवा की दुकान के रूप में गैर-सरकारी चिकित्सा सुविधाओं की संख्या 92.69 है जो इस जिले की एक लाख आबादी के अनुसार उच्चतम है। एक लाख आबादी पर 93.37 बिस्तर के साथ एलोपैथिक अस्पताल है 51. 77 संख्या में पैरा मेडिकल कर्मियों द्वारा समर्थित डॉक्टर की संख्या 0.25 है।

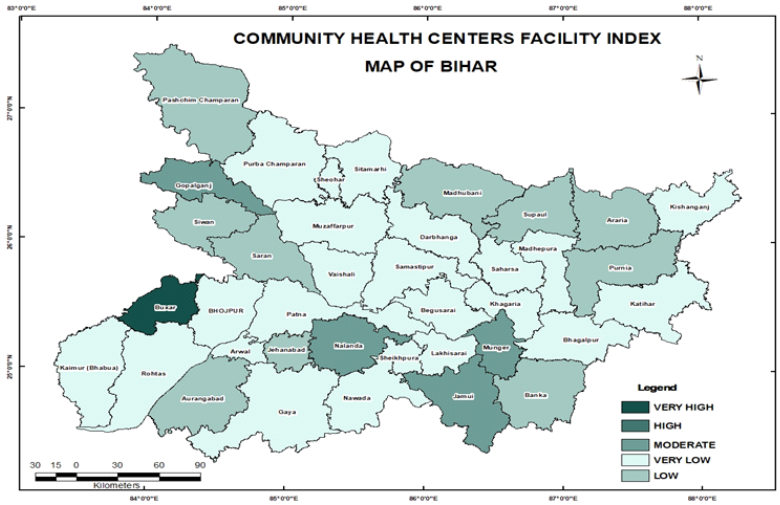

चित्रः 6 सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों की सुविधाएं का बिहार के जिलों में परिदृश्य।

(III) मध्यम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.22-0.30)

जहानाबाद, लखीसराय, बांका, कटिहार, पूर्बीचंपारण, नालंदा, किशनगंज, गोपालगंज, मुंगेर और खगड़िया जिलों को 0.22-0. 30 पैमाने के तहत मध्यम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा के साथ वर्गीकृत किया गया है। 0.29 स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक के साथ जहानाबाद जिला पहले स्थान पर है, जबकि खगड़िया जिले में 0.22 सूचकांक के साथ इस श्रेणी में अंतिम स्थान दिया गया है (तालिका 2) है। जहानाबाद और खगड़िया के सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र की संख्या प्रत्येक जिले की एक लाख आबादी के लिए क्रमश: 0.26 और 0.00 है। प्रत्येक एक लाख की आबादी के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की संख्या जहानाबाद और खगड़िया जिला में क्रमश: 2.32 और 1.27 है जबकि उसमे डॉक्टर की संख्या 4.85 और 1.27 है। जहानाबाद और खगड़िया के प्राथमिक उप स्वास्थ्य केंद्र के लिए पैरा मेडिकल कर्मियों की संख्या 18.08 और 15.38 है। एलोपैथिक अस्पताल की संख्या 0.27 और 0. 06 जहानाबाद और खगड़िया जिले में उसमें बेड कि संख्या क्रमश: 70.27 ,48.19 है। जहानाबाद और खगड़िया जिले में, डिस्पेंसरी की संख्या हर एक लाख की आबादी के लिए क्रमश: 3.55 और 1.92 है। जहानाबाद के लिए परिवार कल्याण केंद्र की संख्या 10.13 है जबकि 7.98 खगड़िया के लिए एक लाख आबादी पर है। हर एक लाख की आबादी पर मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र की संख्या क्रमश: जहानाबाद और खगड़िया जिले का 0.04 और 7.98 है। जहानाबाद की एक लाख आबादी में टीबी क्लीनिक की संख्या 2.31 है और 1.32 खगड़िया जिले के लिए है। एक लाख की आबादी पर जहानाबाद के लिए मेडिसिन शॉप के रूप में गैर सरकारी चिकित्सा सुविधा की संख्या 31.01 और खगड़िया के लिए 19.32 है।

(IV) कम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.15-0.22)

इस सूचकांक के तहत, बिहार के सत्रह [17] जिलों को तालिका 1 के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। ये जिले हैं गया, सीतामढ़ी, भोजपुर, सारण, औरंगाबाद, समस्तीपुर, जमुई, भागलपुर, सुपौल, वैशाली, शेहर, मुजफ्फरपुर, पशिमीचंपारण, सीवान, मधेपुरा और दरभंगा। इन सत्रह जिलों में से, 0.21 सूचकांक के साथ गया शीर्ष पर है, जबकि बिहार दरभंगा 0.15 सूचकांक के साथ अंतिम स्थान पर है।

प्रत्येक एक लाख आबादी के लिए गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिलों में सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र की संख्या क्रमश: 0.00,0.06,0.04 और 0.07 है, जबकि इन जिलों में डॉक्टरों की संख्या 0.00,0.25,0.16 और 0.21 है। लेकिन इन जिलों के लिए पैरा मेडिकल वर्कर की संख्या क्रमश: 0.00 0.44,0.33 और 0.55 पर है। गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिलों में क्रमश: 2.34,2.36,3.82 और 1.8 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में डॉक्टर की संख्या है जबकि एक लाख जनसंख्या के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की संख्या 1.86,0.67,1.85 और 1.29 है, पैरा मेडिकल स्टाफ कि संख्या क्रमश: 4.86 4.00,4.02 है। गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिलों एक लाख की आबादी पर प्राथमिक स्वास्थ्य उप-केंद्र की संख्या क्रमश: 11.73,7.67,8.71 और 8.18 है, जबकि क्रमश: 7.3,8.0, 0.64, और 1.85 डॉक्टरों की संख्या है, 13.26,13.48,11.62 और 10.61 संख्या पैरा मेडिकल कर्मियों की हैं। डिस्पेंसरी की संख्या बिहार के गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिले क्रमश: 1.71,0.81,2.44, और 1.81 हैं, जिनमें क्रमश: 7.74,6.51,12.28 और 13.62 रोगी बेड हैं। एक लाख आबादी वाले इन जिलों में क्रमश: गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिले के लिए परिवार कल्याण केंद्र की संख्या 2.32, 1.37, 6.85 और 2.01 है, जबकि इन जिलों में क्रमश: टीबी क्लीनिकों की संख्या 1.78, 1.01, 1.88 और 1.45 है। टीबी क्लिनिक के लिए बिस्तरों की संख्या क्रमश: 1.20,2.83,0.33 और 15.48 है, एक लाख आबादी के अनुसार गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिलों के लिए क्रमश: 0.59,1.29,2.21 और 1.45 डॉक्टरों की संख्या है। गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिलों में नर्सिंग होम की संख्या एक लाख आबादी पर क्रमश: 17.88, 187.15, 4.15 और 24.77 तथा बिस्तरों के प्रावधान 1.72, 16.14, 0.33 और 2.48 है। हर एक लाख की आबादी के लिए दवा की दुकान के रूप में गैर-सरकारी चिकित्सा सुविधाओं की संख्या, गया, सारण, भागलपुर और मधुबनी जिले के लिए क्रमश: 31.29,26.11,19.16 और 20.23 है।

(V) बहुत कम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा (0.07-0.15)

अररिया, बेगूसराय, पूर्णिया और सहरसा जिले में बहुत ही कम स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक के अंतर्गत आते है (चित्र 3) क्योंकि ये जिले बाढ़ प्रभावित क्षेत्र हैं। सहरसा जिला स्वास्थ्य देखभाल सुविधा के सूचकांक 0.07 पर है। कोई सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र सुविधा सहरसा जिले में नहीं है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की संख्या सहरसा जिले में एक लाख आबादी पर 0.57, 1.

26 डॉक्टरों की संख्या है। सहरसा जिले में प्राथमिक स्वास्थ्य उप-केंद्र की संख्या 8.77 डॉक्टरों के साथ 7.91 है, जो प्रत्येक एक लाख की आबादी के लिए है। हर एक लाख की आबादी पर सहरसा जिले में एलोपैथिक अस्पताल की संख्या 0.05 है डॉक्टरों की 0.12 संख्या , जिसमें बेड की संख्या 132.87 है। सहरसा जिले में डिस्पेंसरी की संख्या 0.32 लाख एक लाख जनसंख्या पर। सहरसा जिले में टीबी क्लिनिक की संख्या 0.84 है जबकि सहरसा जिले में मेडिसिन शॉप के रूप में गैर सरकारी चिकित्सा सुविधा की संख्या जिले की प्रत्येक एक लाख आबादी के लिए 20.94 है।

तालिका: 2 स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक और बिहार के जिले की रैंकिंग।

जिला	सूचकांक मूल्य	रैंक
शेखपुरा	0.46	1
कैमूर (भभुआ)	0.43	2
रोहतास	0.31	3
बक्सर	0.30	4
अरवल	0.30	5
नवादा	0.30	6
पटना	0.30	7
जहानाबाद	0.29	8
लखीसराय	0.27	9
बांका	0.27	10
कटिहार	0.24	11
पूर्बीचंपारण	0.24	12
नालंदा	0.24	13
किशनगंज	0.23	14
गोपालगंज	0.23	15
मुंगेर	0.23	16
खगरिया	0.22	17
गया	0.21	18
सीतामढ़ी	0.21	19
भोजपुर	0.20	20
सरन	0.20	21
औरंगाबाद	0.20	22
समस्तीपुर	0.20	23
जमुई	0.19	24
भागलपुर	0.19	25
सुपौल	0.19	26
वैशाली	0.19	27

शिवहर	0.19	28
मुजफ्फरपुर	0.19	29
पशिचमचंपारण	0.18	30
सिवान	0.18	31
मधेपुरा	0.17	32
मधुबनी	0.17	33
दरभंगा	0.15	34
अररिया	0.14	35
बेगूसराय	0.13	36
पूर्णिया	0.12	37
सहरसा	0.07	38

निष्कर्ष

स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक में शेखपुरा जिला बिहार के सभी जिलों में पहले स्थान पर है क्योंकि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र राज्य में तीसरे स्थान पर है, जबकि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के लिए डॉक्टर की कुल संख्या हर एक लाख आबादी पर नुसार बिहार के सभी जिलों में पहले स्थान पर है। इसके अलावा, शेखपुरा जिले में प्राथमिक स्वास्थ्य उप-केंद्र की संख्या सबसे अधिक है, जबकि बिहार में हर एक लाख की आबादी के लिए उप-केंद्र के पैरा मेडिकल कर्मियों की संख्या के लिए जिला दूसरे स्थान पर है। यहां तक कि, परिवार कल्याण केंद्र और मातृत्व और बाल कल्याण केंद्र की संख्या सबसे ज्यादा बिहार के शेखपुरा जिले में है, जो हर एक लाख की आबादी के आधार पर है। यही नहीं, बिहार के शेखपुरा जिले में नर्सिग होम में सबसे ज्यादा डॉक्टर एक लाख की आबादी के लिए हैं। बिहार का सहरसा जिला स्वास्थ्य देखभाल सूचकांक में अंतिम स्थान पर है क्योंकि जिले की हर एक लाख की आबादी के लिए कोई सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, नर्सिग होम और मोबाइल क्लिनिक नहीं है। यहां तक कि, बिहार के अन्य जिलों की तुलना में सहरसा जिले में स्वास्थ्य सुविधा के अन्य चर की उपस्थिति काफी कम है। स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक में शामिल जिले सुपौल, वैशाली, शिवहर मुजफ्फरपुर, पश्चमी चंपारण, सीवान, मधेपुरा, मधुबनी, दरभंगा, अररिया, बेगूसराय, पूर्णिया जिलों में स्वास्थ्य देखभाल सुविधा सूचकांक कम क्योंकि ये सभी जिले उत्तर बिहार स्थित में हैं जो अत्यधिक बाढ़ प्रवण क्षेत्र है। उत्तर बिहार के जिलों में कम सामाजिक और आर्थिक विकास के कारण उत्तर बिहार के जिलों में सरकारी चिकित्सा सुविधा दक्षिण बिहार के जिलों की तुलना में काफी कम है।

संदर्भ सूची

BOOK

Akhtar, R. (1982), Geoqraohv of Health An Essay and a Bibliography, Marwar Publishers, New Delhi.

Akthar and Learmonth (1985) 'Geographical aspects of health and diseases in India, Concept Publication.

Chatterjee, Meera, (1988) Implementing Health policy, Manohar Publications, New Delhi, Pp-29-31.

Goel, S.L.(2003), Primary health care management, Deep and Deep publications Pvt. Ltd. New Delhi. P.6

India Health Report (2003), Oxford University Press, New Delhi, p. 1-34

Jetli, K.N. and Sethi, V. (2007), Infrastructure development in India: post liberalization initiatives and challenges, New century publications, New Delhi, P. 131.

Kumar, R (1987), Environmental pollution and health - In Environmental Pollution and Health hazards in India (Ed. R. Kumar) New Delhi, Pp 1-5.

Misra, R., Chatterjee, R. and Rao, S. (2003), India Health Report, Oxford University press, New Delhi, Pp. 3-4.

Mishra, R.P. (2007), Geography of Health: A treatise on geography of life and death in India, concept publishing company New Delhi, P. 5-153

Peters, H. David, et al., (2002), Better Health Systems for India's poor, Hindustan Publishing corporation. New Delhi, The world Bank, Washington, p.3-6. Govt. UK Health.

Rajeshwari and Sinha S., 2004. Spatial Inequalities in the development of Public Health Care Facilities in Rural Haryana, India: Health Care Patterns and Planning edited by Akhtar R., A P H Publishing Corporation, New Delhi.

THESIS

DasDipsikha, 2012," Women' Health Status and Health Care in Rural India: Case Study of Barak Valley in Assam", Unpublished ph. D. Thesis, Assam University; Silchar.

Gazala Jamal, 2009." regional patterns of problems of health and health facilities in western uttarpradesh", unpublished ph. d. thesis, aligarhmuslim university aligarh (india).

Pandurkar, R.G., 1981. "Spatial Distribution of some Diseases in Maharashtra- A study in Medical Geography", Unpublished ph. D. Thesis, Shivaji University, Kolhapur.

RAJESHWARI ,1993, "the spatial organisation of health -care facilities in rural haryana :An Inquiry into Its Availability and Utilization", Unpublished ph. D. Thesis,jawaharlalnehru university, new delhi.

SABAR M.,2014 "Geographical Distribution of Diseases on the Basis of Regional Disparities in Socio-Economic Parameters of Jammu Division, J&K State" Unpublished ph. D. Thesis, University of Kashmir, Srinagar.

Vinayak, Mane Parvati, 2016. ''A Study of Health Care Facilities and Frequently Occurring Diseases in Sangli District: A Geographical Analysis", Unpublished ph. D. Thesis,Swami Ramanand Teerth Marathwada University, Nanded.

REPORTS

- Census of India Population totals, Series-3, 2011. http://www.censusindia.gov.in/2011
- Government of India (2007) 'Bihar: Road Map for Development of Health Sector-A Report of the Special Task Force on Bihar, 2007', New Delhi.
- Government of India (2011) 'The 2011 Population Census' New Delhi: Registrar General and Census Commissioner of India.
- IIPS (2017): National Family Health Survey (NFHS 4) 2015-16, Institute of Population Sciences, New Delhi.
- IIPS (2014): District Level Household and Facility Survey 2012-13 (DLHS 4)ofbihar, Institute of Population Sciences, New Delhi.
- National Health Profile Health Infrastructure (NHP 2015), Central Bureau of Health Intelligence, Directorate General of Health Services, Govt. of India, 2011, 184-230.
- Rural Health Statistics 2015-16, Ministry of Health and Family Welfare, Statistics Division, Government of India.
- Sample Registration System, Sample registration bulletein, Registrar General of India. 2011; 46(1):1-6.

JOURNALS

- Akhtar, R. (1978) , "Spatial Distribution and Growth of Health Facil-ities in Rajasthan", Geographical Review of India, Vol. 40, No. 3.
- Amit Kr. Singh1 Pawan Kr. Bhaskar2 Dr.V.K.Kumra (2017) "Spatial-Temporal Analysis of Health Care Facilities in Allahabad District: A Geographical Study "/ IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS) Volume 21, Issue 8, Ver.2 (Aug. 2016) PP 45-57 e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
- Baru R. Inter-Regional Variations in Health Services in Andhra Pradesh, Economic and Political Weekly. 1993; 27(20):963-967.
- Baru R., Acharya A., Acharya S., Shiva Kumar A.K. And Nagraj K., 2010. Inequalities in Access to Health Services in India: Caste, Class and Region, Economic and political Weekly, Vol. 65 (38), Pp. 28- 42
- Binod Kumar Singh (2017) "Spatial Distribution of Health Care Facilities in Bihar, India "/ Demography India (2017) ISSN: 0970-454X Vol. 46, Issue: 2, pp: 68-80.
- Dipanwita De (2014) "Spatial Inequality in Health Care Infrastructure in Sundarban, West Bengal, India".International Research Journal of Social Sciences Vol. 3(12),15-22, December (2014).

- MohdTaqi (2017) "Rural Healthcare Infrastructural Disparities in India: a Critical Analysis of Availability and Accessibility "/DOI:ttp:// doi.org/10.15415/jmrh.2017.32011.
- Mr. SubhajitGhatak, P. P .Das (2012) "Status of Rural Health Care and the Hidden Disparity: A Study of Birbhum District, West Bengal, India."/IOSR Journal of Humanities and Social Science (JHSS) ISSN: 2279-0837, ISBN: 2279-0845. Volume 3, Issue 2 (Sep-Oct. 2012), PP 13-18.
- Paltnaik, B.K. (1994), Coordinating Health care and primary education, Yojana, Vol-38, December, p. 14
- Praveen Kumar Rai, Mahendra Singh Nathawat(2011)"Role of GIS and GPS in Vector Born Disease Mapping: A Case Study"/Journal of GIS Trends 2011 2(1): 20-27.
- Praveen Kumar Rai, Mahendra Singh Nathawat (2013)" GIS in Healthcare Planning: A Case Study of Varanasi, India" . Forum geografic. Studii'icercetări de geografie'iproteciamediuluiVolumeXII, Issue 2 (December 2013), pp. 153-163 (11) http://dx.doi.org/10.5775/fg.2067-4635.2013.180.
- Sagar, R. and Kishore, J. (2007), Rural Health services in India, Yojana, vol. 51, May, Pp.2-23
- Sambit S and Tutul Roy (2013)"A Micro Level Analysis of Disparities in Health Care Infrastructure in Birbhum District, West Bengal, India"/IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS) Volume 7, Issue 3 (Jan. - Feb. 2013), PP 25-31e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
- Sinha, S. and Rajeshwari (1993). Social structure and utilization of health care facilities in rural Haryana. Annals of the National Association of Geographers, India, 13(1), 37-47.
- Swaminathan, M.(2007), food and nutrition insecurity, Yojana, vol. 51, May, P.P 15-17 .
- V.K.Baraik and P.M.Kulkarni"Health status and Access to health care services –disparities among social group of India"/Working paper series Indian Institute Of Dalit Studies New Delhi.

वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्द्धा और भारत

मुकेश कुमार

सहायक प्राध्यापक (जीटी), वाणिज्य विभाग, जी.डी. कॉलेज बेगूसराय, एल.एन.एम.यू. दरभंगा, बिहार

शोध-सारांश

जब राजनीतिक असफलता को आर्थिक उपलब्धि के रूप में रखा जाने लगता है तब दंतकथा या बड़बोलेपन और वास्तविकता में भेद करना कठिन हो जाता है। श्रम कानूनों में नव-उदारवादी नीति धारक सरकारों द्वारा किया जा रहा संशोधन और प्रस्तावित संशोधनों के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है। नव-उदारवादी नीति धारक सरकारें जो दलील दे रही हैं कि वैश्विक बाजार की खुली बाजार प्रतिस्पर्द्धा में आने के लिए वर्त्तमान श्रम कानूनों में बदलाव करना जरूरी है, क्योंकि वे तकनीकी विकास प्रक्रिया में उद्योगों के विकास में रूकावट डाल रहे हैं, उत्पादन में आ रही वृद्धि के लाभों को जन-सामान्य तक पहुँचने में रूकावट है और मनोवादी ढंग से नई-नई माँगों के लिए मजदूरों को हड़ताल, घेराव आदि का मौका देकर कल-कारखानों की बंदी को बढ़ावा दे रहे हैं आदि।[1] यह शासन की एक ऐसी असफलता हैं जिसे नव-उदारवादी वैश्विक बाजार की प्रतियोगिता में भारत को असफल होने के लिए मजदूरों को जिम्मेदार बात कर और आर्थिक विकास के आँकड़ों को दिखा कर राजनीतिक असफलता को आर्थिक सफलता या उपलब्धिा के रूप में पेश किया जा रहा है।

मुख्य शब्द : नव-उदारवादी नीति, सेवा क्षेत्र, बाजारवादी आर्थिक नीति, विश्व बैंक, वैश्विक बाजार

बाजारवादी अर्थव्यवस्था में भारत की स्थिति

बाजारवादी अर्थव्यवस्था को स्वीकार करके भारत की नव-उदारवादी नीति धारक सरकारों ने राजनीतिक और आर्थिक दोनों तरह के संकटों में भारत को डाल दिया है। विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र का दावा करने वाली वर्त्तमान नव-उदारवादी नीति धारक सरकारें भारत के जनतंत्र को जिस संकट में डाल दिया है, उसके कारणों को ढूँढ़ निकालना कोई कठिन काम नहीं है। अगर बाजारवाद और जनवाद दोनों के सिद्वान्तों के परस्पर अन्तर्द्वन्द्व को समझा जाय तब यह कारण स्पष्ट हो जाता है। जनवाद का सिद्धान्त प्रति व्यस्क नागरिक को बिना उसकी आर्थिक सामाजिक या अन्य स्थिति को देखे बिना 'एक व्यस्क नागरिक एक वोट' के सिद्धान्त पर चलता है, जनवाद इसी समानता के आधार पर गठित है मगर बाजारवाद का सिद्धान्त ठीक इसके उल्टा प्रत्येक व्यक्ति की क्रय क्षमता के सिद्धान्त पर आधारित है-अगर किसी की क्रय क्षमता शुन्य है, तो बाजारवादी अर्थव्यवस्था में उसका स्थान कहीं भी नहीं है। अगर किसी व्यक्ति की आवश्यक जरूरतों की पूर्ति की जिम्मेदारी बाजार पर छोड़ दी जाय तब बाजार शुन्य क्रय शक्ति वाले व्यक्ति को कभी भी आवश्यक जरूरतों की पूर्ति नहीं कर सकता। यही कारण है कि बाजारवाद भारत में गरीबों और उपेक्षितों जनता के विभिन्न तरह के आन्दोलनों को बल पहुँचा रहा है और देश की क्षेत्रीय अखण्डता के साथ-साथ उत्पादन प्रक्रिया को भी प्रभावित कर रहा है।[2] श्रम कानूनों में मजदूर विरोधी संशोधनों को करने वाली सरकारें जब यह दलील देती है कि वर्त्तमान श्रम कानून अनावश्यक रूप से आन्दोलन करके उत्पादन को बाधित करने के अवसर मजदूरों को प्रदान करने वाले हैं तब ये सरकारें जनवादी सिद्धान्तों और बाजारवाद के सिद्धान्तों के इस परस्पर अन्तर्द्वन्द्व को भूला देती है, इसे कभी भी नहीं स्वीकारती कि बढ़ती औद्योगिक अशान्ति का कारण जनवाद के सिद्धान्त और बाजारवाद के सिद्धान्तों का एक दूसरे के खिलाफ स्वभाव के कारण पैदा हो रही है। नव-उदारवादी नीति धारक सरकारें जनवादी होने का स्वांग तो रचती है मगर जनवाद के सिद्धान्तों का बाजारवाद के सिद्धान्तों को लागू करने के

लिए त्याग करके। इस तरह बाजारवाद जनवाद के लिए एक खतरा बन गया है।

दूसरी बात उत्पादन प्रक्रिया और सेवा क्षेत्र को किस तरह बाजारवाद कुप्रभावित कर रहा है, इसे समझना भी कठिन नहीं हैं। बाजारवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन जरूरत के मुताबिक नहीं बाजार की माँग के अनुसार ही होगा। चूँकि भारत की विशाल जनता का बड़ा हिस्सा गरीब है, उसके पास अपनी आवश्यक जरूरतों की पूर्ति के सामानों को भी खरीदने की आर्थिक क्षमता नहीं है। इस कारण बाजारवादी अर्थव्यवस्था में गरीबों की जरूरतों की पूर्ति करनेवाले सामानों की माँग नहीं रहती है और इस कारण गरीबों के लिए जरूरी सामान उत्पादन प्रक्रिया से भी बाहर हो जाते हैं, उनका उत्पादन बंद हो जाया करती है। इसका प्रमाण भारत के प्रत्येक शहर और गाँव में मिल जाता है।[3] देखा जा सकता है कि आधुनिक तकनीकी से सुसज्जित बड़े-बड़े साधन सम्पन्न अस्पतालों और स्कूलों का निजी क्षेत्र में भारत में भी जाल सा फैलता जा रहा है और इसे नव-उदारवादी नीति धारक सरकारें विकास की संज्ञा देती हैं मगर इस बात को भूला दिया जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रें में जहाँ गरीब लोगों को इलाज और स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का प्रश्न है, प्राईमरी स्वास्थ्य केन्द्रों में डॉक्टर तक नहीं है, और न इलाज की कोई सुविधा है, शिक्षा के क्षेत्र से लेकर रोजमर्रा की जरूरतों की वस्तु गरीबों के लिए पूर्ति का प्रबंध बाजार पर छोड़ दिए जाने के कारण गरीब आबादी इस बाजारवादी आर्थिक नीति में वंचितों की श्रेणी में ेंक दी गई है। चूँकि बाजार में सम्पन्न लोगों जिनके पास क्रय शक्ति है, उन्हीं के द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाली वस्तुओं की माँग रहती है, वैसी वस्तुओं के उत्पादन लागत को घटाने और वैश्विक बाजार प्रतिस्पर्द्धा में उन्हें लाने के लिए मजदूरों को मिल रही सुविधाओं को समाप्त करके सम्पन्न वर्ग को सस्ते सामान उपलब्ध कराने की नीति को सरकार चला रही है। बाजारवाद उत्पादन, विनिमय, वितरण आदि में सरकार द्वारा किसी भी तरह के हस्तक्षेप का न किए जाने की नीति और तमाम सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के निजीकरण की नीति के द्वारा कारपोरेट और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा नियंत्रित बाजार को मुख्य आर्थिक खिलाड़ी के रूप में प्रतिष्ठित करके राज्य के लोक कल्याणकारी अवधारणा को ही समाप्त कर रही है।[4]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की विसंगतियाँ और भारत

आज भी भारत एक कृषि प्रधान देश ही है। अगर कृषि उत्पादित सामानों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उदाहरण को लिया जाय तब यही कहा जा सकता है कि कृषि उत्पादित सामानों के व्यापार का सबसे न्यायोचित तरीका यही है–और इससे ज्यादा न्यायोचित तरीका औरकोई हो भी नहीं सकता-कि विकसित देश अपनी कृषि को सब्सिडी देना बंद करे। यह इस लिए भी जरूरी है कि विकाशसील देशों में-जिसमें भारत भी है-कि करीब एक बिलियन आबादी जो गरीब हैं वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गाँवों में और कृषि पर ही अपने जीवन-यापन के लिए निर्भर हैं। इस कारण कृषि उत्पादित सामानों के स्वतंत्र व्यापार के लिए-और न्यायोचित व्यापार के यह जरूरी है कि विकसित राष्ट्र अपनी कृषि को सब्सिडी न दे। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में न्यायोचित ढंग से कृषि उत्पादित मालों के व्यापार के लिए कीमत निर्धारण का इससे अच्छा कोई और तरीका नहीं हो सकता जो विकसित और विकासशील देशों के बीच कीमत सम्बन्धी प्रतिस्पर्द्धा को न्यायपूर्ण ढंग से निर्धारित करें। फिर भी, इस सम्बन्ध में जब विश्व व्यापार संगठन की बैठकों में इस तरह के प्रश्न विचारार्थ आते हैं तब विकसित राष्ट्रों के संकुचित राष्ट्रीय स्वार्थों को ध्यान में रख कर ही निर्णय लिए जाते हैं। यही नहीं, विकसित राष्ट्र विश्व व्यापार संगठन के नियमों का उल्लघंन करके भी अपनी कृषि को विभिन्न तरह की सब्सिडी देते हैं। सवाल है वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा में सफलतापूर्वक भारत के उत्पादों को कम्पीट कराने के लिए ऐसे विभेदकारी आचरणों और नियमों पर रोक लगाने के लिए संघर्ष का एक वैश्विक माहौल बनाने का, न कि श्रम कानूनों में संशोधन कर मजदूरों को मिल रही सुविधाओं को समाप्त करने की।[5]

इसके अलावा वैश्विकरण में भारत समेत तमाम विकासशील देशों पर बाजारवाद के सिद्धान्तों को किस तरह आरोपित कर दिया जाता है इसे भी देखना जरूरी है। भारत की सरकार की यह दलील कि बाजारवादी सिद्धान्तों को अपनाना आज एक अनिवार्य शर्त्त हो गई है, कितनी गलत है इसे देखा जा सकता है। बाजारवाद को अपनाने वाले देशों द्वारा यह किसी समझौता का परिणाम नहीं है बल्कि साम्राज्यवादी देशों द्वारा विकासशील देशों पर जबरन लादी गई नीति है।

आई. एम. एफ. और विश्व बैंक की भूमिका और भारत

नव-उदारवादी नीति के तहत इसकी सम्भावना भारत के पक्ष में कितनी है, इसे जाँचना जरूरी है।देखना है कि इस तरह की प्रतिस्पर्द्धा कितनी दूर तक जबरन भारत या अन्य विकासशील देशों पर उनके साथ किए गए समझौते के द्वारा लागू की गई है या उन पर जबरन लादी गई है। देखा जा सकता है कि ब्रेटान वुड की दोनों वित्तीय संस्थायें, आई. एम. एफ. और विश्व बैंक सारे

विकासशील देशों को जब वे अपने विकास के लिए जरूरी वित्त को इन संगठनों से हासिल करने की कोशिश करते हैं या आर्थिक संकट में फँसते हैं और इनसे कर्ज लेते हैं तब उन्हें आर्थिक मदद देने की शर्त्तों को ये संस्थाएँ तय करती है।[6] इन संस्थाओं में वोटिंग का तरीका विकसित देशों की तरफ झुका हुआ है, क्योंकि इनमें उनका वित्तीय सहयोग ज्यादा है। इनमें वोटिंग का तरीका भी बाजारवादी सिद्धान्त पर तय है कि ज्यादा क्रय शक्ति वाले को ज्यादा मत का अधिकार। जो देश बाजारवाद के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दिखाता है वे उसे ही वित्तीय सहायता देते हैं और इसको न्यायोचित ठहराने के लिए बाजार के प्रति उन्हें एकाउन्टेबल या समर्पित होने के वादे के साथ मदद करते हैं। विडम्बना यह है कि वे स्वयं अपनी सिफारिशों के प्रति जिम्मेदार या एकाउन्टेबुल नहीं हैं क्योंकि मेक्सिको, अर्जेन्टीना या इन्डोनेशिया, मलेशिया, ग्रीस आदि देशों में उनके द्वारा सुझाई गई नीति पर चलने के कारण जो आर्थिक संकट आया उसकी जिम्मेदारी वे नहीं लेते। भारत के संदर्भ में भी यही देखा जा सकता है कि ये संस्थाएँ बाजारवाद को भारत के ऊपर थोपी है, क्योंकि वित्तमंत्री के रूप में 1990-91 में मनमोहन सिंह की बहाली इन्हीं के दबाब का परिणाम था जिसके पीछे अमेरिका था और मनमोहन सिंह द्वारा मेमोरेन्डम वह प्रतिज्ञा पत्र था जिसमें बाजारवाद को भारत द्वारा अपनाए जाने की प्रतिबद्धता थी।

उपर वर्णित ये कुछ उदाहरण है जो दर्शाते हैं कि किस तरह बाजारवाद और बाजारवादी प्रतिस्पर्द्धा भारत पर लादी गई है मगर इसको और स्पष्ट समझने के लिए जरूरी है कि वर्त्तमान वैश्विकरण की प्रक्रिया में स्वाभाविक रूप से विद्यमान विसंगतियों को समझाजाय अन्यथा नवउदारवादी नीति धारक सरकारों की दलील कि वैश्विकरण और बाजारवाद को स्वीकार करना आज एक आवश्यक शर्त्त है को समझना कठिन होगा।[7]

बाजारवादी वैश्विकरण और भारत

वैश्विकरण और बाजारवादी आर्थिक नीति में वैश्विक आर्थिक परिदृश्य के सामने रख कर देखा जाय तब इसकी सबसे प्रमुख और मौलिक विसंगति है : वित्तीय पूँजी का एक देश से दूसरे देश में स्वतंत्र और निर्बाध आवगमन, मगर दूसरी तरफ श्रम के-खास कर अकुशल श्रम का-एक देश से दूसरे देश में आवगमन पर रोक। आँकड़े दर्शाते हैं कि 19वीं सदी के अन्तिम दशकों में अगर पूरे विश्व की जनसंख्या का अनुमानित आँकड़ा बताता है कि प्रत्येक छः आदमी में से एक अपने देश से बाहर रोजगार या जीविका के लिए या इन्डन्चर्ड कानून के तहत उपनिवेशों में बसाने के लिए भारत, चीन आदि से या यूरोप से उत्तर अमेरिका, मध्य अमेरिका या दक्षिण अमेरिका आदि में जाते थे मगर आज के युग में जबकि आवागमन के साधनों में काफी विकास हो गया है, पिछले पाँच दशकों का अनुमान बताता है कि अब 8 व्यक्तियों में से 1 व्यक्ति अपने देश से बाहर जाता हैं पूँजी का-खास कर वित्तीय पूँजी का-एक देश से दूसरे देश में आवगमन में जहाँ बड़ी प्रगति हुई है वही श्रम के आवगमन की गति धीमी हो गई है। अनुमान है विदेशी मुद्रा में विदेश व्यापार प्रतिदिन 1.2 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर में होता है और इस रकम में से करीब इसका 2 प्रतिशत ही मालों और सेवाओं के व्यापार में लगता है और अगर सारे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की रकम को भी जोड़ दी जाय तब भी यह 4 प्रतिशत से कम ही रहता है। अगर विदेशी पूँजी बाजार में अगर चंद दिनों के खानगी व्यापार का रूख दुश्मनागत पूर्ण हो जाय तब विश्व के सारे देशों के केन्द्रीय बैंकों का विदेशी मुद्रा भंडार स्वाहा हो जाएगा। आज वैश्विकरण का चरित्र व्यक्तिगत वित्तीय पूँजी के प्रभाव के तले आ गया है और अब पहलेवाली दुनिया नहीं रही । इसी चरित्रवाले वैश्विकरण में भारत सरकार मजदूरों की सुविधाओं को समाप्त कर खानगी वित्तीय पूँजी के इसी प्रभाव के खिलाफ भारतीय मालों को व्यापार और बाजार की प्रतिस्पर्द्धा में सक्षम बनाने का सपना देख रही है। देखा जा सकता है कि 1970 के दशक के मध्य से जब विश्व के प्रमुख पूँजीवादी देशों ने अपने पूँजी बाजार का उदारीकरण किया तब अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी के प्रभाव में बड़ी तेजी से बढ़ोतरी का दौर शुरू हो गया और 1980 के दशक में इसने ऐसा जबरदस्त प्रभाव पैदा कर लिया इसका मुकाबला करना कठिन हो गया।[8] सार्वजनिक जीवन में या सरकारी स्तर पर इस वित्तीय पूँजी के बढ़ते प्रभाव के सम्बन्ध में बहुत ही कम ध्यान दिया गया। मगर इस प्रक्रिया के बढ़ते प्रभाव का आकलन इस तथ्य से लगाया जा सकता था कि सरकार ने अपनी आर्थिक नीति निर्धारण की प्रक्रिया को इसी के अनुरूप निर्धारित करने की नीति के तरफ झुकती गई। अब सरकार वित्तीय बाजार के अनुरूप अपनी नीति को ढालती चली गई।[9] समाचार चैनलों ने-खास कर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और अंग्रेजी भाषा मीडिया ने जो भारत में मध्य वर्ग की विचारधारा को प्रभावित करने वाली सबसे मजबूत स्त्रेत के रूप में काम करती है, ऐसा प्रचारित किया जैसे कि रोज-रोज उतार-चढ़ाव में रहने वाला स्टॉक बाजार ही आर्थिक विकास को मापने का सबसे विश्वसनीय बैरोमीटर है। अपनी आर्थिक नीति को इसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी के संचालन के नियमों के साथ सम्बद्ध करके भारत को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्द्धा में लाने के लिए सरकार जब हर तरह के सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों को समाप्त करती जा रही है और श्रम कानूनों में संशोधन को इसी सामाजिक सुरक्षा को समाप्त करने की दिशा

में जा रही है तब वह नहीं विचार कर रही है कि वैश्विकरण की प्रक्रिया में वैश्विक स्तर पर किए जा रहे व्यापार में विदेशी मुद्रा विनिमय में किया जानेवाला निजी व्यापार की तुलना में भारतीय मुद्रा और भारतीय स्टॉक बाजार की स्थिति इतनी कमजोर है कि कोई भी एक बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का खिलाड़ी भारत के स्टॉक बाजार को या भारतीय मुद्रा को जब चाहे तब चिन्तनीय हालात में ला दे सकता है। यह स्थापना काल्पनिक या मात्र मनोवादी आधारों पर नहीं टिकी है उदाहरण है कि जब प्रगतिशील गठबंधन सरकार का गठन वामपंथियों के बाहर से समर्थन के आधार पर की गई तब किस तरह दलाल स्ट्रीट में स्टॉक मार्केट का बैरोमीटर का पारा एकबारगी नीचे इस भय के कारण आ गया कि वामपंथी खानगी व्यापार की अनुमति नहीं देने देंगे और तब विदेशी निवेशकों ने अपनी पूँजी वापस ले जानी शुरू कर दी थी। बाजार में स्थिरता तब आई जब सरकार ने अपनी उच्चस्तरीय आर्थिक टीम में प्रधानमंत्री प्लानिंग कमीशन के उप-सभापति और वित्तमंत्री के-जो तीनों नव-उदारवाद के प्रबल समर्थक थे-को रखा। [10]

भारत के साथ-साथ अनेकों अन्य विकासशील देशों की कहानियाँ अधुरी रह जाती है अगर स्टॉक बाजार के सम्बन्ध में आई. एम. एफ. और विश्व बैंक की भूमिका का वर्णन न किया जाय। चूँकि ये दोनों वित्तीय संस्थायें विदेशी निजी निवेशकों के लिए निवेश करने सम्बन्धी स्थितियों के निर्धारण में प्रमुख भूमिकाएँ बनाती है इस कारण किसी देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा निवेश किए जाने के लिए आबोहवा के निर्माण में उनकी भूमिका को नजर अंदाज करना कठिन है। अगर किसी देश की आर्थिक नीति कॉरपोरेट जगत के पक्ष में होती है तब ये संस्थाएँ उस देश में निवेश के लिए हरी झंडी देती है। नतीजा होता है कि विदेशी निवेश सिर्फ उसकी तरफ अपना रूख ही नहीं करते, बल्कि उस देश में स्टॉक बाजार उछाल पर आ जाता हैं। इसके विपरीत अगर देश की आर्थिक नीति ऐसी नहीं है तब उस देश को विदेशी पूँजी के पलायन के दंश के कारण आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है। आज के वैश्विकरण का यही अलिखित मगर धुरी-खेल है। भारत की सरकार जब श्रम कानूनों में संशोधन कर उत्पादित मालों को इसी धुरी-खेल (Core game)वाले वैश्विकरण में प्रतिस्पर्द्धा के योग्य बनाने की दलील देती है तब इसका स्पष्ट मतलब है कि सरकार अर्थव्यवस्था को आई. एम. एफ. और विश्व बैंक के मानकों के आधार पर खड़ा करने और कॉरपोरेटर पक्षी बनाने के लिए श्रम सम्बन्धी सारे विषय मालिकों के हाथों में दे देना चाहती है। यही कारण है कि सरकार मजदूरों के संवैधानिक जनवादी अधिकारों को भी सीमित कर देना चाहती है और ट्रेड यूनियन ऐक्ट में संशोधन कर जनवादी ढंग के आन्दोलनों को भी बंद कर देने की दिशा में जा रही है।[11]

वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम

भारत सरकार द्वारा वैश्विक बाजर की प्रतिस्पर्द्धा में कम्पीट करने के लिए अपनाई जा रही नीति का परिणाम हो रहा है कि शोषण और गरीबी बढ़ गई है, इसका सबसे बुरा प्रभाव मजदूर वर्ग पर पड़ रहा है। मजदूरों के अधिकार छीने जा रहे हैं, बिना कानून के या कानून के विरूद्ध जाकर-यहाँ तक कि भारत के संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों की अवहेलना करक-मजदूरों के काम के घंटे बढ़ाये जो रहे हैं, उनकी सामाजिक सुरक्षा को समाप्त किया जा रहा है, नियमित मजदूरों को कैजुअल मजदूर बनाया जा रहा है, श्रम बल को घटाने के लिए वी. आर. एस. लाया गया है। ट्रेड यूनियनों के खिलाफ ऐसे कानून बनते जा रहे हैं जो मजदूरों के सामूहिक सौदेबाजी की ताकत को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं आदि। यही वे स्थितियाँ है जिनमें सरकार वैश्विक बाजर की प्रतिस्पर्द्धा में भारत को सफल बनाने के लिए श्रम कानूनों को बदलना चाहती है।[12]

वैश्विकरण में सरकार की बदलती सोच

नव-उदारवादी नीति को अपनाने के बाद प्रबंधान और सरकार, दोनों की सोच में मजदूर विरोधी बदलाव आ गए हैं। यह दलील दी जाने लगी है कि भारत में श्रम कानूनों की अनमनीयता इतनी न ज्यादा है कि उसके कारण उत्पादन प्रक्रिया में रूकावटें आ रही है, उत्पादन का लाभ सामान्य लोगों तक नहीं पहुँच पाता है। वैश्विक बाजार की प्रतिस्पर्द्धा में भारतीय उत्पाद इस कारण सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर पाते क्योंकि श्रम कानूनों की अनमनीयता के कारण उत्पादन लागत बढ़ जाया करती है। श्रम कानूनों को तो यहाँ तक दोषी ठहराया जाता है कि मजदूर बिना काम किए वेतन लेते हैं और अनावश्यक रूप से आन्दोलन करके उत्पादन को बाधित करते हैं। इस बुराइयों के निदान के लिए वर्त्तमान श्रम कानूनों में बदलाव की जरूरत है क्योंकि वर्त्तमान तकनीकी प्रगति को उत्पादन प्रक्रिया में लागू किए जाने में भी ये बाधाक है और वर्त्तमान संदर्भ में पुराने श्रम कानून अपनी समीचीनता को भी खो दिए हैं। सकल घरेलू उत्पाद में हो रही बढ़ोतरी के बावजूद भी रोजगार सृजन न होने का दोष भी श्रम कानूनों पर ही मढ़ा जा रहा हैं और कहा जा रहा कि वर्त्तमान श्रम कानून मुख्यत: संगठित क्षेत्र के मजदूरों की ही हित रक्षा उनकी नौकरियों की गारंटी, सामाजिक

सुरक्षा आदि के लिए ही प्रतिबद्ध है और नए लोगों को नौकरियों में आने में बाधा बन गए हैं। नियोजकों की दलीलें हैं कि श्रम कानूनों की ऐसी अनमनीयता प्रबंधकों को मजबूर करती हैं कि वे मशीनों का ज्यादा उपयोग करे और मजदूरों की नई बहालियाँ न करें। इससे रोजगार सृजन बाधित हो रहा है। इसी तरह के अनेक कारणों को आगे लाकर प्रबंधक श्रम कानूनों को लचीला/नमनीय बनाने की माँग करते हैं।[13]

विडम्बना यह है कि ऐसे तर्कों में विश्व बाजार में प्रतिस्पर्द्धा, विश्व व्यापार में खानगी वित्तीय पूँजी का विदेशी मुद्रा में किए जाने वाले व्यापार की ताकत आदि का जिसका वर्णन इसी अध्याय में पहले किया है-इस तरह की दलीलों में कोई स्थान नहीं है। दूसरी तरफ मजदूर संघों की राय में श्रम कानूनों में किया जाने वाला संशोधन और कुछ नहीं बल्कि नियोजकों के मुनाफे को बढ़ाने का तरीका है और वह भी मजदूरों की सुविधाओं और सामाजिक सुरक्षा के मदों पर होने वाले खर्चों को काट कर श्रम कानूनों में ऐसा बदलाव न तो उत्पादन, न उत्पादकता को बढ़ा सकता है और रोजगार सृजन के बदले मजदूरों की छँटनी का तरीका है जिसका सबसे बुरा प्रभाव आन्तरिक बाजार के संकुचन, माँग में कमी के साथ-साथ घरेलू तकनीक पर आधारित उत्पादन को बंद कर देगा।[14]

निष्कर्ष

ऊपर के विवरणों से पता चलता है कि वैश्विक बाजार की प्रतिस्पर्द्धा में भारत को सफल बनाने के लिए नव-उदारवादी नीतिधारक जितनी भी सरकारें आती हैं उनके सामने श्रम कानूनों में बदलाव कर वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा में भारत को सफल बनाने का एक ही उपाय दीखता है श्रम कानूनों में सुधार कर मजदूरों को मिल रही सुविधाओं को और सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों को समाप्त कर मालिकों के मुनाफा को बढ़ाना, उत्पादन लागत कम करना आदि ही प्रधान लक्ष्य है मगर वैश्विक बाजार की प्रतिस्पर्द्धा के मूल कारणों में खानगी, निजी पूँजी का विदेशी मुद्रा में किया जाने वाले व्यापार आई. एम. एफ., विश्व बैंक आदि के साथ-साथ विश्व व्यापार संगठन की भूमिका आदि को समझे बिना कोई कारगर हल नहीं निकल सकता। इस अध्याय में वर्णित सारे पहलूओं को समग्रता में देखा जाना चाहिए जिसे भारत की सरकार नहीं देख रही है।

संदर्भ-सूची

1. अमित भादुरी, "इन ल्यू आफॅ एन इन्ट्रोडक्सन", (सम्पा.) अमित भादुरी एस्सेज इन दि रिकन्स्ट्रक्सन आफॅ पोलिटिकल इकोनोमी, आकार बुक्स दिल्ली, 2010, पृ. 9-10.
2. प्राणज्वा गुहा ठकुरता "कांग्रेस और लेफ्ट : हू कौल्ड हूज ब्लफ", (सम्पा.) एस.के.पाण्डे, इन्डो-यू.एस. न्यूक्लियर, डील : ए रेफरेन्स कम्पाइलेसन, दिल्ली यूनियन ऑफ जर्नालिस्ट्स एण्ड इट्स मीडिया सेन्टर, 2007, पृ. 308-09.
3. वित्त मंत्री के रूप में डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा आइ.एम.एफ. को दिया गया दो मेमोरेन्डम पहला-27 अगस्त, 1991, दूसरा-2 जून, 1992, को देखा जा सकता है।
4. "इम्पैक्ट आफॅ ग्लोवलाइजेसन ऑन इन्डियन इकॉनोमिक डेवलल्पमेन्ट", डॉ. मथाई लेक्चर, 2006 कालीकट यूनिवर्सिली, संग्रहित (सम्पा.) अमित भादुरी, पूर्वोद्धृत, पृ. 15-26.
5. बैंक आफॅ इन्टरनेशनल सेट्लमेंट का अनुमान, 2001 सेंट्रल बैंक सर्वे आफॅ इन्टरनेशनल एक्सचेन्ज एण्ड डिराइवेटीव मार्केट एक्टीवीटी इन अप्रील, 2001, ग्लोबल डाटा वेस रिलीज.
6. "ग्रोइन्गि वास्टलैण्ड, फाउन्डेसन डे लेक्चर, डेलीवर्ड ऐट दि मद्रास इन्स्टीच्यूट आफॅ डेवलपमेंट स्टडीज, 2007, उद्धृत (सम्पा.) अमित भादुरी, उपरोद्धृत, पृ. 28-29.
7. उपरोद्धृत, पृ. 29.
8. पी.एच.कॉसलमेन, लेबर डिक्सनरी, पृ. 197.
9. पी. साईनाथ "केन्द्र की कॉरपोरेट समाजवादी लीला", प्रभात खबर, 10 मार्च, 2011, पृ.12.
10. उपरोद्धृत।
11. विजनेस स्टैण्डर्ड, 2005, गुड़गाँव के होण्डा मोटर साइकिल ऑर स्कूटर इन्डिया के मामले के सम्बन्ध में।

12. के. व्ही. इक, "फ्लेक्सीविलाइंग इम्प्लॉयमेंट : एन ओवरभ्यू", एस.ई.ई.डी.वर्किंग पेपर, आई.एल.ओ. जेनेवा, 2003.
13. के. आर. एस.सुन्दर, "लेवर फ्लेक्जीविलीटी : डिवेट इन इन्डिया", इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 2005, पृ. 2224-2285.
14. आर. रंगराजन शशि कुमार, "लेबर मार्केट इन इन्डिया : इसूज एण्ड परस्पेक्टीव", पालगेम, मैकमिलन वांसिंग स्टॉक, 2006, पृ. 2005-300.

वर्त्तमान परिवेश में कोरोना आपदा या अवसर : एक अध्ययन

डॉ० प्रगति

एसिस्टेंट प्राफेसर, विश्वविद्यालय गृह विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

चीन के बुहान शहर से फैले इस वायरस ने पूरे विश्व को अपना घर बना लिया है। कोई इसे मानव निर्मित तो कोई इसे प्राकृतिक मान रहा है। सबने अलग-अलग तर्क दिए। एक बात तो तय है कि यह वायरस न तो अमीरी देखता है न गरीबी, न जात देखता है न बिरादरी, न रंग देखता है न धर्म। इसके सामने सब बराबर। समानता का सिद्धान्त लेकर तो यही आया है। यह सबसे ताकतवर है। इतना ताकतवर है कि पूरे विश्व पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया है, धीरे-धीरे पूरा विश्व कोरोना वायरस की चपेट में आ चुका है। घर-घर डर का साया छाया हुआ है। ''जान बचे तो लाखों पाय'' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इसे महामारी घोषित करने के पश्चात् विश्व के सभी देशों के लिए कोरोना सिर दर्द बन गया है। इसने तो भगवान हो या अल्लाह सबके दरवाजे बन्द करवा दिए। अब यही तय करता है-कौन रहेगा और कौन जायेगा? पूरे विश्व के वैज्ञानिक हैरान, परेशान हैं। मानव, मानव से डर रहा है। कौन अपना, कौन पराया, सभी एक-दूसरे से डर रहे हैं। कोरोना से मरने वालों की तो लाशें तक घरवालों को नसीब नहीं हो रही हैं। कोरोना बार-बार बता रही है-'हे मानव तुम्हारी सारी वैज्ञानिक प्रगति मेरे सामने बेकार हैं। यह हमें हमारी औकात बता रहा है। हमने इतनी प्रगति कर ली है कि पलक झपकते ही पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाए, किन्तु आँखों से न दिखने वाला एक सूक्ष्म जीव ने हमारी नींद उड़ा कर रख दी है।'

20 मार्च, 2020 तक थाइलैंड, दक्षिण कोरिया, जापान, ताइवान, मकाऊ, हांगकांग, संयुक्त राज्य अमेरिका, सिंगापुर, वियतनाम, भारत, ईरान, इराक, इटली कतर, दुबई, कुवैत और अन्य 160 देशों में इस वायरस के मामले सामने आए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना वायरस को नया नाम कोविड-19 (COVID-19) दिया। आज विश्व एवं हमारे देश भारत में संक्रमण के मामले इन दिनों बढ़ते ही जा रहे हैं। पर अफसोस की बात है कि इस Hightech Era में भी हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ पा रहे हैं। इसने हमें यह बता दिया है कि हमारी वैज्ञानिक प्रगति आज भी शून्य ही है।

इसके पहले भी कई आपदा आ चुकी है पर COVID-19 सबसे अलग है। जब हमारा विश्व पूरी तरह से भूमंडलीकृत (Globalized) हो चुका है। पूरा विश्व जब एक Platform पर है तो विकासशील क्या, सभी विकसित देशों में COVID-19 की वजह से लॉकडाउन है। इस लंबे लॉकडाउन की वजह से सभी देशों की अर्थव्यवस्था चरमरा गई है। भूमण्डलीकरण की यह विशेषता है कि इसमें कुछ भी लोकल नहीं रहता, यहाँ सब कुछ ग्लोबल हो जाता है। इसीलिए विकसित देशों की अर्थव्यवस्था का चरमराना विकासशील देशों के लिए खतरे की घंटी है।

चीन के बुहान शहर से फैले इस वायरस ने लोकल से ग्लोबल का रूप महज कुछ ही महीनों में ही ले लिया। जब यह वायरस चीन में तबाही मचा रहा था, तब इसे चीन की लोकल समस्या मान कर खिल्ली उड़ा रहे थे। चीन के खान-पान का मज़ाक बना रहे थे। हमने उस समय तनिक भी नहीं सोचा कि चीन की समस्या हमारी समस्या बनने में देर नहीं लगेगी। हमें उसी समय उसकी भयंकरता को भाँपते हुए ठोस कदम उठाने चाहिए थे, किन्तु हम उस समय ट्रंप का स्वागत करने और विदेशों में फँसे लोगों को जहाज में भर-भर कर लाने में व्यस्त थे। जिन लोगों को भी उस समय बाहर से लाया गया, न तो उनको क्वारेन्टिन ही किया और न उनके टेस्ट कराने की व्यवस्था ही की गई। हमने उस समय इस खतरे को गंभीरता से लिया ही नहीं। क्या करते हमें तो मध्यप्रदेश में सरकार जो बदलनी थी। फिर अचानक से शुरु हुआ लॉकडाउन का सिलसिला। एक ही रात की घोषणा ने रात भर में ही

लॉकडाउन को लागू कर दिया। लॉकडाउन के कारण सरकारी खजाने पर भार बढ़ता जा रहा था, गरीब जनता के लिए कई हजार करोड़ के पैकेज की घोषणाएँ हुई, कई चीजों में रियायतें दी गई, मुफ्त राशन की व्यवस्था की गई। किन्तु, उसी समय सरकार द्वारा केन्द्रीय कर्मचारियों के D.A. Freeze करने की घोषणा भी हुई और सांसदों के MPLAD जैसे फंड को भी समाप्त कर दिया। एक बात और समझ से परे लगी कि एक ओर देश आर्थिक संकट से जूझ रहा है, और दूसरी ओर सरकार इसे अवसर बनाते हुए अपने चहेते उद्योगपतियों के करीब आठ लाख करोड़ लोन की माफी की घोषणा आखिर किस आधार पर कर रही हैं?

पूरे देश में जहाँ कोरोना संक्रमित लोगों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही है, वहाँ हमारे पास न तो आई.सी.यू. की पर्याप्त संख्या है, न रोगियों के इलाज के लिए पर्याप्त बिस्तर। यह अच्छी बात है कि पिछले चार महीनें में हमने काफी नए आई.सी.यू. मशीनों का आयात कर लिया है एवं मास्क और सैनेटाइजर के निर्माण के मामले में भी हमने आत्मनिर्भरता हासिल कर ली है। ऐसे समय में भी अपने ही देश के कई कम्पनियों ने मास्क एवं सैनेटाइजर को काफी ऊँची कीमत में बेचकर अधिक मुनाफा कमाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। दस रुपये का साधारण मास्क 300 रुपये तक में बेची गई और 20 रुपये का सैनेटाइजर 200 रुपये में। फिर भी देश में इन दो आवश्यक चीजों की पर्याप्त आपूर्ति नहीं हो पाई। सरकार द्वारा ऐसे समय में सोने पर 3 प्रतिशत तो सैनेटाइजर पर 18 प्रतिशत GST लगाना इसे अवसर बनाना ही तो है।

आपदा को अवसर बनने में देश के बड़े-बड़े प्राइवेट कॉलेज और स्कूलों ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी है। आज जब पिछले पाँच-छह महीनों से स्कूल-कॉलेज बन्द है, फिर भी बच्चों से पूरी फीस के साथ-साथ बस फेअर भी वसूला जा रहा है। कई राज्य सरकारें इस मामले में चुप्पी साधे बैठी हैं। आखिर ये बड़े-बड़े प्राइवेट स्कूल, कॉलेज किसी न किसी घरानों के हैं, और ये पूँजीपति घराने ही तो हर पार्टी के डोनेशन बैंक हैं। सरकारें तो इनसे ही चलती है। ऑनलाइन क्लास के नाम पर जो चल रहा है, उससे बच्चों को कितना ायदा होगा, यह तो समय ही बताएगा। वैसे भी देश के अधिकांश बच्चे सरकारी स्कूलों या कॉलेजों में पढ़ते हैं। इन सरकार को उनकी कोई चिन्ता नहीं है। उन सबकी क्लास तो भगवान भरोसे ही चल रही है।

कई महीनों के लॉकडाउन के बाद देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए सरकार को विवश होकर देश को अनलॉक करना पड़ा। अनलॉक के बाद तो कोरोना ने दिन दुनी रात चौगुनी प्रगति हासिल की। सरकार द्वारा आत्मनिर्भर का नारा देकर हमें मरने के लिए छोड़ दिया गया। वैसे भी 135 करोड़ की आबादी वाले देश में 20-30 लाख लोग मर भी गए तो सरकार का कुछ बिगड़ने वाला नहीं। उनकी तो बस कुर्सी बचनी चाहिए। एक फिल्मी डायलॉग है–''अपना काम बनता तो, भाँड़ मे जाए जनता''। अब तो केन्द्र सरकार ने कोरोना से पूरी तरीके से पल्ला झाड़ लिया है और सारी जिम्मेदारी राज्य सरकारों को दे दी गई है। सरकार का दायित्व बस महीने में एक बार राज्य के मुख्यमंत्रियों से वर्चुअल मीटिंग कर कोरोना का जायजा लेने और मन की बात करने तक सीमित हो चुका है। अभी कोरोना की वैक्सीन आई भी नहीं है और उधार मैडम नीता अंबानी यह घोषणा कर रही है कि वैक्सीन आते ही वह इसे हर गरीब तक पहुँचाने में मदद करेगी। गरीब जनता इसकी चिन्ता न करें। अब इसे नीता अंबानी का गरीबों के प्रति दरियादिली समझें ये इसके पीछे भी कोई बिजनेश पॉलिसी कह पाना मुश्किल है। यह वही पूँजीपति वर्ग हैं जो उस समय चुप्पी साधे बैठी थीं जब सड़क पर लाखों मजदूर विवश होकर पैदल चल रहे थे और जगह-जगह मारे जा रहे थे।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कोरोना एक ओर जहाँ गरीबों एवं मध्यवर्गीय के लिए आपदा बनकर आई, वहीं इन नेताओं और पूँजीपतियों क लिए अवसर।

संदर्भ सूची

1. https://www.who.int/health-topics/coronavirus
2. https://ayush.gov.in/
3. समाचार पत्र :
   * हिन्दुस्तान
   * Times of India
   * जनसत्ता
   * द हिन्दू
4. दूरदर्शन चैनल-NDTV India

प्रारंभिक भारतीय इतिहास में जेंडर संबंध और राष्ट्रवादी इतिहास लेखन

प्रभात कुमार

शोधा-छात्र, इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रारंभिक भारतीय इतिहास में महिलाओं की कैसी स्थिति थी इस विषय में होने वाली चर्चाओं को लेखन, अधयापन और अध्ययन में एक पारिस्थितिक नजरिए से देखा जाता है। प्राचीन भारत के बारे में लिखी गई किसी भी किताब का महत्व चाहे जो भी हो लेकिन उसमें महिलाओं के बारे में कुछ न कुछ जानकारी जरूर मिलती है। इस प्रकार की जानकारी इतिहास की किसी भी अन्य धारा में नहीं मिलती क्योंकि उनमें स्त्रियों की स्थिति पर अलग से चर्चा करने की कोई परंपरा नहीं है।

राष्ट्रीय आंदोलन के शुरूआती चरण में महिला प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। उन्नीसवीं सदी के धर्म सुधार आंदोलन हिंदू समाज में सुधार की वकालत करते हुए, जाति प्रथा और महिलाओं की कमजोर स्थिति को हिंदू समाज के दो प्रमुख विकारों के रूप में देखते थे। इस काल के सभी प्रमुख सुधारकों ने सती प्रथा, बाल विवाह और जबर्दस्ती वैधव्य यानी विधवाओं को पुनर्विवाह करने से रोके जाने का बाकायदा विरोध किया था। सुधारों का यह एजेंडा सभी सुधारकों को एक साथ मंच मुहैया कराता था फिर भले ही वह सुधारक बंगाल में ब्रह्म समाज से हों, महाराष्ट्र के प्रार्थना समाज से हों, या उत्तर भारत में आर्य समाज से जुड़े हों। इन प्रश्नों पर यह गंभीरता कम से कम अंशत: उन्नीसवीं सदी के बाह्मणवादी मॉडल के वर्चस्व से उभरी थी क्योंकि बहस में खास तीखापन स्वयं हिंदू समुदाय के उच्च वर्गों की तरफ से ही आया था। महिला प्रश्न की उपरोक्त विशिष्टताएँ, समकालीन विमर्श तक में बनी रही हैं, जहाँ स्त्री की पहचान का अध्ययन लगभग पूरी तरह ब्राह्मणवादी मॉडल और स्त्री को विशिष्ट स्थान प्रदान करने वाले मिथकों पर आधारित है।[1]

महिलाओं की स्थिति से संबंधित परंपरागत लेखन का एक और पक्ष यह था कि यह लेखन पूरी तरह ब्राह्मणवादी स्त्रेतों पर आधारित था। यदि इन स्त्रोतों को विश्वसनीय मान भी लिया जाए, जिस पर मुझे काफी संदेह है, तो भी इनमें कई समस्याएं हैं, जैसे (क) इनमें ब्राह्मणें के प्रति अंतर्निहित पक्षधरता हैं, (ख) यह आम जनता के व्यवहार के बजाय ब्राह्मणें के उपदेशों को प्रतिबिंबित करते हैं, और (ग) यह उच्च जातियों के अनुकूल हैं। इस आधार पर, मौजूदा अध्ययनों को हद से हद आंशिक दृष्टिकोण का दर्जा दिया जा सकता है।

प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति के विश्लेषण पर इसलिए भी शंकाएं होती हैं क्योंकि लगभग सारी कृतियों के लेखक विद्वान इतिहास लेखन की राष्ट्रवादी विचारधारा में आते हैं। जिस दौरान हिंदू सामाजिक संस्थाओं पर पश्चिमी शिक्षा और पश्चिमी मूल्यों को ग्रहण करती जा रही पीढ़ी की तरफ से तीखा प्रहार किया जा रहा था, उस समय सक्रिय इन विद्वानों ने यह सिद्ध करने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा दिया था कि अतीत में महिलाओं की स्थिति काफी बेहतर थी। और स्त्रियों की निम्न स्थिति में आई तत्कालीन विकृतियों की वजह से हिंदुओं में अपने शासकों की तुलना में हीनता की भावना आ गई। प्रतिक्रिया के तौर पर हिंदू विद्वानों ने तर्क दिया कि यह विकृतियाँ महज तात्कालिक भटकाव भर हैं और उन्हें आसानी से समाप्त कर दिया जाएगा। इसलिए उन अध्ययनों का मुख्य जोर यही दर्शाने पर रहा है कि वैदिक काल में महिलाओ की स्थिति बेहद ऊंची थी। इस सोच के मुताबिक, वैदिक काल के बाद एक गिरावट आने लगी जो विदेशी आक्रमणकारियों की घुसपैठ के साथ अपने चरम पर जा पहुंची। इन विदेशी आक्रमणकारियों में मुसलमानों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है कि उन्होंने महिलाओं का अपहरण करके भ्रष्ट किया और

इसीलिए परदा, सती और बालिका शिशु हत्या जैसी कुरीतियां पैदा हुईं।[2] चूंकि यह समझ लोकप्रिय साहित्य और क्षेत्रीय पत्र-पत्रिकाओं में अकसर झलकती रहती है इसलिए व्यापक स्वीकृति प्राप्त कर चुकी है लेकिन हमें इस तथ्य की तरफ जरूर संकेत करना चाहिए कि यह सिर्फ परंपरागत शैक्षणिक शोध का ही विस्तार है।

यदि हम वर्तमान के संदर्भ को थोड़ी देर के लिए नजर अंदाज कर दें तो ऐसे एकतरफा दृष्टिकोण तर्क की कसौटी पर कतई नहीं ठहरते हैं। यदि हम स्वयं को सिर्फ ब्राह्मणवादी स्त्रोतों तक ही सीमित रखें तो भी ऐसे साक्ष्यो की कोई कमी नहीं है जो दिखते हैं कि उच्च जातियों की महिलाओं को ईसा के बाद की शुरूआती शताब्दियों से ही सार्वजनिक संस्थानों पर जाने से रोका जाने लगा था, और कि मनु तथा अन्य कानून निर्माताओं ने लड़कियों की कम उम्र में ही शादी की हिमायत की थी। सातवीं सदी मे हर्षवर्धन के प्रारंभिक काल से संबंधित विवरणों में सती प्रथा उच्च जाति की महिलाओं के साथ साफ जुड़ी देखी जा सकती है। महिलाओं का आधुनिकीकरण सुनिश्चित करने वाली संस्थाओं का ढांचा अपने मूल रूप में मुसलिम धर्म के उदय से भी काफी पहले अस्तित्व में आ चुका था। इसलाम के अनुयायियों का आना तो इन तमाम उत्पीड़क कुरीतियों को वैधता देने कि लिए एक आसान सा बहाना भर है। यह तर्क विशेष रूप से उन लोगों को ज्यादा प्रिय था जो प्रारंभिक भारत में जेंडर संबंधों को नियंत्रित करने वाले संस्थागत ढांचे को नहीं देखना चाहते हैं, क्योंकि, मोटे तौर पर, समकालीन समाज के जेंडर संबंध भी इसी ढांचे पर आधारित हैं। 'पितृसत्ता' शब्द को बमुश्किल ही कहीं इस्तेमाल किया जाता था और जब इस शब्द का कभी-कभार इतिहासकारों के लेखन में उल्लेख किया भी गया था तो यह एक तटस्थ शब्द था। इसमें अंतर्निहित सत्ता संरचना का प्रसंग वहाँ नदारद था और इस तरह उपने मूल उद्देश्य और संदर्भ से काटकर उसे सफलतापूर्वक अराजनैतिक शब्द बना दिया गया था।

उन्नीसवीं सदी में भारत और इंगलैंड के बीच सांस्कृतिक टकराव के संदर्भ में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की शुरूआत हुई थी। इसी टकराव ने प्रारंभिक भारत में महिलाओं की स्थिति पर लेखन की दिशा निर्धारित की था। इस समूचे सांस्कृतिक टकराव के दरमियान हिंदू स्त्री के बीच जिस प्रकार तुलना की जा रही थी उससे हिंदू श्रेष्ठता की भावना को गहरी चोट पहुचती थी। यह आघात इतना तीखा था कि परिणामस्वरूप अकसर विंसेंट स्मिथ सिंड्रोम जैसी प्रतिक्रिया को जन्म देता था। विंसेंट स्मिथा की आम राय यही थी कि जो कुछ भी भारतीय है वह खराब और निकृष्ट है। यदि उसे भारतीय संस्कृति में कोई भी कीमत थी तो उसे वह ग्रीक प्रभाव की देन घोषित कर देता था। प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति पर लिखने वाले इतिहासकारों ने इसी तर्क को उलटा करके भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए तर्क देना शुरू कर दिया कि तीन हजार वर्ष पहले भारत में महिलाओं को जैसा सम्मानजनक दर्जा दिया जाता था वैसा सम्मान उन्हें दुनिया भर में कहीं भी नहीं दिया गया है। ग्रीस और रोम के साथ तुलना के संदर्भ में उनकी लेखनी विशेष रूप से प्रखर हो उठती थी, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से समझा जा सकता हैं :

प्राचीन हिंदू साहित्य का अध्ययन करने वाले भारत के उन इतिहासकारों को यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि ग्रीस ओर रोम के सबसे सुंदर दिनों में भी महिलाओं को वैसा सम्मान प्राप्त नहीं था जैसा तीन हजार साल पहले के भारत में था।[3]

भारतीय नारीत्व के खो चुके रूतबे को वापस पाने की कोशिश में राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने प्राचीन कृतियों के कुछ विशेष पहलुओं पर चुनिंदा फोकस रखा है। इस प्रवृत्ति ने अकसर ही, घटनाबों की बेहद साफ-सुथरी तस्वीर पेश की है, जिसका सबसे बढ़िया उदाहरण गार्गी-याज्ञवल्क्य शास्त्रर्थ की राष्ट्रवादी व्याख्या है। शकुंतला राव शास्त्री की किताब में बहस के ब्योरे का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु बहस को निष्कर्ष तक पहुंचाने का तरीका है। यहाँ तक आते-आते याज्ञवल्क्य से गार्गी के प्रश्न कहीं ज्यादा सूक्ष्म और तीखे हो उठते हैं। मगर, याज्ञवल्क्य गार्गी द्वारा इनाम में एक हजार गायें जीत लिए जाने की स्थिति के लिए तैयार नहीं है। बहस के इस मोड़ पर वह गार्गी को धमकी देता हैं कि यदि गार्गी ने उससे प्रश्न पूछना बंद नहीं किया तो उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा, और इस तरह गार्गी मुकाबले से बाहर हो जाती हैं इसके बावजूद, शकुंलता राव शास्त्री पूरे घटनाक्रम को समेटते हुए, एक स्त्री और एक पुरूष-दो दार्शनिकों के बीच इस अविस्मरणीय मुठभेड़ में इस साफ-साफ बेईमानी को नजरअंदाज कर देती हैं। इसकी बजाय वह आनंदपूर्वक मुद्रा में कहती हैं कि :

एक स्त्री द्वारा अत्यंत स्थिर और हठपूर्ण ढंग से प्रश्न करने की इस प्रक्रिया ने परम यथार्थ की सबसे परिष्कृत परिभाषा उपलब्ध करा दी। गार्गी के सवालों का उद्देश्य ब्राह्मण की प्रकृति के विषय में याज्ञवल्क्य की परीक्षा लेना नहीं बल्कि उनसे सीखना था।[4]

इस तरह शास्त्री के विवरण में गार्गी को निर्भीकता, स्वतंत्र चेतना और एक सुविख्यात दार्शनिक से दो-दो हाथ कर सकने की क्षमता पर पानी फेर दिया गया है; इससे भी ज्यादा अहम बात यह है कि मुकाबले में याज्ञवल्क्य की बेईमानी पर, यह सिद्ध करने के लिए पर्दा डाल दिया गया है, कि यह दार्शनिक सत्य तक पहुँचने की एक आनंदपूर्ण और लयात्मक प्रक्रिया भर थी।

अल्तेकर द्वारा हिंदू सभ्यता में महिलाओं की स्थिति पर अध्ययन, महिलाओं के विषय में किये गये अध्ययनों में सर्वाधिक चर्चित और सम्यक् राष्ट्रवादी कृति है। यह अध्ययन मोटे तौर पर ब्राह्मणवादी स्रोतों पर आधारित है और इसमें महिलाओं की स्थिति पर, बेहद प्राचीन काल से लेकर बीसवीं सदी के पाँचवें-छठे दशक तक के घटनाक्रम का ब्योरा दिया गया है, जब हिंदू कोड बिल पर चर्चा जोरों पर थी। अल्तेकर की कृति इतिहास में महिलाओं के अध्ययन के विषय में हमारे पास उपलब्ध संभवतः सबसे सुंदर कृति है लेकिन यह पुस्तक, बड़े तीखे ढंग से, परंपरागत दृष्टिकोण की सीमितताएँ भी उजागर कर देती है। हालांकि इस पुस्तक में, महिला शिक्षा, विवाह और तलाक, विधवा की स्थिति, सार्वजनिक जीवन में महिलाएँ, स्त्रियों के संपत्ति अधिकार और आम समाज में औरतों की स्थिति पर कानून निर्माताओं के तमाम दृष्टिकोणों का खुलासा किया गया है लेकिन यह महिला प्रश्न की राष्ट्रवादी समझ से ओत-प्रोत भी है। इससे भी बढ़कर, महिलाओं के बारे में उनकी सबसे ज्यादा चिंता परिवार के संदर्भ में है और इस किताब को पढ़कर ऐसा आभास मिलता है मानो भारत की भावी नस्ल के स्वस्थ विकास के लिए महिलाओं की हैसियत में सुधार किया जाना जरुरी है। इस लिहाज से वह भी उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के राष्ट्रवादी लेखकों की इस चाह को ही प्रतिध्वनित करती है, कि हिंदुओं का शारीरिक उत्थान बेहद आवश्यक है।

महिलाओं की स्थिति सुधारने के प्रति अल्तेकर की संजीदगी उन्हें कई बार कुछ अनूठे बयान देने पर भी मजबूर कर देती थी जिन्हें वह प्रगतिशील और सकारात्मक मानते थे। इसलिए वह सुझाव देते हैं कि हालांकि :

महिलाओं में लड़ाकू क्षमता का अभाव होता है, लेकिन उनके भीतर संभावित सैन्य क्षमता होती है। बेटों को जन्म देने के जरिए वह अप्रत्यक्ष रूप से अपने समुदाय की युद्ध क्षमता और कार्य कुशलता में ही इजाफा करती है।[5]

इसके अलावा, महिलाओं के प्रति अपनी उदारता और सहानुभूति के बावजूद, अल्तेकर महिलाओं को मूलतः एक शक्तिशाली नस्ल के उद्गम स्रोत के रूप में ही देखते थे। यह दृष्टिकोण महिला शिक्षा के विषय में उनके सुझावों में विशेष रूप से साफ देखा जा सकता है। अल्तेकर के सुधारों में महिलाओं को पर्याप्त शिक्षा का प्रावधान तो था लेकिन ऐसा करते हुए यह भी ध्यान में रखने की सलाह दी गई थी कि इससे उन पर गैर जरुरी जोर न पड़े।

स्त्रियों की ऊँची हैसियत स्थापित करना हिंदू सभ्यता को दोषमुक्त और समर्थ सिद्ध करने का तरीका था। यह दृष्टिकोण, जेम्स मिल द्वारा एक शताब्दी पहले हिंदू सभ्यता का अपमान करते हुए प्रकाशित किये गये लेखन के राष्ट्रवादी उत्तर का संपूर्ण संस्करण था। जेम्स मिल की कृति 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' में हिंदू सभ्यता की बर्बरता को हिंदू स्त्री की दयनीय अवस्था में स्थापित किया गया है। तस्वीर को पलटने के जरिए, अल्तेकर मिल के भूत को दूर भगाने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन महिलाओं को बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भी ग्रसने वाले अनेक उत्पीड़क रीति-रिवाजों से निपटने की बजाय एक सामान्य तस्वीर मुहैया कराना कहीं ज्यादा आसान था। इसलिए, अल्तेकर महिलाओं के विरुद्ध मौजूदा पक्षपातों के लिए स्पष्टीकरण देने पर विवश हो गये।

किसी दिये गये समय काल के दौरान महिलाओं की अवस्था और समाज व्यवस्था के बीच संबंध ढूंढ़ पाने की कोशिशों में अल्तेकर खासतौर से काफी कमजोर हैं। इसलिए, प्रारंभिक वैदिक काल में, जबकि अभी उल्लेखनीय सत्ता संकेंद्रण की स्थिति पैदा नहीं हुई थी या राजतंत्र का स्पष्ट ढांचा विकसित नहीं हुआ था, वहां भी, अल्तेकर रानियों की अनुपस्थिति के बारे में बेवजह सफाई देने लगते हैं। चूंकि अल्तेकर इस बारे में संतुष्ट है कि वैदिक काल में महिलाओं को बेहद ऊँची हैसियत प्राप्त थी इसलिए वह इस विषय में जवाब देना अपना फर्ज समझते हैं कि ऐसा क्यों है कि उन्होंने रानियों के बारे में कुछ नहीं सुना है।

इसी तरह महिलाओं के नाम पर संपत्ति न होने के बारे में भी अल्तेकर एक सुविधाजनक सफाई देते हैं। उनके मुताबिक : भूसंपत्ति का स्वामित्व केवल ऐसे व्यक्ति के हाथों में ही दिया जा सकता था जो मौजूदा या भावी शत्रुओं के आक्रमणों से उसकी रक्षा करने की क्षमता रखता हो। जैसा कि सर्वविदित है, महिलाएँ ऐसा नहीं कर सकती थीं इसलिए उन्हें कोई संपत्ति नहीं दी जा सकती थी।[6]

महिलाओं को एक विशेष सामाजिक संरचना के भीतर और पितृसत्तात्मक अधीनता के तहत देख पाने में यह अक्षमता अल्तेकर के मामले में ही कोई अनोखी बात नहीं थी। दूसरों की तरह, वह भी उस गहरे पैठ चुके जैविक निश्चिततावाद के उस विश्वास को ही अभिव्यक्त कर रहे थे जिसके अनुसार महिलाएँ शारीरिक रूप से दुर्बल दिखाई देती थीं।

लेकिन, बेहद विरले ही सही, महिलाओं को अधीन बनाने वाली सामाजिक आर्थिक संरचना के विषय में अल्तेकर एक प्रखर अंतर्दृष्टि के भी दर्शन करा देते हैं। मसलन आर्य स्त्री की स्थिति में 'गिरावट' के कारणों की पड़ताल के दौरान वह इस गिरावट को शूद्रों की सामाजिक विपन्नता के साथ जोड़ने की कोशिश करते हैं- वह तर्क देते हैं कि आर्यों द्वारा स्थानीय समुदायों को जीत लेने और उन्हें एक भिन्न वर्ण के रूप में अपने समुदाय में शामिल कर लेने के परिणामस्वरूप, अर्धादास किस्म की आबादी का बड़े पैमाने पर उदय हुआ। ऐसे हालात में, आर्य स्त्रियों की समाज के आर्थिक उत्पादकों के रूप में भूमिका समाप्त होने लगी और वे समाज में सम्मान से वंचित होने लगी। लेकिन यह मोटा-मोटी संदर्भगत स्पष्टीकरण देते हुए भी अल्तेकर महिलाओं द्वारा उत्पादक के रूप में हिस्सेदारी या महिलाओं द्वारा उत्पादन के नियंत्रक के रूप में हिस्सेदारी के बीच मौजूद इस महत्वपूर्ण विभेद के प्रति असंवेदनशील हैं। इसके बाद अल्तेकर की अर्द्ध ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि गायब हो जाती है और उन पर लोकप्रिय पूर्वग्रह हावी होने लगते हैं। प्राचीन ब्राह्मणवादी कानून निर्माताओं की तरह वह भी शूद्र स्त्री से आतंकित दिखाई देते हैं।

अल्तेकर के मुताबिक, यही सीधा सादा सा तर्क महिलाओं की स्थिति में गिरावट के पीछे मुख्य वजह रहा होगा। अल्तेकर दूसरी ऐतिहासिक व्याख्याओं के प्रति बिल्कुल मूक हैं। ऐसी भी संभावना हो सकती है कि जिस शूद्र को अल्तेकर एक खतरे के रूप में देखते हैं, उसने ही हिंदू समाज को एक ज्यादा गतिशील और सक्रिय स्त्रीत्व प्रदान करने में अहम भूमिका निभाई हो। लेकिन अल्तेकर ऐसी किसी व्याख्या को कोई वजन नहीं देते क्योंकि उनकी दृष्टि तो सिर्फ आर्य स्त्री पर है और उनके नस्लवादी दृष्टिकोण में शूद्र स्त्री की कोई अहमियत नहीं है। अल्तेकर की सीमित जैविक और वैज्ञानिक व्याख्याओं का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि स्त्री-पुरुष के बीच विकृत सामाजिक संबंधों का तर्क एकदम धुंधाला गया है। अल्तेकर की व्याख्याएँ आज हमें बड़ी ढीली प्रतीत हो सकती हैं लेकिन यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि मोटा-मोटी सभी राष्ट्रवादी इतिहासकार प्राचीन भारत के बारे में लिखते हुए ऐतिहासिक व्याख्याओं के संदर्भ में स्वयं को सांस्कृतिक पहलुओं तक ही सीमित रखते थे। यह भारत पर ब्रिटिश शासन के विषय में उनके विचारों के एकदम विपरीत था क्योंकि इस पक्ष पर विचार करते हुए वह सिर्फ आर्थिक और सामाजिक कारकों पर ही ज्यादा बात करते थे।[7]

निष्कर्ष

प्रारंभिक भारत में महिलाओं की स्थिति पर राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का सार संक्षेप करते हुए, हम इस तथ्य को नहीं भुला सकते कि अल्टेकेरियन दृष्टिकोण अपने आप में चाहे जितना भी समित और पक्षपातपूर्ण क्यों न रहा हो लेकिन इसके बावजूद, वह न केवल इतिहास लेखन को आज भी प्रभावित करता है बल्कि उस पर हावी है। कुल मिलाकर, उन्होंने जो ब्योरे दिये हैं उनसे जो तस्वीर उभरती है उसके अनुसार वैदिक काल में महिलाओं को एक बेहद आनंदपूर्ण और रागात्मक हैसियत प्राप्त थी। यही वह तस्वीर है जो न केवल भारत की उच्च जातियों के दिमाग में छाई हुई बल्कि इसने प्राचीन भारत में जेंडर संबंधों की ज्यादा गहरी छानबीन की संभावनाओं को भी कुंद किया है। इसलिए यह समय की मांग है कि आगे बढ़कर, इतिहास के पुनर्लेखन का जिम्मा उठाया जाए, जिससे इतिहास के अंतर्गत सामाजिक प्रक्रियाओं और उनसे उत्पन्न होने वाली उन संरचनाओं की जांच-पड़ताल हो सके जो स्त्री-पुरुष संबंधों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आई हैं।

सन्दर्भ सूची

1. उमा चक्रवर्ती, ''अल्टेकेरियन अवधारणा के परे'', संकलित, साधना आर्य (सं.), नारीवादी राजनीति, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2006, पृ. 129.
2. सकुन्तला राव शास्त्री, वूमेन इन सेक्रेड लॉ, 1959, पृ. 172-73.
3. आर.सी. दत्त, ए हिस्ट्री आफॅ सिविलाइजेशन इन इंडिया, 1972, पृ. 168-69.
4. सकुन्तला राव शास्त्री, वूमेन इन सेक्रेड लॉ, 1959, पृ. 174.
5. ए.एस. अल्तेकर, द पॉजिशन आफॅ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, 1987 (रीप्रिंट), पृ. 337.
6. उपरोक्त.
7. उपरोक्त.

रघुवंश महाकाव्य में प्रयुक्त उपमालंकार का वैषिश्ट्य

डॉ० दीनबन्धु मॉझी

ग्राम-मिर्जापुर, पो0-उस्ती, बनियापुर, जिला-सारण, बिहार

शोध सारांश

कालिदास की कृतियों के अनुशीलन से उनकी सौन्दर्य भावना, प्रेम भावना, प्रकृति चित्रण काव्यादर्श काव्यात्मक विशिष्टता काव्यशिल्प, लोकादर्श आदि का यथेष्ट ज्ञान होता है। काव्य के सौन्दर्यदायक तत्वों में अलंकार शब्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिस प्रकार लोक में कटक, कुण्डल आदि विविध अलंकार कामिनी के शारीर को विभूशित करते है उसी प्रकार उपमा आदि अलंकारों के द्वारा कविता कामिनी का भी सौन्दर्य बढ़ जाता है। काव्य के शारीरभूत धर्मशब्द और अर्थ है तथा अलंकारों के योग से इनकी (शब्द और अर्थ) की शोभा वृद्धि होती है।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के अद्धितीय काव्यकार एवं नाटककार हैं। कविता-कामिनी के विलास महाकवि कालिदास की कृत्तियों में भारतीय संस्कृति और संस्कार का सजीव और सर्वागिण चित्रण निहित है। वे विश्व-वाड्मय के मुकूटालंकार हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि वाह्य जगत् और अन्तः जगत की तात्त्विक विधओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम पदावली में उनको अणश्वीत करती है। 'उनकी कलात्मक तुलिका नीरस में सरसता, करकश में कोमलता, कठोर में सुकुमारता, सामान्य में विलक्षणता, दुर्बोध में सुबोधता काव्य में सर्वात्मकता और प्रसद में माधुर्य का संचार करती है'।[1]

कालिदास ने कुमारसंभवम, रघुवंशम् मेघदूतम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम, मालविकाग्निमित्र, और विक्रर्मोवशीयम का प्रणयंन कर अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा, अंप्रितम नाट्यकला निपुणता एवं शास्त्र, बहुज्ञता का परिचय दिया है। उनकी भाषा सरल, सुबोध और सरस है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार काव्य को धवन्यात्मक बना देता है। भावो की अगाधता और विविधता उनके काव्याकाश में इन्द्रधनुष की छटा प्रस्तुत करती है। कालिदास के काव्यों में अलंकारो का स्वाभविक विन्यास दृष्टिगत होता है। संस्कृत जगत में कालिदास उपमालंकार के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध हैं। उपमाकालिदासस्य-यह उक्ति उनकी उपमा की विलक्षणता का बोध कराती है। प्रायः सभी कवियों की कृत्तियों में उपमालंकार प्रयुक्त होता है। किन्तु कालिदास की उपमाओं में जो रम्यता यथार्थता पूर्णता, विविधता आदि पायी जाती है वह अन्य काव्यों में दृष्टिगत नहीं होता। यद्यपि कालिदास की सभी कृत्तियों में उपमा का सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। किन्तु रघुवंश महाकाव्य में उपमा का प्रयोग सर्वाशायी है। "रघुवंश" कालिदास की प्रतिभा का काव्यरूप में सर्वोत्तम निदर्शन है। कवि की प्रतिभा का प्रस्फूरन पद-पद पर परिलक्षित होता है।

कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा की उपमा से "दीपशिखा कालिदास" हो गए। इन्दुमती स्वंयवर वर्णन में इन्दुमती की उपमा संचारिणी दीपशिखा से दी गई है। वह जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे निकलती जाती थी वह उसी प्रकार विवर्ण और विशादाकुल हो जाता था जैसे संचारिणी दीप शिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राज प्रसाद अंधकारावृत हो हाता है। यथा-

संचारिणी दीप षिखेव रात्रै,
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा,
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे।
ववर्णभावं स स भूमिपालः।।[2]

रघुवंश द्धितीयसर्श में नन्दनी के पीछे चलने वाली राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा की उपमा श्रुति का अनुसरण करने वाली स्मृति से दी गई है। यथा-

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुलाना धुरिकीर्तनीया।
मार्ग मनुष्येष्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थ-स्मृतिरन्वगच्छत।।[3]

मनु राजाओं में उसी प्रकार अग्रणी हुए जैसे मंत्रों में ओंकार प्रथम प्रयुक्त होता है। यथा-

वैवस्वतों मनुर्नाम माननीयो मनीशिणाम्।
आसीन्मही क्षितामाघः प्रणवष्छन्दसाभिव।।[4]

दर्शन विशयक उपमा- यथा- अव्यक्त अर्थात् प्रकृति से बुद्धि उत्पन्न हुई, वैसे ही यह सरयु नदी भी उस मानसरोवर से निकली है, जिसके कमलों का पराग यक्षिणियाँ अपने स्तनों में लगाती हैं। यथा-

प्योधरैः पुण्यनाड़ नाना निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्म सरः कारणमाण्तवाचो बुद्धैरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।। [5]

राजा दिलीप के किये हुए कार्य को लोग फल की प्राप्ति पर जान पाते थे पहले नहीं जैसे किसी को सुखी और दुःखी देखकर पहले के किये हुए कार्यो के परिणाम के रूप में जानते हैं। यथा-

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढ़ाकारेड्डितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारभ्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।।[6]

यज्ञ विशयक उपमा- यज्ञ की दक्षिणा की तरह सुदक्षिणा दिलीप की भार्या हुई। यथा-

तस्य दक्षिण्यरूढ़ेन नाम्ना मगधवर्षजा।
पत्नी सुदक्षिणेव्यासीदधवरस्येव दक्षिणा।।[7]

स्वाहा से युक्त अग्नि की तरह अरून्धती से युक्त वशिष्ट दिखाई पड़ते थे। यथा-

विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्ष तपोनिधम्।
अन्वासितमरून्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम।।[8]

घी आदि की आहुति पड़ने से हवन की अग्नि का तेज बढ़ जाता है,वैसे ही शिक्षा पाने से उन चारों राजकुमारी की स्वांभाविक विनम्रता और भी अधिक बढ़ गई-

स्वाभाविक विनीतत्त्वं तेशां विनयकर्मणा।
मुमुर्च्छा सहजं तेजो हविशेव हविर्भुजाम।।[9]

विद्या विशयक उपमा- जैसे विद्या अभ्यास से प्रकाषमयी होती है उसी प्रकार नन्दनी सेवा द्वारा प्रसन्न करने योग्य है। यथा-

वन्यवृत्तिरिमां शाश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विधमभ्यासनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।।[10]

व्याकरणविशयक उपमा- अपवादनीयम् जिस प्रकार उत्सर्ग (सामान्य) को बोधित कर देता है उसी प्रकार शात्रुध्न ने लवणासुर को परास्त किया। यथा-

यः कश्चन रघूणं हि परमेकः परन्तपः।
अपवाद इवोत्सर्ग व्यावर्तयितुमीश्वरः।।[11]

अध्ययनार्थक इण् धतु से पहले लगा हुआ अधि उपसर्ग केवल शोभा बढ़ाने वाला है उसी प्रकार शात्रुध्न के साथ राम की आज्ञा से प्रेशित सेना थी क्योंकि शात्रुधन अकेले लवणासुर को जीत सकते थे। यथा-

रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये।
पश्चादध्ययनार्यस्य धतो रधिरिवाभवम्।।[12]

उपयुक्त विवेचन से रघुवंश में प्रयुक्त कालिदास की उपमा की विलक्षणता, सजीवता मनोवैज्ञानिकता मौलिकता, विविधता और पुर्णता आदि का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।

सन्दर्भ

1. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी - संस्कृत साहित्य का समिक्षात्मक इतिहास - पृष्ठ -153
2. कालिदास - रघुवंशम् - 6/67
3. कालिदास - रघुवंशम् - 2/2
4. कालिदास - रघुवंशम् - 1/11
5. कालिदास - रघुवंशम् - 13/60
6. कालिदास - रघुवंशम् - 1/20
7. कालिदास - रघुवंशम् - 1/31
8. कालिदास - रघुवंशम् - 1/56
9. कालिदास - रघुवंशम् - 10/79
10. कालिदास - रघुवंशम् - 1/88
11. कालिदास - रघुवंशम् - 15/07
12. कालिदास - रघुवंशम् - 15/09

डॉक्टर लोहिया के धर्म और राजनीति : एक सिंहावलोकन

डॉ० रणधीर कुमार राणा

पी-एच.डी. (इतिहास), पूर्व शोध-छात्र, बी.एन.एम.यू. लालू नगर, मधेपूरा

सरांश

भारत में समाजवादी चिंतकों में डॉ राम मनोहर लोहिया का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वह एक मौलिक राजनीतिक चिंतक, प्रबुद्ध अर्थशास्त्री, एक सफल समाजवादी तथा एक महान देशभक्त थे। डॉक्टर लोहिया सच्चे समाजवादी थे उन्होंने पूंजीवाद और साम्यवाद के मूल लक्ष्यों एवं आधारों पर आधात करते हुए भारतीय समाजवाद की अपनी विचारधारा विकसित करने पर जोर दिया। डॉ. लोहिया के अनुसार यह देखना है कि, कही लोकतंत्र पर पूंजीवादी, सामंती आदि प्रवृत्तियां हावी न हो जायें और यदि ऐसा होता है, तो लोकतंत्र, लोकतंत्र नहीं रह जायेगा। डॉ. लोहिया जनवादी राजनीतिज्ञ थे। उनका जनवाद, समाजवाद था वे मानते थे कि समाज के बिना व्यक्ति के बिना समाज का विकास नहीं हो सकता। दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। वे जानते थे कि देश की भूखी-नंगी गरीब जनता के लिये लोकतंत्र के क्या मायने हो सकते हैं। चुनाव के बढ़े खर्चे तथा उसमें असंगति तत्व चिन्ता का विषय बन चुके थे। जातिवाद, पूँजीवाद, नव-पूँजीवाद, परिवर्तित सामन्तवाद, अराजकतावाद, अधिनायकवाद आदि ऐसे ही तत्व थे, जो कि देश की राजनीति की कमर तोड़ रहे थे, और नवमूल्यों के लिये वातावरण नहीं बनने दे रहे थे। रेडियो, दूरदर्शन तथा समाचार-पत्र धनी लोगों के लिये काम करते थे। देश में तब एक इस प्रकार की लॉबी तैयार हो चुकी थी जो कि, लोकतंत्र को अपने लिये मोड़ने में सक्षम थी। धीरे-धीरे राष्ट्रीय चरित्र का पतन होता जा रहा था या पतन की राजनीति प्रारम्भ हो चुकी थी।

मुख्य शब्द : समाजवाद, गाधीवादी राजनीति, समाजवादी आन्दोलन, धर्म, स्वावलम्बी गांव, चौखम्भा राज्य योजना।

परिचय

स्वतंत्रता संघर्ष के समय डॉक्टर लोहिया महात्मा गांधी जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेंद्र देव तथा जयप्रकाश नारायण के समकालीन थे। लोहिया का जन्म 23 मार्च 1910 को उत्तर प्रदेश के अकबरपुर कस्बे में हुआ। परिवार में जन्मे लोहिया को उनका उपनाम लोहिया इसलिए मिला क्योंकि उनके परिवार में अनेक सदियों से लोहे का व्यापार चला आ रहा था। वह ऐसे माहौल में पले बढ़े जो जातिवाद के पूर्वाग्रह से रहित था। सन 1929 में उन्होंने कोलकाता के विद्यासागर कॉलेज से बीए ऑनर्स किया और 1933 में बर्लिन के हंबोल्ट विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। लोहिया ने सन् 1934 से कांग्रेस सोशलिस्ट साप्ताहिक पत्र का संपादन किया। तभी कांग्रेस के अंतर्गत कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का निर्माण हुआ आचार्य नरेंद्र देव तथा जयप्रकाश नारायण संगठन मंत्री बनाए गए। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के समय डॉक्टर लोहिया ने स्वतंत्रता संग्राम को 4 सूत्री कार्यक्रम देकर नया एवं शक्तिशाली मोड़ दिया अर्थात युद्ध भारती का विरोध देसी रियासतों में आंदोलन ब्रिटिश माल जहाजों से माल उतारने वाला देने से इनकार करने वाले श्रमिकों का संगठन और युद्ध कर तथा युद्ध कर्ज को मंजूर न करना और ना अदा करना ऐसी गतिविधियों के कारण डॉक्टर लोहिया को 7 जून, 1940 को कैद करके उन पर मुकदमा चलाया गया जिसके फलस्वरूप उन्हें 1 जुलाई, 1940 को 2 वर्ष की सजा सुनाई गई गांधीजी ने डॉक्टर लोहिया को जेल में डालने का विरोध किया फलता उन्हें 4 सितंबर, 1941 को रिहा कर दिया गया

1942 को भारत छोड़ो आंदोलन में समाजवादियों ने जुझारू भूमिका निभाई। गिरफ्तार करके जेल भेज दिए गए थे। जयप्रकाश, राममनोहर लोहिया, श्याम नंदन मिश्र, बैजनाथ झा इत्यादि नेताओं को गिरफ्तार कर नेपाल की हनुमान नगर जेल में डाल दिए गए। आजाद दस्ते की टीम ने इन नेताओं को जेल से छुड़ा लिया। अगस्त 1942 से मई, 1944 तक विद्रोहियों एवं आंदोलनकारियों की प्रेरणा और सक्रियता के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया। मई, 1944 को उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया यातनाएं दी गई, अंधेरी कोठरी में डाल दिया गया तथा शारीरिक और मानसिक कष्टों द्वारा उन्हें आतंकित किया गया। समाजवादियों ने मजदूर आंदोलन में भी साथ दिया। 1937-38 के बीच उनके नेतृत्व में 11 सफल हड़ताल हुई। बिहार प्रांतीय समाजवादी आंदोलन के प्रथम अधिवेशन 5 दिसंबर, 1936 में प्रिया ने इस बात पर जोर दिया "यदि हम अब भी राष्ट्रीय आजादी में किसानों मजदूरों तथा अन्य दलित श्रेणियों की तड़प और निजी उन्नति को चारों का समावेश नहीं करते तो उसका अर्थ है साम्राज्य विरोधी युद्ध से मुंह मोड़ना है।"

एक समाजवादी बुद्धिजीवी के रूप में लोहिया ने सूक्ष्म चिंतक तथा मनन किया। उन्होंने समाजवादी चिंतन की समस्याओं को एशियाई दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया। वे सच्चे गांधीवादी थे और उन्होंने एक सच्चे गांधीवादी के रूप में गांधीवाद को समाजवादी चिंतन में प्रमुखता देने का भी प्रयास किया। डॉ. लोहिया जीवन भर दलित, शोषित के आर्थिक सामाजिक अधिकारों की लड़ाई लड़ते रहे। अंग्रेजी को दासता का प्रतीक समझते थे और हिंदी को राष्ट्रीय संपर्क सूत्र बनाना चाहते थे। भारत के खंडित हो जाने के बाद भी उनका विश्वास था कि भारत प्रकृति से एक है अतः पुनः एक अवश्य होगा। वह धर्म और राजनीति का समन्वित उपयोग चाहते थे। वे कहते थे कि राजनीति के बिना धर्म निष्प्राण हो जाता है तथा धर्म के बिना राजनीति कलही बन जाती है। धर्म को लोहिया 'दीर्घकालीन राजनीति' तथा राजनीति को 'अल्पकालीन धर्म' कहते थे। उनके लिए सत्य का महत्व उसके आध्यात्मिक मूल्यों के कारण नहीं समाज की व्यवस्था के लिए था।

इतिहास का चक्रीय सिद्धांत

डॉ. लोहिया के अनुसार इतिहास सरल रेखा की भांति आगे नही बढता है, बल्कि उसकी गति चक्र के समान तथा अपरिवर्तनीय होती है। एक राष्ट्र उन्नति शिखर पर पहुँच सकता है, तथा चक्रीय गति में वह पतन के गर्त में भी पहुँच सकता है। डॉ लोहिया का विचार था कि "इतिहास का दृष्टिकोण काफी प्रभाव रखता है। आधुनिक मनुष्य अपने उद्योग-धंधों, मशीन, खेती लोकतांत्रिक सरकार और विभिन्न राष्ट्रों के बीच मेलजोल या शक्ति संतुलन के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। इतिहास के विशुद्ध चक्र सिद्धांत तो भारतीयों को ज्ञात होने चाहिए। इसमें चार युग बताए गए है, सतयुग से कलयुग तक। एक प्रकार का स्वर्ण युग गिरता हुआ अंधकार युग तक आता है और बीच में एक पीत युग तथा एक धुंधाला युग मिलता है। इतिहास का विशेष दृष्टिकोण है जिसमें उत्थान और पतन दोनों शामिल हैं पतन के बाद उत्थान भी वह मानता है।" राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या से डॉ लोहिया का तात्पर्य यह था कि इतिहास चक्र में सभी देशों का समान रुप में उत्थान पतन होता है, चाहे कोई भी देश कितना ही शक्तिशाली क्यों ना हो। कोई देश हमेशा के लिए न तो वैभव शक्ति और धनवान होता है और ना हमेशा के लिए उनसे रही थी। भारत, चीन और अरब देश उत्तम श्रेणी में रह चुके हैं पर उनका भी पतन हुआ और पश्चिम यूरोप ने शिखर स्थान को प्राप्त किया और महाद्वीपों में श्रेष्ठ गिना जाने लगा।

डॉ. राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक और धर्म संबंधी विचार

राजनीति और धर्म के पारस्परिक सम्बन्धा पर भी डॉ. लोहिया ने गहन चिन्तन किया था। उन्होनें ईश्वर, धर्म और धर्म निरपेक्ष राज्य सम्बन्धी विचारों को अभिव्यक्त किया है। डॉ. लोहिया न ईश्वर के व्यक्तित्व में विश्वास करते थे और न उनके मूर्ति के रूप उसकी पूजा का, मन्दिर को वे एक ढकोशला मानते थे और उनमें स्थापित मूर्तियों को नकली व मनुष्यकृत मानते थे, लेकिन ब्रम्हज्ञान और अद्वैतवाद में अपने ढंग से विश्वास करते थे। डॉ. लोहिया धर्म के रचनात्मक ढंग से मनुष्य को नैतिक उत्थान का साधान घोषित करते हुए उसकी व्याख्या की है, तथा दोनों के इसी रचनात्मक रूप पर जोर दिया है।

डॉ. लोहिया की राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या में वर्ग और वर्ण का व्याख्या किया गया है। उन्होंने यह माना है कि यह दोनों ही वर्ग तथा वर्ण सभी समाजों की विशेषताएं हैं, जो सभी जगह मिलती है। उन्होंने कहा कि जन्मजात वर्गीकरण या धर्म द्वारा उसकी मान्यता बड़ों का आवश्यक गुण नहीं है। वर्ग से वर्ण की मित्रता उस अस्थिरता से होती है जो वर्ग संबंधी में आ जाती है। कोई व्यक्ति अपने से उसे वर्ग में नहीं जा सकता और कोई भी वर्ण अपनी सामाजिक स्थिति और आमदनी के ऊपर नहीं

उठ सकता अस्थिर वर्ण को वर्ग कहते हैं अस्थाई वर्ग बन कर आते हैं। हर समाज या सभ्यता में वर्ग से वर्ण और वर्ण से वर्ग का बदला हुआ है। यही बदलाव लगभग सभी आंतरिक घटनाओं की जड़ में होता है यह करीब-करीब हमेशा ही न्याय और बराबरी की मांगों से प्रेरित होता है।

डॉ. लोहिया विकेंद्रीकरण के समर्थक थे उन्होंने विकेंद्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत का प्रतिपादन किया उन्होंने कहा कि सामने वादियों की तरह बड़े-बड़े कारखाने न लगाकर लघु मशीनों को महत्व दिया जाए ताकि छोटी लागत लगाकर भी अधिकारी के मनुष्यों को कार्य मिल सके डॉ. राम मनोहर लोहिया सामाजिक आर्थिक न्याय के लिए आर्थिक शक्ति राज्य के हाथों में देने के पक्ष मैं तो थे ही परंतु निरंकुश शासन उन्हें भी स्वीकार नहीं था और वे राजनीतिक आर्थिक सत्ता को देश प्रांतों जिला तथा ग्राम स्तर पर बैठकर समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे

डॉ. लोहिया ने प्रजातंत्र को जीवन पद्धति के रूप में स्वीकार किया। वे प्रजातंत्र पर आधारित समाजवाद के प्रतिनिधि थे, इस कारण उन्होंने प्रजातंत्र में जन शक्ति को बहुत महत्व माना। उनका विश्वास था कि जिस प्रकार चेतना की भावना से मनुष्य अपना पूर्ण विकास करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार स्वतंत्र जनशक्ति राज्य को विकसित नहीं कर सकती। जन शिक्षा का वास्तविक प्रतिनिधि व्यवस्थापिका करती है, इस आधार पर उन्होंने भारतीय व्यवस्था की कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि भारत में राजनीतिक स्थिति दयनीय है। एक नेता का प्रारंभ में चुनाव करते हैं बाद में वह इतना सशक्त हो जाता है कि प्रांत जिला तहसील तथा ग्राम के छोटे नेताओं को अपने में आत्मसात कर लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि जनता को निर्णय लेने में उसकी और ताकना पड़ता है। यह स्थिति हमारे अस्तित्व को समाप्त कर देती है। प्रजातांत्रिक समाजवाद के प्रतिनिधि के लिए डॉ. लोहिया ने जनता की संप्रभुता को राज्य का आधार बताया। उनका मानना था कि व्यक्ति के विकास के लिए राज्य का अस्तित्व होना आवश्यक है और राज्य को बनाए रखने का प्रयोग आवश्यक है। यदि ऐसी व्यवस्था में विश्वास रखते थे जिसमें दंड अथवा शक्ति के बिना ही व्यक्ति अपना सामूहिक जीवन चला सके तथापि जब तक उनका सपना पूरा नहीं होता। वह शक्ति के प्रयोग के पक्ष में थे किंतु उनका मानना था कि धन शक्ति का प्रयोग निष्पक्षता से न्याय के लिए विधि के अनुकूल होना चाहिए।

डॉ. लोहिया धार्मिक मामलों में निष्पक्षता और नागरिकों की धर्म प्रचार विश्वास पूजा आदि संबंधी स्वतंत्रता पर बल देते हुए कहा था, 'राजनीति एक आश्वासन जरूर दें कि वह आ सकता अथवा नास्तिकता के प्रचार में दंड का इस्तेमाल नहीं करेगी'। वह मुस्लिम धर्म के नाम पर भारत विभाजन का कड़ा विरोध किया था क्योंकि वह धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना के प्रबल समर्थक थे। भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्रों के सिद्धांत को उन्होंने कभी हृदय से स्वीकार नहीं किया। निश्चय ही, डॉक्टर लोहिया मजहब की लड़ाई और राजनीति से सहमत नहीं थे। क्योंकि इससे सांप्रदायिकता जैसी सामाजिक विषमता फैलाती है और राजनीतिक पैदा होती है, जिनसे देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था का हास होता है। डॉ. लोहिया के विचार में धर्म और राजनीति में घनिष्ठ संबंध हैं। उन्होंने कहा कि धर्म का कार्य अच्छाई को करना है और राजनीति का कार्य बुराई से लड़ना है। धर्म सकारात्मक एवं दीर्घकालीन होता है। और राजनीति नकारात्मक तथा अल्पकालीन होती है धर्म का स्वरूप शांत होता है जबकि राजनीति का स्वरूप रूद्र। धर्म एवं राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अत: एक दूसरे को परिपक्व और बनाते हैं। डॉ. लोहिया की दृष्टि में धर्म और राजनीति निष्ठा एवं ईमानदारी से मिलकर काम करें अर्थात यदि एक अच्छाई करें और दूसरा बुराई से लड़े तो मानव जाति की गति एवं प्रगति अत्यधिक संतोषजनक होगी।

डॉ. लोहिया ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थो उनका विचार था कि मंदिर एक ढकोसला है और उसमें विराजमान मूर्ति भी नकली है। उनकी दृष्टि में ईश्वर ने मनुष्य को नहीं अपितु मनुष्य ने ईश्वर को बनाया है और उसे एक प्रतीक के रूप में खड़ा कर दिया है। यद्यपि वह ईश्वर को नहीं मानते थे पर ब्रह्म ज्ञान को उन्होंने अपने ही ढंग से स्वीकार किया। स्पष्टत: ईश्वर, पूजा-पाठ, तीर्थ स्थान, नर्क-स्वर्ग में विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुसार यह धर्म के विषय नहीं है। गिरे हुए को उठाना, प्यासे को पानी देना, भूखे को रोटी और गृहहीन को निवास स्थान देना ही सच्चा धर्म है।

चौखम्भा राज्य योजना

डॉ. लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में चौखम्भा राज्य की योजना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस योजना के माध्यम से डॉ. लोहिया ने केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण की परस्पर विरोधी अवधारणा के माध्यम से समन्वय और संतुलन स्थापित करने का प्रयास

किया। इस योजना के अन्तर्गत गांव, मण्डल, प्रान्तीय, एवं केन्द्रीय सरकार के महत्व व अस्तित्व को बनाये रखते हुये उन्हें एक कार्यमूलक संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत एकीकृत कर दिया जायेगा तथा वे अपने-अपने जिम्मे के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुये स्वायत्तता के आधार पर एक सूत्र में बांधो रहेंगे। यह चौखम्भा राज्य की योजना मात्र विकेंद्रित प्रशासन की योजना ही नहीं है वरन् आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की भी योजना है। अतः प्रशासन संचालन के साथ-साथ इसमें उत्पादन के साधानों का स्वामित्व एवं संचालन कृषि विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सभी योजनाओं का कार्यान्वयन भी सम्मिलित है। डॉ. लोहिया द्वारा प्रतिपादित यह विकेन्द्रित चौखम्भा राज्य की योजना गांधीवादी ग्राम स्वराज योजना का मूर्त रूप है तथा इसका प्रमुख अंग ग्राम पंचायत है जिस पर सम्पूर्ण प्रशासन के संचालन का उत्तरदायित्व है। वहीं से जिला, प्रान्तीय एवं केन्द्रीय प्रशासन अपनी शक्ति और प्रेरणा प्राप्त करता है। अतः यह एक शुद्ध पंचायती राज का सकारात्मक रूप है, तथा ग्राम पंचायत सम्पूर्ण प्रशासन में बुनियादी महत्व रखती है। डॉ. लोहिया का मत था कि ऐसे राज्य में ही सभी नागरिकों की प्रजातांत्रिक भागीदारी सम्भव हो सकती है। यह योजना उनके अनुसार मात्र श्वेतशाषी स्वावलम्बी गांव की योजना ही नहीं बल्कि एक विवेकशील जीवन की योजना है। डॉ. लोहिया राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को राजनीतिक समता और सम्पन्नता का द्योतक मानते थे। और इसलिए राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के विरूद्ध थे, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में शासक सेठ सरकारी अधिकारियों का एक जन शोषक त्रिकोण स्थापित हो जाता है तथा सामान्य व्यक्ति उनके उत्पीड़न का शिकार हो जाता है। ऐसी दशा में जनता शासन के हाथ की एक कठपुतली मात्र रहकर अपंग हो जाती है, जिससे प्रजातांत्रिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। और वह एक मुखौटा मात्र ही बनकर रह जाता है। प्रजातंत्र जनकल्याण शासन बनने के बजाय जन-उत्पीड़न तथा जन-शोषण का एक साधान मात्र बन जाता है। अतः ऐसे प्रजातंत्र के सही प्रजातन्त्र बनाने हेतु उनके द्वारा द्विस्तरीय प्रजातंत्रीय संघीय व्यवस्था के स्थान पर चतुरस्तरीय प्रजातंत्रीय संघीय व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की गयी तथा उसके अन्तर्गत चार समान शक्ति को प्रस्तुत करते हुये उन्होंने कहा कि ''बड़े स्तर की राज्य व्यवस्था देश के कूड़े को बहारेगी और छोटे स्तर की राज्य-व्यवस्था गली, मोहल्ले व गांव के कूड़े को साफ करेगी।

निष्कर्ष

नए समाजवाद के संगठन तत्वों के रूप में लोहिया ने उदारवादी मार्क्सवाद को हटाकर उसकी जगह अपना सामाजिक सिद्धांत प्रस्तुत किया। इसे लोहियावाद भी कहा जाता है। इसने पिछड़ी जातियों के बीच पार्टी का जनाधार सुनिश्चित करने की कोशिश की। उसने सत्ता के विकेंद्रीकरण की अपनी चोखंभा राज्य की अवधारणा प्रस्तुत की। पिछड़ी, खेतिहर, जातियों को इसे विकेंद्रीकरण में अपनी अधिक भागीदारी की संभावना दिखाई देती थी। यह गांधीवाद की भी मूल अवधारणाओं में से एक थी। डॉ. लोहिया ने अपने रिश्ते के बारे में कहा था, "मैं कभी-कभी अपने को गांधीवादी ही कहता हूं किंतु मैं नास्तिक गांधीवादी हूं इस प्रकार हमारे देश में गांधीवाद के तीन रूप हैं- सरकारी गांधीवाद, पुरोहिती गांधीवाद और नास्तिक गांधीवाद। गांधीवादी किसी न किसी रूप में सरकार का दूमछल्ला बन जाता है और इस कारण गांधीवादी सिद्धांतों के मुख्य कर्तव्य का पालन नहीं कर सकता।" उन्होंने लोकतांत्रिक होकर अपने प्रति समस्त विरोधी तथा आलोचनाओं को सहन करते हुए पुरातनपंथी, सामंतवादी और धर्मांधाता के प्रति अपना क्रोध एवं घृणा व्यक्त की ताकि दलित एवं पिछड़े कमजोर वर्गों को सामाजिक एवं आर्थिक मुक्ति मिले। डॉ. लोहिया ने ईश्वर की सृष्टि को मानते हुए अपने सुख दुखों की चिंता ना कर मानव प्राणियों के मुख पर मुस्कान लाने तथा उनकी मेरी आंखों के अश्रु को पोछने का अदम्य साहस और सेवा का भाव, सीमित विनय, सद्भाव एवं सम्मान के साथ प्रदर्शित किया। ऐसे सामाजिक क्रांतिकारी द्वारा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किए गए योगदान को विस्मरण नहीं किया जा सकेगा।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. राम मनोहर लोहिया, इतिहास चक्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1955
2. डॉ. राम मनोहर लोहिया, अर्थशास्त्र मार्क्स से आगे, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980
3. इंदुमती केलकर, लोहिया सिद्धांत और कर्म, नवहिंद प्रकाशन, हैदराबाद, 1963
4. ओंकार शरद, लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970
5. डॉ. राजेंद्र मोहन भटनागर, समग्र लोहिया, किताब घर, नई दिल्ली, 1982
6. डॉ. कृष्ण नंदन ठाकुर, डॉ राम मनोहर लोहिया के आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, एस. चंद कंपनी, नई दिल्ली, 1980

7. गणेश मंत्री, मार्क्स, गांधी और समसामयिक संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983
8. मधु लिमए, चौखंबा- एक रूपरेखा, समता प्रकाशन, कोलकाता, 1973
9. भगवान सिह, डॉ राम मनोहर लोहिया, समता प्रकाशन, बलिया, 1972
10. डॉ. यतींद्र शर्मा, डॉक्टर लोहिया का अर्थदर्शन, चित्र प्रकाशन, कानपुर, 1980
11. लक्ष्मीकांत वर्मा, समाजवादी दर्शन एवं डॉ लोहिया, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, लखनऊ 1991

''दू पत्र'' उपन्यास में भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य सांस्कृतिक विवेचन

प्रीति कुमारी

अतिथि व्याख्याता, मैथिली विभाग, ललित नारायण स्मारक महाविद्यालय, बीरपुर (सुपौल), राज्य-बिहार

मैथिलीक उपन्यास साहित्य मध्य ''दू पत्र'' शीर्षक उपन्यास एक विलक्षण एवं नव प्रयोगक रचना थिक। एहि उपन्यासक लेखक श्री उपेन्द्रनाथ झा 'व्यास' छथि। ई पत्रत्मक शैली में लिखल गेल अछि। किछु आलोचक एहि उपन्यास के मनोविश्लेषणात्मक निबन्ध से हो कहैत छथि। 1969 ई. में एहि उपन्यास पर व्यासजी के साहित्य अकादमी पुरस्कार देल गेलनि।

प्रस्तुत उपन्यास मे एकहि संग पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृतिक झलक देखाओल गेल अछि। एतय दू विरोधी आदर्श के दू पुरुष पात्र आ दू स्त्री पात्र द्वारा व्यक्त कयल गेल अछि। समस्त उपन्यासमे मात्र यैह चारि गोट पात्र छथि।

''दू पत्र'' केवल दुईगोट चिट्ठी में सम्पन्न भेल एक लघु उपन्यास थिक, जाहि में एक भारतीय आ एक अमेरिकन तरुणीक चित्त विक्षोभ वर्णित अछि। पहिल पत्र इन्दु देवी अपन पति सुरेन्द्र के लिखलनि अछि जे उच्च शिक्षाक हेतु अमेरिका गेल रहथि आ दस वर्शसँ ओतहि छथि। इन्दुक भाए रमेश सेहो पछाति अमेरिका गेल रहथि आ देखने रहथि जे कोना सुरेन्द्र पाश्चात्य जीवन-पद्धति सँ आकृष्ट भए जेसिका नामक एक सुन्दरीक प्रणय-पाश मे पड़ल छथि। रमेश इन्दुक ओ चिट्ठी जे ओ अपन पतिके लिखने रहथि अंग्रेजी में अनूदित कए जेसिका के पठाए देलनि जकरा सँ हुनका अपन अमेरिका प्रवास में मैत्री भए गेल छलनि। एकर उत्तर जे जेसिकासँ रमेश के प्राप्त भेलनि से दोसर चिट्ठी थिक। पहिल पत्र में भारतीय मैथिल परम्परा में जनमलि आ पाललि-पोसलि गेलि एक शिक्षित नारीक भावना आ वेदना चित्रित अछि। ई पत्र ओहि समय मे लिखल गेल अछि जखन सुदूर देशस्थ पति आग्रह करैत छथिन्ह जे प्रस्तावित विवाह-विच्छेद में ओहो सहमत होथु। दोसर पत्र मे एक अमेरिकन तरुणीक चिन्ता आ व्यथा वर्णित अछि, जे अमेरिकन बनि गेल सुरेन्द्र सँ प्रेम तँ करैत अछि, किन्तु आब एहि विचित्र परिस्थितिक संकट मे पड़ि गेल अछि। जेसिका रमेशक सहृदयता आ सरल व्यवहार पर मुग्ध अछि आ हुनक सम्पर्क हिन्दु धर्म, संस्कृति ओ आचारक विशय मे बहुत किछु जानि चुकल अछि।

प्रस्तुत उपन्यासक नवीनता भावना मे अछि। कथावस्तुक माध्यम सँ चरित्र सभक व्यक्तित्व पूर्णतया प्रकाश मे आयल अछि।

एहि उपन्यास में मात्र दू नारी पात्र अछि-प्रथम भारतीय महिला इन्दु देवी आ दोसर अमेरिकन महिला जेसिका। इन्दु मिथिलाक कुल-ललना एवं भारतीय संस्कृतिक साकार मूर्ति छथि ओ पतिव्रत्य धर्म के सर्वोपरि मानैत छथि। एहि लेल अपन प्राण के ओ सहर्श उत्सर्ग कए सकैत छथि। संयम, उदारता सहिष्णुता, स्वाधयाय आदि हुनक प्रधान गुण छन्हि। हुनक चरित्रिक उत्कर्श आ आदर्शक समक्ष हुनक पति सुरेन्द्र नगण्य सिद्ध होइत छथि। सुरेन्द्र बड़ विचित्र लोक छथि। विवाहक बाद हुनक चालि-चलन आ आचार-विचार के देखि इन्दूक पिता अत्यन्त चिन्तित भए अपन पत्नी के कहलथिन्ह 'ई सभ की सुनै' छी, की भऽ रहलइ। हमरा बड़ डर होइए। एहन लोक डर मानी जकरा किछु मान-मर्यादा, स्थान, परिस्थितिक विचार नहि छैक, ओ किछु कऽ सकैछ, अनर्थ ने होअय।''

सब किछु जानि कए बुझि-सूझि कए इन्दू देवी धैर्यपूर्वक अपन आदर्शक पालन कए रहल छथि। पत्रक अन्त में ओ लिखैत छथि-

अहाँ त ने ईश्वर मे विश्वास करैत छी, ने प्रारब्ध में। मोह, आवेश में आवि कतेक की कए लेलहुँ अछि, कएने छी, करब। तँ अहाँक जीवन अशान्त नहि रहय।.....हम त इएह कहब, सलाह देब, जे सम्प्रति जाहि कठोर भावे अपन देश, समाज, बंधु-बान्धव

के, स्वधर्म के तिलांजलि दैत छी, देल अछि, कोनो समय यदि कोमल भावनाक उदय हो, तँ ग्लानिक अनुभव कइओ कए अपन उचित स्थान पर अएबा मे संकोच नहि करब।

अन्त मे हम विद्यापतिक पद के दोहरबैत पत्र समाप्त करैत छी-

युग-युग जिबथु वसथु लाख कोस,

हमर अभाग, हुनक नहि दोष।

यदि संभव हो त हमर दोष के क्षमा करब।

एहि ठाम इन्दुक चरित्रक आदर्श अपन पराकष्ठा पर देखबा में अबैछ। हुनक पति नास्तिक भए गेल छथि, ताहू दिस हुनक ध्यान ओ पत्रक माध्यम सँ आकृष्ट कए भारतीय संस्कृतिक पाठ पठौलनि अछि। भारतीय दर्शन में मन के स्वतंत्र सत्ता नहि देल गेल अछि। छान्दोग्य उपनिषद् में कहल गेल अछि जे खाद्य वस्तुक सूक्ष्मतम भाल मस्तिक मे जाकए मन बनैत अछि। एहि रुपे शरीर आ मन एक-दोसराक क्रिया पर आधारित अछि। इन्दू देवी पति पर व्यंग्य करैत लिखैत छथि-

यशोधराक दरवाजा पर कि आँगन आबि बुद्धदेव भने हाथ पसारलनि शकुन्तलाक आगाँ दुश्यन्तक मस्तक भने लाज सँ गड़ल होइन्ह, परन्तु आइ-काल्हुक विदेश गेल, विदेशी रंग मे नीक जकाँ रँगल सुशिक्षित, सुसभ्य भारतीय पुरुशपुंगव सँ पुनः अपन स्त्रीक कि संतानक प्रति पहिलुक व्यवहारक आशा करब अपनाकें ठकब थिक।''

जेसिका इन्दूक पत्र पढ़ि इन्दू के भावुक नारी कहने छथि। ओ कहैत छथि जे पाश्चात्य देशक स्त्री एतेक भावुक नहि भए सकैत अछि। इन्दु सनि लोक निर्वाह पाश्चात्य धरती पर असंभव अछि। भारतीय संस्कृतिमे पतिव्रत धर्म के स्त्री सदिखन पालन करैत अछि, आ पाश्चात्य देश में एगारह-बारह वर्श धरि यदि कन्या व्यायफ्रेण्डक चयन नहि कए सकल तखन ओकर माए-बाप ओकरा मनोवैज्ञानिकक ओतए जाकए चिकित्सा करबैत अछि। पाश्चात्य सभ्यता मे अर्द्धांगिनीक चयन ओकर गुण के देखि कए कयल जाइछ।

ओतए गुणवान छात्रक पाछा युवती प्रेम आ विवाह करवाक लेल व्याकुल आ आतुर रहैत छथि। जेसिका स्वीकार करैत छथि जे-'एतुक्को लोक में कए तरहक कमजोरी छैक-द्रव्यक पाछाँ बताह होएब, तरूण-तरूणीमे अमर्फ्यादित यौनाकर्शण ओ एहि विषय मे असंयम, शलीलहीनता ताहि में प्रधान।''

पाश्चात्य देशक युवती सेहो बारह बजे राति धरि नाइट क्लब तथा आन ठाम जा कए काज कए द्रव्योपार्जन करैत अछि जे भारतीय संस्कृतिक प्रतिकूल बात थिक। पाश्चात्य देश में कपोल-चुम्बन स्नेहक परिचायक थिक, मुदा भारत में नहि। जेसिका सिद्ध करैत छथि जे अमेरिकन युवती आनक सुखक लेल अपन सुखक बलिदान नहि कए सकेत अछि। एहि संबंध में भारतीय आ पाश्चात्य मापदण्ड में बड़ अन्तर अछि। पाश्चात्य देशक नारी के अपन मर्यादा आ स्वतंत्रता बड़ प्रिय होइत छैक। ताहि पर आघात भेला पर ओ विद्रोह कए दैत छथि। पाश्चात्य संस्कृति में पति-पत्नी में समान भाव होइत। पत्नी पतिक तरवा नहि चटैत अछि। तँ जेसिका अपन भावना के व्यक्त करैत कहैत छथि-''यदि स्वामी हमरो अपन सहधार्मिणी जकाँ रखताह, उचित मर्यादा देताह तश बड बढ़िया। हमरा यदि हुनका काज, त हुनको हमर काज, नहि त हुनका तरवा चटैत नौकरानी भेल किएक रहबनि।

जेसिका आदर्श आ परिस्थितिक मध्य ठाढ़ि छथि। हुनक मानसिक संघर्शक चित्रण अत्यंत कलात्मक आ आकर्शक ढंग सँ पाश्चात्य आ भारतीय संस्कृतिक परिवेश में कयल गेल अछि। जेसिका पाश्चात्य संस्कृतिक चर्चा करैत ओकर पक्षपाती रहितहुँ, भारतीय संस्कृति सँ बड़ प्रभावित छथि।

'दू पत्रक' सभसँ पैघ विशेषता छैक पत्रक माध्यमे दू संस्कृतिक विवेचनमें। साधारनतः मैथिलीक उपन्यासकार लोकनि अपन सीमित अनुभव एवं उपन्यास-कलाक हेतु अपेक्षित ज्ञानक अभावक कारणें ओहि पक्षक चित्रणो नहि कए सकलाह अछि जकर चित्रण दू पत्र में संभव भए सकल अछि। चारिए गोट पात्र पर सम्पूर्ण वृत्तान्त आधारित अछि। ओ पात्र छथि-इन्दु, सुरेन्द्र, जेसिका आ रमेश। भिन्न-भिन्न परिस्थिति में एहि पात्र सभकें राखि मानसिक द्वन्द्व आ संघर्शक चित्रण द्वारा जे चित्र व्यासजी अंकित कएलनि अछि से सत्यानुरुप भेल अछि।

प्रस्तुत उपन्यास में दू समाजक छवि देखाओल गेल अछि-एक भारतीय मैथिल आ दोसर अमेरिकन एहि उपन्यास में उपन्यासकार दू पत्रक माध्यक सँ पाश्चात्य संस्कृतिक अपेक्षा भारतीय संस्कृतिक महत्वक गुणगान कयने छथि।

संदर्भ

1. शिखरिनी
   सम्पादक
   श्री गोविन्द झा
   डॉ. आनन्द मिश्र
   डॉ. रमानन्द झा 'रमण'
   श्री मोहन भारद्वाज
   श्री कुमार शैलेन्द्र
2. दू पत्र
   लेखक-श्री उपेन्द्रनाथ झा 'व्यास'
   साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली सँ पुरस्कृत

कार्ल मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धांत एवं इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन

डॉ० महेन्द्र पासवान

ग्राम-केवलचक, पोस्ट-फुलवरिया बहेरी, थाना-गुरूआ, जिला-गया (बिहार)

मार्क्सवाद से पहले भी विद्वान अनुभव करते थे कि जनता वर्गो में बँटी हुई है और समाज में वर्ग संघर्ष का अस्तित्व है। किन्तु वे समाज के वर्ग-विभाजन का वस्तुगत आधार ढूँढ़ निकालने में असमर्थ रहे। वे यह नहीं देख सके कि समाज के वर्ग-विभाजन का कारण भौतिक उत्पादन में खोजना चाहिए जो मानव संबंधों का प्रधान क्षेत्र है।

लेनिन ने वर्ग की परिभाषा अपनी पुस्तक 'महान आरम्भ' में इस प्रकार दी है- "वर्ग जनता के बड़े समूह जिनमें सामाजिक उत्पादन की इतिहास द्वारा निर्दिष्ट किसी व्यवस्था में अपने विशिष्ट स्थान द्वारा उत्पादन के साधनों के प्रति अपने संबंध द्वारा, श्रम के सामाजिक संगठन में अपनी भूमिका द्वारा और परिणाम स्वरूप, इस चीज द्वारा की वह सामाजिक सम्पदा का कितना बड़ा भाग अर्जित करते है और किस तरीके से अर्जित करते हैं, एक-दूसरे से भिन्नता होती है। वर्ग जनता के ऐसे समूह होते हैं जिनमें से एक इस चीज की बदौलत ही वे सामाजिक अर्थव्यवस्था की किसी खास प्रणाली में भिन्न-भिन्न स्थान रखते हैं, और दूसरों के श्रम को हड़प सकते हैं।"[1]

उत्पादन के साधनों के प्रति किसी वर्ग का संबंध वह मुख्य विशेषता है जो सामाजिक उत्पादन में उसके स्थान और उसकी भूमिका को निर्धारित करता है कि वह वर्ग किस ढंग से आमदनी करता है और कितनी आमदनी करता है। आदिम समाज में वर्ग नहीं थे। उत्पादन का स्तर इतना कम था कि उससे जीवन निर्वाह का साधन बस इतना ही प्राप्त होता था कि लोग भूखे मरने से बचे रहें। भौतिक सम्पदा संचित करने, निजी सम्पति अर्जन करने, वर्ग और शोषण के पैदा होने की कोई सम्भावना नहीं थी।

पर बाद में उत्पादन शक्तियाँ जैसे-जैसे विकसित हुई और श्रम उत्पादकता बढ़ी, लोग उपभोग से अधिक उत्पादन करने लगे, भौतिक सम्पदा संचित करना और उत्पादन साधनों को हस्तगत कराना सम्भव हुआ। निजी सम्पति प्रकट हुई।

सामुदायिक सम्पति के स्थान पर निजी सम्पति के विकास से आर्थिक असमानता बढ़ी। कुछ लोग खासकर कबीले के सरदार, धनी बन गये और उत्पादन के सामुदायिक साधनों पर कब्जा कर लिया। अन्य लोग जो उत्पादन के साधनों से वंचित रह गये, इन साधनों का स्वामी बन जाने वालों के लिए काम करने के लिए मजबूर हुए। आदिम समुदाय का इसी प्रकार विघटन तथा उसमें वर्ग-स्तरों का उदय हुआ। इस प्रक्रिया ने विरोधी वर्गो के उदय और शोषण के साथ पूर्णता प्राप्त की। वर्ग उस समय पैदा हुए जब आदिम सामुदायिक व्यवस्था विघटित हो रही थी और दास-व्यवस्था का उदय हो रहा था। वर्ग संघर्ष सदियों से मानव जाति के विकास में प्राथमिक विशेषता बना हुआ है।

वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। आजाद नागरिक और दास, पैट्रीशियन (कुलीन) और प्लेवियन (साधारण), भू-स्वामी और भूदास, व्यवसाय संघ के उस्ताद गिल्डमास्टर और शागिर्द (जमीमैन), तात्पर्य यह है कि उत्पीड़ित और उत्पीड़िक (ज़ालिम और मज़लूम) ने एक दूसरे के आमने-सामने सतत् विरोधी के रूप में खड़े हुए। उनमें लगातार लड़ाईयाँ चलती रही जो कभी गुप्त और कभी खुली हो जाती थी और इन लड़ाईयों का अन्त हर बार यों हुआ कि या तो समाज का क्रांतिकारी पुनर्गठन हुआ या दोनों वर्ग बर्बाद हो गये।[2] वैमनस्यपूर्ण वर्गो का संघर्ष समझौताहीन होता है क्योंकि समाज में उनकी आर्थिक और

राजनीतिक स्थितियों में बुनियादी भेद रहता है। न जाने कितनी सदियों के साथ मेहनतकश लोगों का वे दास हों, किसान हो या औद्योगिक मजदूर हों-शासक वर्गो ने निर्ममता से शोषण किया है।

वर्ग समाज में बुनियादी वर्ग होते हैं और गैर-बुनियादी वर्ग भी होते हैं। बुनियादी वर्ग वे होते हैं जो समाज में प्रचलित उत्पादन पद्धति से संबंधित रहते हैं। वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में वे हैं- एक ओर उत्पादन के साधनों का मालिक वर्ग और दूसरी ओर उसके विरोध में खड़ा उत्पीड़ित वर्ग। दास समाज में दास और दास स्वामी, समान्तवाद में किसान और सामन्ती सरदार, पूँजीवादी के सर्वहारा पूँजीपति ये ही वैमनस्यपूर्ण समाजों के बुनियादी वर्ग है।

वैमनस्यपूर्ण समाजों में गैर बुनियादी वर्ग भी हुआ करते हैं। उनका प्रचलित उत्पादन-पद्धति से प्रत्यक्ष लगाव नहीं होता है। वैमनस्यपूर्ण समाज में वर्ग संघर्ष प्रथमतया बुनियादी साामाजिक वर्गो के बीच चलता है। गैर बुनियादी वर्गो और सामाजिक समूहों की इस संघर्ष में आम तौर से अपनी कोई नीति नहीं होती है और वे किसी एक बुनियादी वैमनस्यपूर्ण वर्ग का पक्ष ग्रहण करते और उसके हितों की रक्षा करते हैं। वर्ग-संघर्ष वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज की प्रेरक शक्ति होता है, उसके विकास का स्रोत होता है। यह संघर्ष वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज के विकास को निर्धारित करता है।

पूँजीवादी परिस्थितियों में वर्ग संघर्ष उत्पादक शक्तियों के विकास में महत्वपूर्ण तत्व होता है। काम के घंटे बढ़ाने या मजदूरी घटाने की हर कोशिश का मजदूर विरोध करते हैं। इस विरोध का सामना होने के कारण पूँजीपति नयी-नयी मशीनों और उन्नत प्रविधि का समावेश करने को बाध्य होते हैं ताकि उनके उद्योगो में मुनाफे का स्तर कायम रहे।

सामाजिक क्रांति जो वर्ग संघर्ष का उच्चतम रूप है, सामाजिक प्रगति में खास तौर से बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है और उसके फलस्वरूप पुरानी समाज व्यवस्था नष्ट होती है और नयी तथा अधिक प्रगतिशील समाज व्यवस्था कायम होती है। दास समाज में दासों और दास स्वामियों में घोर संघर्ष चलता था। यह नानारूप धारण करता था-औजारों की तोड़फोड़ से लेकर आम बगावत भी होता था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में ऐसी ही बगावत रूपाशंकर के नेतृत्व में हुई थी जिसमें एक लाख से अधिक दासों ने भाग लिया था।

सामन्तवाद में वर्ग संघर्ष काफी तीव्र हुआ। इसमें लड़ने वाले मुख्य विरोधी वर्ग किसान और सामन्ती प्रभु थे। शहरी मेहनतकश, खासकर दस्तकार लोग, इस संघर्ष में किसानों का साथ दिया। ये युद्ध अक्सर विशाल भू-क्षेत्रें पर फैल जाते थे और वर्षो चलते रहते थे। जैसे इंगलैण्ड में बाट टाइलर का विद्रोह (14वीं सदी), फ्रांस में जाकरी विद्रोह (14-15वीं सदी), जर्मनी का किसान युद्ध (16वीं सदी), रूस में बोलालनिकोथ और राजिन के नेतृत्व में विद्रोह (17वीं सदी) और पुगाचोव के नेतृत्व में हुआ विद्रोह (18वीं सदी), चीन में ताइपिंग विद्रोह (19वीं सदी) में हुआ। ये विद्रोह असंगठित थे। विद्रोहियों के दिमाग में यह बात स्पष्ट नहीं था कि उनके संघर्ष का लक्ष्य क्या है। न ही वे इन लक्ष्यों की प्राप्ति के तरीके के बारे में स्पष्ट थे। उनके पास कोई ऐसा क्रांतिकारी सिद्धान्त नहीं था जो उनके मार्ग को आलोकित करता। फिर भी दासों और किसानों के विद्रोहों ने इतिहास में बड़ी प्रगतिशील भूमिका अदा की। दासों ने सामन्त-समाज के खम्भों को खोखला किया।

पूँजीपति और सर्वहारा पूँजीवादी समाज के बुनियादी वर्ग है। पूँजीवादी स्वरूप, जो मजदूर को उसके श्रम के फल से वंचित करता है तथा समाज में मजदूर की स्थिति उसे पूँजीपतियों से जुड़ने को प्रेरित करते हैं। अत: पूँजीवादी समाज का इतिहास पूँजीपति और सर्वहारा के संघर्ष का इतिहास है। सर्वहारा का ध्यय और कर्त्तव्य पूँजीवादी समाज को समाप्त करना और वर्ग विहीन कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करना है।

पूँजीपति उस वक्त क्रांतिकारी थे जब वे समाज में किसका प्रभुत्व हो इसके लिए सामन्ती प्रभुओं में लड़ रहे थे। पर सत्ता प्राप्त कर चुकने के बाद वे अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी होते गये और तब उनका एक मात्र लक्ष्य शोषण को बरकरार रखना बन गया। किसान और दस्तकार जो इनकी संस्था काफी है, अन्त तक वे क्रांतिकारी नहीं बने रहते। किसानों और दस्तकारों का अधिकांश तबका सर्वहारा की मंडली में शामिल हो जाते हैं और इनकी एक नगन्य संख्या ही पूँजीपति वर्ग में प्रवेश कर पाती है। अत: सर्वहारा का यह कर्त्तव्य है कि उन्हें अपने साथ लाये और अपना विश्वस्त सहयोग बनाये।

बुद्धिजीवी (इंजीनियर और प्रविधि) डॉक्टर, अध्यापक, वैज्ञानिक और अन्य लोग भी सतत् रूप से क्रांतिकारी नहीं बने रहते। बुद्धिजीवियों का विशाल बहुमत शोषक वर्गो की सेवा करने को मजबूर होता है।

पूँजीवादी समाज का एकमात्र सतत् क्रांतिकारी वर्ग सर्वहारा वर्ग है। उसका उत्पादन के सबसे प्रगतिशील रूप, मशीन-उद्योग से संबंध हैं। निरंतर बढ़ता और विकास करता रहता है। मजदूर सम्पति-विहीन होते हैं और उनके पास ऐसा कुछ नहीं है जिसे संघर्ष में गंवाना पड़े। सर्वहारा अपने को आजाद करके वह सभी अन्य मेहनतकशों को आजाद करता है और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण करता है। उस समाज व्यवस्था को समाप्त करता है जिसमें मुट्ठी भर उत्पीड़क करोड़ों जनता की मेहनत के फल को हड़पलेता है। पूँजीवाद के विकास करने के साथ सर्वहारा भी विकास करता है और पूँजीपतियों के विरूद्ध संघर्ष के रूप अधिकाधिक विविधतापूर्ण और तीव्र होते जाते हैं। सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के तीन मुख्य रूप हैं-आर्थिक, राजनीतिक और विचारधारात्मक।

आर्थिक संघर्ष भौतिक एवं कार्य की अवस्थाओं को बेहतर बनाने का सर्वहारा का प्रयास है। यह सब रूप है जो मजदूरों के लिए सबसे सुगम है। वे मालिकों से उच्चतर मजदूरी, काम से कम घंटे आदि की माँग करते हैं और जब माँगे नहीं मिलती तो हड़ताल करते हैं। आर्थिक संघर्ष ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष का प्रथम रूप है। यह क्रांतिकारी आन्दोलन के विकास में बड़ी भूमिका अदा करता है। मजदूरों की वर्ग चेतना और उनकी वर्ग एकजुटता संघर्ष के दौरान बढ़ती है और सर्वप्रथम मजदूर संगठनों-ट्रेड यूनियनों, सहकारों, परस्पर लाभप्रद सोसाइटियों का उदय होता है।

आर्थिक संघर्ष का स्वरूप संकुचित हुआ करता है। यह संघर्ष एक वर्ग की हैसियत से सभी पूँजीपतियों के खिलाफ पूरे मजदूर वर्ग के संघर्ष का रूप धारण नहीं करता है। यह एक पूँजीपति के खिलाफ एक कारखाने में, किसी खास इलाके के अन्दर मजदूरों के एक समूह का संघर्ष होता है। इसके अलावा इससे पूँजीवाद के आधार, निजी सम्पति पर आँच नहीं आती और इसका लक्ष्य पूँजीपतियों के राजनीतिक शासन को उलटना नहीं होता है। इस संघर्ष का प्रयोजन शोषण को समाप्त करना नहीं, बल्कि उसे केवल संकुचित करना और उसकी कठोरता घटाना होता है।

सर्वहारा के विकास करने के साथ अलग-अलग कारखानों और इलाकों के मजदूरों के आर्थिक संघर्ष पूरे पूँजीपति वर्ग के विरूद्ध मजदूर वर्ग के समान संघर्ष में मिलकर एकाकार हो जाते हैं। वर्ग संघर्ष अपने उच्चतर रूप-राजनीतिक रूप में प्रवेश कर जाता है। राजनीति संघर्ष पूँजीवादी व्यवस्था के खम्भों को नष्ट करने के लिए, राजसत्ता की प्राप्ति के लिए और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना के लिए किया जाता है।

सर्वहारा वर्ग अपने आर्थिक संघर्षो के जरिये अपनी माली हालतों में कुछ हद तक सुधार कर सकता है और पूँजीपतियों से आर्थिक सुविधाएँ हासिल कर सकता है। लेकिन पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक शासन को नष्ट करके और अपनी सत्ता, सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करके ही वह अपने बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक हितों की सिद्धि कर सकता है और शोषण को सदा के लिए समाप्त कर सकता है।

इसी लक्ष्य को प्राप्त करके सर्वहारा राजनीतिक संघर्ष करता है जिसमें वह नाना विधियों का प्रयोग करता है। राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन, शांतिपूर्ण संसदीय संघर्ष आदि करता है। किन्तु इन सभी साधनों का मूल अभिप्राय: अन्तत: समाजवादी क्रांति की तैयारी करना और उससे सम्पन्न करना होता है। समाजवादी सर्वहारा क्रांति मजदूर वर्ग के वर्ग संघर्ष की उच्चतम मंजिल है। यह पूँजीवादी का खात्मा करने और राजनीतिक सत्ता पर कब्जा जमाने का सर्वहारा के हाथ निर्णायक तथा एकमात्र हथियार है।

सर्वहारा के क्रांतिकारी आन्दोलन के अन्दर विचारधारात्मक संघर्ष का बहुत बड़ा महत्व है। यह पूँजीवादी समाज में हावी पूँजीवादी विचारधारा के विरूद्ध संघर्ष है जो समाजवादी, सर्वहारा विचाराधारा की विजय के लिए किया जाता है। नये क्रांतिकारी सिद्धान्त का सृजन सर्वहारा का पक्ष ग्रहण करने वाले बुद्धिजीवी मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने किया था। एक प्रगतिशील क्रांतिकारी सिद्धान्त तैयार करने के साथ-साथ यह भी आवश्यक था कि इस सिद्धान्त का मजदूरों में प्रचार किया जाय। फलत: विचारधारात्मक संघर्ष मजदूर आन्दोलन में स्वत: स्फूर्तता के खिलाफ संघर्ष है। यह मेहनतकश अभाव द्वारा उन्नत मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा में पारगति प्राप्त करने का संघर्ष है।

पूँजीपतियों के सिद्धान्तकार तथा सुधारवादी और संशोधानवादी मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त पर निरंतर प्रहार करते रहते हैं। अत: बौद्धिक संघर्ष का एक महत्वपूर्ण पहलू इस चेष्टा में निहीत है कि मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त को शुद्ध रखा जाय और उसे सभी शत्रुओं से सर्वोपरि साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावादी की विचाराधारा से बचाया जाय। आर्थिक संघर्ष की ही भाँति विचारधारा

के क्षेत्र का संघर्ष भी स्वयंमेव लक्ष्य नहीं है। वह राजनीतिक कर्त्तव्यों-पूँजीपतियों की सत्ता का खात्मा और सर्वहारा द्वारा सत्ता की प्राप्ति के अधीनस्थ है।

सर्वहारा की राजनीतिक पार्टी ही मेहनतकश जनता के संघर्ष को सुयोग्य नेतृत्व प्रदान करते हैं और उसके सभी रूपों को सकुंचित ढंग से समन्वित करने की क्षमता रखती है। पार्टी की भूमिका साम्राज्यवाद के युग में खास तौर से बहुत बड़ी होती है। द्वितीय इन्टरनेशनल की पार्टियों जो नई ऐतिहासिक परिस्थितियों में सर्वहारा आन्दोलन को समुचित नेतृत्व प्रदान नहीं कर सकी। एक नये प्रकार की पार्टी भी एक क्रांतिकारी मार्क्सवादी पार्टी की आवश्यकता थी। मार्क्सवादी पार्टी सर्वहारा की आगे बढ़ा हुआ क्रांतिकारी सैनिक दस्ता है, वह सर्वहारा का हिरावल है। सर्वहारा के संगठन का सर्वोच्च रूप होने के नाते वह सर्वहारा के बाकी सभी संगठनों को एकत्र करती है, उन्हें राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करती है और पूँजीवाद का खात्मा करने तथा समाजवादी समाज का निर्माण करने के लिए एकनिष्ठ लक्ष्य पर उनके प्रयासों को केन्द्रित करती है। लेनिन ने लिखा है-"मजदूरों की पार्टी को शिक्षित करके मार्क्सवाद सर्वहारा के हिराबल को शिक्षित करता है जिसमें सत्ता ग्रहण करने और सामूहिक जनता का नेतृत्व करने की, नई व्यवस्था का निर्देशन और संगठन की पूँजीपतियों के बिना ही और पूँजीपतियों के मुकाबले में अपने सामाजिक जीवन को संगठित करने में सभी मेहनतकशों और शोषितों का शिक्षक, पथ-प्रदर्शक और नेता होने की क्षमता होती है।[3]

मार्क्सवादी पार्टी मजदूर वर्ग के हिरावल, उसके आगे बढ़े हुए सैनिक दस्ते तथा पूरी जनता के नेता के अपने दायित्व को पूरा करने की सामर्थ इसीलिए रखती है कि वह वैज्ञानिक मार्क्सवादी सिद्धान्त से लैस होती है। उसके पास सामाजिक विकास के नियमों का ज्ञान होता है तथा समाज के क्रांतिकारी काया पलट के लिए इन नियमों को लागू करने की उसमें क्षमता होती है। पार्टी हर तरह के अवसरवादियों को तिरस्कार करती है क्योंकि वे उसकी एकता को नष्ट करने, उसे भीतर से खोखला करने और सर्वहारा वर्ग संघर्ष का नेतृत्व करने के अयोग्य बना देने की कोशिश करते हैं।

वर्ग और वर्ग संघर्ष के मार्क्सवादी सिद्धान्त के विपरीत पूँजीवादी विचारक पूँजीवाद में वर्ग शांति का उपदेश देते हैं। वे खास तौर से यह आग्रह करते हैं कि समकालीन पूँजीवादी समाज में वर्गो और वर्ग संघर्ष का कोई अस्तित्व नहीं है। कुछ समाजशास्त्री सीधे-सीधे यह तर्क पेश करते हैं कि आज के पूँजीवादी समाज में न शोषण है और न शत्रुतापूर्ण वर्ग है। वे कहते है कि इस समाज में पेशों, शिक्षा, आय, उम्र आर्थिक और राजनीतिक मतों तथा अनेक अन्य विशेषताओं पर आधारित केवल कुछ सामाजिक समूह है।

पूँजीवादी देशों में पूँजीपतियों के विरूद्ध सर्वहारा का वर्ग संघर्ष आज पूँजीवाद के आम संकट के विकास के एक नये दौर में चल रहा है। यह संकट सन् 1917 ई. को रूस में अक्टूबर क्रांति की विजय और विशाल देश को साम्राज्यवाद के हाथ से निकल जाने के साथ आरम्भ हुआ था। विश्व समाजवादी व्यवस्था का अस्तित्व जो विश्व घटनाक्रम का निर्णायक तत्व बनता जा रहा है एक विचारनीय मुद्दा है। अब स्थिति मजदूर वर्ग आन्दोलन के लिए सोवियत संघ और पूरी विश्व समाजवादी व्यवस्था की सफलताओं, जनता के बीच कम्युनिस्ट पार्टियों के प्रभाव के विस्तार और सुधारवाद के बौद्धिक दिवालियापन के कारण अधिक अनुकूल हो गयी। मजदूर वर्ग आन्दोलन के सामने मौजूद सम्भावनाएँ इस कारण और भी अधिक विस्तृत हो गयी है कि साम्राज्यवादियों की नीति से, खासकर उनकी जंगबाजी की मनोवृति और हथियार बन्दी की होड़ से जिसका मुख्य भार जनता की ओर से वहन करना पड़ता है, जनता में असन्तोष पैदा हो गया है। अधिकांश लोगों को यह विश्वास होने लगा है कि इस विपदा से निकलने का एकमात्र रास्ता समाजवाद है। इससे पूँजीपतियों के विरूद्ध सक्रिय संघर्ष में उन्हें लाने के लिए अनुकूल अवस्थाएँ बनती है। सर्वहारा आन्दोलन की ताकत समाजवादी व्यवस्था की उपलब्धियों से कई गुनी बढ़ जाती है, क्योंकि ये उपलब्धियाँ साफ बतलाती है कि समाजवाद पूँजीवाद के अधिक लाभकर है। ये उपलब्धियाँ पूँजीवादी देशों में मजदूरों को अपने संघर्ष में अनुप्रमाणित करती है और उन्हें समाजवाद के विजयी होने का विश्वास दिलाती है।

समाजवाद के लिए सर्वहारा का संघर्ष अब शांति, राष्ट्रीय स्वाधीनता और जनतंत्र के लिए जनगण के साथ मिल गया है और यही आज मजदूर वर्ग आन्दोलन का प्रमाण एवं विशिष्ट गुण है। अनुकूल स्थिति से फायदा उठाकर मजदूर वर्ग अनेक देशों में पूँजीवाद का तख्त उलटने से पहले ही घातक क्षेत्रें को नये युद्ध की तैयारियां को बन्द करके, स्थानीय युद्ध छेड़ने में बाज आने और

शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए आर्थिक संसाधनों का उपयोग करने को मजबूर करने में सफलता हासिल की है। यह फासिस्ट प्रतिक्रियाशाही के हमले का मुंह मोड़ने और ऐसे राष्ट्रीय कार्यक्रम मनवाने में सफल हुए है जो शांति, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, जनवादी अधिकारों तथा जनता की रहन-सहन की हालतों में कुछ सुधार लाने का आह्वान करते हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है कि वे मामूली सुधारों की सीमा से बाहर जाते हैं और उनका क्रांति की विजय हेतु मजदूर वर्ग के संघर्ष के लिए, समाजवाद के लिए और राष्ट्र के बहुमत के लिए बुनियादी महत्व है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता, जनवाद और शांति के लिए समाजवादी क्रांति में लक्ष्यों-समाजवाद और कम्युनिस्ट निर्माण की सफलता के साथ पूर्ति के लिए संघर्ष में विजय प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की एकता का निरन्तर बचाव किया जाय और ऐसा हर काम को किया जाय जो इस एकता को कमजोर करता हो।

मार्क्स का वर्ग-संघर्ष काफी वजनदार है। समाज में सामाजिक वर्गो के अस्तित्व से कोई इंकार नहीं कर सकता। प्राय: प्रत्येक साम्य समाज में जन, सम्पति, पदवर्ग प्रतिमानों आदि के आधार पर भेद विद्यमान रहे हैं। यह भी सत्य है कि राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति के लिए विभिन्न वर्ग संघर्ष ऐतिहासिक घटनाओं के निर्धारण में योग देते रहे हैं। प्राचीन भारत में राजनीतिक प्रभुता की प्राप्ति के लिए ब्राह्मणों और क्षत्रियों के विभिन्न वंशों में संघर्ष होता रहता था। प्राचीन यूनान में धनतंत्रवादियों और जनतंत्रवादियों में शक्ति के लिए संघर्ष चलता रहता था और प्राचीन रोम तथा अन्य देशों में भी बहुत कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ है।

मार्क्स ने इतिहास में सामाजिक वर्गो के महत्व पर प्रकाश डालकर समाजशास्त्र की एक बहुत बड़ी सेवा की है। वही प्रथम विचारक हैं जिसने ऐतिहासिक घटनाओं की वर्ग-हित और वर्ग प्रवृतियों के संदर्भ में व्याख्या की है। मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के पक्ष में यह एक बड़ा प्रमाण है कि इतिहास में सम्भवत: ऐसे उदाहरण बहुत कम होंगे जब समाज में शोषित वर्ग की ओर से संघर्ष हुए बिना ही शासक वर्ग ने अपने अधिकारों का परित्याग कर दिया है। जो कुछ भी अधिकार शोषितवर्ग ने प्राप्त किया है वे उसे कठिन संघर्ष के फलस्वरूप ही मिल पाये हैं।

लेकिन इसके महत्व के बाद भी मार्क्स का वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त कटुतम आलोचना का विषय रहा है-

(1) मार्क्स का कहना है कि समाज में दो वर्ग है, लेकिन समाज में केवल दो ही वर्ग नहीं है, बल्कि एक शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण मध्यम वर्ग भी है। इस तरह मार्क्स कहता है कि समाज में दो वर्ग रहेंगे जो गलतसिद्ध हो रही है। सेवाइन का कहना है कि-"यदि मार्क्स इंगलैण्ड को अपना आदर्श मानता तो सम्भवत: उसका वर्गो का विश्लेषण यह न होता। चूँकि मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष को विरोधी तत्वों के द्वन्द्वात्मक विरोध में देखा, इसी कारण वह केवल दो मुख्य विरोधी वर्गो की स्थिति के लिए बाध्य था परन्तु इसके परिणामस्वरूप उसकी नई भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध हुई।"[4]

(2) मार्क्स का यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से गलत सिद्ध होता है कि मध्यवर्गीय और छोटे-छोटे बुर्जुआ अन्त में श्रमजीवी वर्ग के साथ मिल जायेंगे। उद्योग प्रधान समाजों में वेतनभोगी कर्मचारियों, व्यावसायिक, बिचौलियों और छोटे दुकानदारों की वृद्धि हुई है जिन्हें मार्क्स की योजना में छोटे बुर्जुआ ही कहा जा सकता है। लेकिन फासिज्म ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इस प्रकार के लोग सर्वहारा वर्ग में शामिल होने का इतना तीव्र विरोध करते हैं जिसकी मार्क्स कल्पना भी नहीं कर सकता था।

(3) मार्क्स ने भूल की है कि उसने सामाजिक वर्गो और आर्थिक वर्गो को एक ही समझा तथा वर्ग संघर्ष को शोषक एवं शोषित वर्गो के बीच युद्ध बताया। ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों या धनतंत्रवादियों या पेट्रीशियनों और प्लीवियनों को आर्थिक वर्ग मान लेने से पहले वर्ग एवं वर्ग चेतना की धारणाओं का उसने अधिक स्पष्ट एवं निश्चित विश्लेषण आवश्यक है जितना मार्क्स ने किया है। वास्तव में वर्ग संघर्ष की धारणा में एकदम लिप्त होने के कारण और अपने क्रांतिकारी उद्देश्य के लिए उसका प्रयोग करने की अधिक उत्सुकता के कारण मार्क्स ने वांछित गम्भीर विश्लेषण नहीं किया बल्कि इसका अत्यधिक सरलीकरण कर दिया। यह भी नहीं भूलना चाहिए की इतिहास में किसी भी समय सामाजिक वर्गो में वह दृढ़ता और उद्देश्य की एकता नहीं रहती जो वर्ग संघर्ष के लिए आवश्यक है, उनमें आन्तरिक विरोध रहते हैं। पोपर के शब्दों में-"वास्तव में शासक और शासित वर्गो के हितों में आंतरिक विरोध इतना गहरा है कि मार्क्स के वर्ग सिद्धान्त को एक

खतरनाक एवं अत्यधिक सरलीकरण समझा जाना चाहिए चाहे हम यह मान लें कि अमीर और गरीब के मध्य संघर्ष का हमेशा आधारभूत महत्व है। मध्यकालीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण विषय पोप और सम्राटों के बीच युद्ध शासक वर्ग के आन्तरिक विरोधों का एक उदाहरण है। इस संघर्ष को शोषक और शोषित के बीच संघर्ष को संज्ञा देना गलत होगा।''[5]

(4) वस्तुत: मानवता का संचालक तत्व वर्ग संघर्ष न होकर सामान्यता की भावना है। समाज के अनेक वर्ग विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता के सूत्र में बंधे रहते हैं। हर वर्ग में सामाजिकता की भावना निहीत होती है और सभी वर्ग समाज के हित के लिए कुछ-न-कुछ कार्य करते हैं। मनुष्य में सहयोग, त्याग एवं सहानुभूति आदि के श्रेष्ठ गुण भी विद्यमान होते हैं। अत: समाज का विकास वर्ग संघर्ष न होकर सामाजिकता, सामन्जस्य एवं एकता की भावना से होता है।

(5) मार्क्स की मान्यता है कि पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ श्रमिक वर्ग दीन-हीन होते जायेंगे जिसके परिणामस्वरूप उनमें चेतना का प्रादुर्भाव होगा। किन्तु इतिहास ने मार्क्स की इस मान्यता को गलत सिद्ध कर दिया है। वास्तवविकता यह है कि प्रथम महायुद्ध के बाद से इंगलैण्ड में पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ श्रमिकों की समृद्धि में भी इतनी तेजी से वृद्धि हुई है कि वे आज पूँजीपतियों की समृद्धि में साझीदार बने हुए हैं। साथ ही मार्क्स की यह धारणा भी सत्य सिद्ध हुई है कि श्रमिक वर्ग में भी चेतना दृढ़तर होती जायेगी और समस्त कार्यकारी लोग एक हो जायेंगे। हम स्पष्ट देखते हैं कि समस्त वेतनभोगी व्यक्तियों में न तो श्रमिकवर्गीय चेतना ही आई है और न उनमें श्रमिक वर्ग के प्रति कोई सहानुभूति ही उत्पन्न हुई है।

(6) वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को प्रतिपादन करते समय मार्क्स सम्भवत: यह कल्पना नहीं कर सका था कि पूँजीवाद स्वयं को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढाल सकेगा। इस मूल के कारण आज मार्क्स की पूँजीवाद के विनाश की धारणा केवल एक मृगतृषणा बनकर रह गयी है। आज पूँजीवाद ने उत्पादन-पद्धति में सुधार कर स्वयं को संकटों से मुक्त कर लिया है और परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालकर श्रमिकों का बहुत कुछ समर्थन प्राप्त कर लिया है।

(7) मार्क्स और एंजेल्स ने यह विचार .प्रकट किया था कि श्रमिक वर्ग की क्रांति सन्निकट आ चुकी है क्योंकि पूँजीवाद अपने विनाश के लिए पक चुका है। मार्क्स ने यह भी कहा था कि क्रांति सर्वप्रथम औद्योगिक प्रधान देशों में होगी। किन्तु मार्क्स का यह विश्वास अभी तक तो गलत ही प्रमाणित हुआ है। औद्योगिक दृष्टि से विकसित किसी भी देश में अभी तक कोई श्रमिक क्रांति नहीं हुई है।

(8) मार्क्स की यह धारणा है कि समस्त संसार के पूँजीपतियों का समान उद्देश्यों एवं हितों से संचालित होने वाला एक ही वर्ग है, यह उचित नहीं है। एक ही देश के असंख्य भूमिपतियों, कारखानों के स्वामियों और उद्योगपतियों को एक ऐसा सफल पूँजीवादी वर्ग नहीं समझा जा सकता जो सभी वर्ग चेतना से पूर्णत: प्रेरित हो और जिसमें वर्ग की चेतना की भावना विद्यमान हो। यदि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय तो ब्रिटेन के पूँजीपतियों और भारत तथा जापान के पूँजीपतियों के बीच कुछ भी हितों की समानता नहीं है, बल्कि यह कहना अधिक सत्य होगा कि उनके हितों में संघर्ष है। पूँजीपतियों की एकता तो सन्देहास्पद है ही, विभिन्न देशों के श्रमिकों, कुशल तथा अकुशल श्रमिकों और श्वेत तथा काले श्रमिकों या वर्णभेद के आधार पर श्रमिकों में जो संबंध पाए जाते हैं वे कार्लमार्क्स की श्रमिक एकता की धारणा को गलत सिद्ध करते हैं। स्वयं मार्क्स और ऐंजिल्स की ओर उनके आधुनिक अनुयायियों की श्रमिकों को संगठित होने की बार-बार अपीलें यह सिद्ध करती हैं कि श्रमिकों में कोई स्वभाविक एकता नहीं है। विश्व के श्रमिकों में अन्तर्राष्ट्रीय एकता की धारणा और श्रमिकों का कोई राष्ट्र नहीं होता की विचारधारा दोनों ही कल्पनाएँ मात्र सिद्ध हुई है। विगत दोनों विश्व-युद्धों में विश्व के सारे श्रमिक तथा कथित वर्ग-चेतना की उपेक्षा कर अपने-अपने राष्ट्रों की रक्षा करने में तत्पर रहे हैं और आज भी वे सीमाएं तोड़ नहीं पा रहे हैं।

(9) कार्लमार्क्स ने यह भविष्यवाणी की थी कि पूँजीवादी उत्पादन की विधि से धीरे-धीरे व्यावसायों का रूप विशाल हो जाएगा और अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्ट होती जायेगी। बड़े पूँजीपतियों के साथ-साथ छोटे-छोटे पूँजीपति भी बने हुए हैं। मध्यम वर्ग का अन्त नहीं हो रहा है और इस मध्यम वर्ग के लोग सर्वहारा वर्ग में शामिल हो कर उसका विस्तार नहीं कर रहे हैं।

(10) मार्क्स की इस मान्यता के विरूद्ध आरोप लाख लगाया जाता है कि अन्त में श्रमिक वर्ग की पूँजीवादी वर्ग पर विजय होगी और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित हो जायेगा। वर्ग-संघर्ष का अन्त निश्चित रूप से पूँजीवाद के विनाश और समाजवाद की स्थापना में होगा। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाए की श्रमिकों और पूँजीपतियों के बीच वर्ग-संघर्ष होगा और उसकी अन्तिम परिणति पूँजीवाद के उन्मूलन में होगी, तो भी यह आवश्यक नहीं है कि सत्ता औद्योगिक श्रमिकों के हाथ में पहुँचेगी। हो सकता है कि यह सत्ता फासिस्ट अधिनायक शक्तियों के हाथों में चला जाय। यह भी हो सकता है कि-"पूँजीवाद के विनाश का परिणाम साम्यवाद न होकर अराजकता हो जिसमें से एक ऐसी तानाशाही का जन्म हो जाए जिसका सैद्धान्तिक रूप में साम्यवादी आदर्शो से कोई संबंध न हो।"[6]

यह मानने के लिए भी कोई आधार नहीं है कि समस्त देशों में वर्गयुद्ध के एक से परिणाम ही होते है। जो कुछ रूस से सम्भव हुआ है वह इंग्लैण्ड या फ्रांस में सम्भव नहीं हो सका है। फासिज्म तथा नात्सीवाद का जन्म मार्क्स और एंजिल्स की शिक्षा के विरूद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त मार्क्स यह सिद्ध नहीं करते हैं कि श्रमिक निश्चित रूप से प्रशासन चलाने की योग्यता से सम्पन्न होंगे।

(11) वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त सहानुभूति, सहयोग एवं भ्रातृत्व के स्थान पर घृणा के बीज अंकुरित करता है। घृणा विश्व की उन्नायक कभी नहीं बन सकती। केटलिन के शब्दों में-"मार्क्स का वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को आधुनिक कष्टों, रोगों और यहाँ तक की फासीवाद का भी जन्मदाता कहा जा सकता है।" संघर्ष विनाश का लक्षण है, निर्माण का नहीं। यह सिद्धान्त रूप में मध्यवर्ग की सार्वजनिक हत्याओं तथा उनकी सम्पति के पूर्ण अपहरण के लिए उत्तरदायी है।

प्रो. कोल का विचार है कि-"मैनीफेस्टों में श्रमिक वर्ग की क्रांति का मार्ग निर्धारित करते समय मार्क्स पर इंग्लैण्ड की तत्कालीन परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। उस समय इंग्लैण्ड में उत्पादन वृद्धि के कारण पूँजीपति वर्ग समृद्धिशाली और श्रमिक वर्ग दरिद्र होता जा रहा था। औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन-शक्ति का विस्तार कर दिया था, तथापि धन की इस वृद्धि ने श्रमिकों को सुख-सुविधा देने की अपेक्षा उनके दु:ख को ही बढ़ाया था। फलत: श्रमिक अपने संघों का निर्माण करके संकट-मुक्त होने का प्रयत्न करने लगे थे। सन् 1845 ई. में राबर्ट ओवन के नेतृत्व में निर्मित "ग्रान्ड नेशनल कन्सोलिटेटेड ट्रेड यूनियन" की किलता के बाद उदित होने वाले चर्चिस्ट आन्दोलन में घोर संकट के कारण भूखमरी के समस्त लक्षण मौजूद थे। ऐसी परिस्थितियों में मार्क्स की इस धारणा को बल मिलना अथवा उसका इस परिणाम पर पहुँचना स्वाभाविक था कि पूँजीवाद के विकास श्रमिकों की दशा को निरन्तर पतनोन्मुख करता है और पूर्णतया असन्तुष्ट श्रमिक कभी-न-कभी एक ऐसा शक्तिशाली राजनीतिक जन आन्दोलन करेंगे जो पूँजीवाद को नष्ट कर देगा।

संदर्भ सूची

1. लेनिन संग्रहित रचनाएँ, खण्ड-3, पृ.-248
2. मार्क्स ऐंगेल्स, संकलित रचनाएँ, खण्ड-1, मास्को-1958, पृ.-34
3. लेनिन संग्रहित रचनाएँ, खण्ड-25, पृ.-404
4. सेवाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ.-719
5. पोपर, दि ओपेन सोसायटी एण्ड इट्स इनेमिक्स, पृ.-307
6. स्वेाप . communism, P-87-88
7. लेनिन, मजदूर वर्ग और किसानों का सहयोग, 1959, पृ.-302
8. मार्क्स दास कैपिटल, अध्याय-8
9. Karl Marx - Capital, Progress Publishers, Moscow, 1971
10. Marx, Engels and Lenin-On Historical Materialiam, Progress Publishers Moscow, First Printing, 1972
11. Dr. Ram Manohar Lohiya -Marx, Gandhi and Sociolism Introduction
12. C.G. Shah-Marxiam, Gandhi, Stalinism

मत्स्य उद्योग का वरदान

उमेश कुमार सिंह

शोधार्थी, वाणिज्य संकाय, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सारण

भारत मत्स्य उद्योग में दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा देश है। प्रथम स्थान पर चीन है। भारत दुनिया में मछली का प्रमुख निर्यातक देश बन गया है। मत्स्य उद्योग को विपणन के दृष्टिकोण से प्रोटीनयुक्त स्वादिष्ट भोजन उद्योग के रूप में माना जाता है। दुनिया के अधिकतर लोग मत्स्य को ज्यादा प्रोटीनयुक्त स्वादिष्ट भोजन के रूप में माँग करते है, जिसकी पूर्ति करना माँग की दृष्टिकोण से कम ही रहता है। जिसके कारण इसकी माँग बाजार में बराबर बनी रहती है। बिहार राज्य पहले से ज्यादा मछली उत्पादन कर रहा है। लेकिन इस राज्य को अपनी मछली उपभोग की आवश्यकता को अन्य राज्यों जैसे आन्ध्राप्रदेश, बंगाल, उड़ीसा इत्यादि से आयात करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र की खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार आजादी के बाद से अबतक मछली उत्पादन में दस गुणा की वृद्धि हुई है। देश में चार हजार गाँव का जीवनयापन मछली पर आश्रित है। भारत में 2015-16 में 10.80 Million Metric Tonnes उत्पादन हुआ था जो सम्पूर्ण देश के उत्पादन का 5.43 प्रतिशत है। भारत में मछली उत्पादन 6.58 Million Metric Tonnes नदियों, तालाबों तथा अन्य क्षेत्रें से 4.22 Million Metric Tonnes सामुद्रिक क्षेत्रें से प्राप्त किया जाता हे। भारत में मत्स्य उद्योग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। भारत में तालाबों की बहुत कमी है, इसी कारण समुद्र और नदियों के क्षेत्रों में मछली के जरूरतों को पूरा किया जाता है। भारत में आँकडों के हिसाब से 60 प्रतिशत से अधिक लोग अपने खाने में मछली पसंद करते है। यदि मत्स्यों की संख्या कम हो जाती है या फिर समुद्र या नदियों में मछलियाँ नहीं मिलती है तो मनुष्य अपने शरीर में प्रोटीन की कमी को कैसे पूरा कर सकेगे? अत: उचित समय है कि उद्यमी मछली उद्योग को अधिक से अधिक उन्नतशील कर अपने आमदनी को बढ़ाकर एवं रोजगार सृजनकर अपने जीवन को सुखमय बना सकते है। भारत में अधिक लोग खाने में मछली पसंद करते है इसलिए इसका विपणन करना आसान होता है।

बिहार राज्य एक पिछड़ा राज्य है। यहाँ की जनता के पास रोजगार के रूप में साधन की कमी है। बिहार राज्य के बँटवारे के बाद खनिज सम्पदा की कमी हो गयी। ऐसी परिस्थिति में बिहार राज्य के लिए मत्स्य उद्योग एक वरदान के रूप में सिद्ध हो सकता है। बिहार राज्य बेरोजगारी, गरीबी, साधन विहीन राज्य होने के कारण यहाँ के लोगों का भोजन प्रोटीनयुक्त नहीं होने के कारण बीमार पड़ते है और जल्द कम उम्र में मरने के लिए मजबूर हो जाते है। बिहार के भौगोलिक दृष्टिकोण से भी देखा जाय तो यहाँ के उत्तर बिहार का अधिकांश क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित रहता है। जिसमें अधिक समय तक बाढ़ का पानी भरा रहता है। जिसके कारण उस भूमि में न तो कोई फसल हो पाता है और न ही कोई रोजगार हो पाता है इसलिए उस भूमि पर मत्स्य उद्योग सबसे अधिक लाभदायक उद्योग के रूप में साबित हो सकती है। बिहार सरकार इस उद्योग को बढ़ाने के लिए तालाब निर्माण से लेकर प्रशिक्षण तक के लिए अनुदान प्रदान कर रही है। मछली उद्योग बिहार राज्य के नवजवानों के लिए एक बहुत बड़ा कुटीर उद्योग के रूप में विकसित हो सकता है। यदि इस उद्योग का प्रचार-प्रसार तेजी से किया जाए तो नवजवानों के लिए स्वरोजगार का अवसर भी मिल सकता है एवं पलायन पर रोक लग सकता है। मछली उद्योग के लिए तालाब का निर्माण से जहाँ कुछ लोगों को रोजगार मिलेगा वही भुजल का स्तर बढ़ाने में भी ये तालाब मदद करेगा। यह तालाब सुखे की स्थिति में संघर्ष करने में भी दोस्त की भूमिका निभाएँगें। गर्मी के समय सभी जीव-जन्तुओं को पानी पीने का सहारा भी बनेगा तथा ज्यादा जलस्तर होने पर पटवन का भी काम कर सकता है। सरकारी मदद से बिहार में मछली पालन से अच्छी आमदनी कमाने का सही समय है। इस क्षेत्र में जाकर जहाँ मछली पालक बिहार को मछलीपालन में आत्मनिर्भर बनाने में सहायक हो सकते है। वही दूसरी तरफ मछलीपालक को इस काम में अच्छी आमदनी भी

हासिल होगी। बिहार के अन्दर मछली की माँग और राज्य में मछली के उत्पादन के बीच भारी अन्तर है। इस अनतर को भरा जा सकता है और यह अन्तर बिहार के बेराजगार युवकों के लिए एक अवसर भी बन सकता है। इस तरह के युवाओं के लिए प्रसन्नता की बात यह है कि मछलीपालन को लेकर बिहार सरकार प्रशिक्षण और अनुदान दोनों स्तर पर मदद कर रही है।

बिहार सरकार मछली पालन का प्रशिक्षण राज्य के बाहर और राज्य के अन्दर बिल्कुल निःशुल्क दे रही है। चौर, मॉकन, टाल जैसी आर्दभूमि पर मछली पालन के लिये आसानी से सरकारी सहायता मिल सकती है। चौर में आमतौर पर पर्याप्त पानी लगा रहता है। मछली उद्योग से चौर की जमीन और पानी दोनों का सही उपयोग हो सकता है।

मछली उद्योग ने सिर्फ अकेले लगभग डेढ़ करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान किया है। संयुक्त राष्ट्र की खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार देश में चार हजार गाँव का जीवन-यापन मछली उद्योग पर निर्भर है। भारत दुनिया में मछली का प्रमुख निर्यातक देश है। देश का वातावरण एवं भौगोलिक परिवेश मछली का जाल फैला हुआ है, जिसमें मछली उद्योग को विकास करने में सहायता मिलती है।

बिहार को देश में आज बीमार राज्य के तौर पर देखा जाता है। जबकि बिहार के लोग देश भर में अपनी मेहनत के लिये जाने जाते है। अब समय आ गया है कि बिहार के प्रतिभा पलायन को रोकने के लिए बिहार सरकार की सकारात्मक पहल का प्रचार ठीक प्रकार से हो जिससे इस योजना का लाभ अधिक से अधिक योग्य जरूरतमंद व्यक्ति को मिल सकें। इस योजना पर SC/ST के लोगों को जहाँ 90 प्रतिशत तक अनुदान की व्यवस्था है, वही सामान्य श्रेणी के लोगों को 50 प्रतिशत तक की सहायता मिल सकती है। मछली बेचने वाला सदस्य यदि SC/ST श्रेणी से हैं तो उन्हें चार पहिया वाहन अथवा ऑटो रिक्शा की खरीद पर भी 90 प्रतिशत तक का अनुदान हासिल हो सकता है। इसके साथ-साथ मछली का बीज खरीदने और बोरिंग कराने अथवा पम्पिंग सेट खरीदने के लिए भी वे अनुदान हासिल कर सकते है।

बिहार राज्य के नवजवानों को अब बाहर न जाकर राज्य के अन्दर ही सरकारी मदद से इस क्षेत्र से जुड़कर बिहार राज्य को मत्स्य उत्पादन उद्योग में आत्मनिर्भर बनाने में सहयोग कर रोजगार सृजन कर सकते है और मछली पालन से अच्छी आमदनी भी हासिल कर सकेगें। बिहार के अधिकांश नवजवान इस व्यवसाय से 10 से 15 लाख रूपया सालाना कमाई कर अपने परिवार के जीवन के स्तर को बढ़ाने में सहयोग प्रदान कर सकते है।

तालाब में मछली के प्राकृतिक भोजन का उत्पादन जैविक (कार्बनिक) एवं रासायनिक (अकार्बनिक) खाद का उपयोग कर मछली के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। उसमें उचित मात्र में समय-समय पर फास्फोरस, नाइट्रोजन और पोटाश खाद डाला जाता है। तालाब में खाद डालने के बाद पोशक तत्व जल में घुलकर मिल जाते है तथा कुछ तालाब की तली की मिट्टी द्वारा बाँध लिये जाते है और धीरे-धीरे जल और सूर्य की प्रक्रिया से मछली को पोशक तत्व के रूप में जल में उपलब्ध हो जाते है। इन उपलब्ध पोशक तत्वों एवं सूर्य की किरण प्रक्रिया से वनस्पति पलवकों एवं जन्तु पलवकों की उत्पत्ति होती है। जो मछलियों के लिए प्राकृतिक खाद्य पदार्थ है, जिन्हें खाकर मछलियाँ तेजी से बढ़ती है। तालाब में खाद के अच्छे उपयोग के लिए लगभग एक सप्ताह के पहले 250 से 300 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बिना बुझा चूना (भूरा चूना) डालने की सलाह दी जाती है। जिससे पानी की सफाई भी हो जाती है और बीमारी वाले किटाणुओं का भी नाश हो जाता है। मछली के पूरक आहार के लिए आमतौर पर मूँगफली, सरसों या तिल की खल्ली एवं चावल का कण अथवा गेहूँ के चोकर को बराबर मात्र में मिश्रण स्वरूप मछलियों के भार का 1-2 प्रतिशत की दर से प्रतिदिन दिया जाता है। ग्रास कार्प मछली के लिए पानी की वनस्पतियाँ जैसे लेभाना, हाईड्रिला, नाजाज, सिरेटो फाइलम आदि तथा स्थलीय वनस्पतियाँ जैसे नैपियर, बरसीम व मक्का के पत्ते को खाने के रूप में देते है। प्रत्येक माह तालाब में जाल चलाकर मछलियों की वृद्धि स्वास्थ्य का निरीक्षण भी करते रहना चाहिए। यदि मछलियाँ के घोल में उन्हें डुबाकर फिर से तालाब में छोड़ दिया जाता है। यदि मछलियाँ पर लाल चकते व घाव दिखाई पड़ती है तो मत्स्य विभाग कार्यालय में तुरन्त सम्पर्क कर उसका उपचार करना चाहिए। बिहार सरकार द्वारा हर जिले में मत्स्य विभाग की स्थापना की गई है। बिहार राज्य को मत्स्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने के लिए मत्स्य निदेशालय का लक्ष्य है कि समय-समय पर मत्स्य योजना का लाभ अधिक से अधिक मछली पालकों को मिलें। जल्द ही बिहार में 250 से अधिक हैचरी तैयार हो जाएगा। इससे राज्य में मछली उत्पादन में वृद्धि होगा और लोगों को रोजगार मिलेगा। मछलियों में तेज ग्रोथ लाने के लिए किसान स्टंट ग्रोथ की सहायता ले सकते है। इसके अन्तर्गत मछलियों

को पहले साल कुछ ऐसी परिस्थितियों में रखे जाते है, जिससे उनका ग्रोथ रूका रहें। फिर अगले साल पाले और लाभ की सर्वाधिक ग्रोथ दें। मछलियों के रख-रखाव और अन्य मसलों पर आपस में बातचीत करना मत्स्य की नई रोशनी देना होता है। मत्स्य उद्योग में दो प्रकार के लोग संलग्न होते है। एक में मछली मारने-पकड़ने की क्षमता होती है तो दूसरे में उसके पालन-पोषण की दक्षता होती है। इन दोनों के प्रयास से इस उद्योग को सफल बनाया जाता है। आजकल बिहार की अनेक मछलियों की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही है। इसमें कम से कम 46 प्रजातियाँ है। बिहार के किसानों की आर्थिक स्थिति मत्स्य उद्योग से मजबूत बन सकती है। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रें में मत्स्य उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इस क्षेत्रें के बड़े-बड़े चौर जो सैकड़ों मिलों में फैली हुए है उन क्षेत्रें में बाढ़ का पानी छः महीनों से अधिक दिनों तक रहता है। इन बेकार भूमि में मत्स्य उद्योग को बढ़ावा देकर इन किसानों कि आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य एवं बेराजगारी की समस्याओं को दूर किया जा सकता है। बिहार सरकार ने भी मुख्यमंत्री मत्स्य विकास परियोजनाओं को लाकर बिहार के किसानों को लाभ पहुँचाने की कोशिश कर रही है। बिहार में मत्स्य उद्योग को विकसित करने का आपार सम्भावनाएँ है। साथ ही यहाँ की श्रम शक्ति प्रचुर मात्र में उपलब्ध है। अतः इन सभी साधनों का सही ढ़ंग से उपयोग कर मत्स्य उद्योग को बढ़ावा दिया जा सकता है तथा लोगों को रोजगार देकर उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाया जा सकता हे। जिसके फलस्वरूप मत्स्य उद्योग बिहार के लिए एक वरदान के रूप में साबित हो सकता है।

संदर्भ

1. Business Management in Fisheries and Aquaculture : K.D. Bhardwaj, Cyber Tech Pub, 2012, viii, 264 p, ISBN : 9789350530016
2. Classification of Fisheries : Neha Charan, Random Publications, 2013, vii, 272 p, tables, figs, ISBN : 9789351111481
3. Commercial Exploitation of Fisheries : Production, Marketing, and Finance Strategies : Hrishikes Bhattacharya, Oxford University Press, 2002, xx, 327 p, tables, figs, ISBN : 0195658434
4. Concepts of Indian Fisheries : K. C. Pandey, Shree Publishers , 2012, vi, 146 p, ISBN : 9788183294782
5. Fisheries Development in India : J.V.H. Dixitulu and Eashwar Dev Anand, Daya, 2013, xxvi, 792 p, ISBN : 9788170358084
6. मछली पालन हेतु बेहतरीन तालाब प्रबंधन का तरीका, मत्स्य पालन निदेशालय, बिहार
7. मछली पालन के लिए तालाब का निर्माण, मत्स्य पालन निदेशालय, बिहार
8. मत्स्य पालन के विविध आयाम, मत्स्य विभाग (उत्तर प्रदेश)
9. मत्स्य पालन तकनीक, मत्स्य विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार (भारत)
10. पालने योग्य मछलियाँ, उनकी पहचान तथा विशेषतायें (उत्तरा कृषि प्रभा)

जी.एस.टी. (GST) या वस्तु एवं सेवा

प्रोफेसर (डॉ.) संजय कुमार झा

विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, टी.एन.बी. महाविद्यालय भागलपुर, तिलकामांझी भागलपुर विश्विद्यालय, भागलपुर

सारांश

गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स (GST), जिसका मतलब वस्तु एवं कर सेवा होता है, एक टैक्स संबंधी बिल (Tañ Related Bill) है। 3 अगस्त 2016 को हमारे देश भारत में जीएसटी बिल पारित किया गया था, और सरकार ने इसे 1 जुलाई 2017 से विशेष क्षेत्रों में लागु करने का निर्णय लिया। सरकार के अनुसार जीएसटी लागु होने से टैक्स देने वालों को काफी सुविधा मिलेगी।इसे सरल शब्दो में कहा जाए तो सभी वस्तुओं और सेवाओं में नया जीएसटी टैक्स लगाए जायेगा, साथ ही पहले जो टैक्स लगते थे वो अब नहीं लगेंगे। ळैज् बिल पास होने से पूरे देश में एक ही रेट टैक्स लगेगा, चूँकि ये सम्पूर्ण भारत में लगेगा इसलिए कोई और टैक्स भी नहीं देना होगा। जीएसटी एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर है, जो व्यापक पैमाने पर पूरे देश के निर्माता, व्यापारी, वस्तुओं और सेवाओं के उपभोगताओं पर लगेगा और यह टैक्स सभी टैक्सों को हटा देगा जो केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा लगाए गए है, वस्तुओं और सेवाओं की खरीद बिक्री के प्रत्येक चरण में लगने वाले इस टैक्स में "इनपुट टैक्स क्रेडिट मेथड" लगेगी। इस मेथड के अंतर्गत वस्तु एवं सेवा कर GST बिल के अधीन पंजीकृत व्यवसायों को टैक्स क्रेडिट क्लेम करने की सुविधा मिलेगी। जीएसटी बिल में शामिल मुख्य बातें : जीएसटी बिल के अंतर्गत दो भाग होंगे - केंद्र द्वारा लगाए जाने वाला CGST, राज्यों द्वारा लागए जाने वाला SGST। दोनों GSTs की दरे क्या होंगी इसे निर्धारित किया जाएगा जो की इनकी आय और स्वीकार्यता को ध्यान में रख कर तय किया जायेगा। जीएसटी लागु होने से कई फायदे है जैसे टैक्स चोरी में कमी आएगी, कम विकसित राज्यों में अधिक आय प्राप्त होगी, आदि।

विशिष्ट शब्दः जी.एस.टी., मूल्य वर्धित कर, पंजीकरण, अर्थव्यवस्था, निर्यात, सकल घरेलू उत्पाद

कर की प्रकृति

जीएसटी एक मूल्य वर्धित कर है जो कि विनिर्माता से लेकर उपभोक्ता तक वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर एक एकल कर है। प्रत्येक चरण पर भुगतान किये गये इनपुट करों का लाभ मूल्य संवर्धन के बाद के चरण में उपलब्ध होगा जो प्रत्येक चरण में मूल्य संवर्धन पर जीएसटी को आवश्यक रूप से एक कर बना देता है। अंतिम उपभोक्ताओं को इस प्रकार आपूर्ति श्रृंखला में अंतिम डीलर द्वारा लगाया गया जीएसटी ही वहन करना होगा। इससे पिछले चरणों के सभी मुनाफे समाप्त हो जायेंगे। चुंगी, सेंट्रल सेल्स टैक्स (सीएसटी), राज्य स्तर के सेल्स टैक्स या वैट, एंट्री टैक्स, लॉटरी टैक्स, स्टैंप ड्यूटी, टेलिकॉम लाइसेंस फी, टर्नओवर टैक्स, बिजली के इस्तेमाल या बिक्री पर लगने वाले टैक्स, सामान के ट्रांसपोर्टेशन पर लगने वाले टैक्स इत्यादि अनेकों करों के स्थान पर अब यह एक ही कर लागू किया जा रहा है

जी.एस.टी. कैसे काम करेगी

ब जीएसटी लागू किया जाएगा, तो 3 तरह के कर होंगे :

सीजीएसटीः जहां केंद्र सरकार द्वारा राजस्व एकत्र किया जाएगा

एसजीएसटीः राज्य में बिक्री के लिए राज्य सरकारों द्वारा राजस्व एकत्र किया जाएगा

आईजीएसटीः जहां अंतरराज्यीय बिक्री के लिए केंद्र सरकार द्वारा राजस्व एकत्र किया जाएगा

ज्यादातर मामलों में, नए शासन के तहत कर संरचना निम्नानुसार होगीः

लेन-देन	नई प्रणाली	पुरानी व्यवस्था	व्याख्या
राज्य के भीतर बिक्री	सीजीएसटी + एसजीएसटी	वैट + केंद्रीय उत्पाद शुल्क / सेवा कर	राजस्व अब केंद्र और राज्य के बीच साझा किया जाएगा
दूसरे राज्य को बिक्री	आईजीएसटी	केंद्रीय बिक्री कर + उत्पाद शुल्क / सेवा कर	अंतरराज्यीय बिक्री के मामले में अब केवल एक प्रकार का कर (केंद्रीय) होगा।

लेन-देन नई प्रणाली पुरानी व्यवस्था व्याख्या

राज्य के भीतर बिक्री सीजीएसटी + एसजीएसटी वैट + केंद्रीय उत्पाद शुल्क / सेवा कर राजस्व अब केंद्र और राज्य के बीच साझा किया जाएगा

दूसरे राज्य को बिक्री आईजीएसटी केंद्रीय बिक्री कर + उत्पाद शुल्क / सेवा कर अंतरराज्यीय बिक्री के मामले में अब केवल एक प्रकार का कर (केंद्रीय) होगा।

उदाहरण: महाराष्ट्र में एक व्यापारी ने 10,000 रुपये में उस राज्य में उपभोक्ता को माल बेच दिया। जीएसटी की दर 18% है जिसमें सीजीएसटी 9% की दर और 9% एसजीएसटी दर शामिल है। ऐसे मामलों में डीलर 1800 रूपए जमा करता है और इस राशि में 900 रुपए केंद्र सरकार के पास जाएंगे और 900 रुपए महाराष्ट्र सरकार के पास जाएंगे। इसलिए अब डीलर को आईजीएसटी के रूप में 1800 रूपये चार्ज करना होगा। अब सीजीएसटी और एसजीएसटी को भुगतान करने की आवश्यकता नहीं होगी।

जीएसटी कैसे भारत और आम आदमी की मदद करेगी: इसे समझने के लिए, पहले समझ लें कि इनपुट टैक्स क्रेडिट क्या है।यह वह क्रेडिट है जो निर्माता को उत्पाद के निर्माण में इस्तेमाल किए गए इनपुट पर दिया गया कर के लिए प्राप्त होता है।इसके बाद शेष राशि सरकार को जमा करनी होगी।

हम इसे एक काल्पनिक संख्यात्मक उदाहरण के साथ समझते हैं।

एक शर्ट निर्माता कच्चे माल खरीदने के लिए 100 रुपये का भुगतान करता है। यदि करों की दर 10% पर निर्धारित है, और इसमें कोई लाभ या नुकसान नहीं है, तो उसे कर के रूप में 10 रूपये का भुगतान करना होगा। तो, शर्ट की अंतिम लागत अब (100 + 10 =) 100 रुपये हो जाती है।

अगले चरण में, थोक व्यापारी 110 रुपये में निर्माता से शर्ट खरीदता है, और उस पर लेबल जोड़ता है। जब वह लेबल जोड़ रहा है, वह मूल्य जोड़ रहा है। इसलिए, उसकी लागत 40 रुपए (अनुमानित) से बढ़ जाती है। इसके ऊपर, उसे 10% कर का भुगतान करना पड़ता है, और अंतिम लागत इसलिए हो जाती है (110 + 40 =) 150 + 10% कर = 165 रूपये।

अब, फुटकर विक्रेता या रिटेलर थोक व्यापारी से शर्ट खरीदने के लिए 165 रुपये का भुगतान करता है क्योंकि कर दायित्व उसके पास आया था। उसे शर्ट पैकेज करना पड़ता है, और जब वह ऐसा करता है, तो वह फिर से मूल्य जोड़ रहा है। इस बार, मान लें कि उनका मूल्य अतिरिक्त 30 रूपये है। अब जब वह शर्ट बेचता है, तो वह इस मूल्य को अंतिम लागत (और वैट जिसे वह सरकार को देना होगा) में जोड़ता है। इसके साथ ही उसे सरकार को देय वैट जोड़ना होगा। तो, शर्ट की लागत 214.5 रुपए हो जाती है। इस का एक ब्रेक अप देखते हैं:

लागत = रु 165 + मान जोड़ = रु 30 + 10% कर = रु 195 + 19.5 = 214.5 रुपये

इसलिए, ग्राहक एक शर्ट के लिए 214.5 रुपये का भुगतान करता है, जिसकी कीमत मूल रूप से केवल 170 रुपये (110 + 40 + 30 रुपये) थी। ऐसा होने के लिए, कर दायित्व हर बिक्री पर पारित किया गया था और अंतिम दायित्व ग्राहक के पास आ गया। इसे करों का व्यापक प्रभाव कहा जाता है जहां टैक्स के ऊपर टैक्स का भुगतान किया जाता है और आइटम का मूल्य हर बार बढ़ता रहता है।

कार्य	लागत	10% कर	कुल
कच्चे माल खरीदना @ 100	100	10	110
उत्पादन @ 40	150	15	165
मूल्य जोड़ें @ 30	195	19.5	214.5
कुल	170	44.5	214.5

जीएसटी में, इनपुट प्राप्त करने में भुगतान किए गए कर के लिए क्रेडिट का दावा करने का एक तरीका है।इस में वह व्यक्ति जिसने कर चुकाया है, वह अपने करों को जमा करते समय इस कर के लिए क्रेडिट का दावा कर सकता है।

हमारे उदाहरण में, जब थोक व्यापारी निर्माता से खरीदता है, तो वह अपनी लागत मूल्य पर 10% कर देता है क्योंकि उसके पास देयता दे दी गई है। फिर वह 100 रुपयों की लागत कीमत पर 40 रुपए का मूल्य जोड़ा और इससे उसकी लागत 140 रुपए हो गई। अब उसे इस कीमत का 10% सरकार को कर के रूप में देना होगा। लेकिन उन्होंने पहले ही निर्माता को एक कर का भुगतान किया है।लेकिन उसने पहले ही निर्माता को एक कर का भुगतान किया है। इसलिए, इस बार वह क्या करता है, सरकार को टैक्स के रूप में (140% के 10% = 14) का भुगतान करने की बजाय वह पहले से भुगतान की गई राशि को घटा देता है। इसलिए उसकी 14 रुपए की नई देनदारी से वह 10 रुपए कटौती करता है और सरकार को केवल 4 रुपए का भुगतान करता है। तो 10 रुपए उसका इनपुट क्रेडिट हो जाता है।

जब वह सरकार को 4 रुपये का भुगतान करता है, तो वह रिटेलर को अपनी देयता दे सकता है। इसके बाद, फुटकर विक्रेता उसे शर्ट खरीदने के लिए (140 + 14 =) 154 रुपये का भुगतान करेगा।अगले चरण में, रिटेलर ने 30 रुपये का मूल्य उसकी लागत कीमत में जोड़दिया और सरकार को उस पर 10% कर का भुगतान किया। जब वह मूल्य जोड़ता है, तो उसकी कीमत 170 रुपये हो जाती है। अब, अगर उसे उस पर 10% कर देना पड़ता है, तो वह ग्राहक के दायित्व को पारित कर देता। लेकिन उसके पास इनपुट क्रेडिट है क्योंकि उसने थोक व्यापारी को टैक्स के रूप में 14 रुपये में भुगतान किया है। इसलिए, अब वह अपनी कर दायित्व (170% = 170) = 17 रूपए से 14 रुपए कम कर देता है और उसे सरकार को केवल 3 रुपए का भुगतान करना पड़ता है। और इसलिए, वह अब ग्राहक को यह शर्ट (140 + 30 + 17 =) 187 रुपये में बेच सकता है।

कार्य	लागत	10% कर	वास्तविक देयता	कुल
कच्चे माल खरीदना @ 100	100	10	10	110
उत्पादन @ 40	140	14	4	154
मूल्य जोड़ें @ 30	170	7	3	187
कुल	170		17	187

अंत में, हर बार जब कोई व्यक्ति इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करने में सक्षम होता है, तो उसके लिए बिक्री मूल्य कम हो जाता है। और उसके उत्पाद पर कम कर दायित्व के कारण लागत मूल्य भी कम हो जाता है। शर्ट का अंतिम मूल्य भी 214.5 रुपये से 187 रुपये कम हो गया, इस प्रकार अंतिम ग्राहक पर कर का बोझ कम हो गया।

इसलिए अनिवार्य रूप से, माल और सेवा कर में दो-तरफा लाभ होने वाला है। पहला, यह करों के व्यापक प्रभाव को कम करेगा और दूसरा, इनपुट कर क्रेडिट की अनुमति के द्वारा, यह कर के बोझ को कम करेगा और, उम्मीद है, कीमतें भी कम हो जाएंगी।

जीएसटी के लिए पंजीकरण कैसे करें

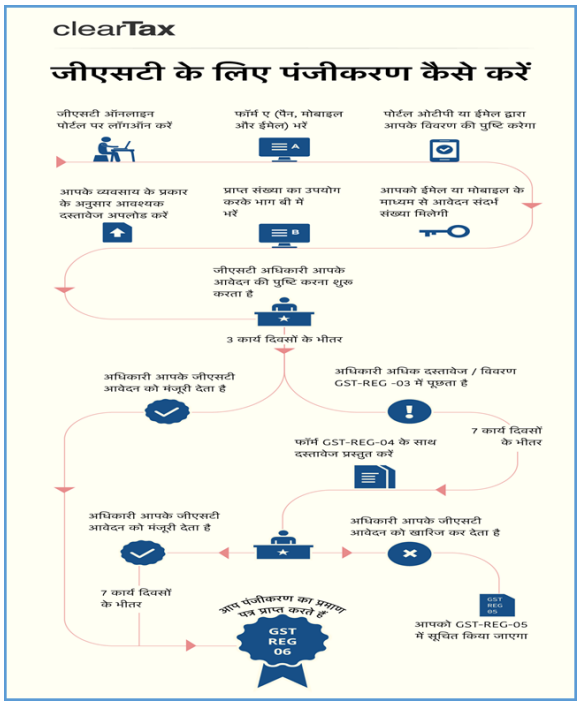

जीएसटी पंजीकरण करने के लिए आवश्यक दस्तावेज हैं:

- फोटो
- व्यापार स्थान के सबूत
- प्राधिकरण फार्म
- करदाता का संविधान
- बैंक खाता विवरण

जीएसटी के तहत पंजीकृत नहीं होने के लिए दंड

कोई भी अपराधी जो टैक्स का भुगतान नहीं कर रहा है या कम भुगतान करता है, उसे देय कर राशि का 10% (जिसमें से 10000 न्यूनतम राशि है) जुर्माना देना होगा। जहां एक संकल्पित करवंचन देखा गया वहां अपराधी को देय कर राशि का 100% जुर्माना देना होगा। हालांकि, अन्य वास्तविक त्रुटियों के लिए, जुर्माना कर का 10% है।

अर्थव्यवस्था पर जीएसटी का क्या असर पड़ेगा

- उत्पादकों पर कर का बोझ कम करता है और अधिक उत्पादन के माध्यम से विकास को बढ़ावा देता है। वैट कर संरचना, असंख्य कर खंडों के साथ पंप, निर्माताओं को उनकी इष्टतम क्षमता और उत्पादन बढ़ाने से रोकता था। पर जीएसटी निर्माताओं को कर इनपुट क्रेडिट प्रदान करके इस समस्या का ध्यान रखता है।
- अलग-अलग कर बाधाएं, जैसे कि चेक पोस्ट और टोल प्लाजा, अयोग्य माल की ढुलाई के लिए ले जाते थे। यह जुर्माना बफर स्टॉक और वेयरहाउसिंग लागत की उच्च आवश्यकताओं के कारण प्रमुख लागतों में बदल जाता था। लेकिन एक एकल कराधान प्रणाली ने इस सड़क को खत्म कर कर दिया है।
- सिस्टम में अधिक पारदर्शिता होगी क्योंकि ग्राहकों को पता चलेगा कि किस आधार पर कितना टैक्स वसूला जा रहा है।
- जीएसटी टैक्स बेस बढ़ाकर सरकार के राजस्व को बढ़ाएगा।
- जीएसटी उत्पादकों द्वारा माल या सेवा श्रृंखला में भुगतान किए गए करों के लिए क्रेडिट प्रदान करेगा। इससे उत्पादकों को विभिन्न पंजीकृत डीलरों से कच्चे माल की खरीद और कराधान के दायरे में अधिक विक्रेताओं और आपूर्तिकर्ताओं में लाने के लिए प्रोत्साहित करने की उम्मीद है।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर जीएसटी के निम्न तथ्य

भारतीय अर्थव्यवस्था पर वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली के तहत निम्न प्रकार के छेत्रों में प्रभाव देखने को मिला है। ऐसे ही कुछ निम्न तथ्यों को हमने एक-एक करके नीचे विस्तार से जानने की कोशिश की है। आप भी इन तथ्यों के बारे में जानकारी ले सकते है।

1. अप्रत्यक्ष कर संरचनाएं: जीएसटी अप्रत्यक्ष करों जैसे कि उत्पाद शुल्क, सेवाओं और बिक्री कर्तव्यों पर अप्रत्यक्ष कर संरचना को फिर से खोल देगा। इससे देश के अप्रत्यक्ष कराधान की जटिल संरचना को हटा दिया जाएगा, जिससे देश में व्यापार करने में आसानी होगी। अथवा इससे भारत की अर्थव्यवस्था पर काफी असर पड़ेगा।

2. निर्यात: निर्यात प्रतिस्पर्धी हो जाएगा क्योंकि जीएसटी शासन करों के कैस्केडिंग प्रभाव को समाप्त कर देगा। नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च स्टडी ने सुझाव दिया कि जीएसटी भारत की जीडीपी वृद्धि को 0.9-1.7 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। चुनौतीपूर्ण वैश्विक परिवेश के समय में भारत की जीडीपी के लिए जीएसटी एक महत्वपूर्ण 'ब्रह्मास्त्र' है।

3. सकल घरेलू उत्पाद: जीएसटी कार्यान्वयन के विकास प्रभाव के संदर्भ में, निकट-अवधि में गड़बड़ी हो सकती है, अंतर-सेक्टर के निहितार्थों के साथ निजी क्षेत्र के समायोजन की लागत और केंद्र सरकार (ब्ळ) राजस्व हानि के लिए राज्यों को क्षतिपूर्ति करने की कोशिश कर रही है। यदि जीएसटी दर 17-18% के आस पास निर्धारित की जाती है, तो सेवा उत्पादकों को कर के बोझ का सामना करना पड़ेगा जबकि निर्माताओं में गिरावट होगी।इससे निर्माताओं को लाभ और सेवा प्रदाताओं के माध्यम से लागतों पर गुजरने का मौका नहीं मिल सकता है, इससे खपत और समग्र विकास कम होगा। वर्तमान में, सेवाओं और वस्तुओं पर प्रभावी अप्रत्यक्ष कर की दर क्रमश: 15 प्रतिशत और 22.5 प्रतिशत है।

4. मेक इन इंडिया पर जीएसटी का प्रभाव: 'मेक इन इंडिया' अभियान भारत को विश्व स्तरीय विनिर्माण केंद्र बनाने का प्रस्ताव दे रहा है। जीएसटी के माध्यम से कर सुधार बड़े पैमाने पर निवेश को आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स एक प्रगतिशील कर प्रणाली का वादा करता है जो टैक्स कैस्केड से बचा जाता है और भारत को एक सच्चे आम बाजार के रूप में स्थापित करने में मदद करता है। जीएसटी उत्पादन की लागत को कम करता है और वस्तुओं की परेशानी मुक्त आपूर्ति की अनुमति भी प्रदान करता है। इससे भारत में व्यापार करने में आसानी बढ़ सकती है। अथवा इससे अर्थव्यवस्था पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

निष्कर्ष

गुड्स एंड सर्विस टैक्स की शुरुआत भारत में अप्रत्यक्ष कर सुधारों के क्षेत्र में एक बहुत ही उल्लेखनीय कदम माना जाता है। बड़ी संख्या में केंद्रीय और राज्य करों को एक कर में मिलाकर, जीएसटी से दोहरे कराधान में काफी आसानी और उद्योगों के लिए कराधान को आसान बनाने की उम्मीद है। अंतिम ग्राहक के लिए, सबसे अधिक लाभकारी वस्तुओं और सेवाओं पर समग्र कर बोझ में कमी के संदर्भ में होगा।जीएसटी की शुरुआत के साथ, भारतीय उत्पादों को घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भी प्रतिस्पर्धी बनाया गया है। अंतिम लेकिन कम से कम, जीएसटी, अपने पारदर्शी चरित्र के कारण, प्रशासन करना आसान होगा। जीएसटी ने लागू होने के समय, प्रस्तावित कराधान प्रणाली भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि को बनाए रखने के मामले में बहुत बड़ा वादा करती है।जीएसटी कार्यान्वयन के विकास प्रभाव के संदर्भ में, निकट-अवधि में गड़बड़ी हो सकती है, अंतर-सेक्टर के निहितार्थों के साथ निजी क्षेत्र के समायोजन की लागत और केंद्र सरकार (ब्ळ) राजस्व हानि के लिए राज्यों को क्षतिपूर्ति करने की कोशिश कर रही है। यदि

जीएसटी दर 17-18% के आस पास निर्धारित की जाती है, तो सेवा उत्पादकों को कर के बोझ का सामना करना पड़ेगा जबकि निर्माताओं में गिरावट होगी।इससे निर्माताओं को लाभ और सेवा प्रदाताओं के माध्यम से लागतों पर गुजरने का मौका नहीं मिल सकता है, इससे खपत और समग्र विकास कम होगा। वर्तमान में, सेवाओं और वस्तुओं पर प्रभावी अप्रत्यक्ष कर की दर क्रमशः 15 प्रतिशत और 22.5 प्रतिशत है।मेक इन इंडिया' अभियान भारत को विश्व स्तरीय विनिर्माण केंद्र बनाने का प्रस्ताव दे रहा है। जीएसटी के माध्यम से कर सुधार बड़े पैमाने पर निवेश को आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स एक प्रगतिशील कर प्रणाली का वादा करता है जो टैक्स कैस्केड से बचा जाता है और भारत को एक सच्चे आम बाजार के रूप में स्थापित करने में मदद करता है। जीएसटी उत्पादन की लागत को कम करता है और वस्तुओं की परेशानी मुक्त आपूर्ति की अनुमति भी प्रदान करता है। इससे भारत में व्यापार करने में आसानी बढ़ सकती है। अथवा इससे अर्थव्यवस्था पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. "संग्रहीत प्रति". मूल से 30 जुलाई 2017 को पुरालेखित.
2. http://hindi.moneycontrol.com/news/market-news/gst-beginning-of-new-tax-regime_162197.htmस
3. "GST से क्या होगा सस्ता और क्या महंगा". मूल से 27 अक्तूबर 2017 को पुरालेखित.
4. "जीएसटी बिल की 7 अहम बातें". मूल से 9 नवंबर 2017 को पुरालेखित.
5. "GST(Goods & Service Tañ in India)"- मूल से 25 जुलाई 2019 को पुरालेखित.
6. ष्संग्रहीत प्रतिष् मूल से 31 जुलाई 2017 को पुरालेखित..
7. ष्संग्रहीत प्रतिष् मूल से 18 जून 2017 को पुरालेखित.
8. नवभारत टाइम्स. ष्जीएसटी लागू होने के बाद भी ई-कॉमर्स साइट्स पर मिल रहा 80% तक डिस्काउंटष् मूल से 10 जुलाई 2017 को पुरालेखित.
9. एनडीटीवी. ष्जीएसटी लागू : बचे माल पर नई कीमत नहीं छापी तो जेल की हवा खानी पड़ सकती है : रिपोर्टष् मूल से 7 जुलाई 2017 को पुरालेखित
10. ष्जीएसटी : टाटा मोटर्स ने 2,17,000 रुपये तक घटाए वाहनों के दामष् मूल से 6 जुलाई 2017 को पुरालेखित.
11. "Online GST Registration process"- etañadvisor-com- मूल से 17 जून 2020 को पुरालेखित.
12. "How to Register for GST Online"- bajajfinserv- पद. मूल से 25 जुलाई 2019 को पुरालेखित.
13. ष्संग्रहीत प्रति* (PDF)- मूल (PDF) से 22 जून 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 30 जून 2017.
14. ष्संग्रहीत प्रतिष् मूल से 6 जनवरी 2019 को पुरालेखित.
15. ष्संग्रहीत प्रतिष् मूल से 30 जून 2017 को पुरालेखित.
16. "In a first] GST collection for April tops Rs 1 lakh crore", Financial Express, 1 May 2018, मूल से 26 जून 2018 को पुरालेखित.
17. "Upswing in GST revenue trends: Rs 892-64 bn collected in March] says Adhia", Business Standard, 2 April 2018
18. "GST collection falls to Rs 85, 174 crore in February_ only 69 file returns", The Times of India, 27 March 2018.
19. "GST collection for January comes in at Rs 86, 318 crore", The Economic Times, 27 February 2018, मूल से 17 जून 2018 को पुरालेखित,
20. "GST revenue for December rises to Rs 86, 703 crore_ halts 2-month reverse trend", Business Today, 11 February 2018, मूल से 17 जून 2018 को पुरालेखित,
21. "GST collections dip for second month in Nov to Rs 80, 808 crore", The Economic Times, 27 December 2017, मूल से 17 जून 2018 को पुरालेखित,
22. "Why many registered taxpayers are not filing GST returns", Business Today, 27 February 2018, मूल से 1 जुलाई 2018 को पुरालेखित

परंपरागत भारतीय बैंकिंग व्यवस्था

डॉ० कुमार सुधांशु

अतिथि शिक्षक, बी.बी.ए., राजेन्द्र कॉलेज, छपरा, जय प्रकश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

पहली शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक विश्व व्यापार में भारत की सहभागिता कभी भी 25 प्रतिशत से कम नहीं रही। प्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्री अंगस मेडिसिन ने अपनी पुस्तक में विभिन्न शताब्दियों के विश्व व्यापार में भारत तथा अन्य देशों की सहभागिता के आंकड़ें दिये हैं। इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक उत्पादन में पिछले दो हजार वर्षों तक भारत पूरी दुनिया में सर्वोच्च स्थान पर था। उत्पादित वस्तुओं का व्यापार होना तो स्वाभाविक ही है और उत्पादन और व्यापार में धन की आपूर्ति के लिए बैंकिग या महाजनी या साहूकारी की व्यवस्था होना भी उतना ही स्वाभाविक है।

परिचय

आम तौर पर बैंकिंग भारत को अंग्रेजों की दी गयी व्यवस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। समझा और कहा जाता है कि आधुनिक बैंकिंग प्रणाली की शुरुआत करके अंग्रेजों ने भारत की अर्थव्यवस्था में क्रांति कर दी। बैंकिंग के इतिहासकार 18वीं शताब्दी से ही बैंकिंग का प्रारंभ मानते हैं। हालांकि माना जाता है कि पहला बैंक वर्ष 1740 या उसके बाद ही स्थापित हो गया था, परंतु इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी में तीन बैंकों की स्थापना आधुनिक बैंकिंग प्रणाली की सही शुरुआत है। क्या इससे पहले भारत में बैंकिंग की कोई प्रणाली थी या नहीं? यदि थी तो कैसी थी?

नगद लेन-देन की पृष्ठभूमि

बैंकिंग का मुख्य काम धन का लेन-देन है। धन का लेन-देन यानि ऋण लेना और ऋण देना। ऋण की बात करें तो हमें तुरंत सूदखोर कहे जाने वाले साहूकारों और महाजनों की याद आती है। साहूकार और महाजन यानि आधुनिक बैंकिंग से परे धन के लेन-देन की एक व्यवस्था। यदि हम इसमें से शोषण के मामले को हटाकर और केवल इसे एक व्यवस्था के तौर पर देखें तो हम पाएंगे कि पूरे भारतवर्ष में बैंकिंग की यह एक शानदार व्यवस्था रही है। इस व्यवस्था के मूल सिद्धांतों का प्रारंभ वेदों से ही हो जाता है। वेदों में ब्याज पर ऋण देने-लेने की व्यवस्था को कुसीद कहा है। यही शब्दावली बाद के वैदिक वांग्मय में भी प्रयोग की गयी है।

वैदिक प्रेरणा तो हमें कर्ज मुक्त रहने के लिए कहती है। गृह्यसूत्रों में कहा है- अनृणास्याम यानि हम कर्जमुक्त रहें। परंतु फिर भी वेदों ने कुसीद को एक व्यवसाय माना है। वेदों के आधार पर ही विधान देने वाली मनुस्मृति में कहा है- *पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।* अर्थात् (गौ आदि पालतू) पशुओं की रक्षा, विद्या-धर्म आदि की वृद्धि के लिए दान देना, नित्य अग्निहोत्र करना, वेदादि शाश्त्रों का अध्ययन करना और ब्याज पर धन लेना-देना और कृषि करना वैश्यों के कर्तव्य हैं। यहां कुसीद की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानंद सरस्वती लिखते हैं- सवा रुपये सैंकड़े से अधिक और चार आने से न्यून ब्याज न लेवें न देवें। जब दूना धन आ जाए तो उसके आगे कौड़ी न लेवें, न देवें। जितना न्यून ब्याज लेवेगा, उतना ही उसका धन बढ़ेगा। कभी धन का नाश नहीं होगा और कुसंतान उसके कुल में न होंगे। हालांकि दयानंद सरस्वती ने इस कथन के प्रमाण में किसी ग्रंथ को उद्धृत नहीं किया है, परंतु इससे यह समझा जा सकता है कि कम से कम उस समय आदर्श व्यवस्था यही मानी जाती रही होगी।

कुसीद की प्राचीन व्यवस्था का ही आगे चलकर महाजनी या फिर साहूकारी व्यवस्था में रूपांतरण हुआ। लेकिन आज की भांति इसमें किसी का भी एकाधिकार नहीं माना गया। घरेलू औरतें भी सामान गिरवी रखकर ब्याज पर धन देती थीं। इस प्रकार यह व्यवस्था पूरी तरह विकेंद्रित व्यवस्था थी। भले ही इस व्यवस्था में ब्याज वे निर्धारण पर आज की भांति किसी आरबीआई का नियंत्रण नहीं था परंतु इस पर राज्य का नियंत्रण निश्चित रूप से था। जब भी न्यायकारी शासन व्यवस्था रही, तब हमेशा ही महाजनी या साहूकारी समाजहित में ही रही। केवल अराजक स्थितियों में ही यह व्यवस्था शोषणकारी बनी।

इस प्रकार प्राचीन काल में बैंकिंग का जो स्वरूप विकसित हुआ उसकी दो प्रमुख विशेषताएं थीं। पहली यह कि वह पूरी तरह विकेंद्रित व्यवस्था थी और दूसरी यह कि इस व्यवस्था में राज्य की भूमिका केवल नियामक भर की ही थी, आज की भांति संचालक और नियंत्रक की नहीं। इस व्यवस्था में भी कई स्तर विकसित हुए थे।

1. सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण साहूकार या महाजन थे।
2. उससे ऊपर बड़े सेठ तथा नगर सेठ हुआ करते थे। कुछेक स्थानों पर ये सेठ जमींदार भी बन गए थे।
3. सबसे ऊपर जगत सेठ बने। हालांकि यह शब्दावली मुगल काल में विकसित हुई परंतु यदि हम शब्द को छोड़कर भाव पर ध्यान दें तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापारियों को धन देने वाले सेठ भी पूरे देश में पाये जाते थे।

जगत सेठः साख संस्था

इस प्रकार हम पाते हैं कि ब्याज पर धन देने वाली घरेलू औरतों, छोटे-छोटे महाजनों और साहूकारों से यह व्यवस्था विकसित होती गयी और इसका स्वरूप अंतरराष्ट्रीय हो गया। 18वीं शताब्दी यानि आर्थिक व्यवहारों पर ईस्ट इंडिया कंपनी के निर्णायक स्थिति में आने तक डेरा में जगत सेठों की चलती थी। बंगाल, गुजरात आदि प्रदेशों जहां व्यापार की विपुल संभावनाएं हुआ करती थीं, जगत सेठ हुआ करते थे।

थॉमस ए टिम्बरबर्ग लिखते हैं, "प्राचीन और मध्यकालीन भारत के इतिहासकारों ने व्यापारियों द्वारा बड़े पैमाने पर सामानों के लंबी दूरी तक परिवहन करने का इतिहास दर्ज किया है। ये व्यापारी न केवल व्यापार की धनापूर्ति करते थे, बल्कि राज्यों तथा राजाओं को भी धन दिया करते थे और इस प्रकार एक बड़े भूभाग में एक विशाल बाजार आधारित अर्थव्यवस्था का संचालन किया करते थे।" वास्तव में व्यापार में धन की आवश्यकता पड़ती ही है और धन की आपूर्ति करने का काम ही बैंकिंग कहलाता है।

पहली शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक विश्व व्यापार में भारत की सहभागिता कभी भी 25 प्रतिशत से कम नहीं रही। प्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्री अंगस मेडिसिन ने अपनी पुस्तक में विभिन्न शताब्दियों के विश्व व्यापार में भारत तथा अन्य देशों की सहभागिता के आंकड़े दिये हैं। इन आंकड़ों से स्पृ हो जाता है कि औद्योगिक उत्पादन में पिछले दो हजार वर्षों तक भारत पूरी दुनिया में सर्वोच्च स्थान पर था। उत्पादित वस्तुओं का व्यापार होना तो स्वाभाविक ही है और उत्पादन और व्यापार में धन की आपूर्ति के लिए बैंकिंग या महाजनी या साहूकारी की व्यवस्था होना भी उतना ही स्वाभाविक है। यहां हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि 18वीं शताब्दी तक भारत की सीमाएं पश्चिमोत्तर में काबुल तक थीं, उस समय तक अफगानिस्तान या पाकिस्तान का कोई अस्तित्व नहीं था।

सोलहवीं शताब्दी के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में यूरोपीय व्यापारियों का प्रवेश बढ़ गया था। उन्होंने यहां कई सहयोगी पाये जिनमें कुछ मारवाड़ी भी थे। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के निर्माण में मारवाड़ी जगत सेठों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। टिम्बरबर्ग ने अपनी पुस्तक में इन मारवाड़ी जगत सेठों का अच्छा वर्णन किया है। वे लिखते हैं, "एक शुष्क गृह प्रदेश और पारंपरिक जमीनी व्यापारिक मार्ग का महत्वपूर्ण अंग होने के कारण मारवाड़ी पूरे देश में फैल गये, विशेषकर उन इलाकों में जहां व्यावसायिक गतिविधियां अभी काफी उभार पर थीं।" टिम्बरबर्ग विस्तार से बताते हैं कि किस प्रकार ये मारवाड़ी व्यापारी राजस्थान के विभिन्न राजघरानों को धन प्रदान किया करते थे। शेखावटी के एक ठाकुर ने लिखा है कि उसके पिता मुम्बई और कोलकाता की यात्राओं में उनके इलाकों से आये मारवाड़ियों से धन प्राप्त किया करते थे। कुछ मारवाड़ी घराने स्थानीय विद्रोहियों को भी धन दिया करते थे।

एक अन्य उल्लेख बताता है कि ओसवाल घराना बैंकर और फाइनेंसर के रूप में काफी प्रसिद्ध हुआ था और वह मुगलों को वित्तीय साधन उपलब्ध कराता था। बात केवल मुगल शासकों तक ही सीमित नहीं थी। ये मारवाड़ी घराने लगभग सभी शासकों चाहे वे हिंदू हों या मुस्लिम, को कर्ज दिया करते थे। बंगाल के जगतसेठ स्थानीय शासकों के अलावा देशी-विदेशी व्यापारिक प्रतिशनों को भी कर्ज दिया करते थे। टिम्बरबर्ग लिखते हैं, "वह (जगतसेठ फतेहचंद) स्थानीय शासकों और प्रमुख विदेशी व्यापारिक प्रतिशनों को वित्तीय सहायता दिया करता था। वर्ष 1718 से 1730 के बीच ईस्ट इंडिया कंपनी ने उससे प्रतिवर्ष औसतन चार लाख रुपये उधार लिए। वर्ष 1757 तक जगतसेठ से ईस्ट इंडिया कंपनी प्रतिवर्ष चार लाख रुपये और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी 15 लाख रुपये कर्ज लिया करती थी।"

प्लासी का प्रसिद्ध युद्ध भी मूलत: बंगाल के जगत सेठ के कारण हुआ। जगत सेठ से बंगाल के नवाब ने काफी सारा धन उधार लिया हुआ था। सिराजुद्दौला ने जब बंगाल पर कब्जा किया तो जगत सेठ ने उससे अपना धन मांगा। सिराजुद्दौला का कहना था कि कर्ज उसके पहले वाले नवाब ने लिया था, वह नहीं चुकाएगा। जगत सेठ का कहना था कि नवाब कोई भी रहे, कर्ज तो राज्य ने लिया था, उसे चुकता करना ही चाहिए। इससे पहले के सभी राजा इस परिपाटी का पालन करते थे। परंतु सिराजुद्दौला ने इस परंपरा का पालन करने से इनकार कर दिया। इस पर जगत सेठ ने उसे अपदस्थ करने में अंग्रेजी सेना की सहायता ली। वह मीरजाफर को नवाब बनाना चाहते थे, जो परंपरा का पालन करते हुए उनका धन वापस करने के लिए तैयार था। मीरजाफर के नेतृत्व में सिराजुद्दौला की सेना अंग्रेजों से जा मिली और इस प्रकार बिना युद्ध हुए सिराजुद्दौला पराजित हो गया। परंतु अंग्रेजों ने मीरजाफर को नवाब निर्धारण पर आज की भांति किसी आरबीआई नहीं बनने दिया। वे स्वयं ही शासक बन बैठे और उन्होंने कालांतर में जगत सेठ को पेंशनयाफ्ता बना दिया।

व्यवसाय के समानांतर ऋण बाजार

मारवाड़ियों के अलावा पंजाब, सिंध और मुल्तान के व्यापारी भी बैंकिंग का काम किया करते थे। ये भारतीय व्यापारी भारत के अंदर ही नहीं विदेशों में भी बैंकिंग किया करते थे। आज की भाषा में कहें तो वे एक प्रकार से मल्टीनेशनल बैंक थे। स्कॉट सीलेवी की पुस्तक कारवां, पंजाबी खत्री *मर्चेंट्स* ऑन द सिल्क रोड, की भूमिका में गुरुचरण दास लिखते हैं, "हिंदू व्यापारी मध्य एशियायी अर्थव्यवस्था के केंद्र बिंदू थे। वे रोपाई के लिए किसानों को ऋण दिया करते थे, कटाई के मौसम में उनकी फसलों की खरीद करते थे और उनके परिवहन की भी व्यवस्था करते थे। स्थानीय शासक उनकी इन सेवाओं का काफी सम्मान करते थे, जिनके कारण उनकी अर्थव्यवस्था सुदृढ़ रहती थी और करों का संग्रह बढ़ता था।"

ईसा पूर्व काल में अंतरराष्ट्रीय लेन-देन

दक्षिण भारत भी इनसे अलग नहीं था। मलाबार के तटों से लेकर तत्कालीन मद्रास तक अंग्रेजी राज आने तक भारतीय बैंकरों की एक समृद्ध परंपरा थी। विएना के संग्रहालय में हाल ही में ढूंढा गया एक प्राचीन भोजपत्र रखा है, जिसकी कालावधि ईसा की दूसरी शताब्दी है। इस पत्र में मुसीरी, तमिलनाडु के भारतीय व्यापारी और अलेक्जेंड्रिया के रोमन व्यापारी के बीच हुए एक समझौते का उल्लेख है। इस पत्र की दूसरी ओर रोमन व्यापारी द्वारा मुसीरी में व्यावसायिक कर्ज लिया जाना लिखा है। व्यावसायिक कर्ज का उल्लेख यह साबित करता है कि लेन-देन प्राचीन काल में भी लंबी समयावधि के लिए कर्ज की व्यवस्था विद्यमान थी।

विचलन

उपरोक्त परंपरा अंग्रेजों ने नष्ट की। भारतीय व्यापारियों के वर्चस्व के कारण उनका शासन खतरे में रहता था क्योंकि ये व्यापारिक घराने शासन तक को धन दिया करते थे और उनके मनोनुकूल न होने पर विद्रोहियों द्वारा शासन पलटवाया भी करते थे। बड़े बैंकरों की इस व्यवस्था के अतिरिक्त पूरे देश में छोटे साहूकारों तथा महाजनों की भी बड़ी श्रृंखला विद्यमान थी। कालांतर में विशेषकर सत्रहवीं और 18वीं शताब्दी में जब शासन व्यवस्थाएं कमजोर होने लगीं तो इनके द्वारा शोषण भी शुरू हो गया। अंग्रेजों द्वारा जब पूरे भारत का आर्थिक शोषण किया जा रहा था, उस काल में देश में अधिकतम अकाल पड़े और अभाव के उस काल में ये व्यवस्थाएं चरमरा गयी। अंग्रेजों के काल में इन पर नियंत्रण करने के लिए कई कानून बनाए गये।

भारतीय साख बाजार: विकेंद्रीकरण का उदाहरण

ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि आज स्थानीय साहूकारों या महाजनों की वह परंपरा समाप्त हो गयी है। देखा जाए तो यूरोप में विकसित आधुनिक बैंकिंग के पहले भारतीय बैंकिंग प्रणाली में कभी भी कोई केंद्रीय व्यवस्था नहीं रही है। वह एक विकेंद्रित व्यवस्था रही है। हालांकि आज इसे एक अवगुण के रूप में देखा जाता है परंतु भारतीय अर्थव्यवस्था में आज भी इस विकेंद्रित बैंकिंग प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान है। इसका एक उदाहरण है लगभग पूरे भारत में लघु बैंकिंग प्रणाली के तर्ज पर खेली जाने वाली कमिटी। उत्तर भारत में लगभग सर्वत्र इसे कमिटी कहा जाता है और देश के लगभग सभी व्यावसायिक लोग इसे खोलते ही हैं। कमिटी 12 से लेकर 20 महीने की छोटी अवधि के लिए होती है और इसमें निश्चित संख्या में सदस्य होते हैं। वे एक निश्चित राशि प्रतिमाह एकत्र करते हैं जिसे जरूरतमंद सदस्य बोली लगाकर प्राप्त करता है। उस सदस्य से हुई आय को प्रत्येक सदस्य में बराबर मात्रा में बांट दिया जाता है। इस प्रकार यह छोटे स्तर पर लघु और मध्यम व्यापारियों को सरलता से पूंजी उपलब्ध करवाता है। हालांकि कमिटी की यह व्यवस्था सरकारी तंत्र के अनुसार गैरकानूनी ही मानी जाती है और इसलिए इसमें किसी प्रकार की धोखाधड़ी होने पर उसे सरकार से न्याय नहीं मिल सकता, परंतु फिर भी यह लघु बैंकिंग प्रणाली आज भी आधुनिक बैंकों से कहीं अधिक व्यापक है।

उपसंहार

निष्कर्ष यह है कि परंपरागत भारतीय बैंकिंग प्रणाली हमेशा से विकेंद्रित और राज्यनिरपेक्ष रही है। यही व्यवसाय के हित में भी है। व्यवसाय का राज्याश्रित होने से केवल नुकसान ही हैं और वह देश कभी विकास नहीं कर सकता। इसलिए परंपरागत भारतीय बैंकिंग प्रणाली की ही देन थी कि जिस कालखंड को भारत की राजनीतिक गुलामी का दौर कहा जाता है, उस दौर में भी भारत दुनिया में सबसे बड़ी आर्थिक महाशक्ति था। आज भी यदि हम ठीक से ध्यान दें और सरकारी आंकड़ों को छोड़ कर सामाजिक आंकलन करें तो समाज में धन के वितरण में परंपरागत भारतीय बैंकिंग का योगदान आधुनिक केंद्रीकृत और राज्याश्रित बैंकिंग प्रणाली से कहीं अधिक है। परंपरागत भारतीय बैंकिंग प्रणाली में एकमात्र आवश्यकता है न्याय की उपलब्धता की। अंग्रेजों से पहले राज्य इसे उपलब्ध करवाया करते थे और इसलिए अंग्रेजों से पहले विशेषकर हिंदू शासकों के शासन में कभी भी आम जनता पीड़ित नहीं रही। अंग्रेजों के काल में कागजों का महत्व बढ़ने पर परंपरागत भारतीय बैंकिंग प्रणाली को न्याय व्यवस्था से बाहर कर दिया गया। अच्छा तो यह होगा कि बैंक सुधारों के आधुनिक युग में हम फिर से परंपरागत भारतीय बैंकिंग प्रणाली में भी पीड़ित को न्याय दिलाने की व्यवस्था करें। कागजों के बिना मौखिक आर्थिक व्यवहारों में होने वाली गड़बड़ियों को पकड़ने में राज्य को अपना सामर्थ्य बढ़ाना चाहिए, तभी यह संभव है।

संदर्भ

1. बोधायन गृह्यसूत्र 4/4/9
2. मनु 1/90
3. संस्कारविधि पृ. 176
4. द मारवाड़िज, फ्राम जगत सेठ टू द बिड़लाज, पृ. 18
5. वही, पृ. 19-20
6. वही, पृ. 10-11
7. http://www.gutenberg&e.org/haa01/print/ haa01.pdf
8. कैरावांस, इंडियन मर्चेंट्स ऑन द सिल्क रोड, पृ. XIII
9. द वर्ल्ड ऑफ द तमिल मर्चेंट्स, पृ. 25-26

समकालीन भारत में सेकुलर/लोकतांत्रिक और बहुलतावादी राष्ट्रवाद : बदलता विमर्श

अमृता कुमारी

शोध-छात्र, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

राष्ट्र-निर्माण की लंबी प्रक्रिया में से भारतीय सेकुलरवाद की तीन परिणतियाँ उभरती हैं : पहली, भारतीय राज्य की बुनियाद सेकुलरवाद के आधार पर रखने की राजनीतिक सहमति बनी। दूसरी, सेकुलरवाद की भारतीय अवधारणा की रचना हुई जिसके आधार में बहुलतावाद था और जो धर्म विरोधी नहीं था। गाँधी और नेहरू में जो भी मतभेद रहे हों, इस मसले पर दोनों के बीच चालीस के दशक में सहमति बन चुकी थी, इसलिए सेकुलरवाद के इस भारतीय रूप को गाँधी-नेहरू की संयुक्त रचना कहा जा सकता है। तीसरी, इसके हाशिये पर आधुनिकतावादी और पश्चिमीकृत सेकुलरवाद था जो खुद को धर्म का विलोम समझता था। साथ ही हाशिये पर हिंदुत्ववादी विचार भी था जो राष्ट्रवाद के मर्म से सेकुलरवाद को हटा कर बहुसंख्यकवाद को बैठाना चाहता था।

गौरतलब है कि नव-स्थापित भारतीय राज्य द्वारा जातीय विविधाता के मुद्दे का नागरिकता के संस्थागत चौखटे के साथ संवैधानिक मेल बैठाया गया। यह व्यवस्था अल्पसंख्यकों के सामूहिक सांस्कृतिक अधिकारों को भी मान्यता देती थी, और साथ-साथ आधुनिकता के तहत वैयक्तियन का प्रक्रिया भी चलाती थी। अब भारतीय अभिजन राज्य को माध्यम बना कर आर्थिक विकास, सामाजिक रूपांतरण और सांस्कृतिक संघटन का सिलसिला चला सकते थे। लेकिन, विडंबना यह रही कि इस पहलकदमी के दौर में आधुनिकतावादी भारतीय नेतृत्व ने समाज के बहुजातीय चरित्र को एक जीवंत सिद्धांत के रूप में देखने से इंकार किया। उसने बहुजातीयता को एक सुषुप्त सांस्कृतिक 'संदर्भ' में ही देखा। उसे उम्मीद थी कि नागरिकता के अधिकार प्राप्त करके और लोकतांत्रिक राजनीति की खुली होड़ में भागीदारी करके सांस्कृतिक विविधाताएँ अपने भीतरर और भारतीय राज्य के साथ संबंधों के संदर्भ में नये नागरिकत्व आधारित राजनीतिक-सामाजिक समीकरणों को जन्म देंगी। वे अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचानों को भी कायम रखेंगी और उनके सदस्य नागरिक के रूप में अपने व्यक्तिगत अधिकारों का उपभोग भी करेंगे। उम्मीद यह थी कि इस तरह जातीयता की पहचान का धीरे-धीरे क्षय हो जायेगा और व्यक्ति आधारित पहचान उभरेगी यानी सेकुलर समाज बनेगा। उनके इस यकीन का आधार उद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की ताकत में उनकी आस्था पर टिका था। लेकिन, ऐसा नहीं हुआ। सेकुलरवाद का विचार अंततः राज्य के साथ जड़सूत्रीय रूप से जुड़ी हुई एक अभिजन विचार-श्रेणी की तरह रह गया। भारतीय सेकुलरवाद की अन्य धाराओं से उसका संपर्क टूट गया। ये धाराएँ बहुलतावाद की जीवंत परंपराओं पर आधारित थीं और मूलतः गाँधी-विचार की उपलब्धियाँ थीं। आजादी के पहले कांग्रेस आंदोलन द्वारा विकसित हुई सेकुलरवाद की साझी गाँधी-नेहरू विरासत इस मुकाम पर आकर दो हिस्सों में बँट गयी। एक हिस्सा अगर गाँधी के सभ्यतामूलक बहुलतावाद से प्रेरित था, तो दूसरा हिस्सा नेहरूवादी राज्याश्रित आधुनिकतावाद सेकुलर दृष्टि से संचालित था।[1]

हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं कि आजादी के पहले सेकुलर विचारधारा राष्ट्रवाद के संदर्भ और शब्दावली में व्यक्त होती थी। तब सेकुलरवाद कौमी एकता और धार्मिक सहिष्णुता का पर्याय था। उसके आधार में एक सांस्कृतिक अंतर्धारा बहती रहती थी। आजादी के बाद गाँधी और नेहरू के सेकुलरवाद संबंधी विचारों में जो फर्क दिखाया जाता है, वह व्यावहारिक रूप से आजादी से

पहले नहीं दिखता। दोनों ही नेता भारतीय सभ्यता की उन खूबियों पर जोर देते नजर आते हैं, जो सांस्कृतिक और राजनीति समावेशन की तरफ ले जाती हैं। उनका मानना था कि हमारे यही सभ्यतामूलक पहलू हिन्दुओं और मुसलमानों को भारतीयता के व्यापक छाते के नीचे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में रहने की गुंजाइश प्रदान करते रहेंगे। इस विचार के मुताबिक भारतीय होने या खुद को भारतीय कहने से किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक अस्मिता का क्षय नहीं होगा। गाँधी और नेहरू का यह स्वातंत्रय-पूर्व परिप्रेक्ष्य 'संकुलर' को 'धार्मिक' के विलोम की तरह कल्पित नहीं करता था। लोगों की धार्मिक पहचान को वैधा और नैतिक रूप से वांछित समझा जाता था। यह माना जाता था कि विभिन्न धार्मों के विभिन्न लोग अपनी-अपनी आस्थाओं के मुताबिक जीवन गुजारने के लिए स्वतंत्र रहेंगे और राज्य की संस्था अपनी नीतियों के दायरे में धार्मिक रूप से तटस्थ रहेगी।

आजादी के बाद सेकुलरवाद का यह विमर्श आमूल बदल गया। इसके मोटे तौर से कारण थे:[2]

पहला, द्विराष्ट्र सिद्धांत के तहत देश के विभाजन के कारण बहुतों की निगाह में कांग्रेस द्वारा प्रवर्तित कौमी एकता के विचार पर नाकामी का ठप्पा लग गया। यानी स्वातंत्र्य-पूर्व सेकुलर विमर्श की साख वैसी नहीं रह गयी। आजादी के बाद सेकुलरवाद का नया विमर्श चालू हुआ जिसने भारत के राष्ट्रत्व को पश्चिम में विकसित हुए राष्ट्रवाद की रोशनी में दोबारा देखना शुरू किया। यह विविधाता को मान्यता देने वाले विचार की जगह समरूपता थोपने वाले राष्ट्रत्व को प्राथमिकता देता था। इस प्रवृत्ति ने नेहरू द्वारा सांस्कृतिक विविधाताओं में खोजे गये भारत, और गांधी द्वारा इतिहास की पश्चिमी समझ को नकारते हुए उभारे गये भारत के सभ्यतामूलक अस्तित्व के महत्व को स्वीकार नहीं किया, बावजूद इसके कि गाँधी और नेहरू राष्ट्रवाद को किसी सामुदायिक या धार्मिक अस्मिता के मुताबिक व्यक्त करने के सख्त खिलाफ थे। सेकुलरवाद को राष्ट्रवाद के नये विमर्श ने राज्य की संस्था के साथ जोड़ दिया। अब सेकुलरवाद उस राज्य की विचारधारा बन गया जिसने देश का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूपांतरण करने का विचारधारात्मक जिम्मा अपने कंधों पर उठा लिया था।

दूसरा, नए स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राज्य को देश और समाज के रूपांतरण की अपनी परियोजना चलाने के लिए वैधता की जरुरत थी। राज्य पर अंग्रेजी शिक्षित, द्विज, आधुनिक पेशों में पारंगत और शहर आधारित छोटे से शासक वर्ग का कब्जा था। इस वर्ग में उदारतावादी मुसलमान और दूसरे अल्पसंख्यक समुदायों के उच्च वर्गीय सदस्य भी शामिल थे। यह शासक वर्ग वैचारिक रूप से उदारतावाद, आधुनिकतावादी, फेबियन-समाजवादी और राज्यवादी किस्म का था। नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस पर यही लोग हावी थे। इसी तरह गैर-कांग्रेस पार्टियों, जैसे कम्युनिस्ट और समाजवादी पार्टियों पर भी कमोबेश इन्हीं का वर्चस्व था। यानी कुल मिला कर शासक दल और विपक्ष में एक जैसे लोग ही थे। राज्य की आधुनिकतावादी, समतामूलक और रूपांतरणकारी नीतियों के जरिये इन लोगों ने अपने वर्चस्व को न्यायोचित ठहराने की कोशिश की। इसका पहला महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि अवधारणात्मक और राजनीतिक लिहाज से सेकुलरवाद का राष्ट्रवाद से अभिन्न नाता पहले कमजोर हुआ और अंततः टूट गया।

नये शासकों को लगा कि अगर कौमी एकता बनाम द्विराष्ट्र सिद्धांत की बहस चलायी गयी तो नये राज्य की आधुनिकतावादी परियोजना को नुकसान होगा। विभाजन के बाद जो उदारतावादी लोकतांत्रिक भारत बना, उसमें संख्यासत्मक रूप से शक्ति-संतुलन हिंदुओं के पक्ष में बहुत ज्यादा झुका हुआ था। इसलिए खतरा यह था कि कौमी एकता बनाम द्विराष्ट्र सिद्धांत का विमर्श कहीं राजनीति का सांप्रदायिकीकरण न कर दे। कहीं बहुसंख्यकवादी वर्चस्व को वैधाता न मिल जाये। इसी डर से आजादी के बाद सेकुलरवादी विमर्श कहीं राजनीति का सांप्रदायिकीकरण न कर दे। कहीं बहुसंख्यकवादी वर्चस्व को वैधाता न मिल जाए। इसी डर से आजादी के बाद सेकुलरवादी विमर्श ने हिन्दू सांप्रदायिकता को खास तौर से निशाना बनाया और न केवल अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता के प्रति नरम हो गया, बल्कि कई बार उसे प्रोत्साहित करता हुआ भी लगा। कुछ हिंदुओं ने 'सेकुलर' राजनीति को एक तरह से अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता के लिए गुंजाइश छोड़ने वाली राजनीति के रूप में देखना शुरू कर दिया।[3]

नये शासक वर्ग ने आजादी के आंदोलन द्वारा प्रोत्साहित कई आकांक्षाओं को अपनी रूपांतरकारी परियोजना के लिए नुकसानदेह माना। उसकी मान्यता थी कि गाँधीवादी आदर्श औपनिवेशिक हुकूमत की प्रवृत्तियों के खिलाफ एक तरह की जनाधारित लोकप्रिय राजनीति और परंपरा के प्रति जिस लगाव को व्यक्त करता है, उससे राज्य की गरिमा को नुकसान पहुँच सकता है और राजनीतिक अस्थिरता पैदा हो सकती है। तीसरी दुनिया के कई देशों में ऐसा हुआ भी था। संभवतः यह भी एक कारण था कि इसी खतरे से

बचने के लिए कांग्रेस के नेहरूवादी अभिजनों ने राज्य को सामाजिक रूपांतरण और समृद्धि के पुनर्वितरण की प्राथमिक और यहाँ तक कि एकमात्र एजेंसी माना। इन अभिजनों ने राजनीतिक स्थिरता और अपनी हुकूमत बनाये रखने के लिए औपनिवेशिक राज्य की कई परंपराओं, यहाँ तक कि उसके परिप्रेक्ष्य और उसकी बुनियादी दृष्टि को जारी रखने को एक प्रगतिशील कदम के रूप में देखा और ऐसा किया भी। खास कर शिक्षा प्रणाली और नौकरशाही के आधार में इन औपनिवेशिक पहलुओं को देखा जा सकता था। मिश्रित अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में औपनिवेशिक जमाने की सरकारी कंपनियों का विस्तार किया गया और पूरी कोशिश की गयी कि उद्योगपतियों को उनकी छत्रछाया से न निकलने दिया जाए।[4]

सेकुलरवाद की विचारधारा, विमर्श और राजनीति शासक अभिजनों के उक्त परिप्रेक्ष्य के तहत पुनः परिभाषित होने लगी। सेकुलर विचार राष्ट्रवाद से कट कर आधुनिकतावाद और राज्यवाद से जुड़ गया। पचास और साठ के दशकों में वैज्ञानिक मानस बनाने के आग्रहों, बड़े बाँधों के रूप में आधुनिक भारत के मंदिरों और भारतीय किसानों पर हावी परिवर्तन-विरोधा की प्रवृत्ति पर हुई चर्चाओं में इसके प्रमाण देखे जा सकते हैं। आधुनिकतावाद और विकास के राज्यवादी विचारों के साथ-साथ सेकुलरवाद अंग्रेजी शिक्षित द्विजों की राजनीतिक-सांस्कृतिक श्रेष्ठता को वैधाता दिलाने का साधान गन गया। इन मुट्ठी-भर सामाजिक-सांस्कृतिक अभिजनों का शासन ही 'राष्ट्र-हित' का पर्याय हो गया। राज्य की नीतियों के जरिये इसी के आधार पर मानक बने और समाज को गतिशील करने की कोशिशें हुईं। आधुनिकतावाद और सेकुलरवाद के विचारधारात्मक घटकों पर बार-बार जोर दिया जाता रहा, पर आधुनिकीकरण और सेकुलरीकरण के जमीन पर चल रही सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं को न तो प्रोत्साहित किया गया, और न ही नीति-निर्माण में उनकी चिंता की गयी।

सेकुलरवाद शिक्षित, आधुनिक और प्रगतिशील भारतीय की शिनाख्त बन गया। यहाँ तक कि शिक्षित से मतलब था अंग्रेजी पढ़ा-लिखा होना। सेकुलरवाद ने धार्मिक होने को सांप्रदायिक होने का पर्याय बना दिया और धर्म को पिछड़ेपन और पोंगापंथ का स्रोत करार दे दिया गया। आजादी के आंदोलन में कांग्रेस और गाँधी का साथ देनेवाली अंग्रेजी बोल और समझ न पाने वाले हिंदुओं और मुसलमानों की विशाल आबादी धर्म की अफीम के नशे में घुत्त मानकर यह शासक वर्ग उन्हें बचाने और उबारने का दावा करने लगा। आधुनिकतावाद से जुड़कर सेकुलरवाद ठीक वैसे ही मानस का द्योतक हो गया जो अंग्रेजों का था और जिसके तहत वे भारतवासियों को सभ्यता का पाठ पढ़ाना अपना ऐतिहासिक दायित्व समझते थे।

स्थिति यह बनी कि अब एक तरफ सेकुलरवाद की विचारधारा में यकीन रखने वाले प्रगतिशील और आधुनिक मुठी-भर शासक अभिजन थे, और दूसरी तरफ विशाल निम्नवर्गीय बहुसंख्या थी जो राष्ट्रवाद और धार्मिकता को परस्पर विलोम के रूप में नहीं देखती थी। यह बहुसंख्या सहिष्णुता और सह-जीवन के आधार पर जीवन-निर्वाह कर रही थी। लेकिन, सेकुलरवादियों द्वारा उसे सांस्कृतिक रूप से नीची निगाह से देखा जाता था। नतीजे के तौर पर एक विचारधारात्मक फाँक पैदा हुई। जिन गाँधी और नेहरू ने आजादी के आंदोलन के दौरान कौमी एकता का प्रतिमान मिल-जुल कर विकसित किया था, उन्हीं के नाम पाले के दोनों तरफ आमने-सामने खड़े हो गये। एक गाँधीवादी सेकुलरवाद हुआ जिसकी आधुनिकतावादियों ने हिंदूवादी विचार कह कर भर्त्सना की और दूसरा नेहरूवादी सेकुलरवाद हुआ जिसकी गाँधीवादियों ने राज्यवादी, अभिजन और परसंस्कृतिवादी विचारधारा के रूच्प में शिनाख्त की। सेकुलरवादी शासक अभिजनों ने सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक राजनीति को पुनःपरिभाषित करके अपने विलोम खड़ा कर लिया। इस संबंध में हिंदुत्व की राजनीतिक विचारधारा को नयी गुंजाइशें मिलीं जो पहले उपलब्ध नहीं थीं।[5]

अगर आजादी के पहले की चुनौतियों का दुखद नतीजा देश के विभाजन में निकला था, तो लगभग वैसी ही गंभीर चुनौती राष्ट्र-निर्माण के इस मॉडल को आज हिंदुत्व के आंदोलन ने दी है। इसने सेकुलर-लोकतांत्रिक राज्य और बहुलतावादी राष्ट्रवाद की विचारधारा के बीच पनपे संस्थागत सूत्र को भंग करने का खतरा पैदा कर दिया है। हालाँकि आज भी अधिकांश हिंदू इसके पक्ष में नहीं हैं इसलिए इसे गठजोड़ की राजनीति का सहारा लेना पड़ रहा है। लेकिन इसे पूरी उम्मीद है कि भविष्य में यह हिंदुत्व की विचारधारा को भारतीय राज्य की विचारधारा के रूप में मान्यता दिलाने में कामयाब हो जायेगा। हिंदुत्व जातीय-धार्मिक बहुसंख्यकवाद को वैधता दिलाना चाहता है। अगर हिंदुत्ववादी संगठन हिंदुओं की बहुसंख्या का दीर्घकालीनन राजनीतिक समर्थन पाने में कामयाब रहे तो भारतीय राष्ट्र-राज्य बहुसंख्यक-जातीय राज्य का चरित्र ग्रहण कर लेगा। तब भारत में भी अल्पसंख्यकों के साथ वही व्यवहार

होना शुरू हो जायेगा जैसा उपमहाद्वीप के अन्य देशों में होता है। ऐसी हालत में राजनीतिक रूप से उदार और आधुनिक-बहुसांस्कृतिक राष्ट्र-राज्य बनाने की परियोजना किल हो जायेगी।

सतही सेकुलरवाद का हश्र

सवाल यह है कि यह नौबत क्यों आयी। इसका एक महत्वपूर्ण कारण सेकुलरवाद की विचारधारात्मक राजनीति का बोलबाला है। गाँधी के अवसान के बाद दो तरह के तत्वों ने सेकुलरवाद और राष्ट्रवाद के तालमेल पर प्रश्न उठाया था। इनमें एक तबका आधुनिकता की अतिसरलीकृत और बेहूदा समझ रखने वाला अभिजात वर्ग था। दूसरा हिंदुत्ववादियों का था जो सांगठनिक रूप से संघ, हिंदू महासभा या जनसंघ में सक्रिय था, हालाँकि उसका वैचारिक प्रभाव काफी-कुछ कांग्रेस के भीतर भी देखा जा सकता था। सतही आधुनिकतावादियों के लिए भारत का इतिहास अंग्रेजों के आगमन के बाद शुरू होता था और हिंदुत्ववादियों को मुसलमानों के आगमन से पहले के इतिहास में कोई रूचि नहीं थी। इन दोनों श्रेणियों के प्रवक्ता इस सोच-विचार में फँसने के लिए तैयार नहीं थे कि प्राचीन भारत की विभिन्न अवधियों के इतिहास को अर्थात् मुसलमानों से पहले के विगत को किस तरह परिभाषित किया जाए और आधुनिक भारतीय राष्ट्र के अतीत की संरचना में उसकी भूमिका किस तरह देखी जाए।

सतही आधुनिकतावादियों के पास राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी की साख थी इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से अलग रहे हिंदुत्ववादियों के मुकाबले उन्हें गाँधी प्रदत्त सेकुलरवाद, राष्ट्रवाद की परिभाषा पर हावी होने में सुविधा हुई। इस सतही आधुनिकतावादियों में कांग्रेस, कम्युनिस्ट और कुछ अपवादों के साथ अधिकांश वामपंथी शामिल थे। उनकी सेकुलर विचार-दृष्टि व्यावहारिक राजनीति में भारतीय अतीत को नीची निगाह से देखने के रूप में सामने आयी। इस दृष्टि ने राष्ट्रवाद को भारतीय संदर्भ में देखने से इंकार करते हुए देशभक्ति और राष्ट्रभक्ति के मनोभावों को धिक्कारा। ये लोग पश्चिमी संदर्भ में राष्ट्रवाद के फासीवाद में पतित होने के उदाहरण से डरे हुए थे। वे यह भूल गये कि आजादी के आंदोलन में विकसित हुआ *भारतीय राष्ट्रवाद* अपने और पराये के विभाजन के आधार पर न होकर सभी तबकों को समाहित करने के आग्रह पर टिका हुआ था।[6]

इस्लाम-पूर्व इतिहास को भी हिंदू सांप्रदायिक करार देकर अतीत का अस्वीकार और उससे उपजी आत्महीनता औपनिवेशिक मानस का फलितार्थ थी। ठीक इसी तरह भारत को एक सांस्कृतिक इकाई और राष्ट्रीयता का धार्मिक आधार मानने और अल्पसंख्यकों के वजूद से भी इंकार करने का दुराग्रह रखने वाले हिंदुत्ववादी भी मूलत: राष्ट्रवाद के उस पश्चिमी ढाँचे से ही प्रेरणा ले रहे थे जहाँ बहुसांस्कृतिकता और सभ्यतामूलक एकता को अजनब निगाह से देखा जाता था। सेकुलरवाद और राष्ट्रवाद की दो धारणाओं में गाँधी प्रदत्त विचार को ठुकरा दिये जाने के बाद सतही आधुनिकतावादी हिंदू राष्ट्रवादियों की जीत हुई। इसका कारण यह था कि सतही आधुनिकतावादी ही करार नहीं देते थे, बल्कि उनके कर्मकाण्डों और रोजमर्रा की जीवन-शैली का मजाक भी उड़ाते थे। इन आधुनिकतावादियों में 'अधिकारी थीसिस' के आधार पर पाकिस्तान बनाने का समर्थन करने वाले कम्युनिस्ट भी शामिल थे। संसदीय होड़ में मुसलमान वोटों के लाच ने इस मानस के साथ मिल कर आजादी के आंदोलन के दौरान उभरे सेकुलरवाद से उसका विशिष्ट भारतीय चरित्र छीन लिया और देखते-देखते यह सेकुलरवाद छद्म होने के आरोप का निशाना बनने लगा।

जल्दी ही हिंदू राष्ट्रवादियों ने सेकुलरवाद को छद्म घोषित करके उसे भारतीय राज्य के केंद्र से दूर करने की परियोजना शुरू कर दी। यह योजना उन्होंने दो चरणों में चलाई पहले चरण में उन्होंने सेकुलरवादियों पर छद्म होने का आरोप लगा कर उन्हें रक्षात्मक पैंतरा लेने पर मजबूर कर दिया, और दूसरे चरण में वे अपने तथाकथित 'सच्चे' सेकुलरवाद को छोड़ कर खुले तौर पर हिंदुत्व का प्रतिपादन करने लगे। यही कारण है कि सेकुलरवाद पर बहस चला कर सत्ता में आने के बाद उन्हें बहस में कोई खास दिलचस्पी नहीं रह गयी। वे यह बहस जीत चुके थे और अब उनके लिए राज्य के मर्म में सेकुलरवाद की जगह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की वैचारिक प्रतिबद्धताओं को स्थापित करने का कार्यभार ही बाकी रह गया था। कई तरीकों का इस्तेमाल करके इस मकसद के लिए उन्होंने सत्ता का लाभ उठाया और आज सत्ता-च्युत होने के दौर में अपने उन्हीं प्रयासों से लाभान्वित हो रहे हैं।[7]

सवाल यह है कि अगर सतही आधुनिकतावादी गाँधी के सेकुलरवाद और राष्ट्रवाद संबंधी विचार को अपनाते तो क्या ऐसा होता? निश्चित रूप से बहुसांस्कृतिक और सभ्यतामूलक राष्ट्रवाद के विचार को अभिव्यक्त करने वाली प्रतीक योजना पर बहुसंख्यक समाज

के मिथकों और प्रतीकों की छाया होती। ठीक उसी तरह जैसे फ्रांस सरीखे सेकुलर राष्ट्र की प्रतीक योजना पर कैथोलिक और अमेरिका की प्रतीक योजना पर प्रोटेस्टेंट मिथकों और प्रतीकों की गहरी छाया है। फिर भी इन राष्ट्रों को कोई धर्म-आधारित राष्ट्र नहीं कहता और न ही वहाँ के अल्पसंख्यक तबकों में इन प्रतीकों को सेकुलर मानने पर कोई एतराज है। न ही उन्हें अ-राष्ट्रीय, गैर-राष्ट्रीय और साम्प्रदायिक रूप में देखा जाता है। गाँधी की भाषा-शैली और मुहावरा काफी-कुछ हिन्दु प्रभाव लिये हुए था। गाँधी विचार के इस पहलू की निंदा करने वाले भूल जाते हैं कि इसी कारण से उनके सेकुलरवाद ने सांप्रदायिकता को केंद्र में नहीं आने दिया था और दूसरी तरफ इसी कारण से वे सतही आधुनिकतावादियों की भाँति आत्महीनता के शिकार नहीं हुए थे। सेकुलरीकरण के जरिये बहुसंख्यक समाज के प्रतीकों को राष्ट्र के प्रतीक की तरह आत्मसात करने की जो प्रक्रिया इस देश में स्वाभावित रूप से चलनी चाहिए थी, उसे सतही आधुनिकतावादियों और हिंदुत्ववादियों ने अपने-अपने ढंग से उपनिवेशवाद के प्रभाव में बाधित किया। यही कारण है कि संस्कृत भाषा आज सेकुलरवादियों द्वारा हिन्दू सांप्रदायिकता के प्रतीक के रूप में देखी जा रही है। जबकि उसे क्लासिकल भारतीय अतीत की साझी विरासत के रूप में लिया जाना चाहिए था। यह सेकुलरवादी रवैया हिंदुत्ववादियों के अनुकूल है जिससे उन्हें ध्रुवीकरण की राजनीति का एक और तर्क मिल जाता है।[8]

निष्कर्ष

आजादी के 70 साल के बाद भारतीय राज्य की यह कोशिश गड़बड़ा गई लगती है। सांस्कृतिक बहुलता को एक विशाल राजनीतिक व्यवस्था में बाँधा कर राष्ट्र-राज्य बनाने की कोशिश अब पूरी तरह उलट गई है। बढ़ते हुए जातीय और अन्य दबावों के आगे राज्य और ज्यादा केंद्रीकृत और दमनकारी होता चला गया है। उसके संघीय चरित्र में काफी ह्रास हुआ है। लोकतांत्रिक संस्थाएँ निष्प्रभावी हो गई हैं। जातीय अस्मिताओं को नागरिकों की राष्ट्रीय अस्मिताओं में बदलने की परियोजना आज समाज के उपकेंद्रीय जातीयतावादी खिंचावों की शिकार हो चुकी हैं। इसीलिए राज्य और उसके प्रभु वर्ग का एक हिस्सा बहुसंख्यक जातीयता को *राष्ट्रवाद* के नए और स्थायी आधार के रूप में देखना शुरू कर चुका है। नतीजतन, जातीय अल्पसंख्यक आज पहले से भी ज्यादा असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। उनमें से कुछ अपने लिए एक स्वायत्त राजनीतिक बंदोबस्त की माँग कर रहे हैं और कुछ ने पूर्ण स्वतंत्रता की माँग ही उठा दी है।

दरअसल, कोई राष्ट्र-राज्य सिर्फ एक राजनीतिक बंदोबस्त यानी विभिन्न जातीयताओं को संभालने वाली इकाई के रूप में ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकता। देर-सबेर उसे जातीय सामंजस्य कायम करने के स्थान पर आर्थिक विकास को वरीयता देनी ही पड़ेगी। लेकिन यह बदली हुई वरीयता विभिन्न जातीय समूहों का राजनीतिक समीकरण बिगाड़ देती है। विकास की प्रक्रिया में अनिवार्य रूप से पैदा होने वाली असमानताएँ इसी आधार पर देखी जाने लगी हैं। असल में ये असमानताएँ इसी आधार पर पैदा होती भी हैं। विकास की प्रक्रिया में जातीयता का सांस्कृतिक आधार कमजोर हो जाता है और अपनी माँगों की पूर्ति के लिए जातीय समूह राजनीतिक पहचान बनाने लगते हैं। जातीय समूहों के हित सेकुलर आर्थिक हितों में अपना दावा जमा लेते हैं और राष्ट्रीय समृद्धि में अपनी हिस्सेदारी की माँग होने लगती है भले ही वह समृद्धि सबको हिस्सा देने के लिए काफी हो या न हो। महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि ये हित जातीयता की भाषा में खुद को अभिव्यक्त करते हैं और जातीय आकांक्षाओं और जातीय समूहों द्वारा अपने विकास की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए राजनीतिक स्वायत्तता या अलग राज्य की मांग उठाने लगते हैं। राजनीतिकृत जातीयताओं के लिए दोनों माँगें अभिन्न रूप से जुड़ी होती हैं। हालांकि उनकी शब्दावली आर्थिक के बजाय धार्मिक और सांस्कृतिक ज्यादा होती है।

भारत में आज यही हो रहा है। विकास की प्रक्रिया में कुछ अल्पसंख्यकों ने बहुसंख्यकों से बेहतर उपलब्धियाँ हासिल कर ली हैं। बेहतर उपलब्धि करने वालों को लगता है कि अगर एकल राज्य में उनका भविष्य औरों से न बँधा होता ता वे और प्रगति कर सकते थे। विकास की दौड़ में पिछड़ गए लोग भी इसी तरह का समाधान ढूँढ़ते हैं। वे समझते हैं कि अगर उनका अपना राज्य होता और विकास के फायदों को हड़प लेने वाले दूसरे जातीय समूह उसमें न होते तो वे अच्छी प्रगति कर सकते थे दूसरी तरफ बहुमत अल्पसंख्यकों की इन कोशिशों को राष्ट्रीय हित के लिए घातक समझता है। इसलिए वह अपना राजनीतिक और सांस्कृतिक दबदबा कायम करके अल्पसंख्यकों पर नए समीकरण थोपने की कोशिश करता है।

सन्दर्भ

1. चटर्जी, पार्थ, सेकुलरिज्म एण्ड टॉलरेशन, *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 9 जुलाई, 1994, पृ. 1774.
2. उपरोक्त.
3. अहमद, इम्तियाज, सेकुलराइजेशन, *सेमिनार,* वॉल्यूम-144, 1971, पृ. 26.
4. सेठ डी.एल. एण्ड गुरप्रीत महाजन, *माइनोरिटी आइडेनटिटीज एण्ड द नेशन-स्टेट,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली, 1999.
5. भार्गव, राजीव *सेकुलरिज्म एण्ड इट्स क्रिटिक*, ऑक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1998, पृ. 321-44.
6. उपरोक्त
7. आर. पी.आर., *सेकुलर चैलेंज टू कम्यूनल पॉलिटिक्स*, विकास अध्ययन केन्द्र, मुंबई, 1998.
8. उपरोक्त.

कल्हण का जीवनवृत एवं उनकी रचनाएँ

संध्या कुमारी

शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

परिचय

कल्हण (1150 ई.) कश्मीर के महाराज हर्षदेव (1068-1101) के महामात्य चंपक के पुत्र और संगीतमर्मज्ञ कनक के अग्रज थे। मंखक ने श्रीकंठचरित (1128-44) (सर्ग 25 श्लो. 78-20) में कल्याण नाम के इसी कवि की प्रौढ़ता को सराहा है और इसे महामंत्री अलकदत्त के प्रश्रय में बहुकथा के लिए परिश्रम निरंकुश घोषित किया है। राजतरंगिणी के प्रत्येक तरंग में कल्हन ने अपने को काश्मीरिक-महामात्य-चमक-प्रभु-सुत-कल्हण लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि कल्हण के पिता का नाम चंपक था और वह काश्मीर के राजा हर्षदेव महामात्य थे। उनका समय 1089 ई. से 1101 ई. तक था। राजा हर्षदेव के शासन के प्रथम अर्धभाग में चमक के किसी विशेष बात उल्लेख नही है किन्तु अन्तिम अर्धभाग में वर्णन है कि द्वारपति के पद पर काम करते हुए उन्होने दुग्धघात नामक दूर्ग को घेर लिया था। उस समय चमक प्रभु द्वारा प्रदर्शित की गई कार्यकुशलता की विशेष प्रशंसा कल्हण ने किया है। राजा हर्षदेव के अंतिम युद्ध तक चमक उन्ही के साथ रहा। राजा की विभ्रान्त एवं संकट-ग्रस्त स्थिति को देखकर चम्क ने तटस्थ और निर्भय होकर राजा को उपदेश किया था और उस समय की सारी घटना उसने कल्हण से अवश्य बताई होगी। राजा हर्ष के राजत्याग प्राणरक्षा के लिए पलायन और उसकी शोचनीय दयनीय मृत्यु का आँखो देख वर्णन कल्हण ने अपने पिता चमक के सेवक मुक्तक से सुनकर राजतंगिणी में लिखा है। महामात्य चमक शैवधर्म का अनुयायी था नन्दितीर्थ और हिन्दु देवी - देवताओं पर उसकी अटुट श्रद्धा थी इसलिए कल्हण ने नन्दि-क्षेत्र तथा उसके आसपास के प्रदेशो का विशद वर्णन किया है। कल्हण ने लिखा है कि राजा हर्षदेव ने कनक से संगीतशास्त्र की विशेष शिक्षा प्राप्त कर उसे गुरूदक्षिणा के रूप में एक लाख दीनार (स्वर्णमुद्रा) प्रदान उकिया था।

मुख्य शब्दः गुरूदक्षिणा, राजतरंगिणी, अनाथावस्था, राजपुरस्कार, पुरोहित-मंडली, स्वर्णमुद्रा

विषय-वस्तु

राजा हर्ष देव की मृत्यु के बाद कनक ने अपने जीवन का शेष भाग काशी में बिताया। कनक का जन्म-स्थान उसने परिहासपुर बताया है और यह भी लिखा है कि राजा हर्ष देव के उपद्रव से उसने बुद्ध की एक भव्य प्रगतिमा की रक्षा की थी। हिन्दु धर्म के समान बौद्ध धर्म पर भी उस की श्रद्धा थी। अपनी तथा अपने पिता पितृव्य की जन्मभूमी होने कारण परिहासपुर का विशेष वर्णन कल्हण ने किया है। कल्हण जाति ब्राहाणों का प्रसंग आया है वहाँ कल्हण की लेखनी से सात्विक अभिमान और गौरव झलक उठा है। कल्हण शैव धार्मानुयायी था। इसलिए उसने राजतरंगिणी के हर तरंग अर्धनारी नटेश्वर की वन्दना की है और काश्मिरीक शैवागम के प्रधान अर्चाय भट्ट कल्लट के प्रति विशेष श्रद्धाभाव व्यक्त किया है। कल्हण शैवागम तथा तंत्रशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रखण्ड़ पंड़ित था, किन्तु अन्धविश्वासी नही था इसिलिए अधकचड़े और पाखण्डी तांत्रिकों को उसने उपहास भी किया है।

कल्हण उदार दृष्टिकोण और भाव का शैव था, इसिलिए उसने बौद्ध धर्म के प्रति सर्वत्र आदर - भाव व्यक्त किया है। अशोक से लेकर उसके समय तक जितने बौद्ध धर्मानुयायी राजा हुए है। उन सब की उसने बड़ी प्रशंसा की है वह बौद्ध धर्म का विशेषज्ञ

था और उसकी दन्तकथाओं का पूर्ण ज्ञाता था। ऐसा प्रतित होता है। कि उस समय भारत में खासेकर कश्मीर में शैव बौद्ध जैन वैष्णव अदि विभिन्न धर्मों सम्प्रदायों के मानने वालो में परस्पर सहिष्णुता के मान जागृत हो चुके थे।

एक प्रतिभासम्पन्न कवि में साहित्य-ज्ञान की जितनी अपेक्षा होनी चाहिए वह कल्हण में विद्यमान थी। वह एक महान कवि थे। राजरंगिणी में उनके महाकवि होने के पाश्चात् पदे-पदे मिलता है राजतरंगिणी की वर्णन शैली से ज्ञात होता है। कि कल्हण ने इसे अपनी प्रौढ़ावस्था में 1148 ई. से 1150 ई. के बीच लिखा है। सन् 1112 से 1120 ई. तक राजा सुस्सल के राज्य-शासन का वर्णन और सन् 1121 में उसके सैनिको द्वारा भिक्षाचर को धोखा दिय जाने का वर्णन ही यह सिद्ध करता है कि कल्हण की बुद्धि परिपक्व थी अत: यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह पूर्णत: वयस्क था। सम्भवत: उसका जन्म 1100 ई. के आसपास हुआ था।

ईसवी बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कश्मीर में एक भयंकर राज्य-क्रान्ति हुई थी। उस क्रान्ती ने कश्मीर में एक नये राजवंश को जन्म दिया। राजा हर्षदेव ने 1089 से 1101 ई. तक राज्य किया था। उसके शासन काल का पूर्वाद्ध शान्ती और सुख से बिता था। किन्तु उतरार्द्ध पूर्ण रूप से अव्यवस्थित रहा। उनकी मृत्यु के बाद उच्चल कश्मीर का राजा हुआ। उसने सन् 1101 से 1111 ई. तक राज्य किया। उसके बाद उसका छोटा भाई राजा हुआ। उसने 1112 से 1128 ई. तक राज्य किया। तदनन्तर सुस्सल के पुत्र जयसिंह ने शासन भार ग्रहण किया। जयसिंह के शासन काल में भी 1143 ई. तक उनके सम्बन्धियों द्वारा उम्पात और उखाड़-पछाड़ होते रहे। बाद में भी छोटे-मोटे उपद्रव बने ही रहे। कल्हण जब राजतरंगिणी लिया रहा था उस समय जयसिंह का ही शासन था और लेखन काल में राज्य उपद्रवग्रस्त था। इसमे सन्देह नही कि कल्हण का सरा जिवन कश्मीर मे होने वाली भयंकर क्रान्ति उथल-पुथल तथा विविध प्रकार के विचित्र झगड़ो के देखने मे ही बीता था। यह एथल पुथल ही राजरंगिणी लिखने में प्रेरक बनी।

जिस राज्य-क्रान्ति ने राजा हर्षदेव का विनाश किया था, उसने कल्हण के कुटूम्ब को भी ध्वस्त किया था, इसीलिए राजतरगिंणी के आठवें तरंग में जहाँ बहुत से मंत्रियों की नामावली दी गई है वहॉ कल्हण ने अपने पिता चम्पक का नाम नही दिया है। केवल भुतेश्वर तीर्थ के वर्णन प्रसंग मे ही चम्पक का उल्लेख उसने किया है। चम्पक का उल्लेख न हो ने में उस समय का रज्य-विप्लव ही मुख्य कारण था क्योंकि चम्पक राजा हर्षदेव का विश्वास और कृतज्ञ मंत्री था। राजा हर्ष की मृत्यु के बाद स्वामिभक्त आमात्य ने अपनी स्वामिभक्ति चरितार्थ करते हुए तीर्थवास में ही अपने जीवन को बिता देने का संकल्प ले लिया था।

कल्हण निर्भीक ईमानदार और निष्पक्ष इतिहासकार था। उसने अपने समय के शासक जयसिंह की राज्य-व्यवस्था का वर्णन अपूर्व स्पष्टता के के साथ किया है। राजा के गुण और दोंष के वर्णन में उसने बड़ी निर्भीकता और निष्पक्षता दिखाई है। जयसिंह के प्रतिपक्षियों के सदगुणों की प्रशंसा दिल खोल कर किया है। जयसिंह के पिता सुस्सल की कटु आलोचना करने में कल्हण ने तनिक भी कोर-कसर नही छोडी है। जो भिक्षाचर जय सिंह और सुस्सल की नींद हराम किए था उसके शौर्य की प्रशंसा कल्हण ने उदात शब्दो में की है। राज्य क्रान्ति के समय कशमिरीयों की स्वार्थपरता राजद्रोह स्वामिद्रोह और कायरत का नग्न चित्र खिचने में कल्हाण ने कमाल कर दिया है। बात-बात में सत्याग्राह प्रायोपवेशन करने वाले ब्रहाण रिश्वतखोर राजकर्मचारी राजकोष का अपरहण करने वाले धूर्त कायस्थ और सूदखोर वैश्व कल्हण की ऑख में काँटा की तरह चुभते थे। उसने इन सब की बड़ी तीखी अलोचना की है प्राचीन पुरोहित-मंडली से कल्हण वेहद नारासज था क्योकि वे कश्मीर की प्रगति के बाधक थे।

कवि और इतिहासकार के रूप में कल्हण मानव-स्वभाव का महान पारखी था। उसने भिन्न-भिन्न स्वभाव और प्रकृति के मनुष्यों के गुण-दोष का विवचन बड़ी बारकी से किया है। फिर भी अन्त तक अपने विषय में वह मौन ही रहा। अपने देश के इतिहास का विशेषज्ञ होने के साथ ही अपने समय की राजनैतिक सामाजिक आर्थिक तथा धार्मिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान भी उसे था। उसकी तिक्ष्ण बुद्धि प्राचिन इतिहास के अन्वेषण में पूर्ण सहायक थी। वह स्वाभिमानी कवि और निष्पक्ष इतिहासकर था। उसने राजश्रय या राजपुरस्कार प्राप्त करने की लालसा रखकर राजतरंगिणी जैसे अप्रतिम इतिहास ग्रंथ एवं महाकाव्य की रचना ही नहीं की है बल्कि उसने अपने कवि कर्म और इतिहासकार-कर्म का पूर्ण निर्वाह भी किया है। वह भी अपना कर्तव्य समझकर इसमें सन्देह नही कि उसने बड़ी ईमानदारी से इतिहास के तथ्यों को प्रस्तुत किया है।

यद्यपि कल्हण ने इतिहास के रूप में ही राजतरंगिणी लिखी है और प्रारम्भ में उसने अपने अपने संकल्प को स्पष्टता व्यक्त भी किया है। किन्तु आजकल के इतिहासकार उसे इतिहास न कह कर महाकाव्य कहना अधिक पसंद करते है। कदाचित् कविता में लिखा जाना ही इसका कारण है।

वस्तुत: इतिहासकार का दृष्टिकोण न्यायाधीश के समान पक्षपात शून्य होता है इसिलिए राजतरंगिणी की रचना करते हुए कल्हण ने वास्तविक स्थिति और पक्षपात शून्यता: इन दोनो गुणो को विशेष रूप से अपनाया है। उसने अपने समय का इतिहास लिखने में ऐसी स्पष्टवादिता का परिचय दिया है किइस प्रकार की स्पष्टवादिता भारत में अग्रेंजी शासन काल के समय लिखे गये इतिहासकारो में भी नहीं है।

इतिहाकार को चाहिए कि वह वंशावली (शजरा) पर पूरा ध्यान दें। इस सिद्धान्त का पूर्णताया पालन कल्हण ने किया है। उसकी दी गई वंशावली प्रामाणिक और विश्वस्त है। प्रत्येक नवीन व्यक्ति के वंश का परिचय उसने बड़ी सावधानी से दिया है। जहाँ कहीं विचित्र घटनाएँ घटित हुई है उनका कारण कल्हण ने विधि की विडम्बना बताया है। राजा हर्षदेव महान राजनीतिज्ञ नीतिनिपूर्ण विद्वान एवं गुणवान था किन्तु अन्त में वह भी भ्रष्ट हो गया। अनाथावस्था में उसकी दयनीय मृत्यु हुई। कल्हण ने इसे भाग्य की प्रतिकूलता कहा है। कल्हण की धारणा थी कि पवित्र तीर्थ पतिवत्र क्षेत्र देवालय अदि धार्मिक स्थानो में अत्याचार करने पर राजा ईश्वरीय कोप का भाजन बन कर नष्ट हो जाता है। हर्षदेव का अन्त इन्ही कारणों से हुआ। ऐसी भाग्यवादी बातों से तथा शुभ-अशुभ शकुन पर विश्वास रखने से कल्हण का इतिहासकार व्यक्तित्व भिन्न बन गया है।

राजतंगिणी में कल्हण द्वारा दी गई काल गणना दो भागो में विभक्त की जा सकती है। पहले भाग में प्रारम्भ की तीन तरंगो और दूसरे भाग में शेष पाँच तरगें रखी जा सकती है इस विभाजन के अनुसार पहले भाग में प्राचिन गोनन्दाति वंशो के राजओं का शासनकाल लगभग 3050 वर्षो का लिया जा सकता है। प्रारम्भ कि तीन तिरंगे और चौथी तंरग के अधिक भाग में स्थुल मान से प्रत्येक राजा का शासन-काल कितने वर्षो का था, इतना ही विवरण दिया गया हैं। कल्हण द्वारा बताई गई तिथियों के साथ लौकिक शक के 3889 से अर्थात् 7 मार्च सन् 813 ई. से लौकिक शक 4224 अर्थात ई0 1145-50 तक दी गई है इनमें प्ररम्भ की तिथि में राजर चिप्पट और जयापिड़ का निधन हुआ था। लौकिक शक का वर्षारम्भ चन्द्र और सौर दोनों मानो के योग से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को होता है। और शुद्ध चन्द्रमान के अनुसार पूर्णिमा को महीना होता है।

वराहमिहिरने वृहत्सहिता में राजा युधिष्ठिर के राज्यभिषेक का समय कलियुग के 353 वे वर्ष का प्रारम्भ किया है। कल्हण ने भी राजतरंगिणी में अपने इतिहास का युधिष्ठिर के राज्याभिषेक काल से किया है। कल्हण केमत से कश्मीर के अदि राजा गोनन्द का राज्यभिषेक हुआ था। कल्हण ने इस विषय में नीलमतपुराण को प्रमाण माना है। तात्पर्य यह कि युधिष्ठिर और गोनन्द को वह समकालिक मानता है।

कल्हण का यह कथन कि अधिक प्रमाण ना मिलने से एक ही वंश में उत्पन्न हुए राजओं ने 2268 वर्ष तक राज्य किया और उस वंश के 52 राजा प्राचिन ग्रान्थकारों केमत से विस्मृतिसागर में निमग्न हो गए जान पड़ते है।

इस प्रकार किसी भी प्रमाण के बिना तीसरे गोनन्द से लेकर कल्हण के समय तक के राजाओं के शासन काल के वर्षो की संकलित संख्या 2330। कल्हण का यह कहना भी सत्य के समीप जान पड़ता है।

राजतरंगिणी की पहली तरंग में कल्हण द्वारा की गई काल गणना पौराणिक मान्यताओं पर आधारित है और यही बात दुसरी तीसरी तरंग की काल गणना के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं इसके बाद जब मह चौथी तरंग को देखते है। तब उसमें कार्कोट वंश के राजाओ की काल गणना में 25 वर्ष का अन्तर मिलता है। और पाँचवी तरंग से आठवीं तरंग के राजाओं के शासन काल की काल गणना प्रामाणिक है।

समस्त संस्कृत साहित्य में प्राय: इतिहास कहे जाने वाले ग्रन्थों मे काल गणना की दृष्टि से राजतरंगिणी आद्वितीय ग्रन्थ है। भारत के जिन राज्यों का विवरण सहित इतिहास नही मिलता हैं उनके इतिहास की मुख्य-मुख्य घटनाओं का काल निश्चित करने के लिए यह एक सर्वोतम विश्वास करने योग्य साधन राजतरंगिणी है। हमारी दृष्टि में कल्हण-कृत राजतरंगिणी अप्रतिम ऐतिहासिक काव्य है। इसमें महाभारत काल से लेकर बारहवीं सदी तक के कश्मीरी राजाओं के शासन का क्रमबद्ध इतिहास हैं यह ग्रन्थ मध्यकालीन पाश्चात्य इतिहास ग्रन्थों और मुस्लिम तारिखों की तुलना में किसी प्रकार न्यून नहीं कहा जा सकता है। संस्कृत-साहित्य में यही एकमेव अद्वितीय इतिहास ग्रन्थ है जो इतिहास की शैली में लिखा गया हैं।

वस्तुत राजतरंगिणी में राजाओं के स्तवन-गीत नहीं है. बल्कि निष्पक्ष तटस्थ भाव से लिखा गया कश्मीर का राजनैतिक इतिहास हैं। पूर्वमध्य युग में सबसे अधिक क्रमबद्ध राजनीतिक इतिहास कहीं का मिलता है तो वह कश्मीर का ही है। इसका श्रेय महकवि

कल्हण को है। जिसने बड़ी जाँच-पड़ताल करके बारहवीं शताब्दी में संस्कृत में पद्यबन्ध राजतरंगिणी नामक का ऐतिहासीक महाकाव्य लिखा हैं। अति प्रचीन काल के विषय में उसनें जो कुछ लिख है अधिकतर अनुश्रुतिगम्य इतिवृत्त पर आधारित हैं पन्तु आठवीं शताब्दी में राजा चन्द्रपीड़ और मुक्तापीड़ ललितादित्य सबसे अधिक प्रतापी राजा हो चुका है।उसने काश्मीर-राज्य में साहित्य कला और संगीत को प्रोत्साहन दिया तथा मार्तण्ड का भव्य मन्दिर बनवाया जिसका एक बड़ा भाग आज भी विद्यमान है। उसने सभी दिशाओं में युद्ध किया भूटियाँ का मान-मर्दन किया तिब्बत को पराजित किया सिन्धु के किनारे लड़कर विजय प्राप्त किया उत्तरी भारतवर्ष की बड़ी शक्ति बनाये रखने का प्रयत्न किया किन्तु उसका आन्तरिक शासन निर्दयता एवं अत्याचार का युग था।

उसके बाद अवन्तिवर्मन का समय आया। यह समय ईसवी सन् 1855 से 1883 तक का माना जाता हैं। अवन्तिवर्मन ने राज्य के अर्न्तगत कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई सिंचाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया है। इसके बाद अनेक राजा हुए जिनमें से कुछ ने प्रजावर्ग का बड़ उपकार किया और कुछ तो अत्याचार और पाप की सजीव मूर्ति प्रमाणित हुए। ईसवी सन् 950 से 1003 ई. तक कश्मीर मे रानी दिद्या ने शासन किया। उसने भी प्रजा पर मनमाना अत्याचार किया। धीरे-धीरे समय बीतता गया और सन् 1339 में कश्मीर में मुसलमानों का अधिकार हो गया। प्राचीन मध्य युग के कश्मीर के इतिहास का यही सारांश है।

राजतरंगिणी से ज्ञात है कि उस समय कश्मीर में ब्रहाण और शूद्र दो ही मुख्य जातियाँ थी। कुछ थोड़ी अस्पृश्य जातियाँ भी थी। ब्रह्मण अधिकतर पुरोहित का काम करते थे। उनकी विभिन्न श्रेणियाँ बन गई थी। पुजा पाठ व्रत अनुष्ठान उनका मुख्य कार्य था। कल्हण के काल में और सम्भवत: दसवी सदी से ही जातियाँ के बनने की प्रवृति बढ़ गई थी। दसवी सदी से बारहवीं सदी तक विचारो की प्रगती अवरूद्ध होजाने के कारण सम्पूर्ण भारत का सामाजीक जीवन शिथिल हो गया था और उसमें संकीर्णता तथा अनुदारता का पूर्णतया प्रवेश हो चुका था। श्रमिक वर्ग के बीच गहरी खाई बन गई थी। जिस प्रकार नदी का प्रवाह रूक जाने से छोटे-छोटे पानी के चुहडे और बडे-बडे दर बन जाते है उसी प्रकार उस समय भारत मे जातियाँ बन रही थी। कायस्थ नाम की जाति कल्हण के समय तक नहीं बन पाई थी राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि अपने समय वह अपने मन्त्रियाँ के पास बराबर यह सन्देश भेजता रहा की सुशासन में त्रुटि न आसने पाये। प्रजा सुख का ध्यान रखा जाय। देश का सुशासन नष्ट करने वाले अनेक कारणों को गिनाते हुए उसने यह भी बताया कि–

अन्योऽन्नयोद्वाव सम्बन्धै: कायस्था: संहतायदि।

तदा नि: संशयं ज्ञेय: प्रजाभाग्य विपर्यय:।।

अर्थात् परस्पर विवाह-सम्बन्धों द्वार कायस्थ (छोटे राजकर्मचारी) यदि संहत हो जायेगें तो निश्चित ही प्रजा का दुर्भाग्य होगा। इससे स्पष्ट है कि कायस्थ नाम की जाति उस समय तक नहीं थी किन्तु उसके बनने के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। जिसके लिए बुद्धिमान राजनीतिक सशंकित हो उठे थे।

राजा और राजदरबारियों में से बहुतों के चरित्र गिरे हुए थे। जनसाधारण फैला हुआ था। कुछ राजा बौद्धों बाहणों को रूप से मानते थे। मन्दिरो और मठों का निर्माण करते थे दान दक्षिणा देते थे। बाढ़ अकाल से पीड़ित प्रजा की रक्षा और सुख सुविधा के लिए राजकोष से सहायता की जाती थी। धर्मशलाएँ चैत्य बनवा कर उनमें सदाव्रत चलाया जाता था भुमि की उपज बढ़ाने के अनेक उपाय किए जाते थे जयापीड़ ने देश-देशान्तर के विद्वानों को अपने यहाँ बुलाकर रखा था और राजाओं से बढ़कर उनका समान किया करता था। 855 ई. के बाद कश्मीर में शैव सम्प्रदाय के सुधार की एक लहर उठी किन्तु नवीं शती के अन्त में राजा शंकरवर्मा ने देव मन्दिरो के विरूद्ध जेहाद बोल दिया। देवस्थानों में लगी हुई जायदादें उसने जप्त कर ली।

ग्यारहवीं शती के अन्त में जिस समय कर्नाटक में वीरशैव नाम का सुधारवादी पन्थ चला उसी समय कश्मीर के राजा हर्ष ने अपने राज्य में देवोत्पाटन नायक अर्थात् देव-मन्दिर उखाड़ने वाले अधिकारी-की नियुक्ति की। उसी अधिकारी का केवल एक ही काम था-देव मन्दिरो को भ्रष्ट करना उनका नेस्तानाबूद करा देना और उनकी सम्पत्तियाँ जब्त कर लेना।

राजा की ओर से जब प्रजा को अत्यधिक त्रास पहूँचाया जाता था तो उनके अत्याचार और कुशासन के विरूद्ध कश्मीर ब्रासहण सत्याग्रह करते थे, डगमगाने लगते थे उन्हे प्रजा के सामने झुकना पड़ता था।

राजा जलौक ने राजकाज चलाने के लिए आठरह कर्मस्थान बनाए थे जो न्याय कर सेना पुलीस स्वराष्ट्र धर्म वित आदि का प्रबन्ध करते थे कर्मस्थान एक प्रकार के मन्त्रालय थे। राजा ललितादित्य ने मन्त्रि-स्तर के पाँच अधिकारीयाँ की नियुक्ति की थी जिन्हें पंचमहाशब्द कहा जाता था वे महाप्रति पीड़ महासंधिविग्रहिक महाश्वशाल महाभाण्डागर और महासाधानभाग कहलाते थे। मन्त्रालय (सेक्रेरिएट) में कार्यकरने वाले कर्मचारी दिविर और कायस्थ कहलाते थे। दिवारों और कायस्थो का वर्णन अत्याचारी कहकर कल्हण ने किया है गांव के प्रधान को ग्राम कायस्थ कहा जाता था नगर का प्रधान नगराध्यक्ष कहलाता था। उस समय भी बेगार लेने की प्रथा का प्रचलन था। 9 वीं शताबदी के अन्त में राजा शंकरवर्मा ने युद्ध के अवसर पर रूढ़भारोढी अर्थात् प्रजा के लिए भार ढोने की बेगार की पद्धति चलाई थी।

राजतरंगिणी से पता चलता है कि कल्हण के काल में जनता का सामूहिक जीवन क्षीण होने लगाा था। वह अन्याय, अत्याचार को चुपचाप सहन कर लेती थी उसकी इस विवशता से राजकर्मचारी शासक तथा जागीरदार और भी अधिक उच्छृखंल हो उठे थे कश्मीर के इतिहास में दसवीं सताबदी से ही डामर सिर उठाने लगे थे और धीरे-धीरे वे इतने अच्छृखंल और बंबर हो गए कि राज्य शक्ति उनके हाथो मे बंटकर छिन्न-भिन्न हो गई डामरों को कल्हण ने तस्कर और दस्यु कहकर उनकी निन्दा की है। डामरो के भीषण अत्याचार के कारण राजा संगामदेव (1236-52 ई.) को केवल राजसिंहसन ही नही छोड़ने पडा़ बनिलक अपना देश भी छोड़ देना पडा था।

लेखक ने डामरो की तुलना खून पीने वाले ऑत खाने वाले सियारो से करते हुए लिखा है कि -

तस्मिन् दण्डधारे दरं याते डामर केरव:

अन्त्रायपि विशामाशुशेषं समपायिन:

डामर शब्द संस्कृत भाषा में अवश्य मिलता है किन्तु इसका अर्थ तंत्र विशेष है। जाति या वर्ग का बोधक नहीं है। कुछ इतिहासकर डामर का अर्थ जागीरदार लगाते है किन्तु हमारी समझ में डामर-सेना के सैनिको का एक वर्ग। सतावी सदी में हर्ष के काल में सेना के सैनिकों का एक वर्ग है सातवीं सदी में सेना के चारभाट सैनिक होते थे। वे बहुत ही उच्छृखल और विवेकशून्य होते थे अनैतिक व्यायपार अकारण विद्रोह और हलचल उत्पन्न करना उनका स्भाव था। सम्भवत: बारहवीं सदी में वही चारभाट सैनिक डामर कहलाने लगे। ब्रिटिस सेना में भी टामी सैनिक इसी स्भाव और प्रवृति के हुआ करते थे।

कल्हण के काल में कश्मीर में बिधा की पर्याप्त उन्नति हुई थी भारत-मंजुरी रामायण-मंजुरी वृहत्कथा-मंजुरी और बोधिसत्वादान-कल्पलता अदि अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना इसी समय हुई थी।

संदर्भ-सूची

* डॉ. उमेश कुमार मिश्र : राजतरंगिणी और कश्मीर नरेश, पेज न.-21,22,23
* जी. के. द्विवेद : हिन्दी राजतंरगिणी पेज न.-211,212
* कल्हण की राजतरंगिणी (हिन्दी) (एच.टी.एम.एल) प्रेम का दरिया (ब्लॉग)। अभिगमन तिथि: 18 नवम्बर, 2012।
* वन्द्य: कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुण:। येन याति यश:काय: स्थैर्य स्वस्य परस्य च।। राजतरंगिणी, 0 1।3
* कोऽन्य: कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षम:। कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिन:।। राजतरंगिणी, 1।4
* संस्कृत वाङमय का बृहद इतिहास, चतुर्थ-खण्ड काव्य, राजतरङगिणी-पृष्ठ संख्या-260)

मुगलकालीन गाँवों में सामुदायिक जीवन

डॉ० मोहम्मद तसद्दुक

पुर्व शोधार्थी, (इतिहास स्नातकोत्तर विभाग), भु.ना. मंडल विश्वविद्यालय, लालुनगर मधेपूरा

भारत के कुछ हिस्से पर जब अंग्रेजों का हुकूमत कायम हुआ तथा उनके हाथों में प्रशासन आया तो उन्हे कई प्रथाओं का सामना करना पड़ा जो इंग्लिश-सैक्सन से बिल्कूल अलग प्रणाली का था। यह काल 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का था। उन्हें ग्राम समुदाय के अध्ययन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ा। बी. आर. ग्रोवर का मत है कि "यही वह अवस्था थी जब भारतीय ग्राम समुदायों की अवधारणा का आभास हुआ।" इस्ट इंडिया कम्पनी के कार्यो के बारे में हाउस आफॅ कॉमन्स की समिति की रिपोर्ट (1810) और हाउस आफॅ कॉमन्स की प्रवर समिति (Selecting committee) कि रिपोर्ट (1810) और ग्राम समुदाय को एक 'निगम' या 'नगर' 'लघु गणराज्य्' के रुप में माना गया है। सर चार्त्स मेटकाफ, (Sir Charles Metcalfe) जेम्स मिल (James Mill), मान्स्टुअर्ट एलफिन्सटन (Elphinstone), सर टेनरी मेन (Sir H. Maine) आदि ने ग्राम समुदाय के संदर्भ में अध्ययन किया है। उनकी नजर में ग्राम एक 'निगम' की तरह था। हेनरी मेन के अनुसार भूमि पर एक संप्रदाय विशेष का स्वामित्व होना ग्राम समुदाय की एक सामान्य विशेषता थी। बॉडेन पावेल ने लिखा है कि "ग्राम समुदाय काश्त के अन्तर्गत लायी गयी जोतों का समूह है, जिसके साथ कुछ परती जमीन भी हो सकती है और नहीं भी और सामान्यत: उनमें एक-दूसरे से सटे मकान भी हो सकते हैं जो रिहायशी होते हैं।"[1] एरिक जे मिलर (E.J Miller) ने केरल के ग्रामों के स्वरुप पर शोध कार्य करने के पश्चात् लिखा है- "हालांकि आंशिक रुप से लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के कारण और विशेष रुप से उसके सघन न होने के कारण केरल का ग्राम भारत के अन्य ग्रामों की तुलना में उतना आत्मनिर्भर नही है।"[2]

उपरोक्त मतों में ग्राम समुदाय के संबंध में समानता नही है परन्तु इतना तो तय है कि ग्राम समुदाय बाजार के लिए उत्पादन का कार्य करते थे वे स्वयं को एक आत्मनिर्भर एकक के तौर पर विकसित कर लिया। किसानों में जातिगत सामंजस्य नें भी एक संगठित संस्था बनने में मदद की। यह संस्था असली ग्राम, दाखिल ग्राम, एम्मा ग्राम, रैती ग्राम तथा ताल्लुका ग्राम थे। असली ग्राम उस ग्राम को कहा जाता था जो पुरी तरह से बसा हुआ था। यह पूराना ग्राम होता था जो पूर्व से ही बसा होता था। 'दाखिली' ग्राम नये बसे हुए ग्राम होते थे जो संभवत: पुराने ग्राम से ही अलग कर कायम किया जाता हो। सियाकनामा में हम इसका उल्लेख पाते हैं। जिन ग्रामों को 'मदद-ए-माश' 'माफी' और 'वक्फ' के तौर पर मालगुजारी से छूट हासिल हो व अनुदान दिए जाते थे, वह 'एम्मा ग्राम' था। रैती ग्राम वे थे जो ऐसे जमींदारों के ताल्लुकों से बाहर थे जो पेशकश का भुगतान करते थे या जिनके पास मुक्त भूमि थी। रैती ग्रामों के रैयत जमींदारों को मालगुजारी (भू-राजस्व्) के हस्तांतरणीय अधिकार थे जो कि रियाया (प्रजा) को नहीं थे। ताल्लुकदारों को मालगुजारी के मामले में रैती ग्रामों को शामिल करने की अनुमति नहीं थी।

"ताल्लुका ग्राम का अभिप्राय ऐसे ग्राम समूह से था जो एक जमींदार के पास होते थे और वह पेशकश देता था। इसका मतलब ग्रामों के ऐसे समूह से भी था जो कई जमींदारों के लिए काम करने वाले एक व्यक्ति को मालगुजारी भुगतान करता था।"[3]

ग्राम समुदाय की ग्राम संरचना में जमींदार की भूमिका काफी अहम थी। दक्कन में वतनदार या अलुतेदार स्थायी अधिकारी होते थे और ग्राम प्रशासन को सुचारु दंग से संचालन हेतू काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। 'पटेल', 'कुलकर्णी', 'देशमुख', 'देशपांडे', और 'कागुला' वतनदार की क्षेणी में आते हैं। ग्राम समुदाय का दूसरा महत्वपूर्ण समूह है, "खुदकाश्त।"

"खुदकाश्त" का अर्थ है", किसानों द्वारा उस भूमि पर जिसके वे मालिक है, अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से स्वयं खेती करना।[4] महाराष्ट्र के 'मिरासदार', 'कन्भी' या थलकारी को खुदकाश्त की श्रेणी में रखा जा सकता है। खुदकाश्त वर्ग ग्राम समुदाय में उच्च वर्ग या शासक वर्ग की श्रेणी में आता है क्योंकि उनके स्वयं के चारागाह, वनभूमि, जलाशय, मत्स्य क्षेत्र, ग्राम सेवकों या अधिकारियों की सेवा लेने तथा खाली खेतों को अपने प्रयोग में लाने हेतु उन्हें कई जातिगत विशेषाधिकार हासिल थे।

ग्राम समुदाय का एक दूसरा वर्ग था 'पाहीकाश्त'। पाहीकाश्तकारों की स्थिति दोयम दर्जे की थी। उन्हें अपने गाँव में उसकी स्थिति खुदकाश्त की सी थी और दूसरे गाँव में पाहीकाश्त की। वे एक ऐसे किसान मालिक थे जिनकी जोत अपने निवास वाले गाँव में न होकर दूसरे गाँव में होती थी। पाहीकाश्त को हम तीन वर्गों में रख सकते हैं पहले दर्जे में 'खुदकाश्त' हैं जो एक गाँव में रहते हैं तथा पड़ोसी गाँव के खेतों में काश्त (खेती) करते हैं। दूसरे दर्जे में वे किसान जो पटेलों की खुदकाश्त को या जमींदारों की मदद-ए-माश से प्राप्त इनाम वाली भूमि पर खेती करते थे। तीसरे दर्जे में वे किसान थे जिनके पास जोत के साधान यथा-हल, बैल आदि होते थे और वे पड़ोसी ग्राम के गैर-कृषि भूमि को कृषि-योग्य बनाते थे।

ग्राम समुदाय का चौथा वर्ग 'मुजारियन' का था।[5] उनका भूमि पर कोई हक नही होता था। वे किसी दूसरे ग्राम से आकर बस जाते थे। उन्हें भूमि को 'रेहन' रखने या बेचने का कोई अधिकार नही था। मुजारियन भी दो प्रकार के होते थे। अल्पकालीन ठेकेदार और दीर्घकालीन ठेकेदार। उन्हें मालगुजारी और मालिकाना का भूगतान करना होता था। उनके ऊपर कृषि कार्य के साथ-साथ कृषि विकास की भी जिम्मेदारी लेनी पड़ती थी।

ग्राम समुदाय के गठन और उसके स्वरुप के संदर्भ में मुगल अभिलेखों में मुकद्दम और पटवारी का उल्लेख हम पाते हैं। पटवारी (लेखाकार) के अलावा मुकद्दम गाँव का एक मात्र अधिकारी था। वह सरकारी कर्मचारी नही था और जवाबदेही पूर्ण न करने पर सरकार उसे हटा सकती थी। उसका पद वंशानुगत था। गाँव से तय शुदा मालगुजारी वसूल करना उसकी जिम्मेदारी थी। उन्हें उनके काम के बदले में नकद या राजस्व मुक्त भुमि के रुप में 2½ : पारिश्रमिक मिलता था। पटवारी अर्ध सरकारी कार्यकर्त्ता था वह गाँव के आमद-खर्च (आय-व्यय) का लेखा-जोखा रखता था। उसे परिश्रमिक के तौर पर राजस्व का 1% भाग मिलता था।[6] भूमि पट्टे के आधार पर ग्राम समुदाय के गठन से आसानी से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भूमि पर कोई सामुदायिक स्वामित्व नहीं था। यदि सामुदायिक स्वामित्व की बात मान भी ली जाय तब ग्राम समुदाय की मंजूरी के बगैर कोई उसे ट्रांसफर नहीं कर सकता था। मुगल सरकार ने मालगुजारी का निर्धारण लोगों के साथ सीधे तौर पर किया: चाहे वह जमींदार हो, खुदकाश्त हो, पाही या फिर मुजारियन। उसने पूरे ग्राम समुदाय के साथ ऐसा नहीं किया, हम ऐसे कतिपय दृष्टान्त पाते हैं जब मुगल सरकार में तकावी ऋण तथा राजस्व की माफी सीधे तौर पर व्यक्ति को दी गयी न कि भूमि धारक के तौर पर पूरे गाँव को। मलवा व खरच-देह जैसे कर्ज के आधार पर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि सामुदायिक मालिकाना हक था। 'मलवा' नामक उपकर राजस्व लेखा-कारों और दौरे पर आने वाले मालगुजारी अधिकारियों के खर्च की पूर्ति हेतु निर्मित सामान्य ग्राम निधि के अन्तर्गत आता था। अकबर ने इसे गैर-कानुनी घोषित कर दिया। 'खरच-देह' मुकदम की ड्यूटी पर होने पर राशन से संबंधित आकस्मिक व्यय की मदें थी।[7] गाँव की परती भूमि और चरागाह भूमि ग्राम समुदाय की न होकर राज्य की होती थी और ग्राम सीमा अभिलेखों में नियमित रुप से उनकी प्रविष्टि की जाती थी। ऐसी भूमि को यदि कोई व्यक्ति कृषि हेतु उपयोग में लाना चाहता था तो उसे ग्राम समुदाय से नहीं बल्कि सरकार से इसकी मंजूरी लेनी पड़ती थी। मोरलैंड ने सर्वप्रथम यह तथ्य स्थापित किया कि मुगल साम्राज्य में जागीरदारों के द्वारा काष्तकारों का उत्पीड़न किया गया। अकबर के शासनकाल में भू-राजस्व उत्पादन का 1/3 भाग था जबकि औरंगजेब के समय बढ़ाकर ½ कर दिया गया।[8] इरफान रबीब के अनुसार जागीरदार किसी न किसी बहाने काश्तकारों व यहाँ तक कि गाँवों को बेच देते थे या उन्हें लूट लेते थे। निश्चत तौर पर इस कृत्य से कृषि उत्पादन में कमी आयी, क्योंकि जागीरदार के जुल्म के कारण काश्तकार अपनी जात की जमीन छोड़कर अन्यत्र चले जाते थे। यह प्रक्रिया लगातार बढ़ती चली गयी।[9]

कुछ ग्राम ऐसे भी थे जो विद्रोही हो जाया करते थे, जिन्हे जोरतलब या मवास कहा जाता था। अलगाव एवं मालगुजारी के क्षेत्र में व्याप्त भिन्न्ता के कारण ये अन्य गाँवों को प्रभावित नहीं करते थे। परंपरागत तौर पर जमींदारों का केन्द्रीय सत्ता से

उत्पादन-अतिरेक में अपने हिस्से को लेकर संघर्ष होता रहता था। इरुान हबीब ने साम्राज्य में जमींदारों की हैसियत कर समाहर्त्ता जैसा बताया है।[10] जमींदारों को अपने कार्य के बदले में सरकार से खराज का कुछ भाग लेने का अधिकार था। मुगल शासन में सरकार जमींदार की उपस्थिति का फायदा तो उठाती थी लेकिन उन पर विश्वास कम ही करती थी। ऐसी हालत में जमींदार का केन्द्रीय सत्ता से संघर्ष चलता रहता था। इस संघर्ष में जमींदार अक्सर अपने साथ काश्तकारों को भी मिला लिया करते थे। जमींदारों की शक्ति को खंडित करने के लिए सूबे, सरकार तथा परगना स्तर पर सशक्त शासन स्थापित करने का प्रयास किया गया। कुछ जमींदारों को मनसबदार भी नियुक्त कर दिया गया। किन्तु इसके बावजूद भी वे गंभीर चुनौती पेश करते रहे। जाति तथा वंश की दृष्टि से ग्रामों का स्वरूप विषमजातीय था। तब भी वहाँ अंतर्जातीय संबंध थे जो उनको एक समुदाय के रूप में बाँधे रखते थे। गाँवों की विभिन्न जातियाँ और वर्ग समय-समय पर स्थान परिवर्तन करते थे। उनके ऐसा करने से गाँवों का स्वरूप अंतर्जातीय बन गया, उनमें परस्पर आर्थिक संबंध दृढ़ होते गए और धार्मिक पुर्वाग्रह लुप्त होते गए। इस संदर्भ में बी. आर. ग्रोवर की टिप्पणी हैं "कृषि वर्गों में समान आर्थिक हित विकसित हो गया ताकि गाँव कृषि उत्पादन की दृष्टि से एकीकृत एकक बन गया।"

निष्कर्षत

यह कहा जा सकता है कि मुगलकाल में ग्राम समदाय की अवधारणा और राजस्व प्रशासन एक एकक के रूप में माना जाता था। सामुहिक कार्य-कलापों तथा सामाजिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार के समान हितों के कारण यह कहा जा सकता है कि ग्राम-वासियों ने समुदाय बना लिया था। ग्राम समुदाय वस्तुत: ऐसे क्षेत्र थे जहाँ ग्राम-वासी सामुहिक रूप से कार्य करते थे। परन्तु इस ग्रामीण समुदाय का अभिप्राय सामुहिक या जातीय स्वामित्व, आत्मनिर्भर एकक और पंचायत जैसे प्रशासन आदि से नहीं है। ग्राम-समुदाय की अवधारणा मुगलकाल में केवल सीमित अर्थों में ही थी।

पारिभाषिक शब्द और उनके अर्थ

मदद-ए-माश	–	विद्वान अथआ धार्मिक लोगों के सहायतार्थ सरकार द्वारा निर्धारित राजस्व, अथवा परोपकार के प्रयोजनार्थ आर्थिक सहायता।
वक	–	अनुदान।
मालगुजारी	–	भू-राजस्व।
पटेल	–	ग्राम का मुखिया।
कुलकर्णी	–	ग्राम का लेखपाल।
मिरासदार	–	भू-संपत्ति पर वंशानुगत उत्तराधिकारी।
रेहन	–	गिरवी।
मुकद्दम	–	मुखिया, आम तौर पर किसी ग्राम, जाति या वंश के प्रमुख व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है। उन्हें अर्द्धसरकारी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इनमें से को कई को खूत, चौधरी तथा भूमिया कहा जाता था।
पट्टा	–	राजस्व इकट्ठा करने वाले अधिकारी द्वारा राजस्व देने वाले को दिया गया दस्तावेज।
पटवारी	–	गाँव का लेखपाल।
माफी (मुआफी)	–	सेवा अथवा धर्म के लिए दिए गए दान के आधार पर राजस्व मुक्त भूमि।
तकावी	–	सरकार द्वारा किसान को दी गयी पेशगी रकम।
जोरतलब	–	बलात् या बलपूर्वक।

संदर्भ

1. B.H. Badan-Powell- Land Systems of British India,3 vols oxtord,1992
2. Burton Stein- Peasant,State and Society in Medieval, South India, Delhi,1980.
3. G.N. Sharma- Mewar and the mughal Emperors, Agra , 1954.
4. Irfan Habib- The Agrarian System of Mughal India 1556-1707,Bombay, 1963,
   "The Social Distribution of Landed Property in Pre- British India (A Historical survey)
5. M.A. Ansari- English Travellers in India,Delhi,1974
6. N.A. Siddiqui- Land Revenue Administration Under the Mughals, 1700-1750, Bombay,1970.
7. R.C. Majumadar- The Mughal Empire, Bombay 1974.
8. Irfan Habib- The Agrarian system of Mughal India, 1556-1707 Bombay, 1963.
9. A.J. Qaiser – Distribution of the Revenue Resources of the Mughal Empire among the Nobility," PIHC, Allahabad Session, 1965.
10. Andre wink- Land and Sovereignty in India; Agrarian Society and politics under the Eighteenth century. Marathi swarajya, Cambridge1986.

मुगलकालीन (1658 ई.-1719 ई.) भारत में आर्थिक स्त्रोतों का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० सुरेन्द्र कुमार सिंह

किसी भी देश की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। इसके लिए शासक आय के साधन तलाश करता है। उतर मुगलकालीन शासकों के समय में भी विभिन्न प्रकार के कर लगाये गए थे जिनसे शासन को पर्याप्त आय होती थी। औरंगजेब को एक सुसंगठित साम्राज्य प्राप्त हुआ था। कोश में अपार सम्पति थी किन्तु साम्राज्य-विस्तार तथा निरन्तर युद्धों में उसने पर्याप्त धन व्यय किया। उसने उस धन की पूर्ति के लिए आय के नवीनतम साधनों की खोजने के बजाय अपनी धार्मिक हठवादिता के कारण अनेक पुराने प्रचलित करों को भी बन्द कर दिया। परिणामस्वरूप शाही कोश रिक्त होता गया भविष्य में उसे तथा उसके उत्तराधिकारियों को आर्थिक कठिनाइयों का निरन्तर सामना करना पडा उत्तर मुगलकाल में शाही आय के निम्न प्रमुख स्त्रोत थे–

राहदारी कर (मार्ग कर)

राहदारी कर प्रत्येक मुख्य मर्गो पर सीमा पर और नाव घाटों पर लिया जाता था जिससे शासन को पर्याप्त आय होती थी। यह कर प्रत्येक घर से या जिस जमीन पर कोई दुकान लगाकर बैठता था। उससे भी वसूल किया जाता था[2] इस कर का प्रचलन सम्पूर्ण साम्राज्य में था इस प्रकार यह कर समस्त छोटे-बड़े व्यवसायियों, कसाई, कुम्हार, माली छीपे, जौहरी एवं सेठ-साहूकार सभी को देना पड़ता था। बाजार की जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े पर भी यह कर लिया जाता था। प्रतिवर्ष इस कर से भारी आय हाती थी। औरंगजेब ने बाद में राहदारी कर को समाप्त कर दिया था।[3] इस कर को बन्द **कार्यान्वित** करने के लिए सारे बाजारों में गुर्जबरदारों और अहमदियों द्वारा आदेशों की घोषणा कराई गई थी।[4] इससे सम्बंधित निर्देश उसके रक्कात व खतूत में सुरक्षित है।[5] परन्तु लोगों की लोभी प्रवृत्ति के कारण राहदारी कर पूर्णत: बन्द न किया जा सका। दूरस्थ स्थानों के फौजदार और जागीरदार कर एकत्र करते ही रहे। माल विभाग के कर्मचारियों ने भी लोभवश इन घोषणाओं पर कोई ध्यान न दिया। जब वह लोग जागीरदारों को वेतन देते थे तो इन करों की राशि घटा लेते थे फलस्वरूप जागीरदार भी इन करों की वसूली बन्द नहीं करते थे। कहीं-कहीं तो करों की दर मे वृद्धि भी कर दी गई थी।[6] बादशाह को जब आदेश उल्लंघन की सूचना मिलती तो अपराधी के मनसब में कमी कर देता या उनके इलाके में कुछ समस के लिए गुर्जरबरदार बैठा दिए जाते थे। परन्तु वह अपने संपोषकों द्वारा पुन: मनसब पूरा कर लेते थे।[7] इस प्रकार कर बन्द करने का प्रभाव अस्थायी होता था।

औरंगजेब के बाद बहादुरशाह तथा जहादार शाह के समय में भी राहदारी कर आय कर एक स्तोत रहा परन्तु जितनी रकम उस कर से वसूल की जाती थी उसका एक अंश ही शाही कोश में जमा हो पाता था क्योंकि जागीरदार अपने-अपने क्षेत्रो। में उसे अलग-अलग दर से वसूल करते थे जबिक शाहि कोश में एक निशिचत धनराशि ही राहदारी कर के रूप में उनकी आय से काट ली जाती थी।

फर्रूखिसयर के शासन में भी राहदारी कर वसूल किया जाता था। 20 अक्टूबर 1713 ई. को बादशाह ने देहली से बाहर बारहपुला से लेकर दिक्षिण में चम्बल नदी तक पूर्व में आगरा से लेकर पशिचम में आमेर नरेश जयपुर की सीमाओं तक शाही मार्गो की राहदारी का अधिकार, जाट नेता चूरामन की सौप दिया था।[8]

धार्मिक स्नान एवं तीर्थ यात्रा पर कर-इलाहाबाद प्राचीन काल से ही, हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ स्थल रहा है। उतर मुगलकालिन शासकों के समस में यहॉ पर आने वाले तीर्थयात्रियों से एक निशिचत धनराशि करके रूप में ली जाती थी।[9] प्रत्येक बार तिवेणी स्नान करने पर भी कर वसूल किया जाता था। औरंगजेब के समय में यह कर 6.25 रूपये प्रति व्यकित की दर से लिया जाता था इस कर से शाहि कोश में पर्याप्त धन आ जाता था।[10] फर्रूखसियर ने अपने शासन के अन्तिम वर्ष में राजा अजीत सिंह की सलाह से तीर्थ यात्रा कर माफ कर दिया था।

समय-समय पर हिन्दुओं के धार्मिक मेले लगते रहते थे। उन मेलों में व्यापारी दूर-दूर से तरह-तरह के समान विक्रय के लिए लेकर आते थे। उनकी बिक्री पर भी एक प्रकार का कर लिया जाता था। औरंगजेब ने उन मेलों तथा मुस्लिम सन्तों की मजारों पर लगने वाले मेलों पर भी रोक लगा दी थी परन्तु बाद के बादशाहों के समय उन मेलों पर लगाई गई पाबन्दियों के पालन का काई उदाहरण नहीं मिलता है।

जजिया-एक प्रकार का धार्मिक कर था जो हिन्दुओं से वसूल किया जाता था। अकबर ने उसे बन्द कर दिया था। उसके बाद के शासकों ने भी उस कर को नहीं लगाया परन्तु औरंगजेब ने अपने शासन के 22वें वर्ष में जजिया कर पुनः लागू कर दिया।[12] जिससे 52 लाख रूपये की वार्षिक आय होती थी।[13] बहादुरशाह के समय में जजिया की आय घटने लगी थी।[14] बहादुरशाह और जहाँदार शाह के समय में जजिया समापन के शाही आदेश भी जारी किये गये थे। परन्तु वह लागू न हो पाये और जजिया वसूल होती रही। किन्तु फर्रूखसियर ने गद्दी पर बैठते ही जजिया को समाप्त करने का फरमान जारी किया और कार्यान्वित भी हुआ।[15]

महसूल कर

यह भी शासन की आय का प्रमुख स्तोत था। प्रत्येक नाके पर एक दारोगा नियुक्त रहता था जो किसी भी व्यक्ति को बिना शाही आदेश पत्र के मार्ग से गुजरने नहीं देता था। साथ ही वही इस बात पर भी ध्यान रखता था कि यदि व्यक्ति व्यापारी है तो वह किस चीज का व्यापार कर रहा है तथा कैसा सामान लेकर गुजर रहा है। प्रत्येक गाड़ी पर 4 रूपये महसूल कर रथ से केवल एक रूपया महसूल वसूल किया जाता था। नावों को बिना गिने ही पास कर दिया जाता था तथा उनके महसूल की दर अलग होती थी।[16] औरंगजेब ने 9 मई 1667 ई. को एक फरमान द्वारा सम्पूर्ण साम्राज्य में मुस्लिम व्यापारियों को चुंगी कर से मुक्त कर दिया था।[17] कुछ समय पस्चात भूमी कर अधिकारियों की रिपोर्ट तथा भले एवं अनुभवी लोगों की शिकायते मिलीं कि मुसलमान व्यापारी अपने साथ हिन्दुओं का भी माल पार कर देते है।[18] अतः औरंगजेब ने दूसरा फरमान 5 मार्च 1682 ई. को जारी किया जिसके अनुसार आदेश दिया गया कि मुसलमानों से 2.50 प्रतिशत और हिन्दूओं से 5 प्रितशत महसूल लिया जाये।[19]

अंग्रेज व्यापारी 1649 ई. के बाद से केवल दो प्रितशत ही महसूल कर देते थे और वह भी वस्तु की उत्पादन लागत पर ही अदा किया जाता था। औरंगजेब ने उसे बढ़ा कर 3.50 प्रतिशत कर दिया परन्तु वह सफल न हो सका क्योंकि शिवाजी द्वारा सूरत पर आक्रमण के समय शाही सेना अंग्रेजों को सुरक्षा न प्रदान कर सकी थी जिससे अंगेजों को वह कर स्वतः ही घट कर 2 प्रतिशत रह गया।

बहादुरशाह तथा जहाँदारशाह के शासन में भी अंग्रेज 2 प्रतिशत ही महसूल अदा करते रहे। फर्रूखिसयर के समय में उन्हें विशेष व्यापरिक सुविधा प्राप्त हो गयी थी। बादशाह के आदेशानुसार उन्हें बंगाल तथा गुजरात में एक निश्चित राशि वार्षिक शाही कोश में जमा करने मात्र से ही बिना किसी महसूल के, व्यापार की छूट मिल गई थी।"[20] यह सुविधा केवल अंग्रेजों को ही प्राप्त थी, अन्य विदेशी व्यापारियों को पूर्व की भाँती ही महसूल देना पड़ता था, उन्हें किसी प्रकार की छूट न थी।

आय के अन्य स्त्रोत

उपरोक्त वर्णित करों के अतिरक्ति, अन्य कई प्रकार के भी कर, उत्तर मुगल काल में लगायें जाते थे।

सन् 1669-70 (1080 हि0) में एक फरमान जारी हुआ कि इस वर्ष से हिन्दू, अपने पशु-धन का 5 प्रतिशत, और मुसलमान 2.50 प्रतिशत की दर से कर शाही खजाने में जमा करेंगे।[21] 1682 ई. में मुद्रण व्यय हिन्दुओं पर 5 प्रतिशत तथा मुसलमानों पर 2. 50 प्रतिशत की दर से लागू हुआ।[22]

बागों की आय पर हिन्दूओं से 20 प्रतिशत तथा मुसलमानों से 16.6 प्रतिशत के हिसाब से उत्पादन शुल्क भी लिया जाता था।[23]

उत्तर मुगलकाल में भाँग, पोस्त आदि मादक वस्तुओं की खेती से भी शासन को भारी आय होती थी। किन्तु बाद में औरंगजेब ने शासन के वित्त मन्त्री राजा रघुनाथ को ओदश दिया कि वह समस्त प्रान्तीय दीवानों को भाँग की खेती पर कठोर प्रतिबंध लगा दिया गया था।[24] कुछ समय पश्चात् औरंगजेब ने अन्य मादक वस्तुओं की खेती, विक्रय तथा उनके खुलेआम प्रयोग पर भी रोक लगा दी।[25] पोस्त की खेती केवल लायसेन्स प्राप्त व्यक्ति ही कर सकता था। भाँग के अतिरिक्त तम्बाकू, शराब तथा अन्य मादक वस्तुओं के विक्रय तथा उपयोग पर भी औरंगजेब ने प्रतिबंध लगा दिया था।[26] परन्तु यह प्रतिबंध अन्य उत्तर मुगलकालीन शासकों के समय में इतने कठोर रूप में लागू न रह सके क्योंकि वे स्वयं शराब का प्रयोग करते थे।

उपरोक्त करो के अतिरिक्त सरसुमारी, बजसुमारी, बारगाही, चराई और तुआना आदि अन्य कर भी आय के साधन थे।

शासन के वे मनसबदार या जागीरदार जिनके कोई सन्तान नहीं होती थी, उनकी सम्पति राज्य में मिला ली जाती थी: परन्तु बादशाह इसमें छूट भी दे सकता था जैसे कि बहादुरशाह ने गुरू गोविन्द सिंह की सम्पति के विषय में दी थी।[27]

संदर्भ संकेत सूची

1. खाफी खाँ, मूल जिल्द 2, पृ. 87
2. वही।
3. वही।
4. वही।
5. मौलवी सैयद हाशमी फरीदाबादी, तारीख-ए-हिन्द, जिल्द 3, द्वितीय संस्करण 1939, दारुल मतबा जामिया उस्मानिया सरकार-ए-आली हैदराबाद (दकिन) पृ. 153
6. खाफी खां, जिल्द 2, पृ. 88-89
7. वही, पृ0 89
8. अखाबारात, 13 रबी-उस्-सानी व 11 शव्वाल 1125 हि., इबरत नामा, पृ. 62
9. भंडारी, खुलासत-उत-तवारीख, पृ. 26
10. मनुची, भाग 2, पृ. 82
11. सतीश चन्द्र जजिया इन दी पोस्ट औरंगजेब पीरियड, प्रोसीडिंग आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस नाईथ सेशन, पटना 1946, पृ. 323
12. मआसिर-ए-आलमगीरी, पृ. 174
13. खाफी खाँ, मूल जिल्द 2, पृ. 404
14. वहीं।
15. खाफी खाँ, मूल जिल्द 2, पृ. 816 मिरात-ए-अहमदी, जिल्द 2, पृ. 239 कामवार खां, पृ. 442
16. टेवर्निंयर, जिल्द 1, पृ. 117
17. खाफी खां, मूल जिल्द 2, पृ. 304
18. वहीं, पृ. 230
19. वही।
20. फर्रूखासियर-फरमान, 1717
21. मिरात-ए-अहमदी, जिल्द 1 पृ. 304
22. वही।
23. वही पृ0 275
24. वही पृ0 247
25. वही पृ0 282
26. मनुची, भाग 2, पृ. 88
27. बहादुरशाह नामा की 17 नवम्बर, 1708 ई. की एक रिपोर्ट के अनुसार।

हिन्दी की चिंतन परंपरा में काव्य लक्षण

डॉ० संजीव कुमार

सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, फारबिसगंज महाविद्यालय, फारबिसगंज

हिन्दी साहित्य के आदिकाल और भक्तिकाल काव्य-सृजन की दृष्टि से समृद्ध रही है। लेकिन संस्कृत में जो काव्य-शास्त्रीय चिन्तन की एक सुदीर्धा परम्परा भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक मिलती है, उस संदर्भ में इस अवधि में कोई चिन्तन-परंपरा नहीं मिलती है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल और भक्तिकाल में काव्यशास्त्र पर अलग से विचार नहीं किया गया। तुलसीदास और कबीरदास के कुछ पदों में काव्य लक्षण के संकेत तो मिलते हैं पर विधिवत काव्य लक्षण नहीं मिलता। यथा :

"सहज कवित कीरत विमल सोइ आदरहि सुजान"[1]

"तुम्ह जिनि जानौ गीत है, यहू निज ब्रह्म विचार"[2]

रीतिकाल में रीतिकालीन कवि-आचार्यों में काव्य लक्षण निरूपण की परिपाटी मिलती है। लेकिन वे कवि-आचार्य केवल संस्कृत काव्य लक्षणों का अनुकरण ही करते रहे। उनमें मौलिकता का अभाव है। आधुनिक काल में आकर हिन्दी साहित्य में भी काव्य-चिन्तन की परम्परा मौलिक रूप से विकसित हुई। रीतिवाद का विरोध करते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शब्द और अर्थ का संदर्भ व्यापक सामाजिक गतिशीलता से जोड़ दिया। भारतीय और पश्चिमी काव्य-चेतना पर ध्यान देते हुए उन्होंने पश्चिमी कवि-आलोचक वर्ड्सवर्थ की भाँति कविता के लिए बोलचाल की भाषा के प्रतिमान की वकालत की। मिल्टन से प्रभावित होकर उन्होंने कहा "कविता को सादा, प्रत्यक्षमूलक और रागयुक्त होना चाहिए।'' यहाँ सादा से तात्पर्य है-झूठे चमत्कारवाद से मुक्ति। द्विवेदी जी ने 'कवि और कविता' नामक निबंध में लिखा कि-"सादगी, असलियत और जोश यदि ये तीनों गुण कविता में हो तो कहना ही क्या है.....अतएव कवि को असलियत का सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए।'' वे 'असलियत' के साथ 'कल्पना' से नई-नई बातों की सूझ का संबंध भी अनदेखा नहीं करते।

नवजागरणकालीन मानसिकता का सबसे प्रबल विस्फोट आचार्य, रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'कविता क्या है' में हुआ। रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य-चिंतन पर एक स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी-'रस मीमांसा'। कविता के संदर्भ में उनका मत है : "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इस मुक्तावस्था के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधन करती आई है उसे कविता कहते हैं। इस साधाना को हम भावायोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।''[3]

जब तक कोई अपनी पृथक सत्ता की भावना को उपर किए इस क्षेत्र के नाना रूपों और व्यापारों को अपने योग-क्षेम, हानि-लाभ, सुख-दु:ख आदि से सम्बद्ध करके देखता रहता है तब तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक सत्ता की धारणा से छूटकर अपने आपको बिल्कुल भूलकर विषुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। अपने हृदय को लोकहृदय में मिला देना ही 'रसदषा' है। इसी 'रसदषा' की स्थिति में लोकमंगलकारी श्रेष्ठ काव्य की रचना होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि में कविता शब्द-विधान की शक्ति है।

हिन्दी के छायावादी कवियों ने काव्य लक्षण पर नए ढंग से विचार किया।

निराला ने स्वच्छंदतावादियों की तरह कविता को 'विमल हृदय का उच्छ्वास' कहा।

"तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्तकामिनी कविता'[4]

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा के मूल से जोड़ा और काव्य को आत्मा की 'संकल्पनात्मक अनुभूति' कहा।

"काव्य आत्मा की संकलनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेशण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है.....आत्मा की मनन शक्ति की असाधारण अवस्था, जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारूत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पनात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।''[5]

जयशंकर प्रसाद की इस परिभाषा में सौदर्य और सत्य के सामंजस्य के लिए प्रातिभ-अनुभूति पर विषेश बल दिया गया है।

छायावाद के कवि-आलोचकों ने पाश्चात्य साहित्य को पढ़ा था, परन्तु उनकी अपनी मौलिकता थी। इन कवि-आलोचको पर पाश्चात्य साहित्य और उसकी आलोचना का भी निश्चित प्रभाव है, लेकिन वे नकलची नहीं हैं। वर्ड्सवर्थ ने काव्य की परिभाषा दी थी- "Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotions recollected in tranquility"[6]

(कविता बलवती भावनाओं का सहज उच्छलन होती है। शांत अवस्था में भाव के स्मरण से उसका उद्‌भव होता है)

कॉलरिज ने काव्य की परिभाशा दी-

'' Poetry is the best words in the best order"

(कविता उत्तमोतम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम विधान है)

इन दोनों काव्य-परिभाषाओं का मूलाधार भावना और कल्पनाओं के योग से निर्मित प्रगीत काव्य है। प्रगीतात्मकता छायावाद की भी प्रमुख विषेशता है। इसलिए छायावादी काव्य में कल्पना और भावना की प्रमुखता मिलती है।

काव्य लक्षण क्या है? यह प्रश्न प्रगतिवादी काव्य चिंतन में नए ढंग से उठाया गया। यहाँ कविता की व्याख्या उसको 'विकासमान सामाजिक वस्तु' मानकर की गई। ऐसी वस्तु जिसका सृजन व्यक्तिगत प्रयास का परिणाम होते हुए भी मूलत: सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमि पर केंद्रित होता है। प्रगतिवादी काव्य के बारे गजानन माधाव मुक्तिबोध ने विवेचन करते हुए लिखा है-

"रोमेंटिक कवियों की भाँति आवेषयुक्त होकर, आज का कवि भावों के अनायास, स्वच्छंद अप्रतिहत प्रवाह में नहीं बहता। इसके विपरीत, वह किन्हीं अनुभूत मानसिक प्रतिक्रियाओं को ही व्यक्त करता है। कभी वह इन मानसिक प्रतिक्रियाओं की मानसिक रूपरेखा प्रस्तुत करता है, कभी वह उस रूपरेखा में रंग भर देता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह व्याकुलता या आवेष का अनुभव नहीं करता। होता यह है कि वह अपने आवेष या व्याकुलता को बाँधाकर, नियंत्रित कर, उपर उठाकर, उसे ज्ञानात्मक संवेदन के रूप में या संवेदनात्मक ज्ञान के रूप में प्रस्तुत कर देता है।''[8]

प्रगतिवादी काव्य-चिंतन मार्क्सवाद से प्रभावित है और इसकी मान्यता है कि काव्यानुभूति की बनावट में सामाजिक सौंदर्यानुभूति की भूमिका प्रधान होती है। डॉ. रामविलास शर्मा ने माना है कि "वह (काव्य) एक महान सामाजिक क्रिया है- जो सामाजिक विकास के समानांतर विकसित होती रहती है।''[9]

प्रगतिवादी कवियों-आलोचकों की तुलना में प्रयोगवादी तथा नयी कविता के कवि-आलोचकों का काव्य-चिन्तन अलग है। इन कवि-आलोचकों की राय में काव्य के मूल में मानवीय संवेदना की सक्रियता है। माननीय यथार्थ की तरह मानवीय संवेदना भी गतिशील-परिवर्त्तनशील है। प्रयोगवाद और नयी कविता के कवि-आलोचक अज्ञेय ने बदले हुए रागात्मक संबंधों की बात उठाई है। परिवेश के साथ भावना तथा चेतना में भी परिवर्त्तन हुआ है-उसने पुराने संस्कारगत रागात्मक संबंधों को बदल दिया है। रघुवीर सहाय के काव्य-संकलन 'सीढियों पर धूप' में की भूमिका में अज्ञेय ने कहा-"काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि-धर्म इसी परिभाषा से नि:सृत होते हैं।"

शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार की कृति बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं, सारे सामाजिक संदर्भ भी यहीं से निकलते हैं। इसी में युग-सम्पृक्ति

का और कृतिकार के सामाजिक उत्तरदायित्व का हल मिलता है या मिल सकता है। नयी कविता के दौरान दो बातों पर बहस छिड़ी थी 'नया क्या है' और 'कविता क्या है'? 'नया क्या है' से जीवित प्रश्न था 'कविता क्या है'? जगदीषगुप्त ने इस संदर्भ में कहा- ये दोनों प्रश्न परस्पर सम्बद्ध और एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्योंकि कविता में नवीनता की उत्पत्ति वस्तुतः सच्ची कविता लिखने की आकांक्षा से ही उत्पन्न होती है।.....जो कथन सृजनात्मकता तथा संवेदनीयता से रहित हो उसे किसी भी स्तर पर कविता नहीं कहा जा सकता। जगदीष गुप्त ने कविता की परिभाषा दी-

"कविता सहज आंतरिक अनुशासन से युक्त अनुभूति-जन्य सघन लयात्मक शब्दार्थ है जिसमें सह-अनुभूति उत्पन्न करने की यथेष्ट क्षमता निहित रहती है।.....यथेष्ट शब्द कवि और पाठक दोनों के इष्ट को अपनी व्याप्ति में समाहित किए है क्योंकि मैं कविता के विशय में कवि के निर्णय को हीं अंतिम निर्णय न मानकर श्रोता या पाठक द्वारा इसकी मान्यता को अनिवार्य समझता हूँ।''10

संदर्भ

1. 'रामचरितमानस', बालकांड, दोहा-14 (क)
2. 'कबीर ग्रंथावली', सं.-भयामसुंदर दास, पद-5
3. 'चिंतामणि', भाग-1, रामचन्द्र शुक्ल, पृ.-192
4. 'तुम और मैं', संग्रह-परिमल, निराला
5. 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', जयशंकर प्रसाद, पृ.-38
6. 'फ्रेंस टू लिरिकल बलाड्स', वर्ड्सवर्थ
7. कुछ महान लेखकों के बारे में बातचीत करते हुए, कॉलरिज, जुलाई 12,1827
8. 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', काव्यःएक सांस्कृतिक प्रक्रिया, मुक्तिबोध पृ.-10
9. 'प्रगति और परंपरा', रामविलास शर्मा, पृ.-130
10. 'नयी कविताः स्वरूप और समस्यायें', जगदीश गुप्त

भारत में राजनीतिक सहभागिता एवं महिलाएँ : एक अध्ययन

विकास कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर

सारांश

जब किसी की दिलचस्पी राजनीति में होने लगती है तो इसे राजनीति के संदर्भ में समूह या जन-सहभागिता कहते हैं। जन-सहभागिता या राजनीतिक सहभागिता को एक-दूसरे का पर्याय माना जा सकता है। विश्व में आज कोई ऐसा समाज नहीं है जहां राजनीति न हो। समाज की व्यवस्था और समाज का संचालन अच्छा रहे इसके लिए राजनीतिक व्यवस्था परम आवश्यक तथ्य है। प्रजातंत्र में राजनीतिक सहभागिता एक महत्वूपर्ण संकल्पना है। समाज का प्रत्येक नागरिक राजनीति को समझने में आज रूचि ले रहा है।

सहभागिता का अर्थ है भाग लेना या भागीदार होना। राजनीतिक सहभागिता में समाज के सदस्य राजनीतिक गतिविधि में प्रत्यक्ष, परोक्ष कम या अधिक मात्र में भाग लेते हैं। ऐसी गतिविधि या क्रिया को राजनीतिक सहभागिता कहते हैं। व्यक्ति की राजनीतिक क्रिया निरंतर हो सकती है, यदा-कदा हो सकती है जिसका सीधा प्रभाव राजनीतिक समाज की व्यवस्था पर पड़ता है। प्राचीन समय में भी जहां राजनीतिक सहभागिता वाली संस्थाएँ होती थी, वहां प्रजातांत्रिक शासन तथा राजनीतिक सहभागिता से वंचित व्यवस्थाओं से निरंकुश शासन प्रणाली रही है।[1]

सहभागिता : अवधारणात्मक फ्रेमवर्क

जनसहभागिता या राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण संकल्पना कही जा सकती है। इसके अभाव में राजनीतिक समाज एक वीरान जंगल मात्र ही रहेगा। परिणाम स्वरूप प्रारंभ से लेकर अब तक के विद्वानों की रूचि राजनीतिक सहभागिता के अध्ययन से रही है। अरस्तू ने तो राजनीतिक सहभागिता को ही आधार मानकर शासन तंत्र का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। आधुनिक समय में राजनीतिक लोगों की संजीवनी बनी हुई है जो राजनीतिक सहभागिता की मात्र पर निर्भर करती है।[2]

समूह अथवा व्यक्ति का राजनीतिक व्यवहार या उसका राजनीति में लगाव या राजनीति से उलझाव ही सामान्यतया राजनीतिक सहभागिता या समूह सहभागिता कहा जाता है। जब कोई व्यक्ति राजनीतिक क्रिया, व्यवहार या थोड़े या अधिक मात्र में संलिप्त हो या राजनीतिक गतिविधि में संलग्न हो तब ऐसी क्रिया को राजनीतिक सहभागिता कहा जाता है।

विभिन्न विद्वानों ने राजनीतिक सहभागिता की निम्नानुसार परिभाषाएं दी हैं -

नोर्मन एच. नीई सिडनी वर्बा- ''राजनीतिक सहभागिता आम लोगों की वे विधि सम्मत गतिविधियाँ है जिनका उद्देश्य राजनीतिक पदाधिकारियों के चयन और उनके द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करना होता है।''[3]

मैकग्लास्की ''राजनीतिक सहभागिता उन स्वैच्छिक क्रियाओं जिनके द्वारा समाज के शासकों के चयन एवं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जन-नीतियों के निर्माण में भाग लेते हैं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''[4]

डी. मैथ्यूज एवं जेम्स डब्ल्यू ''जनता द्वारा प्रत्यक्ष राजनीतिक विचारों को व्यक्त करने से संबंधित प्रत्येक व्यवहार राजनीतिक सहभागिता है।''[5]

राजनीतिक सहभागिता व्यक्ति का ऐसा राजनीतिक कृत्य है जिससे राजनीतिक पद धारकों को चयन व उसकी निर्णयकारिता प्रभावित होती है। आज प्रजातंत्र के युग में जन सहभागिता निश्चित रूप से बढ़ी है। जन सत्ता को व्यवहारिक बनाने का मात्र साधन जनता द्वारा अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन है। लोग वोट देकर एक निश्चित अवधि के लिए अपनी राजनीतिक सम्प्रभुता अपने द्वारा विधिवत निर्वाचित प्रतिनिधि को सौंप देते हैं। यह वोट देना एक राजनीतिक क्रिया है क्योंकि इससे राजनीतिक व्यवस्था की निर्णय कारिता प्रभावित होती है। अत: मतदान राजनीतिक सहभागिता का महत्वपूर्ण उदाहरण है।[6]

राजनीतिक सहभागिता की प्रकृति एवं विशेशताएँ

परिभाषाओं के आधार पर राजनीतिक सहभागिता की प्रकृति एवं विशेषताओं का निर्धारण किया गया है। राजनीतिक सहभागिता की विशेशताएं निम्न प्रकार की हैं[7]-

1. **राजनीतिक क्रिया एवं गतिविधि राजनीतिक सहभागिता है** - राजनीतिक सहभागिता में मनुष्य की राजनीतिक क्रिया गतिविधियाँ सम्मिलित रहती हैं। इसके लिए विभिन्न साधनों का इस्तेमाल व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इन साधनों में हित समूह, दबाव समूह, राजनीतिक दल, आदि में भागीदारी रखना प्रमुख है।

2. **यह शासन की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती है** - व्यक्तियों की ऐसी प्रक्रिया को राजनीतिक सहभागिता कहते हैं, जो शासन व्यवस्था को अथवा जनमानस को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। राजनीतिक क्रिया करने वाला प्रमुख कर्ता व्यक्ति होता है। यह व्यक्ति ऐसी क्रियाओं या गतिविधियों में संलग्न रहता है अथवा उसमें उलझा रहता है। अत: राजनीतिक सहभागिता का अनिवार्य तत्त्व राजनीतिक क्रिया को माना गया है। एप्टर ने जन-परियोजना को भी राजनीतिक सहभागिता ही कहा है।

3. **राजनीतिक सहभागिता में दलों व समूहों की भूमिकाएं महत्वपूर्ण होती है**- विभिन्न प्रकार के दल व दबाव-समूह की भूमिकाएं भी राजनीतिक सहभागिता या समूह सहभागिता के विकास में महत्वपूर्ण होती है। इन्हीं दलों व समूहों के द्वारा नागरिक राजनीतिक कृत्य करता है। राजनीतिक समाजीकरण के विभिन्न अभिकरण भी राजनीतिक क्रिया व गतिविधि में अपना योगदान देते हैं। इन अभिकरणों के द्वारा समूह सहभागिता की गति तेज या कम होती रहती है। उदाहरण के लिए निर्वाचन के समय जनता द्वारा वोट देना और इसके लिए अन्य जनता द्वारा प्रचार करना, जनता को इसके लिए तैयार करना तथा उम्मीदवार के पक्ष में वोट देना ये सभी पृथक-पृथक राजनीतिक कार्य है। किंतु ये सभी राजनीतिक सहभागिता के ही तत्त्व हैं।

4. **राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत ही राजनीतिक सहभागिता स्थापित की जाती है** - किसी भी राजनीतिक सहभागिता की राजनीतिक व्यवस्था की परिधि के बाहर रखकर अध्ययन नहीं कर सकते हैं। अर्थात् राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जितनी भी संकल्पनायें हैं उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक सहभागिता को हम राजनीतिक सहभागिता की संज्ञा दे सकते हैं। अन्यथा गैर राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए नागरिकों के कृत्य या गतिविधि को हम राजनीतिक सहभागिता नहीं कह सकते हैं। अत: सर्वमान्य बात यह है कि इसमें राजनीतिक पक्ष का होना अनिवार्य है।

5. **राजनीतिक सहभागिता एक संचयीमान क्रिया है** - लिमब्राथ ने अपनी पुस्तक ''पॉलिटिकल पार्टीसिपेशन" में राजनीतिक सहभागिता को समुच्चयी क्रिया कहा है। उनका मानना है कि व्यक्ति जब एक क्रिया करता है तो साथ-साथ अन्य राजनीतिक क्रियाएँ भी संपादित करता रहता है। जैसे किसी चुनाव में वोट देने वाला व्यक्ति, वोट के लिये प्रचार भी करता है, धन-जन सहयोग भी करता है तथा राजनीति में उलझाव के अन्य तरीकों से राजनीतिक गतिविधि करता है तो उसकी यह सब गतिविधियां राजनीतिक सहभागिता ही है। इन सभी का कर्ता मुख्य केन्द्र एक व्यक्ति ही होता है। राजनीतिक कृत्य व्यक्ति से होते है समूहों या दलों को नहीं। वस्तुत: ये सभी कृत्य राजनीतिक सहभागिता ही कहे जायेंगे।

6. **राजनीतिक सहभागिता राजनीतिकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करती है**- राजनीतिक सहभागिता के विभिन्न अभिकरणों के द्वारा व्यक्ति को राजनीतिक समाजीकरण एवं राजनीतिक भर्ती की प्रक्रिया भी तेज हो जाती है। राजनीतिक व्यवस्था में व्यक्ति की राजनीतिकरण की प्रक्रिया गति प्राप्त कर लेती है जिससे प्रजातंत्रत्मक मूल्यों के स्थायित्व एवं राजनीतिक संस्कृति में मानवतावाद मूल्यों का विकास होता है।[8]

राजनीतिक सहभागिता के लिये उत्तरदायी कारक

समाज में प्रत्येक व्यक्ति राजनीतिक क्रिया में एक समान भाग नहीं लेता है। कुछ लोग राजनीतिक क्रिया में ज्यादा दिलचस्पी लेते है कुछ कम लेते है तथा कुछ कभी-कभार ही भाग लेते है। कहने को तात्पर्य यह है कि राजनीतिक सहभागिता की मात्र में अन्तर रहता है। कुछ का इसके प्रति आकर्शण, कुछ का विकर्शण तो कुछ का लगाव या झुकाव अधिक तो कुछ को कम रहता है। विभिन्न परिस्थितियां विभिन्न प्रकार से व्यक्ति को सहभागिता स्थापित करने कि लिये जिम्मेदार होती है राजनीतिक सहभागिता के प्रमुख उत्तरदायी कारक निम्नानुसार है[9]-

1. **राजनीतिक उद्दीपक :-** राजनीतिक सहभागिता का पहला और महत्वपूर्ण कारण राजनीतिक उद्दीपक के प्रभाव का होता है। राजनीतिक पर्यावरण यदि अच्छा होता है तो वहां पर राजनीतिक समाजीकरण भी लोगों का अच्छा होता है व्यक्ति को राजनीतिक माहौल में राजनीतिक व्यवस्था अथवा राजनीतिक क्रिया के लिए उत्तेजना अधिक मिलती है। व्यक्ति को राजनीतिक उद्दीपक के लिए जब खुली छूट मिलती है तो राजनीतिक सहभागिता की मात्र उसमें अधिक होती है। राजनीतिक उद्दीपक के लिए जन संपर्क, जन संचार, वार्तालाप, गोश्ठी आदि महत्वपूर्ण साधन होते हैं और सही साधन राजनीतिक सहभागिता स्थापित कराने में महत्वपूर्ण कारक होते है।

2. व्यक्तिगत कारक :- राजनीतिक सहभागिता या जन सहभागिता के लिए व्यक्तिगत कारक भी उत्तरदायी होते है। व्यक्ति के निजी विचार यदि राजनीतिक क्रिया के प्रति सकारात्मक रूख की ओर होते है तब राजनीतिक सहभागिता की मात्र में वृद्धि होती है। राजनीतिक गतिविधि में व्यक्ति की अभिरूचि यदि नहीं होगी तो राजनीतिक सहभागिता को प्रश्न ही नहीं होता। अत: व्यक्ति के विचार दृष्टिकोण मनोवृत्ति आदि ऐसे कारक है जिनके आधार पर राजनीतिक सहभागिता की मात्र को समझा जा सकता है। व्यक्तिगत कारकों के अन्तर्गत यह जानने का प्रयास होता है कि व्यक्ति को राजनीतिक मुद्दों को आपस में किस तरह से जोड़ता है। जितनी ही जानकारी तीव्र व सही होगी उतनी ही उसकी राजनीतिक सहभागिता बढ़ जाती है।

3. राजनीतिक परिवेश:- राजनीतिक परिवेश का तात्पर्य उस राजनीतिक व्यवस्था से होता है जिसमें राजनीतिक क्रिया करने के लिए विभिन्न तत्त्व या साधन क्रियाशील होते है। ऐसे तत्त्व या साधन राजनीतिक सहभागिता बढ़ाने में अत्यंत सहायक होते है। राजनीतिक परिवेश में तीन बातें सम्मिलित होती है जिनका सम्बन्ध राजनीतिक सहभागिता से प्रत्यक्ष रूप में होता है-

* राजनीतिक क्रिया संचालन।
* राजनीतिक संस्थाओं एवं दलों का होना।
* राजनीतिक अभियानों के लिये विशेष दशाओं की उपलब्धता एवं विद्यमानता।

उपरोक्त तीनों तत्त्वों में पहला तत्त्व मतदान का है। यह निश्चित उम्र के लोगों को प्राप्त है। जिन्हें मतदान का अधिकार नहीं होता उनकी राजनीतिक सहभागिता कम होती है। जहाँ राजनीतिक दलों को अभाव होता है वहां भी राजनीतिक सहभागिता तुलनात्मक रूप से कम होती है। इसी तरह चुनाव के लिये सुविधायें मिलना राजनीतिक सहभागिता के कारणों में से है। अत: राजनीतिक सहभागिता के लिये स्वस्थ राजनीतिक परिवेश महत्वपूर्ण कारक होता है।

4. **सामाजिक कारक :-** जन सहभागिता अथवा राजनीतिक सहभागिता के लिये सामाजिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। व्यक्ति के राजनीतिक समाजीकरण के परिणाम स्वरूप राजनीतिक सहभागिता के वृद्धि होती है। राजनीतिक समाजीकरण सामाजिक परिस्थितियों को संदर्भ में होता है। अनेक ऐसे सामाजिक कारक हैं जो राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि करते है। कुछ प्रमुख सामाजिक कारक निम्न है-

(क) परिवार :- परिवार समाजीकरण की प्रथम पाठशाला है। परिवार के अभाव में बालक का समाजीकरण असंभव होता है। राजनीतिक समाजीकरण में पारिवारिक परिस्थितियां भी जिम्मेदार होती है वहाँ के लोगों में स्वाभाविक रूप से राजनीतिक सहभागिता की मात्र अधिक होती है। अर्थात् ऐसे परिवारों के अन्य सदस्यों में राजनीतिक दिलचस्पी बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये भारत में नेहरू परिवार को देखा जा सकता है।

(ख) **शिक्षा:**- राजनीतिक सहभागिता के लिये शिक्षा महत्वपूर्ण घटक है। जिस समाज में शिक्षा जितनी अधिक मात्र में होगी वहां अशिक्षित समाजों की तुलना में राजनीतिक सहभागिता अधिक होती है। उदाहरण के लिये भारत में अभी भी गाँवों की तुलना में शहरों के लोगों में राजनीतिक विचार एवं राजनीतिक सक्रियता अधिक है। इसका कारण वहां की शिक्षा व्यवस्था है। पढ़े लिखे लोग मतदान में अधिक हिस्सा लेते है। इसके विपरित अशिक्षित लोगों का मतदान का प्रतिशत कम होता है। अत: शिक्षा एक ऐसा सामाजिक कारक है जो राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करता है।

(ग) **धर्म या प्रजाति:**-धर्म या प्रजाति भी राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करते रहते है। वहां के लोगों में धर्म की प्रकृति अधिक रूढ़िवादी या अन्धविश्वास की होती है वहां के लोगों में राजनीतिक सहभागिता कम पाई जाती है। उदारवादी एवं मानववादी धर्म में आस्था रखने वाले लोगों में तुलनात्मक दृष्टि से सहभागिता अधिक होती है। नीग्रो, सफेद लोगों की अपेक्षा, यहूदी कैथोलिक लोगों की अपेक्षा तथा कैथोलिक प्रोटेस्टेंट लोगों की अपेक्षा राजनीति में कम भाग लेते है।[10]

(घ) **आयु एवं लिंग भेद:**- राजनीतिक सहभागिता में व्यक्ति के उम्र या लिंग का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चों की तुलना में वयस्कों तथा महिलाओं की तुलना में पुरूषों में राजनीतिक सहभागिता अधिक होती है। अधिक वृद्ध होने पर पुन: लोगों में राजनीतिक गतिविधि उम्र ढलने के साथ-साथ घटती जाती है। व्यक्तिगत परिवारों में जहाँ बच्चे नहीं होते वहां राजनीतिक सहभागिता अधिक होती है तथा बच्चों वाले परिवारों में तुलनात्मक रूप से इसमें कमी देखी जाती है। भारत में मताधिकार की उम्र 18 वर्ष है। इस उम्र के साथ राजनीतिक दृष्टिकोण एवं मनोवृत्तियों में राजनीतिक चेतना जन्म लेने लगती है।

(ड़) **मानसिक दशाएँ** :- यदि किसी व्यक्ति में किसी के प्रति सहानुभूति, श्रद्धा, और आदर की मात्रा ज्यादा होती है तो वह व्यक्ति राजनीतिक विजय के लिये उसके प्रति हमदर्दी व्यक्त करता है। उसके फलस्वरूप व्यक्ति में राजनीतिक चेतना विकसित होने लगती है और यही चेतना उसमें राजनीतिक सहभागिता विकसित करती है। अयोध्या में राम मंदिर बनना या न बनना धार्मिक विशय था। वाजपेयी सरकार को उस मंदिर के निर्माण के लिये भारतीय हिंदुओं का पूरा समर्थन मिला। यह हिंदुओं की मानसिक भावना जो धार्मिक थी अब राजनीतिक रूप में भी आ गई है। अत: ऐसी धार्मिक, मानसिक भावनाएं भी राजनीतिक सहभागिता को बढ़ाती है।

(च) **आर्थिक कारक** :- वर्तमान में राजनीति के बिना व्यक्ति अपने को असहाय पाता है। अत: उसे अपने आर्थिक हितों व लाभों को प्राप्त करने के लिए भी राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना पड़ता है। व्यक्ति को ऐसा महसूस होता है कि अपने बचाव व रक्षा के लिये वह किसी नेता से जुड़े, उसका तन-मन-धान से सहयोग करें तभी उसका कल्याण होगा। ऐसी प्रवृत्तियां हर जगह देखने को मिलती है और इस के कृत्यों से भी राजनीतिक सहभागिता लोगों में बढ़ती है।

सहभागिता : भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है जहाँ स्वतंत्रता के बाद ब्रिटिश शासन व्यवस्था को आत्मसात करते हुए संसदीय प्रजातंत्र को लागू किया गया है। भारत के संविधान में जितने भी उपबंध हैं वे सभी भारतीय नागरिको को स्वतंत्रता और समानता के आधार पर स्वेच्छानुसार सामाजिक व राजनीतिक आचरण करने की छूट देता हैं। जिसमें धर्म निरपेक्षता सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व समाहित है यही कारण है कि 1947 से आजतक भारत में केन्द्र या राज्य में किसी भी देश में किसी भी पद पर कोई भी जनप्रतिनिधि सत्तासीन हुआ है। चाहे वह महिला हो या पुरूष, भारत की जनता ने उसे समान रूप से सम्मान दिया हैं एवं संविधान का सम्मान उसी प्रकार किया है जिस प्रकार हम अपने धर्म का सम्मान करते हैं इसका प्रमुख कारण भारत की समस्त जनता चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, ग्रामीण हो या शहरी, अमीर हो या गरीब, किसी भी धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति की अनुयायी हो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक सहभागिता में सदैव लिप्त रही है क्योंकि प्रजातंत्र में डॉ. रजनी कोठारी की यह बात सही साबित होती है कि आप राजनीति की परवाह करे या न करें, राजनीति आपकी सदैव परवाह करती है। अर्थात् किसी भी प्रकार का चुनाव चाहे वह ग्राम पंचायत का हो, स्थानीय हो, नगर पालिका, नगर निगम का हो, विधानसभा का हो अथवा लोकसभा का हो सभी के लिए शासन द्वारा मतदाता सूची का निर्माण अनिवार्य रूप से किया जाता है। जो व्यक्ति मतदान न भी करे परन्तु मतदाता सूची में यदि उसका नाम है तो भी वह राजनीतिक व्यवस्था में सहभागी माना जायेगा।

तात्पर्य यह है कि आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में जहाँ इलेक्ट्रानिक एवं प्रिंट मीडिया, आकाशवाणी द्वारा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का मन की बात का कार्यक्रम से कोई भी व्यक्ति अछूता नहीं है। इसके अतिरिक्त राज्य व केन्द्र सरकार की विभिन्न नीति, कार्यक्रम एवं विभिन्न योजनाएँ ने इतना अधिक प्रचार प्रसार कर दिया है कि देश का प्रत्येक नागरिक उसके बारे में जानकारी रखने लगा हैं एवं अपना अभिमत देने की स्थिति में है। अत: आज राजनीतिक सहभागिता की बात की जाती है तब यह स्पष्ट है कि प्रत्येक स्त्री-पुरूष जो मतदाता सूची में शामिल हैं और जो नहीं है वे भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक सहभागिता का अंग बने हुए हैं।

वर्तमान राजनीतिक परिवेश में स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग प्रकार से राजनीतिक सहभागिता का उदाहरण देखने को मिलता है। जैसे स्थानीय स्तर पर ग्राम पंचायत के चुनाव में प्रत्येक व्यक्ति ग्राम सभा का सदस्य होने के नाते प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा रहता है जबकि विधान सभा और संसद के चुनाव मे वैचारिक आधार पर अथवा प्रत्याशी के आचरण, कार्यशैली के आधार पर उसके प्रति बढ़ने वाला रूझान राजनीतिक सहभागिता के लिए प्रेरित करता है।

राजनीतिक सहभागिता लोकतांत्रिक ढाँचे की अनिवार्य विशेषता है। लोकतंत्र की प्रकृति, सफलता और प्रभावोत्पादकता काफी हद तक इस पर आधारित होती है कि व्यवस्था अपने सभी नागरिकों को समान प्रभावी और वास्तविक सहभागिता के अवसर किस सीमा तक उपलब्धा कराती है। देश की नागरिक आबादी और मतदाताओं का आधा हिस्सा महिलाओं से बनता है, फिर भी राष्ट्रीय स्तर पर वे अपने प्राप्य से वंचित है। अगर महिलाओं को निर्णय लेने में हर स्तर पर उचित भागीदारी नहीं मिलती है तो हमारा लोकतंत्र आधा-अधूरा ही माना जायेगा। भारत में महिलाएँ मतदाता समूह की सदस्य तो हैं लेकिन राजनीतिक सहभागिता और राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति की दृष्टि से उन्हें दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है। उनकी काफी बड़ी संख्या राजनीति के प्रति निष्क्रिय एवं उदास रहती है।

राजनीति में महिलाओं की सहभागिता के मसले को समाज में उनकी स्थिति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक तौर-तरीके काफी हद तक महिलाओं के जीवन शैली का निर्धारण करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से माना जाता है कि समाज की परम्पराओं, मूल्यों और मानदण्डों का निर्वहन महिलाएँ ही करती हैं। अपने परिवार में से वे जिस सामाजिक ढांचे में ढाली जाती हैं, वह उन्हें गैर पारम्परिक भूमिकाएँ निभाने योग्य नहीं बनाता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नवनिर्मित भारतीय संविधान में महिलाओं के लिये भी पुरुषों के समान राजनीतिक अधिकार सुनिश्चित किये गये। संविधान द्वारा प्रदत्त राजनीतिक अधिकारों के अनुरूप ही राजनीतिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी।[11] आधुनिकीकरण ओर शिक्षा के प्रसार के परिणामस्वरूप राजनीति में तो उनकी सक्रियता बढ़ी ही, वे उच्च पदों पर भी आसीन होने लगीं। लेकिन सम्पूर्ण परिदृश्य अब भी असंतोषजनक है। नारी समुदाय को प्रदत्त संवैधानिक अधिकारों और वास्तव में प्राप्त अधिकारों के बीच काफी फासला है। कतिपय अपवादों को छोड़ दिया जाए तो महिलाएँ अब भी सत्ता और राजनीतिक प्रभुसत्ता की दहलीज पर ही खड़ी है। स्वतंत्रता के सात दशक बीत जाने के बाद भी केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर विधि का निर्माण और उनका अनुपालन कराने वाली संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी और उनका प्रतिनिधित्व निराशाजनक है। देश की आबादी की लगभग पचास प्रतिशत महिलाएँ हैं। लेकिन 1952 से आज तक लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व महज चार से 13 प्रतिशत रहा है। इसी तरह राज्य सभा में भी पुरुषों की तुलना में उनकी संख्या नगण्य रही है।

संसद में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व का एक प्रमुख कारण यह है कि चुनावों में महिला प्रत्याशियों की संख्या काफी कम रहती है। 1952 के प्रथम लोकसभा चुनाव से लेकर आज तक कमोवेश यही स्थिति रही है। महिलाओं को प्रत्याशी बनाने के बारे में राजनीतिक दल प्रबल अनिच्छा का प्रदर्शन करते हैं। चुनाव में उन महिलाओं को ही टिकट दिये जाते हैं जिनके जीतने की प्रबल सम्भावना रहती है। नतीजतन कुल उम्मीदवारों का तीन से पाँच प्रतिशत तक महिलाएँ ही चुनावों में भाग ले पाती हैं। इस प्रकार निश्चित निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि पुरुषों की प्रधानता वाली राजनीतिक पार्टियाँ महिलाओं को सत्ता में भागीदारी नहीं देना चाहती हैं।

संसद, विधान मण्डल और कार्यपालिका में महिलाओं की भागीदारी के लिये कोई सुविचारित और सुनिश्चित नीति नहीं है। इस दिशा में केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा जो भी कदम उठाये जाते हैं, उनका उद्देश्य महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने की अपेक्षा चुनाव में इस समुदाय का समर्थन हासिल करना होता है। लोकतांत्रिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य

से राष्ट्रीय परिदृश्य योजना (1998-2000) के तहत सभी राजनीतिक दलों से यह सुनिश्चित करने का आग्रह किया गया है कि उनके प्रत्याशियों में 30 प्रतिशत महिलाएँ हों। परन्तु दुर्भाग्यवश अब तक किसी भी राजनीतिक दल ने 30 प्रतिशत टिकट महिला प्रत्याशियों के लिये आरक्षित नहीं किये हैं।

आधारभूत स्तर पर पंचायती राज अधिनियम द्वारा स्थानीय संस्थाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त होने से देश की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी के नये आयाम खुले हैं। स्थानीय स्तर पर महिलाओं की भागीदारी बढ़ने से उन परम्परागत मानदण्डों में निश्चित तौर पर बदलाव आया है, जिन्होंने समाज और बाहरी दुनिया में महिलाओं की भागीदारी पर प्रतिबन्ध लगा रखे थे।

निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जा सकता है कि महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में निरन्तर वृद्धि हो रही है, कुछ महिलाएँ स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय भी लेने लगी हैं, यद्यपि अशिक्षा, अजागरूकता, पितृसत्तात्मक मूल्यों आदि के कारण महिलाएँ पूर्ण आत्मविश्वास के साथ न तो स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय ले पा रही हैं, न ही सहभागिता दर्ज करा पा रही हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. बघेल, डी.ए, कर्चुली, टी.पी, राजनीतिक समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2010 पृ. 210.
2. उपरोक्त, पृ. 211.
3. जी. पैरी, पार्टिसिपेशन इन पॉलिटिक्स, मैनचेस्टर, 1972, पृ. 39.
4. कैरोल पैटमैन, पार्टिसिपेशन एण्ड डेमोक्रेटिक थ्योरी, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1970, पृ. 19.
5. उपरोक्त.
6. ए. रिचड्र्सन, पार्टिसिपेशन, रूटलेज, लंदन, 1983, पृ. 46-47.
7. बघेल, डी.ए, कर्चुली, टी.पी, पूर्वोक्त, पृ. 213.
8. उपरोक्त.
9. लवानिया, एम.एम., राजनीतिक समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1988, पृ. 142.
10. उपरोक्त, पृ. 143
11. ब्रास, पॉल, आर, पॉलिटिक्स इन इंडिया सिन्स इंडिपेंडेंस, फाउण्डेशन बुक, नई दिल्ली, 1997, पृ. 88

धर्म और मानवीय मूल्य

डॉ० नलिनी श्रीवास्तव

संस्कृत, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

वैज्ञानिक विश्लेसन की कसौटी पर हिन्दू धर्म की शिक्षाएं तथा मान्यताएं हर समय खरी सिद्ध हुई हैं। अन्य मत और मजहब अन्धविश्वास हठ धर्मिता और चमत्कार की शिक्षाओं पर विश्वास करते हैं, केवल वैदिक सनातन धर्म ही वैज्ञानिक गतिविधियों के अस्तित्व को पूर्णतः स्वीकार करता है, कारण हिन्दू धर्म स्वयं विज्ञान के आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण है। जीवन का आनंद लेते हुए जीना और परमात्मा की सर्वत्र उपस्थिति और उसके अस्तित्व को समझता ही हिन्दू धर्म का आधार है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर यह 'धर्म' क्या है? हिन्दू सनातन सिद्धान्त धारा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म का प्रमुख स्थान है। माता, पिता, कुटुम्ब तथा सम्पूर्ण मानवता के प्रति स्वयं का स्वाभाविक तथा स्वार्थ-हीन कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व धर्म कहलाता है। प्राचीन संस्कृत शब्द 'धर्म' का अंग्रेजी भाषा में कोई शुद्ध अनुवाद नहीं है, जो 'धर्म' के अर्थ को पूर्णतः प्रकट कर सके। 'धर्म' का आध्यात्मिक अर्थ महाभारत में निम्न प्रकार से है -

धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मेण विधृताः प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।। महाभारत - 12-31-9

धारण करना ही धर्म है। धर्म से प्रजा टिकी रहती है। जो धारण से युक्त है, वह धर्म है। अर्थात् ''धर्म वह है जो सभी प्राणियों परिवार, समाज, राष्ट्र, प्रकृति और ब्रह्माण्ड को सजीव, सुरक्षित और समायोजित करता है।'' मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम्।। मनु0 स्मृति

धैर्य, क्षमा, अपनी वासनाओं पर नियंत्रण करना, चोरी न करना, आंतरिक और बाहरी शूचिता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धिमता का प्रयोग अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा, मन, वचन और कर्म से सत्य का पालन और क्रोध न करना ये दस धर्म के लक्षण हैं।

दरअसल, धर्म मूल स्वभाव की खोज है धर्म एक रहस्य है, संवेदना है, संवाद है और संवाद आत्मा की खोज है। जब भी हम धर्म कहते हैं तो यह ध्वनित होता है कि कुछ है जिसे जानना जरूरी है। धर्म है अनंत और अज्ञात में छलांग लगाना। धर्म है जन्म, मृत्यु और जीवन को जानना। दुनिया के तमाम विचारको ने धर्म की अलग-अलग परिभाषाएं दी है इन सबों में वैदिक ऋषियों का विचार सबसे ज्यादा उपयुक्त है कि सृष्टि एवं स्वयं के हित और विकास में किए जाने वाले सभी कर्म धर्म है।

हिंदू धर्म में प्रत्येक व्यक्ति के धार्मिक कर्त्तव्यों, नैतिक अधिकारों और कर्त्तव्यों के साथ-साथ ऐसे व्यवहार शामिल है जो सामाजिक व्यवस्था को सम्यक आचरण को और कल्याणकारी कार्यों को सक्षम बनाते हैं। धर्म के विषय में भी समस्त शास्त्रें का एक मत से यही कथन है कि धर्म वह है जो दुनिया में अभाव और व्यवस्था बनाए रखता हो इसे समस्त प्राणियों को स्वीकार करना चाहिए। यह ठीक ही कहा गया है कि वेद व्यास जी ने अठारह पुराणों में दो विशिष्ट बातें कही हैं। पहली परोपकार करना पुण्य होता है और दूसरी पाप का अर्थ होता है दूसरों को दुःख देना।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुव्याय पापाय परपीऽनम्।।

मानव जीवन का उद्देश्य है सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, शाश्वत परमात्मा को पाना परमात्मा केवल एक ही है वही सृष्टि का रचयिता कर्त्ता धर्त्ता है। वेद सभी सत्य ज्ञान के भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के स्त्रोत है। सृष्टि में विद्यमान जो ज्ञानतत्व है, वे सभी वेदों में विद्यमान हैं। मानव इसी ज्ञान को आधार मानकर अपने जीवन की सारी गतिविधियों का संचालन करता दिखाई दे रहा है। वेद ज्ञान के मल में जीवात्मा के पूर्ण कल्याण की बाते हैं जिनके पालन से मानव समाज की विभिन्न समस्याओं का स्थायी समाधान होगा। समस्या चाहे आज की हो या कल की। उनका निवारण वेदों द्वारा निर्दिष्ट उत्तमोत्तम ज्ञानतत्वों द्वारा ही सम्भव है। इसके लिए मानव को आवश्यक है कि वह वेदों के आदेशों व उपदेशों को जानकर उन्हें जीवन में उतारने का प्रयास करें इन आचरणीय तत्वों को ही मानवीय मूल्य कहा जाता है।

वेद समग्र विद्याओं का प्रमुख केन्द्र है। सारी विद्याओं की धारा यही से प्रवाहित होती है। जब-जब मानव ने अज्ञानतावश या जानबुझ कर इन मानवीय मूल्यों की उपेक्षा की, तब-तब सुख के स्थान पर उसे दु:ख मिला है। आज संसार में यही हो रहा है। आज समग्र विश्व पतन की ओर इसलिए है कि उसने वेद एवं सृष्टिज्ञान के शाश्वत नियमों और मूल्यों की पूर्णत: अनदेखी की है। आज के मूल्यविहिन परिवेश में मानवमात्र को सही अर्थों में पूर्ण आनंद और शांति प्राप्त करनी हो तो उसे वेद प्रतिपादित मानवीय मूल्यों को अपनाना होगा।

भगवद्गीता, जीवन के यथार्थ दर्शन का अकूत मूल्यों का संदेश है। आधुनिक मानव आन्तरिक द्वन्द्वों से उद्विग्न एवं अशान्त है तथा यह अन्तर्द्वन्द ही उसके समग्र मनोवैज्ञानिक जीवन की अपूर्णता का कारण है। गीता का अध्ययन आधुनिक युग की समस्याओं के लिए त्वरित एवं प्रयोगात्मक मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। वह मन की जटिलताओं को बाहर निकालने की एवं सामाजिक शक्तियों के प्रभाव के कारण स्वयं को बौना, नगन्य देखता है वहाँ पर गीता आशा और खुशहाली का सन्देश प्रदान करती है। गीता व्यक्ति को सक्रिय जीवन का रास्ता चुनने का मार्गदर्शन करती है। व्यक्ति का आध्यात्मिक पुनरूत्थान निश्चय ही सुखी समाज की संरचना का मार्ग है। वस्तुत: यह मानव में प्राण फूंकने वाला एवं शक्ति प्रदान करनेवाला एक ऐसा शाश्वत संदेश है जो युगों युगों तक चिरनवीन बना रहेगा।

उपनिषदों में जहाँ आध्यात्मिकता का सूक्ष्मातिसूक्ष्य रूप में वर्णन किया गया है वहीं सामान्य ज्ञान और परिवार सम्बन्धी समाजशास्त्र का भी वर्णन प्राप्त होता है कठोपनिषद् में नचिकेता सर्वप्रथम पिता के क्रोध को शांत करना ही अपेक्षित समझता है।

शान्तसङ्कल्प: सुमना यथा स्याद्,
वीतमन्युर्गोतमो माऽभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत,
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।।

उपनिषदों में संसार को त्याग देने का आदेश कही नहीं है किन्तु उसकी पृथक सत्ता मानने के स्वप्न को त्याग देने का आदेश अवश्य है। जीवन को अमृतमय बनाने की समस्या का समाधान उपनिषद में सर्वत्र उपलब्ध होता है उसे संसार में रहते हुए ही त्यागपूर्वक भोग की शिक्षा दी गयी है।

ईसावास्यमिदं सर्वं यत्किस्त्रय जगत्या जगत्।
तेन त्यवतेन भुस्त्रीथा मा गृध: कस्य स्विद्धनम्।। (ई.उ.) 1 श्लो0

उपनिषद का पृथ्वी के सभी मनुष्यो के प्रति निर्देश है कि तुम कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने की इच्छो करो -

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छंत समा:
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नर:।। (ई. 2)

अहं भाव से पृथिक रहकर पर ब्रह्म के साथ संयुक्त होना ही उपनिषदों का धार्मिक लक्ष्य है। वैदिक सनातन धर्म प्राचीन काल से ही विश्व को मूल्यवान अन्तदृष्टि, अर्न्तज्ञान देता आ रहा है इसलिए हजारो वर्षों के उतार-चढ़ाव को झेलकर आज भी जीवन्त और सशक्त है। संसार को धर्म ने कई-योगदान दिए जिसमें सबसे मुख्य है-सहनशीलता, शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व संसार में भरत ही

एक ऐसा देश है जहाँ सभी धर्मों का समन्वित अस्तित्व है भारत ने सदा पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता का समर्थन किया है। भारतीय सदा से 'जियो और जीने दो' के आदर्श का पालन करते आए हैं। भारत एक ऐसा देश है जहाँ जलवायु के परिशोधन केलिए पेड़ों की भी श्रद्धा से देखभाल होती है। शाकाहारी भोजन तथा दैनिक कार्य व्यवहार में उनके ''वसुधैव कुटुम्बकम के आदर्श के स्पष्ट दर्शन होते हैं। भौतिकता एवं अध्यात्मिकता में समन्वय हमारे धर्म की ही देन है।

सभी मूल्य धर्म और आचार नीतियो का मूल उद्देश्य एक उत्पीड़न रहित समाज का निमार्ण करता है। समाज में निर्णय-निर्माण, रहन-सहन, व्यवहार आदि के संबंध में गलत या सही अच्छा या बुरा आदि के लिए ये मानक के रूप में कार्य कहते हैं। ये किसी व्यक्ति को समाज के कल्याण के विपरीत कार्य करने से रोकते हैं। इसके फलस्वरूप व्यक्ति स्वहित के स्थान पर दूसरे लोगों के हित समाज के हित ओर अंतत: परम शुभ की प्राप्ति के लिए कार्य करने को प्रेरित होता है।

वर्त्तमान में अनेक समस्याओं, जेसे - आतंकवाद, नागरिक युद्ध, महिला ओर बाल उत्पीड़न, जातिवाद, धार्मिक उन्माद आदि इन्हीं मूल्यों, धर्मो और आचार-नीतियों से विमुख होने का परिणाम है। अत: एक अप्य धार्मिक मूल्यों से युक्त समाज के निर्माण के लिए इनको पुन: स्थापित किये जाने की आवश्यकता है।

अवध की वीरांगना : बेगम हजरत महल

यासमीन खानम

अतिथि प्रवक्ता, इतिहास विभाग, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, चेतगंज वाराणसी

सन् अठारह सौ सत्तावन का विद्रोह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की प्रशासनिक व आर्थिक शोषणकारी नीतियों के परिणामस्वरूप प्रस्फुटित हुआ। विद्रोह की शुरूआत पहले बंगाल में सैनिक विद्रोह के रूप में जनवरी 1857 में फिर मार्च में बैरकपुर व मेरठ में मंगल पाण्डेय ने अवज्ञा की पहली साहसपूर्ण करवायी की। 8 तथा 10 मई को मेरठ में बकायदा विद्रोह हुआ और सिपाहियों ने 11 मई को दिल्ली पहुँचकर मुगल बादशाह बहादुशाह जफर के नेतृत्व में क्रांति किया, यह मुस्लिम-हिन्दु एकता का सूचक है।

इस बगावत में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं ने भी अपना जौहर दिखाकर आज से कई वर्षो पूर्व ही यह सिद्ध कर दिया था कि राजनीति व सैनिक क्षमता में वे पुरुषों से कम नहीं है। मौका मिलने पर वे अपने को पुरुष साथियों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ साबित कर सकती है। 1857 के विद्रोह में उन्हें यह मौका मिला। जनपद की बारह महिला क्रांतिकारी वीरांगनाओं ने अपनी टोलियॉ बनाकर अंग्रेजी हुकूमत से लोहा लिया लगभग 225 महिलायें फॉसी पर लटकाई गयी अथवा लड़ते लड़ते शहीद हो गयी। थाना भवन की असगरी बेगम को तो जिन्दा जला दिया गया था।[1] क्रांतिकारी वीरांगनाओं में रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, अजीजन, महारानी तपस्विनी, कुमारी मैना, झलकारी, रामगढ़ की रानी अवन्तिका बाई, लोधी रानी ईश्वरी कुमारी, चौहान रानी, रानी तेजबाई, जीनत महल आदि प्रमुख है।

बेगम हजरत महल 1857 के साम्राज्यवाद विरोधी स्वतंत्रता संग्राम की एक महान नेत्री थी, जिन्होंने उत्तर भारत के अवध क्षेत्र में क्रांति का झण्डा बुलन्द किया। 1856 में ब्रिटिश गर्वनर जनरल लार्ड डलहौजी द्वारा कुशासन की नीति के तहत अवध को अग्रेंजी सम्राज्य में मिलाये जाने के परिणामस्वरूप यह विद्रोह हुआ जिसका नेतृत्व बेगम हजरत महल व फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह ने किया।

बेगम हजरत महल अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह की बेगम थी, जिसके कारण इन्हें `Begum of Awadh' के नाम से भी जाना जाता है। बेगम का प्रारम्भिक नाम मोहम्मदी था, जो नवाबों की पूर्व राजधानी फैजाबाद के साधारण परिवार से ताल्लुक रखती थी।[2] विवाह के पूर्व वह एक नर्तकी थी और विवाह के पश्चात नबाब की सर्वाधिक सम्मानित बेगम। सुन्दर व आकर्षक इतनी थी कि नवाब उन्हें 'महलपरी' के नाम से अंलकृत किया था।[3]

अवध पहले मुगल शासन का एक सूबा था। मुगल शासन के कमजोर पड़ने पर यह एक स्वतंत्र राज्य बन गया था, लखनऊ इसकी राजधानी थी। अवध के पांचवे और अन्तिम नवाब वाजिद अलीशाह सिंहासन पर सत्तासीन हुए, 1764 के बक्सर युद्ध से ही अवध अग्रेंजो के प्रभाव क्षेत्र में आ चुका था। नवाब का दर्जा एक सामन्त जैसा हो गया था, 1847 में नवाब वाजिद अली शाह के अवध की गद्दी पर बैठने के पश्चात अग्रेंजों का हस्तक्षेप और अधिक बढ़ गया था, इसका मुख्य कारण तत्कालीन नवाब संगीत, कविता और नाच गाने में डूबा रहने वाला व्यक्ति था।[4] अत: तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने राज्य की स्थिति की जाँच करने के लिए 'कर्नल स्लीमैन' को अवध भेजा। स्लीमैन ने अपने रिपोर्ट में प्रस्तुत किया कि ''अवध में अब कोई सरकार नहीं है। नवाब गायको और हिजड़ों को छोड़कर किसी से नहीं मिलते है और जनता के बारे में जानने का तो दिखावा तक नहीं करते।''[5] स्लीमैन के बाद 1854 में रेसीडेन्ट नियुक्त हुए आउट्रम ने अवध की स्थिति को वैसा ही पाया जैसा स्लीमैन ने समय था। अत: अन्त में 1856 में लार्ड डलहौजी ने कुशासन का आरोप लगाकर अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मलित कर लिया और नवाब की पेंशन की व्यवस्था कर कलकत्ता भेज दिया। अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाये जाने के कारण अनेक दस्तकार, कलाकार 60,000 सैनिक बेरोजगार हो गये, क्योंकि नवाब द्वारा इन्हें दरबार में प्रश्रय प्राप्त था।[6] अत: बेगम ने इस असन्तुष्ट वर्ग को भी अपने विद्रोह में शामिल कर लिया। 14 मई को मूसा बाग लखनऊ की दो पलटनों ने अंग्रेज कमांडर का हुक्म मानने से इन्कार कर दिया। 30

जून को चिनहट के मोर्चे पर लखनऊ में विद्रोही सैनिकों को अंग्रेजों ने रोकने का प्रयत्न किया पर उन्हें सफलता नहीं मिली। क्रांतिकारियों ने फिरंगियों के मुख्यालय बेलीगारद को घेर लिया। 2 जुलाई को कैप्टन विल्सन और 4 जुलाई को हेनरी लॉरेंस मारे गए। इस तरह 2 मार्च 1856 को नबाब वाजिद अली शाह को कलकत्ता भेज जाने के बाद बेगम हजरत महल का जो भाग्य का सितारा डूबा था, वह 5 जुलाई 1857 को लखनऊ में अंग्रेजो के हार से फिर चमक उठा।

"द टाइम्स" के संवाददता डब्ल्यू.एच.रसेल ने 'बेगम हजरत महल' की बहादुरी और दृढ़ता की तारीफ करते हुए लिखा। ''बेगम में बड़ी योग्यता तेजस्विता दिखाई देती है, बेगम ने हमारे विरूद्ध अखण्ड युद्ध की घोषणा की है। इन रानियों और बेगमों को शक्तिशाली चरित्र को देखकर लगता है, जैसे इन्हें अपने रनिवासों और हरमों में जबरदस्त मानसिक शक्ति प्राप्त होती थी और वे किसी भी स्थिति में उचित कदम उठाने में समर्थ थी।''[7]

अपने ग्यारह वर्शीय पुत्र बिरजिस कदर को अवध का राजा घोषित कर हजरत महल ने 'जनाबे आलिया' का खिताब हासिल किया और राज्य के शासन व्यवस्था को देखने लगी।[8] धेनेश्वर अवस्थी के अनुसार "For administrative reason, the throne of Awadh could not be left vacant as their rular wazid Ali shah was not calcutta, a new hand of state had to be elected. The obivious choice was Nawab Ramzan Ali mirza Brijis iQadar and Begum Hazrat Mahal was ideally suited to act as the Regent considering her patriatic fevour and her effort to free her motherland of the Britishers."[9]

सल्तनत हाथ में आते ही बेगम ने बेगम कोठी को फौजी मुख्यालय बना लखनऊ के सभी मोर्चो को मजबूत करना शुरू कर दिया। दिल्ली के बादशाह के नाम स्वतंत्रता का सन्देश भिजवाया। हिन्दू राजा बालकृष्ण राव को अपना वजीरे आजम नियुक्त किया। बिना किसी भेदभाव के अमीर-उमरावों के पद हिन्दू-मुसलमानों दोनों में समान रूप से बांटे और शासन के मुख्य सूत्र अपने हाथ में रख सारी व्यवस्था को सुचारू रूप दिया। लेफ्टिनेंट बीवेन के अनुसार, ''दिल्ली विजय के बाद कलकत्ता से कानपुर तक उतना कोई खास विरोध नहीं हुआ, पर वीरागंना हजरत महल ने लखनऊ की इतनी कड़ी सुरक्षा व्यवस्था की थी कि तीन फिरंगी फौजी टुकड़ियाँ मिलकर भी लखनऊ में प्रवेश न कर सकी।''[10] इस प्रकार बेगम हजरत महल एक कुशल संगठन क्षमता से युक्त वीरागंना थी इसी कारण अवध के जमींदार, किसान और सैनिक उनके नेतृत्व में आगे बढ़ते रहे। 16 जुलाई को पूरी तैयारी के साथ बेलीगारद (अंग्रेंजी मुख्यालय) पर हमला किया, लगता था, लखनऊ से विदेशियों का नामोनिशान मिटा दिया जाएगा, परन्तु कुछ देशद्रोहियो जिनमें वाजिद अली की कुछ अन्य बेगमें व उनके दारोगा, जो बेगम हजरत महल से असन्तुष्ट थे, इन्होंने अवध के सारा हाल दुश्मनों तक पहुचाँने लगे इसलिए सफलता संदिग्ध होने लगी। फिर भी आलमबाग की लड़ाई के दौरान बेगम हजरत महल ने अपने जाबाज सिपाहियों की भरपूर हौसला आफजाई की और हाथी पर सवार होकर अपने सैनिकों के साथ दिन-रात युद्ध करती रही।[11]

यद्यपि आलमबाग के संघर्श में बेगम ने बड़ी वीरता से अंग्रेजी सेना का मुकाबला किया, किन्तु देशद्रोहियों के कारण अन्ततः उसे पराजित होना पड़ा फिर भी लखनऊ अभी भी क्रांन्तिकारियों के हाथों में थे, अतः लखनऊ पर अधिकार करने के लिए अंग्रेंजो का पुनः क्रान्तिकारियो से संघर्ष हुआ। 19 मार्च 1858 में क्रांतिकारियों का कैम्पबेल तथा आउट्रम की सेना के साथ लखनऊ में घमासान युद्ध हुआ। जो 6 मार्च से 15 मार्च तक चला। 16 मार्च 1858 तक बेगमकोठी, कैसरबाग पर और 21 मार्च को पूरे लखनऊ पर अग्रेंजो का वापस कब्जा हो गया। बेगम और उनके सेनापति अहमदशाह ने लखनऊ में अग्रेंजी धेरे से सुरक्षित बाहर निकलकर अन्य नई जगह नदी-घाटो पर, रसद-मार्ग काटने के लिए, चौकियाँ तोड़ने के लिए उनसे युद्ध जारी रखा पर उत्तरप्रदेश का मैदानी इलाका छापामार युद्ध के अनुकूल न होने से उन्हें सफलता नहीं मिली। लखनऊ में पराजय के बाद बेगम अवध के देहातों में चली गई और वहाँ भी क्रांति की चिंगारी सुलगाई। बेगम ने पेशवा नाना साहब से बराबर सम्पर्क बनाए रखा और कई बार मौलवी अहमदशाह को बड़ी मदद पहुचॉई। बेगम हजरत महल लड़ते-लड़ते थक चुकी थी। अतः बेगम अपने पुत्र बिरजिस कादर के साथ नेपाल चली गई। क्योंकि हिन्दुस्तान में अग्रेंजी की गुलामी में रहकर ऐशो आराम की जिंदगी मंजूर करने के बजाय, उन्होंने वतन से बाहर मामूली हैसियत से रहना ही स्वीकार किया।

1 नवम्बर 1858 को इग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया की घोशणा जारी होने पर कई राजाओं ने अग्रेंजों से संधि कर ली, पर बेगम को बार-बार अंग्रेजों द्वारा देश वापस आकर इज्जत और विलासितापूर्ण जिन्दगी बसर करने की पेशकश किए जाने के बावजूद उन्होंने न केवल अग्रेंजो के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, अपितु महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र के जवाब में एक पर्चा छापा था, जिसमें अवध के जनता से विक्टोरिया और इसी जवाबी घोषणावत्र में अग्रेंजो द्वारा दी गई नीचता की सूची दी गई है जो अवध के शासकों के अलावा कुछ अन्य शासको के साथ की गई थी जितने साथ नीचता की गई, वे थे- भरतपुर के शासक लाहौर के राजा दिलीप सिंह, पेशवा बनारस के राजा, सिन्धिया और बंगाल के नाजिम''।[12] जो बेगम की देशप्रेम व क्रांतिकारी भावना को प्रदर्शित करता है जो नेपाल जाने के पश्चात भी उनके अन्दर विद्यमान था। 1874 ई0 में नेपाल में ही उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार बेगम हजरत महल एक योग्य प्रशासनिक व क्रांतिकारी देशभक्त वीरागंना थी। यद्यपि यह सत्य है कि वह रानी लक्ष्मीबाई जैसी बुद्धिमति नहीं थी और न हीं उसमें रानी जैसा रणकौशल था, तथापि उसने प्रारम्भिक संघर्ष में जिस प्रकार अग्रेंजो को पराजित कर बड़ी तत्परता से शासन सम्बन्धी कार्य आरम्भ किया, वह काफी प्रशंसनीय है।

यद्यपि 1856 में लार्ड डलहौजी द्वारा कुशासन का आरोप लगाकर अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करना, नितान्त गलत व अव्यवहारिक था, क्योंकि दि अवध का प्रशासन में अव्यवस्था थी, फिर भी वहाँ की जनता अपने नवाब से संतुष्ट थी, यदि अग्रेंजों को ऐसे कुशासन का पता चला भी था तो उन्हें उनमें सुधार का प्रयत्न करना चाहिए था, किन्तु डलहौजी ने तत्काल अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया, जो अग्रेंजो के साम्राज्यवादी भावना को स्पष्ट करता है।

अत: इसी साम्राज्यवादी नीति के विरूद्ध बेगम हजरत महल ने विद्रोह किया। अन्त:पुर की एक साधारण बेगम जिस तरह एक जननेत्री में बदल गयी, वह 1857 की लड़ाई को स्वरूप को भी स्पष्ट करता है। बेगम एक लोकप्रिय राजनेत्री तो थी ही, किन्तु आलमबाग व लखनऊ के युद्ध में अपनी बहादुरी का लोहा भी मनवाया। बेगम द्वारा महारानी विक्टोरिया के घोषणा के प्रत्युतर में नागरी व अरबी दोनों लिपियों में जारी बयान में देशवासियों से मलिका के स्वप्नमयी झांसे में न आने की नसीहत दी गयी, जो स्पष्टत: उन्हें गम्भीर राजनीतिज्ञ और प्रजा हितैशी शासक सिद्ध करता है।

रानी लक्ष्मीबाई की तरह बेगम हजरत महल ने भी अपने इस मुक्ति संग्राम में अपना सहायतार्थ हेतु महिला सैनिक दल का संगठन किया था। लखनऊ में बेगम की महिला सैनिक दल का नेतृत्व रहीमी के हाथो में था जिसने फौजी वेश अपनाकर अनेकों महिलाओं को तोप और बन्दुक चलाना सिखाया। बेगम की इस महिला सैनिक दल ने (तुलसीपुर की रानी राजेश्वरी देवी आदि भी थी।) अन्त: तक बेगम के संघर्ष में उसने साथ दिया।

उस प्रकार बेगम हजरत महल बहादुर स्त्रियों में एक थी, जो अपनी सूझबूझ वीरता, संगठन-क्षमता और रण-कुशलता के कारण अन्तिम दम तक अग्रेंजो के लिए भय का कारण बनी रहीं। काठमान्डू की कब्र आज भी उनके त्याग और बलिदान की कहानी सुनाती है। स्मारक के रूप में लखनऊ के विशाल पार्क के मध्य एक खुबसूरत छतरी का निर्माण करवाया गया है जो आज भी उनकी देशभक्ति की स्मृति ताजा कर देती है।

नवाव वाजिद अली शाह, जो अख्तर उपनाम से शाइरी भी करते थे, वे अपनी एक गजल में अपनी प्रिय बेगम को याद करते हुए कहा था,

अभी डर से छिप जाये सारा जहाँ
अगर तू पलक मार हजरत महल।
कहाँ है जहाँ है, कहाँ है जहाँ,
अरे अख्तरे जार हजरत महल।"[13]

संदर्भ सूची

- मिश्र, शिवकुमार, *"1857 की विरासत"*, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान (संपादक), 1857 इतिहास कला साहित्य राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2007
- मिश्र, वन्दना, *1857 के मुक्तिसंग्राम में महिलाओं की भूमिका,* प्रगतिशील वसुधा
- मिश्र, वन्दना, *1857 के मुक्तिसंग्राम में महिलाओं की भूमिका,* प्रगतिशील वसुधा, नई दिल्ली, 2004
- मिश्र,गिरीश, *"1857 की आर्थिक पृष्ठभूमि"*, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान (संपादक), 1857 इतिहास कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पटना 2007
- रिजवी, एस.ए. एन्ड एम. एल. भार्गव (एडिटेड), फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश, वेलूम. 1-2 गवर्मेंट ऑफ यू. पी. लखनऊ, 1957-1960
- कुमारी, सुनीता, "रिवोल्ट ऑफ 1857 इन इंडिया" लिटरेरी सर्किल, जयपुर, 2011
- सिद्धीकी, शकील, *"बेगम हजरत महल घोर पुरुषवादी समाज में एक स्त्री का लड़ना"*, संपादक प्रदीप सक्सेना (संपादक), 1857 महाक्रांति या महाविद्रोह, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

- सिंह मुरली मनोहर प्रसाद एवं रेखा अवस्थी (संपादक), *1857 की इतिहास एवं संस्कृति,* प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2010
- सिंह मुरली मनोहर प्रसाद, चंचल चौहान (संपादक), (पा.), *1857 इतिहास* कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली इलाहाबाद पटना 2007
- सिंह, विजेन्द्र नारायण "1857 *जनसंग्राम का वर्ग चरित्र*", मुरली मनोहर प्रसाद सिंह चंचल चौहान (संपादक), 1857 इतिहास कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पटना, 2007
- निजामी, ख्वजा हसन, *बेगमात के आँसू,* (हिन्दी अनु. मोइनुद्दीन हक) हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 1990
- हबीब, इरफान, "*बार बार याद करने की जरूरत*", मुरली मनोहर प्रसाद सिंह व रेखा अवस्थी (संपादक), 1857 की इतिहास और संस्कृति, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 2010
- पी.सी. जोशी, "*1857 के धरोहर*", संपादक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह व चंचल चौहान, 1857 इतिहास कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- सक्सेना, प्रदीप (संपादक), *1857 महाक्रान्ति या महाविद्रोह,* प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- सावरकर विनायक दामोदर, "*1857 का स्वातंत्रय समर*" प्रभात पेपरबैक्स प्रकासन नई दिल्ली 110002
- सेन सुरेन्द्रनाथ, (हिन्दी अनुवाद), अनुवादक इरफान, *अठारह सौ सत्तावन का स्वतंत्रता संग्राम,* प्रकाशन विभाग भारत सरकार नई दिल्ली, 1998
- वोहरा आशारानी, *महिलाएँ और स्वराज्य,* प्रकाशन विभाग भारत सरकार दिल्ली, 1990
- चंद्र बिपन, एवं मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के.एन. पनिकर, सुचेता महाजन, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली, पुनर्मुद्रण, 2000, हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली, पुनर्मुद्रण, 2001
- चंद्र बिपन, अमलेश त्रिपाठी, बरुण डे, *स्वतंत्रता संग्राम,* (हि. अनु0) रामसेवक श्रीवास्तव, एन.बी.टी, दिल्ली, 2011
- जोशी, पी0सी0, "*हमारे विद्रोही पुरखे*" मुरली मनोहर प्रसाद सिंह एवं रेखा अवस्थी (संपादक), 1857 इतिहास और संस्कृति, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 2010
- नागौरी एस0 एल0, देव प्रणव, *1857 के क्रांतिकारी (भाग-1)* आर बी.एस.ए पब्लिशर्स जयपुर, 2004
- शुक्ला नलिनी, *भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन,* इसिका पब्लिसिंग हाउस जयपुर, भारत, 2010

(Footnotes)

1. मिश्र, वन्दना, 1857 के मुक्तिसंग्राम में महिलाओं की भूमिका, प्रगतिशील वसुधा, नई दिल्ली, 2004, पृ. 420
2. शकील सिद्धीकी, "बेगम हजरत महल घोर पुरूषवादी समाज में एक स्त्री का लड़ना", प्रदीप सक्सेना (संपादक), 1857 महाक्रांति या महाविद्रोह, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 पृ. 465.
3. आशारानी वोहरा, महिलाएँ और स्वराज्य (1757-1950), प्रकाशन विभाग भारत सरकार, दिल्ली, 1990, पृ. 58
4. वहीं
5. सुरेन्द्रनाथ सेन, अठारह सौ सत्तावन का स्वतंत्रता संग्राम, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 1998, पृ. 28
6. सुरेन्द्रनाथ सेन, पूर्वोक्त, पृ. 28
7. वन्दना मिश्र, 1857 के मुक्ति संग्राम में महिलाओं की भूमिका, प्रगतिशील वसुधा, पृ. 417
8. आशारानी वोहरा, पूर्वोक्त पृ. 60
9. Sunita Kumari, Revolt of 1857 in India, Literary circle, Jaipur, 2011 p. 57
10. आशारानी वोहरा, पूर्वोक्त, पृ. 60-61
11. S.A.A. Rizvi, M.L. Bhargava Freedom Struggle in Uttar Pradesh. Vol. IInd, August 15 1958, p. 285
12. इरफान हबीब, "बार-बार याद करने की जरूरत", मुरली मनोहर प्रसाद सिंह व रेखा अवस्थी (संपादक), 1857 की इतिहास और संस्कृति, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, दिल्ली, 2010, पृ. 28

भारतीय भाषा दर्शन में स्फोटवाद की अवधारणा

डॉ० नागेन्द्र तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर - दर्शनशास्त्र विभाग
मुरारका कॉलेज, सुलतानगंज
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश :

भारतीय भाषा दर्शन में स्फोटवाद वैयाकरण दर्शन का वह सिद्धान्त है जिसके अंतर्गत यह बताया गया है कि पद या वाक्य से अर्थ की अभिव्यक्ति कैसे होती हैद्य अर्थविज्ञान के क्षेत्र में स्फोटवाद वैयाकरणों की एक क्रांतिकारी उपलब्धि है। स्फोट सिद्धान्त का विधिवत प्रतिपादन तो भर्तृहरि ने किया किन्तु उनके पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी इस पर गंभीरता से विचार किया है। 'स्फोट' शब्द 'स्फुट' धातु से बना है। स्फुट का अर्थ होता है खिलना, विकसित होना, प्रस्फुटित होना, बढ़ना या विस्तारित होना। अतः जो अपना विस्तार करे, अपने को विकसित या प्रस्फुटित करे, जो स्वयं खिल जाय, वही स्फोट है। कहा भी गया है द्'स्फुटित स्फुटिभवति इति स्फोटः' अर्थात स्फोट वही है जो स्वयं को विकसित करता है। शब्द में अवयवभूत वर्ण स्फोट शब्द को अभिव्यक्त करते हैं, और उसी से अर्थ की प्रतीति होती है। इसी प्रकार वाक्यार्थ-बोध के लिए वाक्य-स्फोट माना गया है। स्फोट का विश्लेषण प्रायः सभी प्रमुख वैयाकरणों ने किया है किंतु सबके मत में एकरूपता नहीं है। पतंजलि के अनुसार स्फोट ज्यों का त्यों रहता है, जबकि वृद्धि या विस्तार ध्वनि में होता है। भर्तृहरि ने शब्द में रहने वाले दो तत्वों स्फोट और ध्वनि की व्याख्या पतंजलि के अनुसार की है। उनके अनुसार उपादान शब्द में दो तत्त्व रहते हैं- एक को शब्दों का निमित्त (कारण) माना गया है और दूसरे का अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार ध्वनि और स्फोट इन दोनों का व्यंग्य व्यंजक सम्बन्ध है। ध्वनि स्फोट का व्यंजक है और स्फोट व्यंग्य है। इसलिए अर्थज्ञान के लिए दोनों की आवश्यकता है।

भारतीय भाषा दर्शन में स्फोटवाद की अवधारणा

भारतीय भाषा दर्शन के क्षेत्र में स्फोटवाद वैयाकरणिकों की एक प्रमुख अवधारणा हैद्य पद या वाक्य से अर्थ की अभिव्यक्ति कैसे होती है, इस संबंध में वैयाकरणों ने स्फोट के सिद्धांत का प्रवर्तन कर क्रान्ति उत्पन्न कर दी। स्फोट सिद्धान्त का विधिवत प्रतिपादन तो भर्तृहरि ने ही किया था किंतु उनके पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी इस पर पर्याप्त चर्चा की है। उनके पूर्ववर्ती आचार्यों में स्फोटायन, औदुम्बरायण, पाणिनी, वाजप्यायन, व्यादि, कात्यायन, पतंजलि तथा वसुरात के नाम आते हैं। भर्तृहरि के परवर्ती आचार्यों में कैयट, हरदत्त, जिनेंद्रबुद्धि, भटोजिदीक्षित, कौंडभट तथा नागेश के नाम उल्लेखनीय हैं। भर्तृहरि वैयाकरण परंपरा की वह मजबूत कड़ी है जो मध्य में अवस्थित होकर अपने से पूर्व तथा अपने से पर दार्शनिक परंपरा को आधार रूप में पकड़े हुए है। प्रस्तुत आलेख की आकार सीमा को ध्यान में रखते हुए यहाँ भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय' के आधार पर ही स्फोटवाद पर विचार किया जाएगा। भर्तृहरि के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती के विचारों को भी संदर्भानुसार उल्लेख किया जाएगा।

स्फोट का अर्थ :

'स्फुट विकास' धातु घन प्रत्यय से स्फोट शब्द निष्पन्न होता है। इसका मूल अर्थ है विकास। जैसे फूल फूट कर तथा विकसित होकर पंखुड़ियाँ बिखेरता और सौरभ फैलाता है। उसी प्रकार बुद्धिस्थ शब्द ध्वनियों में विकास लेकर अर्थाभिव्यक्ति करता है। इसी मूल अर्थ को लेकर भटोजि दीक्षित ने कहा है कि जिससे अर्थ स्फुटित होता है, वह बुद्धिस्थ शब्द स्फोट है।1 अर्थ रूप में यह स्फोट बिम्ब रूप होता है जो स्फुटतर बोध प्रकट करता है जैसे रत्न परीक्षक जब रत्न की परीक्षा करने चलते हैं तब पहले ऊपर से देखकर ज्ञान नहीं कर पाते, जब संस्कार सम्पन्न बुद्धि में विवेचन करते हैं, तभी रत्न तत्त्व प्रकट होता है। इसी प्रकार बुद्धि में स्फोट शब्द के संस्कार स्फुटतर अर्थबोध देने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार स्फटिक मणि में विविध रंगों के बिम्ब उभर आते हैं उसी प्रकार स्फोट की शिला पर ध्वनियों का क्रम उभर आता है, यही प्रतिबिम्बात्मक शब्द स्फोट है जो ध्वनियों के साथ एकरूप हो जाता है।2 स्फोट की परिभाषा में यह भी कहा जाता है कि 'स्फुटत्यर्थो येन सः स्फोटः' अर्थात जिससे अर्थ प्रकाशित होता है, वह शब्द स्फोट कहलाता है। यह शब्द साक्षात् श्रूयमान नहीं होता अपितु ध्वनि से अभिव्यक्त होता हुआ ही सुनाई देता है। भर्तृहरि स्फोट रूप शब्द का निर्देश करते हुए कहते हैं कि यह स्फोट रूप शब्द अर्थबोध की इच्छावाले पुरुष की बुद्धि के पहले आरूढ़ होता है, पश्चात स्थान तथा प्रयत्नों से जनित ध्वनियों के द्वारा अभिव्यक्त होता है।3 इसलिए ध्वनि से अभिव्यक्त होनेवाला, अर्थविषयक प्रमात्मक बोध का जनक जो शब्द, वह स्फोट कहलाता है।

यह स्फोट अनादिनिधन शब्द ब्रह्म का विवर्तभूत तथा पश्यन्ती वाक् का परिणामभूत तथा मध्यमा नाद से व्यक्त होनेवाला तत्त्व है। इसे कार्य ब्रह्म भी कहते हैं, क्योंकि यह ध्वनिरूप रूपित अर्थात ध्वनि के स्वरुप से अनुसक्त होकर ही श्रूयमान होता है। जैसे जपापुष्प के लौहित्य से स्फटिक मणि लोहित वर्ण प्रतीत होता है4 वैसे ही चेतन आत्मतत्व ध्वनिरूप से उपहित (संसक्त) हो जाता है। अतः परमार्थ दृष्टि से चेतन तत्त्व ही स्फोट है, इसलिए नित्य एवं विभु है, पर ध्वनि से उपहित होने से उपाधि की अनित्यता से अनित्य भी है।

भर्तृहरि ने व्यवहार योग्य शब्दों का दो भेद किया है। एक तो वे जो स्फोटात्मक शब्दों के निमित्त अर्थात व्यंजक हैं, इन्हीं को ध्वनि कहा जाता है तथा दूसरे शब्द जो अर्थ के बोध में निमित्त होते हैं, वे ही स्फोट कहे जाते हैं।5 कारणीभूत स्फोटरूप शब्द ध्वनिरूप शब्दों का निमित्त अर्थात उपादान कारण है। ध्वनिरूप शब्द अर्थबोध के लिए प्रयुक्त होता है। अतः वह अर्थबोध के लिए निर्मित है, क्योंकि उसी से अभिव्यक्त होकर वह स्फोट अर्थबोध कराता है।6 प्रथम पक्ष में निमित्त शब्द ज्ञापक रूप हेतु अर्थ में है। द्वितीय पक्ष में निमित्त शब्द उपादान कारण अर्थ में है। तात्पर्य यह है कि यहाँ निमित्त शब्द जनक हेतु तथा ज्ञापक हेतु दोनों अर्थों में है। इस प्रकार ध्वनिरूप शब्दों को व्यंजक तथा स्फोटरूप शब्दों को व्यंग्य माना गया है। स्फोटरूप शब्दों का अपने अर्थ के साथ वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध भी माना गया है। स्फोट एवं ध्वनि में वस्तुतः अभेद है। इनमें जो भेद माना जाता है उसे घट तथा उसके उपादान कारण मृत्तिका के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। इसके अनुसार स्फोट उपादान कारण मिटी के समान है तथा ध्वनि कार्यभूत घट के समान है। ऐसी स्थिति में प्रयोक्ता एवं श्रोता की बुद्धि से इन दोनों का भेद होता है। ये दोनों शब्द जब प्रयोक्ता तथा श्रोता की बुद्धि के विषय होते हैं तब उन बुद्धियों के भिन्न होने से इनमें भी भेद हो जाता है। यह उपाधिकृत भेद कहा जाता है। इसमें दोनों बुद्धियाँ उपाधि है। जिस प्रकार एक ही आकाश घट, मठ एवं कुहर आदि उपाधियों के भेद से घटाकाश, मठाकाश एवं कुहरकाश रूप से भिन्न व्यवहृत होता है किंतु वह वस्तुतः एक ही हैद्य सूर्य नीले, पीले, रक्त, हरित रंग वाले जल से पूर्ण अनेक घड़ों में प्रतिबिंबित होकर नीला, पीला, रक्त आदि नाना रूप में ज्ञात होता है। वस्तुतः महाकाश एवं घटाकाश आदि होने पर भी औपाधिक भेद से ही इनमें भिन्नता प्रतीत होती है।

ध्वनि रूप शब्द स्फोट का प्रकाशक होता है तथा स्फोटरूप शब्द अर्थ का प्रकाशक होता है। भर्तृहरि ने ध्वनिरूप शब्द को प्रयोक्ता की बुद्धि में स्थित स्फोटरूप शब्द का विवर्त माना है। उनके अनुसार इसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। यही प्रयोक्ता की बुद्धि में स्थित शब्द विवर्तभाव को प्राप्त होने से ध्वनिरूप होकर अपने उपादानभूत स्फोट को अर्थात प्रयोक्ता की बुद्धि में स्थित शब्द को तथा अनेक श्रोताओं की बुद्धियों में स्थित स्वजातीय स्फोटात्मक शब्दों को प्रकाशित करता हैद्य अनुदभूतरूप से बुद्धि तत्त्व में शब्द तत्त्व सदा विद्यमान रहता है। जब वह कण्ठ, तालु आदि कारणों के संबंध से विवर्त भाव को प्राप्त होता है, तब वह ध्वनि रूप में आता है, तथा उस व्यंजक ध्वनि के भेद से उसमें पौर्वापर्य की अनुभूति होने लगती है। वह ध्वनि अपने हेतुभूत शब्द को प्रकाशित करते हुए अनेक श्रोतृ बुद्धिस्थ स्फोटरूप शब्दों को भी प्रकाशित करती है। इसे समझाने के लिए वाक्यपदीय में काष्ठ में

विद्यमान अग्नि का उदाहरण दिया गया है जो घर्षण के पश्चात प्रकट होती है।[7] इस प्रकार प्रयोक्ता की बुद्धि में स्थित स्फोट ही स्वरुप एवं पररूप दोनों का प्रकाशक है अर्थात स्वोपादेयभूत ध्वनि के द्वारा अपने रूप का प्रकाशक है तथा श्रोतृ बुद्धिस्थ स्फोट एवं अपने अर्थ के प्रकाशन से पररूप का प्रकाशक है।

स्फोट में कोई क्रिया अथवा क्रम आदि नहीं है फिर भी व्यंजक ध्वनि की क्रिया एवं क्रमत्ता उसमें प्रतीत होती है। इसे मयूराण्ड के उदाहरण द्वारा समझाया गया है। जिस प्रकार मयूर आदि पक्षियों के अंडे में भीतर होने वाला तरल रस आगे उसी में उत्पन्न होने वाले पक्ष, पाद, चक्षु आदि विभिन्न अवयवों के उत्पादन सामर्थ्य से युक्त रहता हुआ ही अण्डे में लीन रहता है, उसमें किसी प्रकार से भी अभीष्ट अवयव देखा नहीं जा सकता।[8] समयोपरांत धीरे-धीरे वे अवयव अभिव्यक्त होने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि वही अंडरस पक्ष, पाद, चक्षु आदि प्रस्फुटित अंगों से संपन्न पक्षी के स्वरुप में होकर अण्डे से बाहर निकलता है, कुछ ही काल में उड़ने भी लगता है। इसी प्रकार स्फोटात्मक शब्द भी ब्रह्मकाण्ड में निर्विभाग रूप से व्याप्त होता हुआ यद्यपि प्रयोग करने वाले मनुष्यों की बुद्धि में भी निर्विभाग अवस्था में सदा विद्यमान रहता है तथापि उच्चारण अनन्तर प्रतीयमान वर्णों की क्रमत्ता अथवा उसके बोधन का सामर्थ्य उसमें उस समय भी अक्रमावस्था में प्रतिलीन रहता है। जब अर्थबोध के लिए उसके उच्चारण की इच्छा होती है तब उसमें एक प्रकार की वृत्ति उदभूत होती है। इसे क्रमिक रूप बोधन का सामर्थ्य कहा जा सकता है। इसे क्रिया रूप माना गया है अर्थात जब शब्द बोलने की इच्छा होती है तब उसके भीतर एक क्रिया होती है जो कि उस पद एवं वाक्य के रूप में दिखा देती है, अनवयव होते हुए भी उसमें अवयवों के आभास के द्वारा क्रम की सत्ता प्रतीत करा देती है।[9]

वैयाकरण दर्शन में स्फोट को चौतन्य अथवा आत्मा का वह निर्लिप्त भाग माना जाता है जिसमें शब्द प्रतिबिंबित होते है तब अर्थबोध होता है। इस प्रकार आत्मा ही स्फोट है जिसके बिना किसी शब्द या अर्थ का अस्तित्व ही नहीं। उसमें प्रतिबिंबित होने वाले वर्णों का एक आतंरिक क्रम बन जाता है जिससे पद और वाक्य चेतना में स्वरूपलाभ करते हैं। भर्तृहरि इसे समझाते हुए कहते हैं कि ध्वनि की उत्पत्ति और शब्द के ग्रहण का एक अंतराल होता है, उस अंतराल में भी शब्द की सत्ता है, परंतु ज्ञाता भ्रमवश उच्चारण और श्रवण की स्थिति में ही शब्द की सत्ता मान लेता है। जबकि अन्तरालवर्ती ध्वनि ही शब्द के ग्रहण का उपाय है। इस प्रकार चौतन्य के उस पक्ष को स्फोट कहते हैं जो अर्थबोध कराता है। क्षणिक वर्णों का कोई समूह नहीं बन सकता कि उसे पद या वाक्य कहा जा सके। पद या वाक्य का रूप स्फोट बिम्ब द्वारा ही निर्धारित होता है और तभी अर्थबोध संभव होता है। स्फोट का उक्त शब्द बिम्ब अन्ततः वाक्यरूप लेकर ही अर्थ का बोधक होता है परंतु बीच-बीच में सार्थक पद बिम्बित होते चलते हैं जिससे अखण्ड वाक्य संघटित होता है। इसी प्रकार पदों के संघटित होने में वर्ण का क्रम प्रतिबिंबित होता है। इस प्रकार बिम्बों की दृष्टि से वर्ण स्फोट, पदस्फोट और वाक्यस्फोट भेद देखे जाते हैं। प्रथम वर्ण की अपेक्षा में उत्तरोत्तर वर्णों को लेकर एकीभूत संघटना की पद तथा पदों की एकीभूत बिम्ब संघटना को वाक्य कहा जाता है।

स्फोट में वर्णों के क्रम से पद और पदों के क्रम से वाक्य संघटित होता है जिसके दो दृष्टांत दिए गए हैं। पहला दूध से दही बनने का दृष्टांत है जिसमें दूध कुछ गाढ़ा हो जाता है और जमे हुए थक्के छोटे और अलग होते हैं, फिर और गाढ़ा होने पर वे ही थक्के कुछ और बड़े बनते हैं, अन्ततः सघनता इतनी बढ़ जाती है कि कुल दही एक हो जाता है। क्षीर और दधि दोनों स्थितियों में एकत्व बना रहता है फिर भी भेद की प्रतीति में कोई व्याघात नहीं आता। इसी प्रकार स्फोट के एकत्व में ही वर्णों और पदों का अलगावभासित होता है और अर्थबोध के क्षण में वह अलगाव पुनः एकत्व में लीन देखा जाता है। दूसरा उदाहरण बीज-वृक्ष का है। बीज का एकत्व अव्याहृत है, साथ ही उससे उगा हुआ वृक्ष भी एक रूप में भासित होता है, परंतु अंकुर, नाल, शाखा, पल्लव, पत्र, पुष्प आदि उसी एकत्व में विविधता लिए हुए देखे जाते हैं। यही स्फोट के एकत्व में विविधता का सिद्धांत है। यह भिन्नता में एकत्व नहीं है, प्रत्युत एकता में भिन्नता की प्रतीति मात्र है। इस विविधता का एक क्रम बुद्धि में बनता चलता है, यही स्फोट द्वारा अर्थबोध की सहज प्रक्रिया है।

स्फोट भेद में स्फोट की संख्या का निर्धारण भर्तृहरि ने अपने शब्दों में स्पष्ट रूप से नहीं किया है। परंतु उनके व्यवहार से स्फोट के भेदों का संकेत अवश्य मिलता है। उनके कुछ कथनों से वर्ण, पद तथा वाक्य भेद से स्फोट का त्रिविध रूप स्पष्ट होता है तथा कुछ कथनों से निर्भाग एवं सम्भाग अर्थात अखण्ड एवं सखण्ड ये दोनों भेद भी सिद्ध होते हैं। वाक्य की अखण्डता के साथ ही तुल्यन्याय तथा योग्यता बल से पद की भी द्विविध रूपता मानी जा सकती है। इस प्रकार वर्ण, पद तथा वाक्य इन तीन स्फोटों की

अखंडता सिद्ध होती है। इस दृष्टि से अखण्ड वर्ण स्फोट, अखण्ड पद स्फोट, अखण्ड वाक्य स्फोट, सखण्ड पद स्फोट, सखण्ड वाक्य स्फोट, ये पाँच प्रकार के स्फोट भेद हुए। इसी प्रकार जाति की दृष्टि से भी वर्ण, पद एवं वाक्यभेद से त्रिविध स्फोट भेद मानने पर कुल आठ प्रकार के स्फोट भेद हुए।

निष्कर्ष :

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि वैयाकरणों द्वारा स्फोट अर्थबोधन में उपयोगी है, वर्ण नहीं। वर्ण पद और वाक्य अर्थ के बोधक नहीं अपितु नित्य स्फोट ही अर्थ का प्रतिपादक है। वे वर्णों में वाचकत्व शक्ति न मानकर स्फोटात्मक पद में वाचकत्व के निर्वाहार्थ स्फोट का सिद्धांत मानते हैं।

सन्दर्भ :

1. वाक्यपदीय 1/2/2
2. पु0रा0टी0अ0क0 व्या, वाक्यपदीय, 1/44
3. वाक्यपदीय 1/46
4. वाक्यपदीय 1/51
5. वाक्यपदीय, 1/51 वृषभदेवी टीका
6. वाक्यपदीय 1/85
7. वाक्यपदीय, 1/91
8. वाक्यपदीय, 1/88
9. वाक्यपदीय, 1/95

प्राचीन भारत की राजनीति पर शुक्रनीति का प्रभाव

डॉ० सुनील कुमार

एम.ए., पी.एचडी., उच्च मा0 शिक्षक, रा०उ०माध्यमिक विद्यालय बेरई, कटरा, मुजफ्फरपुर

प्रस्तावना

शुक्रनीति की लेखन-पद्धति को देखकर ऐसा लगता है कि यह मैकियावेली की भांति एक राजा को दिये गए निर्देश अथवा एक शासन व्यवस्था की रूपरेखा है, किन्तु गम्भीर अध्ययन एवं अन्य प्राचीन भारतीय विचारकों के साथ तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट है कि यह कोरे आदर्श अथवा व्यवस्था की रूपरेखा मात्र नहीं, अपितु उस युग की शासन-व्यवस्था एवं व्यवहृत सिद्धान्तों का संकलन है, क्योंकि रामायण से लेकर महाभारत, मनुस्मृति एवं अर्थशास्त्र आदि सभी ग्रंथों में यही वैचारिक परम्परा एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण उपलब्ध होते हैं।[१] इतना अवश्य है कि जहाँ पूर्वकालीन ग्रन्थ मूल रूप में आदर्शोन्मुख थे, वहाँ महर्षि शुक्र संभवतः अधिक व्यावहारिक एवं भौतिकवादी थे। यही कारण है कि उन्होंने अनेक स्थानों पर विशेषकर राजा, संकटकालीन स्थिति एवं न्याय-व्यवस्था आदि के संदर्भ में आदर्शवादिता को त्याग व्यावहारिकता एवं भौतिकता को ग्रहण करने का प्रयास किया है। वास्तव में महर्षि का उद्देश्य एक ऐसा ग्रन्थ लिखने का था, जो कि जीवन के भौतिक एवं व्यावहारिक पहलू पर आधारित एक ऐसी व्यावहारिक व्यवस्था, जो प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुरूप हो, को स्थापित करने में सक्षम है।

महर्षि शुक्र ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्तों को ही स्वीकार किया है किन्तु उन्होंने पाश्चात्य विचारकों की भाँति प्रत्येक राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं माना है, अपितु केवल गुण एवं श्रेष्ठ कर्मयुक्त नीतिपरक राजा को ही देवांशों से युक्त माना है।[२] शुक्रनीतिकार की यह मान्यता थी कि राजा को यह कर वेतन के रूप में प्राप्त होता है इसलिए वह दास की भांति प्रजा का पालन करेगा। इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शुक्र दैवीय उत्पत्ति के साथ ही यह भी मानते थे कि राजा के अस्तित्व एवं प्रजा के साथ उसके सम्बन्धों के मूल में कहीं न कहीं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में समझौते की भावना विद्यमान है। जहां राज्य की प्रकृति का सम्बन्ध है, महर्षि ने, यद्यपि स्पेंसर की भांति विस्तृत विवेचन तो प्रस्तुत नही किया, किन्तु इतना स्पष्ट है कि वह राज्य की प्रकृति के सावयव सिद्धांत से अवश्य परिचित थे यही कारण है कि उन्होंने राज्य के सातो अंगों की तुलना मनुष्य के शरीर से की है। इस प्रकार राज्य की प्रकृति एवं उत्पत्ति के साथ ही साथ आचार्य शुक्र सर्वोच्च दण्ड-धार एवं समाज के नियंत्रक के रूप में राजा को अनिवार्य बताया है।[३] उनके अनुसार राजा के न होने पर समाज में मत्स्य-न्याय जैसी स्थिति हो जाती है। अतः ऐसी स्थिति के विचारणार्थ ही उन्होंने शक्ति-सम्पन्न राजा की कल्पना प्रस्तुत की है। आपात्कालीन स्थिति के विवरण में तो यहाँ तक कहा गया है कि ऐसी स्थिति में राजा सभी शक्तियों को अपने हाथ में लेकर सामान्य नियमों की अवहेलना करते हुए, आवश्यकता पड़ने पर, लोगों की सम्पत्ति छीन सकता है। अधिकारियों के वेतन में कटौती कर सकता है, सेना के अधिकारियों एवं सैनिकों को बिना मुकदमा चलाये हुए राजद्रोह के अपराध में मृत्यु-दण्ड भी दे सकता है। महर्षि ने तो यहाँ तक कहा है कि आवश्यकता पड़ने पर वह दस्यु जीवन व्यतीत कर सकता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि एक सर्वोच्च एवं निरंकुश राजा में विश्वास रखते थे, किन्तु अन्य उपबन्धों तक राजा के ऊपर लगाये प्रतिबन्धों को ध्यान में रखने से ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धान्त में भले ही आचार्य ने एक निरंकुश राजा की कल्पना की हो, किन्तु व्यवहार में वे ऐसे राजा के पक्षपाती नहीं थे। यही कारण है कि उन्होंने राजा से अपेक्षा की कि उसका आचरण नीति, धर्म एवं लोकाचार के अनुकूल होगा तथा वह अपने विश्वासपात्र मंत्रियों द्वारा दिखाये गये निर्दिष्ट मार्ग पर चलेगा। राजा एवं मंत्रि-परिषद् के बहुमत के अनुकूल ही कार्य करेगा।[४] विभागीय निर्णयों की

प्रक्रिया को देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तविक निर्णय विभागीय अधिकारियों, मंत्रियों एवं राजपुरोहितों आदि के द्वारा ही लिए जायेंगे, राजा तो उस पर केवल हस्ताक्षर मात्र करेगा। राजा की शक्तियों के इस व्यावहारिक पक्ष को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्रनीति की व्यवस्था सिद्धान्त में भले ही निरंकुश राजतंत्र की दृष्टिगोचर होती है, किन्तु व्यवहार में सीमित राजतंत्र जैसी प्रतीत होती है।

यद्यपि सभा शासन का एक महत्वपूर्ण अंग है, फिर भी आचार्य ने उसके संगठन, शक्तियों आदि का कोई विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया। किन्तु सभा के सदस्यों में विभिन्न जातियों के वृद्ध पुरूषों के अतिरिक्त अपना मत प्रकट करने की व्यवस्था से प्रतीत होता है कि शुक्रनीति की सभा का संगठन भी प्रजातंत्रोन्मुख था। सभा में विधि के विशेषज्ञों तथा न्यायकर्त्ताओं की उपस्थिति आज भी ब्रिटेन की लार्ड सभा की याद दिलाती है।[५] यद्यपि सभा द्वारा किये जानेवाले कार्यों का विस्तृत विवेचन उपलब्ध नहीं होता, पर विश्लेषणात्मक विवेचन से ऐसा स्पष्ट है कि सभा में विभिन्न समस्याओं पर विचार किया जाएगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शुक्रनीति की विधायी प्रशासनिक एवं न्यायिक शक्तियों के सम्बन्ध में, राजा की शक्ति ही अंतिम नहीं, अपितु ऐसी प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण शासन कार्यों के सम्बन्ध में सभा की स्थिति भी महत्वपूर्ण है।

राजा, मंत्रिपरिषद् तथा सभा आदि की शक्तियाँ एवं इनके द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यो से ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्रनीतिकार ने किसी सीमा तक शक्ति के पृथक्करण के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया है। जहाँ एक ओर कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग राजा एवं मंत्रिपरिषद् द्वारा करने की व्यवस्था बताई गयी है, वहाँ दूसरी ओर न्यायिक क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान न्यायसभा को दिया गया है, जिसमें केवल इसी उद्देश्य से नियुक्त विशेषज्ञ ही भाग ले सकेंगे।[६]

दण्ड के सिद्धान्तों के साथ ही साथ शुक्राचार्य ने दण्ड प्रदान करने का भी विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत न्यायिक कार्यो के सम्पादन हेतु विभिन्न स्थानीय एवं केन्द्रीय न्यायालयों की व्यवस्था की गई है। आपसी विवादों तथा समस्याओं के सुलझाने के उद्देश्य से महर्षि ने कुल, श्रेणी, गण आदि स्थानीय न्यायालयों का प्रावधान किया है। वास्तविकता तो यह है, कि शुक्रनीति की न्याय-व्यवस्था में स्थानीय न्यायालयों द्वारा लिये गए निर्णय अपेक्षाकृत अधिक स्थायी एवं शान्ति प्रदान करने वाले माने गये हैं, क्योंकि महर्षि के अनुसार स्थानीय समस्याओं के सुझाव के लिए वहाँ के स्थानीय व्यक्ति ही अधिक प्रभावशाली निर्णय करने में सक्षम हो सकते है।[७] इस प्रकार शुक्रनीतिकार ने स्थानीय न्यायालयों की व्यवस्था करके न्याय-व्यवस्था को अत्यधिक व्यावहारिक सुगम एवं महत्वपूर्ण बना दिया है। इसी भाँति केन्द्रीय न्यायालयों के अंतर्गत, राजा की न्यायसभा को सर्वोच्च न्यायालय के रूप में स्वीकार किया है। लेकिन इसके अतिरिक्त अध्यक्ष न्यायालय एवं सभ्य न्यायालय की भी व्यवस्था की है। महर्षि ने उपर्युक्त न्यायालयों में क्रमशः एक न्यायालय के विरूद्ध दूसरे बड़े न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था की है। आचार्य ने न्यायसभा को प्रारम्भिक एवं अपीलीय दोनों प्रकार के क्षेत्राधिकार प्रदान किये हैं तथा इसे किसी भी विवाद में पुनरावलोकन का अधिकार भी दिया है। केवल इतना ही नहीं, विवादों में वादी, प्रतिवादी, साक्षी को बुलाने की 'सम्मन' प्रक्रिया तथा वकीलों की व्यवस्था और अपराधियों की जमानत एवं विभिन्न प्रकार के प्रमाणों में दिव्य शपथ से अधिक लिखित प्रमाणों को महत्ता प्रदान करने आदि की क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक व्यवस्था भी महर्षि ने दी है। इससे स्पष्ट है कि भले ही शुक्रनीति की दण्ड एवं न्याय-व्यवस्था, उच्च आदर्शो पर स्थापित की गई हो, किन्तु वह कोरे आदर्श पर आधारित न होकर अत्यधिक व्यावहारिक एवं भौतिक ही प्रतीत नही होती अपितु आज की महत्वपूर्ण भौतिक परिस्थितियों के अनुरूप एवं समीप ही है।

शुक्रनीतिकार की मान्यता के अनुसार सम्पत्ति का स्वामित्व व्यक्तिगत था। शुक्राचार्य ने सम्पत्ति के सन्दर्भ में व्यापक व्यवस्थाएँ प्रस्तुत की है। सम्पूर्ण विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति का सम्पत्ति पर अपना व्यक्तिगत स्वामित्व होगा, किन्तु आपात् स्थिति में सम्पत्ति पर व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार न रहकर सामूहिक अधिकार या राज्य की व्यवस्था बतायी गई है। आपात् स्थिति में राजा द्वारा सम्पत्ति के हरण सम्बन्धी उपबन्धों से यह स्पष्ट है कि आपात् स्थिति में प्रत्येक की सम्पत्ति, राष्ट्र रक्षा के प्रयोग में लायी जा सकेगी। वस्तुतः शुक्रनीति के वर्णन से ऐसा भी स्पष्ट है कि सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व होते हुए भी आपात् स्थिति में सामूहिक हित के लिए राज्य द्वारा उसका प्रयोग किया जा सकेगा।

शुक्रनीति कर-व्यवस्था कुछ सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित सिद्धान्तों पर आधारित है, जिसके अन्तर्गत राज्य द्वारा आरोपित एवं संग्रहीत विभिन्न करों का प्रयोग राज्य के हितार्थ एवं सार्वजनिक भलाई के लिए किया जाएगा। शुक्रनीति में राजा को, इस प्रकार के करों को व्यक्तिगत प्रयोग में लेने वाले राजा को नरकगामी माना है तथा महर्षि ने केवल लाभ पर ही कर लगाने की व्यवस्था की है, जिससे किसी भी प्रकार का कष्ट करदाता को न होने पाये। इसके साथ ही आचार्यशुक्र ने प्रजा पर अधिक कर लगाने पर प्रतिबन्ध लगाया है।[८] केवल इतना ही नहीं देवोत्तर एवं तीर्थस्थानों पर भी कर लगाने का निषेध महर्षि द्वारा किया गया है। राज्य द्वारा आरोपित

करों को संग्रहीत करने के उद्देश्य से आचार्य ने विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति का भी निर्देश दिया है। भाग को संग्रह करने के लिए भागहार, शुल्क को एकत्र करने के लिए शैल्विक की नियुक्ति की व्यवस्था बताई है। इसके अतिरिक्त कर-संग्रहकर्त्ता को जितने अधिक ग्रामों से कर संग्रह करने का अधिकार होगा, उसकी पदवी उतनी ही ऊँची मानी जायेगी। दस ग्रामों से कर संग्रह करने वाले अधिकारी को 'नायक', सौ ग्रामों के संग्रहकर्त्ता को अनुसामन्त तथा दस हजार ग्रामों से कर ग्रहण करने वाले अधिकारी को आशापाल या स्वराट के नाम से सम्बोधित किया गया है।

कर आरोपण एवं अधिग्रहण के अतिरिक्त शुक्रनीतिकार ने राज्य द्वारा उसके किये जाने वाले व्यय के सम्बन्ध में भी विस्तृत विचार प्रस्तुत किये है।[९] इसके अन्तर्गत, होनेवाले व्यय के मदों का भी वर्णन उन्होंने नहीं किया, अपितु उन मदों पर निश्चित प्रतिशर्तो के अनुसार व्यय करने का प्रावधान भी किया है। इस प्रकार शुक्रनीति आय-व्यय व्यवस्था के अध्ययन से स्पष्ट है कि राजा को मनमाने तरीके से किसी भी मद पर खर्च करने की छूट नहीं होगी, अपितु सुनिश्चित आय-व्यय लेखा के ही अनुसार कार्य करने का आदेश है। इस आय-व्यय-लेखा के अनुसार व्यवस्थित आय-व्यय का ब्योरा रखने के लिए एक आय-व्यय-लेखक की नियुक्ति को आचार्य ने अनिवार्य मानते हुए उसकी व्यवस्था की है। कर तथा आय-व्यय सम्बन्धी विचारों से भी यही प्रमाणित होता है कि शुक्रनीति के विचार, वर्तमान व्यवस्था से बहुत सीमा तक साम्य रखते हैं।

प्राचीन भारत में अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों के क्षेत्र में शक्ति एक निर्णायक तत्व के रूप में विद्यमान थी। शुक्रनीतिकार ने अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों में व्यक्ति-संतुलन की ओर विशेष ध्यान दिया है।[१०] शुक्रनीतिकार की मान्यतानुसार शक्ति का प्रयोग तभी आवश्यक माना गया है जबकि शांतिपूर्ण समझौते के अन्य सभी उपाय असफल हो जायें। इससे यह स्पष्ट है, कि महर्षि शुक्र सामादि उपायों में दण्ड को अन्तिम उपाय के रूप में स्वीकार करते थे। यही कारण है कि उन्होंने राजनय के सिद्धान्तों का ज्ञान राजा एवं दूत नामक मंत्रिपरिषद् के सदस्य के लिए अनिवार्य माना है।

उपसंहार

इस प्रकार शुक्रनीतिसार में वर्णित सिद्धान्त प्राचीन भारतीय राजनैतिक संस्थाओं को स्थापित करने में मौलिक योगदान दिया है। इनके द्वारा राज्य की उत्पत्ति, राजा और मन्त्रिपरिषद, न्याय व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था, दुर्ग व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय शासन व्यवस्था, सप्तांग सिद्धान्त, दस प्रकृतियाँ तथा परराष्ट्र सम्बन्धी जो मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है वह उनके काल तक के किसी भी भारतीय राजनीतिक विचारक द्वारा प्रमाणिक रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया। राजनीतिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त अनेक ऐसे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था विषयक निर्देशों को भी शुक्रनीति ने समायोजित किया है जिसके आधार पर न केवल शुक्रकालीन भारतीय समाज लाभान्वित होता रहा है। शुक्रनीति आचार्य शुक्र की मौलिक चिन्तन को प्रस्तुत करने वाला प्रमाणिक ग्रन्थ है। जो भारतीय राजनीतिक चिन्तन परम्परा को अग्रसर ही नहीं करता बल्कि उसे मौलिक चिन्तन से आपूरित करता है। किसी भी ग्रन्थ की महत्ता उनके रचनाकाल की प्राचीनता में निहित न होकर उसमें दबे विचारों की श्रेष्ठता पर निश्चित होती है। यह शुक्रनीतिसार मात्र सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से ही महत्व की कृति नहीं है बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। शुक्रनीति के राजनीतिक विचार वर्तमान समय में प्रगतिशील समाज के लिए पर्याप्त महत्त्व का है। अतः शुक्रनीति में वर्णित राजनीतिक विचार एवं संस्थाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण हीं नहीं अनिवार्य है।

संदर्भ सूची

1. मत्स्यपुराण, संपादक श्री रामशर्मा आचार्य प्रथम संस्करण बरेलीः संस्कृति संस्थान, 1970, पृष्ठ सं0-100
2. G.P. Cooch op.cit, p.05
3. प्रेमकुमारी दीक्षित, महाभारत में राज्य-व्यवस्था, प्रथम संस्करण, लखनऊ, अर्चना प्रकाशन, पृ0-14
4. के0पी0 जायसवाल, ओप.सीट., पृ0 - 186-187
5. द्रष्टव्य-प्रभाकर दीक्षित, पूर्वोक्त, पृ0-113
6. प्रेमकुमारी दीक्षित, पूर्वोक्त, पृष्ठ-100-123
7. अग्नि पुराण, संपादक श्री रामशर्मा आचार्य प्रथम संस्करण बरेलीः संस्कृति संस्थान, 1969, पृ0-98
8. ऋग्वेद सं0 गोपाल प्रसाद कौशिक, गंगा बुक डिपो, पृ0-27
9. अनंत सदाशिव अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0-204
10. वही, पृ0 - 189

काँग्रेस, गाँधी और किसानों के मुद्दे (1912-1922) : एक अध्ययन

डॉ० नेहा कुमारी

एम.ए., पीएच.डी., इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

गाँधी के राजनीतिक कार्यक्रम का जनता में आकर्षण क्यों व्यापक रहा, इसे समझने के लिए पहले विश्वयुद्ध के दौरान भारत के राजनीति और सामाजिक वातावरण को समझना होगा, क्योंकि भारतीय राष्ट्रवाद के एक निर्विवाद नेता के रूप में गाँधी के उदय के लिए इस वातावरण ने निश्चित ही एक अनुकूल संदर्भ पैदा किया। युद्ध का सबसे तात्कालिक परिणाम रक्षा-व्यय में एक अभूतपूर्व वृद्धि था, जो 1919 के बाद भी, कटौती तो दूर, लगातार बढ़ता रहा। नतीजा था एक विशाल राष्ट्रीय ऋण जिसमें 1914 और 1923 के बीच 30 लाख रूपए से अधिक की बढ़ोत्तरी हुई। इसका मतलब था भारी युद्धजनित कर्ज और करों में वृद्धि और चँकि मालगुजारी तय की जा चुकी थी और फौरन नहीं बढ़ाई जा सकती थी, इसलिए व्यापार और उद्योग पर अप्रत्यक्ष करों का बोझ बढ़ा। सीमा शुल्क बढ़ा, एक आयकर लगा, कंपनियों पर और अविभाजित हिन्दू परिवारों पर भारी कर लगे, अतिरिक्त लाभकर लगा, आदि। इन नए करों का बोझ आखिरकार आम जनता पर ही पड़ा, क्योंकि इनके कारण भारी मूल्यवृद्धि हुई। सरकारी गणनाओं के अनुसार (1873 को आधार वर्ष मानने पर) अखिल भारतीय स्तर पर मूल्य सूचकांक 1914 में 147 से बढ़कर 1920 में 281 हो गया।[1] यह अभूतपूर्व मूल्यवृद्धि अंशतः अप्रत्यक्ष करों का और अंशतः यातायात संबंधी या अन्य आर्थिक अव्यवस्थाओं का नतीजा थी। 1918-19 और 1920-21 में दो-दो बार फसलों की अभूतपूर्व हानि के कारण खाद्यान्न का उत्पादन कम रहा और इससे संयुक्त प्रांत, पंजाब, बंबई, मध्य प्रांत, बिहार और उड़ीसा के काफी बड़े हिस्से प्रभावित हुए। लेकिन जहाँ घरेलू उपयोग के लिए पहले से ही अनाजों की भारी कमी थी, वहीं बाहर लड़ रही फौजों के लिए अनाजों का निर्यात जारी रहा। इससे अनेक क्षेत्रों में लगभग अकाल जैसी दशाएँ पैदा हो गई और इंफ्लुएंजा की महामारी ने जनता की बदहाली को ओर बढ़ा दिया। 1921 की जनगणना के अनुसार 1918-19 के अकाल और महामारी के कारण कोई 1 करोड़ 20 लाख से 1 करोड़ 30 लाख लोग मरे, जिससे देश की स्वाभाविक जनसंख्या वृद्धि रूक गई।[2]

1914 और 1923 के बीच फौज के लिए जबरी भरती बेरोकटोक जारी रही, जिससे देहातों में जन-असंतोष लगातार बढ़ता रहा। यह इसलिए और भी बढ़ता रहा कि युद्ध के आर्थिक प्रभावों की मार ग्रामीण समाज के सभी वर्ग पहले से झेल रहे थे। जहाँ औद्योगिक व आयतित वस्तुओं के और अनाजों के दाम बढ़ रहे थे और गरीब किसानों को प्रभावित कर रहे थे, वहीं भारतीय कृषि से निर्यातित कच्चे मालों के दाम उसी गति से नहीं बढ़े। नतीजा हुआ कि नकदी फसलों के निर्यात गिरे, उनके भंडार में वृद्धि हुई और उनके क्षेत्रफल में गिरावट आई, जिससे 1917-19 के दौरान बाजार में एक संकट पैदा हो गया। इससे धनी किसानों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस काल में बे-जमीन होनेवाले और बेदखली खेतिहर बनते जानेवाले किसानों की संख्या में स्पष्ट वृद्धि हुई, और जमीनें गैर-खेतिहर वर्गों के हाथों में पहुंचती रहीं। 1914 और 1922 के बीच संयुक्त प्रांत और मद्रास में यह प्रक्रिया तीव्र रही और अधिक स्पष्ट रूप से देखी जाती रही। कुछ क्षेत्रों में किसानों की बढ़ती आर्थिक परेशानी संगठित किसान प्रतिरोधों में व्यक्त हुई, मसलन संयुक्त प्रांत में 1918 में आरंभ हुए किसान सभा आंदोलन में।

पहले विश्वयुद्ध के दौर का दूसरा महत्त्वपूर्ण आर्थिक विकासक्रम उद्योगों का प्रसार था। वित्तीय आवश्यकताओं, आर्थिक मजबूरियों और राष्ट्रवादी दबाव के कारण उद्योगीकरण के प्रति सरकार की नीति बदली और जूट व कपड़ा उद्योगों का उल्लेखनीय

विकास हुआ। जहाँ जूट उद्योग का विकास मुख्यत: ब्रिटिश पूँजी से हुआ वहीं बंबई और अहमदाबाद के कपड़ा उद्योगों में मुख्यत: भारतीय पँजी लगी हुई थी। यहाँ के बड़े उद्योगपति अंग्रेजों के वफादार बने रहे, क्योंकि वे निर्यातों पर और कच्चे कपास की कीमतें कम रखवाने या श्रमिक असंतोष से निबटने के मामले में सरकार की सहायता पर निर्भर थे। इसके विपरीत युद्धकालीन करों के खिलाफ तथा रूपए और स्टर्लिंग की घटती-बढ़ती विनिमय दरों को लेकर छोटे और मझोले व्यापारियों की अनेक शिकायतें थीं। जनगणना के आँकड़ों के अनुसार 1911 और 1921 के बीच संगठित उद्योगों में मजदूरों की संख्या में 5.75 लाख की वृद्धि हुई तथा इस काल की अभूतपूर्व मूल्यवृद्धि ने इस प्रसारमान मजदूर वर्ग पर सचमुच गहरी चोट की। युद्ध के दौरान और बाद में व्यापारियों ने भारी मुनाफे कमाए, मगर मजदूरों की वास्तविक मजदूरियाँ गिरीं। लाहौर या बंबई जैसे नगरों में मजदूरों के जीवनयापन की औसत लागत में 60 या 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि, मजदूरियाँ केवल 15 से 25 प्रतिशत तक बढ़ी;[3] ऐसी ही हालत कलकत्ता के जूट मिलों में, जमशेदपुर के इस्पात संयंत्र में और असम के चाय बगानों में थी। इसका स्पष्ट परिणाम चेम्सफोर्ड के शब्दों में हड़तालों का एक तरह का तपता बुखार था, जिसने भारत के सभी औद्योगिक केन्द्रों को प्रभावित किया।[4]

राष्ट्रवादी राजनीतिक प्रक्रिया और गाँधी

इस तरह भारतीय जनता के लगभग सभी वर्गों के लिए पहले विश्वयुद्ध ने सामाजिक और आर्थिक अफरातफरी पैदा की और जनाक्रोश के एक आसन्न उभार के लिए आवश्यक सामाजिक लामबंदी की दशा पैदा की। युद्ध ने पश्चिम की तड़क-भड़क से प्रभावित शिक्षित नवयुवकों का मोहभंग भी किया और एकाएक उनको पश्चिमी सभ्यता का घिनौना चेहरा नजर आने लगा। इस तरह नैतिक और राजनीतिक हताशा के एक वातावरण ने जब गाँधी का स्वागत किया जब वे दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों से सफल टकराव की एक पृष्ठभूमि के साथ भारत आए। जैसा कि ज्यूडिथ ब्राउन का तर्क है, गाँधी की नई राजनीतिक विचारधारा ने कुछ को पूरी तरह लेकिन बहुतों को अंशत: आकर्षित किया, क्योंकि हरेक को इसमें ऐसी कोई बात नजर आई जिससे वह स्वयं को जोड़ सके।[5] पहले के राजनीतिज्ञों के विपरीत वे भारत की बहुलता के बारे में पूरी तरह सजग थे और उन्होंने ध्यान रखा कि कोई भी समुदाय या वर्ग विमुख न हो।

गौरतलब है कि पहले के राजनीतिज्ञ पश्चिम से लिए गए विचारों पर निर्मित एक राष्ट्रवादी विचारधारा का वर्चस्व चाहते थे, जबकि गाँधी का तर्क था कि इस विचारधारा की जड़ें भारत और उसकी प्राचीन संस्कृति में होनी चाहिए। उनकी राय में जनता की कादारियाँ वर्ग से निर्धारित नहीं होती थीं, बल्कि जनमानस पर धर्म का प्रभाव कहीं अधिक था। इसलिए उन्होंने जनता की लामबंदी के लिए धार्मिक मुहावरों का सफलतापूर्वक उपयोग किया। लेकिन यह पिछले राजनीतिज्ञों वाला पुनरूत्थानवाद नहीं था, क्योंकि वे (गाँधी) इतिहास की नहीं, धार्मिक नैतिकता की बात कर रहे थे। उनका लक्ष्य एक नैतिक लक्ष्य और इसलिए एक हवाई लक्ष्य था- हमेशा दूर-दूर रहनेवाला। उन्होंने स्वराज को अपना राजनीतिक लक्ष्य बतलाया, पर कभी उसका भाव स्पष्ट नहीं किया और इसलिए अपने छतरी समान नेतृत्व में उन्होंने विभिन्न समुदायों को एकजुट किया। सर्व-समावेश को ''गाँधी की अनोखी राजनीतिक शैली''[6] समझा जाने लगा, जो भारत में विविधताओं की स्वीकृति पर आधारित थी।

हिन्द स्वराज (1909) में, जिसे अक्सर गाँधी की विचारधारा का प्रामाणिक वक्तव्य माना जाता है, गाँधी ने भारतीय राष्ट्र की एक सभ्यतामुखी धारणा पेश की है। कहते हैं कि इस्लाम-पूर्व काल से ही भारतीय एक कौम या प्रजा थे।[7] प्राचीन भारतीय सभ्यता, जो असंदिग्ध रूप से सर्वश्रेष्ठ थी, भारतीय राष्ट्रीयता की स्रोत थी, क्योंकि इसमें विभिन्न पंथों वाले विदेशियों को आत्मसात करने की असीमित क्षमता है और अब उन विदेशियों ने इस देश को अपना देश बनाया। इस सभ्यता को जिसकी बुनियाद ठोस है और जिसने हमेशा नैतिक प्राणी को उदात्त बनाया, इस ईश्वरहीन आधुनिक सभ्यता से कुछ भी नहीं सीखना है, जो केवल अनैतिकता का प्रचार करती है। औद्योगिक पूँजीवाद को, जो इस आधुनिक सभ्यता का सारतत्त्व है, हितों के सारे टकरावों के लिए जिम्मेदार बतलाया गया, क्योंकि उसने नैतिक सरोकारों से आर्थिक कार्यकलापों का नाता तोड़ दिया और इस तरह साम्राज्यिक आक्रामकता को प्रोत्साहन दिया। अपनी गुलामी के लिए भारतवासी खुद ही जिम्मेदार हैं, क्योंकि उन्होंने पँजीवाद को और उससे जुड़े कानूनी और राजनीतिक ढाँचों को अपनाया है। भारत को अंग्रेजों ने नहीं छीना है; इसे हमने उनको दिया है। और गाँधी का विश्वास था कि रेल, वकील और डॉक्टर देश को दरिद्र बना रहे हैं।

इस राष्ट्रीय विपदा के बारे में उनका समाधान नैतिक और हवाई था। भारतवासियों को चाहिए कि लोभ और उपभोग का मोह त्यागकर प्राचीन काल की, ग्राम-केन्द्रित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की ओर वापस लौटें। दूसरी ओर, संसदीय लोकतंत्र, जो पश्चिम की उदारवादी राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी सिद्धांत और इस कारण आधुनिक सभ्यता का एक और बुनियादी पहलू है, गाँधी की राय में जनता की नहीं, राजनीतिक दलों की आम इच्छा को व्यक्त करता है जो विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और पार्टी-अनुशासन के नाम पर सांसदों की नैतिक स्वतंत्रता पर अंकुश लगता हैं और पार्टी-अनुशासन के नाम पर सांसदों की नैतिक स्वतंत्रता पर अंकुश लगाते हैं। इसलिए उनकी राय में स्वतंत्रता पा लेना और फिर अंग्रेजों से रहित अंग्रेजी राज को स्थायी बनाना काफी नहीं है; पश्चिम के उदारवादी राजनीतिक ढाँचों के एक भारतीय विकल्प जनता की प्रभुसत्ता का विचार था, जिसमें हर व्यक्ति अपने स्व को नियंत्रण या संयम में रखे और यही स्वशासन और मात्र होमरूल के बीच गाँधी का सूक्ष्म अंतर था।

गाँधी का कथन था : ''हर व्यक्ति को ऐसे स्वराज का स्वयं अनुभव होना चाहिए।'' अगर इस लक्ष्य को पाना कठिन था, तो भी गाँधी ने इसे मात्र एक स्वप्न मानने से इंकार कर दिया। गाँधी ने अपने आलोचक को यह जबाव दिया: यह समझना कि इतिहास में जो कुछ नहीं हुआ, वह होगा ही नहीं, मानव की गरिमा में अविश्वास की बात करना है। इसकी प्राप्ति के लिए उनकी तकनीक थी सत्याग्रह, जिसे उन्होंने सत्य या आत्मा की शक्ति के रूप में परिभाषित किया। इसका और व्यावहारिक अर्थ सविनय अवज्ञा था, बल्कि उससे भी श्रेष्ठतर कोई चीज। यह प्रतिरोधियों के श्रेष्ठतर नैतिक बल की मान्यता पर आधारित था, जो नैतिक बल का प्रदर्शन करके उत्पीड़कों के दिल को भी बदल दे। उनके संदेश का बुनियादी उसूल थी अहिंसा, जो सभी हालतों में समझौतों से परे थी।[8]

संभवत: यह कहना एकदम सही न हो कि गाँधी ने पूरी आधुनिकता को अस्वीकार किया। हिन्द स्वराज की भूमिका में एंथनी पटेल लिखते हैं कि यह पाठ एक पाठक और एक संपादक के बीच एक संवाद की तर्ज पर पेश किया गया था, जिसमें संपादक ''एक बहुत अधिक व्यक्ति'' है और यह भूमिका गाँधी ने अपने लिए रखी है। अपने पूरे जीवन में उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं का जमकर उपयोग किया, दक्षिण अफ्रीका में बिताए दिनों में उन्होंने *इंडियन ओपीनियन* का संपादन किया, और फिर यंग इंडिया और हरिजन उनके विचारों के प्रमुख वाहक रहे। अपने अभियानों के दौरान उन्होंने रेल यात्राएँ भी कीं। फिर भी पश्चिमी सभ्यता के आधुनिक चरण की वैचारिक समालोचना प्रस्तुत करते हुए गाँधी ने ब्रिटिश राज की नैतिक वैधता को कारगर चुनौती दी जो पश्चिम की श्रेष्ठता की कथित मान्यता पर आधारित था।

जहाँ तक उनके तरीकों का सवाल था, पार्थ चटर्जी का तर्क है कि यथार्थ राजनीति के मामले में इन तरीकों ने गाँधी को जोड़-तोड़ की असीमित क्षमता प्रदान की। नैतिकता और राज के बीच मौजूद दरार को निहित ढंग से स्वीकार किया गया-अहिंसा इस खाई को पाट सकती थी। असफलताओं की व्याख्या या तो आदर्श की उदात्तता के या मानव की निमिति की अपूर्णताओं के आधार पर की जा सकती थी। लेकिन जोड़-तोड़ की इस यथार्थ संभावना के बावजूद राष्ट्रीय आंदोलन की वास्तविकताओं से अहिंसा के सिद्धांतों का तालमेल बिठाने की यह समस्या ऐसी एक स्थायी दुविधा साबित हुई, जिससे गाँधी को भारतीय राष्ट्रवाद के नेता के रूप में जीवन भर जूझना पड़ा और समय के साथ आंदोलन में तेजी आई, तो यह दुविधा और तीखी होती गई।[9]

महात्मा गाँधी के 1915 में दक्षिण अफ्रीका से वापस आने के पहले भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन को ज्यूडिथ ब्राउन ने *सुविचारित सीमाबंदियों की राजनीति* और रवींदर कुमार ने जनता के विपरीत ''वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाला एक आंदोलन''[10] कहा है। मूलत: इन विशेषणों का अर्थ यह है कि उस समय तक राष्ट्रवादी राजनीति में भागीदारी पश्चिमी शिक्षा-प्राप्त पेशेवर लोगों के एक सीमित समूह की ही थी, जिनकी नई कुशलताओं ने उन्हें इस काबिल बनाया था कि प्रशासनिक पदों, जिला बोर्डों या विधायिकाओं की सीटों के रूप में अंग्रेजी राज ने जो अवसर पैदा किए थे, उनका लाभ वे उठा सकें। वे मुख्य रूप से कुछ विशेष जातियों और समुदायों, कुछ विशेष भाषायी और आर्थिक समूहों के लोग थे, जो अधिकतर तीन प्रेसिडेंसी नगरों (कलकत्ता, बंबई और मद्रास) में रहते थे। इन वर्गों को डेविड.ए.लो ने *ब्रिटिश शासकों के टहलुए* कहा है, जो भारत में किसी दूरगामी आर्थिक या सामाजिक परिवर्तन में दिलचस्पी भी रखते थे तो बस जरा-सी रखते थे। उनका सरोकार अपने ही वास्ते एक नए कुलीन समाज और संस्कृति की रचना से अधिक था और वे ब्रिटिश कुलीनवर्ग या मध्यवर्गों के विचारों और आदर्शों से प्रेरित थे। बंगाल में भद्रलोक, बंबई में चितपावन ब्राह्मणों या मद्रास के तमिल ब्राह्मणों जैसे इन समूहों को छोड़ दें, तो समाज के दूसरे हिस्से कांग्रेस की राजनीति में भाग लेने से हिचकते रहे, जैसे निचली जातियों के हिन्दू या मुसलमान, जमींदार, धनी और भूमिहीन दोनों तरह के किसान, और हर तरह

के उद्योगपति। ये लोग बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रांत और बरार में तथा संयुक्त प्रांत और गुजरात में भी रहते थे जिनको, जहाँ तक कांग्रेस की राजनीति का सवाल है, ''पिछड़े प्रांत'' कहा जा सकता था। इसलिए उपनिवेशी सरकार इस बात पर चैन की सांसें लेती रही कि एक अतिलघु अल्पमत कांग्रेस को एक पिटी हुई दुकान की तरह चला रहा है।

कांग्रेस की इस आरंभिक राजनीति के लक्ष्य भी सीमित थे और उसकी उपलब्धियाँ अपेक्षाकृत मामूली थीं। 1907 के सूरत विभाजन के बाद नरमपंथी उपनिवेशी स्वशासन की मांग करते रहे, जबकि गरमपंथी पूर्ण स्वाधीनता की मांग कर रहे थे। देखने में उनके संगठन व्यक्तित्व पर केन्द्रित थे; एक ओर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पी.एम. मेहता या गोपालकृष्ण गोखले जैसे प्रमुख हस्तियाँ थीं, तो दूसरी ओर विपिन पाल, बाल गंगाधर तिलक और लाजपत राय थे। लोकचेतना में इन दोनों नेता-समूहों के बीच सिद्धांत या आस्था संबंधी कोई अंतर नहीं था और वे बस बेकार की बहसों में उलझते रहते थे। अपने-अपने घोषित उद्देश्यों को पाने में असफल रहने के कारण दोनों ही समूह अपनी साख खो चुके थे। नरमपंथियों की संवैधानिक राजनीति ब्रिटिश सरकार को प्रभावित करने में असफल रही और यह बात 1909 के मॉर्ले-मिंटो सुधारों से एकदम स्पष्ट थी। गरमपंथ मुख्यत: बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब तक सीमित रहा, जहाँ आतंकवाद के आरंभ ने सरकार को दमन का बहाना दिया। उम्रकैदों और लंबी सजाओं ने उनके नेतृत्व की कतार को तोड़ दिया तथा आंदोलन को भूमिगत होने व जनता से और भी कट जाने पर मजबूर कर दिया। तिलक जैसे गरमपंथी नेता जब जेल में थे, तो नरमपंथी वर्चस्व वाली कांग्रेस पूरी तरह निष्क्रिय हो गई।

1915-17 तक राजनीति की ये दोनों धाराएँ एक अंधी गली में फंस चुकी थीं और जब इन राजनीतिज्ञों का सामना गाँधी से हुआ, तो उन लोगों के पास जोड़तोड़ की बहुत कम गुंजाइश बची थी। इसके विपरीत भारतीय राजनीति के एक नए खिलाड़ी के रूप में उभरे गाँधी के ऊपर इन समूहों की असफलता का कोई कलंक नहीं था। राजनीतिक यथास्थिति से उनके निहित स्वार्थ जुड़े हुए नहीं थे और इस कारण वे पश्चिमी शिक्षा-प्राप्त कुलीनों से जनता की ओर शक्ति के किसी भी हस्तांतरण का स्वागत करने के लिए अधिक तैयार थे। भारतीय समाज की बहुलवादी प्रकृति पर उनकी एक स्पष्ट समझ थी, पर वे एकजुट भारत के आदर्श के प्रति समर्पित थे। नरमपंथियों और गरमपंथियों के अंतहीन झगड़ों से कुंठित नौजवान भारतवासियों के सामने उन्होंने एक बिल्कुल नया और ताजा विकल्प प्रस्तुत किया।

काँग्रेस, गाँधी और किसानों के मुद्दे

यहाँ सुझाना भ्रामक होगा कि गाँधी भारतवासियों का परिचय एक बिल्कुल नई तरह की राजनीति से करा रहे थे। 1890 के दशक में महाराष्ट्र में तिलक द्वारा संगठित जन-आंदोलन, पंजाब के गरमपंथियों के कार्यकलाप और सबसे बढ़कर 1905-08 के दौरान बंगाल के स्वदेशी आंदोलन ने भारत में आंदोलनों की राजनीति के आगमन का पहले ही संकेत दे दिया था। रहा सवाल जनता की लामबंदी का, तो तिलक और ऐनी बेसेंट के होमरूल लीगों ने गाँधी के पहले सत्याग्रह आंदोलन की सफलता का रास्ता तैयार कर दिया था। वास्तव में तिलक जब 1914 में जेल से रिहा हुए और मद्रास में केन्द्रित थियोसोफिकल सोसायटी की विश्व अध्यक्ष एनी बेसेंट कांग्रेस में शामिल हो गई, तो उन लोगों ने भारतीय राजनीति को लगभग ऐसी ही दिशा में ले जाने की कोशिश की। लेकिन तिलक भले ही बेसेंट के हस्तक्षेप के बाद 1915 में दोबारा कांग्रेस में शामिल कर लिए गए, पर फिर भी ये लोग पार्टी को लगभग एक दशक की जड़ता से मुक्त कराने में असफल रहे। कुंठित होकर तिलक ने अप्रैल 1916 में अपना भारतीय होमरूल लीग शुरू कर दिया और बेसेंट ने सितम्बर में अपना होमरूल लीग शुरू कर दिया-दोनों आपसी सहयोग से और अलग-अलग भी काम करते थे। होमरूल आंदोलन का मामूली-सा लक्ष्य था-भारत के लिए होमरूल प्राप्त करना और ऐसा शिक्षा कार्यक्रम चलाना, जो भारतीयों में मातृभूमि के प्रति गर्व की भावना का विकास करे।[11]

निष्कर्ष

उल्लेखनीय है कि 1917-18 में सरकार ने जब होमरूल लीगों पर जोरदार हमला किया, तब तक फिर पूरे भारत में उनकी सदस्यता लगभग 60,000 हो गई थी- सबसे बढ़कर गुजरात, सिंध, संयुक्त प्रांत, बिहार जैसे क्षेत्रों और दक्षिण भारत के कुछ भागों में, जो पहले राष्ट्रवादी आंदोलन में भाग नहीं लेते थे। फिर भी भले ही उनका प्रभाव उनकी अपनी सदस्यता से बाहर एक बहुत बड़े समुदाय पर पड़ा, फिर भी ये लीगें भारत में जन आंदोलनों की राजनीति का आरंभ नहीं कर सकीं। मद्रास, महाराष्ट्र और कर्नाटक

में, अछूतों के थोड़े-बहुत समर्थन के बावजूद, इन लीगों पर ब्राह्मणों का वर्चस्व था और गैर-ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया। लेकिन सबसे अहम बात यह है कि एनी बेसेंट, जिनको 1917 में कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया, नरमपंथियों के प्रति समझौते का रवैया अपनाने लगी, खासकर मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के प्रस्तावों की घोषणा के बाद, और सविनय अवज्ञा के कार्यक्रम को उन्होंने स्थगित कर दिया। इससे उन नौजवान गरमपंथी नेताओं को कुंठा हुई, जो उनके प्रमुख समर्थक थे और होमरूल लीगें जल्द ही ठप होकर रह गई।

फिर भी गाँधी के आरंभिक सत्याग्रहों के अनेक स्थानीय नेता होमरूल लीगों की पृष्ठभूमि वाले थे और उन्होंने इन लोगों के बनाए हुए सांगठनिक तंत्र का उपयोग किया। एनी बेसेंट अगर नाकाम रहीं तो गाँधी एक साझे राजनीतिक मंच पर नरमपंथियों और गरमपंथियों को साथ लाने में कामयाब रहे। भारतीय राजनीति के विभाजित और विवादों से भरे संसार में उन्होंने कारगर ढंग से अपने केंद्रीयतावादी होने का दावा किया, क्योंकि उन्होंने दोनों में किसी को भी विमुख नहीं किया और चुपके-चुपके नरमपंथियों के लक्ष्य को गरमपंथियों के तरीकों से समन्वित किया। उन्होंने नरमपंथियों के स्वराज के लक्ष्य को अपनाया, लेकिन उसकी परिभाषा को (नेहरू के शब्दों में कहें तो) सुखद सीमा तक अस्पष्ट रखा, क्योंकि उन्हें पता था कि कोई भी परिभाषा इस या उस समूह को विमुख कर देगी। इसलिए हर समूह उसकी व्याख्या अपने-अपने ढंग से कर सकता था। उनका सत्याग्रह का तरीका बहुत कुछ गरमपंथियों के सविनय-अवज्ञा जैसा लगता था, लेकिन अहिंसा पर उनके आग्रह ने नरमपंथियों और दूसरे संपत्तिशाली वर्गों के डर को दूर किया, जो आंदोलनों की राजनीति से शंकित थे। उन दिनों मुस्लिम समुदाय में भी अलीगढ़ के बुजुर्गों और मुसलमान नेताओं की नई पीढ़ी के बीच एक दरार पड़ चुकी थी। खिलाफत के लक्ष्य का समर्थन करके गाँधी ने अपने आपको नौजवान नेताओं से जोड़ लिया। उन्होंने उसके ब्रिटिश राज-विरोधी पक्षों को उजागर किया, मगर उसकी अखिल- इस्लामी प्रवृत्तियों को कम करके पेश किया, और इस तरह अंग्रेजों के खिलाफ एक साझी लड़ाई में हिन्दुओं और मुसलमानों को पहली बार एकजुट किया।

संदर्भ सूची

1. ज्यूडिथ ब्राउन, *गाँधीज राईज टू पॉवर : इंडियन पॉलिटिक्स, 1915-1922*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1972, पृ. 125.
2. और ब्यौरें के लिए देखें वांधोपाध्याय, शेखर *पलासी से विभाजन तक,* ओरियंट लॉंगमैन, हैदराबाद, 2007, पृ. 310-311.
3. रवींदर कुमार, *एस्से इन द सोशल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1983, पृ. 26-31
4. सुमित सरकार, *मार्डन इंडिया,* मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983, पृ. 174 में उद्धृत.
5. डाल्टन, डी. *महात्मा गाँधी : नन-वायलेंट पावर इन एक्सन,* कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूर्याक, 1993, पृ. 21.
6. चटर्जी, पार्थ, ''गाँधी एण्ड द क्रिटिक ऑफ सिविल सोसाएटी'' इन रणजीत गुहा (एडिटेड) *सवआल्टर्न स्टडीज : राइटिंग्स ऑन साउथ एशियन हिस्ट्री एण्ड सोसाइटी*, वाल्यूम 3, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1984, पृ. 162.
7. भीखू पारिख, *गाँधीज पॉलिटिकल फिलॉसफी : ए क्रिटिकल एक्जामिनेशन,* अजंता, दिल्ली, 1991, पृ. 34.
8. एंथनी. जे. परेल, *गाँधीज-हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिंग्स* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1997, पृ. 53.
9. चटर्जी, पार्थ, *नेशनलिस्ट थॉट एण्ड द कोलोनियल वर्ल्ड : ए डिराइवेटिव डिसकोर्स,* जेड बुक्स, लंदन, 1986, पृ. 109-113.
10. स्टेगर, एम. *गाँधीज डाइलेमा : नन-वायलेंट प्रिंसपुल्स एण्ड नेशनलिस्ट पावर*, सेंट मार्टिन प्रेस, न्यूर्याक, 2000, पृ. 69-70.
11. रवींदर कुमार, *इंट्रोडक्शन टू एस्सेज इन गाँधीयन पॉलिटिक्स: द रॉलेट सत्याग्रह ऑफ 1919,* क्लारेंडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1971, पृ. 4.

गुप्तकाल में समाजिक परिवर्तन के आर्थिक आधार

डॉ० रेखा चौधरी

अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग, नीतीश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

कई अन्यों के अतिरिक्त तीन महत्वपूर्ण परिस्थितियों ने गुप्तकाल में समाज को प्रभावित किया। प्रथम पुरूत्थान इस काल में गुप्त शासकों के आश्रय में हिन्दू धर्म का पुनर्जीवन हुआ। इसलिए समाज में चतुवर्ण-व्यवस्था पर बल दिया गया और ब्राह्मणों की सर्वोच्चता स्थापित करने के प्रयास किए गए।[1] द्वितीय, जो विदेशी भारत में आये और यहीं बस गए जैसे कुषाण, शक, पार्थियन आदि, उन्हें समाज में सम्मिलित करना आवश्यक था।[2] तृतीय, व्यापार व वाणिज्य में वृद्धि से समृद्धि बढ़ी, जीवन स्तर में वृद्धि हुई, तथा एक धनी व्यवसायिक व व्यापारिक वर्ग का उदय हुआ जिसने नगर संसकृति के विकास में मदद की।[3]

यद्यपि समाज की चतुवर्ण-व्यवस्था पर बल दिया गया परन्तु इसकी व्याख्या उदारता से की गयी। इस कारण ब्राह्मणों की सर्वोच्चता पर बल अवश्य दिया गया परन्तु अन्य जातियों को भी सम्मानजनक स्तर प्रदान किया गया। क्षत्रियों को तो व्यवहारत: ब्राह्मणों के समकक्ष ही स्तर दिया गया और उन्हें धार्मिक कर्म संपादित करने का अधिकार भी दिया गया। वैश्यों व शूद्रों की स्थिति में भी सुधार हुआ।[4] ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लोग अपना व्यवसाय चुनने को स्वतंत्रा थे।[5] वैश्यों के आर्थिक स्तर में सुधार से उनका सामाजिक स्तर बढ़ा और उन्होंने प्रशासन में भाग लेना प्रारम्भ किया। शूद्र भी कृषि या व्यापार में से अपनी इच्छानुसार चुनने को स्वतंत्रा थे। शूद्र व दास तथा शूद्र[6] चांडालों के मध्य स्पष्ट अंतर बताया गया। मौर्य समय की तुलना में अब शूद्रों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार आया।[7] अत: चाण्डालों के अतिरिक्त सभी जाति के सामाजिक स्तर में सुधार हुआ और प्रत्येक जाति के सदस्य अपनी इच्छा से व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रा हुए। इससे वे अपने सामाजिक स्तर में सुधार ला सके। किन्तु चांडालों का समाज में कोई स्थान नहीं था और वे शहर से बाहर रहते थे। अत: गुप्त काल के दौरान जाति व्यवस्था उदार थी। इसने हिन्दू समाज में विदेशियों के सम्मिलित किये जाने में मदद की।[8] सभी विदेशी जो भारत में बस गए हिन्दुओं द्वारा समाज के एक अंग के रूप में स्वीकार किए गए। जिन्होंने लड़ाई को व्यवसाय बनाया उन्हें क्षत्रिय का दर्जा दिया गया और शेष को भी अपनी इच्छानुसार कार्य अपनाने का अवसर मिला। किन्तु उस समय दास प्रथा प्रचलित थी।[9] कुछ कैद और जो ऋण नहीं चुका सके थे, दास के रूप में लिए गए। शूद्रों के अतिरिक्त सभी वर्गों में परस्पर भोजन करने में कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इसी प्रकार यद्यपि विवाह समजाति में ही होते थे किन्तु अंतर्जातीय विवाह की मनाही नहीं थी हम ऐसे प्रसंग पाते हैं जहां उच्च जाति के पुरुष ने निम्न जाति की स्त्री से विवाह किया। वाकाटक राजा रूद्रसेन ब्राह्मण था, पर उसने क्षत्रिय राजकुमारी प्रभावती से विवाह किया।[10] अनेक ब्राह्मण-शासकों ने क्षत्रिय व विदेशी शासकों को कन्याओं से विवाह किया। इससे यह भी जान पड़ता है कि विभिन्न व्यवसायों के आधार पर उपजातियों गठित हुई यद्यपि ये व्यवस्था उस समय तक परिपक्व नहीं हुई।

पूर्वकाल से विद्यमान स्त्रियों की हीन दशा कमोवेश गुप्तकाल में जारी रही।[11] आर्य पितृसत्तात्मक समाज एक आदर्श बन गया और स्त्रियों की स्थिति को हीन बनाने में मददगार सिद्ध हुआ। इसमें तर्क दिया गया कि यौवन आने से पूर्व ही लड़की का विवाह हो जाना चाहिए। शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी।[12] यद्यपि पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था, तथापि स्त्री पुरुष घनिष्ठ सम्बन्धों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। सम्भवत: विदेशी प्रभाव के कारण सती-प्रथा का प्रचलन हुआ यद्यपि यह केवल उच्च वर्ग व कुल स्थानों तक ही सीमित थी।[13] संपति में वृद्धि और नगर जीवन से वेश्यावृत्ति व नगरवधू-प्रथा आदि को भी

लोकप्रियता मिली।[14] देवदासी व्यवस्था भी व्यवहार में आयी।[15] देवदासियाँ उज्जैन में महाकाल के मन्दिर में रहती थीं। अत: स्त्री निश्चित रूप से समाज में पुरुष से अधीनस्थ स्थिति में थी। किन्तु स्त्री उच्च शिक्षा प्राप्त करने, बड़ी आयु में विवाह करने, अपने पति का चयन करने तथा सभी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक गतिविधियों व कार्यों में भाग लेने को स्वतंत्रा थी।[15] विधवाओं के पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं था परन्तु यदि वे पुन: विवाह नहीं करती थीं तो उन्हें पूर्ण सदाचार का पालन करना पड़ता था। परिवार में स्त्री की सम्मानजनक स्थिति थी। सम्पत्ति में उसका अधिकार था, व्यवसाय चुन सकती थी और आचार्य का पद भी प्राप्त कर सकती थी। पत्नी रूप में स्त्री से आशा की जाती थी कि वह नैतिकता का पालन करते हुए आदर्श रूप से अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करे। बदले में उसे सम्मान व सुरक्षा दी जाती थी। किसी भी पत्नी को उसका पति छोड़ नहीं सकता था जब तक कि उस पर नीच जाति के व्यक्ति से अनैतिक सम्बन्ध रखने का आरोप न हो। अपने पति की हत्या का प्रयास तथा दूसरे व्यक्ति से बच्चा उत्पन्न करने की स्थिति में भी ऐसा किया जाता था। विभिन्न स्मृतियाँ, संहितायें, वात्सायन के कामसूत्रा, तथा अमरकोष आदि हमें गुप्तकाल में स्त्रियों की स्थिति के बारे में महत्वपूर्ण सूचना देते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि यद्यपि स्त्रियों की स्थिति निम्न थी और वह अनेक सामाजिक दोषों से सुरक्षित थी जो बाद में हिन्दू समाज में आ गए।[16]

इस काल के दौरान सार्वजनिक व व्यक्तिगत नैतिक ऊँचा था। अनेक मानव मूल्यों सत्य, साहस, सादापन, ईमानदारी, बफादारी, नेकी आदि का प्रचलन लोगों द्वारा उनके व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में था। विशेष: ब्राह्मणों व क्षत्रियों से उच्च नैतिकता व आदर्शों का पालन करने की आशा की जाती थी।[17]

भोजन व पहनावे में लोग सादापन बरतते थे। मांस व मदिरा से साधारणत: बचा जाता था। केवल क्षत्रिय व निम्न जाति के लोग इसे अपने भोजन में सम्मिलित करते थे। लोगों का आम भोजन गेहूँ, चावल, दालें, सब्जियाँ, फल, दूध तथा गुग्ध उत्पाद थे। एक आम आदमी का पहनावा धोती व शाल था। किन्तु, कुषाण व शकों के प्रभाव से कोट व पैजामें का प्रचलन भी शुरु हुआ। स्त्रियाँ धोती, व पेटी-कोट पहनती थीं। शक-स्त्रियाँ जाकेट भी पहनती थी। वस्त्र रेशमी, सूती या ऊनी होते थे। आभूषण विभिन्न प्रकार के होते थे जैसे–गले का हार, पाजेव, कंगन, बाजूबंद, कान की बालियाँ, अंगूठी आदि का प्रयोग किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि नाक का कोई भी आभूषण प्रचलित नहीं था। ये आभूषण सोने, चांदी, मोती, हीरा, हाथीदांत आदि से बनाए जाते थे। सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग स्त्री व पुरुष दोनों द्वारा किया जाता था।[18]

आम जनता का जीवन-स्तर साधारण था परन्तु नगर का जीवन चमकदमक व उत्कृष्ट था। बड़े आरामदेह व सुसज्जित घर जिनमें बगीचे भी थे, सभी सुविधाओं से सम्पन्न वहां धनी व्यक्ति रहते थे। शहर स्वच्छ व सुन्दर रखे जाते थे। समकालीन साहित्य गुप्त काल के नगर जीवन की झलक प्रस्तुत करता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि आर्थिक समृद्धि बढ़ने से आर्थिक असमानता भी उत्पन्न हुई।[19]

गुप्तयुग आर्थिक समृद्धि का युग था। कृषि उत्पादन में विकास, हथकरघे व उद्योग में विकास, व्यापार व वाणिज्य का विस्तार आदि ने भारत को समृद्ध किया और इससे जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रगति हुई। बंगाल व मध्य प्रदेश में ब्राह्मणों, व विहार को गांव दान कर दिए जाते थे।[20] किन्तु वहां जमींदारी प्रथा नहीं थी क्योंकि भू-स्वामी को केवल लगान वसूलने का अधिकार था, किसानों को बेदखल करने का नहीं। प्रांतीय सरकारों का उत्तरदायित्व नहर, बांध व सिंचाई के अन्य साध्नों की व्यवस्था थी। बंजर भूमि पर राज्य की सहायता से खेती की जाती थी। भूमि को उपजाऊ बनाया जाता था और उपजाऊ भूमि का संरक्षण व उसमें वृद्धि की जाती थी। कृषि के उत्पादन में राज्य रुचि लेता था। इस सबसे कृषि व पशुपालन के विकास में मदद मिली। वहां अन्य व्यवसायी थी थे जैसे, माली, कुम्हार, सुनार, जोहरी, बुनकर, वास्तुकार, चर्मकार, शिल्पकार, दर्जी, बढ़ई, लुहार, धोबी आदि। भारत ने सूती, रेशमी व ऊनी वस्त्रों की बेहतरीन किस्में तैयार की।[21] जबकि मथुरा सूती वस्त्रों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थी तो बनारस अपने रेशम उत्पादन के लिए। आंतरिक व बाह्य दोनों व्यापार इस दौरान फले फूले। व्यापार स्थल मार्ग व समुद्र मार्ग दोनों से किया जाता था। सभी महत्वपूर्ण शहर व बंदरगाह जैसे ब्रोच, उज्जैन, विदिशा, प्रयाग, बनारस, गया, पाटलिपुत्र, वैशाली, ताम्रलिप्ति, कौशंबी, मथुरा, पेशावर इत्यादि सार्वजनिक सड़कों द्वारा जुड़े हुए थे और यात्रियों व व्यापारियों की सुरक्षा व सुविधा के लिए सरकार के प्रबन्ध सराहनीय थे। गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा आदि नदियों के माध्यम से भी व्यापार होता था और काबेरी कल्याण, चौल, ब्रोच व काम्बे आदि मुख्य बंदरगाह थे। दक्षिण भारत के बंदरगाहों से दक्षिण पूर्व एशिया के देशों व चीन से घनिष्ठ व्यापार चलता था। पश्चिम में रोमन साम्राज्य के साथ भी भारत का लाभदायक यापार चलता था।[22]

रोमवासियों के लिए यह इतना हानिकारक हो गया कि उनकी सरकार ने भारत के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया था। इससे भारतीय हितों को हानि पहुंची। परन्तु बाजेन्टाइन साम्राज्य, मिश्र, अरेबिया, ग्रीक, सीरिया व अन्य देशों से भारत का व्यापार निर्बाध गति से बढ़ता गया। मुख्य रूप से भारत मोती, कीमती पत्थर, वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, मसाले, नील, दवाईयां, नारियल तथा हाथी दांत के सामानों का निर्यात करता था। आयतित सामानों में सोना, चांदी, टीन, सीसा, रेशम व घोड़े थे। भारत की आर्थिक समृद्धि का एक प्रमुख विदेशी व्यापार ही था। दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के मूल्य अत्यंत निम्न थे। फाहियान ने वर्णन किया कि विनिमय में कौड़ियों का भी प्रयोग किया जाता था।[23] श्रेणियों (Guilds) में व्यापार व उद्योग का संगठन प्राचीन काल से भारतीय आर्थिक जीवन की विशेषता थी और यह गुप्त में भी जारी रही। व्यापार व उद्योग निम्न व उच्च स्तर की श्रेणियों में संगठित थे। व्यापारियों व बैकरों की श्रेणियां ही नहीं थी अपितु हाथ से काम करने वाले जैसे जुलाहे व पत्थर काटने वालों की भी श्रेणियाँ थीं। मौर्यों ने व्यापार व उद्योग को राज्य नियंत्रण में रखा था। इसके विपरीत गुप्तकाल में आर्थिक व प्रशासनिक इकाई तथा संगठन की स्वतंत्रता व स्वायत्तता का उपभोग किया और लोगों के आर्थिक जीवन में प्रभावी ढंग से भाग लिया।[24] इनके पास अपनी संपत्ति व ट्रस्ट थे जो कि बैंकरों का कार्य करते थे, अपने सदस्यों के मध्य विवादों का निपटारा करते थे तथा हुंडी जारी करते थे। संभवत: गुप्त शासकों के तांबे के सिक्के जारी न करने का एक कारण यह हो सकता था। अधिकतर गुप्त शासकों ने स्वर्ण सिक्के ढलवाए।[25] चंद्रगुप्त द्वितीय ने प्रथम बार चांदी के सिक्के जारी किए जबकि तांबे के सिक्के पहली बार कुमार गुप्त ने जारी करवाए। कुछ श्रेणियों के अपने सैनिक भी होते थे जिसके कारण गुप्त शासकों ने उनकी शक्तियों को सीमित करने वाले कानून भी बनाये। आर्थिक संगठनों जैसे श्रेणी को स्वायत्तता प्रदान करना गुप्त युग के आर्थिक व्यवस्था की एक मूल विशेषता थी। किन्तु डा. आर.एस. शर्मा ने इस युग को आर्थिक जीवन के बारे में एक अन्य विशेषता बताई है। उन्होंने कहा, कि जमींदारी व्यवस्था या सामंती व्यवस्था भी क्रमश: इस काल में शुरू हुई।[26] उन्होंने लिखा : "गुप्त युग के आर्थिक इतिहास की मुख्य विशेषता विदेशी व्यापार व वित्त अर्थव्यवस्था नहीं थी बल्कि भूमि व्यवस्था के सामन्तीकरण व उत्पादन की स्वतंत्रा स्थानीय इकाईयों का उदय होना था।" किन्तु इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता कि गुप्त काल के दौरान कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। अत: यह स्वीकार किया गया कि गुप्त शासकों ने जो व्यवस्था अपनाई, उससे लोगों की समृद्धि बढ़ी और राज्य के आर्थिक स्रोत मजबूत हुए। गुप्त काल के बाद ही हम कमजोर अर्थ-व्यवस्था के लक्षण पाते हैं। इस बात से भी इंकार करना कठिन है कि युग की बढ़ी हुई समृद्धि में आम जनता का हिस्सा तो था किन्तु इसका अधिकांश भाग व्यापारिक वर्ग ने हथिया लिया था।[27]

कुषाण तथा गुप्त कालों में कृषि में और प्रगति हुई। नयी जमीनों को काश्त में लाने के लिए साफ किया गया, दलदली जमीनों से जल निकासी की गयी और कृषि धीरे-धीरे अधिकाधिक महत्व ग्रहण करती गयी। मिलिदपन्हों तथा 'मनुस्मृति', जो मानव-धर्मशास्त्र के नाम से भी विख्यात है, में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि जो लोग जंगली जमीन को साफ करते हैं और उसे कृषि के लिए तैयार करते हैं, उन्हें उस जमीन पर स्वामित्व प्रदान कर दिया जाना चाहिए।[28]

जलप्रचुर इलाकों में धान की खेती की जाती थी, खासकर बंगाल, बिहार, असम, ओड़िसा तथा दक्षिणी भारत के तटवर्ती प्रदेशों में उस समय तक धान की विभिन्न किस्में सुपरिचित हो चुकी थी। अमरकोश में धान, गेहूँ, जौ और तिल की खेती के उपयुक्त विभिन्न प्रकार की जमीनों और मिट्टियों की सूची दी गयी है। इस कोश का रचयिता अमरसिंह खीरे पान, प्याज, लहसुन और लौकी-कद्दू के अलावा फलियों और मूंग तथा मसूर से भी परिचित था। गन्ना भी व्यापक पैमाने पर उगाया जाता था।[29]

दक्षिणी भारत काली मिर्च और मसालों के लिए मशहूर था। प्राचीन यूनानी तथा रोमन ग्रंथों में तो दक्षिण भारतीय प्रदेशों को काली मिर्च का देश ही कहा जाता था। किसान साल में दो-दो, तीन-तीन फसलें उगाते थे, कई अनाजों का जो निर्यात भी किया जाता था। पेरिप्लम मारिस अरिथीए (लाल सागर परभ्रमण) में जिसका रचना काल दूसरी शताब्दी है चावल और गेहूँ के निर्यात किये जाने के उल्लेख हैं। बाद के ग्रंथों में इस तथ्य पर विशेष जोर दिया गया है कि परती जमीनों का कश्त और सिंचित करनेवालों को तब तक कोई लगान नहीं देना पड़ता था कि जब तक वे मूलत: लगाये धन से दुगना लाभ न प्राप्त कर ले। यह उल्लेखनीय है कि गुप्त काल के शिलालेखों में परती जमीन के खरीदे जाने के अकसर उल्लेख मिलते हैं। जिसका मतलब यही होना चाहिए कि उस समय यह लाभदायी उपक्रम रहा होगा और राज्य द्वारा प्रोत्साहित भी किया जाता होगा।[30]

प्रारंभिक भारतीय समाज के क्रमिक विकास और वर्ग-विभेदीकरण के प्रमुख वरणों का उल्लेख किया जा सकता है। ऋग्वेद के सार अंश में प्रतिबिंबित सामाजिक संघटन कबीलाई अर्द्धखानाबदोश और पशुचारी था जो मुश्किल से अधिशेष पैदा करता था। कुछ कबीलाई सरदारों और उनके चरणों के पास उनके अपने जनजातीय भाई-बंदो की अपेक्षा अधिक पशु रहते होंगे लेकिन उनके

लिए किसी सामाजिक सुविधा का उपभोग संभव नहीं था। परस्पर अथवा अंतरकबीलाई युद्धों के फलस्वरूप जब्त किए गए लूट के माल का असमान वितरण कबीलाई सभाओं में किया जाता था। खेती के फैलाव के कारण परवर्ती वैदिक काल में वर्ग-परक समाज और राज्य-संरचना की ओर सामाजिक संक्रमण का प्रारंभ हुआ। ब्राह्मणों और राजन्यों (सरदारों) ने जनसाधारण अथवा जनजातीय लोगों को नियंत्रण में लाने के लिए प्रयास किया और कुछ विशेषाधिकारों के निमित्त दावा किया। लेकिन वस्तुतः वैदिकोत्तर काल में वर्ण विभाजित और राज्याधारित समाज लोहे के फाल से हो रही खेती और बढ़ती उपज के कारण दृढ़ता से प्रतिष्ठित हो सका। कृषि-उत्पादन वर्ण व्यवस्था के द्वारा नियमित किया गया, और उसी व्यवस्था के द्वारा उपहारों और लगानों के रूप में अधिशेष का संग्रह का बाँटा जाने लगा।[14] इसके अतिरिक्त, पदाधिकारियों को नकद भुगतान के लिए कारीगरों द्वारा छोटी-छोटी चीजों के उत्पादन से व्यापारियों से राजा को मुद्रा (नकदी आय) प्राप्त होती थी। वैश्व और शूद्रों की उत्पादन किया पर टिकी यह सामाजिक व्यवस्था प्रायः छठी शताब्दी ई.पू. से तीसरी सदी ई.स. तक अच्छी तरह चलती रही। इसके बाद सामाजिक संकट के कारण इसमें गिरावट आई जिसमें राजाओं ने पुरोहितों और पदाधिकारियों को भूमि-अनुदानों के माध्यम से वेतन भुगतान करने की प्रथा बड़े पैमाने पर अपनाई। इस प्रक्रिया से भू-स्वामियों (जमींदारों) का वर्ग बना और भाई के मजदूरों, आदिवासी किसानों की पूर्ण विकसित किसानों में समुन्नति हुई जो मुख्यतः शूद्रों की कोटि में रहे। वित्तीय, सैनिक, प्रशासनिक, राजस्व-संबंधी और धार्मिक सेवाएँ भूमि-अनुदानों से जुड़ गई जिसमें सामंती संघटन का विकास हुआ। इस संघटन से भू-स्वामियों और किसानों के बीच का अंतर स्पष्ट हो गया और भूमि सहित उत्पादन के अन्य घटकों पर राजाओं तथा पुरोहितों का पर्याप्त नियंत्रण स्थापित हो गया, फलस्वरूप उनके विशेषाधिकारों में और भी वृद्धि हुई। व्यापार और नगरीयता के ह्रास से जातिगत बंधन मजबूत हुए तथा आदिवासी क्षेत्रों में भूमि अनुदानी ब्राह्मणों के वसने से शुद्ध जातियों की संख्या बढ़ी।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति, 10/116
2. वही, 4/5
3. वही, 8/248
4. वही, 8/138, 9/280, याज्ञ, 2/278
5. मनु, 9/291/293
6. वही, 8/341, 9/280
7. याज्ञवल्यकस्मृति, 2/177
8. मनु, 9/330
9. मनु 2/253, विष्णु 57/10-11, याज्ञ, 1/66
10. खेर, अग्रेरियन ऐंड फ्स्किल इकोनमी, पृ. 99
11. मनु, 3/165, 10/90
12. मनु, 3/165
13. वही, 8/341, 9/280
14. खेर, पूर्वाद्धत, पृ. 98
15. मनु, 4/4-5, 10/82
16. मनु, 2/218, 5/117, महाभाष्य, 11/1/32, खेर, पूर्वोद्धत, पृ. 116
17. अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत, पृ. 252
18. अंगने लाल, अश्वघोष कालीन भारत, पृ. 110
19. मनु, 7/15 एवं 110, 9/34, 36
20. खेर, पूर्वोद्धत, पृ. 110
21. महाभाष्य, 1/230, 11/360

कार्यरत महिलाओं के कार्यकारी संबंध, पारिवारिक सामंजस्य, असंगतियाँ तथा उनके कारण और परिणाम

डॉ० रीना कुमारी

गेस्ट लेक्चरर, गृहविज्ञान विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर

प्रस्तुत अध्ययन मुजफ्फरपुर शहर के कामकाजी महिलाओं के बच्चे, व्यवसाय एवं पारिवारिक सम्बन्धों पर आधारित है।

"वक्त अच्छा जरूर आता है
वक्त अच्छा जरूर आता है,
मगर वक्त पर ही आता है।
कागज अपनी किस्मत से उड़ता है,
लेकिन पतंग अपनी काबिलियत से"

इसलिए किस्मत साथ दे या ना दे, काबिलियत जरूर साथ देती है। अर्थात कामकाजी महिला को भले ही समाज सफल ना माने पर उसकी काबिलियत के कारण समाज उसका साथ अवश्य देती है।

स्त्रियॉ की घर से बाहर निकल कर काम करने की घटना अपने आप में कोई नई बात नहीं है क्योंकि गाँव में स्त्रियाँ हमेशा से ही अपनी जीविका के लिए अपने पुरुषों के साथ खेतों में काम करती आ रही हैं। शहरों में भी लंबे अरसे से स्त्रियाँ फैक्टरियों और गृह निर्माण कार्यों में मजदूरी करती आ रही हैं। परंतु मध्य और उच्च वर्ग की शिक्षित विवाहित स्त्रियॉ का घरों से बाहर उपयोगी नौकरियों की तलाश में निकलना अपेक्षाकृत नई बात है।

परंपरागत भारतीय समाज में मध्य और उच्च वर्ग की स्त्रियॉ का विशेषकर विवाहित स्त्रियॉ का घर से बाहर नौकरी करना सम्मानजनक नहीं समझा जाता था। आज की बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में विवाहित स्त्रियॉ द्वारा नौकरी करने को प्रायः अपमानजनक नहीं माना जाता है। शिक्षित स्त्री द्वारा नौकरी करने की जो लहर आई है, उसका उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर तथा पारिवारिक सम्बन्धों पर असर पड़ना लाजमी है। अब उसे एक ओर गृहिणी और दूसरी ओर कार्यरत महिला, दोनों की भूमिका निभानी पड़ती है। इस दोहरी भूमिका को निभाने में उसकी शक्ति और समय दोनों खर्च होते हैं। कार्यरत महिलाओं को जो अतिरिक्त उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है, इस वजह से उसके पारिवारिक सम्बन्धों पर भी प्रभाव पड़ता है। परिवार में असंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

गृह कार्य में परिवार के सदस्यों द्वारा सहयोग

एक सुखी घर के निर्माण में स्त्री और पुरुष का समान उत्तरदायित्व है। घर के कार्य, घर की सुव्यवस्था एवं शांति बनाए रखना केवल महिलाओं का ही उत्तरदायित्व न होकर, पुरुषों का भी होना चाहिए। घर की सुव्यवस्था पारिवारिक सदस्यों में उचित श्रम विभाजन पर निर्भर करता है। जिन महिलाओं को परिवार की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती है, उन महिलाओं को बच्चे, व्यवसाय और परिवार में ताल मेल बनाने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

कामकाजी महिलाओं को अपने परिवार एवं बच्चों के साथ-साथ व्यावसायिक उत्तरदायित्व भी निभाना पड़ता है। प्रत्येक कार्य-संस्थान अपने सदस्यों से यह आशा करती है कि वे अपने कर्तव्यों को पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ निभाएँ। विशेषकर ऐसे संस्थान जो अपने सदस्यों कों कार्य के अनुसार वेतन देती है, अर्थात उन्हें अपने यहाँ व्यवसाय देती है, वह यह कभी सहन नहीं करतीहै कि उसके सदस्य अपनी भूमिका भली भांति पूरी न करें। साथ ही सदस्यों का भी नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने के प्रति पूरी ईमानदारी से कार्य करे। विवाहित कार्यरत महिलाओं के समक्ष भी यही समस्या होती है। कभी-कभी वे अपने उत्तरदायित्व को समझते हुए भी अपना कार्य संतोषजनक रूप से नहीं कर पाती। इसका मुख्य कारण उनका मातृत्व अवकाश लेना, बच्चों की बीमारी, गृह कार्यों की अधिकता तथाकभी-कभी उनका स्वत: अस्वस्थ रहना भी होता है। साथ ही पति पत्नी की सोच भीपारिवारिक जीवन को प्रभावित करती है, जैसे जो पति-पत्नी दोनों आधुनिक विचार वाले हैं, उनके पारिवारिक जीवन में सामंजस्य है तथा इसके विपरीत यदि एक के भी विचार रूढ़िवादी हैंतो उनके संबंध संयमित नहीं होते हैं। आधुनिक का अर्थ आधुनिक विचार वाले से है-विवेकी, नम्र स्वभाव और परिवर्तन को खुले दिमाग से अपनाने वाला, सहनशील, समझदार और सहयोगी, जबकि रूढ़िवादी होने का अर्थ इसके बिलकुल विपरीत है। बदलती हुई सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक स्थिति में शिक्षित पति-पत्नी अपने जीवन साथी से बहुत अपेक्षा करने लगे हैं। इनकी पूर्ति न होने से उनके पारस्परिक संबंध तनावपूर्ण हो जाते हैं। साथ ही पारिवारिक जीवन में इसलिए भी तनाव पैदा होते हैं क्योंकि नौकरी करने वाली पत्नियाँ अपनी भूमिका को ठीक-ठीक नहीं समझती हैं। जब तक उसकी मुख्य भूमिका पत्नी और माँ बनना था, तब तक तो कोई दिक्कत नहीं थी। परंतु आज उसे इसके अलावा घर से बाहर नौकरी भी करनी पड़ती है। इसकी वजह से उसकी भूमिका को लेकर अनेक उलझनें पैदा हो गयी हैं। इस संक्रांतिकाल में ये उलझनें इसलिए है क्योंकि उसकी पुरानी और नई भूमिकाओं में तालमेल नहीं है। उसके कार्यक्षेत्र की भूमिका तथा पत्नी और माँ की भूमिकाओं में विरोध है।

पत्नी और माँ की भूमिका में नौकरी से संबन्धित भूमिका के जुड़ जाने से अनेक विकट परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। घर और बाहर दोनों जगहों के उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभाने की उसकी अभिलाषा की वजह से उसके अंदर में भी संघर्ष और तनाव पैदा होता है। उसके उत्तरदायित्वों के बढ़ जाने से उसका आचरण जटिल हो जाता है और स्वयं वह अपना दर्जा और उत्तरदायित्व साफ-साफ समझ नही पाती है। परिणामस्वरूप परिवार मेँ तनाव और गलतफहमियाँ पैदा हो जाती हैं।

कर्तव्यों से अधिक अपने विशेषाधिकारों पर जोर देना

आज की बदलती हुई स्थिति में शिक्षित और नौकरी करने वाले पति-पत्नी अपने विशेषाधिकारों तथा अपने जीवनसाथी के कर्तव्यों के प्रति बहुत सजग हैं। नौकरी करने वाली शिक्षित महिलाओं के पारिवारिक जीवन में कठिनाइयां इसलिए भी आती हैं क्योंकि स्त्री और पुरुष परिवार के भीतर अथवा बाहर अपने तथा दूसरों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के प्रति जो रुख अपनाते हैं, उनमें काफी अंतर होता है। शिक्षित महिलाओं के विचारों और दृष्टिकोण में जिस तेजी से परिवर्तन आए हैं, उतने पुरुषों में नहीं आए हैं। इसकी वजह है स्त्री के उत्तरदायित्वों और दर्जे में पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक परिवर्तन आना। इस दृष्टिकोण भेद के कारण पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव पैदा होता है। आचरण के संबंध में भी यह पाया गया है कि पत्नी की नौकरी उसके व्यक्तित्व तथा परिस्थितियों मे आने वाले परिवर्तन के कारण यदि पति-पत्नी के दृष्टिकोण, अपेक्षा और आचरण में परिवर्तन नही आए तो उनके पारिवारिक संबंध में संघर्ष उत्पन्न होते हैं।

आत्म संयम और कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए समुचित योजना का अभाव

नौकरी करने वाली स्त्रियॉ के संबंध में यह कहा जा सकता है कि यदि पति-पत्नी अपने घर के भीतर-बाहर के उत्तरदायित्वों के संबंध में समुचित योजना बनाने की योग्यता नहीं रखते हैं तथा परिवार संबंधी अपने उत्तरदायित्वों में दिलचस्पी नहीं रखते हैं तो इससे पारिवारिक संबंध पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

परिवार में कार्यरत महिलाओं के सामने कार्य निर्धारण मेँ अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं जिसके कारण पारिवारिक असंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। कार्यरत महिलाओं को जिन कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, उन परिस्थितियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. कार्यों में विविधता
2. कार्यों के प्रति असंतोष
3. कार्यों में संघर्ष

आज की पत्नी कार्यों की विविधता के कारण अपने कार्यों को पूर्ण कुशलता के साथ नहीं कर पाती हैं। परंपरागत पारिवारिक संरचना में स्त्री की सीमित सर्व-स्वीकृत भूमिकाएँ ही थी। लेकिन आज विविध व्यावसायिक और वर्गीय समूह में पत्नी से विभिन्न भूमिकाएँ निभाने की अपेक्षा की जाती है। निम्न वर्ग में माँ और खाना पकाने वाली स्त्री के रूप मेँ भूमिका अदा करने की भी उससे अपेक्षा की जाती है। पारिवारिक समूहों में पत्नी से संगिनी और साझेदार के रूप में भूमिका निभाने की आशा की जाती है, तो व्यावसायिक समूहों में पत्नी से शिक्षित होने की अपेक्षा की जाती है ताकि वह पति को उसके कार्य में मदद कर सके।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात वे घर में रहकर केवल गृह की प्रबन्धक और माता के रूप मे हीं अपनी भूमिका नहीं निभाना चाहती। आज उनके सम्मुख इतने अवसर उपलब्ध हैं कि वे अपने पतियों के समान ही व्यापार, नौकरी और व्यावसायिक कार्यों में स्वयं को लगाना चाहती हैं। कुछ समय पूर्व जब स्त्रियॉं को नौकरी की सुविधाएं प्राप्त नहीं थी, तब वे अपने गृह कार्यों से ही संतुष्ट थी। परंतु आज जिन उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियॉं को घरों में ही रहकर अपनी भूमिका निभानी होती है, उनमें असंतोष पाया जाता है। यदि पत्नी नौकरी भी करती है और पति, सास स्वसुर और परिवार के अन्य सदस्य उससे पूर्ववत सब प्रकार के पारिवारिक दायित्वों को निभाने की भी आशा करते हैं तो पत्नी के लिए इन सभी भूमिकाओं को एक साथ निभा पाना संभव नहीं होता। वह अपने कार्यों की विविधता के कारण सबको संतुष्ट नहीं कर पाती। परिणामस्वरूप असंतोष और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे पारिवारिक असंगति पनप जाती है।

बच्चों की देखरेख की सुविधाओं का अभाव

नौकरी करने वाली महिलाओं के बच्चों की देखरेख करने की सुविधाओं की कमी के कारण महिलाएं अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह ठीक तरह से नहीं कर पाती हैं। इस बात की पुष्टि डॉ. प्रमिला कपूर के अध्ययन से होती है। उनके अध्ययन के दौरान ऐसे अनेक दृष्टांत मिले जिनमें उन स्त्रियॉं को कठिन मानसिक तनाव से गुजरते देखा गया है जिन्हें नौकरी पर जाते समय अपने बच्चों की देखरेख की जिम्मेदारी नौकरानी तथा परिवार के दूसरे सदस्यों को सौंपनी पड़ती थी। बच्चों की बीमारी या अस्वस्थता के समय वे मन लगा कर अपना काम नहीं कर पाती हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि कार्यरत महिलाएँ जो गृहिणी होने के साथ साथ कामकाजी है, उनके सामने अनेक प्रकार के संघर्ष उठते हैं, क्योंकि विशिष्टत: नारी का कर्तव्य क्षेत्र हर प्रकार से घर की, पति की, सास-ससुर और बच्चों की देखभाल करना माना गया है। शिक्षित कार्यरत महिलाओं को बाहरी भूमिका भी निभानी पड़ती है। ऐसे में सामंजस्य बनाए रखना बड़े ही साहस का कार्य है कि वह घर और दफ्तर में आवश्यक संतुलन बनाए रखे, लड़खड़ाकर संतुलन न खो बैठे या दोनों में आवश्यक संतुलन बनाते बनाते उसका स्वयं का अस्तित्व ही विघटित न हो जाए।

कार्यरत महिलाओं के सम्मुख एक चुनौती तो है हीक्योंकि यदि वे एक मात्र घर पर ध्यान देती है तो उनके लिए कार्य संस्थानों में कार्य कर पाना संभव नहीं हो पाता और यदि सिर्फ कार्य संस्थानों में ही ध्यान दे तो घर, पति और बच्चे उपेक्षित होते हैं। अत: दोनों प्रकार से महिलाओं के समक्ष विशाल चुनौती है। अपनी सूझ-बुझ, धैर्य और साहस से वह इस परिस्थिति में संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है।

किसी कवि ने सच ही कहा है कि नारी सच्चाई, त्याग, तपस्या की मूरत है। कामकाजी महिला को घर बाहर दोनों क्षेत्र संभालना मुश्किल होता है। अत: परिवार के सदस्यों को कामकाजी महिलाओं के घरेलू कार्यों में हाथ बँटाना चाहिए। अपने काम में निपुण, योग्य, कर्मठ व दृढ़ चरित्र वाली कामकाजी महिला के सामने अक्सर ऐसी समस्या उठती ही नहीं है। कभी उठती भी है तो सूझ बुझ से हल कर लेनी चाहिए। घर के सभी सदस्यों के बीच छोटे-बड़े कार्यों का विभाजन कर उन पर जिम्मेदारी डालने से इस समस्या का समाधान निकाला जा सकता है।

स्त्रियॉं को यदि वास्तव में शिक्षा, प्रशिक्षण, नौकरी, सुरक्षा और काम के क्षेत्र में समान रूप से अवसर प्रदान किए जाए तो स्त्रियाँ कहीं ज्यादा योगदान दे सकती हैं।

कामकाजी महिलाओं के सम्पूर्ण अध्ययन के बाद उनसे प्राप्त तथ्यों के आधार पर परिणाम निकाला गया है और मुजफ्फरपुर शहर के कामकाजी महिलाओं की कठिनाई, संघर्षों एवं परिस्थितियों का सम्पूर्ण अवलोकन कर उनपर आधारित तथ्यों से जो निष्कर्ष प्राप्त होता है उनसे यह प्रतीत होता है कि कामकाजी महिलाओं को अत्यंत कठोर परिश्रम के बाद भी समाज में वह स्थान प्राप्त

नहीं होता है जो उन्हें मिलना चाहिए। लेकिन इन सब के बावजूद भी कामकाजी महिलाओं ने न केवल परिवार बल्कि परिवार और देश का मान सम्मान भी बढ़ाया है।

संदर्भ सूची

- "डॉ. प्रमिला कपूर-मैरिज एंड द वर्किंग वुमन इन इंडिया" विकास पब्लिकेशन, दिल्ली 1970
- उत्तर प्रदेश वार्षिकी, 1988-89, सूचना एवं जन-संपर्क विभाग, उ. प्र.
- सांख्यिकी पत्रिका, जनपद एटा, 1987
- सामाजिक, आर्थिक, समीक्षा, जनपद एटा, वर्ष 1987-88, कार्यालय, संख्याधिकारी, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, एटा।
- सिंह, एस. पी., एटा जनपद का भूगोल, योजना प्रकाशन, 1992

समाचार पत्र

1. दैनिक अमर उजाला
2. जनसत्ता
3. पंजाब केसरी
4. नवभारत टाइम्स
5. हिंदुस्तान

दिवाकर के कथा साहित्य में युगबोध

डॉ० बलराम कुमार

अतिथि प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, डॉ. लोहिया कर्पूरी विशेश्वरदास महाविद्यालय,
ताजपुर, समस्तीपुर, बिहार

साहित्य की सभी विधाओं में कहानी एक बिखरे फूल की तरह है, जो अपनी सुगंध से नए अर्थ के साथ प्रेरणा देती है। आधुनिक भारत में बदलते सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति कहानी से ही आम जनमानस तक पहुँची हैं। जीवन-धारा को बदलने में कहानी नई रौशनी की तरह हमें प्रेरित कर, नई दिशा की ओर उन्मुख करती है। साहित्यिक विधा में कहानी का विशेष महत्त्व है, क्योंकि काव्य हो, नाटक हो, उपन्यास हो या एकांकी हो, उसके मूल में कहानी ही है। कहानी समाज के व्यक्ति की जमीनी सच्चाई से जुड़ी है। यह नए विचारों नए चिंतन एवं नई उमंगों को जन्म देती है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान कहानी ही कराती है। कहानी आम व्यक्ति से लेकर खास व्यक्ति की आत्माओं से सम्बन्ध रखती है।

हिन्दी-साहित्य के आँगन में कथा-साहित्य का विकास तो 1850 के बाद भारतेन्दु युग से प्रारंभ होता है, परन्तु अगर मूल में जाएँ तो पूरा साहित्य, इतिहास एवं दुनिया के सभी विषयों की जानकारी कथा से ही प्रारंभ होती है।

इस प्रकार प्रत्येक देश में कहानी का विकास वहाँ की सामाजिक संरचना के अनुरूप हुआ है। साहित्य की किसी भी विधा के जीवन-संघर्ष का अर्थ होता है, उसमें अभिव्यक्त सामाजिक घटनाओं का सम्यक विश्लेषण करना, सामाजिक घटनाओं में उस समाज की संस्कृति, सभ्यता, भाषा, शिक्षा, कला, जाति, गोत्र, विवाह, परिवार, समूह, समिति, संस्था, प्रथा, रूढ़ि, धर्म, सम्प्रदाय, लोक-विश्वास, दर्शन, राजनीति, अर्थनीति आदि की गणना की जाती है। इसके माध्यम से ही मनुष्य की आतंरिक-बाह्यक्रियाएँ प्रकट होती हैं।

बदलते हुए भारतीय सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक मूल्यों की पीड़ा को अभिव्यक्त करने में रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियाँ अपने पृथक् संघर्षों की गाथा को समाए हुए हैं। 'मखान पोखर' कहानी में दुलरिया अपनी पारिवारिक, सामाजिक यातना सहते हुए कभी विचलित नहीं होती। वह आक्रोश और नफरत भरे दिल में प्रेम की गंगा अपने कर्मों से बहाने का काम करती है। जीवन की आखिरी साँस तक परिस्थितियों से लड़ती है। वहीं 'शोकपर्व' कहानी में रामसागर बाबू अपने अथक परिश्रम से पारिवारिक स्थिति सुधारते हुए अपने ज्येष्ठ पुत्र अमर और लाल को ऊँची पढ़ाई पढ़ाकर ऑफिसर बना देते हैं, परन्तु उनकी अभिलाषा घर में उपेक्षित सबसे छोटे बेटे सुधीर ही अंतिम साँसों तक पूरा करता है। माँ और पिता को सुधीर के प्रति हृदय में प्रेम की गंगा उमड़ पड़ती है, जबकि ज्येष्ठ पुत्र अमर और लाल शहर के चकाचौंध में उलझ जाता है।

दिवाकर के प्रसिद्ध कहानी-संग्रह 'अलग-अलग अपरिचय' की भी कुछ ऐसी ही दासताँ है। लक्खन काका अपने जीवन में परिश्रम की पराकाष्ठा को छूते हुए अपने बेटे दीपन को शहर में पढ़ने के लिए इस आकांक्षा से भेजते हैं कि यह मेरा नाम रौशन करेगा और मेरा हर सपना पूरा करेगा, जबकि हुआ सब इसके विपरीत ही। बेटा दीपन पंद्रह साल बाद घर आया। पिता उसकी राह देखते-देखते स्वर्ग सिधार गये। वहाँ यह इला नामक लड़की से विवाह कर अपना गृहस्थी बसा लेता है और इधर पिता दीपन को देखने की लालसा लिये ही मर जाते हैं। अकेली माँ बचती है, अपने गोबिन चाचा से विचार कर माँ को शहर ले जाता है, लेकिन एक सप्ताह के भीतर माँ शहर के आतंकी माहौल में ऊब जाती है और दीपन गाँव आकर माँ को अकेला छोड़ जाता है।

इस प्रकार गाँव की यथार्थ पारिवारिक स्थिति को उजागर करते हुए हमें उन सच्चाइयों से कहानीकार साक्षात्कार कराता है, जिसे हम गम्भीरता से नहीं लेते और इस भौतिकता में खोकर सबकुछ भूल जाते हैं।

वर्तमान यथार्थ संवेदना की अभिव्यक्ति दिवाकर की कहानियों में मिलती है। वह यथार्थ के धरातल से इतर साहित्यिक पन्नों के शब्दों तक सीमित नहीं रहे, अपितु वह सच्चाइयों और अच्छाइयों का संदेश लिए हम सभी को यथार्थ से परिचय कराते हैं।

इस प्रकार उनके कहानी के सभी पात्रों में जीवन के विविध क्षेत्रों के, विविध जीवन संघर्षों से हमें यह सीख मिलती है कि हम उन वास्तविक मूल्यों की पहचान रख सकें, और नूतन समाज की स्थापना में अपनी महती भूमिका अदा कर सकें। इस मायने में यह शोध-विषय अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय है।

दिवाकर की अधिकांश कहानियाँ ग्रामीण जीवन शैली, परिवेश और बदलते गाँव की यथार्थ स्थिति को केन्द्र में रख कर लिखी गई हैं। इसलिए दिवाकर ग्रामीण संवेदना के अग्रणी कथाकार हैं। गाँव की टूटती मर्यादाएँ, संस्कृति और लिहाज का गम्भीरता से अपनी कहानियों में कलात्मक रूप से वर्णन किया है।

''वह गलत आदमी'- कला को जीवन का खूबसूरत भटकाव मानने वाला, सब कुछ से कटकर सुविधाओं के संसार में जीने का आदी तथा चेनता के भीतर से यथार्थ की संभावना के दर्शन करा देने वाला कला के सत्य का पुजारी गलत और असत्य के प्रति नारे, जुलूस और आंदोलनों का नेतृत्वकर्त्ता- क्रमशः जीवन की सफलता और सार्थकता के प्रश्नों से जूझते और कथाकथित जीत-हार की नियति प्राप्त करते क्रमशः दो पात्रों से संबन्ध एक व्यंग्य शीर्षक कहानी है। रचनाकार की दृष्टि जीवन की सफलता पर नहीं सार्थकता पर होनी चाहिए। सामान्य व्यक्ति से वह इसी अर्थ में अलग है कि भौतिक सुख-संचय की आंधी की दौड़ से अलग सांस्कृतिक उत्थान चरित्र-निर्माण, जनहित और मूल्यों के सृजन को वह अपना रचनात्मक ईष्ट मानकर चलता है-गति, अमरता और प्रवाह की दृष्टि से रचना की समृद्धि की यह जरूरी शर्त है। इस दृष्टि से विवेच्य कहानी एक जीवंत कहानी है।"(1)

'बीच का पुल' कहानी में गंगा सागर की यात्रा के लिए कसकते रिटायर्ड बाप और जिन्दगी की अनिवार्य आवश्यकताओं में टूटते कमाऊ बेटे के बीच पोता संवेदना के रूप में बीच का पुल है। पूँजी-संग्रह एवं घर जोड़ने की सार्थकता को तलाश करती, यह एक प्रश्न मुद्रा कहानी है- "उन्होंने तब शायद नहीं सोचा था कि छत, दीवारें, खिड़कियाँ वगैरह ही घर के अवयव नहीं होते, घर की संज्ञा आँखों की पकड़ से दूर भीतर किसी गहरे लगाव पर टिकी होती है। ..... बाबा के बसाये हुए परिवार में ये सारे लोग अलग-अलग टापुओं की तरह परिवार की एक ही नदी में बिखरे हुए थे।"(2)

इस कहानी में बाबा रिश्तों के जंगल में भटके, घर के टूटे एहसास से दूर एक अकेले यात्री की तरह हैं, जिसे अचानक सांझ ने घेर लिया है, जिनकी स्थिति कहीं से भी बूढ़े और बेकार बैल से बेहतर नहीं। तभी कथाकार का प्रश्न है कि "क्या उम्र की आखिरी सरहद पर पहुँचकर अपनापन की सारी परिभाषाएँ, खुद के बसाये परिवार के बीच भी अचानक चुक जाती हैं।"(3)

इन कहानियों में कहानीकार की अपनी दृष्टि जीवन और रचना के उद्देश्य हैं, जो कहानी की मिट्टी में घुले हैं। पैबन्द की तरह चिपके हुए नहीं।

''पाँव में आँधी बाँधकर भागते समकालीन जीवन से रौंदी जाती रागात्मकता की चिंता तमाम कहानियों की प्रवृत्ति में शुमार है।"(4)

ग्रामीण परिवेश एवं ठेठ ग्रामीण जीवन के इस स्वरूप को देखा जा सकता है- "आज भोरे-भोर दमयंती आयी और नंदिनी को अपने घर ले गई। एक्को घड़ी छोड़ती है दमयंती नंदिनी को? मेरे साथ चलती हुई माँ भुनभुनाती रही रास्ते भर, जाने कौन वशीकरण मन्तर जानती है ई दमयंती। जबसे मेरी पोती आयी है, उसी के साथ डोलती रहती है। निश्चिंत होकर बतिया भी नहीं पायी हूँ अपनी पोती से।..... बेचारी नंदिनी। कैसे कठकरेज होगी, ऊ मनहारी जो फूल अइसन बेटी को तियाग कर दूसरे मरद के घर बैठ गई।"(5)

"तू असली मउगमेहर है रे, सहदेव! जा अपनी मेहरारू के अंचल मुँह झापकर सो जा।..... गरब करने की बात कैसे नहीं है रे? सुराजो क्या चोरी-छिनारी में गई थी जेहल? अरे, बनिहार-बनिहारिन के इज्जत-पानी के लिए लड़ाई लड़ी उसने। जेहल हुई उसको। किसको गरब नहीं होगा इस पर। बुढ़उ अइसहीं खुशी से पागल नहीं है।"(6)

दिवाकर की भाषा असली गाँव देहात की ठेठ है। वह अपनी शहरी आदर्श और दिखावे के चलते स्वभाविक गाँव की बोली में हस्तक्षेप नहीं करते। उसे संलग्नता व ईमानदारी से अभिव्यक्त करते हैं। गाँव के असली स्वरूप को, बोली को, भाषा को, बदलते यथार्थ को एवं उससे उत्पन्न संवेदना को ईमानदारी से व्यक्त करते हैं। ग्रामीण अंचल का कथाकार होने के नाते उनकी कहानियों

में गाँव की वह छवि मिलती है जो भारतीय आत्मा कही जाती है। भारत गाँवों का देश है। शहर गाँव की अपेक्षा बौना दिखता है। अपने मूल स्वरूप और जड़ गाँव से ही निकली है। शहर के कई पात्र दिवाकर की कहानियों में पहले गाँव में ही बचपन बिताते हैं, वहाँ के हवा, अन्न खाकर पोषित होते हैं और यौवनावस्था होने के बाद शहर में नौकरी करते हैं और वहीं बस जाते हैं साथ ही वहीं के होकर उसका गुणगान करने लगते हैं। गाँव की आलोचना और गाँव के भोलेपन को हेय दृष्टि से देखते हैं। खुद को बड़ा विद्वान और सम्पन्न महसूस करते हैं। उसे अपने मूल स्वरूप का ज्ञान नहीं। दिवाकर अपनी कई कहानियों में बताने की कोशिश किए हैं कि किस प्रकार गाँव से आया आदमी शहर का होकर रह गया। यहाँ तक की गाँव में बसे बूढ़े माता-पिता से भी घृणा मन ही मन करने लगता है।

कहानियों में गुजरते हुए मिथिलांचल की सांस्कृतिक परम्पराएँ, लोकगाथाएँ, लोक गीतों के साथ वहाँ हो रहे दैनंदिनी सामाजिक परिवर्तनों से भी भाषा के कलात्मक प्रयोग से संवेदना दृष्टिगोचर होती है।

"अरे राजपूत हूँ। सिंह कभी घास नहीं खाता।" उसके जवाब में रामसजीवन की यह भाषा कितनी बदली हुई है- "ई राजपुतवा अपने वश में नहीं है। आखिर जमीन बेची है न इसने। भिखारी बन रहा है। इसलिए बड़बड़ा रहा है।"(7)

रामधारी सिंह दिवाकर अपने समकालीन कथाकारों में सबसे नजदीक गाँव की संस्कृति, परम्पराएँ एवं वहाँ के क्रियाकलापों से जुड़े हैं। और जुड़ना कैसा उनका बचपन ही गाँव में गुजरा। जब चौबीस पचीस की अवस्था में नौकरी मिली तबसे उनका गाँव धीरे-धीरे पीछे छूटता चला गया, परन्तु आत्मीय संबंध-संलग्नता एवं जुड़ाव कभी कमा नहीं, अपितु दिनों-दिन बढ़ता ही चला गया। शहर और गाँव दोनों की सांस्कृतिक झलक, खूबियाँ और कमियाँ सभी ज्वलंत स्थिति को दिवाकर ने अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाया। ग्रामीण जीवन की सूक्ष्म संवेदना को, साहित्य पटल पर रखते नहीं थकते। उनका आत्मीय सम्बन्ध उनकी आत्मा से जुड़ी हुई है। गाँव और शहर के तुलनात्मक अध्ययन में निकली, संवेदनाओं पर दिवाकर की पैनी दृष्टि कभी ओझल नहीं हुई। पाठकों के हृदय को झकझोरती और ग्रामीण जीवन से जोड़ती मानवीय सम्बन्धों का अद्वितीय परिचय दिवाकर की कहानियाँ कराती हैं। दिवाकर ग्रामीण संवेदना के कथा-शिल्पकार हैं। ग्रामीण वातावरण व परिवेश की खूबियों को बताने वाले हैं। अच्छाइयों, सच्चाइयों और मानवतावादी दृष्टि के पक्षधर हैं। दिवाकर भारतीय कथाकारों में अद्वितीय निधि हैं। इसकी विशेषता-दिवाकर की कहानियों में देखी व परखी जा सकती है।

कहानियों के मूल में त्याग है। यह त्याग भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इसके बिना प्रत्येक क्षेत्र अधूरा है। त्याग का अर्थ सकारात्मक पहल के साथ सही दिशा में कदम बढ़ाना है।

दिवाकर द्वारा रचित 'मृतजीवी' कहानियों में त्याग की अनोखी प्रस्तुति की गई है। यह कहानी त्याग, बलिदान एवं समर्पण की कहानी है। राजो दीदी बचपन में इतनी चंचल रहती हैं। परन्तु शादी के बाद उसका व्यवहार परिस्थितियों ने इस कदर बदल दिया कि पहले वाली राजो दीदी अब नहीं रही। हर परिस्थिति से वह समझौता करके जीवन यूँ जीती जा रही है।

"संवेदनशील औरतें ही नियति के साथ ऐसा क्रूर समझौता कर सकती हैं। पुरुष ऐसे में तो आत्महत्या कर लेता या जीवन भर आत्मनिर्वासन की सजा भोगता हुआ अपने नरक कुंड में छटपटाता रहता है।"(8) राजो की वेदना को यहाँ देखा जा सकता है- "गरीब हो गई हूँ न। कौन आयेगा मेरे यहाँ। मेरे पास किसी को देने के लिए है भी क्या? उषा के पास तो बहुत है। जीजा जी डॉक्टर हैं, घर पर भी इतनी जमीन-जायदाद है, क्या कमी है उनलोगों को। इसलिए सब जाते हैं वहाँ?"(9) कथाकार ने लिखा है- "अभाव में डूबे परिवार की जीजी जी पर कोई गहरी छाया नहीं थी, लेकिन दीदी इस परिस्थिति में खुद के सामंजस्य की तलाश करते-करते टूट गई लगती है। सारी मुश्किलों और अभावों की आदत बनाकर जीने की लाचारी और आत्म-संताप..... और बिन वजह हँसी। .....यह कहीं दीदी की अपनी ही मौत का शोकगीत तो नहीं है?"(10) समान सम्बन्धों को अलग-अलग रूप में देखने और मूल्यांकन करने वाले धन के मानक अब शहर के बाद गाँव में भी लोकप्रिय हो गए हैं। दो सहोदरों को अपने-अपने जीवन स्तर के अनुरूप किस तरह सम्मान या अपमान मिल सकता है।

"अब मेरे गाँव में न फाग है न चैत। अब टीवी हैं, मोबाईल फोन है, सिनेमा हॉल हैं, इंटरनेट है, जींस पैंट पहने लड़के-लड़कियाँ हैं। शराब की दुकाने हैं। चरपहिया गाड़ियाँ है, खाने के लिए मटन-चिकेन हैं, शराब हैं और वे सारी चीजे हैं जो पटना में हैं। बस एक कमी कि पटना नहीं है गाँव। गाँव है कहाँ। पटना आने के बाद भी मैंने होली बितायी है गाँव में। एकदम बेस्वाद। यांत्रिक,

कृत्रिम सिर्फ औपचारिक रस्मी।"[11] सेवा का मूलभाव, श्रद्धा से हृदय में भाव का जन्म होता है। यही भाव सेवा को जागृत करता है। यह जागृति अपनापन और विश्वास को बनाये रखने में मदद करती है।

पारिवारिक और गृहस्थ जीवन में सेवा से ही औरत ससुराल वालों का दिल जीतती है। अपना स्थान कायम घर में अपने कर्मों से करती है। सेवा का जहाँ अभाव है, वहाँ ही विवाह विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है। सेवा वह सीमेन्ट है जो दो दम्पत्ती को जीवन भर स्नेह और साहचर्य के धागे में जोड़े रख सकता है। नारी अपने यही सद्‌गुणों के कारण पुरुष, परिवार, समाज व देश में अपना स्थान कायम करती है।

जीवन की भाग-दौड़ में महिलाएँ पुरुष की अपेक्षा ज्यादा सहनशील होती हैं। दया, माया, सहिष्णुता, भीरुता जैसे तमाम गुण उसे पुरुष से अलग करते हैं। सेवा उसके हृदय में निवास करती है। इसी कर्म के सदुपयोग से हर नारी का रूप पूजनीय बन जाती है। चाहे वह पत्नी रूप में हो, बेटी रूप में हो, बहन रूप में हो या माँ रूप में हो। उसका दिल बहुत ही बड़ा होता है। उसके अपने कार्य से सेवा के बदले में समाज, परिवार, व्यक्ति से मिले सम्मान से भी कभी इतराती नहीं वह अपना अस्तित्व बनाये रखती है।

दिवाकर की कहानियों में जो गाँव उपस्थित है उसका स्वरूप पूर्ववर्ती कहानियों में चित्रित गाँव से भिन्न एक नयापन लेकर उपस्थित हुआ है। बदलते हुए गाँव ने शहरी संस्कारों से अपने-आप को पूर्णतः आप्यायित कर लिया है। पूर्ववर्ती गाँव और दिवाकर के गाँव की अवधारणा में स्पष्ट बदलाव के संकेत हैं। आज की स्थिति यह है कि महानगर चाहे सुरक्षित हो, लेकिन आपसी कटुता, जातीय संकीर्णता एवं व्यक्तिपरकता के दानव ने गाँव को असुरक्षित बना दिया है। इन सब के बीच जो एक नयी चेतना का उदय गाँवों में हुआ है वह मध्यवर्गी जातियों, पिछड़ों और दलितों का राजनीतिक और सामाजिक हस्तक्षेप है। पुरानी वर्ण व्यवस्था की सामाजिक संरचना को इस नये समीकरण ने झकझोर डाला है। जो आज तक उपेक्षित थे, अब सत्ता के केन्द्र में आ गये हैं। दिवाकर की कहनियों के धरातल की पहचान इस दृष्टि से रोचक है कि उनमें उभरती हुई नयी पीढ़ी, जातिवाद, भ्रष्टाचार, अपराध और अर्थमानसिकता का एक नया परिप्रेक्ष्य उभड़ता दिखाई देता है। 'धरातल', 'मखान पोखर', 'माटी-पानी', 'वर्णाश्रम' आदि संग्रहों में संकलित कहानियाँ ग्रामीण यथार्थ को समझने का समाजशास्त्रीय आधार प्रदान करती हैं।

संदर्भ-सूची

1. वह गलत आदमी : बीच से टूटा हुआ, दिवाकर, पृ. 48
2. बीच का पुल : बीच से टूटा हुआ, दिवाकर, पृ. 90
3. बीच का पुल : बीच से टूटा हुआ, दिवाकर, पृ. 92
4. वही : " , " , पृ. 92
5. पुनरागमन : मखान पोखर, दिवाकर, पृ. 10
6. वही : " , " , पृ. 11
7. नवोदय : मखान पोखर- दिवाकर, पृ. 134
8. मृतजीवी (अलग-अलग अपरिचय), दिवाकर, पृ. 57
9. वही " " " , " , पृ. 53
10. वही " " " , " , पृ. 61
11. क्या घर क्या परदेश : जहाँ आपनो गाँव, दिवाकर, पृ. 205

भूमंडलीकरण की प्रवृत्तियाँ और और हिन्दी उपन्यास

विभा कुमारी

शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

अंग्रेजी के 'ग्लोबलाइजेशन' (Globalization) शब्द के लिए हिन्दी में 'भूमंडलीकरण' शब्द प्रचलित है। इसके लिए 'वैश्वीकरण' शब्द भी प्रयुक्त होता है। भूमंडलीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करने से पूर्व इसके शाब्दिक अर्थ को जानना आवश्यक है। 'भूमंडलीकरण' शब्द में 'भू' का अर्थ होता है- 'भूमि' और 'मंडलीकरण' का अर्थ हुआ- समाहित करना। अर्थात् संपूर्ण भूमंडल का एक साथ हो जाना। यह शब्द बीसवीं सदी के अंतिम दशक में व्यापक रूप में प्रयोग में आया। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद जब दुनिया एक ध्रुवीय हो गयी और अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दुनिया के, खासतौर पर तीसरी दुनिया के बाजार पर कब्जा जमाना शुरू किया तो इसे 'भूमंडलीकरण' का नाम दिया गया। इस शब्द से यह भ्रम पैदा होता है कि यह ऐसी व्यवस्था है, जिसमें अपने छोटे स्वार्थों से ऊपर उठकर लोग, सारे संसार के मंगल के लिए जुड़ जायेगे, लेकिन भूमंडलीकरण के निहितार्थ इसके ठीक उलटा है। यह व्यवस्था सारे संसार को कुछ सशक्त पूंजीवादी प्रतिष्ठानों, यानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके संकेद्रण के सबसे सबल केंद्र अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बनी हुई है। संसार को एक करने की इसकी दृष्टि पूरी तरह एक आयामी है। यह सिर्फ व्यापार के लिए दुनिया को एक करना चाहती है, बाकी सारें बातें आनुषंगिक है।

समकालीन भूमंडलीकरण की अवधारणा किसी ऐतिहासिक प्रकिया का स्वाभाविक विकास नहीं समझी जा सकती। भले ही कुछ विद्वान ऐसा प्रयत्न करते रहे हैं। 21वीं सदी वाले भूमंडलीकरण की जड़े हजारों वर्ष पहले नहीं तलाशी जा सकती है। आज जिस संदर्भ में भूमंडलीकरण की चर्चा गर्म हुई है, वह अमेरिकी पूंजीवाद, पश्चिमी जनतंत्र वाली प्रणाली के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी है। वैसे तो इस जादू के पिटारे को खोलते समय इस बात की तथाकथित घोषणा की गयी थी कि इस प्रक्रिया के तहत वैश्विक रूप से असमानता में कमी आयेगी। यह संसार में शिक्षा, रोजगार तथा व्यापार को मजबूती प्रदान करेगा और आपसी सहभागिता बनेगी, पर वर्तमान परिख्रश्य पर दृष्टिपात करें तो यह दावा पूर्णतया खोखला और दोहरा चरित्र का निर्माण करने जैसा है। प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो. यशपाल भी भूमंडलीकरण की अपसंस्कृतिकरण से चिंतित नजर आते हैं, उनका मानना है कि "भूमंडलीकरण का अर्थ यह नहीं है कि यह सब लोगों के लिए बराबर है। इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी बात बिल्कुल नहीं है। भूमंडलीकरण एक स्वेच्छाकारी प्रक्रिया है, जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सबको उसके पीछे चलना पड़ेगा। ये यह भी तय करेंगी कि हमारी स्थितियाँ कैसी होगीं। उन्हें कैसे होनी चाहिए। आपको अनुकूलित किया जाए।"[1] भौगोलिक सीमाओं के समाप्त होने, घरेलू बाजारों को नियंत्रण मुक्त किये जाने और विज्ञान और संचार टेक्नोलॉजी के चमत्कारी आविष्कारों ने विश्व के छोटे बड़े राज्यों को आपस में इस तरह गूंथ-जोड़ दिया है कि विश्व 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित हो गया है। भूमंडलीकरण ने हमारे आर्थिक जगत को प्रभावित करने के साथ ही सामाजिक, सामाजिक, सांस्त्रतिक, राजीनीतिक, साहित्यिक जगत को भी प्रभावित किया है।

हिन्दी साहित्य-जगत् में लगभग पिछले दो दशकों से भूमंडलीकरण पर चर्चा हो रही है, किन्तु उस यथार्थ को सशक्त प्रभावीशाली और मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति देने का श्रेय जाता है, रेहन पर रग्घू (काशीनाथ सिंह) दौड़ (ममता कालिया) एक

ब्रेक के बाद (अलका सरावगी) विसर्जन (राजू शर्मा), ग्लोबल गाँव के देवता (रणेंद्र), उधर के लोग (अजय नावरिया), मुन्नी मोबाईल (प्रदीप सौरभ) आदि उपन्यासों को।

'रेहन पर रग्घू' प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह की अत्यन्त सशक्त औपन्यासिक ख्रति है। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप संवेदना, सम्बन्ध और सामूहिक दुनिया में जो निर्मम ध्वंस हुआ है- बदलाव का जो तूफान आया है- उसका प्रमाणिक और गहन अँकन है, रेहन पर रग्घू। यह उपन्यास वस्तुतः गाँव शहर अमेरिका तक के भूगोल में फैला हुआ अकेले और निहत्थे पड़ते जा रहे समकालीन मनुष्य का बेजोड़ आख्यान है। इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सर्वाधिक गहरा घाव भावनात्मक स्तर पर किया है। आज व्यक्ति और समाज मानवीय भावबोध से निरंतर दूर होता जा रहा है। उपन्यास का नायक रघुनाथ के इस कथन में इसकी अनुगूँज बहुत साफ सुनी जा सकती है, "देखों जग्गन परायों में अपने मिल जाते है, लेकिन अपनों में नहीं मिलते ऐसा नहीं है कि अपने नहीं थे- थे, लेकिन तब जब समाज था, परिवार थे रिश्ते-नाते थे, भावना थी। भावना यह थी कि यह भाई है,यह भतीजा है, भतीजी है, यह कक्का यह काकी है, यह बुआ है, मामी है। भावना में कमी होती थी तो उसे पूरा कर देती थी लोक-लाज कि यह ऐसा नहीं करेंगे तो लोग क्या कहेंगे? धूरी भावना थी, गणित नहीं, लेन-देन नहीं।"(2) हमारी संयुक्त परिवार पहले ही टूट कर बिखर चुकी है और भूमंडलीकरण से समाज का एक बड़ा हिस्सा वृद्धों को विस्थापित एवं उपेक्षित जीवन जीने को बाध्य कर दिया है। रघुनाथ की यात्रा बनारस के समीपवर्ती गाँव पहाड़पूर से शुरू होकर बनारस में नई बनी कॉलोनी अशोक विहार तक की है, तो उसके बेटों की यात्रा नोएडा और अमेरिका तक की। अपने बेटों का गाँव, गाँव की जमीन से उपराम होना रघुनाथ को भीतर तक सालता है। उनकी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त होती है- "शीला हमारे तीन बच्चे है, लेकिन पता नहीं क्यों कभी मेरे भीतर एक ऐसी हूक उठती है, जैसे लगता है मेरी औरत बाँझ है और मैं निस्संतान पिता हूँ।"(3)

अलका सरावगी ने 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास के विषय का ताना-बाना समसामायिक कोर्पोरेट जगत को कथावस्तु का आधार लेते हुए बुना है। यह कोर्पोरेट जगत की वैचारिकता और धोखाधड़ी को प्रस्तुत करता है। उपन्यास में कोर्पोरेट जगत की चकाचौंध के बीच देश की एक तिहाई जनता को 'कुत्ते' की तरह जिंदगी बिताते हुए दिखाया है, जो देश की सबसे बड़ी विडम्बना है, जबकि कोर्पोरेट वर्ल्ड का मानना है कि 'ट्रिकल डाउन इफेक्ट' के अनुसार अंततः इस विकास का लाभ उस जनता को ही पहुँचेगा। मार्केटिंग में उच्च पद पर स्थित एक्जीक्यूटिव को प्रमुख चरित्रों के रूप में प्रस्तुत करते हुए सरावगी ने उपन्यास की विषयवस्तु उत्तर आधुनिक उपभोक्तावादी व्यक्ति से जोड़ी है। के.वी., गुरुचरण उर्फ गुरु और भट्ट ऐसे ही चरित्र हैं जो ग्लोबलाइजेशन के इस समय में ग्लोबल सपनों को बेचते हैं। यह सपने मध्यवर्गीय समाज पर हावी हो रहे हैं और देश की तीस करोड़ निम्न-मध्यवर्गीय जनता का जीवन इन सपनों को प्राप्त करने के सपनों में ही समाप्त हो जाता है। सपनों की आभासी दुनिया (वर्चुअल वर्ल्ड) का सच सामने आता है, जब ग्लोबल और आंतरिक सपनों की टकराहट होती है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास कोर्पोरेट जगत के चरित्रों को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करता है तथा पाठक के सामने एक नवीन कथ्य को लेकर आता है। वहीं दूसरी तरफ बाजारवाद व्यक्ति को केवल एक वस्तु के रूप में देखता है, जो मात्र अपना उत्पाद बेचने से मतलब रखता है। मानवीय संवेदना किस प्रकार वस्तुवादी दृष्टि में परिवर्तित हो रही है उसका एक दस्तावेज बनकर यह उपन्यास पाठक के सामने आता है। हर छह महीने में नये शहर में नई नौकरी के लिए भटक रहे उपन्यास के चरित्र 'असंगतिपूर्ण संगति' की उत्तर-आधुनिक स्थिति को ही प्रस्तुत करते हैं। गुरु का रहस्यमय जीवन उपन्यास के अन्य पात्रों में जिज्ञासा और भ्रम का मायाजाल बनाते हैं, जिसमें विचारधाराएँ स्वाहा हो जाती हैं और महावृत्तांतों को करारी चोट मिलती है। ईर्ष्या मुक्त प्रेम में किसी तीसरे का सहज स्वीकार करते हुए प्रेम का जो रूप इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है, वह न केवल प्रेम की परंपरावादी विचारधाराओं से मुक्ति दिलाता है, बल्कि नारीवादी विमर्श को भी प्रस्तुत करते हुए नारी की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा भी करता है।

'दौड़' हिन्दी का ऐसा एक उपन्यास है, जो कलेवर में छोटा-88 पन्ने की यह लघु उपन्यास हमारे समक्ष कुछ मजबूत समस्याओं और सवालों को उपस्थित करते हैं। भूमंडलीकरण, उदारीकण और निजीकरण ने 21वीं सदी में युवाओं के सामने सपनों की एक अलग और नितांत नई दुनिया का द्वार खोला दिया है जिसके चलते कई नए ढंग के रोजगार और नौकरियाँ उपलब्ध हो गई है।बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने रोजगार के नए अवसर प्रदान करने के साथ-साथ बाजारतंत्र और उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है। युवाओं ने इस नए दौर में नए तंत्र पर सवार होकर सफलता तो खूब अर्जित की है, पर मानवीय सम्बन्ध और आपसी रिस्तें इनसे कहीं छूटकर बहुत दूर चले गये हैं। पवन, सघन, अभिषेक और स्टैला इसी वैश्वीकरण के दौर के बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से जुड़े हुए

पात्र हैं। पवन के माता पिता दो पुत्र होते हुए भी बुढ़ापे में अकेले जीने को अभिशप्त हैं। हताश और निराश माता पिता के ये उद्‌गार मन को कचोटे बिना नहीं रहते, "ऐसा ही पता होता तो पच्चीस बरस पहले परिवार नियोजन क्यों करते। होने देते चार-छह बच्चे। एक न एक तो पास रहता।"(4) वैश्वीकरण की एक उपज उपभोक्तावादी संस्कृति है, जिसमें हमारी संस्कृति के लिए कोई स्थान नहीं है। पवन माता पिता से कहता है, "पापा मेरे लिए शहर महत्त्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। .....मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ, जहाँ कल्चर नहीं कैज्यूमर हो। मुझे संस्कृति नहीं, उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।"(5)

रणेन्द्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में एक ऐसे समाज को केंद्र बिंदु माना है जो आज के दौर का सर्वाधिक शोषित समाज है- आदिवासी समाज। विस्थापन की त्रासदी भूमंडलीरण का एक परिणाम है। विस्थापन की प्रक्रिया से किसी समाज का केवल भौगोलिक परिवर्तन ही नहीं होता, बल्कि उसके साथ ही उस समाज का सांस्त्रतिक एवं चेतनागत स्वरूप का भी आमूलचूल परिवर्तन होता है। लेखक ने 'असुर जनजाति' की संघर्ष गाथा के माध्यम से दुनिया के अनेक भागों में फैले हुए आदिवासियों के संघर्ष की पड़ताल की है। मसलन अमेरिकी महाद्वीप में इंका, माया और सैकड़ों 'रेड इण्डियन' की मूक हत्याएँ भी झारखण्ड असूरों के संघर्ष से अलग नहीं है, क्योंकि उन्हें भी आधुनिकता के ठेकेदारों ने असहिष्णु और बर्बर कहकर कुछ इसी तरह मौत के घाट उतारा था।

'मुन्नी मोबाइल' प्रदीप सौरभ की लिखा हुआ उपन्यास है। आनंद भारती उपन्यास का एक मुख्य पात्र है, जो एक पत्रकार है और जिसकी पैनी, खोजी और निर्भीक कलम देश, समाज के घटित को शब्दबद्ध करती चली जा रही है। उपन्यास के केंद्र में 'मुन्नी मोबाइल' की कथा है। मुन्नी मोबाइल, जिसके लिए उपन्यासकार शुरू में ही कह देता है, "जो पढ़ी नहीं है, लेकिन कढ़ी फुल-फुल है"(6), जो आनंद भारती के यहाँ झाड़ू-पोंछा करती है और जिसे वह किसी तरह हस्ताक्षर करना सिखलाता है। मुन्नी मोबाइल, जिसका असली नाम बिंदू यादव है, वह बिहार के बक्सर जिले से आकर दिल्ली के समीपवर्ती उपनगर के एक गाँव में रहती है। क्रमशः ऊपर की सीढ़ियाँ चढ़ती और भटकती, हर तरह के दाँव-पेच में वह माहिर होने लगती है और प्रभुतासंपन्न स्थानीय ठेकेदारों, रंगदारों, पुलिस थानों से लड़ती-झगड़ती, तरह-तरह की सांघातिक स्थितियों को सहती, उनकी काट सोचती कई बसों की मालकिन बन जाती है और चौधराइन की संज्ञा पाती है। उपन्यास के ये पात्र जिस उपभोगपरस्त ग्लैमर और विलासिता के मारक, आकर्षक, अर्थप्रधान देशकाल में जी रहे हैं, वहाँ रास्तों, फैसलों के सही गलत, नैतिक-अनैतिक होने पर सोचने की फुर्सत, किसी को नहीं है। बस आगे दौड़ते चले जाना ही यहाँ जीवन की एकमात्र मंशा है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों ने भूमंडलीकरण की प्रवृत्तियों की बखूबी अभिव्यकित की है। इस युग के सभी उपन्यासकार इसके प्रति अत्यंत सजग दिखाई पड़ते हैं।

संदर्भ

1. प्रो. यशपाल उदधृत अक्षर पर्व, मार्च 2004, पृ. 67
2. रेहन पर रग्घू- काशीनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 37
3. रेहन पर रग्घू- काशीनाथ सिंह, पृ. 46
4. दौड़- ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 ई., पृ. 57
5. दौड़- ममता कालिया, पृ. 97
6. मुन्नी मोबाइल - प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 99

गाँधीवाद : वैश्विक विकास का राजमार्ग

चंदा कुमारी

शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय राजनीतिशास्त्र-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

गाँधी वहाँ नहीं है, जहाँ हम उन्हें खोज रहे हैं जैसे-जैसे समय बीत रहा है, महात्मा गाँधी में वापसी लगातार कठिन से कठिनतर होती जाती है, लेकिन यह भी सच है कि हम गाँधी से जितना दूर होते हैं, गाँधी अनेक कारणों से हमारे उतने ही निकट आ गये भी मालूम पड़ते हैं। जैसे ही हमें लगता है कि हमारा दौर उच्च तकनीकी उत्पादन-पद्धति से प्रकट होनेवाली उत्तर-आधुनिक वैश्विकता ने गाँधी को एकदम अप्रासंगिक बना दिया है, वैसे ही उससे उपजनेवाले अभूतपूर्व पर्यावरणीय संकट को देखते हुए हमें गाँधी की फिर से याद आने लगती है। लगता है कि गाँधी की मदद से शायद हमें प्रकृति में वापसी का कोई ऐसा रास्ता मिल जायेगा कि हम इस नये संकट से मानवजाति को बचाने में कामयाब हो जायेंगे। मानव-जाति के सामूहिक विनाश की संभावना जितनी विकराल दिखती है, उतना गाँधी का मनुष्य पर केंद्रित नजरिया हमें फिर से अर्थपूर्ण मालूम होने लगता है। तथापि, ऐसा करते वक्त हम अपने भीतर यह भी महसूस कर पा रहे होते हैं कि गाँधी जब आपदा समय में औद्योगिक पूँजीवाद और उससे उपजे अमानवीय साम्राज्यवाद का 'अपर्याप्त विकल्प भर' ही हो पाये थे, तो यह कैसे हो सकता है कि हम उन्हें पहले से भी अधिक जटिल हो गये हालात में किसी तरह के 'व्यावहारिक विकल्प' की तरह देख सकेंगे।[1]

गाँधी हमारे लिए एक 'व्यावहारिक विकल्प' से ज्यादा, एक 'संभावनापूर्ण प्रश्न' है; वे एक ऐसी चुनौती की तरह हैं, जो अब न उन्हें ठीक साबित करती है न गलत, लेकिन जो हमें हमारी नींद से जगती है और इस तरह गाँधी से ज्यादा खुद हमारी अपनी चुनौती में बदल जाती है, अगर हम संस्कृति के बाजार को देखेंगे तो साफ नजर आयेगा कि गांधी की बाबत सारा चिंतन या तो उन्हें ठीक साबित करने में लगा है, या उन्हें गलत बना दिये जाने के विवादास्पद प्रयास कर रहा है- ताकि लोग और चौक और उस सोच के नये उपभोक्ता बन कर सामने आ सकें, गाँधी आज हमारे सामने गाँधी की तरह कम, बाजार की जरूरत बना दिये गये विचार की तरह अधिक प्रस्तुत हो रहे हैं। अगर हमें इन सारे वैचारिक भंवर के बाहर आना है तो जरूरी होगा कि हम गाँधी की बाबत बुनियादी सवालों में लौटें, देखें कि आधुनिक काल की विराट वैश्विक परिवर्तन धारा में गाँधी के साथ ऊपर उठती लहर कौन सी है और वह कौन-सी लहर है जो फिर उन्हें अपने साथ बहा कर ले जाती हुई नीचे गिरती है और युग के समुद्र में विलीन हो जाती है हमें इतनी ही व्यापकता और समग्रता में देखना होगा, नहीं तो गाँधी को खोजना, उनके एक नये राजनीतिकरण का उनके एक नये सरलीकरण का पर्याय भर हो कर रह जायेगा।

मानव जाति के आधुनिक होने के जमीनी हालात औद्योगिक क्रांति के गर्भ से जन्म लेते हैं। यंत्र की ताकत से चलनेवाले उद्योग पहली दफा उत्पादन और उत्पादक के बीच के सीधे रिश्ते को तोड़ते हैं, जब तक उत्पादन उत्पादक से सीधे बंधा था, मानव-जाति को एक तरफ धकेल कर 'यंत्र' केंद्र में आ रहा था, तो इसका सीधा नतीजा यह निकल रहा था कि जहाँ पहले 'मनुष्य' केंद्र में था वहाँ अब 'विज्ञान' आ कर बैठ रहा था। मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने का जिम्मा पहले 'धर्म' के कंधों पर था। अब बात होने लगी कि सभ्यता और संस्कृति का विकास 'वैज्ञानिक मूल्यों' के आधार पर होगा, औद्योगिक क्रांति ने समाज के जिस वर्ग को ताकतवर बनाया, वह था- मध्य वर्ग, उच्च वर्ग अभी भी धर्म की बात कर रहा था। वह उसकी मानसिकता में शामिल था तो, जब मध्यवर्ग का विस्तार हुआ और वह सत्ता में हिस्सेदारी मांगने की हद तक मजबूत हुआ, तो उच्च वर्ग उसका धर्म के आधार पर अंतर्विभाजन करने लगा। उसे साम्प्रदायिक बनाने लगा। राज्यसत्ता उच्च वर्ग के पास थी। औद्योगिक क्रांति का जो फायदा हो रहा

था, उसे भी उच्च वर्ग खुद संचालित करना चाहता था. वह सत्ता की भाषा में सोचनेवाला वर्ग था। औद्योगिक क्रांति ने उसे बारूदी अस्त्रों शस्त्रों की ताकत भी दी। फौजें सीधे उच्च वर्ग के द्वारा संचालित सत्ता केंद्रों के अधीन थी तो सत्ता के विस्तार की लालसा का जन्म हुआ। औद्योगिक क्रांति के जरिये होनेवाला पूँजीवादी विकास, साम्राज्यवादी विस्तारवाद में बदल गया।[2]

यह वह मुकाम है, जब आधुनिकता की करवट लेती मानवजाति अपने पहले भूल-सुधार की ओर आती है। मध्यवर्ग की 'वैज्ञानिक चेतना' और उच्चवर्ग के साम्राज्यवादी सत्ता-विस्तार के बीच इतनी बड़ी खाई पैदा हो जाती है कि फ्रांस 1789 में रक्तरंजित जनतांत्रिक इन्कलाब के द्वारा सत्ता के उस समीकरण को उलट देता है। प्रजातांत्रिक इन्कलाब के पीछे मध्यवर्ग की जो वैज्ञानिक चेतना काम कर रही होती है, वह अपने लिए नये 'गैर धार्मिक' मूल्यों को तय करती है। बात समानता, स्वतंत्रता और बंधुता तक पहुँचती है, परंतु इन मूल्यों के व्यावहारिक रूप ठीक वैसे नहीं होते, जैसे इन शब्दों के आदर्श अर्थ अमूर्त रूप में हमारी कल्पना को पकड़ते हैं। समानता, मध्यवर्ग की सत्ता में हिस्सेदारी की हद तक ही उच्चवर्ग के साथ अपनी गैर-बराबरी का हिसाब कर पाती है। निम्नवर्ग इस समानता के दायरे से व्यावहारिक रूप से बाहर ही रहता है। निम्नवर्ग यानी उत्पादक वर्ग समानता के हकदार वे होते हैं, जिनके पास उत्पादन के संसाधनों को मिल्कियत होती है। यह मिल्कियत दो तरह की है। एक का संबंध है- वैज्ञानिक चेतना से सीधे जुड़े यंत्र कौशल या तकनीक से यहाँ मध्यवर्ग मालिकाना हक में समान हिस्सेदारी का दावा कर पाती है। पर उत्पादन के कच्चे माल वाले संसाधन अभी भी सत्ता केंद्रित रहते हैं। वहाँ सत्ता परिवर्तन के बावजूद उच्च और मध्यवर्ग की मिलीभगत ही काम करती है, दूसरे, यूरोप अपने यहाँ के कच्चे माल के संसाधनों की मिल्कियत को लेकर तो प्रजातांत्रिक अधिकारों की रक्षा की बात तक पहुँचता है, परंतु वह उपनिवेशों को ठीक वैसे हक नहीं देता। वहाँ न 'समानता' व्यवहार में उतरती है, न 'स्वतंत्रता', और न 'बंधुता' यानी आधुनिकता की वैज्ञानिकता की ओर ली गयी करवट, यूरोप के मध्यवर्ग के हितों की रक्षा के लिए प्रजातांत्रिक इन्कलाब करके, अंदरूनी भूल सुधार ही करती है। उपनिवेशों के कच्चे माल को दोहन, शोषण और लट तक जारी रहती है, कहने को उपनिवेशों में प्रजातांत्रिक किस्म का सभ्यताकरण होता है, परंतु व्यवहार में औद्योगिक पूंजीवाद वहाँ विकास करने के नाम पर दरिद्रता और बेरोजगारी बढ़ाता है।

ऐसे में महात्मा गाँधी उपनिवेशों की आजादी के उद्देश्य से स्वराज के लिए एक तरह का एक और इन्कलाब करने को ओर आगे बढ़ते हैं। 1907 में उनके 'हिंद स्वराज' के साथ इस इन्कलाब को व्यवहार में बदलने की शुरुआत होती है। इसका संबंध उत्पादन के संसाधनों पर मिल्कियत के हकूक से है। जो संसाधन जहाँ के हैं, उनके मालिक भी वहीं के होने चाहिए. यह वह मूल धारणा है, जो औद्योगिक क्रांति से पैदा होनेवाले विरोधाभासों में से एक प्रमुख और बुनियादी विरोधाभास के तल पर किया जाता है, तथापि स्वराज केंद्रित इन्कलाब वाले इस दूसरे महान् भूल सुधार की भी वही असंगतियाँ होती हैं, जो यूरोप में देखने को मिलती है, यानी जिस तरह उत्पादन के संसाधनों की मिल्कियत के मामले में वहाँ भी निम्नवर्ग 'बाहर' होता है और केंद्र में उच्चवर्ग और मध्यवर्ग की मिलीभगत काम करती है, वैसा ही कुछ भारत में भी होता है, और भारत के पीछे-पीछे स्वराज के आंदोलन छेड़नेवाले अन्य उपनिवेशों में भी कमोबेश यही स्थिति दिखायी देती है।

गाँधी के स्वराज-केंद्रित इन्कलाब का संबंध औद्योगिक क्रांति के बुनियादी ढांचे में भूल सुधार करने के साथ है, वही इसकी वैज्ञानिक भूमिका और प्रासंगिकता है और वही इसकी सीमा भी है, परंतु यह तय है कि इस भूल सुधार से तब्दीली आती है, वह भी प्रजातांत्रिक इन्कलाबों के वैश्विक होते चले जाने की तर्ज पर ही, एक दूसरी वैश्विक तब्दीली की तरह अंततः पूरी दुनिया की सम्राज्यवाद से मुक्ति का हेतु बनती है। यानी ये दोनों भूल-सुधार, आधुनिकता के बुनियादी ढाँचे में महान् रूपांतर लाते हैं।[3]

गांधी हमें औद्योगिक क्रांति से उपजी आधुनिकता के तहत, मूल संसाधनों के स्वामित्व के मामले में अधिक न्यायपूर्ण होने में मदद करते हैं। औपनिवेशकता से मुक्त..... स्वराज, प्रजातांत्रिक क्रांति को 'मानवी' एवं 'न्यायपूर्ण' होने की दिशा में आगे बढ़ाते हैं। इस तरह औद्योगिक क्रांति, पहले प्रजातांत्रिक होना सीखती है, फिर 'सह-अस्तित्व मूलक' होने की दिशा में आगे बढ़ती है। गाँधी के औपनिवेशकता विरोधी इन्कलाब का सार ही, आगे चल कर नेहरू के 'सह अस्तित्ववाद' के रूप में ठोस शक्ल लेता है।[4]

तथापि, जैसा पीछे इशारा किया गया है, प्रजातांत्रिक इन्कलाब के समानता, स्वतंत्रता, बंधुतावाले महान भारतीय आदर्श, 'व्यवहार' में, यूरोपीय मध्यवर्ग पर ही कुछ हद तक लागू होते हैं, शेष विश्व के लिए उनका चरितार्थ होना भविष्य के लिए मुल्तवी रहता है, तो, उस कड़ी में, इन आदर्शों की चरितार्थता का अगला चरण, विश्व के गैर-औपिनिवेशीकरण की तरह घटित होता है, परंतु जो देश आजाद होते हैं, वहाँ भी औद्योगिक क्रांति के गर्भ से निकले महान् आदशों वाली आधुनिकता, मध्यवर्ग में ही मुख्यतः अपनी

जड़ें जमाती है तो, जो देश आजाद होते हैं, वहाँ भी इस लिहाज से अधिक विकसित होनेवाला वर्ग मध्यवर्ग ही होता है और वही प्रजातांत्रिक चेतना से युक्त प्रगतिशील होता भी नजर आता है।

यहाँ गाँधी के स्वराज केंद्रित इन्कलाब की सीमा प्रकट होती है। आजादी का लाभ हमारे यहाँ भी विकसित मध्यवर्ग को ही मिलता है। उसकी प्रगतिशीलता ही शेष समाज के लिए किंचित आदर्श भी बनती है, परंतु जल्द ही मध्यवर्ग की अंदरुनी सीमाएँ प्रकट हो जाती हैं। नतीजतन, इन आदशों से मोहभंग भी होने लगता है।

गाँधी को मध्यवर्ग से प्रकट हुए उस राष्ट्रीय इन्कलाब से जोड़ना एकदम गलत नहीं है, जिसे तकनीकी शब्दावली में बुर्जुआ प्रजातांत्रिक इन्कलाब कहा जाता रहा है, यहाँ, मानवजाति उस तीसरे महान भूल सुधार की तरफ कदम बढाती है, जिसे हम 'जन मूलक प्रजातांत्रिक इन्कलाब' कह सकते हैं।

औद्योगिक क्रांति के कंधों पर सवार होकर आयी आधुनिकता के दो चेहरे हैं, एक चेहरा है विकास का और दूसरा है प्रगति का। विकास का जिम्मा उच्चवर्ग संभालता है और प्रगति के लिए दावेदार होता है- निम्नवर्ग। मनुष्य और समाज के सभ्यतामूलक विकास के पीछे आधुनिकीकरण खड़ा मिलता है, जो औद्योगिक पूँजी के मुनाफावादी रूप से जुड़ा है। उच्चवर्ग प्रक्रियाओं के संसाधनों पर स्वामित्व जताता है, मुनाफे का ज्यादा हिस्सा बटोरता है और बदले में विकास के विविध रूपों की जिम्मेवारी लेता है। यह जिम्मेवारी शहरीकरण से लेकर सभ्यताकरण तक फैली रहती है। उच्चवर्ग पहले से ही समाज के अगड़ों में आता है, इसलिए प्रगति की चिंता उसे नहीं हो तो प्रगति पिछड़ों का सपना..... है। उन्हें ऊपर उठना है, आगे जाना है। यहाँ वह उत्पादक वर्ग नजर आता है, जो मुख्यत: निम्नवर्ग से ताल्लुक रखता है।[5]

मध्यवर्ग के हिस्से दोनों आते हैं-विकास भी, प्रगति भी, प्रजातांत्रिक क्रांति और औपनिवेशिकता से उबारनेवाली स्वराज मूलक क्रांति- ये दोनों मध्यवर्ग को सत्ता में हिस्सेदार बनाती है। इस तरह मध्यवर्ग का एक हिस्सा पूंजी पैदा करनेवाले संसाधनों के स्वामित्व को पाने के मामले में, उच्चवर्ग का सहयोगी और सहयात्री हो जाता है। इस वर्ग से वह नेतृत्व पैदा होता है, जो प्रजातांत्रिक मूल्यों के आधार पर नयी तरह से आधुनिक सभ्यताकरण की ओर आता है। प्रजातांत्रिक क्रांति यूरोप से चल कर हम तक आती है, गाँधी उसे स्वराज की अपनी वैकल्पिक अवधारणा में ढालना चाहते हैं, परंतु गाँधी-नेहरू मिल कर प्रजातांत्रिक सह अस्तित्व से आगे नहीं देख पाते। यहाँ संसाधनों के स्वामित्व में सह-अस्तित्व मूलक भागीदारी को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, परंतु जल्द ही एक नया तरह का बाजारवादी साम्राज्यवाद इस सपने का अंत कर देता है। गाँधी की अहमियत यहीं तक है कि वे भारतीय मध्यवर्ग को पूंजी का उत्पादन करनेवाले अपने संसाधनों के स्वामित्व को पाने लायक बना पाते हैं।

यहाँ औद्योगिक क्रांति का वह पहलू मानवीय चिंता पैदा करता है, जिसका संबंध उत्पादनशील वर्गों के साथ है। जर्मनी और रूस में उस वर्ग को सर्वहारा श्रमिक कहा गया। कार्ल मार्क्स, एंगेल्स, प्लेखानोव और लेनिन की मार्फत अंतत: यह संभव हो सका कि सर्वहारा श्रमिक को उत्पादन से होनेवाले मुनाफों के न्यायपूर्ण वितरण के लिए आवाज उठाने लायक बनाया जा सका। यहाँ औद्योगिक क्रांति अपने आधुनिकता मूलक अभियान के लंबे सफर में, अपने तीसरे भूल सुधार की तरफ देखना शुरू करती है। मजदूर को औद्योगिक पूँजी के मुनाफों में हक के लायक इसलिए माना गया, क्योंकि वह औद्योगिक क्रांति के उत्पादनशील वर्ग के रूप में उस विकास प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा था, यह सपना बहुत बड़ा था। उत्पादनशील वर्ग को मनुष्य की तरह गर्व से जीने लायक सुविधा व अधिकार के मिलने का अर्थ यह भी था, कि इससे पूरे समाज की रचनाशीलता, सामाजिक विकास के केंद्र में आ सकती थी। इस तरह निम्नवर्ग के पिछड़ों की प्रगति से, विकास के एक नये अध्याय को लिखा जा सकता था। इस नये अध्याय को भविष्य में व्यावहारिक हो सकनेवाले साम्यवाद की तरह देखा गया, परंतु यह बड़ा सपना, निम्नवर्ग के एक छोटे से प्रतिनिधित्व-मूलक हिस्से को सत्ता में भागीदार बनाने की हद तक ही जा सका। समाजवादी इन्कलाब के रूप में यह साम्यवाद का अधूरा सफर था, जो अभी भी रास्ते में अटका हुआ है। वजह यह है कि औद्योगिक क्रांति व्यापक निम्नवर्ग को उत्पादन प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बना पायी। यूरोप से बाहर औद्योगिक क्रांति आधे अधूरे रूप में ही असमान तरीके का विकास करती है।[6]

यहाँ गाँधी पुन: अर्थपूर्ण होते हैं। वे देख पाये कि यूरोप से बाहर, खास तौर पर उपनिवेशों में औद्योगिक क्रांति, विकास का नहीं, वहाँ के संसाधनों के दोहनशोषण का का हेतु हो रही थी, उस से उत्पादनशील सर्वहारा को मिलनेवाला रोजगार बहुत ही थोड़ा था। दूसरी तरफ औद्योगिक क्रांति परम्परागत शिल्प व उद्योगों को नष्ट करने का हेतु हो गयी थी। इससे भारत जैसे देशों के उत्पादनशील तबके, उल्टे बेरोजगार हो गये थे। अत: गाँधी महा-कल्पना करते हैं। यह सपना इसलिए अव्यावहारिक बना रहा, क्योंकि इसे मजबूती

देनेवाली पूँजी का अब उत्पादन नहीं हो पा रहा था, सर्वहारा का इन्कलाब भारत के लिए दूर की कौड़ी था, क्योंकि यहाँ सर्वहारा का कभी उस हद तक विकास ही नहीं हुआ कि वह समाजवादी इन्कलाब की बाबत सोच पाये. ऐसे में मिश्रित अर्थव्यवस्था को तरजीह देनेवाले प्रजातंत्र के अलावा भारत के सामने कोई अन्य विकल्प कभी ठोस रूप से खुला ही नहीं पर हम कार्ल मार्क्स के सर्वहारा वाले इन्कलाब के सह समांतर, गाँधी को इसलिए रखने के लिए विवश हैं, क्योंकि औद्योगिक क्रांति अभी तक भी यूरो अमरीकी समर्थन के बाहर खड़े एशिया व अफीका को पूरी तरह अपनी जमीन नहीं बना पा रही है। वह पिछड़े व अविकसित देशों के संसाधनों का अभी तक दोहन शोषण कर रही है, ताकि विकसित देशों की औद्योगिक क्रांति का उत्तर-औद्योगिक रूप भी पूर्ववत् मुनाफे डालने वाली युक्ति बना रहे।

गाँधी एशियाई विकल्प की तरह और नेल्सन मंडेला अफीकी विकल्प की तरह, औद्योगिक और उत्तर औद्योगिक किस्म के विकास की 'मानवीय आलोचना' के हेतु की तरह मानवजाति के सामने है। गाँधी का स्वदेशी का विकल्प परंपरागत उत्पादनशीलता को औद्योगिक-उत्तर औद्योगिक उत्पादन प्रक्रियाओं के सह समांतर विकासमान बनाये रखने का आग्रह करता है, नेल्सन मंडेला का विकल्प अफीकी पृष्ठभूमि से निकली 'गैर नस्लवादी आर्थिकता' को वैश्विक अर्थतंत्र की रीढ़ बनाने की ओर ले जाता है। ये वे भूल सुधार हैं जो कार्ल मार्क्स के तीसरे भूल सुधार की ही अगली कड़ियों की तरह है, लेकिन वे हमें कार्ल मार्क्स और औद्योगिक व उत्तर औद्योगिक विकास के मॉडलों से बाहर झाँकने के आग्रह भी करते हैं। ये सभी आधुनिक विकास-धारा के मानवीय रूपांतरों की मांग करते हैं- इस आधार पर हम इन्हें सहयोगी सहयात्री कह सकते हैं।[7]

मार्क्स, गाँधी और मंडेला-तीनों उत्पादनशील पिछड़े वर्गों को मजबूत बनाने के लिए अपनी तरह के तीन विकल्प ले कर प्रस्तुत होते हैं। फिलहाल तीनों का भविष्य अनिश्चित है। समाजवादी क्रांतियाँ हुईं, हो हो कर रह गयी और साम्यवाद का अधूरा सपना हमारे साथ छोड़कर गयी। गांधी का स्वदेशीकरण पंजी के कमजोर आधार की वजह से अभी तक लंगड़ाता सा ही चल रहा है। मंडेला का सपना अफीका से बाहर निकल कर यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि विकसित देशों का अंदरूनी सरदर्द होता जा रहा है, परंतु बात कहीं पहुँचती दिखायी नहीं दे रही है। तथापि इन तीनों की वजह से अगर किसी वर्ग को वाकई फायदा हुआ है, तो वह पुनः मध्यवर्ग ही है, लेकिन इसे हम निम्न मध्यवर्ग कहें तो बेहतर होगा, क्योंकि यह वही वर्ग है, जो नीचे से ऊपर आया है और मध्यवर्ग का हिस्सा हो गया है। तकनीकी भाषा में इसे 'शिक्षित कुशल श्रमिक' कहा जाता है, तकनीकी और उच्च तकनीकी कुशलता से युक्त यह वर्ग उत्पादनशील वर्ग का हिस्सा होकर भी उससे बाहर आ गया है, वह श्रमिक भी है और 'प्रबंधक वर्ग' के हिस्से के रूप में श्रमिक और मालिक के बीच की कड़ी भी है। इस वर्ग के आ जाने से श्रमिक वर्ग की परिभाषा में भी तब्दीली हुई है। इस बीच के वर्ग के खड़े हो जाने से पूँजीपति और श्रमिक का, यानी बुर्जुआ और सर्वहारा का जो सीधा और तीखा ध्रुवीय अंतर्विभाजन था, वह अब बदल गया है। इस ध्रुवीय विरोध के कुंद पड़ जाने से, संघर्ष और इन्कलाब की परंपरागत धाराओं पर पुनर्विचार तक जरूरी हो गया है। तो कुल मिला कर हुआ यह है कि आधुनिकता के लंबे अभियान में महान क्रांतियों और महान चिंतकों व नायकों के तमाम प्रयास, अंततः परोक्ष रूप में मध्यवर्ग की मजबूती का हेतु हुए हैं, जो लोग क्रांति के प्रति भावुक नजरिया रखते हैं, उन्हें यह स्थिति परेशान करनेवाली लग सकती है, परंतु यह स्थिति हमें पुनः गाँधी के और करीब लाती है, गाँधी किसी एक वर्ग के विकास की बात करते रहे। इस लिहाज से गाँधी इतिहास धारा में सही साबित हुए हैं। हालाँकि सर्वोदय उस तरह का नहीं है, जैसा सतही रूप में नजर आ सकता है। हकीकत में वह, बरास्ते मध्यवर्ग, अन्य वर्गों तक पहुँचनेवाला सर्वोदय है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. महात्मा गाँधी : व्यक्ति और विचार, विश्व प्रकाश गुप्ता, मोहिनी गुप्ता, पृ. 160-61, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1987
2. वही, पृ. 176
3. माई रिलीजन, महात्मा गाँधी, पृ. 06, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1981
4. वही, पृ. 13
5. वही, पृ. 117
6. महात्मा गाँधी का समाज दर्शन, डॉ. महादेव प्रसाद, पृ. 281, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 283-284

गोदान की रचना-दृष्टि

चन्दीर पासवान

शोध-प्रज्ञ, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा (दरभंगा)

'गोदान' में प्रेमचंद की विकासमान रचना-दृष्टि का परिपक्वतम रूप देखने को मिलता है। 'गोदान' के प्रकाशन से लगभग सात वर्ष पूर्व, जब हिन्दी के कई लेखकों की औपन्यासिक कृतियाँ ('परख', 'गढ़-कुंडार', 'कंकाल' तथा 'शराबी' आदि) छपकर आई तो प्रेमचंद ने जैनेन्द्र को अपने एक पत्र में लिखा था- 'हिन्दी उपन्यास अब चेतेगा, इसमें संदेह नहीं।'[1] इस कथन में आश्वस्ति ही नहीं, असन्तोष की भी ध्वनि-चाहे वह कितनी ही महीन हो, शानदार है। असन्तोष, जिसके केन्द्र में प्रेमचंद स्वयं अपनी रचना-दृष्टि की सीमाएँ भी दर्ज होते देख रहे थे। हिन्दी में उपन्यास-विधा द्वारा यद्यपि अपना एक पुष्टतर व्यक्तित्व अर्जित कर लिया गया था (और कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सन्दर्भ में प्रेमचंद का तब तक का योगदान कितना महत्त्व का सिद्ध हो चुका था) किन्तु फिर भी, तब तक की (सन् 1929-30 से पहले तक की)

औपन्यासिक उपलब्धियों में चेतना के स्तर पर कहीं कोई कमी प्रेमचंद को भी खटकती रही थी। प्रेमचंद स्वयं भी अब अपनी रचना-यात्रा के एक ऐसे पड़ाव पर थे, जहाँ रचनागत संवेदना और जीवनगत यथार्थ के रिश्तों को लेकर आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरना उनके लिये जरूरी हो गया था। गहन आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया से गुजर रहे प्रेमचंद की जीवन-दृष्टि में जिन नये अनुभवों और यथार्थवादी तत्त्वों का समावेश हो रहा था, उन्हीं का अन्तिम और अन्यतम सृजनात्मक प्रतिफल 'गोदान' के रूप में सामने आया।

यों तो 'सेवासदन' से शुरू करके आगे बढ़ने वाले प्रेमचंद का हर अगला उपन्यास उनके द्वारा मानो अपनी ही रचना-दृष्टि की बार-बार पड़ताल करते चलने की कोशिश का ही अगला चरण बनकर रूप ग्रहण करता है, लेकिन यदि हम 'रंगभूमि' के बाद के उपन्यासों ('कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन' और 'कर्मभूमि') को खासतौर से देखें तो पायेंगे कि प्रेमचंद स्वयं अपनी रचना-दृष्टि के अन्तर्विरोधों के प्रति कितनी तेजी से अधिकाधिक जागरूक होते जा रहे हैं। सामाजिक विसंगतियों को उनके बुनियादी कारणों के परिप्रेक्ष्य में देख पाने के लिये उनकी बेचैनी बढ़ती जा रही है। 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के नाम पर जिन हृदय-परिवर्तनवादी और सुधारवादी आग्रहों के प्रति प्रेमचंद का मोह शुरू में देखा गया था, उनसे अब वे मुक्त हो रहे हैं और सचमुच एक महान् यथार्थवादी लेखक होने की ज्यादा बड़ी सम्भावनाओं की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

जार्ज लूकाच के मतानुसार 'एक महान् यथार्थवादी लेखक की खासियत यह होती है कि वह अपने उन प्रबल से प्रबल पूर्वग्रहों और पवित्र से पवित्र प्रतीत होने वाली मान्यताओं से बड़ी निर्ममतापूर्वक छुट्टी पा लेने की कोशिश करता है जो स्वयं उसकी ख्र तियों में चित्रित परिस्थितियों और चरित्रों के स्वाभाविक कलात्मक विकास में बाधक बनती है।' ('स्टडीज इन यूरोपियन लिटरेचर', पृ. 99)। जार्ज लूकाच के इस पर्यवेक्षण की कसौटी पर भारतीय उपन्यासकारों में जितने खरे प्रेमचंद उतरते हैं, उतना खरा दूसरा कोई उपन्यासकार नहीं उतरता। प्रेमचंद अपनी जीवन-दृष्टि की सहवर्तिता में अपनी रचना-दृष्टि को सामाजिक समझदारी और आत्म-विश्लेषण के वस्तुगत आधारों पर सतत् जाँचते-परखते और समंजित करते चलते हैं। इस क्रम में उनकी यथार्थवादिता आदर्शोन्मुखता के बजाय सामाजिक-आर्थिक शक्तियों के द्वन्द्वात्मक अन्त:सम्बन्धों को समझने की ओर अपनी उन्मुखता पर ज्यादा भरोसा करने लगती है। यह भरोसा 'गोदान' जैसे उपन्यास के आधार-भित्ति बनता है। इसी भरोसे के बूते प्रेमचंद एक ऐसी कोशिश कर पाते हैं, जिसके बारे में विजयदेव नारायण साही ने कहा कि 'गोदान' में प्रेमचंद की प्रकाश-अभ्यस्त आँखें हिम्मत करके अन्धकार को देखने की कोशिश कर रही हैं।

'गोदान' में अपनी विषय-वस्तु के प्रति प्रेमचंद का लेखकीय सलूक एक ओर अपने समाज के प्रति उनकी संवेदनशीलता का प्रमाण देता है और दूसरी ओर इतिहास के प्रति उनके खरे विश्लेषणात्मक रुख का। इन्हीं दो तत्वों के बल पर वे अपने समय की औपनिवेशिक और आर्थिक शोषण पर आधारित व्यवस्था के चक्र में फँसी ग्रामीण जिन्दगी का त्रासद यथार्थ पूरी विश्वसनीयता में उघाड़कर रख देते हैं-इस केन्द्रीभूत चिन्ता में-

'हमारा जन्म इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहायें और बड़ों का घर भरें।'[2]

'बड़ों का घर भरने' में खुद खाली होता हुआ किसान जिन बिचौलियों के पंजों से नुचता है, उनका जिक्र भी ख़ष्टव्य है : 'जमींदार तो एक ही है, मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग और मंगरू अलग और दातादीन पंडित अलग किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गये। सहुआइन ने फिर रुपये उधार लिये तो काम चला। सब तरह किफायत करके देख लिया भइया, कुछ नहीं होता।'[3]

'कुछ नहीं होता'-इस अहसास में किसान की जिस लाचारी को प्रेमचंद संघनित होते दिखाते हैं, वह 'गोदान' से पहले के उनके किसी भी उपन्यास में उनकी संवेदना का इतना तीखा साक्ष्य नहीं पा सकी थी। 'गोदान' के होरी को हमारे परिचय के दायरे में लाने वाला यह रचनाकार क्या वही प्रेमचंद है, जिसने 'प्रेमाश्रम' में जमींदार का हृदय-परिवर्तन होते देखा था और लखनपुर गाँव को आदर्श गाँव में रूपांतरित होते हए दिखाकर सन् 1921 के आस-पास, अपने एक किसान पात्र से यह कहलवाया था कि 'अब आपकी दया से गाँव में रामराज्य है।'[4]

दरअसल होरी की यह लाचारी कि 'कुछ नहीं होता' केवल होरी का ही जीवन सत्य नहीं है, बल्कि लेखक के रूप में प्रेमचंद की स्वयं की, बुनियादी तौर पर रूपांतरित होती हुई रचना-दृष्टि का ऐतिहासिक अनुभव से अर्जित सत्य भी है। इतना ही नहीं, 'कुछ नहीं होता' का दर्द कहीं करुणा का अमूर्त स्रोत बनकर उपन्यास के पाठक की चेतना को आंदोलित किये बिना न रह जाये, इस खतरे से भी प्रेमचंद बहुत सावधान रहते हैं। इसीलिये वे अपने होरी को केवल उसकी लाचारी के हवाले करके ही नहीं रह जाते, बल्कि चालाक व्यवस्था को पोषित करने वाले आदर्श कथनों की विडम्बना का साक्षात्कार भी उसे कराते हैं- 'लोग कहते हैं, सरदी-गरमी में, तीरथ-बरत में हाथ बाँधकर खरच करो। मुदा रास्ता कोई नहीं दिखाता। रायसाहब ने बेटे के ब्याह में बीस हजार लुटा दिये। उनसे कोई कुछ नहीं कहता। मंगरू ने अपने बाप के क्रिया-करम में पाँच हजार लगाये। उनसे कोई कुछ नहीं पूछता। वैसी ही मरजाद तो सबकी है।'[5]

उपर्युक्त व्याख्या के परिवृत्त में होरी की बेचैनी का जो स्वरूप उभरता है, उसके तीन स्तर सहज ही पहचान में आ जाते हैं-

1. 'कुछ नहीं होता' किसान की अपनी लाचारी के बोध का स्तर।
2. 'मुदा रास्ता कोई नहीं दिखाता' : सामाजिक और व्यवस्थागत परजीवी प्रवृत्ति के चलते किसान के जीवन पर थोपी गई दिशाहीनता के बोध का स्तर।
3. 'वैसी ही मरजाद तो सबकी है' : किसान को इंसान होने के नाते एक बराबर की सामाजिक गरिमा में अपनी उचित हिस्सेदारी से वंचित कर दिये जाने के बोध का स्तर।

'गोदान' के होरी के चरित्र में बेचौनी का यह तिहरा स्वरूप अन्तर्ग्रथित करके प्रेमचंद ने अपने समय के सामाजिक सत्य को जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव के अनेक छोरों से ग्रहण करके एक घनीभूत औपन्यासिक अनुभव में ढल जाने दिया। सामाजिक संरचना के मूल में कार्यरत ऐतिहासिक विकास के सूत्रों पर रचनाकार प्रेमचंद की पकड 'गोदान' में इतनी मजबूत साबित होती है कि 'गोदान' अपने समय के इतिहास को पृष्ठ-दर-पृष्ठ आईना दिखाता चलता है। ऐसा इसलिये भी संभव हो सका, क्योंकि प्रेमचंद ने अपने इतिहास-बोध से पुनरुत्थानवादी अवबोध को लगभग एकदम से ही खारिज कर दिया था।

प्रेमचंद की इतिहास-दृष्टि का मर्म उनके इस विचार के आलोक में भली-भाँति समझा जा सकता है–

'हमें तारीख से यह सबक लेना चाहिए कि हम क्या थे, यह भी देखना चाहिये कि हम क्या हो सकते थे।.....भूत हमारे भविष्य का रहबर नहीं बन सकता है।'[6]

प्रेमचंद की यह चिन्ता मैथिलीशरण गुप्त की उस भाव-विगलित चिन्ता से कितनी भिन्न है, जिसमें यह कहा गया- 'हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी।'[7] गुप्त जी की चिन्ता में वर्तमान और भविष्य, दोनों की भयावहता को समझने के लिए अतीत

के गौरव का स्मरण किये बिना एक पग भी काम ही नहीं चल सकता, जबकि प्रेमचंद स्पष्ट कह देते हैं कि 'भूत हमारे भविष्य का रहबर नहीं बन सकता।'

प्रेमचंद ने सन् 1930 से ही वर्ग-शक्तियों के संतुलन में घटित हो रहे बदलावों को लक्षित करना शुरू कर दिया था। अपेक्षाख्र त अधिक सही राजनीतिक दृष्टिकोण के तहत प्रेमचंद को यह बहुत साफ दिखने लगा था कि तत्कालीन भारत के ताल्लुकेदार और सामन्त राष्ट्र-हित के नाम पर अंग्रेजी हुकूमत के प्रति जिस आक्रोश की मुद्रा अपना रहे थे, उसकी असली प्रकृति साम्राज्यवाद-विरोधी होने से कहीं ज्यादा जन-विरोधी थी, क्योंकि उसका हर कदम बड़े पूँजीपतियों से साँठ-गाँठ करके दर-असल अंग्रेजों से सत्ता खुद हथिया लेने की तैयारी मात्र था। 'गोदान' में मिस्टर तन्खा और रायसाहब सरीखे पात्रों को हम इसी असलियत के अगल-बगल उपस्थित पाते हैं। मिस्टर तन्खा को देखिये- 'ताल्लुकेदारों से कर्ज दिलाना, नई कम्पनियाँ खोलना, चुनाव के अवसर पर उम्मीदवार खड़े करना, यही उनका व्यवसाय था। खास कर चुनाव के समय उनकी तकदीर चमकती थी। किसी पौढ़ उम्मीदवार को खड़ा करते, दिलोजान से उसका काम करते और दस-बीस हजार बना लेते। जब कांग्रेस का जोर था तो कांग्रेस के उम्मेदवारों के सहायक थे। जब साम्प्रदायिक दल का जोर हुआ तो हिन्दू सभा की ओर से काम करने लगे।..... शहर के सभी रईस, सभी हुक्काम, सभी अमीरों से उनका याराना था। दिल में लोग चाहे उनकी नीति पसंद न करें, पर वह स्वभाव से इतने नम्र थे कि कोई मुँह पर कुछ न कह सकता था।'

इसी प्रकार रायसाहब का हाल यह है कि 'कौंसिल की मेंबरी छोड़कर जेल चले गये। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डाँड या बेगार की कड़ाई कुछ कम होय मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे।'[7]

होरी जैसे किसान की बेचैनी में लाचारी का स्तर जिस बिन्दु पर हम पहचान चके हैं, उसके पार्श्व में रायसाहब जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति की बेचारगी के इस बिन्दु को रखकर, यदि इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने की कोशिश की जाए तो वर्ग- शक्तियों की द्वन्द्वात्मकता का पूरा ग्राफ खिंच जाता है। रायसाहब की यह स्वीकारोक्ति इस ग्राफ की रेखाओं को और भी प्रगाढ़ कर देती है- '.....मैं खुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूँ कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाय। इसे आप कायरता कहेंगे, मैं इसे विवशता कहता हूँ।'

व्यवस्थाजन्य विवशता के पक्ष पर एक तरफ होरी और दूसरी तरफ रायसाहब जैसे चरित्रों को रेखांकित करके प्रेमचंद मानो अपने पाठकों को यह बता देना चाहते हैं कि अब किसी भी सद्भावनापरक अथवा तथाकथित सुधारवादी आस्था में अपने औपन्यासिक चरित्रों के निस्तार की गुंजाइश देखना उन्हें एकदम बेमानी लगने लगा है। स्वातन्त्रयोत्तर भारत के जिस यथार्थ को मुक्तिबोध सदृश प्रखर वर्गचेतस कवि की रचना 'अंधेरे में' के काव्य-नायक ने यह कहकर लक्ष्य किया कि 'पूँजी से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता', उसे प्रेमचंद ने अपने समय की स्थितियों में बहुत पहले ही 'गोदान' में चित्रित वास्तविकता के रूप में लक्ष्य कर लिया था। 'गोदान' के रायसाहब की इस आत्मस्वीख्रति में उसी की झलक है- 'मैं खुद सद्भावना करके भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता।'[8]

'गोदान' की औपन्यासिक संरचना पर बेशक एक प्रकार के विषाद की छाया है, लेकिन उसमें निराशा का रंग चाहे कितना ही गहरा क्यों न हो, अपने संवेदनात्मक प्रभाव में उसके नितान्त आशा-हीन होने की शिकायत नहीं की जा सकती। निराशा की गहरी खरोंचें किसानी की 'मरजाद' के लिए निरन्तर संघर्षरत होरी को उसकी जिन्दगी का जो आत्म-विच्छिन्न लहू-लुहान चेहरा सौंपती हैं, प्रेमचंद 'गोदान' के अन्तिम पृष्ठों पर उसका चित्र इन शब्दों में अंकित करते हैं- 'आज तीस साल तक लड़ते रहने के बाद वह ऐसा परास्त हुआ है, मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है।'[9]

लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रेमचंद अपने इस उपन्यास में हताशा के निष्क्रिय दर्शन का प्रतिपादन मात्र करके रह गये हैं। यद्यपि यह सही है, जैसा कि निर्मल वर्मा ने एक प्रसंग में कहा है कि 'गोदान' में भारतीय किसान का वह अन्धकारमय-मार्क्स के शब्दों में कहें, तो 'मैलनकोलिक भविष्य' चित्रित हुआ है, जहाँ भूमि से उन्मूलित होकर भारतीय किसान का वर्ग-संस्कार-उसका 'किसानत्व' ही संकट में पड़ गया है। वह भी सही है कि 'प्रेमचंद ने अपने अन्तिम उपन्यास और कहानियों में किसान की 'मैलनकोली-औपनिवेशिक विषाद को व्यक्त किया था' किन्तु निर्मल वर्मा का यह कहना कि 'आज की स्थिति में इस विषाद के लिए भी काई गुंजाइश नहीं बची रही है' संगत नहीं प्रतीत होता है। यह 'विषाद' होरी की हारों का आख्यान मात्र मान लिया तब

तो निश्चय ही वह, निराशा ही नहीं, आशा-हीनता में भी पर्यवसित होकर चुक गया प्रतीत होगा, जबकि 'गोदान' में प्रेमचंद की रचना-दृष्टि इस भीतरी माँग से संयोजित है कि होरी की पराजय को उसकी अंतिमता और आशा हीनता में ग्रहण न किया जाए। प्रेमचंद होरी का अन्तिम दर्शन कराते हुए कहते हैं- 'होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानों उसके चरणों पर लोट रही थीं।..... यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकाएँ हैं।'(10)

वस्तुत: 'गोदान' के नायक की असफलताएँ मात्र एक किसान की निराशा का नहीं, बल्कि अपने व्यापक रूप में सुधारवादी तरीकों से व्यवस्था के सर्वग्रासी चरित्र को बदलने में विश्वास रखने वाले मानवतावादियों की निराशा का भी कारण बनती है। निराशा एक ठोस अनुभव के रूप में होरी के सामने इस तरह उपस्थित होती है-

"कानून कहता है कि हम-तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहाँ? आदमी वह है, जिसके पास धन है, अख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिये पैदा हुए हैं।"(11)

यह निराशा अपनी प्राभाविकता में नितांत निष्क्रियता पैदा करने वाली संवेदना बन कर न रह जाये, इस आशंका को ध्यान में रखकर प्रेमचंद अपनी सधी हुई कलात्मक सादगी के सहारे होरी के जीवन पर छाये अँधेरे को इस सांकेतिक कौंध से क्षण भर के लिये उजागर कर देते हैं- 'कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है-इन्हीं हारों में उसकी विजय है– उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकाएँ हैं।'(12)

होरी का अन्त अपने सांकेतिक रूप में उस जड़ीभूत समाज और सर्वग्रासी व्यवस्था के अन्त की अनिवार्यता की घोषणा करता है, जिसमें मध्ययुगीन सामाजिक अन्तर्विरोधों के अवशेषों के तौर पर धार्मिक विश्वासों की जकड़बन्दी तथा जाति-प्रथागत भेदभाव से पैदा हुई संकीर्णता भी विद्यमान है तथा साथ ही आधुनिक युगीन विकास की देन के रूप में पैदा होने वाले सामाजिक अन्तर्विरोधों के तौर पर गाँव और शहर का सांस्कृतिक आर्थिक द्वन्द्व एवं किसानों, और सूदखोर महाजनों व व्यापारियों के निजी हितों की टकराहट भी विद्यमान है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. गोदान-प्रेमचंद, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015 ई., पृ. 296
2. वही, पृ. 13
3. वही, पृ. 17
4. वही, पृ. 106
5. वही, पृ. 203
6. वही, पृ. 187
7. वही, पृ. 106
8. वही, पृ. 193
9. वही, पृ. 169
10. वही, पृ. 267
11. वही, पृ. 263

भारत की राजनीति में अंतर्निहित भ्रष्टाचार के विविध आयाम

डॉ० नीतू गौरव

शिक्षिका, एस.एम. उच्च विद्यालय, बसैठ, मधुबनी, बिहार

भारत की राजनीति संयुक्त संसदीय प्रतिनिधि लोकतांत्रिक राज्य के ढाँचे में ढली है, जहाँ पर प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख होता है और बहु-दलीय तंत्र होता है। शासन एवं सत्ता सरकार के हाथ में होती है। न्याय-मंडल शासकीय एवं वैधानिक, दोनों से स्वतंत्र होता है। संविधान के अनुसार भारत एक प्रधान, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक राज्य है, जहाँ पर सरकार जनता के द्वारा चुनी जाती है। अमेरिका की तरह भारत में भी संयुक्त सरकार होती है, लेकिन भारत में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों की तुलना में अधिक शक्तिशाली है, जो कि ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली पर आधारित है। बहुमत की स्थिति में न होने पर सरकार न बना पाने की दशा में अथवा विशेष संवैधानिक परिस्थिति के अंतर्गत, केन्द्र सरकार राज्य सरकार को निष्कासित कर सकती है और सीधे संयुक्त शासन लागू कर सकती है, जिसे राष्ट्रपति शासन कहा जाता है।

भारत में राजनीति भ्रष्टाचार के स्वरूप को निम्नलिखित बिन्दुओं में देखा जा सकता है –

1. राजनीति का अपराधीकरण

हमारे राष्ट्र ने सैकड़ों वर्षों पश्चात् 1947 में अंग्रेजी दासत्व से आजादी पाई थी। आजादी के समय देश के समस्त नेताओं ने गाँधीजी के 'रामराज्य' के स्वप्न को साकार करने का संकल्प लिया था, परंतु वर्तमान में भारतीय राजनीति का अपराधीकरण जिस तेजी से बढ़ रहा है, इसे देखते हुए कोई भी कह सकता है कि हम अपने लक्ष्य से पूर्णतया भटक चुके हैं। देश के समस्त नागरिकों को चाहिए कि वह आत्म-आकलन करे और प्रयास करे कि जो नैतिक मूल्य हम खो चुके हैं, उन्हें हम सभी पुनः प्राप्त करें। देश में सर्वत्र कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद व सांप्रदायिकता का जहर फैल रहा है। एक सामान्य कर्मचारी से लेकर शीर्षस्थ नेताओं तक पर भ्रष्टाचार-संबंधी आरोप समय-समय पर लगते रहे हैं। देश की राजनीति में अपराधीकरण दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। कुरसी अथवा पद की लालसा में मनुष्य सभी नैतिक मूल्यों का अपहास उड़ा रहा है। 'येन-केन-प्रकारेण' वह इसे हासिल करने का प्रयास करता है। भारत की राजनीति में अपराधी तत्त्वों का प्रवेश एक ही दिन में नहीं हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात जिस तरह से कुरसी के लिए जीतोड़ संघर्ष आरंभ हुआ, सभी दल अपना-अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए साधनों की पवित्रता के गाँधीवादी दृष्टिकोण को नकारने लगे, उसने राजनीति एवं अपराध के गठजोड़ को बनाने में अग्रणी भूमिका निभाई। जातिवाद को मिटाने के नाम पर भी इस प्रक्रिया को बढ़ावा मिला।[1]

चुनाव-प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता है, बढ़ते हुए अपराधीकरण के कारणों को खोजने एवं उसका निदान ढूँढ़ने की। सर्वप्रथम हम पाते हैं कि हमारे देश की चुनाव-प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता है। हमारी भारतीय राजनीति में धन व शक्ति का बोलबाला है। एक आकलन के अनुसार सामान्यतः 90 प्रतिशत से भी अधिक हमारे नेतागण या तो अत्यधिक धनाढ्य परिवारों से होते हैं अथवा उनका संबंध अपराधी तत्त्वों से होता है। गुणवत्ता कभी भी हमारी चुनाव-प्रक्रिया का आधार नहीं रहा है। यही कारण है कि योग्य व्यक्ति आगे नहीं आ पाते हैं और यदि आते भी हैं तो धन-शक्ति के अभाव में उन्हें पीछे खींच लेता है।[2] इन परिस्थितियों में वे स्वयं को राजनीति से पूर्णतया अलग कर लेते हैं। परिणामतः राजनीति में वे लोग आ जाते हैं, जिनमें स्वार्थपरता की भावना देश के प्रति प्रेम की भावना से कहीं अधिक होती है। ऐसे लोग ही हमारी जड़ों को दीमक की भाँति खोखला करते

हैं। एक सामान्य-सी बात है कि किसी कार्यालय अथवा विभाग का शीर्षस्थ अधिकारी ही अयोग्य, भ्रष्ट अथवा अपराधी प्रवृत्ति का होगा, तब इन परिस्थितियों में प्रशासन को स्वच्छ रखना अत्यधिक दुष्कर कार्य हो जाता है। हमारी राजनीति की विडंबना भी कुछ इसी प्रकार की है। नेता अपराधी प्रवृत्ति के हैं। तब देश की राजनीति का अपराधीकरण स्वाभाविक है। यही भ्रष्ट नेता अपने प्रशासन में भ्रष्टाचार व भाई-भतीजावाद को जन्म देते हैं। देश के अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को यह सीधे प्रभावित करते हैं तथा पदों पर भर्तियाँ योग्यताओं के आधार पर नहीं, अपितु इनकी सिफारिशों व निर्देशों के अनुसार होती हैं। हमारी कानून-व्यवस्था में भी त्वरित सुधार की आवश्यकता है। इस व्यवस्था में अनेक कमजोर कड़ियाँ हैं, अनेकों भ्रष्ट नेताओं पर आरोप लगते रहे हैं, परंतु आज तक शायद ही किसी बड़े नेता को सजा दिलाना संभव हुआ हो। वे अपने पद, धन अथवा शक्ति के प्रभाव से स्वयं को आजाद करा लेते हैं तथा स्वयं को स्वच्छ साबित करने में सफल हो जाते हैं। हमारा कानून ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसके सभी नीति-नियम धनाभाव से ग्रसित लोगों के लिए ही बने हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी कानून-व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन लाएँ, ताकि सभी को उचित न्याय मिल सके।

2. जाति, क्षेत्रीय एवं भाई-भतीजावाद

देश के लिए यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि आजादी के पाँच दशकों बाद भी हमारी राजनीति का आधार जातिवाद, क्षेत्रीयवाद तथा भाई-भतीजावाद है। आज भी अधिकांश नेता इसी आधार पर चुनाव जीतकर राजनीति में आते हैं। ये लोग जनमानस की इसी कमजोरी का पूरा लाभ उठाते हैं। कुर्सी पाने की जिजीविषा में यह किसी भी स्तर पर गिर जाते हैं तथा लोगों को जाति, क्षेत्र, भाषा व धर्म के नाम पर आपस में लड़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। देश का इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा कि जिन कारणों से हम सैकड़ों वर्षों तक विदेशी ताकतों के अधीन रहें, लाखों लोगों ने कुर्बानियाँ दीं, इसके बावजूद हम अपने अतीत से नहीं सीख सके और यही दशा यदि अनवरत बनी रही तो वह दिन दूर नहीं, जब संकट के काले बादल पुनः हमारे भाग्य को अपनी चपेट में ले लें। जब तक राजनीति से भाई-भतीजावाद, गुरु-चेलावाद, जातिवाद, वर्गवाद, संप्रदायवाद, लिंगवाद, भाषावाद और क्षेत्रवाद नहीं मिटेगा, तब तक राजनीति में निहित भ्रष्टाचार का निवारण करना भी संभव नहीं हो सकेगा।[3]

3. राजनीति का व्यापारीकरण

राजनीति आजकल एक प्रकार का व्यापार बन गया है। नेताजी द्वारा पहले वोट खरीदने में निवेश किया जाता है, फिर चुनाव जीतने पर सट्टा-खरा उतरता है। चुनाव के बाद घूस के माध्यम से निवेश की गई रकम का वसूल किया जाता है। मतदाता भी व्यापार करता है। वह सड़क एवं साड़ी के बदले में वोट देते हैं। वर्तमान में यह व्यापार नेताओं के पक्ष में झुका है। नेताजी को लाभ अधिक और मतदाता को कम मिल रहा है। यदि गंभीर प्रत्याशियों की संख्या अधिक होगी तो मतदाता उसे चुनेगा, जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।[4] जैसे कई दुकानें हों तो उपभोक्ता उस दुकान से माल खरीदता है जो अच्छा और सस्ता माल दे। अतः नेताओं पर अंकुश लगाने के लिए नये, गंभीर प्रत्याशियों को वित्तीय मदद देना चाहिए। नये गंभीर प्रत्याशियों को समर्थन देने की जरूरत है, जिससे स्थापित नेताओं की मोनोपोली को चुनौती दी जा सके। इस वित्तीय मदद को देने के कई तरीके हो सकते हैं। नेताओं पर अंकुश लगाने के लिए नये गंभीर प्रत्याशियों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

4. लोकतंत्र बनाम पार्टीतंत्र

राजनीति भ्रष्टाचार में वृद्धि का दूसरा कारण है कि हमने लोकतंत्र को पार्टीतंत्र में बदल दिया है। किसी विषय पर अपना मंतव्य बनाने के पूर्व विधायकों और सांसदों द्वारा पार्टी के आकाओं से हरी झंडी लेना आवश्यक हो गया है। जनप्रतिनिधि स्वयं अपनी बुद्धि से कार्य नहीं कर सकता है। वास्तव में मतदाता द्वारा जनप्रतिनिधि को नहीं, पार्टी को चुना जाता है। मतदाता को दो या तीन पार्टी के बीच चयन करना होता है। जनता को मात्र यह अधिकार रह गया है कि पार्टियों द्वारा प्रस्तुत मीनू में से किसी एक आइटम का चयन करें। जनता अपना मीनू नहीं बना सकती है। जैसा आज जनता देख रही है कि सरकारी के प्राइमरी टीचर 30,000 रुपये वेतन पा रहे हैं और बच्चे फेल हो रहे हैं। जनता चाहती है कि यह रकम बच्चे की सीधे दे दी जाय, जिससे वे अपनी पसंद के स्कूल में पढ़ाई कर सके, परंतु जनता के सामने यह विकल्प नहीं है, चूँकि सभी पार्टियाँ सरकारी कर्मियों को खुश रखकर चुनाव जीतना चाहती हैं।

5. सत्तारूढ़ नेताओं पर अंकुश

भ्रष्टाचार-नियंत्रण का तीसरा पहलू सत्तारूढ़ नेताओं पर अंकुश लगाने का है। संविधान में राष्ट्रपति कंट्रोलर एंड आडिटर जनरल, सेंट्रल विजिलेंस कमिश्नर जैसे कई पदों की स्थापना की गई है जो कि स्वतंत्र हैं, परंतु इन पदों पर आसीन लोगों के द्वारा सरकार की ही भाषा बोली जाती है। कारण कि इन व्यक्तियों की नियुक्ति सिपाही चोर नहीं रोक सकते हैं। इन पदों पर नियुक्ति की दूसरी प्रक्रिया अपनानी चाहिए। ऐसी प्रक्रिया बनानी होगी जो कि कानून के दायरे में हो, परंतु सरकार के दायरे के बाहर हो। जैसे चीफ जस्टिस ऑफ इंडिया की नियुक्ति सभी रायों के बाद कांउसिल के अध्यक्षों के कालेजियम द्वारा की जा सकती है। इस प्रक्रिया से नियुक्त चीफ जस्टिस पर सरकारी आकाओं का दबाव कम रहेगा अथवा कंट्रोलर एंड एडीटर जनरल की नियुक्त चार्टर्ड अकाउंटेंट्स इन्सीट्यूट एवं चेंबर ऑफ कामर्स के अध्यक्षों के कालेजियम के द्वारा की जा सकती है।[5] राष्ट्रपति को सीधे जनता द्वारा अमेरीकी पद्वति के अनुसार चुना जा सकता है। इन प्रक्रिया से स्वतंत्र व्यक्तियों के पदासीन होने की संभावना अधिक होगी और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण में कुछ सफलता मिल सकती है।

6. चुनाव-कानून में संशोधन जरूरी

राजनीति और भ्रष्टाचार के इस रिश्ते को खत्म करने के लिए चुनाव- संबंधी कानूनों में संशोधन जरूरी है, ताकि आपराधिक मामलों वाले चुनाव ही नहीं लड़ सकें। इन रिश्तों के उजागर होने के साथ ही एक बार फिर चुनावी खर्च की सरकारी फंडिंग का मुद्दा उठने लगा है। इस समय चुनाव आयोग ने चुनाव खर्च की सीमा अवश्य तय कर दी है, लेकिन यह बात तो एक बालक भी जानता है कि इस रकम में तो नगरपालिका का चुनाव भी नहीं जीता जा सकता। जिस देश के प्रधानमंत्री से लेकर उसके कई मंत्रियों पर रिलायंस और अडानी से लेकर विभिन्न औद्योगिक घरानों को फायदा पहुँचाने के आरोप लगते रहे हों, वहाँ नीरा राडिया जैसे सेकड़ों मामले अभी परदे के पीछे छिपे हो सकते हैं। इस मामले में अंकुश लगाने के लिए चुनाव आयोग और संभवत: सुप्रीम कोर्ट को भी पहल करनी पड़ सकती है। हमारे राजनेता तो कम-से-कम इस मामले में पहल करने से रहे। कुल मिलाकर राजनीति में भ्रष्टाचार बहुआयामी हैं, जिनसे मुक्ति पाए बिना लोकतंत्र की सार्थकता सही मायने में सिद्ध नहीं हो सकती है।

संदर्भ-सूची

1. लोक प्रशासन : सिद्धांत एवं व्यवहार- एम.पी. शर्मा, बी.एल. सडामा, किताब महल, इलाहाबाद, 2012, पृ. 282
2. राजनीतिक विचारक- डॉ. पुखराज जैन, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 1990
3. वही, पृ. 203
4. दैनिक भास्कर, 1 जुलाई, 2008
5. इंडिया टुडे, मार्च, 2012

अज्ञेय के कथा-साहित्य में प्रेम की अभिव्यंजना

डॉ० अनिल कुमार

भवदेपुर (अंबेडकर नगर), पो.-भवदेपुर गोट, वार्ड नं.-12, थाना-रीगा, जिला-सीतामढ़ी

प्रेम, स्त्री और सौंदर्य तीनों ही मानव-मन से बहुत गहरे तक जुड़े हैं और मानव-मन की अभिव्यक्ति होने के कारण साहित्य में भी, ये हमेशा से विद्यमान रहे हैं। फिर चाहे वह भक्तिकालीन काव्य हो, जहाँ स्त्री को त्याज्य मानकर अलौकिक प्रेम की वकालत की गई या फिर रीतिकालीन काव्य जहाँ स्त्री प्रेम और सौंदर्य तो है, किंतु रहस्य के आवरण में लिपटे हुए, सारा क्रिया व्यापार प्रच्छन्न है, प्रत्यक्ष कुछ भी नहीं। सच्चाई तो यह है कि मानव मन कभी भी प्रेम और सौंदर्य से अछूता नहीं रहा। उसकी अनुभूतियों का महत्त्वपूर्ण आधार स्त्री है, इसीलिए वह साहित्य का मुख्य आधार रही है। रचनाशील मन कभी उसके बाह्य सौंदर्य का अंकन करता है, तो कभी-कभी उसके मन का, उसकी बौद्धिकता का।

जहाँ तक अज्ञेय का सवाल है, तो उन्हें सौंदर्य का उपासक कहना अनुचित न होगा। उनका सौंदर्यबोध उन्हें औरों से अलगाता है। फिर चाहे वह उनके व्यक्तित्व की नफासत हो या फिर उनकी रचनाशीलता। अज्ञेय की कविताओं में तो उनका सौंदर्यबोध झलकता ही है, उनका कथा-साहित्य भी इससे अछूता नहीं है, बल्कि वहाँ सौंदर्यबोध की गहन परिभाषाएँ उभरती हैं, कथाकार अज्ञेय पर टेनीसन और हेमिंग्वे का भी प्रभाव रहा है।

सुरुचि और वैज्ञानिकता के समन्वय के कारण अज्ञेय के जीवन और साहित्य में सौंदर्यबोध अपनी संपूर्ण विशेषता के साथ उभरता है। अपने रूमानी रुझान के कारण उनका मन सबसे ज्यादा स्त्री और प्रेम संबंधों में रमा है। अज्ञेय की प्रारंभिक कहानियों में क्रांति का स्वर मुखर है, मगर वहाँ भी प्रेम की अनुगूँज मिलती है। 'द्रोही' में प्रेम और द्रोह का द्वंद्व उभरा है, प्रसाद के 'पुरस्कार' की तरह। यहाँ प्रेम अपनी, पूर्णता को प्राप्त नहीं है। 'पगोड़ा वृक्ष' कहानी में एक क्रांतिकारी से विधवा का प्रेम है और वह इसे मन से स्वीकारती भी है। उसके मन में विधवा जनित कोई कुंठा नहीं है। इसी क्रम में अमरवल्लरी, मनसी, सिगनेलर और हरसिंगार जैसी कहानियाँ भी रखी जा सकती हैं।

सिगनेलर में बलराज का प्रेम आत्मदान और उपासना का समर्थक है। वह अपने प्रेम का सिगनल अपना संदेश आकाश में मोर्स-पद्धति से लगातार भेजता रहता है। उसे इस बात की कतई कोई परवाह नहीं होती कि संध्या तक उसका यह सिगनल पहुँचता भी है, या नहीं। 'हरसिंगार' का गोविंद एक रोगिणी द्वारा दी गई हरसिंगार की माला से जीवन भर बंधा रहता है। वही उसका प्रेम-प्रतीक है, उसमें उसे प्रिया की सुंदरता, कोमलता और आकर्षण नजर आता है। अज्ञेय की इन कहानियों में प्रेम जितना व्यक्त होता है, उससे कहीं अधिक अव्यक्त भी रहता है। यहाँ प्रेम अशरीरी और आत्मिक है। अमरवल्लरी की नायिका कहती है- "मैं जो कुछ भी सोचती हूँ, अनुभव करती हूँ, उसका अणुमात्र भी व्यक्त नहीं कर सकी– पर इससे क्या? जो कुछ भी हृदय में था.....– उसमें मेरा जीवन तो आलोकित हो गया है। प्रेम में दु:ख-सुख, शांति और व्यथा, मिलन और विछोह सभी है। बिना वैचित्रय के प्रेम जी नहीं सकता. .....नहीं तो, जिसे हम प्रेम कहते हैं, उसमें सार क्या है?"[1]

'मनसी' में भी ऐसा ही अव्यक्त और अशरीरी प्रेम है, महेश मनसी के प्रति आकर्षित होता है, किंतु उससे कभी कह नहीं पाता। वह मानता है कि न कहे जाने पर उसका प्रेम अधिक समर्थ हुआ है। अज्ञेय की इन कहानियों में प्रेम भावुकता और रोमानी आदर्श

से प्रेरित है। इस संदर्भ में अज्ञेय मानते हैं कि वह दौर ही ऐसा था, जब लोग रोमानी आदर्श को लेकर चलते थे और उसे बुरा नहीं माना जाता था। उस दौर की यशपाल की कहानियाँ भी ऐसी ही हैं, किंतु यशपाल वहाँ बहुत देर ठहरते नहीं हैं, वे शीघ्र ही उस पायदान से आगे बढ़ जाते हैं, जबकि अज्ञेय वहीं ठहर जाते हैं।

अज्ञेय की कहानियों में प्रेम के कुछ अछूते चित्र भी मिलते हैं, किंतु भावुकता के कारण इन कहानियों का विरोध ही अधिक हुआ। फिर भी हिंदी में प्रेम कहानियों की जो परंपरा आज नजर आती है, उसमें अज्ञेय की इन कहानियों का योगदान कम नहीं है। 'शेखर : एक जीवनी' में भी शेखर और शशि का प्रेम नैतिकता के धरातल पर सच्चा और पवित्र कहलाने योग्य है। शेखर शशि का संरक्षक है। वह उसके इलाज के लिए लिखना तक भूल जाता है। आर्थिक समस्या होने पर भी वह शशि की चेन बेचने को राजी नहीं होता है। वह उसकी बीमारी से इतना व्यथित है कि कहता है- "शशि मुझसे सूझता नहीं, क्या लिखू। पहले आसपास का दबाव लिखने नहीं देता था, पर उसी में लिखने की प्रेरणा भी मिलती थी। अब आसपास शांति है, पर.....लिखूँ क्या तुम्हीं बताओ।"(2)

शेखर और शशि के प्रेम और रूमानियत से होकर अज्ञेय की प्रेम-विषयक अवधारणा नदी के द्वीप में दैहिकता की ओर अग्रसर होती है। यहाँ भुवन और रेखा का प्रेम दैहिकता के घेरे में है, किंतु यहाँ भी आत्मिक प्रेम बार-बार उभरता है। नि:स्वार्थ, अपने आपको दे देना ही रेखा का सच्चा प्रेम है। वह भुवन की राह में अवरोध नहीं बनना चाहती- "बाधा नहीं बनूंगी भुवन, जिस दिन सामान आवेगा उसी दिन चली जाऊंगी।" "मैं तुम्हारे जीवन में आऊँगी और चली जाऊँगी, मैं जानती हूँ अपनी मर्यादाएँ। पर तुम्हें जो प्रिय है, उन्हें प्यार कर सकूँगी, सहज भाव से बिना आयास के।"(3)

''मैं कुछ माँगूगी नहीं। तुम्हारे जीवन की बाधा नहीं बनूँगी, उलझन भी नहीं बनूंगी।"(4)

रेखा का यह प्रेम उच्चतम स्तर पर पहुँच चुका है, तभी तो वह नि:शब्द भुवन के मार्ग से हट जाती है, वह गौरा के प्रति भी सदय है। उसके मन में कहीं कोई ईर्ष्या नहीं है, जो कि इन स्थितियों में अनिवार्य हो उठती है। अज्ञेय ने रेखा और भुवन के इस प्रेम को बड़ी बारीकी से उकेरा है। भुवन और रेखा के विषय में वे लिखते हैं- "पहले दिलमिलन के क्षण से कभी भी दोनों में किसी को यह नहीं लगा था कि उनका संपर्क कहीं टूट गया है और उसे फिर से स्थापित करना होगा, बराबर ही वे संपृक्त थे। पर फिर भी यद्यपि उनकी बातों में घनिष्ठ सौहार्द था, प्रणय था-मानों बात करने में दोनों यह अनुभव करते जा रहे थे कि वे बात नहीं कर रहे केवल पैंतरे कर रहे हैं।"(5)

'नदी के द्वीप' में रेखा के समानांतर गौरा है जो भुवन के लिए कुछ भी करने को तत्पर है अंतत: भुवन भी गौरा को स्वीकार लेता है।

'अपने-अपने अजनबी' में प्रेम नहीं, प्रेम का आभास या कहें उसकी झलक ही मिलती है। इस तरह अज्ञेय प्रेम में रोमानी आदर्श से लेकर देह तक गुजरते हैं, मगर फिर भी उनका प्रेम-वर्णन उन्हें औरों से अलगाता है। उन्हें एक निश्चित ऊँचाई पर ले जाता है। प्रेम के विषय में अज्ञेय के विचार भी प्रेम को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रेम को परिभाषित करते हुए नदी के द्वीप में वे लिखते है- "मैत्री के साथ प्रेम– इनका विकास धीरे-धीरे होता हुआ, यह समगति से बढ़ने वाला विकास नहीं होता, सीढ़ियों की तरह बढ़ने वाली उसकी गति होती है। क्रमश: नए-नए उच्चतर स्थिति में पहुँचने वाली। कली का प्रस्फुटन उसकी ठीक उपमा नहीं है– ठीक उपमा शायद साँझ का आकाश-एक क्षण सूना कि सहसा हम देखते हैं, अरे वह तारा। और जब तक हम चौंककर सोचें कि हमने क्षण-भर पहले क्यों न देखा, क्या तब नहीं था, तब तक इधर-उधर आगे ऊपर कितने ही तारे खिल आए, तारे ही नहीं राशि-राशि नक्षत्र मंडल, धूमिल उल्काकूल मुक्त प्रवाहिनी मेघ, नाम पयस्थिनी– अरे आकाश सूना कहाँ है। यह तो भरा हुआ है रहस्यों से, जो हमारे आगे उद्घाटित है, प्यार भी ऐसा ही है।"(6)

प्रेम में सारे विभेद मिट जाते हैं। प्रेमी मन हमेशा साथ-साथ होते हैं, वे कभी प्रिय को भूलते नहीं और मानसिक स्तर पर एकाकार होना ही प्रेम की उच्चतम भूमि है। 'शेखर : एक जीवनी' में इसे कुछ यूँ परिभाषित किया गया है- "स्नेह एक हिचकना और परिव्यापक भाव है कि उसमें व्यक्तित्व नहीं रहते। स्नेही कभी अपने स्नेह पात्र को याद नहीं करता, क्योंकि वह कभी उसे भूलता नहीं, वह उससे इतना अभ्यस्त हो जाता है, कि उसे कभी ध्यान नहीं कि इसे भी देखूँ। इसे देखने के लिए एक अलग, एक विशिष्ट प्रयत्न करूं।"(7)

प्रेम और वासना को अलगाना बहुत मुश्किल होता है। ऊपरी सतह पर दोनों एक ही होते हैं, बस एक झीना-सा समरंगी आवरण-सा होता है, जिसे सिर्फ महसूसा जा सकता है। अज्ञेय प्रेम और वासना को यूँ अलगाते हैं-कहते हैं "वासना नश्वर है, प्रेम अमर। दोनों में मौलिक विपर्यय है या नहीं, नहीं मालूम, किंतु यदि भेद है, तो यह बात कितनी झूठी है। प्रेम का एक ही जीवन है, वह एक बार होता है और जब मरता है तो मर जाता है। उसे दूसरा जीवन नहीं मिलता। अमर तो वासना है– । गिरते न गिरते रक्तबीज की तरह नया जीवन पाकर फिर उठ खड़ी होती है।"(8)

अज्ञेय यह भी मानते हैं कि प्रेम सोच विचार कर योजनाबद्ध तरीके से नहीं होता है, बल्कि प्रेम में तो सोचने-विचारने का कोई अवसर ही नहीं मिलता। वे कहते हैं- "जो प्यार करता है, जो प्यार पाता है, वह क्या कुछ सोचता है, सोच सब बाद में होता है। जब सोचने को कुछ नहीं होता।"(9) ('हीली-बोन' की बत्तखों), 'सिगनेलर' के बलराज, 'हरसिंगार' के गोविंद, 'शेखर : एक जीवनी' के शेखर से होते हुए अज्ञेय की प्रेम विषयक धारणा 'नदी के द्वीप' में एकदम बदल जाती है। उनका रोमानी आदर्श दरकता है और भुवन और रेखा के प्रसंग में वह दैहिक हो उठता है, किंतु यहाँ भी यह सिर्फ देहजनित वासना नहीं है। वह आत्मिक लगाव है, जिसके तहत भुवन और रेखा को कभी लगा ही नहीं कि वे कभी एक-दूसरे से अलग भी थे। ऐसा अज्ञेय ने एहसास कराया है, किंतु यह अज्ञेय की वैयक्तिक अवधारणा की पुष्टि है कि भुवन और रेखा के बीच गौरा आती है। यूँ भी अज्ञेय प्रेम बांधता नहीं, मुक्त करता है, के समर्थक रहे हैं।

अज्ञेय की स्त्री विषयक अवधारणा भी औरों से एकदम अलग और स्पष्ट है। संसार में जो कुछ भी सुंदर और अच्छा है, वे यह मानते हैं कि स्त्री उसमें सबसे सुंदर है- "स्त्री के बिना कुछ भी अच्छा नहीं है, कुछ भी सुंदर नहीं है, स्त्री जो केवल स्त्री नहीं है, संसार की कुल सुंदर और मधुर वस्तुओं की प्रतिनिधि है।"(10)

अज्ञेय के कथा-साहित्य में दो तरह की स्त्रियाँ आती हैं, एक तो वे जो आर्थिक रूप से संपन्न हैं, जिनकी जिंदगी की जद्दोजहद रोटी नहीं उनका 'स्व' है। उनकी सारी कोशिश, सारा संघर्ष इसी 'स्व' के लिए है। जैसे 'नदी के द्वीप' की रेखा। रेखा का व्यक्तित्व एक स्वावलंबी और स्वाभिमानी स्त्री का व्यक्तित्व है। यह अपना भार किसी पर लादना नहीं चाहती, फिर चाहे वह सामान हो या फिर जिंदगी। वह अपने निर्णय में स्वतंत्र है। इसीलिए भुवन को स्वीकारने और चंद्रमाधव जैसे लोगों की उपेक्षा कर पाने में वह समर्थ है।

अज्ञेय ने रेखा के माध्यम से नारी-जीवन की स्वायत्ता, आत्मनिर्भरता, आत्माभिमान, चयन की स्वतंत्रता, त्याग और उत्सर्ग की भावना को आधार दिया है। उस समय के समाज के लिए नारी का यह रूप सर्वथा नया था। वह भुवन से कहती है- "सारी दलीलें मैं अपने को दे चुकी हूँ। अब जो कुछ कहती हूँ, वह उसके बाद है.....समझ लो कि यह निचोड़ है, मेरी संचित की हुई तर्कातीत हठधर्मी का।"(11)

अज्ञेय हिंदू-समाज की स्त्री के प्रति हठधर्मिता और उसकी परवशता, उसकी घुटन को एक आत्मीयता देते हैं। 'गैग्रीन' की मालती और 'कविप्रिया' की शांता की पीड़ा भारतीय स्त्री की पीड़ा है। अज्ञेय इस पीड़ा का दर्शन मात्र नहीं कराते, इसके कारणों की पड़ताल भी करते हैं। 'रमंते तत्र देवता' में वे हिंदू-समाज में 'स्त्री' की निरीहता, झूठे गौरव और खोखली मर्यादा पर प्रश्न उठाते हैं। 'नदी के द्वीप' में चंद्रमाधव जैसे पात्रों के माध्यम से समाज की स्त्री विषयक अवधारणा भी स्पष्ट करते हैं। वह अपनी उपेक्षा से आहत हैं, चंद्रमाधव की नजर में रेखा एक बदचलन स्त्री है, वह कहता है- "वह अपने को संजो-संजोकर रखती है। कोई असूर्यंपश्या भी इस तरह बचा-बचाकर कदम न रखती होगी।"(12)

इस तरह अज्ञेय के स्त्री-संबंधी विचार स्थिर नहीं दीखते। कहीं वे उसके सौंदर्य, उसकी बुद्धिमानी पर मोहित होकर उसे सर्वश्रेष्ठ ठहराते हैं तो कहीं उसकी भर्त्सना करते हैं। 'नदी के द्वीप' में चंद्रमाधव और हेमेन्द्र के माध्यम से वे रेखा के आचरण पर उंगली भी उठाते हैं। स्त्री-संबंधी उनका यह कथन भी उल्लेखनीय है- "स्त्रियों में विनोद वृत्ति नहीं होती। इसका एक प्रमाण काफी है। संसार के साहित्य में कोई हास्य लेखिका नहीं दीख पड़ती। हाजिरजवाबी उनमें रही है। एक पैना और कभी-कभी विषैला चातुर्य भी उनमें मिलता है, लेकिन सच्चा हास्य कभी नहीं।"(13)

यहाँ वे 'हरसिंगार' के अपने स्त्री-संबंधी विचार से सर्वथा विपरीत धरातल पर नजर आते हैं। यह बात अलग है कि पात्र और संदर्भ की दृष्टि से उक्त कथन आया है, किंतु विचार तो स्वयं अज्ञेय के ही हैं। अज्ञेय की स्त्री पात्र भी पुरुष में अपनी सार्थकता

ढूँढ़ती हैं- "मैंने मांगा था, चाहा था कि वह तुममें प्रतिफलित हो, तुम में सिद्धि पाए, तुम हो गए थे प्रतीक मेरे लिए, मेरे अपने जीवन के प्रतीक।"(14)

''मेरे लिए समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है कि मैं तुम्हारी हूँ केवल तुम्हारी ही हुई हूँ... तुम्हीं मेरे गर्व हो, तुम्हारे एक स्पर्श से सकल मम देह मन वीणा सम बाजै।"(15)

''किसी तरह कुछ भी करके अपने को उत्सर्ग करके आपके घाव भर सकती-तो अपने जीवन को सफल मानती"।(16)

'हीली-बोन की बत्तखें' में भी हीली-बोन अपने को निरर्थक मानती है। वह सोचती है- 'अभिमान! स्त्री का क्या अभिमान?' उसे लगता है कि उसका जीवन साँपविहीन बाँबी के समान है। पुरुष के बिना उसका सौंदर्य, उसका जीवन निरर्थक है- "लोग कहते हैं कि हीली सुंदर है, पर स्त्री नहीं है। वह बाँबी क्या, जिसमें साँप नहीं बसता?... बिना साँप की बाँबी... अपरूप निरर्थक मिट्टी का ढूँह।"(17)

और अंततः वह अपनी बत्तखों की हत्या अपने ही हाथों से करती है। उसका एकांतिक पुरुषविहीन जीवन ही अपनी प्रिय बत्तखों की हत्या के लिए उसे उकसाता है। उसकी करुणा का केंद्र वह नर लोमड़ी ही था, जिसके चलते वह कैप्टन दयाल को हत्यारा मानने लगती है। उसे महसूस होता है कि कैप्टन दयाल के कारण ही लोमड़ी का आधार छिन गया है। यह पुरुषवादी सोच ही है, जो हीली जैसी सशक्त महिला की ऐसी कारुणिक परिणति में सार्थकता देखता है। इससे स्पष्ट है कि अज्ञेय की स्त्री-विषयक धारणा स्त्री को पूर्ण स्वातंत्रय नहीं देती। इसमें एक पुरुष मोह है, जो स्त्री को सदैव आश्रित ही देखना चाहता है। अज्ञेय की अपेक्षा प्रेमचंद ने 'धनिया' के रूप में एक ग्रामीण स्त्री को अधिक स्वतंत्रता और ऊँचाई दी है। सच्चाई तो यह है कि अज्ञेय की व्यक्तिवादी अवधारणा भी पूर्णतः स्थिर नहीं है। उनके व्यक्तिवादी पात्र भुवन, रेखा और गौरा सभी व्यक्तिवादिता से सामाजिकता की ओर लौटने को विवश हैं। विवाह में आस्था न रखने वाली रेखा दूसरा विवाह करती है। भुवन भी गौरा से विवाह में अपनी सार्थकता ढूँढ़ता है। तो क्या अज्ञेय की व्यक्तिवादिता उन्हें स्वयं ही खोखली लगने लगी थी, और ये सामाजिकता की ओर मुड़ चले थे?

शायद वे इस तथ्य को समझ चुके थे कि भारतीय परिवेश में वैक्तिकता कितनी बेमानी है। वे अपनी कविता 'नदी के द्वीप' में भी तो समाज से व्यक्ति के विकास की अपेक्षा रखते हैं।

निष्कर्षत

अज्ञेय के प्रेम-संबंधी विचारों को भावुकता और रोमानियत और उनकी स्त्री-संबंधी धारणा को पुरुषत्व मोह से ग्रसित भले ही मान लिया जाए, किंतु अज्ञेय के प्रेम चित्रण ने हिंदी में प्रेम कहानियों की नींव का काम किया है। उनकी स्त्री विषयक धारणा ही आगे चलकर स्त्री स्वातंत्रय के रूप में परिपक्व हुई है। अतएव अज्ञेय की प्रेम और स्त्री विषयक धारणाएँ हिंदी कथा जगत के लिए महत्त्वपूर्ण बिंदु देती है, जहाँ से प्रस्थान के विविध आयाम खुलते हैं।

संपर्क

1. अमरवल्लरी, अज्ञेय रचनावली, भाग-3, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1992, पृ. 164
2. शेखर : एक जीवन-अज्ञेय, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, दिल्ली, 2009, पृ. 42
3. नदी के द्वीप-अज्ञेय, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, दिल्ली, 1951, पृ. 103
4. वही, पृ. 107
5. वही, पृ. 156
6. अपने-अपने अजनबी- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1966, पृ. 67
7. शेखर : एक जीवन- अज्ञेय, पृ. 96
8. वही, पृ. 98
9. हीली-बोन की बत्तखें- अज्ञेय-रचनावली, भाग- 3, पृ. 103

10. अमरवल्लरी- अज्ञेय रचनावली, भाग- 3, पृ. 212
11. नदी के द्वीप- अज्ञेय, पृ. 160-161
12. वही, पृ. 166
13. वही, पृ. 168
14. शेखर : एक जीवन- अज्ञेय, पृ. 173
15. नदी के द्वीप- अज्ञेय, पृ. 105
16. वही, पृ. 109
17. हीली-बोन की बत्तखे- अज्ञेय-रचनावली, भाग- 3, पृ. 307

स्कूल के छात्र-छात्राओं के स्कूल छात्रवृत्ति के नेतृत्व

सारिका शर्मा

अनुसंधान विद्वान, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

सार

नेतृत्व टीम के सदस्यों से स्वेच्छा से, बिना किसी जोर-जबरदस्ती के वांछित गतिविधियों को आश्वस्त करने की क्षमता है। यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक कार्यकारी अपने अधीनस्थों को निर्देश देता है। यह सबसे महत्वपूर्ण पहलू है जो हमेशा स्कूल की प्रभावशीलता को प्रभावित करता है। यह दिशा का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। नेतृत्व का अर्थ एक ही या समान लक्ष्यों के प्रति स्कूलों के लोगों के प्रयासों को एकीकृत करना है। प्रिंसिपल की एक प्रभावी नेतृत्व शैली हमेशा अपनी टीम को लक्ष्य हासिल करने के लिए कड़ी मेहनत करने के लिए प्रेरित करती है। यह सभी प्रिंसिपल की नेतृत्व शैली के बारे में है जो स्कूल के माहौल को बनाते हैं और अक्सर स्कूल के प्रिंसिपल की समझ से इसके मूल्यों के नियमों और सुरक्षा और अनुशासन की नीतियों से प्रभावित होते हैं। स्कूल की जलवायु की प्रधान समझ अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह छात्र के सीखने के लिए व्यवस्थित है, प्रिंसिपल नेतृत्व शैली और स्कूल की जलवायु की इसकी समझ शिक्षा में अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में अध्ययन ने मुख्य रूप से स्कूल की जलवायु के प्रिंसिपलों की समझ की नेतृत्व शैली पर ध्यान केंद्रित किया है। लेख का मुख्य आधार यह है कि स्कूल का माहौल मूल रूप से प्रिंसिपल की समझ और उनकी नेतृत्व शैली पर निर्भर करता है क्योंकि एक प्रभावी नेतृत्व शैली को इन सभी क्षेत्रों में उपयुक्त दिशा प्रदान करने, योजनाओं को लागू करने और लोगों को प्रेरित करने के लिए योग्यता होनी चाहिए।

परिचय

प्रधानाचार्य स्कूल की जलवायु की सम्पत्ति के लिए जिम्मेदार है। प्रिंसिपल की भूमिका रणनीति को संभालने, टीम को प्रेरित करने और स्कूल की बेहतरी के लिए प्रशिक्षण का प्रबंधन करने के लिए है, स्कूल की जलवायु प्रिंसिपल की समझ के लिए गुणवत्ता में सुधार और सीखने के परिणामों के लिए दृष्टि होनी चाहिए और जो चल रहे प्रबंधन कार्य में भी प्रभावी हैं।

एक प्रभावी स्कूल के प्रधानाचार्यों का नेतृत्व सीधे शिक्षण और सीखने में सुधार करता है। यह हमेशा छात्रों का समर्थन और प्रेरणा देता है और उत्कृष्टता को बढ़ाता है। स्कूल की जलवायु के लिए एक अच्छी प्रिंसिपल लीडरशिप शैली उनकी भूमिकाओं और दिनचर्या में संतुलन के साथ होनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे ऐसा कर रहे हैं जो उन्हें लगता है कि सभी घटकों के लिए सबसे अच्छा है जिसमें स्कूल की जलवायु के बारे में एक अच्छा प्रिंसिपल की समझ शामिल है।

स्कूल

एक स्कूल एक शैक्षणिक संस्थान है जो शिक्षक और स्कूल के प्रिंसिपल के निर्देशन में भी छात्र के शिक्षण के लिए सीखने का माहौल प्रदान करता है। स्कूल की जलवायु को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं-

1. छात्रों और शिक्षकों के बीच संबंध।
2. स्कूल स्टाफ और फ्रंट ऑफिस का व्यवहार।

3. स्कूल सुरक्षा और सुरक्षा के स्तर।
4. स्कूल कैंपस में धमकाने की रोकथाम की प्रथाएँ।
5. स्कूल का सामान्य रूप और अनुभव।

प्रिंसिपल की नेतृत्व शैली

नेता के रूप में एक स्कूल प्रिंसिपल अनुभव या भूमिका के लिए नए नए विचारों को लाता है। प्रिंसिपल लीडरशिप हमेशा वास्तविक जरूरतों पर ध्यान केंद्रित करता है, जिससे उन्हें सकारात्मक माहौल में अपने स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए व्यावहारिक, हैंड-ऑन रणनीतियों की पेशकश की जाती है। एक प्रभावी नेतृत्व शैली हमेशा प्रिंसिपल को जोखिम लेने के लिए प्रेरित करती है, जब वे सीखते हैं और स्कूलों की जलवायु के लिए बेहतर करने के लिए नए तरीके आजमाते हैं। प्रिंसिपल की एक प्रभावी नेतृत्व शैली में सीखने वाले समुदायों का नेतृत्व करने के लिए दृष्टि, साहस, बुद्धि और पेशेवर ज्ञान है जो स्कूलों के लिए अपनी उच्चतम क्षमता प्राप्त करने के अवसर पैदा करते हैं।

स्कूल में प्रिंसिपल की नेतृत्व शैली

L - उदाहरण के द्वारा लीड किया गया

E - उत्साही नेता हमेशा उत्साहित होना चाहिए

A - महत्वाकांक्षी

D - लक्ष्यों के बारे में निर्धारित करें

E - दूसरों को प्रोत्साहित करें

R - सीखने, सिखाने और बनाने के लिए तैयार

निम्नलिखित 5 विशेषताएं हैं जो एक प्रभावी स्कूल जलवायु बनाती हैं

1. गुणवत्ता नेतृत्व - शिक्षक, छात्र और अन्य स्टाफ सदस्यों का प्रदर्शन प्रिंसिपल की नेतृत्व शैली पर निर्भर करता है। प्रधानाध्यापकों की प्रभावी नेतृत्व शैली दिखाई देती है, जो विद्यालय के लक्ष्यों और दृष्टिकोणों को सफलतापूर्वक व्यक्त करने में सक्षम होती है और जब एक प्रधानाचार्य अपने कौशल को बढ़ाने के लिए शिक्षकों के साथ सहयोग करते हैं, और समस्याओं की खोज और समाधान में शामिल होते हैं।
2. छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों की उच्च उम्मीदें - उच्च स्तर की प्रभावशीलता पर पढ़ाने वाले शिक्षक अपेक्षाओं के स्तर तक पहुंचने में सक्षम होते हैं, खासकर जब शिक्षक मूल्यांकन और शिक्षकों का व्यावसायिक विकास छात्रों की अनुदेशात्मक गुणवत्ता को बेहतर बनाने की दिशा में होता है। बार-बार छात्र के प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव दिखाया गया है।
3. छात्र के प्रदर्शन और विकास की स्क्रीनिंग पर - स्कूलों को देश भर के ऑफर के साथ अपने छात्रों की तुलना करने के लिए विश्लेषण किए गए डेटा का उपयोग करना चाहिए, विश्लेषण किए गए डेटा का प्रभावी उपयोग स्कूलों को कक्षा और स्कूल स्तरों पर सीखने के कार्य क्षेत्र की पहचान करने की अनुमति देता है, ताकि समाधान के रूप में उत्पन्न किया जा सकता है कि समस्याओं का सबसे अच्छा समाधान कैसे किया जाए।
4. लक्ष्य और दिशा - प्रशासन को सक्रिय रूप से लक्ष्यों का निर्माण करना चाहिए और फिर प्रभावी रूप से उपयुक्त छात्रों, शिक्षकों, समुदाय को बड़े पैमाने पर संचार करना चाहिए। स्कूल के प्राचार्य को भी सहयोग करना चाहिए और स्कूल प्रक्रियाओं और प्रथाओं के लिए लक्ष्यों में नवाचार करने के लिए तैयार होना चाहिए। छात्रों के प्रदर्शन को उन स्कूलों में सुधार करने के लिए दिखाया गया है जहां सभी स्कूल समुदाय उन लक्ष्यों की दिशा में काम करते हैं जो सीखने के माहौल में सभी के बीच संवाद और साझा किए जाते हैं।
5. सुरक्षित और संगठित - सम्मान एक ऐसा गुण है जिसे बढ़ावा दिया जाता है, जो कि अधिकतम सीखने के लिए सुरक्षित वातावरण का एक मूलभूत पहलू है, छात्रों को सुरक्षित महसूस करने की आवश्यकता है। वहाँ भी नहीं। प्रशिक्षित कर्मचारी और ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जो परिस्थितियों से पहले छात्रों के साथ काम करते हैं।

चुनौतियां और सुझाव

1. कक्षा प्रबंधन रणनीति

अनुशासित ट्रैकिंग और व्यवहार प्रबंधन प्रणाली के साथ कक्षा के माहौल में सुधार करें ताकि आसानी से टर्की छात्रों और वर्दी वाले अनुपस्थितियों को संभाल सकें। स्कूलों में कठिन छात्र को संभालना और अनुशासनहीनता और व्यवहार के मुद्दों को हल करना मुश्किल हो रहा है।

2. छात्र निगरानी

शिक्षक छात्र की गतिविधियों की निगरानी करने के लिए संघर्ष कर रहा है, जिसमें उपस्थिति, अनुशासन आदि शामिल हैं। स्कूल प्रशासन छात्र की प्रगति को ट्रैक करने के लिए परिणाम आधारित निगरानी उपकरणों में समर्थन कर रहा है।

3. माता-पिता की भागीदारी

छात्र की उपलब्धि में सुधार की दिशा में संस्था के प्रयास का समर्थन करने के लिए माता-पिता में सुधार है।

4. पेपर आधारित प्रक्रिया

स्कूल प्रबंधन प्रणाली का उपयोग समय बचाने और काम करने वाले कर्मचारियों को कम करने के लिए शैक्षणिक प्रक्रिया को स्वचालित करें।

5. अच्छी तरह से डिजाइन स्कूल

बुनियादी स्कूल के बुनियादी ढाँचे से परे, उन्होंने जो वातावरण बनाया, वह साक्षरता प्रदर्शनों और तत्वों पर जोर देकर सीखने के लिए शक्तिशाली समर्थन बन सकता है जो वैज्ञानिक और गणितीय कौशल के उपयोग को सुदृढ़ करते हैं।

निष्कर्ष

जिस तरह से एक प्रिंसिपल स्कूलों की जलवायु के साथ अपने संबंधों को व्यवस्थित करता है वह विषय आत्मसात करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटक है। स्कूल की जलवायु की सकारात्मक समझ के साथ एक स्कूल की जलवायु को अच्छी प्रमुख नेतृत्व शैली की आवश्यकता होती है। कार्रवाई की एक बुनियादी योजना स्कूल के माहौल के लिए एक प्रिंसिपल को सफलता सुनिश्चित करने में मदद कर सकती है। एक प्रभावी स्कूल को समझने और बनाए रखने के लिए एक प्रिंसिपल को छात्रों, शिक्षकों और अन्य शामिल व्यक्तियों के लिए उच्च उम्मीदें होनी चाहिए जैसे कि। माता-पिता संकाय और कर्मचारियों के सदस्यों के बीच सहयोग और केंद्रित और निरंतर व्यावसायिक विकास। घटनाओं, बैठक, ग्रेड, शुल्क संग्रह के लिए वास्तविक समय स्थिति सूचनाओं का उपयोग करना।

संदर्भ

1. www.wikipedia.com
2. www.creatrixcampus.com/blog
3. www.researchagate.net
4. www.aabri.com
5. Org www.amle.org
6. Https: //scholarsiip.shu.edu

स्वाधीनता-संग्राम में प्रेस की भूमिका

डॉ० सोनी कुमारी

अतिथि प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, डॉ. एस.के.एस. महिला महाविद्यालय, मोतिहारी, बिहार, भारत

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में भारतीयों द्वारा स्थापित प्रेस तथा उनके प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतंत्रता-संग्राम से जुड़े प्रायः सभी नेता कोई न कोई पत्र निकाला करते थे। राजा राममोहन राय, सुरेन्द्र बनर्जी, दादाभाई नरोजी, अरविंद घोष, बाल गंगाधर तिलक, फिरोज शाह मेहता, एम.जी. रानार्ड, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि सभी के अपने-अपने पत्र थे, जिसके माध्यम से अपने विचारों को जनता तथा अन्य नेताओं तक पहुँचाते थे। ब्रिटिश सरकार की भारत विरोधी नीतियों तथा भारतीय नेताओं द्वारा उसके विरोध को जनता तक पहुँचाने का माध्यम पत्र ही था। पत्रों की सकारात्मक तथा रचनात्मक भूमिका ने जनता के हृदय में स्थान बना लिया। देश भक्त संपादकों तथा प्रेस मालिकों ने कभी भी पत्रकारिता को व्यवसायिक दृष्टि से नहीं देखा। कई बार वे पत्र आर्थिक संकट के कारण बंद हो जाया करते थे, लाभ लेने की बात तो दूर रही। बहुत खुशामद-अपील करने पर पाठक पत्र-पत्रिकाओं का मूल्य चुकाते थे। फिर भी संपादकों में जो देशभक्ति का जज्बा था, वह उन्हें हमेशा उत्साहित करता रहता था और पत्रों का निकलना जारी रहता था।

समाचार पत्रों में वैचारिकता के आधार पर कोई टकराहट नहीं थी। प्रेस अंग्रेजी नीतियों का विरोध था तथा समाचार पत्रों के लेख राष्ट्रीय भावनाओं से भरे होते थे। वे कांग्रेस की होनेवाली सभाओं में भाग-लेने के लिए लोगों को उत्साहित करते थे तथा सभा में लिए गये निर्णयों को भी आम जनता तक पहुँचाने का काम करते थे। इतना ही नहीं पत्र जनता की मांगों को सरकार तक पहुँचाने का भी काम करते थे। स्वाधीनता-संग्राम के आरंभिक काल में कांग्रेस में नरमपंथियों का बोलबाला था। पत्र संपादक अंग्रेजों के विरूद्ध भड़काऊ लेख नहीं लिखते थे, परंतु उनकी आलोचना करते हिचकते भी नहीं थे। भारतेन्दु के समय में तीन अंग्रेजों ने शराब पीकर उत्पात किया और पुलिस उनका कुछ नहीं कर पायी। भारतेन्दु ने शासन-व्यवस्था की आलोचना करते हुए 'कविवचन सुधा' में लिखा- "निर्बल पर सब लोग बल दिखाते हैं, पर सबल से कोई कुछ नहीं बोलता, ऐसी सच्ची बातें पुकारिये तो भी कोई नहीं सुनता, देखिये अभी हिन्दुस्तानी बेचारा जो कुछ झूठ-मूठ भी अपराध करे तो सब दंड देने को उद्यत होते हैं, पर गोरे चमड़े के लोग चाहे सर्वस्व नाश करे, कोई पूछता भी नहीं। अभी कुछ दिन हुए तीन गोरे मदिरापान करके चौखंभे में आए और अनेक उपद्रव किए, कॉंस्टेबल इनके पास आने से डरते थे, क्योंकि ये लोग अंग्रेज थे।"[1] उन्होंने स्पष्ट लिखा- "क्या कारण है कि हिन्दू मजिस्ट्रेट अंग्रेज को दंड न दे सके, पर अंग्रेज हिन्दू को।"[2] अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का जो आर्थिक शोषण होता था, उस पर भी भारतीय प्रेस उचित और अपनी बेबाक प्रतिक्रिया जाहिर करता था। सरकार की आर्थिक नीतियों पर- "उचित वक्ता" के संपादक ने लिखा था- "वाणिज्य, व्यापार, टिकस पर टिकस और मोटा वेतन करके राज पुरुषगण यहाँ से सब रुपया देश-देशांतर ले गये हैं। यहाँ इतना अर्थ नहीं कि देश के सामान्य कार्यों का खर्च संभाल सके। इस पर भी भारतवर्ष पर शासन करने में अंग्रेज लोग जितने रुपये व्यय करते हैं। ऐसा वहाँ नहीं दिखता। इंगलैंड के राजमंत्री जो वेतन लेते हैं, हम लोगों के गवर्नर जनरल उसकी अपेक्षा प्रायः पाँच गुणा अधिक वेतन लेते हैं। वस्तुतः इंगलैंड वाले यदि भारतीय शासन का परिवर्तन नहीं करेंगे तो उन्हें यह परित्याग करना होगा। यदि भारतवर्ष प्रकृति कामधेनु होता तो अंग्रेज लोग अपनी इच्छा अनुसार भारतवर्ष के रुपये अपव्यय कर सकते थे, परंतु भारतवर्ष तो कामधेनु नहीं है, यह सब अंग्रेजों ने जान लिया होगा।"[3]

पयामे आजादी (दिल्ली), सुधावर्षण (कलकत्ता) कवि वचन सुधा (काशी), बिहार बंधु (पटना), हरिश्चन्द्र मैगजीन (काशी), हरिश्चन्द्र चंदिका (काशी), हिन्दी प्रदीप (प्रयाग), भारत मित्र (कलकता), ब्राह्मण (कानपुर), हिन्दोस्तान (कालाकांकर), भारतवर्ष

(कानपुर), हिन्दी बंगवासी सभी पत्रों में राजनीतिक सक्रियता और चेतना उद्‌भाषित होती थी। इनमें 'पयामे आजादी' की प्रखरता तथा संपादक की शहीदी जज्बे को आज भी श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है। इसने प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय राष्ट्रीयता का नारा बुलंद किया था, जिससे अंग्रेज अधिकारी आतंकित हो उठे थे। यही कारण था कि युद्ध की समाप्ति के बाद इस पत्र को नष्ट कर दिया गया। डॉ. वंशीधर लाल ने डॉ. वेद प्रताप वैदिक के हवाले से कहा है- "आंदोलन की असफलता के बाद जिस व्यक्ति के घर में 'पयामे आजादी' की प्रतियाँ पायी गयी, उसे मौत के घाट उतार दिया गया। वेदार वख्त खाँ (संपादक) को फाँसी की सजा दी गयी।"(4) डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेन्दुकालीन पत्रकारों की निर्भीकता तथा संकल्पनिष्ठा के संबंध में कहा है- राजनीतिक वातावरण में जो रूढ़िप्रियता, अंध-परंपरा-प्रियता, शासकों की खुशामद और अपनी सभ्यता के प्रति हीन भावना फैली हुई थी, उसे देखते हुए हिन्दी पत्रकारों की निर्भीक लेखन-शैली और भी चमक उठती है। उसमें पर्याप्त साहस था और उस साहस का उपयोग बेकार की बातों में न करते थे, वरन् वे दिन-प्रतिदिन की देश तथा विदेश-संबंधी समस्याओं के विवेचन में उसका उपयोग करते थे। काबुल-युद्ध, जुलूस और अंगरेजों की लड़ाई आदि पर जो कुछ तब लिखा गया था, उससे और साफ-सुथरा लिखना आज के लेखकों के लिए भी कठिन है।

विश्व में हो रहे सकारात्मक परिवर्त्तनों तथा यूरोप में प्रेस की आजादी से भारतीय प्रेसों को बल मिला और आगे चलकर उसमें जुझारूपन बढ़ता गया। सन् 1905ई. में बंगाल-विभाजन से उपजे जनता के आक्रोश को बल देकर भारतीय प्रेस ने एक नया मुकाम हासिल किया। 'केसरी' के माध्यम से तिलक ने तथा 'वंदेमातरम्' के माध्यम से घोष बंधुओं ने 1905 में बंगाल-विभाजन का घोर विरोध किया। सन् 1911ई. में बंगाल-विभाजन के रद्द होने से भारतीय प्रेस को पर्याप्त आत्मबल प्राप्त हुआ। केवल उत्तर भारत ही नहीं, बल्कि दक्षिण भारत में राष्ट्रवादी समाचार पत्रों ने जनता पर व्यापक प्रभाव डाला। वाई.के. डिसूजा ने लिखा है- "लोगों में देशप्रेम जगाने, विदेशी सरकार के विरूद्ध जनमत तैयार करने तथा 'वंदेमातरम्' आंदोलन के पक्ष में राष्ट्रवादी 'प्रेस ऑफ आंध्रा' ने बड़ी भूमिका निभाई नवयुग कृष्ण पत्रिका तथा आंध्र केसरी का प्रभाव व्यापक था। इन पत्रों में निर्भय होकर राष्ट्रभक्ति का पाठ पढ़ाया जाता था तथा निर्भय होकर सरकार की आलोचना की जाती थी।"(5)

भारतीय पत्रकारिता के उक्त दौर में एक समय ऐसा भी आया कि उसकी बढ़ती लोकप्रियता तथा पत्रों की बढ़ती संख्या से आतंकित हो लार्ड लिंटन ने 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' लागू कर दिया। इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई और लोगों में और अधिक जागरण आया तथा जगह-जगह उक्त एक्स के विरोध में सभाएँ हुई। यह एक्त वापस नहीं हुआ। सरकार को भाषाई पत्रों के एक अंश को अपनी ओर मिलाने में सफलता मिली। 'पायनियर' एक ऐसा पत्र था, जिसने अधिनियम का समर्थन किया था। यह अंग्रेजों की 'फूट डालो-राज करो' की नीति का सफल प्रयोग था। भारतीय प्रेस द्वारा सरकार की आलोचना रोकने के लिए सन् 1908 ई. में 'दी न्यूज पेपर एक्ट' भी पास किया। फिर सन् 1910 में 'एडियन प्रेस एक्ट' लागू किया गया, जिसमें सरकार को प्रकाशन से दो हजार रुपये तक जमानत राशि लेने तथा पंजीकरण रद्द करने का अधिकार था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भी 'भारत सुरक्षा अधिनियम' लागू कर राजनीतिक आंदोलनों तथा स्वतंत्रत आलोचना पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस तरह सविनय अवज्ञा आंदोलन को दबाने के लिए सन् 1931 में प्रेस-संबंधी एक्ट को पुनः लागू कर दिया गया। प्रेस के इतिहास के अध्ययन से पता चला है कि लार्ड वेलेजली, लार्ड मिन्टो, लार्ड एडम, लार्ड कैनिंग तथा लार्ड लिंटन भारतीय प्रेस की स्वाधीनता के पक्षधर कभी नहीं रहे। इसके विपरीत लार्ड हेस्टिंग्ज, चार्ल्स मेटकॉक, मैकाले तथा लार्ड रिपन स्वतंत्र प्रेस के समर्थक थे। जो हो, समय-समय पर भारतीय प्रेसों के विरूद्ध लागू एक्ट का परिणाम भी अच्छा ही रहा। प्रेस पर प्रतिबिंबों से लोगों में जागरण आया तथा एकता सुदृढ़ हुई। केवल भाषाई पत्रों ने ही नहीं, अंग्रेजी समाचार पत्रों ने भी अधिनियम के विरूद्ध जनमत तैयार करने में सहायता की।

स्वाधीनता-संग्राम में धीरे-धीरे जुझारू लोगों का प्रभाव बढ़ता गया तथा सन् 1907 के सूरत अधिवेशन में नरमपंथी तथा गरमपंथी भेद उभर कर सामने आ गये। नरम दल के नेताओं ने अपनी बात जनता तक पहुँचाने के लिए प्रेस का सहारा लिया। फिरोज शाह मेहता ने 1913 में 'बाम्बे क्रानिकल' का प्रकाशन आरंभ किया। इसी समय बाल गंगाधर तिलक, अरविंद घोष, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय आदि गरम दल के नेताओं ने लोकप्रियता पाई। समाचार पत्रों ने इन नेताओं के विचारों को भी देशवासियों तक पहुँचाने का काम किया। तिलक ने 'मराठा' तथा 'केसरी' के माध्यम से उग्र राष्ट्रवाद को फैलाया। तिलक के लेखों का जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। होमरूल की वकालत तिलक के साथ-साथ एनीवेसेंट भी कर रही थी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने 'मद्रास स्टैंडर्ड' का संचालन अपने हाथों में लिया तथा उसका नाम 'न्यू इंडिया' कर होमरूल का नारा जन-जन तक पहुँचाया।

स्वाधीनता-संग्राम में महात्मा गाँधी के प्रवेश से एक नये युग का आरंभ हुआ। वे केवल प्रभावशाली नेता ही नहीं थे, अपितु एक कुशल पत्रकार भी थे। उन्होंने 'यंग इंडिया' तथा 'हरिजन' के माध्यम से अपने विचारों, राजनीति कार्यक्रमों तथा अपने उद्देश्यों को देशवासियों के सामने रखा, जिससे देश में एक बड़ी जागृति आयी। भारतीय प्रेस पर गाँधीजी की नीतियों तथा विचारों का व्यापक प्रभाव था। वे अन्य पत्रों के संपादकों को भी निर्भीकतापूर्वक अपनी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करते थे। ज्यों-ज्यों स्वाधीनता-संग्राम उत्कर्ष पर पहुँचता गया, त्यों-त्यों पत्रों की संख्या, दायित्व और महत्त्व भी बढ़ता गया। लोग उत्सुकतापूर्वक गाँधी के विचारों तथा कार्यक्रमों को जानने के लिए समाचार पत्रों की प्रतीक्षा किया करते थे। यह क्रम स्वतंत्रता-प्राप्ति चल जारी रहा। इस प्रकार भारतीय प्रेस ने स्वाधीनता-संग्राम को अंजाम तक पहुँचाने में अपनी भूमिका का निर्वहन तत्परतापूर्वक किया। भारतीयों को एक सूत्र में बांधने, जातीय-साम्प्रदायिक विद्वेष मिटाने, सामाजिक समस्या को सुलझाने, राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए भारतीय प्रेस की भूमिका निर्णायक रही।

संदर्भ-सूची

1. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास-परंपरा- डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967, पृ. 40
2. वही, पृ. 41
3. भारतेन्दु युगीन हिन्दी पत्रकारिता- डॉ. वंशीधर लाल, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1987, पृ. 120
4. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा, पृ. 41
5. आजकल, सीमा ओझा (संपादक), फरवरी, 2001, पृ. 52

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में लोक-विश्वासों की व्यंजना

डॉ० उमेश कुमार शर्मा

सहायक प्राचार्य (अतिथि), विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय

शब्दकोशों में **'लोक'** शब्द के कितने ही अर्थ मिलेंगें, जिनमें से साधारणत: दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह, जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं। दूसरा अर्थ **'लोक'** का होता है- **'जनसामान्य'**। इसी का हिन्दी-रूप लोग है। इसी अर्थ का वाचक **'लोक'** शब्द साहित्य का विशेषण है। **'लोक'** जो जनता के अपेक्षाकृत पिछड़े वर्ग को संकेतित करता है। जो परंपराजीवी मानव-समुदाय हैं। परंपरा से प्राप्त रीति-रिवाज इनके जीवन-शैली का अभिन्न अंग होता है। इन परंपराजीवी मानव-समुदाय का रीति-रिवाजों के प्रति अटूट विश्वास ही सही अर्थों में लोक-विश्वास का स्वरूप-निर्धारण करता है।

भारतीय समाज में स्त्री को दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता है। हमारे शास्त्रों के माध्यम से फैलायी गई इस भ्रांति ने अब लोक-विश्वास का स्वरूप धारण कर लिया है। क्या शिक्षित क्या अशिक्षित, सर्वत्र ये धारणाएँ व्याप्त हैं और दु:खद यह भी है कि स्त्रियाँ इसे स्वीकार भी कर लेती हैं। **'राजयोग'** नाटक की नायिका चंपा जो कि एक उच्च शिक्षित स्त्री है, कहती है- **"स्त्री के लिए पति ईश्वर है.....सधवा स्त्री के लिए तीर्थ-व्रत शास्त्रों में वर्जित है।"**[1] वहीं 'वितस्ता की लहरें' में कहा गया कि पुरुष का अपना कोई भाग्य नहीं होता। नारी के भाग्य का सुख या दु:ख ही पुरुष भोगता है। पति ही स्त्री का सर्वस्व है। सुहाग के बिना वह सौभाग्यवती नहीं होती है। अखंड सौभाग्य लेकर जाने वाली स्त्री इस लोक के साथ उस लोक (स्वर्ग) में भी सुख भोगती है। दूसरी ओर ईश्वर और उनसे संबद्ध विचारों-धारणाओं-मान्यताओं में भी लोक-विश्वास अंतर्निहित है, जैसे कि, शिव ने विष पचा लिया था। **'गरुड़ध्वज'** नाटक में भूतनाथ के प्रति अटूट आस्था की अभिव्यक्ति हुई है, जहाँ वासंती मलयवती से कहती है- **"यदि भूतनाथ की दया हुई तो उनके पुत्र की माता होकर तुम भविष्य में इस देश की सबसे बड़ी राजमहिषी होगी।"**[2] आज के वैज्ञानिक युग में ईश्वर की अनुकंपा पर कितना विश्वास है, यह सर्वविदित है, पर लोक में प्रचलित आस्था की नींव नहीं हिल सकती। संगीत से जल बरसाने और अग्नि प्रज्वलित करने की बात भी लोक-विश्वास का अंग है। चन्द्रभागा को इस पर आश्चर्य होता है कि कैसे संगीत से जल बरसाया जाता है, अग्नि जलायी जाती है, जहाँ योग और खास-साधना से मनुष्य आकाश में उड़ता है, जहाँ शव गाड़े नहीं जाते..... चंदन की चिता पर रखकर आग लगायी जाती है और शव पुनर्जीवित होकर लपटों के साथ स्वर्ग पहुँचता है।

लोक-विश्वास में जादू-टोने का भी अपना महत्त्व है, क्योंकि लोक परंपरित जीवन-शैली वाला मानव-समुदाय है, जहाँ अंधविश्वास व्याप्त होता है। यही कारण है कि ये समुदाय जादू-टोने में विश्वास रखते हैं। इन्हें लगता है कि जादू-टोने से किसी को बीमार किया जा सकता है, किसी को स्वस्थ किया जा सकता है। किसी की हत्या की जा सकती है आदि-आदि। गांधीजी कहते हैं- **"माँ को बराबर भय लगा रहता है कि लड़के को जादू-टोना न लग जाए।"**[3]

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में अंतर्निहित लोक-विश्वास को निम्नलिखित बिन्दुओं में देख सकते हैं-

(क) देवी-देवताओं की मनौतियाँ

भारतीय समाज में विशेषत: ग्राम्य-अंचलों में, कठिन-से-कठिन कार्यों की सिद्धि के लिए लोग वैज्ञानिक उपायों की अपेक्षा देवी-देवताओं की मनौतियों का अधिक आश्रय लेते हैं। मिश्रजी के कुछ नाटकों में भी इस तरह के प्रसंग आए हैं। **'राजयोग'** नाटक में गजराज शत्रुसूदन से कहता है- **"मैं भगवान से आपकी भलाई के लिए मनाया करूँगा। साल में दशमी को भवानी की पूजा में आकर सरकार का दर्शन करूँगा।"**(4) देवी-देवताओं की मनौतियाँ भारतीय समाज में स्त्रियाँ अधिक रखती हैं। वह अपने पुत्र, पति, पिता, परिजन की रक्षा-सुरक्षा, स्वस्थता, उम्र-वृद्धि आदि के लिए देवी- देवताओं की शरण में जाती हैं और बड़ी-बड़ी मनौतियाँ रखती हैं। **'गरुड़ध्वज'** नाटक में सौम्यदर्शना इसी प्रकार की मनौतियाँ रखती हुई कहती है- **"महाकाल का मंदिर बुहारूँगी..... मेरा लाल कुशल से आ जाय।"**(5) वैज्ञानिकता के इस युग में, जबकि भगवान के अस्तित्व पर ही प्रश्न उठाये जाते हैं, भी लोगों का अटूट विश्वास देवी-देवताओं पर शेष है। **'वितस्ता की लहरें'** नाटक में जब फिलिप का विवाह क्लियोपेट्रा से हुआ तो उसके चाचा अत्तालस ने मकदूनिया की जनता से प्रार्थना करने को कहा कि इस विवाह से देवता इस दंपति को सिंहासन का औरस उत्तराधिकारी दे। इसी प्रकार **'गरुड़ध्वज'** में वासंती मलयवती से कहती है- **"जाओ बहन, जिसे अपनी कामनाएँ पूरी करनी हों, पति, पुत्र और राज्य की भिक्षा मांगनी हो, देवता की प्रार्थना करो।"**(6) हालाँकि **'राजयोग'** की नायिका चंपा इस मामले में प्रगतिशील और वैज्ञानिक सोच वाली स्त्री है, जो इस प्रकार की तमाम मान्यताओं पर कुठाराघात करती है। उसका कहना है कि तीर्थ और व्रत सब कुछ आडंबर और ढकोसला है, स्वर्ग-नरक लोगों को ठगने के लिए ब्राह्मणों ने बनाया है। सच तो यह है कि देवी-देवताओं की इस मनौतियों की आड़ में एक प्रकार की भ्रष्टता समाविष्ट हो गई है। चूँकि लोग इस दौर में पशु-बलि की मनौतियाँ भी धड़ल्ले से रख लेते हैं। एक जीव की रक्षा के लिए दूसरे की हत्या प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। अगर ईश्वर हैं तो उनके लिए संसार के सभी जीव बराबर होंगे। अपनी खुशी के लिए किसी जीव की हत्या करना घोर अपराध है। इससे पृथक् मनौतियों का एक और दुर्बल पक्ष है। और वह यह कि इस क्रम में भोले-भाले लोगों को पंडित-पुजारी उकसाते हैं, जिससे ईश्वर को कुछ मिले या न मिले उनका अपना घर जरूर भरता है।

(ख) भूत-प्रेतादि में विश्वास

परंपराजीवी और ग्रामीण परिवेश में निवास करने वाले लोगों का विश्वास भूत-प्रेत में होता ही है। मिश्रजी ने अपने कुछ नाटकों में इस लोक-विश्वास को अभिव्यक्त किया है। चूँकि भारतीय समाज में इस की मान्यता है कि जिसकी स्वाभाविक तरह मृत्यु नहीं होती है, देह के छूट जाने पर भी उसके दैहिक संस्कार नहीं छूटते हैं। प्रेत के रूप में उसे इसी धरती पर अपने उन्हीं संबंधियों के संसर्ग में रहना पड़ता है। **'आधी रात'** नाटक में राघवचरण के यह पूछने पर कि तुम पुनर्जन्म के साथ प्रेतात्मा में भी विश्वास करती हो, प्रगतिशील सोच वाली मायावती कहती है,-**"यही तो समस्या है। अभी तक इसी का निश्चय नहीं कर सकी। पुनर्जन्म तो वैज्ञानिक सत्य है ही ..... प्रेतात्मा के संबंध में भी सर ओलिवर लॉज सरीखे प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने बहुत कुछ कह दिया है। कदाचित सभी मानसिक बीमारियों का संबंध किसी-न-किसी प्रेत से है।"**(7) उनके अनुसार जो नास्तिक हैं, वे प्रेत हर्गिज नहीं मानते। मतलब प्रेत के संबंध भी मनुष्य की आस्तिकता से है। भारतीय समाज ने भूत-प्रेत में विश्वास के साथ ही उसके आकार प्रकार की भी कल्पना कर ली। तभी तो भूत-प्रेत का कल्पित स्वरूप मानव के मस्तिष्क में बैठ गया है और भय के क्षणों में संभवत: यह रूप प्रत्यक्ष हो जाता है। **'आधी रात'** नाटक का प्रकाशचन्द्र भूत का जो स्वरूप देखता है, उससे लोग पूर्व परिचित होंगे। वह कहता है- **"कोई भयानक काला आदमी बैठा था..... इस जगह, उसका एक हाथ तो आगे यहाँ, दूसरा घूमकर यहाँ था. ..... मेरी छाती उसके दोनों हाथों के बीच आ गई थी..... उसकी लंबी काली नाक, मेरी नाक के बिल्कुल पास थी. ..... उसके दो दाँत तक ओठ के बाहर बरछे की तरह निकल गये थे और ओठों से जैसे खून चू रहा था।"**(8) वास्तव में भूत-प्रेत ऐसे ही होते हैं या मानव-मन में परंपरित स्वरूप को प्राकट्य होता है, नहीं कहा जा सकता।

इस संबंध में एक और भ्रामक धारणा प्रचलित है कि भूत-प्रेत भी अपने हत्यारे या दुश्मनों से बदला लेता है। जब **'आधी रात'** नाटक में मायावती कहती है कि वे राधाचरण के मरने के बाद प्रेत होकर प्रतिहिंसा ले रहे हैं, तो मिश्रजी के बुद्धिवादी नाटककार

होने पर शक होने लगता है, क्योंकि **'आधी रात'** ही नहीं 'सिन्दूर की होली' नाटक में भी माहिरअली देखता है कि शैतान और भूत उसे पकड़ने के लिए आया है।

(ग) अपशकुन

अपशकुन-संबंधी धारणा जड़ मानसिकता की शरणस्थली है। यह सर्वथा अवैज्ञानिक और तर्कहीन धारणा है। फिर भी लोग अपने अभीष्ट कार्यों के लिए शकुण का विचार अवश्य करते हैं। और अभी कार्यों में अगर किसी प्रकार का व्यवधान होता है तो इसे अपशकुन कहकर अपने भाग्य पर रोता है। मिश्रजी के नाटकों में अपशकुन के प्रसंग अत्यल्प हैं। **'गरुड़ध्वज'** नाटक का एक पात्र पुष्कर लोमश से कहता है- **"जाने दो भाई, मैंने इस वर्ष ईसान कोण पर खंजन देखा था, किन्तु किसी युद्ध में मारा जाता तो वीरगति को प्राप्त होता।"**(9) दूसरा प्रसंग **'वितस्ता की लहरें'** में परिलक्षित होता है, जहाँ आचार्य विष्णुगुप्त महाराज पुरु से कहता है- **"परसों मेरा पैंतीसवाँ जन्म दिन था। उसी दिन तक्षशिला में विदेशी चरण पड़े? विद्यापीठ के कपाट बंद हुए। कहिए, मेरा यह जन्म दिन कितना शुभ रहा।"**(10)

यद्यपि वैज्ञानिक बुद्धि वाले लोग अपशकुन को नहीं मानते हैं, नहीं महत्त्व देते हैं, तथापि लोक-मानस में यह आशंका किसी-न-किसी रूप में अवश्य रहती है। बिल्ली का रास्ता काट देना, दिन में उल्लू दिख जाना, यात्रा पर निकलते समय किसी की छींकना, आदि जिसे अपशकुन के अंतर्गत गिना जाता है, किन्तु ऐसा होना मात्र संयोग भी हो सकता है। अस्तु शकुन-अपशकुन पर विचार करते रहने से समाज और व्यक्ति का कल्याण संभव नहीं है।

(घ) भविष्यवाणी में विश्वास

हिन्दी नाटककारों ने कई प्रकार की भविष्यवाणी का प्रयोग अपने नाटकों में किया है। कहीं तो ज्योतिषशास्त्र के अनुसार गणनाकर भविष्यफल का संकेत किया गया है, कहीं सिद्ध पुरुषों का भविष्य-कथन हुआ है और कहीं ढोंगियों और पाखंडियों द्वारा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का उल्लेख कराया गया है। मिश्रजी के नाटकों में संभवत: उनकी बुद्धिवादिता के कारण भविष्यवाणी में विश्वास जैसे संदर्भ नगण्य हैं। फिर भी वे अपने कुछ नाटकों में इसकी झलक वे देते हैं। **'मृत्युंजय'** नाटक में गाँधीजी की हत्या के पश्चात् एक बूढ़े आदमी ने इसकी परिणति के रूप में देश की भविष्यवाणी की है। वह कहता है- **"प्रलय होगी..... अब प्रलय होगी..... सूरज नहीं निकलेगा .....तारे टूट कर गिर पड़ेगे। गंगा सूखेगी हाँ, हाँ हिमालय गिरेगा..... धरती रसातल में चली जाएगी।"**(11) हालाँकि यह भविष्यवाणी कितना सत्य हुआ, कहने की जरूरत नहीं है। मिश्रजी रचित **'गरुड़ध्वज'** नाटक में एक पुजारी वासंती से कहता है-**"यह देश महाकाल की कृपा से ही सुखी रह सकता है।"**(12) इससे पृथक् **'राक्षस का मंदिर'** नाटक में भविष्यवाणी की तो नहीं पर भाग्यवाद की बात अवश्य की गयी है। इस नाटक में एक नागरिक रघुनाथ से कहता है अश्करी के बारे में कि, **"ब्रह्मा का लिखा झूठा आदमी कर देगा? जिसके लिलार में वेश्या होना लिखा होगा.....वह कहीं भी रहे, वही रहेगी।"**(13)

अस्तु, अपशकुन के समान भविष्यवाणी में विश्वास करना, भाग्य के भरोसे बैठे रहना, राशिफल देखकर दिन की शुरुआत करना आदि पूरी तरह अवैज्ञानिक धारणा है। हमें आज के वैज्ञानिक युग में कर्मवादी बनना चाहिए न कि भाग्यवादी।

(ड.) पुनर्जन्म-सिद्धांत का समर्थन

लक्ष्मीनारायण मिश्र यद्यपि बुद्धिवादी नाटककार माने जाते हो, तथापि उन्होंने भारतीय संस्कार-संसकृति और समाज में प्रचलित पुनर्जन्म-सिद्धांत का समर्थन किया है। और वे इसे वैज्ञानिक सत्य भी मानते हैं। **'मृत्यंजय'** नाटक में गांधीजी सरोजिनी से कहते हैं- **"चौबीस या दस अवतारों के साथ जो देही इस धरती पर आये, वे व्यक्ति नहीं बने। इस देश के भावलोक में वे भगवान बन गये।"**(14) उनके अनुसार भट्ट कुमारिल स्वामी कार्तिकेय के, अभिनव गुप्त पादाचार्य शेष के, गोस्वामी तुलसीदास वाल्मीकि के अवतार हैं। इसी प्रकार मिश्रजी पुनर्जन्म-सिद्धांत का समर्थन **'गरुड़ध्वज'** में भी करते हैं। वासंती कालिदास से कहती है पुरु के बारे में- **"जिन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में ही सिन्धु के तट पर महापराक्रमी यवनों को पराजित कर, सिन्धु के उस पार तक खदेड़ा था। वे स्वामी कार्तिक के अवतार कहे जाते हैं।"**(15)

भारतीय समाज में इस तरह की धारणाएँ हैं कि जो स्त्री पति के रहते ही या पति के सामने ही शरीर का त्याग कर देती है। उसका सुहाग जन्म-जन्म तक अक्षुण्ण बना रहता है। **'मृत्युंजय'** नाटक में गांधीजी यही बात 'बा' के बारे में पटेल से कहते हैं-**"अगले जन्म में भी उसका सुहाग अखंड रहेगा। इस जन्म में वह सुहाग के साथ गई इससे लाभ और क्या लेती?"**(16)

इस प्रकार के पुनर्जन्म-सिद्धांत हमारे भारतीय धर्मग्रंथों में भरे पड़े हैं। अब इसमें कितनी सच्चाई है, कहना मुश्किल है। यह अलग ही शोध का विषय है।

धर्म और संस्कृति ऐसी अवधारणाएँ हैं, जो बहुत कुछ व्यक्ति और समाज-विशेष के मानसिक स्तर पर निर्भर करती हैं। धर्म का, और संस्कृति का भी, जो अर्थ ग्रामीण अपढ़ व्यक्तियों के लिए होगा, वही अर्थ उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्ति या समाज के लिए नहीं होगा। मानना चाहिए कि नाटककार मिश्रजी के नाटकों में धर्म और संस्कृति के सम्बन्ध में जो द्विविध किंवा बहुविध दृष्टिकोण या वर्णन दृष्टिगत होते हैं, उसका कारण सम्बन्धित पात्रों की शिक्षा-दीक्षा और उनके मानसिक स्तर की भिन्नता है। आधुनिकता और वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरनेवाली मान्यताएँ पात्र-विशेष की हो सकती हैं। वे नाटककार भी मान्य हों, यह आवश्यक नहीं।

संदर्भ

1. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोग), संपा.- विश्वनाथ प्रसाद, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, 1995 ई., पृ. 199
2. गरुड़ध्वज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, कलकता, 1967 ई., पृ. 38
3. मृत्युंजय, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967ई., पृ. 31
4. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोग), पृ. 212
5. गरुड़ध्वज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 121
6. वही, पृ. 45
7. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (आधी रात), पृ. 306
8. वही, पृ. 307
9. गरुड़ध्वज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 20
10. वितस्ता की लहरें, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985 ई., पृ. 35
11. मृत्युंजय, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 145
12. गरुड़ध्वज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 119.
13. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मंदिर), पृ. 118
14. मृत्युंजय, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 42.
15. गरुड़ध्वज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 53
16. मृत्युंजय, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 102

सृजन के धरातल पर कीर्तिनारायण मिश्र का मैथिली गद्य-साहित्य

नीतु कुमारी

शोध-छात्रा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कीर्तिनारायण मिश्र मूलत: कवि हैं। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति भी कविता में ही हुई है, जिससे इन्हें सफलता भी मिली एवं ख्याति भी प्राप्त हुई है, किन्तु इनका गद्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। गद्य लेखन के क्रम में कवि की प्रतिभा अत्यंत मुखर हो जाती है। मिश्रजी ने समीक्षा, समालोचना, संस्मरण, यात्रा-वृतांत, पत्र-साहित्य, पत्रकारिता एवं अनुवादित रचनाओं के माध्यम से हिन्दी-मैथिली गद्य में अपनी एक अलग पहचान बनाई है, जो विशिष्ट भी है और अनुकरणीय भी। कीर्तिनारायण मिश्र का साहित्य सृजन हिन्दी एवं मैथिली दोनों भाषाओं में विपुल और बहुआयायी है। इन्होंने काव्य के साथ-साथ गद्य में भी, इन दोनों भाषाओं को लेकर अपनी लेखनी चलाई है। वैसे तो उनकी कई कृतियाँ गद्य में हैं, परन्तु मिश्रजी की दो मूल कृति 'अर्थान्तर' एवं 'स्मृतियात्राक एकांत मे' को लेकर उनके गद्यात्मक स्वरूप की विवेचना की जाएगी। इन दोनों कृतियों की भाषा मैथिली है, जिसे खिकर मिश्रजी ने मैथिली आलोचनात्मक एवं मैथिली संस्मरणात्मक साहित्य को समृद्ध किया है।

कीर्तिनारायण मिश्र का साहित्य-सृजन हिन्दी और मैथिली दोनों भाषाओं में विपुल और बहुआयामी है। वैसे तो इन दोनों भाषाओं में वे प्रधानत: एक सुकवि के रूप में ही जाने जाते हैं, परंतु कवि के अतिरिक्त उनकी लेखनी से हिन्दी-मैथिली गद्य को भी समृद्धि मिली है। गद्य-लेखन के क्रम में कवि की प्रतिभा और भी मुखर हो जाती है, पर यहाँ भी उनके भीतर की काव्यात्मकता चुप नहीं बैठती है। उन्होंने अपनी इन्हीं काव्यात्मक अनुभूतियों से गद्य को अपेक्षाकृत और भी सरल बना दिया है। मिश्रजी ने समीक्षा, समालोचना, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, पत्र-साहित्य, पत्रकारिता एवं अनुवादित रचनाओं के माध्यम से हिन्दी-मैथिली गद्य में जो पहचान बनायी है, वह अपने आप में विशिष्ट भी है और अनुकरणीय भी।

यहाँ अगर गद्य और पद्य के अंतर एवं उसके बीच के अंत:सूत्रों पर प्रकाश डाला जाए तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अनुभूति और चिंतन, चेतना की ये दोनों सीमाएँ, सत्तागत भेद के कारण अभिव्यक्तिगत शैली-भेद भी स्थापित कर लेती है। हृदय की संवेदनशील वृत्तियाँ विशिष्ट छंद, स्वर, गति, प्रवाह तथा ध्वनि के आधार पर मूर्त होकर पदरचना में सौष्ठव ला देती हैं। शब्दों में नाद-सौन्दर्य आ जाता है। वे कभी कोमलता, मधुरता, सरलता और कभी पौरुषता में बंधकर थिरक उठते हैं। संवेदनात्मक वृत्तियों की यह अभिव्यक्ति-शैली सामान्यत: 'पद्य' कही गई है। दूसरी ओर चिंतन, जटिल समस्याओं के बौद्धिक समाधान, तर्कों कीशृंखला, विचारों के क्रम, नियमों की मार्यादा तथा सूक्ष्मता की सीमाओं में बँधकर मूर्त होता है। शब्द-रूपों में संयम आ जाता है। वाक्य-रचना में अर्थ-तत्त्वों की स्थिति-बोध के लिए संबंध तत्त्वों की परंपरा-विहित प्रणाली का अनुसरण किया जाता है। चिंतन की छंद मुक्त अभिव्यक्ति-शैली को सामान्यत: 'गद्य' कहा जाता है।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि "कवियों की कसौटी है गद्य और गद्य की कसौटी है-निबंध।"[2] इस दृष्टि से अगर हिन्दी-मैथिली कवि कीर्तिनारायण मिश्र पर विचार किया जाय तो स्पष्ट होता है कि इनकी काव्यात्मक प्रतिभा की कसौटी के रूप में ही इनका गद्य सृजित हुआ है, जिसपर ये सर्वथा खरे उतरते प्रतीत होते हैं।

श्री मिश्र के गद्य या कहें तो काव्येत्तर साहित्य भी उनकी कविता की भाँति ही सफल और ख्यात हैं। उन्होंने गद्य की अनेक विधाओं में सृजन कर मैथिली-हिन्दी गद्य को समृद्ध किया है। इनके काव्येत्तर साहित्य के रूप में जिन रचनाओं की प्राप्ति हुई हैं, उन्हें विवेचन की सुविधा के लिए निम्न रूपों में व्यवस्थित किया गया है।

(क)	आलोचनात्मक ग्रंथ	:	1.	अर्थान्तर (2004 ई.)
(ख)	संस्मरणात्मक ग्रंथ	:	1.	स्मृतियात्राक एकांत में (1995 ई.)
(ग)	पत्र-साहित्य	:	1.	पत्रों के दर्पण में (2011 ई.)
			2.	नागार्जुन के पत्र (2015 ई.)
(घ)	संपादित ग्रंथ	:	1.	साक्षात्कार, संस्मरण और स्मरण (2013 ई.)
(ड.)	अनुदित ग्रंथ	:	1.	भारतीय साहित्य के निर्माता-गोपी नाथ कविराज (गोविन्दचन्द्र पांडेय), (2011 ई.)
(च)	संपादित पत्र-पत्रिकाएँ	:	1.	आखर
			2.	परिवेश

कीर्तिनारायण मिश्र की तमाम काव्येत्तर साहित्य की समीक्षा यथाक्रम प्रस्तुत है–

आलोचनात्मक ग्रंथ

अर्थान्तर: 'अर्थान्तर' कीर्तिनारायण मिश्र रचित एकमात्र आलोचनात्मक ग्रंथ है, जिसका प्रकाशन किसुन संकल्प लोक, सुपौल से सितम्बर, 2004 में हुआ। यह ग्रंथ मूल रूप से चार खंडों में विभाजित है, जिसका आरंभ ही आलोचना खंड से हुआ है। इस खंड में संकलित कुल बारह निबंधों के अंतर्गत कविता, अकविता, उपन्यास के साथ मैथिली-साहित्य के भूमंडलीकरण पर गंभीर चर्चा की गई है। इसमें व्यक्तिनिष्ठ समीक्षा का भी समावेश किया गया है, जिसमें किरण, नागार्जुन, राजकमल चौधरी, मायानंद मिश्र तथा सोमदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा की गई है। इस ग्रंथ के एक खंड में मैथिली की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। ग्रंथ के अगले खंड का संबंध मैथिली आंदोलन से है, जिसमें नवयुवकों के आक्रोश, नैतिकता के अंधत्व तथा भाषा की राजनीति पर चर्चा की गई है। इस खंड में बेगूसराय जिले में बोली जाने वाली मैथिली तथा उसके भाषिक स्वरूप एवं इस जिले के मैथिली-आंदोलन में सक्रियता का उल्लेख किया गया है।

यह सर्वविदित है कि आलोचना और कविता दोनों का अपना गहरा अंतर्संबंध है, तथापि दोनों में सफलता अर्जित करना सबके लिए संभव नहीं हो पाता है। अच्छे कवि अच्छे आलोचक नहीं बन पाते हैं, तथा अच्छे आलोचक श्रेष्ठ कविता का सृजन नहीं कर पाते हैं, क्योंकि कविता का संबंध कारयित्री प्रतिभा से है, पर आलोचना में भावयित्री प्रतिभा की अनिवार्यता होती है। तथपि कीर्तिनारायण मिश्र जी इसके अपवाद कहे जा सकते हैं, जिन्हें दोनों जगह समान रूप से सफलता और प्रतिष्ठा मिली है। यह अलग बात है कि साहित्य समाज में उनकी कविता की चर्चा हीं जोरों पर होती रही है। किसी ने उनकी समीक्षात्मक दृष्टिकोण पर विचार नहीं किया, लेकिन जब अब नयी पीढ़ी ने नये सिरे से मिश्र जी के कृतित्व पर विचार किया है, तो उनके कई रूप सामने आए हैं, जिनमें आलोचक रूप कहीं-किसी से कमतर नहीं है।

कीर्तिनारायण मिश्र अपने स्वभाव से मूलत: कवि हैं। परंपरा से पृथक् उनका अपना व्यक्तित्व है, अपनी अस्मिता एवं पहचान है। उनकी काव्ययात्रा 'सीमांत' से आरंभ होती है और 'ध्वस्त होईत शांति स्तूप' पर काव्योत्कर्ष तक यात्रा का विराम लेती है, जिसके लिए उन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्रदान किया गया। वे मूलत: विद्रोही तथा अकविता के अग्रणी कवि हैं। वे नष्ट-ध्वस्त होती हुई भारत तथा मिथिलांचल की गौरवमीय परंपरा के दर्द से आहत हैं। उनकी कविता में वह दर्द सर्वत्र व्याप्त है। साथ ही उनकी आलोचना भी उनकी कविता की अनुगामिनी है। निरपेक्ष, निर्भीक और आक्रामक। आलोचना में आकर मिश्र जी का विस्तृत अध्ययन प्रतिफलित हो सका है। उन्होंने संपूर्ण मैथिली साहित्य को अपने भीतर आत्मसात् कर लिया है। इसके साथ ही हिन्दी, संस्कृत बंगला तथा अंग्रेजी-साहित्य का उन्हें व्यापक ज्ञान है। इसलिए उनकी समीक्षा-दृष्टि भी अत्यंत श्रेष्ठ परिलक्षित होता है।

कीर्तिनारायण मिश्र की रचनाधर्मिता वस्तुत: उनकी जीवन-धारा है। कविता हो या आलोचना, वे निरंतर उसी धारा में प्रवाहित होते रहते हैं। उनका मानना है कि "अपटी खेत में बही रहल छथि, बरद जकाँ। श्रेष्ठ साहित्यकारक लेल साहित्यक खेत सर्वदा अपटीए रहैत छै। जोतल खेत में जोतनाइ सहज होत अछि, किन्तु ओ श्रेष्ठ नहि भऽ सकैत अछि।"[3]

उनकी दृष्टि में मैथिली आलोचना भी अभी अपटी (बिन जोते हुए) खेत के समान है। उनका विचार है कि विगत 30-35 वर्ष की अपनी विकास-यात्रा में मैथिली समालोचना ने मात्र प्रतिष्ठा ही अर्जित नहीं की है, वरन् जवानी के उस शिखर पर पहुँच गई है, जहाँ से संपूर्ण साहित्यिक विधा का लेखन तथा गतिविधियाँ अपनी समीक्षा-दृष्टि से देखा जा सकता है। फिर भी वे मानते हैं कि इसमें अभी गंभीर अध्ययन-अनुशीलन से प्राप्त रचनात्मक विवेक उत्पन्न नहीं हो सका है। अभी तक उनमें किसी कवि का आत्मसंघर्ष, जीवनानुभव को सृजनात्मक वैशिष्ट्य तथा शिल्पगत प्रयोग से तादात्मय स्थापित करने की क्षमता का विकास न हो सका है।(4) इस कथन से कवि-आलोचक कीर्तिनारायण मिश्र जी के आलोचनात्मक विचार पर बखूबी प्रकाश पड़ता है।

कीर्तिनारायण मिश्र जी की आलोचनात्मक सफलता का सबसे बड़ा कारण है कि वे रचना के मूल से भलीभाँति परिचत हैं। कवि होने के कारण कविता की रचना-धर्मिता से उनका गहरा जुड़ाव है, जिसका उपयोग वे अपनी समीक्षात्मक दृष्टिकोण की व्यंजना में करते हैं। वे एक जुझारू गोताखोर की भाँति सृजन के तह में घुसकर उसका परीक्षण-निरीक्षण करते हैं। वैसे भी उत्तर-आधुनिकतावादी दृष्टिकोण आलोचना को रचना-केन्द्रित मानने पर जोर देता है। उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रस्तोता ज्याँक देरिदा का मानना है कि रचना बहार से कुछ नहीं होता है, वह लेखक की जीवनी तथा उनकी विशिष्टता आदि को अनावश्यक घोषित करते हैं।(5) उत्तर-आधुनिकतावाद खंड-खंड होती उपभोक्ता वादी नैतिकता का विरोध करता है, किन्तु इसके विरूद्ध उनकी समीक्षा का मानदंड मान्य एवं प्रशंसनीय है। तात्पर्य यह कि सही मायने में आलोचना को रचना-केन्द्रित ही होना चाहिए। मिश्र जी सजग रचनाकार हैं, जो अपने काल की वैश्विक आलोचना-दृष्टि का उपयोग करते हैं।

मिश्र जी ने अपने समय के आलोचनात्मक संघर्ष को भी उद्घाटित करते हैं, जो संघर्ष वर्तमान समय में पुरानी पीढ़ी एवं नई पीढ़ी के मध्य चल रहा था। इस संघर्ष का मूल कारण रहा है कि पुरानी पीढ़ी के आलोचक, लेखक, कवि जहाँ परंपरा से अपने को जोड़े रखना चाह रहे थे, वहीं दूसरी ओर नई पीढ़ी के लोग अतीत की तमाम मान्यताओं-परंपराओं को यथार्थ के चश्मे से देख रहे थे। मिश्र जी की विशेषता है कि वे दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने की पुरजोर कोशिश में जीवनपर्यंत लगे रहे। वे दोनों पीढ़ी की मानसिकता से रू-ब-रू होकर सर्वथा आलोचना की धारा को बीच से निकालना चाह रहे थे।

मिश्र जी एक सहृदय कवि हैं, इस कारण वे कविता के प्रति अत्यंत सकारात्मक तथा प्रगतिशील सोच रखते हैं। उनका मानना है कि कविता कवि की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति होती है।(6) यहाँ हम मिश्र जी के विचार में अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि और आलोचक विलियम वड्र्सवर्थ के विचार प्रतिध्वनित होते पाते हैं। चूँकि उन्होंने भी 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका में लिखा है- "कविता शांत क्षण के हृदय का उद्गार है।"(7) यह अलग सवाल है कि इस मन्तव्य से कविता व्यक्तिनिष्ठ हो जाती है, जबकि टी.एस. इलियट कविता की निर्वैयक्तिकता पर जोर देते हैं। कीर्तिनारायण मिश्र कविता की व्यक्तिनिष्ठता एवं सर्वनिष्ठता में समन्वय स्थापित करते हैं। उनके विचार से- "कविता में जीवानुभूति रचनात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त करता है तथा उसकी जीवनानुभूति संपूर्ण मानव एवं मानवता का साक्षात्कार है।"(8)

रचनाधर्मिता के संदर्भ में उनका विचार स्वानुभूति के यथार्थ से संपृक्त सर्वनिष्ठ अनुभूति है जो सार्वत्रिक एवं सार्वकालिक है। वे कहते हैं कि- "कवि कर्म 'गोताखोरी' थिकैक, सामान्य लोक तट पर ठाढ़ भऽ नदीमे प्रविष्ट होइत अछि, तकर बाद अकल्पित अनुभवक साक्षात्कार होइते ओ गहराई मे डूबल चल जाइत अछि, नापब बिसरि जाइते अछि। ई दूनू प्रक्रिया प्रत्येक क्षेत्रमे घटित होइत छैक। काव्य साधना सेहो साधना थिकैक।"(9)

नवीनता को स्वीकार करने वाले कीर्तिनारायण मिश्र नयी पीढ़ी के कवियों एवं उनकी रचनाओं से भली-भाँति परिचित हैं। हरेकृष्ण झा रचित 'हमरा लेल धनसन' की समीक्षा करते हुए वे लिखते हैं कि- "एहि रचनामे कवि दुर्दशाग्रस्त ग्राम्य जीवन आ मनुक्खक हताशा केर जीवंत चित्र उपस्थित कैलनि अछि।"(10)

समकालीन रचनाधर्मिता के संदर्भ में श्री मिश्र का विचार बहुत ही स्पष्ट है। उनके विचार से आधुनिक कवि न मनीषी हैं और न स्वयंभू। न ही आधुनिक कविता मात्र प्रेरणा से उद्भूत है। उसका उत्स है- आत्मसंघर्ष, इसलिए कविता के समक्ष निरापद मार्ग से चलते हुए समाज में अपने को विशिष्ट मान लेना आत्मप्रवंचना को छोड़कर और कुछ नहीं है।(11)

'अर्थान्तर' के गहन अध्ययन से यही परिलक्षित होता है कि कीर्तिनारायण मिश्र की आलोचनात्मक दृष्टि अत्यंत निर्भीक है। वे मैथिली साहित्य की पृष्ठभूमि से बखूबी परिचित हैं। वे हिन्दी के ख्यात कवि नागार्जुन की समीक्षा करते हुए कहते हैं- "संस्कार

पूर्वाग्रहे छल जे हिन्दीक नागार्जुनकेँ प्रगतिशील आंदोलन सँ संबद्ध एक महान जनकवि होइतो मैथिलीक यात्री प्रगतिवादी- मार्क्सवादी कंबल ओढ़ने एकटा कर्मकांडी पंडित बुझना जाइछ, जकर आंचलिक संकीर्णता भारतीयतामे परिणत भऽ गेलैक मुदा ओ कोनो क्रांतिक जन्म नहीं दऽ सकल।"[12]

वे मानते हैं कि 1958 ई. में राजकमल चौधरी के 'स्वरगंधा' के प्रकाशन से मैथिली की कविता में एक मोड़ आया। 'स्वरगंधा' के विश्लेषण के क्रम में वे लिखते हैं- "संस्कारमुक्त, अनुभवसंपन्न राजकमल स्वरगंधा केर अनेक कविता मे समाजोन्मुख यथार्थवाद, आंतरिक यौन-संघर्ष, बाहरी वर्ग-संघर्ष एवं व्यक्ति विद्रोहक 'अहं' वस्तुगत चेतना एवं विज्ञान-सम्मत आधुनिकता केर लक्षण प्रकट भेल। कविताक विकासयात्रा केर 'स्वरगंधा' प्रारंभ छलै।"[13] इस तरह हम पाते हैं कि कीर्तिनारायण मिश्र को मात्र अपनी ही रचना-प्रक्रिया का बोध नहीं है, वरन् वे दूसरे की रचना में भी उसी प्रकार प्रवेश कर विश्लेषण और मूल्यांकन करने में समर्थ हैं।

मैथिली समालोचना की दशा और दिशा के संबंध में मिश्रजी के विचार अप्रिय होते हुए भी यथार्थपरक प्रतीत होता हैं। वे मानते हैं कि मैथिली आलोचना-दृष्टि पर हिन्दी आलोचना का प्रभाव है। फिर भी वे मैथिली की मौलिकता का पक्ष कमजोर नहीं होने देते हैं।

वे स्वीकार करते हैं कि आधुनिक मैथिली साहित्य को समृद्ध करने में डॉ. कांचीनाथ झा 'किरण', बैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' तथा राजकमल चौधरी का महत्त्पूर्ण योगदान है। इन्होंने मैथिली साहित्य के तमाम विधाओं को समृद्ध बनाने में अपनी कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा का उपयोग किया है।

संस्मरणात्मक ग्रंथ

स्मृतियात्राक एकांत में :- इस ग्रंथ का प्रकाशन सन् 1995ई. में दीपावली के दिन किसुन संकल्प लोक, सुपौल से हुआ था। संस्मरण विधा में 'स्मृतियात्राक एकांत में' की अपनी विशिष्ट महत्ता है, जिसका विवेचन और समीक्षा की जाएगी, पर यहाँ विधा के रूप में संस्मरण संबंधी अवधारणाओं और मान्यताओं का उल्लेख करना अपेक्षित है। "संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमान के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है, जो विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमान को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषयी दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णतः तटस्थ नहीं रह पाता। वह अपने 'स्व' का पुनः सर्जन करता है।[14]

हिन्दी साहित्य में संस्मरण एक परिपक्व विधा के रूप में स्थापित हो चुका है, तथापि मैथिली भाषा और साहित्य के लिए यह नयी साहित्यिक विधा है। इधर कुछ रचनाकारों ने इस विधा में अपनी रूचि दिखाई है, जिसमें कीर्तिनारायण मिश्र का नाम सर्वोपरि है। श्री मिश्र ने 'स्मृतियात्राक एकांत में' शीर्षक ग्रंथ की रचना कर इस विधा को समृद्ध किया है। आलोच्य ग्रंथ में कुल 35 संस्मरण संकलित हैं, जो 'मिथिलाक ज्योति-स्तंभ म.म. डॉ. श्री उमेश मिश्र' से लेकर 'हमर विदेश यात्रा' (सिंगापुर) तक में अनेक ख्यातिलब्ध साहित्यकार, समाजसेवी, देशसेवी तथा आत्मीय जनों से संबद्ध यादें संकलित हैं। इस पुस्तक के अधिकांश संस्मरण व्यक्तिक विशेष पर आधारित हैं। कुछ ही संसमरण ऐसे हैं, जिनमें लेखक ने अपने वैयक्ति अनुभूतियों को साहित्यिक रूप दिया है। यथा- ड्योढ़क माछ, अनेर ढाही लैत, हमर विदेश यात्रा आदि।

'महामहोपाध्याय डॉ. श्री उमेश मिश्र' से संबंधित संस्मरण से कृति का आरंभ करना लेखक के मूल्य को और भी अधिक बढ़ा देता है, चूँकि डॉ. उमेश मिश्र मिथिला की आधुनिक शास्त्रीय परंपरा के पर्याय माने जाते हैं। मिथिलावासी निश्चित रूप से इनसे परिचित हैं। इस संस्मरण के बहाने जो प्रश्नोत्तर शैली में डॉ. मिश्र की वाणी प्रकट हुई है, वह एक-एक वाणी सूक्ति के समान प्रतीत होता है। इसकी एक बानगी देखी जा सकती है- "अपन समाज एखनहुँ बड़ पछुआयल अछि। कल्पनाशक्ति एवं कार्यशक्ति मे सामंजस्य नहि छैंक। लोक एखनहुँ निद्रामे छथि। कर्मठता आ तत्परताक अभाव छैक। भाषा-साहित्यक विकास एहि तरहे संभव नहि। आन-आन भाषा-भाषी, ओकर संस्थान, विद्यार्थीगण तथा साहित्यकारमे उत्साह छनि से मैथिली भाषीमे नहि। अपन समाज एखनहुँ छिन्द्रान्वेष तथा रागद्वेषमे लिप्त अछि।"[15]

इस प्रकार म.म. डॉ. उमेश मिश्र में निहित ब्राह्मणोचित आचार तथा निष्ठा की प्रसंशा की गयी हैं इस संस्मरण में। कीर्तिनारायण मिश्र जी उनके बारे में बाताते हैं कि "व्याकरण-वेदांत आ नव्यन्यायक प्रख्यात विद्वान् पिताश्राद्दर्शनक अधिकारिक विद्वान एवं व्याख्याता तथा भारतीय दर्शनक लेखकक रूप में हुनक ख्याति छलनि।"(16)

साहित्यकारों के रूप में कीर्तिनारायण मिश्र ने राजकमल चौधरी पर संस्मरण लिखा है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे अपने जीवन, अपने चर्या, अपनी झूठ, अपने साँच, अपने विवाद तथा अपनी सक्रियता के लिए कुख्यात थे। मिश्र जी उनसे आत्मीय रूप से जुड़े हुए थे। वे उनके जीवन की अनेक घटनाओं के साक्षी थे। वे इस संस्मरण में कहते हैं- "ओना तऽ, सौसे देशमे सिद्धांत-व्यवहार अथवा कथनी-कहनीमे कहतहु साम्य नहिं भेटल, किन्तु मैथिल समाजमे एकर स्थिति कनेक भिन्न छैक। एतऽ एहि वैषम्य पर आदर्श, सच्चरित्रता, उदारता, कृपा आदिक तहगर लेप चढ़ल रहैत छैक। खैनी, बीड़ी, सिगरेट, भाँग, गाँजा, प्रायः अधिकांश लोक खाइत-पिबैत छथि। छोट-पैघ बीच सँ कनेक मर्यादाक झालड़िकेँ हटा देल जाय तऽ एहि सामाजिक स्वीकृति प्राप्त निशांक प्रति कतहु विरोध-भाव नहि भेटत। मुदा, दारू आ सेक्स!"(17)

राजकमल चौधरी, जिसे हम मैथिली साहित्य का 'आबारा मसीहा' कह सकते हैं, उसके जीवन के कई अनछुए पहलुओं का उद्घाटन कर लेखक ने उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को नये रूपों में पाठकों के समक्ष लाया है। अक्सर लोग संस्मरण विधा में स्मृति व्यक्तियों की प्रशंसा ही करते हैं, पर कीर्तिनारायण मिश्र ने इस परंपरा का निषेध करते हुए उनके जीवन के दुर्बल संदर्भों का भी उद्घाटन कर दिया है। कहा जाता है कि राजकमल चौधरी जी के हिन्दी-मैथिली लेखन पर प्रश्न-चिह्न लगाने की हिम्मत किसी में नहीं थी, पर इस संस्मरण में हम कीर्तिनारायण मिश्र जी की हिम्मत को देख सकते हैं।

वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' के प्रति लेखक की भक्ति-भावना प्रशंसनीय है, क्योंकि उन्होंने यात्री जी से संबंधित संस्मरण का जो शीर्षक दिया है- "हमर पिता, गुरु आ मित्र यात्री जी" वह अद्भुत है। यह उनके प्रति लेखक के सम्मान की पराकाष्ठा है। कीर्तिनारायण मिश्र की ख्याति फैलाने में सर्वाधिक योगदान यात्री जी का है। उनके ही प्रयास से श्री मिश्र पटना में अनेक लेखकों, कवियों से परिचित हुआ और फिर विस्तृत साहित्य जगह में अपनी प्रतिभा का आलोक फैलाया।

इस संसमरण में लेखक ने यात्री जी के प्रति अपनी आत्मीयता को प्रकट किया है। लेखक की समस्त सृजनात्मकता के प्रेरक है यात्री जी। कीर्तिनारायण मिश्र जी उनके महत्ता को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि "बिहार केँ खास कऽ मिथिला केँ हुनक जन्म-भूमि होयबाक सौभाग्य प्राप्त छैक। विद्यापतिक बाद पछिला पाँच सौ वर्षक इतिहासमे ओ पहिल कवि छथि जे बिहारक बाहरो, देश-विदेशक अधिकांश भागमे एतेक व्यापक रूपमे पढ़ल-गुनल जाइत छथि। साम्यवादी-समाजवादी देश सभक साहित्यक माहोलमे तऽ ओ चर्चाक विषय रहितहि छथि, पूँजीवादियों आ बुद्धिजीवी वर्ग तथाकथित तेसर विश्वक शोषण-पीड़न आ जनमानसक बूझक लेल हुनक रचना पढ़ैत छथि। संसारक विभिन्न देश सँ आयल साहित्यिक, सांस्कृतिक प्रतिनिधि वर्गक संपर्कमे अएनिहार व्यक्ति सभ केँ ई अनुभव बराबरि होइत होयतनि।"(18)

यात्री जी वस्तुतः मिथिलांचल के गौरव थे, जिन्होंने अपनी बहुआयामी साहित्यिक प्रतिभा के आलोक से हिन्दी तथा मैथिली साहित्य को समान रूप से समृद्ध किया है। उनकी रचनाओं में जिस यथार्थ का अंकन प्रस्तुत हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। एक तरह से कहें तो वे आधुनिक मैथिली साहित्य के लिए पारस पत्थर हैं, जिसका स्पर्श पाकर मैथिली साहित्य अमूल्य बन सका है। उन्होंने इस भाषा साहित्य को परंपरावादिता से मुक्त कर प्रगतिवाद के ठोस धरातल पर स्थापित किया। ऐसे कालजयी रचनाकार से संबद्ध स्मृतियों के उद्घाटन से संस्मरण विधा की चमक बढ़ गयी है। मिश्र जी ने पूरी इमानदारी और सच्चाई के साथ अपनी स्मृति में संचित भाव को प्रकट कर कवि नागार्जुन/यात्री को पाठकों के समक्ष लाने की सफल कोशिश की है।

इसी प्रकार वे जीवकांत एवं सोमदेव पर विलक्षणता से अपनी बात कहते हैं। ये दोनों रचनाकार चिरकार तक पाठक के मन-मस्तिष्क पर अपना प्रभाव जमाए रखा है, तथापि इन लेखकों के व्यक्तित्व के कई अनछुए पहलू हैं, जिन्हें पाठक वर्ग नहीं जानते हैं। कीर्तिनारायण मिश्र ने इन लेखकों के जीवन और सृजन का से संबद्ध अनेक ज्ञात-अज्ञात संदर्भों का उद्घाटन कर पाठकों की जानकारी को परिपक्व बनाया है।

इस पुस्तक में 1967 ई. में सुपौल में आयोजित नवकविता विषयक द्विदिवसीय संगोष्ठी की चर्चा के बहाने अनेक रोचक तथा मार्मिक संदर्भों को उद्घाटित किया गया है। यह सेमिनार इस कारण भी चर्चित हुआ, क्योंकि यह राजकमल चौधरी जैसे प्रतिभाशाली

कवि-लेखक के जीवन का यह अंतिम सेमिनार सिद्ध हुआ। इस सेमिनार में उपस्थित जीवकांत, कीर्तिनारायण मिश्र, रमानंद रेणु समेत तद्युगीन अनेक कवि सम्मिलित हुए थे। इसी संगोष्ठी के प्रतिफल के रूप में 'आखर' नामक पत्रिका का संकलन-संपादन प्रारंभ हो सका। अतएव, इस सेमिनार का महत्त्व कई मायने में है, जिसे लेखक ने बखूबी उद्घाटित किया।

"कीर्तिनारायण मिश्र जी अपनी सृजनशीलता के आरंभ से ही अपनी कविता के माध्यम से कई प्रयोग कर चुके थे। ऐसे कवि जब गद्य में उतरते हैं तो उनके साथ दो भावधाराएँ समानांतर चलती हैं। प्रथम भावधारा है- उनके हृदय की मृदुलता और तरलता। दूसरी भावधारा है- गद्य के प्रति सर्तकता एवं चौकस दृष्टि। कीर्तिनारायण मिश्र की विशेषता है कि वे अपनी दोनों भावधाराओं में सदैव सामंजस्य बनाए रखा है।"[19]

यह सर्वविदित है कि मैथिली भाषा में संस्मरणों की रचना बहुत कम हुई है। ऐसी स्थिति में आलोच्य ग्रंथ 'समृतियात्राक एकांतमे' मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। यह इस विधा की अत्यंत सशक्त कृति है, जिसमें मैथिली के अनेक दिग्गज लेखकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विस्तृत, मनोहर एवं अनुपम चित्र प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी गद्य साहित्य, पृ. 03
2. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 312
3. कीर्तिनारायण मिश्र, अर्थान्तर, (भूमिका से)
4. वही, (भूमिका से)
5. डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ. 106
6. कीर्तिनारायण मिश्र, अर्थान्तर, पृ. 48
7. देवेन्द्रनाथ शर्मा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ. 95
8. कीर्तिनारायण मिश्र, अर्थान्तर, पृ. 56
9. वही, पृ. 65
10. वही, पृ. 33
11. वही, पृ. 97
12. वही, पृ. 58
13. वही, पृ. 87
14. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी गद्य साहित्य, पृ. 528
15. कीर्तिनारायण मिश्र, स्मृतियात्राक एकांत में, पृ. 19
16. वही, पृ. 20
17. वही, पृ. 178
18. वही, पृ. 47

निराला का साहित्य एवं कला-संबंधी दृष्टिकोण

डॉ० शर्मिला कुमारी

अल्लपट्टी (नियर कल्पना रेस्ट हाउस), पो.-डी.एम.सी.एच., दरभंगा
जिला-दरभंगा (बिहार)

साहित्य के सम्बन्ध में, 'प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन फैजाबाद' के अधिवेशन में टण्डनजी के भाषण का जवाब देते हुए निरालाजी ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द कहे हैं, "साहित्य दायरे से छूटकर ही साहित्य है, साहित्य वह है जो साथ है, वह जो संसार की सबसे बड़ी चीज है। साहित्य लोक से-सीमा से प्रान्त से-देश से-विश्व से ऊँचा उठा हुआ है। इसीलिए वह लोकोत्तरानन्द दे सकता है। लोकोत्तर का अर्थ है, 'लोक' जो कुछ देख पड़ता है, उससे और दूर तक पहुँचा हुआ। ऐसा साहित्य मनुष्यमात्र का साहित्य है, भावों से, केवल भाषा का एक देशगत आवरण उस पर रहता है।"[1] निरालाजी इसीलिए साहित्यकार को राजनीतिज्ञ, धर्मशास्त्री या समाजसुधारक से बहुत ऊँचा मानते हैं।

'साहित्य का आदर्श', 'साहित्य का विकास', 'हमारा वर्तमान काव्य', 'साहित्य और जनता', 'समस्यामूलक साहित्य', 'साहित्य का चरित्र' आदि निबन्धों में आपने साहित्य-सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर विचार किया है। आपने साहित्य को व्यापक मानवीय आधार पर प्रतिष्ठित करने पर बल दिया है। आपने साहित्य में सत्य की प्रतिष्ठा का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है- "सत्य वही है जो मनुष्य मात्र में है। ज्ञान में हिन्दू-मुसलमान नहीं। विस्तार ही जीवन है। फैलकर अपनी प्रतिभा, कर्म, अध्ययन, उदारता से समस्त ब्रह्माण्ड को अपनाना चाहिए। साहित्यिक उत्कर्ष और मुक्ति का यही मार्ग है।"[2] लगभग यही बात आपने 'हमारा वर्तमान काव्य' शीर्षक निबन्ध में कही है। आप की दृष्टि में 'साहित्य की आत्मा काव्य है और काव्य की आत्मा पूर्णता।' यह पूर्णता सारे भेदों से ऊपर उठकर मनुष्यता को अपनाने से ही प्राप्त हो सकती है। आप कहते हैं- "यह आज हमारे सामने एक दूसरा ही प्रश्न साहित्य के भीतर से हल होने के लिए आया है। वह है प्रसार, इतना कि समस्त विश्व के मनुष्य हमारी मनुष्यता के दायरे में आ जायें, हर तरह कर्म, वाणी और मन से भी। यही क्रिया हमें संसार के मनुष्यों की आँखों में उठा सकती है। यही क्रिया हमारे काव्य में हो चली है।"[3] स्पष्ट है कि निरालाजी साहित्य में 'पूर्णता' और 'सत्य' को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं और यह 'सत्य' तथा 'पूर्णता' मनुष्यता का ही पर्याय है। इस 'मनुष्यता' का दायरा इतना बड़ा है कि देश और काल की सीमाओं से उत्पन्न सारे भेद यहाँ समाप्त हो जाते हैं। साहित्य की यह मनुष्यधर्मिता ही उसे राजनीति, समाज-सुधार, अर्थनीति, तथा धार्मिक भेदभाव से ऊपर उठाकर विश्वजनीन बनाती है।

निरालाजी 'काव्य-कला' को सौन्दर्य की पूर्ण सीमा मानते हैं। वह केवल वर्ण, शब्द, छन्द, रस, अलंकार या ध्वनि के पृथक् सौन्दर्य में सीमित नहीं हो सकती। उसका सौन्दर्य इन सभी के सामंजस्य में है। जैसे फूल की पूरी कला के लिए 'जड़, तना, डाल, पल्लव और रंग-रेणु-गंध सभी कुछ अपेक्षित हैं वैसे ही काव्य-कला के लिए शब्द, रस, ध्वनि, अलंकार, छन्द आदि सभी कुछ आवश्यक हैं।'[4] निरालाजी ने अपनी कल-कृतियों में कला की इस पूर्णता का सदैव ध्यान रखा है। इस पूर्णता की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए मूर्ति-विधान आवश्यक है। निरालाजी के शब्दों में- "प्रायः सभी कलाओं के लिए मूर्ति आवश्यक है। अप्रतिहत मूर्ति-प्रेम ही कला की जन्मदात्री है, जो भावना-पूर्ण सर्वांगसुन्दर मूर्ति खींचने में जितना ख़तविद्य है, वह उतना बड़ा कलाकार है।"[5] निरालाजी ने अपनी समीक्षाओं में भी पूर्ण चित्र-अंकन की शक्ति को ही सराहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता उन्हें इसलिए अच्छी लगती है कि उसमें 'चित्रों में जीवन की स्फूर्ति' मिलती है। तुलसी की महत्ता उन्हें इसलिए मान्य है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म गतियों और चेष्टाओं का अंकन करने में वे किसी से भी 'ऊन' नहीं है।

स्वयं अपनी कला का विवेचन करते हुए भी 'निरालाजी' ने रूप-चित्र की पूर्णता पर ही बल दिया है।

आवृत-सरसी-उर-सरसिज उठे :
केसर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण शस्य अंचल पृथ्वी का लहराया-
सखि वसंत आया!

उपर्युक्त कविता की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं- "सरसी के हृदय के ढँके हुए कमल उठ आये, कली के केसर के केश छुट गये; पृथ्वी का स्वर्ण शस्यांचल लहराने लगा।" सरसी, कली और पृथ्वी च्मतेवदपपिमक (स्त्री रूप में निर्वाचित) हैं। पहले तीनों का अलग-अलग सौन्दर्य देखिये। "सरसी के हृदय के ढंके हुए कमल उठ आये (अश्लीलता वर्जित इंगित है-स्पष्ट है-सरसी नवयौवना हो गयी), कली के केसर के केश छुट गये (स्पष्ट है कि कली खुल गयी, -यह यौवन का स्पष्टीकरण है, पुनः कली के रेणु-मिश्रित बाल देख पड़ते हैं, उसका मुँह मधु की ओर है, संसार की ओर वह पीठ किये हुए हैं, यह उसकी पवित्रता की छवि है), पृथ्वी का सोने सा चमकता शस्यांचल लहराने लगा। इन तीनों मूर्तियों के सौन्दर्योपकरण अलग-अलग हैं। अब, सरसी, कली, और पृथ्वी को निकालकर इन्हीं उपकरणों से बनी एक वसन्त-प्रख्रति-स्त्री को देखिए, पूरा रूप बन जायगा।"[6] कहना न होगा कि निराला की दृष्टि में काव्य-कला की सार्थकता जीवन की स्थितियों और गतियों के पूर्ण एवं रमणीय मूर्ति-विधान में ही है।

निरालाजी काव्य को सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त देखने के अभिलाषी थे। वे काव्य की मुक्ति में मनुष्य की मुक्ति-चेतना की झलक पाते थे। वैदिक कविता उन्हें इसीलिए मनोहर लगती थी कि उसमें किसी प्रकार के बन्धनों को स्वीकार नहीं किया गया है। वह कविता एक वीर्यवान जाति के स्वतंत्र जीवन के सहज संगीत के रूप में रची गयी है। वे आधनिक हिन्दी कविता को भी इसी प्रकार छन्द आदि के बंधनों से पूर्णतः मुक्त करना चाहते थे। 'परिमल' की भूमिका में वे लिखते हैं- "साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति-प्रयास का पता चलता है। धीरे-धीरे चित्र-प्रियता छूटने लगती है। मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि में विहार करना चाहता है।"[7] कहना न होगा कि यह सक्त होने की भावना 'निराला' के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है। यही विशेषता उनके समूचे साहित्य में व्याप्त है। वे कहीं बँध नहीं सके। सामंजस्य में सौन्दर्य देखनेवाले 'निराला' साहित्य में तो मुक्ति और बन्धन में सामंजस्य-योग घटित करने में सफल हो सके, किन्तु जीवन में यह योग घटित न हो सका। जीवन के बंधनों को तोड़कर वे मुक्त तो हो गये, किन्तु वह मुक्ति उनके लिए महँगी पड़ी। जड़-बन्धनों को महत्त्व देने वाला समाज इस विराट्-मुक्त पुरुष को न पहचान सका और 'निराला' का व्यक्तित्व और एक हद तक उनका साहित्य भी अपरिभाषित रह गया। किसी के लिए वे बहुवस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा के धनी, किसी के लिए महाप्राण, किसी के लिए क्रान्तिकारी चेतना के अग्रदूत, किसी के लिए आत्महन्ता और किसी के लिए अपराजेय पौरुष के मूर्त रूप बनकर रह गये।

'निराला' का निबन्ध साहित्य वैविध्यपूर्ण है। इसमें साहित्य का विवेचन है। अपनी और अन्यों की कला की व्याख्या है। साहित्य के अंगों का निरूपण है। भाषा सम्बन्धी प्रश्नों का विश्लेषण है तथा युग-चेतना को उद्वेलित करने वाले अनेक गंभीर प्रश्नों का निर्वचन भी है। निराला ने 'संस्मरण', 'विवाद', 'इन्टरव्यू' आदि विधाओं को भी इसी के भीतर समाविष्ट कर लिया है। ये निबन्ध किसी निश्चित योजना के आधार पर नहीं लिखे गये हैं। गद्य की विधाओं की कलात्मक मर्यादा के अनुसार ये अलग-अलग भी किये जा सकते हैं। आज 'इण्टरव्यू', 'संस्मरण' आदि को पृथक् मर्यादा प्राप्त हो गयी है। सामान्यतः इन्हें निबन्धों के परिवार में ही सम्मिलित किया जाता है। 'निराला' जी के 'साहित्य' और 'काव्य' सम्बन्धी विचारों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त जो विचार उनके निबन्धों में व्यक्त हुए हैं, उनमें दो बातें प्रधान हैं-साहित्यकार की प्रतिष्ठा और सामाजिक रूढ़ियों का तिरस्कार। हिन्दी-भाषा का प्रबल समर्थन भी निरालाजी के निबन्धों में एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। उनके निबन्ध मूलतः विचारात्मक हैं, किन्तु उनमें भावात्मक चित्रों एवं आलंकारिक गद्य-विधान की भी कमी नहीं है। इन निबन्धों में 'निराला' जी का व्यक्तित्व पूर्णतरू व्यजिंत हुआ है। उनकी निर्भीकता, ख़ढ़ता, मुक्तता, कलानुराग, दार्शनिकता और राष्ट्र-प्रेम कहीं उनके विचारों के प्रेरक बनकर और कहीं उनके व्यक्तित्व की भंगिमा के अंग बनकर साकार हो उठे हैं। 'निराला' जी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी ख़ढ़ता है। यह ख़ढ़ता उनके विचारों को आकर्षक बना देती है। उनका अध्ययन उनके कथन को विश्वसनीय बना देता है। इन दृष्टि से निरालाजी के निबन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनके साहित्य संबंधी विचारों को समझने के लिए निबंध का अध्ययन-मनन अपरिहार्य है।

'निराला' जी 'रवीन्द्र कविता कानन' तथा 'पंत और पल्लव' इन दो कृतियों में आलोचकरूप में हमारे सामने आते हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त उनके अनेक समीक्षात्मक निबन्ध हैं, जिनमें उनका आलोचकरूप लक्षित होता है। 'निराला' में कला के मर्म को परखने की अद्‌भुत क्षमता है। वे भाव, भाषा, छन्द, लय, संगीत तथा इनके सामंजस्य से संघटित सौन्दर्य-सृष्टि के मूल्य और प्रभाव को लक्षित करने में प्रवीण हैं, किन्तु उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता सन्तुलन का अभाव है। 'रवीन्द्र' की कविता को मूल बँगला में पढ़कर उसका आस्वादन करने वालों में 'निराला' अग्रणी थे। रवीन्द्र के काव्य-सौन्दर्य को उन्होंने पूर्णत: परखा था। रवीन्द्र के प्रति उनके मन में एक स्पर्धा का भाव है और यह भाव उनकी आलोचना में झलक मार जाता है। 'रवीन्द्र' का मूल्यांकन शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी किया है और अभिभूत होकर किया है। 'निराला' ने उनके महत्त्व को सहज भाव से स्वीकार करते हुए भी उनकी दुर्बलताओं की ओर इंगित किया है और स्वयं वह देने की चेष्टा की है जो रवीन्द्र में नहीं है। 'पंत की आलोचना' उन्होंने क्षुब्ध मन से की है। 1934 ई. में पंत की 'ज्योत्सना' के सम्बन्ध में विचार करते हुए जिस 'निराला' ने लिखा था- "श्री सुमित्रानन्दन पंत की 'ज्योत्स्ना' भी मैंने देखी है। वे जैसे प्रतिभाशाली सुकुमार कवि हैं, 'ज्योत्स्ना' उनके अनुरूप ही है। काव्य और विचार दोनों का उत्ख्रष्ट सामंजस्य इसमें हैं।"[8] वही 'निराला' 'पंत और पल्लव' (1949 ई.) में लिखते हैं- "यह दोष पंतजी की तमाम कविताओं में है और यह केवल इसलिए कि वह पंक्ति-चोर हैं, भाव-भण्डार के लूटनेवाले डाकू नहीं। छकने के लिए एक चुल्लू से ज्यादा नहीं चाहते, शायद हज्म न कर सकने का खौफ करते हैं।"[9] आलोचक के रूप में 'निराला' का यह असन्तुलन उनकी स्थायी वृत्ति नहीं है। जहाँ कहीं वे स्वस्थ चित्त होकर काव्य-सौन्दर्य का उद्‌घाटन करते हैं, वहाँ उनका आलोचक अत्यन्त सजग और संवेदनशील रूप में सामने आता है और उनका मूल्यांकन हमें चकित कर देता है। गोस्वामी तुलसीदास और कवीन्द्र रवीन्द्र की तुलना करते हुए वे कहते हैं- "गोस्वामी जी का काव्य-चमत्कार भक्ति के भीतर से है, वह भक्त कवि हैं। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ मानवीय स्फूर्ति के भीतर से गुजरे हैं, वह केवल कवि हैं। भक्ति के भीतर से गोस्वामी तुलसीदास का जो लक्ष्य रहा, मानवीय स्फूर्ति, सौन्दर्य और भावनाओं के भीतर से वही रवीन्द्रनाथ का। भक्तिरस से परिप्लावित लोकोत्तरानन्द दायक चित्रों के खींचने में तुलसीदास अद्वितीय हैं, अपार सौन्दर्य और विराट चित्रण के भीतर से काव्य और दर्शन का रंग चढ़ाकर चित्रांकन करते हुए सत्य के द्वार तक ले जाने में रवीन्द्रनाथ अद्वितीय।"[10] कहना न होगा कि गोस्वामी तुलसीदास और कवीन्द्र रवीन्द्र के काव्य के केन्द्रीय चेतना का यह विश्लेषण अत्यन्त सटीक और सारगर्भित है। मध्यकालीन भक्त कवियों के अतिरिक्त खड़ीबोली के कवियों- अयोध्यासिंह उपाध्याय, महावीरप्रसाद द्विवदी, नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', श्रीधरपाठक, रामचरित उपाध्याय, रामचन्द्र शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, 'प्रसाद', 'पंत', माखनलाल चतुर्वेदी, बालख्रष्ण शर्मा 'नवीन' आदि की जो संक्षिप्त समीक्षा 'निराला' जी ने की है, वह इन कवियों के वैशिष्टड-निरूपण की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक हैं। 'मेरे गीत और कला' शीर्षक से 'निराला' जी ने एक आलोचक की हैसियत से स्वयं अपनी कला का जो विवेचन किया है, वह प्राचीन पद्धति के मर्मी तथा आधुनिक शैली वैज्ञानिक समीक्षा के अग्रणी दोनों ही प्रकार के आलोचकों को चकित कर देने वाला है। यह विवेचन वर्ण-विन्यास- सौन्दर्य, वर्ण-संगीत, काव्यार्थ, पद-विन्यास, शब्द-लालित्य, लाक्षणिक-प्रयोग- वक्रता, रूप चित्र, भावान्विति आदि सौन्दर्य-विधायक तत्त्वों के सूक्ष्म विवेचन पर आधृत है।

संदर्भ

1. प्रबन्ध-प्रतिमा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 258
2. निराला रचनावली-5, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1996 ई., पृष्ठ 492
3. वही, पृष्ठ 493
4. प्रबन्ध-प्रतिमा, पृष्ठ 272
5. निराला रचनावली-5, पृष्ठ 368
6. निराला रचनावली, पृष्ठ 403
7. परिमल की भूमिका, निराला, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1982 ई., पृष्ठ 17
8. सरस्वती, हीरक जयंती अंक, पृष्ठ 664
9. पंत और पल्लव, निराला, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1948 ई., पृष्ठ 15
10. निराला रचनावाली-5, पृष्ठ 475

गुलाम भारत के धार्मिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि

डॉ० प्रज्ञा कुमारी

jktuhfr foKku foHkkx] Mh-lh- dkyst] gkthiqj
ch- vkj- ,- fcgkj fo'ofo|ky;] eqt¶Qjiqj

भारत में अंग्रेजों के पैर 1772 ई. में राजा राम मोहन राय के जन्म के एक वर्ष बाद जमे थे, जब भारत का प्रधान भाग अंग्रेजों के अधीन हो गया था और अधिकांश भारतीय नरेशों को लार्ड बेलेसली की सहकारी संधि मानने को विवश होना पड़ा था। इस सहकारी संधि के परिणामस्वरूप अकबर की आदर्शवादिता से जन्मा और हिन्दू–मुस्लिम सहयोग से पनपता मुगल साम्राज्य तथा भारतीय संस्कृति पतन की कगार पर आ गयी थी। हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक सहयोग पर टिका हुआ अकबर का आदर्शवाद औरंगजेब की कट्टरता का आघात न सह सका। वह ढह गया। औरंगजेब के पास न तो कोई सिद्धांत था और न कोई आदर्श ही। यदि कोई आदर्श था तो अवसरवादिता और वैयक्तिक आत्मसेवा या अहंवाद। लेकिन औरंगजेब के समय तक उसका कट्टरपन मुसलमानों के पक्ष की तुष्टि के लिए समर्थ था और उसकी इस दृढ़ता से एक पक्ष ही दृढ़ रहा। परिणामतः इसके समय तक मुगल साम्राज्य छिन्न–भिन्न न हो सका। फिर भी, अकबर के सामान्य आदर्शवाद की क्रियात्मकता न रही और जन–जीवन अधिकांशतः परम्पराबद्ध हो गया और अल्पांश में विशिष्ट व्यक्ति की अहंभावना द्वारा संचालित मुगल दरबार की तड़क–भड़क और बिलासता ने भी इस अहंभावना को उकसाया। विलासता का अर्थ ही है सत्ता, धन और जीवन का, आनन्द का भोग। इसमें नव–निर्माण की अपेक्षा, निर्मित वस्तु की सजावट की ओर अधिक ध्यान जाता है। जन–जीवन को सुखी बनाने के स्थान में, जीवन को अधिक संस्कृत बनाने का प्रयास होता है। परिणाम यह होता है कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण जनसाधारण तो पीछे रह जाता है और कुछ विशिष्ट व्यक्ति, कुछ दिशाओं में अधिक संस्कृत और शिष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप उन विशिष्ट व्यक्तियों या वर्गों का साधारण सांस्कृतिक जीवन से सम्पर्क छूट जाता है। सामान्य जनगण सभ्यता के प्रतिमानों से वंचित रह जाता है और वह शिष्ट समुदाय से उदासीन हो जाता है। इस प्रकार केवल हवाई आधार पर स्थित संस्कृति किसी दूसरी सभ्यता के वेग को सहन करने में असमर्थ प्रमाणित होती है।

इस तरह, औरंगजेब की मृत्यु के साथ घोर अहंवाद और अवसरवादिता का फैलाव हुआ। उत्तरदायित्व की भावना से दुर्बल होने के कारण और कर्त्तव्य के अभाव में, व्यक्ति की शक्ति जीवन के आनन्दोपभोग और अधिकार प्राप्ति में लग गई। इस प्रकार समाज में आपसी संघर्ष की शुरूआत हुई। इसके साथ ही समाज के शरीर में नाश का विष भी व्याप्त हो गया। अतः सामान्य उद्देश्य और उत्तरदायित्व से हीन समाज में, व्यक्ति ही सब कुछ है और उसकी अपनी भावनाओं की सीमा के बाहर और कुछ भी नहीं। इसी से अपने में केन्द्रित शासक और दरबारी मनमाने खर्च में होड़ करने लगे। इस स्थिति में सब कुछ अनिश्चित–सा हो गया। अतः शासक मनमाना लूटने–लुटाने और स्वयं लूट जाने में खप गये। इस मनोभावना का सहज आदर्श सौन्दर्य और प्रेम हो गया। नारी भौतिक सुख का साधन बन गई। वही अशान्ति और अनिश्चय के बीच एकमात्र उत्साह स्पंदित करने की नियामक बनी । इस प्रकार आदर्श जब व्यक्ति की समस्या और उपभोग तक सीमित रह गया तो उसकी क्रियात्मक शक्ति के लिए व्यावहारिक जगत् में कोई स्थान न रह गया। कला का शुद्ध सौन्दर्यलोक उसका क्षेत्र बना, वह भाव लोक के स्वप्न, प्रेम की मादकता और संगीत की तन्मयता में लीन हो गया।

19 वीं सदी के आरंभिक दौर की सबसे बड़ी समस्या नैतिकता के अभाव की थी। सामान्य जनता से संस्कृति का सम्पर्क टूट चुका था। देश की विविध जातियों और धार्मिक तत्वों को एक सूत्र में बांधनेवाले रचनात्मक तथा क्रियात्मक लक्ष्य का अभाव था और देश आर्थिक ह्रास तथा नैतिक अधःपतन के गर्त्त में गिर चुका था। भारत की अठाहरवीं सदी का नाश अनिवार्य था। इस नाश से आसान बनी परिस्थिति में उन्नीसवीं सदी के आरंभ में भारत का भाग्य–सूत्र एक ऐसी नई विदेशी जाति के हाथ में आया जिसमें इस परिस्थिति को संभालने की क्षमता थी; क्योंकि ये विदेशी व्यावहारिक थे और समय की आवश्यकता को समझते थे। साथ ही ये जनता को लुभावनेवाले भौतिक तथा आर्थिक समृद्धि का दृश्य सामने ला रहे थे । इस जाति के प्रभुत्त्व के साथ, उसकी संस्कृति का प्रभुत्त्व भी बढ़ रहा था। फलतः उन्नीसवीं सदी के इस सांस्कृतिक उथल–पुथल से एक नये गुलाम भारत का पुनः जन्म हुआ।

गुलाम भारत परिवर्त्तन और ह्रास के प्रतीक के रूप में शुरू होता है। सबसे बड़ा परिवर्त्तन तो यह हुआ कि व्यापार के लिए आयी विदेशी जाति यहां के राजाओं के अधिकार छीनती हुई, शासक बन बैठी। इस राजनीतिक परिवर्त्तन के कारण आर्थिक और सांस्कृतिक पतन का वेग और भी बढ़ गया। व्यापारी कम्पनियों ने शासन जमाना शुरू किया और देशी राज्यों के आपसी झगड़ों में हस्तक्षेप करने से उनका राजनीतिक प्रभाव भी बढ़ने लगा । इसके साथ ही, भारतीय व्यापार से उनकी प्रतिद्वन्द्विता भी बढ़ी जिसमें यहां के उद्योग–धंधों का नाश ही हो गया। इस प्रतिद्वन्द्विता में न ठहर सकने के कारण भारत कच्चा माल तैयार कर बाहर भेजने को बाध्य हुआ। इस प्रकार यूरोप की फैक्टरियों की आर्थिक दासता में भारत जा फँसा।

राजनीतिक स्वतंत्रता के अपहरण के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान दोनों के बहुत से अधिकार छिन गये। मुगलों के शासन काल में हिन्दुओं को अत्यन्त सम्मानपूर्ण उच्च पद दिया जाता था। देश के शासन और सैनिक दोनों विभागों में हिन्दुओं का प्रवेश था। लेकिन, अंग्रेज जाति के शासन–रूप में प्रतिष्ठित होने पर यह अधिकार छिन गया। दूसरी बात यह थी कि मुगल शासक भारत में बसने आये थे जिससे यहां के कला–कौशल को प्रोत्साहन मिला, लेकिन ब्रितानी यहां पैसा कमाने आये थे और उनका ध्येय पुनः अपने देश को लौट जाना था।

अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय समाज के उत्तरदायित्व का स्वरूप अधिकतर कुल, जाति और ग्राम–पंचायत तक सीमित था। गांव अपने में पूर्ण और आत्मनिर्भर थे। भारतीय समाज का आधार कृषि प्रधान था जिसपर शासन और शासकों के परिवर्तन का प्रभाव न पड़ता था। एक ओर युद्ध होता था और दूसरी ओर हल चला करता था। लेकिन, अंग्रेजों ने शासन का स्वरूप ही बदल दिया। राजनीतिक स्वतंत्रता के अपहरण के साथ–साथ आर्थिक दासता की बेड़ी भी इसके पांव में पड़ गई। उसकी नीति से भारत के मध्यम वर्ग का व्यापार छिन कर, अंग्रेज जाति की ऐजेंसियों के हाथ में चला गया और भारत के असली मध्यम वर्ग का उन्मूलन हो गया। अंग्रेजों द्वारा प्रवर्त्तित व्यापारिक, आर्थिक और भूमि संबंधी नीतियों से बड़ी विषमता उत्पन्न हो गई। इस बदलाव के कारण इन क्षेत्रों में ऐसे व्यक्ति आये जो पहले से चले आ रहे वर्गों के उत्तराधिकारी न थे। धीरे–धीरे ऐसे वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ जो परम्परा से प्राप्त सच्चे मध्यवर्ग से बहुत दूर था। इस वर्ग का जन्म ब्रिटिश जाति की कृपा से हुआ था। फलतः वह इस नवीन जाति की ओर जितना झुका था और उसकी कृपा–कोर का जितना अभिलाषी था उतना ही अधिक यह भारतीयता से अपरिचित था। सांस्कृतिक दृष्टि से अंग्रेजी शासन का महत्व इस खोखले मध्यवर्ग की उत्पति में था जिसका कि देश के आर्थिक, सामाजिक जीवन के विकास में कुछ भी योग नहीं था जो देश की सामान्य जनता और जीवन की वास्तवकिता से बहुत दूर, अपने घेरे में नौकरी पेशा बना बैठा था।

अठाहरवीं शताब्दी तक भारत शास्त्रों से शासित था। व्यक्ति के लिए कर्मकांड का पालन आवश्यक था। समाज धर्ममूलक था। आदर्शवादिता, आध्यात्मिकता और पारलौकिकता भारतीयता मानी जाती थी। उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज का यह स्वरूप स्थिर न रह सका। मध्यवर्ग की निराशा और अभावों के कारण तथा शास्त्र–सम्मत सामाजिक मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों के अभाव से एक संकट का जन्म हुआ। यूरोपीय संस्कृति विज्ञान का सहारा लेकर बड़े वेग से आगे बढ़ रही थी और दस्तकारी तथा हस्तलाघव पर आश्रित भारतीय संस्कृति इसकी प्रतिद्वन्द्विता में नहीं ठहर रही थी। विज्ञान की उन्नति ने वास्तविक को अधिक तर्क और विवेचनशील बना दिया और मनुष्य अपने को सबसे ऊपर और अलग मानने लगा। व्यक्तिवाद की धारा धीरे–धीरे उन्नीसवीं सदी के राजनीतिक विधानों में प्रवृष्ट हुई। लेकिन भारतीय संस्कृति में व्यक्ति का अधिक महत्त्व न था। वह समाज का अंग था। उसकी अलग सत्ता का अधिक मूल्य न था। उसके लिए सबसे अधिक महत्त्व

की वस्तु थी, कुल और अपनी जाति। इस प्रकार, एक ओर व्यक्ति प्रधान था और दूसरी ओर जाति। यूरोपीय अधिकारों पर बल देते थे; किन्तु, भारतीय अधिकार से अधिक कर्तव्य पर जोर देते थे।

इस प्रकार, एक ओर व्यक्ति केन्द्र में था और दूसरी ओर जाति। एक ओर अधिकार, दूसरी ओर कर्त्तव्य। एक ओर भौतिकतावाद और दूसरी ओर आध्यात्मवाद। एक ओर विज्ञानवाद था तो दूसरी ओर मनुष्य के हाथों की शक्ति। इस प्रकार एक ही देश में दो धाराएं एक बिन्दु पर मिल रही थीं। ये दोनों विभिन्न संस्कृतियां एक दूसरे की पूरक बन सकती थीं; लेकिन ऐसा न हो सका। क्योंकि यह दो विभिन्न धाराओं की टक्कर थी जिसकी सबसे पहली घटना नन्दकुमार की फाँसी थी। कम्पनी के शासन के लिए 'रेगुलेटिंग ऐक्ट' के माध्यम से भारत में पश्चिमी व्यवस्था का न्यायालय जिसमें विधि का शासन, बिधि की समानता और नयी शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात हुआ था– जाति और कुल की जगह जहां व्यक्ति की मर्यादा स्थापित करने की बात थी– ब्रिटिश न्याय व्यवस्था द्वारा नन्द कुमार की फांसी की घोषणा के विरूद्ध कलकत्ता में दंगा इसलिए हुआ कि ब्राह्मण को सामान्य नागरिक के समान न्यायालय में बुलाया गया था। स्पष्टतः यह सामाजिक संघर्ष परम्परावादी सामन्ती भारतीय समाज और सुधार, पुनर्जागरण एवं औद्योगिक व्यवस्था सम्पन्न ब्रिटिश समाज के बीच था। अंग्रेज भारत में लुटेरे बनकर आये थे। इसीलिए वे भारतीयों को बर्बर और जंगली समझते हुए आदर और सम्मान देने में असमर्थ थे। इसका कारण था अंग्रेज जाति का भारतीय संस्कृति से परिचय उच्च विद्वान और विचारशील व्यक्तियों द्वारा नहीं हुआ वरन् भारतीयता से उनका परिचय राजनीतिक क्षेत्र के बीच हुआ और राजनीतिक क्षेत्र में दोनों ओर ऐसे व्यक्ति थे जिनका चरित्र ऐसा न था जिसके प्रति श्रद्धा होती। दोनों ओर राजनीतिक दाव–पेंच में पटु लोग थे, जिनका जरा भी ध्यान सामान्य जनगण के प्रति न था। इसलिए, शासक जाति अपनी बेईमानी और बुराइयों को सारी संस्कृति की विशेषता बताने लगी।

राजनीतिक पराजय के कारण भारतीयों में हीन भावना का जन्म हुआ। एक ओर प्राचीनता के पोषकों ने योरोपीय संस्कृति से अपना अलगाव दिखलाया तो दूसरी ओर, प्राचीनता के विरोधियों ने चाटुकारिता प्रदर्शित कर अंग्रेजों के आदर का पात्र बनने का प्रयास किया। यह दूसरा वर्ग नवीन मध्यवर्ग का था जिनकी कोटियां अंग्रेजों की कृपा से मिल रही थी, जो भारतीयता के मूल स्रोत से अलग था और इसकी विशेषता थी अपने समाज, धर्म और संस्कृति की पूर्ण अनभिज्ञता तथा योरोपीय संस्कृति की अंधभक्ति। अंग्रेजी शिक्षा–दीक्षा ने इस वर्ग पर अंग्रेजियत और मानसिक दासता का रंग और गहरा कर दिया। उनकी शिक्षा का उद्देश्य था कि भारतीय क्लर्क बनें। स्वतंत्रता की भावना उनमें नहीं जगे। वह अंग्रेजों के सुझाए रास्ते पर चलें और उनको अपना गुरू मान लें। फलतः ऐसी शिक्षा के रोग से हम अपने को बचा नहीं सके। युवक वर्ग ने अपने को भारतीय समाज और परम्परा से अलग कर हंसते हुए योरोपीय सांस्कृतिक दासता की बेड़ी पहन ली। ऐसी स्थिति में भारतीय समाज के सामने बड़ी विषम समस्या उपस्थिति हो गई। अंग्रेजों को गुरू माननेवाली युवा पीढ़ी की नजरों में प्रत्येक भारतीय वस्तु घृणित थी। यदि उनके अंग्रेज साहब चर्च को जाते थे तो वे भी वैसा ही करते थे। यदि उनके साहब स्वतंत्र विचार रखते थे, तो वे भी वैसा ही करते थे। उन्होंने उनकी वेषभूषा अपनाई, उनसे धूम्रपान सीखा। उनके मांस भक्षण और मदिरा सेवन की रीति को भी। यहीं से हमने भारत में एक नकलची पीढ़ी, जो अंध भक्ति में जन्मी और बाद में चलकर लंगड़ी हो गई, को पनपते देखा।

भारत पर अंग्रेजों का जो असर हुआ उसमें ईसाईत का प्रचार भी एक कारण था। 1757 में पलासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय के बाद गिरजाघर के दबाव के फलस्वरूप ब्रिटिश संसद को 'अपनी प्रजा' के नैतिक सुधार में पहल करने का वचन देना पड़ा। यह पहल उन्हें ईसाई मिशनरियों की सहायता से करनी थी । इस नीति ने भारत में मिशनरियों के आन्दोलन को नया बल प्रदान किया। शासक वर्ग ने देखा कि ईसाई धर्म के माध्यम से वे भारत के निवासियों में साम्राज्य के प्रति आस्था और सेवा की भावना को बढ़ा सकते हैं। फलतः भारतीय जनता के मन को जीतने के लिए उन्होंने ईसाई मिशनरियों के क्रिया–कलापों को प्रोत्साहित किया। उनकी मदद के लिए बड़ी–बड़ी धनराशियाँ दी गयीं। धीरे–धीरे ईसाइयों को हिन्दुओं और मुसलमानों से श्रेष्ठ समझा जाने लगा और उन्हें विशेष रियायतें दी जाने लगीं। जिन सरकारी कर्मचारियों ने ईसाई ध र्म को अपनाया, उनकी पदोन्नति कर दी गयी। इस सबसे, स्वभावतः ही, भारत की जनता की, विशेषतः हिन्दुओं और मुसलमानों की, धार्मिक भावनाओं को आघात पहुंचा। ब्रिटिश शासकों ने कदाचित यह भी सोचा होगा कि भारत में ईसाई ध

ार्म को प्रोत्साहन देने की नीति से ब्रिटिश जनता के बीच उनकी लोकप्रियता बढ़ जायेगी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के अध्यक्ष, मैंगल्स ने 1857 में ब्रिटिश संसद में कहा :

''भाग्य ने इंग्लैंड को हिन्दुस्तान का विस्तृत साम्राज्य सौंपा है, ताकि ईसा का झण्डा विजयोल्लास से भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फहराता रहे। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए कि समूचे भारतको ईसाई बनाने के काम में उस देश में किसी तरह का विलम्ब न होने पाये।''[1]

मुम्बई के एक ब्रिटिश प्रशासक ने टिप्पणी की थी कि ब्रिटिश शासन को भारत में सुदृढ़ बनाने में मिशनरियों ने जो भूमिका अदा की है, वह प्रशासन के फौजी अफसरों, न्यायाधीशों और गर्वनरों की सेवाओं से कहीं अधिक मूल्यवान है। बंगाल के गवर्नर सर चार्ल्स इलियट ने भारत में अंग्रेजों की हुकूमत को न्यायसंगत सिद्ध करने में मिशनरियों ने जो गैर–सरकारी और मान्यतारहित कार्य किया, उसकी भूरि–भूरि सराहना की। भारत में हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों के बीच वैमनस्य पैदा करने की जानबूझकर कोशिशें की गयीं।

मिशनरियों को प्रोत्साहन देने की नीति के साथ–साथ ऐसी न्याय संहिताएं जारी की गई जिनका उद्देश्य जाति–भेदों की जड़ें मजबूत करना, अंध–विश्वासों और दकियानूसी रीति–रिवाजों को मजबूत करना था। हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए अलग–अलग कानून और संहिताएं बनायी और जारी रखी गयीं। सड़े–गले रीति–रिवाजों और नष्टप्राय सामाजिक अंध ाविश्वासों को न्यायिक अनुशासन के द्वारा बनाये रखने की चेष्टाएं की गई । भारतीयों के प्रति आम तौर से घृणा का रूख अपनाया जाता।[2]

किन्तु सरकारी आदेशों और न्याय संहिताओं में वर्णित इन कानूनों के बावजूद मिशनरियों ने जिस जोश–खरोश के साथ जाति–प्रथा के विरूद्ध आम तौर से, और अस्पृश्यता एवं अछूतपन के विरूद्ध खास तौर से, साथ ही मूर्त्ति पूजा, बाल–विवाह तथा सती–प्रथा और अन्य धार्मिक रीति–रिवाजों के विरूद्ध अपना आन्दोलन चलाया, उससे भारत की जनता की सामाजिक चेतना में जागृति पैदा हुई। इस तरह, विलियम कैरे तथा अन्य विद्वानों द्वारा संचालित मिशनरियों ने, बहुत से हिन्दू और मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित किया, जो ईसाई धर्म को स्वीकार करने के लिए जल्द ही तैयार हो गये। अपने कार्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत सी मिशनरियों ने भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया, पुस्तकें लिखीं, संस्कृ त से कितने ही धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों का अनुवाद किया, भारत के इतिहास और संस्कृति पर अन्वेषण कार्य किया और जनता की सेवा के उद्देश्य से आधुनिक ढ़ंग के स्कूल और अस्पताल खोले। यद्यपि, उनका इस प्रकार की शिक्षा संबंधी और सामाजिक कार्य प्रायः ही ईसाई धर्म के प्रचार के साथ लगा–बंधा रहाता था, तो भी उनके कार्य के सकरात्मक महत्व को बढ़ा–चढ़ाकर नहीं आंका जा सकता।[3]

किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि भारत में प्रारंभिक दिनों में आये मुसलमानों की तरह ईसाई भी अपने आपको उस समय प्रचलित सामाजिक परिस्थितियों के सांचे में ढालने लगे। ईसाई धर्म ने भी, किसी हद तक जाति प्रथा के सामने घुटने टेक दिये और अनेक हिन्दू आचारों और रीति–रिवाजों को अपना लिया। हिन्दुओं में प्रचलित नीची जातियों के बीच के भेदभाव, लोगों के ईसाई धर्म अपना लेने पर भी ज्यों के त्यों कायम रहते थे।

अंग्रेजों के सम्पर्क से धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति की भावना और कार्य कारण संबंध तथा विकास–क्रम की वैज्ञानिकता को तो देश में स्वीकार करने और अपनी संस्कृति तथा परम्परा से एक दम विच्छिन्न होने के लिए देश तैयार नहीं था। इसीलिए, भारतीय राष्ट्रीयता में धर्म का पुट या सम्प्रदायों का प्रभाव बच रहा।

भारत में सबसे पहले आने वाले ईसाई, जो आज से करीब सत्रह सौ साल पहले यहां आये थे, रंग–ढंग में भारतीय बन गये जैसा कि अनेक वंशज, सीरियन ईसाई, आज भी हैं। लेकिन करीब दो सौ साल पूर्व आनेवाले ईसाई पादरियों–मिशनरियों तथा उनके द्वारा बनाये जाने वाली मिशन–संस्थाओं ने भारतीय ईसाइयों के जीवन में एक नवीन और अस्वास्थ्यकर तत्त्व उत्पन्न कर दिया। अब वे इन विदेशी मिशनरियों के प्रभाव में रहने, सोचने और काम करने लगे, जिनके कारण उन्हें आर्थिक संरक्षण और सामाजिक सत्ता प्राप्त हुए थी। उनसे भारतीय ईसाइयों को अपनी हिन्दू–विरोधी के बदले संभ्रान्त धार्मिक चोंगे प्राप्त हुए। इसके साथ–साथ उन्होंने प्रत्येक विदेशी चीज की पूजा करना और प्रत्येक भारतीय वस्तु को जंगली मानकर धृणा करना भी सीखा।

इसी सन्दर्भ में, विलियम कैरी–जैसे अंग्रेज मिशनरी नेता ने इस नीति का प्रतिपादन करते हुए लिखा था – ईसाई बनाने के लिए भारतीयों को पाश्चात्य जीवन–क्रम में ढालो।''[4] इस तरह यदि भारत के सभी पश्चिमी प्रणाली ग्रहण करने वाले भारतीय ईसाई बपतिस्मों के शिकार नहीं हुए तो कम से कम भारतीय ईसाई तो पश्चिमी रंग में रंग हो गये। जब भारतीय ईसाइयों पर वैदेशिक मिशनरियों द्वारा जोर डलवाया जाता था कि वे अपना गला घोंटकर मिशनरियों की उपस्थिति में यह घोषणा करें कि ब्रिटिश राज्य भारत में ईश्वर का वरदान है, कि अपनी प्रत्यक्ष असमानता और धार्मिक तानाशाही के साथ भी वे भगवान के भेजे हुए दूत हैं, कि भारतीय संस्कृति शैतानी है, कि विदेशी नेकटाई से लेकर अमेरी की घोषणा तक सब कुछ सर्वथा निर्दोष है तो फिर यह घोर नैतिक पतन से किसी भी हालत में कम नहीं था। जाहिर है कि ऐसे वक्तव्य दस में से नौ तो केवल मिशन की नौकरी प्राप्त करने या आर्थिक सुरक्षा और लाभ के लिए या मिशनरियों की कृपा प्राप्त करने के लिए ही दिये जाते थे। श्री हजूरी मिशनरी, जो मिशन के नौकर होने के साथ ब्रिटिश सरकार की भी सच्ची वफादारी करते थे, अपने अधिकारियों द्वारा निर्णीत मार्ग की गलतियां और भूलें बताने में असमर्थ थे। परिणामतः गलतियों पर गलतियां होती गई – कोई देखनेवाला नहीं था।

ईसाई मिशनरी और धर्मप्रचारकों ने प्रायः अपने द्वारा ईसाई बनाये गये अनुयायियों को ब्रिटिश सरकार की बफादार प्रजा या पिट्ठू सिद्ध करना चाहा था, अतः उनकी मध्यस्थता में भारतीय ईसाइयों ने ब्रिटिश शासकों का संरक्षण खोजा और पाया। 1857 ई. के भारतीय विद्रोह में अंग्रेजों की मदद करने के परिणामस्वरूप भारतीय ईसाई समाज एवं मिशनरी उद्योग का मूल्य विदेशी शासकों की निगाह में इसी कारण बहुत ज्यादा बढ़ गया था। इसके कुछ ही दिनों के बाद हिन्दू बहुमत के विरुद्ध 'संरक्षण' मांगने के लिए मुसलमानों और ईसाइयों को खुल्लमखुल्ला भड़काया गया और इस तरह अंग्रेजों के हाथ में एक जबर्दस्त तुरूप का पत्ता आ गया। इसी समय से लेकर भारत की आजादी के दिन तक एक जाति के विरुद्ध दूसरी जाति को उभाड़ते रहने की साम्राज्यवादी चालों को सहज ही समझा जा सकता है।[5]

इस चालों के बावजूद स्कूलों और अस्पतालों के प्रसार तथा रेल–यात्रा की अवश्यकताओं से विभिन्न जातियों के भारतीय स्त्री–पुरुषों को इंसान की हैसियत से परस्पर सम्पर्क स्थापित करने को विवश होना पड़ा। सरकारी आफिसों में साथ काम करने और नये शहरों में साथ–साथ रहने की मजबूरियों ने हिन्दुओं को जाति–प्रथा और अपने अपने दकियानूसी धार्मिक विश्वासों में संशोधन करने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त अब कॉलेजों से हजारों ऐसे हिन्दू शिक्षित होकर निकल रहे थे, जो सामाजिक न्याय की पाश्चात्य विचारधारा की तीव्र मदिरा का स्वाद ले चुके थे। एक मौन क्रान्ति आरम्भ हो चुकी थी, जो भारतीय चेतना को एक नयी राष्ट्रीयता चेतना की मांगों से प्रभावित कर रही थी। हिन्दू समाज की दकियानूसी संगठन–प्रणाली की तीव्र आलोचना करनेवाले ब्रह्म समाज का अबतक जन्म हो चुका था और इसके कुछ ही दिनों बाद आर्यसमाज भी अपने प्रबल व्यंग–प्रहार को लेकर इस रूढ़िवादी धारा के विरुद्ध मैदान में आ उठा था। इसी पृष्ठभूमि में भारतीय सामाजिक जीवन में धार्मिक पुनरूत्थानवाद की लहर और सामाजिक सुधार के इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है।

lanHk %&

1. के. दामोदरन – भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ. 361
2. वही, पृ. 354
3. वही, पृ. 355
4. भारत का भाग्य, सीरिल मोदक, पृ. 79
5. के. दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ. 368

नक्सलवाद की उत्पत्ति एवं विकासः बिहार के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० प्रदीप कुमार

lgk;d i/;kid] jktuhfr foKku foHkkx] cjtekgu nkl egkfo|ky;] n;kyiqj] o'kkyh] ch-vkj-,-fcgkj fo'ofo|ky;] eqt¶Qjiqj

बिहार में स्वतः स्फूर्त और ठोस नेतृत्व के अभाव में चले किसान संघर्षों की दशकों लम्बी परम्परा के बाद पहली बार सहजानन्द सरस्वती और उनके सहयोगियों – कार्यानन्द शर्मा, राहुल सांकृत्यायन एवं अन्य ने किसान संगठन की नींव डाली। सन् 1927 में स्वामी सहजानन्द सरस्वती और वामपंथी किसान नेताओं ने अनवरत प्रयास से किसान सभा का गठन हुआ जिसकी औपचारिक घोषणा 4 मार्च, 1928 को हुई। किसान सभा ने जमींदारी प्रथा समाप्त करने, गैर कानूनी वसूली और बेदखली तथा बकास्त जमीन की वापसी के संबंध में अपनी आवाज मुखर की। यह किसान आंदोलन तेजी से गया, पटना, शाहाबाद, भागलपुर, दरभंगा, मधुबनी, चम्पारण तथा पूर्णिया सहित राज्य के विभिन्न हिस्सों में फैला। इसी संघर्ष में कम्युनिस्टों ने किसानों के बीच अपनी पहचान बना ली। सन् 1968 के बाद किसानों एवं खेत–मजदूरों के बीच नक्सली राजनीति का उदय हुआ।

सन् 1969 में राज्य में प्रथम नक्सली संगठन सी.पी.आई. (एम.एल.) का प्रादुर्भाव मुजफ्फरपुर जिले के मुशहरी प्रखंड में हुआ, जिसकी स्थापना कामरेड सत्यनारायण सिंह ने की थी। सन् 1970 में मुशहरी काफी चर्चा का विषय रहा। सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने Association of Voluntary agencies for rural development नामक संस्था नक्सली राजनीति के सफाये तथा ग्रामीण सुधार और विकास के लिए मुशहरी प्रखंड में 1971 को स्थापित किया। इसे मुशहरी प्रोजेक्ट के रूप में जाना जाता है, इसे तत्कालीन बिहार सरकार ने भी मदद दी थी। मई 1970 में सिंहभूम जिले के रूपसकुंडी क्षेत्र स्थित पुलिस थाने पर उग्रवादियों द्वारा हमला किया गया। यह हमला Revoluationary Communist Council के द्वारा किया गया था। उग्रवादी हमले में पुलिस के 9 रायफल लूटने के पश्चात् उग्रवादी जादूगोड़ा के जंगलों में छिप गये जिन्हें बाद में पकड़ा गया जिसमें ब्रिटिश महिला मेरी टेलर भी थी। यह कांड जादूगोड़ा षड्यंत्र के नाम से जाना जाता है।

बिहार में उग्रवादियों द्वारा पुलिस से हथियार लूट की पहली घटना दिनांक 26.06.1970 को पूर्णिया जिला स्थित मागुरजान पुलिस पिकेट से हुई।

सन् 1970 में भोजपुर के एकबारी गाँव में मास्टर जगदीश महतो और रामनरेश राम ने सी.पी.आई (एम.एल.) की नींव डाली। नक्सली विद्रोह के नेता चारू मजुमदार ने पुनपुन, पटना में अपने कार्यकर्त्ताओं को सम्बोधित किया। भोजपुर के पश्चात् पटना के पुनपुन, नौबतपुर, मसौढ़ी, विक्रम, पाली, नालंदा के एकंगरसराय, गया–जहानाबाद के काको, कुर्था, मकदुमपुर, घोषी, अरवल, औरंगाबाद के ओबरा, दाउदनगर, हसपुरा इत्यादि क्षेत्र सी.पी.आई (एम.एल.) के प्रभुत्व में आ गये। वर्ष 1968 से 1971 के बीच मुजफ्फरपुर, भोजपुर, सिंहभूम तथा मुंगेर जिलों में नक्सली आंदोलन फैल चुका था। उचित भौगोलिक पृष्ठभूमि मिलने के कारण दक्षिण बिहार के पलामू, चतरा, धनबाद, गिरिडीज, लोहरदगा, राँची, हजारीबाग, गुमला इत्यादि जिले इनके चपेंट में आ गये।

बिहार में मुजफ्फरपुर जिले के मुशहरी प्रखंड में कैसे–कैसे यह परवान चढ़ा। मुजफ्फरपुर जिलें में सबसे अधिक खेतिहर मजदूरों की संख्या मुशहरी प्रखंड में है।

इस प्रकार यहां के अधिकांश मजदूर–भू–स्वामियों के यहां कार्य कर ही अपनी रोजी–रोटी चलाते हैं। भू–स्वामियों का यहाँ जनसाधारण पर प्रभुत्व कायम है। यहाँ पर मजदूरों की स्थिति बहुत ही दयनीय है। मजदूरी भी कम है, जिससे खेतिहर मजदूर में व्यापक तनाव होना आवश्यक है। यह स्थिति इस प्रखंड के पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार है, चाहे वह पिछड़ापन शिक्षा के क्षेत्र में हो, कृषि–विकास के क्षेत्र में हो या राजनीतिक चेतना की दृष्टि से हो। यह क्षेत्र जिला स्तर के नगर से सटा हुआ है। हालांकि नगर से सटे होने के कारण इस पर अच्छा प्रभाव पड़ना चाहिए था, परन्तु इसका कुप्रभाव इस क्षेत्र पर पड़ा और मुदकमेबाजी, शराबखोरी, सामान्य सामुदायिक जीवन में ह्रास आदि के रूप में बिल्कुल स्पष्ट है।[1]

इस प्रखंड में नक्सलवादी आंदोलन की स्थापना सत्यनारायण सिंह ने 1967 में की थी। इनके समकालीन मित्र में उमाधर प्रसाद सिंह ने भी इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में अच्छी भूमिका निभायी। मुशहरी में नक्सलवादियों के नेतृत्व में भूमिहीन गरीब मजदूरों ने वर्षों से शोषण और उत्पीड़न कर रहे गांव के सामंत भूस्वामियों के विरुद्ध शस्त्र उठा लिया, नक्सलियों ने अपने शस्त्र–आंदोलन के प्रथम चरण में मजदूरी का उचित निर्धारण, सामाजिक, आर्थिक तथा यौन–शोषण के खिलाफ संघर्ष छेड़ा। भूमि विवाद की शीघ्र निपटारा, गैरमजरूआ जमीन पर भूमिहीनों का हिस्सा दिलाने की मांग भी हुई। इस दरम्यान पुलिस कार्रवाई में कई लोग मारे भी गये।[2] नक्सलवाड़ी की चिंगारी को मुशहरी लाने वाले नेता राजकिशोर एवं कामरेड तसलीम भी शहीद हो गये। उस वक्त काफी तेज आंदोलन हुआ। विशेषकर गंगापुर का आंदोलन बहुत तेज हो गया, जहां बिजली सिंह नाम के एक जमींदार के हाथी का सूढ़ भी काट लिया गया था। बिहार में पहला केन्द्र मुशहरी, दूसरा सूर्यगढ़ा एवं 1973 में तीसरे केन्द्र के रूप में भोजपुर उभरा। इन नक्सलियों के द्वारा एक राणनीति बनाई गई जिसके तहत मुशहरी को अपना केन्द्र बनाया तथा अपनी योजनाओं का कार्यान्वयन करना प्रारंभ कर दिया। मई 1969 तक यह आंदोलन मुशहरी गांव के बाहरी क्षेत्रों में भी फैल गया। 30 जून 1969 को भूतपूर्व सहकारिता मंत्री महंतराम किशोर दास के मकान एवं कचहरी पर नक्सलियों द्वारा हमला कर सारे अनाज लूट लिये गये।

ऐसी घटनाओं को सुनकर मुशहरी पहुंचकर जयप्रकाश नारायण ने कहा कि ''ऐसा लगता है कि उनलोगों ने (नक्सलियों ने) मूर्तियों, तस्वीरों और देश के महान नेताओं, रामकृष्ण परम हंसदेव, स्वामी विवेकानंद, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ, महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस की पुस्तकों जैसी निर्जीव वस्तुओं को अपना निशाना बनाने के बाद अब उन महान विभूतियों के प्रशंसकों को अपना निशाना बनाने का फैसला किया है, उन्हें अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया है।[3]

जहाँ तक नक्सलवाद की कानून और व्यवस्था विषय के पहलू का संबंध है, मेरा मानना है कि यह कार्य केवल सरकार का है, क्योंकि नागरिकों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करने का अधिकार और कर्तव्य उसी का है और उसके लिए आवश्यक साधन भी उसके ही पास है। मैं मानता हूँ कि खासकर एक कमजोर शासन के संदर्भ में, अगर नक्सलवाद के विरुद्ध कोई निजी संगठन उभर कर सामने आ जाएगा तो यह गृह युद्ध के रूप में भी बदल सकता है, अतः इसके कारण एवं समाधान के लिए समस्याओं का निराकरण जरूरी है।

मुजफ्फरपुर जिले की भांति भोजपुर जिला भी नक्सलवाद से अछूता नहीं रहा। भोजपुर में संदेश और सहार नक्सलवादी आन्दोलन का मुख्य केन्द्र बना। सन् 1970 में भोजपुर के एकबारी गाँव में मास्टर जगदीश महतो और रामनरेश राम ने सी.पी.आई. (एम.एल.) की नींव डाली। संदेश एवं सहार प्रखंड सोन नदी से सटा हुआ है तथा इसके उस पार पटना जिला प्रारंभ होता है, अतः पटना जिले में नक्सलवाद का प्रादुर्भाव यहीं से हुआ।

अमर सेनानी बाबू कुंवर सिंह और अमर सिंह इसी भोजपुर जिले के जगदीशपुर के रहने वाले थे जिन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध का ऐलान किया था। अतः यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यहाँ विस्फोट, विद्रोह एवं बगावत कोई बड़ी मायने रखती है। बक्सर, डुमराँव, रघुनाथपुर, आरा आदि पूर्वी रेलवे के प्रमुख स्टेशन इसी जिले में पड़ते हैं। इस रेलवे लाइन के उत्तर में सिमरी, शाहपुर, आरा, बड़हरा आदि प्रखंड है जो इस आंदोलन से अलग रहे हैं। इन्हें छोड़ भोजपुर जिले के रेलवे लाइन से दक्षिणवर्ती प्रखंड एवं कैमूर पहाड़ी के अंचलों में नक्सलवादी आंदोलन खुब फैल गयी थी। मुजफ्फरपुर के मुशहरी प्रखंड के बाद इस क्षेत्र में ही नक्सलवादी विस्फोट हुए जो कि बिहार के चम्बल क्षेत्र के नाम से जाना जाने लगा।

कल्याण मुखर्जी एवं राजेन्द्र सिंह यादव द्वारा लिखित पुस्तक ''भोजपुर बिहार में नक्सलवादी आन्दोलन'' में यहाँ की घटनाओं का विवरण दिया गया है। श्री मुखर्जी उत्तर बिहार के छपरा में अंग्रेजी अध्यापक थे जिन्हें भोजपुर में कृषक विद्रोह के कारणों का पता लगाने का काम नयी दिल्ली स्थित नेशनल लेवर इंस्टीच्यूट की ओर से सौंपा गया। इस कार्य हेतु ये कॉलेज सेवा से इस्तीफा देकर भोजपुर पहुँचे। आरा पहुँचकर इन्होंने यहां के एक वकील राजेन्द्र प्रसाद यादव से मिले जो कि नक्सलाइट वकील के रूप में जाने जाते थे। इनके अनुसार आंदोलन के दो चरण हैं। एक 1930 का दशक अर्थात् त्रिवेणी संघ, दूसरा 1960 का चरण जो उग्रवादी उथल–पुथल का चरण था।[4]

जहाँ उत्तर बिहार में मुशहरी का आंदोलन नक्सलवादी नेताओं की गिरफ्तारी और मृत्यु के साथ समाप्त हो गया। वहीं भोजपुर की घटनाएँ महज एक शुरूआत साबित हुईं। जगदीश महतो, रामेश्वर अहीर, डा. निर्मल, बूटन मुसहर जैसे नाम को पुलिस की फाइलों में स्थान मिलने लगी। इन लोगों का संघर्ष उत्तर बंगाल के नक्सलवादी और आन्ध्र प्रदेश के काकुलम के उस हथियारबंद संघर्ष की ही अगली कड़ी थी जो कि उस समय तक उस क्षेत्र में समाप्त हो चला था। यहीं से अगल–बगल के जिले जैसे रोहतास, औरंगाबाद, गया, पटना आदि में नक्सलवाद का प्रादुर्भाव होना आरंभ हो गया। लगान वसूली में धांधली, भू–हदबंदी कानून के तहत भूमि का वितरण न होना, मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी से वंचित रखना, बटाइदारों के साथ बेईमानी आदि आंदोलन के प्रायः यही कारण रहे हैं।

इधर जमींदारों के सामने कोई भी दलित साफ–कपड़ा नहीं पहन सकता था, मालिक के सामने अपनी झोपड़ी के बाहर भी चारपाई पर नहीं बैठ सकता था, तन कर चलना आदि की मनाही थी। फलस्वरूप भोजपुर क्षेत्र में नक्सली संघर्ष बढ़ता गया एवं अनेक छोटी–बड़ी घटनाएँ घटती चली गईं।

साधारण तौर पर देखा जाए तो भोजपुर में यह आंदोलन वर्ग–संघर्ष के रूप में प्रारम्भ हुआ और आगे चलकर वर्ण–संघर्ष का रूप ले लिया। प्रसिद्ध समाजवादी नेता डा. राम मनोहर लोहिया ने इस विषय का रूप प्रस्तुत करते हुए लिखा है ''वर्ग गतिशील जाति है। जाति अगतिशील वर्ग है। प्रत्येक समाज या सभ्यता ने वर्ग से जाति और जाति से वर्ग की इस क्रिया को जाना है। यह लगभग हमेशा ही न्याय और समानता की मांग से प्रेरित रहा है, लेकिन बुनियादी मांगों को अब तक हमेशा नजरअंदाज किया जाता रहा है।[5] जैसे–जैसे वर्ग–संघर्ष की ओर अग्रसर हुआ, सवर्ण वर्ग के राजपूत, भूमिहार भी संगठित हुए। इन संगठनों ने कुंवर सिंह सेना, ब्रह्मर्षि सेना का रूप धारण कर लिया।

जैसे–जैसे सामंतवादी संगठन एवं नक्सलवादी संगठन की लड़ाई बढ़ती रही वैसे–वैसे प्रशासन के लिए यह चुनौती बन गयी। प्रशासन ने कुंवर सेना पर आरोप लगाया कि इस सेना के मार्फत राजपूत लोग समानांतर राज चलाना चाहते हैं, साथ ही दलित–पिछड़े को परेशान कर रहे है। कुँवर सेना का गठन सन् 1969 के अक्टूबर माह में हुआ था। इसके संस्थापक राजनाथ सिंह का कहना है कि प्रशासन का रवैया सदैव ही कुंवर सेना के खिलाफ रहा है। इस प्रकार, बिहार की सबसे प्राचीन निजी सेना में कुंवर सेना का ही नाम है। राजनाथ सिंह ने ''एकतावादी कांग्रेस'' नामक संगठन की भी स्थापना की थी। 1969 में वे शाहाबाद युवक कांग्रेस के अध्यक्ष थे। कुंवर सेना के संबंध में कुछ लोगों का आरोप है कि यह सिर्फ राजपूतों का संगठन है, वहीं कुछ लोग महाराष्ट्र की शिव सेना से भी इसकी तुलना करते हैं, लेकिन कुंवर सेना के सहयोगी इन आरोपों का साफ प्रतिरोध करते हैं।[6] राजनाथ सिंह का कहना है कि जो लोग इस सेना को राजपूतों का जातीय संगठन कहते हैं, वे वास्तव में बाबू कुंवर सिंह का अपमान करते हैं। कुंवर सेना के प्रति अगर ऐसा आरोप होता तो असम गण परिषद् की छात्राएँ मुझे राखी नहीं भेजतीं और आंदोलन की सफलता के लिए कामना नहीं करती।

fcgkj e: ekvkokn fgl k dk mHkkj

अपने जोनल कमांडर मुसाफिर सहनी की गिरफ्तारी के विरोध में माओवादियों ने 29 अगस्त, 2010 को बिहार में अनेक बड़ी हिंसक कार्रवाइयों को अंजाम दिया। उनकी सबसे बड़ी कार्रवाई लखीसराय जिले के कजरा थाना की पहाड़ियों में पुलिस गश्त दल पर घात लगाकर किया गया हमला था। माओवादियों और पुलिस के बीच मुठभेड़ दोपहर में शुरू हुई और देर रात तक चलती रही। इन पंक्तियों को लिखते समय तक एक दारोगा भूलन यादव समेत पुलिस के सात जवान शहीद होने की पुष्टि हो चुकी है और दो दारोगा सहित छः जवान लापता बताये गये हैं। माओवादियों के हताहतों के बारे में पता नहीं चला पाया है।

सारण जिला में अमनौर प्रखंड के ढोलाही अभिमान गांव में शनिवार 28 अगस्त की देर रात में माओवादियों ने सड़क निर्माण कंपनी जे. के. एम. इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट कंपनी लि. के निर्माण स्थल पर स्थित दफ्तर पर हमला बोल दिया। कंपनी के सुपरवाइजर वेद प्रकाश सिंह ने बताया कि 11.30 बजे राज में करीब 50 हथियारबंद माओवादी दफ्तर पर पहुँचे, सभी कर्मचारियों और गार्डों के हाथ–पैर बांध दिये, दफ्तर और कर्मचारियों के पैसे और मोबाइल फोन लूट लिये और दो प्रेशर रोलर, एक जे.सी.बी. मशीन, एक मिक्सर मशीन तथा एक पे लोडर यानी पांच भारी निर्माण मशीनों पर पेट्रोल और डीजल छिड़क कर आग लगा दी। सभी मशीनें जल गयीं जिससे कंपनी को करोड़ों रु. का नुकसान हुआ है।

29 अगस्त को ही शिवहर जिला में माओवादियों ने तरियानी प्रखंड के बी.डी.ओ. मनोज कुमार सिंह का अपहरण कर लिया। सहरसा जिला के निवासी मनोज कुमार सिंह हाल ही में ट्रांसफर होकर तरियानी आये हैं। पुलिस आई.जी. गुप्तेश्वर पांडे ने बताया कि बी.डी.ओ. चुनाव संबंधी काम से क्षेत्र में निकले थे और साथ में सुरक्षा गार्ड भी नहीं लिया था। लहौरा गांव के समीप माओवादियों ने उनका अपहरण कर लिया और मोटर साइकिल पर बिठाकर उनको ले भागे। बी.डी.ओ. की रिहाई के लिए पुलिस बड़े पैमाने पर छापामारी कर रही है। इस बीच खबर मिली है कि माओवादियों ने बी.डी.ओ. मनोज कुमार सिंह को मुक्त कर दिया है।

मुसाफिर सहनी की गिरफ्तारी के विरोध में दो दिनों के उत्तर बिहार बंद के दौरान माओवादियों ने तीन मोबाइल टावर उड़ाये, दो मुजफ्फरपुर जिला में और एक पूर्वी चंपारण जिला में।

शनिवार 28 अगस्त की आधी रात के बाद करीब दो बजे 60 की संख्या में सशस्त्र माओवादी मुजफ्फरपुर जिला के सिवाई पट्टी थाने के टेंगरारी गांव पहुंचे और वहां, आयडिया और वोडाफोन के साझा मोबाइल टावर को आग के हवाले कर दिया। दूसरी घटना इस जिले के मीनापुर प्रखंड के हरपुर बक्स गांव में घटी। वहां शनिवार की आधी रात के बाद करीब 3.30 बजे माओवादियों ने एयरटेल के मोबाइल टावर को फूंक दिया। तीसरी घटना पूर्वी चंपारण के राजेपुर थाना से आधा किलोमीटर की दूरी पर घटी जहां शनिवार की रात आठ बजे माओवादियों ने एयरटेल का मोबाइल टावर उड़ाया।

बहरहाल सबसे गंभीर घटना लखीसराय जिला के कजरा थाना की पहाड़ियों में पुलिस और माओवादियों के बीच चली लंबी मुठभेड़ है। घटना यों घटी की पुलिस को सूचना मिली कि कजरा थाना की पहाड़ियों में कुछ माओवादी एकत्र हुए हैं। इसलिए कजरा थानाध्यक्ष इंद्रदेव पासवान और दारोगा रुपेश कुमार, कवैया थानाध्यक्ष भूलन प्रसाद यादव, मानिकपुर के थानाध्यक्ष अभय यादव के नेतृत्व में पुलिस, सैप और सी.आर.पी.एफ. के 45 जवानों को पुलिस बल 'कैम्बिंग आपरेशन' के लिए जंगल भरी पहाड़ियों में घुसा। जब वे दो पहाड़ियों के बीच से गुजर रहे थे, दोनों पहाड़ियों पर घात लगा कर बैठे माओवादियों ने पुलिस बल पर दो तरफ से फायरिंग शुरू कर दी। पहाड़ियों की ऊँचाई से दो तरफ से आधुनिक हथियारों से अचानक हुए इस हमले की वजह से पुलिस बल बिखर गया। आगे बढ़ चुके पुलिस जवान घिर गये जबकि जो पीछे थे उन्होंने पीछे हटकर मोर्चा संभाला। दोनों ओर से फायरिंग होने लगी।

यह विवरण घायल होने के बाद वापस लौटे जवानों ने टी.वी. चैनल मौर्या को लखीसराय अस्पताल में बताया। मौर्या के पत्रकार ने घटना स्थल पर जाकर पांच जवानों के शहीद होने की पुष्टि रविवार 29 अगस्त की करीब 9 बजे रात में की। मुठभेड़ दोपहर में शुरू हो गयी थी। लेकिन 9 बजे रात तक यानी 13 घंटे बाद भी जंगलों–पहाड़ियों में माओवादियों के घेरे में घिरे और उनसे लोहा ले रहे जवानों को कुमक नहीं पहुंचायी जा सकी थी। यहां तक कि जिला और राज्य मुख्यालय में पुलिस अधिकारियों को उतनी भी जानकारी नहीं थी जितनी जानकारी टी.वी. चैनल दे रहे थे। स्वभावतः 30 अखबारों में उतनी भी जानकारी नहीं आयी जितनी टीवी चैनल मौर्या 29 अगस्त की रात 9 बजे दे रहा था। क्या अखबारों पर अघोषित सेन्सर लगाया गया ?

30 अगस्त की सुबह मौर्या ने बताया कि पांच शहीदों के शव घटनास्थल पर पड़े रहे लेकिन माओवादियों के भय से कोई शव को उठाकर लाने नहीं गया। देर रात तीन घायल जवानों को पटना लाकर पी.एम.सी.एच. में भर्ती कराया गया। लेकिन रात में न कोई वरीय चिकित्सक उनको देखने आये, न उनके शरीर से गोली निकाली गयी। केवल जुनियर डाक्टर ही उनका प्रारंभिक उपचार करते रहे। जो जवान माओवादियों से घिरे या 'लापता' थे, उनके बारे में 30 अगस्त को भी कोई आधि

ाकारिक जानकारी नहीं दी गयी। सिर्फ इतना ही कहा गया कि लापता जवानों में से पांच लौट आये हैं। गैर–सरकारी सूत्रों के मुताबिक तीन दारोगा और आठ जवान 30 अगस्त तक भी लापता थे।

इस घटना से स्पष्ट है कि पुलिस ने वही गलती दुहरायी है जो गलती पुलिस ने कुछ माह पहले छतीसगढ़ के दांतेवाड़ा जिले में की थी जिसके फलस्वरूप सी.आर.पी.एफ. के 76 जवान शहीद हुए थे। जंगलो–पहाड़ियों में 'कैम्बिंग आपरेशन' में जाने के पहले पुलिस को ठोस जानकारी होनी चाहिए थी कि छुपे हुए माओवादी कितने हैं और उनके पास कौन–कौन हथियार है। घटनास्थल से लौटे एक घायल जवान ने कहा कि माओवादियों की संख्या हजार से ऊपर थी वे हर तरह के हथियारों से गोलियाँ चला रहे थे। सही जानकारी के बगैर ऐसा आपरेशन चलाना आत्मघाती साबित होता है। जाहिर है, पुलिस के उच्च स्तरीय नेतृत्व ने पूरी खुफिया जानकारी एकत्र किये बगैर जवानों को मौत के मुँह में झोंक दिया।

बिहार सरकार माओवादियों के फैलते ताने–बाने पर पर्दा डालती रही है। माओवादी एक से एक दुस्साहसिक कार्रवाइयाँ करते रहे हैं और सरकार चैन की नींद सो रही है। वह मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और अन्य शासक नेता तोते की तरह रटते जा रहे हैं कि ''बिहार में अमन–चैन कायम हो गया है।'' हालत यह हो गयी है कि कैमूर की पहाड़ियों में माओवादी हिंसा से मुकाबला करने के लिए वहां की जनता को एक पूर्व डकैत सरगना के नेतृत्व में सशस्त्र ''शांति सेना'' बनानी पड़ी है।

सूबे में फैलती माओवादी हिंसा नीतीश–मोदी सरकार के 'सुशासन' की धज्जियाँ उड़ा रही है। बढ़ता उग्रवाद बिहार के 'विकास' का नहीं, बढ़ती गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और गरीबों पर अत्याचार का लाजिमी नतीजा है।

सोमवार 30 अगस्त को मीडिया वाले सुबह 4 बजे घटनास्थल पर पहुँच गये। वहां केवैया पुलिस चौकी के प्रधान भूलन प्रसाद यादव का शव औंधे मुँह पड़ा था। उनके आसपास ही छः अन्य जवानों के शव पड़े थे। वहां सबसे पहले पत्रकार ही पहुँचे। ये जवान रविवार 29 अगस्त को अपराह्ण डेढ़ बजे माओवादियों के हमले में मारे गये। लेकिन रविवार को शाम–रात तक या अगले दिन दोपहर तक कोई पुलिस बल या पुलिस अधिकारी मारे गये, घायल या लापता जवानों की खोज–खबर लेने नहीं पहुँचा। सोमवार को 4 बजे शाम में सी.आर.पी.एफ. के कोबरा यूनिट के जवान घटनास्थल पर पहुँचे और शवों को उठाया।

आखिरकार पता चला कि इस माओवादी हमले में 7 जवान शहीद हुए, 9 घायल हुए और तीन हवलदार और एक जवान लापता है। माओवादियों ने प्रेस विज्ञप्ति में बताया कि ये चारों जवान सकुशल उनके कब्जे में हैं। वे उनकी रिहाई के बदले कई गिरफ्तार माओवादियों की रिहाई की मांग कर रहे हैं। कौम्बिंग ऑपरेशन में गये 32 जवानों में जो 12 सकुशल वापस लौटे, उन्होंने भी अपना हथियार माओवादियों के आगे डाल कर अपनी जान बचायी। कुल 31 रायफल माओवादियों के हाथ लगे।

घटनास्थल से वापस लौटने वाले घायल जवानों ने बताया कि माओवादियों ने ही उनकी मरहम पट्टी की और इंजेक्शन दिये जिसकी वजह से वे गोली लगने के बाद करीब 24 घंटे तक जीवित रहे और जिन्दा लौटे। लौटने वाले जवानों ने लखीसराय में एस.पी. अशोक कुमार सिंह की खूब फजीहत की। भूलन यादव के अलावा अन्य छः शहीद जवान हैं : कन्हैया प्रसाद साह, नंदेश्वर यादव, शैलेश कुमार, सतीश कुमार माजिद अंसारी और राम बाबू मिस्त्री। ये सभी बीएमपी के जवान हैं।

संदर्भ

1. आमने सामने, श्री जयप्रकाश नारायण, पृ. 13–14 (मुशहरी की प्रथा की कहानी)।
2. बिहार में निजी सेनाओं की खूनी लड़ाई–जयशंकर गुप्त, रविवार, 4–10 मई, 1986
3. आमने–सामने, जयप्रकाश नारायण।
4. आमने–सामने, जयप्रकाश नारायण, पृ. 7
5. व्हील ऑफ हिस्ट्री (इतिहास चक्र) : डा. राममनोहर लोहिया
6. जातीय सेनाएँ विकास कुमार झा, माया, मई 84

धर्म और साम्प्रदायिकता के संबंध में प्रेमचन्द की भूमिका

डॉ० सुनील कुमार

व्याख्याता ,बी.डी. डिग्रीकॉलेज ,जलालपुर ,छपरा(सारण)

प्रेमचन्द सीधे न तो राजनीतिक वैज्ञानिक थे और न ही राजनीति के सक्रिय कार्यकर्ता, लेकिन उनका पूरा जीवन, उनका सम्पूर्ण साहित्य और व्यवहार राजनीति से लबालब भरा था। उनकी पूरी जिन्दगी में जितने भी आंदोलन हुए, चाहे वे राजनीतिक हों, सामाजिक हों, धार्मिक हों, उनसे राष्ट्र की जनता प्रभावित होकर आगे बढ़ने के लिए क्रियाशील हुई, गुलामी और पाखण्ड से मुक्ति पाने के लिए आंदोलित हुई, नए जीवन की ओर उन्मुख हुई–वह सब प्रेमचन्द साहित्य में रचनात्मक स्तर पर रूपायित हुआ। जैसे-जैसे आजादी की लड़ाई तेज होती गई उसका विकास होता गया। प्रेमचन्द उसके साथ-साथ आगे बढ़ते चले गये, बाद में तो वे काफी आगे निकल गये और राजनीति के आगे-आगे मशाल दिखाते हुए दिखाई पड़े। उनके सम्पूर्ण जीवन काल में जिस किसी ने उनको पढ़ा और उनको जानने का प्रयास किया। वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। इस जानकारी के बड़े प्रमाण तो गाँधीजी थे। प्रेमचन्द की मृत्यु पर अपनी श्रद्धांजलि देते हुए उन्होंने लिखा–'हमारा देश जब स्वाधीन होगा और जब यहाँ ग्रामीण समाज, बेगारी, गरीबी, शोषण और अशिक्षा से मुक्त हो जायेगा तब लोग यह कल्पना भी न कर सकेंगे कि कभी भारत का किसान और मजदूर उस हालत में रहा था। तब प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानियाँ क्लासिक (कालजयी साहित्य) के रूप में पढ़े जायेंगे और उनसे ही पता चलेगा कि तत्कालीन समाज कैसा था।''[1]

प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई 1880 को हुआ था जबकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना उनके जन्म के ठीक पाँच वर्ष बाद 1885 में हुई। यह वह काल था जब देश भर में नई राष्ट्रीयता बोध का उदय हो रहा था। प्रेमचन्द इस नई राष्ट्रीयता बोध को बड़ी सजगता से आत्मसात करते हैं। इनके जीवन काल में जितनी तरह के सामाजिक और राजनीति आंदोलन हुए, उतने पहले कभी न हुए थे। यह देश के नवजागरण का युग था। अतीत का गौरववान,सामाजिक सुधार और राजनीतिक मुक्ति, इस आंदोलन के प्रमुख स्वर थे। इन सभी मोर्चों पर प्रेमचन्द दिखाई पड़ते हैं।

प्रेमचन्द ने 1901 में जब उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था उस समय समाज सुधार आंदोलन, राष्ट्रीय आंदोलन का एक अंग था। कांग्रेस अधिवेशन के साथ समाज सुधार सम्मेलन भी हुआ करता था। समाज सुधारक रिफार्मिस्ट पार्टी कहलाते थे। रानाडे और गोखले इनके प्रमुख नेता थे और साथ ही ये दोनों कांग्रेस के भी अग्रणी नेता थे। इस वक्त प्रेमचन्द रिफार्मिस्ट पार्टी के समर्थक मालूम पड़ते थे। इसे बखूबी उनके उपन्यास 'प्रेमा' में देखा जा सकता है जो 1906 में उर्दू में 'हम सुरमा व हम सवाब' के नाम से छपा था। इस उपन्यास का नायक अमृत राय रिफार्म मंडली में शामिल हो जाता है। अपनी सारी शक्ति समाज सुधार में लगा देता है और सारे विरोध का सामना कर क्षत्रिय होते हुए भी एक ब्राह्मण विधवा से शादी करता है। 'प्रेमा' उपन्यास का पात्र ही केवल विधवा विवाह नहीं करता बल्कि स्वयं प्रेमचन्द खुद बनारस में एक नहीं चार-चार अन्तजीय और विधवा विवाह कराते हैं। बाद में तो उन्होंने स्वयं एक विधवा से शादी की और सारी जिन्दगी सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध लड़ते रहे। उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'देवस्थान रहस्य' से लेकर 'गोदान' तक धार्मिक अंधविश्वासों, छूआछूत, जातपात, मंदिरों में भ्रष्टाचार आदि के खिलाफ अनवरत संघर्ष चलाया। उन्होंने मंदिरों में बैठे ऐय्याश और भ्रष्ट महंतों, भ्रष्टाचार के अड्डों, धार्मिक अंधविश्वासों पर जमकर प्रहार किये। उन्होंने दलितों के मंदिर प्रवेश की वकालत की और अपनी कहानियों और उपन्यासों में अछूतोद्धार के पक्ष में तर्क दिये। उन्होंने सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित दलितों के अन्दर विद्रोह और आत्म सम्मान की भावना भरी।[2]

प्रेमचन्द ने उत्कट देश प्रेम की झलक हमें 1910 में प्रकाशित उनके पहले कहानी संग्रह 'सोजे वतन' में देखने को मिली थी। इसका मूल्य भी उन्हें शीघ्र ही चुकाना पड़ा था। इस संग्रह को राजद्रोह के रूप में सरकार ने लिया था और सारी प्रतियों को जिलाधिकारी ने नष्ट कर दिया था। इतना ही नहीं, प्रेमचन्द को फटकार लगाते हुए कहा गया था कि तुम अपने भाग्य को वरदान मानों की तुम अंग्रेजी अमलदारी में हो। मुगलों का राज होता तो तुम्हारे दोनों हाथ काट लिये जाते। इस संग्रह की एक कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' में कहा गया था–''खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज हैं।''[3]

प्रेमचन्द ने यह अच्छी तरह से समझा था कि भारत की पराधीनता की उसकी दुर्दशा का कारण है। इसी के चलते ब्रिटिश शासक भारतवासियों के साथ अपमानजक व्यवहार करते हैं ओर गोरे फौजियों को भारतीय महिलाओं पर पाशविक अत्याचार करने का साहस होता है। अत: उन्होंने कांग्रेस द्वारा मुकम्मल आजादी के प्रस्ताव पारित करने के बहुत पहले ही पराधीनता की बेडी को काट फेंकने की आवश्यकता समझी थी। इस भावना को जगाने का काम उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से किया था। 'सेवा सदन' में जो प्रथम विश्वयुद्ध के समय लिखा गया था, 1922 में प्रकाशित 'प्रेमाश्रम', 1924 में लिखा गया उपन्यास 'रंगभूमि', 1930 में प्रकाशित, 'गबन' 1933 में प्रकाशित 'कर्मभूमि' आदि उपन्यासों में हम देश के मुक्ति संग्राम को उसके विकास क्रम के साथ देख सकते हैं। उनकी कहानियाँ भी उपन्यासों की तरह मुक्ति संघर्ष और क्रांतिकारियों के कार्यों को प्रमुखता से नोट करती हैं। ऐसी ही कहानियों में प्रमुख हैं–'प्रतिशोध और कातिल'। इनकी ये कहानियाँ और उपन्यास उस वक्त के राष्ट्रीय आंदोलन के भी दस्तावेज हैं।[4]

प्रेमचन्द ने सामाजिक और छुआछूत के खिलाफ जितना लिखा है, उन्होंने दलितों के सामाजिक-आर्थिक उत्पीड़न की जिस प्रकार की तस्वीर खींची है वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेमचन्द-कालीन साम्प्रदायिक और दलित समस्याओं में थोड़ा बहुत परिवर्तन आज जरूर हुआ है। यद्यपि आज दलितवादी लेखक प्रेमचन्द के दलित लेखन को परानुभूति का लेखन मानकर उसे नकारने की वकालत करते है–इसके बावजूद दलितों के बारे में प्रेमचन्द ने जो कुछ भी लिखा है–उससे इतर यथार्थ क्या होता है–समझ में नहीं आता।

प्रेमचन्द के समय में समाज-सुधार ने एक ज्वलंत समस्या का रूप अख्तियार कर लिया था। राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों की शक्ल में अनेक सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों की शुरुआत देश में हो चुकी थी। सामान्य अर्थ में ये तमाम आंदोलन भारतीय समाज और हिन्दू धर्म की विकृति एवं विद्रूपता के विरोध में हो रहे थे।

सामाजिक क्षेत्र में जाति-प्रथा की समाप्ति, स्त्रियों को समानाधिकार, विधवा-विवाह, बाल-विवाह की समाप्ति, अस्पृश्यता को बढ़ावा देने वाली अमानवीय सामाजिक प्रथा तथा दूसरी सामाजिक तथा वैधानिक संस्थाओं के विरोध से संबंधित अनेक आंदोलन जारी थे।

धार्मिक क्षेत्र में अंधविश्वास और रूढ़िवादिता, बहुदेववाद और वंशानुगत पुजारीपन इत्यादि के विरुद्ध संघर्ष चल रहे थे। सुधार आंदोलनों का सम्बन्ध जागरूक और प्रगतिशील वर्ग के उन प्रयासों से था जो कि वे नये समाज की जरूरत के मुताबिक सामाजिक संस्थाओं को प्रजातांत्रिक बनाने और रूढ़ धार्मिक विचारों को विस्थापित करने के लिए कर रहे थे। ब्रह्मसमाज, आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसॉफिकल सोसायटी इनमें से कुछ प्रमुख आंदोलन थे। इन सामयिक आंदोलनों का प्रभाव प्रेमचन्द के साहित्य पर भी पड़ा है।

और चूँकि प्रेमचन्द एक सेनानी थे–आजादी और सामाजिक समानता के लिए लड़ने वाले सेनानी–इसीलिए वे राजनीतिक गुलामी और सामाजिक गुलामी से घृणा करते थे और उन्होंने बेहिचक एक ऐलान किया कि बिना घृणा के अच्छे साहित्य का सृजन नहीं किया जा सकता।[5]

पाखण्ड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी अन्य दुष्प्रभावियों के प्रति हमारे अन्दर जितनी ही प्रचंड घृणा होगी, उतनी ही कल्याणकारी होगी। घृणा के शिथिल होने से हम बहुधा स्वयं उन्हीं बुराईयों में पड़ जाते हैं और स्वयं वैसा ही घृणित व्यवहार करने लगते हैं। जिनमें प्रचंड घृणा है, वह जान पर खेल कर भी उसकी रक्षा करेगा। और तभी उनकी जड़ खोदकर फेंक देने में वह अपने प्राणों की बाजी लगा देगा।

प्रेमचन्द का लेखन 1908 के हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति काफी जागृत था। तथा वह भारत में अंग्रेज शासकों के 'फूट डालों और राज' करो वाली सचेत नीति से अधिक था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता पर उनकी आस्था, इसके प्रति उनकी निष्ठा तथा इसे हासिल करने के प्रति उनका विश्वास खिलाफत के दिनों के अनुभव के बाद कई गुना बढ़ गया। खिलाफत के दौरान हिन्दू और मुस्लिम जनता एक दूसरे के नजदीक आयी तथा एक साथ मिलकर उन्होंने फूट डालो और राज करो की नीति पर पहली और आखिरी बार करारा प्रहार किया।

लेकिन खिलाफत के बाद के वर्षों में लगातार दंगों ने–जो दंगे साम्राज्यवादियों की सरपरस्ती में भड़काये और संगठित किये जाते थे–भारतीय एकता की अग्रगति को हमेशा के लिये झकझोर दिया हो, ऐसा प्रतीत हुआ। इन दिनों में भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति प्रेमचन्द के दिनों में जो उत्कृट विश्वास बना हुआ था, उनकी उन बुरे दिनों को देखा हुआ हर आदमी भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा। उन दिनों ऐसा लगता था मानों हर चीज टुकड़ों में बँट गयी हो। एक वर्ष में स्वराज की बात मृग-छलना साबित हो गयी थी। हजारों हिन्दू-मुस्लिम दंगों में घरों को फूँकने तथा लोगों की हत्याओं के समाचार आ रहे थे। जलियावाला बाग का कत्लेआम तक भुला दिया गया। राष्ट्र को फिर से एकता की राह पर लाने के लिये गाँधी ने तीन हफ्तों तक अनशन किया। लेकिन दंगे जारी रहे। नए साम्प्रदायिक और उन्मादी संगठन विभेद के संदेश को फैलाने के लिए उठ खड़े हुए। पंजाब में मार्शल लॉ के दिनों में स्वामी श्रद्धानंद को मौत की सजा सुनाई गयी थी और जिन्होंने मौत की सजा को उम्र कैद में तब्दील करने के लिये काफी माँगने तक से इंकार कर दिया था और जो खुद को हिन्दुओं (शुद्धिवादियों) को संगठित करने के काम में लगाये हुए थे, उनकी एक उन्मादी मुसलमान ने दिल्ली में हत्या कर दी। इस घटना ने आग में घी का काम किया।

उन्होंने इसके तमाम विरोधियों, विशेष तौर पर हिन्दू सम्प्रदायवादियों से लड़ाई की। मौलाना शौकत अली के उस बयान पर, जिसमें उन्होंने मुसलमानों से एक रुपये में चौदह आना खिलाफत को तथा दो आना कांग्रेस को देने की अपील की थी, जब राष्ट्रवादियों और हिन्दू सभाइयों ने हमला किय तो प्रेमचन्द ने मौलाना शौकत अली की पैरवी की। उन्होंने उन गो-पूजकों और गौ-रक्षकों की निन्दा की जो अपने कारनामों से गौ-मांस खाने वाले मुसलमानों के विरुद्ध भावनाओं को भड़काते थे। उन्होंने हिन्दुओं के समक्ष मुसलमानों के दृष्टिकोण को पेश करने की कोशिश की तथा अल्पसंख्यकों के संदेह को दूर करने के लिए मुसलमानों के दृष्टिकोण से खुद को सहमत बताया। एकता हासिल करने की आपनी हार्दिक इच्छा के चलते, अपने देशवासियों को समझाने के लिये वे अक्सर पोशाक, आदतों के सामान्य नुक्तों पर बल देकर ही सीधे-सीधे तर्कों का इस्तेमाल किया करते थे और यह बताते थे कि दोनों में बमुश्किल कोई फर्क है। इनमें संदेह नहीं कि वे इस बात से अपरिचित थे कि इस समस्या की जड़ें काफी गहरी हैं कि इनका उस वक्ता तक समाधान नहीं होगा जब तक हिन्दू और मुसलमान देहाती जनता अर्से पुरानी बाधाओं को तोड़कर कृषि क्रांति के लिये तीखे संघर्ष्ज्ञ में उतरेगी और उसी संघर्ष की आग में फौलाद की तरह मजबूत नए सम्बन्ध कायम करेगी।

प्रेमचन्द ने जब कभी सर्वोच्च कांग्रेसी नेताओं तक में ढुलमुलपन देखा, तभी उन्हें जोरदार फटकार लगायी।

''हमें यह न भूलना चाहिए कि यह बीसवीं सदी है। साम्प्रदायिक बहुत ही थोड़े दिनों के मेहमान है। भारत के सिवा कदाचित् संसार में उसे और कहीं शरण नहीं मिल सकती इसलिए यह निराशाजनक शक्ति के साथ संग्रह आधार को पकड़े हुए है। आनेवाला युग आर्थिक संग्राम का युग होगा। हिन्दू कौन है, मुस्लिम कौन है, इसे कोई पूछेगा भी नहीं।''

साम्प्रदायिक राजनीति से संबंधित सवालों पर उन्होंने कभी अंग्रेजों और उनकी चालों को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने दिया। 1932 के साम्प्रदायिक अवार्ड पर लिखते हुए उन्होंने हिन्दुओं और सिक्खों को चेतावनी दी कि वे इसके खिलाफ लड़ाई न करें क्योंकि इससे दोनों सम्प्रदायों के बीच तिक्तता को और बढ़ावा मिलेगा तथा अंग्रेज शासकों की चाल को बल पहुँचेगा। वे लिखते हैं–

''गवर्नमेंट के लिए इसके सिवा और क्या साधन था कि वह अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए किसी एक प्रमुख दल की शरण ले। सिक्ख इतने शक्तिशाली नहीं हैं, हिन्दू इतने लचीले नहीं हैं, ऐसी दशा में मुसलमानों के सिवा किस पर गवर्नमेंट की निगाह पड़ती।''

1931 में हिन्दू-मुस्लिम एकता और गो-हत्या के मुद्दों पर विचार करते हुए जो निम्नलिखित साहसपूर्ण बातें प्रेमचन्द ने कहीं वैसी ही बातें लिखने का साहस उनके समय का समकालीन कोई भी लेखक नहीं कर सकता था।

''रही गऊ-हत्या। यह तो मालूम ही है कि अरब में गाय नहीं होती। वहाँ तो ऊँट और घोड़े पाये जाते हैं। भारत खेती का देश है, यहाँ गाय को जितना महत्व दिया जाये उतना थोड़ा है। लेकिन आज कौल कसम लिया जाये तो शायद ऐसे बहुत कम राजे-महराजे या विदेश में शिक्षा प्राप्त करने वाले हिन्दू निकलेंगे जो गोमां न खा चुके हों। और उनमें से कितने ही आज हमारे नेता हैं, और हम नामों का जयघोष करते हैं। अछूत जातियाँ भी गोमांस खाती हैं, और आज हम उनके उत्थान के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। हमने उनके मंदिरों में प्रवेश के निमित्त कोई शर्त नहीं लगाई और न लगानी चाहिए। हमें अख्तियार है, हम गऊ पूजा करें, लेकिन हम दूसरों को गऊ पूजा के लिए बाध्य नहीं कर सकें। हम ज्यादा से ज्यादा यही कह सकते हैं, गोमांस भक्षियों की न्याय-बुद्धि को स्पर्श करें। फिर मुसलमानों में अधिकतर गोमांस वही लोग खाते हैं, जो गरीब हैं, और गरीब अधिकतर लोग वही लोग है जो किसी जमाने में हिन्दुओं से तंग आकर मुसलमान हो गये थे। वे हिन्दू समाज से जले हुए थे और उसे जलाना और चिढ़ाना चाहते थे।

15 जनवरी 1934 को प्रकाशित रचना 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' में प्रेमचन्द ने आर्थिक संस्कृति की चर्चा है। वह साम्प्रदायिकता को 'मध्यकालीन युग का कोढ़' मानते हैं और साम्प्रदायवाद विरोधी आंदोलन में राष्ट्रीय एकता का बाधक। किन्तु जितनी बेबाक टिप्पणी केवल साम्प्रदायिकता पर ही नहीं बल्कि हर उस समस्या पर जो समाज और संस्कृति के विकास में बाध क है–करते है। वह आज सुविधासम्पन्न और ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न बुद्धिजीवियों में भी नहीं है। यहाँ प्रेमचन्द की परंपरा से सीखने की जरूरत है। वह जब साम्प्रदायिकता पर चर्चा करते हैं तो हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों में व्याप्त अंधविश्वासों और पाखंडों पर तीखा प्रहार करते हैं। वह दोनों समुदायों के कट्टरपंथियों पर प्रहार करते हुए उनके आक्रमण की धार को जमींदारों-महाजनों और ब्रिटिश शासकों की ओर मोड़ने का प्रयास करते हैं। वह आज की तरह तुष्टीकरण की बात नहीं करते और न ही आलोचना के भय से, सच से परहेज! वह साम्प्रदायिक आधार पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण का भी विरोध करते हैं। वह लिखते हैं–''नौकरियों के इस प्रकार के विभाजन में क्या होगा? साम्प्रदायिकता से द्वेष की मनोवृत्ति पनपेगी, धर्मान्धता बढ़ेगी, हृदय ईर्ष्यालु होंगे, योग्यता का मूल्य गिर जायेगा। मूल्य रहेगा साम्प्रदायिकता का। साम्प्रदायिक आधार पर नौकरियों का विभाजन किया जाना खतरनाक है।''[6]

आज भूमंडलीकरण के इस युग में पूँजीवादी व्यवस्था अपना वर्चस्व कायम करने के लिए मनुष्यों को धर्म, राष्ट्र, भाषा, जाति या क्षेत्र को आधार बनाकर बाँट रही है ताकि वे समूह न बन सकें और उनके विरोध में खड़े न हो सकें। बेरोजगारी चरम सीमा पर है किन्तु आरक्षण के नाम पर युवा आक्रोश को किस प्रकार दिग्भ्रमित किया गया–यह सभी जानते हैं। चुनावों में साम्प्रदायिक और 'दलित' कार्ड खूब खेले जाते हैं। दलितों की राजनीति करने वालों को दलितों की खुशहाली से कोई मतलब नहीं है किन्तु दलितों का मध्य वर्ग अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए झूठे आश्वसासनों और सपनों को परोसकर अपनी ही जाति को छलता है यह भी जगजाहिर है। यह अकारण नहीं है कि साहित्य की प्रगतिशील परंपरा से अलग दलित साहित्य या दलित चेतना की बात की जा रही है और प्रगतिशील परंपरा के संवाहकों को जाति के आधार पर लांछित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। उनके अनुसार प्रेमचन्द हों या निराला–वे दलित विरोधी हैं क्योंकि दलितों का साहित्य तो कोई दलित ही लिख सकता है। वह दिन दूर नहीं जब विधायिका या नौकरियों की तरह साहित्य और कला में भी आरक्षण की माँग की जायेगी। स्पष्ट है कि इस तरह का चिन्तन प्रत्येक स्तर पर विश्रृंखला की ओर ले जा रहा है। इस घातक प्रवृत्ति का विरोधा संगठित रूप से होना चाहिए, जो आज नहीं है। कम से कम इस पर यह राष्ट्रीय बहस होनी चाहिए और इन विचारों के स्रोत का पता लगा कर प्रहार करना चाहिए। प्रेमचन्द की परंपरा का गुणगान करने वालों में चुप्पी है। वे उत्तर आधुनिकतावादी विचारों की पोटली सहेजने में लगे हैं।

जहाँ तक प्रेमचन्द की बात है, प्रेमचन्द ने दलितों, वंचितों और पीड़ितों का चरित्र-चित्रण प्रामाणिकता और सूक्ष्मता से किया है। प्रेमचन्द के यहाँ ये पात्र उनके साहित्य के नायक के रूप में स्थापित होते हैं। प्रेमचन्द कहते हैं : 'जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है–चाहे वह व्यकित हो या समूह, उसकी हिमायत या वकालत करना फर्ज है।' वह उत्पीड़कों और उत्पीड़ितों के बीच तटस्थता की भूमिका नहीं अपनाते। वह किसी भी तटस्थता के तर्क को स्वीकार नहीं करते। वह दलितों और पीड़ितों का साथ देने के पक्ष में हैं और देते भी हैं।[7]

वह राजनीति हो या संस्कृति–किसी के साथ भी धर्म का सम्बन्ध नहीं जोड़ते। वह विज्ञान की चेतना में विश्वास करते हैं। जनवरी 1934 के 'हंस' में बिहार के भूकम्प पर प्रेमचन्द ने एक संपादकीय लिखी–वह प्रलयंकर दिवस!' वह इसमें गाँधी जी के कथन पर अपनी आपत्ति और विरोध दर्ज करते हैं : 'अभी उस दिन महात्मा जी ने ही कहा है कि हमारे पापों के कारण ही यह भूकम्प हुआ है और उनकी धारणा में अछूत कहलाने वाले मनुष्यों के साथ दुर्व्यवहार ही महापाप है। इसी प्रकार का वर्णाश्रम स्वराज संघ वाले महात्मा जी को कोसते हैं और कहते हैं कि अछूतों को मंदिर में प्रवेश कराने के पाप का ही परिणाम यह भूकम्प है।' यदि आस्तिकता भूकम्प का कारण पाप बतलाती है तो यह प्रश्न हो सकता है कि क्य सचमुच परमात्मा ने बिहार में वास्तविक पापियों को ही दण्ड दिया है। जितने प्राणी भूकम्प में मरे, क्या वे सभी महान पापी थे? और यहाँ, इस देश में जो बड़े-बड़े पापाचारी और गरीबों का रक्त चूसने वाले, बड़ी-बड़ी तोंदवाले, बड़े-बड़े तिलकधारी ढोंगी पड़े हुए हैं, क्या परमात्मा उन्हें नहीं देख पाता? अस्तु, ये सब व्यर्थ की बातें हैं। भली-भाँति विचार करने पर मालूम हो जाता है कि भूकम्प किसी पाप-पुण्य के कारण नहीं हुआ, वह प्रकृति की एक लीला है और भूगर्भ की वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक परिणाम है।'[8]

प्रेमचन्द ने अपनी आजादी की लड़ाई के दौरान साम्प्रदायिकता के खिलाफ जिस तरह की कलम चलाई वह अन्यत्र दुर्लभ है। साम्प्रदायिकता आजादी की लड़ाई का बहुत बड़ा बाधक तत्व था। क्योंकि इस कारण विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच एकता कायम नहीं हो पाती थी।

प्रेमचन्द ने अपने निजी जीवन में कई बार कहा था कि उन्हें ईश्वर पर जरा भी विश्वास नहीं। उन्होंने कभी कहा था–''मुझे ईश्वर पर कोई विश्वास, कोई श्रद्धा नहीं है।'' अपनी मृत्युशय्या पर लेटे प्रेमचन्द ने कहा–''ऐसे मौके पर लोग ईश्वर को याद करते

हैं। लोग मुझे इस बात का स्मरण कराते रहते हैं। मगर मुझे अब तक कभी भी ईश्वर को परेशान करने की जरूरत नहीं महसूस हुई।''

इस प्रकार, प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों, कहानियों, लेखों संपादकीय टिप्पणियों के जरिए गंभीर बातों को आम आदमी के समझने लायक बना दिया। जिन राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर हम ग्रामीण-शहरी जीवन और अर्थव्यवस्था को समझते हैं, उन सिद्धांतों को कहे वगैर ही उन्होंने इन बातों को बखूबी चित्रित किया। राजनीतिक स्लोगन, शब्दावली, भाषण या लेखों में हम जो समझते हैं, उसी शोषण-अत्याचार के चित्र को प्रेमचन्द ने लोगों की जीवन शैली में दर्शाया है, उनके खिलाफ लड़ने की प्रेरणा जगायी।

तमाम कठिनाइयों और बाधाओं को पार करती हुई भारतीय जनता से प्रेमचन्द कहते हैं–''यह अन्त नहीं है, और आगे बढ़ो जब तक कि 'रंगभूमि' में विजय न हो, जब तक कि देश का कायाकल्प न हो, जब तक कि इस 'कर्मभूमि' में 'गबन' और 'गोदान' से होरी, रमानाथ का त्रस्त होना बंद न हो और हमारा देश एक नयी तरह का 'सेवासदन', एक नयी तरह का 'प्रेमाश्रम' न बन जाये।' प्रेमचन्द की राष्ट्रीय और जनवादी चेतना और परंपरा का विकास ही उनकी आशा आकांक्षा को साकार कर सकता है।

स्वाधीनता-आंदोलन के दौर में साम्प्रदायिक समस्या एक बड़ी चुनौती के तौर पर सामने थी। तरक्कीपसंद ख्याल के नेता, बुद्धिधर्मी, पत्रकार, सामाजिक-राजनीति कार्यकर्ता सभी अपने-अपने तरीके से इस भयावह चुनौती का सामना कर रहे थे। हिन्दी-उर्दू के अमर कथाकार प्रेमचन्द ने भी इस समस्या को सामने विश्लेषित करने और इसके मुख्य विरोध में अपनी भागीदारी दर्ज करायी। प्रेमचन्द ने हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों की जटिलता और इसे साम्प्रदायिकता रूप देने की कोशिशों पर न सिर्फ कथा लिखी बल्कि एक जागरूक पत्रकार की तरह इन पर लेख और टिप्पणियाँ भी लिखीं। इन लेखों, टिप्पणियों में प्रेमचन्द का साम्प्रदायिकता के विरुद्ध रूख स्पष्टतया झलकता है। बीस-तीस के दशक में मुल्क की आबोहवा को प्रभावित करने वाली तमाम घटनाओं पर प्रेमचन्द की पैनी निगाह लगी हुई थी। इनमें से जो भी खतरा दिखता था, वे उसपर गहरी चोट करते थे। मुस्लिम-लीग और हिन्दू महासभा के अलावा कई छोटे-छोटे संगठन थे जो अपना-अपना संकीर्ण हित साधनों के मकसद से देश की आबोहवा खराब कर रहे थे। अंग्रेजी हुकूमत को भी इनसे लाभ था। इसलिए सत्ता इन्हें शह प्रदान कर रही थी।[9]

उन्नीसवीं सदी में यह दिखने लगा कि सत्ता में भागीदारी की आपसी प्रतिस्पर्धा और होड़ में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बीज को पल्लवित-पुष्पित करने के लिए उर्वर जमीन तैयार करने में एक बड़ी भूमिका अदा की थी। यह आपसी होड़ ऊपरी वर्ग के लोगों के बीच थी। पर इस वर्ग ने अपने हित को साधने के लिए, इसे अपने पूरे धर्म का हित बताकर, अपने-अपने ध र्मावलम्बियों को अपने पीछे गोलबंद करने की कोशिश की। इस मकसद में वे हद तक सफल भी हुए। अंग्रेजी सत्ता, ने कभी इस धर्म को, तो कभी उस धर्म को तुष्ट करके इनके बीच उभर रहे विभेद को बढ़ाने में मदद की। प्रेमचन्द के जमाने में यह भेद एक विकराल रूप धारण कर चुका था। हिन्दू-मुसलमान के बीच पसरता साम्प्रदायिकता का यह सवाल स्वाधीनता-संग्राम, राष्ट्रवादी मानस और स्वराज प्राप्ति के मार्ग में रूकावट पैदा कर रही था। साम्प्रदायिक दंगे करानेवाले और धर्म के आधार पर कत्लेआम करानेवाले लोगों का दीन-ईमान नहीं होता है। ऐसे लोग हर बार साम्प्रदायिकता को दूसरे कारकों से जोड़कर बताते हैं। आशय यह है कि चोर-दरवाजे से साम्प्रदायिक विचारों को लोगों के सामने पेश करते हैं। असल में राष्ट्रवादी चेतना को बगैर कमजोर किए हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के कट्टरपंथियों का अपना स्वार्थ नहीं सध सकता। इसलिए वे अपने धर्म के स्वयंभू प्रवक्ता या नेता बन जाते हैं जबकि हकीकत में अपने धर्मावलम्बियों के जीवन की वास्तविकता, समस्याओं से इनका लेना-देना भी नहीं होता।

स्वाधीनता-आंदोलन के दौरान कट्टरपंथी, साम्प्रदायिक नेता सभ्यता और संस्कृति की रक्षा की दुहाई देते थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता को दरकाने के लिए इनकी सभ्यता-संस्कृति के बीच के फर्क पर ज्यादा बल देते थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ऐसे लोगों का जवाब देते हुए लिखा था कि ''संस्कृति के इस भेद का साम्प्रदायिक समस्या से क्या सम्बन्ध है? भारत में सांस्कृतिक या वंशगत भेद मौजूद है। अगर कोई आदमी किसी दूसरे मत में चला जाये तो, न उसका सांस्कृतिक आधार ही बदल जाता है। संस्कृति राष्ट्रीय वस्तु है, धार्मिक नहीं और नयी परिस्थितियाँ अंतराष्ट्रीय जाति-विभाग का ही विकास कर रही हैं। पूर्वकाल में भी भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का एक दूसरे पर असर पड़ता था, लेकिन राष्ट्रीय प्रणाली ही प्रधान रहती थी। भारत, ईरान, चीन आदि प्राचीन देशों में ऐसा ही हुआ है।'' प्रेमचन्द ने नेहरू जी की राय से सहमति व्यक्त करते हुए 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' शीर्षक निबंध में लिखा ''साम्प्रदायकिता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भाँति जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक स्वरक्षित रखना चाहता था, और मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी-अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं। यह भूल गए हैं कि अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं हिन्दू संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति,

अब संसार में केवल एक संस्कृति है और वह है आर्थिक संस्कृति। मगर हम आज भी हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का रोना रोए चले जाते हैं। हालाँकि संस्कृति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है लेकिन ईसाई संस्कृति और मुस्लिम या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है।'' संस्कृति के राष्ट्रीय पक्ष पर बल देने की धारणा हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के कट्टर तबके और नेताओं के खतरनाक मंसूबे का जवाब है।[10]

हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे धर्मों की विशेषताओं से ज्यादातर नावाकिफ रहते हैं। इसी का नतीजा है कि एक-दूसरे के प्रति गलतफहमी फैलती है। यह गलतफहमी इन दोनों धर्मवलम्बियों को अलगाने में भूमिका निभाती है। इसलिए दोनों धर्मों के लोगों को एक-दूसरे के धर्मों की अच्छी बातों से वाकिफ होना जरूरी होता है। असल में असल सभी धर्मों का सार तत्व एक होता है। परस्पर प्रेम और दूसरे के प्रति आदर की भावना हर धर्म के केन्द्र में होता है। कट्टर धार्मिक नेता अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे धर्म को कमतर मानते-बताते हैं। दूसरे धर्म के बारे में दुष्प्रचार कर आम लोगों को ठगने और अन्य धर्मों के प्रति संशकित बनाने का काम करते हैं। जुलाई 1933 में बनारस के टाउनहॉल में इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में एक जलसा हुआ था। इस जलसे में मौलाना आजाद सुभानी, मौलाना अब्दुल खैरऔर पंडित सुन्दरलाल मुख्य वक्ता थे। सभापति के तौर पर डॉ० अब्दुल करीम मौजूद थे। प्रेमचन्द भी इस जलसे में शरीक थे। जलसा के बाद इन्होंने 'हजरत मुहम्मद की पुण्य स्मृति' शीर्षक लेख लिखा। ''इतनी सदियों तक एक साथ, पड़ोस में रहने पर भी, हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के धार्मिक सिद्धांतों और सच्चाई से इतने अपरिचित हैं कि सुंदरलाल जी के कथन ने बहुतेरे हिन्दुओं को चकित कर दिया होगा। जिस तरह अबतक मुसलमानों ने हिन्दुओं को काफिर समझकर उनके विषय में अब और ज्यादा जानने की जरूरत न समझी, उसी भाँति हिन्दुओं ने भी इस्लाम के विषय में कुछ गलत धारणाएँ बना ली हैं, और 'रंगीला रसूल' के ढ़ंग की पुस्तकें से ये लगत धारणाएँ और भी पत्थर की लकीर हो गयी हैं। इन सभी मिथ्या धारणाओं का पंडित जी ने इतने प्रभावोत्पादक शब्दों में निराकरण किय कि बहुतों के हृदय से वे ध ारणाएँ निकल गयी होंगी। यह आमतौर पर कहा जाता है कि इस्लाम धर्म तलवार के जोर से फैला और यह कि हजरत मुहम्मद ने अपने सम्प्रदाय को आज्ञा दी है कि काफिरों को कत्ल करना ही स्वर्ग की कुंजी है, पर पंडित जी ने बताया कि यह बातें कितनी गलत और द्वेष पैदा करनेवाली हैं। हजरत मुहम्मद ने कभी किसी पर हमला नहीं किया। उनके जीवन में ऐसी एक मिसाल भी नहीं मिलती, कि उन्होंने प्रचार के लिए या विजय के लिए किसी पर फौजकशी की हो। जब भी कभी उन्होंने तलवार उठायी तो शत्रुओं से अपनी रक्षा करने के लिए और वह भी उस हालत में जब और किसी तरह शत्रु अपने अन्याय से बाज न आया। कत्ल करने की जगह उन्होंने सदैव क्षमा। यह कहा जा सकता है कि क्षमा उनके जीवन का मुख्य तत्व था।''

उसी दौर में गलत तथ्यों का सहारा लेकर आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने एक किताब लिखी थी–'इस्लाम का विषवृक्ष'। द्वेष फैलानीवाली इस किताब के विरोध में प्रेमचंद ने तीखा लेख लिखा और इस किताब की बातों का खंडन किया। प्रेमचन्द ने लिखा है कि ''हजरत मुहम्मद ने कहीं भी नये धर्म के प्रवर्तक का दावा नहीं किया। उन्होंने बार-बार कहा है कि मैं प्राचीन नबियों के धर्म को ही पुनर्जीवित करने आया हूँ। उन्होंने बार-बार कहा है कि डर एक धर्म का सम्मान करो, क्योंकि सब धर्मों की तह में केवल सच्चाई है। किसी धर्म की उन्होंने निन्दा नहीं की। जब हजरत एक राज्य के अधिकारी हो गए और वह तलवार के जोर से जनता को मुसलमान बना सकते थे, तब भी उन्होंने हरेक धर्म को अपने मतानुसार उपासना करने की स्वाधीनता दे दी थी। यहाँ तक कि मूर्ति पूजकों पर भी कोई बंधन न था और हरेक धर्म के पवित्र स्थानों की रक्षा करना मुस्लिम सरकार अपना कर्त्तव्य समझती थी।'' इस प्रकार इस्लाम को लेकर हिन्दुओं के बीच भ्रम और शुबहा पैदा करने वाले विचारों कोक प्रेमचन्द ने मुखर विरोध किया।

प्रेमचन्द ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के साम्प्रदायिक नेताओं की मुखालफत की। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्वराज्य की बुनियादी शर्त मानते थे। बल्कि कई दफा उन्होंने इस एकता को ही स्वराज्य की संज्ञा दी है। दोनों धर्मों के बीच स्वस्थ संवाद और एक दूसरे के प्रति आदर-भाव के जरिए ही यह संभव हो सकता था। इसलिए वे अपने लेखों के जरिए, बार-बार इस बात पर जोर दे रहे थे। मौजूदा दौर में जब फिर से साम्प्रदायिक ताकतें सिर उठा रही हैं, प्रेमचन्द के धर्मनिरपेक्ष, स्वस्थ, लोकतांत्रिक एवं तार्किक विचारों की प्रासंगिकता बढ़ गयी है।

हिन्दुत्व की राजनीति का सूत्रपात स्वाधीनता संग्राम के दौर में ही हो गया था। 1875 में आर्य समाज 1900 में भारत ध र्म महामंडल, 1915 में हिन्दू महासभा और 1925 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना के क्रम-विकास पर ध्यान दें तो पाएँगे कि आर्यसमाज और सनातन धर्म की परस्पर-विरोधी धाराएँ क्रमशः एक दूसरे के निकट आती गईं। आक्रामक हिन्दू-अस्मिता की जमीन पर इनके कदम जैसे-जैसे बढ़ते गए, वैसे-वैसे इनके बीच की दूरी कम होती गई। वैसे तो मतभेद आर्यसमाज और सनातन धर्म के ही बीच नहीं बल्कि स्वयं आर्यसमाज के भीतर दो गुटों के बीच भी था। शाकाहार बनाम मांसाहार, संस्कृत बनाम अंग्रेजी शिक्षा के मुद्दे पर आर्यसमाज 1893 में ही दो गुँटों में बँट गया था। एक ओर था हंसराज और लाजपत राय के नेतृत्व वाला 'गुरुकुल

तट'। अनेक मतभेदों के बावजूद दोनों की दिशा एक थी, हिन्दुत्व का उद्घोष और मुसलमानों का विरोध दोनों में समान था। गुरुकुल गुट के लेखराम ने मुसलमानों के अहमदिया संप्रदाय की कटु निन्दा की जिसकी प्रतिक्रिया 1897 में उनकी हत्या में हुई। यह भी एक अजीब संयोग है कि गुरुकुल गुट के दूसरे प्रमुख नेता मुंशीराम यानी स्वामी श्रद्धानंद भी 1926 में सांप्रदायिक प्रतिक्रिया के ही हाथों मारे गए। दूसरी तरफ कॉलेज गुट के लाला लाजपत राय के सहयोगी लाला लालचंद ने हिन्दुओं की खास माँगों और समस्याओं को लेकर कांग्रेस की आलोचना की। कांग्रेस के स्थान पर हिन्दू सभाओं की, कांग्रेसी प्रेस के स्थान पर हिन्दू प्रेस की, और एक हिन्दू रक्षा कोष आदि की आवश्यकता बतलाई और 1909 में अपने एक लेख में हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक की विचारधारा का पूर्वाभास दे दिया।[11] आर्यसमाजी सुधारवाद और सनातनी रूढ़िवादी के गठजोड़ की तार्किक परिणति लाजपत राय और मदनमोहन मालवीय की राजनीतिक गुटबंदी में हुई जब 1926 के चुनावों में दोनों ने मिलकर स्वराज पार्टी के खिलाफ हल्ला बोल दिया।

प्रेमचंद आर्यसमाज के सदस्य रह चुके थे लेकिन धीरे-धीरे बोल्शेविक उसूलों के कायल होते गए। उनके समूचे साहित्य में मुस्लिम-विरोध की गंध तक नहीं है, अलबत्ता सांप्रदायिक राजनीति और उग्र हिन्दूवाद की आलोचना अवश्य है। स्वाधीनता संग्राम की सफलता के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता को वे एक अनिवार्य शर्त के बतौर पेश करते थे।

संदर्भ :

1. सांप्रदायिकता और धार्मिक पाखंड, के कट्टर विरोधी थे प्रेमचंद, ले० डॉ० ब्रजकुमार पाण्डेय, पृ०-21, सेकूलर डेमोक्रेसी, सितम्बर, 2009
2. वही, पृ०-22
3. वही, पृ०-22
4. वही, पृ०-22
5. वही, पृ०-23
6. वही, पृ०-25
7. वही, पृ०-26
8. वही, पृ०-26
9. साम्प्रदायिकता के विरुद्ध पत्रकार प्रेमचंद ले० राजीव रंजन गिरी, पृ०-27
10. वही, पृ०-28
11. आधुनिक भारत, ले० सुमित सरकार, पृ०-98

गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य में शृंगार-तत्त्व

डॉ० अजीत कुमार

fgUnh f'k{kd] eYd tkuk fl|g bVj Ldy] fnX/kh] gkthiqj ¼o'kkyh½

'शृंगार' रस रसराज होता है। इसलिए शृंगार रस के विवेचन भारतीय साहित्य में खूब हुए हैं। वैदिककालीन साहित्य, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर हिन्दी और मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य में शृंगारपरक काव्यों की धूम रही है।

'शृंगार' शब्द की उत्पत्ति शृंगारों उणादि सूत्र में 'शृ' धातु से आरम्भ, नुम्, गुक् तथा ह्रस्व का निपात करने पर होती है। 'शृ हिंसायाम' अर्थात् 'शृ' धातु का अर्थ होता है–मारना, हिंसा करना, प्राण लेना आदि। अमरकोष में शृंगार को शुचि और उज्ज्वल का समानार्थी माना गया है– 'शृंग प्राधान्य मिचर्ति कर्मण्यम्। अर्थात् शृंग, यानी प्रभुत्व प्राप्त करने वाला शृंगार कहलाता है। 'शृंग' उपपद रहते हुए 'ऋ' धातु से कर्म (यानी शृंग) मैं 'अण्' प्रत्यय होने से शृंगार बनता है। शृणांत ह्त्वश्च सूत्र के अनुसार 'शृ' में गण और नुट् प्रत्यय लगाने से शृंग शब्द की सिद्धि होती है। मेदिनीकोष में लिखा गया है–"शृंगे प्रभुत्वे शिखरे चिह्ने क्रीड़ाम्बुयंत्रके। विधाणात्कर्षश्चाय शृंगः स्थाक्तर्चशीर्षके, स्त्री विधवा स्वर्ण मनिभेद योकषमोषवो।", अर्थात् नपुंसक लिंग में शृंगार प्रभुत्व, शिखर चिह्न, क्रीड़ा का अम्बुयंत्र, सींग तथा उत्कर्ष का वाचक है। 'साहित्य दर्पण' में आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है–''शृंग शृणांतिः दशमदकला हन्ति कामुकान इति तथोक्तः ।", अर्थात् जो लेता है, अर्थात् वियोग की दसवीं दशा से जो कामियों को मारता है, वह शृंग है।

प्रणय के देवता कामदेव को शृंगारिन कहा जाता है। प्रेमासक्त व्यक्ति को शृंगारित तथा उत्तेजित प्रेमी को शृंगारिन कहा जाता है। सृष्टि के आदिकाल से आधुनिक काल तक भारतीय साहित्य शास्त्र में शृंगार को महत्त्व दिया गया है। वैदिक साहित्य में शृंगारिक प्रवृत्तियों का उन्मेष वैदिक वीर–गीतों एवं सामवेद की स्तुतियों में देखा जा सकता है।

उर्वशी–पुरुरवा, यम–यमी, मनोरमा आदि में तयुगीन शृंगारिक चेतना उपलब्ध है। 'नारदीय सूक्त' में काम भाव का महत्त्वांकन किया गया है। 'अथर्ववेद' में काम अथवा इच्छा का प्रतिपादन एक पवित्र भावना के रूप में हुआ है। 'वृहदारण्यकोपनिषद्' में तो इस तथ्य का विवेचन अत्यंत अनावृत रूप में किया गया है। इसके सम्बन्ध में डॉ. एस. के. डे का सारगर्भित मंतव्य द्रष्टव्य है–''इस युग की संस्कृति और सामाजिक परिस्थितियाँ विशुद्ध लौकिक शृंगार काव्य–रचना के विकास के अनुकूल नहीं थीं।'' डॉ. आर. एस. शास्त्री ने भी लिखा है–''वैदिक काल के समस्त दाम्पत्य–जीवन की मान्यताएँ एवं पवित्र आदर्श भोगमूलक प्रवृत्ति के रूप में समझे जाने लगे और वैदिककालीन नारियों का वह जीवन–चित्र सर्वथा लुप्त हो गया।''

बौद्ध–साहित्य और दर्शन अपने सच्चे अर्थों में शृंगार काव्य की प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं था। फिर भी 'थेरी गाथा' में शृंगारिकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं । प्राकृत भाषा में लिखित महाकवि हाल रचित 'गाथा सप्तशती', अमरूक रचित 'अमरूशतक', गोवर्धनाचार्य रचित 'आर्य सप्तशती' आदि ग्रंथों में शृंगारिकता के दर्शन होते हैं।

हिन्दी साहित्य में पहली बार विद्यापति पदावली में श्रृंगार काव्य के दर्शन होते हैं। विद्यापति को ही आदि शृंगारिक कवि कहा जा सकता है। नायक श्रीकृष्ण और नायिका राधा के प्रेम–प्रसंग और हास–परिहास में शृंगार के दर्शन होते हैं। शृंगार के दोनों भेदों संयोग और वियोग–का इन्होंने मनोहारी चित्रण किया है। बाद के हिन्दी कवियों की शृंगार–भावना

विद्यापति के अनुकरण–अनुसरण पर ही आधारित है। उपर्युक्त सभी तथ्यों के आधार पर ही शृंगार साहित्य का अनिवार्य अंग बन सका है।

संयोग शृंगार के अंतर्गत रति–क्रीड़ा, स्पर्श–सुख, नायक–नायिका का शय्या–शयन, नखक्षत, दंतक्षत, चुम्बन–आलिंगन, रति–गोपन, अभिसार, विभिन्न कामकेलियाँ, हाव–भाव आदि का वर्णन रहता है। वियोग शृंगार के अंतर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा, दस कामदशाओं, बारहमासा, चौमासा आदि का वर्णन किया जाता है। गोपाल सिंह 'नेपाली' ने विद्यापति, जायसी, सूरदास आदि जैसी शृंगारिक काव्य की रचनाएँ नहीं की हैं, पर इनके गीतों में अधिकांश शृंगार–तत्त्व उपलब्ध हैं।

संयोग जीवन का अनुपम हास है। इसे भावों की मधुर मंदाकिनी की संज्ञा दी सकती है, जिसमें स्वर्गिक सुख की प्राप्ति होती है और मानव मन आनंद की निर्झरिणी में कलकल–छलछल बहने लगता है। जीवन की मधुर वेला का उच्छ्वास यहाँ तरंगित होने लगता है। नेपाली जी ने लिखा है –

आती है जब मन में उमंग
लाती है सपना छन में उमंग
तन में उमंग, धन में उमंग
यौवन में, जीवन में उमंग।

नेपाली जी ने अत्यधिक तन्मय होकर संयोग पक्ष का निरूपण किया है। इसमें प्रणयानुभूति की मादकता, कामुकता, भावुकता, आह्लादकता इत्यादि की अधिकता है; प्रचुरता है। इन्होंने इसका मनमोहक वर्णन करते हुए लिखा है –

दिल चुराकर न हमको भुलाया करो
गुनगुनाकर न गम को सुलाया करो
दो दिलों का मिलन है यहाँ का चलन
खुद न आया करो तो बुलाया करो।

'गीतों के राजकुमार' नेपाली ने अभिसार का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। शुक्लाभिसार का इनका यह चित्र कितना हृदय हरण करता है, यह वर्णनातीत ही कहा जा सकता है। इसमें रात में चंद्रमा का खिलना संयोग पक्ष का साधन है। नायक नायिका से मिलन हेतु व्यग्र है; उतावला है। कवि ने लिखा है –

द्वार पर दीप लेकर खड़ी रात है
चाँद सर पर चढ़ाकर चढ़ी रात है
दो दिलों के मिलन की घड़ी रात है
जुगनुओं में खड़ी मुस्कराया करो।

नेपाली जी का कोमल हृदय रूमानियत में आकर धड़कता है, प्रेयसी के रूपाकर्षण में आकर फड़कता है, तभी वह माधुर्य से सराबोर प्राण लिए साहित्य में कड़कता है। इसलिए इनके गीत में मन की विह्वलता है, समर्पण की भावना है, मिलन की कामना है। लावण्य–सागर की ज्योति जलती है, तो कवि की कल्पना अपनी कांति से पाठक का मन मोह लेती है–

सुमुखी तुम्हारे रूप द्वीप में भरा हुआ इतना प्रकाश था
जिसकी लहर ज्योति लहर में मेरा डूब रहा कल्पनाकाश था।

प्रेम और सौंदर्य की व्यापक जीवनानुभूति कोई नेपाली जी से सीखे। प्रेम इनके लिए महज हृदय का भावुक उद्‌गार नहीं, वरन् परिपक्व जीवन–दृष्टि है। यही इनके जीवन को तीव्र अनुभूति, गहन चेतना प्रदान करता है –

जलता जाता था रूप द्वीप, सौंदर्य वर्तिका उठी हुई थी
मेरे मन की तरुण–चेतना, उस यौवन पर लुटी हुई थी।

वियोग से असल प्रेम की पहचान होती है। संयोग से ही वियोग का महत्त्वांकन होता है। विरह में कितनी कसक, कितनी पीड़ा, कितनी विषादमयी अभिव्यक्ति आदि होती है, यह तो प्रेमी ही जानते हैं। नेपाली जी ने अपने गीतों में तभी तो लिखा है –

सुख–दुःख के मृदु–कटु अनुभव को
उठो हृदय, फुहियो से धो लें।

नेपाली जी की नायिका विरहावस्था में संतृप्त दीखती है। उसकी वजह है कि वह युवती है और प्रिय वियोग में उसका जीवन नीरस हो गया है। वह प्रेम–पथ से विचलित हो गयी है। फलतः मिलन की कामना रहते हुए भी दुःख ही उसे श्रेयस्कर लगता है, क्योंकि इसी अवस्था में प्रेम की परीक्षा होती है; असली प्रेम की पहचान होती है। कवि नेपाली ने लिखा है –

प्यासे मेरे प्राण, प्रेम से
जीवन–सुधा पिलाओ ना।
पढ़कर मंत्र, छिड़क ममता जल
आओ आज जिलाओ ना।।

विरहाग्नि की तृप्त लपट से नेपाली जी की नायिका बेसुध हो गयी है। वह पूर्वराग अलापती है। वह अपने प्रिय को कोसती कहती है –

मंत्र पढ़ सौ सदी पुराने, रीत निभायी प्रीत नहीं
तन का सौदा करके भी तो, पाया मन का मीत नहीं।

समासतः हम कह सकते हैं कि सहज नैसर्गिक प्रतिभा के धनी कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य में शृंगार–तत्त्व उपलब्ध हैं। इनके काव्य में साहित्य–शास्त्र में उल्लिखित शृंगार तत्त्वों की प्रचुरता है।

इन्होंने शृंगार के दोनों भेदों–संयोग और वियोग–पर कलम चलाई है। हम इनको घोर शृंगारिक कवि तो नहीं कह सकते हैं, पर शृंगार–साहित्य से विलग भी नहीं कर सकते हैं। हिन्दी शृंगार काव्य–परंपरा में इनके काव्य भी सर्वोच्च स्थान का दावा कर सकते हैं, यह असंदिग्ध है।

संदर्भ :

1. अमर कोष।
2. मेदिनी कोष।
3. आचार्य विश्वनाथ कृत 'साहित्य दर्पण'।
4. अथर्ववेद, 10/2/32, 38
5. आर. सी. विद्यार्थी, प्रस्थानिक त्रयों में संकलित वृहदारण्योपनिषद् 15/4/3
6. डॉ. एस. के. डे, Treatment of Love In Sanskrit Litrature, p. 12.
7. Dr. R. S. Shastri, Women In The Vedic Age, p, 37-38.
8. गोपाल सिंह 'नेपाली', 'उमंग' कविता से।
9. वही।
10. वही।
11. वही, रूप–दीप' कविता से।
12. वही।
13. वही, 'इस रिमझिम में चाँद हँसा है' कविता से।
14. वही, 'नुपूर आज बजाओ ना' कविता से।
15. वही, बाबुल तुम बगिया के तरुवर' कविता से।

कविवर नेपाली के गीतों में उनका प्रकृति प्रेम

डॉ० आर्य सिन्धु

नेट, पी-एच0 डी, (हिन्दी)

छायावादोत्तर काल के कवियों में अपनी महती भूमिका निभाने वाले गोपाल सिंह नेपाली प्रकृति के एक अद्‌भुत व लोकप्रिय गीतकार हैं। प्रकृति की बहुरंगी छवियों का मनोरम दृश्य उपस्थित करने वाले नेपाली वस्तुतः प्रेम, प्रकृति और सौंदर्य के अद्‌भुत कवि हैं। उनके गीतों में प्रकृति-प्रेम, मानवीय-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम एवं आध्यात्मिक-प्रेम प्रमुख रूप से मुखरित हुए हैं। लेकिन जब वे प्रकृति की बात करते हैं तो उसकी संपूर्णता के साथ तादात्म्य स्थापित कर एकाकार हो जाते हैं -

''मैं वसंत हूँ कुँज-कुँज में
मेरा ही पीताम्बर उड़ता
निर्झर की उद्दाम लहर में
मेरा यौवन फूट उमड़ता
मेरे पुलकित रोम-रोम-से
तरु के पात हिले वन-वन में
डालों पर गा रहे विहग जो
वह मेरा ही अमर गान है।'' [1]

प्रकृति-चित्रण साहित्य का एक शाश्वत विषय रहा है। प्रकृति सृष्टि की हो अथवा जीवन की, उसकी संपूर्णता को किसी न किसी रूप में सभी काल के कवियों ने अभिव्यक्ति दी है। छायावादी कवियों ने तो प्रकृति के बहुरंग को जिस जीवंतता से आत्मसात किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण था कि सुमित्रानंदन पंत हिन्दी साहित्य में 'प्रकृति के सुकुमार'कवि के रूप में विख्यात हुए। छायावादात्तोर काल में कवियों ने प्रकृति को जीवन के यथार्थ के रूप में अभिव्यक्त किया। प्रकृति को नैसर्गिक सौंदर्य का भंडार मानने वाले कवि नेपाली का जन्म ही हुआ था प्रकृति की स्नेहिल गोद में। बचपन में ही मातृविछोह के बाद अपने सैनिक पिता के साथ देहरादून से लेकर मसूरी की मनोरम छटाओं, हरे-भरे कुंजों और झील-झरनों के सान्निध्य में ही उनका कवि कंठ फूटा -

''फूटा है मेरा कंठ यहीं रे, निर्मल निर्झर के समान,
सीखा है मैंने यहीं तीर पर सरिता के मृदु सरल गान
सिखलाया है नित यहीं मुझे पंछी ने उड़नाप पाँख खोल
है हुआ यहीं क्रिड़ा निकुंज में मेरे जीवन का बिहान।'' [2]

प्रकृति की इस निकटता व भव्यता की महिमा को उन्होंने अपनी रचना रागिनी (1935) की भूमिका में भी स्वीकारा है -

''यह हरी-हरी दूब की ही महिमा है कि आज मेरे हाथ में बंदूक के बदले लेखनी है।''[3] प्रकृति की इस सभ्यता व भव्यता की निकटता ने कवि को अपना जीवन-मर्म सिखा दिया -

''जीवन में क्षण-क्षण कोलाहल, ज्यों सुख त्यों दुख, सुख-दुख समान
आती सन्ध्या जाता विहान, जाती सन्ध्या आता विहान
इसलिए जगत् में दो ही तो कुछ शांति कभी देनेवाले
है एक प्रकृति की मृदुल गोद, दूसरा प्रेम का मधुर गान।''[4]

नेपाली के लिए प्रकृति ही उनके जीवन की प्रेरणा शक्ति बनी। उन्होंने वादो से मुक्त रहकर प्रकृति का स्वच्छंद गीत गाया। प्रकृति की संपूर्णता को अपनी काव्य-यात्रा में आत्मसात किया। पूर्व कवियों की तरह उन्होंने प्रकृति को मानव भावनाओं की इतिवृत्तात्मकता के लिए ही प्रयोग नहीं किया, बल्कि उसमें स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्वीकार कर उसके आंतरिक सौंदर्य को प्रकट किया -

''चमक उठे कण-कण जगती का निर्मल जल, थल, नभमंडल
मेरी दुनिया हो चाँदी की चाँदी-सी हो उज्ज्वल
उमड़-उमड़ से सिन्धु-प्रेम का इस नभ के नीचे अविरल
तेरी लहरों से लहरावे यह नभमंडल यह भूमंडल।''[5]

प्रकृति नेपाली के गीतों में अपने सहज सौंदर्य के साथ मनुष्य के सुख-दुख की अनन्य सहचरी के रूप में प्रकट हुई है। प्रसिद्ध विद्वान नंदकिशोर नंदन ने लिखा है - ''नेपाली वर्डसवर्थ के समान ही प्रकृति को महज एक भौतिक उपस्थिति ही नहीं वरन् उसे एक जीवन्त सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। वह प्रकृति में मनुष्य की विशेषताएँ-सजीवता, भावात्मकता, चिंतनशीलता और इच्छा के दर्शन करते हैं। इसलिए उनके लिए प्रकृति और मनुष्य पृथक और भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं, वे दोनों एक-दूसरे से ऐसे अंतर्ग्रथित हैं कि उनकी कविता का प्रसार समान रूप से संपूर्ण प्रकृति और मनुष्य तक हो गया है।''[6]

नेपाली के काव्य में प्रकृति के प्रायः एक-एक रूप के प्रति जैसा प्रगाढ़ अपनत्व है-वह देखते ही बनता है। पंछी, पर्वत, मेघ, निर्झर, फूल, सरिता, किरण, पीपल, घास, मोर, विविध ऋतुएँ, संध्या, रात्रि सब अपने स्वाभाविक रूप में इस प्रकार प्रकट हुए हैं कि लगता है वे सब कवि से एकाकार होकर सजीव हो उठे हैं -

''यह लघु सरिता का बहता जल
कितना शीतल, कितना निर्मल
हिमगिरि के हिम से निकल-निकल
यह विमल दूध-सा हिम का जल
कर-कर निनाद कलकल-छल-छल
बहता आता नीचे पल-पल
तन का चंचल, मन का विह्वल
यह लघु सरिता का बहता जल
कितना शीतल, कितना निर्मल।''[7]

घास नेपाली को इतनी अच्छी लगती है कि वह घास को जीवन के संपूर्ण माधुर्य के रूप में देखते हैं। प्रकृति की सौंदर्य सुषमा की आधार भूमि उसकी हरीतिमा है जो सर्वत्र घास के रूप में विद्यमान होती है। यही कारण है कि कवि को घास में परमसत्ता की असीम करुणा की झलक दिखाई पड़ती है -

''प्रभु की असीम करुणा होती है अब दे मुझे भास
सुख, सुषमा, शोभा, सुंदरता बिखरी है मेरे आस-पास
फिर मुक्त कंठ से इन सबका गुण-गान मधुर में करु न क्यों
दी बिछा उसी ने इसीलिए मेरे आँगन में हरी घास।''[8]

नेपाली ने छायावादी कवियों की तरह ही प्रकृति प्रेम विषयक कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण बड़ी सहजता के साथ किया हैं। पीपल के सौंदर्य व गतिशीलता को प्रकट करते हुए कवि कहते हैं –

''पीपल के पत्ते गोल-गोल
कुछ कहते रहते डोल-डोल
जब-जब आता पंछी तरु पर जब-जब जाता पंछी उड़कर
जब-जब खाता फल चुन-चुनकर
पड़ती जब पावस की फुहार बजते जब पंछी के सितार
बहने लगती शीत बयार
तब-तब कोमल पल्लव हिल-डुल गाते सर्सर, मर्मर मंजुल
लख-लख सुन-सुन विह्वल बुलबुल
बुलबुल गाती रहती चह-चह सरिता गाती रहती बह-बह
पत्ते हिलते रहते रह-रह।''[9]

वे हर रूप में सहज ही प्रकृति का संगीत प्रस्तुत कर देते हैं –

''देहरादून के मधुर बेर, जंगल में मिलते ढेर-ढेर
पड़ता लाने में बड़ा फेर, देहरादून के मधुर बेर
दूँ मैं बिखेर रे, कई सेर, देहरादून के मधुर बेर
जब आता है रे शरद काल
लदती बेरों से डाल-डाल
लख पीले-पीले लाल-लाल
हो जाती मंसूरी निहाल
थकते नयन ये हेर-हेर, देहरादून के मधुर बेर।''[10]

नेपाली की इसी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है – ''प्रिय नेपाली जी, आपकी कविताएँ मुझे विशेष प्रिय हैं। आपकी सरस्वती स्नेह, सहृदयता और सौंदर्य की सजीव प्रतिमा है। आपका कवि-कण्ठ, निर्मल निर्झर के समान अवश्य ही मंसूरी की तलहटी में फूटा होगा। इसलिए आपकी रचनाओं में जो उन्मुक्त वातावरण एवं स्निग्ध अभिलातप मिलता है, वह पाठक के हृदय की खिड़की खोलकर, उसे 'नरम दूब' बिछी राहों से, 'जंगल की मंसूरी' में ले जाकर प्रकृति की मनोरम क्रीड़ा-भूमि में छोड़ देता है, जहाँ जंगल की हरियाली' आंचल पसार कर उसका स्वागत करती है।''[11]

नेपाली ने अपने प्रकृति-परक गीतों में आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में अपनी भावना व्यक्त की है –

'' देखो तो वह प्रिय गगन में फटता जाता धन है
वन के भीतर से नव शशि का हँसता आता मन है
कितना सुन्दर लगता है वह, चाँदी का यौवन है
बोली रानी क्यों उससे कम यही तुम्हारा तन है।''[12]

नेपाली की बहुत ऐसी सौंदर्य-सुषमा से सुशोभित कविताएँ हैं, जिसमें उन्होंने अपने सहज और ताजे बिम्ब से उसे जीवंत कर दिया है। 'गीत' शीर्षक कविता में उन्होंने श्रव्य बिम्ब का एक सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है –

''आप मधुप मुकुल-मन खोल-खोल
द्रुम में पक दाड़िम गोल-गोल

तरु के नव पल्लव डोल, डोल
वन-वन में पंछी, बोल, बोल।''[13]

कवि के अनुसार संपूर्ण प्रकृति के कण-कण में सौंदर्य व संदेश बिखड़ा हुआ है। आवश्यकता है इसे अपने हृदय में संजोने की। जब वह ऋतु वर्णन करते हैं तो इन पंक्तियों से इस बात की पुष्टि सहज ही हो जाती है -

''कुंज-कुंज रस रूप बाँटता आया है ऋतुराज
कविता गूँज उठी कोकिल की वन पहली आवाज
आती ग्रीष्म जगाती जग के कण्ठ-कण्ठ में प्यास
कविता छाँह बना तरुवर की शीतल सललित सुवास
पावस में भर गया मेघ से श्याम नील आकाश
बनकर मोर कुंज में नाचा कविता का उल्लास।''[14]

नेपाली ने अपने प्रकृति-चित्रण के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को भी अभिव्यक्त किया है -

''गंगा लेकर चली अर्ध्य जल, यमुना लेकर फूल
सागर लाने चला उमड़कर, कर जननी की पद्धूल
दीप लिये गंडकी पधारी, पदमा गाती वंदन
भारत माता के आँगन में आज जननि पद पूजन।''[15]

प्रकृति-चित्रण के माध्यम से उनकी दार्शनिक और रहस्य भावना भी देखती ही बनती है -

'' सूरज को प्राची में उगकर, पश्चिम में चला जाना है,
रजनी को हर रोज रातभर, तारक दीप जला जाना है
फूलों को धूलों में मिलकर, जग का दिल बहला जानाा है,
एक फूँक के लिए प्राण का दीप मचलता रहा रात भर।''[16]

इस प्रकार नेपाली ने प्रकृति की समग्रता को अपनी वाणी दी। उन्होंने लगभग अपने सभी काव्य संग्रहों में प्रकृति का चित्रण किया है। प्रसिद्ध विद्वान डॉ0 सतीश कुमार राय ने कहा है - ''नेपाली नैसर्गिक रूप से प्रकृति के कवि हैं। आलंबन, उद्दीपन, मानवीकरण के रूप में प्रकृति चित्रण के साथ उन्होंने दार्शनिक भावना की अभिव्यक्ति और रहस्य भावना की पृष्ठभूमि के रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है। उनका प्रकृति चित्रण सहज होने के बावजूद विशिष्ट है, स्वाभाविक होने के साथ सम्मोहक है। निश्चित रूप से वे आधुनिक हिंदी कविता में न केवल प्रकृति के प्रतिनिधि कवि हैं, बल्कि उसके अकेले संपूर्ण कवि भी हैं।''[17] प्रकृति की शायद ही कोई छवि हो, उसकी घटना या कोई भी परिवर्तन हो या कोई प्रहर हो-जो कवि की लेखनी का संस्पर्श पाकर जीवंत न हो उठा हो ! नेपाली का यह प्रकृत प्रेम सचमुच में अद्भुत व अद्धितीय हैं। मनुष्य के लिए प्रेरणा के स्त्रोत हैं -

''जीवन के इस नीले नभ में हूँ तारों-सा सदा उदय
तरु के ऐसा रहूँ उटल और शीश नवाकर करु विनय।
जीवन के गाने-गाने की विहग जानता है जो लय
उस लय में, मैं गाऊँ यह मेरे जीवन का निश्चय।''[18]

संदर्भ :-

01. नेपाली : चिन्तन अनुचिन्तन / सं0 डा सतीश कुमार राय / 121
02. गोपाल सिंह नेपाली समग्र - 1/100
03. वही / 142

04. वही / 105
05. वही / 70
06. आजकल / नबंबर- 2011/15
07. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/97
08. वही / 91
09. वही / 93
10. वही / 101
11. वही / 54/55
12. वही / 28
13. वही / 57
14. वही / 386/387
15. वही / 408
16. वही / 376
17. अलाव / नेपाली जन्मशती विशेषांक, मार्च-अप्रैल-2012/146
18. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/63

लिली रेक रचना दृष्टि : भाषा एवं शिल्प

कुमकुम कुमारी

शोध-छात्रा (मैथिली), ग्राम-भागीरथपुर, भाया-पण्डौल, पोस्ट-बिरसायर, थाना–सकरी, जिला-मधुबनी-847234

आधुनिक मैथिली गद्य-साहित्यक क्षितिजपर ख्यात, प्रख्यात उच्च कोटिक लेखिका श्रीमति लिली रे अपन वैभवपूर्ण रचनाक कारणेँ मैथिली कथा एवं उपन्यास साहित्यकेँ नव क्षितिज प्रदान कएलनि। ओना मैथिली साहित्यक सृजनक इतिहासमे लिली रे बहुत दिन धरि अदृश्य व अपरिचित रहलीह कारण छद्म नामसँ लिखबाक हिनक मनोभाव-प्रवृति रहल। छद्म नामसँ हिनक कथा 'रंगीन परदा', 'रोगिणी' की कहु' आ अन्तमे 'हमर गप्प' आदि प्रकाशित भेल। समाजकेँ उद्वेलित ओ जाग्रत करएवाला एहि कथा सभकेँ एक नव दिशाक संकेत भेटल। नारी हृदयक मनोभावसँ समसामयिक परिस्थिति आ नारीक दृष्टिकोणकेँ पहिलबेर व्यापक रूपमे उजागर कएल गेल।

बहुमुखी प्रतिभा आ व्यक्तित्वसँ धनी लीली रेक पारिवारिक पहचान अँगरेजिया पुतोहुँ रूपमे प्रतिष्ठित भेल। मुदा स्वभावसँ अति दानी-परोपकारी वृति-प्रवृतिक छलीह। अपन कमनीय कल्पना ओ मोहिनी छविक धनी एहि विदुषीक जन्म 26 जनवरी 1943 केँ बिहारक मधुबनी जिलामे भेल छलनि। पैतृक रामनगर पूर्णियाँ एवं पिता स्व. भीमनाथ मिश्र पुलिस सेवामे उच्च पदपर स्थापित छलाह। बारह वर्षक अवस्थामे हिनक विवाह दुर्गागंज, कटिहारक प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. एच.एन. रेक संग भेलनि। नैहर-सासुर दुनूक अभिजात संस्कार हिनकामे समान्यरूपसँ देखल जा सकैत अछि। दू कूलक संस्कार मिलि एक प्रखर प्रतिभा सम्पन्न सफल स्त्री मातृत्वकेँ प्राप्त कएलक आओर हिनका दूटा पुत्ररत्नक प्राप्ति भेलनि। हिनक स्कूली शिक्षा बेसी नहि भए सकल किन्तु स्वाध्यायसँ ई मैथिली, बंग्ला, हिन्दी, अंगरेजी आदिक ज्ञान प्राप्त कएलनि। एहि भाषा सभपर हिनक समान अधिकार छनि। जहिना भाषा बजैत छथि तहिना लिखैत छथि। हिनक वाणीमे मंत्र सन शक्ति अछि आओर लेखनीमे चित्ताकर्षक अभिव्यक्ति अछि।

लिली रे मिथिलाक संस्कार ओ लोक व्यवहारक कारणेँ अपन वैवाहिक जीवनक क्षण सुख-समृद्धिमे बितौलनि। जखन मैथिली साहित्यमे परिवर्तनक स्वर अपन मध्यकालमे चलि रहल छल तखन एकाएक 1956 ई. मे 'वैदेही'क कथा विशेषांकमे एक कथा प्रकाशित भेल जकर शीर्षक छल 'रंगीन परदा' आ लेखिका छलीह 'कल्पनाशरण'। मैथिल साहित्य जगत एहि कल्पनाशरणक खोज करए लागल। बहुत दिन धरि लोक विभिन्न प्रकारसँ एहि प्रखर बुद्धिशालिनी कथा लेखिकाकेँ तकैत रहल, तर्क-वितर्क होइत रहल। एहन परिस्थितिमे प्रसिद्ध खोजी संकलनकर्ता डॉ. रमानन्द झा रमण आ रमणजीकेँ ई श्रेय जाइत छनि जे श्रीमति लिली रेक तीनटा कथा-संग्रह -रंगीन परदा' 'लीली गुराँस' आ 'विशाखन' संकलित कए प्रकाशित करौलनि। विभिन्न पुराना पत्र-पत्रिकासँ छिड़िआयल सामग्री बटोरब हुनका लेल ओतबे श्रमसाध्य छल जतेक धनक खोतसँ शीत सिसोहि पथिआ भरब। से काज ओ कएलनि आ आई पाठकक समक्ष लिली रेक बियालिसटा कथा आ छओटा बालकथाक संकलन उपलब्ध अछि। एकर अतिरिक्त हुनकर आत्मकथा, 'समय कँ धैंत', 'पटापेक्ष'आ 'उपसंहार' एवं 'एकटा पुरान गप्प' दूटा उपन्यास सेहो हुनकहि प्रयासँ प्रकाशित भए सकल अछि। 'जिजीविषा' लघु उपन्यास वर्ष 2005 मे प्रकाशित भेल छलनि। हिनक एकटा कथा आ उपन्यासक अनुवाद सेहो प्रकाशित भेल अछि।

लिली रेक मैथिली कथा 'रोगणी' वर्ष 1955ई. मे 'वेदैही'मे प्रकाशित भेल जकर उल्लेख प्रो. शंकर कुमार झा अपन लेख रंगीन परदामे कएने छथि। मुदा लिली रेक ख्यातिक विस्तार रंगीन 'परदा' कथाक प्रकाशनसँ प्रारम्भ भेल। ई कथा सेहो 'वेदैही'क कथा अंक (1956ई.)म प्रकाशित भेल। एहि कथामे मिथिलाक लेल एकटा अकल्पनीय आ अशोभनीय कथा वर्णित अछि। ओहि कथामे एकटा सासु आ जमायक बीच अवैद्य शारीरिक सम्बन्धक बेस विस्तारसँ लिखल गेल अछि। ओहि अवैद्य शारीरिक सम्बन्धमे बाधा

बनयबाक ससुरक हत्या कथाकथित जमाय करैत अछि। जे तथाकथित सासुक समक्ष होइत अछि। ओहि घरक दोसर कोठरीमे ओहि जमायक पत्नी आ ओहि सासुक बेटीक अछैत एहन जघन्य कुकृत्य होइत छैक।

एहन देहक भुख वा एहन वासनाजनित आदमी इच्छाक पूर्ति लेल सबटा सम्बन्धक अतिक्रमण कए ओहिपर प्रेमक छद्मावरण चढ़ायब एकटा धूर्त्तता मात्र थिक, से ओ दुनू करैत अछि। एहन कथा मैथिली साहित्यमे आओर उपलब्ध भेटैत अछि। राजकमल चौधरी आ धूमकेतु प्रभृति कथाकार एहन कथा लिखने छथि जे पारिवारिक सामाजिक आ मानवीय देह-सम्बन्ध-सीमाकेँ पूर्णतः ध्वस्त करैत अछि। ओ पात्रसभ देहक भूखक लेल पशुवत् दुराचरण करैत भेटैत अछि। जतए मानवीय देह सम्बन्ध सीमाक कोनो अस्तित्व नहि बचैत छैक। बाइस-तेइस वर्षक वयसमे लिखल ई कथा ओहि समय महिला कथाकार लेल बड़ साहसिक कथा मानल गेल आ ओकर खूब चर्चा भेल साहित्य अकादेमीक मैथिली-कथा संग्रह (सं. जयधारी सिंह 1974ई.)मे सेहो ई कथा कल्पनाशरणक नामसँ संगृहीत अछि।

मिथिलाक माटि-पानि ओ सामाजिक जीवनसँ बहुत बेसी हिनका सरोकार नहि रहल। जीवनक बहुमूल्य समय हिनक देश-परदेशमे बीतल। तथापि हिनक रचनामे मिथिलाक माटि-पानि, सामाजिक जीवन घटना, सांस्कृतिक परम्परा, आचार-विचारक समन्वित चित्रण प्राप्त अछि। बंगालमे हिनकर जीवन अधिक समय बीतल। बंगालक नक्सलि आन्दोलन चरम शिखरपर छलैक। साहित्यकारक मनोभाव सामाजिक घटनासँ प्रभावित होइत अछि, ई स्वभाविक थिक। तेँ पश्चिम बंगालक एहि ज्वलन्त समस्याकेँ पृष्ठभूमि बनाय ई एकटा उपन्यास लिखलनि जकर शीर्षक छल 'पटाक्षेप' जे तत्कालीन मैथिली प्रतिष्ठित पत्रिका 'मिथिला मिहिर'मे 02 जुलाई सँ 07 अक्टूबर 1979 धरिक अंकमे प्रकाशित भेल। कथाक उपरान्त ई उपन्यासकार श्रृंखला तैयार करए लगलीह। नगरीय चकाचौंध, नव पीढ़ीक आकर्षण, नव फैशनक चलन संगहि सामन्तीवादक विरोधक स्वर, आशा-निराशा आदि पृष्ठभूमिकेँ ध्यानमे राखि लेखकलोकनि अपन रचना करब प्रारम्भ कएलनि।

एहि कड़ीमे ई एकटा वृहद उपन्यास लगभग हजार पृष्ठक लिखलनि। जे क्रमशः दू भागमे प्रकाशित भेल। जकर शीर्षक छल 'मरीचिका' ई उपन्यास ततेक प्रसिद्ध ओ हृदयग्राहय भेल जे एहि पोथी पर लिली रे केँ 1982 ई.क साहित्य अकादेमी पुरस्कासँ पुरस्कृत कएल गेल। लिली रेक तेसर उपन्यास जे लघु-उपन्यासक रूपेण 'वैदेही' 1991क अंकमे प्रकाशित भेल अछि। जकर नाम थिक 'उपसंहार'। ई उपन्यासक पूर्णरूपेण नारी-विमर्शपर आधारित अछि। अपन उपन्यासक श्रृंखलाक कड़ीमे एकटा आर अध्याय जोड़ैत हिनक चारिम उपन्यास 'मिथिला दर्शन'क नवीन संस्करणमे जनवरी-फरवरी 2010सँ लए मार्च-अप्रैल 2011 धरिक, अंकमे धरावाहिक रूपेँ एकटा बड्ड़ पुरान गप्प नामसँ प्रकाशित भेल। एहि उपन्यासमे नारी-शिक्षाक पैघ उदाहरण प्रस्तुत कएल गेल अछि। हिनका पहिल 'प्रबोध साहित्य सम्मान' 2004सँ सम्मानित सेहो कएल गेल अछि।

लिली रेक अनेक कथा विवाहेत्तर देह-सम्बन्ध भिन्न परिस्थितिक लए उपस्थिति अछि। कतहु नायिका धनक लेल अपन देह अर्पित करैत अछि तँ कतहुँ पतिसँ विद्रोहक प्रतिकक रूपमे। कतहुँ नायिका, पुरुषक अभावमे कुपछ धरैए आ कतहुँ स्वाद परिवर्तनक हेतु सेहो। 'रोगिणी' कथाक रेणु विधवा छथि आ मेडिकलक एकटा विद्यार्थी संग लागि गर्भधारण कए असगरे भागि पड़ाइत छथि। 'जिद'क देवकी अपने भरदुलाहि आ अपरोजक अछि। काजमे अपचेष्टा अछि। पति बड़का पदाधिकारी छथिन। ओ अपन पत्नीसँ दुखी रहैत छथि। देवकी अपन पति अधीनस्थ एकटा डाक्टरक संग देह-सम्बन्ध बना गृह त्याग करैत अछि। बिहाड़ि आबिसँ पहिने कथाक डाक्टर सावित्री पाठकक तैंतालिस वर्षक उमेरमे अपनासँ आधा व्यसक युवक विजयक संग भसिया जाइत अछि। अन्ततः सलिला कथाक बुधमाया रमचटिया आ दिलसिंह कामी सेहो ओहने खिस्साक निर्माण करैत अछि। 'बाइस्कोप' कथाक नर्स सिस्टर रानी सुब्बापर ओकर पतिक विश्वासघात पढ़ि सहानुभूति उगैत छैक। ओकर पति प्रदीप वर्मा ओकरा बेटी सहित छोड़ि घरक आया भारतीक संग रहल चल जाइत अछि। कथा जखन आगाँ बढ़ि रानी सुब्बाक अतीतक उजागर करैत अछि। तखन बुझवामे अबैत छैक जे ओ अपनहुँ दुटा बेटा अपन पति आ मिलिटरी अस्पतालक नौकरीकेँ एकबेर लाल मारि प्रदीप वर्मा संग भागि गेल छलि।

'सम्बन्ध' कथाक बगड़ा अपन मालिक गुप्ताजीक संग अपन सहमतिसँ दैहिक सम्बन्ध बना 'पेट' लेल संघर्ष करैत अछि बेटिक जन्मक बाद असगर बेटीक पालन करैत अछि। अबुझ कथाक दुर्गाक सासु आ पतिक दुखे घरसँ भगैत अछि। तकर बाद कतेको पुरुषक संग समय गुदस्त करैत अछि। अन्ततः रिसड़ामे कम्पनीमे कार्यरत व्यक्ति मंगलक हाथ धए लैत अछि। रिसड़ामे मजदूरक नौकरी करयबला बेसी लोक पत्नीक अतिरिक्त एहिठाम एकटा अस्थायी मउगी सेहो रखैत अछि। एहिठाम एहन मउगी अफरातसँ

भेटैत छैक आ ई कोनो अपकर्मो नहि मानल जाइत छैक। मंगलक गामक पत्नी, बुलन्ती सेहो मंगलकेँ छोड़ि दोसरक संग चुमान कए लैत अछि। मंगलक गामक पत्नी, बुलन्ती सेहो मंगलकेँ छोड़ि दोसरक संग चुमान कए लैत अछि।

मंगल अपन मायपर बड़ तमसाइत अछि जे माय ओकर बहुकेँ जोगाकेँ आ थथमाड़िकेँ नहि रखलैकक। अवैध देह सम्बन्ध लिली रेक कथामे बड़ सहजताक संग मिझराएल अछि जेना ओ कोनो विशेष बात छैक नहि। ओ जीवनक एकटा सामान्य दिनचर्या जकाँ उपस्थित अछि। एहि सम्बन्धे बहुत लिखल जा सकैत अछि। मुदा, एहि प्रसंगक अन्त हम 'रानू देवीक संग दार्जिलिंग रहबा लेल चलि अबैत छथि। एहिठाम रानू देवी हुनकर घर आ देश दुनू सम्हारि लैत छनि। ओ जाहि असहजतासँ घर बर्तन आ कपड़ा साफ करैत अछि, ओहि लेल ने कोनो गुनधुनी छैक ने कोनो मनोविश्लेषण न कोनो आगु-पाछुक सोच विचार। लिली रे एहन सन्दर्भसभकेँ एकाध वाक्य लिखि निपटाए आगेँ बढ़ि गेल छथि। ओमहर रानूदेवी जल्दी धनिक बनबा लेल अरूण कुमार नामक पुरुषक संग सेहो बीच-बीचमे सुतैत-बसैत अछि। परिवार नियोजनक ऑपरेशन करा लेने अछि से ओहन सब तरहक चिन्तासँ मुक्त अछि। सब किछु दिनादृष्टीएँ होइत छैक। कोनो नुकाचोरी नहि छैक। सबसँ उल्लेखनीय अछि जे एतेक किछु बात कथामे अयलाक बादो एकोठाम अश्लीलताकतँ कथे कोन जे एकहुटा घटनाकि वाक्यकि शब्द कतहु बेउरेब नहि भेटैत अछि। एहन कमाल पात्र लिली रे सनक सिद्धहस्त कथाकारसँ सम्भव भए सकल अछि।

"ललित-राजकमलक ट्रिक छल जे मैथिली कथा के टरनिंग प्वाइंट कहल जाइत छल। ओहि काल खंडमे लिली रे लिखल शुरू कएलनि। कारण ओहि समयमे नारीकेँ स्वतंत्रता नहि छल आ नारीकेँ बेसी महत्व नहि देल जाइत छलैक। मुदा लिली रे अपन रचनाक माध्यमसँ नारी समाजक आँखिपर पड़ल झौल बीझकेँ हटौलनि आ नारी की नहि कऽ सकैत अछि?नारी के हीन बुझबाक नहि चाही। नारी मात्र पत्निय नहि होइत अछि। ओ अबला नहि होइत अछि। ओ कोनो काज कए सकैत अछि। ओना मैथिलीमे लेखिकाक कमी रहल अछि, एहि विषय पर विमर्श करब समीचीन नहि लगैछ।"[1]

लिली रेक कथाक कहबाक ढ़ंग एकदम खिस्सकड़बला अछि। से अपन ढ़ंग ढ़ाँचामे पारम्परिक मैथिल प्रकृतिसँ हुनका जोड़ैत अछि। रोचकता एहेन जे खिस्सा शुरू करब तँ अन्त कए छोड़ब कथाक अन्तमे कथ्य ओ भाव छिटकि जायत। लिली रेक कथाक चरमबिन्दु बहुधा अन्तहिमे रहैत अछि। लिली रे कथा कहबामे कखनहु हड़बड़ि नहि रहैत छथि।

ओ अत्यन्त धैर्यसँ विस्तारमे जाए कथा कहनिहारि छथि। कखनहु लागत जे कथा कतयसँ शुरू भेल आ कतय जा रहल अछि आ फेर कतय पहुँचि गेल। मुदा कथाक अन्त सम्पूर्ण विस्तारकेँ एक संगतिमे आनि दैत अछि। लिली रेक कथाक दोसर विशेषता कथाक संवाद अछि, बहुता कथाक बेसी अंश संवादमे रहैत अछि। संवादक बेसी प्रयोगसँ कथामे ताकिकताक संग प्रवाह बनल रहैत छैक। लिली रेक कथाक तेसर विशेषता हुनक भाषा अछि। विभिन्न क्षेत्रक बोली-बानी आ भाषा उपयोग अपन कथामे जतेक लिली रे केलनि अछि, से आन बहुतो कथाकारसँ सम्भव नहि भेल अछि अपन कथामे भाषा प्रयोग लेल ओ विशेष रूपसँ उल्लेखनीय छथि भाषामे जतय साहित्यकताक पुट भेटैत अछि, ओतहि विभिन्न क्षेत्रक मिठास आ आत्मीयता सेहो।

लिली रेक कथाक शिल्पमे बहुत कम प्रयोग कएलनि अछि। हुनक कथावाचक एकरंगहे सन रहल अछि। कथाक शिल्पमे खिस्सक ढ़ंब -ढाँचाक कारणे ओ एकहि स्तरीय कथा कहनिहारि कथाकार छथि। हुनक कथामे विभिन्न स्तर नहि अछि। वस्तुत: लिली रेक डॉ. 'श्रीश'क अनुसारेँ-

''पटाक्षेपमे उपन्यासकारक नक्सलवादी क्रांति-भावनाक प्रति सहानुभूतिपूर्ण प्रगतिशील प्रवतिक दर्शन होइत अछि। परन्तु मैथिली साहित्यक इतिहासमे एहि उपन्यासक महत्व अछि। नवीन ओ ज्वलन्त राजनीतिक विचार-धाराके रोचक शैलीमे मैथिली उपन्यासक विषय नवीनताक सन्निवेश करबाक दृष्टिएँ। पटाक्षेपक कोनो दिशा धरैत सामाजिक मन:स्थितिक चित्र ताकल जा सकैछ।"[2]

निष्कर्षत

लिली रे कथाकार ओ उपन्यासकारक रूपमे निरन्तर बढ़ैत रहलीह, जकर कारण छल जे ई मानव-जीवनक नियतिक महत्वकेँ नीक जकाँ बुझने छथि। हिनक कथा-उपन्यासमे घटनाक स्वतंत्र रूप देखबामे अबैत अछि आओर एहि रूपक महत्वकेँ प्रतिपादित करबाक हेतु ई पात्रक सामान्य मनोदशाकेँ चरित्रमे अटावेश कए मानव जीवनक चरित्रकेँ स्वभाविक रूपेँ चित्रित कएलनि अछि जे हिनक रचना दृष्टिक परिचायक थिक। हिनक रचनामे समाज ओ मनुष्यक प्रत्येक चेष्टाक सम्यक रूप देखबामे अबैत अछि जे मानव

जीवनक यथार्थताकेँ रूपष्ट करैत अछि। ई साहित्यकेँ मानव जीवनक आलोचनाक रूपमे व्याख्यायित कएलनि अछि। तेँ हिनक रचनामे अनेक ठाम आदर्शवाद ओ यथार्थवादक रूप देखबामे अबैत अछि। जाहि प्रकारक हिनक रचना उपलब्ध अछि ताहिमे हम निश्चितरूपेँ कहि सकैत छी जे हिनक दृष्टि मुक्त ओ नियति मानव-जीवनक हेतु निर्धारक तत्व प्रमाणित भेल अछि।

सन्दर्भ

1. परिचायिका– डॉ. भीमनाथ झा, पृ. सं. 108ए प्रकाशक– भवानी प्रकाशन, पटना, प्रकाशन वर्ष– 1985 ई.
2. मैथिली साहित्यक रूपरेखा– डॉ. बासुकीनाथ झा, पृ. सं. 85ए प्रकाशक-चेतना, समिति, पटना, प्रकाशन वर्ष– चतुर्थ संस्करण-2015 ई.

ललित-साहित्यक मूल कथ्य : भाषा एवं शिल्प

डॉ० गोपाल कुमार

अतिथि शिक्षक, मैथिली विभाग, आर.के. कॉलेज, मधुबनी (बिहार)

मैथिली कथा जखन एक दिस बंगलाक भावुकतामे ओझरायल चल जा रहल छल आ दोसर दिस पाश्चात्य सभ्यता शैलीमे। तखनहि मैथिली भाषामे झटका देलनि 'ललित' आ अपन माटि-पानिकेँ आगाँ बढ़ोलनि। ललितक जन्म 6 अप्रैल, 1932 केँ मधुबनी जिलाक बसैठ-चानपुरा नामक गाममे भेलनि। हुनक पूरा नाम 'ललितेश मिश्र' छलनि। हुनक पिताक नाम चन्द्रशेखर मिश्र छलनि। हिनक आर्थिक-स्थिति कहियो ठीक नहि रहलनि। मध्यम आयक लोक आ अध्ययन-अध्यापनसँ मतलब छलनि। भाव-बोध, भाषा-शिल्प, सूक्ष्म-विशलेषण, आधुनिक परिवेश तथा व्यापक विषय-वस्तुक दृष्टिकोषसँ मैथिली कथामे ई क्रान्ति आनि देलनि। हिनके सान्निधयमे अयलाक बाद राजकमल मैथिली कथा जगतमे प्रवेश कएलनि तथा प्रभास कुमार चौधरीक मुख्य प्रेरक सेहो छलाह।

ललितक लगभग एकतालिसटा कथा प्रकाशित अछि, किन्तु ग्यारहगोट कथाक संग्रह अछि-'प्रतिनिधि' (1964) ओ पृथ्वीपुत्र' उपन्यास जे 10.05.1964 सँ 05.07.1964 धरि क्रमशः धारावाहिक रूपमे 'मिथिला मिहिर' पत्रिकामे प्रकाशित भेल छल आ 1965मे पोथीक आकार ग्रहण कएलक।

मैथिली गद्य साहित्यिक लेल ललित एक महान विभूति छथि, जे मैथिली कथा विधाकेँ विवाहक बेदी वरसँ उठाक' आम मैथिल जनक सुख-दुखँ जोड़ि देलनि। तेँ समालोचक लोकनि ललितकेँ कथ्यक स्तरपर कथामे 'टर्निंग प्वाइन्ट' रूपमे देखैत छथि। ललित 1950मे लिखब शुरू कएलनि। 'कबुला' हिनक पहिल कथा थिक, किन्तु जे कथा हिनका ख्याति दिऔलनि ओ थिक 'रमजानी'। समाजक निम्न वर्गक लोकमे चेतनाक बीज कोना फुटि रहल छैक, तकर जतेक निस्सन अभिव्यक्ति 'रमजानी'मे भेटलैक से प्रायः दोसर कोनो कथामे नहि।

"1950 ई. मे अपन 'कबुला'सँ कथा यात्र प्रारम्भ कयनिहार ललितकेँ आधुनिक बोधक पहिल समर्थ कथाकार मानल जाइत अछि। ललितक कथामे व्यक्त परिवेश ओ वातावरणक संकेत करैत कुलानन्दक ई कहब हमरा सर्वथा समीचीन बुझि पड़ैत अछि जे मशीनी युगमे संवेदना शून्य होइत मनुक्ख लेल तकर स्वीकारक अतिरिक्त आन कोनो रास्ता नहि पयबाक पीड़ाकेँ अभिव्यक्ति दैत रमजानी कि बाबू-भइयाकेँ ध' क' रहबाक विवश्ता-भोगसँ शिसकैत कंचनियाँ आ तकर माय कि अस्वस्थ देहक अस्वस्थ मानसिकता संग पत्नीक पलायनक बीच व्यर्थ तकैत हिसो बाबू कि कुरूप राजनीतिक छाँहमे कुण्ठित भेल जाइत अछि। सामाजिक उत्पादन सम्बन्ध, कि पाइ लेल बिकाइत अथवा कृतज्ञता स्थान पर विरोधमे जाइत मनुकखक कथा कहैत प्रतिनिधि, कि व्यक्गित समस्याक बोध तर जतायल मनुक्खक जकरा अपन स्खलन लेल कोनो सफाइ चाही, कहैत ओभरलोड आदि शानदार आरम्भिक कथा-यात्रकेँ रेखांकित कयल जा सकैछ।"[1]

ललित कथा-यात्रमे दू गोट प्रमुख तथ्य दिस ध्यान करब परम आवश्यक। एक तँ ई जे ललितसँ पूर्वो गाम आ शहरक दोगमे हास्य आ करूणाक परिवेशसँ परिचित करा पाठक वर्गकेँ जन-जीवन रसास्वदन कराओल जाइत छल। मुदा ललितक कथा पाठक-वर्गक ओहि सहयात्री जकाँ अछि, जे मिथिलाक मानचित्रपर संगे-संगे बुलैत अछि। सामान्य मनुक्ख जकाँ सहज संवेदनशल अछि आ घटनाक रूपमे स्वयं अग्रशातिक साक्षी आ सहजोन्मुखी बनैत अछि। ओ आधुनिकताकेँ फैसन नहि, जीवनक अनिवार्यता बुझि ओकर अभिनन्दन करैत अछि।

दोसर उल्लेखनीय तथ्य ई जे विचारक हूलि-मालि आ बिड़रो जकाँ अपस्याँत घटनाक्रममे ललितक कथा-वस्तु कथनो कलात्मक स्तरपर दुलर्भ आ फोक नहि भऽ पबैत अछि। कहबाक तँ ई चाही जे कथामे समस्याक जतेक पैघ ओझरौट आ विचारक जतेक बेसी गुम्फन लऽ पाठकक समक्ष ललित अबैत छथि। ओ कथा ओतबे बेसी कलात्मक आ सशक्त सिद्ध भेल अछि।

पाठक-वर्गक सहयात्री आ चेतनाशील संगीक रूपमे कथाकारक भूमिकाक निर्वाह ललित प्रायः सभ कथामे कएलनि अछि। हुनक कथा गाम-घर, खेत-खरिहान, बाट-घाट, शहर-मोहल्ला, मठ-मन्दिर तथा जंगल आ रास्ता मिथिलांचलक पाठकमे रूचि आ आत्मीयता तँ जगबितें अछि, संगहि ई सभ अपना भीतर सार्वदेशिक स्तरपर ग्राह्य होएबाक संभावनासँ सेहो परिपूर्ण अछि।

ललितक जखन अविर्भाव भेल, तखन धरि सामन्तवाद निर्णायक शक्ति केन्द्रक रूपमे हारि मानि चुकल छल। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, छूआछूत, वयस्क मताधिकार आदि प्रश्नक तकर्क अपेक्षा नहि रखैत छल। भने लोक अन्धविश्वास आ धर्म परम्परामे एखनो विश्वास रखैत हो, मुदा ई लोक-ग्राह्य आ श्रेष्ठ उपादनक रूपमे मान्य नहि रहि सकल। समाजक एकटा मानवीय मूल्यक आधारपर निश्चित कएल गेल, तैँ कथो मूल तत्व भऽ उठल 'मानवीय सम्वेदना'।

देश आ विश्वक अधिकांश भागमे व्याप्त उत्पीड़न लड़खराइत अर्थतन्त्र आ डगमगाइत समाज-व्यवस्था जे प्रभाव भऽ सकैत छल, ओ प्रभाव स्थान विशेष गुण-अवगुणसँ युक्त भऽ ललितक लगभग चारि दर्जन कथा लघुकथामे अभिव्यक्त भेल अछि। तय अछि जे एकर जाड़िमे ओएह मानवीय सम्वेदना छल।

ललित प्रकृति आ समाजक भीतर नहि तँ किछु गढ़लनि, आ नहि तँ किछु गढ़बाक दाबीयँ कएलनि। मुदा ओ समाजक ओहि तत्व, प्रवृति आ शक्तिसँ अबस्से परिचित रहथि, जे जीवनोन्मुख आ सृजनशील छल। जकर संघर्ष अवरोधक नहि, प्रगृतिक सूचक होइत अछि। ओ युग जे उपहार लेने इतिहासक रंगमंच पर प्रविष्ट भेल छल, ओ छल संसदीय लोकतंत्रक स्थापना। एहि लोकतंत्रक बसात देशक कोन-कोनमे शहरसँ गाम धरि, सेठक महल आ जमीन्दारक हवेलीसँ मजूरक मोहल्ला आ बोनिहारक टोल धरि फराक-फरक रूप-रंगमे पसरि रहल छल। इएह ओ केन्द्रीय धारा छल जे नव-निम्राण कऽ रहल छल। समाजकेँ भरमा रहल छल। की बनत, की नहि बनत, की रहत, की नहि रहत, की होइत आ की होएबाक चाही-एहि सभक नियामक ओहि घटनाक मूलमे नुकाएल छल, जकरा संसदीय नामसँ जानल जाइत छल। यथार्थ आ जीवंतताक बोध एवं चित्र ललितक कथामे कतेक मार्मिक ढ़ंगसँ सजाओल गेल अछि, तकर किछु उदाहरण एहि ठाम द्रष्टव्य अछि -

''रमजानी" आ "मुक्ति" परिस्थितिजन्य परिवर्तनक कथा अछि। परिस्थिति, विशेष रूपसँ सामाजिक परिस्थिति, मनुक्खकेँ कोना बदलि दैत छैक। एकर उदाहरण अछि-'रमजानी' आ 'शेफाली'। दुनू अपन परिवेश, सुविधा-असुविधा आ अपन आवश्यकतासँ बदलबाक लेल विवश भऽ जाइत अछि, अपनाकेँ बदलि लैत अछि। रमजानी, काल्हि धरि जे टमटमवला छल, आब रिक्शावला भऽ जयबाक सोचैत अछि। शेफाली, जे सुसंस्कृत अभिजात ललना अछि। देहक भूखसँ विविश भऽ सहज सामान्य बंधनमुक्त नारी बनि जाइत अछि। मैथिलीक परम्परित रूचि ओ स्वादसँ सर्वथा फराक आ अन्दरसँ मैथिल संस्कारकेँ हिला देबऽवला कथा छलै ओ ई दुनू कथा मनुक्खक भीतरसँ जनमैत नब मनुक्खक कथा थीक।

एहि तरहक नव मनुक्खक जन्मक कथा "वीणाक मुक्ति" मे सेहो देखल जा सकैत अछि। एहि एकटा एहन नारीक मानसिकताकेँ अंकित कएल गेल अछि, जे पुरुषत्व प्रकार ओ गुणे पर प्रश्नचिन्ह करैत अछि। सभक सोचबाक लेल ई प्रश्न-कोन प्रकारक पुरुषत्व? पतिकेँ कोन तरहक गुण? "कंचनियाँ" आ "दू-चित्र" कम से कम दूटा कथा अबस्से एहन अछि, जाहिमे चहकैत आ रिड़िआइत सामंतवादी परिवेशक आभास पाठककेँ सहजेँ भऽ जाइत अछि। मुदा तैँ की! 'दू-चित्रक'क बाबाक पाशविता आ पाखण्ड की कनियो कमी आबि सकल छैक। शोषित आ उत्पीड़ितकेँ नाँघि जँ मलाहिनक ई बाजब जे बोंहा..... बैठल-बैठल खाइ हय..... आ अहय करइ हय ...मुँहझौंसा..... लागल हनि रस्ता हिनके.....। ' तत्कालीन सामाजिक परिवेशमे उपालम्भसँ अधिक किछु अर्थ रखैत छैक? तहिना 'कंचनियाँ' कथाक ई निष्कर्ष जे बाबू-भईयाकेँ धड कऽ रही... बेर थिक कुबेर थिक.....? संसदीय लोकतंत्रक परिणाम आ यथार्थमे कतबा अन्तर अछि। ओ जगतक एहि उक्तिमे देखल जा सकैत अछि :

"अइ वार्डमे गरीबक भोट बेसी छइक कि बाबू-भईया! ..... जँ कथाकारकेँ बड़ढ़ील लागितो छनि, तँ की ओकर बाजल अछि, जे समाज जेहने रहत, जाहि अवस्थामे रहतु तथा ओकर तखन चित्तबाबू हारल कोना! अपने आदमी धोखा दैलकै तब ने। " मुदा कथाकार लोकतंत्र आए संसदीय व्यवस्थापर संकटकेँ सोझरबाएबाक हेतु अन्तिम चेतौनी देबासँ विमुख नहि होइत छथि। ओ एहि सत्यकेँ उद्घाटित करैत सांगठनिक स्वरूप जेहने रहतै, ओ ओहि स्थितिमे अपन ओहने प्रतिनिधि चुनत आ ओकर इच्छा-आकांक्षा

अनुरूपेँ अभिव्यक्ति होइते! 'प्रतिनिधि' कथाक ई कथन कथाकारक आदेश वाक्य जकाँ अछि-"चुप कुत्ता सभ! तू सब गोटे जे एतये बइसल चित्तबाबूक तारीफ करइ छै, आ भोट देलही पुहकर बाबूकेँ तू गरीबक कलंक छै। ताँ अपन हक बेचइ छै। जेना-चोंर कुकुरकेँ सुखाएल रोटिक टुकड़ा खुआ चोरी करइए, तहिना तोरासभकेँ रोटिक टुकड़ा खुआ-खुआकेँ ई सभ तोरे सबकेँ लूटई छउक।"[2]

ललित 'प्रतिनिधि' कथामे कोनो दल, सिद्धान्त आ राजनीतिक मूल्य-मान्यतासँ फराक, संसदीय लोकतंत्रक भारतीय परिवेश आ अन्तर्वस्तुक उद्घाटन कएलनि अछि। एकटा नब कालखण्डक प्रारंभ आ इतिहास महत्वपूर्ण अध्यायकेँ कथाक माध्यमसँ ओ जतबा कलात्मक आ भावपूर्ण बना सकल छथि, से मैथिली कथा जगतमे अभूतपूर्व आ विलक्षण साहित्यक कारीगरी आ शैलीक उदाहरण मानल जाइत। व्यक्तिक रूपमे 'पुहकर बाबू'क प्रति कतहु घृणा आकि आक्रोश भाव नहि, ताहिना 'चित्तबाबू'क प्रति कतहु दया आकि ममताक उद्रेक नहि। रचनाकार प्रतिबद्ध नहि रहितो कथा-क्रमक विकासमे स्वाभाविकरूपेँ अपन लेखनीय पक्षधरताकेँ स्पष्ट कऽ जाइत अछि आ इएह ललितक महानता ओ विशिष्टता सिद्ध करैत अछि।

चाहे समस्या छोट वा पैघ, अंश हो वा सम्पूर्ण हो वा वाह्य, ललित स्पर्श पबिते ओ जीवन आ कलाक विन्दुंजकाँ प्राय: सभ कथामे स्वत: चकमका उठल अछि। यथार्थ-बोध आ भाव-बोधक तादाम्य ललित कथा रचनाकेँ ककरोसँ बेसी अप्रतिम बनएबामे सहयक भेल अछि। उदाहरण लेल हिनक बहुतो कथा देखल जा सकैत अछि। वर्त्तमान सामाजिक परिस्थितिमे लोकक दृष्टिकोणमे तात्विक अन्तर आबि गेल अछि। चाकरी-पेशा आ मनिआर्डर-संस्कृति समाजकेँ दुर्बल आ प्रबन्धक बना रहल अछि। एकर उदाहरण अछि ललितक कथा 'ओवरलोड' 'आरती', आ एक 'पृष्ठ'।

'ओवरलोड' क नायक दीनानाथ दारोगा संयुक्त परिवारसँ एतेक बेसी आक्रान्त अछि, जे ओ भ्रष्टाचारक सीमा धरि सँ एतेक बेसी आक्रान्त अछि, जे ओ भ्रष्टाचारक सीमा धरि पहुँचबाक लेल विवश होइत अछि तखने ओकरा ज्ञान होइत अछि, जे व्यवस्था आ कानून मूँहगरहाक लेल अछि– उत्पीड़क वर्गक लेल। मुदा ई कथा इए हटा बात नहि कहि कऽ चुप नहि रहि जाइत अछि। व्यवस्था आ कानून, संवेदनाक स्तरपर केहन निरर्थक आ व्यर्थ साबित भऽ रहल अछि, ताहु दिस आंगुर उठबैत अछि। ई तथ्य एकर नायक दीनानाथक मनोभावसँ स्पष्ट होइत अछि।

'उड़ान'क कथा आधारित अछि 'बेकारी'क समस्यापर। व्यवस्थामे ई सामर्थ्य नही छैक, जे ओ व्यक्ति आ समाजक विराट श्रम-शक्तिकेँ उपयोगमे आनि सकए, श्रमक उचित मूल्य दऽ सकए, आकि श्रमजीवी आ बुद्धिजीवी उचित तरहक अपन श्रमक पुरस्कार पाबि सकए। एक दिसजेँ 'उड़ान'क बेरोजगार नायकक रूपमे लेखक स्वयंमे अर्थहीन पाबि रहल छथि, तँ दोसर दिस बड़प्पन चद्दरि ओढ़ने गिरी भाइकेँ सेहो ओतबे अधिक निरर्थक आ फोक पबैत अछि। कहबाक तात्पर्य ई जे बेकारीक पृष्ठभूमिमे समस्त समाजक अर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व्यवस्था स्पष्ट रूपेँ झूठ-फरेब, लूट-बटेर तथा अनैतिकतापर आश्रित देखबामे अबैत अछि। जीवनक छोट छीन सुख किनबाक लेल सेहो लोककेँ मूल्य चुकबऽ पड़ैत छैक। मुदा ललित कई विवशता छनि जे मनुक्ख भीतर पैसिकऽ ओकरा भीतरक मनुक्खताकेँ जगा दैत छथि। तेँ गिरी भाई कहि उठैत छथि -

"सम्पूर्ण समाज खुक्ख भऽ गेलए भीतरसँ। चारूकात गरीबी,भुख,गंदगी आ लाचारी अछि। ..... एको प्रतिशत लोक चेतनासँ नई जीबि रहब अछि। हेतइ क्रान्ति, अवश्य हेतय... नवीन रक्त, नवीन ज्वाला आ नव चेतनासँ संयुक्त अवतीर्ण हेतइक जखन... समाजक सभटा जीर्ण आ पुरातन जरि कऽ भस्म जएतइक, आ फेरो पनगी नेने..... नब कोपड़-पल्लव चलतइक– नवीन सउर भक सें नब पुष्प हेतइक।"[3]

इएह थिक ललितक शिल्प प्रभावेँ ओ अपन अभिप्रेत पाठकसँ कहबा लैत छथि।

'एक पृष्ठ' कथा सेहो आर्थिक विपन्तासँ उत्पन्न एकटा पोथी छात्रविहीन, पेटक समस्यासँ जुझैत एकटा शिक्षक तथा आर्थिक अहंकारसँ मदान्ध एकटा सेठक सम्बन्धकेँ शिक्षा-व्यवस्थाक विकृति धरि उजागर करबाक सामर्थ्य रखैत अछि आ एहि सँ जाहि आक्रोशक जन्म होइत छैक, ओएह बनि जाइत छैक युगक सन्देश।

प्रो. मायानन्द मिश्र हुनक कथाक विवेचना करैत कहलिन -

"ललितक कथाक मूलमंत्र छलैक– मार्क्स। निम्नवर्ग अथवा मध्यवर्ग जीवन जे जटिल संघर्ष, तकर व्यापक, समर्थ, स्वाभाविक ओ मार्मिक चित्रण जतेक ललित कथामे भेल अछि, अन्य कोनो मैथिली कथामे नहि। कथामे बिम्ब-नियोजन आ ताहि बिम्ब-विधानसँ सशक्त एवं प्रभावोत्पादक बनयबाक शिल्प ललितक अपन शिल्प-विशेषता थिक, जे एकटा श्रेष्ठ कथा कथाकारक

अन्यतम गुण मानल जाइत अछि। चित्रंकनमे ललित बेसी सावधान रहैत छलाह। एक-एक चरित्रकेँ गढ़ैत छलाह, ओकर अपन पृष्ठभूमिक अनुकूल स्वाभाविक विकास दैत छलाह, आ तेँ हुनक चरित्र मनोवैज्ञानिक तथा जीवन्त होइत छल। वातावरणक अभिव्यक्ति एतेक सशक्त होइत छल, जे कथासँ माटिक गन्ध उड़ऽ लगैत छल।"[4]

ललितक कथाक परिवेश चाहे जेहन हो, मुदा ओ एकटा सम्पूर्ण संसार आ ओकर अनेकानेक परिधि आ कोणक संरचना कऽ लैत अछि। एकर नीक उदाहरण अछि कथाकारक अवचेतन आ इतिहासक अनदेखल क्षेत्र धरि पसरल 'कापलिक'क कथाक पृष्ठभूमि। 'जंगल आ रास्ता' सेहो एकटा निषिद्ध चित्र-उपस्थित करैत अछि। मुदा ओतहु विजय प्राप्त करैत अछि, मनुक्खक भीतर तरल-तरंगित कोमल भाव।

बदलैत सामाजिक दृष्टिकोण एहि तरहक उदाहरण अछि, कथा "कवि जी आ गुण्डा" जे समाजमे आधुनिक मूल्य पर उपस्थित संकट आ ऋणात्मक अवधारणा कथा सेहो कहैत अछि।

मुदा जे कथाकारक सभसँ पैघ उपलब्धि होएबाक चाही, अर्थात नवताक प्रति ओकर आग्रह आ नव शक्ति अभिनन्दन, से ललितक कथा "नब-पुराण" मे अबैत अछि। सत्य ई अछि जे पुरने समाजसँ नब समाजक, पुरने व्यवस्थासँ नब व्यवस्था तथा पुरने विचारसँ नव विचारक जन्म होइत अएलैक अछि। पुरने वस्तुसँ नव वस्तुक निखार परिष्कार होइत छैक। पुरान समाज नबउ समाज हेतु उर्वरकक काज करैत अछि। ओकरा हेतु भविष्यक बाट बनबैत अछि।

''नब-पुरान' कथामे प्राइवेट बस आ स्टेट बसक माध्यमसँ पुरान आ नव विचार द्वन्दकेँ दर्शाओल गेल अछि। ललितक कथामे तिक्ख यथार्थ तीव्र अनुभूति होइछ। एकर कारणक तहमे जाइत, हुनक संगी ओ समीक्षक प्रो. रमाकान्त मिश्र, हिनक जीवनक यथार्थसँ कथाक यथार्थकेँ जोड़ैत छथि। -

"जखन हम सभ (ललित सहित) युवावस्थाक देहरिपर किलकारी दैत आ भविष्यक चिन्ताक एक मात्र अधिकारी पिते टा केँ बूझी, एक अल्पवेतनभोगी गुरूजीक पुत्र ललित-अपन दू तीन बहिनक कन्यादानक चिन्तासँ ग्रस्त ललित निकट भविष्यमे पिताक रिटायरमेंटसँ उत्पन्न होबऽवला आर्थिक भयावहतासँ त्रस्त ललित-सरस्वती स्कूलमे तत्काले मास्टरी पेशाक पुनरावृत्तिक व्यंग्यात्मक स्थितिबोधसँ दिक्त ललित अपनहुँ परिवार (स्त्री-बच्चा)क परिवहनक उपरिष्ठात चिन्तासँ आवेष्ट्ति ललित बूढ़ भऽ गेलाह। तेँ ललितक कथा सभमे ओतेक तिक्ख यथार्थ दर्शनक होइत अछि। इएह ओ समय छल जखन ललितकेँ आत्मनन्दक एकमात्र स्रोत लेखन भेटल रहिन। हुनक कल्पनाक कड़ाहमे सदिखन कोने-ने कोनो कथा-व्यथा खोलैत रहैत छलनि।"[5]

ललितक कथा सभमे शब्द-शब्दमे अंकित अछि मिथिलाक मानचित्र आ ओकर उच्छवास, जे सहजे मैथिली पाठककेँ झकझोरि कऽ राखि दैत अछि। मुदा परिवेशक भिनन्ताक संग अथवा कथा-वस्तुक संग परिवेशक विशिष्टताकेँ विश्वक कोनो भाषा मध्य अनबामे संकोच नहि होइत आ इएह थिक-ललितक व्यापकता। ललित वर्त्तमान युगक आ आधुनिक मैथिली कथाक एकटा चिन्हार साक्षी आ ओकर नियामक छथि। हुनकर कथाक पृष्ठभूमि गाम-घर, लोक-समाज, सुख-दुःख आ मनुक्खक बिगड़ैत-बनैत सम्बन्ध टा रहलनि अछि। समाज सतत अपन निरंतरतामे गतिशील आ क्रियाशील रहैत अछि। इएह गतिशील-क्रियाशील समाजक द्वन्द थिक। सामाजिक द्वन्द समाजक भीतर शक्ति, प्रवृति, धारा आ लोकजीवनक बीच जटिलतासँ ओझराएल आ संघर्षकरत छथि। ई द्वन्द होइत अछि। नब आ पुरानक मध्य, आधुनिकता आ प्राचीनताक मध्य। एहि द्वन्दमे निश्चित रूपसँ ललित नवशक्ति आ उत्पीड़न समूहक पक्ष लेललि अछि।

कथा लिखबाक पाछाँ कथाकारक कोनो-ने कोनो उद्देश्य होइत अछि आ ई उद्देश्य ललितक कथामे सेहो देखबामे अबैत अछि। मुदा नीक कथाक ई मापदण्ड अछि जे उद्देश्यकेँ सोझ शब्दमे नहि कहि, अपितु क्रममे उपस्थिति कएल जाए। आधुनिक कथाकारक ई नियति भऽ गेल अछि, जे ओ अपन खास तरहक पीड़ा आ व्यवस्थाकेँ कथानकक माध्यमसँ अभिव्यक्त करैत अछि आ पाठकक अन्दर धरि प्रवेश करबामे सफल होइत अछि।

ललित अपन रचनामे मूलतः यथार्थवादी छथि, मुदा ओ अपन रचनामे उद्देश्यक अन्तर्गत आदर्शक चित्र अंकित करबासँ कनिको नहि पछुआत छथि आ एहि तरहेँ ओ मैथिली कथाकेँ एकटा नब आधार भूमिपर स्थापित कएने छथि।

निष्कर्ष रूपेँ कहल जा सकैत अछि जे कथाक रचनामे हुनक अन्तश्चेतना, कथा-दिशा आ युग-चेतना एक दोसरसँ समर्थित आ सम्बन्ध अछि। मैथिली कथा-यात्रमे सभ रूपसँ विराट संभावनाक रूपमे प्रकट भेल अछि।

तँ कथा-यात्रक विकासमे ललितक साहित्यक सम्बन्धमे इएह कहल सकैत अछि जे ओ मैथिली कथा जगतमे गुणात्मक परिवर्तन अनलनि तथा शैली शिल्प ओ यथार्थ बोधक पृष्ठभूमिमे ओकरा ठोस रूप प्रदान कएलनि। हुनक प्रत्येक कथा आगू बढ़बाक कथा थीक। मनुक्खककेँ मनुक्खकसँ आ नब समाजकेँ नब लोकसँ जोड़बाक कथा थीक।

ललितक योगदान मैथिली कथाक क्षेत्रेटामे नहि अपितु उपन्यासक क्षेत्रमे सेहो देखल जाइत अछि। हुनक 'पृथ्वीपुत्र' उपन्यास 'मिथिला-मिहिर-क नओ अंक 10-05-1964 सँ 05-07-1964 मे धारावाहिक रूपमे आ जुलाई 1965 मे पोथीक आकार ग्रहण कयलक। ई एक गोट विशिष्ट कृति मानल जाइत अछि। एहि उपन्यासमे ललित सामान्य लोक-जीवनक आ समाजक अन्तिम मनुक्खक आवश्यकता, आकांक्षा आ प्रयास के चित्रित कयलनि अछि। कथाकार रूपमे जो ख्याति अर्जित कयलनि, तकरा उपन्यासकारक रूपमे आर विस्तार देलनि। 'पृथ्वीपुत्र' हुनक प्रकाशित एकमात्र उपन्यास अछि।

'पृथ्वीपुत्र उपन्यासमे फारबिसगंज (निवर्त्तमान पूर्णिया तथा वर्त्तमान अररिया जिला) इलाका कथा कहैत अछि। ओहि इलाकामे एकटा गाम अछि 'बबूर-बन्ना'। कथाक मुख्य केन्द्र अछि बबुर-बन्नाक दुसध टोली। ई उपन्यास ग्राम-जीवन आ ओकर घटना सभक उपस्थापना करैत अछि। मुदा प्रधान अछि सभक जड़िमे जुकाएल ओ घटना थिक-सर्वे अर्थात भूमि सुधारक नब प्रयास, जमीन जे जातैत अछि कानूनमे ओकर कब्जा मानल जाइत छैक। बिनु पढ़ल ओ पीड़ित वर्गकेँ जखन बोध होइत छैक– तँ ओ अपन अधिकार हेतु उतरि जाइत अछि। अन्ततः विजय होइत छैक 'पृथ्वीपुत्र'क जे जमीन जोतैत अछि। जे अपन घामसँ ओकरा पटबैत अछि।

एहि उपन्यासक पात्र सभ छथि : सरूपा, गेनमा, बेनी, बिजली, हीरालाल, कलपू मिसर, दूरजोधन सिंह प्रभृति लोकनिक।

सरूपक चित्रण करबामे ललित अपन अप्रतिम शक्तिक परिचय देलनि अछि, घटना-क्रम संगहि ओकर चरित्रक एक– एकटा तह फुजैत चल जाइत अछि आ सरूपाक आन्तरिक आ बाह्य रूप स्पष्टसँ स्पष्टर आ भव्यसँ भव्यतर। स्वतंत्र प्रकृतिक सरूपा, विद्रोही सरूपा, अपन अधिकारक लेल जमीनक संघर्षमे शोणितक धार बहाबऽडवला सरूपा तथा बिजली स्वाभाविक प्रेमक समर्थक सरूपा विभिन्न चरित्र आ ओकर रंग-विरंगक आयामकेँ नीक जकाँ चित्रित कएल गेल अछि। मुदा जाहि छोट-छोट प्रसंगक ललित वर्णन कएने छथि, ओहूसँ चरित्रक व्यापकता आर स्पष्ट भऽ जाइत अछि।

'पृथ्वीपुत्र'क एहि विलक्षण चरित्र-चित्रणक प्रसंग ओहि पोथीक भूमिकामे समालोचक रमानाथ झा लिखैत छथि, से सोलहो आना यथार्थ आ चिन्तन योग्य अछि -

"जाहि ठामक ई कथा अछि, जाहि समाजक ई कथा अछि, जाहि प्रकारक व्यक्तिक ई कथा अछि, जाहि परिवेशमे कथा घटित-वर्णित अछि आ ओ जाहि परिस्थितिमे कथा घटल अछि, सबकेँ ललित जेना समीपसँ देखने छथि, चिह्ने छथि ओकर अर्थ एवं तत्वकेँ अपन अन्तचक्षुसँ प्रत्यक्ष कएने छथि। तँ एहि उपन्यासमे जीवनक ओ चित्र उतरल अछि तँ इतिहासक सत्यसँ भव्यतर अछि, सुन्दर अछि।"[6]

एहि उपन्यासमे ललित कथोपकथन सेहो अत्यंत व्यवस्थित आ हृदयग्राही रूपमे कएने छथि। ओ एहि माध्यमसँ पात्रक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमिक निर्माण, पात्रक चरित्र-चित्रण तथा कथा-वस्तुक विन्यास करैत छथि। जे पाठकक दिमागपर बिजलीक करेन्ट जकाँ प्रभाव छोड़ैत अछि। वर्णनात्मक शैलीमे लिखल गेल ई उपन्यास लोककथासँ आधुनिक महागाथा धरिक सुख प्रदान करैत अछि एवं शैलिक अनुगत भऽ एकर शिल्प प्रत्येक ठाम सूक्ष्मतर रचनात्मक तकनीकक उदाहरण प्रस्तुत करैत सन लगैत अछि।

ललितक मूल उद्देश्यक नवयुग, नवसमाज, आ नब मनुक्खक कथाकेँ नवीन ढ़ंग नवीन दृष्टि आ नवीन व्याख्याक संग कहबाक अछि। एहिमे हुनका पूर्ण सफलता भेटलनि अछि। एकटा जड़ आ स्पंदनहीन समाजमे भूमि-सुधार कानून आ स्वाधीनताक उपरान्त सूरज मिसर सन परिवर्त्तनकामी नेताक विचार अप्रत्यक्ष प्रभाव कतबा दूर धरि पड़ि सकैत छैक, तकर साक्षी अछि ई 'पृथ्वीपुत्र' ललितक समाजक भीतर नबशक्ति-केन्द्र नब जीवनक तत्वक उद्घाटन जाहि व्यापकता संग एहि एपन्यासमे कएलनि अछि। ओएह तत्व हुनका सभसँ कराक, आधुनिक रचनाकार रूपमे मैथिली साहित्यक मध्य ठाढ़ करैत अछि। एहि उपन्यासक रचनाकार रचनात्मक विशिष्टता आ उद्देश्य प्रसंग समालोचक रमानाथ झाक विश्लेषण अन्तिम बुझल जएबा चाही-

"जीवनक समस्या दिशि श्री ललितजी एहिमे जे दृष्टि अंकित कएल अछि जे ततेक स्वस्थ अछि, भव्य अछि, सत्य पर अवलम्बित अछि से एहिसँ हम ही टा आकृष्ट भेल छी से नहि, जे केओ एहिपर गम्भीरता पूर्वक विचार करताह, बिनु आकृष्ट भेनें नहि रहि सकैत छथि। समस्त 'पृथ्वीपुत्र' मे एक गोट कथा जे सबसँ विशेष स्फुटताक संग प्रदर्शित भेल अछि से थिक-'जिबइत

रहब पहिने जरूरी छइक संसारमे। तखन लोक-लोज। नीक बेजाए। कर्तव्याकर्तव्य बुद्धि थिकैक, जीवनक ममता सहजात प्रवृति ओ एहि सहजात प्रवृतिकेँ प्रधानता दए श्री ललितजी एहि उपन्यासमे मानव स्वभावक नैसर्गिक प्रवृति ओ भावनाकेँ प्रधानता देल अछि से हुनक स्वस्थ दृष्टिकोणक द्योतक थिक।"[7]

ई उपन्यास कोनहू वर्ग विशेषक अथवा समाज विशेषक नहि, प्रत्युत मानव जातिक मूलभूत भावनाक आ वासनाक चित्र उपस्थिति करैत अछि। अतएव अनेक दृष्टसँ ललितक 'पृथ्वीपुत्र' मौनकेँ झकझोरि दैत अछि।

वास्तवमे, ललित कथा-उपन्यासक संसारमे सम्पूर्ण मिथिला अछि। अर्थात् हुनक कथामे एक जाति वा वर्ग नहि, अपितु मनुक्खक-मात्रक मनोव्यथा ओ मनोल्लासक कथा अपन यथार्थक संग भैटैत अछि। ई वस्तु ललितसँ पहिनेँ साहित्यमे नहि भेटैत अछि।

अन्तमे, डॉ. विभूति आनन्दक शब्दमे-आधुनिक मैथिली कथा-साहित्यमे ललित एकटा स्तम्भे नहि, प्रेरणाश्रोत सेहो छथि। ओ अपने जतबा-जे लिखलनि, परिमाणक दृष्टिसँ नहि वैशिष्ट्यक दृष्टि पर्याप्त अछि .....। आ इएह विशिष्टता हुनका आइयो शिखरपर बैसोने अछि, काल्हियो राखत ..... आ हुनक जीवन यात्रक पिहानी कहैत रहत ..... पंडितपुत्रसँ पृथ्वीपुत्र धरि .....।"[8]

सन्दर्भ

1. मैथिली कथाक विकास– डॉ. बासुकीनाथ झा, पृ. सं. 87, प्रकाशक-साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2003 ई.
2. ललित समग्र– विभूति आनन्द, पृ. सं. 131, प्रकाशक-मैथिली अकादमी, पटना प्रकाशन वर्ष-2012 ई.
3. ओएह- पृ. सं. 72
4. परिचायिका– डॉ. भीमनाथ झा, पृ. सं. 174, प्रकाशक-भवानी प्रकाशन, पटना प्रकाशन वर्ष-1985 ई.
5. ओएह
6. 'पृथ्वीपत्र'क भूमिका– ललित, प्रकाशक– मैथिली अकादमी, पटना प्रकाशन वर्ष-चारिम संस्करण-2012 ई.
7. ओएह
8. स्मरणक संग– विभूति आनन्द, पृ. सं. 52, प्रकाशक-जखन-तखन, दरभंगा, प्रकाशन वर्ष-2004 ई.

चन्द्रगुप्त मौर्य का इतिहास

बासुदेव शाह

इतिहास विभाग, बी.आर.ए. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

परिचय

मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य इतिहास के उन महान योद्धाओं में से एक थे, जिन्होंने भारतीय इतिहास को गौरवमयी बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके अद्‌भुत साहस और अदस्य शक्ति की गाथा आज भी भारतीय इतिहास के पन्नों में स्वर्णिम अक्षरों में लिखी गई है।

चन्द्र गुप्त मौर्य भारतीय इतिहास के सबसे प्रसिद्ध शासक थे, जिन्हें आज कई सदियों बाद भी लोग जानते हैं और उनके पराक्रम की प्रशंसा किए बिना नहीं रह पाते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के सबसे सशक्त और महान शासकों में से एक थे, जिन्होंने अपने अद्‌भुत साहस, कुशल रणनीति से न सिर्फ भारत बल्कि इसके आसपास के कई देशों पर भी राज किया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण की तिथि साधरणत: 324 ईसा पूर्व की मानी जाती है, उन्होंने लगभग 24 सालो तक शासन किया और इस प्रकार उनके शासन का अंत प्राय: 297 ईसा पूर्व मंउ हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने अद्‌भुत शासनकाल में मौर्य साम्राज्य का विस्तार कश्मीर से लेकर दक्षिण के डेक्कन तक और पूर्व के असम से पश्चिम के अफगानिस्तान तक किया था और मौर्य साम्राज्य को उस समय भारत का सबसे विशाल साम्राज्य बना दिया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक ऐसे योद्धा थे, जिन्होंने संपूर्ण भारत को एक साम्राज्य के अधीन लाने में सफल रहे। महान पराक्रमी और शक्तिशाली चन्द्रगुप्त महान ने सिर्फ अपनी बदौलत भारत के अलग-अलग स्वतंत्र राज्यों को एक करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारत देश में सभी को एकजुट कर एकता के सूत्र में बांध। हालांकि, राज्यों को एकीकृत करने में सत्यपुत्र, चोल, कलिंग, चेरा और पंडया के तमिल क्षेत्रों को शामिल नहीं किया गया था।

हालांकि, बाद में चन्द्रगुप्त मौर्य जी के पोते सम्राट अशोक ने करीब 260 ईसापूर्व में कलिंग में विजय हासिल की था, वहीं इस विजय के बाद ही सम्राट अशोक एक निर्दयी और क्रूर शासक से एक परोपकारी और दयालु शासक बन गए थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के अद्‌भुत तेज और शौर्य को देखकर चाणक्य जैसे बुद्धिजीवी भी हक्का-बक्का रह जाते थे।

चन्द्रगुप्त जी बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे, उनमें एक आदर्श, सफल, सच्चे और ईमानदार शासक के सभी गुण विद्यमान थे। वहीं चाणक्य, सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु थे, जिनसे चन्द्रगुप्त मौर्य ने सामाजिक और राजनीति शिक्षा ग्रहण की थी। आइए जानते हैं इतिहास के इस महान योद्धा चन्द्र गुप्त मौर्य के बारे में -

चन्द्र गुप्त मौर्य का शुरुआती जीवन एवं उनका वंश

चन्द्रगुप्त के बचपन, प्रारंभिक जीवन और वंशज के बारे में बेहद कम जानकारी उपलब्ध है एवं इस विषय में अलग-अलग इतिहासकारों के अलग-अलग मत हैं। कई भारतीय साहित्यकारों और इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त मौर्य का सम्बन्धा नंदा राजवंश से बताया है। जबकि एक संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस में उन्हें "नंदनवय" मतलब नंद के वंशज भी कहा गया था।

वहीं अगर चन्द्रगुप्त की जाति के बारे में अगर बात करें तो मुद्राराक्षस में उन्हें कुलहीन और वृषाला भी कहा गया है। जबकि भारतेंदु हरिश्चन्द्र के एक अनुवाद के अनुसार उनके पिता नंद के राजा महानंदा थे, जबकि उनकी माता का नाम मुरा था, इसी वजह से उनका उपनाम मौर्य पड़ा।

वहीं बुद्धिस्ट परम्पराओ के मुताबिक चन्द्रगुप्त, मौर्य क्षत्रिय समुदाय के ही सदस्य थे। फिलहाल, चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म 340 ईसापूर्व में पाटलीपुत्र (बिहार) में माना जाता है। वे एक बेहद गरीब परिवार में पैदा हुए थे जिनके पिता नंदा, नंदों की सेना के एक अधिकारी थे, चन्द्रगुप्त मौर्य के जन्म से पहले ही वे दुनिया छोड़कर चल बसे थे।

वहीं जब चन्द्रगुप्त 10 साल के हुए तब उनकी मां मुरा का भी देहांत हो गया। वहीं इतिहास में ऐसा भी उल्लेखित है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पिता नंदा और उनके चाचा नवनादास, दोनों सौतेले भाई थे, जो आपस में एक-दूसरे को फूंटी आंखों भी नहीं सुहाते थे, और नवनादास उनके पिता को हमेशा जान से मारने की फिराक में रहते थे।

आपको बता दें कि राजा नंदा के चंद्रगुप्त मौर्य को मिलाकर करीब 100 पुत्र थे, आपसी रंजिश के चलते उनके चाचा नवनादास ने महान शासक चन्द्रगुप्त मौर्य के सभी भाइयों को मौत के घाट उतार दिया था। हालांकि चंद्रगुप्त किसी तरह बच गए और मगध साम्राज्य में जाकर रहने लगे थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य और आचार्य चाणक्य की मुलाकात

इसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य की मुलाकात बुद्धिजीवी, महान अर्थशास्त्री, राजनीति विज्ञान में निपुण एक ब्राह्मण आचार्य चाणक्य से हुई, जिसके बाद उनका जीवन पूरी तरह बदल गया और उन्हीं की बदौलत वे इतिहास के सबसे नामचीन एवं महान योद्धा बने।

तीव्र बुद्धि के चन्द्रगुप्त बचपन से ही प्रतिभावान, निडर और साहसी बालक थे।

चाणक्य ने उनके गुणों को पहली मुलाकात में ही पहचान लिया था, इसलिए वे उनको तक्षशिला विश्वविद्यालय में ले गए थे, जहां पर उन्होंने चन्द्रगुप्त की प्रतिभा को और अधिक निखारने के लिए पढ़ाना शुरु किया एवं उनके अंदर एक महान और साहसी योद्धा के सभी सामाजिक और राजनीतिक गुणों को विकसित कर उन्हें एक ज्ञानी, बुद्धिमान और समझदार शासक बनाया।

चन्द्रगुप्त-चाणक्य द्धारा नंद वंश का पतन का संकल्प एवं मौर्य साम्राज्य की स्थापना

चाणक्य एवं चंद्रगुप्त दोनों का उद्देश्य नंद वंश का पतन करने का था, क्योंकि चंद्रगुप्त से नंद वंश के शासकों ने उनका हक छीन लिया था, और चाणक्य का मगध के सम्राट धनानंद ने अपमान किया था।

दरअसल, जब भारत पर सिकन्दर ने आक्रमण किया था, उस समय चाणक्य तक्षशिला में मुख्य अध्यापक थे और तभी तक्षशिला और गान्धर के सम्राट आम्भि ने सिकन्दर से समझौता कर लिया था, जिसके बाद चाणक्य ने भारत की अखंडता और संस्कृति को बचाने के लिए सभी राजाओं से सिकंदर को भारत में आने से रोकने का आग्रह किया था, लेकिन उस समय सिकन्दर से लड़ने कोई आगे नहीं आया।

जिसके बाद चाणक्य ने सम्राट धनानंद से सिकंदर के प्रभाव को रोकने के लिए मद्द मांगी, लेकिन सम्राट धनानंद ने चाणक्य का अपमान कर दिया। इसके बाद आचार्य चाणक्य ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए अपने सबसे बलशाली शिष्य सम्राट चंद्र गुप्त के साथ मिलकर नंद साम्राज्य के पतन की शपथ ली थी।

इसके लिए दोनों ने कुछ अन्य शक्तिशाली शासकों के साथ मिलकर गठबंधन किए और एक विशाल सेना तैयार कर मगध के पाटलिपुत्र में आक्रमण कर नंद वंश के आस्तित्व को मिटाने में विजय हासिल की। इस तरह महान सम्राट चंद्रगुप्त ने चाणक्य के मार्गदर्शन से बेहद कम उम्र में मौर्य साम्राज्य की स्थापना की और चाणक्य को अपने दरबार में मुख्य राजनीतिक सलाहकार एवं प्रधानमंत्री नियुक्त किया।

चाणक्य् नीति का इस्तेमाल कर चंद्रगुप्त ने मौर्य साम्राज्य को बनाया एक सुदृढ़ एवं विशाल साम्राज्य

चाणक्य के मार्गदर्शन और उनकी कुशल नीतियों से मौर्य साम्राज्य के सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य, गंधरा में स्थित जो कि वर्तमान समय अफगानिस्तान में है। अलेक्जेंडर द ग्रेट (सिकंदर) के जनरलों को हराने के लिए आगे बढ़े और अफगानिस्तान से पश्चिम में बर्मा और जम्मू-कश्मीर से दक्षिण के हैदराबाद तक अपने मौर्य साम्राज्य का विस्तार करने में सफलता हासिल की।

वहीं करीब 323 ईसापूर्व में सिकंदर (अलेक्जेंडर द ग्रेट) का देहांत हो गया, उस दौरान उसका साम्राज्य छोटे-छोटे हिस्सों में बंट गया, जिसमें हर राज्य एक स्वतंत्र राज्य था, और सभी राज्य का एक अलग शासक था। इसके बाद महापराक्रमी योद्धा चन्द्रगुप्त मोर्या ने करीब 316 ईसा पूर्व में छोटे-छोटे दुकड़े में बंटे राज्यों को हराकर अपने मौर्य साम्राज्य में मिला लिया और अपने साम्राज्य को वर्तमान इरान, कजाकिस्तान, ताजाकिस्तान तक फैला दिया।

वहीं कई इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ने उनके मौर्य साम्राज्य के विस्तार में रुकावट पैदा कर रहे मैकडोनिया के दो तानाशाह की निर्मम हत्या भी करवाई थी।इस तरह उन्होंने चाणक्य नीति का इस्तेमाल करते हुए करीब 305 ईसापूर्व में चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने मौर्य साम्राज्य को पूर्वी फारस तक फैला दिया था।

वहीं यह वह वक्त था जब पूर्वी एशिया पर सेलयूसिड एंपायर के संस्थापक सेल्यूकस निकेटर का राज्य था। निकेटर अलेक्सेंडर का सेनापति भी रह चुका था। वहीं चन्द्रगुप्त मौर्य उस दौरान पूर्वी एशिया का बहुत सारा हिस्सा अपने अधीन कर चुके थे, और वे बिना किसी लड़ाई-झगड़े के इस क्षेत्र को अपने साम्राज्य में शामिल करना चाहते थे, इसलिए बाद में उन्होंने वहां के राजा से समझौता कर लिया, जिसके बाद पूर्वी एशिया पर भी चन्द्रगुप्त मौर्य का सिक्का कायम हो गया।

इसके बाद फिर मौर्य साम्राज्य एक विशाल और सुदृढ़ साम्राज्य बन चुका था और चन्द्रगुप्त की गिनती दुनिया के महान शासकों में होने लगी थी।

चन्द्रगुप्त का विवाह एवं सिकंदर के सेनापति सेल्यूकस से संधि

सेल्यूकस निकेटर के संधि के बाद उन्होंने अपनी सुंदर राजकुमारी का विवाह महान योद्धा चन्द्रगुप्त के साथ कर दी। वहीं इसके बदले में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने निकेटर को 500 हाथियों की विशाल सेना दी, जिसका इस्तेमाल निकेटर ने 301 ईसापूर्व में हुई एक लड़ाई जीतने में किया था।

इस तरह सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने अलग-अलग टुकड़ों में बंटे सभी गणराज्यों को एकजुट कर उत्तरी और परिश्चमी राज्यों पर अपने मौर्य साम्राज्य का विस्तार किया, फिर भी वे कलिंगा (वर्तमान उड़ीसा) और तमिल साम्राज्य पर अपना शासन करने में नाकामयाब साबित हुए।

हालांकि, चन्द्रगुप्त मौर्य के पोते एवं इतिहास के सबसे शक्तिशाली एवं महान योद्धा सम्राट अशोक ने बाद में कलिंग और तमिल साम्राज्य पर विजय हासिल कर इसे भी अपने मौर्य साम्राज्य में मिला दिया था। इस तरह मौर्य साम्राज्य, उस समय भारत का सबसे सुदृढ़ और विशाल साम्राज्य बन गया था।

चंद्रगुप्त मौर्य का जैन धर्म से प्रेरित होना और मृत्यु

मौर्य साम्राज्य के संस्थापक एवं इतिहास के सबसे महान योद्धा चन्द्र गुप्त मौर्य जब 50 साल के हुए तब वे जैन धर्म के विचारों से काफी प्रेरित हुए, और फिर बाद में उन्होंने जैन धर्म को अपना लिया और जैन संत भद्रबाहु को अपना गुरु बना लिया।

इसके बाद करीब 298 ईसा पूर्व में वे अपने पुत्र बिन्दुसार को अपने विशाल मौर्य साम्राज्य की जिम्मेदारी सौंप कर कर्नाटक की गुफओं में चले गए जहां उन्होंने 5 हफ्ते तक बिना कुछ खाए पिए कठोर तप संथारा किया और बाद भूख की वजह से उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए।

महान शासक चन्द्रगुप्त की मौत के बाद उनके पुत्र बिंदुसार ने अपने विवेक एवं पूर्ण कुशलता के साथ मौर्य साम्राज्य का शासन संभाला और इसको और अधिक मजबूत करने के प्रयास किए।

वहीं इसके बाद चंद्रगुप्त के पोते सम्राट अशोक ने भी अपने अद्‌भुत साहस और कुशल शासन के माध्यम से मौर्य साम्राज्य का विस्तार दक्षिण भारत में कलिंग और तमिल आदि क्षेत्रों में भी करने में विजय हासिल कर ली थी।

इसलिए मौर्य साम्राज्य के दूसरे शासक बिंदुसार को इतिहास में एक 'महान पिता का पुत्र और महान पुत्र का पिता' भी कहा जाता है, क्योंकि वे महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र और सम्राट अशोक महान के पिता थे।

विरासत

सम्राट चन्द्रगुप्त की वीरता के किस्से आज भी युवाओं के अंदर एक नया जोश भर देते हैं और उनके अंदर आगे बढ़ने का नया जुनून पैदा करते हैं। चन्द्रगुप्त के महान जीवन पर बहुत सारी किताबें भी लिखी गई हैं।

इसके साथ ही कई टीवी सीरीज भी बनाई जा चुकी हैं, जो दर्शकों द्धारा बेहद पसंद भी की गई हैं।

इसके अलावा साल 1977 में चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन पर तेलुगु भाषा में "चाणक्य चन्द्रगुप्त" फिल्म भी बनाई जा चुकी है। भारतीय इतिहास के इस महान एवं शक्तिशाली योद्धा के चन्द्रगुप्त मौर्य के नाम पर साल 2001 में उनके सम्मान में डाक टिकट भी जारी किया गया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक निडर योद्धा थे। उन्होंने भारत के लगभग सभी उपमहाद्धीपों में मौर्य साम्राज्य का विस्तार कर जीत का परचम लहराया था।

इसके साथ ही भारत में कला और शिल्पकला के विकास में मौर्य साम्राज्य की मुख्य भूमिका रही है। वहीं मौर्य कालीन भारत को आज भी एक विकसित भारत के रूप में याद किया जाता है।

सन्दर्भ

- राध कुमुद मुकर्जी : चंद्रगुप्तमौर्य ऐंड हिज टाइम्स;
- सत्यकेतु विद्यालंकार : मौर्य साम्राज्य का इतिहास;
- मैक्रिंडिल : एंश्येंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मेगस्थनीज ऐंड एरिअन;
- कौटिल्य का अर्थशास्त्र
- हेमचंद्र रायचौधुरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐशेंट इंडिया, पृ. 264-295, (षष्ठ संस्करण) कलकत्ता, 1953;
- दि एज ऑव इम्पीरीयल यूनिटी (र.च. मजूमदार एवं अ.द. पुसालकर संपादित) पृ. 5469, बंबई, 1960;
- एज ऑव नंदाज ऐंड दि मौर्याज (के.ए. नीलकंठ शास्त्री संपादित), पृ. 132-165, बनारस, 1952;
- द केंब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया (ई। आर. रैप्सन संपादित), भाग 1, पृ. 467-473, कैंब्रिज, 1922
- Mookerji, R. K. (1966), Chandragupta Maurya and His Times, Motilal Banarsidass, आई.एस.बी.एन. 978-81-208-0405-0, मूल से 9 अगस्त 2019 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 17 अक्तूबर 2019

उपनिवेशवाद का अर्थ और इतिहास

डॉ० मंजुली कुमारी

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सी.एन. कॉलेज, साहेब गंज, मुजफ्फरपुर (बिहार)

परिचय

किसी एक भौगोलिक क्षेत्र के लोगों द्वारा किसी दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में उपनिवेश (कॉलोनी) स्थापित करना और यह विश्वास रखना कि यह एक अच्छा काम है, उपनिवेशवाद (ब्वसवदपंसपेउ) कहलाता है।

इतिहास में प्राय: पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक उपनिवेशवाद का काल रहा। इस काल में यूरोप के लोगों ने विश्व के विभिन्न भागों में उपनिवेश बनाये। इस काल में उपनिवेशवाद में विश्वास के मुख्य कारण थे–

ख लाभ कमाने की लालसा

ख मातृदेश की शक्ति बढ़ाना

ख मातृदेश में सजा से बचना

ख स्थानीय लोगों का धर्म बदलवाकर उन्हें उपनिवेशी के धर्म में शामिल करना

कुछ उपनिवेशी यह भी सोचते थे कि स्थानीय लोगों को इसाई बनाकर तथा उन्हें "सभ्यता" का दर्शन कराकर वे उनकी सहायता कर रहे हैं। किन्तु वास्तविकता में उपनिवेशवाद का अर्थ था–आध्पित्य (ेनइरनहंजपवद), विस्थापन एवं मृत्यु।

उपनिवेश, मातृदेश के साम्राज्य का भाग होता था; अत: उपनिवेशवाद का साम्राज्यवाद से घनिष्ठ सम्बन्धा है।

उपनिवेशवाद का अर्थ

उपनिवेशवाद का अर्थ है–किसी समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी निर्बल किंतु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र के विभिन्न संसाधनों का शक्ति के बल पर उपभोग करना। उपनिवेशवाद में उपनिवेश की जनता एक विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित होती है, उसे शासन में कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होता। आर्गन्सकी के अनुसार,

''वे सभी क्षेत्र उपनिवेशों के तहत आते हैं जो विदेशी सत्ता द्वारा शासित हैं एवं जिनके निवासियों को पूरे राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं।''

वस्तुत: हम किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा निहित स्वार्थवश किसी निर्बल राष्ट्र के शोषण को उपनिवेशवाद कह सकते हैं।

लैटिन भाषा के शब्द श्कोलोनियाश का मतलब है एक ऐसी जायदाद जिसे योजनाबद्ध ढंग से विदेशियों के बीच कायम किया गया हो। भूमध्यसागरीय क्षेत्र और मध्ययुगीन युरोप में इस तरह का उपनिवेशीकरण एक आम परिघटना थी। इसका उदाहरण मध्ययुग और आधुनिक युग की शुरुआती अवधि में इंग्लैण्ड की हुकूमत द्वारा वेल्स और आयरलैण्ड को उपनिवेश बनाने के रूप में दिया जाता है। लेकिन, जिस आधुनिक उपनिवेशवाद की यहाँ चर्चा की जा रही है उसका मतलब है यूरोपीय और अमेरिकी ताकतों द्वारा गैर-पश्चिमी संस्कृतियों और राष्ट्रों पर जबरन कब्जा करके वहाँ के राज-काज, प्रशासन, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, भाषा, धर्म, व्यवस्था और जीवन-शैली पर अपने विजातीय मूल्यों और संरचनाओं को थोपने की दीर्घकालीन प्रक्रिया। इस तरह के उपनिवेशवाद का एक स्रोत कोलम्बस और वास्कोडिगामा की यात्राओं को भी माना जाता है। उपनिवेशवाद के इतिहासकारों ने पन्द्रहवीं सदी यूरोपीय शक्तियों द्वारा किये साम्राज्यवादी विस्तार की परिघटना के विकास की शिनाख्त अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में

उपनिवेशवाद के रूप में की है। औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए हालात ने उपनिवेशवादी दोहन को अपने चरम पर पहुँचाया। यह सिलसिला बीसवीं सदी के मध्य तक चला जब वि-उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया के तहत राष्ट्रीय मुक्ति संग्रामों और क्रांतियों की लहर ने इसका अंत कर दिया। इस परिघटना की वैचारिक जड़ें वणिकवादी पूँजीवाद के विस्तार और उसके साथ-साथ विकसित हुई उदारतावादी व्यक्तिवाद की विचारधारा में देखी जा सकती हैं। किसी दूसरी धरती को अपना उपनिवेश बना लेने और स्वामित्व के भूखे व्यक्तिवाद में एक ही तरह की मूल प्रवृत्तियाँ निहित होती हैं। नस्लवाद, युरोकेंद्रीयता और विदेशी-द्वेष जैसी विकृतियाँ उपनिवेशवाद की ही देन हैं।

उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद होते हुए भी काफी-कुछ परस्परव्यापी और परस्पर-निर्भर पद हैं। साम्राज्यवाद के लिए जरूरी नहीं है कि किसी देश पर कब्जा किया जाए और वहाँ कब्जा करने वाले अपने लोगों को भेज कर अपना प्रशासन कायम करें। इसके बिना भी साम्राज्यवादी केंद्र के प्रति अधीनस्थता के संबंध कायम किये जा सकते हैं। पर, उपनिवेशवाद के लिए जरूरी है कि विजित देश में अपनी कॉलोनी बसाई जाए, आक्रामक की खुद को श्रेष्ठ मानते हुए बहुसंख्य विजितों पर अपने कानून और फैसले स्थापित करें। ऐसा करने के लिए साम्राज्यवादी विस्तार को एक ख़ास विचारधारा का तर्क हासिल करना आवश्यक था। यह भूमिका सत्रहवीं सदी में प्रतिपादित जॉन लॉक के दर्शन ने निभाई। लॉक की स्थापनाओं में ब्रिटेन द्वारा भेजे गये अध्विासियों द्वारा अमेरिका की धरती पर कब्जा कर लेने की कार्रवाई को न्यायसंगत ठहराने की दलीलें मौजूद थीं। उनकी रचना श्टू ट्रीटाइज ऑन सिविल गवर्नमेंटश (1690) की दूसरी थीसिस 'प्रकृत अवस्था' में व्यक्ति द्वारा अपने अधिकारों की दावेदारी के बारे में है। वे ऐसी जगहों पर नागरिक शासन स्थापित करने और व्यक्तिगत प्रयास द्वारा हथियाई गयी सम्पदा को अपने लाभ के लिए विकसित करने को जायज करार देते हैं। यही थीसिस आगे चल कर धरती के असमान स्वामित्व को उचित मानने का आधार बनी।

लॉक की मान्यता थी कि अमेरिका में अनाप-शनाप जमीन बेकार पड़ी हुई है और वहाँ के मूलवासी यानी इण्डियन इस धरती का सदुपयोग करने की योग्यता से वंचित हैं। लॉक ने हिसाब लगाया कि यूरोप की एक एकड़ जमीन अगर अपने स्वामी को पाँच शिलिंग प्रति वर्ष का मुनाफा देती है, तो उसके मुकाबले अमेरिकी जमीन से उस पर बसे इण्डियन को होने वाला कुल मुनाफा एक पेनी से भी बहुत कम है। चूँकि अमेरिकी इण्डियन बाकी मानवता में प्रचलित धन-आधरित विनिमय-प्रणाली अपनाने में नाकाम रहे हैं, इसलिए 'सम्पत्ति के अधिकार' के मुताबिक उनकी धरती को अध्रिग्रहीत करके उस पर मानवीय श्रम का निवेश किया जाना चाहिए। लॉक की इसी थीसिस में एशियाई और अमेरिकी महाद्वीप की सभ्यता और संस्कृति पर युरोपीय श्रेष्ठता की ग्रंथि के बीज थे जिसके आधार पर आगे चल कर उपनिवेशवादी संरचनाओं का खाका खड़ा किया गया।

उपनिवेशों की मुख्यत: दो किस्में थीं। एक तरफ अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड जैसे देश थे जिनकी जलवायु युरोपियनों के लिए सुविधजनक थी। इन इलाकों में सफेद चमड़ी के लोग बहुत बड़े पैमाने पर बसाये गये। उन्होंने वहाँ की स्थानीय आबादी के संहार और दमन की भीषण परियोजनाएँ चला कर वहाँ न केवल पूरी तरह अपना कब्जा जमा लिया, बल्कि वे देश उनके अपने 'स्वदेश' में बदल गये। जन-संहार से बच गयी देशज जनता को उन्होंने अलग-थलग पड़े इलाकों में धकेल दिया। दूसरी तरफ वे उपनिवेश थे जिनका हवा-पानी यूरोपीयनों के लिए प्रतिकूल था (जैसे भारत और नाइजीरिया)। इन देशों पर कब्जा करने के बाद यूरोपियन थोड़ी संख्या में ही वहाँ बसे और मुख्यत: आर्थिक शोषण और दोहन के लिए उन भूभागों का इस्तेमाल किया। न्यू इंग्लैण्ड सरीखे थोड़े-बहुत ऐसे उपनिवेश भी थे जिनकी स्थापना यूरोपीय इसाइयों ने धार्मिक आजादी की खोज में की।

उपनिवेशवाद का आरम्भ

1453 ई. में तुर्कों द्वारा कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लेने के पश्चात् स्थल मार्ग से यूरोप का एशियायी देशों के साथ व्यापार बंद हो गया। अत: अपने व्यापार को निर्बाध रूप से चलाने हेतु नये समुद्री मार्गों की खोज प्रारंभ हुई। कुतुबनुमा, गतिमापक यंत्र, वेध यंत्रों की सहायता से कोलम्बस, मैगलन एवं वास्कोडिगामा आदि साहसी नाविकों ने नवीन समुद्री मार्गों के साथ-साथ कुछ नवीन देशों अमेरिका आदि को खोज निकाला। इन भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप यूरोपीय व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। धन की बहुलता एवं स्वतंत्र राज्यों के उदय ने उद्योगों को बढ़ावा दिया। कई नवीन उद्योग शुरु हुए। स्पेन को अमेरिका रूपी एक ऐसी धन की कुंजी मिली कि वह समृद्धि के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। ईसाई-धर्म-प्रचारक भी धर्म प्रचार हेतु नये खोजे हुए देशों में जाने लगे। इस प्रकार अपने व्यापारिक हितों को साधने एवं धर्म प्रचार आदि के लिए यूरोपीय देश उपनिवेशों की स्थापना की ओर अग्रसर हुए और इस प्रकार यूरोप में उपनिवेश का आरंभ हुआ।

उपनिवेशों की स्थापना के कारण

व्यापारिक क्रांति में भौगोलिक खोजों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन भौगोलिक खोजों के साथ ही उपनिवेशवाद का आरंभ हुआ। स्पेन, पुर्तगाल, डच, फ्रांस एवं इंग्लैण्ड आदि यूरोपीय देशों ने सुदूर देशों में उपनिवेश स्थापित किये। यूरोप में उपनिवेशवाद के आरंभ के निम्नलिखित कारण थे–

ट्रिपल ळ नीति

भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज ने यूरोपीय देशों में स्वर्ण जैसी बहुमूल्य धातु के संग्रह की प्रतिस्पर्द्धा आरंभ की। स्वर्ण-संग्रह की प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति यह थी कि समस्त यूरोप में 'अधिक स्वर्ण, अधिक समृद्धि, अधिक कीर्ति' का नारा बुलंद हुआ। अब समस्त यूरोपीय राष्ट्रों का प्रमुख ध्यान सोना, कीर्ति एवं ईश्वर अर्थात् ळवसक, ळसवतल दंक ळवक पर केन्द्रित हो गया। उपनिवेशों की स्थापना से यूरोपीय देशों को सोना भी मिला, कीर्ति भी फैली एवं धर्म का प्रचार भी हुआ। अत: ट्रिपल ळ नीति नि:संदेह उपनिवेशों की स्थापना का एक कारण अवश्य थी।

कच्चे माल की प्राप्ति

व्यापारिक समृद्धि के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में कई उद्योगों की स्थापना हुई। यूरोप में इन उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी थी। अत: यूरोपीय देशों ने कच्चे माल और प्राकृतिक संसाधनों की प्राप्ति हेतु अफ्रीकी एवं एशियायी देशों में उपनिवेशों की स्थापना की।

तैयार उत्पाद की खपत

उद्योगों की स्थापना एवं कच्चे माल की उपलब्धता से औद्योगिक उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा। चूँकि इस समय सभी यूरोपीय देश आर्थिक संरक्षण की नीति पर चल रहे थे। अत: इस निर्मित माल को खपाने के लिए भी उपनिवेशों की स्थापना की गयी। अर्थात प्रत्येक उपनिवेशों को शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा जबरन निर्मित माल की खरीद व् कच्चे माल के निर्यात हेतु बाध्य किया गया।

जनसंख्या में वृद्धि

यूरोप के विभिन्न देशों में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप नगरों की जनसंख्या में अत्याधिक वृद्धि हुई। कालांतर में अतिशेष जनसंख्या को बसाने के लिए भी उपनिवेशों की स्थापना को बल मिला।

प्रतिकूल जलवायु

यूरोपवासियों को व्यापारिक प्रगति एवं नवीन देशों से संपर्क के फलस्वरूप कई नवीन वस्तुओं का ज्ञान हुआ, आलू, तंबाकू, भुट्टा आदि का ज्ञान उन्हें पूर्वी देशों के साथ संपर्क से ही हुआ। गर्म मसाले, चीनी, कॉफी, चावल आदि के भी अब वे आदी हो गये थे। प्रतिकूल जलवायु के कारण ये सभी वस्तुएँ यूरोपीय देशों में उगाना संभव न था। अत: यूरोपीय विशेषज्ञ अंग्रेज चाहते थे कि उन्हें ऐसे प्रदेश प्राप्त हो जायें जहाँ इनकी खेती की जा सके। अत: अनुकूल जलवायु वाले स्थानों में उपनिवेश स्थापना की विचारधारा को बल मिला।

समृद्धि की लालसा

भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप प्रारंभिक उपनिवेश पुर्तगाल एवं स्पेन ने स्थापित किये। इससे उनकी समृद्धि में वृद्धि हुई। अत: इनकी समृद्धि को देखते हुए समृद्धि की लालसा में अन्य यूरोपीय देश भी उपनिवेश स्थापित करते हुए अग्रसर हुए।

उपनिवेशीकरण का इतिहास

उपनिवेशवाद का इतिहास साम्राज्यवाद के इतिहास के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। सन् 1500 के आसपास स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन, फ्रांस और हालैण्ड की विस्तारवादी कार्रवाइयों को युरोपीय साम्राज्यवाद का पहला दौर माना जाता है। इसका दूसरा

दौर 1870 के आसपास शुरू हुआ जब मुख्य तौर पर ब्रिटेन साम्राज्यवादी विस्तार के शीर्ष पर था। अगली सदी में जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका उसके प्रतियोगी के तौर पर उभरे। इन ताकतों ने दुनिया के विभिन्न हिस्सों में जीत हासिल करके अपने उपनिवेश कायम करने के जरिये शक्ति, प्रतिष्ठा, सामरिक लाभ, सस्ता श्रम, प्राकृतिक संसाधन और नये बाजार हासिल किये। साम्राज्यवादी विजेताओं ने अपने अध्विासियों को एशिया और अफ्रीका में फैले उपनिवेशों में बसाया और मिशनरियों को भेज कर ईसाइयत का प्रसार किया। ब्रिटेन के साथ फ्रांस, जापान और अमेरिका की साम्राज्यवादी होड़ के तहत उपनिवेशों की स्थापना दुनिया के पैमाने पर प्रतिष्ठा और आर्थिक लाभ का स्रोत बन गया। यही वह दौर था जब युरोपियनों ने अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता के दम्भ के तहत साम्राज्यवादी विस्तार को एक सभ्यता के वाहक के तौर पर देखना शुरू किया।

साम्राज्यवाद की दूसरी लहर ने सबसे पहले अफ्रीका को अपना शिकार बनाया। इस महाद्वीप की हुकूमतें युरोपियन फौजों के सामने आसानी से परास्त हो गयीं। बेल्जियम के लिए हेनरी स्टेनली ने कोंगो नदी घाटी पर कब्जा कर लिया; फ्रांस ने अल्जीरिया को हस्तगत करके स्वेज नहर का निर्माण किया और उसके जवाब में ब्रिटेन ने मिस्र पर कब्जा करके इस नहर पर नियंत्रण कर लिया ताकि एशिया की तरफ जाने वाले समुद्री रास्तों पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो सके। इसी के बाद फ्रांस ने ट्यूनीशिया और मोरक्को को अपना उपनिवेश बनाया। इटली ने लीबिया को हड़प लिया। लातिनी और दक्षिणी अमेरिका में मुख्य तौर पर स्पेन के उपनिवेश रहे। इन क्षेत्रों की कई अर्थव्यवस्थाओं की लगाम अमेरिका और युरोपीय ताकतों के हाथों में रही।

एक तरफ उन्नीसवीं सदी में अफ्रीका के लिए साम्राज्यवादी होड़ चल रही थी, तो दूसरी ओर दक्षिण एशिया पर प्रभुत्व जमाने की प्रतियोगिता भी जारी थी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक ब्रिटेन, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जरिये भारत के बड़े हिस्से का उपनिवेशीकरण करके बेशकीमती मसालों और कच्चे माल की प्राप्ति शुरू कर चुका था। फ्रांसीसी और डच भी उपनिवेशवादी प्रतियोगिता में जम कर हिस्सा ले रहे थे। उपनिवेशवाद के विकास में औद्योगिक क्रांति की भी भूमिका अहम रही। अट्ठारहवीं शताब्दी की अन्तिम अवधि में हुई इस क्रांति ने उपनिवेशवाद के केंद्र यानी ब्रिटेन और उसकी परिधि यानी उपनिवेशित क्षेत्रों के बीच के रिश्तों को आमूलचूल बदल दिया। उपनिवेशित समाजों में और गहरी पैठ के अवसरों का लाभ उठा कर उद्योगपतियों और उनके व्यापारिक सहयोगियों ने गुलाम जनता श्रम का भीषण दोहन शुरू किया। अटलांटिक के आर-पार होने वाला गुलामों का व्यापार भी उनके काम आया। उपनिवेशों के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों के शोषण से औद्योगिक क्रांति को छलांग लगा कर आगे बढ़ने की सुविध मिली। उपनिवेश इस क्रांति के लिए कच्चे माल के सस्ते स्रोत बन गये।

उपनिवेशों का अन्त

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपनिवेशवाद का प्रभाव तेजी से घटा। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि अक्टूबर क्रांति के पश्चात ही औपनिवेशिक प्रणाली दरकने की शुरुआत हो गयी थी। 1945 के बाद स्पष्ट हो गया कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय पर उपनिवेशवाद विरोधी रुझान हावी हो चुके हैं। अमेरिका और सोवियत संघ ने इस दौर में पुराने किस्म के उपनिवेशवाद का जम कर विरोध किया और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का पक्ष लिया। युरोप की हालत इस समय तक बेहद कमजोर हो गयी थी। वह दूर-दराज में फैले हुए उपनिवेशों की आर्थिक लागत उठाने की हालत में नहीं था। नवगठित संयुक्त राष्ट्र संघ उपनिवेशों में चल रहे राष्ट्रवादी आंदोलनों के प्रभाव में वि-उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर रहा था। नतीजे के तौर पर 1947 से 1980 के बीच में ब्रिटेन को क्रमशः भारत, बर्मा, घाना, मलाया और जिम्बाब्वे का कब्जा छोड़ना पड़ा। इसी सिलसिले में आगे डच साम्राज्यवादियों को 1949 में इण्डोनेशिया से जाना पड़ा और अफ्रीका में आखिरी औपनिवेशिक ताकत के रूप में पुर्तगाल ने अपने उपनिवेशों को 1974-75 में आजाद कर दिया। 1954 में इंडो-चीन क्षेत्र और 1962 में अल्जीरिया के रक्तरंजित संघर्ष के सामने फ्रांस को घुटने टेकने पड़े। साठ के दशक में ही भारत के प्रांत गोवा से पुर्तगाल ने अपना बोरिया-बिस्तर समेट लिया।

उपनिवेशवाद की मार्क्सवादी व्याख्या

उपनिवेशवाद की मार्क्सवादी व्याख्याएँ भी यह दावा करती कि उन्नीसवीं सदी की अमेरिकी और युरोपियन औद्योगिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए गैर-पूँजीवादी समाजों का प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण आवश्यक था। इस लिहाज से मार्क्सवादी विद्वान पूँजीवाद के उभार के पहले और बाद के उपनिवेशवाद के बीच फर्क करते हैं। मार्क्स ने अपनी भारत संबंधी रचनाओं में उपनिवेशवाद पर ख़ास तौर से विचार किया है। मार्क्स और एंगेल्स का विचार था कि उपनिवेशों पर नियंत्रण करना न केवल बाजारों

और कच्चे माल के स्रोतों को हथियाने के लिए जरूरी था, बल्कि प्रतिद्वंद्वी औद्योगिक देशों से होड़ में आगे निकलने के लिए भी आवश्यक था। उपनिवेशवाद संबंधी मार्क्सवादी विचारों को आगे विकसित करने का श्रेय रोजा लक्जेमबर्ग और लेनिन को जाता है।

मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य को आलोचना का भी सामना करना पड़ा है। आलोचकों का कहना है कि मार्क्स, रोजा और लेनिन ने अपनी थीसिस के पक्ष में जो प्रमाण पेश किये हैं वे पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि उनसे औद्योगिक क्रांति व पूँजीवाद के विकास के लिए उपनिवेशवाद की अनिवार्यता साबित नहीं होती। दूसरे, मार्क्सवादी विश्लेषण के पास उपनिवेशित समाजों का पर्याप्त अध्ययन और समझ मौजूद नहीं है। मार्क्स जिस एशियाई उत्पादन प्रणाली की चर्चा करते हैं और रोजा जिस की श्रेणियों को एशियाई समाजों पर आरोपित करती हैं, उन्हें इन समाजों के इतिहास के गहन अध्ययन के आधार पर बहुत दूर तक नहीं खींचा जा सकता।

निष्कर्ष

विश्व में ई. 1500 से प्रारंभ हुए उपनिवेशवाद की अमानुषिकता के लक्षण थे : लूट, हथियारवाद, शोषण, अत्याचार, लूट नवदास प्रथा का उभारद्य अमेरिका, अफ्रिका मे भीषण नरसंहार हुआद्य यूरोपीय कबीलावाद का पुनरोदय हुआद्य उत्पादन फैक्ट्री मे, फैक्ट्री के लिये शहर की बसाहट, स्लम जीवन, उभरा टेक्नोलॉजी का प्रभाव बढ़ने से अर्थ व्यवस्था एवं यूरोपीय राजनीति का स्वरूप बदलाद्य 1550 से 1650 उपनिवेशवादियों की आपसी लड़ाई के साथ-साथ व्यापार से राजनीति की ओर बढ़ाव हुआद्य

1650-1850 भारत मे लूट, यूरोप का घर भरना, इंग्लैंड वर्चस्व की ओर औद्योगिक क्रान्ति मे भारत की लूट का योगदान, ये सारे परिणाम थेद्य 1850 से आगे टिके रहने मे दिक्कतें और यूरोप मे स्पर्ध, तनाव बढाद्य भारत सर्वाधिक दबाव मे 1750-1850 तक आयाद्य भाषा-भूषा, भोजन-भवन, भेषज-भजन में भी प्रभाव बढ़ाद्य यूरोप में तनाव और सर्वाधिकार की होड़ मचीद्य

इंग्लैंड का अंधनुकरण भारत में हर तरह से बढ़ा, प्रतिरोध भी सामान्य जन की ओर से बढ़ाद्य प्रगति, विकास, आधुनिकता की परिभाषाएँ विकृत हो गईद्य शिक्षा, संस्कार की व्यवस्था पर भारी हमला हुआद्य आत्म विस्मृति का भयंकर दौर आयाद्य

राष्ट्रीय समाज ने प्रतिकार भी कियाद्य यूरोपीय लोगों द्वारा शोषण के हर संभव उपाय मे टेक्नोलॉजी उपयोगी रहीद्य यों तो भारत पर पड़े प्रभाव दर्दनाक थे फिर भी उत्तर दक्षिण अमेरिका, अफ्रिका पूर्व एशियाई देश आदि में तो अकल्पनीय अति हुईद्य

सन्दर्भ

1. एरिक (1987), द ऑफ 1875-1914, वीडनफील्ड ऐंड निकल्सन, लंदन.
2. विलियम पॉमरॉय अमेरिकन इंटरनैशनल पब्लिशर्स, न्यूयॉर्क.
3. जॉन जी. टेलर (2000), 'कोलोनियलिजम', संकलित : टॉम बॉटमोर वगैरह (सम्पा.), अ डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट, माया ब्लैकवेल, नयी दिल्ली.
4. मार्क फेरो (1997), कोलोनाइजेशन : अ ग्लोबल हिस्ट्री, रॉटलेज, लंदन.
5. युरगन (1997), कोलोनियलिजम, वाइनर, प्रिंसटन, एनजे.

हिन्दी के संस्मरण साहित्य में दिनकर का अवदान

डॉ० महेश कुमार

असस्टिेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल महाविद्यालय, सुरसंड

उत्तरछायावादी काल की राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों में दिनकर का स्थान सर्वोच्च है। दिनकर का रचना फलक अत्यंत व्यापक है। कविता के अलावा दिनकर प्रसिद्ध गद्यकार भी है। उन्होंने बीस से अधिक गंध कृतियों की रचना की है। गद्य लेखक के रूप में दिनकर की ख्याति का प्रमुख आधार है– संस्कृति के चार अध्याय और संस्मरण। इसके अतिरिक्त उन्होंने निबंध यात्रा वृतांत और डायरी भी लिखा है। लोक देव नेहरू और संस्मरण और श्रद्धांजलिया दिनकर की संस्मरणात्मक कृतियाँ है। गद्य के विविध रूपों में अनेक कृतियों की रचना के बाद भी गद्य लेखक के रूप में दिनकर के व्यक्तित्व और आलोचना संबंधी दृष्टि का समयक विवेचन विश्लेशण जरूरी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है-'यदि गध कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।'[1] दिनकर ने अपने संस्मरण में निजी अनुभवों को आधार बनाकर पात्रों के बाहरी रूप के साथ-साथ आंतरिक चरित्र का भी सजीव वर्णन किया है।

हिन्दी गद्य में संस्मरण साहित्य को विकसित करने वालो में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाम अग्रगण्य है। इनके पश्चात रामकुमार वर्मा, फणीश्वर नाथ रेणु, रामधारी सिंह दिनकर, अज्ञेय के संस्मरण काफी लोकप्रिय और चर्चित है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के परिदृष्य में विधाओं ने लगातार अपने लिए स्थान बनाया है उनमें संस्मरण सम्भवत: सबसे उल्लेखनीय है। संस्मरण ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। डॉ. नगेन्द्र ने संस्मरण को 'वैयक्तिक अनुभव तथा स्मृति से रचा गया इति वृत अथवा वर्णन कहा है।[2]

दिनकर समर्थ गद्य लेखक है। उनके गद्यकार व्यक्तित्व पर हिन्दी साहित्य में अभी तक पर्याप्त चर्चा नहीं हुई है। दिनकर ने गद्य लेखन का कार्य स्वतंत्रता के आस-पास प्रारंभ किया था। उनकी पहली गद्य कृति मिट्टी की ओर सन् 1947 ई0 मे प्रकाशित हुई थी। संख्या की दृष्टि से देखे तो दिनकर के जितने काव्य ग्रंथ है उतने ही गद्य कृतियाँ भी है। गद्यकार दिनकर ने हमें ऐसे सच्चे भारतीय विश्लेषक और विचारक दिखाई देता है। डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है– कवि दिनकर बहुत अच्छे गद्य लेखक थे। गद्य में भी केवल आलोचना नहीं वरन इतिहास और संस्कृति पर भी उन्होंने विस्तार से लिखा है। यदि वे कवि न होते तो आलोचक के रूप में अधिक प्रसिद्धि पाते।[3]

दिनकर का गद्य लेखन अनेक विधाओं में फैला हुआ है। गद्य की आधुनिक विधाओं में यात्रा वृतांत, संस्मरण, डायरी में उन्होंने प्रचुर मात्रा में लिखा है। दिनकर की सभी गद्य कृतियो का विधागत वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है-

1. संस्मरण
2. समीक्षा संबंधी कृतियां
3. निबंध
4. यात्रा वृतांत
5. डायरी

यहाँ हम उनके संस्मरण संबंधी आलेखों पर विचार करेंगे। दिनकर ने संस्मरण संबंधी दो ग्रंथ लिखे है। लोकदेव नेहरू और संस्मरण और श्रद्धांजलियां। संस्मरण और श्रद्धांजलियां में अनेक साहित्यकारो के साथ-साथ प्रमुख राजनीतिज्ञों के संस्मरण भी है। कई संस्मरणों में स्वर्गीय हो चुके महापुरुषों को श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। दिनकर ने पंडित जी के संस्मरण में लिखा है– पूज्यवर पंडित जवाहरलाल नेहरू को दूर से देखने के अवसर तो मुझे कई बार मिले थे किन्तु नजदीक से पहले-पहले उन्हें मैने सन् 1948 ई0 में देखा जब वे किसी राजनैतिक सम्मेलन का उदघाटन करने को मुजफ्फरपुर आए थे उस दिन सभा में मुझे एक कविता पढ़नी थी, अतएव लोगों ने मुझे भी मंच पर बिठा दिया था। लोकदेव नेहरू नामक संस्मरण में नेहरू जी ने उनके विचार दर्शन से पाठको को अवगत कराने का सजिव चित्रण किया है। दिनकर ने अपने समकालीन महापुरुषों जिन्होंने राजनीतिक और साहित्यिक जीवन में हस्तक्षेप करते हुए एक आदर्श उपस्थित किया उनके अंतरंग जीवन की अविस्मरणीय और उनके व्यक्तित्व के अनेक अनजाने रूप विविध प्रसंग, मानवीय गुण को बड़ी शिद्दत से उदघाटित किया है।

साहित्यकारों से जुड़े संस्मरणों में डॉ. काशी प्रसाद जयसवाल, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, राजर्शि टंडन, राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, पंडित माखन लाल चर्तुवेदी, महाप्राण निराला, पंत, महादेवी, बालकृष्ण शर्मा नवी, पंडित बनारसी दास चर्तुवेदी, किशोरी दास बाजपेयी, आचार्य शिवपूजन सहाय, आचार्य रघुवीर के अतिरिक्त और भी अनेक समकालिन साहित्यकार जिनके संस्मरण रामांचित ही नही करते मानवीय मूल्यो के प्रति आस्था भी जगाते है। दिनकर ने प्रमंख राजनीतिज्ञो में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. सर्वपल्ली राधा कृष्णन, डॉ. जाकिर हुसैन, श्री लाल बहादुर शास्त्री, श्री कृष्ण सिन्हा जैसे राजनेताओं के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि और प्रेरक प्रसंग औपचारिकता नहीं अपितु अपनत्व से भरी है। इन्हे पढ़ना और समझना देश के अतीत में जाना है। एक ऐसा अतीत जो वर्तमान ही नहीं भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत है।

दिनकर का सम्पुर्ण साहित्य स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का है। इस अवधि में भारत अपने पैरो पर खड़ा होने की कोशिश कर रहा था। इस युग में देश के अगुआ थे– पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने यौवनकाल में पंडित जी युवक-ह्रदय-सम्राट कहे जाते थे। बाद में वे जनता के सम्राट बन गए। पंडित जी के स्वर्गवास के बाद जब विनोबा जी ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लोकदेव के नाम से अभिहित किया तब नेहरू का एक और रूप सामने आया। नेहरू के लम्बे संस्करण से युक्त पुस्तक का नाम दिनकर ने इसीलिए लोकदेव नेहरू रखा।

दिनकर ने लोकदेव नेहरू की भूमिका स्वरूप निवेदन में यह लिखा कि जैसे परमहंस रामकृष्ण देव की कथा चलाये बिना स्वामी विवेकानन्द का प्रसंग पूरा नहीं हो पाता, वैसे ही गाँधी जी की कथा चलाये बिना जवाहरलाल जी का प्रसंग अधूरा छूट जाता है। इसीलिए एक लम्बे विवरण में दिनकर ने यह समझाने की कोशिश की है कि इन दो महापुरुषों के पारस्परिक संबंध कैसे थे और गाँधी जी के दर्पण में जवाहरलाल जी का रूप कैसा दिखाई देता है।

गाँधी और जवाहरलाल की तुलना के संदर्भ में दिनकर की कुछ पॅक्तियाँ द्रष्टव्य है– 'पंडित जी को गाँधी जी जो भी खत लिखते थे, अक्सर वे मुहब्बत से लबरेज होते थे और उनसे यह स्पष्ट विदित होता था कि अपने इस अद्वितीय शिष्य के लिए उन्हें कितना गौरव और अभिमान था।'[4] यह था दिनकर का मूल्यांकन कि नेहरू गाँधी जी के अद्वितीय शिष्य थे। एक सवाल के जबाब में कि पटेल और नेहरू कैसे साथ मिलकर काम करते है, नेहरू ने उत्तर दिया था-'हम दोनो' के पारस्परिक विरोध का शमन पहले गाँधी जी करते थे और अब वही काम उनकी याद करती है।'[5] यह एक अद्वितीय शिष्य को रास्ता दिखाती है।

क्या वे तानाशाह थे? शीर्षक निबंध में दिनकर ने यह बताया है कि पण्डित जी हिटलर और मुसोलिनी से घृणा करते थे। 'दिनकर के शब्दों में– इतनी घृणा करते थे कि उन दोनो के साथ मिलने से उन्होंने एक ऐसे समय इनकार कर दिया था, जब जवाहरलाल गुलाम देश के नेता थे तथा हिटलर और मुसोलिनी अपने प्रताप से दुनिया को दहला रहे थे।'[6] इसके बावजूद दिनकर के विचार से पण्डित जी के मिजाज में तानाशाही की छौंक काफी थी। वे अपनी तानाशाही प्रवृति का विरोध करने वाले को बर्दाशत नहीं करते थे। वे चाहते थे कि दूसरे लोग उनकी ऐसी प्रवृति का विरोध न करे और उनका साथ दें। वो दिनकर ही थे जो भरे सदन में भारत चीन युद्ध के बाद नेहरू की नीतियों से ब्यथित होकर कविता के माध्यम से राज्य सभा में अपनी पीड़ा को व्यक्त किया था। अपने सबसे बड़े आदर्श नेहरू के खिलाफ बोलने की हिम्मत रखने वाला कवि आज तक दूसरा नहीं हुआ। दिनकर ने अपनी पुस्तक

संस्मरण और श्रद्धांजलियां में बेनीपुरी जी को याद करते हुए लिखते है, बिहार के पहले किसान नेता श्री अरीक्षण सिंह थे। सन् 1921-22 में उन्होनें किसान नामक साप्ताहिक पत्रिका निकाला था इस पत्र के संपादक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी हुए तब उनकी उम्र फकत 19 या बीस साल की थी।[7]

दिनकर का विचार और दृष्किोण उनके संस्मरणो मे अभिव्यक्त हुआ। दिनकर के गद्य में उनके विचारों के दर्शन होते है। दिनकर का समूचा साहित्य लोक तंत्र समाज, और मानवता का पोशक है। लगभग दो दर्जन गद्य पुस्तकों के माध्यम से दिनकर ने हिन्दी साहित्य को समृद्धि प्रदान की है। उनके संस्मरण हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। दिनकर ने अपने संस्मरणों में साहित्यकारों और महापुरुषों के जीवन संबंधी संर्दभो को उद्घाटित किया है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. सं. 276
2. विराम चिन्ह पृ. सं. 227, 228
3. मानविकी पारिभाषिक कोष साहित्य खंड पृ. सं. 167
4. लोकदेव नेहरू पृ. सं. 113
5. वही पृ. सं. 113
6. वही पृ. सं. 33
7. संस्मरण और श्रद्धांजलियां पृ. सं. 97

प्रसाद की बिम्ब परक कविताओं में सौंदर्यः एक अध्ययन

डॉ० उपेन्द्र प्रसाद

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.बी.एन. कॉलेज बगहा-2

छायावाद के उन्नायको में महाकवि जयशंकर प्रसाद मूलतः सौदर्य के कवि है। प्रसाद की सौदर्य में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की अनूभूति के साथ कलात्मक अभिव्यंजना का संस्पर्श भी मिलता है। इनके सौंदर्य बोध में बाह्य और आंतरिक मनः सौंदर्य का कलात्मक चित्रण हुआ है। इस आत्मिक उल्लास को कवि ने भारतीय दृष्टि से आहलाद पूर्ण, चालतायुक्त और रमणीयता से परिपूर्ण विचारकों ने बिम्ब, प्रतीक, सौंदर्य और कल्पना के सहयोग से सौंदर्य शास्त्रीय रुप में परखने की चेष्टा की है।

प्रसाद के काव्य में बिम्ब योजना भावों और विचारों के संप्रेशण का विशेष सहायक तत्व है। बिम्ब सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से आधुनिक काव्य के अंतगर्त एक महत्वपूर्ण तत्व के रुप में मान्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चल सकता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है।"[1]

प्रसाद के काव्य में उनकी सघन और गहन अनुभूतियाँ बिम्बाधार ग्रहण कर इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है कि पाठक नये युग के भाव जगत के समक्ष स्वयं को महसूस करता है जो उनके काव्य की सफल बिम्ब योजना है। उनका सम्पूर्ण काव्य बिम्बो के वैविध्य के कारण हिन्दी कविता में अपना अलग महत्व रखता है। प्रसाद के काव्य में प्रकृति बिम्ब के सभी उपभेदों यथा जलीय, आकाशीय, वनस्थलीय, पर्वतीय, खनीजीय, ऋण संबंधि आदि बिम्बो की योजना की गई है। इसके अलावा मानव बिम्बो के साथ ही एंन्द्रियता के आधार पर विभाजित बिम्बो के सभी भेदो का अंकन हुआ है। इसी प्रकार प्रेरक अनुभूतियो और मूर्तता के आधार पर वर्गीकृत बिम्बो के भेदो सरल, खंडित, और संर्षिलिष्ट के साथ ही मूर्त, छायात्मक और अमूर्त गर्भ बिम्ब दृष्टिगत होते है। प्रकृति बिम्ब के अंतगर्त जलीय बिम्ब का चित्रण करते हुए लिखा है-

प्रबल वेग से उठते है जब वर्शा की नदियों में दृप्त
तुमुल तरंग गरजते फिरते किसी फूल को पलावित कर[2]

दूसरी ओर आकाशीय बिम्ब का चित्रण करते हुए लिखते हैं-

"उशा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी-सी उदित हुई,
उधर पराजित कालरात्रि भी
जल में अंतर्निहित हुई।"[3]

× × ×

'मंदिर ऊँघते रहते जब जगकर रजनी भर तारा[4]
वन्स्थलीय बिम्ब का चित्रण करते हुए लिखा हैं-
उस नीरवता में अलसायी कलियों ने आँखे खोली थी[5]

कामायनी महाकाव्य में प्रसाद ने पर्वतीय बिम्ब का चित्रण करते हुए लिखते है-

"नवकोमल आलोक बिखेरता
हिम-संसृति पर भर अनुराग?
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।"[6]

× × ×

'हिमगिरी के उतुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाह-[7]

प्रसाद प्रकृति सौंदर्य के साथ मानवीय सौंदर्य के भी अप्रतिम कवि है उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति कामायनि में मानवीय सौंदर्य के अनुपम और अद्वितीय चित्र मिलते है। प्रस्तुत महाकाव्य में श्रद्धा के सौंदर्य का चित्रण करते हुए कवि कहता है-

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग।[8]

प्रसाद चित्रित नारी सौंदर्य का यह निश्चय ही कला शिखर है। उपर्युक्त पंक्तियों में श्रृंगार की रूप छटा का चाक्षुश बिम्ब अनुपम है। 'कामयानी में केवल नारी सौंदर्य ही अनुपम नहीं है बल्कि पुरुष सौंदर्य भी विशिष्ट है।

"अवयव की दृढ़ मांशपेशियां
उर्ज्वस्वित था वीर्य अपार।"[9]

जयशंकर प्रसाद ने चित्रमयता को कविता का स्वाभाविक लक्षण माना उन्ही के शब्दों में कवित्व वर्णमय चित्र है जो स्वर्गीय भाव पूर्ण संगीत गाया करता है।[10]

प्रसाद के काव्य में प्रयोग किये गए बिम्ब विधान को समझने के लिए उनकी सुदीर्घ काव्य साधना को समझना होगा। कवि की प्रौढ़ कृतिया 1928 ई. से लेकर 1936 ई. तक माना जाता है। इनमें नवीन विम्बो की अधिकाधीक योजना हुई है जिनमें कामायनी को प्रमुख स्थान प्राप्त है। इस चरण की काव्य कृतियों में ऑसू और लहर को भी स्थान दिया गया है। प्रसाद की कविताओं में पौराणिक मानव लोक जीवन सहित एन्द्रिय बिम्बो के प्रयोग भी मिलते है। यथा

वह चंद्र किरीट रजत नग स्पंदित सा पुरुष पुरातन
देखता मानसी गौरी लहरों का कोमल नर्तन[11]

प्रसाद ने अपने काव्य में छायात्मक बिम्ब का भी चित्रण किया है-

'मिलने लगा हॅसने जीवन के,
उर्मिला सागर के उस पार'[12]

प्रसाद के कविताओं में ऐन्द्रिक, श्रव्य, स्पष्य, घ्राण, आस्वाद, स्मृति एवं अनुभूति, शय, वर्ण, सांस्कृतिक, पौराणिक, मानस बिम्ब, भाव बिम्ब, विचार बिम्ब, कल्पना बिम्ब, दिवास्वपन बिम्ब, प्रतीकात्मक बिम्ब, प्रकृति बिम्ब, प्रणय बिम्ब, अमूर्त बिम्ब, मूर्त बिम्ब तथा जीवनोनुरक्त विविध बिम्ब को प्रतीष्ठा मिली है। शब्द स्पर्श, रस, गंध ने भी अपने-अपने बिम्ब है जो उनकी कविताओं में रूप का आधार लेकर खड़ा है।

प्रसाद के काव्य में प्रयुक्त बिम्बो की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये बिम्ब सायास प्रयुक्त होने के बजाय सहन स्फूर्त है, जो अनायास ही उनकी रचनाओं में उभरते गये हैं जिनमें उनका कवि व्यक्तिव भी अभिव्यक्ति पाता गया है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि प्रसाद ने अपनी कविता में बिम्बो का विधान इस प्रकार किया गया हैं कि वे कहि से भी असहज नही लगते बल्कि उनके प्रयोग से उनके काव्य सौंदर्य में अभिवृद्धि हुई है। उनके द्वारा प्रयोग किये गए बिम्बो की हिन्दी कविता में अपनी अलग गरिमा है।

संदर्भ-सूचि

1. चिंतामणि– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ सं. 145
2. कामायनी प्रसाद ग्रंथावली प्ष्ठ सं. 290
3. कामायनी प्रसाद ग्रंथावली पृ. सं. 283
4. कामायनी पृ. सं. 30
5. वही पृ. सं. 07
6. कामायनी पृ. सं. 54
7. कामायनी चिंता सर्ग पृ. सं. 09
8. कामायनी श्रद्धासर्ग पृ. सं. 30
9. कामायनी पृ. सं. 07
10. आँसू पृ. सं. 38
11. कामायनी आशा सर्ग पृ. सं. 36
12. कामायनी पृ. सं0 45

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण का महत्व

डॉ० इंदु कुमारी

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), बी.आर.ए. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (विश्वविद्यालय परिसर)

संस्कृतं न केवलं भारतस्य अपितु निखिल संसारस्य प्राचीनतमा भाषा अस्ति। अस्मिन् विषये नाऽस्ति कश्चित् विरोधः। वेदाः पृथिव्याः सर्व प्राचीनतया ग्रन्थाः। वेदास्तु संस्कृत भाषायामेव विलिखिताः। अतः अत्र विचारणीयमस्ति यत् वेदेषु पर्यावरणस्य चर्चा अस्ति नास्ति वा। यदि वेदेषु पर्यावरणस्य चर्चा अस्ति तदा निर्भ्रान्ततया इदं वियाप्यायते यत् पर्यावरण विषये अस्माकं पूर्वजाः अतीव सचेष्टाः आसन्। पर्यावरणस्य महत्वं ते पूर्वरूपेण अनुभवन्ति स्म।

'पर्यावरणम्' शब्दः 'परि' उपसर्गकः 'आ' उपपदात् 'वृञ् वरणे' धातौ 'ल्युट्' प्रत्ययात् (परि + आ + वृञ् + ल्युट्) निष्पन्नः अस्ति। अनेन अस्य निर्वचनम् 'परितः आवृञ्यते जीवो येन तत् पर्यावरणम्। वयं सर्वे यैः तत्वैः यैर्कारकैर्वा आवृताः सन्ति तानि सर्वाणि पर्यावरणमेव। पशु-पक्षी-कीट-पतङ्गाः, वृक्ष-लता-जल-वायवः, सर्वे स्थावर-जङ्गमाश्च पर्यावरण संघटकाश्च।

परञ्च साम्प्रतं वैज्ञानिक दृष्टिकोणे मुख्य रूपेण प्रकृतिरेव पर्यावरणं नामोच्यते। प्राचीनकाले प्रकृतिः अत्यन्त-पवित्रतमा आसीत्। 'प्रकर्षा कृतिः प्रकृतिरिति' अस्य निर्वचनम्। प्रकृति-पुरुषः परस्परः साम्यः। का प्रकृतिः कः पुरुषः अन्योन्याश्रयः। पुरुषः ईश्वरः ब्रह्मइति। अतः प्रकृतिः तत्सारुप्यम्-ब्रह्मैव। वस्तुतः पञ्च तत्वानि (क्षितिः, जलं, पावकं, गगनं, समीरम्) एव ब्रह्म। अतः एषां रक्षा अनिवार्या।

वायुः पर्यावरणस्य प्रथमं कारकम्। को वायुः अस्य किञ्च महत्वं वयं सर्वे पूर्ण रूपेण जानीमः। वायुरेव प्राणाः। प्राणवायुः इत्यभिधानम्। वस्तुतः वायुः न केवलं माननां, कीट पतङ्गानां जीवनं अपितु सर्वाणां जड़-चेतनानां जीवनम्। ब्रह्मणः उत्पत्ति कारणं एव वायुः।

ऋग्वेदस्य एकादऽनुवाके त्रयोविंशति संख्यकानि सूक्तानि। अस्य परमेष्ठी नाम प्रजापतिः ऋषिः। वियदादि भावानां सृष्टि-स्थिति प्रलयादीनामत्र प्रतिपादत्वात् तेषां कर्त्ता परमात्मा देवता। अत्र कथितं नासदीये -

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योभा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म्म
न्नभः किमांसीद्गहनं गभीरम्।।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्नं आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास।।
तम आसीत्तमसा गूक्हमग्रे
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव

यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योम
न्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद।।

ऋग्वेदः सर्वेषु वेदेषु प्राचीनतमः। अत्राऽपि पर्यावरणस्य महत्वं प्रतिपादितम्। ''आसीदवातं स्वधया तदेकं '' मन्त्रेण ध्वन्यते यत् पञ्च तत्वानि एव अस्माकं सृष्टेः कारणानि सन्ति। अद्य न केवलं अस्माकं सर्वकारः अपितु सम्पूर्णं विश्वं पर्यावरण रक्षणाय, प्रदूषण दूरीकरणाय च चिन्तितोऽस्ति। सम्प्रति विश्वस्य सर्वे विद्वान्सः बुद्धिमन्तः वृक्षाणामावश्यकता अनुभवन्ति। परञ्च इयमवधारणा न केवला वर्तमाना अपितु अस्माकं ऋषय वेदमन्त्रेषु वृक्षेभ्यः मुहुर्महुः नमस्कुर्वन्ति।

यथा- नमोवृक्षेभ्यः (यजुर्वेद **16-17**)
ओषधीनां पतये नमः (यजुर्वेद **16-16**)
अरण्याणां पतये नमः (यजुर्वेद **16-20**)
नमो वन्याय च (यजुर्वेद **16-34**)

संसारस्य समस्त पदार्थेषु चेतना साक्षात्कार कर्तारः भारतीय मनीषिणः प्रकृतिं प्रति अतीव उदाराः आसन्। तेषां हि अति सूक्ष्मतमायां दृष्टौ प्रकृतिः सजीवतायाः साक्षात् प्रतिमूर्त्तिरस्ति। संस्कृत साहित्ये प्रकृत्या सह अस्माकं सम्बन्धः न केवलं वाह्य अपितु आभ्यन्तरिकः। यथा अस्माकं हृदि माता-पिता-पुत्री-भगिनी-सखा-बन्धूनां स्थानं तदैव प्रकृत्यारपि स्थानम् -

आञ्जनागन्धिं सुरभिं बहून्नाम कृषीवलाम्।
प्राह मृगाणां मातरं अरण्यामनिम शंस्तिम्।।

*(यजुर्वेद **10-146-05**)*

अस्मिन् समये सर्वकारः पर्यावरणस्य महत्वं प्रतिपादयन् 'विश्व पर्यावरणः दिवसः' उत्सव रूपेण प्रकाशयति। वृक्षारोपणं प्रत्येके विद्यालये, महाविद्यालये, ग्रामे, नगरे, संस्थाने वा क्रियते। अस्य प्रचार-प्रसाराय च कोटि-कोटि रूप्यकाणि सर्वकारेण इतस्ततः विभज्यते। परञ्च सर्वकारः यदि अस्माकं ऋषीणां वचनानि पूर्वं एव अनुभवति तदा अभद्रा एतादृशी दशा न आयाति।

यथा-

मधुमान्नो वनस्पतिः (ऋग्वेद **01-90-08)**
माध्वीर्नः सन्त्वोषधी (यजुर्वेद **13-27**)
सुमित्रायाः न आपः ओषधयः सन्तु (यजुर्वेद **36-27**)
ओषधयः शान्ति वनस्पतयः शान्ति (यजुर्वेद **36-17**)

भारतीय संस्कृतौ वृक्षारोपणं कार्यं अतीव पुण्यकरं मन्यते। एकस्मिन् मंत्रे तु स्पष्ट निर्दिष्टमस्ति यत् वृक्षारोपणं अवश्यमेव करणीयम्। कदापि वृक्षाणां हिंसा न कार्या। यथा -

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्। (ऋग्वेद **10-101-11**)

पुनश्च - याऽपौयौषधी हिंसी। (यजुर्वेद **6/12**)

अत्र का हिंसा वृक्षाणाम् ? इतिजिज्ञासायां वृक्षाणां कृन्तनं एव वृक्षाणां हिंसा। वैदिक काले सर्वत्र यज्ञस्य महत्वं दृश्यते। यज्ञे होमः क्रियते। होमः प्रायः सर्वासु वैदिक क्रियासु अनिवार्यः। होमस्य किं महत्वम्? होमे विविधानि काष्ठानि घृतं च प्रयुज्यन्ते। अथर्ववेदानुसारे पर्यावरण रक्षाणाय होमः अत्यावश्यकः। होमात् निसृतः धूमः पर्यावरणं शुद्धं करोति। पर्यावरणे जीव जन्तुभिः मलमूत्रादि विसर्जनेन अनेक प्रकारकाणि प्रदूषणानि भवन्ति। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषणं तु निश्चितमेव भवति। भूमिपतितैः वृक्ष-लता-गुल्म पत्रादिभिश्च अतिभयंकरं प्रदूषणं भवति। अनेके कृमयः पर्यावरणे वायुमण्डले च जायन्ते शीर्णपत्रैः। अस्मत्कृते इमे कृमयः अतीव हानिकारकाः। तेषां दंशनैः स्पर्शैर्वा असाध्य रोगोपजायन्ते। अतः अति सूक्ष्म कृमिभिः शरीर रक्षणाय होमात् परं उत्सर्जिताः धूम्राः लाभकराः रोगनिवारकाः च भवन्ति।

यथा-

यज्ञ धूमस्य संपर्कात् दिशो भान्ति गतज्वराः। (शतपथ ब्राह्मणे)

पुनश्च - घृताहिवनः दीदिवः प्रतिष्भ।
रिसता दह्यग्ने त्वं रक्षस्वनः।। (ऋग्वेद)

अपि च - पञ्चराज्यानि वीरूथाम सोम श्रेष्ठ निब्रुमः।
दर्भा भंगो यवः सहस्ते नो मुञ्चत्वं हसः।। (अथर्व 11-06-15)

पुराणकालेऽपि वृक्षाः पूजनीयाः सन्ति। पूजायाः कारणं न केवलं भगवतभक्तिः अपितु पूजा व्याजेन पर्यावरण शुद्धि रोगनाशः एव मूल कारणं प्रतिभाति। यथा-

आदौ सर्ववृक्षमयं पूर्वं विश्वमजायत।
एते वृक्षाः महाश्रेष्ठाः सर्वे देवांश संभवः।।

(स्कन्द पुराण)

एकोहरिः सकलवृक्षगतो विभाति,
नाना रसैस्तु परिभावित मूर्त्तिरेव।
वृक्षाधिवासमगमत कमला च देवि
दुःखादि नाशकरी सततं स्मृताऽपि।।

*(स्कन्द पुराण **6/247/21-22/224/9**)*

पद्मपुराणे यथा-

यः पुमान रोपयेत् वृक्षान् छाया पुष्प फलोपमान्।
सर्व सत्वोपयोगाय स याति परमां गतिम्।।

भारतवर्षे प्रायः सर्वेषु सनातन धर्मावलम्बीनां गृहेषु नार्यः वृक्षाणां पूजा करोति। स्कंद पुराणस्य षष्ढे अध्याये वृक्षारोपण प्रसंगे निम्नोक्त वृक्षाणां पूजा अनिवार्या। अहं स्पष्टमेव कथयामि यत् ये न वृक्षपूजकाः ते भारतीयाः न। द्रष्टव्यमस्ति अधः - अश्वत्थः-

अश्वत्थं रोपयेद यस्तु पृथिव्यां प्रयतोनरः।
तस्य पाप सहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात्।।

*स्कन्द(ना0) **6/247/38***

पलाशः - पलाशः सर्वदेवानां आधारो धर्म साधनम्।
यत्र लोकस्तु तस्य स्यातत्र पूज्यो महातरुः।।

स्कन्द **6/248/7**

तुलसी- तुलसी रोपिता येन गृहस्थेन महाफला।
गृहे तस्य दारिद्र्यं जायते नात्र संशयः।।

स्कन्द **6/249/1**

बिल्व वृक्ष -
अयं बिल्वतरुः श्रेष्ठः पवित्रा पाप नाशनः।
तस्य मूले स्थिता देवी गिरिजा नात्र संशय :।।

स्कन्द **6/251/14**

धात्री - सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनः प्रिया।

आरोपनीया सेव्या च पूजनीया सदा नरैः।।

स्कन्द(वै0) **12/13**

वटवृक्ष - अमरस्त्वं कदाकल्पो हरेश्चायतनं वटः।
न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तुते।।

ब्रह्मपुराण **58/14**

महाकवेः कालिदासस्य अति प्रशस्ता कृतिः 'रघुवंशम्' अस्ति। अस्य काव्यस्य द्वितीय सर्गे राज्ञः दिलीपस्य गोचारण-वर्णनं अस्ति। भारते गौः विशेष पूज्या अस्ति। गौः न केवला दुग्धदायिका। अस्याः मल-मूत्रे कृमेः नाशस्य अतुला, अवर्णनीया शक्तिः वर्तते। अनेनैव कारणेन राज्ञा दिलीपेन गोचारणं स्वीकृतम्। गोः दुग्धं संतानोत्पादिका शक्तिः धारयति। अतएव स्वप्राणान् दत्वाऽपि गो रक्षा, गो सेवा च राज्ञे दिलीपाय अतीव हितकरा प्रतिभाति। अत्रैव वृक्षाणामपि महत्वं दरिदृश्यते। वने एकः देवदारुः नामकः वृक्षः अस्ति। माता पार्वती इमं देवदारुं पुत्रवत् पालयति स्म। गतायां पार्वत्यां तस्य रक्षणाय एकं सिहं निरूपितवान्। भगवता शिवेन। यदा नन्दिन्या विघूर्णीकृता देवदारोः त्वक् तदा सिंहः क्रोधितोभूखा हन्तुं मिच्छति नन्दिनीम्। एतदवसरे सिंहः दिलीपं कथयति -

अयुं पुरः पश्यसि देवदारुं
पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तन निसृतानां स्कन्दमातुः पयसां रअक्षः। *(रघुवंश **2/36**)*

महाभारतेऽपि पर्यावरण रक्षणाय वृक्षाणां महत्वं दृश्यते।

यथा हि - एकोवृक्षो हि यो ग्रामे भवेत् पर्ण फलान्वितः। चैत्योभवति निर्ज्ञाती रूपनीयः सुपूजितः।।

(महाभारत आदिपर्व **138/25**)

पर्यावरण रक्षणाय नदीनांमहत्वम् - भारते प्रायः सर्वत्र हिन्दूनांकृते पर्यावरण रक्षणाय नदीनां महत्वं दृश्यते। पूजा प्रत्येकेषां भारतीयानां प्रायः दैनन्दिनी कार्यं विधते। पूजाऽऽरम्भ काले सर्वप्रथमं नदीनां स्मरणं क्रियते। स्नानकालेतु नदीनां स्मरणं प्रायः प्रत्येक भारतीयाः कुर्वन्ति। द्रष्टव्योऽस्ति अयं श्लोकः -

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धुकावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

पर्यावरण कारकेषु नदीनां जलधारणां, पर्वतानाञ्च च महत्वं सर्वविदितम्। वैदिककालात् प्रभृतिः आधुनिककालं यावत् एतेषां कारकानां महत्वं निस्संदिग्धम्। वेदेषु च स्पष्टं निगदितं यत् नदी संगम तटेषु ज्ञानिनां बुद्धिरुप जायते। उकतं च ऋग्वेदे -

उपगह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां।

*(ऋग्वेद **8/6/24**)*

*धियो विप्रोऽजायत्।। (यजुर्वेद **26/15**)*

महाभारतस्य शान्ति पर्वणि भगवता व्यासेन स्पष्टं उक्तं यत् पर्यावरण संरक्षण दृष्ट्या तडागानां निर्माणं, वृक्षाणां रोपणं, नदीनां सेवनं, जलाशयानां पवित्रीकरणं पुण्यकरं कार्यं विद्यते। यथा हि -

तस्यात्रडागं कुर्वीत आरामाश्चैव रोपयेत्।

*(शान्ति पर्व **58, 32**)*

विवाहकाले प्रायः सर्वत्र वर वहवोः आशीर्वाद काले सुमंगली पाढः क्रियते पुरोहितैः विद्वद्भिश्च। गिरि-वृक्ष-नदीनां स्मरणं दम्पत्याः चिरजीवनाय क्रियते-

सा चन्द्रभागा वरुणात्वसी नदी,
कुर्वन्तु वः पूर्ण मनोरथं सदा।।

पर्यावरण संरक्षकाः पर्वताः - पर्वतारपि पर्यावरण रक्षार्थमेव निर्मिता विधात्रा। पर्वताः प्रकृतेः बहुमूल्या निधिः। पर्वत स्कंधे, अधित्यकायां उपत्यकायां वा विशालानि-विशालानि वनानि भवन्ति। पर्यावरण-संशुद्यर्थं सर्वोत्तं साधनानि सन्ति। संस्कृतस्य सर्वे प्राचीन कवयः नाटककाराः वा स्वस्मिन् काव्ये पर्वतानां वर्णनम् अत्र विस्तार पूर्वकं कृतवन्तः सन्ति। अस्मिन् सन्दर्भे दर्शनीयोऽस्ति महाकवेः महानाटककारस्य वा कुमारसंभवस्य वस्तु निर्देशात्मकं मङ्गलाचरणम्-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वाऽपरौ तोयनिधौवगाह्य स्थितः पृथिव्यामिवमान दण्डः।।

(कुमारसंभवम् 1-1)

देवो दानात् दीपनात् द्योतनात् वा। देवसम्बन्धिनो निरुक्तकारस्य इदं निर्वचनं प्रशस्तम्। हिमालये देवानां वासः अस्ति। स्वयं देवाधि-देवस्य शिवस्य वासः हिमालयः एव। हिमालयः न केवलः हिमवान् रूपेण ख्यातः अपितु अस्य उपत्यकायां वनानि सन्ति। उपत्यकायां च दिव्य औषधीयाः वनस्पतयः। कथ्यते हिमालय विषये यत् अयं पृथिव्यां स्वर्ग तुल्यः अस्ति। रोगिणो अत्रागत्य रोग विमुक्ताः भवन्ति। मानसिक विक्षिप्ताः नरोऽपि स्वास्थ्यं लभन्ते। कुष्टरोगग्रस्तो अचिरं स्वस्थं भवति। अतएवोक्तम्-

यं सर्वशैलोऽपि परिकल्प्य वत्सं मेरौस्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुः धरित्रीम्।। *(कुमारसंभवम् 1-2)*

हिमालयस्य स्थानं भारते विष्णुरूपात्मकं मन्यते। यथा विष्णुः कल्याण कारकः शान्तिदायकः तथैव हिमालयोऽपि। मुख्यतया भारत भू भागस्य समग्रं पर्यावरणं हिमालय पर्वतमालाभिः प्रभावितं भवति। भारतीय जलवायूनां नियमने हिमालयस्य महती भूमिका अस्ति। एकतः यत्र शीतकाले एशियातः आगन्तारं शीतवायुं रुणद्धि, येन शीतर्त्तौ अपि तापमानं न्यूनाधिक्यं न प्राप्नोति। शीतवायुः सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः प्राणघातकः भवति। परञ्च ग्रीष्मर्त्तौ तु अयमेव हिमालयः वर्षोपकारकः भवति। अतएव निगद्यते कविना कालिदासेन -

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरेः।
त्रिविक्रमोधतस्यासत्सि तु स्वाभाविकस्तव।।

(कुमारसंभव 6-71)

हिमालयः पर्यावरणं रक्षकः, संशोधकः, औषधीय वनस्पतीनां निधिः देवानां अधिवासः कथ्यते। एषां मूलः अत्रत्यः स्वच्छवायुरेव। अत्र भ्रमणमात्रेनैव रोगाः पलायन्ते। अतएव हलायुधकोषे कथितम् -

फल पाकावसानास्तु बुधैरोषधयः स्मृताः (इलायुधकोष)

पुनश्च - पृक्तस्तुषारै गिरि निर्झराणां
अनोकहा कम्पित पुष्पगन्धि :।
गंङ्गा प्रपातान्तं विरूदशष्णं
गौरी गुरोर्गह्वर माविवेश।। (रघुवंश 2-6)

एवं विधः सम्पूर्ण संस्कृत वाएमये वयं पश्यामः यत् पर्यावरण परिशुद्धयर्थं अस्माकं ऋषयः, मुनयः कवयः सुचिन्तका सर्वे प्राचीनकालात् एव अतीव सचेष्टा आसन्। नद्यः, गिरयः न केवलं आनन्दवर्द्धकाः अपितु मुख्यरूपेण पर्यावरण रक्षाकारेव।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद संहिता-दयानंद संस्थान
2. यजुर्वेद संहिता-दयानंद संस्थान
3. अथर्ववेद संहिता-दयानंद संस्थान
4. वाल्मीकि रामायण-गीता प्रेस, गोरखपुर
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास-ए. वी. कीथ.

6. संस्कृत साहित्य का इतिहास-वाचस्पति गैरोला
7. कालिदास ग्रन्थावली-अनु. श्री रामप्रताप त्रिपाठी
8. उत्तररामचरितम्-अनुवादक आचार्य प्रभु दत्त स्वामी
9. ऋक् सूक्त समुच्चय-डॉ. रामकृष्ण आचार्य
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-अनुवादक डॉ. बाबू राम त्रिपाठी
11. पर्यावरण और संस्कृति का सकंट, प्रथम संस्करण, 1992
12. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, देवराज, हिन्दी समिति लखनऊ 1957
13. पर्यावरण प्रदूषण और हम, सुजाता विष्ट, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली 1990

वृद्धावस्था की समस्याएं और देखभाल की जरूरत

डॉ० प्रज्ञा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान विभाग, पी.वाई.के.जे. महाविद्यालय, बंगाहीं, बीआरए बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

देश में वृद्धजनों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है, और पुराना सामाजिक तानाबाना टूट चुका है। संयुक्त परिवारों का दौर गया और एकल परिवारों में मां-बाप के लिए स्थान नहीं है। इस कड़वी सच्चाई को हम सबको स्वीकारना होगा, तभी समस्या का समाधान निकल सकता है।

1 अक्टूबर को अंतरराष्ट्रीय वृद्ध दिवस के रूप में मनाया जाता है। विश्व में वृद्धों व प्रौढ़ों के साथ होने वाले अन्याय, उपेक्षा और दुर्व्यवहार पर लगाम लगाने के उद्देश्य से हर साल इंटरनेशनल डे ऑफ ओल्डर पर्सन मनाया जाता है। इस दिन न सिर्फ बुजुर्गों के प्रति उदार होने का संकल्प लेना चाहिए, बल्कि बुजुर्गों की देखभाल की जिम्मेदारी भी समझनी चाहिए।

परिचय

भारत की एक बड़ी आबादी बुजुर्ग हो रही है। समाज और सरकार की ओर से बुजुर्गों की देखभाल के लिए नयी पहल नहीं की गयी तो जल्द यह एक व्यापक समस्या के रूप में सामने आने वाली है। समाज का बुजुर्गों के साथ रूखा व्यवहार, उनकी अनदेखी और उन्हें बोझ की तरह माना जाना, यह समस्या का सबसे चिंताजनक पहलू है। ऐसा अनुमान है कि भारत में अभी छः फीसदी आबादी 60 साल या उससे अधिक की है लेकिन 2050 तक बुजुर्गों की यह संख्या बढ़ कर 20 फीसदी तक होने का अनुमान है।

अभी हाल ही में जनसंख्या एवं विकास पर भारतीय सांसदों की एक समिति (Indian Association of Parliamentarians on Population and Development – IAPPD) ने देश में बुजुर्गों की स्थिति पर एक विस्तृत प्रतिवेदन तैयार किया है। इस प्रतिवेदन के अनुसार, इस समय भारत में 10.5 करोड़ बुजुर्ग व्यक्ति हैं और वर्ष 2050 तक इनकी संख्या 32.4 करोड़ तक पहुंच जाने की सम्भावना है। पूरे विश्व में वर्ष 2050 तक हर पांचवा व्यक्ति बुजुर्ग व्यक्ति होगा और भारत सहित 64 ऐसे देश होंगे जहाँ की 30 प्रतिशत आबादी 60 वर्ष से अधिक उम्र की होगी। आज, भारत में बुजुर्गों की कुल संख्या का 70 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण इलाकों में रहता है। गांव में वरिष्ठ नागरिकों की आबादी में वृद्धि का मुख्य कारण युवा आबादी का बड़े पैमाने पर गावों से शहरों की ओर पलायन करना है। ग्रामीण इलाकों में इनमें से कुछ बुजुर्ग, उम्र के इस पड़ाव में, उनके बच्चों द्वारा इन्हें गावों में छोड़कर जाने के बाद, भेदभाव, बेदखली, अकेलेपन और दुर्व्यवहार का सामना कर रहे हैं।

दरअसल, जब भारत के ग्लोबलाइज होने का दौर शुरू हुआ था तो इसके असर के बारे में सोचा नहीं गया। अगर वैश्वीकरण के फायदे हैं तो नुकसान भी हैं। यह संभव नहीं है कि आप केवल विदेशी पूंजी की अनुमति दें और संस्कृति में कोई बदलाव न आये।

इसके पहले भारत में संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी, जिसमें बुजुर्ग परिवार के हिस्सा थे और उनकी देखभाल हो जाती थी। यह खंडित हो गयी। नयी व्यवस्था में परिवार एकल हो गये- पति पत्नी और बच्चे। परिवार के इस मॉडल में माता पिता का कोई स्थान नहीं हैं। यह पश्चिमी देशों का मॉडल है।

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बुजुर्ग भी एकाकीपन के शिकार हैं। खासकर महानगरों में जब ऐसे बुजुर्ग गंभीर रूप से बीमार पड़ते हैं तो उनकी देखरेख की कोई व्यवस्था नहीं होती। ऐसा देखा गया है कि विदेशों में रह रहे भारतीय नवयुवक माता-पिता को बच्चों की परवरिश के लिए याद करते हैं। मां-बाप में से मां तो एकल परिवारों में बहुत बार स्वीकार्य हो जाती है क्योंकि वह घर के कामकाज में हाथ बंटाती है, लेकिन पिता इस मॉडल में फिट नहीं बैठता।

बुजुर्गों के प्रति हमारा कर्तव्य, उनका महत्व एवं देखभाल

क्या आप जानते है की हर बुजुर्ग आपका आने वाला कल है? यदि नहीं तो इतिहास के पन्ने पलट लीजिये। या अपने घर या किसी के भी घर में इस बारे में जाँच पड़ताल कीजिये की जो व्यक्ति अपने माता-पिता या दादा-दादी का जितना सम्मान करता है आगे चलकर उसे वही मिलता है या नहीं। चलो मान लिया नहीं मिला एक बार के लिए। लेकिन उनसे संपर्क में रहकर आपने जो भी जिन्दगी में सीखा है, क्या वो आपको कोई सिखा सकता है? खैर इस मामले में जितना भी बोला जाये वो हमेशा बहुत कम होता है।

बुढ़ापे में प्यार और अपनेपन की जरूरत अधिक

जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, शरीर में इम्यून सिस्टम भी कमजोर होने लगता है। इसी वजह से बढ़ती उम्र में कई बीमारियां भी घेर लेती हैं। वृद्ध लोगों की शारीरिक बनावट में बदलाव आ जाता है। इस बदलाव में रीढ़ की हड्डी का मुड़ना, घुटनों और जोड़ों में दर्द की शिकायत आदि शामिल है। बुढ़ापे में स्वास्थ्य समस्याएं कम हो, इसलिए पोषक आहार की मात्रा अपनी डाइट में बनाए रखना जरूरी है। हालांकि मनोभ्रंश जैसी स्थिति के लिए पूरी तरह से सफल उपचार नहीं है, लेकिन फिर भी परिवार के सदस्यों के अच्छे व्यवहार और दवाओं की मदद से इसे काफी हद ठीक किया जा सकता है।

बुढ़ापा और भूलने की समस्या

उम्र बढ़ने के साथ ही तमाम तरह की बीमारियाँ हमारे शरीर को निशाना बनाना शुरू कर देती हैं। इन्हीं में से एक प्रमुख बीमारी, बुढ़ापे में भूलने की आदतों (अल्जाइमर्स-डिमेंशिया) की है, जिसके मरीजों की तादाद बढ़ रही है। इसीलिए इस बीमारी की जद में आने से बचाने के लिए हर साल 21 सितम्बर को विश्व अल्जाइमर्स-डिमेंशिया दिवस मनाया जाता है। इसका उद्देश्य लोगों में जागरूकता लाना है, ताकि घर-परिवार की शोभा बढ़ाने वाले बुजुर्गों को इस बीमारी से बचाकर उनके जीवन में खुशियाँ लायी जा सकें।

बुजुर्गों की देखभाल कैसे करे

जीवन की दो अवस्था ऐसी होती है, जिसमे हम दूसरों पर निर्भर रहते है। वे अवस्था है– बाल्यावस्था और वृद्धावस्थो। जब हम बालक होते है। तब कई कामों के लिए हम अपने माता-पिता पर निर्भर होते है। उसी प्रकार जब हम वृद्धावस्थान में आते है तब हम अपने बच्चों पर निर्भर होने लगते है। वृद्धावस्थाक उम्र का वो आखिरी पड़ाव होता है, जब व्यक्ति को अनेक शारीरिक और मानसिक समस्याएं होने लगती है। और कुछ लोग को तो इस अवस्था में अकेलापन सताने लगता है। क्योंकि जब इनके बच्चे बड़े हो जाते है और उनकी शादी हो जाती है, तो वे अपनी ही दुनिया में मगन रहने लगते है, और अपने बुजुर्ग माता-पिता पर ध्यान नहीं दे पाते है। कुछ लोग तो ऐसे भी होते है जो जानबूझ कर अपने बुजुर्गो की देखभाल नहीं करते है। और उन्हें उनके अंतिम पड़ाव पर अकेला छोड़ देते है। लेकिन वे लोग ये नहीं जानते है कि एक दिन उन्हें भी इस अवस्था से गुजरना होगा। और जैसे आज वे अपने बुजुर्ग माता-पिता को अकेला और लाचार छोड़ रहे है। वैसे एक दिन उनके बच्चे भी उन्हें इसी तरह छोड़ देंगे। क्योंकि मनुष्य को अपने कर्मो का फल इसी दुनिया में भोगना पड़ता है। वो जैसा करता है, उसे आगे चलकर उसका वैसा ही फल मिलाता

है। इसलिए हमें हमेशा अपने बुजुर्गो की देखभाल करना चाहिए। लेकिन हमें हमारे बुजुर्गो की देखभाल कैसे करना चाहिए ये हम आपको इन तरीकों के माध्यम से बताने जा रहे है–

- सबसे पहले तो हमें बुजुर्गो के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए।
- उनके लिए समय निकलना चाहिए ताकि उन्हें अकेलापन महसूस न हो।
- उनकी सेहत का विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि बुढ़ापे में भूख लगना कम हो जाती है जिसके उन्हें अनेक बीमारिया घेरने लगती है। इसलिए इनके खानपान का अच्छे से ध्यान रखना चाहिए।
- बुजुर्गो को प्रतिदिन योग और व्यायाम करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जिससे वे शारीरक और मानसिक दोनों रूप से स्वस्थ रह सके।
- अपनी समस्याए उसके साथ शेयर करना चाहिए और उसका हल उनसे पूछना चाहिए, ताकि उन्हें ये लगे कि घर में उनका एक विशेष स्थान है।
- उन्हें मान सम्मान देना चाहिए और कुछ भी ऐसा नहीं बोलना चाहिए जिससे उनके मन को ठेस लगे।
- अगर आपके घर के बच्चे उनके साथ गलत व्यवहार कर रहे है, तो उन्हें भी ऐसा करने से रोकना चाहिए।
- उनके साथ बैठकर कभी-कभी खाना भी खाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उन्हें अपनेपन का एहसास होता है।
- उन्हें स्वेच्छा से काम करने के लिए प्रेरित करे। क्योंकि जो लोग स्वेच्छा से कार्य करते है वे सेहतमंद और खुश रहते है।
- हमें बुजुर्गो के अनुभवों को ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि इनके अनुभव, ज्ञान का खजाना होते है। जो अनेक परेशानीयों से हमें बचा सकते है।
- हमें उनके जीवन में ज्यादा रोकटोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उनकी मानसिक स्थिति भी खराब हो सकती है। इसलिए जब तक उनके हाथ-पाव चले, तब तक उन्हें उनके काम स्वयं करने देना चाहिए।
- उनकी हर प्रकार की जरुरत का हमें ध्यान रखना चाहिए।
- अगर उन्हें किसी भी प्रकार की बीमारी हो तो डांक्टर को तुरंत दिखाना चाहिए। उसे अनदेखा नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना उनके स्वस्थ से लिए हानिकारक हो सकता है।
- अपने जीवन की हर खुशी में उन्हें शामिल करना चाहिए।
- उनके गुस्सा होने पर भी उनके साथ गलत व्यवहार कभी भी नहीं करना चाहिए।

निष्कर्ष

पश्चिम के देशों में बुजुर्गों की देखभाल के लिए ओल्ड एज होम जैसी व्यवस्था हैं, लेकिन भारत में ऐसी कोई ठोस व्यवस्था नहीं है। दूसरे पश्चिमी देशों की आबादी भी कम है, छोटे देश हैं, वहां ऐसी व्यवस्था करना आसान है।

भारत जैसे बड़ी आबादी और बड़े भूभाग वाले देश में ऐसी व्यवस्था करना बेहद कठिन काम है। बुजुर्ग आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हुए तो समस्या और जटिल हो जाती है। उम्र के इस पड़ाव पर स्वास्थ्य पर खर्च बढ़ जाता है। संगठित क्षेत्र में काम करने वालों लोगों को तो पेंशन अथवा रिटायरमेंट के बाद की अन्य आर्थिक सुविधाएं मिल जाती हैं। हालांकि अब सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में भी पेंशन की सुविधा खत्म होती जा रही है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की स्थिति सबसे अधिक चिंताजनक है।

उन्हें इस तरह की कोई सुविधा हासिल नहीं होती। हालांकि केंद्र और राज्य सरकारें वृद्धावस्था पेंशन देती हैं लेकिन उसकी राशि इतनी कम है कि वह नाकाफी होती है। ग्रामीण विकास मंत्रालय वृद्धावस्था पेंशन योजना चलाता तो है, मगर यह सभी जरूरतमंदों तक नहीं पहुंच पाती हैं। आगामी कुछ वर्षों में यह समस्या और गंभीर होती जायेगी और मुझे नहीं लगता कि इसका समाधान सरकारों के बस की बात है, इसमें सामाजिक संस्थाओं को जुटना होगा तभी कोई रास्ता निकल पायेगा।

सन्दर्भ

- Agrawal, G. and K. Keshri (2014). "Morbidity patterns and health care seeking behavior among older widows in India." PLoS One9(4): e94295.
- Alam, M., et al. (2012). Report on the Status of Elderly in Select States of India, 2011. New Delhi, India, UNFPA India.
- Bloom, D. E., et al. (2014). Longitudinal Aging Study in India: Biomarker Data Documentation. Boston, Harvard University Program on the Global Demography of Aging.
- Bloom, D. E., et al. (2010). "Economic security arrangements in the context of population ageing in India." International Social Security Review63(3-4): 79-97.
- Dey, S., et al. (2012). "Health of the Elderly in India: Challenges of Access and Affordability." Aging in Asia: Findings from new and emerging data initiatives. Panel on policy research and data needs to meet the challenge of aging in Asia, JP Smith and M. Majmundar, Eds. Washington, DC: The National Academies Press: 371-386.
- Giridhar, G., et al. (2014). Introduction. Population Ageing in India. G. Giridhar, K. M. Sathyanarayana, S. Kumar, K. S. James and M. Alam. Delhi, Cambridge University Press: xvii-xxvi.

भगवान महावीर का साधना काल

डॉ० मनोज कुमार

इतिहास विभाग (प्राचीन भारत), बैकुंठपुर, सुल्तानगंज

परिचय

भगवान महावीर द्वारा गृह त्याग कर मुनि दीक्षा लेने से लेकर भगवान महावीर के कैवल्य ज्ञान तक की अवधि के बीच का समय साधना काल के नाम से जाना जाता है। यह काल 12 वर्ष का था, इस काल के दौरान प्रभु महावीर ने अनेक कष्टों को सहन किया, अनेकों परीषहो को सहन किया, कभी वे अनार्य भूमि में गए तो कभी उन्हें यक्ष, राक्षसी, मनुष्य, संगम देव आदि ने उपसर्ग दिए धरतीधीर महावीर ने बिना कुछ कहे इन सभी उपसर्गों को सहन किया इस काल के दौरान ही वह वर्धमान से महावीर कहलाए सभी उपसर्ग समता पूर्वक सहे। वैसे तो प्रभु महावीर के साधना काल का जैन आगमो में विस्तार से वर्णन है, परन्तु यहाँ पर जैन आगम कल्पसूत्र में वर्णित मुख्य घटनाओ का हि उल्लेख संक्षेप में किया गया है। भगवान महावीर के साधनाकाल कि मुख्य घटनायें निम्नलिखित है।

प्रभु महावीर की दीक्षा

हेमंत ऋतु के प्रथम पक्ष में, मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के दिन, चंद्रप्रभा नाम की पालकी पर बैठकर, जनसमूह के साथ, कुंडनगर में ज्ञाता खंड में, अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा ग्रहण की दीक्षा के समय भगवान महावीर के पास एकमात्र देवदुष्य वस्त्र था।

प्रभु महावीर द्वारा वस्त्र त्याग

भगवान महावीर ने 13 महीनों तक देवदुष्य वस्त्र को धारण किया, उसके बाद प्रभु महावीर निर्वस्त्र हो गए, उन्होंने वह वस्त्र सोम शर्मा नामक गरीब ब्राह्मण को दे दिया।

दैवीय सुरक्षा को अस्वीकार करना

दीक्षा के अगले दिन भगवान महावीर ज्ञाता खंड उद्यान में ध्यान मग्न थे। तभी वहां पर एक ग्वाला आया और उसने अपने बैल को भगवान महावीर के पास छोड़ दिया, और कहा कि जब तक मैं ना आऊं मेरे बैलो का ध्यान रखना पर भगवान महावीर तो ध्यान मग्न थे, जब वह ग्वाला वापिस आया तो वहां पर उसके बैल नहीं थे। इस बात पर उस ग्वाले को भगवान महावीर पर बहुत क्रोध आया और उसने रस्सी उठाकर भगवान को मारने का प्रयास किया वह रस्सी भगवान महावीर को स्पर्श करने ही वाली थी कि तभी वहां पर देवराज इंद्र आये और उन्होंने ग्वाले को रोक दिया। देवराज इंद्र को देखकर वह ग्वाला भाग गया, तब देवराज इंद्र ने कहा ष्यह लोग मूर्खता वश आपको पीड़ा देते रहेंगेष तब इंद्र ने हमेशा सुरक्षा करने के लिए आज्ञा मांगी तब भगवान महावीर ने सहजता से उत्तर दिया और कहा कि 'आत्म कल्याण के पथ पर चलने वाला साधक स्वयं मुक्ति प्राप्त करता है आज तक कभी भी किसी देवराज की सहायता लेकर कोई भी अरिहंत नहीं बन सकता इसलिए सभी जीवो को अपनी मुक्ति का प्रयास स्वयं ही करना पड़ता है कोई भी प्राणी किसी की साधना में सहायता नहीं कर सकता अतः आप मेरी चिंता ना करें।।

शूलपाणी का उपसर्ग

वेगवती नदी के किनारे एक गांव था उस गांव में शूलपाणी नाम का भयंकर यक्ष रहता था, एक दिन भगवान महावीर संध्या के समय उस गांव के निकट पधारे उस गांव में एक चौत्य था जिसमें वह भयंकर यक्ष रहता था, भगवान महावीर संध्या के समय उस चौत्य में ध्यानमगन हो गए,कुछ समय बाद वहां पर भयंकर आवाजें आने लगी वह यक्ष भगवान महावीर को सताने लगा, वह बिजली की गर्जना करता तो कभी भयंकर अट्टहास करता, उसके बाद जब यक्ष ने देखा कि भगवान महावीर पर उसकी घटना का कोई प्रभाव नहीं हो रहा तब उसने भयंकर विषधर का रूप बनाया, कभी हाथी का तो कभी भयंकर जानवरों का रूप लिया। इतनी से भी जब भगवान महावीर का ध्यान नहीं टूटता तो उसने भगवान महावीर को वेदना देना शुरू किया। प्रभु महावीर में तितिक्षा की असीम शक्ति थी। वे सहजता से यक्ष के सभी उपसर्गों को सह गए, उसके बाद जब यक्ष ने देखा कि यह मेरी किसी भी बात से प्रभावित नहीं है तो यह अवश्य ही कोई महापुरुष होगा। यक्ष ने उससे पहले कई सारी हत्या की थी, पर वह भगवान महावीर को प्रभावित नहीं कर सका पूरी रात उपसर्ग देने के बाद वह लज्जित हो गया। तब उसने भगवान महावीर से क्षमा याचना मांगी तो भगवान महावीर ने अभय मुद्रा में वर देते हुए कहा कि हिंसा से ही हिंसा फैलती है, आतंकित व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता जिसमें भय होता है वही भयभीत होता है। अभय व्यक्ति को किसी का भी भय नहीं होता, अतः अहिंसा व शांति ही लोक कल्याण का मार्ग है। उसके बाद उसने कभी भी किसी को न सताने का वचन दिया।

चंडकौशिक का उपसर्ग

भगवान महावीर अस्तिका नगरी से प्रस्थान कर श्वेत अंबिका का नगर की तरफ बढ़े, रास्ते में उन्हें एक जगह दिखाई दी जहां से दो रास्ते जाते थे, उन्होंने राहगीर से पूछा श्वेत अंबिका नगरी किस तरफ है, तो राहगीर ने कहा यह रास्ता बड़ा परंतु सुरक्षित है परंतु दूसरा रास्ता जो जंगल से होकर जाता है, छोटा तथा भयानक है, क्योंकि इस रास्ते में भयंकर विषधर चंडकौशिक रहता है। इस रास्ते का उपयोग कोई भी नहीं करता इस रास्ते जो भी जाता है, वह मारा जाता है, भगवान महावीर मुस्कुराए और वह जंगल की तरफ चल दिए जंगल में वह सांप की बांबी के पास पहुंचे। चंडकौशिक सर्प बहुत ही भयंकर जहरीला था, उसके जहर की सीमा इतनी थी कि मात्र दृष्टि मात्र से लोगों के जीवन का अंत कर देता था, उसकी फुफकार इतनी जहरीली थी कि उसने पूरा जंगल उजाड़ दिया था। वह सर्प स्वभाव से गुस्सैल भी था, जब उसने भगवान महावीर को अपने पास देखा तो उसने अपनी विषैली दृष्टि भगवान महावीर पर डाली, पर जब उसकी दृष्टि का प्रभाव प्रभु पर नहीं हुआ तो उसने भयंकर विषैली फुफकार मारी, पर भगवान महावीर तो पर्वत के समान अविचल खड़े रहे। इसके बाद उस सर्प ने भगवान महावीर के अंगूठे पर प्रहार किया और अपना संपूर्ण विष एकत्रित कर, उसने प्रभु पर डाल दिया पर यह क्या! अंगूठे में रक्त के स्थान पर दूध की धारा बह निकली यह देख कर उस विषधर को बहुत आश्चर्य! हुआ। भगवान महावीर ने अपनी शांत वाणी में विषधर से कहा कि 'शांत चंडकौशिक शांत तुम्हारी पूर्व जन्मों के कारण ही तुम्हें यह सर्प की योनि मिली है। अपने गुस्से के कारण तुम कितने और जन्म व्यर्थ करोगे, शांति और अहिंसा ही मुक्ति का मार्ग है।' भगवान महावीर की शांत वाणी को सुनकर विषधर शांत हो गया और उसने उसी वक्त से गुस्सा त्याग कर समर्पण कर दिया, कुछ समय बाद उस विषधर में अपने प्राण त्यागे, कुछ ही समय में यह समाचार बाहर के गांव में फैल गया, लोगों ने दूध आदि से उसका अभिषेक किया, जैन मान्यता के अनुसार यही दिन नाग पंचमी कहलाया।

कटपूतना का परिषह

यह घटना भगवान महावीर के साधना काल के छठे वर्ष की है,यह घटना माघ के महीने की है, जब सर्दी अपने चरम पर थी, बर्फीली हवाएं तेजी से चल रही थी। एक रात भगवान महावीर ध्यान मग्न वृक्ष के नीचे खड़े थे, उस जंगल में एक राक्षसी जिसका नाम कटपूतना था, उसका निवास था, भगवान महावीर ध्यान मग्न थे। उसी रात कठपुतना ने प्रभु महावीर को देखा और क्रोधित होकर प्रभु महावीर की तरफ बढ़ी, रात्रि की बर्फीली सर्दी में उसने भगवान महावीर पर बर्फीले जल की बारिश की और भयंकर गर्जना के साथ हसी, प्रभु महावीर ने उस परीषह को समभाव से सहन किया, अंततः राक्षसी ने हार मान ली, भगवान महावीर पर्वत के समान अविचल खड़े रहे। कटपूतना को अपने किए पर पश्चाताप हुआ और वह भगवान महावीर को प्रणाम कर वहां से चली गई।आत्मा के उच्च स्वरूप को धारण करने के कारण भगवान महावीर को लोकाअवधि वशिष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह घटना हमें जैन ग्रंथ कल्पसूत्र से प्राप्त होती है।

आदिवासियो के बीच

भगवान महावीर का विहार क्षेत्र बहुत विस्तृत था, भगवान महावीर ने आर्य भूमि को छोड़कर अनार्य भूमि में भी अपना कुछ वक्त बिताया था। भगवान महावीर केवल ऐसे जैन तीर्थंकर हैं। जिनका विहार बहुत ज्यादा विस्तृत है, भगवान महावीर अपनी साध ना के लगभग डेढ़ वर्ष तक आदिवासियों के बीच रहे थे। इस दौरान आदिवासियों को न धर्म की समझ थी, और ना ही उन्हें कुछ और आता था। वह एकदम असभ्य और अनार्य थे। वह केवल अपने मनोरंजन के लिए भगवान महावीर को कभी धक्का दे देते थे, तो कभी उनके पीछे कुत्ते छोड़ देते थे, कई लोग उनको पत्थर से मारते थे तो कई लोग कष्ट देते थे। कभी-कभी प्रभु महावीर एक गांव से दूसरे गांव भी जाते थे, पर उन्हें आहार के नाम पर केवल सूखी रोटी मिलती थी। प्रभु महावीर ने अपनी साधना का नौवां वर्ष के 6 मास अनार्य भूमि में ही बिताए थे। श्रमण महावीर का यह क्षेत्र राढ़ के नाम से जाना जाता था। प्रभु महावीर ने अनेकों कष्टों को सहा पर कभी भी उन्होंने अहिंसा व शांति का मार्ग नहीं छोड़ा उनकी शांति व अहिंसा देखकर आदिवासी भी सुधर गए और उन्होंने करीब से धर्म को जाना।

संगम देव के परिषह

भगवान महावीर को सबसे ज्यादा कष्ट संगम देव ने ही दिया था। यह कथा जैन आगामो में विस्तार से वर्णित है, कहते हैं एक बार स्वर्ग में राजा इंदर भगवान महावीर के तप की प्रशंसा कर रहे थे, तभी वहां संगम देव भी बैठा था। उससे इंद्र द्वारा प्रभु महावीर की हुई प्रशंसा अच्छी नहीं लगी, उसने प्रभु महावीर की परीक्षा लेनी चाहि। भगवान महावीर को देवताओं, राक्षसों, यक्षो, मनुष्य, जानवरों आदि सभी ने उपसर्ग दिए पर प्रभु महावीर ने सभी उपसर्गों को समभाव से सहन किया। जैन मान्यता अनुसार संगम देव ने भगवान महावीर को 6 माह तक कष्ट दिया। भगवान महावीर का सबसे बड़ा उपसर्ग संगम देव ने दिया था। उन्होंने एक ही रात में प्रभु महावीर को 20 उपसर्ग दिए कभी उसने हाथी का रूप बनाया, कभी उसने प्रभु महावीर के शरीर पर चिंटी छोड़ दी कभी सिंह से कटवाया और कभी भयंकर विषधर छोड़ दिए, वह भगवान महावीर के चरणों में खीर तक पकाने लगा था। उसने प्रभु के इर्द-गिर्द अप्सराओं को भी छोड़ दिया था पर विश्व ज्योति महावीर पर्वत के समान अविचल खड़े रहे, संगम देव ने कभी बादलों की भयंकर गर्जना की, तो कभी भालो चाकू आदि से तीव्र प्रहार किए। इतना सब करने के बाद भी जब भगवान महावीर ध्यान मगन ही रहे तो उसने भगवान महावीर के माता पिता का रूप बनया और कहा कि तुम साधना छोड़ दो पर प्रभु महावीर अंतर्यामी थे, वह जानते थे कि यह देव माया है, उसने प्रभु को कष्ट देने की कोई भी सीमा नहीं छोड़ी पर जब सभी उसके कार्य निष्फल हुए तो वह वहां से खिन्न होकर चला गया। उसके बाद उसने प्रभु को निरंतर कष्ट दिये पर उसके बार-बार यातना देने पर भी जब प्रभु पर कोई फर्क नहीं पड़ा तो तो वह लज्जित हुआ। उसने कहा हे! महामुनि मैंने आपको व्यर्थ ही कष्ट दिया देवराज इंद्र ने आपकी सही प्रशंसा की थी, इतना सुनकर प्रभु महावीर की आंखों से आंसू निकल आए फिर संगम देव ने आंसुओं का कारण पूछा तो प्रभु महावीर ने कहा 'आज तक मैंने अनेक जीवों का कल्याण किया है, और आगे भी मेरा धर्म जीवो का कल्याण करेगा, मैं हमेशा से ही चाहता था कि मैं उनकी मुक्ति का कारण बनू, लेकिन तुमने अकारण कि मुझे जो कष्ट दिया है उस वजह से तुमने न जाने कितने कर्मों का बंधन कर लिया इसी वजह से मेरी आंखों में आंसू आए कि मैं मुक्ति का कारण बनू ना की किसी जीव के बंध न का' इस के पश्चात संगम देव वहां से स्वर्ग लौट गया। जब इंद्र को इस बारे में मालूम चला तो इंद्र ने उसे आजीवन एकांतवास मदार पर्वत के लिए निर्वासित कर दिया।

चंदनबाला और अभिग्रह

यह घटना भगवान महावीर के साधना काल के 12वीं वर्ष की है, इस कहानी का विस्तार से उल्लेख जैन आगमो में मिलता है। भगवान महावीर वैशाली से चतुर्मास पूर्ण कौशांबी आए, पौष कृष्ण एकम के दिन असंभव सा अभिग्रह लिया और कहा कि ष्मैं ऐसी राजकुमारी से भिक्षा लूंगा, जिससे दासी बना दिया गया हो, वह भी उस शर्त में जब उसका सिर मुड़ा हो, हाथों में हथकड़ी व पैरों में बेड़ियां पड़ी हो, वह तीन दिन से भूखी प्यासी हो, वह न तो घर के अंदर हो और ना ही घर से बाहर हो, बहराने के लिए उसकी टोकरी में केवल दाल के बाकुले हो उसके होठों पर मुस्कान हो तथा आंखों में आंसू हो जब तक मेरा अभिग्रह पूरा नहीं हो जाता मैं पारणा नहीं डालूंगाष्उसके बाद एक-एक कर दिन बीते गए और दिन महीनों में बदल गये पर भगवान महावीर भिक्षा के लिए जाते और खाली हाथ वापस आ जाते लोगों में कौतूहल बढ़ गया, प्रभु आते हैं पर भिक्षा नहीं लेकर जाते, लोग चिंतित

हो उठे प्रभु महावीर ने कहा कि तुम मेरी चिंता मत करो, कुछ समय बाद दैव योग से उनकी भेंट चंदनबाला से हुई, जो एक राजकुमारी थी वह गणिका के हाथों बेची गई थी, उसका सिर मुड़ा हुआ था, वह 3 दिन से भूखी थी, वह ना घर के अंदर थी और न हीं घर के बाहर थी जब उसने देखा कि प्रभु आ रहे हैं तो उसके होठों पर मुस्कान आ गई, वह अपनी पीड़ा के कारण दुखी थी तो उसकी आंखों में आंसू थे, और उसके पास सिर्फ और सिर्फ दाल के बकुले ही थे। इस प्रकार से चंदनबाला ने प्रभु महावीर को भिक्षा दी और प्रभु महावीर का अभिग्रह पूर्ण हुआ देवताओं ने पुष्प बरसाए और अहो दानम! अहो दानम! का नाद हुआ। बाद मे यही चंदनबाला भगवान महावीर कि प्रथम साध्वी बनी। चन्दनबाला प्रभु महावीर कि साध्वी संघ कि प्रमुख बनी थी। भगवान महावीर के अभिग्रह का उद्देश्य दास्ता से मुक्ति थी।६०० ईसा पूर्व मे जब स्त्रीयो को अधिकार नही था और दास प्रथा का बोलबाला था तब प्रभु महावीर हि वह प्रथम नायक थे,जिन्होंने स्त्रीयो को धर्म का अधिकार दे कर उन्हे सशक्त किया था, उन्होने दासता से मुक्ती करवाकर दास प्रथा पर प्रहार किया था।

कानों में कीले

यह भगवान महावीर की साधना का अंतिम उपसर्ग था। यह घटना भगवान महावीर की साधना काल के 12 वें वर्ष में घटित हुई,एक बार भगवान महावीर कार्योत्सर्ग मुद्रा में गोधूलि बेला के वक्त ध्यान मग्न खड़े थे, उसी वक्त वहां पर एक ग्वाला आया और उसने कहा मेरे बैलों का ध्यान रखना जब वह ग्वाला दुबार से आया तो उसे उसके बैल नहीं मिले तब उस ग्वाले ने गुस्से से कहा ष्मैंने अपने बैल यहां पर छोड़े थे, आप बताइए वह कहां पर हैंष पर प्रभु महावीर तो ध्यान मग्न थे। कोई भी उत्तर न पाकर वह ग्वाला आग बबूला हो उठा। उसने एक कीलनुमा शूल को उठाया और उसे प्रभु महावीर के दोनों कानों में ठोक दिया और वहां से चला गया। भगवान महावीर को असंख्य पीड़ा हुई पर उन्होंने उफ! तक नही की,उनके भीतर कोई भी क्रोध और द्वेष की भावना नहीं जन्मी। अगले दिन भगवान महावीर भिक्षाटन के लिए सिद्धार्थ नामक व्यापारी के घर पहुंचे, वहां पर उसका मित्र वैद्य भी वहीं था, उसने प्रभु महावीर को देखकर ही अनुमान लगा लिया कि यह भयंकर पीड़ा में है, और असहजता महसूस कर रहे हैं, उन्होंने प्रभु महावीर को शरीर का परीक्षण कराने के लिए कहा पर प्रभु महावीर अपनी मर्यादा के अनुसार कुछ भी नहीं कह वहां से चल दिए। जब प्रभु महावीर भिक्षा लेकर दुबारा से ध्यानमगन हो गए, तब वह वैद्य वहा गया और उसने प्रभु महावीर का परीक्षण किया तब उसने पाया कि प्रभु महावीर के कानों में कीले जुड़े हुए हैं, तो उसने अपने औजारों को लेकर प्रभु महावीर के कानो से शूल की बनी की ली को निकाल दिया, प्रभु महावीर के कानो से रक्त बह निकला तो उसने औषधि से उनका उपचार किया, यह भगवान महावीर की साधना का सबसे भयंकर उपसर्गों में से एक था, और यह अंतिम उपसर्ग भी था।

निष्कर्ष

12 वर्षों तक कठोर तपस्या करने के पश्चात भगवान महावीर को कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई, भगवान महावीर ने 12 वर्षों में न जाने कितने ही कष्टों को सहा, कभी वे कारागार में गए, कभी उन्हें फांसी की सजा दी गई, कभी उन्हें संगम देव ने कष्ट दिए, कभी उन्हें आदिवासियों द्वारा प्रताड़ित किया गया, कभी उन्होंने भूख को सहन किया, कभी प्यासे को तो उन्होंने समभाव से ग्रीष्म व शीत ऋतु भी सहन की, एक राजकुमार होते हुए भी उन्होंने हंसकर कष्टों को सहन किया। इन 12 वर्षों की साधना काल के पश्चात वह वर्धमान से महावीर बन गए, वह केवल ज्ञान को पा गए और उसके पश्चात उन्होंने साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका नामक चार तीर्थों की स्थापना की और तीर्थंकर कहलाए, महावीर जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर बने। वैशाख शुक्ल दशमी के दिन ऋजुबालिका नदी के तट पर गौदुहा आसन करते हुए, उन्हें कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई और वह अरिहंत बन गए।भगवान महावीर के केवल ज्ञान प्राप्त करते हि उनके साधना काल की अवधि पूरी हो गई।

सन्दर्भ

- Titze, Kurt (1998), Jainism:A Pictorial Guide to the Religion of Non-Violence (2 ed-), Motilal Banarsidass, ISBN 978-81-208-1534-6
- von Glasenapp, Helmuth (1925), Jainism"An Indian Religion of Salvation, Delhi: Motilal Banarsidass (Reprinted 1999), ISBN 978-81-208-1376-2

- अमरमुनि, वरुण (मुनि.) (December 2008). सचित्र श्री कल्पसूत्रः शुद्ध मूल पाठ, हिंदी-अंग्रेजी अनुवाद तथा संक्षिप्त कथा विस्तार. Delhi% Delhi Padma PrakashanAgra Shree Diwakar Prakashan Jaipur Prakrit BharatiAcademy. पृ. 92. आई.एस.बी.एन. 978-81-89698-47-8.
- सचित्र कलपसुत्र प्रवर्तक अमरमुनि. Delhi: Delhi Padma Prakashan, Agra Shree Diwakar Prakashan, Jaipur Prakrit BharatiAcademy- December 2008. पृ. 96. आई.एस.बी.एन. 8189698478.
- मुनि श्री प्रमाणसागर (2008), जैन तत्त्वविद्या, भारतीय ज्ञानपीठ, आई.एस.बी.एन. 978-81-263-1480-5, मूल से 25 सितंबर 2015 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 10 जनवरी 2016
- गुणभद्र, आचार्य; जैन, साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल (2015), उत्तरपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, आई.एस.बी.एन. 978-81-263-1738-7
- Jain, Hiralal; Upadhye, Adinath Neminath (2000) [1974], Mahavira] his times and his philosophy of life, भारतीय ज्ञानपीठ, मूल से 12 मई 2016 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 19 जुलाई, 2016।

तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार

अमित कुमार पाण्डेय

एम.ए. (राजनीति शास्त्र, शिक्षा शास्त्र एवं हिंदी) बी.एड.-नेट (शिक्षा शास्त्र)
शोध छात्र- शिक्षा शास्त्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थ नगर- उत्तर प्रदेश

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशांतिप्रदं
ब्रह्मशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम
रामाख्यं जगदीश्वरं सरगुरुं माया मनुष्यं हरिं
वंदे+हं करुणाकरं रघुवरं भूपाल चूणामणिम ।।

भावार्थख़ शांत, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणों से परे), निष्पाप, मोक्षरूप परम् शांति देने वाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजी से निरन्तर सेवित, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओं में सबसे बड़े, माया से मनुष्य रूप में दीखने वाले, समस्त पापों को हरने वाले, करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि, राम कहलाने वाले जगदीश्वर की मैं वंदना करता हूँ ।।

ष्रामष् अत्यंत विलक्षण शब्द है। साधकों द्वारा बीज मंत्र के रूप में ष्रामष् का प्रयोग अनादिकाल से होता चला आ रहा है। वर्तमान में राम संज्ञा से हमारे सम्मुख दशरथ नंदन श्री राम का धनुषधारी चित्र प्रस्तुत हो जाता है, लेकिन यह नाम पहले से ही विद्यमान था तभी तो गुरुदेव वशिष्ठ ने महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र को यह नाम दिया। वास्तव में इस संसार में जो कुछ जानने योग्य है, जो कुछ मनन करने योग्य है वह सभी राम शब्द में ही समाहित है। भौतिकता की चकाचौंध और अज्ञानता में हम वर्तमान में सो रहे हैं, जिससे हमें अनेक समस्याओं ने जकड़ लिया है और हम निरंतर पतन की ओर जा रहे हैं। अतः हमें जगाने के लिए, हमारी समस्याओं से निजात पाने के लिए एक मंत्र, राम नाम के महामंत्र की आवश्यकता है।

राम नाम आधार जिन्हें, वो जल में राह वनाते हैं,
जिन पर कृपा राम करें वो पत्थर भी तर जाते हैं।

सम्पूर्ण सनातन धर्मावलंबी आदर्श एवं मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में भगवान श्रीराम को स्वीकार करता है। श्रीराम का तेजस्वी एवं पराक्रमी स्वरूप, अखंड भारत का चित्र उपस्थित करता है। इनके महान चरित्र की उच्च वृत्तिया जनमानस को शांति एवं आनंद का बोध कराती हैं। आदिकवि वाल्मीकि ने श्रीराम के संबंध में लिखा है कि, श्रीराम गाम्भीर्य में उदधि के समान और धैर्य में हिमालय के समान हैं। राम के चरित्र में पग-पग पर मर्यादा, त्याग, प्रेम और लोक व्यवहार के आदर्श स्वरूप का सम्मिश्रण है। श्रीराम ने साक्षात परमात्मा होकर भी मानव जाति को मानवता का संदेश दिया है। इनका पवित्र चरित्र लोकमानस का सजग प्रहरी, उत्प्रेरक एवं निर्माता है। यही कारण है कि भारत के कण - कण में श्रीराम बसे हुए हैं।

राम-नाम परमात्मा के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का बोध कराने वाला है। तुलसीदास जी ने इनकी तुलना दुभाषिये से की है।

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।।

मानव देह की दुर्लभता-

मनुष्य का जन्म बहुत ही दुर्लभ है। भगवान की असीम कृपा से यदि मनुष्य का जन्म मिल गया है तो इसे गंवाना नहीं चाहिए। मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य भगवत प्राप्ति है। अगर इस रहस्य को न समझ कर जीवन के अमूल्य समय को सांसारिक भोग-विलास में नष्ट कर दिया गया तो यह बहुत बड़ी भूल होगी। प्रजा को उपदेश देते हुए श्री रामचंद्र जी ने मनुष्य शरीर की दुर्लभता और इसकी महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है,

बड़े भाग मानुष तन पावा
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन गावा।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा
पायी न जेहि परलोक संवारा।।

मानव देह ही ऐसा साधन संपन्न, सोचने विचारने और कर्म करने की शक्ति से परिपूर्ण है, जो परमपिता परमेश्वर को प्राप्ति आसानी से कर सकता है। मनुष्य के अतिरिक्त कोई भी जीव प्रभु को आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता। महान भक्तकवि दादु ने इसे अपनी रचना द्वारा व्यक्त किया है।

राम रस मीठा रे, कोइ पीवै साधु सुजाण।
सदा रस पीवै प्रेमसूँ सो अबिनासी प्राणघ
इहि रस मुनि लागे सबै, ब्रह्मा-बिसुन-महेस।
सुर नर साधू स्मत जन, सो रस पीवै सेसघ
सिध साधक जोगी-जती, सती सबै सुखदेव।
पीवत अंत न आवई, पीपा अरु रैदास।
पिवत कबीरा ना थक्या अजहूँ प्रेम पियासघ
यह रस मीठा जिन पिया, सो रस ही महिं समाइ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइघ

मनुष्य इस संसार में आने के बाद दो मार्ग में से किसी एक मार्ग को चुन सकता है, वे दो मार्ग हैं - प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग में मनुष्य संसार के आकर्षण में लिप्त होकर सांसारिक वचनों में उलझ कर भोग विलास में फंस जाता है। मनुष्य यह भूल जाता है कि संसार तथा सभी दृष्टिगोचर वस्तुएं अनित्य और क्षणभंगुर हैं। दूसरा मार्ग जो निवृत्ति मार्ग है, वह जीव को ईश्वर की ओर ले जाता है। मनुष्य जब इतना परिपक्व हो जाता है कि, उसे उसका लक्ष्य ज्ञात हो जाता है लेकिन यह ज्ञान अर्जित होने में अत्यधिक समय लग जाता है। जब ईश्वर की विशेष कृपा होती है तभी उसके प्रज्ञा चक्षु खुलते हैं। इसी मोड़ पर वह आध्यात्मिक ज्ञान का पाठ प्रारंभ कर देता है। उसे यह ज्ञान हो जाता है कि, भगवान ही हमारे माता-पिता, भाई-बंधु या जितने भी संबंध हैं सब उन्हीं से परिपूर्ण होते हैं।

एक पिता के कई पुत्र हैं। पिता अपने सभी पुत्रों से प्रेम करता है। इसी तरह एक गुरु अपने सभी शिष्यों के स्नेह करता है और कोई एक खास पुत्र है या कोई खास शिष्य है जिसे गुरु विशेष स्नेह करते हैं। ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए है कि, वह बहुत अच्छा, आज्ञाकारी और सेवा भाव में अतिशय विनम्र एवं मृदुभाषी है। इन्हीं कारणों से वह इस प्रकार की अनुकम्पा का पात्र बनता है। उस पर उनकी विशेष कृपा होती है। जैसे गुरु द्रोण ने अर्जुन के अतिरिक्त किसी को भी विशेष सिद्धियां नहीं दीं, यहां तक कि अपने पुत्र को भी नहीं सिखाया होगा। ठीक इसी तरह जो भगवान का अनन्य भक्त होगा उसे भगवत कृपा उसकी पात्रता के कारण स्वमेव ही मिलने लगेगी। उसे संसार सागर से पार होने में कोई संशय नहीं रहेगा।

मनुष्य जन्म पाकर हमें प्रभु के श्रीचरणों में पूर्ण श्रद्धा, विश्वास के साथ अपनी आस्था लगाये रहनी चाहिए। जिस तरह एक पतिव्रता स्त्री बिना कहे ही अपने पति के भावों/विचारों को पढ़ लेती है, जान लेती है और ठीक उसी के अनुरूप आचरण करती है। इसी प्रकार भगवत प्रेमी भगवान की इच्छा के अनुसार ही आचरण करते हैं।

हमारे पास दिन रात मिलाकर जो 24 मिलें हैं उनको हम तीन भागों में बांट अपनी दिनचर्या निर्धारित कर सकते हैं। साधन काल, व्यवहार काल और शयन काल। इसमें साधन काल को सात्विक, व्यवहार काल को राजस एवं शयन काल को तामस कहा गया है। अपने कल्याण के लिए हमें यह प्रयास करना चाहिए कि तीनों ही काल सात्विक बन जाय। दूसरों के देखने में भले ही यह अलग-अलग दिखे पर हमें हर समय को सात्विक बनाकर ईश्वर में ही लगाना चाहिए। हमें मानव जीवन अपने उद्धार के लिए मिला है। हमें भगवान से कुछ मांगना नहीं चाहिए। वह हमारे माता-पिता हैं, उन्हें पता है कि हमें क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए। सब कुछ तो उन्ही का दिया है। इसी तरह हमेशा ध्यान/स्मरण बनाए रखना चाहिए, निष्काम भाव से भगवान के नाम रूप गुण स्वभाव का चिंतन करते रहना चाहिए।

भगवान अपनी शरणागत को मुक्ति देते हैं, लेकिन भगवत नाम का उच्चारण भी मुक्तिप्रदाता है, जैसे छत्र का आश्रय लेने वाला भी छत्रपति कहलाने लगता है। प्रस्तुत प्रकरण आध्यात्म का सागर है, इसे कभी भी पूर्ण रूप में नही व्यक्त किया जा सकता है। तथापि इसकी कुछ अमृतमयी बूंदे हमारे हृदय को, हमारे मन को मिल जाए तो इस संसार सागर से पार होने में कोई संशय नहीं बचता। प्रभु जब हमेशा साथ हैं तो कभी हमें निराश नहीं होने देंगे इसी आशा और विश्वास के साथ सप्रेम राम-नाम स्मरण!

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च।

भूमंडलीकरण के दौर में भाषा का संदर्भ : एक अध्ययन

डॉ० सुधीर कुमार

पी-एच० डी०, राजनीति विज्ञान, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

किसी भी लोकतंत्र का आधार जनभाषा है। जिस देश में या जिस राजनीतिक व्यवस्था में शासन की भाषा और जनता की भाषा में भेद होगा उस देश में वास्तविक लोकतंत्र कभी आ ही नहीं सकता। पश्चिमी देशों में लोकतंत्र की सफलता का एक बड़ा कारण भाषा है जो कि मात्र चुनाव प्रक्रिया में ही आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित नहीं करती बल्कि उसके बाद भी शासक दलों की नीतियों को समझने उन पर अपनी राय रखने और उससे भी बड़ी बात दैनेदिन प्रशासन में अपने अधिकारों के प्रयोग को सुनिश्चित करती है। जनतंत्र का अर्थ मात्र बोट देना नहीं है न ही होना चाहिए। अगर इसका कोई अर्थ है तो सत्ता में जनता की भागीदारी है और यह तभी हो सकती है जबकि जनता और शासन के बीच कोई रूकावट न हो।

पर दुर्भाग्य से भारत में यह रूकावट अनादिकाल से (संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी के माध्यम से) बनाई और बरकरार रखी गई है। आज जबकि हम सामंती और औपनिवेशिक दौर से निकल करएक आधुनिक लोकतांत्रिक दौर में पहुंच गए है इस बाधा का बरकरार रहना इस बात का संकेत है कि हमारी व्यवस्था में आम आदमी और शासक वर्ग में कितना अंतर है। बल्कि कई मायनों में यह अंतर बढ़ा दी है। इसीलिए तो सलिम हेरिसन ने सन 1960 में यह कहा था कि भारत में प्रजातंत्र को सबसे बड़ा खतरा भाषा से होगा।

स्वाधीनता के तुरंत बाद मुख्य प्रश्न यह था कि देश कि राष्ट्रभाषा और उसकी लिपि क्या हो तथा भाषायी अल्पसंख्यकों को किस प्रकार संरक्षण दिया जाए। संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन एवं निर्माण हुआ। द्रविड़ भाषा परिवार के लोग हिन्दी का विरोध करने लगे वे राजभाषा के रूप में हिन्दी को पसंद नहीं करते थे। उनका कहना था कि हिन्दी इस स्थिति में नहीं है कि वह भारत की राजभाषा बन सके। इसका परिणाम यह हुआ कि हम शिक्षा के माध्यम के लिए किसी एक भाषा को स्वीकार नहीं कर पाये है। भाषा को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की प्रवृति बढ़ी। भाषा के प्रश्न को लेकर उत्तर तथा दक्षिण के राज्यों में हिंसात्मक आंदोलन हुए। भाषा की इस विविधता ने राष्ट्र को अन्त:क्रिया के क्षेत्र में पीछे धकेल दिया भारत में भाषा कभी भी जनपक्षीय राजनीति का मुद्दा नहीं बन सकी है। और बनी भी है तो जैसे कि तमिल के मामले में, बहुत ही सकीर्ण और विकृत तरीके से। आज भी क्षेत्रीय भाषाएं सिमटती जा रही है तो यह हिन्दी के कारण नहीं बल्कि अंग्रेजी के कारण हो रहा है।

भूमंडलीकृत दुनिया में भाषा का संदर्भ का पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्ययन में विशेष रूप से भारतीय राजनीति के संदर्भ में इस पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

शब्द कुंजी- भूमंडलीकरण, भाषा आंदोलन, लोकतांत्रिक प्रयोग, अभिजात्य वर्ग, पदानुक्रमित समाज, भाषायी प्रभुत्व।

परिचय

आज दुनिया में भूमंडलीकरण का शोर मचा है। वाशिंगटन आमराय के आदेश से दूनिया को हांकने का प्रयास चल रहा है। अमेरिका की सहमति से चल रहे भूमंडलीकरण का लक्ष्य विश्व में सांस्कृतिक समरूपता लाना है। सांस्कृतिक वैभिन्य के लिए इसमें काई स्थान नहीं है यानी यह अमेरिकी संस्कृति हर कहीं और हर किसी पर थोपने का प्रयास है। अमेरिकी नेतृत्व में भूमंडलीकरण के पक्षधरों ने स्पष्ट शब्दों में बात की घोषणा की है।

पूर्व अमेरिकी विदेश मंत्री डॉ0 हेनरी किसिंजन ने इतना तक कहा कि भूमंडलीकरण का पिछला चरण ब्रिटेन के नेतृत्व में रहा। मौजूदा चरण में अमेरिका का दबदबा रहेगा। अमेरिका विचारों मूल्यों और जीवन शैली को स्वाकार करने अलावा विश्व के समक्ष काई विकल्प नहीं बचा है।

ब्रिटेन के नेतृत्व में हुए भूमंडलीकरण के दौर में भारत में मेकाले ने जो प्रयास किए उसका निहितार्थ था देखने में वेशभूषा में लोग भारतीय लगे लेकिन उसका मन-मस्तिष्क अंग्रजीयत में ढला हो। भारतीयों का एक वर्ग जिनकी रोटियां अंग्रजो की कृपा से मिल रही थी, उनकी विशेषता थी-अपने समाज, धर्म और संस्कृति की पूर्ण अनभिज्ञता तथा यूरोपीय संस्कृति की अंधभक्ति। अंग्रेजी शिक्षा-दिक्षा ने इस वर्ग पर अंग्रेजीयत और मानसिक दासता का रंग और गहरा कर दिया। उनकी शिक्षा का उद्देश्य था कि भारतीय क्लर्क बनें, स्वतंत्रता की भावना उनमें नहीं जगे, वह अंग्रेजों के सुझाए रास्ते पर चले और उनको अपना 'गुरू' मान ले। फलत: ऐसी शिक्षा के रोग से हम अपने को बचा नही सके। युवावर्ग ने अपने को भारतीय समाज और परंपरा से अलग कर हंसते हुए यूरोपीय सांस्कृतिक दासता की बेड़ी पहन ली। लेकिन संपूर्ण भारत अंग्रेजों के भूमंडलीकरण के रंग में रंग नहीं सका। वह अंग्रेजों के खिलाफ लड़ता रहा और अंतत: आजाद हो गया।

भूमंडलीकरण की अपनी नई निजी वर्चस्ववाली संस्कृति होती है। और इसी कारण से इसमेंहर कहीं फैल जाने की रूझान होता है। सांस्कृतिक रूप से कहे तो काफी सीमा तक वह यदि पूरी तरहे नही अमेरिकापरस्ती का ही विस्तार है और वह भी विश्व स्तर पर।

आज के भूमंडलीकरण का जमाना इन्टरनेट और बाजार अर्थतंत्र का है और इनकी भाषा अंग्रेजी है। अंग्रेजी भाषा के बारे में ऐसा प्रचार किया जा रहा है कि फांस जैसा देश जो संस्कृति और भाषा की दृष्टि से अतिवादी देश कहा जाता है-फांसीसियों का तीस प्रतिशत यह दावा करने लगा है कि वह अंग्रेजी बोल सकता है।

चूंकि अंग्रेजी ही साइबर स्पेस की मुख्य भाषा है इसलिए अंग्रेजी पढ़े-लिखे युवा अमेरिकी संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। वे जिस आयु में यह प्रभाव आत्मसात करते है वह ऐसी होती है कि सारी जिंदगी रहती है। वह अपनी लोक संस्कृति को पीछे छोड़ देते है। इस प्रवृति को देखकर कुछ लोगों के मन में यह शंका घर करने लगी हे कि भूमंडलीकरण सांस्कृतिक विविधता को समाप्त कर देगा और ऐसी दुनिया बनाएगा जिसमें अमेरिकी जीवन शैली और संस्कृति का राज होगा। ऐसा कहा जा रहा है कि पूंजीवाद के वर्तमान भूमंडलीकरण के दौर में प्रवेश करते ही मानव संस्कृति का माल में रूपांतरण होने लगा है। दूसरें शब्दों में संस्कृति को खरीद-बिक्री की चीज बनाया जा रहा है।

भारत को एक साजिश के तहत अंग्रेजी भाषी देश कहा जा रहा है। जहां के अंग्रेजी के अति साधारण लेखको को तरह-तरह के पुरस्कारों से नवाजा जा रहा है। अंग्रेजी को रोजी-रोटी की भाषा बताकर बड़े पैमाने पर महानगरों, नगरों, कस्बों यहां तक कि गांवों में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल बड़े पैमाने पर खोले जा रहे है और गरीब जनता की बड़ी कमाई इन स्कूलों में पढ़ने वालों बच्चों पर खर्च हो रही है। शहरों के हर चौक-चौराहों पर धारा प्रवाह अंग्रेजी बोलने और लिखने की शिक्षा देने वाले कोचिंग संस्थानों के इश्तेहार नजर आते है। अमेरिका और इंग्लैण्ड के नामी विश्वविद्यालयों की शाखाएं भारत में खोली जा रही है और लोग इन विश्वविद्यालयों में नामांकन करा रहे है।

यह निश्चित है कि भाषा को धर्मोपार्जन से काटा नहीं जा सकता है। अत: भाषा की आर्थिक उपयोगिता होनी ही चाहिए। इसी कारण अंग्रेजों के आगमन ने फारसी को अंग्रेजी से विस्थापित कर अपना साम्राज्य फैलाया जो कि फैलता ही गया पांच हजार वर्ष से भी ज्यादा की भारतीय परंपरा बदल दी गई और पेट भरने के लोभ में लोगों ने उफ तक नहीं की। अब परिस्थिति भिन्न है। हम स्वतंत्र है और हमको अपना भाग्य निर्धारित करने का अधिकार है। हमें इलीलों के जंगल में फंसने की जरूरत नहीं है और न हमें

उसके अंदर घिरकर घुट-घुटकर मरने की जरूरत हैं। हमने अपना संविधान बनाया लेकिन उस पर सही से अमल नहीं हुआ। फल यह हुआ कि हमारी सोच को ही गुलाम बना दिया गया। हम भारतीय कम अंग्रेज ज्यादा बन गए।

हम सब जानकर भी अनजान बने हुए है कि विश्व के अनेक समृद्ध देशों में सारा काम-काज अंग्रेजी में न होकर उनकी अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही होता है और वह गर्व से दूसरे देशों में भी अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही अनुवादक के माध्यम से संवाद करते है। चीन इसका ज्वलंत उदाहरण है। आर्थिक दृष्टि से चीन विश्व के मानचित्र पर नित नए कीर्तिमान स्थापित कर रहा है और कोने-कोने में उनके द्वारा उत्पादित वस्तुएं बाजार में उपलब्ध है। हमको चीन, कोरिया एवं जापान जैसे राष्ट्रों से भारत के चिस्थायी भविष्य के लिए सीखकर भाषायी समस्या के यथोचित समाधान करना चाहिए। रूस और जर्मनी से आयातित मशीने, औजार और अस्त्र सभी पर रूसी और जर्मन भाषा में अंकित है और उनका अनुवाद इन भाषाओं के दक्ष इंजीजियर और तकनीशियन कर रहे है और उनके निर्देश पर इनका इस्तेमाल हमारे देश में हो रहा है। वहां-कहां अंग्रेजी आड़े आती है।

अभी भी लाखों लोग अपनी स्थानीय भाषाओं के माध्यम से ही लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को समझते है एवं उसमें अपना भागीदारी भी करते है। भाषा आंदोलन, आधुनिक भारत में लोकतांत्रिक प्रयोग से उत्पन्न हुए उम्मीदों के क्षितिज को लगातार संवर्धित और विस्तारित करता रहा है और बगैर उसके समझ या अर्थो को शामिल किए भारतीय लोकतंत्र की हमारी समझ हमेशा ही आंशिक या अपूर्ण रहेगा। आधुनिक भारत की भाषाई अर्थव्यवस्था में हम देखते है कि शीर्ष पर अंग्रेजी बोलने वाले अभिजात्य वर्ग के बाद अंग्रेजी और एक या अधिक भारतीय भाषाओं के ज्ञान के साथ द्विभाषी या त्रिभाषी अभिजात्य वर्ग है। उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानीय भाषाई क्षेत्रों में लोकतंत्र या राष्ट्र या स्वराज जैसे विचारों को प्रसारित करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। उनके नीचे एकल भाषायी लोगो का विशाल जनसमूह है जिसे हिन्दी का ही बहुत कम या ना के बराबर ज्ञान है। आधुनिक भारत में इन भाषाई समुदायों में से कई अभी भी लोकतंत्र, स्वराज और राष्ट्र जैसे सवालों से जूझ रहे है और वे देश के साथ अपनी समस्याओं को भी सुलझाने की कोशिश कर रहे है लेकिन वे ऐसा अपनी भाषाओं के अस्तित्व की कीमत पर नहीं करना चाहते। इससे भारत में भाषा और लोकतंत्र का मुद्दा विद्वानों के लिए अध्ययन का एक आकर्षक क्षेत्र बन जाता है। हम इसे और भी बेहतर ढंग से समझ सकते है जब हम भाषा के मुद्दे को केवल पहचान के मुद्दे तक ही सीमित न कर दे। राममनोहर लोहिया जैसे समाववादी विचारक ने अंग्रेजी का दृढ़ विरोध करते हुए, भारतीय राज्य और समाज के लोकतांत्रीकरण में भारतीय भाषाओं की मूल्यवान भूमिका भली-भांति समझा था। अंग्रेजी की तुलना में भारतीय भाषाओ की स्थिति अभी भी दयनीय है। अंग्रेजी अभी भी भारत में शासक वर्ग में प्रवेश करने का एक सशक्त माध्यम है और यह अभिजात्य वर्ग तथा सामान्य जनता के बीच एक व्यापक खाई को पुनर्स्थापित करता है। क्या हम कभी इस विरोधाभास को दूर कर सकेंगे? क्या इन विरोधावासो को दूर किए बिना वास्तविक लोकतंत्रीकरण संभव है? क्या इन भाषाई आंदोलनों में किसी विशेष भाषा के ज्ञान से जुड़े विशेषाधिकारों को बदलने की क्षमता है?

भाषा, हालांकि सीमित अर्थ में ही लोगों को जाति, धर्म, वर्ग और लिंग की सीमाओं से परे एक साथ जुड़ने के लिए एक आधुनिक 'धर्मनिरपेक्ष' माध्यम प्रदान करती है। देश के विभिन्न हिस्सों में हो रहे भाषाई आंदोलनों के उदय और दावे की गंभीर समझ हमारे लिए भाषाा आंदोलन के भीतरी वर्चस्व और अधीनस्थता को भी समझने में सहायक हो सकती है। एक भाषा के मानकीकरण के साथ कई समृद्ध साहित्यिक परंपराओं से संपन्न भाषाओं ने भी अपना अस्तित्व खोया है, लेकिन इन भाषाओं को मानने वालो में हमेशा से उनकी भाषा की विशिष्ट स्थिति की चेतना रही है। उत्तर भारत में मैथिली, भोजपुरी, अवधी और ब्रज बोलने वालो ने किस प्रकार अपने स्वतंत्र अस्तित्व का समय-समय पर दावा किया है। हालांकि इन आंदोलनों का एक और पहलू भी है। ये आंदोलन भले ही मानक भाषा द्वारा किये जा रहे समायोजन का विरोध करते हो, परंतु इनमें अपने भाषाई क्षेत्र के अंदर पुरानी और मौजुदा पदानुक्रमों को पुनर्स्थापित बनाए रखने की भी प्रवृत्ति होती है। अपने क्षेत्र के भीतर कि भाषाई किस्मों या बोलियों को भी अधीनस्थ करने की प्रवृत्ति रहती है। इन आंदोलनों को प्राय: प्रमुख जाति और वर्ग समूहों द्वारा ही नियंत्रण किया जाता है। लेकिन यह भी इसी भाषाई क्षेत्र में संभव है कि इस तरह के वर्चस्व को वास्ताविक चुनौती भी दिया जाता है। उदाहरण के लिए, मैथिली आंदालन में हम पाते है कि नेतृत्व विशेष रूप से उपरी जातियों, खासकर ब्राह्मणों और कायस्थों के हाथों में रहा है। लेकिन ऐसे प्रभुत्व और वर्चस्व का तेजी से विरोध भी किया जा रहा है। यदि, भारत में राज्य और उसके संस्थानों को लोकतांत्रिक बनाने के लिए समाज को लोकतांत्रिक बनाना आवश्यक है। तो क्या इन स्थानीय भाषाओं को लोकतांत्रिक किए बिना इसे हासिल किया जा सकता है जहां लोकतांत्रिक और अलोकतांत्रिक ताकतों के बीच वास्तविक लड़ाई हर दिन लड़ी जाती है?

आधुनिक भारत में भाषा, 'लोकतंत्र', 'स्वराज' एवं 'राष्ट्र' जैसे विचारों के प्रक्षेपकों को व्यापक रूप में समझने के लिए एक बहुमूल्य माध्यम साबित हो सकती है। वास्तव में भारतीय भाषाओं और उसके साहित्यिक तथा सार्वजनिक क्षेत्रों का अध्ययन नहीं के बराबर हुआ है। इस तरह के अध्ययन से न केवल भारतीय लोकतंत्र और इसकी विभिन्न चुनौतियों के संदर्भ में हमारी समक्ष विकसित होगी बल्कि इन भाषाई समुदायों का 'हमारी आधुनिकता' के साथ उलझनों के मामले में भी बेहतर समझ बनेगी। राष्ट्रीय संकल्पनाओं से अलग इन स्थानीय भाषा क्षेत्रों में कल्पनाएं किस प्रकार की थी? इन पदानुक्रमित समाज और समुदायों ने लोकतंत्र या समान नागरिकता जैसे आधुनिक आदर्शों के साथ कैसे अपना सामंजस्य बिठाया है ? दूसरे शब्दों में, भारतीय लोकतंत्र की जटिलताओं को आधुनिक भारतीय भाषाओं और इसके सार्वजनिक क्षेत्रों के अध्ययन के माध्यम से बेहतर समझा जा सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में ही भाषा आंदोलनों का भी अध्ययन करने की आवश्यकता है। ये भाषाई क्षेत्र अनिवार्य रूप से लोकतांत्रिक नहीं है, लेकिन उन्हें लोकतांत्रिक बनाये बिना भारतीय लोकतंत्र का विकास हमेशा ही अधूरा रहेगा और इस द्वंद को समझे बिना भारतीय लोकतंत्र का हमारा समझ भी।

निष्कर्ष

हमारे देश की संसद में और बाहर अंग्रेजी को सरकारी कामकाज की भाषा बनाए रखने के पक्ष में जो तर्क दिए जाते है-उसमें कहा जाता है कि अंग्रेजी एकता कायम रखने की भाषा है। शायद इससे बड़ा झूठ कुछ हो ही नहीं सकता है। अंग्रेजी तो ऐसी भाषा है जिसने इस देश की संस्कृति का विनाश आरंभ किया। अंग्रेजी पराधीनता की भाषा है, अंग्रेजी ऐसी भाषा है जिसने भारत के विकास को रोका है। अगर अंग्रेजों न` हम पर हमला न किया होता तो हमारा राष्ट्र अभी कही ज्यादा अच्छा होता। कुछ कहते है अंग्रेजी संस्कृति की भाषा है। किस संस्कृति की ? उस संस्कृति की जिसने सारी दुनिया पर कब्जा कर लिया था, जिसने भारतीयों को गुलाम बनाया, अफीका को गुलाम बनाया, अमेरिका को गुलाम बनाया-क्या यह संस्कृति की भाषा हो सकती है?

भाषा का संबंध साहित्य से है। यदि भाषा को साहित्य से अलग कर दिया जाए तो बचेगा क्या? क्या अंग्रेजी ने किसी भी क्रांतिकारी साहित्य की रचना की है-सिवा पिछले एक हजार वर्ष में जबकि क्रामवेलियन क्रांति हुई थी और मिल्टन ने पाराडाइज लास्ट लिखी थी? वह एक विद्रोह और क्रांति की भाषा थी। उसके बाद क्या अंग्रेजी भाषा में शिक्षा दी गई? केवल इतना ही नहीं एडमंड वर्क ने फांस की क्रांति का विरोध किया था और सर्वाधिक क्रांति-विरोध साहित्य लिखा जो आज उनके रूढ़िवादी विचारों को विश्वविद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों के रूप में पढ़ाया जा रहा है।

संदर्भ

1. बिस्वास, तपन; अन्तर्राष्ट्रीय संबंध (संपादित), ओरिएंटल ब्लैकस्वान प्रा0 लिमि0, हैदराबाद, द्वितीय संस्करण, पृ0सं0 356
2. वहीं, पृ0सं0 358
3. वहीं, पृ0 सं0 360-62
4. वहीं, पृ0 सं0 375
5. वहीं, पृ0 सं0 378-379
6. झा, मिथिलेश कुमार, भाषा आंदोलन और भारतीय लोकतंत्र (आलेख)
7. इंडिया टुडे, 30 सितंबर, 1987, पृ0 सं0 46-47
8. जोंस, प्रो0 मॉरिस; भारतीय शासन और राजनीति (संपादित), पृ0 सं0 98

बिहार में भारत छोड़ों आंदोलन की प्रकृति : एक अध्ययन

डॉ० अंगुरी बेगम

पी-एच० डी०, इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में और खासकर विद्रोह या क्रांति के इतिहास में अगस्त क्रांति का काफी महत्व रहा है। इसीलिए तो इस क्रांति को जितने नामों से पुकारा गया उतना किसी क्रांति या विद्रोह का नामाकरण नहीं हुआ। अगस्त क्रांति, भारत छोड़ों आंदोलन, इंडिया इन रिभोल्ट, स्वफूर्त आंदोलन तथा अंग्रेज भारत छोड़ों आंदोलन एवं नरकट्टी तरकट्टी आंदोलन जैसे अनेक नाम इससे जुड़े हुए है। दूसरी बात अखिल भारतीय स्तर पर बिहार की भागीदारी इस आंदोलन में अद्वितीय रहीं है, क्योंकि इस आंदोलन के चरित्र में जितनी विविधता बिहार में रही है और आंतरिक भिन्नताएं बिहार में जितना रही है उतना किसी प्रदेश के आंदोलन का नहीं रहा है। जैसे कोशी के क्षेत्र में बाबू सियाराम सिंह का दल पुनः बिहार में समानांतर सरकार का जोर या फिर छिपकर आंदोलन के दौरान काम करने की तमन्ना तथा क्रांति को दबाने के लिए साम्राज्यवादियों ने जिस तरह से मुंगेर, भागलपुर, पूर्णिता आदि जगहों में हवाई जहाज के द्वारा गोली बरसाये गये। पुनः दूसरी बार किशनगंज में, पूर्णिया में, मुंगेर में जिस तरह से साम्राज्यवादी ब्रिटिश हुकूमत के साथ-साथ स्थानीय जमाखोरों के विरूद्ध आंदोलन चलाया गया था। वह अपने-आप में बिहार की विशिष्टता इस आंदोलन में दर्शाती है। पुनः आजाद दस्ता का मार्ग अपने आप में इस आंदोलन की तीव्रता को दर्शाता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में बिहार में भारत छोड़ो आंदोलन की विशिष्ट प्रकृति को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

शब्द कुंजी- स्वयं सेवक, आजाद दस्ता, समानांतर सरकार, जन सरकार, जनता राज, सरकारी दमन।

परिचर्चा

1942 का आंदोलन बिहार में इस तरह संगठित हुआ कि सभी वर्गो के लोगों ने इस आंदोलन में समान उत्साह तथा निश्चय के साथ भाग लिया। राजेन्द्र प्रसाद, फूलन प्रसाद वर्मा, मथुरा प्रसाद, श्री कृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह की गिरफ्तारी के खिलाफ पटना के विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में पूरी हड़ताल रही और राष्ट्रीय झंडे फहराये गये। यहां हाउसमैन, नर्स, कुली मेहतर हड़ताल पर चले गये। राजेन्द्र बाबू के अनुरोध पर मरीजों के हित में अस्पताल में हड़ताल बंद कर दी गयी और गांधी मैदान में शिवनंदन मंडल की अध्यक्षता में आम सभी हुई। महिलाओं ने जुलूस निकालकर कांग्रेस मैदान में भगवती देवी की अध्यक्षता में एक सभा आयोजित की और इस सभा में सुन्दरी देवी तथा रामप्यारी देवी ने वकीलों से वकालत छोड़ने का अनुरोध किया। पटना सचिवालय पर झंडा फहराने के कारण 11 अगस्त 1942 को सात छात्र शहीद हुए जिनमें राममोहन राय सेमिनरी के छात्र रामानन्द सिंह, पटना कॉलेजियट के छात्र सतीश प्रसाद झा, बी0 एन0 कॉलेज के छात्र जगपति कुमार, मिलर स्कूल के छात्र राजेन्द्र सिंह, पुनपुर स्कूल के छात्र रामगोविन्द सिंह तथा राममोहन राय सेमिनरी के छात्र उमाकांत प्रसाद सिन्हा थे और मिलर स्कूल के देवीपद चौधरी थे। डॉ0 कालिकिंकर दत्त का कथन है कि इन छात्रों के आत्म बलिदान ने भारत के आत्म निर्णय का अधिकार हासिल करने के मार्ग में जो बाधाएं थी, उन्हें समाप्त कर दिया। सारण जिले के जगलाल चौधरी ने यह आंदोलन चलाया। सीवान थाने पर झंडा फहाराने के क्रम में एक पुराने कांग्रेसी फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव पुलिस की गोली से मारे गये। पुलिस ने जगलाल चौधरी को दो वर्ष के बच्चे

को मार डाला। चंपारण जिले के गोविन्दपुर थाने में ;षिजी, सहदेव प्रसाद, जगन्नाथ प्रसाद, ब्रह्मानन्द तिवारी ने एक समानान्तर सराकर बनायी थी और वे मुखबिरों को सजा देते थे। मुजफ्फरपुर जिले में सरकार का दमनचक्रम चला और लालचंद मदन गोपाल फर्म को लूटा गया तथा सेठजी के पुत्र देवकी प्रसाद को मार दिया गया। पुपरी के लोगों पर फौजियों ने बड़ा अत्याचार किया, गांव में आग लगा दी और लोगों को गांव छोड़कर भागना पड़ा। लोगों ने मीनापुर के थानेदार को जिंदा जला दिया। बेलसंड थाने पर गोली चली, जिसमें जयमंगल सिंह, सुखदेव सिंह, भूपन सिंह, नौजाद सिंह, बंशी तत्मा, सरसात शाह, सुंदर महराज, छठू साह, बलदेव सुहरी तथा सूखु लोहार मारे गये। शाहाबाद में पुलिस की गोली से राजेन्द्र, निखु साह, रामेश्वर पांडे, शिवपूजन राम, दुलार लोहार, छौगन अहीर, साधु अहीर तथा रामाधार अहीर मारे गये। 16 अगस्त को कपिल मुनी को गोली मारी गयी। उसके बाद झंडा फहराने का प्रयास करने पर रामदास लोहार तथा रामगोपाल को गोली मारी गयी। गया के कुरथा थाने में कांग्रेसी कार्यकर्ता श्याम बिहारी लाल शहीद हुए। दुसाध सिंह को अरवल थाने के अधिकारियों ने पीटते-पीटते मार दिया। पूर्णियां में अगस्त क्रांति शानदार रही। 13 अगस्त को कटिहार थाने पर झंडा फहराते समय 13 वर्षीय बालक ध्रुव कुमार को पुलिस ने गोली मार दी। तत्पश्चात् रामाशीष सिंह, रामाधार सिंह, कलानन्द मंडल, गिरी दामोदर साह तथा बिहारी लाल साह भी मारे गये। अगस्त के दूसरे सप्ताह में मुंगेर जिले में गोली चालन में भिन्न-भिन्न जगहों पर बलदेव पंडित, उलन गोप, कारू मिश्र, कलार पोद्दार, सुखदेव कुंवर, बैद्यनाथ सिंह, गुंजा सिंह, दारो साह, केवल सिंह, चंचल मिश्र, भोला मंडल, चमक लाल पासवान, कारेलाल वर्मा, लालजी गोप, लंगरू पोप, जागो पोप, हुंकेरी तेलिन, उसकी तीन साल की एक लड़की और सात साल का एक लड़का, सुरनी देवी तथा उसका एक बच्चा, डोमन ठाकुर, संपतिया तथा तूरी शहीद हुए। इसके अतिरिक्त सुरेश मिश्र, नन्द कुमार सिंह, श्यामा प्रसाद सिंह, रामचरित्र सिंह, ब्रह्मदेव नारायण सिंह गिरफ्तार किये गये। 29 अगस्त को सहरसा में गोली चालन में पुलकित कांत, हरिकांत झा, कमलेश्वर मंडल, भोला ठाकुर तथा केदार नाथ तिवारी मारे गये। 13 और 14 सितम्बर को सुपौल थाना पर कब्जा करने के सिलसिले में शत्रुघ्न प्रसाद, लहटन चौधरी, रामचंद्र मिश्र, गंगा प्रसाद सिंह, अच्युतानंद झा, रामेश्वर खां तथा शिवनन्दर झा गिरफ्तार किये गये तथा इनकी खुब पिटाई हुई। भागलपुर में अगस्त क्रांति का नेतृत्व छात्रों ने किया। वहां शिवधारी सिंह, सुखदेव चौधरी, कैलाश बिहारी लाल गिरफ्तार हुए। राजेन्द्र मिश्र, मेवा लाल झा, अच्युतानंद सिंह, कमलेश्वरी प्रसाद यादव, रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, ठाकुर भगवती प्रसाद सिंह, निर्मल चंद राय, श्री हरे कृष्ण प्रसाद तथा योगेन्द्र नारायण सिंह गिरफ्तार हुए। संथाल परगना भी क्रांति की पहली कतार में रहा। 26 अगस्त को गोली चालन में अशर्फी लाल देवघर में मारे गये। विनोदानन्द झा, रामेश्वर लाल सर्राफ, मोती लाल केजरीवाल, रामजीवन हिम्मत सिंह, अशोक कुमार बोस, उषा रानी मुखर्जी, भादो हेम्ब्रम, बुद्धिनाथ झा, सागर मोहन पाठक, ब्रिजलाल डोकानिया, बहुमूल्य दत्त, कृपानाथ पांडे, पंजनजी मिश्र, हरिराम गुटगुटिया, लाल चंद धाम, रजलाल पुजारी तथा शारदा देवी को पुलिस ने गिरफ्तार कर अपनी हिरासत में ले लिया। जामवन्ती देवी तथा प्रेमा देवी को गिरफ्तार करने के बाद पुलिस ने छोड़ दिया तथा बिराजी मदियाइन पुलिस की गोली से शहीद हो गयी। मानभूम जिले के क्रांति देर से शुरू हुई किन्तु तब शुरू हुइ तो भयावह हो गयी। बड़ा बाजार तथाा बांधवान थाने में आग लगा दी गयी और लालपुर तथा लघुरमा के सैनिक कैम्पों में आग लगाने की कोशिश हुई, जिसके कारण जरगांव, कबराजगढ़ तथा मानवसार में गोलियां चली। हजारी बाग में मजदूर वाले इलाके में इलाके में क्रांति ने अपना रंग दिखाया। डोमचांच तथा कोडरमा में आंदोलन जोरो पर था। डोमचांच में दो व्यक्ति गोली चालन में शहीद हुए। पलामू तथा सिंहभूम में भी आंदोलन चला। जमशेदपुर के सिपाहियों ने भी इस आंदोलन में अभूतपूर्व काम किया। तिरहुत प्रमंडल में दो महीने तक जनता का शासन रहा। हाजीपुर, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी तथा दरभंगा के बहुत से स्थानों में जनता का प्रतिवर्ती या सामानान्तर शासन चलता रहा।

पोलैंड को बचाने के लिए 1 सितम्बर 1939 को इंग्लैण्ड जब प्रजातंत्र की दुहाई देता हुआ जर्मनी से भिड़ गया तब प्रजातंत्रवादियों को बड़ी आशा हुई। श्जब इंग्लैण्ड जैसा राष्ट्र प्रजातंत्र की दुहाई देता हुआ लड़ाई में कूदता है दुर्बल राष्ट्रों की रक्षा के लिए तब उसे अनायास संसार के समस्त दुर्बल राष्ट्रों का ही नहीं, बल्कि सभी प्रजातंत्रवादियों का अपरिमित सहयोग बल मिलता है। उसके सामने लड़ाके टिक नहीं सकते और संसार भर में प्रजातंत्र की स्थापना करने में उसके मददगार बन जाते है। सुखी और समान नजर आते है। कुछ इसी ढंग की विचारधारा में निमग्न गांधी जी बड़े लाट साहब से तुरंत मिले, इंग्लैण्ड और फ्रांस से हमदर्दी दिखलायी और बोले कि मैं तत्काल भारत की आजादी की चिंता नहीं कर रहा हूं, वह तो आजाद होकर ही रहेगा, पर वह आजादी किस काम की होगी जबकि इंग्लैण्ड और फ्रांस का सर्वनाश हो गया रहेगा या विजेता के रूप में दिख पड़ेगे, जर्मनी को अपमानित और नेस्तनाबूद करके।

सचमुच ऐसी घटनाएं उसी नई व्यवस्था की क्या सृष्टि करती जिसकी कल्पना गांधीजी करते थे। इन घटनाओं से तो वैसी ही परिस्थिति उत्पन्न होती जैसे पिछली लड़ाई के परिणामस्वरूप हुई थी। इसलिए गांधी जी ने अपने अनोखे ढंग से बड़े लाट के मार्फत इंगलैण्ड से अपील की कि वह नयी व्यवस्था कायम करने की ओर कदम उठाये, जिसका सहज परिणाम होता भारत की आजादी। पर इंग्लैण्ड के तो 'हाथ सुमरनी जेब कतरनी' रहती आयी है। वह दुहाई तो देता था प्रजातंत्र की पर पुष्टि करता रहा अपनी साम्राज्य लिप्सा। अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्यसमिति ने उसके रूख का विरोध किया, जिसका प्रदर्शन करने के लिए उसने केन्द्रीय असेंबली के कांग्रेसी सदस्यों को तत्कालीन अधिवेशन में शामिल होने से रोक दिया।

पर ब्रिटिश सरकार के कानों पर जूं न रेंगी। वह अपनी चाल चलती गयी । उसने भारत को युद्धलिप्त राष्ट्र घोषित किया, कितने ही फरमान जारी किये, भारत के शासन-विधान में संशोधन किया और दूर तक असर करने वाली दूसरी-दूसरी कार्रवाईयां की जिनका हिन्दुस्तानियों के जीवन से गहरा संबंध है और जिनके कारण प्रांतीय सरकारों की शक्ति तथा कार्य की सीमा संकुचित हो गयी और अधिकार कम हो गये।

अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्यसमिति ने अपनी वर्धा की बैठक 14 सितंबर 1939 को एक प्रस्ताव पास करके सरकार की इन हरकतों का घोर विराध किया। उसने कहा कि सरकार को अपनी नीति की स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिए। वह प्रजातंत्र की रक्षा तथा विस्तार के लिए लड़ रही है या अपना साम्राज्य रक्षा के लिए है तो भारत उसका साथ न हीं देगा। भारत साम्राज्यवादी लड़ाई नहीं चाहता। वह तो साम्राज्य का जुआ उतार फेंकने के लिए प्राणपण से कोशिश कर रहा है। फिर ऐसी लड़ाई में शामिल होना उसके लिए अपने पैरो पर कुल्हाड़ी मारना है। हॉ, अगर सरकार प्रजातंत्र के हित के लिए लड़ रही है तो इस लड़ाई से भारत को दिलचस्पी है। भारत प्रजातंत्र की विजय चाहता है क्योंकि मानता है कि संसार के सभी प्रजातंत्रात्मक देशों के हित एक जैसे ही है, वे परस्पर सहयोग करके ऐसी व्यवस्था स्थापित कर सकते है, जिसमें सभी राष्ट्र सुखी रहें, समान दिखें और स्वतंत्र होवे। वह फासिस्टवाद और नाजीवाद की जीत हरगिज नहीं चाहता क्योंकि साम्राज्यवाद की तरह वे संसार में विषमता और कलह उत्पन्न करते रहेंगे।

बिहार की जनता ने देखा-रेल, तार, सड़क छिन्न-भिन्न है, डाक और रजिस्टरी बंद है, जहां-तहां थाने उजाड़ गये और कितने थानों में तिरंगा झंडा फहराते हुए कांग्रेस के स्वयंसेवक क्रांति के नारे बुलंद कर रहे है किसी-किसी कोने में भी अंगरेजी सरकार का नाम लेना, पानी देना सर उठाकर नजर नहीं आ रहा है। बस, उसने मान लिया अंग्रेजी राज उठ गया, जनता राज कायम हो गया। पर कार्यकर्ता वस्तुस्थिति से अपरिचित न थे। वे मानते थे कि प्रांत अभी अंगरेजी राज में है और जबतक जेल का फाटक खोलकर हम अपने नेताओं को अपने बीच व्यवस्थापक के रूप में नहीं ले आते हम निश्चित नहीं हो सकते। इसलिए वे चौकन्ने रहें और जहां-जहां से सरकारी अड्डों को उखाड़ सकें वहां-वहां शक्ति संगठन में लग गये। जिन्हें छोटा कुछ गांवों का, उन्होंने पंचायत की स्थापना करके वहां शांति तथा सर्तकता को पनपाना शुरू किया, जिनके क्षेत्र में एक या अनेक थाने आ गये उन्होंने वहां पंचायत का जाल सा बिछा दिया। पंचायतों को एक दूसरे से संबद्ध किया और उनके स्थापित इस जन-व्यवस्था को सफलता भी मिली और जो सबडिजन भर में अंग्रेजी अमलाशाही का अंत कर सके उन्होंने तो वहां जनता-राज कायम कर दिया। उनकी अपनी शासन-व्यवस्था थी और अपने कायदे-कानून।

'जन-व्यवस्था में क्या करना चाहिए, जनता-राज का क्या दृष्टिकोण होना चाहिए-ऐसे कई सवाल कार्यकर्ताओं के मन में उठते थे। पर उनका दिमाग बिल्कुल कोरा भी न था। गांधीजी के विचार प्रायः कार्यकर्ताओं के दिमाग में चक्कर काट रहे थे। कांग्रेज सर्कुलरों से भी उनकों बड़ी मदद मिली।' सकुर्लर नं0 8 ने उन्हें बतलाया कि-'लोगों को इस ढंग से चलना चाहिए कि सरकारी राज्य उठ गया और हमें खुद देश का सारा प्रबंध करना है। इसलिए एक ओर तो ऐसा कोई काम न करें या किसी काम में मदद न दें जिसमें सरकारी हुकूमत चलती रहे या सरकार को मदद मिले और दूसरी ओर वे ऐसे सब काम करें जिनसे लोगों को आपस में प्रेम बढ़े, उनके जानमाल की रक्षा हो, उनके खाने-पाने की कठिनाई दूर हो और वे निर्भय होकर और एक साथ मिलकर सरकारी अत्याचारों का मुकाबला करें।'

'यदि लोग डरे तो उनका खैर नहीं है क्योंकि उन जुल्मों के शिकार सिर्फ वे ही लोग नहीं होते है तो कुछ करते है बल्कि ज्यादातर वे ही है तो कुछ नहीं करते। पटना में तो बड़े-बड़े सरकारी नौकर, डॉक्टर, शिक्षक वगैरह भी पीटे गये। इसलिए अगर लोग सोचे कि वे चुप रहेंगे या कुछ न करेंगे तो वे बच जाऐंगे, बिल्कुल गलत है जो भागता है वह ज्यादा मार खाता है जो डटता

है वह दुश्मन के दिल में भय पैदा कर देता है। इसीलिए जहां कहीं सरकारी फौज या पुलिस जाये वहां के लोगों को डट जाना चाहिए। आसपास के गांवों के सब लोग अगर इक्ट्ठे हो जाएं और डटकर बोलें कि चाहे जो हो जाएगा हम तुम्हारे डर से नहीं भागेंगे और न अपने घर की खाना तलाशी और साथ-साथ बहू-बेटियों को बेइज्जत होने देंगे, तो निश्चय जानिए कि कुछ लोग मार तो जरूर खा जाएगा पर उन गांवों में ज्यादा जुल्म नहीं हो सकेगा और वहां के लोग तबाही के बच जाएंगे। अगर गांव वाले इस तरह नहीं खड़े हुए तो निश्चय रखिए कि गोरी पलटन या पुलिस वाले एक-एक कर हर घर में और हर गांव में घुसेंगे और माल असबाब लूटेंगे, लोगों को मारेंगे, पीटेंगे और पकड़ेगे और ताज्जुब नहीं कि स्त्रियों को भी बेइज्जत करेंगे। इसलिए डर छोड़कर हिम्मत करने में ही कल्याण है और इसी में जानमाल की कम हानि है जो लोग निहत्थे पर गोली चलाते है वे लोग दिल से डरपोक होते है और डट जाने पर खुद डर जाते है।

'सब गांव में पंचायत कायम हो जिसके जरिये गांव की रक्षा का प्रबंध किया जाए, झगड़े निपटाये जाये, मोकदमाबाजी रोकी जाए और गरीब और भूखों के लिए खाने-पीने का इंतजाम किया जाए।

'लोग मुंहामुही सब समाचार फैलाते रहें और जो कुछ हिदायत उनको मिले उसका प्रचार करते रहे। अगर जरूरत समझे तो पर्चिया जारी किया करे, जिसमें बहुत जल्द समाचार व हिदायत सब जगह फैल जाये।' जहां-तहां जनताराज में अपने चरम विकास को पहुंच कर अगस्त क्रांति निस्तेज होने लगी। अवसर और उद्देश्य ने जनता को खूब जगा दिया था, जिसके साथ-साथ क्रांति खूब ऊंची उठी थी। उस ऊंचाई पर टीकी रहने के लिए क्रांति को जनता का संघटित बल चाहिए था, जिसका पूर्णतया अभाव था। इसलिए जो कल होते ही उसे अंग्रेजी सरकार का संघटित बल लेकर गोरे आये और अजा ही कर दिखलया। गोरों ने क्रांतिकारियों के गांव के गांव जला दिये और जो सामने पड़ा उसको भून डाला। जनता राज उनके संघटित अत्याचार का सामना न कर सका, चार दिन की चांदनी साबित हुआ। फिर जो अंधेरी रात आयी उसमें पुलिस और हाकिमों ने क्रुरता, डाकेजनी और बलात्कार के जैसे-जैसे कांड किये उनको लंबे अर्से की गुलामी से अध:पतित मानव ही कर सकते है, सह सकते है।

सभी गोरे अंग्रेज नहीं थे। कनाडियन और अमेरिकन भी काफी थे। मालूम होता था कि ब्रिटिश साम्राज्य की जंजीर को तोड़ने की कोशिश करने वाले निहत्थे हिन्दुस्तानियों को सजा देने के लिए समूची आंग्ल जाति उठ खड़ी हुई है। और सभी गोरे फौजी भीश न थी और न पुलिस के थे। कोई जज था, कोई व्यवसायी और कोई जमींदार। सभी अपाने पेशे की मार्यादा भूलकर निहत्थे हिन्दुस्तानियों का शिकार खेलने दौड़ पड़े थे। और हिन्दुस्तानियों का अपराध था गोरों की बराबरी करना और इसमें सफल होने के लिए गोरों के ही आजमाये तोड़-फोड़ जैसे, दो-एक अस्त्र का प्रयोग।

ये गोरे जज, खास करके व्यवसायी और जमींदार, सहायक सेना के सदस्य थे। हिन्दुस्तान में जितने गोरे रहते है सबों को सैनिक शिक्षा लेनी पड़ती है और सहायक सेना में भर्ती हो जाना पड़ता है, इस सेना में भर्ती होकर गोरे अपना दूसरा-दूसरा पेशा करते रहते है। हां, जब आपदाकाल आता है तब जहां वे रहते है वहां और उसके आस-पास अपने देश के दुश्मनों से लड़ने के लिए हथियार उठाते है। जहां-जहां बगावत हुई वहां-वहां तुरंत उसे कुचल कर फैलने और संगठित होने से रोक देने में सहायक सेना बड़े काम की साबित होगी, ऐसा सोचकर ही साम्राज्य लिप्सु दूरदर्शी अंगरेज जाति ने 1920 में इसका संगठन किया था 1942 में इसने खूब काम किया। संकटापन्न चीन और रूस की सच्ची मदद आजाद हिन्दुस्तान ही कर सकेगा-इसलिए आजादी की अहिंसक लड़ाई छेड़ कर हिन्दुस्तानियों ने गोरों के देश को आपदा में डाल दिया था। फलस्वरूप सभी गोरे अपने-अपने राज में अपने देश की रक्षा के लिए एक हाथ में पलीता और दूसरे हाथ में पिस्तौल लिए अगस्त क्रांतिकारियों के देह गेहूं को ढूंढते फिरते थे। और अगस्त क्रांतिकारी थे निहत्थे और उनके गांव थे बेगढ़ के। फिर ढूंढने में उत्साह क्यों न होता।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि बिहार में भारत छोड़ों आंदोलन की विशिष्टता रही है, विशिष्टता को साबित करने के लिए बिहार में जनता सरकार, जन सरकार तथा समानान्तर सरकार काफी महत्वपूर्ण रहा है। यह कहा जा सकता है कि 1857 के विद्रोह में जिन अधीनस्थवादी इतिहासकारों ने नागरिक विद्रोह की संज्ञा बिहार में दी है और 1917 में गांधीजी की चम्पारण यात्रा से जिस तरह से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के चरित्र में आमूल परिवर्तन आया। साथ ही साथ भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में जिस तरह से जन-जन की भागीदारी निश्चित हुई और जिस तरह से गांधी की चम्पारण यात्रा से बिहार में प्रजातांत्रिक पद्धतियों का विकास

हुआ, उसी का परिपक्व रूप बिहार में भारत छोड़ों आंदोलन के दौरान समानान्तर सरकार, जनता सरकार और जन सरकार के रूप में देखा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में जिन प्रश्नों का जवाब समय-समय पर क्रांति के द्वारा ढूंढा गया है उसकी जड़े 1942 की जनता सरकार में खोजा जा सकता हैं। निश्चित तौर पर बिहार में क्रांति के दौरान जिस तरह से लोकतांत्रिक पद्धति का प्रयोग जन सरकार के गठन से हुआ था वह बिहारवासियों के राजनीतिक जागरूकता तथा राजनीतिक दृष्टि को सामने रखता है, लेकिन इस शोध को तब अंजाम दिया जाएगा जब भारतीय राजनीति में नक्सलवाद, माओवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद का समाधान राजनीतिक दक्षता के द्वारा ढूंढा जाएगा।

संदर्भ-

1. दत्त, के0 के0, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-3, 1998 पटना, पृ0 स0 20
2. वहीं, पृ0 सं0 25
3. वहीं, पृ0 सं0 27
4. वहीं, पृ0सं0 28
5. वहीं, पृ0 सं0 32
6. वहीं, पृ0 सं0 36
7. राय, पी0 के0, द क्वीट इंडिया मूवमेंट इन बिहार विथ स्पेशल रेफरेंश टू द ओल्ड डिविजन ऑफ भागलपुर, 1991, पृ0 सं0 23
8. वहीं, पृ0 सं0 30
9. वहीं, पृ0 सं0 32
10. सहाय, गोविन्द, 1942 रिवेलियन, दिल्ली, 1947, पृ0 सं0 40
11. प्रंसाद, ए0 इंडियन रिवोल्ट ऑफ 1942, दिल्ली, 1958, पृ0 सं0 32
12. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, दिल्ली, 2004, पृ0सं0 42

वज्जिकांचल की धार्मिक अवस्था : लोक देवता एवं स्थानीय संस्कृति के विशेष संदर्भ में

डॉ० संतोष कुमार

पी-एच० डी०, इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

धार्मिक दृष्टि से भी वज्जिकांचल की समृद्धि प्राचीन काल से अद्‌भूत रही है। विश्व के मानचित्र पर वज्जिकांचल की संस्थ्रति धार्मिक आधार पर भी रखा जा सकता है, क्योंकि जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर की जन्मभूमि, भगवान बुद्ध की कर्मभूमि, जगत जननी माँ जानकी की जन्मभूमि (पुनौरा सीतामढ़ी) राजा जनक की कर्मभूमि (नेपाल) इसी क्षेत्र में आता है। इसके साथ ही वज्जिकांचल की सीमा पर दक्षिण गंगा के ठीक उस पार गुरू गोविन्द सिंह का गुरूद्वारा भी विराजमान है। यदि बाल्मिकी रामायण की बात करें तो श्री राम अयोध्या से विवाह करने चले तो वैशाली में उनका वंदन अभिनंदन हुआ था और बाल्मिकी रामायण के अनुसार वीरवर हनुमान मोदफलपुरम् अर्थात् (मुजफ्फरपुर) में संजीवनी बूटी लाने के क्रम में रूके थे और सृष्टि निर्माण के क्रम में देवताओं की सभा भी यहीं हुई थी। इतने सारे धार्मिक स्थल शायद ही विश्व में कहीं इतनी कम दूरी पर हो।

धार्मिक दृष्टिकोण से वज्जिकांचल में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध तथा जैन धर्म के अनुयायी पाये जाते हैं जिसमें हिन्दू और मुसलमानों की संख्या सर्वाधिक है।

प्रस्तुत अध्ययन में इस क्षेत्र के हिन्दु धर्माम्बलम्बियों के बीच प्रचलित धार्मिक पर्व त्योहार एवं उत्सवों का वर्णन लोक देवताओं एवं स्थानीय संस्कृति के विशेष परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी- सतुआनी, भुईया बाबा, चनामृत, राजा शैलेष, चुहरमल, चकचन्ना।

परिचय

वज्जिकांचल में वैदिक (सनातन) धर्म को मानने वाले लोगों की संख्या सर्वाधिक है जिसके अनुयायियों को हिन्दू कहा जाता है। हिन्दू धर्म अपने सोलह संस्कारों पर आधारित है जिसके कार्य विधि को सभी हिन्दू मानते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार वर्ष के सभी महीने किसी-न-किसी धार्मिक उत्सवों से अवश्य जुड़े हैं।

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को त्रिदेव के रूप में पूजा करने वाले इस धर्म के लोग अनेक देवी-देवताओं की पूजा विभिन्न उत्सवों के माध्यम से वर्ष भर किया करते हैं। आदि शक्ति माँ दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती को शक्ति का स्रोत मानते हुए यहाँ के हिन्दू लोग इनकी अराधना बड़ी ही आस्था एवं विस्वास के साथ करते हैं। देवताओं में भगवान श्री राम, भगवान श्री कृष्ण तथा वीर हनुमान बड़े ही लोकप्रिय देवता हैं जिनकी काल्पनिक तस्वीर एवं मूर्ति प्रायः सभी हिन्दू परिवारों के घरों में देखा जा सकता है।

'पर्व, त्योहार एवं उत्सव'

ईश्वर की आराधना विभिन्न पर्व, त्योहार एवं उत्सवों के माध्यम से करने की परंपरा हिन्दुओं में प्रारंभ से ही देखी जा सकती है। इन्हीं परंपरायों को आगे बढ़ाते हुए वज्जिकांचल के लोग भी विभिन्न उत्सवों एवं पर्व, त्योहार, का समय-समय पर आयोजन

किया करते हैं। इस प्रकार से वर्ष भर यहाँ पर्वों का सिलसिला जारी रहता है जिसका अध्ययन निम्नवत् किया जा सकता है।

1. दुर्गापूजा - दूर्गापूजा वज्जिकांचल का प्रमुख त्योहार बन गया है जो पहले बंगालियों का था। यह अश्विन माह में मनाया जाता है। इसमें आदि शक्ति माँ दुर्गा की प्रतिमा स्थापित की जाती है तथा नौ दिनों तक पूजा-अर्चना की जाती है जिसे 'नवरात्रा' कहा जाता है। नवरात्रा के दिनों में खास तौर पर महिलाएँ सुबह-शाम माँ की आरती गीत-गा-गा कर करती है। नवरात्रा काल में दैनिक दुर्गा पाठ एवं रामायण पाठ किया जाता है जो बड़ा सुहावना लगता है। दसवीं के दिन यह नवरात्रा समाप्त होता है और इस दिन गाँव-गाँव तथा जगह-जगह-पर मेला आयोजित होता है जिसमें बच्चे, सयाने तथा बूढ़े सभी माँ के दर्शन के लिए जाते हैं। तदोपरान्त माँ की प्रतिमाओं का विसर्जन कर दिया जाता है।

2. दीपावली - दीपावली वज्जिकांचल के हिन्दुओं का प्रमुख त्योहार है। इस पर्व में दीप सजाकर जलाया जाता है। लोग नये-कपड़े पहनते हैं तथा खूब पटाखा तथा आतिशबाजी करते हैं।

यह पर्व भगवान राम के द्वारा रावन का संहार कर अयोध्या वापस लौटने की घटना को मानकर मनाया जाता है। इसमें लक्ष्मी-गणेश की भी पूजा की जाती है। खास तौर पर व्यवासायी वर्ग अपने प्रतिष्ठान की समृद्धि हेतु लक्ष्मी-गणेश की मूर्ति स्थापित करते हैं और प्रसाद वितरण करते हैं। यह कार्तिक माह की अमावस्या तिथि को मनाया जाता है। होलिकादहन तथा उक्का भांजने की भी प्रथा है।

3. छठ पर्व - यह वज्जिकांचल का महान लोकपर्व है। यद्यपि छठ पर्व का आयोजन सम्पूर्ण बिहार में किया जाता है। यह पर्व कार्तिक माह की चतुर्थी तिथि से षष्टी तक पूरे विधि-विधान से मनाया जाता है। चतुर्थी को व्रती अरबा भोजन करती है तथा पंचमी को खरना होता है। षष्ठी को अस्ताचलगामी सूर्य का ठेकुआ, खजुरी, केला, खाजा, नारियल, ईख, हल्दी, मूली-आदी, धूप, ओल, सेब एवं मिठाई को बाँस के सूप अथवा पीतल के सूप में रखकर किसी तालाब या नदी स्रोत के किनारे जाकर की सामूहिक रूप से पूजा-अर्चना की जाती है, जिसे स्थानीय भाषा में संध्या अर्क (सांझ का अर्क) कहा जाता है। सूर्य के अस्ताचलगामी होने के उपरान्त पुनः सभी लोग अपने-अपने डाला लेकर वापस घर चले जाते हैं और फिर सुबह सूर्योदय से पूर्व घाट पर पहुँच जाते हैं। सूर्य के प्रथम दर्शन देते ही सभी व्रती दूध एवं अन्य प्रसादों का कुछ अंश पानी में बहा देती है। इस समय का दृश्य बड़ा ही मनोरम होता है। सप्तमी के अर्घ के बाद व्रती पारण करती हैं।

वज्जिकांचल की लोक संस्कृति से जुड़े इस पर्व पर भी आधुनिकता का रंग चारों और दिखायी पड़ता है। लोग अब पौराणिक वाद्य यंत्रों की जगह इलेक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्रों का उपयोग करने लगे हैं। महिलाओं के द्वारा समूह गान के रूप में गायी जाने वाली गीतों की टोली अब कम सी गयी है। बच्चे दीपावली के शेष पटाखों को छोड़ने से में मस्त रहते हैं।

वज्जिकांचल में छठ पर्व के प्रसाद को अपने निकटम रिश्तेदारों के बीच पहुँचाने की परम्परा है जिसका निर्वहन आज भी किया जाता है। इसमें प्रायः भाई के द्वारा बहन के यहाँ प्रसाद भेजा जाता है।

4. कार्तिक पूर्णिमा (गंगा स्नान) - वज्जिकावासी गंगा माता की पवित्रता में विश्वास रखते हैं। उनका मानना है कि गंगा माँ सभी पापों को नष्ट करने वाली है। अतः इसी विश्वास के साथ अधिसंख्य वज्जिकावासी जिसमें महिलाओं की संख्या अधिक होती है, कार्तिक पूर्णिमा को गंगा स्नान करने को जाते हैं।

इस दिन देहातों में बहने भाई की मुढ़ी तथा चिउरा इत्यादि वस्तुओं से फाड़ा भरती हैं। पाँच फाड़ा में एक मुट्ठी फाड़ा वापस करने की पद्धति प्रचलित है। पुनः भाई बहनों के द्वारा पूजा की जाने वाली सामा-चकेवा की मूर्ति का विसर्जन पास के तलाब में करती हैं, जो भाई-बहन का प्रतीक माना जाता है। विसर्जन के क्रम में गाये जाने वाले गीत हैं-

सामो-चाको-2 अइह हे,
जोतला खेत में बैठीह हे,
ढेला फोर-फोर खइह हे।।

5. मकर संक्रान्ति- (तिलासंक्रान्त) - वज्जिकावासी मकर सक्रांति को वज्जिका भाषा में 'तिल-सकरात' कहते हैं। यह प्रायः 14 जनवरी को मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन सूर्य का कर्क राशि से मकर राशि में प्रवेश होता है, जो भूतलवासी के लिए शुभ संकेत के लक्षण हैं। इस पर्व में बच्चे सूर्योदय से पूर्व ही दैनिक क्रिया कर स्नान करते हैं और किसी अग्नि स्रोत के

निकट बैठकर तिल-चिउड़ा खाते हैं। माताएँ अपने बच्चों को तिल खिलाती है ओर उससे आजीवन तिल भरने का आश्वासन प्राप्त करती हैं। इस दिन को दही-चिउड़ा के साथ-साथ खिचड़ी खाने की भी प्रथा है।

इस पर्व का व्यावहारिक पक्ष यह कि खरीफ फसल तैयार होने के बाद इसका भक्षण लोग इस दिन से शुरू करते है। इसका दूसरा सैद्धान्तिक पक्ष यह है कि उस उक्त तिथि से सूर्य की दिशा में परिवर्तन होता है। इसलिए मकर राशि में सूर्य के प्रवेश के साथ इस पर्व को मनाया जाता है।

उपरोक्त त्योहारों के अलावे वसंत पंचमी, होली, रामनवमी, रक्षाबंधन, अनंत चर्तुदशी, कृष्णाअष्ठमी, तीज जैसे त्योहार भी मनाये जाते है। लेकिन वज्जिकाचंल की स्थानीय संस्कृति में जिन त्योहारों की विशिष्ठता है वे निम्नलिखित है-

सतुआनी -वैशाख महीने के शुक्ल तृतीया को, लोग जिसे अक्षय तृतीया भी कहते हैं, यह त्योहार मनाया जाता है। घर के लोग नहा-धोकर, सत्तु तथा आम की चटनी खाते हैं। ब्राह्मणों को दान भी देते हैं। इस दिन घर की बुजुर्ग महिलाएँ सोते वक्त परिवार के अन्य सदस्यो को गंगा जल छींटकर जगाती है। जिसे आशीर्वादी कहा जाता है। मिथिलांचल में इसे जुड़ शीतल कहा जाता है और वहाँ के वज्जिकांचल के कढे-मरी के खेल को इसी दिन खेला जाता है। मूलत: यह पर्व रब्बी फसल तैयार होने के बाद नवान्न ग्रहण का पर्व है।

चौथ चंदा- इस पर्व को वज्जिका वासी स्थानीय भाषा 'चरचना' भी कहते हैं। भादो शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को यह मनाया जाता है जिसमें मुख्य रूप से चांद की पूजा की जाती है।

इस दिन दही-केला-खीरा तथा मक्के का बाल मुख्य रूप से उगते हुए चाँद को अर्पित किया जाता है। इस दिन महिलाएँ खीर-पुरी तथा अनेक तरह के फलों को प्रसाद के रूप में चढ़ाती हैं। कुल देवता के पूजनोपरान्त आँगन में सामूहिक आसन तैयार कर परिवार के सभी लोग साथ में भोजन ग्रहण करते हैं। इसे गणेश चतुर्थी के नाम से भी जाना जाता है, जो दक्षिण भारत मे बड़े पैमाने पर मनाया जाता है।

सदियों पूर्व से वज्जिकांचल क्षेत्र में गुरू एवं शिष्यों के द्वारा चौथ चन्दा मांगने की परिपाटी रही है। शिक्षक सभी शिष्यों के साथ हर अभिवादक के दरवाजे पर जाते थे। शिष्यगण दोनों हाथ में छोटा-छोटा काठ का डंडा लेकर समूह गान करते थे- ''माता जी जनम दीहलन, पिता जी परवरिस कइलन, हाथ धरे माता दी, परावे लगलन गुरूजी'' इस तरह के कतिपय गीतों को गाते हुए हर छात्र के दरवाजे से शिक्षक एवं छात्रों की टोली गुजरती थी और छात्र के माता-पिता अपनी अवस्था के अनुकूल गुरूजी को धोती-कुर्ता, सारी-ब्लाउज, टोपी, रूमाल, चादर एवं नकद पैसा देते थे। लगभग 1965 ई0 के बाद यह प्रथा विद्यालयों के सरकारीकरण के साथ बन्द हो गयी।

घड़ी पर्व- वज्जिकांचल के लोगों का अपने कुल देवता का पूजन करने वाला यह एक पर्व है, जो श्रावन माह में मनाया जाता है। इसमें खीर, पुरी तथा केला कुल देवता पर चढ़ाये जाते हैं। महिलाएँ दूध केला खाती हैं, तब उसमें किसी भी सदस्य का प्रवेश वर्जित रहता है। यह पर्व बुधवार को ही मनाया जाता है। सारे पकवान फल-फूलों से कुल देवता को सुसज्जित कर रखती है। उनका माउर बदलती हैं जो माली दे जाता है और सूर्यास्त होने पर कुलदेवता के कमरे का दरवाजा बन्द कर छोड़ देती है। तदोपरान्त कुल देवता को नमन कर प्रसाद वितरण करती है। वज्जिकांचल क्षेत्र में वाक्देवी बन्नी की पूजा होती है। इस अवसर पर महिलाएँ गाती है-

सोने खरउआं चरहल अइलन बन्नी देवी
हाथ सोवर्न के साठ हे।
अपना अहुतवा देले जा हे।
समपति वराहले समपति वराहले।।
वराहले कुल परिवार हे।
रवि दिन आहे सेवक हमरो जन्म भेल
सुक्कर दिन भेल छठिहार.....।।

नान्ही, नान्ही कोड़िया गोसाउनी
खोइंचा बान्हलनि,।।
चलि भेल कलवरवा दोकान,
किछु मद पिअल गोसाउनि।।
किछु दरकउलनि
किछु लेल भार लदाय . 2।।

महावीर जयंती अथवा ध्वजारोहन - वज्जिका क्षेत्र में हिन्दुओं के प्रसिद्ध देवता श्री राम भक्त वीर हनुमान जी का जन्मदिन भी मनाया जाता है। भूत, प्रेत, निशाचर आदि जिनके नाम से ही भयभीत हो जाते हैं, ऐसे हनुमान जी की पूजा घर-घर में होती है। सामूहिक रूप से हनुमान जी को ध्वजा (बाँस के ऊपरी सिरा पर लाल कपड़े का त्रिकोणीय कटा हुए भाग) देने की भी प्रथा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सकरा प्रखण्ड के मछही नामक गाँव में देखा जा सकता है, जहाँ पर दूर-दराज से लोग ध्वजा लेकर आते हैं और बजरंगवली के नाम पर ध्वजारोहन करते हैं जिसके उपलक्ष्य में बहुत बड़ा मेला लगता है जिसे 'मछही मेला' कहा जाता है।

सामूहिक ध्वजा देने के साथ-साथ निजी ध्वजा का प्रचलन भी देखा जा सकता है जिसमें लोग अपने गाँव के या तो ब्रह्म स्थान के निकट ध्वजारोहन करता है या फिर अपने घरों के आंगन में। जो भी हो इस ध्वजारोहन की पद्धति से स्पष्ट हो जाता है कि वज्जिकांचल वासियों को हनुमान जी के प्रति गहरी आस्था है।

सत्नारायण भगवान की पूजा - सत्यनारायण भगवान की पूजा करने की परंपरा वज्जिका में सर्वत्र देखी जा रही है। प्रत्येक मांगलिक बेला के पूर्व इस पूजा को किया जाता है। शादी-विवाह का आयोजन हो या कोई अन्य धार्मिक क्रिया-कलाप हो, पहले सत्यनारायण भगवान की कथा का वाचन किया जाता है, उसके बाद ही अन्य शुभ कार्य शुरू होते है। इस पूजा के माध्यम से भगवान विष्णु की आराधना की जाती है। पंडित जी के द्वारा कथा कहने के बाद सामुहिक आरती होती है। उसके बाद केला, चीनी, गुड़, काजू, किशमीश तथा अन्य पदार्थों से मिश्रित प्रसाद का वितरण किया जाता है। इस पूजा में चनामृत वितरण करने की भी परंपरा है।

राजा सलेश की पूजा - राजा सलेश की पूजा की धार्मिक मान्यताएँ कुछ पात्रों पर आधारित है। इसमें मुख्य रूप से दुसाध जाति के समाज के लोगों के द्वारा जो साक्षात्कार लिया गया है उसका सार यह है- इस पूजन विधि में मुख्य रूप से तीन पात्रों की चर्चा आयी है। इसमें राजा सलेश (राजपुत जाति) चुहड़मल (दुसाधजाति) तथा रेशमा जो राजा सलेश की बहन थी कि कथा के अनुसार राजा सलेश की बहन रेशमा को चुहड़मल से बेहद प्रेम हो जाता है, किन्तु चुहड़मल इससे अंजान रहता है। एक दिन जब चुहड़मल राजा सलेश से मिलने उसके घर जाता है, तो प्रेमालीन हुई रेशमा अपनी प्रेम का इजहार चुहड़मल के समक्ष प्रस्तुत करती है, किन्तु चुहड़मल अपने दोस्त की बहन की मर्यादा को समझते हुए उसके प्रेम को कबूल नहीं करता है। इससे नाराज हो रेशमा इस बात की शिकायत अपने भाई राजा सलेश से करती है कि चुहड़मल ने उसकी इज्जत-आवरू लूटने का प्रयास किया है। राजा सलेश को इसका विश्वास नहीं होता है, किन्तु अपनी बहन की बात मान कर चुहड़मल से पूछ-ताछ करता है। बात की प्रमाणिकता के लिए चुहड़मल एक शर्त रखता है कि बारी-बारी से अग्नि की समाधि में मैं और रेशमा जायेगी। जो झुठ बोलता होगा, वह जल जाएगा। इस शर्त को दोनों पक्षों के बीच स्वीकारोक्ति मिल जाती है। सर्वप्रथम चुहड़मल को ही अग्नि में जाना पड़ता है, किन्तु वह सही-सलामत अग्नि से वापस आ जाता है, लेकिन जब रेशमा अग्नि में प्रवेश करती है तो वह जल जाती है। इस प्रकार धार्मिक-न्यायिक तथा सात्विक दृष्टिकोण से चुहड़मल अपने दोस्त के वियवास पर खड़ा उतरा, जिससे उन दोनो के बीच का प्रेम काफी प्रसिद्व हो गया। कालांतर में यह लोक-गाथा का रूप धारण कर लिया, जिसका प्रमाण अब भी दुसाध समाज में देखा जा सकता है।

भुइया बाबा की पूजा की कथा - इस कथा विधि में भी तीन पात्र दिखायी पड़ते हैं। बदरसिंह, बऊआ बख्तौर और माँ कोयला। कहानी के अनुसार बदर सिंह की बहन का नाम कोयला है और माॅ कोयला के पुत्र बऊआ बख्तौर हैं। किसी बात पर मामा बदरसिंह तथा भांजा बख्तौर के बीच विवाद खड़ा हो जाता है जिसमें शक्ति प्रदर्शन की बात सामने आ जाती है। माँ कोयला की निष्पक्षता

के बीच बदरसिंह तथा बख्तौर में धर्मयुद्ध होता है, जिसमें बऊआ बख्तौर विजित हो जाते हैं और समाज में उनकी प्रतिष्ठा स्थापित हो जाती है।

भुईया बाबा के अनेक कथा वाचकों से लिये गये साक्षात्कार के अनुसार यह धर्म युद्ध पशुपालक की समस्या पर आधारित था। उनका कहना है कि प्राकृतिक आपदा के कारण सारे नदी-तालाब सूख गये थे ।

निष्कर्ष

इस प्रकार वज्जिकाचंल में हिन्दुओं के बीच परंपरागत रूप से प्रचलित शास्त्रीय पर्व, त्योहार एवं उत्सवों को तो मनाया ही जाता है। लेकिन इस क्षेत्र की विशेष पहचान यहां कि स्थानीय विशिष्टता के कारण शास्त्रीय विधानों से अलग हटकर के इस क्षेत्र में कई लोक देवाताओ की पूजा का भी प्रचलन विधमान है। और इन सभी लोक देवताओं की पूजा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये सब शास्त्रीय बाध्यताओं से परे समाज के सभी वर्गो, समूहों एवं जातियों का एकत्रिकरण एवं समागम का एक माध्यम बन जाता है। अपनी इसी विशिष्ट स्थानीय संस्कृति के कारण वज्जिकाचंल हमेशा से समाजिक समरसता के क्षेत्र में भी अग्रणी रहा है।

संदर्भ

1. स्मारिका बिहार माध्यमिक संघ पत्रिका 43वाँ अधिवेशन, मुजफ्फरपुर इतिहास के दर्पण में-लेखक- डॉ0 सीताराम सिंह, पृष्ठ-39
2. मानर वादक - राम सागर पासवान तथा रामधनी पासवान, ग्राम+पोस्ट- केशोपुर के साक्षात्कार पर आधारित, तिथि-21/03/2011
3. झगरू भगत एवं बाबुलाल पासवान, ग्राम+पोस्ट- केशोपुर, जिला- मुजफ्फरपुर के साक्षत्कार पर आधारित, तिथि- 22/03/2011
4. डा0 प्रफुल्ल कुमार सिंह - मौन, वैशाली के लोक देवी-देवता ''वैशाली महोत्सव''

ध्रुवपद और अमता घराना

डॉ० कामेश्वर कुमार

पूर्व शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

'ध्रुवपद' दो शब्द 'ध्रुव' और 'पद' से मिलकर बना है। 'ध्रुव' का अर्थ अचल और पद अर्थात रूतबा या पद्वी। अत: जाहिर है कि 'ध्रुवपद' की प्रकृति में बहुत अध्कि ठहराव है, गम्भीरता है। युगों तक इसके अन्तर्गत ईश-बंदना, स्तुति आदि के अतिरिक्त यदा-कदा शौर्य एवं वीरता के भी कारनामे गाए जाते रहे है, इसलिए इसका दर्जा अन्य गायकियों से उच्चतर ही रहा है।

ध्रुवपद गम्भीरता प्रकृति का गायन है इसे गाने में कंठ और फेफड़े पर बल लगता है। इसलिए इसे मर्दाना गायकी भी कहते है। ध्रुवपद का प्राचीन स्वरूप आधुनिक ध्रुवपद शैली से भिन्न था। ''नृत्य के साथ गाए जाने वाले एक गीत प्रकार को भी 'ध्रुवपद' कहा जाता था'' [1] अठारहवीं शती ई0 में ध्रुवपद की परिभाषा करते हुए भावभट्ट ने अपनी पुस्तक अनूप-संगीत-रत्नाकर में लिखा है-

जीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यपराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम्।।65।।
श्रृंगाररसभावाथं रागालापपदात्कम्।
पादांतानुप्रयासयुतं पार्दातयुगंक च वा ।।66।।
प्रतिपाथं यत्रा बद्धमेवं पादचयुष्टयाम्।
उद्ग्राहध्रुवकामोगांतंर ध्रुवपद स्मृतम्।।67।।

अर्थात् 'ध्रुवपद' की भाषा संस्कृत या मध्यदेशीय हो सकती है। इसमें दो या चार वाक्य होते हैं जिनमें नर-नारी की कथा होती है। श्रंश्गार रस, भाव आदि होते हैं। यह रागालाप और पद से युक्त होता है, इसका प्रत्येक पद पादान्त-अनुप्रास या पादान्त, गमक से युक्त होता है, इस प्रकार के पदों का अस्तित्व जहाँ हो और जिसमें उद्ग्राह, 'ध्रुव' और 'आभोग' नामक तीन धातु हो, वह 'ध्रुवपद' कहलाता है। [2]

'नाट्यशास्त्रा' में निरूपित 'गान्ध्र्व' और 'गान' के तत्वों को लेकर प्राचीन शास्त्रीय प्रबंध परम्परा का विकास हुआ। आचार्य शारंगदेव ने 'ध्रुव' नामक एक प्रबंध का वर्णन किया है 'पद' का अर्थ प्रबंध में प्रयुक्त भाषा भाग है। 'ध्रुव' नामक प्रबंध में प्रयुक्त 'पद' अर्थात् सार्थक शब्द ही 'ध्रुवपद' है। 'एला' इत्यादि प्रबंधें में 'ध्रुव' नामक धातु में प्रयुक्त 'पद' को ध्रुवपद कहा जा सकता है। [3] परन्तु 'प्रबंध' के सम्बन्ध में चार धातुएँ कही गई - उद्ग्राह, मेलापक,ध्रुव और आभोग।

नायक नायिका के विभिन्न रस-भावों का नृत्य सहित वर्णन प्राचीन 'ध्रुवपद' में उद्धृत हैं। इस 'ध्रुवपदनृत्य' के लक्षण इस प्रकार हैं-

''गीयगाने ध्रुवपदे गीते भावमनोहरे।
नर्तनं नतुयात् पात्रां कान्ताहास्यादिहदष्टिजन्।।
नानागतिलसद्भावमुखरागादिसंयुतम्।
सुकुमारांगविन्यासं दन्तोद्योतितहावकम्।।

खण्डनानेन रचितं मध्ये मध्ये च कम्पनम्।।
यत्रा नृत्यं भवेदवं ध्रुवदाख्यं तदा भवेत्।।
प्रायशो मध्यदेशीयभाषया यत्रा धातवः।
उद्ग्राह ध्रुवकाभोगास्त्राय एते भवन्ति ते।।
उद्ग्राहरहितं के चित्परे त्वाभोगवर्जितम्।
उद्ग्राहाभोगरहितमन्वर्थमपरे जगुः।।'' [4]

अर्थात् ''जब भावों से मनोहर 'ध्रुवपद' नामक गीत गाया जा रहा हो, तब पात्रा को ऐसा नर्तन करना चाहिए जिसमें प्रियतमा के हास्य, कटाक्ष इत्यादि का प्रदर्शन हो, विविध गतियों या चेष्टाओं के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति हो, मुखराग इत्यादि से युक्त हो, जिसमें सुकुमार अंग-विन्यास हो, जिसकी (ध्रुवपदद्ध रचना खण्डों के मान (नामद्ध से की गई हो, जिसके बीच-बीच में कम्पन्न हो। ऐसा नृत्य 'ध्रुवपद-नृत्य' कहलाता है। जिसमें 'उद्ग्राह', 'ध्रुवक' और 'आभोग' नामक तीन धातुएँ मध्यदेशीय भाषा से युक्त होती हैं। और कुछ लोग उसे उद्ग्राह रहित, कुछ लोग आभोग रहित तथा कुछ लोग उद्ग्राह एवं आभोंग से रहित अर्थात् ध्रुवक नाच कहते हैं। जो अन्वर्थ (अर्थ के अनुकुल शब्दद्ध है।

'ध्रुव' नामक प्रबंध के सोलह भेद बताए गए हैं, यथा-जयन्त, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुन्तल, कमल सानन्द, चन्द्रशेखर, सुखद,कुमुद, जाथी, कन्दर्प, जयमंगल, तिलक और ललित। उनके सोलह ताल, सोलह रस तथा सोलह खण्ड-परिमाण भी दर्शाए गए हैं। [5]

प्राचीन ध्रुवपद संस्कृत और हिन्दी दोनों में होते थे। उनके गीतों की पंक्तियाँ भी अनगिनत होती थी जो क्रमशः कम होती चली गई। स्तोत्रा, पद, कवित्त, चर्चागीतों आदि के तत्व ध्रुवपद की पद रचना स्वरूप के आधार बने। तानसेन रचित एक ध्रुवपद में ध्रुवपद संबंधे उनकी धरणा दृष्टिगोचर होती है -''ध्रुवपद की चार तुंके होनी चाहिए, उसे शुद्ध अक्षरों से युक्त, अच्छे गुरूओं के शिष्यों द्वारा विरचित, यथावसर नव रसों में किसी भी रस से सम्पन्न, प्रकृति के दृष्टि से राग एवं रस से संबद्ध सामंजस्य से पूर्ण होना चाहिए।

''आधुनिक ध्रुवपद गायन शैली का स्वरूप संगीत-रत्नाकर' में वर्णित 'आलप्ति' से संबंध्ति है। तद्नुसार ध्रुवपद की गान शैली में चार खण्ड हैं 1. रागालप्ति अथवा नोम्-तोम् आलाप, 2. प्रबंध अथवा गीत, 3. लय-प्रयोग अथवा लय-कट और 4. भंजनी, रूपकालप्ति अथवा बोल-बांट ध्रुवपद के चार भाग होते हैं-1. स्थाई 2. अन्तरा 3. संचारी 4. आभोग। आधुनिक ध्रुवपद के पदों में वर्ण्य विषय की विविधता रहती है।

प्राचीन काल में ध्रुवपद की विभिन्न गायन-शैलियाँ थी जिन्हें 'गीति' कहा जाता था। इनकी संख्या पाँच थी। शुद्ध, भिन्ना, बेसरा, गौड़ी तथा साधरणी। कालान्तर में जिन शैलियों का प्रचार हुआ, ये वाणियाँ कहलाई - डागुर, खण्डार, नौहार और गोबरहार। स्वामी हरिदास डागुर से डागुर परम्परा का प्रारंभ माना जाता है। आगे चलकर इन वानियों के अतिरिक्त ध्रुवपद गायन की अन्य शैलियाँ भी विकसित हो गई। ग्वालियर, आगरा, सहारनपुर, लखनऊ, फतेहपुर, विष्णुपुर, हापुर, टेकारी, डुमराँव, बेतिया, अमता आदि की परम्पाओं में घरानों का उदय ध्रुवपद क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में घरानों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह विशेषता विश्व के किसी संगीत में नहीं पाई जाती। एक ही राग को जब अलग-अलग घराने के गायक गाएँ, तब उसका आनन्द और अनुभव भी अलग-अलग होगा। कारण, हर घराने का गायक राग को अपने घराने की विशिष्टता के साथ प्रस्तुत करता है।

कुछ विद्वानो और संगीतज्ञों के अनुसार 'घराना' आदि श्रोत 'घर' है। 'घर' व्यक्तियों-कुटुम्बों का गठबंध्न होता है और 'घराना' इसी विचारावली का कलात्मक विस्तार। हिन्दुस्तानी संगीत में घराने पुरानी गुरूकुल प्रथा के प्रतीक हैं। हर गुरूकुल के विद्यार्थी को अपने आचार्य और आश्रम के प्रति वही श्र(ा और आस्था होती थी, जो अपनी जननी और कुल के प्रति होती हैं। इसी आस्था एवं श्र(ा का एक सीमित विस्तार 'घराना' प्रथा में मिलता है। वास्तव में हिन्दुस्तानी संगीत का शास्त्रा, अभ्यास और प्रशिक्षण घरानों में ही सन्निहित रहा। हिन्दुस्तानी संगीत की शैली, तकनीक और अभिव्यक्ति के विकास में घरानों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

ध्रुवपद के प्रचलित घरानों में 'अमता' घराना अपनी विशेषताओं के कारण विश्व स्तर पर सम्मानित है। इसके कलाकारों ने

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। बिहार राज्य के दरभंगा जिला से लगभग बीस किलोमीटर की दूरी पर 'अमता' नामक गाँव स्थित है। ''आम के विशाल वृक्ष एवं आम की बहुलता के कारण इस गाँव का नाम 'आमता' पड़ा ऐसी किंवदन्ती भी है।''

वर्तमान अमता का पूर्व नाम जो अभिलेख में हैं, -गांगी विशनपुर। 'अमता' ध्रुवपदियों एवं ध्रुवपद के घराना के रूप में विश्वविख्यात हो चुका है। अमता घराना की उत्पत्ति सेनिया घराना से हुई है राधकृष्ण एवं कर्त्ताराम नामक दो भाईयों ने भूपत खाँ से सेनिय परम्परा की ध्रुवपद गाय की शिक्षा प्राप्त की। इन दोनों भाईयों की गायकी से प्रसन्न होकर दरभंगा के तत्कालीन नरेश माध्व सिंह ने उन्हें राजगायक नियुक्त करते हुए भेंटस्वरूप अमता गाँव प्रदान किया। [6]

दरभंगा घराना की नींव महाराजाधिराज माध्व सिंह (1775-1807द्ध के दरबारी संगीतज्ञ पं. राधकृष्ण और पं. कर्ताराम के द्वारा डाली गयी। ये दोनों भाई संगीत कला में निपूर्ण थे और इनके पूर्वज राजस्थान से आकर बिहार में बसे थे। कहा जाता है कि इनके पूर्वज हाजीपुर के पास ग्राम घटारो के रहने वाले थे जहां आज भी इनके पारिवारिक संबंधी रहते है। यही से एक प्रसिद्ध तबला वादक पं. महापुरूष मिश्र हुए है। ये दोनों भाई भूपत खॉ 'महारंग' से संगीत शिक्षा थी। कहा जाता है कि इन्होने लगभग 30 वर्षो तक अपने गुरू गृह में रहकर संगीत के बारीकियों का अध्ययन किया था। भूपत खॉ 'महारंग' तानसेन की परम्परा का संगीतज्ञ थे। कुछ लोगों का विचार है कि भ्राताद्वय अपनी घर के ही परम्परा से शिक्षित हुए थे क्योंकि इनलोगों का मुख्य पेशा गाना बजाना ही था।

इस घराने का मूलय अमता गॉव से है। इस गॉव को महाराज दरभंगा ने जागीर के रूप में प्रदान किया था। यह पुरा का पुरा गॉव इन्ही के वंशजों के द्वारा आज भी आबाद हैं। इस घराने को शोहरत दिलवाने में पद्मश्री पं. रामचतुर मल्लिक और पद्मश्री पं. सियाराम तिवारी का विशेष योगदान है। इन दोनों की ख्याति केवल देश में ही नही बल्कि विदेशों में भी रही है। पं. रामचतुर मल्लिक ने संगीत की शिक्षा अपने पिता पं. राजित राम शर्मा मल्लिक से प्राप्त की थी। पं. राजित राम मल्लिक शर्मा अपने पिता पं. नेहाल मल्लिक के साथ-साथ अपने फुफेरे भाई पं. छितपाल मल्लिक से भी प्राप्त की थी। पं. राजित राम मल्लिक ने दो पुस्तकों की रचना की थी-1. राग रत्नाकर और 2. भक्त विनोद। पं. राम चतुर मल्लिक ने भी पं. छितपाल मल्लिक से शिक्षा प्राप्त किया था। पं. रामचतुर मल्लिक महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह के प्रतिनिधि के रूप में देश-विदेश में इस घराने की गायकी का परिचय कराया। ये चारों पट की गायकी गाने में दक्ष थे यथा-ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि के साथ-साथ विद्यापति संगीत एवं स्थानीय लोकगीत।

पं. सियाराम तिवारी का भी नाम इस घराने के लिए महत्वपूर्ण है। इनका ननिहाल अमता ग्राम में था। इन्होने संगीत की शिक्षा अपने नाना पं. विशुनदेव पाठक से प्राप्त की। आपने भी देश-विदेशों मे अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये है। आप बिहार विधान परिषद् के मानद सदस्य भी रहे है।

रामचतुर मल्लिक के शिष्य पं. अभय नारायण मल्लिक वर्तमान में इस परम्परा के संवाहक संगीतज्ञ है। आप टॉप ग्रेड के कलाकार है तथा इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय में प्राध्यापक भी रहे है। आप भी चारों पट की गायकी को प्रस्तुत करने में दक्ष है। पं. राजित राम मल्लिक से ही पं. सुखदेव सिंह मल्लिक ने शिक्षा प्राप्त की थी। आप पंडित जी के पट्ट शिष्य एवं भतीजा हैं। आपके पुत्र पं. विदूर मल्लिक ने इस घराने की गायकी को देश-विदेश में स्थापित की। वर्तमान में आपके पुत्र पं. रामकुमार मल्लिक और पं. प्रेम कुमार मल्लिक इस घराने के प्रतिनिधि कलाकार है। पं. प्रेम कुमार मल्लिक वर्तमान में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद में संगीत विभाग के विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत है। पं. रामकुमार मल्लिक के पुत्र संतोष कुमार मल्लिक, समित कुमार मल्लिक, संगीत कुमार मल्लिक और साहित्य कुमार मल्लिक एवं डॉ. (प्रो0द्ध प्रेम कुमार मल्लिक के पुत्र प्रशान्त मल्लिक एवं निशान्त मल्लिक तथा पुत्री प्रियंका मल्लिक इस घराने के उभरते सूर्य है।

पं. छितपाल मल्लिक के पूर्वज हस्तीराम एवं मस्तीराम (डूमरांवद्ध गॉव से आकर दरभंगा राज में दरबारी गायक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। महाराज ने इन लोगों को गंगदह (दरभंगाद्ध नामक गॉव में रहने के लिए जगह दी। पं. छितपाल मल्लिक को इस घराने में गुरू पद का स्थान दिया जाता है। आपके पुत्र नरसिंह मल्लिक, महावीर मल्लिक और यदुवीर मल्लिक भी कुशल गायक थे। आपके अगली पीढ़ी में रघुवीर मल्लिक तथा जगत पाठक आपकी परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। पं. छितपाल मल्लिक कुशल रचनाकार थे जिन्होने बहुत से रागों में बंदिशों की रचना की।

इस घराने के मल्लिक ध्रुवपदियों में पंडित गजराज मल्लिक, पंडित लोचन मल्लिक, पंडित बेनी मल्लिक, पंडित राजाराम मल्लिक, नरहरि पाठक, पंडित विदूर, मल्लिक, पंडित सियाराम तिवारी आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस घराना में अनगिनत

ध्रुवपद गायक हुए, जिनमें प्रमुख हैं –'पट्टीभक्षी' पड़ित राम चतुर मल्लिक 'पट्टमंत्री पंडित सियाराम तिवारी, पंडित विदुर मल्लिक, 'पद्मश्री' पं0 राम कुमार मल्लिक, पंडित प्रेम कुमार मल्लिक इत्यादि।

इस घराने की प्रमुख विशेषता निम्न हैं।

(1) नोम-तोम की अलापचारी का अनोखा ढ़ंग

(2) विशेष तरह एवं बहुत से प्रकारों के गमक का प्रयोग

(3) गायकी में सम-विषम, अतीत-अनाघात की तरकीबों को खुबसुरती से प्रयोग

(4) प्रस्तुति में चैनदारी

(5) गायन रागत्मक, तालात्मक और रसात्मक की जाती है।

दरभंगा के गायक ध्रुवपद अंग के साथ ख्याल,ठुमरी, विद्यापति के पद गायन में दक्ष होते हैं। [7]

संदर्भ सूची

1. रतांजन्कर, श्री कृष्ण नारायण, ध्रुवपद की गायकी, संगीत, अक्टूबर 1971, पृ0 05
2. वृहस्पति, आचार्य कैलास चन्द्र देव, ध्रुवपद और उसका विकास, पृ0 246
3. वृहस्पति, आचार्य कैलास चन्द्रदेव, ध्रुवपद और उसका विकास, पृ0 38
4. भरतकोष, पृ0 299
5. शारंगदेव, संगीत रत्नाकार, प्रबन्धध्याय, पृ0 313
6. मल्लिक पं0 रामकुमार, ध्रुवपद गायक अमता से साभार प्राप्त
7. कुमार डॉ० अरविन्द, अभिषेक संगीत पल्लव, पृ0 93

मानव जीवन में सांगीतिक उपचार

डॉ० चन्देश्वर प्रसाद कुशवाहा

शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

मानव समाज से हमारा तात्पर्य केवल मानव परिवारों के सदस्यों तक ही सीमित नहीं रह जाता बल्कि मानवीय जीवन की सामाजिक और सामाजिक उपयोग की प्राकृतिक, वानस्पतिक, सांस्कृतिक, सभ्यात्मक और रचनात्मक शक्तियों और सम्पतियों की गतिशील परिध्यिों को भी समेट लेता है। इसी व्यापक निहितार्थ को ध्यान में रखकर संगीत से मानव समाज के उपचार की अर्थवक्त, संभावना समस्या और अपेक्षा पर विचार करना योग्य है। स्पष्टतया मुझे कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं हो पायी, जो इस विशिष्ट विषय पर विचार के उद्देश्य से रची गई हो। फिर भी कुछ आकांक्षा-जन्य और कला-स्वभाव परक सामग्री से इस विषय पर सीमित प्रकाश डालना असम्भव नहीं है।

पहले शारीरिक पक्ष को ही लें, तो कंठ-संव(न की प्रक्रिया में आवाज को और फिर सुर-साध्न के सोपानों पर सम्बद्ध अवयवों को भी श्वास-क्रिया और ध्वनि संरचना के जिन उपक्रमों से जिन पद्धतियों और प्रणालियों से तथा अनुपात-भेद की जिन रचनात्मक प्रविध्यिों से निरन्तर गुजरना पड़ता है, उनकी कोशीय, पेशीय, ग्रंथीय और कंठ गलपटीय ध्वनिबद्ध शिराओं पर भी सतत सदासदे प्रभाव पड़ते ही रहते हैं। विभिन्न भूलों के फलस्वरूप सम्बद्ध अवयवों में यदि खराबी या रोगग्रस्तता आ जा सकती है, तो योगासन प्रयोग की तरह स्वर-साध्ना के अनेक प्रयोगों से उन अवयवों की विकृतिमूलक रोगग्रस्तता में कमी भी आ सकती है और उससे मुक्ति भी मिल सकती है। कोई आधुनिक चिकित्साशास्त्र तो नहीं, किन्तु आपके और उसका तन्त्रा शास्त्रों में अनेक उपचार विध्यिाँ ऐसी निर्दिष्ट हैं, जिनमें कंठ ध्वनि या गायनाभ्यास का विशेष उपयोग मान्य है। पं. श्रीध्र शास्त्री के ''सदुपचार-सत्संग'' ग्रन्थ में, जो 17वीं शताब्दी की कृति है, इस विषय का भी प्रतिपादन है।

उक्त सम्भावनाओं से परिपुष्ट परम्परानुसार यदि कला मात्रा का सामाजिकों के मनोवैदिक शुद्धिकरण, बुद्धिकरण, और सन्तुलित करण में उपयोग सहज ढंग से होता है या संगीत की समस्वरता या सुर-संगति या 'हारमनी' तो उदिग्न मानव के मन मस्तिष्क पर शान्तिकारक प्रभाव डालेगी ही। सम्भवत: इसलिए प्राकृतिक शक्तियों से मनोदैहिक सम्बन्ध की अनुकूलता बनाए रखने के हेतु उनके प्रतीक वैदिक देवताओं की स्तुतियाँ गाने ऋत्विक, यजमान और पुरजन जब 'भूयिष्ठाक्ते नम उक्तिं विधेम' गाते हुए अग्नि को भूमिष्ठ करते थे तब सामूहिक मनोवैज्ञानिक तौर पर शारीरिक मानसिक उर्जा की स्त्रोत स्वरूपा जठराग्नि को अनुकूल रखने इच्छा शक्ति का उतेजन करते थे। यही इच्छा शक्ति सामूहिक मनोवस्था की शक्ति होकर बृहतर और बृहतम हो जाती थी। फलत: स्तुतियों के गायन से अग्निमांध आदि रोग दूर होते थे, यह आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने भी स्वीकार किया है।[2] उनके तर्कानुसार मान्य है कि वैदिक सूक्तों में पठ्यता का प्रवर्तन था किन्तु गेयता की अनिवार्यता वैदिक स्तवनों की थी, जो साम-पद्धति बद्ध थे और रोगादि प्रसंगों में उनका गायन विशेष फल-प्रद था। इस प्रथित सुक्ष्म प्रयोग को धीरे-धीरे रूढ़ तन्त्रा-मन्त्रा के मत प्रचलन-काल तक पहुँचने में सैकड़ों वर्ष से अध्कि लगे। उस काल में भी ध्यान-मंत्रा हो या बीज मंत्रा उनका सांगीतिक उच्चारण या अनुष्ठानपरक गायन विशेषोद्देश्यों की सिद्धि के लिए या शारीरिक मानसिक रोगों तथा बाधाओं से निवारणार्थ आदेशित किया।

अनन्तर उपनिषद् रचना और स्मृति रचना के कालों तक तांत्रिक उपचार की एक परम्परा बन चली थी, मंत्रा गायन विशेष रूप से सोद्देश्य अनुष्ठानों तक सीमित हो चला था, अतएव ध्यान, प्रार्थना, रक्षा-स्तुति, मंगल पाठ, शांति-पाठ, आर्शीपाठ आदि के सस्वर गायन का विधान कल्याणकारी और रोग मुक्ति कारक अनुष्ठान के विहित स्वरूप का अवयव था। इस निष्कर्ष से सहमति डॉ. भगवत शरण उपाध्याय को भी थी।[4]

उक्त सम्मिलित परम्परा पद्धति का मध्ययुग में रूपान्तर जब विविध उपास्यों की भक्ति महिमा सिद्ध करते उपांग-उपचार-प्रयोगादि में हुआ तब यही नहीं कि त्रिदेवों और पंचदेवों की भक्ति के गीत पन्द्रहवीं सदी के पूर्व से ही गाये जाने लगे और अवतारों के स्तुति और लीला के गीत भक्ति आंदोलनों में सतत् गाये गए, बल्कि निर्गुण निराकर के उपासकों और अवतार विरोधी कबीरपंथियों ने भी अपने-अपने मंत्रों की महिमा के गायन निरन्तर किये। प्रत्येक जनपद में देवी-गुहार के गीत जो विशेष सांगीतिक पहचान रखते हैं उस जनपद के सांस्कृतिक लोक तत्व में विशिष्ट माने जाते हैं और उपाचारोपासना की अपेक्षाकृत नयी अवधरणा को प्रमाणित करते है। वैसे शिव भक्तों के द्वारा 'नचारी' विष्णुभक्तों के द्वारा स्तुति, भजन राम भक्तों के द्वारा गीत 'गोविन्दम्' और सूरसागर एवं विद्यापति के पद तथा मीराबाई के भजन गाने करने की परम्परा गुहार-जुहार-पुकार की आर्तमनोदशाओं के निवेदन एवं शरणागति प्रार्थना से कष्ट मुक्ति के द्वार खट-खटाने तक पहुँच गई तो कभी द्वार खुल जाते होंगे, यह भी असम्भव नहीं है।

आजकल संगीत की उपयोगिता मानसिक चिकित्सा में भी बढ़ रही है। ''म्युजिक थेरेपी'' द्वारा इलाज किया जाता है। वैसे इस थेरेपी के उद्‌भव से भी पहले आधुनिक संगीताचार्य, भारतीय महान गायक पं.ओंकारनाथ ठाकुर ने द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व इटली के फासिस्ट महानेता मुसोलिनी के द्वारा सामन्त्रित होकर रोम जाकर उसके अनिद्रा रोग से दीर्घकाल से पीड़ित मस्तिष्क का संगीत के द्वारा उपचार किया था। पं. ओंकारनाथ ठाकुर के द्वारा विहाग राग का शास्त्रीय गायन सुनते-सुनते उसे मानसिक शान्ति मिली और नींद आ गयी थी।

आधुनिक पशु-चिकित्सा में भी नये शोध्कर्ता विशेष तरह की लय धुनों का प्रयोग कारगर मानते है। वनस्पति वैज्ञानिकों ने भी बार-बार प्रयोग कर सिद्ध किया है कि विशेष पौधें, फसलों और फूलों की बढ़त में कमी और अनेक न्युनताओं की विशिष्ट लय धुनों से दूरकर प्रोत्साहित किया जाता है और उनकी स्वास्थ्य विकास शक्ति को उभारा जा सकता है। अत: संगीत की मानवोपचार और मानव समाज के प्राकृतिक और जैविक संसाध्नों के उपचार की संभावना के नये क्षितिज खुलते जा रहे हैं।

ज्ञातव्य है कि कर्नाटक संगीत में 'मनोधर्म' की परिकल्पना प्रामणित करती है कि त्यागराज जैसे सर्वोच्च संगीतकारों की साध्ना के फलस्वरूप जैसे एक ही रागनुशासन के भीतर गायकों की विशिष्ट मनोधर्मिता विशेष मौलिकता प्रकट करती है वैसे ही श्रोताओं में भी विशिष्ट मनोधर्मिता की पृष्ठभूमि रहती है।

इन विचारों से यही निष्कर्ष आता है कि मनोचिकित्सक यदि कब्रगाह की सी चुप्पी या चीख पुकार, तोड़-फोड़ की प्रवृति अथवा उल्लंग कामुकता से पीड़ित किसी रोगी के लिए संगीतोपचार करना चाहे तो उसे विसंवादी संगीत का सहारा लेना होगा। जिसकी समुतेजकता पश्चिमी संगीत में मानी जाती है। उसे यदि विरोचित महत्वाकांक्षा की उत्प्रेरणा वियोग-संयोग जनित प्रतिमिश्र और गहराई में पैठे निराशात्मक करूण भाव की मनोग्रंथियों से ग्रस्त रोगी की चिकित्सा करनी है, तो वह भारतीय संगीत के चतु: श्रेणीक रागों से काम ले सकता है। इससे यही सिद्ध होता है कि पश्चिमी संगीत यदि समुतेजक है तो भारतीय संगीत शमनकारी है, यह भी उपचार प्रसंग में ध्यातव्य बिन्दु माना जाएगा।

प्राचीन श्रुतानश्रुतियों में या किवदन्तियों में अथवा दन्तकथाओं में जो संगीतकारों, संगीतप्रभावों और रागजनित परिघटनाओं के प्रसंग सुने जाते है, उनकी पृष्ठीाूमि में भी संगीत के प्राकृतिक एवं मानवीय प्रभाव दोनो क्षेत्र की परिकल्पना व्यंजित है। यह तो कलाओं का मिथिकिकरण। भारत में शास्त्रीय सांगीतिक अवधरणाओं से संलग्न फलाफल संदर्भ भी है। जिनके अनुसार रागविष्ट होकर हरिण, हंस आदि पशु पक्षियों का आकृष्ट हो जाना मत हाथी और वनेले शूकर का सम्मित और विकृष्ट होकर लौट जाना, प्रदीपों के जल उठने से आग लग जाने तक की संभावना और फिर शून्य में मेघों की घटा घिरने और वर्षा हो जाने तक की संभावना यदि रागदेश या राग फलाफल के अन्तर्गत निहित है।

अन्तत: विचारणीय है कि मानवीय मनोविकृतियों और उद्वेगों के संदर्भ में संगीतोपचार की अपेक्षणीयता को किस दृष्टि से ग्रहण या अस्वीकार किया जाय ?

श्री एस.एन. रत्नज्ञानकर के शब्दों में 'क्या अट्‌टहास, उल्लास कीह अभिव्यक्ति, विलाप और चित्कार तथा दु:ख-दर्द की कराहें संगीत है? वेशक, संगीत के जीवाणु उनमें है। किन्तु वे संगीत हो नही पाये है। संगीत का समुचित प्रभाव मस्तिष्क का केन्द्रीकरण प्रतीत होता है- आत्मा के साथ एक प्रकार की पवित्रा संसक्ति में उस सीमा तक संगीत सस्ते स्तर का कहा जाएका।

अतएवं इस संगीतोपचार के प्रसंग में यही मान्य है कि संगीत प्रभाव तो मानसिक केन्द्रीकरण का माध्यम है, जिसे आत्मा के

साथ पवित्रा संसक्ति कहा जाएगा और इस दृष्टि से यह राजयोग की प्रक्रिया के समान स्तर को प्राप्त करता है। यह पुनः ध्यातव्य है कि योगोंपचार की परम्परा में राजयोग के अन्तर्गत भी संगीत सत्रा की स्वीकृति है और इसलिए संभावनाएँ भविष्य में आशापूर्ण है।

संदर्भ सूची :-

1. घोष डॉ. कामदेव, 'सदुपचार सत्संग ऑफ श्रीध्र, पृ.19
2. सुमन आचार्य, क्षेमचन्द्र, 'आर्यसमाज, औचित्य और दक्षित्व' निबंध 'विश्वामित्रा' दीपावली अंक पं. 54
3. सिंह राजेन्द्र प्रसाद दिग्वधू पृ.24
4. उपाध्याय श्री भगवत शरण, समाज साप्ताहिक 15 जून 1954
5. जैन डॉ. विजय लक्ष्मी, 'संगीतदर्शन' पृ. 127
6. रत्नज्ञानकर एस.एन., पृ.58

संगीत की परम्परा

डॉ० सुरेन्द्र कुमार राम

पूर्व शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

परम्परा का अर्थ है 'परम्परा'-पर के बाद पर, उत्तरवर्ती से उत्तरवर्ती, आगे से आगे, आगे से आगे बराबर परम्परा है आगे की ओर जाने वाली।[1] अत: परम्परा कला, विज्ञान, दर्शन आदि की पीढ़ी-दर-पीढ़ी के अनुभवों का संरक्षित अंग है, जिसको समाज से अलग नहीं किया जा सकता। परम्परा किसी भी समाज की संस्कृति पर निर्भर है। युगों-युगों से चले आ रहे रीति-रिवाजों को ही परम्परा कहते हैं।

परम्परा का सम्बन्ध संस्कृति के अविच्छिन्न स्वरूप से है। जिस प्रकार शताब्दियों के वैचारिक मंथन से संस्कृति का विकास होता है, उसी प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी के संचित अनुभवों से परम्पराएँ बनती है।[2] परम्परा का जन्म मानव के विकसित अवस्था से हुआ है। यह किसी भी समाज में प्राचीनता से आधुनिकता तक संचरण होती है। यह जीवन की यात्रा से सम्बन्धित है, जो नवीनताओं तथा अतीत के बीच से भविष्य का प्रतिफल नवीन संभावनाओ से समायोजन करती रहती है। समाज के किसी भी क्रिया-कलाप को इसके अंतर्गत क्रमबद्ध किया जा सकता है। क्रियाशीलता मानव की प्रकृति है जो सदैव जागृत रहती है। यही मानव की क्रियाशीलता के निर्वाहन क्रम को परम्परा का नाम दिया गया है।

परम्परा युगों-युगों से चली आ रही विचार अथवा ज्ञान अथवा रीति-रिवाज का सम्पोषक है। अनुभवों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचित ज्ञान ही परम्परा है। परम्परा वर्तमान की आवश्यकतानुसार अपने में परिवर्तन भी लाता है। परम्परा का सहज स्वभाव है कि वह सृजन प्रक्रिया को नियमित करता है। सृजनशील स्वभाव के कारण स्वत: परम्परा पारम्परिक प्रभाव को प्रत्यक्षत: जीवित रखता है।[3] परम्परा समाज की संस्कृति है।[4] समाज के रीति-रिवाजों को यथावत जीवित रखने वाली संस्कृति को ही परम्परा कहा जाता है। किसी भी समाज में मान्यता की प्रधानता होती है। मान्यता का आधार ही है परम्परा। किसी देश, समाज, धर्म आदि का नाम लेते ही उसकी प्राचीन मान्यताओं अर्थात् परम्परा के प्रति ध्यान आकर्शित होती है। मन में यह उत्सुकता होती है कि उसकी प्राचीन परम्परा में क्या तथ्य समाहित है? इसकी प्राचीन भूमिका क्या रही है? प्राचीनता इस बात का प्रतीक है कि उसकी प्रमाणिकता को सिद्ध किया जाए।[5]

परम्परा समाज और देश की संस्कृति का दर्पण है, जिसके माध्यम से देश, समाज तथा उसकी संस्कृति के बारे में जाना जा सकता है। परम्परा प्राचीनता से आधुनिकता को जोड़ते हुए सतत् नया आयाम सृजित करती है। अत: किसी भी कला की परम्परा उस कला के प्राचीनता से आधुनिकता के बीच क्रमश: पवित्रमय धरा को सेतु के माध्यम से जोड़ता है। यह कला के कलात्मक प्रभाव को पूर्ववत बनाए रखते हुए नवीन स्वरूप के सृजित करने का कार्य भी करती है।

सांगीतिक परम्परा :- संगीत मानव की कलात्मक उपलब्धि है। जिसमें हृदयगत भावनाओं को स्वर, लय के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। यह प्रकृतिक रूप से हमारे जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। जीवन के हर मोड़ पर अर्थात् जन्म से लेकर मृत्यु तक अविच्छिन्न रूप से इसका दर्शन होता है। यह सांस्कृतिक परम्पराओं का एक मूर्तिमान प्रतीक है जो अमूर्त भावनाओं को मूर्तता प्रदान करता है। जिस प्रकार कवि शब्दों के माध्यम से आत्म-अभिव्यक्ति करता है, उसी प्रकार संगीतज्ञ स्वरों को लय-तालबद्ध कर, स्वरों का उतार-चढ़ाव, काकुभेद, वर्ण आदि की सहायता से अपने भावों की अभिव्यंजना करता है।

आदिम काल से ही संगीत जन जीवन का अंग होने के कारण इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन काल में संगीत की दो धराएँ मार्गी और देशी के रूप में प्रवाहित रही है। मार्गी पूर्णरूपेण नियमबद्ध संगीत था, जिसका लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था। यह संगीत का परिष्कृत एवं परिमार्जित स्वरूप था। देशी संगीत का लक्ष्य जन-मन रंजन होने के कारण समयानुकूल इसमें परिर्वतन होने से इसके

स्वरूप में समय-समय पर बदलाव होता रहा है। वर्तमान में प्रचलित शास्त्रीय एंव लोक संगीत की परम्परा इसी संगीत के विकसित स्वरूप हैं।

भारतीय संगीत में परम्परा का बहुत महत्व है। इसी परम्परा के कारण भारतीय संगीत की धरा प्राचीन काल से वर्त्तमान तक सतत् प्रवाहित है। वैदिक काल में जहाँ 'सामगान' की परम्परा के साथ-साथ 'गाथा', 'नाराशशी' आदि गान की परम्परा का दिग्दर्शन होता है, वहीं बाद में यही परम्परा वैदिक और लौकिक गान के रूप में समाज में प्रतिष्ठित हुई। वैदिक और लौकिक गान के मूल में साम अथवा गाथा की परम्परा के दर्शन होते हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि इस संगीत की एक विशिष्ट परम्परा रही है जो समय की धारा के प्रवाह में अपने आप को समयानुकूल बदलाव लाते हुए मूल (जड़) से कहीं भी नहीं भटकी है। प्राचीन संगीत में सूत, मागध, चारक, भाट आदि इस परम्परा के संवाहक रहे हैं। साथ-ही-साथ हमारे ऋषि मुनि भी अपनी सांगीतिक परम्परा को संचरित करते रहे हैं।

'सामगान' एवं 'देशीगान' की परम्परा से 'जातिगान' विकसित हुआ तथा बाद में यही परम्परा 'राग गान' के रूप में। राग में जहाँ शिवमत, सोमेश्वर मत, कल्लिनाथ मत, हनुमान मत, भरत मत आदि की परम्परा दृष्टिगत हैं, वहीं बाद में 'वाणी' के रूप में ध्रुवपद गायन में सामावृष्ट हुआ तथा आगे यही परम्परा 'घरानों' में संरक्षित हुई।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में घराना :- हमारे संगीत शिक्षा की आदि परम्परा गुरू-शिष्य प्रणाली रही है। गुरू मुख से सुन-सुनकर ही शिष्यगण इस विद्या मे पारंगत होते रहे हैं। संगीत-कला का अध्ययन केवल ग्रन्थ के आश्रय पर अविलंबी नहीं है, वरन् स्वर-शास्त्र के प्रायोगिक पक्ष के लिए गुरू-सान्निध्य आवश्यक है। गुरू से पारम्परिक शिक्षा के बिना केवल ग्रन्थ मात्रा से अथवा किसी अन्य माध्यम से स्वर-शास्त्र सीखने वाला व्यक्ति विद्वत सभा में शोभामान नहीं हो सकता। संगीत के स्वरों को गुरू मुख से बारम्बार श्रवण करने से ही सच्चा स्वर हृदयंगम होता है। संगीत जैसी प्रायोगिक कला के लिए पारंगत विशेषज्ञों से शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक होता है। यही कारण है कि 'सामगान' की शिक्षा प्रणाली में गुरू-सानिध्य एवं गुरू से विद्या श्रवण का विशेष महत्व रहा है।[6]

नारदीय शिक्षा की दृष्टि से स्वर के यथार्थ ज्ञान के लिए स्वरशास्त्र का ज्ञान होना अनिवार्य है। बिना शास्त्रध्ययन के सामगान में विस्वर होने की संभावना बनी रहती है। गान विद्या मूलत: मौखिक विद्या है और उसका यथार्थ ज्ञान अध्किारी गुरू के मुख से ही संभव है तथापि गान-शास्त्र के बिना वह अपूर्ण तथा एकांगी सिद्ध होगा।[7] कहने का तात्पर्य यह है कि क्रियात्मक एवं सैद्धांतिक ज्ञान के मिलन से ही कोई कलाकार तैयार होता है।

संगीत शिक्षण में गुरू-शिष्य परम्परा का महत्व है। यह विद्या गुरूमुखी विद्या है। गुरू अपने कंठ की विशेषताओं को शिष्य के गले में उतारने की कोशिश करता है और शिष्य भी कठोर साधना के द्वारा गुरू की कही हुई बातों को आत्मसात करता है। गुरू के व्यक्तिगत विशेषताओं की झलक शिष्य के गायन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। गुरू का अनुसरण करते समय गुरू के गुण-दोष अकस्मात् ही शिष्य की षैली को प्रभावित करता है।[8] अत: शिष्य के द्वारा गुरू से प्राप्त विद्या एक विशिष्ट षैली के रूप में प्रकट होती है। यह विशिष्ट षैली की परम्परा से ही 'घराने' की नींव पड़ती है।

भारतीय संगीत में घराने का महत्वपूर्ण स्थान है। यह गुरू- शिष्य के संयोग से बनते हैं, अर्थात् घराने का तात्पर्य किसी विशिष्ट गुरू परम्परा से होता है। घराने का जन्म मूलत: विद्यादान करने वाले गुरू और प्रतिभाशाली शिष्य के संयोग से होता है। अत: 'घराना' का अर्थ होता है एक विशेष स्थान पर प्रचलित अथवा व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित संगीत की रीति या षैली। यही रीति किसी एक वैशिष्ट्य द्वारा चिह्नित होती है।[9]

घराना शब्द की उत्पति हिन्दी के 'घर' से हुआ है जो संस्कृत के 'गृह' शब्द का समानार्थी शब्द है, जिसका अर्थ होता है पारिवारिक सम्बन्ध, खून का रिश्ता, सहजाति विरासत और एक ही छत्राछाया में रहना। इस प्रकार संगीत में घराना का अर्थ सीधे रूप में संगीत के उस गुरू के उत्तराधिकारी के रूप में होता है, जो अपने अधीन शिक्षा देता है और अपनी विशेषताओं को उस शिष्य में प्रत्यारोपित करता है। कालान्तर में एक नई कला और तकनीक अथवा शैली का कई पीढ़ियों में सामंजस्य दृष्टिगत होने से घराने का रूप या आकार ग्रहण करता है। किसी भी घराना का नाम, यश और विश्वसनीयता को स्थापित करने के लिए गुरू की विशेषताओं को कम से कम तीन पीढ़ियों तक संचरण करना आवश्यक होता है।

वर्ग, संप्रदाय, परिवार, कुटुंब, वंश, परम्परा आदि के अर्थ में घराना रूढ है। यह अर्थ भी संगीतज्ञों के किसी विशेष शैली अथवा रीति के ही द्योतक हैं। स्वर, लय, ताल, अलंकरण आदि एक समान होते हुए भी उनके संयोजन व सूक्ष्म लगाव से गायकी के भिन्न रीति तैयार हो जाते हैं। यही रीति घराना के मूल में संचरण करती है। भारतीय संगीत में घराना परम्परा को गौरवशाली स्थान प्राप्त है। प्रो.रामआश्रेय झा के अनुसार- जिस भांति पतितपावनी गंगा की धरा में किसी प्रकार का अशुद्ध व अपवित्रा जल तथा वस्तु मिल जाने से वह पवित्रा समझा जाता है, उसी तरह संगीत क्षेत्र में भी 'घराना' शब्द पतितपावनी गंगा की भांति बना हुआ है। जिज्ञासुओं के इतना कह देने से कि अमुंक गायक अमुक घराने का है, श्रोताओ को आत्म-संतुष्टि हो जाती है।[10] घराने द्वारा पोषित या संरक्षित कलाकार केवल गुरू के नकल को प्रस्तुतीकरण में व्यक्त नहीं करते थे/हैं, बल्कि गुरू से प्राप्त ज्ञान को अपने अनुभवों एवं समयानुकूल सौन्दर्यानुभूति को समावेश कर अपने प्रस्तुतीकरण को रसात्मक-भावात्मक बनाते थे/हैं। वर्तमान में विविध संचार माध्यमों के द्वारा विभिन्न घराने के विशिष्टताओं को आत्मसात कर अपने कला को समृद्ध करते हुए भी अपने घराने के वैशिष्ट्य के बल पर अपने घराने की गायकी को आगे बढ़ा रहे हैं। अत: स्पष्ट है कि अपनी कला को समृद्ध बनाने के लिए घराना परम्परा में नवीन विचारों का समन्वय भी करना पड़ता है। प्राचीन और नवीन भावनाओं के समन्वय के कारण एक घराने के कलाकार की गायकी या वादन शैली में विभिन्नता दिखाई देता है। कला के दो क्षेत्र में नव-सृजन की उपलब्धियाँ, कला के विषय में चिन्तन मनन एवं आत्म-संशोधन द्वारा ही सम्भव है क्योकि प्रत्येक युग में उद्भाषित होने वाली नवीन रचनात्मक कल्पनाएँ सदा हमारे पूर्वकालीन अनुभवों पर आधरित रही हैं।[11]

संगीतिक परम्परा के कारण ही भारतीय संगीत आज तक प्रभावी व असरदार है। घरानों के द्वारा संगीत के अंग-प्रत्यंग का पूर्ण निखार हुआ है, परिष्कार हुआ है तथा आज तक यह प्रतिष्ठित, समृद्ध और चेतनाशील बना हुआ है।[12]

लोक स्वर से वैदिक स्वर का विकास हुआ, वैदिक स्वर पर सामगान का प्रचलन हुआ तथा साम के स्वरावली से जातिगान एवं जातिगान से राग का विकास हुआ। स्वरों की विभिन्न सजावटों द्वारा राग का चित्रांण करना ही कलाकार का प्रयोजन होता है। इसलिए एक ही राग भिन्न-भिन्न गायकों के मुख से भिन्न-भिन्न प्रकार का आनंद देता है। इसी राग परम्परा के कारण भारतीय संगीत विश्वपटल पर अपना विशिष्ट स्थान रखा है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि परम्परा ही प्राचीन के साथ वर्तमान को सूत्राबद्ध करती है तथा उसके नींव पर ही नवीनता पनपती है। भारतीय सांगीतिक को सूत्राबद्ध करती है तथा उसके नींव पर ही नवीनता पनपती है भारतीय सांगीतिक परम्परा सैदव जन आकांक्षाओं के अनुरूप अपने को ढालते हुए विकासमान रही है।

संदर्भ सूची

1. आजकल, सितंबर, 1998, पृ.7
2. Haldar, Asit Kumar, Art and Tradition, page-11
3. मावड़ी, डॉ मोहन सिंह, भारतीय कला सौन्दर्य, पृ.-78
4. वहीं, पृ.-80
5. वहीं, पृ.-81
6. शर्मा, डॉ सत्यवती, संगीत का समाजशास्त्र, पृ.-77
7. परांजपे डॉ शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.-129
8. शर्मा, डॉ सत्यवती, संगीत का समाजशास्त्र, पृ.-77
9. कपूर, तृप्ति, उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा, पृ.-41
10. घराना अंक, संगीत, जनवरी- फरवरी 1982, पृ.-46
11. शर्मा, डॉ सत्यवती, संगीत का समाजशास्त्र, पृ.-83
12. वही, पृ.-85

जयपुर के पर्यटन स्थलों का भौगोलिक अध्ययन

शोभा शर्मा

शोधार्थी, भूगोल विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

शोध सार संक्षेप

राजस्थान की राजधानी जयपुर को पहले पेरिस और पिंक सिटी (पिंक सिटी) के नाम से जाना जाता था! जयपुर के निपटान से पहले, जयपुर (फाइनाड) राज्य की राजधानी थी। प्राचीन काल में इसे अम्बावती और अंबिकापुर के नाम से जाना जाता था! जयपुर की स्थापना 18 नवंबर 1727 को कछवाहा वंश के महाराजा सवाई जय सिंह (द्वितीय) ने की थी, जयपुर शहर के वास्तुकार श्री विद्याधर थे! पिंक सिटी रामसिंह द्वितीय द्वारा प्रिंस अल्बर्ट (बेल्स) के आगमन के उपलक्ष्य में जयपुर का गुलाबी रंग बनाया गया था! राजस्थान पर्यटन के दृष्टिकोण से दुनिया में एक अलग स्थान रखता है, लेकिन जयपुर, शानदार महलों, उच्च प्राचीर और किलेबंदी वाला शहर, राजस्थान में पर्यटन का केंद्र है। जयपुर, राजस्थान की राजधानी होने के अलावा, जयपुर राज्य का सबसे बड़ा शहर है। जयपुर शहर पर्यटकों के लिए सबसे अच्छी जगह है। जयपुर के विशाल आकर्षण और प्राकृतिक आवास अद्भुत हैं। जयपुर की संस्कृति, वास्तुकला, परंपरा, कला, आभूषण और वस्त्र हमेशा यात्रियों द्वारा पोषित होते हैं। जयपुर शहर एक ऐसा शहर है जिसे आधुनिकीकरण के बाद भी अपनी प्राचीन सभ्यता और गौरवशाली अतीत के लिए माना जाता है। आज इस गुलाबी शहर को देखने के लिए दुनिया भर से हजारों पर्यटक आते हैं।

मुख्य बिंदु: पर्यटन, पुराने शहर, कला और शिल्प, भाषा, त्यौहार, जयपुर के प्रमुख किले, जयपुर के प्रमुख मंदिर, जयपुर के प्रमुख महल, जयपुर के प्रमुख उद्यान एवं अन्य महत्वपूर्ण स्थल

परिचय

मानव स्वभाव जिज्ञासु है। मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति ने विदेश यात्रा के आग्रह के पीछे भी काम किया है। अगर आदमी चाहता तो घर बैठे ही यह जानकारी पा लेता। लेकिन पुस्तकों से प्राप्त जानकारी का आनंद हिमालय के घने देवदार जंगलों की सुंदरता, रूप और गंध का अनुभव करने और एक तस्वीर को देखने पर बर्फ से ढकी चोटियों जैसा है। आज, पर्यटन भी मनुष्य की उसी पुरानी पैंतरेबाजी की प्रवृत्ति से प्रभावित है। आदिम घुमक्कड़ और आज के पर्यटक के बीच इतना अंतर है कि आज पर्यटन उतना प्राचीन नहीं है जितना कि घुमक्कड़। ज्ञान विज्ञान के आविष्कार के कारण पर्यटन बहुत सुलभ हो गया है, अन्वेषण की जादुई शक्ति द्वारा सुलभ साधन। आज, पर्यटन एक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय उद्योग के रूप में विकसित हुआ है। भारत और विदेशों में इस उद्योग को फैलाने के लिए पर्यटन मंत्रालय का गठन किया गया है। पूरे विश्व में पर्यटकों की सुविधा के लिए बड़े पर्यटन स्थल विकसित किए जा रहे हैं। पर्यटन को प्रोत्साहित करने के लिए कई तरह के आयोजन भी किए जाते हैं; जैसे कि विदेश में किसी देश के विशेष स्थान की कलाएँ, कलात्मक दृष्य, सांस्कृतिक संस्थानों की प्रदर्शनियाँ आदि आनंद की प्राप्ति, जिज्ञासा की शांति, बढ़ती आय; इनके अलावा, पर्यटन के कई और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ हैं। अंतर्राष्ट्रीयता की समझ पर्यटन के माध्यम से पैदा होती है: विकसित होती है। प्यार और मानवीय भाईचारा पनपता है। सभ्यताओं और संस्कृतियों का परिचय दिया जाता है। पर्यटन व्यक्ति को अपने खोल से बाहर निकलने के लिए सीखता है। पर्यटन भी एक ही स्थान पर एक ही वातावरण में लगातार रहने के कारण होने वाली एकरसता से उत्पन्न ऊब को दूर करता है। राजस्थान पर्यटन के दृष्टिकोण से दुनिया में एक अलग स्थान रखता है, लेकिन जयपुर, शानदार महलों, उच्च प्राचीर और किलेबंदी वाला शहर, राजस्थान में पर्यटन का केंद्र है। जयपुर, राजस्थान की राजधानी होने के अलावा, जयपुर राज्य का सबसे बड़ा शहर है।

इतिहास

गुलाबी शहर जयपुर के संस्थापक राजपूत राजा सवाई जय सिंह द्वितीय ने शहर की सुरक्षा के बारे में बहुत चिंता जताई थी और इसे सुरक्षित करने के लिए सात मजबूत दरवाजों के साथ किलेबंदी की गई थी।

हालाँकि, जयसिंह ने अपनी राजधानी को मराठा हमलों की चिंता से बचाने के लिए एक चारदीवारी बनाई थी! यह देश का पहला पूरी तरह से नियोजित शहर था। इस शहर की स्थापना की कल्पना तत्कालीन राजा जय सिंह ने अपनी राजधानी आमेर में

बढ़ती जनसंख्या और पानी की समस्या को देखते हुए की थी। जयपुर शहर का निर्माण कार्य 1727 में शुरू हुआ और इसे मुख्य स्थल बनने में लगभग चार साल लगे। शहर को नौ ब्लॉकों में विभाजित किया गया था, जिसमें दो इमारतों को राज्य भवनों और महलों के साथ बनाया गया था। एक बंगाली ब्राह्मण को शिल्प कौशल के आधार पर इस शहर को बसाने के लिए राजा की राय दी गई थी। यह शहर पहले गुलाबी शहर नहीं था, लेकिन अन्य शहरों की तरह था, लेकिन 1853 में जब वेल्स के राजकुमार (अल्बर्ट) आए थे इसलिए शहर को जादुई आकर्षण देने के लिए पूरे शहर को गुलाबी रंग में रंगा गया। तब से, शहर गुलाबी शहर (पिंक सिटी) के रूप में प्रसिद्ध हो गया, जहाँ बनी इमारतों की वास्तुकला देखते ही बनती है।

भौगोलिक स्थिति

जयपुर जिला राजस्थान के पूर्वी भाग में 26°23' से 27°51' उत्तरी अक्षांश और 74° 55' से 76°50' पूर्वी देशांतर में स्थित है! इसके उत्तर में राजस्थान का सीकर जिला और हरियाणा का महेंद्रगढ़ जिला, दक्षिण में टोंक जिला, पूर्व में अलवर, दौसा और सवाई माधोपुर जिले और पश्चिम में नागौर और अजमेर जिले हैं!

जयपुर शहर एक अर्ध-शुष्क जलवायु का अनुभव करता है। उत्तर भारत के अन्य शहरों की तुलना में पूरे वर्ष तापमान अपेक्षाख्र त अधिक रहता है। गर्मियों का मौसम अप्रैल में शुरू होता है और जुलाई में समाप्त होता है। यहां औसत तापमान 30 डिग्री सेल्सियस और 45 डिग्री सेल्सियस से ऊपर पहुंच सकता है, मानसून अगस्त के महीने में शुरू होता है, जो सितंबर में समाप्त होता है। यहाँ का औसत तापमान 8° से 21°C तक है। मौसम बहुत सुहावना होता है। रेगिस्तान की निकटता के कारण, रातें ठंडी होती हैं और दिन गर्म होते हैं

जयपुर राजस्थान का जिला, संभाग और राजधानी मुख्यालय है। इसका उपनाम पिंक सिटी (पिंक सिटी) और पूर्व में पेरिस है। जयपुर की स्थापना 18 नवंबर 1727 को संस्थापक-साई जयसिंह (द्वितीय) द्वारा की गई थी। इसका क्षेत्रफल क्षेत्रफल 11143 वर्ग किलोमीटर है, कुल जनसंख्या - 66.26 लाख, जिनमें से पुरुष - 34.68 लाख महिलाएं, 31.51 लाख हैं। लिंगानुपात 910 और साक्षरता दर 75.51४ तहसील -13 पंचायत समितियां 13, ग्राम पंचायत 42 और विधानसभा सीट 15 है।

अनुसंधान उद्देश्य :

1. जयपुर में पर्यटक स्थलों का अध्ययन किया गया है।
2. जयपुर के प्रमुख मेलों, त्योहारों और उत्सवों के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए।
3. जयपुर की कला और संस्ख्रति के बारे में जानकारी प्रदान करना।

शोध परिकल्पना :

1. जयपुर पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है।
2. जयपुर शहर में पर्यटकों की सुविधाएं उपलब्ध है।

आँकड़ो का संग्रह

अध्ययन के क्षेत्र के सूक्ष्म अध्ययन के लिए प्राथमिक डेटा एकत्र किया गया है जो प्रमुख पर्यटन स्थानों से लिया गया है। यह पूरा किया गया कार्य प्रश्नावली की तुलना में अधिक अनुभवजन्य है। ये प्राथमिक डेटा को क्षेत्रीय डेटा से सरकारी डेटा की तुलना करने में उपयोगी होगा। जयपुर में पर्यटन विकास से संबंधित आंकड़े हमें प्रकाशित और अप्रकाशित स्रोतों से प्राप्त हुए हैं। यह अध्ययन प्राथमिक और माध्यमिक डेटा पर आधारित है।

1. प्राथमिक डेटा की प्राप्ति का स्रोतः

i. एक प्रश्नावली तैयार की गई है।
ii. अनुसूची के माध्यम से किया गया है।
iii. प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा।
iv. डेटा पत्रकारों और पत्रिकाओं से एकत्र किया गया है।

2. माध्यमिक डेटा प्राप्त करने का स्रोत:

i. राजस्थान पर्यटन विभाग, जयपुर।

ii. सूचना और जनसंपर्क कार्यालय, जयपुर।

1. पुराना शहर : एक बार राजाओं, हस्तशिल्प और आम लोगों के निवास के लिए, आमेर शहर अब एक खंडहर बन गया है। सुंदर ृाशीदार और सुनियोजित जगत शिरोमणि मंदिर, मीराबाई से जुड़ा एक कृष्ण मंदिर, नरसिंहजी का पुराना मंदिर और अच्छी तरह से निर्मित सौतेला, पन्ना मियां कुंड एक समृद्ध अतीत के अवशेष हैं।

2. कला और शिल्प : मुगल और राजपूत शासकों ने जयपुर के लोगों के साथ अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन करने और साझा करने के लिए देश-विदेश के कुशल कलाकारों और कारीगरों को आमंत्रित किया। उनमें से कई यहां बस गए, इस वजह से जयपुर समृद्ध कला और संस्कृति के रूप में विकसित हुआ। कारीगरों की कुछ कुशल प्रतिभाओं में बंधनी शामिल हैं। ब्लॉक प्रिंटिंग। स्टोन ृाशी और मूर्तिकला गोटा। किनारी और जरदोजी चांदी के आभूषण। कुंदन मीनाकारी। - ज्वैलरी मिनिएचर पेंटिंग ब्लू पॉटरी आइवरी काह्नवग शेलैक वर्क लेदर पॉटरी आदि।

3. भाषा शैली : मुख्य भाषा राजस्थानी है। हिंदी, अंग्रेजी और पंजाबी भाषाएं भी व्यापक रूप से बोली जाती हैं।

4. मेला : जयपुर अपने मेलोली के लिए प्रसिद्ध है। घोला, शीतलाष्टमी, गणगौर, नरसिंह चतुर्दशी श्रावणी तीज आदि के मेले मुख्य हैं। गणगौर और श्रावणी तीज को जयपुर में बहुत धूमधाम से मनाया जाता है।

5. त्यौहार : जयपुर में हिंदुओं के प्रमुख त्योहार हैं- बसंत पंचमी, भानु सप्तमी, महाशिवरात्रि, होली, शीतलाष्टमी, गणगौर, रामनवमी, अक्षय तृतीया, गंगा सप्तमी, बट सावित्री आषाढ़ी दशहरा गुरु पूर्णिमा नाग पंचमी, रक्षा बंधन, बादशाह, बादशाह, बादशाह।, दशहरा, दिवाली और मकर संक्रांति। मुस्लिमों में मुख्य त्योहार हैं शबरात, ईद, मुहर्रम और बारावफात!

1. जयपुर के प्रमुख किले

(i) आमेर किला: आमेर जयपुर से दिल्ली की ओर जाने वाले मार्ग पर स्थित है, जो जयपुर शहर से लगभग 10 किमी दूर है! आमेर के किले के रूप में जाना जाने वाला यह खूबसूरत किला, महाराजा मान सिंह प द्वारा बनाया गया था और इसे बड़े-बड़े फाटकों और चट्टानी रास्तों के साथ हिंदू वास्तुकला में बनाया गया है। कलात्मक नमूना। यह चार मंजिला किला लाल संगमरमर और बलुआ पत्थर से बना है, आमेर राजपूत शैली पर बना महल पूरे देश में प्रसिद्ध है। यहाँ बने महलों में हिंदू और पारसी शैली का मिश्रण है। महल का मुख्य द्वार मंदिर है शीला माता, जो जयपुर के राजाओं की इष्टदेवी हैं, शैली पर निर्मित 20 स्तंभों का एक राजपूत भवन है, जो महल के मुख्य द्वार में प्रवेश करता है। इसमें दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, शीश महल और शामिल हैं। एयर कंडीशनर के प्रभाव से शाही विरासत के सुख निवास कई पीढ़ियों के लिए एक सरल और प्राख्तिक जल प्रवाह भी बनाया गया है। शाही परिवार यहां रहा है और हमलों के दौरान एक आपातकालीन मार्ग भी है जो इसे जयगढ़ किले से जोड़ता है।

(ii) जयगढ़ किला : महाराजा जय सिंह द्वारा बनाया गया यह खूबसूरत काम जयपुर के अंबर में अरावली पहाड़ियों के हिस्से चिल का टीला में स्थित है। 400 मीटर ऊपर और प्रसिद्ध आमेर किले की संरचना के समान, यह किला आमेर की सुरक्षा के लिए बनाया गया था। अंबर किले को एक गुप्त मार्ग से जयगढ़ किले तक पहुँचा जा सकता है। यह किला तीन किलोमीटर लंबा और एक किलोमीटर चौड़ा है। इसके पास पहियों पर दुनिया की सबसे बड़ी तोप है, जिसका नाम जयवन है। इसके कुछ महल हैं जो शाही परिवार का निवास स्थान रहे हैं। इसमें एक सुव्यवस्थित उद्यान और संग्रहालय भी है।

(iii) नाहरगढ़ दुर्ग : नाहरगढ़ किले का निर्माण शुरू में 1734 में सवाई जय सिंह द्वारा किया गया था, लेकिन इसे 1868 में सवाई राम सिंह द्वारा इसका वर्तमान स्वरूप दिया गया था। आमेर से नाहरगढ़ की ओर जाने का रास्ता है।

अरावली पहाड़ियों के किनारे स्थित नाहरगढ़ किला, गुलाबी शहर जयपुर का मनोरम ख्रष्य देता है। नाहरगढ़ का अर्थ है 'शेर का निवास स्थान' और यह वास्तव में राजस्थान की धरोहर है। इस किले में कई ऐतिहासिक घटनाएं हुई हैं, जैसे कि मराठों के साथ समझौते पर यहां हस्ताक्षर किए गए थे और यह सिपाही विद्रोह के दौरान ब्रिटिश महिलाओं का आश्रय था। यह किला शिकार के दौरान राजाओं का निवास स्थान रहा है। इस खूबसूरत किले के कमरे एक लंबे गलियारे से जुड़े हुए हैं।

2. जयपुर के प्रमुख मंदिर

(i) गोविंद देवजी मंदिर : गोविंद देवजी मंदिर सिटी पैलेस के भीतर स्थित है। ख्रष्ण की मूर्ति, उसके देवता, को भगवान कृष्ण के चेहरे की प्रतिकृति कहा जाता है और वृंदावन से यहां लाया गया और जय सिंह द्वितीय द्वारा पुनर्स्थापित किया गया। लक्ष्मीनारायण मंदिर मोती डूंगरी पैलेस के पास स्थित है।

(ii) बिड़ला मंदिर : गुलाबी शहर जयपुर में भव्य बिरला मंदिर भारत के कुछ प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। देश भर में अपनी महिमा के लिए प्रसिद्ध लक्ष्मी नारायण मंदिर, बिड़ला मंदिर के रूप में जाना जाता है और गुलाबी शहर का गौरव है। इसका गठन 1988 में बिड़ला कंपनी समूह द्वारा किया गया था जो देश भर में कई प्रतिष्ठित मंदिरों के निर्माण में अग्रणी रहा है। मंदिर में तीन गुंबद हैं जो धर्म के प्रति तीन ख्रष्टिकोण दिखाते हैं। यह मंदिर सफेद संगमरमर से बना है और एक शांतिपूर्ण प्रभाव देता है।

(iii) जगत शिरोमणि मंदिर : इस खूबसूरत मंदिर का निर्माण राजा जगत सिंह की मां शृंगार देवी कंकावत ने कराया था और इसे बनाने में 1599 से 1608 तक नौ साल लगे थे। यह पसचिम मुखी मंदिर हिंदू देवताओं राधा और कृष्ण को समर्पित है और इसके भवन में गरुड़ की छतरी, संगमरमर का मेहराब, एक चबूतरा और सजावटी जांघों और वेदियों के साथ एक मंडप है। इस पवित्र मंडप में कई स्तंभों को विभिन्न तरीकों से सजाया गया है और गुंबददार छत को धार्मिक चित्रों से सजाया गया है।

(iv) रानी सती का मंदिर : झुंझुनू की रानी सती का मंदिर दुनिया भर में प्रसिद्ध है। जयपुर में जयलाल मुंशी के रास्ते में रानी सती का एक मंदिर है।

(v) गोनेर का लक्ष्मीजगदीश मंदिर : गोनेर जयपुर से लगभग 25 किलोमीटर दूर जयपुर आगरा हाईवे पर गिरि के पास स्थित है, इसे जयपुर का मथुरा कहा जाता है। यहाँ का लक्ष्मी जगदीश मंदिर लोक आस्था का एक महत्वपूर्ण केंद्र है!

(vi) जैन मंदिर : आगरा रोड पर बने इस अति सुंदर जैन मंदिर की दीवारों में जयपुर शैली में उन्नीसवीं शताब्दी के बेहद खूबसूरत चित्र हैं।

(vii) मोती डूंगरी और लक्ष्मी नारायण मंदिर : मोती डूंगरी एक निजी हिलटॉप किला है जो स्कॉटलैंड में एक किले की तरह बनाया गया है। कुछ साल पहले पहाड़ी पद्गिरी पर स्थित गणेश मंदिर और अद्भुत लक्ष्मी नारायण मंदिर भी उल्लेखनीय हैं।

3. जयपुर के प्रमुख महल और किले

(i) जल महल : जयपुर आमेर मार्ग पर जल महल नामक एक स्मारक के निर्माण का श्रेय सवाई जय सिंह को दिया जाता है, ईश्वर विलास महाकाव्य और दस्तूर कोमवर की जानकारी के अनुसार, सवाई जय सिंह ने पानी की आपूर्ति के लिए गर्भ नदी पर एक बांध बनाया था जयपुर और मान सागर तालाब का निर्माण यह कहा जाता है कि सवाई जय सिंह ने इस जलमहल में अश्वमेध यज्ञ में आमंत्रित ब्राह्मणों के भोजन और विश्राम की व्यवस्था की थी, जैसे कि मध्ययुगीन महल जो एक दो मंजिला और के रूप में बनाया गया है इसकी ऊपरी मंजिल के चारों कोनों पर बुजुर्ग छतरियों और सीढ़ीदार जीन के साथ वर्ग। केंद्र में बड़ों और बाराहड़िया संगमरमर की छतरियाँ आठ-खंभों पर आधारित हैं!

(ii) हवा महल : हवा महल का निर्माण महाराजा सवाई प्रताप सिंह ने 1799 में करवाया था। यह पांच मंजिला इमारत है। हवा महल की निर्माण कला की यह विशेषता है कि यद्यपि यह भवन स्वदेशी निर्माण विधि से बनाया गया है, फिर भी इसमें प्रकाश और वायु संचार की समुचित व्यवस्था है।

(iv) मुबारक महल : मुबारक महल को सवाई माधोसिंह ने एक गेस्ट हाउस के रूप में बनवाया था

(v) बादल महल : ताल कटोरा के किनारे ओडी का शिकार जय सिंह ने बादल निवास के नाम से किया था।

(vi) राजा ईश्वरी सिंह की छतरी : बादल महल के उत्तर पश्चिम में एक रास्ता शहर के महल परिसर में ईश्वरी सिंह की छतरी की ओर जाता है

(v) जयगढ़ किला : जयगढ़ किले में स्थित पहाड़ियों पर खड़ी एशिया की सबसे बड़ी तोप महाराजा सवाई जय सिंह द्वारा यहां बनाई गई पुरानी खराद मशीन अपने रूप में सुरक्षित है।

4. जयपुर के प्रमुख उद्यान और उद्यान

(i) कनक वृंदावन बाग : कनक वृंदावन बाग का नाम राजा सवाई जय सिंह द्वारा रखा गया था कनक वृंदावन बाग कनक घाटी में नाहरगढ़ पहाड़ी की वनस्थली तलहटी में स्थित है। कनक घाटी अरावली रेंज में एक हाथी मार्ग रहा है। कनक घाटी की पवित्रता और शांति ऐतिहासिक संदर्भों से भरी है। यह घाटी अश्वमेध यज्ञ का पवित्र स्थान भी रही है। यह उद्यान जयपुर के सबसे लोकप्रिय रंगीन पिकनिक स्पॉटों में से एक है, जिसमें खूबसूरत लैंडस्केप लॉन, सुंदर फव्वारे, शानदार झीलें हैं और यह फिल्म शूटिंग का स्थान है। कनक वृंदावन बाग एक बड़े क्षेत्र में फैला है और इसमें संगमरमर के स्तंभों और जाली की खिड़कियों के साथ बेज पत्थरों का मंदिर है।

(ii) मांझी का बाग : वर्तमान में, राज महल पैलेस होटल परिसर वस्तुतः सिसोदिया रानी का निवास स्थान है, महाराजा माधोसिंह की माँ, महाराजा जय सिंह ने 1729 में अपनी प्रिय रानी के लिए एक सुरम्य उद्यान बनाया था।

(iii) विद्याधर का बाग : जयपुर के प्रमुख उद्योगपति और शहर के योजनाकार के नाम पर निर्मित, यह उद्यान फव्वारे और कुंड के साथ पहाड़ियों से घिरा हुआ है।

(iv) रामनिवास बाग : कहा जाता है कि रामनिवास बाग का निर्माण महाराजा सवाई राम सिंह ने अकाल राहत कार्यों के तहत 4 लाख रुपये की लागत से करवाया था!

(v) जय निवास गार्डन : राजा जय सिंह ने अपने समय का भारत का सबसे बड़ा और भव्य बगीचा लगाया था।

5. अन्य महत्वपूर्ण स्थान

जयपुर अपने ऐतिहासिक और रमणीय स्थानों के लिए हर जगह प्रसिद्ध है, यहाँ के कई स्थान ऐतिहासिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं!

(i) सिटी पैलेस : सिटी पैलेस जयपुर में पार्कोटा के कुल क्षेत्रफल के सातवें भाग में स्थित है। इसके प्रवेश का मुख्य रास्ता त्रिपोलिया गेट है। यह स्थान पारंपरिक राजस्थानी और वास्तुकला की मुगल शैली पर बना है। मुबारक महल दीवान-ए-खास दीवान-ए- यह आम है

(ii) जंतर मंतर : जंतर मंतर 1734 में जयपुर शहर की स्थापना से पहले बनाया गया था। सवाई जय सिंह द्वारा निर्मित इस वेधशाला का अंतर्राष्ट्रीय महत्व है। इसका निर्माण सूर्योदय और सूर्यास्त और उस समय के नक्षत्रों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए किया गया था। वेधशाला दिल्ली में बनाई गई थी, उसके बाद उज्जैन, बनारस और मथुरा में वेधशालाएँ थीं।

(iii) स्टेच्यू सर्किल : राजस्थान का सबसे जीवंत शहर जयपुर, कई रंगों में रंगा हुआ है और पूरे देश में अपनी भव्यता और रॉयल्टी के लिए जाना जाता है। इस गुलाबी शहर का सबसे प्रसिद्ध लैंडमार्क है स्टेच्यू सर्किल। शहर के मध्य में स्थित, यह स्थान आपके देखने के लिए एक आम ख्रष्य हो सकता है, लेकिन यह इससे बहुत अधिक है। यह स्थानीय लोगों और पर्यटकों के लिए एक लोकप्रिय हैंगआउट है। स्टेच्यू सर्किल को इसका नाम इसके आकार के कारण मिला था, न कि इसमें स्थित सवाई जय सिंह की प्रतिमा के कारण।

(iv) राज मंदिर सिनेमा : प्रसिद्ध राज मंदिर सिनेमा हॉल अपनी प्राचीन वास्तुकला के लिए जाना जाता है और यह शहर का गौरव है। वास्तुकला के इस अजूबे को 'प्राइड ऑफ एशिया' का गौरव भी प्राप्त हुआ है।

(v) अल्बर्ट हॉल : यह जयपुर का सबसे पुराना संग्रहालय है और 19 वीं शताब्दी में सर सैमुअल जैकब द्वारा बनाया गया था। इसे राजस्थान सरकार संग्रहालय या केंद्र सरकार संग्रहालय के रूप में भी जाना जाता है। यह खूबसूरत इमारत राम निवास बाग में

स्थित है और इंडो अरब वास्तुकला के संयोजन के रूप में खड़ा है। यहां आपको कई कलात्मक वस्तुओं जैसे कि कालीन, पेंटिंग, पत्थर, हाथी दांत, धातु से बने शिल्प, क्रिस्टल के रंगीन काम और राजस्थान की शाही परंपरा को दर्शाती हर चीज का समृद्ध संग्रह मिलेगा।

(v) बिड़ला तारामंडल : जयपुर में बिड़ला तारामंडल लोगों को आकाशगंगा और सितारों के अनजाने तथ्यों से अवगत कराता है। 1993 में दो साल की कड़ी मेहनत के बाद एक स्वचालन प्रणाली भी स्थापित की गई थी!

(vi) रामगढ़ झील : यह झील पहले से ही सुंदर जयपुर शहर की सुंदरता को जोड़ती है। यह झील जयपुर से सिर्फ 25 किलोमीटर की दूरी पर है! यह झील जयपुर की सुंदरता को बढ़ाती है और इसे स्वर्ग का स्वर्ग बनाती है। रामगढ़ की कृत्रिम झील के साथ जयपुर धन्य है। रामगढ़ झील, रामगढ़ के मनोरम परिखृष्य के बीच दुनिया भर से पर्यटकों को आकर्षित करती है।

(v) जवाहरात : जयपुर का नाम गहनों के निर्माण और व्यापार में विश्व प्रसिद्ध है। नगीना कारी का काम भी विश्व प्रसिद्ध है। यह शहर पीतल की नक्काशी वाली मीनाकारी के लिए भी प्रसिद्ध है, यहाँ संगमरमर की मूर्तियां भी बनाई गई हैं, जो देश विदेश में निर्यात की जाती हैं। चंदन लकड़ी के खिलौने और नीले रंग के बर्तनों के लिए भी प्रसिद्ध है। कृपाल सिंह नीले बर्तनों के लिए प्रसिद्ध हैं!

(vi) रंगाई-छपाई : छपाई छपाई: जयपुर से 13 किमी दूर, पंचायत समिति मुख्यालय सांगानेर छपाई और कागज बनाने के लिए प्रसिद्ध है।

आरती जाजू 16 साल में 14 साल के बाद सबसे छोटी हैं और उन्होंने क्रमश: ग्रेजुएशन और एमए करके लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड में नाम दर्ज कराया है।

यहाँ गुजरात, और मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में बहुत लोकप्रिय हैं। यहां लकड़ी के थप्पड़ों से कपड़े पर छपे हुए प्रिंट होते हैं। ज्यादातर मुसलमान रंगाई और बंधाई का काम करते हैं। जयपुर में रंगाई और छपाई बहुत अच्छी है।

(vii) संग्रहालय : रामनिवास बाग की भारतीय और फारसी शैली में बनी इस शानदार इमारत का निर्माण 1876 में किया गया था।

(viii) सांभर : जयपुर से 94 किलोमीटर दूर सांभर, उत्तर भारत के चौहान राजाओं की पहली राजधानी थी। झील से तैयार नमक यहाँ निर्यात किया जाता है।

(ix) बस्सी : इस राज्य की पहली मेट्रो डेयरी 100 करोड़ रुपये की लागत से स्थापित की गई है।

(x) बैराठ : शाहपुर अलवर मार्ग पर स्थित बैराठ के लिए कहा जाता है कि पांडव अपने निर्वासन में रहते थे, यहाँ अभी भी ऐसे स्थान हैं जो स्मृतियों को वापस लाते हैं, अशोक का भब्रू अभिलेख यहाँ से प्राप्त हुआ है।

(xi) बगरू प्रिंट : जयपुर से 30 किलोमीटर दूर राष्ट्रीय राजमार्ग 8 पर स्थित बगरू की कुल आबादी 20 हजार है, जिसमें 5000 महिला पुरुष कपड़े छपाई के काम में लगे हुए हैं, यह प्रिंट बगरू प्रिंट के रूप में प्रसिद्ध है।

(xii) डिग्गी : जयपुर से लगभग 70 किलोमीटर दक्षिणपूर्व में स्थित, डिगिपुरी के राजा कल्याण जी के मंदिर के लिए प्रसिद्ध है।

(xiii) गेटोर : यह नाहरगढ़ किले, सुंदर संगमरमर और जयपुर के पूर्व महाराजाओं के कलात्मक छत्रियों के तहत बनाया गया है।

(xiv) गलता जी : शहर की पूर्वी पहाड़ियों के बीच, गलता एक प्रमुख तीर्थ स्थल है, गलता कुंड में गोमुख से लगातार पानी बहता है।

(xv) बाणगंगा : तहसील विराट नगर के पास बाणगंगा नामक एक तीर्थ है, जो बाणगंगा का उद्गम स्थल है, यहाँ पांडवों का मध्यकालीन मंदिर और देवों का आधुनिक मंदिर दर्शनीय हैं।

निष्कर्ष

यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि जयपुर शहर पर्यटकों के लिए सबसे अच्छी जगह है। जयपुर के विशाल आकर्षण और प्राकृतिक आवास अद्भुत हैं। जयपुर की संस्खृति, वास्तुकला, परंपरा, कला, आभूषण और वस्त्र हमेशा यात्रियों द्वारा पोषित होते हैं। जयपुर शहर एक ऐसा शहर है जिसे आधुनिकीकरण के बाद भी अपनी प्राचीन सभ्यता और गौरवशाली अतीत के लिए माना जाता है। आज इस गुलाबी शहर को देखने के लिए दुनिया भर से हजारों पर्यटक आते हैं। त्यौहार, मेले और त्यौहार यहाँ पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र रहे हैं। राजसी किलों और हवेलियों, विशाल प्राख्रतिक उद्यान, सुंदर मंदिर, शांत परिखृष्य और समृद्ध और सांस्ख्रतिक विरासत जयपुर को दुनिया भर के पर्यटकों के लिए एक आदर्श स्थान बनाते हैं। इस शहर में कदम रखते ही जयपुर का नज़ारा आपको बहुत मंत्रमुग्ध कर देता है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि जयपुर पर्यटन के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ पुस्तक सूची

1. पर्यटन भूगोल, डॉ. नोशाबा परवीन, 2017
2. पर्यटन भूगोल, राजेश शुक्ला एवं रश्मि शुक्ला, 2015
3. खवींद्र कुमार दुलार, राजस्थान और धार्मिक पर्यटन केंद्र, पेमाराम (सं।) राजस्थान में धर्म और आस्था, नवजीवन प्रकाशन, टोंक, 2004
4. सिंह, जगदीश, पर्यटन व्यवसाय और विकास, तेज प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. रावत, ताज, (2002), पर्यटन विकास के विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. जोशी, अतुल, कुमार, अमित और जोशी, महिमा, (2010), भारत में आधुनिक पर्यटन, रावत प्रकाशन, जयपुर।
7. राजस्थान का भूगोल, प्रोफेसर एच एस शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
8. जिला जयपुर, 2011, आर्थिक और सांख्यिकी विभाग।
9. राजस्थान पर्यटन विभाग, जयपुर।

'हिन्द स्वराज' में वर्णित विचारों का आज के भारत के लिए प्रासंगिकता का सवाल

डॉ0 शैलेन्द्र कुमार सिंह

महात्मा गांधी के चिंतन में 'हिन्द स्वराज' का वही स्थान और महत्व है जो कार्ल मार्क्स के चिंतन में कम्युनिस्ट घोषणा पत्र का, बौद्ध आन्दोलन में बज्र सूची का और ज्योतिष फल के चिंतन में गरीबगीरी का। उन सबमें पारस्परिक फर्क बहुत है और उनका तुलनात्मक अध्ययन करना यहां उद्देश्य नहीं है। 'हिन्दी स्वराज' को लिखे और छपे एक सौ वर्ष हो गये। उस ऐतिहासिक कारण से 'हिन्द स्वराज' की प्रासंगिकता की चर्चा गांधीवादियों के अलावा दूसरे लोग भी कर रहे हैं। चर्चा के और भी कई कारण हैं। आज भारत एक ऐसी जगह पहुंच गया है, उसे चौराहा, तिराहा आदि नहीं कर सकते, बल्कि सच यह है कि वहां से कोई रास्ता निकलता दिखाई नहीं पड़ता। यों प्राय: कोई भी राजनीतिक दल उनके साथ जनता के लंबे या संक्षिप्त राजनीतिक अनुभवों के बावजूद यह कह रहे हैं कि जनता को सही रास्ते पर वही ले जा सकते हैं। हालांकि जनता उनको परख चुकी है। आज की राजनीति परिस्थिति की एक विशेषता यह है कि पिछले दो-तीन दशकों में सभी राजनीतिक दल कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में शासन में रहे हैं। सबके अनुभव एक जैसे नहीं रहे हैं, केरल और पश्चिम बंगाल में वामपंथी मोर्चे के शासन के साथ जनता के अनुभव अलग तरह के रहे हैं, अन्य राज्यों में या केन्द्र में भी कांग्रेस भाजपा के अलावा क्षेत्रीय दलों के भी अनुभव रहे हैं। फर्क के बावजूद कुछ लोग हैं जो जनता को यह धारणा देते रहे हैं कि सभी राजनीतिक दल एक जैसे हैं। जनता वास्तव में फर्क का विश्लेषण नहीं कर पाती, इसीलिए वह किंकर्तव्य विमुढ़ है। एक प्रश्न जोरदार ढंग से आ रहा है कि क्या विकल्प है–दक्षिणपंथ, वामपंथ, मध्य मार्ग या क्या ? नेहरू-मॉडल, लोहिया जय प्रकाश मॉडल या संघ परिवार का मॉडल! गांधीवाद, मार्क्सवाद या अम्बेडकरवाद या और कुछ, कौन जनता की जरूरत का रास्ता दिखा सकता है ?

इस परिस्थिति में कुछ बचे-खुचे गांधीवादी, सर्वोदयी कांग्रेसी आदि गांधीजी की प्रासंगिकता बताते हुए हिन्द स्वराज की भी चर्चा करते हैं। यों हकीकत यह है कि गांधी और हिन्द स्वराज की प्रासंगिकता बताने वाले सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता और नेता तथा ऐसे ही विद्वजनों में कोई गांधीजी की कसौटी पर शायद ही गांधीवादी के रूप में खरे उतरें। हिन्द स्वराज को भारत की समस्याओं के समाधान का 'गुटका' समझने वाले बहुत-से लोगों ने हिन्द स्वराज को पढ़ा ही नहीं, ऐसा मुझे लगता है। हिन्द स्वराज के समर्थकों को लगता है कि कम्युनिस्ट गांधीवाद और गांधीजी के विरोधी हैं। लेकिन मैं महसूस करता हूँ कि हिन्द स्वराज की अनेक स्थापनाओं और मान्यताओं से बहुत से गांधी-समर्थक भी सहमत नहीं हो सकेंगे। दूसरी तरफ अनेक स्थापनाओं से कम्युनिस्ट सहमत हो जाएंगे। जैसे मार्क्स ने कहा था कि मैं मार्क्सवादी नहीं हूँ, वैसे गांधीजी भी अपने को गांधीवादी नहीं कहते थे। मैं यहां गांधीवाद की चर्चा या व्याख्या नहीं कर रहा हूँ, हां हिन्द स्वराज की मुख्य स्थापनाओं और मान्यताओं की चर्चा और व्याख्या करने की कोशिश कर रहा हूँ।[1]

हिन्द स्वराज में एक इतिहास दृष्टि है सबसे पहले, जिसके जरिये भारत पर अंग्रेजी राज कायम होने के कारणों और उनके बने रहने की स्थितियों का बहुत संक्षिप्त जिक्र गांधीजी ने किया है। यह महत्वपूर्ण है और उन पर गौर करने की जरूरत है। यहां गांधीजी किसी कष्टता या परिकल्पना के पीछे किसी भौतिक परिस्थिति को भारत के रूप में देखते हैं, यह ध्यान देने लायक है। गांधीजी कहते हैं–''हिन्दुस्तान अंग्रेजों ने लिया, वो बात नहीं है, बल्कि हमने उन्हें दिया है। हिन्दुस्तान में वे अपने बल से नहीं टिके हैं, बल्कि हमने उन्हें टिका रखा है। वह कैसे सो देखें। आपको मैं याद दिलाता हूँ कि हमारे देश में दरअसल व्याख्या के लिए आये थे। ''गांधीजी कहना चाहते हैं कि उस समय के भारतीयों की आर्थिक, राजनीतिक भूमिका ने अंग्रेजों में राज्य कायम आने की प्रेरणा

भी जगायी है। गांधीजी आगे कहते हैं–''कंपनी के लोगों की मदद किसने की ? उनकी चांदी देखकर कौन मोह में पड़ जाता था ? उनका माल कौन बेचता था ? इतिहास सबूत देता है कि यह सब हम ही करते थे। जल्दी पैसा पाने के मतलब से हम उनका स्वागत करते थे। हम उसकी मदद करते थे।''[2] हकीकत तो यह भी है कि अंग्रेज जब यहां आये थे तब माल लेकर नहीं, बल्कि यहां का माल ले जाकर यूरोप के बाजारों में बेचते थे। तब यूरोप का सोना यहां आता था। बाद में तो इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों से भी माल लाकर बेचने लगे और जब उन्होंने यहां राज कायम कर लिया तो राजसत्ता का उपयोग वे भारत को कच्चे माल का उत्पादक और उसके तैयार माल का बाजार बना दिया। वह क्रूर और राजसत्ता थी। जिसने भारत को लूटा और बर्बाद किया तथा अपना उपनिवेश बना लिया।

हिन्द स्वराज में गांधीजी की तो मान्यताएं हैं, उनको कैसे समझायें यह भी गांधीजी ने संकेत से बता दिया है। प्रो0 गोपाल कृष्ण गोखले का रुख अंग्रेजी राज के पति नरम था। इससे कुछ लोग समझते थे कि वे अंग्रेजों के प्रति दोहरा रुख रखते थे। इसी प्रसंग में गोखले से पहले हुए दादा भाई नौरोजी का भी जिक्र हुआ है। इन दोनों बड़ी हस्तियों को समझाने के लिए गांधीजी एक कहावत का जिक्र करते हैं–उतावली से आम नहीं पकते, दाल नहीं पकती। इसी रु0 से उन दोनों नेताओं को और गांधीजी को भी समझने का सूत्र मिलता है। गांधीजी सकारात्मक बात निकालते हैं। यह पहली बात है गांधीजी कहते हैं–''हिन्द का खून अंग्रेजों के खून ने चूस लिया है, यह सिखाने वाले मानवीय दादा भाई हैं'' इतिहास में एक परंपरा होती है, जिसे वे देखते हैं, इसीलिए कहते हैं–जिसे सीढ़ी से हम ऊपर चढ़े उसको लात न मारने में ही बुद्धिमानी है।'' यही नजरिया वे प्रो0 गोखले के बारे में भी अपनाने की सलाह देते हैं। वे कहते हैं–''प्रो0 गोखले के बारे में भी ऐसा ही समझना चाहिए। क्या हुआ प्रो0 गोखले हमारे साथ नहीं दौड़ते हैं।'' इसी के साथ मिला कर इस कथन को भी देखना चाहिए, तभी दादा भाई या गोखले या कोई और समझ में आ सकते हैं–''वे (गोखले) जो कुछ कहते हैं, वह किसी की खुशामद करने के लिए नहीं, बल्कि सही मात्र का कहते हैं। इसलिए हमारे मन में उनके लिए पूज्य भाव होना चाहिए।[3]

गांधीजी कहते हैं कि जो अपनी परंपरा को, विरासत को ठीक ढंग से नहीं समझेगा, वह कमजोर होगा। अंग्रेजों के प्रति नरम रुख रखने वाले उनसे लाभ उठाने वाले स्वार्थी नहीं थे, बल्कि उनकी समझ स्वाधीनता संघर्ष के प्रति ऐसी ही थी। इस तरह से हमारी स्वाधीन चेतना का विकास हुआ। गांधीजी ने जिक्र नहीं किया है, लेकिन उल्लेखनीय है कि सन् 1865 में दादा भाई नौरोजी की एक पुस्तक अंग्रेजी में छपी थी, जिसमें यह वर्णित था कि किस प्रकार अंग्रेजों ने भारत को लूटा। मुझे महसूस होता है कि दादा भाई की इस पुस्तक का प्रभाव भारतेन्दु युग के लेखकों पर गहरा है।

गांधीजी की इतिहास दृष्टि में यह प्रश्न भी है कि स्वाधीनता की चेतना का उदय भारत में कब, किसके जरिए हुआ। इस प्रश्न के उत्तर में पहले तो उन्होंने उन दोनों नेताओं का जिक्र किया ही है उसके बाद कांग्रेस संगठन को श्रेय देते हैं। वे कहते हैं–''कांग्रेस ने हिन्द को स्वाधीनता का रस चखाया।'' इसी के साथ यह भी कहते हैं कि ''बंग-भंग से जो धक्का अंग्रेजी हुकूमत को लगा है, वैसा और किसी काम से नहीं लगा''।

यद्यपि गांधीजी स्वाधीनता की चेतना का यहां इतिहास नहीं लिख रहे हैं, फिर भी बात ऐतिहासिक ढंग से कहते हैं। इसलिए यह ध्यान देने की बात है कि गांधी सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम का जिक्र नहीं करते। इतिहासकार यह बताते हैं कि 1857 का संघर्ष स्वाधीनता के लिए था और वह इतना जबर्दस्त था कि उसने अंग्रेजी राज की जड़ें हिला दी थीं और एक बड़े अंग्रेज अधि कारी ने लिखा कि यह लड़ाई हमने जीती नहीं, हिन्दुस्तानियों ने ही जीतकर हमें सत्ता दे दी। लेकिन यह संघर्ष हथियार बंद था और उसकी शुरुआत सैनिक विद्रोह से हुई थी, इसलिए यहां पर गांधीजी उसका जिक्र नहीं करते। स्वाधीनता संघर्ष की गांधीजी की परंपरा में 1857 नहीं आता है। इसी से ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति और स्वाधीनता के लिए संघर्ष के रूप के प्रति गांधीजी का रुख स्पष्ट हो जाता है। बात यह है कि गांधीजी संघर्ष के रूप को मुख्य मानते हैं यानी 'साधन' शुद्ध होना चाहिए तथा साध्य शुद्ध रहेगा। अत: अहिंसा को उन्होंने संघर्ष का स्थायी रूप माना है। माना ही नहीं अपने जीवन में उन्होंने उसका पालन भी किया है। 1957 के संघर्ष के साथ एक बात और है कि वह सैनिक विद्रोह से शुरू होता है। इस विद्रोह के प्रति गांधीजी का रुख आगे स्वाध ीनता संग्राम में कई बार प्रकट होता है। सन् 1930 में पेशावर में गढ़वाली सैनिकों ने लाल कुर्ती वाले किसानों पर गोली चलाने से इनकार करके अहिंसा का पालन किया, लेकिन गांधीजी ने उनका समर्थन करने के बदले कहा, उन्होंने सेना का अनुशासन तोड़ा है। सन् 1946 के नौ सैनिकों के विद्रोह का भी गांधीजी और कांग्रेस ने समर्थन नहीं किया था।

इसी प्रसंग में ध्यान इस बात पर जाता है कि आधुनिक युग के साथ जो वैज्ञानिक और तकनीकी का विकास हुआ उसके प्रति हिन्द स्वराज में गांधीजी का रुख क्या है। इस विकास के आधाार पर विकसित सभ्यता के बारे में गांधीजी कहते हैं–''यह सभ्यता बिगाड़ करने वाली है। इसे वे औद्योगिक विकास कहते हैं। इसके ऐतिहासिक विकास के बारे में वे कहते हैं–''पहले जब लोग लड़ना चाहते थे एक-दूसरे का शरीर-बल आजमाते थे। आज तो तोप के एक गोले से हजारों जानें ली जा सकती हैं। यह सभ्यता की नादानी है। पहले लोग खुली हवा में जितना अपने को ठीक लगे उतना काम स्वतंत्रता से करते थे। अब हजारों आदमी अपने गुजारे के लिए इकट्ठा होकर बड़े कारखानों या खादानों में काम करते हैं, उनकी हालत जनता से भी बदतर हो गयी है। उन्हें सीसे वगैरह के कारखानों में जान को जोखिम में डालकर काम करना पड़ता है। इसका लाभ पैसेदार लोगों को मिलता है।

'पहले' शब्द के जरिये गांधीजी उद्योगों के विकास के पहले के समय के बारे में कह रहे हैं। एक बात ध्यान देने की है कि गांधीजी समय की व्यवस्था के लिए इतिहास और समाजशास्त्र में प्रचलित नाम सामन्तवाद का जिक्र नहीं करते। दूसरी बात यह है कि उस समय अपनी मर्जी के अनुसार खुली हवा में स्वतंत्रता से काम करते थे, यह बात समाज विकास और सामन्तवाद के चरित्र से कतई मेल नहीं खाती। सामंतवाद में मेहनत करने वालों को मालिक चुनने की आजादी नहीं थी। उन्हें बेगारी करनी पड़ती थी। दूसरे रोजगार वालों को भी सलामी देनी पड़ती थी। मर्जी तो केवल सामन्तों की चलती थी। लेकिन गांधीजी ने उसको छोड़ दिया है। औद्योगिक सभ्यता के बारे में भी ध्यान देने की बात है कि वे उसके लिए प्रचलित नाम पूंजीवाद का जिक्र नहीं करते। हां, उसके अधीन मजदूरों की दुर्दशा के बारे में उन्होंने ठीक लिखा है कि उनकी हालत जानवर से भी बदतर हो गयी है। जान जोखिम में डालकर काम करना पड़ता है। लेकिन लाभ मिलता है पैसेदारों को। इसीलिए पूंजीपति कहने से वे परहेज करते हैं। क्यों ? यह सोचिए। वास्तविकता यह है कि कोई सभ्यता औद्योगिक सभ्यता नहीं होती, वह तो पूंजीवादी सभ्यता होती है। आगे गांधीजी कहते हैं कि यह सभ्यता अधर्म है और यह यूरोप में इतने दर्जे तक फैल गयी है कि वहां के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते हैं।''[4]

गांधीजी की चिंतन-पद्धति में सामाजिक आधार को स्वीकार नहीं किया जाता। वे समाज को देख रहे हैं, लोगों के व्यवहार को देख रहे हैं, भौतिक भोग-विलास को देख रहे हैं, किसी प्रेरणा के परिणामों को भी देख रहे हैं, जो धन को सर्वोपरि मानने की ओर निर्दिष्ट है। वे यह नहीं सोचते कि ऐसा क्यों है ? सिर्फ यह कह देते हैं कि यह धर्म कहीं, अधर्म है। यहीं पर यह समझ लेना प्रासंगिक होगा कि गांधीजी के लिए धर्म का क्या अर्थ है। वे कहते हैं–मुझे धर्म प्यारा है, इसलिए पहला दुख मुझे यह है कि हिन्दुस्तान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। धर्म का अर्थ मैं हिन्दू, मुस्लिम या किसी अन्य धर्म नहीं करता। लेकिन इन सब धर्मों से उम्दा जो धर्म है, वह हिन्दुस्तान से जा रहा है। हम ईश्वर से विमुख होते जा रहे हैं।'' जाहिर है कि गांधीजी ईश्वर के प्रति आस्था और निष्ठा को ही धर्म मानते हैं। प्राचीन काल के अंतिम दौर में और मध्यकाल में धर्म को ईश्वर के प्रति समर्पण का अर्थ दिया गया। गांधीजी इसे ही अपनाते हैं। पूंजीवाद में निष्ठा पूंजी के प्रति होती है, आशक्ति पूंजी के प्रति होती है और पूंजी ज्यादा मुनाफे से बढ़ती है, गांधीजी का जीवन-मूल्य इसे इनकार करता है और अधर्म कहता है। गांधीजी ने एक जगह कहा है–''नेपोलियन ने अंग्रेजों को व्यापारी प्रजा कहा है। वह बिल्कुल ठीक बात है वे जिस देश को (अपने काबू में) उसे व्यापार के लिए रखते हैं, यह जानने लायक है। उनकी फौजें और जंगी बेड़े सिर्फ व्यापार की रक्षा के लिए हैं।''

तत्कालीन साम्राज्यवाद के बारे में यह बात एकदम ठीक है, लेकिन गांधीजी तो साम्राज्यवाद को उपयोग नहीं करते। साम्राज्यवाद के चरित्र और भूमिका को वे अच्छी तरह समझ रहे थे, लेकिन कहीं भी वे वर्गीय शब्द या भाषा का सहारा नहीं लेते। इसीलिए व्यवस्था-परिवर्तन की बात नहीं करते। यों वे कहते हैं कि ''पैसा उनका (अंग्रेजों का) खुदा है यह ध्यान में रखने से सब बातें साफ हो जाएंगी।''

उससे गांधीजी के लिए विकल्प यह निकलता है कि लोगों में धर्म-भावना जगायी जाए, ईश्वरीय प्रेरणा जगायी जाए, उससे नैतिकता जगेगी और पूंजीपति, व्यापारी आदि अधर्म करना छोड़ देंगे, समाज धार्मिक और नैतिक हो जाएगा, फिर व्यवस्था परिवर्तन की क्या जरूरत है ? उन्हीं के शब्दों में कहिए–''हमें अपने बुनियादी लाभ बंद कर देना चाहिए और धार्मिक लाभ को खुला छोड़ देना चाहिए। हमारा उत्साह धार्मिक लाभ में ही रहना चाहिए।'' स्पष्ट है कि गांधीजी व्यवस्था-परिवर्तन के बदले हृदय-परिवर्तन चाहते हैं। उससे समाज में दुनिया में शांति होगी सुख होगा। अंग्रेजी राज में हिन्दुस्तान में जो शांति कुछ लोगों को दिखाती थी, उसे गांधी शांति नहीं मानते। वे कहते हैं–''और हाल की शांति तो नाम की है। मैं यह कहना चाहता हूं कि उस शांति से हम नार्मद नपुंसक और डरपोक बन गये हैं। मैकाले ने हिन्दुस्तानियों को नार्मद माना, यह उसकी अज्ञान दशा को बताया है। हिन्दुस्तानी नार्मद

कभी नहीं थे। बल तो निर्भयता में है।'' मैं यह मानता हूँ कि गांधी आश्चर्यजनक रूप से निर्भीक थे और उनकी छाया में रहने वाले भी निर्भीक हो जाते थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की पुस्तक ''बापू के कदमों में'' गांधीजी की निर्भीकता का जीवन और प्रेरणादयी वर्णन मिलता है। राजेन्द्र बाबू ने एक दिन गांधीजी से कहा कि वहां पुलिस बैठी रहती है, इससे काम करने में दिक्कत होती है। गांध ीजी ने कहा-इसका मतलब है कि तुम लोग पुलिस से डरते हो। पुलिस के अस्तित्व को भूल जाओ और अपना काम करो। दूसरे दिन से ऐसा ही हुआ। गांधीजी ने इस निर्भीकता का बहुत अच्छा प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में किया था। गांधीजी देश ने इस निर्भीकता का बहुत अच्छा प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में किया था। गांधीजी देश की स्वाधीनता के लिए सबसे पहले स्वाधीनता के लिए लड़ने वालों को स्वाधीन होने के लिए कहते हैं। यह बहुत बड़ी बात है। वे अधीनता की शांति को कायरता कहते हैं। निर्भीकता के बिना किसी में बल नहीं आ सकता, निर्भीकता ही बल है। गांधीजी ने भारतीय जनता में इसी तरह से बल का संचार किया। गांधीजी की यह चेतना और कार्य पद्धति अनुकरणीय है।

गांधीजी के समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का समन्वित रूप 'हिन्द स्वराज' में दिखाई पड़ता है जब यंत्रों के बारे में और कुछ समुदायों के बारे में, जैसे वकीलों और डॉक्टरों के बारे में अपनी राय व्यक्त करते हैं। ''आपके दिल'' में यह बात तुरंत उठेगी कि अगर रेल न हो तो अंग्रेजों का कब्जा हिन्दुस्तान पर जितना है, उतना तो नहीं रहेगा। रेल से महामारी फैली है। अगर रेलगाड़ी न हो तो कुछ ही लोग एक जगह से दूसरी जगह जा पायेंगे और इस कारण से संक्रामक रोग सारे देश में नहीं पहुंच पाएंगे। रेल से अकाल बढ़े हैं। क्योंकि रेलगाड़ी की सुविधा के कारण लोग अनाज बेच डालते हैं। जहां महंगाई हो वहां अनाज निकल जाता है। लोग लापरवाह बनते हैं और उससे अकाल बढ़ता है। रेल से दुष्टता बढ़ती है। लोग अपनी बुराई तेजी से फैला सकते हैं। हिन्दुस्तान में जो पवित्र स्थान थे वे अपवित्र बन गये हैं।

इन पंक्तियों में जो सामाजिक मान्यता छिपी है, उसका सही अर्थ यह है कि समाज की उत्पादक शक्ति बढ़ने से ही महामारी, अकाल, दुष्टता, अपवित्रता आदि में वृद्धि हुई है। अत: समाज को यदि इन विकृतियों से बचाना है, तो उसे पिछड़ी हुई दशा में ही रखना चाहिए। मैं यह उल्लेख कर चुका हूँ कि गांधी ने यह भी कहा कि यंत्रों और उद्योगों के विकास में पहले के समय में लोग अपने मन के मुताबिक खुली हवा में स्वतंत्र भाव से काम करते थे। गांधीजी यह नहीं मानते कि भारत में अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय चेतना का प्रसार भी रेलों के जरिये हुआ। शोषण और दमन करने में तो अंग्रेजों को सहूलियत हुई ही बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि अंग्रेजों ने रेलों का निर्माण भारत का शोषण और दमन करने के उद्देश्य से ही किया था। लेकिन इसी रेल से गांधीजी ने पूरे देश की यात्रा और पूरे डिब्बे को अपने आरक्षित करा कर की। जाहिर है कि गांधीजी के साथ सत्य, अहिंसा और राष्ट्रीयता का संदेश भी, स्वतंत्रता और सत्याग्रह का संदेश भी तेजी से फैला। भाप की इंजन वाला जहाज न आया होता तो शायद गांधीजी बैरस्टरी पढ़ने इंग्लैंड न जा पाते और फिर वकालत के लिए दक्षिण अफ्रीका न गये होते और तब वहां लोगों में निर्भीकता, स्वतंत्रता और सत्याग्रह का संदेश न फैला पाते। गांधीजी अपने ही अनुभवों को अपने विचारों में शामिल नहीं करते, यह आश्चर्यजनक है।[5]

यंत्रों का विरोध करके क्या गांधीजी पूंजीवाद का निषेध करके सामन्तवाद का पक्ष लेते हैं। नहीं, ऐसा नहीं है। वे अच्छी तरह समझते हैं कि ऐसा संभव भी नहीं है। लेकिन वे इस समस्या पर विचार नहीं करते कि आखिर यंत्रों का विकास मनुष्य ने किया ही क्यों ? यह समाज-विकास की जरूरत बन गई थी महंगाई, अकाल, मुनाफाखोरी आदि तो संपत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व के कारण पैदा हुई हैं विकास की जरूरत और प्रक्रिया को गांधीजी के चरखे के जरिये भी देखा जा सकता है। गांधीजी ने किसान चरखा चलाया और उसे प्रचारित किया, फिर यरवदा चरखा का इजाद कराया, जिसे चलाया जाना आसान था, हालांकि बनाना कुछ ज्यादा मुश्किल था। आगे चलकर गांधीवादी-सर्वोदयी ग्रामोद्योग की जरूरत से अम्बर चरखा बनाया गया। किसान और यरवदा चरखों में एक ही तकली थी, लेकिन अम्बर चरखों में तकली में जमा सूत को अलग निकाल कर घुंडी बनायी जाती है लेकिन अम्बर में वह काम स्वत: हो जाता है। अम्बर चरखे का और विकास किया गया, वह यह कि चार की जगह छह तकली बनायी गयी और चरखा लकड़ी के बदले लोहे का हो गया। अब आप गौर कीजिए कि लोहे से बनी अम्बर चरखे को बिजली लगा दी जाए, तो और एक नहीं पच्चीस-पच्चीस चरखे एक जगह लगा दें, तो वह कारखाना हो जाएगा और उसकी उत्पादन क्षमता बेहतर बढ़ जाती है। इस तरह ग्रामोद्योग चरखा कारखाने के पुतली घर तक पहुंच गया। मुझे एक किसान नेता ने कहा कि गांधीजी घोड़े पर सवार तो हुए, लेकिन अपना मुंह उन्होंने घोड़े की पूंछ की ओर कर के एड़ लगायी, तो घोड़ा बढ़ा अपने मुंह की दिशा में, जबकि पता नहीं क्यों गांध ीजी ने सोचा था कि घोड़ा गांधीजी के मुंह की दिशा से बड़ेगा । यह असंभव था। क्या इसी कारण गांधीजी यंत्रों की यंत्र-व्यवस्था की आलोचना करते हुए भी किसी कारखाने या खादान के पास सत्याग्रह करने नहीं गये, वैसे वे किसी सामंत के पास भी नहीं

गये, किसानों को आन्दोलित करने के बाद भी यों एक जगह गांधीजी कहते हैं कि मैनचेस्टर के मिलों के कपड़ों के बदले देशी मिलों में तैयार कपड़ों को स्वीकार किया जा सकता है। यह साम्राज्यवाद का विरोध तो है ही, स्वदेशी का नारा पहले-पहल तिलक ने दिया और साहित्य में तो सबसे पहले भारतेन्दु ने दिया 1882 या 83 में।[6]

गांधीजी यह नहीं मानते कि भारत में राष्ट्र की चेतना या समय अंग्रेजों के जरिये या रेल के जरिये आयी। यह समझ सही है। भारत में राष्ट्र की चेतना पहले से रही है। और वह राष्ट्र इतना उदार एवं लचीला रहा है कि दूसरे धर्म और रीति-रिवाजों वाले जो लोग यहां आये, उनका समावेश भारतीय राष्ट्र ने अपने में कर लिया। गांधीजी इस प्रसंग में कहते हैं–जो नये लोग उसमें (हिन्दुस्तान में) दाखिल होते हैं, वे किसी प्रजा में घुलमिल जाते हैं। ऐसा हो तभी कोई मुल्क एक राष्ट्र माना जाएगा। ऐसे मुल्क में दूसरे लोगों का समावेश करने का गुण होना चाहिए। हिन्दुस्तान ऐसा था और आज भी है। यों तो जितने आदमी उतने धर्म ऐसा मान सकते हैं। एक राष्ट्र होकर रहने वाले एक-दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते हैं, तो समझना चाहिए कि वे राष्ट्र होने के लायक नहीं हैं। अगर हिन्दू यह मानें कि सारा हिन्दुस्तान सिर्फ हिन्दुओं से भरा होना चाहिए, तो यह एक निरा सपना है। मुसलमान अगर ऐसा मानें कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहें तो उसे भी सपना ही समझिए। फिर भी हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई जो इस देश को अपना वतन मान कर बस चुके हैं, एक देशी हैं, एक मुल्की हैं, वे देशी-भाई हैं और उन्हें एक-दूसरे के स्वार्थ के लिए भी एक हो कर रहना पड़ेगा।''

इस लंबे उद्धरण से राष्ट्र के बारे में गांधीजी की जो मान्यता स्पष्ट हाती है उसक एक महत्वपूर्ण पहल यह है कि राष्ट्र के स्वरूप-निर्माण में धर्म की भूमिक नहीं रही है। ध्यान दीजिए कि गांधीजी धार्मिक व्यक्ति हैं, और धर्म का अर्थ ईश्वर मानते हैं, फिर भी वे राष्ट्र को धर्मनिरपेक्ष समझते हैं। दूसरी बात यह है कि एक राष्ट्र में रहने वालों के जीवन का स्वार्थ धर्म से परे होता है, इसीलिए धर्म की सीमाओं को लांघ कर विभिन्न धर्मों के लोग एक देश में एक मुल्क में रहते आये हैं और रह सकते हैं। ध र्मिक मान्यता निजी होती है और राष्ट्र की आवश्यकता बहुविध होती है, अत: बहुधर्मी अर्थात् धर्मों से परे होती है। राष्ट्र की आवश्कयता मनुष्य के जीवन जीने की आवश्यकता से बनती है। यही कारण है कि गांधीजी ने जो राजनीति की वह साम्प्रदायिक नहीं थी। वैज्ञानिक अर्थ में वह धर्मनिरपेक्ष भले ही न हो, फिर भी वह थी धर्मनिरपेक्ष ही। यों व्यवस्था में गांधीजी धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सर्व धर्म में समन्वय मानते थे, जो वास्तव में व्यावहारिक नहीं हो पायी।

गांधीजी ने समाज की बुराइयों को समाज के चरित्र में या यह कहें कि वर्गीय चरित्र में नहीं देखा, इसीलिए वे वकीलों और डॉक्टरों को बुराई फैलाने का भूल मान लेते हैं। वे कहते हैं–''मेरी राय है कि वकीलों ने हिन्दुस्तान को गुलाम बनाया है, हिन्दू-मुस्लिम झगड़े बढ़ाये हैं, और अंग्रेजी हुकूमत को मजबूत बनाया है। या वकील फर्ज हो जाता है कि वह मुवाक्किल की ओर जोर लगाये। अगर वह ऐसा नहीं करता तो माना जाएगा कि वह अपने पेशे को बट्टा लगाता है।''[7]

आगे वे यह भी कहते हैं कि ''वे मजदूर से ज्यादा रोजी क्यों कमाते हैं, उनकी जरूरतें मजदूर से ज्यादा क्यों है। उन्होंने मजदूरों से ज्यादा देश का क्या भला किया है। ये सारे प्रश्न बहुत ही प्रासंगिक हैं। लेकिन समाज में वर्ग-स्वार्थ की जो भूमिका होती है, उसे गांधीजी क्यों नजर अंदाज करते हैं ? यही तो मुख्य स्वार्थ होता है, जो मनुष्य को प्रेरित और संचालित करता है।

अब देखिए डॉक्टरों के बारे में गांधीजी का कथन–''अंग्रेजों ने डॉक्टरी विद्या से ही हम पर काबू जमाया है। डॉक्टरों की देश में भी कमी नहीं है। मुगल बादशाह को भरमाने वाला एक अंग्रेज डाक्टर ही था। अमीरों के पास पहुंचने वाले डॉक्टर ही हैं।'' गांध ीजी द्वारा जब डॉक्टरों और वकीलों को देश की गुलामी का कारण अथवा समाज की बीमारियों की जड़ मान लेने पर साम्राज्यवादी और पूंजीवादी दोनों ही पथ होते हैं। यदि वर्गीय दृष्टि से देखें तो यह बात स्पष्ट हो कर आएगी कि यह जो मध्य वर्ग है, वही समाज की आर्थिक-राजनीतिक परेशानी का कारण है। अत: पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ने और उनकी व्यवस्था को बदलने की क्या जरूरत है ? गांधीजी सोचते हुए धर्म का सहारा लेते हैं और जैसे यह कहा कि रेल हमें धर्म भ्रष्ट करती हैं वैसे ही यह भी कहते हैं कि ''अस्पताल पाप की जड़ है। डॉक्टर हमें धर्म भ्रष्ट करते हैं बहुत-सी दवाओं में चर्बी या दारू होती है।'' कितने वकील और डॉक्टर गांधीजी की इस बात से सहमत होंगे। मेरा ख्याल है कि एक भी नहीं। दूसरी ओर सभी पूंजीपति और उनके राजनीतिक प्रतिबिम्ब इससे सहमत हो जाएंगे ।

गांधीजी समाज की 'सच्ची सभ्यता' के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-''सभ्यता वह आचरण है, जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करने के मतलब हैं नीति का पालन करना, नीति के पालन का मतलब है अपने मन और इन्द्रियों को बस में रखना। ऐसा करते हुए अपने को (अपनी असलियत को) पहचानते हैं। यही सभ्यता है । इससे जो घिरा है वह

बिगाड़ करने वाला है।'' इससे बचने के लिए गांधीजी कहते हैं कि हमारे लाखों पुरखों ने भोग की हद बांध दी। गांधीजी कहते हैं–''बहुत सोच कर उन्होंने देखा कि सुख-दुख तो मन के कारण हैं। अमीर अपनी अमीरी के कारण सुखी नहीं है, गरीब अपनी गरीबी के कारण दुखी नहीं है।'' यही है गांधीवाद, जो बता रहा है कि मनुष्य के सुख-दु:ख का कारण न संपत्ति का ढेर है और न उसका अभाव। मन से सुखी-दुखी होते हैं लोग। कैसी अद्‌भुत मान्यता है। वस्तु और पदार्थ से समाज की व्यवस्था और सरकार की नीति एवं चरित्र से उसका कोई संबंध नहीं। क्या यह सच है सोचें लोग। भारतीय समाज के विकास के बारे में भी गांधीजी की धारणा अद्‌भुत है। वे कहते हैं कि हमारे पुरखों ने ''नाथ कारक छोड़ को समाज में जगह नहीं दी, सब अपना-अपना धंधा करते रहें। उसमें उन्होंने दस्तूर के मुताबिक दाम लिये। ऐसा नहीं था कि हमें यंत्र की खोज करना ही नहीं आता था। लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यंत्र वगैरह के झंझट में पड़ेंगे तो गुलाम ही बनेंगे और अपनी नीति को छोड़ देंगे।[8] यह भारतीय समाज के विकास की अथवा उसके ऐतिहासिक यथार्थ की सच्चाई नहीं है। गांधीजी तो आगे यह भी कहते हैं–''यों आम प्रजा तो उससे स्वतंत्र रहकर खेत का मालिकी हक मांगती थी। उसके पास सच्चा स्वराज्य था।'' भारतीय समाज की बनावट में पहले वर्ग-व्यवस्था फिर जाति प्रथा का जो भेदभाव पैदा हुआ उसमें पीढ़ीनुमा ऊंच नीच का संबंध कायम हुआ और इससे मिलने वाले सुख-दुख को पूर्व जन्म के कर्म का फल बताया। इस विषमता और उससे उत्पन्न शोषण-उत्पीड़न को धार्मिक आवरण से ढंक दिया तथा अन्याय का बचाव दिया, इन बातों को गांधीजी एकदम नजरअंदाज कर देते हैं। गांधीजी से मतभेद केवल कम्युनिस्टों का नहीं डॉ0 अम्बेडकर आदि का भी है। इस विचार-पद्धति पर गौर करने की जरूरत है। गांधी समाज में व्याप्त बुराइयों को ही नहीं अंग्रेजी की गुलामी से भी उबारने का मानसिक उपाय 'हिन्द स्वराज' में बताते हैं। वे कहते हैं–''हमारी (यानी व्यक्ति की) गुलामी मिट जाए, तो हिन्दुस्तान की गुलामी मिट गयी, ऐसा मान लेना चाहिए। इसमें अब आपको स्वराज की व्याख्या भी मिल जाती है। हम अपने ऊपर राज्य करें वही स्वराज्य है और वह स्वराज्य हमारी हथेली में है।'' यह ठीक ही कि जिसकी चेतना गुलाम होगी, जिसका दिमाग गुलाम होगा, वह स्वतंत्रता के लिए क्या लड़ेगा ? अब गांधीजी कहना चाहते हैं कि हर आदमी ऐसा सोच ले तो गुलामी खत्म। यह बड़ी बात है कि इसे हम गलत नहीं कहते। सुभाषचन्द्र बोस जी कहते थे कि डर इतनी बात न गांधीजी की और न नेताजी ने की। भारत के स्वाधीनता संग्राम में कमी घटित हुई।

गांधीजी के चिंतन में पश्चिम और पूरब के फर्क की बात लगातार रही है। गांधीजी ही नहीं तिलक के चिंतन में भी यह बात थी, बहुत से इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों और विचारकों की धारणा में भी यह बात रही है। लेकिन जिसे ये लोग पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति कहते हैं, वह वास्तव में पूंजीवादी है। बात यह है कि मशीनों, उद्योगों और उन पर आधारित पूंजीवाद का उदय पहले यूरोप में हुआ, जो हमसे पश्चिम में हैं, भारत में इस व्यवस्था का उदय मुगलकाल तक होने लगा था, लेकिन तब तक अंग्रेजी राज कायम हो गया और उसने भारत में पूंजीवाद के विकास को अवरुद्ध कर दिया। अवरुद्ध गति से अंग्रेजी राज के अधीन पूंजीवाद का उदय हुआ और समाज में, जीवन में चेतना में वे चीजें और बातें दिखायी पड़ने लगीं, जो पहले यूरोप में पैदा हुई थीं इसीलिए हमारे अनेक नेता और विचारक उसे पश्चिम का प्रभाव या नकल मानते हैं। यह बात ऐतिहासिक रूप से गलत है। एक बात यह भी है कि गांधीजी और उनके जैसे विचारक पूंजीवाद का जिक्र नहीं करते, क्योंकि एक व्यवस्था के रूप में वे उसे मिटाना नहीं चाहते। अपनी इच्छाओं का दमन करना है, आवश्यकताओं को सीमित कर देना है तो फिर व्यवस्था परिवर्तन की बात क्यों उठेगी। हकीकत यह है न इच्छाओं का दमन होता है और न आवश्यकताओं को सीमित किया जा सकता है, क्योंकि आज के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जागरण के प्रभाव में हर आदमी, समाज का हर तबका आधुनिक जीवन के साधनों और सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए लड़ रहा है। अत: इच्छाओं के दमन और आवश्यकताओं को सीमित करने की बात अप्रासंगिक हो गयी है। गांधीजी तो अपनी समस्या के अनुसार यह भी कह जाते हैं कि यदि अंग्रेजों की सभ्यता को खत्म कर दें तो उन्हें यहां से भगाने की क्या जरूरत है।[9]

स्वाधीनता संग्राम में ही गांधीजी का विकल्प बनने लगा था, जैसे भगत सिंह आदि के विचार जनसंघर्ष एवं समाजवाद के बारे में, फिर सुभाषचन्द्र बोस के विचार संघर्ष के रूप में और समाज-व्यवस्था के बारे में, अर्थतंत्र के योजनाबद्ध विकास के बारे में, उन सबकी गांधी ने उपेक्षा की बल्कि उनसे भी असहयोग किया।

गांधीजी ने सत्याग्रह और आत्मबल पर जोर दिया। इसकी अपनी प्रासंगिकता थी और आज भी है। अहिंसा की भी अपनी आवश्यकता है। गांधीजी की यह बात बहुत सही है कि जो तलवार चलाते हैं उनकी मौत तलवार से ही होती है।'' लेकिन इस प्रसंग में जब गांधीजी तुलसीदास की यह उक्ति उद्धृत करते हैं–

गांधीजी ने सत्याग्रह और आत्मबल पर जोर दिया। इसकी अपनी प्रासंगिकता थी और आज भी है। अहिंसा की भी अपनी आवश्यकता है। गांधीजी की यह बात बहुत सही है कि जो तलवार चलाते हैं उनकी मौत तलवार से ही होती है।'' लेकिन इस प्रसंग में जब गांधीजी तुलसीदास की यह उक्ति उद्धृत करते हैं–

दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान।
दुलसी दया न छाड़िय जब लागि घट में प्रान ।।

तो कहना पड़ता है कि दया उस समाज की चीज है, जिसमें अमीर और गरीब हैं, शोषक और शोषित है, बलशाली और कमजोर हैं, दया विषमता को दूर नहीं करती, धर्म की स्थापना नहीं करती। शोषक और बलशाली कभी पीड़ितों पर दया नहीं करते। दिनकर ने ठीक कहा है–क्षय थोपती उस भुजंग को जिसके पास गाल है।'' वैसे महाविध्वंसक ब्रिटिश साम्राज्यों के मुकाबले अहिंसा संघर्ष की जरूरत थी, गांधीजी सत्याग्रही के लिए चार बातें जरूरी मानते हैं–1. ब्रह्मचर्य, 2. गरीबी को अपना लेना, 3. सत्य का पालन करना और 4. हर हालत में निर्भीक बना रहना। ये बड़ी बातें हैं। गांधीजी समझते थे कि उनका पालन सबके लिए आसान नहीं है, इसीलिए वे कई बार जन-संघर्ष के बदले व्यक्तिगत सत्याग्रह पर जोर देते हैं।

'हिन्द स्वराज' पर इतनी लंबी चर्चा एक दम अधूरी रह जाएगी यदि उसमें दिये गये विकल्प की चर्चा की जाए। गांधीजी शिक्षा उपयोग, सामाजिक स्वरूप के बारे में संक्षेप में इस समाज से छुटकारे के उपायों के बारे में बताते हैं। इन सबके बारे में भी उनके विचार अनोखे हैं। वे कहते हैं कि एक किसान खेती करके रोटी कमाता है, आमतौर पर उसे दुनियादारी का ज्ञान है अपने मां-बाप आदि से व्यवहार करना वह जानता हैं। गांधी पूछते हैं–'इस आदमी को अच्छा ज्ञान देकर क्या करेंगे आप। कहने का अर्थ यह कि गांधीजी औपचारिक शिक्षा से ज्यादा जरूरी व्यावहारिक शिक्षा को देते हैं। साक्षरता से लेकर उच्च शिक्षा तक के बारे में गांधीजी का रूख एक जैसा है। उन्हीं के शब्दों को देखें-अब ऊंची शिक्षा को लें। मैं भूगोल विद्या सीखा, खगोल विद्या (आकाश के तारों की विद्या) सीखा, बीजगणित (एलजेब्रा) भी मुझे आ गया, रेखागणित का ज्ञान भी मैंने हासिल किया भूगर्भ विद्या को भी मैं सिख गया । लेकिन उससे मैंने अपना कौन-सा भला किया ? अपने आसपास के लोगों का क्या भला किया ?'' किस मकसद से मैंने वह ज्ञान हासिल किया ?'' इन प्रश्नों का यह अर्थ नहीं है कि ये विद्याएं निरर्थक हैं ? गांधीजी के मन में मुख्य बात यह है कि ज्ञान का चरित्र और उपयोग सामाजिक होना चाहिए। यदि ज्ञान की सामाजिक उपयोगिता नहीं है, तो फिर ज्ञान के लिए ज्ञान किस काम का ? गांधीजी यह कहना चाहते हैं। ध्यान देने योग्य है कि स्वयं गांधीजी ने वकालत पढ़कर उस ज्ञान का उपयोग लोगों की समुदाय की मुक्ति के लिए किया, अंतत: भारत की स्वतंत्रता के लिए किया। इस प्रसंग में गांधीजी ने अंग्रेजी के विख्यात लेखक हक्सले के मत से अपने को पुष्ट किया है। हक्सले कहते हैं–''उस आदमी ने शिक्षा पायी है, जिसकी बुद्धि युद्ध शांत और न्यायदर्शी है। उसने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियां उसके बस में है, जिसके मन की भावनाएं बिल्कुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामों से नफरत है और दूसरों को अपने जैसा मानता है।'' गांधीजी के मूल्यों का स्रोत भी उससे मालूम होता है। इस प्रसंग में गांधीजी की अंतिम बात मैं पाठकों को बताना चाहता हूं कि ''करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली वह सचमुच गुलामी की बुनियादी थी।'' गांधीजी मातृभाषा और अपनी भाषा को सबसे अधिक महत्वपूर्ण और जरूरी मानते हैं। गांधीजी ने राष्ट्र के लिए एक भाषा-नीति दी थी–1. मातृभाषा, 2. हिन्दुस्तान की एक दूसरी भाषा और 3. हिन्दी सबके लिए। वे यह भी कहते है कि सभी भाषाओं को उज्जवल और भावदार बनाना चाहिए। वे कहते हैं–''कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को और पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान को जो भाषा चाहिए वह तो हिन्दी ही होनी चाहिए। इस तरह राष्ट्रीय एकता कायम करनी वाली भाषा-नीति गांधीजी ने बतायी जिसे अपनाने की जरूरत आज भी है। राष्ट्रीय भाषा-नीति गांधीजी ने बतायी जिसे अपनाने की जरूरत आज भी है। राष्ट्रीय भाषा-नीति की बात करते हुए गांधीजी फिर एक बार आर्थिक आत्मनिर्भरता की बात करते हैं। वे कहते हैं–इस देश में पैदा होने वाली चीजों से ही हम काम चला लेंगे।

अंत में 'हिन्द स्वराज' में ऊपर कही हुई बातों या यह कहें कि पूरी पुस्तक में दिये गये विचारों को सूत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे सूत्र गांधी के मन में जो व्यवस्था थी, उसके स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हैं। यहां उन सूत्रों को उद्धृत करने की जरूरत नहीं है। अंतिम वाक्य पुस्तक में यह है–''मेरा मन गवाही देता है कि ऐसा स्वराज्य पाने के लिए मेरा यह शरीर समर्पित है।'' गांधी से मतभेद के बाद भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने अपने विचारों को लागू करने के लिए अपना शरीर लगा दिया यानी मन और तन की एकता, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्दियों की एकता का उदाहरण बेहिचक प्रस्तुत किया।

'हिन्द स्वराज' की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि यह पुस्तक 1909 में लिखी गयी थी और तब तक गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में ही काम करने का अनुभव प्राप्त किया था, भारत में नहीं। यह मोहनदास करमचंद गांधी के अनुभव और शान का इजहार है। आगे 1917 के चंपारण-सत्याग्रह के बाद से 1947 ई. तक गांधीजी ने भारतीय जनता का नेतृत्व किया। दोनों में कोई विरोध नहीं है, बल्कि उनमें पहले खण्ड और दूसरे खण्ड जैसा अभिन्न संबंध है। फर्क अगर कुछ है तो यही कि दूसरे खण्ड में गांधीजी प्रसिद्धि प्राप्त करके आते हैं और महात्मा का आदर पाते हैं। आगे चलकर गांधीजी ने ट्रस्टीथिप का सिद्धांत दिया जो हिन्द स्वराज को सूत्रों के आगे बढ़ता है। हिन्द स्वराज की ऐतिहासिक सीमाओं का जिक्र किया है, उन पर भी ध्यान देने की जरूरत है।

यदि गांधीजी हिन्द स्वराज 1948 में लिखते तो उसका सबकुछ भिन्न होता, क्योंकि तब देश के नवनिर्माण के दायित्व से प्रेरित होकर कार्यक्रम बनाना मुख्य होता। जैसे उन्होंने यह कहा कि दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता है, वैसे यह भी कहते आत्मनिर्भरता के बिना स्वतंत्रता टिक नहीं सकती। उन्होंने कहा था कि जमींदारी उन्मूलन के लिए मुआवजा क्यों ? इन सबसे उनके चिंतन की दिशा का पता चलता है। ध्यान देना चाहिए इस बात पर कि वे परिस्थिति के दबाव को समुदाय और जनता की जरूरत को नजरअंदाज नहीं करते। गांधी लगातार विकसित होते गए और बदलते भी रहे। अपने विचारों के प्रति दृढ़ता के बावजूद वे गतिशील रहे हैं। यह गतिशीलता ही है, जिसके कारण वे 1947 में कहते हैं कि हम विफल रहे हैं, किसी काम में सफलता नहीं मिली। आगे वे क्या करते यह किसी के कहने का नहीं है, लेकिन गांधी की स्थिति में खड़ा होकर यह कोई अनुमान कर सकता है, जो बहुत मुश्किल काम है। दिनकर के स्वर मिलाकर मैं भी कहना चाहता हूँ–''उनसे कह दो गांधी सेठों का पहरेदार नहीं है।

कहना न होगा कि ''हिन्द स्वराज'' अपने मूल्यवान विचारों और उच्च भावनाओं के बावजूद वर्तमान समय के लिए प्रासंगिक नहीं है। ऐसा कहना किसी भी प्रकार से गांधीजी के प्रति अनादर प्रकट करना नहीं है। कोई भी कृति या विचार हर काल और स्थान के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए हम श्रीमदभागवतगीता को ले सकते हैं जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा कि विजयी होने पर उन्हें राज्य मिलेगा और युद्ध में मारे जाने पर स्वर्ग। इस प्रकार युद्ध करना उनके लिए घाटे का सौदा कतई नहीं हो सकता। यह बात उस समय के लिए सही थी जब युद्धबंदी की अवधारणा नहीं आई थी। युद्धबंदी को दास बनाकर काम लेने का चलन नहीं था क्योंकि अर्थव्यवस्था की तत्कालीन स्थिति में इसके लिए कोई गुंजाइश न थी। आज तीसरा विकल्प युद्धबंदी का है। अत: श्रीकृष्ण की हम जितनी भी पूजा करें और उनके वचन को जितनी भी अहमियत क्यों न दें उनका उपयुक्त वचन न्यायशास्त्र की दृष्टि से हेत्वाभास से ग्रस्त है क्योंकि वह द्विपाश के फंदे में फंसा है। अंत में, उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर हम कह सकते हैं कि गांधीजी तर्क को काफी अहमियत देते थे। जैसा कि हम ऊपर जिक्र कर चुके हैं, गांधीजी और पंडितजी के बीच स्वतंत्र भारत के स्वरूप को लेकर अच्छा खासा विवाद रहा। यह 1930 के दशक के दौरान आरंभ हुआ और 1940 के दशक में उसने स्पष्ट रूप ले लिया। अंतत: नेहरू ने गांधीजी से अपनी बात मनवाने में सफलता प्राप्त कर ली। अभी तक जो दस्तावेज उपलब्ध है उनके अनुसार अप्रैल 1940 में कभी नेहरू, गांधीजी और अर्थशास्त्री डॉ0 वी0 के0 आर0 वी0 राव के बीच गहन चर्चा हुई। राजकुमारी अमृत कौर जो उस समय वहां मौजूद थीं, पूरी बहस को रिकार्ड किया। उनके अनुसार नेहरू ने स्वतंत्र भारत में औद्योगिक अर्थव्यवस्था की स्थापना का विशेष रूप से समर्थन किया। इसके जरिए उत्पादन बढ़ाकर जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठाया जा सकेगा और देश शक्तिशाली बनेगा। कोई भी देश औद्योगिक रूप से विकसित हुए बिना अपनी स्वतंत्रता को बनाए नहीं रख सकता। नेहरू जी ने गांधी जी से कहा : ''मैं कुटीर उद्योगों को उस हद तक आगे ले जाना चाहता हूँ, जहां तक हमलोग ले जा सकते हैं। परन्तु मैं औद्योगीकरण के बिना भारत की कल्पना नहीं कर सकता। ये उद्योग ही कुटीर उद्योगों की सहायता करेंगे। उन्होंने चेतावनी दी कि अगर आप अपने बड़े उद्योगों को दबा कर बैठे रहेंगे तो दूसरे देश आपके ऊपर चढ़ बैठेंगे।''

आखिरकार गांधीजी ने यह वक्तव्य दिया कि औद्योगीकरण को लेकर उनके और नेहरू के बीच कोई मतभेद नहीं हैं। उन्हें ''भारत के औद्योगीकरण और बड़े उद्योगों को लेकर कोई समस्या नहीं है। मैं करांची प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ, जिसे तैयार करन में मेरा भी योगदान था।''

इधर कुछ समय से कतिपय निहित स्वार्थ वाले यह प्रचार करते दिख रहे हैं कि नेहरू ने गांधीजी के साथ वैचारिक धोखा किया और उनकी सैद्धांतिक विरासत को नकार दिया। इन लोगों का यह भी दावा है कि ''हिन्द स्वराज'' आज भी भारत के लिए पूर्णतया

प्रासंगिक है। कहना न होगा कि आजादी के बाद, विशेषकर 1950 के दशक के दौरान, पश्चिमी देशों के अर्थशास्त्रियों के एक समूह ने तत्कालीन भारतीय नेतृत्व पर यह दबाव बनाने की कोशिश की थी कि वह भारत को कृषि, कुटीर उद्योगों आदि तक ही सीमित रखे क्योंकि यही अर्थशास्त्र के तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत का तकाजा है। वस्तुतः वे भारत को उपनिवेश बनाए रखना चाहते थे।

संदर्भ :

1. हिन्द स्वराज : आज के प्रसंग में, डॉ0 खगेन्द्र ठाकुर, पृ0 73 ।
2. हिन्द स्वराज, छठा संस्करण, पृ0 36 ।
3. हिन्द स्वराज : आज के प्रसंग में, डॉ0 खगेन्द्र ठाकुर, पृ0 73 ।
4. वही, पृ0 74 ।
5. वही, पृ0 75 ।
6. वही, पृ0 77 ।
7. वही, पृ0 77 ।
8. वही, पृ0 78 ।
9. वही, पृ0 80 ।

कवि की छाया प्रतिच्छाया

डॉ० मानस कुमार

स्नातकोत्तर शिक्षक (हिन्दी), केन्द्रीय विद्यालय, जवाहरनगर, सीतामढ़ी (बिहार)

उत्तर छायावाद युग में तरंगित यौवन को प्रखर स्वर में पिरोकर रोमानियत की सुकोमल आवाज के साथ नई काव्यात्मक भंगिमा लिए हुए प्रेम और प्रकृति का तराना गाने वाले प्रमुख कवियों में गोपाल सिंह 'नेपाली' का नाम अविस्मरणीय है। नेपाली का काव्य युवा मानव की सम्पूर्ण इच्छाओं, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं का काव्य है। अनुभूतियों की सहजतम अभिव्यक्ति, रसपूर्ण भाषा, लय, संगीत, छंद, सहज-कोमल प्रतीक, काठिन्य से सर्वथा दूर रहने वाले पद-विन्यास, सुकुमारा भाव-योजना,शृंगारिकता से अधिक रोमानी भावावेश, हृदय की गहनराइयों से निकलने वाली पुकार, मन की सहज प्रेरणा, कल्पना-प्रवण यौवन का नवोन्मेष आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उन्हें अनायास ही जनता के हृदय में उच्चासन प्रदान कर जाती हैं।

वास्तव में नेपाली जी की इन विशेषताओं में उनकी परिस्थितियों का योगदान भी कम नहीं है। अपने शौर्य, स्वाभिमान और निष्ठा के कारण प्रसिद्ध गोरखा परिवार से संबंध रखनेवाले एक सैनिक पिता की ज्येष्ठ संतान नेपाली की प्रेम-भावना में जो साहस है और राष्ट्र के प्रति वीरतापूर्ण समर्पण तथा उत्सर्ग का जो जीवट है, वह उन्हें विरासत में ही प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि उन्हें जब भी सत्ता और जनता के बीच चुनाव का अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने सत्ता का तिरस्कार ही किया है। वे ताल-ठोककर कहते हैं–

''तुम-सा लहरों में बह लेता, तो मैं भी सत्ता गह लेंता
ईमान बेचता चलता तो, मैं भी महलों में रह लेता।''[1]

अपने जीवन की आर्थिक तंगी कवि को सहज ही सर्वहारा की श्रेणी में ला खड़ा करती है और कवि दीन-दुखियों, मजलूसों का पैरोकार बन जाता है। इस दरिद्रता ने उन्हें एक ओर व्यवस्था में लड़ने के लिए प्रेरित किया तो दूसरी ओर उनमें अक्खड़ता का भाव भी पैदा किया; क्योंकि धनहीन आत्मसम्मान से पूर्ण और अक्खड़ होता है। इसी के कारण वे अस्वीकार का साहस दिखाने में भी सफल हुए। उनका लक्ष्य-विन्दु गरीब जनता है और अपने कवि-कर्म की प्रक्रिया में वे इस लक्ष्य-विन्दु के प्रति सदैव सजग दिखाई देते हैं –

''जब-जब जनता पर दु:ख की बदली छाई है
तब-तब हमने विप्लव बिजली चमकाई है
मानवता का परिहास बदलने वाले हैं
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।''[2]

नेपाली पराधीन भारत के कवि हैं और पराधीन भारत का एक-एक मानस उस गुलामी की जंजीर को तोड़ना चाहता था। 'नेपाली' को वीरता, साहस, शौर्य तो विरासत में मिला था। फिर वे भला इस स्वतंत्रता के हवन कुंड में अपने हिस्से की आहुति देने से कैसे पीछे रहते। 'नेपाली' का कवि यह इतिहास कैसे बदलना चाहता है यह भी वह नवयुवक भाई का अपनी बहन को इस संबोध न के द्वारा स्पष्ट कर देता है –

'तू चिनगारी बन कर उड़ री जाग-जाग में ज्वाल बनूँ
तू बन जा हहराती गंगा, में झेलम बेहाल बनूँ
आज वसन्ती चोला तेरा, मैं भी सज लूँ लाल बनूँ।

तू भगिनी बन क्रान्ति कराली मैं भाई बिकराल बनूँ!
यहाँ न कोई राधारानी, वृन्दावन, वंशीवाला!
मू आँगन की ज्योति बहन री, मैं घर का पहरेवाला!''[3]

'नेपाली' को प्रकृति और प्रेम का कवि कहा गया है। पिता के भारतीय सेना में होने के कारण इन्हें सुदूर भारत तक भ्रमण का सुअवसर प्राप्त हुआ। वन, पर्वत, निर्झर, बीथिका, सहकार-वन, घाटी और बीहड़ स्थलों को देखने एवं भ्रमण करने का इन्हें विशिष्ट अनुभव प्राप्त था। भारतीय प्रकृति की विविधता के इस परिदर्शन ने इन्हें प्रकृति के प्रति एक प्रगाढ़ प्रेम इन्के काव्य में गुंजरित हुआ है। इनके प्रकृति प्रेम के और भी कोण हैं। भारत पराधीन था। विदेशी शक्तियाँ न सिर्फ हमारी अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर रही थीं बल्कि हमारी सभ्यता व संस्कृति को भी खाकसार कर रही थीं। ऐसे में प्रबुद्ध लोगों में अपनी सभ्यता, संस्कृति व अपने देश को फिर से सम्पूर्ण रूप में पहचानने की इच्छा प्रबल हुई। यही इच्छा सम्पूर्ण रूप में देश प्रेम में परिवर्तित हुई और देश प्रेम का अर्थ देश के कण-कण से प्रेम है-देश की मिट्टी, पानी, हवा, वन, नदी, झरना, तालाब, पहाड़, फूल-सभी से प्रेम है। कवि का प्रकृति प्रेम एक ओर तो अपनी विविध रूपी धारा से हमारा परिचय करवाता है तो दूसरी ओर उस परिचय को प्रेम में भी परिवर्तित करता है। 'नेपाली' के काव्य में प्रकृति यह दोनों कार्य करती हैं।

वास्तव में 'नेपाली' ने प्रकृति का चित्रण औश्र उपयोग कई रूपों में किया है। नरेन्द्र शर्मा के मानवतावाद को 'नेपाली' ने प्रकृति की सहज सुषमा का मधुरालोक और प्रेम की तरह हार्दिकता प्रदान कर उसे एक नया आयाम दिया है। प्रकृति के सहज अनगढ़ स्वरूप के प्रति जो तन्मता 'नेपाली' की रचनाओं में है, वह उनके समकालीन कवियों में ही नहीं समस्त छायावादी कवियों में भी दुर्लभ है। उनकी रचनाओं में प्रकृति के नैसर्गिक एवं ग्राम्य सौन्दर्य का अनावरण रससिक्त एवं चुने रूपों में हुआ है। कुछ ही सीध ` -सादे और मधुर शब्दों की रेखाओं में सारे वातावरण के माधुर्य को बाँध लेने की उनमें अद्‌भुत क्षमता है। मस्ती, कोमलता एवं तरंगिता का जो रोमानी उल्लास इन पंक्तियों में संकेतित है, वह 'नेपाली' के उच्छल व्यक्तित्व की सहजश्री है –

'काले बादल मेरी काया, सावन मेरी जीवन-माया,
बिजली में मेरा प्राण-दीप प्रिय का पथ चमकाता आया;
बूँदों में मेरे जीवन की वीणा की है झंकार मधुर;
परछाई बनकर आए हो, काले घन में तुम छाए हो,
उसको खोजूँ मैं बिजली में, बादल में जिसे छिपाए हो।''[4]

'नेपाली' के प्रकृति-चित्रण के संदर्भ में ध्यान देने की बात है कि उनकी आरंभिक रचनाओं 'उमंग', 'पंछी', में प्रकृति के प्रति एक किशोर सम्मोहन भाव दिखता है, पर धीरे-धीरे इस प्रकृति का मानवीय जीवन और उसकी विविध भाव-भूमियाँ ले लेती हैं। कवि अपने कवि कर्म के पूर्वाद्ध में गंगा के जल को छूकर आने वाली शीतल हवा के झोंके में इस प्रकार खो जाता है कि दुनिया उसे स्वप्न-सी लगने लगती है –

'छूकर गंगा की लहरों को
जब ठंडे झोंके आते हैं
हम मस्त मगन हो जाते हैं
दिल भर के झोंके खाते हैं
दुनिया सपना-सी लगती है
सपनों में हम खो जाते हैं।''[5]

पर यथार्थ की समझ के प्रयत्न में प्रकृति को बाद किए बिना भी उनकी कविताओं में मनुष्य और उसके सामाजिक परिवेश का तनाव क्रमशः केन्द्र में आता जाता है। अब प्रकृति का उपयोग वे किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी करने लगते हैं। अब शुद्ध प्रकृति कविताओं की संख्या घटती जाती है।

उनकी काव्य-यात्रा के इस विकास में उनकी परिस्थितियों का भी योगदान कम नहीं। उनका बाल्यकाल तथा नव-यौवन बहुत अभाव या कष्ट में नहीं बीता। पिता की अच्छी नौकरी थी तथा सेना में होने के कारण चंद सुविधाएँ भी प्राप्त थीं। इसी सैन्य परिवेश

के कारण उनके स्वभाव में एक स्वच्छंदता का भी समावेश था। अत: उनके जीवन का प्रारंभ बेफिक्री भरा था। यौवन की उमंग में प्रकृति और प्रेम उन्हें सहज ही आकृष्ट कर गए और सेना के खुले माहौल ने उन्हें और भी पल्लवित-पुष्पित किया। किन्तु जब पिता की नौकरी नहीं रही और जीवन के यथार्थ से उनका सामना हुआ तो कवि जीवन और जगत के तनाव को महसूस करने लगे तथा मानव जीवन की जटिलता प्रकृति के साहचर्य में प्रकट होने लगी –

'बगिया हरी-हरी वसुन्धरा भरी-भरी
फिर क्यों रहे मनुष्य की दशा मरी-मरी!''[6]

'नेपाली' भी अपने समकालीन कवियों के समान प्रेम की ओर आकृष्ट हुए। वे स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि प्रेम और प्रकृति ही उनके अंत:करण को शांति प्रदान करती है –

'जीवन के क्षण-क्षण कोलाहल, ज्यों सुख त्यों दुख, सुख-दुख समान
आतीं संध्या जाता विहान, जाती संध्या आता विहानप
इसलिए जगत में दो ही तो कुछ शांति कभी देने वाले
है एक प्रकृति की मृदुग गोद, दूसरा प्रेम का मधुर गान!''[7]

प्रेम छायावाद के कवियों के काव्य का भी एक प्रधान उपजीव्य रहा है और 'नेपाली' के काव्य का भी। तथापि 'नेपालील' का प्रेम और सौन्दर्य वर्णन छायावादियों से भिन्न है। 'नेपाली' का प्रेम उन्मुक्त है। वह हृदय की अतल गहराइयों से निकलकर आस्था-पूरित हो सहज ही निर्झरनी के समान कहीं आवेगपूर्ण तो कहीं प्रशांत हो बह निकलता है। इस प्रेम में व्यापकता भी है और गहराई भी। उनके यहाँ प्रेम अभिव्यक्ति के लिए छायावादी कवियों के समान कोई आड़ नहीं खोजता बल्कि वह उन्मुक्त है। छायावादियों के यहाँ प्रेम व्यापार में वार्तालाप प्राय: अन्य पुरुष में आता है, अर्थात् प्रेम की भाषा स्वयं कवि अपने मुख से बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते बल्कि इसके लिए वे किसी पात्र का सहारा या किसी प्रतीक का आश्रय लेते हैं। जबकि 'नेपाली' सीध ेे-सीधे प्रथम पुरुष में प्रेम-व्यापार में निमग्न दिखाई देते हैं –

'जब तक आई थी तब रानी
मेरे नयन लजाए!''[8]

इतना ही नहीं, छायावादियों को रति-सुख जैसे अंतरंगता के क्षणों के वर्णन में भी दर्शन की एक झीनी चादर की आवश्यकता होती है –

'दो काठों की संधि बीच उस निभृत गुफा में अपने
अग्नि-शिखा बुझ गई, जागने पर जैसे सुख सपने!''[9]

वहीं 'नेपाली' को किसी ओट की आवश्यकता नहीं। वे अपनी प्रिया से मनुहार करते हुए कामना की लहर में रात को डूबो देने की बात करते हैं –

'जिंदगी के सफर में चलो साथ दो, कमना की लहर में डूबो रात दो
दो नयन में नयन हाथ में हाथ दो, हाथ देकर न ऊँगली छुड़ाया करो''[10]

'नेपाली' सौन्दर्य के भी अप्रतिम गायक हैं। अप्रतिम इस प्रकार कि जयशंकर प्रसाद श्रद्धा के सौन्दर्य चित्रण में जहाँ नील परिध ान के बीच सुकुमार अधखुले अंग की शोभा को ही निरखते रह जाते हैं वहीं 'नेपाली' की नायिका अपनी भंगिमाओं के कारण सुशोभित हो उठती है। यहाँ आंगिक शोभा तो दिव्य है ही, आंगिक चेष्टा उस सौन्दर्य को और भी दीप्त कर देती है –

'कुछ फर्क नहीं पड़ता गहना
पहना या कभी नहीं पहना
गहनों का भी गहना तेरा
मुस्काकर शरमाती रहना
मुस्कान मधुर इतनी भोली नादान उमरिया झूठी है
रग-रग में ऐसा रंग भरा रंगीन चुनरिया झूठी है।''[11]

'अलंकृति पुनः क्यापि!' नेपाली की नायिका को 'नील परिधान' जैसी अलंकृति की आवश्यकता नहीं।

'नेपाली' का प्रेम हाहाकार या 'तू ही तू' वाला प्रेम नहीं बल्कि वह अनुभूति, संवेग और संयम के साथ सोद्देश्य प्रेम है। इसलिए यह प्रेम कूलों को भी अतिक्रमित नहीं करता, सुख, शांति, नेह, करूणा, दुलार, वत्सलता, संवेदना बिछाता चलता है। इस प्रेम में धीरज है, विश्वास है, आस्था है। इसलिए इस प्रेम में आशा है, आभा है, ज्योति है और मलयानिल के समान शीतलता है, जो अंततः जागृति का संदेश सुनाता है।

'नेपाली' के यहाँ प्रेम का इतना अधिक महत्त्व इसलिए भी है कि उनके स्वयं के जीवन में प्रेम का किंचित अभाव रहा। आठ वर्ष की अवस्था में ही मातृ विछोह, कर्त्तव्य बाध्यता के कारण पिता का भी व्यस्त रहना, कुछ 'अपनों' की धोखेबाजी, समाज ऐसा जो घर तक नीलाम करवा गया। इस स्थिति में उन्हें किंचित अंतर्मुखी बना दिया और उन्होंने प्रेम के इसी अभाव की पूर्ति का माध्यम कविता को बनाया। किन्तु नेपाली के संदर्भ में यह मान लेना कि वे प्रेम व प्रकृति के ही कवि हैं, बहुत बड़ी भूल होगी। उनके काव्य का एक बहुत बड़ा भाग सामाजिक सरोकारों को भी संबोधित करता है। उनकी चिंता न सिर्फ पराधीन भारत की स्वतंत्रता थी बल्कि वे संपूर्ण मानवता की मुक्ति चाहते थे।

'नेपाली' सजग और सचेत कवि हैं। इसलिए उनकी दृष्टि एकांगी नहीं बल्कि चतुर्दिक फैलती, परखती, अवलोकन करती चलती है। उन्होंने जब जहाँ जिस विषय को उपयुक्त समझा, उसे अपने काव्य क्षेत्र में शामिल कर लिया। उनके विषय क्षेत्र में भारतीय राजनीति भी है। यद्यपि शुद्धतावादी साहित्यकारों व आलोचकों ने साहित्य में राजनीति के प्रवेश को अनुचित माना है।

अस्तु, नेपाली का कविता संसार एक ऐसा गुलदस्ता है जिसमें युगबोध भी है और युगधर्म भी। अपने प्रति, अपनी काव्यसाधना के प्रति सदैव सच्चा रहने वाला यह 'स्वाधीन कलम' का सिपाही अपनी लेखनी से एक साथ ललकार और झंकार दोनों ही पैदा करता है। तीव्रता के साथ प्रामाणिक अनुभूति उनके काव्य का प्राणवायु भी है और विशिष्टता भी। यहाँ प्रेम और सौन्दर्य की अनेक भंगिमाएँ हैं तो शोषितों-दलितों के प्रति स्नेह, अपनत्व और पक्षधरता भी। वास्तव में उनके काव्य की यात्रा एक पूरे युग की समस्त इच्छाओं, आकांक्षाओं, अपेक्षाओं, विश्वासों, संकल्पों की पहचान की यात्रा है। इसमें भँवरों का गुंजार है तो तलवारों की झंकार भी, प्रेम के मीठे बोल हैं तो पीड़ा की गहरी टीस भी, सत्य की शाश्वत पुकार है तो राष्ट्र-रक्षा की व्यापक विकलता भी, पराधीन मानस का हाहाकार है तो स्वाधीनता की विराट् आकांक्षा भी, लता-गुल्म के मनोहारी दृश्य हैं, तो शोषितों का भयावह चित्र भी। वास्तव में नेपाली एक साथ फूल और शूल दोनों के ही कवि हैं। उनका काव्य चलचित्र के समान चालित नहीं होता बल्कि अलग-अलग चित्रों की एक ऐसी शृंखला तैयार करता है जिसमें एक पूरा का पूरा युग साकार हो उठता है। वे सरल भाषा और सामान्य पदावली के कुशल चितेरे हैं जो चंद शब्दों की अदला बदली के माध्यम से संपूर्ण चित्र कैनवास पर उतार देते हैं। निश्चय ही वे हिन्दी साहित्य की अनमूल्य निधि हैं।

संदर्भ :-

1. मेरा धन है स्वाधीन कलम, 'हिमालय ने पुकारा', पृ. 91
2. इतिहास बदलने वाले हैं, 'हिमालय ने पुकारा', पृ. 92
3. भाई-बहन, 'रागिनी', पृ. 61
4. सावन, 'पंचमी', पृ. 82
5. गंगा किनारे, 'नीलिमा', पृ. 53
6. नवीन कल्पना करो, 'हिमालय ने पुकारा', पृ. 51
7. नौका विहार, 'उमंग', पृ. 78.
8. दबे पाँव आई तुम रानी, 'नीलिमा', पृ. 43.
9. 'कामायनी', जयशंकर प्रसाद।
10. दिल चुराकर न हमको भुलाया करो, 'असंकलित रचनाएँ', पृ. 53.
11. चुनरिया झुठी है, 'असंकलित रचनाएँ' पृ. 40

आत्महत्या का मनोविकार : कारण एवं निदान

डॉ० अस्मिता सिंह

पी-एच0 डी0, (गृहविज्ञान विभाग), जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सार-संक्षेप

बच्चों को रहन-सहन,खान-पान, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य और अंत में सर्वांगीन विकास मां के उपर पूर्ण रूप से निर्भर करता है इस औचित्य को किसी भी कीमत पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। अगर माता के द्वारा बच्चों को देखभाल तथा समयानुकूल पोषण, मूहैया नहीं करायी जाती है तो वैसी स्थिति में बच्चे का सर्वांगीन विकास जो बाद के विकास की अवस्था होती है तथा समान विकास भी अवरूद्ध हो जाता है बच्चें उदण्ड, अमार्यादा, अनुशासनहीन और बच्चे अस्वास्थ्य हो जाते है जिस स्तर की शारीरिक और मानसिक विकास की आवश्यकता आयुनुकूल होना चाहिए वह नहीं हो पाता है व्यक्तित्व निखर नहीं पाता है और एक ऐसा भी समय किसी-किसी बच्चे में आ जाात है कि वे परिवार,समाज तथा राष्ट्र के लिए ज्वलंत तथा चुनौतीपूर्ण समस्या बन जाता है जबकि ऐसे बच्चे के सुधार में राष्ट्रीय धन की हानि होती है एवं समाज, राज्य और राष्ट्र को बच्चों को इन समस्याओं से छुटकारा दिलाने के लिए अथक प्रयास करना पड़ता है। इसलिए उपयुक्त कारणों से एक विशेष अध्ययन की आवश्यकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में आत्महत्या सम्बंधी मनोविकार के कारणों एवं उसके निदान पर विमर्श प्रस्तुत किया गया है।

परिचर्चा

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्टैनले हाल ने कहा है - 'किशोरावस्था बड़े ही तनाव, तुफान एवं संघर्ष का काल है।' वस्तुत: किशोरावस्था में किशोरों में नवीन आंतरिक तथा वाह्य परिवर्तन दिखाई देते है, जिनका समायोजन उनके द्वारा नहीं कर पानें की स्थिति में वे तनाव के शिकार होते है। इस अवस्था में व्यक्ति के अंदर प्रेक्षण की योग्यता का अभाव तथा अभिरूचियों में परिवर्तन एवं तर्क क्षमता का विकास होता है। परिणामत: किशोरावस्था 'अहम् की केन्द्रिकता' की अवस्था बन जाती है। इस अवस्था में स्वायत्तता की भावना भी विकसित होती है। मानव जीवन के इस चरण में उत्पन्न अंतर्वाह्य लक्षणों के कारण ही 'तनाव, तुान एवं संघर्ष की परिस्थिति निर्मित होती है। इस स्थिति का सद्परिणाम उच्च सृजनशीलता की उपलब्धि होती है तथा इसका दुष्परिणाम होता है - पलायनवादी प्रवृत्ति का विकास। किशोरावस्था की इन स्थितियों के प्रति माता-पिता एवं समाज द्वारा उचित संव्यवहारों का अभाव किशोरों को पलायन की ओर प्रवृत्त करता है-कभी परिवार और समाज से और कभी जीवन से।

भारतीय संस्कृति में जीवन को ईश्वरीय वरदान माना गया है एवं इसी कारण आत्महत्या को पापकर्म माना गया है। आत्महत्या को हेय एवं निकृष्ट माना जाता रहा है। बावजूद इस मान्यता के, आत्महत्याएं होती रही है और इसे एक मनोवैज्ञानिक कारण माना जाता रहा है। लेकिन हाल के दिनों में आत्महत्या की दर में बेतहाशा वृद्धि ने इस धारणा को बदल दिया है।

आत्महत्या हमारे देश में अब मनोवैज्ञानिक समस्या से कहीं ज्यादा एक गंभीर सामाजिक समस्या बन गयी है। डब्ल्यू0 एच0 ओ0 की एक रिपोर्ट के मुताबिक, दुनियाभर में सबसे ज्यादा आत्महत्या के मामले भारत में हो रहे है। यह बेहद भयावह स्थिति है, जिसकी

रोकथाम की दिशा में गंभीरता से प्रयास किया जाना बेहद जरूरी है। आखिर वे कौन से कारक होते है जो किसी इंसान को सब कुछ छोड़ कर अपना जीवन समाप्त करने के लिए उकसाते है ?

मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों की मानें तो जिन लोगों का 'सेल' कमजोर होता है या जिनको अपने ऊपर भरोसा नहीं होता कि वे अपने जीवन की परेशानियों से खुद को उबार पायेंगे, अधिकतर वही लोग आत्महत्या जैसा शर्मनाक कदम उठाते है। उनकी यह आत्महीनता उन पर इतनी अधिक हावी हो जाती है कि वे अवसादग्रस्त हो जाते है ऐसे में उन्हें आत्महत्या ही एकमात्र आसान विकल्प नजर आता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों की मानें तो दुनिया में हर 40 सेंकेंड में एक व्यक्ति खुदकुशी करता है। यह दर भारत में सबसे ज्यादा है। प्रति वर्ष आठ लाख से ज्यादा लोग दुनिया भर में आत्महत्या करते है, जिनमें एक लाख से अधिक भारतीय होते है। आत्महत्या करने वालों की संख्या सबसे ज्यादा 15 से 25 वर्ष के बीच की होती है और न्यूनतम जनसंख्या 80 वर्ष या उससे अधिक की है। महिलाओं की तुलना में आत्महत्या करनेवाले पुरुषों की संख्या अधिक है।

आत्महत्या की घटना अनायास एवं अकारण घटित नहीं होती है। आत्महत्या के विभिन्न कारणों में सामाजिक कारण द्धदिल का टूटना, वैवाहिक जीवन असफल होना, किसी करीबी से बिछोह आदिऋ, आर्थिक कारण (व्यापार में घाटा, नौकरी छूटना, कर्ज में डूबना आदि) और मेडिकल कारण (रोग-बीमारी, बुढ़ापा आदि) प्रमुख है। युवाओं द्वारा खुदकुशी करने की खबरें हम आये दिन अखबारों में पढ़ते रहते है, जो अधिकतर पढ़ाई या कैरियर में नाकामयाबी, ड्रग्स/अल्कोहल एडिक्शन या फिर लव-अफेयर का परिणाम होता है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि टूटते संयुक्त परिवार, माता-पिता की नाकामयाबी होना, बच्चों की छोटी-मोटी समस्याओं पर ध्यान नहीं देना और टी0 वी0 एवं इंटरनेट तक आसान पहुंच ने कम उम्र के बच्चों को भी स्वभाव से जिद्दी और उग्र बना दिया है। इसकी वजह से उनमें मानसिक अवसाद बढ़ रहा है।

आमतौर पर किसी व्यक्ति द्वारा आत्महत्या करने के पीछे कई तरह के कारण उत्तरदायी होते है, जैसे-गुस्सा, तनाव, चिंता, अवसाद आदि। इन सबकी अपनी-अपनी वजहें होती है। कई बार ये कारण प्रत्यक्ष रूप से नजर नहीं आते। हमें लगता है कि व्यक्ति बेहद खुश और जिंदादिल है लेकिन अचानक से उसके द्वारा की गयी आत्महत्या की खबर हमें चौंका देती है। अब फिर से सवाल उठता है कि यदि ऐसा है तो कैसे किसी इंसान की आत्महत्या की नीयत को पहचाना जा सकता है ? कुछ प्रमुख लक्षणों को निम्न तरीके से समझाया जा सकता है-

1. बहुत ज्यादा या बहुत कम सोना।
2. बहुत ज्यादा या बहुत कम खाना।
3. जिंदगी के प्रति निराशावादी रवैया जताना।
4. अक्सर मरने की बातें करना।
5. अचानक बिना किसी कारण के महत्वपूर्ण कामों को निबटाना।
6. मनपसंद कार्यो और चीजों के प्रति अरुचि भाव दर्शाना।
7. लोगों से मिलना-जुलना या कहीं आना-जाना कम करना।
8. हमेशा बेचैन और चिंतित रहना।
9. नशीली दवाओं का सेवन।
10. त्वरित असफलता, अपमान आदि का भय सताना।
11. भीड़ में रहते हुए भी खुद को अकेला महसूस करना।
12. छोटी-छोटी बात पर रोना या उदास हो जाना इत्यादि

भारत में 15 से 29 साल की उम्र के किशोरों और युवा वयस्कों के बीच आत्महत्या की दर सबसे अधिक है। परीक्षा में किलता देश में होने वाली आत्महत्याओं के शीर्ष 10 कारणों में से एक है जबकि पारिवारिक समस्या शीर्ष तीन में है। शुरू में, खराब मानसून वाले क्षेत्रों के किसानों को सबसे कमजोर समूह माना जाता था। हाल ही में 2012 और 2014 के मध्य किये गये अध्ययन से पता चला है कि शहरी इलाकों में अमीर और शिक्षित परिवारों के युवा वयस्कों में आत्महत्या करने की प्रवृत्ति अधिक है। 2014 में जारी

एक समाचार रिपोर्ट के अनुसार 2013 में परीक्षाओं में असफल होने के बाद 2,471 छात्रों ने अपनी जान गवां दी थी। 2012 में, यह संख्या 2,246 पर आंकी गई थी। विशेषज्ञों का कहना है कि इनमें से ज्यादातर आत्महत्याओं का कारण पढ़ाई के जिन बच्चों पर माता-पिता का दबाव और अच्छे रिजल्ट की उम्मीद है जो छात्रों के कौशल या हितों के अनुरूप नहीं है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश ने इस क्षेत्र में सबसे खराब प्रदर्शन दर्ज कराया है। कई मामलों में बच्चों के मन में आत्महत्या करने की भावना नहीं होती है। माता-पिता द्वारा इस प्रकार का अनुचित दबाव डाला जाता है। इसमें बच्चों के खराब पालन पोषण और देखभाल के आरोप शामिल है जो कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण बनते है। यह समस्या युवा और वयस्कता के विभिन्न चरणों में प्रकट होती है।

आधुनिक भारत में शिक्षा प्रणाली और माता-पिता की सबसे बड़ी किलताओं में दो कारण है। यह बच्चें की सीखने की अक्षमताओं की पहचान करने में असमर्थता और जीवन के अंत में शैक्षणिक किलता पर विचार करने में असमर्थ है। जबकि छात्रों और बच्चो पर बढ़ते दबाव के लिए सरकार द्वारा चलाई गयी नीति को भी दोषी ठहराया जाता है। इसमें 8वीं कक्षा तक किसी बच्चे को फेल नहीं किया जाता है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि दबाव का एक बड़ा हिस्सा माता-पिता की तरु से आता है। महाराष्ट्र और तमिलनाडु इसका उदाहरण है जहां बच्चों पर उनके माता-पिता द्वारा हाई स्कूल में विज्ञान और गणित लेने के लिए बाध्य किया जाता है, ताकि वह आगे चलकर डॉक्टर या इंजीनियर बन सके। बच्चों के वाणिज्य या कला में रुचि के विकल्प का नकार दिया जाता है।

बच्चों की वृद्धि के लिए खेल और शारीरिक गतिविधियां जरूरी है। यह उनके तनाव को कम करने में काफी सहायता प्रदान करती है। बच्चों में खेल संबंधी गतिविधियां उत्पन्न करने की आवश्यकता है लेकिन माता-पिता द्वारा डाला गया अनुचित दबाव बच्चों में खेल के प्रति घृणा उत्पन्न करता है। प्रतिस्पर्धात्मक अभिभावकों द्वारा बच्चों की लगातार और शर्मिंदा करने की प्रवृत्ति ने इस स्थिति का और भी बदतर कर दिया है।

बच्चों की रचनात्मकता को उत्तेजित करने के लिए नृत्य, संगीत, कला और अन्य गतिविधियां उत्कृष्ट विकल्प है। इसमें वह अनुशासन, ध्यान केन्द्रित करने और टीम वर्क जैसे महत्वपूर्ण मूल्यों को सीखते है, इससे उनको किताबी दुनिया से बाहर आकर अपनी क्षमताओं को पहचानने में मदद मिलती है। अच्छा प्रदर्शन करने के लिए बच्चों पर अभिभावकों द्वारा डाले गये दबाव ने इन सुखद गतिविधियों को प्रतिस्पर्धी घटनाओं में बदल दिया है।

तनाव के लक्षण

उदासीनता तनावपूर्ण बच्चें के सबसे बड़े लक्षणों में से एक है। अध्ययन, खेलने का समय, टेलीविजन और मनोरंजन या बाहरी गतिविधियों में दिलचस्पी का अभाव आदि इस बात के स्पष्ट संकेत है कि कुछ सही नहीं है।

बच्चों का बार-बार बीमार होना तनाव का एक आम लक्षण है। अक्सर सिरदर्द, पेट में दर्द और जी मिचलाना आदि आने के कुछ मायनों में एक बच्चा सामान्यत: किसी विशेष गतिविधि के संबंध में भय या चिंता से निपट सकता है।

जब बच्चों की मानसिक स्थिति की बात आती है तो नकारात्मकता और नकारात्मक व्यवहार उनकी गतिविधियों से स्पष्ट होता है। नकारात्मक व्यवहार में अस्थिर मनोदशा, आक्रामकता, सामाजिक अलगाव या साथियों से बातचीत न करना और घबराहट आदि शामिल है।

किशोरों के मामले में अभिभावकों द्वारा डाले गये अत्यधिक दबाव से तनाव में विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। जब छात्र अभिभावकों के अनुचित दबाव से निपटने में असमर्थ हो जाते है तब वह धुम्रपान, नशीली दवाओं का सेवन और विद्यालयों में बेकार घूमने आदि जैसी अनदेखी गतिविधियों का अभ्यास करने लगते हैं।

जिन गतिविधियों में बच्चें आमतौर पर भाग लेना अधिक पसंद करते है, वह कार्य करने के लिए रोकर जिद कर सकते है। बच्चों पर शिक्षकों या अभिभावकों द्वारा डाला गया अत्यधिक दबाव उनके उस क्षेत्र में भी प्रदर्शन को खराब कर देता है जिसमें वह स्वाभाविक रूप से निपुण होते हैं।

आत्महत्या की घटनाओं की रोकथाम हेतु व्यापक स्तर पर जागरूक की जरूरत है। घर के अंदर माता-पिता एवं समाज में अन्य क्षेत्रों के जिम्मेंवार लोगों द्वारा यह प्रयास किए जाने चाहिए। वर्तमान दौर में उत्पन्न तनाव की समस्या हेतु मनोंवैज्ञानिकों द्वारा 'योग-व्यायाम' जैसी क्रिया को काफी महत्व दिया जा रहा है।

योग भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख देन है। भारत में विकसित एवं प्रचलित आष्टांगिक योग में आसन का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकों यौगिक व्यायाम भी कहते है। आसन शारीरिक व्यायाम के साथ आध्यात्मिक लक्ष्यप्राप्ति का एक सोपान है, जबकि व्यायाम आयुर्वेद में वर्णित दिनचर्या के अंतर्गत आता है। व्यायाम एक शारीरिक प्रक्रिया है जो केवल शरीर बलवर्धन का साधन है। इस प्रकार शारीरिक व्यायाम से यौगिक व्यायाम अत्यधिक श्रेष्ठ है। शास्त्रों में विशेषत: योग के संदर्भ में शरीर और शडंगो की विशिष्ट स्थिति को आसन कहते है। जब शरीर को सामान्य स्थिति की अपेक्षा हाथ-पैर को संकुचित कर उन्हें ऊपर या नीचे, झुकाकर या तानकर किसी विशेष स्थिति में रखा जाता है तो वह आसन कहलाता है। योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने आसन की परिभाषी निम्न प्रकार बतायी है। 'स्थिर सुखमासनम्' अर्थात् स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन कहलाता है। इस प्रकार शरीर और शडंगों को सुखपूर्वक विशेष स्थिति चाहे वह बैठने की हो, खड़े होने की हो, मोड़ने या सीधा रखने की हो, सान कहा जाता है। आज के परिप्रेक्ष्य में आसन का सतत अभ्यास मनुष्य की निरोग, जीवन शान्ति तथा दीर्घायु को प्राप्त कराता है। इसके साथ मानसिक तनाव, कब्ज, थकावट, जकड़ने, हृदय रोग, स्नायुशैथिल्य, वायु विकार आदि अनेक रोगों से मुक्ति दिलाता है तथा अपने वास्तविक, शारीरिक शक्ति से अधिक शक्ति और स्फूर्ति को अनुभूत कराता है।

योग-व्यायाम की उपरोक्त क्रिया किशोरों के तनाव, अविश्वास, कुंठा जैसी समस्याओं को कम करने में मददगार साबित होता है।

आत्महत्या की प्रवृत्ति की नियंत्रित करने में माता-पिता की भूमिका बहुत ही प्रभावकारी सिद्ध हो सकती है, बशर्ते वह साकारात्मक हो। इस संदर्भ में माता-पिता की साकारात्मकता को निम्न बिन्दूओं से समझा जा सकता है-

आत्मनिरीक्षण

आत्मनिरीक्षण माता-पिता का एक महत्वपूर्ण तत्व है। एक अंतराल के बाद माता-पिता को अपने बच्चों से बातचीत करनी चाहिए। माता-पिता को यह अत्मनिरीक्षण करना चाहिए की उनके संभक्ष बच्चों की स्वाभाविक असहमति का अधिकार सुरक्षित है अथवा नहीं।

प्रोत्साहित करें

माता-पिता द्वारा बच्चे को प्रोत्साहित करना, उसकी स्कलता का एक मूल मंत्र हो सकता है। माता-पिता अपने बच्चे के जीवन में एक प्रमुख खिलाड़ी हैं उसको आत्मविश्वास, कड़ी मेहनत और उत्कृष्टता सिखाना उन पर निर्भर करता है। यह भी उनकी ही जिम्मेदारी है कि उनका बच्चा उनकी हर बात को दिल से स्वीकार करे।

बातचीत करें

आपके बच्चे के साथ बिताए जाने वाले कुछ सबसे अच्छे पल वह होते हैं जब आप खेल रहे हो और मस्ती या मनोरंजन की गतिविधियों में खुशी से भाग ले रहे हो। इन पलों को गहरी मित्रता और दोस्ती बनाने के अवसर के रूप में माता-पिता को इस्तेमाल करना चाहिए। उनके द्वारा दी गयी कोई भी वह सलाह जो उसको आज्ञा या दबाव न लगे, बच्चे के व्यक्तित्व को मजबूत करने मे बहुत सहायता करेगी।

सहायता प्राप्त करें

आपको और आपके बच्चे के लिए लगातार सहायता माँगना वर्जित नहीं है। वास्तव में परिवार परामर्श के लिए जीवन का एक जरूरी हिस्सा है, जिससे हम आगे बढ़ रहे है। मनोवैज्ञानिकों ओर परामर्शदाताओं को नकारात्मक व्यवहार संबंधी गतिविधियों की पहचान करने और उन्हें अलग करने में आपकी सहायता करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

इस प्रकार, किशोरावस्था में आत्महत्या की प्रवृत्ति एक मनोवैज्ञानिक समस्या के साथ-साथ सामाजिक समस्या भी बन गयी है। हमारे सुरक्षित व समृद्ध सामाजिक भविष्य के लिए इस समस्या का सामूहिक समाधान ढुंढ़ना अत्याश्यक है। क्योंकि इस समस्या का स्वरूप परिवर्तनशील है अत: इसका समाधान भी निश्चित अथवा सूत्रबद्ध न होकर परिवर्तनशील ही होगा बशर्ते वह युगानुकूल हो।

निष्कर्ष

प्राचीन काल में बाल विकास के अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक नहीं थी। बाल विकास क संबंध में जो भी ज्ञान प्राप्त था उसका आधार माता-पिता एवं श्रेष्ठ जन द्वारा अवलोकन हैं। समय बीतने के पश्चात् बाल विकास अध्ययन के नए आयाम उद्घाटित किए और बाल विकास के अध्ययन क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसके आलोक में बच्चों के विकास के संबंध में सदियों से चली आ रही मान्यताओं में कई प्राकर के संशोधन हुए।

कुछ विद्वानों के मतानुसार बालक का सही अध्ययन केवल बच्चे ही प्रस्तुत कर सकते है परंतु यह व्यवहारिक नहीं चूकिं बालक का मस्तिष्क इतना परिपक्व नहीं होता कि वे बाल आधार और व्यवहार को पूर्णत: विश्लेषित कर सके अत: विवशतावश बाल अध्ययन वयस्कों को ही करना पड़ता है। 1940 में लॉटन महोदय ने यह प्रश्न उठाया था कि क्या व्यस्क बालक के मनोविज्ञान को सही ढ़ंग से प्रस्तुत कर सकते है। वास्तव में यह वचारणीय प्रश्न है, क्योंकि जब व्यस्क बालक के विषय में लिखते है, तब उनके निष्कर्ष उनकी भावनाओं एवं विचारों में प्रभावित हो जाते है। विश्लेषण में व्यस्कों के पूर्वाग्रहों एवं निजी विश्वासों की भूमिाक को बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता। वस्तुनिष्ट अध्ययन की दृष्टि से इन कारको को अलग रखना आवश्यक प्रतीत होता है परंतु यह संभव नहीं।

बाल विकास का अध्ययन किसी सुनिश्चित नियम के अनुसार होना संभव नहीं, उनका व्यक्तित्त जटिल एवं गतिशील होता है। बच्चों के गतिशील व्यक्तित्व को एक सूत्र के सहारे नहीं समझ जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बच्चे का व्यक्तित्व विशिष्ट होता है। एक बालक दूसरे बालक के समान होने पर भी अपना एक अलग व्यक्तित्व रखता है जो उसका निजी होता है।

संदर्भ

1. शिक्षाशास्त्र एवं बाल विकास
2. योजना (मासिक), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
3. योग रहस्य
4. आज (दैनिक), पटना संस्करण
5. जी0 के0 अग्रवाल, ग्रामीण महिलायें एवं समाजशास्त्र, पृ0 88
6. जी0 के0 अग्रवाल, समाजशास्त्र, पृ0 26
7. जी0 के0 अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ0 22
8. नीता अग्रवाल, मातृकला एवं शिशु पालन, पृ0 39
9. राजराजेश्वरी प्रसाद सिन्हा, विकासात्मक मनोविज्ञान, पृ0 32

भारत छोड़ों आंदोलन में आजाद दस्ता की भूमिका : एक अध्ययन

डॉ० संजीव कुमार

एम0 ए0, पी.एच-डी., बिहार विश्वविद्यालय,मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

सन् 1942 ई0 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में अन्य प्रांतों की अपेक्षा बिहार का योगदान महत्वपूर्ण रहा। यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक स्वर्णिम युग था। इस आंदोलन ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का हिलाकर रख दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रगति एवं उससे उत्पन्न हुए गंभीर स्थिति को देखते हुए कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के कुछ शर्तो पर सहायता करने की नीति मंजूर की। इंग्लैण्ड की सरकार भारतीय राष्ट्रवादियों की कुछ मांगों को स्वीकार करने को सोचा। मार्च 1942 ई0 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंसटन चर्चिल ने ब्रिटिश संसद में भारतीय राष्ट्रवादियों के मांगों पर घोषणा की कि द्वितीय विश्वयुद्ध के खत्म हो जाने पर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाएगा। भारत के स्वराज्य की रूपरेखा बनाने के लिए 22 मार्च 1942 ई0 को स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत के दौरे पर आए। क्रिप्स के प्रस्तावित प्रारूप राष्ट्रवादियों के लिए संतोषजनक नहीं था। परिणामस्वरूप अगस्त 1942 ई0 को कांग्रेस ने भारत छोड़ों आंदोलन का नारा दिया। बिहार में इस आंदोलन का काफी प्रभाव पड़ा और बिहार इस आंदोलन में निर्णायक भूमिका अदा किया। 31 जुलाई 1942 ई0 को राजेन्द्र प्रसाद बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी की एक विशेष बैठक बुलाकर कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को भावी संघर्ष के लिए संगठित होने का आदेश दिया। इसी दिन छात्र एवं नवयुवकों ने पटना के अंजुमन इस्लामिया हॉल में एक सभा कर कांग्रेस के कार्यक्रम को समर्थन देने का योजना बनाया। 8 अगस्त 1942 ई0 को भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित होने के कुछ समय बाद कांग्रेस के अनेक नेता गिरफ्तार कर लिए गए। 9 अगस्त 1942 ई0 को राजेन्द्र प्रसाद भी गिरफ्तार कर लिए गए। कांग्रेस के लगभग शीर्ष स्तर के नेता गिरफ्तार किये जा चुके थे और जेल भेज दिए गए थे। इस गिरफ्तारी का छात्रों द्वारा पूरा विरोध किया गया। विरोधी प्रदर्शन लगभग पूरे बिहार में शुरू हो गई थी।

इस आंदोलन में जयप्रकाश नारायण की भूमिका काफी अग्रणी थी। इन्होंने हजारीबाग वर्तमान में झारखंड राज्य जेल से भागकर नेपाल के हनुमान नगर में शरण लिया था। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में नेपाली युवकों को छापामार युद्ध का प्रशिक्षण देने के लिए एक केन्द्र संगठित हुआ। साथ-ही-साथ इन युवकों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिए प्रोत्साहित किया गया। नेपाल में ही 'आजाद दस्ता' का गठन किया गया जो विशेष रूप से ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध तोड़-फोड़ की कार्रवाई कर सके ताकि सरकार को युद्ध कार्य में बाधा पहुंचे।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में बिहार में भारत छोड़ों आंदोलन का स्वरूप एवं आजाद दस्ता के योगदानों का विशलेषण किया गया है।

शब्द कुंजी- जन कार्रवाई, सुरक्षात्मक कार्यवाई, प्रशासनिक दमन, सरकारी क्षति, भूमिगत आंदोलन, तोड़-फोड़।

परिचर्चा

ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध यूं तो छिट-फुट संघर्ष 18 वीं सदी के मध्य से ही चलते रहे, किंतु 1942 के आंदोलन ने भारत की आजादी के लिए एक निर्णायक रुख अख्तियार कर लिया। जिस तरह 1857 के स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में भी बिहार ने अग्रणी

भूमिका निभायी। 1908 में श्रीमति एनी बेसेंट के नेतृत्व में होम रुल मुवमेंट के तहत सोनपुर में हुई विशेष बैठक में बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के गठन तथा 1917 में महात्मा गाँधी का चंपारण सत्याग्रह आंदोलन ने बिहारवासियों को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में ला दिया। भारत की स्वतंत्रता के लिए वे जागृत ही नहीं हुए, बल्कि कमर कस कर मैदान में कूद पड़े।

5 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की कार्य-समिति ने अपनी बैठक में एक इतिहास प्रसिद्ध प्रस्ताव लाया जिसे 'भारत छोड़ो' का नाम दिया गया। प्रस्ताव में भारत की जनता से अपील की गयी हक वे बहादूरी और साहस के साथ महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक अनुशासित सैनिक के रूप में स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए आगे आये तथा परेशानियों एवं खतरों को झेलने के लिए तैयार रहें।

बंबई में ऑल इंडिया कांग्रेस कमिटी की दिनांक 7 एवं 8 अगस्त 1942 को ऐतिहासिक बैठक हुई जिसमे यह भारत छोड़ो प्रस्ताव अत्यधिक बहुमत से स्वीकृत किया गया। कांग्रेस को संबोधित करते हुए महात्मा गांधी ने भारत की जनता को 'करो या मरो' का मंत्र दिया। उन्होंने कहा कि हम लोग या तो भारत को आजाद करेंगे या इस अभियान में अपनी जान दे देंगे। 9 अगस्त के प्रात: ही महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये और 9 अगस्त को ही भारत छोड़ो आंदोलन का उद्घोष कर दिया गया। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद अखबार पढ़ रहे थे कि पटना के जिलाधिकारी श्री डब्ल्यु0 जी0 आर्चर उन्हें गिरफ्तार करने के लिए पहुंच गये। राजेन्द्र बाबू बीमार हालत में थे। डाक्टर ने दूर के जेल में ले जाने के लिये मना कर दिया। अंत में उसी दिन मध्याह्न में राजेन्द्र बाबू को गिरफ्तार कर पटना के बांकीपुर जेल में भेज दिया गया।

उसके बाद राजेन्द्र बाबू के सहयोगी श्री ुलन प्रसाद वर्मा, श्री मथुरा प्रसाद उसी दिन गिरफ्तार किये गये। िर 10 अगस्त को श्री कृष्ण सिन्हा एग्जीविशन रोड स्थित श्री सरंगधर सिंह के निवास पर गिरफ्तार किये गए और 11 अगस्त को श्री अनुग्रह नारायण सिंह गिरफ्तार हुए। इसकी प्रतिक्रिया में तत्कालीन महाधिवक्ता श्री बलदेव सहाय ने त्यागपत्र दे दिया।

प्रतिक्रिया में सुरक्षात्मक कार्रवाई के लिए 9 अगस्त को ब्रिटिश हुकूमत ने अध्यादेश शासन की घोषण की। जिसकी अधिसूचनाओं को बिहार गजट के असाधारण संस्करण में छापा गया। इसके अनुसार ऑल इंडिया कांग्रेस वर्किंग कमिटी एवं इसकी शाखाएं गैरकानूरी घोषित क गयी एवं पत्रों के छपने पर पाबंदी लगा दी गयी। इसकी अवहेलना करने वाले संपादकों और प्रकाशकों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई का आदेश दिया गया।

सरकार की दमनात्मक कार्रवाई तथा राष्ट्रीय एवं प्रांतीय नेताओं की गिरफ्तारी ने पूरे बिहार में क्रांतिकारी जन आंदोलन की चिंगारी ैला दी, जो संपूर्ण बिहार में आग लगा दी।

आजाद दस्ता की पृष्ठभूमि एवं गतिविधियां

अगस्त प्रस्ताव और क्रिप्स प्रस्ताव में दोष होने के कारण कांग्रेस इसे अस्वीकार कर दिया था। क्रिप्स ने भी कांग्रेस को स्पष्ट कह दिया था कि अगर उसके प्रस्ताव पर कांग्रेस विचार नहीं करेगी तो भविष्य में ब्रिटिश सरकार भारत में राजनीतिक बाधाओं को दूर करने के लिए कोई विचार नहीं करेगी। क्रिप्स की अस्फलता के बाद आंदोलन ही एक मात्र रास्ता बचा था जिससे राजनीतिक बाधाओं को दूर किया जा सकता था। 14 जुलाई 1942 को महाराष्ट्र के वर्धा में कांग्रेस की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास किया। जिसका शीर्षक था 'भारत छोड़ो आंदोलन'। इस प्रस्ताव के प्रारूप में कहा गया कि अंग्रेस भारत पर से अपना अधिकार हटा ले नहीं तो भारतीय जनता विदेशी आक्रमणकारियों के खिलाफ आंदोलन करेगा। 8 अगस्त 1942 ई0 को मुम्बई अधिवेशन में कुछ संशोधन के साथ कांग्रेस कार्यसमिति ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस आंदोलन के समय गांधी जी ने कहा कि मेरे जीवन का यह अंतिम संघर्ष हैं गांधीजी स्वतंत्रता आंदोलनकारियों को 'करो या मरो' का नारा दिया। 9 अगस्त 1942 ई0 को प्रात: अनेक नेताओं को कैद कर लिया गया। लेकिन ब्रिटिश सरकार की कार्रवाई के बावजूद भी यह आंदोलन व्यापक रूप से पूरे भारत में ैल गया। स्वतंत्रता आंदोलनकारियों ने जुलूस निकाला एवं हड़ताल की। ब्रिटिश सरकार इसे कुचलने के लिए अनेक उपाय किए। अनेकों बार पुलिस को गोली चलानी पड़ी। कही लोग मारे गये। इस घटना से उत्तेजित आंदोलनकारियों ने सरकारी इमारतों को लूट कर आग लगा दी और थाने एवं डाकघरों में भी लूटपाट की एवं आग लगा दी। रेलमार्ग की पटरियों को भी क्षति पहुंचाया। यह आंदोलन फरवरी 1943 ई0 तक चलता रहा। इसके बाद मई 1944 ई0 तक यह आंदोलन धीमी गति से चलता रहा।

सन् 1942 ई0 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में अन्य प्रांतों की अपेक्षा बिहार का योगदान महत्वपूर्ण रहा। यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक स्वर्णिम युग था। इस आंदोलन ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का हिलाकर रख दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रगति एवं उससे उत्पन्न हुए गंभीर स्थिति को देखते हुए कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के कुछ शर्तो पर सहायता करने की नीति मंजूर की। इंग्लैण्ड की सरकार भारतीय राष्ट्रवादियों की कुछ मांगों को स्वीकार करने को सोचा। मार्च 1942 ई0 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंसटन चर्चिल ने ब्रिटिश संसद में भारतीय राष्ट्रवादियों के मांगों पर घोषणा की कि द्वितीय विश्वयुद्ध के खत्म हो जाने पर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाएगा। भारत के स्वराज्य की रूपरेखा बनाने के लिए 22 मार्च 1942 ई0 को स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत के दौरे पर आए। क्रिप्स के प्रस्तावित प्रारूप राष्ट्रवादियों के लिए संतोषजनक नहीं था। परिणामस्वरूप अगस्त 1942 ई0 को कांग्रेस ने भारत छोड़ों आंदोलन का नारा दिया। बिहार में इस आंदोलन का काफी प्रभाव पड़ा और बिहार इस आंदोलन में निर्णायक भूमिका अदा किया। 31 जुलाई 1942 ई0 को राजेन्द्र प्रसाद बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी की एक विशेष बैठक बुलाकर कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को भावी संघर्ष के लिए संगठित होने का आदेश दिया। इसी दिन छात्र एवं नवयुवकों ने पटना के अंजुमन इस्लामिया हॉल में एक सभा कर कांग्रेस के कार्यक्रम को समर्थन देने का योजना बनाया। 8 अगस्त 1942 ई0 को भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित होने के कुछ समय बाद कांग्रेस के अनेक नेता गिरफ्तार कर लिए गए। 9 अगस्त 1942 ई0 को राजेन्द्र प्रसाद भी गिरफ्तार कर लिए गए। कांग्रेस के लगभग शीर्ष स्तर के नेता गिरफ्तार किये जा चुके थे और जेल भेज दिए गए थे। इस गिरफ्तारी का छात्रों द्वारा पूरा विरोध किया गया। विरोधी प्रदर्शन लगभग पूरे बिहार में शुरू हो गई थी। सभी शैक्षणिक संस्थाओं में हड़ताल हो गई और राष्ट्रीय झंडे लहराए गए। वायसराय को आशा थी कि कांग्रेसी नेता के गिरफ्तार होने से यह आंदोलन थम जायेगा लेकिन वायसराय की यह सबसे बड़ी भूल थी। देखते-ही-देखते पूरे भारतवर्ष में आक्रोश की लहर तीव्र हो उठी। 11 अगस्त को विद्यार्थियों के एक जुलुस ने सचिवालय भवन के सामने विधान सभा की इमारत पर राष्ट्रीय झंडा लहराने की पुरजोर कोशिश की। पटना के कलक्टर डब्ल्यू0 जी0 आर्चर ने इन छात्रों पर गोली चलाने का आदेश दिया। इसमें सात छात्रों की जानें गई और अनेक घायल हुए। इनमें जो शहीद हुए उनके नाम थे- उमाकांत सिन्हा, रामनंद सिंह, सतीश प्रसाद झा, देवीपद चौधरी, राजेन्द्र सिंह, रामगोविन्द सिंह एवं जगपति कुमार। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस स्थल पर शहीद स्मारक का निर्माण हुआ। इसका शिलान्यास स्वतंत्रता दिवस को बिहार के प्रथम राज्यपाल जयरामदास दौलतराम के हाथों हुआ एवं औपचारिक अनावरण भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के हाथों 1956 ई0 में हुआ था। जिसे शहीद स्मारक के नाम से जाना जाता है। इन शहीदों की कुर्बानी से सारे बिहार में आंदोलन काफी उग्र हो उठा। इस गोलीकांड के विरोध में 12 अगस्त को पूरे पटना में हड़ताल रही। कांग्रेस मैदान में जगतनारायण लाल की अध्यक्षता में एक प्रस्ताव पारित किया गया कि संचार-व्यवस्था को ठप्प कर सरकारी कार्यो को शिथिल कर दिया जाए। इसके परिणामस्वरूप पूरे बिहार में रेल की पटरियां उखाड़ दी गई। तार और टेलिफोन की लाइनें काट दी गई। डाकघर, रेलवे स्टेशन पर हमला कर खजानों को लूट लिया गया एवं सरकारी इमारतों को जला दिया गया। साथ-ही-साथ पुलिस पर भी आक्रमण किया गया। आंदोलनकारियों ने हिंसात्मक साधनों का उपयोग करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश सरकार इस घटना को देखते हुए इसका दमन करने के लिए काफी शक्ति का प्रयोग किया। फिर भी बिहार के अधिकांश क्षेत्रों में उपद्रव फैलता गया। सारण, सोनपुर, छपरा, सिवान, गोविन्दपुर, मुजफ्फरपुर, मीनापुर, शाहाबाद, दरभंगा, बेलसंड, गया, कुर्था, पूर्णियां, पटना, धमदाहा, कटिहार, सहरसा, मुंगेर और भागलपुर आदि अनेक क्षेत्रों में हिंसात्मक घटनाएं घटी। ब्रिटिश प्रशासन के उठाए गए कड़े कदमों के बावजूद अनेक स्थानों पर कुछ समय के लिए सरकार को शिथिल कर दिया गया।

इस आंदोलन में जयप्रकाश नारायण की भूमिका काफी अग्रणी थी। इन्होंने हजारीबाग वर्तमान में झारखंड राज्य जेल से भागकर नेपाल के हनुमान नगर में शरण लिया था। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में नेपाली युवकों को छापामार युद्ध का प्रशिक्षण देने के लिए एक केन्द्र संगठित हुआ। साथ-ही-साथ इन युवकों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिए प्रोत्साहित किया गया। नेपाल में ही 'आजाद दस्ता' का गठन किया गया जो विशेष रूप से ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध तोड़-फोड़ की कार्रवाई कर सके ताकि सरकार को युद्ध कार्य में बाधा पहुंचे। 1943 ई0 के मार्च-अप्रैल में नेपाल के राजविलास जंगल में आजाद दस्ता का पहले प्रशिक्षण शिविर का गठन हुआ। जिसमें बिहार के 25 युवकों को आग्नेयास्त्र चलाने की शिक्षा दी गई। आजाद दस्ता के निर्देशक सरदार नित्यानंद सिंह थे। नित्यानंद सिंह आजाद दस्ता के सदस्यों को ब्रिटिश सरकार के तोड़-फोड़ की तीन तरह से कारगर कार्रवाई करने का प्रशिक्षण दिया।

1. यातायात साधनों को क्षति पहुंचाना।
2. औद्योगिक प्रतिष्ठान को क्षति पहुंचाना।
3. संचार साधनों का नष्ट करना।

संचार साधनों को नष्ट करने के लिए तीन तरह के उपाय बताए गए--

1. साधारण तोड़-ोड़ के लिए हथियारों एवं औजारों का प्रयोग
2. अग्निकांड के द्वारा सरकारी महत्वपूर्ण फाइलों को जलाना एवं
3. रासायनिक पदार्थ एवं बारूद द्वारा विस्फोट से मिलों एवं कार्यालयों को ध्वस्त करना।

इस कार्य को अंजाम देने के लिए दो तरह के दल तैयार किए गए। एक तरु वे लोग जो गोपनीय ढ़ंग से तोड़-ोड़ की कार्रवाईयों को अंजाम दे रहे थे। दूसरी तरु वे लोग जो व्यापक जन-आंदोलन का एक अभिन्न अंग बनकर हिंसापूर्ण कार्रवाई को आगे बढ़ा रहे थे। ऐसे संगठन को स्थापित एवं क्रियान्वित करने का दो उद्देश्य था। जेसा कि राम मनोहर लोहिया ने स्पष्ट किया था कि युवकों में जो हिंसा और संघर्ष की भावना बन रही थी उसे एक सही और मुख्य लक्ष्य प्रदान किया जाए। दूसरा कि किसी जन क्रांति के विस्फोट के समय में क्रांतिकारियों के पास ऐसे साधन एवं संगठन हो जिससे वह ब्रिटिश सरकार के दमनात्मक रवैया का नवयुवक हिंसात्मक रूप से सीधा मुकाबला करे। नेपाल में आयोजित आजाद दस्ता की कार्रवाई से प्रेरित होकर बिहार के भागलपुर एवं पूर्णिया में भी इसी ढ़ंग के संगठनें बनायी गई। 1943 ई0 के आखिरी तक आजाद दस्ता सक्रिय रहा लेकिन सरकार द्वारा जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया आदि क्रांतिकारियों को कैद कर लेने से यह आंदोलन शिथिल पड़ गया। जयप्रकाश नारायण इस काल में भूमिगत गतिविधियों में सक्रिय रूप से सहयोग करते रहे। उन्होंने सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिन्द सरकार से संबंध बनाने की कोशिश की। लेकिन यह संभव नहीं हो सका।

इस आंदोलन में हिंसा और पुलिस दमन के अनेक उदाहरण प्रस्तुत है। सिवान थाना में फुलेना प्रसाद श्रीवास्वत द्वारा राष्ट्रीय झंडा लहराने की कोशिश में पुलिस की गोली इन्हें लगी जिससे इनकी मृत्यु हो गई। जगलाल चौधरी सारण पुलिस थाने में आग लगा दी। चम्पारण में एक अलग सरकार बना ली गई। दरभंगा में कुलानंद वैदिक और सिंघवाड़ा में कर्पूरी ठाकुर ने संचार-व्यवस्था को शिथिल करने का काम किया। मुजफ्फरपुर के पास थाने को जला डाला गया। साथ-ही-साथ गया के कुर्था थाने पर झंडा लहराने की कोशिश में श्यामबिहारी लाल मारे गए। कटिहार थाने में झंडा लहराने की कोशिश में पुलिस ने ध्रुव कुमार को गोली मार दी। डुमरांव में झंडा फहराने की कोशिश में कपिलमुनि को पुलिस ने गोली मार दी। इसी समय छोटानागपुर वर्तमान झारखण्ड राज्य में आदिवासियों ने और तानाभगत आंदोनलकारियों ने अपने क्षेत्र में ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी। जमशेदपुर में टिस्को मजदूर हड़ताल शुरू कर दी। हजारीबाग, पलामू, हाजीपुर, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी एवं दरभंगा के कई जगहों पर क्रांतिकारी एवं आंदोलनकारियों ने अपनी सरकार संगठित कर ली। गांव में पंचायत एवं रक्षादलों की स्थापना की जाने लगी। राष्ट्रवादियों ने सामानान्तर सरकार की नींव रख दी। भारत छोड़ों आंदोलन के क्रम बिहार में करीब 15,000 से अधिक लोग गिरफ्तार हो चुके थे। 8,783 लोगों को सजा हुई, 134 लोग मारे गए एवं 362 लोग घायल हुए। इस आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार के शासन प्रणाली नीति को बदलने पर मजबूर किया। 1945 ई0 में राजनीतिक प्रक्रिया नए रूप से बहाल हुई एवं युद्ध समाप्ति के बाद पुनः चुनाव कराए गए।

निष्कर्ष

भारत छोड़ो आंदोलन में जनता ने बड़े साहस और उत्साह से काम किया। प्रारंभ में इसे सफलता प्राप्त हुयी, किन्तु अंत में सरकार के कठोर दमनचक्र के कारण तथा नेताओं के अभाव में आंदोलन सफल नहीं हो सका और अपने दमनकारी तरीको से ही अंग्रेज खुद को फिर से जमाने में सफल हो गए। युद्ध की स्थिति ने दो तरह से उनकी मदद की। एकतरफ, उनके हाथ में विशाल सैन्य शक्ति थी जो भारत में जापानी हमले कमे मुकाबले के लिए रखी गयी थी, परंतु इस शक्ति का उपयोग आंदोलन को कुचलने के लिए किया गया। दूसरी तरफ, युद्धकालीन सेन्सर का लाभ उठाकर उन्होंने आंदोलन को निर्मम ढ़ंग से दबा दिया। उन्हें न तो इस दमनकारी आंदोलन के लिए किसी आंतरिक आलोचनाओं की चिंता करनी थी और न विश्व जनमत की। मित्र राष्ट्र, धुरी राष्ट्रों के साथ युद्ध में उलझे थें, उन्हें इस बात की चिंता करने का समय नहीं था कि अंग्रेज भारत में क्या कर रहे थे। आंदोलन कमे असफल

होने का एक अन्य प्रमुख कारण था- विद्रोहियों के बीच समन्वय संगठन और किसी निश्चित कार्य प्रणाली का अभाव। और यही कारण था कि आंदोलन की गति शिथिल पड़ गयी और अंततः असफल हो गयी।

बिहार से प्रकाशित होने वाली उर्दू, हिन्दी एवं अंग्रेजी समाचार पत्रों में देश की विकट राजनीतिक समस्याओं एवं उनके कारणों का विश्लेषण प्रायः ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध हो रहा था। इस स्थिति ने ब्रिटिश सत्ता को परेशानी में डाल दिया। फलतः सरकार ने अनेक तरीकों से समाचार पत्रों को नियंत्रित करने का प्रयास किया। इसके बावजूद समाचार पत्रों में इस आंदोलन का अंकन होता राह, जिसने प्रत्यक्ष तौर पर इसकी गति एवं दिशा को निर्धारित किया।

संदर्भ

1. दत्ता, डॉ के0 के0; बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास (भाग-3), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0 233-240
2. बिहार (हिन्दी मासिक); भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान विशेषांक (अगस्त-अक्टुबर 98), सूचना एवं जन संपर्क विभाग, विभाग, पटना, पृ0 सं0 9,10, 68
3. काश्यप, डॉ0 सुभाष; स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 सं0 73-99
4. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 408-419
5. दत्त, डॉ0 के0 के0; बिहार में स्वातंत्रता आंदोलन का इतिहास (भाग-3), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0 28-125
6. बिहार (हिन्दी मासिक), भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान विशेषांक (अगस्त-अक्टुबर 98)
7. आधुनिक भारत का इतिहास रामलखन शुक्ल
6. आधुनिक भारत का इतिहास, धनपति पाण्डे
9. बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, के0के0 दत्ता

नागार्जुन की कविता में सौन्दर्य बोध

डॉ० सीमा कुमारी झा

सहायक शिक्षिका, +2 कन्या उच्च विद्यालय, आनन्दपुर, दरभंगा

किसी भी युग-परिवेश और वातावरण के कैनवास पर साहित्य-रचना में जीवन की अभिव्यक्ति उसकी अशेष सौन्दर्य-सत्ता के साथ ज्ञान आवश्यक है। यह किसी भी रचनाकर के शैली-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान निभाता है। नागार्जुन न केवल हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं, वरन्, मैथिली के भी युग-प्रवर्तक रचनाकार हैं। शोषित-समाज की पीड़ा और वर्ग-संघर्ष उनकी ख्र तियों में पूरे आवेग के साथ उभरकर सामने आए हैं, इसलिए उनके लिए रचना-कर्म जीवन-कर्म, का ही विस्तार बन गया है।

नागार्जुन की बहुसंख्य कविताएँ मध्यवर्गीय जिन्दगी की मुखबिरी करती हैं। महानगरी जीवन के त्रसद बिम्ब किसी भी कवि की रचना-प्रक्रिया और उसकी काव्य-भाषा के महत्त्वपूर्ण उपादान सिद्ध हो सकते हैं। नागार्जुन के रचना-संसार के उस त्रसद जीवन के चित्र अल्प है, किन्तु उस जीवन-शैली एवं मानसिकता से संबंधित कुछ व्यंग्यात्मक बिम्ब अवश्य बड़े मारक हैं। नागार्जुन ने तथाकथित भद्र-समाज के शिष्ट संभ्रान्त संस्कृति प्रेम के ढोंग एवं कृत्रिम रसिकाई पर करारा प्रहार किया है। डबल एम.ए. मिसेज गुप्ता, जिनके घर चाँदी के बापू, गजदंत के तथागत् चंदन के विठोवा, ताँबे के लेनिन सुसज्जित थे और साथ ही जिनके पास मार्क्स का पूरा सेट था, ये मिसेज गुप्ता कवि की कदन्न-दग्ध नियोग को आइसक्रीम खिलाकर अपनी कन्या की कॉपी पर कविता लिख देने का आग्रह करती है वह भी उनकी प्रसिद्ध कविता ही जिसमें 'पाँखें खजलाई कौए ने', 'रोता रहा चुल्हा', 'चक्की थी उदास' जैसा कुछ विम्ब है। इस पूरे चित्र को उपस्थित कर नागार्जुन जहाँ एक ओर चंद प्रगतिशीलों पर अपना निशान साधते हैं, तो दूसरी ओर सभ्य समाज की पूरी मनो-संस्ख्रति की बखिया उधेड़ कर रख देते हैं। स्वयं में अद्‌भुत संभावना समेटे हुए इस कविता का वस्तु एवं शिल्प अनिर्वचणीय है। एक और भद्र महिला पर अपनी प्रसिद्ध काले-काले भंवरे पर नौकरानी को डपटने की भंगिमा का चित्रण कर इस वर्ग पर करारा व्यंग्य किया है।

अर्धस्फुट कमल की पंखुड़ियों को/क्या हो गया था जाने
निकलते रहे बाहर/एक के बाद एक/काले-काले भौरे-/
देर तक हिलते ही रह गये हिलती रहीं देर तक।
अर्धस्फुट कमल की फीकी पंखुड़ियाँ

हिलते होंठो को अस्फुट कमल और निकलने वाली गालियों को काले-काले भौंरों के रूप में देखना, नागार्जुन के वश की ही बात है। इन उपमानों के द्वारा वह इस वर्ग-चरित्र की कुत्सित मानसिकता की ओर चुपके-से इशारा कर जाते हैं। जयति नखरंजनी कविता भी इसी ढर्रे की कविताओं में एक बेमिसाल कड़ी है

सामने आकर/रूक गई चमचमाती कार
बाहर निकली वासकसज्जा युवतियाँ
चमक उठी गुलाबी धूप में तन की चमपई कांति

तिकोने नाखूनों वाली उँगलियाँ
सुर्ख नेलपालिश/कीमती रिस्टवाच
अंगूठियों के नग्/कानों के मणिपुष्प
किंचित कपचे हुए सघन नील-कुंतल
सब कुछ चमक उठा, महक उठा वायुमंडल[2]

ये सुसज्जित युवतियाँ रीतिकालीन नायिका नहीं है, वरन् समाज में बेहद सम्भ्रान्त मानी जानी वाली आधुनिकताएँ हं जो वोट देने हेतु सज-धज कर आयी है। नागार्जुन विलक्षण दृष्टि से संपृक्त जनवादी कवि हैं, तभी इतनी सावधानी से उन युवतियों के सूर्ख नाखूनों के पीछे कृत्रिम एवं छदम् जीवनानुभूति को आसानी से पहचान जाते हैं। रोशनी में नहाये जीवन के काले अंधेरे कोनों का संधान कर लेते हैं। जीवन की सहजता पर परत चढ़ाए कृत्रिम रंगीनियाँ किस प्रकार लोगों को अपनी गहरी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों से लोगों को विमुख कर रही है, इसका सद्यः उदाहरण यह कविता है। वह मतदान करने हेतु सजधज कर आती है। कविता में आगे की घटना को चित्रित करते हुए नागार्जुन लिखते हैं-

ठमक गये सहसा बेचारियों के पैर[3]
यह इसलिए कि मतदान करने पर काला निशान उँगुलियों पर लग जाएगा।
हाय, इतने सुंदर हाथ हो जायेंगे दागी!
भड़क उठा परिमार्जित रूचि-बोध-
छिः कौन लगाये काला निशान।

क्षण-भर चिठकर/नई दिल्ली की तीनों परियाँ
मुड़ गई सहसा वापस। स्टार्ट हुई कार/लोग परियाँ
बात थी जरा-सी बस काले निशान की
तीन वोट रह गये फैशन के नाम पर[4]

सौन्दर्य एवं परिमार्जित अभिरूचि-समंजता के नाम पर अपनी सबसे बड़ी जिम्मेदारी के प्रति इतनी उपेक्षा भाव प्रायः इस वर्ग में पायी जाती है और ऐसे लोगों के प्रति आम तबके का कैसा रवैया होता है, उसे भी बड़े मारक ढंग से कवि कह जाते हैं। बाद में हँसनेवाले लोगों की जमात में कवि भी शमिल है। यह जनकवि कितनी बारीक से नव-धनाढडों की तिमिरावृत अंतश्चेतना की पोल खोलता है, यह दर्शनीय है। इस कविता से प्रतीत होता है कि साहित्य में रीतिकाल का समापन भले 150 वर्ष हो गया है, लेकिन उसका समाज पर जो गहरा प्रभाव छद्म मध्यवर्गीयों के जीवन एवं चरित्र में गाहे-बगाहे प्रदर्शित होता रहता है।

श्याम तन भर बंधा यौवन/नत नयन प्रिय कर्म रत/मन गुरू हथौड़ा हाथ/कती बार-बार प्रहार/सामने अटालिका प्रकार में जिस वर्ग की महिला की दैहिक सौन्दर्य की निराला जिक्र कर रहे हैं वो उसके कर्म-सौन्दर्य के कारण निखरा है। अटालिका के सामने अपने गुरू से पत्थरों पर प्रहार कर अटालिका को चुनौती उस महिला का कर्मरत सौन्दर्य इस भवनों में वास करने वाली यौवना सौन्दर्य से कई स्तरों में अलग और अनोखा है। इसे बहुत ही बारीकी से नागार्जुन पकड़ते हैं। इसी वर्ग से संबंधित एक प्राचार्य का चित्रण करते हैं, जो पुलिस लाठीचार्ज, अकाल, महामारी, बाढ़-सूखा जैसे मानविकी एवं प्राकृतिक आपदाओं से होनेवाली भारी जनहानि को 'नाश और निर्माण का चक्र' मानकर निरुद्वेग-निश्चित रहते हैं, किन्तु अपने लल्ला (पुत्र) के शिकागो न जा पाने की नौबत से रात-दिन गम में डूबे रहते हैं। पुलिस जुल्म की कहानी को वह किसी रोमांटिक नोवेल के बतौर सुनते हैं-

नत-नयन, मुद्रित मुख कुर्सीधर ने देखा/तो फिर क्या हुआ?

महीन मुस्कान फेंकते रहे मेरी ओर/वेतन सर्वस्व बुद्धिजीवी महानुभाव
प्रज्ञाकर गुणनिधान-बोले-यह सब तो चलता ही रहेगा/कहाँ तक रोयेंगे आप?
प्रलय नहीं होगा सृष्टि कैसे होगी,
क्यों भला बंद हो नाश और निर्माण के चक्र[5]

गुण निधान महोदय ने सहसा नगार्जुन को गोल्ड-"लैक सिगरेट पकड़ाया ताकि कहानी की रोमांच को ज्यादा दिलचस्प ढंग से गटका जा सके, किन्तु अपने पुत्र के शिकागो न जा पाने को मानव-जाति पर आसन्न एक गम्भीर संकट की भाँति रूपायित करते हैं-

डालर की किल्लत भी खूब रही लल्ला नहीं
जा सका शिकागो/हो गई पैसे जरद[6]

नागार्जुन का इस पर पूछना कि 'फिर क्या हुआ' पूरी कविता में एक कीलक के रूप में कार्य कर रही है। मध्यवर्गीय स्वार्थपरकता एवं छद्म संवेदनशीलता को उजागर करने के लिए नागार्जुन का यह व्यंग्य बड़ा कारगर सिद्ध हुआ है, क्योंकि इस प्रश्न के बाद गुणनिधान महोदय की जो प्रतिक्रिया वो पूरी कविता को एक नाटकीय मोड़ देकर पूरी मानसिक विडम्बना को प्रत्यक्ष कर देता है-

हो गई गरीब की कैरियर चौपट
और आप पूछते है/तो फिर क्या हुआ! तो फिर क्या हुआ!
आप भी साहब निरे साहित्यकार ठहरे!![7]

अंतिम पंक्ति और भी मारक है। मध्यवर्गीय समाज में साहित्यकार की कितनी इज्जत और कैसी हैसियत होती है, उसप र नागार्जुन ने व्यंग्यात्मक ढंग से चोट किया है, जो कर्म पैसे न बरसाये, वह इस वर्ग के लिए ओछा और बैठे-ठाले का काम है, फिर चाहे उस कार्य को संपदित करने में कोई अपने जीवन, सर्वस्व निछावर कर दे। कुछ प्रश्न, छोड़ी नाटकीय संयोजन के बल पर पूरी मध्यवर्गीय चरित्र के तहेदार परतो को एक-एक नागार्जुन उघाड़ते हैं। यही उनकी खूबी है। अन्य कई कविताओं में भी नागार्जुन इसी मध्यवर्गीय मानसिकता का जायजा लेते हुए जन और भद्र के पार्थक्य को रेखांकित करते हैं। निमित्त जो उनकी उल्लेखनीय कविता है, वो है-'वे और तुम'-

वे हुलसित/अपने ही फसलों में डूब गये है
तुम हुलसित हो/चितकबरी चांदनियों में खोये हो
उनको दुख है/नये आम की मंजरियों को पाला मार गया है
तुमको दुख है/काव्य-संकलन दीमक चाट गये हैं।[8]

दो वर्ग और दो संस्कृतियाँ; दोनों के बीच के पार्थक्य को समझने-समझाने के लिए किसी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। एक मिथ्या संस्कृति जो पूँजीपतियों एवं भद्रलोक के जीवन से उत्पन्न है और केवल अमानुषिता, अहंकार एवं भोगवाद कर विज्ञापन करती है, दूसरी वर्ग-उल्लास का, जीवन-संघर्ष तथा मानवता के सार्थक मूल्यों के नये अध्यायों को जीवन से संलग्न करती है। उनकी सहजता और निरीहता बड़े मानवीय प्रश्न करती है थोड़े में ही खुश होने वाले इस वर्ग की वह भी समाज नहीं मयस्सर करा पा रहा है, इस पर प्रश्न है। यह कविता परस्पर विरोधी चेतना की कविता है, मध्यवर्गीय छद्म आवरण एवं सर्वहारा वर्ग के कठिन जीवन-संघर्ष की कविता है।

नागार्जुन बस परिस्थिति का जायजा नहीं लेते, बल्कि उसमें परिवर्तन लाने के लिए उद्यम भी करते हैं। वो ईट का जबाब पत्थर से देना जानते हैं। वो समाज पनपने वाले छद्मवेशियों की बिल्कुल सटीक शिनाख्त करते हैं। इसी क्रम की एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

कविता है 'धिन तो नहीं आती'। ट्राम में सवारियों की धकापेल में फंसे हुए एक नीस-नाजुक, धुल से धुले लिबास में लिपटे भद्रजन को लक्षित कर नागार्जुन लिखते हैं-

छूती है निगाहों को/कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान
बेतरतीब मुंछों की थिरकन/सच-सच बताओ
धिन तो नहीं आती है?/जी तो नहीं कुढ़ता है?[9]

कितनी आत्मीयता से नागार्जुन पूछते हैं, लेकिन इस आत्मीयता में प्रच्छन्न प्रवाहित गहरे व्यंग्य की ओर पाठक का ध्यान सहज ही आकृष्ट हो जाता है। ठहाके, सूर्ती-भरे मुँहों से निकलती देशी-माटी की मोटी बातें और आहलाद में भरी कत्थई मुस्कान भद्र बंगाली चरित्र पर कितना भारी पड़ा है, उसका समीक्षाकरण नागार्जुन ने कराया है। यों तो घटना बेहद मामूली है, जिसे सब नोटिस भी नहीं कर सकते, लेकिन ये तो अपने नागार्जुन है जो देश-कोस की बातें करने वाले मजदूर की देहभाषा और उसके हँसी-ठहाकों को तथाकथित भद्रोजनित आचार-व्यवहार को पर वरीयता देते हैं। पसीने की गंध और कत्थई मोटी मुस्कान का सम्मान करनेवाले आम्फहम भाषा के विशिष्ट कवि के मन में झंझावत पैदा करती ये कविताएँ प्राणवाण और अर्थगर्मित शब्दों की एक मुकम्मल और भरी पूरी दुनिया से पाठक का साक्षात्कार कारवाती हैं।

यही असल में बाबा की कविताओं के ठेठ भारतीय और मौलिक धरातल की पहचान है, जो उन्हें अपने समकालीन दौर के प्रमुख कविताओं में अलग भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित करती है। बाबा जमीन से जुड़े कवि हैं। अपने जनपद की धड़कनें उसका जीवन्त परिवेश अपनी माटी की सोन्धी गन्ध उनकी कविता में मौजूद है। लोक-जीवन जितना प्रामाणिक और विश्वसनीय यथार्थ नागार्जुन में मिलता है, वह उनके समकालीन अन्य कवियों में दुलर्भ है। उनके सामने समस्याएँ ही समस्याएँ हैं और जनता की जितनी समस्याएँ हैं- सब उनकी समस्याएँ है, छोटी-से छोटी घटना और बड़े से बड़े सामाजिक आदोलनों एवं राजनैतिक घटाटोपों पर अपने चिंतन को कविता में कहने की उनकी आदत है और इसलिए सारी समस्याएँ भी उनकी कविता का विषय बन जाती हैं। स्वभाव से दुर्वासा एवं हृदय से दुधिया वात्सल्य के संवाहक कवि नागार्जुन की कविताएँ एक नए सौन्दर्यशास्त्र की माँग करती हैं तथा पाठक से और उससे ज्यादा आलोचक से एक प्रकार के मुक्त और सीधे संबंध की अपेक्षा रखती है।

संदर्भ सूची

1. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 317
2. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 304
3. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 304-305
4. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 304-305
5. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 306
6. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 306
7. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 306-307
8. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 362
9. नागार्जुन रचनावली भाग-1 : (संपादक शोभाकान्त), पृ. 351

अमरजीक व्यंग्य स्तम्भ सबमे राजनीतिक ओ सामाजिक विवेचन

डॉ० शीतल कुमारी

पूर्व गवेषिका, विश्वविद्यालय मैथिल विभाग, ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

सारांश

मैथिली साहित्यक आरम्भमे हास्य व्यंग्य रचना तँ छपैत छल मुदा एकरा कोनो स्थायी स्थान नहि प्राप्त छलैक। ई स्तम्भक रूपमे तँ छपैत छल, मुदा कोनो एक लेखकक रचना सब अंकमे छपय एकर कोनो निश्चितता नहि छलैक 1951-52 मे दरभंगासँ चारिटा पत्रिकाक प्रकाशन हिन्दीमे होइत छल, मिथिला मिहिर, उदय, पंचायती राज आ निर्माण। उदय आ मिथिला मिहिरमे स्थायी सत्म्भक स्थान नहि छलैक मुदा पंचायती राजमे नागार्जुन (यात्रीजी) चुम्मन चौधरी की चिठी लिखैत रहथि। दू मासक बाद ओ लिखब छोड़ि देलनि तँ संपादकक आग्रह पर अरमजीकें ई भार भेटलनि आ ओ हिन्दीमे 'बतहू मिसर की बहक' नामसँ लिख* लगलाह।

सन् 1955ई. मे दरभंगासँ प्रथम मैथिली दैनिक स्वदेशक प्रकाशन होअय लागल। ओहिमे 'हमरो किछु कहबाक अछि' स्तम्भमे 'उचित राम' छद्म नामसँ ई हास्य व्यंग्य लिखैत छलाह। नवम दशकमे जखन दैनिक स्वदेशक पुनः प्रकाशन भेल तँ 'उचित राम' पुनः हास्य व्यंग्य स्तम्भमे विभिन्न शीर्षक यथा-उचित रामक उचिती, पुन्नी पाठकक पसाठ, खोखइ सिंहक खखास, कैलू कमतीक कूही, चेलारामक चौल आदिक माध्यमसँ समसामयिक घटनाचक्र पर व्यंग्य लेखन करैत छलाह।

प्रस्तावना

मैथिलीमे हास्य-व्यंग्य लेखकक रूपमे तीनटा साहित्यकार स्थायी भऽ गेल छथि, सीताराम झा, हरिमोहन झा आ पं. चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'। अमरजीक लिखल व्यंग्य स्तम्भ सब वैदेही, निर्माण, दैनिक स्वदेश आ पटनासँ नव कलेवरमे 1960ई. सँ प्रकाशित मिथिला महिर साप्ताहिकमे देखि पड़ैछ। पाक्षिक रूपमे जखन वैदेहीक प्रकाशन आरम्भ भेल तँ ओकर ई सम्पादक तँ छलाहे संगहि ओकर 'गोनूझाक चौपाड़ि' नामक हास्य व्यंग्य स्तम्भ धर्मधकेलानन्दक नामसँ सेहो लिखैत छलाह। सन् 1954ई. मे निर्माण साप्ताहिकक सम्पादक भेलाह तँ ओहिमे मैथिलियोक सामग्रीक समावेश कैलनि।

1954ई. मे निर्माण साप्ताहिकक सम्पादक भेलाह तँ ओहिमे हिन्दीक संग मैथिलियोक किछु जगह भेटलैक। ओकर अलगे अंकसँ 'बतहु मिसर की बहक' बतहु मिसर कऽ छद्म नामसँ लिखऽ लगलाह। किन्तु ओ हिन्दीमे छल। ओकर स्थान हिन्दी खण्डमे सम्पादकीय पृष्ठक अव्यहित पश्चात रहैत छल। एकर कुल बेयालिस किस्त बहरायल आ ओकर बाद ई पत्रिका बन्द भऽ गेल। देखल जाय एहि स्तम्भक किछु अंश-

''आज रमजानी ने मिसर से पूछ दिया- हो मिसर! मिथिला मिहिरमे ई तुम्हारे खटरकका को हैं जो बघारते रहते हैं। सुना है कि सास्तर पुरान सबका खटर मटियामिट कर देना चाहते हैं।

मिसर को तो खटरकका, बुचकुन बाबा और निरसन मामा सभमे जान पहिचान है, भला इनके खिलफमे कोई बोले, मिसर कैसे बैठे रह सकते हैं, इसलिए मियाँ रमजानी को समझाने लगे कि होजी रमजानी, खटर कोई आदमी-वादमी नहीं है, एक हमारे प्रोफेसर हैं..''[1]

आचार्य सुरेन्द्रझा सुमनक सम्पादनमे दरभंगासँ 1955ई. सँ दैनिक स्वदेशक प्रकाशन आरम्भ भेल 'ओहिमे 'हमरो किछु कहऽ दिअऽ', हमरो सुनू, आइ हमरो सुनू, आई हमरे सुनू आदि शीर्षकसँ ई स्तम्भ लिखऽ लगलाह। ओहि स्तम्भक पात्र सब छल-उचितराम, खुरखूरसदाय, बचकानीमड़र, मुंशी खौकारलाल, रामचरण महतो, सोने लाल यादव। एकर विशेषता ई छल जे सब पात्र सवर्णेतरे छल।

ई स्तम्भ सब मिथिलाक लगभग सब जाति-वर्गक भाषामे अछि। जे व्यक्ति जतेक शिक्षित छैक ओकर ज्ञानक स्तर जेहन छैक ओकरा ओहने समस्या सब देखाइत दैत छैक। जेना कैलू कमतीकेँ कूही होइत छनि जे लोक अंग्रेजीक तारीखसँ कोनो जन्म-मरण, पर्व-त्योहार कियैक मनबैत अछि। अपना पतराक हिसाबसँ कियैक नहि मनबैत छैक। अंग्रेजी राजकाजमे तँ ठीक छैक मुदा पाबनि तिहार, विवाह उपनयनमे नहि। द्रष्टव्य अछि किछु पंक्ति-

''अहाँ राजकाजमे रवाहे आने-आने काजमे उड़रेजी तारीखकें परमुरवता दैत छियैक तँऽ दियौ, महज जनम मरन, विवाह, उपनैन, पवनी-तिहार ऐ सबमे अंडरेजी तारीख कोना चलत? एकर तँऽ इहे मतलब भेल जे अपना आउरके जे पोथी पतरा अइठिनके जोतखी पण्डित रखै छला गऽ तेकरा आउरके पानीमे फेक दल जाय। ई हाल ऐहन-ऐहन परिवर्तन देखा कऽ केहन-केहन विदावनी आउर कूही होता। तखनी कमतीकें तँ मन कूही होइत छैन तऽ कोन अजगुत बात।''[2]

दोसर खेप दैनिक स्वदेश 15 अगसत 1981 सँ पुनः आरम्भ भेल। स्वाभाविक छल जे हास्य व्यंग्य स्तम्भ लेखनक भार अमरजीकें देल गेलनि। एहि बेर ओ पछिला पात्र सबमेसँ मात्र उचित रामकें जीवित कयलनि बाकी चारि गोट नव पात्रक सर्जन कैलनि। ओ पात्र सब छल- कैलूकमती, खोखइसिंह, चेलाराम आ पुन्नीपाठक। एहि माध्यमसँ ओ सामयिक घटनाचक्र पर व्यंग्य-लेखन करैत छलाह। एहिमे कुल मिलाय 137 किस्त प्रकाशित भेल।

'चेलारामक चौल' एहिमे ई सरकारक उपर व्यंग्य कैलनि अछि। गरीबक लेल सबसँ पहिने जरूरी छैक ओकर रोजगार, ओकर मजदूरी। जँ सरकार कोनो इलैक्ट्रॉनिक सामान टीवी, फ्रिज आदिक मूल्ये कमी कऽ दैत छैक तँ आरो फायदा पैसे वलाकें होयतै। गरीबकें तँ पेटो भरनाइ मुश्किल रहैत छैक-

''भारत सरकार एक अरब सलाना नोकसान उठा कऽ दूरदर्शनकें एतेक सस्ता बना रहल अछि। आब जे बुधियार भूमिहीन परिवार होयत से एक सालक आदमदनीकें बचाकऽ राखि लेत आ चट दऽ बाजार जाकऽ एकटा दूरदर्शन सेट कीनि आनत। चेलारामकें तँ भगवान एखन धरि एहन सौभाग्य नहि देलथिन अछि जे दूरदर्शन सेट कीनि सकताह, मुदा लोकक मुँहसँ सुनल अछि जे कहाँदन दर्शन द्वारा ततेक ज्ञान ओ विज्ञानक आलोकमे लोककें भुखव्यासकें के कहै निद्रा पर्यन्त बिसरि जाइत छैक। जखन घर-घरमे ई लागि जेतैक तखन भूखक कोनो प्रश्नों नहि रहि जेतैक।''[3]

अरमरजीक हास्य व्यंग्य लेखनमे सबसँ महत्त्वपूर्ण अछि मिथिला मिहिरमे धर्मधकेलानन्दक छद्म नामसँ लिखल गेल धर्मधकेलानन्द जीक बलघिंगरो, मिथिला मिहिरमे ई 3 जनवरी 1965सँ 17 जुलाइ 1971 धरि प्रकाशित भेल। एकर लेखनक सम्बन्धमे लेखकक उक्ति छनि-

''आर्यावर्तमे एक व्यंग्य स्तम्भ रहैक 'चुतकुलानन्द की चिठी' रघुनन्दन प्रसाद ई स्तम्भ लिखैत छलाह, बहुत दिन रहलाह, किन्तु व्यवस्थापकसँ मतभिन्नता भऽ गेलाक करणें ओ आर्यावर्त छोड़ि देलनि तँ हीरानन्द शास्त्री लिखऽ लगलाह। मिथिला मिहिर जखन पटनासँ प्रकाशित होअय लगलैक तँ गोनू झाक चटिसार व्यंग्यस्तम्भ सेहो यैह लिखैत छलाह। पदोन्नत भऽ उपसम्पादक भऽ गेला पर कार्यधिक्यक कारणें ई स्तम्भ हमरा लिखबाक अनुरोध भेल तँ हम शीर्षक बदलि 'धर्मधकेलानन्दक बलघिंगडो' नामसँ सात वर्ष धरि लिखलहुँ।''[4]

एहिसँ ई स्पष्ट भऽ जाइत अछि जे वैदेही पत्रिकाक गोनूझाक चौपाड़िक छद्मनासँ धर्मधकेलानन्दकें पुर्नजीवित करैत ई मिहिरक हास्य-व्यंग्य स्तम्भमे गोनूझाक चौपाड़िक स्थानापन्न धर्मधकेलानन्दक बलघिडरो शीर्षकसँ व्यंग्य स्तम्भ लिखब प्रारम्भ कयलनि। एमहर आबि 2017ई. मे हिनक धर्मधकेलानन्दक बलघिडरो पुस्तक प्रकाशित भेल। जाहिमे 03 जनवरी 1965 सँ लऽ 8 सिम्बर 1968 ई. धरिक 124 टा एपिसोड अछि।

एहिमे समकालीन महत्त्वपूर्ण घटना सबपर विरोध, समर्थन, सुधार, समन्वय तथा विश्लेषण भेल अछि। संगहि पत्रकारिता-पद्धतिक टिप्पणी मात्र नहि अछि, अपितु एहिमे अभिनव विचार ओ कल्पनाक उन्मेष सेहो अवक्षेपित होइत अछि। लोकसब जे गामघर वा शहरमे कोनो बात पर झगरि उठैत अछि आ एक दोसरा पर मोकदमा ठोकि दैत अछि। पहिने लोकसब आपसमे बात विचार कऽ वा पंचायतमे मामिला सलटि लैत छल, मुदा आब लोक दौड़ल गेल थाना मोकदमा करऽ। एहिपर धर्मधकेलानन्दक कथन छनि-

''जाहि-जाहि गाममे चारू टोल हो ताहि-ताहि गामकें जिला बना देल जाय। तीनू टोल तीनू सब डिवीजन रहत आ चारिम टोल थाना। ब्रह्मक स्थान पर मुख्यालय रहत। सब गाम शहर भऽ जायत। लगे मोंछ परोसें दाढ़ी जकाँ ककरो बाड़ीमे जँ ककरो बकरी भाँटाक एकोटा मूड़ी खयलकनि की चट फौजदारी कऽ देतनि। एखन तँ जिला वा सब डिवीजन दूर रहैत छैक तँ लोक तारतम्य करऽ लगैत अछि आ पाँछा जोशे ठण्ढ़ा पड़ि जाइत छैक आ लगमे कचहरी रहने तँ टिन्हीओ बर्तन जावत ठण्ढ़ा होयत तहिसँ पहिने कचहरी पहुँचि जायत।''[5]

हिनक एहि स्तम्भ सबमे कतहु ने कतहु देश समाज ओ राजनीति घोसिआयल अछि। प्रायः सबमे कतहुँ ने कतहु एहि सबपर व्यंग्य कैल गेल अछि। हिनक स्तम्भ सबकें खटर ककाक तरंगसँ तुलना कैल जाइत अछि, मुदा खटर ककामे समाज आ बेसी शास्त्र-पुरानक चर्चा अछि मुदा हिनक स्तम्भ सब ओहि समयक इतिहासे अछि। एहिमे स्वतंत्रता प्राप्तिक बाद देशक जे स्थिति भेलैक, गरीबक जे लाचारी छलैक ताहिपर बेबाक लिखल गेल अछि। एहि सम्बन्धमे डॉ. रामदेव झाक कथन छनि-

''हास्य व्यंग्य स्तम्भ सेहो अपन समयक विसंगति विकृतिक उपहास-परिहास द्वारा विरोध करैत अछि। धर्मधकेलानन्दजीक बलघिड़रो सेहो अपन समकालीन स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय घटनासभक कारणें उत्पन्न अथवा समभाव्य राजनीतिक, अर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक इत्यादि विकृति-विसंगति पर पाठक वर्गकें गुदगुदबैत-हँसबैत प्रहार करैत छल। अतः ई स्तम्भ सब मैथिली पत्रकारितामे महत्त्वपूर्ण योदान दीर्घ अवधि धरि करैत रहल।''[6]

धर्मधकेलानन्दजी अपन प्रत्येक पत्र मिथिला मिहिरक सम्पादककें सम्बोधित कऽ लिखैत छथि। पत्रक अन्तमे आ कि नहि? आ कखनो-कखनो पत्रेतर नहि पयबाक प्रबल आकांक्षी लिखि समापन करैत छथि।

कतहुँ-कतहुँ तँ मिथिलाक पत्रलेखनक पारंपरिक परिपाटिक प्राशस्तिमूलक सम्बोधन शैलीक प्रयोग सेहो कैलनि अछि यथा-

स्वस्ति श्रीमस्तु सम्पादक महोदयेषु इतः

श्रीमर्धधकेलानन्दस्य नमस्काराः

पुनः पत्रक अन्तमे-पत्रेत्तर नहि पयबाक प्रबल आकांक्षी श्री धर्मधकेलानन्दस्य कथित कहल अछि।

धर्मधकेलानन्दजी हास्य व्यंग्यक लेल भाषाक चमत्कार पर विशेष ध्यान रखने छलाह। हिनक भाषाक प्रयोग सहजहि हास्य आ व्यंग्य उत्पन्न करबामे सफल देखल गेल। देखल जाउ किछु उदाहरण-

''ई पाँचो खत्ता की पंचतत्वक प्रतीक छल की पंचशीलक? पंचायतक प्रतीक छल की परमेश्वरक? पंचाननक प्रतीक छल की पंचशकर? पंचाग्निक प्रतीक छल कि पंचमकारक? पंचज्ञानेन्द्रियक प्रतीक छल की पंचकर्मेन्द्रियक?''[7]

''सम्पादक् हजारीबागमे भेल राजनीतिक सम्मेलनक सप्पत खा कऽ धर्मधकेलानन्द कहि रहल छथि जे ओही लघुकौमुदीमे एकटा सूत्र छैक ऊकाओ्झूस्वदीर्घप्लुतः माने हस्व, दीर्घ ओ प्लुत स्वरक ज्ञान पाणिनिकें मुर्गाक बोली सुनि कऽ भेलनि।''[8]

धर्मधकेलानन्दजी अपन पत्रमे तकियाकलामक सेहो भरपूर प्रयास कैलनि अछि। देखल जाउ-

''मानू की जे ताइपर सँ पुनि जे से, कहै छै तें जे कि ने से, रामजीक प्रतापसँ आ गुरुगंगाक आशीर्वादसँ, आ कि नहि।

धर्मधकेलानन्दमे लोकोक्ति ओ कहबीक प्रयोग सेहो प्रचुर मात्रमे भेल अछि, जाहिसँ सहजहि हास्य ओ व्यंग्य उत्पन्न होइत अछि। द्रष्टव्य अछि-

जेमहर देखलक खीर तेमहर बैसल फीर, जे जीबय से खेलै फागू।

बाबाजीक बेल हाथे-हाथे गेल

भूख लागय तँ दुनू हाथे खाय
चोर-चोर मसियौत भाय
के जनैत अछि उँट कोन गरे बैसत, इत्यादि।

निष्कर्ष

हिनक अधिकांश स्तम्भक विषयवस्तु राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आ किछु साहित्यक क्षेत्रमे उत्पन्न विसंगति रहल अछि। किन्तु सम्पूर्ण स्तम्भमे राजनीतिक छाप विशिष्ट रूपें परिलक्षित होइत अछि। बेसीमे सरकारे पर कटाक्ष कैल गेल अछि। चाहे ओ भारत सरकार हो, राज्य सरकार हो वा दरभंगा महाराज। हुनका जखन जे गलत बुझेलनि तकरा ओ अपन कलमक बलें निर्भीक भऽ उजागर कैलनि।

अस्तु कहि सकैत छी जे हिनक एहि स्तम्भक माध्यसँ तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक आदि वृकृति विसंगतिक उपस्थापन कैलनि अछि। भारत वर्षक राजनीतिक साहित्यिक स्थिति की छलैक तकरो सभपर व्यंग्य कैल गेल अछि। अतः कहि सकैत छी जे ई स्तम्भ सब अपना आपमे समयक इतिहासकें समेटने अछि।

संदर्भ सूची

1. धर्मधकेलानन्दजीक बलघिडरो, श्री चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर', नवरत्न गोष्ठि, दरभंगा, 2017, पृ.- 6
2. स्वदेश (पत्रिका) अंक- 24, सं. आचार्य सुरेन्द्र झा सुमन, दरभंगा, 1981
3. तथैव, अंक- 25, 1983
4. अतीत मंथन, श्रीचन्द्रनाथ मिश्र 'अमर', नवरत्न गोष्ठी, दरभंगा, 2010, पृ.- 66
5. धर्मधकेलानन्दजीक बलघिडरो, पृ.- 21
6. तथैव, पृ.- 10
7. मिथिला मिहिर, अंक- 28, मार्च, 1965
8. मिथिला मिहिर, अंक- 13, जून, 1965

हृदयेश के उपन्यासों में परिवेशगत यथार्थ

लक्ष्मण कुमार पंकज

शोधार्थी, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

हृदयेश हिन्दी साहित्य की प्रथम पंक्ति के कथाकार थे। वे साहित्य की साधना जीवनपर्यंत करते रहे। हृदयेश यशस्वी लेखक थे। यह यश उन्होंने अपनी सृजनशीलता से अर्जित किया था। यश या सम्मान के लिए उन्हें कुछ करते किसी ने नहीं देखा था। यह उनका लेखकीय स्वाभिमान था कि उन्होंने यश और सम्मान की अपेक्षा से कभी सृजन नहीं किया। हृदयेश साहित्य-जगत के उन दुर्लभ नागरिकों में से थे जो जगह-बेजगह पेश-पेश नहीं रहते। वे कहीं गहरे आत्मविश्वासपूर्वक साहित्य में अपनी जगह समझते थे। उन्हें अपने लेखन पर भरोसा था और अपने पाठकों पर।

हृदयेश शाहजहाँपुर के रहने वाले थे। आजीवन वहीं रहे। वहीं नौकरी की। वहीं सृजन। उनकी रचनाओं में वहाँ का जीवन, वहाँ की संस्कृति विभिन्न समुदायों और वर्गों का रहन-सहन, दु:ख बिखरा पड़ा है। हृदयेश फैंटेसी या प्रतीक-शैली के रचनाकार नहीं थे। उन्होंने अभिधा में हिन्दी-गद्य को रचनात्मक ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। उन्होंने अपने गद्य में मानो जीवन का सहज राग पा लिया है। हृदयेश की शैलीगत उपलब्धि यह है कि उनकी रचनाओं में लेखक अनुपस्थित हैं। कहीं है भी तो वह लेखकीय मुद्रा में नहीं, बिल्कुल गैर लेखकीय मुद्रा में हैं। हृदयेश का लेखक लेखक से ज्यादा गैर लेखक सिर्फ आदमी है। लेखक तो कहीं दूर अदृष्ट है। यह शैली पहले दुर्भल थी और आजकल तो लगभग गायब है। यह तब होता है, जब आप पाठ में पाठक को तल्लीन कर दें। इसीलिए हृदयेश प्रगतिशील होते हुए भी प्रगतिशील रचनाकार नहीं लगते हैं। प्रगतिशीलता पाठक में उपजती है। रचना में वो मानो है ही नहीं।

आधुनिक साहित्य-जगत में लगभग पाँच दशक से सृजनरत हृदयेश ने अपने साहित्य-विवेक, वैज्ञानिक दृष्टि एवं वैचारिक समझ के बल पर अपनी जो पहचान बनाई है, वह नि:संदेह प्रशंसनीय है। 'छोटे शहर के लोग' कहानी-संग्रह से लेकर 'पगली घंटी' तक की उनकी कथा-यात्र में जीवन-परिवेश के यथार्थ की वास्तविक अभिव्यक्ति की गई है। उनकी रचनाओं में अपने आसपास के परिवेश को मानवीय अनुभूति की जो सहज सरल, किन्तु विशिष्ट अभिव्यक्ति की गई है, इसका बहुत कुछ श्रेय उनके संघर्षपूर्ण व्यक्तिगत जीवन को जाता है, जिससे जीवन का दूसरा नाम दु:ख, कष्ट, अभाव, उपेक्षा, पीड़ा और संघर्ष है। और उस भीतरी पीड़ा को साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से उड़ेल कर ही एक लेखक को आत्मिक संतुष्टि प्राप्त होती है। 'रचना के स्तर पर, जहाँ एक तरु सामाजिक अनुभव का सत्य होता है, वहीं रचनाकार का अपना अनुभव सामाजिक सत्य भी होता है, इसलिए इसमें सामाजिक सामान्यता के साथ-साथ रचनाकार की निजता भी व्यक्त होती है।'[1]

आर्थिक अभाव एक आदर्श संवेदनशील व्यक्ति को भीतर से कितना तोड़ देता है, इस अनुभूत सत्य को हृदयेश ने जो अभिव्यक्ति दी है, वह पाठक को भी विचलित कर देती है। 'निरी छोटी-छोटी इच्छाओं और आकांक्षाओं का भी दस-बीस, तीस और चालीस साल तक अनपूरी रचना या बिना बड़ी मांग करने वाली सहज स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अनवरत कुचला जाना था। वस्तु के स्थान पर बार-बार रास्ते विकल्प खोजने की लाचारी क्या मनुष्य के लिए जिन्दा रहने की एक यातनामय सजा नहीं है? किन्तु मनुष्य फिर भी जीवित रहता है।'[2] आश्चर्य की बात है कि आर्थिक अभावों की असहनीय मार को झेलते हुए भी निराशा, हताशा की स्थिति में भी कभी अपने सिद्धांतों से मुँह नहीं मोड़ा, अपने आदर्शों पर अटल रहे। कचहरी में एक स्टेनोग्राफर के पद पर रहकर उन्होंने इस पद का गलत उपयोग नहीं किया। कचहरी के भ्रष्ट वातावरण की कालिमा का एक धब्बा भी उन्होंने अपने चरित्र पर नहीं लगने

दिया। आदर्शों को जीवन में यथार्थ का दर्जा देने वाले हृदयेश ने अपने कथा-साहित्य में जिन पात्रों का चित्रण किया है, वे भी आदर्शपात्र हैं। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी हिम्मत न हारने वाले, प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी आदर्श की राह चलनेवाले हृदयेश के ये पात्र आर्थिक अभावों पर अटल रहते हैं तो उसके भीतर अपने आदर्शपूर्ण जीवन का प्राप्य अपनी संतान में पाने की महत्त्वाकांक्षा प्रबल रहती है और हृदयेश भी अपने हृदय में प्रति अत्यधिक सहज थे। रोजमर्रा के दवावों, आघातों, छोटी-छोटी तष्णाओं अपेक्षित समझौतों, कटु शोषण को चुपचाप निगलने को विवशताओं इन सबको पीड़ा को भुलाने के लिए व्यक्ति अपने को किसी व्यस्तता से जोड़ लेता है। जहाँ से जीवित रहने हेतु संबल लेता रहता है, किन्तु कई मायनों में यही मनुष्य की जिजीविषा होती है। मेरे लिए ऐसा स्थल मेरे बच्चे थे। वे संघर्षशील और महत्त्वाकांक्षी हैं, यह स्थिति मेरे लिए संतोषजनक थी। अपने संघर्षपूर्ण जीवन कठोर, तपती धरती से उत्पन्न इस यथार्थ को भी हृदयेश ने अपने 'गाँठ' व 'पुनर्जन्म' उपन्यास में वाणी दी है। उनके दोनों उपन्यासों के नायक यानी दयानारायण और बनारसी प्रसाद भ्रष्ट परिवेश के मध्य ऐसे आदर्श व्यक्तित्व है जो कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपने आदर्शों एवं सिद्धांतों पर अटल रहते हैं और जीवन के अभाव, दु:ख, कष्ट में अपनी संतान की योग्यता उनके लिए सान्तवना का कार्य करती है। समाज में बढ़ती नैतिक गिरावट, आम आदमी की लुप्त हो रही अस्मिता से उत्पन्न अपमान, उपेक्षा रूपी घावों पर संतान के उज्ज्वल भविष्य की कामना मरहम का कार्य करती है। वह अपने बच्चों में सच में संभावनाएँ ही संभावनाएँ देखा करता था।[3] वार्षिक परीक्षाओं के परिणाम आगे पीछे आ गये थे। उसके तीनों ही बच्चे प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए थे। यह स्थिति उसके लिए कितना स्फूर्तिजनक और उत्साह लिए हुए थी। शीत से ठिठुरता कोई जैसे सूर्य को उज़्म किरणों में आ गया हो और अनुभव कर रहा हो कि उसकी धमनियों में रक्त बह रहा है, जोड़-जोड़ खुल गया है और वहाँ शक्ति ही शक्ति है।[4] यही नहीं 'पुनर्जन्म' उपन्यास का बनारसी प्रसाद भी बड़े पुत्र निर्मल कुमार के रिश्ता तोड़ देने, दूसरे बेटे की मृत्यु हो जाने के बावजूद तृतीय पुत्र दीपक कुमार में भी संभावनाएँ ही देखते थे। वह कभी-कभी इस संभावनाओं से जुड़ जाते थे कि दीपक इंजीनियर बन गया है। उसकी एक अच्छे शहर में नियुक्ति हो गयी है और वह उसके साथ एक बंगले में रह रहे हैं, इंजीनियर के पिता के रूप में। अवकाश-प्राप्ति के बाद की उपेक्षा, निस्सहायता, अजनवीपन, आए दिन की समस्याएँ और कठिनाइयाँ सब दूर हो गई हैं और उनके अच्छे सम्मान भरे दिन लौट आए हैं, उनके लड़के दीपक के इंजीनियर बन जाने से ही है।[5] और इन्ही अपूर्ण महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के सुखद स्वप्न को आशा में हृदयेश के आदर्शवादी पात्र यह भूल जाते हैं कि बच्चों की सेहत के प्रति सचेत रहना भी उनका महत्त्वपूर्ण दायित्व है। इस दायित्व के प्रति उनकी यह लापरवाही अंतत: इन पात्रों को मानसिक पीड़ा एवं दु:ख का कारण सहने को गहन पीड़ा के सामुख बच्चों को सिरदर्द, जुकाम जैसी समस्याएँ यदि इन्हें मामूली प्रतीत हो तो इनका दोष नहीं है, वरन् यह जीवन की कटु वास्तविकता है। हृदयेश के जीवन का भी सच है, जिन्होंने अथक संघर्ष का सामना करते हुए भी संतान को पढ़ाई से संबंधित वे सुविधाएँ, प्रेरणा तो प्रदान कीं, किन्तु छोटी-छोटी तकलीफों को मामूली समझ, अनसुना कर आर्थिक विवशतावश महत्त्व नहीं दे पाये। अपनी संतान के स्वास्थ्य के प्रति इस नकारात्मकता को स्वयं लेखक ने स्वीकारा है।

'गाँठ' उपन्यास में हृदयेश के जीवन की वह वास्तविकता है, जिसने आर्थिक अभाव के प्रबल थपेड़े सहते हृदयेश को पूर्णत: हताश कर दिया था। अपने बच्चों की फ़लता में अनेकानेक संभावनाओं का सुख छिपा था, उस सुख से अभी साक्षात्कार भी नहीं हुआ था कि पुत्र जो शोध कर रहा था, को यक्ष ने जकड़ लिया। इस बीमारी ने उन्हें महसूस कराया कि उन्हें बच्चों को सेहत के प्रति सजग रहना चाहिए था। मैं इलाज कर रहा था और अपराध भाव मुझे चीर रहा था कि मैं बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति सजग क्यों नहीं रहा? जीवन सर्वोपरि है या महत्त्वाकांक्षा? प्रश्न इसी के साथ यह भी उठना चाहिए था कि सजग रहने पर क्या मैं उनका घी, दूध, फल जैसा पौष्टिक आहार देने के लिए समर्थ था? प्रश्न यह नहीं था और अपराध भाव का आरा तेज-तेज चला था।[6] पुनर्जन्म का बनारसी प्रसाद भी अपने पुत्र दीपक कुमार के इंजीनियर बनने को अनेकानेक सुखद संभावनाओं की आकांक्षा में उसकी प्रतिभा की उपेक्षा कर उसे विज्ञान विषय दिलवाते हैं जो कि दीपक को इच्छा के प्रतिकूल होने के कारण बोझ प्रतीत हो, उसे मानसिक रूप से रूग्न बना देता है। दीपक की बीमारी पर बनारसी प्रसाद की मानसिक पीड़ा व पारिवारिक आलोड़न आदि परेशानियाँ हृदयेश के जीवन का रूप है। वस्तुत: 'गाँठ' व 'पुनर्जनम' उपन्यासों का कथानक हृदयेश ने अपने जीवन से लिया है। कहना न

होगा कि दोनों उपन्यासों में जीवन की घटनाओं को ज्यों का त्यों उतारा है, जिसे लेखक की कमजोरी ही कहा जाना चाहिए, जिसे स्वयं हृदयेश ने भी स्वीकारा है, किन्तु 'पुनर्जन्म' के बारे में यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि उपन्यास का आरंभिक भाग हृदयेश के जीवन-काल प्रतीत होने के साथ ही आया उपन्यास आर्थिक अभावों एवं भीतर पनपती महत्त्वाकांक्षाओं के बीच झूलते निम्नवर्गीय व्यक्ति को साहस, आत्मबल एवं जीवन के प्रति नई दृष्टि भी प्रदान करता है।

संदर्भ-संकेत

1. शब्द और कर्म- डॉ. मैनेजर पांडेय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ. 184
2. वही, पृ. 44
3. हृदयेश, संदर्भ, पृ. 7
4. गाँठ- हृदयेश, राजकमल पेपर बैक्स, 1970, पृ. 24
5. वही, पृत्र 53
6. पुनर्जन्म- हृदयेश, राजकमल पेपर बैक्स, 1985, पृ. 72

21वीं सदी की मीडिया और हमारा समाज

नेहा कुमारी

शोधार्थी, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

संचार तथा सामाजिक जीवन के बीच गहरा सम्बन्ध है। पारस्परिक जागरूकता, सामाजिक सम्बन्धों का एक अनिवार्य तत्त्व है। संचार पारस्परिक जागरूकता की सामाजिक क्रिया है। मीडिया हमारे समाज में आवाज देता है, समाज में घट रही घटनाओं को सम्प्रेषित करते हुए हमें समाज की संवेदनाओं से जोड़े रखता है। इस रूप में मीडिया समाज की अभिव्यक्ति का एक साधन है। ठीक इसी तरह समाज मीडिया के लिए एक स्रोत की तरह होता है, जहाँ से वह अपने लिए सामग्री-एकत्रित करता है। इस रूप में समाज और मीडिया में परस्पर पूरक सम्बन्ध है। आज हम किसी ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं, जिसमें मीडिया की सक्रियता न हो और किसी ऐसे मीडिया माध्यम के बारे में नहीं सोच सकते, जिसके सामाजिक सरोकार न हों।

"बुद्धि, तर्क, भाषा अभिव्यक्ति, संस्कृति मनुष्य के नैसर्गिक गुण हैं। इन गुणों तथा भौतिक माध्यमों के मिश्रण से संचार मनुष्य समाज में, पारस्परिक जागरूकता की क्रिया द्वारा सामाजिक सम्बन्धों की सृष्टि में सहायता करता है। संचार-माध्यमों की सामाजिक प्रक्रिया त्रिविध है- सामाजिक, सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियंत्रण।"[1]

(अ) सामाजीकरण: संचार माध्यम सामाजीकरण के प्रमुख माध्यम हैं। मानव समाज बुद्धि, रीति-नीति तथा सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं की सतत प्रक्रिया द्वारा विकास की ओर गतिशील है। इस गति को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि वह इनका हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करता रहे। संचार की सभी विधाएँ हस्तान्तरण की इस प्रक्रिया में सहायता कर सामाजिक निरन्तरता बनाये रखती है।

(आ) सामाजिक परिवर्तन: मानवीय विवेक द्वारा चेतन और सुव्यवस्थित प्रयत्नों द्वारा सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता है। इस दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन-प्रक्रिया में संचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। भौगोलिक, सांकृतिक तथा राजनैतिक सीमाओं को लाँघते हुए आधुनिक तन्त्रों के सहारे संचार माध्यम संसार के जन-समूह के जीवन-परिवर्तन करने की क्षमता रखते हैं, अपने सामाजिक आविष्कारों के माध्यम से जन-चेतना को मोड़ दे सकते हैं। "भौतिक अविष्कार मनुष्य की जीवन-शैली को प्रभावित करते हैं, जबकि सामाजिक आविष्कार विचारों को प्रभावित कर सम्पूर्ण सामाजिक संगठन को परिवर्तित कर एक नयी सामाजिक व्यवस्था का प्रवर्तन करते हैं।"[2]

संचार माध्यमों में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सामाजिक विवेक तथा सामाजिक सहमति के निर्माण में भी अपने योगदान की अपेक्षा की जाती है। कई स्थितियों में उसे सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज का नेतृत्व भी करना होता है, जन समूह के प्रवक्ता के रूप में कार्य करना होता है।

(इ) सामाजिक-नियंत्रण: सामाजीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक गतिविधियों के समरसता व व्यवस्था बनाये रखना जन-संचार माध्यमों का मुख्य सामाजिक दायित्व है। यही कारण है कि संचार माध्यमों को जनमत के अभिकरण के रूप में सामाजिक नियंत्रण के सशक्त साधनों में शामिल किया जाता है। अपनी विभिन्न विधाओं द्वारा संचार माध्यम यह कार्य करते हैं। "समसामयिक घटनाओं, नीतियों से सम्बन्धित तथ्यों, सूचनाओं, विश्लेषणों द्वारा समाज-विचारों प्रचलित नैतिक मूल्यों, नैतिक-कानूनों का दवाब बनाते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा एक निश्चित दिशा में जनमत का निर्माण होता है।"[3]

सही मायने में हम देखें तो 21वीं सदी की मीडिया का फलक असीम है। आज के समाज में हमारे समाज का कोई भी हिस्सा इसकी नजरों से बच जाए ऐसा सम्भव नहीं है। विश्व में दिन-भर कुछ न कुछ घटित होता ही रहता है। खबर में से खबरें निकल

जाती हैं। मीडिया सिर्फ हमें सूचना ही नहीं देता है, हमें शिक्षित भी करता है और कहीं-न-कहीं हमारा मनोरंजन भी। "मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। जैसे कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका देश को सुचारू रूप से चलाने में अपना योगदान देती है ठीक वैसे मीडिया भी देश की हर हलचल, हर गतिविधि पर अपनी आँखें गड़ाए रखता है।"[4] जहाँ कोई घटना, गड़बड़ हुई नहीं कि मीडिया अपने कैमरे से पूरे विश्व को एक मंच दे देता है- विचार, चिंतन और विमर्श का मंच। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की जड़े बहुत मजबूत होती जा रही है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यही है कि दिन-प्रतिदिन कोई-न-कोई नया अखबार लाँच होता है या फिर कोई न्यूज चैनल।

जहाँ जनसंचार के माध्यमों में होती उन्नति खबरों को हम तक शीघ्रता से पहुँचाने में सफल हुई, वहीं कई बार उसकी विश्वसनीयता पर प्रश्न-चिह्न भी उठ खड़े हुए हैं। समाज की ही गतिविधियों को मीडिया हम तक पहुँचाता है। "भूमंडलीकरण के दौर में जनसंचार ने सम्पूर्ण विश्व को 'विलेज' में तब्दील कर दिया है। ऐसे में यह तय करना बहुत जरूरी है कि जो भी हमारी प्लेट में सजा कर दिया जा रहा है, वह कितना शुद्ध है। यानि की प्रस्तुत जानकारी कितनी विश्वसनीय है,"[5] क्योंकि यह भी महत्त्वपूर्ण है कि मीडिया के चश्में से दिखायी गयी जानकारी समाज पर कैसा प्रभाव डालेगी।

सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम समाज को कैसे कवर कर रहे हैं, यह देखना बेहद जरूरी है। विश्व में घटी कोई भी घटना हम तक पलक झपकते पहुँच जाती है। यह सिर्फ और सिर्फ जनसंचार के माध्यम से ही संभव हो सकता है। "जनसंचार के माध्यम में जहाँ पहला माध्यम सिर्फ भाषा के लिखित ज्ञान से जुड़ा है, दूसरा ध्वनि से जुड़ा और तीसरा दृश्य से जुड़ा है। मुद्रण, ध्वनि और दृश्य से आगे कम्प्यूटर, इंटरनेट ने भी समाज में अपनी जगह बना ली है।"[6] इन्हीं सब माध्यमों का प्रभाव समाज पर दिखता है या यो भी कह सकते हैं कि आज हम जिन सामाजिक परिवर्तन के दर्शन कर रहे हैं, उसका सबसे अधिक श्रेय मीडिया को ही जाता है।

मीडिया की लोकतंत्र में भागीदारी छुपी नहीं है। समाज का कोई भी तबका ऐसा नहीं है जो मीडिया की ताकत से अनभिज्ञ हो। समाज में मीडिया की भूमिका तय करने का तराजू कैसा हो? यह हमें तय करना है कि इसके सकारात्मक व नकारात्मक पहलू को किस मानक पर तौलें। "मीडिया समाज का प्रतिनिधि है, यह अपनी पैनी नजर से हर गतिविधि पर नजर गड़ाये रखता है। जहाँ तीनों स्तम्भों में से कहीं भी काम करे उतना अच्छा होता है, उसी निष्पक्षता के आधार पर मीडिया समाज में परिवर्तन ला सकता है।"[7] समाज में चाहे जैसी भी हलचल हो मीडिया को उसे हू-ब-बू पेश करना चाहिए। चाहे मुद्दा चुनाव का हो, महँगाई का हो, शिखा का, बेरोजगारी का, अपराध का हो या फिल्म जगत का। यथार्थपरक चित्रण इसकी शर्त है। आजकल अखबार, टी.वी. या रेडिया कुछ भी खोले तो इन सब में हिंसक खबरों की बहुतायत रहती है। हर माध्यम का अपना एक अलग महत्त्व है। टी.वी., रेडियो के उपरांत भी अखबार पढ़ने वाले पाठकों में कमी नहीं आई है। चाहे मुद्दा कुछ भी हो आजकल उसे बहुत ही रोचक, आकर्षक बना कर प्रस्तुत किया जाता है। आज मीडिया की वजह से ही समाज के वे पहलू जो पहले हमें प्रभावित नहीं करते थे, वह खबर आज हमें झकझोर देते हैं।

हम देख रहे हैं कि मीडिया और समाज का अन्त:सम्बन्ध बहुत गहरा है। "मीडिया सिर्फ वही परोसता है, जिसमें समाज की दिलचस्पी होती है। समाज में यदि चुनाव की गहमागहमी है तो सारे दिन न्यूज चैनल बस उसी की खबरें दिखाते हैं। अखबार पार्टियों की गतिविधियों को छापते रहते हैं। लोगों की रूचि का ग्राफ जिस ओर बढ़ता है मीडिया उसे ही प्रमुखता देने लगता है।"[8] आज के समय में मीडिया 'माइंड सेट' भी करता है। समाज की हर गतिविधि को निष्पक्ष रूप में प्रस्तुत करने से समाज को मजबूत धारणा बनाने में सहायता मिलती है। "मीडिया समाज की नब्ज है। मानव शरीर में नब्ज का होना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी आज के समय में मीडिया है। समाज की हलचल, धकधक हम तक सिर्फ और सिर्फ मीडिया ही पहुँचाता है।"[9] आज के समय में मीडिया के बिना समाज को सोचना असम्भव-सा लगता है। यदि मीडिया इन सबके बीच से निकाल दी जाए तो एक बार ऐसा लगेगा कि जैसे हम फिर से आदिमानव युग में पहुँच गये हैं।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि आज 21वीं सदी के युग में अगर हम अपने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहते हैं और समाज को उन्नत बनाना चाहते हैं तो यह मीडिया के बिना बिल्कुल असम्भव है। समाज के निर्माण में मीडिया का अनमोल योगदान है। देश को उन्नत बनाने में मीडिया का निष्पक्ष होना नितांत आवश्यक है, इस प्रकार से मीडिया हमारे समाज के लिए वरदान साबित हुई है।

संदर्भ सूची

1. मीडिया का यथार्थ, लेखक- डॉ. रतन कुमार पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 12
2. मीडिया का वर्तमान परिदृश्य, लेखक- राकेश प्रवीर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 44
3. पत्रकारिता के विविध आयाम, लेखक- डॉ. दीनानाथ सहनी, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, राजेन्द्रनगर, पटना, 2014, पृष्ठ 22
4. मीडिया विमर्श, लेखक- रामशरण जोशी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 76
5. जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, लेखक- जवरीमल्ल पारख, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 63
6. जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता, लेखक- डॉ. अर्जुन तिवारी, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृष्ठ 56
7. मीडिया हूँ मैं, लेखक- जयप्रकाश त्रिपाठी, अमर प्रकाशन, रामबाग, कानपुर, 2014, पृष्ठ 193
8. मीडिया लेखन-सिद्धांत और व्यवहार, लेखक- डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 126
9. मीडिया और समाज, लेखक- लक्ष्मेन्द्र चौपाल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2006, पृष्ठ 93

नागार्जुन का वृद्ध विषयक दृष्टिकोण

डॉ० ऋचा कुमारी

पूर्व शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा,
यू.जी.सी. नेट, जे.आर.एफ.

'विमर्श' शब्द बीसवीं सदी के नवें दशक में प्रचलन में आया। प्रख्यात कथाकार एवं 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने 'स्त्री-विमर्श' एवं 'दलित-विमर्श को साहित्यिक चर्चा का केन्द्र बनाया। बाजारवाद के इस दौर में रिश्तों एवं मूल्यों का बाजारीकरण हो गया है। सब कुछ स्वार्थ एवं मुनाफे पर आधारित है। संयुक्त परिवार की अवधारणा लगभग समाप्त हो चुकी है, जहाँ बच्चों को सुरक्षा एवं बुजुर्गों को सम्मान मिलता था। संयुक्त परिवार 'न्युक्लीयर फेमिली' बन गया है।

'वृद्ध-विमर्श' शब्द जेहन में आते ही, पाश्चात्य सभ्यता की होड़ में बही जा रही फैशनपरस्त और स्व-संस्व्रति विच्छिन्न आधुनिक पीढ़ी सामने आ जाती है। यह उसके नैतिक मूल्यों के ह्रास एवं शून्य होती मानवीय संवेदनाओं का प्रतीक है। "बसुधैव कुटुम्बकम" और "अतिथि देवो भव" की अवधारणा वाली यह भारतीय संस्व्रति, जिसके बारे में प्रसाद जी का हृदय गौरवान्वित हो कह उठा था- "अरुण यह मधुमय देश हमारा/जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा"[1] आज अपने वृद्धों के लिए ही बेगानी बनती जा रही है। भारतीय संस्व्रति और नीतिशास्त्र में वृद्धजनों के प्रति अत्यधिक श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शित किया गया है। 'भारतीय संस्कृति' आदिकाल से ही मानवीय मूल्यों का प्रबल पक्षधर तथा नीति, मर्यादा और मानवीय गरिमा का हिमायती रही है। इस सबके बावजूद आज के अर्थ-प्रधान उपभोक्तावादी युग में समकालीन पीढ़ी पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति का अंधानुकरण कर, अपने सांस्व्रतिक मूल्यों और संस्कारों को तिलांजलि दे रही है।

जैसा कि हम जानते हैं "साहित्य समाज का दर्पण होता है। अत: इसमें सामाजिक समस्याओं का प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक है। बाजारवाद के इस दौर में साहित्य का 'तेवर' और 'कलेवर' तो बदला ही है, साथ ही सरोकार भी बदले-बदले नजर आते हैं। समाज और परिस्थिति ने साहित्य को समयानुरूप समायोजित कर मुखर और धारदार बनाया है। आज साहित्य में 'दलित-विमर्श' और 'स्त्री-विमर्श' के साथ 'आदिवासी-विमर्श' भी चर्चा के केन्द्र में है; फलस्वरूप पठन-पाठन और लेखन-कार्य इन्हीं विषयों पर अधिक केन्द्रित है, वहीं दूसरी ओर प्रवासियों, किन्नरों, बालकों समेत वृद्धों पर पर्याप्त चर्चा नहीं होने के कारण साहित्य की मुख्यधारा से थे विषय हटते जा रहे हैं।

बाजारवाद और भूमण्डलीकरण के इस दौर में समाज में आश्चर्यजनक बदलाव आया है। संचार-तकनीक के फैलाव ने विश्व को एक 'ग्लोबल विलेज' का रूप दिया है। उपभोक्तावादी इस अंधी दौर में सब नाते-रिश्ते झूठे साबित होने लगे हैं। आज एक ओर जहाँ लोग विश्व को जानने के लिए लालायित हैं, वहीं दूसरी ओर अपने ही घरों के वृद्धों को, माता-पिता को नजरअंदाज करते जा रहे हैं। यही कारण है कि 'बुजुर्ग' भरा-पूरा परिवार रहते हुए भी, अपने को नितांत अकेला पाकर कुंठित, हताश एवं निराश होकर अवसादपूर्ण जीवन जीने को मजबूर हैं। यह कितनी दु:खद और विडंबनापूर्ण बात है कि, जिस संतति के उज्ज्वल भविष्य के लिए माँ-बाप दिन-रात एक कर परिश्रम में लगे रहते हैं, वही आगे चलकर उन्हें दु:ख के थपेड़े खाने के लिए छोड़ देता है!

हिन्दी-साहित्य में वृद्धावस्था एवं इनकी समस्याओं पर लिखा तो जरूर गया है, पर उसमें काफी कुछ बाकी है। कथा-सम्राट् में प्रेमचंद की कई कहानियों में प्रताड़ित, शोषित वृद्धों का चरित्र प्रमुख रूप स वर्णित है। चूँकि प्रेमचंद सामाजिक समस्याओं से सरोकार रखते हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज में वृद्धों की स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है, जो आज भी प्रासंगिक है। उनकी अनेक कहानियों यथा- 'बूढ़ी काकी', 'पंचपरमेश्वर', 'बेटोंवाली विधवा', 'ईदगाह', 'माता का हृदय' आदि में

वृद्धजनों के प्रति भाव-शून्यता को रेखांकित किया गया है। इसके साथ भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ का दावत', कमलेश्वर रचित 'ऊपर उठता हुआ मकान' (कहानी) 'समुद्र में खोया आदमी' (उपन्यास), कृष्णा सोबती का 'समय सरगम' (उपन्यास), चित्रा मुदगल का 'गिलिगढ' (उप.), प्रभा खेतान का 'पीली आँधी' (उप.), 'आम का मौसम' (कहानी), शिवपूजन सहाय की कहानी 'माता का आँचल' (कहानी), उषा प्रियंवदा की 'वापसी' (कहानी), ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता', मिथिलेश्वर की कहानी 'हरिहर काका', समेत कई कविताओं तथा निबंध आदि में वृद्धजनों को उनके अपने ही परिजनों द्वारा उपेक्षित व तिरस्कृत किये जाने का उल्लेख मिलता है। इन रचनाओं में समस्याओं का वर्णन तो है पर उन से निजात दिलाने का रास्ता कहीं भी दृष्टिगत नहीं है। इनमें वृद्धों के प्रति बस दयाभाव है।

नागार्जुन की स्थिति थोड़ी भिन्न है। वहाँ वृद्ध होकर भी वृद्धों के प्रति दयाभाव नहीं सहानुभूति जरूर है। वे 'जवानी' के दीवाने हैं। युवा उनकी अपेक्षा है, युवा ही उनका सपना। नागार्जुन का साहित्य वर्ग-चेतना तथा वैचारिक पक्षधरता का साहित्य है। अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता को ठोस रूप देने के लिए उन्होंने जन-आन्दोलन में हिस्सा लिया और इसी प्रतिबद्धता के तहत साहित्यिक मोर्चों पर भी सर्वहारा विरोधी बुर्जुआ-वर्ग, सांप्रदायिकता तथा आधुनिकता विरोधी ताकतों से मुठभेड़ किया। उनका सारा साहित्य प्रबल प्रतिरोध का साहित्य बन गया है।

नागार्जुन प्रगतिशील लेखकों की परंपरा में अग्रगण्य हैं। "प्रगतिशील लेखक वही होता है, जो अच्छे-से अच्छे विचार, दर्शन अथवा सिद्धांत पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं करता, वरन् विवेक के साथ उसे अच्छी तरह झाड़-पछोड़ कर संवेदना की धरती पर प्रस्तुत करता है। परंपरावाद को नकारता है, किंतु शुद्ध परंपरा को शीर्षपर रखता है। रूढ़ियों को अपने गले में नहीं डालता, जो आद्यन्त दु:ख हेतुक हैं। आस्था का वह रूप प्रगतिशील लेखक को ग्राह्य है, जो ऐतिहासिक क्रम में परिवर्तनशील है, वर्तमान जीवन के लिए टिकाऊ है एवं अंधभक्ति की अपेक्षा अंत:करण के निष्कर्ष पर अवलंबित है।"[2] निश्चय ही यही सोच नागार्जन को औरों से अलग करता है, सामान्य से विशेष बनाता है। उनके इस सोच अथवा विचार का नमूना हमें 'नयी पौध' शीर्षक उनके उपन्यास में देखने को मिलता है। लेखक ने इस उपन्यास में केवल अनमेल विवाह की समस्या का वर्णन नहीं किया है, बल्कि अपनी प्रगतिशील दृष्टि से उसका सामाधान भी प्रस्तुत किया है। उसमें लेखक ने गाँव के नौजवानों के एक दल का वर्णन किया है, जो 'बमपार्टी' के नाम से प्रसिद्ध था। यह शिक्षित युवक-संघ हर आपत्ति में गाँव को अपना सक्रिय सहयोग देता है। इसमें लेखक ने नयी पीढ़ी पर विश्वास प्रकट किया है। इस युवा पीढ़ी की सक्रियता के कारण ही गाँव की एक युवती का जीवन चौपट होने से बच जाता है। लेखक ने यहाँ पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के संघर्ष में नयी पीढ़ी की विजय को भी दिखलाया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि नयी पीढ़ी जितनी दृढ़ता से अंधरूढ़ियों और खोखली परंपराओं से लड़ सकती है, उतनी पुरानी पीढ़ी नहीं। 'नयी पौध' एक प्रतीक है- 'नये युवक' का, जो अत्यंत विप्लवी होता है। नागार्जुन नयी पीढ़ी पर विश्वास करते हैं, क्योंकि वही गाँव-समाज की कुरीतियों को मिटाकर एक स्वस्थ समाज का निमार्ण कर सकता है।

नागार्जुन वार्धक्य को सहज-भाव से लेने के हिमायती हैं। उन्हें वृद्धों से हमदर्दी नहीं, मुहब्बत है। उसके सबल और निर्बल दोनों पक्षों से वाकिफ होने की वजह से वे उन्हें उनके अवदान और त्याग के लिए श्रद्धा-पूर्वक याद करते हैं। उनका मानना है कि भाप-पेट्रोल-बिजली के इस युग में भी रहनुमा अपनी उपयोगिता खो नहीं बैठा है, क्योंकि "अनुभवी बुजुर्ग ही राह दिखला सकते हैं, उन्हीं को पता होता है कि किस तरफ से होकर राह गयी है और गति की मात्राएँ क्या होंगी? बुजुर्गों से कैसे बचाव होगा? राह के किनारे कहाँ खाना मिलता है, कहाँ पानी? कहाँ अच्छी सराय पड़ती है, कहाँ रद्दी? कहाँ टूटा हुआ पुल पथिक के उत्साह में ब्रेक लगाता है? कोसों तक हरियाली-विहीन प्रातंर किस प्रकार पार करना चाहिए?"[3] बहुत सारी उपयोगी सूचनाएँ बुजुर्गों से मिलती हैं, लेकिन फिर वे बुजुर्गों से स्नायविक कमजोरियों से मुक्ति और अनावश्यक अपेक्षाएँ न रखने की नसीहत भी देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि बुजुगों द्वारा प्राप्त सलाह, सुझाव अथवा विचार एक सीमा तक ही स्वीकार्य हो सकते हैं। जैसाकि 'हितोपदेश' में भी कहा गया है–

"वृद्धस्य वचनं ग्राह्यं, आपातकाले उपस्थिते।
सर्वत्रं वै विचारे स्तु, भोजनेप्यप्रवर्तनम्।।"[4]

अर्थात् वृद्ध का वचन आपातकाल में ही सही हो सकता है यदि हमेशा उनके विचारों को पालन करते हुए चलेंगे, तो भोजन प्राप्त करना भी मुश्किल हो जाएगा।

नवीन विचारों के पोषक नागार्जुन कहते हैं कि, "हमें यह बात बिल्कुल भूल जानी है कि आज से सौ वर्ष पहले या दो सौ-चार सौ वर्ष पहले पैदा होने वाले किसी भी महामानव का जीवन और कृतित्त्व अब अपने उन्हीं अर्थों में मौजूदा समाज को अनुप्राणित कर सकता है। सीता सहित राम-लक्ष्मण, राधा-कृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर वर्धमान, कालिदास, तुलसीदास, रवींद्र आदि की अस्थियाँ सचमुच यदि हमारे समक्ष आ ही जाएँ तो कम-से-कम मैं अपने भाइयों से यही कहूँगा कि इन्हें ले जाओं 'गंगा' या 'गोदावरी' में सम्मानपूर्वक डाल आओ।"[5] चूँकि नागार्जुन जानते हैं कि- "सिर्फ प्रवचन से ही कोई किसी का रहनुमा नहीं बन सकता है। मुहावरा है-राह बता तो आगे चल। इस कसौटी पर जो खरा उतरेगा, वही अच्छा उस्ताद होगा।"[6] आगे फिर वे इसी बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं- "पुरातन-पथ की फिसलन, बीहड़पन, बिषमता आदि हटाने में जितना वक्त बर्बाद होगा, उतने में ही वे (युवक-वर्ग) दो गुनी अधिक नई राहें नहीं तैयार कर लेंगे?"[7]

नागार्जुन कहते हैं- "पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच ऐसी चौड़ी गहरी खाई शायद ही किसी अन्य सभ्य देश में हो। भोग और उपभोग के लिए लालसाओं का यह तांडव शायद ही किसी अन्य सभ्य समाज में हो। ..... वस्तुतः भौतिकवाद को गालियाँ देते-देते अनजाने ही वे (वृद्ध) स्वयं भौतिकवादी हो उठे हैं, अगले जन्म से उनका विश्वास उठ चुका है।"[8] नयी पीढ़ी के हिमायती यात्री-नागार्जुन का मानना है- "आज की नयी पीढ़ी कई दृष्टियों में अनूठी है। वह पुरानी पीढ़ी का आदर दिखावे के तौर पर नहीं करती है। वह वयस्कों को बे-हिसाब आदर नहीं देती, नाप-तौलकर आदर देती है। श्रद्धा का अनुपात पुरानी पीढ़ी के आचरण को ध्यान में रखकर घटता-बढ़ता रहता है।"[9]

जर्जर शिक्षा-व्यवस्था का जीवंत चित्रण करते हुए नागार्जुन लिखते हैं- "हमारे बिहार में पटना, राँची, मजफ्फरपुर, भागलपुर, दरभंगा, गया, छपरा, आरा, मुंगेर आदि कुछ ऐसे शहर हैं, जहाँ गलियों में विद्यार्थी ही विद्यार्थी नजर आते हैं। इन्हें काबू में रखना शिक्षण संस्थाओं के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द हो गया है। शिक्षण-संस्थाएँ एक तो खुद ही भीतरी गुटबंदियों की लीला-निकेतन बनी हुई है, दूसरा संकट है फीस बटोरने का धुन में उनका फूल जाना।"[10] तो ऐसे में नागार्जुन सभ्य-समाज से प्रश्न करते हैं- "चार घंटे छात्रों को क्लास के अंदर घेरकर रखना ही क्या सब कुछ है? परीक्षा के लिए जैसे-तैसे उन्हें तैयार करना ही क्या सब कुछ है? मनोरंजन के नाम पर केवल फिल्मों और बाजारों में घूमने देना ही उनके लिए क्या सब कुछ है?"[11]

इन गंभीर प्रश्नों को ध्यान में रखते हए स्नेह-प्रदर्शन के लिए अति आतुर और व्यवहार में लद्दू स्वभाव के बुजुर्ग से लेखक गुजारिश करते हैं कि हम सोचें कि नयी पीढ़ी के अंदर विक्षोभ के बीज कहाँ से आकर पड़ जाते हैं। ऐसी कुत्सित व्यवस्था के फलस्वरूप नयी पीढ़ी के आगे सुनिश्चित जीवन के बजाय सपने में भी बेकारी की डायन मुँह बाए खड़ी रहती है।

चिर विद्रोही साहित्यकार नागार्जन अपने बेबाक अंदाज में कहते हैं- "पुराने शिक्षकों के प्रति नयी पीढ़ी की श्रद्धा-भक्ति दिन से दिन घटती जा रही है। यह चिंता का विषय नहीं है। मैं इसे भावी-युग के लिए बहुत बड़ा शुभ मानता हूँ। मेरी यह ख़ढ़ धारणा है कि युवकों के शिक्षक युवक ही हो सकते है। ठस दिमागवाले, सिकुड़े हुए दिलवाले वयस्क भला नौजवानों को क्या सिखलाएँगें?"[12] नागार्जुन का यही 'सच' उन्हें औरों से अलग करता है। सबसे भिन्न, कड़वे और दो टूक शब्दों में अपने विचारों को रखने वाले नागार्जुन साफ शब्दों में कहते हैं- "युवक छात्र वयोवृद्ध अध्यापक को अपनी फेनिल श्रद्धा ही दे सकेगा। प्रीति-पूर्ण आंतरिक श्रद्धा तो वह उसी शिक्षक को देगा जो ऊभड़-खाभड़ पथों में आगे-आगे चल सकेगा, जो शिष्य का गुरु भी होगा और सखा भी होगा।"[13]

वास्तव में प्रगतिवादी साहित्यकार नागार्जुन का यह व्यापक दृष्किोण सबसे अलग और समयानुकूल है। एक क्रांतिकारी रचनाकार के रूप में उन्होंने समाज का प्रतिनिधित्व किया है। संघर्ष के प्रचंड आवेग में निरंतर आगे बढ़ने वाले रचनाकारों में वे अग्रगण्य हैं। उनकी वृद्ध-विषयक सोच सर्वथा भिन्न और नयापन लिए हुए हैं। प्रायः लोगों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाता है कि वृद्ध है कौन? सामान्यतया लोगों की धारणा होती है कि युवावस्था के व्यतीत हो जाने पर जब शरीर जर्जर हो जाता है, सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, तो बुढ़ापा आ जाता है। मगर बात यही नहीं है। सच तो यह है कि जो व्यक्ति मन से अपने को बढ़ा समझने लगता है, वही व्यक्ति वृद्ध है। दूसरे शब्दों में, 'वृद्ध एक अवस्था का नहीं बल्कि एक सर्जनात्मक चिंतन का नाम है।' वृद्ध बाबू वीर कुंवर सिंह ने 80 वर्ष की अवस्था में अंग्रेजों से लोहा लिया था, क्योंकि वे मन से जवान थे। महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, सरदार बल्लभ भाई पटेल, जयप्रकाश नारायण आदि वृद्ध होते हुए भी वृद्ध नहीं थे, क्योंकि इनकी सोच, इनका जज्बा, कार्य करने की क्षमता नौजवानों के लिए आज भी प्रेरणा-स्रोत हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि हिन्दी-साहित्य के मूर्द्धन्य नक्षत्र नागार्जुन युवा-शक्ति के पक्षधर थे। वे सामाजिक हित के लिए हमेशा युवाओं को आगे देखना चाहते थे। वे अंतिम समय तक युवाओं के पक्ष में अपनी आवाज बुलन्द करते रहे, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे बुजुर्गों के खिलाफ थे या बुजुर्गों के मान-सम्मान की उन्हें परवाह नहीं थी या बुजुर्गों के प्रति वे संवेदनशील नहीं थे। भले नागार्जुन का निर्मल-निष्कलुष मन बालपन में ही रमता-बसता है, उनके साहित्य का बड़ा स्थान युवावस्था से ही भरा हआ है, 'तालाब की मछलियाँ' में उन्होंने दो टूटे दाँतोंवाले भोगी महानुभाव मथुरा पाठक का भी चित्रण किया है. जो अधेड़ है। वैसे ही उनके कई पात्रों को भी घर से दूर जाने पर बूढ़े बाप की पनीली आँखें याद आती हैं आदि... आदि। निश्चित ही नागार्जुन का व्यक्तित्व किसी एक कटी-छंटी कोटि में नहीं रखा जा सकता। डॉ. विमल शंकर जी के शब्दों में- "वे एक साथ क्लासिक भी हैं और रोमांटिक भी, राष्ट्रीय भी और प्रगतिशील भी, ब्राह्मण भी हैं और बौद्ध भी, जितने मैदानी हैं, उतने ही पहाड़ी हैं, जितने शहरी हैं, उतने ही गवई हैं और उससे कुछ ज्यादा ही वनवासी। उनमें इतना प्यार है कि उनकी गहराई और विस्तार को नापना कठिन और इतना क्रोध है की साक्षात दुर्वासा। भोग की उत्कंठा के ज्वलन्त उदाहरण हैं और ऐसा त्याग कि मुँह फेर कर न देखे। स्वीकार इतना कि सारे दरवाजे खुले और दुत्कार ऐसी कि अशोभनीयता की रूह तक काँपने लगे।"[14]

संदर्भ

1. चंद्रगुप्त, ले.-जयशंकर प्रसाद
2. हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना, डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृष्ठ 33
3. नागार्जुन रचनावली, भाग-6, (रहनुमा), सं.-शोभाकांत, प्र.- राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 246-47
4. हितोपदेश (मित्रलाभ, चित्रग्रीव-कथा)-ले.-नारायण पंडित
5. नागार्जुन रचनावली-6, (मानस चतुः शताब्दी समारोह), सं. शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 266-67
6. नागार्जुन रचनावली-6, सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 248
7. नागार्जुन रचनावली-6, सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 248-249
8. नागार्जुन रचनावली- (दादा जी, आप रिटायर हों), सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 262
9. नागार्जुन रचनावली- 6, (दादा जी, आप रिटायर हो), सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 260
10. नागार्जुन रचनावली-6, (दादा जी, आप रिटायर हो), सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 261
11. नागार्जुन रचनावली-6, (दादा जी आप रिटायर हों) सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 261
12. नागार्जुन रचनावली-6, (रहनुमा), सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 249
13. नागार्जुन रचनावली-6, (रहनुमा), सं.+प्र.-वही, पृष्ठ 249
14. हिन्दी का आंचलिक उपन्यास : सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ. विमल शंकर

उदय प्रकाश की कहानियों का सामाजिक परदृश्य

सरस्वती पाण्डेय

शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा (बिहार)

समकालीन कहानीकार उदय प्रकाश का कहानी संसार अत्यंत व्यापक रूप में फैला हुआ है। किसी एक दृष्टिकोण या ढर्रे पर उनकी सारी कहानियाँ नहीं लिखी गई हैं। उनकी कहानियों की परिधि में सर्वव्यापकता दिखाई पड़ती है। जीवन के हर आयाम को उन्होंने अपने नजरिये से देखा-परखा हैं, उनकी कहानियों में जो यथार्थपरकता है, उसका मूल कारण है कि वे अपनी जीवनानुभूतियों को ही अक्सर उद्घाटित करते हैं। साथ ही वे आँखों देखा हाल को कहानी का विषय बनाते हैं। यहाँ सवाल है उनकी कहानियों के परिदृश्य का। परिदृश्य का शाब्दिक अर्थ है- चारों ओर का परिवेश, माहौल, वातावरण तथा मनुष्य के जीवन में जो घटनाएँ घटित होती हैं, साहित्य उन तमाम चीजों से प्रभावित होता है। साहित्यकार जो सजग हैं, उनका कर्तव्य है कि वे अपने आसपास के परिवेश का गहन अध्ययन करें और रचना में उसका बयान करें।

उदय प्रकाश एक सजग रचनाकार हैं, जिन्होंने समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पदृिश्यों का यथार्थ रूप में उद्घाटन अपनी कहानियों में किया हैं प्रसंगवश यहाँ उदय प्रकाश की कहानियों का सामाजिक परिदृश्य का विवेचन अपेक्षित है। मनुष्य वस्तुत: एक सामाजिक प्राणी है, समाज से परे रहकर उसका जीवन नहीं कट सकता है। समाज की जरूरत पशु और देवता को नहीं होती, पर मानव के लिए उसकी अनिवार्यता सर्वसिद्ध है। आम आदमी समाज में जीता है और सामाजिकों के साथ मिलकर जीना स्वस्थ मनुष्य का लक्षण होता है। परिवार को भी एक छोटी ईकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। अनेक परिवार मिलकर समाज को निर्माण करता है। समाज में अनेक तरह के लोग रहते हैं। कुछ लोग समाज की जिम्मेदारी को समझकर उसके कल्याण की कामना करते हैं। समाज-सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय समझते हैं। वहीं कहीं-कहीं सामाजिक विसंगतियाँ भी परिलक्षित होती हैं। समाज में नैतिक पतन तथा मानवीय मूल्यों का ह्रास आज इस तरह हो गया है कि जन-सामान्य क्षुब्ध हो उठते हैं। स्वयं उसके विरूद्ध संघर्ष करने लगते हैं। 'पाल गोमरा का स्कूटर' नामक कहानी में इस तरह की विसंगतियाँ दृष्टिगत होती हैं। उदय प्रकाश जी कभी भी समाज के मुद्दे से अपना पल्ला नहीं झाड़ते हैं, बल्कि उसे नग्न रूप में पाठकों के सामने परोस देते हैं।

भारतीय समाज में अनेक तरह की विषमताएँ व्याप्त हैं। सामान्य मानव कभी सर्वहारा के नाम पर ठुकराया जाता है, तो कभी अनाभिजात्य के नाम पर। कभी उसकी उपेक्षा का कारण जाति बनता है तो कभी वर्ग और कभी लिंग। 'मोहनदास' उदय प्रकाश का वर्तमान समय का जीवंत पात्र है, जो समाज द्वारा उपेक्षित है। कारण यह है कि वह पिछड़ी जाति का है तथा गरीब है। वह तथाकथित आभिजात्यों का शिकार बन जाता है। उदाहरण के लिए 'हीरालाल का भूत', 'टेपचू', 'मोहनदास' आदि कहानियाँ वर्ग-भेद तथा वर्ण-भेद को उद्घाटित करने वाली कहानियाँ हैं। समाज की विसंगतियाँ डॉ. वाकणकर के शब्दों में इस तरह प्रकट की गई हैं- "एक पूरा भ्रष्ट और अपराधी तंत्र बन चुका है, जिसकी हिंसा और लूट के सामने इस जीवन का कोई मतलब नहीं है कि सामने वाला हिन्दू है या मुसलमान या किसी और संप्रदाय का। बांग्ला देश में भी मुसलमानों का संहार किया गया था। हजारों औरतों से बलात्कार किया गया था और लाखों मुहजिरों को उनके घर गाँव से उजाड़कर खानाबदोष बना दिया गया था।"[1] भारतीय समाज की यह विडंबना है कि समाज में केवल अमीरों की चलती है, गरीबों की नहीं। समाज का शक्तिशाली संपन्न वर्ग, गरीबों का सब कुछ लूट लेता है। लूटने के लिए कोई सीमा या कोई मर्यादा नहीं है। 'हीरालाल का भूत' में हीरालाल तथा उसकी पत्नी फुलबा दोनों

गरीब तथा शोषित वर्ग के हैं जो हरपाल सिंह ठाकुर के घर नौकर का काम करते थे। सामंती व्यवस्था का खूबसूरत चित्रण इस कहानी में किया गया है।

"हीरालाल ज्यादा काम करने लगा था। यद्यपि वह कुछ नहीं बोलता, किन्तु वह सब कुछ समझता था। गाँव का हरेक आदमी जानता था कि हीरालाल का सबकुछ लूट लिया गया है। जमीन-जायदाद, जिंदगी, पसीने से लेकर और की इज्जत तक।"[2]

कुछ ही पंक्तियों में उदय प्रकाश ने शोषितों के शोषण को उजागर किया है। वर्ण-भेद का और एक सुंदर वक्तव्य 'पीला छतरी वाली लड़की' कहानी से-राहुल सवर्ण छात्रों से कहता है, "हिन्दी लिटरेचर और हिन्दू धर्म ने तुम्हें यहीं सिखाया है- रावण की औलादों! कितना खाओगे? कितना इस मुल्क को तोड़ोगे? दीमक, जोंको, पिस्सुओं की तरह इस महादेश के जर्जर शीरर पर पलनेवाले पैसाइट्स। याद रखों, रावण भी तुम्हारी जाति का था और वह भी सोने की लंका में रहा करता था। नेता के उस युग में तुमने घरबार से निस्कासित राम की पत्नी का अपहरण करके, उन्हें भीतर से तोड़ डाला था। एक कभी न खत्म होने वाली भटकती हुई बदहबास जिंदगी। और हरामजादों तुम उन्हीं राम का भक्त होने का नाटक कर रहे हो। इस कलियुग में इस बीसवी-इक्कीसवी सदी में, उन्हीं राम को तुम अपने जैसा बर्बर, हिंसक, हत्यारा, कट्टरपंथी, मानवद्रोही ..... फासिस्ट बना रहे हो क्योंकि तुम्हें वोट चाहिए, क्योंकि तुम्हें पॉवर में रहना है, क्योंकि तुम्हें अभी खाना है।"[3]

भारतीय समाज में चिरकाल से उच्च वर्ग का वर्चस्व रहा है और उसी तरह रहेगा, इस पर लेखक का विश्वास है। इसी बात का पर्दाफाश करना लेखक का ध्येय है और 'पीली छतरी वाली लड़की' का यही कथ्य है।

भारतीय समाज में परिवार की अपनी विशिष्ट महत्ता है। समाज में पारिवारिक संबंधों का अपना पृथक् अस्तित्व है। संयुक्त परिवार की अपनी अलग विज्ञेषता है। संयुक्त-परिवार में सदस्यों की संख्या पर्याप्त रहती है, जिसके कारण वहाँ बाहरी लोगों की अधिक आवश्यकता नहीं होती है। अपने कहलानेवाले, सगे-संबंधी माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन, अनेक लोगों की उपस्थिति संयुक्त परिवार में होती है। परिवार के सदस्य दु:ख-सुख मिलजुल कर बाँटते हैं। पर-दु:कातरता की भावना, सहयोग की भावना, परोपकार की भावना सभी सदस्यों में कूट-कूट कर भरी होती है। ध्यातव्य यह है कि ऐसे परिवार में अकेलेपन का एहसास नहीं होता था। आधुनिक काल में यांत्रिक जीवन उबाऊ, रिश्तों से दूरी सर्वत्र फैली हुई है। बचपन भी माता-पिता के साथ गुजरना दूभर हो गया है। भूमंडलीकरण और बाजारवादी-उपभोक्तावादी संस्कृति ने परिवार-भावना को तार-तार कर दिया है, जिसके कारण आज 'एकल' परिवार के साथ अति सूक्ष्म परिवार गठन की प्रवृत्ति आम हो गयी है। अब ऐसी स्थिति में पति-पत्नी भी एक साथ नहीं रहते या कहें कि रहना पसंद नहीं करते। 'नेलकटर' नामक कहानी में भी उदय प्रकाश जी ने माँ तथा बच्चे की संवेदना को सुंदर अभिव्यक्ति दी है। अपने समाज के सुंदर रिश्ते आज के आधुनिक जीवन में न जाने कहाँ लुप्त हो गये हैं।

आज का समाज संवेदनशून्य होता जा रहा है, जिसके कारण घेरलू रिश्ते में दरार पड़ना स्वाभाविक है। अपने लोगों से अपनों से दूरियाँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। पारस्परिकता, आत्मीयता, स्नेह, लगाव, वात्सल्य आदि बातें धूल-धूसरित हो गई हैं। इन्हीं संवेदना को उदय प्रकाश जी ने उद्घाटित करने की सफल कोशिश की है। 'तिरिछ', 'नेलकटर', 'मूंगा', 'धागा' और आम का बौर, आदि इसी स्थिति को उद्घाटित करती है।

भाई का भाई के प्रति आत्मीयता तथा प्रेम होना, भारतीय समाज का आदर्श है। रामायण में राम और भारत का भाई-भाई के प्रति विश्वास, निष्ठा का चित्रण मिलता है। उदय प्रकाश की कहानी 'अपराध' में भी भाई के प्रति भाई का प्रेम तथा आत्मीय रिश्तों की व्यंजना हुई हैं- "भाई की वे कातर आँखें अब भी मुझे कभी-कभी घूरने लगती हैं। याचना करती हुई, सच बोलने की भीख मांगती हुई मेरी स्मृति में जब भी वे आँखें जाग उठती हैं, मेरी पूरी चेतना ग्लानि, बेचैनी और अपराध बोध से भर उठती है। इस अपराध के लिए मुझे कौन क्षमा कर सकता है।"[4]

स्वतंत्र भारत में चौतरफा भय तथा आतंक का माहौल फैला हुआ है। मनुष्य का मनुष्य पर से विश्वास उठ गया है। माहौल अत्यंत दूषित तथा अमानवीय हो गया है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का पैर खीचने में लगा है। लोग दूसरों को कुलकर आगे बढ़ने के आदी हो गये हैं। आतंकवाद और भयावहता ने मनुष्य को जर्जर कर डाला है। उदय प्रकाश की 'गंगू', 'अरेबा-परेबा', 'पूँछ में पटाखा', 'मोहनदास', 'रजाई' आदि कहानियों में असुरक्षित वातावरण की चर्चा की गई है। 'मोहनदास' लंबी कहानी है, जिसमें मोहनदास हर पल हर स्तर पर आतंकित दिख पड़ता है। 'पूँछ में पटाखा' कहानी में दिल्ली- वासियों के हालात लगभग वैसे ही बन गये हैं, जैसे कुत्ते की पूँछ में पटाखे लगाने के बाद इधर-उधर पागलों की भाँति भागता है। आतंकवाद, महँगाई, रिश्वतखोरी आदि ने मनुष्य

को केवल सुकून भर छीना है, बल्कि उसे आतंक भरे माहौल में जीने के लिए अभिशप्त कर दिया है। ऐसे भयावह वातावरण की अभिव्यक्ति उदय प्रकाश की कहानियों में मिलती है। उदय प्रकाश आज के माहौल तथा परिवेश के प्रति सावधान सतर्क तथा सजग है। उन्होंने संपत्ति हालातों को अत्यंत बारीकी से देखा और भोगा है। रचनात्मक स्तर पर उन्हें अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है।[5]

एक दूसरे के प्रति मनुष्य में स्नेह, पारस्परिकता, आत्मीयता, प्रेम, लगाव की भावना न केवल बराबर रह गयी है। मनुष्य अपने आप में अकेलेपन से संत्रस्त हो गया है। दूर तक आत्मीयता का कोई चिराग जलता नजर नहीं आ रहा। हालात बद से बदतर हो जाते हैं।

समग्रत: कहा जा सकता है कि समकालीन कहानीकार के रूप में उदय प्रकाश ने अपनी कहानियों में जिस सामाजिक परिदृश्य अथवा परिवेश का वर्णन किया है, वह वर्तमान भारतीय समाज की वास्तविकता को रेखांकित करने में समर्थ हैं, काल्पनिकता से परे उदय प्रकाश की कहानियों में वर्णित सामाजिक परिवेश यथार्थ पर आधारित समाज है, जिससे संबंद्ध अनुभूतियों से लेखक के प्रत्यक्ष संबंध है। साथ ही वे अपनी कहानियों में बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य को भी पूर्णता के साथ रेखाकित किया है।

संदर्भ-सूची

1. और अंत में प्रार्थना- उदय प्रकाश, पृष्ठ 109
2. हीरालाल का भूत- उदय प्रकाश, पृष्ठ 67
3. पीली छतरी वाली लड़की- उदय प्रकाश, पृष्ठ 56
4. तिरिछ (अपराध)- उदय प्रकाश, पृष्ठ 22
5. हिन्दी कहानी का विकास- मधुरेश, पृष्ठ 183

कठगुलाब : स्त्री-जीवन का संघर्षगाथा

सुशील कुमार मंडल

ग्राम-हनुमाननगर, पो.-सिकटियाही, वाया-खुटौना, जिला-मधुबनी, बिहार-847227

रचनाकार के 'आत्म' का 'परिवेशगत सरोकार' से गहरा तादात्म्य होता है। इसी 'आत्म' का 'परिवेशगत सरोकर' के साथ जब नकार की स्थिति पैदा होती है, अर्थात् इन दोनों के बीच जब द्वन्द्व पैदा होते हैं तो 'रचना' की निर्मिति होती है। 'कठगलाब' (1996) इसी 'नकार' या 'मोहभंग' का रचनात्मक रूपांतरण है। 'कठगुलाब' की रचना प्रक्रिया पर बात करती हुई स्वयं लेखिका कहती है "वास्तविक मोहभंग बाहर के परिवेश से नहीं, स्वयं अपने से होता है। मोहभंग की इसी मानसिकता में मैंने 'कठगुलाब' उपन्यास की रचना की थी।"[1] मोहभंग की इस मानसिकता का प्रतिफलन पलायन के रूप में होता है। स्मिता प्रतिहिंसा की माला को प्रत्येक दिन फेरती थी और इस प्रतिहिंसा से उठते हिंसा के उबाल बिल्कुल स्पष्ट और निर्मम थे। इस निर्ममता ने उसे (स्मिता) अन्दर से ताकतवर बनाया और अपने-आपसे लम्बी लड़ाई लड़ते हुए सम्पूर्ण शक्ति के साथ वो जीवन को अर्थ देने लगी।

स्मिता का संघर्ष स्वयं का (संघर्ष) है, स्वयं के साथ ही परिवेश से है। ये संघर्ष उसका न होकर एक स्त्री का संघर्ष हो जाता है। स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा, विपिन के किरदारों से गुजरते हुए हमेशा एक स्त्री होने का एहसास मौजूद है। याद्दाश्त में धुंधलाए एक स्त्री का, कोई बीस साल बाद अपने घर को लौटी स्त्री का, जीवन में अर्थ को भरती एक स्त्री का। 'कठगुलाब' से गुजरते हुए आप केवल एक 'स्त्री' होने के दु:ख, उसकी पीड़ा, उसके सपने से ही रूबरू नहीं होते बल्कि स्त्री-पुरुष के आपसी संबंध के महत्व, विस्थापन की पीड़ा, स्त्री जीवन में पुरुष की भूमिका, स्त्री विमर्श के विभिन्न रूपों का विश्लेषण, स्त्री की पारिवारिक-सामाजिक भूमिका, आदि महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर गंभीर आलोचनात्मक विश्लेषण से भी रूबरू होते चलते हैं।

साइक्याट्रिस्ट जिम जारविस अपने पेशे के पीछे स्मिता और उसकी तरह के और लोगों का शारीरिक और मानसिक शोषण करता है। किन्तु अपने अपराध बोध के प्रति इतना आत्ममुग्ध हो गया कि वह लगभग संवेदना शून्य हो गया। इस संवेदना शून्यता की रक्षा उसी के तरह कानूनी किताबों के रक्षक अपनी भाषाई कुशलता के द्वारा करते रहते हैं। जिम जारविस से धोखा मिलने पर स्मिता को लगता है कि वह उसके साथ फिर बलात्कार करेगा। इसी बलात्कार का भय तो उसके अंदर डर और बदला लेने का भाव पैदा करता है और भारत से पलायन कर वह अमेरिका जाती है। लेकिन यहाँ भी तो वह सरक्षित नहीं रही। 'नग्नता केवल देह की नहीं होती। रूहानी नंगापन बर्दाश्त करना कहीं ज्यादा मश्किल होता है।'[2] एक स्त्री अपने को सुरक्षित रखने के न जाने किन-किन तरीकों से गुजरती है और उस गुजरने में संशय और डर हमेशा उसके साथ बना रहता है। शारीरिक नग्नता तो अभाव के कारण आती है या आ सकती है लेकिन इस नग्नता के पीछे यदि क्रूरता भी आ जाती है तो वह आत्मा को नंगा कर बैठती है। फिर आप तय नहीं कर पाते हैं कि स्वतंत्रता क्या चीज है? ये चीज धीरे-धीरे अंदर आकर गहरे पैठ जाती है और हमारी सोच को बदल देती है। वैचारिक रूप से स्खलन हो जाता है।

'जिम जारविस' के बहाने मृदुला गर्ग वैचारिक रूप से स्खलित ऐसे ही पुरुषों के चरित्र को सामने लाती हैं। लम्बे समय तक पुरुष इसी वैचारिक अधिनानायकवादी नजरिये के द्वारा महिलाओं को संचालित एवम् निर्देशित करता आया है। संचालित और निर्देशित करने वाले पुरुषों की संख्या और विचार हमेशा समाज में प्रभावशाली रहे हैं। इसके प्रभावशाली होने के पीछे सत्ता और उसकी विभिन्न शक्तियों की भूमिका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रहती ही है। स्मिता भी तो उन शक्तियों की शिकार हुई, आखिर उसका दोष क्या था? उसे पागल, अपराध बोध से ग्रस्त, आत्मकेन्द्रित और किसी का परवाह नहीं करने वाली औरत के रूप में तब्दील कर दिया जाता है। पुरुषों के साथ स्त्री के मामले में एक दिक्कत हमेशा साथ रहती है कि वह तुरन्त उसे नंगा करने पर आ जाता है। एक पुरुष जितनी तेजी से एक स्त्री के रूप-सौंदर्य पर आत्ममुग्ध होता है, उसे श्रेष्ठता की ऊँचाई पर बिठाता है उतनी ही तेजी

से उस पर लांछन लगाकर उसे अपराध ग्रस्त और निर्वसन करने पर उतारू हो जाता है। पाँच कथानकों में सिमटा हुआ 'कठगुलाब' एक स्त्री की 'अस्मिता' और उसकी जवाब देही के प्रश्न को तलाश करता हुआ चलता है। स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा और विपिन उस तलाश के लिए की जा रही यात्रा के सहयात्री हैं। इन्हीं से होकर और इन्हीं में ठहरकर उस गंतव्य तक पहुँचा जा सकता है। स्मिता कोई बीस साल बाद अपने शहर को लौटती है और कमरे में आते ही खो जाती है तथा अपने घर, शहर, वहाँ की आबोहवा को महसूस करने लगती है। सचमुच मिट्टी से कितना गहरा लगाव होता है और इस लगाव के कितने रंग होते हैं। मिट्टी के भी तो कई रंग होते हैं। "हम मिट्टी से पैदा हुए, मिट्टी में मिल जाएँगे। भारतीय दर्शन में मिट्टी के महत्त्व को हम होश सँभालते ही समझने लगते हैं। दर्शन की जरूरत कहाँ है, यह तो सर्वत्र फैला सत्य है। जग-जाहिरा मिट्टी ही सर्वव्यापी, एकमात्र सच्चाई है। ईश्वर, धरणी, प्रकृति, सृष्टि, पार्थिव शरीर, मिट्टी राख। जलाओ तो राख। दफनाओ तो मिट्टी। दोनों का विस्तार निस्सीम है, आगमन निर्बाध।"[3] एक स्त्री, उसके भी तो कई रंग होते हैं, उसका विस्तार भी तो निस्सीम है और आगमन निर्बाध। इन सच्चाइयों के बावजूद बार-बार वह बाधित होती है। अपने होने को लेकर संघर्ष की प्रक्रिया उसके यहाँ लगातार जारी रहती है। डर, भय, संशय के त्रिकोण में फँसकर ही तो स्मिता पलायन को मजबर होती है, लेकिन उसे मिला क्या? फिर वो छली गई। उसका दोष क्या था? बस इतना ही न कि वो एक साइक्याट्रिस्ट जारविस की बातों में आ गई। क्या स्त्री को किसी पुरुष के ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिए! स्त्री को अविश्वास के साथ कब तक रहना पड़ेगा। उसकी दुनिया भी तो विश्वास की दुनिया है। स्त्री और पुरुष अलग-अलग स्वतंत्र रूप से किसी समाज का विकास कर सकते हैं। नहीं तो, फिर स्मिता का वो भी इस विश्वास के ऊपर ही टिकना चाहती है।

मारियान का कथागत-चरित्र अपना स्वतंत्र रूप लिये हुए है। रिलफॉर एब्यूण्ड बुमेन', रॉ में काम करने वाली एक कर्मचारी है, मारियान यह संस्था औरतों के लिए काम करती थी। इस संस्था के लोगों की पुरुषों के प्रति एक राय थी कि 'मर्द नाम का प्राणी, खुदगर्ज और जालिम होता-ही-होता है पर मारियान के विचार इन लोगों से थोड़े अलग थे 'तमाम मर्दो को एक खाँचे में डालने के लिए वो तैयार नहीं थी।' उसके अंदर प्यार, विश्वास और जीवन के रंग मौजद थे। मारियान स्त्री के रूपगत सौन्दर्य के बरक्स आत्मिक सौन्दर्य वाली लड़की (औरत) थी, और वरजिनया वो भी तो स्त्री थी मारियान की सौतेली माँ। अपने बाह्य सौन्दर्य के प्रति आवश्यकता से ज्यादा सतर्क रहने वाली। एक ही घर में स्त्री के ये दो भिन्न-भिन्न रूप। एक अपने रूप, पैसे के पीछे पूरी दुनिया से महरूम या यों कहे उसी को अपनी दुनिया मानने वाली वरजिनया और दूसरी ओर मारियान जिसने अपनी सारी जिंदगी दूसरों के काम आने में ही गुजार दी। बाह्य सौन्दर्य के आवरण से घिरी वरजिनया का अंत वीभत्स और विरूप तथा मारियान के कारण आत्मविश्वास, तमाम अवरोधों को पार करती हुई, एक सफल लेखिका के रूप में सामाजिक स्वीकार्यता पा ली (इतिहास में जगह पा लेती है)।

समाजशास्त्री मारियान लेखन की सामग्री एकत्रित करती हुई उन तमाम औरतों में खुद को महसूस करने लगी जो अलग-अलग समयों में अपने होने को लेकर संघर्ष की थीं। रूथ, एलेना, सूजन, रॉक्जॉन इन सब में मारियान अपने को तलाश रही थी। क्योंकि 'हर औरत एक पूरे समय और समाज का प्रतिनिधित्व करती है। साथ ही 'आज की तथाकथित स्वतन्त्र और व्यक्तिनिष्ठ स्त्री और समाज की अपेक्षाओं पर मर मिटनेवाली उन पुरखिन औरतों के बीच, कोई बुनियादी फर्क नहीं था।' मारियान औरतों को देखे जाने वाले नजरियों के प्रतिरोध में खड़ी एक मूर्त आवाज की तरह है। मातृत्व और पितृत्त्व सत्ता के वर्चस्व को दरकिनार करती हुई वो किसी भी सत्ता संरचना का प्रतिकार करती हुई स्त्री होने की 'अस्मिता' को महत्त्व प्रदान करती है। विस्थापन और सामाजिक विकास की प्रक्रिया में स्त्रियों के महत्त्व को किस प्रकार देखा जाता है, मारियान के बहाने स्पष्टता के साथ रखा गया है। विस्थापन के क्रम में 'सफाई सिर्फ जंगली मोथे और झाड़-झंखाड़ की नहीं साँप-बिच्छू, भेड़िये-लकड़बग्घे और मूल निवासियों की भी करनी थी।'[4] सफाई कम में 'हर मूल निवासी को हमने जंगली घोषित कर दिया।' जंगली घोषित करने यह प्रक्रिया विकास के नाम पर बदस्तूर जारी है और संसाधनों की लूट के क्रम में आदिवासियों का विस्थापन लगातार जारी है। एक स्त्री भी तो सामाजिक विकास में हिस्सेदारी के प्रश्न पर लगातार संघर्ष और विस्थापन की प्रक्रिया से ही तो गुजर रही है। 'काम, काम और काम। थकान, थकान और थकान। नींद नहीं के बराबर...'[5] भख से मर रही एक स्त्री अपनी देह की माँग के प्रति उदासीन लगातार श्रमरत रहती है। लेकिन हास्यास्पद स्थिति तो यह है कि स्त्रियों के महत्त्व पर या योगदान या उसकी शक्ति पर जब भी बात होती है तो उसकी ऐतिहासिक भूमिका को नजरअंदाज कर यह बतलाया जाता है कि 'इतिहास को इतनी शिद्दत और समझदारी से पुनर्निर्मित करने का काम कोई पुरुष ही कर सकता था।" बावजूद इसके मारियान को भरोसा है कि ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया की कभी मीमांसा और पुनर्मूल्यांकन होगा और स्त्रियों के ऐतिहासिक दाय को स्वीकार जायेगा।

अपने से बिल्कुल उदासीन 'नर्मदा' भी तो श्रीदृत रहकर अपनी भूमिका के तय खाँचे में बैठी हुई ही तो लगती है। बतौर नर्मदा "मेरी कहानी में सुनाने को भला क्या है? कोई क्यों सुनना चाहेगा उसे? मेरी जिन्दगी में कभी कुछ हुआ ही नहीं।" होते जाने के बीच न होने की तकलीफ या ख्याल सिर्फ नर्मदा का नहीं है, इसकी संख्या बहुत ज्यादा है। नर्मदा भी जीवन को जीना चाहती थी। उसकी भी इच्छाएँ थीं, आशाएँ थीं किन्तु किस्मत, बिरादरी की रीति आदि पर सवार नर्मदा अपनी इच्छाओं और आशाओं को टूटते हुए देखी और महसूस की। "किस्मत मेरी! न मरद मिला, न बालक। दो साल में, जने कित्ती बार, वो, मेरा भर्तार साथ रह लिया पर एक बार जो कोख हरी हुई हो। एक बालक हो जाता तो अपना कहने को कोई होता। दुनिया से ना डरती मैं, इसी कुठरिया में छाती ठोंककर पाल-पोस लेती।" अपना कहने और होने के बीच नर्मदा का जीवन चलता है।

असीमा का चरित्र नर्मदा के ठीक विपरीत है। नर्मदा जितना संकोची, दबी हुई और किसी तरह अपने जीवन को चलाती हुई दिखती है, वहीं दूसरी तरफ असीमा को 'अपने होने' का एहसास हमेशा रहता है। असीमा के अंदर सामाजिक संरचना के खिलाफ एक विच्छोह है। इस संरचनागत पृष्ठभूमि के केन्द्र में वो पुरुषों को जिम्मेदार मानती है। "सारा खेल मेल शॉविनिजा का है। सीमा में बँधे रहने का ठेका लड़कियों ने जो ले रखा है।"[6] दरअसल अभी भी हमारे परिवार और समाज में लड़के और लड़कियों के बरक्स, लड़कों को एक अनियंत्रित छुट तो मिली ही है। सारी वर्जनाओं और अपमान का लम्बा सिरा अभी भी औरतों के जिम्मे ही है। असीमा इसी के विरोधी सिरे पर खड़ी है। लेकिन "क्या महज जिद के बल पर कोई औरत फेमिनिस्ट कहला सकती है?"[7]

असीमा की कहानी उसके परिवार से शुरू होती है। असीमा की माँ का अपना स्वाभिमान था। उसकी माँ का मानना था कि "मैं अपनी सीमा नहीं लाँघूगी। न घर को बाजार बनाऊँगी, न बाजार को ख्वाबगाहा' पर असीमा का पिता चाहता था कि "मेरी माँ ऐसे कपड़े पहने, जिनमें उसकी देह का सौन्दर्य और सौष्ठव वही नहीं, उसके दोस्त-अहबाव भी देखें, और वह गर्व से सिर ऊँचा करके मूक कटाक्ष फेंक सके कि देखो क्या बाँकी औरत व्याहकर लाये हैं हम।"[8] असीमा के पिता की नजर में औरत की देह भोग की एक खूबसूरत वस्तु भर है। इन सबके बीच असीमा का पालन-पोषण होता रहा है पर अभाव की जिंदगी में नहीं, बल्कि माँ के साथ वाले स्वाभिमान के साथ। असीमा के पिता के बरक्स माँ का मानना था कि "मझे मर्दो से नफरत नहीं है। जरूरी नहीं है कि सब मर्दो की ख्वाहिशें एक जैसी हों। मुझे मात्र शरीर बनकर जीना पसन्द नहीं था और मैं दया का पात्र भी नहीं बनना चाहती थी।"[9] अपने को पहले से सीमाओं में बाँध कर नहीं रखना चाहिए। इन परिस्थितियों से होते हुए असीमा का विकास हो रहा था। 'लड़ाई करने लायक होना' ही उसके लिए असली महत्त्व की चीज हो गई। मृदुला गर्ग ने असीमा वाले खण्ड में ही स्त्री विमर्श से जुड़े जरूरी सवालों को भी उठाया है। पति और बच्चे। का मोह क्या सभी औरतों के मन में होता है? क्या कोई मुक्त भी होता है। इसी तरह "क्या लैज्जिबयन के मन में बच्चा जनने की इच्छा नहीं होती? क्या औरत मर्द से सिर्फ इसलिए आकर्षित होती है, क्योंकि वह उसे बच्चा दे सकता है? अगर औरत मर्द के बिना स्पर्म दान द्वारा बच्चा पैदा कर सके तो क्या औरत-मर्द के बीच का आकर्षण समाप्त हो जाएगा?"[10] स्त्री-पुरुष से संबंधित ऐसे सवालों से होकर न केवल विमर्श की भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास किया गया बल्कि विमर्श की मूल चिंताओं पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया। इन प्रश्नों और माँ के स्वाभिमान के साथ असीमा अपनी जिंदगी को रफ्तार देती है।

उपन्यास का अंतिम खण्ड 'विपिन' का है। 'विपिन' के चरित्र के महत्त्व को मृदला गर्ग के इस कथन से समझा जा सकता है कि- "फिर भी एक अनुरोध करने को जी चाह रहा है। इसे केवल स्त्रियों की कृति मत बनाइएगा। विपिन को भूल गए तो आज की अन्धी दौड़, हमें और काठ करके छोड़ेगी।"[11] असीमा और स्मिता के साथ विपिन की कहानी आगे चलती है। असीमा के मन में उठने वाले सारे सवाल 'विपिन' के पास आकर ज्यादा तार्किक और स्थायी प्रतीत होने लगते हैं। वाले स्मिता-असीमा के साथ विपिन की मुलाकात नीरजा से होती है। नीरजा से मिलते ही उसके अंतर्मन में दबी ख्वाहिश सहसा मानस पटल पर उपस्थित हो गयी। विपिन को लगता है कि यह "मुझे मेरा अपना बच्चा दे सकती है।"[12] आखिर मोह तो होता है और बस होता है। नीरजा, विपिन से उम्र में छोटी पर अन्य लडकियों से काफी अलग, बिल्कुल निर्भीक, अपनी जिंदगी को जीनेवाली लड़की! उसकी निर्भीकता और जिंदादिली को कुछ संवादों से समझा जा सकता है। "पसन्द और शादी पर्याय हैं क्या? कितने मजे की बात है। जीवनभर जिस बेटी की परवाह नहीं कि उसके वयस्क होते ही, उसके सेक्स आग्रहों की परवाह करने माँ तुरन्न हाजिर हो जाती है।"[13] नीरजा को साथ रखने या रहने के पीछे विपिन की अपनी इच्छाएँ थीं। वह एक आम आदमी की तरह प्रेम, पैशन, सुख, सौन्दर्य का उपभोग करना चाहता था पर उसकी मात्रा की सीमा के निर्धारण की महत्त्वाकांक्षा ने ही विपिन को डूबो दिया। प्रेम को वह जीत की मुहिम, हिस्सा

मान बैठा। विपिन अपनी जिंदगी का लाचार दर्शक हो गया। विपिन को लगा "मैं था कहाँ? स्मृति थी और पीड़ा?"[14] अपना पीड़ा से मक्ति पिन स्मृति और इच्छाशक्ति के साथ 'गोधड़' का इन्तजार कर रहा है। 'गोधड़' गुजरात का दर-दराज गाँव जो विकास से काफी दूर था। असीमा और स्मिता एक निजी संगठन के सहारे गाँव को आत्मनिर्भर बनाने के साथ विकास से जोड़ रही थीं। 'गोधड़' जाते वक्त विपिन सोच रहा था- "लड़ाई, संघर्ष, युद्ध, मेहनत, तैयारी, परिकल्पना, मार्गदर्शन अनगमन। बहुत शक्ति है उसके पास, दु:ख की निस्सीम शक्ति। वह आजाद है।"[15]

'रचना और निर्माण' के बीच के सूक्ष्म अंतर के बीच जीवन के स्वरूप का उद्घाटन पटला गर्ग 'कठगुलाब' के माध्यम से करती हैं। शिक्षा के माध्यम से ही औरतों में आत्म विश्वास पैदा हो सकता है और फिर वो अपना निर्णय ले सकती हैं। "हमारा लक्ष्य ऐसा समाज होना चाहिए जहाँ लड़के-लड़की का फर्क मिट जाए।"[16] प्रेमजन्य सेक्स की तुलना में प्रेम रहित सेक्स हमेशा निरानन्द की श्रेणी में ही आयेगा। पाँच खण्डों में सिमटा 'कठगुलाब- वस्तुत: पाँचों चरित्रों के माध्यम से जीवन के हलचल, तर्क-वितर्क, प्रेम आनंद और उसके तनाव एवम् सृजन के क्षणों से होता हुआ एक सभ्य समाज की परिकल्पना है जो स्मिता से चलकर विपिन तक पहुँचती है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. कठगुलाब-मृदुला गर्ग, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 7
2. वही, पृष्ठ 13
3. वही, पृष्ठ 15
4. वही, पृष्ठ 67
5. वही, पृष्ठ 102
6. वही, पृष्ठ 93
7. वही, पृष्ठ 94
8. वही, पृष्ठ 94
9. वही, पृष्ठ 160
10. वही, पृष्ठ 42
11. वही, पृष्ठ 65-66
12. वही, पृष्ठ 176
13. वही, पृष्ठ 178
14. वही, पृष्ठ 202
15. वही, पृष्ठ 213
16. वही, पृष्ठ 19

विद्यापति-पदावली में श्रृंगारिकता

डॉ० शोभा कुमारी

पूर्व शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

विद्यापति वस्तुतः सौन्दर्य के कवि हैं। सौंदर्य को उन्होंने अनेक रूपों में देखा था। एक कुशल शिल्पकार की तरह उन्होंने चुना, सजाया, सँवारा और आलोकित किया था। सौन्दर्य मन को कितना भाव-वि]वल और एकाग्र कर देता है, इसका विद्यापति को अनुभव था। इसलिए उन्होंने प्रायः 'अपरूप' या सौन्दर्य की अपूर्वता को एक सजीव पदार्थ के रूप में ग्रहण किया है। जब वे राधा या कृष्ण के रूप का वर्णन करने लगते हैं, तो सचेष्ट रूप से इतना कहना नहीं भूलते कि इस अपरूप ने सम्पूर्ण त्रिभुवन को विजित कर लिया है, यह किसी भी चित्त को चंचल कर सकता है, किसी भी ज्ञानी को क्षुब्ध कर सकता है।

सौन्दर्याभिव्यक्ति मानव-मात्र के स्वभाव का अभिन्न अंग है। जहाँ, जब, कभी, जिस किसी रूप में उसे मौका मिलता है, वह उसकी अभिव्यक्ति के लिए तत्पर रहता हैं। जब कोई कवि या कलाकार ऐसी स्थिति से गुजरता है, तब उसकी सौन्दर्याभिव्यक्ति का महत्त्व साधारण मानव से कहीं बढ़कर होता है और साथ-ही-साथ उसकी जिम्मेवारी भी बढ़ जाती है। वह अपनी अभिरूचि के अनुसार किसी वस्तु-विशेष के सौन्दर्य के प्रति अधिक जागरूक होता है। वह उसके विषय में अत्यधिक गहरी अनुभति रखता है। साथ ही वह इसके लिए भी प्रयत्नशील रहता है कि उसने जिस वस्तु को जिस रूप में देखा है, महसूस किया है, दूसरे भी उसे उसी रूप में देखें और महसूस करें।

सहृदयता और व्यापकता की ख्रष्टि से शृंगार को रसराज की संज्ञा से विभूषित किया गया है।श्रृंगार रस के अन्तर्गत विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव आदि जितने भाव हैं, सबका परिपाक उत्तम रीति से होता है, जो अन्य रसों में नहीं होता। अतएव आचार्यों ने शृंगार को रसराज कहकर इसकी सत्यता पर मुहर लगा दी है।श्रृंगार व्यापक और विस्तृत रस है। इसके अन्तर्गत प्रेम और सौन्दर्य की महत्ता सर्वोपरि है। नायक-नायिका का विशेष वर्णन रहने से यह रस अज्ञ से विज्ञ तक, सस्व से निःसस्व तक, अहृदय से सहृदय को स्पर्श करता है। शृंगार की भावना मनुष्येतर प्राणियों में भी देखी जाती है। इसके प्रसंग में जन-साधारण की धारणा अत्यंत हल्की और कहीं-कहीं अभद्र है, किन्तु साहित्य मर्मज्ञों में विशेषतः भरत, कालिदास, भोज, विश्वनाथ एवं अन्य रसवादी आचार्यों ने इसके गौरव का उल्लेख कर इसे रसराज, की संज्ञा दी है।

'पदावली' में विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन करने के लिए श्रृंगार-रस का आलंबन किया है। वस्तुतः प्रेम लीला का वास्तविक चित्रणश्रृंगार रस के बिना असंभव था। विद्यापति के युग में संस्कृत साहित्य का]ास हो गया था। संस्कृत साहित्य में वर्णित परम्परागतश्रृंगारिक चित्रण जनसाधारण के लिए दुरूह हो गया था। उस परिपाटी को जन भाषा के माध्यम से जन-सामान्य के हृदय तक पहुँचाने के लिए विद्यापति नेश्रृंगारिक वर्णन को परम्परागत रूप में स्वानुभूति के द्वारा चित्रित किया। समाज में काम-शास्त्र का अध्ययन समाप्त हो गया था, जिससे समाज में व्यभिचारादि की हुई, सुयोग्य मेघावी सन्तानों की उत्पत्ति का अभाव हो गया था। पूर्व में जब लोग शास्त्रीय अध्ययन समाप्त करते थे, तब कामशास्त्र का अनुशीलन करते थे। समाज में मित्रवर्ग से लोगों को कामशास्त्र की शिक्षा प्राप्त होती थी। इससे यदि अनमेल विवाह भी हो जाता था, तब भी नायक एवं नायिका में पूर्णतया संतोष रहता था, और व्यक्ति चारादि दोष से बचता था, किन्तु कलान्तर में जब इस परम्परा में शिथिलता आने लगी, तब विद्यापति ने शिवसिंह और लखिमा को राधा एवं कृष्ण का प्रतीक मानकरश्रृंगार रस की कविता की। 'पदावली' के माध्यम से उन्होंने काम-शास्त्र संबंधी-शिक्षा समाज को दी। यदि पदावली को काम-शास्त्रानुकूल क्रम-बद्ध संकलित किया जाय तो कोई कह सकता है कि इसमें कामशास्त्र का पूर्णतया प्रतिपादन हुआ है। उपर्युक्त पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में विद्यापति ने अपने पदावली मेश्रृंगार रस की प्रधानता दी।

विद्यापति पदावली में वर्णित शृंगार

नायिका का सौन्दर्य- रस-परिपाक की ख्रष्टि से विद्यापति ने सौन्दर्य का व्यापक चित्रण किया है। वस्तुत: विद्यापति सौन्दर्य के कवि हैं और सौन्दर्य ही उनकी जीवन-ख्रष्टि है। सौन्दर्य को विद्यापति ने अनेक रूपों से देखा, कुशल मणिकार की तरह उन्होंने चुना, सजाया, सँवारा और आलोकित किया।शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि नायक-नायिका के बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य का सम्यक् रूप से विश्लेषण किया जाय।शृंगार और सौन्दर्य परस्पर अन्योन्याश्रित है।शृंगार रस को उद्दीप्त करने के लिए नायक-नायिका परस्पर आलंबन सहायक होता है।

विद्यापति अनेक सौन्दर्य-उपमानों के माध्यम से नायिका के अनुपमेय रूप-भावों का अवलोकन करते हुए लिखते हैं कि रूपसी के स्वभाविक प्रसन्न मुस्कुराते हुए मुख-मंडल का दर्शन हृदय को पुलकायमान करने वाला है। लग रहा है मानो आकाश और पाताल की दूरी पर रहनेवाला चन्द्रमा और कमल दोनों एक साथ हो गए हैं-

सहज प्रसन मुख दरस हृदय सुख लोचन तरल तरंग,
आकाश पाताल वस, सेओ कइसे भेल अस चाँद सरोरूह संग।[1]

विद्यापति ने कामिनी के अपूर्व रूप का संश्लिष्ट चित्रण किया है, जिसमें दिव्य इति का सम्श्रिण हृदयग्राही बन गया है। 'कनक-लता' सुन्दरी अवश्य पुरानी पड़ गई है, किन्तु उसका मुख, कलंक-रहित चन्द्र एक अभूतपूर्व मुख-शोभा की क्रान्ति रसिकों के मानस-लोक में आज भी विकीर्ण करता है। इधर आँखों की चंचलता और भाव-भंगी को काजल की डोर से जिस सुंदरता से बाँधा गया है, उसका आकर्षण, स्पन्दन चकोर की जोड़ी के समान दिखना स्वभाविक ही कहा जाएगा। इस संबंध में विद्यापति की अनूठी कल्पना अत्यधिक मौलिक है।

गिरिवर-गरूअ पयोधर-परमित गिम गज-मोतिक-हारा
काम-कम्बु भरि-कनक सम्भु परि ढारत सुरधुनि-धारा।[2]

वक्षों की पर्वत तुल्यता सामान्य कहा जाएगा, किन्तु सुन्दर गोरे कण्ठ को शंख की उपमा देकर फिर स्वयं कामदेव उस कंठ रूपी शंख में गंगा की धारा जैसी निर्मल नग की माला मानो कनक शंकर के पिंड पर चढ़ा रहा हो। वस्तुत: ऐसी परिकल्पनाशृंगार की उच्चतम सीमा पर पहुँची हुई कही जाएगी।

महाकवि ने सुंदरी के नख-शिख शृंगार का संश्लिष्ट वर्णन कर इसकी अभिव्यक्ति विलक्षण ढंग से की है। सूर्य एवं चन्द्रमा की संगति का निर्वाह विद्यापति ने व्यक्त किया है कि नायिका के मुख-मंडल पर स्वभावत: चन्द्रमा की शीतलता एवं सूर्य की अरूणिमा सी क्रांति विद्यमान होती है। इस प्रकार कवि ने मनोवैज्ञानिक प्रभाव की रसमयी लक्षणा का काव्यात्मक निरूपण किया है। कवि की अंजन-अंजित सुन्दरी की आँखों की सुन्दरता का वर्णन इस प्रकार है-

चंचल लोचन बान्धे निहारए अंजन शोभा पाए।।
जनि इन्दीवर पवले पेलल अलि भरे उलटाए।।
उनत उरज चिरे झपावए पुन-पुन दरसाए।।
जइअओ जतने गोअए चाहए हिम गिरिन नुकाए।।

यहाँ कवि ने काम-रस मादकता का चित्रण किया है। उन्नत उरोज को लाख परिधान के आवरण में छिपाने की चेष्टा की जाय, वह बेकार है। जो हिमालय-सा उतुंग है।शृंगारिक ख्रष्टि से प्रस्तुत वर्णन विशेष रोमांचकारी कहा जाएगा। नायिका कहा अपूर्व सौन्दर्य देखकर कवि की सौन्दर्य-भावना सहस्त्र धाराओं में फूट पड़ती है।

नायक का सौंदर्य

नायिका के सौन्दर्यांकन के साथ ही साथ कवि ने नायक के रूप-सौंदर्य का भी चित्रण किया है। राधा जितनी लावण्यमी है, कृष्ण उतने ही सौन्दर्यागार हैं। यही सौंदर्य प्रेम की भूमिका का आधार है। नायिका अपनी सखी से नायक के सौंदर्य के प्रसंग में कहती है-

ए सखि! पेखल एक अपरूप,

सुनईत माधव सपन सरूप।[3]

विद्यापति की सौन्दर्य भावना नर-नारी के प्रति समान है। समानता के धरातल पर ही प्रेम का पौधा पल्लवित-पुष्पित होता है। अत: उन्होंने राधा एवं कृष्ण के सौन्दर्य का श्रृंगार भी समान उपमानों से किया है। उन्होंने नायक के रूप में कृष्ण की अंग-कांति, परिधान एवं रूप-सौन्दर्य को वर्णित किया है-

नील कलेवर पीत वसन धर चन्दन तिलक धवला।

सामर मेघ सौदामिनी मंडित तथिहि उदित ससि कला।।[4]

अत: पदावली में नायक के सौंदर्य का वर्णन भी अद्‌भुत है।

विद्यापति-पदावली में संयोग-श्रृंगार :

विद्यापति नेश्रृंगार-रस के दोनों पक्षों संयोग एवं वियोग के वर्णन में अपनी पूरी प्रतिभा एवं कवित्व-शक्ति का उपयोग किया है। विद्यापति-पदावली में संयोगश्रृंगार के पदों का आधिक्य है, अपेक्षाकृत वियोगश्रृंगार के पद कम है।श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का वर्णन करने में कवि ने कवि-परम्परा को ही अपनाया है। इन्होंने नायक-नायिका के मानसिक भावों का ऐसा सूक्ष्म एवं हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है कि इनकी काव्य प्रतिभा अत्यन्त प्रखर हो उठी है। विद्यापति ने नारी की विभिन्न अवस्थाओं, शारीरिक परिस्थितियों तथा हाव-भाव एवं मनोदशा का चित्रण बड़े ही मनोयोग के साथ सूक्ष्म विश्लेषणात्मक ढंग से किया है।

वय: संधि-वर्णन

नायिका की वय: संधि अवस्था का वर्णन भारतीय काव्य-परंपरा में बहुत प्राचीन है। विद्यापति ने भी वय: संधि में उसी लोक का अनुगमन किया है। यहाँ विद्यापति की राधा को न हम बालिका कह सकते हैं, न किशोरी और न ही युवती। विद्यापति की राधा की वह अवस्था है, जिसमें न तो शैशव का पूर्ण अन्त हुआ है और न जवानी ही आयी है, वरन् यौवन का शनै:-शनै: प्रवेश हो रहा है। मानो धीमी गति से यौवन का आक्रमण शैशव पर हो रहा है। किशोरावस्था और युवावस्था की संधि वेला को साहित्य में वय: संधि कहा गया है। इस वय: संधि की अवस्था में युवक-युवतियों की दशा बड़ी ही विचित्र हो जाती है। उनके मन में एक अनोखी-सी अनुभूति होती है। वे अपने परिवर्तन का अनुभव करते हैं। उनका मन सागर की लहरों की भाँति रह-रह कर तरंगायित होता है। विद्यापति की नायिका राधा वय: संधि के इसी संगम स्थल पर अवस्थित है। विद्यापति ने नायिका के मन की भावनाओं का बड़ा ही सटीक और सुन्दर विश्लेषण किया है। बचपन और यौवन दोनों का मिलन हो रहा है। सुनने की जो ज्यादा प्रवृत्ति पहले विद्यमान थी। अब उसका स्थान दोनों आँखों ने ले किया है। सुनने की प्रक्रिया अब मंद हो गयी है। आँखें अत्यधिक चंचल हो उठी हैं। सुनने की अपेक्षा देखने की जिज्ञासा बलवती हो गयी है। हँसी भी इतनी द्युतिवान है कि चारों ओर चाँदनी-सी छिटक पड़ी है। अब तो वह अपने अंग-प्रत्यंगों में हो रहे दिनों-दिन नए परिवर्तन को अनायास ही अनेकों बार देखती है। कामदेव का प्रसार दिनों-दिन उसके तन-बदन पर हो रहा है। विद्यापति के माधव ने ऐसी अपूर्व बाला को देखा है जो शैशव और यौवन के संधि-स्थल पर खड़ी है। विद्यापति कहते हैं कि तुम भी अज्ञानी ही हो, कौन सयानि यह कहेगी कि दोनों एक ही जोड़ी के हैं? दोनों एक ही समान (माधव और राधिका) अवस्था में है।[5] इस पद में नायिका के उथल-पुथल का भव्य चित्रण किया गया है।

अत: वय: के वर्णन में विद्यापति जितना उच्च स्थान पाने के अधिकारी हैं, संभवत: उतना उच्च स्थान हिन्दी-साहित्य में किसी को प्राप्त नहीं है।

नख-शिख-वर्णन

नख-शिख-वर्णन की परम्परा भारतीय साहित्य में अति प्राचीन है। प्राय: संस्कृत से लेकर अन्य भाषाओं में कवियों ने नख-शिख-वर्णन में अपने कला-कौशल का अद्‌भुत और अनोखा परिचय दिया है। विद्यापति ने भी अपने पदों में नख-शिख सौन्दर्य का वर्णन बड़े ही विस्तार से सूक्ष्म विवेचन के साथ किया है। उन्होंने अपने जीवन में नायिकाओं को बड़े ही करीब से देखा, परखा और सराहा है। इसलिए उनका यह वर्णन सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। नायिका का कोई भी आकर्षण उनकी नजरों से बचा नहीं है। उदाहरणस्वरूप एक पद यहाँ द्रष्टव्य है-

पीन पयोधर दूबरिगाता,

मेरू उपजल कनक लता।[6]

इस पद में कवि ने नायिका राधा के सौन्दर्य का वर्णन किया है। विद्यापति ने इस पद में नायिका के विभिन्न अंगों का वर्णन बड़ी ही रमनीयता से किया है। ऐसा लगता है कि विद्यापति ने जिसे जिस रूप में देखाय अनुभूत किया, उसे नि:संकोच भाव से उसी रूप में अभिव्यक्त भी करने की क्षमता रखते हैं। नायिका के सौन्दर्य का वर्णन दूती कृष्ण से कर रही है। वह कहती है कि राधा की तन्वंगी देह में पुष्ट कुच शोभित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वर्णलता पर सुमेरू पर्वत विकसित हुआ है। हे कृष्ण! शीघ्रातिशीघ्र जाकर उसकी अभूतपूर्व रूप राशि के दर्शन करो। मैंने उसके जैसी रूपवती आज पहली बार ही देखा है। उसका मुख मंडल अत्यन्त मनोहर है। उसके होंठ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, जैसे बन्धुक पुष्प कमल के साथ विकसित हो रहा हो। उसके दोनों नयन भंग स्वरूप कमल व उसके मुख लावण्य में उन्मत हैं, इस कारण उठते नहीं। उसकी भौंहों के विषय में तो मत पूछो वे तो ऐसी प्रतीत होती है जैसे कामदेव के श्याम-वर्ण के दो धनुष ताने गये हों। कवि कहते हैं दूति के इस वचनों को सुनकर अविलम्ब कृष्ण नायिका के पास गमन करते हैं।

नख-शिख का वर्णन तो अन्य कवियों ने भी किया, परन्तु विद्यापति ने सबका सार निचोड़कर एक जगह रख दिया है। सौन्दर्य मिथिला-लोकचित्र-शैली के परिप्रेक्ष्य में 'विद्यापति-पदावली' का विश्लेषण के इस समुद्र में स्वयं नख-शिख भी डूबे जा रहे हैं। राधा का शरीर क्या है... सौन्दर्य की एक वल्लरी है, जिस पर नाना प्रकार के रूधिर पुष्प खिल रहे हैं। उसके प्रत्येक अंग से श्वास टपक रही है। प्रत्येक श्वास सौरभ उड़ रहा है, प्रत्येक सौन्दर्य का रूचिर नृत्य व्यक्त हो रहा है। अत: विद्यापति का नख-शिख-वर्णन उत्कृष्ट है।

सद्य:स्नाता-वर्णन

श्रृंगार के अन्तर्गत सद्य:स्नाता का वर्णन कवि की नितान्त मौलिक उद्भावना है। विद्यापति के वर्णन-पद्धति की यही विशेषता है- कि वे जिस किसी का भी वर्णन करते हैं उसकी साकार प्रतिमा पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं, नायिका को देखकर नायक कितना कामोद्दीप्त हो जाता है, उसे कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

कामिनि करय सनाने

हेरितहि हृदय हनए पंचवाने।[7]

नायक-नायिका को जब देखता है, तब काम का विद्युत जैसा प्रादुर्भाव होता है। काम-भावना के उद्दीपनकारी चित्र को देखकर मुनियों का हृदय भी विचलित हो जाता है तो साधारण मनुष्य की क्या बात? पदावली में विभिन्न कोटि की नायिकाओं का चित्रण इसके अन्तर्गत हुआ है।

मिलन

श्रृंगार के अन्तर्गत 'पदावली' में विरह की सुदीर्घ अवधि के पश्चात् मिलन का चित्रण हुआ है। मिलन के प्रसंग में विद्यापति के काव्य का आदर्श ही है कि "जेहने विरह हो तेहने स्नेह।" नायक-नायिका जिस वियोग की असह्य वेदना को सहते रहे, वह हमेशा के लिए नहीं रही। अन्त में राधा एवं कृष्ण का पुनर्मिलन होता है। शास्त्रीय ख्रष्टि से इसे हम आगतपतिका या वासकसज्जा नायिका के चित्रण के अन्तर्गत रख सकते हैं। पर जिस आतुरता, भावोल्लास, विदग्धता एवं उन्माद के साथ नायिका प्रिय-मिलन की तैयारी करती है, वह अपूर्व है।

पदावली में मिलन के रूप को एक अनूठे युद्ध का रूप दिया गया है, जिसके सैनिक हैं नायक-नायिका और उनके अस्त्र-शस्त्र हैं सज्जितश्रृंगार-प्रसाधन। सम्भोग के समय नायिका के आभूषणों का जो उन्मादी स्वर गुंजता है, वह पदावली में प्रतिध्वनित होता है-

किंकिनी किनि-किनि कंकन कनकन कलर बाजे,

निज मदे मदन पराभव मानल जय जय डिमडिम बाजे।[8]

अधिक दक्षता एवं सफलता के साथ कवि ने कलात्मक रूप में मिलन का वर्णन किया है जो सर्वसाधारण के लिए कल्पनातीत है।

आहे सखि आहे सखि लै जनु जाहे,

हम अति बालिका आकुल नाहे।[9]

इन पदों में कितना सजीव चित्र विद्यापति ने खींचा है। अनुनय-विनय के द्वारा केलि-गृह में लाना, प्रियतम के प्रथम प्रेमालिंगन के डर से भयभीत होना, रोना, सखी के डर से एवं पद-नख से पृथ्वी पर लिखना तथा प्रियतम के स्पर्श से ही नहीं-नहीं करना आदि कामिनियों की स्वाभाविक क्रिया-कलाप हैं।

मिलन की रात प्रेमी-प्रेमिका के लिए अत्यधिक पिपासामय होती है। अनेक रसमय कल्पनाएँ प्रेमी-प्रेमिका के हृदयों में दीपशिखा की भाँति झिलमिलाती हैं। नायिका लज्जावश प्रणय व्यापार में आना-कानी करती है। नायक उसे तदर्थ चेष्टाओं के लिए प्रेरित करता है। पदावली में पुरुष और नारी की लज्जा का चिरन्तन मधुर-विलास अभिव्यंजित है। राधा को नवोढ़ा मुग्धा की स्थिति में रखकर उनकी काम-भावना का प्रकाशन स्वाभाविकता के साथ हुआ है।

अभिसार

अभिसार प्रेम-परीक्षा की कसौटी है। इससे प्रियतम के प्रति प्रेमोद्वेग के साथ-साथ जीवन की उपेक्षा या बलिदान का परिचय प्राप्त होता है। प्रेम की धारा में किसी प्रकार की रूकावट आ जाने से किस तरह प्रेम-प्रवाह में व्याकुल-वेग-तीव्र उच्छृंखलता होती है तथा किस प्रकार अपने पात्रों को हथेली पर रखकर उनके साथ हो लेने की मस्ती आती है। इसका उदाहरण अभिसार ही में मिलता है। इसलिएश्रृंगारी कवियों ने अभिसार का वर्णन बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है।

विद्यापति का अभिसार साहित्य-शास्त्र-वर्णित भौतिक अभिसार तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत उसका लक्ष्य विशेषकर आध्यात्मिक एकता है। कृष्ण के प्रति सभी प्रकार के अभिसार को विद्यापति सिद्धिदायक समझते हैं। इनके अनुसार प्रेम की साधना अभिसार के साधन से ही सिद्ध होती है। यथा-

सबहि सुन्दरि साहस सार, तोहि तेजि के करय पार।

सकल अभिसार सिद्धि दायक, रूपे अभिनव कुसुमसायक।।[10]

पदावली में चित्रित अभिसार को देखने से पता लगता है। कि कवि की मौलिक उद्‌भावना के साथ-ही-साथ कुछ पदों पर पूर्ववर्ती-काव्य की छाया स्पष्ट है। पदावली में चित्रित अभिसार में एक परकीया नायिका का चित्र मिलता है। वह अपने प्रेमी अथवा पति से मिलने के लिए अनेक कष्टों को सहन करती है। वर्षा ऋतु की तिमिराच्छन्न निशीथ में, कंटकाकीर्ण कर्दपमय पिच्छल भूमि पर एकाकिनी आगे बढ़ती है, और वह दुस्तर निभृत स्थान पर पहुँचती है। प्रखर धारा के संपात के आघात को सहती, विषधर के समाज से गुजरती जब नायिका प्रेमी के समीप पहुँचती है, तब भी उसके प्रेम की परीक्षा की समाप्ति नहीं होती। वह अपनी सखी से पूछती है।

चरन बेढ़लि फनि हित मानल धनि,

नेपुर न करय शोर।

सुमुखि पुछओं तोहि सरूप कहसि मोहि।

सिनेह क कत दूर ओर।[11]

प्रेमिका राधा अभिसार गमन के समय अपने प्राणों की बाजी लगा देती है। भीषण सर्प चरण में परिवेष्ठित होने पर भी वह उसे अच्छा मानती है, क्योंकि नूपुर के शब्द से अभिसार का गुप्त रहस्य अन्य नहीं जान पाएंगे।

इस तरह से विद्यापति ने पदावली में कृष्णाभिसारिका एवं शुक्लाभिसारिका नायिकाओं का चित्रण किया है, ये नायिकाएँ समयानुकूल वस्त्राभूषण धारण करती हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. पदावली खगेन्द्र नाथ मिश्र, पद संख्या-24, पृष्ठ 22
2. विद्यापति, खगेन्द्र नाथ मिश्र, पद संख्या- 417, पृष्ठ 62

3. विद्यापति पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ 70, पद सं.-70
4. विद्यापति पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पद सं.- , पृष्ठ
5. वि.प., रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ 37, पद सं.-4
6. वि. प., रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ 43 पद सं.-10
7. वि. प., रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ 46 पद सं.-23
8. विद्यापति, सं.- खगेन्द्र नाथ मित्र, एवं विमान बिहारी मजुमदार, हिन्दी रूपान्तर कर्ता, श्री हरेश्वरी प्रसाद, नवीन सं., संवत् 2010, पद सं.-703, पृष्ठ 451
9. विद्यापति पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पद सं.-74, पृष्ठ 106
10. वि. प., सं.- कुमुद विद्यालंकार, पृष्ठ 146
11 वि. प., सं.- कुमुद विद्यालंकार एवं जयवंशी झा, द्वितीय सं., पृष्ठ 148

आवां : स्त्री-पीड़ा की अभिव्यक्ति

रूपाली यादव

शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, छपरा विश्वविद्यालय, छपरा

स्त्री-विमर्श को लेकर जो खींचा-तानी आजकल चल रही है, उसमें स्त्री को या तो सारी बाधाओं को पार कर विजयी दिखाया जा रहा है, पुरुष को दर्प से कुचलती सम्बन्धों में न बँधती, अपनी शर्तों पर जीती और शर्त भी उच्छृंखल जीवन जीने की, या तो अति आधुनिक जीवन जी उसकी व्यर्थता समझ वापस परम्परागत जीवन की वकालत करती। यह खाती-पीती स्त्रियों की समस्या है, निम्नवर्ग की नहीं।

ऐसे समय में 'चित्रा मुद्गल' का उपन्यास 'आवां' बिना किसी नैतिक उपदेश दिए आधुनिक स्त्री, वह भी एक श्रमिक नेता की बेटी की कथा सामने लाता है जो संस्कार, जमीर और विचार से परिपूर्ण होने पर भी अनजाने अनचाहे एक ऐसे दलदल में फँस जाती है, जहाँ से फिर उसे एक श्रमिक स्त्री नीलम्मा ही निकाल पाती है। पूरे उपन्यास में लेखिका लिजलिजी भावुकता से दूर रह तर्क और विचार से काम लेती है। संवाद इतने संयत, भाषा इतनी प्रवाहपूर्ण कि पाठक साथ-साथ सोचता बहता जाता है।

मजदूर देवी शंकर पाण्डेय की बेटी नमिता की ख़ष्टि से देखा गया श्रमिक संगठनों का यथार्थ, स्त्री-शोषण का विविध चित्र हैं। बिकने वाली हर वस्तु का दाम लगाते लगाते पूँजीपति किस तरह कोख का व्यापार करने लगते हैं ,यह ख़ष्टव्य है। आश्चर्य यह कि नमिता जिसे प्यार समझ रही थी, वह उसका मोल था। बाद में उसे सिर्फ रखैल का दर्जा देने की बात होती है, क्योंकि बच्ची को तो संजय और उसकी पत्नी निर्मला गोद ले लेते, नमिता को मिलता सिर्फ बंगला, पैसा, गाड़ी और यहाँ भी बीच में है एक स्त्री जो पहले ही ऐशो-आराम में बिक चुकी है। नमिता कुछ नहीं।[1]

नमिता की स्थिति बड़ी विकट थी, वह अपनी स्थिति से असन्तुष्ट थी। ममता जैसी फर्राटेदार अंग्रेजी बोलना चाहती थी, उसके जैसे कॉलेज जाना चाहती थी। मध्यवर्गीय संस्कारों को कोसती है, मध्यमवर्गीय संकोच परले दर्जे के चुगलखोर होते हैं। बड़ी आसानी से शिकारियों के समक्ष शिकार घोषित कर देते हैं।[2]

आवाज काँपती है अंजना मैडम कहती हैं नर्वस न हो नमिता अपनी "चोट्टी चुगलखोर आवाज पर क्रोध करती है। "कुछ भी नहीं पचा पाती। लोग कितना कुछ डकार लेते हैं।"[3]

नमिता भरसक अपने संस्कारों के साथ जीना चाहती है, यहाँ तक कि वह बोल्डनेस को खराब मानती है। उसकी अन्तरात्मा उस पर हँसती है। बोल्ड लड़कियाँ अच्छी नहीं होतीं। ये दीन-हीनता झटक उतार फेंक केंचुल नमिता कहती है रक्त माँस में जो रच-बस गया, उसे एकदम से कैसे झटक सकती हूँ।[4]

और वही नमिता संजय के प्रेम और उपहारों से इस तरह घिर जाती है कि अपने आज को झुठलाने लगती है- "शादी शुदा-आदमी इंसान नहीं होता? मान लो शादी ब्याह का कोई समीकरण जीवन में गलत बैठ जाए तो उसके पीछे गले में पत्थर बाँध कर आदमी छलाँग लगा ले नदी में। ..... जिसे अपना घर स्वयं सँवारना नहीं आएगा, उसका घर उजड़ेगा ही।"[5]

पर नमिता नहीं जानती थी कि उसे किसी का घर सँवारने के लिए ही इस्तेमाल किया जा रहा है।" 'टोक देता है कदम जब भी गलत उठते हैं/ऐसा लगता है, कोई मुझसे बड़ा है मुझमें के अंदाज में उसे टोकने वाली हर्षा लगातार बचाती हुई अन्त में सही मंजिल पर पहुँचा ही देती है। एक क्रान्तिकारी तरीके से 'पाश' की कविता उसे सही मंजिल तक पहुँचा देती है। पिता की मौत,

लालची और परजीवी माँ के पास न जाकर पिता की प्रेयसी किशोरी बाई के घर। पता नहीं बहन मुनिया और भाई छुन्नू के लिए उसने क्या सोचा? इस घड़ी उसे उनकी याद क्यों नहीं आई, आश्चर्य है।

फिलहाल मजदूर की बेटी पूँजीपतियों के बीच से निकल पुनः अपनों के बीच पहुँच जाती है। नमिता अपने साथ हुए सारे हादसों को एक सकारात्मक उर्जा के रूप में ग्रहण करती है। जीवन से निराश नहीं, बल्कि उसे और शक्ति से जीने के लिए। नीलम्मा से प्रेरणा ले, जिसे उसकी ज्यादा जरूरत है उनके बीच पहुँच जाती है। कभी कहा था नीलम्मा ने-केवल देह बेच कर कमाना तो रंडीबाजी है? वह जो कर रही है उसे क्या नाम देंगे? उसे राघव (प्रेमी) की सख्त जरूरत है, मगर बच्चों की जरूरत उसकी जरूरत से कहीं अधिक बड़ी है।" स्वाभिमान से तनकर चल पाएगी।[6]

भटकी नीलम्मा भी, नमिता भी, बल्कि चाहती दोनों नहीं थीं। कोई नहीं चाहता पर दमन-चक्र किसी को नहीं छोड़ता, शोषितों-वंचितों की एक नियति होती है। वे लाख बचना चाहें, छटपटाएँ, निकलना चाहें पर व्यवस्था उन्हें लपेट ही लेती है, अपने जाल में और फिर लाख चाहें कभी मदद कभी प्रेम के नाम पर उन्हें जाल में फँसना ही पड़ता है। शोषित यदि स्त्री हो तो उसका शरीर ही उसका दुश्मन बन उसे हर तरह से हराता है।

नमिता कभी मौसा, कभी अन्ना साहब और कभी संजय द्वारा शारीरिक रूप से शोषित होती है, कभी पवार और सिद्धार्थ द्वारा मानसिक रूप से।

आवाँ पढ़ते समय बार-बार सही-गलत का प्रश्न सिर उठाता है, फिर लगता है कि सही-गलत के चक्कर में न पड़कर जीवन जीना ही ठीक है। जिन्दगी में जजमेन्टल होना उचित नहीं। हम सब एक आवें में पकने-बनने की प्रक्रिया में हैं। कोई काला, कोई लाल यही कारण है कि लेखिका तटस्थ है, यही तटस्थता उसे विश्वसनीय बनाती है और किसी पात्र को उसका प्रतिनिधि नहीं बनने देती। जीवन जो है, जैसा है, सामने रख दिया गया है।

सदियों से देह समझी जाने वाली स्त्री है और उसकी सोच में हल्का-सा सुराब करने का प्रयास करने वाली लेखिका है। यह प्रयास उपन्यास की तमाम स्त्री-पात्र करती हैं। खास बात यह है कि इस गिरने-उठने में किसी पुरुष पात्र ने सहयोग दिया तो सिर्फ स्वार्थ भाव से शायद लेखिका का विश्वास है कि अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी है। वह किसी जादुई समाधान में विश्वास नहीं करती। आवाँ सुलग रहा है, स्त्री लगातार उसमें बन पक रही है। कभी ज्यादा पकी कभी अधपकी, लेकिन उसी में पक कर निकलेगी कभी ऐसी स्त्री जो पूरी तरह संतुलित हो।

उपन्यास की भूमिका उसके आत्म कथात्मक होने का भ्रम पैदा करती है, परन्तु ऐसा है नहीं। वैसे रचना और जीवन में फाँक ढूढ़ना बेहद मुश्किल होता है। जीवन के अनुभव रचना में रच बस जाते हैं और उन्हें अलग कर पाना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल जरूर होता है।

चित्रा जी पहले भी अपनी भूख कहानी में भिखारियों द्वारा बच्चे किराए पर लेने की बात उठा चुकी हैं। आवाँ में किराए पर कोख ली गयी है, यह बात और है कि उसे नाम प्रेम का दिया गया है। भीलों ने बाँट लिया वन राजा को पता ही नहीं, वाले अंदाज में। प्रारम्भ में या कहें पृष्ठभूमि में श्रमिक-आन्दोलन रहने के बाद भी यह पूरा श्रमिक आन्दोलन का उपन्यास नहीं बन सका या लेखिका ने बनाना नहीं चाहा। श्रमिक देवीशंकर पाण्डेय की बेटी नमिता है सो इतनी कथा तो होनी ही थी। सारे श्रमिक आन्दोलन विकास की चमक और सहायता के कोलाज में जो विशेष बात उभर कर आती है, वह स्त्री-शोषण की, स्त्री को देह से ऊपर न देखने वाले रूग्ण समाज की।

पात्रों का बचाव लेखिका कहीं से नहीं करती। कहीं पात्र एक दूसरे की चीर फाड़ कर देते हैं तो कहीं हर्षा (आत्मा) नमिता का मुखौटा उतारने को तैयार और कहीं स्वयं अपनी कुटिलताएँ बताने वाला पवार।

उपन्यास में कन्या भूण-हत्या है, कोख का व्यापार है, मदद के नाम पर शोषण करने वाली अंजना वासवानी है, समझौता करने वाली गौतमी है तथा अपनी समस्या के समाधान में हिंसक हो उठी स्मिता है। ड्रग्स लेने वाली ममता है। इन सबके बीच कुटिल मौसी है, अनगढ़ माँ हैं। क्रान्तिकारी दिखती सनन्दा है जो मौत की सजा पा खत्म हो जाती है। चेतना स भरपूर किशोरीबाई है और सबसे ऊपर अपढ़ नीलम्मा है, जिससे लेखिका ने कोई मुकम्मल चरित्र गढ़ने का प्रयास न करते हुए भी उपन्यास का सूत्र वाक्य कहलवा दिया- "जो कुछ छोड़ना है, उसे तत्काल छोड़ना होता है। निर्मम हो।"[7]

स्त्री-मुक्ति के कई प्रश्न उठाए हैं लेखिका ने, पर जवाब देने की कोशिश नहीं की और शायद यही सही भी है। स्त्री की लड़ाई एक मोर्चे पर नहीं है, उसे कई जगह कई मोर्चे पर लड़ना पड़ता है। फिर चाहे वो मध्यवर्ग की हो या निम्नवर्ग की या उच्चतम, लेकिन उम्मीद उस स्त्री से ही की जा सकती है जो सभी सुखों का त्याग करती हो जो मीरा की तरह महल का सुख त्याग रूखा-सूखा खा सके। सम्पन्न व्यक्ति संभवत: कमजोर हो जाता है, इसीलिए मुक्ति का दायित्व चित्रा जी न गौतमी पर न अंजना पर छोड़ती हैं, यह सुनन्दा किशोरी बाई और नीलिमा जैसी स्त्रियाँ उठा सकती हैं, जिन्हें लोभ नहीं है। लेखिका को विश्वास है कि मंचों से स्त्री-विमर्श पर ताली बजवायी जा सकती है, परन्तु परिवर्तन निचले तबके से ही होगा, क्योंकि वे श्रम के महत्त्व को जानते हैं और सुख से उन्हें लिप्सा नहीं है। औरत को अपनी रूढ़ियों से लड़ना है साथ ही उच्छृंखलता से भी। आत्म-मुग्धता से भी आत्म-प्रलोभन से भी। न तो खुलापन स्वर्ग है न बन्धन। न मजदूर स्त्री-शोषण मुक्त है न व्यथित धनाढड स्त्री।

राजेन्द्र यादव के कथन कि स्त्री देह से ही पहले मुक्त होगी के जवाब में बहुत पहले चित्रा जी ने लिखा था कि- "पुरुष कौन होते हैं बताने वाले कि स्त्री कहाँ से मुक्त हो।" जाहिर है कि उसकी मुक्ति की परिभाषा दूसरी ही है। जादू या परीकथा की तरह नमिता के जीवन में बदलाव आता है, वह संजय के प्रेम में पूरी तरह डूब जाती है, पर गर्भपात होते ही उसकी औकात उसे बता दी जाती है। उसकी हैसियत सिर्फ रखैल की थी, उसकी कोख खरीदी गयी थी, पर उसे बिना बताए, प्रेम के नाम पर और यही आकर नमिता में देवीशंकर पाण्डेय के गुण झलकते हैं। इसके पहले तक वह एक नाजुक लड़की थी (जो कामकाजी महिलाओं के लिए अलग ट्रेन और अलग प्लेटफार्म की माँग करती थी। हालाँकि उसकी आत्मा, जिसका चित्रण लेखिका ने हर्षा के रूप में किया है, उसके छुई-मुईपन पर कटाक्ष करती है)।

जिसे मौसी की कटु उक्तियाँ बेधती थीं, माँ के ताने खटकते थे, हालांकि रह-रह कर उसकी ख़ढ़ता झलक दिखलाती थी। यथा सिद्धार्थ के प्रस्ताव पर-सिद्धार्थ स्पष्ट कहता है "पोर्ट फोलियो बनाने के एवज में तुम्हें मेरे साथ दैहिक सम्बन्ध बनाने होंगे।"[8]

नमिता सोचती है कि कुछ समय पहले यही व्यक्ति बेटे के वात्सल्य से भरा-भरा था अपनी पत्नी में भारतीय नारी न पाने की कसक से भरा। नमिता कहती है-"आपके प्रस्ताव पर मैं थूकती हूँ, सिद्धार्थ जी। शुभ चिंतक को तो अपने भविष्य की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है दलाल को नहीं। ... बेहतर हो आप फोटोग्राफी छोड़ चकला खोल लें।"[9]

पवार से बातचीत में भी वह रूप कभी-कभी दिखता है, कामगार अघाड़ी न जाने फैसले के रूप में (अन्ना साहब के शोषण के बाद) भी, पर उसका समूचा व्यक्तित्व एक साथ गर्भपात की घटना के बाद प्रस्फुटित होता है और उसमें सहायता करती है बेपढ़ी निलम्मा जो स्वयं ऐसे फैसले ले चुकी है। नमिता का पवार से अन्ना साहब की मौत की खबर सुन गर्भपात हो जाता है, जिसे सुनकर संजय कनोई अपनी सारी असलियत दिखा देता है- "जानती हो बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया? उस मामूली औरत अंजना वासवानी की औकात है कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके? उसका जिम्मा इतना भर था कि वह मेरे पिता बनने में मेरी मदद करे और सौदे के मुताबिक कमीशन खाए।"[10]

सच पूछिए तो परिवार की सारी जिम्मेदारी उठाने के बाद और खुद को सक्षम मानने के बाद भी नमिता को यहाँ आकर आत्म-बोध होता है कि वह मूर्ख बन गयी है। हर्षा जो उसके जमीर या आत्मा के रूप में चित्रित है से वह कहती है, जिस अधबैली लड़की की कथा तुमने आरंभ की थी मैं उसे ठौर-ठिकाने पहुँचा पाऊँगी या नहीं कह नहीं सकती।"

यानि जो सफर उसने शुरु किया था वह शायद अब सही तरफ जा सके। संजय के प्रेम की असलियत सामने आने पर उसे लगता है कि उसके और जागो री की वेश्याओं में कोई अन्तर नहीं है। उसने बिकने की कीमत ली है। वेश्याएँ उससे प्रश्न पूछेगीं। उन्हें लगेगा कि बिकने की कीमत उनसे कितनी हजार गुने दुगनी-चौगुनी वसूली है मैंने।"[11]

परिस्थितियों से मात खाती बचती नमिता बड़ी हो जाती है और शिवकुमारी देवी चाली की तरफ जाती, किशोरी बार्ड के घर की तरफ जिसकी सोच बेहद परिपक्व और आत्मा इतनी पवित्र कि नमिता की माँ का सामना करने पर स्वयं ग्लानि से भर जाएगी। नमिता कहती है माँ को तो आपके विषय में कुछ पता नहीं, तो वह कहती है कि सामना होने पर "अपनी कचहरी खचाखच भरवा लेते और मुंडी झुका कर खड़े हो जाते आत्मा की पेशी में।"[12]

अपनी बेटी सुनन्दा के धर्म परिवर्तन न करने पर वह नमिता से कहती है-प्रेम बड़ा? निश्चित रूप से वही समझ पाएगी नमिता की पीड़ा को, क्योकि माँ ने तो बचपन में मौसा द्वारा शारीरिक रूप से शोषित होने पर उसकी पीड़ा नहीं समझी थी और रिश्ते खराब

होने की बात कह कर उसे चुप करा दिया था। यहाँ तो उन्होंने नौकरी शुरु होते ही चेतावनी दे दी थी। अंजना की उदारता को लेकर 'उसकी बाई आँख उसी रोज फड़फड़ाने लगी थी जब हरामिन इच्छा पूरन देवी ने जन्मदिन की आड़ ले चाँदी का जूता सिर टनटनाया।"[13]

नमिता और माँ का वैसे भी छत्तीस का आँकड़ा था। स्वयं नमिता एक जटिल चरित्र वाली लड़की है। पिता से उसे स्नेह भी है सहानुभूति भी, पर माँ की किसी पीड़ा को नहीं समझती, यहाँ तक कि पिता की अवैध सन्तान और अवैध रिश्ते को भी स्वीकार कर लेती है पर माँ के किसी कष्ट से उसे मतलब न था। माँ नमिता की हर गतिविधि पर नजर रखती है और यही सर्तकता उसे क्रूर भी बना देती है, पर उसकी चेतावनी सदैव गलत भी नहीं थी। नमिता और माँ के रिश्ते में गलतफहमी की एक चादर सी तन गयी थी जिसे न नमिता हटा पाती है न माँ। माँ अपनी सारी खीझ बच्चों पर ही निकालती है, खासकर नमिता पर। इसीलिए विष्ट आंटी के भतीजे की कल्पना कर नमिता को व्यंग्य बाण मारती है। हालाँकि वो महीनों पहले जा चुका था। और नमिता में भी विद्रोह कम नहीं था- "एक ढीठ भाव अनायास उसके भीतर पंजे फैलाने लगा। उसे पता ही नहीं चला कि कब कैसे वह ढीठ भाव प्रतिकार-शक्ति में परिवर्तित हो माँ की निरंकुशता को चुनौती देने के लिए व्यग्र हो उठा।"[14]

मौसी और माँ से असंतुष्ट नमिता लगातार किसी महिला की गोद तलाशती है। कभी अंजना कभी किशोरी बाई, नमिता और माँ का रिश्ता उलझा हुआ है। माँ में तमाम बुराइयाँ थीं। झगड़ालू लालची, मायके की तरफ झुकी पर चरित्र की ख़ष्टि से कोई खोट नहीं था, जबकि जैसा वो खुद कहती है भटकने की परिस्थितियाँ और रास्ते उसके पास भी थे पैसों की इतनी भूख होती तो वे जो औरत की काया लिए लिथड़ रही हैं। पापड़ बेलने में जांगर गणती? खटिया बिछा सैकड़ों न उगाह लेती।"[15]

नमिता भी सिर्फ धन के प्रलोभन में यह सब स्वीकार नहीं करती, ऐसा होता तो वह सिद्धार्थ का प्रस्ताव भी स्वीकार कर सकती थी। पवार की आर्थिक मदद स्वीकार कर सकती थी, लेकिन नमिता छली गयी अपनी अन्तरात्मा की सारी चेतावनी के बाद भी, जिसके लिए वो कहती है- "हर्षा से आँखें मिलाने में भय लगता है। निर्मम प्रतिपक्षी-सी कठोर हो आई है, वह। हर्षा का बस चले तो तन से कपड़े ही नहीं खाल खींच उसे कंकाल की नंगी कर दे।"[16]

बड़े प्रतीकात्मक तरीके से आत्मा की अदालत में लाती है लेखिका नमिता को। व्यक्ति सबसे भाग सकता है, पर अपनी अन्तरात्मा से नहीं। वही तब नमिता को घेर लेती है- "मन को अपने पढ़ती है तू कभी नमिता। पढ़ती तो तू निश्चय ही समझ पाती कि इधर तू मुझसे लगातार कतरा रही है।"[17]

वह पवार और संजय की तुलना करते हुए नमिता के सारे तर्कों को खारिज कर देती है। "शादी शुदा पुरुष जब भी किसी काम्य स्त्री पर डोरे डालना चाहते हैं, स्त्री के विरूद्ध स्त्री मोर्चा खोल देते हैं। मानकर चलते हैं कि स्त्री की निंदा सुन स्त्री मुदित होगी।"[18]

वह उसे सतर्क भी करती है "तू करतब दिखाने वाले की भाँति दोनों हाथों से पकड़े चाकुओं को उछाल-उछालकर खतरनाक खेल खेल रही .....।"[19]

और व्यक्ति यदि कुछ गलत करने लगता है लगातार, तो सबसे पहले उसकी आत्मा से उसकी दरी हो जाती है। अकारण नहीं कि इस संवाद के बाद से लेकर आगे की पूरी कथा जो नमिता के संजय के मोहपास में फँसने से लेकर गर्भपात तक की है, हर्षा कहीं उपस्थित नहीं होती और आती है, सबसे अन्तिम संवाद में जब नमिता ख़ढ़ता से अपनी मंजिल की तरफ बढ़ती है- "हर्षा, रास्ते भटकाते ही इसीलिए हैं कि हमेशा उन्हें कल पर छोड़ दिया जाता है।" तुम कहाँ किस देहरी देखना चाहती थी मुझे कभी बताया नहीं तुमने, सिर्फ तर्कों के कोड़े हवा में घुमाती मुझे चेताती रही, धमकाती रही कि मैं सोचूँ, समझू। आँख खोलूँ। द्वन्द्व करूँ।"[20]

शायद उपन्यास का सार वाक्य भी यही है। लेखिका की चाह कि बिना किसी का सहारा लिए स्त्री अपनी राह चलती रहे और अपने हृदय के आवाँ में पकती रहे। "प्रत्येक युवा के हृदय के कुछ सपने होते हैं। एक आंवाँ होता है आंच से दहकता, जिसकी पकावट से वह आकांक्षा की भीति उठाता है।"[21]

यूँ तो पूरे उपन्यास में स्त्री-पात्र, यथा अंजना वासवानी, जिनसे ट्रेन में नमिता की मुलाकात होती है और जो उसे नौकरी का प्रस्ताव ही नहीं देती, आभूषणों की माडलिंग, संजय कमोई से मुलाकात, उसके हैदराबाद प्रवास का प्रबन्ध आदि सभी करती हैं पर अन्त में सिर्फ दलाल साबित होती हैं। जैसा संजय भी कहता है कमीशन लेने वाली। गौतमी जो जानबूझ के नमिता के गर्भवती होने की बात उससे छिपाती रही, जबकि नमिता को हैदराबाद इस पुष्टि के बाद ही भेजा गया था। गौतमी भी समझौता परस्त स्त्री है

जो आधुनिकता का ढोंग कर भी पराजित है-इतने महीने उसने इसी भरोसे काट दिए कि गौतमी की डाक्टर मित्र ने उसे आश्वस्त कर दिया? इतनी निर्भर क्यों है वह? कोई बच्ची है वह।"[22]

विमलाबेन हैं जो अपने स्वार्थ की राजनीति करती हैं, मौसी हैं, सबसे ऊपर माँ है जो कूटनीति में निपुण मौसी से जीत नहीं पाती पर अन्य लोगों में यहाँ तक कि नमिता से भी कटुता रखती है- नमिता की पायल की घटना पानदान नमिता को नागवार गुजरता है, पर वह कुछ कर नहीं पाती । फुन्ती (बहन) के बच्चों को सराहने वाली माँ अपनी नमिता को कोसती रहती हैं- "एक नहीं पचासों जरूरी फोन हो गए अब तक निकला नतीजा कोई सिवा पैसे स्वाहा होने के।"[23] स्वार्थ से वशीभूत हैं पर इसके बरक्स नीलम्मा जिसके लिए नमिता कहती है नीलम्मा ने बहुत बड़ी ताकत दी है।"[24] किशोरी बाई शाहबेन है जो श्रम के महत्त्व को समझती है। अनीसा और किरपू दुसाध हैं। वो अनीसा जिसके पेट में लात मारने के कारण किरपू दुसाध को सजा होती है क्योंकि गर्भवती अनीसा की जो पेसे से वेश्या थी इससे मौत हो जाती है। नमिता के गर्भपात के बाद संजय ने जो कछ कहा उससे नमिता को अनीसा याद आ गयी-उसे लगा गर्भ कल नहीं आज गिरा है उसका। किरपू दुसाध मरा नहीं है। मरेगा भी नहीं। जब तक औरत अपने पेट को उसकी लातों के प्रहार से स्वयं को बचाना नहीं सीख जाती।"[25] लेकिन इन सबके बीच जितने पुरुष हैं, देवीशंकर पाण्डेय, समोलव, शिंदे अंकल को छोड़ सभी कुंठित और स्वार्थी, जैसा पहले ही कहा जा चुका है कि लेखिका स्त्री की मुक्ति के लिए इनमें से किसी को मसीहा नहीं बनाती। किसी के साथ की इच्छा भी नहीं जगाती, जैसा गौतमी कहती है- "जिन्दगी में आदमी कभी अकेला नहीं होता अगर वह यह सोच बना ले कि वह अकेला नहीं है।"[26] यहाँ सिद्धार्थ संजय की पोल बस में खोलता है-तुम्हारे ठगे जाने की चिन्ता सता रही है। संजय कनोई ठग है। उपभोक्तावादी प्रवृत्ति वह नहीं जो मेरी है। परस्पर सहमति से। उपभोग वह है जिसे संजय प्रेम की आड़ में बोता-काटता है।"[27] संजय की सोच पर चर्चा हो ही चुकी है, वह अपनी पत्नी की शिकायत कर नमिता से एक बच्चा चाहता है। पवार, जिसे नमिता कहती है-"आप कुंठित व्यक्तित्व हैं।" पवार सुनन्दा के लिए आवारा कुतिया विशेषण का प्रयोग करता है और अश्लील प्रतीक दिखाता है। शेवाड़े नमिता की मन: स्थिति जानने के लिए उसके और पवार के विषय में निजी बातें पूछा करता है। अन्ना साहब से परिचित हो ही चुके हैं हम जो मित्र की बेटी नमिता से अश्लील हरकत कर भी ग्लानि मुक्त हैं।

लेखिका जानती है कि उदास मौसम के खिलाफ जिन्दगी के टुकड़े चुनने वाली स्त्री जन्म लेगी स्वयं सिद्धा की तरह, अपनी समस्या स्वयं सुलझाती। भले ही स्मिता की तरह हिंसक तरीका न अपनाए पर कह सके" मुझे लगता है वैज्ञानिक शोधों के अंतर्सत्यों से परे कि मुझमें आज की औरत के जीन हैं जो अभी तक जन्मी नहीं थी-जन्मने को छटपटा रही थी।"[28]

लेखिका के साथ हम सब इंतजार कर रहे हैं उस स्त्री के जन्म का।

"ये कौन झाँकता है किवाड़ों की ओट सेध्बत्ती बुझा के देख सबेरा न हो कहीं।"

साथ ही लेखिका का कथन "आन्दोलन कोई अलाउद्दीन का चिराग नहीं समझ में आते-आते ही आएगा।"[29] स्त्री विमर्श के आन्दोलनों की भी यही नियति है "किसी और के नजरिए से लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती है। दूसरों की नजर से देखी हुई दुनिया अपना सच नहीं होती न अपना अनुभव। अपने अनुभव के बिना कोई परिष्करण संभव है।"[30] कभी न भटकना आदर्श है पर भटक कर सही रास्ते पर आ जाना कम प्रशंसनीय नहीं है वह भी बिना पराश्रित हुए। नमिता इसे बखूबी समझ गयी- "अब समझ गयी हूँ कि मिट्टी पर फावड़े न चलाओ तो समझ में नहीं आता कि सतह के नीचे की उसकी प्रकृति कैसी है ..... क्या है?"[31] स्त्री विमर्श के इस शोर में एक और स्पष्ट आवाज लगता है यह उपन्यास। स्वागत योग्य है लेखिका का विचार और उसे प्रस्तुत करने का शिल्प।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. आवां-चित्रा मुद्गल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 60
2. वही, पृष्ठ 294
3. वही, पृष्ठ 54
4. वही, पृष्ठ 55
5. वही, पृष्ठ 469
6. वही, पृष्ठ 516

7. वही, पृष्ठ 543
8. वही, पृष्ठ 293
9. वही, पृष्ठ 295
10. वही, पृष्ठ 539
11. वही, पृष्ठ 543
12. वही, पृष्ठ 382
13. वही, पृष्ठ 382
14. वही, पृष्ठ 32
15. वही, पृष्ठ 242
16. वही, पृष्ठ 41
17. वही, पृष्ठ 304
18. वही, पृष्ठ 305
19. वही, पृष्ठ 306
20. वही, पृष्ठ 542
21. वही, पृष्ठ 75
22. वही, पृष्ठ 498
23. वही, पृष्ठ 46
24. वही, पृष्ठ 543
25. वही, पृष्ठ 540
26. वही, पृष्ठ 561
27. वही, पृष्ठ 438
28. वही, पृष्ठ 374
29. वही, पृष्ठ 260
30. वही, पृष्ठ 542

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम् : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० कुमारी निश्चय

हिन्दी विभाग, ल0 ना0 मि0 वि0 विद्यालय दरभंगा, बिहार

"गाँव की औरतें गुलामी और मुक्ति का अंतर क्या जानें ? अज्ञान और चेतनहीन होती हैं। अपने श्रम कों मुफ्त लुटाती रहती हैं। आर्थिक पराधीनता से जोड़कर देख नहीं पाती।" स्त्रियों के पास अपना कोई विचार नहीं है। वे न सोचती है, न सोचना चाहती हैं। वे अगर कुछ करना जानती हैं तो वह है सेवा। वे सेवक की भाँति खुद को सुतुष्ट पाती हैं। मालिक की मुस्कुराहट पर अपना तन-मन निसार करने को व्याकुल रहती हैं। मालिक की पसंद ही उनकी जिंदगी है। वे यह सोचना भी नहीं चाहती कि उसकी खुद की क्या पसंद है। वे खुद हैं क्या, होना क्या चाहती है? उनके अपने सपने, अपनी ख्वाहिशें जो उनके मालिक की इच्छा से न पनपी हों। पंख फैलाकर दूर आसमान में उड़ने का ख्वाब देखने का साहस करती है।"1

बहुचर्चित समकालीन कथाकार मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम्' का प्रथम संस्करण सन् 1994 में निकला। संवेदना की गहराई में लिखी यह कृति समकालीन उपन्यास का मील का पत्थर साबित हुआ है। 'इदन्नमम्' श्यामली और सोनपुरा नामक उत्तर भारत के दो पिछड़े हुए गाँवों के साधारण लोगों द्वारा भोगे हुए जीवन की कथा है। यह उपन्यास उन निरीह ग्रामीण लोगों का महाकाव्य है जो किसान भी न रह पाए और मजदूर भी न रह सके। 'इदन्नमम्' में श्यामली और सोनपुरा के तीन पीढ़ियों के आत्मसंघर्ष एवं बाह्य संघर्ष को वाणी मिली है। उपन्यास के आरंभ में सोनपुरा के स्वर्गीय जागीरदार सुभाग सिंह की पत्नी और वहाँ के भूतपूर्व प्रधान महेन्द्र सिंह की माँ बऊ (दादी) तेरह साल की अपनी पोती मंदाकिनी को लेकर सोनपुरा से श्यामली जा रही है। सोनपुरा में खुद के बनाए अस्पताल के उद्घाटन के सिलसिले में महेन्द्र की हत्या के बाद उनकी पत्नी चेयरमैन रतन यादव के साथ जाती है। बऊ और प्रेम के बीच इसलिए मामला चलता है कि बऊ की संपति के एकमात्र वारिस मंदा को प्रेम अपने साथ रखना चाहती है।2

पुलिस और रतन यादव के लोगों से मंदा की सुरक्षा का दायित्व लेनेवाले श्यामली के जागीरदार दादा पंचम सिंह का अपना संयुक्त परिवार है। दादा की खेती और खजाने को संभालने वाला छोटा भाई गोविन्द सिंह और उनका परिवार-बड़ा छोटा यशपाल और उसकी बहु कुसुम, छोटा भाई अमर सिंह और पंचम के इकलौते पुत्र, दरोगा विक्रम का पुत्र मकरन्द के बीच मन्दा और बऊ का आगमन होता है। इस परिवार में पंचम से लेकर डाकू डब्बल बब्बा, स्कूल मास्टर बन्ने साहब, पड़ोसी मुसलमान चीफ साहब तक आपस में घनिष्ठता एवं मित्रता का संबंध है। यहाँ पंचमसिंह के निर्देश के अनुसार बऊ के जागीर की जिम्मेदारी गोविन्दसिंह और केस की जिम्मेदारी चीफ साहब के हाथ आ जाती है।

बऊ के लिए यह नयी जानकारी है कि उच्च-नीचता, छुआछूत एवं रूढ़िवादिता से ग्रस्त सोनपुरा से भिन्न है श्यामली। मकरंद के निकट संपर्क से मंदा को भी यह ज्ञात होता है, कि पाँचवी कक्षा की उनकी शिक्षा अपर्याप्त है। पुलिस से बचने के लिए छोटी मंदा को गाँव से रातों-रात भेज दिया जाता है। पन्द्रह साल की उम्र में वह बिरगवाँ के अधेड़ उम्र के कैलाश मास्टर के बलात्कार की शिकार बनती है। श्यामली वापस आने पर उसकी सगाई मकरन्द से होती है, मकरन्द के माता-पिता बेटे की स्वेच्छा के विरूद्ध सगाई तोड़कर उसे शहर ले जाते हैं। माँ प्रेम द्वारा केस वापस लेने पर, शारीरिक एवं मानसिक रूप से परेशान मंदा बऊ से सोनपुरा वापस आने की जिद करती है।3

तेरहवें अध्याय में बऊ और मंदाकिनी सोनपुरा वापस आती है, पर बऊ जिन्दगी के 40-50 साल गुजर गया गाँव को पहचान न पायी गाँव का अब शहरीकरण हो रहा है, ग्रामीणों की खेती और भूमि नष्ट हो चुकी है। संगठन के डर से पहाड़ियों के ठेकेदार इन्हें क्रेशरों में काम नहीं देता। उपन्यास के आरंभ में लेखिका लिखती हैं- "लो जिन्दगी-भर घर गिरिस्ती अकेले खेंची महेन्द्र को पाल-पोसकर बड़ा किया अकेले ही, और आज ऐसी निबल हो उठी। कतई हिम्मत छोड़ बैठी! बऊ एकालाप में डुबी थी।" मंदा और बऊ के लिए यह वज्रपात की बात थी कि उनकी सारी जागीर गोविन्द सिंह ने अभिलाख को बेच दी है। यहाँ अनुभवी मंदा बऊ से ज्यादा बुजुर्ग दीखती है। वह कहती है- "दोष किसका है? हमारी न? हम क्यों गए पराये गाँव? क्यों नहीं लड़े, अपनी जमीन के लिए।" गाँव में अस्पताल खोलकर अपने पिता की इच्छा की पूर्ति करने के वास्ते आयी मंदा ग्रामीणों की विवशता लाचारी एवं गरीबी से दुखी हो जाती है, वह कहती है- "अंधेरा ही अंधेरा है बऊ। एक तो अपने गाँव कबे आदमी में हिम्मत नहीं, दूसरे सरकार बहरी है, तीसरी रावण का राज हो रहा है इस गाँव में।" कोयले के महाराज जो मजदूर का नेता था, के उपदेश पर मन्दा क्षयग्रस्त समाज को सुधारने का प्रण लेती है।4

मंदा गाँव के प्रधान, द्वारिका काका एवं अन्य ग्रामीणों के सहयोग से ट्रेक्टर खरीदकर ठेकेदार की मदद से किसान से भिखारी बने गाँव वालों की समस्या को एक हद तक सुलझाकर अपनी नयी जिन्दगी की शुरुआत करती है। अभिलाख के मजदूर लच्छो की टप्परिया में मंदा गरीबी और बीमारी का तांडव देखती है। भील जाति का अवधा भी जंगल सरकारी हो जाने से बेरोजगारी का शिकार बनकर गरीबी और बीमारी में आगे बढ़ने वाला स्त्री-पात्र है। माँ से मिली पैसों से मंदा द्वारा दूसरा ट्रैक्टर खरीद लेती है। जिस कारण अभिलाख उसे अपने रास्ते से हटाना चाहता है। अभिलाख के लिए चुगली का काम करनेवाला जगेसर भी कुँआरी लड़की की मान-मर्यादा और इज्जत का ध्यान दिलाकर मंदा का जीना हराम कर देता है। मंदा के परिश्रम के फलस्वरूप सोनपुरा के अस्पताल में नियुक्त हुए डॉक्टर इन्द्रनील का जल्दी ही तबादला हो जाता है। मंदा को यह ज्ञात हो जाता है कि चुनाव में क्रेशर के मजदूरों के वोट को ध्यान में रखकर थोड़े दिनों के लिए अस्पताल में डॉक्टर और कम्पाउंडर की व्यवस्था की थी। मंदा के समझाने पर ग्रामीणों द्वारा चुनाव का बहिष्कार, अभिलाख के बेटे से जगेसर की बेटी सुगना की सगाई, फिर अभिलाख द्वारा सुगना पर बलात्कार की कोशिश, सुगना द्वारा अभिलाख की हत्या और स्वयं आत्म-हत्या की कोशिश, झाँसी के अस्पताल में सगुना की मृत्यु, अभिलाख के पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर सगुना की माँ की गिरफ्तारी, इन तमाम घटनाओं की प्रेरक रही मंदा को पुलिस खोजती है। ये समकालीन अत्याचार, अन्याय और शोषण के जीवन्त चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है।5

अपने हितैषियों के उपदेशो की परवाह किए बिना मुसीबतों और झंझटों का सामना करते हुए अन्याय के खिलाफ लड़ने का दृढ़ संकल्प लेकर सोनपुरा वापस आनेवाली मंदा सचमुच नारी-शक्ति का प्रतीक है। इस नायिका-प्रधान उपन्यास में कथाकार ने भारतीय समाज की किसी भी समस्या को अछूता नहीं रहने दिया है। इस उपन्यास का मुख्य कारण है- नारी-शोषण। इस उपन्यास का ताना-बाना नारी-शोषण और नारी-संघर्ष की घटनाओं को रेखांकित करता है। यौवन में विधवा बनी बऊ का अनुभव है, कि लोगों की आँखें जायदाद और जमीन पर थी। वृद्धावस्था में गोविन्दसिंह संरक्षक बनकर उनकी संपत्ति हड़प लेता है और महेंद्र की विधवा प्रेम का संरक्षक बनकर आनेवाला रतन यादव उसकी जागीर बिकवाकर बूढ़े के साथ उसकी दूसरी शादी भी करवा देता है। और बऊ के खिलाफ कोर्ट में मुकदमा दाखिल करवाता है। प्रेम के शब्दों में-"रतन से हेल-मेल उसी दिन टूट गया, जब उसने हमारी जमीन बिकवा दी। हमें वह कहती है- "हमें कैसे-कैसे मजबूर किया था, वह कथा तो रहने ही दो बिन्नु और बहुतेरे दु:ख हैं, कहने सुनने को।" नाबालिक मंदा भी गाँव-गाँव में भटकते रहने का आरोप लगाकर मकरंद के माँ-बाप उसे बहू बनाने से इनकार कर देते हैं।6

पन्द्रह साल की उम्र में वह बलात्कार का शिकार बनती है। इस उपन्यास के दूसरे पात्र कुसुमा के पति द्वारा तिरस्कृत होने पर सम्मिलित परिवार के विशेष माहौल में अविवाहित अमरसिंह की दया और प्यार का पात्र बन जाती है और कुमार को जन्म देती है। कुसुमा के रहते घर में सौत लाने वाले पति यशपाल की दृष्टि में- "यह न अब हमारी ब्याहता और न जायदाद के हिस्से के मालिक। नाजायज संतान पैदा करके हक माँगने चली है।" मजदुरानी अहल्या पर मोहित होकर जगेसर का पहाड़िया खरीदना, उसके साथ अलग घर बसाना, निकृष्ट जानवर के समान ठुकरा देना, पहाड़िया बेचकर बीबी-बेटी के पास वापिस आना, सब नारी-शोषण के दयनीय चित्र हैं। जगेसर की बेटी-बीबी दोनों घर में पति और पिता के अत्याचार एवं शराबी मन: स्थिति से पीड़ित हैं। सगुना पर अभिलाख के बलात्कार की कोशिश, सगुना की आत्महत्या अभिलाख की हत्या के आरोप पर सगुना की माँ की गिरफ्तारी,

पुलिस द्वारा मंदा की खोज आदि नारी-शोषण के नंगे चित्र मैत्रेयी पुष्पा जैसी महिला कथाकार ही खींच सकती है। तुलसिन, गणेशी दादा, लीला-अभिलाख का अनैतिक सम्बन्ध में भी नारी- शोषण का एक अलग पक्ष देखने को मिलता है। अभिलाख की मजदुरानी अवधा के नाबालिक लड़की की शादी में जहरीले जन्तु को भोजन बनाने से दुल्हा-दुल्हन सहित सारे लोगों की मृत्यु में, मजदूरों को भूखों मरने के लिए विवश करने वाले ठेकेदार, पहाड़िया मालिकों का विकराल रूप सामने प्रकट होता है। श्यामली के सांप्रदायिक दंगे में अनाथ बनी बन्नेसाहब की बेटी का आजिविका के लिए 'धन्धा' करना भी नारी-शोषण के एक अलग रंग को सिद्ध करता है। इस प्रकार 'इदन्नमम्' में नारी शोषण के विविध रंग और ढग पूरी सहजता एवं विकरालता के साथ समेटने में पुष्पाजी को सफलता मिली है, लेकिन इस शोषण और अत्याचार का सामना करके उसके खिलाफ संघर्ष करनेवाले दो स्त्री पात्र हैं। वे हैं-मंदा और कुसुमा।7

दादा पंचमसिंह को छोड़कर सारे ससुराल वाले के विरोध के बावजूद भी कुसुमा श्यामली में रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा लेकर मंदा से कहती है-ताजिन्दगी दादा ने बेबस लाचार और दीन हीनों के लिए लड़ाई लड़ी है। बिटिया, तो उसी जागीर की वारिस बनना चाहती हैं। दादा की इस थाती के सहारे दाउजू की श्यामली में रहेंगे, बसेंगे, जिन्दगी की अन्तिम घड़ी तक।" संक्षेप में कहें तो यह उपन्यास नारी-शोषण के खिलाफ नायिका मंदा के संघर्ष की कहानी है।[8]

उपन्यासकार ने इदन्नमम् के पात्रों को काल्पनिक बताया है, पर लगता है कि हर एक पात्र बुन्देलखण्ड की ही नहीं, समस्त भारत के विवश अभावग्रस्त ग्रामीण जनता के ये प्रतीक हैं। ये पात्र हाड़-मांस से बने सौ प्रतिशत यथार्थ मनुष्य हैं। श्यामली और सोनपुरा के ही नहीं सारे भारत के साधारण जनजीवन की अंतरंग वास्तविकता इस उपन्यास में देखने को मिलता है। सांप्रदायिक दंगें, चुनाव, नौकरशाही की रिश्वतखोरी, राजनीति का ढोंग, मजदूरों का शोषण, सम्मिलित परिवार की गृहस्थी, जागीरदार एवं ठेकेदार की कपटता, उनकी चापलूसी में स्वयं धोखे में पड़ने वाले निरीह ग्रामीण, विधवा की दयनीय दशा, जैसी समस्याओं के साथ गाँव के गीत, पर्व, आहे, रूढ़ि और परम्पराओं में जकड़ी ग्रामीण जनता के हृदय की 'धड़कन' है 'इदन्नमम्। लोककथा की अनायासता में दो पिछड़े गाँवों की तीन पीढ़ियों के दोहरे संघर्ष की कथा को इतनी स्वाभाविकता से उभारना कोई आसान कार्य नहीं है।9

इस उपन्यास का हर एक पात्र अपनी भाषा में बोलता है। भाव-संवेदना एवं भाषिक संरचना का ऐसा तालमेल सहजता एवं सरसता उपन्यास को रोचकता के साथ-साथ जीवन्तता भी प्रदान करता है। उपन्यास का शीर्षक 'इदनमम्-यह मेरा नहीं, मेरे लिए नहीं सार्थक है। नायिका मंदा की जिन्दगी तो अपने लिए नहीं, अपना नहीं,। सशक्त, आत्मनिर्भर, विकसित, शिक्षित सोनपुरा ही उसका लक्ष्य है, जिसके लिए समर्पित है मन्दा की जिन्दगी। यहाँ कथा को शीर्षक से जोड़ने में कथाकार की प्रतिभा प्रकट हुई है। औपन्यासिक विधा के सारे भेद दलित उपन्यास, आंचलिक उपन्यास नारी-मुक्ति का उपन्यास, राजनितिक उपन्यास, समस्या-प्रधान उपन्यास-जैसे सारे शीर्षक इदन्नमम् के लिए अनुपयोगी लगते हैं। यह उपन्यास केवल मंदा नायक निरीह त्यागी, दृढ़ संकल्पिता युवती की कथा ही नहीं, बल्कि आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष से ग्रस्त महिलाओं की जिन्दगी की निशानी है। यह बुंदेलखण्ड की ग्रामीण संस्कृति की धरोहर है, इसकी रचना के द्वारा कथाकार स्वयं बुंदेलखण्ड की संस्कृति के पहरेदार बन गयी हैं।10

संदर्भ-सूची

1. पीयरी का सपना-मैत्रेयी पुष्पा-सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009 पृष्ट 12
2. 'इदन्नमम्'-मैत्रेयी पुष्पा-राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण-1999, पृष्ट 11
3. चर्चा हमारा-मैत्रेयी पुष्पा- सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करन-2009, पृष्ठ संख्या 76
4. समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना-डॉ0 वी0 के0 अब्दुल जलील, पृष्ठ संख्या 191
5. समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना, पृष्ठ संख्या 192
6. वही, पृष्ठ संख्या 193
7. वही, पृष्ठ संख्या 194
8. 'इदन्नमम्'-मैत्रेयी पुष्पा-राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या 11
9. वही पृष्ठ संख्या 160
10. वही पृष्ठ संख्या 335

आधुनिक भारत में दलितोत्थान आंदोलन

डॉ० रेणु कुमारी

सहायक प्राध्यापक, (हिन्दी विभाग), एस0एम0डी0 कॉलेज, नेचुआ, जलालपुर, गोपालगंज, (बिहार)

भारत में एक विशाल जन-समुदाय ऐसा है जो संसाधनों के वितरण के मामले में प्राचीनकाल से ही काफी पीछे है। आजादी के पहले तक इस वंचित वर्ग के हिस्से कुछ भी नहीं था। इस वंचित वर्ग को कहीं दलित, कहीं अनुसूचित जाति तो कहीं हरिजन कहा गया। आज पूरे देश में इस वंचित वर्ग को दलित ही कहा जाता है।

दलित का अर्थ है:- शोषित, अपमानित तथा आर्थिक, सामाजिक शैक्षिक रुप से पिछड़ी जाति। अशिक्षा, गरीबी, शोषण-उत्पीड़न, विषमता, अस्पृश्यता, भेदभाव आदि की शिकार जनता को कोई सरकार या नेता कुछ ही दिनों तक कुंठित कर रख सकता है। महाकाल के पद-चाप से एक नेतृत्त्व ऐसा उभरकर आ ही जाता है जो अत्याचार-उत्पीड़न की लड़ाई को ही नया जीवन समझता है। ऐसे ही एक महानायक बनकर आए महात्मा ज्योतिबा फूले।

आधुनिक भारत में दलित आंदोलन की शुरुआत ज्योतिराव गोविंदराव फूले के नेतृत्त्व में हुई। उनका जन्म 11 अप्रैल 1827 ई को महाराष्ट्र में हुआ। उनका जन्म एक माली परिवार में हुआ। मिशनरी स्कूल में पढ़ते समय उनके ज्ञान का क्षितिज और भी विस्तृत हुआ। ईसाई ज्ञान-विज्ञान का खुलापन तथा हिन्दू शास्त्रों के स्वभावजन्य सम्पर्क से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि समस्त हिन्दू वांग्मय ब्राह्मण लिखित, ब्राह्मणवादी एवं निम्न जातियों के शोषण का आधारभूत दस्तावेज हैं। ज्योतिबा फूले एक जाति-विरोधी समाज सुधारक थे। उन्हें ज्यादातर महिलाओं और निचली जाति के लोगों को शिक्षित करने के प्रयासों के लिए जाना जाता है। ज्योतिबा ने पहली बार 1851 में निम्न-जाति के लोगों और अछूत लड़कियों के लिए एक स्कुल खोला। इनकी पत्नी सावित्रीबाई फूले भी इसमें शिक्षा देती थी। निम्नजाति एवं दलितों के उद्धार का काम करते हुए इन्होंने एक विधवा ब्राह्मणी स्त्री का पुनर्विवाह कराया, जो एक महान विप्लवकारी घटना थी। इन्होंने अनेक पुस्तकों, प्रवचनों एवं नाट्कों द्वारा सिद्ध किया कि दलितों-अंत्यजों के कष्ट के लिए ब्राह्मणवाद ही उत्तरदायी है। 1873 में इन्होंने निम्न जातियों के बीच सामाजिक, राजनीतिक चेतना जागृत करने के लिए सत्य-शोधक समाज की स्थापना की। 1888 में हंटर कमीशन को इन्होंने एक ज्ञापन दिया कि शूद्रों को अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा दी जाए।

यूं तो ज्योतिबा ने भारत में दलित आंदोलन का सूत्रपात किया, लेकिन इसे समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का काम बाबासाहेब 'भीमराव अम्बेडकर' ने किया। उनका जन्म 1891 ई0 में महार जाति में हुआ जो अछूत मानी जाती थी। 1916 ई0 में उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी-एच.डी तथा लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स से विधि (कानून) की पढ़ाई की तथा डी0एस0सी0 का उपाधि लेकर वे दलितों के नायक बने तथा पहली बार दलित समस्याओं पर एक स्वतंत्र पत्रिका ''मूकनायक'' का सम्पादन शुरु किया (1920)। डॉ0 भीमराव आम्बेडकर भारतीय इतिहास के प्रमुख व्यक्तियों में से एक थे। जिन्होंने उपेक्षितों, शोषितों, दलितों, पिछड़ों, पीड़ितों को सम्मान पूर्वक जीने की ललक जगाई। हजारों सालों से हो रहे शोषण और दमन के कारण, मानसिक रुप से मृत पड़ी जमात के मन में अपने अधिकारों के प्रति जो बिगुल फूका था, वह कारवाँ बनकर निरंतर बढ़ता जा रहा है।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने भारतीय समाज-व्यवस्था का गहन अध्ययन किया और पाया कि सामाजिक सौहार्द में सबसे बड़ी बाधा भेदभाव पूर्ण जाति-व्यवस्था ही है, जिसके दंश को उन्होंने भी भोगा था, इसलिए उन्होंने इस अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई अपने जीवन भर जारी रखी। भीमराव आम्बेडकरजी ने दलित समाज को आह्वान करते हुए कहा ''शिक्षित बनो ! संगठित बनो ! संघर्ष करो !।'' उन्होंने 1927 ई0 में मराठी पत्रिका ''बहिष्कृत भारत'' निकाला तथा इसी साल वह विधान परिषद् के सदस्य मनोनित किये गये। 1930-32 में उन्होंने लंदन में सम्पन्न 'गोलमेज सम्मेलन' में अछूतों के प्रतिनिधि के रुप में भाग लिया। अछूतों के हितों को ध्यान में रखकर अम्बेडकर ने उनके लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्रों की मांग की। जिसमें वह सफल भी हो गए थे, परंतु गाँधीजी से इस विषय पर उनके तीखे मतभेद होते रहे और इसके विरोध में गाँधीजी ने आमरण अनशन किया। 1932 में अम्बेडकर को गाँधीजी से समझौता करना पड़ा, जिसे 'पुना पैक्ट' कहा जाता है। उन्होंने 1946 में कैबिनेट मिशन के सामने भी सिड्युल्ड कास्ट

फेडरेशन की तरफ से अछूतों के हितों एवं अधिकारों की माँग रखी। जब भीमराव अम्बेडकर संविधान प्रारुप समिति के अध्यक्ष बने तो अछूतों, कमजोरों एवं पिछड़ों के लिए संविधान में आरक्षण का प्रावधान सुनिश्चित किया।

हिन्दू धर्म में दलितों और पिछड़ों के प्रति हिंसक व्यवहारों तथा शोषण एवं दमनकारी नीतियों से तंग आकर उन्हें सन् 1935 में कहना पड़ा, ''मैं हिन्दू धर्म में पैदा अवश्य हुआ हूँ, लेकिन इस धर्म में रहते हुए मरुंगा नहीं।'' ब्राह्मणवाद का विरोध करते हुए उन्होंने 1956 में लाखों समर्थकों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। डॉ0 कंवल भारती मानते हैं:-

''डॉ0 अम्बेडकर के नेतृत्त्व में दलित आंदोलन ने सचमुच एक नई करवट ली थी। पूरे देश का दलित वर्ग इनसे जुड़ा और हिन्दू व्यवस्था से टकराहटों की घटनाएँ देश के कोने-कोने से घटने लगी। उनका कहना था कि-''दलित तुम विद्रोह करो, तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ नहीं है, मगर पाने के लिए आजादी है।''

डॉ0 अम्बेडकर ने दलितोंत्थान को एक आंदोलन का रुप दे दिया। उनकी मृत्यु के बाद बहुजन समाजवादी पार्टी ने इस आंदोलन को जीवित रखने का संकल्प लिया। जिसके नेता 'कांशीराम' थे, जो एक भारतीय राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक थे। इसकी विचारधारा भी ब्राह्मण विरोधी एवं ब्राह्मणवाद विरोधी ही है। 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी (बसपा) का गठन करते हुए कांशीराम ने कहा था-''मैं समझता हूँ कि बसपा की जरुरत दबे-कुचले बहुजन समाज के लोगों की ऐतिहासिक जरुरत है।'' 1980 और 90 के दशक में उन्होंने स्वतंत्र भारत की राजनीति में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वे समाज को दो मुख्य वर्गों में बॉटते थे:-मनुवादी (मनु के धर्मशास्त्र में विश्वास रखने वाले) जो कि भारत की आबादी का 15 प्रतिशत है।

-दूसरा बहुजन जो बहुसंख्यक 85 प्रतिशत होते हुए भी, मनु के धर्मशास्त्र के शिकार और पीड़ित हैं।

उनका नारा था-''ठाकुर वामन बनिया छोड़, बाकी सब है डीएस 41'' दलितों की दूर्दशा समझने के लिए कांशीराम साईकिल से देशभर में घूमे और उन्होंने 1978 में ऑल इंडिया एस0सी0, एस0टी0, ओ0बी0सी0 और माईनोरिटी एम्प्लॉयी एसोसिएशन (BAMCEF) का गठन किया। इसके बाद 1981 में कांशीराम ने दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (DS4) की शुरुआत की। कांशीराम ने आमजनों को जोड़ने के लिए एक समानांतर बहुजन मीडिया स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी पहली पत्रिका थी-''द अनटचेबल इंडिया'' (अछुत भारत) इसके साथ कई अन्य मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरु किया, जिनके शीर्षक थे-'बहुजन साहित्य', 'श्रमिक साहित्य', 'इकोनोमिक अपसर्ज', 'आर्थिक उत्थान' व 'बी आरसी बुलेटिन'। इन पत्र-पत्रिकाओं ने बहुजनों को जागृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने बहुजन समाज को मताधिकार की शक्ति से अवगत कराया। कॉशीराम के जीवन का उद्देश्य-''गैर बराबरी की व्यवस्था को खत्म करना ही मेरे जीवन का मकसद है।'' कांशीराम ने अपने दम पर भारत के सबसे अधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश की मुख्य धारा की राजनीति को बदल डाला और इसके साथ ही भारतीय राजनीति में भी बहुत बड़ा बदलाव आया। ब्राह्मणी व्यवस्था ने जिन महिलाओं को शुद्र बनाया था या दबाए रखा था, कांशीराम ने उन्हीं महिलाओं के प्रतिनिधि को अपने पार्टी में सबसे बड़ा पद दिया। कॉशीराम मायावती के मार्गदर्शक थे। मायावती ने कांशीराम की राजनीति को आगे बढ़ाया और बसपा को राजनीति में एक ताकत के रुप में खड़ा किया।

दलित आंदोलन जिसकी नींव ज्योतिबा फूले ने डाली, जिसे डॉ0 आम्बेडकर ने आंदोलन का रुप दिया और स्वयं ही उन परिस्थितियों का सामना करते हुए उन्होंने भारत का संविधान लिखा। अंत में हिन्दू धर्म की कुरीतियों से निराश होकर बौद्ध धर्म को अपना लिया। कॉशीराम 'अम्बेडकर' को अपना आदर्श मानते थे। उनके इस आंदोलन की मशाल को आगे बढ़ाते हुए कॉशीराम ने उसे चरम पर पहुँचा दिया। उन सभी के प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि जो दलित राजनीतिज्ञ हाशिये पर थे, वे अब केन्द्र में आ गए तथा अब वह कोई भी समीकरण बनाने या बिगाड़ने की स्थिति में आ गए। स्थिति यह है कि कोई भी दल अब दलित चेतना की उपेक्षा नहीं कर सकता। यह दलितोत्थान की बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी।

संदर्भ-सूची

1. डॉ0 कृष्णकांत प्रसाद : कबीर और मानववाद।
2. कंवल भारती : दलित विमर्श की भूमिका।
3. एम जी गोरे : नन-ब्राह्मण मुवमेंट इन महाराष्ट्र।
4. आर0के0 सिंह : कॉशीराम और बी0एस0जी0।
5. अभय कुमार दुबे : आधुनिकता के आईने में दलित।

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थितिः एक अवलोकन

डॉ० सुजीत कुमार सिन्हा

इतिहास विभाग, भू.ना.मं. वि. वि. मधेपुरा

सारांश

सृष्टि के प्रारम्भ सेही नारी ने सामाजिक-जीवन के पोषण में अपनी ममता, वात्सल्य, त्याग, करूणा, कोमलता एवं मधुरता से अपूर्व योगदान दिया है । इतिहास साक्षी है कि पुरूष ने जीवन में प्रगति-पथ पर अग्रसर होने के लिए मां, बहन, पत्नी और प्रेयसी आदि किसी-न-किसी रूप में नारी से सहायता एवं प्रेरणा अवश्य ली है। जिस देश में स्त्रियों का सम्मान होगा, वह राष्ट्र एक आदर्श राष्ट्र होगा। पुरूष को एक ऐसे वृक्ष की उपमा दी जा सकती है जो अपने चारों ओर के छोटे-छोटे पोधों से जीवन रस पाकर आकाश की ओर बढ़ता जाता है तो स्त्री को ऐसी लता कहना अनुचित न होगा जो पृथ्वी से बहुत थोड़ा सा स्थान लेकर अपनी सघनता में बहुत से अंकुरों को पनपाती हुई उस वृक्ष की विशालता चारों ओर से ढक लेती है। प्रकृति ने उसके शरीर को ही अधिक सुकुमार नहीं बनाया वरन् उसे मनुष्य की जननी का पद देकर उसके हृदय में अधिक कोमलता भर दी। ''नारी का मनुष्य-जाति की उत्पत्ति में ही नहीं वरन समाज निर्माण में भी नारी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। एक बेटी, बहन,पत्नी और माता के रूप में वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करती हुई जीवन का अर्थ व्यक्ति करती है, उसी से सम्पूर्णण मानव जाति के भाग्य का निर्णय होात है। स्त्री को स्वभाव से ही कोमल, भावुक और ममता की प्रतिमूर्ति माना गया है। उसे लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली आदि रूपों में पूजा गया है। स्त्रियों को धन, ज्ञान और शथ्कत का प्रतीक माना गया है। हमारे देश को भी भारत माता कहकर सम्बोधित किया जाता है। स्त्री को पुरूषों का आधा अंग कहा गया और उसे अर्द्धांगिंनी के रूप स्थान दिया गया। कोई भी कर्तव्य बिना स्त्री के अधूरा है। कहा भी गया है कि - ''नारी परिवार की नीव है, परिवार, समुदाय की तथा समुदाय राष्ट्र की।'' इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री राष्ट्र की नीव है।

मूलशब्द : भारत, परम्परा, नारी, सामाजिक स्थिति, अवलोकन

प्रस्तावना

भारतीय नारी की कहानी एक उतार-चढ़ाव की कहानी है। युगों से उत्थान-पतन की तरंगों में झूलती नारी को कभी सम्मान का स्वर्णिम शिखर मिला तो कभी अधोपतन की मझधार। उसकी सामाजिक स्थिति के दोनों पहलुओं-अधिकार एवं कर्तव्य में सदैव उतार-चढ़ाव आते रहे है। भारतीय संस्कृति में उसे सम्मान के सर्वोच्च शिखर पर इतना प्रतिष्ठित किया गया कि अर्धनारीश्वर ने गंगा तक को अपने मस्तक पर धारण किया। हिन्दुओं की धर्म कथाओं में अर्धनारीश्वर की कल्पनाओं ने नारी को और भी अधिक गौरवान्वित किया वही उसे ताड़न का अधिकारी भी बताया।

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों से सम्बन्धित दो विचार के सम्प्रदाय मिलते है। एक सम्प्रदाय का कहना है कि स्त्रियों पुरूषों के बराबर थीं, जबकि दूसरे सम्प्रदाय का कहना है कि स्त्रियों का न केवल अपमान ही होता था बल्कि उनके प्रति घृणा भी की जाती थी। दोनों ही सम्प्रदायों ने अपने दृष्टिकोण की पुष्टि में धार्मिक साहित्य से उदाहरण दिए हैं। रामायण में कहा गया है कि

स्त्रियों के मुख पुरूषों की भांति है, उनके शब्द मधु की बून्दों की भांति हैं, किन्तु उनके मन तेज उस्तरे की भांति है उनके मन की थाह किसी को नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मनु स्त्रियों को आधिपत्य की वस्तु मानना चाहते थे तथा जिस प्रकार युधिष्ठिर द्वारा घ्रूत क्रीड़ा में द्रोपदी को दाँव पर लगाया गया था, उससे यही सिद्ध होता है कि सभ्यता के प्रारम्भिक युगों में स्त्रियों को गुलाम तथा मूल्यवान प्रतिभूति ही माना जाता था।

किसी भी पारिवारिक संगठन के अध्ययन में स्त्रियों की परिस्थिति और भूमिका का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। पारिवारिक संगठन की संकल्पना, स्त्रियों के अस्तित्व, और सहभागिता के बिना अधूरी है। पारिवारिक जीवन की आन्तरिक संरचना की सबसे महत्वपूर्ण आधारशिला स्त्रियाँ है। परम्परागत भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही है। उनका कार्य-क्षेत्र परिवार के परिसर में ही केन्द्रित रहा है। पुत्री, पत्नी और माता के रूप में वह पिता, पति या पुत्र के अधीन रही। किसी भी समाज का सांस्कृतिक स्तर उस समाज में महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करता है।

भारत में ही नहीं वरन् विश्व के अन्य धर्मों में नारी की स्थिति समयानुसार बदलती रही है। विश्व के हर देश, हर धर्म में नारी जाति को प्रतिबंधाों और वर्जनाओं की जंजीरों में जकड़ कर रखा और नारी उन जंजीरों को तोड़ नहीं पायी और उनमें बराबर जकड़ती ही चली गई। लेकिन जैसे-जैसे समय बदला स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन होते गये और स्त्रियाँ बन्धनगत जंजीरों से मुक्त होती रही।

ऋग्वैदिक काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

इस युग में महिलायें परिवार की केन्द्र बिन्दु थीं तथा वह परिवार की साम्राज्ञी थीं उन्हें समाज तथा परिवार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। घरेलू सुख और पति-पत्नी के बीच स्नेह-प्रेम के प्रसंग ऋग्वेद के अध्यायों में वर्णित है। एक व्यक्ति जब तक वह अविवाहित होता है अधूरा होता है परन्तु जैसे ही वह स्त्री से विवाह करता है पूर्णता को प्राप्त करता है। मनु का कथन है कि सृष्टि के रचियता ब्रह्मा ने अपनी देह को दो भागों में विभाजित किया एक हिस्सा पुरूष बना तथा दूसरा आधा हिस्सा स्त्री हो गया। इस प्रकार विभाजित स्त्री और पुरूष जब विवाह के बंधन में बंधाते है तब वे सम्पूर्णता को प्राप्त करते है। ऋग्वेद के मतानुसार नारी तू घर है। अथर्ववेद में कहा गया है कि नववधू, तू जिस घर में जा रही है, वहां की तू साम्राज्ञी है। तेरे सास, ससुर, देवर व अन्य तुझे साम्राज्ञी समझते हुये तेरे शासन में आनंदित है। यजुर्वेद से स्पष्ट होता है कि नारी को संध्या करने तथा उपनयन संस्कार के अधिकार प्राप्त थे। प्राचीन समय में सभी पितृसत्तात्मक समाजों में लड़कियों के जन्म का सामान्यत: कम स्वागत होता था। सभी स्थानों पर पुत्र को लड़कियों की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया जाता था। फिर भी लड़कियों का जन्म बहुत खतरनाक नहीं माना जाता था। दूसरी तरफ प्रारंभिक उपनिषदों में से एक में उन अनुष्ठानों का वर्णन किया गया है जिसको करके एक विदुशी कन्या की प्राप्ति की जा सके। यद्यपि यह सच है कि ऐसे अनुष्ठान उतने प्रिय नहीं हुए जितना कि पुम्सावना संस्कार जो पुत्र की उत्पत्ति के लिए किया जाता है। फिर भी यह स्पष्टत: प्रकट होता है कि सुसंस्कृत, अच्छा व्यवहार करने वाली कन्या को लड़कों से भी अच्छा समझा जाता था ऐसी लड़की परिवर के गर्व का विषय थी। कन्या पैदा न होने के पश्चात् पिता के परिवार में उसे भी पुत्र के समान ही समझा जाता था। माता-पिता का यह कर्तव्य था कि लड़की को अच्छी शिक्षा दिलाकर उसका सुशील व योग्य वर के साथ विवाह करें।

सम्पति के उत्तराधिकार के विषय में स्त्रियों को कोई भाग नहीं होता था, फिर भी प्रत्येक अविवाहित पुत्री को अपने भाईयों को मिलने वाले पितृधन का एक चौथाई भाग प्राप्त करने का अधिकार था । मृत्यु के पश्चात् मां की सम्पति पुत्रों व अविवाहित पुत्रियों में समान रूप में बांटी जाती थी। विवाहित पुत्रियों को केवल सम्मान स्वरूप थोड़ा ही भाग मिलता था। स्त्रीधन की उत्तराधि कारी केवल अविवाहित पुत्रियां होती थी। वंश विस्तार, पिण्डदान, तर्पण आदि कार्यों में लड़कों का महत्व होने की वजह से पुत्री की अपेक्षा पुत्र जन्म को अधिक महत्व दिया जाता था। इस प्रकार वैदिक काल में पुत्रों के प्रति पश्चात नजर आता है। ऋग्वेद में भी बारम्बार पुत्रों की प्राप्ति की कामना की गई है, परंतु लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। स्त्रियों को अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। जब लड़कियां परिपक्वता की आयु में प्रवेश करती थीं तब उनकी सहमति से ही उनका विवाह सम्पन्न हुआ करता था। प्रारंभिक विवाह के कई उदाहरण जाने जाते है। गान्धर्व विवाह के भी उाहरण ऋग्वेद काल में प्राप्त होते हैं जिसमें स्त्रियों की रूचि की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। बाल विाह का प्रचनल नहीं था, महिलायें

पर्दा नहीं करती थी, बन्धनमुक्त वातावरण में जीवन व्यतीत करती थीं, माता-पिता भी पुत्र एंव पुत्री में कोई भेद नहीं करते थे।

इस काल में पति के घर पर स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। स्त्रियों को घर की गृहस्थिन माना जाता था। हर कार्यों में स्त्रियों की राय भी जरूरी होती थी। पति अपनी पत्नी को दासी न मानकार साथी व मित्र मानता था। इसलिए पति पत्नी को दम्पत्ति के नाम से पुकारा जाता था। पति पत्नी का सम्बन्ध जीवन पर्यन्त का साथ माना जाता था। दम्पत्ति को अटूट जोड़े के रूप में मान्यता प्राप्त थी। विवाहित जोड़े का सुख दोनों के प्यार में माना जाता था। महाभारत में लिखा है - वही आदमी पूर्णता प्राप्त करता है जो अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ रहता है। पत्नी अपेन पति की अर्द्धांगिनी कही जाती थी। पति एवं पत्नी की इस संयुक्तता को विवाह में की जाने वाली क्रियाएं और सुद्धढ़ बनाती है और सप्तपदी (साथ-साथ सता फेरे लेना) अत्यन्त महत्वपूर्ण होता हे जो बराबरी और मित्रता के दो स्तरों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। स्त्रियों को आर्थिक क्षेत्र में भी पूर्ण स्वतंत्रता थी। कृषि कार्य, तीर कमान बनाने एवं अन्य युद्ध सामग्री के निर्माण में सक्रिय रूप से भाग लेती थी। रंगाई, कसीदाकारी, टोकनी आदि के कार्य भी महिलायें किया करती थीं। अध्ययन का कार्य महिलाओं में अत्यन्त लोकप्रिय था। वैदिक साहितय में ऐसी कई स्त्रियों का उल्लेख है जिन्होंने पुरूषों के समान प्रतिष्ठित दार्शनिक के रूप में ख्याति अर्जित की। विस्वासारा का उल्लेख एक दार्शनिक के रूप में मिलता है। दार्शनिक से आशय यहाँ 'ब्रम्हावेदिनी से है जो मंत्रदृष्टि में पारंगत थीं। धार्मिक क्षेत्र में भी पत्नी समस्त अधिकरों का उपभोग करती थी तथा नियमित रूप से अपने पति के साथ समस्त धार्मिक कृत्यों व संस्कारों में भाग लेती थीं। वास्तव में धार्मिक कृत्य तब तक अपूर्ण माना जाता था जब तक पत्नी उसमें भाग नहीं लेती थी। प्राचीन भारत में स्त्रियों का धार्मिक क्षेत्र में उच्च स्थान था। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति और स्थान उच्च स्तर पर था लेकिन उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा में गिरावट आई।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

इस काल में स्त्रियों की स्थिति और स्थान दोनों में परिवर्तन हुआ। ऋग्वेद के समय जो स्थिति स्त्रियों की थी अथर्ववेद व उसके बाद के समय में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ। महाभारत के अनुशासन पर्व में एक वर्णन मिलता है कि युधिष्ठिर ने बुद्धिमान भीज़्म पितामह से महिलाओं की प्रकृति पर प्रकाश डालने का अनुरोध किया। युधिष्ठिर ने पूछा की क्या यह सही है कि स्त्रियाँ सभी बुराईयों की जड़ हैं और वे बहुत ही संकीर्ण दिमाग की होती है। भीज़्म पितामह ने उत्तर दिया कि एक अर्थ में महिलायें स्वभाव से ही शीघ्र बहकावें में आने वाली होती हैं। उनमें अपनी भवनाओं को रोकने के लिए पर्याप्त इच्छा शक्ति नहीं होती है। अत: उन्हें हमेशा ही पुरूषों के संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है। मनु ने भी इसी प्रकार वर्णन करते हुए लिखा है कि बाल्यकाल में स्त्री को अपेन पिता के संरक्षण में युवावस्था मं प्रति के एवं वृद्धवस्था में अपने पुत्रों के संरक्षण में रहना चाहिए। एक स्त्री को कभी भी अपने पिता, पति या पुत्र से स्वतन्त्र होने की नहीं सोचना चाहिए क्योंकि ऐसा करके वह दोनों परिवारों के लिए घृणित स्थिति का निर्माण कर देगी। महाकाव्यों के दौर में स्वयंवर प्रथा का उल्लेखमिलता हैं स्वयंवर में महिला को अपने पति को चुनने की स्वतंत्रता थी यह प्रथा राजपरिवारों में प्रचलित थी। इसके उदाहरण सीता, द्रोपदी और दमयन्ती के स्वयंवर थे। लेकिन इस युग में वर के चुनाव की स्वतंत्रता धीरे-धीरे कम होती चली गई। पिता ही अपनी पुत्री के लिये वर चुनता था। विवाह की आयु घट गई थी। बाल-विवाह की प्रथा प्रारंभ हो गई थी। राजस्व पूर्व विवाहों को आदर्श विवाह घोषित किया गया। कोटिल्य ने लड़की की विवाह की आयु 10 से 12 वर्ष की आयु के मध्य करने का प्रावधान कर दिया गया। विवाह में कन्या की इच्छा का कोई महत्व नहीं रहा। महिलाओं का परिवार की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं रहा। भ्राता विहीन बहन को ही सम्पति में हिस्से को मान्यता मिली। मनु पुत्री को वैवाहिक व्यय का अधिकार देते है। विवाहित स्त्री का स्त्रीधन पर ही अधिकार होता था। स्त्रीधन से तात्पर्य उस धन से है जो स्त्री को विवाह के अवसर पर उसके भाई, माता, पिता और पति द्वारा प्रदान किया जाता था। विधवा स्त्री अपने पति की सम्पति की स्वामिनी होती थी। कोटिल्य स्त्री को स्वतंत्र घूमने की आजादी नहीं देते। मनु महिलाओं को केवल गृहकार्यों के अधिकारों तक सीमित करते है। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति दयनीय होने लगी थी।

पौराणिक काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

पौराणिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। सामाजिक क्षेत्र में पूर्व यौन परिपक्व विवाह का प्रचलन प्रारंभ हुआ, विध वा विवाह का निषेध होने लगा, पति को स्त्री के लिये भगवान का स्तर दिया जाने लगा। स्त्रियों के लिए शिक्षा का पूर्ण निषेध प्रारंभ

हुई, सती प्रथा प्रचलन में आई, पर्दा प्रथा प्रारंभ हुई तथा बहुपत्नी प्रथा व्यवहार में स्वीकार की जाने लगी। एक पत्नी और ुलाम सम्पत्ति के अधिकारी नहीं होते, मान्यता के आधार पर स्त्री को उसके पति की सम्पति के भाग से बंचित कर दिया गया। धार्मिक क्षेत्र में स्त्री को बलिदान भेंट करने से, प्रार्थना से, हट योग से तथा तीर्थ यात्रा करने से बंचित कर दिया गया। इस युग में महिलाओं की स्थिति दासी जैसी हो गई। इस काल में पौराणिक लेखकों ने यह कहने का कार्य कि महिलाओं के लिये पति उत्तर होता है और उसके प्रति समर्पण ईश्वर के प्रति समर्पण है। उसे पति की पूजा करने से वे ही लाभ प्राप्त होते है। जो पति द्वारा ईश्वर को पूजने से पति को प्राप्त होते है। वास्तव में इस युग में महिलाओं की परतंत्रता में वृद्धि हुई। महिलाओं के लिये कई व्रतों का प्रावध ान किया गया जिससे अंधविश्वास को बढ़ावा मिला। यह घोषित किया गया कि महिलाओं और शूद्रों को वेदों की वाणी नहीं सुनना चाहिये उनकी भलाई के लिए ही पुराणों की रचना की गई। 200 ई. और उसके बाद राजस्व पूर्व विवाहों का प्रचलन बढ़ गया । ब्रह्मा पुराण मे ंतो लडकियों के विाह की उम्र 4 वर्ष तक की वकालत की गई है। ऐसी स्थिति में जब लड़कियों का विवाह अपरिपक्व आयु में होता था तब उसे अपने पति के चुनाव की कोई स्वतंत्रता नहीं थी। पुराणों ने गृहस्थ आश्रम पर ज्यादा बल दिया। लड़कियों को अविवाहित रहने की स्वतंत्रता नहीं थी। विधवाओं के पुर्नविाह पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगा दिया गया। यही नहीं इस काल में सती प्रथा को भी बढ़ावा मिला। प्रारंभ में तो सती प्रथा विधवा के लिये दूसरा विकल्प था लेकिन बाद में क्षत्रियों में सती प्रथा एक संस्था के रूप में विकसित हो गई। समुदाय में जौहर और सती होने की घटनायें वृहद स्तर पर घटती रही। पुराणों में सतियों के कई उदाहरणों का उल्लेख है। इस प्रथा के प्रसार से महिलाओं की स्थिति में न केवल गिरावट आई बल्कि उस पर प्रतिबंध बढ़ते चले गये। जहाँ महिलायें स्वयं सती होती उसे ऐसा समझा जाता कि वह अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती जिससे उन्होंने आमेसर्ग किया। इस काल में महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार की कुछ छूट प्राप्त हुई। ऐसे व्यक्ति जिनकी संतान नहीं होती थी उनकी सम्पत्ति पर पत्नी को उत्तराधिकार दिया गया।

उत्तर पौराणिक काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

मुस्लिम आक्रमण के फलस्वरूप देश में महिलाओं की दशा और गिरती चली गई। उनके अधिकारों और स्वतंत्रता पर प्रतिबंध बढ़ने लगा। उन पर कड़ाई की जाने लगी। एक तरफ तो मुसलमान हिंदुओं पर अपने रीति-रिवाजों को लाद रहे थे तो दूसरी तरफ हिंदू समाज खुद भी कठोर होता चला जा रहा था। इसके फलस्वरूप महिलाओं और निम्न जातियों के अधिकार और स्वतंत्रता पर कुठाराधात हुआ। इस प्रकार भारतीय इतिहास में उत्तर पौराणि काल महिलाओं के संदर्भ में सबसे काला काल साबित हुआ। महिालाओं की परिस्थिति में गिरावट 19वीं शताब्दी तक जारी रही। पर्दा प्रथा में महिलाओं को न केवल घरों में बंद कमरों में रहना पड़ता था बल्कि उन्हें बुरको में रहना पड़ता था जिनमें केवल आँखों का भाग ही खुला और शेष शरीर पूरी तरह ढका हुआ रहता था। विध वा स्त्री या तो जला दी जाती थी या फिर वह स्वयं पूरी तरह आत्म निशेधों में जीवन जीती थी। विधवा पुनर्विवाह को मान्य नहीं किया जाता था। मुस्लिम शासकों के पहले ब्राह्मण स्त्रियों द्वारा भी सती होने के कुछ उदाहरण मिलते हैं। पन्द्रहवीं सदी में और उसके बाद के काल में जिन विधवा महिलाओं ने सती होना स्वीकार नहीं किया उन्हें अपमानित जीवन जीना पड़ा। सती प्रथा का विस्तार दक्षिण भारत तक हुआ।

धर्मशास्त्र काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

तीसरी शताब्दी से लेकर ग्यारवहीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक का काल धर्मशास्त्र काल कहलाता है। इस काल में 'विष्णु संहिता', 'पराशर संहिता' एवं 'याज्ञवल्क संहिता' की रचना हुई। जिसमें मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मानकार वैदिक नियमों को पूर्णत: तिलांजली दे दी गई। महिलायें इस काल की सामाजिक एवं धार्मिक संकीर्ण विचारधारा की शिकार बनीं। वैदिक काल की 'गृहलक्ष्मी' माता एवं 'शक्ति प्रदायनी देवी' अब याचिका, सेविका व निर्बलता के प्रतीक के रूप में दिखाई देने लगी। वैदिक काल की वह नारी जो अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा देश के साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी, अब परतंत्र, पराध ीन, निस्सहाय और निर्बल बन चुकी थी। पति स्त्री के लिये देवता है, विवाह ही उसके जीवन का एक मात्र संस्कार है, आदि विचार धाराओं ने इस काल में जन्म लिया। मनु स्मृति (5/148) में तो स्त्रियों के अधिकारों को छीनते हुए यहां तक लिख दिया कि नारी कभी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है, बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धवस्था में पुत्र के नियंत्रण में रहे। साथ ही स्त्रियों के कर्तव्यों की व्याख्या करते हुये लिखा कि उनका परम कर्तव्य पति की सेवा ही है चाहे पति कैसा भी क्यों न

हो, साथ ही यह भी कहा गया कि विवाह का विधान ही महिलाओं को उपनयन है। पति की सेवा ही गुरूकुल का वास है और घर का काम ही पत्नी की सेवा है। इन सब तथ्यों से स्पष्ट होता है कि इस काल में महिलाओं की स्थिति ज्यादा खराब हो गई, जिसके फलस्वरूप महिलायें वस्तु बन गई। जिसे पुरूष अपनी इच्छा अनुसार किसी भी उपयोग में ला सकता था। इस प्रकार ध र्मशास्त्र काल में महिलाओं को अधिकार विपन्न तो बनाया ही गया साथ ही धर्मानुसार आचरण के नाम पर उसकी स्थिति और गिरती चली गई। महिलाओं के लिये पतिव्रत धर्म के नाम पर संकुचित दायरे में सीमित कर दिया गया। मनुस्मृति में स्त्री को यद्यपित पूजने योग्य बताया परंतु उसकी स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाकर उसकी स्थिति को इतना कमजोर कर दिया कि वह पति और परिवार रूपी वैशाखी के सहारे चलने के लिये मजबूर कर दी गई।

बौद्धकाल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

उत्तर वैदिक काल विधि विधानों का प्रभुत्व और ब्राह्माणों की शक्ति में कालातीत वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप समाज में निम्न जातियों और महिलाओं की स्थिति में गिरावट आना शुरू हो गई। कोई भी धार्मिक कृत्यों की पूर्ति ब्राह्माणों के बिना संभव नहीं होती। ब्राह्मणों के वर्चस्व में अत्यधिक वृद्धि हुई। बुद्ध धर्म ने ऐसे समय में ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी मध्यस्थ को अस्वीकार करते ऐसे धर्म को जन्म दिया जिसमें बिना किसी असमानता के समूचा मानव समाज शामिल हो सकता था। बौद्धवाद ने आत्म नियंत्रण और आत्म संस्कृति के सिद्धांत पर जोर दिया। बौद्ध दर्शन के अनुसार कोई व्यक्ति स्वयं में उक्त दोनों गुणों को विकसित कर लेता है तो वह निवार्ण को प्राप्त हो सकता है। यदि कोई स्त्री भी उक्त दोनों गुणों को प्राप्त कर सके तो उसे भी निवार्ण प्राप्त हो सकता है ऐसी बौद्ध धर्म की मान्यता थी। इस प्रकार हिन्दू धर्म में महिलाओं की स्वतंत्रता पर जो अंकुश लगाये गये थे बौद्ध धर्म ने उनके लिये दरवाजे खोल दिये।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति का क्रमिक ह्रास होता चला गया। वैदिक काल में महिलाओं का समाज में स्थान चर्मोन्नति पर था उसकी प्रतिभा, तपस्या और विद्धता सभी विकासोन्मुख होने के साथ ही पुरूषों को परास्त करने वाली थी। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी उन्हें परिवार तथा समाज में सम्मान प्राप्त था एवं शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। अनेक मंत्रों के रचनाकार स्त्रियों अपाला, थोपा, विश्ववारा, मैत्रयी इत्यादि के नाम मिलते है। स्त्रियों को विवाह हेतु वर चयन करने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। स्त्रियों की धार्मिक अनुष्ठानों में उपस्थिति अनिवार्य थी।

उत्तर वैदिक काल तक आते-आते स्त्रियों के सम्मान, कर्म, अधिकार में उत्तरोतर अवमति दिखलाई पड़ती है। मैत्रेयी संहिता में महिलाओं को निम्न कोटि का बतलाया गया है। उनकी स्वतंत्रता पर अनेक प्रतिबंध लगाये जाने लगे। ब्रह्ममण ग्रंथों में महिलाओं पर अंकुश लगाने जैसे नियम देखने को मिलता है। महिलाओं से सम्बन्धित अनेक कुप्रथाओं का जन्म होने लगा। विवाह हेतु वर चुनने की स्वतंत्रता उनसे छिनते चली गई, इस पर पूर्ण अधिकार पुरूष को हाने लगा।

महाभारत, रामायण जैसे पौराणिक ग्रंथों में स्त्रियों की प्रतिष्ठा पर बल देने का प्रयास किया गया। पौराणिक युग में स्त्री देवी के पद से उतरकर सहधर्मिणी के स्थान पर आ गई थी। स्मृति काल में यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता कहकर उसे सम्मानित स्थान प्रदान किया गया। शक्ति स्वरूपा मानने की चेष्ट की गई, माना भी गया, किन्तु यह प्रतिष्ठा निरन्तर गिरती चली गई। उत्तर पौराणिक काल महिलाओं के संदर्भ में सबसे काला काल साबित हुआ। बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति को कुछ उपर उठाने की कोशिश की गई परन्तु अब महिलाओं का गौरव वैसा नहीं हो सका जैसा कि ऋग्वैदिक काल में था।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति काल परिवर्तन के साथ गिरती गई और वह प्रतिष्ठा कुछ हद तक आधुनिक काल में प्रतिष्ठापित होता हुआ परिलक्षित हो रहा है।

संदर्भ

1. वृजेन्द्र सिंह-रीवा जिले में आधुनिकीकरण का महिलाओं पर प्रभाव, अप्रकासित शोध प्रबन्ध, अ.प्र.सिंह वि.वि. , रीवा, 2001
2. श्रीमती स्कालास्तिका कुजूर-वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1982

3. डॉ. राजबली पाण्डेय-हिन्दू संस्कार, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1978
4. राधाकुमुद मुकर्जी-वुमेन ऑफ इण्डिया, गवमेन्ट ऑफ इण्डिया पब्लिकेशन, 1979
5. डॉ. अल्तेकर-पोशीशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, हिन्दू विश्वविद्यालय, कल्चर प्रकाशन, बनारस, 1938
6. त्रिपाठी सी.बी.-भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, 1968
7. योजना मासिक पत्रिका, वर्ष 1998
8. के. एम. पणिक्कर-हिन्दू समाज अपने निर्णय के द्वार पर द्वारिका प्रकाशन, हरिद्वार, 2003
9. ब्रह्मा पुराण, 3/26
10. डॉ. गजानन शर्मा-प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971
11. डॉ. वनमाला भवालकर-महाभारत काल में नारी, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर, 1964
12. हरीशचन्द्र वर्मा-मध्यकालीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, 1999

पूर्णिया जिले में बीस सूत्री कार्यक्रम कार्यान्वयन में सरकार की नीति एवं परिणाम

मो० नौशाद

पीएच. डी. रिसर्च स्कॉलर

राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

बीस सूत्री कार्यक्रम विकास की वह नीति रही है जिसके द्वारा भारत की जनसंख्या के अधिकतर लोगों को उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति यथासंभव हो सके। प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित जनता विभिन्न प्रकार के प्रकोपों से अपने आप को सुरक्षित नहीं कर पाती थी। अनेक प्रकार की योजनाएँ निवारण हेतु बनी परन्तु कोई संतोषजनक परिणाम नहीं दे सकीं। 1975 से लेकर अब तक बीस सूत्री के रूप में योजनाएँ सामने आती रहीं जिसका वांछित परिणाम जनता को महसूस होने लगा।

सर्वप्रथम बीस सूत्री कार्यक्रम को विस्तारपूर्वक उनके अर्थ के संदर्भ में जानना आवश्यक है। बीस सूत्री का सीधा अर्थ बीस योजनाओं के समुच्चय से है जो भारत में जीवन बसर करनेवाली जनता के विभिन्न क्षेत्रों की बाधाओं को कम करने अथवा सुविधा मुहैया कराने से जुड़ी है। बीस सूत्री की प्रत्येक योजना विशाल देश की विकराल समस्याओं का सुगम इलाज कहा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप बिजली, सड़क, चिकित्सा आदि योजनाएँ राष्ट्र निर्माण (Nation Building) के आधारों में अहम माना जाता है। इसके अभाव में मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति की कल्पना, कोरी कल्पना ही समझी जा सकती है।

बीस सूत्री कार्यक्रम की बीस योजनाओं में बहुतेरे योजना को पूरा भी कर लिया गया। बंधुआ मजदूरी समाप्त करने का कानून 1976 में बनाया गया। तस्करों की सम्पत्ति जब्त करने के उपाय किए गए। निम्न तथा मध्यम आय वर्ग के लाखों लोगों को आयकर से छूट दी गई है। सड़क परिवहन के लिए राष्ट्रीय परमिट योजना लागू की गई। 50 लाख हेक्टेयर जमीन में सिंचाई की व्यवस्था करने का उद्देश्य भी पूरा कर लिया गया है। जल से सम्बन्धित कई योजनाएँ तैयार की गई हैं। जमीन से मिलनेवाले पानी के प्रयोग के वास्ते भी कई योजना तैयार की गई है।

1975 में घोषित बीस सूत्री कार्यक्रम में शामिल अन्य कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। अनेक लक्ष्य प्राप्त हो जाने, लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन आ जाने तथा नई चुनौतियों के कारण यह जरूरी हो गया कि इस कार्यक्रम को नया रूप दिया जाए। गहराई से विचार करने के बाद सरकार ने नया बीस सूत्री कार्यक्रम तैयार किया जिसकी घोषणा प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 14 जनवरी 1982 को राष्ट्र के नाम प्रसारित अपने संदेश में की। नई सदी में जनता की जागरुकता ही शत-प्रतिशत बीस सूत्री कार्यक्रम को सक्रिय बना सकती है, आवश्यकता इस बात की है कि भारत के एक-एक व्यक्ति अशिक्षा, बेरोजगारी, कुव्यवस्था एवं समाज में पनपे हर प्रकार की कुरीतियों को समाप्त करने के लिए प्रतिज्ञा करे। 1982 के भारत और 1947 या उससे दस वर्ष पहले के भारत में बहुत बड़ा अंतर है।

वर्तमान में हमारे देश की गिनतती विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों में होती है। पंचवर्षीय योजनाओं के जरिए कृषि और उद्योग की टेक्नोलॉजी में बहुत परिवर्तन आया है और बड़ी संख्या में प्रशिक्षित कर्मचारी तैयार किए गए हैं। आत्म-निर्भरता की दिशा में हम लगातार आगे बढ़ रहे हैं। प्रति व्यक्ति आय भले ही अधिक नहीं है पर पुरानी समस्याओं के साथ-साथ उन नई समस्याओं से भी निपटने में अब भारत सक्षम है जो विकास से ही पैदा हुई है।

बीस सूत्री कार्यक्रम के तमाम बिंदुओं पर प्रकाश डालना इस आलेख में संभव नहीं है परंतु कुछ बिंदु ही सही है। उनके महत्त्व एवं जनता की आवश्यकता अवश्य ही प्रकाश में लाया जा सकता है। मूलत: बीस सूत्री कार्यक्रम का कार्यान्वयन जिला से प्रारंभ होता है और मेरे शोध का विषय पूर्णिया जिला ही है। बीस सूत्री कार्यक्रम के कार्यान्वयन का मुख्य केन्द्र जिला है और यही कारण है कि इसकी सफलता तथा असफलता जिला प्रशासन की अभिरुचि, उसके उपक्रम, उसकी लगनशीलता और ईमानदारी पर निर्भर करती है। जिला प्रशासन को इस दिशा में सहायता, सहयोग, समर्थन और आवश्यकतानुसार मार्ग निर्देशन प्रदान करने के लिए जिला बीस सूत्री समिति के माध्यम से समाज-सेवी, बुद्धिजीवी एवं जन-प्रतिनिधियों की सेवा उपलब्ध रहती है। इस प्रकार, जिला प्रशासन के उत्तरदायित्व के अधीन अनुभव और आवश्यकता के आधार पर 'बीस सूत्री' के प्रावधानों को क्रिया रूप में परिणत करने की व्यवस्था है। इस दृष्टि से बीस सूत्री का जिला स्तरीय प्रशासन बीस सूत्री की सफलता का मूल आधार है।

पूर्णिया जिला स्तर पर बीस सूत्री कार्यक्रम जिस प्रकार संचालित हुआ है, वह पृष्ठ पर संतोषजनक प्रतीत नहीं होता है। निश्चय ही 'संतोष' शब्द विषयपरक है, वस्तुनिष्ठ नहीं। अत: यहाँ 'संतोष' शब्द का अभिप्राय प्रशासनिक उपलब्धियों के उस परिणाम से है जिसमें तीन बातों का अभाव है :

1. निर्धारित मात्रा या परिणाम में लक्ष्य पूरा नहीं हो।
2. लक्ष्य भले ही पूरा हो गया हो पर ऐसी क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुपात में नहीं हुआ हो।
3. टारगेट (Target) पूरा हो गया हो पर सामाजिक न्याय की उपेक्षा की गई हो तथा सम्बन्धित पदाधिकारियों ने उचित प्रक्रिया का अनुगमन किया हो। वित्तीय साधन-विहित राशि में ही उपयोग किए गए हों। जहाँ कहीं भी कार्य संपादन हुआ हो, वरीय पदाधिकारी के द्वारा कार्य का निरीक्षण किया गया हो और आवश्यक सुधार के प्रयास किए गए हों। जहाँ ज्ंतहमज पूरे नहीं हुए हों, वहाँ ऐसा क्यों नहीं हुआ, इस बात का अन्वेषण किया गया या नहीं। यदि हाँ तो तद्नुसार सुधार के उपाय किए हों, बीस सूत्री कार्यक्रम के संचालन में सम्बन्धित पदाधिकारियों के बीच समन्वय की व्यवस्था की गई या नहीं।

उपरोक्त प्रश्न के समान ही विश्लेषण के क्रम में और भी नए प्रश्न उत्पन्न हों, जैसे अनेक प्रश्न चिह्न मैंने चिह्नित किए हैं। वास्तव में 'विकास' शब्द की उत्पत्ति इस आशय से है कि उक्त बातों पर हम कितना सफल हो चुके हैं और क्या कारण हुआ कि लक्ष्य की प्राप्ति में अवरुद्धता या असफल हुए। काम के कार्य-क्षेत्र सम्बन्धित पदाधिकारियों द्वारा ही से निर्वहन हुए या नहीं हुए, उक्त विकास शब्द का अभिप्राय यही होता है।

गहराई से विचार करने के बाद सरकार ने नया बीस सूत्री कार्यक्रम तैयार किया जिसकी घोषणा प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 14 जनवरी 1982 को राष्ट्र के नाम प्रसारित अपने संदेश में की। प्रधानमंत्री ने घोषणा की कि नए कार्यक्रम में सरकार निम्नलिखित काम करेगी--

1. सिंचाई की क्षमता में और वृद्धि की जाएगी, सूखी जमीन पर खेती से सम्बन्धित तकनीकी जानकारी तथा उपकरण आदि तैयार किए जाएँगे।
2. दालों और तिलहन का उत्पादन बढ़ाने के विशेष उपाय किए जाएँगे।
3. समन्वित ग्रामीण विकास तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों को मजबूत बनाया जाएगा।
4. कृषि-भूमि की हदबंदी की जाएगी।
5. खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दिलाने की कारगर व्यवस्था की जाएगी और इसकी समीक्षा की जाएगी।
6. बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास किया जाएगा।
7. अनुसूचित जातियों और जनजातियों की भलाई के कार्यक्रम और तेज किए जाएँगे।
8. पीने के पानी की कमी वाले सभी गाँवों में पानी उपलब्ध कराया जाएगा।
9. गाँवों में जिन परिवारों के मकान नहीं हैं, उन्हें मकान के लिए जमीन दी जाएगी।
10. तंग बस्तियों की सुधार की जाएगी।
11. बिजली उत्पादन बढ़ाई जाएगी। बिजली संस्थानों के काम-काज को बेहतर बनाया जाएगा और सभी गाँवों में बिजली पहुँचाई

जाएगी।

12. पेड़ लगाने के कार्यक्रमों, सामाजिक और कृषि, वृक्षारोपण कार्यक्रम तथा गोबर गैस व ऊर्जा के अन्य साधनों के विकास के कार्यक्रमों पर मुस्तैदी से अमल किया जाएगा।
13. परिवार योजना को स्वैच्छिक आधार पर जन-अभियान के रूप में चलाया जाएगा।
14. प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का काफी विस्तार किया जाएगा।
15. महिलाओं और बच्चों के कल्याण कार्यक्रमों तथा गर्भवती महिलाओं, माताओं, बच्चों, खासकर आदिवासी व पिछड़े इलाकों में रहनेवालों के लिए पौष्टिक आहार कार्यक्रम तेजी से लागू किए जाएँगे।
16. 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों, विशेषकर बालिकाओं के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विस्तार।
17. उचित दर की दुकानों की संख्या बढ़ाकर दूर-दराज के इलाकों में चलती-फिरती दुकानों की व्यवस्था करके, कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों व छात्रावास की दुकानें खोलकर, छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें और कापियाँ प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराया जाएगा।
18. पूँजी निवेश की प्रक्रियाओं को उदार बनाया जाएगा।
19. तस्करों, जमाखोरों और कर की चोरी करनेवालों के खिलाफ़ सख्त कार्रवाई की जाएगी।
20. सार्वजनिक क्षेत्रों के संसाधनों की कार्यकुशल क्षमता का उपयोग तथा आंतरिक साधन जुटाने की शक्ति बढ़ाकर उनकी कार्य-प्रणाली में सुधार लाया जाएगा।

उपर्युक्त योजनाओं से स्पष्ट होता है कि समाज के तमाम पहलुओं पर योजनाएँ बनी हैं। सरकार निरंतर इन योजनाओं के माध्यम से समाज कल्याण एवं राष्ट्र निर्माण के अनछुये पहलुओं पर नियमावली बनाती रही है। अत: हमने बीस सूत्री कार्यक्रम के माध्यम से एवं बिहार के तमाम जिलों में क्रियान्वयन हेतु प्रेरणा-स्त्रोत के रूप में आलेख प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची

1. नया बीस सूत्री कार्यक्रम, श्रीमती इंदिरा गाँधी, विज्ञान प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आकल्पित एवं प्रकाशित। मुद्रक-तेज प्रेस, नई दिल्ली, पृ. सं. 2, मई 1982
2. विकास के दो स्वर्णिम वर्ष, सैय्यद शहनवाज हुसैन, सांसद किशनगंज, 2001
3. श्री लालू प्रसाद यादव, माननीय मुख्यमंत्री, बिहार का बजट भाषण, 20 मार्च 1994-95
4. डॉ. बी. बी. भट्टाचार्या, नया बीस सूत्री कार्यक्रम, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011
5. राष्ट्रीय सद्भावना योजना, पत्रिका, प्रकाशन विभाग, 2016
6. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन निदेशालय, भारत सरकार, प्रगति रिपोर्ट 2014-15

बिहार के आदिवासी

मिन्टु कुमारी

पीएच.डी., बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

बिहार राज्य के दक्षिणी हिस्से में ही अधिकांश जनजातियों का निवास स्थान है। छोटानागपुर प्लेटो के रांची, गुमला, लोहरदगा, हजारीबाग, धनबाद, सिहंभूम, पलामू, संथालपरगना, गिरिडीह आदि में जनजातियों की संख्या पर्याप्त मात्रा में है। इनके अतिरिक्त सासाराम, भागलपुर, मुंगेर, पूर्णिया और चंपारण में भी जनजातियों का निवास है।

सांस्कृतिक दृष्टि से बिहार की जनजातियों में काफी अंतर पाया जाता है। इन में उराँव, मुंडा तथा संथाल जनजातियों को छोड़कर अन्य प्राय: सभी जन - जातियाँ अभी भी पिछड़ी हुई हैं। बिरहोर तथा पहाड़ी खड़िया जनजाति के लोग अभी जंगली पशुओं तथा फलों के माध्यम से ही अपना जीवन यापन करते हैं। असुर, कोरवा, सौरिया पहाड़िया आदि झूम की खेती करते हैं। ये लोग बंजारों की तरह कभी– कभी अपना स्थान बदलते हैं। परंतु मुंडा, उराँव, संथाल और हो आदि स्थायी तौर पर रहते हुए कृषि एवं पशुपालन में लगे हुए हैं। इन लोगों के अच्छे मकान तथा गांव हैं इनके समाज में अब हर प्रकार के पेशा वाले लोग प्रर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं।

परिचय

बिहार के भिन्न– भिन्न जनजातियों के अलग– अलग गांव है तथा अनेक गांव ऐसे भी है जहाँ अनेक जनजातियाँ एक साथ मिलकर रहते हैं और उनके साथ आर्य जाति के लोग भी विद्यमान हैं। विभिन्न जनजातियों के गांव भिन्न– भिन्न प्रकार के हैं। कुछ जनजातियाँ ऐसी है जो किसी अन्य जनजाति के साथ अपने मिश्रित नहीं कर पाती है। अत: पूर्णतया अलग रहने में ही विश्वास रखते हैं। ऐसी जनजातियों में विरहोर, विरजिया, माल– पहाड़िया आदि प्रमुख हैं। सच पूछा जाए तो ये जातियाँ अभी भी बंजारा जातियां ही है और अपनी आवश्यकता के अनुरूप उन्हें जहाँ जैसे सुविधा प्राप्त हो जाती है वहां अपना निवास स्थान बना लेती है। इनके गांव झोपड़ियों के बने होते हैं और उनमें केवल एक ही कोठरी होती है। यद्यपि आज सरकार ने इन्हें सुविधा संपन्न करने के लिए बहुत ही कल्याणकारी योजनाएं चला रखी हैं। फिर भी वे अपने को अन्य जनजातियों के साथ मिश्रित नहीं कर पाते हैं। बिहार के छोटानागपुर के पठारी क्षेत्र में अनेक ऐसे निवास स्थान बनाए गये हैं जिनमें इनके लिए हर प्रकार की सुविधा प्रदान की गई है फिर भी ये वहाँ नहीं रहते हैं।

दूसरी ओर उराँव, मुंडा, संथाल, हो आदि ऐसी जनजातियाँ हैं ओ स्थायी रूप से निवास करती हैं और आज ये राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जुड़ कर किसी भी अन्य जाति से कम नहीं है। इन जनजातियों के लोग प्रशासन, अध्यापन, राजनीति, इंजीनियरी, डॉक्टरी आदि सभी प्रमुख क्षेत्रों में अपने को योग्य सिद्ध कर रहे हैं। परंतु इनमें आर्य जातियों के ऊँच– नीच वाला दुर्गूण भी आने लगा है।

इन उन्नत जनजातियों का रहन– सहन भी अब काफी उन्नत हो गया है। गाँवों में भी अनेक उन्नत जनजातीय लोगों के माकन ईंट आदि के बने हुए हैं। परंतु अन्य लोगों के माकन मिट्टी के बने होने पर भी काफी विस्तृत एवं हवादार है। इनका गाँव दूर से देख कर ही के पहचाना जा सकता है।

उरांव

बिहार की जनजातियों में उराँव जनजाति एक प्रमुख जनजाति है। बिहार में 30 से भी अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं। जिनमें तीन – चार ही आज उन्नत अवस्था में हैं, उनमें संभवता: उराँव सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। बिहार की जनजातियों में संख्या के दृष्टिकोण से यद्यपि ये संथालों के बाद द्वितीय स्थान पर हैं परंतु जीवन स्तर तथा जागरूकता के दृष्टि से ये सर्वोपरि है। 1981 जनगणना अनुसार बिहार की जनजातियों की संख्या 58,10,867 है, उनमें उराँव जनजाति की संख्या 10,48,064 है।

उराँव जनजाति के लोग मुख्य रूप से छोटानागपुर के राँची, गुमला, लोहरदगा और सिंहभूम जिला में निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त पूर्णिया, सासाराम, पलामु, हजारीबाग आदि जिलों में भी छिटपुट रूप में उराँव लोग निवास करते हैं। यद्यपि उरांवों का मुख्य निवास स्थान बिहार है परंतु मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा के अतिरिक्त भारत के कुछ अन्य प्रान्तों में भी ये विद्यमान हैं। उराँव जनजाति के लोग जहाँ कहीं भी रहते है उनकी पहचान अलग से हो जाती है और वे लोग कुडूख भाषा का ही प्रयोग करते हैं। परंतु अब विभिन्न प्रजातियों तथा जातियों के साथ ये लोग मनुष्यों की तरह ही लगते थे परंतु जंगलों में निवास करते थे इस कारण इन्हें आर्यों ने बानर कहा होगा। ये लोग दक्षिण भारत के पर्वतीय अंचल में रहा करते थे और जंगली जानवरों को मारकर इससे अपना जीवन – यापन करते थे। विभिन्न स्थानों पर निवास करने के कारण इनकी बोलचाल की भाषा में परिवर्तन हो गया है और ये लोग वहां के निवासियों की अन्य भाषा को अपना भाषा के साथ सम्मिलित करके उसी का व्यवहार करते हैं। उदहारण के लिए पांचपरगना के अंतर्गत बुंडू, तमाड़, सिल्ली, ईचागढ़ और अड़की इन पांच परगनों में निवास करने वाले उराँव भी पंचपरगनिया भाषा का प्रयोग करते हैं।

उराँव राजनीति में, प्रशासन में, यांत्रिकी में, चिकित्सा, विज्ञान में तथा शिक्षा के क्षेत्र में उच्च पदों पर विद्यमान है।

असुर

असुर भारत में रहने वाली एक प्राचीन आदिवासी समुदाय है। असुर जनसंख्या का घनत्व मुख्यत: झारखण्ड और आंशिक रूप से पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में है। झारखंड में असुर मुख्य रूप से गुमला, लोहरदगा, पलामू और लातेहार जिलों में निवास करते हैं। असुर जनजाति के तीन उपवर्ग हैं– बीर असुर, विरजिया असुर एवं अगरिया असुर। बीर उपजाति के विभिन्न नाम हैं, जैसे सोल्का, युथरा, कोल,इत्यादि। विरजिया एक अलग आदिम जनजाति के रूप में अधिसूचित है।

आदिकाल से ही असुर जनजाति के लोग लौहकर्मी के रूप में विख्यात रहे हैं। इनका मुख्य पेशा लौह अयस्कों के माध्यम से लोहा गलाने का रहा है। पारंपरिक रूप से असुर जनजाति की आर्थिक व्यवस्था पूर्णत: लोहा गलाने और स्थानान्तरित कृषि पर निर्भर थी.

वर्तमान समय में झारखण्ड में रह रहे असुर समुदाय के लोग काफी परेशानियों का सामना कर रहे हैं। समुचित स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, परिवहन, पीने का पानी आदि जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी इन्हें उपलब्ध नहीं है।

बैगा

बैगा, भारत के मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड प्रदेशों में पायी जाने वाली जनजाति है। मध्य प्रदेश के मंडला डिंडोरी तथा बालाघाट जिलों में बैगा लोग बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं। बिझवार, नरोतिया, भरोतिया, नाहर, राय भैना और काढ़ भैना इनकी कुछ उपजातियाँ हैं। सन् १९८१ की जनगणना के अनुसार उनकी संख्या 248,949 थी।

बनजारा

यह एक और समूह है जिनकी संख्या तेजी से घट रही है। उनके गाँव पहाड़ियों और जंगलों के निकट स्थित है द्यवे कुशल बुनकर हैं और मैट, टोकरियाँ, ट्रे आदि जंगल के जंगली घास से बनते है। वे बच्चे के जन्म पर गांवों के आसपास प्रार्थना गाने के लिए भी जाते है।

खरवार

खरवारश्जनजाति भारतीय राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और छत्तीसगढ़ में पाई जाती है।झारखंड में खरवार की उपजातियां भोगता, खैरी, द्वालबन्दी, पटबन्दी पाए जाते हैं, जिनमें भोगता प्रमुख है।

खरवार की प्राथमिक पारंपरिक आर्थिक गतिविधि कृषि रही है। एक ही वार्षिक फसल और उपयक्त मौसम पर उनकी निर्भरता के कारण वे खुद को बनाए रखने के लिए वन गतिविधियों, पशुधन, मछली पकड़ने, शिकार और जाल के आधार पर काम में संलग्न होते हैं।

खोंड जनजाति

बिहार की खोंड जनजातियाँ मूल रूप से प्रोटो-एस्ट्रलॉइड जाति की हैं और इन्हें अनुसूचित जनजातियों में से एक माना जाता है। झारखंड, सिंगभूम, हजारीबाग इस आदिवासी समुदाय के निवास स्थान हैं। इतिहास के अनुसार, खोंड जनजाति ओडिशा से विस्थापित है और भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है। यह आदिवासी समुदाय भाषाई तौर पर एंस्त्रो-एशियाटिक परिवार से है। उनकी भाषा ृकुवि के नाम से जानी जाती है और यह द्रविड़ियन भाषा का एक प्रकार है।

खोंड एक आदिवासी जनजाति हैं। वे पहाड़ी खोंड या कुटिया और सादे आवास खोंड जैसे समूहों में विभाजित हैं। वे औषधीय पौधों के उपयोग को जानते हैं और पौधों के साथ रोगों का इलाज करते हैं। खोंड उन लोगों का एक समूह है जो लंबे हैं और आर्यन की कुछ विशेषताएं हैं। उन्हें मिश्रित द्रविड़ जाति माना जाता है। खोंड को हंसा, बेक, हेम्ब्रम, बेदिया आदि कुलों में बांटा गया है।

नर खोंड की वेशभूषा में धोती, गंजी और शर्ट शामिल हैं। महिलाओं की वेशभूषा में साड़ी और सलवार कमीज दुपट्टा शामिल है। खोंद महिलाओं की वेशभूषा में आभूषण एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। वे गर्दन, कान, उंगली, बाल, नाक, कलाई और पैरों में गहने पहनना पसंद करते हैं। आभूषण मूल रूप से कांस्य, शैल, सोना, पीतल, स्टील, निकल, बीज, धागा और सोने और पीतल की नकल से बने होते हैं।

खोंड्स एनिमेटेड धर्म का पालन करते हैं और वे लगभग अस्सी-तीन देवताओं की पूजा करते हैं।

निष्कर्ष

आज दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था का दर्जा भारत ने हासिल तो कर लिया है लेकिन अब भी एक तबका ऐसा है जो हाशिये पर है। इस तबके के अंतर्गत वे जनजातियाँ आती हैं जो सुदूरवर्ती इलाकों में जीवन यापन कर रही हैं और कई समस्याओं को झेल रही हैं।"

जनजातियाँ ऐसे इलाकों में निवास करती हैं जहाँ तक बुनियादी सुविधाओं की पहुँच न के बराबर है। लिहाजा ये बहुत सारी समस्याओं को झेल रही हैं।

ये आज भी सामाजिक संपर्क स्थापित करने में अपने-आप को सहज नहीं पाती हैं। इस कारण ये सामाजिक-सांस्कृतिक अलगाव, भूमि अलगाव, अस्पृश्यता की भावना महसूस करती हैं। इसी के साथ इनमें शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा पोषण संबंधी सुविधाओं से वंचन की स्थिति भी मिलती है।

आज भी जनजातीय समुदायों का एक बहुत बड़ा वर्ग निरक्षर है। सरकार की कौन-कौन सी योजनाएँ इन तबकों के लिये हैं इसकी जानकारी तक इनको नहीं हो पाती है जो इनके सामाजिक रूप से पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है।

आज भी जनजातियों के समुदाय का एक तबका ऐसा है जो दूसरों के घरों में काम कर अपना जीवनयापन कर रहा है।

सन्दर्भ

- Dube] Shyama CharanTribal Heritage of India] (Indian Institute of Advanced Study] Indian Council of Social Science Research] Anthropological Survey of India- Published by Vikas Pub- House] 1977)- ISBN 0&7069&0531&8-
- Elst] Koenraad- Who is a Hindu\ (2001) ISBN 81&85990&74&3
- Lal] K- S- (1995)- Growth of Scheduled Tribes and Castes in Medieval India- ISBN 9788186471036
- Russell] R- V-] The Tribes and Castes of the Central Provinces of India] London] 1916-
- Radhakanta Barik (2006)] Land and Caste Politics in Bihar] Shipra Publications] ISBN 978&81&7541&305&4]
- Surajit Sinha] Centre for Studies in Social Sciences (1987)] Tribal polities and state systems in pre&colonial eastern and north eastern India] K-P- Bagchi & Co-] ISBN 978&81&7074&014&8

ग़ज़ल का अभिप्राय एवं परिभाषा

रेशमा मोहन काम्बले

Research Scholar, Dept. Of Hindi, Sathaye College, Mumbai University

भारतीय काव्य-जगत्त एवं संगीत जगत को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली रचना 'ग़ज़ल' है। ग़ज़ल के साहित्यिक पक्ष के सन्दर्भ में अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएँ दी है। सामान्यत:रू ग़ज़ल को हुस्न, इश्क़ और जवानी का हाल बयान करने की अभिव्यक्ति का माध्यम कहा जाता रहा है।

ग़ज़ल को प्रेयसी (प्रेमिका) से बातचीत करने तथा उसके नखु-शिख का वर्णन करने का साधन भी कहा जाता रहा है। ग़ज़ल का अर्थ "कातने-बुनने" से भी लिया गया है। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति 'ग़ज़ल' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'हरिण'। ग़ज़ल के सन्दर्भ में विभिन्न साहित्यकारों एवं शायरों ने अपने विचार प्रकट किये है-

"ग़ज़ल' को जवानी का हाल बयान करने वाली और माशूक की संगति व इश्क का जिक्र करने वाली अभिव्यक्ति कहा गया है"।[1]

"ग़ज़ल मूलत: फारसी भाषा की काव्य-गत शैली है तथा इसमें प्रणय-प्रधान गीतों का समावेश होता है, तथा महोब्बत के जज्बातों की अभिव्यक्ति है"।[2]

"ग़ज़ल का अर्थ इश्किया अशआर कहना और औरतों का वर्णन करना है"।[3]

"ग़ज़ल महबूब से बातचीत करने को कहते हैं"।[4]

"अरबी-फारसी की परम्पराओं को मान्यता देने वाले ग़ज़ल को 'सुख़न-ब-ज़ना' अर्थात औरतों के बारे में बात करना या आशिक-माशूक की बातचीत मानते हैं"।[5]

"अरबी में ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ कातना-बूनना होता है। ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति 'ग़ज़ल' से भी स्वीकारी जाती है, जिसका अर्थ 'हरिण' होता है और इसके आघार पर ग़ज़ल को हरिण की चौकड़ी की तरह प्रेम व्यापार की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी कहा गया है"।[6]

"ग़ज़ल के इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो यह ज्ञात होता है कि अरबी भाषा में 'क़सीदा' काव्य की एक विधा थी जो किसी की प्रशंसा से सम्बन्धित काव्य रचना होती थी। कसीदे के प्रारम्भ में चार-पाँच शेर कहे जाते थे जिसे 'नसीब' या 'तश्बीब' कहते थे। कसीदे की यही तश्बीब आरम्भ में गुजल के रूप में स्वीकारी जाती थी। अरबी साहित्य में ग़ज़ल का स्वतन्त्र स्थान नहीं था। अरबी साहित्य से जब यह विधा फारसी काव्य विधा में आई तो इसने अपना स्वतन्त्र रूप ग्रहण किया"।'

'ग़ज़ल' अरबी माषा का शब्द है। इसका सामान्य अर्थ होता है प्रेमिका से बातचीत या गुफ्तगु करना। लेकिन यह देखकर तअज्जुब होता है कि ग़ज़ल अरब में नहीं लिखी गई द्य यह लफ्ज ईरान में आया और वहाँ से गृजल की रवायत शुरू हुई।

अधिकांश विद्वान लोग 'ग़ज़ल' को फारसी शब्द की उपज मानते हैँ। "फारसी में ग़ज़ल का प्रथम प्रमुख शायर 'रोदकी' या जिसने ग़ज़ल पर खास ध्यान दिया और अब से लगभग एक हजार वर्ष पहले ईरान में गुजल को एक

गौरवशाली स्थान दिलवाया"।[7] ग़ज़ल की पैदाईश फारस के लोक-संगीत से हुई और यहाँ से इसका प्रसार अरब, मिश्र तथा भारत आदि देशों में हुआ। "ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ मुहब्बत के जज्बात व्यक्त करना है। अच्छी ग़ज़ल वह है जिसमें इश्क़-ओ-महोब्बत की बात सच्चाई तथा असर के साथ जाहिर की जाती है। ग़ज़ल की प्रभावात्मकता उसके भाव और भाव-प्रदर्शन की शैली में है"।[8]

ग़ज़ल में इश्किया अशआर कहना तथा औरतों का वर्णन विशेष सक्रिय रहता है। ग़ज़ल की कविता में वस्ल (मिलना) फिराक (जुदाई) इश्क (प्रेम) इश्तयाक़ (चाहत) हसरत (कामना) यास (निराशा) का वर्णन रहता है। ग़ज़ल की भाषा यद्यपि उर्दू तथा फारसी रहती हैं और आजकल उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा में ग़ज़ल कहने का रिवाज हो गया है तथापि इसमें साहित्य तथा संगीत का समान रूप से प्रयोग पाया जाता है।

ग़ज़ल सर्वप्रथम ईरान और तुर्कीस्तान आदि देशों में प्रचलित थी। भारत में यह तुर्की आक्रमणकारियों के साथ आयी और अपने विशिष्ट गुणों के कारण मारतवासियों में भी अत्यन्त प्रचलित हो गई। भारत में ग़ज़ल को प्रतिष्ठित करने में खिलजी और तुगलक साम्राज्य के राजकवि अमीर खुसरो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

ग़ज़ल को व्यापकता प्रदान करने में और उसे नया आयाम देने में मीर, गालिब, ईकबाल, फिराक, दुष्यन्त कुमार आतिश, अहमद फ़ाज, फैज अहमद फैज, नासिर काजुमी आदि शायरों का बहुत योगदान रहा है। इन्हीं सब और ऐसे कई अन्य शायरों के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप उर्दू-काव्य जगत में और इससे भी आगे कहा जाऐ तो काव्य जगत में ग़ज़ल एक ऐसी शैली बनकर उमरी है जो अपने ढंग और स्वरूप में अन्य काव्य-विधाओं से कहीं आगे और निराली नजर आती है। इसका प्रमाव व्यापक और अनोखा दिखाई पड़ता है। ग़ज़ल इश्क और जवानी को लेकर लिखी जाती है। महबूब का सौन्दर्य इसकी प्रेरणा शक्ति हैं। यह कवि के अन्तर्मन की आवाज है। ग़ज़ल एक अन्तर्मुखी काव्य रचना है। इसमें कवि अचन्तर्मन का विश्लेषण और विवेचन करता है। वह अपने व्यक्तित्व को ही अभिव्यक्ति देता है। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर जीवन के कड़वे-मीठे अनुमव ही होता है। ग़ज़ल एक शीतल लहर मी है और चिंगारी भी है। यह अधिकांश यथार्थ पर ही टिकी होती है।

"'ग़ज़ल' मानवीय संवेदनाओं से ही ओत-प्रोत होती है। इसमें कल्पना की पूर्ण उड़ान भी रहती है। परन्तु कह स्वाभाविक-सहज और प्रभावशाली होनी चाहिए। इस त्तरह हम कह सकते हैं कि ग़ज़ल यथार्थ पर खड़ी होकर कल्पना और स्वपनों के संसार में विचरन करती रहती है। यह खुशबू मी है और खुशी भी। यह दर्द भी है और आनन्द भी। वास्तव में यह कवि के हृदय का, जीवन का वह दर्पण है जिससे कवि कभी भाग नहीं सकता। ग़ज़ल मानवीय हृदय से ही फूटती है और सबसे अधिक उसे ही प्रभावित करती है, कवि का चिन्तन, मनन, अध्ययन, अनुभव और रूचियाँ ही इसमें वाणी पा जाती है"।[9]

1.2 ग़ज़ल का साहित्यिक प्रादूर्भाव एवं विकास

भारत एक ऐसा देश रहा है जिसमें अति-प्राचीनकाल से विभिन्न जातियाँ आती जाती रही है। इन जातियों में से कुछ यहीं घुलमिल गई और यहीं होकर रह गई। जब किसी देश में बाहर की जातियों का विलय होता है तो यह निश्चित है कि इस विलय की प्रक्रिया में एक दूसरे की संस्कृति का

आदान-प्रदान होता है, जिसके फलस्वरूप एक नई संस्कृति जन्म लेती है। इस विलय की प्रक्रिया में एक-दूसरे की कुछ मान्यताओं को स्वींकारा भी जाता है तथा कुछ मान्यताओं को अस्वीकारा भी जाता है। आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया में साहित्य, संगीत, स्थापत्य, कला एवं संस्कृति का प्रभाव भी एक दूसरे पर अवश्य होता है।

"जब 12वीं शताब्दी में तुर्क सुल्तानों का शासन स्थापित हो गया तो उसके साथ ही एक-दूसरे की संस्कृति में भी समन्वय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। भाषा के नाम पर तुर्क अपने साथ 'फ़ारसी' भाषा एवं काव्य विधा के रूप में 'कसीदा', 'मसनवी' और 'ग़ज़ल' की विरासत साथ लाए थे"।[10]

"13वीं शताब्दी काल में अमीर खुसरों ने न सिर्फ फारसी ग़ज़ल वरन् हिन्दवी गृजल कहने का भी एक खास अन्दाज पैदा किया। उनकी (अमीर खुसरो) ग़ज़ल जबान की शीरींनी और दिल से दिल की बात कहने में इतनी मोअस्सर थी की सिर्फ 'रोदकी' और 'सादी' इस दर्जे तक पहुँच सकते थे, लेकिन उन्होंने उसमें एक और चीज का इजाफा किया और वो ये के अपनी ग़ज़लों में मौसीकी (संगीत) का रंग दिया"।[11]

"अमीर खुसरो ने फारसी और हिन्दुस्तानी बोलियों को समीप लाने के लिए जो क्रान्तिकारी प्रयत्न किया था उसकी परम्परा आगे के युगों में तेज गति से नहीं बढ़ पाई। परन्तु जब दक्षिण में स्थानीय सल्तनतें स्थापित हुई तो वहाँ जिस भाषा का विकास हुआ वह 'दकनी' कहलाई। दकनी भाषा के शायरों ने अपनी ग़ज़ल में हिन्दुस्तानी वातावरण के स्वरूप को सफलतापूर्वक उभारा। जब दक्षिण

में दकनी गुजल अपनी बाल्यावस्था में थी, उस समय उत्तरी भारत में फ़ारसी ग़ज़ल का अधिक प्रचलन था। उर्दू-ग़ज़ल के जो प्रमुख शायर हुए उनके नाम है मोहम्मद कुली, कुतुब शाह, व नुसरती ग़न्वासी इत्यादि"।[12]

"17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब औरंग़ज़ैब ने गोलकुण्डा एवं बीजापुर की सलतनतों को अपने अधीन कर लिया तो दक्षिण में औरंगाबाद, उत्तरी भारत की उर्दू और दक्षिण की दकनी उर्दू का मिलन स्थल हो गया। औरंगाबाद में 'वली' (1668.1744) जो उर्दू ग़ज़ल के पितामाह माने गए। 1700 एवं 1722 के मध्य दिल्ली गए एवं उन्होंने उत्तर की उर्दू को अपनाया।इस प्रकार ये प्राचीन दकनी और नई उर्दू को जोड़ने वाली कड़ी बन गए और इन्होंने एक ऐतिहासिक कार्य किया। 'वली' ही उर्दू ग़ज़ल के युग-प्रवर्तक शायर हुए हैं, जिसने सबसे पहले दकनी और उत्तर भारत की साहित्यिक परम्पराओं का समन्वय कर उन्हें एक धागे में पिरोया। वली ने फारसी भाषा के कवियों का मुँह फारसी से हटाकर उर्दू की और मोड़ा"।

"18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिल्ली एवं दिल्ली के आसपास उर्दू ग़ज़ल के कई शायर हुए जिनमें सबसे उल्लेखनीय 'सिराजुदीन आरजू' (1689.1756) हुए जिन्होंने फारसी शायर 'वेदिल' की परम्पराओं को उर्दू में सम्मिलित किया। इसके अतिरिक्त इस युग के प्रमुख उर्दू ग़ज़ल के शायरों में अब्दुल हई तांबा, मजहर जाने जाना व हातिम इत्यादि प्रमुख शायर हुए। इस पिढ़ी के बाद जो शायर हुए वो ग़ज़ल के आकाश में चाँद-सितारों की तरह जगमगाए। इनमें प्रमुख हैं, ख्वाजा मीर दर्द (1721.1785), मिर्जा महम्मद रफी सौदा (1706. 1781), और मीर तकी मीर (1722.1810)"।[13]

मीर तकी मीर इस युग के सबसे बड़े ग़ज़लगो शायर हुए थे। "मीर की इश्किया शायरी में उस नाकामी और मेहरूमी का एहसास मौजूद है लेकिन जब उस पर तारीखी माहौल की छूट पड़ जाती है तो उससे जिंदगी के अनासिर चौंक उठते है। मीर जब अपनी खूँ अफ़्शानी दामन पर गुलकारिया करता है तो उसकी कला बुलन्द-तरीन मकाम पर पहुँच जाती है"।[14] इसी युग में मुशायरों का चलन भी प्रचलित हुआ।

"19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिल्ली फिर उर्दू ग़ज़ल का प्रमुख केन्द्र बनी। इस युग के उल्लेखनीय शायर शाह नसीर (1835 मृत्यु) जौक (1778. 1854), गालिब (1796.1869), मोमीन (1800.1851), तथा बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र (1837.1868) हुए। यह दौर उर्दू शायरी का सुनहरी दौर कहलाया"।[15]

"जौक" ने ज़बान की सफाई पर ज्यादा ध्यान दिया। इस प्रकार वे नासिख की परम्परा के शायर कहे जा सकते हैं। 'मोमीन' की ग़ज़ल इश्क की वारदात तक सीमित रही। मोमीन ने ग़ज़ल के दायरे को तग़्ज़ुल तक महदूद रखा। मोमीन ने इश्कु-ए-मिजाजी को अपना मैदान बनाया और इस मैदान को कभी छोड़ना पसन्द नहीं किया"।[16]

"मीर तकी मीर के बाद 'गालिब' उर्दू-साहित्य का एक ऐसा प्रकाश स्तम्भ है जिसकी ग़ज़ल ने उर्दू ग़ज़ल को एक नए आयाम से परिचित करवाया। 'गालिब' की ग़ज़ल न सिर्फ अश्क और आशिकी तक सीमित रही बल्कि उसमें जीवन की छोटी से छोटी अनुभूतियों के अतिरिक्त जीवन की बड़ी से बड़ी घटनाओं का उल्लेख बड़े दार्शनिक अन्दाज में किया गया है"।[17]

गालिब की कविता के हृदय की महीन से महीन तरंग का ऐसा स्पष्ट दर्शन मिलता है कि तबीयत फड़क उठती है। इनके शेरों की भाषा उत्प्रेक्षा, शब्द विन्यास और उपमाऐं एक से एक निराली है"।[18]

बहादुरशाह ज़फ़र के उस्ताद 'ज़ौक' थे। अन्तिम समय की जो ग़ज़लें इनकी लिखी हुई है उनमें अपने वतन की महोब्बत का एवं अपने निजी जीवन की वेदना का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है।

"गालिब के बाद परम्परावादी शैली में ग़ज़ल कहने वाले दो प्रमुख शायर 'अमीर मीनाई' (1828.1900) तथा मिर्जा दाग देहलवी (1831.1905) हुए हैं। इन दोनों शायरों ने ग़ज़ल की भाषा को माँजने व संवारने का उल्लेखनीय कार्य किया है"।[19]

"20वीं शताब्दी में उर्दू के महान ग़ज़लगों शायर मोहम्मद ईकबाल (1874.1938) हुए। प्रमुख रूप से ये उर्दू की नई नज्म के युग-प्रवर्तक शायर थे परन्तु इन्होंने उर्दू ग़ज़ल को दर्शन की नई राहों से भी परिचित कराया। ईकबाल के समकालीन ही उर्दू ग़ज़ल के प्रमुख शायरों में फानी बदायूँनी, असगर गॉडवी, हसरत मोहानी, जिगर मुरादाबादी और यगाना चंगेजी ग़ज़ल के उल्लेखनीय शायर हुए। 'फानी' ने गम की वादी में पनाह दूँडी। 'असगर' ने अपनी ग़ज़ल का मुख्य विषय तसव्वुफ को अपनाया। 'हसरत मोहानी' ने गुजल को घर आँगन के वातावरण से परिचित कराया और 'जिगर मुरादाबादी' ने इश्क के जज्बात को एक नई तरंग के साथ अपनी ग़ज़लों में समोया "।[20]

"इन शायरों के समकालीन ग़ज़ल के एक प्रमुख शायर का उल्लेख किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इनका नाम 'रघुपति सहाय' एवं अपनाम 'फिराक गोरखपुरी' है। इनकी खूबी यह है कि इन्होंने एहसास-ए-जुमाल को जीवन और कायनात को समझने के लिए एक मूल्य के रूप में इस्तेमाल किया"।[21]

इस प्रकार उर्दू ग़ज़ल ने अपना प्रारम्भिक सफर 13वीं शताब्दी से प्रारम्भ किया और 20वीं शताब्दी से होती हुई 21वीं शताब्दी तक दस्तक दे रही है। ग़ज़ल का यह लम्बा सफर कभी भी उबाने वाला या थकाने वाला नहीं रहा। आधुनिक दौर के शायरों में मुईन अहसन ज़ज्बी, मजरूह सुल्तानपुरी, फैज अहमद फैज, हफीज जालन्धरी, फुतील शिफाई, सैफूदीन सैफ, जाँ निसार अख्तर, एहसान दानिश, अब्दुल हमीद अदम, बशीर बद्र, निदा फाजली, केसर-उल-जाफुरी, शहरयार व मुम्ताज राशीद इत्यादि के नाम प्रमुख है। हर युग की जरूरतों को ग़ज़ल ने ऐसे दिलनशीं अन्दाज में अपने आप में समोया है कि वह हर दौर की पहचान और आवाज बन गई तथा हर दौर में हर मज़हब और हर प्रान्त के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती रही। पूरी सम्भावना हैं कि आने वाली सदियों में भी ग़ज़ल इसी तरह नई ताजगी के साथ लोकप्रिय होती रहेगी।

संदर्भ

1. रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, माग-चार, 1955, पृष्ठ-37
2. डॉ. श0 श्री परांजये, संगीत ग़ज़ल अंक, 1978 पृष्ठ-7
3. अयोध्या प्रसाद गोयलीय, शेर-ओ-शायरी, 1948 पृष्ठ-356
4. फिराक गोरखपूरी, कामरूप, 1960 पृष्ठ-1
5. ग़ज़ल, एक नजरिया, पत्रिका, मार्च, 1987 पृष्ठ-5
6. कुमार विजय ठाकुर, संगीत गृजुल अंक, 1967 पृष्ठ-21
7. नदीम, उर्दू कविता और छंद शास्त्र, 1999 पृष्ठ-23
8. अब्दुल अहमद खाँ ख़लील, उर्दू ग़ज़ल के पच्चास साल, 1987 पृष्ठ-1.5
9. संगीत कार्यालय, हाथरस-संगीत ग़ज़ल, अंक, 1967 पृष्ठ-7
10. नरेश नदीम, उर्दू कविता और छन्द शास्त्र, 1999 पृष्ठ-5
11. प्रेम भण्डारी, हिन्दुस्तानी संगीत में ग़ज़ल गायकी, 1989 पृ 0-9
12. प्रो0 अमीरहसन आवदी, अमीर खुसरों ओर सबक़-ए-हिन्दी, (खुसरों शनासी 1975). पृष्ठ-192
13. डॉ. कामिल कुरैशी, उर्दू ग़ज़ल,1987 पृष्ठ-37
14. अयोध्या प्रसाद गोयलीय, शेर-ओ-शायरी, 1948 पृष्ठ-35
15. प्रेम भण्डारी, हिन्दुस्तानी संगीत में ग़ज़ल गायकी,1989 पृष्ठ-13
16. ख़ावाजा अहमद फारूकी, उर्दू ग़ज़ल, 1987. पृष्ठ-95
17. प्रेम भण्डारी, हिन्दुस्तानी संगीत में गुजल-गायकी, 1989 पृष्ठ-15
18. प्रो. जहीर अहमद सिद्दीकी, उर्दू ग़ज़ल,1987 पृष्ठ-183
19. राम नरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, 1955 पृष्ठ-384
20. वहीं, पृष्ठ-384
21. डॉ. मुगनी तब्बसुम-जदीद उर्दू ग़ज़ल (पत्रिका), 1977 पृष्ठ 53
22. जगन्नाथ आजाद, हाली, उर्दू ग़ज़ल, 1987 पृष्ठ-248
23. प्रेम भण्डारी, हिन्दुस्तानी संगीत में ग़ज़ल-गायकी, 1989 पृष्ठ-17

बिहार में उभरता हुआ राष्ट्रवाद एवं पत्रकारिता

डॉ० मुकुल कुमार शर्मा

पीएच. डी. (इतिहास), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

1912 में बिहार का निर्माण उड़ीसा के साथ एक पृथक प्रांत के रूप में हुआ। इससे पूर्व बिहार बंगाल का एक अंग था और कलकत्ता पूरे भारत की राजधानी थी। अत: समस्त उत्तर भारत के हिंदी-भाषी व्यवसायी इस नगर में केंद्रित थे। उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक तक कलकत्ता उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र भी सारे उत्तर भारत में व्याप्त था। कलकत्ता विश्वविद्यालय तो तत्कालीन युग के प्राय: अंत तक इस समग्र भू-भाग का एकमात्र विश्वविद्यालय था। इन कारणों से हिन्दी-भाषियों का लगााव कलकत्ता से लगभग अठारहवीं शताब्दी से रहा। फलत: बिहार की हिंदी पत्रकारिता का आरंभ कलकत्ता में ही हुआ।

भारत में हिंदी का सबसे प्राचीन पत्र 'उदंत मार्तड' माना जाता है जो 30 मई 1826 को साप्ताहिक के रूप में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। 4 दिसम्बर 1827 को आर्थिक संकट के कारण यह बंद कर दिया गया। तथापि 'उदंत मार्तड' की असफलता से पंडित युगल किशोर शुक्ल हतोत्साहित नहीं हुए और 1850-51 में उन्होंने 'साम्यदंत मार्तड' पत्रिका का प्रकाशन किया। इससे पूर्व राजा राममोहन राय द्वारा प्रकाशित 'बंगदूत', जिसका प्रकाशन 10 मई 1829 को आरंभ हुआ था, में बंगला तथा फारसी के अतिरिक्त हिंदी के भी कुछ स्तंभ रहते थे। श्री श्यामसुंदर सेन के संपादकत्व में जून 1854 में हिंदी दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' प्रकाशित हुआ। बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता में उपलब्ध इसके एक अंक से ज्ञात होता है कि यह पत्र 1868 तक चला।[1]

सन् 1857 के स्वातंत्र्य-संग्राम ने पत्रकारिता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अंग्रेजी शासन के विरूद्ध जो विद्रोह हुए उनकी जानकारी के लिए हिंदी - भाषी क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से उत्सुकता बढ़ी, क्योंकि आरंभिक विद्रोह के प्राय: सभी केन्द्र वहीं स्थित थे। उस समय के समाज सुधारकों में दयानंद सरस्वती तथा केशवचन्द्र सेन ने सोचा कि हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से जनसाधारण तक स्वतंत्रता का संदेश प्रभावी ढ़ंग से पहुंचाया जा सकता है। अत: हिन्दी पत्रों को उन्होंने भी महत्वपूर्ण प्रोत्साहन दिया।

उस युग के विख्यात साप्ताहिक 'बिहार बंधु' का प्रकाशन, 1872 में कलकत्ता से आरंभ हुआ। पं. केशवराम भट्ट इसके संस्थापक - संपादक थे। ये मूलत: बिहार शरीफ के थे, लेकिन कलकत्ते में बस गये थे। कुछ समय तक इस पत्र का संपादन मुंशी हसन अली नामक सज्जन ने किया, जो पं. केशवराम भट्ट के सहयोगी थे। 1874 में इस पत्र का अपना मुद्रणालय पटना में बना और उसी वर्ष इसका प्रकाशन वहां से होने लगा। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. जार्ज ग्रियर्सन उन दिनों पटना में ही रहते थे। उन्होंने इस पत्र का काफी उत्साहित किया। 1876 तक इसके सभी प्रमुख लेख तथा स्तंभ केशवराम भट्ट स्वंय लिखते रहे। उनके पश्चात् पं. दामोदर सप्रे उसके संपादक हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में इसका प्रकाशन स्थगित हो गया। किन्तु 1903 में पं. शिवनंदन त्रिपाठी के प्रयास से यह पुन: निकला। राज्य के बाहर से प्रकाशित होने वाले हिंदी पत्रों से 'बिहार बंधु' की प्रतियोगिता बनी रहती थी। संभवत: इसी कारण कुछ वर्षों तक इसका प्रकाशन बंद रहा। किंतु यह निंविवाद है कि विशुद्ध रूप से बिहार का प्रथम हिंदी पत्र यही था। देवनागरी लिपी में हिंदी का प्रचार इसका प्रमुख उद्देश्य था। इसके माध्यम से हिंदी पत्रकारिता को प्रबल प्रश्रय मिला। अनेक व्यक्तियों को इसने अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर दिया, जिनमें संर्वश्री दामोदर शास्त्री सप्रे, महेशनारायण, श्यामबिहारी मिश्र, गिरजा कुमार घोष, बालमुकुंद गुप्त, अंबिकादत्त व्यास, रघुवीर नारायण, अक्षयवट मिश्र, विप्रचंद्र, पारसनाथ त्रिपाठी, विश्वेश्वर दत्त मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं। हिंदी को जनसाधारण तक पहुँचाने में इस पत्र की भूमिका महत्वपूर्ण रही है तथा सांप्रदायिक सद्भावना बढ़ाने में इनका बड़ा योगदान रहा है। बिहार के न्यायालयों में उर्दू के स्थान पर हिंदी को चलवाने में इसे पर्याप्त सफलता

मिली। कालांतर में तत्कालीन प्रशासन की आलोचना करने के कारण इसे सरकारी अनुदानों से वंचित कर दिया गया। वित्तीय संकट के कारण अंत में इसे सदा के लिए बंद होना पड़ा।[2]

श्री रामजी मिश्र 'मनोहर' की राय है कि वास्तव में 'बिहार बंधु' का प्रकाशन 1873 में कलकत्ता के 79, मणिकतल्ला स्ट्रीट से शुरू हुआ। 'बिहार बंधु' में प्रार्थना शीर्षक संपादकीय टिप्पणी प्रकाशित हुई थी, जिसके देखने से इस बात की पुष्टि होती है। वह प्रार्थना इस प्रकार है– "हे सारे जहाँ के मालिक! छोटे को बड़ा करने वाले! कम अकल को अकल देने वाले! सब बातों को जानने वाले! तुमसे हमारी यही प्रार्थना है कि जिस तरह से हम तेरी कृपा की लाठी को ठेगते हुए बराबर एक वर्ष तक चले आये। वैसे ही आगे भी चलें। अपने काम को नेकनियति के साथ करें और अपने पढ़ने वालों के काम आवें।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण से यह साफ जाहिर होता है कि 'बिहार - बंधु' का जन्म कलकत्ता में मार्च 1873 में हुआ और यह लगातार अर्द्ध - शताब्दी तक बड़ी निर्भीकता और निष्ठा से हिंदी भाषा, बिहारियों तथा देशवासियों की सेवा करता रहा। उस समय इसका स्थान देश के प्रमुख पत्रों में था और प्राय: प्रमुख स्थानों में इसके प्रतिनिधि भी थे। 'बिहार - बंधु' का अपना प्रेस नहीं था। कलकत्ते में छपने के कारण प्रूफ की भी बहुत अशुद्धियाँ रह जाया करती थी। इसलिए 1874 में इसका कार्यालय पटना चला गया और 1875 में इसका अपना प्रेस 'बिहार बंधु' यंत्रालय - चौहऋा, बांकीपुर पटना में स्थापित हुआ और 9 फरवरी 1875 से इसका मुद्रण और प्रकाशन भी इसी प्रेस में होने लगा। इसके मुद्रक थे श्री यदुनाथ राय। संचालन का भार श्री केशवराम भट्ट पर सौंपा गया। जो बाद में इसके संपादक भी हुए। उस समय हिंदी में कंपोजीटरों का भी बड़ा अभाव था। इसलिए श्री केशवराम भट्ट तथा उनके परिवार वालों ने स्वंय कपोजिंग तथा प्रेस के अन्य कार्य सीखे और इस प्रकार उनके संपूर्ण परिवार ने 'बिहार बंधु' के प्रकाशन यज्ञ में योगदान किया। उसके प्रवर्तक पं. मदनमोहन भट्ट बिहार प्रांत के पटना जिले के (अब नालंदा जिला) बिहार शरीफ नगर के निवासी थे। वे मूलत: महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे, जिनके पूर्वज यहां आकार बस गये थे। उन्होंने 'बिहार बंधु' की जिम्मेवारी अपने मित्र मुंशी हसन अली तथा अनुज श्री केशवराम भट्ट पर सौंपी। श्री केशवराम भट्ट उस समय बिहार शरीफ में ही एक स्कूल में शिक्षक थे। बाद में इसे राजा दरभंगा, डुमरांव तथा हथुआ का भी विभिन्न रूपों में सहयोग प्राप्त हुआ। अनेक उतार - चढ़ाव देखने के बाद 1915 में यह बंद हो गया। परंतु डा. विश्वेश्वर दत्त मिश्र तथा पाठक प्रमोदशरण शर्मा के अन्यतम प्रयास से 1922 की 21 मार्च से इसका प्रकाशन पुन: पटना सिटी से आरम्भ हुआ। डा. विश्वेश्वर दत्त मिश्र (श्री रामजी मिश्र 'मनोहर' के पिता) के काली स्थान स्थित निवास - स्थान पर इसका कार्यालय था और 'सत्य सुधाकर प्रेस' चौक में यह छपता था। संपादक थे स्वर्गीय पाठक प्रमोदशरण शर्मा। बाद में 'बंधु' ने अपना प्रेस खरीद लिया, जिसका नाम पड़ा 'कल्पलता प्रेस' और फिर 24 जनवरी 1923 से इसका प्रकाशन पटना सिटी के बदले पाठकजी के निवास स्थान पटना सिटी से पन्द्रह किलोमीटर दूर फतुहा से होने लगा। इसके बाद पाठकजी के जेल चले जाने पर यह पत्र अकाल ही काल - कवलित हो गया। इसके संपादकों में सर्वश्री मुंशी हसल अली, श्री केशवराम भट्ट, श्री साधोराम भट्ट, श्री नंदकुमार देव शर्मा, पंडित दामोदर शास्त्री सप्रे, श्री गोपालराम गहमरी, पंडित शिवनंदन त्रिपाठी, श्री गोवर्धन लाल गोस्वामी, श्री कमलाप्रसाद वर्मा, पाठक प्रमोदशरण शर्मा आदि के नाम प्रमुख हैं।[4]

1857 के कीर्ति के बाद प्रकाशित पत्रों की चर्चा करते हुए बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है कि "प्रथम समय के पत्र एक तो ठीक समय पर बहुत कम निकल पाते थे। कुछ-न-कुछ कारण उनके विलम्ब से निकलने के हो जाते थे। दूसरे उनको बहुत ग्राहक भी नहीं मिले और इसी से उनमें से अधिक बहुत दिन ठहर न सके। दूसरे समय के पत्रों ने यह त्रुटियाँ दूर करने की चेष्टा की और कुछ सफलता भी उनको प्राप्त हुई।"[5] स्मरणीय है कि 1857 के बाद के जातीय उन्नयन के प्रयत्नों का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ था कि देश-दशा और सरकारी रीति-नीति के बारे में अधिकाधिक जानने और अनभिज्ञता रखने की उत्सुकता लोगों में उत्पन्न हो गयी थी। पत्रों की ओर लोगों का झुकाव धीरे-धीरे बढ़ रहा था। चाहे स्वंय न पढ़ें लेकिन समाचार पत्रों में छपी खबरों को लोग जानने के इच्छुक हो चले थे। इस झुकाव का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पत्र-प्रकाशन पर पाठक की हैसियत से लोग प्रतिक्रिया प्रकट करने लगे थे और सम्पादक के नाम पत्र लिखकर बधाई देने लगे थे। किन्तु यह सामान्य स्थिति नहीं थी, इस प्रकार के पाठकों की संख्या न्यून थी और पत्रों के ऐसे ग्राहक भी थे जो ग्राहक होकर भी पत्र स्वंय नहीं पढ़ते थे बल्कि सम्पादक को स्वंय उनके पास जाकर पढ़कर सुनाना पड़ता था। इसी शर्त पर वे ग्राहक बनते थें। 'भारत मित्र' की चर्चा करते हुए सम्पादकाचार्य पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि "उन दिनों हिन्दी पाठक बहुत कम थे, इसलिए ग्राहक तो लोग बन जाते थे पर पत्र पढ़

नहीं सकते थे। यह समस्या इस तरह हल की गयी कि पं. दुर्गाप्रसाद कई गद्दियों में जाकर 'भारत मित्र' पढ़कर सुना आया करते थे।"[6] यह उस युग के पत्रकारों की निष्ठा और आदर्शवाद का प्रतिमान है। सरकारी दमन नीति के बावजूद इन पत्रों में राष्ट्रवाद की झलक मिलती है। 1878 के वर्नाकुलर प्रेस एक्ट के अनुकूल प्रतिक्रिया यह थी कि इस युग के पत्रों में स्वाधीनता और अस्तित्व-प्रतिष्ठा की आकांक्षा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगी। इस युग के पत्रों में पहली बार सरकारी अनौचित्य की आलोचना दिखाई पड़ी और युग के पत्रों ने पहली बार उग्र राष्ट्रीयता का पक्ष समर्थन किया। उपरोक्त देशज भाषायी पत्र-पत्रिकाओं ने बिहारी जन मानस में राष्ट्रीय चेतना का विकास किया।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम - संपादक डॉ. वेद प्रताप वैदिक.
2. कलकत्ता स्थित राष्ट्रीय पुस्तकालय में इसकी एक फाइल उपलब्ध है। इससे ज्ञात होता है कि यह पत्र निर्बाध रूप से 1915 तक प्रकाशित होता रहा। देवनागरी लिपि के प्रसार में यह काफी सहायक सिद्ध हुआ.
3. बिहार बंधु - 1 मार्च 1874, पृष्ठ 6
4. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम - भाग 1, संपादक डॉ. वेद प्रताप वैदिक
5. बालमुकुन्द गुप्त : गुप्त निबन्धावली, पृष्ठ 330
6. क. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : विशाल भारत, मई - 1931

मध्यकालीन मिथिला में शैक्षणिक विकास

डॉ० पप्पु कुमार

सहायक शिक्षक, (इतिहासऋ, उत्क्रमित मध्य विद्यालय, तेतराही, बेगूसराय, बिहार

मिथिला के शैक्षणिक विकास ग्यारवी शताब्दी से लेकर सोलहबीं शताब्दी के प्रथम चरण के अन्त तक मिथिला पर कर्णाट-क्षत्रियों एवं ओइनवारो का स्वतंत्र एवं अर्ध स्वतंत्र राज्य रहा है। संस्कृत-साहित्य के संवर्धन एवं अध्ययन-अध्यापन के कारण मिथिला का यह शैक्षणिक स्वर्णयुग के रूप में विख्यात हुआ। इस काल में अनेकानेक ग्रन्थों, भाष्यों एवं ग्रन्थसारो का सृजन, साहित्य एवं विज्ञान के सभी भागों में हुआ। इसी काल में अनेक विषयों की पुस्तको का संकलन भी किया गया। स्मृतियों का संकलन भी किया गया। स्मृतियों के अध्ययन की दिशा में लोगों की अभिरूचि बढ़ी। उसके विस्तार एवं विकास के हेतु विद्वानों के सहयोग से सराहनीय कार्य हुआ तथा जनता के बीच उसके सम्यक् प्रचार के लिए समुचित अवकाश शासन के संपोशन से प्राप्त हुआ। चण्डेश्रर-परिवार तथा हरिनाथ उपाध्याय, श्री दत्तोपाध्याय, भववर्मन, इन्दुपति एवं उसके मेधावी शिश्य लक्ष्मीपति आदि मनीषीयों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिसकी लेखनीयों के द्वारा स्मार्त-विचारधारा का प्रसार एवं प्रचार सभी स्तर के जनसमुदाय तक हो सका और जनसमुदाय में शैक्षणिक विकास हुआ[1]।'

भानुदत्त मिश्र ने श्रृंगार एवं वाचर तथा लेखन-कलाओं पर जनप्रिय निगृद ग्रंथो का निर्माण किया। विद्वान ज्योतिरीश्रवर ने श्रृंगार पथ पश्ृयशामक तथा रंगशेखर का प्रणमन किया और रत्नेश्रवर ने सरस्वती-कण्ठाभरण नामक साहित्य सिद्धान्त ग्रन्थ पर ललित भाष्य लिखा जो साहित्य ग्रन्थ से जनप्रिय हुआ[2]। साहित्यिक कृत्यों में भवदत्त का नैषधीयचरितम् पर लिखा भाष्य अद्यावधि बड़े चाव से पढ़ा जाता है। पृथ्वीधर आचारों ने मृष्छकटिकम् नाटक पर सुन्दर भाष्य प्रस्तुत किया तथा श्रीकर आचार्य ने संस्कृत के सुप्रसिद्ध कोष-ग्रंथ अमरकोश पर टीका लिखी। ज्योतिरीश्रर ने वर्णरत्नाकर प्राचीन मैथिली में प्रस्तुत किया था। पद्मनाथ दळा ने सुपद्य तथा उसके पूरक अन्य अनेक नव व्याकरण-ग्रन्थों का निर्माण किया। पश्रवादृर्तीकल में न्यायविषयक ग्रंथों के अवकलन, संकलन, सम्पादन एवं प्रणयन के क्षेत्र में गंगेश उपाध्याय का नाम स्मरणीय एवं उल्लेखनीय है जो अनेक नव व्याकरण-ग्रन्थों का निर्माण किया।

चौदहवी शती के तृतीय चरण के प्रथम दशक के लगभग महम से ओइनवारों का राज्य आरम्भ हुआ। इस काल के प्रख्यात विद्वानों मे चार के नाम प्रसिद्ध है। वे है-जगद्धर, विद्यापति, शंकर मिश्र तथा वाचस्पति मिश्र। पं. वाचसपति मिश्र को 'अभिनव वाचस्पति' भी कहा जाता था। इस नाम के और दो विद्वानों का पता भी इतिहास देता है। किन्तु वे दोनो ही ओइनवारयुग के विद्वान नही थे। उनमें से एक नवम शताब्दी के अंतिम चरण में विद्यमान थे तथा वेदान्तदर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने शंकराचार्य (788-820) ई0 के शारीरिकभाष्य पर भामति नामक टीका लिखी है।

यह शारीरिकभाष्य वेदान्तदर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र की विस्तृत व्याख्या है। न्याससूचिनिबन्ध के रचयिता भी वाचस्पति मिश्र ही थे जो वाचस्पति मिश्र के नाम आता है।[3] दूसरे वाचस्पति परवती विद्वान थे। वे वारेन्द्र बह्म्ण कुलोद्भव थे तथा उनका नाम चन्द्रशेखर वाचस्पति था।[4] ओइनवार-काल के विद्वान वाचस्पति मिश्र विवाद चिन्तामणि आदि ग्रन्थो के प्रणेता थे। ओइनवार-राजकुल की स्थापना-काल में महामनीषी जगद्वर विद्यमान थे[5]।

मिथिला के कविवर विद्यापति का काल चौदहवी और पन्द्रहवी शती (1340-1448)ई0 माना जाता है। ओइनवार-कुल के सातवें नरेश स्वातन्योपासक राजा शिव सिंह देव के काल में इनकी प्रसिद्ध अत्यधिक हुई जो देखने को मिलता था। ये बहुमुखी विद्वान थे। इनकी कविताएँ आज भी मिथिला के घर-घर में बड़े चाव से गाई और पड़ी जाती है। ये वैष्णव होते हुए भी भगवती के अचेक एवं उपासक थे, तथा इनकी पदावली अति प्रसिद्ध है। पदावली का प्रभाव साम्प्रतिक वैष्णव एवं भागवत सम्प्रदाय के परवर्ती प्रचारक बंगाल के चरम प्रसिद्ध कृष्णभक्त चैतन्य महाप्रभु पर पड़ा, और उनके द्वारा कवि के भक्ति एवं भावपूर्ण पदों का प्रचार बंगाल में भी घर-घर उसी प्रकार हुआ जैसा बायबल का अंग्रेजो के निकलने में हुआ[6]। विद्यापति ने स्मृति, नीति, पुजा तथा साहित्य संबंधी अनेक ग्रन्थों की रचना उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त की।

विभागसार, गंगावाक्यावली तथा दानवाक्यावली कवि के स्मृति-विषयक ग्रन्थ है, भूपरीक्षा एवं पुरूष-परीक्षा नीति-संबंधी, शैवसर्वस्वसार तथा दुर्गाभक्तितरंगिणी जूजा-विषयक, और लिखनावली साहित्य में विद्यापति के सामान्य ग्रन्थ है। विद्यापति की कविताओं में श्रृंगार एवं भक्तिरस से ओतप्रोत है तथा वार्द्धक्य की अध्यात्मजनक निगूढ़ भावो से परिपूर्ण है। जिसे विद्यापति के कवितओं में देखा जाता है।[7] मीमांसा दर्शन के क्षेत्र में भी मिथिला ने इस युग में अभूतपूर्व प्रगति का प्रदर्शन किया। इस काल में उक्त दर्शन के अध्ययन हेतू दो पद्धतियों प्रचलित थी 1- भाट-प्रद्धति तथा 2.- प्राभाकर पद्धित। मिथिला के ओइनवारवंशीय नवम नरेश राजा पद्धति की रानी और उळाराधिकारी विश्वास देवी के शासनकाल में मिथिला में विद्वानों का एक सम्मेलन बुलाया गया था, जिसमें केवल 1,400 के आसपास मीमासक पण्डित आमंत्रित किये गये थे। आगे चलकर उपर्युक्त दोनो पद्धतियों में प्रभाकर पद्धति जनप्रिय हुई और उनकी और देश के भिन्न-भिन्न भागों के विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ जो जनप्रिय हुई[8]।

बारहवीं और पन्द्रहवी शताब्दियों के बीच महान् तार्किक विद्वान गंगेश उपाध्याय, वर्धमान, पक्षधर एवं अन्याय विद्वानों द्वारा दर्शन के अध्ययन-अध्यापन मे नये ढंग से प्रगति आयी और गौतम द्वारा चलित प्राचीन दर्शन का विकास देखा जाता था[9]। मगध के नालन्दा-विश्वविद्यालय के समान ही मिथिला की प्रसिद्ध सम्पूर्ण भारत के बीच हुई और देश के विभिन्न भागों में न्यायशास्त्र को उच्च शिक्षा के बीच हुई और देश के विभिन्न भागों में न्यायशास्त्र को उच्च शिक्षा के हेतू विद्यार्थीगण आकृश्ट होकर वहाँ आने लगे। उस काल में काशी आदि विद्यापीठों के समान ही मिथिला संस्कृत अध्ययन का केन्द्र बन गयी थी। उस युग में वहाँ संस्कृतविद्या के साथ ही क्षेत्रीय भाषा मैथिली का भी विकास स्थानीय विद्वानों के प्रयत्न से आरम्भ हुआ। इन कारणों से विद्वान् मिथिला के उस साहित्यिक विकास के काल को मिथिला का 'स्वर्णयुग' बताते हैं जो मिथिला में मैथिली साहित्य हुआ[10]।

उच्च शिक्षा प्राप्ति का प्रमाण-पत्र पाने हेतू वहाँ मिथिला के विश्वविद्यालय में प्रत्याशी शिक्षाथियों को अति कठिन परीक्षा में सम्मिलित होना पड़ता था, जिसे 'शलाका-परीक्षा' की संज्ञा प्राप्त थी[11]। शिक्षाथियों के समक्ष परीक्षक पण्डित एक शलाका का प्रवेश सम्बद्ध विषय के हस्तलिखित ग्रन्थ में करता था और जहाँ वह शलाका पुस्तक के जिस पृश्ट पर रूकती थी, उस पृष्ट से संबंधित प्रष्ठनों का उत्तर परीक्षार्थी को देना पडत्रता था[12]। परीक्षार्थी अपने पुस्तको का अवलोकन भी उस काल कर सकता है। प्रत्याशियों

के विशाल ज्ञान-भण्डार की माप उक्त पकार की परीक्षा पद्धति से होती थी। उन्हें बिना तैयारी किए अपने अधीन विषय के ग्रन्थ के किसी अंश से किये गये अपने प्रष्ठनों के उत्तर देने के हेतू प्रस्तुत रहना पड़ता था। उसमें सम्यक् सफलता प्राप्त होने पर उनके उस विषय में परीक्षोत्तीर्ण होने का प्रमाण पत्र प्राप्त होता है। नालन्दा विश्वविद्यालय में भी उच्च शिक्षा के प्रत्याशियों को द्वारा-पण्डितों के सामने कठिन परीक्षा में सम्मिलित होकर उत्तीर्ण होना पड़ता था।

तब उनका प्रवेश विश्वद्यिालय में हो पता था। मिथिला में लगभग उसी प्रकार की कठिन परीक्षा की पद्धति पूवर्ती काल में भी प्रचलित थी। 'सदयन्त' परीक्षा और भी कठिन थी। उस परीक्षा में सम्मिलित होने वाले विद्वान! प्रीक्षाथियों को परीक्षाओं के साथ-साथ ज्ञानपृष्ट जन समुदाय के समक्ष परीक्षा देनी पड़ती थी। ऐसे परीक्षाथियों को किसी भी विषय के किसी भी अंग पर प्रष्ठन पूछे जा सकते थे। ऐसी परीक्षा के द्वारा परीक्षार्थी के बहुमुखी ज्ञान की जाँच होती थी। उसमें उर्त्तीण होने पर 'सद्यंत्र' का प्रमाण-पत्र दिया जाता था जो परीक्षार्थी को बहुमुखी ज्ञान की जाँच होती थी[13]। विद्यापीठों के आचार्यो की उपाधियों, यथा-उपाध्याय, प्रमाण-पत्र दिया जाता था। विद्यापीठों के आचार्यो की उपाधियों, यथा-उपाध्याय, महोपाध्याय तथा महामहोपाध्याय भी क्रमशः अकी अनुक्रमिक प्रवीणता एवं वरीयता के आधार पर दी जाती थी जिससे कभी किसी को कभी कठिनाई या आगे-पीछे होने का संभावनाए बहुत कम देखी जाती थी[14]।

मिथिला में अनेक ग्रंथों का नामाकरण वहाँ पर प्रचलित वेद, वेदांग एवं शास्त्रों के विशेष अध्ययन-अध्यापन-कार्य के नाम हुआ प्रतीत होता है। संभवत्ः मिथिला के मुज"रपुर जिला के रिगा, अथरी, मजुआरा में क्रमशः ;गवेद, अर्थर्ववेद एवं यजुवेंद के अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र था। उसी प्रकार भटसिरी अथवा भटपुर (भटपुरा) में भट-पद्धति की मीसांसा का तथा मउ-वेहट में यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का केन्द्र था जो इन वेदों के माध्यम प्रतित होता है[15]।

पूवार्ध में शिक्षकों का वेतन नहीं दिया जाता था, बल्कि उनको जमींदार, घनी व्यक्ति तथा महतों द्वारा अनुदान दिया जाता था जो कि उसके लिए बड़ा महत्व रखता था[16]। छात्रों द्वारा शनिचरा के अलावे पर्व-त्योहारो के मौसम में उन्हें कुछ आनाज एवं कपड़े दिये जाते थे जो शिक्षको के लिए सहयोग हो जाता था[17]। इस प्रकार के पूवार्ध में प्राथमिक पाठशालाओं का जाल पूरे मिथिला में फैला हुआ था और सामान की न्यूनतम बौद्धिक आवश्यकता इन पाठशालाओं से पूरी हो जाती थी।

मध्यकालीन मिथिला में चौपाड़ि उच्च शिक्षा से जुड़ा एक केन्द्र था, जहाँ संस्कृत विषय से शिक्षा संबंधित वेदों उवं अन्य ज्ञान की शाखाओं का अध्ययन किया जाता था[18]। उल्लेखनीय है कि ऐसे विद्यालयों में संस्कृत के शिक्षक छात्रों को अपने खर्चे पर देखभाल एवं अध्ययन कराते थे, चाहे इसके लिए उन्हे कर्ज ही क्यों न लेना पड़े[19]। एडम के अनुसार उच्च शिक्षा में संस्कृत-विषय के अध्ययन पर ज्यादातर ब्राह्णों का ही अधिपत्य रहा था, इसमें ज्यादातर छात्र भी ब्राह्ण ही रहते थे इन संस्कृत-विद्यालयों के खिक्षको को 'पंडित' कहा जाता था। इन शिक्षकों को समाज में अधिक मान-सामान के साथ-साथ विशिष्ट अवसरो पर इन्हें आमंत्रित कर उन्हें सम्मिलित किया जाता था[20]।

निष्कर्ष

मिथिला में पाठयक्रम को मुख्य रूप से साहित्य, व्याकरण, तर्क, पुराण, विधि, ज्योतिष, वेदान्त, धर्मशास्त्र में विभाजित कर विषय का अध्यापन अलग-अलग विद्वानों द्वारा किया जाता था। उल्लेखनीय है कि मिथिला में शिक्षा के पाठयक्रम को यदि देखा जाय तो

बुकानन एवं एडम दोनों के रिपोर्ट समान ही है। बुकानन के द्वारा उस समय में विभिन्न विषयों के अंतर्गत स्वीकृत था प्रचलित अनेक पाठ्य पुस्तकों की भी चर्चा की गई है। उसके प्रतिवेदन के मुताबिक मिथिला के पूर्णिया जिला में व्याकरण विषय में छात्र सारस्वतकल्प, रत्नमाला, भटोजिदीक्षितकृत अष्टाध्यायी की व्याख्या आदि पुस्तकों का अध्ययन करते थे। वही एडम ने श्यामारहस्य, ब्रहानान्दागिरि कृत तारारहस्य जैसे तांत्रिक-ग्रंथों का उल्लेख भी अपने सर्वेक्षण रिपोर्ट में किया गया है।

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि बनाई गई सर्वेक्षण रिर्पोट में पाठ्य-पुस्तकों की सूची में कोई निश्चित राय कायम नहीं की जा सकती क्योंकि इन नमूने के तौर पर कुछ ग्रंथों का उल्लेख किया है।[21] सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उस समय मिथिला में उपलब्ध पाण्डुलिपियों के एक अंश को सूचीबद्ध कर बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी द्वारा प्रकाशित कराया गया। साथ ही इन पाण्डुलिपियों के चारो खण्ड यह साबति करते है कि बुकानन और एडम की रिपोर्ट में जानकारी का अभाव है। जिससे सही-सही रिपोर्ट कायम नहीं हो सका आदि।

सन्दर्भ

1. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1925 सीरीज, पृ0 414
2. वही
3. आर0 के0 मुखर्जी: एशियंट इण्डियन एजुकेशन, 596, जर्नल ऑफ द दशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1965, न्यू सीरीज, नं0 400, पृ0 431-432
4. डॉ0 उपेन्द्र ठाकुर हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृ0 376, पाठ-टिप्पणी
5. आर0 के0 मुखर्जी, पूर्वोद्धत, पृ0 431
6. ग्रियसेन: इण्ड्रोडक्शन ऑफ मैथिली लैग्वेज, विद्यापति के संबंध में।
7. डी0 सी0 सेन: हिस्ट्री ऑफ बंगाली लैग्वेज एण्ड लिटरेचर।
8. प्रभाकर मीमांस, डॉ0 गंगनाथ झा कृत, पृ0 10 डॉ0 गंगनाथ झा कौमेमोरेशन वाल्यूम, 242-43
9. आर0 के0 मुखर्जी एशियंट इण्डियन एजुकेशन 997
10. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, न्यू सीरीज, पृ0 432
11. आर0 के0 मुखर्जी पूर्वोद्धत, पृ0 598
12. विद्याभूषण हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लॉजिक, पृ0 522 गोपीनाथ कविराज : सरस्वती भवन स्टडीज, 462
13. जायसवाल : इट्रोडक्शन इन मिथिला मैनुस्क्रिप्ट्स कैटलॉग, वाल्यूम 12, पाट 2, पृ0 310-324 : डॉ0 उपेन्द्र ठाकुर, पूर्वोद्धत, पृ0 380
14. अर्यासदायाती पर महामहोपाध्याय सकल मिश्र- भाष्य के केशी मिश्र संस्करण के संबंध में डॉ0 गंगनाथ झा का प्राकलन, पृ0 11 डॉ0 उपेन्द्र ठाकुर पूर्वोद्धत, पृ0 380
15. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, पृ0 33, 97
16. आर0 आर0 दिवाकर, बिहार, यू दि एजेज, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीचयूट, पटना, 2001 पृ0 716

17. एस मोहम्मद, हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इंडिया, अलीगढ़, 1895 ई0 पृ0 2
18. जटाशंकर झा, बायोग्राफी ऑफ इन इण्डियन पैट्रिएट : महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ऑफ दरभंगा, 1972 पृ0 1
19. एडम रिपोर्ट्स ऑन दी स्टेट ऑफ एजुकेशन इन बंगाल, पृ0 268-272
20. रंजन सिन्हा, आरापेक्ट ऑफ सासायटी एण्ड इकोनोमी ऑफ बिहार, जानकी प्रकाशन, पटना- 1989
21. द्रष्टब्य, ए डिस्क्रिप्सिन कैरलोग ऑफ मैन्युफैचर्स मिथिला, वाल्यूम 1-4 काशी, प्रसाद शास्त्रीरसंन बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, पटना, 1927

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी

डॉ० सुनील कुमार

(पीएचडी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

सूचना प्रौद्योगिकी आंकड़ों की प्राप्ति, सूचना (इंफार्मेशन) संग्रह, सुरक्षा, परिवर्तन, आदान-प्रदान, अध्ययन, डिजाइन आदि कार्यों तथा इन कार्यों के निष्पादन के लिये आवश्यक कंप्यूटर हार्डवेयर एवं साफ्टवेयर अनुप्रयोगों से सम्बन्धित है। सूचना प्रौद्योगिकी कंप्यूटर पर आधारित सूचना-प्रणाली का आधार है। सूचना प्रौद्योगिकी, वर्तमान समय में वाणिज्य और व्यापार का अभिन्न अंग बन गयी है। संचार क्रान्ति के फलस्वरूप अब इलेक्ट्रानिक संचार को भी सूचना प्रौद्योगिकी का एक प्रमुख घटक माना जाने लगा है और इसे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी भी कहा जाता है। एक उद्योग के तौर पर यह एक उभरता हुआ क्षेत्र है।

भारत दुनिया भर में अग्रणी सोर्सिंग डेस्टिनेशन है, जिसका 2019-20 में लगभग 55% अमेरिकी शेयर +200-250 बिलियन की वैश्विक सेवाओं के सोर्सिंग व्यवसाय के लिए जिम्मेदार है। भारतीय आईटी और बीपीएम कंपनियों ने दुनिया भर के लगभग 80 देशों में 1,000 से अधिक वैश्विक वितरण केंद्र स्थापित किए हैं। भारत देश में मौजूद लगभग 75% वैश्विक डिजिटल प्रतिभा के साथ दुनिया का डिजिटल क्षमता केंद्र बन गया है।

परिचय

कम्प्यूटर का विकास कई दशकों पहले ही हो चुका है, परन्तु आधुनिक युग में कम्प्यूटर की क्षमता, गति, आकार एवं अन्य कई विशेषताओं में आश्चर्यजनक बदलाव हो रहे हैं। इन सभी सूचनाओं में सूचना प्रौद्योगिकी के आविष्कार ने कई असम्भव बातों को सम्भव बना दिया है। हम घर बैठे दूर स्थित अपने किसी मित्र व संबंधी के साथ चौंटिंग करना, रेलवे-वायुयान टिकट आरक्षित करा सकते हैं। कम्प्यूटर के विकास के साथ-साथ सूचना प्रौद्योगिकी भी विकास के पथ पर अग्रसर है। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग डाटा संचार के रूप में, व्यापार, घर, बैंकों इत्यादि स्थानों पर मुख्य रूप से किया जाता है। दूसरे शब्दों में ज्ञान की नई शाखा को सूचना प्रौद्योगिकी कहते हैं।

सूचना-प्रौद्योगिकी के मौलिक घटक

संचार प्रक्रिया, कम्प्यूटर नेटवर्क, ई-मेल आदि सूचना-प्रौद्योगिकी के मौलिक घटक हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

संचार-प्रक्रिया: दो विभिन्न या समान डिवाइसों के मध्य डाटा तथा सूचनाओं के आदान प्रदान को डाटा संचार एवं इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को संचार-प्रक्रिया कहते हैं। सूचना प्रोद्योगिकी के लचीले व्यवसायिक नियमों के कारण आज कई कंपनियां ज्यादा कुशलतापूर्वक अपना काम कर रही हैं। इनमें टाटा ने दुनियां की दस बड़ी कंपनियों में अपने को स्थापित कर लिया है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारतीय प्रतिभाओं की भारी मांग ने भारत को एशिया प्रशांत क्षेत्र में सबसे तेज गति से विकास करने वाला सूचना प्रोद्योगिकी बाजार बना दिया है।

माइक्रोसाफ्ट, ओरेकल, एसएपी जैसे साफ्टवेयर उत्पादों की बड़ी कंपनियों ने अपने विकास केंद्र भारत में स्थापित किये हैं। सूचना सुरक्षा के क्षेत्र में भारत का रिकार्ड अधिकांश देशों से बेहतर माना जा रहा है। भारत की अधिकांश कंपनियों ने आईएसओ, सीएमएम,

सिक्स सिगमा जैसे अंतरराष्ट्रीय मानकों के साथ अपनी आंतरिक प्रक्रियाओं और व्यवहारों को पहले ही शामिल कर लिया है, जिस कारण भारत को एक भरोसेमंद सोर्सिंग गंतव्य के रूप में स्थापित करने में सहायता मिली है।

भारत सरकार ने अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में मूलभूत गुणवत्ता सुधार को प्राथमिकता दी है और इस संदर्भ में साधारण जनता के जीवन से जुड़े क्षेत्रों में ई-शासन को बडेघ पैमाने पर बढ़ावा देने का प्रस्ताव किया है। इसके अनुसार एक राष्ट्रीय ई-शासन योजना तैयार की गयी है जिसमें यह विचार मुख्य रूप से प्रस्तुत किया गया है कि इसका उद्देश्य साधारण जनता को सभी सरकारी सेवाएं उसी के इलाके में आजीवन, एकल बिन्दु केन्द्र के माध्यम से उपलब्ध होंगी। साधारण जनता की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए ऐसी सेवाओं के लिए कम लागत पर कुशलता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता सुनिश्चित होनी जरूरी है। राज्यव्यापी एरिया नेटवर्क सामान्य सेवा केन्द्र, क्षमता निर्माण, इंटरनेट संवर्द्धन, रूट सरवरों की स्थापना, मीडिया लैब एशिया, सूचना सुरक्षा, अनुंसध ान एवं विकास में खूब काम चल रहा है।

अमरीका और यूरोप के बाद जापानी कंपनियां भी भारतीय इंजीनियरों को अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं। इन कंपनियों ने भारतीय प्रतिभाओं को विदेशों में ही अवसर देने के रास्ते खोल दिए हैं जिससे विदेशी कंपनियों में भारतीय प्रतिभाओं का न केवल महत्व बढ़ गया है अपितु उन्हें दिया जाने वाला पैकेज भी भारी भरकम हो गया है।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण पहल

- रेलवे टिकट एवं आरक्षण का कम्प्यूटरीकरण
- बैंकों का कम्प्यूतारीकरण एवं एटीएम की सुविधा
- इंटरनेट से रेल टिकट, हवाई टिकट का आरक्षण
- इंटरनेट से एफआईआर
- न्यायालयों के निर्णय आनलाइन उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
- किसानों के भूमि रिकार्डों का कम्प्यूटरीकरण
- इंजीनियरिंग में प्रवेश के लिए आनलाइन आवेदन एवं आनलाइन काउंसिलिंग
- आनलाइन परीक्षाएं
- कई विभागों के टेंडर आनलाइन भरे जा रहे हैं।
- पासपोर्ट, गाडी चलाने के लाइसेंस आदि भी आनलाइन भरे जा रहे हैं।
- कई विभागों के 'कांफिडेंसियल रिपोर्ट' आनलाइन भरे जा रहे हैं।
- शिकायेतें आनलाइन की जा सकतीं है।
- सभी विभागों कई बहुत सारी जानकारी आनलाइन उपलब्ध है।
- आयकर की फाइलिंग आनलाइन की जा सकती है।
- ईमेल भेजना (किसी प्रकार का फाइल को तुरंत भेजना)

आई टी कंपनियाँ

भारत मे सूचना प्रौद्योगिकी का विकास पिछ्ले वर्षो में बडी तेजी से हुआ है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत में कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ है। उनमें से प्रमुख हैं–

भारतीयः इस क्षेत्र की प्रमुख भारतीय कम्पनियों के नाम है–

- इंफोसिस

- टी.सी.एस.
- विप्रो
- सत्यम

बहुराष्ट्रीयः

- इंटेल
- माइक्रोसॉफ्ट
- टी.आई.
- गूगल
- याहू
- सैप लैब्स इंडिया, सैप लैब्स इंडिया की पितृ संस्था SAPAG है जो जर्मनी में स्थित है।
- ऑरेकल

निष्कर्ष

भारत में कम्प्यूटर का विकास 1955 से आरंभ हुआ, लेकिन इसका वास्तविक विकास राजीव गाँधी के शासन काल से माना जाता है। इस क्षेत्र में प्रतिभाओं का जितना प्रवेश दिखायी पड़ रहा है, उतना भारत की अखिल भारतीय सेवाओं में भी नहीं दिखता है। गुणवत्ता को सर्वोच्च प्राथमिकता दिए जाने के कारण विश्व के दूसरे देशों ने भारतीय आईटी प्रतिभाओं को जो मान्यता दी है, उससे आने वाले समय में भारतीय प्रतिभाओं की और भी ज्यादा आवश्यकता होगी। आने वाले समय में अब दुनिया में केवल प्रतिभाओं की मांग होगी और इसके दूसरे पक्षों को दरकिनार कर दिया जायेगा। भारत के कुछ अशांत क्षेत्रों में विघटनकारी गतिविधियों और आरक्षण जैसी मांगों का भी सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार पर कोई विपरीत असर नहीं दिखायी पड़ता है।

सन्दर्भ

- *Media Reports, Press Information Bureau (PIB), Department for Promotion of Industry and Internal Trade (DPIIT), Department of Information and Technology, Union Budget 2020–21*
- *Sharma, Dinesh C. (2015). The Outsourcer: The Story of India's IT Revolution. MIT Press. ISBN 9780262028752.*
- *Parayil, G. (2016). Political Economy and Information Capitalism in India: Digital Divide, Development Divide and Equity Technology, Globalization and Development. Springer. ISBN 9780230595613.*
- *Vittal, N.; Mahalingam, S. (2001). Information Technology: India's Tomorrow. Manas Publications. ISBN 9788170491194.*
- *Franda, Marcus F. (2002). China and India Online: Information Technology Politics and Diplomacy in the World's Two Largest Nations. Rowman & Littlefield. ISBN 9780742519466.*
- *Ezer, Jonathan (2010). Perceptions of Information Technology in India: A study of the institutional forces that impact how technology is taught, and learned, at Indian Universities. LAP Lambert Academic Publishing. ISBN 9783838372792.*

जीवन के अनुभवों से विश्व के श्रेष्ठतम साहित्यकार बनने का सफर- मैक्सिम गोर्की

अंकिता कुमारी

शोधार्थी, कला संकाय हिन्दी विभाग, कुमाऊ विश्व विद्यालय (नैनीताल)

विश्व साहित्य में गोर्की के साहित्य के साथ एक नये उषा का आगमन हुआ। मैक्सिम गोर्की को पुरी दुनिया में महान लेखक और समाजवादी यथार्थवाद के प्रवर्त्तक के रुप में जाना जाता है। रुस मे जारशाही के दौरान 1907 में हुई असफल क्रांति से लेकर 1917 में हुई अक्टूबर समाजवादी क्रांति और उसके बाद के समाजवादी निर्माण तक के लम्बे दौर मे मैक्सिम गोर्की ने अपनी कहानियों, नाटको, लेखो, और उपन्यासो के माध्यम से ही हर कदम पर जनता को अपनी परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी। गोर्की की जीवन परिस्थितियों ने उन्हे किसी स्कूल या विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नही दिया, उसी अनुभव को अपने शिक्षा का केन्द्र बनाया। बचपन में माता-पिता की मृत्यु, नानी के घर पालन-पोषण 13 वर्ष की आयु मे नानी की मृत्यु तथा गोर्की का रोजी रोटी की चिंता में घर छोड़ना, रुस के गलियों में इधर-उधर भटकना तथा बेकरी के कारखानों, जहाजों, खेतों, कुड़ा बीनने इत्यादि का काम करना कुछ ऐसे अनुभव थे जो गोर्की को बचपन में ही समाज के दबें कुचले बर्गो के संपर्क में आने का मौका दिया, यही कारण है कि वे अपने समय में दबी-कुचली जनता के आत्मिक जीवन के भावो की आवाज बनकर उभरे।उनका सारा सृजन भी जनता के जीवन और संघर्षो से करीब से जुड़ा था।गोर्की ने बचपन में ही देखा था कि जारशाही काल में किस तरह रुसी जनता जानवरो की तरह जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर थी।वे उनकी उत्पीड़न और गरीबी को देख चुके थे। समाज के दबे-कुचले वर्गो से बचपन से ही जीवन्त संपर्क में रहनेवाले गोर्की क`लेखन को उनके जीवन और उस समय के रुसी समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनके साहित्य सृजन का स्रोत क्या है? आने वाले समय में बचपन के अनुभव ही उनकी साहित्यिक रचनाओं के आधार बने।रोजी- रोटी कमाने की फ्कि में ही गोर्की का परिचय ऐसे क्रांतिकारी विद्यार्थीयों से हुआ जो जारशाही निरंकुशता एवं दमन उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे।

इन सब अनुभवो को गोर्की ने कैसी अपनी लेखनी मे उतारा था कलमबद्ध करने की प्रेरणा उन्हे कैसे मिली इस पर हम यदि विचार करे तो पाते है बचपन मे नानी की कहानियों ने पृष्ठभुमि तैयार करने का कार्य किया। पिता की मौत के बाद जब मॉ ने भी इनके प्रति कठोर रवैया अपना लिया,तब नानी इनके जीवन को दया संबेरा बनकर उभरी। किन्तु इसी समय अलेक्सेई के जीवन में उसकी नानी अकुलीना इवानोत्ना ने प्रवेश किया और बाद को लेखक के रुप में उसमें कहानी कहने की कला का बीजरोपण करने की दृष्टि से उसमें बहुत महत्वपूर्ण भुमिका अदा की थी।

बचपन में ही जब उसकी मॉ कविटायें रटाती तो शब्दों को उलट-पलट कर हास्यपूर्ण बना देते। तुकबंदी का यह शौक आगे भी जारी रहा। जब वे अपनी नानी के बहन के यहॉ नौकरी कर रहे थे तब शाम को काम से फुर्सत मिलने के बाद जिस लड़के-लड़कियों के पास वे बैठते, वे अक्सर अपने प्रेम-प्रसंग की चर्चा करते, कविताये लिखना चाहते थे इसके लिए वे गोर्की के पास आते थे गोर्की इनके लिए तकबंदी किया करते। मै बड़े शौक से तुकबंदियों पर हाथ आजमाता। मै तुक जोड़ने मे बच था। गीत की कड़ियॉ अपने आप गुंथ जाती, लेकिन न जाने क्यु, मेरी कविताये हमेशा हास्य-रस की रचनाए बन जाती। ज्यादातर कविताये

एक बड़े अफसर प्लीत्सिन की बेटी को लक्ष्य कर लिखी या लिखायी जाती मै अदबदाकर किसी सब्जी से-आमतौर पर प्याज से उसकी तुलना करता।'' तरुणावस्था मे उन्होने कुछ अन्य कविताये रची, जिनमे से बुढ़े बालुत का गीत, लम्बी कविता पर उन्हे विषेश गर्व था। इससे पता चलता है कि तुकबंदी करने की प्रतिभा उनमे बचपन से ही विद्यमान थी। परंतु उन्हे विश्व रबयती कहानी, उपन्यास और नाटको के क्षेत्र में ही मिली। अगर उनकी पहली कहानी, मकरचुटरा की बात करे जो क्तिलिस की स्थानीय पत्रिका, ''कौकाज'' के सितम्बर महीने के अंत मे छपी यह पहली कहानी थी। जिसने लेखक के रुप मे, मैक्सिम गोर्की (तिकट या कटु) नाम छपा। इस कहानी लिखने की प्रेरणा काल्युज्नी नामक व्यक्ति से मिली। जो गोर्की के कजान से जाने के बाद इधर-उधर घुमते हुए काके सिया की राजधानी क्तिलिस में रेलवे मरम्मत शॉप मे काम करते हुए मिला। गोर्की अपने विभिन्न अनुभवों की चर्चा काल्युज्नी से करता था। काल्युज्नी उससे इतना प्रभावित हुआ कि उसने जब यह लिखने को प्रेरित किया। काल्युनी के प्रेरणा से गोर्की ने मकर-चुहा कहानी लिखी और नये तथा सशक्त साहित्यिक परम्परा की नींव रख दी।

उन्होने कहानी या उपन्यास लिखना तो अपने जीवन के अनुभवों से प्रेरित होकर सिखा। उसकी विषयवस्तु समान्य जनता के जीवन से लिया, उनकी कहानियों या उपन्यासों के पात्र असल जिन्दगी से उठाये हुए है। परन्तु कहानी कहने की कला पर विचार किया जाए तो हमे ज्ञात होता है कि वह कला उनके अध्ययन प्रेम से ही आयी होगी। छोटी अवस्था से ही उन्हे पुस्तकों से अत्यंत प्रेम था। इसी धुन के फलस्वरुप अलेक्सेई ने छोटी उम्र में ही ड्युमा, मौन्तेपिन, जाकोत्रे, गोबोरियों, एमर और बुआगेवे जैसे फ्रासीसी लेखको की मोटी-मोटी पुस्तक पढ़ डाली जिससे उसकी अपनी काल्पनाशक्ति और विषयवस्तु का पहले से ही अनुमान लगाने की क्षमता का बहुत विकास हो गया।

इन छोटी उम्र में उन्हे अच्छे-बुरे साहित्य का ज्ञान हो गया था। कुछ भी लिखने के लिए पढ़ना अत्यंत आवश्यक है,लेखक को उसके साहित्य के इतिहास का ज्ञान होना आवश्यक है, इस बार गोर्की ने अपनी पुस्तक सृजन प्रक्रिया और शिल्प के बारे में स्वीकार किया है-मनुष्य के अपनक व्यवसाय के विकास के इतिहास का अवश्य ज्ञान होन चाहिए। प्रत्येक उद्योग या उससे भी अच्छा हो, प्रत्येक फैक्टरी मे काम करने वाले मजदूर अगर यह जानते हो कि वह कैसे बनी और धीरे-धीरे विकसित हुई, कैसे उसका उत्पादन उन्नत हुआ तो वे अपने श्रम के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक महत्त्व को पुरी तरह समझते हुए अच्छे ढ़ग से और अधिक उत्साह के साथ काम करेगें।

अपनी पहली कहानी मकर चुट्रा के प्रकाशन के बाद गोर्की अपने जन्म नगर नीज्नी नोव्गोरोद वापस आ गये। और उनकी रचनाए वोल्गा, तटवर्ती प्रान्तीय पत्र-पत्रिकाओं में ही छपती रही। जिन कहानी संग्रहो से उन्हे विस्तृत रव्याति मिल ीवह थी शब्द चीत्र और कहानियॉ जो 1898 में प्रकाशित हुई। इस कहानी संग्रहो की लोकप्रियता ने उन्हे साहित्यिक जीवन के आरंभ में ही तोलस्तोय और चेखव जैसे रुस के महान यथार्थवादी लेखकों के साथ उनका नाम जोड़ दिया। प्रश्न यह है कि गोर्की कि कहानियों में ऐसी कौन-सी विशेषता विद्यमान थी, जो उन्हे अचानक ही बड़े लेखक की श्रेणी में (सृजन प्रक्रिया और शिल्प के बारे में मैक्सिम गोर्की पृष्ठ सं0-1) खड़ा किया। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि गोर्की ने रुस की दलित उत्पीड़ित जनता का जीवन जितने करीब से देखा था उतने ही स्पष्ट रुप से उसको अपने साहित्य में चित्रित किया। इस बात को उन्होने स्पष्ट रुप से सृजन प्रक्रिया और शिल्प के बारें में चित्रित किया ळें इसलिए मै इस प्रश्न का कि मै क्यो लिखना प्रारंभ किया यह उत्तर दूगा इस कारण की दारुण नीरस जीवन मुझे दबा रहा था और इसलिए भी कि मेरे मन में चित्रों की इतनी प्रचुरता थी कि मैं लिखे बिना नही रह सकता था। गोर्की की प्रारंभिक कहानियों मे दो धारायेरोमानी या (रोमांटिक जिले हिन्दी मे स्वच्छन्दतावादी और कल्पनावादी भी कहा जाता है। और यथार्थवादी साथ-साथ विद्यमान थी। ये दोनो धाराये जैसा कि स्वयं गार्की ने कहा कि उनके जीवन की दो विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम थी। एक तो अभावों और दरिद्रता की वे परिस्थितिया थी। जिनके बोझ को हल्का करने के लिए वह अपनी रचनाओं मे कल्पना की रंगीनी भरने को प्रेरित हुए और इस तरह उनमें रौशनी रंग आया और दुसरी अनुभवों और अनुभुतियों की वह विपुलता थी। जिसके कारण वह लिखे बिना नही रह सकते थे। जो रचनाए उन्होने अनुभव के आधार पर लिखी वे यथार्थवादी थी। उनमे वास्तविक जीवन का चित्रण था। जैसा की गोर्की ने स्वयं स्वीकार किया है। पहले कारण अर्थाथ जिन रचनाओं को वे अपने बोझ को हल्का करने के लिए कल्पना की रंगीनी भरने को प्रेरित हुए, उनमें मकर चुट्रा बुढ़िया इजरगिल 'बाज का गीत, युवती और मृत्यु, तुफान का अग्रदुत आदि प्रमुख है। दुसरी कहानिया जो यथार्थवाद का पुट लिए है उनमें 26 पुरुष और एक लड़की ओरलोव दम्पति, उत्पादि नमकसार में कैसे अब मिटे आदि आती है अगर रोमांसवाद की चर्चा करे तो आम रोमांसवाद और गोर्की के रोमांसवाद में काफी अन्तर था। हमारे विद्वान गोर्की के रोमांसवाद को क्रांतिकारी रोमांसवाद की संज्ञा देते है।जिसका कारण अत्यंत स्पष्ट है,

तत्कालीन रुस में नरोदवाद की असफलता के वाद निराशा ने घर लिया था नरोदवादियों ने संघर्ष पथ को त्याग कर जो जैसा है उसे उसी रुप में स्वीकार कर लिया था। जिसका स्पष्ट प्रभाव साहित्य मे भी दिख रहा था। परंन्तु इसके ठिक विपरित एक नयी विचारधारा भी रुस में आगे बढ़ रही थी। मार्क्सवादी विचारधारा इस विचारधारा के अनुयायी क्रकंति के द्वारा रुस को बदलना चाहते थे। उनका विचार था कि तात्कालीन रुस में जिस जीवन है उसे बदलना जरुरी है। उस समय के रुसी लेखक रुस के जन-जीवन के उत्तार-चढ़ावों आंदोलनों आदि को अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित तो कर रहे थे। परन्तु समान्य जनमानस के हृदय में तत्कालीन परिस्थितियों को बदलने के लिए क्रांति की जो भावनाए उभर रही थी उसको वे समय के अनुसार स्वर नही दे पा रहे थे।यह काम गोर्की ने अपनी पहली कहानी मकर चुट्रा के माध्यम से करना आरंभ कर दिया। जिसे की उनकी रोमानी कहानियों ने उनके सक्रीय और क्रांतिकारी रोमांसवाद ने बहुत अच्छे से पुरा किया अपनी पहली कहानी मकर चुट्रा में स्मानियत दिखते हुए आजादी के महत्व पर प्रकाश डाला है। कहानी के नायक लोइको जोबार तथा नायिका राद्दा दोनों आजादी पर अपनी जान कुर्बान कर देने को तैयार है। इसके साथ ही लेखक ने पूँजीवाद समाज के बुराईयों को उभारा है। यदि गोर्की की यथार्थवादी कहानियों का विवेचन करें तो पाते है कि इन कहानियों के कथानक घटनाए पात्र वास्तविक जीवन के लिए गए है। इनमें जो घटनाए प्रस्तुत की गई है, उसका संबंध वास्तविक जीवन से है जिसको स्वयं लेखक ने अपने आस-पास के जीवन में अनुभव किया था। गोर्की ने रुसी जीवन की कड़वी सच्चाई का यथार्थवादी चित्रण किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण से नही किया है बल्कि वह उन परिस्थितियों को बदलने के लिए एक प्रेरणास्त्रोत की तरह पाठक के सामने प्रकट होते है।गोर्की की नमक की दलदलों में कहानी को पढ़ने पर तत्कालीन रुसी समाज की मजदुरों की यथार्थ स्थिति का पत्ता हमे चल जाता है। गोर्की ने इस यथार्थ स्थिति का वर्णन एक मजदूर के द्वारा करवाया है-''किस तरह का जीवन बिताते है? कुत्ते का जीवन। छः सात तनिया ढेले, पाव को चाट जानेवाला नमकीन किचड़, दिन भर पीठ की चमड़ी झुलसने वाली धुप और पचास कोपेक प्रतिदिन। यह हर आदमी को जानवर बना देने के लिए क्या कमी नही ? काम, काम, काम, काम पगार ठरै में उड़ा दो और फिर काम। आदि भी यही और अंत में यही। कई पाचेक साल तक ऐसे काम किया और ...आदमी जानवर हुआ, बस गोर्की का साहित्य हमारे मन मे वर्तमान समाज मे जनता की बदहाल परिस्थितियों के प्रति नफरत ही नही बल्कि उन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने और उन्हे बदलने की इच्छा भी पैदा करता है। अपनी आत्म कथा में गोर्की ने लिखा है, ''दुनिया में अनय कोई चीज आदमी को इतने भयानक रुप से पंगु नही बनाती जितना की सहना और परिस्थितियों की बाध्यता स्वीकार कर उनके सामने सिर झुकाना,गोर्की अपनी लेखनी के माध्यम से इन परिस्थियों के बदलना चाहते थे उन्होने ना केवल अपनी कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और लेखों के माध्यम से समाज को शिर्फ चित्रित किया बल्कि इन परिस्थितियों में बदलाव लाने के लिए उन्होने एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया गोर्की ने अपनी कहानियों में जिन आवारा पात्रो का चित्रण किया है

1.मैक्सिम गोर्की की सर्वश्रेष्ठ कहानिया- मैक्सिम गोर्की कहानी-नमक की दलदलों मे पृ0-64 उसके पीछे उनकी वह सोच है जो मनुष्य के स्वभाव उनकी नाकारात्मकता दुर्गति के लिए उन समाजिक परिस्थितियों को जिम्मेदार मानते है। जिससे उन्हे पतन के गर्त में गिरा दिया है। इसलिए वह जीवन की भौतिक परिस्थितियों को बदलने पर जोर देता है। 'कोनावालोव' कहानी का नायक अलेक्सान्द्र कोनावालोव जब यह मानता है कि ''हर आदमी खुद अपने भाग्य का स्वामी है और मेरे सिवा अन्य कोई इस बात के लिए जिम्मेदार नही है अगर मै शैतान हूँ.... दोष जीवन का नही, खुद लोगों का है।'' तब लेखक का विचार इस बात को स्वीकार नही करता। उसका मानना है कि कोई जन्म से आवारा नही होता। समाजिक व्यवस्था मे बदलाव लाकर उन्हे बदला जा सकता है।

कहानियों के बाद गोर्की ने 1899 में ''फोमा गोर्देयेव'' और 1900 ई0 में वे उपन्यास लिखने की दिशा मे कदम बढा अपने रचनाओं की विषयवस्तु अपने आस-पास के जीवन से ही लिया है। जिस गोर्की ने नीज्नी नोवोगोरोद में पूजीपति वर्ग के लोगो में घटी घटनाओं के बारे में सुनी थी जिसके अनुसार धनी वर्ग के कुछ लोग अपना घर-बार छोड़कर या तो मठो मे चले गये थे या कुछ ने आत्महात्या कर ली थी। या कुछ पागल हो गये थे। वे तीन नामक लघु उपन्यास 1900-1901 में जीज्न (जीवन) नामक पत्रिका में प्रकाशित होना शुरु हुआ। परंतु उसके तीन चार अंको के प्रकाशित होने के बाद जारशाही सरकार ने उस पत्रिका के प्रकाशन पर ही रोक लगा दी। इसके बाद गोर्की की सृजन क्षमता ने एक नये क्षेत्र में प्रवेश किया। जैसा कि स्वयं गोर्की को भी उम्मीद नही थी। अखबार व्यर्थ शोर मचा रहे है।नाटक मैने नही लिखा और ना लिख पाऊगा। 1901 में पहला नाटक 'करवट'(टुटपुजिया नाम से हिन्दी मे अनुदित) लिखा 1902 में इसका प्रकाशन हुआ। नाटककार के रुप में गोर्की की प्रतिभा का पत्ता इस बात से चलता है कि एक वर्ष मे ही इस नाटक का 60 हजार प्रतियों का संस्करण समाप्त हो गया था। इसके बाद गोर्की

के नाटक लिखने का क्रम जारी रहा। तलहटा या रसतला, बंगलेवाले, सुर्यपुत्र, वहशी या निर्दयी दुश्मन आदि अनेक सफल नाटको की रचना की। मैक्सिम गोर्की की साहित्यिक जीवन की चर्चा उनके प्रसिद्ध उपन्यास ''मॉ'' के बीना पुरी नही हो सकती। मॉ की प्रसिद्धि का पता इस बात से लगाया जा सकता है कि आज दुनिया भर की भाषाओं में मॉ के अनुवाद उपलब्ध है कुछ विद्वानो का तो ये भी कहना है कि अगर गोर्की ने केवल ''मॉ'' लिखा होता तो भी उनका नाम अमर लेखको की गिनती मे रहता। गोर्की शुरुआती दिनो से ही क्रांतिकारी आंदोलनो से जुड़े रहे। बाद में कम्युनिष्ट पार्टी बोल्शेविक शामिल में होकर जनता के संघर्षो से काफी जुड़ गये। 1905 में दिसम्बर महीने मे रुसी क्रांति मे भाग लेने के कारण गिरफ्तार किये जाने की संभवनाओं से वे बेल्शेविक पार्टी के नियमानुसार वे 1906 के फरवरी महीने मे विदेश चले गये। विभिन्न देशो के भ्रमण के बाद वे अमेरिका चले गये और वही मजदूरो और क्रांतिकारियों के जीवन संघर्ष पर आधारित अपना विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'मॉ' (1906) लिखा। जिसके बारे मे लेनिन ने कहा था कि इसे पढकर उन सभी मजदूरों को क्रांति के उद्देश्यों को समझने में मदद मिलेगी जो स्वत: स्फूर्त ढंग से आन्दोलन मे शामिल हो गये है। वह कौन सी परिस्थितिया थी जिसने गोर्की को 'मॉ' लिखने के लिए प्रेरित किया तो स्वयं गोर्की ने यह बात कहा है-मजदूरो के बारे में एक किताब लिखने का विचार सोर्मोव के प्रदर्शन के बाद नीज्नी में ही मेरे दिमाग मे आया। 1902 में सोर्मोव के मजदूरो ने जो प्रदर्शन किया। गोर्की ने उसे अपने ऑखो से देखा था। सोर्मोव वस्ती के मजदूरो के जीवन से गोर्की भली-भाली परिचित थे। और उन्ही घटनाओं ने उन्हे उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित किया। गोर्की अपने उपन्यास 'मॉ' में एक मजदूर के शब्दो मे विचार प्रकट करते हुए कहते है क्या हम सिर्फ यह सोचते है कि हमारा पेट भरा रहे ? बिल्कुल नही हमे उनलोगों को जो हमारी गर्दन पर सवार है कि हमारी ऑखो कि हम सब कुछ देखते है। हम न बेवकफु है और न जानवर की पेट भरने के अलावा और किसी बात की हमें चिंता ही न हो हम इंसानो का कैसा जीवन बिताना चाहते है। हमे यह साबित कर देना चाहिए कि उन्होने हमारे ऊपर खुन पसीना एक करने का जो जीवन थोप रखा है वह हमे बुद्धि में आजीवन लिखते रहने वाले गोर्की ने मॉ के बाद लगभग 30 वर्ष जीवन मे गोर्की ने बहुत सी कहानिया, आत्मकथात्मक, तीन उपन्यास, कई नाटक, शब्दचित्र और बड़े विशद चित्रपट वाले अर्तामोनोव परिवार (हिन्दी मे टुटती कड़ीया) और क्लिम समगीन की जिन्दगी जैसे उपन्यास लिखे। अर्तामोनोव परिवार उपन्यास मे रुस मे पूजीवाद के उद्भव विकास और नाश की विषयवस्तु को तीन गोर्की ने तीन पिढियो वाले एक पुजीपति अर्तामोनोव परिवार की कहानी के आधार पर लिखा है। क्लिम समगीन की जिन्दगी रुस जीवन की अर्द्धशती, नयी दुनिया का निर्माण करने वाला एक पुरा महान युग अंकित करने वाला 20वी शताब्दी की एक जटिलतम गहनतम और महत्वपूर्ण रचना है। 1- मॉ-पृ0-30 गोर्की का साहित्य पुरी दुनिया के मजदूरों के लिए प्रेरणास्त्रेत है, और अन्याय के विरुद्ध हमें संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रेमचंद और गोर्की दो प्रतिभाएं-मदनलाल मधु
2. सृजन प्रक्रिया और शिल्प के बारे में-मैक्सिम गोर्की
3. मैक्सिम गोर्की की सर्वश्रेष्ठ कहानियॉ-मैक्सिम गोर्की
4. मॉ-मैक्सिम गोर्की

फैजाबाद जनपद में ग्रामीण औद्योगिक विकास की संभावनाएँ

डॉ० कृष्ण कुमार सिंह

ग्राम-सोनपुरा खुर्द, जिला-बलिया, उत्तर प्रदेश-277001

जनपद फैजाबाद में विकास की अपार सम्भावना विद्यमान है। जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की सम्भावनाएँ तीव्र गति से पाई जा रही हैं। चयनित क्षेत्र से सम्बंधित प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों का अनुकूलतम विकास नहीं हो सका है। आज भी जनपद की अधिकांश जनसंख्या गांवों में बिखरी हुई अवस्था में परिलक्षित होती है। इस अव्यवस्थित जनमानस का यदि सर्वोत्तम प्रयोग कर लिया जाए तो आने वाले दिनों में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, सामाजिक पिछड़ापन तथा तकनीकी समस्याओं जैसी विषम परिस्थितियों का समाधान किया जा सकता है। फैजाबाद जनपद का मुख्य व्यवसाय कृषि ही है जिसके अंतर्गत मुख्य फसलों जैसे-गेहूं, चावल, जौ, चना, अरहर, आलू, गन्ना, धान, मटर इत्यादि का उत्पादन किया जाता है। कृषि में कम उत्पादकता के लिए अनेक कारक उत्तरदायी है जिसमें सर्वप्रथम मानसून, कृषि की परम्परागत पद्धति तथा व्यक्तिगत कृषि का किया जाना इत्यादि कारक उत्तरदायी रहे हैं। यदि इन उत्तरदायी कारकों का निराकरण कर दिया जाए तो आशानुकूल परिणामों को प्राप्त करना सम्भव हो सकता है। जनपद में पर्याप्त मात्र में कृषि सहकारी समितियों का अभाव पाया जाता है, तथा जो सरकारी तथा गैर सरकारी बैंक हैं उनमें कागजी कार्यवाही के कारण देरी आदि कारकों के कारण कृषक उर्वरकों का प्रयोग नहीं कर पाता जिसके कारण प्रति हे0 उत्पादकता कम हो जाती है।

जनपद फैजाबाद में कुल उपलब्ध जनसंख्या का लगभग 13.5 प्रतिशत भाग नगरों में रहता है। शेष 86.5 प्रतिशत भाग गांवों में रहता है। जिसकी जीविका ग्रामीणउद्योग पर ही निर्भर है। इस परिप्रेक्ष्य में कृषि क्षेत्र पर दबाव को कम करने के लिए व्यक्तियों को विभिन्न रोजगार कार्यक्रमों के माध्यम से स्वरोजगार के लिए प्रेरित किये जाने की अपार सम्भावना है। जिससे उन व्यक्तियों की भी कुछ न कुछ सीमांत उत्पादकता हो जाये जिनकी सीमांत उत्पादकता कृषि क्षेत्र में संलग्नता के बावजूद शून्य है। अर्थात अदृश्य बेरोजगार की श्रेणी में आते हैं। जनपद में पशु-पालन विकास कार्यक्रम अभी बहुत पीछे है। वर्तमान में जनपद फैजाबाद में 770424 गौ जातीय तथा 267642 महिष जातीय पशु हैं। फैजाबाद में 199447 कुक्कुट हैं। वर्तमान में जनपद में पशु स्वास्थ्य एवं उचित पौष्टिक आहार की पर्याप्तता की समस्या बनी हुई है। जिसके कारण लोग पशु-पालन व्यवसाय में पूरी क्षमता के अनुसार संलग्न नहीं होते हैं तथा इसे मात्र एक कृषि सहायक उद्योग ही समझते हैं। इसके लिए उत्तरदायी कारकों में मुख्यत: आलस्यता एवं बाध्यता तथा चारे की समस्या, मशीनीकरण (हार्वेस्टर तथा कम्बाइन आदि) इत्यादि हैं।[1]

फैजाबाद में मछली पालन के क्षेत्र में किसी प्रकार की अपेक्षित सफलता प्राप्त नही हो सकी हैं। मत्स्य पालन योजना के अंतर्गत जनपद के 11 विकास खण्डों में मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त तालाबों का सर्वेक्षण कराया गया है। सर्वेक्षण के दौरान जलाशयों की संख्या 8 थी जिसका क्षेत्रफल 18.60 हे0 था तथा उत्पादन 79.50 कुन्तल था जबकि निजी क्षेत्र जलाशयों की संख्या 92 थी जिसका क्षेत्रफल 106 हे0 था जिसमें 2544 कुन्तल उत्पादन रहा।[2] इस कार्यक्रम द्वारा मत्स्य पालकों को अतिरिक्त आय का स्रोत मिल जायेगा तथा आहार से सम्बंधित न्यूनतम पोषण की समस्या पर भी काबू पाया जा सकेगा। विभाग द्वारा पटे पर तालाबों को 10 वर्ष के लिए भी दिया जा रहा है तथा मत्स्य पालकों को मत्स्य विभाग द्वारा एक लाख अंगुलिकाओं का वितरण किया गया अत्यधिक उत्पादकता हेतु तालाबों के सुधार के लिए एक एकड़ तथा इसके ऊपर के जलाशयों को राष्ट्रीयकृत बैंकों से ऋण सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है। जनपद में कोई मछली बाजार न होने के कारण मछलियों को स्थानीय बाजारों में बेचा जाता है। मत्स्य

पालन व्यवसाय में भी वित्त की समस्या, बाजार की समस्या तथा उन्नत अंगुलिकाओं एवं यंत्र की समस्या पाई जाती है। इसी कारण मत्स्य पालन में स्टाम्प डड्यूटी का खर्च सरकार द्वारा कम करवाने हेतु प्रयास किया जा रहा है। यदि स्टाम्प डड्यूटी में छूट मिल जाये तो यह व्यवसाय गरीबों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

जनपद फैजाबाद में बुनियादी सुविधाओं का पर्याप्त अभाव पाया जा रहा है। इससे सम्बंधित यदि विद्युत शक्ति की विवेचना प्रस्तुत की जाय तो कुल विद्युतीकृत ग्रामों की संख्या 1125 तथा विद्युतीकृत नगरों की संख्या 07 है। विद्युतीकृत अनुसूचितजाति बस्तियों की संख्या 897 थी। साथ ही प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग (किलोवाट) 108.2 प्रतिघंटा रहा। अतः यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में भी विकास की आवश्यकता एवं सम्भावना है। जनपद फैजाबाद औद्योगिक कृष्टि से बहुत ही पिछड़ा हुआ है। प्रकृति के द्वारा केवल रेत ही उपहार स्वरूप प्रदान किया गया है। जनपद में कुल वृहद एवं मध्यम उद्योगों की संख्या मात्र 83 है तथा लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या 119 है। जनपद में कार्यरत उद्योगों को पर्याप्त मात्र में कच्चे माल की आपूर्ति नहीं हो पा रही है। यदि सम्बंधित औद्योगिक क्षेत्रों में कच्चे माल की आपूर्ति सुगमता से हो जाए तो यहां औद्योगिकरण के बहुत अवसर प्राप्त हैं। जनपद फैजाबाद से सम्बंधित भावी सम्भावनाओं की विवेचना निम्न रूपों में की जा सकती है-

- ग्रामीण कृषि क्षेत्र के अंतर्गत सहकारी एवं सामूहिक कृषि को विकसित करने की पर्याप्त संभावना है। जिससे उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।
- जनपद में उत्पादन बीमा कार्यक्रम को प्रभावी बनाकर अर्थात् उत्पादन बीमा के प्रति जागरूक कर फसल सुरक्षा कार्यक्रम को प्रभावी बनाकर मानसून की अनिश्चितता के कारण होने वाले नुकसान से मुक्त कराकर उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सकता है।
- गुड़ एवं रेशमकीट पालन द्वारा उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।
- विकासखण्डों के माध्यम से कृषि रक्षा ईकाइयों, बीज भण्डारों तथा आधुनिक कृष्यंत्रों एवं उर्वरक अगर कृषकों को समय से प्राप्त हो तो प्रति हे0 औसत उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। साथ ही कृषि आधारित ग्रामीण औद्यौगिक ईकाइयों को बढ़ाया जा सकता है।
- जनपद फैजाबाद मानवीय पूंजी में समृद्ध है, लेकिन कृषि क्षेत्र में कुछ कृषकों की सीमांत उत्पादकता शून्य या कुछ परिस्थितियों में ऋणात्मक भी है। यदि अतिरिक्त कृषकों को अन्य क्षेत्रों में या स्वरोजगार हेतु प्रेरित किया जाय तो जनपद का तेजी से विकास हो सकता है।
- जनपद फैजाबाद की 56.28 प्रतिशत जनसंख्या ही साक्षर है यदि साक्षरता का स्तर बढ़ाया जाये तो निःसन्देह शिक्षित-प्रशिक्षित व्यक्ति अशिक्षित और अकुशल की अपेक्षा जनपद के विकास में अधिक सहयोग प्रदान कर सकता है।
- जनपद में भूमि का आकार पर्याप्त है सरयू नदी की बाढ़ को बांध बनाकर रोका जा सकता है एवं उसी बांध के फलस्वरूप नहरों का और अधिक विकास कर जनपद के विकास को तीव्र किया जा सकता है। इसे ग्रामीण औद्यौगीकरण को बढावा मिल सकता है।
- ग्रामीण औद्यौगीकरण के अन्तर्गत मत्स्य पालन विकास की जनपद में अपार सम्भावनाएं हैं।
- जनपद में बुनियादी सुविधाओं जैसे-बिजली, परिवहन तथा संचार व स्वास्थ्य जैसी आधारभूत सुविधाओं का अभाव है अगर इस अभाव ग्रस्तता को दूर किया जा सके तो जनपद में ग्रामीण औद्यौगीकरण के तीव्र विकास की प्रबल सम्भावनाएं हैं।
- जनपद में पशु चिकित्सालयों की संख्या एवं उसमें सुविधाओं में वृद्धि कर पशु-पालन व्यवसाय एवं दुग्ध उद्योग को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।
- जनपद में साक्षरों की संख्या में वृद्धि हेतु सरकारी तथा निजी प्रयास द्वारा साक्षरता दर को बढ़ाया जा सकता है।
- व्यवसायिक शिक्षा का प्रसार कर जनपद में ग्रामीण उद्यमता स्वरोजगार को बढ़ावा दिया जा सकता है।
- ग्रामीण कुटीर तथा लघु उद्योगों को बढ़ावा देकर उपभोक्ताओं को अच्छी एवं सस्ती वस्तु सुविधायें उपलब्ध कराई जा सकती हैं जो मंहगाई को भी नियंत्रित करने में सहायक है।

- कृशकों की आर्थिक सहायता के माध्यम से दुग्ध विकास को प्रोत्साहन दिया जा सकता है।
- विभिन्न उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से बेरोजगारों को प्रषिक्षण तथा कच्चा माल उपलब्ध कराकर ग्रामीण उद्यमिता विकास को बढावा दिये जाने की अपार सम्भावनाएं जनपद में विद्यमान है।

तालिका

फैजाबाद जनपद में ग्रामीण उद्योगों की स्थिति[3]

(31 मार्च 2011 तक)

मण्डल/जिलों के नाम	भारी एवं माध्यम क्षेत्र ½करोड़ रू. में½		औद्योगिक इकाई क्षेत्र ½करोड़ रू. में½	
	इकाइयों की संख्या करोड रू. में	निवेश करोड़ रू. में	इकाइयों की संख्या	निवेश करोड़ रू. में
फैजाबाद मण्डल				
बहराईच	3	12.20	3331	19.23
फैजाबाद	16	58.68	4521	30.48
गोण्डा	11	221.43	4007	18.88
सुल्तानपुर	23	03.00	5529	28.05
अम्बेडकर नगर	0	-	127	0.79

प्रमुख ग्रामीण उद्योग एवं औद्योगिक संकट

जनपद फैजाबाद पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्थिति है। पूर्वी उ0प्र0 चीनी उद्योग में अग्रणी है। इस क्षेत्र में 46 चीनी मिले स्थापित है। इनमें 7 सहकारी, 5 भारत सरकार के उपक्रम व शेष 16 निजी क्षेत्र में लगी है। इन चीनी मिलों की वर्तमान पेराई क्षमता 83136 टी.सी.डी है इस क्षेत्र की अधिकाश कार्यरत चीनी मिलें या तो अपनी संस्थापित क्षमता से कम उत्पादन कर रही है या रुग्ण है। पूर्वी उ0प्र0 का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रामीण उद्योग हथकरघा उद्योग है। पूर्वी उ0प्र0 में प्रदेश के कुल हथकरघों के 48.62 प्रतिशत हथकरघे थे। उल्लेखनीय है कि बनारस भदोही क्षेत्र में स्थित कालीन उद्योग विश्वविख्यात है। साथ ही पूर्वी क्षेत्र रेशम उत्पादन में भी अग्रणी रहा है। किन्तु कारणों से यह ग्रामीण उद्योग पूर्वी क्षेत्र में उतना विकसित नहीं हो सका. जितना होना चाहिए था।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आधुनिकता की दौड़ में हथकरघा उद्योग का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। हथकरघा उद्योग के लिए विद्युत मोटर चालित यंत्र अभिशाप साबित हुआ है। अनुमान है कि फैजाबाद मण्डल तथा देवीपाटन मण्डल केजिलों में 4667 हथकरघा बुनकर है। दोनों मण्डलों के सात जनपदों में पावरलूम बुनकरों की संख्या 22.883 तथा पावरलूमों की संख्या 12.778 है। हथकरघा बुनकर समाज में गरीबी-रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाला एक मेहनतकश वर्ग है। इनका शोषण साहूकार तथा विचौलिये दोनों ही करते है। एक अनुमान के अनुसार कम से कम दस करोड़ की सरकारी देनदारी बुनकरों के जिम्मे है। आज बुनकरों की दशा यह हो गई है कि उन्हें कोई बैंक ऋण देने को तैयार नहीं है। पूर्वी उ0प्र0 में लगभग 158 हथकरघा समितियाँ तथा 93 पावरलूम समितियों सक्रिय हैं। साथ ही बुनकरों के प्रति राज्य सरकार की उदासीनता के परिणामस्वरूप बुनकर समुदाय अब इसे व्यवसाय से पलायन करने लगा है।

अनुमान है कि अम्बेडकर नगर में लगभग 1 लाख पावरलूम है और इनमें कम से कम दस लाख व्यक्तियों की जीविका जुड़ी है साथ ही टांडा के आसपास ही लगभग 50 हजार पावरलूम है। लेकिन बुनकरों के सामने बिजली आपूर्ति प्रमुख समस्या है। बुनकरों द्वारा बिजली के बिलों की अदायगी न कर पाने से बिजली विभाग ने विद्युत आपूर्ति बंद कर दी है। अनुमान है कि 23 करोड़ रुपये

बिजली विभाग के बुनकरों के जिम्में बकाया हैं। इस प्रकार पूर्वी उ0प्र0 के दोनों प्रमुख उद्योग चीनी उद्योग और हथकरघा उद्योग घोर संकट में हैं।

जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी जोत होने के कारण कृषि फसलें उनके आर्थिक उन्नयन में कम लाभकारी हैं। कुपोषण से बचाव की दृष्टि से भी फल एवं सब्जियों का विशेष महत्व है। बढते पर्यावरण प्रदूषण को कम करने और बंजर एवं बीहड़ भूमि के सदुपयोग के लिए फल उद्यानीकरण अपरिहार्य है। साथ ही पलायन रोकने, इकाई क्षेत्र से अधिकाधिक आय प्राप्त करने तथा स्थानीय रोजगार देने में फसलों- जैसे फल शाक, सब्जी, मसाला. पुष्प उत्पादन के साथ-साथ ग्रामीण कुटीर उद्योग के रूप में मशरूम उत्पादन एवं पान की खेती बहुपयोगी पाई गई है। जिनका समावेश विषमता एवं पिछडेपन को दूर करने हेतु आवश्यक है। चयनित क्षेत्र औद्योगिक विकास की दृष्टि से प्रदेश का एक उद्यानप्रमुख क्षेत्र है। जहां वर्तमान में 93,376 हेक्टेयर में फल, 1,89,165 हेक्टेयर में शाकभाजी एवं आलू एवं 1,125 हेक्टेयर में मसालों का क्रमश 7,86, 33 99 एवं 0.16 लाख टन उत्पादन किया जा रहा है। पूर्वी उ0प्र0 में सर्वांगीण औद्योगिक विकास के लिए औद्यानिक प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र बस्ती तथा इलाहाबाद में स्थापित है जहां क्षेत्रीय समस्याओं के निदान, सतत प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं शोध परिणामों के प्रायोगिक कार्य संचालित किए जाते हैं। चयनित क्षेत्र के विकास की दृष्टि से लगभग 49 राजकीय पौधशालाएं तथा 9 राजकीय आलू बीज सम्वर्द्धन प्रक्षेत्र स्थापित है। राजकीय पौधशालाओं से उत्कृष्ट एवंरोगमुक्त फलदार पौधे एवं प्रमाणित बीज उपलब्ध कराए जाते हैं एवं कृषकों के मध्यउनका वितरण कराया जाता है। इन क्षेत्रों में कुल 277 निजी शीतगृह कार्यरत है। जिनकी भण्डारण क्षमता लगभग 11.58 लाख टन है। औद्यानिक उत्पादों के संरक्षण एवं लाभार्थियों के प्रशिक्षण हेतु 40 फल संरक्षण केन्द्र तथा 4 विज्ञान प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित हैं। इन केन्द्रों के माध्यम से लाभार्थी अपने उत्पाद को प्रसंस्कृत कराते हुए प्रशिक्षण प्राप्त कर निजी उद्यमिता विकास का कार्य प्रारम्भ करते हैं।[4]

क्षेत्र में मधुमक्खी पालन की संभावनाओं को देखते हुए इलाहाबाद तथा बस्ती में इसके पालन केन्द्र तथा गोरखपुर, गाजीपुर, वाराणसी, इलाहाबाद, जौनपुर, फैजाबाद, सुल्तानपुर में उपकेन्द्र स्थापित है। इन केन्द्रों द्वारा गत वर्ष 1700 लोगों ने प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वरोजगार के अवसर प्राप्त किए। मशरूम विकास की दृष्टि से बस्ती में एक स्पान उत्पादक प्रयोगशला की स्थापना की गई है, जहां से मशरूम उत्पादक स्पान एवं प्रशिक्षण प्राप्त कर उद्यम स्थापित कर सकते हैं।

इस प्रकार फैजाबाद में ग्रामीण औद्योगिक विकास की अनंत संभावनाएँ हैं जिसे विकसित किया जाए तो इससे न सिर्फ जनपद के लोगों का बल्कि पूरे उत्तर प्रदेष और देष के विकास को गति मिलेगी।

संदर्भ सूची

1. सांख्यिकीय पत्रिका 2011-12, जनपद फैजाबाद, कार्यालय अर्थ एवं संख्याधिकारी, फैजाबाद, पृष्ठ सं0-54
2. उपरिवत्, पृ.सं.-58
3. गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया इकोनॉमिक सर्वे 2011-12 (दिल्ली-2010) पृष्ठ सं0-17
4. स्माल इन्डस्ट्रीज डेवलमेन्ट बैंक ऑफ इण्डिया, 2008 पृष्ट सं0-29।

सिद्ध एवं नाथ साहित्य

भोला प्रसाद यादव

नेट, शोध-छात्र, हिन्दी, बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर

सिद्ध साहित्य उस समय लिखा गया जब हिन्दी, अपभ्रंश से आधुनिक हिन्दी की ओर विकसित हो रही थी। सिद्धों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म की वज्रयानी शाखा से है। ये भारत के पूर्वी भाग में सक्रिय थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में देश के पूर्वी भागों में बहुत दिनों से चला आ रहा था। इन बौद्ध तांत्रिकों के बीच वामाचार अपनी चरम सीमा को पहुँचा। ये बिहार से लेकर आसाम तक फैले थे और सिद्ध कहलाते थे।"[1] इनकी संख्या -84 मानी जाती है। सरहपा (सरोज पाद या सरोजभद्र) प्रथम सिद्ध माने गये हैं। इसके अतिरिक्त शबरपा, तुईपा, डोम्भिपा, कण्हपा, कुक्कुरिपा आदि सिद्ध साहित्य के प्रमुख कवि माने गये हैं। ये कवि अपनी वाणी का प्रचार जन-भाषा में करते थे। उनकी सहजिया प्रवृत्ति मनुष्य की स्वाभाविक वृति को केन्द्र में रखकर निर्धारित हुई थी। इस प्रवृति ने एक प्रकार की स्वच्छन्दता को जन्म दिया जिसकी प्रतिक्रिया में नाथ सम्प्रदाय शुरू हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - "इन तांत्रिक योगियों को लोग अलौकिक शक्ति से सम्पन्न समझते थे। ये अपनी सिद्धियां एवं विभूतियों के लिये प्रसिद्ध थे।"... वज्रयान शाखा में जो योगी सिद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए, वे अपने मत का संस्कार जनता पर भी डालना चाहते थे। इससे वे संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त अपनी वाणी अपभ्रंश मिश्रित देश भाषा या काव्य भाषा में भी बराबर सुनाते रहे। उनकी रचनाओं का एक संग्रह पहले म0म0 हरप्रसाद शास्त्री ने बंगला अक्षरों में "बौद्धगान ओ दोहा" के नाम से निकला था"[2] सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है, जिसमें 23 सिद्धों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रत्येक सिद्ध के नाम के पीछे 'पा' शब्दांश जुड़ा हुआ है। सरहया या सरहपा हिन्दी के प्रथम सिद्ध माने जाते हैं जिनका 'दोहाकोष' विख्यात है। डॉ. फणीश सिंह के शब्दों में - "बौद्धों की महायान शाखा से प्रभावित व्रजयान सम्प्रदाय की कतिपय पुरानी पोथियों में उस समय के कुछ पूर्व के दोहे मिलते हैं। बौद्धों के चौरासी सिद्धों में सरहता नाम के एक सिद्ध हुए हैं। उनका एक दोहा उदाहरणार्थ यहाँ दिया जाता है। इनका समय सम्वत् 690 माना गया है।

जहिं मन पवन न संचरई, रवि, ससि नहि पवेस।
तहि बट चित्त बिलास करू सरहे करिअ उवेस।।

(जिस स्थान में पवन संचार न करता हो सूर्य और चन्द्र का प्रवेश न होता हो, हे चित उस बटवृक्ष में विश्राम करो, सरह यह उपदेश देता है।)"[3]

इनके अलावा शबरया, लुझँ, डोंबियँ, कलयँ, कुक्कुरिपा, मुंडरियँ, शान्तिपा और वाणापा आदि सिद्ध कवियों ने भी आदिकालीन सिद्ध-साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में - "वज्रयानियों की योगतंत्र साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों का विशेषत: डोमिनी, रजकी आदि का अबाध सेवन एक आवश्यक अंग था। सिद्ध कण्हपा डोमिनी का आह्वान गीत इस प्रकार गाते थे :-

नगर बाहिरे डोंबी तोहरि कुड़िया छई।
छोई जाई सो बाह्य नाड़िया।।

.....

.....

गंगा जउँना माझे रे, बहई नाई।

ताहि बुड़िलि मातंगि पोइया लीले पार करेई।"[4] पुनः शुक्ल के शब्दों में ही यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि चौरासी सिद्धों में से बहुत से मछुए, चमार, धोबी, कहार, कुम्हार, लकड़हारे, दर्जी तथा बहुत से शुद्र कहे जाने वाले लोग थे। अतः जाति-पाँति के खण्डन तो वे आप ही थे। नाथ सम्प्रदाय भी जब फैला, तब उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आए जो शास्त्र ज्ञान सम्पन्न थे। जिसकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था। पर अपने को रहस्यदर्शी प्रदर्शित करने के लिये शास्त्रज्ञ पंडितों और विद्वानों को फटकारना भी वे जरूरी समझते थे। सद्गुरू का माहात्मय सिद्धों में भी और उनमें भी बहुत अधिक था।"[5]

सिद्ध साहित्य अपनी प्रवृति और प्रभाव के कारण हिन्दी साहित्य में विशेष प्रभाव रखता है। इन सिद्धों ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन करने वाले साधनापरक साहित्य का निर्माण किया। सिद्ध साहित्य की सामान्य प्रवृतियाँ इस प्रकार हैं:-

सिद्ध कवियों ने जीवन की सहजता और स्वाभाविकता में दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है। अन्य धर्म की अनुनायियों ने जीवन पर कई प्रतिबन्ध लगाकर जीवन को कृत्रिम बनाया था। विशेषकर कनक, कामिनी को साधना मार्ग की बाधाएँ माना था। विभिन्न कर्मकाण्डों से साधना मार्ग को भी कृत्रिम बनाया था। सिद्धों ने इन सभी कृत्रिमताओं का विरोधकर जीवन की सहजता और स्वाभाविकता पर बल दिया। उनके मतानुसार सहजसुख से ही महासुख की प्राप्ति होती है। इसलिये सिद्धों ने सहजमार्ग का प्रचार किया। सहजमार्ग के अनुसार प्रत्येक नारी प्रज्ञा, प्रत्येक नर करूणा का प्रतीक है। इसलिये नर-नारी मिलन प्रज्ञा और करूणा निवृति और प्रवृति का मिलन है, दोनों की अभेदता ही महासुख है।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - "वज्रयानी सिद्धों ने निम्न श्रेणी की प्रायः शिक्षित जनता के बीच अपनी भावों के लिये जगह निकाली। उन्होंने बाह्य पूजा, जाति-पाँति, तीर्थाटन आदि के प्रति उपेक्षा बुद्धि का प्रचार किया, रहस्यदर्शी बनकर शास्त्रज्ञ विद्वानों का तिरस्कार करने और मनमाने रूपकों के द्वारा अटपटी वाणी में पहेलियाँ बुझाने का रास्ता दिखाया घट के भीतर चक्र, नाड़ियाँ, शून्य, देश आदि मानकर साधना करने की बात फैलाई और नाद, बिन्दु, सूरति, निरति ऐसे शब्दों की उद्धरणी करना सिखाया। यही परम्परा अपने ढंग पर नाथ पंथियों ने भी जारी रखा।"[6]

सिद्धों ने गुरु महिमा का पर्याप्त वर्णन किया है। सिद्धों के अनुसार गुरु का स्थान वेद और शास्त्रों से भी ऊँचा है। सरहपा ने कहा है कि गुरु के कृपा से ही सहजानन्द की प्राप्ति होती है। गुरु के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जिसने गुरुपदेश का अमृतपान नहीं किया, वह शास्त्रों की मरुभूमि में प्यास से व्याकुल होकर मर जायेगा।

"गुरु उपएसि धावण पीएड जे ही।
बहु सत्यत्य मरु स्थलहि तिसिय मरियडतेही।।"

सिद्धों ने पुरानी रूढ़ियों, परम्पराओं और बाह्य आडम्बरों, पाखण्डों का जमकर विरोध किया है। इसलिये इन्होंने वेदों, पुराणों-शास्त्रों की खुलकर निन्दा की है। वर्ण-व्यवस्था, ऊँच-नीच और ब्रह्मण धर्मों के कर्मकांडों पर प्रहार करते हुए सरहया ने कहा है कि :- ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से तब पैदा हुए थे, अब तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं जैसे अन्य लोग। तो ब्रह्मणत्व कहाँ रहा? यदि संस्कारों से ब्रह्मणत्व होता है तो चाण्डाल को अच्छे संस्कार देकर नन्दी बना देते। यदि आग में घी डालने से मुक्ति मिलती है तो सबको क्यों नहीं डालने देते? होम करने से मुक्ति मिलती है, यह पता नहीं, लेकिन धुँआ लगने से आँखों को कष्ट जरूर होता है।

दिगम्बर साधुओं को लक्ष्य करते हुए सरहया कहते हैं - यदि नंगे रहने से मुक्ति हो जाय तो सियार, कुत्तों की भी मुक्ति अवश्य होनी चाहिये। केश बढाने से यदि मुक्ति हो सके तो मयूर उसके सबसे बड़े अधिकारी हैं। कंद भोजन से मुक्ति हो तो हाथी, घोड़ों की मुक्ति पहले होनी चाहिए। इस तरह इन सिद्धों ने वेद, पुराण और पंडितों की कटु आलोचना की है।

सिद्ध साहित्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है - "जो जनता नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय या पतन से त्रस्त होकर 'निराशावाद' के गर्त में गिरी थी। उसके लिये इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। जीवन की

भयानक वास्तविकता की अग्नि से निकालकर मनुष्य को 'महासुख' के शीतल सरोवर में अवगाहन कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया" आगे चलकर सिद्धों में स्वैराचार फैल गया, जिसका जनजीवन पर बुरा असर पड़ गया।

सिद्धों ने प्रज्ञा और उपाय (करुणा) के मिलनोपरान्त प्राप्त 'महासुख' का वर्णन और विवेचन अनेक रूपकों के माध्यम से किया है। नौका, वीणा, चूहा, हिरण आदि रूपकों का प्रयोग इन्होंने रहस्यानुभूति की व्याख्या के लिये किया है। रवि, शशि, कमल, कुलिश, प्राण, अवधूत आदि तांत्रिक शब्दों का प्रयोग भी इसी व्याख्या के लिये हुआ है। डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने शोधग्रंथ "सिद्ध साहित्य" में सिद्धों की शब्दावली की दार्शनिक व्याख्या कर उसके आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट किया है। सिद्ध कवियों की रचना में श्रृंगार एवं शान्त रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर उत्थान श्रृंगार चित्रण मिलता है। अलौकिक आनन्द की प्राप्ति का वर्णन करते समय ऐसा हुआ है। सिद्धों की रचनाओं में संस्कृत तथा अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषा का प्रयोग मिलता है। डॉ. रामकुमार वर्मा इनकी भाषा को जनसमुदाय की भाषा मानते हैं। जनभाषा अपनाने के बावजूद जहाँवे अपनी सहज साधना की व्याख्या करते हैं, वहाँ उनकी भाषा क्लिष्ट बन जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - "सिद्धों की उद्धत रचनाओं की भाषा, देश भाषा मिश्रित अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी की काव्य भाषा है, यह तो स्पष्ट है। उन्होंने भरसक उसी सर्वमान्य व्यापक काव्य भाषा में लिखा है, जो उस समय गुजरात, राजपूताने और ब्रजमंडल से होकर बिहार तक लिखने-पढ़ने की शिष्ट भाषा थी। पर मगध में रहने के कारण सिद्धों की भाषा ने कुछ पूर्वीपन का प्रयोग भी मिले हुए हैं।"[7]

सिद्धो की अधिकांश रचना चर्या गीतों में हुई है तथापि दोहा, चौपाई जैसे लोकप्रिय छंद भी प्रयुक्त हुए हैं। सिद्धों के लिये दोहा बहुत ही प्रिय छन्द रहा है। उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं सोरठा एवं छप्पय का भी प्रयोग पाया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - "चौपाई दोहे की यह परम्परा हम आगे चलकर सूफियों की प्रेम कहानियों में, तुलसी के 'रामचरितमानस' में तथा 'छत्रप्रकाश', 'ब्रजविलास', सबल सिंह चौहान के महाभारत इत्यादि अनेक आख्यान काव्यों में पाए जाते हैं।"[8]

सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढंग से प्राप्त होती है। चारण कालीन साहित्य तो केवल तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिछाया है। लेकिन सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आने वाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का एक सही दस्तावेज है।

नाथ साहित्य

नाथ साहित्य के प्रवर्तक मत्स्येन्द्र नाथ एवं गोरखनाथ माने जाते हैं। नाथों का समय 12 वीं शताब्दी से 14 वीं शताब्दी तक है तथा हिन्दी संत काव्य साहित्य पर इनका पर्याप्त प्रभाव है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - नाथ पंथ के योगी कान की लौ में बड़े-बड़े छेद करके स्फटिक के भारी-भारी कुंडल पहनते थे, इससे कनफटे कहलाते थे।..... इस पंथ का प्रचार राजपूताने तथा पंजाब की ओर ही अधिक रहा। अत: जब मत के प्रचार के लिये इस भाषा के भी ग्रंथ लिखे गए तब उधर की हीं प्रचलित भाषा का व्यवहार किया गया। उन्हें मुसलमानों को भी अपनी वाणी सुनानी रहती थी, जिसकी बोली अधिकतर दिल्ली के आस-पास की खड़ी बोली होती थी।"[9] नाथ साधु हठयोग पर विशेष बल देते थे। वे निर्गुण निराकार ईश्वर को मानते थे तथा कथित नीची जातियों के लोगों में से कई पहुँचे हुए सिद्ध एवं नाथ हुए हैं। नाथ सम्प्रदाय में गोरखनाथ सबसे महत्वपूर्ण थे। इनकी कई रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त चौरंगीनाथ, गोपीचन्द, भरथरी आदि नाथ पंथ के प्रमुख कवि हैं। इस समय की रचनाएँ साधारणत: दोहों अथवा पदों में होती हैं। कभी-कभी चौपाई का भी प्रयोग मिलता है। परवर्ती संत साहित्य पर सिद्धों और विशेषकर नाथों का गहरा प्रभाव पड़ा है।

नाथ सम्प्रदाय में नौ नाथ आते हैं - (i) आदिनाथ (स्वयं शिव), (ii) मत्स्येन्द्र नाथ, (iii) गोरखनाथ, (iv) गहिणी नाथ, (v) चर्पटनाथ, (vi) चौरंगीनाथ, (vii) जालंधर नाथ, (viii) भर्तृ नाथ (भरथरी नाथ) और (ix) गोपीचन्द नाथ।

इन नाथों ने अपने सम्प्रदाय में भोग का तिरस्कार, इन्द्रीय संयम, मन: साधना, प्राण साधना, कुण्डली जागरण, योग साधना को अधिक महत्व दिया है। इनकी साधना का मूल स्वर शील, संयम और शुद्धतावादी था। इस सम्प्रदाय में इन्द्रिय निग्रह पर विशेष बल

दिया गया है। अत: नारी से दूर रहने की भरसक शिक्षा दी गई है। सम्भव है कि गोरखनाथ ने बौद्ध बिहारों में भिक्षुणियों के प्रवेश का परिणाम और उनका चारित्रिक पतन देखा है। इस सम्प्रदाय में निवृति एवं मुक्ति गुरु के प्रसाद से ही मानी गई है। अत: गुरु का विशेष महत्व है। नाथ पंथियों के मुख्य सिद्धान्त इन्द्रिय संयम, मन: साधना, हठयोग साधना आदि का प्रभाव कबीर एवं अन्य संतों की रचनाओं पर भी देखा जा सकता है। गोरखनाथ आदि ने जिन प्रतीकों को परिभाषिक शब्दों को खंडन-मंडनात्मक शैली को अपनाया उसका विकास संत साहित्य में मिलता है।

नाथ मत का दार्शनिक पक्ष शैव मत से और व्यवहारिक पक्ष हठयोग से सम्बन्धित है। इन नाथों की रचनाओं में नैतिक आचरण, वैराग्य भाव, इन्द्रिय निग्रह, प्राण साधना, मन साधना और गुरु महिमा का उपदेश मिलता है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता है और उसके साथ ही जीवन की अनुभूतियों का सघन चित्रण भी है। इस दृष्टि से नाथ साहित्य की निम्न विशेषताएँ हैं -

नाथों ने सिद्धों द्वारा धर्म और समाज में फैलाई हुई अहिंसा की विषबेलि को काटकर चारित्रिक दृढ़ता और मानसिक पवित्रता पर बल दिया। इन्होंने नैतिक आचराण और मन की शुद्धता पर अधिक बल दिया। अपने मतानुयायियों को शीलवान होने का उपदेश दिया है। मद्य, भांग, धतूरा आदि मादक वस्तुओं के सेवन का परित्याग योगियों के लिये अनिवार्य माना गया है। योग साधना में नारी का आकर्षण सबसे बड़ी बाधा होती है। इसलिये नारी से दूर रहने का उपदेश दिया गया है।

नाथों ने धर्म प्रणीत बाह्याडम्बर और रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। उनके अनुसार पिण्ड में ब्राह्मण है, इसलिये परमतत्त्व को बाहर खोजना व्यर्थ है। मन की शुद्धता एवं दृढ़ता के साथ हठयोग के द्वारा उस परमतत्त्व का अनुभव किया जा सकता है। ध र्म के क्षेत्र में बाह्याडम्बर के लिये कोई स्थान नहीं है। इसलिये नाथों ने मूर्त्तिपूजा, मुंडन, विशिष्ट वस्त्र पहनना, ऊँच-नीच, वेद-पुराण पढ़ना आदि का विरोध किया है।

नाथ सम्प्रदाय में भी गुरु का स्थान सर्वोपरि माना गया है। इसलिये गुरु-शिष्य परम्परा को नाथ सम्प्रदाय में अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। उनकी मान्यता है कि वैराग्य भाव का दृढ़ीकरण और त्रिविध साधना गुरु ज्ञान से ही सम्भव हो पाती है। गोरखनाथ ने कहा है कि गुरु ही आत्माब्रह्म से अवगत कराते हैं। गुरु से प्राप्त ज्ञान के प्रकाश में तीनों लोकों का रहस्य प्रकट हो सकता है।

नाथों की साधना का क्रम इन्द्रिय निग्रह के बाद प्राण साधना तथा उसके पश्चात् मन: साधना है। मन: साधना से तात्पर्य है - 'मन को संसार से खींचकर अन्त:करण की ओर उन्मुख कर देना। मन की स्वाभाविक गति है, बाहरी जगत की ओर रहना, उसे पलट कर अन्त: जगत की ओर करने वाली इस प्रक्रिया को उलटवासी कहते हैं। नाथों ने उलटवासियों का प्रयोग अपनी साधना की अभिव्यक्ति के लिये किया है। उलटवासियाँ कहीं-कहीं क्लिष्ट जरूर है, लेकिन अद्‌भुत रस से ओत-प्रोत है।

आदि कालीन हिन्दी साहित्य को समृद्ध कराने में नाथ साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि नाथों ने संसकृत भाषा में भी विपुल मात्रा में रचनाएँ की हैं, लेकिन सामान्य जनों के लिये उन्होंने अपने विचार जन भाषा में ही व्यक्त किये हैं, जिस प्रकार उनके विचार परम्परागत रूढ़ी विचारों से अलग है, उसी प्रकार उनकी भाषा भी। आचार्य शुक्ल जी ने इनकी भाषा का खड़ी बोली के लिये राजस्थानी माना है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि नाथ साहित्य में स्वच्छन्द भाव और विचारों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति हुई है। नाथ साहित्य के देन को स्पष्ट करते हुए डॉ. राम कुमार वर्मा लिखते हैं - "गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया है, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ है। उसमें जहाँ तक एक ओर ईश्वर वाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई, वहाँ दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर भी आघात किया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आत्मिक अनुभूतियों के लिये सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया है।" डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ की रचनाओं का संकलन 'गोरखबानी' नाम से किया है। गोरखनाथ की रचनाओं में गुरु महिमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, कुण्डलिनी जागरण एवं शून्य समाधि का वर्णन है। गोरखनाथ ने शड्‌चक्रों वाला योग मार्ग हिन्दी साहित्य में चलाया। गोरखनाथ ने अपने शिष्यों को नारी से दूर रहने का उपदेश

दिया। कबीर साहित्य में उपलब्ध नारी विरोध इसी का परिणाम है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार - "इनकी सबसे बड़ी कमजोरी इनका रूखापन एवं गृहस्थ के प्रति अनादर भाव है।"

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-20
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-20
3. हिन्दी साहित्य एक परिचय डॉ. फणीश सिंह, पृष्ठ संख्या-22
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-21
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-26
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-28
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-26
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-20
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929), रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या-26

कौटिल्य के विचारों की प्रांसंगिकता

शिव कुमार सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

सार

भारत को सर्वप्रथम एक राजनीतिक सूत्र में बाँधने वाला मगध नरेश चन्द्रगुप्त मौर्य महान् राजनीतिज्ञ एवं चिन्तक कौटिल्य का शिष्य एवं अनुगामी था तथा उसकी यह उपलब्धि कौटिल्य के मार्गदर्शन का ही परिणाम था। कौटिल्य ने इस विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा साम्राज्य की सुख-शांति तथा समृद्धि के लिए मार्गदर्शन के रूप में अर्थशास्त्र की रचना की। इसमें कोई संदेह नहीं कि कौटिल्य ने जिस परिस्थिति में अर्थशास्त्र की रचना ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी आज से लगभग तेईस सौ वर्श पूर्व में की वह आज के भारत से सर्वथा भिन्न थी। फिर भी उसका चिन्तन आज भी बहुत हद तक प्रासंगिक है।

संकेताक्षरः कौटिल्य, अर्थशास्त्र, राजा, राजतंत्र, लोककल्याणकारी।

कौटिल्य राजतंत्र का पोशक था। उसने सप्तप्रकृतियों में स्वामी अथवा राजा का सर्वाधिक महत्व दिया है। उसने राजा को सर्वोपरि माना है। भारतीय सामाजिक परिदेश एवं नियमों को मानने की अपेक्षा उसमें की गई है परन्तु वह उनकी अवहेलना करने के लिए स्वतंत्र था। अतः कौटिल्य ने सर्वप्रधम राजाज्ञा को धर्मशास्त्र में उल्लिखित नियमों पर प्राथमिकता दी।[1] आधुनिक युग में प्राचीन एवं मध्ययुगीन राजतंत्र लगभग समाप्त हो चुका है। हाल में 240 वर्श पुराने नेपालीय राजतंत्र की समाप्ति से विश्व में राजतंत्र की समाप्ति की घोषणा हो गई है। यह युग लोकतंत्र का है। जहाँ राजा विद्यमान हैं भी वहाँ भी राजनीतिक व्यवस्था लोकतांत्रिक हैं इंग्लैड इसका उदाहरण है। बहुत से देश राजतंत्र से मुक्ति तथा गणतंत्र की स्थापना के लिए संघर्षरत है। भूटान के नरेश ने स्वयं वहाँ की जनता को चुनाव कराने और जनतंत्र की स्थापना के द्वारा देश का विकास करने के लिए प्रोत्साहित किया।

आज हम लोकतंत्र की बात करते हैं अर्थात् एक ऐसे सरकार की बात करते है। जो जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा गठित् हो। इस कसौटी पर कौटिल्य का राजतंत्र नहीं ठहरता चूँकि यह जनता द्वारा चुनी गई सरकार नहीं थी। परन्तु यहाँ ध्यान वेने की बात है कि कौटिल्य ने बार-बार इस बात को दुहराया है कि अगर प्रजा असंतुष्ट है तो राजपद असुरक्षित है।

कौटिल्य ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि प्राचीनकाल में भी प्रजा के सुख में ही राजा का सुख और प्रजा के हित में ही राजा का हित है। इतना ही नहीं उसने यह भी कहा कि जो राजा को अच्छा लगे वह उके हित में नहीं हैं, बल्कि प्रजा को अच्छा लगने वाले कार्यों में ही राजा का हित है।[2]

आधुनिक लोकतंत्र जन-कल्याण की भावना से प्रेरित है, आधुनिक लोकतंत्र का यही उद्देश्य है। इस दृष्टि से कौटिल्य का राज्य लोक कल्याणकारी राज्य था। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा आधुनिक काल की देन होते हुए भी कौटिल्य द्वारा राज्य के विविध और बहुआयामी कार्यों के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि उसके राज्य में लोककल्याणकारी राज्य के सभी लक्षणों का समावेश था।

कल्याणकारी राज्य में स्वामी एवं सेवक अर्थात् मालिक एवं मजदूर के बीच सम्बन्ध को नियमित करने का भी प्रावधान करता है। कौटिल्य ने भी राज्य को इस दिशा में उचित कदम उठाने का निर्देश दिया है। उसने यह स्पष्ट कहा है कि स्वामी और सेवक दोनों को श्रम एवं पूँजी के अनुसार उचित अंश प्राप्त होना चाहिए जिससे स्वामी सेवक और सेवक स्वामी को ठगने न पाएँ।

कल्याणकारी राज्य को विदेशी व्यापार पर नियंत्रण रखना चाहिए जो राज्य की सुरक्षा तथा लोगों के हितों में हो। आयात के सम्बन्ध में कौटिल्य ने निर्देश दिया है कि अस्त्र-शस्त्र, धातुओं, रथों, मूल्यवान पत्थर, अन्न अथवा पशु के निजी व्यापारियों को आयात करने की अनुमति न दी जाय। अर्थात् नुकसान करने वाले वस्तुओं के आयात पर रोक होना चाहिए तथा औशधि, बीज आदि का आयात कर मुक्त होना चाहिए।[3]

कौटिल्य ने बाजार पर नियंत्रण का भी उल्लेख किया है। व्यापारियों द्वारा सामान को गुप्त रूप से जमा करना तथा बाद में अधिक दामों पर बेचना अर्थात् कालाबाजारी करना जनहित में नहीं होने के कारण राज्य द्वारा प्रोत्साहित नहीं किया जाता। बल्कि ऐसे सामान को राज्य द्वारा जब्त कर लिया जात था। अनुचित ढंग से सामान को अधिक मूल्य पर बेचना दंडनीय अपराध था।[4] इस तथ्य को घ्यान में रखकर कि चतुर व्यापारी बाजार में सामान को न जाने देने के उद्देश्य से उत्पत्ति के स्थान पर खरीद लेने का प्रयास करें। कौटिल्य ने इस प्रकार की बिक्री को निशिद्ध किया है।[5] कौटिल्य ने बिक्री मूल्य नियंत्रित करने की वकालत की है। आज भी ऐसी सरकारी संस्था वर्तमान है जो अर्थव्यवस्था में मूल्य पर नजर रखती है, विशेष कर सार्वजनिक क्षेत्र में।[6]

कौटिल्य ने कर लगाने के सम्बन्ध में भी प्रजा के हितों को ध्यान में रखा है। कौटिल्य इस पक्ष में नहीं है कि प्रारंभ से ही व्यवसाय पर कर लगाया जाय चुँकि इससे व्यापार का पनपना कठिन हो जाता है। अत: कर तभी लगाना चाहिए, जब व्यवसाय सम्पन्न, समृद्ध और कर देने में सक्षम हो जाए।

आज भारतीय समाज अथवा किसी समाज का धार्मिक नियमों द्वारा ही परिचालित होता है। राज्य इन नियमों का लोगों द्वारा इनके पालन को सुनिश्चित करता है। आज राज्य इन परम्परागत नियमों विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, सम्पत्ति आदि विषयों से सम्बन्धित को आधुनिक सोच के अनुरूप बनाने के लिए नियम बनाता है। कौटिल्य राज्य को इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार ही नहीं देता बल्कि उनके सम्बन्ध में उत्पन्न विवादों का निपटारा करने का अधिकार देता है।[7]

कौटिल्य ने आधुनिक कालीन राज्यों की तरह राजा अथवा राज्य को आपातकाल में विशेष शक्ति प्रदान करने की व्यवस्था की है। उसने आपात स्थिति तथा विपदाओं से रक्षा करने के लिए राजा को निर्देश दिया है। कौटिल्य ने आधुनिक काल की तरह जनगणना का भी उल्लेख किया है। कौटिल्य ने केवल राज्य में बसने वाली प्रजा की संख्या नहीं बल्कि उनसे सम्बन्धित सम्पत्ति, रोजगार आदि सूचनाएँ भी एकत्रित करने का उल्लेख किया है। इस प्रकार कौटिल्य का राज्य प्रजा जनों के लिए 'पालने से लेकर कब्र तक' सभी प्रकार के कार्यों का सम्पादन करता है।[8]

इसमें कोई संदेह नहीं कि लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के, सभी तत्थ कौटिल्य के राज्य में नहीं मिलते फिर भी यह कहने में कोई संकोच नहीं हो सकता कि कौटिल्य ने राजा को लोककल्याण को ध्यान में रखते हुए राज्य के अधिकतम क्रियाकलापों को नियमित करने का आदेश दिया है।

कौटिल्य ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर भी गहन रूप से विचार किया है और इस सम्बन्ध में मंडल सिद्धांत और शाडगुण्य नीति का प्रतिपादन किया है। भले ही इस सम्बन्ध में आधुनिक सोच कौटिल्य के विचारों से पूर्णत: सहमत न हो परन्तु कई ख्रष्टि से उसके ये सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं। उदाहरण के लिए अगर हम उसके मंडल सिद्धांत को देखें तो कौटिल्य ने राज्यों को विभिन्न वर्गों में बाँटा है। मंडल सिद्धांत किसी एक राज्य को केंद्र में रखकर पड़ोस और फिर उसके पड़ोस के राज्यों को विभिन्न वर्गों में रखता है। कौटिल्य की मान्यता है कि पड़ोसी राज्य शत्रु होता है। अत: उसकी शक्ति को सीमित रखने के लिए उसके पड़ोस में स्थित राज्यों के साथ मित्रता रखनी चाहिए। वस्तुत: आज भी राज्य इसी ख्रष्टि से अपनी राजनपिक सम्बन्ध निर्धारित करते हैं। ख्र ष्टांत के लिए भारत की स्थिति की बात कर सकते हैं। भारत का पड़ोसी राज्य पाकिस्तान, चीन और नेपाल (माओवादी सरकार बनने के बाद) बार-बार विवाद उठाते रहते हैं। चीन और पाकिस्तान के-साथ युद्ध भी हुए हैं। इसी प्रकार शाड्गुण्य नीति के अंतर्गत युद्ध सम्बन्धित जो बातें कौटिल्य ने की हैं बे बहुत हद तक आज भी प्रासंगिक है।

कौटिल्य ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में स्थिरता के लिए दूतों के आदान-प्रदान का उल्लेख किया है। उसने विभिन्न प्रकार के दूतों का उल्लेख किया है। इन दूतों का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता था। कौटिल्य ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में दूतों की उपयोगिता की चर्चा की है तथा उसके कार्यों का विवरण किया है।

कौटिल्य राजा को इस बात का निर्देश दिया है कि वह मंत्री, मंत्रिपरिषद् तथा उच्चाधिकारियों के साथ अलग-अलग तथा सामूहिक रूप से मंत्रणा करे। वह इस मंत्रणा की गोपनीयता पर बल देता है। कौटिल्य ने राजा को न केवल मनुष्यों से बल्कि बोलने वाली चिड़ियों तथा पशुओं से मंत्रणा को गोपनीय रखने का निर्देश दिया है। आज इस प्रकार की गोपनीयता लोकतांत्रिक सरकारों के प्रशासनिक मामलों में बरती जाती हैं।[9]

कौटिल्य के राजा पर जादूगरों और पुरोहितों का जैसा प्रभाव था, आज के राजनीतिज्ञ भी ज्योतिशियों, ओझाओं, तांत्रिकों, आदि के दरवाजे खटखटाते नजर आते हैं और अपने कल्याण हेतु उनसे मंत्र-जाप, सिद्धि-यज्ञ का आयोजन करवाते रहते हैं। कौटिल्य उन कई गुप्त तरीकों का वर्णन करता हैं जिनसे विदेशी शासकों को मरवाया जा सकता हैं। कौटिल्य संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के फिदेल कास्त्रो के सिगार द्वारा मरवाने के प्रयत्नों के बारे में सुनकर आश्चर्यचकित नहीं होता। सी0 आई0 ए0 की गतिविधियाँ भी उसे चकित नहीं करती। कौटिल्य के विचार से यह सुझाव भी मिलता है कि राज्य के आतंकवादियों को दंड देने की क्या सीमाएँ हैं जो निर्दोश व्यक्तियों की हत्याएँ करते हैं। अतः कौटिल्य का विचार सभी तरह से प्रासंगिक है।

संदर्भ

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र : अनु0 वाचस्पति गैरोला, चौखंभा वाराणसी, 1991
2. अर्थशास्त्र, 1/9/34
3. अर्थशास्त्र, 2/21/31
4. अर्थशास्त्र, 2/2/19
5. अर्थशास्त्र, 2/22/9-13
6. उमेश कमार, कौटिल्याज थॉट इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1990, पृष्ठ संख्या 144
7. डॉ. मणिशंकर प्रसाद, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृष्ठ संख्या 72
8. डॉ. मणिशंकर प्रसाद, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृष्ठ संख्या 196
9. उमेश कमार, कौटिल्याज थॉट इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1990, पृष्ठ संख्या 138

1857 : प्रारंभिक भारतीय विमर्श का एक तुलनात्मक अध्ययन (1944-52 ई.)

डॉ० अमृता कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, आर.एन. कॉलेज, हाजीपुर

1857 के विद्रोह की 50वीं वर्षगाँठ पर विनायक दामोदर सावरकर द्वारा लिखित पुस्तक *1857 का स्वातंत्र्य समर* के बाद पंडित जवाहर लाल नेहरू, मन्मथनाथ गुप्त एवं मौलाना अबुल कलाम आजाद ने विद्रोह से संबंधित अपने विचारों एवं अवधारणाओं को क्रमशः सन् 1944 ई., 1948 ई. एवं 1952 ई. में रखा। समकालीन राजनीतिक नेतृत्व एवं बुद्धिजीवियों के रूप में इन्होंने अपने लेखनी के माध्यम से पहले पहल व्यापक स्तर पर इस विद्रोह के कारण, स्वरूप एवं परिणामों की नई अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्या की है। साथ ही इस विद्रोह के इतिहास लेखन के लिए एक मानक भी तैयार कर दिया, जिसकी नींव पर आगामी वर्षों में इस विद्रोह के भारतीय दृष्टिकोण से इतिहास लेखन की कोशिश आरंभ हुई। यहां तक कि विद्रोह की शतवार्षिकी अवसर पर 1857 के 'आधिकारिक' इतिहास लेखन के प्रेरणास्रोत मौलाना आजाद थे।

नेहरू, गुप्त एवं आजाद, ये तीनों ही राष्ट्रीय स्तर पर भारत के महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने भारत की आजादी एवं निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1857 के विद्रोह पर एक नये सिरे से विमर्श के लिए नेहरू ने 1944 में द *डिस्कवरी ऑफ इंडिया* में, क्रांतिकारी मन्मथनाथ गुप्त ने 1948 में *राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास* नामक पुस्तक के माध्यम से अपने विचारों को रखा। वहीं मौलाना आजाद ने शिक्षा मंत्री के रूप में सबसे पहले 1952 में राष्ट्रीय अभिलेखागार में इस विद्रोह के संदर्भ में अपने विचारों को रखा।

चूँकि 1857 के विद्रोह से संबंधित उनके विचारों का तुलनात्मक एवं विश्लेषनात्मक अध्ययन भारतीय इतिहास लेखन की धारा को समझने हेतु महत्वपूर्ण है। अतः इनकी लेखनी के माध्यम से विद्रोह के कारण, व्यापक स्वरूप, नेतृत्व, अंग्रेजों के द्वारा दमन, असफलता के कारणों एवं इसके प्रभाव को समझने की कोशिश की गई है। सर्वप्रथम, विद्रोह के कारणों को उनके नजरिये से समझने की कोशिश की गई है। पंडित नेहरू विद्रोह के कारणों पर प्रकाश डालते हुए भारत के उत्तरी सूबो में असंतोष, अंग्रेजो के भारतीयों के साथ अपमानजनक व्यवहार, नयी न्याय प्रणाली, अंग्रेजो का जातीय अहंकार एवं हुकूमती ढ़ांचे में भारतीयों की अवहेलना तथा अवध के विलय को जिम्मेदार मानते हैं।

मन्मथनाथ गुप्त का कहना है कि अंग्रेजों ने प्लासी के पहले ही जिस नीति का प्रवर्त्तन किया था और जिसे बड़ी प्रचंडता के साथ जारी रखा था, उसी का अंतिम नतीजा 1857 था। कंपनी ने एक के बाद एक पुराने राजकुलों को खत्म कर अपने में मिला लिया था। यहाँ के उद्योग-धंधों के नष्ट हो जाने से जो कारीगर श्रेणी का बोझ जमीन पर पड़ा, इससे कारीगरों का तो खैर दुर्दशा हुई ही, किसानों की हालत भी बिगड़ी और किसानों की हालत बिगड़ने का प्रत्यक्ष असर सैनिकों के मन पर पड़ा क्योंकि वे मुख्यतः किसान श्रेणी से ही आते हैं, किन्तु इस बात को किसी लेखक ने नहीं दिखलाया है। इस तरह सामंत तथा किसान दोनों ही असंतुष्ट थे, जिसमें कारतूस वाली घटना ने चिंगारी का कार्य किया।[1]

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने 1857 के विद्रोह का प्रमुख कारण जनता के बढ़ते हुए असंतोष को माना है। 1835 ई. के ब्रिटिश सरकार की नीतियों से जनअसंतोष बढ़ने लगा। जब कंपनी ने 70 साल से वफादार रियासत अवध को अपने अधिकार में

लिया तो लोगों के विश्वास को गहरा धक्का लगा। चूँकि बंगाल सेना के अधिकाशं सैनिक अवध के थे। अत: चर्बी के कारतूस वाले मामले ने असंतोष रूपी बारूद में आग लगा दी।[2]

इस तरह, तीनों ही विद्रोह के लिए ब्रिटिश सरकार की नीतियों को जिम्मेदार मानते हैं जिसमें कारतूस वाली घटना ने आग में घी का काम किया। आजाद लिखते हैं कि बहुत समय तक भारतीय जनता ब्रिटिश राज्य के मंतव्य को नहीं समझ पाई जिससे विद्रोह होने में 100 साल लग गए परन्तु आजाद की इन बातों से सहमत नहीं हुआ जा सकता, जैसा कि मन्मथनाथ गुप्त ने भी लिखा है कि प्लासी के कुछ सालों के अंदर 1764 ई. में बंगाल सेना में व्यापक विद्रोह, बहावी आन्दोलन, किसान आन्दोलन आदि के रूप में विद्रोह की एक लम्बी श्रृंखला 100 साल की इस अवधि में देखने को मिलती है। अगर वाकई भारतीय जनता अंग्रेजों के कार्य के मंतव्य को नहीं समझ पाती तो टीपू सुल्तान तुर्की, फ्रांस आदि देशों से पत्र-व्यवहार कर अंग्रेजों के खिलाफ मदद नही मांगते और भारत में 1757-1857 के बीच विद्रोह की एक लम्बी श्रृंखला देखने को नहीं मिलती।

द्वितीय, इस विद्रोह के स्वरूप को भी इनकी दृष्टि से देखना महत्वपूर्ण होगा, क्योंकि इसके स्वरूप से संबंधित विमर्श में गहरे मतभेद हैं और न पाटने वाली दूरियाँ भी हैं। उदाहरणस्वरूप एक और जहाँ साम्राज्यवादी इतिहास लेखन ने महज इसे बंगाल आर्मी के कुछ असंतुष्ट सिपाहियों का विद्रोह माना वहीं दूसरी ओर इसे भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में भी स्वीकार किया गया। विमर्श के इन दो बिन्दुओं के बीच इनके विचारों को देखना एक महत्वपूर्ण एंव रोचक अध्ययन होगा।

विद्रोह के व्यापक स्वरूप के बारे में पंडित नेहरू लिखते हैं कि यह विद्रोह एक फौजी बगावत से कहीं ज्यादा बड़ी चीज थी, जो तेजी से फैलते हुए विद्रोह के रूप में परिणत हो गई। अंतत: यह भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई हो गई। यह विद्रोह सिर्फ सिपाही या सामंत का विद्रोह नहीं था बल्कि आम जनता के लोकप्रिय विद्रोह के रूप में दिल्ली, संयुक्त प्रांत (उ.प्र.), बिहार और मध्य हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों तक ही सीमित था। विद्रोह में हिन्दू एंव मुसलमान दोनों ने एक साथ भाग लिया एवं इसके पीछे विदेशी विरोधी भावना काम कर रही थी।[3]

मन्मथनाथ गुप्त 1857 के विद्रोह को तो एक हद तक जनता की क्रांति के रूप में स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं कि इसे पूर्णत: जनता की क्रांति नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका उद्देश्य जनराज्य कायम करना नहीं था, बल्कि विशेषत: सामंती श्रेणी के हक में हुई थी। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि अगर विद्रोह सफल भी हुआ तो सामंतवाद पहले की तरह नहीं होता बल्कि पुनरोद्धार बदले हुए रूप में होता क्योंकि इस विद्रोह के अंदर क्रांतिकारी उपादान भी थे। जैसा कि विद्रोहियों ने बरेली की घोषणा में कहा था– "ईश्वर की दी हुई वस्तुओं में सबकी आजादी है। जिसने हमेशा इन्हें अलग कर दिया है, क्या वह हमेशा इसको अलग रख पाएगा, सभी भाई-भाई हैं। उनमें किसी तरह का विभेद नहीं रहेगा।" विद्रोह में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने एकजुटता से भाग लिया। इस समय भी अखिल भारतीय देश भक्ति का उदय होने लगा थाा। अत: इस विद्रोह में देशप्रेम की भावना विद्यमान थी।"[4]

आजाद, 1857 के विद्रोह के स्वरूप को इसके कारण में ही स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह विद्रोह भारतीय जनता के बढ़ते असंतोष के कारण हुआ जिसमें देशप्रेम की भावना विद्यमान थी किन्तु धार्मिक भावना ने विद्रोह को भड़काने का कार्य किया।[5] इस तरह, इन तीनों की हस्तियों के विचारों के माध्यम से इस विद्रोह का स्वरूप काफी स्पष्ट हो जाता है। तीनों ही इसे जनता के विद्रोह के रूप में देखते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि आधुनिक अर्थ वाली राष्ट्रीयता का उदय उस समय नहीं हुआ था फिर भी इस विद्रोह से उदित देशप्रेम की भावना एवं विदेशी विरोधी भावना व्यापक रूप से कार्य कर रही थी, जिसमें हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ने पूरी एकता के साथ भाग लिया।

यह विद्रोह पहले से आयोजित था या नहीं, इस बिन्दु पर मौलाना आजाद पंडित नेहरू एवं गुप्त से सहमति नहीं रखते हैं। जहाँ पंडित नेहरू व मन्मथ नाथ गुप्त इसे योजनाबद्ध मानते हैं, वही आजाद इसे स्वीकार नहीं करते हैं। जैसा कि पंडित नहेरू लिखते है कि विद्रोह का खुफिया तौर पर बहुत अच्छा संगठन किया गया था, लेकिन 10 मई को ही मेरठ की हिन्दुस्तानी फौज ने बगावत कर दी। फलत: निर्धारित समय से पहले ही विद्रोह शुरू हो जाने से नेताओं की सारी योजना ही बिगड़ गई। इस तरह पंडित नेहरू यह स्वीकार करते हैं कि विद्रोह की योजना पहले से बनाई गई थी।[6]

मन्मथनाथ गुप्त भी इस विद्रोह को संगठित एवं योजनाबद्ध मानते हुए विस्तृत चर्चा करते हैं। वे नानासाहब को विद्रोह के सबसे बड़े नेता के रूप में स्वीकार करते हैं एवं लिखते हैं कि उनके निर्देशन में 31 मई, 1857 को विद्रोह के लिए नियत किया गया

था किया परन्तु इसी समय नई कारतूस वाली घटना से इस विद्रोह को 31 मई तक रोका नहीं जा सका। फलतः 10 मई को ही मेरठ के सैनिकों ने बगावत कर दी।[7]

वहीं मौलाना आजाद इसका खंडन करते हैं एवं कहते हैं कि 1857 का विद्रोह सावधानी से बनाई गई किसी निश्चित योजना पर आधारित नहीं थी और न उसके पीछे बड़े-बड़े चतुर आयोजक ही थे। इसी संदर्भ में नानासाहब, अवध के वजीर अली नकी खाँ, मुंशी अजीमुल्ला खाँ, रंगोबापूजी एवं बहादुरशाह जफर को इतिहास में विद्रोह के शडयंत्रकारी होने के आरोप को निराधार बताते हुए अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि उन्होंने लिखा है- "जब विद्रोह हुआ तो वह कुछ व्यक्तियों या गुटो के शडयंत्र के कारण नहीं, बल्कि जनता के बढ़ते हुए असंतोष के कारण हुआ।"[8]

तृतीय, विद्रोह के नेतृत्व के संदर्भ में नेहरू गुप्त व आजाद तीनों ही नेता यह कहते हैं कि इस विद्रोह का नेतृत्व सामंत वर्ग कर रहा था। जिसमें अधिकांश नेता अपने स्वार्थ हेतु विद्रोह में शामिल हुए थे। पंडित नेहरू विद्रोह के दौरान छापामार लड़ाई करने वाले तीन नेताओं फिरोजशाह, तात्याटोपे एंव रानी लक्ष्मीबाई की प्रशंसा करते हैं। मन्मथनाथ गुप्त, बख्त खाँ, बहादुर शाह जफर, नाना साहब, रानी लक्ष्मी बाई आदि की विद्रोहियों ने नेता के रूप में चर्चा की है एवं कहते हैं कि 1857 के विद्रोह के संबंध में लिखते हुए लक्ष्मीबाई को भूलना असंभव है। आजाद विद्रोह के नेता के रूप में बख्त खाँ, बहादुर साह, अहमदुल्लाह तथा तात्या टोपे को देखते हैं।[9]

चतुर्थ, 1857 के विद्रोह के दमन का साम्राज्यवादी इतिहास लेखन में एकांगी वर्णन किया गया, जिसमें विद्रोहियों द्वारा किए गए कार्यों को काफी बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है। नेहरू, गुप्त व आजाद तीनों ने ही इनके दमन के एकांगी विवरण से परे सच्चाई उजागर करने की कोशिश की है। जैसाकि पंडित नहेरू लिखते हैं कि विद्रोह और उसके दमन का इतिहास में बहुत ही गलत झूठ चित्र दिया गया है। उसके बारे में हिन्दुस्तानी क्या सोचते हैं, यह बात किताब के पन्ने में शायद ही मिलती हो।[10] आजाद लिखते हैं कि इस संघर्ष को इतनी शक्ति एवं क्रूरता से दबाया गया कि कई साल तक देश में आंतक का खौफ इस तरह बना रहा कि किसी भारतीय में स्वतंत्र रूप से 1857 की घटनाओं के बारे में कुछ लिखने या कहने की हिम्मत नहीं थी। दिल्ली के सब इंस्पेक्टर मिर्जा मैनुद्दीन का हवाला देते हुए लिखते हैं कि सरकारी कर्मचारी या सरकार के समर्थक कुछ भारतीयों द्वारा लिखा विवरण भी स्वतंत्र एवं स्पष्ट रूप से नहीं था।[11]

इस विद्रोह के दमन की विभीषिका का उजागर करते हुए नेहरू, गुप्त एवं आजाद कर्नल नील द्वारा बनारस एवं इलाहबाद में किए गए बर्बरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख करते हैं। इलाहाबाद के आस-पास शायद ही कोई ऐसा पेड़ बचा हो जिस पर किसी न किसी अभागे भारतीय की लाश न लटकी हो। इसको दबाने के लिए ऐसे अकथनीय अत्याचार हुए जिनके सामने नादिरशाह और चंगेज खाँ के अत्याचार भी फीके पड़ जाते हैं। वहीं दिल्ली में बदले की लहर में मेजर हडसन भीषण अत्याचारों का प्रतीक बन गया। इस तरह अंग्रेजों ने जो काले कारनामें किए, जितनी बर्बरता एवं क्रूरता से इस विद्रोह का दमन किया, उसका वर्णन इतिहास में नहीं मिलता।[12]

पंचम्, इस विद्रोह के असफलता के कारणों पर उनके आलेखों के माध्यम से समझने की कोशिश की गई है। नेहरू, गुप्त एवं आजाद, तीनों ही विद्रोह की असफलता के कारणों पर एक-दूसरे के प्रति सहमति रखते हैं। उनका मानना है कि विद्रोहियों के नेता असंगठित थे एवं उनके सामने कोई रचनात्मक आदर्श या सामूहिक हितकर मकसद नहीं था। नेताओं में राष्ट्रीय एकता लाने वाली भावना नहीं थी। अधिकांश नेताओं ने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु विद्रोह में भाग लिया था। चूंकि उनकी इच्छा सामंतवादी विशेषाधिकारों को बनाए रखने की थी। अतः यह उस राष्ट्रीय भावना को जगह नहीं ले सकती थी। जैसा कि पंडित नेहरू लिखते हैं– "किसी पराजित आदर्श के लिए यानी सामंतवादी ढांचे के लड़ने से आजादी हासिल नहीं हो सकती थी।"[13]

शष्ठम्, इस विद्रोह के व्यापक प्रभाव को इन तीनों नेताओं ने विश्लेषित किया है एवं लगभग एकमत भी हैं। नेहरू, गुप्त व आजाद इसके प्रभावों के बारे में लिखते हैं इस विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने अपनी नीतियों में व्यापक बदलाव इस तरह किए कि अपने साम्राज्य की जड़े और मजबूत कर सके। इसके लिए सबसे पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन को समाप्त कर ब्रिटिश संसद ने भारत का शासन अपने हाथों में लिया और मल्काएँ की ओर से समस्त भारतीय जनता के नाम एक घोषणापत्र प्रकाशित हुआ, जिसमें कहा गया कि भारतीय जनता की भावनाओं का ख्याल रखा जाएगा। इसके तहत् रजवाड़ों के साथ भी

मेल-मिलाप की नीति अपनाई गई। इस तरह रियासतों को कायम रखने और कठपुतली बनाने की इस नीति ने सामंती के एक बड़े तबके को शांत कर दिया और ये ब्रिटिश हुकूमत के खंभे बन गए।[14]

इस विद्रोह के परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी फौज में संतुलन और प्रतितौलन की नीति को इस तरह बढ़ावा दिया किया कि उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना न उठ सके। पंडित नेहरू इस विद्रोह के परिणाम के रूप में इस बात पर जोर देते हैं कि अब नौकरशाही का भारतीयकरण कर अंग्रेजी शासन ने अपने लिए एक समर्थक वर्ग तैयार करना आरंभ किया क्योंकि विद्रोह के बाद जाहिर हो गया कि भर्ती किए हुए हिन्दुस्तानी ब्रिटिश राज्य को मजबूत करने के मुख्य हथियार है। अत: हुकूमती ढाँचे ने भारतीयों को शामिल करने की मेहरबानी ब्रिटिश पंजा कसने के लिए की गई।[15] इस विद्रोह के पश्चात् आम जनता में फूट डालने की ऐसी नीति अपनाई गई जिससे धीरे-धीरे हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के खिलाफ होते गए।

निष्कर्षत: जवाहर लाल नेहरू जो कि भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे और मौलाना अबुल कलाम आजाद जो कि भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री थे, स्वाभाविक रूप से ये देश के मुख्य नीति-निर्माता थे। इनकी स्पष्ट मंशा थी कि 1857 के विद्रोह का निष्पक्ष इतिहास लेखन भारतीय इतिहासकारों के द्वारा किया जाए क्योंकि अभी तक भारतीय दृष्टिकोण से 1857 का गंभीर इतिहास लेखन नहीं हुआ था। इस योजना के तहत् मौलाना अबुल कलाम आजाद ने सुरेन्द्र नाथ सेन से 1857 के विद्रोह पर इतिहास लिखने के लिए आग्रह किया और उनकी पुस्तक विद्रोह के शतवार्षिकी के अवसर पर *अठारह सौ सत्तावन* के रूप में आई जिसमें मौलाना आजाद के आलेख को प्रस्तावना के रूप में शामिल किया गया। इसके अतिरिक्त विद्रोह की शतवार्षिकी अवसर पर पी.सी. जोशी, आर.सी. मजूमदार, रामविलास शर्मा ने भी इस विद्रोह पर पुस्तकें लिखी, जिसमें इन आरंभिक विचारों की स्पष्ट झलक दिखलाई देती है। इस तरह नेहरू, गुप्त एवं आजाद, इन तीनों हस्तियों ने भारतीय दृष्टि से 1857 के विद्रोह के कारण, स्वरूप, दमन एवं प्रभाव को समझने का एक मार्ग प्रशस्त कर दिया।

संदर्भ सूची

1. मन्मथनाथ गुप्त, '1857 की महाक्रांति और उसका दमन' प्रदीप सक्सेना (संपादित), *उद्भावना,* अंक 75, जुलाई 2007, पृष्ठ सं. -81-84
2. मौलाना अबुल कलाम आजाद, सुरेन्द्र नाथ सेन कृत *अठारह सौ सत्तावन* की प्रस्तावना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली 2005, पृष्ठ सं. -xvii-xix.
3. पंडित जवाहर लाल नेहरू, *हिन्दुस्तान की कहानी,* नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या 314
4. पूर्वोक्त, मन्मथनाथ गुप्त, पृष्ठ सं.-84
5. पूर्वोक्त, मौलाना अबुल कलाम आजाद, पृष्ठ संख्या गगण
6. पूर्वोक्त, पंडित जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ सं.-374
7. पूर्वोक्त, मन्मनाथ गुप्त, पृष्ठ सं.-87-90
8. पूर्वोक्त, मौलाना कलाम आजाद, पृष्ठ सं.-xvi
9. पूर्वोक्त, पंडित जवाहर लाल नेहरू, पृष्ठ सं.-375
10. पूर्वोक्त, पंडित जवाहर लाल नेहरू, पृष्ठ सं.-376
11. पूर्वोक्त, मौलाना अबुल कलाम आजाद, पृष्ठ सं.-xiii
12. पूर्वोक्त, पंडित जवाहर लाल नेहरू, पृष्ठ सं.-377, मन्मथनाथ गुप्त, पृष्ठ संख्या 91, मौलाना अबुल कलाम आजाद, पृष्ठ सं.-xxiii
13. पूर्वोक्त, पंडित जवाहर लाल नेहरू, पृष्ठ सं.-375
14. पूर्वोक्त, मन्मथनाथ गुप्त, पृष्ठ सं.-96-97
15. पूर्वोक्त, पंडित जवाहर लाल नेहरू पृष्ठ सं.-381

प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास लेखन : एक मूल्यांकन

डॉ० अनिल कुमार सिन्हा

एम.ए., पी.एच-डी, (नेट), प्रधानाध्यापक, रा.म.वि., ढोली, मुजफ्फरपुर

सारांश

भारतीयों में इतिहास के प्रति जागरूकता अति प्राचीनकाल से ही मिलती है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' पूर्णत: ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें समय की अवधारणा वर्तमान है। इन तथ्यों को नजरअंदाज कर ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा इस मिथक को प्रचारित-प्रसारित किया गया कि भारतीयों में इतिहासबोध था ही नहीं। इसका मकसद अपने साम्राज्यवादी हितों को साधना था। भारत में ब्रिटेन की व्यापारिक गतिविधियों को नैतिक आधार प्रदान करना इस काल के साम्राज्यवादी आर्थिक इतिहास लेखन की एक जरूरत थी। यद्यपि सिद्धांत रूप में पहली बार दादा भाई नौरोजी और आर.सी.दत्त सरीखे इतिहासकारों ने 'आर्थिक अपक्षय का सिद्धांत' प्रस्तुत करने काम किया, लेकिन इसकी शुरुआत हम बहुत पहले पाते हैं जब राजा राम मोहन राय ने इन्हीं बातों को 1931 ई. में ब्रिटिश कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया था।

विशिष्ट शब्द : राजतरंगिणी, इतिहासबोध, साम्राज्यवादी, इतिहास लेखन, आत्मनिर्भर ग्रामीण व्यवस्था, आर्थिक अपक्षय, द्वन्दात्मक भौतिकवाद

भारतीय इतिहास लेखन का कार्य ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा इस निशेधात्मक प्रवृत्ति के साथ शुरू हुआ कि भारतीयों को कोई इतिहास बोध ही न था। अपने आप में यह प्रवृत्ति एक मिथक के रूप में शुरू हुई और इसको जोर-शोर से प्रचारित करने का काम ब्रिटिश शासक-इतिहासकारों ने किया। यद्यपि तथ्य इससे भिन्न है। भारतीयों में इतिहास के प्रति जागरूकता अति प्राचीनकाल से ही मिलती है। महाभारत में वर्णित है 'जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की शिक्षा दे, वही इतिहास है। संभव है यह इतिहास की अपूर्ण और काफी हद तक संकीर्ण व्याख्या हो, लेकिन समय के परिप्रेक्ष्य में हम देखें तो यह एक अत्यंत ही अग्रसोची प्रवृत्ति का परिणाम था। कल्हण की राजतरंगिणी पूर्णत: ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसमें समय की अवधारणा वर्तमान है। इन तथ्यों को नजरअंदाज किया गया और एक मिथक को प्रचारित-प्रसारित किया गया कि भारतीयों में इतिहास बोध था ही नहीं। इसका स्पष्ट मकसद अपने साम्राज्यवादी हितों को साधना था।

आरंभ में इतिहास लेखन का कार्य भाषाविदों ने किया, इनके निष्कर्षों को तोड़ा-मरोड़ा गया, इसकी गलत व्याख्या प्रस्तुत की गई तथा एक ऐसे निष्कर्ष की ओर हमें बढ़ने के लिए बाध्य किया गया, जहाँ सच को सच मानने का साहस ही न रहे। आरंभिक भाषाविदों में क्रिष्चियन लासेन, रिचर्ड फिक, रिज डेविड का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इनके निष्कर्षों में भारत को अप्रतिम रूप में दर्शाया गया था, परिणाम हुआ इसकी व्याख्या की गयी कि भारत दार्शनिकों का देश रहा है। सपेरों, नटों का देश भारत था और भौतिकता से इस देश के वासियों का कोई संबंध नहीं था। भाषाविदों ने आर्थिक इतिहास लेखन की ओर अपना ध्यान केंद्रित नहीं किया था। वे सामान्य तौर पर प्राचीन भारत के गौरवमयी पल को रेखांकित करने का काम किये थे, लेकिन इसके आधार पर जो निष्कर्ष निकाला गया वह ब्रिटिश शासक इतिहासकारों की मंशा स्पष्ट कर गया। इनका लेखन आर्थिक इतिहास नहीं था, फिर

भी दार्शनिकों का देश और भौतिकता से इन्हें कोई संबंध नहीं था - एक ऐसा निष्कर्ष था जो बहुत दिनों तक भारतीयों को आर्थिक रूप से पंगु और आर्थिकेत्तर साबित करता रहा।

19वीं और 20वीं शताब्दियों में साम्राज्यवाद इतिहास लेखकों ने अपने निहित स्वार्थ के वशीभूत होकर इस कार्य को अंजाम दिया। जेम्स-मिल, ऐल्फिन्सटन, स्मिथ आदि विद्वानों का नाम इस क्षेत्र में सर्वोपरि है। 1817 में प्रकाशित जेम्स मिल की रचना हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया में इस बात पर बल दिया गया कि ब्रिटिश पूर्व भारतीय समाज अपरिवर्तित समाज था। गतिहीनता का उल्लेख ब्रिटिश शासन के कार्यों को उचित ठहराने का प्रयास था। एल्फिन्सटन सरीखे विद्वान इससे सहमत थे और रोमांसवाद के प्रभाव में आकर उन्होंने प्राचीन भारत के अपरिवर्तनशील ग्राम-समुदायों के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर लिखा। इस तरह के पूर्व संकल्पित लेखों का मुख्य उद्देष्य यह साबित करना था कि ब्रिटिश शासन के वृहत्त प्रशासन और कानून भारतीय सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को बदलने में समर्थ है। इन लोगों ने भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था के बारे में जो कुछ यूरोप में प्रचार किया वह पश्चिमी विचारकों के लिए इतिहास के स्रोत और आधार के रूप में काम किया। मार्क्स का 'एशियाटिक मोड ऑफ प्रोडक्शन' इस तरह के प्रचार का ही कुफल था। मार्क्स भारतीय इतिहास पर अपने विचार प्रस्तुत करते समय इस तरह के स्रोतों को इस्तेमाल करने के लिए बाध्य था, क्योंकि कोई दूसरा स्रोत और मूल्यांकन पश्चिम में नही पहुँच रहा था। मार्क्स का 'एशियाटिक मोड ऑफ प्रोडक्शन' मूलत: स्मिथ, मिल, ऐल्फिन्सटन आदि विद्वानों के विचारों पर ही आधारित था और उसी का समर्थन कर रहा था। मार्क्स की यह विचारधारा आत्मनिर्भर ग्रामीण व्यवस्था की प्रभुता, निजी रूप में भूमि स्वामित्व की अनुपस्थिति तथा ग्राम समुदायों की राज्य के प्रति अधीनता जैसी विशेषताओं से युक्त थी। बी.ए.स्मिथ का नाम भारतीय इतिहास के साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के सर्वोत्तम व्याख्याता के रूप में रेखांकित किया जा सकता है, जो ऐतिहासिक शोध की अधिक विकसित तकनीकों से प्रशिक्षित था, वे अपना ध्यान प्राचीन भारत के सामान्य इतिहास की ओर दिया। किन्तु 1904 में उसने एक महत्वपूर्ण टिप्पणी की कि प्राचीन काल में भूमि पर राजा का स्वामित्व होता था। उनके यह विचार अंग्रेजों के औपनिवेशिक हितों के अनुकूल थे। साम्राज्यवादी लेखक 19वीं और 20वीं सदी के प्रारभ में ब्रिटिश शासक द्वारा कृषि-व्यवस्था में परिवर्तनों के लिए सैद्धांतिक आधार तैयार करना चाहते थे।

बीसवीं शताब्दी से यह प्रवृत्ति और अधिक मुखर रूप में सामने आई। एच.जी.रालिंसन, इ.एच.वर्मिंगटन, चार्ल्सवर्थ, मार्टिमर व्हीलर आदि विद्वानों ने ब्रिटिश शासन के प्रति अपने दायित्व बोध से लैस होकर इस कार्य को अंजाम दिया। लेकिन बीसवीं शताब्दी की यह एकमात्र प्रवृत्ति नहीं थी, बल्कि इसके समानांतर अन्य प्रकार की विचारधाराओं का इस काल में अभ्युदय उल्लेखनीय है। जिस तरह भारत में ब्रिटेन की राजनैतिक सत्ता के औचित्य को नैतिक आधार प्रदान करने के लिए लेखन हो रहे थे, ठीक उसी तरह भारत ब्रिटेन के आर्थिक संबंध को भी औचित्य प्रदान करने का काम किया था। आर्थिक इतिहास लेखन इस बात का प्रमाण है। भारत में ब्रिटेन की व्यापारिक गतिविधियों को नैतिक आधार प्रदान करना इस काल के साम्राज्यवादी आर्थिक इतिहास लेखन की एक जरूरत थी। यही कारण था कि रोम-भारत व्यापार के अतीतकालीन महत्व को व्यापक महत्व दिया गया। भारत में यूरोपीय व्यापारिक गतिविधियों को औचित्य और नैतिक आधार प्रदान करने के लिए अतीत में भारत के बाह्य देशों से व्यापारिक संबंधों को उछालना एक जरूरत थी। ठीक इसके विपरीत इस काल में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का भी दौर चल रहा था। 1905 के बंग-भंग के बाद इस प्रवृत्ति में और अधिक निखार आया। राष्ट्रवादी लेखन प्राचीन भारत में एक समृद्ध और विकसित आर्थिक ढाँचा की बात कर रहा था। इनका मानना था कि प्राचीन भारत में सिक्के, मुद्रा, सेटिट्यों का अस्तित्व आदि ऐसे सबल साक्ष्य थे जो हमारी व्यापारिक प्रगति का सूचक था। जी.एल.आद्या का नाम उल्लेखनीय है जो विदेशी प्रभाव को अपने लेखन में व्यक्त कर रहे थे। वे भारत-रोम व्यापारिक संबंधों में विदेशियों के वर्चस्व की बात स्वीकार करते हैं। प्रो आर.एस.शर्मा और डी.एन.झा ने प्राचीन भारत नामक ग्रंथ में '1200 ई. तक भारत का आर्थिक इतिहास : प्रवृत्तियाँ एवं संभावनाएँ' नामक आलेख में स्पष्ट किया है कि दक्षिण-पूर्व एशिया से भारत के वाणिज्यिक संबंधों के विस्तृत विश्लेषण के आधार पर उपर्युक्त अवधारणा को संशोधित किया जा सकता था, किंतु आद्या के ग्रंथ में इसका वर्णन अत्यंत अपर्याप्त है।

साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के तहत जो विचार प्रस्तुत किए जा रहे थे, उसका विरोध स्वाभाविक रूप से उन इतिहासकारों ने किया जो किसी न किसी रूप में राष्ट्रवादी आंदोलन से जुड़े थे या फिर उनके प्रभाव में थे। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने ब्रिटिश विद्वानों

के पूर्वाग्रह पूर्ण मतों को चुनौती देकर न केवल एक समानांतर इतिहास की परिकल्पना प्रस्तुत की, बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन को भी सैद्धांतिक आधार प्रदान कर मजबूती प्रदान किया। राष्ट्रीय आंदोलन को इन विद्वानों ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और दृष्टि प्रदान किया। दादा भाई नौरोजी और आर.सी.दत्त सरीखे विद्वानों ने अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण को रेखांकित किया और इसे एक सिद्धांत के रूप में पेश किया। दादा भाई नौरोजी और आर.सी.दत्त सरीखे इतिहासकारों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षयकारी दोहन का पुरजोर विरोध कियां। यद्यपि सिद्धांत रूप में पहली बार 'आर्थिक अपक्षय का सिद्धांत' प्रस्तुत करने का काम इन विद्वानों ने किया, लेकिन इसकी शुरुआत हम बहुत पहले पाते हैं। राजा राम मोहन राय ने इन्हीं बातों को 1831 ई. में ब्रिटिश कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया था। 1905 ई. में बंगाल के विभाजन के पश्चात् राष्ट्रीय चेतना की जो आग भड़की उसने प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था संबंधी अध्ययन को प्रोत्साहन दिया। प्राचीन भरत की आर्थिक दशा से संबंधित ब्रिटिश अवधारणाओं का विरोध करने वालों में आर.के. मुकर्जी का नाम उल्लेखनीय है। उनकी रचना 'इंडियन शिपिंग एंड मेरिटाइम एक्टिविटी' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन भारतीयों ने सामुद्रिक गतिविधियों के विकास के लिए प्रकृति द्वारा प्रस्तुत अवसरों का पूर्ण इस्तेमाल किया और अन्य एशियाई देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किए। के.पी.जायसवाल का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने साम्राज्यवादी इतिहास लेखकों के पूर्वाग्रहपूर्ण विचारों का जोरदार खडन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने प्राचीन भारत में राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था का विकसित ढांचा प्रस्तुत किया। 1912 से 1915 के बीच उन्होंने 'मॉडर्न रिव्यू' नामक पत्रिका के लिए जो लेख लिखे उसे 1924 में पुस्तक का रूप प्रदान किया जा सका, जो हिन्दू पॉलिटी के नाम से सामने आयी। यद्यपि उन्होने प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोई पुस्तक प्रस्तुत नहीं की, उनका मुख्य जोर राज्य-व्यवस्था पर था, जो अर्थशास्त्र पर लिखी जाने वाली पुस्तकों का मार्ग दर्शन किया। 1904 में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का पहली बार सामने आना और फिर 1909 में शामशास्त्री द्वारा उसके प्रकाशन के बाद प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था और उसमें राज्य की भूमिका पर पर्याप्त प्रकाश डालना संभव हो सका।

आर.सी. मजूमदार ने यूरोपीय विद्वानों की इस धारणा का खंडन किया कि भारतीय पारलौकिक जीवन में ही ज्यादा रुचि रखते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के प्रचार का ही कुफल था कि संपूर्ण यूरोपीय जगत भारतीयों को नट, सपेरों, गंडा-ताबीज और पारलौकिक जीवन पर विश्वास करने वाला मानने लगा था। मैक्समूलर के विचारों को इस संदर्भ में गलत ढंग से व्याख्यायित और पेश किया गया था। पाश्चात्य विद्वानों ने मैक्समूलर की रचना को स्रोत बना कर जो गलतबयानी की थी, उसमें उनका अपना निहित स्वार्थ था और इससे ब्रिटिश शासकों की सकारात्मक भूमिका को रेखांकित किए जाने में मदद मिलती थी। आर.के.मुकर्जी ने मजूमदार की बातों को ज्यादा तल्खी से प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में के.आर.आर.शास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होंने पर्याप्त रूप से इस पर प्रकाश डाला।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में यह प्रवृत्ति जोर-शोर से इस कार्य को अंजाम दे रही थी। तृतीय दशक में अनेक विद्वानों ने इस बात को प्रचारित प्रसारित करने का काम किया कि प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन काफी समुन्नत था और अन्य पाश्चात्य आर्थिक व्यवस्थाओं से कहीं आगे था। प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रशंसनीय पहलुओं पर जोर दिया जाने लगा और इसको काफी बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया। इस बात का विरोध किया गया कि प्राचीन भारतीय लोक जीवन आध्यात्मिक ज्यादा लौकिक कम था। एम.ए.बख, एन.सी.बंदोपाध्याय और एस.के.दास का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने तीसरे दशक में राष्ट्रवादी चेतना से लैस होकर भारतीय इतिहास का उद्घाटन किया।

ब्रिटिश शासनकाल में इतिहास लेखन के लिए पर्याप्त स्रोत सामग्री उपलब्ध हो सकी। 1837 में जेम्स प्रिंसेप के द्वारा अशोक के अभिलेखों को पढ़ा जाना। 1861 में भारत सरकार द्वारा पुरातत्व निदेशक के रूप में एलेक्जेंडर कर्निघम की नियुक्ति, 1904-05 में अर्थशास्त्र का पहली बार सामने आना और 1909 में शामशास्त्री के द्वारा उसका प्रकाशन आदि घटनाओं ने राष्ट्रवादी चेतना से लैस इतिहासकारों को स्रोत सामग्री की बहुलता ने अपने कार्य संपादित करने की सुविधा प्रदान की। अर्थशास्त्र के प्रकाशन के बाद प्रत्येक भारतीय इतिहासज्ञ का ध्यान इस ओर आ गया और इसी का परिणाम था कि 1910-30 के बीच अधिकांश भारतीय इतिहासकारों ने उससे संबंधित रचना प्रस्तुत की। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की प्रतिक्रिया में प्राचीन

भारतीय राज व्यवस्था एवं अन्य पहलुओं को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया। यद्यपि इस बात के पर्याप्त अनुवर्त्ती परिणाम (side effect) भी सामने आए।

एस.सी.रे ने सर्वप्रथम अर्थशास्त्र के स्रोतों का अनुसरण किया और उसके आधार पर प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था से संबंधित निष्कर्ष प्रस्तुत किया। राय बहादुर रंगास्वामी अय्यर का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अर्थशास्त्र के आधार पर राज्य-समाजवाद और अबंध नीति को प्रतिपादित किया। यू.एन.घोषाल अपने स्रोतों का सर्वाधिक सूक्ष्म मीमांसा प्रस्तुत की।के.एम.सरन की पुस्तक इस बात का प्रमाण है कि अर्थशास्त्र संपूर्ण राष्ट्रवादी इतिहास लेखन को प्रेरित और प्रभावित किया। अर्थशास्त्र के प्रकाश में आने के बाद ढेर सारे निष्कर्ष को एक आधार प्रदान किया जाना संभव हो सका। अर्थशास्त्र की मान्यताओं को आधुनिक सिद्धांतों के समकक्ष रखने का प्रयास किया गया और एक उज्ज्वल अतीत की दुहाई देना संभव हो सका। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने साम्राज्यवादी प्रयासों से निर्मित मिथकों को तोड़ने का काम किया। अतीत के उज्ज्वल पक्ष को इतना अधिक उछाला गया कि प्राचीन भारतीय जन-जीवन के दुखद पहलू गौण पड़ गए। यह राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की गंभीर सीमा थी, यद्यपि समय के परिप्रेक्ष्य में इन चीजों को देखें तो उनके महत्व का अंदाजा लगाया जा सकता है। प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के महिमा मंडन ने राष्ट्रवादी आंदोलन को गति प्रदान किया तो लेकिन इसके अनुवर्त्ती परिणाम (Side effect) ने आगे आने वाले मुश्किलों को बढ़ाया ही।

इसी बीच हम क्षेत्रीय इतिहास लेखन की प्रवृत्ति को भी अपनी भूमिका में पाते हैं। स्थानीय तत्वों के उद्घाटन ने राष्ट्रवादी चेतना को और अधिक सुदृढ़ करने में मदद प्रदान किया। स्थानीय तत्वों ने स्थानीय विकासक्रम की ओर सिद्धातों और आम जनों का ध्यान आकर्षित किया। नीलकंठ शास्त्री का नाम इस दिशा में उल्लेखनीय है।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की दिशा में उन विद्वानों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है जो किसी न किसी रूप में समाजवादी विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित थे। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को रेखांकित करते हुए ऐतिहासिक भौतिकवाद तक का विश्लेषण ही मार्क्सवादी इतिहास लेखकों का मूलमंत्र था। इस क्षेत्र में प्रथम नाम ए.एन.बोस का आता है। राष्ट्रवादी इतिहासकारों के विपरीत मार्क्सवादी इतिहासकार यह प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन युग में सब कुछ अच्छा ही नहीं था। बी. एन.दत्ता का नाम इस दिशा में अग्रणी है। दत्ता ने किसी काल विशेष का अध्ययन न कर संपूर्ण प्राचीन युग की सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों का सर्वेक्षण किया है। एस.ए.डांगे का नाम मार्क्सवादी इतिहास लेखन के प्रस्थान बिंदु के साथ ही जुड़ा है। इनकी रचना इंडिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिटी टू स्लेवरी, 1949 में प्रकाशित हुई, जिसमें मार्क्सवादी अध्ययन पद्धति को बिना हिचक के स्वीकार किया गया है। डांगे की आलोचना की गयी है तथा मार्क्स की स्थापना को ज्यों का त्यों स्वीकार किए जाने का विरोध किया गया है। कहा जाता है कि डांगे ने स्थानीय विविधता को नजरअंदाज किया है। इन आलोचनाओं के बावजूद डांगे की रचना का अपना महत्व है।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन परंपरा का सर्वाधिक चर्चित नाम डी.डी.कौसाम्बी का है। इनके अनुसार उत्पादन के साधन एवं साधनों में क्रमिक परिवर्तनों का विधिक्रम में प्रस्तुत करना ही इतिहास है। कौसाम्बी ने न केवल प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का इस्तेमाल किया है, बल्कि इन दोनों को परस्परात्रयी बताकर उन्होंने एक नयी दृष्टि को भी विकसित किया है। कौसाम्बी ने ऐतिहासिक अनुसंधान को नये आयाम दिए हैं। कौसाम्बी ने मार्क्स की स्थापनाओं को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया है, बल्कि उन्होंने अपने अध्ययन में स्थानीय विविधताओं का भी सूक्ष्म अवलोकन करने का प्रयास किया है। जहाँ एक ओर उन्होंने मार्क्स के काल-विभाजन को अस्वीकार कर दिया है, वहीं एशियाटिक मोड ऑफ प्रोडक्शन को भी स्वीकार नहीं किया है। प्रो.आर.एस.शर्मा ने मार्क्सवादी परंपरा को आगे बढ़ाने का काम किया है। प्रो.शर्मा इतिहास के संघर्षों के बीच जीवित पाते हैं। उनका मानना है कि आदिमकाल से आज तक मनुष्य का इतिहास संघर्ष से ही गति प्राप्त करता रहा है। वे मार्क्सवादी पद्धति में आगे के दिनों में जो नए तत्व समाहित हुए थे, को भी अपने अध्ययन क्रम में समेटने का प्रयास किया है। प्रो.शर्मा कहते हैं भौतिक शक्तियों के कारण विचारधारा का कैसे निर्माण होता है और फिर विचारधारा के कारण भौतिक परिस्थितियों में कैसे परिवर्तन होता है - एक गौरतलब बात है। प्रो.शर्मा का यह दृष्टिकोण हमें ग्राम्शी के प्रभुत्व-सिद्धांत की याद दिलाता हैं। परंतु शर्मा अन्यत्र यह स्वीकार करते

हैं कि प्राचीन भारतीय समाज का स्वरूप समझने के लिए उत्पादन प्रणाली की महत्ता पर ही जोर दिए जाने की जरूरत है। उन्होंने भौतिक संस्कृति और सामाजिक विकास के बीच संबंध को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। इसी कड़ी में एक और चर्चित नाम प्रो.रोमिला थापर का आता है जो राष्ट्रवादी इतिहासकारों की सीमाओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझती हुई मार्क्सवादी प्रवृत्ति की ओर उदभृत हुई है। प्रो.थापर ने मार्क्सवादी प्रवृत्ति का ही अनुसरण किया है। उनके लेखन का उद्देश्य प्राचीन भारतीय जन जीवन का महिमा-मंडन नहीं था, बल्कि जनजीवन के यथार्थ पर आधारित पहलू को उद्घाटित करना था। प्रो.थापर ने मार्क्सवादी परंपरा को आगे बढ़ाने का काम किया है और इस क्रम में उन्होंने पारंपरिक मार्क्सवादी विश्लेषण शैली को समाजशास्त्रीय एंव नृशास्त्रीय अवधारणाओं की मदद से अधिक पुष्ट करने का प्रयास किया है।

हाल के मार्क्सवादी लेखन में सामाजिक निर्माण की प्रक्रिया को समझने एवं विभिन्न सामाजिक समूहों के आर्थिक क्रिया-कलापों को समझने पर विशेष जोर दिया गया है। यही कारण है कि रामशरण शर्मा द्वारा प्रस्तुत सामंतवाद की व्याख्या ने भारतीय इतिहास लेखन की परंपरागत मान्यताओं को बुरी तरह झकझोर कर रख दिया है। जहाँ एक ओर इस अवधारणा के अस्तित्व को ही नकारा जा रहा है, वहीं दूसरी ओर मार्क्सवादी परंपरा में भी इसके स्वरूप पर मतैक्य नहीं है। बी.एन.एस. यादव, डी.एन.झा, विजय कुमार ठाकुर आदि मार्क्सवादी इतिहासकारों ने इस अवधारणा को अपने अनुसंधानों के द्वारा बल प्रदान किया है तथा इसकी विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया है। दक्षिण भारतीय इतिहास के संदर्भ में यह काम एम.जी.एस. नारायण, आर.एन. नंदी एंव केशवन फेलूथट ने किया है। इन इतिहासकारों के प्रयासों में जो चित्र उभर कर सामने आया है, उससे सामंतवादी समाज का रूप पहले से अधिक स्पष्ट हो सका है।

माक्सर्ववादी इतिहासकारों ने सामाजिक निर्माण की प्रक्रिया को समझने के प्रयास में प्राचीन भारत के नवीन पक्षों को भी उजागर किया हैं। इसमें विवेकानंद झा द्वारा अछूतों का अध्ययन, अलोक पराशर द्वारा मलेच्छों का अध्ययन, विजय कुमार ठाकुर द्वारा शहरीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन एवं जी.के.राय द्वारा बेगार का अध्ययन प्रमुख है। इसी संदर्भ में पर्यावरण एवं सभ्यता के संबंधों को निरूपित करने का प्रयास हो रहा है एंव साथ ही साथ संपूर्ण सभ्यता के विकास के क्रम को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के संदर्भ में समझने का प्रयत्न हो रहा है। उत्पापदन के संबंधों, कृषकों की दशा, क्षेत्रीय विशिष्टताओं का आर्थिक जीवन पर प्रभाव आदि ऐसे नये विषय हैं, जिन्हें पहली बार इतिहास की परिधि में लाया गया है।

निष्कर्ष

इतिहास लेखन की इस परंपरा के विकास क्रम में कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास पर महत्वपूर्ण कार्य किया है, परंतु विशुद्ध मार्क्सवादी ढाँचे के तहत ये इतिहासकार मार्क्सवाद की अवधारणाओं एंव विश्लेषण पद्धति से परिचित तो हैं, परंतु उनका लेखन मार्क्सवादी परंपरा का अंग नहीं है। इस श्रेणी में ललन जी गोपाल का पूर्व मध्यकालीन आर्थिक इतिहास का अध्ययन, एस.के.मैटी का गुप्तकालीन इतिहास का अध्ययन एवं उपेंद्र ठाकुर का प्राचीन भारतीय मुद्रा एवं टकसालों के अध्ययन को रखा जा सकता है। वस्तुतः आज के दिन प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा, परिपक्वता के उस दौर से गुजर रही है, जहाँ गैर मार्क्सवादी इतिहासकार भी मार्क्सवादी अवधारणाओं एवं विश्लेषण पद्धति को पूर्णतया नकार कर अपनी पहचान नहीं खोना चाहते।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. अपरारका - कमेंटरी ऑन याज्ञवल्क्य स्मृति-2, भाग पूना (1903-04)
2. आपस्तम्ब धर्मसूत्र - मैसूर 1898 बुहलर - एस.बी.ई. II पी.टी.
3. अर्थशास्त्र - आर.पी.कांगले, आर.शामशास्त्री
4. अर्थशास्त्र - पद-सूची, मैसूर (1924-25)

5. अष्टाध्यायी - सूत्र पथ - के.पी. पंडित, बम्बई एस.पाठक और एस.चित्तराव पूना - 1935 (1909)
6. अमरकोश - शर्मा और एन.जी. सरदेसाई, पूना-1941
7. अथर्ववेद - (पाईपालदास का) - संपादित रघुवीर, लाहौर-1936-41 एवं रोथ और विट्नी वर्लिन-1856
8. अर्थशास्त्र - कौटिल्य एवं अर्थशास्त्र
9. बौधायन धर्मसूत्र - एस.बी.ई. XXII और मैसूर - 1907
10. बौधायन गृह्यसूत्र - मैसूर-1904
11. जातक - (फॉसबॉल-7, भाग), लंदन-1877-79
12. कल्हण - राजतरंगिनी आर.एस. पंडति-1934 (इलाहाबाद) और एम.ए. स्टेन-1900
13. कामन्दकीय नीतिसार - त्रिवेंद्रम-1912
14. कामसूत्र - (वात्स्यायन) के.आर. अयंगर, लाहौर-1921
15. कल्पसूत्र (हरीबहादुर सूरी)
16. कुरल (तिरूकुरल), शिकागो-1927, दीक्षितार, मद्रास-1949
17. कृषि-शास्त्र (दशरथ शर्मा द्वारा संकलित), नागपुर-1920
18. कादम्बरी (बाण) - सी.एम. रीड्डिग, लंदन-1890
19. महाभाष्य - (ई.डी.कलहार्न), बम्बई 1892-1909
20. महाभारत - बी.ओ.आर.आई. संस्करण और गीता प्रेस
21. महावंश - जीजर-पी.टी.एस - लंदन-1908
22. मणिमेखलई (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में) - एस.कृष्णा स्वामी अयंगर, लंदन-1928
23. मिलिन्दपन्ह - बी.ट्रेंकर, लंदन - 1918, एस.वी.ई. - XXXV, XXXVI
24. मृच्छकटिकम - ए.डब्ल्यू. राइडर - कैम्ब्रिज - 1905
25. मुद्राराक्षस (विशाखादत्त) कर्मकार (एल.डी.), पूणा - 1940
26. मनुस्मृति - एस.वी.ई. - XXX
27. पतंजलि - व्याकरण महाभाष्य (एस.डी. कुडाला), बम्बई-1912
28. रामचरित (संध्याकर नंदी) राजशाही - 1939
29. रामायण (एम.एन.दत्त) - कलकत्ता 1892-94
30. सामन्तपसादिक - पी.टी.एस. - लंदन

आधुनिक मिथिला में कृषि की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

गोविन्द कुमार झा

ग्रा0 पो0-बांकी, भाया-झंझारपुर, जिला-मधुबनी (बिहार)

सार

मिथिला में उपजाऊ जमीन और बेशुमार जल संसाधन के साथ अपार पशुधन एवं मानव संसाधन उपलब्ध हैं। गंगा, कोशी गंडक, बागमती, महानंदा और इनकी सैकड़ों सहायक धाराओं से परिपोशित विशाल उपजाऊ जमीन औंर अथाह जल संसाधन मुंगेर, भागलपुर, बाँका, गोड्डा और दुमका जैसे खनिज एवं वन संसाधनों से भरपूर क्षेत्र नया इतिहास रच सकने में सक्षम है। इस पत्र के माध्यम से आधुनिक मिथिला में कृषि की स्थिति पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः मिथिला; कृषि; मिथिला का विकास; नई तकनीक।

परिचय

वर्तमान मिथिला में यदि बिहार में अवस्थित जिलों को शामिल मानते हुए चलें तो यह तीन भागों में बँटा मिलता है। पहला पश्चिमी क्षेत्र जिसमें सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर, वैशाली, मधुबनी, बेगूसराय, शिवहर, दरभंगा और समस्तीपुर है। पूर्वी क्षेत्र में पूर्णिया, कटिहार, सुपौल, सहरसा, अररिया, किशनगंज और मधेपुरा जिला आता है। तीसरे क्षेत्र में गंगा के पार भागलपुर, मुंगेर और बाँका के अलावा वर्तमान झारखण्ड के कुछ जिले शामिल हैं। अब यदि इन तीनों क्षेत्रों में 60 के दशक के समय की औद्योगिक स्थिति को देखें तो पाएँगे कि पूरे मिथिला में कृषि आधारित उद्योगों का जाल बिछा हुआ था। सीतामढ़ी, दरभंगा, मधबुनी, समस्तीपुर और पूर्णिया में चीनी मिलों की समृद्ध गतिविधि जारी थी जो क्षेत्र विशेष के कृषि उत्पादन को उद्योग से जोड़ने के साथ-साथ गांवों में छिपी हुई बेरोजगारी को श्रम संसाधन में परिवर्त्तित कर रही थी। पूर्णिया और कटिहार के जूट मिलों में अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता के उत्पाद निर्मित हो रहे थे और किसानों में जूट की खेती को बढ़ावा मिल रहा था। हायाघाट में पेपर मिल क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। हैन्डलूम एवं रेशम का उद्योग भागलपुर की अंतर्राष्ट्रीय पहचान बन चुका था। इसके अतिरिक्त कम्बल निर्माण, चर्म उद्योग, चूड़ी उद्योग, बर्तन एवं बाँस की कारगरी के अतिरिक्त गुड़ बनाने की भी छोटी-छोटी इकाईयाँ पूरे मिथिला में फैली हुई थी। यही वह समय था जब बेगूसराय में थोड़े-थोड़े अंतराल पर पेट्रोलियम रिफाइनरी, खाद कारखाना और ताप विद्युत गृह की स्थापना हुई। इसके साथ ही मिथिला ने पहली बार गैर कृषि आधारित उद्योग के दर्शन किए साथ ही इन बड़े उद्योगों पर आधारित कई सहायक उद्योगों के खुलने का मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

मगर आज उन तमाम गतिविधियों के परिणाम से हम सभी वाकिफ हैं कि लगभग सारे चीनी मिल बीमार हैं या बंद हो चुके हैं। मिथिला से गन्ने का उत्पादन समाप्तप्राय है। जूट मिलें दम तोड़ चुकी हैं और जूट की फसल भी महज कुटीर उद्यागों को रस्सी बाँटने के लिए पहुँच रही है। अब इसका दोष सरकारी नीतियों पर मढ़ें या फिर नसीब को कोसें, तथ्य यही है कि पूरी मिथिला औद्योगिक मानचित्र से गायब है और ऐसा तब है जब सभी जिलों में जिला उद्योग विकास केन्द्र है और सभी जगह सरकार द्वारा औद्योगिक विकास प्राधिकार गठित है। ऊपर से ऋण देने और जमीन आवंटित करने की ढ़ेर सारी योजनाएँ भी हैं और पूँजी प्रदान करने वाले बैंक भी पर्याप्त है।

मिथिला के विकास की नई रणनीति बनाई जानी आवश्यक है। इसके तहत दो बिन्दुओं पर समग्र क्षमता से कार्य करना जरूरी हैं,

1. कैसे मिथिला पूरे देश का अनाज भंडार बनकर उभरे और
2. कैसे मिथिला को जलीय उत्पाद एवं बगान उत्पाद का राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाया जाए जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों की मांग पूरी कर सके।

अत: आवश्यक है कि हमारी योजना में प्रत्येक फसल के लिए अलग रणनीति बनाई जाय। भारत के अनाज भंडार के रूप में उभर कर यह क्षेत्र न केवल बढ़ती जनसंख्या को संतुलित और पोशक आहार करने में समर्थ होगा अपितु कृषि आधारित उद्योगों के लिए अतिरिक्त कच्चे माल की भी आपूर्ति करेगा। इसके लिए आवश्यक है कि मिथिला के किसानों को आधुनिक कृषि तकनीक से लैस किया जाय, ताकि वे गुणवत्ता वाले बीजों, रासायनिक खादों और अन्य दूसरे सूक्ष्म पोशकों का दक्ष एवं पर्याप्त इस्तेमाल कर सकें। उन्हें प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल के साथ-साथ प्राकृतिक आपदाओं से निबटने में भी प्रशिक्षित करना जरूरी है।

इसी प्रकार- फलों में आम, लीची आदि एवं सब्जियों का भरपूर उत्पादन हमारे यहाँ होता है मगर इस पर आधारित उद्योग नगण्य है। अंतर्राष्ट्रीय मानक के अनुरूप तो एक भी नहीं। जरूरत है कि बागानों के उन्नयन का जिलावार निर्धारण कर उनके विकास की अलग रणनीति चिन्हित की जाय। पशुधन और डेयरी का विकास मिथिला के गाँवों के आर्थिक विकास को नई ऊँचाई प्रदान करेगा। सुधा की सफलता अपने आप में एक कहानी है और कोई बड़ी बात नहीं कि इसे अन्य क्षेत्रों में नहीं अपनाया जा सकें। अपने विशाल और विविध जल भण्डार के कारण मिथिला जलीय उत्पादों का बड़ा स्त्रोत बन सकता है। इसकी नदियाँ, झील, मौन, चौर, पोखर और तालाबों को आज तक पूरी क्षमता से उपयोग में नहीं लाया जा सका है। यहाँ 4.55 लाख टन प्रतिवर्ष मछली की मांग है जबकि हमारा उत्पादन मात्र 2 लाख टन प्रतिवर्श है। आवश्यक संरचना के इस्तेमाल से इसे 6 से 8 लाख टन प्रतिवर्श आसानी से किया जा सकता है। इसके अलावा मखाना एक ऐसी जलीय उत्पाद साबित हो सकता है जिसपर एकाधिकार हो। जूट की माँग अंतर्राष्ट्रीय बाजार में काफी बढ़ गई है। इस पर आधुनिक अनुसंधान ने एक नये टेक्सटाइल का विकास किया है और इसका प्रचलन आम हो रहा है। मिथिला में औद्योगिक विकास की संभावना तलाशनी है। मिथिला में उपजाऊ जमीन और बेशुमार जल संसाधन के साथ अपार पशुधन एवं मानव संसाधन उपलब्ध हैं। जाहिर सी बात है कि औद्योगिक विकास की कोई भी नीति इनकी उपेक्षा करके नहीं बनाई जा सकती। गंगा, कोशी गंडक, बागमती, महानंदा और इनकी सैकड़ों सहायक धाराओं से परिपोशित विशाल उपजाऊ जमीन औंर अथाह जल संसाधन मुंगेर, भागलपुर, बाँका, गोड्डा और दुमका जैसे खनिज एवं वन संसाधनों से भरपूर क्षेत्र नया इतिहास रच सकने में सक्षम है।

मिथिलांचल के विकास में उपलब्ध संसाधनों के भरपूर उपयोग से पूर्ण योगदान मिल सकता है। इस क्षेत्र की बहुत सी भूमि पानी में डूबी रहती है। इस 'वेटलैन्ड' का समुचित उपयोग हम मखाना, सिंघाड़ा, खस की उपज एवं कैटफिश से कर सकते हैं। चूँकि विद्युत के मामले में मिथिला क्षेत्र आत्मनिर्भर नहीं है एवं इसके अभाव में क्षेत्र में विद्युत पर आधारित उद्योग सफल नहीं हो पा रहे हैं। अतएव बिजली के उत्पादन एवं उपलब्धता पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। मिथिलांचल एक कृषि प्रधान क्षेत्र है इसलिए उद्योग के क्षेत्र में कृषि आधारित उद्योगों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। फसल उचित प्रशोधन केन्द्रों के अभाव में बहुत नष्ट होती है विशेषकर सब्जियाँ, अत: किसानों के आमदनी में वृद्धि के लिए प्रशोधन केन्द्र एवं सुविधाओं का विकास अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में सिल्क के उत्पादन की संभावनाएँ बहुत हैं। अत: इस उद्योग को विकसित करना चाहिए। मिथिला के स्थानीय लघु-उद्योग भी प्राचीन काल से ही प्रचलित हैं, उनके उत्पादन तकनीक एवं उत्पाद में नवीनीकरण होना चाहिए। इस क्षेत्र में चाय उद्योग के विकास के अवसर भी हैं। हस्तशिल्प के क्षेत्र में संगठित बाजार के अभाव में बहुत सारे हस्तशिल्पी या तो अन्य पेशे में जा रहे हैं या फिर उनके जीवन-स्तर में दिनानुदिन ह्रास हो रहा है। मिथिलांचल वर्तमान में बिहार राज्य का भाग है। बिहार राज्य गरीबी एवं बेरोजगारी के दुष्चक्र में फंसा हुआ है। यहाँ की आर्थिक संरचना का प्रति लक्षण है कृषि पर निर्भर होना। यहाँ औद्योगिकीकरण की स्थिति अत्यन्त ही क्षीण है। सार्वजनिक उपक्रम बंद हो गए हैं। यहाँ की आर्थिक संरचना पर बाढ़ का अत्यन्त दुष्प्रभाव पड़ता है। इसी परिप्रेक्ष्य में, मिथिलांचल में औद्योगिक विकास की संभावनाओं और समस्याओं का आकलन वर्तमान अध्ययन की विषय-वस्तु है।

मिथिलांचल में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना से सामाजिक एवं आर्थिक विकास होगा और ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार होगा, रोजगार की संभावनाएँ बढ़ेगी। प्राकृतिक खाद्य सामग्री बड़ी मात्रा में उपलब्ध है जो कृत्रिम आहार सामाग्री की तुलना में अधिक पौष्टिक एवं उपयोगी है। परिशोधित उत्पादन वृद्धि से देशी एवं विदेशी मांग की आपूर्ति की जा सकती है। मिथिलांचल में संभावनाएँ अपार है किन्तु गुणवत्ता, किस्मों में सुधार, विपणन, साख सुविधा आदि की आवश्यकता है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के संबंध में कहा जा सकता है कि बहुआयामी उपायों के फलस्वरूप अनेक विदेशी एवं अप्रवासी भारतीय उद्योगपतियों सहित बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आकर्शित करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

मिथिला के विकास का लक्ष्य केवल कृषि एवं डेयरी आधारित उद्योगों के विकास के जरिए ही हासिल किया जा सकता है। यहाँ

- औशधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती
- फूलों की खेती
- मखाना की खेती
- मत्स्यपालन
- फलों एवं सब्जियों की खेती
- चीनी तथा कागज उद्योग
- मधुमक्खी पालन
- मिथिला पेंटिंग
- सांस्कृतिक-धार्मिक-पर्यावरण पर्यटन को बढ़ावा देकर संभावनाओं का दोहन किया जा सकता है।

इन पर आधारित बाजार और उद्योग स्वभाविक तौर पर विकसित होंगे। तब इनके लिए सड़कों और बिजली घरों की बुनियादी सुविधाओं का विकास करना आर्थिक बाध्यता बन जाएगी और जब मिथिला का सुदूरवर्ती गाँव भी मिथिला को महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय बाजार बनाने के प्रयास से स्वयं को जोड़ सकेगा, तब यहाँ की परंपरागत कारीगरी, मिथिला पेंटिंग, लाह की चूड़ी, सीकी, मौनी और बाँस के उत्पादों को नया विस्तृत बाजार रूपी आकाश मिलेगा और नया जीवन दान भी। तभी सही अर्थों में मिथिलावासियों का जीवन स्तर उन्नत होग और मिथिला की अर्थव्यवस्था निम्न आय वर्ग से ऊपर उठकर आधुनिक एवं उच्च आय वर्ग में तब्दील होगी और यदि स्थानीय स्तर पर जीवनयापन की पद्धति सुधरती है तो आर्थिक विकास की दर स्वाभाविक रूप से उन्नत हो जाती है। यही एक जीवंत समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं औद्योगिक विकास की नई कहानी गढ़ता है।

सन्दर्भ

1. पंसारी, संतोष कुमार (2011), मिथिला का आर्थिक विकासः एक सहप्रयास, मिथिलांचल के आर्थिक विकास की संभावनाओं पर दरभंगा में संगोष्ठी- अध्यक्षीय भाषण, 5 फरवरी
2. झा, प्रताप नारायण (2011), मिथिला में औद्योगिक विकास की संभावना, उद्यम, इण्डस्ट्रीयल चैम्बर ऑफ कॉमर्स, दरभंगा,
3. आर्थिक सर्वेक्षण 2014-15, वित्त विभाग, बिहार सरकार, पटना, फरवरी 2015, पृष्ठ 73
4. उद्योग विभाग, बिहार सरकार की वेबसाइट
5. वार्षिक औद्योगिक सर्वेक्षण 2011-12 के आंकड़ें

भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन में अनीश्वरवादी मत का आध्यात्मिक विवेचना

डॉ० मनोज कुमार

(दर्शन शास्त्र विभाग) भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, (बिहार)

भारतीय चिन्तन अथवा धर्म दर्शन अनीश्वरवाद की समस्या एवं प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। अनीश्वरवाद की समस्या एवं प्रभाव का सिलसिला क्रमवार जारी ही रहा। अत: भारतीय चिंतन में अनीश्वरवाद की समस्या काफी महत्वपूर्ण रही है और इसका प्रभाव भी भारतीय चिंतन के अनीश्वरवाद में देखने को मिलता है।

वस्तुतरू ईश्वरवादी के लिए ईश्वर शुभ, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। ऐसी अवस्था में उसके लिए अशुभ के समस्या एवं प्रभाव के समाधान के लिए बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस तरह अशुभ की समस्या एवं प्रभाव के संबंध में कुछ प्रतिज्ञप्तियां उल्लेखनीय है –

1. ईश्वर वास्तविक है - (यदि ईश्वर ना हो, तो अशुभ की समस्या उठेगी ही नहीं।)
2. ईश्वर सर्वज्ञ है - (यदि ईश्वर को पूर्व ज्ञान था कि विश्व में मानव द्वारा अनीति होगी, तो उसने ऐसे मानव की रचना क्यों की?)
3. विश्व में अशुभ वास्तविक है - (यदि अशुभ होता ही नहीं, तो अशुभ की समस्या उठती ही क्यों?)
4. ईश्वर परम शुभ है - (तो अशुभ क्यों?)
5. ईश्वर सर्वशक्तिमान है - (तो अशुभ को क्यों नहीं दूर करता है?)

इस तरह यदि अंतिम तीनों संवाक्यों पर ध्यान देंगे, तो पाएंगे कि यह तीनों एक साथ सत्य नहीं हो सकते। यदि अशुभ वास्तविक होता है, तो ईश्वर को सर्वशक्तिमान तथा शुभ में कमी हो जाती है, तो ईश्वर की उपास्यता में कमी आ जाती है। साथ ही इसके प्रभाव में भी कमी आ जाती है। परंतु यदि ईश्वर के शुभत्व और सर्वशक्तिमत्ता में से किसी एक को छोड़ना हो, तो सर्वशक्तिमत्ता को ही छोड़ा जा सकता है, क्योंकि बिना शुभत्व के ईश्वर की उपासना संरक्षित नहीं रह जाती है। अतरू ईश्वरवादी ईश्वर के शुभत्व और उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अशुभ के संबंध में ही विचार बदलना पड़ता है। अशुभ के संबंध में विभिन्न विज्ञानों के अलग-अलग विचार हैं।

भारतीय ईश्वरवादी कहते हैं, कि मानव अज्ञानवश नहीं जानता है। वस्तुत: ना विश्व का, ना व्यावहारिक जगत का और ना ही नैतिक अशुभ की ही अंतिम रूप में कोई वास्तविकता है।

भारतीय दर्शन प्रगाढ़ है और भारतीय अज्ञानवाद की आलोचना करना उतना आसान नहीं है। साधारण अनुभव के आधार पर यही कहा जा सकता है, कि इसी व्यावहारिक क्षेत्र में हम कुछ घटनाओं को शुभ और कुछ घटनाओं को अशुभ कहते हैं। मायावादी ख्र ष्टि से वास्तव में शुभ और अशुभ कहते हैं, ये दोनों प्रायरू अज्ञान से उत्पन्न होते हैं और परमाथिर्क ख्रष्टि इस साधारण जीवन की साधारण अनुभूति नहीं है। साधारणतया सार्वजनिक अनुभूति के आधार पर जिस प्रकार हमें अशुभ का ज्ञान होता है। उसी प्रकार हमें शुभ का भी ज्ञान होता है। यदि अशुभ के ज्ञान को मिथ्या सिद्ध कर दिया जाए, तो फिर हमें यह भी मानना पड़ेगा, कि मानव शुभ

का ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। अत: यदि अशुभ के ज्ञान को नकार दिया जाए, तो शुभ का भी ज्ञान इसी कसौटी के द्वारा भी असंभव हो जाएगा। इसीलिए इस आशावादी कृष्टि से नैतिक संदेहवाद को अपनाना पड़ेगा। परंतु जन-साधारण के लिए शुभ-अशुभ दोनों ही वास्तविक है और इसलिए अशुभ को स्वीकार करना पड़ेगा, जो इसकी समस्या का द्योतक है।

इस उपर्युक्त प्रख्यात को भारतीय मायावाद का खंडन नहीं कहा जाएगा, परंतु जो शुभ के ज्ञान को सही मानते हैं और अशुभ को अवास्तविक मानते हैं। उन्हीं के मत का खंडन किया गया है। इस सिद्धांत से मिलता-जुलता सिद्धांत प्ररूयवादियों की है। जिसके अनुसार अशुभ वास्तव में शुभ है। यदि हम शुभ को सम्पूर्णात्मक दृष्टि से देखें।

प्रत्यक्षवादियों के अनुसार संपूर्ण विश्व सर्वग्राही सामंजस पूर्ण व्यवस्थित अनुभूति है और इसलिए कोई भी घटना अशुभ नहीं हो सकती, क्योंकि अशुभ से सामंजस्य पूर्णता में आधात पहुंचता है। उदाहरणार्थ - गोबर पैर में लगने से बुरा लगता है, पर खाद के रूप है या लीपने की वस्तु के रूप में है, तो शुभ माना गया है। इसी प्रकार कोई भी घटना क्यों ना हो, जैसे - बाढ़, सूखा, भूकंप इत्यादि सभी विश्व के संपूर्णत्व में अशुभ नहीं पाए जाएंगे।

प्रत्ययवादी अशुभ के संबंध में दो आपत्तियां उठाई है। पहला, यह अशुभ संबंधी सिद्धांत तत्वमीमांसात्मक है और परम सत् को भला कौन जान सकता है? जब किसी भी प्रत्ययवादी दार्शनिक को ही विश्व के संपूर्णत्व का ज्ञान नहीं हो सकता, तब उसकी दुहाई देने की आवश्यकता ही कहां उठती है? दूसरी, अशुभ का ज्ञान साधारण अप्राप्य संपूर्णत्व के आधार पर अशुभ के साधारण ज्ञान को खंडित नहीं किया जा सकता। अगर मान भी लिया जाए, कि समष्टिपूर्ण ख्रष्टि के हो जाने पर अशुभ हमें अशुभ ना होकर शुभ दिखेगा, परंतु जहां तक सर्वसाधारण की अनुभूति का संबंध है। वहां आंशिक ही दृष्टि रह जाती है और इस आंशिक दृष्टि के आधार पर अशुभ, शुभ नहीं मालूम देता है। अब यदि अशुभ वास्तव में अशुभ ना हो, तो भी शुभ का दिखना, मानव के लिए ही माना जाएगा। अत: यदि अशुभ घटनाएं हो या ना हो, तो भी आंशिक दृष्टि से अर्थात का ज्ञान अशुभ माना ही जाएगा। जो प्रभाव के रूप में इसकी बड़ी समस्या है।

इसी प्रकार यदि यह मान भी लिया जाए कि मानव अज्ञानवश शुभ को अशुभ मानता है, तो यह अज्ञान की घोर अशुभ माना जाएगा। इसलिए अशुभ की वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता। परंतु इस स्थल पर एकेश्वरवादी अशुभ वैकल्प पद है। अर्थात जिनमें किसी अमुक गुण-विशेष का वर्तमान अभाव है। परंतु जिसके होने की आकांक्षा की जाती है। उदाहनार्थ - अंधा होना वैकल्प है। इस समय किसी व्यक्ति विशेष में देखने की शक्ति का अभाव है, परंतु साधारणतया व्यक्ति में आंखों की प्राप्ति की संभावना हो सकती है। भारतीय दर्शन में अशुभ की मूल जड़ अज्ञान और अज्ञान वैकल्यात्मक है, क्योंकि अज्ञान का स्वरूप ही है, कि ज्ञान के हो जाने पर जिसका विलयन हो जाता है। इसी प्रकार ईश्वरवादी मानते हैं, कि पाप, स्वार्थ, लालच इत्यादि ऐसे वैकल्यात्मक अशुभ है, कि ईश्वर की सत्यगति और उसके अनुपम अनुग्रह के द्वारा दिव्यगति प्राप्त कर लेने के बाद ये नैतिक बुराइयां अपने-आप विलीन हो जाएगी। इस अर्थ में अशुभ ना भावात्मक है और ना ही इसका अंतिम अस्तित्व माना जा सकता है। हम देखेंगे कि प्रमुख अनुभववादी अशुभ के इस वैकल्यात्मक स्वरूप को ध्यान में नहीं रखते हैं, जो उनकी मूल है, तो भी स्वीकार करना पड़ेगा, कि अशुभ को अंतिम रूप से वैकल्यात्मक मानना आस्था का विषय है, ना कि संज्ञान का। इसका कारण है कि बाढ़, सुखाड़, विनाश इत्यादि ऐसे अशुभ है कि इनके विलयन को साधारण तथा कोई नहीं देख सकेगा। फिर ऐसा शुद्ध व्यक्ति जिसमें नैतिक पतन की संभावना ना हो, ना ही दिखाई पड़ता है। वास्तव में धार्मिक संवाक्य आस्थामय ही हुआ करते हैं। पर ये संज्ञानात्मक नहीं कहे जा सकते। परंतु अधिकांश एकेश्वरवादी धार्मिक संवाक्यों को संज्ञानात्मक मानते हैं। इसलिए यदि अशुभ की वास्तविकता किसी भी प्रकार नकारी नहीं जा सकती, तो ईश्वर के परम शुभत्व सर्वशक्तिमत्ता तथा सर्वज्ञता को ध्यान में रखकर, इस समस्या एवं प्रभाव का समाधान करना चाहिए।

ईश्वरवादी ने अनेक प्रकार से ईश्वर के शुभत्व और उसकी सर्वशक्तिमत्ता को ध्यान में रखकर अशुभ की समस्या का समाधान करना चाहा है। इन समाधानों में से दो को प्रमुख मानना चाहिए-

1. अशुभ केवल साधना मात्र है, जिसके द्वारा मानव की प्रवृत्तियों का संशोधन तथा शिक्षण होता है। इसे कारणवाद की संज्ञा दी जा है।

2. इसी कारणवाद का विशेष रूप से इच्छा स्वातंत्र्य मूलक समाधान है। जिसे ईश्वरवादी अशुभ के समाधान में विशेष स्थान प्रदान करते हैं।

अशुभ की साधनता या कारणवाद की समस्या एवं प्रभाव

ईश्वरवादी कहते आए हैं, कि वास्तव में अशुभ की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। वह शुभ के विकास तथा उन्नयन में केवल साधन है। यदि आग छूने से फफोले की पीड़ा ना होती, तो मानव जलकर मरना ही अच्छा समझता, यदि सांप-बिच्छू का डंक कष्टप्रद ना होता, तो मानव इनके चंगुल में फंसकर जीवन संग्राम में सफल होने में असमर्थ हो जाता। यदि बीमारी की पीड़ा ना होती, तो मानव स्वास्थ्य की कद्र नहीं करता। अत: शारीरिक पीड़ा तथा प्राकृतिक दुर्घटनाएं मानव के विकास और शिक्षण के साधन कहे जा सकते हैं। परंतु शारीरिक एवं प्राख्रतिक कष्टों को केवल व्यापक रूप में लेने से ही उनकी साधनता सिद्ध हो सकती है। यदि सभी स्थलों पर घटना विशेषों की व्याख्या करने में हम कारणवाद को अपनाएंगे, तो हम असफल हो जाएंगे। हम लोगों ने उद्देश्य मूलक प्रमाण के संदर्भ में देखा है, कि व्यापक दृष्टि के अपनाने पर ही सिद्ध होता है, कि सामान्य रूप से सभी घटनाओं के पीछे ऐसी सत्ता है, जो विश्व का संचालन करती है। इसी प्रकार यदि हम दुरूख और कष्ट को व्यापक रूप से ध्यान में रखें, तो मानव विकास में हमें साधन माना जा सकता है।

समष्टिपूर्ण दृष्टि से देखने में लगता है, कि संपूर्ण विश्व विकासात्मक और रेनीक व्यवस्था है। अत: किसी एक युग में जो कुछ होता है। उसका मूल्यांकन भूत और भविष्य को ध्यान में रखकर ही पूरा हो सकता है। इसी प्रकार निम्नतर श्रेणी के जीवो में त्रुटियों का रहना अनिवार्य है। फिर चूंकि सभी श्रेणियों में क्रमिक विकास होता रहता है। इसलिए किसी भी स्तर से पूर्णता संभव नहीं हो सकती है। अत: इस क्रमिक विकासात्मक व्यवस्था में शारीरिक और मानसिक कष्ट का होना अनिवार्यत: आपातिक रहेगा। यदि विकास जारी रहेगा, तो विकास प्रक्रिया में कष्ट और दु:ख, पीड़ा और उसके उफल के रूप में संभव होना आवश्यक प्रतीत होता है। कौन बच्चा, बिना गिरे चलना सीखता है, बिना पानी के घूंट पिए बगैर पानी पीना सीखता है, बिना तुतलाए बोलना सीखता है इत्यादि? इसी प्रकार बिना कष्ट वहन के कौन शिक्षा प्राप्त कर सकता है, कौन बिना जीवन के प्रलोभनों को छोड़ें, संत हो सकता है इत्यादि? अत: कष्ट और दु:ख उच्चतर विकास का अनुपम साधन माना जा सकता है। इसमें विकास प्रक्रिया के उफल तथा साधना के रूप में दुरूख और आपत्तियां अनिवार्यता रहेगी। 'अनिवार्यतारू आकस्मिकता' से ध्वनित होता है, कि ईश्वर चाहता तो नहीं है, कि किसी को भी आपत्तिक हो और इसका विधान भी उसी प्रकार है। इसलिए दुरूख को अनिवार्य तो नहीं, परंतु आपत्तिक रूप से आवश्यक मानना चाहिए। इसलिए इस विकासात्मक अनुक्रमिक विश्व व्यवस्था में ईश्वर के दुरूख विधान को अनिच्छा से स्वीकार करना पड़ता है।

मानव जीवन में अधिकांश दुरूख प्रक्रिति नियमितता से उत्पन्न होती है। आग एक रूप से काम करती है। सूर्य नित्य दिन एक रूप से स्थित रहता है। जीव-जगत तथा वनस्पति जगत के व्यवहार में एकरूपता है। उनके नियमों के उल्लंघन करने से दु:ख अधिकांश रीति से उत्पन्न होते हैं। भोजन नियमानुसार ना करने से अनपच, शारीरिक कार्यवाहियों की अवहेलना से बीमारी इत्यादि दु:ख उत्पन्न होते रहते हैं, परंतु यदि प्रकृति नियमित रूप से काम ना करती तो हम प्रकृति के नियमों को कैसे जानते और बिना प्रख्रति ज्ञान के कैसे प्राख्रतिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण करके मानव अपना विकास करता? इस तरह प्रख्रति नियमितता के आधार पर अपनी अनुभूतियों को व्यवस्थित कर अपनी स्मरण शक्ति के द्वारा प्रख्रति के नियमों को स्थापित कर मानव अपनी बुद्धि का विकास कर पाया है और समाज की व्यवस्था स्थिर करने में असमर्थ हो पाया है। इसलिए दुरूख की समस्या मानव के लिए चुनौती है। जिसके प्रभाव के रहने के कारण मानव उससे होड़ लेकर सुसुप्त शक्तियों का विकास करता है। अत: दुख मानव के लिए –

1. चेतावनी है - उदाहरणार्थ - आग की जलन।
2. शिक्षण व्यवस्था है - उदाहरणार्थ - प्रख्रति नियमितता।
3. शोधन - उदाहरणार्थ - बाढ़, असाध्य रोग इत्यादि, मानसिक खुजलाहट को बनाए रखते हुए मानव को दुस्साध्य कार्य दिशा में ललकारते रहते हैं।

अत: विकासात्मक अनुक्रमिक व्यवस्था में दुरूख को अनिवार्यतरू आकस्मिक स्वीकार करना चाहिए।

कारणवाद की समस्या

मिल, मैकी, मैक्लोस्के इत्यादि विचारकों ने अशुभ की सघनता के संबंध में अनेक समस्याओं को उद्घाटित किया है। कुछ आलोचनाएं अथवा समस्याएं निराधार है। उदाहरणार्थ - मिल का कहना है कि प्रकृति में हिंसा, नृशंसता और अनैतिकता पायी जाती है। इसलिए विश्व में नैतिक विधान नहीं मानना चाहिए। अब ईश्वरवादी यह नहीं कहते हैं, कि स्वयं प्रकृति में अच्छे-बुरे की चेतना है और वह नैतिक है। ईश्वरवादी का कहना है कि प्रख्रति का एक ऐसा विधान है, कि इसके द्वारा विकास क्रम में नैतिकता का विकास हो और फिर नैतिकता की संरक्षा हो। ईश्वरवादी के लिए स्वयं प्रकृति नैतिकता-निर्पेक्ष रहती है और नैतिकता के विकास और संरक्षा के लिए प्रकृति को केवल आश्रयमात्र माना जा सकता है। परंतु सामान्य रूप से मिल की समस्या उल्लेखनीय है।

मिल का प्रश्न है कि - क्या यह सच है कि सामान्य रूप से अशुभ के रहने से शुभ का विकास होता है? जब किसी विधवा का एकलौता पुत्र भरी जवानी में मर जाता है, तो इस अकाल मृत्यु से किसका शुभ संभव होता है? यहां ईश्वरवादी मूक हो जाता है। वह इतना भर कह सकता है, कि वह पूरी बात नहीं जानता। वह ना तो यह जानता है कि मरणोत्तर जीवन में मृत का क्या होता है और ना ही यह जानता है कि मृत व्यक्ति की अंतरात्मा की क्या गति होती है? वह इतना ही जानता है, कि ईश्वर ने विधवा को पुत्र का दान दिया था और अब ईश्वर को भाता है कि वह दान उनसे ले लिया जाए, तो ईश्वर ने ही ले लिया, उसका नाम धन्य हो। परंतु ईश्वर वादी के इस प्रत्युत्तर को संज्ञानात्मक नहीं माना जाएगा। यह केवल ईश्वरवादी की आस्था की अभिव्यक्ति मात्र है। यह ठीक है कि लेखक के लिए धार्मिक संवाक्य आस्थापूर्ण ही हुआ करते हैं। परंतु जो ईश्वरवादी धार्मिक संवाक्यों को संज्ञानात्मक मानते हैं। वे आस्था की शरण लेकर अनुभववाद की आपत्तियों का समाधान नहीं कर सकते। ईश्वरवादी के संज्ञानात्मकवाद को ध्यान में रखकर मिल ने अशुभ के कारण बाद के कारणवाद के संबंध में कई आपत्तियां उठाई है।

मिल का कहना है कि यदि मान भी लिया जाए, कि शारीरिक एवं मानसिक कष्टों के रहने पर मानव में बुद्धि, ज्ञान, नैतिकता तथा सभ्यता का अनुक्रमिक विकास भी हुआ है, तो यह भी अस्वीकार नहीं की जा सकती कि बाढ़, बीमारी, मृत्यु, हिंसा इत्यादि दोष भी है। तब ये दोष विश्व में क्यों हुए? ये अशुभ घटनाएं ईश्वर के शुभ विधान में क्यों स्थान पाती है? फिर यदि कुछ स्थलों पर बुराइयों से चुनौती लेकर अच्छाइयों तथा शुभ का विकास हुआ, तो अनेक स्थितियों में देखा गया, कि अच्छाई से बुराई भी उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ - 'सीधे के मुंह पर कुत्ता मूतेज़ और फिर बुराई से अन्य बुराइयां भी उत्पन्न होती है, ना कि सर्वदा अच्छाई होती है। बहुदा देखा गया है कि शारीरिक दुर्बलता और बीमारी के कारण व्यक्ति को रोग पकर लेता है। जिसके कारण बेकारी आ जाती है और बेकारी से क्या-क्या सामाजिक अवगुण नहीं उत्पन्न होता है? पुनः यह क्या सत्य है, कि बुरे का बुरा होता है और भले को भला?

'जो तोहि कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल!
ताहि फूल को फूल है, बांको है त्रिशुल!!'

क्या यह सत्य है कि जो जैसा करता है, वैसा ही वह पाता है? प्रायरू देखा जाता है, कि अपराधी और पापी दीर्धायु होते हैं और उनकी संतानें फूलती-फलती और बढ़ती जाती है तथापि धार्मिक व्यक्ति को दुरूख झेलना पड़ता है। इसकी वास्तविकता को देखकर कांट ने कहा है कि सुख, कर्तव्य परायणता के साथ नहीं पाया जाता, तो न्यायी ईश्वर का विधान कैसे सत्य और न्यायपूर्ण माना जाए? फ्लू भी मिल की इस आपत्तियों का समर्थन करते हैं। मिल का कहना है कि अशुभ से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं देखी जाती है। वास्तव में मिल के अनुसार सुख, दुरूख आकस्मिक रूप से प्राप्त होते हैं। नहीं तो क्या कोई इस बात को निर्धारित कर सकता है, कि कितने दुरूख के परिणाम से कितना शुभ प्राप्त किया जा सकता है?

अशुभ के कारणत्व की कमी इसी बात में है, कि इस मत के अनुसार अशुभ शुभ प्राप्ति का आवश्यक साधन माना जाता है। इस ख्रष्टि से मैक्लोस्के के अनुसार जितना अधिक शुभ हमें प्राप्त करना हो, हमें उसी अनुपात में अशुभ को भी उत्पन्न करना चाहिए। फिर यदि बिना साधन की सहायता लिए हुए ईश्वर शुभ को नहीं उत्पन्न कर सकता है, तो मैकि का कहना है कि ईश्वर साधन से सीमित होकर शिल्पकार हो जाता है, ना कि अपरिमित सृष्टिकर्ता। मैकि और मैक्लोस्के दोनों अशुभ को भावनात्मक मानते हैं,

जो भ्रांतिपूर्ण मत है, क्योंकि ईश्वरवादी के अनुसार अशुभ केवल्यात्मक कहा जा सकता है। फिर यदि कोई मूल्य ऐसा हो, जिसे युक्ति पूर्णतया बिना साधन के नहीं प्राप्त किया जा सकता, तो ईश्वरवादी इस स्थिति में ईश्वर को सीमित नहीं मानेगा, क्योंकि ईश्वरवादी के लिए ईश्वर उन्हीं बातों को कर सकता है, जो संगतिपूर्ण कही जाएगी। परंतु उन दोनों आपत्तियों का कारणवाद के उस विशिष्ट रूप से दिखाई देता है। जिसे इच्छा स्वातंत्रमूलक कारणवाद कहा जा सकता है। इस मत के अनुसार बिना अशुभ को अपने विधान में स्थान दिए हुए ईश्वर मानव को सत्संकल्पी की जीव नहीं बना सकता और मानव को सत्संकल्पी जीव बनाना ही इस विश्व का चरम लक्ष्य है। इस इच्छा स्वातंत्रमूलक कारणवाद में अशुभ को विशेषताया अनैतिक अशुभ माना जाता है। इसके अनुसार प्राख्रतिक एवं शारीरिक दु:ख को स्थान इसलिए दिया जाता है, कि अंत में इसका प्रभावमान की नैतिकता बरतने में कठिनाई आ जाती है। परंतु बाद में इन कष्टों को इसलिए अशुभ समझा जाता है, कि इनके रहने से हिंसा भाव, प्रतिशोध भावना, सभ्यता विरोधी प्रवृत्तियों के उत्पन्न हो जाने की संभावना है। अत: अनैतिकता ही वास्तव में अंतिम रूप से जीवन का अशुभ है और इस बात को इच्छा स्वातंत्रमूलक कारणवाद में बलपूर्वक स्पष्ट किया जाता है, जो इसका सबसे बड़ा प्रभावक तत्व माना जाता है।

अशुभ संबंधी कथन की संज्ञानात्मकता की समस्या

ईश्वर संबंधी कथन संज्ञानात्मक नहीं कहे जा सकते। यही बात अशुभ के संबंध में भी लागू होती है। अशुभ की समस्या के संबंध में यह देखने में आता है, कि अशुभ सर्वशक्तिमत्ता तथा इच्छा स्वातंत्र और तीनों में से किसी भी पद को संज्ञानात्मक मानकर स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। अशुभ को ईश्वरवादी वैकल्प पद मानते हैं और अनुभववादी इसे शुभ के समान भावात्मक पद मानते है और अनुभववादी के अनुसार सर्वशक्तिमत्ता से अभिप्राय होता है कि ईश्वर सब कुछ कर सकता है, चाहे वह तर्कसंगत हो या ना हो। फ्लू और मैकि का कहना है कि सर्वशक्तिमत्ता आत्म-विरोधी पद है। मान लिया जाए कि मानव स्वतंत्र जीव है। यदि ईश्वर स्वतंत्र जीव को पूर्णतया नियंत्रित कर सकता है, तो वह सर्वशक्तिमत्ता नहीं हुआ। इसी प्रकार मान लिया जाए कि व्यक्ति नियतिवाद से जुड़ा हुआ है अब यदि ईश्वर पूर्णतया नियति से नियंत्रित जीव को स्वतंत्र नहीं कर सकता, तो वह सर्वशक्तिमान हो नहीं हो सकता। क्योंकि या, तो वह स्वतंत्र जीव को नियंत्रित नहीं कर सकता या वह नियंत्रित जीव को स्वतंत्र नहीं बना सकता है।

ईश्वरवादी के लिए सर्वशक्तिमत्ता से अभिप्राय है कि स्वर वही कर सकता, जो ईश्वर के अन्य गुणों से तथा तार्किक नियमों से मेल खाए। ईश्वर आत्म-विरोधी कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता है। वह स्वतंत्र जीव को पूर्णतया नियंत्रित नहीं कर सकता है, क्योंकि इन दोनों में परस्पर विरोध है। अब सर्वशक्तिमत्ता के इन दो अर्थों में कौन सा अर्थ स्वीकार किया जाए? ये दो अपनी-अपनी परम्पराएं हैं और किसी भी परंपरागत अर्थ को ठुकराना ठीक नहीं है।

परंतु ना तो अनुभववादी और ना ही ईश्वरवादी की व्याख्या को सही समझा जाएगा। इसका कारण है, कि धार्मिक कथन वैज्ञानिक कथन के सामान संज्ञानात्मक नहीं होते। ईश्वरवादी के लिए ईश्वर मूल सत्ता है, पर क्या वह वास्तविक सत्ता है? ईश्वरवादी भ्रमपूर्ण रूप से ईश्वर को टेबल-कुर्सी के समान वास्तविक समझते हैं। जब उन्हें बताया जाता है कि यदि ईश्वर वास्तविक हो, तो वह आपत्तिक होगा-अनिवार्य नहीं, सीमित होगा-अपरिमित नहीं, कालगत होगा-सर्वकालीन नहीं इत्यादि। तब इस आपत्ति को उठाए जाने पर ईश्वरवादी पैंतरा बदलते हैं और साधारण शब्दों में सरल अर्थ को अनेक प्रतिबंधों से जोड़कर उन शब्दों की विचित्र अर्थों में काम में लाने लगते हैं। उदाहरण के लिए ईश्वरवादी ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम मानते हैं और मानव को ईश्वर की संतान समझते हैं। अब ईश्वर की अपेक्षा मानव प्रेम छिछला व स्वार्थपूर्ण होता है परंतु स्वार्थी पिता भी अपने पुत्र का कष्ट सहन नहीं कर सकता। परंतु यदि ईश्वर का अगाध प्रेम हो, तो वह सर्वशक्तिमान होने के कारण बाढ़, सूखा, बांग्लादेश की महामारी इत्यादि-इत्यादि को क्यों नहीं दूर कर सकता है? यहां ईश्वरवादी ईश्वर की अगाध प्रेम में अनेक विशेषणों तथा दुरूह विचारों के द्वारा कतर-व्योन्त करने लगते हैं। परिणामत: अंत में यह बात कही जाती है, कि ईश्वर का प्रेम समझ से बाहर है, तो क्यों नहीं इसी बात को पहले ही मान लिया जाए? क्योंकि रहस्यपूर्ण ईश्वर को वास्तविक सत्ता माना जाए।

वास्तव में परम पदार्थ अथवा परमार्थिक सत्ता वैज्ञानिक ज्ञान का विषय नहीं है। धर्म, भाषा में ईश्वर को परम तत्व का प्रतीक कहा जाएगा। राम, रहीम, ईसा, कृष्ण इत्यादि सभी प्रतीक है। चूंकि मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रतीति, उसी प्रकार भक्त को यथार्थ

दिखलाता है, जिस प्रकार अन्य वस्तुएं। इसीलिए भक्त ईश्वर संबंधी प्रतीकात्मक कथन को वर्णनात्मक कथन मानकर उसे संज्ञानात्मक समझता है। भाषा विश्लेषण तथा अनुभव परिशोधन के साथ इस बात का भान होता जा रहा है, कि स्वर्ग प्रतीक है और प्रतीक की सत्यता भक्त की गति से सिद्धि की जाती है। जिस देवता से भक्त की अंतिम गति होती है। वही उस भक्त का भगवान होता है। ईश्वर ना भीतर है और ना बाहर, वह शक्ति है, जो मूक को बाचाल और पंगु को गिरिवर गहन पर चढ़ने में सशक्त बनाती है। ऐसी स्थिति में यदि डाकू वाल्मीकि में इतना परिवर्तन हुआ, कि वह भक्त हो जाए और कामुक तुलसीदास अगाध ईश्वर प्रेम की गंगा में पुनीत हो जाए, तो ऐसे भक्त राम के संबंध में यह अवश्य कहेंगे, कि जो उनके ऐसे पापियों का निस्तार कर सकता है। वह अति शुभ है। किंतु क्या उन भक्तों के जीवन के लिए पाप अंतिम रूप से अशुभ कहा जा सकता है। जब वह राम, जो पापियों का उद्धार करता है, क्या स्वयं की रचना कर सकता है? भक्त बराबर कहेगा कि मानव स्वयं अपने पाप का उत्तरदायी है और इसे स्पष्ट करने के लिए इच्छा स्वातंत्र की स्थापना करता है। इस प्रकार अनीश्वरवादी वाद की यही समस्या प्रभावक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. समकालीन धर्म-दर्शन (डॉ याकूब मसीह) पृष्ठ संख्या - 123, 126, 127, 128, 129, 130, 131, 132, 140
2. ए. फ्लू (न्यू ऐसेज) - पृष्ठ संख्या - 147
3. हेच. जे. मैक्लोस्के गॉड एण्ड इविल, – पृष्ठ संख्या - 72, 74, 55
4. चे. एल. मैकी माइंड -1955, – पृष्ठ संख्या - 205
5. समकालीन दर्शन (डॉ याकूब मसीह) - पृष्ठ संख्या - 175

श्री गुरु नानक वाणी में जीवन मूल्य

डॉ० हरबंस सिंह

सहायक आचार्य, दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केन्द्र, हिमाचल प्रदेश, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, (धर्मशाला) जिला कांगड़ा

सारांश

श्री गुरु नानक वाणी में सभी जाति-धर्म के लोगों को नैतिक आचरण धीरज, संतोश, संयम परोपकार, दया, दान, क्षमाशील, समदर्शिता, निभैयता, निर्वरता, परस्पर प्रेम भाव, उदारता, सहनशीलता एवं रूढिगत बाह्याचारों और आडम्बरों का खण्डन करके नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना की ताकि एक आदर्श समाज का निर्माण हो सके।

प्रस्तावना

संतों ने जिस समाज को देखा, वह जाति-धर्म के संकीर्ण कटघरे में आबद्ध था, उसमें नारी की स्थिति अत्यंत ही शोचनीय थी। उसके नैतिक स्तर में गिरावट आ चुकी थी, तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों और रूढियें समाज के स्वस्थ वातावरण में बाधा बन रही थी। संतों ने रूढिगत बाह्याचारों और आडम्बरों का खण्डन करके नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना की ताकि एक आदर्श समाज का निर्माण हो सके। जीवन की प्रयोगशाला में इन्हें जो-जो आदर्श रत्न मिले, इन्होंने वे वाणी के माध्यम से जन-जन के सम्मुख प्रस्तुत कर दिए। इसी कारण इनका पाखण्ड-खण्डन आत्मविश्वास से पूर्ण है परन्तु 'इन्होंने' केवल निन्दा और आलोचना ही नहीं की बल्कि उचित सुझाव भी दिए। सिर्फ इतना ही नहीं कहा कि क्यों कर रहे हो? या ऐसा मत करो, बल्कि ऐसा भी कहा कि ऐसे करो। गलत मार्ग यदि बताया, तो ठीक मार्ग का भी पता इन्होंने सुझाया।[1]

गृहस्थ जीवन को मान्यता

मध्यकाल में योग का प्रचार और प्रसार चरम सीमा पर था। योगी लोग समाज से बाहर रह कर धूनी रमाते थे और तपस्या में लीन रहते थे, परन्तु निर्गुण कवियों ने स्पष्ट रूप से इसे पलायन कहा। जब घर में रह कर ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, तो बाहर भटकने की क्या आवश्यकता है? उन्होंने आत्मा में ही परमात्मा का निवास स्वीकार किया है और जीव को अपने भीतर ही प्रभु दर्शन करने का उपदेश दिया।[2]

गुरुओं की प्रवृत्ति आन्तरिक त्याग की ओर थी, बाह्य त्याग को वे पाखण्ड मात्र समझते थे। केवल गृहस्थी त्याग देने या वन गमन से मन स्थिर नहीं होता। इसके लिए कठिन अभ्यास की आवश्यकता है जो घर में रह कर ही किया जा सकता है। गुरुओं के मतानुसार गृहस्थी में रहकर अपने उत्तरदायित्वों को निभाते हुए, जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रभु नाम स्मरण तथा विश्वास के माध्यम से मुक्ति सम्भव है। गुरुओं ने भी गृहस्थ जीवन की आंख मिचौनी में ही अपने लख्य की पूर्ति की। संत साहित्य के विद्वान डॉ. सहगल ने तो इसे गृहस्थों का पंथ कहा है।[3] गृहस्थ में रहकर सांसारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करते हुए अनासक्त रहने का उपदेश इन की वाणी में मिलता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि गुरुओं ने विरागमय जीवन का खण्डन कर 'गृहस्य माहि उदास' जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। उन्होंने कर्म त्यागने को कहीं भी नहीं कहा अपितु उसके विधिवत सम्पादन पर बल दिया।

कर्मयोग का प्रतिपादन

मध्यकालीन समाज में यथार्थ भक्ति भाव का लोप हो गया और लोग पाखण्ड कर्मों में लीन थे। जहां एक ओर हिन्दुओं में जप, तप, व्रत, मूर्ति पूजा आदि कर्मकाण्डों का प्रचलन था वहां दूसरी ओर रोजे रखना, पांच समय नमाज पढ़ना, हज्ज करना एवं मन में निरन्तर विकार बनाए रखना मुस्लिम वर्ग की सामान्य क्रियायें बन गई थी। ऐसी पतनोन्मुखी स्थिति में सुधार लाने के लिए इन पाखण्डों एवं कर्मकाण्डों के विरुद्ध संतों ने आवाज बुलन्द की। समूची बाह्य क्रियाओं के स्थान पर सदाचरण की स्थापना ही गुरुओं का उद्देश्य था। अतः व्रत, तीर्थ, स्नान, देव पूजन, जप माला, धोती, चौका, भोजन आदि में क्रमशः सत्य संतोश, ज्ञान, ध्यान, दया, क्षमा, युक्ति, सुरति, करणी एवं भाव की स्थापना करने का उपदेश दिया।

भक्ति क्षेत्र में संतों ने कर्मकाण्ड का खण्डन और कर्मयोग का प्रतिपादन किया। गुरु नानक देव जी ने पसीने की कमाई खाने का उपदेश इस प्रकार दिया है-

"थालि खाई किछु हथहु देहि।"

कर्मशील जीवन की उत्तमता घोशित करते हुए निश्काम भाव का महत्त्व भी स्थापित किया। ऐसे ही निश्काम कर्मी को सच्चा वैष्णव कहा गया-

"करम करत होवे निहकरम, तिसु वैसनो का निरमल धरम।
काहू फल की इच्छा नहीं वाछे, केवल भगति कीरतन संगि राचै।"

इन्होंने सत्संगति, सदगुरु के बताये मार्ग पर चलते हुए सत्नाम का जाप करना और भोग में योग इत्यादि प्रवृत्तियों का प्रतिपादन किया। सत्कर्म ही प्रभु प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकते है। मुसलमानों को भी सत्य, पसीने की कमाई, शुभ इच्छा, नेक इरादा तथा ईश्वर स्तुति नाम की पांच नमाजें पढ़ने का उपदेश दिया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गुरुओं ने निठल्ले बैठ कर खाने के जीवन को त्यागने और स्वप्रयास द्वारा रोजी कमाने का समर्थन किया। यही कारण है कि उन्होंने भिक्षा वृत्ति को भी हेय समझा।

नाम स्मरण

प्रभु नाम स्मरण जीव को अनेक प्रकार के पाखण्डों और प्रपंचों से दूर रखता है। नाम-स्मरण से मानसिक पवित्रता आती है। गुरु अर्जुन देव जी ने नाम को अहं का नाशक बतलाते हुए उसका जाप करने का उपदेश दिया है कि हे जीव! उस प्रभु का नाम स्मरण करो, जिस के जाप करने से इहलोक में अत्यधिक सुख और परलोक में भी लाभ प्राप्ति होती है-

"रसना जपीऐ एकु नाम, ईहा सुखु आनन्दु बना आगे जीव के संगि कार्मा।"

प्रभु नाम स्मरण के बिना सुख प्राप्ति असंभव बताई है। नाम स्मरण को ही मोक्ष का एक मात्र साधन स्वीकार किया है-

"जुग चारे नामि बडिआई होई,
जि नामि लागे सो मुकति होवै गुर बिनु नामु न पावै कोई।"

गुरुओं ने प्रभु नाम स्मरण को ही सब सुखों की खान माना है। प्रभु नाम स्मरण द्वारा ही प्रभु से ऐक्य स्थापित किया जा सकता है। इससे ही जीवात्मा में शुद्धता और पवित्रता आती है।

गुरु महिमा

निर्गुण कवियों ने भक्ति क्षेत्र में गुरु की महत्ता पर प्रकाश डाला है। इह लोक तथा परलोक में सुख प्राप्ति के लिए गुरु की करण में जाना आवश्यक माना है। सच्चा गुरु मिलने पर ही जीव का अज्ञान रूपी निविड़ अन्धकार दूर हो सकता है। अहं और अज्ञान

में भटकते हुए जीव के लिए गुरु ही एक मात्र उपचार है।[6] गुरु द्वारा ही ब्रह्म साक्षात्कार होता है। गुरु से भेंट होने से मोह बंधन टूटता है और जीव मुक्ति प्राप्त करता है–

'बिनु सतिगुरु किने न पाइओ, बिनु सतिगुरु किने न परइआ।
सतिगुरु मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोह चुकाइआ।[7]
गुरु कृपा से ही जीव विषय विकारों का नाश कर सकता है।[8]
मध्यकालीन निर्गुणी संतों ने गुरु को ही सत्य पथ का प्रदर्शक माना है।

नारी के प्रति आदर्श भावना

मध्य युग में नारी केवल विलास तथा काम वासना की पूर्ति का साधन ही समझी जाने लगी थी। वह पुरुष की इच्छाओं का खिलौना मात्र ही बन कर रह गई थी। उसे तिरस्कारपूर्ण एवं हेय दृष्टि से देखा जाता था। समाज सुधारक गुरुओं के लिए यह बात असहनीय थी। गुरु नानक जी ने तर्कों द्वारा सामाजिक जीवन में नारी की महत्ता का परिचय देते हुए उसे सम्मानित दृष्टि से देखने की प्रेरणा दी। उनका कहना है कि सत्री के गर्भ से ही पुरुष उत्पन्न होता है। उसके साथ ही सगाई और विवाह होता है। उसी के साथ ही मित्रता और जीवन का क्रम चलता है। एक स्त्री के मरणों परान्त दूसरी स्त्री की तलाश की जाती है। उसी से अन्य सांसारिक संबंध स्थापित किए जाते है। उसे बुरा क्यों कहा जाए जिसने सम्राटों को जन्म दिया। नारी से ही नारी का जन्म होता है–

'भॅडि जॅमिऐ भॅडि निमीऐ भॅडि मंगणु बीआहु।
भंडहु होवे दोसती भंडहु चले राहु।
भडु मुआ भंडु भालीऐ भॅडि होवे बंधानु।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जमहि राजान।
भंडहु ही भडु ऊपजे भंडे बासु न कोई।[9]

जाति-पांति का विरोध

वेदों में चारों वर्णों को समान स्वीकार किया गया है। स्मृति काल तक वर्ण भेद का आधार व्यवसाय ही रहा। मध्यकाल तक पहुंचते पहुंचते जाति का आधार जन्म माना जाने लगा। गुरुओं को ऐसा जातीय भेद भाव स्वीकार्य क्रांति लाने का अथक प्रयत्न किया। गुरु अमरदास जी ने जातिगत अभिमान को जीव की मूर्खता कहा है।[10] समस्त सांसारिक जीवों का निर्माण तो एक ही मिट्टी से हुआ है। समस्त जीव एक ही अंशी के अंश है। यही करण था कि जन्म की दृष्टि से मनुष्यों में ऊंच-नीच का भेद भाव करना संतों को अमान्य था। उन्होंने जाति-पांति का आधार कर्म बतलाया है। मनुष्य अपने उत्तम कर्मों से ही उत्तम जाति का हो सकता है:-

"सा जाति सा पति है जेहे करम कमाई"।

गुरुवाणी में कुछेक ऐसे पद भी उपलब्ध होते हैं जिसमें चारों वर्णों का आदर्शीकरण किया गया है। संत मतानुसार हरि भक्ति में अनुरक्त शूद्र भी भक्ति विमुख ब्राह्मण से श्रेष्ठ हो सकता है।[11]

नैतिकता पर बल

गुरुओं ने अपनी धर्म साधना में सदाचरण पर विशेष बल दिया है। सदाचरण के भी आगे दो रूप देखे जा सकते है: एक नैतिक आचरण धीरज, संतोष, संयम परोपकार, दया, दान, क्षमाशील, समदर्शिता, निभैयता, निर्वरता, परस्पर प्रेम भाव, उदारता, सहनशीलता इत्यादि दूसरे निषिद्ध आचरण का त्याग तथा कामादिक वासनाएं, मान, कपट, तृष्णा इत्यादि का निषेध।[12] इन्होनें विकारयुक्त कर्मो को अधर्म और नैतिक गुणों को धर्म स्वीकृत किया है। इन गुणों को अपनाने वाला जीव ही प्रभु ऐक्य प्राप्त कर सकता है।

गुरुओं ने अपनी साधना में सेवा को बहुत महत्त्व दिया है क्योंकि इससे ही अहं भाव का नाश होता है। सेवा के फल और महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए गुरु नानक देव जी कहते है :-

"बिनु सेवा फलु कबहु न पावसि सेवा करणी सारी।"[13]

इस प्रकार हम कह सकते है कि गुरुओं का उद्देश्य मानव धर्म की स्थापना करना था। समदृष्टि, भेद भाव का नाश, पारस्परिक प्रेम, सद्भावना एवं एकता का प्रचार, उनकी समाज कल्याणकारी साधना के प्रधान अंग थे। उन्होंने जनता को स्नेह, सहयोग तथा सहनशीलता का शान्ति पूवर्ण संदेश दिया।

संदर्भ

1 सन्त साहित्य - डॉ. सुदर्शन मजीठिया, पृष्ठ 326
2 "काहे रे बन खोजन जाई, सर्ब निवासी सदा अलेपा, तोही संगि समाई"
3 गुरु ग्रन्थ साहिब - एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, ले. डॉ. मनमोहन सहगल, पृष्ठ 531
4 आ.ग्रं. पृष्ठ 211 म. 5 गउड़ी, 1:8:146
5 आ.ग्रं. पृष्ठ 880, म. 3, रामकली, घरु, 1:1:1
6 आ.ग्रं. पृष्ठ 172 म. 4, गउड़ी पूरबी, 3:10:24:62
7 आ.ग्रं. पृष्ठ 466, म. 1, आसा, पउड़ी 6
8 आ.ग्रं. पृष्ठ 226, मृ, 1 गउड़ी 6:13
9 आ.ग्रं. पृष्ठ 473, म. 1, आसा श्लोक 2
10 आ.ग्रं. पृष्ठ 1128, म. 3, भैरउ, चउपदे, घरु, 11:1
11 आ.ग्रं. पृष्ठ 1093, म. 3, मारू, श्लोक 2
12 गुरु नानक व्यक्तित्व, कृतित्व और चितन - डॉ. रत्नसिंह जग्गी, पृष्ठ 661
13 आ.ग्रं. पृष्ठ 992 म. 11, मारु, 2:10

सहरिया जनजाति की धार्मिक मान्यताएँ

प्रियंका सिन्दल

पीएच.डी. शोधार्थी (इतिहास), डॉ. बी.आर. अम्बेडकर सामाजिक, विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.)

जनजातीय समाज प्रकृति के सानिध्य में पला बढ़ा है। जहाँ उसका प्रख्रति से घनिष्ठ रिश्ता है। वह अपने जीविकोपार्जन की समस्त वस्तुएँ प्रकृति से ही प्राप्त करता है। अत: प्रकृति के प्रति उसकी कुछ भावनाएँ जुड़ जाती है एवं उन भावनाओं के वशीभूत वह प्रकृति के उन समस्त तत्वों को दैवीक प्रतीक मान पूजा करता है। पवन से उन्हें जीवित रहने हेतु प्राणवायु प्राप्त होती है। इसी प्रकार अग्नि, जल, ऋतुएँ आदि सभी के प्रति धार्मिक भावनाएँ रखता है।

जनजातीय समाज की धार्मिक भावनाएँ एक ओर जहाँ प्रकृति से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। वहीं दूसरी ओर वे आलौकिक शक्ति में विश्वास करते है। जिसका कारण उनके मन में व्याप्त भय है। कुछ घटनाएँ ऐसी होती है, जिस पर किसी का वश नही होता। ऐसी ही घटनाओं को दृष्टि में रख उनके मन में भय एवं अनिष्ट की आशंका के भय से एक अदृश्य शक्ति में विश्वास उत्पन्न होने लगता है। भयस्वरूप जनजातीय समाज उन शक्तियों की दैवीक रूप में पूजा-अर्चना करने लगता है। यहीं से उनके मन में धार्मिक भावनाएँ जन्म लेने लगती है।

यद्यपि जनजातीय समाज का धार्मिक स्वरूप स्थानीय होता है। अधिकांश जनजातियाँ स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा करते है। जनजातीय समाज स्पष्ट रूप से किसी धर्म में प्रवृत्त नही होते किंतु वे ईश्वर में विश्वास करते है। वे सूर्य, चंद्र, वनस्पति, शिव, ब्रह्म, अग्नि, वायु, जल आदि देवताओं की पूजा करते है।

देवी-देवताओं की पूजा के अतिरिक्त तंत्र-मंत्र, जादू-टोना आदि भी जनजातियों की धार्मिक मान्यताओं में शामिल है। शारीरिक कष्ट, बीमारी, शोक आदि स्थिति में वे या तो देवताओं के शरण में जाते है या झाड़-फूँक, ओझा आदि के माध्यम से समस्या समाधान का प्रयास करते है।

अन्य जनजातियों की भाँति सहरिया जनजाति की धार्मिक मान्यताएँ प्रख्रति से जुड़ी हुई है। वे भी तंत्र-मंत्र, जादू-टोना में विश्वास रखते है। सहरिया अच्छे गुनिया (तंत्र-मंत्र के ज्ञाता) भी माने जाते है। इनके विषय में एक कहावत भी प्रचलित है- 'संवरा के पागे, रावत के बाँधे' अर्थात् सवर (सहरिया) का जादू किया हुआ व्यक्ति और रावत का बाँधा हुआ बैल कभी छूट नही सकता।

सहरिया जनजाति मध्यप्रदेश कें उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र गुना, ग्वालियर, शिवपुरी, श्योपुर, मुरैना, भिण्ड आदि जगहों में निवासरत् है। सहरिया एक अत्यंत पिछड़ी जनजाति है जिनमें शिक्षा एवं जागरूकता का अभाव पाया जाता है। अशिक्षा, गरीबी में जीवन व्यतीत करते सहरियाओ में कई अंधविश्वास प्रचलित है। सहरिया एक वनवासी जनजाति है, जो प्राचीन काल से जंगलो में निवास करते आये है। अत: जंगलो से उनका गहरा जुड़ाव है वे अपने जीविकोपार्जन की सभी वस्तुएँ जंगल से ही प्राप्त करते थे। जंगलो में कई जंगली जानवरों का भय उन्हें सदैव सताता रहा। अत: अपनी तथा अपने पालतू पशुओं की रक्षा हेतु वे नाहर देव (शेर) की पूजा करने लगे। इसी प्रकार सहरियाओं के अन्य देवी-देवताओं में तेजाजी महाराज, भूमियां देव, आसमानी माता, बरबासन देव, भैंरो बाबा, हीरामन देव, बलारी देवी, दरेठ बाबा, नरसिंह देव, बूढ़ा देव आदि प्रमुख है। प्राकृतिक तत्वों के अंतगर्त पेड़-पौधों, सूर्य, आकाश, पृथ्वी, गंगा नदी, पशु आदि को पूजा जाता है। पेड़-पौधो में बरगद, पीपल, आम, छैंवला, नीम, शीशम, बबूल, तुलसी, सेंता आदि की पूजा की जाती है। पशुओं में गाय, बैल आदि पालतू पशुओं को पूजा जाता है। सहरिया मोर एवं मार पंख को पवित्र मानते है।

सर्प को भगवान शिव द्वारा गले में धारण किया गया है अत: सर्प पूजा का विधान भी सहरियाओं में प्रचलित है।

जैसे-जैसे सहरियाओं ने जंगलो से निकलकर गाँवों, शहरों की ओर रूख किया वे गैर-जनजातीय लोगों के संपर्क में आये। वे सबसे अधिक हिंदू संस्कृति के संपर्क में आये तथा उनकी संस्कृति से प्रभावित हो उनका अंधानुकरण करने लगे। अत: अब सहरिया अपने को हिंदू ही समझने लगे है। वर्तमान वे हिंदुओं के ही देवी-देवताओं की पूजा करने लगे है।

सहरिया जनजाति में प्रचलित देवी-देवता-

आसमानी माता- ये प्राकृतिक आपदाओ जैसे- बाढ़, सूखा आदि से राहत देने वाली माता है।

बीजासन माता- ये सभी कष्टों को हरने वाली तथा बच्चों की रक्षा करने वाली माता है।

गैलाहारी माता- इनका पूजन वर्षाकाल में विभिन्न कीड़े-मकोड़े से होने वाली बीमारियों से बचाव हेतु किया जाता है।

बरबासन माता- पारौदिया गोत्र के सहरियाओं द्वारा बरबासन माता का पूजन किया जाता है।

कंकाली माता- ये महामारी या दैवीय प्रकोप से रक्षा करने वाली माता है।

कैला माता- ये सभी कार्यो को सिद्ध करने वाली माता है।

खेड़ माता- इनका पूजन विवाहित दंपति द्वारा अपने गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने की कामना से किया जाता है।

बलारी देवी- इनका पूजन चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को किया जाता है।

काली माता- सहरिया समुदाय में काली माता का पूजन प्रमुखत: प्रचलित है। इनका पूजन मंदिर में पण्डित के माध्यम से किया जाता है।

तेजाजी महाराज- ये सर्पदंश से मुक्ति दिलाने वाली देवता है।

भूमियां देव- सहरिया इन्हें आदि देव या ग्राम्य देव के रूप में पूजते है। ये बीमारी, भय एवं संकट से मुक्त करने वाले देवता है।

हीरामन देव- ये खड्या गोत्र के सहरियाओं के कुल देवता है। ये पालतू पशुओं की रक्षा करने वाले देवता है। सर्पदंश पर इनके नाम के बंध बाँधे जाते है।

भैंरो बाबा- ये ग्राम्य देवता के रूप में पूजे जाते है। इनकी पूजा सहरिया बाँझ महिलाओं द्वारा संतान प्राप्ति की कामना से की जाती है।

कारस देव- ये खड्या गोत्र के सहरियाओं के कुल देवता है। सर्पदंश या बिच्छू के काटने पर इनके नाम से मिट्टी के बंध बाँधे जाते है।

नरसिंह देव- ये सेमैया गोत्र के सहरियाओं के कुल देवता है। इनकी पूजा नि:संतान दंपत्ति द्वारा संतान प्राप्ति हेतु की जाती है।

बूढ़ा देव- ये चौहान गोत्र के सहरियाओ के कुल देवता है। बच्चों के जीवन की सुरक्षा हेतु इनकी पूजा की जाती है।

परीत देव- किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की मृत्यु होने पर उनके नाम का चबूतरा बना परीत देव के रूप में उन्हें पूजा जाता है।

ठाकुर देव- गाँव के छोर पर पेड़ के नीचे इनका चबूतरा होता है। ये बच्चों व बूढ़ों की रक्षा करने वाले देवता माने जाते है।

कल्पत बाबा- ये भेड़-बकरियों की रक्षा करने वाले देवता है।

उपरोक्त देवी-देवताओं के अतिरिक्त सहरियाओं द्वारा हिंदू के प्रमुख देवता शिव-पार्वती, गणेश, राधा-कृष्ण, राम-सीता, दुर्गा आदि की भी पूजा की जाती है। सहरिया जनजाति के धार्मिक कर्मकांडो में पशुओ की बलि दिये जाने का भी प्रावधान है। इनके द्वारा विशेष अवसरों पर मुर्गे या बकरे की बलि दी जाती है। भूमियां देव के पूजन में सूअर की बलि दी जाती है। सूअर के पेट को चिरकर उसे दोनों हाथों में उठा ढोल-बाजे के साथ उसे पूरे गाँव में घुमाया जाता है। इस प्रकार खून की एक रेखा खींच जाती

है। फिर उसे चबूतरे पर लाकर भगवान को उसके मांस का प्रसाद चढ़ाया जाता है। तत्पश्चात् सभी ग्रामवासियो को मांस का प्रसाद वितरीत किया जाता है।

देवी-देवताओं के पूजन हेतु सहरिया गाँव के सभी व्यक्तियों से चंदा एकत्र करते है। तत्पश्चात् संपूर्ण विधि-विधान से पूजन संपन्न करने के पश्चात् सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है। जो उनकी एकता का प्रतीक भी है। सहरिया अपने धार्मिक क्रियाकलाप आपस में मिलजुलकर करते है। ढोल गाजे-बाजे से वातावरण गूँजायमान होता है। सहरियाओं में ऐसी मान्यता है कि यदि देवताओं का पूजन विधि-विधान से किया जाता है तो देवता प्रसन्न हो जाते है। एवं भगत (भक्त) के शरीर में उनकी सवारी आती है। तब सभी भक्त उन्हें नारियल, पुष्प के साथ प्याला (शराब) चढ़ाते है।

सहरिया जनजाति में तंत्र-मंत्र व जादू-टोने के साथ ही भूत-प्रेत तथा डाकिन प्रथा में भी विश्वास किया जाता है। इनका मानना है कि कई असाध्य रोगों का इलाज तंत्र-मंत्र के माध्यम से संभव है। विभिन्न समस्याओं, शारीरिक कष्टों, बीमारी आदि की स्थिति में सहरिया जादू-टोने व तंत्र-मंत्र का प्रयोग करते है। इस कार्य हेतु वे भगत की सहायता लेते है। भगत वह व्यक्ति होता है, जो तंत्र-मंत्र का अच्छा जानकार होता है तथा नाड़ी देखकर बीमारी, दु:ख या कौन स्त्री डाकिन है, बता सकता है। वह भटकती आत्माओं को अपने वश में कर लेता है। सहरियाओं में ऐसी मान्यता है कि यदि किसी व्यक्ति की असमय मृत्यु हो जाये तो उसकी आत्मा भटकती रहती है और दूसरे मनुष्यों को सताती है। अत: सहरिया भगत द्वारा बताये गये उपाय द्वारा इनसे मुक्त हो सकता है। इस कार्य के लिए भगत रूपयों, पूजन सामग्री व बलि हेतु मुर्गे या बकरे की माँग करता है व अपने आराध्य देवी या देवता को बलि चढ़ाकर पूजन सामग्री अर्पित करता है, इस प्रकार वह समस्याओं का समाधान करता है। सहरियाओं द्वारा जादू-टोने का प्रयोग अपने दुश्मन से बदला लेने हेतु भी किया जाता है। इसके अंतगर्त वे मूठ मारना (अमूक व्यक्तिको जादू के माध्यम से मरवा देना), किसी की संपत्ति नष्ट करवाना, गर्भवती महिला का गर्भपात करवाना बच्चे को बीमार करवा देना आदि करते है।

इसके अतिरिक्त सहरिया द्वारा उपचारात्मक जादू भी किया जाता है। इसके अंतगर्त रोगों का इलाज, संतान प्राप्ति, कष्टों का समाधान, सर्प, बिच्छू का डंक उतारना सुख शांति आदि किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जहाँ एक ओर सहरिया समुदाय प्रख्रति के सानिध्य में पला बढ़ा, प्रकृति से भरण-पोषण एवं आवश्यकता की वस्तुएँ अर्जित करता है तो वह प्रकृति प्रदत्त प्रत्येक वस्तु के प्रति श्रद्धा एवं आदर भाव प्रकट करते हुए दैवीक प्रसाद स्वरूप ग्रहण करता है। एवं प्रकृति की उन तमाम स्त्रोत जो उसके जीविकोपार्जन के साधन है या उसके जीवन में सहायक है, उन्हें दैवीक प्रतीको के रूप में पूजता है। जैसे- पेड़-पौधो, पशु-पक्षी, नदी, आकाश, पृथ्वी ऋतुएँ आदि। ये सभी जनजातियों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। वहीं दूसरी ओर हम देखते है कि सहरिया समुदाय अशिक्षा के कारण कई अंधविश्वासों से घिरा हुआ है। तंत्र-मंत्र, जादू-टोने, भूत-प्रेत आदि जैसे अंधविश्वास उनकी उन्नति में बहुत बड़ी रूकावट है। बलि प्रथा के नाम पर कई पशुओं को काटा जाता है। आवश्यकता है कि ऐसे अंधविश्वासों, बलि प्रथा आदि के खिलाफ जागरूकता अभियान चलाकर जनजातियों को जागरूक किया जाये। जनजातीय क्षेत्रों में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा हेतु कदम उठाये जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, विजय मनोहर, मोंढ़े, भालू, (2009): सहरिया, आदिम जाति कल्याण विभाग, भोपाल
2. शर्मा, नीरू, शर्मा, आनन्द कुमार, (2017): सहरिया जनजाति, प्रेरणा प्रकाशन, दिल्ली
3. राणा, अमर सिंह, (2014): सहरिया जनजाति का ऐतिहासिक अध्ययन, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर
4. कुशवाह, आशा, (प्रकाशन क्र. 483): सहरिया जनजाति समूह में प्रतीकवाद, आदिमजाति अनुसंधान एवं विकास संस्थान, भोपाल
5. निरगुणे, बसंत, सहरिया, मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद्, भोपाल

सशक्त जन गीतकार डॉ. वशिष्ठ अनूप

डॉ० मनीषा मिश्रा

17/61, शिब्ली मंजिल रोड़ आराजी बाग, आजमगढ़

डॉक्टर वशिष्ठ अनूप आज के साहित्यकारों की जमात से भिन्न एक ऐसे प्रभावी गीतकार है जो स्वयं को हाईलाइट करने की अपेक्षा काम करने में अधिक विश्वास रखते हैं। जिसका प्रमाण इतनी कम अवस्था में ही उनकी ढेरों स्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन है।

डॉ.अनूप न केवल एक सशक्त गीतकार हैं,बल्कि गजल, समीक्षा और इतिहास के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराई है। गजल और इतिहास संबंधी उनकी पुस्तकें हिंदी साहित्य के लिए उत्कृष्ट देन है।

जीवन,दर्शन,समाज, परिवेश में जुड़ी से बड़ी-बड़ी बातें करने वाला भारी-भरकम शब्दों से सुसज्जित कर वाक्य जाल बुनकर पाठकों को उसमें उलझाने वाला साहित्यकार कतिपय समीक्षकों की दृष्टि में भले ही उच्च कोटि का साहित्यकार माना जाता होगा पर यदि सामान्य पाठकों छात्रों शोधार्थियों की बात करें तो उनकी दृष्टि में डॉक्टर अनूप से बेहतर शायद ही कोई होगा। विषय की गहन समझ और अत्यंत सरल एवं सुलझी हुई भाषा में उसकी प्रस्तुति उन्हें सर्वप्रिय बनाती है। साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले अधिकांश पाठक सीधी, सरल भाषा में अपनी जिज्ञासाओं का समाधान चाहते हैं अथवा ऐसे गीतों गजलों को पढ़ना सुनना पसंद करते हैं जो उन्हें न सिर्फ आसानी से समझ में आए बल्कि हृदय स्पर्शी भी हो और विचारों को भी आलोकित करें। डॉक्टर अनूप के गीत पाठकों की इस कसौटी पर सौ प्रतिशत खरें उतरते हैं। वे एक ऐसे समर्थ गीतकार हैं जो अपनी रचनाओं के माध्यम से आमजन की समस्याओं को की ओर सबका धयान ही नहीं आकृष्ट करते बल्कि एकजुट संघर्ष द्वारा व्यवस्था को बदल डालने के बाद भी कृत संकल्प दिखते हैं। गरीबी, अत्याचार, अन्याय, शोषण,अपराध, भ्रष्टाचार, लूट जैसी समस्याओं के विरुद्ध लड़ते हुए वे सदैव ही समाज के शोषित पीड़ित व्यक्ति के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित श्बेटियों के पक्षश में संकलित इनके गीतों द्वारा इनकी जनवादी सोच और पक्षधर को बखूबी समझा जा सकता है।

व्यक्ति समाज, देश से जुड़ी तमाम समस्याओं को वे न सिर्फ दृढ़ता के साथ अपने गीतों में रेखांकित करते हैं बल्कि उसका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं और यह रचनाकार की बड़ी उपलब्धि है। एक खुशहाल समाज की स्थापना हेतु में संघर्ष का आह्वान करते हुए लिखते हैं-

1. इसलिए सर संघर्ष की हम चुनें
जिंदगी आंसुओं में नहाई न हो
शाम सहमी न हो, रात हों न डरी
भोर की आंख फिर डबडबाई न हो।
2. हर जुल्म की कहानी अब बेनकाब लिख दे
आओ लहू से अपने हम इंकलाब लिख दे।

डॉ. अनूप के गीत जनवादी गीतों के आंदोलन को और धार प्रदान करते हैं। सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं का वर्णन करते हुए वह कहते हैं -

कोई अपनी खुशी के लिए गैर की
रोटियां छीन ले हम नहीं चाहते,
छीट कल थोड़ा चारा कोई उम्र की
हर खुशी भी नहीं ले हम नहीं चाहते।
खेतों में खू-पसीना हमने सदा बहाया
क्यों बाद जिंदगी का सर-सब्ज हो न पाया,
मेहनत की कमाई क्यों शैतान छीन लेते
जीवन की हर खुशी के को धनवान बीन लेते

धर्म संप्रदाय के नाम पर लोगों को बांटने छलने वाले पाखंडी सांप्रदायिक लोगों पर भी डॉक्टर अनूप खूब प्रहार करते हैं और भोली भाली जनता को उनसे सजग और सावधान रहने को कहते हैं-

मंदिर में कभी मस्जिद में
कभी भगवान को बांटा करते हैं,
कुछ शैतानों की चालें हैं
इंसान को बांटा करते हैं।

उनकी नापाक साजिशों को जनता के समक्ष उद्घाटित करें। अपनी इसी कोशिश के तहत वे लिखते हैं-

उनके झांसे में आए तो अपने हाथों कट जाओगे
खुद को नहीं पहचान सकोगे यू टुकड़ों में बट जाओगे
महंतों और मुल्लाओं से सारा देश अजीज है
नकाब इनकी उल्टे इनके कारोबार को रोके।

ईश्वरीय सत्ता की दुहाई देकर लोगों को अंधविश्वास के अंधकार में धकेले रहने की साजिश को रचनाकार ने खूब समझा है। इनकी दृष्टि वैज्ञानिक सोच से युक्त है इसलिए वह बार-बार लोगों से इस अज्ञानता के अंधकार से बाहर निकलने का आह्वान करते हैं-

कर्म का फल छीन लेते हैं वह हमसे
और देते हैं पूर्व जन्मों की दुहाई
दुख का कारण गलत बतलाते हैंज्ञानी
कर रहे हैं रहजनों की रहनुमाई
शत्रु के छल छप्र उनकी साजिशों को
खुद समझने और बताने का समय है।
तकदीर भाग्य के सब सिद्धांत खोखले हैं
यह जाति धर्म मजहब कुर्सी के चोंचले हैं।

डॉ. अनूप का जनशक्ति पर दृढ़ विश्वास है।वे जनता की ताकत और उसकी उसकी सामर्थ्य का बोध बार-बार अपने गीतों में कराते हैं-

समंदर की गुफा से वह क्या डरेंगे
चल ढूंढने हैं जो लालो गुहर को

उठो और बड़ों क्योंकि हमको यकी है
हमारे कदम जीत लेंगे सफर को।
सुना है नींद उड़ गई है उसकी आंखों से
डराने वाला आज खुद ही डरता जाता है।

आज के दौर में जब कदम कदम पर इंसान शराफत के मुखोटे लगाए वहशी अमानुषिक कृत्य करता दिखाई पड़ता है और सीधी-साधी जनता उसके इस पाखंड को पहचान नहीं पाती बल्कि उसके अपना रहनुमा समझती है। ऐसे में डॉ. अनूप इन छ्प्रवेशियो को बेनकाब करते हुए लिखते हैं-

मछलियों को कितनी गलतफहमियां है
समझने लगी दोस्त खूनी मगर को
हम तेरे मुखोटे को तार-तार करेंगे
और यह गुनाह यूं ही बार-बार करेंगे।
एक खूंखार इरादा है शराफत में छिपा
वह गिरगिट की तरह रंग बदलता जाता है।

डॉ. अनूप की रचनाओं के केंद्र में आम आदमी है इनके गीत भू हैं-

गरीबी बेरोजगारी जैसी समस्याओं से लड़ते हुए आम आदमी के प्रति सदैव ही अपनी पक्षधरता मुखर करते

1. मासूम होटलों में क्यों प्लेट धो रहे हैं
माए हैं भूखी-प्यासी नवजात रो रहे हैं
क्यों हाथ मल रही है बेबस की जिंदगानी
विषपान करके अक्सर क्यों मिट रही जवानी
सीने में आंधी हर वक्त चल रही है
सपनों की कविताएं बेवक्त जल रही है।

जन जीवन से जुड़ी समस्याओं शोषण, अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष का आह्वान डॉ अनूप एक नहीं अनेक गीतों में दिखाई पड़ता है। इनका मानना है कि आज हम वक्त के उस दौर से गुजर रहे हैं जहां से बातचीत आग्रह बिनय या मांगने से हक नहीं मिलता। इसलिए अब तो आर पार का संघर्ष ही हमें अपना हक

1. न्याय दिला सकता है-
बहुत सहेलियां जुल्म- सितम अब
सहने से इनकार करो
जिनके सुख दु:ख एक से हैं
उनकी सेना तैयार करो
पीछे हटना ठीक नहीं अब
बढ़कर तुम भी वार करो
मेरा हक है जिन चीजों पर
उन पर तुम अधिकार करो।

2. समय है हथियार चमकाने का अब तो
युद्ध की बेरी बजाने का समय है।

गीतकार का दृढ़ विश्वास है कि यदि इच्छाशक्ति के साथ एकजुट होकर संघर्ष किया जाए तो निश्चित ही यह लूट अन्याय शोषण पर टिकी व्यवस्था एक दिन धवस्त हो जाएगी–

येजमाने की मनहूस शर्तेतो हमको मंजूर हरगिज नहीं है
घर चल पड़े गर तो मंजिल हमारी पास है दूर हरगिज नहीं है
रात के गर्भ में से ही हमेशा है निकलता सुनहरा सवेरा
यह घुटन यह तड़प छोड़ कर के
बंद दीवार को तोड़कर के
कामनाओं के अंकुर उगेंगे
वर्जना की शिला फोड़ कर के

डॉक्टर अनूप अपने गीतों में सर्वहारा के हित एवं वर्गीय समानता की बात बार–बार करते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि किसी भी समाज की उन्नत तभी संभव है जब वह भेदभाव रहित हो और जहां सब को विकास के समान अवसर हो–

सूर्य पर बादलों का न पहरा रहे
रोशनी रोशनाई में डूबी न हो
हर समय आत्मा सबकी ऊबी न हो
आसमां में टँगी हो न खुशहालियाँ
कैद महलों में सब की कमाई न हो।

डॉ. अनूप एक ओर जहां संघर्ष द्वारा सामाजिक समानता स्थापित करने का आह्वान करते हैं वही समाज में प्रेम शांति सद्भाव की

अगर हो सके तो आग बुझाने की बात कर
आंसू किसी भी आंख में अच्छे नहीं लगते
रोती हुई आंखों को हंसाने की बात कर

आपसी टकराहट और वैमनस्य सदा ही प्रगति के मार्ग में बाधक होते हैं। इस सच को केंद्र में रखते हुए डॉ. अनूप भेद भाव, ईर्ष्या–द्वेष से बचने और प्रेम सौहार्द भाईचारे जैसे तत्वों के प्रसार का संदेश देते हैं, जिससे समाज की उन्नति विकास का मार्ग प्रशस्त हो–

बेवजह कोई हमको लड़ाई नहीं
एक को नीचे दूजा बताए नहीं
हर समय हो जहां बस सृजन–ही–सृजन
कोई विधवंस के गीत गाए नहीं।

समग्र रूप से देखें तो डॉक्टर अनूप एक ऐसे जनवादी गीतकार हैं जिनकी जनसमस्याओं के प्रति जितनी साफ दृष्टि है उतना ही अस्पष्ट विरोध का स्वर है। उनके गीत सीधे–साधे जन के मन तक पहुंचते हैं। इनके गीतों में नर्सो भाषा का कोई आडंबर है शब्दों का चमत्कार। भाषा एवं शैली की सहजता कथ्य को और प्रभावोत्पादक बना देती है।

पौराणिक कथाओं के माध्यम से जन जागृत का प्रयास डॉ अनूप की शैली को एक अलग पहचान देता है-

ममता की सूरत हो, सीता भी तुम हो
ललकारी रण में गीता भी तुम हो
लव कुश को पढ़ना सिखाओ सख
पिंजरे से बाहर आओ सखी

डॉ. अनूप ने अपने जनगीतों में अपारंपरिक और आकर्षक दृष्टांत भी पेश किए हैं-

1. मेरी आंखों के सपने जैसे अँखुवाते तुम।
2. इच्छाओं के हर अंकुर पर होती ओलो की वर्षा है।
3. कामनाएं कुंवारी हवन हो गई।

निश्चित रूप से डॉक्टर अनूप वर्तमान समय में के एक ऐसे सशक्त जन गीतकार है जिनके जीत न सिर्फ व्यवस्था को चुनौती देते हैं बल्कि जनमानस को भी अपने साथ खड़े होने के लिए जेल करते हैं भाषा चेंज होने के साथ-साथ यथा स्थान छुट्टी ली हो जाती है जिससे कछ और भी प्रभावी होता है नहीं संडे डॉ अनूप ने अपने गीतों में एक जन गीतकार होने का फर्ज निभाया है।

श्री लाल शुक्ल के साहित्य में राजनीतिक मूल्य

कृष्ण कुमार

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग, प्रबंधन एवं मानविकी संकाय, ज्योति विद्यपीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० निरुपमा हर्षवर्धन

शोध निर्देशिका, मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग, प्रबंधन एवं मानविकी संकाय, ज्योति विद्यपीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

साहित्य, समाज एवं युग-स्थिति में अनिवार्य सम्बन्ध है। इसी से साहित्य और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है। यद्यपि भारतीय साहित्य में धर्म का प्रभाव अध्कि मिलता है। फिर भी समयानुसार राजनीतिक स्थिति से भी वह प्रभावित होता रहा है। रामायण में सामायिक राजनीतिक स्थिति का आभास मिलता है। महाभारत में भी कुरु राज्य के अन्य राज्यों से सम्बन्धों एवं कुरु वंश के आन्तरिक वैमनस्य एवं विघटन का विस्तृत विवरण मिलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राजनीति का स्थान प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण रहा है।

श्री लाल शुक्ल के साहित्य में राजनीतिक मूल्य

श्री लाल शुक्ल जी एक सजग साहित्यकार हैं वे सीधे तौर पर राजनीति से जुड़े हुए नहीं हैं लेकिन उनको सिविल सेवा के अन्तर्गत नौकरी करते हुए देश के कई राज्यों में घूमने, वहाँ की राज व्यवस्था आदि समझने का मौका मिला। 1956 का भूदान आंदोलन भी इन्होंने देखा है। इसके साथ ही भारत की स्वतन्त्राता की लड़ाई भी उनके लिए एक सजीव वर्ण्य विषय रहा है, जिसके कारण ही उनका राजनीति से परिचय आरम्भ हुआ और वे इससे भली-भान्ति अवगत हुए। शुक्ल जी के साहित्य में राजनीतिक मूल्यों का वर्णन बखूबी मिलता है। इन्होंने राजनीति के प्रत्येक पहलू को अपने साहित्य में उद्घाटित करने का सपफल प्रयास किया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है-

भ्रष्ट राजनीति का विश्लेषण

वर्तमान राजनीति क्या है? राजनेताओं द्वारा जनता को झूठे आश्वासन देना, लच्छेदार भाषण सुनाना, जनता को फंसाने के लिए विभिन्न उपायों का प्रयोग करना और जनता को राजनीति के कुचक्र में फंसाना। आज की राजनीति में जनता की स्थिति उस वस्तु के समान है, जिसकी आवश्यकता राजनीतिज्ञों को चुनाव के समय पड़ती है। निर्वाचन के समय नेता जनता से मिलते हैं, उन्हें पूर्ण सुख-सुविधाएँ प्रदान करने का वायदा करते हैं, परन्तु सत्ता में आते ही सब भूल जाते हैं। भ्रष्ट राजनीति और भ्रष्ट नेताओं की पोल शुक्ल जी ने अपने साहित्य में खोली है। उन्होंने नेताओं और मंत्रियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले राजनीतिक दाँव-पेंचों का वर्णन किया है-

''मुख्यमंत्री अपने भाषण में उस जाति की ऐतिहासिक गौरव-गाथा सुनाते, उसके किसी महानायक के नाम पर किसी खंडहर टीले या तालाब को स्मारक में बदलने का वादा करते और पार्कों को उनकी प्रतिमा की स्थापना के लिए नामजद करते, इस सबके

लिए कई लाख (और आजकल कई करोड़) रुपये की सहायता का ऐलान करते, फिर चुनाव जीतने के बाद उस जाति की रही-सही समस्याओं को सुलझाने का वादा करते हुए मुकुट, पग्गड़, गदा, तलवार, तीर-कमान-जो भी मिला हो- उसे बटोरकर चलते बनते हैं।''[1] यहाँ लेखक ने उन राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य किया है जो भोली-भाली जनता को अपनी राजनीतिक चालों से अपने चंगुल में फंसाते हैं।

खादी की पोशाक में लिपटे नेता जितने शालीन और नम्र दिखाई देते हैं, वास्तव में उतने होते नहीं। सत्ता प्राप्त होते ही ये अपने आप को राजा समझने लग जाते हैं और जनता का शोषण करते हैं। शुक्ल जी ने अपने साहित्य में भ्रष्ट राजनीति की पूर्ण रूप से पोल खोली है और दिखाया है कि स्वार्थी नेता देश को अंधेरे की ओर ले जा रहे हैं।

चुनाव : पाखण्डों का पिटारा

प्रजातांत्रिक देश में चुनावों का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि चुनावों के द्वारा ही मतदाता सही व्यक्ति का चुनाव करके अपने प्रतिनिधि को अपनी बागडोर सौंपता है। प्रजातांत्रिक देश का आधार ही चुनाव है। लेकिन वर्तमान समय में चुनाव मात्र पाखण्डों का पिटारा है। चुनाव से पूर्व नेता खूब बातें बनाते हैं कि हम यह करेंगे, वह करेंगे, लेकिन करते कुछ नहीं। कुर्सी पर बैठते ही वे अपना घर और जेबें भरने लगते हैं। चुनाव के समय स्थान-स्थान पर रैलियाँ की जाती हैं, जुलूस निकाले जाते हैं, जिनमें लाखों रुपयों का खर्चा होता है। चुनाव के इन्हीं ढकोसलों का वर्णन शुक्ल जी ने अपने साहित्य में किया है। 'आदमी का ज़हर' उपन्यास में नेता जसवंत चुनावी खर्चे के बारे में बताता हुआ कहता है-

जसवन्त ने कहा, ''आजकल तो चुनाव में मेरा रुपया पानी की तरह बह रहा है। पाँच-पाँच सौ रुपये की तो शराब ही रोज खर्च हो रही है। क्या समझे?

''सब समझ गया भाई साहब यह चुनाव का खेल फटीचरों के लिए नहीं है। बादशाह ने कहा।''[2]

इन्हीं चुनावी खर्चों के कारण गरीब आदमी चुनाव लड़ने की कल्पना भी ही कर सकता। पैसों के आधार पर अमीर और बेइमान व्यक्ति चुनाव लड़ते हैं और जीत जाते हैं। राजनीतिज्ञ चुनाव जीतने के बाद सरकारी खजाने के पैसे से अनेक सभाएँ और अधिवेशन करवाते हैं, जिसके कारण राजनीतिक एवं आर्थिक मूल्यों का विघटन होता है। सत्ताधारियों द्वारा इस फिजूल खर्ची का वर्णन शुक्ल जी ने 'रद्दी अखबार खाली बोतलें' व्यंग्य निबंध में यथा-''इस अधिवेशन पर लगभग पचास करोड़ रुपये के खर्च का अनुमान था।''[3] यह भी भी सफलतापूर्वक दिखाया है कि किस प्रकार राजनीतिक लोग चुनाव के दिनों में जाति और सम्प्रदाय का नाम लेकर जनता को उल्लू बनाते हैं। 'पंडित, ठाकुर, लाला, बाबू, मुंशी आदि।' व्यंग्य निबंध में शुक्ल जी ने दिखाया है कि राजनीतिज्ञ चुनाव के समय महापुरुषों और उनकी जाति का नाम लेकर वोट मांगते हैं ताकि जनता जाति के नाम पर उन्हें वोट दे दे। नेताओं की इस नीति को शुक्ल जी ने व्यंग्यात्मक रूप में वर्णित किया है। जातिगत आधार पर वोट लेने और देने की नीति का वर्णन लेखक ने 'राग दरबारी' उपन्यास में भी किया है-''गाँव सभा के चुनाव में रामनगर में एक बार दो उम्मीदवार खड़े हुए थे : रिपुदमन सिंह और शत्रुघ्न सिंह। दोनों एक ही जाति के थे, इसलिए जाति के ऊपर वोटों का स्वाभाविक बंटवारा होने में दिक्कत पड़ गयी। जो ठाकुर थे, वे इस पेशोपश में पड़ गये कि यह भी ठाकुर और वह भी ठाकुर, किसे वोट दें और किसे न दें। जो ठाकुर न थे, वे इस चक्कर में आ गये कि ये सब अपनी जाति के ही नहीं हैं तो इन्हें वोट दिया तो क्या और न दिया तो क्या?''4 नेतागण वोट प्राप्त करने के लिए समाज में जातीय भेदभाव को भी बढ़ावा देते हैं-''ब्राह्मण उम्मीदवार ने सवर्णों के बीच ऋग्वेद को पुरुष-सूक्त का कई बार पाठ पढ़ाया और समझाया कि ब्राह्मण ही पुरुष ब्रह्म का मुंह है। . . .शूद्र पुरुष-ब्रह्म का पैर है। उसका संबंध (ब्राह्मण का) मेधा और वाणी से है। जो पैर में नहीं होती, सिर में होती है, जिसमें मुंह भी होता है। अतः ब्राह्मण को स्वाभाविक रूप से प्रधान बनना चाहिए न कि शूद्र को।''[5]

इस प्रकार लेखक ने दिखाया है कि वर्तमान समय में चुनाव केवल नेताओं के पाखण्डों का पिटारा रह गये हैं। जिनमें नेता फिजूल खर्ची करते हैं और जातीय भेदभाव फैलाते हैं, जिसके कारण राजनीतिक मूल्यों का विघटन होता है।

शिक्षा का राजनीतिकरण

राजनीति समाज के हर क्षेत्र पर अपना अधिपत्य जमाए हुए है। शिक्षा जैसा पवित्र क्षेत्र भी अब राजनीति से अछूता नहीं रहा। शुक्ल जी ने अपने साहित्य में शिक्षा में बढ़ते राजनीतिक प्रभाव और भ्रष्टाचार का भी अंकन किया है। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों

में राजनीति ने अपनी गहरी पैठ बना ली है। यहाँ तक की स्कूल स्तर पर भी राजनीति का हस्तक्षेप हो गया है। जिसके कारण शिक्षा का क्षेत्र भ्रष्टाचार की दलदल में धंस चुका है। शिक्षा में राजनीतिकरण का उल्लेख शुक्ल जी ने 'राग दरबारी' उपन्यास में किया है। रुप्पन रंगनाथ को शिवपालगंज के कॉलेज के बारे में बताता है-

''तुम जानते नहीं हो दादा, इस देश की शिक्षा पद्धति बिल्कुल बेकार है। बड़े-बड़े नेता यही कहते हैं। मैं उनसे सहमत हूँ . . .।

''फिर तुम इस कॉलिज का हाल नहीं जानते। लुच्चों और शोहदों का अड्डा है। मास्टर पढ़ाना-लिखाना छोड़कर सिर्फ पॉलिटिक्स भिड़ाते हैं। दिन-रात पिता जी की नाक में दम किये रहते हैं कि यह करो, तनख्वाह बढ़ाओ हमारी गर्दन पर मालिश करो। यहाँ भला कोई इम्तिहान में पास हो सकता है . . .?''[6] इसी उपन्यास में शुक्ल जी ने दिखाया है कि शिवपालगंज के कॉलेज में हथियारों के बल पर वैद्य जी को मैनेजर बना लिया जाता है, क्योंकि वैद्यजी शिवपालगंज के सबसे ताकतवर नेता हैं।

यथा-''प्रिंसीपल ने शहर में जाकर डिप्टी-डायरेक्टर ऑफ ऐजुकेशन को कॉलिज-समिति की वार्षिक रिपोर्ट दिखायी थी। रिपोर्ट अत्यन्त सुन्दर अक्षरों में लिखी गयी थी। उसकी भाषा प्रांजल और शैली अंलकारपूर्ण थी।

वैद्य जी के सौन्दर्य का निरुपण करते हुए उसमें उन्हें इस क्षेत्र का नरकेसरी कहा गया था। यह अच्छी तरह प्रमाणित था कि वैद्य जी को सर्वसम्मति से 'सहर्ष' मैनेजर के पद पर फिर चुना गया है। उसमें यह नहीं लिखा था कि कुछ सदस्यों को कॉलेज के बाहर तमचे के जोर से धमकाया गया और उन्हें अन्दर नहीं जाने दिया गया।''[7] अतः कहा जा सकता है शिक्षा के क्षेत्र पर भी राजनीतिज्ञों का आधिपत्य हो गया है। इस प्रकार लेखक ने अपने साहित्य में शिक्षा के राजनीतिकरण का वर्णन किया है।

राजनीति का अपराधीकरण

वर्तमान युग में आये दिन असामाजिक तत्त्वों द्वारा आगजनी, लूटपात और हत्या जैसे कार्य किये जाते हैं। ये असामाजिक तत्त्व इन सब घिनौने कृत्यों को राजनीतिज्ञों की आड़ लेकर करते हैं। राजनीति किसी देश की शासन व्यवस्था का मुख्य हिस्सा है, क्योंकि शासन को चलाने के लिए राजनीति का सहारा चाहिए। राजनीति में राजनेता जनता के हितों का ध्यान रखकर शासन चलाता है लेकिन आज राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है राजनीति की आड़ में कुछ लोग गैर कानूनी काम करते हैं। ये गैर कानूनी काम वे राजनेताओं के इशारे पर करते हैं और नेताओं की पहुंच के कारण साफ बच निकलते हैं, जिसके कारण राजनीति के अपराधीकरण और अपराधों को अधिक बढ़ावा मिल रहा है।

लेखक शुक्ल जी ने 'नेता ऐसा चाहिए' नामक व्यंग्य निबंध में राजनीतिक अपराधीकरण पर तीखे प्रहार किये हैं-''बुजदिली और चिरकुटपन के इस माहौल में कितना सुखद है यह सुनना कि राजनीति में अब असली बन्दूकधारियों का प्रवेश होने लगा है। इसे आप भले ही राजनीति का अपराधीकरण कहें, पर मुझे लगता है कि दर्जनों कार्बाइनों, रायफलों, रिवाल्वरों आदि के मालिकों का मालिक बनकर जब कोई संसद, विधानसभा या पार्टी ऑफिस में आता है तो वह अपने सहयोगियों को तमाचा नहीं मारता। वह अफसरों से लेकर चौकीदारों तक को धमकाता नहीं, हुकूमत को वह बड़ी सहजता से अपनी जायदाद मान लेता है और आत्मविश्वास के साथ सबसे यथा योग्य व्यवहार करता है। असली माफिया सरदार भावावेश में नहीं आता, बदकलामी नहीं करता, गुस्सा नहीं दिखाता, चापलूसी नहीं करता और वह कुछ भी करे, नेताओं की तस्वीरों पर इंचीटेप लगाकर उनकी लम्बाई-चौड़ाई नहीं मापता।''[8]

टी०वी०, रेडियो और समाचार पत्रों में हर दिन गोलाबारी और दंगे-फसादों की खबरें छपती रहती हैं। इन घटनाओं और अपराधों के पीछे राजनीतिज्ञों का हाथ होता है। शुक्ल जी ने 'एक नेता पुत्र का इंटरव्यू' में इसी बात को भली-भांति दिखाया है। यथा-

''नेतापुत्र के पिताश्री वाणी और व्यवहार में बड़े सौम्य हैं, वैसे, हाल में जिन माफिया सरदारों ने राजनीति में सफल घुसपैठ की है, उनमें इनका नाम इज्जत और दहशत के साथ लिया जाता है।''[9] इन अपराधी संगठनों की जड़ें राजनीति में गहरी धंस चुकी हैं। यहाँ तक कि नेता तथा मंत्री भी इन गिरोहों के सदस्य होते हैं। मंत्री और राजनेता अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए विद्यार्थियों के भी हाथ में हथियार और तलवारें पकड़ा देते हैं। 'राग दरबारी' उपन्यास में वैद्य जी कॉलेज के चुनाव में जीतने के लिए विद्यार्थियों के हाथों में लट्ठ थमा देते हैं ताकि विपक्ष के लोग कॉलेज में प्रवेश न कर सकें। देखिये-''इन्हीं लड़कों के हाथ में आज हॉकी की स्टिकें और क्रिकेट के बल्ले मौजूद थे, जिन्हें वे ऐसी बदगुमानी से पकड़े थे जैसे उनके हाथ में किसी ने राइफलें पकड़ा दी हों। लगभग पचास लड़के इसी तरह के सामान से लैस होकर कॉलिज के फाटक के आसपास घूम रहे थे।''[10] राजनीति में होने

वाले भ्रष्ट कार्यों का वर्णन शुक्ल जी के साहित्य में पात्र भी करते हैं-''देखो, दादा, यह तो पॉलिटिक्स है। इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है। . . .दुश्मन को, जैसे भी हो चित्त करना चाहिए।''[11]

इस प्रकार लेखक ने दिखाया है कि आज राजनीति अपराधों का केन्द्र बनती जा रही है। राजनेता सिर्फ अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं, उन्हें जनता से कोई लेना-देना नहीं होता। राजनीति सत्ता तथा धन लोलुप लोगों के हाथों का खिलौना भर बनकर रह गयी है।

भ्रष्टाचार

शुक्ल जी ने राजनेताओं में फैले इस भ्रष्टाचार को अपने उपन्यास 'बिस्रामपुर का सन्त' में दिखाया है। यथा-''पिछले बीस सालों में हर एक मुख्यमंत्री इस मुर्दा घोड़े पर सरकारी अनुदान के कोड़े बरसाता रहा है। एक आता है और कुटीर उद्योग के नाम पर पाँच लाख का अनुदान घोषित कर जाता है। दूसरा दस्तकार प्रशिक्षण के नाम पर दस लाख। फिर तीसरा सामाजिक वानिकी के नाम पर बीस लाख। पर इन लाखों का हो क्या रहा है, कोई नहीं जानता।

''बस इतना मालूम है कि नीलामी की बोलियों की तरह बढ़ती हुई अनुदान की रकमें ही इस क्षेत्र का नाम अखबारों के लिए सार्थक बनती हैं।''. . . उसने हाथ के इशारे से ऊबड़-खाबड़ जमीन में नीची छतवाली इमारतों के इर्द-गिर्द पनपती हुई झाड़ियों की ओर इशारा किया . . .''बाल विहार और विद्यालय तक आते-आते सरकारी सहायता का स्त्रोत सूखने लगता है।''[12] आज भ्रष्टाचार से कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा। कर्मचारी वर्ग घूस लिये बिना कोई भी काम नहीं करता। इस प्रकार शुक्ल जी ने दिखाया है कि भ्रष्टाचार आज सभी क्षेत्रों में समाया हुआ है। जो देश की जड़ों में विष का काम कर रहा है। इसलिए जहाँ आज आम जनता को जागरूक होने की जरूरत है वहीं सरकार को भी भ्रष्टाचार के विरुद्ध कठोर कदम उठाने चाहिएं। क्योंकि भ्रष्टाचार मुक्त शासन ही देश को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित कर सकता है और राष्ट्रीय स्तर पर अपने नागरिकों की जरूरतों को पूरा कर सकता है। इसलिए भ्रष्टाचार के विनाश की आज सख्त आवश्यकता है।

राजनीति में स्त्रियों का योगदान

वर्तमान युग यंत्रीकरण एवं नवजागरण का युग है। आज पुरुष ही नहीं नारी भी अपनी क्षमता का लोहा मनवा रही है। शुक्ल जी एक स्वच्छ प्रवृत्ति के लेखक हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि स्त्रियाँ किसी भी काम को करने में पुरुषों से पीछे नहीं है। हाँ यह बात अलग है कि उन्हें हर नए कार्य क्षेत्र में योगदान देने से पूर्व काफी सामाजिक बंधनों को तोड़ना पड़ता है। हमारा समाज युगों से स्त्री को असहाय, निर्बल, आश्रित और अबला समझता आया है। परन्तु जब भी देश पर संकट आया है तो स्त्रियों ने भी सबला बनकर बढ़-चढ़कर देश की रक्षा की है। राजनीति में भी स्त्रियाँ पुरुषों के समान योगदान दे रही हैं। स्त्री राजनीतिक और सामाजिक कार्यों में भूमिका ही नहीं निभा रही बल्कि वह अपने पूर्ण जीवन को देश की सेवा में अर्पण कर देती है। 'बिस्रामपुर का सन्त' उपन्यास की मुख्य पात्र सुंदरी 1956 के भूदान आंदोलन में भाग लेती और फिर निश्चय करती है कि आजीवन अविवाहित रहकर देश व समाज की सेवा करेगी। यथा-

''माना कि विवेक मेरे लिए सोलह साल से इंतजार कर रहा है और हम दोनों प्रौढ़ता के कगार पर पहुंच गये हैं। पर वह समझदार है, रोमियों, महीवाल, मजनूं की जाति का नहीं है। उसे यह भी अच्छी तरह मालूम है कि मैं समाज-कार्य के महासागर में शादी रचाने के लिए नहीं कूदी थी और अब वह स्वयं देख रहा है कि प्रत्येक बीतते हुए दिन के साथ मैं किनारे से लगातार दूर होती जा रही हूँ, जीवन की जो पद्धति मैंने अपने लिए चुनी है, उसके साथ मेरा रिश्ता दिन-प्रतिदिन मजबूत होता जाता है।''13 इस प्रकार सुंदरी विवेक से विवाह करने से इन्कार कर देती है और भूदान आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेती है। इसी उपन्यास में दिल्ली की एक महिला पत्रकार एक दिन सुन्दरी बहन का साक्षात्कार लेती है। शुक्ल जी ने यहाँ दिखाया है कि स्त्रियाँ किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं हैं-

''उसने सुन्दरी से जुड़ी हुई संस्थाओं की काफी गहरायी से जानकारी ली। विनय वाटिका ने उसे खासतौर से आकर्षित किया और घनी हरियाली के उसने कई चित्र भी खींचे। उसने सुंदरी की प्रकाशित होने वाली किताब को भी पलटा और उन्होंने अपने पुराने अंदाज में उसे यह लिखने से रोका कि उस किताब के कुछ हिस्से उसने पढ़े हैं। ''यह अभी गोपनीय है और प्रैस द्वारा इसकी चर्चा करने का अधिकार सिर्फ विवेक को है, ''उन्होंने कहा! फिर भी उसने भूमि व्यवस्था के बारे में सुंदरी से स्थापनाओं की जानकारी ली और उन पर अपनी तात्कालिक और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतिक्रिया भी दी।''14 लेखक ने नारी के आधुनिकरण, जागरूकता

एवं राजनीति के प्रति दिलचस्पी को प्रकट करने का प्रयास किया है। शुक्ल जी ने दिखाया है कि स्त्री की राजनीति में भूमिका पहले भी थी और अब भी है। वह अपनी राजनीतिक शक्ति के द्वारा सत्ता चलाने तथा सत्ता परिवर्तन की क्षमता रखती है। अगर आज हम भारत की राजनीति पर नजर डालें तो चारों ओर राजनीति के क्षेत्र में स्त्रियाँ नजर आएंगी। आज भारत में जिस दल की सरकार है, उसकी अध्यक्ष भी नारी ही है। इससे ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि राजनीति में स्त्रियों की अहम् भूमिका है।

निष्कर्ष

शुक्ल जी ने अपने साहित्य के माध्यम से राजनीति के विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी 'चन्द अखबारी घटनाएँ', 'नेता ऐसा चाहिए', 'बदी कर और लॉकर में डाल' आदि रचनाओं के माध्यम से भ्रष्ट राजनीति की पोल खोली है। लेखक ने समय-समय पर होने वाले चुनावों को नेताओं के पाखण्ड बताया और नेताओं की चुनावों में वोट मांगने की नीति व पद्धति को व्यंग्यात्मक रूप में वर्णित किया है। शिक्षा में भी राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप खुले तौर पर हो रहा है, यह शुक्ल जी ने 'राग दरबारी' और 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यासों के माध्यम से बखूबी दिखाया है। शुक्ल जी ने राजनीति और समाज में फैले भ्रष्टाचार पर भी विस्तार से लिखा है तथा यह संदेश देने की कोशिश की है कि अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर ही हम समाज तथा देश को सुदृढ़ कर सकते हैं। आज के समय में राजनीति में नारी की कितनी अहं भूमिका है इस बात को उन्होंने 'बिस्रामपुर का सन्त' उपन्यास की पात्रा सुंदरी के माध्यम से चित्रित किया है। शुक्ल जी ने राजनीतिक अपराधीकरण की भी खुले शब्दों में भर्त्सना की है।

संदर्भ सूची

1. श्री लाल शुक्ल, चन्द अखबारी घटनाएँ, इस उम्र में (कहानी-संग्रह), पृष्ठ 32
2. श्री लाल शुक्ल, आदमी का ज़हर, पृष्ठ 121
3. श्री लाल शुक्ल, रद्दी अखबार और खाली बोतलें, आओ बैठ लें कुछ देर (व्यंग्य संग्रह), पृष्ठ 100
4. श्री लाल शुक्ल, राग दरबारी, पृष्ठ 200
5. वही
6. श्री लाल शुक्ल, राग दरबारी, पृष्ठ 29
7. वही, पृष्ठ 28
8. श्री लाल शुक्ल, नेता ऐसा चाहिए, आओ बैठ लें कुछ देर (व्यंग्य-संग्रह), पृष्ठ 19-20
9. वही, एक नेता पुत्र का इंटरव्यू, खबरों की जुगाली (व्यंग्य-संग्रह), पृष्ठ 140
10. श्री लाल शुक्ल, राग दरबारी, पृष्ठ 136
11. वही, पृष्ठ 145
12. श्री लाल शुक्ल, बिस्रामपुर का संत, पृष्ठ 35
13. श्री लाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृष्ठ 167
14. वही, पृष्ठ 187

नीतीश कुमार की राजनीतिक एवं मुख्य चुनौतियां : एक विमर्श

डॉ० रुपक कुमार

राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

नीतीश कुमार की राजनीतिक एवं प्रमुख चुनौतियां को मद्देनजर रखते हुए बिहार के संदर्भ में नीतीश राज और सुशासन खासकर 2005-2013 तक एक दूसरे के पर्याय रहे है। नीतीश कुमार को सुशासन के साथ विकास के लिए देश में जाना जाता रहा है। उन्होंने इस सूबे को बदनामी के दलदल से बाहर किया। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के पक्ष में और भी बहुत कुछ तथ्य पेश किये जा सकते हैं जो विगत् दो कार्यकाल के दौरान उनके बेहतर शासक होने के पुख्ता सबूत है। पर, मौजूदा बिहार की आम गर्वनेंस और सूबे में सत्ता का इकबाल क्या इस दावे के पुष्टि करते हैं? इस सवाल का जवाब कठिन तो नहीं, पर अप्रिय जरूर है।[1] बिहार में पंचायती राज में महिलाओं-अति पिछड़ों को आरक्षण दिया गया। इस कार्यक्रम के माध्यम से नीतीश कुमार ने अपने पक्ष में करीब 20-25 प्रतिशत वोट को सुरक्षित कर लिया। फलस्वरूप उसका परिणाम लोकसभा चुनाव 2009 और विधान सभा चुनाव 2010 तथा 2015 में देखने को भी मिला है। वर्तमान सत्ता की सोच यह है कि पुराने भवन-संस्थान को सुधारने में एक तो वाहवाही (लोकप्रियता) कम मिलेगी, दूसरे छोटे बजट के काम करने से नेता-बाबू-ठेकेदार की तिकड़ी का पेट भी नहीं भरेगा, इस सोच के कारण नीतीश कुमार ने पिछले कार्यकाल (2010-2015) में शानदार पटना संग्रहालय और ब्रिटिशकालीन विधानमंडल भवन के अच्छी हालत में रहते हुए सैकड़ों करोड़ रूपये के खर्च से नये बिहार म्यूजियम भवन और विधानसभा भवन के निर्माण कराये। 500 करोड़ के बिहार म्यूजियम भवन के निर्माण के औचित्य पर पटना हाईकोर्ट को सवाल उठाना पड़ा। नीतीश कुमार 'सात सूत्री निश्चय' को धरातल पर लाने के लिए ईमानदार प्रयास कर रहे हैं। वैसे भी 'सात सूत्री नीतीश निश्चय' में कुछ सूत्रों को छोड़ शेश में धन का पेंच है। निश्चयों को लागू करने के लिए धन कहां से आयेंगे इसमें यह उलझ-सा गया है।[2] दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी आबादी (सबा अरब) वाले भारत में सबसे तेज जनसंख्या वृद्धि वाले बिहार में जहां खेत-जोत, जंगल (मात्र 9फीसद) और भूगर्भ जल जैसे प्राकृतिक संसाधन ही नहीं, मानव निर्मित संसाधन (स्कूल-कॉलेज, अस्पताल, रेलवे, सड़क-पुल) भी ग्यारह करोड़ की विशाल आबादी का भारी दबाव झेल रहे हैं। यहां की सरकार ने जनसंख्या स्थिरीकरण पर अब तक कोई गंभीर रवैया नहीं अपनाया।

सरकार ने घोशणा की कि सबको पानी और शौचालय उपलब्ध कराया जायेगा। एक असंभव-सा वादा करती सरकार इस हकीकत से आंख मिलाना नहीं चाहती कि बढ़ती आबादी के कारण राज्य के 38 में से 33 जिलों का भूगर्भ जल प्रदूशित हो चुका है। बढ़ते शहरीकरण और सिवर सिस्टम की नाकामी के चलते गंगा जल स्नान योग्य भी नहीं रहा और बिहार में पटना समेत कई शहरों में तालाबों को पाटकर मकान-फ्लैट-आपार्टमेंट बनाने की होड़ लगी है। इसके पीछे भी आबादी का दबाव ही है।[3]

नवम्बर 2005 में नीतीश कुमार जब सत्तारूढ़ हुए तब राज्य के हालत पूरी तरह बदल गये। नौकरशाहों को स्वतंत्र ढंग से काम करने की आजादी मिल गयी। अनुभवी व वरिष्ठ अधिकारियों को समुचित महत्व मिलने लगा। परिणामस्वरूप सचिवालय से लेकर प्रखंड कार्यालय तक नयी कार्य-संस्कृति बनने लग गयी। लालू-राबड़ी शासनकाल में निरंतर घुटन महसूस कर रह सक्षम-समर्थ व अनुभवी अधिकारियों को मुख्यधारा में लाने से शुरू के कुछ वर्शो में उसके अच्छे परिणाम आये। विधि-व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सड़क के क्षेत्र में भारी बदलाव हुए। नीतीश कुमार की विकास पुरुष वाली जो छवि निखरी, वह मुख्यत: उसी कालखंड

(2005-2010) की है। बाद में वर्षों में (2013-2015) दुखद परिणति इस रूप में भी हुई कि 'सुशासन' की आड़ में नौकरशाहों को मिली स्वतंत्रता पहले स्वछंदता और फिर निरंकुशता में तब्दील हो गयी और उस पर नीतीश कुमार का कोई खास नियंत्रण नहीं रह गया।[4]

दरअसल विकास के किसी ठोस मॉडल की एक महत्वपूर्ण शर्त है वैसा नेतृत्व जिसकी प्रथम प्राथमिकता राज्य की समग्र तरक्की होगी। यह केन्द्र सरकार का पिछलग्गू नहीं होगा। इस नेतृत्व के रहते केन्द्र बिहार को आंतरिक उपनिवेश नहीं बना पाएगा और इस राज्य के विकास की जरूरतों की अनदेखी करने की हिम्मत नहीं करेगा। इसका लक्ष्य बिहार में पूर्ण रोजगार की स्थिति पैदा करना होगा। यह स्थिति उपलब्ध पूंजी और आबादी के साथ एक तरह का सामंजस्य स्थापित करेगी।[5]

ध्यातव्य है कि लालू-राबड़ी के राज के दौरान विकास योजनाओं के जमीन पर नहीं उतरने, भ्रष्टाचार, बिजली और सड़क की दयनीय हालत विमर्श के मुद्दे रहे। लालू-राबड़ी के शासन काल के दौरान राज्य की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं के पतन में तेजी आई। शैक्षिक संस्थाएँ भी कमोबेश बर्बाद हो चुकी थी और प्रशासनिक मशीनरी, जो 1950 के दशक में देश की सबसे अच्छी संस्था के रूप में सम्मान पाती थी, लालू-राबड़ी राज के दौरान पूरी तरह से उलट चुकी थी। जातिवाद ने न केवल राजनीति और नौकरशाही को पूरी तरह से प्रदूषित कर दिया था। बल्कि यह लगभग सभी संस्थाओं में घुस चुका है। लालू-राबड़ी का काल इस बात का गवाह है कि न्याय और समानता पर आधारित सामाजिक ढाँचे के निर्माण की दिशा में आर्थिक विकास के लिए जरूरी बदलाव करने में राज्य सरकार भयानक रूप में विफल रही।[6] इसे बिहार में शक्ति के ढाँचे की आम प्रकृति के रूप में पहचाना जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि में नीतीश कुमार ने बिहार के दूरगामी विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण पहल की। उन्होंने राज्य में पूंजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए पहलकदमी की जिससे ऐसे उद्योगों की स्थापना हो सके जिसमें गरीब और पिछड़े लोगों को रोजगार मिले। उन्होंने लघु उद्योगों को भी बढ़ावा देने का प्रयास किया। राज्य में भूमि सुधार को ईमानदारी से लागू करने की जरूरत पर बल दिया, राज्य की वित्तीय-अनुशासनहीनता पर रोक लगाया, कृषि के विकास का नक्शा तैयार किया, राज्य की विकासगत आवश्यकताएं पूरी करने के लिए सड़क नेटवर्क क्षमता को दुरूस्त करने पर जोर दिया।[7] नीतीश कुमार के विगत् दस वर्षों के शासन काल में जो बदलाव साफ तौर पर देखा गया है वह है नकारात्मक विकास की अनुपस्थिति। अर्थव्यवस्था के बेहतर प्रबंधन के फलस्वरूप बिहार वृद्धि के दर के पुराने पैटर्न से बाहर आ चुका है। झारखण्ड बनने के बाद के वर्षों के राबड़ी राज की कुछ हद तक सफलता संयोगवश थी- जो किसी सरकारी पहल या प्रयासों के अभाव के बावजूद हासिल की गई थी और जिसका श्रेय अधिकांशतः बाजार की शक्तियों को जाता था। नीतीश कुमार के शासनकाल में सरकार के स्वतः प्रेरित प्रयासों से बाजार और नौकरशाही ज्यादा आजादी और गति से काम करने लगे और इसी का नतीजा है वृद्धि दर में उतार-चढ़ाव में कमी।[8]

नीतीश कुमार द्वारा लाए गए राज्य के विकास के बारे में जो सबसे अच्छी बात कही जा सकती है वो यह है कि उन्होंने एक मृतप्राय बिहार को नया जीवन देकर अपने पैरों पर खड़ा होने में उसकी मदद की है। यह अपने आप में एक शानदार उपलब्धि है, फिर भी कुछ क्षेत्र हैं जिन पर चिंता बनी हुई है। राजमार्गों, शिक्षा और स्वास्थ्य में क्षेत्र में जबरदस्त प्रगति की तुलना में कृषि, ग्रामीण अधोसंरचना, उद्योग, बिजली, रोजगार सृजन और गरीबी उन्मूलन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हासिल की गई प्रगति कहीं नहीं ठहरती। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि बिहार के विकास की कुंजी कृषि के पास है जो राज्य की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। कृषि-आधारित उद्योग की वह क्षेत्र है जिसमें राज्य को अधोसंरचना के मुकाबले कई गुना निवेश की तलाश होनी चाहिए। बड़े और मंझौले उद्योगों की आधी संख्या कृषि-आधारित है।

मुख्यमंत्री के रूप में नीतीश कुमार की कठिनाई यह थी कि वे नहीं जानते थे कि अपने वादे को कैसे पूरा करें। यह आश्वासन देते हुए उनके मन में कोई विशिष्ट योजना नहीं थी। इस प्रतिबद्धता के पीछे उनके व्यक्तिगत संकल्प के सिवाय कुछ नहीं था, परन्तु उन्होंने समझ लिया कि उनकी ही तरह वरदीधारी कर्मियों के उत्साहित होने पर भी समाज व्यवस्था उनके प्रयासों को व्यर्थ बना सकती है। पुलिसकर्मियों के नेक और मजबूत इरादों के बावजूद अपराधियों के खिलाफ मुकदमों में प्रगति नहीं होती या वे उन्हें सजा दिलाने में असफल रहते थे, क्योंकि लोग उनके खिलाफ गवाही देने से डरते थे या अदालतों के सामने लंबित मुकदमों का ढेर होने के कारण वे समय रहते उनका निपटारा नहीं कर पाते थे।

यह अनिश्चितकालीन देरी जमानत पर छूटे अभियुक्तों के पक्ष में जाती थी। इसी बीच, अपराधियों को पकड़ने की दिशा में किसी क्रांतिकारी परिवर्तन के अभाव में अपराधों पर नियंत्रण अभी कोसों दूर था। हत्या, अपहरण, बलात्कार और डकैती जैसे गंभीर अपराधों की संख्या में जरूर कमी आई थी, परन्तु इसका श्रेय पुलिस की मुस्तैदी और कार्यक्षमता या मुकदमों के शीघ्र निपटारे को कम और राजनीतिक संरक्षण जाल के छिन्न-भिन्न होने को अधिक जाता था। अन्य विभागों की तरह गृह और पुलिस विभागों में लालू-राबड़ी शासन से निराश अफसरों में असाधारण उत्साह था, परन्तु कोई नए विचार नहीं थे।[9]

अपराध-अपराधी और अपहरण को नियंत्रित करने तथा उन्हें जल्दी सजा दिलाने के लिए नीतीश के शीर्ष पुलिस अधिकारियों और एडवोकेट जनरल के साथ कई बैठकें आयोजित की। एक विचार जो सामने आया, वह था त्वरित (फास्ट ट्रैक) अदालतों में मुकदमा चलाया जाना। दूसरा था, दंड न्यायालयों से संवेदनशील मामलों को प्राथमिकता के आधार पर निपटाने का आग्रह करना। यद्यपि त्वरित अदालती कारवाई के लिए न्यायपालिका की चिंता उनकी सामाजिक या आर्थिक हैसियत से निरपेक्ष, सभी नागरिकों से संबंधित थी, निर्धन पृष्ठभूमि वाले प्रतिवादियों के लिए यह समस्या और ज्यादा गंभीर थी। मामूली अपराधों के लिए भी अपने मुकदमों के अंजाम तक पहुंचने के इंतजार में, वे सालों-साल जेल से सड़ते रहते हैं। यह त्वरित अदालतें स्थापित करने का एक बुनियादी कारण था,[10] लेकिन उसका मुख्य कारण अपराधियों को तीव्रता से सजा दिलाना था।

जहां तक राज्य सरकार की यह मंशा गवाहों और साक्ष्यों को अदालत के सामने जल्दी लाती थी, उच्च न्यायालय उसके प्रति उत्साहित था। त्वरित अदालती कार्रवाई के लिए की गई इस कवायद के नतीजों से हर कोई चकित था। 2006 में राज्य 6,839 अपराधियों को सजा दिलाने में सफल रहा, इनमें से सत्रह को मौत की सजा, 1,389 को उम्रकैद 366 को दस साल से ज्यादा और 5,067 को दस साल से कम कैद की सजा सुनाई गई। करीब 26 प्रतिशत आरोपियों को दस वर्ष के कारावास या इससे बड़ी सजा दी गई जो जघन्य अपराधों-हत्या, डकैती और बलात्कार की भारी संख्या को दर्शाता था।[11]

निष्कर्ष

निष्कर्ष निकालना यथोचित होगा कि नीतीश कुमार सत्ता में आने के उपरांत सामाजिक न्याय को साथ लेकर विकास की तरफ अग्रसर हुए। अब विकास के इस मॉडल से पीछे नहीं हटा जा सकता। इस तर्क में भी कुछ दम है कि सामान्यतः सवर्णवादी मानसिकता के लोग बिहार की हर समस्या का कारण लालू को मानते हैं। निश्चित रूप से ऐसा मानना गलत है। लेकिन नब्बे के दशक में विकास के संदर्भ में बिहार की दयनीय स्थिति की जिम्मेदारी से लालू बच नहीं सकते। लालू और राबड़ी देवी की सरकारों ने इस संदर्भ में दो महत्वपूर्ण काम किए। पहला, लालू-राबड़ी काल में विकास की उपेक्षा और वित्तीय अनुशासनहीनता की पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकारों की प्रवृत्तियाँ बहुत गहरी हो गई। दूसरा, लालू-राबड़ी ने खुलकर यह कहना शुरू किया कि चुनाव जीतने के लिए विकास की जरूरत नहीं है, चुनाव सिर्फ सामाजिक आधार को मजबूत करके जीते जा सकते हैं। निश्चित रूप से इस तरह की बातें गरीबी की मार झेलते और जीविका के लिए संघर्ष करते लोगों की जरूरतों की उपेक्षा और इनकी दुखद स्थिति के उपहास का प्रतीक थीं।

संदर्भ

1. प्रकाश लुईस, *जनशक्ति,* मानक पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2008, पृष्ठ 122
2. रामश्रय राय, "कास्ट एण्ड पॉलिटिकल रिक्रूटमेंट इन बिहार" संकलित रजनी कोठारी (सं) *कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स,* अरोरियंट लॉगमैन, दिल्ली, 1970, पृष्ठ 241-43
3. अरूण सिन्हा, *नीतीश कुमार और उभरता बिहार,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 55
4. हैरी डब्ल्यू ब्लेयर, "राइजिंग कुलक्स एण्ड बैकवर्ड क्लासेज इन बिहार" *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 12 जनवरी 1980, पृष्ठ 68
5. कमल नयन चौबे, "पॉलिटिशराइजेशन ऑफ कास्ट्स एण्ड ट्रान्सफ्रॉमेंशन इन द पॉलिटिक्स ऑफ बिहार" इन लता सिंह एण्ड विश्वमाँय पाती (एडिटेड) *कोलोनियल एण्ड कॉटेमपररी बिहार एण्ड झारखण्ड,* प्राइमर बुक्स, न्यू दिल्ली, 2014, पृष्ठ 206-207
6. इंदुमति केलकर, *राममनोहर लोहिया,* नेशनल बुक ट्रस्ट, न्यू दिल्ली, 1996

7. एस.के. जैन, *कास्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन बिहार,* कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 61
8. उपरोक्त, पृष्ठ 68
9. श्रीकान्त, *बिहार में चुनाव : जाति, हिंसा और बूथ लूट,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 144
10. कमल नयन चौबे, "पॉलिटिशराइजेशन ऑफ कास्ट्स एण्ड ट्रान्सफ्रॉमेंशन इन द पॉलिटिक्स ऑफ बिहार" इन लता सिंह एण्ड विश्वमाँय पाती (एडिटेड) *कोलोनियल एण्ड कॉटेमपररी बिहार एण्ड झारखण्ड,* पूर्वोक्त
11. संजय कुमार, 'न्यू फेज इन बैकवर्ड कास्ट पॉलिटिक्स इन बिहार, 1990-2000', संकलित, घनश्याम शाह (सं.), *कास्ट एण्ड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया,* परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2002, पृ. 313-19

शिवमूर्ति की कहानी तिरिया चरित्तर में नारी संघर्ष की दासताँ

शिवाली शर्मा

पीएच.डी. शोधार्थी (हिन्दी), सेट, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006

पुरुष द्वारा परम्परागत मूल्यों की मांग तथा नारी के नवीन मूल्यों के प्रति आग्रह ने संघर्ष को जन्म दिया। हमारी सामाजिक व्यवस्था इतनी दोषपूर्ण है कि आज नारी कुछ ऐसे स्वार्थी व्यक्तियों तथा वर्गों की सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक रूढ़ियों द्वारा जकड़ दी गयी है। जिसमें इसका जीवन एक भटकन बना हुआ है।

अनामिका के अनुसार, "यह एहसास कि मुझे व्यक्ति नहीं, वस्तु समझा गया और ऐसे कार्य में भी मेरी सहमति जरूरी नहीं समझी गई जिसमें मुझे देह जैसे बड़े यथार्थ के साथ घसीटा जाना था।"[1]

समाज में पिता भी पुत्री को बोझ समझता है और उसके विवाह के पश्चात ही वह अपनी मुक्ति मानता है। परन्तु स्त्री जीवन की त्रासदी जहाँ समाप्त नहीं होती, विवाह के पश्चात वह पति द्वारा वस्तु समझी जाती है। वह जैसा चाहे उससे व्यवहार करने में स्वयं को स्वतन्त्र मानता है।

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति सदा बदलती रही है। प्रागैतिहासिक युग में मातृसत्तात्मक समाज था, जिसमें पूँजी का अधिकार संतान को नाम आदि माता से प्राप्त होता था। परन्तु जैसे-जैसे विवाह संस्था अस्तित्व में आई वैसे-वैसे यह समाज मातृसत्तात्मक से पुरुष सत्तात्मक बनता चला गया। पुरुष ने सम्पूर्ण पूँजी पर अधिकार के साथ-साथ स्त्री की देह पर भी स्वामित्त्व पा लिया।

एंगेल्स के अनुसार, "वह पुरुष की वासना की दासी संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रह गयी।"[2]

समाज में नारी निरन्तर उतार चढ़ाव के दौर से गुजर रही है। जहाँ एक ओर पुरुष को स्वच्छंद जीवन भोगन के लिए अनेक सामाजिक सुविधाएँ उपलब्ध हो रही हैं तो दूसरी ओर स्त्री को घर की चार दिवारी में बंद करके पुरुषों की तुलना में हेय समझकर उन्हें अनेक अधिकारों से वंचित रखा गया। भौतिक रूप से अत्याधिक उन्नति कर लेने के बावजूद पुरुष का नारी के प्रति दृष्टिकोण काफी हद तक नहीं बदल पया है। आज भी नारी को कहीं मानसिक प्रताड़ना तो कहीं शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ता है।

वर्तमान समय में नारी समस्याओं को आधार बनाकर अनेक साहित्यकारों का योगदान रहा है। इन्हीं साहित्यकारों में से शिवमूर्ति एक उत्कृश्ट कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं। शिवमूर्ति के 'केशर कस्तूरी' कहानी संग्रह में 'तिरिया चरितर' कहानी नारी का संघर्ष, उसके बचपन से लेकर यौवन अवस्था तक तथा शारीरिक शोषण का शिकार बनना आदि का मार्मिक वर्णन किया गया है। नारी संघर्ष मुक्ति का संघर्ष है। स्त्री को जब तक पुरुष के समान बराबरी का अधिकार आदि नहीं दिया जाएगा, तब तक स्त्री अपने अधिकारों के लिए लड़ती रहेगी। 'तिरिया चरितर' कहानी में शिवमूर्ति ने नारी के संघर्षात्मक स्वरूप को उसके आक्रोश के स्वर को वाणी देने का प्रयास किया है।

'तिरिया चरितर' की नायिका विमली की प्रकृति को दो भागो में बाँटा गया है एक तो वह बाल अवस्था में ही कठोर परिस्थितियों का सामना करती हुई बाल मजदूरी करती है उसे प्रारम्भ से ही सरपंच के घर रहकर चौका, बरतन, गोबर, झाड़ू आदि कार्य करना पड़ता है जिसके लिए उसे मात्र दो समय की रोटी तथा उनकी बेटी का उतरन, पहनने को मिलता है।

विमली लड़की होते हुए भी अपने कर्त्तव्य को भली-भांति निभाती है, जबकि उसका भाई अपाहिज पिता और बूढ़ी माँ को छोड़कर पत्नी के साथ, अलग घर में रहता है। विमली परिवार को पालने के लिए समाज की परवाह किए बिना ईंट के भट्ठे पर कार्य करने को तैयार हो जाती है। विमली कहती है -

"अपना ही क्यों? सबका पेट पालेगी वह। भाई भाग गया तो क्या? वह लड़का बनकर रहेगी। नया-नया भट्ठा खुला है गाँव में। कौन कहता है कि आदमी लड़के ही काम कर सकते हैं भट्ठे पर।"[3]

रचनाकार शिवमूर्ति ने विमली के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि स्त्रियों ने प्रत्येक क्षेत्र में स्वयं को सिद्ध करने में तथा उनके प्रति बनी धारणा की यह केवल चूल्हे, चक्की तक सीमित है, उन्हें गल्त सिद्ध किया है।

विमली का भट्ठे पर काम करना पूरे गाँव को अखरता है। लोग उसके बाप को उसके खिलाफ भड़काने का प्रयास करते हैं, इसमें केवल उसे अपनी माँ का सहयोग प्राप्त होता है। विमली गाँव की पहली लड़की थी जिसने भट्ठे पर काम करना प्रारम्भ किया था और उसी की प्रेरणा से गाँव की ज्यादातर बेटियाँ और बहुएँ भी भट्ठे पर रोजगार प्राप्त करने लगीं। इसी बात से दुखी होकर गाँव की पुरुषवादी सोच को ढोने वाले लोग विमली के पिता के कान भरते हैं।

"दुनिया भर के चोर चाई का अस्त्रा है भट्ठा। लौंडे लपाड़े। गुंडा बदमाश। रात बिरात आते जाते रहते हैं। नौ दस साल की लड़की छोटी नहीं होती, आन्हर हो गई है बुढ़िया। ईंट पथवाएगी। पाथेगा कोई ढंग से? तब समझ में आएगा।"[4]

भले ही विमली की माँ दुनिया के समक्ष अपनी बेटी के काम करने के पक्ष में खड़ी रहती है परन्तु कहीं न कहीं अकेली लड़की को बाहर भेजने का डर उसे सताता है। वह प्रत्येक दिन बेटी की घर वापसी पर उसे स्पर्श करती है कि वह सुरक्षित है या नहीं? विमली का पिता स्वयं मजदूरी करने में असमर्थ है इसलिए वह पुत्री को मौन सहमति देता है। वह भली-भाँति मेहनत मजदूरी करने वालों की पीड़ा को जानता था। किन्तु फिर भी उसका संदेह बेटी पर बना रहता है।

विमली के लिए ईट भट्ठे पर काम करना इतना आसान नहीं है वहाँ भी वह पुरुषों की चुहल तथा छेड़खानी का यथोचित उत्तर देकर उनके मंसूबों को नाकाम करती है। कहानीकार स्पष्ट बताना चाहता है कि स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं, प्रत्येक जगह में, आदमी की शक्ल में भेड़िए मौजूद होते हैं। विमली के दूसरे रूप रूप में वह माँ-बाप द्वारा किए गए उसके बाल-विवाह को निभाना चाहती है। उसका पति बड़े शहर में कार्यरत है उसने विमली की कभी सुध नहीं ली परन्तु विमली में भारतीय नारी के सम्पूर्ण गुण हैं वह उसे अपना पति परमेश्वर मान चुकी है और दूसरे विवाह के लिए सोचना भी नहीं चाहती। वह भट्ठे पर काम करने वाले ट्रक चालक की ओर आकर्षित भी होती है पर स्वयं को यह समझाकर रोक लेती है कि वह किसी और की ब्याहता है। समाज में स्त्री आज भी परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई है। उसे अपने मन की परिभाषा और तन की भाषा समझने के लिए सर्वदा अपने पति के प्रति इमानदार रहना पड़ता है। चाहेन पति उसे लेकर चिंतित हो या न हों। यही विमली के साथ भी घटित होता है उसके पति के लिए वह जीवित है भी या नहीं, उसे नहीं पता परन्तु उसका ससुर उसे गौना करके ले जाना चाहता है। वह विमली के माता-पिता से गौने की माँग करता है, जिसे उन्हें न चाहते हुए अपनी बेटी के हठ के आगे स्वीकार करना पड़ता है। वह ससुर के हाथों सौंप दी जाती है। विमली की विदाई हो जाती है। वह अपने तिरिया जन्म अर्थात् बेटी होने पर रो रही है। उसे क्या पता कि वह तिरिया जन्म का दण्ड भुगतने ससुराल जा रही है। जहाँ उसका ससुर उस पर शुरू से ही कुदृष्टि रखता है। बिसराम के विषय में पूरे गांव में चर्चा है कि बिना बेटे के कैसा गौना? पर उसे किसी का भय नहीं। जब गाँव वाले विसराम से उसके बेटे के विषय में पूछते हैं तो वह कहता है -

"क्या तरह-तरह की बातें? बिसराम को गाँजा चढ़ चुका है। वह कहता है। उसी का गाँजा पीकर उसी की जड़ खोदेगा कोई? वह दहाड़ना चाहता है - लड़का आए साला, चाहे उमर भर न आए। पतोहू को खोराकी से मतलब। और ऐसी ऐसी चार पतोहओं की खोराकी तो बिसराम अभी अकेले पूरा कर सकता है।"[5]

बिसराम नशे में होकर भी अपनी बात बदल लेता है ताकि उसके चरित्र पर किसी को शंका न हो। बिसराम बहु के साथ एक ही झोंपड़ी में रहकर प्रत्येक दिन जोर-जबरदस्ती करने का प्रयास करता है परन्तु उसे हर बार मुँह की खानी पड़ती है। विमली अपनी इज्जत बचाने के लिए कभी नाखुन से तो कभी धक्का देकर अपनी रक्षा करती है। विमली जब से ससुराल आयी है वह सो नहीं पायी जिससे उसका चेहरा लाल और आँखें सूझ गयी।

"विमली की आँखे लाल सूजी हुई। टुकुर टुकुर ताकती हुई। उतरा मुँह। थका चेहरा। कसाई की गाय।"[6]

बिसराम कुकृत्य के लिए जब बार-बार असफल होता है तो वह विमली को पाने के लिए अपने चरित्र में परिवर्तन कर ढोंग रचता है ताकि विमली को धोखे से अपना शिकार बना सके और इसमें वह सफल भी होता है। वह यह सिद्ध करने का दिखावा करता है कि उसे अपने कृत्य पर पश्चाताप है वह झोंपड़ी में बहु को अकेला छोड़कर स्वयं पेड़ के नीचे बाहर सोता है। दिन में पूजा-पाठ करता है और कुछ ही दिनों में उसने अपनी अल्ग झोंपड़ी तैयार कर दी है। जिससे विमली में भी पुनः प्राणों का संचालन हुआ है, नहीं तो उसके लिऐ प्रत्येक रात एक युग के समान बीतती थी और वह अपने इस दुख को बाँटने में असमर्थ थी। एक तो उसे बेइज्जती का भय और दूसरा पंचायत उसे ही कठघरे में लाकर खड़ा कर देती। परन्तु अब वह प्रसन्न है कि उसके ससुर के व्यवहार में परिवर्तन आ चुका है। एक दिन बिसराम विमली से अपने द्वारा किए गए निंदनीय कार्य की क्षमा माँगता है तथा पश्चाताप का पाखंड करता है, जिसमें विमली न चाहते हुए भी उसके धोखे का शिकार बन जाती है। बिसराम बड़ी चतुराई से विमली को पंचामृत में अफीम मिलाकर पिला देता है जिससे वह अचेत हो जाती है और उसी अवस्था में वह ससुर द्वारा बलात्कार का शिकार बनती है। तत्पश्चात् होश आने पर वह देखती है -

"चेतना आते ही उसे रुलाई छूटने लगी है धोखा। छल! कहाँ कहाँ से, किन-किन खतरों से बचाती आई थी वह परायी अमानत। कितने बीहड़? कितने जंगल? कितने जानवर? कितने शिकारी। और मुकाम तक सुरक्षित पहुँचकर भी लुट गई है वह। मेंड ही खेत खा गई छल से।"[7]

उसको समझ पाना कठिन हो रहा है कि इतनी गहरी नींद उसे कैसे आ गई? जिसमें उसका सर्वस्व लुट चुका है। वह चीखना चाहती है और बार-बार रो उठती है। वह क्रोध में जल रही है और इस अग्नि में वह उस पापी ससुर को जला देना चाहती है। विमली उसकी झोंपड़ी की ओर बढ़ती है परन्तु वह वहाँ से भाग चुका है। अब विमली अपने ससुराल में नहीं रहना चाहती। वह उसे त्यागकर अपने पति की खोज में कलकत्ता जाने को तैयार हो जाती है जिसके लिए वह रेलवे स्टेशन की ओर बढ़ती है। दूसरी ओर उसका ससुर पुनः शिवजी के मंदिर जाकर अपनी उपस्थिति पुजारी को दर्ज करवाता है ताकि उसके द्वारा किए गए गल्त कार्य का किसी को पता न चल सके। मंदिर में बहुत समय बीत जाने पर बिसराम अब घर पहुँचकर विमली को देखना चाहता है जिसके लिए उसने युक्ति बना ली है कि वह बहु से कहेगा कि मैं तो पूरी रात देवालय में था, चाहो तो पंडित से पूछ लो। तुम्हारे साथ जो हुआ वो तुम्हारी स्वेच्छा से और तुम्हारे ही प्रेमी द्वारा किया गया। परन्तु जब बिसराम घर आकर देखता है तो झोंपड़ी खाली है और बहु अपने समान के साथ जा चुकी है। अब वह पुनः कुटिल चाल चलकर उस पर मिथ्या आरोप लगाता है कि वह घर के गहने खोदकर अपने किसी प्रेमी के साथ भाग गई मैंने रात को झोंपड़ी से किसी का जाते देखा था। यह झूठ बोलकर वह पूरा गाँव इकट्ठा कर लेता है। विमली की खोज में प्रत्येक दिशा में आदमी भेजे जाते हैं और वह उसे रेलवे स्टेशन से घसीटकर वापिस लाते हैं जैसे वह ही अपराधिन हो। विमली की घर वापसी पर बिसराम का प्रपंच शुरू हो जाता है। वह उसके बक्से की तालाशी लेता है और जब उसे पकड़कर गहनों के लिए पूछता है तो उसके स्पर्श से विमली तिलमिला उठती है।

"वह झटके से खड़ी होती है, खबरदार कुत्ता, दाढ़ीजार, जो दुबारा हाथ लगाया मेरी देह पर कच्चा चबा जाऊँगी।"[8]

इसमें नारी का आक्रोश स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। जो उसकी आँखों में, उसके चेहरे, उसके हाव-भाव पर स्पष्ट झलकता है। उस गाँव में रहने वाले लोगों की दृष्टि नहीं है क्योंकि उनका दृष्टिकोण पुरुषसत्तात्मक सोच को लेकर बना हुआ है। जो पुरुष कहे वो सही, वही सत्य। जो नारी कहे तो वह कुल्टा है, अपराधिन है। विमली का पिता भी, उसी दिन उसे घर ले जाने के लिए उसके गाँव की सरहद में पहुँचता है तो वहीं पर अपनी पुत्री के विषय में असत्य सुनकर अपनी बेटी को ही दोषी समझता है तथा उसी स्थान से वह अपने घर लौट जाता है। वह मन ही मन कहता है।

"अब क्या मुँह लेकर आगे बढ़े वह। कालिख पुता मुँह। ऐसी बेटी का मुँह देखने से भी महापाप चढ़ेगा। अब कौन किसकी बेटी, कौन किसका बाप। पंचलोग आ गए पंचायत में, तो सिर पर जूते रखवाएंगे।"[9]

शाम को बिसराम के घर पंचायत बिठायी जाती है जिसमें पूरा गाँव शामिल है। यही वह समाज है जिसमें औरत का सर्वस्व छिन्न जाने पर भी उसे ही कठघरे में खड़ा किया जाता है। जिसने अपराध किया, जो दण्ड का पात्र था वह फरयादी बन गया। बिसराम

फरयादी बनकर, झूठ का ताना-बाना बुनकर विमली पर आरोप लगाता है कि यही कुल्टा बदचलन है। जिसने पूरे गाँव की नाक कटवा दी। वह आगे कहता है कि यह तो अपने मायके में ही बदचलन थी इसिलिए मैनें गौना जल्दी करवा लिया, ताकि यहाँ यह सुधर जाए, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। पंचायत विमली से प्रश्न पूछती है परन्तु विमली निडर होकर खड़ी है मानो उसका साहस पंचायत को ठोकर मार रहा हो। वह पंचों से स्पष्ट कहती है -

"रात मेरी झोंपड़ी में दारू पीने वाला, मछली खाने वाला और मेरे साथ मुँह काला करने वाला जानवर यही था। मैं इसे जिन्दा जलाना चाहती थी लेकिन यह बच गया, अब मैं इसका कच्चा माँस खाऊँगी।"[10]

विमली अपने हाथों से दोषी को सजा देना चाहती है पर गाँव वाले उसे रोक देते हैं यही तो है वो समाज जो औरत को हमेशा दोयम दर्जे पर जगह देता है चाहे उसके साथ कितना ही अत्याचार क्यों न हुआ हो, उसका मान भंग हुआ हो, बलात्कार हुआ हो या उसे जिंदा जलाया गया हो। उसकी आवाज को हमेशा दबाया जाता है। इसकी बातें सुनकर बिसराम अपने पक्ष में दलील के लिए पुजारी का सहारा लेता है। पुजारी भी उसी का साथ देता है कि कल रात बिसराम तो देवालय में ही था। यह सुनकर पंचायत विमली को दोषी करार देती है उसके जो ससुर पर आरोप है उन्हें बेबुनियाद ठहराया जाता है। पंचायत में वही साबित होता है, जो पुरुषवादी सोच का नजरिया, औरतों के प्रति बना हुआ है। समाज औरतों को ही पथभ्रष्ट और कुल्टा मानता है, यही तो बिसराम चाहता था कि गाँव के लोग विमली को ही दोषी मानें और वह स्वयं निर्दोष साबित हो। विमली को पंचों द्वारा सजा सुना दी जाती है और सजा देने का काम बिसराम को सौंपा जाता है जिसने बहु की निगरानी में चूक की।

पंच कहते हैं, "तो आज अभी इसी पंचायत के बीच लोहे की कलछुल की डाँडी लाल करके दागने का काम बिसराम के जिम्मे। पतोहू की निगरानी में चूक हुई इसकी सजा।"[11]

इस अत्याचारी सजा का विरोध गाँव की एक अकेली औरत मनतोरिया की माँ करती है वह भरी पंचायत में यह बोलने का साहस करती है यह कैसा न्याय है? ससुर को सजा देने के स्थान पर तुम निर्दोष बहु को सजा देना चाहते हो यह कैसा अँधेर है? इतना बोलने पर ही उसका पति उसके बाल खींचकर उसे वहाँ से ले जाता है। पूरी पंचायत मूक दर्शक बन कर यह दृश्य देखती है क्योंकि पति पत्नी को अपनी जागीर समझता है और उसके साथ मनचाहा व्यवहार कर सकता है वह इन सबके लिए स्वतन्त्र है। इन सबके बीच विमली पुनः पंचायत का विरोध करती हुई कहती है-

"मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अंधा है, बहरा है। पंच में भगवान का सत ही नहीं है, मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ। आ-क-थू। देखूँ कौन माई का लाल दगनी दागता है।"[12]

वह ऐसी पंचायत को त्याग कर वहाँ से जाना चाहती है परन्तु गाँव के आदमी उसे पकड़कर, उसके शरीर को स्पर्श कर आनंदित हो रहे हैं। जैसे स्त्री मात्र एक वस्तु हो और प्रत्येक पुरुष उस पर अधिकार कर सकता हो। तभी बिसराम पंचों की बात मानकर विमली को दागने के लिए आगे बढ़ता है।

"छन्न कलछुल खाल से छूते ही पतोहू का चीत्कार कलेजा फाड़ देता है। कूदती लोथ। माँस जलने की चिरायँध। चीत्कार सुनकर एकाध कुत्ते भौंकते हैं। एकाध रोने लगते हैं।"[13]

विमली बेहोश होकर वहीं गिर पड़ती है और धीरे-धीरे पूरी पंचायत में चल रहा नाटक समाप्ति का रूप ग्रहण करता है। नाटक का हिस्सा बने लोग अपने-अपने घरो का रुख करते हैं और बेसुध पड़ी विमली के माथे पर बदचलन का दाग आजीवन के लिए लगा दिया जाता है।

पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में स्त्री की सत्यता को जानने की आवश्यकता किसी को भी नहीं है। उन्हें मात्र उसे दण्डित करना या उससे इंतकाम लेना ही आता है। यदि पुरुष को स्त्री से प्रतिशोध लेना है तो वो बड़ी सुगमता से स्त्री के चरित्र पर उँगली उठाएगा, उस पर लाँछन लगाएगा और उसके इस कार्य में एक के समर्थन में, चार पुरुष सहयोगी बन जाऐंगे, क्योकि वह उस स्त्री को प्राप्त नहीं कर सके। मात्र ग्रामीण क्षेत्र ही नहीं वर्तमान समय में ऐसा अत्याचार, ऐसा अन्याय, शहरी तबके मे भी नारी शोषण किसी न किसी रूप में देखने को मिलता रहा है। यह आज का ज्वलंत विषय बन चुका है और हमें यह निष्पक्षता से देखना होगा कि भारतीय परिवारों में स्त्री को क्या स्थान प्राप्त हुआ है? और उसे किस प्रकार अनेक मान मर्यादाओं को निभाते हुए जीवन जीना

पड़ता है। उदाहरण के लिए जब विमली परिणय सूत्र में बाँधी गई तो उस बाल्यकाल में इस कार्य को मात्र खेल ही समझा जाएगा परन्तु वह अपनी यौवन अवस्था में पहुँचकर उस विवाह को निभाने के लिए तैयार है। वह उस व्यक्ति को अपना सर्वस्व मान चुकी है जिसको उसने प्रत्यक्ष देखा भी नहीं।

पुरुषवादी सोच ने जन्म से लेकर मृत्यु तक नारी को पुरुष पर निर्भर रहने, परिवार में किसी भी प्रकार के निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित न करने, चाहे वो पंचायत में हो, या स्त्री के ही जीवन से संबंधित हो इसमें नारी के प्रवेश को वर्जित माना है। उसे अपना मत सबके समक्ष रखने की स्वतंत्रता नहीं है। विमली अपना सत्य पंचायत को बताना चाहती है और निडर होकर पंचों से इसकी माँग करती है परन्तु गाँव वाले पंचायत के साथ मिलकर विमली को ही दोषी करार देते हैं तथा दण्ड के तौर पर बलात्कारी ससुर के हाथो निर्दोष विमली के माथे पर गर्म आग से न मिटने वाला दाग हमेशा के लिए लगा दिया जाता है।

संदर्भ

1. अनामिका, मन माँझने की जरूरत, पृष्ठ 17
2. एंगेल्स, परिवार निज सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पृष्ठ 69
3. शिवमूर्ति, तिरिया चरित्तर, पृष्ठ 85
4. वही, पृष्ठ 86
5. वही, पृष्ठ 104
6. वही, पृष्ठ 103
7. वही, पृष्ठ 110
8. वही, पृष्ठ 116
9. वही, पृष्ठ 117
10. वही, पृष्ठ 119
11. वही, पृष्ठ 121
12. वही, पृष्ठ 122
13. वही, पृष्ठ 123

स्त्री साहित्य की अवधारणा

डॉ० मीनाक्षी

हिंदी भाषा विशेषज्ञ, कमरा न0-109, साबरमती हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

शोध सारांश

"आज के संदर्भ में साहित्यिक प्रतिमानों को बदलने में स्त्री साहित्य का विशेष योगदान है क्योंकि साहित्य का अधिकांश हिस्सा हाशिए पर रखे उत्पीड़ित समाज के रूप में स्त्री समाज से संबद्ध है। यहाँ इसका संबंध स्त्री मन, सभ्यता, भाषा, संस्कृति, संवेदना, आवश्यकताओं आदि से ही न होकर, समाज से भी होता है। मुख्यधारा साहित्य के समान स्त्री साहित्य अथवा अन्य अस्मितावादी साहित्य के समक्ष सामाजिक समस्याएँ इनकी अपनी समस्याएँ हैं। इसमें भी शोषित, पीड़ित समाज होता है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक शोषण से ग्रस्त, अपनी अस्मिताओं की पहचान कराने वाला, अन्यायों, अत्याचारों का प्रतिकार करता है। यह एक स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि समस्त स्त्री वर्ग, जाति, समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य है। स्त्री साहित्य को मुख्यधारा साहित्य में शामिल न करना इन दोनों के संबंधों को नकारना है। आज कितना ही इन दोनों को पृथक करने का प्रयास किया जाए किंतु इनके आपसी संबंधों को नकारा नहीं जा सकता। उसकी सामाजिकता और मूल्य स्त्री साहित्य में दिखलाई पड़ते हैं, हाँ सामाजिकता, मूल्य, मानदंड, सौन्दर्यशास्त्र आदि अलग हो सकते हैं। किन्तु सामाजिकता और मूल्य किसी भी साहित्य के प्राण तत्व होते हैं, इसे हम नकार नहीं सकते। यह स्त्री साहित्य और दलित/पिछड़े साहित्य में ठोस रूप में दिखलाई पड़ते हैं। कहा जाए कि इसने अपने लिए नए मूल्य, मानदंड, सौन्दर्यशास्त्र गढ़े हैं। एक ओर यह साहित्य अपने अस्तित्व को बचाने के प्रयास में संघर्षरत है तो दूसरी ओर यह स्त्री-पुरुष संबंधों को नवीन परिभाषा दे रहा है।"

साहित्यिक शब्दावली में हिन्दी साहित्य 'साहित्य समाज का दर्पण है', 'साहित्य जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब है', 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है'। लेकिन स्त्री के संदर्भ में साहित्य 'स्त्री' समाज का दर्पण, उसकी चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब और उसके हृदय का विकास क्यों नहीं बनता? क्या वह समाज और साहित्य का अंग नहीं है? क्या उसकी सामाजिकता और मूल्य समाज और साहित्य से अलग है? इसका कारण डॉ. मैनेजर पाण्डेय द्वारा हिन्दी साहित्य के अस्सी प्रतिशत भाग को बुद्धि आधारित समझे जाने को माना जा सकता है। इसके विरोधाभास में पिछले कई दशकों से साहित्य में एक विशेष प्रकार के परिवर्तन की अनुभूति प्रतीत हो रही है। इससे साहित्यिक क्षेत्र विस्तृत हुआ। इसमें विचारों, अभिव्यक्ति, सामाजिक अस्मिताओं, प्रतिरोधों, मुक्ति संधर्षों की विविधता आई। स्त्री साहित्य, दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य आदि इसी विविधता का परिणाम है। हाशिए पर खड़े इन वर्गों ने साहित्यिक प्रतिमानों को बदला है। साहित्य और समाज के बुद्धिवादी स्वरूप को ध्वस्त किया है। इन वर्गों में 'स्त्री साहित्य' इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि हाशिए की धिकलन में स्त्री समाज का एक बहुत बडा भू-भाग सम्मिलित है।

स्त्री साहित्य का अर्थ क्या है? प्राय: यह प्रश्न चिंतकों के लिए विचारणीय है। यद्यपि स्त्री साहित्य की अवधारणा एवं अर्थ को लेकर विचारकों में विभिन्न प्रकार के मतभेद मिलते हैं। स्त्री साहित्य उसे ही माना गया है जो स्त्रियों के विषय में स्त्रियों द्वारा लिखा गया है। स्त्री साहित्य की अवधारणा में दो विचारधाराएँ विद्यमान है। एक विचारधारा मानती है कि स्त्री द्वारा लिखित रचनाएँ ही स्त्री साहित्य है और दूसरी विचारधारा यह मानती है कि स्त्रियों के विषय में लिखा गया साहित्य भी स्त्री साहित्य है। स्त्री साहित्य अथवा अस्मितावादी साहित्य का आना हिन्दी साहित्य विभाजन का कारक माना जा रहा है। साहित्य के विभाजन के नाम पर इन्हें इस प्रकार

अलगाया नहीं किया जा सकता। जब तक इनके विषय में पूर्णत: समझ विकसित नहीं होगी, ऐसी भ्रांतियाँ सामने आती रहेंगी। इसके लिए आवश्यक है इसे सम्पूर्णता से समझा जाए। स्त्री साहित्य और स्त्रीवादी साहित्य के एक बड़े अन्तर को स्पष्ट करते हुए सुधा सिंह लिखती हैं कि-"स्त्री साहित्य से तात्पर्य है स्त्रियों का लिखा साहित्य। स्त्री साहित्य का मूलाधार है स्त्री की अनुभूति। इसके अलावा एक कोटि स्त्रीवादी साहित्य की भी प्रचलन में है इसमें वह साहित्य शामिल किया जा सकता है जो स्त्री के सवालों पर लिया गया हो। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों का लिखा साहित्य शामिल है।"[1] स्त्री साहित्य सीधे और सरल अर्थ को परिभाषित करते हुए प्रो. रामबक्ष लिखते हैं- "स्त्रियों द्वारा रचा गया साहित्य स्त्री साहित्य है। यदि इसे इस रूप में लिया जाए कि यह स्त्री के पक्ष में लिखा गया साहित्य है या पुरुष के पक्ष में लिखा गया साहित्य है-तब दिक्कत होती है।"[2] इन विचारकों के कथन से यह कहना आसान हो जाता है कि स्त्री साहित्य का सामान्यत: अर्थ स्त्री द्वारा लिखित रचनाओं के साहित्य से है।

अब प्रश्न स्त्री साहित्य में अनुभूति का है। स्त्री साहित्य को अनुभूतिपरक मानते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं-"स्त्री-साहित्य वस्तुत: स्त्री की अनुभूति का साहित्य है। यह ऐसी अनुभूतियाँ हैं जो अभी तक दबी हुई थीं, दमित थीं, उत्पीड़ित थीं।"[3] जगदीश्वर चतुर्वेदी द्वारा अनुभवपरक और अनुभूतिपरक के आधार पर स्त्री साहित्य को परिभाषित करना तर्कसंगत है किंतु जब यह अनुभूति स्वानुभूति और सहानुभूति में परिवर्तित होकर स्त्री साहित्य को परिभाषित करने का प्रयत्न करती है तब यह अनुप्युक्त प्रतीत होती है, क्योंकि स्त्री साहित्य स्वयं दलित स्त्री एवं ग्रमीण स्त्रियों का अछूता है[4], इसे नज़रअंदाज करके स्त्री साहित्य को स्वानुभूतिपरक कैसे माना जा सकता है? इसे अनुभूतिपरक अवश्य मान सकते हैं। यह अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति किसी के भी प्रति हो सकती है, स्वयं के प्रति या किसी अन्य के प्रति। अत: स्त्री साहित्य स्त्री द्वारा रचित वह साहित्य है जिसमें अनुभूतिगत अभिव्यक्ति का प्रवाह समाहित होता है।

स्त्री-साहित्य 'साहित्य' और 'समाज' से जुड़कर अधिक विस्तृत हो जाता है। तब इसका संबंध स्त्री अनुभूतियों और समाज दोनों से होता है। यह समस्त स्त्री वर्ग का भी प्रतिनिधित्व करता है। इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने में दलित-स्त्री और आदिवासी-स्त्री भी शामिल हैं। जो साहित्य समाज के मानवीय संवेदनाओं विलुप्त वर्ग का साक्षात्कार कराकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराए उसे साहित्यिक कोटि में क्यों नहीं रखा जा सकता? स्त्री साहित्य अथवा अस्मितावादी साहित्य मुख्यधारा साहित्य के अधूरेपन की कमी को पूर्ण करते हैं। कहा जाए सम्पूर्णता का नाम स्त्री साहित्य है। एक प्रकार से स्त्री साहित्य सामाजिक समानता में विश्वास रखने वाला ऐसे जन-जीवन का साहित्य है, जिसे मनुष्य कम पशु सर्वाधिक माना गया। प्रतिभा सरोज के शब्दों में-"स्त्री साहित्य ने स्त्रियों को वस्तु से व्यक्ति बनने की प्रेरणा दी है।"[5] इस आधार पर 'आदिवासी स्त्री साहित्य' और 'दलित स्त्री साहित्य' स्त्री साहित्य का ही एक रूप हैं। यह मानने का एक कारण भारतीय समाज में स्त्रियों को दलित से भी दलित मानने की परम्परा में दलित, आदिवासी एवं पिछड़े साहित्य को नज़रअंदाज़ करके नहीं देखा जा सकता है तथा दूसरा कारण दलित साहित्य[6] और आदिवासी साहित्य द्वारा स्त्री संबंधी सवालों को तरजीह नहीं देना है, जिसका परिमाण दलित स्त्री साहित्य और आदिवासी स्त्री साहित्य के रूप हमारे समक्ष है। ऐसे ही अन्य कई साहित्य इस साहित्य के अंतर्गत समाहित किए जा सकते हैं। इस प्रकार स्त्री साहित्य को एक बहुत बड़े फलक के रूप में देख सकते हैं।

हिन्दी साहित्य में स्त्रियों को कभी भी वह स्थान नहीं मिला जिनकी वह अधिकारिणी हैं। उनको सदैव अपनी रचनाओं को सुसज्जित करने का एक उपादान माना गया, आदिकाल और रीतिकाल इसके सशक्त उदाहरण कहे जा सकते हैं। स्त्रियों की स्थितियों में सुधार यदि देखा जाए तो वह नवजागरण से प्रारम्भ होता है, 20वीं सदी का वह दौर जिसमें विभिन्न सुधार किए गए जिनमें स्त्री सुधार भी एक है। हिन्दी साहित्य में भी इसका प्रचलन चला और स्त्रियों की समस्याओं को रखा जाने लगा लेकिन हिन्दी साहित्य में यह बदलाव ऊपरी था।

मीरा और महादेवी के बाद बंग महिला जैसी औरतों ने समाज को अपने साहित्य से परिचय कराया। इनके साहित्य ने उस यथार्थ से परिचित कराया जिसे केवल स्त्री रचनाकारों द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता था और जिनके उत्स में बुनियादी सवाल न होकर अपने जीवन से जुड़ी प्रत्येक छोटी-बडी समस्याएँ मायने रखती थी, जिनका मुख्य उद्देश्य सामंतवादी और पितृसत्तात्मक व्यस्था को तोड़कर ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है जिसमें उन्हें मनुष्य का दर्ज़ा प्राप्त हो। इस प्रकार स्त्री साहित्य का आविर्भाव

मीराबाई, महादेवी वर्मा आदि के तीखे स्वर से लेकर आज तक मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, ममता कालिया आदि लेखिकाओं के माध्यम से चल रहा है। स्त्री साहित्य के आविर्भाव से पहले हिन्दी साहित्य के केन्द्र में स्त्री समस्याएं तो थी लेकिन उसमें अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए विरोध अथवा प्रतिरोध एवं मुक्ति की आकांक्षा की छटपटाहट का अभाव था। स्त्री साहित्य ने अपने साहित्य द्वारा हिन्दी साहित्य की इस कमी को पूरी करने की कोशिश की जिसमें वह काफी हद तक सफल भी रही। आज स्त्री साहित्य परम्परावादी साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की गाथा नहीं गाता है, वह सामाजिक परिवर्तन और व्यवस्था में परिवर्तन के नये सौन्दर्यशास्त्र का अनूठा प्रयोग है।

साहित्य और स्त्री साहित्य का संबंध अटूट है क्योंकि 'स्त्री साहित्य' साहित्य (मुख्यधारा साहित्य) के विरोधाभास की उपज है। स्त्री साहित्य को मुख्यधारा साहित्य में शामिल न करना इन दोनों के संबंधों को नकारना है। आज कितना ही इन दोनों को पृथक करने का प्रयास किया जाए किंतु इनके आपसी संबंधों को नकारा नहीं जा सकता। स्त्री साहित्य को मुख्यधारा साहित्य में शामिल न करने का कारण देते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं कि-"साहित्य' का मूल लक्ष्य सामाजिकता एवं 'मूल्यों' को अभिव्यक्त करना है और इसी आधार को समीक्षा ने मूल्यों की खोज को अपना प्रमुख सरोकार माना। इसके विपरीत 'स्त्री-साहित्य' ने स्त्री की अस्मिता और अनुभवों को केंद्रीय महत्व दिया।"[7]

स्त्री सामाजिकता और मूल्यों का ठोस आधार है। यदि समाज में जिसे मूल्यों के आधार पर सबसे अधिक प्रताड़ना और शोषण का शिकार होना पड़ा तो वह समाज की आधी आबादी के रूप में स्त्री ही है। उसकी सामाजिकता और मूल्य स्त्री साहित्य में दिखलाई पड़ते हैं, हाँ सामाजिकता, मूल्य, मानदंड, सौन्दर्यशास्त्र आदि अलग हो सकते हैं। किन्तु सामाजिकता और मूल्य किसी भी साहित्य के प्राण तत्व होते है, इसे हम नकार नहीं सकते। वह स्त्री साहित्य और दलित/पिछड़े साहित्य में ठोस रूप में दिखलाई पड़ते हैं। उसे हम सामाजिकता और मूल्य से लैस नहीं मान सकते। स्त्री साहित्य में रमणिका गुप्ता और अनामिका कोई नया नाम नहीं है। स्त्री साहित्य के क्षेत्र में अपने लेखन के माध्यम से लगातार इन्होंने प्रभावित किया। इन्होंने सामाजिक आवश्यकतानुसार राजनीति और अंग्रेजी साहित्य क्षेत्र से बाहर निकल हिन्दी साहित्य को समृद्ध नहीं किया बल्कि नवीन सामाजिकता और जनतांत्रिक मूल्यों से हमारी पहचान कराई। हिन्दी साहित्य में यदि ऐसा न होता तो हम आज राजनीतिक विमर्श या साहित्यिक विमर्श जैसा कुछ करते रह जाते।

हिन्दी साहित्य में स्त्री-साहित्य का प्रवेश, किसी साहित्य को खारिज़ करना नहीं है, जैसा कि पिछले कई दशको से मुख्यधारा के साहित्य ने किया है और अब स्त्री/दलित/पिछड़ों के साहित्य कर रहे हैं। स्त्रयों द्वारा अपने अधिकारों की माँग सामाजिक व्यवस्था पर चोट करना है। इसलिए समाज के व्यवस्थापकों के लिए स्त्री साहित्य आक्रामक और तर्कशील होने के कारण मुख्यधारा साहित्य के लिए अपनाना मुश्किल है। किंतु आरम्भ से ही हमने गार्गी, मैत्रयी, मीरा, महादेवी आदि को एक विद्रोहिणी के रूप में देखा है। ये महिलाएं भारतीय स्त्रियों अथवा स्त्री लेखिकाओं के लिए आदर्श बनीं। तभी हम स्त्रियों को एक सशक्त रूप में हम देख पा रहे हैं और स्त्री-विमर्श अथवा स्त्री साहित्य की बात कर पा रहे हैं अन्यथा यह कभी संभव नहीं हो पाता।

स्त्री साहित्य पर आक्षेप लगाया जाता है कि स्त्री साहित्य में पुरुष पात्रों की निंदा ही होती है। ऐसा कतिपय नहीं है कि स्त्री साहित्य में पुरुष पात्रों की केवल निंदा होती है। स्त्री साहित्य तो स्त्री-पुरुष संबंधों को नवीन परिभाषा में परिभाषित करने को प्रयास प्रयास कर रहा है। मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' कहानी को लें तो वह स्त्री-पुरुष के नवीन संबंधों को व्यक्त करने का प्रयास है। स्त्री-पुरुष के नवीन संबंधों को नवीन अर्थ देने का सफल प्रयास स्त्री विमर्शकार अनामिका ने भी बखूबी किया है। वह कहती हैं-"खुदा और बंदे का रिश्ता नहीं जानती औरत, मगर यौनेत्तर, निरपेक्ष दोस्ती का रिश्ता तो चाहती है। पहले इस लायक तो हो जाइए कि स्त्री आपके साथ आश्वस्त और सुरक्षित महसूस करे, उस ऐसा लगे कि वह 'मनुष्य' के साथ जा रही है, 'मर्द' के साथ नहीं जो कभी भी उस पर छपट सकता है या उसके साथ लटपट बतिया सकता है।"[8]

यदि हम साहित्य, स्त्री साहित्य एवं अन्य साहित्यों को लेकर आक्षेप या आरोप-प्रत्यारोप करते रहे, तब यहाँ सिर्फ आरोप-प्रत्यारोप का साहित्य रह जाएगा, जो साहित्य के एकांगी रूप को व्याख्यायित करेगा और जो समाज एवं साहित्य दोनों के लिए हानिकारक है। यहां प्रश्न विद्वत्ता का नहीं है बल्कि जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का है। साहित्य किसी भी प्रकार के दायरे से बाहर की चीज

है, जिसके केन्द्र में सामाजिक समस्याओं, विसंगतियों एवं विषमताओं को दूर करना होता है। स्त्री-साहित्य' कभी किसी साहित्य को खारिज अथवा आरक्षण की माँग नहीं करता वह मात्र साहित्य में अपना स्थान बनाने के उद्देश्य से उपजा वह साहित्य है जो सामाजिक समानता का पक्षधर है। अपने अस्तिव को बचाए रखने और अपनी समस्याओं को सामने लाने का प्रयास ही 'स्त्री साहित्य' का उद्देश्य है। स्त्री साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में एक जन-आन्दोलन है। यह नवीन मूल्यों के स्तर पर मार्गदर्शन करता है। स्त्री साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो न पुरातनवादी, पितृसत्तावादी और सामंतवादी व्यवस्था से लड़ रहा है बल्कि देश की भाषीय और क्षेत्रीयता की सीमा तोड़ते हुए एक समान अधिकार की माँग कर रहा है।

संदर्भ

1. सुधा सिंह, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, ग्रंथ शिल्पी, प्र. सं. 2008, पृष्ठ 93
2. स्त्री साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, सं. अनिरूद्ध कुमार, अनिल कुमार सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र.सं. 2012, पृष्ठ 130
3. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र.सं. 2000, पृष्ठ 5
4. अम्बेडकर कल्चर, त्रैमासिक, प्रो. कालीचरण 'स्नेही' (सं.), सित.-नव. 2013, पृष्ठ सं. 36
5. अम्बेडकर कल्चर, त्रैमासिक, प्रो. कालीचरण 'स्नेही' (सं.), सित.-नव. 2013, पृष्ठ सं. 36
6. अरावली उद्घोष, त्रैमासिक, डॉ जनकसिंह मीणा (सं.), अप्रेल-जून 2013, पृष्ठ सं. 06
7. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र.सं. 2000, पृष्ठ सं. 7
8. युग परिबोध, संपादकः आनंद प्रकाश, सितम्बर 2011, पृष्ठ सं. 15

भारतीय महिलाओं की दशा एवं दिशा : एक ऐतिहासिक विश्लेषण एवं चिन्तन

डॉ० रणधीर कुमार गुप्ता

भारतीय इतिहास में महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। कोई भी सामाजिक या धार्मिक आयोजन स्त्रियों की सहभागिता के बिना सम्पन्न नहीं होता था। पितृसत्तात्मक समाज होने के बाद भी परिवार क सम्पूर्ण आंतरिक उत्तरदायित्व महिलाओं के हाथों में ही केन्द्रित होता था। ऋग्वेद ऐसी व्यवस्था की सम्पुष्टि करता है कि पारिवारिक खुशी तथा संबंधित कार्य स्त्रियों पर निर्भर था। लेकिन वैदिक काल में महिलाओं की जीवन-घुटी पुरुष पर केन्द्रित होने लगी थी। मनुस्मृति की यह उक्ति की जहाँ "नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता वास करते है।" यह समाज की सही स्थिति स्पष्ट करता है। समान शिक्षार्जन अवसर प्राप्ति की सुविधा होने की सम्पुष्टि उस समय की कुछेक विदुषी महिलाओं- लोपामुद्रा, सूर्या, श्रद्धा, कामायनी, गार्गी, विशंभरा के उदाहरणों से होती है। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं माना जायेगा कि आम नारी को भी शिक्षा-प्राप्ति का अवसर प्राप्त था।

परन्तु पुरुष सत्तात्मक समाज का विकृत चेहरा भी अक्सर उभर कर आ जाता था। शास्त्रार्थ में अपनी हार होते देख याज्ञवल्य ने गार्गी को गला काट देने की धमकी दे डाली थी तथा उसे बलपूर्वक चुप करा दिया था। प्रसिद्ध इतिहासकार कालीकिंकर दत्त ने तो यहाँ तक कहा है कि "Women were not independent persons in the eyes of law]a nd had to look to their make relations fora ida nd support"-

वृहदारण्यक उपनिषद में पति को बल पूर्वक पत्नी के साथ यौन संबंध स्थापित करने का अधिकार देने की बात कही गई है। अर्थवेद ने स्पष्ट लिखा है कि पति की इच्छा के विरूद्ध नारी मनोरंजन हेतु भी घर के बाहर कदम रखने के हकदार नहीं है। कामसूत्र में भी स्त्रियों पर हिंसा की सम्भावनाएँ चर्चित है। मनुस्मृति में वर्णित स्त्रियों के शीलभंग हेतु दी जाने वाली संज्ञाएँ स्त्रियों के विभिन्न वर्गों से संबंधित बतायी गयी व्यवस्था स्त्री समानता के सिद्धान्त का स्पष्ट खंडन था। वैदिक काल के अंतिम चरण में स्त्रियों की समाजिक दशा और चिन्तनीय बन गयी। शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें केवल धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार रह गया था। स्त्रियों के विकास अवरूद्ध हो गये थे। परिवार में लड़कियों का जन्म एक अभिशाप माना जाने लगा था। सती प्रथा की शुरूआत यह कहकर की गयी कि पति के बिना पत्नी स्वर्ग की सीढ़ी छू ही नहीं सकती है। प्राचीन काल की कुछ विदुषी महिलाओं ने समाज में अपना स्थान बनाया था। उन्हें कोई संस्थागत सहयोग प्राप्त नहीं था। धार्मिक ग्रन्थों में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन हर क्षण, हर जगह रखने की बात कही कई है। मनु का कहना है कि बचपन में स्त्री पिता के अधीन हो जवानी में पति के अधीन हो और पति के मरने के बाद पुत्र के अधीन हो। स्त्री कभी भी स्वतंत्र न हो।

उपनिषद काल में स्त्री और पुरुष के बीच समानता की परंपरा कायम करने का प्रयास अवश्य होने लगा। इस काल में स्त्रियों को शक्ति कहकर सम्बोधित किया जाने लगा। दुर्भाग्यवश महाकाव्य काल में स्त्री पुरुष के बीच समान्तर होने की बात क्षीण होने लगी। महाभारत का युद्ध द्रोपदी के सम्मान में लड़ा गया था परन्तु वैसी मानसिकता आम स्त्रियों के लिए परिलक्षित नहीं दिखायी दी।

समाज में स्त्रियों की स्थिति महत्वहीन ही बनी रही। पुरुषों ने नारियों को अपनी सफलता का सोपान मात्र माना। बुद्ध ने भी अपनी पत्नी को छोड़ दिया तथा अन्य को भिक्षु बनाकर स्त्रियों की सामाजिक स्थिति कष्टप्रद बना दी। कोई आश्चर्य नहीं रहा जब शंकराचार्य ने नारी को नर्क का द्वार कह दिया।

नारी उत्थान की बात उन्नीसवीं सदी में सार्थक होते दिखी। किंतु आज भी नारी की स्थिति चिंतनीय है क्योंकि पुरुष सत्तात्मक समाज का काला चेहरा नारी उत्पीड़न के रूप में उभरता रहता है।

उन्नीसवीं सदी में यूरोपीय नवचेतना से जुड़े समाज-सुधार एजेन्डों में नारी की स्थिति में सुधार का प्रयास महत्वपूर्ण होने लगा। पुरुष प्रभुता का सिद्धान्त कमजोर तो पड़ा परन्तु बना ही रहा।

शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व के उपर उसकी पारम्परिक गृहणी तथा मातृत्व की भूमिका बलवती बनी रही। कानून में भी स्त्री को पराश्रयी मानने का रूझान, सामाजिक जीवन में स्त्री की यौन-सुचिता पर अत्यधिक बल जैसे विचार समाज सुधारकों की मानसिकता का अहम हिस्सा बना ही रहा। जहाँ इन्होनें बाल विवाह, सती प्रथा का निषेध तथा विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा को बढ़ाने का समर्थन किया वहीं स्त्री को समान साम्पतिक अधिकारों तथा घर के बाहर जाकर शिक्षण संस्थानों तथा नौकरियों में उनकी खुली भागीदारी की वकालत करने में हिचकते रहे। उनकी यह सोच बनी रही कि स्त्रियों को बराबरी का दर्जा देना उनके ही हित और परिवार हेतु घातक होगा। प्रसिद्ध समाज सुधारक राजा राम मोहन राय सती प्रथा को तो नाजायज ठहराया, परन्तु विधवाओं के जीवन जीने की दुखद हिन्दू शैली का ही समर्थन किया।

स्त्रियों की स्थिति से जुड़ा एक परिलक्षित दबाव क्षेत्र बालिकाओं की विवाह योग्य न्यूनतम आयु सीमा में वृद्धि करने की थी लेकिन वह मामला भी तत्कालीन राजनीति से जोड़कर धरा का धरा रह गया।

अंग्रेजो द्वारा नारी उत्थान के मामले को नाजुक बना दिया गया। लोकमान्य तिलक ने तो कह दिया कि "हमने कई बार कहा कि हम इस सुधार विशेष का विरोध करतें हैं। वैज्ञानिक रूप से हम सरकार द्वारा प्रस्तावित कदम से भी आगे कड़वा और हिन्दू सती प्रथा कानून बनाये जाने पर भी तिलक ने उसका समर्थन यह कह कर नहीं किया कि यह धर्म में अंग्रेजों की दखलअंदाजी है। इस संदर्भ में महाभारत का जिक्र करना उचित जान पड़ता है जो सबसे पुराना धर्मग्रन्थ है, जिसमें सती प्रथा का उल्लेख है। सत्रहवीं शताब्दी में कलकता के संस्थापक जॉन चारनॉक ने जलती चिता से एक ब्राहमणी विधवा को निकाला था। सत्रहवीं सदी तक अनैच्छिक सती होने के मामले बढ़ गये थे। दरअसल, सिद्धान्ततः सती होना हमेशा ऐच्छिक था और व्यवहार में प्रायः जबर्दस्ती। लार्ड विलियम वेंटिक ने 3 दिसम्बर 1829 को रेगुलेशन - 17 लागू कर दिया जिसमें सती के नाम पर विधावाओं का जलाना हत्या का अपराध माना गया। किन्तु वह कानून सिर्फ ब्रिटिश हुकूमत वाले क्षेत्रों में ही लागू था। उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि सती होने में परिवार या रिस्ते का दबाव रहता था। क्योंकि इससे विधवा का भरण-पोषण नही करना होगा, उसका पुनर्विवाह नहीं करना होगा और उसे पारिवारिक सम्पति में हिस्सा नहीं देना पड़ेगा। विधावाओं की दुर्दशा का एक प्रमुख कारण देश में समुचित सामाजिक सुरक्षा का अभाव है। भारत में सिर्फ स्त्री का शोषण पुरुष ही नही करते बल्कि स्त्रियाँ भी करती है। यह भारतीय समाज का बहुत बड़ा विरोधाभास है। संयुक्त राष्ट्र महासभा की एक रिपोर्ट के अनुसार भारतीय महिलाओं के खिलाफ होने वाले यौन शोषण में 40 प्रतिशत तथा लड़कियों की तस्करी में 87.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

पश्चिमी देशों में सक्रिय महिला आन्दोलन विधिवत रूप से 1960 के दशक में शुरू हुआ, जिसके प्रयास के फलस्वरूप 1975 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया और 1975-85 के दशक को "महिला दशक" घोषित किया गया। यहाँ यह उल्लेखनीय होगा कि 1995 के विजिंग (चीन) सम्मेलन में भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग ने एक कन्ट्री रिपोर्ट 1995 तैयार की थी जिसमें भारतीय महिलाओं की समस्याओं को महत्वपूर्ण माना गया था और उस पर धयान केन्द्रित करने की वचनबद्धता घोषित की गयी। भारत सरकार द्वारा 1996 में ही महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति का मसौदा तैयार किया गया। जनवरी 1992 में ही राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन कर दिया गया था, किन्तु दुर्भाग्यवश उस आयोग में एक भी महिला सदस्य या अध्यक्ष के रूप में प्रस्तावित नही था और सम्भवतः इसी कारण उसका गठन नहीं हो सका।

अब सभी राज्यों, बिहार में भी महिला आयोग, एवं कई नारी कल्याण योजना चलाया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा 1992 में संविधान में 72 वाँ एवं 73 वाँ संशोधन करना अत्यन्त क्रांतिकारी कदम माना गया, जिसके तहत पंचायती राज संस्थानों तथा स्थानीय निकायों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण दिया गया है। फलस्वरूप देश भर में लगभग 15 लाख महिलाएँ आम जनता का प्रतिनिधित्व कर रही है तथा लाखों महिलाओं में आत्म विश्वास एवं सामूहिक चेतना का विकास हुआ है। दिन प्रति दिन महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रहा है।

संदर्भ सूची

1. कुरूक्षेत्र, मई, 2002, 2012
2. एम0 कार्ट, वुमेन एण्ड इमपावरमेन्ट: पार्टिसिपेशन इन डिसिजन मेकिंग,जेड बुक्स।
3. सुभाष शर्मा, भारतीय महिलाएँ दशा एवं दिशा, शताब्दी प्रकाशन।
4. आर0सी0 मजुमदार, एच0 सी0 राय चौधरी एवं के0के0 दत्त, एन0 एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।

शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम की प्रासंगिकता का अध्ययन

विरेन्द्र कुमार सिंह

शोध छात्र, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रस्तावना

ज्ञान की किसी भी शाखा के विकास के लिए अनुसन्धान अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है। अनुसन्धान से प्राप्त परिणामों की सहायता से ही वह क्षेत्र विशेष प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता है। उपलब्ध ज्ञान के परीक्षण तथा वैधीकरण के साथ-साथ नवीन ज्ञान के सृजन का एक महत्वपूर्ण साधन अनुसन्धान ही होता है। विगत वर्षों में हुई तीव्र प्रगति का मूल अनुसन्धान ही है। शिक्षा के क्षेत्र में भी अनुसन्धान की भूमिका निर्विवाद है। शिक्षा के क्षेत्र में विगत कुछ दशकों में अनुसन्धान में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। परन्तु कुछ गिने-चुने अपवादों को छोड़कर अधिकांश शैक्षिक अनुसन्धान में कुछ न कुछ त्रुटियाँ पायी जाती है।

अनुसन्धान सुनियोजित ढंग से समस्याओं का समाधान खोजने, उपलब्ध ज्ञान का परिमार्जन करने एवं नवीन ज्ञान का सृजन करने की एक वैज्ञानिक विधि है। अनुसन्धान कार्य सम्पन्न करने की एक तार्किक प्रक्रिया होती है। शैक्षिक अनुसन्धान से तात्पर्य शैक्षिक समस्याओं का विश्लेषण करके उनका समाधान खोजने की प्रक्रिया से है। शैक्षिक अनुसन्धान भी वैज्ञानिक अनुसन्धानों की तरह सुनियोजित, आनुभविक तथा औपचारिक होते हैं। शैक्षिक अनुसन्धान सम्पादित करने के लिए अनुसन्धानकर्ता को अनुसन्धान विधियों में विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। भारत वर्ष में शैक्षिक अनुसन्धान का प्रारम्भ सन 1943 में तब हुआ था जब बम्बई विश्वविद्यलय ने डॉ० डी० बी० चक्रमाने को उनके शोध प्रबन्ध "factor analysis of arithmetic ability" पर पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की थी। (एस० पी० गुप्ता, 2010, पृ० सं० 691)

तब से लेकर अब तक अनुसन्धान के क्षेत्र में संख्यात्मक दृष्टि से बहुत वृद्धि हुई। अनुसन्धान के क्षेत्र में साल दर साल संख्यात्मक दृष्टि से तो वृद्धि बहुत तेजी से हो रही है। लेकिन गुणात्मक दृष्टि से वृद्धि कम होने का मुख्य कारण शोधकर्ता को शोध विधियों, प्रविधियों का ठीक ढंग से ज्ञान का न होना है और शोधकर्ता द्वारा किये गए अनुसन्धान में कई प्रकार की कमियाँ होती है। किये गए अनुसंधानों में पायी जाने वाली प्रमुख कमियों को निम्नवत सूचीबद्ध किया जा सकता है - (एस० पी० गुप्ता, 2010, पृ० सं० 691)

1. अनुपयुक्त अनुसन्धान समस्याओं का चयन
2. उपयुक्त सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का अभाव
3. अनुसन्धान विधि की अनुपयुक्तता
4. अप्रतिनिधीय मापन उपकरणों का उपयोग
5. अविश्वसनीय मापन उपकरणों का उपयोग
6. समंक संकलन में त्रुटियाँ

7. अनुपयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग
8. परिणामों की अनुचित व्याख्या
9. अनुसन्धान परिणामों की प्रभावशून्यता
10. समन्यवय का अभाव

अनुसन्धान में होने वाली कमियों को दूर करने के लिए और अनुसन्धान करने वाले शोधकर्ता को अनुसन्धान विधियों में विशेषज्ञता और निपुणता प्रदान करने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 2009 में एक विनियम का निर्माण किया। यह विनियम नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'भारत का राजपत्र' के राजपत्र संख्या 28 भाग-3 खण्ड-4 में शनिवार 11 जुलाई–17 जुलाई 2009 को प्रकाशित हुआ– इस विनियम का पूरा नाम 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (एम०फिल०/पी-एच०डी० उपाधि के लिए न्यूनतम मानक एवं प्रक्रिया) विनियम 2009' है। इस विनियम में बताया गया है कि पी-एच० डी० पाठ्यक्रम में प्रवेश लिए नए शोधार्थी को न्यूनतम एक (1) सेमेस्टर की अवधि तक का पाठ्यक्रम कार्य को करना होगा–

यू० जी० सी० विनियम - 2009 में 'पाठ्यक्रम कार्य' का वर्णन कुछ इस प्रकार किया गया है -

शोध में प्रवेश के पश्चात् पी-एच० डी० विद्यार्थी को विश्वविद्यालयों, मानित विश्वविद्यालयों, कॉलेजों/राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था द्वारा आवश्यक न्यूनतम एक सेमेस्टर की अवधि तक का 'पाठ्यक्रम कार्य' को करना होगा। यह 'पाठ्यक्रम कार्य' पूर्व पी-एच० डी० की तैयारी का माना जाएगा और जो निश्चित रूप। शोध पाठ्यक्रम होगा। जिसमें परिमाणात्मक पद्धति एवं कम्प्यूटर प्रयोग शामिल होगा। इसमें उपयुक्त क्षेत्र में किये गए शोध प्रकाशनों की समीक्षा भी शामिल है। प्रत्येक विश्वविद्यालय एवं कॉलेजों/राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाएँ न्यूनतम अर्हकारी आवश्यकता को निर्धारित करेंगे और आगे छात्र को शोधग्रन्थ लिखने के लिए अनुमति देंगे।

श्कोर्स वर्क कार्यक्रम/पाठ्यक्रम एवं शोध पद्धति को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के पश्चात् जो पी-एच० डी० कार्यक्रम का एक अंग है। पी-एच० डी० शोध छात्र, शोध कार्य को प्रारम्भ करेंगे और उचित सीमा अवधि के भीतर अपने शोधग्रन्थ ड्रॉफ्ट को प्रस्तुत करेंगे, जैसा कि सम्बद्ध संस्थाएँ निर्धारित करेंगी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम 2009 के प्रारम्भ में ही यह उल्लेख किया गया है कि ये विनियम उन सभी विश्वविद्यालयों पर लागू होंगे जिनकी स्थापना अथवा समावेश किसी केन्द्रीय अधिनियम, प्रान्तीय अधिनियम या राज्य अधिनियम के अन्तर्गत की गई हो और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय के परामर्श से प्रत्येक संस्थान उसके अंग या सम्बद्ध कॉलेज, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 के अनुच्छेद (एफ) धारा 2 एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उक्त अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत प्रत्येक मानित विश्वविद्यालय पर लागू होंगे। ये विनियम भारत के राजपत्र में प्रकाशित होने की तिथि से लागू हो जायेंगे। समस्त विश्वविद्यालय, मानित विश्वविद्यालय एवं कॉलेज/राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाएँ पी-एच० डी० कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए पात्रित होंगे। (भारत का राजपत्र, राजपत्र संख्या–28 सन 2009)

पी-एच० डी० स्तर पर 'पाठ्यक्रम कार्य' के लिए बी०एच०यू० द्वारा बनाया गया अध्यादेश -

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय है। इसलिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जारी किया गया विनियम इस पर भी लागू होता है। अत: विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम 2009 का पालन करते हुए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भी पी-एच० डी० के लिए अपने नियमों और कार्यक्रमों में संशोधन किया और इस सम्बन्ध में उसने एक अध्यादेश जारी किया, जो "Ordinance Governing the Award of the Degree of Doctor of philosophy@vidyavaridhi&2009, के नाम से है। इस अध्यादेश में पी-एच० डी० करने वालों के लिए न्यूनतम योग्यता, पी-एच० डी० में विद्यार्थियों की चयन की प्रक्रिया आदि के बारे में जानकारी दी गई है। इस अध्यादेश में पी-एच० डी० स्तर पर किये जाने वाले पाठ्यक्रम कार्य के बारे में भी विस्तार से बताया गया है। जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा बताये गए पी-एच० डी० स्तर के कार्यक्रम के समान ही है।

बी० एच० यू० अध्यादेश-2009 में 'पाठ्यक्रम कार्य' का वर्णन कुछ इस प्रकार है–

1. एक अभ्यार्थी जो किसी संकाय में पी-एच० डी० कार्यक्रम में प्रवेश लिया है, उसे एक सेमेस्टर न्यूनतम अवधि का पाठ्यक्रम कार्य को करना आवश्यक होगा और सम्बन्धित संकाय द्वारा निर्धारित मानदण्ड के अनुसार उत्तीर्ण करना होगा। पाठ्यक्रम कार्य में शोध प्राविधि (जिसमें गुणात्मक शोध विधि और कम्प्यूटर अनुप्रयोग सम्मिलित हो सकते हैं) और सम्बन्धित क्षेत्र में प्रकाशित अनुसन्धान कार्य की समीक्षा सम्मिलित किये जायेंगे। अभ्यर्थी को आर०पी०सी० द्वारा प्रस्तावित और स्वीकृत और डी०आर०सी०/ एस०आर०सी०/ सी०आर०सी० द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम करना होगा। इस तरह का पाठ्यक्रम उसी संकाय से हो सकते हैं, जहाँ प्रत्याशी नामांकित होगा या शोध की प्रकृति के अनुसार दूसरे संकाय से भी हो सकता है।
2. पाठ्यक्रम की रूपरेखा, पाठ्यक्रम का क्रेडिट, पाठ्यक्रम का उत्तीर्ण करने की कसौटी और अन्य सम्बन्धित चीजे उस सम्बन्धित संकाय के अध्यादेश के अनुसार होगा।
3. पी-एच०डी० के लिए जो पाठ्यक्रम प्रस्तावित होते हैं। वे लेक्चर, लबोरेटरी, डिजाइन एंड सेल्फ स्टडी कोर्स, मिनी प्रोजेक्ट और सेमिनार हो सकते हैं। प्रत्येक इस प्रकार के पाठ्यक्रम स्नातकोत्तर और डॉक्टरल स्तर के होंगे।
4. पाठ्यक्रम कार्य के पूर्ण होने पर प्रार्थी को एक गहन परीक्षा में सम्मिलित होना पड़ेगा जो सम्बन्धित संकाय के अनुसार होगा।

अध्ययन की आवश्यकता

आज शिक्षा के क्षेत्र में अनेक नये-नये शोध हो रहे हैं जिससे शिक्षा के क्षेत्र में काफी विकास हुआ है। शिक्षादर्शन, शैक्षिक समाजशास्त्र, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधियाँ, पाठ्यपुस्तकें, मूल्यांकन विधि, शिक्षक-शिक्षा, विद्यालयी शिक्षा, शिक्षा का इतिहास, शैक्षिक प्रशासन आदि क्षेत्रों में अनुसन्धान होते हैं। ये शैक्षिक अनुसन्धान संख्यात्मक दृष्टिकोण से अधिक और गुणत्मक दृष्टिकोण से कम ही महत्वपूर्ण होते हैं। शैक्षिक अनुसन्धान का गुणात्मक रूप से कम महत्वपूर्ण होने का एक कारण शैक्षिक अनुसन्धान की विधियों, प्रविधियों का अच्छी प्रकार से ज्ञान का न होना होता है। विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर कोर्स वर्क करने का मुख्य उद्देश्य शैक्षिक अनुसन्धान में होने वाले कमियों को दूर करना और शोधकर्ता को शोध विधि, प्राविधि और शोध प्रक्रिया में निपुणता प्रदान करना होता है।

विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में संचालित शोध स्तर पर पाठ्यक्रम कार्य/कोर्स वर्क कार्यक्रम शोधार्थियों में अनुसन्धान की विभिन्न प्रकारों के बारे में उचित समझ विकसित करने में कितना सहायक है। यह शोध समस्याओं के चयन, अनुसन्धान के प्रकृति के अनुरूप अध्ययन विधि के चयन, अनुसन्धान हेतु विश्वसनीय मापन उपकरणों के निर्माण में, प्रतिदर्श व प्रतिदर्श विधि का ज्ञान हेतु, उपयुक्त सांख्यिकीय तकनीक के चयन, प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण व प्राप्त परिणामों की व्याख्या करने में 'पाठ्यक्रम कार्य' शोधकर्ता के लिए कितना उपयोगी है। स्पष्ट रूप से कहें तो एक शैक्षिक समस्या के समाधान करने में शोध स्तर पर संचालित 'पाठ्यक्रम कार्य' कहाँ तक प्रासंगिक है। इन्हीं सब बातों की जाँच-पड़ताल के लिए शोधार्थी को इस अध्ययन की आवश्यकता हुई है।

समस्या कथनः शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम की प्रासंगिकता का अध्ययन।

संक्रियात्मक परिभाषा

पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रमः शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम से तात्पर्य 'कोर्स वर्क' से है जिसका हिन्दी रूपान्तरण 'पाठ्यक्रम कार्य' होता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अपने विनियम-2009 में 'पाठ्यक्रम कार्य' को इस प्रकार

से परिभाषित किया है। ष्प्रवेशीकरण के पश्चात् प्रत्येक पी-एच० डी० छात्र को विश्वविद्यालय, मानित विश्वविद्यालयों, कॉलेजों/ राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थानों द्वारा आवश्यक न्यूनतम एक (1) सेमेस्टर की अवधि तक का 'पाठ्यक्रम कार्य' को करना होगा। यह पाठ्यक्रम कार्य पूर्व पी-एच० डी० की तैयारी का माना जाएगा और जो निश्चित रूप से शोध पद्धति का पाठ्यक्रम होगा, जिसमें परिमाणात्मक पद्धति एवं कम्प्यूटर प्रयोग शामिल होंगे। इसमें सम्बन्धित क्षेत्र में किये गए शोध प्रकाशनों की समीक्षा भी शामिल है। प्रत्येक विश्वविद्यालय, मानित विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों / राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थानों जैसा की मामला हो न्यूनतम अर्हकारी आवश्यकता को निर्धारित करेंगे और आगे विद्यार्थी को शोध ग्रन्थ लिखने के लिए अनुमति देंगे। (भारत का राजपत्र, राजपत्र संख्या– 28 सन 2009 ई०)

प्रासंगिकता: प्रासंगिकता से तात्पर्य समयानुकूल वांछनीय विचार तथा उसकी सार्थकता से है। कोर्स वर्क की वर्तमान परिस्थिति में प्रासंगिकता से तात्पर्य शोध स्तर पर संचालित यह 'पाठ्यक्रम कार्य' शोधार्थियों के शोध कार्य में कितना सहायक है। शोध में सहायक होने के कारण यह शोधार्थियों द्वारा कितना प्रशंसनीय है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम की प्रासंगिकता के प्रति शोधार्थियों के अभिमतों का अध्ययन करना।
2. शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम की गुणवत्ता में वृद्धि करने हेतु शोधार्थियों के सुझावों को प्राप्त करना।

शून्य परिकल्पना–

1. शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम की प्रासंगिकता के प्रति शोधार्थियों के मतों की अवलोकित आवृत्तियों तथा प्रत्याशित आवृत्तियों के वितरण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है स

अध्ययन का परिसीमन–

1. प्रस्तुत अध्ययन केवल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शोधार्थियों पर किया गया है।
2. प्रस्तुत अध्ययन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के केवल 8 विभाग हिंदी, शिक्षा शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगोल, संस्कृत, प्राचीन इतिहास, गणित व वाणिज्य विभाग के शोधार्थियों पर किया गया है स
3. इस अध्ययन हेतु स्वनिर्मित अभिमतावली का प्रयोग किया गया है स

अध्ययन विधि: प्रस्तुत अध्ययन की विषयवस्तु को ध्यान में रखते हुए अध्ययन हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग शोध स्तर पर संचालित कोर्स वर्क की प्रासंगिकता का अध्ययन करने के लिए किया गया है स

अध्ययन का समग्र: प्रस्तुत अध्ययन में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सभी शोधार्थियों को समग्र के रूप में लिया गया है।

प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्श चयन विधि: प्रस्तुत अध्ययन हेतु काशी हिन्दू विशिवद्यालय के आठ विभागों से 120 शोधार्थियों को प्रतिदर्श के रुप में चयनित किया गया है। प्रतिदर्श के चयन में उद्देश्यपूर्ण चयन विधि का प्रयोग किया गया।

शोध उपकरण: प्रस्तुत अध्ययन में विश्वविद्यालय में संचालित कोर्स वर्क के प्रति शोधार्थियों के अभिमतों का अध्ययन के लिए जीतमम चवपदज`बंसम पर निर्मित 36 कथनों की अभिमतावली का प्रयोग प्रदत्त संकलन हेतु किया गया है। पाठ्यक्रम कार्य के प्रति शोधार्थियों से सुझाव प्राप्त करने हेतु अभिमतावली में एक सादा पृष्ठ संलग्न रखा गया।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधि: आकड़ों का विश्लेषण किसी भी शोध का महत्वपूर्ण अंग होता है। आकड़ों के विश्लेषण के बाद ही आकड़ों को अर्थ प्रदान किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में आकड़ों के विश्लेषण व व्याख्या हेतु काई-वर्ग परीक्षण जैसे सांख्यिकीय विधि का प्रयोग किया गया है।

आकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका संख्या-01: प्रतिदर्श में शामिल किये गए हिन्दी विभाग के शोधार्थियों का शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम के प्रासंगिकता के प्रति अभिमत का अध्ययन।

शोधार्थी	सहमत	अनिश्चित	असहमत	योग	X2 का मान
15	Fo=346	Fo=102	Fo=92	540	229.9
Fe=180	Fe=180	Fe=180	540		

मुक्तांश (df) = 2 के लिए काई-वर्ग का सारणी मान है–

0.05 सार्थकता स्तर पर 5.991 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 9.210

परिगणित X2 = 229.9 का मान df = 2 के लिए सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के सारणी मानों से अधिक है। इसीलिए यह दोनों स्तरों पर सार्थक है। अत: यह शून्य परिकल्पना कि मतों की अवलोकित तथा प्रत्याशित आवृति के वितरण में अन्तर नहीं है, को स्वीकार नहीं किया जा सकता। आवृति के वितरण में अन्तर है और यह संकेत करता है कि हिन्दी विभाग में शोध स्तर पर पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम प्रासंगिक है। क्योंकि अभिमतावली में अधिकांश कथन सकारात्मक रूप में शामिल किये गए थे जिस पर शोधार्थियों की सहमति अधिक है।

तालिका संख्या-02: प्रतिदर्श में शामिल किये गए शिक्षाशास्त्र विभाग के शोधार्थियों का शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम के प्रासंगिकता के प्रति अभिमत का अध्ययन

शोधार्थी	सहमत	अनिश्चित	असहमत	योग	X2 का मान
15	Fo = 279	Fo = 94	Fo = 167	540	96-46
Fe = 180	Fe = 180	Fe = 180	540		

मुक्तांश (df) = 2 के लिए काई-वर्ग का सारणी मान है–

0.05 सार्थकता स्तर पर 5.991 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 9.210

परिगणित X2 = 96.46 का मान df = 2 के लिए 0.05 तथा 0.01 सार्थकता स्तर के सारणी मानों से अधिक है। इसीलिए यह दोनों स्तरों पर सार्थक है। अत: यह शून्य परिकल्पना कि मतों की अवलोकित तथा प्रत्याशित आवृति के वितरण में अन्तर नहीं है, को निरस्त किया जाता है। शिक्षाशास्त्र विभाग के शोधार्थियों का कोर्स वर्क के प्रासंगिकता के प्रति अभिमतों के अवलोकित तथा प्रत्याशित आवृत्तियों के वितरण में सार्थक अन्तर है। शोधार्थियों के अधिक मत सहमत पर प्राप्त हुए हैं जिससे स्पष्ट होता है कि शिक्षाशास्त्र विभाग में संचालित पाठ्यक्रम कार्य प्रासंगिक है।

तालिका संख्या-03: प्रतिदर्श में शामिल किये गए रसायन शास्त्र विभाग के शोधार्थियों का शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम के प्रासंगिकता के प्रति अभिमत का अध्ययन

शोधार्थी	सहमत	अनिश्चित	असहमत	योग	X2 का मान
15	Fo = 289	Fo = 73	Fo = 178	540	129-632
Fe = 180	Fe = 180	Fe = 180	540		

मुक्तांश (df) = 2 के लिए काई-वर्ग का सारणी मान है–

0.05 सार्थकता स्तर पर 5.991 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 9.210

परिगणित X2 = 129.632 प्राप्त हुआ है जो df = 2 के लिए सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के सारणी मानों से अधिक है। इसीलिए यह दोनों स्तरों पर सार्थक है। अत: यह शून्य परिकल्पना कि मतों की अवलोकित तथा प्रत्याशित आवृति वितरण में अन्तर

नहीं है, को निरस्त किया जाता है। रसायन शास्त्र विभाग के शोधार्थियों का कोर्स वर्क के प्रासंगिकता के प्रति अभिमतों के आवृति वितरण में सार्थक अन्तर है। अधिक मत सहमत पर प्राप्त हुए है जो यह संकेत करता है कि विभाग के शोधार्थी पाठ्यक्रम कार्य को प्रासंगिक स्वीकार करते हैं।

तालिका संख्या-04: प्रतिदर्श में शामिल किये गए भूगोल विभाग के शोधार्थियों का शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम के प्रासंगिकता के प्रति अभिमत का अध्ययन

शोधार्थी	सहमत	अनिश्चित	असहमत	योग	X2 का मान
15	Fo = 359	Fo = 123	Fo = 58	540	278-74
Fe = 180	Fe = 180	Fe = 180	540		

मुक्तांश (df) = 2 के लिए काई-वर्ग का सारणी मान है–

0.05 सार्थकता स्तर पर 5.991 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 9.210

परिगणित X2 = 278.74 का मान df = 2 के लिए सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के सारणी मानों से अधिक है। इसीलिए यह दोनों स्तरों पर सार्थक है। शून्य परिकल्पना दोनों ही स्तरों पर निरस्त होती है। इससे यह कहा जा सकता है कि भूगोल विभाग के शोधार्थियों के मतों की अवलोकित आवृत्तियाँ तथा प्रत्याशित आवृत्तियों के वितरण में सार्थक अन्तर है। अधिक मत सहमत पर प्राप्त हुआ है जिससे स्पष्ट होता है कि विभाग के शोधार्थी पाठ्यक्रम कार्य को प्रासंगिक मानते हैं।

हिन्दी, शिक्षाशास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगोल विभाग की भाँति संस्कृत, प्राचीन इतिहास, गणित, वाणिज्य विभाग के शोधार्थियों के अभिमतों की अवलोकित व प्रत्याशित आवृत्तियों के वितरण के सांख्यिकीय विश्लेषण करने के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि इन विभाग के शोधार्थी भी 'पाठ्यक्रम कार्य' को प्रासंगिक मानते हैं।

तालिका संख्या-05: प्रतिदर्श में शामिल किये गए सभी शोधार्थियों का शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम के प्रासंगिकता के प्रति अभिमत का अध्ययन

शोधार्थी	सहमत	अनिश्चित	असहमत	योग	X2 का मान
120	Fo = 2689	Fo = 820	Fo = 811	4320	1625-028
Fe = 1440	Fe = 1440	Fe = 1440	4320		

मुक्तांश (df) = 2 के लिए काई-वर्ग का सारणी मान है–

0.05 सार्थकता स्तर पर 5.991 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 9.210

परिगणित X2 = 1625.028 प्राप्त हुआ है जो df = 2 के लिए सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के सारणी मानों से अधिक है। इसलिए यह दोनों ही स्तरों पर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना कि मतों की अवलोकित तथा प्रत्याशित आवृति के वितरणों में कोई अन्तर नहीं है, को स्वीकार नहीं किया जा सकता। अवलोकित तथा प्रत्याशित आवृति के विवरण में अन्तर है और सबसे अधिक मत सहमत पर प्राप्त हुए है जो इस बात की ओर संकेत करता है कि शोधार्थी शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम को प्रासंगिक मानते हैं। क्योंकि अभिमतावली में अधिकांश कथन सकारात्मक रखे गए थे, जिस पर शोधार्थियों ने सहमति जताई है।

परिणाम एवं विवेचना

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम की प्रासंगिकता के प्रति प्राप्त अभिमतों के आधार पर प्राप्त परिणामों की व्याख्या करने के लिए तीन प्रकार के अभिमत यथा- सहमत, अनिश्चित तथा असहमत को आधार बनाया गया था। प्रयुक्त अभिमतावली में शोधार्थियों को शोध कार्य में पाठ्यक्रम कार्य (कोर्स वर्क) से मिलने वाली सहायता से

सम्बन्धित तथा शोध कार्य में निपुणता प्राप्त करने से सम्बन्धित अधिकांश कथन सकारात्मक रूप में ही रखे गये थे। जिसके आधार पर यह तय किया गया था कि यदि अधिक मत सहमत पर प्राप्त होते हैं तो कार्यक्रम को प्रासंगिक माना जायेगा तथा इसके विपरीत यदि अधिक मत असहमत में प्राप्त होते है तो कार्यक्रम को अप्रासंगिक माना जायेगा। यदि इन दोनों मतों से अलग अधिक मत अनिश्चित पर प्राप्त होता है तो यह माना जायेगा कि इस कार्यक्रम के प्रासंगिकता तथा अप्रासंगिकता के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

निष्कर्ष

अध्ययन के बाद निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम के प्रति शोधार्थियों का मत सकारात्मक है क्योंकि अभिमतावली में लगभग सभी कथन पाठ्यक्रम के पक्ष में बनाये गए थे, जिस पर अधिकांश शोधार्थी द्वारा सहमत पर मत व्यक्त किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध स्तर पर संचालित पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम प्रासंगिक है।

सुझाव

शोधार्थियों से प्राप्त सुझाव के आधार पर पाठ्यक्रम कार्य की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु निम्नलिखित सुधार किये जा सकते हैं –

1. शोधार्थियों को उनके शोधकार्य में इस कार्यक्रम का लाभ अधिक से अधिक मिलें, इसके लिए यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम कार्य के पाठ्यचर्या को उसके विषय व क्षेत्र से ही सम्बन्धित हो।
2. अलग–अलग विषयों में अनुसन्धान के लिए अलग–अलग कौशल की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम कार्य विषय विशेष के क्षेत्र में अनुसन्धान की विशेषज्ञता प्रदान करने से सम्बन्धित होना चाहिए।
3. कुछ विषयों के शोधार्थियों को सांख्यिकीय विश्लेषण और कम्प्यूटर अनुप्रयोग सम्बन्धी कठिनाईयों को दूर करने के लिए पाठ्यक्रम कार्य के माध्यम से विशेषज्ञों की सहायता दी जानी चाहिए।
4. कोर्स वर्क कार्यक्रम को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए विश्वविद्यायल द्वारा इसके संचालन में कठोर नियमों का प्रावधान किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता, एस० पी० एंड गुप्ता ए० (2013), व्यवहारपरक विज्ञानों में सांख्यिकीय विधियाँ. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.
2. शर्मा, आर० ए० (2012), शिक्षा अनुसन्धान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया. आर० लाल बुक डिपो, मेरठ .
3. सिंह, ए०के० (2012), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोती लाल बनारसी दास, जवाहर नगर, दिल्ली.
4. कौल, लोकेश (2011), शैक्षिक अनुसन्धान की कार्य प्रणाली, यू०बी०एस० पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा०लि०, नई दिल्ली.
5. गुप्ता, एस० पी० (2010), भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.
6. गुप्ता, एस० पी० (2006), आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.
7. Ph.D. Ordinance – BHU Retrieved from https://www.bhu.ac.in/academic/research/phd_ordinance.pdf accessed on 01/08/2020
8. UGC Regulations Retrieved from https://www.ugc.ac.in/oldpdf/regulations/mphilphdclarification.pdf accessed on 01/08/2020

नेपाल-भारत संबंध का भारत के आंतरिक सुरक्षा पर प्रभावः एक अध्ययन

डॉ० विनीता भारद्वाज

फ्लैट नं.-301, नीलम मेन्सन दुर्गा आश्रम गली, बेली रोड, पटना

हाल ही में भारत के लिये स्थिति उस समय असहज हो गई जब कैलाश मानसरोवर यात्रा के लिये भारत द्वारा लिपुलेख-धाराचूला मार्ग के उद्घाटन करने के बाद नेपाल ने इसे एकतरफा गतिविधि बताते हुए आपत्ति जताई। नेपाल के विदेश मंत्रालय ने यह दावा किया कि महाकाली नदी के पूर्व का क्षेत्र नेपाल की सीमा में आता है। विदित है कि नेपाल ने आधिकारिक रूप से नवीन मानचित्र जारी किया, जो उत्तराखंड के कालापानी लिंपियाधुरा और लिपुलेख को अपने संप्रभु क्षेत्र का हिस्सा मानता है। निश्चित रूप से नेपाल की इस प्रकार की प्रतिक्रिया ने भारत को अचंभित कर दिया है। इतना ही नहीं नेपाल के प्रधानमंत्री के.पी शर्मा ओली ने नेपाल में कोरोना वायरस के प्रसार में भारत को दोष देकर दोनों देशों के बीच संबंधों को तनावपूर्ण कर दिया है। वस्तुतः इसे 'चीनी जादू' कहा जाए या नेपाल की कूटनीतिक चाल वस्तुतः पिछले कुछ वर्षों से लगातार भारत को परेशान करने की कोशिश हो रही है। भारत इन सभी कोशिशों को नेपाल की चीन से बढ़ती नजदीकी के रूप में देख रहा है। ऐसे में बड़ा सवाल है कि क्या भारत और नेपाल के बीच सदियों पुराने रिश्ते पर 'चीनी चाल' भारी पड़ रही है? या फिर यह मान लिया जाए कि हालिया दिनों में नेपाल जरूरत से ज्यादा महत्त्वाकांक्षी बन गया है और भारत उसकी आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतर रहा।

नेपाल, भारत का एक महत्त्वपूर्ण पड़ोसी देश है और सदियों से चले आ रहे भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्त्रतिक एवं आर्थिक संबंधों के कारण वह हमारी विदेश नीति में भी विशेष महत्त्व रखता है। भारत और नेपाल हिंदू धर्म एवं बौद्ध धर्म के संदर्भ में समान संबंध साझा करते हैं। उल्लेखनीय है कि बुद्ध का जन्मस्थान लुम्बिनी नेपाल में है और उनका निर्वाण स्थान कुशीनगर भारत में स्थित है। वर्ष 1950 की 'भारत-नेपाल शांति और मित्रता संधि' दोनों देशों के बीच मौजूद विशेष संबंधों का आधार है। यह भारत और नेपाल के मध्य द्विपक्षीय संधि है जिसका उद्देश्य दोनों दक्षिण एशियाई पड़ोसी देशों के बीच घनिष्ठ रणनीतिक संबंध स्थापित करना है।

यह संधि दोनों देशों के बीच लोगों और वस्तुओं की मुक्त आवाजाही और रक्षा एवं विदेशी मामलों के बीच घनिष्ठ संबंध तथा सहयोग की अनुमति देती है। साथ ही यह संधि नेपाल को भारत से हथियार खरीदने की सुविधा भी देती है। इस संधि के द्वारा नेपाल को एक भू-आबद्ध देश होने के कारण कई विशेषाधिकारों को प्राप्त करने में सक्षम बनाया है। भारत-नेपाल की खुली सीमा दोनों देशों के संबंधों की विशिष्टता है, जिससे दोनों देशों के लोगों को आवागमन में सुगमता रहती है। दोनों देशों के बीच 1850 किलोमीटर से अधिक लंबी साझा सीमा है, जिससे भारत के पाँच राज्य-सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड जुड़े हैं। भारत और नेपाल के बीच सीमा को लेकर कोई बड़ा विवाद नहीं है। लगभग 98 प्रतिशत सीमा की पहचान व उसके नक्शे पर सहमति बन चुकी है, कुछ क्षेत्रों को लेकर विवाद है जिसे बातचीत के माध्यम से सुलझाने की प्रक्रिया चल रही है।

भारत विरोधी आतंकवादी गतिविधियों हेतु नेपाल आतंकवादियों के लिए स्वर्ग बनती जा रही है। 5 जून 1997 को दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों के बीच चर्चा हुई, लेकिन यह सब नाकाफी रहा। आईसी-814 विमान का अपहरण काठमांडू से ही किया गया

था। जब भारत ने पंजाब और राजस्थान के सीमा से सटे क्षेत्रों पर कंटीले तार लगा दिये तो आतंकवादियों के लिए भारत में घुसना कठिन हो गया था। पाकिस्तान ने तब विकल्प की तलाश की। उसकी नजर नेपाल पर गई। नेपाल में उसे आवश्यकता थी एक ऐसे शक्तिशाली संपर्क-सूत्र की जो उसके उद्देश्यों की पूर्ति में भरपूर सहायता दे सके। दिलशाद बेग भारतीय मूल का था। उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले का निवासी बेग जन्मजात विध्वंसकारी फितरत का मालिक था। उसके संपर्क-सूत्र दाऊदनुमा गॉडफादर से जुड़े थे। यह आतंकवादी भारतीय पुलिस की दबिश से बचने के लिए नेपाल में जा छिपा। वहाँ पहुँचकर उसने अपना भारतीय नाम, वंश और मूल पूरी तरह छिपा लिया। अपने व्यक्तिगत प्रतिभा के बल पर उसने नेपाली राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। वहाँ लोकतंत्र की बहाली का लाभ उठाते हुए उसने भारतीय लोकसभा के समतुल्य नेपाल प्रतिनिधि सभा का चुनाव लड़ा और विजयी हुआ। आईएसआई ने दिलशाद बेग के राजनीतिक रसूख और इस्लामपरस्ती के मनोविज्ञान को समझते हुए, उसे अपना लिया। जिससे देखते ही देखते नेपाल आईएसआई के लिए स्वर्ग बन गया। उत्तर प्रदेश और बिहार के सीमावर्ती क्षेत्रों में दिलशाद बेग के कारनामों ने गंभीर स्थिति पैदा कर दिया है। उसने अपनी जिम्मेदारी को बखूबी निभाया। उसने दुबई से आने वाले विस्फोटकों को भारत में पहुँचाने का काम बड़ी सफाई से किया। नेपाल, उत्तर प्रदेश और बिहार के सीमावर्ती क्षेत्रों में हथियार और नकली नोटों का जाल उसी के माध्यम से फैलाया गया था। परन्तु मानव जीवन को विध्वंसक बनाने का कुपरिणाम यह होगा कि वे सदैव मौत के साये में जीते रहेंगे। वह गुटबंदी में मारा गया। मिर्जा दिलशाद बेग की हत्या की कड़ी किंग गुलशन कुमार से जुड़ी है, जिसकी हत्या दाऊद के इशारे पर की गई थी। गुलशन कुमार की हत्या का आरोप राजन गिरोह के विक्रम वाही पर था। नेपाल में दाऊद गिरोह द्वारा अपना जाल तैयार किए जाने के कारण राजन गिरोह ने बबलू श्रीवास्तव के जरिये नेपाल में अपना नेटवर्क बढ़ाना शुरू किया। 29 अक्टूबर, 1997 को दाऊद ने मिर्जा दिलशाद के जरिये कृष्णानगर में विक्रम वाही की हत्या कर दी। उसकी लाश नेपाल पुलिस को टुकड़ों में मिली। दिलशाद बेग के राजनीतिक प्रभाव के कारण पुलिस इसे अपने गिरफत में नहीं ले पाती है। आठ महीने बाद राजन गिरोह ने काठमांडू की मुख्य सड़क पर दिलशाद बेग की हत्या कर दी। इस हत्याकांड में राजन गिरोह के मुख्य शूटर मंजीत सिंह उर्फ मंगे का हाथ बताया जाता है।

सिद्धार्थ नगर की सीमा 68 किलोमीटर और महाराजगंज की 84 किलोमीटर भारत-नेपाल सीमा पर है। दोनों जनपदों की 152 किलोमीटर सीमा पर यूं तो सुरक्षाबल तैनात है, फिर भी आईएसआई की गतिविधियाँ फल-फूल रही हैं। काठमांडू से इंडियन एयरलाइंस के विमान के अपहरण के बाद भारत ने इंडियन एयरलाइंस की सभी उड़ानें नेपाल के लिए रद्द कर दी थीं। फलस्वरूप वहाँ के पर्यटन-व्यवसाय में 33 प्रतिशत का घाटा हुआ। पर्यटन से होने वाली आय नेपाल की राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत है। विदेश मंत्रालय और प्रधानमंत्री स्तर पर दोनों देशों की ओर से चर्चाएँ हुईं। अंत में 1 जून 2000 में आठ मास बाद काठमांडू को इंडियन एयरलाइंस से दोबारा मार्ग से जोड़ दिया। राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बृजेश मिश्र 6 जून को अपनी सरकारी यात्रा पर नेपाल रवाना हुए। अपने साथ वे नेपाल में पाकिस्तान की भारत-विरोधी कार्यवाहियों पर एक गुप्त रिपोर्ट भी ले गए, जिसके अध्ययन से पाकिस्तान की अघोषित युद्ध और भारत-विरोधी नीतियाँ भली-भांति उजागर होती हैं।

भारत द्वारा डाले गए दबाव के कारण नेपाल ने अनेक आईएसआई के आतंकवादियों को गिरफ्तार किया है। नेपाल में कार्यरत आईएसआई का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम युवाओं को भड़काना, मिलिटेंटों को ट्रेनिंग देना तथा भारत-नेपाल सीमा से हथियार और गोला-बारूद भारत में भेजना है। वहाँ कम से कम दस ऐसे आतंकवादी संगठन और एक सौ पचास मदरसे हैं, जिन्होंने आईएसआई के कार्यकलाप को पूरी तरह अपनी छत्रछाया प्रदान की है। माओवादी उग्रवादियों ने नेपाल पर अधिकार स्थापित कर गणतंत्र की स्थापना हेतु इन संगठनों को अपने पार्टी में एक समझौते के तहत शामिल किया। इन संगठनों को धनराशि हिमालयन बैंक (हबीब बैंक पाकिस्तान की शाखा) और नेपाल-अरब बैंक से उपलब्ध कराई जाती है। धनराशि मुख्यत: नेपाल इस्लामिक युवासंघ के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है। आईएसआई ने नेपाल के कुछ मुस्लिम युवकों को अपने चंगुल में लेने में सफलता हासिल की है, ताकि वे कश्मीर में जेहाद में भाग ले सकें। आईएसआई नेपाल में जनसंख्या के संतुलन में परिवर्त्तन कराने में भी सफल रही है।

बृजेश मिश्र को नेपाल सरकार ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे नेपाल की धरती पर किसी भी किस्म की आतंकवादी

गतिविधियों को फलने-फूलने नहीं देंगे। लेकिन जिस देश के चौबीस महत्त्वपूर्ण नेपाली राजनेताओं के संबंध आईएसआई से हों और जिन्हें सोने के तस्करों का सिंडीकेट प्रतिमास पंद्रह करोड़ रुपये देता हो, क्या उन पर वहाँ की सरकार दबाव डाल सकेंगी। 'इंडिया टुडे' के अंक में इस संबंध में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसमें उस गुप्त रिपोर्ट के हवाले से कहा गया है कि आईएसआई का उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को झकझोरना, राजनेताओं को अपने वश में करना, भारत में मिलिटेंटों को प्रशिक्षित करना, हथियार मुहैया कराना, धीरे-धीरे जनसंख्या का संतुलन मुसलमानों के पक्ष में करना, नेपाली संचार-माध्यम को अपने काबू में रखना, भारत-विरोधी संगठनों का लाभ उठाना और इस्लामी कट्टरपंथियों का प्रसार करना है। आईएसआई ने इस उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जाली नोटों का प्रचलन, हथियार एवं गोला-बारूद की बांट, राजनीतिक दलों का चुनाव के लिए धन मुहैया कराना (विशेषकर वामपंथी और दक्षिणपंथी दलों को) और मदरसों को छिपने के लिए और अपने काम के लायक धर्मस्थलों को चुनने का कार्यक्रम बनाना शुरू किया। इस सबके सुचारू रूप से कार्यान्वयन के लिए पाकिस्तानी दूतावास के अधिकारी सक्रिय सहयोग देते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, इस बात के काफी प्रमाण है कि "लाइट आईसी-814 के अपहरण की योजना आईएसआई ने ही बनाई थी और उसे पूरा कराया हरकत-उल-मुजाहिद्दीन ने।

पाकिस्तान के गुप्तचर संस्थाओं ने इस काम को अंजाम देने के लिए काठमांडू स्थित एजेंसी से मदद पहुँचायी। इनमें विशेषकर मोहम्मद अरशद चीमा, फर्स्ट सेकेट्री, का उल्लेख हुआ है। हरकत-उल-मुजाहिद्दीन (हरकत-उल-अंसार) नेपाल में अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाते रहे हैं। भारतीय वायुयान अपहरण से पहले हरकत-उल-मुजाहिद्दीन ने कई जिलों में 1999 में विशेषकर दमक, नेपालगंज और विराटनगर में अपने कार्यालय स्थापित किए। दमक में सितंबर 1999 में गुप्त बैठक हुई, जिसमें भविष्य की योजनाओं को कार्यरूप देने, नए रंगरूटों की भर्ती और ट्रेनिंग के बारे में फैसले लिए गए। ट्रेनिंग के लिए भर्ती किए गए युवकों को कश्मीर में भारतीय सुरक्षादलों के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजने का निर्णय भी हुआ। यहाँ इस बात का फैसला भी किया गया कि भारत विरोधी गुप्त गतिविधियों को फैलाना जारी रखा जाए। हरकत-उल-मुजाहिद्दीन का अमीर जफर नामक कार्यकर्ता, जो पाकिस्तानी नागरिक है, नेपाल 1991 में आईएसआई की पकड़ को मजबूत करने के लिए नेपाल गया। इस काम के लिए उसे 75 लाख रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई। उन 24 नेपाली राजनेताओं के भी नाम इस रिपोर्ट में हैं, जिन्हें आईएसआई से प्रतिमास पंद्रह करोड़ रुपये की धनराशि प्राप्त होती है।

भारत में नेपाल से आए जाली नोटों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को कमजोर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। नेपाल से आने वाली जाली भारतीय मुद्रा आईएसआई द्वारा भेजी जा रही है, ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था चरमरा जाए। अगस्त 1998 में एक नेपाली नागरिक नईम शाह को काठमांडू में गिरफ्तार किया गया था, जिसके साथ भारतीय हरपाल सिंह और अमित पाल सिंह भी थे। इन लोगों से साढ़े तीन लाख रुपये की जाली भारतीय मुद्रा बरामद की गई थी। लोकेश कुमार नामक एक व्यक्ति को जून 1999 में 62 लाख रुपये की जाली भारतीय मुद्रा के साथ गिरफ्तार किया गया। जाँच के दौरान पुलिस को पता चला कि लोकेश कुमार पाकिस्तानी नागरिक शहनवाज उर्फ कलीद असलम और उसके सहयोगी मकसूद लाला और समीर अली शाह के लिए काम कर रहा था।

अभी हाल ही में पकड़े गए पाकिस्तानी दूतावास के अधिकारी ने इन जाली नोटों के फैले इस बाजार का खुलासा किया। असलम सबूर को जो आईएसआई का अधिकारी है, नेपाल पुलिस ने उस समय रंगे हाथों गिरफ्तार किया था, जब वह पचास हजार रुपये की जाली भारतीय मुद्रा चलाने की कोशिश कर रहा था। उसके पास दो करोड़ रुपये की धनराशि थी, लेकिन गिरफ्तार होने से पहले उसे भनक लग गई और उसने अधिकांश जाली नोट जलाकर राख कर दिए।

आईएसआई ने भारत की अर्थव्यवस्था को तबाह करने के लिए नकली नोटों का सहारा लिया है। खाड़ी देशों से नेपाल के रास्ते भारत में नकली करेंसी आ रही है। दुबई और शारजाह से 50, 100 और 500 रुपये मूल्य की जाली भारतीय मुद्रा भारत में भेजी जा रही है। असली नोटों से आम आदमी उनका अंतर नहीं कर सकता। शारजाह में शेख बिलाल और दुबई में राशिद शेख नकली करेंसी के सरगना हैं। इनके द्वारा ही आईएसआई करोड़ों रुपयों की नकली भारतीय करेंसी नेपाल के रास्ते भिजवा रही है।

अभी हाल में ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिवक्ता को चौदह सौ रुपये के जाली नोटों के साथ गिरफ्तार किया गया। पूछताछ में उसने बताया कि उक्त नोट उसे हाईकोर्ट स्थित स्टेट बैंक से मिले थे। छानबीन के दौरान पता चला कि राकेश वर्मा के कई अन्य जिलों के अल्पसंख्यक समुदाय के संदिग्ध किस्म के लोगों से संबंध हैं। कांवड़िया के भेष में 5 अगस्त 1999 को आए एक तस्कर को हरिद्वार में हर की पौड़ी के पास पुलिस ने जाली नोटों के साथ गिरफ्तार किया। हरियाणा के इस अपराधी की शिनाख्त पर हरिद्वार के समीपवर्ती देहरादून जिले के एक प्रतिष्ठित आश्रम से एक अन्य जाली नोट तस्कर को हजारों रुपये मूल्य के नकली नोटों के साथ गिरफ्तार किया गया।

नेपाल की सीमा से लेकर आंध्र प्रदेश तक फैले आतंक के लाल गलियारे में कथित क्रांतिकारी दोनों हाथों से पैसा बटोर रहे हैं। एक मोटे अनुमान के मुताबिक वे हर साल लगभग 1,200 करोड़ रुपए एकत्रित करते हैं। 24 सितंबर, 2004 को सी.पी.आई. (माओवादी) के गठन के साथ ही इस जबरन वसूली में जबरदस्त तेजी आई है। उससे पहले एम.सी.सी., सी.पी.आई.-एम.एल. और पीपुल्स वार जितना पैसा वसूलते थे, उनके सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए गए हैं।

माओवादी की आमदनी का बहुत छोटा हिस्सा सदस्यता शुल्क से आता है। अनुमान है कि वह चंद लाख रुपए तक ही सीमित है। नक्सली अपने इलाकों में काम कर रहे ठेकेदारों, इंजीनियरों, सरकारी अफसरों, व्यापारियों, ईंट भट्ठा मालिकों, बस और ट्रक मालिकों, स्टोन क्रेशर के स्वामियों, बड़े किसानों और तस्करों आदि से नियमित पैसा वसूलते हैं। इसके साथ ही वे दान, जुरमाने, फिरौती आदि के जरिए भी मोटी रकम ऐंठते हैं। आमतौर पर जब उन्हें बड़ी राशि की जरूरत पड़ती है तो वे किसी 'मोटे' मालदार का अपहरण कर लेते हैं। इनमें व्यापारी, सरकारी कर्मचारी से लेकर शराब विक्रेता, अवैध शराब बनानेवाले शामिल हैं। माओवादी अक्सर दूसरों की जमीन पर कब्जा कर, उसे दुश्मन की सम्पत्ति घोषित कर उसे छोड़ने के बदले पैसे वसूलते हैं। इसके अलावा नदियों से रेत और वन-संपदा की अवैध बिक्री से भी उन्हें अच्छी-खासी कमाई हो जाती है। खुफिया एजेंसियों की रपटों और पकड़े गए माओवादियों से पूछताछ के जरिए मिली जानकारी के अनुसार वे नियमित रूप से अपनी आय जुटाते हैं। उनके पास से बरामद दस्तावेजों और माओवादियों की डायरियों से भी इसकी पुष्टि हुई है। यह भी पता चला है कि जबरन वसूली की दर कैसे तय होती है। जो ठेकेदार विकास की सरकारी परियोजनाओं के लिए काम कर रहे हैं, उन्हें कुल परियोजना लागत की 3 से 10 प्रतिशत राशि तक देनी पड़ती है। इसकी अदायगी सरकार से मिलने वाले भुगतान के साथ ही जुड़ी रहती है। ठेकेदार को जैसे ही कोई चेक मिलता है, उसकी खबर माओवादियों तक पहुँच जाती है। चेक का भुगतान होते ही उसे यह 'जजिया' अदा करना पड़ता है। किसी ठेकेदार को कुल परियोजना लागत का कितने प्रतिशत पैसा चुकाना होगा, यह माओवादी नेताओं से उसके संबंधों पर निर्भर करता है। यदि संबंध मधुर हैं और लेन-देन का रिश्ता पुराना है तो 'जजिया' कम होता है।

नेपाल और भारत के सम्बन्ध का पुराना, ऐतिहासिक और सामान्यतया दो देशों के बीच में होने वाले सम्बन्धों से हटकर अर्थात् नवीन तरह के एक विशेष सम्बन्ध के रूप में माना जाता है। इसके बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि यहां कोई समस्या ही नहीं है। समय, परिस्थिति और इसे कार्यान्वयन करने वाले राजनैतिक नेतृत्व में होने वाले परिवर्तन ने भी नेपाल और भारत के सम्बन्ध में समय-समय पर नवीन मोड़ देता आया है। इसके अतिरिक्त खुली सीमा और इसके परिणामों को लेकर नेपाल और भारत के जनस्तर और सरकारी स्तर पर समय-समय पर वार्ता होती आई है और असंतुष्टियों का आदान-प्रदान होता आया है। नेपाल में खाद, बीज और सिंचाई में कोई अनुदान नहीं है लेकिन भारत में इस क्षेत्र में अनुदान है। जिससे सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले नेपालियों का प्रमुख बाजार सीमावर्ती भारत का बाजार होता नजर आता है। भारतीय बाजारों में भारतीय रूपयों का चलन है और नेपाल में आवश्यकता तथा मांग के अनुसार भारतीय रूपये उपलब्ध नहीं हो पाते, यह एक समस्या है। इसके साथ ही आम नागरिकों के साथ सीमा पर तैनात दोनों देश के सुरक्षाकर्मियों के दुर्व्यवहार की समस्या, समय-समय पर स्थानीय माफिये और सुरक्षा निकायों के बीच उत्पन्न तनाव या सांठगांठ से उत्पन्न होने वाली समस्या, सीमा विवाद, सीमा रेखा कायम करने के संदर्भ में नजर आने वाली समस्या, स्तम्भों की तलाश, पहचान और मरम्मत का विषय, विकास की दृष्टि से सीमावर्ती शहरों और गांवों की दयनीय अव्यवस्थाओं से, सृजित नियम-कायदों से सृजित समस्याएं, सीमा पर नजर आने वाली नियम की प्रतिकूलताएं और नियुक्त अधिकारियों की अपनी अनुकूलता से सृजित नियम-कायदों से सृजित समस्याएं, सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के बीच विद्यमान आर्थिक विषमता के

कारण सृजित समस्या, दोनों देश के स्थानीय स्तर के समन्वयकर्ताओं के अप्रभावकारी भूमिकाओं से उत्पन्न समस्या, किसी एक देश के राजनैतिक परिवर्तन से सीमावर्ती क्षेत्र में पड़ने वाला प्रभाव, राष्ट्रीयता के नाम पर ये दोनों देश विशेषत: नेपाल के राजनैतिक वृत्त द्वारा किया जाने वाला भारत विरोधी जनपरिचालन से उत्पन्न समस्याएं आदि नजर आती हैं। भारत और नेपाल के पक्षों का कहना है कि सीमावर्ती क्षेत्र में सुरक्षा की नीतियां प्रभावकारी नहीं होने के कारण सुरक्षा निकाय भ्रष्टाचारी होना है। कस्टम के कर्मचारी और सुरक्षा कार्य में तैनात कर्मचारियों का रेकार्ड पहले से ही खराब था ही। बाद के समय में तैनात भारत की ओर का सशस्त्र सीमा बल और नेपाल की ओर के सशस्त्र प्रहरी बल ने भी कोई अच्छा काम नहीं किया। यह निकाय भी भ्रष्टाचार में शामिल हो गया। यह आम लोगों की शिकायत है। इससे निजात पाने के लिए हरेक 2-3 महीनों में इनकी तबादला होती आई है, ताकि ये लोग स्थानीय लोगों के साथ सम्बन्ध नहीं बना पाए। लेकिन आम लोगों का कहना है कि इससे भी भ्रष्टाचार कम नहीं हो सका है।

संदर्भ सूची

1- https://khabar.ndtv.com/topic/ usiky&Hkkjr laca/k
2- Rakesh Sood (23 July 2014). "A new beginning with Nepal". The Hindu. "Sushma Swaraj describes her first Nepal visit as 'very uccessful'". News18. 27 July 2014. Retrieved 25 May 2017.
3- IANS (30 September 2015). "Anti-India sentiment in Nepal not good for both nations: Envoy". Business Standard India.
4- Savada, Andrea Matles, ed. (1991), "Foreign Policy: India", Nepal: A Country Study, GPO for the Library of Congress, retrieved 17 April 2017
5- Bilateral Treaties and Agreements, Embassy of Israel in Nepal
6- Singh, Raj Kumar (2009). Global Dimensions of Indo-Nepal Political Relations: Post Independence. ISBN 9788121210256.
7- "Nepal: King Birendra's Zone of Peace discussed". Telegraph Nepal. 27 July 2011. Archived from the original on 5 July 2012.
8- "Barricades go up as two important India-Nepal treaties expire : NEIGHBOURS – India Today".

बिहार में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में जीविका का योगदान

मोनिका कुमारी

शोध-छात्रा, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

बिहार की वो महिलाएं जो कभी अपने पति के नाम से जानी जाती थीं, जिनकी पहचान उनका अंगूठा था और जिन्होंने कभी बैंक का रास्ता भी नहीं देखा था, आज हस्ताक्षर कर अपने नाम लिख रही हैं। उन्होंने छोटी-सी पूंजी से अपना व्यवसाय शुरू कर ये साबित कर दिया है कि हौसला हो तो ऊंची पढ़ाई और धन की कमी आड़े नहीं आती। गरीबी और अशिक्षा का दंश झेलने वाली ये महिलाएं कभी अपने शराबी पति से पीटी जाती थीं। ससुराल में प्रताड़ित की जाती थीं। आज उनकी खुद की पहचान है और वो बैंक में खुद का ही नहीं, आसपास की महिलाओं के खातों का भी लेखा-जोखा रखती हैं। वे बिजनेस करने के हुनर से वाकिफ हैं। आज 'जीविका' के कारण इन महिलाओं ने ऐसी मिसाल कायम की है, जिसकी गूंज पूरे देश में सुनाई दे रही है।

आज इन महिलाओं को अपने प्रदेश, अपने देश और समाज में हो रहे बदलावों की जानकारी है। ये वही अनपढ महिलाएं हैं, जिनकी एक आवाज पर मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने शराबबंदी जैसा साहसिक कदम उठाया। ये महिलाएं हैं- जीविका संगठन से जुड़ी जीविका दीदी।

मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के अनुसार आधी आबादी को विकसित किए बिना विकास का सपना साकार नहीं किया जा सकता है। उनके इस कथन को साकार करने में जीविका दीदियों का सहयोग सराहनीय है। जिसके द्वारा बिहार की अनपढ़ और कम पढ़ी-लिखी ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का काम कर रहा है जीविका संगठन। जीविका द्वारा महिलाएं स्वरोजगार की ओर बढ़ रही हैं और आत्मनिर्भर हो रही हैं।

ऐसी कई महिलाएं हैं, जो आज घर की चहारदीवारी से निकलकर अपनी पहचान बना रही हैं, अपना खुद का व्यवसाय कर रही हैं। कोई अचार-मुरब्बा बनाकर अन्य महिलाओं को भी आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रेरित कर रही हैं तो कोई मुर्गी पालन कर अपने परिवार के उत्तरदायित्व को निभा रही हैं। ये महिलाएं केवल व्यवसाय ही नहीं कर रहीं, बल्कि समाज में फैली बुराई को भी मिटाने के लिए अग्रसर हैं।

बिहार में शौचालय निर्माण हो या शराब की तस्करी को रोकना, दहेज के खिलाफ आवाज बुलंद करनी हो या बाल विवाह को खत्म करने का संकल्प, स्वच्छता का संदेश देने में भी ये महिलाएं अहम भूमिका निभा रही हैं।

मुजफ्फरपुर के सरैया प्रखंड की राजकुमारी देवी, जिन्हें आज पूरी दुनिया 'किसान चाची' के नाम से जानती है, गाँव-गाँव साइकिल से घूमकर वे महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने और शिक्षा के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं। खुद किसान चाची का जीवन का सफर बहुत मुश्किलों से घिरा रहा है। ससुराल से निकाल दिए जाने के बाद किसान चाची को घर से लेकर समाज में भी कड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी। उन्होंने खेत में पैदा होने वाले ओल से अपने जीवन के बदलाव की शुरूआत की। उन्होंने ओल से आटा और अचार बनाकर बेचना शुरू किया और आज उनके बनाए अचार और मुरब्बे की दुनिया दीवानी है। अचार के बिजनेस से राजकुमारी को अच्छी आय होने लगी और आज वो न केवल बिहार में लोकप्रिय हैं, बल्कि देश भर की महिलाओं के लिए प्रेरणा का केंद्र

हैं। आज किसान चाची जाना-पहचाना नाम है, जो रोजगार के लिए और महिलाओं को जरूरत के हिसाब से ऋण मुहैया कराती हैं।

पंडौल प्रखंड की श्रीपुरहाटी मध्य पंचायत के श्रीपुरहाटी गाँव की साधना देवी सुबह होते ही घरेलू कार्यों को निपटाकर अपने आंगन में अगरबत्ती निर्माण में जुट जाती हैं। अगरबत्ती की सींक को विभिन्न प्रकार की खुशबू वाले घोल में लपेटने के साथ उसकी पैकिंग चलती रहती है। दो से तीन घंटे तक चले अगरबत्ती निर्माण का कार्य पूरा होने के बाद फिर ये पुनः अपने घरेलू कार्य में जुट जाती हैं। पंडौल जीविका कम्यूनिटी कॉर्डिनेटर पिंकी कुमारी का कहना है कि पांच हजार से प्रारंभ अगरबत्ती उद्योग के लिए डेढ़ लाख की पूंजी काफी होती है। डेढ़ लाख से स्थापित अगरबत्ती उद्योग से ढाई दर्जन से अधिक महिलाओं के लिए रोजगार का बेहतर जरिया साबित होगा। इन अगरबत्ती उद्योग से जुड़ी स्वयं सहायता समूह की महिलाओं को अगरबत्ती उद्योग के लिए जीविका द्वारा समय-समय पर धन के अलावा प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान की जाती है।

साल 2007 में दो अक्टूबर के दिन विश्व बैंक की आर्थिक सहायता से बिहार रूरल लाइवलिहुड प्रोजेक्ट, यानी जीविका की शुरूआत हुई। राज्य के छह जिले गया, मुजफ्फरपुर, पूर्णियाँ, खगड़िया, मधुबनी और नालंदा के 18 प्रखंडों में पायलट प्रोजेक्ट के तहत इसकी शुरुआत हुई और आज इसकी पहुंच बिहार के सभी प्रखंडों में है। समूह की महिलाएं न सिर्फ आर्थिक रूप से सक्षम बन रहीं, बल्कि उनके अंदर नेतृत्व शक्ति का भी विकास हुआ है। भागलपुर जिले के सन्हौला प्रखंड के एरिया को-ऑर्डिनेटर राजीव राय ने बताया कि जीविका एक स्वयं सहायता समूह है जो विश्व बैंक की मदद से संचालित हो रहा है। इसके अंतर्गत महिलाएं स्वयं सहायता समूह बनाती हैं, जिसमें 10 से 12 महिलाओं का एक ग्रुप होता है जो महिलाओं को समस्या से निपटने के लिए स्वरोजगार के लिए लोन मुहैया कराता है।

अपने घर के जरूरी काम को निपटाकर ये महिलाएं एक-दूसरे की मदद करने, अपने गाँव और प्रखंड के विकास के लिए काम करने के लिए बैठकें करती हैं। फिर ये महिलाएं एक-दूसरे के साथ मिलकर दूसरी महिलाओं को भी इससे जुड़ने और उन्हें बेहतर जीवन जीने के उपाय बताती हैं। इस स्वयं सहायता समूह में महिलाओं द्वारा जमा किए गए पैसे से ही लेन-देन होता है। इन पैसे से महिलाएं छोटे-मोटे व्यवसाय शुरू करने के लिए या जिन्हें जरूरत हो उन्हें लोन देती हैं।

जीविका से जुड़ने के बाद बही-खाते और महिलाओं के प्रशिक्षण आदि का काम संभालने के लिए उनका शिक्षित होना भी जरूरी है, इसलिए समूह में जुड़ने के बाद पहले चार महीने महिलाओं को शिक्षित किया जाता है। जहाँ वर्ष 2008 में केवल 22. 2 प्रतिशत महिलाएं हस्ताक्षर करने में सक्षम थीं, वहीं वे वर्ष 2010 में बढ़ कर 67.2 प्रतिशत हो गईं। उन्होंने बताया कि अब जीविका परियोजना को स्थानीय बैंकों से जोड़ दिया गया है, जो इन्हें ऋण मुहैया कराते हैं। इसके बाद यही पैसा जरूरत के मुताबिक समूह के सदस्यों के बीच ऋण के तौर पर बांट दिया जाता है। सदस्य बैठकें करते रहते हैं और इनके दौरान एक-दूसरे की जरूरतों का जायजा लेते रहते हैं और तय करते हैं कि कौन सबसे ज्यादा जरूरतमंद है तथा उसको ही ऋण-राशि दे देते हैं।

स्वयं सहायता समूह के जरिए दिए गए लोन को लोन लेने वाला चुकाता है या नहीं, ये ध्यान दिया जाता है। इन स्वयं सहायता समूहों के पास अपना रजिस्टर होता है, जिसमें सभी जानकारियां लिखी जाती हैं। इससे पारदर्शिता बनी रहती है। एक पैसे का भी हेर-फेर नहीं होता। गाँवों में बने छोटे-छोटे ग्रुप के बाद एक कमेटी बनाई जाती है, जो सही से संचालन करती है।

तरक्की का यह रास्ता बिहार में हर महिला के लिए खुला है। इस प्रोजेक्ट ने नौ जिले में 55 ब्लॉक के 7.5 लाख घरों में महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया है। ग्राम संगठन (विलेज आर्गेनाइजेशन) स्तर पर सीता, गुलाब, गंगा, अन्नपूर्णा, राधा आदि नाम से बनाए गए स्वयं सहायता समूह की कर्ताधर्ता भी महिलाएं ही हैं। इन्हीं महिलाओं में कोई बैंक मित्र का काम संभाल रही हैं तो कोई समूह को प्रशिक्षित करने का और कोई रिसोर्स पर्सन है।

जीवकार्जन के अलावा ये कम पढ़ी-लिखी गाँव की महिलाएं खाद्य सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, प्रशिक्षण और स्वास्थ्य रक्षा का भी काम कर रही हैं। खास बात यह है कि अगर कोई महिला लोन लेने के बाद भी व्यवसाय नहीं चला पाती तो उसे दोबारा भी उधार दिया जा सकता है।

शराबबंदी के बाद अब जीविका दीदियों ने सामाजिक कार्यों में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना शुरू कर दिया है। अब दहेजबंदी और बाल विवाह की कुप्रथा को भी खत्म करने का बीड़ा उठा लिया है। शौचालय बनाने के लिए जीविका दीदी गाँव में गली-गली

घूमकर लोगों को स्वच्छता का पाठ पढ़ा रही हैं और शौचालय निर्माण के लिए प्रेरित कर रही हैं। बिहार के उन गाँवों में जहां कभी औरतें घर के दरवाजे के बाहर की दुनिया के बारे में नहीं जानती थीं, सिर्फ घर में सास और पति द्वारा दिए ताने सुनती थीं और समाज में जिनकी कोई हैसियत नहीं थी, वही औरतें आज अपने पति को व्यवसाय के लिए लोन लेकर दे रही हैं, बच्चों की शिक्षा के लिए जागरूक हैं।

जीविका के तहत स्वयं सहायता समूहों के गठन में बिहार ने देशभर में अव्वल स्थान हासिल किया है। दूसरे स्थान पर आंध्र प्रदेश है। बिहार में अबतक छह लाख 30 हजार स्वयं सहायता समूह का गठन कर लिया गया है। इन समूहों से 72 लाख से अधिक महिलाएं जुड़ चुकी हैं। यह संख्या भी देशभर में सबसे अधिक है। आंध्र प्रदेश में करीब छह लाख समूह गठित है।

बैंकों के उदासीन रवैये के बाद भी 2016-17 में समूहों ने 1700 करोड़ लोन प्राप्त किया। किसी भी समूह ने लोन को वापस करने में कोई चूक नहीं की है। यही कारण है कि इनका एनपीए (नन परफॉर्मिंग एस्टेट्स) शून्य है। बैंकों को लोन नहीं देने का कोई बहाना ये समूह नहीं दे रही हैं। इसके बावजूद बैंकों का अपेक्षित सहयोग नहीं मिल रहा है।

बीसवीं शताब्दी बिहार के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में तीव्र आर्थिक परिवर्तन बिहार में दृष्टिगोचर होता है। कृषि का वाणिज्यिकरण, रेलवे का विकास, शहरीकरण में तीव्रता, आदि कुछ ऐसे आर्थिक परिवर्तन हुए जिन्होंने परम्परागत सामाजिक ढ़ाँचे पर विशेष दबाव डालना प्रारम्भ किया। इसी शताब्दी में बिहार में आंचलिक चेतना (Regional Consciousness) का विकास हुआ, जिसने अन्ततः पृथक राज्य के रूप में बिहार को स्थापित किया। साथ ही औपनिवेशिक एवं उत्तर-औपनिवेशिक काल में यहाँ की कृषि-अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ, स्वतंत्र अस्तित्व में आने के बाद बिहार ने देश की स्वतंत्रता आन्दोलन में अहम् हिस्सेदारी का निर्वहन किया। इनके अलावे कांग्रेस का नेतृत्व, स्वामी सहजानन्द एवं किसान आन्दोलन, समाजवादी, साम्यवादी एवं नक्सली आन्दोलनों ने भी बिहार के समाज में उत्पन्न आन्तरिक अन्तर्विरोध एवं नवीन विचारधाराओं को प्रस्फुटित होने में अहम् भूमिका का निर्वाह किया। इन सभी राजनीतिक धाराओं एवं तथ्यों के अलावे बिहार के परम्परागत समाज में रूढ़ीवादी जाति-व्यवस्था ने राजनीतिक धाराओं को भी काफी प्रभावित किया। आधुनिक शिक्षा के प्रसार एवं जाति सभाओं के गठन ने बिहार के परम्परागत समाज में जातीय चेतना एवं श्रेष्ठता के लिए प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में शहरीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, इस तीव्र शहरीकरण की प्रक्रिया ने परम्परागत समाज पर बदलाव के लिए दबाव डालना प्रारम्भ किया। जिसके चलते सामाजिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई और कमोवेश पूरी शताब्दी भर बिहार में दिखता है। इस सामाजिक टकराहट एवं तनाव ने बिहार में राजनीतिक एवं जातीय चेतना को विकसित किया जो कमोवेश आज भी चल रहा है।

1870 के दशक के बाद जैसे-जैसे बिहार में आधुनिक शिक्षा का विस्तार होता गया, बिहार ने शिद्दत से बंगाल के शोषण के बारे में सोचना प्रारम्भ किया। फलतः बिहारी या क्षेत्रीय चेतना का विकास बिहार में होता गया, जिसके फलस्वरूप एवं प्रशासनिक कारणों से बिहार को बंगाल प्रेसीडेंन्सी से इतर एक राज्य का दर्जा मिला। पृथक प्रान्त के रूप में 1 अप्रैल 1912 को बिहार का गठन हुआ, एवं अगले लगभग तेइस वर्षों तक उड़ीसा अनावश्यक रूप से इससे जुड़ा रहा। भारत में औपनिवेशिक शासन और इसके शोषण के फलस्वरूप हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिवर्तनों के कारण इसके समाज का आन्तरिक संतुलन बिगड़ने लगा एवं जातीय व्यवस्था में परिवर्तन एवं बदलाव उभरने लगे। हलांकि यह भी सत्य है कि जातियों एवं उनके बीच के आपसी समीकरण समय-समय पर बदलते रहे हैं, किन्तु यह परिवर्तन अधिकतर मध्यम जातियों में परिलक्षित होती है।

औपनिवेशिक बिहार में नौकरशाही पर मुख्यतया बंगाली, कायस्थों एवं मुसलमानों का वर्चस्व था, अधिकतर इसी तबके के लोग आधुनिक शिक्षा में निष्णात भी थे। वहीं दूसरी ओर जमींदारी मुख्यतः भूमिहारों, ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों एवं उच्च वर्गीय मुसलमानों के अधीन थी। इस प्रकार हम पाते हैं कि समाज में मध्यम वर्ग का ठीक से उदय नहीं हो पाया था, अभिजात्यों एवं सवर्णों का समाज एवं सरकार पर दबदबा था। साथ ही यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि कृषि के वाणिज्यिकरण एवं व्यापार में विस्तार के कारण छोटे-छोटे उद्योग उभर रहे थे, साथ ही प्रशासनिक सुधार के क्रम में नए जिले एवं सब जिले कायम हो रहे, फलतः नगरीकरण का दर भी काफी तीव्र नजर आता है। इन आर्थिक प्रशासनिक सुधारों ने आधुनिक शिक्षा को विस्तार देना प्रारम्भ किया एवं राजनीतिक चेतना को जन्म दिया। जैसे-जैसे नगरीकरण का दर तीव्र होता गया, लोगों में शिक्षा के प्रति चेतना जगती गयी। क्षेत्र

के आर्थिक विकास एवं वित्तीय प्रबन्ध हेतु राष्ट्रीयकृत एवं ग्रामीण बैंकों की शाखाएं उपलब्ध है लेकिन क्षेत्र के निर्धन एवं गरीब किसान निर्धनता के दुष्चक्र से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं। बैंकों द्वारा समय से एवं सरलतापूर्वक पर्याप्त ऋण न मिलने के कारण श्रमिकों एवं किसानों को अपने आकस्मिक कार्यों एवं कृषि हेतु साहूकारों एवं महाजनों पर निर्भर रहना पड़ता है। ये साहूकार इन निर्धन कृषकों की आय का एक बड़ा भाग ब्याज के रूप में वसूलते हैं। अनुसूचित जाति/जनजाति एवं पिछड़े वर्ग में महिलाओं की स्थिति और भी शोचनीय है। उनके पास आय सृजन का कोई विशेष जरिया नहीं है। घर का कार्य एवं मजदूरी ही उनका पेशा है। चूंकि कृषि में रोजगार कुछ विशेष महीनों में ही मिलता है तथा शेष समय उनका बेकार चला जाता है। यही कारण है कि क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति में विशेष सुधार नहीं हो पा रहा है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्र में सबसे बड़ी समस्या है कि लोगों को रोजगार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है हालांकि सरकार लगातार ग्रामीण गरीबों को रोजगार दिलाने के प्रति कटिबद्ध है। इस दिशा में उचित पहल भी अनेक विकासपरक कार्यक्रमों के माध्यम से जारी है। लेकिन क्या देश में रोजगार की समस्या सिर्फ सरकार की ही पहल से ही दूर हो जाएगी? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके लिए गैर-सरकारी संगठनों और अन्य लोगों को भी सामने आना होगा। इसी पहल के तहत भारत में महिलाओं द्वारा स्वयं सहायता समूह काफी कारगर साबित हो रहे हैं। कई राज्यों में स्वयं सहायता समूहों का प्रदर्शन सराहनीय रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि स्वयं सहायता समूहों को सरकार पर्याप्त मात्रा में समय-समय पर धन उपलब्ध कराती रहे। भारत में स्वयं सहायता समूह अपेक्षाकृत नया प्रयोग है लेकिन पिछले कुछ वर्षों में इसमें उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। आंकड़ों पर ध्यान दिया जाए तो सर्वाधिक वृद्धि आंध्र प्रदेश में हुई है। स्वयं सहायता समूह महिलाओं का ऐसा अनौपचारिक समूह है जो अपनी बचत तथा बैंकों के सूक्ष्म वित्तीयन से अपने समूह की पारिवारिक व व्यक्तिगत जरूरत को पूरा करता है और विकास सम्बंधी कार्यक्रम के माध्यम से गरीबी जैसे अभिशाप को दूर करने तथा नारी सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राय: स्वयं सहायता समूह एकजुटता का प्रतीक होते हैं। यहां एक जैसी ही आर्थिक और सामाजिक स्थिति के लोग साथ आते हैं। समूह की सभी सदस्य थोड़ी-थोड़ी बचत करके आपसी सहयोग से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वयं सहायता समूह का विचार पड़ोसी देश बांग्लादेश में खूब चर्चित हुआ। ग्रामीण बैंक के नाम से प्रचलित इस समूह को प्रचारित और स्थापित करने का श्रेय प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मोहम्मद युनूस को जाता है। इसी को देखते हुए भारत में भी यह विकसित हुई।

भारत में वैसे तो स्वयं सहायता समूह की शुरूआत 1992 में नाबार्ड ने एक योजना के तहत की, लेकिन इसे प्रचलित होने में काफी समय लग गया। भारत में गठित 35 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूहों में से लगभग 90 प्रतिशत तो महिलाओं से ही संबंधित हैं। भारत में स्वयं सहायता समूहों की संख्या में महिलाओं की ज्यादा सहभागिता का कारण देश की लगभग 60 प्रतिशत गरीब महिला जनसंख्या का होना है। भारत के ग्रामीण परिवारों को न केवल कृषि के लिए बल्कि पारिवारिक जिम्मेदारियां पूरी करने के लिए भी गैर-संस्थागत ऋण स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है। देश में बैंकों ने अनेक योजनाएं तो चलायी लेकिन इसका फायदा वास्तव में बड़ा तबका ही ले गया। निश्चय ही स्वयं सहायता समूह के माध्यम से जो पहल महिलाओं ने की है, वो सराहनीय है।

बिहार स्वयं सहायता समूहों के निर्माण के मामले में भारत को एक नई दिशा देने की स्थिति में है और इसका गवाह बिहार के मुजफ्फरपुर जिले का खुदीराम बोस स्टेडियम तब बना जब अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर स्वयंसेवी संगठन के बैनर के तले हजारों की संख्या में स्वयं सहायता समूह से जुड़ी महिलाओं ने एक बड़े मैदान को भर दिया और मुजफ्फरपुर की सड़कें भी समूह की महिलाओं से पट गई। भारत सरकार के तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री रघुवंश प्रसाद सिंह ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर आयोजित रैली एवं सभा का उद्घाटन 2006 में किया। अपने भाषण में मंत्री ने कहा कि आज की रैली देखने से ऐसा लगता है कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण गरीबों की आर्थिक उन्नति का सशक्त मंच बनकर उभर रहे हैं। ग्रामीण विकास मंत्रालय की इस योजना से गरीब भारत की तस्वीर बदलने लगी है। इसमें कोई शक नहीं है कि स्वयं सहायता समूह का निर्माण भारत सरकार का एक क्रांतिकारी कदम है जिसके जरिए हम न सिर्फ लोगों को रोजगार उपलब्ध करा सकते हैं बल्कि एकजुट होकर सामाजिक कुरीतियां, नारी उत्पीड़न, छुआछूत, तथा ऊंच-नीच के भेदभाव को भी मिटा सकते हैं। वहां ये समूह ग्रामीण गरीबों की आर्थिक उन्नति का सशक्त मंच बनकर उभर रहे हैं।

आजादी के बाद से सरकार द्वारा गरीब वर्ग के लिए ज्यादा ध्यान दिया गया और उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए सरकार द्वारा कई कल्याणकारी योजनाएँ चलाई गई। उन योजनाओं में सरकार द्वारा कल्याणकारी नीति अपनाई गई और सिर्फ देने का कार्य किया जैसे कभी कम्बल बांट देना तो कभी कुछ उधार राशि बांटना इत्यादि। इससे लोग कुछ समय के लिए तो लाभान्वित हुए लेकिन फिर उसी दशा में पहुंच गये। सरकार द्वारा अपनायी इस विकास की नीति को सफलता नहीं मिली। लोगों के बीच यह धारणा विकसित हो गई कि "गरीब रहना हमारी नियति है।" गरीबी के इस चक्र से उन्हें बाहर निकालने के लिए सरकार ने अपनी सोच में परिवर्तन किया और यह माना जाने लगा कि विकास कार्यक्रमों में समुदाय की भागीदारी होना जरूरी है। उनकी क्षमताओं का विकास करना जरूरी है ताकि वे मिलजुल कर कार्य करें। इसके लिए समाज की सोच एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

स्वयं सहायता समूह की अवधारणा 'संगठन में शक्ति' पर आधारित है। तिनकों से बनी रस्सी जिस प्रकार शक्तिशाली गजराज को बांध सकती है, वैसे ही आर्थिक रूप से कमजोर लोग भी मिलकर 'गरीबी के दुष्चक्र' को तोड़ सकते हैं। स्वयं सहायता समूह मुख्य रूप से गरीबी में जीवन-यापन कर रहे लोगों के जीवन स्तर के उन्नयन के लिए निर्मित किया जाता है। स्वयं सहायता समूह के पीछे मान्यता यह है कि बिखरे हुए लोगों को तो उत्पीड़ित व शोषित किया जा सकता है लेकिन यदि उन्हें संगठित किया जाए तो वे बड़ी ताकत बन जाते हैं। समूह के सदस्य मिलकर एक ऐसी ताकत का निर्माण करते हैं, जिससे वे स्थानीय शोषणकर्ताओं, साहूकारों, सेठों, बाहुबलियों आदि के अत्याचारों का जमकर विरोध कर सकते हैं और उन पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। स्वयं सहायता समूह इस बात में विश्वास करता है कि लोग आपस में मिलजुलकर अपनी रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक कदम उठा सकते हैं। वे अपने कामों का स्वयं उचित प्राथमिकता निर्धारण करने व उससे जुड़े निर्णय लेने में समर्थ हैं। उनके पास जीवन से जुड़े अनेक तरह के ज्ञान और अपार अनुभव है, जिनको वे व्यवस्थित तरीके से इस्तेमाल करें तो उनके जीवन से बदहाली खत्म हो सकती है। समूह के सदस्यों को थोड़े परामर्श एवं प्रेरणादायक नेतृत्व की जरूरत होती है।

समाज के दृष्टिकोण को बदलना आवश्यक है, किन्तु यह आसान कार्य नहीं है। उसी तरह गरीब समुदाय की क्षमता विकसित करना भी कोई आसान कार्य नहीं है। लेकिन यह संभव है कि यदि समुदाय में छोटे-छोटे समूहों का गठन कर उसमें परिवर्तन लाया जाए, गरीब समुदाय के महिला-पुरुषों का समूह बनाया जाए और उनकी क्षमताओं को विकसित किया जाए, जिससे वे उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर सकें। आय वृद्धि कर सकें, शिक्षा तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हो सकें। तभी वास्तव में समूह के सदस्य सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से सुदृढ़ हो सकते हैं। इसी प्रकार समूह से समुदाय और समुदाय से समाज की सोच में परिवर्तन लाने का सपना साकार हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. जे. भाग्य लक्ष्मी, "महिला सशक्तिकरण : मानवाधिकार द्वारा अधिकार सम्पन्नता", दिल्ली प्रेस पत्रिका, मई-2003, पृष्ठ संख्या 141.
2. लीना मेहेंदले, "महिला सशक्तिकरण : समानता के अधिकार की भावी दिशा, योजना, अगस्त-2001, पृष्ठ संख्या 53.
3. बीणा अग्रवाल, "महिला सशक्तिकरण : भू-अधिकार और स्त्री-पुरुष समानता, आर्थिक विकास संस्थान, नई दिल्ली, अप्रैल - 2000, ग्राम सभा महिलाओं के आखिल भारतीय सम्मेलन में वितरित बुकलेट पृष्ठ संख्या 3.
4. नवीन कुमार, "बिहार में साक्षरता कार्यक्रम में स्वयंसेवी संस्थान, कुरूक्षेत्र, जून, 2009, पृष्ठ संख्या 9

विजय जोशी के कथा साहित्य में बाल मनोवैज्ञानिक विश्लेशण

श्रीमती सुमन डागर

शोधार्थी, शोध केन्द, कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय, कोटा-राजस्थान

डॉ० गीता सक्सेना

शोध निर्देशिका, पूर्व प्रधानाचार्य, मोदी कालेज कोटा-राजस्थान

"विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो संसार के प्रत्येक जीव में पाई जाती है। यह जीव अमीबा से लेकर व्यक्ति तक कोई भी हो सकता है। विकास की प्रक्रिया गर्भधारण से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में चलती रहती है। इसकी गति कभी तीव्र और कभी मन्द होती है। मानव विकास का अध्ययन प्राकृतिक विज्ञानों में भी होता है और मनोविज्ञान में भी होता है। मानव विकास का अध्ययन मनोविज्ञान की जिस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है, उसे बाल मनोविज्ञान कहा जाता था परन्तु अब मनोविज्ञान की यह शाखा बाल विकास कही जाती है। मनोविज्ञान की यह एक अपेक्षाकृत नवीन शाखा है जिसका विकास पिछले पचास वर्षो में सर्वाधिक हुआ है। आधुनिक युग में 'बाल विकास' के अध्ययनों में मनोवैज्ञानिकों की रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस दिशा में हुए अध्ययनों ने बालकों के जीवन को सुखी, समृद्धिशाली और प्रशंसनीय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इन अध्ययनों का प्रभाव समाज के कल्याण पर भी पड़ा है। मनोविज्ञान की इस शाखा का अध्ययन जनसाधारण के लिए भी आवश्यक और रुचि का विषय रहा है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चों के कल्याण में रुचि रखता है। साथ ही वह इस बात में भी रुचि रखता है कि उनके बच्चे कौशलों, विभिन्न योग्यताओं, व्यक्तित्व और सामाजिक विशेषताओं का अर्जन किस प्रकार करते हैं। आज मनोविज्ञान की यह शाखा मनोवैज्ञानिकों के लिए ही महत्वपूर्ण और उपयोगी नहीं है बल्कि जनसाधारण के लिए भी इसका ज्ञान बहुत उपयोगी है। यही कारण है कि मनोविज्ञान की इस शाखा की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।"

विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो संसार के प्रत्येक जीव में पाई जाती है। यह जीव अमीबा से लेकर व्यक्ति तक कोई भी हो सकता है। विकास की प्रक्रिया गर्भधारण से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में चलती रहती है। इसकी गति कभी तीव्र और कभी मन्द होती है। मानव विकास का अध्ययन प्राकृतिक विज्ञानों में भी होता है और मनोविज्ञान में भी होता है। मानव विकास का अध्ययन मनोविज्ञान की जिस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है, उसे बाल मनोविज्ञान कहा जाता था परन्तु अब मनोविज्ञान की यह शाखा बाल विकास कही जाती है। मनोविज्ञान की यह एक अपेक्षाकृत नवीन शाखा है जिसका विकास पिछले पचास वर्षो में सर्वाधिक हुआ है। आधुनिक युग में 'बाल विकास' के अध्ययनों में मनोवैज्ञानिकों की रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस दिशा में हुए अध्ययनों ने बालकों के जीवन को सुखी, समृद्धिशाली और प्रशंसनीय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इन अध्ययनों का प्रभाव समाज के कल्याण पर भी पड़ा है। मनोविज्ञान की इस शाखा का अध्ययन जनसाधारण के लिए भी आवश्यक और रुचि का विषय रहा है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चों के कल्याण में रुचि रखता है। साथ ही वह

इस बात में भी रुचि रखता है कि उनके बच्चे कौशलों, विभिन्न योग्यताओं, व्यक्तित्व और सामाजिक विशेषताओं का अर्जन किस प्रकार करते हैं। आज मनोविज्ञान की यह शाखा मनोवैज्ञानिकों के लिए ही महत्वपूर्ण और उपयोगी नहीं है बल्कि जनसाधारण के लिए भी इसका ज्ञान बहुत उपयोगी है। यही कारण है कि मनोविज्ञान की इस शाखा की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

बाल-मनोविज्ञान और बाल विकास का अर्थ :

क्रो और क्रो (1958) के अनुसार, "बाल-मनोविज्ञान वह वैज्ञानिक अध्ययन है जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था तक करता है।"

जेम्स ड्रेवर (1968) के अनुसार, "बाल-मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें जन्म से परिपक्वावस्था तक विकसित हो रहे मानव का अध्ययन किया जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, "बाल-मनोविज्ञान गर्भकालीन अवस्था से परिपक्वावस्था तक के व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं (चिंतन, समस्या-समाधान, सृजनात्मकता नैतिक तर्क तथा व्यवहार अभिवृत्तियाँ, मत और रुचियाँ आदि) के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन है। एक विकासात्मक अवस्था से दूसरी विकासात्मक अवस्था में पर्दापण करते समय कौन-कौन से विशिष्ट परिवर्तन होते हैं, यह परिवर्तन कब होते हैं, उनके क्या कारण हैं, इनकी अन्तर्निहित प्रक्रियाएँ या मेकैनिज्म क्या-क्या है, यह सार्वभौमिक या व्यक्तिगत है आदि का सम्बन्ध भी आज के आधुनिक ब आज, जब साहित्य में बाल-साहित्य सृजन एक कठिन चुनौती बनकर सामने खड़ा है, ऐसे दौर में 'बाल मनोविज्ञान' की दृष्टि से लेखन हुआ तो है किन्तु अधिक नहीं। कथाकार के लेखन में यह एक सार्थक पहल लगती है। जिनका प्रमुख स्वर 'सामाजिक-समरसता' प्रतीत होता है। परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है, जिसका अस्तित्व संकटग्रस्त है। संयुक्त परिवारों के अवशेष-मात्र शेष हैं। इस दौर में तो इन एकल-परिवारों की आत्मीयता भी पश्चिमी सभ्यता की स्वार्थपरता से मरणासन्न है। दाम्पत्य सम्बन्ध परिवर्तन के नित नवीन स्वरूपों के बीच-संतान (बालपन) पर गहरा दुश्प्रभाव डाल रहे हैं। ऐसे में जब समाज की सबसे लघु इकाई परिवार-टूटने के कगार पर खड़े हों, तब तो मानव समाज के सबसे लघु-प्रतिनिधि बालक (बालमन) का भगवान ही मालिक है। उपेक्षा का शिकार बना, बालमन अवसाद-जनित मनोरोग, उन्माद से उद्वेलित होकर, किसी भी सामाजिक मान्यता के विपरीत आचरण करने लगे तो निश्चय ही 'सामाजिक समरसता' का विघटन होना, कोई आश्चर्यजनक नहीं।

"विजय जोशी की पैनी दृष्टि ने ज्वलन्त समस्या के मध्य बाल जीवन पर पड़ते दुश्प्रभाव को आधार बनाकर साहित्य सृजन किया है। अत: इस दृष्टि से इनकी कहानियों का विशिष्ट महत्व भी है।

'खामोश गलियारे' 1996 ई. में प्रकाशित कहानियों की प्रथम कृति है। जिसकी कहानियों में बालमनोविज्ञान के स्पर्श की अनुभूति दिखाई दे जाती है। बालमनोविज्ञान का एक सत्य यह भी है कि यदि बालक को उसके गुण, रुचि अनुकूल दिशा में अवसर मिले तो उसकी ग्राह्य-क्षमता चौगुनी हो सकती है, यदि ऐसा न हो तो वह असफल सा लगने लगता है।

'अन्तर्द्वन्द्व' कहानी का अबोध बालक सुबोध श्रीवास्तव जब तक पिता की इच्छाओं के अवांछित दबाव को झेलता रहता है, असफल सिद्ध होता है किन्तु जैसे ही उसे उसकी रुचि के अनुकूल चित्रकला में अवसर मिलता है, वह प्रगति पथ में शिखर छू लेता है और उसके पिता को भी कहना पड़ता है - "आई प्राउड ऑफ यू।"

जबकि टूटते-बिखरते भारतीय परिवारों में पीड़ा भोगती मन:स्थितियों के बीच संतित (बालकों) का मर्मस्पर्शी चित्रण कहानी - 'पुनरावृत्ति' का सार्थक कथानक प्रस्तुते करता है।

यज्ञकर्म' - कहानी एक ऐसी बालिका के मन-गह्वर की यात्र बन गई है, जिसके पिता एक दुर्घटना में दिवंगत हो गये हैं किन्तु माँ और भाई उसे ही इसका कारण मानकर उससे घृणा करने लगते हैं। उनका उपेक्षित व्यवहार बालिका को तोड़कर रख देता है - "मेरा बालमन पारिवारिक माहौल से भयग्रस्त अवसादी-सा हो गया। घर के उपेक्षित संदर्भो से मन:स्थितियाँ सिसकती रही।"

वह जितना उनसे अपनत्व चाहती उसे उतनी ही गालियाँ, प्रताड़ना और वेदना मिलती गई। "मेरा मन-माँ-भैया से मिलने को आतुर बना रहता ..... लेकिन उनकी ओर से कोई प्रत्युत्तर न पाकर ..... असामयिक उस घटित परिवेश की टीस से भर उठता।"

माधुरी के दर्द की मर्मान्तक पीड़ा की हद तो देखिये - "इन सब बातों के चलते ..... माँ और भैया ने एक दिन मुझे अपनी तरफ से मेरी ... घोषित कर दिया। मेरा मन रिश्तों की इस नाजुक हत्या से कराह उठा।"

जबकि कहानी - 'खामोश गलियारे' में बाल्यावस्था से किशोरावस्था और युवावस्था की ओर उन्मुख होते बालक अंकुर के बालमन के विशिष्ट पहलू सामने आते हैं। अंकुर के जन्म के साथ ही पिता को हुई व्यापारिक हानि उसे अशुभ करार देती है और उसे उपहार में मिलती है 'उपेक्षा'। नौकरों के सहारे पलता-बढ़ा होता अंकुर पिता-प्रेम को तरसता रहता है। कुछ दिनों बाद उसके भाई की दुर्घटना में असामयिक मृत्यु उसे परिवार में अशुभ ही नहीं - महापातकी की पदवी दिलाकर, करमजला, इडियट और ब्लडीफूल जैसे संबोधनों का अधिकारी बना देती है। परिवारजन, वक्त-बेवक्त उसे मार भी लेते हैं। यह सामूहिक घृणा और उपेक्षाजनित व्यवहार, उसके बालमन को विद्रोह की घनीभूत अवसथा में ले जाते हैं। यही विद्रोही भावना अन्ततः कोठे में 'मैना' के पास पहुँच कर, उसके प्रेमबोल से बँध जाती है। जब अंकुर स्वयं मैना को कह देता है 'अब इन गलियारों को पार करने का समय आ गया है। समय के कड़वे सच ने मानवीय संवेदनाओं को एक नया आयाम दे डाला है।'

केनवास के परे' ई. सन् 2000 में प्रकाशित दूसरा कहानी संग्रह है। बाल मनोविज्ञान के अन्तर्गत बाल-स्वभाव को हठीला माना गया है। त्रियाहठ, राजहठ और बालहठ संसार में प्रसिद्ध है। अतः बालक को कितना ही उपदेश दें ..... सब निश्फल। बस उसके मन में तो अपने संकल्पानुसार कार्य की धुन रमी रहती है ..... भले ही प्राण चले जायें।

'बैकुण्ठगामी' का दस वर्षीय सूरज, जानकी का इकलौता नाती, कार्तिक माह की बैकुण्ठी चौदस की एक शाम, जल में दीपों की 'टाटी' प्रवाहित करने के पारिश्रमिक रूप में मिलने वाली राशि की जिद में, नानी से आशीष के दो बोल सुनने की लालसा में और बालमन में विकसित होती नायकत्व भावना के प्रभाव में, संध्या के धुंधलके में भीतर्‌या कुण्ड की अथाह जलराशि में तैरते-तैरते कब मौत के आगोश में समा जाता है, उसकी नानी को पता ही नहीं चलता? काश ! बच्चे, बड़ों की समझाईश पर भी ध्यान दें।

यद्यपि कहानी - 'लौट आओ' में माँ की ममता को ही अधिक महत्व दिया गया है किन्तु उसके मूल में दादी-दादा के हृदय में व्याप्त बाल आसक्ति की भावना ही मुख्य है - "दादी माँ, आप रो रही हैं। गंदी बात। आप इतने बड़े हो, फिर क्यों रो रहे हो। .....अब हम कभी शैतानी नहीं करेगी .....अब चुप हो जाओ दादी माँ।"

विजय जोशी का - "कुहासे का सफर" कहानी संग्रह 2005 ई. में प्रकाश में आया। जिसके अन्तर्गत बालमनोविज्ञान को स्पर्श करती कतिपय कहानियाँ बहुत ही प्रभावी बन पड़ी हैं। जो दम्पत्ति अपनी संतान को मात्र पाल-पोस कर बड़ा करके, अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं, उनके लिए कहानी 'फैसला' एक सकारात्मक सोच की ओर संकेत करती प्रतीत होती है। दम्पत्ति जब तक अपनी संतति को सभी परिवारों में रहने योग्य, व्यवहारकुशल एवं काम-काज में निपुण बनाने की कोशिश, बाल्यावस्था में ही नहीं करेंगे तो उनकी संतानें युवा होकर भी एक बालक-समान सदैव अपने आपको असुरक्षित एवं आत्महीनता का शिकार ही पायेंगी। एक संवाद पठनीय है -

- 'शायद ... आप मुझे टोकते, सलाह देते तो मैं भी थोड़ा सिस्टमेटिक होती'
- 'तेरा मतलब ... मैंने तुझे कुछ सिखाया नहीं .....?'
- 'और नहीं तो क्या .....? अगर बाल्यावस्था से ही मुझे सावचेत किया होता तो ... क्या मैं ऐसी बनती?'

बाल्यावस्था में उचित पालन-पोषण के अभाव में विशाखा ससुराल की सिस्टमेटिक परिस्थितियों में पति और अन्य परिवारजन की उपेक्षा झेलती है। सत्य है बाल्यावस्था में ही संतान को, विशेषकर, बालिकाओं को उनके भविष्य तथा दाम्पत्य जीवन एवं अन्य पारिवारिक दायित्व निर्वहन की दिशा बोध का सच्चा भान होना आवश्यक है ..... इन सबके अभाव में किसी का भी जीवन 'विशाखा'-सा बन सकता है।

विजय जोशी का 2006 ई. में सद्यः प्रकाशित कहानी संग्रह 'बिंधे हुए रिश्ते' है जिसमें बाल मनोविज्ञान का मन्तव्य प्रकट करती कहानियाँ बहुत सुन्दर बन गई हैं।

वर्तमान समाज के जिन परिवारों में बालकों में बड़ों की मर्यादा का संस्कार बाल्यावस्था में नहीं दिया गया है, उन्हें थोड़ा सा समझदार होते ही परिवार के मुखिया से भी अधिक महत्व दिया जाने लगे तो ऐसे बालक अपनी विशेष मन:स्थिति में स्वयमेव ही परिवार में अपने आपको 'वीटो' अधिकार भाव से, अति विशिष्ट होने का गुमान पाल बैठते हैं। ऐसे में वे अपने परिवार के सदस्यों की मर्यादा सीमा तो लाँघते ही हैं, दूसरे सगे-संबंधियों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण अशुभ-परिणामजनक होता जाता है। उनके भीतर प्रेम और समन्वय भाव के स्थान पर एकतरफा विचारों से रिश्तों में दरार आने लगती है।

कथाकार विजय जोशी के रचना संसार में बाल-मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण कथानकों के मानक रंग समाहित किये हुए हैं। इनमें बाल जीवन के विविध चरित्रों के अन्तर्गत परोक्ष-अपरोक्ष रूप में बाल मनोविज्ञान के विविध पक्ष आभासित हैं। साथ ही वर्तमान जीवन अपनी सम्पूर्ण छवियों के साथ इन कथा-कहानियों में विद्यमान है, जिनमें बाल मनोविज्ञान की भावना बादलों में निहित जलराशि-सम समाहित है।"

सारांशत: विजय जोशी के कथा साहित्य में मनोविज्ञान के विविध सोपानों से साक्षात्कार होता है। अधिकांशत: पात्र चरित्र प्रधान होने के साथ-साथ मानव मन के भीतर उमड़ते-घुमड़ते और बदलते भावों की अन्वेषी और अभिव्यंजक है, इसी कारण उनमें मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता है, जो उनके पात्रों के कार्य-व्यापारों को विश्वसनीय बनाती है।

सन्दर्भ

- विजय जोशी, 'केनवास के परे
- विजय जोशी, 'बिंधे हुए रिश्ते'
- विजय जोशी, 'ख़ामोश गलियारे'

भारतेन्दु युगीन साहित्यिक पत्रकारिता का वैचारिक स्वरूप

डॉ० रामचरण पांडेय

बी-18-डी, सरायबस्ती, डीडीए फ्लैट्स, दया बस्ती, दिल्ली-35

हिंदी पत्रकारिता का प्रादुर्भाव 30 मई, 1826 को जुगुल किशोर शुक्ल द्वारा संपादित साप्ताहिक पत्र 'उदंत मार्तण्ड' के प्रकाशन से हुआ।' हिंदुस्तान के हित हेतु' शुरू हुई हिंदी पत्रकारिता का विकास राष्ट्रीय स्वधीनता आंदोलन का भी विकास है।लिहाज़ा पत्रकारिता ने स्वधीनता आंदोलन के मूल्यों को आत्मसात करते हुए उसे दिशा भी प्रदान किया।शुरुआती दौर में ही हिंदी पत्रकारिता ने अंग्रेजी सम्राज्यवाद के प्रति कड़ा रुख अख़्तियार किया।परिणामस्वरूप उसे अंग्रेजी सत्ता के कोपभाजन का शिकार होना पड़ा।ख़ष्ण बिहारी मिश्र ने लिखा है कि "भारतीय पत्रकारिता के विकास के साथ ही ब्रिटिश सरकार की दमन नीति भी उग्र होती गई।लार्ड वेलेजली के समय में भारतीय पत्रों को कुंठित करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने पहला क़ानून बनाया।"1 सत्ता के कोपभाजन के साथ ही जागरूकता के अभाव में पाठकों की उपेक्षा के परिणाम स्वरूप आर्थिक तंगी को झेलते हुए आदि पत्रकारों ने जिस भीषण जुझारूपन का परिचय दिया है वह पत्रकारिता के इतिहास में एक अमूल्य धरोहर है। इस मूल्य को संजोए रखना आज के कलमकारों की अहम ज़िम्मेदारी है।भारतेंदु युग की साहित्यिक पत्रकारिता का वैचारिक स्वरूप बहुत व्यापक व स्पष्ट है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1868 ई.में 'कविवचन सुधा', 1873 ई. में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' तथा 1874 ई. में 'बालाबोधिनी' पत्रिका का संपादन किया। बालकृष्ण भट्ट ने प्रयाग से 1877 ई. में मासिक पत्र 'हिंदी प्रदीप' व बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने मिर्जापुर से मासिक पत्र 'आंनद कादम्बिनी' 1881 ई. तथा मासिक पत्र 'नागरी नीरद' का प्रकाशन 1893 ई. में किया। प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से 1883 ई. में ब्राह्मण पत्रिका का संपादन किया। इन पत्रिकाओं ने साहित्य की विविध विधाओं के सृजन के साथ भारतीय जन-मानस में स्वाधीनता की चेतना का प्रसार किया।इस युग की पत्रकारिता का मूल स्वर साम्राज्यवाद विरोध है। नवजागरण की चेतना का शंखनाद व राष्ट्रीयता का विकास देखा जा सकता है।

पत्रकारिता और राष्ट्रीयता का विकास साथ-साथ होता है। दोनों एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। दोनों का लक्ष्य एक है-राष्ट्र को पराधीनता से मुक्ति दिलाना। राष्ट्रीयता एक भावना है जबकि पत्रकारिता एक माध्यम है। पत्रकारिता में जनमत की भावनाओं व विचारों को प्रसारित किया जाता है। गुलामी के दौर में स्वतंत्रता की भावना तथा राष्ट्रीयता को अभिव्यक्ति करने का पत्रकारिता एक साधन थी। भारतेन्दु युग हिंदी पत्रकारिता का निर्माण काल है। इस युग के साहित्यकार प्रायः पत्रकार भी हुआ करते थे। पत्रकारिता में उन्होंने जिन विचारों को व्यक्त किया उसने स्वाधीनता आंदोलन को दिशा प्रदान की। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "उस युग का साहित्य हमारे नये समाजिक और सांस्कृतिक जागरण का परिणाम है। उसकी मूल धारा राष्ट्रीय और जनवादी है। राष्ट्रीय इसलिए है कि उस युग के लेखक देश की स्वाधीनता चाहते थे भारतेंदु युगीन साहित्य जनवादी इसलिए है कि वह भारतीय समाज के पुराने ढांचे से संतुष्ट न होकर उसमें आवश्यक सुधार चाहता था। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है"2। भारतेन्दु युग का साहित्य अपने तात्कालिक परिवेश से बेहद प्रभावित है। 1857 की क्रांति का प्रभाव भारतेन्दु युग की पत्रकारिता और साहित्य दोनों पर है। अंग्रेजी सत्ता के प्रति असंतोष भारतीयों के मन में पैठने लगी थी। ऊपर से पड़ने वाले दुर्भिक्ष और अकाल ने जनता को और त्रस्त कर दिया था।

भारतेन्दु युग की पत्रकारिता का केंद्रीय स्वर समाजिक जागरण था। अंग्रेजी सत्ता के प्रति राजभक्ति भले दिखाई पड़ती हो लेकिन इस युग की पत्रकारिता में देश भक्ति प्रखर रूप में मौजूद है। भारतेन्दु हरिश्चंद ने अंग्रेजों की शोषण नीति का पर्दाफाश करते हुए लिखा कि– "भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसी हँसी के तन मन धन मूसै/जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।"[3]

भारतेन्दु युग मे आर्थिक चेतना का प्रार्दुभाव हो चुका था।इस युग में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं ने स्वाधीनता आंदोलन को प्रभावित किया।भारतेन्दु के संपादन में कविवचन सुधा का सिद्धान्तवाक्य था–

"खल गगन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै/अधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, करदु:ख बहै/बुध तजहि मत्सर, नारिनर सम होंहि, जग आंनद लहै/तजि ग्राम कविता, सुकविजनकी अमृत बानी सब कहै।"4। स्वत्व की चेतना ही इस युग की पत्रकारिता की मूल थीम है।समाज के विकास में बाधक रूढ़िवादी मानसिकता का विरोध तथा 'नारी-नर सम होहि' की परिकल्पना वास्तव में प्रगतिशील विचार था।लैंगिक पूर्वाग्रह से समाज की मुक्ति व नारी शिक्षा के लिए ही भारतेन्दु जी ने 'बालबोधिनी' पत्रिका का संपादन किया।कविवचन सुधा के 23 मार्च 1978 के अंक में स्वदेशी का नारा देते हुए भारतेन्दु जी ने लिखा कि "हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहनें तो और जो कपड़ा की पहले से मोल ले चुके हैं और आज की मिली तक हमारे पास है, उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे, पर नवीन मोल लेकर किसी भांति का भी विलायती कपड़ा न पहनेंगे। हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देशी हितैषी इस उपाय की वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे"।[5] विलायती कपड़ा का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तु के स्वीकार की घोषणा भारतेन्दु जी ने राष्ट्रीय नेताओं से बहुत पहले ही कर दी थी।उस समय तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था।ऐसे समय मे जब कोई राष्ट्रीय व राजनैतिक संगठन नहीं थे तब पत्रकारिता ही अंग्रेजी साम्राज्य की अनीतियों का प्रतिकार करती थी।पत्रकारिता ने निर्भीकता से शासन के जनविरोधी रवैये को उजागर किया।लार्ड लिटन के शासनकाल में वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट (14 मार्च, 1878 ई.) लागू हुआ। 'सारसुधानिधि' के संपादकीय में लिखा गया कि "हम इनको परामाँ देते हैं कि इनको शीघ्र ही पदत्याग करना चाहिए, इसका अवश्य कोई गुरुतर कारण हैं।... साहिब ने अपने अधिकार काल में उस भाव से काम नहीं किया।"[6] तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी इस तरह की प्रखरता व तेजस्विता पत्रों में आ गई थी। इसी तरह से अन्य पत्रों में भी ब्रिटिश नीति की आलोचना की जाती थी।आलोच्य युग की पत्रकारिता में आर्थिक चेतना भी स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। अंग्रेजों ने आर्थिक लूट की जो गर्दिश मचा रखी थी उस पर करारा प्रहार पत्रकारिता में दिखता है।

इस युग की पत्रकारिता में देशभक्ति व राजभक्ति के बीच द्वंद भी दिखाई देता है।पत्रकारों को जब लगता था कि ब्रिटश सत्ता द्वारा जनता के पक्ष में अच्छे कार्य किये जा रहे हैं तो वे उसकी प्रशंसा भी करते थे।प्रताप नारायण मिश्र ब्राह्मण पत्रिका में लिखते हैं कि - "महारानी विक्टोरिया यद्यपि महा दयाल/चाहती कियो प्रधान का पुत्र सरिस प्रतिपाल/ये हमारी दुरभाग ते दूर बसति वह हाय/बिन जाने भारत विपति केहि विधि करै उपाय"[7] यह राजभक्ति सरकार की चापलूसी नहीं थी बल्कि जनता के हित में किए गए छोटे-मोटे कार्यों की प्रसंशा थी।देश भक्ति ही इस काल की पत्रकारिता का प्रमुख वैचारिक सरोकार है।हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते हुए मिश्र ने ब्राह्मण पत्रिका में लिखा है कि "अहै इहां पर तीन मत, हिन्दू यवन क्रिस्तान/भारत की शुभ देह में, तीनहुँ अस्थि समान/एक दूसरे सोन इंहा, पावै जो न सहाय/तो अतिशे निर्वाह में कठिनाई परि जाय।"[8] भारत में रहने वाले हिन्दू-मुस्लिम तथा ईसाई तीनों मतों के लोगों के बीच एकता की कामना करते हुए कवि ने राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया।समाज सुधार के आकांक्षी पत्रकारों ने समाज मे व्याप्त बाल विवाह प्रथा का पुरज़ोर तरीके से विरोध करके विधवा पुनर्विवाह की वकालत की। पत्रकारिता में दृढ़ता के साथ यह मत व्यक्त किया गया कि कम उम्र के बच्चों की शादी करने से उनका शारिरिक व मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।हिंदी प्रदीप में बाल विवाह का विरोध करते हुए लिखा गया कि "सकल दोष की खानि, वीर्य हरन दारिद करन/आलस की जड़ जानि, त्यागहु बाल विवाह को।"[9] इसी तरह दहेज प्रथा का विरोध करते हुए ब्राह्मण पत्रिका में लिखा गया कि "नाना भार्ति के क्लेश और हानि सहना, पर पुरानी लकीर के एक अंगुल भी बराबर न होना, बिरादरी में दो दिन की वाहवाही के लिए ऋण काढ़ के सैकड़ो की आतिशबाजी दिन भर में फूंक के संतान के माथे मढ जाना...दहेज के दुष्ट प्रथा।के मारे नई पौध की उन्नति मिट्टी में मिलाना कहां तक उचित है"[10]

भारतेन्दु जी भारतवासियों को कला कौशल सीखने पर बराबर बल देते रहें।समाज कल्याण हेतु उन्होंने अनेक प्रकार के उपयोगी निबन्ध लिखे।समाज में व्याप्त जाति प्रथा, छुआछूत का विरोध करते हुए भारत वर्षोन्ति पर विचार किया। अंग्रेजी सत्ता के प्रति प्रतिरोध के लिए भारतीयों को संगठित रहने की अपील की।देश की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण 'ब्राह्मण' पत्रिका में देखिए-

"भूखों मरत किसान तहूँ पर कर हित डपट न थोरी है/गारी देत दुष्ट चपरासी/तकति बिचारि छोरी है।"[11] इसी तरह 'हिंदी प्रदीप' के जनवरी-फ़रवरी मार्च 1897 के संयुक्तांक में 'होली' कविता छपी है जिसमें होली के उत्सव से ज़्यादा देश की दुर्दशा का चित्रण किया गया है "डफ बाज्यो भारत भिखारी को/केशर रंग गुलाल भूलि गयो/कोऊ पूछत नहिं पिचकारी को डफ बाज्यो/बिन धन अन्न लोग सब व्याकुल भई कठिन विपत्ति नर नारी को डफ बजयों/चहु दिशि काल परयो भारत में/भय उपज्यो महामारी को डफ बाज्यो/अपना करम भोग फल चाखो/दोष न अमल सरकारी को डफ बाज्यो"[13]

होलिकोत्सव का वर्णन करते करते हुए भारत की प्रजा की दयनीय स्थिति का वर्णन करके कवियों ने सम्राज्यवादी सत्ता पर करारा व्यंग किया है।[15] फरवरी 1874 ई. को 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में भी होली पर कविता लिखी गई है। कविता में होली के बहाने देश वासियों से आलस्य और अविद्या को त्यागने का आह्वान किया गया है– "भारत में मची है होरी/एक ओर अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी/अपनी अपनी जय सब चाहत छोड़ परी दुहूँ ओरी/दुंद सखी बहुत बड़होरी/धूर उड़त सोई अबीर उड़ावत सबक नयन भरोरी/दीन-दशा अंसुअन पिचकारी सब खिलार भिंज्योरी/भींजि रहे भूमि लठोरी।"[14]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन साहित्यिक पत्रकारिता के विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि साहित्यिक पत्रकारिता का सरोकार सम्राज्यवाद विरोधी था। देश की उन्नति के लिए नवजागरण की चेतना का प्रचार-प्रसार पत्रकारिता के ही माध्यम से किया गया। इस युग में देश भक्ति का साहित्य पत्रकारिता के ही माध्यम से प्रकट हुआ।यहा रस्ट्रीयता की चेतना देश प्रेम के रूप में अभिव्यक्त हुई है।यही राष्ट्रीयता द्विवेदी युग की साहित्यिक पत्रकारिता में उग्र तेवर में देखने को मिलती है। भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता को देश भक्ति व राजभक्ति की टकराहट के रूप में देखा जाता है। लेकिन लोग यह भूल जाते हैं कि 1857 से 1900 ई. के बीच पत्र-पत्रिकाओं को लेकर चार बड़े कानून पारित हुए। इसलिए औपनिवेशिक परिस्थितियों के दबाव के कारण भारतेन्दु युग के साहित्कारों को राजभक्तिपरक रचनाएं लिखनी पड़ी। कृष्ण विहारी मिश्र ने बहुत सही लिखा है कि "देश दशा का जितना यथार्थ चित्रण इन पत्रों में है और ब्रिटिश सरकार के अनौचित्य का उद्घाटन जिस साहस से इस समय के तेजस्वी पत्रकारों ने किया, वह वस्तुतः हर दृष्टि से असाधारण महत्व की बात है।"[15]

संदर्भ सूची

1. मिश्र, कृष्ण बिहारी, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली पांचवा संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 46
2. तिवारी, अर्जुन, आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1984, पृष्ठ 20
3. शर्मा, डॉ रामविलास, भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण की भूमिका से
4. पांडेय, मिथिलेश्वर (सं), भारतेंदु ग्रंथावली, खंड-1, नमन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008 पृष्ठ 505
5. वाजपेई, अंबिका प्रसाद, समाचार पत्रों का इतिहास, बनारस ज्ञान मंडल, प्रथम संस्करण-संवत 2010, पृष्ठ संख्या 129
6. पांडेय, मिथिलेश्वर (सं), भारतेंदु ग्रंथावली, खंड-2, नमन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008 पृष्ठ 64
7. मिश्र, कृष्ण बिहारी, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली पांचवा संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 16
8. लाल, वंशीधर लाल, भारतेन्दुयुगीन हिंदी पत्रकारिता, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ संख्या 25
9. वही, पृष्ठ संख्या 30
10. राय, सुजाता, राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण 1996, पृष्ठ संख्या 138

11. लाल, वंशीधर लाल, भारतेन्दुयुगीन हिंदी पत्रकारिता, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ संख्या 34
12. पांडेय, कैलाशनाथ, हिंदी पत्रकारिता: संवाद और विमर्श, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली-इलाहाबाद, 2017, पृष्ठ संख्या 167
13. पाठक, समीर कुमार (सं), बालखण्ण भट्ट रचनावली, खंड-4, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 504
14. डालमिया, वसुधा, हिंदू परंपराओं का राष्ट्रीयकरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पेपर बैक संस्करण, 2016, पृष्ठ संख्या 262
15. मिश्र, कृष्ण बिहारी, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली पांचवा संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 46

झारखंड के आदिवासियों का आर्थिक जीवन और गाँधी

डॉ० दीक्षा कुमारी

माध्यमिक शिक्षिका, इंटरस्तरीय श्यामसुन्दर विद्या निकेतन, जिला-भागलपुर, बिहार

झारखंड की जनजातियाँ पहाड़ी, पठारी तथा जंगली क्षेत्रों में पायी जाती है। झारखंड की जनजातीय संस्कृति भारतीय समाज की एक अमूल्य निधि है। सुदूर अतीत से इसकी अविरल धारा आजतक प्रवाहित होती आयी है। यह धारा कभी-कभी विस्मृति के गर्त में खोयी जान पड़ती है, किन्तु इसका विशाल प्रवाह बना हुआ है। झारखंड राज्य प्राकृतिक दृष्टि से दो भागों में विभक्त है। छोटा नागपुर और संथाल परगना।[1]

इसकी भौगोलिक स्थिति महत्पवूर्ण है। यह मध्य भारत के विशाल पठार का पूर्वी भाग है। प्रकृति ने इसे भारत के अन्य प्रदेशों से बहुत कुछ पृष्ठथक कर दिया है। यह भाग पहाड़ों और जंगलों से भरा है। झारखंड की सीमाएँ उत्तर में बिहार, पश्चिम में उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़, दक्षिण में ओड़िशा और पूर्व में पश्चिम बंगाल को छूती है। झारखंड एक जनजातीय राज्य है। 15 नवम्बर 2000 को यह प्रदेश भारतवर्ष का 28वां राज्य बना। बिहार के दक्षिणी हिस्से को विभाजित कर झारखंड प्रदेश का सृजन किया गया था। भारत देश विभिन्नताओं का देश है। सवा सौ करोड़ की आबादी वाले इस देश में कुछ समुदाय ऐसे भी हैं जो मुख्य धारा में आने के लिए संघर्षरत हैं। देश में लगभग 8.6% यानी लगभग दस करोड़ (2011 सेंसेक्स के अनुसार) आबादी आदिवासियों की है।

आदिवासी शब्द दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिलकर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है। पौराणिक ग्रंथो में आदिवासियों को आत्विका और वनवासी भी कहा जाता है। "महात्मा गाँधी ने आदिवासियों को गिरिजन (पहाड़ पर रहने वाले लोग) कह कर पुकारा है।"[2]

भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' पद का उपयोग किया गया है। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पाँचवी अनुसूची में "अनुसूचित जनजातियों " के रूप में मान्यता दी है। झारखंड में 32 आदिवासी समूह अथवा अनुसूचित जनजातियाँ रहती है जो इस प्रकार है।[3]

क्र.सं.	जनजाति का नाम	वर्त्तमान निवास स्थान	भाषा
1	असुर	राँची, गुमला	असुरी
2	बिरहोर	रांची, हजारीबाग	असुरी
3	खड़िया	गुमला, सिंहभूम	खड़िया
4	मुण्डा	रांची, सिंहभूम	मुण्डारी
5	सौरिया पहाड़िया	राजमहल	मालतो
6	माल पहाड़िया	संथाल परगना	मालतो
7	कोरबा	पलामू, गुमला	कोरबा
8	हो	सिंहभूम	हो
9	भूमिज	रांची, गुमला	मुण्डारी

10	उराँव	रांची, गुमला	कुडुख
11	संथाल	संथाल परगना	संथाली
12	चेरो	पलामू, रांची	सदान
13	खरवार	पलामू	खरवारी
14	किसान, नगसिया	रांची, पलामू	सदानी
15	बिंझिया	रांची, सिमडेगा	सदानी
16	परहिया	पलामू	मुण्डारी
17	वेदेया	बड़काकाना	सदानी
18	चीक बड़ाईक	रांची	सदानी
19	गौंड़	रांची	मुण्डारी
20	गोराईत	रांची, पलामू	मुण्डारी
21	बथुड़ी	सिंहभूम	करमाली
22	कोरा	दुमका	सदानी
23	करमाली	रांची	करमाली
24	बिरजिया	गुमला	बिरजिया
25	सबर	सिंहभूम	सदानी
26	महली	रांची	महली
27	लोहरा	रांची	सदानी
28	खोंड	पलामू	क्षेत्रीय
29	बंजारा	संथाल परगना	स्थानीय
30	बैंगा	रांची, सिंहभूम	हिन्दी
31	कोल	–	–
32	कवार	–	–

झारखंड की आदिवासियों का आर्थिक आधार पर वर्गीकरण:

1. शिकार करने व संकलन करने वाली जनजातियाँ,
2. कृषि करने वाली जनजातियाँ,
3. दस्तकारी करने वाली जनजातियाँ,
4. उद्योगों में काम करने वाली जनजातियाँ,
5. लोक कलाकार
6. पशुपालक समूह
7. लघु व्यवसाय
8. जनजातीय उद्यमी
9. नौकरी

1. शिकार करने एवं संकलन करनेवाली जनजातियाँ : झारखंड की कुछ जनजातियाँ शिकार करके अपना जीवन यापन करती है जिसमें कोरबा तथा बिरहोर प्रमुख हैं। ये लोग चूहे, हिरण, बन्दर, रूखी, जंगली बकरों एवं विभिन्न प्रकार की चिड़ियाओं

का शिकार करते हैं। शिकार करने के उपकरणों में लाठी, रस्से, फन्दे, जाल, कुल्हाड़ी आदि प्रमुख है। ये लोग शिकार के साथ साथ शहद, मोम एवं रस्सी बनाने के रेशों की खोज में एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमते हैं। बिरहोर लोगों को झारखंड की जंगली जनजाति के नाम से पुकारा जाता है। बिरहोर लोग छोटे-छोटे समूह में भोजन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते हैं और लगभग दो वर्ष बाद वहीं लौट आते हैं जहाँ से चले थे। घूमने का यह क्रम चलता रहता है। कुछ बिरहोर लोगों ने जंगल साफ कर अपना स्थायी निवास भी बना लिया है। ऐसे लोग कृषि करने व रस्सी बनाने का कार्य करते हैं। चूँकि शिकार में केवल एक परिवार के लोगों से ही कार्य नहीं चलता, अत: कुछ परिवारों का समूह सहकारी रूप से यह कार्य करता है। रस्सी बनाने के लिए ये लोग 'चोप' का संग्रह करते हैं। बिरहोर स्त्रियाँ एवं बच्चे जंगल से महुआ के फल-फूल, जंगली फल शाख-पात एकत्रित करने का कार्य करते हैं। बिरहोर लोगों के बारे में कहा जाता है कि ये लोग एक गिरोह, एक 'टण्डा' या एक पड़ाव में ठहरता है। प्रत्येक पड़ाव का एक नाम भी होता है। एक स्थान पर ये लोग चार पाँच महीनों तक या तब तक पड़ाव रखते हैं जब तक कि बाजार में बेचने के लिए जंगल से उन्हें शिकार या रस्सी के लिए कच्चा माल उपलबध होता रहे। पड़ाव में ये लोग घास व पत्तों से झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। बिरहोर लोग बेंगा, कुआँ, भूत-प्रेत एवं हनुमान आदि की पूजा करते हैं।

कोरवा लोग जो जंगलों में रहते हैं, फल एवं जड़ों पर तथा शिकार करके अलग जीवन बसर करते हैं कभी-कभी वे सम्पन्न उराँव लोगों के यहाँ मजदूरी भी करते हैं। सरकार की नई वन नीति ने इसके जीवन को दूभर कर दिया है, और यह जनजाति धीरे-धीरे समाप्त होते जा रही है।

2. कृषि करने वाली जनजातियाँ : झारखंड में कृषि करनेवाली जनजातियों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं - एक पहाड़ी क्षेत्र में कृषि करने वाली तथा दूसरी मैदानी क्षेत्रों में कृषि करने वाली। पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि करने वाली जनजातियाँ में सौरिया पहाड़िया, असुर तथा पहाड़ी खड़िया जनजातियाँ प्रमुख हैं। पहाड़ी खड़िया सिंहभूम एवं मानभूम जिलों के पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। ये लोग स्थानान्तर प्रकार की खेती करते हैं, जिसे 'झूम' या 'डाह' कहा जाता है। ये लोग छोटे-छोटे समूहों में जिसकी संख्या 5 से 12 परिवार होते हैं, रहते हैं। सौरिया पहाड़िया जनजाति सन्थाल परगना एवं राजमहल की पहाड़ियों में निवास करती है। इनके कुछ गाँव पहाड़ की तलहटी में बसे होते हैं। जिन क्षेत्रों में ये लोग रहते हैं वहाँ घने जंगल हैं। पहाड़ के ढ़लानों पर ये अस्थायी कृषि करते हैं जिसे ये 'जंगम' कहते हैं। एक परिवार के पास 5 से 10 बीघा तक जमीन होती है। खेती करने के पूर्व जंगल के एक भाग को चुन लिया जाता है। कुछ धार्मिक संस्कार एवं देवताओं को बलि चढ़ाने के बाद उस जंगल को काट दिया जाता है और पेड़-पौधे को सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है कुछ समय बाद जंगल में आग लगा दी जाती है, जिसमें पेड़ पौधे जलकर राख हो जाते हैं। वर्षा होने पर परिवार के लोग जाकर नोकदार छड़ियों से खेतों को खोदकर उनमें बीज बोते हैं तथा बीज उगने पर खेतों में झोपड़ी बनाकर जंगली जानवरों से फसल की रक्षा करते हैं। फसल पकने पर भूत-प्रेतों व देवी देवताओं को बलि चढ़ाकर फसल काट ली जाती है।

पहाड़ी सौरिया के गाँव, दस से पच्चीस परिवारों के होते हैं, प्रत्येक गाँव का एक मुखिया होता है। जिसे महतों कहते हैं। ये लोग बाँस की बनी झोपड़ियों में रहते हैं तथा पहाड़ी झरनों से पीने के लिए पानी प्राप्त करते हैं। असुर जनजाति जो पहले लोहा गलाकर बेचने का कार्य करती थी, अब शिकार करने, मछली मारने, खाद्य सामग्री संकलन करने व कृषि का कार्य करती है, ये लोग भी पहाड़ी सौरिया एवं खड़िया की तरह कृषि कार्य करते हैं।

मैदानी क्षेत्रों में खेती करने वाली जनजातियों में संथाल, मुण्डा, उराँव आदि जनजातियाँ प्रमुख हैं। ये लोग हल द्वारा खेती करते हैं तथा स्थायी रूप से घर बनाकर रहते हैं। एक गाँव में लगभग 50 से लेकर 100 तक परिवार पाए जाते हैं। प्रत्येक गाँव में धार्मिक एवं राजनीतिक दो प्रकार के मुखिया होते हैं। धार्मिक मुखिया सामुहिक धार्मिक क्रियाओं, उत्सवों एवं त्योहारों को सम्पन्न कराता है। राजनीतिक मुखिया दो गोत्रों या गाँवों, के बीच होने वाले झंगड़े का निपटारा करता है। झारखंड में विपणन की समुचित व्यवस्था के अभाव में आदिवासी किसानों को गरीबी एवं निर्धनता की ओर ढ़केल रही है क्योंकि उनके द्वारा कृषि से उत्पादित फसलों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है और उनकी स्थिति भयावह होती जा रही है।[4]

3. दस्तकारी करने वाली जनजातियाँ : झारखंड की महली, लौहार, चीकबड़ाईक एवं करमाली जनजातियाँ, कारीगरी एवं दस्तकारी का कार्य प्रारंभ से ही करती रही है। ये जनजातियाँ खेती करने वाली जनजातियों के गाँव में उनके साथ-साथ रहती है तथा उनकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। करमाली और लौहार लोग कृषि में काम आने वाले यंत्रों, की मरम्मत करते हैं तथा लोहे के औजार बनाते हैं। महली लोग पर्व त्योहार या मांगलिक कार्य के अवसर पर ढ़ोल बजाने के साथ साथ डलिया

बनाने का कार्य करते हैं। चीकबड़ाईक जुलाहे का कार्य करते हैं। दस्तकारी करनेवाली जनजातियाँ सामान बनाकर गाँव की हाट में ले जाती है। नई अर्थव्यवस्था का इनके व्यवसाय पर असर पड़ा है और ये लोग अब चाय बागानों और शहरों में नौकरी की खोज करने लगे हैं।

4. उद्योगो में कार्य करने वाली जनजातियाँ : झारखंड में रांची, संथाल परगना एव सिंहभूम जिले में कई नए उद्योग धन्धों के खुलने से इस क्षेत्र के लोगों का परिचय प्राप्त अर्थव्यवस्था से हुआ है। इन क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियाँ जैसे संथाल, उराँव, मुण्डा, हो, असुर, बिंझिया आदि खानों, कारखानों, चाय बगानों में काम करने लगी है।

5. लोक कलाकार : झारखंड की कुछ जनजातियाँ लोक कलाकार के रूप में अपनी कला के माध्यम से कमाते हैं उदाहरण के लिए लोकगीत गायक, लोक नर्तक, मदारीवाला, भालूवाला, सांप निकालने वाला, झार-फूक करने वाला, खेल-कूद विशेषक इत्यादि ये लोग हाट बाजारों में, मेलों में, गाँव-गाँव घूमकर अपनी कला या खेल दिखाते हैं और बदले में पैसा या आनाज प्राप्त करते हैं।

6. पशु पालक समूह : झारखंड के आदिवासियों में पशुपालन पेशा कृषि के साथ साथ अस्तित्व में बनी रही है। कृषि कार्य करने वाली सभी जनजातियों मुण्डा, उराँव, हो, संथाल, खड़िया, भूमिज, खरवार, चेरो, एवं अन्य में पशुपालन पेशा प्रचलित रही है। झारखंड के आदिवासी गाय, बैल, बकरी, भेड़ इत्यादि को पालते हैं। पशुओं के साथ-साथ वे लोग मुर्गी पालन, बत्तख, सूअर पालन का काम करते आ रहे हैं।

7. लघु व्यवसाय : जनजातीय युवक एवं युवती भी लघु व्यवसाय की ओर अग्रसर हुए हैं। वे लोग छोटा-छोटा दुकान, पान गुमटी, चाय दुकान इत्यादि चला रहे हैं। इन छोटे-छोटे व्यवसाय से वे अपने परिवारों का पालन पोषण कर रहे हैं।

8. जनजातीय उद्यमी : आज कल कई जनजातीय परिवार के लोग काफी संपन्न हो गये हैं। वे उद्यमी बनने में अभिरूचि दर्शाते हैं। वे बिल्डर, कान्ट्रेक्टर, बड़ा ठेकेदार, एजेंसी, कसल्टेंसी तथा स्टार्टअप कार्यो में अभिरूचि रखते हैं। देश और समाज के साथ-साथ वे अपनी आय भी बढ़ा रहे हैं।

9. नौकरी : आधुनिक शिक्षा के कारण आज झारखंड के जनजातीय लोग चपरासी, क्लर्क, नर्स, प्राथमिक, मिडिल, हाईस्कूल एवं प्लस-2 स्कूलों में शिक्षक, शिक्षामित्र, पंचायत मित्र, स्वास्थ्य मित्र, इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफेसर, वकील, पुलिस ऑफिसर, भारतीय एवं राज्य प्रशासनिक सेवा, भारतीय एवं राज्यवित्त सेवा, भारतीय रेल सेवा, भारतीय डाक सेवा, बैंक, अस्पताल, मंत्रालयों इत्यादि स्थानों में अपना बहुमूल्य योगदान दे रहे हैं।

भारत में तमाम संस्कृतियों के मुकाबिल आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। आदिवासी संस्कृति के पृष्ठों में मनुष्य के उत्थान-पतन की कहानियाँ छिपी हुई है। आदिवासी समाज के जन्मजात गुणधर्मो में सरलता, सहजता, समुदायिकता, अपरिग्रह, निश्छलता, बन्धुता, सच्चाई, इमानदारी, परिश्रमशीलता, सामुहिकता, समानता, आत्मनिर्भरता व प्रकृति से घनिष्ठता की भावना विद्यमान है। दुर्गम जंगलों, बीहड़ वनों, प्रकृति की अहलादक खुशनुमा गोद में हजारों वर्षो से मस्तमौला जीवन जीने वाले आदिवासियों की अपनी अलग ही दुनिया है। आदिवासी भारत के मूल बशिंदे हैं व देश के मूल निवासी हैं। आदिवासी जीवन व्यक्ति केन्द्रित नहीं समाज केन्द्रित रहा है। समूह भावना आदिवासी समाज के जीवन का सार है।[5]

झारंखड के आदिवासी समाज, का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि आदिवासी समाज, गैर आदिवासी से अलग अपनी एक दुनियाँ बनाए हुए हैं और वे अनेक समस्याओं के बावजूद आत्म निर्भर हैं। औधोगिकरण ने नगरीय मनोवृतियों को बढ़ाकर व्यक्तिवादिता तथा भौतिकतावाद के प्रति आकर्षण पैदा करके आदिवासी समाज में जटिल समस्याओं को जन्म दिया है। आज आदिवासियों का व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक व सामुदायिक रूप से विघटन हो रहा है। आधुनिकीकरण के चलते आदिवासी समुदाय अपनी अस्मिता को नष्ट होने से नहीं बचा पा रहे हैं। आदिवासियों के जंगल, जमीन व भाषा भी छीन लिये गये हैं। आदिवासियों के धार्मिक विमर्श में धर्मान्तरण एक संवेदनशील मुद्दा है। आदिवासी विकास की योजनाएँ उनका विकास नहीं विनाश कर रही है, उनके विकास की योजनाएँ केवल कागजों पर दौड़ लगा रही है। अगर झारखंड के आदिवासियों के रहन-सहन

पर गौर करें तो झारखंड की 78.75 : आदिवासियों की जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती हैं और जीविकोपार्जन के लिए ये लोग मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन एवं वनोत्पादन पर आश्रित हैं। यहाँ के आदिवासी समुदायों से बिरहोर, विरजिया, कोरबा, परहिया, असुर, सवर, सौरिया पहाड़िया तथा माल पहाड़िया आदि आज भी प्रकृति पर आश्रित है।[6]

प्रारंभ में आदिवासियों (जनजातियों) का वनों एवं वन सम्पत्तियों पर पूरा अधिकार था, किन्तु अब इन वस्तुओं पर सरकार का नियंत्रण कायम हो गया है।[7]

आदिवासी समाज और गांधी : आदिवासी समाज हर प्रकार से स्वावलम्बी हैं। चाहे सवाल भोजन, वस्त्र, आवास या चिकित्सा का हो। गांधीजी ने जिस स्वावलम्बन के दर्शन की बात कही है उसका जीता जागता उदाहरण आदिवासी समाज में देखने को मिलता है। आदिवासियों का आत्मनिर्भरता के प्रमाण इससे भी मिलते हैं कि आदिवासी समुदाय औपनिवेशिक काल से रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी सुविधाओं के लिए किसी पर भी निर्भर नहीं रहे यहाँ तक कि आदिवासी नमक भी अपना बनाया हुआ इस्तेमाल करते थे, और महात्मा गांधी आदिवासियों की इसी आत्मनिर्भरता से बहुत प्रभावित थे। गांधी जी भी बुनियादी शिक्षा, लघु एवं कुटिर उद्योग, खादी ग्रामोउद्योग आदि के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी (आत्मनिर्भर) बनाना चाहते थे। जिसकी झलक आदिवासी समाज में देखने को मिलती है। परन्तु आदिवासी समाज भी बदलाव के दौर से गुजर रहा है। बाहरी समाज के सम्पर्क के चलते आदिवासियों के व्यापक समाज में भी संकुचन की प्रवृति दृष्टिगत हो रही है। आदिवासी समाज में भी जाति का जहर फैलता नजर आ रहा है। सारी दुनिया यह समझने लगी है कि तेजी से फैल रही उपभोक्तावादी संस्कृति, भ्रष्टाचार, पर्यावरण असंतुलन, प्रदुषण, जैविक मूल्यों का ह्रास आदि समस्याएँ यह प्रमाणित कर रही है कि आधुनिकतावाद हमारे विकास का लक्ष्य नहीं हो सकता बल्कि मानव समुदाय की रक्षा के लिए नए रास्ते तलाशने होंगे, आदिवासियों की जड़ी बुटियों पर आधारित इलाज प्रणाली की वकालत पूरी दुनिया में हो रही है व हर्बल तकनीक पर काम किए जा रहे हैं। यह तकनीक तो आदिवासियों की विरासत है।

निष्कर्ष

हम यह कह सकते हैं कि आदिवासी जो यहाँ के मूल निवासी हैं उनकी अपनी सभ्यता-संस्कृति है और उनके जीवन में गांधीजी के स्वावलम्बन के दर्शन की झलक दिखाई देती है, क्योंकि गांधी जी ने जिस स्वावलम्बन की बात कही है उसका जीता जागता उदाहरण आदिवासी समाज है। समूह भावना आदिवासी समाज के जीवन का सार है। उनके जन्मजात गुणधर्मो में सरलता, सहजता, सच्चाई, इमानदारी, परिश्रमशीलता, सामुहिकता, समानता, आत्मनिर्भरता व प्रकृति से घनिष्ठता की भावना विद्यमान है। जो मानव जीवन की रक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. वी0 वीरोत्तम, झारखंड - इतिहास एवं संस्कृति बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना पृष्ठ संख्या 01
2. आदिवासी (भारतीय) विकिपीडिया hi.m.wikipidia.org
3. पूर्णेन्दु कुमार, झारखंड विस्तृत अध्ययन - अरिहन्त पब्लिकेशन्स (इ) प्रा0लि0 मेरठ, पृष्ठ संख्या 186
4. वर्मा, उमेश कुमार, जनजातीय समाज शास्त्र - जानकी प्रकाशन पटना, 2008 पृष्ठ संख्या 25-120
5. पुरुषोत्तम अग्रवाल, संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 1995 पृष्ठ संख्या 104
6. अमित कुमार शुक्ला, झारखंड का आदिवासी समाज, दर्शना पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या 71
7. अहमद डॉ. जियाउद्दीन, बिहार के आदिवासी, मोती लाल बनारसी दास प्रकाशन, पटना 2005 पृष्ठ संख्या 71-77

हिन्दी आलोचना और डॉ० नामवर सिंह

डॉ० कीर्ति माहेश्वरी

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

आलोचना का शब्दिक अर्थ, वैसे तो, भरपूर आँखों से देखना है, लेकिन दृश्य को बोधगम्य बनाने में ही इसका वास्तविक अर्थ छुपा होता है। व्यक्ति और समाज के बीच यह सतत चलने वाली प्रक्रिया है। जीवन और संसार को बोधगम्य बनाने के क्रम में ही साहित्यिक कृतियों का सृजन होता है। इसलिए रचनात्मक साहित्य को उचित ही जीवन की आलोचना की संज्ञा दी गई है। आलोचना शब्द 'लोच' जिसे पाणिनी ने अपनी पारिभाषिक शब्दावली में 'लोचृ' लिखा है। लोचृ का अर्थ है- आ+लोच्+अन+आ = आलोचना। 'लोच' या 'लोचृ' का अर्थ है 'देखना'। आलोचना किसी कवि या लेखक की कृति को देखना या परखना है। अंग्रेजी शब्द 'क्रिटिसिज्म' (यूरोप की अन्य भाषाओं में इसी के विभिन्न रूप प्रचलित है) मूलत: ग्रीक शब्द 'क्रिटिकोस' से बना है, जिसका शब्दार्थ है 'निर्णय' करना। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि आलोचना का मुख्य उद्देश्य किसी कलात्मक कृति का जीवन के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिगत रुचि के अनुसार अथवा सौन्दर्य के किसी प्रचलित मानदंड के अनुसार मूल्य निर्धारित करना है। इस संदर्भ में ई. रिचर्डस की राय भी ठीक है– "आलोचना साहित्यिक अनुभूति के विचारपूर्ण विवेचनोपरान्त उनका मूल्यांकन करती है।"[1]

इस प्रकार किसी रचना की सम्यक परीक्षा करते हुए उसके गुण-दोषों का उद्घाटन करना ही आलोचना कहा जाता है। आलोचना की विभिन्न पद्धतियों में स्वच्छंदतावादी, मनोविश्लेषणात्मक, समन्वयवादी, मार्क्सवादी या प्रगतिवादी इत्यादि पद्धतियाँ बहुत चर्चित रही हैं।

हिन्दी के आधुनिक आलोचकों में डॉ. नामवर सिंह का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। वे समाजवादी जीवन-दृष्टि और नयी कविता की भाव-भूमि के समवेत् बोध को लेकर आलोचना में प्रवृत्त हुए। अपने पूर्ववर्ती प्रगतिवादी आलोचकों से उनकी भिन्न्ता इस बात में है कि उन्होंने नयी कविता को सहानुभूति से देखा। मुक्तिबोध प्रगतिवादी आलोचकों से इसी बात की माँग कर रहे थे। नामवर सिंह ने प्राचीन एवं नवीन में सेतु का कार्य अपनी आलोचना पद्धति को सुदृढ़ किया है। नामवर सिंह हिन्दी की नवीन रचनाओं के आलोचक तथा मार्क्सवादी समीक्षक के रूप में वे प्रतिष्ठित रहे हैं। 'आलोचना' पत्रिका के संपादक के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय रहा हैं।

कृतियाँ-हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान (1952), छायावाद (1955), पृष्ठथ्वीराज रासो की भाषा (1956), इतिहास और आलोचना (1957), कहानी : नयी कहानी (1957-1965), कविता के नये प्रतिमान (1968), दूसरी परम्परा की खोज (1982), वाद विवाद संवाद (1989), आलोचक के मुख से (2005), आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ।

डॉ. नामवर सिंह मूलत: व्यावहारिक समीक्षक एवं प्रगतिशील विचारधारा के पोषक रहे हैं। प्रारम्भ में आपने आदिकालीन साहित्य, अपभ्रंश भाषा, पृष्ठथ्वीराज रासो, जैन साहित्य आदि से सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा की थी। आपने आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की माक्सर्ववादी दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की है।

आदिकालीन साहित्य: हिन्दी साहित्य के आदिकाल में दो स्पष्ट विरोधी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रचलित थी। एक प्रवृत्ति वह थी जो क्रमश: क्षीयमाण की दूसरी वह थी जो क्रमश: वर्धमान थी। पहली का संबंध राजस्तुति, सामंतों के चरित वर्णन आदि से था और दूसरी का संबंध नीची समझी जाने वाली जातियों के धार्मिक असंतोष, रूढ़ि विरोध..... उच्चतर आचार, व्यापक भगवत प्रेम,

मानवीय आत्मगौरव आदि से था। एक का नाम तथाकथित 'वीरगाथा काव्य' है, दूसरी का तथाकथित 'युगधारा'।[2] 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' का मूल विषय, जैसा कि पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है, एक प्राचीन भाषा का विवेचन है और इसकी रचना का उद्देश्य यह दिखाना है कि हिन्दी अपभ्रंश की जीवन्त परम्पराओं को लेकर आगे बढ़ी है।[3] "इन्होंने (जैन कवियों ने) अति मानवीय प्रसंगों को बुद्धि संगत और मानवीय रूप देने की चेष्टा की है, जैसे-गंगा उत्पत्ति, वन्नरों की उत्पत्ति, रावण का दशानन होना आदि।"[4]

छायावाद: ये नामवर सिंह की पहली महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक समीक्षा पुस्तक है। इस पुस्तक में उन्होंने छायावाद की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसकी सामाजिकता को उद्घाटित किया है। उनका लिखना है कि निराला ने जो 'मैं' शैली अपनायी है, वह मात्र शैली नहीं है कवि या अपने व्यक्तित्व को प्रकट करना चाहता है। छायावादी कविता का आरंभ वैज्ञानिक व्यक्तिवाद से हुआ और इसने सामंती संकीर्णताओं को तोड़ा और आत्मप्रचार कर विराट की उपासना प्रस्तुत की। छायावाद का पर्यवसान प्रगतिवाद में होना बिल्कुल उसी तरह है जैसे व्यक्तिवाद का समाजवाद में होता है। इसके लिए वे लिखते है-"छायावाद का स्थायित्व उसके व्यक्तिवाद में नहीं, उसकी आत्मीयता में है, काल्पनिक उड़ान में नहीं, आत्म प्रसार में है, समाज भीरूता में नहीं, प्रकृति प्रेम में है, प्रकृति-पलायन में नहीं, नैसर्गिक जीवन की आकांक्षा में है, आवेग पूर्व भावोच्छवास में नहीं, संवेदनशीलता में है..... अज्ञात की जिज्ञासा में नहीं, ज्ञान के प्रसार में है।"[5]

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार– "जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है। वाद की अपेक्षा 'शील' को अधिक अच्छा और उदार समझकर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि दिलासा है और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रसन्न विरोध भाव छिपा है।"[6] प्रगतिवाद को वे रचनात्मक साहित्य और आलोचनात्मक मानदंड दोनों के लिए प्रयुक्त करते है।

पृष्ठथ्वीराज रासो की भाषा-इसकी भूमिका में उन्होंने कर्नल टॉड, डॉ. वूलर, डॉ. मारिसन प्रभूति पाश्चात्य इतिहासकारों को शोधपरक ऐतिहासिक सामग्री के महत्त्व को स्वीकार किया है। बीम्स, हॉर्नले, ग्रियर्सन, डॉ. टेस्सीटोरी-जैसे भाषावैज्ञानिकों और भाषाशास्त्रियों ने 'पृष्ठथ्वीराज रासो की भाषा' का विश्लेषण किया है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नहीं, बीम्स और हॉर्नले ने 'रासो' को प्राचीनतम पांडुलिपियों के पुनरूद्धार की ओर भी ध्यान दिया है।[7] जहाँ डॉ. नामवर सिंह ने 'पृष्ठथ्वीराज रासो' की भाषा-संबंधी समस्या का उल्लेख किया है, यहाँ वे डॉ. ग्रियर्सन के विचारों से ही सर्वाधिक प्रभावित हुए है और डॉ. ग्रियर्सन के एतद्विषयक विचारों को ही उद्धर्तव्य समझते है। 1956 वाले संस्करण की भूमिका के तीसरे पृष्ठ पर ही डॉ. ग्रियर्सन की ओर तीन मर्तेक्य-सूचक संकेत मिलते है। डॉ. नामवर सिंह के कतिपय निष्कर्ष ध्यातव्य है-

- डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार पृष्ठथ्वीराज रासो के वर्तमान रूप का भाषावैज्ञानिक अध्ययन उपयोगी हो सकता है। (डॉ. नामवर सिंह ने इस कथन का पूरा-पूरा समर्थन किया है।)
- यही वजह है कि बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी की ओर से रासो का संपादन करते समय बीम्स और हॉर्नले ने उसकी भाषा पर भी विचार किया है।
- .....इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह नि:संदिग्ध कहा जा सकता है कि बीम्स द्वारा प्रस्तुत रासो के व्याकरण की रूपरेखा का ऐतिहासिक महत्त्व है।
- बीम्स के व्याकरण की सीमाएँ उनके युग की सीमाएँ हैं लेकिन उनकी अनेक स्थापनाएँ युग की सीमाओं के पार भी महत्त्वपूर्ण हैं।

इससे इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि 'पृष्ठथ्वीराज रासो' विषयक अनुसंधान-कार्य में पश्चिम के हॉर्नले और बीम्स-सरीखे विद्वान अग्रगण्य रहे हैं और साथ ही इन विद्वानों के प्रति डॉ. नामवर सिंह के सम्मानपूर्ण दृष्टिकोण का पता लगता है। यदि हम अन्य साहित्यकारों की स्थापनाओं को स्वीकार करते है और तदुपरांत उनका प्रयोग भी, तो कहना होगा कि हम उन पाश्चात्य साहित्यकारों से प्रभावित हुए हैं।

प्रगतिवाद: "प्रगतिशील साहित्य लेखक की स्वयंभू अंत: प्रेरणा से उद्‌भूत नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम में वह भी परिवर्तित और विकसित होता रहता है।..... प्रगतिवाद..... राजनैतिक जागरण से आरम्भ होकर क्रमश: यथार्थ की ओर यथार्थवाद नग्न यथार्थवाद से आरम्भ होकर स्वस्थ सामाजिक यथार्थ की ओर अग्रसर होता जा रहा है।"

प्रगतिशील साहित्य को नामवर सिंह ने अंग्रेजी के 'प्रोग्रेसिव लिट्रेचर' का ठीक ही हिन्दी अनुवाद कहते है।[8]

प्रयोगवाद: "चरम व्यक्तिवाद ही प्रयोगवाद का केन्द्र बिन्दु है। अज्ञेय की तरह इन कवियों में भी प्रयोगवाद (नेमिचंद जैन, मुक्तिबोध, भारतभूषण) घोर असंतोष था।..... मुक्तिबोध में 'सक्रिय जीवन शक्ति और अधिक है।..... कुल मिलाकर प्रयोगवादी कविताएँ हासोन्मुख, मध्यमवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र हैं। इनमें मध्यवर्गीय हीनता, दीनता, अनास्था, कटुता, अंर्तमुखता, पलायन आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है।"[9] प्रयोगवाद का विवेचन करते हुए वे लिखते है कि इस वाद का उदय ही मोह-भंग से हुआ, इसलिए इसमें छायावादी कल्पनाशीलता के विपरीत यथार्थवादी का आग्रह अधिक था।[10]

रहस्यवाद: यूरोपीय रहस्यावाद से भिन्न "मध्ययुगीन संतों का रहस्यवाद प्राय: जाति-प्रथा, ऊँच-नीच के विचार, पुरोहितों के अत्याचार एवं सामंती शोषण के विरूद्ध विद्रोह से जुड़ा है।"..... आधुनिक यूरोप का रहस्यवाद पूँजीवादी संध्या के हताश मध्यवर्ग की यथार्थ भीरू प्रतिक्रियावादी विचारधारा से पोषित है।"[11]

नयी कविता-'कविता के नये प्रतिपादन' के केन्द्र में मुक्तिबोध है। "नयी कविता में मुक्तिबोध की स्थिति वही है जो छायावाद में निराला की थी।" 'कविता के नये प्रतिमान' दो खंडों में बँटी है। प्रथम खंड में परम्परा से प्रतिष्ठित प्रतिमानों की प्रासंगिकता पर अत्यन्त ध्वंसात्मक शैली में विचार किया गया है और दूसरे खंड में नयी कविता के संदर्भ में काव्य-मूल्यों का प्रश्न उठाया गया है। पुस्तक का यही अंश अधिक विधेयात्मक और महत्त्वपूर्ण है। इस पुस्तक के दूसरे खंड में अनुभूति की प्रामाणिकता, ईमानदारी, जटिलता, द्वन्द्ध, तनाव, विसंगति, विडम्बना, सर्जनात्मक भाषा, बिम्बात्मकता, फैंटेसी, नाटकीयता आदि की चर्चा भी गई है। मुक्तिबोध ने ईमानदारी को आत्मनिष्ठता के दलदल से निकालकर वस्तुनिष्ठता की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित किया और ईमानदारी में सत्यता के प्रश्न को जोड़कर मूल्यांकन के लिए एक वस्तुनिठ वैज्ञानिक औजार प्रदान किया।"

"नये कविता के संदर्भ में विसंगति और विडम्बना के संदर्भ में नामवर सिंह जी लिखते है-"मुक्तिबोध की 'चंबल घाटी' में और 'अंधेरे में' जैसी भयावह त्रासदी रंग की नाटकीय कविताओं के अंतर्गत काले बादलों को चीर कर बिजली के कौध के समान हल्के-पुल्के संक्षिप्त प्रसंग झलक जाते हैं जिनसे विडम्बना के सर्जनात्मक उपयोग का गहरा अहसास होता है।" नयी कविता की संरचना दो प्रकार की है-प्रगीतात्मक और नाटकीय। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' आकार में लम्बी होने पर भावबोध के स्तर पर अनुचिंतनात्मक है और उसकी संरचना भी वर्तुलाकार है। जबकि 'अंधेरे में' नाटकीय एकालाप है। इस कविता का संसार एक साथ ही 'दहशत भरा' और 'उम्मीद भरा' दोनों ही है। "कवि ने यथार्थ पर अंधेरे की एक चादर डाल कर उसके अंदर से एक जीती-जागती स्पष्ट होकर दुनियां को उभार कर रख दिया है जो यथार्थ से भी अधिक यथार्थ मालूम होती है।"

फैंटेसी: फैंटेसी का प्रयोग कथा चित्रात्मक और सघन हो जाती है। "नयी कविता के चलते यह आम धारणा बनी कि बड़ा कवि वह है, सार्थक और महत्त्वपूर्ण कवि वह है जो आइडियोलोजिकल नहीं है। विचारधारा कविता की दुश्मन है। कविता में विचारधारा महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है-अनुभूति की प्रामाणिकता।"

नई कहानी: "चूंकि नये कहानीकार किसी पूर्व निर्धारित जीवन-दर्शक द्वारा निर्दिष्ट 'सामाजिक दायित्व' के निर्वाह के खतरे से सशंकित है, इसलिए वे अपने अनुभवों के आधार पर ही रचना में सामाजिकता को व्यक्त करने की कोशिश करते जा रहे हैं।. ..... प्रगतिवादी दौर की तरह इन कहानियों में सर्वहारा के चित्र नहीं हैं और न वैसी प्रखर चेतना ही है किन्तु व्यापक रूप से आज के उपेक्षितों और कल के उपेक्षितों के साथ आत्मीय लगाव अवश्य है।"

'कहानी-नयी कहानी' की रचना से नामवर सिंह ने काव्य-समीक्षा के स्तर को उठाया। हिन्दी आलोचना के इतिहास में काव्य-समीक्षा की एक समृद्ध परम्परा वर्तमान थी किन्तु कथा-समीक्षा की किसी सुनिर्दिष्ट परम्परा के अभाव में सूक्ष्म विश्लेषण

के माध्यम से समसामयिक कथा-साहित्य की यह समीक्षा महत्त्वपूर्ण कही जायेगी। यूं कहानी की समीक्षा के लिए उन्होंने कविता के प्रतिमानों का प्रयोग किया या कथा समीक्षा के पृष्ठथक् प्रतिमान विकसित किए-यह विवादास्पद है। पिछले बीस वर्षों में रचना के क्षेत्र में नये प्रयासों के द्वारा जो साहित्यिक मान्यताएँ सामने आयीं, नामवर सिंह ने उन्हें अपनी व्यावहारिक समीक्षाओं और सिद्धान्त-चर्चा के द्वारा व्यवस्थित रूप दिया।

वाद विवाद सम्वाद: इसके बहाने वे कविता की दूसरी परम्परा का अनुसंधान कर रहे हैं। "नयी कविता के भीतर जो दूसरी परम्परा थी उसके वाहक मुक्तिबोध थे और नयी कविता के बाहर जो दूसरी परम्परा है उसके वाहक नागार्जुन और त्रिलोचन है।" "त्रिलोचन की कविता हिन्दी की जातीय कविता है। उनकी कविता में मानवीय सामाजिक संबंधों की गरमाई के बीच मनुष्य की वैयक्तिकता भी अक्षुण्ण है।"

आगे पत्रकारिता के बारे में उन्होंने लिखा है कि 'आलोचना के क्षेत्र में पत्रकारिता के प्रवेश से जो व्यावसायिक खतरा पैदा हुआ है, वह हिन्दी में हाल की घटना है। पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी में पहले भी थीं, पर इतनी नहीं। इसके अतिरिक्त, पत्र-पत्रिकाओं का यह व्यावसायिक रूप भी न था। इन व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं के पाठक भारतेन्दु, महावीरप्रसाद द्विवेदी और प्रेमचंद के हिन्दी प्रेमी नहीं हैं और न ही हैं 'रूपाभ', 'प्रतीक', 'कृति' आदि के विशिष्ट ग्राहक। नवीन व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं का अधिकाँश पाठक समुदाय फिल्मों के समान ही साहित्य का भी चटपटा परिचय प्राप्त करना चाहता है और उसके लिए साहित्यिक विवाद भी फिल्मी मारकाट की सी दिलचस्पी की घटनाएँ हैं। जाहिर है कि इन पत्रिकाओं में साहित्य चर्चा का रूप सनसनीखेज होगा। कहने के लिए इन पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य को लोकप्रिय रूप में प्रस्तुत किया जाता है किन्तु साहित्य संबंधी ये लोकप्रिय लेख साहित्य समालोचना के लिए बहुत महँगे पड़ते हैं।'[12]

आलोचना के भाषा के संबंध में डॉ. नामवर सिंह ने एक स्थान पर लिखा है कि 'रचना के समान ही आलोचना की भाषा के लिए भी कोई निरपेक्ष प्रतिमान स्थिर नहीं किया जा सकता। कठिनाई यह है कि रचना के क्षेत्र में इस बात को स्वीकार करने के बावजूद आलोचना के क्षेत्र में एक विशेष प्रकार की शास्त्रीय भाषा का आग्रह किया जा सकता है। शास्त्रियों की धारणा है कि साहित्यशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का कोश ही आलोचना की भाषा है। ऐसे ही आचार्य आलोचना के क्षेत्र में कभी प्रतिमान और मानदंड की माँग करते हैं तो कभी पद्धति या मैथॉडॉलौजी की। इससे भाषा में एकरूपता आती है, वाग्जाल की सृष्टि होती है सो अलग। पद्धति में सुरक्षा तो है किन्तु ऐसी अर्थगत अन्वेषण की संभावना न्यूनतम है। पद्धति के आग्रही वस्तुत: साहित्य-शास्त्री हैं, आलोचक नहीं। वस्तुत: आलोचना में कोई एक पद्धति नहीं, बल्कि पद्धतियाँ हैं। प्रत्येक आलोचना पद्धति के अपने पारिभाषिक शब्द हैं और ये शब्द साहित्य एक निश्चित धारणा से संबद्ध हैं। इस संदर्भ को भूलकर उन शब्दों और पद्धतियों का सामान्य प्रयोग खतरनाक है।'[13]

इतिहास और आलोचना: इस पुस्तक में संकलित निबंधों के माध्यमों से आलोचक ने काव्य-समीक्षा के अलावा सामान्य रूप से साहित्यिक मूल्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। 'व्यापकता और गहराई' निबंध में साहित्य के संदर्भ में आम तौर से प्रचलित उस दृष्टिकोण का खंडन किया गया है जिसके अनुसार इन दोनों को विरोधी गुणों के रूप में देखते हुए गहराई को प्राय: अधिक मूल्यवान ठहराया जाता है। नामवर सिंह ने इनमें परस्पर विरोध के स्थान पर सह-संबंध की व्याख्या की है।[14]

दूसरी परम्परा की खोज: इस पुस्तक में वे अपने गुरु हजारीप्रसाद द्विवेदी के प्रति श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते है। वे द्विवेदी जी के जीवन के घटनात्मक ब्यौरों का विस्तार करने के बजाय उन्हीं अंशों की चर्चा करते है जो उनकी रचनात्मक दृष्टि की समझ में सहायक हो सकते थे। आलोचक नामवर सिंह के आलोचकों ने इसे तत्काल रामचंद्र शुक्ल बनाम हजारीप्रसाद द्विवेदी की बहस का रूप दे दिया।[15]

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ: इस ग्रंथ की भूमिका से पता चलता है कि इसकी रचना का एक उद्देश्य यह भी था कि हिन्दी में अनेक प्रचलित-अप्रचलित देशी-विदेशी वादों का अंधाधुंध चर्चा का निवारण हो जाय। नामवर सिंह ने साहित्यिक वादों को "अपने साहित्य एवं समाज के विशेष परवेश में अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ कहा" है। उनके अनुसार प्रत्येक साहित्यिक आंदोलन के पीछे एक इतिहास होता है। उदाहरणार्थ, फ्रांसीजी प्रतीकवाद और अंग्रेजी बिंबवाद अपने-अपने देशकाल से, अविच्छिन रूप में

संबद्ध है, इसलिए हिन्दी में इन वादों की चर्चा करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है कि अपने यहाँ ये वाद किसी साहित्यिक आंदोलन के रूप में चले या नहीं और कुल मिलाकर इन्होंने हमारी साहित्यिक परम्परा में क्या योगदान दिया है, कहना न होगा कि हिन्दी में प्राय: इस विवेक को पीठ ही दी गयी है।"[16]

इस पुस्तक के विषय-विवेचन में अनेकत्र पाश्चात्य लेखकों और कवियों के नाम मिलते है, जो इस बात के द्योतक है कि डॉ. नामवर सिंह हिन्दी में पाश्चात्य वादों की अंधाधुंध चर्चा वाली प्रवृत्ति की आलोचना इसलिए नहीं करते कि वे उन वादों से पूर्णतया परिचित नहीं हैं बल्कि इसलिए करते है कि वे उनसे अच्छी तरह से परिचित थे।

अंत में, डॉ. रामचंद्र तिवारी-"नामवर सिंह ने मार्क्सवादी और भाववादी दोनों ही प्रकार की समीक्षाओं का गहरा अध्ययन किया है।..... नयी से नयी रचना को परखने और उसकी तह में प्रवेश करने की उनकी क्षमता अद्‌भुत है।" इस प्रकार डॉ. नामवर सिंह ने हिन्दी आलोचना साहित्य को नया कलेवर प्रदान किया है। उनमें रचना को परखने की सूक्ष्म समझ एवं बुद्धि-कौशल अग्रणी रहा हैं। जनतंत्र और आलोचना, मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के विकास की दिशा, आलोचना की स्वायत्तता, आलोचना की भाषा, प्रगतिशील साहित्यधारा में अंधलोकवादी रुझान आदि पर नामवर सिंह के विचार मार्क्सवादी-आलोचना के क्षेत्र में उनका विशिष्ट योगदान रहा है। उनकी आलोचना पद्धति में पाश्चात्य प्रभाव भी उजागर होता है।

संदर्भ

1. डब्लिन रिव्यू : निकोला पर्टीक्यूरिसेमैन, पृष्ठ 21
2. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान : नामवर सिंह, पृष्ठ 267
3. वही, पृष्ठ 254
4. वही, पृष्ठ 206
5. छायावाद : नामवर सिंह, पृष्ठ 156
6. बुद्धि प्रकाश-इतिहास दर्शन, पृष्ठ 12
7. पृष्ठथ्वीराज रासो की भाषा : डॉ. नामवर सिंह, भमिका, पृष्ठ 1
8. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ 80
9. वही
10. वही, पृष्ठ 148
11. वही, पृष्ठ 68
12. वाद-विवाद-सम्वाद : डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ 20-1
13. वही, पृष्ठ 28
14. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी : डॉ. निर्मला जैन, पृष्ठ 81
15. वही, पृष्ठ 82
16. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ 2

विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार का उनके आवासीय वातावरण, स्थानीयता तथा लिंग-भेद के संदर्भ में अध्ययन

डॉ० श्याम सुन्दर कुशवाहा

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी

तनुज कुमार

शोध छात्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में उच्च शिक्षा स्तर के विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार का उनके आवासीय वातावरण, स्थानीयता तथा लिंग-भेद के संदर्भ में अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त किया गया है। न्यादर्श हेतु उच्च शिक्षा स्तर के 300 छात्रावासीय एवं 300 गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों का चयन झाँसी शहर के विभिन्न महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालय परिसर से उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया। प्रदत्तों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित सांवेगिक व्यवहार मापनी का प्रयोग किया गया है। सांवेगिक व्यवहार का मापन दो आयामों यथा सांवेगिक परिपक्वता तथा सांवेगिक बुद्धिमत्ता पर किया गया है। संकलित प्रदत्तों के विश्लेशण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेशण के फलस्वरूप पाया गया कि छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नही पाया गया है। समग्र सांवेगिक व्यवहार पर ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों तथा छात्र तथा छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।

Key Terms: सांवेगिक व्यवहार, आवासीय वातावरण, स्थानीयता तथा लिंग-भेद

प्रस्तावना

सांवेगिक व्यवहार का सम्बन्ध संवेग से है। मानव जीवन में संवेगों का बड़ा महत्व है। मनुष्य को कार्यो में संवेगों द्वारा ही प्रेरणा मिलती है। संवेग ही मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में सहायता करते हैं तथा उसे कुंठित करते है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन में सुख-दु:ख, भय, क्रोध प्रेम ईर्ष्या, घृणा आदि का अनुभव होता रहता है। इस प्रकार के अनुभवों की उत्पत्ति किसी प्रकार की उत्तेजना प्राप्त होने या परिस्थिती के सामने आने पर होती है। किसी प्रकार की उत्तेजना समाप्त होने पर व्यक्ति जिस मनोभाव का अनुभव करता है उसे संवेग कहते है। संवेग को क्रिया का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत माना गया है। संवेग शब्द अंग्रेजी भाषा के इमोशन शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो लैटिन भाषा के इमोवर शब्द से बना है। जिसका अर्थ होता है उत्तेजित करना। इस संवेग व्यक्ति की एक उत्तेजित अवस्था का दूसरा नाम है। संवेग एक ऐसे आत्मनिष्ठ भाव को अवस्था है जिसमें कुछ

शारीरिक उत्तेजन पैदा होता है और फिर जिसमें कुछ खास व्यवहार भी होते है। संवेग का भाव से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। कोई भी संवेग भाव के रूप में ही प्रकट होता है। व्यक्ति दूसरों के व्यवहारों का निरीक्षण करता है तथा उन्हें देखकर अपने सांवेगिक व्यवहार को विकसित करता है। शिक्षा के क्षेत्र में छात्र को सीखने बहुत अवसर प्राप्त होते हैं। छात्रों का वातावरण भी व्यक्ति के सार्वांगिंक व्यवहार को प्रभावित करता है। संवेगात्मक बुद्धि का मानव जीवन में बहुत महत्व है। आधुनिक शोधों से स्पष्ट है कि व्यक्ति को अपने जीवन में जो भी सफलता प्राप्त होती है उसमें 20% बुद्धिलब्धि तथा 80% सांवेगिक बुद्धि का योगदान होता है। संवेगात्मक परिपक्वता से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अपने एवं दूसरों के संवेगों का मूल्यांकन करना है। भावों की पहचान करना एवं अभिव्यक्त करना, दिल व दिखलाना, दूसरी के विचारों की प्रशंसा करना तथा तत्कालिक मनोवैज्ञानिक तुष्टि को विलम्बित करने की क्षमता से है। सांवेगिक व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न शोधकर्ताओं ने शोध कार्य किये है–

सोनी (2010) ने घरेलू व कामकाजी महिलाओं के बालक बालिकाओं की सांवेगिक परिपक्वता तथा समायोजन में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया। **जुबैर (2011)** ने छात्रावासीय छात्र-छात्राओं की सांवेगिक बुद्धिमत्ता में सार्थक अन्तर पाया। **स्वामी (2015)** ने डे बोर्डिंग तथा सामान्य विद्यालयों के विद्यार्थियों के सांवेगिक समायोजन में सार्थक अन्तर पाया। **कुमार (2012)** ने पारिवारिक वातावरण तथा सांवेगिक परिपक्वता के अध्ययन में ग्रामीण व शहरी समूह में सार्थक अन्तर पाया। **प्रजापति (2015)** ने सांवेगिक बुद्धि, सृजनात्मकता तथा दुश्चिन्ता के अध्ययन में उच्च दुश्चिन्ता वाले विद्यार्थियों में सांवेगिक बुद्धि का उच्च स्तर पाया। **श्रीवास्तव एवं अन्य (2016)** ने छात्रावास तथा सांवेगिक बुद्धि का अध्ययन किया। **सिंह (2017)** ने लिंग भेद तथा स्थानीयता के आधार पर सांवेगिक बुद्धिमत्ता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया। **डेनिसमन एवं अन्य (2019)** ने सामाजिक दक्षता व्यवहार तथा सांवेगिक नियमन कौशल पर मान्टेशरी पद्धति का सार्थक प्रभाव पाया। **ग्योनर (2019)** ने सांवेगिक मजबूती तथा सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किया। **मुनीर एवं अन्य (2016)** ने आवासीय वातावरण तथा मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों के अध्ययन में छात्रावासीय तथा दिवा छात्रों के संवेगों में सार्थक अन्तर पाया। **सनी एवं अन्य (2018)** ने छात्रावासीय तथा दिवा छात्रों की सांवेगिक परिपक्वता में सार्थक अन्तर नहीं पाया। **जेस्ट एवं अन्य (2018)** ने छात्रावासीय तथा दिवा छात्रों में लिंग भेद के आधार पर सांवेगिक बुद्धिमत्ता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया। उपरोक्त अध्ययनों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार से सम्बन्धित परिणामों में काफी भिन्नता है। इसी तथ्य के आलोक में शोधकर्ता ने प्रस्तुत विषय को अध्ययन के लिए चुना।

उद्देश्य–

1. छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. छात्र एवं छात्राओं के सांवेगिक व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं–

1. छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. छात्र एवं छात्राओं के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

शोध प्रक्रिया–

1. अध्ययन विधि- शोध अध्ययन में वर्णनात्मक शोध की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

2. अध्ययन की प्रतिदर्श- वर्तमान शोध अध्ययन में प्रतिदर्श के रूप में उच्च शिक्षा स्तर के 600 विद्यार्थियों का चयन झाँसी शहर के विभिन्न महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालय परिसर से उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि द्वारा एकत्रित किया गया है।

3. अध्ययन उपकरण- आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित सांवेगिक व्यवहार मापनी का प्रयोग किया गया है। जिसमें कुल 50 प्रश्न है। सांवेगिक व्यवहार का मापन दो स्तर पर किया गया है। इन स्तरों को अध्ययन में सांवेगिक व्यवहार की आयाम के रूप में वर्णित किया गया है। ये आयामएं सांवेगिक परिपक्वता तथा सांवेगिक बुद्धिमत्ता है। प्रत्येक विद्यार्थी को प्रश्नावली में पाँच अनुक्रिया विकल्प यथा पूर्णत: सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत तथा पूर्णत: असहमत के लिये क्रमश: 5, 4, 3, 2 तथा 1 अंक प्रदान किया गया है। नकारात्मक प्रश्नों का अंकन इसके विपरीत यथा 1, 2, 3, 4 तथा 5 अंक प्रदान करके किया गया है।

4. अध्ययन के चर- वर्तमान अध्ययन में सांवेगिक व्यवहार आश्रित चर तथा आवासीय वातावरण, लिंगभेद तथा स्थानीयता को स्वतन्त्र चर के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

5. प्रयुक्त सांख्यिकी- आँकड़ों के विश्लेषण के शोध अध्ययन में मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-मान की गणना की गयी है।

परिणाम व विवेचना

1. छात्रावासीय तथा गैर-छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार की तुलना: छात्रावासीय तथा गैर-छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार की तुलना करने के लिए परीक्षण प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा दोनों समूह के मध्य अन्तर की सार्थकता के लिए टी-मान की गणना की गयी है जिसे निम्न तालिका संख्या-1 में दर्शाया गया है।

तालिका सं0-1: छात्रावासीय तथा गैर-छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार की तुलना

सांवेगिक व्यवहार एवं सार्थकता स्तर सम्बन्धित आयाम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	स्वतंत्राश
संवेगिक परिपक्वता .05 स्तर पर सार्थक	छात्रावासीय	300	115.27	13.54	2.06	598
	गैर छात्रावासीय	300	113.25	10.11		
सांवेगिक बुद्धिमत्ता .05 स्तर पर सार्थक	छात्रावासीय	300	83.18	7.10	0.07	598
	गैर छात्रावासीय	300	83.22	7.25		
समग्र सांवेगिक व्यवहार .05 स्तर पर सार्थक	छात्रावासीय	300	198.46	16.14	1.61	598
	गैर छात्रावासीय	300	196.48	13.78		

सारिणी संख्या-1 से स्पष्ट है कि सांवेगिक परिपक्वता आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थयों का मध्यमान (M_1 = 115.27), गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के मध्यमान (M_2 = 113.25) से अधिक है। सांवेगिक बुद्धिमत्ता आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थयों का मध्यमान (M_1 = 83.18), गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के मध्यमान (M_2 = 83.22) से कम है। समग्र सांवेगिक व्यवहार पर छात्रावासीय विद्यार्थयों का मध्यमान (M_1 = 198.46), गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के मध्यमान (M_2 = 196.48) से अधिक है। छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार के आयाम सांवेगिक परिपक्वता तथा सांवेगिक बुद्धिमत्ता के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता की जाँच के लिए प्राप्त टी-मूल्य क्रमश: 2.06 तथा 0.07 है। समग्र सांवेगिक व्यवहार के लिए टी-मूल्य 1.61 है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए .05 सार्थकता स्तर पर सांवेगिक परिपक्वता के लिए टी-मूल्य सार्थक है। जबकि सांवेगिक बुद्धिमत्ता और समग्र सांवेगिक व्यवहार के लिए टी-मूल्य असार्थक है। इससे स्पष्ट है कि सांवेगिक परिपक्वता आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थी, गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों से श्रेष्ठ है। अत: शून्य परिकल्पना *'छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है'* स्वीकृत होती है। कहा जा सकता है कि छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। जिसका कारण छात्रावासीय छात्रों में घर से दूर रहने के कारण उत्पन्न होने वाला आत्मनिर्भरता का भाव हो सकता है। **स्वामी (2015) तथा अमीना व अन्य (2016)** ने अपने अध्ययन में आवासीय वातावरण के आधार पर सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जो कि उपरोक्त परिणाम का समर्थन करता है।

2. ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार की तुलना: ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार की तुलना करने के लिए परीक्षण प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा दोनों समूह के मध्य अन्तर की सार्थकता के लिए टी-मान की गणना की गयी है जिसे निम्न तालिका संख्या-2 में दर्शाया गया है।

तालिका सं0-2: ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार की तुलना

सांवेगिक व्यवहार एवं सार्थकता स्तर सम्बन्धित आयाम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	स्वतंत्राश
सांवेगिक परिपक्वता .05 स्तर पर सार्थक	ग्रामीण	275	115.42	13.26	2.19	598
	शहरी	325	113.28	10.70		
सांवेगिक बुद्धिमत्ता .01 स्तर पर सार्थक	ग्रामीण	275	84.52	7.63	4.19	598
	शहरी	325	82.09	6.57		
समग्र सांवेगिक व्यवहार .01 स्तर पर सार्थक	ग्रामीण	275	199.95	16.39	3.76	598
	शहरी	325	195.37	13.42		

सारिणी संख्या-2 से स्पष्ट है कि सांवेगिक परिपक्वता आयाम पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान (M_1 = 115.42), शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान (M_2 = 113.28) से अधिक है। सांवेगिक बुद्धिमत्ता आयाम पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान (M_1 = 84.52), शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान (M_2 = 82.09) से अधिक है। समग्र सांवेगिक व्यवहार पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान (M_1 = 199.95), शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान (M_2 = 195.37) से अधिक है। ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार के आयामों सांवेगिक परिपक्वता तथा सांवेगिक बुद्धिमत्ता के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता की जाँच के लिए टी-मूल्य क्रमश: 2.19 तथा 4.19 है। जबकि समग्र सांवेगिक व्यवहार के लिए टी-मूल्य 3.76 है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए .01 सार्थकता स्तर पर सांवेगिक बुद्धिमत्ता आयाम तथा समग्र सांवेगिक व्यवहार के लिए टी-मूल्य सार्थक है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए .05 सार्थकता स्तर पर सांवेगिक परिपक्वता के लिए टी-मूल्य सार्थक है। इससे स्पष्ट है कि सांवेगिक परिपक्वता आयाम, सावंगिक बुद्धिमत्ता आयाम तथा समग्र सांवेगिक व्यवहार पर ग्रामीण विद्यार्थी, शहरी विद्यार्थियों से श्रेष्ठ पाये गये है। अत: शून्य परिकल्पना '*ग्रामीण तथा शहरी विद्यार्थियों के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है*' अस्वीकृत होती है। कहा जा सकता है कि ग्रामीण व शहरी समूह के सांवेगिक व्यवहार में सार्थक अन्तर पाया गया। जिसका कारण ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों का अल्प आयु में ही पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों का निर्वाहन करना जिससे उनमें आत्मनिर्भरता का भाव उत्पन्न होना, हो सकता है। **कुमार (2012)** ने अपने अध्ययन में ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों की सांवेगिक परिपक्वता में सार्थक अन्तर पाया जो कि उपरोक्त परिणाम का समर्थन करता है।

3. छात्र एवं छात्राओं के सांवेगिक व्यवहार की तुलना: छात्र एवं छात्राओं के सांवेगिक व्यवहार की तुलना करने के लिए परीक्षण प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा दोनों समूह के मध्य अन्तर की सार्थकता के लिए टी-मान की गणना की गयी है जिसे निम्नवत् तालिका संख्या-3 में दर्शाया गया है।

तालिका सं0-3: छात्र-छात्राओं के सांवेगिक व्यवहार की तुलना

सांवेगिक व्यवहार एवं सार्थकता स्तर सम्बन्धित आयाम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	स्वतंत्राश

सांवेगिक परिपक्वता .05 स्तर पर सार्थक	छात्र	300	115.27	13.04	2.06	598
	छात्राएं	300	113.26	10.74		
सांवेगिक बुद्धिमत्ता .01 स्तर पर सार्थक	छात्र	300	84.72	7.30	5.27	598
	छात्राएं	300	81.69	6.73		
समग्र सांवेगिक व्यवहार .01 स्तर पर सार्थक	छात्र	300	199.99	15.65	4.16	598
	छात्राएं	300	194.95	13.94		

सारिणी संख्या-3 से स्पष्ट है कि सांवेगिक परिपक्वता आयाम के लिए छात्रों का मध्यमान (M_1 = 115.27), छात्राओं के मध्यमान (M_2 = 113.26) से अधिक है। सांवेगिक बुद्धिमत्ता आयाम के लिए छात्रों का मध्यमान (M_1 = 84.72), छात्राओं के मध्यमान (M_2 = 81.69) से अधिक है। समग्र सांवेगिक व्यवहार पर छात्रों का मध्यमान (M_1 = 199.99), छात्राओं के मध्यमान (M_2 = 195.95) से अधिक है। छात्र तथा छात्राओं के मध्य सांवेगिक व्यवहार के आयाम सांवेगिक परिपक्वता तथा सांवेगिक बुद्धिमत्ता के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता की जाँच के लिए टी-मूल्य क्रमशः 2.06 तथा 5.27 है। जबकि समग्र सांवेगिक व्यवहार के लिए टी-मूल्य 4.16 है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए .01 सार्थकता स्तर पर सांवेगिक बुद्धिमत्ता तथा समग्र सांवेगिक व्यवहार के लिए टी-मूल्य सार्थक है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए .05 सार्थकता स्तर पर सांवेगिक परिपक्वता के लिए टी-मूल्य सार्थक है। इससे स्पष्ट है कि सांवेगिक परिपक्वता आयाम, सांवेगिक बुद्धिमत्ता आयाम और समग्र सांवेगिक व्यवहार पर छात्र छात्राओं से श्रेष्ठ पाये गये है। अतः शून्य परिकल्पना *'छात्र तथा छात्राओं के सांवेगिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता* हैज़ अस्वीकृत होती है। कहा जा सकता है कि छात्र तथा छात्राओं के मध्य सांवेगिक व्यवहार में सार्थक अन्तर होता है। जिसका कारण छात्राओं में भावुकता की अधिकता तथा छात्रों में पुरुषत्व के प्रदर्शन का भाव हो सकता है। **जुबैर (2011)** ने भी अपने अध्ययन में छात्र-छात्राओं में सांवेगिक बुद्धिमत्ता पर सार्थक अन्तर पाया जो कि उपरोक्त परिणाम का समर्थन करता है।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत शोध द्वारा छात्रों के आवासीय वातावरण को उनके अनुकूल बनाये जाने में सहायता प्राप्त हो सकेगी। विद्यार्थियों की तरफ अभिभावकों की प्रतिबद्धता को बढ़ाकर छात्र-छात्राओं के मध्य प्राप्त अंतर को समाप्त किया जा सकेगा। समाज में जागरूकता उत्पन्न करके स्थानीयता के आधार पर व्याप्त भेद को समाप्त किया जा सकेगा। विद्यार्थियों को शिक्षकों, मित्रों, परिवार तथा स्वयं के साथ उचित सामंजस्य विकसित करने हेतु प्रेरित करते हुये सांवेगिक रूप से समायोजित बनाया जा सकेगा। उच्च शिक्षा के द्वारा छात्रों को अपने मनोभावों को व्यक्त करने तथा दूसरों के मनोभावों को समझने के योग्य बनाकर उनकी सांवेगिक बुद्धि के विकास में सहायता प्रदान की जा सकेगी। उच्च शिक्षा कार्यक्रमों में प्रतिभाग के अवसर प्रदान कर विद्यार्थियों को अपने एवं दूसरी के संवेगों का मूल्यांकन का अवसर प्रदान करने से उन्हें सांवेगिक रूप से परिपक्व बनाया जा सकेगा। विद्यार्थियों को दूसरों के व्यवहार का निरीक्षण करने के अवसर प्रदान करते हुये उनके सांवेगिक व्यवहार को विकसित किया जा सकेगा।

सन्दर्भ

1. **Jest, Sunny; Ajmiya, Ahmmed; Awasath, Gopi; Aiswarya, Tom; and Megha, Acca Kurian (2018)**. "Gender difference in Emotional Intelligence among adolescent Hostellers and Day Scholars". *International Journal of Current Research and Academic Review*; Spesial Issue-05, April 2018, PP. 61-69.
2. **जुबैर, एम0 (2011),** "छात्रावासीय वातावरण का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि और सांवेगिक बुद्धि पर प्रभाव का अध्ययन", एम0फिल0 शिक्षाशास्त्र, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।
3. **कुमार, आशीष (2012),** "माध्यमिक विद्यालय में किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण, समायोजन, मानसिक स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक परिपक्वता के प्रभाव का अध्ययन" अप्रकाषित पी-एच0डी0 थीसिस, डिपार्टमेन्ट ऑफ एजूकेशन, छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश http://hdl.handle.net//10603/224976

4. **Mowat, Joan Gaynor ¼2019½** "Supporting the Socio-Emotional Aspects of the Primary-Secondary Transition for Pupils with Social, Emotional and Behavioural Needs Affordances and Constraints", *Emproving Schools*, Vol.-22, Issue-01, March 2019 pp.-4-28, ISSN-1635-4002 .
5. **Munir, Amina; Khalid Sirda and Sadiq Riffat (2016)** "Prevalence and Comparison of Psychological Problems Among Hostelites and Day Scholars of University." *Academic Research International* Vol-07, Issue-01, Jan-2016, PP 231-340.
6. **प्रजापति, रनछोड़ भाई के0 (2015)** "उच्च व निम्न दुश्चिन्ता रखने वाले किशोर विद्यार्थियों को सृजनात्मकता एवं सांवेगिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन" *रिसर्च हब, इन्टरनेशनल मल्टीडिस्पलेनेटरी रिसर्च जर्नल* ISSN-2349-3637 (Online), Volume-02, Issue-02, Feb.-2015.
7. **सिंह, अजायब (2017)** "माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सांवेगिक बुद्धिमत्ता का भौगोलिक चरों के साथ सम्बन्ध का अध्ययन" *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस एजूकेशनल रिसर्च* टवस-02, प्नेम-05, सितम्बर-2017, PP-332-335, ISSN-2455-6157.
8. **सोनी, पदमा (2010)** "कामकाजी एवं घरेलू महिलाओं के किशोरों की सांवेगिक परिपक्वता के सन्दर्भ में समायोजन क्षमता का अध्ययन" लघु शोध संकलन (2009-10) क्रियात्मक अनुसंधान शोध व नवाचार प्रभाग, राज्य सांवेगिक, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् रायपुर, छत्तीसगढ़।
9. **Srivastava, Pragati; Singh, Neetu; Kumar, Anuj (2016).** "छात्रावासीय छात्राओं की आत्मप्रभावकारिता पर सांवेगिक बुद्धिमत्ता के प्रभाव का अध्ययन", *International Journal of Applied and Pure Science and Agriculture* Vol. 02, Issue 09, Sept. 2016 PP. 130-134 ISSN 2394-823X
10. **Sunny, Aleena Maria; Jacob, Julia Grace; Jimmy, Neha; Shaji, Drishna Theres and Dominic Cilvania (2018)**. "Emotional Maturity variation among college students with perceived loneliness." *International Journal of Scientific Research Publication* Vol.-08, Issue-05, May-2018, PP. 233-252.
11. **स्वामी, शिल्पा (2015).** "उच्च प्राथमिक स्तर पर डे-बोर्डिंग व सामान्य विद्यालयों के छात्रों के शैक्षिक, सांवेगिक तथा सामाजिक समायोजन का अध्ययन" अप्रकाशित पी-एच0डी0 थीसिस, शिक्षा संस्थान, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान http://hdl.handle.net/10603/139849

शारीरिक शिक्षा का दर्शन

डॉ० सितेश कुमार

एम० ए० (द्दद्य), एल० एल० बी०, पी० एच० डी०, नेट, शारीरिक शिक्षक : +2 टी० पी० एस० उच्च विद्यालय पिरहिण्डा, सिकन्दरा, जमुई, (बिहार)

"शिक्षा मनुष्य के शारीरक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास-साधना की पद्धति है। वह अगर सही है, तो शिक्षा के द्वारा मनुष्य सही प्रकार से अपना विकास कर सकता है और मनुष्य का विकास ही समाज का विकास है। अगर यह पद्धति गलत है तो मनुष्य का पतन ही होता है, जो आज हमें प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है।"[1] शिक्षा माता के सामान पालन-पोषण करती है, पिता के सामान उचित मार्गदर्शन करके कार्यों में लगाती है तथा पत्नी की भाँति संसारिक चिंताओं को दूर कर प्रसन्नता प्रदान करती है। शिक्षा से हमारी कीर्ति का प्रकाश चारो दिशाओं में फैलता है। शिक्षा ही हमारी समस्याओं को सुलझती है तथा हमारे जीवन को सुसंस्कृत एवं गतिमान बनाती है, अर्थात शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित गुणों का प्रस्फुटन करती है।

वास्तव में शारीरिक शिक्षा, शिक्षा का ही एक अंग है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ दूसरी शिक्षा - विषय की शिक्षा सामान्यत: कक्षा अथवा प्रयोगशाला में दी जाती है; वहीँ शारीरिक शिक्षा की शिक्षा खेल के मैदानों में और शिविरों में अधिक तथा कक्षा में कम दी जाती है। विद्यालयों में छात्रों को पुस्तकों के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। यदि हम ऐसी शिक्षा को ही शिक्षा कहें तो शिक्षा की यह परिभाषा बड़ी संकुचित होगी। क्योकि हम यह नहीं कह सकते हैं कि जो व्यक्ति कभी स्कूल में नहीं पढ़ा, वे अनपढ़ हैं। वास्तव में शिक्षा तो कहीं भी ग्रहण की जा सकती है, कक्षा में, खेल के मैदान में अथवा किसी और स्थान पर। ऐसे भी बालक के शारीरिक क्षमता का विकास कक्षा में रहकर नहीं किया सकता क्योंकि शिक्षा शारीरिक विकास पर बल नहीं देती। अरस्तु के अनुसार, 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है।"[2]

शारीरिक शिक्षा मानव जीवन के वैयक्तिक, सामाजिक, चहुँमुखी विकास के लिए आवश्यक है। जिससे व्यक्तिगत व्यवहार और गुणों में परिवर्तन किया जाता है"। रूसो के अनुसार, 'शारीरिक शक्ति ही व्यक्ति को स्फूर्तिमान एवं क्रियाशील बनाती है व्यक्ति अपने विकास का स्वयं जिम्मेदार होता है यदि वह अपना शारीरिक विकास संतुलित रूप में करता है तो उसे शिक्षा के अन्य उद्देश्यों को प्राप्त करने में अधिक कठिनता नहीं होगी।"[3]

पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व से ही उसकी समस्त शारीरिक क्रियाएँ गतिशील रही है और वे निरंतर क्रियाशील हैं। शारीरिक शिक्षा मानव के चतुर्दिक विकास और समाजोपयोगी सशक्त एवं स्वस्थ नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। शारीरिक शिक्षा प्रकृति प्रदत्त नैसर्गिक शारीरिक क्रियाकलापों द्वारा उपयोगी गतिविधियों को प्रोत्साहित करती है। मानव की सारी शक्ति, अदम्य साहस और विकसित होती चेतना-शक्ति ने प्रकृति के गूढ़ रहस्यों पर अनुसंधान कर उन्हें विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। इसी कारण शारीरिक शिक्षा का प्रारंभ आदिकाल से माना जाता है। विज्ञान एवं प्रौधोगिकी ने एक ओर जहाँ मानव को अनेक भौतिक सुविध

ाओं से लैस किया, वहीँ दूसरी ओर इसके दुष्परिणामों का सर्वाधिक प्रभाव मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ पर पड़ा और वह इन प्रभावों को कम करने के लिए शारीरिक क्रियाओं जैसे व्यायाम, खेल, योग, ध्यान आदि की ओर अग्रसर होने लगा।

शारीरिक शिक्षा, शिक्षा का एक अनिवार्य अंग है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में चाहे वह मानसिक हो या बौद्धिक, वह अपने जीवन में व्यवहारिक ज्ञान बढ़ाता रहता है। शिक्षा के गुणों को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट कह सकते हैं कि बालक का सर्वांगीण विकास होना चाहिए। बालकों में शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक विकास लाने में शारीरिक शिक्षा का स्थान ऊँचा है। मानसिक विकास के साथ-साथ शिक्षा शारीरिक शिक्षा सर्वांगीण विकास में भी सहायक है। इसका महत्व किसी भी शिक्षा के दबाब में कम नहीं किया जा सकता। व्यवहारिक अनुभव से प्राकृतिक वातावरण में बालक व्यवहारिक कुशल और बुद्धिमान बनता है। इस कारण शिक्षा में शारीरिक शिक्षा का एक विशेष स्थान है। जिस प्रकार शारीरिक क्षमता लाने के लिए शारीरिक शिक्षा की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार मानसिक विकास लाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। शारीरिक क्रियाओं से केवल शरीर का ही विकास नहीं होता बल्कि मानसिक विकास भी साथ-साथ होता है। ओबरटूफट के अनुसार, ष्शारीरिक शिक्षा उन अनुभवों का सामूहिक प्रभाव है जो शारीरिक क्रियाओं द्वारा व्यक्ति को प्राप्त होता है।"[4]

कैसेडी के अनुसार, ष्शारीरिक शिक्षा क्रियाओं पर केन्द्रित अनुभवों द्वारा जो परिवर्तन मानव में आता है, वे ही शारीरिक शिक्षा कहलाती है।"[5]

वैदिक काल से अबतक मानव शिक्षा द्वारा कुछ न कुछ अर्जित करता रहता रहा है। शारीरिक शिक्षा द्वारा शरीर संबंधी अंग-प्रत्यंगों की क्रियाविधि का ज्ञान एवं उनमें संतुलन बनाए रखने की प्रक्रिया पर बल दिया जाता है।

वैदिक काल के आन्तरिक काल में एक ऐसी घटना घटित हुई जिसमें शारीरिक शिक्षा का पूरा ढाँचा ही बदल गया। यह घटना प्राणायाम थी। जिसके द्वारा ईश्वर के ध्यान से पहले साँस को रोकना आवश्यक माना जाने लगा, जिससे फेफड़ों में वायु भरना दीर्घायु होने के लिए अच्छा समझा जाने लगा। शारीरिक क्रियाओं को एक क्रम में बनाया गया जिसे सूर्य नमस्कार कहा जाने लगा। इन क्रियाओं के द्वारा शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाया जाने लगा वैदिक काल में शारीरिक शिक्षा के तौर पर घुड़सवारी, शस्त्र विद्या, आखेट, जिम्नास्टिक इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता था। महाकाव्य काल, जो रामायण-महाभारत का काल था, के पुरातन समय को शारीरिक शिक्षा का स्वर्ण युग कहा जाता है। रामायण से हमें पता चलता है कि गुरु विश्वामित्र राजा दशरथ के राजकुमारों को शारीरिक शिक्षा के लिए विशेष तौर पर नियुक्त किए गए थे। इसी तरह द्रोणाचार्य कौरवों तथा पांडवों के लिए थे। धनुर्विद्या के अतिरिक्त उस समय शतरंज, कुश्ती, छलांगे लगाना एवं कठपुतली के नृत्य इत्यादि भी काफी प्रसिद्ध थे। इस काल में कुश्ती और गदा चलाने का बहुत प्रचलन था। इस काल में शारीरिक शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल सैनिकों को युद्ध का प्रशिक्षण देना था। इसके अलावे बौद्ध एवं महावीर काल, मौर्य काल, गुप्त काल राजपूत काल, मुस्लिम काल में कभी बहुत काम या औसत किसी न किसी रूप में शारीरिक शिक्षा की झलक मिलती है।

लेकिन आधुनिक काल की शारीरिक शिक्षा की परिकल्पना अंग्रेजी शासन की ही देन है। उन्होंने शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा पर भी बल दिया। उन्होंने ड्रील को एक आवश्यक विषय के रूप में लागू किया। जिम्नास्टिक की शुरुआत भारत में अंग्रेजी राज में ही हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य शारीरिक क्षमता का विकास, स्नायु मज्जातंत्र का विकास, चरित्र एवं व्यक्तित्व का विकास, मानसिक, सामाजिक, नेतृत्व के ज्ञान के विकास के साथ-साथ व्यावसायिक कार्य क्षमता का विकास मात्रा है।

शरीर की क्षमता और मानसिक कार्य करने की शक्ति अवयवों पर निर्भर करती है शरीर का थक जाना, शारीरिक कमजोरी दर्शाती है। यदि थकान शीघ्र दूर हो जाए और शरीर में पहले सी स्फूर्ति आ जाए तो हम यह अर्थ लगाते है कि शरीर के सारे अंग अवयव ठीक है। शारीरिक शिक्षा, शारीरिक क्षमता को बढाती है जिससे कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। विभिन्न शारीरिक क्रिया करने से शक्ति खर्च होती है। माँस पेशियाँ थकती है लेकिन कौशल पूर्ण ढंग से क्रिया तभी संभव है जब माँस पेशियाँ स्नायु और मज्जातंत्र का समन्वय अच्छी प्रकार से विकसित हो, इससे व्यक्ति की कार्य क्षमता बढ़ती है। जे० बी० नैश के शब्दों में, ष्शारीरिक शिक्षा समूची शिक्षा का वह अंग है जो मांसपेशियों से सम्बंधित क्रियाओं एवं उनसे सम्बंधित प्रतिक्रियाओं से जुड़ा हैष्[6] मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा अच्छे नागरिक के लिए चरित्र एवं व्यक्तित्व का परख होना आवश्यक होता है। अच्छा नागरिक हम उसे कहते हैं जिस व्यक्ति में आदर्श गुण होते हैं। सामाजिक गुण एवं चरित्र वातावरण पर आधारित होता है और यह वातावरण विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा के माध्यम से बनाया जाता है।

इसलिए वातावरण का अधिक प्रभाव चरित्र एवं व्यक्तित्व पर पड़ता है। व्यक्तित्व के विकास में सहकार्य, आत्मविश्वास, अनुशासन तथा आदर आदि गुणों का होना आवश्यक है। उदहारण के तौर पर खिलाडी का लड़का ही खिलाडी बनता है। इसका मुख्य कारण है कि उस बच्चे को बचपन से वैसा वातवरण मिला है जिस कारण उसमें खिलाड़ी बनने के आवश्यक गुण का विकास होता गया। शारीरिक शिक्षा उन सभी परिवर्तनों का योग है जो व्यक्ति में शारीरिक गति से आती है। महात्मा गाँधी के अनुसार, ष्शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बालक की या प्रौढ़ की शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं का सर्वांगीण विकास किया जाय और उन्हें प्रकाश में लाया जाय।"[7]

आपसी सहयोग तथा सामाजिक गुणों के विकास के साथ-साथ नेतृत्व करने की क्षमता का विकास भी शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य है। इसके द्वारा बालकों में सहकार्य, लोगों के विचार समझने की योग्यता आदि गुणों का विकास होता है ताकि वह एक सफल नेतृत्वकर्ता बन सकें। सेकेंडरी एजुकेशन कमीशन रिपोर्ट के अनुसार - ष्शारीरिक शिक्षा सभी के अन्तर्गत स्वस्थ कार्यक्रमों को ऐसे नियोजित किया जाना चाहिए ताकि छात्रों को शारीरिक एवं मानसिक तौर पर स्वास्थ मनोरंजनात्मक रूचियों और क्षमता का परिष्कार हो और टीम वर्क की भावना, दूसरों के प्रति सम्मान की प्रकृति का विकास हो। इसलिए शारीरिक शिक्षा नियमित रूप से की जानेवाली कसरत या ड्रील की अपेक्षा कहीं अधिक है। यह शारीरिक क्रिया कलापों के सभी रूपों और शरीर व मन का विकास करने वाले सभी खेलों कोसमाहित किए हुए हैं।' जिस तरह व्यक्ति के लिए रोटी, कपड़ा, और मकान मूलभूत आवश्यकताएँ मानी गई है, ठीक उसी प्रकार व्यक्ति को मनोरंजन की भी आवश्यकता है। मनोरंजन शरीर के विश्राम के लिए नहीं है बल्कि शरीर के स्नायु माँस पेशियों के खिंचाव को सामान्य स्थिति में लाने का एक माध्यम है, जो थकान और तनाव से मानसिक थकावट को दूर करने में सहायक है। मनोरंजन शरीर में चेतना उत्पन्न करती है। उम्र के अनुसार मनोरंजन के साधन अलग-अलग होते हैं परन्तु लक्ष्य एक ही है। सॉल्वसन के अनुसार, ष मनोरंजन गति नहीं, बल्कि यह एक संवेग है यह एक व्यक्तिगत अनुक्रिया है तथा एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह जीवन का मार्ग है, अर्थात जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है।" मनोरंजन की क्रियाएँ मुख्यतः सामूहिक रूप से समाज को आनंदित करने के लिए की जाती है। यह शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं रचनात्मक रूप से समृद्ध व्यक्ति द्वारा सम्पादित की जाती है। इस प्रकार मनोरंजनप्रद गतिविधियों के अन्तर्गत नाटकीय, लयात्मक, कला,स्वर, संगीत, नृत्य, बाहरी गतिविधियाँ, आन्तरिक गतिविधियाँ, साक्षरता, समाजसेवी क्रियाएँ समाज में सकारात्मक सन्देश देती है। ए० सार्जेट डुडले के अनुसार, ष्स्वास्थवर्धक, शिक्षाप्रद, मनोरंजनात्मक एवं निदानात्मक को शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य बताया गया है।"[8] शारीरिक शिक्षा में वृद्धि

और विकास की आवश्यकता भी है यह इसलिए कि विद्यालय के विभिन्न स्तरों पर विकास एवं वृद्धि का स्तर भिन्न-भिन्न होता है भिन्नता से तात्पर्य प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में विद्यार्थियों की वृद्धि एवं विकास का स्तर तीव्र होता है। अत: उनकी शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि के अनुसार ही एक शिक्षक को उचित शारीरिक क्रिया कलाप पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों का विकासात्मक पहलू किशोरावस्था से जुड़ा होता है, जिस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक बदलाव नैसर्गिक रूप से बालक एवं बालिकाओं में देखे जाते हैं जिसके अनुरूप ही उनसे शारीरिक क्रियाएँ करवानी चाहिए। इसके अलावे विभिन्न शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों में छात्रों का मूल्यांकन का विशेष स्थान है शिक्षा का विकास बिना मूल्यांकन के संभव नहीं है। मूल्यांकन सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जिससे छात्र की उन्नति का निर्धारण किया जा सकता है। मूल्यांकन निहित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जानेवाली प्रक्रिया है। क्वालेल एवं हन्न के अनुसार, ष्बालकों द्वारा विद्यालय के प्रगति करने पर जो उनमें व्यावहारिक परिवर्तन होते हैं, उनके विषय में सूचना एकत्रित करके एवं उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।"[9]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसमें उत्तरोत्तर प्रगति हुई। भारत सरकार ने शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में नई योजनाओं की शुरुआत की। 1948 में गठित शारीरिक शिक्षा समिति जिसे ताराचंद समिति के नाम से भी जाना जाता है, का गठन हुआ। 1950 में शारीरिक शिक्षा के लिए केन्द्रिय सलाहकार बोर्ड की स्थापना की गई, जिसे शारीरिक शिक्षा के सम्बन्ध में समस्त मुद्दों पर केंद्र सरकार को सलाह देनी थी। ताराचन्द समिति के सुझाव पर सं 1987 में तीन वर्षीय डिग्री कोर्स हेतु ग्वालियर में लक्ष्मीबाई शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय की स्थापना हुई। 1958 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा खेल एवं युवा कल्याण मंत्रालय की स्थापना की गई। 1959 में भारत सरकार ने डॉ० हृदयनाथ कुंजरू की अध्यक्षता में कुंजरू समिति का गठन किया। इस समिति के अनुसार, "विभिन्न राज्यों की शैक्षणिक संस्थाओं में शारीरिक शिक्षा, मनोरंजन, अनुशासन जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर सुझाव देना था। इसी क्रम में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थता कार्यक्रम शुरू हुआ, जो राष्ट्रीय स्तर पर 9 से 16 वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य था।"[10] भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे शारीरिक शिक्षा के प्रमुख संस्थान हैं-

(i) लक्ष्मीबाई कॉलेज ऑफ फिजिकल एजुकेशन, ग्वालियर।

(ii) वाई० एम० सी० ए०, मद्रास।

(iii) नेताजी सुभाष नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ स्पोर्ट्स, पटियाला।

राज्य स्तर पर

(i) श्री हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल, अमरावती, महाराष्ट्र।

(ii) क्रिश्चन कॉलेज, लखनऊ।

(iii) राजकीय स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षण संसथान, पटना।"[11]

इसके अलावा कई विश्वविद्यालयों में भी अब शारीरिक शिक्षण के विभाग खुल गये हैं, जहाँ स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई होती है।

अंत में निष्कर्ष के तौर पर हमें यह कहना कोई गलत नहीं है कि सामान्य शिक्षा और शारीरिक शिक्षा सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जब तक बच्चों में एकता, एकाग्रता, अनुशासन, सहकार्य की भावना, नेतृत्व करने की क्षमता, विचार करने की क्षमता आदि का विकास नहीं होगा तब तक वह एक परिपक्व नागरिक नहीं बन सकता है। शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति

ही सामाजिक कार्यों का निष्पादन सही रूप कर सकता है। समाज को सही दिशा निर्देश दे सकता है, जिसकी झलक हमें शारीरिक शिक्षा में देखने को मिलता है शारीरिक विकास, मानसिक विकास, शरीर की सफाई, अच्छी आदतें, स्वस्थ शरीर ही प्राप्त कर सकता है। अत: इसके लिए हमें योगा, ध्यान, प्राणायाम, आसन, अनेक प्रकार का खेल, आदि का सहारा लेना अति आवश्यक है, क्योंकि आज के भौतिकवादी युग में मानव मानसिक अशांति, शारीरिक रोग, आदि से जूझ रहा है। हमें व्यस्तता से बाहर निकलकर प्राकृतिक समाधान की तरफ जाना ही होगा तभी हम अपना सफल जीवन जी पाएँगे स्वस्थ रह पाएँगे, बिमारियों से मुक्त रहेंगे, मानसिक शांति मिलेगी, मन मस्तिष्क प्रफुल्लित रहेगा, शरीर में नई ऊर्जा का संचार होगा और हम आनंदित महसूस कर पाएँगें।

सन्दर्भ-सूची

1. उपाध्याय, हरिभाऊ, "बापू-कथा", सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी, मई 2014 पृष्ठ सं०-180
2. अरस्तु, द फिलॉस्फी ऑफ एजुकेशन (अनुवाद कार्नफोर्ड), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, प्रकाशन वर्ष-1945 पृष्ठ सं०-154
3. रूसो, ए सर्वे ऑफ एजुकेशन थॉट न्यूयार्क, प्रकाशन वर्ष -1978, पृष्ठ सं०-21
4. ओबरफुट, योग एवं शारीरिक शिक्षा, बिहार मुक्त विद्यालयी शिक्षण एवं परीक्षा बोर्ड, पटना, पृष्ठ सं०-8
5. वही, पृष्ठ सं०-8
6. नैश, जी० बी० एजुकेशन ऑफ टूडे, प्रकाशन वर्ष सितम्बर 2007, पृष्ठ सं०-116
7. गाँधी, महात्मा, संग्राहक - हरिप्रसाद व्यास, "ग्राम स्वराज", नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, वर्ष - जून 2013, पृष्ठ सं०-43
8. डुडले, ए० सार्जेंट, द थियोरी ऑफ एजुकेशन इन रिपब्लिक ऑफ प्लेटो, वर्ष 1963, पृष्ठ सं०-118
9. क्वालेल एवं हन्न, हाउ टीचेज हर चिल्ड्रेन,पृष्ठ सं०-75
10. कुंजरू, डॉ हृदयनाथ, महान पश्चिमी शिक्षा-शास्त्री, पृष्ठ सं०-42
11. योग एवं शारीरिक शिक्षा, बिहार मुक्त विद्यालयी शिक्षण एवं परीक्षा बोर्ड, पटना, पृष्ठ सं०-7

हिन्दी आदिवासी कविता में प्रतिरोध का स्वर

डॉ० हनुमान सहाय मीना

TYPE-3, 30-B, अनुप्रताप कॉलोनी, रावतभाटा, चित्तोडगढ, राजस्थान

समकालीन साहित्य में आदिवासी, स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक समाजकीस्थितिपर पुनर्विचार होने लगा है। साहित्य और समाज में ये तबके लम्बे समय तक हाशिए पर रहे। संवैधानिक प्रावधानों के कारण इन वंचित वर्गों के लोगों में अपने संघर्ष के खिलाफ बड़े स्तर पर संघर्ष करने की चेतना विकासित हुई। जिसे उत्तर आधुनिकशब्दावली में विमर्श के नाम से जाना जाता है। हिन्दी साहित्य भी इस बदलते हुए परिवेश से अछूता नहीं है, स्त्री, दलित और आदिवासी लेखन इसका प्रमाण है। आदिवासी लेखन हिंदी के अस्मितावादी विमर्शों में सबसे नवीन है। लेकिन आज हर विधा में आदिवासियों की शोषणपूर्ण स्थिति का चित्रण कियाजा रहा है, जैसे- कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि। वर्षों से आदिवासी साहित्य को हाशिए पर रखा गया लेकिन आज आदिवासी साहित्य नए रूप में उभरकर सामने आ रहा है। भारतीय साहित्य में आदिवासी की छवि को गलत रूप में पेश करने की कोशिश की गई है। इस दृष्टि से समकालीन हिन्दी कविता में जीवन स्थितियों, संघर्षों, उनकी आकांक्षाओ और उनके सपनों को कविता में समकालीन कवि अभिव्यक्त कर रहे हैं। इस तरह हिन्दी कविता की चिन्तन परंपरा में आदिवासी जीवन की उपस्थिति धीरे-धीरे दर्ज होने लगती है।

समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी जीवन को व्यक्त करने वाले प्रमुख कवियों में हैं– महादेव टोप्पो, हरीराम मीणा, रामदयाल मुंडा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, रणेन्द्र, अनुज लुगुन, विनोद कुमार शुक्ल, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, एकांत श्रीवास्तव आदि। इन कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से आदिवासी अस्मिता को पहचाने की बात कही है। और आदिवासी कविता के खिलाफ हो रहे इस सारे षड्यंत्र को समकालीन कविता अपना विषय ही नहीं बनाती बल्कि उनके खिलाफ प्रतिरोध की एक जमीन तैयार करने का काम करती है–

"ओ रे
मानवता के आदिम नुमाइंदों,
तुम जंगली ढ़ोर, गँवार हो
एक सलाह है तुम्हें सभ्य बनाने की
रोपना होगा, मुख्यधारा की उर्वरा भूमि पर।"

इस तरह आज विकास के नाम पर आदिवासियों को उजाड़कर पलायन पर मजबूर कर दिया... क्या इस तरह हमारे आदिवासियों के नए भारत का निर्माण हो सकता है? जिस तरह आज आज नए कोपरेट और कंपनियों के द्वारा आदिवासी की संस्कृति और पैतृक सम्पति को बाजार के भाव बेचेने की कोशिश लगातार हो रही है... क्या यही आज केसौदागर आदिवासियों का अस्तित्व मिटाने का काम कर रहे है? यही ठेकेदार आदिवासी को जमीन पर अपना अधिकार जताने की कोशिश लगातार करते है और सत्ता और औधोगिक तंत्र की व्यवस्था के द्वारा आदिवासी को विस्थापित कर शहरों में पलायन के लिए मजबूर कर रहे हैं।

आदिवासी जनजीवन का चित्रण करने वाले कवियों ने जो आदिवासी नायक इतिहास से बेदखल हैं उन नायकों को महत्व देकर नवीन इतिहास सृजन के लिए नयी जमीन के आधारभूमि की खोज करते हैं। इसमें बिरसा मुंडा इनके लिए आदर्श का प्रतीक था। लेकिन उनके मूल आदर्श आज धूमिल हो गए है। बिरसा का मुख्य संघर्ष जमीन, जंगल, और अस्मिता के लिए था। बिरसा का

आंदोलन आदिवासी समाज के लिए 'मील का पत्थर' साबित हुआ। बिरसा के योगदान को आदिवासी समाज कभी भी नहीं भुला पायेगा। इस तरह आदिवासी आंदोलन के रूप में रानी गाड़िन्ल्यू ने 'हरका संप्रदाय' की स्थापना करके मणिपुर के आदिवासियों की अस्मिता के लिए संघर्ष किया। इन्होंने अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी और आदिवासियों के लिए आंदोलन का बीड़ा उठाया। इस तरह इतिहास में अनेकों उदाहरण मिल जाते है जिनका पुख्ता सबूत हमारे आदिवासी समाज के पास देखने को मिल सकता है, इस तरह का एक बड़ा उदाहरण राजस्थान के मानगढ़ की घटना पर आधारित है जिसमे लगभग 1500 आदिवासियों को अंग्रेजों ने बेकसूर ही मार दिया। लेकिन दुर्भाग्य की सबसे बड़ी बात है यह है की इतनी बड़ी घटना होने के बावजूद भी इसका जिक्र इतिहास में भी नही है।

आज के भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समाज दुष्चक्र में फंस गया है। आज के समय में आदिवासी समाज के सामने सबसे बड़ी चुनौती संस्कृति और भाषा को बचाने की जद्दोजहद जारी है। आज के इस भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी भाषाएँ संकटग्रस्त स्थिति में हैं। कोरपरेट और भूमंडलीकरण के इस दौर में आदिवासी समुदाय विस्थापन की समस्याओं से जूझ रहा है। इस तरह आदिवासी क्षेत्रों में विकास के नाम पर टाटा, बिड़ला, पोस्को, वेदांता जैसी कंपनियां अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगी है, वही दूसरी ओर आदिवासी समुदाय विस्थापन की समस्या से जूझ रहा हैं। मैं अपने लेख में उपरोक्त लेखकों की कविताओं में व्यक्त आदिवासी जीवन का यथार्थ स्पष्ट करने की कोशिश करूंगा।मैं यहाँ पर आदिवासी साहित्य की बात करते समय कुछ पहलुओं को उठाना चाहता हूँ पहली बात यह है कि आदिवासी साहित्य पर लिखने से पहले उसकी विचारधारा को समझना जरूरी है कि आप उनके साथ कितना न्याय कर पाते है इन चीजों पर अमल करना जरूरी है, तब ही हम आदिवासी की समस्या का समाधान कर सकते है। दूसरी बात यह है कि गैर आदिवासी द्वारा जो कुछ लिखा जा रहा है वे आदिवासी लेखन के साथ ठीक तरह से न्याय नही कर पा रहे हैं। आज आदिवासी साहित्य को तोड़-मरोड़कर पेश करनी की कोशिश की जा रही है। आज जब कविता पर लिखने का सवाल जब खड़ा होता है तो हम कविता मे निहित भाव को व्यक्त कर उसका सौंदर्य चित्रण करते है लेकिन कविता में वे आदिवासी के दु:ख को समझ नहीं पाते है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है या तो वे आदिवासी के पहलुओं को ठीक तरह से नहीं समझ पाये। आदिवासी कविता में स्त्री का चित्रण किस रूप मेँ हुआ और उसकी वेदना आदिवासी कविता में किस रूप में प्रकट हुई है। इस तरह निर्मला पुतुल की कविता 'अपने घर की तलाश' में 'तुम कहाँ हो माया' शीर्षक कविता में स्त्री की अस्मिता का सवाल उठाया है-

"दिल्ली के किस कोने में हो हो तुम?
मयूर विहार,पंजाबी बाग या शाहदरा में?
कनाट प्लेस की किसी दुकान में
सेल्सगर्ल हो या
किसी हर्बल कंपनी में पैकर?
कहाँ हो तुम माया? कहाँ हो?
कहीं हो भी सही सलामत या
दिल्ली निगल गयी तुम्हें?"

निर्मला पुतुल ने इस कविता के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है एक आदिवासी लड़की रोजगार के लिए जब दिल्ली आ जाती है तो उसके साथ किस तरह का बर्ताव किया जाता है उसे रोजगार दिलाने के नाम पर उसका दैहिक शोषण किया जाता है। इनकी कविता में शोषण के खिलाफ एक तीखा प्रतिरोध का स्वर सुनाई पड़ता है। निर्मला पुतुल की कविता में आदिवासी स्त्री के जीवन का चित्रण बखूबी ढंग से किया गया है। इन्होंने अपनी कविता में स्त्री की अस्मिता का सवाल उठाया है। अपनी कविता में आदिवासी समाज के साथ स्त्री के विविध पहलू पर भी टिप्पणी करती है।

वर्तमान में आदिवासियों का अस्तित्व संकट के साथ पहचान की भी समस्या लगातार गहराती जा रही है। लोग उन्हे सामान्य मनुष्य के तौर पर नहीं बल्कि जंगली, वनवासी, असभ्य और संविधान में आरक्षित मनुष्य के रूप मे परिभाषित करते हैं। आदिवासी समाज की इस विडम्बना पूर्ण स्थिति को महादेव टोप्पो की कविता 'त्रासदी' अभिव्यक्त करती है..

"इसदेशमें पैदा होने का
मतलब है-
आदमी का जातियों में बंट जाना
और गलती से तुम अगर हो गए पैदा
जंगल में
तो तुम कहलाओगे
आदिवासी-वनवासी-गिरिजन
वगैरह-वगैरह
आदमी तो कम से कम
कहलाओगे नहीं ही।"

आज के इस पूजीवाँदी दौर में आदिवासी की अस्मिता खतरे में पड़ गयी है। यह व्यवस्था केवल विकास के नाम पर आदिवासी का शोषण कर रही है। लेकिन इस व्यवस्था से कैसे लड़ा जा सकता है इसका मानदंड साहित्य नही करता इसके लिए हमें उनकी विचारधारा को साथ लेकर एक नया आंदोलन खड़ा करना होगा तब ही आदिवासी संस्कृति को एक नया आयाम दे सकते है। आज का आदिवासी विस्थापन की समस्या से जूझ रहा है क्योंकि अब उसके पास पेट भरने के लिए कोई कमाने का साधन नही बचा है ऐसे में इन आदिवासी को हाथ में बंदूक थमाकर नक्सलवादी घोषित कर उनको खत्म करने का एक बहाना मिल जाता है अर्थात आदिवासी को सरकार क्रीमनल घोषित करती है और उनको जंगल से हटाने के लिए 'ग्रीन हंट' अभियान चलाती है। सरकार आदिवासी के नाम पर नयी-नयी योजनाएँ बनाती है लेकिन वह सभी योजनाएँ आदिवासियों के हित में कभी उपयोग में नहीं लाया जाता। बल्कि मुख्यधारा के दिकु लोग उनकी योजनाओं को छल से अपने नाम कर लेते हैं और आदिवासी के हमदर्द बनने का नाटक करते हैं।

इस भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समाज और साहित्य का रूप विकृत होता जा रहा है। परंपरागत आदिवासी समाज में विभिन्न तरह के खेल मौजूद थे जैसे-गुल्ली डंडा, गुलाब काकड़ी, सटटोलिए आदि खेल बजारवाद के इस दौर में पिस गये है। क्योंकि आज बाजारवाद इतना हावी हो चुका है कि जो परंपरागत खेल आदिवासी समाज में मौजूद थे वे सब आज विलुप्त हो गये है। आदिवासी की लोक कला भी लगभग खत्म होने के कगार पर है। चूंकि आदिवासी कविता में प्रतीक, बिम्ब और मिथक का प्रयोग उनकी संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ रहता हैं। आदिवासी कविता में मिथक लोक परंपरा के साथ जुड़ता है और प्रकृति के साथ गहरा संबंध रहता है। उनके मिथक समाज और संस्कृति के साथ जुडते है जो कि प्रचलित मिथकों से बिल्कुल अलग ही रहते है तथा उनका मिथक प्राचीनतम ग्रन्थों से संपृक्त रहता है। इस तरह इनकी कविता में प्रसंग अनायास ही जुडते चले आते है यही इनकी कविता की पहल कदमी है। आदिवासी कविता एक जमीन तैयार करने का काम करती है जो कि आदिवासी समाज और साहित्य के पहलुओं को समझने में मददगार साबित होती है।

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि आदिवासी साहित्य का विकल्प क्या होना चाहिए? हिन्दी में वाचिक साहित्य और मौखिक साहित्य का रूप किस प्रकार का होना चाहिए। आदिवासी साहित्य की दृष्टि कैसी होनी चाहिए? क्या आदिवासी साहित्य का संबंध जन आंदोलन से होना चाहिए या नहीं? आज सवाल उठाया जा रहा है कि आदिवासी साहित्य की भाषा कौन सी होनी चाहिए? आज जो भी कुछ लिखा जा रहा है क्या वह आदिवासी के हित में है या नहीं? यह सवाल ही नही है बल्कि आदिवासी विमर्श में एक नया पैगाम खड़ा करता है। आज सवाल यह उठता है कि आदिवासी की मौखिक परंपरा को कैसे बचा जाये इन सब बातों पर हमें गौर करने की जरूरत है। आदिवासी की मूल पहचान उसकी संस्कृति से जुड़ी हुई है क्योंकि जो भी परंपरा बनती है वह किसी भी समुदाय की मूल पहचान के साथ कायम रहती है। आज आदिवासी की अस्मिता बची है तो वह है अपनी संस्कृति से ही। आज उड़ीसा में पास्को जैसी कंपनी सरकार के साथ साठ-गाँठ करके आदिवासी को अपनी जमीन से बे-दखल कर रही है ताकि वो अपना प्रोजेक्ट पूरा कर सके।

आदिवासी कविताओं में प्रतिरोध की भावना है जो समाज केदकियानूसी मानसिकता वाले लोगों के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। वाहरु सोनवने की 'स्टेज' कविता से इसे समझा जा सकता है जिसमें आदिवासियों का शोषण करने वाली शक्तियों की अवास्तविक सहानुभूतिका नंगा वर्णन है -

"और 'वे' मंच पर खड़े होकर
हमारा दुख हमसे कहते रहे।
हमारा दुख हमारा ही रहा।
कभी उनका नहीं हो पाया"

संदर्भ सूची

1 हरिराम मीणा- 'अंडमान आदिवासियों को सभ्य बनाने की सलाह', ('सुबह के इंतजार' काव्य संग्रह) पृष्ठ सं. 41-42
2 निर्मला पुतुल- 'अपने घर की तलाश में' पृष्ठ सं. 31
3 रमणिका गुप्ता- 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' पृष्ठ सं. 49
4 रमणिका गुप्ता- 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' पृष्ठ सं. 101

कुशीनगर जनपद में जनसंख्या घनत्व प्रकारात्मकता

डॉ० मंकेश्वर दत्त राय

प्रवक्ता एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, भारतीय कृषक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिपरसण्डी, गोरखपुर उ.प्र.

किसी स्थान विशेष की जनसंख्या एवं संसाधन के संबंध का यथोचित ज्ञान जनसंख्या वितरण की अपेक्षा जनसंख्या घनत्व के अध्ययन से अधिक स्पष्ट होता है। जनसंख्या घनत्व प्रति इकाई क्षेत्रफल पर निवास करने वाली जनसंख्या का द्योतक है।

जनसंख्या घनत्व का तात्पर्य जनसंख्या एवं धरातल के एक अनुपात से है। यह जनसंख्या की मात्रा का मापन है, जिसे प्रति इकाई क्षेत्र में व्यक्तियों की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है। जनसंख्या वितरण की अधिक अर्थपूर्ण स्थिति इसके क्षेत्रफल अथवा इसके जीवन यापन हेतु उपलब्ध साधनों के अनुपात में व्यक्त करने से ज्ञात होता है। विभिन्न जनसंख्या एवं संसाधन संबंधों की उत्तम जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार से घनत्व मापन के प्रयास किए गए हैं, किंतु वैश्विक स्तर पर तुलना करने पर सभी न्यूनाधिक प्रयास अपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इसके लिए सामान्यत: तीन कारण उत्तरदायी हैं। प्रथम, चूँकि आँकड़े प्रशासनिक इकाई पर ही उपलब्ध होते हैं न कि संभाग जनसंख्या क्षेत्र के आधार पर; द्वितीय, समान क्षेत्रों के मापन करने वाले आंकड़े जैसे कुल बोई गयी भूमि आदि की भिन्न राजनीतिक प्रशासनिक इकाइयों पर अनुपलब्धता अंतर्राष्ट्रीय तुलना से वंचित कर देती है तथा तृतीय, अनुपात मात्र एक औसत हीहोते हैं। जबकि किसी छोटे क्षेत्र के अंदर बहुत विभिन्नता हो सकती है, जो अलग-अलग जनसंख्या भू-क्षेत्र के अंतर्संबंध को प्रदर्शित करे। तथापि इन कठिनाइयों का यह तात्पर्य नही की जनसंख्या घनत्व संकल्पना कुछ उपयोगी नहीं है। वस्तुत: धरातल पर मानव के वितरण संबंधी विविधताओं के विश्लेषण के लिए उपयोगी संक्षेपण के रूप में जनसंख्या घनत्व से विशेष सहायता मिलती है।

जनसंख्या घनत्व के प्रकारों के अध्ययन के लिए उपयुक्तता की दृष्टि से इसे निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

गणितीय घनत्व

गणितीय घनत्व की गणना से संबंधित आंकड़े आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। किसी क्षेत्र की कुल जनसंख्या को उसके क्षेत्रफल से विभाजित कर के प्रति वर्ग मील या प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या प्राप्त करते हैं। इसे आंकिक या गणितीय जनसंख्या घनत्व कहते हैं।

$$\text{गणितीय जनसंख्या घनत्व} = \frac{\text{क्षेत्र की कुल जनसंख्या}}{\text{कुल क्षेत्र (वर्ग ईकाई में)}}$$

1991 की जनगणना के अनुसार संपूर्ण अध्ययन क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व 778 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. एवं नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व 4570 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है।1991 की जनगणना के आधार पर अध्ययन क्षेत्र को निम्न जनसंख्या घनत्व की श्रेणियों में विभाजित कर अध्ययन किया गया है-

सारणीः कुशीनगर जनपद- जनसंख्या घनत्व व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.-1991

क्र.सं.	विकास खण्ड	क्षेत्रफल वर्ग कि.मी.	कुल जनसंख्या 1991	आंकिक घनत्व (व्यक्ति/वर्ग कि.मी.)
1	कप्तानगंज	182.5	144484	792
2	रामकोला	187.7	155365	828
3	मोतीचक	163.6	132663	813
4	सुकरौली	155.4	133402	858
5	हाटा	160.8	137718	857
6	खड्डा	322.8	148041	459
7	नेबुआ-नौरंगिया	211.3	136557	646
8	विशुनपुरा	217.7	155132	713
9	पडरौना	288.3	237558	824
10	कसया	99.3	96098	968
11	दुदही	226.7	171978	758
12	फाजिल नगर	178.8	141652	792
13	तमकुहीं	199.1	171968	864
14	सेवरहीं	238.6	164125	688
	योग समस्त ग्रामीण	2832.2	2126741	751
	योग नगरीय	41.3	108764	4570
	योग जनपद	2873.5	2235505	778

स्रोतः सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद कुशीनगर-1995

उच्च जनघनत्व के क्षेत्र : (>900 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी.)

अध्ययन क्षेत्र में कसया विकास खण्ड एकमात्र ऐसा विकास खण्ड है जो इस वर्ग के अंतर्गत सम्मिलित है। इस विकासखंड की जनसंख्या का घनत्व 968 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, व्यापार, रोजगार एवं अन्य विविध सुविधाएं इस विकासखंड के उच्च जनसंख्या घनत्व के लिए उत्तरदायी हैं।

उच्च-मध्यम जनघनत्व के क्षेत्र : (800-900 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर)

इस श्रेणी के अंतर्गत जनपद के तमकुही, सुकरौली, हाटा, रामकोला, पडरौना तथा मोतीचक विकास खण्ड आते हैं। जिनकी जनसंख्या का घनत्व क्रमशः 864, 858, 857, 827, 824 एवं 813 व्यक्ति/वर्ग कि.मी. है। इन विकास खंडों में जनसंख्या को सघन बनाने में उर्वर भूमि, सिंचाई की उपलब्धता एवं अन्य कारकों ने अपना भरपूर योगदान दिया है।

मध्यम जनघनत्व के क्षेत्र : (700-800 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर)

इस श्रेणी के अंतर्गत जनपद के कप्तानगंज (792 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.),फाजिलनगर (792 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), दुदही (758 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) तथा विशुनपुरा (713 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) विकास खण्ड आते हैं।यह क्षेत्र मुख्य रूप से कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाले हैं, जहां उपजाऊ भूमि एवं सिंचाई सुविधाओं आदि का वितरण एक समान है।

न्यून जनघनत्व के क्षेत्र : (<700 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर)

इस क्षेत्र के अंतर्गत सेवरहीं (688 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), नेबुआ-नौरंगिया (646 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) तथा खंडला (959 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) सम्मिलित किए जाते हैं। न्यून जनसंख्या घनत्व के लिए सिंचाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, उर्वर भूमि आदि कारकों की कम उपलब्धता जिम्मेवार है।

कायिक घनत्व

यह मानव और क्षेत्रफल के अनुपात की गणना को अधिक परिष्कृत रूप में व्यक्त करता है। जिसमें कुल क्षेत्रफल की जगह पर कुल कृषि योग्य भूमि से जनसंख्या विभाजित की जाती है। ट्रिवार्थी के अनुसार यह भूमि पर जनसंख्या दबाव को अधिक शुद्ध रूप से स्पष्ट करता है:

कायिक घनत्व =

जनपद में फाजिलनगर विकासखंड का कथित घनत्व सर्वाधिक (1183 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) है, जो इस विकास खण्ड में शुद्ध बोये गए मूल क्षेत्र पर अत्यधिक जनसंख्या दबाव का द्योतक है। सुकरौली (1171 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), हाटा (1152 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), पडरौना (1107 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), कसया (1097 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), कप्तानगंज (1090 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), तमकुही (1081 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) तथा मोतीचक (1074 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) विकास खण्ड जनपद में मध्यम कायिक घनत्व वाले क्षेत्र हैं। रामकोला (974 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), दुदही (962 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), सेवरहीं (949 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), विशुनपुरा (872 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) एवं खड्डा (832 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) अपेक्षाकृत न्यून कायिक घनत्व वाले विकासखंड हैं। जो अपेक्षाकृत कम जनसंख्या भार एवं अधिक कृषि क्षेत्र वाले विकासखंड के सूचक है।

कृषि घनत्व

कृषि घनत्व एक निश्चित समय पर प्रति इकाई कृषिगत भूमि पर कृषि में कार्यरत जनसंख्या का अनुपात है। यह घनत्व भूमि पर वहन क्षमता को आंकने, खाद्यान्न उपलब्धता को ज्ञात करने व किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या अतिरेक, आदर्श जनसंख्या एवं अल्प जनसंख्या के आकलन में सहायक होता है-

कृषि घनत्व =

अध्ययन क्षेत्र में नेबुआ-नौरंगिया विकास खण्ड का कृषि घनत्व सर्वाधिक (317 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) एवं खड्डा विकास खण्ड का कृषि घनत्व सबसे कम (170 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) है। आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि नेबुआ-नौरंगिया विकास खंड में शुद्ध कृषिगत क्षेत्रों पर जनभार सर्वाधिक एवं खड्डा विकास खंड में शुद्ध कृषिगत क्षेत्र पर जनभार सबसे कम है। इसके अतिरिक्त सुकरौली (309 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), कप्तानगंज (287 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), पडरौना (285 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), मोतीचक (277 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.),फाजिलनगर (276 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), कसया (271 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), हाटा (269 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), दुदही (267 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), सेवरहीं (256 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), रामकोला (249 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), विशुनपुरा (247 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) एवं तमकुही (245 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) मध्यम कृषि घनत्व वाले विकासखंड हैं। जबकि संपूर्ण जनपद का कृषि घनत्व (258 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) है।

पोषण घनत्व

पोषण घनत्व का आशय प्रति इकाई कुल कृषिगत भूमि में निवास करने वाले ग्रामीण जनसंख्या से होता है। यानी कृषि भूमि की प्रत्येक इकाई पर भोजन के लिए जितने व्यक्तियों का दबाव होता है, उन व्यक्तियों की संख्या को पोषण घनत्व कहा जाता है।

पोषण घनत्व ज्ञात करने के लिए कुल ग्रामीण जनसंख्या में सकल बोये गए क्षेत्रफल का भाग किया जाता है। यह घनत्व इस विचार पर आधारित है कि धरातल पर मानव के अस्तित्व के लिए खाद्यान फसलें महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। जिसके फलस्वरुप कुछ विद्वान इसे उच्च कालिक घनत्व का नाम देते हैं। स्पष्ट है कि यह घनत्व खाद्यान्न फसलों पर क्षेत्र विशेष की आत्मनिर्भरता या आयात की बाधयता को प्रकट करता है।

पोषण घनत्व =

1991 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र का समेकित पोषण घनत्व 645 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। सर्वाधिक पोषण घनत्व तमकुही विकास खंड (904 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) तथा सबसे कम पोषण घनत्व कसया विकासखंड (436 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) है। जो जनपद में खाद्यान्न फसलों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रफल पर जनसंख्या के उच्चतम एवं न्युनतम दबाव के सूचकांक हैं। पडरौना (789 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), नेबुआ-नौरंगिया (783 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), फाजिलनगर (747 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), मोतीचक (687 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), सुकरौली (687 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), हाटा (643 व्यक्ति/ कि.मी.), विशुनपुरा (621 व्यक्ति/कि.मी.), रामकोला (588व्यक्ति/कि.मी.), सेवरहीं (514 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.), खड्डा (479 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) एवं दुदही (466 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.) विकासखंड अपेक्षाकृत मध्यम पोषण घनत्व वाले विकास खण्ड हैं।

कुल जनसंख्या

खाद्यान्न फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल (वर्ग इकाई में)

References:

- Butt, M.R., 'Over the Edge: The Growth of Homelessness in the 1980's, Russel Sage Foundation, 1992, New York
- Cannigham, 'Ancient Geography of India, 1958, Delhi
- Census of India, 2001 Series 10, Uttar Pradesh, Total Final Population, Paper-1 of 2001
- Chandna, R.C., 'A Geography of Population, Kalyani Publishers, 1986, New Delhi
- Chandna, R.C. & Sidhu M.S., An Introduction to population Geography, Kalyani Publishers, 1986, New Delhi
- Choudhry (Dr) Hem chandroy. 'Prachin Bharat kaRajnaitikItihas (In Hindi), 1972, Allahabad
- Clarke, J.I., 'Population Geography, Pergamon Press, 2nd edn., 1965, New York
- Clarke, J.I., 'Population Geography, Pergamon Press, 2nd edn., 1965, Oxford

बदलती सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था में तीसरी दुनिया

डॉ० राम बिनोद रे

सहायक आचार्य, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड, केरल

उत्तर उपनिवेशवाद के दौर में तीन दुनिया उभरकर आई, पहली दुनिया वर्चस्वशाली, विकसित, समृद्ध देश है जो सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित करता है। दूसरी दुनिया जो अधीन और हाशिए पर है, अविकसित और पराधीन है। तीसरी दुनिया स्वतन्त्र होकर आज भी मानसिक रूप से गुलाम है। इसका सबसे बड़ा उदहारण अंगेजी और पाश्चात्य संसाधनों, सुविधाओ के प्रति प्रेम घर, परिवार, संस्था, समुदाय में हम देख पातें हैं। ईगल्टन टेरी यह मानकर चलतें है– वास्तविक चेतना और संभावित चेतना में समन्वय स्थापित होना चाहिए। संस्कृति केवल ब्रहम सत्य और जगत मिथ्या कहकर अध्यात्म की बात नहीं करती है बल्कि आत्मीयता। सहृदयता और अपने को सुदृढ़ कर आत्मनिर्भर होने की प्रेरणा देती है। कबीर दास जी कहतें है–

साईं इतना दीजिए जा में कुटुम समाय
मै भी भूखा न रहूँ साधु ना भूखा जाए
(कबीर ग्रंथावली)

अर्थात् हे परमात्मा तुम मुझे इतना दो कि जिसमें बस मेरा गुजारा चल जाए, मै खुद भी अपना पेट पाल सकूँ और आनेवाले मेहमानों को भी भोजन करा सकूँ। यही हमारी सभ्यता और संस्कृति है। गाँधी जी इसी को स्पष्ट करते है- "सभ्यता वह आचरण है जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करने के माने है नीति का पालन करना। नीति के पालन का मतलब है अपने मन और इन्द्रियों को बस में रखना। ऐसा करते हुए हम अपने को (अपने असलियत) को पहचानते हैं।" (हिन्द स्वराज-42) अर्थात स्वत: को पहचाने की जरुरत है। मै कौन हूँ, मेरे होने का मतलब क्या है अर्थात् जब हम स्वयं को पहचानने लगेंगे तो हमारे संस्कार रूपी संस्कृति स्वत: समाज में संप्रेषित होगी। स्वत को पहचानने का मतलब है, परम्परागत सांस्कृतिक संबंधों को आत्मसात करना। जो भारतीय संस्कृति में स्वत-स्फुटित है। पहले जहाँ संस्कृति अध्यात्म से पूरित था, अब अर्थव्यवस्था से जुड़ने लगी है। कहतें है इच्छा से मुक्त होना अध्यात्म है, पर किसी भी राष्ट्र को समृद्ध और विकसित होने के लिए अध्यात्म के साथ आर्थिक रूप से मजबूत होना उतना ही आवश्यक है। जिसके पीछे सांकृतिक समग्रता कार्य करती है। वर्तमान समय में कोरोना-19 वैश्विक महामारी जहाँ सम्पूर्ण विश्व को आक्रांतित किया हुआ है पर भारत जैसे विकासशील देश की जनसँख्या एक-सौ-तीस करोड़ होने के बावजूद महामारी से लड़ने की छमता रखता है, इसके पीछे पारंपरिक संस्कार और संस्कृति अवदान कार्य करती है। इसका सबसे बड़ा उदहारण संयुक्त परिवार, बड़ों का आदर, हाथ जोड़ कर प्राणम, औरतों द्वारा मुह में दुपट्टा रखना, गमछा बांधना, खान-पान में जिस मसाले युक्त चाय, सब्जी, जैसे देशीय खान-पान हमारी आन्तरिक शक्ति को बढ़ाती है। हमारे देश में जडीबुटी के अथाह भण्डार है। दुर्भाग्यवश इसका प्रयोग वैश्विक महामारी बर्ड-फ्लू, चिकन-पॉक्स, प्लेग, एड्स जैसी महामारी से सामना करनेहेतुनहीं किया गया इसके बावजूदअधिकांशत वैज्ञानिक,भारत में शिक्षा ग्रहणकर विदेश में जाकर अपनी सेवा प्रदान करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का कथन है, अपने पौरुष से हताश जाति सदेव ईश्वर की शरण में जाता है। ईश्वर के प्रति आस्था सदेव मनुष्य को शक्ति प्रदान करता है,यहाँ आस्था से सम्बन्ध अंध-आस्था से नहीं बल्कि जीने की राह दिखाता है। नई सोच, चिंतन, विचारधाराएँ आदि में बदलाव और नए भविष्य का निर्माण करती है। वैश्विक विषमताएं मनुष्य के अन्दर जो अवसाद पैदा करता उससे मुक्ति की रह दिखाता है।

भारतीयता का मूलमंत्र है 'मै' के स्थान पर 'हम' की स्थापना करना। सहजता, सहृदयता, सहिष्णुता, विशाल हृदय, आदि भाषा के माध्यम से भारतीयता की पहचान होती है, व्यक्ति का समष्टि, संस्था, विचार के रूप में परिवर्तित होना एक सामान्य घटना नहीं है। इसके पीछे व्यक्तित्व के अन्त: में निहित भाषा, परिस्थितियां, परिवेश और सिद्धांत स्वत में अपनी भूमिका अदा करती है। महामारी के आरंभिक दौर सबसे पहले केरल राज्य में बड़ी तीव्रता से फैला।कासरगोड जिला में इसकी संख्या सबसे अधिक थी। उस समय केरल ने अपनी जडी-बुटी से युक्त संस्कृति, सभ्यता और अर्थ-नीति को प्रमुख औजार बनाया। प्लाज्मा थेरेपी के माध्यम से कोरोना से पीड़ित मरीजों का इलाज किया गया। जिसमें भारतीयता की पहचान मौजूद है। कासरगोड जिला में इसकी संख्या सबसे अधिक थी। जब प्लाज्मा थरेपी का प्रयोग आरंभिक दौर में दिल्ली में प्रयोग किया गया, उतनी सफलता नहीं मिल सकी, बाद में एक सेंटर बना दिया गया जिसके परिणाम सकारात्मक रहीं है। कासरगोड जिला में इसकी संख्या सबसे अधिक होने के कारण अरब देशों में काम करनेवालों की संख्या सबसे ज्यादा है। अन्य राज्यों की तुलना में शिक्षा, औषिधि और सूचना-प्रोद्योगिकी में नंबर एक है। इसे डिजिटल स्टेट कहा जाता है। महामारी के समय भारत सरकार द्वारा दिए गए नीति का अनुपालन, सहनशीलता और धैर्य से अपनाते गए। अत: यह जिला एक मॉडल के रूप में उभर कर आया। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है भारतीय सभ्यता और और संस्कृति से जुड़े प्रयोगों को हम हीनता की दृष्टि से देखते है और पश्चिमी को अपनाने में हम तनिक भी परहेज नहीं करतें है।

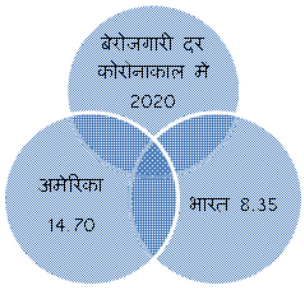

भूमंडलीकरण के दौर में भारत बहु-सांस्कृतिक और बहु-भाषाई समस्याओं से जुझ रहा है। जिस विश्वग्राम की परिकल्पना हम कर रहे है, उसमें समन्वय,सद्भावना, भाईचारा और आत्मनिर्भर हो पर यह कैसे संभव है। मुझे गाँधीजी याद आते है, जिन्होंने गाँधी, खादी और हिंदी को महत्व दिया था। भारतीय समाज में अर्थ केंद्र में कभी नहीं रहा पर यह भी सत्य है, वर्तमान समय में अर्थ के बैगैर जीवन का संचरण संभव नहीं है। यहाँ गाँधीजी एक विचारधारा, शिक्षा-संस्था और संगठन, है तो दूसरी ओर खादी जिसका सम्बन्ध अर्थ और व्यापार से है। भारत वर्तमान में इसके निर्यात से काफी लाभान्वित हुआ है। तीसरा जो प्रतीक है भाषा, संस्कृति, समाज। यह तीनो ही हमें आत्मनिर्भर होने की प्रेरणा देती है। चूकिं गांधीजी ने कहा था– मै नहीं चाहता कि मेरे घर के दरवाजें और खिड़की बंद रहे। ताकि दुसरे देश की संस्कृति, समाज, साहित्य, भाषा आदि से रूबरू हो सके और आगे कहते है– यदि उस संस्कृति से देश की संस्कृति के पांव उखर जाए यह मुझे मंजूर नहीं।" (हिन्द स्वराज-42)

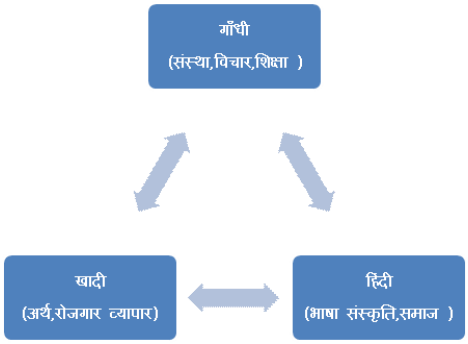

वर्तमान विश्वग्राम के नाम पर आर्थिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को स्थापित कर उपभोगतावाद और बाजारवाद को स्थापित करना है। साम्राज्यवाद के कारण भारतीय भाषाओं और संस्कृति के मध्य एक बड़ी खाई बनती जा रही है और एक नई टेक्नोभाषा की प्रक्रिया शुरू होने लगी है, जिससे भारतीय संस्कृति का ह्रास हो रहा है।

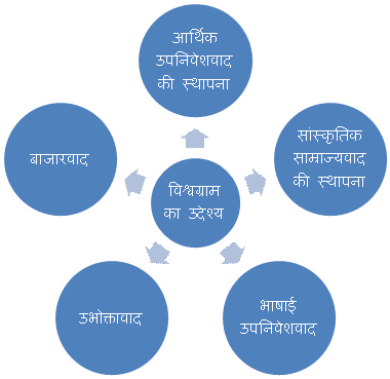

डॉ. रामविलास शर्मा जी मानते है कि "ऐसा लगता है कि हिंदी और अहिन्दी भाषियों की लड़ाई की वजह से अंग्रेजी यहाँ जमी हुई है, बात इससे ठीक उलटी है। यह नव-उपनिवेशवाद के प्रसाद के लिए हिंदी और अहिन्दी भाषियों को लड़ाया जाता है।" महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण; डॉ.रामविलास शर्मा; पृष्ट-200; वर्तमान व्यावसायिक विस्तार हेतु जन-मीडिया का सहारा लेता है। जन मीडिया जन-भाषा के माध्यम से घर-घर तक पहुँचाने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण विश्व में करोना-19 महामारी है। विश्व का आर्थिक ढांचा चरमरा गया है, घर से निकलने की अनुमति नहीं है सम्पूर्ण लेनदेन, प्रशासनिक सूचनाएं आम जनभाषा में दी जा रही है। भाषाई प्रयुक्ति में बढ़ोतरी अनेक तकनीकी संसाधनों और उपकरणों के कारण होता है ताकि एक वृहत भाषाई समुदाय का निर्माण किया जा सके। जिन भाषाओँ का प्रयोग अल्प समुदाय के लोग किया करते हैं, उन भाषाओँ को वर्तमान सुविधाओं का सहारा न मिल पाने के कारण लगभग समाप्त-सी हो गई है। कम प्रयोग में लाई जानेवाली भाषा को व्यापार और शिक्षाका माध्यम नहीं बनाया गया। जबकि उन भाषाओँ का प्रयोग तकनीकी सुविधाओं के साथ आगे बढाया जा सकता है। इससे एक भाषाई परिवर्तन, भाषाई गठन और भाषाई विकास की संभावनाओं में देखने को मिलता है। सेन्ट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन (CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION) 2013 के हवाले से यह स्पष्ट किया गया था कि 'यह अच्छी तरह स्वीकार किया गया है कि सूचना और प्रद्योगिकी (ICT) में बच्चों, शिक्षकों, शिक्षाविदों और अन्य पर प्रभाव डालने की अपार क्षमता होती है। वह हमारे देश में आनेवाले सभी चुनौतियों को कम और साझा करने में अपनी अहम् भूमिका अदा कराती है। भाषाई विविधता से एक विशेष प्रकार की भाषाई निर्माण होती है। I'Some Technological progress facilities the developments of tools and resources usable for the maintenance and cultivation of low density languages and creation of viable Communities out of Linguistics Diasporas'.(Language and Globalization, edited by Nikolas Coupland, Wiley-Blackwell, 2010, P-142)

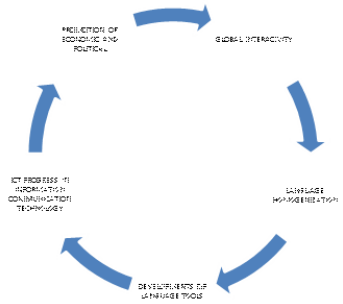

TECHNOLOGICAL PROGRSS FACILITY

मोबाइल में प्रयुक्त भाषा का प्रयोग मोबाइल कंपनी द्वारा किया जाता है। कभी-कभी त्री-भाषा सूत्र भी देखने को मिलता है। अगर केरल में पंजीकृत फोन दिल्ली में मौजूद है, तो वक्ता और श्रोता की सुविधा हेतु मलयालम, हिंदी और अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता है। एक कहावत है 'जैसा देश वैसा भेश' मांग की पूर्ति और मांग की लोच जरुरत, स्थान, समय, व्यक्ति और परिवेश के अनुसार भाषाई स्थिति तैयार करता है। उदारवादी अर्थव्यवस्था आमजन तक पहुँचने के लिए भाषाई संस्कृति से खेल खेलता है। एक ऐसी केन्द्रीय भाषाई संस्कृति का निर्माण करता है, जो भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ सकती है। भारतीय और पाश्चात्य के मध्य सांस्कृतिक टकराहट है। परिणामत: केंद्रीय संस्कृति का निर्माण हो रहा है। इन्टरनेट, मोबाइल, कंप्यूटर आदि प्रद्योगिक यंत्र-वाहक के रूप में कार्य कर रही है। चूँकि केंद्रीय भाषा शासन, शिक्षा, न्यायालय, राजनीति, संसद आदि को संचालित करती है। अत: भाषा को संचालित करने और परिवर्तित करने का कार्य विशेष सत्ताधारी वर्ग के हाथ में होता है। परिवर्तन का आरंभिक स्वर सताई व्यवस्था से आवश्यक है और सामान्य जन द्वारा नियमावली का अनुपालन किया जाना चाहिए

सम्पूर्ण विश्व एक बाजार के रूप में सामने आया है और उसविश्व बाजार में भारत का विशेष स्थान है। आज भारत देश दुनिया की तेजी से उभरती हुई आर्थिक शक्तियों में बाजार के रूप में गिना जाता है। उपभोक्ता वर्ग विश्व और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। बाजार में निवेश और व्यापार के लिए भाषा का सीखना अत्यंत आवश्यक है, तभी निवेशक अपने वस्तु को जन-जन तक पहुँचा सकता है। टी.वी. में प्रसारित होनेवाले हिन्दी के विज्ञापन इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं। आज भारत पूरे विश्व में अनेक वस्तुओं का निर्यात कर रहा है। भारत पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। चीन से 2019 -20 आंकड़ों के अनुसार 70.32 बिलियन डालर भारत में आयात किया जाता है और अमेरिका को 52.43 बिलियन डॉलर निर्यात करता है। आयातित प्रत्येक वस्तुओं के भुगतान पर भारतीय जनता का पैसा भारत के लिए उपयोग में आने की बजाय विदेशी खातों में चला जाता है। मुझे भारतेंदु जी याद आते है पै धन विदेश चली-जात है। संस्कृति से जुड़े वस्तुओं का ही नहीं बल्कि अनेक अध: अधुनातन प्रद्योगिकी संसाधनों से युक्त साधन टिक-टॉक,लाइव मी. कीवी, हेलो, लाइक, जूम, विश आदि अनेक ऐप का प्रयोग करतें हैं और भारत केवल श्रमिक मात्र बना रहा जाता है। भारतीय भूमि पर, भारतीय संसाधनों का उपयोग कर, भारतीयों के जेब खाली करवाने का काम विदेशी वाणिज्य द्वारा अंजाम दिया जाता है। भारत और उसके विरोधभास नामक पुस्तक में लिखा गया है 'एशिया तथा अफ्रीका के कई देशों के साथ भारत ने भी उपनिवेशवाद को एक बाधा के रूप में देखा जापान अपने खोल में घुस गया और उसने खुद को दुर्भाग्य से बचा लिया उपनिवेशवाद भारत, चीन, मलेशिया, इंडोनेशिया तथा अन्य देश जिस तरह व्यापार के जरिये अपना पैर जमाया, उसे जापान ने अपने यहाँ इस तरह नहीं घुसने दिया' (भारत और उसके विरोधाभास पृष्ट-52) बाजार और खनिज संसाधनों के साथ-साथ मानवीय संसाधनों के तौर पर विश्व में भारत की अपनी एक अलग पहचान बनी है। लोकतान्त्रिक देश होने के नाते आजादी के बाद भारत का एक सपना थाप भारत अपने खनिज संसाधनों की सहायता से उत्पादन करेगा और विश्व बाजार में अपना मॉल निर्यात कर लाभ कमाएगा और उस लाभ से सामाजिक कार्य किया जाएगा। यह केवल एक सपना मात्र रह गया। जहाँ भारत एक ओर उपभोक्ता (consumer) तैयार करने का साधन मात्र रह गया है तो दूसरी ओर भारतीय संसाधनों का दोहन कर विदेशी कंपनियों (Multi&National Company) को फायदा पहुँचाने का कार्य भी कर रहा है। वर्तमान समय में भारत का सकल

घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) 4.5 प्रतिशत 2019 में हैं जो 2018 में 7 प्रतिशत था। पिछले छ.वर्षों में सबसे कम है। जबकि तमिलनाडु राज्य में बेरोजगारी की संख्या 1.1 प्रतिशत है। यहाँ की क्षेत्रीय भाषा तमिल है जो संस्कृत से भी पुरानी है ये सदैव अपनी भाषा,संस्कृति,समाज से। यार करतें है और अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है। भारतीय समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और मनोविज्ञान की संकल्पना के सहयोग से सांस्कृतिक राष्ट्र का निर्माण संभव है। इसी संभव को पूर्ण करने हेतु मैंने कुछ रोड मैप तैयार किया है जो निम्नलिखित है -

1. किसानी व्यवसाय का केन्द्रीयकरण - भारत कृषि प्रधान देश है। भारत का कुल क्षेत्रफल 3287263°C है, 2016 के अनुसार 60.45% खेतिहर भूमि रही है। यह हमारी संस्कृति है, किसान शब्द से हमारे मस्तिष्क में यह धारणा बनी हुई है-किसान गरीब, असहाय, अनपढ, मूर्ख, ग्वार, जाहिल का प्रतीक है। भुखमरी की जिंदगी जीता है जैसे प्रेमचंद गोदान में होरी के माध्यम से देखतें है। आज किसान अपने खेत को छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर चुकें है। पलायन की संख्या कितनी है, इसका अंदाजा दिसम्बर 2019 में अदृश्य दुश्मन के आगमन से ही पता चलता है। अब रिवर्स पलायन देखने को मिल रहा है। अगर इसी तरह पलायन, स्थानान्तरण और पुनर्वास चलता रहा, तो वह दिन दूर नहीं, जब विदेशी कंपनी किसानों की खेतिहर भूमि खरीदकर सिचाई में अपना हाथ अजमाने लगेंगे और हमारे किसान अपनी ही भूमि में मजदूर बनकर रह जायेंगे। यह एक चिंता का विषय है। किसानी संस्कृति को मजबूती हेतु किसानी का केन्द्रीयकरण किया जाना आवश्यक है।
2. भारत को यंग इंडिया और ग्रोइंग इंडिया कहा जाता है। युवाओं की संख्या ज्यादा है, जो देश की आबादी का 65 प्रतिशत है। अतः 15 से 25 वर्ष के युवाओं के रूचि और योग्यतानुरूप 3 वर्ष के लिए संस्कृति, समाज, वस्तुकला, प्राकृतिक संरक्षण, व्यापार, भाषा गठन, वस्तु-निर्माण, सूचना प्रद्योगिकी, विनिमय, प्रशासन, राजनीति और कृषि से संबंधित व्यवहारिक प्रमाणपत्र 'भारतीय संरक्षण प्रमाणपत्र' की अनिवार्यता की जानी चाहिए।
3. अधुनातनउपकरणोंके लिए INDIAN SATATICAL INSTITUTE केतर्ज पर INTERNATIONALCONSUMER AND COMMUDITY INSTITUTE निर्माण हो जो भारतीय संस्कृति, संसाधन और भाषाई गुणवत्ता परआधारित हो।
4. आंतरिक विकासहेतुपरिकल्पना (HYPOTETHESIS) को जांचने और परखने की व्यवस्था होनी चाहिए। जिसके लिए परामर्श सेवा संस्थान का गठन हो।
5. अधतनअधुनातन संसाधनों से युक्त कार्यशाला INOVATION PROJECT CENTRE प्रत्येक संस्थानों में अनिवार्य है। बाल्यावस्था काल से छात्रों के लिए अनिवार्यरत हो, ताकि INOVATION PROJECT जैसे कार्यक्रम में भाग ले सके।
6. 'टोफेल' (TOEFL), 'आइलेट्स' (ISLETS) 'टोईका' (TOEIC), की भांति भारतीय भाषाओँ पर हिन्दी लैग्वेज प्रोफिसिएन्सी टेस्ट (HLPT) हो।
7. ऑनलाइन पाठ्यक्रम हेतु और साहित्य निर्माण में VOICE BOX का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे खर्च डठ में कम होता है, आसानी से उपलब्ध हो सकता है। वीडियो में 2G, 3G, 4G की आवश्यकहोती है, सभी के लिए यह संभव नहीं हो सकता।
8. विद्यालय, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में लोक-जीवन तथा लोक-संस्कृति का समावेश किया जाए। लोक संस्कृति से राष्ट्र का उत्थान हो सकता है। लोक-जीवन, लोक-साहित्य पर शोध परियोजना को वरीयता एवं प्रोत्साहन दिया जाए। चूंकि लोक साहित्य और जीवन में हमारी परंपरागत संभावनाएं छिपी है। प्रत्येक केंद्रीय विश्वविद्यालय में वस्तुकला संकाय के साथ स्थाई कार्यशाला का गठन हो ताकि निर्मित वास्तुकला मॉल संस्कृति के एवज में हो सके।
9. विभिन देशों में शिक्षकों का आदान-प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे वैश्विक एकता के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की पहचान विश्व स्तर पर फैल सके।
10. विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों, सरकारी और गैर सरकारी अधिकारियों सामान्य प्रयोक्ताओं आदि के लिए तकनीकी कार्यशाला आयोजित हो। इससे कार्य कुशलता में बढ़ोतरी होगी और यह छात्रों के लिए तकनीकी ज्ञान हेतु उपयोगी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत और उसके विरोधाभास, ज्यां द्रेज और अमर्त्य सेन, अनु-अशोक कुमार राजकमल प्रकाशन, 2019
2. हिन्द स्वराज, मोहनदास करमचंद गाँधी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, वर्ष-2011
3. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण; डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, 2018
4. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदरदास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
5. Language and Globalization, edited by Nikolas Copland, Wiley-Blackwell, 2010,
6. Language and Globalization, edited by Nikolas Coupland, Wiley-Blackwell, 2010
7. Language in social group, California university press, Berkeley,1969
8. Language, Bloomfield, MotilalBanarasi Das, Delhi, 1935
9. Language and Political Economy, Judith T .Irvine,1989
10. https://www.patrika.com/jaipur-news/65-or-31-per-cent-of-the-youth-population-1135895/
11. https://jaunpur.prarang.in/tagcategory.php?tagid=37&name=%E0%A4%AD%E0%A5%82%E0%A4%AE%E0%A4%BF%20%E 0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B0%20(%E0%A4%96%E0%A5%87%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B9%E0%A4%B0%20%E0%A4%B5%20%E0%A4%AC%E0%A4%82%E0%A4%9C%E0%A4%B0)
12. https://www.jagranjosh.com/general-knowledge/list-of-top-10-export-and-import-partners-of-india-in-hindi-1584169097-2

सुमित्रानंदन पन्त पर गाँधी का प्रभाव

गुड्डू कुमार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

छायावाद आधुनिक हिंदी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है जिसका उदय 1916–18 के आसपास हुआ था। छायावाद प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की राष्ट्रीय परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था। मुक्ति की जो आकांक्षा उस युग की नयी पीढ़ी में पैदा हुई थी, वही काव्य के रूप में 'छायावाद' बनकर अवतरित हुई। छायावादी काव्य मुक्ति और स्वाधीनता का काव्य है। यह वैयक्तिक अनुभूतियों की आत्माभिव्यक्ति और आत्म-प्रसार का काव्य है।

छायावाद के कवियों को प्रकृति से गहरा लगाव था। उन्होंने प्रकृति-प्रेम, 'स्व' की अभिव्यक्ति, राष्ट्र-प्रेम, समाज-सुधार आदि को अपने काव्य का विषय बनाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावाद, इन सभी प्रवृत्तियों का समुच्चय है और इस समुच्चय का केंद्रबिंदु है– मुक्ति की भावना। प्रस्तुत आलेख मुक्ति के इस आलोक में प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य पर गाँधीवादी दर्शन के प्रभाव को परिलक्षित करता है।

कालक्रम की दृष्टि से हिंदी साहित्य में छायावाद का आरंभ और गाँधी जी का दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश वापसी साथ-साथ होता है। इस समय का भारत परंपरागत जड़ता एवं ब्रिटिस शासन की क्रूर-नीति के कारण दोहरे शोषण का शिकार था। गाँधी जी के स्वदेश आगमन के साथ ही स्वाधीनता आंदोलन का जो बीज भारत में पनप रहा था, देश के कोने-कोने में पहुँचने लगा।

राजनीति केवल गोष्ठी तक संकुचित न रहकर जन-सामान्य तक पहुँचने लगी थी। स्वाधीनता आंदोलन का लक्ष्य लौकिक, मूर्त और जन-सामान्य के जीवन से अधिक संबद्ध थी। इसके माध्यम से भक्ति आन्दोलन की भाँति आम-जन को मोक्ष का राही न बनाकर, जीवन की ज्वलंत समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जा रह था। यही कारण रहा कि स्वाधीनता आंदोलन, भक्ति आंदोलन से भी प्रासंगिक एवं जीवंत था।

स्वाधीनता आन्दोलन के निर्माण में गाँधी जी के व्यक्तिव एवं उनके विचार का अहम् योगदान था। वे राजनीति से ज्यादा अध्यात्म के निकट थे। उनकी दृष्टि राजनीतिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि समस्याओं तक जाती थी। इसलिय उनका प्रभाव राजनीति के अतिरिक्त वैचारिक और सांस्कृतिक जीवन पर भी पड़ा। गांधी जी के इसी व्यक्तित्व के कारण, उनके एक आह्वान पर भारत की बयार बदल जाती थी। इस बयार से पन्त जी कैसे वंचित रह सकते थे? सन् 1921 में महात्मा जी के भाषण से प्रभावित हो पन्त जी ने कॉलेज छोड़ दिया।

'युगांत' पंतजी के छात्र-जीवन के बाद की रचना है। इस काव्य संग्रह के निर्माण काल से पहले कवि का महात्मा जी से पहली मुलाकात सन् 1934 में हुई थी। गाँधी जी के विचारों से प्रभावित कवि मन को इस मुलाकात ने एक सात्विक चौतन्य की ओर मोड़ दिया। बापू के व्यक्तित्व और सिद्धांत से प्रभावित पंत जी का भावुक हृदय, उन्हें भावी संस्कृति का आधार मानने लगे। पंत जी बापू को संबोधित करते हुए कहते हैं कि–

तुम मांस - हीन, तुम रक्त-हीन,
हे अस्थि - शेष! तुम अस्थि हीन,

तुम शुद्ध– बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव– शून्य लीन;
आधार अमर होगी, जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन!

राजनीति और नैतिकता के मध्य संबंध स्थापित करते हुए गाँधी जी ने साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर बल दिया था। गाँधी जी साधन को साध्य से पहले रखते थे। उनका मानना था कि– जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा। साध्य की प्रकृति साधन से निधारित होती है। साधन की तुलना बीज से कर सकते हैं और साध्य की वृक्ष से। अत: जैसा बीज डालेंगे, वैसा ही वृक्ष उगेगा। यदि साधन अनैतिक होंगे तो साध्य चाहे कितनी भी महान क्यों न हो, वह अवश्य ही भ्रष्ट हो जायेगी क्योंकि गलत रास्ता कभी सही मंजिल तक नहीं लें जा सकता। जो सत्ता भय और बल-प्रयोग की नींव पर खड़ी की जाती है, उससे लोगों के मन में स्नेह और आदर की भावना पैदा नहीं की जा सकती है। गाँधी जी ने स्वराज प्राप्ति के लिए सत्याग्रह का मार्ग चुना था जो स्वच्छ और पवित्र था। उनके इस मनोभाव को पंत जी के निम्न काव्य-पंक्तियों में देखा जा सकता है–

सहयोग सिखा शासित-जन को
शासन दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से
रोका मिथ्या का बल-प्रसार;
बहु भेद-विग्रहों में खोई
ली जीर्ण जाति क्षय से उबार,
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश,
औ' अंधकार को अंधकार।

अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में गाँधी जी ने लिखा है कि - "मेरे निरंतर अनुभव ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि सत्य से अलग कोई ईश्वर नहीं है।... और सत्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय अहिंसा है। अहिंसा की अखंड साधना से ही सत्य का पूर्ण साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है"। वस्तुत: ईश्वर की तरह ही सत्य का साक्षात्कार भी बहुत कठिन है क्योंकि वह अत्यंत रहस्यमय है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, ज्ञानी और मनीषी उसके भेद को नहीं जान सके तो साधारण मनुष्य उसे क्या पहचान पाएगा? वह तो सत्य की ओर जाने वाला मार्ग पर ही चल सकता है और वह मार्ग है– अहिंसा। महाभारत में 'अहिंसा परमो धर्म:' की शिक्षा दी गई है। महात्मा बुद्ध और महावीर ने भी अपने अनुयायियों को अहिंसा का पाठ पढ़ाया था। पश्चिम में ईसा मसीह ने भी सारे संसार को अहिंसा की शिक्षा दी थी। परंतु अहिंसा क्या है? इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है– ऐसा व्यवहार जिसमें हिंसा का सहारा न लिया जाए, ऐसा व्यवहार जिसमें किसी को पीड़ा न पहुँचायी जाए। यह तो अहिंसा का नकारात्मक पक्ष है जो यह बताता है कि क्या नहीं करना चाहिए? दूसरी और गाँधी जी ने अहिंसा के सकारात्मक पक्ष को पहचानने का प्रयत्न किया जो यह निर्देश देता है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए?

अत: अहिंसा का सकारात्मक पक्ष है– प्रेम। अहिंसा वह सिद्धांत है जिसमें अपने विरोधी को प्रेम से जीता जाता है, घृणा या लड़ाई से नहीं। अहिंसक की दृष्टि में कोई भी घृणा का पात्र नहीं हो सकता; पापी नहीं हो सकता। गाँधी जी बाईबल के इस वाक्य के अनुयायी हैं– 'पाप से घृणा करो पापी से नहीं'। अगर कोई पापी तुम्हारे संपर्क में आता है तो अपने चरित्र-बल से उसे पाप से विमुख करके सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करो। अहिंसा का पुजारी अपने सहचरों के दु:ख से द्रवित होकर उसके निवारण

के लिए प्रयत्न करेगा। वह अपने-पराए का भेद मिटा कर जन-सेवा में अपना जीवन अर्पित कर देगा। सत्य और अहिंसा से संबद्ध महात्मा जी के इस विचार को पंत जी के निम्न काव्य-पंक्तियों में देखा जा सकता है–

सुख-भोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य खोज,
जग के मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के म न के मनोज!
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा नम्र-ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज!

गाँधी जी का मुख्य सरोकार मनुष्य के नैतिक जीवन से था। राजनीति को उन्होंने नैतिकता के साधन के रूप में अपनाया था। उन्होंने भारत के स्वाधीनता के लिए जो आंदोलन चलाया था, उसका मुख्य ध्येय भारत को नैतिक पुनरूत्थान की ओर के जाना था। गाँधी जी विकास की ऐसी किसी भी अवधारणा के विरुद्ध थे जिसका लक्ष्य भौतिक इच्छाओं को बढ़ाना और उसकी पूर्ति के उपाय ढूँढना था। उन्होंने शिक्षा दी कि मनुष्य को भौतिक वस्तुओं का उतना ही प्रयोग करना चाहिए जितना उसके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अनिवार्य हो। प्रशासन के स्तर पर गाँधी जी विकेंद्रीकरण के समर्थक थे। उन्होंने यह विचार रखा कि उनका आदर्श राज्य छोटे-छोटे आत्मनिर्भर ग्राम-समुदायों का संघ होगा। प्रत्येक ग्राम समुदायों का प्रशासन पांच व्यक्तियों की 'पंचायत' चलाएगी, जिन्हें प्रतिवर्ष निर्वाचित किया जायेगा। ग्राम पंचायतों को विधायी, कार्यकारी और न्यायायिक शक्तियां प्राप्त होगी, परन्तु समाज में मेल-जोल और व्यवस्था बनाए रखने के लिए नैतिक सत्ता और जनमत के प्रभाव का सहारा लिया जाएगा।

उन्होंने विचार रखा कि ग्राम समुदायों को ताल्लुकों के रूप में, ताल्लुकों के समूह को जनपदों के रूप में, और जनपदों के समूह को प्रदेशों के रूप में संगठित किया जाएगा। शासन के प्रत्येक स्तर को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त होगी, और वह सामुदायिक की भावना से ओत-प्रोत होगा। केन्द्रीय सरकार को इतना अधिकार अवश्य होगा कि वह सब प्रदेशों को एकता के सूत्र में पिरो सके, परंतु इतना नहीं कि वह उन पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित कर दे। पंत जी के निम्न काव्य पंक्तियों में गाँधी जी इन भवनाओं को उकेरा गया है–

ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य-तंत्र
शासन-चालन के कृतक यान,
मानस, मानुषी, विकास-शास्त्र
हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान;
भौतिक विज्ञानों की प्रसूति
जीवन– उपकरण-चयन-प्रधान,
मथ सूक्ष्म-स्थूल जग, बोले तुम-
मानव मानवता का विधान!

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि सुमित्रानंदन पंत के व्यक्तित्व और कृतित्त्व पर समयानुकूल स्वच्छंदतावाद, प्रगतिवाद और 'अरविंद दर्शन' का प्रभाव पार्यप्त रूप में परिलक्षित होता है। 'वीणा' से 'ज्योत्सना' तक की उनकी कविताएँ स्वच्छंदतावादी चरण की कविताएं हैं। 'युगांत' के 'ग्राम्या' तक की कविताएँ प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित है। इसी दौर की कविताओं में पंत जी पर गांधीवाद का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। सन् 1940 के बाद की कविताओं पर अरविंद-दर्शन का प्रभाव है, जिसका मुख्य कारण उनका अध्यात्म की ओर झुकाव है। 'स्वर्ण-किरण' से लेकर 'वाणी' तक के कविताओं पर अध्यात्म का प्रभाव है। इन समस्त भाव

चेतना के अतिरिक्त पंत जी के मन-मष्तिष्क पर गाँधी जी का असीम प्रभाव रहा है। पंत गाँधी जी के व्यक्तिव और उनके कर्म-सिद्धांत से इतने प्रभावित थे कि वे उन्हें लौकिकता की रक्षा हेतु अलौकिक मनुज की संज्ञा देते हैं। उन्हें मानवता का अपवाद भी कहते हैं। पंत जी के भाव-विभोर हृदय में बापू के प्रति जो आस्था थी; उसे निम्न काव्य-पंक्तियों में देखा जा सकता है -

संसार छोड़ कर ग्रहण किया
नर-जीवन का परमार्थ-सार,
अपवाद बने, मानवता के
धरुव नियमों का करने प्रचार;
हो सार्वजनिकता जयी, अजित!
तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने
तुम हुए अलौकिक, हे उदार!

सहायक ग्रन्थ सूची

1. सत्य के प्रयोग, महात्मा गाँधी, प्रकाशक–नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद।
2. भारतीय राजनीतिक विचारक, ओम् प्रकाश गाबा, प्रकाशक–नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली।
3. युगांतर, सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशक–इंद्र प्रिटिंग वर्क्स, अल्मोड़ा।
4. साथ वर्ष एक रेखांकन; सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशक–राजकमल, नई दिल्ली।
5. सुमित्रानंदन पन्त, डॉ० नगेन्द्र, प्रकाशक–साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

स्त्री अस्मिता, मीडिया और बाजार

डॉ० रविंद्र सिंह

प्रवक्ता समाजकार्य विभाग, डॉ. भीमराव आंबेडकर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

परिचय

हजारों वर्षों से चली आ रही पितृसत्ता के तहत स्त्री पुरुष के अधीन रही है, पुरुष ने स्त्री के जीवन से जुड़े विभिन्न आयामों यथा उसके जीवन, कार्यशैली एवं भागीदारी को निर्धारित किया है। स्त्री की सामाजिक पहचान, उसके जीवन संबंधित महत्वपूर्ण निर्णयों को लेने में उसकी क्षमता को पुरुष समाज तवज्जो नहीं देता या नजरअंदाज करता है। विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक वजह से स्त्रियों को पुरुषों के समान सम्मान नहीं दिया जाता रहा है। स्त्री अस्मिता इस वर्चस्वादी व्यवस्था की जकड से बाहर निकलने, अपनी पहचान बनाने के लिए किये गए संघर्षों का नतीजा है।

समाज में स्त्री का अस्तित्व, उसकी पहचान कैसे व किन मानदंडों के आधार पर निर्धारित किया जायेगा? स्त्री की पहचान या उसके अस्तित्व का मूल्यांकन स्त्री करेगी या पुरुष करेगा या दोनों मिलकर करेंगे इस प्रश्न को हमें देखना होगा क्योंकि एकतरफा मूल्यांकन आदर्शपरक तो हो सकता है परन्तु वास्तविकता से काफी दूर हो जायेगा।

बीज वाक्य: स्त्री अस्मिता, मीडिया, बाजार, स्त्री विमर्श

किसी भी सभ्य समाज की स्थिति का वास्तविक आंकलन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति के आधार पर किया जा सकता है। जब स्त्री अपनी सामाजिक भूमिका को लेकर अपना मत रखना शुरू कर दे वहीं से स्त्री विमर्श और स्त्री अस्मिता के प्रश्न उठना स्वभाविक है। स्त्री अस्मिता का प्रश्न रूढ़ियों, परंपराओं जो उसके प्रति भेदभाव की वजह हैं के प्रति मुखर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। स्त्री अस्मिता के प्रश्न पर आज यह मांग उठना लाजमी है कि क्यों स्त्रियां अपने मुद्दों अवस्थाओं और समस्याओं के बारे में अपनी सोच नहीं व्यक्त कर सकती हैं। स्त्री अस्मिता के मुद्दों को यदि देखें तो उसके केंद्र में मध्यवर्गीय स्त्री ही स्थान पा सकी है। समाज में कमजोर वर्गों की स्त्रियों के मुद्दों का जिक्र बहुत सीमित मात्रा में होता है। स्त्री और पुरुष दोनों ही जैविक संरचना है इसे बदला नहीं जा सकता लेकिन जब इनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक भूमिका का निर्धारण किया जाता है तो इनके स्वतंत्र अस्तित्व पर प्रश्न उठाना जरूरी है। इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध पत्र में स्त्री अस्मिता, स्त्री विमर्श के मुद्दे, भारतीय मीडिया एवं बाजार शीर्षक के तहत चर्चा की गयी है।

स्त्री अस्मिता: स्त्री अस्मिता एक व्यापक अवधारणा है जिसके तहत प्रत्येक स्त्री को उसकी शारीरिक और बौद्धिक क्षमता का विकास, प्रदर्शन और प्रयोग पर पूरी आधिकारिकता प्रदान करने पर बल दिया जाता है। पुरुषवादी वर्चस्व के कारण विकास और शक्ति की दौड़ में स्त्री को जबरदस्ती पीछे धकेल देने के लिए सांस्कृतिक एवं सामाजिक ताना-बाना बुना जाता है। समाज की आधी आबादी इस प्रकार की अन्याय पूर्ण व्यवस्था का शिकार है।स्त्रियों को समाज में उनका स्थान प्रदान करने के लिए आवश्यक है की उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढने के लिए समानता का अधिकार प्रदान किया जाय।स्त्री अस्मिता का विचार स्त्री और पुरुष दोनों को समानता के अवसर प्रदान किये बिना संभव नहीं है। पुरुष प्रधान समाज स्त्री को व्यक्ति के बजाय वस्तु की संज्ञा देता है और उसे इसी भांति देखता रहा है। आज के परिवेश में शिक्षा, जनसंचार, संविधान के माध्यम से स्त्रियों में जागरूकता का संचार हुआ

है और वे अपने खिलाफ होने वाले अन्याय के प्रति मुखर आवाज प्रस्तुत कर रही हैं। आज वे पित्रसत्ता की मानसिकता के विरुद्ध अपनी पहचान को कायम करने के लिए संघर्ष करते हुए देखी जाती हैं। आज के समय में उनकी प्रमुख मांगों में आर्थिक आत्मनिर्भरता, सत्ता में भागीदारी, परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में स्त्रियों की भागीदारी हैं, तथा ये वर्तमान में स्त्रियों में चेतना एवं अस्मिता के कुछ मुख्य विषय हैं।

रेखा कस्तवार ने स्त्री विमर्श को परिभाषित करते हुए कहा है-"स्त्री-विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए, अनजाने पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है, परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन के अनछुए अनजाने पीड़ा जगत के उदघाटन के अवसर उपलब्ध कराना होता है, परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति बनाये रखने के स्थान पर उन कारणों की खोज से है, जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। वह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। इस विमर्श का सार है की हमारी सामाजिक संरचना में बदलाव के बिना स्त्री के हिस्से में बेहतरी आना संभव नहीं है। 'स्त्री विमर्श' स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। जब हम स्त्री अस्मिता की बात करते हैं तो यह आवश्यक है की स्त्री और पुरुष दोनों को सहयोगी एवं परस्पर पूरक समझा जाये, उनमें एक दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने की प्रतिद्वंदिता नहीं होनी चाहिए बल्कि उत्तरोतर श्रेष्ठ और उत्कृष्ट बनने की प्रक्रिया होनी चाहिए। अस्मिता और अस्तित्व का प्रश्न भारत की ही नहीं संपूर्ण विश्व की स्त्रियों के लिए सरोकार रखता है, और हमें इसे वर्तमान संदर्भ में देखना चाहिए।

स्त्री विमर्श के मुद्दे, भारतीय मीडिया एवं बाजार

स्त्री नियमों मर्यादाओं और वर्जनाओं के बीच अपना अस्तित्व ढूंढ रही है। स्त्री को उसकी पसंद का चुनाव एवं निर्णय लेने के अधिकार को हिकारत की नजर से देखा जाता है। आज महिलाओं ने उन क्षेत्रों में जहां पुरुषों का एकाधिकार होता था में भी अपनी कुशलता, ज्ञान की बदौलत अपनी उपस्थिति को दर्शा रही हैं। मगर मीडिया उनकी भूमिका को उतना उजागर नहीं कर रहा है, आज भी महिलाओं की छवि को पारंपरिक दायित्व, सामाजिक बंधनों में बाँधकर देखा जाता है। हम मीडिया में स्त्री की उपस्थिति का अवलोकन करें तो पाते हैं कि उसे यहां भी उपभोक्ता की तरह नहीं उपभोग्य की दृष्टि से स्थान मिलता है। यहां सवाल उठता है कि हमें स्त्री को जीवन के सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ने का समान अवसर दिया जाना चाहिए इसकी शुरुआत परिवार एवं मीडिया के विभिन्न माध्यमों से होनी चाहिए। क्योंकि आज के समय में व्यक्ति पर इन्हीं दोनों का प्रभाव पड़ता है विशेष रूप से मीडिया का।

स्त्री की पहचान से संबंधित मुद्दे मीडिया में मुख्य स्थान यदाकदा ही हासिल कर पाते हैं इसके पीछे मुख्य कारण मीडिया में महिलाओं का प्रतिनिधित्व नगण्य है या निर्णय लेने की स्थिति में नहीं हैं। महानगरों में महिलाओं के प्रति घटित होने वाली हिंसा जैसे छेड़ खानी, बलात्कार आदि मुख्य खबर बन जाती हैं परन्तु महिलाओं के प्रति होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक भेदभावों को लेकर कम ही चर्चा होती है। यदि मीडिया का सही उद्देश्य समझने की कोशिश करें तो दो मुख्य भूमिकाएँ सामने आती हैं। एक किसी घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध में यथार्थ बताना दूसरा पढने या देखने वाले को मुद्दे के प्रति संवेदनशील बनाना ताकि वे समस्या के कारणों पर विचार कर उसके सुलझाव में भागीदारी बन सकें, अत: आवश्यक है मीडिया सनसनी फैलाने के अलावा रचनात्मक और बौद्धिक स्वरूप को बढ़ावा देने में योगदान करे। एक समय था जब बड़े बड़े साहित्यकार पत्र पत्रिकाओं के संपादक हुआ करते थे इनके लेखन से पाठकों को विश्लेष्णात्मक खबर एवं फीचर के माध्यम से अच्छी खासी मानसिक खुराक मिल जाती थी। अब खबर है, परन्तु सब्र नहीं है। मीडिया की बड़ी भूमिका समाज को सूचना संपन्न करने के साथ ही विचार वान बनाना एवं परस्पर सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण भी है। आज बाजार के प्रभाव को मीडिया में भी देखा जा सकता है। आज संपादक के चयन के आधार में उसकी बाजार की समझ महत्वपूर्ण होती है यानि जो जितना अधिक व्यवसाय ला सके वही अच्छा संपादक माना जाता है। यह ठीक है कि बगैर विज्ञापन के मीडिया अपनी भूमिका को दीर्घकालीन नहीं निभा सकता है, परन्तु इसकी सीमा होनी चाहिए।इधर वैकल्पिक मीडिया के तौर पर ट्विटर, फेसबुक, वेब पत्र पत्रिकाएँ लोगों के सरोकारों को रख रही हैं।

मीडिया में बाजार के सकारात्मक प्रभाव को भी देखा जा सकते है, निजी अनुभवों से बढ़कर सामाजिक भागीदारी में बढ़ोतरी देखी जा सकती है। जैसे निजी अनुभवों से शुरू हुई बात जब व्यापक हितों से जुडी हुई हो तो जल्द ही उसमें सबकी आवाज शामिल हो जाती है, विशेष रूप से हम स्त्रियों की बात करें तो हैश टैग मी टू रुउममजवव को टाइम मैगजीन ने बहुत प्रमुखता दी। इस मुहिम ने शारीरिक उत्पीडन के खिलाफ बोलने का साहस ही नहीं दिया, बल्कि इससे व्यापक स्तर पर समाज में ऐसी जागरूकता फैलती दिखी कि दुनिया भर में इस प्रकार की घटनाओं पर रोक लगनी चाहिए। सोशल मीडिया के द्वारा ही किसी स्त्री या स्त्री शिशु के शारीरिक शोषण पर समाज को आत्म-मंथन की स्थिति में डालने वाला एक से दूसरे को जोड़ता हुआ वैश्विक स्तर अखतियार कर लिया यह सोशल मीडिया की वजह से ही संभव हो सका। कुछ लोग महिलाओं के प्रति होने वाले उत्पीडन को उजागर करने के तरीकों को फैशन कहकर इस सच्चाई पर पर्दा डालने की कोशिश करते देखे जा सकते हैं।

"सरोकार और जनतांत्रिकता के छलावे मे कभी-कभी मार्केटिंग का तिकड़म भी सामने आता है जैसे पैडमैन फिल्म के रिलीज होने पर पूरा ट्विटर इंस्टाग्राम फेसबुक सेनेटरी पैड के साथ ली सेल्फियों से भर गया। वह क्या माध्यम की लोकप्रियता को भुनाते हुए सामाजिक उत्तरदायित्व का भरम पाले लोगों के बीच बगैर स्पॉन्सर किए अपने उत्पादों को बेचना नहीं था? बहुत सारे लोग इस फिल्म को देखना मनोरंजनकारी नहीं बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी समझ बैठते हैं। अब आप सोचें कि यह क्या है हम कैसे समझेंगे कि कब कोई मी टू जनतांत्रिक अभिव्यक्ति का उपकरण है और कब लिब्रेट करती दिखती पैड वाली सेल्फी किसी प्रचार अभियान का हिस्सा? उसके गणित को समझना इतना मुश्किल नहीं किसी ऐसे दौर को हम उसके उद्देश्य से समझ सकते हैं दरअसल जब ऐसा कुछ व्यावसायिक हितों के लिए होता है चाहे वह फिल्म हो चाहे किसी वेबसाइट के हिट बढ़ाने के लिए तब उनका कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ता।सोशल मीडिया का वास्तविक प्रभाव यही है कि विचार अभिव्यक्ति भर से किसी को यह एहसास हो सके कि वह गलत था। एक प्रसिद्ध अभिनेत्री द्वारा अपने निजी संबंधों के टूटने पर खुलकर बोलने और आम लड़कियों के मासिक स्राव के बारे में पोस्ट लिखने तक को जहां स्त्रीवाद मान लिया जाता है वहां इस बात पर तो ऐतराज होगा ही। फिर यह भी है कि जहां कुछ लोग इसे अत्यंत नगण्य और निरर्थक मसला मानते हैं वहीं कई पोस्ट पर मैंने कई ऐसे कमेंट पढ़े हैं जो कहते हैं ऐसी बातें हमारी संस्कृति को चोट पहुंचाती हैं।" (सुदीप्ति)

"बात जहां शिक्षा अधिकार सम्मान और सुरक्षा की होनी चाहिए वहां प्रतीकों और गोपनीयता के प्रदर्शन को ही सर्वोपरि बना दिया जाता है। जो चीजें रास्ते के छोटे-छोटे टूल्स की तरह काम में लाने की होती हैं उन्हें ही वहां लक्ष्य मान लिया जाता है। बाजार ने स्त्री के ऊपर जैसे दिखने का दबाव बनाया है तरह-तरह के ब्यूटी क्वीन एप्स के बीच जैसे हैं वैसे देखने की बात करना गलत नहीं। पर उसी को एकमात्र सच्चा स्त्रीवाद साबित करने का कोई आग्रह सोशल मीडिया के एक दौर की व्यस्त था व्यर्थता के सिवा कुछ नहीं सब इतना चाहते हैं कि सदा ही लोकप्रियता और हेस्टैक के बहाने कहीं ना कहीं हमारा नाम चल जाए, हमें क्रेडिट मिल जाए वाली मारामारी मीडिया के किसी भी ब्लॉग वेबसाइट पोर्टल अखबार में नाम आ जाए तो ऐसे आंदोलनों का भरम खड़ा करने वालों की टाइम लाइन की पूरी शक्ल बदल जाती है खबरों में आ जाए तब तो पूछना ही नहीं।" (सुदीप्ति)

अटल तिवारी, "ट्रॉल नामा" शीर्षक से हंस के सितंबर 2018 के अंक में लिखते हैं "अभिव्यक्ति की आजादी का नया हथियार मुहैया कराने वाले इस माध्यम पर किस तरह से धार्मिक उन्माद और कठमुल्लापन को बढ़ावा दिया जा रहा है, इसकी बानगी पिछले दिनों फिल्म दंगल में गीता फोगाट की भूमिका निभाने वाली कश्मीर की युवा अभिनेत्री जायरा नसीम को मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती से मुलाकात के बाद देखने को मिली। मुलाकात के कारण जायरा को सोशल मीडिया पर ट्रोल का शिकार होना पड़ा। धमकियों से परेशान होकर जायरा को फेसबुक पर खुला खत लिख कर माफी मांगनी पड़ी। अधिकतर मीडिया घराने सांठगांठ वाली पत्रकारिता से बाज नहीं आ रहे, इस माहौल में अगर गिनती के पत्रकार तटस्थ होकर सरकार की नीतियों पर सवाल उठाते हैं तो सरकार में शामिल दल के अनुशांगिक संगठनों की अराजकता दिखाने और बताने का प्रयास करते हैं तो सोशल मीडिया पर उन्हें ट्रोल का शिकार बनाया जाता है उन्हें मां बहन की गालियों से नवाजा जाता है। पत्रकार अगर महिला है तो गालियों की रफ्तार दोगुनी हो जाती है बरखा दत्त, सागरिका घोष, राणा अयूब, नेहा दिक्षित आदि महिला पत्रकार इस अभद्रता की भुक्तभोगी हैं।अभद्रता का शिकार

सरकार में शामिल दल और विपक्षी दलों की महिला नेता भी हो रही हैं इनमें स्मृति ईरानी, अंगूर लता, प्रियंका चतुर्वेदी, अलका लांबा आदि हैं इन महिलाओं के किसी बात को अथवा विचार को नापसंद करने वाले अधिकांश लोग उनका विरोध तर्कों से नहीं बल्कि गालियों से करते हैं, चरित्र हनन के तौर पर करते हैं।बरखा दत्त के नाम के साथ एक गाली जोड़कर ट्विटर पर ट्रेंड कराया गया। गुजरात फाइल जैसी किताब लिखने वाली राना अय्यूब को भी निशाना बनाया गया। कांग्रेस प्रवक्ता प्रियंका चतुर्वेदी को यहां तक कह दिया कि आपके साथ बलात्कार कर निर्भया की तरह हत्या कर देनी चाहिए। आसाम से भाजपा विधायक अंगूर लता डेका की फोटो शेयर करके अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया गया। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीतने वाली अभिनेत्री कंगना रनौत के खिलाफ करैक्टर लेस कंगना और फेक फेमिनिज्म जैसे रुट्रेंड कराए गए। अभद्रता का शिकार हो चुकी आप नेता अलका लांबा को परेशान होकर साइबर क्राइम ब्रांच में मुकदमा तक लिखना पड़ा।"

सुदीप्ति हंस में प्रकाशित "वर्चुअल स्पेस का जनतंत्र" मे लिखती हैं "स्त्री स्वातंत्र्य इस बात पर टिका है अगर निर्णय वाली मर्जी बस सिन्दूर, बुर्के, घुंघट या कपड़ों तक की हो तो इसका कोई बड़ा अर्थ नहीं। आर्थिक सामाजिक और पारिवारिक निर्णयों में स्त्री का क्या हिस्सा है यह मसला विचार के लिए ज्यादा जरूरी है। आर्थिक आजादी मात्र अपने पैरों पर खड़ा होना नहीं अपने आर्थिक निर्णय ले सकना है। हर व्यक्तिगत को हम सामूहिक निष्कर्ष का आधार नहीं बना सकते हैं। यह देखकर स्थिति और भयावह महसूस होती है कि सामान्य सवाल उठाने वाली बुद्धिमता की तार्किकता की कोई सामान्य सी बात कह देने वाली औरतों को वेश्या रंडी कहकर गाली देने वाले और उनसे बलात्कार की धमकी देने वाले हमारे इसी समाज के असली लोग हैं। ऐसे तमाम लोगों के खिलाफ रिपोर्ट करने पर भी उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं होती। ऐसा करते हुए जब स्त्री अपने प्रति होने वाले शोषण को उद्घाटित करती है, तो उसे वीभत्स गालियां दी जाती हैं। उसके शारीरिक रूप रंग से लेकर उसके काम का स्तर पर घृणा से भरी टिप्पणियों के हजारों पोस्ट लिखे जाते हैं। मगर इसका उद्देश्य स्त्री की अभिव्यक्ति को दबा देना सोशल मीडिया पर किसी खास विचार या सोच के विपरीत जाने पर ट्रोल की भीड़ कुचल देने को आतुर रहती है।हाल ही में हाल ही में मैत्रीय पुष्पा के छठ वाले पोस्ट के बाद कुछ लोगों ने नाराजगी में उनके खिलाफ हर सीमा को लांघ जहर उगला। नि:संदेह उनका स्वर व्यंग्यात्मक था, तब उन्होंने कहा कि छठ के त्यौहार में बिहारवासी स्त्रियों की मांग, माथे के अलावा नाक पर भी सिंदूर क्यों पोंछ लेती हैं। यह सामान्य जिज्ञासा नहीं थी यह एक रीति पर सवाल ही था जिसका युक्तिसंगत जवाब तो सामने आया नहीं उसके बजाय अस्मितावादी प्रतिक्रियाएँ भरपूर सामने आई।" इस के दबाव में उन्हें अपनी पोस्ट को डिलीट करना पड़ा। बदलते परिवेश में आत्मीय मित्र या करिबी कोई स्त्री ही हो यह जरूरी नहीं वह पुरुष भी हो सकता है मगर समाज पुरुष मित्र को सकारात्मक ढंग से नहीं देखता है।

स्त्री अस्मिता को उजागर करने में उड़ान देने में उन्हें अपने अधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाने में हिंदी फिल्मों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन फिल्मों में 'मंडी', 'बाजार', 'भूमिका', 'मिर्च मसाला' आदि प्रमुख सिनेमा हैं। स्त्री विमर्श को नया आयाम प्रदान करने में 'वाटर', 'फायर', 'अर्थ', 'नो वन किल्ड जेसिका' जैसी फिल्मों ने भी स्त्री विमर्श को नया आयाम दिया है। इन फिल्मों के माध्यम से स्त्रियों की बदलती छवि को बहुत ही संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। 2014 में प्रदर्शित फिल्म 'क्वीन', 'मरदानी', 'लक्ष्मी', 'मैरी कॉम' आदि के माध्यम से स्त्रियों को नई पहचान मिली है।

निष्कर्ष

उपरोक्त से निष्कर्ष निकलता है कि आज महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में अपनी मेहनत की बदौलत समाज में अपना स्थान बना रही हैं,हालांकि उनको अक्सर सामाजिक, सांस्कृतिक, लिंग आधारित भेदभाव का भी सामना जन्म से करना पड़ता है। इसके बावजूद उनका आगे बढ़ने का जज्बा आज उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में इच्छित मुकाम हासिल करने में मदद कर रहा है। सरकार के द्वारा महिलाओं को पहचान दिलाने के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रावधान भी किए गए हैं जैसे शिक्षा में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न स्कॉलरशिप का प्रावधान किया गया, साथ ही उनकी आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए उनके

लिए ऋण कि भी व्यवस्था की जा रही है। स्त्रियों की राजनीतिक भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए विशेष कर पंचायती स्तर पर कई राज्यों ने 50% और 33% आरक्षण का प्रावधान किया इससे महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में बढ़ोतरी देखी जा सकती है। हालांकि यदि हम देखें तो समाज के मध्य वर्ग की महिलाएं ही उपरोक्त सुविधाओं का लाभ लेकर आगे बढ़ती नजर आती समाज के कमजोर वर्गों की महिलाओं की स्थिति आज भी दयनीय है हालांकि राजनीति में निर्मला सीतारमण, ममता बनर्जी, स्मृति ईरानी, मायावती आदि उदाहरण है जिन्होंने अपनी मेहनत के बूते एक मुकाम हासिल किया है। आर्थिक क्षेत्र में यदि हम देखें तो पेप्सीको की इंदिरा नूई और फार्मा क्षेत्र में किरण मजूमदार शा प्रमुख नाम हैं। इसी प्रकार खेल की दुनिया में मैरी कॉम, सानिया मिर्जा, पीटी उषा ने अपना नाम स्थापित किया है।

इन सब के बावजूद स्त्रियों के प्रति होने वाले भेदभाव, उनके प्रति होने वाली हिंसा में काफी कमी होती नहीं दिख रही है।

फुटनोट

1. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, प्र. 9, 2009, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
2. प्रमोद कुमार यादव, आधी : स्त्री अस्मिता का उभार (अपनी माटी, वर्ष-2, अंक-23, नवम्बर, 2016
3. राधिका नागरथ, लेख "भारतीय मीडिया का नकारात्मक द्रिष्टकोण", साहित्य अमृत, अंक अगस्त पेज सं 199, 2015, प्रभात प्रकाशन
4. राजेश कुमार व्यास, "लोकतंत्र, मीडिया एवं बाजार", साहित्य अमृत, अंक अगस्त, पेज सं 202, 2015, प्रभात प्रकाशन
5. सुदीप्ति, "वर्चुअल स्पेस का जनतंत्र" हंस, सितंबर 2018, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली
6. आदित्य शर्मा, "औरत विज्ञापन और बाजार", स्त्रीकाल, अक्टूबर 23, 2015

दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट एवं एम.एस. एम.ई. द्वारा संचालित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का प्रशिक्षणार्थियों की व्यावसायिक सफलता के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

प्रियंका कुमारी

शोधार्थी (शिक्षा संकाय), दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी), दयालबाग, आगरा

प्रो० गुरप्यारी सतसंगी

(शिक्षा संकाय), दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी), दयालबाग, आगरा

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा व्यावसायिक सफलता के सन्दर्भ में दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट व सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (एम.एस.एम.ई.) द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का तुलनात्मक विशलेषण किया गया जिसके लिए वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया। शोधार्थी द्वारा व्यावसायिक सफलता के अध्ययन हेतु स्व निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के रूप में शोधार्थी द्वारा डी.ई.आई. व एम.एस.एम.ई. से कुल 151 व 105 प्रशिक्षार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया। आकड़ों के विश्लेषण हेतु शोधार्थी द्वारा भारित मान व काई वर्ग सांख्यिकीय का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि व्यावसायिक सफलता के सन्दर्भ में डी.ई.आई द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की प्रभावशीलता, एम.एस.एम.ई. द्वारा संचालित व्यावसायिक कायक्रमों की प्रभावशीलता से उच्च स्तरीय पायी गयी। जिसके अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थियों को उच्च वेतनमान व अनुकूल व्यवसाय में कार्य करने का अवसर, प्रतिष्ठित कम्पनीयों में चयन, उच्चाधिकारियों द्वारा सकारात्मक पृष्ठपोषण, बेरोजगारी की भावना का अभाव, व्यावसायिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि, व्यवसाय में नवाचार तकनीकि का प्रयोग एवं व्यवसाय में मनोसामाजिक सन्तुष्टि को सम्मिलित किया गया है।

मुख्य शब्द (Key words) : व्यावसायिक सफलता, व्यावसायिक कार्यक्रमों की प्रभावशीलता, दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट एवं एम.एस.एम.ई.।

प्रस्तावना

आज भारतीय समाज का ढांचा तेज गति से बदल रहा है। प्राचीन काल में व्यवसाय जाति के साथ जुड़े हुए थे और नव युवक पुश्तैनी कार्य में विशेष रूचि लेते थे। समय व सामाजिक परिवर्तनों के साथ लोगों की चिन्तनधारा में क्रान्तिकारी बदलाव आ रहे है। आज व्यवसायों का मूल्यांकन आर्थिक आधार पर किया जाता है। कोई भी व्यवसाय हो यदि उसमें धन का उपार्जन अधिक है तो समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी है तथा नवयुवकों की भीड़ उन व्यवसायों की ओर ही बढ़ रही है।

आज पूरा विश्व युवा कौशल दिवस मना रहा है भारत भी इस अवसर पर एक महत्वपूर्ण कदम उठा रहा है और हाल ही में माननीय प्रधानमंत्री जी की हर परिचर्चा में स्किल इंण्डिया का जिक्र किया जाता है। उनका तर्क है कि देश का कोई नौजवान हाथ फैलाकर कुछ माँगने को मजबूर न हो, वो दयनीय जिंदगी न जिए, वो आत्म सम्मान और गर्व के साथ जीवन जी सकें। कौशल और सामर्थ्य ये सिर्फ जेब भरने के लिए नहीं या केवल रूपया कमाने के लिए नही हैं। ये जीवन में आत्मविश्वास की एक नयी रोशनी की किरण लाते हैं और एक नयी ताकत का उदय होता है। इसलिए विश्व के पटल पर कौशल विकास एक महत्वपूर्ण एजेंण्डा है।

वीना (2015) ''रोल आफ डवलपमेन्ट इन्स्टीट्यूट इन द स्टेब्लीस्मेन्ट ऑफ माइक्रो स्मॉल एण्ड मीडियम एन्टरप्राइस : अ केस स्टडी ऑफ भवानी हरियाणा'' में पाया गया एम.एस.एम.ई विकास संस्थान के परामर्श और कार्यक्रम बहुत प्रभावी पाये गये। लोगो को इस ओर अधिक प्रोत्साहित करके उन्हे सशक्त का सकते है।

आशु कात्याल एवं विट्से एक्सविअर (2015) ''अ स्टडी आन एम.एस.एम.ई. रोल इन प्रोपलिंग इकॉनोमिक डवलपमेन्ट ऑफ करेन्ट एच आर इशु इन एम.एस.एम.ई. इन इण्डिया'' में बताया गया है कि एम.एस.एम.ई. मानव संसाधन संगठनो के लिए आज सबसे जरूरी विकास संकेतको में से एक है। आज मानव संसाधन के प्रबन्धन की औपचारिकता में कमी नहीं है। इस हेतु संरचित और औपचारिक मानव संसाधन प्रणाली को अपनाया है। मानव संसाधन में एम.एस.एम.ई के कौशल युक्त प्रशिक्षण कार्यो से उसके महत्व को स्वत: ही समझा जा सकता है।

सुरत कुमार दास (2014) ''ग्रोथ एण्ड प्रोस्पेक्ट आफ एम.एस.एम.ई. इन ओडिसा: एन एनालिटिकल एप्रोच'' में बताया गया है कि निष्कर्ष रूप में पाया गया कि ओड़िसा में एम.एस.एम.ई. के द्वारा विकास दर में बहुत प्रगति हुई है व इसके द्वारा सामाजिक आर्थिक विकास हुआ है।

स्किल इंण्डिया के एजेंण्डा को प्राप्त करने के लिए एम.एस.एम.ई. मंत्रालय व डी.ई.आई. संस्थान विभिन्न कौशल विकास एवं रोजगार परक पाठ्यक्रम संचालित कर रहा है। इन कार्यक्रमों का प्रशिक्षणार्थियों के व्यवसायिक सफलता के सन्दर्भ में मूल्याकंन करना अतिआवश्यक है। प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने एक अनुवर्ती शोध अध्ययन पर बल दिया है। जिससे रोजगार परक कार्यक्रमों की उपलब्धियों का मूल्याकंन किया जा सके।

उददे्श्य

दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट एवं एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का प्रशिक्षणार्थियों की व्यावसायिक सफलता के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन विधि :-

शोधार्थी द्वारा वर्तमान शोध अध्ययन में अनुसंधान की वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया है।

अध्ययन उपकरण :-

शोधार्थी द्वारा व्यावसायिक सफलता के मापन हेतु स्व निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट व सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (एम0एस0एम0ई0) से कुल 151 व 105 प्रशिक्षार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया।

अध्ययन की उपलब्धियाँ

उपरोक्त उद्देश्य के सन्दर्भ में शोधार्थी द्वारा डी0ई0आई0 व एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षार्थियों के व्यावसायिक सफलता में सम्मिलित विभिन्न कथनों पर प्राप्त भारित मध्यमान के विश्लेषण के आधार पर उक्त संस्थाओं द्वारा संचालित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया एवं प्रशिक्षणार्थियों की प्रतिक्रिया के आधार पर सांख्यिकीय प्रविधि के माध्यम से काई वर्ग का विश्लेषण किया गया।

- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था से प्राप्त प्रशिक्षण योग्यता के आधार पर मुझे अच्छे व्यवसाय के चयन का अवसर प्राप्त हुआ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमश: 3.43 व 3.11 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता

व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 4.37 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।

- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था से प्राप्त व्यावसायिक प्रशिक्षण के उपरान्त मेरा अच्छे वेतन मान पर प्लेसमेन्ट हुआ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.25 व 2.78 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 6.81 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था की प्रतिष्ठा व गुणवत्ता परख व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के उपरान्त प्रतिष्ठित कम्पनीयों द्वारा नई नौकरी के लिए प्रस्ताव प्राप्त हुए'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.47 व 2.50 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 27. 10 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''मेरी व्यावसायिक योग्यता को देखकर मेरे कार्यस्थल के अन्य सहकर्मियों द्वारा मुझे सम्मान प्राप्त होता है'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.16 व 3.20 पाया गया जो डी0ई0आई0 व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 0.47 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था से उन सभी कौशलों का प्रशिक्षण प्राप्त हुआ जिससे मुझे आज अपने कार्यस्थल पर नीरसता महसूस नही होती है'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.21 व 3.12 पाया गया जो डी0ई0आई0 व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 2.33 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''मेरी व्यावसायिक कुशलता को देखकर कम्पनी/व्यावसायिक स्थल के उच्चाधिकारी मुझे सम्मान की नजर से देखते है'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.95 व 3.19 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 29.66 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''अपनी व्यावसायिक कुशलता के कारण मै अपने व्यवसाय में तनावमुक्त रहता हूँ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.17 व 2.87 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 3.26 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''मुझे अपनी प्रशिक्षण योग्यता पर विश्वास है कि मेरा अपने व्यवसाय में शोषण नही किया जा सकता है'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.30 व 3.23 पाया गया जो डी0ई0आई0 व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 0.89 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।

- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था से प्रशिक्षण के उपरान्त मै स्वयं को एक बेरोजगार के रूप में नही देखता हूँ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.65 व 3.29 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 4.89 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''अपनी प्रशिक्षण योग्यता को दृष्टिगत रखते हुए अपने व्यवसाय के प्रति हीनता की भावना महसूस नही करता हूँ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.33 व 3.13 पाया गया जो डी0ई0आई0 व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 2.85 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''मैने यदि प्रशिक्षण योग्यता प्राप्त न की होती तो मुझे इसके समतुल्य वेतनमान पर व्यवसाय प्राप्त नही होता'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.45 व 3.24 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 1.62 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण योग्यता मुझे आत्मनिर्भर बनाती है'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.57 व 3.00 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 14.89 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन '' संस्था से प्राप्त प्रशिक्षण योग्यता के उपरान्त मैं अपने व्यवसाय के भविष्य को लेकर चिंतित नही रहता हूँ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 2.88 व 3.19 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 3.44 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''मैं अपनी प्रशिक्षण योग्यतानुसार अपने कार्यो को अतिशीघ्र कर अतिरिक्त समय निकाल लेता हूँ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.16 व 2.98 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 2.49 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''प्रशिक्षण संस्था में मुझे नवीन उपकरणों पर प्रशिक्षण दिया गया जो मुझे आज अपने व्यवसाय में आत्मनिर्भर बनाते है'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.73 व 2.86 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 23.80 प्राप्त हुआ जो कि 0. 01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक पाया गया।

- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था के प्रशिक्षण के उपरान्त प्राप्त व्यावसाय से मेरी सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा में उन्नति हुई है'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.37 व 3.14 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की सामान्य प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 2.89 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।
- व्यावसायिक सफलता के कथन ''संस्था द्वारा प्लेसमेंट के माध्यम से जिस व्यवसाय में कार्य करने का अवसर मिला है, उसमें मैं मनोसामाजिक रूप से सन्तुष्ट हूँ'' के सन्दर्भ में डी0ई0आई0 एवं एम0एस0एम0ई0 से प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर भारित माध्य क्रमशः 3.36 व 3.00 पाया गया जो डी0ई0आई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की उच्च प्रभावशीलता व एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की निम्न प्रभावशीलता को दर्शाता है। प्रशिक्षणाथियों की अनुक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए काई वर्ग का मान 7.59 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक पाया गया।

निष्कर्ष :

व्यावसायिक सफलता के सन्दर्भ में डी0ई0आई द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की प्रभावशीलता, एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कायक्रमों की प्रभावशीलता से उच्च स्तरीय पायी गयी। जिसके अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थियों को उच्च वेतनमान व अनुकूल व्यवसाय में कार्य करने का अवसर, प्रतिष्ठित कम्पनीयों में चयन, उच्चाधिकारियों द्वारा सकारात्मक पृष्ठपोषण, बेरोजगारी की भावना का अभाव, व्यावसायिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि, व्यवसाय में नवाचार तकनीकि का प्रयोग एवं व्यवसाय में मनोसामाजिक सन्तुष्टि को सम्मिलित किया गया है जबकि सहकर्मियों के मध्य सम्मान, व्यवसायिक कार्य में रूर्ती, व्यवसाय के प्रति कार्य सन्तुष्टि, व्यवसाय के प्रति सकारात्मक दृष्किोण एवं सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा में उन्नति के सन्दर्भ में डी0ई0आई एवं एम0एस0एम0ई0 द्वारा संचालित व्यावसायिक कार्यक्रमों की प्रभावशीलता समान पायी गयी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- एनुअल रिपोर्ट, 2014-15, मिनिस्टरी ऑफ माइक्रो स्मॉल एण्ड मीडियम एन्टरप्राइस, www.msme.gov.in.
- कार्टर,वी.गुड (1954), मैथडलोजी ऑफ एजुकेशन रिसर्च, एप्लीटेन सेन्चुरी, न्यूयार्क।
- कॉल, लोकेश (2004), शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा0लि0।
- कपिल, एच. के. (1992), शैक्षिक सांख्यिकी, प्रथम संस्करण हरप्रसाद भार्गव, पुस्तक प्रकाशन, आगरा।
- कात्याल, आशु एवं विट्से एक्सविअर (2015), ए स्टडी आन एम.एस.एम.ई. रोल इन प्रोपलिंग इकॉनोमिक डवलपमेन्ट ऑफ करेन्ट एच आर इशु इन एम.एस.एम.ई. इन इण्डिया, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइन्टिफिक एण्ड रिसर्च पब्लिकेशन, वोल्यूम न. 5, आईएसएसएनः 2250-3153।
- गैरिट,हेनरी, ई. (1986), 'स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन, लीगमेन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी , न्यूयार्क।
- गुड,बार एवं स्केट्स (1966), 'मैथडोलजी ऑफ रिसर्च, साइकोलॉजी एण्ड सोशलॉजी, सेन्चुरी कट्स इडक, न्यूयार्क।
- गिलअर्ड, जी.पी.द्ध1967), जर्नल साइक्लोजी. डी वन नोस्टर्ड कम्पनी आईएनसी।
- दास, सुरत कुमार (2014) ''ग्रोथ एण्ड प्रोस्पेक्ट आफ एम.एस.एम.ई. इन ओडिसाः एन एनालिटिकल एप्रोच, कॉलेज ऑफ ऐजूकेशन एण्ड टैक्नोलजी, भुवनेश्वर।
- वीना (2015), रोल आफ डवलपमेन्ट इन्स्टीट्यूट इन द इस्टेब्लीस्मेन्ट ऑफ माइक्रो स्मॉल एण्ड मीडियम एन्टरप्राइस : अ केस स्टडी ऑफ भवानी हरियाणा, अभिनव इन्टरनेशनल मेन्थली रेफ्रर्ड जर्नल ऑफ रिसर्च इन मेनेजमेन्ट एण्ड टैक्नोलजी, वोल्यूम न. 4, आईएसएसएनः 2320-0073।

बिहार की प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण तथा पर्यटन की संभावनाएँ

प्रेमलता कुमारी

रिसर्च स्कॉलर, सी.एस.आर.डी, जे.एन.यू, नई दिल्ली

भूमिका

किसी भी क्षेत्र में भौतिक विज्ञान, जल, जलवायु और प्राकृतिक वनस्पति पर्यावरण के मुख्य घटक है। परिदृश्य (पहाड़ियों, पठारो, जंगल, और घास) और अनुकूल मौसम जैसे प्राकृति से जुड़े आकर्षण पर्यटन के विकास के लिए महत्पूर्ण कारक हैं। सांस्कृतिक वातावरण भी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होता है। यह पर्यटकों को आकर्षत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बिहार इसमें धनी है। यहाँ पहाड़ियाँ, झरने, झिले एवं कई धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलें है।

उद्देश्य

- बिहार के प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन करना।
- बिहार के वर्तमान पर्यटन की स्थिति का विश्लेषण करना।
- बिहार के पर्यटन की सभावनाओं का अन्वेंषन करना।

प्राकृतिक वातावरण

पहाड़ी क्षेत्र-बिहार के उत्तर पश्चिम शिवालिक श्रेणी का छोटा सा भाग है। यहाँ पर सोमेश्वर श्रेणी, हरहा घाटी व रामनगर दून अवस्थित है। दक्षिण बिहार में कुछ पहाड़ी क्षेत्र-राजगीर की पहाड़ियाँ, बराबर की पहाड़ियाँ, कैमूर श्रेणी व प्रेतशिला पहाड़ियाँ आदि है।

मैदानी क्षेत्र

गंगा नदी मैदानी क्षेत्र को दो असमान हिस्सों में विभाजित करती है-उत्तर गंगा का मैदान और दक्षिण गंगा का मैदान। उत्तरी गंगा मैदान को पुनः कोसी व मिथिला के मैदान तथा दक्षिण गंगा के मैदान को पुनः गंगा-सोन दोआब, मगध का मैदान तथा अंग मैदान में विभाजित किया गया है।

जलनिकाय व जलप्रवाह

गंगा बिहार की प्रमुख नदी है। उत्तर बिहार में घाघरा, गंडक, बूढ़ी गंडक, बागमती, कमला, कोसी और महानंदा प्रमुख है। दक्षिण बिहार में कर्मनाशा, सोन, पुनपुन, फल्गु, बडुआ और चंदन प्रमुख है। ये सभी नदियाँ गंगा नदी से जुड़ती है। गंडक, बूढी गंडक और कोसी नदियों के बाद में मैदान में कई झीले और दलदल है। ये झीलें प्राथमिक जल आपूर्ति, मत्स्य पालन एवं पक्षी अभयारण्य को बढ़ावा देती है। इनमें मनोरंजन गतिविधियों और पर्यटन की भी संभावनाएँ है। बरैला ताल और कांवर ताल प्रमुख महत्व के है। दक्षिण बिहार में मोकामा ताल और सूरजगढ़ा ताल उल्लेखनीय है।

जलवायु

जलवायु परिस्थितियाँ विशेष रूप से तापमान और वर्शा का महत्व है। पर्यटक आरामदायक जलवायु वाले स्थानों की यात्र करना पसंद करते है। वे अक्सर सर्दियों में गर्म क्षेत्रों तथा गर्मियों के दौरान ठंडी जगहों को पसंद करते है। हालांकि, जब यात्र आनंद के अलावा एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए किया जाता है, तो वे कम अनुकूल वाले क्षेत्रों में भी जाने से गुरेज नहीं करते हैं। बिहार की जलवायु उपआर्द्र है। यहाँ सर्दियों के मौसम को विदेशी और घरेलू पर्यटकों के लिए सबसे अच्छा माना जाता है।

प्राकृतिक वनस्पति

बिहार में कम घना जंगल पाया जाता है-सिवाय उत्तरोत्तर एवं दक्षिणी भागों के कुछ क्षेत्र को छोड़कर। पश्चिम चंपारण में सुमेश्वर और दून पहाड़ियों के उप हिमालयी पर्वतपंदीय जंगल में नम वनस्पति पेड़, झाड़ियॉ, घास व ईख शामिल है। इस क्षेत्र में 1600 मिलीमीटर से अधिक भारी वर्षा होती है जो कुछ क्षेत्रों में विलायती साल वन को बढ़ावा देती है।

जीव-जन्तु

सारणी 1 दर्शाता है कि कुछ वन्यजीव, पार्क, पक्षी व डॉल्फीन अमयाण्य बिहार में मौजूद है। चित्र-1 दर्शाता है कि एक वन्यजीव अभयारण्य उत्तर बिहार में और दो दक्षिण बिहार में स्थित है जहाँ घने जंगल है। बिहार में केवल एक प्राणि उद्यान हैं, जो बिहार की राजधानी में है। बिहार में पाए जाने वाले वन्यजीवों की मुख्य प्रजातियाँ है-बाङ, तेंदुआ, हिशिंग कैट, लैपर्ड कैट, चीतल, सांभर, हॉग डीयर, ब्लैक बक और स्लॉथ बीयर, लंगूर और विभिन्न प्रकार के पक्षी आदि। डॉल्फिन अभयारण्य गंगा नदी में एवं पक्षी अभयारण्य उन स्थानों पर है, जहाँ आर्द्र भूमि है। इन अभयारण्यों में सर्दियों के मौसम में हर साल प्रवासी पक्षियाँ आते है और जो पर्यटकों को आकर्षित करते है।

सारणी 1-बिहार में वन्यजीव एवं पक्षी अभयारण्य

क्रम सं.	*अभयारण्य*	*स्थापना का वर्ष*	*क्षेत्रफल (वर्गकिलोमीटर)*
1	गौतम बुद्ध वन्यजीव	1976	25.83
2	संजय गाँधी जूलोजिकल पार्क	1970	0.82
3	भीम बांध वन्यजीव	1976	632
4	वाल्मीकि नगर वन्यजीव	1993	840
5	विक्रमषीला गंगा डॉल्फिन	1990	50
6	नाटी पक्षी अभयारण्य		
1987	2.06		
7	नागी पक्षी बिहार	1987	1.91
8	कांवर पक्षी अभयारण्य	1989	63.11
9	गोगाबील पक्षी अभयारण्य	1990	218
10	कुशेष्वर पक्षी अभयारण्य	प्रस्तावित	100
11	बक्सर पक्षी अभयारण्य	-	25
12	परमान डॉल्फिन	1995	50

स्रोत-बिहार पर्यटन विभाग

सांस्कृतिक वातावरण

बिहार दो धर्मों का जन्मदाता है-बुद्ध और जैन तथा सभी धर्मों के प्रमुख स्थल भी बिहार में है।

पर्यटन बिहार में की वर्तमान स्थिति तथा संभावनाएँ

पर्यटन बिहार में एक महत्वपूर्ण धुआँरहित (smokeless) उद्योग के रूप में उभरने की क्षमता रखता है।

चित्र-1

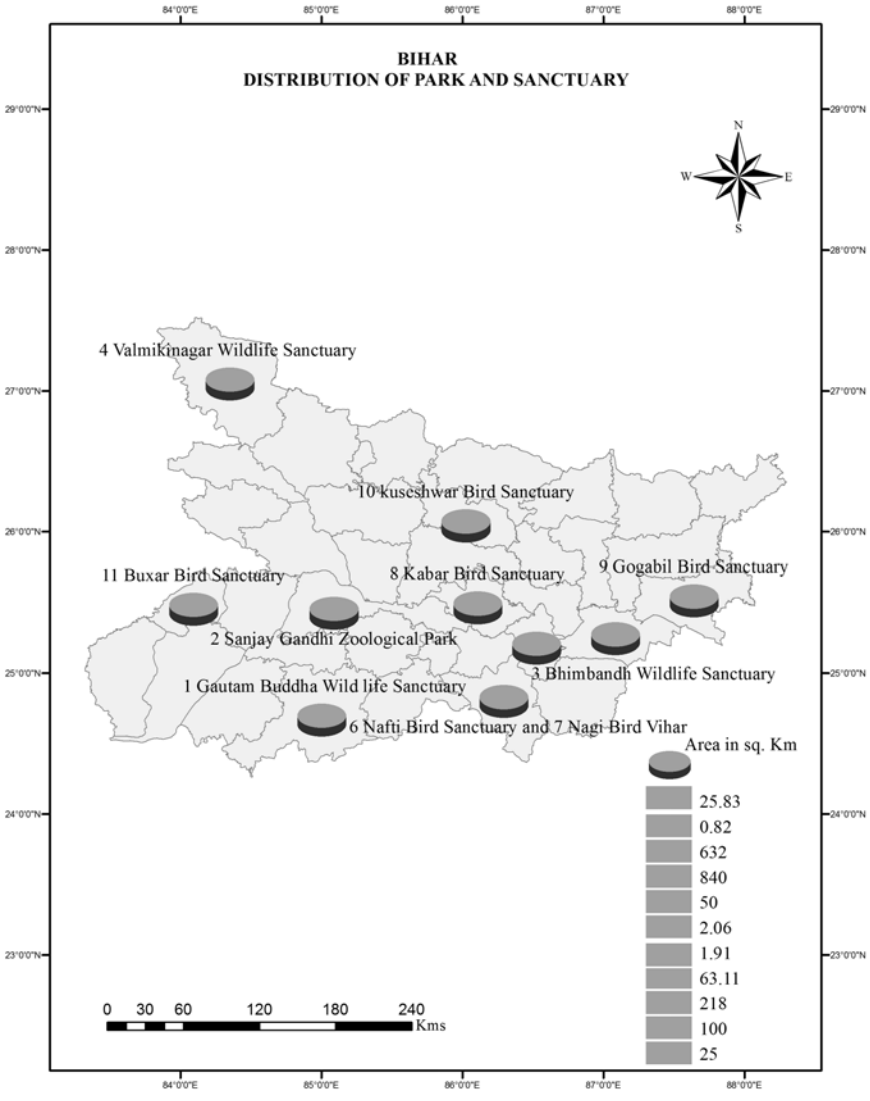

चित्र-2

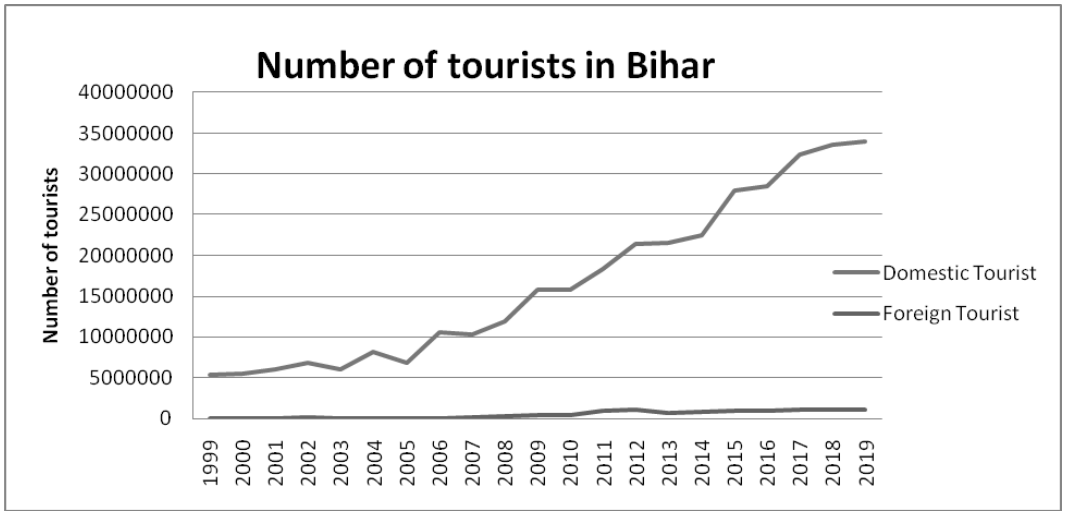

चित्र 2 बिहार में कुछ वर्षो के अपवाद के साथ घरेलू और विदेशी दोनों पर्यटकों की संख्या में नियमित वृद्धि दर्शाता है। बिहार अंतरराष्ट्रीय महत्व के स्मारकों और खंडहरों के सदर्भ में एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से रणनीतिक लाभ रखता है। यह कई धर्मो की उत्पत्ति की भूमि है। जो महान साम्राज्य की सीट थी। मानचित्र 1 में दर्शाया गया है कि राज्य में दुनिया भर से पर्यटकों को आकर्षित करने की क्षमता है। इसमें बौद्ध मठ, जैन मंदिर, सिख गुरूद्वारे और सूची धार्मिक स्थलें शामिल है जो भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, गुरू गोविन्द सिंह और महान सूफी संतो के साथ जुड़ाव को दर्शाता है। यह महान चीनी पर्यटकों फाहयान और हवेनसांग के साथ भी जुडा हुआ है। राज्य में राजगीर और पटना जैसे ऐतिहासिक स्थल हैं जों मगध साम्राज्य के राजधानी रह चुके है।

मानचित्र 1

आकर्षण

बिहार मुख्य रूप से ऐतिहासिक सह धार्मिक पर्यटन के लिए प्रसिद्ध है, लेकिन इसमें अन्य प्रकार के पर्यटन ऐतिहासिक सह पुरातात्विक, शैक्षणिक पर्यटन और सांस्कृतिक पर्यटन आदि भी है। राज्य सरकार द्वारा बिहार में कुछ नए पर्यटन-इकोटूरिज्म, एडवेन्चर टूरिज्म आदि को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। वन्यजीव, पक्षी व अन्य अभयारण्य प्रकृति आधारित ईको-टूरिज्म की क्षमता रखते है। गंगा नदी के सभी हिस्से में जल आधारित खेल और रिवरफ्रंट गतिविधियों की संभावना है।

ऐतिहासिक सह धार्मिक पर्यटन :-

बोधगया, गया, राजगीर, पावापुरी, वैशाली, पटना साहिब, औरंगाबाद, सीतामढ़ी और मुजफरपुर आदि जगहों में है।

बिहार में मुख्यत: चार धार्मिक टूरिज्म सर्किट है-

1. बुद्धिस्ट सर्किट : बोधगया-राजगीर-नालन्दा-पटना-वैशाली-लौरिया अरेराज-केसरिया -लौरिया नन्दनगढ़-विक्रमशीला
2. तिर्थकर सर्किट : वैशाली-पटना-राजगीर-पावापुरी-नाथनगर-मंदारपर्वत-बिश्राम-मसाढ़-चम्पानगर-नालन्दा
3. रामायण सर्किट : वालमीकिनगर-प्रेतशिला हिल-अहिल्यास्थान-सीतामढ़ी-काको-सीताकुण्ड-ताड़-सिघेंश्वर-चंडीगढ़-बक्सर
4. सूफी सर्किट : मनेरशरीफ-फुलवारीशरीफ-खानकाह इमादिया-दरगाह शरीफ-बिहार शरीफ-हजरत जनदाहा-हाजीपुर

कुछ प्रसिद्ध स्थानीय कला और षिल्प

भागलपुर-रेशम की कीड़ो का पालन, रेशम के धागो के निर्माण व रेशम उत्पादों के लिए प्रसिद्ध है। यह रेशम एक विशेष प्रकार का होता है जिसे तसर रेशम कहा जाता है। भागलपुर रेशम उद्योग को भारत के सर्वश्रेष्ठ रेशम उत्पादन केन्द्रो में से एक माना जाता है।

मुज़रपुर-यह षहर चूड़ी बनाने के लिए प्रसिद्ध है। लाह का उपयोग युगों से बक्से और चूड़ियों जैसी सुंदर वस्तुओं को बनाने के लिए किया जाता है।

पटना-पटल कलम पेंटिंग : मुगलों के पतन के बाद कुछ कलाकार पटना आए और एक शैली का अनुरसरण करते हुए अपने शिल्प का अभ्यास किया जिसे धीरे-धीरे पटना कलम पेटिंग के रूप में जाना जाने लगा। यह शैली अपने कोमल रंगों और हस्तनिर्मित कागज यह अभ्रक पत्र के उपयोग के लिए प्रसिद्ध है। इन चित्रों में से अधिकांश बिहार के लोगों के जीवन को दर्शाते है।

मधुबनी-मधुबनी पेटिंग : यह बिहार के मिथिला क्षेत्र के अंदरूनी हिस्सों में प्रचलित कला का एक प्रभावशाली कार्य है। यह सामान्य रूप से महिलाओं द्वारा तीन रूपों में किया जाता है-फर्श पर पेंटिंग, दीवार पर पेंटिग और मोवेबल वस्तु पर पेंटिंग।

इसी के साथ-साथ बिहार लोकगीत, मेला व त्योहार के लिए प्रसिद्ध है।

लोकगीत-शादी, जन्मदिन, आदि पर गाया जाने वाला लोकगीत, फगुआ आदि।

लोकनृत्य-धोबी, झूमर, माँझी, मोर-मोरनी, सोहराई नाच, जाट-जाटिन।

लोकनाट्य-विदेशिया, बिहुला-बिसहरी, सामा चकेवा, डोमकच

मेला-सोनपुर मेला, पितृपक्ष मेला, वैशाली पूर्णिमा मेला, सौराठ सभा आदि।

त्योहार-छठ पूजा, दशहरा, दीपावली, होली, रमजान, बुद्ध पूर्णिमा, गुरूनानक जयंती आदि।

बिहार विभिन्न धर्मो के साथ-साथ महान साम्राज्यों का देश रहा है। यहाँ ऐतिहासिक सह धार्मिक पर्यटन नियमित रूप से बढ़ रहा है। ऐतिहासिक सह पुरातात्विक पर्यटन ने भी महत्व हासिल किया है। शिक्षा आधारित पर्यटन की भी संभावना है। महान प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के स्थान पर नालन्दा, अतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की शुरूआत हो चुकी है। बिहार में राज्य सरकार द्वारा प्रकृति आधारित पर्यटन को भी बढ़ावा दिया जा रहा है।

संदर्भ

- बिहार टूरिज्म पॉलिसी (2009) : टूरिज्म विभाग बिहार सरकार
- सिन्हा, यू.पी. और कुमार, स्वरगेश (2012) : ''बिहार टूरिज्म रेटरोस्पेक्ट और प्रोस्पेक्ट'' कनसेप्ट पब्लिकेशन कम्पनी (पी) ली. नई दिल्ली-110059
- स्टाइन्स, डैनीयल जे : ''इकोनोमिक इम्पैक्ट्स ऑफ टूरिज्म''
- सिन्हा, निशी (1999) : ''टूरिज्म परस्पेक्टीव इन बिहार'', ऐ.पी.एच पब्लिकेशन, कॉरपोरेशन नई दिल्ली-110002.
- सेठ, रबिन्द्र (1999) : ''टूरिज्म प्रोबलम्स एण्ड प्रोस्पेक्टस् योजना'', वोल्यूम, 43/8, पीपी 21-24

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति

नूतन गुप्ता

शोधार्थी छात्रा, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय,पटना

भारत की सभ्यता विश्व के विभिन्न सभ्यताओं में प्राचीनतम और श्रेष्ठतम रही है। यहाँ कीमहिलाएं, गृहकार्य के अलावे धर्म, शास्त्र, रण-कौशल जैसे क्षेत्रो में भी कभी पुरुषों से पीछे नहीं रही।बल्कि वो हमेशा पुरुषों की सहचरी और प्रेरणा रही है।[1]

भारत में महिलाओं की स्थिति में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे है। ऋग्वैदिक काल मेंमहिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी। वे न केवल वैदिक मंत्रों का पाठ करती एवं याज्ञकक्रिया-कलापमें भाग लेती थी बल्कि रुद्-यज्ञ एव सीता-यज्ञ जैसे यज्ञों के कर्मकांडो को भी समपन्न कराती थी। समाजमें उनका काफी ३आदर-सम्मान था और उनकी शिक्षा का भी उचित प्रबंध किया जाता था।[2]

सामन्यत:भारतमेंपाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पुरुषों पर अपेक्षाकृत अधिक दृष्टिगोचर होता रहा है। कई भारतीय पुरुषों ने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन कर, यूरोपियनदेशों का भ्रमण कर पाश्चात्य विचारों की आलोचना या सराहना किया जबकि इससे महिलाएँ प्राय: दूर ही रहीं। उन्हें विदेशियों से मेल-मिलापयाउनकी भाषा सीखने के लिए किसी प्रकार से प्रोत्साहित नहीं किया गया।[3]

कालान्तर में भारत में कई विदेशी सत्ता स्थापित हुए। मुस्लिम बादशाहों की विलासिता नेपरदा प्रथा को जन्म दिया। भारत आने वाले विदेशी व्यापारियों में अंग्रेज प्रमुख थे।[4] इसने कमजोर मुगल सल्तनतकी जड़ को उखाड़ फेंका।

प्राचीन काल की जो महिलायेंपुरूषों के प्रत्येक कार्य में हाथ बँटाती थी, मुस्लिम काल में बिना परदे के उनका बाहर निकलना मुश्किल था।[5] विदेशियों के आगमन और हिन्दू संस्कृति और सभ्यता में अवनति के कारण स्त्रियों की पुरानी सम्मानजनक स्थिति समाप्त हो गयी और मध्य-युग के आते-आतेस्त्रियों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी।प रदा-प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि भारतीयसभ्यता के अभिन्न अंग बन गये। शिक्षा अनावश्यक समझी जाने लगी। साथ ही कन्या-वध, कन्या-विक्रय आदि प्रथाओं का प्रचलन भी हो गया।[6]

भारतीय एतिहासिक काल मेंपरिवर्तन के साथ साथ सभ्यता में भी परिवर्तन होता गया। इन कालों जैसे-वैदिक काल, बौद्ध काल, मुस्लिम काल तथा आधुनिक काल में नारीत्व के विभिन्न आदर्शों का उन्नयन हुआ वैदिक काल में महिलाएं स्वतंत्रत थी तथा वे पुरुषों के समकक्ष थी। उस समय न तो महिलाओं को पृथक गुलामी में रखा जाता था, न ही बाल विवाह ही प्रचलित थी पति के चयन में स्वयं उनका भी हाथ रहता था तथा वे स्वतंत्रतापूर्वक आम सभाओं में घूमती थीं।[8]

इस अवधि का जिक्र करते हुए राधाकृष्णन ने भी कहा है कि उस वक्त लड़कियां औरमहिलाएँ भड़कीले पोशाक पहनकर दावतों का आनंद लेती थीं। नौजवान लड़के तथा लड़कियाँ वृक्षों की छाया में जाकर नाच में भाग लेते थे।[9]

वैदिक काल में स्वेच्छा से पर महिलायेंकुँवारी भी रह सकती थीं जिसे समाज, मेंअमाजूके नाम से जाना जाता था। पैतृक सम्पति में भी स्त्रियों का अधिकार था। अथर्ववेद में उस वक्त की ऐसीमहिलाओं में सुलभा. धृतव्रता तथा श्रुतवती का नाम उल्लिखित है, जिन्होंने कुंवारी रहकर आध्यात्मिकजीवन का पालन किया। स्वतंत्रता एवं बराबरी की वजह से महिलाओं को ऐसा अवसर प्राप्त था. जिससे वे रचनात्मक, साहित्यिक गतिविधियों में संलग्न रह सकती थीं, तथाउनमें से कुछ ने दार्शनिक विवादों में हिस्सा भी लिया तथा अपनी रचनाओं द्वारा भारतीय दर्शन को एक नया आयाम दिया। वैदिक स्तुतियों में से कुछ को उस वक्त की प्रसिद्ध विदुषियोंगार्गी, अपाला तथा मैत्रीय की देन माना जाता है। कुछ अन्याविदुषियों में लोपामुदा, इन्द्राणी और घोषा भी थी।[10]

बौद्ध-काल से पूर्व ही कई ऐसे नियम बनाये गये, जिनसे महिलाओं की स्वतंत्रता पर बंधनलग गया। उस काल का आदर्श संयास था, तथा बुद्ध के उपदेशों के अनुसार महिलाओं को आनन्द तथाभोग की वस्तु समझा जाने लगा। संयासको बढ़ावा देने के लिए महिलाओं को दुनियादारी का श्रोत कहागया।[11] जैसे-जैसे समाज में महिलाओं का स्थान गिरता गया, उनकी शिक्षा भी प्रभावित होती गयी। फिरभी उस वक्त विदुषियों की कमी नहीं थी। जब बुद्ध ने काफी सोच-विचार के बाद महिलाओं को अपनेमठ में प्रवेश दिया तो कई महिलाओं ने इस धर्म का सहारा लिया। सभी भौतिक वस्तुओं को त्यागकर इनसंयासिनियों ने भी धार्मिक व्यवस्था को अंगीकार किया तथा साहित्य एवं दर्शन को सुशोभित किया। उसवक्त की एक यादगार पुस्तक ष्थेरी-गाथाष् वास्तव में बौद्ध व्यवस्था की भिक्षुणियों द्वारा पाली भाषा में रची गयी थी।[12] बिना बुजूर्गों की स्वीकृति के अविवाहित लड़कियों द्वारा बौद्ध तथा जैन व्यवस्थाओंमें शामिल होने से, समाज में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गयी। इसके कारण सामाजिक चिन्तकों ने यह विचारकिया कि सभी लड़कियों की शादी को आवश्यक करार दिया जाय।[13] 600 वर्ष ईसा पूर्व से ही गौतमद्वारा रजोदर्शन के पूर्व कन्या की विवाह कर देने की व्यवस्था के कारण भी स्त्रियों की अवस्था में परिवर्तनआया। कन्या की विवाह-आयु घटा दिये जाने के कुछ कारण ये थे-स्त्री की चारित्रिक पवित्रता परअत्यधिक ध्यान, पुत्र-प्राप्ति की शीघ्र आशा, विलासिता और माता-पिता की इच्छा के बगैर बालिगपुत्रियोंके सन्यासी होने की आशंका। आगे बाल-विवाह को इस कारण भी प्रोत्साहन मिला कि उपनयन संस्कार बन्द हो जाने से कन्याओं की शिक्षा पर कम ध्यान दिया जाने लगा,अतः जब वे बेकार रहने लगीतब माता-पिता को यह उचित नहीं मालूम हुआ कि उन्हें 15 - 16 वर्ष कीआयुतककुंवारीरखाजाय।[14] बौद्ध काल के समय या इसके तुरत बाद ही बाल-विवाह का प्रचलन शुरू किया गया तथा प्रथम शताब्दी में सम्पूर्ण देश इस प्रथा को अंगीकार कर लिया।

तकरीबन ईसा के 200 वर्ष याद तो बाल-विवाह एक आम प्रथा बन गयी।[15] फलस्वरूप नारी-शिक्षा को एक बड़ा ग्रहण लग गया।उपनयन-सस्कार बन्द हो जाने और छोटी उम्र में विवाह होने के कारण स्त्री-शिक्षा को गहराधक्का लगा। अशिक्षित, अनुभवशून्य, डरी हुई, छोटी उम्र की बघू का पति वस्तुतः उसका गुरू हो गया।गुरु का पद पाने पर पति को देवता बनते देर न लगी।[16]

ईसा की तीसरी सदी से हिन्दू-नारी के लिए पराधीनता, निन्दा, अशिक्षा, पर्दा बाल-विवाह,बहु-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, सती-प्रथा. सतित्व के एकांगी आदर्श और नैतिकता के दूहरेमापदण्डआदि के द्वारा चारों और से जो जबर्दस्त घेरा डाला गया वह विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिकपरिस्थितियों के कारण दिनानुदिनजटिलतर होता गया।[17]

11वींसदी के बाद से मुस्लिम आक्रमण कारण देश के सामाजिक मूल्यों में भारी परिवर्तन आया। इस वक्त मुसलमान महिलाओं को पति तथा माता-पिता दोनों की सम्पतिपर अधिकार था। उन्हें तलाक देने का भी अधिकार प्राप्त था। महिलाओं को सामाजिक बराबरी का दर्जा प्राप्त था तथा मातृत्व को एक पवित्र स्थान दिया गया था क्योंकि अल्लाह के अवतार ने कहा है कि माता के चरणों में स्वर्ग का वास होता है। परन्तु इस काल में मुस्लिम महिलाओं को परदा-प्रथा का सामना करना पड़ा औरउन्हें समाज का मुख्य धारा से कटकर एकांतवास का सहारा लेना पड़ा। इसी काल से हिन्दू समाज के कतिपय उच्च वर्गो ने पर्दा-प्रथा को अपना लिया, विशेषकर उत्तरी भारत में। मुस्लिम लड़कियों कोअनिवार्यत कम-से-कम प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी, विशेषकर धार्मिक-शिक्षा के रूप में। परन्तु यह व्यवस्था साधारण गरीब तबके के मुस्लमानों में प्रचलित नहीं थी और मुसलमान शासक वर्गो में यहव्यवस्था एक गौरव की बात मानी जाती थी।[18]

फलस्वरूप कुलीनवर्गो में महिला शिक्षा का प्रचलन जारी रहा। दिल्ली सल्तनत की शासिकारजिया खुद भी एक विदुषी थी तथा अनेक विद्वान लोगों को अपने दरबार में प्रश्रय भी दिया था। चाँदसुल्तानाअपने समय की अद्वितीय नारी थी। इन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था तथा ये एक अच्छी कलाकार भी थी। मुगलकाल में गुलबदन बेगम ने हुमाँयू की स्मृति में एक पुस्तक ष्हुमायूनामाश की रचना की थी।अकबर की एक पत्नी सलीमासुल्तानापारसी की एक कवियत्रीथी।अकबर की एक प्रचारिकामाहमअनगा एक सुशिक्षित महिला थीं। उन्होंने एक महाविद्यालय की भी स्थापना की थी। अनगा एक सुशिक्षित महिला थी तथा उन्होंने एक महाविद्यालय की स्थापना भी की थी।नूरजहाँ तथा शाहजहाँ की पली मुमताज महल क्रमशः अरबी तथा फारसी साहित्य की बहुतअच्छीसाहित्यकसमझरखतीथीं। इसी प्रकार शाहजहां की पुत्रियाँ विदुषी थीं तथा ओरंगजेब की पुत्री जैबुनिशाएक असाधारण बुद्धिमत्ता थीं।[19]

इस काल में कई हिदू महिलाओं का नाम भी उल्लेखनीय है। 13वीं शताब्दी में दक्षिण भारतीय राज्यअरुगल्लू (वर्तमान वारंगल, आन्ध्राप्रदेश) पर शासन करने वाली योग्य योग्यप्रशासिकामहारानी रुद्रमादेवीको काकातीय वंश का सर्वाधिक सुयोग्य शासक माना जाता है। पन्दहवीं शताब्दी की प्रसिद्ध कवियत्रीमीराबाई हुई का नाम भी उल्लेखनीय है, जिनकी रचनायें आज भी काफी लोकप्रिय

हैप्सोलहवी शताब्दी में ताराबाई तथा बीबी रतन सरीखी कवियीत्रियोंभी पैदा हुई। इसी काल में आंध्रप्रदेश में मात्र 18 वर्ष की आयु में मौला ने अपनी उत्साहवर्धक रचनाओं के द्वारा तेलुगू साहित्य को सजाया। एक प्रसिद्ध कवियत्री एवं दार्शनिक अब्बयारने तमिल साहित्य को अमरता प्रदान किया। किन्तु उपरोक्त वर्णित इन महिलाओं को अपवाद ही माना जा सकता है क्योंकि, अधिकांश महिलाओ को पर्दा प्रथा के कारण शिक्षा का अवसर ही नहीं मिल पाता था। फिर भी कई मायनों में परिवार में इनकी महत्ता बरकरार रहीं।[20] इस प्रकार से थोपे गए वैधव्य, बाल विवाह, पर्दा प्रथा आदि कुरीतियों के कारनसमाज में महिलाओं की स्थितिगिरने लगी, जो निरन्तर गिरती ही गई।

इसी दौरान, भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ। वस्तुत: जिस वकघ्त अंग्रेजी सत्ता की भारत में स्थापना हुई थी, देश में एक तरह से तबाही मची हुई थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के तहत अंग्रेजों ने भारतीय सम्पत्तियोंपर अधिकार हेतु कई लड़ाइयां लड़ीतथा बड़ी संख्या में निर्दोष भारतीयों का खून बहाया गया। किसी इतिहासकार ने सही ही लिखा है कि कई मायने में 18वींशताब्दी को भारतीय इतिहास में भ्रष्टतम और निराशाजनक काल कहा गया है प्मानोउस वकघ्त यहाँ की प्रत्येक व्यक्ति एवं वस्तु विक्री की बन गयी थी।[21] उन्नीसवीं शताब्दी भारत के इतिहास में एक प्रश्नवाचक चिन्ह की तरह है, जहाँ प्राचीन और नवीन कंधे परस्पर घिसते दिखाई देते हैं। भारतीय समाज की पुरानी व्यवस्था, अपनी आंतरिक दुर्बलताओं के कारनजीर्ण-शीर्ण हालत में पहुंच गए थे। इसी कारण, भारत विभिन्न विदेशी आक्रमणों का बराबर शिकार होता रहा। जो भी आक्रमणकारी यहाँ आये, विजय-दर्प के साथ आये और भारतीय उनके दास बने रहे। इस दासता के कारण शिक्षा-प्रणाली दूषित हो गईप् महिलाओं का महत्व समझने की शक्ति भारतीय समाज में नहीं रह गयी।ष् जो कल तक पुरुष की सच्ची सहधर्मिणी, सहकर्मिणी, मंत्रिणी और समाज के लिए सभी अर्थों में बंदनीया थीं, अबघर के अंदर बंदिनी सी बनकर रह गई थी। समस्त भारत के अन्दर उन्नीसवीं सदी तक महिलाओं स्थिति प्राय: वैसी ही रहीं। नारी का यथोचित आदर-सम्मान नहीं रह गया था। उसका कोई अधिकार नहीं था। कन्या के जन्म लेतेही परिवार दुखी हो जाता था। पिता की सम्पत्ति में पुत्री का कोई हक नहीं था। लड़की छोटी हो या बड़ी; शारीरिक एवं मानसिक रूप से परिपक्व हो या अपरिपक्व उसे माता-पिता जिसके भी हाथ सौंप देते थे, पुत्री कोउनके साथ जाना पड़ता था।[23] उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक हमारे समाज में एक निन्दनीय प्रथा प्रचलित हो गई थी जिसमें, विधवायें अपने मृत पति के साथ ही जला दी जाती थीं। कुछ स्त्रियाँ तो अपनी इच्छा से भी सतीहोती थी परवोअधिकतर अपने कुटुम्बियों के कटु व्यवहार से छुटकारा पाने के लिए ही ऐसा करती थीं।[24]

ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद महिलाओं की स्थिति में विशेष परिर्वतन दिखाई पड़ते है।विभिन्न प्रकार की कुप्रथाओं यथा-बाल विवाह, कन्या बध, सती प्रथा इत्यादि पर अंकुश लगने केसाथ-साथ उन्हें शिक्षा के लिए भी प्रेरित किया जाने लगा। इसाई मिशनरियों के अलावे कई स्वयंसेवीसंगठनों ने इस दिशा में पहल किया। परिणामस्वरूप नारियों में भी नवचेतना का संचार हुआ। वस्तुत:ब्रिटिश काल में महिलाओं की स्थिति में परिर्वन का जो सीलसीला शुरू हुआ, आज महिलाओं को अंतिरक्ष तक पहुँचाकर भी निरंतर गतिमान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. शिवपूजन सहाय-बिहार की महिलाएँ (पृ०सं०-233)
2. 12 प्रो. दिनानाथ वर्मा-मानव सभ्यता का विकास, भाग-2 (पृसं-413)
3. मेले एन एस एस ओ-मॉडर्न इंडिया एंड द वेस्ट (पृसं० 455)
4. शिवपुजन सहाय-बिहार की महिलाएँ (पृसं०-233)
5. वही
6. प्रो-दिनानाथ वर्मा-मानव सभ्यता का विकास, भाग-2 (पृसं-114)
7. एस एसश्रीदेवी-सेनचुरी ऑफ विमेनहूड (पृ.सं.-1)
8. वही
9. एस० राधाकृष्णन-रीलीजियनएण्डसोसयटी (पृसं-142
10. शिवपूजन सहाय-बिहार की महिलाएँ (पृ सं-17)
11. एसराधाकृष्णन-रीलजियनएण्डसोसायटी (पृ० 143)

12. एसए० श्रीदेवी-सेन्चुरी ऑफ विमेनहुड (पृ०-2)अलटेकर-द पोजीसन ऑफ विमेनफ्रॉमप्रीटाइम्सहाइक्सटू द प्रजेंटडे (पृ.-348)
13. वही (पृ सं-307)
14. शिवपूजन सहाय-बिहार की महिलाएँ (पृ०-19)
15. ए० एस० अलेतकर-द पोजीशन ऑफ विमेनफ्रॉमप्री ही हिस्टोरिकटाइम्सटू द प्रजेंट(पृ-67
16. 16. शिवपूजन सहाय-बिहार की महिलाएँ (पृ.-20)
17. एसएश्रीदेवी-सेंचुरी ऑफ इंडियन विमेनहूड (पृ०-3-4)
18. वही (पृ सं-7)
19. वही (पृ-4)
20. वही (पृ स 4)
21. ए स्मिथमिनसेट, ऑक्सफोर्डहिस्ट्री ऑफ इंडिया (पृ-498)
22. शिवपूजन सहाय, बिहार की महिलाएं (पृ -233)
23. वही (पृष्ठ-234)
24. प्रो दीनानाथ वर्मा, मानव सभ्यता का विकास (पृष्ठ-416)

महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में नारियों की उच्च आर्थिक स्थिति

डॉ० वीरेंद्र प्रसाद ''भास्कर''

प्रधानाध्यापक, राजकीय मध्य विद्यालय, निघवा, कुर्था (अरवल)

वाल्मीकि द्वारा विरचित महाकाव्य रामायण प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की गौरवमयी धरोहर है। यह हिंदू धर्म की शिरायें तथा गृहस्थ आश्रम की संहिता है। इसमें नारी आदर्श का जो दैवीय चित्रण प्रस्तुत किया गया है वह सर्वत्र वंदनीय है। सृष्टि की मेरुदंड नारी को किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का मुख्य मापदंड माना गया है। विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रखने वाली नारीयो की स्थिति में सदैव परिवर्तन होते रहे हैं। भारतीय संस्कृति में नारियों को देवी का स्थान प्राप्त है। वैदिक ग्रंथों, रामायण एवं महाभारत में नारी के अनेक रूपों का वर्णन और दर्शन मिलता है। जीवन धारा में नारी पुरुष के साथ मिलकर शक्ति का रूप लेकर साधक बनती है।किसी भी राष्ट्र और समाज की आर्थिक स्थिति को वहां की नारियों की समाज मे भूमिका को देखकर आंका जा सकता है। प्राचीन काल में भारतीय समाज गौरवशाली था। उसके निर्माण का सारा श्रेय प्राचीन काल की नारियों को दिया जा सकता है। वैदिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में नारियों को शिक्षा, धर्म,विवाह आदि विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त थी तथा पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त था। वह स्वतंत्रता पूर्वक पुरुषों के साथ विद्वानों की गोष्ठियों में और दार्शनिक वाद विवादों में भाग लेती थी। उन्हें हर क्षेत्र में पुरुषों के समान अवसर उपलब्ध थे।ष्नारी तू नारायणीष्के जीवंत परंपरा पर आधारित वाल्मीकि रामायण में नारी को कानून, दर्शन, धर्म, ज्ञान, राजनीति सभी क्षेत्रों मे प्रतिष्ठित किया गया है।रामायण की रचना तत्कालीन समाज का प्रतिनिधित्व करती है। रामायण में महिला के राजनैतिक, आर्थिक, समाजिक सभी अधिकारों का समागम था। अतः हम कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति में नारीयो का स्थान अत्यंत उचा था। नारी परिवार का केंद्र बिंदु है तथा समाज का आधार है। समय के अनुसार नारी की सोच उसकी मानसिकता में अंतर आया है। स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है। कल तक घर आंगन तक सीमित नारियां आज आकाश छूने को तत्पर है। जीवन की धारा में नारी पुरुषों के साथ मिलकर कार्य करती है।नारी सेवा और त्याग की मूर्ति है।

महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का केंद्र उसका राज्य होता है। यदि राज्य में महिलाओं को शासन का अधिकार प्राप्त है तो यह प्रमाण है उसकी उच्च आर्थिक स्थिति के सुदृढ़ होने का। कौशल्या को राज्य महिषी का पद प्राप्त था। इसका अर्थ है रामायण काल में नारी को उच्च राजनीतिक पद प्राप्त होता था तथा वह सर्वोच्च पद पर आसीन होती थी। उसकी उच्च आर्थिक स्थिति उसकी सर्वोच्चता की ओर संकेत करती है जिसका संपत्ति में स्पष्ट अधिकार प्राप्त होता था। अतः यह शोध पत्र मैं आदिकवि वाल्मीकि के महाकाव्य रामायण में नारियों की उच्च आर्थिक स्थिति का अमूल्य सिंहावलोकन करने का एक प्रयास है।

वाल्मीकि रामायण प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की अमूल्य गौरवमयी धरोहर है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के माध्यम से मनुष्य जीवन के प्रत्येक पक्ष का चित्रण किया है। यह एक परिवार से संबंध गृहस्थ आश्रम के आदर्शों एवं नैतिक व्यवहारों का प्रेरक ग्रंथ माना जाता है। रामायण में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। उस समय पुरुष अपनी पत्नी के सहयोग से ही समस्त धार्मिक क्रियाकलाप करता था। उस काल में संयुक्त परिवार का प्रचलन होने के कारण परिवार का मुखिया पिता होता था, जिसकी आज्ञा का पालन परिवार के अन्य सदस्यों को करना अनिवार्य होता था।

तत्कालीन समाज में स्त्री-पुरुष एक प्राण दो शरीरष् माने गए हैं। उनका स्वार्थ एवं अधिकार एक रहा है। यदि पति संपत्ति का एवं स्त्री का स्वामी है तो पत्नी भी पति की सर्वस्य तथा उसके हृदय की भी स्वामिनी है। स्त्री पुरुष की समस्त संपदा पर एकमात्र अधिकार रखने वाली घर की रानी है।पति के धन पर वह अधिकार रखती ही है किंतु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी संपत्ति का भी वर्णन मिलता है जिसका व्यक्तिगत रूप से स्त्री ही अधिकारणी होती थी।1 अत: हम कह सकते हैं कि पत्नी गृह की संचालिका होती थी तथा गृह में उसकी सत्ता सर्वोपरि मानी गई थी। किंतु फिर भी अपने पति के अधीन ही होती थी।

रामायण काल में यदपि राज परिवारों से लेकर साधारण परिवारों तक बहु पत्नीत्व प्रथा का प्रचलन था तथापि महर्षि वाल्मीकि ने एक पत्नीव्रत की महिमा का बखान किया है। भगवान राम दृढ़ पत्नीव्रता है जो यज्ञ में भी सीता की स्वर्ण प्रतिमा का स्थापना करते हैं पर अपने व्रत का त्याग नहीं करते हैं।2 रामायण में समस्त धार्मिक आर्थिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों में नारी की स्पष्ट सहभागिता दृष्टिगोचर होती है।

रामायण काल में नारी शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। रामायण के अनुसरण से ज्ञात होता है कि राज कुल की स्त्रियां ज्ञान विज्ञान और ललित कला में निपुण होने के साथ ही राजनीति और युद्ध कला में भी पारंगत रहती थी वह ग्रीनी के साथ पति का सचिव भी थी वाल्मीकि समाज में विभिन्न नारी पात्रों की दक्षता एवं सामर्थ्य को देखते हुए यही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस काल में नारियों को पर्याप्त उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त होती थी. उस समय पर्दा-प्रथा का प्रचलन नहीं देखा गया था।उस काल में विधवाओं की स्थिति भी ठीक थी। उन्हें पुनर्विवाह करने की अनुमति प्राप्त थी। तारा, रंभा, मंदोदरी का दो पति होना पुनर्विवाह का उदाहरण है। घर में नारी को गृह लक्ष्मी का मान और सम्मान मिलता था। गृह कार्यों में वह पूर्णरूपेण स्वतंत्र होती थी तथा पुरुष उन्हें अपने अर्धांगिनी के रूप में लेते थे।

गृहस्थ जीवन में स्त्रियां सर्वोपरि होती थी। सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में नारियों की स्थिति पूर्णरूपेण असहायो की स्थिति नहीं थी बल्कि उनकी स्थिति एक ऐसे व्यक्ति की तरह थी जो न्याय एवं औचित्य से प्रेरित थी। पति हित के लिए सीता देवताओं से मंगलयाचना करती है। वनवास की निरापद शांति के लिए उन्होंने गंगा, कालिंदी,वट वृक्ष आदि की स्तुति की थी।3 पति भक्ति की महत्ता का बखान रामायण में मिलता है।सीता का कहना है कि यदि उनके पति चरित्रहीन भी होते तब भी उनकी उसी प्रकार सेवा करती जैसी अब सर्वगुण संपन्न होने पर कर रही है। केकयी ने रणभूमि में पति के रथ का पहिया टूट जाने पर अपनी प्राणों पर खेलकर उनकी रक्षा की थी। पति के साथ पत्नी का भी राज्याभिषेक किया जाता था।4 पति के शमशान कार्य में विधवा पत्नी भी सम्मिलित होती थी। दशरथ की रानियों5 तथा तारा6 ने अपने पति के शमशान कार्य किए थे। पितृ तर्पण का भी उन्हें अधिकार प्राप्त था। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण काल में नारियों की धार्मिक अधिकार व्यापक थे जो तत्कालीन समाज में उच्च आर्थिक स्थिति का परिचायक है। अत: नारी ही वह इकाई है जो सृष्टि की रचना करती है अर्थात गृह से समाज, समाज से देश और देश से विश्व का निर्माण होता है। नारी के स्वामित्व के अभाव में घर की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

रामायण के युग में पत्नी व्यक्तिगत संपत्ति की भी स्वामिनी होती थी। पत्नी की यह संपत्ति उसके वस्त्र आभूषण एवं धन राशि के रूप में होती थी। पत्नी विवाह के अवसर पर दहेज एवं भेंट के रूप में यह संपत्ति प्राप्त करती थी। इस संपत्ति पर पत्नी का पूर्ण अधिकार होता था। पत्नी इस व्यक्तिगत संपत्ति को कभी भी बेच सकती थी या किसी को दे सकती थी। अर्थात विवाह के उपरांत एक नए परिवेश में प्रवेश करने पर महिला को आर्थिक रूप से सशक्त किया जाता था। रामायण में राजा जनक ने दिव्य, कंबल, हाथी,घोड़े एवं उत्कृष्ट अलंकार सीता को विवाह में दिए थे।7

आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में एक जैसी नारियों की आर्थिक संरचना को दिखाया है जो ना सिर्फ एक सशक्त अर्थ में संपन्न नारी का रूप देता है अपितु निर्णय करने की शक्ति भी प्रदान करता है। वाल्मीकि ने राम के विवाह का समाचार मिलने पर कौशल्या जी के द्वारा संदेशवाहक को बहुत सा धन,स्वर्ण मुद्राएं, गाय इत्यादि संपत्ति देने का वर्णन किया है।8 इससे स्पष्ट होता है कि नारी अपनी संपत्ति की स्वयं स्वामिनी होती थी। अत: किसी भी राष्ट्र के निर्माण में नारी की भूमिका की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता है स राजा के राजकोष से खर्च रानियों को अलग-अलग प्राप्त होता था।सीता की वल्कल धारण करने के समय दशरथ जी कोषाधिकारी को आज्ञा देते हैं कि सीता को 14 वर्षों तक पहनने योग्य वस्त्र आदि वस्तुएं दे दी जाय। अर्थ का उपार्जन पुरुष करते थे किंतु अर्थ कि व्यय की व्यवस्था मुख्यत: स्त्रियां ही करती थी।

रानी कैकयी की महत्ता वाल्मीकि रामायण में सर्वोपरि है। इनका महत्व किसी भी दशा में कम नहीं कहा जा सकता।कैकयी नारी की कोमल भावना की साक्षात मातृत्ववत्सल का सच्चा उदाहरण है।श्री राम को भरत से ज्यादा मानना, राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर मंथरा को सुंदर आभूषण देना,9 पुनः वन से रामादि को लौटाने के लिए जाना। क्या इसे कम कहा जा सकता है? कैकयी का दोष नहीं वह माता के ममता का दोष है। मातृ वात्सल्या कोई भी मां अपने पुत्र को कभी भी दुख में देखना नहीं चाहती है। भला कैकयी भरत के भावी कष्ट को सुनकर कैसे चुप रह सकती थी। वहीं महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में भरत के प्रसंग में कैकयी का कोप भवन में जाना दिव्य स्वर्ण जड़ित आभूषण का त्याग करना तथा दशरथ से अपने पुत्र भरत के लिए राज्याभिषेक की मांग करना दो महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर इशारा करता है। पहला यह कि नारी को आभूषण आदि भौतिक संपत्ति थी तथा उसका उपयोग करना तथा फिर किसी कारण बस त्यागना नारी की स्वतंत्रता की ओर संकेत करता है।रामायण में कैकयी ने बेशकीमती माला एवं महंगी वस्त्र आभूषण को त्याग कर जमीन पर निडर होकर लेटी रही।माता कैकयी की विचित्र माला, स्वर्ण जड़ित हार एवं आभूषण सब पृथ्वी पर गिर कर वैसे प्रकाशित होने लगे जैसे आकाश में तारागण प्रकाशित होते हैं।10 अतः महर्षि वाल्मीकि ने सत्ता संपन्न आर्थिक अधिकारों से परिपूर्ण राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए नारी के चरित्र को रामायण में निखारा है।नारी सशक्त होकर अपने अधिकारों का उपभोग करती है। आर्थिक स्वतंत्रता के अंतर्गत सिर्फ धन को अर्जित करना ही नहीं बल्कि उसका उपभोग करना भी आवश्यक है। रामायण में सर्वत्र बहुमूल्य आभूषणों का उल्लेख आया है। स्त्रियां खुशी होने पर पर त्योहारों के अवसर पर आभूषणों का दान करती थी। कुलीन तथा राजघरानों के स्वर्ण आभूषण रत्न जड़ित होते थे। चांदी के आभूषणों का उल्लेख अयोध्या कांड सर्ग 9 के श्लोक 13 में प्राप्त होता है। वाल्मीकि के सुंदरकांड में आभूषणों का सुंदर उल्लेख दर्शनीय है। वाल्मीकि कालीन समाज एक उन्नत समाज है। विविध प्रकार के वस्त्रो, अलंकरणो का वर्णन जैसा ऊपर किया गया है लगता है हमारी नारियों की सामाजिक, आर्थिक अवस्था काफी उन्नतावस्था में था। आभूषण एवं प्रसाधन तथा वस्त्रआदि का विकास वाल्मीकि काल में आधुनिक काल की अपेक्षा ज्यादा विकसित एवं सुसंगठित थास

रामायण काल में नारियां वैदिक काल की तरह ही गृह कार्य के साथ-साथ अन्य कार्यों जैसे जलाशयों से जल भरकर लाना, गायों को देखभाल करना, फसलों की सुरक्षा करना,दूध दुहना, मक्खन निकालना तथा दूध, दही, मक्खन आदि बेचकर अर्थ का उपार्जन भी करती थी तथा अपनी और परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करती थी।

निष्कर्ष

आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में नारी को अति गौरवमयी रंगों में उपस्थित किया है।वह साहस एवं धैर्य की प्रतिमा है। नारी का शारीरिक सौंदर्य, वस्त्रआभूषण,सौंदर्य प्रसाधन और श्रृंगार उसे कमनीय बनाते हैं किंतु यदि वह पति परायणा ना हो तो एक दूषण बनकर उसकी निंदा का कारण हो जाती हैं। रामायण में नारियों को पूरे विकास का केंद्र बिंदु माना गया है। प्रगति की दिशा में किसी भी सतत परिवर्तन के लिए महिलाओं की भागीदारी अति आवश्यक है।इसके लिए आवश्यक है उसकी आर्थिक स्वतंत्रता का जिससे वह आत्मनिर्भर बनकर स्वयं ही नही अपितु दूसरों का भी पालन पोषण कर सकें।

कौशल्या को राज्य महिषी का पद प्राप्त था।नारी राज्य के सर्वोच्च पद पर आसीन थी। यदि राज्य में महिला को शासन का अधि कार प्राप्त है तो यह प्रमाण है उसकी उच्च आर्थिक स्थिति के सुदृढ होने का। रामायण यत्र-तत्र अपने में नारी की विशद उच्च आर्थिक भूमिका को समेटे अकूत धन संपदा की स्वामिनी के रूप में प्रस्तुत करता है। अर्थव्यवस्था का क्षेत्र तथा शासन में भी स्त्रियों की सुख सुविधा का ध्यान रखने के लिए विभिन्न प्रकार के नियम बने हुए थे।पति के प्राणप्रिया होने के कारण वह पति के हृदय के स्वामिनी बन जाती है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने नारी और पुरुषों के बराबर और कहीं-कहीं तो पुरुष से अधिक महत्व प्रदान किया है।आधुनिक संदर्भ में वाल्मीकि की नारी शिक्षा एवं नारी दर्शन अत्याधिक प्रसांगिक है। हम उसे अपना कर सामाजिक जड़ता को दूर कर सकते हैं। रामायण काल में अर्थव्यवस्था बहुत सुदृढ थी और अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में नारियों की विशेष भूमिका थी। गृह कार्य से लेकर कृषि, पशुपालन, प्रशासन, यज्ञ कर्म से लेकर अध्यात्म साधना तक के कोई भी क्षेत्र नारियों के विशिष्ट व्यक्तित्व प्रतिभा एवं कौशल की छाप से अछूते नहीं थे। नारियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियां मजबूत थी।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. ओम प्रकाश "प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास" पृष्ठ 209
2. वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड76/20-23
3. वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड 118/3,118/9
4. वाल्मीकि रामायण कृष्णकंधा कांड 25/35,25/52
5. वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड 76/23
6. वाल्मीकि रामायण अरण्यकांड 52/82-83
7. वाल्मीकि रामायण बालकांड 14/3-6
8. वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड सर्ग 3/147
9. वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड 7/32
10. वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड सर्ग 9/16-18

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी विदेश नीति : एक विश्लेषण

डॉ० चरण दास

जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू बुश की उद्घोषणाओं में प्रजातंत्र और स्वतंत्रता के सिद्धान्त की पुनरावृत्ति, भूतपूर्व विदेश मंत्री कॉलिन पॉवेल, वर्त्तमान विदेश मंत्री कडोलिजा राईस और दूसरे शीर्षस्थ प्रशासनिक अधिकारियों ने सितम्बर 11, 2001 के बाद सहायता प्रदान की, न्यूयॉर्क पर आतंकवादियों का आक्रमण और हाल में ही अमेरिका के नेतृत्व में इराक का आक्रमण तथाकथित रूप से अमेरिका के नीति निर्माताओं का अपने देश के प्रति निरंतर मोह को दर्शाते हैं, शीत युद्ध के बाद की अवधि में भी इन नीति निर्माताओं का अपने देश की विदेश नीति के प्रति वैचारिक झुकाव बना रहा। लम्बे समय से अमेरिका के राजनीतिक नेताओं, सरकारी और गैर सरकारी शिक्षा और जनता के द्वारा प्रजातंत्र का विकास इस वैचारिक दृष्टिकोण के मुख्य तत्व के रूप में किया गया और इस पर बल दिया गया। परन्तु शीत युद्ध के बाद की अवधि में अमेरिका की विदेश नीति के विषय में यह विशेष रूप से सत्य है कि, "अमेरिका ने अपनी विदेश नीति की आधारशिला के रूप में स्वतंत्र प्रजातंत्र के विकास का समर्थन किया।"[1]

अमेरिका विदेश नीति की विशेषताएँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीकी विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. साम्यवाद का अवरोध– द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 'साम्यवाद का अवरोध' (Containment of Communism) अमरीका विदेश नीति की आधारभूत विशेषता रही है। साम्यवाद के अवरोध की नीति का अर्थ है, जहाँ कहीं सोवियत संघ 'दबाव' का प्रयोग करता है वहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका 'प्रतिदबाव' का प्रयोग करेगा। जार्ज अर्ल के शब्दों में, "सोवियत संघ नाजी खतरे से भी अधिक अत्यधिक बड़ा खतरा है।" अमरीकी विदेश नीति के अन्य सभी तत्व द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सुरक्षा संधियाँ, सैनिक संगठन, विदेश में सैनिक अड्डों की स्थापना, शस्त्रों की होड़ आदि 'साम्यवाद के अवरोधक' की नीति के परिणाम थे। चार्ल्स लर्च के अनुसार, "संयुक्त राज्य ने प्रत्येक सोवियत विस्तारवादी कार्य के मार्ग में विध्न डालने का निश्चय किया। विश्व के किसी भी भाग में जहाँ सोवियत संघ और चीन अपना साम्राज्य फैलाना चाहते थे वहाँ सयुक्त राज्य विरोध करने के कृत-संकल्प था। इस नीति के क्रियान्वयन ने अमरीका को यूरोप में सैनिक संधियाँ करने के लिए, अफ्रीका में संयुक्त राष्ट्र की कार्यवाही का समर्थन करने के लिए, दक्षिण-पूर्वी एशिया में खुले तौर पर युद्ध करने के लिए, लैटिन अमरीका में विशाल स्तर पर दीर्घकालीन विकास सहायता योजनाओं का उत्तरदायित्व वहन करने के लिए प्रेरित किया है– प्रत्येक मामले में साम्यवादी विस्तार को निरूत्साहित करने की भावना एक स्थायी तत्व है।"

2. सैनिक संधियों की नीति– अमरीका ने साम्यवाद का अवरोध करने के लिए सैनिक संधियों एवं मैत्रियों का निर्माण किया। इनमें प्रमुख हैं : रीओ संधि, नाटो संधि, एन्जस संधि, सीटो संधि, बगदाद पैक्ट (सेन्टो संधि), आदि। लैटिन अमरीकी राज्यों के साथ 1947 में अमरीका ने रीओ संधि पर हस्ताक्षर किए। आज इस संधि का व्यावहारिक रूप 'अमरीकी राज्यों का संगठन (O.A.S) है। 04 अप्रैल, 1949 को अमरीका ने पश्चिमी यूरोप के कतिपय देशों के साथ नाटो संधि पर हस्ताार किए। दक्षिण-पूर्वी एशिया

और दक्षिण-पश्चिम प्रशान्त महासागर क्षेत्र को साम्यवाद से बचाने के लिए 1957 में मनीला (सीटो) संधि पर हस्ताक्षर किए गए। 1951 में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा अमरीका ने एन्जस समझौते पर हस्ताक्षर किए। अमरीका ने जापान, ताइवान तथा पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय संधियां कीं। इनके अतिरिक्त, यूरोपीय राष्ट्रों की सैनिक शक्ति को बढ़ाने के लिए 25 जुलाई, 1949 को पारस्परिक प्रतिरक्षा सहायता कार्यक्रम को शुरू किया गया और 1951 में पारस्परिक सहायता सुरक्षा कानून बनाया गया। शीतयुद्ध के अन्त के बाद भी अमरीका नाटो के विस्तार के लिए कृतसंकल्प है। अमरीकी पहल पर ही पूर्वी यूरोप के तीन प्रमुख देश-पोलैण्ड, हंगरी और चेक गणराज्य-को इस संगठन में शामिल कर लिया गया है।

3. विदेशी आर्थिक सहायता की नीति– विदेशी आर्थिक सहायता अमरीकी विदेश नीति का अभिन्न अंग है। विदेशी सहायता कार्यक्रम के कई उद्देश्य हैं : (i) आर्थिक सहायता द्वारा राष्ट्रों को आत्म-निर्भर बनाना, (ii) आर्थिक और तकनीकी सहायता देकर साम्यवाद के खतने का टालना, (iii) आर्थिक और सैनिक सहायता द्वारा विदेशों में पारस्परिक महत्व की सुविधाओं, सैनिक अड्डों, बन्दरगाहों आदि की सुविधा प्राप्त करना।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका ने आर्थिक और तकनीकी सहायता के कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम शुरू किए, जैसे **(i) उदार पटा कार्यक्रम** - इसके अन्तर्गत दी जाने वाली अमरीकी आर्थिक सहायता की कुल राशि 1945 तक 49.1 बिलियन डॉलर तक पहुंच गयी थी। सहायता प्राप्त करने वाले देश थे : ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ और चीन। **(ii) मार्शल योजना** - मार्शल योजना के अन्तर्गत यूरोप के 16 राज्यों को 1948-1952 की अवधि में 20 अरब डॉलर की सहायता देना स्वीकार किया गया। इसका उद्देश्य यूरोप के राष्ट्रों को साम्यवाद से बचाना था। **(iii) चार-सूत्रीय कार्यक्रम**-इस कार्यक्रम को अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने 20 फरवरी, 1949 को कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किया। इसका मूल उद्देश्य अल्प-विकसित राष्ट्रों को अमरीकी तकनीकी सहायता की सुविधाएँ उपलब्ध कराना था। **(iv) अन्तर्राष्ट्रीय विकास योजना**-1961 में विदेश सहायता अधिनियम के अन्तर्गत इस राष्ट्रपति कैनेडी ने शुरू किया था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने वाले देश मुख्यत: एशिया के राष्ट्र थे। **(v) प्रगति के लिए मैत्री**-यह योजना लैटिन अमरीकी राज्यों के विकास के लिए बनायी गयी।

4. मानवाधिकारों का समर्थन– अमरीकी विदेश नीति की एक विशेषता मानवाधिकारों का समर्थन करना है। कार्टर प्रशासन ने तो मानवाधिकार मुद्दे को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के ताने-बाने में ठोस रूप से लपेट दिया। कार्टर प्रशासन ने मानवाधिकारों की देख-रेख के लिए स्टेट डिमार्टमेण्ट में एक पृथक् ब्यूरो की स्थापना की। अमरीकी राजदूतों का यह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व बन गया कि वे दूसरे देशों में मानवाधिकार सम्बन्धी नीति को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करें।

5. लोकतंत्र बहाली के नाम पर पड़ोसी देशों में हस्तक्षेप– अमरीका ने पिछली सदी के उत्तरार्द्ध से मध्य और दक्षिणी अमरीकी देशों में कानून व्यवस्था और लोकतंत्र की बहाली तथा अमरीकी नागरिकों के हितों के नाम पार साठ से अधिक बार दखल (हस्तक्षेप) किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भी अमरीका ने अपने आसपास दखल का सिलसिला जारी रखते हुए। 1983 में ग्रेनेडा में और 1989 में पनामा में दखल किया। अमरीका ने 1965 में डोमिनिकन गणराज्य में दखल किया और तत्कालीन राष्ट्रपति लिंडन बी. जॉनसन ने वहाँ 14,000 नौसेनिक भेजे। उन्होंने अपने इस आदेश को यह कहते हुए जायज ठहराया था कि डोमिनिकन गणराज्य में उन्हें अमरीकी नगारिकों की रक्षा करनी है। राष्ट्रपति जॉनसन ने यह भी दावा किया था कि दखल का मकसद डोमिनिकन में साम्यवाद स्थापित होने से रोकना है। अमरीका सैनिक 1966 में वहाँ से लौट गए थे। ग्रेनेडा में 25 अक्टूबर, 1983 को अमरीका के 1900 सैनिक उतरे।

सितम्बर 1994 में लोकतंत्र बहाली के नाम पर अमरीकी सेनाएँ हैती की राजधानी पोर्तू प्रिंस के नागरिक विमान तल पर उतरीं। वैसे अमरीका हैती में पहले भी दखल कर चुका है। अमरीका नौ सैनिक जुलाई 1915 में हैती में उतरे थे। उस समय वहां गम्भीर राजनीतिक उथल-पुथल और वित्तीय संकट था। अमरीकी सैनिक 1934 में वापस हुए थे और उस समय अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति था। हैती का वित्तीय नियंत्रण 1947 तक अमरीका के हाथ में ही रहा था।

6. विकासशील देशों पर दबाव बनाये रखने की नीति– अमरीका विकासशील देशों पर दबाव बनाये रखने की नीति अपनाये हुए है। उदारणार्थ, रूस और भारत के बीच क्रायोजेनिक इंजन और उससे सम्बन्धित तकनीक उपलब्ध कराने सम्बन्धी समझौता हो जाने के कारण अमरीका ने एम.टी.सी.आर. के तहत् पहले बदले की कार्यवाही के रूप में भारत के अंतरिक्ष संगठन इसरो, रूस के संगठन ग्लाबकांसयास को दो वर्ष के लिए काली सूची में शामिल किया, फिर रूस पर दबाव डालकर भारत से हुए समझौते का रद्द करवा दिया। अमरीका की इस नीति का भारत लक्ष्य की रॉकेट टेक्नोलॉजी विकसित करने के प्रयासों को अवरूद्ध करना है। अमरीकी दबाव के कारण ही भारत ने क्यूबा को चावल नहीं बेचे, ईरान को परमाणु रिएक्टर बेचने सम्बन्धी प्रस्ताव पर अमल नहीं किया, मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्र 'अग्नि का परीक्षण कुछ समय तक स्थगित किया। भारत पर निरन्तर दबाव डाला जा रहा है कि वह परमाणु अप्रसार संधि तथा सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर कर दे। जब भारत ने मई 1998 में पोखरण में परमाणु परीक्षण किए तो अमरीका के राष्ट्रपति क्लिंटन ने तुरन्त ही भारत पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने की घोषणा कर दी।

7. एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में विशेष दिलचस्पी– पिछले लगभग एक दशक में एशिया-प्रशान्त क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ है और 21वीं शती एशिया की शती होने के जो अनुमान लगाए जा रहे हैं उनके कारण इस क्षेत्र के प्रति अमरीका की दिलचस्पी कुछ ज्यादा बढ़ गई है। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में अमरीकी की बढ़ती दिलचस्पी का कारण यह भी है कि यूरोपीय साझा बाजार के देश अब अमरीका माल और पूंजी के उपयुक्त बाजार नहीं रहे। यूरोप अमरीका का सहयोगी न होकर प्रतिद्वन्दी हो गया है।

एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में अपनी उपस्थिति बनाए रखने के लिए राष्ट्रपति क्लिंटन ने (नवम्बर 1993) अमरीका के प्रशान्त तटवर्ती नगर सियेटल में एशिया-प्रशान्त आर्थिक सहयोग के 15 सदस्य देशों का शिखर सम्मेलन आयोजित किया। क्लिंटन ने कहा "एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में हो रहा आर्थिक विस्फोट हमारे लिए चिन्ता का विषय है। भय यह है कि रोजगार और बाजार दोनों एशिया के देश छील ले जाएंगे। हम नहीं चाहते है कि एशिया में अपनी सैनिक उपस्थिति बनाये रखें, क्षेत्रीय नेतृत्व का बोझ उठायें पर क्षेत्र के आर्थिक विकास से होने वाले लाभ से वंचित रहें, न तो यह उचित और न यह दूरगामी हित में है।" एशिया-प्रशान्त क्षेत्र का प्रत्येक देश आयात की बजाय अमरीका को निर्यात ज्यादा करता है। अकेले चीन और जापान के साथ अमरीका 70 अरब डॉलर के घाटे में चल रहा है जो अमरीका के कुछ व्यापारिक घाटे के एक-तिहाई के बराबर है।

8. आतंकवाद को समर्थन या पनाह देने वाला देश अमरीका का दुश्मन माना जाएगा– 21 सितम्बर, 2001 का अमरीकी कांग्रेस को सम्बोधित करते हुए राष्ट्रपति जार्ज बुश ने संयुक्त राज्य अमरीका को आतंकवाद के विरूद्ध अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धन का नेतृत्व करते हुए पाया। बुश ने कहा कि आज के बाद जो देश आतंकवादियों को पनाह या समर्थन जारी रखेगा वह अमरीका का दुश्मन माना जाएगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका को विश्व की महाशक्ति बनाने के लिए उत्तरदायी मुख्य कारणों में-1945 में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा जापान के दो प्रमुख शहरों-हिरोशिमा तथा नागासाकी पर परमाणु बम गिराकर जापान को आत्मसमर्पण करने के लिए विवश करके विश्व में अपनी शक्ति की सर्वोच्चता को स्थापित करने, द्वितीय विश्वयुद्ध में यूरोपीय शक्तियों के विनाश से उनका कमजोर पड़ने से उत्पन्न शक्ति शून्यता को भरने की आवश्यकता, संयुक्त राज्य अमेरिका की सैनिक शक्ति और सामर्थ्य, द्वितीय विश्वयुद्ध से ध्वस्त हुए यूरोप के आर्थिक पुनः निर्माण के लिए अमेरिका आर्थिक सहायता पर निर्भरता, द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अमेरिका के उत्पादन में वृद्धि होने से उसकी आर्थिक शक्ति के अत्यन्त सुदृढ़ होने तथा राष्ट्रपति ट्रुमैन का चमत्कारिक व्यक्तित्व और नेतृत्व जैसे कारणों को मुख्य रूप से गिनाया जा सकता है।

जहाँ तक महाशक्ति के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका की भूमिका का प्रश्न है, उसने प्रारम्भ से ही, 'साम्यवाद विरोधी या साम्यवाद का परिरोधन या अवरोध' (Containment of Communism) की नीति अपनाई। कालान्तर में वह पाश्चात्य लोकतांत्रिक राष्ट्रों का नेता बन गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व वाले इस गुट को 'पूँजीवादी गुट' की संज्ञा दी गई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने सोवियत संघ के प्रभाव को बढ़ाने से रोकने के लिए 'सहायता की कूटनीति' (Diplomacy of Aid) का सहारा लिया। इसमें सैनिक, आर्थिक और तकनीकी सहायता सम्मिलित थी। संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने गुट से सम्बद्ध पाश्चात्य लोकतांत्रिक राष्ट्रों

को उनके पुनर्निमाण में भी विपुल सहायता प्रदान की। इतना ही नहीं, उसके द्वारा विश्वव्यापी प्रभाव के विस्तार करने की योजना के अन्तर्गत सैनिक संधियों या गठबन्धनों तथा सैनिक अड्डों की स्थापना करने का सहारा लिया गया। इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए भी सभी सम्भव प्रयास किये। उसके द्वारा शक्ति-प्रदर्शन की कूटनीति का सहारा भी लिया गया। इन सब कारणों के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका का महाशक्ति के रूप में निरन्तर वर्चस्व बढ़ता गया और वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का नेतृत्व करने लगा। वर्त्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व की एकमात्र महाशक्ति के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा सम्बन्धों का नियंत्रण कर रहा है।" महाशक्ति के रूप में अमेरिका के अभ्युदय के साथ ही इसकी विदेश नीति के नये आयाम उजागर होते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, डी. एन. वर्मा
2. अन्तर्राष्ट्रीय, हरिदत्त वेदालंकार
3. भारत की विदेश नीति, वी. एन. खन्ना

पाणिनि युग में प्रशासनिक क्षेत्र का महत्व

डॉ० कहकशाँ प्रवीण

नालन्दा महिला कॉलेज, बिहारशरीफ

राज्य--एकराज शासन में सर्वोपरि व्यक्ति राजा था। उसकी सहायता के लिए मंत्रियो की परिषद होती थी। सभा नाम की बड़ी समिति भी थी। परिषद में मंत्रियो की संख्या का निर्देश अष्टाध्यायी में नही है, किन्तु जैसा कौटिल्य ने लिखा है उनकी संख्या प्रशासन की आवश्यकता के अनुसार नियत की जाती थी। फिर भी पाणिनि ने आर्य ब्राह्मण या मुख्य मंत्री, पुरोहित, आर्यकुमार या युवराज और सेनापति का सुत्रे में उल्लेख किया है। ये महत्वपूर्ण अधिकारी थे अतएव भाषा में इनसे संबंधित विशेष शब्द प्रचलित थे।

शासन तन्त्र के अधिकारी---सूत्रों में कई प्रकार के शासनिक अधिकारियों का उल्लेख आया है। शासन के संचालन के लिए अधिकारी तंत्र का संगठन हो चुका था। सरकारी सेवक साधारणत: युक्त (6/2/81) या आयुक्त कहे जाते थे जो की राज्यकीय कार्य का निर्वाह करते थे। कौटिल्य ने राजा के आयुक्त पुरुषों का उल्लेख किया है। अशोक के कलिंग शिलालेख संख्या 2 में आयुक्तों का उल्लेख है। जब राजसेवक विशेष काम पर नियुक्त किए जाते, तो वे नियुक्त कहलाते थे और उस दायित्व के अनुसार उनका नाम पड़ता था। काशिका में इनके कुछ प्राचीन उदाहरण इस प्रकार है --- शुल्क शाला में नियुक्त अधिकारी शौल्कशालिक, खानो में नियुक्त आकरिक, बाजार के प्रबन्ध में नियुक्त आपणिक गुल्म या सेना की टुकड़ी का प्रबन्धक गौल्मिक और राजद्वार के प्रबन्ध में नियुक्त दौवारिक कहलाता था। नियुक्त अधिकारियो के कुछ नाम अगारान्ताट् ठन् (4/4/70) सूत्र मे भी अन्तर्निहत है, जैसे कोष्ठागारिक , जिसका पद अध्यक्ष कोटि का था। देवगारिक देवताध्यक्ष का ही दुसरा नाम था।

राजा के निजी परिचारक या पारिपार्ष्ठिवक भी नियुक्त कोटि के अधिकारियों में गिने जाते थे। अणि नियक्ते (6/2/75) सूत्र पर उल्लिखत उदाहरणों से ये नाम ज्ञात होते है -- छत्रधार, तुणीधार (तर्कश उठाने वाला) भृंगारधार (जल की झारी), आचमन, मुखमार्जन आदि का प्रबन्ध करने वाला ऋ।

शासन संबंधी फुटकर बातें --- वेतनादिभ्यो जीवति सूत्र (4/4/12) मे वेतनभोगी सेवकों को वैतनिक कहा गया है। कौटिल्य ने भृत्यभरणीय प्रकरण में राजकर्मचारियों के वेतनों की लम्बी सूची दी है। पतंजलि ने भी भृत्यभरणीय का उल्लेख किया है। वेतन देने का अधार मासिक था। उसे भृतकमास कहते थे। कर्मनिष्ठ अधिकारियों को अर्थशास्त्र में कर्मण्य कहा गया है। पाणिनि ने भी कर्मण्य शब्द का उल्लेख किया है। उपदा या उत्कोच लेने देने का भी उल्लेख है। उदाहरण के लिए जिस कार्य में पांच रूपये कि रिश्वत दी जाए वो पंचक कहलाता था। काशिका ने शत और सहस्त्र की उपदा के लिउ प्रयुक्त शब्दो का भी उल्लेख किया है। अवस्तार (3/3/120) का ताप्तर्य हिसाब किताब की गड़बड़ी से था। अर्थशास्त्र में भी सरकारी द"तरों में हानेवाले गबन के सिलसिले में इसका उल्लेख है।

कौटिल्य ने औननिज़दिक शब्द का प्रयोग उन निन्द्य उपायो ं के लिए किया है जिनका प्रयोग गुप्तचर विभाग में अधर्मिष्ठ व्यक्तियों के लिए किया जाता था। पाणिनि के अनुसार ऐसा व्यक्ति जो इस प्रकार के जद्यन्य कृत्यों द्वारा जिविका चलाता था औज़निज़दिक कहा जाता था। उपनिषदा जीवति, गणपाठ। इस प्रकार की हरकतों के लिए भाषा में ' उपनिज़त्कृत्य ' यह विशेष प्रयोग चल गयायय था। इस सम्बन्ध में विषय शब्द की ओर घ्यान जाता है। गुप्तचर विभाग में रसद लोग इस प्रकार के प्रयोग करते थें।

फुटकर आय साधन --- शुंडिकादि गण मे कुछ छोटे मोटे फुटकर आय स्थानो का उल्लेख है कौटिल्य ने भी जड़ी-बूटी , सुगन्धित , फल , फुल , हरी साग सब्जी , लकड़ी बाँस , पत्थर , मिट्टी के बर्तन आदि से होने वाली आय का उल्लेख किया है कुप्याध्यक्ष प्रकरण में तो वनलता , डास , कन्दमुल फल, पशुओं के चमड़े हड्डी सींग आदि के ठेको से प्राप्त आय का भी उल्लेख है। आजकल की शासन की ओर से मूँज , बबई भाबर आदि डासों के जंगल एवं जंगली पत्ते , फूल फलो के ठेके निलाम किए जाते है।

कुछ विशेष कर --- भारत के पूर्वी भाग में कुछ विशेष कर लगाए जाते थे जिनकें नामों का रूप सूत्र 6/3/10 में नियमित किया गया है। इन्हें कर के स्थान में कार कहा जाता था। कार वसूल करने वाले अधिकारी कारकर कहलाते थे, जिनका पाणिनि ने भी उल्लेख किया है। दीधनिकाय के साम्फेलसुत में कारकर अधिकारी का वर्णन आया है। किसी राजपुरुष को गांव में आया हुआ देख कर गांव का निर्धन किसान सोचता है कि या तो यह कार वसूल करने वाला कारकर अधिकारी होगा या खलिहान की रास नापने वाला रासवडक राज पुरुष साम्फेलसुत 2/38/।

काशिका में इस प्रकार के करों के 4 प्राचीन उदाहरण है --

1. सुपेंशान:- एक शाणा सिक्के की प्रत्येक चूल्हे या धर से वसूली।
2. मुकुटेकार्षापणम्- एक चाँदी के कार्षापणा सिक्के की प्रत्येक मुकुट या वयस्क पुरुष से वसूली। इसे मध्यकालीन उड़ीसा के शिलालेखो में मुण्डमोल अर्थात् प्रत्येक मुण्ड या व्यक्ति पीछे लगनेवाला कर कहा गया है। इस समय इस तरह के का को पाग कहते है , अर्थात प्रत्येक पगड़बन्ध पर लागू होने वाला कर। इसी से मिलता-जुलता कर ताग कहलाता है जो न केवल वयस्क व्यक्तिओं से बल्कि समस्त तगड़बन्ध व्यक्तिओ से जिसमें बच्चे भी शामिल होते है , वसूल किया जाता है।
3. द्वज़दिमाज़क :- वह कर जिसमें चांदी का एक माज़क सिक्का प्रत्येक चक्की के पीछे वसूल किया जाय।एक संयुक्त परिवार में जितनी चक्कियां हो, प्रत्येक , को यह कर देना पड़ता था।
4. हलेद्विपदिका , हलेत्रिपदिका-अर्थात वह कर जिसमें 2 या 3 पाद नामक सिक्के हल पीछे वसूल किए जाए। इस प्रकार के कर लोग थे जो समय- समय पर प्रजा को देने पड़ते थे। उदाहरण के लिए जातकों में उल्लेख आता है कि राजकुमार के जन्म के समय प्रजाओं ने एक-एक कार्षापणा सिक्का राजमहल सें लाकर दिया, जिसे खीरमूल कहापण कहा गया है।

पाणिनि ने हिसाब के लिए गणन और हिसाब भरपाई करने को विगणन कहा है। कौटिल्य ने लेखा या हिसाब किताब के अध्यक्ष को गाणनिक और उसके मातहत काम करने वालों को कार्मिक कहा है। अष्टाध्यायी में काश्यादिगण में कारणिक अधिकारी और ब्रीह्मादिगण में कार्मिक का उल्लेख है , जो वे ही दोनो अधिकारी ज्ञात होते है। हिसाब की काटकपट के लिये अवस्तार शब्द था। काशिका में 3/2/126 सुत्र पर एक साभ्रिपाय प्राचिन उदाहरण है। ' तिष्ठन्तोनुशासति गणका: ' अर्थात गणक लोग अपने कार्यालय में बैठे हुए और सब विभागो के लोगो पर हुकुमत चलाते है।

धर्म और न्याय

अष्टाध्यायी में धर्म शब्द के दो अर्थ है। एक पुण्य का काम, जैसे धर्म चरति धर्मिक:। दुसरे समयाचार या रीति-रिवाज , जैसे धर्मादनपेतं धर्म्यम्। लोकाचार या रिवाज के अनुसार नियत देय भी धर्म्य कहलाते थे। उदाहरण के लिए शुल्कशाला मे माल पर लगने वाली चुंगी धर्मदेय कहलाती थी। धर्म शब्द का यह दुसरा अर्थ धर्म सूत्रे की पृष्ठभूमि मे विद्यमान था। आपस्तम्ब का पहला सूत्र इस प्रकार है --- अथात: समया चारिकान धर्मान व्याख्यास्याम: (आप0 धर्म 0, 1/1/1)।

वैदिक चरणो के अन्तर्गत धर्मवत् (4/2/46) सूत्र से ज्ञात होता है। कात्यायन ने स्पष्ट कहा है कि वैदिक चरणों से संबंधित निजी आन्नाय ग्रन्थ और धर्माग्रन्थ थे (चरणाद धर्मान्नाययो: 4/3/120 वा0 11)। धर्मसूत्रे के युग ने ठीक बाद ही पाणिनि व्याकरण का निर्माण हुआ होगा। दोनो कालकृत सान्निध्य था।

न्यायय शब्द का अर्थ पाणिनि ने अभ्रेज़ (3/3/37) लिखा है अर्थात जो परम्परा प्राप्त आचार या विधि है , उसका उत्खलन या अनिराकरण यही न्याय था। न्याय के अनुकूल कर्म या आचार न्याय कहलाता था। भ्रेज़ और अभ्रेज़ शब्द का प्रयोग गोपथ ब्राह्मण में इन्ही अर्थो मे आया है।

न्यायालय -- व्यवहार अर्थात धर्मस्थ और कण्टकशोधन सम्बन्धी (दिवानी फौजदारी) कानून के लिए पाणिनि ने व्यावहारिक शब्द का उल्लेख किया है। अश्वपत्यादिगयण में पठित धर्मपति शब्द संभवत: धर्माध्यक्ष के लिये प्रचलित था। वादी प्रतिवादी जिसे विवाद का मध्यस्थ बनाते , वह स्थेय कहलाता था। विवादपदनिर्णेता लोके स्थेय इति प्रसिद्व -- काशिका। वादी या अभियोक्ता के लिये परिवादी या परिवादक शब्द प्रचलित थे। गवाह साक्षी कहलाते थे , किन्तु उनके प्रमाण्य का आधार ङटना का साक्षादर्शन था। कालान्तर में सुने हुए वृतान्त के आधार पर गवाही देने वाले भी साक्षी कहे जाने लगे। जो व्यक्ति जिस विषय मे साक्ष्यज्ञान रखता था , वह उसी नाम से अभिहित होता था , जैसे गौ के सम्बन्ध में उत्पन्न विवाद के प्रसंग में उस विषय की जानकारी रखने वाला व्यक्ति गोसाक्षी कहलाता था और उसकी गवाही वही तक उपयोगी या मान्यसमझी जाती थी।

शपथ --- साक्षी होने वाले व्यक्तियों को नियमानुसार शपथ दिलाई जाती थी। प्राचीन प्रथा के अनुसार ब्राह्मणवर्णा के साक्षी को गवाही देने से पूर्व यह शपथ लेनी पड़ती थी कि मै जो कहूँगा , सच कहूँगा। ऐसा ही इतर जाति के लोंगो के लिये भी शपथ लेने के नियम थे। मनु ने उन प्राचिन नियमों का उल्लेख किया है (सत्येन शापयेद् विप्रम्-मनु 8/113ऋ। पाणिनि ने भी इस प्रथा का उल्लेख करते हुए उन प्रयोगों कि सिद्वि की है , इस संबध में प्रचलित थे। सत्यादशपथे (4/5/46) सूत्र से दो प्रकार के शब्द रूप सिद्व होते है -- (1) सत्याकरोति अर्थात सौदा पक्का करने के लिए साई देता है , (2) सत्यं करोति अर्थात गवाह को शपथ दिलाता है कि मै सच कहुँगा।

जमानत देने वाला व्यक्ति प्रभू कहलाता था, जैसे गोप्रतिभू, अथार्त गाय या बैल के सम्बन्ध मे जो जामिन बना हो (2/3/39, भुव: संज्ञान्तरयो: 3/2/179,धनिकाधमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति से प्रतिभूरूच्यते, काशिका ऋ।

व्यवहार --- व्यवहार के अन्तर्गत कई प्रकरणो का समावेश किया जाता था। उनमें दाय के सम्बन्ध मे कुछ सूचना पाणिनि के सूत्र मे दी है। दाय ग्रहण करने वाला दायाद कहलाता था और जो वस्तु या दायाद होता था , उसी के अनुसार उसकी संज्ञा होती थी , गोदायाद। दाय या उत्तराधिकार में कई व्यक्ति हिस्सा बाँटने वाले हों तो प्रत्येक का भाग अंश और पाने वाला अंशक कहलाता था। हरिन् शब्द में णिनिप्रत्यय का संकेत यह है कि जो अंशक व्यक्ति होता था , उसे अपना अंश पाने का कानुनी अधिकार था। दायाद और अंश दोनो पारिभाषिक शब्द धर्मसूत्रों में प्रचलित थे।

अपराध --- उग्र फौजदारी अपराधो के लिये साहसिक्य शब्द था ं। कई प्रकार के अपराधों का उल्लेख आता है , जैसे स्तेय डकैती , राहजनी। पाणिनि ने चोर के अर्थ मे ऐकागारिक शब्द का उल्लेख किया है। मज्झिम निकाय में 5 प्रकार के चोर कहे गए है 'संधिछेदक , गामङात चोर , पन्थङात चोर , पेसनक चोर , अटवीचरो इनमें से पन्थङात चोर ही पाणिनीय पारिपन्यिक थे। पाली साहित्य मे ऐकागारिक शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थ मे है गोतम ने अपने को एकागारिक द्वयागायरिक साप्तागारिक अर्थात एक ङर , दो ङर या सात ङर से भिक्षा मांगकर लानेवाला भिक्षु कहा है।

सूत्रे मे ऐसे कितने ही प्रयोगों का उल्लेख है , जो कुत्सा निन्दा गाली गलौज आदि के लिये प्रयुक्त होते थे।

दण्ड -- किसी अपराध के लिये न्यायालय द्वारा जो रूपये पैसे का जुर्माना किया जाता था , उसे दण्ड कहा गया है। जैसे ' द्विपद्विकां दण्डित: ' द्विशतिकां दण्डित:' अर्थात चांदी के दो पाद सिक्के या दो सौ रूपये का जुर्माना। किन्तु दण्डशब्द का इससे भी विस्तृत अर्थ था , जिसके अन्तर्गत शरीरदण्ड की गणना भी होती थी, जैसे दण्डमर्हति दण्डय:। यास्क ने इस अर्थ में दंडय शब्द का प्रयोग किया है[3] और मुसल कि मार के योग्य अपराधो को मुसल्य कहा है।

सेनानी --- सूत्र 2/4/2 मे सेना के विविध अंगो का उल्लेख है। ये सेनांग कहलाते थे। सेना के साथ अनेक प्रकार के अन्य अधिकारी भी रहते थे , जो उसकी बहिरंग व्यवस्था के लिये आवश्यक थे। उद्गात्रदिगण में पतिगणक और रथगणक नामक अधिकारियों का उल्लेख है , जो सेना के पैदल या रथ विभाग से संबधित हिसाब-किताब का काम करते थे। पृतनाशाट् मे पृतना प्राचीन वैदिक शब्द था।

सैनिक --- सेना मे भर्ती होनेवाले सिपाही सैनिक या सैन्य कहलाते थे । ङुड़सवार सेना का अध्यक्ष अश्वपति और सेनाध्यक्ष सेनापति कहलाता था। प्रयाण करती हुई सेना के साथ जानेवाला व्यक्ति सेनाचर कहलाता था।

युद्व करनेवालों का नामकरण उनके हथियारो के नाम से किया जाता था । आज भी यही पद्वति है। प्रहरणम् सुत्र में इसी नियम का उल्लेख है, जैसे आसिक (तलवार से लड़नेवाला ऋ। धानुष्क (धनुषवान से लड़नेवाला) ।पारश्वध या फरसे से लड़नेवाले पारश्वधिक और शक्ति यु: के सैनिक शाक्तीक कहे जाते थे। लठैत याय लाठी से युद्व करने वाले लोंगो के लिए याष्टीक शब्द था। महाभारत के अनुसार सरस्वती प्रदेश के आमीर लोग यष्टियुद्व में दक्ष थे। पतंजलि ने लिखा है कि हथियार चलानेवालों का बोध प्रत्यय के बिना भी हथियार के नाम से ही हो सकता है , जैसे -- कुन्तान प्रवेशय, यष्टी: प्रवेशय (4/1/48) भल्लैत और लठैत सैनिको को बुलाइये।

युद्व किया --- आयुद्व या शस्त्र द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले व्यक्तियों के लिए आयुधीय यह विशेंज़ शब्द भाषा में प्रयुक्त होता था। पाणिनि ने इस प्रकार के आयुधीय लोंगो के संङो का विशेष रूप से उल्लेख किया है , जो आयुधजीवी कहलाते थे। कौटिल्य ने इन्हे ही शास्त्रेपजीवी कहा है। वाहीक प्रदेश एवं उत्तर पश्चिमी प्रदेश में इस प्रकार के अनेक छोटे-बड़े आयुधजीवी संङ थे। मालव, क्षुद्रक इन दोनो का आयुधजीवी संध अपनी सम्मिलित सेना रखता था। मशकावती के आश्वकायन वीरतापूर्वक सिकन्दर से लड़े थे। वरण नामक उनका अजेय दुर्ग पहाड़ी पर बना था।

अनुशतिक --- सूत्र 2/3/20 में पाणिनि ने अनुष्ठतिक का उल्लेख किया है।शुक्रनीति के अनुसार सेना में शतानीक नामक अधिकारी का सहायक अनुशतिक कहलाता था। पतिपाल की अध्यक्षता में 5, गौल्मिक के नीचें 3, और शतानीक के नीचे 100 सिपाही रहते थे। शतानीक का साथी होने के कारण अनुशतिक संज्ञा चरितार्थ होती थी, किन्तु शतानीक का कार्य युद्व करना था और अनुशतिक का युद्व की सामग्री जुटाना एवं सैनिकों की भर्ती करना।[4]

जनपद

जनपदों का महत्व --- वैदिक संहिताओं मे जनपद शब्द का उल्लेख नही हैं। ब्राह्मण ग्रन्थो में भी बहुत कम इस शब्द का प्रयोग हुआ है। शतपथ में केवल एक बार बहुत सामान्य सा उल्लेख है। ऐंतरेय के अन्तिम अघ्याय में उत्तरकुरू और उतरमद्र को जनपद कहा गया। जैमिनीय , तैतिरीय , गोपथ और सामविधान ब्राह्मणों में केवल एक-एक बार जनपद शब्द आया है। इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों में केवल एक-एक बार जनपद शब्द आया है। इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण युग के अन्त मे जनपद संस्था का आंरभ हुआ और पाणिनि के समय तक यह संस्था अपने पुर्ण विकास पर पहुँच गई।

लगभग एक सहस्त्र इस्वी पूर्व से पाँच सौ इस्वी तक के युग को भारतीय इतिहास में जनपद या महाजनपद युग कहा जाता सकता है। समस्त देश में एक सिरे से दुसरे सिरे तक जनपदों का तांता फैल गया था। एक प्रकार से जनपद राजनैतिक , सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन संगठित रूप में उपर उभर आया, वहीं शान्ति सुव्यवस्था और निति धर्म की स्थापना हो गई, और वह प्रदेश अराजक स्थिति के उपर उठ गया। जिस समय यह आन्दोलन अपने पूर्ववेग पर था, उस समय जनपदीय आदर्श स्थानीय जनता के जीवन मे प्रभावशाली प्रेरक शक्ति के रूप में प्रविष्ट हो गए। स्थानीय जीवन के विविध प्रकारो ने जनपदो के रूप में सन्तुलित स्थिति प्राप्त कर ली। जैसा हम पहले कह चूके है जनपद के भौगोलिक विस्तार को पृथिवी कहा जाता था और उस पृथिवी के साथ स्थानीय जनता प्रगाढ़ मातृत्व के स्नेह से बँध गई थी। ' माता भूमि ' पुत्रों अहं पृथिव्या: ' यह उसी उदात भावना की अभिव्यक्ति थी।

जनपद और यूनान के पुरराज्य --- यूनान देश के इतिहास में वहाँ पुरराज्य जग प्रसिद्व है। यूनान छोटा सा देश है , जिसमें सैकड़ो पहाडी़ इलाके एक दुसरे से बँटे हुए है। प्रत्येक में एक एक जन या कबीले के जीवन का स्वतंत्र विकास हुआ। उस कबीले का सांस्कृतिक और राजनितिक जीवन एक पुर या नगर में केन्द्रित होता था , जो वहाँ की राजधानी थी। इस प्रकार के राज्य यूनान देश मे पुंरराज्य कहलाएं। उनके विकास और उन्नति का समय भी लगभग वही था, जो भारतवर्ष में जनपद राज्यों का था। पुरराज्यों में कुछ छोटे और कुछ अधिक शक्तिशाली होते थे, जैसे एथन्स और स्पार्टा , जो यदा-कदा दुसरे पुरराज्यो पर अपना राजनैतिक प्रभुत्व जमा लेते थे। वैसे ही अपने देश में भी मगध कोसल मद्र गन्धार आदि जनपद राज्य महाजनपदो के रूप मे विकसित हो गए। बहुत से जनपदों के राजनैतिक प्रभुत्व पर चौका फेर कर ही मगध के साम्राज्य का उदय हुआ।

यूनान देश की संस्कृति का सर्वोत्तम विकास पुरराज्यों में हुआ था। भारतीय जनपद राज्यों का प्रयोग यूनान देश से कहीं अधिक विस्तृत और महान था ं। एक तो वह अपेक्षाकृत बहुत बड़े भूभाग में हुआ और दुसरे उसका स्थायित्व और राजनैतिक प्रभाव दूर तक व्याप्त रहा। सांस्कृतिक दृष्टि से भी जनपद युग में भारतीय संस्कृति की जो मूल प्रतिष्ठा हुई, उसका जो स्वरूप विकसित हुआ। भारतीय जनपदों का अध्यन करते हुए उनका यर्थात स्वरूप और महत्व अभी तक पूरी तरह पहचान में नही ं आया है। इस प्रकरण में जनपदों की विशेंज़ता का अध्यन करते हुए यथास्थान यूनानी पुरराज्यों से उनकी तुलना का प्रयत्न भी किया जायेगा।

जनपदों की सीमाऐं -- यूनान के पुरराज्य अधिकांश पहाडी़ प्रदेश और ङाटियों मे फैले थे। एक को दुसरे से पृथक करने वाली निश्चित सीमाऐं थी। भारत में भी प्रत्येक जनपद की नियत सीमाऐं थी , जिन्हे पाणिनि ने ' तदवधि ' कहा है। जैसा काशिका ने लिखा है एक जनपद अपने चारो ओर के दुंसरे जनपदों से ङिरा रहता था , जो उसकी सीमा बनाते थे। कुछ जनपद विस्तार में इतने बड़े होते थे कि स्वभावत: वे कई हिस्सो में बँटे हुए थे , जिनके नाम लोक में अलग- अलग विख्यात हो जाते थे। इस प्रकार भौगोलिक नामों में स्वरो का नियमन पाणिनि ने दिकशब्दा सूत्र में किया है , जैसे पंचाल जनपद का पूर्वी भाग पंचाल: और पश्चिमी अपर पंचाल: कहलाता था दक्षिण पंचाल: दक्षिणी भाग का नाम था इसी प्रकार पूर्व मद्र अपर मद्र, थे मद्र जनपद के दो बड़े भाग थे। उन दो भागो के निवासी क्रमश: पौर्वमद्र और अपारमद्र कहलाते थे , जैसे आज कल भाषा में पछहियाँ, पूरबिया विशेषण प्रयुक्त होते है। पूर्वमद्र रावी से चनाव तक और पश्चिमी मद्र चनाव से झेलम तक का प्रदेश था। जनपद की राजधानी शाकल या स्यालकोट पूर्व मद्र मे ही थी। इसी प्रकार सिन्धु नदी गन्धार महाजनपद को दो भागों में बाँटती थी , एक पूर्वगान्धार जिसकी राजधानी तक्षशीला थी और दुसरा अपरगान्धार जिसकी राजधानी पुष्कलावती थी।

पुरराज्य से साम्य -- ऊपर जनपद के विकास की चार अवस्थाऐं कही गई है। (1) जन, (2) कुल, (3) जनपदिन:' (4) जनपद। यूनान के पुर राज्यों के विकास की भी लगभग ये ही चार अवस्थाऐं थी। उनकी पहली अवस्था जन या कबीले की थी, और दुसरी कुलों की थी। तीसरी अवस्था वह थी जिसमें छोटे कबीलों ने अपना विस्तार करके एक शस्त्रधारी जाति के रूप मे अपना सामूहिक संगठन कर लिया और किसी प्रदेश में राजधानी बनाकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। चौथी अन्तिम अवस्था पुरराज्य की अवस्था थी।

जनपद संस्कृति -- अर्थवेद मे कहा है कि पृथिवी बहुत से जनों को धारण करती है जो पृथक धर्मो के माननेवालो और भिन्न-भिन्न भाषाऐं बोलने वाले है। जन की यह पृथक स्थिति धीरे-धीरे समाप्त हुई और एक जनपद में भाषा धर्म और आर्थिक जीवन की समानताऐं विशेष रूप से प्रकट हुई। जनपदीय जीवन भेद की अपेक्षा साम्य की ओर अधिक प्रवृत हुआ। प्रत्येक जनपद इस बात में स्वतंत्र था कि वह अपने यहाँ किस प्रकार की शासन-प्रणाली को प्रश्रय दे, अर्थात वह एकाधीन या राजाधीन हो, गणाधीन हो, अथवा श्रेणी या परा के रूप में संगठित हो। श्रेण्याद्य: कृतादिभि: सूत्र (2/1/59) मे एककृता: , श्रेणिकृता: पूगकृता: इत्यादि शब्द जनपदो में प्रचलित बहुविध शासन पद्वति के वाचक थे। प्रत्येक जनपद अपने जीवन के क्षेत्र में सब प्रकार स्वतंत्र होता था। प्रत्येक की अपनी प्रभुसत्ता रहती थी , जब तक कि उसके पडो़सी राज्य उसके स्वातंत्रय में बाधक न बन जाते थे। फिर भी जनपद कि संस्कृति, भाषा और धर्म का प्रवाह निर्विध्न अपने क्रम से प्रवृत होता रहता था।व्याकरण साहित्य में कम्बोज , सुराष्ट्र , प्राच्य, उदीच्य आदि जनपदो और देश विभागो की भाषा संबधी विशेषताओं का कहीं-कही उल्लेख है। बुद्व ने यह अनुमति दी थी कि प्रत्येक जनपद उनका उद्देश्य अपनी भाषा या बोली में प्रचारित करने के लिये स्वतंत्र था। उनका यह भी कहना था कि जिन चैत्य या देवताओं की पूजा किसी जनपद मे पहले से चली आती थी उसमें विघ्न न होना चाहिए। प्रत्येक जनपद में अपने-अपने प्रमुख यक्ष या नाग देवता के चैत्य या स्थान थे। उनकी पूजा समस्त जनपद का सामान्य धर्म था। बौद्व , जैन भागवत आदि व्यक्तिगत धम्र नाग यक्षादि सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का कुरूगार्हपतम् का उल्लेख किया है।

वैदिक युग के बाद जनपदों में ही भारतीय संस्कृति का नया विकास हुआ। जनपदीय जीवन में प्रज्ञा या बुद्विप्रधान दृष्टिकोण का अभूतपूर्व उन्मेंज़ हुआ। बुद्वि का यह स्रोट नाना भाँति के शिल्प और अनेक प्रकार की विधाओं के रूप में प्रकट हुआ। प्रत्येक जनपद में स्थानीय शिल्पों की नीवं इसी युग मे पडी़। ये शिल्प आर्थिक जीवन के विकास के नये साधन थे।

प्राचिन शिक्षा-क्रम चरणों मे विकसित हुआ था। अब जनपदों के नये युग में दो प्रकार की नई शिक्षा का विकास हुआ , जिनका उल्लेख यास्क के इस वाक्य में है। एक तो जानपदी वृति या शिल्पो में कुशलता प्रतिष्ठा का कारण था। दुसरे ज्ञान के क्षेत्र मे जो

किसी भी एक शास्त्र या विधा के जानकार होते थे वे वेदिता कहलाते थे जिनका उल्लेख पाणिनि ने तदधीते तद्वेद सूत्र मे किया है इस प्रकार के वेदितृ व्यक्तियो ं मे जो कई विधाओं , शास्त्रें या ग्रन्थो के विशेषण होते थे वे भूयोविद्य रूप में ग्जाङनिय समझे जाते थे। शिक्षा के प्रकरण मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वैदिक चरणों से बाहर भी विविध विद्याओं और साहित्य का अत्याधिक विस्तार पाणिनि युग कि विशेषता थी। इस प्रवृति के पीछे एक विशेषता यह थी कि वैदिक साहित्य की परिधि के बाहर शिक्षा और ज्ञान का स्वतंत्र विस्तार हो रहा था।

जनपदों में अनेक दिग्गज आचार्य हुए जिन्होनें कितने ही नये शास्त्रें की उद्भावना की। सच पूछा जाय तो भारतीय साहित्य में विविध शास्त्र और दर्शनो की मूल प्रतिष्ठा का आरंभ इसी युग में हुआ। इस समय राष्ट्र में ज्ञान का जो चौमुखी विस्फोट हुआ उसका प्रमाण उपनिषदों में , महाभारत में एवं प्राचीन बौद्व और जैन साहित्य में पाया जाता है। बौद्विक विकास के क्षेत्र में यही स्थिति यूनान के पुर-राज्यों में हुई थीं। वहाँ भी पुर राज्यों का युग ज्ञान के चरम उत्कर्ष का युग था। पुराने ढंग की होमरीय शिक्षा का स्थान नये दार्शनिक चिन्तन और नये शिल्पों ने ले लिया था।

शासन के विविध प्रकार --- मुख्यत: राजाधीन और गणाधीन दो प्रकार के जनपद थे , किन्तु उनमे भी विकास की कितनी ही कोटियाँ थी। उस युग में जनपद मानों विविध प्रकार के शासन की प्रयोग शाला बने हुए थे। एकाधीन जनपद को राजाधीन भी कहते थें, अर्थात् वहाँ राजा और मंत्रिपरिषद् की शासन संस्था का विकास हो चुका था। दुसरे प्रकार के जनपद गण या संङ कहलाते थे। संधो में शासन के अनेक अवान्तर भेद थे। इनमें से पच्चासो का पाणिनि ने श्रेण्यादय: कृतादिभि: सूत्र में उल्लेख किया गया है। किन्तु अब उनके सूक्ष्म भेद-प्रभेदा को जानने का कोई साधनं नही है ं। कुछ संध विकास कि आरंभिक अवव्यस्था में ही थे। वहाँ के निवासी प्राय: उत्सेधजीवी या लूट-मार करके जीवीका निर्वाह करने वाले होते थे। वे अपनी सीमा के भीतर किसी प्रकार की संङीय प्रणाली कायम करके काम चलाते थे। राजशास्त्र की दृष्टी से उनके प्रयत्न उच्च कोटि के न थे किन्तू फिर भी लोक में उनका अस्तित्व अवश्य था। इस प्रकार से संधो का त्रत और पूग कहते थे। विशेषत: भारत के उत्तर-पश्चिम मे ऐसे सैकडो़ संङो का जाल फैला हुआ था। इनका विशेष विवेचन अगले प्रकरण में किया जायेगा।

कुछ महत्वपूर्ण सुत्रों से पाणिनि ने शासन सम्बन्धी विशेष प्रयोगों या विविध प्रकारों का इस प्रकार उल्लेख किया है --- गण , संङ अवयव (4/1/61) , त्रिगर्तषष्ठ (5/3/116) , राजन्य (6/2/34) , द्वन्द्व या व्युत्क्रमण (8/1/15) , जनपद, जनपदिन् अभिषिक्त वंश्य क्षत्रिय पूग, श्रेणि, ग्रामणी, व्रात कुमारपूग (6/2/88) , आयुध-जीविन् (5/3/51) , पर्वतीय (4/2/143) , परिषद्वल राजा (5/2/112) , संधिमिश्र राजा (6/2/154) , इत्यादि। अनेक संधो में आयुध-जीवी सैनिको का स्वतंत्र अस्तित्व था जो युंद्व के लिए सैनिक टुकडी़ के रूप मे प्राप्त किए जा सकते थे। कृष्ण ने अपने व्रृण संध के विषय मे कहा था कि इस प्रकार के अट्ठारह सहस्त्र व्रात उनके संध में थे। इसी प्रकार के अनेक व्रात या आयुधजीवी लडा़के यूनानी पुरराज्यो में और थ्रेस के पहाडी़ इलाकों में थें। वे युद्व और लाभ के लोभ से सिकन्दर की सेना में भर्ती होकर आ गए थे।

सभा और परिषद्--- प्रत्येक जनपद में चाहे वह राजाधीन था या गणाधीन उसकी एक सभा और एक परिषद् होती थी। सभा राजाधीन जनपदों में राजा के नाम से प्रसिद्व होती थी , जैसे चन्द्रगुप्त-सभा , पुज्यमित्र सभा , जिनका उल्लेख आता है। इस सभा में पौरजानपद प्रतिनिधि एवं अन्य प्रतिष्ठत व्यक्ति और विद्वान सदस्य होते थे। राजाधीन जनपद में परिषद् से तात्पर्य मंत्रिपरिषद से था। उसी के कारण ' परिषदवलो राजा ' यह साभिप्राय शब्द लोक में प्रचलित हुआ था। गणराज्यों मे सभा के संगठन का आधार कहीं अधिक व्यापक था। संध या गण में जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय या राजन्य होते थे। वे सब सभा में बैठने के अधिकारी थे। इसका अच्छा उदाहरण वृष्णयन्धक गण की सभा का वह अधिवेशन है जो सुभद्राहरण के अवसर पर सभापाल द्वारा सान्नाहिकी भेरी बजाकर बुलया गया था। कहा है कि उस शब्द से क्षुब्ध होकर भोज , वृष्णि और अन्धक खाना पीना छोड़कर भागते हुए सभा में आए।

भारतीय सभा की तुलना यूनानी पुरराज्यों की सभा के साथ करने से उसके संगठन पर मूल्यवान् प्रकाश पड़ता है। यूनान में सभा की सदस्यता प्राप्त करने के लिए नागरिक को अठ्ठारह वर्ष की आयु प्राप्त करना आवश्यक था। तब उसका नाम जन की सूचि में पंजीबद्व कर लिया जाता था। किन्तु उसके बाद भी उसके लिए दो वर्ष की सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। अतएव बीस वर्ष की आयु प्राप्त होने के बाद ही नागरिक का अट्ठारह अधिवेशनों में व्यवहारत: सम्मिलित हो पाते थे। पाणिनि ने वय: प्राप्त क्षत्रियकुमार

के लिये कवचहर शब्द का उल्लेख किया है। यह योग्यता अट्ठारह वर्ष की आयु में प्राप्त होती थी। कवचहर की ध्वनि यही है कि वह युवा कुमार सैनिक शिक्षा प्राप्त करने लगता था। उसकी समाप्ती के बाद वह युवा सभेय अर्थात सभा मे भाग लेने योग्य होता था। सभेय वैदिक शब्द था। पाणिनि युग में उसके लिए सभ्य यह नया शब्द प्रयुक्त होने लगा था। सभ्य पदवी उसी के लिये प्रयुक्त होती थी जो सभा में सम्मिलित होने का साधुता या योग्यता प्राप्त कर चूका हो।

एकराज जनपदों के नाम --- पाणिनि ने निम्नलिखित जनपद नामों का सूत्रें मे उल्लेख किया है , (1) कम्बोज, (2) गान्धारि, (3) मद्र (4) साल्वेय , (5) साल्व, (6) कलकूट, (7) कुरू, (8) प्रत्यग्रथ , (9) कोसल , (10) आजाद, (11) कुन्ति, (12) अवन्ति , (13) अष्ठमक, (14) काशि , (15) मगघ , (16) कलिंग, (17) सूरमस, (18) सौवीर , (19) अम्बष्ठ। पतंजलि ने कुछ ऐसे नाम दिये है, जिनका सूत्रों में अन्तभाव माना है , जैसे विदेह, पांचाल अंग, दार्व ,नीप। इनके अतिरिकत गणाधीन संधो के भी अनेक नाम सूत्रें और गणों मे आते है। पाणिनीय तिथि क्रम के लिए इन नामों के महत्व पर अन्तिम अध्याय में विचार किया गया है।

सन्दर्भ

1. अशोक के ब्रह्मगिरि के लधुशिला लेख में इसे आर्यपुत्र कहा गया है।
2. यन्वहं सर्व वणिलो5शुल्कान् अगुल्मान् मुंचेयम् (दिव्यावदान पृष्ठ 291ऋ।
3. दडय: पुरुषो दण्डमर्हतीतिवा, दण्डेन सम्पद्यत इतिवा (निरूक्त 2/2 ऋ।
4. जनाति युद्व संभार कार्ययोग्यं च सैनिकम्।। (शुक्र 0 2/ 144)
5. वायु अ0 45य मत्सय अ0 114य ब्रह्माण्ड अ0 49य वामन अ0 13: मार्कण्डेय अ0 57य गरूड अ0 55य और भी देखिए , श्री दिनेशचन्द्र सरकार , पुराणगत जनपद सुचियों का मूल पाठ , इंडियन हिस्टारिकल कार्क्टरली, वर्ष 21 (1945), पृ0297-314।

इन्द्रधनुषी क्रान्ति और भारत का कृषि विकास

शम्मी कुमारी

सहायक प्राध्यापक (संविदा), डोरंडा कॉलेज, राँची विश्वविद्यालय, झारखण्ड

1960 के दशक के मध्य में भारत में हरित-क्रान्ति की शुरूआत हुई और परिणाम स्वरूप भारत खाद्यान्न में काफी हद तक आत्मनिर्भर हो गया। इसका श्रेय डॉ नोरमान ई वोरलॉग को जाता है साथ ही डॉ एम. एस. स्वामीनाथन को भी जाता है।

1991 के दशक में भारत में वैश्वीकरण की शुरूआत हुई। 1995 में WTO का सक्रिय सदस्य बनने के बाद भारत के कृषि में काफी परिवर्त्तन देखने को मिलता है। भारत अब खाद्यान्न फसलो और अन्य कृषि पदार्थो का निर्यातक बन गया। सन् 2000 में कृषि में सर्वागीण विकास के लिए इन्द्रधनुष में कई रंग होते है उसी प्रकार भारतीय कृषि के भी कई रंग है। इस क्रान्ति का उद्देश्य भारत के सभी कृषि उत्पादन क्षेत्रों में वृद्धि व निगरानी करना है। इसमें हरित क्रान्ति, रजत क्रान्ति, पीली क्रान्ति, नीली क्रान्ति इन सब का मिक्स ऐजेडा तैयार किया गया तथा लक्ष्य था किसान की आय को दुगुना करना।

भारत में विभिन्न क्रान्तियाँ

नीली क्रान्ति	(Blue Revolution)	-	मत्स्यपालन
खाकी कान्ति	(Bown Revolution)	-	चमड़ा
भूरी क्रान्ति	(Grey Revolution)	-	रसायनिक उर्वरक तथा आवास
हरित क्रान्ति	(Green Revolution)	-	कृषि,
गुलाबी क्रान्ति	(Pink Revolution)	-	प्याज, झीगा उत्पादन, औषधियाँ एवं फर्मास्यूटिक्लस
श्वेत क्रान्ति	(White Revolution)	-	दुग्ध उत्पादन
रजत क्रान्ति	(Sliver Revolution)	-	अण्डा / कुक्कुट
रजत रेशा क्रान्ति	(Sliver Fiber Revolution)	-	कपास
पीत क्रान्ति	(Yellow Revolution)	-	तिलहन उत्पादन
कृष्ण क्रान्ति	(Blackr Revolution)	-	पेट्रोलियम
स्वर्ण रेशा क्रान्ति	(Golden Feiber Revolution)	-	जूट (पटसन)
स्वर्ण क्रान्ति	(Golden Revolution)	-	बागवानी
लाल क्रान्ति	(Red Revolution)	-	मांस एवं टमाटर उत्पादन
गोल क्रान्ति	(Round Revolution)	-	आलू उत्पादन

नीली क्रान्ति के तहत मछलियों के उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। देश में मछलियों का उत्पादन 1991-92 में 41.37 लाख टन से बढ़कर 2016-17 में 141.1 लाख टन हो गया है। पहले स्थान पर आन्ध्र प्रदेश, दूसरे स्थान पर बंगाल है। मत्यस्य पालन भारत का सबसे बड़ा कृषि निर्यातक बन गया है। जिसमें पिछले पाँच सालों में 6: से 10: की वृद्धि हुई है। यह भारत के

ळक्ष में लगभग 1: और कृषि ळक्ष में लगभग 5: का योगदान दे रहा है। मत्यस्य क्षेत्र लगभग 14.0 मिलयिन लोगों को रोजगार मुहैया कराता है।

खाकी क्रान्ति चमड़ा उद्योग से संबंधित है। भूरी क्रान्ति उर्वरको से संबधित है। 1960 के दशक से हरित क्रान्ति की शुरूआत से उर्वरकों के प्रयोग में तेजी से वृद्धि हुई है। देश में कृषि उत्पाद को बढ़ाने में उर्वरकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। उर्वरक के उत्पादन तथा उपभोग से भारत का विश्व में चीन और अमेरिका के बाद तीसरा स्थान है। भारत अभी भी नाइट्रोजनी उर्वरको की अपनी खपत का लगभग 94: व फॉस्फेटी उर्वरकों की खपत का 82: लगभग उत्पादन कर पाता है। पोटाशी उर्वरक के लिए भारत पूरी तरह से आयात पर ही निर्भर है।

हरित क्रान्ति ने भारत को काफी हद तक खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बना दिया है। यह आत्मनिर्भर उँची उपज वाले बीजो एवं रासायनिक खादों व नई तकनीक के प्रयोग के फलस्वरूप हुई। कृषि आगतो में हुए गुणात्मक सुधार में फलस्वरूप देश में खाद्यानों में आत्मनिर्भरता आई। व्यवसायिक कृषि को बढ़ावा मिला। उपज बढ़ाने में तकनीकी एवं संस्थागत सुधार जैसे रासायनिक उर्वरको का प्रयोग, उन्नतशील बीजों के प्रयोग में वृद्धि, सिचाई सुविधाओं का विकास, पौध संरक्षण, बहुफसल कार्यक्रम, कृषि सेवा केन्द्रों की स्थापना, कृषि उद्योग निगम, कृषि शिक्षा एवं अनुसंधान के कारण कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि हुई।

1951-52 में देश में खाद्यान्नों का कुल उत्पादन 5.09 करोड़ टन लगभग था जो 2008-2009 में बढ़कर 23.38 करोड़ टन हो गया। 2017-18 में 277.49 मिलियन टन लगभग खाद्यान्न का उत्पादन हुआ। कपास का उत्पादन 1960-61 में 5.6 मिलियन गांठ था जो 2008-2009 में 27 मिलियन गांठ लगभग हो गया जो 2017-18 में 33.92 मिलियन गांठ लगभग हो गया। तिलहन का उत्पादन 1960-61 में 7 मिलयिन टन था जो 2008-2009 में 28.2 मिलियन टन और 2016-17 में बढ़कर 37.28 मिलियन लगभग हो गया। इसी तरह पटसन, गन्ना, आलू, मूँगफली आदि व्यवसायिक फसलों के उत्पादन में भी वृद्धि हुई।

श्वेत क्रान्ति दूध और दूध उत्पादों से संबंधित है। इसका श्रेय डॉ वर्गीज कुरियन को जाता है जिन्हे इस योजना के क्रियान्वयन एव सफलता का शत् प्रतिशत श्रेय जाता है। वर्तमान समय में भारत विश्व में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक देश बन गया है। 2000-01 में देश में दूध का उत्पादन 81.4 मिलियन टन लगभग तथा जो 2013-14 में बढकर 137.7 मिलियन टन लगभग हो गया। 2016-17 में देश में दूध का उत्पादन 165.4 मिलियन टन हो गया। 1950- 2017 की अवधि में भारत में दूध की प्रति व्यक्ति उत्पादकता 124 ग्राम प्रतिदिन से बढ़कर 351 ग्राम प्रतिदिन हो गई।

गुलाबी क्रान्ति प्याज, झीगा और औषधिय उत्पादन से संबंधित है। वर्तमान समय में भारत विश्व का सबसे बड़ा झीगा मछली उत्पादक देश बन गया है। सुगधित औपधि जड़ी बूटी का उत्पाद 2016-17 में 1.04 मिलियन टन लगभग था। प्याज के उत्पादन में भार के अग्रणी राज्यों में महाराष्ट, कर्नाटक मध्यप्रदेश, गुजरात और बिहार प्रमुख है।

रजत क्रान्ति के फलस्वरूप अण्डो के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में पाँचवा है। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग 63 अरब अण्डों का उत्पादन होता है। रजत रेशा क्रान्ति कपास से संबंधित है। कपास के उत्पादन से भी भारत अमेरिका के बाद दुनिया का दूसरा बड़ा निर्यातक बन कर उभरा है। 2016-17 के दौरान 32.58 मिलियन गांठ से बढ़कर 2017-18 में 33.92 मिलियन गांठ रहा। कपास की पैदवार में होने वाले मौसमी उत्तार-चढाव के बावजूद भी भारत सकारात्मक स्थान पर बना हुआ है।

पीत क्रान्ति तिहलहन उत्पादन से संबंधित है जिसमें मुँगफली, सरसों, सोयाबीन, सूरजमुखी तिल, अरण्डी आदि प्रमुख है। 1970-71 में तिलहन का उत्पादन 579 प्रति हेक्टेयर था वह 2016-17 में बढ़कर 1229 प्रति हेक्टेयर हो गया। हरित क्रान्ति के बाद कृषि में अनुसंधान और विकास की अगली कड़ी पीली क्रान्ति है। पीली क्रान्ति के परिणामस्वरूप ही हमारा देश खाद्य तेलो और तिलहन उत्पादन में महत्वपूर्ण उपल्बधि हासिल कर सका है।

कृष्ण कान्ति पेट्रोलियम से संबंधित है। पेट्रोलियम के संबंध में भारत की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। भारत में तेल क्षेत्र असम, त्रिपुरा, मणिपुर, पश्चिम बंगाल, मुम्बई, गुजरात है जो भारत के कच्चे तेल का कुल 20 प्रतिशत भाग की अपूर्ती स्वदेश द्वारा की जा रही है। कृष्ण क्रान्ति में आत्मनिर्भर बनने हेतू सरकार खनिज तेल के अनुमानित स्त्रोत पर ज्यादा से ज्यादा अनुसंधान कर रही है। इसके तहत एथनोल का उत्पादन बढ़कर पेट्रोल में एथनॉल का मिश्रण 10: तक बढ़ाने तथा बायो डीजल का उत्पादन करने की सरकार की योजना है। पौधो से बायोडीजल तैयार करने के लिए प्ब ने भारतीय रेलवे से भी एक समझौता

किया है जिसके अन्तर्गत रेल लाइनों के साथ खाली पड़ी हुई 500 हेक्टेयर भूमि रेलवे प्ब्ब को इन पौधो के लिए देगा। इसमें 80 हेक्टेयर भूमि प्ब्ब को प्राप्त हो गई है जिस पर बायो डिजल उत्पादन के लिए पौधे लगाए जायेगें।

स्वर्ण रेखा क्रान्ति जूट से संबंधित है। जूट सुनहरा लंबा और रेशमी चमक वाला एक प्राकृतिक फाइबर है। कपास के बाद जूट उपभोग, उत्पादन और उपलब्धता में सबसे महत्वपूर्ण वनस्पति फाइबर है। भारत वर्तमान समय में जूट का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। जूट का वार्षिक उत्पादन वर्तमान समय में लगभग 1.98 मिलियन टन है। पश्चिम बंगाल का जूट के उत्पादन में लगभग 50: का हिस्सा है। अन्य प्रमुख जूट उत्पादक क्षेत्र है उत्तरप्रदेश, बिहार, असम, मेघालय और उडीसा हैं।

स्वर्ण क्रान्ति बागवानी से संबंधित है। 1948-80 के अवधि में देश का प्रमुख फोकस अनाज पर था। 1991-2003 की अवधि के दौरान बागवानी क्षेत्र में महत्वपूर्ण सकरात्मक परिवर्त्तन दिखाई देने लगा। 2005-06 में राष्ट्रीय बागवानी मिशन शुरू किया गया था। 2005 में फलों और सब्जियों का उत्पादन 11.72 मिलियिन हेक्टेयर था कुल उत्पादन 150.73 मिलियन टन था जो 2015-16 में बढ़कर 23.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में बागवानी का उत्पादन बढ़कर 281 मिलियन टन हो गया। आज भारत चीन के बाद दुनिया में फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक बन गया है। स्वर्ण क्रान्ति देश के किसानों का मुख्य आय स्त्रोत है।

लाल क्रान्ति मांस एवं टमाटर उत्पादन से संबधित है। मांस के निर्यात में भारत अग्रणी देशो में बना हुआ है। 2016-17 में मांस का निर्यात 17 हजार टन बढ़ गया है। टमाटर का उत्पादन 2016-17 में 19.5 मिलियन टन लगभग था। अग्रणी राज्यों में उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश है। गोल क्रान्ति आलू से संबंधित है। आलू भारत के प्रमुख खाद्यान्न फसलों में प्रमुख है। 2016-17 में आलू का उत्पादन 43.4 मिलियन टन से बढ़कर 48.2 मिलियन टन है। उत्पादक राज्यों में उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश प्रमुख है।

इस प्रकार इन्द्रधनुषी क्रान्ति ने सम्पूर्ण भारत के प्राथमिक क्षेत्र को एक नई दशा और दिशा प्रदान की है। वर्तमान में देश कृषि उत्पाद के मामलों में लगभग आत्मनिर्भर है। और प्रमुख निर्यात देशों में अपना स्थान बनाए रखा है। राष्ट्रीय आय को बढ़ाने में इन्द्रधनुषी क्रान्ति का महत्वपूर्ण योगदान है। परन्तु इन सब से बावजूद आज भी हम अपने लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सके है। इस लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए तथा सतत् विकास को बनाए रखने के लिए तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के परिपेक्ष्य में, मिट्टी के स्वास्थय को बढ़ाने, उत्पादन को और बढ़ाने के लिए हमे और आधुनिक होना पडेगा। उदाहरण स्वरूप ड्रिप ऐरीगेशन, रेन वाटर हॉवेटिग, सौर उर्जा का प्रयोग, केचुआ पालन, किसानों को उचित मूल्य पर साख उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। इसे देखते हुए हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति और महान वैज्ञनिक ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने ''नालेज एगीकल्चार'' को अपनाने पर जोर दिया।

संदर्भ सूची

1 दत्त एवं सुन्दरम-भारतीय अर्थव्यवस्था 55 वॉ संस्करण।

2 प्रतियोगिता दर्पण-भारतीय आर्थिक समीक्षा 2017-18।

3 जागरण जोश-भारत में कृषि से संबंधित क्रान्तियाँ।

'भारत छोड़ो आंदोलन का भारत की स्वतंत्रता में भूमिका'

उषा कुमारी

प.एच.डी राजनीती विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय

श्भारत छोड़ो आंदोलनश्भारतीय इतिहास का एक ऐसा आंदोलन है , जो स्वर्ण अक्षरों में हर भारतीय के जन मानस में अंकित रहेगा। एक ऐसा आंदोलन जिसकी वजह से अंग्रेज भारत छोड़ने को मजबूर हो गए। ऐसा आंदोलन जब पूरी दुनिया बदलावों के दौर से गुजर रही थी, एक तरफ द्वितीय विश्व युद्ध से पूरी दुनिया जल रही थी, तो दूसरी तरफ साम्राज्यवाद के खिलाफ लहर तेज हो रही थी। 8अगस्त 1942 को बॉम्बे की अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक में भारत छोड़ो आंदोलन प्रस्ताव पारित किया गया जिससे भारतीय स्वतंत्रता की ऐसी पृष्ठभूमि तैयार हुई जिससे स्वतंत्र भारत का रूप उभर कर पूरी दुनिया में प्रकट हुआ। महात्मा गाँधी की नेतृत्व में शुरू हुआ यह आंदोलन सोची समझी रणनीति का हिस्सा था। आंदोलन के दौरान गाँधी जी ने गोवालिआ टैंक मैदान में ऐतिहासिक नारा दिया, बाद में उसी गोवालिआ टैंक मैदान को श्अगस्त क्रांति श्मैदान के नाम से भी जाना जाता है।

जिस तरह से 1857 की क्रांति की शुरुवात कई घटनाक्रम की देन थी ठीक वैसे ही भारत छोड़ो आंदोलन के समय भी सबसे बड़ी घटना थी , द्वितीय विश्वयुद्ध। जिसमे जबरदस्ती भारत को भी शामिल कर दिया गया था। पोलैंड की फासिस्ट ताकतो से बचाने के लिए सितम्बर 1939 को प्रजातंत्र की दुहाई देते हुए इंग्लैंड ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। देखते देखते इस युद्ध ने द्वितीय विश्वयुद्ध का रूप ले लिया। भारत को युद्धलिप्त राष्ट्र घोषित कर भारत की प्रात्रीय सरकारों की शक्ति तथा कार्य की सीमा को संकुचित कर दिया गया। भारत का सहयोग प्राप्त करने के लिये सर-स्टैफॉरड क्रिप्स की अध्यक्षता में श्क्रिप्स मिशनश 23 मार्च 1942 को दिल्ली पहुचा। काँग्रेस ने उसके आगमन पर विरोध किया और क्रिप्स मिशन को करारा जवाब दिया अंग्रजों भारत छोड़ दो, भारत को जापान के लिये नहीं भारतीयों के लिये छोड़ दो। इस प्रस्ताव में यह घोषित किया गया कि भारत में ब्रिटिश शासन की तत्काल समाप्ति भारत में स्वतंत्रता तथा लोकतंत्र की स्थापना के लिए जरूरी है। अगस्त 1942 में गाँधी जी के आहावान पर समुचे देश में एक साथ श्सविनय अवज्ञा आन्दोलनश्की शुरूआत हुई। भारत छोड़ो का नारा यूसूफ मेहर अली ने दिया था। 9 अगस्त 1942 को कॉमग्रेस के अधिकांश नेता गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हे देश के अलग-अलग भागों में जेल में डाल दिया गया साथ में काँग्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। सरकार द्वारा पूरे देश में गोलीबारी, लाठीचार्ज और गिरफ्तारी की गई 1942 के अंत तक लगभग 80,000 लोगों को जेल में डाल दिया गया, हजारों लोग मारे गये, जय प्रकाश नारायण, अरूणा आसफ अली, एस.एम. जोशी, राम मनोहर लोहिया और कई अन्य नेताओं ने लगभग पूरे युद्ध काल के दौरान क्रांतिकारी गतिविधियों का आयोजन किया। जनता के लिए सामुहिक आहावान किया गया-

1. आन्दोलन में हिंसात्मक कार्यवाई पर रोक लगाया जाय। हिंसा छोड़ बहिष्कार का मार्ग अपनाया जाय।
2. नमक कानून को भंग किया जाय। सरकार को किसी भी प्रकार का कर नही दिया जाय। अंग्रेजों को ज्यादा से ज्यादा आर्थिक नुकसान देने पर जोर दिया जाय।
3. अंग्रेजो द्वारा भारतीयों के प्रति द्रुव्यवार का दमनकारी विरोध होना एक जुट होकर हर प्रकार की प्रताड़ना, शोषण का पुरजोर आवाज उठाना।

4. सरकार विरोधी हड़ताले प्रदर्शन तथा सार्वजनिक सभाए करके अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर विवश करना।
5. मुल्यों में असधारण वृद्धि आवश्यक वस्तु नहीं मिलने पर करना। आन्दोलन के दौरान बहुत सारी सफलता और विफलता हमारे नेताओं को झेलनी पड़ी जो भारत की स्वतंत्रा में बहुत बड़ी भूमिका रखती है-

1. इस आन्दोलन के बाद ब्रिटिश सरकार ने हजारों आन्दोलनकारियों को बन्दी बना लिया तथा बहुतों को मृत्यु का वरण करना पड़ा।
2. अन्तराष्ट्रीय जनमत को इंगलैन्ड के विरूध जागृत किया। चोन और अमेरिका चाहते थे कि अंग्रेज भारत को पूर्णरूप से स्वतंत्र कर दे।
3. इस आन्दोलन में जनता में अंग्रेजों के विरूद्ध अपार उत्साह एवं जागृति उत्पन्न की।
4. भारत छोड़ों आन्दोलन के प्रति मुश्लिम लीग ने उपेक्षा बरती। काँग्रेस विरोधी होने के कारण लीग का महत्व बढ़ गया। स्थानीय स्तर पर कम्यूनिष्टो आदि ने आन्दोलन की मदद की। मोहम्मद अली जिन्ना की पाकिस्तान की माँग अगस्त 1941में वाईसराय लार्ड ने भारतीय नेताओं को युद्ध के पश्चात् संविधान सभा बनाने को आश्वासित किया ओर उनकी सहमति को प्रणाली में महत्व देने का आश्वासन दिया।
5. जमींदार, मजदूर, किसान, युवा, महिला ने बढ़ चढ़कर भाग लिया। प्रशासनिक कर्मचारियों और निचले वर्ग के कर्मचारी ने आन्दोलनकारियों को अप्रत्यक्ष सहायता दी।
6. हालाकि गाँधीजी की ओर से ये आंदोलन अहिंसक था लेकिन अंग्रेजों को भगाने के जोश में भारतीय कई जगह उग्र भी हो गये थे जिसके कारण देश के कई स्थानों में हिंसा हुई, सरकारी इमारतों को जला दिया गया, बिजली काट दी गयी। सन् 1942 की क्रांति पिछले सतावन वर्ष से राष्ट्रीय कांग्रेस जो आंदोलन चला रही थी उसका उफान था इस उफान की पृष्ठभूमि में जो व्यापक जन जागृति उत्पन्न की थी, जो राष्ट्रीय चेतना जगाई थी, उसके कुछ ही वर्षों बाद अंग्रेजी हुकुमत ध्वस्त हो गयी।

References

1. D-N Panigrani (1984) iQuit India and the struggle for Freedom- New Delhi PP-B-14
2. Ramesh Mishra R- C- Mishra] October 17] iQuit India movement 09August 1942.
3. Join Phool Chand, Swantrata Senariuyon ka Bandinama %& Page 34
4. Ela Nagori 1997, Bharat ka Muktti sangrama volume-2

कुछ अनछुए पक्ष : विक्रमशिला महाविहार

डॉ० नूतन कुमारी

सहायक प्राध्यापक, अतिथि संकाय, इतिहास विभाग, पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया

भारतीय जनमानस अति प्राचीन काल से ज्ञान के प्रति उत्सुक रहा है। ज्ञान को मनीषियों ने व्यक्ति का आभूषण और व्यक्तित्व के विकास का आवश्यक माध्यम माना है। लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन के लिए ज्ञान एवं शिक्षा को आवश्यक मानते हुए इसके अर्जन एवं हस्तांतरण के विभिन्न संस्थानों की स्थापना, वैदिक कालीन गुरुकुलों के रूप में आरम्भ हुई। कालांतर में महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तरीय शैक्षिक संस्थाओं के विकास की यात्रा में भारत विश्व का अग्रणी रहा है।[1] ज्ञान के माध्यम से सत्य की खोज ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है। भगवद्गीता में ईश्वर तक पहुँचने के तीन मार्गों यथा ज्ञान, कर्म तथा भक्ति में ज्ञान को सर्वोत्तम माना गया है।[2] आधुनिक शिक्षाविदों के अनुसार संचित ज्ञान का एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण ही शिक्षा है।[3] इस दृष्टिकोण से शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो जाता है।

प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरुप मूलत: आध्यात्मिक रहा है। तथापि वैदिक कालीन श्रोत परंपरा में भी लौकिक शिक्षा को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित किये जाने के उदाहरण मिलते हैं। वैदिक काल में छोटे-बड़े गुरुकुलों की प्रणाली का प्राध्यान्य था। विद्यार्थियों की संख्या तथा शैक्षणिक विषयों एवं शिक्षकों की बहुलता के आधार पर महाविद्यालय स्तर की शिक्षण संस्थाओं के विकास का क्रम छठी शताब्दी ई0पू0 में आरम्भ हो चूका था। पश्चिमोत्तर भारत में एक ही स्थान पर ऐसे कई महाविद्यालयों को समेकित संस्था के रूप में तक्षशिला विश्वविद्यालय के नाम से प्रतिष्ठित किया गया जो छठी शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0पू0 तक ज्ञान का प्रकाश समस्त विश्व में प्रकीर्णित करता रहा।[4]

शिक्षण संस्थाओं के विकास के क्रम में बौद्ध महाविहारों के द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन गुप्तोत्तर काल से आरम्भ हुआ। महाविहार पूर्व काल में भी अपने सदस्य भिक्षुओं की शिक्षा का प्रबंधन स्वयं करते आ रहे थे। परंतु नालंदा महाविहार को कुमारगुप्त प्रथम द्वारा पाँचवी शताब्दी ईसवी में प्रदत्त भूमिदान ने इस संस्था के अंतर्राष्ट्रीय शिक्षण केंद्र के रूप में विकसित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। बौद्ध शिक्षा केंद्रों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर के संस्थान अधिकांश पूर्वी भारत विशेषत: बिहार, बंगाल क्षेत्र में स्थापित किये गए। इन सभी शिक्षा केंद्रों की महाविहारों के रूप में स्थापना तत्कालीन राजवंशों द्वारा समर्थित थी। गुप्त शासकों की धार्मिक उदार नीति के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का महायान संप्रदाय पूर्वी भारत में विशेष लोकप्रियता पाने में सफल रहा। उत्तर गुप्त कालीन कई गुप्त शासकों ने बौद्ध धर्म को सक्रिय राज्याश्रय प्रदान किया। गुप्त शासकों के उपरान्त पाल, चन्द्र तथा काम्बोज शासकों ने बिहार-बंगाल में आठवीं से बारहवीं शताब्दी ईसवी के मध्य बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान किया। बौद्ध धर्म के भारत से विलुप्त होने तथा इसके विकास के अंतिम दो अध्याय, वज्रयान तथा सहजयान इन चार शताब्दियों में लिखे गए। पूर्वी भारत में स्थापित कई महाविहार, विशेषकर नालंदा एवं विक्रमशिला, बौद्ध धर्म की इस विकास यात्रा की अंतिम परिणति तक इसके सक्रिय भागीदार रहे।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना पालवंशीय शासक धर्मपाल द्वारा अपने आध्यात्मिक गुरु बुद्ध ज्ञानपाद के आग्रह पर आठवीं शताब्दी ईसवी के उत्तरार्द्ध में की गयी। बिहार राज्य के भागलपुर जिला मुख्यालय से उत्तर-पूर्व, बटेश्वर स्थान से दो किलोमीटर पूर्व वर्तमान अंतीचक ग्राम के समीप इस विश्वविद्यालय के अवशेषों के पहचान एवं पुरातात्विक उत्खनन का कार्य 1960-1981 के मध्य, पहले पटना विश्वविद्यालय के प्रो बी पी सिन्हा तथा 1970-1981 भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली के तत्वावधान में डॉ बी एस वर्मा के निर्देशनान्तर्गत किया गया। प्राचीन विक्रमशिला महाविहार की पहचान के संबंध में विद्वानों में मतान्तर रहा है। डॉ अलका चट्टोपाध्याय ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय की वर्तमान अंतीचक अवस्थित अवशेषों के साथ पहचान को अस्वीकृत करते हुए इस महाविहार की सर्वसम्मत पहचान के अभाव में इस प्रश्न को ठोस एवं अकाट्य तथ्यों के अभाव

में खुला छोड़ देने का प्रस्ताव दिया है। तथापि नंदलाल डे और जे एन समद्दार महोदय ने विक्रमशिला की पहचान वर्तमान पत्थरघट्टा (बटेश्वर स्थान) एवं समीप बिखरे टीलानुमा अवशेषों के साथ की थी जो सर्वाधिक सहमति प्राप्त है तथा लामा तारानाथ के विवरण से अधिक सादृश्य भी रखता है।

इस स्थल के नाम के संबंध में भी अलका चट्टोपाध्याय ने 'विक्रमशील' उच्चारण को उचित माना है। तिब्बती भाषा में इस महाविहार को जिस रूप में संबोधित किया गया है, उससे 'उच्च नैतिक आचरण' का भाव-बोध होता है। इस महाविहार के संस्थापक धर्मपाल का एक विरुद 'विक्रमशील' ही था। तथापि विक्रमशिला नाम का समर्थन इस महाविहार की पहचान अंतीचक और बटेश्वर स्थान के बीच बिखरे अवशेषों से किये जाने पर हो जाता है। बटेश्वर स्थान का प्राचीन नाम श्रीवट पर्वत हटाएं अभिलेखिक साक्ष्य द्वारा संपुष्ट हुआ है। वर्तमान में बटेश्वर स्थान का स्थानीय नाम पत्थरघट्टा भी यह आभास देता है कि यदि यह महाविहार यहाँ अवस्थित था तब पहाड़ी सृंखला से आवृत्त होने के कारण इसका मूल नाम विक्रमशिला ही अधिक समीचीन जान पड़ता है।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु क्यों इस स्थल का चयन किया गया? इसके विषय में कई संभावित कारणों को गिनाया जा सकता है। प्रथमत: यह स्थान पहले से ही ख्यातिप्राप्त था। शैव एवं वैष्णव दोनों संप्रदायों में छठी-सातवीं शताब्दी ईसवी से पूर्वी भारत में अनेकों धार्मिक स्थलों की स्थापना की जा रही थी। इन शताब्दियों में वर्तमान भागलपुर जिला के क्षेत्र में अजगैबीनाथ, जहाँगीरा, बौंसी (मंदार-पर्वत) आदि स्थलों के धार्मिक महत्व की वृद्धि पौराणिक आख्यानों के अनुरूप प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अत: बौद्ध मतावलंबी बुद्ध ज्ञानपाद ने अपने शिष्य धर्मपाल को बौद्ध धर्म की कीर्ति को प्रतिष्ठित करने के निमित्त इस स्थान का चयन उसी प्रकार किया होगा, जैसे महायान संप्रदाय ने ब्राह्मण-धर्म को चुनौती देने के लिए पाली के स्थान पर उसके ही विशेष मजबूत पक्षों – यथा संस्कृत भाषा का प्रयोग, दर्शन, बहुदेववाद, मूर्ति पूजा इत्यादि को अपनाकर किया। अन्य कारणों में इस स्थान का गंगा के समीप बिहार से बंगाल जाने वाले दो प्रमुख मार्गों, जल एवं स्थल दोनों के समीप होना; पहाड़ियों से आवृत्त सुरम्य वातावरण तथा वनाच्छादित होना तथा इसके समीप स्थित प्राचीन चंपा क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधियों का सकेंद्रन आदि भी न्यूनाधिक इस महाविहार की स्थापना हेतु स्थान चयन के लिए प्रभावकारी कारक रहे होंगे।

विक्रमशिला महाविहार की स्थापना राजकीय प्रयास से ऐसे समय हुई जब नालंदा की ख्याति अपेक्षतया कुछ धीमी पड़ रही थी। कुछ ही समय में विक्रमशिला का महत्व इतना बढ़ा कि प्रतिष्ठित नालंदा विश्वविद्यालय में विशेषज्ञ परीक्षकों की नियुक्ति विक्रमशिला के आचार्यों से की जाने लगी। विक्रमशिला महाविहार के महास्थविर (कुलपति) ही नालंदा के प्रधान का प्रभार भी प्राप्त करने लगे। आचार्य अतिश दीपंकर श्रीज्ञान 1025-40 ई0 के मध्य कई विश्वविद्यालय का प्रभार संभाल रहे थे। इनके तिब्बत जाने के पूर्व विक्रमशिला के तत्कालीन महास्थविर रत्नाकर शान्ति ने अतिश के तिब्बत जाने के प्रस्ताव के विरोध में तिब्बती भिक्षु वीर्यसिम्हा से कहा था "अतिश की अनुपस्थिति में कोई भी अन्य पंडित यहाँ भिक्षुओं में अनुशासन एवं नैतिकता का संरक्षण नहीं कर सकेगा, मगध के कई महाविहारों की कुंजिया (प्रभार) अतिश के पास है।" अतिश विक्रमशिला विश्वविद्यालय के उपाधिवारिक (शैक्षिक अध्यक्ष) थे।

पूर्व-मध्य कालीन बौद्ध महाविहारों की स्थापना मुख्य रूप से भिक्षुओं की शिक्षा-दीक्षा के निमित्त ही की गयी थी। इसलिए पाठ्यक्रम भी मुख्यत: उसी प्रकार का बनाया गया था। अत: देश-काल एवं परिस्थिति के अनुसार महाविहार महायान, वज्रयान एवं सहजयान संप्रदायों के नियामक सिद्धांतों के सूत्रधार भी बने। विक्रमशिला का पाठ्यक्रम तत्कालीन बौद्ध सिद्धांतों के अनुरूप सुगठित और योजनाबद्ध था। बौद्ध-दर्शन, तंत्र विद्या, हेतु विद्या (तर्कशास्त्र), व्याकरण के अतिरिक्त तत्त्व मीमांसा, चिकित्सा तथा शिल्प शिक्षा इत्यादि को विशेष रूप से अध्ययन-अध्यापन के विषयों के रूप में सम्मिलित किया गया था। न्याय, सांख्य और योग दर्शन भी पाठ्यक्रम के आवश्यक विषय थे। पाँचवीं-छठी शताब्दी ईसवी से उत्तरोत्तर तंत्रवाद का विकास और सभी धर्मों संप्रदायों में इसका प्रचलन एवं विस्तार होता गया। तंत्र को ज्ञान के आधार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त होती गयी। ज्ञान की सभी संभव शाखाओं में तथ्यों की व्याख्या तंत्र के आधार पर किये जाने का प्रचलन शिक्षा केंद्रों में भी आरम्भ हुआ। बौद्ध शिक्षा केंद्रों में तंत्र ज्ञान के अध्ययन की विशेष व्यवस्था की गयी। विक्रमशिला महाविहार तंत्रयान, मंत्र सिद्धि, रहस्यमयी क्रियाओं, शरीर क्रिया विज्ञान, हठयोग तथा ज्योतिष इत्यादि के अध्ययन का भी महत्त्वपूर्ण केंद्र था। बौद्ध धर्म दर्शन में प्रज्ञापारमिता सूत्र के अध्ययन के विशिष्ट केंद्र के रूप में भी यह विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुआ।

विश्वविद्यालय का प्रशासन कार्य एवं प्रबंधन महास्थविर की अध्यक्षता में किया जाता था जो शिक्षण संस्थान का प्रमुख अथवा कुलपति होता था। प्रशासन की सामान्य शाखा विश्वविद्यालय के दैनिक रख-रखाव, भोजन, आवास, वित्त एवं अन्य कार्यों की

देख-रेख करती थी। जबकि शैक्षिक परिषद् विश्वविद्यालय के शिक्षण, पाठ्यक्रम, अनुशासन, परीक्षा एवं अन्य संबंधित कार्यों का संपादन एवं देख-रेख करती थी। विश्वविद्यालय में निर्माण कार्यों, भोजन, वस्त्र, वेतन आदि खर्च के लिए शत-प्रतिशत राजकीय सहायता प्राप्त थी। विक्रमशिला महाविहार की स्थापना के साथ ही पाल नरेश धर्मपाल ने अंतेवासी भिक्षु शिक्षार्थियों एवं शिक्षकों के निमित्त भोजन, आवास इत्यादि की आपूर्ति राजकोश से किये जाने की घोषणा की थी। महाविहारों को ब्रह्मदेय तथा देवदान प्रकार का भूमिदान दिए जाने का भी प्रावधान था। जैसे नालंदा महाविहार को लगभग 200 ग्रामों से प्राप्त राजस्व की आय उपलब्ध थी। विक्रमशिला महाविहार के संबंध में इस प्रकार की निश्चित जानकारी का अभाव है। परंतु इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति स्वयं पाल नरेश हुआ करते थे। भूमिदान के बजाय सीधे-सीधे राजकोश द्वारा इस विश्वविद्यालय के समस्त खर्च का वहन किया जाता होगा, यह अधिक तार्किक प्रतीत होता है। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में कुल 108 आचार्यों की संख्या का उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर यहाँ भिक्षुक/छात्रों की संख्या का अनुमान तीन हजार के लगभग किया गया है। शिक्षकों की श्रेणियों में आचार्य (विनय एवं अनुशासन शिक्षा के प्रभारी) तथा उपाध्याय (धर्मग्रंथों एवं धर्म-सिद्धांतों के शिक्षक) का उल्लेख मिलता है। उपाध्याय का पद आचार्य से उच्च श्रेणी का था। इसके अतिरिक्त सहायक शिक्षक, स्थविर तथा महास्थविर आदि पदनाम भी महाविहार के शिक्षकों के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। स्थविर एक प्रकार से वर्तमान विश्वविद्यालयों में संकायाध्यक्ष के तथा महास्थविर कुलपति के समान महत्व का पद रहा होगा। ईत्संग के अनुसार उपाध्याय के अतिरिक्त एक अन्य शिक्षक धर्माचार्य द्वारा भी विनय की शिक्षा दी जाती थी। महाविहार में प्रवेश पाने के बाद भिक्षु शिक्षार्थी को उपासक कहा जाता था। अध्ययन स्तर के आधार पर भी भिक्षु उपासकों का वर्गीकरण किया जाता था। सबसे निचले दर्जे की श्रेणी के उपासकों को क्रमशः श्रमणेर, दहर तथा अंततः स्थविर कहा जाता था। स्थविर का अध्ययन स्तर उपाध्याय के समकक्ष था। भिक्षुओं की उच्चतम श्रेणी के सदस्यों को 'बहुश्रुत' कहा जाता था। लौकिक विधाओं के शिक्षार्थियों को केवल ब्रह्मचारी कहा जाता था। उन्ही विद्यार्थियों में से कुछ विशेष अध्ययन प्राप्त सदस्यों को मानव कहा जाता था। इन दोनों श्रेणियों के विद्यार्थियों को अपने अध्ययन का व्यय वहन करना पड़ता था। परंतु अपने व्यय पर उन्हें महाविहार में रहने की सुविधा प्रदान की जाती थी।

विक्रमशिला महाविहार के संदर्भ में प्रवेश-परीक्षा एवं द्वार-पंडितों की व्यवस्था भी उल्लेख्य है। कई महाविद्यालयों को मिलाकर विश्वविद्यालयों का निर्माण मध्यकालीन यूरोप में किया गया। विक्रमशिला में दिशाओं के आधार पर छः द्वार-पंडितों की नियुक्ति की व्यवस्था थी। ये द्वार-पंडित संभवतः ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के प्रभारी उपाध्याय थे। प्रवेश परीक्षा का आयोजन द्वार-पंडितों द्वारा ही किया जाता था। उक्त परीक्षा में उत्तीर्ण शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय में अध्ययनार्थ प्रवेश की अनुमति दी जाती थी। विदेशी छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिया जाता था। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में विदेशी छात्रों में तिब्बती मूल के भिक्षुक-शिक्षार्थियों की बड़ी संख्या थी जिनके आवास के लिए एक पृथक छात्रावास की व्यवस्था की गयी थी। आचार्य दीपंकर के समय में (1040 ई0) दो तिब्बती भिक्षुक शिक्षार्थियों वीर्यसिम्हा एवं जयशील विक्रमशिला विश्वविद्यालय में अध्ययनरत थे।

विक्रमशिला महाविहार का निर्माण 300 मी0 × 300 मी0 के वर्गाकार क्षेत्रफल में पकी मिट्टी की ईंटों, स्तम्भ एवं द्वार-चौखट ग्रेनाईट पत्थर, छत के लिए शहतीर-कड़ी हटाए आदि सामग्रियों का प्रयोग कर किया गया है। चिनाई के लिए मिट्टी के गारे तथा कहीं-कहीं चूना-सुर्खी का प्रयोग किया गया है। बाहरी कम्पाउंड दीवार की मोटाई 3 मी0 तथा इसके अंदर दूसरी समानांतर दीवार की मोटाई डेढ़ मी0 थी। इन दोनों दीवारों के मध्य रिहायशी कमरों (वर्गाकार) का निर्माण किया गया था। इन सामान्य कक्षों की संख्या एक भुजा में 53 थी। कमरों की कतार के सामने बरामदा बनाया गया था जो प्रांगण की ओर खुलता था। कम्पाउंड दीवार के साथ निश्चित अंतराल पर वर्गाकार एवं वृत्ताकार उभार बनाये गए थे जो दीवार को मजबूती प्रदान करने के साथ ही रिहायशी कक्षों का निर्माण करते थे। इन अपेक्षतया बड़े कक्षों में विशिष्ट वर्ग के शिक्षकों अथवा महाविहार के प्रशासनिक अधिकारियों का निवास होने का अनुमान विद्वानों द्वारा लगाया गया है। उत्तरी द्वार के बगल में तिब्बती छात्रों के लिए आवास, उत्तर-पूर्वी कोने में प्रांगण के भीतर ही खाली स्थान में मनौती-स्तूपों का निर्माण, पूर्व-पश्चिम दिशा में विस्तृत प्रशासकीय भवन (जिसमें आतंरिक द्वार तथा अनेक कक्ष सम्मिलित थे) बनाया गया था। प्रांगण के मध्य में दोहरे प्रदक्षिणा-पथ के प्रावधान के साथ ऊँचे चबूतरे पर घनाकार आधार पर केंद्रीय स्तूप का निर्माण किया गया था जिसे केंद्रीय विज्ञान भवन भी कहा जाता था। इस स्तूप के चारों दिशाओं में उभरे-कक्षों का निर्माण कर बुद्ध प्रतिमाओं की स्थापना की गई थी। चबूतरे के अधिष्ठान की बाहरी दीवार पर टेराकोटा टाइल्स के माध्यम से अलंकरण किया गया था। उत्तरी स्तूप-कक्ष के सामने जमींदोज गोलाकार मृण-पात्रों को दान-पात्र के रूप में स्थापित किया गया था। महाविहार कम्पाउंड के बाहर सटे हुए दक्षिण-पश्चिम कोने पर अलग से पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया

था जिसमें ताड़-पत्र पांडुलिपियों को सुरक्षित रखने (भंगुरता से बचाने के वास्ते) के लिए विशेष एक्वा-डक्टस के माध्यम से जल वाष्प की नियंत्रित मात्रा को भवन के अंदर प्रविष्ट कराने की व्यवस्था का प्रावधान किया गया था। उक्त परिसर के अतिरिक्त भी इस विश्वविद्यालय का एक्सटेंडिड कैम्पस दो किलोमीटर के दायरे में विस्तृत बटेश्वर स्थान पहाड़ी तक विस्तृत रहा होगा।

विक्रमशिला (अंतीचक) उत्खनन से प्राप्त प्रस्तर प्रतिमाओं में बौद्ध एवं हिन्दू दोनों धर्मों से सम्बंधित मूर्तियाँ पाल-कालीन कला शैली में निर्मित प्राप्त हुई है। इस संबंध में एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों की संख्या बौद्ध मूर्तियों की तुलना में कहीं अधिक है। एस हटिंगटन महोदया ने पूर्वी भारत में पालकालीन महाविहारों से प्राप्त बौद्ध तथा हिन्दू धर्म से सम्बंधित मूर्तियों का अनुपात 1:3 का बतलाया है।[5] यह तथ्य प्रश्न प्रस्तुत करता है कि मूलतया बौद्ध धार्मिक शिक्षा संस्थान में हिन्दू देवी-देवताओं की इतनी बड़ी संख्या में मूर्तियाँ पाये जाने की क्या तर्कसम्मत व्याख्या संभव हो सकती है। एक व्याख्या के अनुसार पालकालीन बौद्ध महाविहार बड़े पैमाने पर मूर्ति निर्माण कार्यशाला का कार्य भी कर रहे थे। नालंदा में कुर्किहार से प्राप्त मूर्तियों में भी बड़ी संख्या में हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाएं प्राप्त हुई है। यहाँ कार्यरत मास्टर शिल्पकार धीमान एवं बीतपाल के नाम भी उल्लेख्य हैं।[6] पाँचवीं-छठी शताब्दी ईसवी से तत्कालीन प्रचलित सभी संप्रदायों में तंत्र-दर्शन उत्तरोत्तर रूप में समाविष्ट होता गया। बौद्ध धर्म के वज्रयान को तांत्रिक बौद्ध धर्म भी कहा गया है। बौद्ध शिक्षा केंद्र समकालीन धार्मिक दर्शन के नियामक सिद्धांतों के सूत्रधार, व्याख्याकार एवं संरक्षक की भूमिका का भी निर्वहन कर रहे थे। साथ ही, इनमें कुछ संस्थानों ने धर्म-निरपेक्ष एवं लौकिक शिक्षा के उच्च केंद्रों के रूप में भी ख्याति प्राप्त की। अतः ऐसे बौद्ध महाविहार कला-शिल्प के विकास के क्षेत्र में संकुचित दृष्टिकोण न रख वृहत्तर समाज की धार्मिक कर्मकांडीय आवश्यकताओं की आपूर्ति के भी प्रमुख स्रोत के रूप में स्थापित हुए।

विक्रमशिला महाविहार के संबंध में यह तथ्य भी विचारणीय है कि इसके संस्थापक धर्मपाल ने इस संस्थान की स्थापना जिस उद्देश्य से की, उसमें धार्मिक एवं व्यावहारिक राजनीति दोनों का समावेश था। यह शिक्षण संस्थान पाल शासकों द्वारा विशिष्ट दर्जा प्राप्त था। इसके चांसलर (कुलाधिपति) स्वयं पालनरेश होते थे। उपाधि वितरण के समय दीक्षांत समारोहों, विशेष भाषण आयोजनों आदि अवसरों पर स्वयं पाल नरेश द्वारा समारोहों की अध्यक्षता की जाती थी। विक्रमशिला महाविहार के शिक्षक एवं यहाँ शिक्षा-प्राप्त विद्वानों को विदेशों (विशेषकर तिब्बत) में विशेष प्रश्रय प्राप्त था। तिब्बत में बौद्ध धर्म में आमूल सुधारात्मक परिवर्तन के प्रणेता अतिश दीपंकर श्रीज्ञान 1040 ई0 में तिब्बत गए तथा मृत्युपर्यन्त (1055 ई0) बौद्ध धर्म के आमूल रूपांतर में संलग्न रहें। वर्तमान लामा धर्म के संस्थापक लगभग 250 ग्रंथों के रचयिता, विक्रमशिला के उपाध्याय दीपंकर आज भी तिब्बत में 'मंजुश्री' बोधिसत्व के अवतार के रूप में पूजित हैं।[7]

पाल शासकों द्वारा बौद्ध महाविहारों एवं शिक्षण-केंद्रों की स्थापना और इसे राज्याश्रय प्रदान करना, राजनीतिक वैधता प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया राजनीतिक उपाय था।[8] पूर्व मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक वातावरण में शासकों द्वारा अपने शासन की वैधता को स्थापित करने हेतु प्रायः धार्मिक नीति में भूमिदान को विशेष महत्व दिया गया। 837-1199 ई0 के मध्य पाल शासकों की धार्मिक नीतियों के तथ्यात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इन शासकों ने बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के उत्तरोत्तर ह्रास के कारण कालांतर में बौद्ध धर्म के स्थान पर ब्राह्मण धार्मिक संप्रदायों एवं कर्मकांडीय आयोजनों को अपनी धार्मिक नीति का केंद्र बिंदु बनाया। संध्याकर नंदी द्वारा रचित, पाल नरेश रामपाल का जीवन-चरित 'रामचरित' इस शासक को ब्राह्मण धर्म के उत्साही समर्थक के रूप में प्रस्तुत करता है।[9]

विक्रमशिला महाविहार से बौद्ध संप्रदाय सहजयान का भी गहन सम्बन्ध था। जहाँ एक ओर वज्रयान बौद्ध धर्म के प्रकाण्ड विद्वानों ने विक्रमशिला महाविहार को अंतरराष्ट्रीय पटल पर स्थापित किया, वहीं दूसरी ओर वज्रयान में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध जिस सुधारात्मक आंदोलन का प्रणयन सहजयान के रूप में हुआ, उसके कुछ प्रमुख सूत्रधार सिद्धाचार्य विक्रमशिला महाविहार से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जुड़े थे। सिद्धाचार्य नरोपम फुल्लहरी महाविहार से संबद्ध थे। 1025 ई0 से मृत्युपर्यन्त (1039 ई0) तक ये प्रायः विक्रमशिला महाविहार में प्रवास करते थे।[10]

सहजयानी सिद्धाचार्यों ने सैद्धान्तिक आधार पर वज्रयानी तांत्रिक अतिवाद को नकार दिया तथा बौद्ध धर्म को सहज-सुगम और जनसाधारण के अनुकूल बनाने का प्रयास किया। इन्होंने मानव शरीर में समस्त सिद्धियों का वास स्वीकारते हुए कार्य-साधना, चित्त-साधना के माध्यम से परमोच्च अभीष्ट 'सहज सिद्धि' की प्राप्ति को परम लक्ष्य स्थापित किया।[11] वज्रयान, मंत्रयान संबंधी मंत्र-मंडल, धरनी इत्यादि बाह्य साधनाओं की उपेक्षा कर यौगिक एवं मानसिक शक्तियों के विकास पर बल दिया। सिद्धों ने संस्कृत के स्थान पर स्थानीय बोल-चाल की भाषा अपभ्रंश को अपनी शिक्षात्मक काव्य (दोहा शैली) का माध्यम बनाया। रहस्यमयी भाषा

में प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से सिद्धान्त प्रतिपादन, सहज मार्ग, गुरु की महत्ता, काय-रुपी पुण्य तीर्थ, तंत्र-मंत्र आदि का खंडन, धर्म के बाह्य रूप बोधक कर्मकांड का कट्टरता से विरोध इत्यादि सिद्धों की कविता के मुख्य विषय थे। सिद्धों की कविता की अपनी विशिष्टता है। हृदय के भावों की सरिता चाहे रूढ़िबद्ध प्रणालियों में बहती हुई प्रतीत न होती हों, तथापि उस सरिता में वेग है, एक अनुपम सौंदर्य है और अद्‌भुत प्रभावोत्पादकता है।[12] सिद्धों का धर्माडम्बर विरोध सरह-पा की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट परिलक्षित होता है –

"किन्तह दीवे किं तह णेव्जजे। किन्तह किज्जई मन्तह सेव्वे।
किन्तह तित्थ तपोवन जाई। मोक्ख कि लब्भई पाणी न्हा ई।द्य"

पुनष्व, "मन्त ण तंत ण धेअ ण धारण।
सब्ब वि रे बढ़ विब्भम् कारण।द्य"

अन्य चौरासी सिद्धों में वर्णित कान्ह-पा, लुई-पा, शान्ति-पा, अवधूति-पा, डोम्बि-पा तथा विनय-श्री के अतिरिक्त सिद्ध साध क अद्वयवज्र प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूपेण विक्रमशिला महाविहार से संबद्ध थे। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार विक्रमशिला महाविहार से जुड़े सिद्ध कवियों की भाषा पर भागलपुर क्षेत्र की प्रचलित भाषा का बहुत प्रभाव है।[13]

समकालीन राजनीतिक घटनाक्रम में भी विक्रमशिला महाविहार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। यह महाविहार अपनी भौगोलिक स्थिति तथा ख्यातिप्राप्त शिक्षक-विद्वानों की सदैव उपस्थिति के कारण न केवल पाल-शासकों तथा बौद्ध-भिक्षुओं से हटाएं सम्मान पाता रहा वरन उन गैर-बौद्ध शासकों से भी, जो इस क्षेत्र में अपना राजनीतिक प्रभुत्व करना चाहते थे, आदर एवं सम्मान प्राप्त किया। चणक (955-983 ई0) नामक शासक, जो स्वयं बौद्ध नहीं था, विक्रमशिला महाविहार को तुर्कों के आक्रमण से बचाने एवं शांति सुरक्षा स्थापित करने के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। आचार्य दीपंकर ने कालाचूरी शासक कर्ण द्वारा पाल साम्राज्य पर आक्रमण (1039 ई0) के दौरान पाल शासक नयपाल (1039-54 ई0) के मध्य समझौते के सूत्रधार का कार्य किया।[14] विक्रमशिला के एक महास्थविर जेतारि रत्नाकर शान्ति अंग-मगध क्षेत्र में तथा पश्चिमी भारत में तुरुष्क आक्रमणों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हैं, जबकि समकालीन पाल-शासक महेंद्र पाल- I (990-1039 ई0) के अभिलेख इस विषय पर शासक की उदासीनता प्रकट करते हैं। विक्रमशिला महाविहार कैवर्त विद्रोह (पाल शासक महिपाल-I तथा रामपाल के शासन काल में) के समय महत्त्वपूर्ण गतिविधियों का केंद्र रहा। प्रो रामशरण शर्मा के अनुसार कैवर्त शैव मतावलंबी थे, जो बौद्ध पाल शासकों को उनके समुदाय के प्रति नीतियों के चलते आक्रोशित थे। पाल नरेश रामपाल ने कैवर्त विद्रोह के दमन के पश्चात स्थानीय शैव जनसंख्या को संतुष्ट करने के लिए बड़ी संख्या में शिवलियों का निर्माण कराया।[15] संध्याकर नंदी द्वारा विरचित 'रामचरित' पाल शासक रामपाल (1077-1130 ई0) की जीवनी में कैवर्त विद्रोह पर विस्तृत जानकारी मिलती है।[16]

विक्रमशिला महाविहार पाल-गहड़वाल तथा पाल-सेन संघर्ष का भी ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में साक्षी रहा। पाल शासक रामपाल के शासन काल में अंग का स्वतंत्र शासक मथानदेव तथा पूर्वी भागलपुर जिला (वर्तमान पीरपैंती के आस-पास का क्षेत्र) एक अन्य पाल सामंत सहुरा के अधीन था।[17] इन दोनों सामन्तों ने विक्रमशिला महाविहार की आक्रमणकारी गहड़वाल शासक गोविंदचंद्र (1124-1146 ई0) की सेना से रक्षा करने में पाल नरेश रामपाल की सहायता की थी। पाल-सेन संघर्ष के संदर्भ में वल्लाल सेन का सनोखर प्रतिमा अभिलेख भागलपुर के कहलगाँव क्षेत्र को 1165 ई0 में सेन राज्य का विजित क्षेत्र दर्शाता है।18 विक्रमशिला महाविहार के समीप वर्तमान पत्थरघट्टा की पहाड़ी पर पालों ने एक जय स्कन्धावार (सैन्य छावनी) की स्थापना की थी। सेनो के पश्चिम दिशा में गंगा नदी के रास्ते नौसैनिक अभियान का उल्लेख बंगेश्वर विजयसेन (1099-1159 ई0) के देवपाड़ा अभिलेख में मिलता है।

विक्रमशिला महाविहार अंग क्षेत्र में पूर्वमध्यकालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तनों से गहन रूप में जुड़ा था। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इस शिक्षण-केंद्र के दु:खद अंत के विषय में मुख्यत: तुर्क बख्तियार खिलजी के आक्रमण को (1199 ई0) उत्तरदायी माना गया है।[19] इस महाविहार का पतन पाल साम्राज्य के क्षरण एवं विघटन की प्रक्रिया से अनन्तर रूप से जुड़ा था। राज्याश्रय प्रदाता शासकों की शक्ति के क्षय तथा इस शिक्षण-केंद्र सह बौद्ध सेमिनरी की आश्रयदाता शासकों को राजनीतिक वैधता प्रदान करने की क्षमता में ह्रास, बौद्ध धर्म की लोकप्रियता में ह्रास, आदि कई अन्तर्निहित कारणों से इसका पतन अतिश दीपंकर श्रीज्ञान के तिब्बत प्रस्थान (1040 ई0) के समय पाल शासक नयपाल के शासन काल के दौरान आरम्भ हो चुका था।

सन्दर्भ सूची :

1. प्रभु, पी एच – हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1993 (पुनर्मुद्रित), पृ0 104
2. वही, पृ0 107
3. पानुन्जओ, सी- मेजर सोशल इंस्टीट्यूशन्स, न्यूयॉर्क, मैकमिलन,1939, पृ0 242
4. मुखर्जी, राधाकुमुद – एंशियन्ट इंडियन एजुकेशन, पृ0 649; सी पी रामास्वामी अय्यर, (संपा0) दी कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया, रामकृष्ण मिशन, कलकत्ता, 1982 (पुनर्मुद्रित), पृ0 650-54
5. हटिंगटन, सूसन एल – पाल-सेन स्कूल्स ऑफ स्कल्पचर, लीडेन; ब्रिल, 1984, पृ0 179, 204
6. सिंह, लालबाबू – पूर्वोक्त, पृ0 74
7. चट्टोपाध्याय, अलका – पूर्वोक्त, पृ0 7
8. त्यागी, एस के – इन क्वेस्ट ऑफ पोलिटिकल लेजिटीमेशन: पालाज एंड वज्रयान बुद्धिज्म, एसोसिएशन ऑफ हिस्टोरियन्स ऑफ एशिया, 20वीं कॉन्फ्रेंस, JNU] NEW DELHI, 2008 में समर्पित शोधपत्र।
9. शर्मा, रामशरण – अर्ली मिडिवल इंडियन सोसाइटी, ओरिएन्ट लॉगमेन, कलकत्ता, 2001, पृ0 225
10. चट्टोपाध्याय, अलका – पूर्वोक्त, पृ0 140
11. उपाध्याय, नागेन्द्र नाथ – नाथ-सिद्धों और बौद्ध-सिद्धों के संबंध पर पुनर्विचार, पंडित सुरति नारायण त्रिपाठी अभिनन्दन ग्रन्थ, (संपा0) बी एन मिश्रा, वाराणसी, 1965, पृ0 166-172
12. कोछड़, हरिवंश – अपभ्रंश साहित्य, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 2013 वि0, पृ0 304
13. सांकृत्यायन, राहुल – दोहा कोष, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1952, पृ0 37-38
14. चट्टोपाध्याय, अलका – पूर्वोक्त, पृ0 97
15. शर्मा, रामशरण – पूर्वोक्त, पृ0 226
16. वही, पृ0 221
17. सिंह, रमण कुमार – पालकालीन विक्रमशिला महाविहार, हरमन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2005, पृ0 133
18. सिन्हा, बी पी (संपा0) – कंप्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, वॉल्यूम – I, खण्ड – II, पृ0 272-73
19. अल्तेकर, ए एस – प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति, पृ0 100

सत्य तत्व के संवाहक : बाबा जगजीवन दास शोध सारतत्व

कंचन गुप्ता

शोधार्थी, (डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना

जब देश में औरंगजेब के अन्याय और अत्याचार उत्पीड़न से हिन्दू समाज सन्त्रस्त था मठ-मन्दिर उजाड़े जा रहे थे, लोगो को इस्लाम धर्म स्वीकार करने अथवा जजिया टैक्स देने को बाध्य किया जा रहा था(देश की राजनीतिक, धार्मिक तथाा सामाजिक दशा अत्यधिक अनिश्चित तथा विज़ादपूर्ण थी, इस्लामी शासकों की अत्याचारी मनोवृत्ति तथा उच्चवर्ण हिन्दुओं की सामाजिक विभेद और कट्टर वर्ण-व्यवस्था की नीति से क्षुब्ध और हताश जनता त्राहि -त्राहि कर रही थी, ऐसे दुर्घटकाल में सरयू (घाघरा) के तटवर्ती ग्राम सरदहा में चन्देलवंशी क्षत्रिय दम्पत्ति श्री गंगाराम और श्रीमती कमला देवी के पुत्र रूप में माघ शुक्ल सप्तमी, सम्वत् 1727 विक्रमी दिन- मंगलवार को जन्में जनपद बाराबंकी (उ0प्र0) के सन्तकवि जगजीवन दास ने निर्गुण भक्ति धारा को अपनी अध्यात्मपरक रचनाओं से श्री-समृद्धि प्रदान की।

सम्पन्न परिवार में जन्में बालक जगजीवन की शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया गया, परन्तु अध्ययन में इनका मन अधिक समय न लगा। इनका अधिकांश समय साधु-सेवा, सत्संग, एकान्त-ध्यान तथा भगवद्भजन में व्यतीत होने लगा। इन्हें सांसारिक कार्यो से उदासीन देखकर इनके माता-पिता ने इनका विवाह गुणवन्ती रूपवती कन्या मोतिन देवी से कर दिया किन्तु पूर्व जन्मों के संस्कारवश कर्मयोगी की भाँति ये गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए, भगवद्भजन में तल्लीन रहे। साध्वी पतिपरायणा पत्नी मोतिन देवी से इन्हें शोभादास, बलादास, पत्तादास, अनन्तदास और जलालीदास नाम के पांच पुत्र तथा एक कन्या -रत्न की प्राप्ति हुई। ये सभी भगवद्भक्त थें।

युवक जगजीवन ने ईश्वर प्राप्ति के अनुसन्धान तथा उपासना की शास्त्रेचित विधि की जानकारी के लिए प्रख्यात सन्त विश्वेश्वर पुरी (गुरूसड़ी-गोण्डा) से मन्त्र-दीक्षा ली। वे स्वरचित ग्रन्थ 'दोहावली' में कहते हैं-

'विश्वेसर पुरी गुरू गुरसड़ी, तहँ समाधि स्थान।
मते मन्त्र मोहि दीन इन्ह, लागेउ अन्तरध्यान।।'

सन्तकवि जनगजीवन दास ने विदेशी शासकों की संकीर्ण मनोवृति, उच्चवर्गीय हिन्दुओं की सामाजिक भेदमूलक वर्ण-जाति-सम्प्रदायगत भेदभावों में विभक्त जनता को अकर्मण्यता, अन्धविश्वास, हिंसा धर्मान्धता तथा जातीय कट्टरता से हटाकर सौहार्द, सहिष्णुता उदारता, एकात्मता तथा सामाजिक समरसता का पाठ पढ़ाया।

जगजीवन दास अप्रितम व्यक्तित्व के धनी थे। उनमें आदर्श गृहस्थ, भक्त, कवि, संगीतज्ञ, दार्शनिक समाज सुधारक के परम उपयोगी गुण एक साथ विद्यमान थे। वे अपने युग के इतिहासकार भी थे, उनके साहित्य में उस पूरे युग की छाया दिखायी पड़ती है।

इन्होंने धार्मिक- सामाजिक समानता की स्थापना एवं आदर्श मानव धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए सत्यनामी सम्प्रदाय की स्थापना की सामाजिक विज़मता और साम्प्रदायिक कटुता की समाप्ति के लिए समान रूप से ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अहीर, कोरी, कुरमी, धुनिया, हिन्दु- मुसलमान सभी जातियों के हजारों लोगो को अपना शिज़्य बनाकर जाति-वर्ग- सम्प्रदाय विहीन आर्दश भाईचारे की भावना जगाकर विश्व बन्धुत्व का पथ प्रशस्त किया।

इन्होनें सत्यनामी सम्प्रदाय के चार पावा की स्थापना की है-

सत्यनाम सम्प्रदाय संगठन

↓

जगजीवन दास

↓

चार पावा

↓

1.साहेब गोसांई दासकमोलीधाम 2. साहेब दूलनदासधर्मेधाम 3. साहेब देवी दासपूरे देवीदास धाम 4. साहेब खेम दासमधनापुर धाम

साथ ही चौदह गद्दी स्थानों- पर अपने ब्राहाण क्षत्रिय वैश्व शूद्र और मुसलमान शिज़्यों की नियुक्ति कर इन शिष्यों को दीक्षा देने और धर्म प्रचार करने का अधिकार और गृहस्थाश्रम में रहकर सत्यनाम भगवद्भजन का आदेश देकर भक्ति और अनुरक्ति का अद्भुत सन्देश प्रदान किया।

सत्यनामी सम्प्रदाय के प्रर्वतक सन्त जगजीवन दास ने सत्यनामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों उच्चादर्शों के प्रचार-प्रसार के लिए 18 ग्रन्थों की रचना की जिनमें शब्द-सागर, ज्ञान प्रकाश, प्रथम ग्रन्थ, आगम पद्धति, अघ विनास, प्रेम ग्रन्थ, मन पूरना, महाप्रलय आदि प्रमुख है।

सत्यनामी सम्प्रदाय में अघ विनास ग्रन्थ को श्रीमद्भागवत अथवा श्री गुरू ग्रन्थ साहब के समान विशेष स्थान प्राप्त है।

उनकी दृष्टि में जाति -पांति का आडम्बर व्यर्थ है। ऊँच नीच का भेदभाव किसी भी दृष्टि से उचित नही है। हिन्दु मुसलमान, ब्राहम्ण और शूद्र सबका शरीर समान होता है। अस्तु यह कृत्रिम भेदभाव सामाजिक विज़मता के कारण है। सभी उस परमपिता परमात्मा की सन्तान है। अत: सभी समान है इनमें भेदभाव करना उचित नही है। वे कहते हैं-

''हाड़ चाम का पींजरा, तामें कियो विचार।
एकै बरनमां सब अहैं, बाम्हन तुरूक चमार।।

और

'' सबै पियारे राम के कोऊ बड़ा न छोट ''

विश्व का रचनाकार ईश्वर एक है। लोग उसे विभिन्न नामों से पुकारते है तथा भिन्न-भिन्न तरीके से स्मरण करते हैं जो व्यक्ति इनको भिन्न मानता है, वह नरकगामी होता है। उन्होनें कहा-

'' अलह अलख एकै कहै, दूजा नाहीं कोय।
जगजीवन' दूजा जे जानहिं दोजख परिहैं सोय''।।

इस प्रकार प्रकारान्तर से इन्होने इस्लामी शासकों की धार्मिक संकीर्णता के विरुद्ध आवाज मुखर कर जनचेतना जागरण का कार्य किया।

प्रत्येक व्यक्ति को परिश्रम से अर्जित धन का ही उपभोग करना चाहिए। सदैव सदाचार का पालन करने वाला भगवद्भजन करने वाला तथा परिश्रम से अर्जित कमाई का उपभोग करने वाला व्यक्ति ही इस लोक में सच्चा सुख तथा अन्त में स्वर्गिक सुखों को प्राप्त करता है। वे दोहावली में कहते है-

'' हर जोते हरि का भजै, सत्य का दाना खाय।
' जगजीवन साँची कहैं, सो बैकुंठहि जाय।।

इनके कालखण्ड में क्षत्रियों में जातीय अहंकार के कारण कन्यादान अपमानजनक माना जाता था। अस्तु श्रेष्ठ कुल के क्षत्रिय जन्म लेते ही नवजात कन्याओं की हत्या कर दिया करते थे। इस प्रचलित सामाजिक कुरीति को दूर करने का इन्होने अथक प्रयास किया और पुत्र तथा पुत्री को समान मानने का अनुरोध करते हुए कहा-

'पुत्रिहि पुत्रहि सम कै, हित जानेहु मन माँहि।
किहेउ पालना बहु विधि, दुविधा आनेहु नाँहि।।
पुत्री हनत है जानि कै दया धर्म नाहिं आय।
तिरथ बरत कैतो करे, पै परहिं नर्क मँह आय।।
जस पुत्री तस पुत्र है दूनौ एकै मानु।
दया धर्म मुक्ति गति चहै, सो ई मन मँह मानु।।

इन्होने लोगो को संसार-सागर से पार पाने के लिए जटिल पूजा पाठ कर्म-काण्ड तीर्थ- यात्र यज्ञ पुरश्चरण के स्थान पर शुद्ध सात्विक जीवन पद्धति अपनाकर नि:स्वार्थ भाव से कार्य करते हुए मोह-माया से दूर रहकर नाम जप का उपदेश दिया-

भव सागर अगम अपार है, सूझै वार न पार।
जगजीवन नाम जहाज है, तेहि चढ़ि उतरै पार।।

वे अपने परम ग्रन्थ तथा अघ विनास में अनेक स्थानों पर कहते है।

राम अछर दुई अच्छर नाहीं।
करता पुरुष आदि सो आहीं।।
नाम तो आही आदि अनादी।
सुमिरन बिना जन्म है बादी।।
सत्य नाम मन सुमिरहु सत्य शब्द है सार।
जगजीवन दास सतनाम बिनु कोऊ न उतरहि पार।।
सत्य शब्द में कहत हौ यहै अहै तत् सार।
जगजीवन दास दुई अक्षर रामै करौ अधार।।
कहत अहाँ गोहराई कैं, लेह साधु सुनि काम।
राम अच्छर दुई मंत्र है, यहि ते मंत्र न आन।।

सर्वान्तर्यामी, घट -घट व्यापी समस्त जीवधारियों में आत्मा के रूप में विद्यमान निराकर ब्रह्म राम विश्वासपूर्वक नाम जप से साकार होकर साधक का उद्धार करते है। गृहस्थाश्रम में रहकर सत्कर्म सदाचार सद्व्यवहार तथा विश्वास पूर्वक सत्यनाम (राम) का जप करने वाले साधक को मोक्ष अवश्य प्राप्त होता है। उनका दृढ विश्वास था-सत्कर्म करने वाले सत्पुरुष ही सत्य की नाव का सहारा ले संसार सागर से तर जाते है। ये उच्च स्वर में कहते है-राम नाम सत्य है सत्य बोलो मुक्ति है। उनका यह उदघोष वाक्य आज भी लाखों -करोड़ों लोगो को संजीवनी शक्ति प्रदान कर सत्यपथ पर चलने की प्रेरणा देता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार उत्तरी भारत की सन्त परम्परा के इस महान सन्तकवि की पुण्य -स्मृति में कोटवाधाम में प्रत्येक मास की पूर्णिमा तथा जन्म-दिवस और निर्वाण-दिवस पर लगने वाले विशाल मेलों में देश के कोने-कोने ये हजारों-लाखों श्रृद्धालु एकत्र होते है ये पवित्र अघ हरण सरोवर में स्नान कर आराध्यदेव का नाम और एकात्मता के सत्य पथ पर चलने का संकल्प लेते है तथा अपनी मनोकामना की पूर्ति हेतु सदगुरू जगजीवन दास की समाधि-स्थली पर पुष्पांजलि अर्पित करते हुए प्रार्थना करते हैं कि

हे प्रभो। आप सत्य संकल्पी, परम सत्य तथा वर्तमान- भूत- भविष्य तीनों कालो में सत्य हो। आप ही सत्य के उत्पत्तिकर्ता और सत्य में स्थित हो। आप सत्य के भी सत्य तथा सत्य-संयमित और मर्यादित दृष्टि के प्रदान करने वाले हो। सत्य स्वरूप वाले प्रभु हम सब आपके शरणागत हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अघविनाश : बाबा जगजीवन दास
2. दोहावली : बाबा जगजीवन दास
3. भक्त विनोद : बोधेदास

व्यक्ति व समाज की कालात्मक अभिव्यक्ति : साहित्य

डॉ० धीरज कुमार

बाघी, बेगूसराय 851218

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख में साहित्य की रचनाओं में व्यक्ति व समाज ने कैसे साहित्य को प्रभावित किया है इन सारों का समावेशन किया गया है। इस संदर्भ में महामहोपध्याय गोकुल नाथ, बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, मुक्तिबोध व प्रेमचंद जैसे रचनाकारों के रचना के सापेक्ष व्यक्ति समाज व साहित्य के सह संबंध को ढूढने का एक लघु प्रयास है।

'समाज' व्यक्ति-समूह से निर्मित एक विशिष्ट उद्देश्य से बनाई गयी संस्था है। व्यक्ति-समूह के द्वारा निर्मित और विकसित इस संस्था का उद्देश्य व्यक्ति-समाज की रक्षा, उसका उत्थान और हित साधना है। उसका यह उद्देश्य व्यक्तिपरक न होकर आवश्यक रूप से सार्वजनिक होता है। समाज का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने बीच रहने वाले व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक सहयोग का भाव विकसित करे ताकि उनमें एकता, शांति और सौहार्द स्थापित हो सके। समाज में रहने वाले व्यक्तियों से आशा और अपेक्षा होती है कि वे सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए शांतिपूर्वक मिलकर कार्य करें। सदी पूर्व समाज के निर्माण के पीछे इसी तरह की भावना कार्य कर रही थी। तब से लेकर आज तक समाज की अवधारणा में अत्यधिक परिवर्तन आ चुका है। आज विश्व में विशिष्ट समाज, समुदाय या राष्ट्र मात्र ही 'समाज' की संज्ञा से अभिहित नहीं होता, बल्कि वर्तमान परिस्थितियों में संपूर्ण विश्व ही एक समाज का रूप धारण कर चुका है।

समाज एक व्यापक शब्द है। परिवार से लेकर विश्वव्यापी मानव-समूह तक को 'समाज' के विविध रूपों के रूप में जाना जाता है।

व्यक्ति और समाज के जीवन में समय-समय पर जो घटता है, उसी की कलात्मक अभिव्यक्ति साहित्य है। व्यक्ति जीवन के विविध अनुभवों और ज्ञान को आत्मसात् कर उसकी योग्य शब्दावली में प्रस्तुति एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिभा की अपेक्षा रखती है। ऐसी प्रतिभा से युक्त व्यक्ति ही साहित्य का प्रणेता होता है। वह अपने समाज, परिवेश और जीवन के सम्पूर्ण ज्ञान और अनुभव का पहले चेतना के स्तर पर साक्षात्कार करता है और फिर कृति के रूप में उसे कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। उसकी यह समाजचेता अभिव्यक्ति ही साहित्य कहलाती है।

काव्य निर्माण के लिए संस्कृत आचार्यों ने प्रतिभा को महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने काव्य प्रतिभा को भी कवि के द्वारा अपने देशकाल या समाज से अर्जित संस्कार के रूप में परिभाषित किया है। उनका मानना है कि यह प्रतिभा भी अपने देशकाल के आदर्शों से दूर तक प्रभावित होती है। महामहोपाध्याय गोकुलनाथ काव्य प्रतिभा को शास्त्र, काव्य और लोक व्यवहार से बनने वाला दृढ़तर संस्कार मानते हैं।

आधुनिक युग में साहित्य की सामाजिक-दृष्टि, साहित्य की व्यापक भूमि और भूमिका को देखने-परखने की सामाजिक दृष्टि के दो रूप हैं-एक के अंतर्गत साहित्य में समाज के अभिव्यक्ति की खोज होती है जिनके पीछे मान्यता है कि साहित्य में किसी

समाज के काल विशेष की ऐतिहासिक स्थितियों समस्याओं जीवन के अनुभवों और विचारों की व्यंजना होती है। समाज और साहित्य में इस रिश्ते के माध्यम से साहित्य के सामाजिक उद्‌भव और विकास का स्वरूप स्पष्ट होता है और सामाजिक स्थिति में आए हुए बदलाव के साथ ही साहित्य के बदलाव के स्थितियों का भी पता चलता है। साहित्य को देखने-परखने की सामाजिक दृष्टि से दूसरे रूप में साहित्य को एक प्रेरक शक्ति माना जाता है। जिनके अनुसार साहित्य केवल समाज का प्रतिबिम्ब नहीं है, बल्कि वह समाज में परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली शक्ति भी है। साथ ही इसके अंतर्गत पाठक से साहित्य के संबंध पर ध्यान दिया जाता है और पाठक पर साहित्य के प्रभाव के साथ-साथ साहित्य के उत्थान में पाठकीय रुचि की भूमिका का योग होता है। साहित्य की यह सामाजिक दृष्टि आधुनिक हिन्दी साहित्य के साथ भारतेन्दु युग में सामने आती है। साहित्य को देखने-परखने की इस नयी दृष्टि की पहली अभिव्यक्ति बालकृष्ण भट्‌ट के निबंध, 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' में मिलती है। बालकृष्ण भट्‌ट के इस निबंध में 'जनसमूह' का प्रयोग जाति के रूप में हुआ है। उन्होंने लिखा है कि ह्साहित्य को यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जाय जो संगत है।ह्‌ इससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य की इस नयी दृष्टि के विकास के साथ जातीय साहित्य की धारणा भी विकसित हुई। जातीय साहित्य की धारणा साहित्य को जाति के जीवन से जोड़कर देखने पर जोर देती है। बालकृष्ण भट्‌ट ने लिखा है, 'प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलिप्त रहती है वे सब उसके भाव उस समय की साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकती है।' यह एक प्रकार से साहित्य में समाज के प्रतिबिम्बन की खोज का प्रयास है। भट्‌ट जी ने अपनी बात को मजबूजी से रखने के लिए अनेक देशी-विदेशी साहित्य का विवेचन किया है। वैदिक साहित्य को उस समय की सामाजिक स्थितियों से जोड़ते हुए लिखते हैं, ह्उस समय आर्यों की शैशवावस्था थी बालकों के समान जिनका भाव, भोलापन उदारभाव निष्कपट व्यवहार वेद के साहित्य को एक विलक्षण तथा पवित्र माधुर्य प्रदान करते हैं। वेद दिन महापुरुषों के हृदय का विकास था। वे लोग मनु और याज्ञवल्क्य के समान समाज के आभ्यन्तरिक भेद वर्ण-विभेद आदि के झगड़ों में पड़ समाज की उन्नति या अवनति की तरह-तरह की चिन्ता में नहीं पड़े थे, कणादि या कपिल के समान अपने-अपने शास्त्रों के मूलभूत बीज सूत्रों को आगे कर प्राकृतिक पदार्थों के तत्त्व की छानबीन में दिनरात नहीं डूबे रहते थे, न कालिदास भवभूति, श्रीहर्ष आदि कवियों के सम्प्रदाय के अनुसार वे लोग कामिनी के विभ्रम विलास और लावण्य लीना लहरी में गोते मार-मार प्रमत्त हुए थे। ख्रख्र। यही नहीं बल्कि ह्उन्होंने 'रामायण' और 'महाभारत' के काल की सामाजिक स्थितियों की इस दोनों महाकाव्यों में अभिव्यक्ति का भी विवेचन किया है और इन दोनों का अंतर भी स्पष्ट किया है। उन्होंने अपनी बात को और अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए यूरोपीय साहित्य के अनेक लेखकों की भी चर्चा की है। उनकी साहित्य की धारणा व्यापक है इसके अंतर्गत रचनात्मक साहित्य से लेकर दर्शन तथा व्याकरण तक का समावेश है इन सबके विकास में वे सामाजिक विकास की भूमिका देखते हैं। बालकृष्ण भट्‌ट साहित्य के विकास और परिवर्तन को जाति के जीवन और भाषा के विकास और परिवर्तन के साथ सम्बद्ध मानते हैं।

साहित्य की सामाजिक दृष्टि का अधिक सुसंगत विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के चिंतन में मिलता है। उन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में ऐसी धारणा प्रस्तुत की है जो उसमें सामाजिक ऐतिहासिक स्वरूप की ओर संकेत करती है और साहित्य के विकासशील स्वरूप को सामाजिक विकास की परिणति के रूप में सामने लाती है उन्होंने लिखा है, ह्जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक उन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखलाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक सामाजिक साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होता है।ह्‌ आचार्य शुक्ल के लेखन में साहित्य की इस धारणा और समाज से उसके अंतर्संबंध की व्याख्या में बालकृष्ण भट्‌ट के चिंतन का ही विकास है। साहित्य को देखने-परखने की यह सामाजिक दृष्टि समाज से साहित्य के अधिक जटिल संबंध को समाने लाती है। इस धारणा में समाज और साहित्य के बीच जनता की चित्तवृत्ति है। जनता की चित्तवृत्ति अपने समय की सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होती है और वह साहित्य को प्रभावित करती है। साहित्य और समाज का संबंध बिम्ब-प्रतिबिम्ब की तरह नहीं है। उसके बीच में चित्तवृत्ति है जो बहुत कुछ सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार होती है लेकिन उसका कुछ हिस्सा ऐसा भी होता है जो तत्कालीन परिस्थितियों की परम्परा की देन है। साहित्य में जनता के दोनों पक्ष व्यक्त होते हैं, इस तरह साहित्य का विकास समाज और चेतना दोनों के विकास से जुड़ा हुआ है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य शुक्ल ने कई स्थलों पर अपने विवेचना के क्रम में यह दिखलाया है कि, ह्सामाजिक परिस्थितियों से साहित्य की अन्तर्वस्तु की प्रभावित नहीं होती उसका रूप भी प्रभावित होता है।ह उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में राजनीति से कविता के सम्बन्ध में व्याख्या करते हुए लिखा है कि ह्द्विवेदी काल की देश भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में शासन पद्धति के प्रति असंतोष तो व्यंजित होता था पर कर्म में तत्पर कराने वाला, आत्म त्याग कराने वाला, जोश और उत्साह न था, आन्दोलन भी कड़ी याचना के आगे नहीं बढ़े थे, 'तृतीय उत्थान' में आकर परिस्थितियाँ बहुत बदल गयी आंदोलन ने बहुत सक्रिय रूप धारण किया और गाँव-गाँव राजनीति की आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगायी। सरकार से कुछ माँगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही स्वतंत्रता की वेदी पर बलिदान होने को प्रोत्साहित करने लगे। अब जो आन्दोलन चले वे सामान्य जन को साथ लेकर चले इससे उनके भीतर अधिक आवेश और बल का संचार हुआ।ह इस तरह राजनीतिक परिस्थितियों में होने वाला परिवर्तन कविता के भाव के स्तर पर भी परिवर्तन उपस्थित कर देता है।

आचार्य शुक्ल साहित्य और समाज के संबंध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, हहिन्दी साहित्य का विवेचन करने में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि किसी विशेष समय में लोगों में रुचि-विशेष का संचार और पोषण बिहार से और किस प्रकार हुआ।' उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल, भक्तिकाल और रीति-काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास में साहित्यिक अभिरुचि की भूमिका का विवेचन किया है, वे भक्तिकाल की कविता को जनता की प्रवृत्ति का प्रवाह मानते हैं और रीतिकाल में श्रृंगार की प्रधानता का कारण आश्रयदाताओं की रुचि को, आचार्य शुक्ल ने साहित्यिक कृतियों की प्रसिद्धि को हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों के नामकरण का एक महत्त्वपूर्ण आधार बनाया है। उन्होंने ग्रंथों की प्रसिद्धि को जनभावना की अभिव्यक्ति मानते हुए लिखा है, ह्प्रसिद्धि भी किसी काल की लोकप्रवृत्ति की प्रतिध्वनि है।ह इस तरह आचार्य शुक्ल ने साहित्य के विकास में पाठकों की रुचि की भूमिका को स्पष्ट किया है और इनका आलोचना कर्म साहित्य के समाजशास्त्रीय अनुशीलन में सहायक है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में यह स्थापित किया कि ऐसे रचनाकार (कबीर) की चेतना को समझने के लिए उसके समय जाति और परिवेश का उपयोग किया जा सकता है उन्होंने कबीर के व्यक्ति और उनकी कविता को अपने युग की अनिवार्य परिणति के रूप में स्थापित किया। उन्होंने कबीर के बारे में लिखा है, 'वे दरिद्र और दलित थे इसलिए अंत त कवे इस श्रेणी के प्रति की गयी उपेक्षा को भूल न सके उनकी नभ-नभ में इस अकारण दण्ड के विरुद्ध विद्रोह का भाव भरा था।' उनके अनुसार कबीर का विद्रोह उनकी कविता का आक्रामक तेवर, अपनी परिस्थितियों की स्वाभाविक उपज थी। साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि का व्यवस्थित विकास हिन्दी की मार्क्सवादी आलोचना ने किया। इस आलोचना पद्धति में समाज से साहित्य के सम्बन्ध का विवेचन अनेक रूपों में हुआ है। गजानन माधव 'मुक्तिबोध' ने 'कामायनी एक पुनर्विचार' लिखकर हिन्दी में मार्क्सवादी आलोचना के आधार पर एक साहित्यिक कृति का व्यावहारिक विवेचन किया। मुक्तिबोध ने लिखा है, 'साहित्य दो प्रकार का होता है। एक वह जिसमें युग प्रवृत्तियों को ग्रहण नहीं करता। इसका फल यह होता है कि वह साहित्य अपने में उन प्रवृत्तियों का विकृति, असंस्कृति, प्रतिबिम्ब ही लिए रहता है। दूसरा साहित्य इस प्रकार का होता है कि उसमें उन युग प्रवृत्तियों के वास्तविक अभिप्राय गर्भितार्थ तथा उनके निर्माण-कार्य, विनाश-कार्य आशय आदि को जागरूक प्रकार से ग्रहण किया जाता और वर्तमान के पार मानव भविष्य को निहारा जाता है।'

मुक्तिबोध ने साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति और उस अभिव्यक्ति की पुनर्रचना करने वाली दृष्टि के स्वरूप पर भी विचार किया है। उन्होंने लिखा है, ह्साहित्यिक कलाकार अपनी विधायक कल्पना द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। जीवन की यह पुनर्रचना ही कलाकृति बनती है। कला में जीवन की पुनर्रचना होती है। यह सारत: उसे जीवन का प्रतिनिधित्व करती है जो जीवन इस जगत में वस्तुत: जिया और भोगा जाता है-स्वयं द्वारा तथा अन्यों द्वारा यह जीवन जब कल्पना द्वारा पुनर्रचित होता है तब उस पुनर्रचित जीवन में तथा वास्तविक जगत क्षेत्र में जिए और भोगे जाने वाले जीवन में गुणात्मक अंतर उत्पन्न हो जाता है। पुनर्रचित जीवन जिए और भोगे हुए जीवन से सारत: एक होते हुए भी स्वरूपत: भिन्न होता है।'

मुक्तिबोध ने कामायनी को प्रसाद कालीन भारतीय समाज की ऐतिहासिक प्रक्रिया के भीतर रखकर उसमें व्यक्त यथार्थबोध और विचारधारा को खोज निकालने का काम किया है। उन्होंने लिखा है, ''कामायनी की विशाल फैन्टेसी के रूपाकार में सामन्तवाद के

ध्वनि से लेकर नये व्यक्तिवाद के जन्म और पूँजीवाद के रुग्ण बालक बाधाग्रस्त विकास की अवस्थाओं और चिन्ताओं, विशमताओं और विभेद तथा पूँजीवाद की सम्पूर्ण ह्रासग्रस्त अवस्था को प्रतिकात्मक पद्धति से गूँथ दिया है। कामायनी भारतीय औपनिवेशिक बाधाग्रस्त पूँजीवाद की कथा, उसके आक्रामक उग्र अहम ग्रस्त व्यक्तिवाद का प्रतिकात्मक चित्र है।'

कथाकार प्रेमचंद साहित्य और समाज के परस्पर संबंध को निर्धारित करते हुए कहते हैं, ह्साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अ बवह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उन्हें हल करता है। अ बवह रूर्ति या प्रेरणा के लिए अद्भूत आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूँढता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किन्तु उसे उन प्रश्नों से दिलचस्पी है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं। उसकी उत्कृष्टता की वर्त्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है, जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है।ह्र उपर्युक्त कथन साहित्य का समाज पर निर्भरता को सिद्ध करता है। प्रेमचंद ने साहित्य एवं साहित्यकार के कर्म को निर्धारित करते हुए साहित्य का महत्त्व समाज के लिए एवं समाज का साहित्य के लिए सिद्ध किया है-'साहित्य का काम केवल मन-बहलाव का सामान-जुटाना, केवल लोरियाँ गा-गाकर सुनाना, केवल आँसू बहाकर जी हल्का करना ...। वह एक दीवाना था, जिसका गम दूसरे खाते थे; मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो जो हममें गति और बेचैनी पैदा करें।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है समाज और साहित्य में पूर्वापर संबंध होता है। कोई भी रचनाकार या कृतिकार समाज से विमुख होकर कृति की रचना नहीं कर सकता। साहित्य समाज को प्रभावित करता है एवं समाज साहित्य को, तो भला रचनाकार समाज से अप्रभावित कैसे रह सकता है? प्रेमचंद का कथन भी साहित्य और समाज के अंतर्संबंध की पुष्टि करता है-''साहित्य उसकी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो, और जिसमें दिन और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो।ह्र इस तरह रचनाकार सिर्फ समकालीन सामाजिक हलचलों पर ही दृष्टि नहीं रखता बल्कि अपनी कल्पना के सहारे आने वाले समाज की पृष्ठभूमि भी तय करता है। अंत मे प्रेमचंद के शब्दों में कहे तो ह्साहित्य जीवन की आलोचना है।'' ''वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सच्चाई नहीं है, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सच्चाई है।'' प्रत्येक समाज के अपने कुछ मूल्य, सिद्धान्त और आदर्श होते हैं। ये मूल्य और आदर्श किसी युग विशेष की सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं। जब-जब समाज में परिवर्तन होता है, उस परिवर्तन के अनुकूल सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आता है। एक युग के मूल्य अगले युग में भी समान रूप से सामाजिकों के आदर्श बने रहे, ऐसा नहीं होता।

मध्यकालीन भारत का जो मूल्य था वह वर्तमान के भारत के लिए कारगर सिद्ध नहीं हो सकता और ऐसा होता है, कि जब-जब सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होता है तो ठीक उसी के अनुरूप उस समाज के बीच लिखे जाते वाले साहित्यिक मूल्य भी बदले हैं जिससे साहित्य की एक बदलती हुई तस्वीर सामने आती है। ऋग्वेदकालीन समाज पौराणिक युग तक आते-आते विच्छिन्न हो चला था। 'ऋग्वेद' में मनुष्य को अधिक से अधिक सुखी बनाने वाली ऋचाएँ रची गयी। तब मनुष्य समाज को आज जैसे दु:ख, दयनीयता, अन्याय और शोषण से कोई परिचय नहीं था। लेकिन पुराणकाल आते-आते व्यक्ति-समाज में अनेक विसंगतियाँ, प्रवेश कर गयी। और इसीलिए इस काल की साहित्य दृष्टि में भी स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगत होता है। पुराणकालीन रचनाओं मे मनुष्य के सुख को बढ़ाने की इच्छा के विपरीत उसके दु:खों को कम करने की मानवीय दृष्टि अधिक परिलक्षित होती है। इसी प्रकार मध्यकाल में नारी वर्ग पर जो अनेक सीमाएँ थोप दी गयी थी, उनके कार्यक्षेत्र को घर-परिवार की दीवारों तक जिस प्रकार अवरुद्ध कर दिया गया था, वह आज के समाज में उतने भयावह रूप में परिलक्षित नहीं होता। इसीलिए आज के साहित्य में नारी का वह रूप नहीं मिलता जो मध्यकालीन साहित्य का केन्द्रीय विषय था। इस प्रकार हम यह पाते हैं कि जैसे-जैसे सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होता है, वैसे-वैसे साहित्य के मूल्य और उसका रूप भी परिवर्तित होता चलता है। जिस तरह समाज की बदलती हुई परिस्थितियाँ सामाजिक मूल्यों को प्रभावित करती हैं, ठीक उसी प्रकार साहित्यिक मूल्यों और रूपों को भी प्रभावित करती हैं। इस प्रकार

साहित्यिक मूल्य-परिवर्तन की यह प्रक्रिया भी समाजपरक है और समाज से सम्बद्ध होने के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों से भी सम्बद्ध है।

साहित्य के निर्माण, विकस और परिवर्तन में सामाजिक भूमिका अनिवार्यत: योग देती है। साहित्य सृजन को सामाजिक पृष्ठभूमि से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। साहित्य के सारे विषय, सभी प्रकार की प्रवृत्तियाँ, आदर्श मान्यताएँ और वैशिष्ट्य सभी कुछ समाज से ही ग्रहण किये होते हैं। समाज के अभाव में साहित्य का रूप ही विकसित नहीं हो सकता। अत: साहित्य का सार्थक अध्ययन एवं निर्माण (रचना) सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही संभव हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. गोकुलनाथ : काव्यप्रकाश विवरण, टीका, पृष्ठ 95
2. डॉ. सत्येन्द्र (सं.), 1982, निबंध-निलय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 110
3. डॉ. सत्येन्द्र (सं.), 1982, निबंध-निलय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 109
4. डॉ. मैनेजर पाण्डेय, 2006 साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला पृष्ठ 278
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 2007, हिन्दी साहित्य का इतिहास, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 10 (भूमिका)
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 2007, हिन्दी साहित्य का इतिहास, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 350
7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, 2013 हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 92
8. गजानन माधव मुक्तिबोध, 2000, कामायनी : एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 18
9. गजानन माधव मुक्तिबोध, 2000, कामायनी : एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 12
10. प्रेमचंद, 2008, कुछ विचार : प्रेमचंद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 09
11. प्रेमचंद, 2008, कुछ विचार : प्रेमचंद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 06

कार्य संतुष्टि की अवधारणा में फ्रेडरिक हर्जबर्ग का योगदान

डॉ० धनंजय कुमार

एम.ए. (मनोविज्ञान), पी-एच.डी., वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

शोध आलेख का सार

संगठन की सफलता के मूल में कार्मिकों की संतुष्टि अनिवार्य होती है, जो प्रकृति से भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक, दोनों प्रकार की हो सकती है। वस्तुतः संगठन में कार्मिकों की संतुष्टि को कार्य संतुष्टि कहा जा सकता है, जो संगठनात्मक कार्य एवं व्यवहार को प्रभावित करता है। दूसरी ओर सकारात्मक एवं उच्च कार्य संतुष्टि से उत्पादकता में व्यापक वृद्धि होती है तथा संगठन को सफलता प्राप्त होती है। इतना ही नहीं, कार्य में संतुष्टि से कार्मिकों का मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है तथा वस्तु सेवा की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। किसी भी संगठन में निम्न मनोबल के पीछे का एक कारण कार्मिकों के कार्य संतुष्टि का नहीं होना भी है। संगठन में मनोबल, अभिप्रेरणा तथा कार्य समृद्धि के मूल में कार्य संतुष्टि की अवधारणा को उत्तरदायी बताया जा सकता है। संगठन में कार्मिकों की कार्य संतुष्टि के पीछे अभिप्रेरणा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक बताया जाता है। अभिप्रेरणा के परम्परागत तथा आधुनिक सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। परम्परागत अभिप्रेरणा का सिद्धान्त आर्थिक तत्व पर बल देता है, जबकि आधुनिक अभिप्रेरणा के सिद्धान्त में आर्थिक तत्व के अतिरिक्त गैर-आर्थिक तत्त्व अथवा मनोवैज्ञानिक तत्त्व का भी महत्व है। अभिप्रेरणा के आधुनिक सिद्धान्त में अब्राहम मास्लो का आवश्यकता सिद्धान्त तथा फ्रेडरिक हर्जबर्ग का द्विघटक सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। हर्जबर्ग का नाम कार्य संतुष्टि की अवधारणा के सम्बन्ध में अधिक प्रसिद्ध है। हर्जबर्ग एक मनोवैज्ञानिक है, जिन्होंने प्रबन्ध जगत में कार्य संतुष्टि की अवध ारणा का प्रतिपादन किया है। फ्रेडरिक हर्जबर्ग को ही कार्य समृद्धि की अवधारणा का जनक कहा जाता है। संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करने वाले विचारकों में फ्रेडरिक हर्जबर्ग प्रमुख हैं। हर्जबर्ग अमेरिका के प्रमुख व्यवहारवादी वैज्ञानिक है। वे अभिप्रेरण के क्षेत्र में प्रतिपादित अपने व्यापक द्वि-घटकीय सिद्धान्त के लिए बहुत अच्छी तरह से जाने जाते हैं। असल में, हर्जबर्ग का नाम 'हाइजीन' का पर्यायवाची बन चुका है। स्वास्थ्य घटक हर्जबर्ग के अभिप्रेरण सिद्धान्त का एक प्रमुख भाग है। उन्होंने सन् 1959 में 'अभिप्रेरण-स्वास्थ्य सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया था जो उनकी पुस्तक Motivation to Work में प्रकाशित हुआ था। हर्जबर्ग को इस सिद्धान्त से बहुत ख्याति प्राप्त हुई।

मूल शब्द : व्यवहारवाद, कार्य-सन्तुष्टि, मनोबल, आर्थिक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक, अभिप्रेरणा, आरोग्य घटक, उच्च उत्पादकता, सामाजिक विकास, सामूहिक अभिप्रेरणा, सामाजिक सुरक्षा, किटा अवधारणा।

प्रस्तावना

संगठन में कार्य संतुष्टि की अवधारणा महत्वपूर्ण है, जो प्राथमिक तौर पर मनोवैज्ञानिक प्रकृति की होती है। संगठन की सफलता के मूल में कार्य संतुष्टि महत्वपूर्ण है तथा कार्य संतुष्टि के मूल में अभिप्रेरणा की अवधारणा को महत्व प्रदान किया जाता है। अभिप्रेरणा के आधुनिक सिद्धान्त में फ्रेडरिक हर्जबर्ग के विचार को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। संगठन में कार्यरत कर्मचारियों में अभिप्रेरणा के क्षेत्र में योगदान देने वाले विचारकों में फ्रेडरिक हर्जबर्ग का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अभिप्रेरणा की 'द्वि-घटकीय विचारधारा' जिसे 'आरोग्य सिद्धान्त' के नाम से भी जाना जाता है, का प्रतिपादन किया। इस अमेरिकी मनोवैज्ञानिक

ने पिट्सबर्ग के सहयोगियों के साथ मिलकर सन् 1950 में लगभग 200 अभियंताओं तथा लेखाकारों से साक्षात्कार कर निष्कर्ष प्राप्त किए। जिस प्रकार निर्णयन क नाम लेते ही साइमन तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का नाम लेते ही टेलर स्मृति में आते हैं, उसी प्रकार 'आरोग्य सिद्धान्त' अथवा 'द्वि-घटकीय सिद्धान्त' का नाम लेते ही हर्जबर्ग का नाम आता है। 'आरोग्य सिद्धान्त' अथवा 'द्वि-घटकीय सिद्धान्त' का नाम लेते ही हर्जबर्ग का नाम आता है। 'आरोग्य सिद्धान्त' से हर्जबर्ग को काफी ख्याति प्राप्त हुई है। पालहर्सी, ब्लेनकार्ड एवं जॉनसन ने बताया कि "हमने नोट किया है कि जैसे-जैसे लोग विकसित होते जाते हैं, वैसे-वैसे सम्मान और आत्म-विश्लेषण की आवश्यकताएँ अधिक महत्वपूर्ण होती जाती है। इन क्षेत्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने वाले बहुत से अध्ययनों की श्रृंखला में फ्रेडरिक हर्जबर्ग द्वारा निर्देशित अध्ययन श्रृंखला एक महत्वपूर्ण अध्ययन श्रृंखला है। इन अध्ययनों से कार्य अभिप्रेरणा की एक विचारधारा विकसित की गई है, जिसका प्रबन्ध पर व्यापक प्रभाव पड़ा है और मानवीय संसाधनों के प्रभावी उपयोग के लिए उपयोगी है।"[1]

हर्जबर्ग ने अपने अध्ययन में आलोचनात्मक घटना, तकनीकी, साक्षात्कार और अन्तर्वस्तु विश्लेषण की तकनीक पर जोर दिया है। उन्होंने अपने अध्ययन में कारकों को पहचानना (जो कि कार्य के प्रति व्यक्ति की सकारात्मक या नकारात्मक प्रवृत्तियो को जन्म देते हैं) तथा इन प्रवृत्तियों का कार्य-निष्पादन, उत्पादन, मानसिक स्वास्थ्य और विशिष्ट प्रवृत्तियों पर 'प्रभावों' का अध्ययन करना बताया है। स्वयं हर्जबर्ग के मतानुसार, "हम मनुष्य का बेतुका दृष्टिकोण लम्बे समय तक सहन नहीं कर सकते हैं। ऐसा इसलिए नहीं कि यह गलतियों को जन्म देता है, बल्कि इसलिए कि अब हमारे पास एक नए पुनर्जागरण का समय नहीं है जो हमें मानव प्रजाति के लिए लक्ष्य, आशा, आकांक्षा तथा भविष्य प्रदान कर सके।

फ्रेडरिक हर्जबर्ग ने संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को अच्छा बनाए रखने की दिशा में एक प्रयास किया है। हर्जबर्ग ने अपने अध्ययन में बताया है कि कोई-न-कोई एक विशिष्ट घटना ऐसी होती है जो अधिकांश विचारकों के सम्पूर्ण चिन्तन को एक दिशा प्रदान करती है। हर्जबर्ग के द्वि-घटक सिद्धान्त को 'मोटीवेशन-हाइजीन-थ्योरी' भी कहा जता है। इस विचारधारा का प्रतिपादन हर्जबर्ग ने दो सौ से अधिक अभियन्ताओं तथा लेखाकारों से लिए गए साक्षात्कार के निष्कर्षों के आधार पर किया। उन्होंने संगठन में कर्मचारी के व्यवहार को प्रभवित करने वाले समपूर्ण तत्वों की पहचान दो समूहों 'आरोग्य घटक' एवं 'अभिप्रेरक घटक' के रूप में की। हर्जबर्ग के अनुसार प्रबन्धकों का अधिकांश समय संगठन में आरोग्य घटकों को सुधारने में ही लगता था और वे उसे सुधारने के लिए उनका वेतन बढ़ा दिया करते थे, लेकिन इन सबसे कर्मचारी अभिप्रेरित नहीं हो पाते थे। इसीलिए हर्जबर्ग ने अपने सिद्धान्त के माध्यम से प्रबंधकों को अभिप्रेरणा का महत्व बताया। उनके मतानुसार, "एक व्यक्ति के लिए उन कारकों का अध्ययन अधि क खुशी और अधिक आत्म विश्वास की भावना लाता है जो उन्नत मनोबल की ओर ले जाते हैं।"[2] इन्होंने माना कि जब व्यक्ति असंतुष्ट होते हैं तो इस असंतुष्टि का कारण कार्य वातावरण होता है, जिसके अन्तर्गत वे कार्य करते हैं, लेकिन जब व्यक्ति संतुष्टि का अनुभव करते हैं तो यह संतुष्टि केवल कार्य का परिणाम होती है, वातावरण का नहीं। अत: उनका कहना था कि असंतुष्टि को दूर करने के लिए आरोग्य कारकों तथा अभिप्रेरित करने के लिए अभिप्रेरक कारकों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। हर्जबर्ग अपने द्वि-घटक (आरोग्य एवं अभिप्रेरक घटक) सिद्धान्त को निम्नलिखित प्रकार से व्याख्या करते हैं-

हर्जबर्ग के द्वि-घटक (आरोग्य एवं अभिप्रेरक तत्व)

	आरोग्य घटक	अभिप्रेरक घटक
1	कम्पनी की नीति एवं प्रशासन	उपलब्धि
2	पर्यवेक्षण	उपलब्धि की पहचान
3	कार्य स्थिति	चुनौतीपूर्ण स्थिति
4	अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध	उन्नति एवं विकास
5	पद एवं वेतन	उत्तरदायित्व
6	कार्य सुरक्षा	कार्य में रूचि

दूसरे घटक अभिप्रेरक घटक कहलाते हैं जो आरोग्य घटकों के विपरीत अभिप्रेरक व्यक्ति को कार्य के उच्च निष्पादन के लिए अभिप्रेरित करते हैं। अभिप्रेरक घटकों में उपलब्धि, उपलब्धि की पहचान, चुनौतीपूर्ण स्थिति, उन्नति एवं विकास, उत्तरदायित्व तथा काय्र में रूचि सम्मिलित है। आरोग्य घटक को निम्न स्तरीय आवश्यकताएँ माना है। हर्जबर्ग ने यह स्पष्ट किया कि आरोग्य तत्व प्रेरणाएँ है जो कि बाह्य तत्व है तथा जिन्हें वातावरण से प्राप्त किया जाता है, जबकि अभिप्रेरणा आन्तरिक तत्व है, जो स्वयं व्यक्ति में निहित होती है। इस विचारधारा के अनुसार, प्रबन्धकों को केवल अरोग्य कारकों पर ही ध्यान न देकर कार्य को भी उन्नत करके चुनातीपूर्ण एवं रूचिकर बनाया जाना चाहिए जिससे कि वयक्तियों की अभिप्रेरित किया जा सके। स्टीफन पी० रॉबिन्स के अनुसार, "परम्परागत अभिप्रेरण सिद्धान्त यह मानता है कि व्यक्ति असुंतुष्टि से संतुष्टि की ओर जाता है, लेकिन हर्जबर्ग ने इस धारणा को नकार दिया है।"

हर्जबर्ग ने सन् 1966 में अपनी कृति 'Work and The Nature of Man' में द्वि-घटक सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने माना है कि व्यक्ति की दो आवश्यकताएँ होती हैं। वे उन्हें अग्रलिखित दो श्रेणियों में बाँटते हैं:- (i) शारीरिक आवश्यकताएँ (मनुष्य एवं जीव जन्तुओं में एक समान) (ii) मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ (मनुष्य में उसकी तार्किक क्षमता एवं उन्नत मस्तिष्क के कारण)।

(i) शारीरिक आवश्यकताएँ : हर्जबर्ग शारीरिक आवश्यकताओं के संदर्भ में कहते हैं कि ये आवश्यकताएँ ऐसी हैं जो मनुष्य एवं जीव-जन्तुओं में एक समान रूप से पाई जाती है। ये आवश्यकताएँ ऐसी हैं जो मुनष्य एवं जीव-जन्तुओं में एक समान रूप से पाई जाती है। ये आवश्यकताएँ मनुष्य को कष्ट से बचने के लिए अभिप्रेरित करती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति ना होने पर व्यक्ति को असुविधा तथा बेचैनी रहती है तथा यदि ये ही आवश्यकताएँ पूरी हो जाती है तो कष्ट से तो राहत मिलती है किन्तु कोई सकारात्मक आनन्द नहीं मिलता।

(ii) मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ : हर्जबर्ग मनौवैज्ञानिक आवश्यकताओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति से मानव को आनन्द मिलता है। मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली प्रक्रियाओं में प्रगति, एकीकरण, वैयक्तिक विकास तथा रचनात्मक क्रियाएँ आदि सम्मिलित है, अर्थात् ये सकारात्मक सिद्ध होती हैं। हर्जबर्ग दोनों आवश्यकताओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "शारीरिक आवश्यकताएँ तो पशु तथा मानव सभी में होती है, अन्तर तो मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का है। मनुष्य अपने भाग्य का बहुत बड़ा निर्माता है। वर्षों से मुनष्य अनजान बातों से पर्दा उठाता आया है तथा उसने विज्ञान को समृद्ध बनाया है लेकिन आज भी मानव-व्यवहार, आत्मसिद्धि, मानवीय आवश्यकताओं, अभिप्रेरणा तथा इनसे सम्बन्धित अन्य बहुत से पक्षों को समझना बाकी है।" हर्जबर्ग की द्वि-मानव आवश्कताओं को यदि द्वि-घटक सिद्धान्त के संदर्भ में देखें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि "आरोग्य घटक" व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने या न हाने में कार्यशील होते हैं जबकि 'अभिप्रेरक घटक' व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने अथवा न करने के लिए कार्यशील होते हैं।

हर्जबर्ग के अनुसार, कार्य समृद्धता से तात्पर्य कार्य की जिम्मेदारी, क्षेत्र और चुनौती को जान-बूझकर उच्च करना है। इन्हें कार्य समृद्धता का जनक कहा जाता है, क्योंकि हर्जबर्ग ही एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने कार्य तथा कार्मिक की अभिप्रेरणा के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया है। हर्जबर्ग के अनुसार, कार्य समृद्धता वह तकनीक है जो कम्पनी अपने कार्मिकों को कार्य के लिए अभिप्रेरित करने में काम में लेती है, जिससे कार्य संतुष्टि बढ़ सके। कार्य समृद्धता से उन अनेक कठिनाइयों का समाधान सम्भव है जो कि आज प्रबन्धकों के समाने आ रही हैं।" उनके मतानुसार "अधिकांशत: प्रबन्धक कार्मिकों के व्यक्तिगत योगदान को कम करने में तो सफल होते हैं पर उसके वर्तमान कार्य को समृद्ध करने का अवसर प्रदान नहीं कर पाते और वे सामान्यत: कार्यवृद्धि को ही कार्य समृद्धता मानने की भूल कर बैठते हैं।" इस सम्बन्ध में हर्जबर्ग को यह भी कहना है कि "यदि कोई कर्मचारी एक दिन में दस हजार बोल्ट किसी यंत्र में लगाता है और आप उसे बीस हजार बोल्ट कसने का कार्य देते हों तो यह शून्य को शून्य से गुणा करने के समान है, क्योंकि उस कर्मचारी को तो दस हजार बोल्ट कसने से ही कोई अभिप्रेरणा नहीं मिलती थी।

हर्जबर्ग कार्य समृद्धता को कार्य भारण से सम्बन्धित दो तरीकों में विभाजित करते हैं उनका कहना है कि कार्मिकों को वैसे ही कार्य और कार्य करने के अवसर दिए जाएँ जैसे कि पूर्व में दिए गए थे। इसे क्षैतिजक भारण कहा जाता है। इसके विपरीत जिसमें कार्य की ऐसी संरचना निर्मित की जाये अथवा कार्य को इस ढंग से किया जाये कि कार्मिकों को उत्तरदायित्व, सृजनात्मकता, पहल क्षमता, स्वायत्तता तथा संतुष्टि के नवीन अवसर प्राप्त हो जायें उसे लम्बत् कार्य भारण कहते हैं।[4] हर्जबर्ग ने माना है कि लम्बत् कार्य

भारण ही कार्य समृद्धता की श्रेष्ठ पद्धति है।[5] कार्य समृद्धता की प्रक्रिया में, प्रभावी फीडबैक प्रक्रिया को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रभावी फीडबैक कार्मिक और संगठनात्मक लक्ष्यों के व्यवहार के मध्य होता है न कि कार्मिक और पर्यवेक्षक के बीच।[6]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में कर्य संतुष्टि की अवधारणा को स्पष्ट करना है। इस अध्याय का उद्देश्य कार्य संतुष्टि के सन्दर्भ में अभिप्रेरणा तथा फ्रेडरिक हर्जबर्ग के योगदान की समीक्षा भी करना है।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध आलेख का विषय "कार्य संतुष्टि की अवधारणा में फ्रेडरिक हर्जबर्ग का योगदान" है, जिसके अध्ययन हेतु निम्नलिखित साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है। सर्वेश्वर राव ने एक अध्ययन कर हर्जबर्ग के द्विकारक सिद्धान्त की जाँच की है। कार्यतुष्टि तथा कार्य-अतुष्टि को मापने के लिए कार्य-मनोवृत्ति मापनी का क्रियान्वयन कर्मचारियों पर किया गया। परिणाम में देखा गया कि तुष्टि तथा अतुष्टि कर्मचारियों में दो स्वतंत्र भाव होते हैं और अभिप्रेरकों का योगदान संतुष्टि एवं असंतुष्टि दोनों तरह के भावों में समान रूप से होता है। इस तरह, राव के इस अध्ययन से हर्जबर्ग के द्विकारक सिद्धान्त को समर्थन प्रदान किया गया। सरवेश्वर राव एवं गांगुली ने एक अध्ययन बिजली के मसान बनाने वाले प्लांट के कर्मचारियों पर किया। इस अध्ययन में कर्मचारियों की कार्यतुष्टि का संबंध अन्य कारकों के साथ स्थापित किया गया और पाया गया कि कर्मचारियों का व्यावसायिक स्तर का प्रभाव कार्यतुष्टि के निर्धारण में काफी अधिक पड़ता है। अधिक कुशलता प्राप्त कर्मचारियों तथा साधारण कुशलता प्राप्त कर्मचारियों, दोनों की संतुष्टि तथा असंतुष्टि की उत्पत्ति में अभिप्रेरकों तथा स्वास्थ्य-संबंधी कारकों की अहम भूमिका बताई गई। गिरिशबाला महंती ने एक अध्ययन किया जिसमें उन्होंने कॉलेज शिक्षकों तथा दफ्तर में कार्यरत महिला सहायकों की कार्यतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन किया। परिणाम में पाया गया कि कॉलेज शिक्षकों द्वारा अभिप्रेरकों को, अर्थात् आंतरिक कारकों को कार्य संतुष्टि उत्पन्न करने में स्वास्थ्य संबंधी कारकों, अर्थात् बाह्य कारकों का आंतरिक कारकों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण बताया जाता है। सहायकों को कार्य संतुष्टि में बाह्य कारकों का आंतरिक कारकों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण बताया गया। सिंह एवं मिश्रा ने एक अध्ययन वाराणसी के डिजल लोकामोटिव कार्यशाला के 200 औद्योगिक पर्यवेक्षकों पर किया और पाया कि जन पर्यवेक्षकों की अहंशक्ति अधिक होती है, उनमें कार्य संतुष्टि तथा कार्य-आवेष्टन के बीच अधिक मजबूत एवं स्पष्ट संबंध पाया गया तथा जिन पर्यवेक्षकों की अहंशक्ति कम थी, उनमें कार्य संतुष्टि एवं कार्य-आवेष्टन के बीच अस्पष्ट एवं कमजोर संबंध पाया गया। इरा दास ने एक अध्ययन किया, जिसमें उपलब्धि-आवश्यकता तथा संगठन के प्रकार के कार्य संतुष्टि पर पड़नेवाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया। यह अध्ययन निजी क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र में कार्यरत अभियंताओं पर किया गया। परिणाम में देखा गया कि निजी क्षेत्र में कार्यरत अभियंताओं की कार्य संतुष्टि सरकारी क्षेत्र में अधिक उपलब्धि-आवश्यकता वाले कार्यरत अभियंताओं की कार्य संतुष्टि से अधिक श्रेष्ठ थी। दूसरी तरफ, सरकारी क्षेत्र में कार्यरत वैसे अभियंताओं, जिनमें उपलब्धि-आवश्यकता कम थी, उनमें भी कार्य संतुष्टि अधिक देखी गई। निजी क्षेत्र में कार्यरत निम्न उपलब्धि-आवश्यकतावाले अभियंताओं में कार्य संतुष्टि कम थी। के०जी० अग्रवाल ने एक अध्ययन किया, जिसमें गाजियाबाद जिले के प्रखंड विकास मशीनरी के 57 कार्यकताओं में कार्यकर्त्ताओं में कार्य संतुष्टि एवं वचनबद्धता के बीच सहसंबंध ज्ञात किया गया। परिणाम में देखा गया कि प्रखंड विकास मशीनरी के कार्यकताओं में कार्य संतुष्टि एवं वचनबद्धता के बीच उच्च सहसंबंध पाया गया। वंदना शर्मा ने एक अध्ययन किया जिसमें पति-पत्नी द्वारा नौकरी किए जाने का उनकी कार्यतुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया गया और यह पाया गया कि जब पति एवं पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं, तो उनमें कार्य संतुष्टि अधिक होती है; क्योंकि यह पाया गया कि जब पति एवं पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं तो उनमें कार्य संतुष्टि अधिक होती है, क्योंकि दोनों ही अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होते हैं। करूणा सिंह एवं ज्योतिका राठौर ने बैंक के कर्मचारियों पर एक अध्ययन किया और पाया कि वैसे कर्मचारी, जिनका आकांक्षा स्तर अधिक ऊँचा होता है, उनमें विमुखता का भाव अधिक होता है और फिर उनमें कार्य संतुष्टि काफी कम हो जाती है। दो ऐसे भी अध्ययन किए गए हैं, जिनमें ग्रामीण स्तर पर कार्य करने वाले कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन किया गया।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की अध्ययन पद्धति मुख्यत: वस्तु-विश्लेषणात्मक है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक, दार्शनिक तथा वर्णनात्मक भी है। इसमें तुलनात्मक पद्धति का आंशिक प्रयोग भी अपेक्षित है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हर्जबर्ग का समस्त चिन्तन कर्मचारी की 'अभिप्रेरकों' के माध्यम से संगठन में सन्तुष्टि प्रदान करने के क्रम में रहा है। हर्जबर्ग के मतानुसार, कहीं पर भी कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की दिशा में अभी तक ठोस व्यावहारिक प्रयास नहीं हुए हैं।" उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि "अभिप्रेरणा के लिए यह सब पर्याप्त नहीं है क्योंकि अध्ययनों द्वारा यह सभी विधियाँ अल्प-प्रभावी सिद्ध हो चुकी है।" इस बात की पुष्टि करते हुए राबर्ट एन. फोर्ड कहते हैं कि "कार्य को पुन: आकार देने की कला ही कार्य समृद्धता है।" हर्जबर्ग ने इसके अतिरिक्त लम्बवत् कार्यभारण की जाँच सूची भी बतायी है, जिसमें उनके प्रयास तथा संभावित परिणाम वर्णित है। हर्जबर्ग मानते हैं कि कर्मचारी को जब एक बार जिम्मेदारी दे दी जाती है, तो पर्यवेक्षक को यह देखना चाहिए कि यदि इसमें विफल होता है तो उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी? कुछ विफलताओं के लिए तो उसे पहले से ही तैयार रहना चाहिए, उसे जाँच करनी चाहिए कि ऐसा क्यों हुआ? इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षक को कर्मचारी की गलती सुधारने में मदद करनी चाहिए तथा ऐसी कार्य योजना बनाई जानी चाहिए जिससे कि गलतियों का दोहराव ना हो।

सन्दर्भ सूची

1. पॉल हरस्सि, बलेनकार्ड एवं जॉनशन : "मैनेजमेंट ऑफ ऑरगनाइजेशन बिहैव्यिर", प्रेनटिस हॉल, 2001, पृष्ठ-77
2. हर्जबर्ग मौजनेर एवं सनाइडेरमैन : "दि मोटिवेशन टू वर्क", न्यूयार्क, जॉन विलेय एवं सन्स, आईएनसी., 1959
3. पी. स्टीफेन रॉबिन्स : "ऑरगनाइजेशन बिहैव्यिर", प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1999
4. हर्जबर्ग, वी. लक्ष्मीपति : "एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स", स्ट्रीलिंग, 1998, पृष्ठ-209
5. तथैव
6. डॉ. अशोक कुमार, प्रशासनिक चिन्तक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ-178

जलवायु परिवर्तन के परिवेश में 'जल-जीवन-हरियाली' अभियान की प्रासंगिकता

अमिता चन्दन

नेट, शोध छात्रा, भूगोल विभाग, बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर (बिहार)

सार-संक्षेप

जल हमारा अनमोल प्राकृतिक संसाधन है जिसे हर व्यक्ति को जीवित रखने की आवश्यकता है। अगर हम कहते हैं कि 'जल ही जीवन है' तो इसमें कुछ गलत नहीं है। इस प्रकार हम पानी बचाओ, जीवन बचाओ और दुनिया बचाओ पर भी ध्यान दे रहे हैं। जल अंर हरियाली यानी वन पृथ्वी पर जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं यह पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने में पूर्णतया सहायक होते है। पीने योग्य पानी का मतलब है कि मानव उपभोग के लिए पर्याप्त सुरक्षित माना जाने वाला पानी हमारे भविष्य की संभावनाओं के लिए बचाए रखने की जरूरत है। हमारे प्राकृतिक इको-सिस्टम को और अधिक नुकसान से बचाने के लिए और ग्लोबल वार्मिंग की स्थति से पृथ्वी को बचाने के लिए हमें पानी के संरक्षण और उसमें रसायन या कचरा न डालकर इसकी गुणवत्ता बनाए रखने की आवश्यकता है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि वायु के बाद, जल इस ग्रह पर जीवन के अस्तित्व के लिए सबसे महत्वपूर्ण संसाधनों में से एक है। यह अस्तित्व के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि हम पानी के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी की सतह का लगभग 71 प्रतिशत हिस्सा पानी से ढका हुआ है, मूल रूप से महासागरों, समुद्रों, नदियों, ग्लेशियरों आदि के रूप में है, लेकिन हालांकि हमारे पास जल निकायों की इतनी बड़ी मात्रा है, इसमें से केवल 1 प्रतिशत पानी साफ है और मानव उपभोग के लिए उपयुक्त है। 'पृथ्वी पर जीवन बचाने लिए पानी बचाओ', यह नियम अब हम सभी के लिए प्रमुख आवश्यकता बन गया है। हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी पर रहने के लिए पानी उतना ही आवश्यक है, लेकिन सबसे बुरी बात यह है कि दिन पर दिन ताजा पानी कम होता जा रहा है। पानी की कमी के कारण दुनिया में सूखे, विभिन्न बीमारियाँ, पर्यावरण प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग जैसे कई प्राकृतिक संकट पैदा हो रहे हैं, फिर भी दुनिया की आबादी का एक बड़ा हिस्सा पानी की बचत के महत्त्व को नहीं समझ रहा है। प्रकृति का चक्र पूरी तरह से पानी पर निर्भर करता है। जब तक पानी का वाश्पीकरण और हवा में मिश्रण नहीं होगा तब तक पृथ्वी पर बारिश नहीं होगी, जिससे क्षतिग्रस्त फसलें और सभी जगह सूखे की सबसे खराब स्थिति हो सकती है। प्रत्येक जीवित प्राणी चाहे वे मानव हों, पशु हों या पौधों को यहाँ जीवित रहने के लिए पानी की आवश्यकता होती है। न केवल पानी पीने के लिए आवश्यक है बल्कि यह घरेलू उपयोग के लिए भी आवश्यक है जैसे धुलाई, सफाई, खाना बनाना और यहाँ तक कि बिजली संयंत्रा सहित कृषि और औद्योगिक उपयोग के लिए भी यह जरूरी है।

परिचय

पृथ्वी पर उपलब्ध स्वच्छ जल की दुर्लभ मात्रा और पानी पर प्रजातियों की उच्च निर्भरता को देखते हुए, यह हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम जीवन को बचाने के लिए पानी बनाएँ। सभी जीवों को पृथ्वी पर जीवित रहने के लिए वायु के बाद पानी दूसरा सबसे जरूरी पदार्थ है। पीने के रूप में उपयोग किए जाने वाले पानी के अलावा, इसके विभिन्न उपयोग भी हैं, जैसे

कि धुलाई, खाना बनाना, सफाई करना आदि। पानी न केवल चर प्राणियों के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि पेड़-पौधों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। यह कीमती तत्त्व कृषि क्षेत्र के लिए और विभिन्न उद्योगों के लिए भी आवश्यक है। जीवन की शुरूआत ही पानी से है कि सभी प्रमुख सभ्यता दुनिया में नदी के पास होती है। भारत में प्रमुख शहरों को विकसित करने में नदियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि नदी के माध्यम से परिवहन बहुत आसान है। आजकल वैज्ञानिक मंगल ग्रह पर जीवन के बारे में बात कर रहे हैं क्योंकि उन्हें हवा में कुछ जमे हुए पानी के कण और नमी मिली थी। वैज्ञानिक अभी भी जीवन की खोज कर रहे हैं, लेकिन मुख्य बिन्दु यह है कि पानी की उपलब्धता के कारण हम जीवन की कल्पना कर सकते हैं, अन्यथा जीवन की कोई संभावना नहीं हैं, इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि जल ही जीवन है। पृथ्वी के पारिस्थितिक संतुलन के लिए पानी महत्वपूर्ण है यानी समुद्र से पानी वाश्पित होता है और वायु को जल वाश्प के रूप में जोड़ता है और बादल में बदल जाता है। जब बादल समुद्र से सादे क्षेत्र में स्थानांतरित हो जाता है, और ठंडा हो जाता है, तो यह बारिश में परिवर्तित हो जाता है और नदी और भूजल को फिर से भर देता है। जल न केवल मानव जाति के अस्तित्व के लिए बल्कि पृथ्वी पर मौजूद अन्य प्रजातियों के लिए भी आवश्यक है। जैविक दृष्टिकोण से पानी में कई गुण होते हैं जो कार्बनिक यौगिकों को प्रतिक्रिया करने और प्रतिकृति बनाने की अनुमति देते हैं। जीवन के सभी ज्ञात रूप पानी पर अत्यधिक निर्भर हैं।

बिहार सरकार मौसम में आ रहे बदलाव को देखते हुए राज्य में 'जल-जीवन-हरियाली' अभियान की शुरूआत की है। जल-जीवन हरियाली अभियान को नीतिश कुमार के द्वारा गाँधी जयंती के द्वारा 150वीं वर्षगाँठ पर लॉन्च किया गया। राजस्व और भूमि सुधार विभाग ड्रोन या हेलीकॉप्टर के माध्यम से पूरे राज्य में सभी सार्वजनिक जल निकायों जैसे तालाबों, आहर-पइन और कुँओं की पहचान करके उनकी पूरी रिपोर्ट तैयार कर रही है। राज्य सरकार द्वारा शुरू किए गए इस जल-जीवन हरियाली अभियान को लेकर लोगों में जागरूकता पहले से ही शुरू कर दी गई है। इस सरकारी योजना में सरकार पाँच मोर्चों पर एक साथ काम करेगी। जैसे की तालाबों, आहर-पइन की उड़ाही, पौधे लगाना, रेन वाटर हार्वेस्टिंग और जहाँ सूखा पड़ता है वहाँ पर नदियों का पानी पहुँचाना। इसके अलावा आने वाले समय में लोगों को ज्यादा से ज्यादा सोलर लाइट इस्तेमाल करने के लिए भी सरकार प्रोत्साहित कर रही है। यह योजना केन्द्र सरकार द्वारा शुरू किए गए प्रधनमंत्री जल जीवन अभियान की तरह है। जिसके लिए केंद्रीय सरकार ने अलग से जल शक्ति मंत्रालय भी बनाया है, जो पीएम जल जीवन अभियान के लिए वित्त का आवंटन और पूरी देख-रेख करेगा। जल जीवन हरियाली अभियान जो कि बिहार में शुरू किया गया है। इसके लिए सरकार बहुत से जरूरी कार्यों को ध्यान में रख कर काम कर रही हैं जिनमें से ये निम्न है:-

- सबसे पहले राज्य सरकार पूरे प्रदेश में हर जिले की सैटेलाइट मैपिंग करेगी।
- राजस्व और भूमि सुधार विभाग द्वारा पहचान किए गए तालाबों, आहर-पइन और कुओं जिन पर अवैध कब्जा है उनको सरकार अतिक्रमण मुक्त कराएगी।
- सड़कों के किनारे कई लाइन में पेड़ लगाये जाएंगे। बाँधों, सार्वजनिक जगहों और निजी जगहों पर भी वृक्षारोपण किये जाएंगे।
- सोलर लाइट को बढ़ावा देने के लिए सरकारी इमारतों पर सोलर पैनल लगाये जायेंगे और नये सोलर प्लांट भी लगाये जायेंगे।
- पेड़-पौधों को नुकसान पहुँचाने वाले लोगों पर कारवाई की जाएगी।

वर्षा के जल संचयन के लिए जगह-जगह पर वॉटर हार्वेस्टिंग प्लांट बनाये जायेंगे और लोगों को भी इस अभियान का हिस्सा बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। 'पृथ्वी पर जीवन बचाने लिए पानी बचाओ', यह नियम अब हम सभी के लिए प्रमुख आवश्यकता बन गया है। हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी पर रहने के लिए पानी उतना ही आवश्यक है, लेकिन सबसे बुरी बात यह है कि दिन पर दिन ताजा पानी कम होता जा रहा है। पानी की कमी के कारण दुनिया में सूखे, विभिन्न बीमारियों, पर्यावरण प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग जैसे कई प्राकृतिक संकट पैदा हो रहे हैं, फिर भी दुनिया की आबादी का एक बड़ा हिस्सा पानी की बचत के महत्त्व को नहीं समझ रहा है। प्रकृति का चक्र पूरी तरह से पानी पर निर्भर करता है। जब तक पानी का वाष्पीकरण और हवा में मिश्रण नहीं होगा तब तक पृथ्वी पर बारिश नहीं होगी, जिससे क्षतिग्रस्त फसलें और सभी जगह सूखे की सबसे खराब स्थिति हो सकती है। प्रत्येक जीवित प्राणी चाहे वे मानव हों, पशु हों या पौधें को यहाँ जीवित रहने के लिए पानी की आवश्यकता होती

है। न केवल पानी पीने के लिए आवश्यक है बल्कि यह घरेलू उपयोग के लिए भी आवश्यक है जैसे धुलाई, सफाई, खाना बनाना और यहाँ तक कि बिजली संयंत्र सहित कृषि और औद्योगिक उपयोग के लिए भी यह जरूरी है।

बिहार के कई क्षेत्रों में पानी की मात्रा इतनी कम है कि ताजा पानी बिल्कुल नहीं है। उन स्थानों पर लोगों को अपने दैनिक उपयोग के लिए पीने योग्य पानी प्राप्त करने के लिए या तो बहुत अधिक शुल्क देना पड़ता है या सैकड़ों मील दूर जाना पड़ता है। जल सभी जीवित प्राणियों के लिए इतना महत्वपूर्ण घटक है कि अगर हम अभी भी इसे संरक्षित करने का उपाय नहीं खोजते हैं, तो पृथ्वी पर अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। पृथ्वी पर जल एक असीम प्राकृतिक संसाधन है जो पुनः चक्रण द्वारा बनता है, लेकिन ताजा और पीने योग्य पानी हमारी प्रमुख आवश्यकता है जिसे हमारे सुरक्षित स्वस्थ जीवन के लिए बचाया जाना चाहिए। पानी को बचाने के प्रयास के बिना, एक दिन पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं होगा। जल सभी जीवित प्राणियों के लिए पृथ्वी पर अनमोल पदार्थ है। कोई भी बिना पानी के जीना के सोच भी नहीं सकता। यह कहना कठिन है, लेकिन यह तथ्य यह है कि पीने योग्य पानी दिन-प्रतिदिन पूरी दुनिया में कम हो रहा है, यहाँ तक कि पृथ्वी भी 71 प्रतिशत पानी से ढकी हुई है। पानी बचाओ जीवन बचाओ के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए विभिन्न देश विभिन्न कार्यक्रम आयोजित कर रहे हैं।

वर्तमान समय में हर जगह लोग जल संसाधनों की कमी, भूजल स्तर में कमी, दुनिया के कई हिस्सों में सूखे और वर्षा जल संचयन आदि के बारे में बात कर रहे हैं। जल संसाधनों की कमी अब दुनिया के लिए एक वैश्विक समस्या बन गई है और प्रमुख तथ्य है। यह तब हो रहा है जब पृथ्वी लगभग 71 प्रतिशत पानी से ढकी हुई है। वास्तव में उपयोगी पानी केवल 3.5 प्रतिशत उपलब्ध है, अन्य महासागर का पानी है जिसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। ऐसे किसी भी मुद्दे का सामना करना और हल करना सभी के लिए सामाजिक जागरूकता है। पूरी दुनिया अब पानी की कमी के ऐसे वैश्विक मुद्दे को सुलझाने के लिए एकजुट है। संयुक्त राष्ट्र (UN) 22 मार्च को ''विश्व जल दिवस'' के रूप में मनाता है ताकि ताजे पानी के महत्व और ताजे जल संसाधनों के प्रबंधन का समर्थन किया जा सके। भारत सरकार लोगों में सामाजिक जागरूकता पैदा करके जल संसाधनों के संवर्द्धन, संरक्षण और कुशल प्रबंधन के लिए कई कदम उठा रही है।

भारत सरकार और राज्य सरकार ने ''गंगा और अन्य नदियों'' का कायाकल्प करने के लिए ''पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय'' के लिए समर्पित मंत्री जैसे लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए कई विभाग तैयार किए हैं। केन्द्रीय भूजल बोर्ड भूजल विकास के नियमन और वर्षा जल संचयन और कृत्रिम पुनर्भरण को बढ़ावा देने के लिए भी कदम उठा रहा है। सभी को हमारे जीवन में पानी के महत्त्व और पानी की कमी के दौरान आने वाली समस्या को समझना चाहिए। सरकार और एनजीओ पानी के महत्त्व के बारे में जागरूकता फैला रहे हैं और कैसे दैनिक जीवन में पानी की बचत करते हैं। पानी कीमती है और हमें इसे बर्बाद नहीं करना चाहिए। ग्लोबल वार्मिंग की सबसे बड़ी समस्या निःसंदेह पृथ्वी पर एक विशाल जल ह्रास है जो मुख्य रूप से पूरे ग्रह पर पानी के दुरूपयोग के कारण है। आज के समय में ''जल बचाओ पृथ्वी बचाओ'' के सूत्रा को समझने की अत्यधिक आवश्यकता है। शुद्ध पानी सभी आवश्यकताओं का प्रमुख स्रोत है, जो एक स्वस्थ जीवन जीने के तरीके से जीवित होना चाहता है।

जल संरक्षण के उपाय

पृथ्वी पर सूखे की सबसे खराब स्थिति को रोकने के लिए पानी का बेहतर और कम उपयोग हमारी आवश्यकता है। इस शोध-पत्रा में, हम इस बात पर ध्यान केन्द्रित करेंगे कि सौंदर्य हरियाली के वातावरण और पृथ्वी पर सबसे महत्वपूर्ण रूप से जीवन को बचाने के लिए पानी का संरक्षण कैसे किया जाए। अगर हम इसे गंभीरता से सोचते हैं तो यह बिल्कुल भी मुश्किल नहीं है। पहले हमें अपने दैनिक जीवन से शुरूआत करने की जरूरत है। हमारी नई पीढ़ी को ''पृथ्वी बचाओ धरती बचाओ'' के सूत्रा को समझने की अत्यधिक आवश्यकता है। हम इसे अपने जीवन के हर सेकंड में सहेज सकते हैं। एक छोटा कदम पानी की बचत में सैकड़ों गैलन जोड़ सकता है।

पृथ्वी पर जीवन के लिए पानी की प्रमुख आवश्यकता है। जीवन को स्वस्थ और सुरक्षित बनाने के लिए सभी जीवित लोगों को पानी की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, पानी की खपत भी बढ़ रही है और शहरीकरण के कारण पेड़ नियमित रूप से घटते जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रदूषण, विभिन्न क्षेत्रों में सूखा, क्षतिग्रस्त फसल और ग्लोब वार्मिंग की सबसे खराब स्थिति है। इस प्रकार जीवन को बचाने और दुनिया को बचाने के लिए तथा पानी को बचाने

के लिए सभी को आदतें सुधरने का उचित समय है। पानी के प्राकृतिक संसाधन खपत में वृद्धि के कारण बहुत तेजी से घट रहे हैं क्योंकि बढ़ती जनसंख्या पानी की बर्बादी, तेजी से औद्योगिकीकरण और शहरीकरण को बढ़ाती है। भारत और अन्य देशों के कुछ हिस्सों को पानी की भारी कमी का सामना करना पड़ रहा है और दुर्भाग्य से सरकार को उन जगहों के लिए सड़क बनाने के लिये टैंकर या ट्रेन से पानी की व्यवस्था करनी पड़ रही है। भारत में 1951 से 2011 की समयावधि के बीच प्रति व्यक्ति जल उपलब्ध ता 70 प्रतिशत तक कम हो गई है और 2050 तक फिर से 22 प्रतिशत घटने की उम्मीद है। जल हमारे जीवन का आवश्यक घटक है और हमारा अस्तित्त्व इस पर निर्भर है। पानी के बिना जीवन की कल्पना करना संभव नहीं है और अगर हम जीवन को बचाना चाहते हैं तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमें इसे पानी बचाना शुरू करना होगा। उपभोग के अलावा, पानी भी हमारे दैनिक जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है, जिसमें स्नान, खाना पकाने, कपड़े धोने, बागवानी से लेकर कृषि और औद्योगिक उपयोग तक शामिल हैं, पानी हमारी दैनिक दिनचर्या में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दुनिया भर के कई क्षेत्रों में अल्प बारिश और पानी की कमी या भूमिगत जल की कमी के कारण अत्यधिक पानी की कमी का सामना करना पड़ रहा है। कुछ जगहों पर या तो भूजल दूषित है या फिर इसका इस्तेमाल खत्म हो गया है और अब तक बारिश नहीं हुई है। उन कारकों से उन क्षेत्रों में सूखे की स्थिति पैदा हो गई है जिससे पानी की कमी हो रही है।

औद्योगीकरण और शहरीकरण ने उन समस्याओं को भी जोड़ा है जिनके द्वारा जनसंख्या की असाधरण उच्च मांगों को पूरा करने के लिए भूजल का उपयोग किया गया है। डब्ल्यू0एच0ओ0 की रिपोर्ट के अनुसार, नौ लोगों में से 1 और 844 मिलियन के आसपास अभी भी सुरक्षित पानी तक पहुँच नहीं है। आंकड़ों और वर्त्तमान स्थिति को देखते हुए, भविष्य में जल संकट अपरिहार्य लगता है और पानी के संरक्षण के लिए तत्काल कार्य योजना बनाने का आह्वान करता है, ताकि हम आज के साथ-साथ अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी इस अनमोल संसाधन को बचा सकें।

पानी बचाने की पहल

'सेव वॉटर' एक पहल है जो पानी के महत्त्व के बारे में लोगों के बीच जागरूकता फैलाकर और हमारे बेहतर भविष्य के लिए इसे बचाने के लिए पानी संरक्षण को बढ़ावा देने में मदद करता है। जल बचाओ अभियान लोगों को एहसास कराता है कि शुद्ध और ताजे पानी के स्रोत बहुत सीमित हैं और अगर इसका अत्यधिक उपयोग होता है तो संभावना है कि वे निकट भविष्य में आबादी की उच्च मांगों को पूरा करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। हालांकि पृथ्वी का 71 प्रतिशत हिस्सा पानी से ढका हुआ है, लेकिन यह पानी प्रत्यक्ष उपभोग के लिए अयोग्य है, इसलिए पृथ्वी पर जो भी ताज़ा पानी है, उसका एक बूंद बर्बाद किए बिना जिम्मेदार तरीके से उपयोग किया जाना चाहिए। पानी को बचाना और भविष्य के लिए संरक्षण करना प्रत्येक वैश्विक नागरिक की जिम्मेदारी है, क्योंकि जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है लेकिन स्वच्छ जल के स्रोत समान है। यदि हम भविष्य में जीवन को बनाए रखने के लिए ताजे पानी की उचित उपलब्धता बनाना चाहते हैं तो हमें आज से पानी की बचत शुरू करनी होगी और अपनी दैनिक दिनचर्या में पानी की बचत की आदतों को शामिल करना होगा तभी हम पानी का संरक्षण कर पाएंगे और पानी की आपूर्त्ति बनाए रख पाएंगे।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि जल ही जीवन है और जीवन के सभी ज्ञात रूप इस पर पूरी तरह निर्भर हैं। लेकिन अभी भी भारत में लगभग 21 प्रतिशत संक्रामक रोग असुरक्षित पानी के सेवन के कारण होते हैं और यह स्थिति स्वच्छ पेयजल की कमी के कारण पैदा हुई है। भारत में लगभग 163 मिलियन लोगों को अभी भी सुरक्षित पीने के पानी तक पहुंच की कमी है और विभिन्न बीमारियों और महामारियों के लिए एक खुला आमंत्राण दे रही है, जो कभी-कभी घातक हो जाती है।

बढ़ती आबादी और स्वच्छ जल की उच्च माँगों को देखते हुए यह महत्त्वपूर्ण है कि हमें आज से ही पानी का संरक्षण करना शुरू कर देना चाहिए। यदि भारत का प्रत्येक नागरिक एक दिन में कम से कम एक लीटर पानी बचाता है, तो यह निश्चित रूप से बहुत बड़ा बदलाव ला सकता है। आपका एक लीटर बचा हुआ स्वच्छ पानी एक ऐसे बच्चे को जीवन दे सकता है, जिसके पास साफ पानी नहीं है। आपके द्वारा बचाए गए पानी का उपयोग उन क्षेत्रों में किया जा सकता है जो उच्च माँगों के कारण पानी की आपूर्त्ति से वंचित हैं। पानी बचाने के लिए उठाया गया आपका छोटा कदम कई लोगों के जीवन में भारी बदलाव ला सकता है।

निष्कर्ष

पृथ्वी पर सबसे बुद्धिमान प्रजाति के रूप में यह हमारी प्रमुख जिम्मेदारी है कि हमें पानी की बचत करनी चाहिए, ताकि जीवन के सभी प्रकार पृथ्वी पर पनप सकें और पारिस्थितिकी तंत्रा का एक उचित संतुलन बना रहे। इसी तरह हरियाली यानी वन पृथ्वी पर जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं यह पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने में पूर्णतया सहायक होते है। पानी जीवन का आधार है, चाहे वह इंसान हों, जानवर हों, या पेड़-पौधे हों या कोई अन्य जीवित प्रजाति हो, उनका अस्तित्व पूरी तरह से पानी पर निर्भर है। यदि उन्हें पानी से वंचित किया जाता है तो प्रजातियों के लिए छोटी अवधि के लिए भी जीवित रहना मुश्किल हो जाता है।

संदर्भ स्रोत

1. कमला प्रसाद, पर्यावरण अध्ययन, राजेश पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 21.
2. दैनिक जागरण, 5 जनवरी 2020, पृ. 09
3. डॉ0 एन0 एम0 अवस्थी, पर्यावरणीय अध्ययन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2010, पृ. 16.
4. राजीव गर्ग, पर्यावरण और हम, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2009, पृ. 15.
5. सुबोध नारायण, वन, पर्यावरण, प्रदूषण एवं संरक्षण की एक झलक, त्रिमूर्ति प्रिंटर्स, दिल्ली, 2013, पृ. 80.
6. वी0 के0 श्रीवास्तव, पर्यावरण और पारिस्थिकी, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2011, पृ. 56.

समकालीन कहानीकार- उदय प्रकाश

रेखा

आर. एस, शोध छात्रा, नेहरु आर्ट्स आँट सयन्स कॉलिज, कोयंबत्तूर

डॉ० अनिरुद्धन

बी, प्रिन्सिपल, नेहरु आर्ट्स ऑट सयन्य कॉलिज, कोयंबत्तूर

उदयप्रकाश समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य के महान और संवेदनशील रचनाकार हैं। उनकी कहानियों में आम आदमी का जीवन संघर्ष, सुख-दु:ख, मेहनती लोगों का शोषण आदि का जीता जागता चित्रण देख सकते हैं। आज बाजारवादी सभ्यता ने पूरे देश को अपने माया जाल में फँसा दिया है। मोबाइल, इन्टरनेट, लैपटाप, पेनड्राइव आदि इस नयी संस्कृति की देन है। इन सबके बीच में फँसकर हमारे पुराने जीवन- मूल्य नष्ट हो रहे हैं। उदय प्रकाश की कहानियों में उन मूल्यों का खोज हम देख सकते हैं। उदय प्रकाश की अधिकांश कहानियों का विषय समकालीन सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है। उनकी कहानियों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय उत्तराधुनिक भूमण्डलीकरण से उत्पन्न विकल मानसिकता और उनका विरोध है।

मानव समाज समकालीन युग में विभिन्न समस्याओं का सामना कर रहे हैं। वैश्वीकरण, उदारीकरण, उपनिवेशवाद, बाजारवाद आदि के कारण आम जनता का जीना दूभर हो गया है। विकास के नाम पर किसानों की भूमि हडप ली जाती है। आम जनता आज निस्सहाय स्थिति में है। इन्हीं स्थितियों का वर्णन उदय प्रकाश ने अपनी कहानियों में किया है। अपनी संस्कृति और अस्मिता को बनाए रखने में समाज का साथ देना एक सफल साहित्यकार का कर्तव्य है। उदय प्रकाश ने अपने इस कर्तव्य को पूरी तरह निभाया है।

उदय प्रकाश ने आधुनिक युग की जीवन कला, जीवन वस्तु-शिल्प एवं जीवन संवेदना की अभिव्यक्ति के कारण पाठकों के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोडी है। वास्तव में वे युग संचालक कहानीकार हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में उत्तराधुनिक वैश्वीकरण की कोख से उत्पन्न विकृत मानसिकता के विरोध का स्वर गूँजते नजर आते हैं। उनकी कहानियाँ वर्तमान समय का, उत्तराधुनिक कालखंड का, अभिलेख हैं। साथ-साथ उत्तराधुनिक संस्कृति की विकल मनोवृत्तियाँ खतरनाक भूमंडलीकृत विकास, उपभोक्ता संस्कार जन्य उत्तराधुनिक मृत संवेदना, नृशंस पुलीस व्यवस्था, मूल्य भ्रष्ट न्याय व्यवस्था, शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, जातीयता, नारी उत्पीडन के नए- नए विकल्प आदि वर्तमान समय के यथार्थ का स्पंदन है।

उदय प्रकाश का कहानी संकलन ' तिरिछ' में नौ कहानियॉ संकलित हैं। इसमें भूमण्डलीकृत अमानवीयता का चित्रण है। ' तिरिछ' नामक कहानी में आज के भूमण्डलीकृत ग्लोबल व्यवहार मेंपीडा का अनुभव करनेवाले बुजुर्गों का यथार्थ चित्रण हम देख सकते हैं। यह कहानी गॉव के एक नेक बुजुर्ग आदमी की कहानी है- जो सुबह दस बजे से शुरु होकर सायं छ: बजे उस आदमी की मृत्यु पर समाप्त होती है। वह शहर की अदालत में पेशी केलिए आता है और भ्रमित सा कि वह सपने में है। शहर की क्रूरता के कारण मारा जाता है। समकालीन समाज के आगे हत्या का दृश्य भी मनोरंजन का विषय बन गया है। उस बूढ़े पर फेंके गए पत्थर वास्तव में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों पर फेंके गए पत्थर हैं।

उदय प्रकाश की ' पॉलगोमरा का स्कूटर' भूमण्डलीकृत उपभोक्ता संस्कार का, आम आदमी के टूटे हुए अपनापन और विचित्र मनोविकारों का आख्यान है। इसमें दिल्ली का एक छोटा कवि राम गोपाल ने बाजारवादी संस्कृति के लालच में पडकर, उपभोक्ता

संस्कृति के विज्ञापनों में आकृष्ट होकर अपने आपको बदलने का प्रयत्न किया। और अपना नाम पॉलगोमरा स्वीकार किया। इसके कारण उसके जीवन में जो-जो आपतियॉ आयी उसका वर्णन है इस कहानी में। ' वारेन हेस्टिंग्स का सांड' नामक कहानी में हिन्दुस्तान का पहला गवर्णर वारेन हेस्टिंग्स को मुख्य पात्र बनाकर औपनिवेशक प्रक्रिया को साकार किया गया है। इसी प्रकार ' मॉगोसिल' कहानी मनुष्य की विडंबना और विवशता का जीवंत दस्तावेज बन गयी है। इसमें मैंगोसिल रोग ग्रस्त एक बच्चा का वर्णन है। इस बीमारी का लक्षण यह है कि सिर तेजी से बढ़कर मोटा हो जाता है और अल्पायू में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। यहॉ मॉगोसिल एक प्रतीक है। संपन्न वर्ग केलिए मेट्रो रेल, शोपिंग माल, पॉच सितारे होटल आदि का निर्माण गरीब जनता की बस्तियों को बुलडोसर एवं जे.सी.बी. से मिटाकर किया जाता है। मैंगोसिल से रोगी का सिर ही मोटा हो जाता है, उसी प्रकार विकास केवल कुबेरों को प्राप्त होता है। जिस प्रकार मोटे सिर का बोझ बच्चा सह नहीं सकता, उसी प्रकार यह एक तरफका विकास समाज भी सह नहींसकता।उदय प्रकाश की' और अंत में प्रार्थना ' कहानी गंदे और भ्रष्ट राजनैतिक वातावरण और उसकी विसंगतियों पर आध ारित है। 'टेपचु', 'भाई का सत्याग्रह', 'थर्ड डिग्री', 'मठाधीश', 'पीली छतरीवाली लड़की' आदि उनकी सभी कहानियॉ सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक परिप्रेक्ष्य में बदली हुई परिस्थितियों में बदले हुए मनुष्य के जीवन- दर्शन को व्यक्त करती हैं। जनतंत्र में जन की सुरक्षा सरकार का दायित्व है। पुलीस इसके लिए ही बनी है। लेकिन समकालीन युग में स्थिति उलटी हो गयी है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उदय प्रकाश की कहानियॉ उत्तराधुनिक युग का अभिलेख है। उनकी कहानियों में भूमण्लीकरण से उत्पन्न औपनिवेशिक संस्कार की छाया, नृशंस पुलीस व्यवस्था, मूल्य भ्रष्ट न्याय व्यवस्था, भ्रष्ट राजनीति आदि के बीच में पडे हुए आम आदमी की पीडा, नारी उत्पीड़न आदि समकालीन यथार्थ का जीता-जागता चित्रण हुआ है। इसलिए निस्सन्देह हम कह सकते हैं उदय प्रकाश की रचनाएँ कालजयी हैं।

सहायक ग्रंथ सूची

1. शंभु गुप्त, डिबिया में धूप उदयप्रकाश एक अध्ययन,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
2. डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह, नव उपनिवेशवाद और उदय प्रकाश का साहित्य, चिंतन प्रकशन, कानपूर,2016
3. डॉ. पी.जे.शिवकुमार, उदय प्रकाश की कहानियों में समकालीन समाज एवं समस्याएँ, अमन प्रकाशन, कानपूर,2017
4. उदय प्रकाश, तिरिछ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,1990
5. उदय प्रकाश, और अंत में प्रार्थना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994.

थर्डजेंडर कानून के दायरे में (वैधानिक प्रावधान)

वंदना शर्मा

पीएच. डी. शोधार्थी- हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, एम. ए. (स्वर्ण पदक) नेट. जे.आर.एफ, एम. फिल.

किन्नर समुदाय संबंधी वैधानिक प्रावधान

समाज को अपराधों से बचाने और असामाजिक तत्वों से दूर रखने हेतु कुछ नियम बनाये जाते है, जिनसे उनकी रक्षा की जा सके। यदि कोई उनकों नुकसान पहुंचाने की कोशिश करता है तो कानून के माध्यम से उनको बचाया जा सके। इसी प्रकार किन्नर समुदाय के लिए भी सवैधानिक उपबंध निर्धारित किये गये है जिनसे इनके हितों की रक्षा की जा सके। यह उपबंध वैश्विक स्तर पर अलग है और भारत में अलग है। इनके माध्यम से इनको सुरक्षा प्रदान की जाती है।

वैश्विक स्तर पर वैधानिक प्रावधान

किन्नर जीवन के उत्थान हेतु वैश्विक स्तर पर कानूनों का निर्माण किया गया। ताकि इनकी जीवन शैली और स्थिति में कुछ सुधार लाया जाए। समय-समय पर अलग-अलग देशों में इनके उत्थान हेतु कानून बनाये गए जिनके माध्यम से इनकों पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की गई है। ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्ला रूहल्लाह खुमैनी ने आश्वासन दिया कि फिर से सर्जरी कराने पर कोई धार्मिक प्रतिबंध नहीं हैं। आज ईरान सर्जरी के लिए शीर्ष गंतव्य हैं, लेकिन इस प्रवृति में एक अँधेरा है। कोई समलैंगिक ईरानी समलैंगिकता उत्पीड़न से बचने के लिए सर्जरी का चयन करतें हैं लेकिन ईरान अभी तक वैकल्पिक लिंग को मान्यता नहीं देता है।

नेपाल का सर्वोच्च न्यायालय यह कहता है कि सरकार नागरिकता संबंधी दस्तावेजों पर एक तृतीय लिंग श्रेणी (अन्य) को स्थापित करती हैं।

सन् 23 दिस. 2009 को पाकिस्तान हाई कोर्ट ने पहचान पत्र जारी किया जिससे किन्नरों को अलग लिंग के रूप में पहचान मिल सकें।

15 दिसंबर 2011 आस्ट्रेलिया सरकार ने घोषणा कि की पासपोर्ट में तीसरे लिंग का विकल्प दिया जायेगा। इसके लिए मेडीकल रिपोर्ट में इस बात की पुष्टि करनी पड़ेगी।

1.नवंबर 2013 को जर्मनी सरकार ने इनके हितों के लिए कानून बनाए।

फेसबुक पर भी अन्य न्यूट्रोसिस का विकल्प दिया जाता है।

भारतीय सविधान और थर्ड जेंडर

अप्रेल 2014 में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति के.एस. राधाकृष्णन ने नाल्सा बनाम भारत सरकार पर निर्णय देते हुए कहा था कि अब मानसिकता बदलने की आवश्यकता है। सार्वजनिक स्थानों पर किन्नरों का अपमान किया जाना, उनके साथ गाली-गलौच करना गलत है। साथ ही उनके साथ प्रत्येक मानवीय अधिकारों का प्रयोग होना जरूरी है। "1.भारतीय सविधान के तीन भाग तथा भारतीय संसद तथा राज्यों की विधानसभाओं में पारित नियमों के तहत तृतीय लिंगियों की सुरक्षा के लिए उन्हें अधि कार दिए जाने जरूरी है। 2.तृतीय लिंगी लोगों को यह स्वतंत्रता दी जाए, भारत सरकार तथा राज्य सरकार को निर्देशित किया जाता

है कि वे उनके चयन को कानूनी मान्यता दें।" लेकिन क्या इससे उनके जीवन स्तर में कोई बदलाव आ पाया है? उनकी स्थिति तो इसके उपरांत भी वही की वही स्थिर मालूम होती है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में केन्द्रीय कैबिनेट ने 19 जुलाई 2016 को ट्रांसजेंडर पर्सन्स (प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स) बिल 2016 को मंजूरी दे दी। भारत सरकार की कोशिश इस बिल के जरिए एक व्यवस्था लागू करने की है, जिससे किन्नरों को भी सामाजिक जीवन, शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र में आजादी से जीने के अधिकार मिल सके। यह उम्मीद की जा रही है कि यह विधेयक भारतीय किन्नरों के लिए मददगार साबित होगा। हमारे देश में ऐसे लोगों को सामाजिक कलंक के रूप में देखा जाता है। इनके लिए काफी कुछ किए जाने की आवश्यकता है। यह विधेयक भी इसी दिशा में एक प्रयास है। एक ऐतिहासिक कदम के तहत केंद्र सरकार ने लोकसभा में किन्नर (ट्रांसजेंडर) समुदाय के लिए अलग पहचान और इस समुदाय के साथ लगे सभी धब्बों को दूर करने के लिए एक विधेयक पेश किया। केन्द्रीय सामाजिक न्याय मंत्री थावरचंद गहलोत ने यह विधेयक पेश किया। इससे पहले लोकसभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन ने रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य एन. के. प्रेमचंद्रन के इस विधेयक को पेश करने के विरोध को खारिज कर दिया। ट्रांसजेंडर पर्सन बिल 2016 में किन्नरों को शोषण से रक्षा करने के लिए तंत्र स्थापित करने और इस समुदाय के साथ भेदभाव दूर करने और इन्हें खुद अपनी लैंगिक पहचान का अधिकार देने की कोशिश है।

अप्रैल में इस बारे में राज्यसभा में इस बिल को पारित किया था। जिसे अकस्मात द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के सदस्य तिरुची शिवा ने एक निजी सदस्य विधेयक के रूप में उच्च सदन में पेश किया। इस फैसले से किन्नर समुदाय को थोड़ी बहुत दिलासा मिली है। यथा- "चलते-चलते उच्चतम न्यायालय का फैसला तृतीय लिंगी लोगों को दिलासा देने वाला है। उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में किन्नर समाज को नई पहचान दी है। कोर्ट ने आदेश दिया कि हर सरकारी दस्तावेज में महिला और पुरुष के साथ एक कालम थर्ड जेंडर या किन्नर का भी हो। किन्नर समाज इस फैसले से काफी उत्साहित है। इसलिए इन लोगों के लिए अच्छे दिन आ गए है।" इस विधेयक को अब सरकार ने लोकसभा में पेश किया है। इस विधेयक का मकसद किन्नर समुदाय को सशक्त बनाना और भारत में किन्नरों के खिलाफ अपराध करने वाले को कड़ी सजा देने का प्रावधान है। साल 2011 की जनगणना के मुताबिक देश में छह लाख किन्नर है। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में हुई केन्द्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में इस विधेयक को 20 जुलाई को ही स्वीकृति दी जा चुकी थी। आधिकारिक सूत्रों का कहना है कि नए कानून से इस समुदाय को समाज की मुख्य धारा में लाने में मदद मिलेगी।

प्रमुख प्रावधान

ट्रांसजेंडर पर्सन्स बिल 2016 को नौ अध्याओं में विभक्त किया गया है-

प्रथम अध्याय- प्रारम्भिक

द्वितीय- कतिपय कृत्यों का प्रतिषेध

तृतीय- उभयलिंगी व्यक्तियों की पहचान को मान्यता

चतुर्थ-सरकार द्वारा कल्याणकारी उपाय

पंचम- स्थापनाओं और व्यक्ति की बाध्यता

षष्ठम-उभयलिंगी व्यक्ति की शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य

सप्तम-उभयलिंगी व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय परिषद

अष्टम- अपराध और शक्तियाँ

नवम-प्रकीर्ण

आपराधिक प्रावधान

सन् 1857 में अंग्रेजी राज के समय इनको अपराधिक श्रेणी में लाकर और इनके खिलाफ कानून बनाकर इन्हें अपराधी घोषित किया गया। समय और समाज से अलग करने की पूरी कोशिश की गई।

धारा 377- आईपीसी की धारा 377 के अनुसार यदि कोई भी व्यक्ति अप्राकृतिक रूप से किसी के साथ यौन संबंध बनाता है तो उसे उम्रकैद या जुर्माने के साथ दस साल तक कि कैद हो सकती है। यह कानून लगभग 150 वर्ष पुराना है। महारानी विक्टोरिया के काल में नैतिकता का हवाला देकर बनाया गया था। इस धारा पर लंबे समय से विवाद चल रहा था। 2009 में दिल्ली हाईकोर्ट ने इसे अपराध के दायरे से हटाया। 2013 में सुप्रीम कोर्ट ने इसे दोबारा अपराध घोषित किया। 2016 में धारा 377 के खिलाफ 30 से अधिक याचिकाएं दर्ज हो गई। 2018 में सुप्रीम कोर्ट ने नोटिस भेजकर जवाब माँगा। सन् 2017 में सुप्रीम कोर्ट ने सेक्शुअलिटी को निजता का अधिकार माना।

सुप्रीम कोर्ट में इस मामले की सुनवाई तत्कालीन चीफ जस्टिस दीपक मिश्र, एवं अन्य न्यायाधीश रोहिंगटन नरीमन, जस्टिस ए. एम कंविलकर, डीवाय चंद्रचूड, और जस्टिस इंदु मल्होत्रा की पीठ ने की। इस पीठ ने यह जाँच की कि क्या मौलिक अधिकार और जीवन जीने के अधिकार में यौन स्वतंत्रता भी शामिल है। तब सुनवाई के दौरान निम्न प्रकार से निष्कर्ष निकला-

सुनवाई के दौरान

अंतिम तीन दिनों की सुनवाई में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि इस धारा को असंवैधानिक करार देकर समलैंगिकों को आजादी के साथ जीने का अधिकार दिया जायेगा। कोर्ट ने इसके लिए तर्क दिया कि वह जीवनसाथी चुनने के अधिकार को पहले ही स्वीकृति दे चुका है इसलिए यह तर्क यहाँ प्रयोग में लाया जा सकता है। उनका कहना है कि "एलजीबीटी समुदाय इसे कलंक के रूप में देखती है और गे सेक्स की आपराधिकता खत्म होने के बाद वे आजादी से एक साथ रह सकते हैं। यह कलंक इसलिए है क्योंकि उनके साथ अलग तरह से व्यवहार किया जाता है। एक बार समलैंगिकों के बीच संबंध को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया गया तो फिर वे अपने-आपको सशक्त महसूस करेंगे।" इस बात पर कोर्ट के सामने कई याचिकाएं आयी जिनमें कहा गया कि इन पर फैसला लेने से पूर्व जनमत कराया जाए। लेकिन कोर्ट ने इस बात को मानने से इनकार कर दिया और कहा कि बहुसंख्यक नैतिकता की जगह संवैधानिक नैतिकता को तरजीह देगी और आईपीसी के सेक्शन 377 को सविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के आधार पर देखेगी।

समलैंगिक होना कोई बीमारी नहीं है इसलिए इसका इलाज नहीं किया जा सकता। यह यौन रूझान व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है जो उसके जीन पर आधारित होता है। इस समुदाय की शिकायत रहती है कि उन्हें स्कूल से लेकर काम करने की हर जगह काफी भेदभाव का सामना करना पड़ता है। बाल अधिकार संरक्षण आयोग, अपोस्टोलिक चर्च संघ और दो अन्य ईसाई संस्थाओं ने समलैंगिकों के बीच सेक्स को कानूनी अधिकार दिए जाने का विरोध किया है। आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड ने इसका विरोध किया था। विश्व में लगभग 76 देश इसे अपराध की दृष्टि से देखते हैं। धार्मिक ग्रंथों कुरान, बाइबिल, अर्थशास्त्र और मनु स्मृति जैसे धार्मिक ग्रंथ भी समलैंगिकता की निंदा करते है। इसके लिए सामाजिक नैतिकता की स्वीकृति मिलना भी आवश्यक था। केंद्र सरकार ने इस प्रक्रिया की खास जिम्मेदारी नहीं ली और कई बीमारियों का हवाला दिया गया यथा- "अगर समलैंगिकता को इजाजत दी गई तो।प्वै और भ्प्ट जैसी बीमारियां बढ़ने के साथ-साथ लोगों को मेंटल डिसऑर्डर का भी सामना करना पड़ेगा, समलैंगिकता समाज की नैतिकता को चोट पहुंचाएंगी और इससे बड़े स्तर पर स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ सामने आ सकती है। समलैंगिक संबंधों का जैविक उद्देश्य कुछ नहीं है क्योंकि वे बच्चे को जन्म नहीं दे सकते। अगर सभी समलैंगिक होते तो अब तक इंसानों की नस्ल खत्म हो गई होती। ये बहुत खतरनाक है और तमाम सामाजिक विकृतियों से जुडी हुई, यह एक भद्दी और पूरी तरह से गलत चीज है।" इस प्रकार का सरकार का रवैया रहा लेकिन बाद में सरकार ने सब कुछ कोर्ट के फैसले पर छोड़ दिया। कोर्ट ने इस मसले पर 6 सितंबर 2018 को फैसला सुनाते हुए इसे अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया है। लेकिन कई बार किन्नर समुदाय अपने लिए बनाए गये नियमों का विरोध करते हैं क्योंकि उनके लिए कानूनों का निर्माण तो कर दिया गया है लेकिन उन कानूनों की अनुपालना उनके अनुसार उनके हितों में नहीं की जा रही है।

एक साक्षात्कार में पूछे गए प्रश्न पर सलोनी नामक किन्नर पीड़ा इस प्रकार झलकती है- "किन्नर समाज के नियम-कानून और यहाँ का परिवेश हमें दुखी भी करता है। कई बार यहाँ से निकलने की बहुत इच्छा होती है, पर सवाल वही है कि हम यहाँ से निकलने के बाद जाएंगे कहाँ? रहेंगे कहाँ? इसलिए मन मारकर चाहे सुखी हो या दुखी, हम इस परिवेश में रहने के लिए मजबूर हैं।" इस प्रकार से वे नियमों का विरोध करते हैं, जो उनकी दृष्टि में उनके लिए किसी काम नहीं आते। इस प्रकार से न्यायालय के निर्णय को लेकर सहइज समुदाय में पूरी तरह से उत्साह भर गया है, उनको अब लगने लग गया कि उनके अधिकारों की रक्षा

हो पायेगी, वो भी अपनी आजादी के साथ अपने जीवन साथी का चुनाव कर सकते हैं। कहीं भी रह सकते है। इन्हें भी निजता के अधिकार में शामिल कर लिया गया है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि किन्नरों हेतु विविध स्तरों पर कानूनों का निर्माण किया गया है। इन कानूनों के माध्यम से उनके जीवन स्तर में सुधार की आशा की गई है। यह वैधानिक प्रावधान भारतीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर बनाए गये। अलग-अलग देशों में अलग-अलग समय पर किन्नर समुदाय के हितों के लिए कानूनों का निर्माण किया गया। भारत, नेपाल, पाकिस्तान, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी आदि देशों में इनके उत्थान हेतु कानूनों का निर्माण किया गया।

संदर्भ

1. सूरज पालीवाल, सघन अनुभूतियों में रचा-बसा सजग तृतीय लिंगी समाज पहल-107 पृ.सं.224
2. डॉ. राधिका के.एन., तृतीय लिंगी की समस्याएं, युद्धरत आम आदमी, सं.सूरज बडत्या-53 (जन-2018) नई दिल्ली पृ.82
3. www-bbc-com
4. www-bbc-com
5. मोहम्मद हुसैन डायर, 'किन्नरों का सामूहिक साक्षात्कार', सरस्वती, अप्रेल-सित. 2018 सं.महेश भारद्वाज, पृ.सं.23

मिथिला क्षेत्र का उदय, प्रसार तथा परिवेश

डॉ० डिम्पल कुमारी

प्रकृति ने भारत को अपूर्व सुंदरता प्रदान की है। इस देश काी प्रकृतिक संपदा प्रत्येक क्षेत्र में विद्यमान है। इनके हर जरों में सांस्कृतिक धरोहर अवस्थित है। जगह-जगह वनों की हरियाली, पर्वतों की श्रृंखला तथा नदियाँ अपने पावन शीतल जल से इस देश को मनोहर रूप प्रदान किया है। इस भारत भू-खंड में उत्तर-पूरब की ओर आज का बिहार राज्य अवस्थित है। बिहार का प्राचीन काल से महत्व रहा है। ऐतिहासिक काल में बिहार में ही सर्वप्रथम साम्राज्य का उद्‌भव हुआ। पाकृतिक स्वरूप की दृष्टि से बिहार को दो भागों में बाँटा जा सकता है। गंगा नदी ने बिहार को दो भागों में विभक्त कर दिया है:- उत्तरी बिहार तथा दक्षिणी बिहार। उत्तरी बिहार में ही प्राचीन काल विदेह तथा वैशाली स्थित है। यह क्षेत्र मिथिला के अंतर्गत ही आता है। इस क्षेत्र की नदियाँ- गंडक, बूढ़ी गंडक, कमला, कोसी और महानदी उछलती-कूदती, मुस्कुराती नदियाँ अपना सर्वस्व लुटाकर यहाँ की भूमि को अभिशिक्त कर रंग-बिरंगी फसलों का उपहार देती है और ये सभी नदियाँ गंगा में ही गिरती है।

उदय एवं प्रसार :- भारतीय इतिहास में मिथिला क्षेत्र का एक विशिष्ट स्थान है। मिथिला का ज्ञात इतिहास लगभग पाँच हजार (5000) वर्ष पुराना है। पर्वतराज हिमालय के चरणों में तथा माँ गंगा की अंचल छाया में बसा मिथिलांचल एक उपजाउ मैदानी क्षेत्र है। इस क्षेत्र का भूतात्विक रचना काल अति प्राचीन है। उत्तरी गंगा का मैदान, उत्तर में तराई क्षेत्र तक विस्तृत है। इसका निर्माण गंगा और उसकी सहायक घाघरा, गंडक, बूढ़ी गंडक, कोसी, बागमती आदि नदियों के निक्षेप से हुआ। इस मैदान का विस्तार सारण, चंपारण, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, हाजीपुर, मुंगेर, समस्तीपुर, बेगूसराय, खगड़िया, सहरसा, मधेपुरा तथा भागलपुर जिले के गंगा के उत्तर में अवस्थित क्षेत्रों तक है। गंगा और हिमवंत पर्वत के मध्य पंद्रह (15) नदियों द्वारा अभिसिंचित होने वाला यह क्षेत्र ''तीर भुक्ति'' के नाम से भी प्रसिद्ध रहा है।[1] इसकी उत्तरी सीमा पर नागाधिराज हिमालय, दक्षिण में पावती गंगा नदी में कौशिकी तथा पश्चिम में नारायणी, गंडक या सदानीरा है।[2] कवि चंदा झा ने भी मिथिला की सीमा का वर्णन किया है।[3]

मिथिला दलदल और जंगलों से आच्छादित आदि युग का वह भू-खंड है जिससे यज्ञाग्नि प्रज्वलित करके राज विदेध माधव, महर्षि गौतम एवं अन्य आर्यों द्वारा आवास योग्य ठोस बनाया गया। मिथिला एवं विदेह राज्य एवं इनके नामों की उत्पत्ति पौराणिक कथाओं के आधार पर आधारित है। *वृहद विष्णु पुराण* [4] में मिथिला के द्वादस नाम आयें हैं। वे नाम हैं-विदेह, मिथिला, तीरभुक्ति, नेमिकानन, ज्ञानपीठ, स्वर्णलांग, शाम्भवी, जानकी जन्म भूमि, विकलमशा, रामनंदन कटी, विश्वभामिनी तथा नृत्यमंगला। *विष्णुपुराण* से पता चलता है कि राजा ईक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने एक यज्ञ के पौरोहित करने के लिये ऋषि वशिष्ट से निवेदन किया किंतु उन्होंने उन्हें अपने इन्द्र के यज्ञ में व्यस्त रहने की बात बताई। निमि लौट गये। ऋषि वशिष्ट ने समझा कि निमि ने उन्हें पुरोहित के रूप में उन्हें स्वीकार कर लिया तथा इन्द्र के यज्ञ समाप्त होने पर वे निमि के पास पहुँचे। वशिष्ट यहाँ यज्ञ प्रारंभ देखकर क्रोध में उन्हें श्राप दे दिया कि वे शरीर रहित हो जाय। निमि ने भी वशिष्ट को भी येही श्राप दे दिया। दोनो शरीर रहित हो गये पर जब ऋषियों ने देखा कि राजा के नहीं रहने पर राज्य में अराजकता उत्पन्न हो जायेगी तब ऋषियों ने निमि के शरीर का मंथन किया। इस मंथन से जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम 'मिथिल' अथवा ' विदेह' रखा गया। इस बालक की संज्ञा जनक हुई।[5]

एक दूसरी कथा इस संबंध में आया है कि एक बार राजा निमि अपनी पत्नियों के ध्रुतक्रीड़ा में संलग्न थे तथा कुल पुरोहित वशिष्ट के आने पर उनका पूर्ण सत्कार नहीं हो पाया और उन्होंने राजा निमि को अशरीर होने का श्राप दे दिया। ऋषियों ने निमि के शरीर का मंथन कर जिस बालक को जननी के बिना सहयोग के उत्पन्न किया वह 'विदेह' तथा मंथन से उत्पन्न होने के कारण 'मिथिल' कहलाया। मिथिल के नाम पर ही मिथिला नगर का निर्माण हुआ।[6]

भविष्य-पुराण [7] से स्पष्ट होता है कि इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने इस यश भूमि में पदार्पण किया तथा उनके तनय मिथिल ने वहाँ मिथिला नगर का निर्माण कराया। पर भागवत शरण उपाध्याय[8] मानते हैं कि इस क्षेत्र में रहने वाली जनता का ही नाम विदेह था। जिसके कारण इस क्षेत्र और राजा का नाम भी 'विदेह' पड़ा। विदेह में आर्यो का आगमन क्रमिक रूप में हुआ था। *ऐतरेय ब्राह्मण* [9] में आर्य देश के रूप में इस क्षेत्र का वर्णन आया है। पर सर्वप्रथम विदेह जनपद का उल्लेख *शतपथ ब्राह्मण* [10] में आया है। इसके अनुसार विदेह माथव अपनी कुल गुरू पुरोहित गौतम-राहुगण के साथ सरस्वती नदी के तट से अग्नि वैष्वानर का अनुशरण करते हुए सदानीरा नदी के तट पर आये। इसके पूर्व किसी ब्राह्मण ने सदानीरा पार कर इस पार नहीं आये थे। इससे स्पष्ट होता है कि इस भू-भाग पर आर्योत्तर जनजातियों का निवास था। राम और लक्ष्मण गंगा पार करने के बाद जनकपुर जाते समय गंगा के किनारे वैशाली[11] को देखा था। *उदान* [12] से पता चलता है कि वग्गमुदा नदी, वज्जी की पूर्वी सीमा पर स्थित था। वग्गमुदा नदी ही बागमती नदी है जो दरभंगा, समस्तीपुर जिला में अभी भी बहती है। अत: वज्जि के पूर्वी सीमा के उत्तर विदेहों का राज्य था। राहुल सांकृत्यायन मानते हैं कि आधुनिक दिधवारा, जहाँ उस समय गंडक बहती थी वह वज्जियों के पश्चिमी सीमा थी।[13] वज्जि के पश्चिमी सीमा पर गंडक नदी, दक्षिण सीमा पर गंगा नदी तथा पूर्वी सीमा पर बागमती नदी स्थित था तथा इसके उत्तर विदेह था।[14]

मिथिला प्रसार में वह धर्म क्षेत्र जहाँ सीता हरियाली की तरह आई थी, वह नगर जहाँ व्यासपुत्र शुकदेव मिथलेश जनक के द्वारपाल से अध्यात्मिक प्रश्नोत्तर कर रहे थे, वह युग जब एक व्याध, एक क्रोध, भ्रष्ट तपस्वी, मर्म और त्याग का मर्म पढ़ा रहा था, वह दिन जब कौशिकी तट स्थित विभांडक आश्रम से महर्षि ऋष्यशृंग को कौशल नरेश दशरथ सुमंत्र के परमर्श पर पुत्रेष्टि यज्ञ कराने के लिये अयोध्या ले गये थे, वह ऐतिहासिक क्षण, जब दशरथ नंदन श्री राम ने सीता के कर कमलों से वरमाला पहनी थी, वह ग्राम जहाँ एक पनिभरनी जगद्गुरू शंकराचार्य से कुएँ पर संस्कृत में वार्तालाप कर रही थी, वह कुटिया जहाँ पिंजड़े में बैठी शुकांगना '' स्वत: प्रमाणम् परत: प्रमाणम्'' की रट लगा रही थी, जहाँ एक दिन जगद्गुरू एक पंडिताईन से शास्त्रर्थ में हार गये थे, वह झोपड़ी जिसमें बैठकर मिथिला नरेश एक अबोध बालक के मुँह से ''बालोहं जगदानंदन नमेबाल सरस्वती श्लोक सुनकर मंत्रमुग्ध हुए थे, जहाँ श्रीराम के चरण स्पर्श से शीलखंड बनी अहिल्या का उद्धार हुआ था, जहाँ भगवान शंकर ने अपने भक्त के साथ 'उगना' के रूप में वास किया था, वह तपोभूमि जहाँ माँ गंगा अपने पुत्र की गुहार'' उन्नतकाल जनु विसरहू मोहि, सुनकर माँ गंगा अपना प्रवाह मार्ग बदलकर उसको अपने अंको में भर लिया था तथा शताब्दियों से चली आ रही हर शुभ कार्यारंभ के समय 'जय जय भैरवी असुर भवानी' मंगल गीत सुनाई देता है, वह यह पवित्र स्थल मिथिला ही है। सती सीमांतनी सीता नहीं जन्म लेती तो नारीत्व का चरम आदर्श अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।[15]

तपस्विनी उर्मिला, मनस्विनी मांडवी और श्रुतकीर्ति जैसी देवियों से भी हम वंचित रह जाते।[16] केवल यही नहीं विद्यापति का उदय नहीं हुआ होता तो उत्तरी बिहार के जन-जीवन में संगीत का रस नहीं घुल पाता। योगेन्द्र मिश्र[17] मानते हैं कि कराल जनक के बाद भी विदेह राज्य बना रहा और महापद्मनंद ने इस राज्य का अंत किया। *पतंजलि* [18] कहते हैं कि विदेह में गणतंत्र स्थापित हुआ। आधुनिक चंपारण मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, वैशाली, दरभंगा आदि का भू-भाग लिच्छवी सीमा के अंतर्गत छठी शताब्दी ई0 पूर्व में आते थे।

मिथिला-परिवेश :- कहा जाता है कि प्रकृति प्रेम की बेजोड़ मिशाल पेश करता है मिथिलांचल। यहाँ पेड़ों की पूजा तथा पर्यावरण संरक्षण को लेकर मिथिला के लोग आदिकाल से ही काफी जागरूक रहे हैं। पर्यावरण के प्रति यहाँ के लोग में बहुत ही ममत्व है। यहाँ के लोग पेड़-पौधा की पूजा करते हैं। मनुष्य का जीवन प्रकृति पर निर्भर करता है अत: इसके अस्तित्व के लिये प्रकृति का परिवेश अनिवार्य है। मिथिला में कई पर्व-त्योहार ऐसे हैं जिनमें पेड़ों की पूजा की जाती है तथा उसके संरक्षण के लिये कई कार्यक्रम किये जाते हैं।

जूड़-शीतल-इस त्योहार के अवसर पर वृक्ष की जड़ में पानी डाल कर उसे सिंचित किया जाता है और लोग गीत नाद गाते हैं साथ ही अपने शरीर पर मिट्टी का लेप लगाते हैं जिसे आजकल शहरों में ''मडथैरेपी'' के नाम से जाना जाता है।

वटवृक्ष-पूजा-मिथिलांचल की महिलायें वटवृक्ष की पूजा करती हैं। शास्त्रों के अनुसार इस दिन व्रत रखकर वटवृक्ष के नीचे सावित्री, सत्यवान और यमराज की पूजा करने से पति की आयु लंबी होती है और संतान सुख प्राप्त होता है।

मान्यता है कि इसी दिन सावित्री ने यमराज के फंदे से अपने पति सत्यवान के प्राणों की रक्षा की थी। इस दौरान सत्यवान का मृत शरीर वटवृक्ष के नीचे पड़ा था और सावित्री ने रक्षा की जिम्मेवारी इसी वटवृक्ष को दी थी इसलिये वटवृक्ष की पूजा की जाती है।

पीपल-पूजा-मिथिला में पीपल के पेड़ की भी पूजा की जाती है। पीपल के पेड़ की पूजा का वैज्ञानिक आधार भी है। पीपल हमेशा ऑक्सीजन छोड़ता है जो मानव जाति के कल्याण के लिये जरूरी है। पीपल की पूजा के लिये विशेष गीत भी है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में स्वयं कहते हैं-मैं पेड़ों में पीपल हूँ।

तुलसी-पूजा-मिथिला का कोई भी घर ऐसा नहीं है जहाँ तुलसी का पौधा न हो। तुलसी भी दिन-रात ऑक्सीजन ही देती है। साथ ही तुलसी औशधीय पौधा है। कई दवाओं में तुलसी का इस्तेमाल किया जाता है। मिथिला में तुलसी पूजा एवं सेवन दैनिक क्रिया का हिस्सा है। मिथिला के लोग इतने धार्मिक होते हैं कि पेड़-पौधे को काटने की क्रिया को भी पाप-पुण्य से जोड़कर देखते हैं। तुलसी में नित्य पानी डालना एक धार्मिक क्रिया बन गया है। तुलसी पूजन के दौरान महिलायें गीत गाती हैं। प्रत्येक शाम तुलसी के समक्ष दीप जलाकर संध्या वंदन की परंपरा है।

महाकवि विद्यापति जी तेरहवीं सदी में हुए थे। विद्यापति जी गंगा में स्नान के लिये पाँव से चलकर जो प्रवेश करते, उससे उन्हें अपराधबोध होता है और इसे अपवित्र मानते हैं। बांस को वंश से जोड़कर इसकी पूजा की जाती है। वहीं पर फलों के राजा आम के पेड़ की पूजा विवाह-संस्कार के दौरान की जाती है। आँवला का औषधी प्रयोग है। सावन के महिने में मधु श्रावणी एक विवाहोत्तर उत्सव होता है। नव विवाहिता 15 दिनों तथा फूलों और पत्तों का संग्रह करती है। मिथिला में नीम की भी पूजा की जाती है। नीम हवा निरोधक होती है।

मिथिला सदियों से अपनी संस्कृति को लेकर दुनियाँ के समक्ष कौतूहल का विषय बना हुआ है। आज पूरी दुनिया पर पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति हावी हो रही है, ऐसी स्थिति में भी मिथिला अपनी परंपराओं को अक्षुण्ण बनाये हुए है। मिथिला के मीठे बोल के साथ यहाँ की बहुत सी चीजों का आज दुनिया अनुकरण कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गंगा हिमवतोर्मध्ये नदी पंचदशांतरे। तेर भुक्तिरितिख्यातो देशः परम पावनः।। मिथिला माहात्म्य; 14.2 22-24, पृष्ठ 18 रामेश्वर छापाखाना, दरभंगा।
2. लक्ष्मण झा, मिथिला; पृ0 10, मिथिला मंडल, 1954 ई0।
3. गंगा बहथि जनिक दक्षिणदिशि पूर्व कौशिकी धारा। पश्चिम बहथि गंडकी उत्तर हिमवत बल विस्तारा।। कमला त्रियगा अमृता धेमड़ा बागमती कृतसारा। महथ बहथि लक्ष्मण प्रभूति से मिथिला विद्याधारा।। रामायण; चंदा झा, उद्धत, ताराकांत मिश्र, मैथिली लोक-साहित्य का अध्ययन; पृ0 42 जानकी प्रकाशन, पटना, 1985 ई0।
4. वृहद विष्णु पुराण; 2.22.24 प्रका0 गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. श्रीमद्भागवत; नवम् स्कन्ध, अध्याय 13, पृष्ठ 8; प्रका0 गीता प्रेस गोरखपुर, वि0सं0 2018 ई0
6. मत्स्य पुराण; अध्याय 55; आनंद आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना 1907 ई0।
7. भविष्य पुराण (शब्द); कल्पद्रम; भाग 3, पृष्ठ 723
8. विमल चन्द्र पाण्डेय, सांस्कृति इतिहास; प्रका0 सेन्ट्रल पब्लिक हाउस ईलाहाबाद।
9. ऐतरेय ब्राह्मण; सं0 शड्गुरू शिष्यकृत सुखप्रदावृति सहित; पृ0 8.14; त्रावणकोर विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज त्रिवेन्द्रम।
10. शत्पथ ब्राह्मण; अच्युत ग्रंथमाला कार्यालय, पृ0 1.4.7.10-19 वाराणसी, संवत् 1997 ई0
11. रामायण; बालकांड; 45.10 गीता प्रेस, गोरखपुर।
12. उदान; III.3, अनु0 उत्तम भिक्षु; महाबोधि सभा, सारनाथ बनारस, 1937 ई0।
13. राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या; पृ0 407; प्रका0 शिव प्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, काशी वि0सं0 1988 ई0
14. एम0एस0 पाण्डेय, पूर्वोधृत पुस्तक; पृ0 90; पुनश्च।
15. इन्द्रनारायण झा; मिथिला दिग्दर्शन; पृ0 97-98, प्र0 विद्यापति परिषद, रामगढ़, 1984 ई0
16. मिथिला मिहिर मिथिलांक; सम्पादकीय, पृ0 190-91; 1983 ई0
17. योगेन्द्र मिश्र; पूवोधृत पुस्तक; पृ0 117; पुनश्च
18. महाभाष्य; पतंजली संपादक; ए0 कीलहार्न, बम्बई; IV 1968 ई0

राधिकारमण प्रसाद सिंह के नाटकों में सामाजिक चेतना

डॉ० ज्योति कुमारी

बाघा, बेगूसराय, बिहार 851218

समाज की चेतना व्यक्तित्व, व्यक्तियों एवं उसके विविध क्रिया-कलापों, अभिव्यंजना-प्रणालियों में कब से प्रारंभ हुई और क्यों प्रारंभ हुई, यह एक मौलिक प्रष्ठन है, जिसका समाधान सामाजिक चेतना के उद्‌भावक कारणों पर विचार कर पता चल सकता है कि सामाजिक चेतना भावानुप्रेरित है अथवा बुद्धिजन्य। इसकी अनिवार्यता क्यों है?

यह मानी हुई बात है कि व्यक्ति और समाज में व्यक्ति पहले है समाज बाद में। मानव-सभ्यता के विकास का इतिहास व्यक्ति और समाज के परस्परावलंबित जीवन का इतिहास तो है, लेकिन इसमें व्यक्ति की भूमिका पृथक् रूप से सदा महत्त्वपूर्ण होती आई है। भारतीय सभ्यता-युग के प्रारंभ की जो चर्चाएँ वेदादि वा्मय में मिलती हैं, उनमें सामाजिक जीवन के महत्त्व को लक्ष्य कर ही समाज के साथ व्यक्ति के निकट संबंध को बनाये रखने का प्रयास किया गया है। वैदिक आर्यों के जीवन की मौलिकता की चर्चा करते हुए व्यक्ति, परिवार और समाज के संबंध का उल्लेख किया गया है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक आर्यों में समाज की चेतना थी और इस चेतना के मूल में समाज के प्रति उनकी सद्‌भावना ही ज्यादा थी। आर्य जब भी 'सहनौ भुनक्तु' में 'सह' की बात करते हैं तब उनका हृदय बहुतों के प्रति सद्‌भावना से भर जाता है। सामाजिक जीवन की अच्छी स्थिति के लिए यह सद्‌भावना बहुत उपयोगी है। वैदिक-साहित्य में जिस समाज की चर्चा मिलती है उसे व्यक्ति-परिवार के बाद की संस्था माना गया है।[1] इससे यह बात साफ होती है कि समाज व्यक्ति और परिवार से अलग कोई भिन्न संस्था नहीं है, क्योंकि अनेक आचार-व्यवहार वाले परिवारों के गठन से भी समाज की रचना होती है और परिवार के विस्तार से समाज बन जाता है।[2]

आज हमारे सामने 'समाज' शब्द स्वरूप और अर्थ-दोनों दृष्टियों से बहुत व्यापक बनकर उपस्थित है। लेकिन यह समाज वस्तुतः पहले कोई-न-कोई छोटा-बड़ा परिवार ही रहा होगा। इसीलिए एक व्यक्ति के परिवार और परिवारों के प्रति सद्‌भावनानुप्रेरित चेतना का जन्म होना स्वाभाविक है।

वैदिक आर्यों की सामाजिक चेतना के मूल में उनका निजत्व-बोध सर्वत्र वर्तमान है। वे अपनी प्रजावृद्धि के लिए, उनकी बहुविध सुख-शांति के लिए अनेक तरह से इन्द्रादि देवताओं से प्रार्थना करते हैं। वैदिक आर्यों की सामाजिक चेतना का आधार भौतिक और पारमार्थिक दोनों है।

भौतिक दृष्टि के अन्तर्गत समाज के स्वस्थ गठन और विकास के लिए उसकी चिन्ता करना, उसके बारे में अच्छे ढंग से सोचना और कार्य करना आता है और पारमार्थिक दृष्टि के अन्तर्गत समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आत्मवत् मानकर उसकी मंगल-कामना का विधान किया जाता है।[3] इन दोनों दृष्टिकोणों के निर्वाह का साक्ष्य प्राचीन वैदिक साहित्य प्रस्तुत करता है।

वस्तुतः प्राचीनकाल में समाज का विकास 'वर्णों' द्वारा और व्यक्ति का विकास आश्रमों द्वारा हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र-गुण और कर्मों के आधार पर ही बने और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम से भी व्यक्ति के विकास-क्रम की सूचना मिलती है।

सभी वर्गों और सभी आश्रमों का समाज के प्रति कर्तव्य है जिसके निर्वाह में ही उसकी सार्थकता है। इस बात को आर्यों ने समझ लिया था। भौतिक और आध्यात्मिक-दोनों दृष्टियों से हमारा प्राचीन भारतीय जीवन सामाजिक चेतना-सम्पन्न था, इस बात में

दो मत नहीं हो सकते। महाभारत के 'कामये दु:खसप्तानां प्राणिणां आर्तनाशनम्' में 'प्राणिणां' शब्द समुदाय वाचक होने के कारण सामाजिक है और इसमें भी पारमार्थिक दृष्टि की चेतना अभिव्यक्त है। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन'-'यहाँ नानात्व है ही नहीं' है। प्राणिमात्र में एक ही अव्यक्त सत्ता व्यक्त दृष्टि से परिव्याप्त है। यह दृष्टि आध्यात्मिक है जो समाज के अणु-अणु के प्रति एक उदार दृष्टि को जन्म देती है। महोपनिषद् का संदेश नि:स्वार्थ समाजहित साधना का ही है-'सबको अपने स्नेह के अंक में समेट लो, सबके लिए जीवित रहो और आवश्यकता पड़े तो सबके हितार्थ शरीर को मौत की शीतल गोद में डाल लो, किन्तु सदा अपने को निर्लिप्त रखो-

भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज त्वं भेदवासनाम्।
भावाभावौ तत्स्त्यवत्या निर्विकल्प: सुखीभव।।[4]

ऋग्वेद में सामाजिक चेतना का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है। उसके एक मंत्र में कहा गया है-'एक-दूसरे की रक्षा और सहायता करना मनुष्य (आर्य) का कर्तव्य है। बिना सबको समेटकर चले जीवन का दुर्गम पथ पार नहीं किया जा सकता। समानता के स्तर पर सबको प्रतिष्ठित करने के अभिप्राय से कहा गया है-

''समानी व अकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।।[5]

'तुम्हारे अभिप्रायों में, मन में, भावनाओं में एकता होनी चाहिए जिससे तुम्हारा सामुदायिक विकास हो।' आर्यों के विकसित जीवन और उच्च जीवनादर्श का कारण उनकी यही सामाजिक चेतना थी। उनका जीवन अत्यन्त सादा किन्तु उच्चतापूर्ण था। जीवन-क्रम में कहीं भी विषमता नहीं थी। आर्यों ने इस रहस्य को अच्छी तरह समझ लिया था कि मानवीय सद्गुण ही अपने विकास की अन्तिम कोटि में पहुँच कर मानव को देवत्व प्रदान करते हैं। इसी कारण आर्यों के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक जीवन में समता, अभेद-भावना से युक्त मैत्री, एक-दूसरे के हिताहित की चिन्ता और साथ रहकर विकास करने की कामना की प्रधानता दिखाई पड़ती है।[6]

इससे यह साफ पता चलता है कि भारतीय जीवन का प्रारम्भिक काल (जो आर्यों का जीवन-काल था) ऐसे समाज में व्यतीत हुआ जो सामाजिक चेतना की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट था; जहाँ हर काम 'सर्वजन हिताय' होता था। समता इस समाज की आधार-भूमि थी। आर्यों का आदिम समाज सही-सही साम्यावस्था का पोषण करता था। ऐसा प्रयास सामाजिक चेतना थी। उनका जीवन अत्यन्त सादा किन्तु उच्चतापूर्ण था। जीवन-क्रम में कहीं भी विषमता नहीं थी। आर्यों ने इस रहस्य को अच्छी तरह समझ लिया था कि मानवीय सद्गुण ही अपने विकास की अन्तिम कोटि में पहुँच कर मानव को देवत्व प्रदान करते हैं। इसी कारण आर्यों के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक जीवन में समता, अभेद-भावना से युक्त मैत्री, एक-दूसरे के हिताहित की चिन्ता और साथ रहकर विकास करने की कामना की प्रधानता दिखाई पड़ती है। 6

इससे यह साफ पता चलता है कि भारतीय जीवन का प्रारम्भिक काल (जो आर्यों का जीवन-काल था) ऐसे समाज में व्यतीत हुआ जो सामाजिक चेतना की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट था; जहाँ हर काम 'सर्वजन हिताय' होता था। समता इस समाज की आधार-भूमि थी। आर्यों का आदिम समाज सही-सही साम्यावस्था का पोषण करता था। ऐसा प्रयास करता था कि उसके सदस्यों में, समाज के प्रति, अविश्वास का उदय न हो और न किसी के स्वाभाविक विकास के गुणों का कोई दमन करे। 7 समाज के विकास और संरक्षण के लिए आर्य 'समान-मना होकर जगने' का सिद्धान्त मानते थे। यह 'समान-मना' सिद्धांत वस्तुत: सामाजिक चेतना का ही रूप था-'उद्बुध्यध्वं समनस: सखाय:।' 8

समाज की श्रेष्ठता और निकृष्टता का कारण नेतृत्व होता है। जिस समाज को जैसा नेतृत्व मिलता है, वह समाज वैसा होता है। आर्यों को सामाजिक चेतना की उदात्त दृष्टि वन के आश्रमों में रहनेवाले महाप्राण ऋषियों से मिली थी। आर्यों के समाज की रचना उन ;षियों ने की थी जिनको न तो धन की आवश्यकता थी न सत्ता की। आर्यों की समाज की रचना करनेवाले धनी और सत्ताधारी व्यक्ति नहीं थे। यही कारण है कि समत्व बुद्धिवाले तत्त्वदर्शी ऋषि जिस समाज को अस्तित्व में लाये, वह शुद्धत: मानव-समाज बना, जिसका आधार समत्व था, सहयोग था, सह-अस्तित्व था।[9]

इससे स्पष्ट है कि सामाजिक चेतना का स्वरूप सामाजिक जीवन के संगठनात्मक पक्ष में निहित है। सामाजिक चेतना की आवश्यकता समाज की सुख-शांति और दीर्घ जीवन के लिए है। यह चेतना समाज के विशिष्ट व्यक्तित्व-सम्पन्न लोगों द्वारा समाज में समय-समय पर लाई जाती है।

भारतीय आर्ष-वाङ्मय के साथ ही यहाँ के राजनीतिक तथा सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर सबसे महत्त्वपूर्ण यह बात नजर आती है कि आर्य-जीवन के उषःकाल में क्रान्तदर्शी ऋषियों ने जिस सामाजिक चेतना की धारा को मानव-हृदय में बहाया था, वह मन्द-तीव्र वेग में आगे भी प्रवाहित रही।

महाभारत युद्ध के कारणों का विश्लेषण करने पर भी सामाजिक चेतना के महत्त्व का पता चलता है। स्पष्ट है कि सामाजिक चेतना की मूल भित्ति वैदिक ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट समता, सह-अस्तित्व, सहयोग और संवेदना है। ये विशेषताएँ समाज की स्थिति और विकास के लिए भी अनिवार्य हैं। जिस समाज में मानवीय एकता, समता, सहयोग और सह-अस्तित्व के बोध का नाश हो जाता है, उस समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। व्यक्ति समाज बनाकर भी समाज में ही जीवन पाता है। इसलिए व्यक्ति के द्वारा निर्मित समाज का भी व्यक्ति से कहीं ज्यादा मूल्य होता है। यही कारण है कि जब समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ता है तब उसकी रक्षा के लिए समाज में कभी किसी धर्मगुरु के रूप में, कभी महापुरुष के रूप में, कभी अवतार के रूप में, कभी राजनेता के रूप में, कभी समाज-सुधारक के रूप में, कभी कवि, साहित्यकार और चिंतक-विचारक के रूप में लोकनायक की अवतारणा होती है। जो सामाजिक चेतना के प्रकाश से लोक-मानस को जाड्यतमिस्रा से जगा कर नया मार्ग-दर्शन करता है। विश्व-इतिहास का सामाजिक ढाँचा इस बात का प्रमाण है कि सामाजिक चेतना ने समाज के जीवन को बचाने में कब-कब, किस-किस रूप में मदद की है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था जिसका नियमन कभी समाज से होता था, आगे चलकर जिस तंत्र से परिचालित हुई, उसे जनतंत्र, प्रजातंत्र कहा गया है। यह प्रजातंत्र भारतीय आर्यों की सामाजिक चेतना की ही देन थी। महाभारत में किसी ऐसी सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख नहीं मिलता, जिसमें कोई प्रधान व्यक्ति समाज को नियम-नीति से अनुशासित होने को बाध्य करता हो।

महाभारत 10 में भीष्म ने युधिष्ठिर से उस युग का वर्णन किया, जब 'राजा' अस्तित्व में नहीं आया था। उनके अनुसार उस समय न राज्य था, न राजा। धर्म से ही सब प्रजा एक-दूसरे की रक्षा करती थी। लेकिन यही बात सदा नहीं रही।

संदर्भ ग्रंथ

1. श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' : आर्य जीवन-दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना-3, 1971, पृष्ठ-130
2. वही
3. वृहदारण्यकोपनिषद-4/4/5
4. महोपनिषद-4/106
5. ऋग्वेद-10/1/91/4
6. श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' : आर्य जीवन-दर्शन, पृष्ठ-137-138
7. वही, पृष्ठ-141
8. ऋग्वेद-10/101/1
9. श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' : आर्य जीवन-दर्शन, पृष्ठ-143-144
10. महाभारत, शांतिपर्व, 51/13-14

कार्ल मार्क्स : मानव मुक्ति का महत्वपूर्ण हथियार

डॉ० पंकज कुमार

बाघी, बेगूसराय-851218

सारांश

वर्त्तमान वैश्विक परिवेश में अंतिम व्यक्ति तक संसाधनों की गैर लाभ की दृष्टि से पहुँच लगभग समाप्त हो चुकी है। ऐसी परिस्थिति में समाजवाद का याद आना स्वभाविक है। प्रस्तुत आलेख में मार्क्स के विचारों को उसके सभी सिद्धांतों पर प्रासंगिकता की दृष्टि से विश्लेषण का एक सूक्ष्म प्रयास है।

मार्क्सवादी दर्शन और इसकी क्रांतिकारी ऊर्जा ने जनता के असंख्य संघर्षों को शोषण के खिलाफ ऊर्जस्वित किया तथा मानव के महत्व को रेखांकित किया है। सन् 2008 में पूंजीवाद की जो वैश्विक मंदी शुरू हुई, इसके परिप्रेक्ष्य में 'पूंजी' तथा मार्क्सवादी साहित्य की बिक्री लगातार बढ़ने लगी है। दुनिया के मेहनतकशों पर इस संकट ने जारी शोषण को और तेज किया है। जनप्रिय प्रतिरोध काफी बढ़ा है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि यह संकट पूंजीवादी व्यवस्था की स्वत: की समस्या के चलते है। पूंजीवाद कभी भी शोषण रहित नहीं हो सकता है। इस शोषण से मुक्ति तभी मिलेगी, जब पूंजीवाद का राजनीतिक विकल्प प्रस्तुत किया जाए यानी समाजवाद। इसे प्राप्त करने का जनता के हाथ का हथियार है-मार्क्सवाद। वर्तमान में इससे बाहर निकलने के लिए फिर एक बार लेनिन के कथनों पर ध्यान होगा, जिन्होंने मार्क्सवाद के संदर्भ में कहा था : इस सिद्धांत ने दुनिया के तमाम देशों के समाजशास्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित किया है। क्रांतिकारी कार्यों को अंजाम देने के लिए गुणवत्ता को पूरी तरह से और वैज्ञानिकता को सही तरह से लागू करने के लिए जोर दिया। इन दोनों का संयुक्तिकरण अचानक नहीं हो गया। क्रांतिकारी कार्यों से वैज्ञानिकता को अलग नहीं किया जा सकता। मार्क्स ने कहा कि दार्शनिकों ने इस संसार की व्याख्या की है, जिससे इस दुनिया को बदला जा सकता है और इसके जरिए इस दुनिया को बेहतर बनाया जा सकता है।

महान कालजयी चिंतक

फेडरिक एंगेल्स ने मार्क्स के निधन पर कहा था-'महानतम कालजयी चिंतक सोचने के लिए बाध्य करता है।' उन्होंने ऐसा क्यों कहा? ऐसा उन्होंने इसलिए नहीं कहा कि वे एक दूसरे के कामरेड थे या जीवन भर एक ही राह के राही थे। ऐसा उन्होंने इसलिए कहा : 'मार्क्स ने मानव इतिहास के विकासधारा को खोजा, साधारण-सी बात है कि उन्होंने विचारधारा की प्रगति को रेखांकित किया। यह सच है कि मानव जीवन को खाना-पीना, रहना और कपड़े चाहिए, पर इससे पहले राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म इत्यादि के भी अस्तित्व रहते हैं, इसलिए कि एक तरह से यह भी वस्तुपरक स्थायी उत्पाद है तथा आर्थिक विकास के जरिये यह सामने उपस्थिति होता है, जो राज्य के बनने में भी मदद करता हैं, कानूनी अवधारणा, कला धर्म के विचार स्पष्ट होने लगते है तथा इनत माम चीजों के जरिये मूलभूत आधार भी प्रभावित होते हैं।

लेकिन यह अंतिम बात नहीं है। मार्क्स ने गति के नियम द्वारा वर्तमान पूंजीवादी उत्पादनशीलता के सिद्धांत का भी अनुसंधान किया तथा बुर्जुआ समाज द्वारा इस उत्पादनशीलता को अंजाम मिलता है। उन्होंने अतिरिक्त यानी बेशी मूल्य के सिद्धांत को इस समस्या के आलोक में देखने का प्रयास किया, जिसे बुजुर्आ अर्थशास्त्री और समाजवादी आलोचक अभी तक नहीं समझ पाये थे।

इन दोनों अनुसंधानों ने इनके जीवन-काल को महान बना दिया। वैसे तो किसी भी क्षेत्र में एक खोज किसी व्यक्ति को महान बना देती है, पर मार्क्स ने कई क्षेत्रों में अनुसंधान किए, यहां तक कि उन्होंने गणित के क्षेत्र में उल्लेखनीय खोज की। उनकी खोज स्वतंत्र होते भी अत्यंत महान है।

द्वंद्वात्मवक भौतिकवाद

आधुनिक दर्शन का अनुवेषण द्वंद्वात्मक है। 'वस्तुपरक विश्लेषण किसी वस्तुपरक परिस्थिति का मुद्दा ही द्वंद्वात्मकता है।' लेनिन ने यह एकबार कहा था। जर्मन दर्शन ने इस आधुनिक द्वंद्वात्मकता को आगे बढ़ाया। हेगेल इसके सबसे बड़े चिंतक हैं। कार्ल मार्क्स ने हमेशा कहा कि इस दर्शन का श्रेय हेगेल को जाता है, पर हेगेल ने इसे सिर के बदले खड़ा किया था, जबकि मार्क्स ने इसे पैर के बल पर खड़ा कर दिया।

मार्क्स हमेशा दार्शनिक वाद-विवाद संवाद में हिस्सा लेते थे तथा अपने युवा काल में युवाओं से इस विषय पर गंभीरता से अपनी बातों को रखते थे कि मानव ने किस तरह इन तमाम उपलब्धियों को हासिल किया है। यह भी लगता है कि मार्क्स पूरी तरह से उन युवाओं से इस विषय पर अलग ढंग से सोचते थे। उस ग्रुप को 'यंग हेगेलियन' के नाम से जाना जाता है, जिस ग्रुप से मार्क्स पूरी तरह असंतुष्ट थे। वे हमेशा तर्क देते थे कि यदि मानव मस्तिष्क को धर्म के प्रभाव से विमुख कर दिया जाए, तो मानव की जागरूकता स्वतंत्र हो जाती है। जीवन के अंतिम क्षण तक इस विश्वास पर मार्क्स अडिग थे। मार्क्स ने 'ए कंट्रीब्यूशन टू द क्रीटिक ऑफ पोलिटिकल इकानोमी' में लिखा-हेगेलियन दर्शन के नियमों को फिर से जांच करने के लिए मैंने संशय को समझने की कोशिया की, इस कार्य को 1914 में पेरिस के जर्मन फ्रांसीसी वार्षिकी में प्रकाशित किया गया। अपनी इस जांच के अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचते हुए उन्होंने कहा कि मानव के विकास मात्र से ही कोई संबंध या राजनीतिक रूप नहीं तय हो जाता है। यह निष्कर्ष एक तरह से हेगेलियन निष्कर्ष है दरअसल हेगेल ने प्रत्ययवादी प्रणाली को स्थापित किया। अंग्रेज और जर्मन चिंतकों ने इस 18वीं सदी में इसे आगे बढ़ाया 'जिसे सिविल सोसाईटी' कहा जाता है। इस सिविल सोसाईटी ने भी राजनीतिक अर्थशास्त्र की बाते की है। इस पर विस्तार से मार्क्स ने 'पूंजी' में गहरा अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंन लिखा कि नागरिक समाज राज्य द्वारा निर्धारित नहीं होता है बल्कि उल्टे राज्य नागरिक समाज द्वारा तय होता है। यहां तक कि उन्होंने दिखाया कि नागरिक समाज की 'शरीर रचना' राजनीतिक अर्थशास्त्र में खोजनी चाहिए। उन्होंने कहा कि मेरे अध्ययन का निष्कर्ष है कि सामाजिक उत्पादन का अस्तित्व होता है। इसी आधार पर मानव के अत्यंत संबंध स्थापित होते है, जो इसकी स्वतंत्र इच्छा को भी निर्धारित करते हैं, उत्पादनशीलता के विकास पर ही संबंधों के बदलाव भी निर्भर करते है। उत्पादनशीलता पूरी तरह से आर्थिक ढ़ांचे पर निर्भर करती है, जो सही अर्थों में वैध और राजनीतिक अधिरचना निर्धारित करती है तथा इसी से अनंत सामाजिक जागरूकता के रूप में सामने आते हैं।

एंगेल्स से मिलकर मार्क्स ने विकासधारा के इस कारण को बाद में जर्मनी आइडोलॉजी में दिखाया है; जर्मन दर्शन ने स्वर्ग से धरती पर आने की जो बात कही है दरअसल यह सवाल धरती से स्वर्ग की ओर जाने की है। यह कहना जरूरी है कि मनुष्य क्या कहता है, सोचता है, बोलता है या कल्पना करता है, यह बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात यह है कि एक सक्रिय व्यक्ति के जीवन में विचार किस तरह आता है, जो इसकी पूरी जीवन पद्धति को प्रभावित करते हैं। मानव-मस्तिष्क उसकी जीवन पद्धति का ही वस्तुपरक परिसीमन होता है। नैतिकता-धर्म-विचार के जितने आयामह हैं, वे भी जागरूकता के ही विविध रूप हैं, इसके बिना वह स्वतंत्र नहीं रह सकते है। उसका इतिहास नहीं है, उसका विकास नहीं है, लेकिन आदमी अपनी उत्पादन शीलता को बढ़ाता है और उसके वस्तुपरक संबंधों के आधार पर ही वास्तविक दुनिया है, उसके चिंतन भी निर्भर करते हैं और उसके चिंतन के उत्पाद भी दिखते हैं। यह सच है कि जागरूकता जीवन को नहीं निर्धारित करती है बल्कि जीवन ही जागरूकता को निर्धारित करती है। जब जागरूकता का प्रस्थान बिंदु खोजा जाता हे, तब व्यक्ति जीवन का सवाल उठता है तथा दूसरा पड़ाव ही वास्तविक जीवन को साबित करता है कि यह व्यक्तिगत जीवन ही वास्तविक है और जागरूकता धीरे-धीरे उसकी जागरूकता के रूप में निर्धारित होती है।'

मार्क्स ने न केवल हेगेल या उनके दर्शन के संबंध में यह सिद्ध किया कि इसे सिर के बल नहीं बल्कि पैर के बल खड़ा किया, बल्कि मार्क्स ने फ्रांसीसी दार्शनिक डेकार्ट्स के चिंतन को भी बदल दिया, जिन्होंने कहा था- 'मैं सोचता हूं, इसलिए मैं हूं।' मार्क्स ने वास्तविकता को इस तरह प्रमाणित करते हुए कहा-'मैं हूं, इसलिए सोचता हूं।'

मार्क्स ने इस चिंतन को काफी आगे बढ़ाया। उन्होंने पूरी गंभीरता के साथ 1843 में, 'नागरिक समाज की शरीर रचना' पर अध्ययन किया। उनके इस अध्ययन का समय 1843-45 है, जो मार्क्सवादी दुनिया की थाती है। मार्क्सवादी दुनिया की सोच व चिंतन

को मार्क्स ने गहरा और महान सूत्र दिए। इस सिलसिले में मार्क्स क्रांतिकारी जनतंत्र से सर्वहारा की क्रांति तक पहुंचे, हेगेलियन प्रभाव से ऐतिहासिक भौतिकवाद और दर्शन से राजनीतिक अर्थशास्त्र तक पहुंचे।

मार्क्स के अध्ययन की महत्वपूर्ण आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियां 1844 में सामने आयी, जो मनुष्य रूप से राजनीतिक अर्थशास्त्र के संबंध में उनके अध्ययन के महत्वपूर्ण निष्कर्ष थे, जो बाद में पूंजी में आये। 1848 में मार्क्स ने एंगेल्स के साथ मिलकर क्रांतिकारी दर्शन को कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में प्रस्तुत किया। उनके इस कार्य को आगे चलकर मार्क्सवादी घोषणा-पत्र के आधार पर मार्क्सवादियों ने इसे और आगे बढ़ाया।

मानव की मुक्ति को वस्तुपरक सिद्धांत के आधार पर मार्क्सवादियों ने मानव-जीवन के अस्तित्व को रेखांकित किया है, जीवन का सार है। मार्क्स ने दार्शनिक और आर्थिक पन्नों में दिखाया है कि यदि व्यक्ति के अनुभव और धर्म सिर्फ अधिष्ठान नहीं है बल्कि उसके वास्तविक जीवन की उपज है क्योंकि वह वस्तु अस्तित्व में है और उस वस्तु में ही चेतना है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन की पद्धतियों पर ही उसके चरित्र निर्भरशील हैं, उसके जीवन भी तथा वहीं उन पद्धतियों का भी निर्धारण करता है। वस्तु उसके लिए है और उसकी महानता में ही उसके चरित्र विद्यमान है।'

इस तरह की विभिन्न उत्पादनशीलता के पूर्तिकरण तथा उसकी अभिव्यक्ति होती है, यथा आचार-आचरण, अनुभव और मनोरंजन भी। इस तरह की कुल मानवीय संतुष्टि से सौंदर्य बोध उत्पन्न होता है और सृजनात्मक कार्य होते हैं। कुल मिलाकर जो बनता है वह संस्कृति है।

समय के किसी मोड़ पर जो संस्कृति दिखती है, वह वस्तुपरक परिस्थितियों का ही अस्तित्व है। 'उत्पादन सिर्फ वस्तुपरक प्रयोजन की संतुष्टि नहीं है, यह आवश्यकता की वस्तु भी तैयार करता है। जब तक खपत दिखती है या उसी स्थिति में रहती है, तब तक उत्पादन अपनी उसी स्थिति को बनाये रखता है। इससे वस्तु के प्रति इच्छा जगती है। वस्तु के अनुभव से वस्तु की हकीकत से निकटता बढ़ती है। यदि वस्तु से नागरिक की इच्छापूर्ति होती है तो सौंदर्यात्मक विजन भी बनता है, सुंदरता का आनंद मिलता है। उत्पादन के जरिये सिर्फ वस्तु का उत्पाद विषय के लिए नहीं होता बल्कि विषय से वस्तु के लिए बनता है। 'कार्ल मार्क्स ने 1857-58 में इकानामिक मैनिस्क्रष्ट के रूप में लिखा था। राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझे बिना' ऐतिहासिक भौतिकवाद को नहीं समझा जा सकता है। यह दिखलाता है कि मानव सभ्यता वस्तुतः मानव और प्रकृति के लगातार निकटता के कारण बनी है या उस पर आधारित है। मानव द्वारा प्रकृति का उपभोग करना ही मानव-प्रकृति का द्वंद्व है। इसे दूसरे शब्दों में इस तरह से कहा जा सकता है कि मानव की वास्ताविक जिंदगी का उत्पादन है। जैसा कि मार्क्स और एंगेल्स ने जर्मन आइडोलॉजी में कहा है-'व्यक्तिगत तौर पर जीवन का प्रकटीकरण किया जा सकता है और ऐसा होता भी है। उसके उत्पादन के साथ किसे आत्मसात किया गया है उन दोनों के बीच क्या बना और कैसे बना, अतः व्यक्तिगत तौर पर उत्पादन की वास्तविक दशा पर ही निर्भर रहना पड़ता है।' मार्क्स ने आगे चलकर बताया कि उत्पादन सामाजिक उत्पादन होता है। जब प्रकृति का सटीक प्रयोग होता है तब मानव अपने और प्रकृति के बीच विनिमय करता है। अब सवाल है कि औजार जिसका अर्थ उत्पादन है, प्रौद्योगिकी। यह प्रक्रिया सदा एक तरह से खास सामाजिक परिप्रेक्ष्य में चलती है, जो सामाजिक संबंधों में खास तरह के सृजन की अभिव्यक्ति और उस समय की संस्कृति के तौर पर जाहिर होती है।

इस प्रक्रिया में मनुष्य और प्रकृति के बीच द्वंद्व चलता है। जब प्रकृति के नियम का बदलाव होता है या उसे सीखने की कोशिश की जाती है तब मानव में बदलाव भी होता है प्रकृति का रहस्य भी विकसित होने लगता है ऐसी स्थिति में मनुष्य लगातार औजार एवं उच्च तकनीकी का उपयोग करता है। इससे सामाजिक उत्पादन की शक्ति में लगातार वृद्धि होती है। सामाजिक उत्पादन की शक्ति और उत्पादन के संबंधों के मिलने से उत्पादन की पद्धतियां बनती है। इसी के आधार पर सामाजिक बनावट की अधिरचना निर्भर करती है।

लगातार उत्पादन की शक्तियों में वृद्धि के चलते, उत्पादन की पद्धतियों के अंतर्गत कई तरह की स्थितियां पैदा होती है। जहां उत्पादन के सामाजिक संबंध उत्पादन की शक्तियों के भविष्य को तय करती है। बनने की प्रक्रिया के तहत अस्तित्व में विराजमान सामाजिक संबंधों का क्षरण होता है तथा वर्ग संघर्ष तेज होता है क्रांतिकारी स्थिति पैदा होती है और एक नया समाज बनता है जैसा कि मार्क्स ने यह बात पोलिटिकल क्रिकेट की भूमिका में कही है। यह सच है कि इस बनने की घड़ी में यह संकट है। क्रांति उसे अनिवार्यता स्वीकारती है। पूंजीवाद तभी संकट से उबर सकता है। वह भी खास समय के लिए जब उत्पादन के साधनों के कुछ

प्रमुख हिस्सों को ध्वस्त किया जा सके। ऐसी स्थिति में जो उत्पादन सामने आते है वह निश्चित तौर पर क्रांति की एक परिस्थिति तैयार करती है जो वर्गीय संघर्ष को बढ़ाता है तथा उस वर्ग को लामबंद करता है जैसा कि पूंजीवाद अर्थव्यवस्था के अंर्तगत सर्वहारा वर्ग लामबंद होते है जो मौजूदा सामाजिक क्रमों को बदल सकता है तथा इसी आधार पर एक नया और उच्च समाज बना सकता है। याद रखने की जरूरत है कि यांत्रिक तौर से ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इस महत्वपूर्ण निष्कर्ष के जरिये यह कहा जा सकता है कि मनुष्य अपनी स्वतंत्र इच्छा के जरिए संबंध स्थापित करता है तथा जागरूक बनता है। रूसों ने सामाजिक संबंधों के बारे में स्पष्ट कहा है कि मनुष्य पूरी जागरूकता के साथ एक दूसरे से मिलत हैं जबकि मार्क्स ने यह बताने की कोशिश की है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद के जरिए यह संबंध बनता है। इस संबंध के आधार पर मानव की सचेतनता स्वतंत्र होती है तथा उस वस्तु का विश्लेषण होता है कुछ ऐसे नियम हैं जिसके जरिए इसका विकास हुआ है। इन नियमों का अध्ययन किया जाता है। मार्क्स एवं मार्क्सवादी इन वस्तुगत नियमों का अध्ययन करते हैं जो इतिहास है, जो विज्ञान बन जाता है। मार्क्स के पूर्व जो दार्शनिक थे उन्होंने इसको संकीर्ण आर्थिक ढांचे में देखने का प्रयास किया है। एंगेल्स ने सही लिखा है कि इतिहास की वस्तुवादी अवधारणा के अनुसार अंतत: निर्णय करने का उत्पादन जो इतिहास में है, वह उत्पादन है और उसका पुन: उत्पादन ही वस्तुगत जीवन है। मार्क्स या मैने कभी इससे ज्यादा इस संदर्भ में नहीं कहा। यदि कोई इसे और घुमा-फिरा कर कहे तो कहता है कि आर्थिक मुद्दा ही सिर्फ निर्णायक है। यह मुख्यत: अर्थहीन, और बकवास मुहावरा है। आर्थिक स्थिति आधार है लेकिन अधिकतर उत्पादन रचना के अंतर्गत आते हैं। वर्गीय संघर्ष का राजनीतिक रूप उसके परिणाम जैसे कि सफलता पूर्वक युद्ध जीतने के बाद विक्टोरियन वर्ग का निर्माण हुआ। जैसा कि न्यायपालिका का निर्माण, विशेषत: उन्हीं का प्रतिबिंब है, जिन्होंने उस वास्तविक युद्ध में हिस्सा लिया था चाहे जो हो, जिन्होंने राजनीतिक कानूनी सिद्धांतों धार्मिक दृष्टियों को अपनाया था और उन्हीं के विकास को इस व्यवस्था में भी देखा जाता है। उन्होंने जिन रूपों में ऐतिहासिक संघर्ष को प्रभावित किया है, उसका भी रूप निर्धारित होता है। इन्हीं उपादानों के अंतहीन संबंधों के जरिए आर्थिक आंदोलन निर्धारित होते हैं जो खुद को प्रभावित करते हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र : नागरिक समाज की शरीर रचना

मार्क्स के विश्लेषण के बिना सम्पत्ति को समझना अधूरा है। इसके संबंध में मुख्य प्रवृत्तियां इस तरह हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र ऐतिहासिक विज्ञान है। विभिन्न कालखंडों में उत्पादन तथा इसके वितरण के नियमों का अध्ययन इसमें अपेक्षित है। इसलिए दासप्रथा और सामंतों के राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन किया जाता है।

एंगेल्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन एंट्री-डयूरिंग में इस तरह किया है; राजनीतिक अर्थशास्त्र विज्ञान है जो उत्पादन के रख-रखाव के नियमों तथा मानव समाज में विनिमय के नियमों का अध्ययन करता है। किस परिस्थिति में आदमी उत्पादन करता है तथा उसका आदान-प्रदान करता है। यह काम एक देश से दूसरे देश में किस तरह होता है तथा एक देश में पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह काम किस रूप में चलता है। इसलिए राजनीतिक अर्थशास्त्र प्रत्येक देशों का समान नहीं होता है या सभी कालखंड में बराबर नहीं होता है।...इसलिए राजनीतिक अर्थशास्त्र एक आवश्यक ऐतिहासिक विज्ञान है। यह वस्तु का विश्लेषण करता है जो ऐतिहासिक है, जो लगातार बदलता है। एक निश्चित समय पर यह कहा जा सकता है कि एक निश्चित उत्पादन के साधनातमक यह नियम बना रहता है तथा विनियम के स्तर भी ऐतिहासिक कालखंड निर्धारित रहता है, जिससे उत्पादन के साधन और विनियम चलता है।

एंगेल्स ने इस बिन्दु पर एक तरह से सावधान किया है कि साधारण विच्युति से बचना चाहिए। पहली बात है कि बुर्जुआ अर्थशास्त्री कहते हैं कि प्रत्येक कालखंड का अपना राजनीतिक अर्थशास्त्र है। प्रत्येक उत्पादन के अपने नियम हैं, जो खास कालखंड तक निर्धारित है, जहां उत्पादन के साधन तथा विनिमयकी शक्तियां बरकरार है।

पूंजीवाद

राजनीतिक अर्थशास्त्र पर कई तरह के कार्य हुए और कई तरह के कार्य उत्पादन प्रणाली के संबंध में करने बाकी है। इस सिलसिले में दासप्रथा, सामंतवाद से संबंधित कार्य हुए हैं पर मार्क्स ने : 'आधुनिक समाज की गति को खोजा।' 'आधुनिक समाज' से उन्होंने पूंजीवाद की समझदारी को आगे बढ़ाया।

उन्होंने सामुहिकता के चरित्र का अध्ययन किया। पूंजीवादी उत्पादन दरअसल सामुहिकता का उत्पादन है। सामुहिकता के उत्पादन में व्यवहार किये जाने के मूल्य होते हैं और विनिमय के मूल्य होते हैं। व्यवहार में लगाए मूल्य जो उत्पाद है वो हमेशा विद्यमान

है। लेकिन सामुहिकता के विनिमय का मूल्य होता है, जो बाजार में बिकता है। विभिन्न तरह के सामुहिकता उत्पाद उपभोक्ता का सामान बन जाते हैं, जिसे पुनः पुनः बेचा जा सकता है। यह एक दूसरे के विनिमय पर आधारित होता है। इस उपभोक्ता में श्रम की मात्र विद्यमान होती है, जो उत्पादन में निहित होती है।

पूंजीवाद के तहत मार्क्स ने दिखाया कि एक पण्य में उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्य दोनों होते है। उत्पादन में जो श्रम लगता है, वह ठोस श्रम है, क्योंकि वह श्रम द्वारा लगता है तथा विनिमय मूल्य अमूर्त श्रम द्वारा उत्पादन होता है। अमूर्त श्रम इस बात पर निर्भर करती है कि पण्य उपभोक्ता बन जाता है। वह बेशी उत्पाद हमेशा आर्थिक बुनावट में रहता है, जबकि पूंजीवाद के तहत बेशी मूल्य होता है। श्रम की प्रक्रिया हर तरह के उत्पादन में होती है जबकि पूंजीवाद के तहत श्रम का मूल्य निर्धारित होता है। दूसरे शब्दों में उत्पादन की एक ऐसी प्रकृति जहां आर्थिक बुनावट की पूर्ववर्ती समानता रहने के बावजूद पूंजीवदी व्यवस्था में अलग किस्म की विशेषता दिखती है। यह विशेषत कहां से आती है? मार्क्स ने निष्कर्ष निकाला है कि उत्पादन के संबंधों को पूंजीवाद एक नया रूप देता है। उत्पादन का तुरंत इस्तेमाल नहीं होता बल्कि इसे बाजार में बेचा भी जा सकता है। यह एक तरह का सामाजिक संबंध है। मार्क्स ने इस सामाजिक संबंध का अध्ययन किया। संबंध भी पूरी से छिपा रहता है, जब वह बाजार में प्रविष्ट होता है।

बेशी मूल्य

जब बाजार में पण्य का विनिमय होता है तब एक अदभुत स्थिति तैयार होती है। बराबरी के आधार पर विनिमय होता है; जहां बराबरी और जनतंत्र में दिखता है। तब भला बेशी मूल्य कहां से आता है।

बुर्जुआ और पेटी बुर्जुआ अर्थशास्त्री यह बताते हैं कि बाजार में मजदूरों को ठगने की वजह से बेशी मूल्य का सवाल उठता है। पण्यों का विनिमय उनके मूल्य पर नहीं होते हैं- श्रम की मात्र उत्पाद में चली जाती हैं। यह कभी सीधे-सीधे होता है तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से भी होता है। यह गैर बराबरी विनियम होता है। पूंजीपति बाजार मे मजदूरों का शोषण करता है। मार्क्स कहते हैं कि नहीं। बेशी मूल्य का सवाल ठगने के चलते नहीं उठता है। यह गैर बराबरी विनिमय के चलते भी नहीं होताहै। यह सवाल इसलिए उठता है कि पण्य का अस्तित्व है, जो श्रम शक्ति कि है, इसका खास चरित्र है। यह अपना मूल्य खुद बनाती है, जो बाजार में नियंत्रित होने की वजह से कई गुणा बड़ा है; जिसे मजदूर फिर खुद से पैदा कर सकते हैं। पण्य को बनाने में श्रमशक्ति लगती है, जिसे घटाकर तथा पण्य के मूल्य को बढ़ा कर बाजार में प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए बाजार में शोषण नहीं होता है बल्कि उत्पादन प्रणाली में होता है। बेशीमूल्य बाजार में नहीं बनता है और बाजार में ठगने के कारण भी नहीं बनता है। यह एक उत्पादन प्रक्रिया में बनता है। पूंजीवाद के अंतर्गत शोषण ठगने या गैर बराबरी विनिमय के चलते नहीं होता है, यह एक नैतिक सवाल भी नहीं है। पूंजीवाद में शोषण जारी रहता है, जो उसे विरासत में मिलता है। इसलिए उसे उखाड़ फेंकना होगा और शोषण का आधार नैतिकता भी नहीं है। यदि शोषण खत्मै होता है तो जिस व्यवस्था के जरिये मजदूरों का शोषण होता है-उसी उत्पादन प्रणाली को उखाड़ फेंकना होगा।

इसलिए पूंजीवादी सिर्फ उत्पादन प्रणाली की व्यवस्था नहीं है, बल्कि इस व्यवस्था में श्रमशक्ति खुद एक पण्य बन जाती है।

उत्पादन प्रणाली के पण्य के तौर पर देखने से यही लगता है कि पूंजीवाद के आरंभ में भी पण्यों के साथ ऐसा ही व्यवहार यानी विनिमय किया जाता था। सभी पण्यों के मूल्य निर्धारित किए जाते हैं-जिसके पीछे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष श्रम की भूमिका है। यह उत्पादन में मिलता है, यह उत्पादन की औसतन परिस्थिति है। जो पूंजीपति इस परिस्थिति में इसे संचालित करते, वे बाजार मे बेहतर प्रदर्शन करते हैं और जो इसे संचालित करने में कमजोरी दिखाते हैं, उनका पण्य बाजार मे कमजोर साबित होता है। इस परिस्थिति में प्रतिस्पर्धा जारी रहती है, जो पूंजीपतियों के बीच में चलती है, इसका असर पण्य को बेहतर बनाने में निहित होता है। यह भी उत्पादन की तकनीकी है। इसके लिए भी पूंजीपति की आवश्यकता होती है। यह संचय की प्रक्रिया को नेतृत्व देती है। विभिन्नता और पतिस्पर्धा से तकनीकी पर भी प्रभाव पड़ता है, जो संचय को गति देता है। एक पूंजीपति चाहता है इसलिए संचय नहीं करता है। वह कंजूस नहीं है। पूंजीवाद के अंतर्गत उसे जीना है तो उसे इस रास्ते से जाना ही होगा, यानी प्रतिस्पर्धा और संचय के रास्ते से, जो पूंजीवादी का चरित्र है। मार्क्स ने दरअसल डारवीन के नियम 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' को पूंजीपतियों के संदर्भ में स्वीकार किया है।

मुनाफा : पूंजीवाद की प्रेरणाशक्ति

मार्क्स ने पूंजी के संबंध में काव्यात्माक उद्घोष करते हुए कहा कि 'पूंजी के सिर से लेकर पैर तक, प्रत्येक अंग से रक्त और गंदगी गिरते हैं।' पूंजी मुर्दा श्रमशक्ति को चूसकर जीवित रहती है। मजदूर वर्ग के नेता जे दुनिंग ने लिखा है-'मुनाफे के चलते पूंजी अत्यंत शक्तिशाली होती है। उसके 10 प्रतिशत से रोजगार निर्धारित होता है, 20 प्रतिशत उत्पादन से जुड़ा है, 50 प्रतिशत सकारात्मक पहलू होता है, 100 प्रतिशत लोगों के नियम को मानता है तथा 30 प्रतिशत न केवल अपराध करता है और न खतरा मोल लेता है बल्कि मुनाफे के लिए अपने मालिक को भी फांसी के फंदे पर झुला देता है। यदि दंगे और कलह से लाभ होता है, तो इसे भी बढ़ाने के पीछे वह नहीं रहती है।' मुनाफा को किसी भी कीमत पर बढ़ाने पर बढ़ाने के लिए पूंजी तैयार रहती है, जो पूंजीवादी व्यवस्था का चरित्र है और व्यक्तिगत लोभ या यांत्रिकता की कमजोरी से संकट पैदा होता है।

संकट

उत्पादन प्रणाली में ही संकट होता है, जिसे पैतृक रूप में प्राप्त होता है। उत्पाद को बेचना पड़ता है। यह पण्य विनिमय होने के लिए बाध्य हे। मार्क्स ने कहा कि सामाजिक संबंधों का विकास स्वत: होता है तथा उन्हें नियंत्रित भी किया जाता है। किसान गेहूँ बेचते हैं जबकि बुनकर कपड़ा। इसी तरह यह प्रक्रिया चलती है। यदि यह श्रृंखला टूटती है, और पण्य नहीं बिकते हैं, तब पण्य जमा हो जाते है। यह संकट है। यदि पण्य के बेचने पर मूल्य नहीं मिलता है, तो संकट पैदा होता है।

उत्पाद को बेचने के संबंध में यह पैतृक संकट पूंजीवाद में देखने को मिलता है। क्यों? इसलिए कि पूंजीवाद उत्पादन प्रणाली का अराजक तरीका है। पूंजीवाद की ताकत लगातार इस व्यवस्था को अधिक से अधिक उत्पादन करने की तरफ चक्का देती है। ऐसी स्थिति में बुर्जुआ अर्थशास्त्री यह कहते हैं कि उत्पादन पूंजीवादी व्यवस्था में मांग और पूर्ति के आधार पर होता है। यह सिर्फ 30 के दशक की महामंदी के संबंध में उपर जिक्र किया गया है। इस तरह की प्रक्रिया हमेशा चलती है। पूंजीवाद की शक्तियों का यह उद्देष्ठय नहीं होता है पूंजीपतियों को अधिक से अधिक लाभ मिले। इससे संचय और केंद्रीकरण होता है जो आर्थिक गतिविधियों के स्तरों को लगातार बढ़ाने का प्रयास करता है। मार्क्स ने कहा-हपूंजीवादी पण्यों के विकास से उत्पादन की तुला राशि घट जाती है तथा खास पूंजीपतियों के हाथों की पूंजी के मूल्यों द्वारा यह उत्पाद प्रभावित होने लगता है, इसके चलते पूंजी संकट पैदा करती है, जो पण्य की आवश्यकताओं और उत्पादन प्रक्रिया में दिखती है।

इस प्रवृत्ति के बढ़ने से संकट पैदा होता है, जो 30 के दशक में दिखा था। बुर्जुआ अर्थशास्त्री बतलाते है कि पण्य के उत्पादन में वृद्धि से रोजगार बढ़ता है तथा क्रयशक्ति बढ़ती है साथ ही समाज में खपत करने की क्षमता भी बढ़ती है। कुछ तथाकथित मार्क्सवादी भी कहते हैं कि मार्क्स ने खुद कहा कि पूंजीवाद-वस्तु से विषय के लिए उत्पादन नहीं होता है बल्कि विषय से वस्तु बनती है। अत: उत्पादन के स्तर में बढ़ने से खपत भी बढ़ जाती है।

पूंजीवादी संचय

प्रत्येक पूंजीपति संचय करता है। यह संचय उत्पादन प्रणाली के स्तर को विकसित करने का तकनीकी विकास है। कुछ काल के बाद वह इस व्यवस्था के खोल से बाहर निकलने के लिए बाध्य हो जाता है। संचय के केंद्रकरण होता है, जिसे बड़े पूंजीपतियों को सौंप दिया जाता है। छोटी मछली को बड़ी मछली निगल जाती है। संचय केंद्रीकरण को नेतृत्वह करता है, यह एक ऐसी प्रक्रिया जहां पूंजीपतियों की पूंजीपतियों के पीछे खड़े रहते है। शोषण जारी रहता है, उत्पादकों को कुछ राहत देने, बेशी मूल्य अधिक से अधिक देने के जरिये उत्पादन प्रणाली की एक उच्च कोटि सामने आती है, जो समाजवाद है, जहां कुछ ही पूंजीपति नहीं रहेंगे बल्कि एक भी नहीं रहेंगे।

'पूंजीवादी तरीके से जो वितरण होता हे, पूंजीवादी तरीके से जो उत्पादन होता है, उससे पूंजीवादी निजी संपत्ति बनती है। यह पहला निषेध है, जो व्यक्तिगत सम्पति का निषेध है, जहां श्रम ही प्रमुख होता है। लेकिन पूंजीवादी उत्पादन में जो निषेध होता है, वह उसका अपना निषेध है। दरअसल यह निषेध का निषेध होता है इसका मतलब यह नहीं है कि निजी सम्पत्ति फिर से बनी है, पूंजीवादी जमाने में निजी सम्पत्ति निर्धारित होती है और जमीन का अधिग्रहण होता है, वह भी एक तरह का उत्पादन है।

'निजी सम्पत्ति का स्थानांतरण सही तौर पर निजी श्रम से बनती है। यह पूंजीवादी निजी सम्पत्ति है, जो एक प्रक्रिया है, यह काफी सुरक्षित, हिंसक और कठिन है, जो अपेक्षाकृत समाजवादी उत्पादन की समाजवादकृत सम्पत्ति से कमजोर भी है। पहले में जनता के समूह का वर्चस्व रहता है, दूसरे में नेनतचमते का वर्चस्व होता है। पहले में नेनतचमते के जरिये होता है तथा दूसरे में जनता के समूह द्वारा होता है।

इन उद्धरणों को पूंजी से लिया गया है, जिसे मार्क्स-एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में लिखा है:

'अस्तित्व के लिए आवश्यक स्थिति होती है, बुर्जुआ वर्ग इस स्थिति में पूंजी बनाता है। श्रम के मानदेश में ही पूंजी की स्थिति तय होती है। यह मानदेयता के लिए प्रतिस्पर्धा चलती है। उद्योग के आगे बढ़ाने के पीछे बुर्जुआजी ही होते हैं, जो प्रतिस्पर्धा के कारण, मजदूरों को अलग-थलग करने की कोशिश करते हैं। उनके क्रांतिकारी गठबंधन का मुख्य कारण संघबद्ध होना ही होता है। आधुनिक उद्योग का विकास जो होता है, वह उसकी बुनियाद पर ही आघात पहुंचता है, जिसे बुर्जुआजी उत्पादित करते हैं। बुर्जुआजी खुद के लिए कब्र खोदते हैं। उसकी हार और सर्वहारा की जीत आवश्यंभावी है।'

अचानक इस तरह के बदलाव नहीं आते हैं। प्रत्येक संकट एक क्रांतिकारी स्थिति में होता है, जहां शोषित वर्ग के जरिये मजदूर वर्ग के नेतृत्व में पूंजीवाद को उखाड़ा जा सकता है। इस वर्ग की अनुपस्थिति में पूंजी के शासन और पूंजीवाद का प्रत्येक संकट बार-बार अवहेलित होता है।

वर्तमान साम्राज्यवादी वैश्वीकरण नव उदारीकरण

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वैश्विक पूंजीवाद बढ़ने लगा, शीतयुद्ध के समय में भी यही होता रहा है, जिससे पूंजी का संचय हुआ। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में सोवियत संघ का पराभव हुआ। पूर्वर्ती यूएसएसआर और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देश पूंजीवाद की चपेट में आ गये। इससे वित्तीय पूंजी उच्च स्तर पर जमा होने लगी।

वैश्विकरण का वर्तमान दौर, साम्राज्यवादी स्तर के भीतर उच्च स्तर पर वित्तीय पूंजी को जमा करने का दौर है। यह विश्व की वित्तीय पूंजी उद्योग से जुड़ती है और पूंजी के दूसरे रूपों से साथ भी मिलती है; एक ही मकसद होता है कि अधिक से अधिक लाभ बटोरे। वित्तीय पूंजी उच्च स्तर पर अधिक से अधिक मुनाफा जुगाड़ती है।

मुनाफा जुगाड़ने के लिए इस दुनिया को फिर से सजाया जा रहा है, वैश्विक वित्तीय पूंजी के अंतर्गत नव-उदारीकरण की परिभाषा आयी है। यह सबसे पहले नीतियों पर नियंत्रण करता है, ताकि पण्यों को एक देश की सीमाओं से अन्य देशों में पहुंचन का अवसर मिले। विकासमान देशों में ट्रेड को इस तरह मुक्त करने की व्यवस्था की जाती है, ताकि विनिवेशीकरण बढ़ सके। यह विकसित देशों में भी होता है। इसलिए कि फिर से उसे स्थिर किया जाता है और उस देश से बाहर भी व्यापार होता है। उदारीकरण से पूंजी का बहाव बढ़ता है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपिनयां अधिक से अधिक पूंजी का संचय करती है। सार्वजनिक उद्यमों की बुनियाद हिलाने में वे कंपिनयां जुट जाती है।

पूंजीवाद के इतिहास से गुजरने से पता चलता है कि संचय दो तरह से होते है; पहला पूंजी के फैलाव के जरिये उत्पादन प्रणाली से और दूसरा लूट के जरिये। मार्क्स ने उसे पूंजी के आरंभिक संचय कहा है। इसे ऐतिहासिक ढांचे में रखा गया है यानी आदि बनाम आधुनिक। इसलिए मार्क्स और मार्क्सवादियों के लिए आदि पूंजी संचय एक विश्लेषणात्मक स्तर है, जो सामान्यत: ऐतिहासिक तौर पर पूंजीवाद की साधारण शक्ति से साथ विद्यमान होती है। आदि संचय के कई रूप थे, इसमें सीधे-सीधे उपनिवेशवाद बनाने की स्थिति भी समाहित है। आदि संचय का आक्रामक रुख पूरी तरह से वर्गीय शक्तियों के संतुलन पर आधारित होता है, वह भी अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होता है। पूंजीवादी क्रूरता भी लक्षित होता है। साम्राज्यवाद के मौजूदा दौर में उसकी यह प्रक्रिया ओर आक्रामक हुई है, जो दुनिया की जनसंख्या पर लगातार हमला करती है। यह हमला विकासमान और विकसित दोनों देशों में जारी है।

पूंजीवादी चरित्र ही है मुनाफे को अधिक बढ़ाना। इससे पूरी दुनिया में विषमता फैलाती है और श्रमजीवियों और गरीबों पर इसका प्रभाव सबसे ज्यादा पड़ता है। इस व्यवस्था का संकट हर दौर में विद्यमान रहता है। इसलिए नये दौर में यह संकट और गंभीर हो जाता है।

निष्कर्ष

कार्ल मार्क्स से संबंधित बहस को धैर्य के साथ सुने बिना संपन्न नहीं किया जा सकता है। उनका व्यक्तित्व महान है। पूंजीवादी व्यवस्था की गंभीर समीक्षा के साथ-साथ कार्ल मार्क्स ने मानव मुक्ति की बात कही। उन्होंने पूरी तरह से मानवता की मुक्ति की अवधारणा पेश की, जो समाज में श्रमजीवियों की श्रमशीलता में विद्यमान है तथा व्यक्तिगत भूमिका को भी स्थापित किया। उन्होंने मानव की असल शक्ति की पहचान करते हुए कहा-'मुझ से मनुष्य अलग नहीं है।'

उनकी भावना खासकर तथा प्रतिबिम्बित होती है, जब उन्होंने अपनी पत्नी और बच्चों को पत्र लिखा है, जो अत्यंत उल्लेखनीय है; ह्महत्त्वपूर्ण भावनाएं वस्तुगत होती हैं, जो वस्तुओं की निकटता पर निर्भर करती है, व्यवहार छोटी हो, पर वह बढ़ती है तथा धीरे-धीरे अपनी वास्तविकता को प्राप्त करती है, दरअसल यह दूरी का जादू परक प्रभाव है। सन् 1856 में कार्ल मार्क्स ने अपनी पत्नी जेनी को एक पत्र लिखा, ज बवह लंदन से ट्रीएर जा रहीं थी। पंत पंक्तियां इस तरह हैं-ह्मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति है, जब अलग होते हैं, तो प्रेम बढ़ता है तथा दिक् वही काम करता है, जो धूम और वर्षा एक पौधे के लिए करती हैं-उसे बढ़ाने का काम करती है। यह प्रेम तुम्हारे प्रति है, जो मनुष्य को पुनः मनुष्य बनाता है।'

संदर्भ ग्रंथ

1. Karl marx : Economic and philosophic Manuscripts of 1844
2. Karl marx and Engiles : Communist Manifesto
3. John lewis : Marxism and the open mind
4. V.I Lenin : The State and Revolution
5. O.P Gava :An introduction to Political theory
6. O.P Gava : Political thought
7. स्वाधीनता -A Journal of CPM

कोरोनाकाल में महिलाओं की भूमिका एक आर्थिक एवं सामाजिक अध्ययन

डॉ० सीमा कुमारी

पूर्व शोध छात्रा, विश्वविद्यालय अर्थशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

आज के आधुनिक युग में महिलाएँ पहले से ही विभिन्न प्रकार के दायित्वों का निर्वहन करती आ रही हैं। एक महिला एक माँ, एक पत्नी, एक पुत्री, एक बहू, एक बहन इतनी सारी भूमिकाओं का निर्वहन एक साथ बड़ी ही निष्ठा से निभाती आ रही हैं इसके साथ ही उन्होंने बा]य जगत में भी स्वयं को सिद्ध किया है, चाहे वह सामाजिक हो या फिर आर्थिक। तो ऐसी परिस्थिति में महिलाओ भूमिका होना स्वाभाविक ही है जो नया नहीं है बल्कि पहले से चलता आ रहा है लेकिन कोरोनाकाल में महिलाओं के लिये एक अलग प्रकार का भूमिका को लेकर आया क्योकि वर्क फॉम होम की संस्कृति' ने महिलाओं में भू मका को बढ़ा दिया। एक ही समय में घर का कार्य तथा कार्यक्षेत्र की जिम्मेदारी निभाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्रस्तुत शोध पत्र कोरोनाकाल के कारण महिलाओं में आये भूमिका पर आधारित है।

कुंजी शब्द- कोरोनाकाल, भूमिका, वर्क फ्राम होम।

कोरोना संक्रमण के कारण पूरे देश को लाकडाउन कर दिया गया, परिणामस्वरूप एक बड़ी जनसंख्या घरो में कैद हो गयी, जिसका प्रभाव लोगों की जीवनशैली व्यवहार एवं मानसिक स्थिति पर पड़ा। इसका प्रमुख कारण आर्थिक गतिविधियों का बंद होना तथा आवागमन पर प्रतिबंध लगाया गया है। मनोवैज्ञानिकों की मानें तो कोरोनाकाल में बेचैनी, तनाव, घबराहट, रोग, भ्रम तथा दुश्चिन्ता की शिकायत आम बात हो गयी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न परामर्शदाताओं की मानें तो इस कोरोनाकाल पारिवारिक विवाद के मामलों में बढ़ोत्तरी हुई हैं कोरोनाकाल के प्रभावों की बात करे तो इसका प्रभाव समाज के सभी वर्गो पर थोड़ा बहुत पड़ा है विशेश रूप से महिला वर्ग पर, महिलाएँ जो परिवार की धुरी हैं। वर्तमान समय में आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण के कारण एकाकी परिवार का प्रचलन बढ़ा है वहीं महिलाओं ने घर के बाहर विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में अपनी सक्रियता सिद्ध कर दी है। इन आर्थिक क्रियाओं में सहभागिता के दो प्रकार के प्रभाव महिलाओं पर पड़े हैं- पहला सकारात्मक दूसरा नकारात्मक। एक तरफ तो महिलाएँ आर्थिक और सामाजिक रूप से सुदृढ़ हो गयी तो दूसरी तरफ महिलाओ की भूमिका दोहरी हो गयी।

घर और बाहर दानों स्थानों पर उन्हें विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं का एक साथ निर्वहन करना पड़ गया क्योकि पारिवारिक दायित्व तो उनके ऊपर सनातन काल से चला आ रहा था इधर बा]य जगत में प्रवेश कर के बा]य भूमिकायें भी महिलाओं ने अपना लीं। परिणामस्वरूप महिलाओं में भूमिका या अन्तर्द्वन्द उभर कर सामने आया। ऐसा नहीं कि यह भूमिका संघर्श कोई नया विशय है यह तो हमारे समाज में पहले से ही विद्यमान रहा है। कोरोनाकाल ने इस समस्या को और बढ़ा दिया है या यों कहें कि समस्यारूपी चाकू ने अपनी धार और तेज कर दी। परिवार की देखरेख व सभी सदस्यों की देखभाल की जिम्मेदारी सदैव स्त्रियाँ ही निभाती रही हैं चाहे वह शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो, पौष्टिक खानपान हो, बुजुर्गों की सेवा हो आदि।

कोरोना के कारण लगे लॉकडाउन मे ं घरलू सहायिकाओ ं के उपलब्ध न हाने से घर के कार्यो का अतिरिक्त बोझ बढ़ा है इसके साथ ही आर्थिक गतिविधियाँ बन्द हो गयीं जिसके कारण एक विचित्र प्रकार की मनोदशा से गुजरना पड़ा, इसको कम करने का दायित्व भी महिलाओ ंसे ही अपेक्षित है। इस कोरोनाकाल ने एक नयी कार्य संस्कृति को जन्म दिया श्वर्क फ्राम होमश ऐसे में ही कामकाजी महिलाओं के लिये भूमिका संघर्श की स्थिति उत्पन्न हो गयी क्योंकि एक ही समय में उन्हें घर का कार्यभार भी संभालना

है तथा उसी समय अपनी कार्यक्षेत्र की जिम्मेदारियो ं को भी पूरा करना है तथा घर पर ही रहकर उन्हे ंअपने बच्चो ं के आनलाइन कक्षाओं को भी सुचारू पूर्वक व्यवस्थित करना है। एक साथ इन सभी जिम्मेदारियों का निर्वहन इतना आसान भी नहीं है ऐसा लगता है जैसे बैक टू पवैलियन की दशा हो गयी हो।

इसके अतिरिक्त एक और संस्कृति हमारे समाज में जन्म ले चुकी है जिसमें परिवार के सभी सदस्य सुबह ही अपने-अपने कार्यक्षेत्र में निकल जाते हैं तथा शाम को घर वापस आते हैं, अर्थात एक साथ घर पर समय बिताने के अवसर कम हो गये। अब कोरोनाकाल के कारण जब सभी घर में हैं तो आपस में सामंजस्य बैठा पाना भी मुश्किल हो गया है जिसके कारण पारिवारिक विवाद तथा घरेलू हिंसा की घटनाएँ भी बढ़ी हैं जिसकी पुष्टि विभिन्न रिर्पोटों से होती हैं। कोरोनाकाल मे ं समाज का यह पहलू दिखना ही था ज्यादातर भारतीय घरों में काम का बंटवारा बराबर नहीं हाता है। यहाँ तक कि अगर पति और पत्नी दोनों ही घर से काम कर रहे हैं तो भी अधिक बोझ महिलाओं पर ही पड़ता है। इस सम्बन्ध में एक रिपोर्ट यह भी है- देशों के आर्थिक विकास का लेखा जोखा रखने वाली वैश्विक संस्था ऑगेनाइजेशन ऑफ इकोनोमिक कोऑपरेशन एण्ड डेभलपमेन्ट के सर्वे के अनुसार एक आम भारतीय महिला रोजना लगभग 6 घंटे अनपेड कार्य करती है यानी जिसका कोई भुगतान नहीं होता इसके विपरीत भारतीय पुरुश एक घंटे से भी कम ऐसा काम करते हैं जिसका भुगतान नहीं होता आम तौर पर घर के भीतर महिला व पुरुश के बीच यह अन्तर घरेलू सहायिकाओं की मदद से कम हो जाता है इनमे ं दाइयाँ, कुक, ड्राइवर, धोबी, माली, आदि शामिल हैं लेकिन कई बार एक ही व्यक्ति जब इन सभी कार्यों का निर्वहन करता है तो उसके सामने भूमिका की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसक कारण शारीरिक स्वास्थ्य तो प्रभावित होता ही है साथ ही साथ मानसिक स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है।

इसी स्थिति का सामना आज के दौर में महिलाओं को करना पड़ रहा है, जिसका समाधान कहीं न कहीं आपसी तालमेल से ही संभव है क्योंकि हमारे समाज में पहले से ही विद्यमान है कि पति पत्नी एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं, दोनों में सामजंस्य होगा तभी जीवन की गाडी़ सरपट दौड़ेगी।

संदर्भ सूची-

1. साउथ एशियन वूमंस नेटवर्क (एस एड डब्लू.एन.ई.टी.)
2. Women in History National Resources Centre for Women 5 फरवरी 2014 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 24 दिसम्बर 2006
3. "Chronic Hunger and Status of Women In India' मूल से 10 सितम्बर 2014 को पुरोलिखित अभिगमन तिथि 24 दिसम्बर 2006
4. Women in History National Resources Cente for Women मूल से 19 जून को पुरालेखित अभिगमन तिथि 24 दिसम्बर 2006

भारत-चीन सीमा विवाद : डोकलाम विवाद एवं पैंगोंग त्सो झील

अरुण मेघवाल

शोध सार

भारत और चीन की सेना के बीच 1960 के दशक के बाद टकराव आये दिन देखने को मिलते हैं, लेकिन इन्हे सुलझाना सिर्फ बातचीत से ही संभव है। चीन से पैंगोंग त्सो झील में आने वाले एल ऐ सी के हिस्से का निर्धारण करे ताकि सीमा पर सेनाओं के दरमियान विवाद को रोका जा सके। क्योकि दोनों देश दक्षिण एशिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाएं है। जिन पर वैश्विक शांति और सुरक्षा बनाने का दारोमदार भी सबसे ज्यादा है।

भारत-चीन के बीच टकराव काल

भारत और चीन के मध्य व्यापक तौर पर बातचीत की शुरुआत भारत की स्वतंत्रता 1947 और चीन की कम्युनिष्ट क्रांति 1949 के बाद हुई? 1950 में भारत और चीन के बीच राजनयिक सम्बन्धो की स्थापना हुईद्य इसी दौर में भारत ने के एम पणिकर को चीन में पहले राजनयिक राजदूत नियुक्त किए। मई 1954 में चीन प्रधानमंत्री झोऊ एनलाई ने भारत का दौरा किया चीन और भारत के प्रधानमंत्रियो ने सयुक्त व्यक्तव्य पर हस्ताक्षर किएद्य और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व (पंचशील) के सिद्दांत पर सयुक्त रूप से वकालत की। फरवरी 1961 में चीन ने भारत एवं चीन के बीच सीमा विवाद को इंकार किया। लेकिन 1962 में चीन ने लद्दाख और तत्कालीन नार्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी नेफा में मेकमोहन रेखा के पार भारत पर आक्रमण कर लिया और भारत के बहुत बड़े भू भाग पर कब्जा क्र लिया।

1962 में भारत और चीन के बीच युद्द हुआ। इस युद्द का कारण विवादित हिमालय सीमा का मुख्य कारण था। चीन में 1951 के तिब्बती विद्र्हो के बाद जब भारत ने दलाई लामा को शरण दी तो भारत चीन सीमा पर चीन ने हिंसक घटनाएँ शुरू कर दी। अंतत: चीनी सेना ने 20 अक्टूम्बर 1962 को लद्दाख और मेकमोहन रेखा के पार एक साथ हमले शुरू कर दिए। चीन की सेना ने भारत को दोनों मोर्चे पर विफल कर दिया। और पश्चिमी क्षेत्र के चुशूल में रेजांग ला एवं पूर्व में तवांग पर अवैध कब्जा कर लिया। विष्व एवं सयुक्त राष्ट्र के दबाव के बाद चीन ने युद्द विराम की घोषणा भी की हलाकि आक्साई चीन से भारतीय पोस्ट और गस्ती दल हटा दिए गए थे, आधे से ज्यादा हिस्से पर चीन पीपल्स लिबरेशन आर्मी ने अस्थाई रूप से कब्जा कर लिया था।

1967 1967 का टकराव तब शुरू हुआ। जब भारत ने नाथू ला से सेबू ला तक तार लगाकर बार्डर को परिभाशित कियाद्य उसके 20 दिन बाद सिक्किम के तिब्बत बोर्डर के चो ला में भारतीय सैनिको पर चीन सैनिको ने हमला कर दिया यह घटना नाथू ला दर्रे के पास थी इस घटना में भारत के कुछ जवानो को शहीद होना पड़ा इसके बावजूद भारत ने चीन को करार जवाब दिया था चीन को वापस अपनी सीमा में भेज दिया।

1975 अरुणाचल प्रदेश के तुलुंग ला में भारत के असम रायफल्स के जवानो की पेट्रोलिनिग टीम पर हमला किया गयाद्य इस हमले में चार भारतीय सैनिक शहीद हो गए हलाकि चीन ने इस दावे को नकार दिया लेकिन भारत ने इस पूरी घटना की जवाबी करवाई में करार जवाब दिया।

1987 तवांग के उत्तर में सम्दोशंग चू-रीजन में भारतीय फौज चू के दक्षिण में ठहरी थी 1985 में भारतीय फौज पूरी गर्मी के मोसम में यह डटी रही लेकिन 1986 की गर्मियों में पहुची तो चीन सेना मोजूद थी और इस इलाके तम्बू गाड दिए थे। भारत ने

पूरी कोशिस की चीनी सेना वापस चली जाये। लेकिन चीनी सेना नही मानी अंत में भारतीय सेना ने आपरेशन फाल्कन चलाया और भारतीय जवानो को विवादित जगह पर एयर लेंड किया तथा भारतीय जवानो इन पहाडियों पर पोजीशन सम्भाल कर चीनी सेना के तम्बू उखाड़े। लद्दाख से लेकर सिक्किम तक भरतीय सेना तेनात हो गईद्य

2014 में चीनी सेना पीपुल्स लिब्रेशन आर्मी के जवानो ने कुछ खानबदोश जानवरों का पिछा करते हुए। जुलाई के पहले हफ्ते में भारतीय सीमा में दाखिल हुए थे, और इसके बाद उन्होंने भारतीय सीमा में 5 तम्बू को गाड दिया। भारतीय जवानो ने चीनी सेना को कई बार बैनर ड्रिल कर उन्हें वापस जाने को कहा, लेकिन चीन सेना हटी नही इसके बाद ब्रिगेडियर स्तर की बातचीत कर उन पर दबाव बनाकर उन्हें अपनी सीमा में लोटने को मजबूर किया।

डोकलाम विवाद

डोकलाम नामक स्थान भारतीय राज्य के सिक्किम सीमा से सटा हुआ है, जो चीन और भूटान के पठारी सीमा को भी छूता है. यह स्थान हमेशा से विवादास्पद रहा है क्योंकि यह भारत, चीन और भूटान तीनों ही देशों का एक तिहरी जंकशन क्षेत्र है. हालंकि डोकलाम भूटान के क्षेत्र में आता है लेकिन इसके ऊपर चीन अपना प्रभाव बनाये हुए है, जिस वजह से यह क्षेत्र पहले से ही इन दोनों देशों के विवाद का कारण रहा है इसलिए उभरा है, क्योंकि चीन वन बेल्ट वन रोड (ओबीओआर) के तहत सड़क का निर्माण तिब्बत से जुड़ने के लिए कर रहा है. चीन रोड का निर्माण भारत, भूटान और चीन का जो तिराहा बिंदु है, उसके एक क्षेत्र से करना चाहता है जो कि भूटान और भारत दोनों ही देशों की सुरक्षा के लिए खतरनाक साबित हो सकता है. 29 जून को पहले भूटान ने इस सड़क के निर्माण के खिलाफ चीन का विरोध किया, साथ ही भूटान ने अपनी सेना को हाई अलर्ट पर रख कर अपनी सीमा सुरक्षा को बढ़ा दिया. भारत ने भी इस सड़क निर्माण कार्य पर अपनी असहमति जताते हुए इसका विरोध किया है. भूटान के साथ चीन का कोई राजनायिक सम्बन्ध नहीं है, लेकिन भारत के साथ भूटान की आपसी सहमती के साथ ही मैत्रियी सम्बन्ध भी है. भूटान ने इस चीनी आक्रमण के खिलाफ भारत से मदद की मांग भी की है. भारत की असहमति चीन को अच्छी नहीं लगी है, जिस वजह से यह विवाद उत्पन्न हुआ है. दरअसल डोकलाम विवाद भारत के लिए सुरक्षा सम्बंधित समस्या है. यदि भारत इस विवाद में नहीं पड़ता है, तो चीनी सेना भूटान को पछाड़ कर इस स्थान पर अपना कब्जा जमा लेगी. यहाँ पर चीनी सेना आ जाने से वह चीन से यहाँ तक के लिए सड़क तैयार कर लेगी, जिसकी सहयता से उसकी सेनाएं किसी भी समय यहाँ सड़क मार्ग से आ सकेगी. इससे भारत को सबसे बड़ा खतरा ये है कि यहाँ पर चीनी सेना आ जाने से भारत के सिलीगुड़ी क्षेत्र जिसे चिकन नैक भी कहा जाता है, खतरे में आ जायेगा. सिलीगुड़ी कॉरिडोर 27 किलोमीटर में फैला वह स्थान है, जो कि उत्तर पूर्वी भारत के कई हिस्सों को भारत से जोड़ता है. यहाँ पर चीन की घुसपैठ हो जाने से चीन न सिर्फ उत्तरी पूर्वी के '7 सिस्टर स्टेट' को भारत से अलग कर देगा बल्कि उन राज्यों पर भी अपने कब्जे भी जमा सकता है. इसलिए यह भारत के लिए बहुत आवश्यक है।

डोकलाम विवाद पर भूटान ने भारत से लिखित में मदद माँगी. विश्वस्तरीय कानून के आधार पर यदि कोई देश अपने संकटकालीन स्थिति में अपने पडोसी देश से मदद मांगता है, तो पडोसी देश बिना किसी हिचक के अपने पडोसी देश की सहायता कर सकता है।

डोकलाम विवाद से मुक्ति

28 अगस्त 2017 को भारत और चीन ने आपसी सहमति से डोकलाम विवाद पर एक महत्वपूर्ण फैसला लिया। इस विवाद के कारण दोनों सेनाएं डोकलाम की सीमा पर ढाई महीने तक तैनात रही और दोनों ही सेना वहाँ से हटने का नाम नहीं ले रही थी. किंतु इस पर जब दोनों देशों की सरकार द्वारा एक अहम फैसला लिया गया है कि दोनों देशों की सेना अब डोकलाम से वापस बुला ली जायें. इस फैसले के बाद सेनाओं के वापस आने की प्रक्रिया शुरू कर दी गई है. और इस तरह इस विवाद से मुक्ति पाने के लिए यह महत्वपूर्ण फैसला दोनों देशों की सरकार द्वारा लिया गया।. इस विवाद पर भारत की शुरू से ही यह प्रतिक्रिया रही थी। कि यह विवाद युद्ध से नहीं बल्कि व्यवहार कौशल से सुलझाया जाये और अंत में यही हुआ. दोंनों देशों ने आपसी सहमति से यह विवाद सुलझा लिया है और दोनों सेनाओं को वहाँ से हटा दिया।

पेंगोंगत्सो झील

लद्दाख में स्तिथ पेंगोंगत्सो झील की खाशियत है की हिमालय के 14000 फुट से अधिक उचाई पर स्थित है।यह जिल लम्बी सकरी लेडलाक झील है। यह करीब 135 किलोमीटर लम्बी बुमरांग के आकार में 604 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फेली हे यह झील

खारे पानी की है इसलिए इसमें जलीय जीव की प्रधानता नही है, वर्तमान मे झील का हिस्सा करीब 45 किलोमीटर भारत के हिस्से मे है। बाकी का हिस्सा चीन के कब्जे में है। भारत और चीन के बीच इस झील पर पिछले कई समय से तनावपूर्ण स्थिति बनी हुई है। और दोनों देशो की सेनाए आमने सामने खड़ी है। लेकिन भारत किसी भी प्रकार से ढील नही छोड़ना चाहता है क्योकि पैंगोग्त्सो झील के चारो और पहाड़िया हे जिसे फिंगर-4 और फिंगर-8 के नाम से जाना जाता हे फिंगर-4 पर भारत का कब्जा है। 1999 में जब कारगिल की जंग जारी थी, उस समय चीन ने मौके का फायदा उठाते हुए चीन ने भारत की सीमा में झील के किनारे 5 किलोमीटर की सड़क बनाई। इस सड़क के माध्यम से चीन फिंगर-4 पर स्थाई नियंत्रण एवं निर्माण की कोशिश कर रहा है लेकिन भारत के विरोध के बाद निर्माण को रोक दिया। 19 अगस्त, 2017 को पांगोंग झील पर पथराव मारपीट की घटना हुई इसका एक वीडियो वायरल हुआ, जिसमें कथित तौर पर दोनों तरफ के सैनिक झगड़ते दिखे। 9 मई 2018 को नॉर्थ-ईस्ट में सिक्किम के नाकू ला सेक्टर में भारत और चीन के सैनिकों में झड़प हो गई थी जिसमे सैनिक चोटिल हो गए. हालांकि बाद में बातचीत से मसला सुलझा लिया गया. लेकिन ये कोई नई बात नहीं है।

पेंगोंगत्सो झील दोनों देशो के लिए महत्वपूर्ण-

एल ए सी रेखा झील के बीच में होकर गुजरती है चीन इस झील को माध्यम बनाकर भारत पर नियंत्रण करना चाहता है। लेकिन भारत चीन के मंसुम्बो को साकार नही करना चाहता। भारत के सैनिक अब पैंगोंग झील के दक्षिणी किनारे पर ऊंची चोटियों पर बैठे हैं, जबकि चीन की सेना निचले इलाकों में हैद्य पैंगोंग झील के उत्तरी किनारे की तुलना में दक्षिणी किनारे के आसपास की जमीन ज्यादा समतल और चौड़ी हैद्य और ये रास्ता लद्दाख और चुशूल घाटी तक भी भारतीय सेना की पहुंच को आसान बनाता हैद्य ये रास्ता जिन पहाड़ों के बीच से होकर गुजरता है उनकी ऊंचाई 16 हजार फीट तक है और अब भारत के सैनिक इन पहाड़ों की ऊंचाई पर मौजूद हैंद्य

निष्कर्ष

भारत और चीन सम्बन्धो के इतिहास में 1962,1967,1975,2014 के बाद 2017 में सीमा पर हिंसात्मक तनाव पैदा हुआद्य दोनों देशो के बीच सीमा विवाद कोई नई बात नही हैद्य हाल ही में तनाव का गतिरोध का कारण वास्तविक नियंत्रण रेखा के समानन्तर गलवान घाटी , पेंगोंगत्सो झील एवं डोकलाम विवाद हैद्य इस क्षेत्र में भारत द्वारा दोलत बैग ओल्डी सडक का निर्माण चीन को अच्छा नही लग रहा है जबकि चीन भी पिछले कुछ वर्षे से पेंगोंगत्सो झील और अरुणाचल प्रदेश की सीमा पर सडको का निर्माण कर रहा हैद्य जिससे चीनी सैना ने लद्दाख के पेंगोंगत्सो झील में चीनी सैन्य गतिविधिया बढा दी और भारतीयों सैनिको के साथ हिंसात्मक कार्यवाही भी की इसके जवाब में भारत ने भी करारा जवाब दिया बाद में उच्च स्तरीय वार्ता के द्वारा मसले को सुलझा दिया। भारत को आगे आने वाले समय में चौकनना एवं तेयार रहना होगा। भारत को सीमावर्ती क्षेत्रों के विकास सडक निर्माण एवं सैन तेयारियो पर विशेष ध्यान देते हुए चीन के साथ आयात-निर्यात संतुलन भी ठीक करना होगा फिलहाल चीनी धमकियों को भारत ने सैन शक्ति एवं धारदार कूटनीति से परास्त तो कर दिया हैद्य लेकिन भारत को आर्थिक एवं सैन्य स्तर को अधिक शक्तिवर्धक बनना होगा ऐसा होने पर ही हम चीन को भविष्य में रोक पाएँगे।

संदर्भ

1. क्रानिकल मैगजीन सितम्बर, 2017
2. परीजाद, आमिर, (2018) भारत-चीन सीमा विवाद ने बड़ाई लेह में मुश्किलें ग्राउंड रिपोर्ट -bbc.com.in
3. द हिन्दू न्यूज पेपर, 31 अगस्त 2017
4. भारत-भूटान और चीन के बीच डोकलाम विवाद, http\\www.deepawli.com.insept-5-2017-
5. भारत-चीन युद्द, wikkipedia.org\foDdh/भारत-चीन युद्द।
6. (2017), गलवान घटी पर भारत चीन सीमा विवाद bbc.com
7. (2017), द विजन पोंगोंगत्सो झील:भारत-चीन।

सेकुलरवाद के भारतीय स्रोत

डॉ॰ आलोक कुमार श्रीवास्तव

सह-आचार्य एवं शैक्षणिक समन्वयक, हरिदेव जोशी पत्रकारिता और जनसंचार विश्वविद्यालय, जयपुर

सेकुलरवाद अपने समसामयिक रूप में निश्चय ही एक पश्चिमी अवधारणा है। धर्म के प्रति उसका रवैया आलोचनात्मक आदर का है। भारत के संविधान में इसे सूत्रबद्ध करते हुए 'भारतीय नवाचार' से आवेशित किया गया है, विशेषत: राज्य-धर्म विच्छेद के संबंध में 'उसूली फ़ासले का सिद्धान्त' अपनाया गया है। मगर यह संविधानसम्मत सेकुलरवाद भारत में समाजीय वैधता तभी अर्जित कर पाएगा, जबकि यह भारत की राजनीति, चिंतनधारा एवं संस्कृति की परंपराओं से पुष्ट और सुसंगत हो। भारत में राज्य और धर्म के संबंधों का स्थापत्य एकतरफ़ा प्रभुत्व का नहीं है, बल्कि दोनों के संबंध द्वंद्वात्मक हैं। धर्म का समाज में बड़ा वर्चस्व रहा है, मगर राज्य ने भी अपने दृढ़ीकरण के लिए धर्म का उपयोग करते हुए उसका नियमन किया है। चिंतन-परंपरा में भी सेकुलरवाद को सींचने के अनुरूप प्रभावशाली भौतिकवादी, इहलौकिक एवं मानववादी धाराएँ विद्यमान रही हैं। निश्चय ही सेकुलरवाद के आज जैसे प्रतिमान ज्यों के त्यों हमारी परंपरा में ढूंढ़ना उचित नहीं है, मगर उसकी भाव-वस्तु पूरी मुखरता और गहराई के साथ भारतीय राजनीति और चिंतन की परंपरा में विद्यमान रही है। इसे ही इतिहासकार रोमिला थापर ने 'आद्य-सेकुलरवाद' कहा है। इस पीठिका पर सेकुलरवाद अपने भारतीय स्वरूप में पल्लवित होता रहा है।

मूल शब्द :

उसूली फ़ासला, राजधर्म, धम्म, भौतिकवाद, प्रत्ययवाद, आद्य-सेकुलरवाद

.....

भारत में सेकुलरवाद भारतीय राष्ट्र-राज्य को विकसित करने के प्रयास का अभिन्न अंग है। यह वैयक्तिक अभिवृत्ति से जुड़ी एक व्यष्टिगत अवधारणा है, जिसका विस्तार सामाजिक मनोवृत्ति एवं राजनीतिक गठन के समष्टिगत क्षेत्र तक है। यह एक विस्तृत समस्या-समुच्चय है, जिसके पार्श्व में व्यक्ति, राज्य, संस्कृति, जातीयता (नेशनेलिटी), राष्ट्रवाद, आर्थिक विन्यास, सांस्कृतिक भूगोल एवं सामाजिक न्याय से जुड़े अनेक मुद्दे समाहित हैं।

सेकुलरवाद अपने आधुनिक रूप में निस्संदेह पश्चिमी अवधारणा है, जो पुनर्जागरण (रेनेसां) एवं धर्मसुधार से प्रबोधन (एनलाइटनमैंट) तक की पश्चिम की विशिष्ट परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ तथा प्रभुसत्ताधारी राष्ट्र-राज्य, विवेकीकृत समाज एवं पूंजीवादी बाज़ार के साथ विकसित हुआ। व्यष्टि स्तर पर सेकुलरवाद किसी सामाजिक इकाई के विश्व-दृष्टिकोण को इंगित करता है। प्रत्येक सामाजिक इकाई जब अपने सामाजिक अस्तित्व के क्षेत्र का निर्माण करती है, तो वह अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर ही ऐसा करती है। ऐहिकीकरण की इस प्रक्रिया में सेकुलरवाद मतांधता, संकीर्णभाव एंव पूर्वग्रहों से व्यक्ति की उन्मुक्ति का रेखांकन है, ताकि धार्मिक बद्धमूलता से स्वतंत्र रहकर वह विवेक और अंत:करण के उद्बुद्धीकरण द्वारा निरन्तर सत्यान्वेषण कर सके। अतएव, व्यष्टि स्तर पर सेकुलरवाद की अवधारणा दार्शनिक निरपेक्षवाद के विरुद्ध अंतकरण की उन्मुक्ति के अर्थ में संस्थापित हुई। उल्लेखनीय है कि पश्चिम में ऐतिहासिकत: दार्शनिक निरपेक्षवाद का स्रोत चर्च था, जो व्यक्ति के चेतना-स्वातंत्र्य का सुसंगठित दमन करता था। अत: पश्चिम में दार्शनिक निरपेक्षवाद के विरोध में सेकुलरवाद ने साक्ष्याधारित ज्ञान से आवेशित विवेकवाद (रेशनलिष्म) और नास्तिकता का रूप ले लिया। किंतु, मुक्त चिंतन पर आधारित होने के कारण सेकुलरवाद मूलत: अध्यात्म और धार्मिकता के विरुद्ध नहीं है, जो निरन्तर सत्यान्वेषण एवं प्रश्नाकुलता की ओर लक्ष्यित हैं।

समष्टि स्तर पर सेकुलरवाद की अवधारणा पश्चिम में राष्ट्र-राज्य के निर्माण-प्रयासों का अंग रही है। मध्ययुग में सामंतवादी अर्थव्यवस्था के समांतर पश्चिम में राज्य का स्वरूप भी धर्मतांत्रिक था, जिसकी सत्ता का वैधीकरण चर्च द्वारा किया जाता था। व्यापारिक पूंजीवाद के विकास के साथ जिस अंतरप्रादेशिक बाज़ार का निर्माण हुआ, उसके अनुरूप पश्चिम में ज़रूरत प्रभुसत्ताधारी राष्ट्र-राज्य की थी, जो सामंती अराजकता से उदीयमान पूंजीवाद को सुरक्षा दिलवाए। इस क्रम में यह ज़रूरी था कि सामंतवाद व धर्मतंत्र के विचारधारा-निरूपक चर्च को भी राष्ट्र-राज्य की प्रभुसत्ता द्वारा नियंत्रित किया जाए। तदनुसार नवोदित राष्ट्र-राज्य की सत्ता का वैधीकरण चर्च द्वारा नहीं किया जा सकता था। अतएव, इस वैधीकरण के लिए धर्म और पारलौकिकता से स्वतंत्र मानववादी-इहलौकिक विचारणा का अवगाहन किया गया और इसे सेकुलरवाद के रूप में सूत्रबद्ध किया गया।

इस संबंध में प्रसिद्ध समाजविज्ञानी अभय कुमार दुबे का यह कथन समीचीन है, ''सेकुलरवाद आग्रह करता है कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था संस्थागत धार्मिक प्रभुत्व से पूरी तरह मुक्त होनी चाहिए। धर्म के उत्पीड़नकारी, निरंकुश, विज़मतामूलक और बहिर्वेशनकारी पहलुओं का विरोध करने के लिए सेकुलरवाद को अक्सर धर्म का ही विरोध करने की हद तक जाना पड़ता है। लेकिन वह अनिर्वायत: धर्म का उन्मूलन करने की अपील करने वाली विचारधारा नहीं है। वह धर्मों की स्वतंत्रता, धर्म से स्वतंत्रता, धर्मों की आपसी समानता और आस्तिकों व नास्तिकों के बीच समानता की वकालत करता है। इससे स्पष्ट होता है कि सेकुलरवाद धर्म के उदात्त और आध्यात्मिक पहलुओं के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया नहीं अपनाता। उसका रवैया धर्म के प्रति आलोचनात्मक आदर का है।'' (दुबे, ए. 2013 : 2088) इस प्रकार सेकुलरवाद तत्वत: मनुष्य की चेतना की उन्मुक्ति का दर्शन और अभ्यास है तथा इसके अनुरूप राजनीतिक बंदोबस्त है। यह साम्प्रदायिकता, मतांधता और सर्वाधिकारवाद के विरुद्ध है। किन्तु यह सेकुलरवाद का निषेधात्मक पहलू हुआ। उसका सकारात्मक पहलू भी है। यह सांस्कृतिक बहुलवाद, मूलगामी लोकतंत्र, संघवाद, सामाजिक न्याय, आर्थिक विकेन्द्रीकरण, जेंडर न्याय आदि के साथ फलीभूत होता है।

सेकुलरवाद की अवधारणा को भारत के संविधान में सूत्रब) करते हुए संविधान सभा ने न केवल बहुसंख्यकवादी आग्रह का प्रतिकार किया, बल्कि पश्चिमी मॉडल का भी भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप नवाचार किया। सेकुलरवाद को हिन्दू धर्म की आंतरिक बहुलता, सहिष्णुता और विविधता में रूपांकित करने की बहुसंख्यकवादी मांग को ठुकराते हुए संविधान में सभी धर्मों के अनुयायियों के लिए धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की समान हकदारी प्रदान की गई है। यह भी सुनिश्चित किया गया है कि नागरिकता का आधार धर्म नहीं है। तदनुसार राज्य अपने नागरिकों से उनके धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। ये दोनों उपाय पश्चिमी मॉडल के अनुरूप हैं, मगर इन्हें भारतीय नवाचार से आवेशित किया गया है। भारत का संविधान धर्म को पश्चिम की भाँति केवल निजी मसला नहीं मानता, अनुच्छेद 26 से 28 में धर्म की सामूहिक स्वतंत्रता भी सुनिश्चित की गई है। इसी प्रकार धर्म के संबंध में समान नागरिकता को अनुच्छेद 29 एवं 30 में समरूपता के बजाय बुद्धिसंगत-विभेदीकृत बर्ताव के रूप में संस्थापित किया गया है, ताकि अल्पसंख्यकों को विशेष अवसर एवं संरक्षणात्मक विभेदन द्वारा मुख्यधारा के साथ जोड़ा जा सके।

इस क्रम में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नवाचार राज्य-धर्म विच्छेद के संबंध में है। भारत में पश्चिमी मॉडल की इस विशेषता को अपनाने के बजाय 'उसूली फ़ासले का सिद्धान्त' विकसित किया गया है। (भार्गव, आर. एवं आचार्य, ए. 2011 : 287-292) भारतीय राज्य सामाजिक कल्याण और धर्मसुधार के लिए किसी धर्म और धार्मिक समुदायों के मामले में हस्तक्षेप कर सकता है। यह हस्तक्षेप मूल्य-आधारित होगा तथा सभी धर्मों के साथ एकरूप नहीं, संदर्भानुसार विभेदकारी होगा। बल्कि अनुच्छेद 25 तो इस संबंध में एक क्रांतिकारी प्रावधान करता है। यदि कोई धार्मिक आस्था और आचरण 'नैतिकता' ख्डवतंसपजल, के विरुद्ध है, तो राज्य उसका नियमन कर सकता है। सामान्यत: आस्तिकता को नैतिकता का प्रतिमान माना जाता है, मगर हमारा संविधान यह प्रस्तावित कर रहा है कि यह संभव है कि कोई धार्मिक आस्था या आचरण 'अनैतिक' हो! इस अनैतिक किन्तु धर्मसम्मत आस्था/आचरण को दुरुस्त करने के लिए राज्य हस्तक्षेप करेगा। यहाँ उसकी मार्गदर्शक विचारधारा सेकुलरवाद, विशेषत: उसके सकारात्मक गुणधर्म से आवेशित होगी।

निश्चय ही सेकुलरवाद का उद्गम पश्चिम में हुआ और भारतीय राष्ट्र-राज्य को बहुलतावाद के देहधारण में समर्थ बनाने हेतु इसे लोकतंत्र और संघवाद के साथ-साथ विकसित और रूपांतरित किया गया है। इसके पश्चिमी उत्स के कारण इसे हिन्दुत्ववादियों

द्वारा सर्वथा अभारतीय करार दिया जाता है, जिसका भारतीय परम्परा में कोई आधार नहीं है। यदि सेकुलरवाद परम्परा-पुष्ट नहीं है, तो यह सामाजिक वैधता अर्जित नहीं कर पाएगा। इस वैधता के अभाव में यह कुछ मुट्ठी भर बुद्धिजीवियों का वाग्विलास बनकर रह जाएगा।

चाहे विद्यमान समाज-व्यवस्था को बदलना हो या उसे अधिक कुशलता व न्यायशीलता के साथ संचालित करना हो, ऐसा व्यवस्था के संरचनागत पहलुओं के साथ-साथ वैयक्तिक चेतना में भी अपेक्षित परिवर्तन के माध्यम से ही किया जा सकता है। यह परिवर्तन जनसाधारण के स्तर पर 'ज्ञानयुक्त कार्रवाई' (एक्शन विद नॉलेज) द्वारा ही किया जा सकता है। यह कार्रवाई ज्ञानयुक्त और जन-सहभागी तभी होगी, जबकि उस समाज की परम्पराओं से सुसंगत हो। आर्थिक ढाँचे से अपनी सापेक्ष स्वाधीनता के बल पर ये परम्पराएँ ही व्यक्ति और समाज के मनोगठन को रूपायित करती हैं। अत: सेकुलरवाद के लिए भी यह आवश्यक है कि वह भारतीय समाज की परम्पराओं से सुसंगत हो।

ध्यातव्य है कि सेकुलरवाद अपने समसामयिक अर्थ में, पश्चिम में उत्पन्न एक आधुनिक अवधारणा है। अत: भारत के अतीत में इसके यथारूप प्रतिमान ढूंढ़ना एक निज़ल प्रयास होगा। मगर, इसकी कड़ी परीक्षा अवश्य करनी होगी कि क्या भारत की राजनीति, चिंतनधारा और संस्कृति अतीत में सेकुलरवाद से सर्वथा अनभिज्ञ थे?

भारत में राज्य, राजनीति और धर्म के पारस्परिक संबंधों का ऐतिहासिक विवेचन सेकुलरवाद की राजनीतिक परम्परा को समझने की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। हड़प्पा संस्कृति (2500 ई. पू. से 1700 ई. पू.) से लेकर वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, प्राङ्-मौर्य काल, मौर्य काल, शक-सातवाहन काल, गुप्त चालुक्य काल, पूर्व-मध्यकाल, उत्तर-मध्यकाल तथा औपनिवेशिक काल के दौरान अलग-अलग चरणों में कभी राज्यसत्ता ने लौकिक प्रयोजनों के लिए धर्म का इस्तेमाल किया(कभी धर्म और राज्यसत्ता, दोनों ने एक-दूसरे का इस्तेमाल किया। लेकिन कहीं भी, मध्यकाल में भी, कोई केन्द्रीकृत धार्मिक प्रतिष्ठान नहीं रहा, जो राज्यसत्ता को संचालित या निर्धारित करे।

प्राय: यह कहा जाता है कि भारतीय राज्य का स्वरूप सदैव धार्मिक रहा है और धर्म ने जनजीवन के अन्य निकायों की भाँति राज्य का भी स्वरूपण किया है-उन्हें एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। निश्चय ही प्राचीन काल और माध्यकाल में धर्म का मनुष्य की चेतना पर वर्चस्व रहा है। इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि प्रारम्भिक काल में यह कोई संहिताब) धर्म-मत नहीं था। तब धर्म का तात्पर्य सद्गुणों, नैतिक संहिता और कर्त्तव्य से था। इस धर्म का कोई सार्वभौमिक अर्थ नहीं था। यह माना जाता है कि प्रत्येक देश-काल-वातावरण की अपनी तर्कणा होती है, जिसके परिप्रेक्ष्य में धर्म-अधर्म का निर्धारण किया जाता है। महाभारत में लिखा है :

''भवत्वधर्मो धर्मो हि धर्माधर्मावुभावपि।

कारणाद्देश्यकालस्य देशकाल: त तादृश:।।'' (शांति पर्व, 79/31)

अर्थात् देश-काल का ऐसा प्रभाव होता है कि एक ही काम एक समय में धर्म हो सकता है और समय बदलने पर अधर्म भी बन सकता है। (शर्मा, आर. 1990 : 11)

इसीलिए राजधर्म न सिर्फ़ अन्य धर्मों से अलग था, वरन उसका कोई सार्वभौमिक रूप भी नहीं था। फिर, उत्तर-मध्यकाल में जब मुस्लिम सुलतान एवं बादशाह सत्तारूढ़ हुए, तो यह स्पष्ट कर दिया गया कि शरीयत केवल मुस्लिम प्रजा के लिए है। गैर-मुस्लिम भारतीयों के मद्देनज़र चूंकि शरीयत नहीं लिखी गई, इसलिए यह उन पर लागू नहीं है। वरन जवाबित के रूप में राज्यकृत कानून लागू किए गए। (चंद्र, एस. 1982 : 68)

फिर, राजधर्म अन्य धर्मों से अलग ही नहीं था, वरन वह व्यक्ति के अन्य धर्मों से उच्चतर भी था। शांति पर्व में लिखा है-''सभी धर्म राजधर्म में समाहित हैं, ख़्र. राजधर्म सभी धर्मों के शीर्ष पर है। (चक्रवर्ती, वी. 1990 : 110) मध्ययुगीन इतिहास के एक प्रसिद्ध अध्येता ने राजधर्म की सर्वोच्चता को प्रमाणित करते हुए लिखा है :

''अलाउद्दीन खिलजी ने भी धार्मिक नेताओं से साफ तौर से कहा था कि उसके द्वारा बनाए गए कानून सल्तनत के हितों के अनुसार हैं। वह यह नहीं जानता कि ये कानून शरीयत के अनुरूप हैं या नहीं या फिर इमामों की नजर में कानूनी है अथवा गैर-कानूनी।'' (चंद्र, एस. 1982 : 81)

यहाँ तक कि औरंगजेब जैसे रूढ़िवादी शासक ने भी लिखा है कि ''सांसारिक मामलों में धर्म का क्या स्थान? और धर्म के मामले में धर्मान्धता का क्या स्थान? तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिए है और मेरा मेरे लिए।'' (चंद्र, एस. 1982 : 90)

स्मरणीय है कि धर्म और राज्यसत्ता का सम्बन्ध भी एकपक्षीय नहीं, वरन द्वन्द्वात्मक रहा है। राज्य ने भी पूर्व में जन-चेतना पर धर्म के प्रभाव को देखते हुए अपने गैर-धार्मिक प्रयोजनों के लिए प्राय: धर्म का एक साधन के रूप में प्रयोग किया है। आचार्य रामशरण शर्मा के अभिमत में चन्द्रगुप्त मौर्य (322 ई.पू. से 298 ई.पू.) की राज्य व्यवस्था के बारे में लिखित कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं -

''एक तो यह कि कौटिल्य वर्णित राज्य प्रारम्भिक विधि ग्रन्थों में प्रतिपादित ब्राह्मण विचारधारा का रक्षक है। - कौटिल्य का राज्य पुरोहित सत्ता का अनुयायी नहीं है। कारण वह राज्यसत्ता की नींव को कमज़ोर बनाने वाले ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर धार्मिक रीति-रिवाजों की न केवल उपेक्षा करके चलता है, बल्कि उनका दमन भी करता है। यह दूसरी प्रवृत्ति है। तीसरी प्रवृत्ति यह है कि कौटिल्य राज्य के हितसाधन के निमित्त ख्र जनसाधारण के अज्ञान और अन्ध-विश्वास से लाभ उठाते प्रतीत होते हैं।'' (शर्मा, आर, 1990 : 263)

इसी प्रकार अशोक (273 ई.पू. से 232 ई.पू.) ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए राजकोज़ का उपयोग किया, किन्तु ''उसने धम्म को औपचारिक धार्मिक विश्वासों द्वारा प्रेरित शुभकर्म करने से उत्पन्न धार्मिकता के रूप में नहीं बल्कि, सामाजिक उत्तरदायित्व की एक वृत्ति के रूप में देखा।'' (थापर, आर. 1985 : 63) इस प्रकार यह 'धम्म' न तो कोई रूढ़िवादी धर्म था और न ही कोई निरपेक्ष शांतिवाद, वरन यह साम्राज्य के दृढ़ीकरण की व्यावहारिक नीति थी। धम्म के द्वारा अशोक ने कबीलाई जनगणों एवं सीमावर्ती राज्यों को आवासी कृषि-जीवन की गांगेय संस्कृति में संक्रमण के लिए वैचारिक रूप से आकृष्ट किया। पूर्व-मध्यकाल में पाल-प्रतिहार-राष्ट्रकूट एवं अन्य राज्यों ने व्यापार-वस से उत्पन्न आर्थिक संकट एवं तज्जन्य सामाजिक संकट का मुकाबला करने के लिए ब्राह्मणों व बौद्ध-विहारों को भूमि-अनुदान दिए। धार्मिक अनुदानभोगियों ने प्रतिदान में परती क्षेत्रों में कृषि-विस्तार किया तथा राजतंत्र का वैधीकरण किया। दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक सुलतानों ने विदेशी शासक होने के कारण कट्टर धार्मिक नीति अपनाई, लेकिन स्थिरीकरण के साथ ही अलाउद्दीन खिलजी एवं मुहम्मद तुगलक जैसे शक्तिशाली सुलतान आए, जिन्होंने धर्म का उपयोग राज्यसत्ता के लिए किया। बहमनी सुलतानों एवं विजयनगर के शासकों ने राजनीतिक कारणों से परस्पर विवाह किए। शेरशाह सूरी ने मालवा शासक को युद्ध में दिए धोखे का औचित्य इमाम द्वारा धार्मिकत: स्थापित किया। बाबर ने खानवा की लड़ाई (1527 ई.) में अपनी फ़ौज को एकसूत्रबद्ध करने तथा साँगा की ओर से लड़ रहे अफ़गानों को प्रभावित करने के लिए जेहाद का नारा दिया। औरंगजेब (1658 ई. से 1707 ई.) अपने पिता व भाईयों के साथ किए गए दुर्व्यवहार को छिपाने के लिए कट्टर सुन्नी मुसलमान जैसा व्यवहार करता था, लेकिन उसने अपने लड़कों को सफ़ी मत अपनाने से नहीं रोका। 22 वर्षों तक धर्म के मामले में शाहजहाँ वाली नीति अपनाने के बाद ''जज़िया कर पुनरारोपण मुख्य रूप से दक्खन की बिगड़ती हुई स्थिति के कारण गहराते राजनीतिक संकट का प्रतीक थी।'' (हबीब, इ. 1990 : 82) हालांकि उसके बाद हिन्दू सरदारों की संख्या बढ़कर 33 प्रतिशत हो गई जबकि वह शाहजहाँ के शासनकाल में 24.9 प्रतिशत थी। (चंद्र, एस. 1982 : 98) पिता के जीवित रहते हुए सम्राट बनने के लिए औरंगजेब ने काज़ी का सहारा लिया था, परन्तु दक्खन की मुस्लिम रियासतों के विरुद्ध युद्ध में काज़ियों द्वारा जेहाद का फतवा न दिए जाने पर उन्हें बर्खास्त भी उसी ने किया था। वस्तुत: जैसा कि आचार्य रामशरण शर्मा ने लिखा है:-

''इतिहास बतलाता है कि शासक वर्ग चाहे किसी भी धर्म के रहे हों, उनका यह विशेषाधिकार रहा है कि वे अपनी प्रजा को और अपने दुष्ठमनों को लूटें, उनका उत्पीड़न करें और जो मालमत्ता मिले, उसकी मुख्यत: शासक वर्ग के ऊपरी तबकों के सदस्यों के बीच बँदरबाट कर लें।'' (शर्मा, आर. 1990 : 11)

इसीलिए महमूद गज़नवी ने यदि सोमनाथ का मंदिर लूटा, तो ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में कष्ठमीर के शासक हर्ष ने एक अधिकारी देवोत्पाटन नियुक्त किया, जिसका काम मूर्तियों को ध्वस्त करना था, ताकि उन्हें गलाकर राजकोज़ को भरा जा सके।

स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन में धर्म के वर्चस्व के युग में भी भारतीय राज्य की परम्परा अपने दृढ़ीकरण के लिए उसके इस्तेमाल की अधिक रही। ऐसे में अब जबकि सामाजिक जीवन में धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का प्राधान्य हो चला है, तब विभिन्न धर्मों के प्रति राज्य के उसूली फासले का सिद्धान्त सर्वथा उचित व परम्परासंगत है।

एक अन्य परम्परा, जिस पर हम बल देना चाहेंगे, अर्थव्यवस्था के संक्रमणकाल में राज्य की भूमिका से सम्बद्ध है। मौर्यकाल (325 ई.पू. से 200 ई.पू.) के प्रारम्भ में भारत की अर्थव्यवस्था पशुचारण से कृषि के संक्रमण-दौर में थी। तब अर्द्ध-घुमक्कड़ जीवन से कृषि-आधारित आवासी जीवन में पूर्ण व निर्णायक रूपान्तरण करने में राजतंत्र ने नेतृत्व करते हुए व्यापक आर्थिक गतिविधियों का गहन नियमन किया। नई भूमि पर बड़े-बड़े सरकारी कृषि फार्म खाले गए और उनमें दासों व भाड़े के मजदूरों को नियोजित किया गया। कृषि-प्रसार के लिए गंगा-घाटी की उच्च भौतिक संस्कृति के तत्त्वों-लोहे के कृषि औजार, धान रोपाई, एन.बी.पी. मृदभाण्ड, घेरेदार कुएँ, पक्की ईंटें, आहत सिक्के आदि-को राज्य और उसके संरक्षण में पुरोहितों, भिक्षुओं, श्रमणों व व्यापारियों ने सीमावर्ती कबीलाई इलाकों में प्रचारित व प्रोत्साहित किया। खनन उद्योग, शराब की बिक्री, हथियारों के निर्माण आदि पर राज्य का एकाधिकार था। राज्य ने व्यापारिक मार्गों की कड़ी सुरक्षा व सिंचाई का पक्का प्रबन्ध किया। साथ ही, इस दौर में राज्य की मार्गदर्शक विचारधारा अपनी सत्ता के दृढ़ीकरण के लिए धर्म के इस्तेमाल की रही-जो अशोक के सहिष्णुतावादी 'धम्म' में प्रतिबिम्बित भी हुई। धर्म का यह प्रयोग कालगतबाध्यता थी, क्योंकि समाज की प्रकृति तत्समय मुख्यत: धर्मिक थी और और धर्म की अधीनता से मुक्त किसी सेकुलर राज्य का संचालन संभव नहीं था। पुन: 7वीं शताब्दी में व्यापार के अपकर्ष के चलते अर्थव्यवस्था में जो संकट आया, उसकी क्षतिपूर्ति कृषि-प्रसार से करने के लिए राज्यों ने परती क्षेत्रों में भरपूर भूमि अनुदान दिए और इसमें मंदिरों-विहारों एवं ब्राह्मणों-भिक्षुओं-श्रमणों के प्रति राज्यों ने कोई भेदभाव नहीं किए। इस प्रकार फिर संक्रमणों दौर में राज्य ने नेतृत्व लेकर अर्थव्यवस्था का सामंतवादी रूपान्तरण किया।

16वीं से 18वीं शताब्दी तक भारतीय अर्थव्यवस्था सामंतवाद से व्यापारिक पूंजीवाद में संक्रमण के क्रम में थी। सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर धार्मिक एकीकरण व समन्वय का वातावरण भी मौजूद था। किन्तु राज्य व्यापारिक पूँजीवाद के पक्ष में निर्णायक रूपान्तरण का नेतृत्व नहीं कर सका, अत: सामंती विघटन चलता रहा, जिससे ब्रितानी शासकों को अपना प्रभुत्व स्थापित करने का अवसर मिल गया।

इस परम्परा में, स्वातंत्र्योत्तर भारत में कृषि-अर्थव्यवस्था के रूपान्तरण में राज्य का नेतृत्व आवश्यक था। यह राज्य विभिन्न धर्मों के साथ 'उसूली फ़ासले की नीति' अपनाते हुए उनमें हस्तक्षेप करेगा, ताकि उन्हें बहुलतावादी राष्ट्र-निर्माण के अनुरूप समायोजित किया जा सके।

भारत की चिंतन परम्परा से ऐसे कई महत्त्वपूर्ण सूत्र मिलते हैं, जिनसे आज के परिप्रेक्ष्य में सेकुलरवाद का पक्षपोषण किया जा सकता है। सेकुलरवाद को पश्चिम में भौतिकवाद का रूप मानते हुए, इसे भारत के लिए अनुपयुक्त सिद्ध करने के लिए भारतीय चिंतन परम्परा को प्राय: अनन्य रूप से प्रत्ययवाद के साथ समीकृत कर दिया जाता है। यह भ्रांत धारणा निर्मित की गई है कि विभिन्न दार्शनिक प्रणालियाँ अ)ैत वेदांत के शीर्ष दार्शनिक सत्य तक पहुँचने की सीढ़िया मात्र थीं। ऐतिहासिक विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि भौतिकवाद भारत में चिंतन की एक प्रमुख धारा था, अन्य प्रत्ययवादी चिंतन धाराओं में भी प्रबल भौतिकवादी तत्व थे तथा वेदांत सहित प्रत्ययवाद इहलौकिकता से पलायन करने वाली जीवन-निषेधी विचारधारा नहीं है।

भारत में बर्बरावस्था तक तो धर्म और दर्शन अपने मान्य अर्थों में मौजूद ही नहीं थे। अपने भौतिक अस्तित्व के संघर्ष में जुटे हुए इस युग के लोग एक स्वत: स्रूर्त भौतिकवादी दृष्टिकोण से संचालित थे। फिर ;ग्वैदिक काल में दार्शनिक चिन्तन की पहली चिंगारी प्रस्फुटित हुई, जिसमें सहज भौतिकवाद और सहज प्रत्ययवाद का सूक्ष्म सम्मिश्रण मौजूद था। इस संदर्भ में ;ग्वेद के 10वें मण्डल का 129 वां सूक्त विशेष दार्शनिक महत्त्व का है, जिसे नासदीय सूक्त कहा जाता है। इस सूक्त का भावार्थ ऐसा है कि राधाकृश्णन, मैक्समूलर आदि इसे वस्तुनिष्ठ प्रत्ययवाद की पराकाष्ठा मानते हैं, किन्तु सामाजिक-ऐतिहासिक विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि यह स्वत: स्फुट भौतिकवाद एवं द्वन्द्ववाद के प्रबल तत्वों के साथ एक यथार्थवादी रचना है। वास्तव में जैसा कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है:-

''ऋग्वैदिक स्तुतियाँ अस्तित्व के प्रति आश्चर्य और श्रद्धा की उन लोगों की सामूहिक प्रतिक्रिया की काव्यात्मक वसीयत हैं, जिसकी कल्पना सभ्यता के उस काल में अत्यन्त शक्ति सम्पन्न और अकृत्रिम थी तथा जो जीवन में निहित अज्ञेय रहस्य की भावना से अभिभूत थे।.. और रहस्यमयता की भावना उसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के बोझ के नीचे दबाती नहीं थी बल्कि और भी सम्मोहक बना देती थी।'' (थापर, आर. 1975 : 37)

फिर, उत्तर-वैदिककाल में उपनिज़्दों में दर्शन का वास्तविक विकास निरुपित हुआ। उपनिषद मुक्त एवं निर्भीक जिज्ञासाजन्य चिन्तन के दस्तावेज हैं। किन्तु ये किसी एक ही दर्शन का सुसंगत प्रतिपादन नहीं करते, वरन् कई दार्शनिक धाराएँ इनमें से निसृत होती हैं। निश्चय ही प्राधान्य प्रत्ययवादी विचारों का है, किन्तु भौतिकवाद भी यहाँ-वहाँ अस्पष्ट रूप में प्रकट हुआ है, और इससे ये दार्शनिक भ्रांति में भी पड़ जाते हैं। वस्तुत: ''ये दार्शनिक सच्चे सत्यान्वेज़ी थे। ख़्र. उपनिषद इनकी बौद्धिक दृष्टि की तीव्रता, ज्ञान की उनकी पिपासा और जीवन तथा उसके अंतिम लक्ष्य को जानने की उनकी अदम्य आकांक्षा के साक्षी हैं।'' (थापर, आर. 1975 : 50) इस प्रकार प्रारम्भिक मंजिलों में प्रधान भारतीय चिन्तन न तो प्रत्ययवादी था और न अन्तदर्शी, वरन यह जागतिक दुखों पर विजय के लिए प्रेरित करने वाला एक आशावादी एवं जीवनोन्मुखी दर्शन था।

प्राड्.-मौर्यकाल से सम्पूर्ण प्रणाली के रूप में दर्शनों का जो विकास हुआ, उसमें भौतिकवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। बुद्ध-महावीर के समय पुरान कास्सप, मखलि गोसाल, अजित केश कंबलिन, पकिथ कच्चायन, निगण्ठ नतपुत्त, संजय वेलथि पुत्त आदि करीब 62 विपथगामी विचारक थे। ये विचारक भौतिक पदार्थ को मूल तत्व और चेतना को उसका उत्पाद बताने वाले आद्य-भौतिकवादी थे, जिन्होंने ब्राह्मणधर्मीय कर्मकाण्डों एवं उनके अन्तर्निहित सिद्धान्तों की कटु शब्दों में आलोचना की।

इन्हीं भौतिकवादी विचारणाओं में से चार्वाक दार्शनिकों ने एक सुसम्बद्ध प्रणाली के रूप में लोकायत दर्शन का प्रतिपादन किया। यद्यपि इस दर्शन के मूलग्रन्थ को खोजा नहीं जा सका है और वह केवल खण्डनों के रूप में उपलब्ध है, किन्तु जिस तरह से 15वीं शती में माध्वाचार्य ने इसका कटुता से विकृतीकरण किया है, उससे जनता में एक लम्बे समय तक विद्यमान इसके गहरे प्रभाव का बोध होता है। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है :-

''इस बारे में शक की कोई गुंजाइश नहीं कि भौतिकवादी दर्शन का भारत में सदियों तक प्रचलन रहा है और एक समय तो जनता पर उसका बहुत ही शक्तिशाली प्रभाव था। ख़्र अर्थशास्त्र में, जिसकी रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुई थी, यह कहा गया है कि यह दर्शन भारत के सर्वप्रमुख दर्शनों में से एक था। ख़्र संभवत: भारत में भौतिकवाद पर अधिकांश साहित्य को बाद के काल में पुरोहितों ने तथा रुढ़िवादी धर्म में यकीन करने वाले दूसरे लोगों ने नष्ट कर दिया था।'' (नेहरू, जे. 1960 : 127-128)

ब्राह्मणवादी विधि-विधानों की निरर्थकता को सिद्ध करते हुए चार्वाक पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु, इन चार भौतिक तत्वों को मूलभूत द्रव्य मानते थे और ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करते थे। प्रकृति की सभी भौतिक एवं आध्यात्मिक परिघटनाएँ इन्हीं तत्वों के संयोग का परिणाम है। निश्चित परिस्थितियों में अचेतन तत्वों के एक विशेष प्रकार के अस्थायी सम्मिश्रण से चेतना पैदा होती है। के. दामोदरन लिखते हैं :

''आधुनिक वैज्ञानिक भौतिकवाद की दृष्टि से देखने पर दर्शन की हमारी यह प्राचीन लोकायत प्रणाली स्पष्ट ही, अनेक त्रुटियों से भरी थी। ख़्र तो भी इसमें कितने ही प्रांजल विचार थे, जिन्होंने सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। ख़्र उसने दरअसल, न केवल परिकल्पना के महान सृजनात्मक प्रयासों के लिए बल्कि जनता की भौतिक खुशहाली और सांस्कृतिक प्रगति के लिए भी, रास्ता तैयार किया। ख़्र. कोई आश्चर्य नहीं कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकुमारों को निर्देश दिया गया कि वे सांख्य और योग प्रणालियों के साथ-साथ लोकायत दर्शन का भी अध्ययन करें।'' (थापर, आर. 1975 : 117)

दूसरी नास्तिक दर्शन प्रणालियों-बौद्ध एवं जैन-में स्थापित व्यवस्था के साथ तमाम समझौतों के बावजूद प्रभावशाली भौतिकवादी तत्व मौजूद थे। बौद्ध-दर्शन का आधार प्रतीत्य-**समुत्पाद** का सिद्धान्त था, अर्थात् यह सिद्धान्त कि भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत की प्रत्येक परिघटना अपनी उत्पत्ति के लिए किसी दूसरी परिघटना की विलुप्ति पर आश्रित होती है-सर्वत्र एवं सदैव कार्य-कारण का नियम लागू होता है-समस्त अस्तित्व एक नैरंतर्ययुक्त प्रवाह है, और यह तत्वों से उत्पन्न है। तदनुसार यह मूलत: एक क्षणवादी, द्वन्द्ववादी, अनात्मवादी एवं अनीश्वरवादी दर्शन था।

जैन दर्शन की विश्वदृष्टि **अनेकान्तवाद** (अर्थात् परमार्थसत् में उत्पत्ति, स्थायित्व एवं विनाश, तीनों प्रक्रियाएँ चलती हैं, और वस्तुएँ द्रव्य के रूप में नित्य हैं, लेकिन गुणों के रूप में वे उत्पत्ति-विनाशवाली होती हैं) की थी, जिसके साथ **स्याद्वाद** (अर्थात् ज्ञान एक सापेक्ष गुण है) एवं **सप्तभंगी नय** (अर्थात् सात प्रकार के वक्तव्यों द्वारा वस्तुओं का स्वरूप-निरूपण) के तर्कशास्त्रीय सिद्धान्त जुड़े थे। उनका जीव-अजीव एवं परमाणुवाद का सत्तामीमांसीय सिद्धात भी प्रबल भौतिकवादी आग्रहों से युक्त था।

उपर्युक्त तीन भौतिकवादी धाराओं के अलावा जो प्रत्ययवादी दार्शनिक सम्प्रदाय थे, उनमें से अनेक में भी भौतिकवादी रुझान दृष्टिगोचर होता है। वस्तुत: सांख्य-दर्शन तो मूलत: अनीश्वरवादी एवं भौतिकवादी ही था। वह समस्त विश्व के अस्तित्व एवं विकास की व्याख्या प्रथमत: प्रकृति अर्थात् पदार्थ के आधार पर करता था और पुरुज़ अर्थात् चेतना को उसके बाद स्थान देता था-न केवल एक, वरन् कई पुरुषों के अस्तित्व को मान्यता देता था। आगे चलकर प्रकृति एवं पुरुज़ की अन्तर्क्रिया द्वारा विश्व के सृजन-संचालन के प्रत्ययवादी विचार सांख्य-दर्शन में सम्मिलित कर दिए गए। स्मरणीय है कि मध्ययुग के महानतम प्रत्ययवादी दार्शनिक शंकर तक को यह मानना पड़ा कि सांख्य-दर्शन का मूल विचार यह है कि जो अचेतन है, स्वयमेव अपने को अनेकानेक रूपों में उपांतरित करता है। सांख्य-दर्शन वेदों-उपनिषदों के आप्त वचनों को मानवकृत मानता है, और दूसरे उन्हें प्रत्यक्ष एवं अनुमिति के अनुरूप होने पर मान्य मानता है। इस प्रकार, विकृतीकरण के बावजूद सांख्य-दर्शन के उपलब्ध साहित्य के विश्लेषण से उसके भौतिकवादी सत्व की पुष्टि होती है।

वैशषिक-दर्शन वस्तुगत रूप से दो जगत-इन्द्रियगम्य एवं अतीन्द्रिय के अस्तित्व को मानकर चलता है। उसने अतीन्द्रिय जगत को द्वन्द्ववादी दृष्टिकोण से एवं इन्द्रियगम्य जगत को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखा। (ब्रोदोव, वी. 1986 : 35) प्रत्येक पदार्थ का निर्माण अत्यन्त सूक्ष्म एवं अभेदित कणों-परमाणुओं से हुआ है, जो शाश्वत एवं स्वयंभू हैं। अत: इस दर्शन में विश्व के सृष्टि-संचालन के लिए किसी दैवी शक्ति की जरुरत नहीं है, बल्कि वे पदार्थ के संश्लिष्ट सम्मिश्रणों की उपज हैं। कालान्तर में इस दर्शन के प्रत्ययवादी भाज़्यकारों ने आत्मा एवं कर्म के सर्वव्यापी नैतिक नियम की परिकल्पना को बढ़ा-चढ़ाकर सृष्टि-संचालक के रूप में ईश्वर का सूत्रपात कर दिया। इसके बावजूद इस दर्शन की भौतिकवादी प्रवृत्ति स्वत: स्पष्ट बनी रही।

न्याय दर्शन भी वैशेषिक की भांति परमाणुवादी है, किन्तु इसके साथ वह अपना ध्यान तर्क एवं द्वन्द्ववाद की उस प्रक्रिया पर केन्द्रित करता है, जो भौतिक एवं परिवर्ती विश्व को पूर्णत: समझने के लिए, अर्थात् ज्ञान-प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इस प्रकार वह भी अनीश्वरवादी दर्शन था, जिसमें समय की सीमाओं के कारण कुछ विरोधाभास थे और बाद के प्रत्ययवादी भाज़्यकारों ने इन्हीं विरोधाभासों का लाभ उठाकर इसमें ईश्वरवाद का प्रक्षेपण किया।

योग दर्शन की अवधारणाओं को व्यावहारिक रूप देने का यत्न था। योग की तत्वमीमांसा का सांख्य से प्राय: सामंजस्य था, परन्तु वह ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार करता था। हालांकि योग-दर्शन का ईश्वर विश्व का स्रष्टा-नियंता नहीं था और रिचर्ड गार्वे जैसे आधुनिक विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि योग-दार्शनिकों का अपनी प्रणाली में ईश्वर को शामिल करने का लक्ष्य केवल प्रत्ययवादी विचार के सिद्धान्तकारों को तुष्ट करना और सांख्य-सिद्धान्तों के प्रचार को सुगम बनाना था। (ब्रोदोव, वी. 1986 : 179)

मीमांसा एवं बाद की शताब्दियों में सर्वाधिक महत्त्व हासिल करने वाले वेदान्त ही पूर्णत: प्रत्ययवादी दर्शन थे। लेकिन उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भौतिकवाद काफ़ी समय तक भारतीय जनमानस को आप्लावित किए हुए था और कई तथाकथित आस्तिक एवं प्रात्ययिक दर्शनों में भी भौतिकवाद के प्रबल तत्व मौजूद थे। यह तो स्वत: सिद्ध है कि इन दर्शनों ने वेदान्त की पुष्टि नहीं की, वरन् इसके विपरीत उसके साथ कड़ा संघर्ष किया।

साथ ही, वेदान्त आदि प्रत्ययवादी दर्शनों ने जनसामान्य में जीवन से विमुख करने वाले किसी निवृत्तिमूलक विचारधारा को व्यापकत: स्थापित नहीं किया। वस्तुत: वेदान्त अपने विशुद्ध रूप में एक उच्च कोटि का मानवतावादी दर्शन है, जो मानव-मात्र को अपने आध्यात्मिक अस्तित्व के प्रति सावचेत करके, उसे अपनी अन्तर्निहित पूर्णता को पाने के लिए प्रेरित करता है। इसकी व्यक्तिपरक प्रासंगिकता निर्विवाद है, हालांकि सामाजिक प्रासंगिकता संदिग्ध है। क्योंकि जहाँ एक ओर यह घोर मानव-विरोधी वर्ण-व्यवस्था को समायोजित करता रहा, वहीं दूसरी ओर विभिन्न वेदान्त दर्शनों ने ही भक्ति-आंदोलन की सामंतविरोधी दार्शनिक-भूमि तैयार की थी, विराट-भिक्षु विवेकानन्द ने अद्वैत वेदान्त के आधार पर ही भारत की सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक पराधीनता से मुक्त कराया और क्रांतिकारी देशभक्तों की एक पूरी पीढ़ी तैयार की।

वस्तुत: जो सभ्यता सहस्रों वर्षों तक जीवन्त रहती है, वह जीवन को सारहीन घोषित करने वाली नहीं हो सकती। जो लोग यह कहते हैं कि भारतीय संस्कृति के मूल्य निवृत्तिमूलकता के कारण आर्थिक विकास में बाधा डालते हैं, उन्हें बुद्ध के इन शब्दों पर गौर करना चाहिए :-

''बुद्धिमान और नीतिवान पुरुज़ पर्वत शिखर पर अग्नि के समान दैदीप्यमान होता है और वह उस मधुमक्खी के समय धन संचय करता है, जो किसी भी फूल को हानि नहीं पहुँचाता। उसे अपने पैसे को चार हिस्सों में बाँट देना चाहिए : एक हिस्से पर उसे अपना निर्वाह करना चाहिए, दो हिस्सों से अपने व्यापार का विस्तार करना चाहिए और चौथा हिस्सा उसे बुरे समय के लिए बचाकर रखना चाहिए।'' (थापर, आर. 1975 : 39)

प्राचीन एवं मध्यकाल में हुए व्यापारिक विकास से भारतीयों की आर्थिक उद्यमशीलता स्वत: पुष्ट है। स्पष्ट है कि भारत में जीवन-निषेधी आध्यात्मिकता कभी भी प्रधान मूल्य नहीं रही। यहाँ बहुत से संत-मुनि-सिद्ध हुए और उनमें से कई सन्यस्त भी हुए, किन्तु बहुत कम लोग सन्यास को सर्वोपरि मूल्य मानकर उस पर आरूढ़ रहे। अधिकांश संत अन्तत: समाज के नेताओं की भूमिका निभाने लगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत की आधारभूत चिन्तन-प्रवृत्ति भौतिकवाद एवं प्रत्ययवाद का संघर्ष है तथा प्रत्ययवाद जीवन-संघर्ष में विजय के लिए व्यक्ति को प्रेरित करता है। अत: इहलौकिकता और मानववाद पर आधारित सेकुलरवाद भारत के लिए न केवल समीचीन, वरन परम्परासम्मत भी है।

समकालीन सेकुलरवाद निश्चय ही एक आधुनिक अवधारणा है। बहुलतावादी लोकतंत्र, मानवाधिकार, राष्ट्र-राज्य, संघवाद आदि की भाँति इसे भी भारत के अतीत में ज्यों का त्यों ढूंढ़ना उचित नहीं है। लेकिन इस आधार पर यह दावा करना भी उचित नहीं है कि यह एक विजातीय अवधारणा है, जो भारतीय मूल्य-विन्यास में सर्वथा अनुपस्थित है। आधुनिक सेकुलरवाद का मॉडल भले ही भारतीय परम्परा में दृश्टव्य न हो, मगर भारतीय राज्य व्यवस्था एवं चिंतन प्रणाली में उसके कई मूल्यों, लक्षणों एवं भावों के सूत्र प्रचुरता से विद्यमान हैं। इतिहासकार रोमिला थापर ने इसे 'आद्य-सेकुलरवाद' कहा है, जिसके आधार पर आधुनिक भारतीय समाज का परम्परासम्मत सेकुलरीकरण किया जा सकता है। रोमिला थापर के अनुसार, ''आरंभिक परम्पराओं में, जिसे कहें आद्य-सेकुलरवाद के तत्व मौजूद रहे हैं ख़ मेरा सुझाव यह नहीं कि 400 ई. पू. या बाद में भारत में सेकुलर समाज की स्थापना का प्रयास किया गया था। इसका सेकुलरवाद न होना इस सत्य से स्पष्ट है कि व्यक्तियों से ऐसी आचारनीति अपनाने की अपील की जाती थी, जो ऐसे मूल्यों से व्युत्पन्न थीं, जिन्हें आज समाज के सेकुलरीकरण के अनुरूप पाते हैं(मगर राज्य द्वारा इस आचारनीति का अनुसमर्थन या इन्हें संस्थापित करने वाली संस्थाओं को बनाने की कोई ज़रुरत नहीं समझी जाती थी। एक सेकुलर समाज में सेकुलर मूल्यों का समर्थन करने वाली आचारनीति और संस्थाओं को संस्थापित करने का प्राथमिक दायित्व राज्य और नागरिक-समाज का होता है। राज्य धर्म के अस्तित्व को मान्यता देता है, मगर निजी आस्था के दायरे में धर्म की प्रश्नातीत गतिविधियों को परिसीमित करता है।'' (सिंह, ए. एवं मोहापात्र, एस. 2010 : 85)

आधुनिक सेकुलरवाद का आग्रह है कि राज्य किसी धर्म विशेष की उन्नति के लिए राजकोज़ से समर्थन न करे। भारतीय इतिहास में, तत्कालीन प्रवृत्ति के अनुरूप राज्य ऐसा किया करते थे। मगर महत्त्वपूर्ण यह है कि यह अनुग्रह कई बार ऐसे धर्म-प्रतिष्ठान के लिए किया जाता था, जिसे स्वयं राजा/सुलतान का निजी संबंध नहीं होता था। ऐसे उदाहरण यूरोप के इतिहास में सर्वथा दुर्लभ है। भारतीय परम्परा में मौजूद ऐसी घटनाएँ ही आद्य-सेकुलरवाद का उदाहरण हैं, जिनसे आज के सेकुलरवाद के लिए अनुकूल धारणाएँ विकसित की जा सकती हैं।

संदर्भ :

1. चक्रवर्ती, वी. (संपा.) (1990) सेकुलरिज़्म एंड इंडियन पॉलिटी, सैग्मेंट बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली
2. चंद्र, एस. (1982) मध्यकालीन भारत-भाग : 1 व 2, एनसीईआरटी, नयी दिल्ली
3. ----- (1975) पूर्वकाल और पूर्वग्रह, नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली
4. थापर, आर. (1985) भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
5. दुबे, ए. (संपा.) (2013) समाज-विज्ञान विश्वकोश (खंड-6), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
6. नेहरू, जे. (1960) हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली

7. ब्रोदोव, वी. (1986) आधुनिक काल में भारतीय दर्शन, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
8. भार्गव, आर. एवं. आचार्य, ए. (संपा.) (2011) राजनीति सिद्धान्त : एक परिचय, पीयर्सन, दिल्ली
9. सिंह, ए. एवं मोहापात्र, एस. (संपा.) (2010) इंडियन पॉलिटिकल थॉट : ए रीडर, रूटलेज पब्लिकेशन, एबिंग्डन, यूके
10. शर्मा, आर. (1990) प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
11. ------ (1990) साम्प्रदायिक इतिहास और राम की अयोध्या, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
12. हबीब, इ. (संपा.) (1990) मध्यकालीन भारत-तीन खंड, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली

राष्ट्र नायक महाराणा प्रताप के प्रेरणादायक कलात्मक स्रोत

डॉ० यशपाल बरण्डा

सहायक आचार्य, चित्रकला, जे.आर. शर्मा महाविद्यालय,
ऋषभदेव, उदयपुर (राज.)

राष्ट्र नायक महाराणा प्रताप के पराक्रम, शौर्य, त्याग, स्वाभिमान एवं वीरता ने महानायक की छवि प्रदान की है। विश्व मेवाड़ के इतिहास पुरुष महाराणा प्रताप को नमन करता है। मेवाड़ की धरती पर जगह-जगह पर स्थित प्रताप से जुड़े कलात्मक तथ्यों से आज 16वीं सदी के नायक के गुणों से जगत आज भी प्रेरणा ले रहा है। महाराणा प्रताप मातृभूमि, स्वतंत्रता व मेवाड़ की संस्कृति की रक्षा के प्रति सदैव संघर्षशील रहे। उन्हीं आदर्श मूल्यों एवं शौर्यपूर्ण कार्यों से तत्कालीन इतिहास, स्मारकीय कला, कला संग्राहलय एवं पर्यटन स्थल स्थापित हुए।

भारतीय स्वतन्त्रता के प्रतीक महाराणा प्रताप का जीवन बलिदान एवं शौर्यपूर्ण की अनगिनित वीर-गाथाओं से भरा हुआ है। उनका सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त कठोर एवं कष्टदायक रहा है परन्तु जिस धैर्य, साहस और अपनी सूझ-बूझ से महाराणा प्रताप ने एक शक्तिशाली आक्रमणकारी से लोहा लेते हुए राजनैतिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक कार्य बड़े ही रचनात्मक ढंग से सम्पादित किये वह राजस्थान ही नहीं अपितु भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण पहलू है।

राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप के जीवन में व्यक्तित्व, आदर्श एवं स्वतंत्रता के पुजारी के रूप में विश्व इतिहास की धरोहर बन गए। ''आल्प्स पर्वतमाला की भाँति अरावली पर्वतमाला में महाराणा प्रताप की किसी चमत्कारिक विजय या उससे भी अधिक कीर्तियुक्त किसी ख़त्य से पवित्र न हुआ। ''इतिहासकार कर्नल जैम्स टॉड की उक्त पंक्तियाँ मेवाड़ के गौरवमयी इतिहास में महाराणा प्रताप से जुड़े ऐतिहासिक स्थलों के रूप में जन्म स्थल कटारगढ़ (कुम्भलगढ़), राजतिलक स्थल गोगुन्दा, युद्ध स्थल हल्दीघाटी एवं दिवेर, राजधानी चावण्ड, गुप्त आवास मचींद, सैनिक उपचार स्थल कौल्यारी, उदयपुर में आवास मोतीमगरी, मंत्रणा स्थल मायरा की गुफा, शस्त्रागार जांवर एवं निर्वाण स्थल बाण्डोली प्रतापकालीन

सांस्कृतिक वैभव, शिल्पकला, वास्तुकला एवं पर्यटन दृष्टि के महत्व को रेखांकित करते हैं। यहाँ स्थल एवं स्मारक आने वाली पीढ़ी में महाराणा प्रताप का शौर्य एवं पराक्रम की अमर गाथा के प्रतिक स्वरूपों में युगों-युगों तक स्मरणीय एवं प्रेरणादायक रहेंगे।

महाराणा प्रताप की जन्म स्थली एवं राज्याभिषेक स्थल कुम्भलगढ़

कुम्भलगढ़ का सामरिक दृष्टि से कुम्भलगढ़ मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर अरावली में स्थित है। अरावली के घने जंगलों में अति सुरक्षित माना जाता था। महाराणा प्रताप का जन्म स्थल एवं राज्याभिषेक उत्सव के रूप में यह गौरवपर्ण इतिहास का साक्षी रहा है। महाराणा प्रताप की गुरिल्ला युद्ध पद्धति 'मारो और भागो' की नीति शाहबाज़ खाँ के आक्रमण के समय यहीं पर हुई थी। ऐतिहासिक कुम्भलगढ़ दुर्ग के कटारगढ़ परिचर में महाराणा प्रताप का जन्म कक्ष है। कुम्भलगढ़ पर मुगल शासकों ने कई बार आक्रमण किये, लेकिन लम्बी एवं मजबूत दीवार को वे कभी नहीं भेद पाए। इसकी दिवार की चौड़ाई इतनी है कि कहा जाता है इस पर एक साथ 6 घोड़े दौड़ते हुए गश्त करते थे। चीन के बाद विश्व में दूसरी सबसे लम्बी दीवार कुम्भलगढ़ की है। इसकी लम्बाई 10.8 किलोमीटर है।'

महाराणा प्रताप का राजतिलक स्थल, गोगुन्दा

राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप राजतिलक स्थल गोगुन्दा कुछ समय के लिए मेवाड़ की राजधानी रहा। चिळौड़गढ़ से निकलने के बाद महाराणा उदयसिंह गोगुन्दा में निवास करते हुए उनका स्वर्गवास हुआ। 28 ऋरवरी 1572 ई. में महाराणा उदयसिंह के मृत्यु के बाद राष्ट्रनायक महाराणा का राजतिलक गोगुन्दा की छतरी वाली बावड़ी पर हुआ यहाँ वर्तमान में बावड़ी और उसके चारों और महाराणा प्रताप के स्मारक स्थल बना हुआ है। महाराणा प्रताप बाद में यहाँ से चले गए और मेवाड़ की एक सैन्य चौकी स्थापित की। अकबर की सेना द्वारा विभिन्न संघर्षों में आस-पास के क्षेत्र को अधीन में कर लिया और हल्दीघाटी के युद्ध के समय मानसिंह गोगुन्दा के रास्ते होते हुए हल्दीघाटी पहुँचा था।

गौगुन राम के नाम से ही गोगुन्दा का नामकरण हुआ। उदयसिंह कालीन अस्थाई राजधानी, उदयसिंह की मृत्यु, महाराणा प्रताप का राजतिलक गोगुन्दा में किया गया और यहीं पुराने महलों में उदयसिंह का स्वर्गवास हुआ था। महलों के उळार में महादेवजी का मन्दिर व छतरी वाली बावड़ी है। महाराणा प्रताप का राजतिलक भगवान महादेव के साक्षी में छतरी वाले स्थान पर किया गया था।

महाराणा प्रताप का सुरक्षित आवास, कमलनाथ-आवरगढ़

राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप ने निर्माण कार्यों में अरावली की सुन्दर पहाड़ियों का कितना सुन्दर उपयोग किया, इसका उदाहरण झाड़ोल के जंगलों में स्थित कमलनाथ-आवरगढ़ में मिलता है। कमलनाथ उदयपुर से पश्चिम में लगभग 70 किलोमीटर दूर सघन पहाड़ों में स्थित है। यहीं पहाड़ियों में आवरगढ़ स्थित है। यहाँ करीब 20 किलोमीटर घेरे में परकोटा बना हुआ है। इसके आस-पास पहाड़ियों में कुंभजर, रावणटुक और वानरटुक पहाड़ियाँ, कमलनाथ महादेव का मंदिर है। आवरगढ़ में महल, कमरे, चौपाल आदि का निर्माण किया गया था। इसके आस-पास ही सैनिकों के रहने के स्थल है। आवरगढ़ के जंगलों में निर्माण कार्य एवं भौगोलिक स्थिति को देखकर स्पष्ट होता है कि चावण्ड से पूर्व यह स्थान बसा हुआ है। जो कि महाराणा प्रताप के सैन्य संगठन, जल संरक्षण स्थल के रूप में रहा था। यहाँ स्थित शिवालय कमलनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। शिव मन्दिर के कारण यह प्रमाणित होता है कि महाराणा प्रताप ने इस स्थान का चयन भक्ति हेतु आराध्य भगवान श्री एकलिंगजी के आशीर्वाद से मेवाड़ के पुनः उत्थान के रूप में किया गया था। इसके चारों और फैला परकोटा एवं पहाड़ी क्षेत्र की सुदृढ़ता इसे प्राकृतिक दुर्ग का स्वरूप प्रदान करती है। जिसकी प्रताप को आवश्यकता थी। यहाँ एक ऊँचे स्थान पर बड़ा गोल चबुतरा बना हुआ है जो महाराणा प्रताप का शासकीय दरबार स्थल हुआ करता था। इसके पास ही कुछ खण्ड़हर है महाराणा प्रताप यह आवास अरावली के सर्वाधिक सुरक्षित स्थानों में से यह दुर्ग रहा है।

महाराणा प्रताप के युद्ध स्थल हल्दीघाटी एवं दिवेर

हल्दीघाटी और महाराणा प्रताप एक दूसरे के पर्याय है। 18 जून 1576 ई. को मानसिंह के नेतृत्व में अकबर की सेना और राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप की सेना में भीषण संघर्ष हुआ। इस युद्ध में महाराणा प्रताप की ऐतिहासिक जीत हुई थी। वर्तमान में हल्दीघाटी में महाराणा प्रताप स्मारक बनाया गया है और यह मेवाड़ कॉम्पलेक्स योजना का प्रमुख स्थल है। लोसिंग एवं खमनोर के मध्य एक लम्बी व संकरी घाटी को हल्दीघाटी के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्रों में रक्ततात, शाही बाग एवं चेतक की समाधि स्थल है। सन् 1582 ई. में दिवेर गाँव में प्रताप एवं मुगल सेना के साथ युद्ध हुआ था इस युद्ध में महाराणा प्रताप विजय रहे थे। कर्नल टॉड ने इस युद्ध को मेवाड़ के इतिहास का मेराथान कहा है।

गुप्त आवास मचींद

कुम्भलगढ़ से लगभग 23-24 किलोमीटर पूर्व में कटार गाँव के कुछ दूरी पर यहाँ पुरास्थल मचींद नामक स्थान स्थित है। यहाँ पहाड़ी पर मत्स्येन्द्रनाथ का स्थान है। इसलिए इस गाँव का नाम मचींद पड़ा। इन पहाड़ियों के ऊपर पत्थरों से बने मजबुत सुरक्षा घेरे से गिरा मध्यकालीन खण्ड़हर स्थित है। यह व्यवस्थित रूप से बना हुआ है। यहाँ की संरचनाओं में सुरक्षा दीवार, चौकोर कक्ष, आने-जाने के रास्ते बने हुए है। यहाँ किले में एक क्षतिग्रस्त मंदिर के प्रमाण भी दिखाई देते है। इस स्थान पर महाराणा प्रताप ने कुछ समय निवास किया था।

सैनिक उपचार स्थल, कोल्यारी

आवरगढ़ के दक्षिण की ओर पाँच कि.मी. दूर कोल्यारी नामक गाँव है। यहाँ हल्दीघाटी युद्ध के पश्चात् महाराणा प्रताप सम्पूर्ण सेना के साथ यही रहते थे व घायल सैनिकों का उपचार भी किया जाता था। कोल्यारी से ही महाराणा प्रताप ने सभी पहाड़ी नाकों पर भीलों के माध्यम से नियंत्रण एवं शाही सेना की खाद्य सामग्री को रोकने का कार्य किया था।

उदयपुर आवास मोती मगरी

उदयपुर में स्थित मोती मगरी में महाराणा उदयसिंह ने मोती महल बनवाये थे। महाराणा प्रताप युवावस्था में यहाँ कई वर्ष रहे। मोती मगरी में महाराणा प्रताप की चेतक पर सवार विशाल कांसे की प्रतिमा स्थापित है। जो मेवाड़ व महाराणा प्रताप के गौरवशाली इतिहास को गौरवान्वित कर रही है।

महाराणा प्रताप का मंत्रणा स्थल, मायरा की गुफा

उदयपुर से 33 किलोमीटर दूर डुलावतों का गुड़ा स्थित महाराणा प्रताप का शस्त्रागार मायरा की गुफा 400 वर्ष पुरानी धरोहर है। गुफा के अन्दर का दृश्य जिसे मायरा का धूणी भी कहते हैं। हल्दीघाटी से 15 किलोमीटर दूर यह महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह गुफा महाराणा प्रताप के शस्त्रागार के रूप में उपयोग में आती थी। यहाँ महाराणा प्रतापकालीन महलों के खण्ड़हर है। यहाँ सैन्य प्रशिक्षण स्थल है। इस गुफा में दो सौ व्यक्ति एक साथ बैठ कर मंत्रणा कर सकते हैं। इस गुफा में महाराणा प्रताप कालीन माँ हिंगलाग का स्थान है। यह स्थान प्राकृतिक दृष्टि से बहुत सुन्दर है। यहाँ सदाबहार झरना बहता है। जल प्रबंधन एवं सुरक्षा की दृष्टि से यह सुरक्षित स्थान है। यहाँ दो मंजिला महल है जिसमें चेतक का कमरा एवं एक ऊपरी मंजिल पर महाराणा प्रताप का कमरा है। जो वर्तमान खण्ड़हर अवस्था में हैं।

महाराणा प्रताप का शस्त्रागार जावर, उदयपुर

जावर उदयपुर से करीब राष्ट्रीय मार्ग 8 पर करीब 25 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। विश्व में विज्ञान व तकनीकी के इतिहास के परिदृश्य में जावर का महळवपूर्ण योगदान रहा है। विश्व में सर्वप्रथम जस्ते की खोज व औद्योगिक स्तर खनन यहीं हुआ था, मेवाड़ में जावर वर्षो तक आय का मुख्य स्त्रोत बना रहा। महाराणा मेवाड़ शोध संस्थान के हस्तलिखित पुरालेखों में जावर से प्राप्त आय का लेखा-जोखा मिलता है। यहाँ की पहाड़ियों में मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा एक मजबुत सुरक्षा के लिए किला बनवाया था। इसे राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप ने निवास हेतु उपयोग में लिया था। यहाँ जनश्रुति के अनुसार यहाँ राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप अपने शस्त्र संग्रहित करके रखते थे। यहाँ जावर की गुफलाओं में सैनिकों के साथ मंत्राणाएँ करते थे। यद्यपि इसका कोई तत्कालीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता परंतु महाराणा प्रताप के जावर के किले में निवास के विषय में कहीं जाने वाली बातें संभावनाऐं अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं कहीं जा सकती है परन्तु युद्ध तकनीक, युद्ध कुशलता एवं इस क्षेत्र की भील जनजाति के सहयोग से ही चावण्ड़ में राजधानी स्थापित करना सुरक्षित होगा और विश्व प्रसिद्ध जावर की खानों की रक्षा की जा सकेगी।

महाराणा प्रताप की राजधानी स्थल चावण्ड़

राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप ने चावण्ड़ को राजधानी बनाकर अन्तिम समय तक यही पर रहे हैं। चावण्ड़ में महाराणा प्रताप के जीवन का सबसे श्रेष्ठ काल गुजरा। यहाँ के महलों में महाराणा प्रताप कालीन बने चित्रों को मेवाड़ चित्रशैली का जनक माना जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि महाराणा प्रताप न सिर्फ एक अच्छे योद्धा थे बल्कि एक कला प्रेमी भी थे। महाराणा प्रताप ने चावण्ड़ में रहते हुए काव्य रचना भी की, लेकिन पाण्डुलिपियाँ अब उपलब्ध नहीं है। इतिहास के अनुसार राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप के चावण्ड़ में आने के बाद अकबर दक्षिण में व्यस्त हो गया था इसलिए मेवाड़ में यह शांति का काल रहा। 1597 ई. में महाराणा प्रताप का यहाँ निधन हुआ।

महाराणा प्रताप द्वारा स्थापित मेवाड़ की राजधानी चावण्ड़ के पास उदय की पहाड़ियों में अनेक पुरावशेष नजर आते हैं। यहाँ कलात्मक अवशेषों में गणेश मूर्ति, शिव पार्वती मन्दिर व चामुण्ड़ा माता का मन्दिर महाराणा प्रताप कालीन है। महाराणा प्रताप ने यहाँ बावड़ियों व उद्यानों का भी निर्माण करवाया। राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप कालीन स्थापत्य कला की विशेषता सादगी रहा है। इस काल में महाराणा प्रताप ने निर्माण कार्य समकालीन आवश्यकतानुसार करवाएं है। चावण्ड़ क्षेत्र में 56 गाँवों का समूह होने के कारण छप्पनियाँ मैदान भी कहते हैं। यहाँ पहाड़ी पर बने महल अब खण्ड़हर हो चुके है। इन खण्ड़हरों में कक्ष, स्नानघर, आलिंद, चौपाल, चबूतरे एवं सैनिकों के रहने की बस्ती है।

निर्वाण स्थली, बाण्डोली

महाराणा प्रतापकालीन राजधानी चावण्ड़ से लगभग ढाई किलोमीटर दूर बाण्डोली गाँव के पास नदी के किनारे महाराणा प्रताप का दाह-संस्कार किया गया। यहाँ महाराणा अमरसिंह ने श्वेत आठ खम्भों की कलात्मक छतरी का निर्माण करवाया। यह प्रेरणादायक स्थल ऐतिहासिक महत्त्व का है यहाँ तालाब, बगीचा, शिवलिंग एवं कलात्मक पर्यटन स्थल दर्शनीय है।

अरावली पर्वत श्रृंखला में स्थित महाराणा प्रताप कालीन स्थापित अवशेष कलात्मकता की दृष्टि से आपस में समानता रखते हैं। यह स्थल एक-दूसरे स्थल से जुड़े हुए हैं। यह स्थल महाराणा प्रताप के युद्ध स्थल, मंत्राणा स्थल, सैन्य प्रशिक्षण, आवास एवं उपचार से जुड़े हुए है। इन स्थलों पर महाराणा प्रताप ने समय-समय आवश्यकतानुरूप निर्माण कार्य करवाये। आज करीब 500 वर्षो बाद भी इन स्थलों पर आसानी से जाना कष्टदायक है। यह स्थल महाराणा प्रताप द्वारा वास्तुकला, शिल्पकला, कला, संस्व्रति एवं मातृभूमि के प्रति समर्पण भाव को दर्शाते हैं यह स्थल महाराणा प्रताप के संघर्षमय जीवन में सफलता के साक्षी रहे हैं। वर्तमान में यह स्थल शक्ति, शौर्य, पराक्रम भक्ति एवं कर्म के स्मारक के रूप में सुनहरे अतीत की यादें संजोए हुए महाराणा प्रताप की यशोगाथा कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. श्रीकृष्ण जुगुनू, महाराणा प्रताप का युद्ध आर्यावत संस्व्रति संस्थान, दिल्ली, 2010
2. चन्द्रशेखर शर्मा, राष्ट्र रत्न महाराणा प्रताप, आर्यावर्त संस्व्रति संस्थान, दिल्ली, 2008
3. गोपीनाथ शर्मा, युग पुरुष महाराणा प्रताप प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1991
4. राधाकृष्ण वशिष्ठ, मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, जयपुर, 1984
5. विवेक भटनागर, प्रताप से संबंधित स्थल, राजस्थान पत्रिका, उदयपुर, 31 मई, 2014
6. हुकुम सिंह भाटी (सम्पादक), महाराणा प्रताप के जीवन का घटनाक्रम, भोपाल नोबल्स संस्थान, उदयपुर, 1991
7. आलेख, महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, उदयपुर 2016
8. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1927
9. नारायण लाल शर्मा, मेवाड़ का सम्मान महाराणा प्रताप एवं महाराणा प्रताप।
10. राजस्थान पत्रिका, उदयपुर, 25 मई, 2012

भारत में सामाजिक और धार्मिक अंधविश्वास

डॉ० हीरा कुमारी

ए.एम.एम, कॉलेज, बहेरा बेनीपुर, दरभंगा

सारांश

अंधविश्वास एक ऐसी समस्या जिसका समाधान सामने होते हुये भी कोसो दूर हैं। विश्वास टूट कर बिखरता हैं अंधविश्वास मजबूती से खड़ा होता हैं. अंधविश्वास खोखला हैं लेकिन उसकी जड़ें समाज में मजबूती से जमी हैं, जिसे समझते हुए भी कोई स्वीकारना नहीं चाहता। आज का समय जिस तरह से बुराइयों को अपने अंदर समाये हुए हैं। मनुष्य सगे रिश्ते पर भी विश्वास नहीं कर सकता लेकिन इसके बावजूद कई ऐसे अंधविश्वास हैं, जिसका शिकार आज हर एक तीसरा व्यक्ति हैं फिर चाहे वो पढ़ा लिखा हो या अनपढ़।

परिचय

किसी भी बात को बिना सोच समझ के, बिना किसी आधार के चरम सीमा के परे जाकर करना एवम मानना अंधविश्वास हैं; फिर वो भगवान की भक्ति हो या किसी इन्सान की। कई बार लोग भगवान की भक्ति में इस कदर खो जाते हैं कि कोई भी उनसे भगवान के नाम पर कुछ भी करवाले, वो झट से कर देते हैं। यह ईश्वर के अस्तित्व में आस्था नहीं बल्कि ईश्वर के नाम पर अंधविश्वास हैं।

आदिम मनुष्य अनेक क्रियाओं और घटनाओं के कारणों को नहीं जान पाता था। वह अज्ञानवश समझता था कि इनके पीछे कोई अदृश्य शक्ति है। वर्षा, बिजली, रोग, भूकंप, वृक्षपात, विपत्ति आदि अज्ञात तथा अज्ञेय देव, भूत, प्रेत और पिशाचों के प्रकोप के परिणाम माने जाते थे। ज्ञान का प्रकाश हो जाने पर भी ऐसे विचार विलीन नहीं हुए, प्रत्युत ये अंधविश्वास माने जाने लगे। आदिकाल में मनुष्य का क्रिया क्षेत्र संकुचित था इसलिए अंधविश्वासों की संख्या भी अल्प थी। ज्यों ज्यों मनुष्य की क्रियाओं का विस्तार हुआ त्यों-त्यों अंधविश्वासों का जाल भी फैलता गया और इनके अनेक भेद-प्रभेद हो गए। अंधविश्वास सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। विज्ञान के प्रकाश में भी ये छिपे रहते हैं। अभी तक इनका सर्वथा उच्छेद नहीं हुआ है। भारत में अंधविश्वास की जड़े बहुत गहरी हो चुकी हैं, ब्राह्मण साहित्य का इसमें प्रमुख योगदान है।

अंधविश्वास कई तरह के होते हैं जिनमे कुछ मान्यता होती हैं। कुछ मान्यतायें नुकसान नहीं देती और कुछ ऐसी हैं जो नुकसान पहुंचाती हैं. इसकी कोई गिनती नहीं की जा सकती।

भारत देश में सबसे ज्यादा अंधविश्वासी हैं क्यूंकि यहाँ भगवान को अधिक माना जाता हैं जिसका कई लोग गलत फायदा उठाते हैं. मनुष्य को सबसे उपर मानव धर्म को रखना चाहिये उसके आस-पास सही गलत का अवलोकन करना चाहिए।

जहाँ मूर्खता का साम्राज्य होता है वहाँ अंधविश्वास की तानाशाही खूब चलती हैं। प्रगतिशील और वैज्ञानिक प्रकाश से आलोकित देशों में भी किसी-न-किसी तरह के अंधविश्वास प्रचलित हैं।

आज कल हर एक गली मोहल्ले, शहर में एक भगवा चौला ओढे मिलता हैं और उसके कई अनुयायी बन जाते हैं। सन्यासी का भेस लिये वो लोग राजनीती, फिल्मी, टेलीविजन की दुनियाँ में चमक रहे हैं। और लोग उनके पीछे अपना घर द्वार त्याग उनके चरणों में पड़े हुए हैं जो मनुष्य खुद राजनीति और प्रसिद्धी का मोह नहीं छोड़ पाता वो आपको कैसे वैराग्य सिखा सकता हैं।

प्रकार

अंधविश्वास कई प्रकार के होते हैं- कुछ जातिगत होते हैं, कुछ धर्म संबंधी होते है, कुछ सामाजिक होते हैं और कुछ तो ऐसे विश्वव्यापी होते हैं कि सब देशवासी उनका स्वागत करते हैं।

अंधविश्वासों का सर्वसम्मत वर्गीकरण संभव नहीं है। इनका नामकरण भी कठिन है। पृथ्वी शेषनाग पर स्थित है, वर्षा, गर्जन और बिजली इंद्र की क्रियाएँ हैं, भूकंप की अधिष्ठात्री एक देवी है, रोगों के कारण प्रेत और पिशाच हैं, इस प्रकार के अंधविश्वासों को प्राग्वैज्ञानिक या धार्मिक अंधविश्वास कहा जा सकता है। अंधविश्वासों का दूसरा बड़ा वर्ग है मंत्र-तंत्र। इस वर्ग के भी अनेक उपभेद हैं। मुख्य भेद हैं रोग निवारण, वशीकरण, उच्चाटन, मारण आदि। विविध उद्देश्यों के पूर्त्यर्थ मंत्र प्रयोग प्राचीन तथा मध्य काल में सर्वत्र प्रचलित था। मंत्र द्वारा रोग निवारण अनेक लोगों का व्यवसाय था। विरोधी और उदासीन व्यक्ति को अपने वश में करना या दूसरों के वश में करवाना मंत्र द्वारा संभव माना जाता था। उच्चाटन और मारण भी मंत्र के विषय थे। मंत्र का व्यवसाय करने वाले दो प्रकार के होते थे-मंत्र में विश्वास करने वाले और दूसरों को ठगने के लिए मंत्र प्रयोग करने वाले।

कारण

अन्धविश्वासों के पीछे कई कारण हो सकते हैं, जिसमे हैं पुश्तैनी मान्यता और सबसे अहम् हैं डर। बरसो से जो बाते चली आ रही हैं उनका आधार हो या ना हो वो पीढ़ियों तक निभाई जाती हैं जिसके कारण अंधविश्वास बढ़ता ही जाता हैं। शादी के सवा महीने तक लड़की काला या सफेद नहीं पहनती। प्रथा का नाम देकर कई सालों के अंधविश्वास पीढ़ियों तक निभायें जाते हैं।

डर एक ऐसी बीमारी है जिसका इलाज किसी के पास नहीं लेकिन फिर भी झूठे इलाज ढूंढे जाते हैं और इसी के कारण उत्पन्न होता हैं अंधविश्वास। जैसे घर से बाहर निकलते वक्त छींक आ जाये तो व्यक्ति कहीं बैठने की जगह ढूंढता हैं। बिल्ली रास्ता काट जाये तो किसी के निकलने की रास्ता देखता हैं। ऐसे ही कई अनगिनत मान्यतायें जिसमे फंस व्यक्ति अपने आप को डराता हैं। वास्तव में इन सबके पीछे छिपा हैं व्यक्ति का डर। एग्जाम में फैल होने का डर, बीमारी होने का डर, नौकरी ना मिलने का डर, एक्सीडेंट का डर, मरने का डर आदि कई ऐसे डर जिसके कारण व्यक्ति अपने आपको कमजोर महसूस करता हैं, उसे दूर करने के लिए कई तरह के कार्य करता हैं और वही कार्य उसे कहीं ना कहीं अंधविश्वासी बना देते हैं।

सबसे पहले व्यक्ति कई तरह के टोटके अपनाता हैं, जैसे नींबू मिर्ची। नींबू जितना खाने में इस्तेमाल नहीं होता उतना दुकानों और गाड़ियों में लगा होता हैं। इसके बाद हैं कुंडली दिखाना फिर कई तरह के उपाय में फँस जाना।

समाधान

यह वैज्ञानिक युग है। होना यह चाहिए था कि हम नए सिरे से इन रूढ़ियों के तथ्यों को ममझने का यत्न करें, पर हो यह रहा है कि हम विज्ञान को इन रूढ़ियों के अज्ञान का सहायक बना रहे हैं। यह बड़ी विडंबना है।

खुद पर भरोसा करें : इसका एक मात्र उपाय हैं अपने आप पर भरोसा. कड़ी मेहनत लगन और संकल्प से अपने पथ पर चलने वालों को मंजिल मिलती ही हैं. इसके लिए कोई टोटका काम नहीं आता. मेहनत ही वो आखरी टोटका हैं जो आपको आपकी मंजिल तक पहुँचा सकता हैं।

डर को दूर करें : डर जिसके कारण ही अन्धविश्वास जन्म लेता हैं मनुष्य को सबसे पहले अपने डर का सही कारण तलाशना चाहिये और उस कारण का एक बेहतर उपाय खोजना चाहिये। डर जब ही महसूस होता हैं जब मनुष्य किसी न किसी बात को लेकर अपने अंदर कमी महसूस करता हैं। अगर मनुष्य उस कमी को पूरा कर दे तो खुद ही डर खत्म हो जाता हैं और आत्मविश्वास पनप जाता हैं। ऐसे स्थान पर अन्धविश्वास का कोई सांया नहीं होता।

कर्मठ बने : मनुष्य अगर कर्मशील हैं तो उसमे अंधविश्वास की कोई जगह नहीं होती। कई बार हम जो चाहते हैं वो हमें नहीं मिलता और हम उसे पाने के लिए कई तरह के अलग रास्ते अपनाते हैं, जबकि शायद उस चीज को पाने के लिए जो काबिलियत होनी चाहिये वो हममे नहीं हैं। हम उसी बात को सही वक्त पर स्वीकार नहीं करते और कहीं न कहीं टोटके, तंत्र मंत्र और कई अवैज्ञानिक तरीकों का शिकार हो जाते हैं। मनुष्य को सदैव अपने कर्म पर विश्वास करना चाहिये और उस रास्ते पर मिलने वाली सफलता एवम असफलता से सीखना चाहिये।

सच्चाई का सहजता से स्वीकार करें : कई बार हमें सफलता मिलती हैं कई बार असफलता हाथ आती हैं. हम निराश हो जाते हैं जबकि हमें उस एक बिंदु पर खुद को परखने की जरुरत हैं कि क्या वास्तव में हम जिस राह पर हैं हम उसके लायक हैं या नहीं। अगर हैं तो हमें गलतियों से सीख कर आगे बढ़ना चाहिए और अगर आपको जवाब मिलता हैं कि नहीं हम लायक नहीं हैं तो उसे सहर्षता से स्वीकार करना चाहिये, और अपने लिए नया और अपनी काबिलियत के मुताबिक रास्ता ढूंढना चाहिए।

निष्कर्ष

संसार के कोने-कोने में- सभ्य हो या असभ्य अथवा पिछड़ा हुआ - समान या आंशिक रूप से अंधविश्वास सार्वव्यापी हैं, क्योंकि मनुष्य अपने भाग्य पर अपने सारे झंझटों को छोड़कर मुक्त हो जाना चाहता है। जिन कार्यों को भाग्य, अवसर, तंत्र-मंत्र, टोने-टोटके के ऊपर निर्भर रहकर किया जाता है, वे सब अंधविश्वास की सीमा में आते हैं।

आज भारत की लगभग 70 करोड जनसंख्या गावों मे निवास करती है। जिनमें से केवल 20 प्रतिशत लोग ही पढे- लिखे या जागरूक होगें। बचे पचास करोड लोग जिनके दिमाग में अन्धविश्वास ने एक मजबूत पकड बना ली है जिसके कारण आज भी शहर और गावों के लगभग 65 करोड लोग अन्धविश्वास की गतिविधियों में फंसे रहने के कारण कुछ हटकर सोच ही नही पाते हैं।

किसी भी अंधविश्वास को दूर करने का सही तरीका तार्किक सोच है। शिक्षा और वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार अंधविश्वासों से छुटकारा दिलाने का सशक्त माध्यम है।

सन्दर्भ

- Vyse, Stuart A. (2000). Believing in Magic: The Psychology of Superstition. Oxford, England: Oxford University Press. pp. 19–22. ISBN 978-0-1951-3634-0.
- Foster, Kevin R.; Kokko, Hanna (2009). "The evolution of superstitious and superstition-like behaviour". Proceedings of the Royal Society B: Biological Sciences. **276** (1654): 31–7. doi:10.1098/rspb.2008.0981 (inactive 2020-11-21). PMC 2615824. PMID 18782752.
- Gallagher, T., & Lewis, J. (2001). Rationalists, fatalists, and the modern superstitious: Test-taking introductory sociology. Sociological Inquiry, 71(1), 1-12. doi: 10.1111/j.1475-682X.2001.tb00925.x
- Beck. J., Forstmeier, W, 2007, Superstition and belief as inevitable by-products of an adaptive learning strategy. Human Nature, 18, 35-46. https://doi.org/10.1007/BF02820845.
- Perkins, M, The reform of time: magic and modernity. London, VA: Pluto Press, 2000.
- Parida, G, 1962, Superstitions among College Students in India. The Journal of Social Psychology, 579(1), 3-10, DOI: 10.1080/00224545.1962.9710898.
- Griffiths, M.D., Bingham, C.A, 2005, Study of superstitious beliefs among bingo players. Journal of Gambling, 13. DOI: 10.4309/jgi.2005.13.7.
- Otis L.P, and Alcock J.E, 1982, Factors affecting extraordinary belief. The Journal of Social Psychology, 118, 77-85.

बिहार में औद्योगिक विकास और लघु उद्योग की स्थिति

डॉ० नवीन कुमार

एम.कॉम, पीएचडी. (कॉमर्स फैकल्टी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

किसी विशेष क्षेत्र में भारी मात्रा में सामान का निर्माण/उत्पादन या वृहद रूप से सेवा प्रदान करने के मानवीय कर्म को उद्योग (industry) कहते हैं। उद्योगों के कारण गुणवत्ता वाले उत्पाद सस्ते दामों पर प्राप्त होते है, जिससे लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार होता है और जीवन सुविधाजनक होता चला जाता है। भारत में आधुनिक औद्योगिक विकास का प्रारंभ मुंबई में प्रथम सूती कपड़े की मिल की स्थापना (1854) से हुआ।

लघु उद्योग एक ऐसा क्षेत्र है जो सबसे अधिक रोजगार देता है। और भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। आज के दौर में बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी हर युवा की समस्या है। इस समस्या को लघु उद्योग के द्वारा हल किया जा सकता है।

लघु उद्योग को बढ़ावा देने के लिए सरकार लघु उद्यमियों को समर्थन और सहयोग प्रदान करती हैं।

बिहार का आर्थिक सर्वेक्षण कहता है कि बिहार में पूंजी की कमी और सही समय पर कच्चे माल की गैरमौजूदगी ने बिहार में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को हमेशा पीछे रखा। सड़क और संचार जाल और साथ में बिजली की कमी ने बिहार में उद्योगों के स्थापना का माहौल बनने नहीं दिया।

बिहार के बंटवारे के बाद बिहार में औद्योगीकरण की प्रक्रिया और भी धीमी हो गई या यह कह लीजिए कि रुक सी गई। वजह यह थी कि उद्योगों का संकेंद्रण छोटा नागपुर के पठार के इलाकों में था। और यह बिहार के बंटवारे के बाद झारखंड में चला गया।

परिचय

विज्ञान व तकनीकी की प्रगति के चलते आज हर काम मशीनों के द्वारा आसान हो गया हैं। बड़ी संख्या में लोगों को औद्योगिक संस्थानों में रोजगार मिल रहा हैं।

भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। ये उद्योग बड़े उद्योगों की तुलना में न्यूनतम लागत पर अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में न केवल अहम भूमिका निभाते है बल्कि ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्र के औद्योगिकीकरण में भी सहायता करते है। जिससे क्षेत्रीय असंतुलन में कमी होती है और राष्ट्रीय आय व धन का समान वितरण सुनिश्चित होता हैं।

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि इन उद्योगों का औद्योगिक उत्पादन में हिस्सा 45 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय निर्यात में योगदान 40 प्रतिशत हैं। यह देश के 800 लाख लोगों को रोजगार प्रदान करता हैं। यह क्षेत्र देश के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 8 प्रतिशत का योगदान देता हैं।

केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (सीएसओ) के आंकड़ों के अनुसार, बिहार के जीएसडीपी में बाजार मूल्य के संदर्भ में उद्योगों ने केवल 20% योगदान दिया। जबकि सेवा क्षेत्र में 55% का योगदान है और कृषि क्षेत्र में 25% का योगदान है, हालांकि यह 70% से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करता है। भारत के औद्योगिक उत्पादन में बिहार का योगदान 0.5% पर बेहद कम है।

बिहार में 1528 औद्योगिक इकाइयों में से केवल 236 मध्यम या बड़ी इकाइयां हैं। इनका फैलाव भी बिहार की जमीन पर बराबर तौर पर नहीं है। बिहार के 38 जिलों में से 10 जिलों में मध्यम या बड़े पैमाने पर औद्योगिक इकाइयां नहीं है। 11 जिले तो ऐसे हैं जिनमें औद्योगिक इकाइयों की संख्या 5 भी नहीं पार कर पाती है।

बिहार में वर्तमान में 52 औद्योगिक क्षेत्र और मेगा औद्योगिक पार्क हैं। राज्य ने कृषि, आईटी, इलेक्ट्रॉनिक्स, वस्त्र और चमड़ा की पहचान की है क्योंकि यह उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्र हैं। अन्य विनिर्माण क्षेत्र, बिजली – थर्मल और नवीकरणीय, आतिथ्य, संचार और जलीय कृषि राज्य में तेजी से बढ़ते क्षेत्रों में से कुछ हैं। भारत की पहली इलेक्ट्रिक लोकोमोटिव मैन्युफैक्चरिंग फैसिलिटी, जिसे एल्सटॉम और भारतीय रेलवे के बीच जॉइंट वेंचर के रूप में खोला गया, ने मार्च 2018 में अपना पहला इलेक्ट्रिक लोकोमोटिव इंजन लॉन्च किया।

बिहार औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण (BIADA)

बिहार औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण (BIADA) की स्थापना बिहार राज्य के एक कानून अर्थात बिहार औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1974 द्वारा की गई है, जिसका उद्देश्य राज्य में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देना और सुविधा प्रदान करना है। BIADA अधिनियम, 1974 और नियमों/विनियमों के तहत उल्लिखित उद्देश्य और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए तंत्र प्रदान करता है।

खादी और ग्रामोद्योग आयोग (केवीआईसी)

खादी और ग्रामोद्योग आयोग (केवीआईसी), संसद के 'खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम 1956' के तहत भारत सरकार द्वारा निर्मित एक वैधानिक निकाय है। यह भारत में खादी और ग्रामोद्योग से संबंधित सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्रालय (भारत सरकार) के अन्दर आने वाली एक शीर्ष संस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य है – ष्ग्रामीण इलाकों में खादी एवं ग्रामोद्योगों की स्थापना और विकास करने के लिए योजना बनाना, प्रचार करना, सुविधाएं और सहायता प्रदान करना है, जिसमें वह आवश्यकतानुसार ग्रामीण विकास के क्षेत्र में कार्यरत अन्य एजेंसियों की सहायता भी ले सकती है। अप्रैल 1957 में, पूर्व के अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामीण उद्योग बोर्ड का पूरा कार्यभार इसने संभाल लिया।

कपार्ट

भारत के ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी क्षेत्र की महत्व्वपूर्ण भूमिका है जो समुदाय और व्यक्तियों के बीच बदलाव की पहल और विशिष्ट मुद्दों के प्रत्यक्ष कार्यान्वयन के जरिए कार्य करता है। कपार्ट (लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद) ग्रामीण विकास मंत्रालय के निर्देशों के अंतर्गत कार्य करता है। आज यह संस्था भारत में ग्रामीण विकास को फैलाने में बड़ा योगदान करती है। समस्त देश में 12,000 स्वयंसेवी संगठनों द्वारा बड़े पैमाने पर विकास कार्यक्रमों को आरंभ किया गया है।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी)

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक या सिडबी (Small Industries Development Bank of India) भारत की स्वतंत्र एक वित्तीय संस्था है जो सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों की वृद्धि एवं विकास के लक्ष्य से स्थापित किया गया है। यह लघु उद्योग क्षेत्र के संवर्द्धन, वित्तपोषण और विकास तथा इसी तरह की गतिविधियों में लगी अन्य संस्थाओं के कार्यों में समन्वयन के लिए प्रमुख विकास वित्तीय संस्था है। इसका मुख्यालय लखनऊ में है और समग्र देश में इसके कार्यालय हैं।

हाजीपुर (वैशाली) में उद्योग

हाजीपुर भारत गणराज्य के बिहार प्रान्त के वैशाली जिला का मुख्यालय है।

हाजीपुर की अर्थव्यवस्था मोटे तौर पर सेवा केंद्रित है, लेकिन इसमें कृषि आधार और औद्योगिक क्षेत्र भी है।

150 एकड़ के क्षेत्र में BIADA द्वारा बनाए गए EPIP के अलावा हाजीपुर में एक समर्पित औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ पेप्सिको, ब्रितानिया, हिंदुस्तान यूनिलीवर, अनमोल, सुधा, वायस आइसक्रीम, बंसल, ट्रीट जैसे कई बड़े ब्रांड FMCG और कृषि आधारित कंपनियाँ हैं। एवन साइकिल आदि की अपनी विनिर्माण इकाइयाँ हैं। यह पूर्वी भारतीय रेलवे का मुख्यालय भी है। 2010 तक, पटना से जुड़ने वाले तीन नए ब्रिगेड के साथ निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों की कई आगामी निर्माण परियोजनाएँ हैं।

एक्सपोर्ट प्रमोशन इंडस्ट्रियल पार्क, पूर्वी भारत में एक बहु-उत्पाद निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र है, जो वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, बिहार सरकार द्वारा विकसित किया गया है और प्रशासनिक निकाय BIADA द्वारा हाजीपुर, बिहार में स्थित है।

निष्कर्ष

सरकार लघु उद्योग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार के नये-नये योजनाओ को लाती है। जिसका युवा लाभ उठा सकते हैं. ज्यादातर लघु उद्योग कौशल पर आधारित होते है। इसमें आप को कोई तकनीकी या उस लघु उद्योग के बारे में प्रशिक्षण दिया जाता है और उसके बाद आप इसकी शुरूआत करते हैं। इसके द्वारा आप अपनी और अपने परिवार की इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। लघु उद्योग को शुरू करने के लिए कम पैसो की आवश्यकता होती है। लाभ बढ़ने में लघु उद्योग को एक बड़े व्यवसाय के रूप में स्थापित कर सकते हैं।

सन्दर्भ

- SME toolkit India – अपना उद्योग स्थापित करने एवं उसे चलाने से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी (हिन्दी में)
- कैसे लगाएँ लघु उद्योग? (गूगल पुस्तक, लेखक – राजेश कुमार व्यास)
- लघु उद्योग निर्देशिका (गूगल पुस्तक; लेखक – अवधेश चतुर्वेदी)
- MSME at a glance 2016, Govt. of India.
- The gazette of India, S.O. 1642(E) dated. 29-09-2006 Development Commissioner (MSME) Govt. Of. India
- Annual Report, Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises, Govt. of India 2016-17

अरुण कमल की प्रकृतिपरक कविताओं का विश्लेषण

डॉ० ललिता कुमारी

(शिक्षिका), जनता इंटर विद्यालय, मानसी, खगड़िया, बिहार

सारांश

प्रकृति अनेक जड़-चेतन अलंकरणों का अकूत भंडार है। इसमें अनेक प्रकार के पशु-पक्षी अपने जीवन-चक्र में संचरित होते रहते हैं। इनमें कुछ वन्य होते हैं हिंस्र होते हैं कुछ मनुष्य के सहजीवी होते हैं। इन पशुपक्षियों के स्वभाव से, इनके क्रिया-कलाप से, इनके गुंजन, कूजन, चिग्घाड़ से, इनके सौन्दर्य से जब कवि किसी व्यक्ति, किसी परिस्थिति, किसी अवस्था को तुलित कर काव्य में अभिव्यक्त करता है तब वे भी प्रकृतिपरक कविताएँ ही कहलाती हैं।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्रकृतिपरक कविताओं में प्रकृति आलम्बन, उद्दीपन मानवीकरण और प्रतीक तथा रहस्यात्मक रूप में प्रयुक्त होती है। अरुण कमल की जीवनी के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि तरूणावस्था से उन्होंने प्रकृति के जड़ एवं चेतन स्वरूपों के साथ घुल-मिलकर अपना जीवन सँवारा-सजाया है।

मूल शब्द : अरुण कमल,प्रकृतिपरक, कविता, विश्लेषण।

प्रस्तावना

संसार के सभी साहित्यकारों ने अपनी-अपनी कृतियों में विविधवर्णी प्रकृति का आलंबन निश्चित रूप से लिया है। इसका मूल कारण है कि हम प्रकृति के ही अंश हैं। प्रकृति ने ही हमें सबकुछ दिया है। प्रकृति नहीं तो प्राण नहीं; हमारा अस्तित्व नहीं। विद्यापति के अनुसार **'ताहे जनमि पुनि तोहे समाओल सागर लहर समाना।'** यहाँ तक कि भाषा जैसी अनमोल निधि भी हमें प्रकृति से ही मिली है। अखिल ब्रह्माण्ड को ही प्रकृति कहते हैं। मनुष्य कोई नवीन निर्माण नहीं करता है, हाँ नई खोज अवश्य करता है। अंग्रेजी में 'प्रकृति' को छंजनतम कहते हैं। प्रकृति अपने कर्म में अहर्निश तत्पर है। उसी प्रकार मनुष्य भी तत्पर है। यहाँ छंजनतम स्वभाव एवं चरित्र का द्योतन भी करती है। श्भ्पे दंजनतम पे दवज हववकश उसका स्वभाव अच्छा नहीं है। तात्पर्य यह कि प्रकृति हमारे स्वभाव से, हमारे चरित्र से, हमारे गुण-अवगुण से, हमारे रहन-सहन, क्रिया-कलाप, बोल-चाल, जीना-मरना सब में अनिवार्य से समायी हैं। जाड़ा, गर्मी, बरसात आदि की सुखद-दुखद स्थितियों का बोध हमें प्रकृति ही देती है। भूख-प्यास, वस्त्र - आवास आदि में प्रकृति ही समायी है। अतः हम प्रकृति से विमुख हो ही नहीं सकते हैं। यदि पूरी सत्यता से कही जाय तो विश्व की सभी कृतियाँ प्रकृतिपरक ही हैं। कोई इसे दार्शनिक दृष्टि से देखता है कोई इसे विज्ञान की दृष्टि से देखता है, कोई इसे भाव की दृष्टि से देखता है। एक कवि ही होता है जो प्रकृति को सभी दृष्टियों से देखता है, कवि अपनी भाव यात्रा में प्रकृति के जिस रूप से, जिस गुण से भावित होता है, और जहाँ उसके काव्य-भाव से उसका मेल हो जाता है वहीं प्रकृति कवि के काव्य का अंश बन जाती है। एक

समर्थ कवि अपने भाव को प्रकट करने के लिए प्रकृति के गुण धर्म के अनुसार प्रकृति के उस अंश को बिम्ब के रूप में अथवा मिथक के रूप में प्रयुक्त कर अपने कथ्योद्देश्य को परिपक्व रूप में व्यक्त करता है। कवियों द्वारा प्रकृति को अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के रूपों में भी व्यक्त किया जाता है। अभिधामूलक प्रकृति चित्रण तो मात्र प्रकृति के गुण-धर्म, सौन्दर्य को व्यक्त करना होता है। यह मात्र जानकारी एवं ज्ञान के लिए होता है। पर लक्षणामूलक प्रकृति चित्रण श्रेष्ठता की पहली सीढ़ी के रूप में परिगणित होता है। किसी को पाषाण हृदयी कह देना लक्षण मूलक प्रकृति का प्रयोग है; परन्तु किसी को 'आप तो ज्ञान के हिमालय हैं, 'या' आप तो मिरचाई हैं' कह देना व्यंजना मूलक प्रकृति चित्रण कहलाएगा। प्रकृति के ऐसे चित्रण उत्कृष्ट काव्य में ही किए जाते हैं।

अरुण कमल से जब लीलाधर मण्डलोई ने पूछा 'उन रंगों का स्मरण कर बताएँ जिनसे आपके प्रेम, आस्था, ईर्ष्या, क्रोध, उत्साह और ललित भावनाओं का संयोग बना "अरुण कमल ने उत्तर दिया" मुझे एक ही रंग याद है -हरा- जो धरती का अपना वास्तविक रंग है, और धान के हरे खेतों पर बगुलों की सफेद पाँत, और हरी घास पर मखमली इन्द्रगोप कीट, लाल।[1]

अरुण कमल के इस उत्तर से प्रकृति के प्रति उनके भावनात्मक संबंध के गहरेपन का बोध होता है। इसी क्रम में मण्डलोई जी ने उनसे पूछा कि "मनुष्य, पशु अथवा पेड़-पौधों के कुछ ऐसे स्पर्श होंगे जिनके साथ रहें हो और उनसे दूरी अब कोंचती रहती हों"

अरुण कमल ने उत्तर दिया - "हाँ कदम्ब का फूल अपने रोम-रोम से खिलने वाला, इतना गोल, शायद सबसे ज्यादा गोल, और केसर। सौंफ के बिल्कुल दूधिया दाने-फूलों को दानों में बदलने का बेसब्री से इन्तजार-और आलू के अखुवाने, सेम के बीज मिट्टी को ढकेल कर फुटते-भिण्डी का फूल और बीचोंबीच सहसा प्रगट होता नुकिला फल और एकदम चुटकुले की तरह लटका बच्चा भंटा और मिट्टी में खोये मूँगफली के झब्बे और छप्पर पर अनायास बढ़ता फूलता भतुआ, धीरे-धीरे भूरा पड़ता और कुम्हड़े जिनके बढ़ने की रफ्तार और हवस से खुद हम भी ऊब जाते। मैं सुबह उठता और उठकर सीधे अपनी खँड़ी (बागवानी) में इतने प्रस्फुटनों से घिरा हुआ-रात भर में इतना घट चुका। जब खूब ओस गिरती थी और मिट्टी ऊपर से भीग जाती पर भीतर उष्ण लगती, पाँवों की उँगलियों के बीच से मिट्टी ऊपर फुटती और मेरे यहाँ गइया भी थी और एक लेरू (बाछा) इतना प्यारा, मुलायम जिसके पुठ्ठे पर हाथ रखते ही उसका पूरा शरीर थरथरा जाता और नये-नये जन्में बाछे के पास जाने उसे छूने में डरता क्योंकि माँ चारा छोड़कर इधर ताकने लगती, हुंकारती और जब मैं उसे तुरत-तुरत गढ़ी हुई दूब लाकर मुँह में देता और मेरी हथेली पर पहले तो गर्म वाष्प और फिर जिभ फिराने की हलचल होती और फिर तेज छोड़ी जाती साँस और एक दिन अचानक बाछे के माथे पर दोनों तरफ एक-एक कड़ापन सींग फूटने का और दूहने के पहले पहली धार धरती पर गिरती और धरती पर सरकती एक सफेदी और फिर बाल्टी की पेंदी में तेज धार की चोट और शाम का धुँआ जाड़े में बोरसी की आग और फिर लालटेन की गेरूआ रोशनी में पालथी जमा पढ़ने बैठ जाता। यहाँ मैं मकई का गुन गाना चाहता हूँ"[2]

अरुण कमल जी ने अनेक ऐसे संस्मरणों की चर्चा समीक्षकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देने के क्रम में की है, जिसमें प्रकृति के विविध वर्णी रूपों के साथ उनके भावनात्मक सामंजस्यय का द्योतन होता है। उनके अनुसार प्रकृति का सौन्दर्य भावजगत में तब निखरता है जब वह जीवन-रक्षक के रूप में रहती है। उन्होंने इस सन्दर्भ में कहा है कि **"मेरे लिए सुन्दर का अर्थ है जीवन-रक्षक"**[3]

ऐसा कवि जिसने अपने जीवन के आरंभ में ही प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया हो उसके काव्य में प्रकृति अपने विविध रूपों में अपना दर्शन देगी ही। प्रकृतिपरक कविताओं के सन्दर्भ में पशु-पक्षियों, के भावात्मक, बिम्बात्मक एवं संकेतात्मक प्रयोगों पर विवेचना की जा रही है -

गंगा अपने देश की पहचान है। गंगा जीवनदायिनी है। गंगा को पवित्र रखने के लिए हमारे आप्तपुरुषों ने इसे धर्म से जोड़ दिया है। गंगा मातृगुणों से सम्पन्न है। गंगा शब्द के उच्चारण मात्र से अन्तःकरण श्रद्धा और निर्मलता से भर जाता है। गंगा के जल को जल नहीं उसके गुणों एवं महत्त्व के कारण उसके जल को अमृत की संज्ञा दी गयी है पर अमृतमयी माँ गंगा को हम्हीं लोगों ने विषमय कर दिया है। गंगा विष से बजबजा रही है। गंगा विकल है और उसकी सन्तानों में से सबसे ज्ञानी, सबसे बड़ा धर्मी मनुष्य

ही माँ गंगा में ढेरम-ढेर विष डाल रहे हैं। गंगाश्रित अन्य जीवों का अस्तित्व समाप्त हो रहा है, देश की पहचान समाप्त हो रही है। ऐ गंगा की सन्तानों अब गंगा तुम्हें क्या उबारेगी; अब तुम्हीं इसे उबारो। आज स्वर्ग में भगीरथ भी रो रहे होंगे। इसी भाव से पूरित अरुण कमल की कविता का यह अंश गंगा की यथार्थ स्थिति को स्पष्ट करती है -

''कभी-कभी कोई पक्षी
जल की सतह को लगभग
छाती से छूता नि:शब्द
मुड़ता है वापस,
कोई गाय, सम्भल कर
पाँव टिकाती
उतरी जल पीने
और नथुनों के नीचे
हिल गयी गंगा
असम्भव
असम्भव है सोचना -
जिनकी मिट्टी गंगा-पानी से गुँथी है
उनके लिए असंभव है सोचना कि एक दिन
गंगा के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी
विष की धाह से झुलस जाएगा
कि एक दिन गंगा
नहीं रहेगी और फिर गंगा
वे रख आये हैं गंगा के द्वार पर विषपात्र।[4]

गंगा की व्यापक महत्ता को गांगेय पक्षी एवं गाय के पानी पीने के आलम्बन से दर्शाने के साथ ही गंगा की मानव रूपी संतानों द्वारा उसे विषमय किये जाने के कारण उसके विष की धाह (ताप) की मारात्मकता को भी गांगेय पक्षी के उपक्रम से ही स्पष्ट किया है। अरुण कमल स्वतंत्र रूप से पशु-पक्षियों का वर्णन नहीं करते बल्कि कविता के भाव के साथ उसे जोड़कर कथ्य को स्पष्ट करते हैं।

आज नारी-विमर्श पर बड़ी-बड़ी बातें, बड़ी-बड़ी योजनाएँ, बड़ी-बड़ी संस्थाएँ क्रियाशील हैं; परन्तु सबसे बड़ी बात है जागृति, आत्मबल, और दृढ संकल्प की। मात्र औपचारिकताओं से नारी का कोई कल्याण होने वाला नहीं है। कवि ने एक बच्ची के प्रति इसी संवेदना को अभिव्यक्ति दी है -

"उड़ी एक चिड़िया
पंख झटकारते उठी
दूर बहुत दूर ऊपर आकाश में
उड़ी एक चिड़िया
सूर्य की ओर

अभी-अभी यहीं थी
मेरी ही थाली से उठाया था दाना
धीरे-धीरे रह गया एक अग्नि-पंख
वह सूर्य बन गयी।"[5]

बिम्बों और प्रतीकों में एक विराट भाव, एक विराट प्रेरणा कवि की प्रतिभा को आँकती है। चिड़िया छोटी से बच्ची का प्रतीक जो हमारे साथ खाती-पीती रहती है पर उसकी उड़ान इतनी ऊँची कि वह सूर्य बन जाती है। इतनी प्रखर है उसकी ज्योति, इतना प्रखर है उसका तेज। आवश्यकता है प्रेरणा की।

शरीर को गला देनेवाली ठंढ़क में जीवन संघर्ष करने वाला एक बूढ़ा जो दतवन बेचता है। कोई आश्रय नहीं। संभव है उसके ऊपर अपने बच्चों की भूख मिटाने का भी दायित्व हो, वह जाग रहा है बुझती हुई बोरसी को अपनी छाती से सटाये जाड़े की कनकनाती रात की विषैली हवा के बीच। उसी एकान्त चौराहे के फुटपाथी दुकानों के नीचे पैरों से मिट्टी उभारकर आवारा कुत्ते भी गठरी की तरह अपना मुँह पैरों में छिपाए पड़े हैं और वह बूढ़ा भी संघर्षरत है। जीवन भर उस बूढ़े के पास इसके सिवा कुछ शेष नहीं है। कवि उस बूढ़े से प्रेरित होता है 'मैं हथेलियों में मुँह बाँधे बढ़ रहा हूँ'। जीने की कुछ कर गुजरने की 'जीजिविषा'। जाड़े में ठिठुरता कुत्ता और बूढ़ा.....सुबह की आशा.....कवि की आशा। लाख प्रलय हो जाए पर जीवन का बीज कभी समाप्त नहीं होता, यह प्रकृति का अन्तर्निहित धर्म है। प्रकृति और जीव का प्रेम अक्षुण्ण है। प्रकृति फिर जीवन दायिनी हो जाती है। जीवन का अंकुरण होने लगता है। प्रलयंकारी बाढ़ में सबकुछ नष्ट हो जाता है, सबकुछ समाप्त, पर जीव है कि उसे फिर बसा लेता है। यही है जीवन-मृत्यु का संघर्ष।[6]

अरुण कमल की कविताओं को समझने के लिए प्रयुक्त बिम्बों और प्रतीकों को जानना भी नितान्त आवश्यक है। मजदूर वर्ग अपनी जायज माँगों के लिए जुलूस, आंदोलन, हड़ताल आदि सब करते हैं। जेल जाते हैं, गोलियाँ से भूने जाते हैं। पर बिल्कुल सामान्य लाभ देकर समझौता हो जाता है। अरुण कमल की ऐसी कविताएँ, आन्दोलन से कम महत्त्व नहीं रखती। हमें सोचने के लिए आँखे खुल जाती हैं। महामहिम सुप्रिमों, प्रधान आदि महान शब्दों से विभूषित होने वाले देश के महाशक्ति की शाही सवारी शहर के इसी पथ से गुजरने वाली है। एक बिजली मिस्त्री जला देने वाली धूप में बिजली के खम्भे पर चढ़कर बिजली दुरूस्त कर रहा है। उसे आशा है आज उसका ठेकेदार सब मजदूरी जोड़कर दे देगा। आज वो नहाएगा, साफ कपड़े पहनेगा। माँ, पत्नी और बच्चों के साथ खुशियाँ मनाएगा। पर यह क्या घ काम खतम होने पर उतरने ही वाला था कि वह कनकौवा की तरह बिजली के तार में लटक गया, झुलसने लगा। उसे करंट मार दिया-कनकौवा और मजदूर दोनों एक -

"वह टँगा रहा ऊपर खम्भे पर वैसे ही जैसे कोई
कनकौवा फँसा हो लेकिन कोई फड़फड़ नहीं
उसको करन्ट मार दिया.....दौड़ो,
वह टँगा रहा ऊपर और लोग जुटने लगे
दौड़े मजदूर जो उसके साथ काम कर रहे थे
सड़क उस पार
'उसको करेन्ट मार दिया'
दौड़े उसके घर के लोग गाँव जेवार के लोग
रिक्शे वाले ठेले वाले
दौड़ी उसकी औरत उसके बच्चे दौड़े
दौड़ी उसकी अपया माँ
दौड़े पुलिस सिपाही हाकिम छकड़े दौड़े
ठहरा सारा शहर दौड़ता
'जल्दी उतारो बेवकूफ को' अधिकारी गरजा

साथी रामआसरे यादव भीड़ चीरता आया, 'जुर्माना देना होगा'
अधिकारी तमतम बोला यह भी नहीं जानते बेवकूफ
जुर्माना नहीं कम्पेन्शेसन.....
उतारो जल्दी
'हम लाश नहीं छोड़ेंगे' बिल्टू बिन्द डटकर बोला
'तुम कौन लगते हो उसके ६ एक दूसरे अधिकारी ने मुस्की छोड़ी
'वो हमारा भाई था हमारा साथी मजूरा'
और तभी पहले अधिकारी ने बिल्टू को थप्पड़ मारा -
काम करता था पैसा पाता था मर गया मर गया.....चलो
साफ करो भीड़, जल्दी करो जल्दी आ रहे होगे।
सुप्रीमो।

अरुण कमल की ऐसी अनेक कविताएँ हैं। जिनमें पशु-पक्षियों के आलम्बन से कविता के आन्तरिक कथ्य को पूरी तरह स्पष्ट किया गया है । पशु-पक्षियों की प्रवृति से, उनके जीवन के क्रिया-कलापों से, उनके स्वरूप से, उनकी स्थिति से मनुष्यों की स्थिति, उनकी गति-दुर्गति, उनकी प्रवृति उनके क्रिया-कलाप, उनकी दिनचर्या, उनकी आपत्ति - विपत्ति उनका जीवन-मरन, उनकी दशा-दुर्दशा, उनकी राजनीतिक-सामाजिक स्थिति, उनकी भूख-प्यास; उनके आवास आदि के यथार्थ को बिम्बात्मकता एवं प्रतिकात्मकता से व्यक्त करने की अद्‌भुत काव्य-प्रतिभा का द्योतन करता है। अरुण कमल जी ने हाथी से लेकर चींटी अर्थात् जलचर, थलचर, नभचर जीवों को अपनी स्थिति-दर्शन के साथ जोड़ दिया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहना समीचीन होगा कि अरुण कमल की वैसी कविताएँ जिनमें ऋतुओं के रूपों को समाविष्ट किये गये हैं वे रूप सौन्दर्य वर्णन के लिए नहीं अपितु उसे मानवों के भाव संसार से जोड़कर उसकी हताशा को दूर करने का सार्थक प्रयत्न किया गया है। कवि ने अपने कथ्य को पूरी तरह प्रकट करने के लिए ऋतुओं के उपकरणों को प्रतीकों, बिम्बों और मिथकों में प्रयोग किया है। ऋतु और भाव ऐसे घुल-मिल गए हैं कि इन्हें पृथक करना असंभव सा प्रतीत होता है। अनछुए बिम्बों और प्रतीकों से कविता की रसनिष्पत्ति के प्रवाह को अवाध गति मिलती है। यही तो इस कवि की विशेषता है। निश्चय ही कवि अरुण कमल का स्थान हिन्दी साहित्य में विशिष्ट है इस महान कवि ने जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहराई से अपनी लेखनी के माध्यम से शिर्जित किया है।

संदर्भ सूची

1. अरुण कमल, 'कथोपकथन (साक्षात्कार)', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009, पृष्ठ संख्या- 17
2. अरुण कमल, 'कथोपकथन (साक्षात्कार)', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2009, पृष्ठ संख्या- 18
3. अरुण कमल, 'कथोपकथन (साक्षात्कार)', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2009, पृष्ठ संख्या- 19
4. अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2006, पृष्ठ संख्या- 63-64
5. अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2006, पृष्ठ संख्या- 70
6. अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-73

वर्त्तमान परिदृश्य में ग्रामीण हाट बाजार: अवसर और चुनौतियाँ

मनीषा कुमारी

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोध सारांश

हाट बाजार विनिमय का एक प्राचीनतम केंद्र है। खुले आसमान के नीचे 3-4 घंटे की अवधि में लगने वाले ये बाजार क्रेता और विक्रेता दोनों की जरूरतों को पूरा करते हैं। स्थानीय किसानों और विक्रेताओं को व्यापारिक स्थल उपलब्ध हो जाता है और उपभोक्ताओं को दैनिक जीवन के लिए उपयोगी सभी चीजें एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है। भारत जैसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्र में हाट बाजार का काफी महत्व है। गाँवों और कस्बों के निकट लगने के कारण परिवहन व्यय निम्न होता है, जिस कारण उपभोक्ताओं को वस्तुएँ अपेक्षाकृत सस्ती उपलब्ध हो जाती है। हाट बाजार से आसपास के इलाकों में स्थानीय स्तर की उद्यमिता को प्रोत्साहन मिला है। यह स्वरोजगार का अवसर प्रदान करता है। वर्त्तमान परिदृश्य में इन हाटों को उपग्रेड कर रोजगार संबंधी समस्याओं का सामाधान किया जा सकता है। हालाकिं शॉपिंग मॉल्स, सुपर मार्केट, कॉम्पलेक्स, ऑनलाइन खरीदारी इसकी प्रमुख चुनौती के रूप में उभरे हैं। भंडारण, खुला आसमान, पेयजल, बिजली जैसी समास्याएं हाट बाजार के विकास के मार्ग को रोके हुए हैं। इन हाट बाजार की बदहाल स्थिति की ओर सरकार और प्रशासन को सुधारात्मक रवैया अपनाना चाहिए।

शब्द कुंजी: हाट बाजार, आधुनिक विपणन, स्वरोजगार, साप्ताहिक बाजार।

परिचय

मानव जाति के विकास के साथ-साथ उनकी आवश्यकताएँ और अभिलाशाएँ बढ़ती गई। अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए प्रारंभ मे लोगों ने वस्तुओं का आदान-प्रदान किया। हालांकि मुद्रा के आविश्कार ने क्रय-विक्रय की प्रक्रिया को सहज बना दिया और लोगों को अपनी जरुरतों को पूरा करना आसान हो गया। मानव जीवन की विभिन्न दैनिक और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक व्यापारिक स्थल 'हाट' का इजाद हुआ। जहाँ लोगों के लिए आवश्यक तमाम वस्तुएँ जैसें- अनाज, सब्जियाँ, फल, मसाले, कपड़े, बर्तन, खिलौने, मिठाइयाँ इत्यादि सुलभता से उपलब्ध हो जाती थी। सुविधा की चाह और आधुनिकता के क्रम मे परिवर्तन हाते गए। जहाँ सुविधायुक्त मार्केट कॉम्पलेक्स, मॉल्स इत्यादि खुलने लगे और लोग इनकी ओर आकर्शित होने लगे। ये ऐसे बजार होते हैं, जहाँ एक ही छत के नीचे तमाम दैनिक और भौतिक वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती है। इसके साथ ही ऑनलाइन खरीदारी का विकल्प भी सामने आया, जिसने अपनी पहुँच महानगरों से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों तक बनाई। किंतु इसके बावजूद हाट अपने ठाठ के साथ कायम है। वर्तमान में भी ग्रामीण इलाकों सें लेकर मेट्रो सिटीज तक हाट बाजार का संचालन नियमित रुप से होता है। गाँवों-कस्बों में रहनें वाले लोगों के साथ-साथ आधुनिक शहरों के लोग भी इन परम्परागत बाजार में अपनी दैनिक और घरेलू वस्तुओं की खरीदारी करते है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो लोग हाट का इंतजार तक करते नजर आते है। विकास के तमाम आयामों के बीच हाट की संस्कृति आज भी बरकरार है।

हाट खुले आसमान के नीचे लगने वाला एक ऐसा बाजार है, जहाँ मानव जीवन के लिए आवश्यक लगभग सभी वस्तुएँ सुलभता से उपलब्ध हो जाती है। सामान्यत: हाट बाजार लगने की अवधि 3-4 घंटे की होती है। किंतु उस क्षेत्रा का विस्तार एवं दूरी भी हाट बाजार को अवधि तय करती है। इन परम्परागत बाजारों को साप्ताहिक बाजार, आवधिक बाजार, पेठिया इत्यादि भी कहते है। इन बाजारों का परिचालन वैसे तो साप्ताहिक दिनों के आधार पर होता है पर कहीं-कहीं जनसंख्या घनत्व के आधार पर ये प्रतिदिन परिचालित होते है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हाट की महत्ता का अध्ययन करना
2. हाट बाजार से संबंधित प्रमुख चुनौतियों का अध्ययन करना
3. वर्तमान परिदृश्य में हाट बाजार की उपयोगिता

शोध क्रियाविधि

यहाँ एकत्रित किया गया आकड़ा द्वितीयक स्त्रोतों से है। विशय के बारे में जानने के लिए समाचार पत्रों पत्रिकाओं, बेबसाइटों, शोध लेखों और किताबों का अध्ययन किया गया है।

भारत में वर्तमान परिदृश्य में हाट बाजार

भारत गाँवों का देष है। यहाँ की कुल जनसंख्या का 68.8% ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों क्रय-विक्रय की दृष्टि से हाट बाजार महत्वपूर्ण है। ग्रामीण हाट बाजार भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। ये बाजार विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक गतिविधियों के विचारों का आदान-प्रदान करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। सदियों से भारत कें गाँवों की आत्मनिर्भता सुनिश्चित करने में हाट बाजार की भूमिका को नकारा नही जा सकता है।

1. स्थानीय कृषकों को लाभ: हाट बाजार वास्तव में कृषि बाजार है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वावलंबन की दिशा में इनकी अहम भूमिका है। छोटी जोत वाले किसानों के पास इतना संसाधन और समय नही होता की वह अपने खेत मे अनाजों के साथ ही उपजाई गई थोड़ी सी सब्जियों कों बेचने शहर जाए या मंडी भेजे। ऐसी हालत मे उसके पास हाट बाजार एक बेहतर विकल्प के रुप मे होता है। जहाँ वह अपनी वस्तुओं का विक्रय कर अपनी रोजमर्रा की जरुरतों कों पूरा कर लेता है। चूँकि इन उत्पादों पर परिवहन शुल्क निम्न होता अथवा नगण्य होता तों क्रेताओं कों अपेक्षाकृत सस्ती उपलब्ध हो जाती है और कृषकों को उचित मूल्य भी प्राप्त हो जाता है।

2. स्थानीय रोजगार: ये ग्रामीण बाजार किसान, मजदूर के पूरे परिवार को रोजगार मुहैया कराता है। इसमें किसी विषेषज्ञता की भी जरुरत नही होती है। किसान, मजदूर परिवार का हर व्यक्ति ग्रामीण हाट स्थल पर अपने उत्पाद को बेचकर अपनी आजीविका प्राप्त कर लेता है। कुछ फुटकर विक्रेता तो परम्परागत रुप से उस पेषे से जुड़े होते है। हाट बाजार ने नए-नए उद्यमी को उभरने का अवसर प्रदान किया है। जैसे- बाँस की वस्तुओं को निर्मित करने वाले, मिट्टी के बर्तन, खिलौने इत्यादि बनाने वाले कुटीर उद्योगों कें अंतर्गत महिला रोजगार कें अवसर भी प्रदान करते है। वर्तमान परिदृश्य में इन हाटों कों अपग्रेड कर स्थानीय स्तर पर रोजगार संबंधी समसयाओं का समाधान किया जा सकता है तथा ग्रामीण पलायन को बहुत हद तक रोका जा सकता है।

3. अपेक्षाकृत सस्ती वस्तुएँ: हाट बाजार में ग्राहकों सब्जियाँ, फल इत्यादि वस्तुएँ अच्छी गुणवता कें साथ अपेक्षाकृत सस्ती मूल्य पर प्राप्त हो जाती है। इस बाजार के क्रेता और विक्रेता स्थानीय होते है, जिसके कारण उनको अपनी वस्तुएँ हाट स्थल तक लाने यात्रा व्यय नही के बराबर लगता है तथा इन हाटों में विक्रेताओं की अधिक संख्या होने के कारण पूर्ण प्रतियोगिता रहती है, जिसका लाभ ग्राहकों कों मिल जाता है और वस्तुएँ उचित मूल्य पर प्राप्त हो जाती है। हालांकि ग्राहकों और विक्रेताओं में समय-समय पर मोलभाव का दृश्य भी देखने को मिल जाता है।

4. महिला सशक्तिकरणः साप्ताहिक बाजार का महिला सशक्तिकरण में विशेष योगदान है। यहाँ महिलाएँ क्रेता और विक्रेता दोनों ही श्रेणी में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भारत जैसे विकासशील देश में महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास से ही पूर्ण विकास संभव है। ग्रामीण हाट बाजार उन्हें स्वरोजगार और परम्परागत रोजगार दोनों के लिए सुलभ स्थल प्रदान करती है।

ग्रामीण हाट से संबंधित चुनौतियाँ

भारतीय अर्थव्यवस्था में हाट बाजार का महत्वपूर्ण स्थान होने के बाबजूद इसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। हाट बाजार से संबंधित प्रमुख चुनौतियाँ है:-

1. सरकारी उपेक्षाः ग्रामीण हाट बाजार को केन्द्र से लेकर पंचायत स्तर तक उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। केन्द्र सरकार ने 2018-19 के बजट में 22000 ग्रामीण कृषि मंडी और 585 कृषि उपज मंडी समितियों में कृषि विपणन अवसंरचना विकास और उन्नयन के लिए 2000 करोड़ रूपये के कार्पस के साथ कृषि-मंडी अवसंरचना कोष की स्थापना करने की घोषणा की थी। साथ ही कहा था कि चरणबद्ध तरीके से वर्षवार 22000 ग्राम हाटों को उन्नत कृषि मंडी के तौर पर विकसित किया जायेगा ताकि किसानों की आय दोगुना करनेमें मदद मिलेगी। हालांकि, लगभग दो वर्ष बीत चुके हैं और अबतक सिर्फ 476 कृषि मंडियों को महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून योजना के तहत अपग्रेड किया गया, जिसको सारणी-1 के द्वारा दर्शाया गया है।

सारणी-1: मनरेगा के तहत गाँव की हाट (09.03.2020 तक)

क्रम संख्या	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	स्थापना के बाद से चल रही है	स्थापना के बाद से पूरा हो गई
1	आंध्र प्रदेश	11	14
2	अरूणाचल प्रदेश	2	3
3	असम	9	1
4	बिहार	29	5
5	छतीसगढ़	85	29
6	गुजरात	2	1
7	हरियाणा	0	1
8	हिमाचल प्रदेश	45	7
9	जम्मू और कश्मीर	28	4
10	झारखंड	1	0
11	कर्नाटक	17	7
12	केरल	16	4
13	मध्य प्रदेश	55	69
14	मणिपुर	2	23
15	मेघालय	9	3
16	मिजोरम	39	99
17	नागालैंड	0	2

18	ओडिसा	21	28
19	पंजाब	7	2
20	राजस्थान	42	35
21	सिक्किम	0	3
22	तमिलनाडू	48	19
23	तेलांगाना	7	1
24	त्रिपुरा	2	7
25	उत्तरप्रदेश	63	62
26	उत्तराखण्ड	29	11
27	पश्चिम बंगाल	150	36
28	पुडुचेरी	1	0
	कुल	**820**	**476**

स्त्रोत: कृषि सहकारिता एवं कल्याण विभाग, भारत सरकार

2. परिवहन और भंडारण: ग्रामीण बाजारों में परिवरन सबसे बड़ी चुनौती है। जहाँ तक सड़क परिवहन का संबंध हैलगभग 50 प्रतिशत गाँव सड़को से जुड़े है बाकी ग्रामीण बाजारों से उचित सड़क संपर्क भी नहीं है। इन बाजारो के पास भंडारण सुविधाएं एवं बहुउद्देशीय कोल्ड स्टोरेज का अभाव रहता है।

3. उपयुक्त स्थान का आभाव: हाट बाजार अपनी जगह के मामलें में अनिश्चित है। यह बाजार खुले आसमानो के नीचे किसी मैदान अथवा गली के नुक्कड़ पर लगाया जाता है। इसका कोई स्थायी निश्चित बुनियादी ढ़ाचा नहीं है। बारिस के दिनों में इन स्थानों पर कीचड़ व पानी भर जाने से बाजार संचालन मे काफी परेशानी हो जाती है।

4. मुलभूत सुविधाओं का अभाव: ग्रामीण हाट बाजारों में शौचालय, पेयजल, बिजली, भंडारणगृह इत्यादि जैसी मुलभूत सुविधाओं का अभाव रहता है। जिसके कारण यहाँ दुकान लगाने वाले विक्रेता और खरीदी के लिए आने वाले क्रेता को काफी दिक्कतों का सामना करना पडता है। पेयजल की असुविधा के कारण सबसे अधिक परेशानी होती है।

5. आधुनिक बाजार प्रणाली: वर्तमान समय में पूरी दुनिया एक स्वतंत्र बाजार के रूप में बदल गया है। लोग खरीदारी के मात्र हाट बाजार तक सीमित नही हैं। उनके पास मॉल्स, मार्केट कॉम्पलेक्स, सुपर मार्केट जैसी सुविधाएँ है जो आधुनिकता का प्रतीक होने के साथ-साथ ढ़ेरो सुविधाएँ मुहैया कराती है। इसके साथ ही ऑनलाइन खरीदारी के लिए मिंत्रा, अमेजन, फ्लिपकार्ट, बिग बाजार जैसी ई-कॉमर्स कम्पनियाँ उपलब्ध है जो आज के तकनीकी युग मे अपना बाजार तेजी से फैला रही है। बदलते परिवेश में बाजार का बदलता स्वरुप पुरातन हाट प्रणाली के लिए एक चुनौती के रुप मे उभरा है।

6. संचार प्रणाली का अभाव: व्यापार के सुचारू संचालन के लिए त्वरित संचार प्रणाली समय की जरूरत हैं। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में संचार सुविधाओं की कमी रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर की कमी और उपभोक्ताओं का पारंपरिक व्यवहार, संचार प्रणाली के विकास मे बाधक है।

सुझाव

- ग्राम पंचायत द्वारा हाट बाजार लगाने के लिए उपयुक्त बाजार स्थान की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि क्रेताओं और विक्रेताओं को क्रय-विक्रय करने में किसी प्रकार की परेशानी का सामना न करना पड़े।

- पंचायत को हाट बाजार ऐसे स्थान संचालित करवाना चाहिए जहाँ मुलभूत सुविधाओं के साथ-साथ स्वास्थ्य, साफ-सफाई और पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो।
- इन बाजारों को बढ़ावा देने के लिए विनियमित बाजारों तथा मुख्य सड़को से जोड़ा जाना चाहिए। भंडारण सुविधा तथा बहुउद्देशीय कोल्डस्टोरेज की व्यवस्था की जानी चाहिए। ताकि सब्जियों, फलों को खराब होने से बचाया जा सके और बाजार मे इनकी उपलब्धता बरकरार रहे।

निष्कर्ष

इसमें कोई अतिशयोक्ति नही है कि हाट बाजार लबे समय से ग्रामीण आबादी की संस्कृति और अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है। हाट को चलाने के लिए कोई संस्थागत तंत्र नही है सिर्फ खरीदने व बेचने वाले वहाँ जुटते है। यह एक ऐसी अवधारणा पर बसा बाजार है जो अवसरों की उपलब्धता को बरकरार रखता है। हालांकि, वर्तमान समय में हाट बाजार अनके चुनौतियों का सामना कर रहा है जिसपर सरकार और प्रशासन को ध्यान देने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा पीयूष (2001), सेंधवा तहसील के हाट बाजारों का आर्थिक विश्लेषनात्मक अध्ययन
2. गुप्ता सुनिता (2002), दक्षिण-पश्चिम मध्यप्रदेश के आदिवासी विपणन केंद्र तथा ग्रामीण विकास एक भोगौलिक अध्ययन
3. श्रीवास्तव बी. के., ज्योग्राफी ऑफ मार्केटिंग एडं रूरल डेवलपमेंट, इंटर इंडिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली
4. शर्मा ए. ए.(2018), कायम है हाट के ठाठ, डाउन टू अर्थ पत्रिका, 15 जनवरी 2018
5. चतुर्वेदी पंकज (2017), मुक्त मंडी और हाट बाजार, जनसता, 2 जुलाई 2018
6. सरकार अदिति (2019), सबसे जमीनी विपसान प्रणाली का हिस्सा है हाट, डाउन टू अर्थ, 8 फरवरी 2019
7. दुनिया मेरे आगे: शहर में हाट, जनसता, 24 नवंबर 2018

चूरू जिले में भूमिगत जल की वर्तमान स्थिति का अध्ययन

दिनेश कुमार मीणा

शोधार्थी, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर (राजस्थान)

डॉ० रविन्द्र कुमार

सह-आचार्य, भूगोल विभाग, राजकीय लोहिया पी.जी महाविद्यालय, चूरू (राजस्थान)

सारांश

जल एक आधारभूत संसाधन है। मानव समाज और जल का घनिष्ठ संबंध है। जल की प्राप्ति का प्रमुख साधन वर्षा है। जब वर्षा अधिक होती है तो भू-पृष्ठ अपनी क्षमतानुसार जल की मात्रा को अवशोषित करता है जल धाराओं का जल ही सतही जल के रूप में उपलब्ध होता है भूमिगत जल की कमी के कारण राजस्थान को बहुत हदतक भूजल संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ता है। बड़ी संख्या में कुँए, बावड़ियां और झालरें प्रमुख परम्परागत जल संसाधन हैं अत: पश्चिमी राजस्थान में भूजल पुनर्भरण अपेक्षाकृत कम है, सतही जल संसाधनों की अनुपस्थिति तथा उच्च वाष्पोत्सर्जन इसके कारण हैं। भू-जल का अत्यधिक दोहन व पानी बचाने के प्रति जागरूकता के अभाव के कारण जिले का भू-जल स्तर रसातल में जा चुका है और लगातार भूमिगत जल स्तर में गिरावट दर्ज की जा रही है।

प्रस्तुत शोधपत्र के अन्तर्गत भूमिगत जल स्तर की लगातार गिरावट का अध्ययन किया गया है ओर इसमें बताया गया है कि किस प्रकार से हम भूमिगत जल व धरातलीय जल का सही उपयोग करके सतत विकास की ओर बढ़ सकते हैं।

मूल बिन्दु : जलस्तर, भू-जल प्रबंधन, सतत् विकास, अनियंत्रित दोहन, वर्षा की कमी

परिचय

मानव अपनी सुख सुविधाओं से वृद्धि, आय और जीवन स्तर में वृद्धि हेतु उत्पादन जल स्त्रोतों के होड़ में पृथ्वी के सतही तथा भूगर्भीय जल स्त्रोतों के अविवेक पूर्ण दोहन से सारे विश्व को 'जल संकट' की ओर धकेल रहा है पेयजल, जल कृषि उद्योगों एवं सेवाएं उद्योगों के लिए एक महत्वपूर्ण आगत है समुचित मात्रा में सभी प्रकार की जल मांग पूरी न हो पाने से विकास हेतु बड़ी निहितार्थ उत्पन्न होती है अत: जल की बढ़ती मांग के कारण सतही जल स्त्रोतों एवमं भूगर्भीय जल स्त्रोतों दोनो में ताजा और स्वच्छ जल की निरन्तर कमी होती जा रही है, जल एवं प्राकृतिक वस्तु हैं धीरे-धीरे एक दुलर्भ अल्पापूर्ति वाले वस्तु होते जा रहे हैं।

जल संकट का सामना करने की कार्यनीति त्रिआयामी होनी चाहिए जिसमें जल का किफायत के साथ उपभोग, जल स्त्रोत को प्रदूषण से बचाकर जल की गुणवता बहाली तथा जलापूर्ति न्यायोचित और समतामूलक होने पर केन्द्रित हो इस हेतु बेहतर कार्य नीति

की आवश्यकता है जिसके प्रमुख बिन्दु परम्परागत व आधुनिक जल संग्रहण विधियों को अनिवार्य रूप से लागू करना, फसल की उत्तम किस्मों का निर्माण जो कम जल का प्रयोग करे आदि हो सकते हैं।

साहित्य पुनरावलोकन

भूमिगत जल की लगातार कमी ने शुष्क एवं अ)शुष्क क्षेत्रों में जल प्रबंधन के परम्परागत व आधुनिक विधियों पर अध्ययन के लिये ध्यान केन्द्रित किया है। वर्तमान में भी इन पर अध्ययन हो रहा है।

- मैल्कन (1982) तथा चतुर्वेदी (1985) ने विशेषत: दक्षिण एशिया के संदर्भ में जल संसाधन की उपलब्धता, उपयोग तथा संरक्षण हेतु विविध प्रकार की तकनीकों तथा सुझावों सहित अपने अध्ययन प्रस्तुत किये हैं।
- चौहान, दुबे (2004) ने जल प्रबन्धन की आधुनिक तथा प्राचीन तकनीकों की क्षेत्रवार जानकारी प्रदान की हैं। इसी क्रम में इन्होने वर्तमान में शु) पेयजल की कमी तथा इसके दुष्परिणामों से बचने के उपाय भी सुझायें हैं।
- रविन्द्र कुमार व हेमन्त मंगल (2008) ने चूरू जिले में जल व भूमि प्रबन्धन के बारे में तथा जिले के भू-जल में मिलने वाले विभिन्न रासायनिक तत्वों के बारे में अपने लघुशोध मे व्याख्या की है।
- महरिया (2009) ने मरूस्थलीय क्षेत्रों में वर्षा जल की आधुनिक व पारम्परिक जल प्रबन्धन की तकनीकों के बारे में अपने शोध कार्य में विस्तृत विवरण दिया है।
- बूँदों की संस्कृति (2010) साथ ही राजस्थान के रेतीले क्षेत्र में विभिन्न पारम्परिक जल प्रबन्धन जैसे- टांके, झालरा, कुण्ड, कुई, तालाब आदि के महत्व को प्रस्तुत किया है। भविष्य में इन्हें साथ लेकर चलने की हिदायत दी है।

उद्देश्य

1. चूरू जिले में घटते भूमिगत जल स्तर एवं विकास की भावी विस्तार हेतु रचनात्मक सुझाव देना।
2. चूरू जिले में भूमिगत जल की परम्परागत, व आधुनिक जल संरक्षण तकनीकों के उचित उपयोग हेतु अध्ययन प्रस्तुत करना।
3. चूरू जिले में उपलब्ध जल संसाधनों का आंकलन करना ओर भूमिगत जल स्तर का अध्ययन करना।

आंकड़ों का स्त्रोत एवं विधि तंत्र

प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक आंकडों का संकलन किया गया है। द्वितीयक आंकड़े चूरू पी.एच.ई.डी विभाग से, आपनी योजना, चूरू तहसील एवं पंचायत समिति कार्यालय चूरू से एकत्रित किये गये हैं।

अध्ययन क्षेत्र

चूरू जिला भारत के पश्चिमी रेगिस्तान का समूह मानवीय आवास का अद्वितीय उदाहरण है। यह उत्तर में हनुमानगढ़ जिले से तथा दक्षिण-पूर्व में राजस्थान के सीकर तथा झुन्झुनूं जिले से व उत्तर-पूर्व में हरियाणा के हिसार जिले से घिरा हुआ है। इसके दक्षिण में नागौर तथा पश्चिम में बीकानेर जिला स्थित है। इसका क्षेत्रफल 16830 वर्ग किमी. है। जो कि राजस्थान के कुल क्षेत्रफल का 4.91 प्रतिशत है। इसका विस्तार $27^0 24'$ से $29^0 00'$ उतरी अक्षांश तथा $73^0 40'$ से $75^0 41'$ पूर्वी देशान्तर के बीच में स्थित है। इसमें राजगढ़, तारानगर, चूरू, सरदारशहर, रतनगढ़ व सुजानगढ़ छ: तहसीलों में बंटा हुआ है। यहां औसत वर्षा 19 दिन ही होती है जिसमें 347 एम.एम. वर्षा होती है भू-जल स्तर लगातार गिरने से पीने योग्य पानी का संकट दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2011 आंकड़ों के अनुसार जिले के कुल जनसंख्या 2,041,172 है जिसमें से पुरुष एवं महिला क्रमश: 1053375 एवंम 987797 है जिले में लिंगानुपात 922 तथा जनसख्या घनत्व 148 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर पाया जाता है।

मानचित्र संख्या 01 : चूरू जिला अवस्थिति मानचित्र

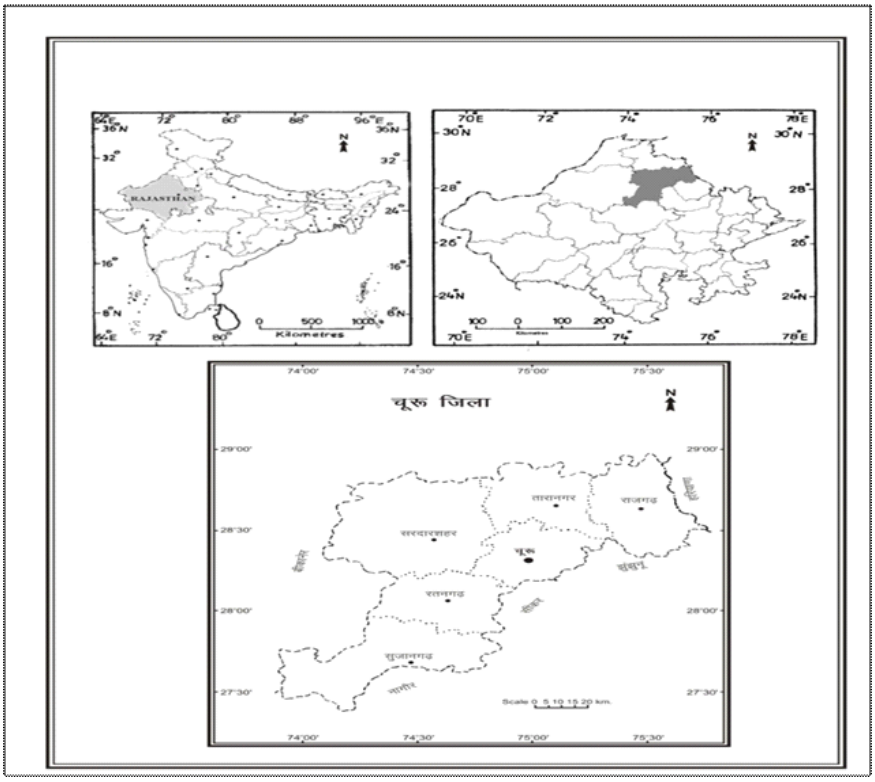

स्त्रोत: भू-जल प्रतिवेदन, जिला चूरू

भूमिगत जल स्तर

जल स्तर की गहराई का अध्ययन करने के लिये केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड (ब्यळएँण्ठ) के हाइड्रोग्राफ स्टेशन के आंकड़े को उपयोग में लिया गया है निम्न तालिका के अध्ययन से पता चलता है कि वर्ष 2008 में मानसून से पूर्व जिले की तारानगर तहसील में न्यूनतम जलस्तर आंका गया था जो की 23.10 मीटर एवं मानसून पश्चात इस तहसील में जलस्तर की गहराई 22.98 थी। जिले में 2017 के पूर्व मानसून के आंकड़ो के अनुसार जिले की तहसीलो में उच्चतम जलस्तर सरदारशहर तहसील में दर्ज किया गया जो की 49.66 मीटर था। वर्ष 2008 के आंकड़ो के अनुसार इस तहसील का जलस्तर 48.69 था। अत: सरदारशहर तहसील में जलस्तर में मामूली वृद्धि तहसील में पायी गई है।

तालिका संख्या 01 : जिले में भूमिगत जल स्तर की गहराई 2008-2017

तहसील	मानसून		मानसून	
	मानसून पूर्व	मानसून पश्चात	मानसून पूर्व	मानसून पश्चात
	2008	2008	2017	2017
चूरू	36.14	36.06	34.81	34.68
राजगढ़	38.58	38.64	30.72	30.36

रतनगढ़	38.35	38.36	38.39	38.26
सरदारशहर	48.69	48.71	49.66	49.56
सुजानगढ़	26.44	26.63	25.97	25.99
तारानगर	23.10	22.98	22.52	22.49

स्त्रोत : भू-जल प्रतिवेदन, जिला चूरू

जल स्तर में बदलाव

तुलनात्मक दृष्टि से देखे तो वर्ष2008 से 2017 में भूमिगत जल स्तर चूरू, राजगढ़, सुजानगढ़, तारानगर में लगातार जल स्तर कम होता जा रहा है। ओर रतनगढ़, सरदारशहर तहसीलों में जल स्तर में वृद्धि हुयी है तालिका संख्या 01 में जिले में भूमिगत जल स्तर की गहराई को विभिन्न तहसीलों के अनुसार दर्शाया गया है। तालिका संख्या में दर्शाए गए जिले के वर्ष 2008 एवं 2017 के जल स्तर की गहराई के आंकड़ो को विश्लेषित करने पर स्पष्ट होता है की जिले में जल की गहराई निरंतर कम होती जा रही है। जिले की सरदारशहर तहसील में जलस्तर की गहराई अन्य तहसीलो की तुलना में सर्वाधिक पायी गई है।

तालिका संख्या 02 : औसत वार्षिक वर्षा

तहसील	औसत वार्षिक वर्षा (से.मी.)	
	2008	2017
चूरू	33.54	32.24
राजगढ	32.41	30.31
रतनगढ	42.00	39.32
सरदारशहर	40.3	40.1
सुजानगढ़	26.8	38.42
तारानगर	30.31	32.11

स्त्रोत : जिला सांख्यिकीय रूपरेखा, चूरू

जिले की तहसीलों में वर्ष 2008 एवं 2017 के पूर्व मानसून एवं मानसून पश्चात के जलस्तर का आंकलन करने पर ज्ञात होता है की वर्ष 2008 में पूर्व मानसून कि तुलना में जिले की सभी तहसीलों में मानसून पश्चात जलस्तर में कम अथवा ज्यादा परंतु बढोतरी देखने को मिलती है। जबकी वर्ष 2017 के आंकड़ो के अनुसार यह स्थिति विपरीत है। जिले की तहसीलो में वर्ष 2017 में मानसून पश्चात जलस्तर की गहराई घटने के बजाय बढी है।

यदि इस सन्दर्भ में जिले की सभी तहसीलो में औसत वार्षिक वर्षा के आंकड़ो का अध्ययन किया जाए तो तालिका संख्या 2 के अध्ययन से स्थिति स्पष्ट होती है की जिले की तहसीलो में वर्ष 2017 की तुलना में वर्ष 2008 में औसत वार्षिक वषा का स्तर अधिक रहा है। फलस्वरूप 2008 में तहसीलो में जलस्तर औसत रूप से बढा है। इसके अलावा चूंकी जिले में कृषि व्यवस्था सिंचाई की तुलना में वर्षा पर अधिक निर्भर है। अतऐव अच्छी वर्षा के फलस्वरूप भूमिगत जल का उपयोग कम हुआ इस कारण भी जल स्तर कुछ मात्रा में बढा है।

सुझाव

उपरोक्त अध्यनोपरांत ज्ञात होता है की चूरू जिले में भूमिगत जल का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। इस हेतु जिले में जल प्रबंधन एवं भू-जल संरक्षण हेतु कठोर नीति बनाए जाने की आवश्यकता है। जिले में भूमिगत जल स्तर बढाने एवं जल प्रबंधन हेतु निम्न सुझाव अपनाये जा सकते हैं।

- जनता सरकार एवं गैर सरकारी संस्थाओं के सहयोग से जल संरक्षण किया जा सकता है ओर जल संकट की समस्या को चुनौती दी जा सकती है।

- जल के उपभोग प्रबन्धन का सर्वेक्षण कर पारिस्थितिकी सत्त जल प्रबन्धन करना
- जल संचयन तकनीक को प्रभावी तरीके से क्रियान्वित करके एवं जल स्वावलम्बन जैसे अभियान का हिस्सा बनकर भूमिगत जल का दोहन कर समीपि क्षेत्रों में ले जाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाये।
- परम्परागत व आधुनिक जल संग्रहण विधियों को अनिवार्य रूप से लागू करना ओर आधुनिक सिचांई विधियों का प्रयोग जैसे बूंद बूंद सिंचाई योजना।
- फसल की उत्तम किस्मों का निर्माण जो कम जल का प्रयोग करें।
- चूरू जिले में जल संरक्षण में रेन हार्वेस्टिंग सिस्टम की अहम भूमिका होनी अति आवश्यक है वर्षा जल अधिक से अधिक मात्रा में संग्रहित करना अति आवश्यक हो गया है भूजल पुनर्भरण के प्रयासों में तेजी लाना आवश्यक हैं।

References:

1. AgarwalAnil (2001) Making water everybody's business Center for Science and environment, New Delhi.
2. Alley WM, Reilly TE, Franke OL (1999) Sustainability of Ground-water Resources. Survey Circular 1186 (US Geological Survey, Reston, VA).
3. Biswas,A.K. (1978) Water Conference: Summary and Documents, Organised by United Nations. Oxford: Pergamon Press.
4. Biswas,A.K., Toledo, (1997) C.H. Velasco, H.G. iQuiroz, C.T. 1997 National Water Master Planes for Developing Contries-Water Resource Management Series-6. OUP, Delhi
5. Brill, T.S., and H.S. Burness (1994), Planning versus competitive rates of groundwater pumping, Water Resour, Res., 30, 1873-1880.
6. Chaturvedi, Mahesh C. (1985) Water in India's Development : Issues Development Policy, Programmes and PlanningApproach, In : Water Resource Systems Planning : Some Case-Studies for India, Mahesh C. Chaturevedi and Peter Rogers (Eds.), IndianAcademy of Sciences Bangalore, PP, 39-72.
7. Chinna Samy P, Maheshwari B, Prathpor S (2015): Understanding Groundwater Storage Changes and Recharge in Rajasthan, India Through Remote Sensing, Water, ISSN 2073-4441
8. Chouhan G.S and R.N. Dubey (2004) Water Resoures Management, Natraj Prakashan, New Delhi.
9. Clarence, Maloney and 1994 Raju, K.V. 1994 Managing Irrigation Together, Sage Publications, New Delhi,
10. Cris Barrow (2003) Water Crisis and Sustainable management. Tara BookAgaency 2003.
11. Dakshinamurthi, C. Water Resources of India and their Utilization inAgriculture, Water Technology Centre, I.A.R.I., New Delhi.
12. Gurjar R.K. and Lakshmi Shukla (1998) Water Resources, Environment and the People, Pointer Publishers, Jaipur
13. Kumar, M Dinesh (2007). Groundwater management in India : physical, Imtitntional and Policy altesnations, sage Publication, New Delhi.
14. Prasad, R.K. (1995) Groundwater Development Problem and Prospect', Yojana, Vol.39 (1&2),
15. PWD Department (2006) Jal SarnkshanAbhiyan Churu Vol.-1
16. Rathod, M.S., (2005) Groundwater exploration and augmentation efforts in Rajasthan,A review.
17. Ravinder Kumar and Hemant Mangal (2008) Drinking Water iQuality and Health Empacts :A Case Study of Churu District, Journal of Water and Land use Management Vol. 8 Page 147 to 158
18. Renshaw. E.F. (1963), The Management of ground water reservoirs, J. Farm Econ., 45(2), 285-295.
19. Tsur, Y., andA. Zemel (1995), Uncertainty and irreversibility in groundwater resource management, J. Environ, Econ. Manage., 29, 149-161.
20. UNESCO (1978) World Water Balance and Water Resources of the Earth. Transactions of the Report of the USSR Committee for the International Hydrological Decade.
21. United Nations Development Programme (1976). Ground-water surveys in Rajasthan and Gujarat, United Nations Development Programme.

भारत की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विदेश नीति

मृत्युंजय

राजनीति विज्ञान, यूजीसी नेट, आनंद विहार कॉलोनी, नियर - गिलास फैक्टरी भूतनाथ रोड, बहादुरपुर, पुर, हाउसिंग कॉलोनी, पटना, 800026, विहार

सार

भारतीय विदेश नीति का बुनियादी उद्देश्य भारत में घरेलू परिवर्तन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना है। इसके जरिए हम बहुबाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के अपने मूल्यों को संवर्धित करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था एवं समाज में परिवर्तन संबंधी कार्य को संभव बनाना चाहते हैं।इसके लिए हमें एक ऐसे अनुकूल विदेशी परिवेश की आवश्यकता पड़ेगी जो शांतिपूर्ण हो और जो हमें घरेलू कार्यों पर ध्यान केनद्रित करने की अनुमति दे। व्यापक तौर पर हमारी विदेश नीति का उद्देश्य हमारे समाज और हमारी अर्थव्यवस्था के परिवर्तन के दौर में ऐसे ही अनुकूल परिवेश का निर्माण करना है। यह स्वाभाविक ही था कि 1946 में हमारी स्वतंत्र विदेश नीति के शुभारंभ के साथ ही हम इन्हीं घरेलू संदर्भों में अपनी विदेश नीति को परिभाषित करने के विकल्प का चयन करें, न कि विदेशी शासन अथवा प्रभाव अथवा "लिविंग स्पेस" अथवा साम्राज्य अथवा 19वीं सदी की सत्ता और राजनीतिक विचारधाराओं के संबंध में। दो सदियों के औपनिवेशिक शासन के बाद हमारा देश जिस स्थिति में था उसमें यह स्वाभाविक भी था। विश्व की सबसे समृद्ध और सबसे अग्रणी औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में से एक, चीन के साथ जिसका औद्योगिक उत्पादन 1750 में वैश्विक औद्योगिक उत्पादन का लगभग 75 प्रतिशत था वर्ष 1947 तक अंग्रेजों के बोझ के कारण पृथ्वी के सबसे गरीब, सबसे पिछड़े, अशिक्षित और बीमार समाजों में से एक बन गया था। वर्ष 1900 से 1947 तक भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर एक प्रतिशत भी नहीं रही जबकि 3.5 प्रतिशत की दर से हमारी जनसंख्या निरन्तर बढ़ती रही। भारत में गरीबी लगातार बढ़ती रही। अत: यह स्वाभाविक था कि हमें इस घरेलू बदलाव को ही सबसे अधिक और वस्तुत: एक मात्र प्राथमिकता प्रदान करनी थी।

भारतीय विदेश नीति का ऐतिहासिक विकास

भारत की विदेश नीति का निरंतर विकास हुआ है। यह एक गतिहीन विदेश नीति न होकर गतिशील विदेश नीति है। जैसे - जैसे भारत के राष्ट्रीय हितों में अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन आया, विदेश नीति का स्वरूप भी बदलता गया। पं0 नेहरू के समय भारत 'तटस्थता' और 'गुटनिरपेक्षता' को अत्यधिक महत्व देता था तो श्रीमती इंदिरा गांधी के समय भारत ने सोवियत संघ से संधि करना उचित भारतीय शांति सेना को भेजकर विदेश नीति को नवीन आयाम प्रदान किया। पी0 वी0 नरसिंहराव ने नैतिकता तथा मूल्यों पर आधारित नीति पर अधिक बल न देकर आर्थिक पहलू पर अधिक ध्यान देने की चेष्टा की। भारत की विदेश नीति का उद्‌भव स्पष्ट करना एक कठिन कार्य है और उसका वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए भारतीय विदेश नीति के विकास पर दृष्टिपात करना अत्यंत आवश्यक है। रिचार्ड पार्क ने लिखा है कि भारत की विदेश नीति की गतिशीलता को समझने के लिए ऐतिहासिक तत्वों का सावधानीपूर्वक विवेचन आवश्यक है। भारतीय विदेश नीति के विकास को चार दौरों में बांटा जा सकता है

– भारतीय विदेश नीति के विकास का प्रथम दौर (1885–1919) अंतर्राष्ट्रीय चेतना का विकास : हम पर शासन करने वाले लोग दूर, बहुत दूर, विलायत से आये थे। यह अनुभूति ही प्रबुद्ध भारतीयों के मन में इंग्लैण्ड और उसके आस – पास के देशों के प्रति उत्सुकता जागृत कने के लिए पर्याप्त थी और जब हमें यह पता लगा कि भारत में कोई महत्वपूर्ण सुधार लंदन की स्वीकृति के बिना नहीं हो सकता तो लंदन के प्रति भारत की उत्सुकता एक विवशता में बदल गई।

भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्व

भारत की विदेश नीति के निर्माण में भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, वैचारिक आदि अनेक तत्वों के प्रभाव की विवेचना अग्रांकित है –

1. भौगोलिक तत्व: भारत एक विशाल राष्ट्र है जिसकी लगभग 3500 मील लम्बी समुद्री सीमा और 8,200 मील लम्बी थल सीमा है। समुद्री सीमा का तीन दृष्टियों से विशेष महत्व है। प्रथम – हिन्द महासागर पर अधिकार रखने वाली शक्तियाँ भारत की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न कर सकती है, द्वितीय – भारत का अधिकांश विदेशी व्यापार हिन्द महासागर द्वारा होता है एवं तृतीय – विशाल समुद्र तट की रक्षा के लिए अनिवार्य है कि भारत शक्तिशाली नौ शक्ति का विकास करें।

भारत का 13,120 कि. मी. लम्बा स्थलीय सीमान्त को दो तरफ से पाकिस्तान, चीन, नेपाल, अफगानिस्तान और बर्मा के साथ मिला हुआ है। उत्तरी कश्मीर अफगानिस्तान से जुड़ा हुआ है तथा पूर्व सोवियत संघ से स्वतन्त्र हुए राज्यों तजाकिस्तान एवं किर्गिस्तान की सीमाओं से वह कुछ ही कि. मी. दूर है। उत्तर में संसार की सबसे ऊँची चोटी हिमालय की पर्वतमाला है जो 2,800 कि. मी. लम्बी है। बहुत समय तक इस दुर्गम पर्वतमाला के कारण भारतवासियों में सुरक्षा की धारणा कायम रही, परन्तु आधुनिक काल में यह सोचना कि हिमालय पर्वत देश को उत्तर की दिशा में होने वाले आक्रमणों से सुरक्षा प्रादन करता है, भ्रान्तिमूलक है। इसलिए भारत के लिए अपने पड़ोसी देश में होने वाली घटनाओं के प्रति सजग रहना नितान्त आवश्यक है। बर्मा, नेपाल, चीन, अफगानिस्तान और सोवियत संघ के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को हमें इसी आधार पर समझना चाहिए।

2. ऐतिहासिक परम्परा: भारत की विदेश नीति के निर्धारण में इतिहास की भूमिका कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं रही है। अतीत से ही भारत सहिष्णु और शान्तिप्रिय देश रहा है। इतिहास साक्षी है कि भारत ने किसी देश पर राजनीतिक प्रभाव लादने या उसकी प्रादेशिक अखण्डता को भंग करने की चेष्टा नहीं की। यह ऐतिहासिक परम्परा भारत की पर – राष्ट्र नीति का महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्व हैं। स्वाधीन भारत के पाँच से ज्यादा दशक पूरे हो गए है और इस सम्पूर्ण अवधि में भारत ने सभी देशों के साथ समानता और मित्रता की नीति का अनुसरण किया है। पाकिस्तान ने भारत पर एक के बाद एक आक्रमण किए, किन्तु फिर भी भारत की नीति उसके साथ मैत्री और सह – अस्तित्व की रही है। सन् 1965 के युद्ध में पाकिस्तान से जीती भूमि ताशकन्द समझौते द्वारा एवं सन् 1971 में जीती भूमि शिमला समझौते के अनुसार भारत ने पाकिस्तान को सौंप दी। इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा कि पाकिस्तान भारत की शान्तिपूर्ण और सह – अस्तित्व की विचारधारा को उसकी दुर्बलता का चिन्ह मानता है। साम्यवादी चीन ने भी भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाया। सन् 1962 में अचानक विशाल पैमाने पर आक्रमण कर चीन ने भारत की भूमि पर कब्जा कर लिया। उस समय भारत सैनिक दृष्टि से सबल नहीं था। भारत ने सदैव यही प्रयत्न किया कि सैनिक शक्ति के स्थान पर अपनी समझ एवं सहमति द्वारा भूमि वापस प्राप्त की जाए।

3. आर्थिक तत्व: आर्थिक परिस्थितियों ने भारतीय विदेश नीति को प्रर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। लम्बी ब्रितानी दासता एवं शोषण के कारण भारत की अर्थव्यवस्था आजादी के समय जर्जर अवस्था में थी। ब्रितानी सरकार ने हमें विरासत में गरीबी, असमानता से ग्रस्त समाज प्रदान किया था। इस दुरावस्था से मुक्ति पाने हेतु भारत ने नियोजित अर्थव्यवस्था की पद्धति को अपनाया परन्तु योजनाओं को चलाने के लिए जहाँ हमें प्राविधिक ज्ञान की आवश्यकता है, वहाँ धन की आवश्यकता भी पड़ती है। फलत: अनिवार्य रूप से हमें विदेशी आर्थिक सहायता एवं अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।

4. सैनिक तत्त्व: स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सैनिक दृष्टि से भारत की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती थी। लम्बे समय तक विदेशी दासता में रहने के कारण भारत औद्योगिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ देश थां एक समय था जब हम अपनी सैनिक

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिकांश सामान ब्रिटेन से मंगाया करते थे, परन्तु सन् 1956 में कृष्ण मेनन के रक्षा मन्त्री बनने के बाद प्रतिरक्षा सामग्री के उत्पादन में कुछ प्रगति हुई।

5. वैयक्तिक तत्त्वः भारत की विदेश नीति पर वैयक्तिक तत्वों का, विशेषकर पण्डित नेहरू का व्यापक प्रभाव रहा है। पं. नेहरू साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और फांसीवाद के विरोध एवं विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के समर्थक थे। वे मैत्री सहयोग और सह - अस्तित्व की नीति के पोषक थे, लेकिन अन्यायपूर्ण आक्रमण को रोकने के लिए शक्ति के प्रयोग को भी उतना ही महत्त्व देते थे। महाशक्तियों के संघर्ष में भारत के लिए वे विलग्नता की नीति को सर्वोत्तम मानते थे। अपने इन्हीं विचारों के अनुरूप् उन्होंने भारत पर - राष्ट्र नीति का निर्माण किया। इसका वर्तमान स्वरूप पं. नेहरू के विचारों का ही प्रतीक है। पं. नेहरू के अतिरिक्त डॉ. राधाकृष्णन्, कृष्ण मेनन, के. एम. पनिक्कर कानाम भी उन विशिष्ट व्यक्तियों सम्मिलित किया जाता है, जिन्होंने भारत की पर - राष्ट्र नीति को प्रभावित किया है। भारत की विदेश नीति पर महात्मा गांधी के विचारों का भी प्रभाव पड़ा। उनकी अहिंसा का सिद्धान्त मूलतः शान्तिपूर्ण सह - अस्तित्व की नीति का मूल आधार है। यद्यपि कि, "यह बात संदेहास्पद है कि सत्य और अहिंसा के गांध ीवादी सिद्धान्तों का भारत की गृह अथवा पर - राष्ट्र नीति के उपर किसी बड़ी सीमा तक प्रभाव पड़ा है गांधी जी की मृत्यु के तुरन्त बाद नवीन भारत में कम्युनिस्ट और साम्यवादी विरोध का दमन करने के लिए सर्वाधिकारवादी उपायों का प्रयोग किया। .. .. कश्मीर और हैदराबाद में सशस्त्र हिंसा को काम में लाया गया, नेपाल में आन्तरिक हिंसा की नीति का अनुसरण हुआ। बजट का यह स्वरूप जिसमें आप के लिए 50 प्रतिशत से अधिक व्यवस्था की गई है, इस बात को प्रकट करता है कि भारत की सरकारी नीति में बल पुलिस उपायों को दिया जाता है। इन परिस्थितियों में इस बात पर विश्वास नहीं किया जाता कि भारतीय पर - राष्ट्र नीति पर गांधी जी की अहिंसा के सिद्धान्त का कोई निर्णायक प्रभाव पड़ा है। "[1]

भारत की विदेश आर्थिक नीति के समक्ष जो मुख्य चुनौतीपूर्ण मुद्दे है, वे निम्न हैं -

1. विश्व व्यापार संगठन की जनवरी, 1995 में स्थापना के साथ बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित पेटेंट को लेकर उत्पन्न विवादों को दूर करने एवं अपने आर्थिक व व्यापारिक हितों की रक्षार्थ भारत को एक दीर्घकालीन योजना व रणनीति का निर्माण तीसरी दुनिया के विकासशील राष्ट्रों के साथ मिलकर करना चाहिए।
2. क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रबंधन दक्षिण एशिया में अधिकाधिक आर्थिक एकीकरण से एक बेहतर राजनीतिक समझ का विकास सार्क के सदस्य राष्ट्रों के मध्य होगा। साप्टा को और अधिक उदार बनाने एवं साफ्टा को वास्तविकता का जामा पहनाने के लिए भारत ने सार्क के 10 वें शिखर सम्मेलन (कोलंबो, जुलाई, 1998) में जो एकतरफा कदम उठाये थे जिनमें भारत द्वारा अन्य दक्षिण एशिया के देशों से आयात की अनेक वस्तुओं पर प्रतिबंध हटाने की घोषणा भी शामिल है। भारत को और अधिक जिम्मेदारी के साथ नीति अभिक्रम (Initiative) उठाने चाहिए। भारत को यह देखना है कि साफ्टा (SAFTA) के ढाँचे में द्विपक्षीय व बहुपक्षीय समस्याओं का समाधान कैसे किया जाये।
3. भारत को विकसित एवं विकासशील देशों के साथ उन समान हितों के आर्थिक, व्यापारिक व निवेश क्षेत्रों का पता लगाना चाहिए जो भारत की विदेश आर्थिक नीति के उद्देश्यों के साथ मेल खाते हों। इसके अतिरिक्त अन्य बहुपक्षीय आर्थिक संगठनों जैसे ।च्ब् की सदस्यता प्राप्त करने के लिए कूटनीतिक समर्थन जुटाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।
4. भारत को एक संभावित आर्थिक शक्ति के रूप में प्रोजेक्ट करना चाहिए और उसी के अनुरूप नीति यंत्रों व रणनीतियों को निर्माण करना चाहिए। इसके लिए भारत को अपनी आर्थिक राजनय के उपागम में बदलाव लाना होगा। विश्व आर्थिक व व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता के माहौल में अपने व्यापार समुदाय को प्रोत्साहन देना चाहिए ताकि वे गुणवत्ता को कायम रखते हुए विश्व बाजार में भारत के माल को लोकप्रिय बना सके जिस तरह चीन ने लघु व मध्यम उद्योग को विशेष प्रोत्साहन देकर अपना नियीत व्यापार 140 बिलियन डॉलर प्रतिवर्ष कर दिया है जबकि भारत के व्यापार निर्यात के क्षेत्र में दिनोंदिन गिरावट आ रही है।

वाजपेयी सरकार की विदेश नीति एवं राजनय में पिछली सरकारों की विदेश नीति, उपागम से एक भिन्नता अवश्य नजर आती है। अफगानिस्तान में सत्तारूढ़ तालिबान के भारत विरोधी रवैये से भारत - अफगानिस्तान संबंधों में कड़वाहट एवं ठीलापन आ गया था। पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल ने तालिबान सरकार के खिलाफ एक स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया था कि भारत उसकी रूढ़िवादी व धार्मिक कट्टरता की नीतियों से सहमत नहीं है और उन्होंने अपदस्थ रवानी सरकार की खुलमखुल्ला समर्थन किया था। संभवत: इस नीति के फलस्वरूप अफगान मुजाहिदिनों ने पाकिस्तान के उकसाए जाने पर कारगिल में भारत विरोधी अभियान को खतरनाक रंग दिया था। यदि भारत सरकार की कूटनीति में व्यावहारिकता के तत्त्व को स्थान दिया जाता तो अफगानिस्तान में तालिबान सरकार भारत के खिलाफ शत्रुतापूर्ण व्यवहार नहीं करती। नि:संदेह अफगानिस्तान सामरिक दृष्टि से भारत का महत्वपूर्ण पड़ोसी देश है परंतु वाजपेयी सरकार ने यह निर्णय लिया कि तालिबान के साथ सीधी बातचीत की जाए। यह इस बात का प्रकट करता है कि भारत की ताबिान सरकार के साथ मेल - मिलाप की नीति द्वारा पाकिस्तान के प्रभाव को अफगानिस्तान में सीमित किया जा सकता है एवं पाक की गुप्तचर एजेंसी द्वारा अफगानिस्तान में भारत विरोधी आतंकवादी प्रशिक्षण दिये जाने के प्रयासों को विफल किया जा सकता है। परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत को भविष्य में समस्त प्रकार के विकल्पों की तलाश कर अफगानिस्तान ने अपनी नयी भूमिका को परिभाषित कर अपने सामरिक, सुरक्षा एवं आर्थिक हितों की रक्षा करना भी जरूरी होगा।

वर्तमान स्थिति/आकलन

हालांकि वर्ष 2007 के बाद से वाह्य परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन आया है। अनेक कारकों से इस बात का पता चलता है कि 1990 के दशक में हमारे लिए उपलब्ध अनुकूल एवं समर्थक परिवेश उत्तरोत्तर बदतर होते जा रहे हैं। वैश्विक आर्थिक संकट, जो अनिवार्य रूप से पश्चिमी पूंजीगत प्रणाली के केन्द्र में एक वित्तीय संकट के रूप में आरंभ हुआ, अभी जारी है। हालांकि विश्व ने 1930 के दशक वाली आर्थिक मंदी को परे कर दिया है, परन्तु वैश्विक अर्थव्यवस्था अभी भी भारी मंदी की चपेट में है। सौभाग्य से, भारत पर इसका प्रभाव तो पड़ा है परन्तु हम वर्ष 2008-09 में भी 6.8 प्रतिशत की अपनी विकास दर को कायम रखने में सफल रहे हैं।

यह भी स्पष्ट नहीं है कि विश्व अर्थव्यवस्था कितनी जल्दी विस्तार की प्रक्रिया को पुन: प्राप्त कर लेगी। प्रोत्प्साहन पैकेजों से उन असंतुलनों में वृद्धि हो सकती है जिन्होंने अंतत: वर्तमान संकट को जन्म दिया है। औद्योगिक देशों की मौजूदा मंदी के उपरान्त ठहराव की एक अवधि आने का भी वास्तविक जोखिम उत्पन्न हो गया है। बाजारों, प्रौद्योगिकी एवं संसाधनों की हमारी तलाश पहले से कहीं और अधिक जटिल हो सकती है। अब हमें विकास के घरेलू स्रोतों पर काफी हद तक निर्भर रहना होगा। राजनैतिक रूप से भी हम एक विशेष देश के प्रभुत्व से अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली में सत्ता के संतुलित वितरण की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं जिसे सही मायनों में बहुध्रवीयता कही जा सकती है। नए गठबंधनों का निर्माण हो रहा है और हम चीन के रूप में एक नई वैश्विक ताकत के उदय के साक्षी बन रहे हैं। हमारे पड़ोसी देशों, विशेष रूप से पाकिस्तान और अफगानिस्तान की चुनौती भी परिवर्तनों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली की क्षमता को परखेगी।

चुनौतियां एवं अवसर

अत: यह समय भारतीय विदेश नीति के लिए महान और अभूतपूर्व चुनौतियों एवं अवसरों का समय है। यदि हमें त्वरित विकास एवं सामरिक स्वायत्ता को कायम रखते हुए भारत में घरेलू बदलाव लाना है तो हमारे सामरिक लक्ष्य वही बने रहने चाहिए। इन लक्ष्यों में लंबे समय तक परिवर्तन नहीं होगा क्योंकि इन्हें प्राप्त करने के लिए हमें समय की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। परन्तु वर्तमान आर्थिक परिवेश में इन्हें प्राप्त करना हमारे कौशल और हमारे देश के लिए एक वास्तविक चुनौती होगी। वर्तमान संकट के दौर में भारत के लिए प्रौद्योगिकियों और संसाधनों को प्राप्त करने का अवसर है। इसी प्रकार वर्तमान संकट हमें सत्ता के अन्तर्राष्ट्रीय संतुलन में अपनी सापेक्षिक स्थिति में सुधार लाने का भी अवसर प्रदान करता है। एक अन्य चुनौती होगी पिछले 60 वर्षों के दौरान विदेश नीति के संबंध में प्राप्त सर्वसम्मति को कायम रखना। 1971 अथवा 1998 जैसे दबाव के वर्षों में भी हम ऐसा कर पाने में सफल

रहे थे। जैसे-जैसे संरक्षणवाद बढ़ रहा है और बाजार बंद हो रहे हैं तथा ऋण का प्रवाह वापस विकसित अर्थव्यवस्थाओं की ओर उनके प्रोत्साहन पैकेजों और आर्थिक पुनरुत्थान के प्रयोजनार्थ जा रहा है, वैसे-वैसे हमें उत्तरोत्तर स्वयं के अपने ारेलू बाजार पर निर्भर होना पड़ेगा।यह भी हमें हमारे गरीब देशवासियों के विकास के लिए एक अवसर प्रदान करता है जिससे कि सही मायनों में हमारा विकास समावेशी बन सके।राजनैतिक तौर पर, आज जब विश्व वास्तव में बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ रहा है तो वर्तमान सत्ताधारी स्वेच्छा से अथवा आसानी से अपनी सत्ता उदीयमान ताकतों को सौंपने के लिए तैयार नहीं होंगे। हमें उन चुनौतियों का मुकाबला करने की आवश्यकता है जो इस प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होंगी। वर्तमान सत्ताधारी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में मौजूद असमानताओं को बनाए रखने का प्रयास करेंगे। इसी प्रकार अन्य उदीयमान ताकतों के लिए भी अन्य देशों के साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है जिससे कि भावी नई अन्तर्राष्ट्रीय रूपरेखा को आकार दिए जाने के लिए नए गठबंधनों का निर्माण किया जा सके। वैश्विक शासन एक ऐसा मुद्दा है जिसे हम इस आर्थिक संकट के पश्चात नजरंदाज नहीं कर सकते। पहले ही इस संकट के कारण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं में सत्ता के विभाजन पर सहमति हो चुकी है (हालांकि कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी है)। इसे संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद जैसे वैश्विक शासन के राजनैतिक अंगों में भी विस्तारित करने की आवश्यकता है।

हमारा पड़ोस हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती और सर्वोत्तम अवसर प्रदान कर रहा है। स्पष्ट रूप से पाकिस्तान के साथ हमारा संबंध काफी दबाव में है और यह सुनिश्चित करने के लिए कि पाकिस्तान की घटनाओं का दुष्प्रभाव भारत पर न पड़े हमें सावध ानी पूर्वक प्रबंधन करने की आवश्यकता होगी। श्रीलंका अभी-अभी आन्तरिक टनाक्रमों के पूर्णत: नए दौर में प्रवेश कर रहा है और हमें विशेष रूप से श्रीलंकाई तमिलों, जो 23 वर्षों से चले आ रहे गृह युद्ध और लिट्टे के आतंकवाद से मुख्य रूप से पीड़ित रहे हैं, के साथ मिलकर उत्तरी और दक्षिणी श्रीलंका में उनके जीवन को पुन: पटरी पर जाने हेतु प्रयास करने की आशा है। इस वैश्विक आर्थिक संकट ने हमें उप महाद्वीप में अपने पड़ोसी देशों के साथ आर्थिक एकीकरण का भी अवसर प्रदान किया है। ये देश अपने सामानों को बेचने और अपनी विकास दर को कायम रखने के लिए उत्तरोत्तर विस्तारित हो रहे भारतीय बाजार की ओर देख रहे हैं। हमारी क्षमताओं के आधार पर दक्षिण एशियाई आर्थिक पुनरुत्थान पहल का निर्माण किया जा सकता है जिससे हमें सहकारी संबंधों का विकास करने में सहायता मिलेगी और जो इस क्षेत्र के लिए आवश्यक भी है।

निष्कर्ष

कोई भी देश अलग-थलग होकर या पूरी तरह आत्मनिर्भर होकर नहीं रह सकता। विभिन्न देशों की विविध प्रकार की जरूरतों की पूर्ति के लिए उनमें पारस्परिक अंतर्निर्भरता उन्हें एक-दूसरे के नजदीक लाती है और इससे सहयोग एवं मतभेद की ताकतों को भी बल मिलता है। एक देश की विदेश नीति को निर्धारित एवं प्रभावित करने वाले कारक हैं-भू-रणनीतिक अवस्थिति,सैन्य क्षमता, आर्थिक शक्ति, एवं सरकार का स्वरूप। दूसरी तरफ विदेश नीति संबंधी निर्णय वैश्विक एवं आंतरिक प्रभावों द्वारा निर्धारित होते हैं। अन्य देशों के अतिरिक मामलों में अहस्तक्षेप का सिद्धांत और स्वयं की संप्रभुता को बनाए रखने की अवधारणा गुटनिरपेक्षता में निहित है। गुटनिरपेक्षता दो शक्ति ध्रवों के बीच विवाद में किसी के भी साथ स्वयं के जुड़ने के एक राज्य के निषेध की नीति है। गुटनिरपेक्ष शक्तियों (प्रथम गुटनिरपेक्ष आंदोलन या एनएएम के शिखर सम्मेलन) की कांफ्रेंस 1961 में बेलग्रेड में आयोजित हुई जिसमें 36 भूमध्यसागरीय देशों और एफ्रो एशियाई देशों ने भाग लिया। नेहरू ने इसमें गुटनिरपेक्षता को स्पष्ट किया जिसमें उन्होंने बताया कि यह विश्व के अत्यधिक शक्तिशाली शक्ति गुटों के साथ न जुड़ने की नीति है। यह शांतिपूर्ण सौहार्द बढ़ाने की पक्षध ारिता नीति है। नेहरू ने गुटनिरपेक्षता को भारतीय विदेश नीति की एक विशेषता बनाया। सरकार का स्वरूप प्राय: विदेश नीति परद को सीमित करता है जिसमें बल प्रयोग धमकी के लिए प्रयोग किया जाता है या वास्तविक तौर पर किया जाता है, शामिल है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में, जनमत, दवाव समूहों एवं जनसंचार की नीति-निर्माण प्रक्रिया में एक बड़ी भूमिका होती है। लोकतांत्रिक राज्यों में, निर्वाचन व्यवस्था भी विदेश नीति निर्णयों में प्रभाव रखती है, जैसाकि नेता सामान्यतया ऐसे निर्णय लेंगे जिससे लोग उनसे दूर नहीं। एक निरंकुश व्यवस्था में अधिकतर निर्णय शासक के अनुसार होते हैं, वे ऐसी नीतियां बनाते हैं या निर्णय लेते हैं जैसा वे राज्य के हित में सही समझते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, मीना : राजीव गाँधी, डायमण्ड पॉकेट बुक, नई दिल्ली, 2004
2. अस्थाना, वन्दना : इंडियाज फारेन पॉलिसी एण्ड सबकन्टीनेन्टल पॉलिटिक्स, कनिष्क पाब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
3. अप्पादोराई, ए.: एसेज इन इंडियन पॉलिटिक्स एण्ड फारेन पॉलिसीज, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली
4. अप्पादोराई, ए. (सम्पादित): सेलेक्ट डाक्यूमेन्ट्स आन इंडियाज फारेन पालिसी एण्ड रिलेशंस (1947-1972), आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1985
5. कुमार, सतीश (सम्पादित): ईयर बुक आन इंडियाज फारेन पालिसी, (1990-1991), नई दिल्ली, 1991
6. खन्ना, वी.एन. एवं अरोड़ा, लिपाक्षी : भारत की विदेशनीति, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, 2007
7. ग्रोवर, बी.एल.: भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, एस. चन्द्र कं., नई दिल्ली
8. गुप्ता, एम.जी.: राजीव गाँधी फारेन पॉलिसी, ए स्टडी इन कन्टीन्यूटी ऐंड चेंज, एम.जी. पब्लिशर्स, आगरा, 1987
9. घई, यू.आर.: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, सिद्धान्त एवं व्यवहार, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालंधर, 2003
10. चन्द्रा, प्रकाश : इंटरनेशनल रिलेशन्स, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, 1983
11. जैन, पुखराज एवं फाड़िया, बी.एल.: भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2002
12. दत्त, वी.पी.: इंडिया ऐंड द वर्ल्ड, नई दिल्ली, 1990
13- Kissinger] Henry- Diplomacy (1995)] not a memoir but an interpretive history of international diplomacy since the late 18th century
14- Schroeder] Paul W- The Transformation of European Politics 1763&1848 (Oxford History of Modern Europe) (1994) 920pp_ history and analysis of major diplomacy
15- Taylor] A-J-P- The Struggle for Mastery in Europe 1848–1918 (1954) (Oxford History of Modern Europe) 638pp_ history and analysis of major diplomacy
16- Stéphane Beaulac: The Westphalian Model in defining International Law: Challenging the Myth¸ Australian Journal of Legal History Vol-9 (2004) https://web-archive-org/ web:20121213173805/http://www-austlii-edu-au/au/journals/AJLH/2004/9-html
17- Krasner] Stephen D-: Westphalia and all that¸ in Judith Goldstein & Robert Keohane (eds): Ideas and Foreign Policy (Ithaca] NY: Cornell UP] 1993)] pp- 235–264

समकालीन हिन्दी कविता में युगबोध

डॉ० शशि प्रकाश

सहायक आचार्य, हिन्दी, से.ने.म.टी. राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, झुंझुनूं (राजस्थान)

शोध सारांश

कालजयी साहित्य अपने समानान्तर काल, परिवेश एवं समाज से प्रत्यक्ष तौर पर सम्पश्क्त रहता है। कविता भाव प्रधान होने के कारण अपने परिवेश एवं समाज की संवेदना को शब्दायित करती है। समकालीन समय में स्वतन्त्रता के बाद स्वप्नों का खण्डन, मोहभंग, राजनीतिक अवसरवादिता, आर्थिक विषमता, धार्मिक वैमनस्य, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, नये मूल्य, मानवीय सम्बंधों में बदलाव, पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण, शहरीकरण, शुष्क होती मानवीय संवेदनाएँ आदि स्थितियाँ समकालीन कविता के समय में व्याप्त थी। इन स्थितियों से समकालीन कविता ने अपने आपको सीधा संपश्क्त कर युग बोध के काव्य धर्म का निर्वहन किया है।

मुख्य शब्द-समकालीन, युगबोध, प्रतिबद्धता, कालजयी, सम्पृक्तता

प्राचीन काल से वर्तमान काल तक की कविता अपने समय के साथ संपश्क्त रही है, कहीं अधिक तो कहीं कम। कहीं प्रत्यक्षत: तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से। साहित्य व साहित्कार का धर्म यहीं है कि साहित्कार अपने युग से जुड़कर साहित्य में युगीन चेतना का संचरण करे। इस युगबोध के प्रति प्रतिबद्धता समकालीन हिन्दी कविता में सर्वत्र दिखाई देती है। यह कविता समसामयिक परिवेश के यथार्थ की कविता है। समकालीन कवि इस कविता को केवल आनन्द या मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते, वरन् कविता उनके लिए ह्कमिटमेन्ट (प्रतिबद्धता) का आधार है। सर्जनात्मक लेखन एवं आलोचना में सक्रिय विद्धान श्री रोहिताश्व समकालीन कविता की युग चेतना पर अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैंह्ह ह्समकालीन कविता युगीन चेतना के अन्तर्द्वन्द्वों से न केवल जूझती है, बल्कि समाज-सापेक्षता से सश्जनात्मक समग्रता में विरोधी पक्षों के वर्ग-संघर्ष को अनावृत करती हुई मानवीय जीवन के वैविध्यमय संघर्ष में सौन्दर्य बोधी रूपान्तरण की पहल करती है।ह्[1] इसलिए यह कविता धारा व्यक्ति, समाज और उस वर्तमान परिवेश से पूर्णरूपण सम्बद्ध है।

आधुनिकता बोध और समकालीन बोध की पहचान कालखण्ड और परिवेश के आधार पर की जाती है। आज का परिवेश, आज के व्यक्ति की राजनीतिक आवश्यकताएं, सम्बन्ध और सामाजिक सरोकार में आमूलचूल परिवर्तन आया है। सातवें दशक के पश्चात् देश की राजनीति, विदेशी सम्बन्धों, आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, भारतीय सांस्कृतिक धारा एवं मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ। इन परिवर्तित मूल्यों को समकालीन कवि ने सही एवं सार्थक रूप में पहचाना है। इसलिए समकालीन कविता लघुता, अस्तित्व, निषेध, मोहभंग, संत्रास इत्यादि बोधात्मक स्थितियों से कहीं अधिक कवि की 'इन्वालमेन्ट' और 'कमिटमेंट' को रेखांकित करती है। ह्समकालीन कविता हमारे अपने काल की कविता है। इस प्रस्ताव में कविता के दायित्वबोध की सूचना ही संकेतित है। कवि दृष्टि की सार्थकता इसी बात में है कि वह सही काल पक्ष को संवेदित करे।ह्[2]

समकालीन कवि समाज से पूर्णरूप से जुड़ा हुआ है। समाज में होने वाले परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील रहता है। समसामयिक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं के प्रति सतर्क रहता है। युगीन कविता सामाजिक एवं सांस्कृतिक यथार्थवाद को अभिव्यक्त करते हुए, स्त्री व पुरुष के सम्बन्धों में आये परिवर्तन, मानवीय सम्बन्धों में बदलाव, पारिवारिक विघटन, बाजारवाद आदि मानवीय स्थितियों को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करती है। प्रति आयातित सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित जनजीवन का चित्रण

करते हुए यह भी व्यक्त किया है कि इससे वर्षो पुरानी भारतीय संस्कृति किस प्रकार पद दलित हुई है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। पुराने भारतीय मूल्य एवं संस्कार पीछे छुटते जा रहे हैं। यह कविता आर्थिक एंव राजनीतिक व्यवस्था से भी अधिक प्रभावित है क्योंकि यह जनवादी कविता है। समकालीन समय में बढ़ते औद्योगीकरण एवं यान्त्रिकता, मशीनीकरण के कारण बढ़ती बेरोजगारी की भयावह स्थिति को इस कविता में कथ्य बनाया है। गरीबी, भूखमरी, महंगाई, राजनीतिक अव्यवस्था व अराजकता के कारण भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, अवसरवाद आदि युग सापेक्ष स्थितियों का चित्रण समकालीन कविता में प्रमुखता से हुआ है जो उसे अपने युग से सीधा सम्पश्क्त करता है।

कविता कोई भी हो अपने युग से असम्बद्ध नहीं रह सकती है। समकालीन हिन्दी कविता ने भी युग-चेतना को अपनी कविता का विषय बनाया है। डॉ. हुकुमचन्द राजपाल के अनुसार हसमकालीन कविता का प्रारम्भ 1964 के बाद माना जा सकता है। साठोन्तरी कविता और समकालीन कविता को पर्याय मानना उचित नहीं है। समकालीन कविता, आधुनिक कविता के विकास में नयी चेतना, नयी भाव-भूमि, नयी संवेदना तथा नये शिल्प के बदलाव की सूचक काव्य धारा है। समकालीन बोध युग-बोध की पहचान का महत्वपूर्ण आधार है।[3] इस कविता ने अपने समय के यथार्थ को पहचान कर हमारी आकांक्षा-अपेक्षा, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, राग-विराग, सहानुभूति-स्वानुभूति को सार्थक अभिव्यक्तिकरण दिया है। इस काव्य आन्दोलन में हम अपने वर्तमान को देख व समझ सकते हैं। समकालीन समय में राजनीतिक अव्यवस्था, आर्थिक समस्या, वर्तमान जीवन की जटिलता, सामाजिक विकृतियाँ, खोखले सिद्धान्त, बनावटीपन आदि को समकालीन कविता में समेटा गया है।

आलोच्य कविता सामाजिक यथार्थ की कविता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् लोगों ने भ्रम पाला था, वह इस कविता काल तक आते-आते दूर हो गया था। सामाजिक एंव सांस्कृतिक विसंगतियाँ समाज में उत्तरोतर बढ़ती जा रही थी। अर्थ की प्रधानता, जटिल जीवन, पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण ऐसी परिस्थितियाँ थी, जिन्होंने सामाजिक जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न की। समकालीन समय में संयुक्त परिवारों का विघटन, दाम्पत्य जीवन में दरार, संवेदनहीन होती मानवीय भावनाएँ, टूटते मानवीय रिश्ते, नौकरी पेशा, पति-पत्नी के मध्य अहंभाव आदि विकृतियाँ समाज में फैल रही हैं। डॉ. संजय जैन के अनुसार समाकालीन काव्य-आन्दोलन अपनी ऐतिहासिकता में समसामयिक युग के अर्न्तविरोधों, अन्तर्द्वन्दों, विसंगतियों, विषमताओं एवं विडम्बनाओं का खुला दस्तावेज है।[4] महानगरीय जीवन एवं संस्कृति समकालीन समय में अत्यधिक पतित हो गयी है। महानगरीय जीवन में मानवीय मूल्यों, दया, संवेदना, परोपकार, प्रेम, आदर्श, सद्भाव आदि का कोई महत्व नहीं रहा है। वहाँ एक ही मूल्य शेष है वह है अधिक से अधिक धन कमाना। अर्थ के पीछे दौड़ते हुए शहरी जीवन की मानवीय संवेदनाएँ शुष्क हो गई हैं। शहरी जीवन में अजनबीपन, अकेलापन, कुण्ठा, निराशा, त्रासदी आदि विसंगतियाँ प्रमुखता लेती जा रही हैं। पाश्चात्य संस्कृति की अन्धी दौड़ में भारतीय मुल्य एवं संस्कृति की पहचान धूमिल हो गई है। वेशभूषा, रहन-सहन, बोलचाल, खानपान सभी में विदेशी संस्कृति ने अतिक्रमण कर दिया है। भारतीय युवा शक्ति पाश्चात्य संस्कृति की फैन बन गई। समकालीन कवि ने युग-बोध धर्म का पालन करते हुए, सामाजिक, सांस्कृतिक समस्याओं की गहराई से पहचान कर, उन्हें कविता के माध्यम से उस यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत किया, ताकि प्रबुद्ध जन एवं सामान्य पाठक बढ़ती सामाजिक विसंगतियों, विडम्बनाओं एवं धूमिल होती भारतीय संस्कृति के प्रति जागरूक हो सकें।

समकालीन कविता आर्थिक अव्यवस्था एंव विषमता का खुलासा भी करती है। सातवें दशक के बाद भी भारत में जनहित की प्राथमिकताओं को निश्चित नहीं किया गया। स्वतन्त्रता के 23 वर्ष बाद भी आमजन की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ। अब तक प्रतिव्यक्ति विकास दर, शिक्षा, रोजगार आदि के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं किया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए जे.के. मेहता कहते है हविकास का लाभ एक विशिष्ट वर्ग को ही प्राप्त हुआ। वस्तुत काले धन की समानान्तर अर्थव्यवस्था पैदा हो गई, जो कमियों और अभावों पर पनप रही हैं। इसके कारण आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रीकरण वर्ग-विशेष के हाथों में होता आया है।ह[5] आर्थिक विषमता, बेरोजगारी, मंहगाई, भूखमरी, पूंजीवाद, विदेशी ऋण ग्रस्तता, धीमी विकास दर आदि आर्थिक समस्याएं तत्कालीन समय में प्रमुख थी। सरकार केवल आंकड़ों एवं पोस्टरों में खुशहाली का दावा करती है। लीलाधर जंगुड़ी ने अपनी निम्न पंक्तियों से इस यथार्थ को अभिव्यक्त किया है:-

सूचना विभाग के हर पोस्टर पर
खुशहाली है चारों ओर
कंगालों के पास आटा नहीं गाली है

और जिसमें कोई नहीं खाना चाहता।

आजादी एक झूठी थाली है।[6]

सातवें दशक के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी पूंजी का निरन्तर दबाव बढ़ता गया, जिससे कर्जदाता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भारतीय बाजार पर अधिकार जमाना आरम्भ कर दिया। आर्थिक उदारीकरण के दौर में भारत जैसे विकासशील देश स्वार्थ और लालच के वशीभूत मुक्त बाजार की व्यवस्था की अन्धी दौड़ में शामिल हो गये। मुक्त बाजार में फीकी पड़ चुकी संवेदनाएँ और मनुष्यता अगर समाकालीन कवियों को प्रभावित करें तो आश्चर्य नही।।

स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् प्रत्येक काव्य आन्दोलन ने राजनीतिक स्थिति से जोड़कर इसके प्रभाव एवं परिणाम को अभिव्यक्त किया है। समकालीन कविता उस मोहभंग की कविता है जिसमें स्व सत्ता के बाद सपने देखे थे। ये स्वप्न चकनाचुर हो गये। इन सभी स्थितियों के जिम्मेवार भारतीय नेता एवं राजनीतिक व्यवस्था है जो राजनीतिक कुचक्रों, दलगत राजनीति, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, अवसरवाद एवं मिथ्या आश्वासनों पर टिकी हुई है। जिसे आम जनता की बजाय अपना पेट भरने की चिन्ता अधिक रहती है। स्वतन्त्रता से मोहभंग की स्थिति उसके लिए चुनौती बनकर उपस्थित होती है। इस व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कवि 'धूमिल' व्यवस्था, व्यवस्था में जीवित तथा व्यवस्था पर पलने वाले शोषक वर्ग को अपनी कविता में समेटा है–

एक आदमी रोटी बेलता है।
एक आदमी रोटी खाता है।
एक तीसरा आदमी भी है।
जो न रोटी बेलता है।
न रोटी खाता है।
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ यह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है।।[7]

इस कविता में उठने वाले प्रश्न के बारे में कुमार कृष्ण कहते है– 'रोटी और संसद' धूमिल की एक छोटी कविता है किन्तु यह हमारे सामने एक बड़ा और महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है। धूमिल का कहना है कि इस देश में एक आदमी रोटी बेलता है, एक आदमी रोटी खाता है। एक तीसरा आदमी भी जो केवल रोटी से खेलता है। इस तीसरे आदमी को दण्डित करना होगा।[8] समकालीन कविता अपने युग, काल, परिवेश में स्थित राजनीतिक अव्यवस्था, अवसरवादिता, स्वार्थपरता, झुठे आश्वासन, भ्रष्टाचार, राजनीतिक जड़ता, स्वार्थलोलुप कुर्सी प्रेमी नेताओं के यथार्थ को बेबाक अभिव्यक्ति प्रदान की है। यही इस कविता के कालबोध व युगबोध की पहचान है। जिसने अपने आपको अपने युग एवं परिवेश से सम्पश्क्त किया है।

यह कविता अपने समय की निर्मम वास्तविकताओं का यथार्थ चित्रण करती है जिसमें साम्प्रदायिकता एंव आतंकवाद भी उस युग का भयावह यथार्थ है। समकालीन कविता में पंजाब समस्या से जुड़े आतंकवाद और उसकी प्रतिक्रिया में जन्मी अमानवीयता, धर्म और राजनीति के तालमेल से उत्पन्न विसंगति, राष्ट्रीय एकता को चुनौती आदि विभिन्न मुद्दों पर गम्भीरता के साथ विचार किया गया है। ऋतुराज की कविता 'पंजाब' उस असुरक्षा और आतंक का तीखा बयान है, जिसे पंजाब के निर्दोष व्यक्तियों ने झेला है–

कोई भी दीवार अब सुरक्षित नहीं है
फट पड़ेगी छतें। हर कौने में अन्धेरा हमला करने
को तैयार है। आदमी ने पहचानी है मौत।
वह दीवार से चिपका जा रहा है।[9]

कवि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा कि हसाम्प्रदायिकता एक रोग है और वह भी संक्रामकह्न। धर्म का राजनीतिकरण होने के कारण साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ा। 1981–93 के वर्षों में हिन्दुओं और सिक्खों के बीच साम्प्रदायिक विद्वैष चरम पर था। 1984 में महाराष्ट्र, 1987 में मेरठ, 1992 में मन्दिर–मस्जिद विवाद, 2002 गुजरात साम्प्रदायिक दंगों की चपेट में आ चुके हैं। इनके पीछे निहित स्वार्थ एवं राजनीतिक अवसरवादिता को समकालन कवि ने पहचाना है। और इनकी कविताओं में परिवेश के प्रति सजगता और चेतना का प्रमाण भी हैं। कवि इन समस्याओं को मिटा तो नहीं सकता है, लेकिन लोगों में आशा एवं धैर्य का संचार जरूर कर सकता है। नमोनाथ अवस्थी ने भी कविता 'श्लोकों की तरह जुड़ेगे लोग' में आशावाद व्यक्त किया है, वह अधिकतर कविताओं की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है–

देखो धैर्य मत खो देना
यह आतंकवादी कुहरा ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं।
उदासी के थोथे बादल/बहुत जल्दी उड़ जायेगें रूई के गुच्छों की तरह।।[10]

समकालीन हिन्दी कविता में मानवीय एंव जनबोध के विस्तार की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें जन-सामान्य की हित चिन्ता, व्यवस्था विरोध का उग्र तेवर, जीवन की भयावह त्रासदी, भूखी नंगी जनता की परेशानियाँ आदि प्रवृत्तियाँ स्पष्ट तौर पर विद्यमान देखी जा सकती हैं। यह कविता मनुष्य केन्द्रित होने के कारण मानवीय सरोकारों से प्रत्यक्षत जुड़ी हुई है। इसलिए इसकी मूल चिंता मनुष्य से ही सम्बन्ध रही है। कविता का विषय जो मनुष्य है, वह अपने अन्तर्विरोधों, अभावों और मृदु-कटु तेवरों से युक्त जन-साधारण या सर्वहारा का प्रतीक है। इस कविता के केन्द्र में स्थित आदमी मुख्यत: सर्वहारा है। इस सर्वहारा को कविता में 'लोकराम' 'भोलानाथ' 'मामूलीराम' 'बलदेव खटीक' 'रामसेवक' आदि विभिन्न नामों और रूपों में व्यक्त किया गया है। समकालीन कविता में यथार्थ की तीखी पहचान और जन-सामान्य की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार तत्वों की पहचान हुई है। कवि अरूण कमल ने अपनी कविता में लिखा है-

जो आदमी को प्यार नहीं करते / उनकी कोई गंगा नहीं।
कोई मातृभूमि नहीं / कोई अपना तारा नहीं। [11]

सामान्य जन से सरोकार वाली इस कविता में आमजन की भयावह स्थिति, शोषण, दमन, संघर्ष, बेकारी, लाचारी आदि को पहचान कर युगीन मानवीय यथार्थ बोध को कविता में अभिव्यक्त किया गया। इस कविता में नैतिकता, मूल्य-ईमानदारी, व्यक्तिगत-भय व नारी जीवन सन्दर्भ के आधार पर आलोचक रोहिताश्व लिखते हैं ह्समकालीन कविता रचनाकारों की शोषक वर्गों के विरू) एक वृहद स्तर पर लड़ी जाने वाली नैतिक लड़ाई ही अभिव्यक्त हुई है। व्यवस्था, प्रशासन व शासन दलों की राजसत्ता के शड्यन्त्रों के धर्म के नाम पर चेतना के विखण्डन के विरू) सजनात्मक मूल्यों की आस्था से रचनाकार ही व्यक्ति स्वातन्त्र्य मानवता मुक्ति की कामना रखते हुए स्वत: और समूह रूप में नैतिक तौर जूझता है।[12]

समकालीन कविता वैश्विक परिदृश्य से भी जुड़ी हुई है। हिन्दी कविता प्रारम्भ से ही विदेशों में हो रहे रंगभेद और औपनिवेशिक शोषण से प्रभावित रही है। समकालीन हिन्दी कविता तीसरी दुनिया विशेष तौर पर अफीकी जनों के रंगभेद विरोधी एवं साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से विशेष रूप से सम्पश्क्त दिखाई देती है। साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी शक्तियों की क्रूरता और अत्याचार को भारत ने स्वयं लम्बे समय तक भोगा है, अत: रंगभेद व काले कहे जाने वाले लोगों के प्रति सहानुभूति एवं समर्थन का भाव प्रारम्भ से ही व्यक्त होता रहा है। समकालीन कविता के व्यापक परिदृश्य पर टिप्पणी करते हुए बालमुकुन्द गर्ग ने लिखा है- ह्यह कविता विश्व की प्राकृतिक संरचना का एक सन्हासिल चित्र तो है ही तमाम अवरोधक अविधायी प्रवृत्तियों के खिलाफ संघर्षत: मानवता की अभिव्यक्ति है।[13] समकालीन हिन्दी कवियों ने जहाँ एक ओर काले लोगों के संघर्ष की सफलता को सम्पूर्ण पक्षधरता के साथ रेखांकित किया है तथा रंगभेद की कटू आलोचना करते हुए इस तरफ के भेदभाव को उचित एवं प्रासंगिक नहीं मानते हैं। और विस्तारवादी शोषक प्रवृत्ति रंगभेद और औपनिवेशिक साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध स्पष्ट तौर पर किया है। अत: यह कविता वैश्विक बोध की कविता भी है।

समकालीन हिन्दी कविता की वस्तु पाठक को समसामयिक समस्याओं के यथार्थ को देखने एवं अनुभूत करने के लिए प्रेरित करती है। अपने वर्तमान समय की विसंगतियों, विडम्बनाओं, विद्रुपताओं, तथ्यों, सत्यों एवं स्थितियों का यथार्थ अंकन कविता में मिलता है। समकालीन कविता मानव जीवन के जटिल यथार्थ का दस्तावेज है, क्योंकि इसमें जीवन मूल्य, राजनीति, धर्म, नैतिक मानदण्डों के सम्बन्ध में निष्कर्ष देने में कहीं भी हिचकिचाहट प्रदर्शित नहीं की है। डॉ. बच्चन सिंह ने समकालीन परिवेश के मूल्य विघटन के सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि पुराने आदर्शों, मूल्यों और आस्थाओं का विघटन तो छायावादोत्तर काल के आरम्भ में ही शुरू हो गया था, पर सन् 1960 के बाद तो यह अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचा। समकालीन राजनीति, समाज, व्यवस्था आदि में फैले व्याप्त भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, अराजकता वास्तविकता है। जहाँ आर्थिक विषमता के कारण आम आदमी की दशा दयनीय हो, मानवीय मूल्यों की अस्मिता खतरे में हो, न्याय सरेआम बिकता हो, शैक्षिक, औधोगिक संस्थानों में भाई, भतीजावाद हो, वहाँ कवि का दायित्व सामाजिकों को यथार्थ से अवगत कराना है, इसी में कवि और कविता की उपादेयता एवं अर्थवत्ता है। समकालीन कविता में यह काम बखूबी हुआ है।

आम आदमी समकालीन कविता का केन्द्रीय चरित्र है। इस आम आदमी का वर्तमान पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था, भ्रष्ट शासन तंत्र, सामाजिक भेदभाव, शोषण, राजनीतिक अवसरवादिता आदि ने जीना दुर्भर कर दिया है। कवि सामाजिक एवं संवेदनशील प्राणी है जिसे यह व्यवस्था असहनीय होती है वह इस आम आदमी की वेदना विवशता लाचारी एवं दु:ख-दर्द की अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति

करता है। यह कार्य समकालीन कविता में हुआ है। समकालीन समाज एवं व्यवस्था से पीड़ित एंव छिटके हुए आम जन की खीझ, अबोधता, आन्तरिक पीड़ा, कटू अनुभवों को युगीन कवियों को बोध था, इसलिए उनके अभावग्रस्त जीवन का यथार्थपरक अंकन किया है। डॉ. विनय ने आम आदमी की स्थिति के बारे में स्पष्ट लिखा है-

सब कुछ बन रहा है मेरे देश में।
नर-भवन-सड़के योजनाएँ।
लेकिन निर्माण की इस दौड़ में नहीं बन पाया अब तक।
एक अदद/ आदमी-एक अदद आदमी।[14]

समकालीन कविता में समय सापेक्षता है जिसके कारण यह अपने युग से अधिक सम्पश्क्त है। कवि ने समकालीन सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक स्थिति, राजनीतिक यथार्थ, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक उन्माद, आतंकवाद आदि स्थितियों को अपनी अनुभूति परकता के साथ अभिव्यक्त किया है। इसलिए इसमें यथार्थ सीधे तौर पर अभिव्यक्त हुआ है। तथा अपने युग के प्रति बोध इस कविता का आग्रह रहा है।

निष्कर्ष

समकालीन कविता दरअसल मानव जीवन से प्रत्यक्षत: जुड़ी हुई है। और कविता का मूल कन्द्रीय चरित्र आम आदमी एंव उसकी समस्याएँ है। इन समस्याओं के मूल कारणों की पहचान युगीन कवियों ने बखबी की है तथा उनका यथार्थ परक रूप का चित्रण भी बहुत ही बेकाकी एवं निर्भीकता के साथ किया है। समाकालीन कविता युग सापेक्ष होने के कारण ही स्थायित्व एवं लोकप्रियता प्राप्त कर सकी है। किसी भी काव्य आन्दोलन की पहचान अपनी युगीन सन्दर्भो की सम्पश्क्तता से होती है। समकालीन कविता की मूल चेतना, संवेदना अपने युग से जुड़ी हुई है। तथा युग-बोध धर्म का निर्वहन भी प्रमुखता से हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समकालीन कविता और सौन्दर्य बोध-रोहिताश्व-पृष्ठ सं. 61
2. समकालीन हिन्दी कविता-ए. अरविन्दाक्षन-पृष्ठ सं. 57
3. समकालीन कविता की कथ्य चेतना-डॉ. हुकुमचन्द राजपाल (दो ृाब्दक्ष
4. समकालीन कविता की कथ्य चेतना-डॉ. संजय जैन- पृष्ठ सं. 01
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, समस्याएं एवं प्रतिविधान-जी. के महता- पृष्ठ सं. 160
6. लीलाधर जंगुड़ी की कविता
7. 'रोटी और संसद'- धूमिल
8. समकालीन कविता का बीजगणित-कुमार कृष्ण-पृष्ठ सं. 42
9. ;तुराज की 'पंजाब' कविता से
10. नमोनाथ अवस्थी की 'श्लोकों की तरह जुड़ेंगे लोग' कविता से
11. 'केवल अपनी धार'-अरूण कमल
12. समकालीन कविता और सौन्दर्य बोध-रोहिताश्व-पृ. 80
13. भाषा, जुलाई-अगस्त 1993-पृष्ठ 86
14. निषेध, निर्माण, पृष्ठ 59

भारत में ग्राम पंचायतों का विकास

डॉ० अशोक कुमार उर्फ डॉ० अशोक चौधरी

एम.ए., पीएच.डी. (राजनीति विज्ञान)

सारांश

ग्राम या गांव छोटी-छोटी मानव बस्तियों को कहते हैं जिनकी जनसंख्या कुछ सौ से लेकर कुछ हजार के बीच होती है।

भारत की पंचायती राज व्यवस्था लागू है जहाँ गाँव या छोटे कस्बे के स्तर पर ग्राम पंचायत या ग्राम सभा होती है, जो भारत के स्थानीय स्वशासन का प्रमुख अंग है। सरपंच, ग्राम सभा का चुना हुआ सर्वोच्च प्रतिनिधि होता है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में पंचायत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सार्वजनिक जीवन का प्रत्येक पहलू इसी के द्वारा संचालित होता था।

पंचायत समिति तहसील (तालुक) स्तर पर भारत में सरकार की स्थानीय इकाई होती है। यह उस तहसील के सभी गाँवों पर सामान रूप से कार्य करता है और इसको प्रशासनिक ब्लॉक भी कहते हैं। यह ग्राम पंचायत और जिला परिषद के मध्य की कड़ी होती है।

प्रस्तुत शोध लेख भारतीय ग्राम पंचायत व्यवस्था, उसके इतिहास और कार्य प्रणाली का एक विवेचनात्मक विश्लेषण है।

परिचय

स्थानीय स्वशासन से तात्पर्य शासन की उस प्रणाली से है जिसमें निचले स्तर पर लोगों की भागीदारी बनाकर लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को सुनिश्चित किया जाता है तथा लोगों को अपनी समस्याएं स्वयं हल करने के लिए सक्षम बनाया जाता हैद्य दूसरे शब्दों में यदि कहा जाए तो भारत में पंचायती राज्य शब्द का अभिप्राय ग्रामीण स्थानीय स्वशासन पद्धति से है या भारत के सभी राज्यों में जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के निर्माण हेतु राज्य विधानसभाओं द्वारा स्थापित किया गया हैद्य इसे ग्रामीण विकास का दायित्व सौंपा गया है एवं 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के तहत संविधान में शामिल किया गया है।

पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम, तालुका और जिला आते हैं। भारत में प्राचीन काल से ही पंचायती राज व्यवस्था आस्तित्व में रही हैं। आधुनिक भारत में प्रथम बार तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा राजस्थान के नागौर जिले के बगदरी गाँव में 2 अक्टूबर 1959 को पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है। 1991 में संविधान में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 करके पंचायत राज संस्था को संवैधानिक मान्यता दे दी गयी है।

- बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशें (1956-57)
- अशोक मेहता समिति की सिफारिशें (1977-78)
- जी वी के राव समिति (1985)
- डॉ एल घ्म सिन्घवी समिति (1986)
- ग्राम सभा को ग्राम पंचायत के अधीन किसी भी समिति की जाँच करने का अधिकार है।

24 अप्रैल 1993 भारत में पंचायती राज के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण मार्गचिन्ह था क्योंकि इसी दिन संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा हासिल हुआ और इस तरह महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को वास्तविकता में बदलने की दिशा में कदम बढ़ाया गया था।

73वें संशोधन अधिनियम, 1992 में निम्नलिखित प्रावधान किये गये हैं:

1. एक त्रि-स्तरीय ढांचे की स्थापना (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति या मध्यवर्ती पंचायत तथा जिला पंचायत)
2. ग्राम स्तर पर ग्राम सभा की स्थापना
3. हर पांच साल में पंचायतों के नियमित चुनाव
4. अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटों का आरक्षण
5. महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों का आरक्षण
6. पंचायतों की निधियों में सुधार के लिए उपाय सुझाने हेतु राज्य वित्ता आयोगों का गठन
7. राज्य चुनाव आयोग का गठन
8. 73वां संशोधन अधिनियम पंचायतों को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में काम करने हेतु आवश्यक शक्तियां और अधि कार प्रदान करने के लिए राज्य सरकार को अधिकार प्रदान करता है। ये शक्तियां और अधिकार इस प्रकार हो सकते हैं:
   1) संविधान की गयारहवीं अनुसूची में सूचीबध्द 29 विषयों के संबंध में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना और उनका निष्पादन करना
   2) कर, डयूटीज, टॉल, शुल्क आदि लगाने और उसे वसूल करने का पंचायतों को अधिकार
   3) राज्यों द्वारा एकत्र करों, डयूटियों, टॉल और शुल्कों का पंचायतों को हस्तांतरण

ग्राम सभा किसी एक गांव या पंचायत का चुनाव करने वाले गांवों के समूह की मतदाता सूची में शामिल व्यक्तियों से मिलकर बनी संस्था है।

गतिशील और प्रबुध्द ग्रामसभा पंचायती राज की सफलता के केंद्र में होती है।

इतिहास

प्राचीन काल

वैदिक काल में भी पंचायतों का अस्तित्व था। ग्राम के प्रमुख को ग्रामणी कहते थे। उत्तर वैदिक काल में भी यह होता था जिसके माध्यम से राजा ग्राम पर शासन करता था। बौद्धकालीन ग्रामपरिषद् में ग्राम वृद्ध सम्मिलित होते थे। इनके प्रमुख को ग्रामभोजक कहते थे। परिषद् अथवा पंचायत ग्राम की भूमि की व्यवस्था करती थी तथा ग्राम में शांति और सुरक्षा बनाए रखने में ग्रामभोजक की सहायता करती थी। जनहित के अन्य कार्यों का संपादन भी वही करती थी। स्मृति ग्रंथों में भी पंचायत का उल्लेख है। कौटिल्य ने ग्राम को राजनीतिक इकाई माना है। अर्थशास्त्र का ग्रामिक ग्राम का प्रमुख होता था जिसे कितने ही अधिकार प्राप्त थे। अपने सार्वजनिक कर्तव्यों को पूरा करने में वह ग्रामवासियों की सहायता लेता था। सार्वजनिक हित के अन्य कार्यों में भी ग्रामवासियों का सहयोग वांछनीय था। ग्राम की एक सार्वजनिक निधि भी होती थी जिसमें जुर्माने, दंड आदि से धन आता था। इस प्रकार ग्रामिक और ग्रामपंचायत के अधिकार और कर्तव्य सम्मिलित थे जिनकी अवहेलना दंडनीय थी। गुप्तकाल में ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई था जिसके प्रमुख को ग्रामिक कहते थे। वह पंचमंडल अथवा पंचायत की सहायता से ग्राम का शासन चलाता था। ग्रामवृद्ध इस पंचायत के सदस्य होते थे। हर्ष ने भी इसी व्यवस्था को अपनाया। उसके समय में राज्य भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम में विभक्त था। हर्ष के मधुबन शिलालेख में सामकुंडका ग्राम का उल्लेख है जो कुंडघानी विषय और अहिछत्र भुक्ति के अंतर्गत था। ग्रामप्रमुख को ग्रामिक कहते थे।

मध्य काल

नवीं और दसवीं शताब्दी के चोल और उत्तर मल्लूर शिलालेखों से पता चलता है कि दक्षिण भारत में भी पंचायत व्यवस्था थी। ग्राम्य स्वशासन का विकास चोल शासन की मुख्य विशेषता थी। इन साम्य शासन इकाइयों को कुर्रुम कहते थे, जिनमें कई ग्राम

सम्मिलित होते थे। कुर्रुम एक स्वायत्तशासी इकाई थी। शासनसत्ता एक महासभा में निहित होती थी जिसे ग्राम के लोग चुनते थे। सभा अपनी समितियों के माध्यम से शासन का काम चलाती थी। इस प्रकार की आठ समितियाँ थीं जो जनहित के विभिन्न कार्यों को करने के अतिरिक्त शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए उत्तरदायी थीं। ये न्याय संबंधी कार्य भी करती थीं। ग्राम पूरी तरह स्वायत्तशासी था और जिससे केंद्रीय शासन को अनेक दायित्वों से आजादी मिल जाती थी । मुस्लिम और मराठा कालों में भी किसी न किसी प्रकार की पंचायत व्यवस्था चलती रही और प्रत्येक ग्राम अपने में स्वावलंबी बना रहा।

ब्रिटिश काल

अंग्रेजी शासनकाल में पंचायत-व्यवस्था को सबसे अधिक नुकसान पहुँचा और यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। फिर भी ग्रामों के सामाजिक जीवन में पंचायतें बनी रहीं। प्रत्येक जाति अथवा वर्ग की अपनी अलग पंचायतें थीं जो उसके सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती थीं । पंचायत की व्यवस्था एवं नियमों का उल्लंघन करनेवाले को कठोर दंड दिया जाता था। शासन की ओर से इन पंचायतों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। आरंभ से ही अंग्रेजों की नीति यह रही कि शासन का काम, यथासंभव, अधिकाधिक राज्य कर्मचारियों के हाथों में ही रहे। इसके परिणामस्वरूप फौजदारी और दीवानी अदालतों की स्थापना, नवीन राजस्व नीति, पुलिस व्यवस्था, आवागमन के साधनों का विकास आदि कारणों से ग्रामों का स्वावलंबी जीवन और स्थानीय स्वायत्तता धीरे-धीरे समाप्त होने लगी ।

परंतु आगे चलकर अंग्रेजों ने भी यह अनुभव किया कि उनकी केंद्रीकरण की नीति से शासनभार दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। दूसरी ओर राष्ट्रीय जन जागरण के कारण स्वायत्त शासन की माँग भी बढ़ रही थी। अतएव उन्हें विकेंद्रीकरण की दिशा में कदम उठाने को मजबूर होना पड़ा। प्रारंभ में जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों की स्थापना की गई। सन् 1907 के विकेंद्रीकरण संबंधी शाही कमीशन ने पंचायतों के महत्व को स्वीकर किया और अपनी रिपोर्ट में लिखा कि किसी भी स्थायी संगठन की नींव, जिससे जनता का सक्रिय सहयोग प्रशासन के साथ हो, ग्रामों में ही होनी चाहिए। कमीशन ने सिफारिश की कि कुछ चुने हुए ग्रामों में, जो पारस्परिक दलबंदी और झगड़ों से मुक्त हों, वहां पंचायतें स्थापित की जाएँ और प्रारंभ में उन्हें सीमित अधिकार दिए जाएँ। तत्कालीन भारत सरकार ने 1915 ई. में कमीशन की सिफारिशों को सिद्धांतत: तो स्वीकर कर लिया, परंतु व्यवहार में उनकी पूर्णतया उपेक्षा की गई। बहुत ही कम ग्रामों में पंचायतें बनी; जो बनीं, वे भी सरकार द्वारा पूरी तरह नियंत्रित थी।

भारत सरकार के 1919 बनाये में अधिनियम के अनुसार प्रांतीय सरकारों को स्वशासन के कुछ अधिकार दिए गए और 1920 के आसपास सभी प्रांतों में ग्राम पंचायत अधिनियम बनाए गए। संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में 1920 के पंचायत ऐक्ट के अधीन लगभग 4700 ग्राम पंचायतें स्थापित की गईं। सभी प्रांतों में पंचायतों को सीमित अधिकार दिए गए। वे जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, चिकित्सा, जलविकास, सड़कों, तालाबों कुओं आदि की देखभाल के अलावा न्याय संबंधी कुछ कार्य भी कर लेती थीं । वे अधिकतम 200 रु. की चल संपत्ति से संबद्ध मुकदमे ले सकती थीं और फौजदारी के मुकदमों में 50 रु. तक जुर्माना कर सकती थीं। इनकी आय का मुख्य साधन जुर्माना या दान था। परंतु वास्तविकता यह रही कि प्राचीन पंचायतों की तुलना में ये पंचायतें पूर्णतया प्रभावहीन थीं। इनके पंच जनता द्वारा न चुने जाकर सरकार द्वारा मनोनीत किए जाते थे तथा आय के साधन न होने के करण इनकी आर्थिक स्थिति बेहद कमजोर थी। दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन के पुरोधा यह अनुभव करते थे कि, गाँवों का आर्थिक और नैतिक पतन केवल पंचायतों की पुन: स्थापना द्वारा ही रोका जा सकता है। गांधी जी के ग्रामों के लिए दससूत्री कार्यक्रम में पंचायतों को सुदृढ़ बनाने की बात मुख्य थी। वे पंचायतों को स्वंतत्र भारत की शासनव्यवस्था की आधारशिला बनाना चाहते थे। 1937 में सात प्रांतों में स्थापित कांग्रेसी सरकारों के सामने भी यही आदर्श था। उत्तर प्रदेश में अनेक ग्रामों में जीवनसुधार समितियाँ बनाई गई जिन्हें ग्रामविकास के कार्य सौंपे गए। इस प्रकार 1947 ई. तक ग्रामों में सही पंचायत व्यवस्था का अभाव ही रहा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के सक्रिय प्रयास आरंभ हुए। उत्तर प्रदेश में सन् 1947 में पंचायत राज अधिनियम बनाया गया। संविधान के अंतर्गत ष्राजनीति के निदेशक तत्वों में राज्य का यह प्रमुख कर्तव्य बतलाया गया कि 'वह ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर हो' तथा उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करे जो पंचायतों को स्वायत्त

शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों। इस निदेश के अनुसार प्रत्येक राज्य में पंचायत व्यवस्था लागू करने की दिशा में कदम उठाए गए और प्रत्येक ग्राम अथवा ग्रामसमूह में पंचायत की स्थापना की गई।

वर्तमान में पंचायत के सदस्यों का चुनाव गाँव के मताधिकार प्राप्त व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। ग्राम पंचायतें, ग्राम की स्वच्छता, प्रकाश, सड़कों, औषधालयों, कुओं की सफाई और मरम्मत, सार्वजनिक भूमि, पैठ, बाजार तथा मेलों और चरागाहों की व्यवस्था करती हैं, जन्म-मृत्यु का लेखा रखती हैं और खेती, उद्योग धंधों एवं व्यवसायों की उन्नति, बीमारियों की रोकथाम, श्मशानों और कब्रिस्तानों की देखभाल भी करती हैं। वृक्षारोपण, पशुवंश का विकास, ग्रामसुरक्षा के लिए ग्रामसेवक दल का गठन, सहकारिता का विकास, अकाल पीड़ितो की सहायता, पुलों और पुलियों का निर्माण, स्कूलों और अस्पतालों का सुधार आदि इनके ऐच्छिक कर्तव्य हैं।

ग्रामों में पंचायत व्यवस्था का दूसरा अंग न्याय पंचायतें हैं। ग्रामों में मुकदमेबाजी कम करने तथा जनता को सस्ता न्याय सुलभ बनाने की दृष्टि से न्याय पंचायतों का निर्माण किया गया है। इन्हें दीवानी, फौजदारी और माल के मामलों में कुछ अधिकार प्रदान किए गए है। प्रत्येक राज्य में पंचायतों के अधिकार और दायित्व न्यूनाधिक रूप से समान है।

विकेंद्रीकृत शासन व्यवस्था को पूरी तरह कार्यान्वित करने की दिशा में और भी कई कदम उठाए गए हैं। पंचायतों के अधि कारों और कर्तव्यों का क्षेत्र भी विस्तृत हो रहा है। इस प्रकार ग्राम पंचायतें पुनः हमारे देश के जनजीवन का अभिन्न अंग बन गई हैं। इस व्यवस्था की सफलता के लिए जनशिक्षा, सामूहिक चेतना, गुटबंदी का अभाव, राज्य द्वारा न्यूनतम हस्तक्षेप आदि बातें आवश्यक हैं।

कार्य और आय के स्त्रोत

पंचायत समिति, ग्राम पंचायत स्तर पर तैयार की गयी सभी भावी योजनाओं को संग्रहीत करती है और उनकी वित्तीय प्रतिबद्धता, समाज कल्याण और क्षेत्र विकास को ध्यान में रखते हुये लागू करवाती है तथा वित्त पोषण का प्रबंध करती है।

पंचायत समिति की आय निम्न तीन स्रोतों से होती है:

1. जल उपयोग एवं भूमि कर, पेशेवर कर, शराब कर और अन्य
2. आय सृजन कार्यक्रम
3. राज्य सरकार और स्थानीय जिला परिषद से सहायता अनुदान और ऋण
4. स्वैच्छिक योगदान

अधिकतर पंचायत समितियों की आय का मुख्य स्रोत, राज्य सरकार द्वारा दिया गया अनुदान होता है। अन्य स्रोतों में पारम्परिक कार्यक्रमों का आयोजन राजस्व प्राप्त करने बड़ा का स्रोत है। राजस्व कर सामान्यतः ग्राम पंचायतों और पंचायत समिति में साझा किया जाता है।

निष्कर्ष

देश की करीब 70 फीसदी आबादी गाँवों में रहती है और पूरे देश में दो लाख 39 हजार ग्राम पंचायतें हैं। त्रीस्तरीय पंचायत व्यस्था लागू होने के बाद पंचायतों को लाखों रुपए का शासकीय अनुदान सालाना दिया जा रहा है। ग्राम पंचायतों में विकास कार्य की जिम्मेदारी प्रधान और पंचों की होती है।

शहरों में देश की आबादी का मात्र 30 प्रतिशत हिस्सा ही बसता है, लेकिन स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय, बड़े अस्पताल, मनोरंजन के तमाम साधन वहीं पर केंद्रित हैं. गांव में बसनेवाले 70 प्रतिशत लोगों के लिए रोजगार के साधनों का ही अभाव नहीं है, बल्कि उनके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, सफाई, आदि की भी कमी है।

मनरेगा के लागू होने के बाद पंचायती राजव्यवस्था काफी मजबूत हुई है। ग्रामीणों का पलायन भी कम हुआ है. लोगों को घर बैठे काम मिल रहा है और निर्धारित मजदूरी भी. इस योजना के जरिए तीनों स्तर पर जिम्मेदारी भी बांटी गई है और काम भी।

पंचायतों को विकास कार्य कराने के लिए किसी दूसरे मद से पैसे का इन्तजाम नहीं करना पड़ रहा है। उन्हें भरपूर पैसा भी मिल रहा है और गाँवों में विकास भी हो रहा है। चूँकि यह योजना पूरी तरह से पंचायती राज पर केंद्रित है, इसलिए एक तरफ योजना का क्रियान्वयन सफलतापूर्वक हो सका है तो दूसरी तरफ पंचायती राज व्यवस्था को नया आयाम मिला है।

सन्दर्भ

- Seetharam, Mukkavilli (1 January 1990). Citizen Participation in Rural Development. Mittal Publications. p. 34. ISBN 9788170992271.
- Palanithurai, Ganapathi (ed.) (2002–2010) *Dynamics of New Panchayati Raj System in India*. New Delhi: Concept Publishing Company.
- Shourie, Arun (1990). *Individuals, Institutions, Processes: How one may strengthen the other in India today*. New Delhi, India: Viking. ISBN 978-0-670-83787-8.
- Sivaramakrishnan, Kallidaikurichi Chidambarakrishnan (2000) *Power to the People: The politics and progress of decentralisation*. Delhi: Konark Publishers. ISBN 978-81-220-0584-4

स्त्री शिक्षा का समाज पर प्रभाव

डॉ० परमानन्द त्रिपाठी

बी० एड० विभागाध्यक्ष, एल०एन०डी० कॉलेज, मोतिहारी, बिहार

सारांश

शिक्षा मानव को एक अच्छा इंसान बनाती है। शिक्षा में (ज्ञान), उचित आचरण और तकनीकी दक्षता, षिक्षण औरा विद्या प्राप्ति आदि समाविष्ट है। इस प्रकार यह कौशलों, व्यापार या व्यवसायों एवं मानसिक, नैकित और सौन्दर्यविषयक के उत्कर्ष पर केंद्रित है शिक्षा, समाज एक पीढ़ी द्वारा अपने से निचली पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास है। इस विचार से शिक्षा एक संस्था के रुप में काम करती है, जो व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है। बच्चा शिक्षा द्वारा समाज के आधारभूत नियमों, व्यवस्थाओं, समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों को सीखता है। बच्चा समाज से तभी जुड़ पाता है जब वह उस समाज विशेष के इतिहास से अभिमुख होता है। शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व का विकसित करने वाली प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की षिक्ष धातू में अ प्रत्यय लगाने से बना है। किसी भी देश को पूर्ण रुप से विकसित होने के लिऐ वहां की महिलाओं का शिक्षित होना जरुरी है। यह एक तरह से उस दवाई की भांति है जो मरीज को ठीक होने में मदद करती है औरा उसे फिर से सेहतमंद बनने में मदद करती है। महिला शिक्षा एक बहुत बड़ा मुद्दा है भारत को आर्थिक रुप से तथा सामाजिक रुप से विकसित बनाने में। शिक्षित महिला उस तरह का औजार है जो भारतीय समाज पर औरा अपने परिवार पर अपने हुनर तथा ज्ञान से सकारात्मक प्रभाव डालती है। देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के पीछे शिक्षित महिला का अमूल्य योगदान होता है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि अनपढ महिला का जल्द ही विवाह कर दिया जाता है और वे जल्दी ही बच्चों को जन्म दे देती है। शिक्षित महिला ऐसा कदम सोच समझ कर उठा सकती है जिससे देश की बढती हुई जनसंख्या पर भी रोकथाम लगाई जा सकती है।

पौराणिक काल के भारत में महिलाओं के लिए शिक्षा का उचित प्रबंध था परन्तु मध्यकालीन युग के आते आते महिलाओं पर कई तरह की पाबंदिया लगा दी गई थी। हालांकि अगर हम आज की बात करे तो लोग महिलाओं की शिक्षा को लेकर बहुत जागरुक हो चुके है और यह अच्छी तरह समझते है कि महिला और पुरुष दोनो मिल कर ही देश को हर क्षेत्र में पूर्ण रुप से विकसित कर सकते है।

महिलाओं को भी पुरुषों की तरह शिक्षा संबधी गतिविधियों में बराबरी का मौका दिया जाना चाहिए। उन्हे शिक्षा से जुड़ी किसी भी तरह की कार्यवाही से दूर रखना क्रूरता के समान है। हमारे देश की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती है। अगर महिलाएं अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पायी तो इसका मतलब है की हमारे देश का विकास भी अधूरा है जो देश को पिछडेपन की ओर ले जायेगा। महिलाओं के शिक्षित होने से समाज और देश में विकास भी तेजी से हो पायेगा। महिलाओं के लिए शिक्षा के महत्व को व्यापक स्तर पर फैलाने के लिए पूरे देश का विकास कर सकती है। महिला शिक्षा की दर कम दर कम होने की ही वजह से जनसंख्या के मामले में हमारा देश पूरे विश्व में दूसरे नंबर पर आता है। अगर महिला खुद शिक्षित होगी तो देश का आने वाला भविष्य भी शिक्षित होगा। महिला शिक्षा मध्यकालीन भारत में बहुत बड़ा मुद्दा था हालाँकि आज यह मसला काफी हद तक सुलझ चुका है। भारत में अब महिला शिक्षा को पुरुष की शिक्षा की ही तरह अहमियत दी जाती है ताकि महिलाएं भी सामाजिक और आर्थिक स्तर पर सकारात्मक बदलाव ला सकें पुराने जमाने में महिलाओं को घर से बाहर निकलने की इजाजत नहीं थी। शिक्षा के नाम पर वे सिर्फ घरेलू कामकाजों तक ही सीमित थी।

राजा राममोहन राय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर कुछ ऐसे समाज सुधारक थे जिन्होने ब्रिटिश राज के दौरान महिलाओं के विकास के काफी सराहनीय कार्य किया था। महिला तथा पुरुष दोनो मिल कर देश की आधी आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते है। वे एक सिक्के के दो पहलू के समान है तो इस हिसाब से महिला तथा पुरुष दोनो ही देश के विकास में बराबरी के हकदार है। महिलाओं के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती क्योकि आने वाले वंश की जन्मदाता वे ही है। अगर महिलाएं अच्छी तरह से शिक्षित होंगी तो ही वे भविष्य में जन्म लेने वाली पीढी को शिक्षा दे पाएंगी जिससे समाज और देश प्रगति कर पाएगा।

भारत में महिला सुरक्षा के लाभ

भारत की उन्नति के लिए महिलाओं का शिक्षित होना बहुत जरुरी है क्योकि अपने बच्चों की पहली शिक्षक माँ ही होती है जो उन्हे जीवन की अच्छाईयों औरा बुराइयों से अवगत कराती है। अगर नारी शिक्षा को नजरंदाज किया गया तो देश के भविष्य के लिए यह किसी खतरे से कम नहीं होगा। एक अनपढ महिला में वो काबिलियत नहीं होती जिससे वह अपने परिवार, बच्चों का सही ख्याल रख सके। इस कारण आने वाली पीढी कमजोर हो जाएगी। हम महिला साक्षरता के सारे लाभ की गिनती तो नहीं कर सकते पर इतना जरुर कर सकते है की एक शिक्षित महिला अपने परिवार और बच्चों की जिम्मेदारी को अच्छे बुरे का ज्ञान दे सकती है, सामाजिक तथा आर्थिक कार्य करके देश की प्रगति में अपना योगदान दे सकती है।

एक पुरुष को शिक्षित करके हम सिर्फ एक ही व्यक्ति तक शिक्षा पहुँचा पाएगे पर एक महिला को शिक्षित करके हम पूरे देश तक शिक्षा को पहुँचा पाएंगे। महिला साक्षरता की कमी देश को कमजोर बनाती है। इसलिए यह बहुत जरुरी है कि महिलाओं को उनकी शिक्षा का हक दिया जाए और उन्हे किसी भी तरह से पुरुषों कम न समझा जाए।

पौराणिक युग से लेकर आजादी के बाद के समय तक महिला साक्षरता को लेकर किये गये प्रयासों में बहुत प्रगति हुई है। हालांकि अभी यह कार्य संतुष्टि के स्तर तक नहीं पहुँचा है। अभी भी इस दिशा में काफी काम करना बाकी है। भारत के विश्व में बाकी देशों से पिछडनें के पीछे महिला साक्षरता की कमी का ही होना है। भारत में महिला साक्षरता को लेकर गंभीरता इसलिए कम है क्योंकि बहुत पहले समाज में महिलाओं पर तरह-तरह की पाबंदियां थोप दी गई थी। इन पाबंदियों का जल्द ही हटाना बेहद जरुरी है। इन प्रतिबंधों को हटाने के लिए हमें महिला शिक्षा को लेकर व्यापक स्तर पर जागरुकता फैलानी होगी और महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति प्रेरित करना होगा जिससे वे आगे आकर समाज और देश को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके।

महिला शिक्षा की बेहतरी के लिए निम्नलिखित योजनायें भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही है

* सर्व शिक्षा अभियान
* इंदिरा महिला योजना
* बालिका समृद्धि योजना
* महिला समृद्धि कोश
* रोजगार तथा आमदनी हेतु प्रशिक्षण केन्द्र
* महिलाओं तथा लड़कियों की प्रगति के लिए विभिन्न कार्यक्रम

भारत में महिला शिक्षा को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारण हैः

* *कुपोशण तथा भरपेट खाना न मिलना*
* नाबालिंग उम्र में यौन उत्पीड़न
* माता-पिता की खराब आर्थिक स्थिति
* कई तरह की सामाजिक पाबंदी
* घर में माता-पिता या सास-ससुर का कहना मानने का दबाव
* ऊंची शिक्षा हासिल करने की अनुमति ना होना
* बचपन में संक्रमण रोग से लड़ने की प्रयाप्त शक्ति की कमी

सर्व शिक्षा अभियान क्या है

सर्व शिक्षा अभियान एक राश्ट्रीय योजना है जिसे भारत सरकार द्वारा चलाया जा रहा है इसका उदेश्य 8 साल तक 6 से 14 वर्ष के बच्चो को उत्तम शिक्षा देने का है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी द्वारा शुरू की गयी इस योजना का मुख्य लक्ष्य है।

* 2002 तक देश के सभी जिलो में शिक्षा को पहूँचाना।
* 2003 तक सभी बच्चो का स्कूल में दाखिला करवाना।
* 2007 तक सभी बच्चों की न्यूनतम 5 साल की शिक्षा अनिवार्य करना।
* 2010 तक सभी बच्चें अपनी 8 साल की शिक्षा पूरी कर चूके हो इसको सूनिश्चित करना।

निष्कर्ष

आज के समय में भारत महिला साक्षरता के मामले में लगातार प्रगति कर रहा है। हिंन्दुस्तान के इतिहास में भी बहादूर महिलाओं जिक्र किया गया है। मीराबाई, दुर्गावती, अहिल्याबाई जैसी कुछ मशहूर महिलाओं के साथ-साथ वेदों के समय की महिला दर्शनशास्त्री गार्गी, विस्वबरा, मैत्रयी आदि का भी उदाहरण इतिहास का पन्नो में दर्ज है। ये सब महिलाएं प्रेरणा का स्त्रोत थी। समाज और देश के लिए दिए गयें उनके योगदान को हम कभी नहीं भूल सकते। भारत में महिला साक्षरता नए जमाने की अहम जरूरत है। महिलाओं के शिक्षित हुए बिना हम देश के उज्जवल भविष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते। परिवार, समान और देश की उन्नति में महिलाओं की भूमिका बहूत महत्वपूर्ण है। भारत के लोकतंत्र को सफल बनाने का एकमात्र रास्ता यही है कि महिलाओं तथा पुरुषों को शिक्षा हासिल करने के लिए बराबरी को हक दिया जाए। शिक्षित महिलाएं ही देश, समाज और परिवार में खुशहाली ला सकती हैं यह कथन बिलकुल सत्य है कि एक आदमी सिर्फ एक व्यक्ति को ही शिक्षित कर सकता पर एक महिला पूरे समाज को शिक्षित कर सकती है। जिससे पूरे देश को शिक्षित किया जा सकता है।

आज महिला शिक्षा के महत्व को पहचान बहुत आवश्यक है। क्योंकि वे अपने बच्चों की पहली शिक्षक है जो आगे जाकर देश के निर्माण को एक नई पहचान देंगें। किसी भी बच्चे का भविष्य उसकी माँ द्वारा दिए गए प्यार और परवरिश पर निर्भर करता है। जो एक महिला ही कर सकती है। हर बच्चा अपनी जिन्दगी की पहली सीख अपनी माँ से ही हासिल करता है। इसलिए माँ का शिक्षित होना बेहद जरूरी है। जिससे वह अपने बच्चे में गुण डाल सकें जो उसके जीवन को सही दिशा दे सकें। शिक्षित महिलाएं सिर्फ अपने बच्चे ही नहीं बल्कि उनके आसपास और कई लोगों की जिंदगी को बदल सकती है। जो देश को विकसित करनें में महत्वपूर्ण किरदार अदा कर सकतै है।

एक महिला अपनें जीवन में माँ, बेटी, बहन, पत्नी जैसे कई रिश्तों को निभाती है। किसी भी रिश्ते में बंधने से पहले वह महिला देश की आजाद नागरिक है तथा वह उन सब अधिकारों की हकदार है जो पुरुष को मिले हुए है। उन्हें जपनी इच्छा अनुसार शिक्षा ग्रहण करने को हक है जिससे वे अपने मनपसंद क्षेत्र में कार्य कर सके। महिलाओं को अपनें पैरों पर खड़ा करने तथा आत्मनिर्भर बनाने में शिक्षा सहायता करती है। शिक्षा न सिर्फ महिलाओं को अपने पैरो पर खड़ा करनें तथा आत्मनिर्भर बनाने में शिक्षा सहायता करती है। शिक्षा न सिर्फ महिलाओं का समाज में उच्च शिक्षा स्तर करती है। बल्कि महिलाओं के प्रति समाज की उस संकीर्ण सोच जिसमें उन्हें माँ बाप पर बोझ की तरह देखा जाता था ,को भी खत्म करती है।

सन्दर्भ

* षिक्षण ख्र मरिअम वेबस्टर आँनलाइन शब्दकोश से परिभाषा
* Mark “Levels of Teaching".Learning Classes online .
* LCO."Shikshan ka safar “. Learning Classes online .
* शिक्षा विकासपीडिया
* बहु प्रतिभा सिद्वांत-क्या है। आपके सीखने की शैली
* ज्ञानगंगा
* राजस्थान शिक्षा राजस्थान के शिक्षा संबंधी समाचारों को समर्पित बेवसाइट

भारत के विकास में डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का शैक्षिक विचार का ऐतिहासिक अवलोकन

आसमीन आरा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, जे.पी. विश्वविधालय, छपरा

परिचय

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम का जन्म अक्टुबर 1931 को मद्रास राज्य के रामेश्वरम कस्बे में हुआ था। डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम का पुरा नाम अब्दुल पाकिर जैनुलाबुददीन कलाम है। इन्हें मिसाइल मैन भी कहा जाता है तथा राष्ट के महान वैज्ञानिक तथा प्रथम व्यक्ति यानि 11 वें राष्ट्रपति के रूप में जाने जाते है। इनके पिता जी का नाम हैं। जैनुलाबुददीन बहुत पढे लिखें तो नहीं थे परन्तु काफी बुद्धिमान एवं उदार व्यक्ति थे।

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम शिक्षा से मानव का व्यक्तिव को सम्पूर्ण विनम्र और संसार के लिए उपयोगी बनानें की बात करते हैं। उनका मानना हैं कि सही शिक्षा से मानवीय गरिमा स्वभिमान एवं विश्वबंधूत्व में बढोतरी होती है आज की युवा छात्र-पीढी को ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है।

जिससे खोजी और सृजनशील मन को सबल बनाने के साथ ही उनके सपने चुनौती प्रस्तुत करें।

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम जी का मानना है कि एक अच्छी शिक्षा प्रणाली में ऐसी क्षमता होनी चाहिए जो छात्रों की ज्ञान प्राप्ति की तीव्र जिज्ञासा को शांत कर सकें।

शिक्षा का वास्तविक अर्थ-

शिक्षा का वास्तविक अर्थ है एक जागृत समाज की रचना। डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम कहते है कि शिक्षा का अर्थ एक जागृत समाज की रचना करना है। जागृत समाज के मुख्य आयामद्धअंग) है।

द्ध1) एक ऐसी शिक्षा जिसके निशचित मूल्य हो।

द्ध2) धर्म या आध्यात्मिक शक्ति में परिवर्तन।

द्ध3) आर्थिक विकास।

स्कुल जाने का परिणाम यह होना चाहिए कि युवा ज्ञान आधारित समय के अगं बने और स्वंम अपने विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास में भी योगदान कर सके।

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम जी सर्व धर्म समभाव की शिक्षा देना चाहते हैं उनका मानना है कि धर्म ?)पों की तरह होते हैं यदि हम प्रेम और कक्ष डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल करूना के द्धारा सब धमों को एक दुसरे को जोड सकें तो निश्चित ही सर्वधर्म समाज और स्थायी शान्ति की स्थापना हो सकेगी।

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम का मानना है कि हमारे यहॉ अनेक धर्म है धर्म बगीचों की तरह है बस इसे एक दुसरे से जोडने की जरूरत है हर धर्म में प्रेम और करूणा की शिक्षा देना चाहिए।

उनका कहना है कि हमारा देश विभिन्न प्रदेशों में बटां है जहॉ की भाषा धर्म में विविधता पायी जाती है अत: हमें ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो विविधता में एकता का भाव विकसित कर सकें।

समाज में शान्ति स्थापित हो। शिक्षा के सम्बंघ में मेरा विचार है कि उसके द्धारा बच्चों की रचनात्मक शक्ति विकसित की जानी चाहिए।

शिक्षा का उदेश्य :-

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम कहते है कि शिक्षा का उदेश्य बालक के रचनात्मक शक्ति का विकास करना है।

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम जो वैज्ञानिक शिक्षा के साथ-साथ अध्यात्मिक शिक्षा पर भी बल देते हैं जिससे भारत एक विकसित राष्ट्र के रूप में परिवर्तित होने के साथ ही मानवीय मूल्यों तथा संस्कृति को बनाए रखें।

चरित्र निर्माण पर बल :-

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहते है जिससे बालक को रचनात्मक शक्ति साथ चरित्र का निमार्ण हो सकें तथा विधार्थी सदाचारी व्यर्थ समय गुजारने वाला न हो अपने कार्य के प्रति कर्तव्य श्रेष्ठ तथा माता-पिता तथा बुढों की सम्मान करने वाला हो। बालक का चरित्र निर्माण के लिए हर सप्ताह के एक धंटे में नैतिक शिक्षा की अलग कक्षा होनी चाहिए जिसमें घार्मिक नेताओं प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रेष्ठ व्यक्तियों के बारे में बताया जाना चाहिए जिससें बचपन में सीखी हुई बातें भविष्य में एक अच्छा मानव निर्माण कर सके मानव का निर्माण चरित्र से ही होता है।

रोजगार सृजन करने में

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम जी का मानना है कि ऐसी शिक्षा व्यवस्था हो जिससे युवाओं को रोजगार प्रदान की जाए न की बेरोजगारी की संख्याओं में बढोतरी हो हमारी शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो कि मूल्यों पर आधारित समाजिक व्यवस्था धार्मिक शक्तियों कों आध्यात्मिक उन्नति में बदलनें की क्षमता और आर्थिक प्रगति को संगठित मार्ग पर ले जाने की योजना से जोडकर राष्ट्रीय विकास में युवाओं का योगदान प्रदान करना हो तथा शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो कि बेरोजगारी आतंकवाद भ्रष्टाचार तथा गरीबी से छुटकारा दिलाने वाली हो।

राष्टीय एकता का विकास

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम राष्टीय एकता पर बल देते है उनका मानना है कि शिक्षा ही एक माध्यम है जिसके द्धारा राष्ट को एकीकृत किया जा सकता है।

पाठयक्रम

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम के द्धारा पाठयक्रम पर क्रमश:विचार किया हुआ नहीं मिलता है अपितु उनका मानना है कि सबसे बडा वरदान है। विज्ञान एक रोमांचकारी विषय है तथा विज्ञान में निपुर्ण होने के लिए गणित की आवश्यकता होती हैं। विज्ञान प्रौधोगिकी,चिकित्सा,राजनिति,नीति निर्माण,धर्मशास्त्र धर्म या न्याय जैसी सभी क्षेत्र में कार्यरत रहें आम लोगों की सेवा हो सके इसी कारण इन विषयों पर बल दिये।

विज्ञान गणित के साथ-साथ अध्यात्मिक विकास के लिए दर्शन का अध्ययन भी आवश्यक है।

उनका मानना था कि बच्चों का ऐसी सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए जिससें उनका व्यक्तित्व बहुआयामी बनें जैसे:खेल भाषण देने की योग्यता उधम क्षमता जीवन की कला सांस्कतिक मूल्यो की समझ और विकास में सब विषय पाठयक्रम में शामिल होनी चाहिए।

देश को समृ) बनाने के लिए तथा विकसित राष्ट्र बनाने के लिए डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम ने देशभर भ्रमण करने के लिए उपरान्त तथा लोगों के साथ विचार विमर्श के बाद उन्होने महसूस किये कि शिक्षा के क्षेत्रों में विकास करना होगा तभी हमारा देशसमृ) बन सकेगा।

शिक्षा साक्षरता आन्दोलन

प्राचिन समय में भारतीय में विधा का एक महान केन्द्र नालंदा विश्वविधालय था जिसमें तीस देश के विद्धान वेद,तर्कशास्त्र,व्याकरण,धार्मिक,दर्शनशास्त्र,अध्ययन करते थे जो आज दुर्भाग्यवश गौरव प्राप्त नहीं है।

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम का कहना है कि आज भी हमारे देश में 46 प्रतिशत जनसंख्या अशिक्षित है। शिक्षा की कई राष्ट्र नीतिया आयी परंतु अशिक्षा पुरी तरह समाप्त नहीं हो सका।

विश्वविधालय स्तर तक अनिवार्य शिक्षा की जानी चाहिए हमारे देशके सभी बच्चों कों शिक्षित किया जाना अत्यंन्त आवश्कता हैं। बौद्धिक समाज बदल रहा है तथा यह आवश्कता है कि शिक्षा सबसे उचॉ स्थान मिलना चाहिए। साथ ही यह भी निशचित किया जाना चाहिए निम्न आय वर्ग भी शिक्षा के खर्च को वहन कर सके अत: शिक्षा को सरल और सुलभ बनाने की बात करते थे।

नारी शिक्षा

डाण्एण्पीण्जेण्अब्दुल कलाम नारी शिक्षा के पक्षधर थे। उनका मानना था कि देश में नारी शिक्षा को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। उनका मानना था कि जब महिलाओ को अधिकार प्राप्त होगे तभी एक स्थिर समाज उभरेगा।

लडकियों के लिए माध्यमिक शिक्षा तथा विश्वविधालय शिक्षा को सुनिशचित करने के पक्षधर थे। कलाम का मानना था कि स्कूलों तथा कॉलेजों के आपस में जोडने के लिए ई-शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

शिक्षा को व्यवसायिक प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करना तथा विघार्थियों के उघमियो में रूपान्तरित करने के पक्षधर थे।

प्रौढ शिक्षा

कलाम प्रौढ शिक्षा के पक्षधर थे उनका मानना था कि अशिक्षित वयस्को को शिक्षा देने के लिए एक व्यवस्थित योजना की आवश्कता है। छूटियों के दौरान उच्च विघार्थियों के विघालय और शिक्षक निकट के गॉवों में वयस्कों को पढा सकतें है। उनका मानना था कि हम विधार्थी कम से कम पॉच वयस्क को शिक्षित करें तो भारत की साक्षरता दर में वृद्वि होगी।

निष्कर्ष

भारतीय परिवेश में डाण्एण्पीण्जेण्अब्दूल कलाम का महत्वपूर्ण भूमिका है जिसका किसी भी हद तक नाकारा नही जा सकता है उनके द्धारा भारत के विकास में शैक्षिक कार्यो पर किया गया योगदान व कायों अतुलनीय है जिसका प्रभाव वर्तमान परिवेश में भी विधमान है द्रष्टव्य है कि महिला शिक्षा व महिला शिक्षा पर उनका विचार व कार्यो को वर्तमान परिवेश में भी योजनाओं के द्वारा सुदृढ किया जा रहा है अंत: डाण्एण्पीण्जेण्अब्दूल का शैक्षिक विचार का ऐतिहासिक अवलोकन करने के पश्चात स्पष्ट होता है कि भारत के विकास में उनके विचारों की अहम भूकिमा हैं।

सदर्भ सूचि

1. कलाम अब्दुल डॉ.ए.पी.जे.शवताणु पिल्लै 1993 मेरे सपनो का भारत नई दिल्ली पृ0:-159-160।
2. वही पृ0:- 159-160।
3. कलाम अब्दुल डा.ए.पी.जे. 2002 तेजस्वी मन प्रभात प्रकाशन।
4. कलाम अब्दुल डॉ.ए.पी.जे. (2012) टर्निंग राज्यपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
5. कलाम अब्दुल डॉ.ए.पी.जे. (2010) भारत की आवाज राज्यपाल एण्ड सन्स नई दिल्ली।
6. कलाम अब्दुल डॉ.ए.पी.जे. विंगस ऑफ फायर प्रथम प्रकाशन नई दिल्ली।
7. नरसिम्हा आर0 कलाम अब्दुल डाण्एण्पीण्जेण्डेवलपमेंट इन फलूइड मैकेनिक्स एण्ड स्पेस टेक्नोलॉजी इंडिया एकेडमी ऑफ सांइसेज।

बढ़ती आधुनिकता और गिरता नैतिक स्तर

डॉ० नीतू कुमारी

सहायक प्रोफेसर, मुरारका कॉलेज, सुल्तानगंज, तिलकामाँझी भागलपुर विष्वविद्यालय, भागलपुर

भारत वो देष है जहाँ पर मानव की पहचान उसके महँगे और सुंदर वस्त्र नहीं बल्कि उसके अंदर मौजूद नैतिक मूल्य से है, जो मानव के व्यवहार से प्रतिबिंबित होता है। स्वामी विवेकानंद जब षिकागो धर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए गए तो वहाँ के लोग उनकी भारतीय वेषभूषा को देखकर हास्य करने लगे, लेकिन जब उन्होंने धर्म-सम्मेलन में अपने विचारों को व्यक्त किया तो समस्त जन समूह भारतीय संस्कृति के रंग में रंग गया।

संपूर्ण विश्व में भारत एकमात्र एक ऐसा देश है, जहाँ सभी धर्मों को मानने वाले लोगों का बसेरा है। प्राचीनकाल में भारत देश को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था,[1] क्योंकि यहाँ समस्त लोगों में एकता के गुण सहजता से मिलते थे। हमारे कृषियों और आचार्यो ने कहा है कि ''आचार: परमो धर्म:'' अर्थात् नैतिकता ही सबसे बड़ा धर्म है।[2]

नैतिक मूल्य भारतीय संस्कृति की पहचान है जो हमारे पुरखों से विरासत में मिली अनमोल धरोहर है। नैतिकता का गुण एक ऐसा गुण है जो समस्त मानव जाति के लिए अत्यंत ही आवश्यक है। इस गुण को अपनाने से ही मनुष्य 'सच्चा मनुष्य' कहलाता है। नैतिकता का गुण किसी भी मनुष्य में जन्म के साथ नहीं आता है। जब कोई बच्चा जन्म लेता है तो वह निष्पाप, निश्छल और कोरे-कागज की भाँति होता है। और जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसमें शारीरिक, मानसिक परिवर्तन होने लगता है। सर्वप्रथम नैतिकता का गुण बच्चे के घर से ही पनपता है फिर शिक्षा और समाज से। यदि हम शिक्षा जगत की बात करें तो स्कूलों में नैतिक शिक्षा व शिष्टाचार के लिए शिक्षा का प्रावधान अवश्य रूप से होना चाहिए। छोटे बच्चों के सामने नैतिकता व शिष्टाचार ऐसा समृद्ध हो कि उन्हें अनैतिक तत्वों की तरफ जाने की कोई गुंजाइश ही न हो। लेकिन वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह है कि वह हमारे बच्चों के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक नहीं है। शिष्टाचार एवं नैतिकता क्या है इन विषयों के बारे में सिखाया ही नहीं जाता बल्कि गणित, अंग्रेजी, विज्ञान आदि विषयों पर ज्यादा जोर दिया जाता है, जिससे बच्चे संस्कार, शिष्टाचार और नैतिकता से अनभिज्ञ रहते हैं। अनैतिकता को समाप्त करने के लिए हमें बच्चों को उसी प्रकार से शिक्षित करने की जरूरत है। संस्कार होंगे तो बच्चों में नैतिकता व शिष्टाचार भी आएँगे। बच्चों को पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ इस प्रकार के शिक्षा की भी व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें बच्चों में नैतिकता व शिष्टाचार को बढ़ावा मिले।

नैतिकता नर का ही भूषण नहीं है बल्कि वह समाज और राष्ट्र का ऐसा दिव्य गुण है, जिससे महान से महान शक्ति का संचार होता है। कहा गया है -

''सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भ्रदाणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग भवत्े।।[3]

यह दृष्टिकोण सबके सुख और शान्ति की बात करता है। वर्तमान परिवेश में क्या यह दृष्टिकोण विद्यमान है ? विचारणीय है ?

वर्तमान समय में समाज में नैतिक मूल्य दिनों दिन गिरते जा रहे हैं। आज हमारा चरित्र क्यों भ्रष्ट और नष्ट हो रहा है ? यह एक ज्वलंत विचारणीय प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित है। महाकवि व्यास ने अठारहों पुराण का सार भाग प्रस्तुत करते हुए कहा है कि -

'अष्टादष पुराणेष व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।

अर्थात् दूसरों को पीड़ित करने से कोई बड़ा पाप नहीं और परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है।[1]लेकिन यदि आज हम वर्तमान परिस्थिति को देखे तो जैसे पाप और पुण्य का भेद ही मिट गया है। शिष्टाचार, सदाचार, शीलाचार आदि सब का स्तर गिरता जा रहा है तथा उच्च आदर्शों एवं मूल्यों से दूर होते जा रहे हैं।

जिस महान धरा पर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम व अर्जुन जैसे महान विभूतियों का जन्म हुआ है, आज उसी धरा से शिष्टाचार, नैतिकता व संस्कार खोते जा रहे हैं तथा इसके साथ-साथ आज यह कड़वा सच है कि पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति को तेजी से आत्मसात भी करते जा रहे हैं।

यह प्रश्न विचारणीय है कि वास्तविक प्रगति क्या है ? क्योंकि आज की आधुनिकता ने तो वास्तविक आधुनिकता की मूलभूत परिभाषा ही बदल दी है। लोगों की जीवनशैली बदल चुकी है। आधुनिक दिखने के चक्करमें नैतिकता का पतन होता जा रहा है। आधुनिकता ने मानव को पैसों का गुलाम बना कर रख दिया है। आज पैसे के लिए मानव हर कर्म करने को तैयार है। बलात्कार, कत्ल जैसे संगीन जुर्म करने से भी लोग नहीं कतराते। यह सब आधुनिकता का ही परिणाम है। जब-जब संस्कारों का नैतिक मूल्यों का पतन होता रहेगा तब-तब मानवता का हनन होता रहेगा।

आज नग्न बदन दिखाना, माँस-मदिरा का सेवन करना, डिस्को बार में मौज करना, मानवता भूलकर कुकर्म करना, एकांकी जीवन बिताना यह सब आधुनिकता का प्रतीक बन चला है। क्या बिना आध्यात्मिक एवं विवेकशीलता के वास्तविक आधुनिक विकास संभव हैख़्ख़्ख़ कभी नहीं।

हमारी सनातन संस्कृति कितनी व्यापक है जो बुद्धि एवं हृदय को जोड़ती है, विज्ञान, आध्यात्मक एवं मानवतावाद को लेकर आगे बढ़ती है। जब तक हम आध्यात्मिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते तब तक परिपूर्णता की चाहत पूरी नहीं हो सकती। आध्यात्मिकता में ही संपूर्ण जीवन में एक ईश्वर, मानवीय एकता, एवं समता का भाव दिखता है।

वास्तव में हमें आधुनिकता का वास्तविक अर्थ ही नहीं पता। आधुनिकता का वास्तविक मूल्य पता न होना ही अंधकार को जन्म देता है और अंधकार अपराध को। समस्त मानव प्राणी को आधुनिकता का वास्तविक अर्थ समझने की जरूरत है। आधुनिकता का अर्थ है-पुराने चले आ रहे व्यवसाय, रीति-रिवाजों को एक कदम और आगे बढ़ा देना था जिसे अंग्रेजी में कह सकते हैं नचहतंकम कर देना। यह बात तो सामान्य है कि आधुनिकता में पुराने रीति-रिवाज पीछे छुट जाते हैं। एक नई उन्नति देखने को मिलती है, जो मनुष्य के हितों में होनी चाहिए।

वास्तविक रूप में आधुनिकता तो एक सोच है, एक विचार जो व्यक्ति को इस दुनिया के प्रति अधिक जागरूक व मानवीय दृष्टिकोण से जीने का सही मार्ग दिखलाती है। सही मायने में सही समय पर, सही मौके पर, सही भाषा का प्रयोग तथा समय पर सोच-समझ कर फैसले लेने की क्षमता, आत्मविश्वास का मिला-जुला रूप ही आधुनिकता है।

लेकिन बहुत दुखद है कि आज हमारी वेश-भूषा से लेकर सोच तक सब कुछ पश्चिमी के रंग में रंग चुका है। आज हम इतने आधुनिक हो गए हैं कि व्यक्ति को व्यक्ति से बात करने की फुर्सत नहीं है, सब व्यस्त हैं, लेकिन वास्तव में देखा जाए तो सब व्यस्त नहीं बल्कि त्रस्त हैं। आज हम सुबह उठते ही सबसे पहले मोबाईल देखते हैं, बिमइववा पर कितने लाईक मिले हैं वो देखते हैं। यदि पहले की स्थिति को याद कियाज ाए तो सुबह उठकर अपनी दैनिक चर्या से निवृत्त होकर फिर माता-पिता के साथ बैठना होता था। आज भीड़ में भी व्यक्ति अकेलापन का ही अनुभव करता है।

आज हमारे सामने अहम सवाल यह है कि क्या हम सब आधुनिकता को सही मायने में आत्मसात कर रहे हैंख़्र ? यह सच नहीं कि ओछी आधुनिकता मानवीय मूल्यों की विध्वंसक बन गई है। आज आधुनिकता महज दिखावा, अश्लीलता, फुहड़पन और अज्ञानता में सिमटती नजर आ रही है। जो कि हमारे वर्तमान एवं भावी समाज के लिए अत्यंत घातक है।

हमारे सम्मुख एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या सिर्फ युवा पीढ़ी ही जिम्मेदार है नैतिक पतन के लिए ? क्या हम युवा पीढ़ी के लिए अपना कर्तव्य निष्ठा से निभा रहे हैं। आज अगर उनमें संस्कारों की कमी है तो उसकी वजह भी सिर्फ और सिर्फ हम ही हैं। आज क्यों हम अपने बच्चों में नैतिकता के गुण, एवं शिष्टाचार नहीं दे पा रहे-यह एक सोचने का विषय है।

यदि ईमानदारी से सोचा जाए अनैतिकता व अशिष्टता को फैलाने वाला और कोई नही हम स्वयं हैं और इसे सहेजने के लिए भी हमें स्वयं ही कदम उठाने होंगे। हम अच्छी तरह जानते हैं कि हम एक ऐसे परिवर्तनशील समाज में रहते हैं जहाँ सामंजस्य तथा प्रतिवाद एवं कुसामंजस्य होना भी निश्चित है। लेनिक हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि सर्वश्रेष्ठ तत्वों को अंगीकार करके पुराने युग के भी सर्वश्रेष्ठ तत्वों को अक्षुण्ण रखे। परिवार, समाज, मीडिया सभी को इस पर ध्यान देना चाहिए। जैसा पहले रामायण, महाभारत का प्रसारण होता था, स्कूलों में इससे संबंधित रंगमंच में नाटक के रूप में दिखाना चाहिए, जिससे लोगों का मानसिक तनाव दूर होगा तथा सुरक्षित जीवन प्रणाली फिर से वापस आ सकती है।

आज वर्तमान समय में हमारे देश में एक ऐसे शिक्षण व्यवस्था की आवश्यकता है, जो बच्चों को सिर्फ धन अर्जित करने के तरीके न बताए बल्कि ऐसी शिक्षा मिले जिससे समस्त बच्चे एक संपूर्ण इंसान बनें जो समता भाव, प्रेम, त्याग, विश्व बंधुत्व की भावना, जैसे नैतिक गुणों से अभिभूत हो क्योंकि इसके अभाव में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, मैत्री, विश्व शांति आदि की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए आज वर्तमान समय मे समस्त स्कूल कॉलेज में नैतिक शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप में शामिल करने की अत्यधिक जरूरत है, जिससे छात्रों में चरित्र विकसित होगा। उच्च आदर्श चरित्र निर्माण ही हमारे राष्ट्र की रीढ़ है तथा नैतिक उत्थान ही हमारे देश का भी उत्थान है।

संदर्भ-सूची

1. सक्सेना, लाल प्रसाद, ''आधुनिक बोध और परंपरा'' (निर्मल प्रकाशन, जयपुर, जून-1972
2. मेध, डॉ0 रमेशकुंतल, ''आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण''(अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-1969
3. आहुजा, राम, ''भारतीय समाज''(रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं दिल्ली, 2005
4. वही

डॉ० भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचार और उनकी प्रासंगिकता

डॉ० पीयूष भादविया

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सार

इस शोध आलेख में डॉ.भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचारों एवं उनकी प्रासंगिकता पर चर्चा की गयी है। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी उच्च शिक्षा अर्थशास्त्र में की थी। उन्होने कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमेरिका एवंलन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स, ब्रिटेन से पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की। उनका मानना था कि सामाजिक समानता के बिना आर्थिक उन्नति संभव नहीं है। अपने अध्ययन के दौरान उनकी थिसिस में भारत की आर्थिक समस्याओं और समाधान का विस्तृत उल्लेख है। उन्होंने भारत की आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म आकलन किया था और उसकी उत्तरोत्तर प्रगति पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होने कृषि, बीमा कम्पनियों एवं बैंको के राष्ट्रीकरण की बात कही। वे स्वर्ण मुद्रा के साथ स्वर्ण प्रतिमान के समर्थक थे। उन्होनेश्रमिकों के उत्थान के लिए कई कार्य किये और वे श्रम के विभाजन में विश्वास रखते थे, न कि श्रमिकों के विभाजन में। उन्होने सरकार एवं सरकारी अधिकारियों के प्रति विश्वसनीयता, विवेकशीलता एवं मितव्ययिता के मूलभूत मूल्यों को प्रस्तुत किया। उनके आर्थिक विचार स्वतंत्रता के पश्यात् कई क्षेत्रों में अपनाये गये और उससे भारत की प्रगति हुई।

संकेताक्षर : *समानता, थीसिस, उत्तरोत्तर, स्वर्ण मुद्रा, राष्ट्रीयकरण।*

डॉ. भीमराव अम्बेड़कर ने 1912 ई. में बम्बई के प्रख्यात एलफिंस्टन कॉलेज से अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र में बी.ए.की डिग्री प्राप्त की। बडौदा के महाराजा द्वारा उच्च शिक्षा के अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति दिए जाने के बाद अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय मेंप्रवेश लिया।

अर्थशास्त्र डॉ. अम्बेड़कर का सर्वाधिक प्रिय विषय था। कोलंबिया विश्वविद्यालय में अध्ययन करते समय उनके पास कुल 29 विषय ऐसे थे, जिनका संबंध अर्थशास्त्र से था। अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में अपनी थीसिस ''एशियन्ट इण्डिन कॉमर्स'' लिखकर 1915 ई.एम.ए. की पहली डिग्री प्राप्त की। 1916 ई. में उन्होंने ''भारत के राष्ट्रीय लाभांश का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' विषय पर थीसिस लिखकर दूसरी एम.ए. की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद उन्होने वहाँ से ''इवोल्युशन ऑफ पब्लिक फाईनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया'' विषय में पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की, जिसमें उनके शोध निर्देशक प्रख्यात अर्थशास्त्री आर्थर सेलिगमेन थे।

इसके बाद डॉ. अम्बेड़कर इंग्लैण्ड चले गए, जहाँ 1921 ई. में लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में एम.एससी. की डिग्री प्राप्त की। उनकी थीसिस का विषय ''प्रोविंशियल डिसेंट्रलाइजेशन ऑफ इंपेरियल फाईनेन्स इन ब्रिटिश इंडिया'' था। 1922 ई. में जर्मनी के बान विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। डॉ. अम्बेड़कर ने 1923 ई. में लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स से अर्थशास्त्र में डॉक्टर ऑफ साइन्स की डिग्री प्राप्त की। डॉक्टरेट की इस डिग्री का विषय ''प्रॉब्लम ऑफ रूपीज : इट्स ऑरिजन एण्ड सोल्युशन'' था।

1925 ई. में ब्रिटिश सरकार ने भारत की मुद्रा प्रणाली का अध्ययन करने के लिए ''रॉयल कमीशन आन इण्डियन करेंसी एण्ड फाईनेन्स''का गठन किया था। उस आयोग की बैठक में हिस्सा लेने के लिए जिन 40 विद्वानों को आमंत्रित किया गया था, उनमें

डॉ. अम्बेड़कर भी थे। वे जब आयोग के समक्ष उपस्थित हुए तो वहाँ मौजूद प्रत्येक सदस्य के हाथों में उनकी लिखी पुस्तक ''इवोल्युशन ऑफ पब्लिक फाईनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया'' की प्रतियाँ थी। उस आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1926 ई. में प्रकाशित की थी, जिसमें डॉ. अम्बेडकर की अनुशंसा के आधार पर कुछ वर्षो बाद 'भारतीय रिजर्व बैंक' की स्थापना हुई। इस बैंक की अभिकल्पना, नियमावली, कार्यशैली एवं रूपरेखा डॉ. अम्बेड़कर की शोध पुस्तक ''प्रॉब्लम ऑफ रूपीज'' पर आधारित थी।

भारत में लौटने के बाद मात्र 27 वर्ष की उम्र में उन्हें बंबई केएलफिंस्टन कॉलेजमें राजनीतिक अर्थशात्र के प्रोफेसर की नौकरी मिल गई।

डॉ. अम्बेड़कर बुद्ध के अनुयायी थे। बुद्ध का कहना था कि ''भूख सबसे बड़ा रोग है और इस रोग का इलाज है, रोटी।''रोटी' अर्थात् 'अर्थ' सबको समान रूप से मिलनी चाहिए। वे ऐसे अर्थशास्त्र का प्रतिपादन करते थे, जिसमें सबको जीवन की आधारभूत सुविधा उपलब्ध हो और इसके लिए उन्होंने प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली और राज्य समाजवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इसमें सदियों से उपेक्षित वर्ग के सम्मान और उत्थान की प्राथमिकता दी गई है।

डॉ. अम्बेडकर ने राज्य की उपादेयता को स्वीकार किया। वह चाहते थे कि राज्य के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन तथा सुधार लाए जाए। विशेषकर अशान्ति और विद्रोह के समय इसका उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। राज्य का सबसे बड़ा कार्य समाज की आन्तरिक अव्यवस्था और बाहरी अतिक्रमण से रक्षा करना है। वह राज्य व्यवस्था को मानव हित की सेवा के दृष्टिकोण से देखते थे।

डॉ. अम्बेड़कर की यह मान्यता थी कि राज्य का प्रमुख कार्य व्यक्ति एवं समाज की स्थिति को सुधारना हैं। राज्य व्यवस्था, उसकी अनिवार्यता एवं सामर्थ्य में अटूट विश्वास प्रकट करते हुए, डॉ. अम्बेड़कर ने कहा कि उसके मुख्य कार्य इस प्रकार होने चाहिए -

1. प्रत्येक व्यक्ति के जीवित रहने स्वातंत्रय तथा आनन्द के अधिकारों को बनाए रखना राज्य का काम हैं।
2. विचार एवं उसको व्यक्त करनें तथा धर्म की स्वतंत्रता बनाये रखना राज्य का काम है।
3. सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक असमानताओं को दूर करना और शोषित वर्गों को सुविधाएँ देना राज्य का काम है।
4. प्रत्येक नागरिक के लिए यह सम्भव करना कि वह भूख-प्यास तथा भय से मुक्त रहे, राज्य का काम है।

उनका राज्य व्यवस्था का सिद्धान्त एकदम राजनैतिक न होकर, सामाजिक और नैतिक भी है। वह मार्क्स की भाँति यह विश्वास नहीं करते थे कि विकास के अन्तिम चरण में राज्य समाप्त हो जायेगा। वह यह मानते थे कि सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से राज्य सदैव आवश्यक हैं, और उसका किसी भी अवस्था में लुप्त होना असम्भव है। लेकिन डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, राज्य की स्थिति केवल उसी समय तक सार्थक हैं, जब तक वह व्यक्ति और समाज की सेवा एवं सुरक्षा का साधन बना रहता है। उनके अनुसार राज्य, व्यक्ति और समाज साथ-साथ सम्मानपूर्वक रह सकते हैं, और शोषित एवं कमजोर वर्गों के अधिकारों के संरक्षण का मुख्य दायित्व सभी के सहयोग से निभाया जा सकता है।

डॉ. अम्बेड़कर ने एक अच्छी सरकार को स्वशासन से जोड़ा और कहा कि कोई भी अच्छी एवं स्वदेशी सरकार प्रतिनिधि सरकार होती है। यह प्रतिनिधि सरकार किसी राजनीतिक दल द्वारा बनाई जाती है, जिसे जनता चुनती एवं पसन्द करती हैं। सत्ता में आसीन राजनीतिक दल को निरंकुश तथा तानाशाह बनने का प्रयास नहीं करना चाहिए और न ही ऐसी विधियाँ प्रयोग में लानी चाहिए, जो जनतांत्रिक और संसदात्मक न हो।उनके अनुसार जनता से राज्य का निर्माण होता है। राज्य का दायित्व है कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो, जिसमें सभी लोग, अद्युत, कमजोर अथवा अन्य कोई, सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। राज्य एक अनिवार्य मानव संस्था है, जिसका लुप्त होना असम्भव सी बात है।

उनके राजनीतिक चिंतन में कानून एवं संविधानवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। कानून स्वतंत्रता एवं समानता का संरक्षक हैं। उनकी मान्यता थी कि नये संविधान के अन्तर्गत सभी नागरिकों के अधिकार समान है, और कोई भी कानून, नियम या रीति-रिवाज अथवा व्यवस्था ऐसी नहीं रहेगी जो भेद-भाव करती है। व्यक्ति के प्राकृतिक एवं अन्य अधिकारों का संबंध संविधानवाद से है।

डॉ. अम्बेड़कर के अनुसार राज्य और धर्म में घनिष्ठ संबंध हैं। क्योंकि धर्म सम्पूर्ण समाज का धारण करता है, जिससे राज्य के काम-काम का संचालन सुचारू रूप में होता है। इसलिए राज्य का कर्त्तव्य हैं कि वह धर्म के प्रति न तो कठोर बने ओर न ही

धर्म-विशेष का पक्षधर। उनका मत था कि राज्य को सभी नागरिकों को विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता देनी चाहिए। इस प्रकार राज्य समाजवाद और सामाजिक समरसता के आधार पर ही वे भारत की आर्थिक उन्नति का विचार रखते थे।

प्रादेशिक वित्त के सम्बन्ध में उनके विचार

ब्रिटिश भारत में प्रादेशिक वित्त का विकास, डॉ. अम्बेडकर द्वारा उनकी पीएच.डी. की उपाधि के लिए कोलंबिया विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया गया शोध प्रबंध है, जो 1917 ई. में पूर्ण हुआ तथा पुस्तक के रूप में 1925 ई. में प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक में 1833-1921 ई. तक की अवधि के दौरान भारत की केन्द्र सरकार तथा तत्कालीन प्रांतो के बीच आर्थिक संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र की समस्या सर्वपरिचित है। बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को निभाने के लिए सरकार को करो के जरिए अधिक से अधिक राजस्व जुटाना आवश्यक हो जाता है, परंतु भारत जैसे गरीब देश में करो में वृद्धि द्वारा संसाधन जुटाने पर स्पष्ट रूप से आर्थिक सीमाएँ है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि शासन के विभिन्न स्तरों अर्थात् केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय शासकीय संस्थानों में यह जिम्मेदारी समुचित रूप से बाँट दी जाए।

आरंभ से ही भारत की राजस्व व्यवस्था को घाटे का सामना करना पड़ा, जिसका परिणाम है बजट घाटा। बजट घाटे को पूरा करना आवश्यक है। परंतु इसके लिए किसी भी प्रकार से राजस्व में वृद्धि लाने का प्रयास करना ही एकमात्र उपाय नहीं है। देश की स्थिरता तथा उत्पादन क्षमता को ध्यान में रखकर ही राजस्व बढ़ाने के लिए योजनाओं पर विचार किया जाना आवश्यक है। डॉ. अम्बेडकर लिखते है ''बुद्धिमानी इसी में है कि जिन लोगों को देशके वित्तीय प्रबंधका दायित्व सौंपा गयाहै, वे पैसा एकत्रित करने और खर्च करने के निकटतम लक्ष्य से आगे भी देखें, क्योंकि वित्त जुटाने में 'कितना' के साथ-साथ 'कैसे' का भी महत्व है, यह भूला नहीं जा सकता। 'सामाजिक संपत्ति' ही किसी राष्ट्र का पैतश्क धन होती है, तथा इसे क्षति पहुँचाना राष्ट्र को नष्ट करने के समान है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार भारत की वित्त व्यवस्था में यही एक दोष था।''

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, ब्रिटिश भारत में प्रादेशिक वित्त (1921 ई. तक) का विकास तीन अलग-अलग चरणों में हुआ तथा प्रत्येक चरण में केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रान्तों को सहायता देने कीअपनी एक विशिष्ट व्यवस्था थी। इन तीन चरणों को डॉ. अम्बेडकर ने नाम दिए हैं -'निर्धारित बजट', 'निर्धारित राजस्व आधारित बजट' तथा 'राजस्व बँटवारे पर आधारित बजट'।

स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुसार वित्त आयोग की नियुक्ति हर पाँच वर्षों में की जाती है तथा यह आयोग केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारो के बीच संसाधनों के बँटवारे के विषय में अपनी सिफारिशे प्रस्तुत करता है। यह डॉ. अम्बेडकर के ही विचारों की देन है।

कृषि क्षेत्र में उनके विचार

डॉ. अम्बेड़कर कृषि क्षेत्र में छोटी जोतो एवं विखण्डन को देखते हुए, सामुहिक कृषि तथा कृषि क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी के समाधान हेतु बड़े उद्योगों और औद्योगीकरण के समर्थक थे।

डॉ. अम्बेडकर कृषि का राष्ट्रीयकरण चाहते थे। उनका सुझाव था कि कृषि को उद्योग का दर्जा प्राप्त हों। राज्य कृषि योग्य भूमि को एक निश्चित मानदण्ड़ों के अनुसार फार्मो में विभाजित करेगा। ये फार्म गाँवों के विभिन्न परिवारों से मिलकर बने समूहो को एक काश्तकार के रूप में कुछ शर्तो पर दिए जाएगें।

उनका लेख ''स्मॉल हाल्डिंग इन इंडिया एण्ड देयर रेमेडिज'' जो कि 1918 ई. में जर्नल ऑफ इंडियन इकोनोमिक्स सोसायटी में छपा था, में डॉ. अम्बेड़कर ने कृषि के पिछड़ेपन का आर्थिक विश्लेषण प्रस्तुत किया और इसके समाधान हेतु ख़्रषि को उद्योगके रूप में विकसित करने का प्रस्ताव रखा।

अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से अम्बेड़कर ने लघु ख़्रषि क्षेत्र के मुद्दे को सुलझाया। खेत छोटे या बड़े, उत्पादन की दृष्टि से एक आर्थिक इकाई होते हैं। लेकिन यह खेत मात्र अकेले रूप में नहीं, बल्कि भूमि, पूँजी और श्रम को मिलकर इकाई बनते हैं। केवल भूमि के आकार, जैसा कि आमतौर पर देखा जाता हैं, आर्थिक या गैर आर्थिक भूमि का हिस्सा नहीं कहा जा सकता है। इसके लिए भूमि पर उत्पादन के अन्य कारकों का अनुपात अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भूमि और श्रम के संबंध में पूंजी की कमी के कारण आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या ही मूलत: ख़्रषि पिछड़ेपन की समस्या का

मूल कारण था। इसलिए इसका समाधान डॉ. अम्बेडकर ने इस प्रकार बताया हैं-भूमि और श्रम उत्पादकता में सुधार करना, ख़षि आय को बढ़ाना और उत्पादन पर निवेश की बचत हेतु घरेलु क्षमता का विस्तार करना।उनके अनुसार भूमि पर ख़षि श्रमिक अधिक हैं, तो उन्हें उद्योगों को स्थानांतरित किया जा सकता हैं।

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि भारत में छोटी जोतों की समस्या, दरअसल उसकी सामाजिक अर्थव्यवस्था की समस्या है। अगर हम इस समस्या का स्थायी हल चाहते हैं, तो हमें मूल बीमारी का इलाज खोजना होगा। हमेंऐसा करने से पहलेयह जानना होगा कि हमारे देश की सामाजिक अर्थव्यवस्था खराब क्यों हैं- किसी व्यक्ति की तरह, किसी समाज की आय दो चीजों पर निर्भर करती है- 1. किए गए प्रयास 2. संपत्ति के उपयोग।

उनके अनुसार किसी व्यक्ति या समाज की कुल आय या तो उसके द्वारा वर्तमान में किए जा रहे श्रम से आती है या उस उत्पादक संपत्ति से जो उसके पास पहले से हैं। इस तरह यह स्पष्ट हैं कि हमारी ख़षि संबंधी समस्याओं की जड़ हमारी खराब सामाजिक अर्थव्यवस्था में हैं। भारत में छोटी जोतों की समस्या का हल, जोतों को बड़ा करना नहीं बल्कि पूंजी और पूंजीगत माल में वृद्धि करना हैं। पूंजी का निर्माण बचत से होता है और राजनीति अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि अतिशेष उत्पादन के बिना बचत संभव नहीं है।

वे प्रासंगिक आँकड़ों का उपयोग कर यह सिद्ध करते हैं कि पूंजी और पूंजीगत माल की कमी ही निम्न उत्पादकता का कारण है। इसके बाद वे सभी उपलब्ध विकल्पों पर विचार करते हैं। इनमें चकबंदी, वर्तमान जोतों का संरक्षण, जोतों को और छोटा होने से रोका जाना शामिल हैं।अंत में वे इस समस्या के लिए अपना इलाज प्रस्तावित करते हुए कहते हैं- ''भारत की ख़षि संबंधी समस्याओं को हल करने का सबसे अच्छा उपाय है- औद्योगिकरण। वे कहते थे कि इससे अकार्यशील श्रम, अतिशेष उत्पादन का अभाव व ख़षि भूमि पर दबाव की समस्याएँ एक झटके में समाप्त हो जाएगी और छोटे जोतों के और छोटे होते जाने की प्रक्रिया थम जाएगी।''

बीमा से सम्बन्धित विचार

बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। इससे न केवल लोगों के आर्थिक हितों की सुरक्षा होती है, बल्कि राज्य की अर्थव्यवस्था भी मजबूत होती है। बीमा पर राज्य का एकाधिकार होना चाहिए। राज्य प्रत्येक व्यस्क नागरिक को जीवन बीमा पॉलिसी लेने पर मजबूर करे। यह बीमा व्यक्ति की आय के अनुकूल हो, जिसे विधानसभाएं निर्धारित करें।

राष्ट्रीयकृत बीमा कम्पनी एक प्राइवेट बीमा कम्पनी की अपेक्षा व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अधिक लेती है। राज्य बीमा कम्पनी कैसी भी परिस्थिति में धन लौटाने का पूरा दायित्व निभाती है, इसमें व्यक्ति को किसी प्रकार का कोई भय नहीं रहता है।बीमा धन राज्य के पास सुरक्षित रहता है। राज्य बीमा कम्पनियों के द्वारा राज्य के पास भी एक निश्चित पूँजी आ जाती है, जिसे वह अपने औद्योगिक कार्यों में लगा सकते है। डॉ. अम्बेडकर देश के प्रथम अर्थशास्त्री थे, जिन्होने भारत में बीमा के राष्ट्रीयकरण का सुझाव दिया था। इसी आधार पर बीमा पॉलिसी का सरकारीकरण किया गया है।

बैंकों से सम्बन्धित विचार

डॉ. अम्बेडकर भारतीय बैंको का राष्ट्रीयकरण चाहते थे। उनके इस विचार को 19 जुलाई, 1969 को भारत सरकार ने अपनाया और 14 बडे बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इसी कडी में 16 अप्रेल, 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया।

भारत की मौद्रिक नीति सम्बन्धित विचार

''प्रॉब्लम ऑफ रूपीज'' एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। इस पुस्तक में डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय मुद्रा का विनिमय के साधन के रूप में विकास तथा सोने, चांदी जैसी मूल्यवान धातुओं की समतुल्यता का विशद वर्णन किया है। उन्होनें उस समय के एक बहुचर्चित प्रश्न पर अपना ध्यान केन्द्रित किया हैं-'भारत के योग्य मुद्रा प्रणाली कौनसी है?'

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि स्थिर मौद्रिक स्थितियाँ लाने के लिए सबके लिए एक मूल्यमान बनाए जाने की आवश्यकता थी। विश्व के सभी प्रमुख देशों ने स्वर्णमान अपना लिया था। अतएव यह उचित होगा कि भारत भी रजतमान त्यागकर स्वर्णमान अपना ले। टेंपल योजना (1872 ई.), स्मिथ योजना (1876 ई.), केन्द्र सरकार की योजना (1898 ई.) आदि विविध योजनाओं

का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए, वे कहते है ''वास्तव में स्वर्ण विनिमय मान की स्थापना करने का सरकार का हेतु न था, परंतु स्वर्णमान का सही स्वरूप कैसा होना चाहिए इससे वे तथाकथित विद्वान अनभिज्ञ थे, अतएव उनके हाथों अनायास स्वर्णमान के स्थान पर स्वर्ण विनिमय मान स्थापित किया गया।''

डॉ. अम्बेडकर का अनुरोध था कि एक ऐसी व्यवस्था स्थापित की जाए, जो मुद्रा निर्माण पर पूरी तरह अंकुश रख सके। रिजर्व बैंक की स्थापना के लिए जिस 'हिल्टन यंग कमीशन' ने सिफारिश की, उसके समक्ष अपने बयान में 1925 ई. में भी डॉ. अम्बेडकर ने यही कहा।डॉ. अम्बेड़कर का कहना था कि भारतीय रूपया का आधार सोना होना चाहिए, चाँदी नहीं। अम्बेड़कर स्वर्ण मुद्रा के साथ स्वर्ण प्रतिमान के हामी थे, बशर्ते मुद्रा प्रबंधन मजबूत हो। उनका कहना था कि ''उपभोग्य सामग्री के संदर्भ में रुपये की कीमत स्थिर रहनी चाहिए। उनका निष्कर्ष यह था कि स्वचालिक व संतुलित मौद्रिक प्रबंधन के जरिए कीमतों को स्थिर रखा जाए। यह वर्तमान में बहुत प्रासंगिक है, जब बजट घाटा बढ़ता है और उसका मुद्रीकरण होता है। ऐसा लगता है कि हमें एक ऐसे स्वचलित तंत्र की आवश्यकता है, जो चलनिधि के निर्माण पर प्रभावकारी ढंग से नियत्रंण लगा सके।''

उद्योगों से सम्बन्धित विचार

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि मूल एवं बड़े उद्योग जैसे इंजीनियरिंग, इस्पात, खनन, संचार, परिवहन और अन्य उपकरण राज्य के अधीन होगे जिनका संचालन राज्य द्वारा होगा। जो मूल उद्योग नहीं है, किन्तु बुनियादी उद्योग है, उस पर राज्य का अधिकार होगा और वे राज्य द्वारा स्थापित नियम द्वारा चलाए जाऐगें।जिन उद्योगों में बहुत बड़ी पूंजी की जरूरत हो, वहाँ सरकार को पूंजी निवेश करना चाहिए, अन्यथा उद्योगों एवं व्यवसाय करना निजी उद्यमियों का काम है, इसलिए सरकार को उसे बढ़ावा देना चाहिए।

भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् 1948 ई. की प्रथम औद्योगिक नीति में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के उद्योगों को महत्व देते हुए, मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाने पर बल दिया गया। उद्योगों को चार भागों में विभाजित किया गया। 1 पूर्णत: सरकारी क्षेत्र 2 अधिकांश सरकारी क्षेत्र 3 सरकार द्वारा नियमित क्षेत्र 4 पूर्णत: निजी क्षेत्र। लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी राज्य सरकारों को सौंपी गई। सरकारी नियंत्रण के अधीन 18 उद्योगों को रखा गया। इसी क्रम में 1956 ई. की दुसरी औद्योगिक नीति में उद्योगों की तीन श्रेणियां निर्धारित की गई। पहला, वे उद्योग जिनके निर्माण का पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य पर होगा, दुसरा, वे उद्योग जिनकी नवीन इकाइयों की स्थापना साधारणत: सरकार करेगी, तीसरा, शेष सभी उद्योग जिनकी स्थापना और विकास सामान्यत: निजी क्षेत्र के अधीन होगी।

श्रम से सम्बन्धित विचार

देश के आर्थिक विकास हेतु श्रमिक का महत्त्व अधिक हैं। वह विशेष रूप से शांति, आवास, कपड़े, शिक्षा, अच्छा स्वास्थ्य, और इनसे बढ़कर इज्जत के साथ कार्य करने के श्रमिक अधिकार हेतु चिंतित थे।राष्ट्र को न केवल श्रमिक के लिए उचित कार्य परिस्थितियों का ध्यान रखना चाहिए बल्कि साथ ही साथ जीवन यापन के लिए उचित परिस्थितियों को सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए।

पूंजी वस्तु हैं, और श्रमिक व्यक्ति। पूंजी केवल होती हैं, श्रमिक जीते हैं अर्थात् पूंजी का यदि कोई उपयोग न किया जाता तो उससे कोई आमदनी नहीं होती, परन्तु उस पर कोई खर्च भी नहीं करना पड़ता। परन्तु श्रमिक, चाहे वह कुछ कमाए या नहीं, उसे जीवित रहने के लिए स्वयं पर खर्च करना पड़ता हैं। यदि वह खर्च उत्पादन से नहीं निकाल पाता, जैसा कि होना चाहिए, तो वह लुटकर जिंदा रहता है।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार राष्ट्र श्रम को अधिक उत्पादक बनाने के लिए राष्ट्र को अपने प्रावधानों में निम्न बिन्दु शामिल करने चाहिए -14 वर्ष की आयु तक मुफ्त या अनुदानिक शिक्षा, चिकित्सा सुविधा, पानी की आपूर्ति एवं विद्युत सहित अन्य सार्वजनिक उपयोग। इसके अतिरिक्त उनके अन्य लक्ष्य थे-मजदूरी का उचित भुगतान,मातृत्व और बीमारी लाभ एवंछुट्टियाँ।

डॉ. अम्बेडकर ने 1936 ई. में श्रमिक वर्ग के कल्याण और प्रगति हेतु ''इंडिपेंडेट् लेबर पार्टी'' की स्थापना करी। उन्होंने असंगठित मजदूरों की समस्या को समझा और उनके हितों के लिए इस नई पार्टी के माध्यम से कार्य प्रारम्भ किये।बेरोजगारों और भूमिहीनों की सहायता के लिए भूमि पुनर्वास और सार्वजनिक कार्य का सुझाव देते हुए, निम्न वायदे किए-साहुकारों के चुंगल से किसानों की सुरक्षा हेतु कानून बनाना, भूमि राजस्व का कड़ा विरोध करना,कर की अधिक न्यायोचित प्रणाली के लिए अभियान

चलाना औरभूमि बंधक बैंकों और ख़्रषि उत्पादक सहकारी और विपणन समितियों का निर्माण करना। 1930 ई.में उनके द्वारा स्थापित साप्ताहिक 'जनता' के संस्करणों को पढ़कर श्रमिक हितों एवं सुरक्षा के संबंध में उनके विचारों को अधिक समझा जा सकता है। वाइसराय की कार्यकारी परिषद् (1942-46 ई.) में श्रम पोर्टफोलियों के रूप में डॉ. अम्बेड़कर ने 7 अगस्त, 1942 को दिल्ली में चतुर्थ राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन को संबोधित किया। कोयला श्रमिकों की परिस्थितियों के बारे में जांच के लिए 1943 ई.में धनबाद गए। अप्रेल, 1944 ई. में अभ्रक श्रमिकों की समस्या को सुलझाने के लिए कोड़रमा की अभ्रक खदानों का भी दौरा किया।

उन्होंने बिना लिंग भेदभाव के सभी को समान कार्यों के लिए समान वेतन की बात कही। उन्होंने श्रमिकों को छुट्टी का वेतन दिए जाने की वकालत की।उनकी सिफारिश पर श्रम कल्याण निधि की स्थापना की गयी थी, कार्य समय 10 घंटे से 8 घंटे किया गया और महिला श्रमिकों को मातृत्व अवकाश देना प्रारम्भ हुआ। अन्य महत्वपूर्ण अधिनियमों को बनवाने में उन्होंने योगदान दिया जैसे-भारतीय ट्रेड़ युनियन अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनिय,श्रमिक मुआवजा अधिनियम,कारखाना अधिनियम,वेतन का भुगतान अधिनियम और न्यूनतम वेतन का सुरक्षा अधिनियम।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार भारत में धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था श्रम के विभाजन के बजाय मजदूर के विभाजन को पाखंडपूर्ण तरीके से करती है। उन्हें अपने बाद के वर्षों में जाति समस्या को हल करने के लिए अपना रास्ता बदलना पड़ा।भारत में जाति प्रथा और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक समस्याओं का आर्थिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने वाले प्रथम अर्थशास्त्री डॉ. अम्बेडकर थे। इस विषय पर उनके ज्वलंत एवं मौलिक विचार दो पुस्तकों में समाविष्ट है। पहली 'जाति का निर्मूलन' (1936 ई. में प्रकाशित) तथा दूसरी 'कांग्रेस ने तथा गांधी ने अस्पश्श्यों के साथ क्या किया' (1944 ई. में प्रकाशितऋ। उनके अनुसार ''सभ्य समाज को श्रम विभाजन की आवश्यकता होती है। परंतु दुनिया के किसी भी अन्य सभ्य समाज में ऐसा नहीं हुआ कि श्रम विभाजन को श्रमिकों के विभाजन से जोड़ दिया गया हो।'' उनके अनुसार जाति प्रथा एक ऐसा श्रेणीबद्ध संगठन है, जिसमें श्रमिकों का वर्गीकरण किया जाता है। किसी भी अन्य देश में श्रम विभाजन को श्रमिकों के ऊँचे या नीचे होने से संबद्ध नहीं किया गया है।

डॉ. अम्बेडकर ने बलपूर्वक कहा कि इस देश की जाति प्रथा, इसके आर्थिक विकास के मार्ग में एक बहुत बड़ी रूकावट बनी हुई है। जाति प्रथा के कारण पूँजी की गतिशीलता में कमी आ जाती है। जाति प्रथा के कारण पूँजी की गतिशीलता पर भी प्रतिबंध लग जाते है, क्योंकि व्यवसाय जाति के अनुरूप तय किये जाते है। कोई भी उद्योगपति अपनी पूँजी को उसी व्यवसाय में लगाता है, जो वंश परम्परा से उसके लिए नियत की गई हो। इसके फलस्वरूप जाति के बंधनों के कारण पूँजी एवं कर्मचारी दोनों की गतिशीलता शिथिल हो जाती हैं, जिसकी वजह से निर्माण प्रक्रिया भी धीमी हो जाती है तथा आर्थिक प्रगति थम जाती हैं। व्यक्ति की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए, उसे अपने जीवन भर का व्यवसाय चुनकर उसे निभा पाने जितनी क्षमता खुद में बनानी है।

धन के व्यय से सम्बन्धित विचार

भारत के संविधान में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति के संबंध में प्रावधान का औचित्य बताते हुए उन्होंने कहा कि सरकार को जनता से संचित धन का इस्तेमाल न केवल नियमों, कानूनों और विनियमों के अनुरूप करना चाहिए, वरन् यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सार्वजनिक प्राधिकारी, धन के व्यय में विश्वसनीयता, बुद्धिमता और मितव्ययिता से काम ले। इस संदर्भ में 'विश्वसनीयता' का अर्थ है, किसी के विश्वास की रक्षा करना या अपने वचन को पूरा करने के प्रति प्रतिबद्ध होना। सार्वजनिक वित्त की आवश्यकता इसलिए होती है ताकि सड़के, कानून व मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और इसके लाभ कुछ लोगों तक सीमित न होकर सभी को प्राप्त हो। चूंकि इस तरह के व्यय का लागत-लाभ विश्लेषण नहीं किया जा सकता, इसलिए खुला बाजार इनकी पूर्ति नहीं कर सकता। सरकारे इन सार्वजनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही होती है। नागरिक सरकार में विश्वास कर कराधान और व्यय संबंधी निर्णय करने का अधिकार सरकार को सौंपते हैं। इसलिए जो सरकारी अधिकारी शासकीय धन को व्यय करने के संबंध में निर्णय लेते हैं, उनमें उतनी बुद्धिमता होनी चाहिए कि वे नागरिकों के इस विश्वास पर खरे उतरे।तीसरी कसौटी है मितव्ययिताजिसका अर्थ केवल यह नहीं है कि कम से कम धन खर्च किया जाए अपितु यह है कि धन का इस्तेमाल इस तरह से किया जाए कि पाई-पाई का लाभप्रद और पूरा उपयोग हो सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह धन गलत हाथों में न जाए।वे सांख्यिकी विश्लेषण पर आधारित व्यावहारिक और तार्किक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के समर्थक थे।

संविधान के संदर्भ में विश्वसनीयता, विवेकशीलता और मितव्ययिता के जिन मूलभूत मूल्यों को डॉ. अम्बेड़कर ने प्रस्तुत किया, वे ही सरकार की आर्थिक नीतियों और धन व्यय करने के निर्णयों का आधार होना चाहिए।वर्तमान या भविष्य में आने वाले संभावित समस्याओं के हल के लिए डॉ. अम्बेड़कर के विचार हमारे नीति-निर्माताओं का पथ प्रदर्शित करते रहेंगे।

जल शक्ति सम्बन्धित विचार :

डॉ. अम्बेडकर ने देश के आर्थिक विकास के लिए बाँध निर्माण, जलमार्ग विकास, अणुशक्ति द्वारा बाढ़ नियंत्रण, जल सम्पदा एवं जल संरक्षण, आंतरिक जल यातायात आदि विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए। इन सभी विचारों को भारत की स्वतंत्रता के बाद अपनाये गये।

निष्कर्ष

डॉ. अम्बेड़कर एड़म स्मिथ और डेविड़ रिकार्डो जैसे अर्थशास्त्रियों की कतार में खड़े नजर आते हैं। उनकी तुलना इटली के विचारक विलफर्ड परेतों से की जाती हैं। वे उन पहले भारतीयों में शामिल थे, जिन्होने अर्थशास्त्र में औपचारिक शिक्षा प्राप्त करी थी। अम्बेड़कर प्रगति और मानव-विकास की आधुनिक अवधारणाओं से सहमत थे। वे गाँधी की तरह पीछे मुड़कर नहीं देखते थे और ना ही अतीत की अर्थव्यवस्था के संबंध में उनकी रूमानी सोच थी। डॉ. अम्बेड़कर जहाँ मनुष्य की उत्पादकता को बढ़ाने और धन के संचय के पक्ष में थे, वही संपत्ति के बारे में उनके विचार सतर्क सकारात्मकता पर आधारित थे। उन्होंने लिखा ''हम कह सकते हैं कि समस्या संपत्ति में नहीं, बल्कि उसके असमान वितरण में है।" अपने पूरे जीवन में वे फ्रांसीसी क्रांति के मूल मंत्रों-स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के पक्षधर रहे।

डॉ. अम्बेड़कर भारत में गरीबी का कारण सामाजिक व्यवस्था को मानते थे, इसलिए वे सामाजिक आर्थिक समता के पक्षधर थे। आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों में सामाजिक न्याय को जुड़वाया था। 1991 ई. के बाद भारत में लागू किए गए आर्थिक सुधार, डॉ. अम्बेड़कर की उदार पूंजीवादी विचार धारा पर आधारित है। वे केन्द्रीय नियोजन की बजाय राज्यों को योजना बनाने का अधिकार देने वाले विकेन्द्रीकृत नियोजन के समर्थक थे। उन्होने आर्थिक अनुदान, सामाजिक मदद एवं बेरोजगारी भत्ता को भारतीय विकास के लिए आवश्यक माना जिसे वर्तमान में भारतीय सरकार ने अपनाया है। वे उन चंद आर्थिक सिद्धान्तकारों में से एक थे, जिनका आर्थिक नीतियों और योजनाओं के प्रति दृष्टिकोण व्यावहारिक और लोकहितकारी था। सामाजिक अर्थव्यवस्था पर उनका जोर, उन्हें आधुनिक आर्थिक चिंतकों में से एक अनूठा स्थान प्रदान करता है।

विश्व विख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने 2007 ई. में उनके बारे में लिखा था ''अम्बेडकर अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मेरे जनक है।'' पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उनके लिए कहा था ''जैसे-जैसे समय बितता जाएगा, डॉ अम्बेडकर की कीर्ति, विश्व के आकाश में अधिकाधिक फैलती चली जाएगी।'' वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था में किये जा रहे बदलाव उनके ही विचारों की अभिव्यक्ति है।

संदर्भ

1. पुरुषोत्तम नागर: *आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, आठवां संस्करण, 2009, पृ. सं. 687-690
2. एम.एल. परिहार: *बाबासाहेब अम्बेडकर, लाइफ एण्ड मिशन*, बुद्धम् पब्लिशर्स, जयपुर, 2017, पृ. सं. 28-340
3. डी.एन.बिस्सा: *लाइफ आइडिया एण्ड थॉट ऑफ बी.आर. अम्बेडकर*, ग्लोबल पब्लिकेशनस्, दिल्ली, 2018, पृ. सं. 23-25
4. नरेन्द्र जाधव: *डॉ. आंबेडकर आर्थिक विचार एवं दर्शन*, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. सं. 43-94
5- www.forwardpress.in, retrieved on 1.11.2020, 11A.M.
6. www.omprakashkashyap.word.comretrieved on 2.11.2020, 1 P.M.
7. www.hindi.mynation.com retrieved on 3.11.2020, 11A.M.

राजनीतिक समाजीकरण का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० रिषपाल मीना

पोस्ट डॉक्टरल फैलो, समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

प्रत्येक शिशु, किसी पीढ़ी, नृजातीय समूह, जाति या सामाजिक वर्ग, भौगोलिक स्थान तथा राष्ट्र में जन्म लेता हैं तथा समाज के सदस्य के रूप में अपना स्थान ग्रहण करता है, परन्तु जन्म के समय शिशु शरीरिक दृष्टि से असहाय और पूर्णत: बड़े लोगों पर निर्भर होता है। प्रारम्भ में माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्य उसकी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं तथा अन्य लोगों से अन्त:क्रियाओं के परिणामस्वरूप ही उसका व्यवहार सीख द्वारा रूपान्तरित होता है। सीखने की वह प्रक्रिया जो नवजात शिशु को एक सामाजिक प्राणी बनाती है, समाजीकरण कहलाती है। जॉनसन के अनुसार, समाजीकरण एक प्रकार का सीखना है जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य करने योग्य बनाता है। सीख की इस प्रक्रिया को, जिसके द्वारा आदर्शात्मक प्रत्याशाओं के प्रचलित प्रतिमानों का आन्तरीकरण किया जाता है, समाजीकरण कहा है। यह सदैव अनिवार्य रूप में सभ्य मूल्यों तथा व्यवहार को सीखने तथा राजनीतिक स्थायित्व को बनाये रखने में ही सहायक नहीं है क्योंकि वैर व हिंसा की स्वृत्तयाँ भी इस प्रक्रिया के द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती हैं।

मुख्य शब्द: समाजीकरण, राजनीतिक, परिवार, मित्र, मंडली, शिक्षण-संस्थान

राजनीतिक समाजीकरण की परिभाषाएँ

राजनीतिक समाजीकरण, वास्तव में, राजनीति एवं राजनीतिक व्यवहार के क्षेत्र में समाजीकरण की प्रक्रिया का परिसीमन है। यह सीख की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति राजनीतिक व्यवस्था के आदर्शों एवं मूल्यों का आन्तरीकरण करता है। थोड़े से भिन्न शब्दों में यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरति होते हैं।

ग्रीनस्टेन के अनुसार राजनीतिक समाजीकरण की परिभाषा दो प्रकार से दी है : सीमित अर्थ में 'राजनीतिक समाजीकरण अनुदेश-अभिकरणों के माध्यम द्वारा, जिन्हें औपचारिक रूप से यह उत्तरदायित्व सौंपा गया है, राजनीतिक सूचना, मूल्यों एवं व्यवहार का विमर्शपूर्वक अन्तर्निवेशन है। व्यापकतर अर्थ में इसमें 'जीवन की प्रत्येक अवस्था में औपचारिक एवं अनौपचारिक तथा नियोजित वं अनियोजित, सभी प्रकार की राजनीतिक सीख सम्मिलित है और इसमें केवल सुस्पष्ट राजनीतिक सीख ही नहीं अपितु राजनीतिक दृष्टि से सम्बद्ध सामाजिक मनोवृत्तयों एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों को प्राप्त करना भी समाहित है। ग्रीनस्टेन के विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक समाजीकरण को प्राधिकारिक राजनीति अभिमुख शिक्षा के रूप में या जीवन अवधि की सभी प्रकार की राजनीतिक सीख, भले ही यह अनुपालन, विचलन अथवा विद्रोह का परिणाम हो, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

सीगल के अनुसार, 'राजनीतिक समाजीकरण से अभिप्राय सीख की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था द्वारा स्वीकृत राजनीतिक आदर्श एवं व्यवहार पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं। लेंगटन ने भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। इनके शब्दों में व्यापकतर अर्थ में, 'राजनीतिक समाजीकरण वह तरीका है जिसके द्वारा समाज राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करता है। यह प्रक्रिया एक तरु तो परम्परागत राजनीतिक आदर्शों एवं संस्थाओं को बनाये रखने में

सहायक है तथा दूसरी ओर यह राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के एक साधन का कार्य भी करती है, विशेष रूप से जब इसके द्वितीयक अभिकरण भूतकालीन मूल्यों से भिन्न मूल्यों का अन्तार्नेवेशन करते हैं। लेंगटन ने राजनीतिक समाजीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करने पर बल दिया है जो समाज के विभिन्न अभिकरणों द्वारा मध्यस्थित होती है तथा जिसके द्वारा व्यक्ति राजनीतिक दृष्टि से सम्बद्ध मनोवृत्तियों, स्ववृत्तियों तथा व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है।

ईस्टन तथा डेविस के अनुसार राजनीतिक समाजीकरण को 'विकास की वह प्रक्रिया कहा है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति राजनीतिक अभिविन्यासों को उपार्जित करता है। इसी प्रकार, डासन तथा प्रिविट ने इसे वह प्रक्रिया बताया है 'जिसके द्वारा एक नागरिक राजनीतिक दृष्टि से परिपक्व होता है।

राजनीतिक समाजीकरण की विभिन्न परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे दो प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। एक प्रक्रिया के रूप में यथा ईस्टन एवं डेनिस तथा डासन एवं प्रिविट तथा एक परिणाम के रूप में यथा ग्रीनस्टेन, लेंगटन आदि। दोनों ही दृष्टिकोण उचित लगते हैं क्योंकि राजनीतिक समाजीकरण शिशु को राजनीतिक दृष्टि से परिपक्व बनाने की एक प्रक्रिया है।

राजनीतिक समाजीकरण का संप्रत्ययीकरण एवं प्रक्रिया

राजनीतिक समाजीकरण से सम्बद्ध अनुसंधान को संगठित, व्यवस्थित, परिनिर्धारित एवं परिभाषित करने के यद्यपि अनेक संप्रत्ययात्मक आधार प्रस्तुत किये गए हैं, परन्तु फिर भी आज तक कोई एक सर्वमान्य प्ररूप विकसित नहीं हो पाया है। वास्तव में ये संप्रत्ययात्मक ढाँचे केवल मात्र वर्गीकरण की योजनाएँ हैं जिनसे राजनीतिक समाजीकरण के अध्ययनों एवं अन्वेषणों को नवीन दिशा मिली है। सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के समर्थकों यथा ईस्टन, ईस्टन तथा हेस ने राजनीतिक समाजीकरण को व्यवस्था के लिए समर्थन प्राप्त करने एवं उसे बनाये रखने का एक माध्यम बताया है। इस दृष्टिकोण में राजनीतिक समाजीकरण के अध्ययन से अभिप्राय राजनीतिक व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर समर्थन सम्बन्धी एवं विघटनकारी प्रभावों की व्याख्या करना है। संरचना-प्रकार्यात्मक उपागम के समर्थक विद्वान यथा पारसन्स, मिचेल, आमण्ड तथा वर्बा आदि राजनीतिक समाजीकरण को व्यवस्थावादी विचारकों के समान ही देखने का प्रयास करते हैं परन्तु समाजीकरण के महत्व की दृष्टि से इनका दृष्टिकोण थोड़ा-सा भिन्न है। ये विचारक राजनीतिक समाजीकरण को व्यवस्था के अस्तित्व को बनाये रखने में महत्वपूर्ण मानने के साथ-साथ इस बात पर भी बल देते हैं कि यह केवल राजनीतिक व्यवस्था में निवेदशन को ही प्रभावित नहीं करता अपितु इन निवेशनों को निर्णयात्मक निर्गतनों में परिवर्तित करने में भी महत्वपूर्ण है।

राजनीतिक समाजीकरण में सीखने वाले वे व्यक्ति हैं जिनमें सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर अन्तर हो सकता है। दूसरा प्रश्न राजनीतिक समाजीकरण की अन्तर्वस्तु से सम्बन्धित है तथा इसमें वैयक्तिक विकास के राजनीति से आबद्ध पहलू यथा मूल आदर्श, मनोवृत्तियाँ व अभिविन्यास आदि तथा विशिष्ट राजनीतिक सीख यथा नागरिक भूमिका का प्रशिक्षण दोनों को सम्मिलित किया जा सकता है। तीसरा प्रश्न राजनीतिक समाजीकरण के अभिकरणों से सम्बन्धित है जो अनेक हैं यथा परिवार, स्कूल, मित्र-मण्डली, राजनीतिक दल, जन-संचार आदि। राजनीतिक समाजीकरण की परिस्थितियों में आयु एवं सीख में संगति को महत्वपूर्ण माना गया है। राजनीतिक समाजीकरण का प्रभाव दोनों प्रकार का है यह राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व बनाये रखने तथा साथ ही इसमें पवितर्न लाने में भी सहायक है।

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया के अध्ययन का कोई सर्वमान्य प्ररूप न होने का कारण समाजांतर्गत विभिन्न समूहों एवं विभिन्न समाजों में इसके बारे में पायी जाने वाली भिन्नता है। इसलिए भी इस प्रक्रिया के बारे में कोई व्यापक दृष्टिकोण विकसित नहीं हो पाया है। विभिन्न देशों के भिन्न धर्मों एवं संजातीय समूहों के बच्चों पर हुए अध्ययनों से हमें यह पता चलता है कि उनमें 3-4 वर्ष की आयु में ही प्रजातीय एवं संजातीय प्राथमिकताएँ विकसित होनी शुरू हो जाती हैं, जिसमें अपने प्रजातीय एवं संजातीय समूह के प्रति लगाव एवं अन्य समूहों के प्रति शत्रुता की भावनाएँ सम्मिलित हैं। 7-8 वर्ष की आयु तक बच्चे अन्य समूहों के लिए प्रयुक्त शब्दों एवं संप्रत्ययों को सीख जाते हैं तथा 12-13 वर्ष की आयु में आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, न्यूजीलैण्ड एवं अमेरिका आदि देशों में राष्ट्रीय एवं प्रजातीय भावनाओं के अतिरिक्त वर्ग-संरचना का कुछ ज्ञान, शक्ति व बल, घरेलू एवं बाहरी मित्रों एवं शत्रुओं की कुछ जानकारी, दलों के अस्तित्व, चुनाव तथा मतदान और सरकार के महत्त्व के बारे में कुछ ज्ञान तथा राजनीतिक दल के बारे में कुछ प्रतिबद्धता का उपार्जन प्रारम्भ हो जाता है। किशोरावस्था में राजनीतिक सूझ-बूझ में प्रमुख रूप से प्रगति होती है। सरकार

की सरंचना व कार्यों, विधि, राजनीतिक दलों, समुदाय की आवश्यकताओं, व्यक्तिगत स्वायत्तता एवं जनकल्याण से सम्बन्ध तथा राजनीतिक निर्णय लेने के आधारों के बारे में जागरूकता आने लगती है।

राजनीतिक समाजीकरण के अभिकरण व अध्ययन के उद्देश्य

1. **परिवार**-राजनीति में समाजीकरण के अभिकरणों में सबसे अग्रणी परिवार है। बच्चे की सीख परिवार से ही शुरू होती है तथा परिवार की स्थिति, पर्यावरण एवं माता-पिता व अन्य सदस्यों के राजनीतिक दृष्टिकोण का बच्चे पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। कुछ विद्वान इसे रूढ़िवादिता कहते हैं, क्योंकि राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करने में परिवार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बच्चे को सत्ता-सम्बन्धों का प्रथम अनुभव परिवार में ही होता है। सामान्यत: ऐसा देखा गया है कि अगर माता-पिता स्वयं राजनीति में सक्रिय हैं, उनके विचारों में समरूपता है तथा वे प्रमुख राजनीतिक विषयों पर विचार-विमर्श करते हैं।
2. **शिक्षा संस्थाएँ**-जैसे-जैसे बच्चे बड़े होने लगते हैं तथा परिवार से बाहर आते हैं तभी उन्हें अन्य समूहों एवं संस्थाओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से स्कूलों को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि ये राजनीतिक सीख का औपचारिक पर्यावरण प्रदान करते हैं। स्कूलों में बच्चे विचार-विमर्श एवं नियोजित रूप से शिक्षण द्वारा राजनीतिक विश्वासों एवं मूल्यों का उपार्जन कर सकते हैं।

   शिक्षा संस्थाओं में केवल स्कूल ही नहीं अपितु महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय भी राजनीतिक समाजीकरण में सहायक हैं। सामान्यत: स्कूल, परिवार में सीखे गए व्यवहार, मूल्यों व मनोवृत्तियों को ही समर्थन प्रदान करते हैं परन्तु ऐसा अनिवार्य नहीं है। महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की नवीन राजनीतिक विचारों एवं अभिविन्यासों के सश्जन में अनेक देशों में भूमिका रही है।
3. **मित्र-मण्डली**-परिवार एवं शिक्षा संस्थाओं के अतिरिक्त मित्र-मण्डली का भी राजनीतिक समाजीकरण में विशेष योगदान रहा है। बचपन के खेल के साथी, मित्रों के गुट, लघु कार्य-समूह, भाई-बहन, विवाहित युगल आदि मित्र-मण्डली के उदाहरण हैं। इनमें भी परिवार की तरह प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता पाई जाती है, फिर भी इनकी प्रवृत्ति परिवार से भिन्न है। एक आयु समूह के सदस्य होने के नाते, सदस्यों में समानता अधिक होती है और सहज संचार व अन्य अन्त:प्रक्रियाओं के कारण इनमें एक-दूसरे को प्रभावित करने की क्षमता भी अधिक होती है। किशोरावस्था में परिवार की अपेक्षा स्कूल एवं मित्र-मण्डली को अधिक प्रभावशाली अभिकरण माना गया है।
4. **द्वितीयक समूह एवं संस्थाएँ**-इनमें राजनीतिक दल, चुनाव, श्रमिक संघ, व्यावसायिक संघ, सरकार, संदर्भ-समूह, जन-संचार आदि उल्लेखनीय हैं। राजनीतिक दल राजनीतिक समाजीकरण के आशय से ही निर्मित एक महत्त्वपूर्ण द्वितीयक समूह है जो राजनीतिक मूल्यों के प्रसार, राजनीतिक क्रिया के संग्रहण तथा राजनीतिक भर्ती में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जन-संचार तथा जन-सम्पर्क के माध्यम यथा रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ आदि राजनीतिक सूचना के प्रमुख स्त्रोत हैं, परन्तु इनका प्रभाव सामाजिक परिवेश पर निर्भर करता है। राजनीतिक समाजीकरण सीख की एक ऐसी प्रक्रिया है जो राजनीतिक ज्ञान, निपुणता, विश्वासों, मूल्यों, मनोवृत्तियों एवं स्ववृत्तियों को सीखने में सहायता देती है तथा इस प्रकार यह सीखने वाले के व्यवहार को किसी विशेष दिशा में परिवर्तित करती है।

निष्कर्ष

अधिकांश विद्वान राजनीतिक समाजीकरण को परिवर्तन की एक प्रक्रिया मानते हैं, परन्तु अनेक विकासशील देशों, राजतन्त्रों एवं सर्वाधिकारी व्यवस्थाओं में यह प्रचलित मूल्यों एवं प्रतिमानों के आन्तरीकरण की प्रक्रिया मात्र है जिसका उद्देश्य परिवर्तन की अपेक्षा स्थिरता लाना है। फिर भी, राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता में योगदान के लिए, स्थापित मूल्यों का न तो क्रमबद्ध रूप से सुलझा होना जरूरी है और न सचेतन रूप से उन्हें धारित करना ही। राजनीतिक समाजीकरण निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. जॉनसन, हेरी एम., सोशियोलॉजी : ए सिस्टेमैटिक इन्ट्रोडक्शन, बम्बई : एलाइड पब्लिशर्स प्रा. लि., 1970.
2. कैसल्स, एफ.सी., पॉलिटिकल एण्ड सोशल इन्साइट, लंदन : रोटलेज एण्ड कीगन पॉल, 1971.
3. स्टेसी बी., पॉलिटिकल सोशलाइजेशन इन वैस्टर्न सोसयाटी, न्यू देहली : अर्नोल्ड-हीनमैन, 1978.
4. मैसियालस, बयीरोन, जी., एजूकेशन एण्ड दि पॉलिटिकल सिस्टम, केलिफोर्निया : एडीसन-वैस्ले पब्लिशिंग कम्पनी, 1969.
5. ग्रीनस्टेन, एफ.आई., ''पॉलिटिकल सोशलाइजेशन'' इन डेविड एल. सिल्सव (संपादित), इंटरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइंसेज, 1968.
6. सीगल, आर.एस., ''ऐक्विजीशन अबाउट दि लर्निंग ऑफ पॉलिटिकल वैल्यूज'' इन ऐनल्स ऑफ दि अमेरिकन एकैडमी ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल साइंस, 1965.
7. लेंगटन, कैनेथ पी., पॉलिटिकल सोशलाइजेशन, न्यूयॉर्क : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969.
8. ईस्टन, डेविड एण्ड जे. डेनिस, चिल्ड्रन इन दि पॉलिटिकल सिस्टम, न्यूयॉर्क: मैकग्रा हिल, 1969.
9. डासन, आर.ई. एण्ड के. प्रिविट, पॉलिटिकल सोशलाइजेशन, बोस्टन : लिटिल ब्राउन, 1969.

राही मासूम रज़ा की चिन्तन भूमि में क्रांतिकथा-1857

अनुकृति तम्बोली

शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

1857 की क्रांति को लेकर साहित्य में कई तरह की रचनाएँ लिखी गई। जिनमें कविता, नाटक, निबंधा, कहानी शामिल हैं, परन्तु इस संग्राम पर कोई कहाकाव्य नहीं लिखा गया। इसकी कमी राही मासूम रज़ा ने पूरी की। उन्होंने 'क्रांति कथा: 1857' लिख कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। 'क्रांतिकथा: 1857' मूलत: उर्दू में लिखा गया था। 1957 में इस महाकाव्य का अनुवाद हिन्दी भाषा में वाणी प्रकाशन द्वारा किया गया। राही मासूम रज़ा द्वारा लिखित इस महाकाव्य में कई भ्रांतियों को दूर किया गया । चूंकि 1857 की क्रांति को लेकर इतिहासकारों में कई तरह के मतभेद रहे है, परन्तु राही मासूम रज़ा का दृष्टिकोण इस दिशा में सहज हैं। वह कहते है 'इस बात का वाज़ा करने के लिए हिन्दुस्तानी तवारीख ने मुझे 1857 से कोई बेहतर मिसाल नहीं दी इसलिए मैंने 1857 का इन्तखाब किया लेकिन 1857 की इस नज़र का मौजूं इंसान है। जो कभी नहीं हारता। इंसान के न हारने का यकीन मुझे इंसान की तवील तवारीख ने दिलाया हैं।'[1] अर्थात वह इस क्रांति का विषय मानव को मानते है। मानव की अदम्य जिजीविज़ा को मानते हैं।

'क्रांतिकथा 1857' एक काव्याात्मक प्रस्तुति हैं। जिसमें रागात्मकता के साथ-साथ भावों का संचयत भी अदभूत हैं। राही मासूम रज़ा के लेखन में एक विद्रोह हमेशा से देखने को मिलता हैं। वह विद्रोह समाज के ठेकेदारो के प्रति भी हो सकता हैं और राजनीति के प्रति भी। प्रस्तुत क्रांतिकथा इसी विद्रोह का परिणाम हैं। राही हमेशा गंगा-जमनी संस्कृति के पक्षधार रहे हैं। वे कहते हैं, 'मैंने यह नज्म चंद किताबों की मदद से अपने कमरे में बैठकर नहीं लिखी हैं। मैंने इस लड़ाई में शिरकते की हैं मैंने जख़्म लगाये हैं। मैं दरख्त पर लटकाया गया हूँ, मुझे मुर्दा समझकर गिद्धों ने नोचा हैं। मैंने उस बेबसी को महसूस किया है, जब आदमी गिद्धों से और गीदड़ो से बचने के लिए अपना जिस्म नहीं हिला सकता और जब आँखो से एक बेपनाह खौ बेपनाह बेवसी झलकने लगती हैं।'[2] किसी भी कवि की पीड़ा का एहसास इन्हीं पंक्तियों से लगाया जा सकता है कि वह स्वयं उस युग की पीड़ा का अनुभव करके आया हैं। उसकी संवेदना युगों की यात्र करती हैं। तभी तो वह उस अतीत को जीवंत कर देता हैं। उसका दर्द, दु:ख, सुख, हँसी, क्रोधा, क्षोभ, क्षमा, सब जी उठते हैं। राही मासूम रज़ा ने भी उस पीड़ा की कलात्मक अभियक्ति की हैं। उन्होंने इस महाकाव्य को अलग-अलग उपविषयों में विभक्त किया हैं। अंत में 'गोमती' नाम से लघु नाटिका इस महाकाव्य में भी सम्मिलित की गई हैं।

क्रांतिकथा का आरम्भ कुछ यूं हुआ हैं
'हर तरफ अंधेरा है रोशनी नहीं मिलती
दूर-दूर ढूँढे से जिन्दगी नहीं मिलती।'[3]

एक अनंत उदासी छाई हैं। एक मौन शायद किसी तूान के पहले की चेतावनी। राही मासूम रज़ा भारत विभाजन का कारण औपनिवेशिक ताकतों को मानते हैं। उन्हें अपने हिन्दोस्तान से बहुत प्रेम हैं। संग्राम के पहले का दृष्ठय का वर्णन करते हुए राही कहते हैं कि -

'उदास उदास है पीपल, खामोश है बरगद
कि ज़ेरे साया कोई शिव विराजमान नहीं

किसी गली में खनकती नहीं कोई पायल
नदी के तट पे किसी बंसरी की तान नहीं।[4]

सम्पूर्ण भारत असंतोष की ज्वाला में जल रहा हैं। सभी के मन में एक अविश्वास घर कर गया हैं। राही कहते है कि इस क्रांति का उद्देश्य कोई लालच नहीं था। इस क्रांति का उद्देश्य तो वतन की आज़ादी था। वह आज़ादी जिसे पाने के लिए हमने दो सौ वर्षो का अविराम संघर्ष किया।

'कोई लड़ता है लाले यमन के लिए
यह लड़े सिर्फ अपने वतन के लिए।[5]

राही मासूस रज़ा के लेखन की एक सबसे बड़ी विशेषतता ग्रामीण परिवेश और आंचलिकता हैं। वे महाकाव्य में देश की परिस्थितियों का भी वर्णन करते हैं अंर गाँव की आत्मा का भी। जब अंग्रेजी हुकूमत का आंतक भारतीय जनता को अन्दर तक तोड़ गया तो सिर्फ वह ग्रामीण अँचल के गीत ही यादें बन कर रह गए जो उन ग्रामीण आत्माओं में जान ड़ाल देते थे। प्रस्तुत गीत में एक लड़की की पीड़ा की अभिव्यक्त किया गया है। अवधी में गीत की मिठास कुछ इस प्रकार हैं-

'दमड़ी का सेनुर भयल बाबा
चुनरी भयल अनमोल
ए ही रे सेनुरवा के कारन बाबा
छोड़ लौं मैं देस तुहार
डोलिया का बाँस पकड़े रोयें बीरन भैया
बहना मोरी दूर देसी भई
परदेसी भई
कौन लगइ है बजरिया में आखिर
बीरन के अँसुअन का मोल रे बाबुल
चुनरी भयल अनमोल।[6]

अंग्रेजी हुकूमत के बढ़ते अत्याचार ने जनता के मौन को ललकारा हैं। सभी के मन में असंतोष बढ़ने लगा हैं। लगभग हिन्दुस्तान की सभी राज्यों में विद्रोह का बिगुल बज गया। 1857 की क्रांति का श्री गणेश 25 फरवरी, 1957 को बंगाल की बैरकपुर छावनी से हो गया था। जब मंगलपाण्ड़े व अन्य सिपाहियों ने चरबीयुक्त कारतूसों को उपयोग में लाने से मना कर दिया था। 8 अप्रेल, 1957 को मंगलपाण्डे को ांसी दे दी गई। जिस कारण सभी जगह इस मूक हत्या का विरोधा किया गया। दिल्ली, अवधा, झाँसी, बिहार, फैजाबाद, इलाहबाद, राजस्थान, असम लगभग सभी जगह इस तानाशाही शासन के खिलाफ मोर्चा लाया गया।

इस महाकाव्य में 'दिल्ली' की तत्कालीन परिस्थितियों का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया हैं। राही ने दिल्ली को एक सुहागन स्त्री के रूप में संबोधित किया हैं। क्रांति के बाद दिल्ली पर अंग्रेजों ने अपनी पकड़ मजबूत कर ली थी। दिल्ली के रंग-ढ़ग अब बदले-बदले थे।

'दिल्ली जो एक शहर था आलम में इन्तख़ाब
दिल्ली ज़रूर है पे वह दिल्ली नहीं है यह
हँसती तो है ज़रूर मगर अपने हाल पर
अब वैसे बात-बात पर हँसती नहीं है यह।[7]

'अब भी सिगारं करती है बेवा नहीं है यह
पर इस दुल्हन में अगली सी, जिन्दादिली नहीं।

दीवाने आम अब भी है दीवाने खास भी
लेकिन वह एक खिंची दुई तलवार ही नहीं।[8]

भारत के राजा, जमींदार भी किसानों से लगान लेते थे। परन्तु वह अपनी जनता का पालन-पोषण भी करते थे। अंग्रेजों के आने से शोषण बढ़ता गया, करों की संख्या दुगुनी होती गई। जब किसान अंग्रेजों द्वारा लगाए गए करों को नहीं चुका पाता तो अपनी पत्नी के गहने बेचकर अपना कर्ज़ा चुकाता हैं। जिन आँखो के जादू में किसान सुकून पाता था, अब आँखो से आँखें नहीं मिला पाता हैं। राही कहते है-

'पिछले राजा जैसे भी थे अच्छे थे अंग्रेजों से
आँख निकल आई खेतों की सख्त लगान के फन्दों से
घर की दुनिया उजड़ी-उजड़ी उन नैनों का जादू बंद
एक लगान अदा करने में खुल-खुल जाये बाजूबंद।[9]

अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचार कुछ कम नहीं थे। उन्होंने भारतीयों की धार्मिक और सामाजिक भावनाओं को आहात करने का कोई अवसर नहीं छोड़ा। लगान भी कई तरह के होते थे। जिसने भारतीय किसानों की कमर तोड़ दी। इस लड़ाई में निम्नवर्ग से लेकर उच्च वर्ग के लोगों ने एक जुटता का परिचय दिया।

झाँसी तो 1857 के संग्राम में वीरता का पर्याय बन गई। लक्ष्मीबाई के योगदान ने इस संग्राम में चार चाँद लगा दिए। राही मासूम रज़ा ने लक्ष्मीबाई के संघर्ष, वीरता का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। इस संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई ने इस बात का परिचय दिया कि महिला किसी भी पुरूष से कम नहीं। वह उसी कुशलता से सेना का नेतृत्व कर सकती हैं जिस कुशलता से पुरूष करता हैं। रानी की वीरता का वर्णन राही मासूम रज़ा ने कुछ इस प्रकार किया है-

'उठ भी जा जेहन रसा खैंच भी मिस्त्रों की कमाँ
चुन वह मैदाँ कि फिरंगी से लड़ाई हो जहाँ
जो अलिफ़ हो वह ही बढ़ती हुई फ़ौजों का निशाँ
नुकते हो शोख कि सरदार की हिम्मत है जबाँ
चुन लें जिस लफ्ज़ की तकदीर बने
लक्ष्मीबाई की चलती हुई शमशीर बने।[10]

जब रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों को धुल चटा दी। अंग्रेजों को जब झाँसी की धारती पर मुँह की खानी पड़ी तब जनरल स्मिथ भी हार गया। वह उस शेरनी के वार से घायल हुआ जिसे वह एक कमजोर स्त्री समझ रहा था। जिसके शारीरिक और मानसिक बल का अंग्रेजों को भान नहीं था। जनरल स्मिथ की मनोस्थिति का लेखक ने कुछ इस प्रकार वर्णन किया हैं-

'जनरल स्मिथ सा जबाँ हौसला हैरान हुआ
अपनी बिगड़ी हुई बाँज़ी से परीशान हुआ
पीछे हटने का बहरहाल जो इम्कान हुआ
छाती पर झूलते तमगो से परेशान हुआ।[11]

जब सिंधिया परिवार ने अंग्रेजों का साथ दिया। अपनी मातृभूमि से विश्वासघात किया तब झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने हुँकार भरी।

'बोली मैदान में मैं अपने कदम धारती हूँ।
सिंधिया, आ, मैं भी बारिज़ तलबी करती हूँ।[12]

अंत में जब लक्ष्मीबाई घायल हो जाती है, तो मातृभुमि भी उनका स्वागत ऐसा करती है, जैसे माता सीता का धारती माँ ने किया था।

'ए ज़मीं। देख तेरी सिक्त ये कौन आता है
तुझमें ये किसका लहू जज़्ब हुआ जाता हैं।

जंग के शोर में सन्नाटें-सा सन्नाटा है
यह फरहरा है, कि लाषा है यह आखिर क्या है
हम न इसको कभी यूँ जाँ से गुजरने देंगे।
हम इसे याद बना लेंगे, न मरने देंगे।"[13]

'क्रांतिकथा-1857' की यह काव्यात्मक प्रस्तुति बहुत ही रोचक हैं। इसके अंत में राही मासूम रज़ा ने 'गोमती' नाम से लघु नाटिका भी लिखी हैं। जिसका मूल विषय लखनऊ शहर हैं। 1857 के समर के बाद लखनऊ की क्या स्थिति थी। जनमानस में किस प्रकार क्षोभ था। सभी स्वयं को असफल महसूस कर रहे थे। इसी असफलता के मधय राही मासूम रज़ा नवचेतना का संचार करना चाहते है। वे कहते हैं कि अब भी कुछ संभावनाए है, जो हमें हारने नहीं देती।

'मेरी आवाज़ पे आवाज़ दे ऐ आरज़े वतन
वादिए गंगो-जमन! मेरे ख्यालों के चमन
देख वह सुबह हुई, फूट रही है वह किरन
सुन मेरे पैरों की चाप और मेरे दिल की धाड़कन
जाग! दीवानों के दामन की हवा लाया हूँ
तोहफएं खून शहीदाने क़ा लाया हूँ।"[14]

महाकाव्य का भाषा अनुवाद हुआ है इसीलिए कहीं-कहीं लय टूटती हुई दिखाई देती है। फिर भी भावों का संचयन अद्‌भूत हैं। उर्दू के शब्दों की बहुलता हैं। राज़्ट्रीय चेतना का स्वर प्रबल हैं। स्वदेशी आन्दोलन में आम भारतीयों की भुमिका को प्रमुखता से रेखांकित किया गया हैं और अंत में महाकाव्य की वह पंक्तियाँ जो सभी संभावनाओं को लिए एक उम्मीद की किरण हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं।

'वह काग़ज ज़न्नार की दोड़ी और तस्बीह का दाना
हिन्दू-मुस्लिम ऐके का था एक अमिट अफसाना।"[15]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 1857 क्रांतिकथा, राही मासूम रज़ा, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण -2009 पृ.13
2. वही, पृ.16
3. वही, पृ.21
4. वही, पृ.24
5. वही, पृ.144
6. वही, पृ.26
7. वही, पृ.43
8. वही, पृ.43
9. वही, पृ.47
10. वही, पृ.176
11. वही, पृ.199
12. वही, पृ.197
13. वही पृ.203
14. वही पृ.227
15. वही, पृ.55

विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी का स्वरूप : बिहार की विश्लेषणात्मक समीक्षा

मुनमुन

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सार

एक लोकतांत्रिक देश में, सरकार ने विकास के लिए सभी प्रयास किए। विकास के लिए, अपने नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आदि के बारे में शिक्षित और जागरूक करना आवश्यक है। यह समाज में लैंगिक भेदभाव, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज, आदि जैसी सामाजिक बुराइयों को खत्म करने में मदद करता है। महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विकास में मदद करता है, यह निर्णय लेने की शक्ति देता है, नागरिक कौशल और राजनीतिक भागीदारी बढ़ाता है।

जैसा कि अब्राहम लिंकन ने लोकतंत्र को परिभाषित किया है कि लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा संचालित सरकार है। राजनीतिक समाजीकरण लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह राजनीतिक मूल्यों के दृष्टिकोण और व्यवहार को प्राप्त करने की प्रक्रिया है। इसलिए, लोकतंत्र शिक्षा और राजनीतिक रूप से सामाजिक होने की अनुमति देता है। और यह नागरिकों को राजनीति में भागीदारी का अधिकार देता है। स्वतंत्रता के बाद, 1950 में भारतीय संविधान ने पुरुषों और महिलाओं को मताधिकार (वोट देने का अधिकार) प्रदान किया। भारतीय संविधान लैंगिक समानता को बढ़ावा देता है और महिलाओं को राजनीतिक सशक्तिकरण प्रदान करता है। भारत में, महिलाओं की साक्षरता दर और राजनीति में भागीदारी धीरे-धीरे बढ़ी। शिक्षा महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों को संवर्द्धित करने वाले कारकों को भी प्रभावित करती है।

यह शोध पत्र बिहार के विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी के विकास पैटर्न का विश्लेषण करता है। भारत निर्वाचन आयोग के चुनावी आंकड़ों का उपयोग वर्ष 1951 से 2015 तक बिहार विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी के लिए किया गया है।

महत्वपूर्ण शब्द: महिला, राजनीतिक भागीदारी, चुनाव, बिहार, लोकतंत्र, विधानसभा।

परिचय

बिहार राज्य भारत के पूर्वी क्षेत्रों में स्थित है। 2011 की जनगणना के अनुसार, यह जनसंख्या के अनुसार, तीसरा सबसे बड़ा राज्य है। यह भारत का सबसे घनी आबादी वाला राज्य है, जिसमें प्रति वर्ग किलोमीटर 1,106 व्यक्ति है। बिहार की 89 प्रतिशत आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है और शहरी इलाकों में केवल 11 प्रतिशत लोग रहते हैं। भारत की जनगणना के अनुसार, लिंग-अनुपात वर्ष 1951 से 2011, क्रमशः 1000 से 918 तक घट गया है।

बिहार बीमारू (बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश) राज्यों में आता है। इन राज्यों में खराब आर्थिक स्थिति है। खासकर बिहार इन बड़ी कठिनाईयों का सामना कर रहा है जैसे कि अशिक्षा, गरीबी, बाढ़, भूकंप, सूखा, पलायन, अपराध, भ्रष्टाचार, जातिवाद, लिंग भेदभाव, दहेज-प्रथा इत्यादि। स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं, शिक्षा पर अधिक जोर, अपराध और भ्रष्टाचार में कमी और सामाजिक-आर्थिक विकास इत्यादि के मामलों में बिहार भारत के अन्य राज्यों की तुलना में बहुत पीछे हैं।

ऐतिहासिक रूप से, बिहार शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र रहा है, लेकिन आधुनिक समय में राज्य बड़े पैमाने पर निरक्षरता का सामना कर रहा है। जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, बिहार की साक्षरता दर क्रमशः 1951 और 2011 में 13.45 और 61.35 थी और बिहार में महिला साक्षरता दर क्रमशः 1951 और 2011 के वर्षों में 4.22 और 53.33 थी। बिहार में महिलाओं की साक्षरता दर धीरे-धीरे बढ़ रही है।

सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विकास में शिक्षा प्रमुख कारक है। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा को विश्व स्तर पर सबसे शक्तिशाली साधन माना जाता है। यह उन्हें उनके मानवाधिकारों के उल्लंघन से बचाता है और सकारात्मक और स्थायी विकास प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह निर्णय लेने की शक्ति देता है, नागरिक कौशल और व्यक्तियों की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाता है। शिक्षा व्यक्तियों के राजनीतिक समाजीकरण में मदद करती है। जैसा कि आमण्ड और पॉवेल ने कहा कि राजनीतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृतियों को बनाए रखा और बदला जाता है। इसलिए, शिक्षा और राजनीतिक समाजीकरण निर्णय लेने की शक्ति को प्रोत्साहित करता है। नागरिक कौशल और राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाता है।

राजनीतिक कार्यों में राजनीतिक भागीदारी है। चुनावों में उच्चतम स्तर की राजनीतिक भागीदारी होती है। हालाँकि महिलाओं की आबादी आधी है, लेकिन राजनीतिक में महिलाओं की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। जीवन के सभी क्षेत्रों में, महिलाओं की भागीदारी नगण्य रही है (वर्मा और यादव, 1996)।

तालिका संख्या 1.1 में वर्ष 1951 से 2015 तक का चुनावी आंकड़े प्रदर्शित किए गए हैं। प्रत्येक वर्ष बिहार के विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी को दर्शाता है। तालिका में कुल महिला प्रतियोगियों और कुल निर्वाचित महिलाओं का आंकड़ा है। और यह निर्वाचित महिला वर्ग की संख्या को भी दर्शाता है जैसे कि सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुस्लिम। वर्ष 2005 में फरवरी 2005 और अक्टूबर 2005 में दो बार चुनाव हुआ था।

तालिका संख्या 1: बिहार में विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी

वर्ष	*कुल महिला प्रतिभागी*	*कुल निर्वाचित महिलाएं*	*सामान्य*	*अनुसूचित जाति*	*अनुसूचित जनजाति*	*मुस्लिम*
1951	12	7	6	0	1	0
1957	46	30	24	4	1	1
1962	46	25	19	5	0	1
1967	29	6	6	0	0	0
1969	45	4	3	1	0	0
1972	45	0	0	0	0	0
1977	97	13	10	2	1	0
1980	76	11	11	0	0	0
1985	103	15	12	2	1	0
1990	149	10	6	2	2	0
1995	264	11	5	3	3	0
2000	189	19	12	4	3	0
205	26	3	2	1	0	0
205	138	25	20	5	0	0
2010	298	34	28	4	0	2
2015	277	37	30	6	1	0
कुल	1840	250	194	39	13	4

स्रोतः भारत का चुनाव आयोग

सामग्री और प्रणालियाँ

बिहार जिले में महिलाओं की राजनीति में भागीदारी को जानने के लिए भारत के चुनाव आयोग (ईसीआई) की वेबसाइट से चुनावी आंकड़ों का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। यह द्वितीयक डेटा के विभिन्न स्रोतों जैसे कि वेबसाइट, विकिपीडिया, लेख, शोध पत्रों इत्यादि पर आधारित है। 1947 के बाद बिहार में होने वाले सभी विधानसभा चुनावों का आंकड़ा विश्लेषण के लिए लिया गया है। ये वर्ष हैं:- 1951, 1957, 1962, 1967, 1969, 1972, 1977, 1980, 1985, 1990, 1995, 2000, फरवरी 2005 अक्टूबर 2005, 2010, 2015। चुनावी आंकड़ों को एकत्रित और निम्न में वर्गीकृत किया गया है- कुल महिला प्रतिभागी, कुल निर्वाचित महिलाएं, सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुस्लिम महिलाएं।

एम.एस. एक्सेल का उपयोग आंकड़ों विश्लेषण के लिए किया गया है। विभिन्न समूहों में डेटा की तुलना के दृश्य प्रदर्शन के लिए एक बार चार्ट का उपयोग किया गया है। जबकि लाइन चार्ट का उपयोग वर्ष में रुझान (वृद्धि और कमी) दिखाने के लिए किया गया है। पाई चार्ट का उपयोग श्रेणी वार में निर्वाचित महिलाओं के आनुपातिक प्रतिनिधित्व का विश्लेषण करने के लिए किया गया है। सबसे पहले, दो डेटा सेट, कुल महिला प्रतियोगी और कुल निर्वाचित महिलाओं का विश्लेषण किया गया है। चुनावी वर्षों को तीन चरणों में विभाजित किया गया। पहला चरण वर्ष 1951 से 1969 और 1977 से 1990 तक प्रदर्शित करता है। दूसरा वर्ष 1972 और 2000 से 2005 तक दर्शाता है। और तीसरा चरण वर्ष 1995, 2010 और 2015 का पैटर्न दर्शाता है।

दूसरा, चार डेटा सेट-श्रेणी वार निर्वाचित महिलाओं का विश्लेषण किया गया है। तीसरा, वर्ष 1951 से 2015 तक कुल निर्वाचित सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुस्लिम महिला उम्मीदवारों की भागीदारी के प्रतिशत का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. बिहार के विधानसभा चुनावों में कुल प्रतियोगियों और कुल निर्वाचित महिलाओं के विकास पैटर्न का विश्लेषण करना।
2. बिहार के विधानसभा चुनावों में महिलाओं की श्रेणी-वार भागीदारी के विकास का पैटर्न का विश्लेषण करना।
3. बिहार के विधानसभा चुनावों में श्रेणीवार भागीदारी के अनुपात का विश्लेषण करना।

विश्लेषण और निष्कर्ष

उद्देश्य-1

चार्ट-1

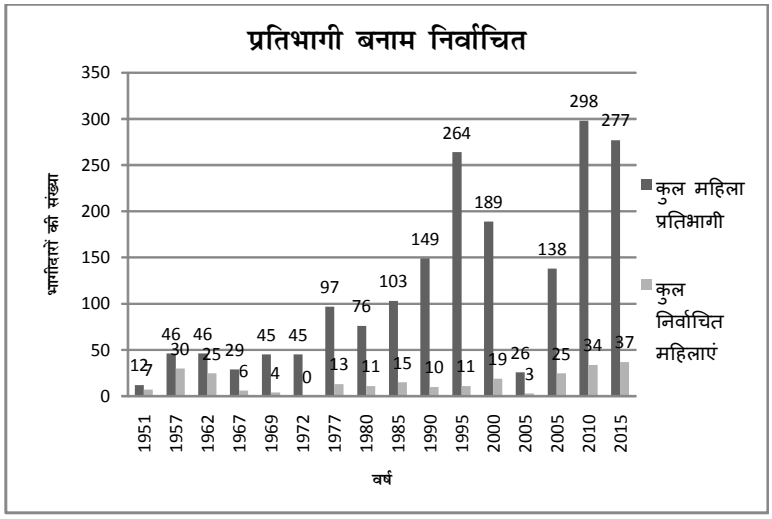

स्रोत: भारत के चुनाव आयोग द्वारा जारी आंकड़ों का विश्लेषण

उपरोक्त बार चार्ट बिहार विधानसभा के चुनावों में वर्ष 1951 से 2015 तक कुल महिला प्रतियोगियों और कुल निर्वाचित महिलाओं के विकास पैटर्न का प्रतिनिधित्व करता है। भागीदारी की सीमा 350 है। वर्ष 1951 से 2015 तक के चुनावी आंकड़ों का विश्लेषण करने के बाद, यह पाया गया है कि इसे तीन चरणों में वर्गीकृत किया जा सकता है, पहला चरण, दूसरा चरण और तीसरा चरण। इन पर नीचे चर्चा की गई है-

पहला चरण- स्थिर विकास (1951-1969 और 1977-1990)

यह चरण वर्ष 1951 से 1969 और 1977 से 1990 तक भागीदारी के पैटर्न को प्रदर्शित करता है। 1957 से 1969 तक कुल महिला प्रतियोगियों की संख्या में कोई अधिक अंतर नहीं है। लेकिन कुल निर्वाचित महिलाओं की संख्या कम हो रही है। 1997 से 1990 के वर्ष में, कुल महिला प्रतियोगियों की संख्या में वृद्धि हुई और कुल निर्वाचित महिलाओं की संख्या स्थिर है। इसलिए, इस चरण में स्थिर वृद्धि देखी जा सकती है।

दूसरा चरण- नकारात्मक (1972 और 2000-2005)

वर्ष 1972 में कुल महिला प्रतियोगी 45 थीं लेकिन कोई भी निर्वाचित नहीं हुई थी। कुल महिला प्रतियोगियों की संख्या और कुल निर्वाचित महिलाओं की संख्या में कमी आई। बिहार राज्य सबसे अधिक बाढ़ से ग्रस्त राज्य है, उत्तर बिहार में लगभग 76% आबादी भारत में बाढ़ की तबाही के आवर्ती खतरे में रहती है। राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के लिए, सरकार सभी के लिए शिक्षा प्रदान करती है क्योंकि यह निर्णय लेने की क्षमता में सुधार करती है और नागरिक कौशल को बढ़ाती है।

तीसरा चरण- तेजी से विकास (1995, 2010 और 2015)

वर्ष 2010 में महिला प्रतियोगियों की संख्या 298, 2015 में 277 और 1995 में 264 थी। इन तीन चुनावों में महिला प्रतियोगियों की संख्या 250 की सीमा पार कर गई। इन तीन वर्षों में कुल महिला प्रतियोगियों और कुल निर्वाचित महिलाओं के बीच बड़ा अंतर देखा जा सकता है। वर्ष 2015 और 2010 में क्रमशः निर्वाचित महिलाओं की सबसे अधिक संख्या 37 और 34 है। इसलिए, इस चरण में तेजी से विकास देखा जा सकता है।

उपरोक्त आंकड़ों का एक सचित्र प्रतिनिधित्व नीचे अंकित है।

चार्ट-2

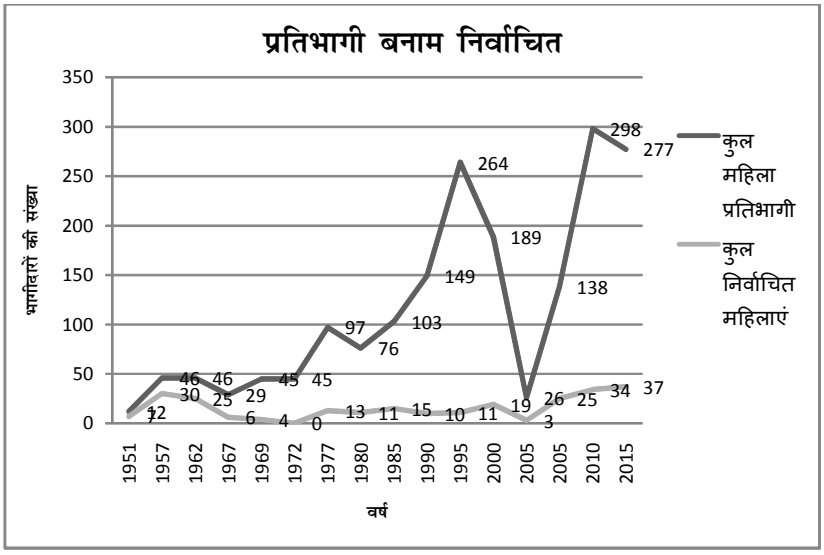

स्रोत: भारत के चुनाव अयोग द्वारा जारी आंकड़ों का विश्लेषण

उद्देश्य-2

चार्ट-3

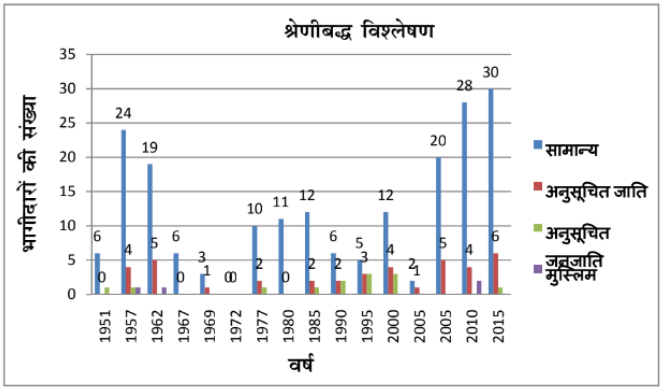

स्रोत: भारत के चुनाव अयोग द्वारा जारी आंकड़ों का विश्लेषण

उपरोक्त बार चार्ट बिहार के विधानसभा चुनावों में वर्ष 1951 से 2015 तक निर्वाचित महिलाओं की श्रेणी-वार विकास पद्धति का प्रतिनिधित्व करता है।

भागीदारी की सीमा 35 है। निर्वाचित महिलाओं को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है, वे हैं- सामान्य, अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और मुस्लिम। बेहतर समझ के लिए नीचे चर्चा की गई है–

सामान्य- इस श्रेणी में निर्वाचित महिलाओं की सबसे अधिक संख्या 2015 में 30 है। निर्वाचित महिलाओं की सबसे कम संख्या 2005 में 2 है। और 1972 में किसी का भी चुनाव नहीं किया गया है। चार्ट बताते हैं कि सामान्य वर्ग की भागीदारी अन्य श्रेणियों की तुलना में अधिक है।।

अनुसूचित जाति- इस श्रेणी में, निर्वाचित महिलाओं की सबसे अधिक संख्या 2015 में 6 है। सबसे कम संख्या 1969 और 2005 में 1 है। और इस श्रेणी में 1951, 1967, 1972, 1980 में किसी को भी नहीं चुना गया है।

अनुसूचित जनजाति- इस श्रेणी में 1995, 2000 में निर्वाचित महिलाओं की संख्या 3 है। सबसे कम संख्या 1951, 1957, 1977, 1985 और 2015 में 1 है। 1962-1972, 1980, 2005- 2005 में किसी का चयन नहीं किया गया। 2010।

मुस्लिम- इस श्रेणी में, निर्वाचित महिलाओं की संख्या सबसे अधिक 2010 में 2 है। सबसे कम संख्या 195 वर्षों और 1962 में है। और कोई भी वर्ष के बाईं ओर नहीं चुना जाता है।

चार्ट-4

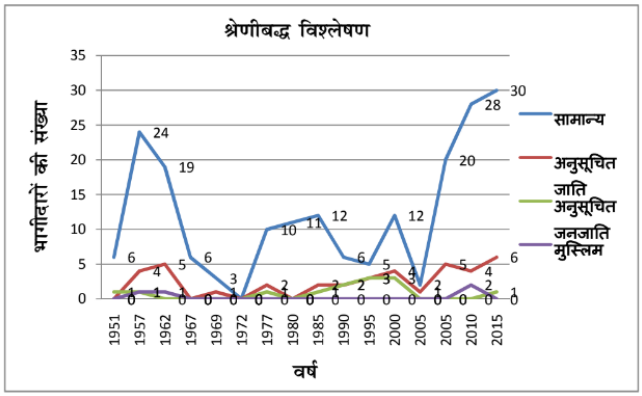

स्रोत: भारत के चुनाव अयोग द्वारा जारी आंकड़ों का विश्लेषण

उद्देश्य-3

तालिका संख्या 2

आनुपातिक प्रतिनिधित्व

वर्ष	*कुल निर्वाचित महिलाएं*	*सामान्य*	*अनुसूचित जाति*	*अनुसूचित जनजाति*	*मुस्लिम*
1951–2015	250	194	39	13	4

स्रोत: भारत के चुनाव अयोग द्वारा जारी आंकड़ों का विश्लेषण

उपरोक्त तालिका वर्ष 1951 से 2015 तक कुल निर्वाचित महिलाओं की संख्या 250 है। 194 सामान्य उम्मीदवार, 39 अनुसूचित जाति, 13 अनुसूचित जनजाति और 4 मुस्लिम 250 में से चुने गए हैं। सामान्य महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत 77% है। अन्य श्रेणियों से बहुत दूर। अनुसूचित जाति की महिलाओं का प्रतिशत 16% है, उसके बाद अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का प्रतिशत 5% है। अंत में, मुस्लिम महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत बहुत कम है जो केवल 16 विधान सभा चुनावों में 2% है। 2011 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, बिहार में महिलाओं की साक्षरता दर 53.33 है, जो बहुत कम है। हालाँकि बिहार में महिलाओं की आबादी आधी है, लेकिन राजनीति में महिलाओं की स्थिति संतुष्ट नहीं है।

चार्ट-5

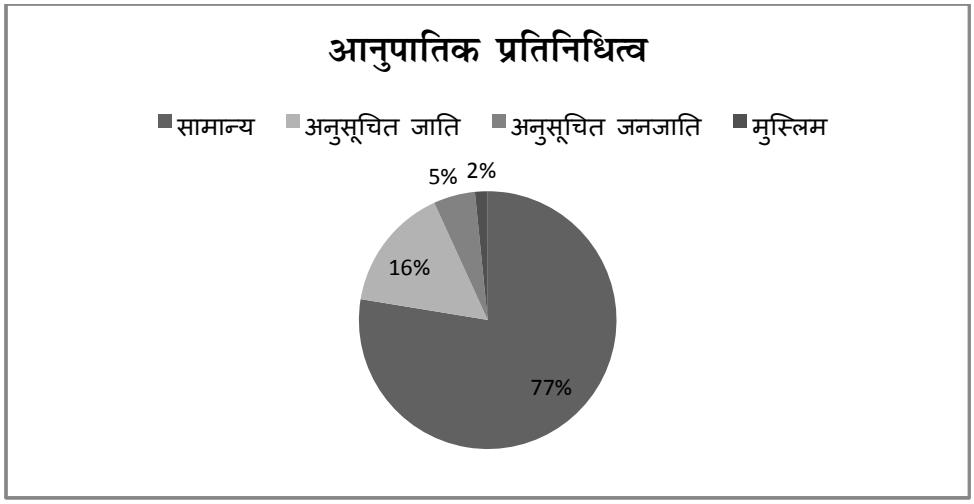

स्रोत: भारत के चुनाव अयोग द्वारा जारी आंकड़ों का विश्लेषण

निष्कर्ष

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी लैंगिक समानता और वास्तविक लोकतंत्र के लिए एक मौलिक शर्त है। यह सार्वजनिक निर्णय लेने में महिलाओं की प्रत्यक्ष भागीदारी को भागीदारी को सुनिश्चित करता है और महिलाओं को बेहतर राजनीतिक जवाबदेही के लिए सजग करता है।

उपरोक्त चुनावी आंकड़ों के विश्लेषण के पश्चात यह पाया गया है कि बिहार में अब तक सोलह विधानसभा चुनाव संपन्न हो चुके हैं। इन चुनावों में, बिहार में महिलाओं का प्रदर्शन संतोषप्रद नहीं रहा है। कुल महिला प्रतियोगी 1840 हैं, कुल निर्वाचित महिलाएं 250 हैं, कुल सामान्य महिलाएं 194 हैं, कुल अनुसूचित महिलाएं 39 हैं, कुल अनुसूचित जनजाति महिलाएं 13 हैं और सभी 16 विधानसभा चुनावों में कुल मुस्लिम महिलाएं 4 हैं। विधानसभा चुनावों में महिला प्रतियोगियों और निर्वाचित महिलाओं की संख्या में वृद्धि बिहार राज्य में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के बढ़े हुए स्तर का एक संकेतक है। चुनावों में महिला प्रतियोगियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

इसलिए, यह स्पष्ट है कि शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण और सुविधा और पंचायतों में आरक्षण महिलाओं की राजनीति में भागीदारी को प्रोत्साहित करता है। साथ ही, माता-पिता या अभिभावक को लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए तथा राजनीति में भागीदारी के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए। महिलाओं की साक्षरता दर और महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बिहार में धीरे-धीरे बढ़ रही है।

संदर्भ सूची

1. बिहार में पंचायत नेताओं के रूप में महिलाओं का एक अध्ययन। महिलाओं के नेतृत्व का अनावरण करने में: भारत में नेतृत्व की पहचान और अर्थ (पीपी। 153-172)। पालग्रेव मैकमिलन, एस. अग्रवाल, (2015)
2. महिलाओं की शिक्षा और महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी - यूनेस्को डिजिटल लाइब्रेरी, गोएत्ज़, ऐनी मैरी, (2003)
3. बिहार - विकिपीडिया
4. बिहार प्रोफाइल, बमदेनेण्हवअण्पद
5. राजनीतिक समाजीकरण की परिभाषा, प्रकृति, प्रकार, एजेंट और महत्व - सामाजिक कार्य शिक्षा देखभाल
6. लड़कियों और महिलाओं के लिए शिक्षा
7. भारत निर्वाचन आयोग, https://eci.gov.in
8. शिक्षा और मतदान के बीच के संबंध को स्पष्ट करना। अमेरिकी राजनीति अनुसंधान, जैक्सन, आर. ए, (1995)
9. भारतीय चुनावों में महिलाओं के मतदान का पैटर्न बदलना भारतीय राजनीति में अध्ययन, कुमार, एस और गुप्ता, पी. (2015)
10. बिहार में पंचायत नेताओं के रूप में महिलाओं का अध्ययन, स्प्रिंगर, एस.ए.यू. डब्ल्यू, 2015
11. ब्रिटिश कोहोर्ट अध्ययन का उपयोग करते हुए शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी के बीच संबंधों का परीक्षण, राजनीतिक व्यवहार, पर्सन, एम. (2014), 1970
12. बिहार की राजनीति में महिलाएं, वर्मा, आर., और यादव, जी, (1996)

कैमूर जिला के कृषि में नई तकनीक का प्रयोग विस्तार तथा प्रभाव

डॉ० हरिशंकर श्रीवास्तव

प्रधानाध्यापक, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, मसौढ़ी, पटना

कृषि कार्य मनुष्य एवं विभिन्न जीव-जन्तुओं के जीवन का आधार संसाधन है। इसके बगैर किसी देश, प्रदेश, जिला, प्रखंड, पंचायत एवं गाँव का विकास असम्भव है। कृषि से मानव को भोजन, जानवरों को चारा, उद्योग को कच्चा माल, तेल, धी के साथ-साथ पर्यावरण को साफ सुथरा रखने और और सुन्दर बनाने में मदद करता है। यही कारण है सरकार विभिन्न पंचवर्शीय योजनाओं को माध्यम से प्रथम हरितक्रांति में सफलता पाने के साथ अब द्वितीय चरण में भी इसका उपयोग होते हुए विकासोन्मुख बना।

कैमूर जिला दक्षिणी बिहार के दक्षिण-पज्चिम छोर पर एक पर्वतीय जिला जंगल एवं कृषि क्षेत्र में रुप में फैला हुआ है।

कैमूर जिला में कृषि के आधुनिकीकरण के क्षेत्र में आजकल कुछ विशेष कार्य हुए है जिसमें यहाँ फसलों के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ विकास कार्य भी दृष्टिगोचर होता है। फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए नये तकनीक का प्रयोग आजकल कृषि के क्षेत्र में किया जा रहा है जिसमें मुख्य रुप से कृषि यंत्र का प्रयोग, खेतो की गहरी जुताई, नये-नये उर्वरको का प्रयोग, हरी खाद, खेतों में मिट्टी का पलटना एवं कृषि षिक्षा से लेकर, कृषि प्रशिक्षण, उर्वरको का प्रयोग प्रचार-प्रसार इत्यादि शामिल है। सिचाई के नये-नये तरीकों का प्रयोग किये जा रहे है।

कैमूर जिला में फसलों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए विभाग ने निम्नलिखित कार्यनीति पर कार्य प्रारम्भ किया है:-

1. अधिक उत्पादनज़ील प्रभेदो की खेती का विस्तार करना
2. सिचाई संसाधनों का सघन उपयोग करना
3. कृषकों में तकनिकी हस्तांतरण करना
4. किसान गोष्ठी एवं मेला का आयोजन करना
5. मिट्टी जाँच के आधार पर संतुलित उर्वरक का व्यवहार करना
6. असिंचित क्षेत्रों में दलहनी एवं तेलहनी फसलों का उत्पादन करना
7. कृषको को प्रमाणित बीज अधक से अधिक उपयोग करने हेतु सुझााव देना
8. शाक-सब्जियों की खेती को बढ़ावा देना
9. समेंकित कीट प्रबन्ध, जैविक उर्वरक, कम्पोस्ट एवं हरी खाद का विस्तार करना
10. उत्पादनों की गुणवत्ता हेत1 उर्वरक बीज एवं कीटनाशी दवा की जाँच तथा कानूनी कार्रवाई करना
11. किसानो को अधिक उत्पादन देना फसल ऋण मुहैया कराना
12. उन्नत कृषि यंत्रे का प्रसार एवं वितरण करना
13. समर्थन मूल्य पर अनाजों का वितरण करना

14. औशधीय एवं फूलों की खेती का प्रचार-प्रसार करना

कृषि की माली हालत को सुधारने के लिए कृषि विभाग ने मिट्टी एवं जलवायु के आधार पर कैमूर जिला के कृषि को सुधारने के लिए रबी मौसम में निम्नलिखित कार्यक्रम चलाने की योजना बनाई है।

1. सिंचित एव असिंचित क्षेत्रों के लिए उर्वरता का निर्धारण।
2. सिंचित क्षेत्रों के शत्-प्रतिशत भाग में अधिक उत्पादनज़ील प्रभेदों की खेती करना तथा असिंचित क्षेत्रों में भी कम से कम 60 प्रतिशत क्षेत्र में अधिक उत्पादनशील प्रभेदों में आच्छादित करना।
3. प्रत्येक पंचायत में पाँच सम्पर्क किसानों का चयन करना और उनके द्वारा अधिक उत्पादनशील प्रभेदों का वैज्ञानिक तरीको से खेती करना इन सम्पर्क किसानों के माध्यम से तकनीकी का प्रसार करना एवं खेती के हर पहलूओं की जानकारी किसानों को दी जाय।

किसानों के माध्यम से तकनीक का प्रसार

प्रत्येक पंचायत में कम से कम पाँच प्रगतिशील किसानों का चयन तकनीकी प्रचार-प्रसार के लिए किया जाना चाहिए। तकनीकी हस्तान्तरण हेतु कृषि विभाग के पदाधिकारियों, जनसेवको से चयनित किसान सम्बद्ध होगे। इन किसानों के खेती का पूर्ण विवरण, योजना इत्यादि का लेखा निर्धारित होगा। इन सम्पर्क किसानों को नवीनतम उत्पादक बीज, उर्वरक तथा कृषि मंत्र के उपयोग हेतु प्रोत्साहित करना है। संतुलित मात्र में उर्वरक का व्यवहार, जैविक उर्वरक, कम्पोस्ट तथा समेंकित कीट प्रबंधन की तकनीकी हेतु उन्हे प्रोत्साहित करना है तथा उनके उत्पादन का लेखा भी रखा जाना चाहिए।

गेहूँ फसल के खेती की तकनीक

1. गेहूँ का अनुज़ंसित प्रभेद:
   - (क) समय से बुआई के लिए: (15 नवम्बर से 10 दिसम्बरऋ: एच.डी. 2285 एवं पी.बी.डब्लू 154, 343, यू.पी. 2003, मालवीय 1255 एवं 206 इत्यादि उत्तम है।
   - (ख) मध्य विलम्ब से बुआई के लिए: (10 नवम्बर से 15 दिसम्बर): गंगा 2643, एच.डी. 2285, एच.यू.डब्ल्यू 234, पी0वी.डब्ल्यू 226 एवं यू.पी. 262 तथा 2425 प्रभेद महत्वपूर्ण है।
   - (ग) विलम्ब से बुआई के लिए: (20 दिसम्बर से 20 जनवरी)एच.डी. 2285, एच.पी. 1209, यू.पी. 2121 तथा मालवीय 234 महत्वपूर्ण है।

जीरो टिल तकनीक के द्वारा गेहूँ की बुआई

1. इस तकनीक में धान की कटनी के बिना खेत की जुताई किये जीरो टीलेज मज़ीन द्वारा गेहूँ की बुआई की जाती है। इस मज़ीन में मिट्टी चीरने वाला 9 फाड़ लगे होते है जो ट्रैक्टर में बाँधने के बाद खेती में पतली लाइन बनाते है तथा बीज एवं उर्वरक भी गिराते चलते है।

जीरो टिल तकनीक से लाभ :-

1. खेत की जुताई करने वाला बिना खेत की जुताई किए रु0 1200 से रुपये 1500 प्रति हेक्टेयर व्यय की बचत हो जाती है।
2. जीरो टिल ड्रील द्वारा डेढ़ घंटे में एक हेक्टेयर भूमि में बुआई की जा सकती है जबकि ट्रैक्टर द्वारा एक हेक्टेयर को तैयार करने में 10 से 12 घंटे लग जाते है।
3. जीरो टिल ड्रील द्वारा ड़ेढ़ घंटे में एक हेक्टेयर भूमि की बुआई की जा सकती है जबकि ट्रैक्टर द्वारा एक हेक्टेयर को तैयार करने में 10 से 12 घंटे लग जाते है।
4. परम्परागत विधि की अपेक्षा जीरा टिल विधि में बीज का अंकुरण दो-तीन दिन पहले हो जाता है।
5. गेहूँ की पहली सिचांई में करीब (40-50) प्रतिशत सिचांई जल की बचत होती है।

6. जीरो-टिल ड्रिल द्वारा बोए गए गेहूँ में पहली सिचाई समान रुप से हल्की दी जा सकती है जिससे पौधे पीले नहीं होते है। भारी मिट्टी में ज्यादा सिंचाई होने पर पौधे पीले हो जाते हैं जिसका उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
7. गुल्ली-डंडा ("लोरिस-माईनर) के पौधे की संख्या कम होती है क्योकि खेत की जुताई न होने से इनके बीज मिट्टी से नीचे पड़े रहते है और उनके अंकुरता हेतु उचित वातावरण नही मिल पाता है।
8. विलम्ब से बुआई की अवस्था मे बीज दर (125-150 किलोग्राम) प्रति हेक्टर रखा जाता है। जीरो-टिल प्रणाली से आगात बोआई संभव होने के कारण (25-30 किलोग्राम) प्रति हेक्टेयर बीज की बचत होती है।
9. जीरो-टिल द्वारा दानेदार उर्वरको (डी.ए.पी.) को समुचित गहराई पर पौधो के जड़ के समीप डाला जाता है जिससे पौधे इस खाद का अधिक उपयोग करते है और उर्वरकों खाद का अधिक उपयोग करते है और उर्वरकों की क्षमता बढ़ जाती है।
10. इस विधि में डीजल और कृषि रसायनों के प्रयोग में कमी होती है जिससे पर्यावरण का प्रदूषण कम होता है।

वर्षा के जल का प्रबन्धन

कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के लिए सही समय पर उचित मात्र में उत्तम बीज खाद एवं कीटनाषक दवाओं के साथ-साथ जल की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। मूलत: जल भूमि पर केवल वर्षा जल, भू-गर्भीय जल एवं नदी, नाला एवं तालाब के रुप मे हमें उपलब्ध होता है। कब, कहाँ और कितनी वर्षा होगी इसका सही अनुतान लगाना कमिठन कार्य है। इसी अनिश्चितता के कारण ज्यादातर वर्षा को जल बेकार बह जाता है एवं इसका सदुपयोंग नहीं हो पाता है। फिर भी वर्षा के आंकड़ो से कही हद तक यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है जो वर्षा के जल के उचित प्रबन्ध में आवश्यक हो।

कैमूर के पठार यानी भभुआ में मानसून का आगमन लगभग 20 जून और निगमन 10 अक्टूबर को होता है। भभुआ का औसत सालाना वर्षा लगभग 985 मिलीमीटर होती है। इस वर्षा की 84 प्रतिशत मात्र जूनसे सितम्बर के बीच उपलब्ध हो जाती है। 18 जमन से 5 जुलाई के बीच दिन के समय की वर्षा वाष्पीकरण के कारण मात्र 50 प्रतिशत ही बच पाती है। वर्षा के जल की उस क्षेत्र में उपलब्धता के अनुसार किसानों को इस जल के अधिकतम उपयोग की आवश्यकता है। इसके लिए उस क्षेत्र के फसल एवं उसकी अवधि को ध्यान में रखकर वर्षा के जल के प्रबंधन की जरुरत है। इससे न केवल सिचांई के लागत में कमी होगी बल्कि मृदा एवं उसके पोषक तत्वों की भी सुरक्षा होगी।

प्रबंधन नीति

मेंढ़ की उँचाई को बढ़ाकर वर्षा के दौरान, वर्षा के जल को खेत में रोककर रखा जाता है मेंड़ की उँचाई जितनी ही ज्यादा होगी उतने ही अधिक जल को रोकर रखा जा सकता है तथा उस जल से फसलों की बर्बादी भी कम होगी। आर.पी. चैनल-ट के क्षेत्र में मुख्यत: मेड़ की उँचाई 7 सेन्टीमीटर पाई जाती है।

जल प्रबंधन के फायदे

1. इससे धान के फसल में अधिक वर्षा के जल का उपयोग होता है एवं सिचाई के दूसरे स्त्रेतो पर निर्भरता कम होती है।
2. इससे अपवाह कम और मृदा एवं पोषक तत्वों को हानि कम होती है।
3. इससे आस-पास के निम्न भूमि में सिल्ट का जमाव एवं जल जमाव कम होता है।
4. भूमि पर अधिक समय तक वर्षा का होना अधिक महत्व रखता है क्योकि इससे भू-गर्भीय जल-स्तर को उँचा उठये रखने में मदद मिलती है।
5. इससे भविष्य में सिचाई में तो मदद मिलती ही है साथ ही साथ फसल प्रबंधन, मत्स्य पालन, पशु पालन, एवं नौका परिवहन में भी मदद मिलती है।

कृषि कार्य के लिए समय पर वर्षा के नहीं होने से जल प्रबंधन का महत्व विषेष बढ़ जाता है। आजकल दुनिया के सभी कम वर्षामय प्रदेश में तकनीक को अपनायी जाती है।

निष्कर्ष

आजकल कृषि के क्षेत्र में बहुत ही दिलचस्पी के साथ नये कृषि यंत्र अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग, रासायनिक उर्वरक, हरी खाद एवं वर्मीकल्चर पाँच गुणा अधिक फसलों के उत्पादन भी होने लगे है जो बढ़ती हुई अबादी एवं देश में अधिकाधिक खाद्याान्न की आपूर्ति में मददगार है। आजकल खर-पतवार निकालने एवं अधिक उपज के बिजो का प्रयोग के द्वारा हम सिर्फ खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर ही नही बन रहें है। कृषि एक व्यवसाय नहीं अपितु उद्योग का दर्जा भी प्राप्त कर लिया है। यही कारण है कि भारत में खाद्यान्नों का पैदावार बढ़ता जा रहा है तथा कृषि का उत्पादन उद्योगो का कच्चामाल बनकर प्रचुर मात्र में उभर रहा है। और उत्पादन में भी वृद्धि होने की अपार सम्भावनाएँ दिख रही है।

संदर्भ सूची

1. आर.बी. मडल : इनट्रक्शन टू रुरल सेटलमेंन्ट कॉनसेप्ट पब्लिसिंग कम्पनी, न्यू देहली, पेज नं0-304
2. डब्ल्यू.के.डी.डेविस : ''द रैकिंग ऑफ सर्विस सेन्ट्र्स, ए क्रिटिकल रिव्यू'' ट्रांसक्शनस एण्ड पेपर्स, लंदन 1966, नं0-40 पेज नं0-52
3. एच.इ.ब्रासी : टॉउन एज रुरल सर्विस सेन्ट्र्स ट्रांसक्शनस एझड पेपर्स, लंदन 1952, नं0 18-19, पेज नं0 98-100
4. बी. गुहा : द रुरल सर्विस सेन्ट्र्स ऑफ हुगली डिस्ट्रिक्ट, द जियोग्राफिकल रिव्यू ऑफ इंडिया, वॉल्यूम-XXXX नं0 4, दिसम्बर 1967, पेज-47
5. इयान कैर्षस : ए क्लैसिफिकेशन् ऑफ सर्विस सन्ट्र्स इन इंगलैण्ड एण्ड वेल्स, द जियोग्राफिकल जर्नल, 1958, वॉल्यूम-CXXIV पार्ट-1,पेज-371

भारतीय शिक्षा दर्शन के विकास में मिथिला का योगदान

जयन्ती कुमारी

शोधार्थी छात्रा

मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। सोचना मनुष्य का विशिष्ट गुण है; इसी गुण के फलस्वरूप वह पशुओं से भिन्न समझा जाता है। अरस्तु ने मनुष्य को विवेकशील प्रणी कहकर उसके विशेष धर्म को प्रकाशित किया है। विवेक अर्थात् बुद्वि की प्रधानता रहने के फलस्वरूप मानव विशव की विभिन्न वस्तुओं को देखकर उनके स्वरूप को जानने का प्रयास करता रहा है। मनुष्य की बौद्विकता उसे अनेक प्रश्नों का उत्त जानने के लिए बाध्य करती रही है।

सम्पूर्ण विशव ही दर्शन का विषय है। फिलॉसफी (फिलास-प्रेम, सौफिया-ज्ञान) का अर्थ ज्ञान-प्रेम या विद्यानुराग होता है। भारत में फिलॉसफी को 'दर्शन' कहा जाता है। 'दर्शन' शब्द दृश् धातु से बना है जिसका अर्थ होता है 'जिसके द्वारा देखा जाए'। भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का साक्षात्कार हो सके। भारत का दार्शनिक केवल तत्व की बौद्विक व्याखा से ही संतुष्ट नहीं होता, बल्कि वह तत्व की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है।

भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषता व्यवावहारिकता है। भारत में जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए दर्शनशास्त्र का सृजन हुआ है। जब मानव ने अपने को द:खों के आवरण से घिरा हुआ पाया तब उसने पीड़ा और क्लेश से छुटकारा पाने की कामना की। इस प्रकार दु:खों से निवृत्ति के लिए उसने दर्शन को अपनाया। इसीलिए प्रो0 हरियाना ने कहा है, 'पाक्षात्य दर्शन की भाँति भारतीय दर्शन का आरम्भ आश्चर्य एवं उत्सुकता से न होकर जीवन की अनैतिका एवं भौतिक बुराइयों के शमन के निमित्त हुआ था। दार्शनिक प्रयत्नों का मूल उऋेश्य है जीवन के दु:खों का अन्त ढूढना और तात्त्विक प्रश्नों का प्रादुर्भाव इसी सिलसिले में हुआ।

भारतीय परम्परा में दर्शनशास्त्र धर्म से स्वतंत्र नहीं है। यहाँ धर्म और दर्शन में अलगाव नहीं है। भारतीय दर्शन उस विवेक की खोज है जिसको जान लेने से जो अज्ञात है, वह सब ज्ञात हो जाता है। इस दृष्टि से दर्शन अशेष ज्ञान यया वह समयक् ज्ञान है, जिसको जान लेने से जो अज्ञात है, वह सब ज्ञात हो जाता है और जाने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता है; मनुष्य में पूर्णता आती है।

भारत में दर्शन को दृष्टिशास्त्र कहा गया है। ऐसा माना जाता है कि दर्शन सत् दृष्टि देता है। सत् दृष्टि सही मायने में वास्तविक-अवास्तविक की समझ है। यह नीर-क्षीर विवेकी है। इसी आधार पर कुछ भारतीय विचारक मानते रहे हैं कि दु:खों का मूल कारण वास्तविक- अवास्तविक के अन्तर को नहीं समझ पाना है। इस शास्त्र के अनुसार दर्शन देखने का ढ़ंग से भिन्न हो जाता है अथवा विशेष हो जाता है। अर्थात् जगत् या फिर जीवन की परिस्थितियाँ परिवर्तित नहीं होती हैं। वे तो उसी रूप में रहती हैं पर उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है। दर्शनशास्त्र सही मायने में दृष्टिशास्त्र होने के कारण उसी दृष्टि में परिवर्त्त लाता है। तात्पर्य यह है कि हमारे चिन्तन की दिशा में अनुकूलता और प्रखरता आती है। हम विवेकपूर्ण विचार से परिपृष्टि होते हैं।

मानव प्रकृति का सबसे अनोखा उपहार है और मानव का सबसे अनोखा महाकाव्य स्वंय समाज है। भारतयी दर्शन के बार में परम्परागत रूप से एक बहुप्रचलित भ्रामक धारणा यह है कि वह ईश्वरवाद से ओत-प्रोत है; जो लोग दर्शनशास्त्र की जानकारी नहीं

रखते है, उने बीच में यह प्रचलित है। दाअरणस्वरूप राधाकृष्णन अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन का परिचय में लिखते हैं 'भारतीय चिन्तन में ईश्वर और जीव के बीच एक सामच्जस्य है। विशव में मनुष्य ईश्ववर की एक रचना है। समस्त विश्व ईश्वर के संकल्प से उत्पन्न हुआ है। '

परम्परा में ऐसे अनेक महत्वपूर्ण कालखण्ड हैं जिसमें मिथिला की दार्शनिक परम्परा अपने चरमोत्कर्ष पर पहूँची। करीब चार शताब्दियों के मध्य की इस अवधि में मिथिला विभिन्न शासकों और राजवंशो का अस्थिर केन्द्र बनी रही जबकि दर्शन के विभिन्न क्षेत्रों में यहाँ सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नति होती रही। पूर्व-मध्यकालीन मिथिला में विभिन्न धर्म एवं संप्रदाय के होने का उल्लेख मिलता है। इस अवधि की विभिन्न प्रतिमाएँ ब्राह्मण-धर्म से ही सम्बद्व हैं और बौद्व- धर्म से भी। शंकराचार्य, मुण्डन मिश्र, उदयनाचार्य आदि दार्शनिकों की कृतियों के सन्दर्भ में तथा इस प्रक्षेत्र से प्राप्त प्रतिमाओं के परिप्रेक्ष्य में मिथिला की आलोच्य अवधि का सांगोपांग अध्ययन किया जाना अपेक्षित प्रतीत होता है। मिथिला के विभिन्न सम्प्रदाय और धर्म से संबंधित दार्शनिक पहलू पल्लवित एवं परिवर्धित हुए। यहाँ एक ओर हमें वैष्णव, शैव, शात्त, बौद्व आदि विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि दिखाई देती है तो वहीं दूसरी और विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक स्रोतों की सुलभ कृतियों में दर्शनिक परम्परा के सामाजिक संदर्भो की जानकारी भी मिलती है।

मिथिला में जीवन, आत्मा और परमात्मा के परम सत्य के विभिन्न तत्वों के साथ विद्या के उस स्वरूप को भी देखते हैं जहाँ से वेदांत के बीच का निरूपण हुआ है। प्राचीन काल से वेद, उपनिषर्द और ब्राह्राण-ग्रंथों के अध्ययन-अध्यापन के मार्ग पर चलते हुए मिथिला के विद्वान् मनीषियों ने पूर्व-मध्यकाल तक आते-आते न्याय, मीमांसा, तर्क, दर्शनादि विभिन्न क्षेत्रों में श्रीधर, भवदेव, अनिरूद्व, चण्डेश्वर, उद्योतकर, मदन उपाध्याय, प्रीााकर, पक्षधर, उदयन, वाचस्पति, मण्डन, शंकर आदि ने अपनी विद्वत्ता एवं असाधरण कृतियों से मिथिला की दार्शनिक परम्परा को श्रेष्ठता प्रदान की। 'योगदर्शन' के प्रणेता पतञ्जलि का संबंध मिथिला से रहा है। मिथिला का समाज धर्ममूलक रहा है। यहाँ के लोग धर्म के प्रति आस्थावन् एवं जागरूक रहे है। यहाँ सभी धर्मों का समान रूप से बढ़ने और फलने-फूलने का समय मिला है। दरभंगाराज द्वारा प्रकाशित मिथिला मिहिर के विशेषांक मिथिलाञ्वल में मिथिला की दार्शनिक परम्परा तथा सांस्कृतिक समृद्वि का गंभीर विश्लेषण उपलब्ध है। महामोपाध्याय उमेश मिश्र रचित ग्रंथ इझिडयन फिलॉसफी में मिथिला की दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं का वर्णन उल्लेखनीय है। भारत में किसी भी अन्य प्रान्त को उतने नैयायिकों को उत्पन्न करने तथा जतने न्यायशास्त्र पर ग्रंथो को सृजन करने का सौभाग्य उतना नहीं प्राप्त हुआ जितना मिथिला को हुआ है। प्राचीन न्याय के प्रवर्तक गौतम तथा नव्यन्याय क ेजनक गंगेश उपाध्याय- दोनों ही मिथिला के निवासी थे। मीमांसशास्त्र की तीनों प्रचलित पद्वतियों के जन्मदाता कुमारिल भट्ट, प्रभाकर गुरू एवं मुरारि मिश्र मिथिला से सम्बद्व थे। शड्दर्शनों में न्याय, वैशेषिक, मीमांसा तथा सांख्य के क्रमशः आचार्य अक्षपाद गौतम, कणाद, जैमिनि तथा कपिल मिज्ञिलावासी माने जाते है।

न्यायदर्शन के ज्ञान का आधार न्यायसूत्र है जिसके रचयिता गौतम मुनि को माना जाता है। न्यायसूत्र को न्याय-दर्शन का प्रमाणिक ग्रंथ माना जाता है। अनेक भाष्यकारों ने न्यासूत्र पर टीका लिखकर न्याय-दर्शन का साहित्य समृद्व किया है। ऐसे टीकाकारों में वात्सयायन, चावस्पति मिश्र और उदयनाचार्य के नाम विशेष उल्लेखनीय है। न्यायदर्शन के समस्त साहिज्य को दो भागों में विभक्त किया जाता है। एक को 'प्राचीनन्याय' और दूसरे को 'नव्यन्याय' कहा जाता है। गौतम का न्यायसूत्र प्राचीनन्याय का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ कहा जा सकता है। गंगेश उपाध्याय की तत्त्वचिन्तामणि नामक ग्रंथ से न्वय-न्याय का प्रारंभ होता हैं प्राचीन न्याय में त्त्वशास्त्र पर अधिक जोर दिया गया है। 'नव्यन्याय' में तर्कशास्त्र पर अधिक जोर दिया गया है जबकि न्यायदर्शन में ज्ञान का स्वरूप प्रकाशयम माना गया है।

विशेषकदर्शन भारतीय विचारधारा में आस्तिक दर्शन कहा जाता है; क्योंकि वह अन्य आस्तिक दर्शनों की तरह वेद की प्रामाणिकता में विश्वास करता है। इस दर्शन के प्रणेता कणाद है। उनके विषय में कहा जाता है ि कवे अन्य-कणों को खेतों से चुनकर अपने जीवन को निर्वाह किया करते थे, इसलिए उनका नाम कणाद पड़ा। कणाद का असल नाम 'उलूक' था। इसी कारण वैशेषिकदर्शन को कणा-दर्शन अथवा 'औलूक्य दर्शन' की भी संज्ञा दी जाती है। वैशेषिकदर्शन को वैशेषिकदर्शन कहलाने का कारण यह बतलाया जाता है कि इस दर्शन में विशेष नामक पदार्थ की व्याख्या की गयी है। विशेष का मानने के कारण ही 'वैशेषिक' कहा जाता है। वैशेषिक के ज्ञान का आधर वैशेषिकसूत्र कहा जाता है जिसके रचयिता महर्षि कणाद को कहा जाता है जो मिथिलावासी थे।

सांख्यदर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल माने जाते हैं जो मिथिला के वासी है। कुछ लोगों ने कपिल को ब्रह्मा के पुत्र, कुछ लोगों ने विष्णु का अवतार तथा कुछ लोगों ने अग्नि का अवतार माना हैं इन विचारों को भले ही हम किवंदतियाँ कहकर टाल दें, किन्तु यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि कपिल एक विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्ति थे जिन्होंने सांख्यदर्शन का प्रणयन किया। इनकी विशिष्टता का जीता- जागता उदाहरण हमें वहाँ देखने को मिलता है जहाँ कृष्ण ने भगवद्गीता में कपिल को अपनी विभूतियों में गिनाया है- 'सिद्वानां कपिलो मुनिः' अर्थात् मैं सिद्वों में मैं कपिल मुनि हूँ। राधाकृष्णन ने कपिल को बुद्व से एक शताब्दी पूर्व माना है।

जैमिनीय मीमांसादर्शन के प्रणेता है जो मिथिलावासी थे। मीमांसादर्शन के विकास का कारण कर्म की यथार्थता को प्रमाणित करना माना जाता है। कहा जाता है कि लोगो को कर्म और रीतियों के प्रति संदेह हो चला था। वे यह समझने लगे थे किि हवन, यज्ञबलि आदि कर्मो से कोई लाभ नहीं हैं इसलिए यह आवश्यकता महसूस हुई कि हर कर्म के अर्थ को समझा दिया जाय तथा यह बतला दिया जाय कि किस कर्म से क्या फल मिलता है, मीमासांदर्शन का विकास इसी उऋेश्य से हुआ है। यही कारण है कि मीमांसा कर्म का दर्शन माना जाता है। जैमिनि का मीमांसासूत्र इस दर्शन की रूपरेखा स्पष्ट करता है। इस सूत्र पर शबर ने एक भाष्य लिखा जो 'शबरभाष्य' कहलाता है। बाद में मीमांसा के दो सम्प्रदाय हो गये जिनमें एक के प्रणेता कुमारिल भट्ट और दूसरे के प्रभाकर मिश्र हुए जो मिथिलावासी थे।

योगदर्शन के प्रणेता पतञ्जलि का संबंध मिथिला से रहा है। उन्हीं के नाम पर इस दर्शन को 'पातञ्जल-दर्शन' भी कहा जाता है। योग के मतानुसार मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए विवेक अर्थात् ज्ञान को ही पर्याप्त् नहीं माना गया है, बल्कि योगाभ्यास पर भी बल दिया गया है। योगभ्यास पर बल देना इस दर्शन की निजी विशिष्टता है। इस प्रकार योगदर्शन का व्यवहारिक पक्ष अत्यधिक प्रधान है। योगदर्शन एक व्यवाहरिक दर्शन है।

गीता के 'कर्मयोग' के प्रति मिाला में अटूट आस्था है। गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग कहा जा सकता है। गीता की रचना निष्क्रिय और किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्म के विषय में आग्रह कराने के उऋेश्य से की गई है। यही कारण है कि गीता में श्रीकृष्ण निरन्तर कर्म करने आ ओदश देते है। गीता का मुख्य विषय कर्मयोग कहा जा सकता है। कर्म का अर्थ आचरण है। उचित कर्म से ईश्वर को अपनाया जा सकता है। शुभ कर्म वह है जो ईश्वर की एकता का ज्ञान दे। गीता के समय से शुद्वाचरण के अनेक विचार प्रचलित हुए है। वैदिक कर्म के मतानुसार मान वैदिक कर्मो के द्वारा अपने आचरण को शुद्व कर सकता है। उपनिषद् में कर्म को सत्य प्राप्ति में सहायक कहा गया है। गीता में सत्य की प्राप्ति के लिए कर्म को करने का आदेश दिया गया है। इस प्रकार भारतीय दर्शन के विकास में मिथिला का काफी योगदान है।

सन्दर्भ

1. Problem of Philosophy, P.70
2. Indian Philosophy, pp. 18-19
3. Six system of Indian Philosophy, p.370
4. Ibid, p. vii-ix
5. A primer of Indian Logic, Part 2, p.12, 2nd Ed.
6. Indian Philosophy, Part-II, p.234
7. ऋग्वेद, 1.89.10
8. वही, 9.108.8
9. वही, 1.105.15
10. वही, 6.47.1
11. वही, 3.5.1

शिक्षक शिक्षा में मूल्यांकन की आवश्यकता

आदित्य नारायण चौधारी

शोधार्थी छात्र

राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति का आधारभूत तत्व शिक्षा होती है एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हर राष्ट्र का सर्वांगीण विकास कर सकती है। शिक्षा रूपी पुनीत कर्त्तव्य का निर्वहन शिक्षक के द्वारा किया जाता है। आज भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में जनसंख्या वृद्वि हो रही एवं इस कारण से विद्यालयों की संख्या में दिनानुदिन इजाफा हो रहा है उसी प्रकार विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या बढ़ रही है। एक अच्छे शिक्षक का विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्रों को गुणत्तापूर्ण शिक्षा देने उत्तरदायित्व है। केवल शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों से बी0एड0/ एम0एड0 या अन्य का उपाधि प्रापत कर शिक्षक बन जाने भर से ही उसके दायिव्त का निर्वहन मान लेना अतिशयोक्ति है। आधुनिकीकरण एवं दारीकरण के दौर में जिस प्रकार विद्यार्थियों का समय-समय पर मूल्यांकन कर उसके आन्तरिक गुणों का विकाय किया जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षकों को इस उदारीकरण के दौर में नित नए खोजों का ज्ञान कराकर शिक्षकों की शिक्षित किया जाना एवं उसका मूल्यांकन कर उसके गुणों का संवर्धन अत्यावश्यक है।

उदारीकरण के दौर में शिक्षण कार्य हमारे समाज के लिए चुनैतीपूर्ण कार्य होता जा रहा है। नित नए प्रौद्योगिकीयों के विकास एवं उसका शिक्षकों में अभाव ने शिक्षण कार्य को कठिन बना दिया है। इस हेतु शिक्षक कभी-कभी असहजता की स्थिति महसूस करते हैं। यह स्थिति शिक्षक को कमजोर करती है एवं उनके बौद्विक नैतिक क्षमता का ह्रास होता है, जिसका प्रथाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षण कार्य पर पड़ता है एवं शिक्षकों में समय-समय पर शिक्षा के नए खोजों से उन्हें अवगत कराते रहने से उनके गुणों का विकास अवश्यंभावी है। यह मूल्यांकन द्वारा ही संभव है।

उदारीकरण के दौर में समूचे विश्व में भारत के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु शिक्षक शिक्षा को मूल्यांकन संबंधी कार्यो में उदासीनता के लिए शिक्षक ही नहीं वरन शासन तंत्र दोशी है। केवल शिक्षक की भर्ती कर लेने से सरकार को अपने शैक्षिक कर्तव्यों को इतिश्री नहीं समझना चाहिए। शिक्षक शिक्षा में थोड़े बहुत मूल्यांकन कर लेने भर से उनके दायित्व समाप्त नहीं माने जा सकते है, बल्कि समय-समय पर नवीनतम शिक्षा का ज्ञान शिक्षकों को कराना एवं उसके विधिपूर्वक मूल्यांकन से हम शैक्षिक स्तर से ऊँचा उठा सकता है।

मूल्यांकन के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में अनेक लाभ होते है। नवीन शिक्षण विधि क्या है। शिक्षक को अपने शिक्षण कार्यो में कितनी सफलता मिली है। शिक्षक छात्रों के हित को किस प्रकार समायोजित करता है। ताकि अनेक प्रशन है, जिनका उत्तर मूल्यांकन द्वारा ही प्राप्त होता है। शिक्षक के अपने सीमाओं का एवं दूर करना मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा ही संभव है।

शिक्षक शिक्षा में मूल्यांकन के माध्यम से शिक्षकों का स्वंय के प्रगति में ज्ञान प्राप्त होता है। इसके आधार पर वह अपेन समस्याओं का राज प्राप्त कर सकते है, अपने मार्गदर्शन द्वारा गुणात्मक बुद्वि कर सकते है। इस हेतु तत्कालीन परिस्थिति में यह आवश्यक है कि सरकार (केन्द्र या राज्य) द्वारा समय-समय पर मूल्यांकन संबंधी कार्य को व्यापक स्तर पर किया जाना चाहिए। यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्र या अविकासित के विद्यालय/महाविद्यालय के शिक्षकों को निश्चित रूप से मूल्यांकन प्रक्रिया में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित की आवश्यकता है, क्योंकि अनेक विद्वानों एवं दार्शनिकों का कथन है कि भारत की आत्मा ग्रामीण में निवास करती है और ग्रामों का अनेक स्तर यथा शैक्षिक स्तर, नैतिक स्तर सामाजिक स्तर पर विकसित किए बिना भारत का विकास संभव नहीं

है। अत: कहा जा सकता है कि मूल्यांकन मनुष्य को नए आयामों से परिचित कराकर उसके विकास करने का सर्वोत्कृष्ट प्रक्रिया है।

आज विश्व के अनेक देश अपने शिक्ष्कों को नए-नए शिक्षण विधियों आदि से परिचित कराकर अपने राष्ट्र को आगे बढ़ाने की दिशा में प्रयत्नशील है जबकि भारत महाशक्ति बनने की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहा है। महाशक्ति बनने हेतु यहाँ के शैक्षिक स्तर को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है और विश्व के क्षितिज पर अपने शैक्षिक स्तर की परचम लहराने हेतु चहाँ के शैक्षिक गतिविधि एवं शैक्षिक स्तर को उन्नत बनाए जाने की आवश्यकता है। और यह कार्य शिक्षक ही कर सकते है। अत: शिक्षकों को प्रशिक्षित कर नए तकनीकी से अवगत करा कर समय-समय पर मूल्यांकन की प्रक्रिया को अपनाकर ही हम वैश्विक स्तर पर अपने आपको खड़ा कर सकने में सक्षम हो सकते है।

अत: शिक्षक के बौद्विक, मानसिक, शैक्षिक स्तर पर मजबूत बनाए रखने हेतु शिक्षक शिक्षा में मूल्यांकन की आवश्यकता है। मूल्यांकन प्रक्रिया को व्यापक रूप से अपनाकर ही हम अपने शैक्षिक स्तर का मजबूत नींव खड़ा कर सकने में सक्षम प्रतीत हो सकते है। इस हेतु नीवनीकरण मूल्यांकन विधियों को आत्मसात कर/अपनाकर हम अपने आपको मजबूम कर सकते है। अत: आज के इस दौर में शिक्षक शिक्षा में मूल्यांकन आत्यावश्यक है।

संदर्भ सूची

1. सक्सेना, एन.आर. स्वरूप एवं संजय कुमार, 2013, 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्वान्त' आर.ला बुक डिपो, मेरठ
2. गुप्ता, एस.पी.एवं गुप्ता, अल्का, 2012 'भारतीय शिक्षा का इतिहास: विकास एवं समस्याएँ शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

उगनाक दयादवादमे दलितक चित्रण

दीपक कुमार पटेल

सहायक शिक्षक, रामहंस उच्च विद्यालय, चतरा, मधेपुरा, बिहार

मैथिली साहित्यक जाज्वल्यमान कवि, कथाकार, पत्रकार, अनुवादक, उपन्यासकार, उच्चकोटिक समीक्षक आ निविष्ट विद्वान पण्डित आचार्य सुरेन्द्र झा 'सुमन' एहि भूभागक अपरिचित व्यक्तित्व नहि, अपितु संस्कृत, मैथिली, हिन्दी, बंगला आदि भाषाक अधिकारी विद्वानक रूपमे सेहो जानल जाइत छथि। मिथिला-मैथिल आ मैथिलीक विकासक परिप्रेक्ष्यमे चिंतन-अवदान हिनक पोथीकेँ पढ़ि स्वतः बूझल जा सकैछ। 1989 ई.मे प्रकाशित एहि पोथीक रचना सामाजिक यथार्थ आ वर्ग-संघर्षकेँ केन्द्रबिन्दु बना कऽ कयल गेल अछि। उगना शब्दक स्मरण मात्र सँ हमरा लोकनिकेँ विद्यापति-उगना मन पड़ैत छथि। मन पड़ैत अछि विद्यापतिक लेल उगनाक निष्ठा-भाव। उगनाकेँ मात्र स्नेह आ सम्मान अपेक्षा रहैक। जाहि क्षण ओकर आत्म-सम्मानपर आघात भेलैक, तत्क्षणहि ओ अदृश्य भऽ गेल, अर्थात् सेवा-भावमे रत लोक जकरा सोझ शब्दमे नोकर-चाकर-बहिया कहबैक, कँ परिश्रमक अनुरूप उचित पारिश्रमिकक संग सम्मान सेहो चाही। एहि प्रकारक भाव अथवा सामाजिक व्यवस्था पूर्वमे नहि रहैक। एहि वर्गक लोककेँ मनुक्खे नहि मानल जाइत रहैक। मुदा आबक परिस्थिति ओ व्यवस्था भिन्न छैक- 'बाबू भैया बुझि पड़ैछ, खर-खबासकेँ खढ़ो-पातसँ निघिन्न बुझै छथि, तँ हमरो लोकनि देखा देबनि जे हमसब की छी।'[1]

एकर कथानक संक्षेपहि देखल जा सकैछ :

मधुपुर गाममे विभिन्न वर्ग-वर्णक लोक निज व्यवसायमे लागल रहय। ओहिमे एक वर्ग खबास जे मेहनतिक अनुरूप पारिश्रमिक सँ वंचित, अदौकाल सँ जमीन्दार-बबुआनक घर सँ बाहर धरिक काजमे समर्पित रहैत छल। एहन वर्गक लोक मालिकक ओहिठाम रहि दू-चारि आखर पढ़ियो-लिखि लैत छल। यद्यपि मेहनतिक अनुरूप परिश्रमिक नहि भेटबाक मलाल रहितहि छलैक, परिवारक भरण-पोषणक समुचित अभाव खलिते रहैक तथापि मानहीन जीवन जीबैत रहल। मुदा एहनो नहि रहेक जे ई सभ ओकरा स्वीकार्य रहैक। विवशताकेँ अँजने जाइत रहय। ओ सभ भीतर-भीतर सुनगैत रहल आ असहय भेलापर तकर प्रतिकार करबामे पछुआयल नहि। गामक खबास वर्गक मुखिया छीतन, जे जाति-पंचायतक छड़ीदार सेहो रहैक, तकर परिवारमे पत्नी रधिया, भाय तुलसी आ छोट-छोट नेना रहैक। ओकर सभक मालिक रहथिन निरसू बाबू। तुलसी काजो करय आ इस्कूलो जाय। ओतय ओकर सहपाठी रहैक मालिकक बेटा नन्दकिशोर। नन्दकिशोर पढ़ब-लिखब आ परीक्षा पास करब तुलसीक मदति आ सहयोगसँ पूर्ण होइक। मुदा घरपर ओ नन्दकिशोरक नोकर बनि जाय। तुलसी नन्दकिशोरे तुलनामे अधिक तेज आ मेहनतिया सेहो छल, ओ स्वाभिमानक पाठ सेहो पढ़ने छल, ताही बलँ आगाँ बढ़ैत गेल।

तुलसीकेँ हाईस्कूलमे पढ़बाक लेल नन्दकिशोरक चाकर बनिकऽ रहऽ पड़ितैक, से बुझि ओ निश्चय कयलक जे चाकरी करैत ओ आगाँ नहि पढ़त। तुलसी गामहिमे रहि अपन समाजक नेना सभकेँ पढ़बबऽ लागल, तकरे प्रभावेँ गाममे प्रतिष्ठित भेल। क्रमशः गामक एकटा सभ्य ओ प्रतिष्ठित व्यक्ति पं. मोहन मिसर तुलसीकेँ अपन पुस्तकालयक देख-रेख करबाक भार देलथिन, ओ देख-रेखक संग पढ़बो करय। पढ़बाक लेल ओकरा अथाह सामग्री भेटलैक। बेटाकेँ मिडिल पास कयलापर निरसू बाबू भोज कयलनि। तुलसी सेहो रहैक। एकरा अन्तक रड़भोजमे ऐंठ-कूठमे खयबाक लेल कहल गेलैक। ओर स्वाभिमान एहि लेल प्रस्तुत नहि रहैक। ओ चुप्पहि घर घुरि आयल।

रधिया मालिकक उच्छृंखल सँ आहत भेलि। एतबे नहि, ओर नारी-शक्ति जगलैक। ओ हुनक हाथ झमाड़ि झनकैत चोट्टहि घर घुरि आयलि। काज करब छोड़ि देलक। छीतन सेहो चुप नहि बैसल। ओ निरस बाबूक दलानपर जाय हुनका फज्झति कयलकनि आ अपमानक बदला अपमान करबाक गप कहि गेलनि-

'आब के टहल-टिकोड़ा करए आओत, पेट छैक तऽ इज्जतियो छैकख़्ख़ बाबू भैया जखन ककरो इज्जति लेबा पर तुलि गेल तँ अपनो बेइजत होयता।'[2]

ओहो काज करब छोड़ि दैछ। टोल भरिक समाज एहि घटना सँ स्तब्ध! सर्वत्र एकर चर्चा-समर्थन भेलैक।

रधियाकेँ सर्मा-बुत्ता, वयस आ काज करबाक क्षमतापर गर्व रहैक तँ एक दिन झूस पारिश्रमिक दैत देखि चन्द्रकलासँ अड़ि गेल-झूकल नहि। चन्द्रकला निरसू बाबूक विधवा सारि रहथिन। एहन घटना-परिघटनाक प्रभाव सँ सम्पूर्ण निम्नवर्गीय समाज एकाकार भऽ वर्ग-संघर्षक विगुल फकलक। छीतन, रधिया आ ओहि वर्गक आनहु लोक अपन इज्जतिपर प्रहार मेहनतिक अनुरूप पारिश्रमिकमे कटौती, बेगारी खटब, अपमानित जीवनक करब प्रारम्भ कऽ देलक। हकक लेल अड़ऽ लागल। भीतरे-भीतरे अनुकूल परिस्थितिक लेल अपन आन्तरिक धाहकेँ प्रज्वलित कयने रहल। रधिया आ छीतन खबासी छोड़ि आन-काज करऽ लागल तऽ तुलसी गामहिक हाईस्कूलमे पढ़यबाक काज करऽ लागल।

तुलसी शिक्षण कार्यक अतिरिक्त अपन समाजकेँ न्यायोचित हक, पारिश्रमिक, मान-सम्मान दिअयबामे आ स्वाभिमान जगयबाक लेल तकरा सभकेँ सचेत करऽ लागल। चिर-काल सँ चलैत आबि रहल वैवाहिक रूढ़ि विरोध ओ मैथिल महासभाक अन्तर्निहित उद्येश्यकेँ बुझि अपनहु जातिक संगठनपर जोर देलक। कोशीक विभिषिका सँ त्रस्त-पीड़ित जनजीवनक सेवा तुलसी सपरिवार समर्पण भावें कयलक। मलेरिया सँ आक्रान्त गाम भरिक समस्त उच्च-निम्नवर्गीय समाजक लोककेँ अपन संगठन आ सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाक सहयोग सँ सेवा कयलक। उपन्यासमे सहयोगक संगहि अरयल असंतोषक भाव सेहो प्रकट भेल अछि-

'परंच एकर कचोट अवश्य रहलैक जे धनुकटोली सबसँ बेसी बाढ़िक चपेटमे छल, तकरा लेल तेहन किछु नहि ख़्ख़।'[3]

लगले पंचायत चुनावमे मुखिया पदक लेल तुलसी उम्मीदवार भेल आ जितबो कयल। गामक चहुमुखी विकासक संग शोषित वर्गकेँ उचित पारिश्रमिक, अधिकार, सम्मान आ सरकारी स्तर सँ भूमिहीनकेँ बास-डीह आ किछु कृषियोग्य भूमि उपलब्ध करौलक। मलेरियासँ पीड़ित एकटा बेसहारा नवयुवतीकेँ स्वास्थ्य लाभ करौलक पश्चात् ओकरहि संग विवाह कऽ नव आदर्श स्थापना कयलक। गामक चहुमुखी विकास संग मिथिला-मैथिल आ मैथिलीक गरिमा-मर्यादा आ सभ्यता-सांस्कृतिकेँ अक्षुण्ण रखबामे दलित समाजक युवावर्गक प्रतिनिधित्व ओ आदर्श नागरिक होयबाक उदाहरण प्रस्तुत सेहो कयलक।

स्वतंयोत्तर मैथिली उपन्यासमे वर्ग-संघर्षक विषयकेँ लऽ एहि उपन्यासक विशिष्ट योगदान छैक। एहि क्रममे आचार्य सुमन अपन मधुवर्षी लेखनीक प्रयोग ओहन वर्ग-समुदायक उत्थानक लेल कयलनि जकरापर ताधरि कोनहु साहित्यकारक अन्तर्दृष्टि नहि पड़ल छल। युगद्रष्टा सुमनजी अपन उपन्यासक नाम देलनि 'उगनाक दयादवाद'। एकर कथानक स्वतंत्रता पूर्व सँ प्रारम्भ भऽ स्वातंयोत्तरक कालखण्डे थिकै। एहि कालखण्डमे सामाजिक, राजनीतिक ओ प्रशासन दिस सँ ओहन वर्गक अधिकार, सम्मान ओ जीविकादि लेल पुरजोर प्रयास चलि रहल छलैक, जे उपन्यासमे वर्णित अछि। एहने समयमे आचार्य सुमन अपन चिर-परिचित शैलीमे समाजकेँ 'उगनाक दयावाद' नामक उपन्यासक उपहार प्रदान कयलनि, जाहिमे हुनक विराट अन्तर्दृष्टि मुखरित अछि। उगना समाजक वर्तमान दशा-दिशा, आशा-आकांक्षा, हे-अधिकारादिक इतिवृति ओ ताहिमे सुधार अनबाक एक अभिनव प्रयासक नाम थिक 'उगनाक दयावाद'।

आयार्य सुमन अपन बहुआयामी प्रतिभाक प्रयोग समरस समाजक निर्माण हेतु विविध जाति-धर्मक लोकक हितार्थ कयलनि आ विविध वर्गक आचार-व्यवहार-संस्कार, कौलिक परम्पराक परिपालन, सभ्यता-संस्कृतिक विकास दिस नित्य-प्रति अग्रसर रहबाक जीबट भावकेँ प्रश्रय देलनि। संगहि ओहि समाजक पहिल भूख ओर मान सहित जीवनकेँ प्रभावशाली ढ़गेँ प्रकट कयलनि। पहिने मान-सम्मान, तकर बाद आन-आन चीज छैक। एकर उद्घोज़ आइ सँ छओ सै वर्ष पूर्वहि महाकवि विद्यापति कऽ गेल छथि-

मान विहूना भोअना सत्तुक देओल राज।
सरण पइट्ठँ जीअना तीनू काअर काज।।[4]

जे सनातन सत्य छैक आ रहतैक। अन्ततः एहि उपन्यासमे आमूल परिवर्तन देखाओल गेल छैक। अर्थात् उगनाक समाजमे मान-सम्मान, अर्थ-प्रभुता ओ प्रशासनमे सहभागिता स्थापित कऽ आचार्य 'सुमन' व्यापक दृष्टिकोणक परिचय देलन अछि।

एहि समाजमे नवता-चेतनाक ऊहि-दृष्टि छीतनमे प्रथमहि दृष्टिगत होइछ जे क्रमशः तुलसीमे पूर्णतः विकसित एवं समग्रताक संग धरातलपर प्रकट भलैक आ सम्पूर्ण समाज ओहि जागरणक उद्घोषमे संग भऽ गेलैक। से मात्र ओहि गामक नहि सम्पूर्ण मिथिलांचल,

बिहार ओ बंगाल धरि ई परिदृश्य रहलैक। उपन्यासमे वर्णित खबास दिस सँ विरोधक सूत्रपात स्त्रीपाते द्वारा भेल छैक। इहो देखल गेल अछि जे उच्चवर्गक तुलनामे निम्नवर्गीय महिला समाजक स्त्री सदा सँ अपन अस्तित्व ओ अधिकार लेल चेतनशील रहल अछि। भोरूकवा, ठुमुकि बहू कमला, पृथ्वीपुत्र, दूधकूल आदि उपन्यासमे तकर दृष्टांत भेटैत अछि।

वस्तुत: एहि उपन्यासमे उपन्यासकार यथार्थक माटि-पानिपर आदर्शक भव्य-प्राण स्थापित करबामे पूर्ण सफल भेल छथि। समाजक सर्वांगीण विकासमे पछुआयल वर्गक कायाकल्प मैथिल-संस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक रूढ़िपर प्रहार, मिथिला राज्यक औचित्य आ जीवनक आदर्शक महताक पुनर्स्थापना उपन्यासक अभिष्ठ थिक। तँ ई कहल जा सकैछ जे नवजागरणक संगहि परम्परागत संस्कृतिक सुरक्षा आ तत्सम्बन्धी मान्यता एहि उपन्यासक युगबोध थिकै। एकर केन्द्रबिन्दुमे सामाजिक प्रेम, एकता-भाव छैक।

शिक्षित व्यक्तित्क अपन विचार, ओकर आदर्श समाजहुँ बदलि सकैछ। ओकर सेवा जाति-धर्म, परिवार एतेक धरि जे अपन समाजहुँ सँ उच्चस्थ भऽ जाइछ। तँ ने मलेरिया सँ पीड़ित निरस बाबूक सेवा लेल तुलसी रधियाकेँ स्वीकृति देलकैक। तँ ने ओहि पीड़ित मानवताक सेवामे, कलकत्ताक संस्था रामकृष्ण मिशन, निवेदिता महिला आश्रमक सदस्यगण कपड़ा, दूधक डिब्बा आ दवाइ लऽ कऽ प्रथमहि पहुँचि समर्पित भऽ गेलैक-सेवा ही परमो धर्म:।

अपन समाजक नेता तुलसी पंचायतक चुनाव जीति कऽ मुखिया बनि प्रशासनक अंग बनल। बहिया-वृति परिवारक तुलसीक चेतनाक स्फुरण ओ जागरणक कारण भलैक ओकर आहत अहं ओ अभिमान जाहिसँ ओकर स्वत्व ओ स्वाभिमान जागृत भेलैक आ ओ अन्तत: एकटा चाकर-बहिया सँ समाज-सुधारक एवं शासक-मुखिया बनि समाजमे समादृत भेल। वस्तुत: 'उगनाक दयावाद' आचार्य सुमनक विराट व्यक्तित्वक अनुरूप हुनक व्यापक अन्तर्दृष्टिक सृष्टि ओ बहिया-वर्गक स्वाभिमानक कथा थिक।

संदर्भ सूची :

1. उगनाक दयावाद- सुरेन्द्र झा 'सुमन', श्री भूपेन्द्र झा, मैथिली मन्दिर, मिथिला प्रेस, राजकुमार गंज, दरभंगा, पृ. - 09
2. वैह, पृ.- 13
3. वैह, पृ.- 45
4. कीर्तिलता- विद्यापतिक, सम्पादक- सुरेन्द्र झा 'सुमन' श्री भूपेन्द्र झा, मैथिली मन्दिर, मिथिला प्रेस, राजकुमार गंज, दरभंगा, पृ. - 27

जनसंख्या वृद्धि का सांस्कृतिक एवम आर्थिक परिवेश

अर्चना शंकर

पीएच.डी., ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है तथा संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2028 में यह चीन को पीछे छोड़कर प्रथम स्थान पर आ जाएगा। हालांकि, भारत ने प्रजनन दर (FR) को कम करने की दिशा में प्रभावशाली प्रगति का प्रदर्शन किया है। वर्ष 2015 से 2020 के मध्य औसत प्रजनन दर 2.3 प्रति महिला दर्ज की गई है।

जनसंख्या वृद्धि की वजह से गरीबी, भूख और कुपोषण की समस्या को प्रभावी ढंग से दूर करने और बेहतर स्वास्थ्य एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में बाधा आती है। इससे सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (SDG) संख्या 1, 2, 3 और 4 प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो रहे हैं।

प्रस्तुत लेख में जनसंख्या के सांस्कृतिक एवम आर्थिक कारणों की संक्षिप्त की चर्चा की गयी है।

परिचय

विश्व जनसंख्या वर्तमान में रहने वाले मनुष्यों की कुल संख्या है और अप्रैल 2019 तक 7.7 बिलियन जनसंख्या हैं। दुनिया की आबादी को 1 बिलियन तक पहुंचने में 200,000 साल का समय लगा; और 7 बिलियन तक पहुँचने के लिए केवल 200 साल अधिक का समय लगा।

जनसंख्या न सिर्फ भारत बल्कि दुनियाभर के ज्वलंत मुद्दों में से एक है। दुनिया में कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ अत्यधिक जनसँख्या हैं। जनसंख्या विस्फोट का अर्थ है किसी विशेष क्षेत्र में मनुष्यों की जनसंख्या में निरंतर वृद्धि। यह या तो किसी शहर में या फिर किसी भी देश में हो सकता है।

सामाजिक परिवेश का शिक्षा पर गहरा प्रभाव होता है। समाज से नैतिक मूल्यों का विकास होता है। विद्यालयी शिक्षा में अर्जित ज्ञान का व्यवहारिक प्रयोग समाज में ही होता है।

घर में लड़ाई-झगड़े, मारपीट गाली-गलौज, मद्यपान, धूम्रपान, जुआ, ताश आदि की स्थिति बच्चे के मानसिक व नैतिक मूल्यों के विकास को कमजोर करती है। बच्चे इन अवगुणों का जल्दी अनुकरण करते हैं।

समकालीन समाज में सामाजिक परिवर्तन में विभिन्न कारकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक आर्थिक हैं केवल भारत में ही नहीं बल्कि संसार के सभी समाजों में आधुनिक काल में आर्थिक कारकों से ही सबसे अधिक सामाजिक परिवर्तन हुआ है।

जनसंख्या के बारे में कुछ तथ्य

- साल 2018 की जनगणना के अनुसार, भारत की जनसंख्या 135.26 करोड़ थी।
- भारत में, पूरी आबादी में 48.04 प्रतिशत महिलाएं और 51.96 प्रतिशत पुरुष हैं।

- केरल वह राज्य है, जहाँ देश में महिलाओं का अनुपात सबसे अधिक हैं।
- भारत में दुनिया की आबादी का 17.7 प्रतिशत हिस्सा है और दुनिया की 2.4 प्रतिशत भूमि है जो 135.79 मिलियन वर्ग किमी है।
- भारत दुनिया में दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है और चीन पहले स्थान पर है।
- भारत में उत्तर प्रदेश की जनसंख्या ब्राजील की जनसंख्या के बराबर है।
- जनसंख्या के बारे में ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2036 तक इसके 1.52 बिलियन तक बढ़ने की उम्मीद है जो वर्तमान जनसंख्या का 30 प्रतिशत से अधिक है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण

जनसंख्या बढ़ने के कई कारण हो सकते हैं। जिसे नीचे लिखा गया है। इसके अलावा भी जनसंख्या बढ़ने के कारण हो सकते हैं।

धर्म और संस्कृतिः भारत की जनसंख्या में अलग-अलग धर्म एवं संस्कृति के लोग रहते हैं। जनसंख्या नियंत्रण करने के साधनों में कमी नहीं है। लेकिन हमारा धर्म और संस्कृति इसके बाधक बन जाते हैं। दूरदराज के गांव कस्बों में रहने वाले लोगों तक गर्भनिरोधक की सही जानकारी भी नहीं पहुंच पाता है।

मृत्यु दर में कमीः भारत में पिछले कई दशकों से मेडिकल सुविधाएँ बढ़ा है। जिनके कारण भारत में मृत्यु दर में काफी कमी आया है। उसके साथ लोगों की आय भी बढ़ा है। जिससे उनका रहन-सहन और खान-पान पहले से काफी बेहतर हुआ है।

जन्म दर में तेजीः भारत के पिछले कई दशकों जनसंख्या विस्फोट के नाम से जाना गया। लेकिन उसका रफ्तार आज भी कम नहीं हुआ है। आज भी जन्म दर अन्य देश के मुकाबले भारत में ज्यादा है।

जल्द विवाहः भारत में विवाह के लिए कानून लड़कों के लिए 21 वर्ष है। जबकि लड़कियों के लिए 18 वर्ष की आयु तय की गई है। नॉर्थ ईस्ट के कुछ स्टेट में यह आयु सीमा इस से भी कम है। दहेज व धार्मिक कारणों के कारण लोग जल्दी विवाह कर लेते हैं। पहले के दशकों में देखा गया था कि बाल विवाह ज्यादा होता था।

गरीबी और निरक्षरता

गरीबी भी बहुत बड़ा कारण है। बेटी के पिता अपने बेटी की शादी जल्द से जल्द करवाने की सोचते हैं। लड़कियों के शिक्षा पूरा होने से पहले ही उसकी शादी कर दी जाती है।

अपने देश में शिक्षा की कमी किसी से छुपा नहीं है। अशिक्षित लोग गर्भनिरोधक का प्रयोग करने में सार्थक नहीं होते हैं। ना ही वह मानसिक रूप से तैयार होते हैं कि हमें बच्चे कम हो।

ज्यादा बच्चों की प्रवृत्ति भी देखी जाती है। उसे लगता है कि अगर हमारे बच्चे ज्यादा होंगे तो हमारे कमाने वालों का स्रोत भी बढ़ेगा। उसके साथ हमें सरकारी योजनाओं का भी लाभ ज्यादा मिलेगा।

क्योंकि भारत में परिवार की संख्या के हिसाब से कुछ सरकारी योजनाओं का लाभ दिया जाता है। बिहार, भारत का सबसे कम साक्षरता वाला राज्य है। उसी कारण वहां का जनसंख्या वृद्धि दर 25-1 प्रतिशत है।

कमजोर मानसिकताः जनसंख्या वृद्धि में सांस्कृतिक आदर्शों का भी काफी महत्व रहा है। क्योंकि भारत में यह माना जाता है कि पुत्र कमाई का स्रोत होता है।

उसके लिए वह कई प्रयास करते हैं। कई धर्म ऐसे भी हैं जहां पर लोग जनसंख्या नियंत्रण के सभी तरीकों को अपनाने से एतराज करते हैं।

निष्कर्ष

भारत में जनसंख्या समान रूप से नहीं बढ़ रही है। नवीनतम राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) के अनुसार, संपत्ति तथा धन के आधार पर कुल प्रजनन दर (TFR) में विभिन्नता देखने को मिलती है। यह सबसे निर्धन समूह में 3.2 बच्चे प्रति महिला,

मध्य समूह में 2.5 बच्चे प्रति महिला तथा उच्च समूह में 1.5 बच्चे प्रति महिला है। इससे पता चलता है कि समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों में जनसंख्या वृद्धि अधिक देखने को मिलती है।

जनसंख्या नियंत्रण के सभी उपायों की जानकारी अभी भी गांव के लोगों में नहीं है। जिस कारण जनसंख्या का नियंत्रण होना मुश्किल हो रहा है।

भारत की सांस्कृतिक विरासत ऐसा है जहाँ पर लोग जनसंख्या नियंत्रण की बात खुलकर नहीं कर सकते हैं।

हम सभी को इन तथ्यों के बारे में जानना चाहिए और उसके बाद ही हम इसके बारे में सोच पाएंगे। ऐसे कई लोग हैं जो इसके बारे में सोचते भी नहीं हैं, फिर भी हमें दूसरों को शिक्षित करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।

सन्दर्भ

- "World Population Clock: 7.7 Billion People (2019) । Worldometers". www.worldometers.info (अंग्रेजी में)। मूल से 14 मई 2019 को पुरालेखित। अभिगमन तिथि 2019-04-27।
- Based on P.N. Mari Bhat, "Indian Demographic Scenario 2025", Institute of Economic Growth, New Delhi, Discussion Paper No. 27/2001.
- ग्लैड, जॉन। 2008 *Future Human Evolution: Eugenics in the Twenty-First Century* .
- प्रेस्टन, सैमूएल, पैट्रिक हुवेलाइन और मिशेल ग्युलोट। 2000। डेमोग्राफी: मेजरिंग एंड मॉडलिंग पॉप्युलेशन प्रोसेसेस ब्लैकवेल प्रकाशन।
- पॉल आर. एरलिश (1968), द पॉप्युलेशन बॉम्ब विवादास्पद नव- माल्थुसियन पुस्तिका
- लियोनिद ए. गवृलोव एंड नतालिया एस. गवरिलोवा (1991), द बायोलोजी ऑफ लाइफ स्पैन : अ क्वान्टिटेटिव अप्रोच न्यू यॉर्क: हार्वूड अकेडमिक प्रकाशक, ISBN 3-7186-4983-7
- फिलिप लॉन्गमन (2004), द एम्प्टी क्रैडल: हाउ फौलिंग बर्थ रेट्स थ्रेटन ग्लोबल प्रोस्पेरिटी एंड व्हाट टु डू अबाउट इट
- जो मैकफॉल्स (2007), Population: A Lively Introduction, जनसंख्या संदर्भ ब्यूरो
- बेन जे वाटेनबर्ग (2004), हाउ द न्यू डेमोग्राफी ऑफ दी पॉप्युलेशन विल शेप अवर फ्यूचर शिकागो आर डी, ISBN 1-56663-606-X
- *"India's population to surpass that of China around 2024: UN". The Times of India. 21 June 2017. Retrieved 16 January 2018.*

जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक कारक

वंदना शंकर

पीएच.डी., ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के लिए अमूल्य पूंजी होती है, जो वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करती है, वितरण करती है और उपभोग भी करती है। जनसंख्या देश के आर्थिक विकास का संवर्द्धन करती है। इसीलिए जनसंख्या को किसी भी देश के साधन और साध्य का दर्जा दिया जाता है।

लेकिन अति किसी भी चीज की अच्छी नहीं होती। फिर चाहे वह अति जनसंख्या की ही क्यों न हो? वर्तमान में भारत की जनसंख्या वृद्धि इसी सच्चाई का उदाहरण है। अनुमान है कि 2025 तक भारत की जनसंख्या बढ़कर 15 अरब हो जाएगी।

आने वाली पीढ़ियों को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए जनसंख्या पर नियंत्रण जरुरी है। जनसंख्या वृद्धि की गति से मानव की आवश्यकताओं और संसाधनों की पूर्ति करना असंभव होता जा रहा है। इससे जीवन मूल्यों में गिरावट आ रही है। अमीर और अमीर होते जा रहे हैं, गरीब और गरीब।

परिचय

जनसंख्या नियंत्रण एक संवेदनशील सामाजिक मुद्दा है। भारत ही वह एकमात्र देश है जहाँ 21वीं सदी में भी बच्चों का जन्म भगवान की देन माना जाता है। पढे-लिखे लोग भी यह समझने को तैयार नहीं हैं कि जनसंख्या वृद्धि स्वयं के हाथों में है जिसे हम चाहें तो रोक सकते है।

गाँवों में ऐसे लोगों को देखा जा सकता है जो वह तर्क देते मिल जाएंगे कि जितने हाथ होंगे उतना काम होगा। यह देश का दुर्भाग्य है कि हम सब यह सोच नहीं पाते कि दो हाथों के साथ-साथ एक पेट भी होता है जिसकी अपनी जरूरतें होती हैं।

जनसँख्या वृद्धि के आर्थिक कारक

समकालीन समाज में सामाजिक परिवर्तन में विभिन्न कारकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक आर्थिक हैं केवल भारत में ही नहीं बल्कि संसार के सभी समाजों में आधुनिक काल में आर्थिक कारकों से ही सबसे अधिक सामाजिक परिवर्तन हुआ है।

संक्षेप में ये आर्थिक कारक निम्नलिखित हैं–

(अ) औद्योगीकरण: औद्योगीकरण संसार में सामाजिक परिवर्तन का सबसे अधिक प्रमुख कारण है। औद्योगीकरण ही आधुनिकता का आधार है और संसार का कोई भी देश इसकी अवहेलना नहीं कर सकता क्योंकि इसी से मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध निश्चित होता है।

इस दृष्टि से यह सांस्कृतिक प्रगति का एक मापदण्ड है और बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कोई भी देश इसके बिना प्रगति नहीं कर सकता। सच तो यह है कि जिस देश में औद्योगीकरण जितना ही अधिक हुआ है वह देश अन्य देशों की तुलना में सब प्रकार से उतना ही आगे दिखलाई पड़ता है।

भारतवर्ष में औद्योगीकरण से नगरीकरण बढ़ा, व्यापार बढ़ा, लोगों के मिलने-जुलने के अवसर बड़े, आर्थिक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए और सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में संस्थाओं और मूल्यों का रूप बदल गया।

(ब) नगरीकरण: यद्यपि नगरों का विकास आर्थिक के अलावा अन्य कारणों से भी हुआ है किन्तु आर्थिक कारण और उनमें भी औद्योगीकरण नगरीकरण का प्रमुख कारण है। संसार में सब-कहीं नगरों की संख्या और बडे-बडे नगरों का विस्तार बढता जा रहा है। भारतवर्ष भी इसका उपवाद नहीं है।

नगरों की संख्या और विस्तार बढ़ने से देश में नगरीय समाज की विशेषताएँ जैसे भौतिकवाद व्यक्तिवाद, जीवन की तीव्र गति निर्वैयक्तिक सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, स्त्री-पुरुष का अधिक सामाजिक सम्पर्क, बड़े परिवारों का विघटन और संयुक्त परिवार के स्थान पर केन्द्रक परिवार की स्थापना, विवाह-पूर्व और विवाह से बाहर यौन-सम्बन्धों में वृद्धि इत्यादि अनेक सामाजिक लक्षण दिखलाई पड़ते हैं।

प्रौद्योगिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन के कारकों में आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष में बिजली, भाप तथा पैट्रोल से चलने वाले उत्पादन के यन्त्रों यातायात और सन्देशवहन के साधन तथा दैनिक जीवन के सैकड़ों कामों के लिए नई-नई मशीनों के आविष्कार से समाज का रूप बदलता जा रहा है और परिवार तथा विवाह जैसी संस्थाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

औद्योगिक विकास के प्रत्यक्ष प्रभाव श्रम संगठन, श्रम विभाजन, विशेषीकरण, जीवन की तीव्र गति तथा उत्पादन में वृद्धि आदि हैं। अप्रत्यक्ष रूप से देश में नगरीकरण और उससे बढ़ने वाली बेकारी, अपराध, किशोरापराध, वर्ग-संघर्ष आदि भी प्रौद्योगिकी के परिणाम हैं उद्योगों में मशीनों के प्रयोग से देश में नगरीकरण बढ़ा और कारखाना-पद्धति का उदय हुआ।

इससे नए वर्गों की उत्पत्ति हुई और नवीन विचारधाराएँ तथा आन्दोलन दिखलाई पड़ने लगे। स्त्रियों की स्थिति में भारी परिवर्तन हुआ। मूल्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भौतिकवाद, व्यक्तिवाद, विशेषीकरण आदि आधुनिक प्रौद्योगिकी का ही परिणाम है।

नगरीय जीवन में प्रौद्योगिकी का प्रभाव साम्प्रदायिक भावना में कमी, समय का मूल्य बढ़ जाना सामाजिक नियन्त्रण की न्यूनता, नैतिकता का निम्न स्तर, अपराधों की संख्या में वृद्धि तथा सामाजिक और व्यक्तिगत विघटन के रूप में देखा जा सकता है। प्रौद्योगिकी से सामाजिक परिवर्तन को एक छोटे से उदाहरण से समझाया जा सकता है।

निष्कर्ष

जब संसाधन सीमित हों, तब आर्थिक वृद्धि पाना असंभव भी हो सकता है। जनसंख्या को न देखकर यदि आर्थिक वृद्धि को देखें तो वे खतरे की ओर इशारा कर रहे हैं। जनसंख्या इसका कारक हो सकता है पर ऐसा नहीं है। समय बदल गया है-अब जनसंख्या वृद्धि गरीब देशों की ही समस्या नहीं है, यह धनी देशों की वृद्धि से जुड़ी है। वे संसाधनों का अत्यधिक उपभोग कर रहे हैं, साथ ही पर्यावरण को नष्ट कर रहे हैं।

भारत में जनसंख्या समान रूप से नहीं बढ़ रही है। नवीनतम राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) के अनुसार, संपत्ति तथा धन के आधार पर कुल प्रजनन दर (TFR) में विभिन्नता देखने को मिलती है। यह सबसे निर्धन समूह में 3.2 बच्चे प्रति महिला, मध्य समूह में 2.5 बच्चे प्रति महिला तथा उच्च समूह में 1.5 बच्चे प्रति महिला है। इससे पता चलता है कि समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों में जनसंख्या वृद्धि अधिक देखने को मिलती है।

भारत में युवाओं की एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी है जो अकुशल, बेरोजगार, सेवाओं और सुविधाओं पर भार जैसा है तथा अर्थव्यवस्था में उनका योगदान न्यूनतम है।

आज एक समस्या माइग्रेशन से भी जुड़ी है। संपन्न देशों के लोग जिस तरह से बाहरी देशों से आयी जनसंख्या से परेशान हैं, वह अपने आप में बड़ी समस्या के रूप में उभर रहा है। वे अपने यहां बाहर से आने वाले लोगों पर प्रतिबंध लगाते जा रहे हैं।

सन्दर्भ

- Hamilton, R. (2009, June). Agriculture's sustainable future: Breeding better crops. Scientific American. Retrieved from https://www.scientificamerican.com/article/agricultures-sustainable-future/
- Hanson, G., McIntosh, C. (2016). Is the Mediterranean the New Rio Grande? U.S. and EU immigration pressures in the long run. Journal of Economic Perspectives, 30(4), 47-82.
- Heady, D. D., Hodge, A. (2009). The effect of population growth on economic growth: A meta-regression analysis of the macroeconomic literature. Population and Development Review, 35, 221-248.
- Sethy, S. K., Sahoo, H. (2015). Investigating the relationship between population and economic growth: An analytical study of India. Indian Journal of Economics and Business, 14, 269-288.
- Simon, J. L. (1990). Population matters: People, resources, environment, and immigration. New Brunswick, NJ: Transaction Publishers.

लैंगिक असमानता: एक विश्लेषण

कुमारी रीमा

लिंग भेद प्राचीनकाल से चली आ रही ऐसी सामाजिक बुराई है जो भारतीय समाज के हर वर्ग में विद्यमान है। भारत जहाँ एक ओर आर्थिक-राजनीतिक प्रगति की ओर अग्रसर है वहीं देश में आज भी लैंगिक असमानता की स्थिति गंभीर बनी हुई है। वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक ने वैश्विक स्तर पर भी लैंगिक असमानता को समाप्त करने में सैकड़ों वर्ष लगने की संभावना व्यक्त की है। इन्ही परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अमेरिका की राजनीतिज्ञ हेलिरी क्लिंटन ने कहा कि- "महिलाएँ संसार में सबसे अप्रयुक्त भंडार हैं"।

किसी समाज की प्रगति का मानक केवल वहाँ का परिमाणात्मक विकास नहीं होना चाहिये। समाज के विकास में प्रतिभागीता कर रहे सभी व्यक्तियों के मध्य उस विकास का समावेशन भी होना जरूरी है। इसी परिदृश्य में नवीन विकासवादियों ने विकास की नवीन परिभाषा में वित्तीय, सामाजिक और राजनीतिक समावेशन को आत्मसात किया है।

लैंगिक असमानता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति प्राचीन या वैदिक काल में सुदृढ़ थी उस समय महिलाओं को सभा और समिति जैसी सामाजिक संस्थाओं में समान प्रतिनिधित्व मिलता था। इसके अतिरिक्त अपाला और लोपामुद्रा जैसी महिलाओं ने वेदों की रचना में भी योगदान दिया। लेकिन परवर्ती काल में महिलाओं की स्थिति लगातार कमजोर होती गई। प्राचीन काल के पश्चात् मध्य काल में महिलाओं की स्थिति लगातार खराब बनी रही। ऐसी परिस्थितियों में आधुनिक काल के कुछ बुद्धजीवियों द्वारा भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान लैंगिक समानता हेतु किये गए प्रयास अत्यधिक प्रशंसनीय रहे तथा इन प्रयासों से महिला समानता की नवीन अवधारणा का उद्भव हुआ एवं स्वतंत्रता के पश्चात् निर्मित भारतीय संविधान में भी महिलाओं के सशक्तीकरण से संबंधित विभिन्न प्रावधान किये गए।

वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक

नवीन विश्व में लैंगिक समानता की स्थिति का सबसे प्रखर और प्रगतिशील प्रकाशन विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum& WEF) द्वारा वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक के माध्यम से किया जाता है। इस सूचकांक में आधुनिक समानता के विभिन्न मुद्दों जैसे अवसर, शिक्षा की उपलब्धता, स्वास्थ्य की सुरक्षा के साथ ही आर्थिक और राजनीतिक भागीदारी जैसे मानकों का प्रयोग करते हुए 153 (वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक 2020 में 153 देशों को शामिल किया गया) देशों में महिलाओं की स्थितियों से संबंधित आँकड़ों का प्रकाशन किया गया।

वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक 2020

वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक- 2020 में भारत 91/100 लिंगानुपात के साथ 112वें स्थान पर रहा। उल्लेखनीय है कि वार्षिक रूप से जारी होने वाले इस सूचकांक में भारत पिछले दो वर्षों से 108वें स्थान पर बना हुआ था। इस सूचकांक के विभिन्न मानकों जैसे– स्वास्थ्य एवं उत्तरजीविता के क्षेत्र में भारत को 150वाँ, आर्थिक भागीदारी और अवसर क्षेत्र में भारत को 144वाँ स्थान, शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता के क्षेत्र में भारत को 112वाँ स्थान तथा राजनीतिक सशक्तीकरण और भागीदारी में अन्य बिंदुओं की अपेक्षा बेहतर स्थिति के साथ भारत को 18वाँ स्थान प्राप्त हुआ।

इस सूचकांक में आइसलैंड को सबसे कम लैंगिक भेदभाव करने वाला देश बताया गया। इसके विपरीत यमन (153वाँ), इराक (152वाँ) और पाकिस्तान (151वाँ) का प्रदर्शन सबसे खराब रहा।

WEF के अनुमान के अनुसार, विश्व में फैली व्यापक लैंगिक असमानता को दूर करने में लगभग 99.5 वर्ष लगेंगे, जबकि इसी सूचकांक में पिछले वर्ष के आँकड़ों के आधार पर यह अवधि 108 वर्ष अनुमानित थी।

भारत में लैंगिक असमानता के कारक

1. सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के बावजूद भी वर्तमान भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता जटिल रूप में व्याप्त है। इसके कारण महिलाओं को आज भी एक जिम्मेदारी समझा जाता है। महिलाओं को सामाजिक और पारिवारिक रुढ़ियों के कारण विकास के कम अवसर मिलते हैं, जिससे उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। सबरीमाला और तीन तलाक जैसे मुद्दों पर सामाजिक मतभेद पितृसत्तात्मक मानसिकता को प्रतिबिंबित करता है।
2. भारत में आज भी व्यावहारिक स्तर (वैधानिक स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार संपत्ति पर महिलाओं का समान अधिकार है) पर पारिवारिक संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार प्रचलन में नहीं है इसलिये उनके साथ विभेदकारी व्यवहार किया जाता है।
3. राजनीतिक स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था को छोड़कर उच्च वैधानिक संस्थाओं में महिलाओं के लिये किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था नहीं है।
4. वर्ष 2017-18 के नवीनतम आधिकारिक आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (Periodic Labour Force Survey) के अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं श्रम शक्ति (Labour Force) और कार्य सहभागिता (Work Participation) दर कम है। ऐसी परिस्थितियों में आर्थिक मापदंड पर महिलाओं की आत्मनिर्भरता पुरुषों पर बनी हुई है। देश के लगभग सभी राज्यों में वर्ष 2011-12 की तुलना में वर्ष 2017-18 में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर में गिरावट देखी है। इस गिरावट के विपरीत केवल कुछ राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों जैसे मध्य प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, चंडीगढ़ और दमन-दीव में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर में सुधार हुआ है।
5. महिलाओं में रोजगार अंडर-रिपोर्टिंग (Under-Reporting) की जाती है अर्थात् महिलाओं द्वारा परिवार के खेतों और उद्यमों पर कार्य करने को तथा घरों के भीतर किये गए अवैतनिक कार्यों को सकल घरेलू उत्पाद में नहीं जोड़ा जाता है।
6. शैक्षिक कारक (Educational factor) जैसे मानकों पर महिलाओं की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा कमजोर है। हालाँकि लड़कियों के शैक्षिक नामांकन में पिछले दो दशकों में वृद्धि हुई है तथा माध्यमिक शिक्षा तक लिंग समानता की स्थिति प्राप्त हो रही है लेकिन अभी भी उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का शैक्षिक नामांकन पुरुषों की तुलना में काफी कम है।

भारत में महिला असमानता को समाप्त करने के प्रयास

1. समाज की मानसिकता में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर गंभीरता से विमर्श किया जा रहा है। तीन तलाक, हाजी अली जैसे मुद्दों पर सरकार तथा न्यायालय की सक्रियता के कारण महिलाओं को उनका अधिकार प्रदान किया जा रहा है।
2. राजनीतिक प्रतिभाग के क्षेत्र में भारत लगातार अच्छा प्रयास कर रहा है इसी के परिणामस्वरुप वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक-2020 के राजनीतिक सशक्तीकरण और भागीदारी मानक पर अन्य बिंदुओं की अपेक्षा भारत को 18वाँ स्थान प्राप्त हुआ। मंत्रिमंडल में महिलाओं की भागीदारी पहले से बढ़कर 23% हो गई है तथा इसमें भारत, विश्व में 69वें स्थान पर है।
3. भारत ने मेक्सिदको कार्य योजना (1975), नैरोबी अग्रदर्शी (Provident) रणनीतियाँ (1985) और लैगिक समानता तथा विकास और शांति पर संयुक्ता राष्ट्रे महासभा सत्र द्वारा 21वीं शताब्दी के लिये अंगीकृत ष्बीजिंग डिक्लरेशन एंड

प्लेहटफार्म फॉर एक्शवन को कार्यान्विरत करने के लिये और कार्रवाइयाँ एवं पहलें॰ जैसी लैंगिक समानता की वैश्विक पहलों की अभिपुष्टि की है।

4. 'बेटी बचाओ बेटी पढाओ', 'वन स्टॉप सेंटर योजना', 'महिला हेल्पलाइन योजना' और 'महिला शक्ति केंद्र' जैसी योजनाओं के माध्यम से महिला सशक्तीकरण का प्रयास किया जा रहा है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन के परिणामस्वरुप लिंगानुपात और लड़कियों के शैक्षिक नामांकन में प्रगति देखी जा रही है।
5. आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हेतु मुद्रा और अन्य महिला केंद्रित योजनाएँ चलाई जा रही है।

निष्कर्ष

लैगिक समानता का सिद्धांत भारतीय संविधान की प्रस्तायवना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्तव्य और नीति निर्देशक सिद्धांतों में प्रतिपादित है। संविधान महिलाओं को न केवल समानता का दर्जा प्रदान करता है अपितु राज्यं को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मिक भेदभाव के उपाय करने की शक्तिन भी प्रदान करता है। प्रकृति द्वारा किसी भी प्रकार का लैंगिक विभेद नहीं किया जाता है। समाज में प्रचलित कुछ तथ्य जैसे- महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा जैविक रूप से कमजोर होती हैं इत्यादि केवल भ्रांतियाँ हैं। दरअसल महिलाओं में विशिष्ट जैविक अंतर, विभेद नहीं बल्कि प्रकृति प्रदत्त विशिष्टाएँ हैं, जिनमें समाज का सद्भाव और सृजन निहित हैं।समाज के सर्वांगीण विकास विकास हेतु आवश्यक है कि, लिंग भेद जैसी तुच्छ मानसिकता को त्याग कर आधुनिक और उदार मानसिकता को अपनाया जाए।

सन्दर्भ सूची

1. राम आहूजा, विवेक आहूजा, समाज शास्त्र विवेचन एवं परिपेक्ष्य।
2. प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्ताकं, जुलाई 20018।
3. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएँ
4. क्रॉनिकल, जून 2019
5. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं

नव उदारवादः एक दृष्टि

डॉ० सत्येन्द्र कुमार श्रीवास्तव

बेली रोड, शेखपुरा, पटना (बिहार)

व्यक्ति की स्वतंत्रता उदारवाद का मुख्य आधार है। व्यक्ति की स्वतंत्रता में वृद्धि के लिए इस सिद्धांत में समय-समय में परिवर्तन होते रहे हैं। उदाहरण के लिए प्राचीन उदारवाद या व्यक्तिवाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर नकारात्मक व्याख्या की गई है। राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए केवल नकारात्मक भूमिका निभा सकता है। आगे चलकर जब व्यक्ति की स्वतंत्रता स्वच्छन्दता में परिवर्तित हो गई, समाज व्यवस्था और बाजार व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई तथा कुछ व्यक्तियों में धन और शक्ति का केन्द्रीकरण होने लगा। परिणामतः गरीब और श्रमिक वर्ग की स्वतंत्रता का हनन होने लगा। तब आधुनिक उदारवाद का उदय हुआ जिसे सकारात्मक उदारवाद के नाम से जाना गया। इसमें व्यक्ति और समूहों की स्वतंत्रता को बढ़ावा देने के लिए राज्य की सकारात्मक भूमिका पर जोर दिया गया है। वर्तमान में जब समाज व्यवस्था इतनी जटिल हो गई है कि स्वतंत्रता के कोई एक सिद्धांत का निर्माण संभव नहीं रह गया है, ऐसी अवस्था में समकालीन उदारवाद का विचार सामने आया।

नव उदारवाद का विकास

उदारवादी विचारधारा में द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात कई परिवर्तन या संशोधन हुए। इन संशोधनों के पश्चात उदारवादी दर्शन को संशोधनवादी उदारवाद या समकालीन उदारवाद कहा जाने लगा। इसका उदय मानव समाज को अधिनायकवादी प्रणाली के अत्याचार से संरक्षित करने के उद्देश्य से हुआ। समकालीन उदारवाद के विकास में अनेक विद्वानों ने योगदान दिया है जिनमें महत्वपूर्ण हैं शुम्पीटर, राबर्ट डाहल, चिपमैन, रॉल्स आदि। शुम्पीटर तथा राबर्ट डाहल ने इसकी व्याख्या करते हुए उल्लेख किया है कि 'समाज में रहकर मनुष्य अधिकाधिक सुविधाएँ पाना चाहता है।' और अब तक कोई भी सिद्धांत मनुष्य के लिए पर्याप्त सुविधाओं की भी व्यवस्था नहीं कर पाया है। चिपमैन का विचार है कि उदारवादी लोकतंत्र के ऐसे स्वरूप का निर्माण किया जाए जिसमें स्वतंत्रता न्याय और अर्थव्यवस्था के समुचित सिद्धांतों को अपनाया जाए। उसने यह भी कहा कि कोई भी सिद्धांत पूरी तरह से सही नहीं होता, अतः उसकी कमियों को दूर करके उसमें सुधार की आवश्यकता होती है।

स्वेच्छातंत्रवाद

जब कल्याणकारी राज्य बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्थिक विषमताओं को कम करने में असफल रहा और पूंजीवादी व्यवस्था के उन दुष्प्रभावों का भी निराकरण नहीं कर पाया जिनसे सम्पत्ति का केन्द्रीकरण बढ़ रहा था और आम जनता को भुखमरी और गरीबी का सामना करना पड़ रहा था; ऐसी परिस्थितियों में कुछ विचारकों ने मत प्रकट किया कि कल्याणकारी राज्य का सिद्धांत व्यक्ति की स्वतंत्र के विरुद्ध है। अतः उन्होंने अहस्तक्षेप के सिद्धांत को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। स्वतंत्रता को पुनः उद्वेलित किया जाने लगा।

स्वेच्छातंत्रवाद की विशेषताएँ

यह सिद्धांत व्यक्ति की स्वतंत्रता को सार्वजनिक नीति का प्रामाणिक आधार मानता है और व्यक्ति की पूर्ण स्वायत्तता या स्वतंत्रता में विश्वास करता है। स्वतंत्रता और समानता के मध्य विरोध उत्पन्न होने पर यह स्वतंत्रता को प्राथमिकता देता है और समानता को गौण स्थान प्रदान करता है। इस प्रकार यह समतावाद का विपरीत रूप प्रस्तुत करता है। यह व्यक्ति को उन सब संस्थाओं से मुक्त करना चाहता है जो उसकी विश्व दृष्टि को सीमित करती हैं। अतः यह राजनीतिक संस्थाओं के अलावा ऐसे धर्म, परिवार और रीति रिवाजों को भी समाप्त कर देना चाहता है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में स्वेच्छातंत्रवाद यह माँग

करता है कि मनुष्य को अपनी उन्नति और समृद्धि का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि उसकी आर्थिक गतिविधियों को सब तरह के प्रतिबंधों से स्वतंत्रता प्रदान की जाए। दार्शनिक स्तर पर यह मानव जीवन के नियतिवादी दृष्टिकोण का खंडन करता है और विश्वास करता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व, चरित्र, चिंतन और कर्म उसकी परिस्थितियों के परिणाम नहीं माने जा सकते। अन्य शब्दों में यह मनुष्य को अपनी निर्यात का नियंता मानता है। अत: यह व्यक्ति की कार्य स्वतंत्रता पर लगाए गए सभी सामाजिक और कानूनी प्रतिबंधों के विरुद्ध है। यह प्राकृतिक अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है। उसका दावा है कि व्यक्ति के राजनीतिक जीवन के आरम्भ से पहले भी उसके कुछ अधिकार थे और न तो इन अधिकारों को नष्ट किया जाता और न ही समूह या राज्य के हित में इनका त्याग किया जा सकता। किसी एक वर्ग के कल्याण के लिए किसी दूसरे वर्ग का शोषण निरर्थक है। उदाहरण के लिए निर्धन वर्ग की सहायता के लिए धनवान वर्ग पर कर लगाना अनुचित है। इनका तर्क है कि समाज के किन्हीं हिस्सों के कल्याण के लिए करारोपण का आशय है "किसी एक व्यक्ति के श्रम का पुल, बलपूर्वक छीन कर किसी दूसरे के पास हस्तांतरित करना।" यह नीति कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को अपने कार्यों से विमुख कर देगी, परिणामस्वरूप सम्पूर्ण समाज को इसका हर्जाना भुगतना पड़ेगा। स्वेच्छातंत्रवादी अहस्तक्षेप मूलक पूंजीवाद का समर्थन करते हैं और उसे सामाजिक प्रगति का साधक मानते हैं इनका मत है कि राज्य यदि किसी व्यक्ति के कार्यों में बाधा उत्पन्न नहीं करेगा और उसे किसी प्रकार के त्याग के लिए बाध्य नहीं करेगा तो समाज के सभी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य करेंगे, परिणामस्वरूप समाज प्रगति करेगा। स्वेच्छातंत्रवाद मुख्यत: ऐसे व्यक्तियों के लिए उन्नति के अवसरों पर बल देता है जो स्वयं समर्थ और साधन सम्पन्न हो। हेयक, मिल्टन फ्रीडमैन और नॉजिक ने इसी दृष्टिकोण से स्वतंत्रता का पक्षपोषण किया है।

स्वेच्छातंत्रवाद के रूप

अध्ययन सुविधा के लिए स्वेच्छातंत्र को दो रूपों में विभाजित करके किया जा सकता है :

1. **संयत या परिमित स्वेच्छातंत्रवादी :** स्वेच्छातंत्रवाद का यह ऐसा परिमित रूप है जो थोड़ा उदार विचार वाला है तथा राज्य का पूर्णत: विरोध नहीं करता और न ही उसे समाप्त कर देना चाहता है। इनका मत है कि ऐसे कार्य जिन्हें व्यक्ति नहीं कर सकते या उन्हें करने में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है राज्य को सौंप देना चाहिए किंतु इस शर्त पर कि इनसे व्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित न हो। संयत स्वेच्छातंत्रवादी पुलिस, दीवानी और फौजदारी न्यायालयों को स्थापित करना युक्तिसंगत मानते है। इनके अनुसार राष्ट्र की सुरक्षा और प्रतिरक्षा का काम भी सरकार के हाथों होना चाहिए। किंतु स्वेच्छातंत्रवादियों ने राज्य को आगाह किया कि वह उपरोक्त कार्यों के अलावा कोई भी कार्य अपने हाथों में नहीं ले सकता। इस प्रकार ये 'प्रहरी राज्य' का समर्थन करते हैं और सिर्फ उपरोक्त कार्यों के संचालन के लिए राज्य को धन संग्रहित करने की सलाह देते हैं जो कर आदि के माध्यम से राज्य संग्रहित करता है।
2. **चरम स्वेच्छातंत्रवादी :** जब स्वेच्छातंत्रवाद अपने चरम पर पहुँच जाता है तब यह विप्लववादी रूप धारण कर लेता है तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता या उसके क्रिया कलापों पर कोई भी सीमा स्वीकार नहीं करता। यह सम्पूर्ण शासन को अवैध घोषित कर देता है। इस प्रकार यह अराजकतावाद के अधिक नजदीक पहुँच जाता है। किंतु ज्ञातव्य है कि अराजकतावादी ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ बल प्रयोग अनावश्यक हो। इनका उद्देश्य है कि ऐसे मानव समाज का निर्माण किया जाए जिसे किसी प्रकार के शासन की आवश्यकता न पड़े। दूसरी ओर, चरम स्वेच्छातंत्रवादी भी ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें जानमाल की सुरक्षा और अनुबंधों के प्रवर्तन की आवश्यकता तो रहेगी किंतु ये कार्य निजी अभिकरणों के हाथों सौंप दिए जाएंगे।

स्वतंत्रता की संकल्पना

स्वतंत्रता का मूल अर्थ हेयक के अनुसार, 'प्रतिबंधों के अभाव' में निहित है। प्रतिबंधों के प्रयोग को सीमित रखकर ही इसकी गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। हेयक व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समर्थक है और उसका कहना है, "मनुष्य तभी स्वतंत्र हो सकता है जब वह किसी दूसरे की स्वच्छन्द इच्छा द्वारा विवश या बाध्य न हो।" ज्ञान की स्वतंत्रता पर विचार प्रकट करते हुए उसने बताया कि, "वर्तमान युग में ज्ञान का विस्तार हुआ है, किंतु केन्द्रण नहीं बल्कि बिखरा हुआ है। विश्व में ज्ञान की मात्रा जितनी अधिक होगी उसकी तुलना में किसी एक व्यक्ति का ज्ञान बहुत सूक्ष्म होगा।....अत: सर्वोत्तम व्यवस्था वह होगी जिसमें सारे व्यक्ति अपने-अपने लिए ज्ञान का प्रयोग कर सकें।" हेयक ने स्वतंत्रता को परिभाषित करते हुए लिखा है, "प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत

स्वतंत्रता का आश्वस्त क्षेत्र प्राप्त है जिसमें अन्य व्यक्ति हस्तक्षेप नहीं कर सकते, विकल्प के तत्व को निर्णायक के रूप में मानना चाहिए।" इस प्रकार हेयक नकारात्मक स्वतंत्रता का पक्षधर हो जाता है। उसने चार प्रकार की स्वतंत्रता का उल्लेख किया है : 1. वैयक्तिक स्वतंत्रता, 2. राजनीतिक स्वतंत्रता, 3. आंतरिक स्वतंत्रता, 4. शक्तिरूपी स्वतंत्रता

हेयक ने वैयक्तिक स्वतंत्रता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है और इसे शेष तीनों स्वतंत्रताओं (राजनीतिक, आंतरिक और शक्तिरूपी) से पृथक मानना आवश्यक बताया है। उसने वैयक्तिक स्वतंत्रता को पूर्ण स्वतंत्रता बनाने का प्रयास किया है। उसकी मान्यता है कि सभी लोगों को कुछ-कुछ स्वतंत्रता दिए जाने से अच्छा है कि कुछ लोगों को जोकि उसके योग्य हैं पूरी स्वतंत्रता दे दी जाए। हेयक ने बाजार अर्थव्यवस्था का समर्थन करते हुए व्यक्ति को उसकी स्वयं की क्षमता एवं योग्यता के अनुरूप लाभ कमाने की पूरी छूट दी है।

स्वतंत्रता को हेयक द्वारा इतना गौरवान्वित करने का आशय व्यक्ति का उन्नयन करना नहीं था अपितु वह स्वतंत्रता द्वारा समाज को उन्नत और प्रगतिशील बनाना चाहता था। हेयक की नजर में व्यक्ति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व नहीं है, उसको स्वतंत्रता समाज की भौतिक और सांस्कृतिक प्रगति के उद्देश्य से प्रदान की जाती है। यही कारण है कि हेयक को स्वतंत्रता के समान वितरण पर विश्वास नहीं है। उसका मत है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज की उन्नति में समान योगदान नहीं देता अत: उसे समान स्वतंत्रता के उपभोग का भी अधिकार नहीं होना चाहिए। हेयक ने उन्नति या प्रगति का आशय स्पष्ट करते हुए बताया है कि नियत लक्ष्य की ओर उन्मुख होना उन्नति नहीं है; यह मानवबुद्धि के निरन्तर प्रयोग की प्रक्रिया से सम्पन्न होती है जिसमें निरन्तर नए-नए विचार बनते और लुप्त होते हैं।

नकारात्मक स्वतंत्रता : नकारात्मक स्वतंत्रता का आशय है। इसकी माँग है कि व्यक्ति के चारों ओर ऐसा क्षेत्र मौजूद होना चाहिए जिसमें वह अपने विकल्पों का चयन कर सके। चाहे वे विकल्प अच्छे हों या बुरे, शुभ हों या अशुभ, तार्किक हों या अतार्किक। नकारात्मक स्वतंत्रता यह माँग करती है कि व्यक्ति को अपने विवेकानुसार अपने मनपसंद कार्यों को करने से न रोका जाए।

सकारात्मक स्वतंत्रता : 'आत्मसंयम और स्वराज', स्वशासन या स्वाधिपत्य सकारात्मक स्वतंत्रता का आशय है' अथवा 'तर्क बुद्धि या विवेक के अनुसार आचरण करना है।' इसके अनुसार, स्वतंत्र वह नहीं है जिस पर बाह्य प्रतिबंधों का अभाव हो, बल्कि स्वतंत्र वह है जो तर्क संगत साध्य की साधना करता है। बिना किसी बाह्य प्रतिबंध के भी व्यक्ति अपनी तर्कशून्य इच्छाओं या संकीर्ण आत्मा के वशीभूत हो सकता है। अत: व्यक्ति को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपनी तर्क शून्य इच्छाओं ओर संकीर्ण आत्मा से छुटकारा प्राप्त करना होगा। इस तरह सकारात्मक स्वतंत्रता के अनुसार, 'सम्यक विधि द्वारा बनाए गए कानून' जो व्यक्ति की तर्क शून्य इच्छाओं का दमन करते हैं–स्वतंत्रता प्राप्ति में बाधक नहीं हों तो अपितु स्वतंत्रता प्राप्त करने में साधक सिद्ध होते हैं। सकारात्मक स्वतंत्रता यह अपेक्षा करती है कि व्यक्ति को अपने हृदय और मस्तिष्क पर पूरा नियंत्रण होना चाहिए। कोई व्यक्ति अपनी सकारात्मक स्वतंत्रता का प्रयोग किस मात्रा तक कर सकता है इसका निर्धारण व्यक्ति स्वयं कर सकता है। यह उसकी अपनी क्षमता, चरित्र और साधनों पर आधारित है। राज्य इसमें कुछ नहीं कर सकता। राज्य अधिक से अधिक इतना कर सकता है कि व्यक्ति द्वारा स्वनिर्धारित गतिविधियों पर कोई प्रतिबंध न लगाए। बर्लिन के अनुसार, सकारात्मक स्वतंत्रता का सिद्धांत समस्त सामाजिक मूल्यों और संस्थाओं को तथाकथित 'तर्कसंगत स्वतंत्रता' की तुलना में गौण मानते हुए एकलवाद के सिद्धांत की पुष्टि करता है।

बर्लिन के अनुसार सकारात्मक स्वतंत्रता की यह अवधारणा स्वतंत्रता के नाम पर सर्वाधिकारवाद को बढ़ावा देती है। अत: इस विकृत रूप से बचने के लिए बर्लिन ने तर्क प्रस्तुत किया है, 'सकारात्मक स्वतंत्रता व्यक्ति की अपनी क्षमताओं पर आश्रित है। राज्य केवल व्यक्ति की नकारात्मक स्वतंत्रता की रक्षा कर सकता है।' सकारात्मक स्वतंत्रता की रक्षा करना राज्य के कार्यक्षेत्र में नहीं आता। इस प्रकार बर्लिन के अनुसार भी राजनीतिक स्वतंत्रता का आशय केवल 'प्रतिबंधों का अभाव' (नकारात्मक स्वतंत्रता) है। उसका कथन है कि, "मेरी सामाजिक अथवा राजनीतिक स्वतंत्रता की सीमा न केवल मेरे वास्तविक बल्कि यदि मैं ऐसा करना चाहूँ तो मेरे इस अथवा उस ढंग से कार्य करने के समर्थ विकल्पों पर भी बाधाओं के अभाव में निहित है।" राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रता पर भले ही कुछ बंधन लगाए, परंतु ऐसा कोई बंधन नहीं होना चाहिए जो उसकी पसंद के क्षेत्र का हनन करे।" बर्लिन के अनुसार, नकारात्मक स्वतंत्रता ऐसी व्यवस्था की माँग करती है जिसमें किसी व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के दौरान अन्य व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह द्वारा किसी प्रकार के अवरोध का सामना न करना पड़े। उसका कथन है कि, "यदि कोई व्यक्ति

गरूड़ पक्षी की तरह पंख फैलाकर आकाश में उड़ नहीं सकता, या ह्वेल मछली की तरह समुद्र में तैर नहीं सकता तो यह उसकी अपनी कमी है" वह यह नहीं कह सकता कि उसे राजनीतिक स्वतंत्रता से वंचित किया गया है।

बर्लिन के अनुसार, नकारात्मक स्वतंत्रता का सिद्धांत, सकारात्मक स्वतंत्रता के सिद्धांत के विपरीत बहुलवाद के सिद्धांत की पुष्टि करता है। क्योंकि वह स्वतंत्रता को अनेक मूल्यों से एक का दर्जा देता है। उसके शब्दों में, "स्वतंत्रता, स्वतंत्रता है; वह समानता, न्याय संस्कृति या मानवीय सुख का पर्याय नहीं हो सकती।" किंतु उसके अनुसार स्वतंत्रता के प्रयोग क्षेत्र को अन्य मूल्यों जैसे समानता, न्याय, संस्कृति, उपयोगिता की माँगों के अनुसार विस्तृत या संकुचित किया जा सकता है। नकारात्मक स्वतंत्रता का पक्षपोषण करते हुए बर्लिन का कथन है कि, "मानव जीवन के भाग को सामाजिक नियंत्रण से अवश्य ही स्वतंत्र रहना चाहिए। सत्ता को एक दूरी पर रखने के लिए एक विभाजन रेखा खींची जानी चाहिए।"

संदर्भ

1. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
2. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
3. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
4. भारतीय प्रशासनः विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
5. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासनः सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
6. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
7. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
8. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
9. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
10. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक0
11. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
12. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
13. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
14. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
15. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
16. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
17. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे

गठबंधन सरकार की संकल्पना

डॉ० कुमार रंजीत

घोघरडीहा, मधुबनी (बिहार)

रोजर स्क्रटन ने 'A Dictionary of Political Thought' में।राजनीति शास्त्र में 'गठबंधन' पद को परिभाषित किया है उनके अनुसार, विभिन्न दलों या राजनीतिक पहचान रखने वाले प्रमुख व्यक्तियों का आपसी समझौता गठबंधन कहलाता है। गठबंधन सरकार की स्थापना दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों के निर्वाचित उम्मीदवारों के समूह तथा अन्य किसी दल के निर्वाचित उम्मीदवारों के समर्थन से होती है। गठबंधन सरकार विकसित राष्ट्रों में ही सफल हो सकती है, विकासशील या अविकसित राष्ट्रों में संभावना कम होती है क्योंकि विकसित राष्ट्रों में होता है। शिक्षित और अनुशासित मध्यम वर्ग होता है, राजनीतिक दलों की संख्या सीमित होती है, समाज धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से विकृत नहीं जीवन शैली में अधिक भिन्नता नहीं है इसके अलावा राजनीतिक दल में केवल आधारभूत भिन्नताएँ ही होती हैं। विकासशील देशों में ऐसी परिस्थितियों का अभाव रहता है अत: गठबंधन सरकारें कम सफल होती हैं।

गठबंधन की प्रक्रिया

राजनीतिक व्यवस्था में गठबंधन से पहले बहुमत के सबसे करीब जो दल होता है दल-बदल की प्रक्रिया चलाने की सोचता है जिसे 'आयाराम गयाराम' कहा जाता है। फिर दूसरे दलों को तोड़ने की कोशिश की जाती है। इसके बाद भी अगर बहुमत नहीं मिलता तो समझौता वादी आधार पर एक दिखावटी संयुक्त नीति घोषणापत्र जारी कर गठबंधन के द्वारा संयुक्त दलों की मिली जुली सरकार बन जाती है। इंग्लैंड में प्रथम महायुद्ध के बाद जब लिबरल पार्टी का प्रभाव समाप्त होने लगा और लेबर पार्टी का प्रभुत्व जमने लगा तब तीन पार्टियों ने 1932 में संयुक्त सरकार की स्थापना की। गहरे राष्ट्रीय संकट की स्थिति में भी गठबंधन सरकारों की आवश्यकता महसूस की जाती है। द्वितीय महायुद्ध के शुरू होने पर इंग्लैंड में चर्चिल के नेतृत्व में ऐसी ही गठबंधन सरकार-सर्वदलीय सरकार की स्थापना हुई। किंतु यह केवल अपवाद है। ऐसी सरकार बहुत मजबूत और शीघ्र निर्णय लेने वाली होती है।

विशेषताएँ

यह अक्सर कमजोर (केवल संकट कालीन गठबंधन मजबूत) सरकारे होती हैं। यह अवसरवादी, समझौतावादी सरकार ये अस्थाई सरकारे होती हैं। ये गैर उत्तरदायित्व पूर्ण क्योंकि दलीय हितों की संकीर्णता अक्सर संयुक्त उत्तरदायित्व के संसदीय सरकार के नियम की अवहेलना करती है। इससे अधिक बड़ा मंत्रिमंडल बनता है।

मिली जुली सरकार और लोकतंत्र

मिली जुली सरकारों के बारे में आनुपातिक प्रतिनिधित्व के समर्थकों का कहना है कि मताधिक्य तथा वैकल्पिक मत वाली पद्धतियाँ अलोकतंत्रीय हैं। उनमें नागरिकों के मतों का मूल्य एक समान नहीं रहता। कुछ का मूल्य अधिक हो जाता है, कुछ का कम। यह लोकतंत्र के मूल सिद्धांत अर्थात् राजनीतिक समता का उल्लंघन है।

इसके विपरीत आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आलोचक यह कहते हैं कि इस पद्धति में मिली-जुली सरकार बनाना अनिवार्य ही होगा क्योंकि ऐसा बहुत कम होता है कि किसी एक दल को जनमत का बहुमत प्राप्त हो जाए। मिली जुली सरकार बनती है तो शासन निर्माण मतदाताओं के हाथ से निकल कर दल के हाथों में चला जाता है। इससे सार्वजनिक नियंत्रण और जनता के प्रति उत्तरदायित्व में कमी आ जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि छोटे-छोटे दलों को सत्ता में उनकी शक्ति के अनुपात से अधिक भाग

मिल जाए। ऐसा होने की संभावना तब अधिक होती है जब ऐसे दलों की हैसियत दक्षिण पंथी और वामपंथी दलों के बीच **'संतुलन'** की हो।

गठबंधन सरकारों की उत्पत्ति के कारण

किसी राजनीतिक व्यवस्था में गठबंधन सरकारों की उत्पत्ति के कई कारण हो सकते हैं। अब तक जो देखने में आया है उनमें प्रमुख है, जब किसी प्रमुख दल के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगने लगता है और कोई दूसरा दल ऐसी स्थिति में नहीं होता कि वह पूर्ण बहुमत प्राप्त कर सके तब गठबंधन सरकार का उदय होता है। इंग्लैंड में प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब लिबरल पार्टी का प्रभाव समाप्त होने लगा और लेबर पार्टी का प्रभुत्व जमने लगा लेकिन पूर्ण बहुमत प्राप्त करने में अक्षम होने के कारण लेबर पार्टी ने तीन पार्टियों के साथ मिलकर 1932 में 'संयुक्त सरकार' की स्थापना की। कठोर राष्ट्रीय संकट जैसे युद्ध, भुखमरी, महामारी, आदि परिस्थितियों में भी गठबंधन सरकारों का निर्माण होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होने पर इंग्लैंड में चर्चिल के नेतृत्व में ऐसी ही गठबंधन सरकार 'सर्वदलीय सरकार' की स्थापना हुई किंतु यह केवल एक अपवाद माना गया हैं। इस प्रकार की सरकार बहुत मजबूत और शीघ्र निर्णय लेने वाली होती है।

गठबंधन सरकारों की विशेषताएँ

1. अस्थाई : हितों और अधिकारों को गठबंधन में सम्मिलित दलों में लेकर टकराव की स्थिति हमेशा बनी रहती है। जिससे ये सरकारें हमेशा अस्थायित्व के संकट से घिरी रहती हैं।
2. कमजोर अथवा दुर्बल : केवल संकट कालीन परिस्थितियों में निर्मित सरकारें ही शक्तिशाली होती है। क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्रीय हित दलगत भावनाओं और हितों पर हावी हो जाता है।
3. अवसरवादी या समझौतावादी : ऐसे अवसर की तलाश में सम्मिलित दल हमेशा रहते हैं। जिसमें उनका हित पोषित हो सके।
4. गैर उत्तरदायित्व पूर्ण : दलीय हितों की संकीर्णता अकसर, संयुक्त उत्तरदायित्व के संसदीय सरकार के नियम की अवहेलना करती है।
5. विस्तृत कार्यपालिका : कार्यपालिका अधिक विस्तृत होती है।

भारत में गठबंधन

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मिली जुली सरकारों की राजनीति 1967 के विधान सभा के चनावों के बाद शुरू हुई। संघीय स्तर पर यह 1977 में शुरू हुई। वैसे आजादी मिलने के बाद नेहरू के नेतृत्व में जिस कैबिनेट का गठन किया गया था। उसमें श्यामा प्रसाद मुखर्जी, के.सी. नियोगी और भीमराव अंबेडकर जैसे गैर कांग्रेसी नेताओं को भी शामिल किया गया था। परंतु उसे गठबंधन सरकार की संज्ञा नहीं दी गई। भारत में गठबंधन सरकार की स्थापना की प्रक्रिया राज्य स्तर से शुरू हुई, जब 1953 में आंध्रा में संयुक्त मंत्रिमंडल की स्थापना हुई। 1957 में उड़ीसा में गठबंधन सरकार बनी 1967 में पश्चिम बंगाल में पहली बार गठबंधन सरकार बनी। भारत में दो ऐसे राज्य हैं, जहाँ गठबंधन सरकार को व्यापक सफलता मिली और वे हैं–पश्चिम बंगाल और केरल। और इस सफलता का सबसे बड़ा कारण है इन राज्यों में साम्यवादी दलों का वर्चस्व। साम्यवादियों के विभिन्न घटकों भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी लेनिन वादी पार्टी आदि का आधारभूत सिद्धांत एक ही है। वे समानता पर आधारित समाज की स्थापना के प्रमुख मुद्दे को ही अपनाए हुए हैं। पं. बंगाल में गठबंधन का नेतृत्व 'मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी' करती है। केरल में नेतृत्व कांग्रेस और साम्यवादी में से कोई एक करता है। इन राज्यों में गठबंधन निर्वाचन से पूर्व ही किए जाते हैं और गठबंधन में सम्मिलित विभिन्न घटक दलों द्वारा निर्वाचन के पूर्व ही संयुक्त नीति और संयुक्त कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं।

केंद्र में गठबंधन सरकार

1975 में आपातकाल की घोषणा के बाद केन्द्रीय स्तर पर गैर कांग्रेसी विकल्प की संभावना तलाशी जाने लगी। केंद्र में गठबंधन सरकार की प्रक्रिया 1977 के आम चुनाव से शुरू हुई। इस चुनाव में किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला और जनता पार्टी के नेतृत्व में गठबंधन सरकार बनी। इस समय गठबंधन सरकार की स्थापना के लिए किसी भी दो राजनीतिक दलों में नीतिगत मतैक्य नहीं था, लेकिन वे इंदिरा गाँधी द्वारा आपातकाल लागू किए जाने के विरोध में एक जुट हुए थे। दूसरी गठबंधन सरकार की स्थापना संयुक्त मोर्चा के नेतृत्व में 1989 में हुई। संयुक्त मोर्चा में निर्वाचन से पूर्व ही जनता दल और कम्युनिस्ट पार्टी

तथा कई अन्य क्षेत्रीय पार्टियों ने गठबंधन किया। अप्रैल-मई 1996 में 11वीं लोक सभा का चुनाव – संयुक्त मोर्चा के नेतृत्व में 14 राजनीतिक दलों की गठबंधन सरकार बनी – कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया।

20 नवंबर 1997 को राजीव गाँधी हत्याकांड की जाँच से संबंधित जैन आयोग की रिपोर्ट में 'द्रविण मुन्नेड कडझम' पर लगे आरोपों को ध्यान में रखते हुए कांग्रेस ने मोर्चा सरकार से द्रमुक को गठबंधन से निकालने को कहा। लेकिन संयुक्त मोर्चा ने ऐसा करने से साफ मना कर दिया। इस प्रकार 28 नवंबर को कांग्रेस ने गुजराल सरकार से बाह्य समर्थन वापस ले लिया। मार्च 1998 में वाजपेयी ने 12वीं लोकसभा का गठन किया। मात्र एक मत से लोकसभा में विश्वास मत में पराजित होने के पश्चात् वैकल्पिक सरकार के गठन की कोई संभावना नहीं बनी और राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने मंत्रिमंडल की सिफारिश पर 26 अप्रैल 1999 को सरकार भंग कर दी। यह केवल 13 माह चली जो स्वतंत्रता के बाद गठित किसी भी लोक सभा के कार्य काल में सब से कम है।

एक मत से सरकार की इस पराजय में उड़ीसा के मुख्यमंत्री गिरधर गोमांग के मत की निर्णायक भूमिका रही। भारत ही नहीं बल्कि विश्व के संसदीय लोकतंत्र के इतिहास में यह एक अनोखी घटना है। इसके बाद हुए चुनाव में पुनः अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एक मिली जुली सरकार बनी जिसमे सफलतापूर्वक अपना कार्यकाल पूरा किया। 2004 के आम चुनाव में इस सरकार के पराजित होने के बाद पुनः कांग्रेस के नेतृत्व में एक मिली-जुली सरकार ही कार्य कर रही है।

दबाव समूह

साधारण शब्दों में, समूह का आशय व्यक्तियों के संगठन से है। हर समूह का अपना हित होता है ओर ये गतिहीन रूस्प की बजाय प्रक्रिया की एक शैली का द्योतक है। दबाव समूह ऐसा संगठन है जो अपने सदस्यों के किन्हीं संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए सरकार को प्रभावित करने का प्रयास करता है। ऐसा करते समय वह समाज के हितों की अपेक्षा अपने हितों को अधिक वरीयता देता है। हेचनर और हरबोल्ड का मत है कि 'दबाव समूह व्यापक ढाँचे की अपेक्षा राजनीति में अपने हितों के बारे में अधिक प्रत्यक्ष अज्ञान करें।' ऐसा हो सकता हैं कि वे अपना हित साधने के लिए यह सिद्ध करने का प्रयास करे कि उसके प्रस्ताव सार्वजनिक हित के अनुरूप है। अतः कहा जा सकता है कि दबाव समूहों का अध्ययन विभिन्न हितों के सामान्य ढाँचे और उनकी अंतःक्रिया, अंतःसंबंधों और अंतः प्रवेशों से उत्पन्न विषयों में किया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
2. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
3. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
4. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
5. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
6. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
7. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
8. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
9. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
10. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
11. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
12. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
13. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
14. भारतीय प्रशासनः विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
15. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासनः सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
16. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
17. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह

शृंगारिक शीघ्रता और भोग का अधिकार

डॉ० विजय शंकर मिश्र

हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सूफी प्रेमाख्यानक चांदायन की कथा का मूल आधार निस्सन्देह आभीरों की हिन्दी क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रचलित लोकगाथा है, लेकिन इसमें कवि ने मौलिक – रचनात्मक – कलात्मक हस्तक्षेप किए हैं। इस प्रबंधकाव्य का अध्ययन स्त्री से जुड़े प्रश्नों की दृष्टि से करना भी आवश्यक है। लोकगाथाओं में जीवन का व्यवहारिक पक्ष अपेक्षाकृत अधिक सहज-स्वाभाविक ढंग से उभरता है। उसमें निरर्थक शिष्टता का ध्यान एक निश्चित सीमा तक ही रखा जाता है। जीवन में स्वाभाविक सुखों की उपेक्षा करके यथार्थ-निरपेक्ष कोरे सैद्धान्तिक प्रवचन लोक साहित्य में स्थान कम ही पा पाते हैं। चांदायन में भी सीधी-सीधी शैली में स्त्री से जुड़े मुद्दों पर मंतव्य प्रकट किए गए हैं।

स्त्री के मूल्यांकन के मुख्य आधार उसका शारीरिक सौन्दर्य एवं पुरुष पर संपूर्णतया निर्भर अस्तित्व की स्वीकृति रहे हैं। स्थापित मापदण्डों की दृष्टि से शारीरिक दृष्टि से कुरूप सिद्ध हुई स्त्री कम-से-कम यौवनपर्यन्त उपेक्षा का शिकार होती रही है। इसी तरह पिता अथवा पति का किन्हीं भी संदर्भों में विरोध करती महिला भी आमतौर पर सम्मान की दृष्टि से नहीं देखी जाती। मानो कि स्वतंत्र अस्तितव की मांग करती मानुषी स्थापित परम्पराओं का विरोध करने की अपराधिनी समझी जाती है। इन दृष्टियों से चांदायन पर्याप्त महत्त्वपूर्ण प्रबंधकाव्य है।

मौलाना दाऊद चांदा के शृंगारपरक सौन्दर्य के प्रभाव के वर्णन करने में अकल्पनीय जल्दबाज़ी से काम लेते है। एकवर्षीय शिशु के सौन्दर्य का केन्द्र उसकी अबोधता है। इसी अबोधता के कारण शिशु को शुद्ध-बुद्ध चेतन आत्मा माना जाता है, उसमें परमात्मा के दर्शन किए जाते हैं। एक साल की बालिका के सौन्दर्य कोशृंगारिक दृष्टि से देखना वास्तव में अपराध है जो मानसिक रुग्णता के शिकार व्यक्ति गाहे-बागाहे करते रहते हैं। सूफी काव्यों में शिशु नायिकाओं के शृंगारपरक चित्रण हुए हैं। स्त्री के महत्त्व का मूलभूत आधार उसके देहगत् सौन्दर्य को मानने की मानसिकता इसका कारण प्रतीत होता है। पदमावत में पदमावती के पैदा होते ही सच्चे प्रेमी और रूप के लोभी उसके चारों ओर मंडराने लगे थे। जायसी उसे उस आयु में अद्वितीय सुन्दरी के रूप में स्थापित करते हैं, तब उसकी छठी भी नहीं हुई थी अर्थात् वह छह दिनों की भी नहीं थी-

पदुम गंध बेधा जग बासा।
भँवर पतंग भए चहुँ पासा।।
अतें रूप भइ कन्या जेहि सरि पूजि न कोइ।
धनि सो देस रुपवंता जहाँ जनम अस होइ।।[1]

पाँच-सात वर्ष की होते-होते (क्योंकि सात-आठ साल में वह विदुषी हो गई और ग्याह पूरे करके बारहवें वर्ष में प्रवेश करते पिता राजा गंधर्वसेन को वह विवाह योग्य सयानी ज्ञात हुई) उसके अप्रतिम सौन्दर्य की चर्चा चारों खण्डों, मानेकि अखिल विश्व में होने लगी। उसके लिए विवाह हेतु प्रस्ताव आने लगे-

... चहूँ खंड के राजन्ह सुनी।
सिंहल दीप राज घर बारी।

महा सुरूप दैयँ औंतारी।
एक पदुमिनि औ पंडित पड़ी।
दहुँ केहि जोग दैयँ अस गढ़ी।
जाकहँ लिखी लच्छि घर होनी।
असि सो पाव पढ़ी औ लोनी।
सप्त दीप के बर जो ओनाहीं।
उत्तर न पावहिं फिर फिर जाहीं।।
राजा कहै गरब कै हौं रे इन्द्र सिवलोक।
को सरि मोसों पावै कासौं करौं बरोक।।[2]

जायसी अधिक-से-अधिक ग्यारह वर्ष (वैसे, शायद उससे भी कम) की बालिका के सौन्दर्य का वर्णनशृंगारिक भोग को ध्यान में रख कर करते प्रतीत होते हैं। बालिका के रूप के वर्णन में उसका भोलापन केन्द्र में होना चाहिए। स्वाभाविक रूप से वह भोलापन उसके मुख, चेष्टाओं, शब्दों एवं भाव-भंगिमाओं में होता है। लेकिन जायसी उसके मारक कटाक्षों, रसीले कुचों, क्षीण कटि, मतवाली गति या चाल पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं। वह 'रमणी' के रूप में चित्रित हुई है-

भई ओनंत पदुमावति वारी।
धज घोरैं सब करी सँवारी।।
जग बेधा तेइ अंग सुबासा।
भँवर आइ लुबुधे चहुँ पासा।।
जग कोई दिस्टि न आवै आछहिं नैन अकास।
जोगी जती सन्यासी तप साधहिं तेहि आस।।[3]

मौलाना दाऊद जायसी से भी ज्यादा आतुर दिखाई देते हैं। ग्यारह मास पूरे करके बारहवें मास की होते-होते चांदा के सौन्दर्य की ख्याति चारों दिशाओं में फैल गई। उससे विवाह करने के आकांक्षी प्रस्ताव भेजने लगे और महर सहदेव उन्हें अस्वीकृत करते रहे। कवि ने एक वर्ष से भी कम आयु की शिशु के लिए 'तिरिया' या स्त्री शब्द का प्रयोग किया है-

बरहें मांस देसि गई बाता।
धौर समंद माबर गुजराता।
तिरहुति अवधि बदांऊं जानी।
चहूं भुवन अस बाति बखानी।
गोवर हि आहि महर कई धिया।
चांद नांउं धौराहर दिया।
असि तिरिया जउ मांगे पाइय।
अरथ लाइ कई ब्याहइं पाइय।
राजा के नित बरउत आवहिं।
बहुरि जाहिं पइ उतरु न पावहिं।
महरु कहइ को मोरें जोगित कासों करउं बिबाहु।
टिकइतु मिंत सब को आहइं जाति न देखउं काहु।।[4]

चार वर्ष की होने पर चांदा का विवाह कर दिया गया-
चउथें बारिसि धरसि जउ पाऊ।.....
जइत बोलाए लोगु कुटुंब जन सुनलु एक मॉति आइ।
महर दीति बावनं कहं चांदा चलहु बियांहइं जाइ।[1]

बाल-विवाह को चर्चा का पृथक विषय मान कर भी विचार करने से शिशु बालिका के सौन्दर्य के प्रति उक्तश्रृंगारपरक दृष्टियाँ स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व और पहचान का निषेध करके उसे मात्र भोग हेतु 'शरीर' मानने की मानसिकता की परिचायक हैं। यह मध्यकालीन सूफी कवियों का मनोविज्ञान है जो विभिन्न संदर्भों में अन्य गैर-सूफी कवियों तक प्रसरित है।

स्त्री को सहज मानुषी मानकर उसकी मूल प्रवृत्तियों के प्रकाशन में मौलाना दाऊद को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। जितना बड़ा भावनात्मक सत्य 'प्रेम' है, उतना ही बड़ा; संभवत: उससे भी बड़ा सत्य "रत्यात्मक भोग" है। लेकिन सामाजिक नैतिकताएँ स्त्री को अपनी भोग-लालसा को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता नहीं देती। यदि पति अपनी पत्नी से लंबे समय तक शारीरिक संबंध स्थापित नहीं करता, तो इसे बड़ी बात नहीं माना जाता। इस आधार पर स्त्री द्वारा परपुरुष से संबंध स्थापित करना अवश्य ही अक्षम्य अपराध माना जाता है। सामाजिक मान्यताओं ने विलास की आकांक्षा व्यक्त करती महिला के लिए 'कुलटा' के विशेषण की व्यवस्था नही है। इसका मूलभूत कारण 'मानुषी' रूप में स्त्री का मूल्यांकन करने से इंकार करना है। स्त्री या तो 'देवी' या फिर 'कुलटा' के रूप में ही स्वीकृत है। साहित्य में अवश्य ही स्त्रियों की कामेच्छाओं के वर्णन हुए हैं, लेकिन वे अधिकांशतया परकीया नायिकाओं के प्रसंगों में ही प्राप्त होते हैं। स्वकीया के संदर्भ में सामान्तया 'प्रेम' के चित्रण हुए हैं। स्वकीया द्वारा पति की संभोग से विरक्ति की शिकायत संभवतया जिस एकमात्र मध्यकालीन हिन्दी काव्यकृति में हुई है, वह मौलना दाऊद का चांदायन है। चांदा अपनी भोगेच्छा पूर्ण नहीं होने पर ननद से सीधे-सीधे शिकायत करती है। मात्र 'सुहागिनी' होने से वह संतुष्ट नहीं है। उसकी कामना 'स्त्री बनना है-

बरसि दिवस भा चांद बियाहै।
सूरु न देखी आछिइ छाहें।
पिउ अनतिइ निसि सेज दुहेली।
सो धनि कइसें जियद अकेली।
बावन काउ पूछ नहि बाता।
हउं रे न चीन्हउं कार कि राता।
एकउ साध न हिएं बुझानीं।
मुइउं पियास नांक लहि पानीं।
एहिं परिहॉसि उठि मइकें जाऊं।
तिय सो रांध सुहागिनि नाऊं।[2]

सास द्वारा प्रतीक्षा करने, यथार्थ में पातिव्रत में निहित विषादों को सहते हुए जीवन 'व्यतीत' करने के उपदेश का सीधा-सपाट विरोध करते हुए वह भोग के मानवीय सत्य को वाणी प्रदान करती है। लोकगाथाओं में व्यावहारिक सत्यों के प्रकाशित होने वाली शैली चांदायन में पूरे वैभव से प्रकट हुई है। चांदा केवल सुस्वादु भोजन एवं मूल्यवान वस्त्राभूषणों के सहारे जीने से इंकार करती है। शारीरिक-मानसिक विलास को अपना मौलिक अधिकार घोषित करके यथार्थ-निरपेक्ष पातिव्रत की परिभाषा को नकारना चांदा की वह विशेषता है, जो उसे मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की विलक्षण नायिका के रूप में प्रतिष्ठित करती है। जीवनपर्यन्त कुल-मर्यादा कीश्रृंखलाओं में बँध कर अपनी स्वाभाविक कामेच्छा का दमन करने के उपदेशों का विरोध करके वह दाम्पत्य संबंधों के प्रति विद्रोह करती है। शरीर के सत्य का सम्मान करती उसकी यह विद्रोही छवि अभूतपूर्व है-

अब लहि मइं कुरु आपनु धरा।
काम लुबुधु तिरहइं तनु जरा।
निसि अँधियारि नीरु घन बरसै बीजु लवइ भुइं लागि।
सेजि अकेलि फाटु मोर हियरा जउ जउ देखउं जागि।[7]

मायके में सखियों द्वारा पूछे जाने पर चांदा ने विस्तार के साथ भोगेच्छाओं की अतृप्ति से उद्‌भुत व्यथा के मार्मिक वर्णन किए हैं। माघ में वह गीली लकड़ी की तरह जलती रही। उसके शरीर की आग को बुझाने वाला पति अक्षम था। ऐसे भी यौवन मुरझा गया। ज्येष्ठ मास में उसे भोगीपति की छाया के स्थान पर अतृप्त कामाग्नि में दग्ध होना पड़ा। कृत्रिम प्रसाधनों के प्रयोग से यह आग नहीं बुझती, बल्कि और बढ़ जाती है। इसीलिए प्राणों को शीतल करने हेतु उन्नत उरोजों पर चंदन लगाने का उपाय निष्फल हो गया। काम की ज्वाला अधिकाधिक तीव्र हो उठी। भादों की विकराल झड़ी के समय में भोगी पुरुष की अनुपस्थिति में चांदा प्यासी की प्यासी ही रही। उसका शरीर कोरे का कोरा रह गया। इस समस्त ऋतु वर्णनों में स्त्री की नितांत सहज कामनाएं व्यक्त हुई हैं। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में ये कामनाएं 'मानुषी' को 'समझने' का आग्रह करती प्रतीत होती हैं-

जो मोहि पूछहु तौ हउं कहउं।
कुर कइ कानि लजाती अहउं।.....
नैनहु दीठे बोलते हिया बिरुधा तित्त।
जै नैनहु औगुणु किया हिया बिरुधा तित्त।[8]

संदर्भ

1. पदमावत, जायसी, 51/7 से 9
2. वही, 53/3 से 9
3. वही, 55
4. चांदायन, 34
5. वही, 35/1, 38-39
6. वही, 44/1 से 5
7. वही, 46/5 से 7
8. वही, 51 से 53

वैदिक काल में राजतंत्र, राजनैतिक एवं सामाजिक संगठन

श्रीमती अंजू कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

ऋग्वैदिक काल

आर्य विभिन्न जनों में विभक्त थे। प्रत्येक जन का एक नेता या राजा होता था। यही 'राजा' वैदिक युग के राष्ट्र या जनपद का मुखिया होता था। सामान्यतया, राजा का पुत्र ही पिता की मृत्यु के बाद राजा के पद को प्राप्त करता था। वैदिक युग में प्रजा जिस व्यक्ति को राजा के पद पर वरण करती थी, उससे वह यही आशा रखती थी, कि वह ध्रुवरूप से राष्ट्र का शासन करेगा। राजा को किसी निश्चित अवधि के लिए राजा नहीं बनाया जाता था।

इसीलिये अथर्ववेद में कहा है– हे राजन्, तू सुप्रसन्न रूप से राष्ट्र में दशमी अवस्था तक शासन करता रहे। 90 साल से ऊपर की आयु को 'दशमी' अवस्था कहते हैं। वैदिक काल में राजा से यही आशा की जाती थी कि वह दशमी अवस्था तक (अर्थात् वृद्धावस्था तक) राष्ट्र के शासन का संचालन करता रहेगा। लेकिन ऐसे अवसर भी उपस्थित हो सकते थे, जबकि राजा दशमी अवस्था तक राष्ट्र का शासन न कर सके।

कतिपय कारणों से राजा को निर्वासित भी किया जा सकता था, किंतु यदि जनता उसे राजा के पद पर पुनः अधिष्ठित करना चाहे तो उसे निर्वासन से वापस भी बुलाया जा सकता था। विश या प्रजा जिस राजा का वरण करती थी, उससे वह कतिपय कर्तव्यों के पालन की आशा भी रखती थी। राजा के ऊपर विश का अंकुश रहता था।

राजा के मुख्यतः दो कर्तव्य थे– प्रथम, युद्ध में नेतृत्व करना और दूसरे, कबीले की रक्षा करना। युद्ध की आवश्यकताओं के अनुकूल राजा का पद था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल में विश समिति में एकत्रित होकर राजा का चुनाव करती थी। वैदिक साहित्य में दी गयी वंशावलियों से ऐसा प्रतीत होता है कि राजा का पद वंशानुगत था और पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकारी होता था। इस आधार पर गैल्डनर महोदय का मत है कि जन साधारण द्वारा राजा का चुनाव औपचारिकता मात्र था। इस बात का द्योतक यह औपचारिकता भी है कि उत्तराधिकारी के निर्णय में जनमत की भूमिका थी।

ऋग्वैदिक काल में प्रशासन का लोकप्रिय स्वरूप राजतंत्रात्मक था। संभवतः कुछ गैर-राजतंत्रात्मक राज्य भी थे। ऋग्वेद में इसे **गण** कहा गया है एवं इसका प्रमुख ज्येष्ठक या गणपति होता था। इस तरह यहाँ गणतंत्र का प्रारंभिक उल्लेख मिलता है। राजा की स्थिति स्पष्ट नहीं थी और राजा की पहचान उसके कबीले से होती थी। राजा को 'जनस्य गोप्ता' तथा दुर्ग का भेदन करने वाला (पुराभेत्ता) कहा जाता था। इनके अतिरिक्त राजा की निम्नलिखित उपाधियाँ भी प्राप्त थीं, यथा–विशाम्पति, गणनांगणपति, ग्रामिणी आदि। कबीले के लोग स्वेच्छा से राजा को एक कर देते थे। इसे बलि कहा जाता था। संभवतः इस बलि की दर कुल उत्पादन के 1/16 से 1/10 भाग तक थी। इसके अलावा कुछ कबीलाई संस्थाएँ अस्तित्व में थीं। सभा, समिति, विदथ और गण। अथर्ववेद के अनुसार सभा और समिति प्रजापति की दो पुत्रियाँ हैं।

मैत्रायणी संहिता के अनुसार सभा में स्त्रियाँ भाग नहीं लेती थीं। सभा में भागीदारी करने वाले को 'समये' कहा जाता था। इसके सदस्य श्रेष्ठ जन होते थे और उन्हें 'सुजात' कहा जाता था। सभा के कुछ न्यायिक कार्य भी थे। ऋग्वेद में आठ बार 'सभा' की चर्चा की गयी है। संभवत: राजा का निर्वाचन समिति करती थी। समिति के अध्यक्ष को पति या ईशान कहा जाता था। कुछ विद्वानों का मानना है कि राजा ही समिति का अध्यक्ष होता था। ऋग्वेद में नौ बार समिति की चर्चा हुयी है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि समिति में राजकीय विषयों की चर्चा होती थी तथा सहमति से निर्णय लिया जाता था। जीमर ने सभा को ग्राम संस्था एवं समिति को केंद्रीय संस्था कहा है। पंचालों के राजा प्रवाहण जैवलि ने समिति के समक्ष पाँच प्रश्न रखे, इनका वह उत्तर न दे पायी। अत: संभवत: समिति राष्ट्रीय अकादमी की तरह भी काम करती थी। रॉथ के अनुसार 'विदथ' संस्था सैनिक, असैनिक तथा धार्मिक कार्यों से संबद्ध थी। यही वजह है कि के.पी. जायसवाल विदथ को एक मौलिक बड़ी सभा मानते हैं, जो आगे चलकर सभा, समिति एवं सेना में विभक्त हो गयी। रामशरण शर्मा इसे आर्यों की प्राचीनतम संस्था मानते हैं। विदथ का महत्वपूर्ण दायित्व था।

'प्रथम वितरक' त्वष्ट्रि को कहा गया है। जिन ऋभुजनों की सभा का वह प्रधान था, उन्हें वितरण के काम में लगे होने के कारण स्वैच्छिक वितरक की संज्ञा दी गयी। इसी बात से विदथ का महत्व आंका जा सकता है कि जहाँ ऋग्वेद में सभा शब्द का उल्लेख आठ बार और समित का नौ बार हुआ है, वहीं विदथ शब्द का उल्लेख 122 बार हुआ है। यद्यपि विदथ के महत्व में परवर्तीकाल में कमी आयी, तथापि सभा और समिति के सापेक्ष में इसका भी महत्व बरकरार रहा। सभा शब्द अथर्ववेद में सत्रह बार और समिति शब्द तेरह बार आया है, वही विदथ का प्रयोग 22 बार हुआ है। इसी प्रकार 'गण' शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में 46 बार तथा अथर्ववेद में 9 बार हुआ है। इस तरह कुछ मायने में ऋग्वैदिक राजनीतिक संस्थायें लोकतांत्रिक प्रतीत होती हैं।

प्रशासन

ऋग्वैदिक काल में राज प्रणाली एवं प्रशासन अपनी प्रारंभिक अवस्था में थी। इस काल की अर्थव्यवस्था चूंकि एक निर्वाह अर्थव्यवस्था थी, जिसमें अधिशेष के लिए बहुत कम गुंजाइश थी। अत: करारोपण प्रणाली भी स्थापित नहीं हो पायी तथा राजकीय अधिकारियों की संख्या भी सीमित थी। अपने दायित्व निर्वाह के बदले राजा को प्रजा से बलि या कर पाने का अधिकारी माना जाता था। यह राजा को स्वेच्छापूर्वक दिया गया उपहार होता था। प्रारंभ में राजा को प्रजा से नियमित कर नहीं मिलते थे। अत: इन्द्र से प्रार्थना की गयी कि वह राजकर देने के लिए प्रजा को विवश करे। नियमित करों की प्रथा कालांतर में उत्तरवैदिक काल में प्रतिष्ठित हुई।

समाज की सबसे बड़ी इकाई राज्य के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग मिलता है। जन शब्द का 275 बार ऋग्वेद में प्रयोग हुआ है, पर जनपद शब्द का एक बार भी नहीं। 'कुल' राज्य का आधार थे, जिन्हें 'संजाति' एवं 'सनाभि' (एक नाभि से उत्पन्न) कहा गया है तथा अन्य राष्ट्र के लिए 'अनाभि' या 'अरण' शब्द आया है। प्रारंभ में जन अनवस्थित एवं संचरणशील थे अर्थात् ग्राम के ग्राम अपने पशुओं के साथ संचरण करते थे। समय क्रम से आर्य स्थायी रूप से निवास करने लगे। अत: कुलों के स्थायी होने से ग्राम एवं जनपदों से राष्ट्र का प्रारूप सामने आया।

समाज, 'कुल' (परिवार); ग्राम 'विश्' तथा 'जन' या 'राष्ट्र' के रूप में विभक्त था। पर यह जानकारी नहीं मिलती है कि परिवार या कुल में कितनी पीढ़ी तक लोग एक साथ रहते थे, तथापि कीथ की धारणा है कि तीन पीढ़ी तक एक परिवार या कुल के सदस्य साथ-साथ रहते होंगे। इसी तरह कीथ के अनुसार उस समय ऐसी प्रथा भी नहीं होगी कि माता-पिता की मृत्यु के बाद अलग रहा जाये, संभवत: उस काल में भूमि अथवा संपत्ति के प्रति अधिक लगाव नहीं रहा होगा, क्योंकि कृषि भूमि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। परिवार एवं कुल में साथ रहने का उद्देश्य मात्र पारस्परिक सहयोग एवं सहायता था। कुल का संरक्षक कुलप कहलाता था। कुलप के अनुशासन को मानते हुए परिवार के समस्त सदस्य एक ही गृह में निवास करते थे। विभिन्न परिवारों के समुदाय से ग्रामों का आविर्भाव हुआ। ग्राम स्वशासी एवं आत्मनिर्भर थे तथा ग्रामीण लोगों के हितों की रक्षा का दायित्व 'ग्रामणी' नामक पदाधिकारी का होता था। वह युद्ध काल में राजा की सहायता भी करता था एवं युद्ध काल के अतिरिक्त ग्राम का सामान्य प्रशासन देखता था।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ग्रामणी सैनिक, आर्थिक तथा सामाजिक आदि सभी मामलों में ग्राम का प्रमुख था और संभवत: ग्राम से 'कर' या 'बलि' भी वसूल करता होगा। राजा को 'बलि हन्त' (बलि कर को अपद्वत करने वाला) कहा गया है। ग्राम के लोगों को गोधन के लिए उत्सुक कहा गया है। अनेक ग्रामों से मिलकर बने उपजिला का स्पष्ट वर्गीकरण ऋग्वेद में नहीं मिलता। जन के सदस्यों को सामूहिक रूप से 'विश' कहा जाता था। ऋग्वेद में इसका 170 बार उल्लेख है। ग्राम से बड़ी इकाई विश स्वीकार की जा सकती है, क्योंकि इसके मुखिया विशपति का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा पुरप (दुर्गपति), स्पश (गुप्तचर) नामक अधिकारी होते थे। राजा के मंत्रियों में 'पुरोहित' का महत्वपूर्ण स्थान था। उसे राजा का प्रमुख परामर्शदाता माना जाता था एवं यह धारणा प्रचलित थी कि उसकी प्रार्थना 'राजा' तथा 'जन' की रक्षा करती है।

पुरोहित युद्ध के समय राजा की विजय के लिए प्रार्थना ही नहीं करता था, बल्कि युद्ध में भी भाग लेता था। पुरोहित द्वारा राजा एवं उसके परिवार के धार्मिक कृत्यों के निष्पादन किये जाने के बदले उसे दान मिलता था। कीथ ने वैदिक पुरोहित को वैदिक राजनीति का अग्रज कहा है। प्रारंभिक वैदिक राज्य में विश्वामित्र एवं वशिष्ठ जैसे पुरोहितों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पुरोहित शान्ति तथा युद्ध दोनों अवस्थाओं में राजा का शिक्षक, पथ प्रदर्शक, मित्र तथा राजनीतिक एवं धार्मिक परामर्श-दाता होता था। राजा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य युद्ध में विजय के लिए सैन्य संचालन करना था और सेनानी नामक मंत्री उसे इस कार्य में सहयोग प्रदान करता था। राजा की प्रमुख योग्यता युद्ध में नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता मानी गयी थी। स्मरणीय है कि तत्कालीन युद्धों का प्रमुख कारण एक दूसरे के क्षेत्र पर अधिकार करने की कामना के साथ पशु धन की प्राप्ति भी था।

पशुधन की प्राप्ति के लिए उस काल में युद्ध इतने सामान्य थे कि ऋग्वेद में युद्ध के लिए 'गविष्टि', 'गोषु', 'गवेषण', 'गव्यत' आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। सामान्यत: पैदल एवं रथारोही सेना में होते थे। इसके अतिरिक्त अश्वरोहियों का अस्तित्व भी रहा होगा। रथों का युद्धों में विशेष महत्व था। राजा तथा प्रमुख योद्धा रथों पर सवार होकर युद्ध करते थे। योद्धा सुरक्षा की दृष्टि से कवच एवं शिरस्त्राण युद्ध में धारण करते थे, जिनके लिए क्रमश: 'वर्म' एवं 'शिप्र' शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैदिक मंत्रों में विविध अस्त्र-शस्त्रों का विवरण मिलता है। युद्ध काल के प्रमुख शस्त्र धनुष बाण थे, किंतु परशु, भाला (सृक्ति) और तलवार का प्रयोग भी किया जाता था। बाणों का आगे का सिरा सींग अथवा धातु से मढ़ दिया जाता था। विष युक्त बाण भी कभी-कभी प्रयोग में लाये जाते थे। युद्ध के दौरान विभिन्न प्रकार की व्यूह रचनाएँ की जाती थीं। 'शर्ध', 'गण' एवं 'व्रात' आदि शब्द संभवत: विविध प्रकार की व्यूह रचनाओं को इंगित करते हैं। प्राय: नदियों के किनारे युद्ध आयोजित होते थे। दशराज्ञ युद्ध पुरुष्णी नदी (रावी) तट पर लड़ा गया था।

ऋग्वेद में 'पुर-चरिष्णु' का उल्लेख मिलता है, जिसका तात्पर्य दुर्गों को गिराने के प्रयोग में लाया जाने वाला कोई उपकरण रहा होगा। सेनापति युद्ध संबंधी मामलों में राजा का सहयोग करता था। सेनापति की नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी। राजा की सहायता से सेनापति सेना का गठन करता एवं युद्ध की योजना बनाता था। सेनानी के पद के विषय में जी.एस.पी मिश्र की मान्यता है कि वह अधिकारी राज्य के अधिक संस्थागत हो जाने के पश्चात् अस्तित्व में आया होगा। 'कुलपति' परिवार का यह मुखिया होता था, 'विशपति' विश का प्रधान होता था। 'व्राजपति'-चरागाह का अधिकारी होता था। 'ग्रामणी' ग्राम का प्रधान था और युद्ध में ग्राम का नेतृत्व करता था। साथ ही यह युद्ध में कुलप को संगठित कर युद्ध मैदान में ले जाता था। यह स्पर्श गुप्तचर होता था। यह दूत विभिन्न राजनीतिक इकाइयों को एक दूसरे के विषय में सूचित करता था। यह दुर्ग का अधिकारी होता था। सबसे बड़ा अपराध पशु-चोरी को माना जाता था। वेतन सोने, चांदी, अन्न, वस्त्राभरण या पशुधन के रूप में दिया जाता था।

न्याय व्यवस्था

राजा देश का सर्वोच्च न्यायाधीश था। इस काल में विचारकों ने विधि या धर्म की सर्वोच्चता की घोषणा ही नहीं की थी, वरन् राजसत्ता द्वारा इसके पालन पर भी जोर दिया था। ऋग्वेद में विधि अथवा व्यवहार के लिए 'धर्मन्' (बाद में 'धर्म') शब्द का प्रयोग हुआ है। आगे जाकर धर्म के अनेक उपादान विधि के अंग बन गये। धर्म या विधि के स्वरूप तथा सर्वोच्चता की परिभाषा सामाजिक संदर्भ में की गयी है, क्योंकि धर्म एवं विधि का मूल मानव समाज है। व्यक्ति नैसर्गिक रूप में समाज में धर्म से अनुप्राणित होकर व्यवस्था बनाये रखता है अथवा दंड के भय से व्यवस्था को स्वीकार करता है।

'धर्म' इस प्रकार प्रारंभ में ऐसे नियमों का संग्रह प्रतीत होता है, जिसके अनेक प्रावधानों ने बाद में विधि का स्वरूप ग्रहण कर लिया था और वे प्रावधान प्रारंभ में समाज की व्यवस्था तथा नैसर्गिक नियमों के द्योतक थे। वेदों की ऋचाओं में पाप और अपराध परस्पर संबद्ध दिखायी देते हैं। 'ऋत' या 'धर्म' के विपरीत किया गया कार्य अपराध माना गया। इस काल में चोरी, सेंधमारी, डकैती एवं पशु अपहरण मुख्य अपराध थे। हत्या का दंड द्रव्य के रूप में दिया जाता था। उच्च श्रेणी के व्यक्ति की हत्या का दंड द्रव्य के रूप में 100 गायों तक लिया जाता था, जो मृतक के संबंधियों को प्रदान किया जाता था। वरदेय (बदला चुकाने की प्रथा) का प्रचलन था, जिसके लिए शतदाय (100 गायों का दान) सदृश विशेषण का प्रयोग होता था। इसका तात्पर्य यह था कि वह व्यक्ति जिसके जीवन मूल्य की बराबरी 100 गायें करती थीं। दिवालिये को ऋणदाता का दास बनाया जाता था। छोटे-छोटे विवादों का निर्णय ग्राम पंचायत करती थी। अग्नि परीक्षा, जल परीक्षा अथवा सन्तप्तपरशु परीक्षा के उदाहरण मिलते हैं।

उत्तरवैदिक काल

उत्तर वैदिक काल में भी राजतंत्र लोकप्रिय शासन तंत्र था। ऐतरेय ब्राह्मण राज्य, स्वराज्य, भोज्य, वैराज्य, महाराज्य और साम्राज्य का जिक्र करता है। वैराज्य का तात्पर्य उस राज्य से है, जहाँ राजा नहीं होता था। राजनीतिक व्यवस्था में इस काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टि-गोचर होते हैं। इस समय तक राजतंत्र सशक्त ही नहीं हुआ, बल्कि बड़े प्रादेशिक राज्यों की स्थापना भी हुयी एवं प्रशासनिक व्यवस्था में भी एक निश्चित पद्धति का आविर्भाव हुआ। विभिन्न 'जन' पूर्व काल में किसी निश्चित प्रदेश से संबद्ध नहीं थे, किंतु इस काल में जनों का स्थान बड़े जनपदों ने ले लिया था। ऋग्वेद काल में राजा का प्रभुत्व 'विश' अथवा एक 'जन' के लोगों तक सीमित था, किंतु अब उसका स्वामित्व एक राष्ट्र तक विस्तृत हो गया। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शासक 'एकराट' कहलाता था। अथर्ववेद के अनुसार एकराट सर्वोपरि शासक को कहते हैं, जो देश के अधिपति थे।

राजा का पद भी अधिक स्थायी और वंशानुगत हो गया था। इस काल के साहित्य में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जिनमें राजा के निर्वाचित होने का संकेत मिलता है। अथर्ववेद में एक स्थान पर विश के द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख है। युद्ध अब गायों के लिए न होकर क्षेत्रों के लिए होने लगे। राजा के दैवी अधिकारों की घोषणा ऋग्वेद में हुयी है। जब एक जगह राजा पुरु यह घोषणा करता है मैं इन्द्र हूँ, मैं वरुण हूँ।' राजत्व के विकास के संबंध में ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि देवों एवं दानवों के मध्य युद्ध हुआ एवं इस युद्ध में देवगण परास्त हुये। अत: देवताओं ने निश्चय किया कि हमारा कोई राजा नहीं है, दानव हमें हरा देते हैं, फलत: हमें अपने एक राजा का चयन करना चाहिए। उन्होंने अपना एक राजा निर्वाचित किया और उसके निर्देशन में दानवों पर विजय प्राप्त की। इसी ब्राह्मण में यह वर्णन मिलता है कि देवताओं ने इन्द्र को अपना राजा निर्वाचित किया, क्योंकि परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात् वे इस निर्णय पर पहुँचे कि देवताओं में वे सबसे पराक्रमी, सबसे शक्तिशाली, वीर और सबसे पूर्ण तथा किसी भी कार्य को अच्छी तरह संपादित कर सकते हैं। इस ब्राह्मण से जानकारी मिलती है कि राजा का चयन सबकी सहमति से होता था, चयन करते समय यह ध्यान रखा जाता था कि जो सामान्यत: युद्ध आदि का संचालन करने में समर्थ तथा राजकीय कार्यों का संपादन कर सके।

प्रारंभ में प्रकृति की एक ऐसी अवस्था थी, जिसमें जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ होती थी। शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने के लिए एक राजा चुना गया और उसने लोगों के धन-जन की रक्षा करने का वचन इस शर्त पर दिया कि लोग उसे कर (बलि) देंगे। इस सिद्धांत का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के एक रहस्यवादी पद में मिलता है। उसमें कहा गया है कि जब कभी सूखा पड़ता है, तब शक्तिशाली लोग कमजोरों को पकड़ लेते हैं, क्योंकि पानी ही विधान हो जाता है। एक राजवंश की दस पीढ़ियों तक के उत्तराधिकार का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है। इससे पता चलता है कि राजत्व वंशानुगत था। राजत्व के स्थायी तथा वंशानुगत होने से राजा के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि होना स्वाभाविक था। राजा को प्रजापति का प्रतिनिधि कहा गया। अत: वह एक होने पर भी जन समूह पर शासन करता है। राजत्व के दैवीय विकास के सिद्धांत का इस प्रकार आविर्भाव हुआ।

वैदिक देवता इन्द्र, वरुण एवं सोम की उत्पत्ति के संबंध में भी अनेक आख्यायिकाएं हैं, जिनमें से कुछ राजा की दैवी उत्पत्ति तथा कुछ उसके लोकप्रिय निर्वाचन पर प्रकाश डालती हैं।

कहा जा सकता है कि एक ओर अराजकता की स्थिति में राजा के निर्वाचन का विचार चल रहा था, तो दूसरी ओर राजा की दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत भी समाज में प्रचलित होने लगा था। राजा के दैवीय सिद्धांत का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। तैतिरीय ब्राह्मण में एक प्रसंग है कि इन्द्र की स्थिति देवताओं में बहुत निम्न थी, किंतु प्रजापति ने उसे देवताओं का राजा नियुक्त किया। इसमें यह भी उल्लेख मिलता है कि राजसूय एवं वाजपेय यज्ञों के संपादन द्वारा राजा प्रजापति के समान प्रभुत्व संपन्न हो जाता है। जनमत राजत्व प्रतिष्ठा का आधार था। अथर्ववेद में राजा को पदमुक्त किये जाने एवं राज्य से बहिष्कृत होकर दूसरे क्षेत्र में विचरण करने का विवरण मिलता है। एक निष्कासित राजा को अपनी प्रजा एवं विरोधियों द्वारा पुनः वरण किये जाने का भी उल्लेख आया है।

एक विशेष संस्कार का पंचर्विश ब्राह्मण में उल्लेख है, जिसके द्वारा पदच्युत राजा पुनः राज्य कर सकता था अथवा राज्यारूढ़ होने की स्थिति में अपनी प्रजा का पुनः समर्थन प्राप्त करता था। कहा जा सकता है कि राजा के मानवीय स्वरूप को भुलाया नहीं गया था। राजा के वंशानुगत होने से वह स्वच्छन्द रूप से कार्य करता था, परंतु उसे निरंकुश नहीं माना जा सकता। साधारण नरेश के लिए 'राजा' तथा बड़े राज्यों के शासकों के लिए अधिराज, राजाधिराज, विराट्, सार्वभौम (संपूर्ण पृथ्वी का राजा) आदि विशेषणों का प्रयोग किया जाने लगा। अपने पद के अनुरूप राजा लोग इन उपाधियों की सार्थकता सिद्ध करने के लिए विविध प्रकार के यज्ञ संपादित करते थे।

ऐतरेय ब्राह्मण प्राच्य देश के शासकों के साम्राज्य पद के लिए अभिषिक्त किये जाने का उल्लेख करता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार उत्तर का राजा 'विराट', दक्षिण का राजा 'भोज', पश्चिम का स्वराट, मध्य देश का राजा और पूरब का राजा सम्राट कहलाता था। जैसा स्पष्ट है कि प्रत्येक राजा बड़े भूप्रदेश पर अपने प्रभुत्व स्थापना की कामना रखता था, जिसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति राजसूय यज्ञ के अवसर पर दिखायी देती है। जिसमें वह धनुष बाण लेकर चारों दिशाओं की विजय का उद्घोष करता था। ब्राह्मण ग्रंथों में राज्यारोहण के समय राजा के अभिषेक तथा उसके द्वारा ली जाने वाली शपथ का विस्तृत विवरण मिलता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनोनीत राजा मातृभूमि से अनुमति इन शब्दों में प्राप्त करता था–"मातृभूमि! तुम मेरी हिंसा न करो और मैं तुम्हारी हिंसा न करूं।" संभवतः ऐसा करना इसलिए आवश्यक था कि शासक मातृभूमि के प्रति निष्ठावान हो। इसलिए कहा गया है, ताकि राजा एवं राष्ट्र एक दूसरे के हितैषी हों जैसे–माता और पुत्र। इस अवसर पर विभिन्न देवताओं को आहुतियाँ दी जाती थीं। अन्त में धर्म या विधि के स्वामी वरुण को आहुति दी जाती थी, क्योंकि वैदिक राजनीति में विधि (धर्म) को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है एवं राजा को दंड या शासन का प्रतिरूप माना गया है, जो धर्म की रक्षा एवं संस्थापन करता था।

राजा द्वारा ली जाने वाली शपथ का उल्लेख मिलता है–"जिस रात्रि को मेरा जन्म हुआ है और जिस रात्रि को मेरी मृत्यु होगी, इन दोनों के बीच में जो मेरा यज्ञ फल और दानादि पुण्य हैं, जो मेरा लोक में धर्म, आयु और प्रजायें हैं वे सब नष्ट हो जायें, यदि मैं तुझसे द्रोह करूं।" यह कथन भी उल्लेखनीय है, जिसमें राज्यरोहण के दौरान राजा को कहा जाता था कि 'तुम्हें यह राष्ट्र दिया जाता है, कृषि के लिए जनता के क्षेम के लिए और सर्वाविध पोषण के लिए एवं उन्नति के लिए।' इससे पता चलता है कि राजा को राज्य एक धरोहर के रूप में सौंपा जाता था एवं राजा के उस पर अधिकृत रहने की कसौटी जनता की प्रगति एवं कुशलता थी। इस अभिषेक द्वारा राजा को अदंड्य कर दिया जाता था, अर्थात् उसे दंड से परे मान लिया जाता था। इस विषय पर आर.के. मुखर्जी ने लिखा है कि इससे इस मत की पुष्टि होती है कि 'राजा स्वयं दंड से अतीत रहते हुए उस दंड को धारण करता है जो धर्म का रक्षक है।' राजा धर्म का विधाता या स्रोत नहीं, वह उसको धारण करने वाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा की स्थिति पर्याप्त शक्तिशाली हो गयी थी। किंतु, पूर्ववत् जनशक्ति का राजा पर नियंत्रण एवं प्रभाव बना हुआ था। ताण्ड्य महाब्राह्मण में एक कथानक मिलता है : जिसमें पुरोहित द्वारा राजा के विनाश के लिए प्रजा को सहयोग प्रदान करने का उल्लेख हुआ है। कुल मिलाकर राजपद की प्रतिष्ठा बढ़ी क्योंकि इससे कुछ संस्कार जुड़ गये। कुछ महत्वपूर्ण संस्कार इस प्रकार थे।

राज्याभिषेकः राजा का राज्याभिषेक संस्कार सबसे महत्वपूर्ण था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार इसका उद्देश्य परम शक्ति की प्राप्ति था। कभी-कभी दो राज्याभिषेक भी होते थे। जैसे युधिष्ठिर के दो राज्याभिषेक हुए। राज्य के कुछ विशेष मंत्रियों के भी अभिषेक होते थे। राज-पुरोहित का भी एक विशेष संस्कार हुआ करता था। 17 प्रकार के जलों से अभिषेक होता था। अभिषेक संस्कार के

समय रत्निनो की, एक रानी की, एक हाथी की, एक सफेद घोड़े की एवं एक सफेद बैल की तथा एक श्वेत क्षेत्र इत्यादि की उपस्थिति आवश्यक थी।

राजसूययज्ञः अपेक्षाकृत यह एक बड़ा यज्ञ था। इसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। जहाँ राज्याभिषेक एक आवश्यक कृत था, वहीं राजसूय एक ऐच्छिक धार्मिक अनुष्ठान था। वरुण देवता राजसूय-यज्ञ में पार्थिव शरीर में प्रकट होते थे। यह दो दिन चलता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा के लिए ही राजसूय यज्ञ है ऐसी मान्यता है।

अश्वमेध यज्ञः बड़े राजा के लिए यह एक विस्तृत समारोह था। इसका उद्देश्य राजा के राज्य का विस्तार करना और राज्य के लोगों को सुख और समृद्धि प्रदान करना था। 'शतपथ ब्राह्मण' में भरतों के दो राजाओं भरत दोषयन्ति और शतानिक सत्राजित द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख है। सार्वभौमिक और चक्रवर्ती का स्तर प्राप्त करने के लिए अश्वमेध यज्ञ के विधान था।

वाजपेय यज्ञ (शक्ति का पान): इस यज्ञ का उद्देश्य राजा को नव-यौवन प्रदान करना और उसकी शारीरिक एवं आत्मिक शक्ति को बढ़ाना था। इसी से जुड़ा हुआ समारोह रथ दौड़ होती थी, जिसमें राजा का रथ सबसे आगे निकलता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो राजा सम्राट का स्तर प्राप्त करना चाहता था, उसके लिए वाजपेय का विधान अनिवार्य था। अथर्ववेद में कहा गया है कि राष्ट्र राजा के हाथ में हो और इसे इन्द्र, वृहस्पति आदि देव सुदृढ़ बनाए। शतपथ ब्राह्मण एवं तैतिरीय उपनिषदों में कहा गया है कि राजा राष्ट्र का पोषक होता है।

इस काल में करारोपण प्रणाली नियमित हो गयी थी और बलि के अतिरिक्त शुल्क और भाग भी लिया जाने लगा था। अब बलि स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर नहीं था, वरन् यह लोगों पर आवश्यक रूप से लाद दिया गया था। संभवतः आय का 16वाँ भाग कर के रूप में लिया जाता था। कर की अदायगी अन्न एवं पशु दोनों रूपों में होती थी। शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित 'बलिकृत' से संकेत मिलता है कि कर का बोझ वैश्य वर्ग पर अधिक था। कर संग्रह करने के लिए 'भागदुध' की नियुक्ति की जाती थी।

संदर्भ

1. प्राचीन भारत का इतिहास -डा. सत्यनारायण।
2. प्राचीन भारत–एन.सी.ई.आर.टी.
3. प्राचीन भारत का इतिहास–द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली
4. अद्‌भुत भारत–ए.एल. बाशम
5. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति–के.सी. श्रीवास्तव
6. प्राचीन भारत का इतिहास–रोमिला थापर
7. प्राचीन भारत–डी.एन. झा
8. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास–डॉ. जय शंकर मिश्रा
9. प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं संरचनाएं–रामशरण शर्मा।
10. प्राचीन भारत का इतिहास–उपाध्याय, भी. एस.
11. प्राचीन भारत (कथा -11)-एन. सी. ई. आर .टी.
12. प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास -डा. शिवस्वरूप सहाय।
13. प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था -डा. ओम प्रकाश प्रसाद।

प्रजातंत्र और नौकरशाही–एक दृष्टि

डॉ० सीता कुमारी

पति-लखेन्द्र दास, ग्राम+पोस्ट-पानापुर लंगा, जिला-वैशाली

मैक्स वेबर का कहना है कि शासन के प्रजातंत्रीकरण के परिणामस्वरूप नौकरशाही का विकास हुआ है और इस दृष्टिकोण से प्रजातंत्र तथा नौकरशाही व्यवस्था का घनिष्ठ संबंध रहा है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में मौद्रिक अर्थव्यवस्था का समुचित विकास होता है जो नौकरशाही को पनपने के लिए मूल आवश्यकता होती है। स्वतंत्रता, समानता, न्याय, प्रजातंत्र के तीन आधार स्तंभ होते है जो नौकरशाही के लिए अनुकूल पर्यावरण तैयार करते है। यहाँ सभी लोग कानून की दृष्टि में समान होते हैं और सभी को यह स्वतंत्रता प्राप्त होती है कि वे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार व्यवस्था के किसी भी पद को प्राप्त कर सके, अर्थात् लोकतंत्र में कोई भी व्यक्ति अपनी क्षमता और योग्यता का प्रदर्शन करके ऊँचे से ऊँचे पद पर आसीन हो सकता है। इस प्रकार लोकतंत्र नौकरशाही की उत्पत्ति व विकास के लिए अनुकूल पर्यावरण तैयार करता है। राजनीतिक दलों का स्वरूप जैसे-जैसे प्रजातंत्रीय बनता जाता है, वैसे-वैसे उनकी संरचना भी नौकरशाही प्रकृति की होती जाती है।

फिर भी नौकरशाही और लोकतंत्र दोनों अलग आयाम है। नौकरशाही और लोकतंत्र में इस बात को लेकर विरोध है कि जहाँ लोकतंत्र विविधता को आत्मार्पित करके आधुनिकता की और अग्रसर होता है, वही नौकरशाही नियम और कानूनों में बँधकर रूढ़िवादिता को अपनाता है। नौकरशाही व्यवस्था में पदाधिकारी लगातार एक ही जैसा काम करते-करते यंत्रीय प्रकृति का हो जाता है उसमें रचनात्मकता (creation) का ह्रास हो जाता है।

वेबर द्वारा प्रतिपादित सत्ता की अवधारणा

नौकरशाही का व्यवस्थित अध्ययन करने वाला प्रथम समाजशास्त्री मेक्स वेबर हे। इवने नौकरशाही को शासन संचालन के लिए अनिवार्य एवं तर्कपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था माना ओर इसे मानवीय व्यवहार में तर्कपूर्णता लाने का सर्वोत्तम साधन बताया। मैक्स वेबर के अनुसार समाज में सत्ता विशेष रूप से आर्थिक आधारों पर आधारित होती है, यद्यपि आर्थिक कारक ही सत्ता क एकमात्र निर्धारक नहीं होते। जीवन के आर्थिक पहलू में सहज ही स्पष्ट है कि एक ओर पूंजीपति वर्ग उत्पादन के साधनों तथा मजदूर वर्ग की सेवाओं पर अपने अधिकार को निरंतर बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं, और दूसरी ओर मजदूर वर्ग अपनी सेवाओं के बदले में अधिकाधिक मजदूरी प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार दोनों वर्ग (मालिक और मजदूर) अधिकाधिक पूंजी पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते हैं क्योंकि सत्ता का निवास उन्हीं के पास होता है जिनके पास संपत्ति तथा उत्पादन के साधन केंद्रित हों। इसी सत्ता के आधार पर मजदूर की स्वाधीनता खरीदी जाती है और मालिक को मजदूर के ऊपर विशेष प्रकार के अधिकार प्राप्त हो जाते है अर्थात् 'स्वतंत्रता पर अधिकार का शासन' हो जाता है। यद्यपि इस प्रकार की सत्ता का निरंतर ह्रास हो रहा है और बहुत हद तक यह ह्रासित भी हो चुकी है, फिर भी आर्थिक क्षेत्र में निजी संपत्ति तथा उत्पादन के साधन किसी वर्ग के लिए सत्ता के निर्धारण में एक महत्त्वपूर्ण कारक आज भी हैं। संक्षेप में, आर्थिक जीवन में एक स्थिर या संस्थागत अर्थव्यवस्था समाज के कुछ विशिष्ट वर्ग को अधिकार या सत्ता प्रदान करती है। यह वर्ग अपनी उस सत्ता के बल पर दूसरे वर्गों पर प्रभुत्व रखता है या उनसे ऊँची स्थिति पर विराजमान होता है।

प्रभुत्व के प्रकार

वेबर के नौकरशाही का सिद्धांत सत्ता या प्रभुत्व के सिद्धांत का ही एक अंग है। प्रभुत्व का अर्थ है 'नियंत्रण की अधिकारिक शक्ति।' वेबर प्रभुत्व के तीन प्रकार बताए :

1. **परमपरागत सत्ता :** वेबर के अनुसार परम्परागत नौकरशाही रूढ़ीवादिता, जातीयता एवं अन्य अवैज्ञानिक मान्यता पर आधारित है। यह सत्ता एक व्यक्ति को वैज्ञानिक नियमों के अंतर्गत पद पर आसीन होने के कारण नहीं बल्कि परंपरा द्वारा स्वीकृत पद पर आसीन होने के कारण प्राप्त होती है। पारंपारिक सत्ता इस मान्यता पर टिकी हुई है कि प्रचलित मूल्य यथोचित होता है। इस प्रकार की सत्ता का स्रोत परंपरायें होती है, अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी शासक और जनता के बीच संबंध चला आ रहा है। उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार वैधानिक सत्ता वैधानिक नियमों के अनुसार निश्चित तथा सीमित होती है उस प्रकार परम्परागत सत्ता निश्चित और सीमित नहीं होती क्योंकि इसमें स्पष्ट और निश्चित नियमों का अभाव होता है। इस प्रकार की सत्ता के उदाहरण है, जनजातियों के मुखिया की सत्ता, कृषि युग में पंचायतों की सत्ता, नेपाल के राजा की सत्ता, ब्रिटेन में महारानी विक्टोरिया की सत्ता आदि।
2. **करिश्माई सत्ता :** वेबर के अनुसार करश्मिाई सत्ता पर आधारित नौकरशाही इसलिए उचित नहीं है, क्योंकि इसमें व्यक्ति विशेष के करिश्मा से नौकरशाही का स्वरूप जुड़कर विकृत हो जाता है। चमत्कारिक सत्ता की अवधारणा सर्वप्रथम **ट्रॉलेश** महोदय ने दी। यह सत्ता न तो वैधानिक नियमों पर और न ही परंपरा पर बल्कि कुछ करिश्मा या चमत्कार पर आधारित होती है।

   इस प्रकार श्रम विभाजन का सिद्धांत कार्यों, अधिकारों और नियमन की तर्कसंगत व्यवस्था करता है। केवल उन्हीं व्यक्तियों को नौकर रखा जाता है जिनमें काम करने के लिए आवश्यक नियमानुसार योग्यता हो। सार्वजनिक तथा विधिवत सरकारी क्षेत्र में इन तत्त्वों को मिलाकर ही नौकरशाही व्यवस्था का निर्माण होता है। इस तरह की नौकरशाही वर्तमान राज्यों (आधुनिक राज्यों) में पूरी तरह विकसित रूप में दृष्टिगत होती है।
3. **वैधानिक सत्ता :** वेबर के अनुसार आदर्श प्रकार की नौकरशाही वैधानिक सत्ता से पोषित एवं समर्थित होती है। यह सत्ता समाज में स्वीकृत और प्रचलित नियम और व्यवस्था के साथ जुड़ी होती है व्यक्ति विशेष के साथ नहीं। आपत्ति जो व्यक्ति जिस पद पर आसीन होता है उसके हाथों में उस पद से संबंधित सत्ता होती है कि सत्ता का निवास कुर्सी (पद) पर होता है व्यक्ति पर नहीं। व्यवस्था से जुड़े व्यक्ति निर्धारित योग्यताओं के आधार पर चुने जाते हैं, किसी परंपरा या करिश्मा के आधार पर नहीं। इस प्रकार की सत्ता का स्रोत व्यक्ति की निजी प्रतिष्ठा या योग्यता में निहित नहीं होता, बल्कि जिन नियमों के अंतर्गत वह किसी विशिष्ट पद पर आसीन है, उन नियमों की सत्ता में निहित है। अत: इसका क्षेत्र वहीं तक सीमित होता है जहाँ तक वैधानिक नियम..... इस प्रकार व्यक्ति को वैधानिक सत्ता के क्षेत्र और उसके बाहर के क्षेत्र में मूलभूत अंतर होता है। वेबर के अनुसार एक जटिल समाज में वैधानिक सत्ता प्रत्येक व्यक्ति के हाथों में समान नहीं हो सकती, बल्कि सोपानीय रीति से इसमें ऊँच-नीच का संस्करण होता है। वेबर के अनुसार नौकरशाही का संबंध सामूहिक गति-विधियों के समाज शास्त्रीय विवेकीकरण से है। तथा आधुनिक जटिल समाज की संरचना के लिए महत्त्वपूर्ण है चाहे समाज पूंजीवादी हो या समाजवादी। वेबर के अनुसार पूंजीवादी समाज में नौकरशाही की आवश्यकता का कारण 'प्रतिस्पर्धामूलक परिवेश' का होना है जबकि समाजवादी व्यवस्था में इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि राज्य अधिकाधिक कार्य करना चाहता है। प्रतिस्पर्धामूलक समाज में नौकरशाही व्यवस्था प्रतिस्पर्धा को स्वस्थ और न्यायसंगत बनाने का कार्य करती है तथा समाजवादी समाज में राज्य के कार्यों में सहयोग करती है।

वेबर की नौकरशाही

वर्तमान समय में नौकरशाही तमाम शासन व्यवस्था के लिए अनिवार्य प्रशासनिक व्यवसाि होने के बाद भी इसका अर्थ प्रशासन की निरंकुशता, लालफीताशाही, तदर्थवादी प्रवृति, संकुचित दृष्टिकोण जैसी बुराइयों से लगाया जाता है। परन्तु वेबर की नौकरशाही शासन के स्थाई अधिकारियों का समूह और उनका प्रशासनिक ढांचा जो सार्वजनिक नीतियों को कार्यान्वित करता है। ये अधिकारी 'राजनीतिक कार्यपालिका' का अंग न होकर स्थाई कार्यपालिका का निर्माण करते हैं। नौकरशाही व्यवस्था में व्यक्तिगत भावनाओं और अधिमान्यताओं या स्वार्थ को कोई स्थान नहीं दिया जाता। 19वीं सदी में कई विचारकों ने आधुनिक नौकरशाही के विषय में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए। उन सब में मैक्स वेबर का अग्रणी स्थान है जिसने नौकरशाही को क्रमबद्ध और वैज्ञानिक अध्ययन किया। वेबर ने नौकरशाही को परिभाषित करते हुए कहा, "नौकरशाही एक प्रशासनिक व्यवस्था है, जिसमें विशेष योग्यता, निष्पक्षता के लिए स्थान रहता है। तथा जिसमें मानवता का अभाव होता है।"

नौकरशाही की विशेषताएँ

1. **पदसोपानिक :** वेबर के अनुसार आदर्श नौकरशाही पदसोपान पर आधारित होती है, जिसमें संलग्न पदाधिकारियों का स्पष्ट कार्य एवं उत्तरदायित्व होता है। इस तरह नौकरशाही विभिन्न स्तर के अधिकारियों की वह व्यवस्था है जो पदसोपानीय रीति से व्यवस्थित की गई है। इसमें विधिगत एक पद को दूसरे पद के नीचे रखा गया है। तथा पद के अनुसार सुनिश्चित आधार पर सत्ता विभाजन होता है। इससे तात्पर्य है कि एक ऐसी सुदृढ़ और व्यवस्थित पद्धति जिसमें निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के आधिकारिक कार्यों की देखरेख उच्च श्रेणियों के कर्मचारियों द्वारा की जाती है अर्थात् उच्च पदाधिकारियों के अधीन निम्न-पदाधिकारियों का काम करने की संस्तरणात्मकता होती है। इसी व्यवस्था के अंतर्गत निम्न-पदाधिकारियों के फैसलों के विरुद्ध उच्च पदाधिकारियों के पास अपील की जा सकती है। इस प्रकार सोपानीय व्यवस्था समस्त नौकरशाही संरचनाओं में देखने को मिलती है।
2. **श्रम विभाजन :** आदर्श नौकरशाही में स्पष्ट श्रम-विभाजन होता है। यानि नौकरशाही में कर्मचारियों तथा अधिकारियों के कार्य-क्षेत्र निश्चित ढंग से बांट देने का सिद्धांत होता है और साधारणतया यह विभाजन कानून या प्रशासनीय नियमों के अनुसार किया जाता है। नौकरशाही के श्रम विभाजन सिद्धांत को तीन-चार विभागों में बांट कर अध्ययन करते हैं : (i) शासन तंत्र के आवश्यक तथा नियमित कार्यों को एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा वितरित करना। (ii) इन कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक आदेश देने के अधिकार को एक सुनिश्चित आधार पर वितरित करना। (iii) इन कर्त्तव्यों और अधिकारों के नियमित और निरंतर पालन के लिए समुचित व्यवस्था करना।

वेबर नौकरशाही की आलोचना

मैक्स वेबर ने जिस आदर्श नौकरशाही की बात की है और उसकी अनिवार्यता पर जोर दिया है उसकी कई आलोचनाएँ की गई है। स्वयं वेबर के अनुसार : वेबर नौकरशाही को 'अपरिहार्य भाग्य' कहकर उसकी आलोचना करता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति एक बार जिस पद पर आसीन हो जाता है वह उसी पद के अनुसार समय, स्थान, स्थिति आदि से बंध जाता है। यहाँ व्यक्ति की इच्छा-अनिच्छा का महत्त्व नहीं रह जाता। इसी को वेबर 'अपरिहार्य भाग्य' कहता है। अत्यधिक नियम कानूनों से बंधे होने के कारण व्यक्ति को सृजनशीलता मर जाती है, उसमें अलगाव की भावना घर कर लेती है। स्नेह, विवेक, क्रोध, सुख दुख आदि वैयक्तिक तत्त्वों का ह्रास हो जाता है तथा व्यक्ति केवल अपने कार्य तक ही सीमित हो जाता है। वेबर के अनुसार, आधुनिक युग की तर्क आधारित तथा नियम कानूनों पर आश्रित व्यवस्था वैयक्तिक विशेषताओं (मूल्यों) की दृष्टि से प्रभावहीन पाई जाती है। मर्टन ने, वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही व्यवस्था की 'कर्मकांडीय व्यवस्था' कहकर आलोचना की। मर्टन, वेबर की नौकरशाही में नियमों के पालन पर अत्यधिक बल दिए जाने की आलोचना करते हुए कहता है कि इसमें अधिकारियों की पदोन्नति इस आधार पर होती है कि उसने नियमों कानूनों का पालन कितना किया है न कि इस आधार पर कि उसने अपना लक्ष्य प्राप्त किया या नहीं। अर्थात् इसमें नियमों के पालन को लक्ष्य प्राप्ति से अधिक महत्त्व दिया गया है। मर्टन के अनुसार, नौकरशाही व्यवस्था से अवैक्तिकता की भावना जनता एवं शासन के बीच दूरी स्थापित करती है। अर्थात् "सत्ता पर नियंत्रण की शक्ति जो कि एक स्वीकृत से उत्पन्न होती है, पद में निहित होती है न कि पदासीन व्यक्ति में। मर्टन कहता है कि नियमों को साधन की जगह साध्य मान लेने से प्रशासन में जटिलता तथा लालफीताशाही उत्पन्न होती है।

पार्सन्स ने वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही की 'आंतरिक निरंतरता' (सुसंगतता) पर प्रश्न चिह्न लगाया। पार्सन्स ने कहा है कि वेबर की यह धारणा कि "प्रशासनिक कर्मचारी तकनीकी रूप में भी उतना ही उन्नत होगा जितना कि उसे आदेश देने का अधिकार प्राप्त हो।" तर्कसंगत नहीं है। इस धारणा का खंडन करते हुए वह कहता है कि इस प्रकार की नौकरशाही व्यवस्था में कार्यरत कर्मचारियों के समक्ष यह दुविधा पैदा हो जाएगी कि वह उस व्यक्ति की आज्ञा का पालन करे जो वास्तव में विशेषज्ञ है अथवा उसकी जो कि प्रशासनिक रूप से प्रमुख है।

पीटर व्ला एवं एल्विन गोल्डनर के अनुसार वेबर द्वारा अत्यधिक बल 'औपचारिकता' पर दिए जाने की आलोचना की। इसका कहना है कि केवल औपचारिकता के कारण नौकरशाही की क्षमता नहीं बढ़ती, बल्कि औपचारिकता एवं अनौपचारिकता के सही समावेश से ही नौकरशाही अधिक सक्षम हो सकती है। अर्थात् आवश्यकतानुसार वरिष्ठ, कनिष्ठ एवं समकक्षी इन तीनों का ताल-मेल समय एवं परिस्थिति के अनुसार होना चाहिए। जैसे एक अनुभवी सिपाही एक नये पुलिस अधिकारी से किसी खास कांड (केस) के संबंध में अधिक उपयोगी हो सकता है। लेकिन नौकरशाही की औपचारिकता उसका उपयोग नहीं होने देते।

टॉलकॉट पार्सन्स द्वारा की गई आलोचना के आधार पर एल्विन गोल्डनर ने नौकरशाही में दो भेद किए हैं :

(A) दंड केंद्रित नौकरशाही : इसमें कर्मचारी आज्ञाओं का पालन भयवश करता है।

(B) प्रतिनिधिक नौकरशाही : इसमें संगठन से लगाव के कारण कर्मचारी खुशी से आज्ञाओं का पालन करता है।

वर्स एवं स्टेफर के अनुसार नौकरशाही व्यवस्था, नियमों औपचारिकताओं पर अधिक बल दिए जाने के कारण जड़ हो गई है जो अत्यधिक गतिशील अर्थव्यवस्था की पूर्ति में बाधक है। नौकरशाही व्यवस्था का अपरिवर्तनीय स्वरूप परिवर्तनशील तकनीक एवं व्यावसायिक परिस्थितियों के साथ तारतम्य नहीं मिला पाती क्योंकि आधुनिक व्यवस्था में परिवर्तन अत्यधिक तीव्र गति से हो रहा है।

लिप्सेट एवं सेल्जनिक के अनुसार वेबर के नौकरशाही सिद्धांत की निम्न आधारों पर आलोचना करते हैं : 1. वेबर का यह विचार कि 'संसदीय प्रणाली नौकरशाही व्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त है, ठीक नहीं है। 2. नौकरशाही व्यवस्था ने नवनिर्मित समाजवादी सरकार के लोकप्रिय जनकार्यों को लागू करने में अड़चने लगाई हैं तथा उनके प्रयासों को विफल किया है। 3. बेबेरियन मॉडल निजी चारित्रिक विशेषताओं की अनदेखी करता है 4. कार्य विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न उप इकाईयाँ अपने निजी लक्ष्य निर्धारित कर सकती हैं जो कि सांगठनिक लक्ष्य के विरुद्ध हो सकते हैं। प्रशासनिक अधिकारी अपने पद के चलते निजी ताकत ग्रहण कर सकते हैं।

प्रो. रॉब्सन ने आधुनिक नौकरशाही व्यवस्था की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की :

इसमें जनता के प्रति उदासीनता है। यह अभिमान का चरमोत्कर्ष है। इसमें विभागीय नियंत्रणों के संबंध में कठोर नीति है। इसमें नियमों एवं औपचारिक प्रक्रियाओं के प्रति अधिक लगाव, इसमें शासक एवं शासितों के बीच अंतर को स्वीकृति दी गई है।

कार्ल मार्क्स का नौकरशाही सिद्धांत

नौकरशाही के ऐसे किसी व्यवस्थित सिद्धांत का कार्ल मार्क्स विवरण प्रस्तुत नहीं करता जैसा आगे चलकर वेबर ने प्रस्तुत किया। मार्क्स नौकरशाही को जटिल औद्योगिक समाज की आवश्यकता का परिणाम बताता है। मार्क्स के अनुसार 16-17वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में पूंजीवादी तथा राष्ट्र राज्यों का उदय हुआ तथा संपत्ति का केंद्रीकरण पूंजीपतियों और राजाओं के हाथो होने लगा। संपत्ति के केंद्रीयकरण ने प्रबंधन की समस्या को जन्म दिया। इस समस्या के हल के लिए नौकरशाही व्यवस्था उभर कर सामने आयी। इस व्यवस्था का उपयोग पूंजीपतियों ने दूसरे पूंजीपतियों से प्रतिस्पर्धा और श्रमिकों के प्रबंधन के लिए तथा राजाओं ने सामंतो पर काबू पाने के लिए किया। मार्क्स नौकरशाही व्यवस्था को एक वृहद सामाजिक घटना के रूप में कम और उसके द्वारा राज्य में निभाये जा रहे नये वर्ग की भूमिका में ज्यादा देखता है। मार्क्स के अनुसार नौकरशाही का अर्थ वे अधिकारी जो पूंजीपति या शासकों की ओर से मजदूरों एवं कर्मचारियों पर नियंत्रण करते हैं। नौकरशाही का दायित्व पूंजीवाद की शोषणपूर्ण परिस्थितियों में श्रमिकों से काम लेना है। इस प्रकार वह नौकरशाही को बुर्जुआ हित के साधन तथा पूंजीवादी व्यवस्था की संरक्षक व्यवस्था के रूप में देखता है। 1844 के साम्यवादी घोषणा पत्र में राज्य को 'पूंजीपतियों को कार्यकारिणी समिति' तथा नौकरशाही को उसका साधन कहा गया है। मार्क्स के अनुसार, क्रांति द्वारा पूंजीवादी वर्ग को नेस्तनाबूत कर दिया जाएगा और सर्वाहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित हो जाएगा तब इस घृणित नौकरशाही प्रणाली को कोई भूमिका नहीं रह जाएगी।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार नौकरशाही व्यवस्था के निम्न लक्षण दृष्टिगत होते हैं :

1. श्रम विभाजन : श्रम का विभाजन पूंजीवादी व्यवस्था में बौद्धिक और भौतिक उत्पादन के बीच है। पूंजीपति और नौकरशाह केवल बौद्धिक कार्यों को अपने हाथ लेते है जबकि श्रमिक उत्पादन जैसा जटिल कार्य करता है। इस प्रकार श्रम विभाजन के नाम पर परिश्रम का सारा बोझ मजदूरों को दे दिया जाता है और पूंजीपति तथा नौकरशाही बौद्धिक कार्यों को अपने हाथ में लेकर अपनी बुद्धि का प्रयोग करके उत्पादन का अधिकतर लाभ अपनी तिजोरियों में भर लेते हैं।
2. पदसोपानीय परंपरा : मार्क्स के अनुसार पदसोपानीय व्यवस्था की एक कमजोरी यह है कि उच्च अधिकारी अपने निचले अधिकारी को अधिकाधिक काम सौंप देता है, जिससे निचला अधिकारी कार्य बोझ को सम्हाल नहीं पाता। परिणामत: व्यवस्था में कर्त्तव्यनिष्ठा का अभाव हो जाता है।
3. अलगाव : चार ऐसे तत्त्वों को नौकरशाही व्यवस्था जन्म देती है जो अलगाव की भावना को जन्म देते है। ये तत्त्व हैं :

(प) स्वतंत्रता का ह्रास

(ii) सृजनात्मक की क्षमता का ह्रास

(iii) मानवीय भावना की अति

(iv) नैतिकता का ह्रास

नौकरशाही के मार्क्सवादी विचार के आधार पर नवमार्क्सवादी विचारक राल्फ मिलिबैंड ने अपने विचार प्रस्तुत किए। राल्फ मिलिबैंड का मानना है कि नौकरशाही व्यवस्था, समाजवादी राज्य द्वारा चलाई जाने वाली व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करती है। इसके उच्च अधिकारी, समाजवादी राज्यों और समाजवादी मंत्रियों के द्वारा किए जाने वाले प्रगतिशील कार्यों में बाधा उत्पन्न करते हैं। मिलिबैंड परम्परागत नौकरशाही व्यवस्था का संबंध नियमित पूंजीवादी समाज के साथ बताता है।

कार्ल जे. फ्राइड्रिक के अनुसार नौकरशाही व्यवस्था के लक्षण : फ्राइड्रिक ने अपनी पुस्तक 'संवैधानिक सरकार और लोकतंत्र के अंतर्गत नौकरशाही व्यवस्था के छः लक्षण बताए हैं जो निम्न हैं :

1. कार्य विभिन्नीकरण
2. योग्यता के आधार पर पद प्राप्ति
3. पदसोपानीय क्रम का संगठन तथा अनुशासन
4. कार्यरीति की वस्तुनिष्ठता
5. लालफीताशाही
6. प्रशासनिक कार्यों के संबंध में गुणवत्ता

संदर्भ

1. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
2. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
3. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
4. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
5. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
6. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
7. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासनः सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
8. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
9. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
10. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
11. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
12. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
13. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
14. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
15. भारत की विदेश नीति – वी एन. खन्ना
16. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांत – अजय कुमार
17. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
18. भारतीय प्रशासनः विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
19. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे

महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में आनेवाली समस्याओं के समाधान के लिए सरकारी एवं सामाजिक प्रयास

डॉ० अरविन्द कुमार

महिला अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

राजनीति में सत्ता में बराबर की हिस्सेदारी स्त्रीवादी दृष्टि से एक चिरंतन अपूर्ण स्वप्न है। शासन प्रणालियां बदली, लोकतंत्र में सत्ता के अगुआ बदले लेकिन नहीं बदला तो स्त्री नेतृत्व के प्रति नजरिया। संविधान के मूल में समानता की अवधारणा स्थिति होने के बावजूद समानता के धरातल पर स्त्री की जगह नदारद ही दिखती है। आखिर क्यों? महिला आरक्षण विधेयक दशकों से लंबित है लेकिन यह सच है कि सामाजिक न्याय का रास्ता वास्तव में विधायिका में स्पष्ट आरक्षण के रास्ते ही जाता है।

संसद की वर्तमान स्थिति में लोकसभा में 545 सीटों में 78 महिलायें तथा राज्य सभा में 242 सीटों में 25 महिलायें संसद सदस्य हैं।

सामाजिक न्याय और महिला विधेयक पर चर्चा करना भूस के ढेर से सूई खोजने की तरह है। वास्तव में समय सापेक्ष रखकर जब हम इतिहास में इस उत्स की खोज करते हैं तो कई चौंकाने वाले तथ्य निकलते हैं। केवल सामाजिक न्याय की धरणा पर ही चर्चा करें तो भारतीय समाज और महिलाओं के शोषण के अनगिनत चिन्ह मिलते हैं। महिलाओं के अधिकार, हक, सुरक्षा एवं भारतीय जनतंत्रा में उनकी भागीदारी के सवाल हमेशा ठंडे बस्ते में डाले गये हैं। हालांकि इतिहास की धारा में महिलाओं ने अपनी सक्रिय हिस्सेदारी को दर्ज कराया है। अपाला, मुद्रालोपा से लकर, अणाक, मीरा, महादेवी वर्मा, झांसी की रानी, दुर्गावती, कर्मवती इत्यादि साहित्य और राजनीति में अपनी गहरी पैठ रखती रही हैं। महिला विधेयक पर चर्चा करने से पहले थोड़ी-सी बात सामाजिक न्याय की धरणा पर की जा रही है।

सामाजिक न्याय : अवधरणा

सामाजिक न्याय की धारणा एक विवादित पद बंध है। भारत एवं पाश्चात्य देशों के चिंतन पद्धति में इस शब्द के अलग-अलग अर्थ लगाये जाते हैं। अरस्तु, प्लेटो, काण्ट, बेन्थम इत्यादि विद्वानों ने केवल राजनीतिक अधिकारों को लेकर पहली बार सामाजिक न्याय की गंभीर वकालत की।

उपरोक्त विद्वानों का मानना है कि सरकार (स्टेट) का यह दायित्व होगा कि वह व्यक्ति के राजनीतिक हितों की रक्षा करेगा। पश्चिम के देशों में व्यक्ति के अधिकार महत्वपूर्ण थे। इस व्यक्ति में 'स्त्री' के लिए कड़े संघर्ष के बाद विदेशों में उनके राजनैतिक हित सुरक्षित हुए। भारतीय संदर्भ में 'सामाजिक न्याय' की धरणा की स्थिति बहुत जटिल है। भारतीय समाज व्यवस्था में 'वर्ग' एवं 'जाति प्रथा' एक अनिवार्य घटक है, इस वर्ण एवं जाति के सवाल के अलावा कई 'सामाजिक कानून' हैं जिसके कारण स्त्री की राजनैतिक स्थिति कमजोर दिखलाई पड़ती है। एक स्त्री को धर्म, परम्परा, रूढ़िवादिता, कुल प्रतिष्ठा, इज्जत के नाम पर पग-पग पर बेड़ियां पहनाई जाती हैं, एक स्त्री जटिल भारतीय सामाजिक व्यवस्था से लड़कर अपने राजनैतिक अधिकारों की लड़ाई लड़ती है। इस प्रसंग में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास अल्मा कबूतरी की भारतीय अल्मा का चरित्र प्रशांसनीय है। अल्मा एक नेता की रखैल है तो समाज और उनके समर्थक को कोई परेशानी नहीं है, लेकिन जब अल्मा के तथाकथित रक्षक नेताजी की मौत होती है तो

अब अल्मा उनकी राजनैतिक वारिस बनती है। उपन्यास में अभिव्यक्त सभ्य समाज को परेशानी होने लगती है। भारतीय राजनीति में स्व. इंदिरा गांधी, सोनिया गांधी, ममता बनर्जी की सक्रियता पुरुष सत्तात्मक समाज के समक्ष एक चुनौती है। कहने को तो ये सभी सक्रिय महिला राजनैतिक हस्तियां हैं और भारतीय राजनीति की दशा और दिशा तय करती रही हैं किन्तु इनके सामाजिक संरचना के विन्यास पर बात करें तो सामाजिक न्याय की धरणा बिल्कुल साफ दिखायी देती है। सवर्ण समाज की महिलाओं की राजनैतिक हिस्सेदारी बहुत मुश्किल से स्वीकार की जाती है। इसी संदर्भ में देखा जा सकता है राष्ट्रीय पार्टियां एवं क्षेत्रीय दलों के अध्यक्ष के पद पर अधिकांश पुरुष ही काबिज हैं। सोनिया गांधी, मायावती, ममता बनर्जी मीरा कुमार जैसी सक्रिय, कर्मठ, विदुषी एवं विचारशील महिलायें भारतीय राजनीति की आईकॉन हैं किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि महिला विधेयक आज भी संसद के पटल पर अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहा है।

भारत की आजादी को सात दशक हो चुके हैं। इन वर्षों में भारत ने इतिहास में कई उतार चढ़ाव देखे। देश में कई सरकारों ने शासन किया, महिलाओं के लिए कई योजना एवं नीतियां बनी और बहुत से प्रशासनिक सुधार हुए किन्तु उनके लिए महिला आरक्षण का सवाल आज भी जस का तस है। दिल्ली में 2012 में निर्भया सामूहिक बलात्कार और हत्याकांड एक व्यापक समस्या है। हाल ही में 'इंटरनेशनल क्रिमिनल जस्टिस रिव्यु' में प्रकाशित हुए सर्वे के अनुसार 40 प्रतिशत महिलाओं के साथ पिछले साल बस या पार्क जैसे सार्वजनिक स्थानों पर उनका यौन उत्पीड़न किया गया। जहां 33 फीसदी महिलाओं ने सार्वजनिक स्थानों पर जाना छोड़ दिया वहीं 17 फीसदी महिलाओं को नौकरी छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। यह स्थिति हमारे देश में सिर्फ एक राज्य की है यकीनन बाकि राज्यों के आंकड़े भी चौकाने वाले होंगे। क्या यही महिला सशक्तीकरण है? प्रारंभिक समाज सुधारक राजा राममोहन राय ने बाल विवाह और सती प्रथा को समाप्त करने के लिए आंदोलन चलाया और महिलाओं के उद्धार के लिए अनेक काम किये। सरकार ने इसके संबंध में सबसे पहले 19वीं शताब्दी में कानून बनाए जिसमें सतीप्रथा का उन्मूलन (1829), विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1872)। बावजूद इसके अभी तक महिला स्थिति में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ है। अगर कोई सुधार हुआ भी है तो वो सिर्फ नाम मात्र का है।

महिला आरक्षण की भूल भुलैया

इसी प्रकार महिलाओं को चुनावों में हिस्सा लेने और चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता और समानता का अधिकार दिए जाने के बावजूद निर्वाचित और निर्णय लेने के वाले निकायों में महिलाओं का प्रतिशत बहुत कम ही नहीं बल्कि कुछ मामलों में यह शून्य भी रहा है। इस उद्देश्य के लिए स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए सीट आरक्षित करने के लिए सन् 1988 में पहल की गई थी। सन् 1992 में संविधान का 73वां और 74वां संशोधन पारित किया गया जिसमें पंचायती राज निकायों और नगरपालिकाओं में विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने की व्यवस्था की गई। परंतु संसद और राज्य विधानसभाओं में महिला आरक्षण का प्रस्ताव अभी तक संसद में विचारधीन है जो राजनीतिक दलों की इच्छा शक्ति पर प्रश्न चिन्ह लगाता है या फिर राजनीतिक दल महिलाओं के लिए संविधान संशोधन करने का साहस नहीं जुटा पाएं हैं।

33 प्रतिशत महिला आरक्षण मुद्दा राजनीतिक विवादों में है। प्रत्येक सरकार हमेशा यही कहती है कि हम तो महिला आरक्षण का बिल पास करना चाहते हैं, परंतु कुछ क्षेत्रीय राजनीतिक दल नहीं चाहते कि ये बिल पास हो। इन क्षेत्रीय दलों का तर्क है कि जब तक महिला विधेयक में अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़ा वर्ग की महिलाओं की उचित संवैधानिक व्यवस्था नहीं की जायेगी तब तक यह विधेयक अपूर्ण और असंगत ही रहेगा। परन्तु राष्ट्रीय दलों का मूल उद्देश्य यह है कि महिला विधेयक में 33 प्रतिशत आरक्षण मोटे तौर पर मान्य किया जाए न कि उनमें भी वंचित वर्गों की महिलाओं के अधिकार को सुनिश्चित किया जाए, जिस कारण यह विधेयक हर बात पारित होने से रोका जाता है।

क्षेत्रीय पार्टियों के स्थानीय नेताओं की मूल चेतना में फुले, अम्बेडकर, लोहिया जैसे नेताओं का गहरा प्रभाव है। ये पार्टियां इन नेताओं को आदर्श मान कर चलती हैं (आरोही सिद्धांत में)। इन पार्टियों का अपने तर्क हैं, इनका मानना है कि संप्रभु पुरुषों की भांति ही संप्रभु महिलाएं भी महिला विधेयक का लाभ ले सकती हैं, अतः इस महिला विधेयक में वंचित वर्गों की महिलाओं के लिए स्थानों को सुनिश्चित किया जाए अन्यथा महिला आरक्षण कानून अप्रसांगिक ही रहेगा। वास्तव में भारतीय जनतंत्र की मजबूती तब तक नहीं होगी जब तक समाज के सभी लोगों की सामूहिक भागीदारी और कर्तव्य सुनिश्चित नहीं किये जाते। क्योंकि जो भी महिलायें शीर्षपदों पर आसीन हैं वह पारिवारिक रूप से संपन्न परिवार से संबंध रखती हैं जिनका साधारण जीवन से और जमीनी

हकीकत से कोई सरोकार नहीं है। महिला जनसंख्या का बड़ा भाग अब भी समाज की मुख्य धरा से वंचित है यहां तक कि कुछ महिलाओं को तो महिला सशक्तीकरण का अर्थ ही नहीं पता है।

नारी जीवनः बहुआयामी संतुलन

तथाकथित परम्परागत आधुनिक समाज में महिला दोहरे भार तले दबी हैं। गृह का भार, व्यावसायिक कार्य के मध्य सामंजस्य व समझौतापरक परिस्थितियों में महिला को स्वयं बलि देनी पड़ रही है। योजना संबंधी कार्यों में कम महत्व मिलता है। भारतीय समाज में अगर कोई बलिदान का जीवन व्यतीत करता है तो वो महिला हैं। महिला अपना पूरा जीवन बलिदान करके व्यतीत करती है जब महिला अपनी किशोरावस्था में होती है तो वह अपना जीवन अपने भाई-बहन और माता-पिता के लिए समर्पित करती है और जब उसका विवाह होता है तो वह अपने पति और बच्चों के लिए अपना जीवन समर्पित करती है, इस प्रकार महिला अपना पूरा जीवन बलिदान करके व्यतीत करती है उसे अपने लिए जीने का मौका कब मिला? फिर भी उसे समाज में नये-नये भेदभावों का शिकार होना पड़ता है।

यह हमारे समाज की विडंबना ही है कि हमारे समाज में महिलाओं को देवी का रूप माना जाता है परन्तु इसी समाज में ही महिलाओं को सबसे अधिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। दरअसल महिलायें वर्षों से जुर्म और शोषण का शिकार हो रही हैं जिस कारण महिलाओं ने इसे स्वीकार कर लिया है। समाज में जब किसी भी प्रथा, शोषण और अत्याचार को सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है तो उसे सामाजिक वैधता प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार जिस समाज में महिला रह रही है उन्हें यह ही नहीं पता की उनका शोषण हो रहा है और वह आज भी मानसिक रूप से गुलाम हैं।

महिलाओं का सशक्तीकरण करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि पहले महिलाओं को यह एहसास दिलाना होगा की उनका शोषण हो रहा है और वह आज भी मानसिक रूप से गुलाम हैं और उन्हें ही अपने सशक्तीकरण के लिए खुद संघर्ष करना है और समाज की मुख्यधारा में शामिल होना है। हमारे समाज में एक वाक्य बहुत ज्यादा प्रचलित है कि **'कोई भी परिवर्तन होने में समय लगता है।'** परन्तु परिवर्तन की शुरुआत तो कहीं से होनी ही चाहिए और इस परिवर्तन की पहल हमें खुद अपने घर से करनी होगी तभी समाज में परिवर्तन होगा और समाज के विकास में हमारी भागीदारी बढ़ेगी तभी महिला सशक्तीकरण के साथ-साथ भारत का भी सशक्तीकरण होगा।[1]

महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए दीर्घकालीन रणनीति अपनाने की आवश्यकता है। उन्हें व्यवस्थित होकर विभिन्न बाधाओं, समस्याओं एवं चुनौतियों को दूर करना पड़ेगा। इस हेतु कुछ प्रमुख सुझाव निम्न प्रकार हैंः-

- महिला प्रतिनिधियों को संगठित होकर इन संस्थाओं में काम करना चाहिए। इन्हें महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर मतभेद भुलाकर काम करना होगा। उन्हें लैंगिक भेदभाव, कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा एवं बाल अधिकारों से संबंधित मुद्दों पर एकजुटता का प्रदर्शन करना चाहिए।
- निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं एवं पुरुषों की संतुलित भागीदारी के लिए आम राय बनाने हेतु जन अभियान चलाया जाना चाहिए।
- महिलाओं को विश्व के अन्य देशों, जैसे-कनाडा, जर्मनी, नाइजीरिया एवं फिलीपिंस की तरह स्वयं के दल बनाने चाहिए। इनका उद्देश्य विभिन्न स्तरों पर महिलाओं की सहभागिता को बढ़ावा देना होना चाहिए।
- महिलाओं को संगठित होकर विभिन्न स्तरों पर अपने नेटवर्क स्थापित करने चाहिए, ताकि निर्णय लेने एवं क्रियान्वयन में अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर सकें।
- महिलाओं के लिए शैक्षणिक सुविधाओं के विस्तार, राजनीति में सक्रियता, अधिकारों के लिए विधानमंडलों एवं वैधानिक निकायों में सक्रियता, समानता के अवसरों को पाने की इच्छा एवं सामाजिक परिवर्तन की अति आवश्यकता है। इन सभी समन्वित प्रयासों से ही महिलाओं का राजनीति में सशक्तिकरण संभव है।
- पंचायती राज में महिलाओं की प्रभावी सहभागिता विशिष्ट कुशलता, ज्ञान एवं दृष्टिकोण की मांग करती है। इसलिए व्यवस्थित प्रशिक्षण एवं अभिनवीकरण की आवश्यकता है ताकि महिलाएं वर्तमान स्थितियों को बदलकर संसाधनों एवं सत्ता के प्रयोग द्वारा महिला सशक्तिकरण को शीघ्रता से संभव बना सकें।

- राजनीतिक दलों को भी महिला सहभागिता को बढ़ावा देना चाहिए। अपने संगठनों में उन्हें महिलाओं को अधिक से अधिक स्थान देना चाहिए।
- धन एवं शक्ति पर निर्भर निर्वाचन प्रणाली को भी बदला जाना चाहिए। चुनावों में जातिवाद, अपराधीकरण, मतदान केन्द्रों पर कब्जा आदि बुराईयों को दूर करना चाहिए।
- केवल महिला आरक्षण ही महिला सशक्तिकरण को संभव नहीं बना सकता। महिला प्रतिनिधि शिक्षा, सूचना एवं ज्ञान के माध्यम से ही अपने कार्यों एवं दायित्वों को संभाल सकती हैं।
- सरकारी कार्यों में पारदर्शिता, प्रभावी चुनावी व्यवस्था, संवेदनशील एवं उत्तरदायी जनता आदि मिलकर महिलाओं की राजनीतिक गतिशीलता एवं सहभागिता को बढ़ावा दे सकते हैं। इन सभी के संयुक्त प्रयासों से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलेगा।
- महिला सहभागिता अभियान को प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के एक प्रमुख भाग के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में अपनाया जाना चाहिए। विभिन्न गैर-सरकारी संगठन पंचायती राज में महिला सहभागिता के लिए समुदायों को शिक्षित एवं गतिशील कर सकते हैं।
- ग्रामीण महिला सशक्तिकरण हेतु सारे प्रयास एवं सुझाव तभी उपयोगी होंगे जब राजनीतिक उपायों से समुदायों के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाएगा। ग्रामीण समुदायों के दिमाग में यह बात बिठाने की आवश्यकता है कि महिलाएं ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। इस हेतु स्वयं महिलाओं एवं अन्य कट्टरपंथियों के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन की तत्काल आवश्यकता है।
- महिलाओं के राजनीति के क्षेत्रा में सशक्तिकरण हेतु आवश्यक है कि वह स्वयं उन नीतियों व योजनाओं के निर्माण में सहभागी हों जो उनके लिए बनाई जा रही हैं। यह तभी संभव हो सकता है कि जब वे स्वयं भी उस राजनीतिक व्यवस्था का अंग हों जो नीति-निर्माण व क्रियान्वयन के लिए जिम्मेदार हैं।
- महिला सशक्तिकरण के लिए चलाई जा रही योजनाओं तथा कार्यक्रमों का मूल्यांकन तथा अनुश्रवण नियमित अंतराल पर किया जाना आवश्यक है। कोई भी योजना तभी सार्थक हो सकती है जब उसे वास्तविक धरातल पर लाया जाए और इसके लिए मूल्यांकन और अनुश्रवण की आवश्यकता है।
- महिलाओं के संपूर्ण एवं वास्तविक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है पंचायतों का सशक्तिकरण हो, क्योंकि कमजोर पंचायतें महिलाओं को सशक्त नहीं कर सकती। इसलिए पंचायतों की स्थिति को मजबूत करना आवश्यक है। अधिकतर पंचायतों के पास अपना कोई विशेष राजस्व नहीं है। न्याय प्रशासन एवं पुलिस प्रशासन के विकेन्द्रीकरण का भी अभाव है। इसलिए हमें पंचायती राज को विकास के वाहक के रूप में देखने के बजाय विकास को ही पंचायती राज के वाहक के रूप में देखना चाहिए, तभी वास्तविक महिला सशक्तिकरण संभव हो सकेगा।

भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के मुताबिक पंचायत स्तर पर महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है।

महिलाओं और पुरुषों में समानता प्राप्त करने की दिशा में बढ़ने के लिए हमें उन्हें यानी महिलाओं और लड़कियों को सशक्त बनाना होगा, जो अधिकारों से वंचित है। किसी को सशक्त बनाने के लिए हमें शक्ति को समझने की जरूरत है। शक्ति दूसरों को प्रभावित या नियंत्रित करने की क्षमता या सामर्थ्य है। शक्ति का अभिप्राय स्वायत्तता, स्वतंत्रता, अपना विकल्प स्वयं चुनना, अपनी बात रखने का अधिकार होना है।

मानव समाजों में शक्ति, संसाधनों और विचारधारा पर नियंत्रण से प्राप्त होती है। जिन लोगों का संसाधनों और विचारधरा (लोगों के चिंतन, विश्वास अदि) पर नियंत्रण होता है, वे परिवारों, समुदायों और देशों के लिए निर्णय लेने वाले और नियंत्रक बनते हैं। इसलिए, महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए, पितृसत्तात्मक चिंतन और ढांचों में बदलाव लाने, महिलाओं को संसाधनों (प्राकृतिक, मानव, बौद्धिक, वित्तीय, आंतरिक संसाधन) पर नियंत्रण प्रदान करने, उन्हें निर्णय लेने की भूमिकाओं में लाने आदि की आवश्यकता होगी।

मेरा मानना है कि महिलाओं का सशक्तीकरण तभी हमारे जीवन को बेहतर बनाएगा, जब सत्ता का हमारा बोध, सत्ता के मौजूदा बोध से अलग होंगे। हमारे लिए सशक्तीकरण का आशय - दूसरों पर अधिकार स्थापित करना, अपने हिस्से से ज्यादा संसाधनों पर

नियंत्रण करना नहीं होना चाहिए, बल्कि यह अस्तित्व का सामर्थ्य होना चाहिए, दूसरे के लालच, धनलोलुपता, हिंसा पर नियंत्रण का सामर्थ्य होना चाहिए, अन्य लोगों का विकास करने, उनकी पीड़ा मिटाने और उनकी देखरेख करने, न्याय, नीति, नैतिकता के लिए लड़ने, विवेक और करूणा का मार्ग प्रशस्त करने वाली आंतरिक प्रगति प्राप्त करने का सामर्थ्य होना चाहिए।

महिलाओं का सशक्तीकरण सतत और गतिशील दोनों ही तरह की प्रक्रिया है और यह महिलाओं को पराधीन रखने वाले ढांचों और विचारधाराओं को बदलने की महिलाओं की योग्यता में वृद्धि करती है। यह प्रक्रिया उन्हें संसाधनों और निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ज्यादा पहुंच और नियंत्रण कायम करने, अपने जीवन पर ज्यादा नियंत्राण प्राप्त करने और ज्यादा स्वायत्तता प्राप्त करने में सक्षम बनाती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो महिलाओं को आत्मसम्मान और गरिमा प्राप्त करने में सक्षम बनाती है, जिससे उनकी आत्म छवि और सामाजिक छवि में सुधार होता है।

सशक्तीकरण की प्रक्रिया एक राजनीतिक प्रक्रिया है, क्योंकि इसका लक्ष्य महिलाओं और पुरुषों के बीच शक्ति के वर्तमान संबंधों में बदलाव लाना है।

महिलाओं के सशक्तीकरण का लक्ष्य मात्रा महिलाओं और पुरुषों के अनुक्रमात्मक संबंधें में बदलाव लाने ही नहीं है और नहीं होना चाहिए, बल्कि इसका लक्ष्य समाज के समस्त अनुक्रमों यथा-वर्ग, जाति, श्रेणी, नस्ल तथा उत्तर-दक्षिण संबंधों में बदलाव होना चाहिए। महिला-पुरुष संबंध शून्य में नहीं संचालित होते, क्योंकि ये अन्य समस्त आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं से संबंधित और प्रभावित होते हैं, इसलिए कोई भी अन्य व्यवस्थाओं और अनुक्रमों में बदलाव लाए बिना, महिला-पुरुष अनुक्रमों में बदलाव नहीं ला सकता।

महिलाओं का सशक्तीकरण, सशक्तीकरण की प्रकृति, समस्त वंचित लोगों और देशों के सशक्तीकरण से अलग नहीं है और न ही अलग किया जा सकता है। इसलिए समान स्वप्न के अलग-अलग खण्ड हैं, इसलिए उनके बीच मजबूत संपर्क और गठजोड़ बनाने की जरूरत है।

महिलाओं के सशक्तीकरण की बात करते समय महिलावादी चिंतन और विचारधारा, समानता, न्याय, लोकतंत्रा और निरंतरता के सिद्धांतों के सशक्तीकरण के बारे में अवश्य चर्चा करनी चाहिए। इस बात की परवाह किए बगैर सभी महिलाओं का समर्थन नहीं करना चाहिए कि वे किसके लिए उठ खड़ी हुई हैं। महिला तानाशाहों, महिला पितृसत्तात्मकों, जाति और पितृसत्ता को बढ़ावा देने वाली महिलाओं को महज इस बात के लिए सशक्त नहीं बनाना है कि वे महिलाएं हैं। हम स्वीकार करते हैं कि महिलाएं भी पितृसत्तात्मक और प्रभुत्व जमाने वाली हो सकती हैं और कुछ पुरुष पितृसत्ता और अन्य अनुक्रम व्यवस्थाओं के खिलापफ संघर्ष में हमारे भागीदार हो सकते हैं। हमारा संघर्ष कुछ विशेष सिद्धांतों और एक ऐसे समाज के लिए है, जहां सभी महिलाओं और पुरुषों के पास जीने, आगे बढ़ने और भागीदारी के समान अवसर हैं।

केवल महिलाओं को ही नहीं, बल्कि महिलाओं के परिप्रेक्ष्यों को भी सशक्त बनाने की जरूरत है, क्योंकि महिलाएं महज एक पृथक वर्ग भर नहीं हैं। प्रत्येक विषय पर चाहे वह सैन्यीकरण हो, मानवाधिकार हों या सतत विकास हो, महिलाओं की चिंताएं, परिप्रेक्ष्य और दृष्टिकोण आवश्यक हैं। प्रत्येक विषय महिलाओं का विषय है।

महिलाओं का सशक्तीकरण यदि मजबूत और व्यापक बनाना है और कोई बदलाव लाना है, तो ऐसा सभी स्तरों पर और सभी वर्गों में किया जाना चाहिए। बुनियादी स्तर की महिला कार्यकर्त्ताओं, माध्यमिक स्तर की महिला कार्यकर्ताओं और सरकार में मौजूद महिलाओं, मीडिया में मौजूद महिलाओं, महिला राजनीतिज्ञों, महिला शिक्षाविदों, महिला कलाकारों, महिला उद्यमियों आदि के बीच प्रभावी नेटवर्किंग की आवश्यकता है। हमें सूक्ष्म स्तर पर कार्य करने वालों और व्यापक स्तर पर काम करने वालों के बीच नेटवर्किंग की आवश्यकता है। हमें सभी स्तरों पर दयालु पुरुषों की भी आवश्यकता है।

महिलाओं का सशक्तीकरण एकतरपफा प्रक्रिया नहीं है-जिसमें कुछ कार्यकर्ता जाकर अन्य को सशक्त कर सकते हो। यह दोतरफा प्रक्रिया है, जिसमें हम सशक्त बनाते हैं और सशक्त होते हैं। यह हम सभी के लिए निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। कोई भी सशक्त नहीं बन सकता और उसके बाद अन्य लोगों को सशक्त नहीं बना सकता।

महिलाओं का सशक्तीकरण बहुआयामी और संपूर्ण होना चाहिए। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित में से कुछ या सभी को शामिल किया जा सकता है:

- महिलाओं के योगदान को समाज में जाहिर करना, यानी यह दर्शाना कि महिलाएं बच्चों को जन्म देने और घर-गृहस्थी संभालने के साथ-साथ किसान, श्रमिक, कारीगर, व्यवसायी आदि भी हैं, वे सदैव उत्पादन में लगी रहती हैं और जीडीपी में उनका योगदान हमेशा ज्यादा रहा है। वे जीवन की उत्पादक, प्राकृतिक संसाधनों की प्रबंधक आदि हैं।
- महिलाओं और समाज को, महिलाओं में पहले मौजूद रहीं और अब तक मौजूद विशेषकर कृषि, स्वास्थ्य, हस्तशिल्प आदि जैसे क्षेत्रों के बारे में जानकारी, क्षमता और कौशलों की पहचान कराना।
- महिलाओं को आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास प्रदान करने वाला सामाजिक वातावरण तैयार करना।
- महिलाओं और लड़कियों को उनके पूरे सामर्थ्य का अहसास कराने के अवसर उपलब्ध कराना और उन्हें कुछ गिनी-चुनी परंपरागत भूमिकाओं और व्यवसायों में धकेलने की जगह और विकल्प प्रदान करना। उन्हें ऐसी शिक्षा प्रदान करना, जो उन्हें घरेलू बनाने की जगह सशक्त बनाए।
- महिलाओं को अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने में सक्षम बनाना, वे कब और किससे शादी करेंगी, क्या वे बच्चों को जन्म देंगी और कब देंगी, वे क्या पढ़ेंगी और कब पढ़ेंगी। परिवार, समुदाय और राष्ट्रीय मामलों पर भी निर्णय लेना। सभी स्तरों पर महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाना।
- महिलाओं और लड़कियों की वास्तविक आवश्यकताओं, परिवार के भीतर और बाहर उनके दर्जे, उनके अधिकारों और उत्तरदायित्वों के बारे में महिलाओं और पुरुषों के बीच जागरूकता उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करना।
- महिलाओं की भोजन, कपड़े और आश्रय जैसी बुनियादी जरूरतें और स्वास्थ्य एवं सुरक्षा संबंधी विशेष जरूरतें पूरी करने के लिए उनको सुविधाएं और संसाधन उपलब्ध कराना।
- महिलाओं को उत्पादन के साधनों तक पहुंच और नियंत्राण, संपत्ति और अन्य संसाधनों तथा आमदनी पर नियंत्रण प्राप्त करने में सहायता करना।

राजनीति एवं महिलाएँ

हाल के वर्षों में पूरी दुनिया में राजनीति में महिलाओं का एक नया आयाम उभर कर सामने आया है। राजनीति में अब अधिक से अधिक महिलाएं प्रवेश कर रही हैं। परम्परागत तौर पर राजनीति में केवल पुरुषों का ही प्रतिनिधित्व था। प्रभुत्व था। इसलिए महिलाएं राजनीति में विशेष रूप से अनुपस्थित थीं।

कल्याण की नीतियां बनीं। महिलाओं की पारम्परिक स्थिति को पत्नियों एवं माताओं के रूप में मजबूती प्रदान की गईं। महिलाएं प्रभावकारी संघर्ष कर रही थीं। **उन्नीसवीं शताब्दी में उनका संघर्ष सम्पत्ति एवं वोट के अधिकार से सम्बन्धित था।बीसवीं शताब्दी में** गर्भपात, समान वेतन, नर्सरी प्रावधन के मुद्दों पर संघर्ष किया।

भारत में आजादी से पहले और बाद में सुधार आन्दोलनों ने सत्ता में स्त्रियों की भागीदारी में मदद की। आजादी के बाद इन्हें अभूतपूर्व राजनीतिक सफलता मिली है। पंचायतों एवं सार्वजनिक निकायों में इनके लिए सीटें आरक्षित की गई हैं। यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि भारत में बिना किसी राजनीतिक आन्दोलन के महिलाओं को राजनीतिक अधिकार मिला जबकि पश्चिमी देशों में इतनी आसानी से ऐसा नहीं हुआ। देश की आजादी की लड़ाई में वे आगे की पंक्तियों में खड़ी थीं।

भारतीय महिलाओं के लिए 'ये' महिलाएं गौरव एवं प्रेरणा श्रोत हैं:- विजया लक्ष्मी पंडित (राष्ट्रसंघ सचिव), इन्दिरा गांधी (प्रधानमंत्री), सुचेता कृपलानी, उमा भारती, मायावती और बसुन्धरा राजे (पूर्व मुख्यमंत्री) और यहां तक कि पूर्व राष्ट्रपति -प्रतिभा पाटिल, सीता रमण।

प्रधान या ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय निकाय या विधान सभा या संसद के सदस्य बनने से उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। परिवार और समुदाय में इनका कद बढ़ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इनमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और निर्णय करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

संविधान संशोधन अधिनियम, 1992

पंचायती राज व्यवस्था की कमियों को स्पष्ट करने और इस व्यवस्था में सुधार से सम्बन्धित सुझाव देने के लिए सरकार ने सन् 1985 में जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में एक नयी समिति को नियुक्त किया जिसे 'राव समिति' कहा जाता है। इस समिति ने अनेक दूसरी सिफारिशों के साथ पहली बार यह सुझाव दिया कि पंचायती राज व्यवस्था के सभी स्तरों पर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं को विभिन्न पदों पर आरक्षण देना जरूरी है। इन सिफारिशों को व्यावहारिक रूप देने के लिए केन्द्र सरकार ने सन् 1992 में संविधान में 73वाँ संशोधन करके एक नया कानून पास किया जिसे 'संविधान संशोधन अधिनियम, 1992' कहा जाता है। भारत के राष्ट्रपति से इसे 20 अप्रैल, 1993 को स्वीकृति मिल जाने के बाद सरकार द्वारा इसे 1 जून, 1993 से पूरे देश में लागू कर दिया गया। इस अधिनियम की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

1. इसके द्वारा पंचायतों को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करने के लिए पहले से अधिक शक्तियाँ और दायित्व सौंपे गए।
2. ग्राम पंचायत, क्षेत्रीय पंचायत और जिला पंचायत के लिए सम्बन्धित क्षेत्र की जनसंख्या के आधार पर कुल सदस्यों की संख्या निर्धारित की गई।
3. पंचायती राज व्यवस्था के सभी स्तरों पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात के अनुसार आरक्षण की व्यवस्था की गई। साथ ही साथ पदों पर महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण दिया गया।
4. प्रत्येक ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि कुछ स्थायी समितियों का गठन करके उनके द्वारा विकास कार्यों को आगे बढ़ाया जाये।
5. यदि कुछ विशेष दशाओं में सरकार द्वारा किसी गांव पंचायत को भंग किया जाता है, तो छः माह के अन्दर फिर से चुनाव करवाकर ग्राम पंचायत की स्थापना करना आवश्यक है।
6. यह सुनिश्चित कर दिया गया कि किसी भी दशा में एक ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत या जिला पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष से अधिक नहीं हो सकता।
7. पहले की तुलना में पंचायत राज संस्थाओं के कार्यों में वृद्धि की गई। इसके लिए पंचायत राज संस्थाओं को केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा दिए जाने वाले अनुदान को भी बढ़ा दिया गया।

इस नए अधिनियम के अनुसार अब भारत के सभी राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया जा चुका है। उनकी कार्यप्रणाली और संगठन में भी समानता देखी जा सकती है। जिन राज्यों में जनजातियों की जनसंख्या अधिक है, उनके लिए सरकार द्वारा सन् 1996 में एक अलग कानून बनाया गया जिसे **'पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम'** कहा जाता है। यह अधिनियम भारत में 24 दिसम्बर, 1996 से लागू हुआ। इस अधिनियम में यह प्रावधन किया गया कि आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और राजस्थान जैसे नौ राज्यों के जनजातीय क्षेत्राों में पंचायतों का गठन करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा कानून बनाए जाएँ। इसका उद्देश्य जनजातीय समाज को अपने बारे में स्वयं निर्णय लेने और प्राकृतिक संसाधनों पर अपने परम्परागत अधिकारों को बनाए रखने की सुविधा देना है।

पंचायत में दुर्बल वर्गों के लिए आरक्षण

सभी स्तर की पंचायतों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। नियम यह है कि किसी पंचायत के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का जो प्रतिशत होता है, उसी के अनुपात में उनके लिए आरक्षित सीटों की संख्या निर्धारित की जाती है। नयी पंचायत राज व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी तरह के पदों के लिए महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण देना आवश्यक है। पंचायत के सदस्यों के अतिरिक्त पंचायत के प्रधान, प्रमुख या अध्यक्ष पद के लिए भी महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किये जाते हैं। यह काम एक क्रमिक प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है जिसे 'चक्रानुक्रम' कहते हैं। सीटों का आरक्षण साधारणतया जिलाधीश की सिफारिश के आधार पर राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। राज्यों को यह अधिकार दिया गया है कि राज्य सरकार पिछड़े वर्गों के लिए भी सीटों के आरक्षण की व्यवस्था कर सकती है। व्यावहारिक रूप से तीनों स्तरों की पंचायतों

में महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या 50 प्रतिशत से भी अधिक हो जाती है। इस कारण अन्य पिछड़े वर्गों को पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण देना सम्भव नहीं हो सका है।

73वां संविधान संशोधन और पंचायतें

देर से ही सही भारत सरकार ने पंचायतों को अधिकार और सशक्त बनाने के लिए 73वां संविधन संशोधन किया। इसका एकमात्र कारण गांवों में रहने वाले अंतिम व्यक्ति का विकास करना था। भारत सरकार चाहती थी कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो। इसके लिए संविधान का भी संशोधन किया गया। वर्ष 1993 में देश की संसद ने संविधान में 73वां और 74वां बदलाव करके जिला स्तर पर पंचायतों और नगर पालिकाओं को सशक्त बनाने का मार्ग निकाला। इसमें स्थानीय स्तर पर शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना, ग्रामीणों की सहभागिता पर ग्राम विकास की योजनाएं बनाना, अपने गांव के विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में गांव के लोगों को जिम्मेदारी का आभास कराना, ग्राम विकास योजनाओं, कार्यक्रमों, नियोजन आदि से गांव वालों को लाभान्वित कराना, शक्तियों का विकेन्द्रीकरण 'केन्द्र से स्थानीय स्तर तक' कराना, ग्रामसभा तथा पंचायतों को सशक्त करने की दिशा में संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया की शुरूआत करना है। इस अधिनियम में संशोधन के बाद कई विशेषताएं भी निकल कर आई। इसमें नए पंचायती राज अधिनियम के अनुसार स्थानीय शासन की इकाइयों ग्राम, क्षेत्रा और जिला पंचायतों द्वारा सामाजिक तथा आर्थिक विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करने की संभावनाएं हैं।

पंचायती राज में महिलाओं की सहभागिता

भारत में भले ही लोकसभा में महिला बिल लटका पड़ा हो, लेकिन पंचायतों में सरकार ने कानून बनाकर 33 फीसदी सीटें आरक्षित की हैं। महिलाओं का प्रतिनिधित्व मिले, इसके लिए भारत में सर्वप्रथम वर्ष 1931 में महिला मताधिकार और प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव पारित किया गया था। आगे चलकर छठी पंचवर्षीय योजना में पहली बार महिलाओं के विकास पर अलग से चिंतन-मनन किया गया। आरक्षण मिलने से महिलाओं की बढ़ती भागीदारी पंचायतों में दिखती है। पंचायतों और निकायों में यह लगभग 50 प्रतिशत के आसपास है। देश की कई राज्य सरकारों ने महिलाओं के लिए 33 फीसदी से 50 फीसदी तक बढ़ाया जिसमें पहला राज्य बिहार है। महिलाओं को बराबरी का अधिकार दिए जाने के बाद देश में इसके अच्छे नतीजे भी देखने को मिले हैं। मध्यप्रदेश, केरल, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और झारखंड सहित कई प्रदेशों में महिला पंचायतों ने विकास की नई इबारत खड़ी की है। उनके द्वारा संचालित की जा रही योजनाओं को अन्य पंचायतों ने अमलीजामा पहनाया है। साथ ही, राज्य सरकार और भारत सरकार ने भी पंचायतों को पुरस्कृत किया है। यानि कहने का तात्पर्य है कि पंचायतें खुद-बखुद सशक्त हो रही हैं और महिलाएं उसमें अहम भूमिका भी निभा रही हैं।

पंचायती राज और विकास

देश में पंचायतों की कहानी काफी पुरानी है। प्राचीन भारत में पंचायतों का अभ्युदय और इसकी कई कहानियां मिलती हैं। प्रसिद्ध **लेखक और कहानीकार प्रेमचंद्र की कहानी 'पंच परमेश्वर' में इसकी एक झलक मिलती है।** भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी कहा था कि असली हिन्दुस्तान गांवों में बसता है। गांवों के विकास से ही देश का विकास संभव है। देश आजाद होने के बाद पंचायतों को सशक्त करने के लिए कई एक्ट बने। लोगों का विकास हो, इसके लिए पंचायतों की नींव रखी गई।

भारत सरकार की महत्वाकांक्षी योजना मनरेगा को कारगर साबित करने में पंचायतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जिस देश में छह माह ही किसानों के पास प्रत्यक्ष रोजगार होता हो, उसमें मनरेगा ने यह कहावत ही बदल कर रख दी है। राजस्थान जैसे प्रदेशों में मनरेगा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। झारखंड जैसे प्रदेश में महिलाएं पंचायतों में कई काम कर रही हैं। कई गांवों में बड़े-बड़े कूप का निर्माण किए जाने के बाद किसान पलायन को विवश नहीं है। लोगों को खुद अपनी पंचायतों में ही काम मिल रहा है। देश में **प्रधानमंत्री सड़क योजना** को जोड़ने में भी पंचायतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। **राजीव गांधी विद्युतीकरण योजना** को भी अमलीजामा पहनाया गया है। कुछ ही वर्षों में देश के सभी गांवों के घर रोशन हो जाएंगे। **राष्ट्रीय बीमा योजना** के तहत लोगों का बीमा कराने में पंचायतें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। **भारत सरकार की योजनाओं को अमलीजामा पहनाने में पंचायतें अपनी भूमिका निभा रही हैं।**

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी

महिला सशक्तिकरण में पंचायत की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामसभा से लेकर संसद तक महिलाओं की भागीदारी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। अब स्थिति यह है कि पंचायतों में भागीदारी होने के साथ ही उनकी आत्मनिर्भरता भी बढ़ी है। उनमें जागरूकता आई है और वे छोटे-छोटे स्वयं सहायता समूहों के जरिए स्वरोजगार अपना रही हैं और विकास में अपना सहयोग दे रही हैं। इस तरह कहना गलत नहीं होगा कि पंचायत से ही महिलाओं के राजनीतिक एवं सशक्तिकरण अभियान को गति मिली। जब पंचायतों में उनकी भागीदारी बढ़ी तभी वे हर दिशा में आगे निकल पाई हैं।

सशक्तिकरण एक व्यापक शब्द है, जिसमें अधिकारों एवं शक्तियों का स्वाभाविक रूप से समावेश है। यह एक ऐसी मानसिक व्यवस्था है जो कुछ विशेष आंतरिक कुशलताओं और शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिसके लिए समाज में आवश्यक कानूनों, सुरक्षात्मक प्रावधानों और उनके भली-भांति क्रियान्वयन हेतु सक्षम प्रशासनिक व्यवस्था का होना आवश्यक है। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य ऐसी सामाजिक प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं के लिए सर्वसम्पन्न और विकसित होने हेतु संभावनाओं के द्वार खुले हो, नए विकल्प तैयार हो, भोजन, पानी, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएं, कानूनी हक और प्रतिभाओं के विकास हेतु पर्याप्त रचनात्मक अवसर प्राप्त हो। **महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत सामान्य तौर पर निम्नांकित चार तत्वों को सम्मिलित किया जाता है :-**

- संसद व विधानमंडलों में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत।
- प्रशासन एवं प्रबंधन में उनकी भागीदारी का प्रतिशत।
- प्रोफेशनल एवं तकनीकी सेवाओं में उनका अनुपात।
- महिलाओं की प्रति व्यक्ति आमदनी और उनकी तुलनात्मक आर्थिक स्थिति।

भारतीय सामाजिक ढांचा समाज में पुरुष और महिलाओं की अलग-अलग भूमिकाएं निर्धारित करता है। विश्व के लगभग सभी समाजों में महिलाओं का स्तर पुरुषों के समान नहीं है। वर्तमान सामाजिक ढांचे में पुरुषों को अधिक अधिकार, संसाधन और निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त है। महिलाओं को परम्परागत भूमिकाएं सौंपी गई हैं- वे हैं माता, पत्नी बनाम गृहिणी, रसोईया और बच्चों की देखभाल।

73वें संविधान संशोधन के जरिए हर समाज के लोगों को प्रतिनिधित्व का अधिकार मिला। सबसे ज्यादा खुशियां उन गांवों में मनाई गई, जहां पंचायती राज होने के बाद भी वह सिर्फ कागजों में दफन थी। लोगों को चुनाव लड़ने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। ऐसे में संविधान संशोधन कारगर हथियार साबित हुआ और पंचायती राज पूरी तरह से स्वतंत्र और लोकतांत्रिक बन सका। आधी आबादी को भी जनप्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त हुआ, जो संविधान में तो पहले से मिला था, लेकिन पितृसत्ता के सामने संविधान संशोधन में अधिकार होने के बाद भी इस हक से वंचित कर दिया गया था। देश के समग्र विकास में महिलाओं की भागीदारी की बात तो स्वीकार की जाती थी, लेकिन जब उनके हक की बात आती तो पीछे धकेल दिया जाता। जबकि इतिहास गवाह है कि महिलाओं ने हमेशा कंधे से कंधा मिलाकर तरक्की में सहयोग दिया है। घर-परिवार हो या खेत-खलिहान किसी भी जगह आधी आबादी पीछे नहीं रही है।

केन्द्र सरकार की ओर से लागू किया गया साझा न्यूनतम कार्यक्रम एवं पंचायती राज को आर्थिक व सामाजिक न्याय के दो प्रमुख कार्यों के साथ पूर्ण मंत्रालय का दर्जा दिए जाने से स्थिति और बेहतर हुई। महिलाओं को 33 फीसदी आरक्षण दिए जाने से करीब 15 लाख महिलाओं को ग्राम पंचायतों एवं शहरी निकायों के चुनाव में भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ है। अब देश में करीब 53फीसदी तक महिला प्रतिनिधि चुनी गई है।

यह उल्लेखनीय है कि 2011 से केन्द्र सरकार का पंचायती राज मंत्रालय कुछ नए बिन्दुओं पर विचारमंथन कर रहा है, जिसे पंचायती राज प्रणाली को मजबूती प्रदान करने हेतु प्रस्तावित संविधान संशोधन विधेयक में शामिल किया जाएगा। इन बिन्दुओं में ग्रामसभा के सशक्तिकरण पर विशेष बल दिया गया है। इस दिशा में तीन बातों पर विचार हो रहा है। पहला-बड़े आकार की पंचायतों में वार्ड स्तर पर वार्ड सभा का भी प्रावधान रखा जाए, जिससे व्यापक रूप से मतदाताओं की भागीदारी होगी। ज्ञातव्य है कि पश्चिम बंगाल, केरल और राजस्थान के पंचायती राज अधिनियम में वार्डसभा का प्रावधान मौजूद है। दूसरा-भाग पंचायत अपने क्रियाकलापों

के लिए ग्रामसभा के प्रति उत्तरदायी होगी। तीसरा-ग्रामसभा को नए अधिकार दिए जाएंगे जो संसद द्वारा पारित पंचायत उपबंध अधिनियम, 1996 में वर्णित हैं। इन अनुसूचित क्षेत्रों में वैसे क्षेत्रा आते हैं जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद-243 के खण्ड (1) में निहित हैं। इन संशोधनों में भी क्षेत्र की ग्रामसभाओं को वैसी शक्ति मिल जाएगी जो कार्यपालिका संबंधी विकास कार्यों के लिए होती है। यह संविधान द्वारा बाधयकारी है और इस प्रावधान से ग्रामसभा की भूमिका बढ़ जाएगी। इस नए प्रावधान से 73वें संविधान संशोधन में उल्लेखित पंचायतों के लिए 'स्वशासन की इकाई' शब्द का मूलरूप 'ग्रामसभा' में परिलक्षित होगा।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की हिस्सेदारी का इतिहास

- वर्ष 1946 में संविधान सभा के 150 सदस्यों में मात्रा 16 महिलाओं को शामिल किया गया।
- 1961 में महाराष्ट्र जिला परिषद एवं पंचायत समिति एक्ट लागू हुआ। पूरे राज्य में दो महिलाओं ने नामांकन किया लेकिन वे चुनाव जीत नहीं पाई।
- 1973 में पश्चिम बंगाल पंचायत एक्ट लागू हुआ और मात्र दो महिलाएं चुनी गई।
- 1983 में कनार्टक में महिलाओं हेतु 25 फीसदी आरक्षण की व्यवस्था की गई। यह एक्ट 1987 में लागू हुआ और इस एक्ट के तहत 1987 में हुए चुनाव में 30 हजार उम्मीदवारों ने नामांकन किया जिसमें 14 हजार महिलाएं चुनी गई।
- 1988 में करीब 22 वर्ष बाद उत्तर प्रदेश में आम चुनाव हुआ। इस दौरान सिर्फ एक महिला चुनी गई।
- 1991 में उड़ीसा में पंचायत समिति में एक तिहाई सीट महिलाओं के लिए आरक्षित की गई। 1992 में हुए चुनाव में 22 हजार महिलाएं चुनी गई। इस चुनाव में महिला जनप्रतिनिधियों की भागीदारी 35 प्रतिशत तक पहुंच गई।
- 1994 में महिला आरक्षण लागू होने के बाद अकेले मध्यप्रदेश में 150500 महिलाएं जिला, प्रखण्ड और ग्राम पंचायत स्तर पर चुनी गई। झारखण्ड में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने के बाद दिसम्बर 2010 में हुए पंचायत चुनावों में जिला परिषद में 80 प्रतिशत से ज्यादा महिलाओं का कब्जा है और पंचायत स्तर पर 55 प्रतिशत के लगभग ने अपनी जीत सुनिश्चित की है। झारखंड में कुल पंचायतें 4,423 हैं। इसमें कुल 53,207 पंचायत प्रतिनिधि चुने गए। इसमें महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या 29,415 है।

पंचायत से संसद तक महिला सशक्तिकरण

पंचायत में महिलाओं को 33 और फिर 50 प्रतिशत आरक्षण मिलने के बाद अब संसद में भी 33 प्रतिशत आरक्षण देने पर विचार चल रहा है। पंचायत में जिस तरह से महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की कोशिश की जा रही है इस तरह देखें तो नगर पंचायत से यह शुरुआत न हुई होती तो यह कदम संसद तक पहुंच पाएगा, यह कहना मुमकिन नहीं था। वास्तव में विश्व-स्तर पर महिलाओं की 33 प्रतिशत संसदीय भागीदारी की अवधारणा 1995 में संयुक्त राष्ट्र की बीजिंग में हुई चौथी विश्व महिला कांफेंस में आई। इसमें कहा गया कि प्रजातांत्रिक संस्थाओं में कम से कम 33 प्रतिशत महिला भागीदारी होनी चाहिए। केन्द्र सरकार की बात करें तो 1995 में सरकार ने 30 फीसदी महिला उम्मीदवार की प्रतिबद्धता का बिल पेश किया था, लेकिन विरोध हुआ। इसके बाद 12 सितम्बर, 1996 को लोकसभा भंग होने के कारण यह बिल अधर में रह गया। इसके बाद 26 जून, 1998 को अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने पेश किया। मई 2003 में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन सरकार ने भी इस विधेयक को संसद में लाने की कोशिश की, लेकिन नाकाम रही। फिर मनमोहन सिंह सरकार ने 6 मई, 2008 को 108वां संविधन संशोधन बिल लोकसभा के बजाय राज्यसभा में पेश किया। तत्कालीन राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने 4 जून, 2009 को 15वीं लोकसभा के अभिभाषण में सरकार की सौ दिनों की प्राथमिकताओं में संसद और विधानसभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने की बात कहीं लेकिन अभी महिला आरक्षण बिल के लिए संघर्श जारी है।

संदर्भ सूची

1. योजना, सितम्बर 2016
2. कुरुक्षेत्र, जनवरी 2014

3. योजना, उपरोक्त।
4. स्त्री जनरल-VOL-7
5. स्त्री जनरल-VOL-8
6. सहस्त्रबादी महिला सशक्तिकरण अवधारण, चिंतन एवं सरोकार, यादव सिंह डॉ0 वीरेन्द्र, नई, ओमेगा प्रकाशन दरियागंज दिल्ली, भाग-1, 2 व 3
7. भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व के मुद्दे, परमार शुभ्रा, (अनुवादक अरोड़ा पारूल) दिल्ली विश्वविद्यालय।
8. नारिवादी राजनीति संघर्श एवं मुद्दे, आर्य साधना, मेनन निवेदिता, जिनी लोकनीता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
9. विकिपिडिया।

भारत एवं हिन्द महासागर की भू-राजनीति

नरेन्द्र कुमार शर्मा

यू.जी.सी.-नेट, भूगोल, पूर्व छात्र, अवधेश प्रताप सिंह वि.वि., रीवा

किसी 'राज्य' का इतिहास, राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था वहाँ के भौगोलिक परिवेश से प्रभावित होता है। भौगोलिक परिवेश में वहाँ की स्थलाकृति, उच्चावच्च, जलवायु, महासागरीय स्वरूप आदि शामिल हैं। भारत के दक्षिण हिन्द महासागर की अवस्थिति ने न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया, मध्य-पूर्व एवं अफ्रीका महाद्वीप के पूर्वी-दक्षिणी तटीय भाग की राजनीति को प्रभावित किया है। यह आलेख हिन्द महासागर की अवस्थिति का उसके पड़ोस में स्थित राज्यों, विशेषकर भारत की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव पर केन्द्रित है।

'जियोपॉलिटिक' (भू-राजनीति) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग स्वीडिश भूगोलवेत्ता 'रूडोल्फ केजेलिन' (Rudolf Kjellen) ने किया जिसका आधार था, "राज्य एक जीव है एवं विकास उसका नियम।" कार्ल हाउशोफर (Karl Haushofer) ने 1924 ई. में प्रकाशित अपनी पुस्तक (Zeitschift fur. Geo-Politik) में भू-राजनीतिक विचारधारा (Geo-Politics) का प्रतिपादन किया। भू-राजनीति के अन्तर्गत राज्य की क्षेत्रीय आवश्कताओं एवं इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लए राज्यों की राजनीतिक गतिविधियों तथा 'क्षेत्र' एवं 'राज्य' के अन्योन्याश्रित 'राजनीतिक संबंधों' का अध्ययन किया जाता है।

भारत की राजनीतिक व्यवस्था एवं भौगोलिक स्वरूप को प्रभावित करने में हिन्द महासागर का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्द महासागर ने सम्पूर्ण दक्षिण एशिया को एक भौगोलिक इकाई के रूप में संगठित किया है। हिन्द महासागर ने तटीय देशों के मध्य आवागमन एवं व्यापार की सुविधा प्रदान की है। हिन्द महासागर ने भारत सहित सम्पूर्ण दक्षिण एशिया एवं दक्षिण-पूर्व एशिया की जलवायु को प्रभावित किया है, जिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव यहाँ की कृषि, उद्योग, सभ्यता-संस्कृति, जीवन शैली, परंपरा आदि पर पड़ा है। हिन्द महासागर में विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों का विशाल स्रोत है। वैश्विक सामरिक एवं रणनीतिक संबंधों को निर्धारित करने में हिन्द महासागर की महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यापारिक, सामरिक एवं रणनीतिक दृष्टि से अपनी महत्वपूर्ण अवस्थिति तथा प्राकृतिक संसाधनों के विशाल भंडार के कारण आज हिन्द महासागर वैश्विक शक्तियों की राजनीति का केन्द्र विन्दु बना हुआ है।

हिन्द महासागर के उत्तर में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, ईरान, म्यानमार, थाईलैण्ड आदि देश अवस्थित हैं। इसके पश्चिम में मध्य-पूर्व के देश (अरब प्रायद्वीप) एवं पूर्वी अफ्रीका के देश अवस्थित हैं। इसके पूर्व में मलेशिया, इण्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया आदि तथा दक्षिण में अण्टार्कटिका महाद्वीप अवस्थित है। यह पूर्व में मलक्का जलसन्धि के द्वारा प्रशान्त महासागर एवं दक्षिण चीन सागर से जुड़ा हुआ है तथा पश्चिम में लाल सागर एवं बाब-एल-मन्देव जल सन्धि से भूमध्य सागर से जुड़ा हुआ है, जो अरब प्रायद्वीप, पूर्व एवं पश्चिम यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका के देशों तक आवागमन की सुविधा प्रदान करता है। हिन्द महासागर में अवस्थित महत्वपूर्ण द्वीप हैं-श्रीलंका, मेडागास्कर, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप (भारत), डिएगोगर्सिया (यू.एस.ए.), जावा एवं सुमात्रा (इन्डोनेशिया), कोको द्वीप (म्यांमार), क्रिसमस द्वीप (आस्ट्रेलिया) आदि।

अरब प्रायद्वीप के देशों तथा खम्भात की खाड़ी एवं कच्छ की खाड़ी (भारत) में पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस के विशाल भंडार हैं। हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्र पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, थोरियम, टिन एवं अन्य सागरीय संसाधनों से युक्त हैं। इसके तटीय क्षेत्रों में रबर, नारियल, जूट, चाय, खजूर आदि की खेती की जाती है। हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्र मत्स्यन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। हिन्द महासागर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्द महासागर-लाल सागर-स्वेज नहर से होकर यूरोपीय देशों तथा हिन्द महासागर-मलक्का जलसन्धि से होकर दक्षिण-पूर्व एशिया, पूर्व एशिया, आस्ट्रेलिया आदि देशों से व्यापार होता है। हिन्द महासागर के कारण ही भारत का अरब प्रायद्वीप के देशों तथा दक्षिण-पूर्व एवं पूर्व एशिया के देशों से व्यापारिक संबंध रहा है। प्राचीनकाल में दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भारतीय साम्राज्य का विस्तार करने में हिन्द महासागर की महत्वपूर्ण

भूमिका रही है। पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण एशिया एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य को स्थापित करने तथा इसे दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने में हिन्द महासागर की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

उपरोक्त वर्णित कारणों से हिन्द महासागर वैश्विक शक्तियों की राजनीति का केन्द्र बिन्दु बन गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने डिएगोगर्सिया, जो चौगोस द्वीप समूह का महत्वपूर्ण द्वीप है, में अपना नौसैनिक केन्द्र बनाया है तथा यहाँ हवाई पट्टी का निर्माण भी किया है। इस सैन्य केन्द्र ने अमेरिका-इराक युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। अरब प्रायद्वीप, दक्षिण एशिया एवं दक्षिण-पूर्व एशिया तथा पूर्वी अफ्रीका के देशों पर सामरिक एवं रणनीतिक दबाव बनाने में इस सैन्य केन्द्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। हिन्द महासागर में चीन के बढ़ते कदम पर रोक लगाने तथा दक्षिण चीन सागर में चीन की मनमानी पर लगाम लगाने की दृष्टि से भी यह महत्वूपर्ण है। हिन्द महासागर में चीन के बढ़ते व्यापारिक एवं सैन्य गतिविधियों का प्रत्यक्ष उदाहरण है-चीन द्वारा ग्वादर (पाकिस्तान), हंबनटोटा (श्रीलंका), सितबे (म्यांमार) एवं चटगाँव (बाग्लादेश) में बन्दरगाह का निर्माण करना। चीन अपनी 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल' (मोतियों की माला) नीति के तहत भारत को घेरने की कोशिश कर रहा है, जिसमें सबसे बड़ा कदम चीन की वर्तमान 'वन वेल्ट वन रोड' (OBOR) परियोजना के तहत पाक अधिकृत कश्मीर से 'चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा' (CPEC) का निर्माण है, जो कश्मीर के गिलगित से होकर निकल रहा है। CPEC परियोजना के अंतर्गत चीन द्वारा पाकिस्तान के ग्वादर में एक बंदरगाह भी बनाया जा रहा है। चीन यहाँ पर अपना सैनिक अड्डा भी बना रहा है। हिन्द महासागर में संयुक्त राज्य अमेरिका की गतिविधि को देखते हुए रूस ने भी कई देशों के साथ समझौते कर इस क्षेत्र में अपनी रूचि दिखायी है।

हिन्द महासागर के देशों में भारत का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि हिन्द महासागर की स्थलीय सीमाओं में सर्वाधिक भाग भारत का है तथा हिन्द महासागर के सन्दर्भ में भारत की केन्द्रीय स्थिति है। भारत एक परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र है तथा इसके पास एक शक्तिशाली नौसेना है। भारत प्रौद्योगिकी तथा समुद्री अनुसंधान की दृष्टि से भी उन्नत है। भारत विश्व की महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति है। भारत मानव संसाधन तथा विशाल बाजार की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार भारत के पास हिन्द महासागर की भू-राजनीति को प्रभावित करने की क्षमता है। हिमतक्षेस (हिन्द महासागर तटीय क्षेत्रीय सहयोग संगठन) तथा दक्षेस (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) में भारत की मजबूत स्थिति इसका उदाहरण है।

भारत की सुरक्षा एवं सुरक्षित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार हेतु हिन्द महासागर में भारत की मजबूत सैन्य शक्ति का होना आवश्यक है। विशेष रूप से तब, जब संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, पाकिस्तान जैसे देश हिन्द महासागर में अपनी सैन्य गतिविधि बढ़ा रहे हैं। अरब प्रायद्वीप के देशों, यूरोपीय देशों, पूर्वी अफ्रीका के देशों तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से सुरक्षित व्यापार हेतु हिन्द महासागर में भारत की मजबूत स्थिति आवश्यक है। पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, मत्स्य, ज्वारीय उर्जा एवं अन्य सागरीय संसाधनों के दोहन की दृष्टि से हिन्द महासागर भारत के लिए महत्वपूर्ण है। हिन्द महासागर में मिलने वाले खनिज, उर्जा एवं अन्य सागरीय संसाधनों की संभावना ने दक्षिण एशियाई देशों में परस्पर विवाद भी पैदा किया है, जैसे-भारत और श्रीलंका के मध्य मछली पकड़ने को लेकर अक्सर विवाद होता रहता है। भारत और बांग्लादेश के मध्य ऐशलैण्ड को लेकर भी विवाद है। भारत और पाकिस्तान के मध्य सरक्रीक को लेकर विवाद है। भारत पाकिस्तान और चीन जैसे परमाणु शक्ति संपन्न दुश्मन राष्ट्रों से घिरा हुआ है। पाकिस्तान और चीन के साथ भारत का सीमा विवाद है, जिस कारण इनके साथ अक्सर संघर्ष होता रहता है। भारत पाक प्रायोजित आतंकवाद का दंश झेल रहा है तथा दोनों देशों के मध्य अक्सर सीमा पर संघर्ष होता रहता है। मुम्बई में हुए आतंकवादी हमले के लिए पाकिस्तान द्वारा सागरीय मार्ग का ही सहारा लिया गया। हिन्द महासागर के समीपवर्ती दक्षिण चीन सागर में चीन द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित करने की कोशिश की जा रही है, जिसका दक्षिण चीन सागर के तटवर्ती देशों, अमेरिका, भारत आदि द्वारा विरोध किया जा रहा है। दक्षिण चीन सागर में प्रभुत्व को लेकर संघर्ष की संभावना बनी रहती है। दक्षिण चीन सागर में पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस के दोहन एवं व्यापारिक गतिविधियों की दृष्टि से यह भारत के लिए भी महत्वपूर्ण है।

उपरोक्त गतिविधियों को देखते हुए हिन्द महासागर में भारत की सैन्य शक्ति को और मजबूत किया जाना आवश्यक है तथा अपना प्रभुत्व बनाये रखने हेतु भारत के द्वारा बेहतर सामरिक, रणनीतिक एवं कूटनीतिक प्रयास किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. डॉ. पी.आर. चौहान, 'राजनीतिक भूगोल,' वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
2. डॉ. हरिमोहन सक्सेना, 'राजनीतिक भूगोल,' रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ

मानसिक विभ्रम

सोनल कुमारी

शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

ऐसी आस्था या विचार को भ्रम (Delusion) कहा जाता है जिसे गलत होने का ठोस प्रमाण होने के वावजूद भी व्यक्ति उसे नहीं छोड़ता। यह उस विश्वास से अलग है जिसे व्यक्ति गलत सूचना, अज्ञान, कट्टरपन आदि के कारण पकड़े रहता है।

खघसकर किसी तंत्रिका संबंधी या मानसिक बीमारी के दौरान इंसान भ्रम का शिकार होता है। वैसे इसका संबंध किसी विशेष रोग से जुड़ा नहीं है, अत: अनेक रोगात्मक स्थितियों (शारीरिक और मानसिक दोनों) के दौरान रोगी को भ्रम होने लगता है।

परिचय

भ्रम (Delusion) एक ऐसा मानसिक विकार है जिसमें व्यक्ति काल्पनिक और वास्तविक बातों के बीच जो अंतर होता है उसे समझ नहीं पाता। भ्रम रोग में व्यक्ति को ऐसे लगता है कि, उनको शरीर में अंदर से कुछ काट या चुभ रहा है या उनके खिलाफ कोई साजिश रची जा रही है। शरीर पर वे अक्सर खरोंचते रहते हैं, या वे अपने दोस्तों यहाँ तक कि अपने परिवारवालों पर भी भरोसा करना छोड़ देते हैं। शुरूआती दौर में मनोभ्रम के मरीज एक सामान्य जीवन जीते हैं परन्तु कुछ सालों बाद उनकी ये आदतें उनके रोजाना कामकाज में दखलअंदाजी करने लगती हैं।

यह सामान्य है कि कुछ समय में, और विशेष रूप से तनाव के उच्च स्तर के तहत, हमें दृढ़ विश्वास का सामना करना पड़ता है कि कोई हमें देख रहा है, कि कोई हमारा अनुसरण कर रहा है या कोई हमारे बारे में बात कर रहा है, भले ही यह सच न हो।

भ्रम के दौरान व्यक्ति की मानसिक स्थिति में बड़ी संख्या में परिवर्तन होते हैं।

मुख्य प्रकार

कई प्रकार के भ्रम हैं, और मुख्य हैं:

1. उत्पीड़न या परावर्तक का भ्रम: इस प्रकार के भ्रम के वाहक का मानना है कि वह उत्पीड़न का शिकार हो रहा है। वह बिना किसी ठोस वजह के कहता है कि ऐसे दुश्मन हैं जो उसे मारने, जहर, बदनाम करने या नुकसान पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं।

2. भव्यता का भ्रम: इस मामले में, व्यक्ति मानना है कि एक महत्वपूर्ण स्थिति या शानदार क्षमताओं के लिए, जैसे कि महाशक्तिमान, भगवान या गणराज्य के राष्ट्रपति होने के लिए वह अन्य लोगों से बेहतर है।

3. आत्म-संदर्भ का भ्रम: किसी को यह विश्वास होता है कि कुछ घटनाओं या महत्वहीन वस्तु का भी विशेष अर्थ है।

4. ईर्ष्या: इस प्रकार के भ्रम में, व्यक्ति मानता है कि उसे साथी द्वारा धोखा दिया जा रहा है, और किसी भी संकेत, जैसे दिखने, शब्दों या दृष्टिकोण को वह संदेह के सबूत के रूप में देखता है। इस स्थिति से घरेलू हिंसा और आक्रामकता का उदय हो सकता है।

5. नियंत्रण या प्रभाव का विसर्जन: प्रभावित व्यक्ति का मानना है कि उनके कार्यों और सोच को किसी अन्य व्यक्ति, लोगों का समूह, या बाहरी ताकतों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। वे यह भी मान सकते हैं कि उन्हें विकिरण, टेलीपैथी या दुश्मनों द्वारा नियंत्रित विशेष मशीनों द्वारा नुकसान पहुंचाया जा रहा है।

6. अन्य प्रकार: अन्य प्रकार के भ्रम हैं, उदाहरण के लिए, एरोटोमैनियाक, जिसमें व्यक्ति का मानना है कि एक और व्यक्ति, आमतौर पर प्रसिद्ध, उसके साथ प्यार करता है, सोमैटिक, जिसमें शारीरिक संवेदनाओं के साथ-साथ अन्य, जैसे रहस्यवादी या बदला।

इसके अलावा, मिश्रित भ्रम संबंधी विकार हो सकता है, जिसमें किस प्रकार के भ्रम भिन्न हो सकते हैं, कोई मुख्य प्रकार नहीं है।

मनोभ्रम के लक्षण:

1. अकेले रहना
2. छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई-झगडे करना
3. अजीब आदतें जैसे की हमेशा खरोंचते रहना
4. ऑफिस में अजीब व्यवहार करना
5. सामाजिक रिश्तों में समस्याएं

भ्रम का कारण क्या है

भ्रम संबंधी विकार एक मनोवैज्ञानिक बीमारी है, और यद्यपि इसके सटीक कारणों को अभी तक स्पष्ट नहीं किया गया है, यह ज्ञात है कि इसकी शुरुआत आनुवांशिक परिवर्तन से संबंधित है, क्योंकि यह एक ही परिवार के लोगों के बीच पर्यावरणीय जोखिम कारकों के अलावा अधिक आम है, उदाहरण के लिए, दवा उपयोग, सिर आघात, कुछ संक्रमण या नकारात्मक मनोवैज्ञानिक अनुभव शामिल हो सकते हैं।

निदान

भ्रम के निदान की पुष्टि मनोचिकित्सक के मूल्यांकन के बाद की जाती है, जो पेश किए गए संकेतों और लक्षणों का पालन करेगी, जिस तरह से रोगी वार्ता करता है और यदि आवश्यक हो, तो मामले को प्रभावित करने वाली अन्य प्रकार की बीमारियों की पहचान करने के लिए परीक्षण का अनुरोध करें।

मानसिक तौर पर अस्वस्थ रोगियों पर किये अध्ययन से पता चलता है कि समय के साथ-साथ भ्रमों की तीव्रता और विश्वास की दृढ़ता में हेर-फेर होने लगता है.

यह जरूरी नहीं है कि भ्रम एक मिथ्या हो या 'बाहरी सत्यता का गलत अनुमान'। कुछ धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताओं को अपनी सहजता के कारण झुठलाया नहीं जा सकता और इसीलिये इन्हें असत्य या गलत भी नहीं कहा जा सकता, फिर चाहे इन मान्यताओं पर विश्वास करने वाला व्यक्ति भ्रम का शिकार हो या न हो।

बाकी परिस्थितियों में भ्रम एक सच्चा विश्वास हो सकता है। उदाहरण के तौर पर, ईर्ष्या का भ्रम, जिसमें भ्रमित व्यक्ति का मानना होता है कि उसका जीवन साथी उसके साथ विश्वासघात कर रहा है या रही है। ऐसे मामले में जब आगे चलकर बात सच निकलती है तो भ्रम, भ्रम नहीं रह जाता।

मनोचिकित्सकों के पास न तो इतना समय होता है न ही साधन कि वे भ्रमित व्यक्ति की बातों की सत्यता की जांच-परख कर सकें कि कहीं गलती से असली विश्वास को भ्रम का रूप न दिया गया हो।

भ्रम के निदान में एक और कठिनाई है कि भ्रम के लगभग सभी लक्षण ष्सामान्यष विश्वासों में पाए जाते हैं। अनेक धार्मिक विश्वासों में भी बिलकुल यही लक्षण पाए जाते हैं, फिर भी उन्हें सर्वत्र भ्रम नहीं माना जाता। इन्हीं सब कारणों से मनोचिकित्सक ऐंथनी डेविड ने टिप्पणी की कि "भ्रम की कोई स्वीकार्य योग्य (स्वीकृत कहने के बजाय) परिभाषा नहीं है।"

भ्रम का निदान चिकित्सक द्वारा भ्रमित आकलन विधि (सीएएम) जैसे प्रश्नावली के उपयोग के माध्यम से पुष्टि की जा सकती है, जो इंगित करता है कि पुष्टि के लिए मौलिक विशेषताएं हैं:

ए) मानसिक स्थिति में तीव्र परिवर्तन;

बी) ध्यान में महत्वपूर्ण कमी;

सी) चेतना के स्तर में परिवर्तन (आंदोलन या उनींदापन);

डी) असंगठित सोच।

डिलिरियम आइटम ए और बी + सी और / या डी की उपस्थिति में माना जाता है

इलाज कैसे किया जाता है?

भ्रम का इलाज करने का मुख्य तरीका रणनीतियों के माध्यम से होता है जो व्यक्ति को मार्गदर्शन करने में मदद करते हैं, जैसे कि अस्पताल में भर्ती के दौरान परिवार के सदस्यों से संपर्क करने, समय के संबंध में उन्मुख व्यक्ति को रखने, कैलेंडर और घड़ी तक पहुंच बनाने और पर्यावरण को बनाए रखने में मदद करना शांत, खासकर रात में, शांतिपूर्ण नींद की अनुमति देने के लिए।

ये रणनीतियां चेतना और व्यवहार में सुधार की वापसी को प्रोत्साहित करती हैं। इसके अलावा, वृद्ध लोग जो चश्मे या श्रवण यंत्र पहनते हैं उन्हें समझने और संचार करने में होने वाली कठिनाइयों से परहेज करना चाहिए।

अधिक गंभीर मामलों में, डॉक्टर एंटीसाइकोटिक दवाओं के उपयोग को भी इंगित कर सकता है।

निष्कर्ष

भारत में 35–40 प्रतिशत लोगों को भ्रम होता है। कई मानसिक रोगों के लक्षणों में भ्रम पाया जाता है। परन्तु एक मुख्य रोग के तौर पर भ्रम तब जाना जाता है जब वह व्यक्ति एक या एक से अधिक बातों की कल्पना एक महीने से अधिक समय के लिए करना शुरू कर दे।

अगर किसी व्यक्ति में ऐसी दिमागी हालत आपको नजर आयी, तो उन्हें तुरंत ही उपचार के लिए मनोचिकित्सक के परामर्श के लिए ले जाया जाये। कुछ सवाल पूछकर मरीज के जवाबों के जरिए मनोचिकित्सक ये जान लेते हैं कि मरीज भ्रम के कौनसे स्टेज में है। इस चिकित्सा के आधार पर उपचार और दवाइयां लेने की सलाह ली जाती है। भ्रम रोग में मरीज को ज्यादा प्यार और विश्वास की जरुरत होती है। ऐसे मरीजों की बातों को अनसुना न करें।

सन्दर्भ

- Jaspers, Karl (1997). General Psychopathology. 1. Baltimore: Johns Hopkins University Press. आई.एस.बी.एन. 0-8018-5775-9.
- David AS (1999). "On the impossibility of defining delusions". Philosophy, Psychiatry and Psychology. 6 (1): 17–20.
- Coltheart M., Davies M. संपा. (2000). Pathologies of belief. Oxford: Blackwell. आई.एस.बी.एन. 0-631-22136-0.
- Persaud, R. (2003). From the Edge of the Couch: Bizarre Psychiatric Cases and What They Teach Us About Ourselves. Bantam. आई.एस.बी.एन. 0-553-81346-3.

भारत में दल प्रणाली की प्रकृति

चंद्र विजय प्रकाश यादव

पीएच.डी. राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश नारायण विश्वविधालय

विकास तथा समकालीन प्रवृतियां

विश्व में भारत सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। अत: भारत में राजनीतिक दलों का होना भाविक है, परन्तु भारत में राजनीतिक दलों का विकास उस प्रकार से नहीं हुआ, जिस प्रकार इंग्लैंड, अमेरीका और अन्य पश्चिमी देशों में हुआ है। भारत में राजनीतिक दलों का जन्म किसी कुलीनतांत्रिक सत्तारूढ़ वर्ग को अपदस्थ करने के लिए नहीं हुआ था; अपितु उनका उद्देश्य विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को चलाने के लिए हुआ था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म न केवल राष्ट्रीय आंदोलन को चलाने के लिए हुआ था, बल्कि इसका उद्देश्य भारतीय समाज में उन तत्त्वों को भी समाप्त करना था जो सामाजिक प्रगति में रोड़ा अटकाते थे। भारत में राजनीतिक दल के निर्माण के पीछे के निर्माणक तत्वों में राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सामाजिक-आर्थिक विकास और राष्ट्रीय सुरक्षा व अखण्डता प्रमुख है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इन तत्वों में सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक था, क्योंकि राष्ट्र निर्माण के ये प्राथमिक आधार हैं।

इन तत्वों के बीच समन्वय करने संबंधी कार्य राजनीतिक दल ही बेहतर ढंग से कर सकते हैं। स्वतंत्र भारत में विचारधारा के प्रभाव के कारण भी राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ है। चूँकि भारत में अमीरों और गरीबों के बीच व्यापक आर्थिक खाई है, इसलिए यहाँ मार्क्सवादी विचारधारा का प्रसार सम्भव हुआ है और राजनीतिक दलों के माध्यम से ही जनता को शोषण के विरोध में खड़ा किया जा सकता है।

भारत एक विशाल देश है जहाँ क्षेत्रीय, भाषायी तथा जातीय आधार पर भी क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ। विगत दो दशकों के इतिहास का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट है कि दल-बदल प्रक्रिया ने भी कई नए राजनीतिक दलों को जन्म दिया है। यह स्वीकार करते हुए थोड़ी-सी भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि राजनीतिक सत्तालोलुपता ने अनेक राजनीतिक दलों को खड़ा कर दिया है।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी। कांग्रेस के पश्चात् मुस्लिम लीग की स्थापना सन् 1905 में हुई थी। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना सन् 1916 में हुई। साम्यवादी दल की स्थापना सन् 1924 में हुई थी, परन्तु द्वितीय महायुद्ध तक साम्यवादी दल को गैर-कानूनी माना गया था। परन्तु द्वितीय महायुद्ध में जब रूस मित्र राष्ट्रों के साथ मिल गया तब इस दल को भी विकसित होने का अवसर मिला। स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक राजनीतिक दलों की स्थापना हो गई। सन् 1952 में जब प्रथम आम चुनाव हुआ तो उस समय 14 राष्ट्रीय दल और लगभग 50 राज्य स्तर के दल थे। सन् 1957 के आम चुनावों में निर्वाचन आयेाग ने उन्हीं दलों को अखिल भारतीय राजनीतिक दल की मान्यता प्रदान की, जिन्हें प्रथम निर्वाचन में कुल मतों के कम-से-कम तीन प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। फलस्वरूप केवल चार दलों-कांग्रेस दल, प्रजा समाजवादी दल, साम्यवादी दल तथा जनसंघ को ही अखिल भारतीय राजनीतिक दलों की मान्यता प्राप्त हुई। सन् 1962 में स्वतंत्र पार्टी को भी अखिल भारतीय राजनीतिक दल की मान्यता प्राप्त हो गई। 29 अगस्त, 1974 को सात दलों ने मिल कर भारतीय लोक दल की स्थापना की।

जनवरी, 1977 में चार राजनीतिक दलों-जनसंघ, कांग्रेस (संगठन), सोशलिस्ट पार्टी तथा भारतीय लोकदल और विद्रोही कांग्रेसियों ने मिलकर जनता पार्टी की स्थापना की। इस पार्टी की विधिवत् स्थापना 1 मई, 1977 को की गई। जनवरी, 1978 में

कांग्रेस का विभाजन हुआ और इस प्रकार एक और पार्टी कांग्रेस (इ) की स्थापना हुई। जून, 1979 में कांग्रेस (इ) का विभाजन हो गया और देवराज अर्स के नेतृत्व में एक नई पार्टी का निर्माण हुआ। परन्तु शीघ्र ही सरदार स्वर्ण सिंह कांग्रेस और अर्स कांग्रेस का मेल हो गया और अर्स को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। अत: कांग्रेस अर्स कांग्रेस के नाम से जानी जाने लगी। जुलाई, 1979 में जनता पार्टी का विभाजन हो गया और लोकदल अर्थात् जनता (एस) की स्थापना हुई।

दिसम्बर, 1984 में लोकसभा चुनाव के अवसर पर चुनाव आयोग ने 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर के दलों के रूप में मान्यता दी। 1988 में लोकदल (ब), जनता पार्टी तथा जन मोर्चा ने मिलकर जनता दल की स्थापना की। नवम्बर, 1990 में जनता दल (समाजवादी) की स्थापना हुई। मई-जून, 1991 में लोकसभा चुनाव के अवसर पर चुनाव आयोग ने 9 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर के दलों के रूप में मान्यता दी। परन्तु फरवरी, 1992 में तीन राष्ट्रीय स्तर के दलों की मान्यता समाप्त कर दी गई। मार्च, 1996 में चुनाव आयोग ने 8 राष्ट्रीय स्तर के तथा 39 क्षेत्रीय स्तर के दलों को मान्यता देकर आरक्षित चिह्न आवंटित किए। 25 नवम्बर, 1997 में चुनाव आयोग ने सात राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्रदान की। 24 मार्च, 1999 को चुनाव आयोग ने समता पार्टी की राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता समाप्त कर दी। सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोक सभा के चुनावों में 6 मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, जनता दल, बहुजन समाज पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी व मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त 48 मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय 29 दलों ने भाग लिया। 29 दिसम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 6 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर पर एवं 44 राजनीतिक दलों को राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता प्रदान की। इन्हीं दलों ने 2004 के लोकसभा चुनावों में हिस्सा लिया।

राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करने संबंधी कार्य निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है। निर्वाचन आयोग ने 1968 में निर्वाचन प्रतीक आदेश के अनुसार कुछ प्रावधान सुनिश्चित किए हैं, जिसके आधार पर राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान की जाती है। किसी भी दल को राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों का स्पष्ट विवरण देना होता है–

(क) राजनीतिक दल के रूप में मान्यता चाहने वाले संगठित व्यक्तियों के समूह को अपनी नीतियों, लक्ष्य और उद्देश्य के बारे में बताना होता है।

(ख) राजनीतिक दल के लिए अपना स्पष्ट सिद्धांत होना चाहिए, क्योंकि सिद्धांत ही राजनीतिक दल का मूलाधार है।

(ग) दल के अध्यक्ष सहित अन्य प्रमुख सदस्यों का स्पष्ट ब्यौरा होना चाहिए।

(घ) राजनीतिक दल के कार्यक्रम तथा क्रिया-कलाप स्पष्ट रूप में बताना होता है।

(ड.) राजनीतिक दल को यह प्रमाण-पत्र देना होता है कि जनता में उसका प्रभाव है और जनता उसका समर्थन करती है।

अन्य देशों के राजनीतिक दलों की तरह भारतीय दलीय व्यवस्था की अपनी विशेषताएँ हैं, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:

(1) बहुदलीय पद्धति : चीन की तरह भारत में एक दलीय प्रणाली नहीं है और न ही इंग्लैंड तथा अमेरिका की तरह द्वि-दलीय प्रणाली है। हमारे यहाँ स्विट्जरलैंड की तरह बहुदलीय प्रणाली है। 1980 के लोकसभा के चुनाव के अवसर पर चुनाव आयोग ने 6 राष्ट्रीय दलों और 25 क्षेत्रीय दलों को मान्यता दी। अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव के अवसर पर 6 राजनीतिक दल-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, जनता दल, बहुजन समाजवादी पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी व भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय स्तर पर और 48 राजनीतिक दल क्षेत्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल थे। 29 दिसम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 6 राजनीतिक दलों-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी एवं बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के रूप में एवं 44 राजनीतिक दलों को राज्य स्तरीय दलों के रूप में मान्यता प्रदान की।

(2) एक दल की प्रधानता का युग : हमारे यहाँ की बहु-दलीय प्रणाली पश्चिमी देशों की बहु-दलीय प्रणाली, जैसे कि फ्रांस में है, से भिन्न है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत में अनेक दल चुनाव में भाग लेते हैं; परन्तु 1967 से पूर्व केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस की ही प्रधानता ही रही है। कांग्रेस को 1952, 1957, 1962 तथा 1967 में क्रमश: 354, 371,

361 तथा 283 स्थान मिले। 1967 के चुनाव में कांग्रेस को राज्यों में इतनी अधिक सफलता न मिली जिसके फलस्वरूप कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों का निर्माण हुआ, परन्तु गैर-कांग्रेसी नेता इतने नासमझ निकले कि उन्होंने इस सुनहरे अवसर का पूरा लाभ उठाने की अपेक्षा अपनी हानि ही की। उन्होंने जनता की भलाई न करके अपने स्वार्थ की ही पूर्ति करने की कोशिश की। अत: गैर-कांग्रेसी सरकारें अधिक समय तक न चल सकीं। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 1971 में मध्यावर्ती चुनाव करवाए जिसमें इन्दिरा कांग्रेस को इतनी अधिक सफलता मिली कि कांग्रेस पहले से भी कहीं अधिक शक्तिशाली हो गई। लोकसभा में कांग्रेस को 352 स्थान प्राप्त हुए। 19 राज्यों में से कई राज्यों में विधानसभाओं के लिए भी चुनाव हुए और इन सब राज्यों में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। शेष राज्यों में 1972 में चुनाव हुआ और गोवा, मणिपुर तथा मेघालय को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। 1974 में उत्तर प्रदेश में चुनाव हुए और इसमें भी कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। कांग्रेस दल की प्रधानता का मुख्य कारण यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति में इस दल के नेताओं का अपार बलिदान था, जिस कारण बूढ़े लोगों की निष्ठा इसी दल में थी। इस दल की प्रधानता इसलिए भी थी क्योंकि हरिजन व मुसलमान इसी दल में विश्वास रखते थे। कांग्रेस की प्रधानता का अन्य कारण यह रहा कि विरोधी दलों के मत बंट जाते थे और कांग्रेस कुल डाले गए मतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त न करके भी लोकसभा में एकाधिकार जमाए रही। 1984 में 415 स्थान पाकर भी कांग्रेस को कुल 48% मत ही प्राप्त हुए। 1980 से नवम्बर 1989 तक केन्द्र और राज्यों में तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश को छोड़कर कांग्रेस (इ) का प्रभुत्व बना रहा।

(3) एक दल की प्रधानता के युग का अंत : कांग्रेस का एकाधिकार जनता पार्टी की स्थापना से समाप्त हो गया। मार्च, 1977 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को केवल 158 स्थान मिले, जबकि जनता पार्टी को 272 तथा कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी को 28 स्थान मिले। इस प्रकार पहली बार केन्द्र में गैर-कांग्रेसी (जनता पार्टी) सरकार का निर्माण हुआ। जून, 1977 में 10 राज्यों के चुनाव में सात राज्यों में जनता पार्टी की सरकारें बनी। ये सात राज्य थे–हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा। पंजाब में जनता पार्टी ने अकाली दल के साथ मिलकर सरकार बनाई जबकि तमिलनाडु में अन्नाद्रमुक को बहुमत मिला और पश्चिम बंगाल में वामपंथी दलों की सरकार बनी। इस प्रकार 10 राज्यों में से किसी भी राज्य में कांग्रेस की सरकार नहीं बनी, जबकि चुनाव से पूर्व 10 में से 9 राज्यों में कांग्रेस की ही सरकार थी। परन्तु जनता पार्टी पाँच वर्ष तक शासन नहीं कर सकी। जुलाई 1979 में जनता पार्टी के अनेक महत्त्वपूर्ण सदस्यों ने जनता पार्टी छोड़ दी और लोकदल का निर्माण किया। प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई को त्याग-पत्र देना पड़ा और लोकदल के नेता चौधरी चरण सिंह की सरकार बनी, लेकिन चौधरी चरण सिंह को 20 अगस्त, 1979 को त्याग-पत्र देना पड़ा और उन्होंने लोकसभा को भंग करवा दिया। जनवरी, 1980 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस (इ) को भारी सफलता मिली। कांग्रेस (इ) को 351 स्थान मिले, जबकि लोकदल को 41 और जनता पार्टी को केवल 31 स्थान मिले। 1980 से लेकर 1989 तक केन्द्र तथा अधिकांश राज्यों में कांग्रेस (इ) का प्रभुत्त्व रहा। परन्तु नवम्बर, 1989 लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस (इ) की हार हुई और राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी। नवम्बर, 1989 और 1990 में हुए राज्यों के विधानसभा के चुनाव के बाद कांग्रेस की प्रधानता समाप्त हो गई। 1991 के लोकसभा चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ और कांग्रेस की अल्पमत सरकार बनी। 1996 में कांग्रेस को 140, 1998 में 142 तथा 1999 में 112 स्थान प्राप्त हुए। 14वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को मात्र 145 स्थान प्राप्त हुए। आजकल केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों में विभिन्न दलों की सरकारें हैं। अत: अब कांग्रेस का प्रभुत्व समाप्त हो गया है।

(4) प्रभावशाली विरोधी दल का उदय : भारतीय दल प्रणाली की विशेषता यह भी रही है कि यहाँ पर इंग्लैंड की भांति संगठित विरोधी दल का अभाव रहा है। बिना संगठित विरोधी दल का प्रजातंत्र तानाशाही से भी अधिक हानिकारक हो सकता है। परन्तु भारत में संगठित विरोधी दल का 1969 तक अभाव रहा। 1967 तक लोकसभा में एक भी दल ऐसा नहीं था जिसे वैधानिक दृष्टि से विरोधी दल कहा जा सके, क्योंकि पहले चार चुनावों में किसी भी विरोधी दल को 50 स्थान प्राप्त नहीं हुए थे, जबकि संविधान के अनुसार उसी दल को विरोधी दल का दर्जा प्राप्त हो सकता है, जिसे कम से कम

50 स्थान प्राप्त हों। 1969 में जब कांग्रेस का विभाजन हुआ तब पुरानी कांग्रेस को सरकार विरोधी दल का दर्जा दिया गया और यह आशा की गई कि अब भारत में एक संगठित विरोधी दल की स्थापना हो जाएगी। परन्तु भारतीयों की इस उम्मीद पर भी शीघ्र ही पानी फिर गया, जब 1971 के चुनाव में कोई भी दल संगठित विरोधी दल प्रमाणित नहीं हो सका। जनवरी, 1977 में कांग्रेस (संगठन), जनसंघ, भारतीय लोकदल तथा सोशलिस्ट पार्टी ने मिलकर जनता पार्टी की स्थापना की और कांग्रेस के विकल्प के रूप में लोकसभा का चुनाव लड़ा। कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी ने भी जनता पार्टी के साथ मिलकर जनता पार्टी के चुनाव चिह्न पर ही चुनाव लड़ा। इस चुनाव में जनता पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ और कांग्रेस को केवल 153 स्थान मिले और इस प्रकार कांग्रेस की हार से संगठित विरोधी दल का उदय हुआ। जनता सरकार ने विरोधी दल के नेता को कैबिनेट स्तर के मंत्री की मान्यता दी। चुनाव के पश्चात् लोकसभा में विरोधी दल के नेता श्री यशवंतराव चह्वाण थे।

परन्तु 1980 के लोकसभा के चुनाव में और दिसम्बर, 1984 के लोकसभा के चुनाव में किसी भी विपक्षी दल को इतने स्थान नहीं मिले कि वह मान्यता प्राप्त विपक्षी दल कहलवा सके। 1989 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस (इ) की हार हुई और कांग्रेस (इ) लोकसभा में मान्यता प्राप्त विरोधी दल बनी। कांग्रेस (इ) के नेता राजीव गांधी को विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई। 1991 के लोकसभा के चुनाव के बाद भारतीय जनता पार्टी को विपक्षी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई। अप्रैल-मई, 1996 के लोकसभा चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने पर राष्ट्रपति ने लोकसभा में सबसे बड़े दल भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस को मुख्य विरोधी दल के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। परन्तु भारतीय जनता पार्टी की सरकार द्वारा अपना त्याग-पत्र दिए जाने पर संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी, जिसे कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था। इसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता पार्टी को पुनः मुख्य विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई। फरवरी-मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनाव के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई और इस दल के नेता शरद पवार को विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई। सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव के बाद भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को विरोधी दल के रूप में मान्यता प्रदान की गई। 14वीं लोकसभा चुनाव के बाद पुनः भाजपा विरोधी दल बनी।

(5) चुनाव आयोग के पास राजनीतिक दलों का पंजीकरण : चुनाव व्यवस्था में दिसम्बर, 1988 में सुधार करने के लिए 1951 के जन प्रतिनिधित्व कानून में संशोधन किया गया। इस संशोधन के अनुसार राजनीतिक दल बनाने के लिए चुनाव आयोग के पास पंजीकरण होना अनिवार्य है। कोई गुट अथवा समूह अथवा संस्था या संघ राजनीतिक दल नहीं बन सकता जब तक वह चुनाव आयोग के पास पंजीकृत नहीं होगा। पंजीकरण के लिए प्रत्येक राजनीतिक दल को चुनाव आयोग को प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। ऐसे प्रार्थना-पत्र पर राजनीतिक दल के अध्यक्ष के हस्ताक्षर होते हैं और प्रार्थना-पत्र में दल का नाम, पदाधिकारियों के नाम, संसद तथा राज्य विधानमण्डलों में सदस्यों की संख्या आदि देनी पड़ती है। प्रार्थना पत्र के साथ राजनीतिक दल के संविधान की प्रति लगाना आवश्यक है। उन्हीं दलों का पंजीकरण हो सकता है, जिन्होंने अपने संविधान में स्पष्ट लिखा है कि वे देश के संविधान, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता तथा लोकतंत्र के प्रति आस्था रखते हैं।

(6) प्रादेशिक दलों का होना : भारतीय दलीय प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषता प्रादेशिक दलों का होना है, जिनमें मुख्य हैं : तेलंगाना राष्ट्रीय समिति, इण्डियन नेशनल लोकदल, अकाली दल, नेशनल कान्फ्रेंस, तेलुगू देशम, असम गण परिषद, झारखण्ड पार्टी, द्रविड मुनेत्र कड़गम, अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, मिजोरम नेशनल फ्रंट आदि। सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव के अवसर पर राज्यस्तरीय दलों की संख्या 48 थी। 29 दिसम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 44 राजनीतिक दलों को क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के रूप में मान्यता प्रदान की।

(7) राजनीतिक दलों के दृढ़ सिद्धांत नहीं : प्रायः राजनीतिक दल एक निश्चित राजनीतिक, आर्थिक-सामाजिक विचारधारा और सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। परन्तु भारत में एक-दो दलों के अतिरिक्त सभी दलों की न तो निश्चित विचारधारा है और न ही दृढ़ सिद्धांत। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दल अपने सिद्धांतों का सत्ता में आने पर भी पालन नहीं करते। अपने हितों के लिए राजनीतिक दल जब चाहें अपनी नीतियों और सिद्धांतों में परिवर्तन कर लेते हैं। राजनीतिक दल राजनीतिक लाभ के लिए अपने सिद्धांतों का बलिदान करने में बिलकुल संकोच नहीं करते।

(8) जनता के साथ कम सम्पर्क : भारतीय दलीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि राजनीतिक दल जनता के साथ सदा सम्पर्क बना कर नहीं रखते। भारत में कई दल तो बरसाती मेंढ़कों की तरह चुनाव के समय अस्तित्व में आते हैं और चुनाव के साथ प्रायः लुप्त हो जाते हैं। जो दल स्थायी हैं, वे भी चुनाव के समय ही अपने दल को संगठित करते हैं तथा जनता के साथ सम्पर्क बनाने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ तक कि कांग्रेस पार्टी भी चुनाव के पश्चात् जनता के साथ सम्पर्क बनाना अपनी मानहानि समझती है। जब चुनाव समीप होते हैं तब सभी राजनीतिक दलों के नेता जनता के साथ सम्पर्क बनाए रखने के महत्व पर जोर देते हैं, पर जैसे ही चुनाव समाप्त हो जाते हैं, वे इस महत्व को भी भूल जाते हैं। ग्रामीण लोगों को तो दलों के नाम तक पता नहीं होते।

(9) राजनीतिक दलों में लोकतंत्र का अभाव : भारतीय राजनीतिक दलों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि राजनीतिक दलों का आंतरिक ढांचा पूर्ण रूप से लोकतंत्रीय सिद्धांतों पर आधारित नहीं है। सैद्धांतिक रूप में राजनीतिक दलों का आंतरिक ढांचा लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित है, परन्तु व्यवहार में राजनीतिक दलों में लोकतंत्र नहीं पाया जाता। राजनीतिक दलों के अपने संगठनात्मक चुनाव वर्षों तक नहीं होते। वास्तव में विश्व में सबसे बड़े लोकतंत्र के जीवन रक्त अपने संगठनात्मक चुनाव को राजनीतिक दलों ने भुला दिया है और दलों का काम पूर्णतः सह-योजित व अस्थायी नेतृत्व के द्वारा चलाया जा रहा है। इसने प्रायः सभी दलों में दलीय तानाशाही की प्रवृत्ति को उजागर किया है।

(10) विक्षुब्ध गुट : भारतीय राजनीतिक दलीय प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता विक्षुब्ध गुटों का पाया जाना है। प्रायः प्रत्येक राज्य में कांग्रेस या भाजपा दल के अन्दर दो गुट पाए जाते हैं–सत्तारूढ़ तथा विक्षुब्ध। सत्ता हथियाने के लिए नेताओं में परस्पर इतनी होड़ रहती है कि गुटबन्दी अत्यधिक जोरों पर काम करती है। 1977 में जनता पार्टी के केन्द्र में भी विक्षुब्ध गुट पाया जाता था, जिसका नेतृत्व चौधरी चरण सिंह और राजनारायण कर रहे थे। प्रत्येक राज्य में भारतीय जनता पार्टी में विक्षुब्ध गुट पाया जाता रहा है। विक्षुब्ध गुट खुले आम सत्तारूढ़ गुट के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप लगाता है और शक्ति के दुरुपयोग की आलोचना करता है। यहाँ तक कि चुनाव में विक्षुब्ध गुट को सत्तारूढ़ ग्रुप के साथ सत्ता के लिए काफी लम्बा संघर्ष करना पड़ा है।

(11) सत्तारूढ़ दल तथा सरकार : भारतीय दलीय प्रणाली के आलोचकों का कहना है कि सत्तारूढ़ दल के प्रधान का उस दल की सरकार पर कोई नियंत्रण नहीं होता। स्वस्थ दलीय प्रणाली के अंदर सत्तारूढ़ दल के प्रधान का सरकार पर काफी नियंत्रण होता है, परन्तु भारत में ऐसा नहीं है। पं. जवाहरलाल नेहरू के अत्यधिक प्रभावशाली होने के कारण कांग्रेस प्रधानों का महत्व बहुत कम रहा। इसी कारण जे.बी. कृपलानी ने 1949-50 में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया था। उनके उत्तराधिकारी डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्या ने भी कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में अपनी दुर्बलता पर खेद प्रकट किया था। श्री पुरुषोत्तम दास टंडन ने भी श्री नेहरू के साथ मतभेद होने के कारण कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया था। इसी प्रकार अधिकांश जनता श्रीमती इन्दिरा गांधी को ही कांग्रेस का अध्यक्ष समझती थी और बहुत कम लोग थे जो कांग्रेस अध्यक्ष डी.के. बरुआ का नाम जानते थे। जनता पार्टी के अध्यक्ष चन्द्रशेखर का श्री मोरारजी देसाई की सरकार पर कोई नियंत्रण नहीं था। इसके विपरीत आज सोनिया गांधी का मनमोहन सरकार पर पूर्ण नियंत्रण है।

(12) दल-बदल : भारतीय दलीय प्रणाली की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता तथा दोष 'दल-बदल' है जिसके अनेक उदाहरण हैं। 'दल-बदल' ने राज्यों की राजनीति तथा शासन में अस्थिरता ला दी है, जिससे भारत में संसदीय लोकतंत्र को खतरा पैदा हो गया है। चह्वाण समिति ने दल-बदल की परिभाषा इन शब्दों में दी है : "यदि कोई व्यक्ति किसी राजनीतिक दल के सुरक्षित चुनाव चिह्न पर संसद् के किसी सदन अथवा किसी राज्य या संघ शासित क्षेत्र की विधानसभा या विधानपरिषद का सदस्य निर्वाचित होने के बाद स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल के प्रति अपनी निष्ठा का परित्याग करता है अथवा उस राजनीतिक दल से संबंध विच्छेद करता है और उसका यह कार्य उसके दल के किसी सामूहिक निर्णय का परिणाम नहीं है तो यह माना जा सकता है कि उसने दल-बदल किया है।"

(13) कार्यक्रमों की अपेक्षा नेतृत्व को प्रमुखता : भारत में अनेक राजनीतिक दलों में कार्यक्रम की अपेक्षा नेतृत्व को प्रमुखता दी जाती है और अब भी दी जा रही है। पहले आम चुनाव में कांग्रेस ने पं. जवाहर लाल नेहरू के नाम पर भारी सफलता प्राप्त की। कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम का कभी भी प्रचार नहीं किया। 1967 के चुनाव में कांग्रेस को इतनी अधिक सफलता

नहीं मिली; क्योंकि श्रीमती इन्दिरा गांधी की प्रतिभा पं. नेहरू के मुकाबले में बहुत कम थी और कांग्रेस के कार्यक्रम को जनता जानती नहीं थी। परन्तु 1971 के चुनाव में श्रीमती इन्दिरा गांधी के नाम पर जन-साधारण ने मत डाले। संगठन को वरीयता देने वाली भाजपा ने भी 2004 के चुनाव में वाजपेयी के नाम पर वोट मांगे।

(14) अनुशासन का अभाव : अधिकांश दलों में अनुशासन का अभाव है और अनुशासन का कोई महत्व नहीं दिया जाता। दलों के सदस्य अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनुशासन की परवाह नहीं करते। यदि किसी सदस्य को चुनाव लड़ने के लिए दल का टिकट नहीं मिलता तो वह सदस्य दल छोड़ देता है और इसके पश्चात् वह या तो अपना अलग दल बना लेता है या किसी और दल के टिकट पर चुनाव लड़ता है या स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ता है। चुनाव के मौके पर नेता इस दल से उस दल में होते रहते हैं।

संदर्भ

1. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
2. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
3. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
4. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
5. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
6. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
7. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
8. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
9. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
10. भारत की विदेश नीति – वी एन. खन्ना
11. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांत – अजय कुमार
12. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
13. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
14. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
15. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
16. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
17. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
18. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
19. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत

ईसवी पूर्व 200 के दौरान भारत में आर्थिक क्रियाकलाप

संतोष कुमार शर्मा

शोध छात्र, इतिहास विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

मौर्य युग में खेती के विकास में जो सर्व प्रधान कारक सिद्ध हुआ वह था राज्य द्वारा सिंचाई सुविधाओं का सुचारू प्रबन्धन एवं किसानों के हित में निर्वाध जलापूर्ति का नियमन[1]। अर्थशास्त्र में अच्छा प्रशासन उसे बताया गया है जिसके अन्तर्गत किसान को फसलों की सिंचाई के लिए सिर्फ प्राकृतिक जलापूर्ति यानी वर्षा पर आश्रित न रहना पड़े[2]। कौटिल्य ने सिंचाई की सुचारू सुव्यवस्था हेतु जहाँ संसाधनों के समुचित संयोजन पर बल दिया है,[3] वहीं कई तरह की सावधानियाँ भी बताई है जिन पर अमल किया जाना चाहिए।[4] परन्तु यदि कुछ अवांछित-असामाजिक तत्वों द्वारा सिंचाई सुविधाओं को नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है तो उसके लिए पर्याप्त दण्ड की भी व्यवस्था, अर्थशास्त्र में पायी जाती है,[5] जैसे तालाब को क्षति पहुँचाने के आरोप प्रमाणित हो जाने पर दोषी व्यक्ति को तालाब में डुबो देने का विधान किया गया।[6] सिंचाई हेतु सरकारी प्रयासों की अभिलेखिक पुष्टि भी हो जाती है जब रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख के द्वारा यह तथ्य सामने आता है कि मौर्य शासकों द्वारा या कहें चन्द्रगुप्त और अशोक के राजत्वकाल में उनके प्रान्तीय प्रशासकों द्वारा सुदर्शन झील का निर्माण एवं मरम्मत करायी गयी थी एवं एतद् द्वारा सिंचाई व्यवस्था को दुरुस्त किया गया था।[7] मौर्य काल में सिंचाई की नालियों की देख-रेख निर्माण एवं मरम्मती के लिए एक सरकारी कर्मचारी ही नियुक्त होता था।[8]

मनु ने भी सिंचाई की व्यवस्था बाधित करने वाले को समुचित दण्ड का भागी बताया है और राजा से इसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने की उम्मीद भी की है।[9] सिंचाई की इतनी उत्तम व्यवस्था के बाद भी आलोच्य कालावधि में अकाल जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती थीं। महावग्ग में एक अकाल का जिक्र आता है जिसमें लोग मांस भक्षण को बाध्य हुए थे तथा स्वाभाविक ही जब अन्न भण्डार बचा ही नहीं था तो भिक्षुओं को भिक्षा स्वरूप भी यही सब कुछ मिलता रहा होगा।[10] अकाल की परिस्थिति में जनता कुछ चुने हुए भिक्षुओं को ही भोजन उपलब्ध करा पाती थी।[11] वैशाली में सूखा और महामारी के बचाव के निमित्त लोगों को प्रार्थनाएं करनी पड़ी थी।[12]

डायोडोरस की संकल्पना को स्वीकार करें तो भारतीय भूमि की उर्वरा शक्ति इतनी प्रचण्ड थी और सिंचाई की कृत्रिम व्यवस्था इतनी सुव्यवस्थित थी कि पर्याप्त अन्नोत्पादन होता था।[13] फलतः अन्न की कमी के कारण बड़े पैमाने पर लोग नहीं मरते होंगे। शायद इन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित होकर मेगस्थनीज ने भी कहा है कि भारत में अकाल नहीं पड़ते।[14] जैन कथाओं ने चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल में अकाल का जिक्र आया है।[15] सौहगौरा और महास्थान के अभिलेख भी अकाल ग्रस्त गंगा घाटी में जन सहायता का जिक्र करते हैं।[16]

लेकिन यह भी सत्य है कि फसलों का विनाश कई कारणों से हो जाता था, मसलन, चिड़ियों, चोरों, पशुओं एवं कीड़ो-मकोड़ों के द्वारा,[17] अनाजों की विभिन्न बीमारियों के द्वारा[18], तो कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोपों के द्वारा जैसे ओलों के गिरने से,[19] कभी-कभी अति वृष्टि तो कभी अनावृष्टि[20] के द्वारा। दुर्भिक्ष की स्थितियों से निपटने के लिए, राजा के कर्तव्य के रूप में, कृषि के विकास को, पारिगणित किया गया।[21] कौटिल्य ने बड़े स्पष्ट शब्दों मे कहा है कि दुर्भिक्ष के प्रकोप को कम करने के लिए राजा को किसानों का भू-राजस्व माफ कर देना चाहिए।[22] यदि राजा कोई सहायता करने में अक्षम है तो प्रजा सामूहिक रूप से पर राज्य गमन कर सकती थी।[23]

वैसे यह स्पष्ट करना युक्ति प्रतीत होता है कि उस समय अकाल जैसी स्थिति प्रायः कम ही आती थी और आती भी थी तो उसका प्रकोप आजकल की वनस्पति कम ही होता था।[24] इसका एक प्रमुख कारण वनों एवं वृक्षों के प्रति लोगों का लगाव एवं उनका

संरक्षण भी था। बुद्ध[25] और महावीर[26] ने इनकी रक्षा के लिए जन मानस को तैयार किया तो अर्थशास्त्र[27] में भी वृक्षों को क्षति न पहुँचाने का आदेश पाया जाता है। अब यह पर्यावरणीय प्रेम था या उनकी उपयोगिता या आर्थिक उपादेयता यह तो निश्चितः नहीं कहा जा सकता परन्तु वृक्षों को क्षति न पहुंचाने सम्बन्धी विवरण निश्चित ही बहुत उपलब्ध है। यह भी बड़ा रोचक संयोग है कि बुद्ध ने जिन नगरों की यात्रा की उनमें प्रत्येक में एक बन पाया जाता है।[28] प्रारम्भिक बौद्ध धर्म से सम्बधित अनेक नगरों के नाम भी कुछ पौधों एवं वनस्पतियों के नाम पर ही रखे गए प्रतीत होते हैं।[29]

अशोक ने अपनी राजाज्ञा में ही जंगलों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास किया था।[30] अर्थशास्त्र में जंगलों को आग लगाने वाले को आग में ही जला देने का विधान है।[31] अर्थशास्त्र में जंगलों को आर्थिक एवं सैन्य उपादेयता के आधार पर वर्गीकृत किया गया है, जिसकी तीन श्रेणियाँ है। (1) शिकार के जंगल-पशुचर्म, हड्डी नख, दन्त, सींग इत्यादि के लिए (2) वन्य वस्तुओं के जंगल-लकड़ी से गाड़ियाँ रथ बनते थे, किलों की दृष्टि से भी उपयोगी (3) हाथियों के जंगल-जहां से हाथी लाए जाते थे, युद्धों में उपयोगी होते थे।[32] कौटिल्य आगे भी वनो की उपादेयता बताते हुए यह कहते हैं कि नदी युक्त वन राजा की विषम परिस्थितियों में शत्रुओं से रक्षा के लिए उपयोगी होता है।[33] मनु के काल तक वनों के सरंक्षण पर जोर दिया जाता रहा जैसा कि मनु की इस स्थापना से अभिद्योतित होता है कि हरे पेड़ काटने वाले को जाति से निष्काषित कर दिया जाय।[34]

आलोच्य कालावधि की अर्थव्यवस्था के अन्य महत्वपूर्ण अवयव पशुपालन का विश्लेषण भी समीचीन प्रतीत हो रहा है, क्योंकि कृषि के विकास और प्रसरण के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि पशुपालन तत्कालीन अर्थव्यवस्था की पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया था, बल्कि इस पर और ध्यान दिया जाने लगा क्योंकि कृषि कार्य में पशुओं की उपयोगिता असंदिग्ध थी। वैदिक धर्म में प्रचलित पशु बलि की प्रथा के विरोध में बौद्धों का अहिंसा सिद्धान्त और पशुओं का संरक्षण सिद्धान्त तत्कालीन कृषि अर्थव्यवस्था के अनुरूप ही विकसित हुआ था।[35] तत्कालीन जनजीवन में विविध पशु-पक्षियों का महत्वपूर्ण स्थान था एवं उनके बारे में काफी विस्तृत जानकारी थी, ऐसा प्रतीत होता है।[36]

पशुपालन को कृषि एवं वाणिज्य के साथ उत्कृष्ट व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठा हासिल थी।[37] पालतू पशुओं में गांय को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था। क्योंकि खाद्य पदार्थ के रूप में दूध का महत्वपूर्ण स्थान तो था ही, इसकी संततियाँ बैलो के रूप में कृषि कार्य की आधार शिला थी।[38] इनका मांस भी विशिष्ट अतिथियों को खिलाया जाता था।[39] उस दृष्टिकोण से भी इनका महत्व था।

कौटिल्य[40] एवं मनु[41] दोनों की व्यवस्था में पशुपालन को उतना ही महत्व दिया गया है जितना कृषि को, अधिक पशुओं को जंगल में बाड़ा बनाकर[42] तो कभी-कभी पहाड़ियों से घिरे स्थानों में भी रखा जाता था।[43]

पालि विनय में उत्तरा पथ से घोड़ों के व्यापार के बारे में जानकारी मिलती है।[44] घोड़ों के साथ साथ हाथी भी सैन्य बल का महत्वपूर्ण हिस्सा था,[45] और कौटिल्य ने इस पर विशेष ध्यान रखा था।[46] यूनानी लेखकों के विवरण भी पशुओं के बारे में जानकारी, उनकी विविध उपयोगी गतिविधियों एवं भारतीय जन जीवन से उनकी बहुविध सम्पृक्ति को पुष्ट करते हैं।[47]

संदर्भ

1. प्रो. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ. 154
2. अर्थशास्त्र 6.1
3. अर्थशास्त्र 2.24
4. अर्थशास्त्र 2.9
5. द्र. जी.एस.पी. मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 188-189
6. द्र. राजबलिपाण्डेय, हिस्टारिल एण्ड लिटेरेरी इन्सक्रिप्शंस पृ. 62-63
7. स्ट्रैबो, 15.1.50
8. मनुस्मृति 9, 279
   'तड़ाग भेदक हन्यादप्सु शुद्धबधेन वा'
   अपरंच, 9.281
   'यस्तु पूर्व निविष्टस्य तड़ागस्योदकं हरेतू'
9. महावग्ग 6.23.10 के आगे
   इस दुर्भिक्ष में हाथी, घोड़ा, सांप, कुत्ता इत्यादि के मांस खाते लोगों को विस्तृत किया गया है।

10. चुल्लवग्ग 6.21.1
11. सुत्त निपात 2.1
12. डायोडोरस 2.26
13. परिशिष्ट पर्वन 71, 8 पृ. 415 और आगे,
14. सरकार, सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शंस, पृ. 82-85
15. जातक, 4. 277, 5.336, 4.262, 1.193, 1.53, 54
16. चुल्लवग्ग, 10.1.6 अंगत्तुर निकाय 4.279
17. मिलिन्द पन्ह, पृ. 308
18. जी.एस.जी. मिश्र प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ. 190
19. अर्थशास्त्र 2.24
20. अर्थशास्त्र 2.1
21. अर्थशास्त्र 13.2
22. द्र. आर. गांगुली, फेमिन इन ऐश्येण्ट इण्डिया, एनल्स ऑफ दि भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट जि. 15 1933-34 पृ. 176-77
23. महावग्ग, 3, 1-3, चुल्लवग्ग, 5.32.1
24. जैकोबी, जैन सूत्राज, 2 पृ. 357
25. कौटिल्य 2.2
26. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं समाजिक संरचनाएं, पृ. 148
27. वही
28. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, खण्ड द्वितीय, पृ. 15
29. अर्थशास्त्र 4.11
30. अर्थशास्त्र 2.6, 2.17, 7.14
31. वही 7.12
32. मनुस्मृति 11.64
    (इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणमवापातनम्)
33. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 170, 171, 172 अपरंच, रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ. 145।
34. विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य बी.एस. अग्रवाल, इण्डिया एज नोन टु पाणिनि, जी.एस.पी. मिश्रा, दि एज आफ विनय।
35. पाचितिय, पृ. 11
36. मिश्र जी.एस.पी., प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 193
37. वैदिक एज, पृ. 530
38. अर्थशास्त्र 1.4
39. मनुस्मृति, 9.327, 9.328, 9.327 प्रजापति ने पशुओं के उत्पन्न करके वैश्य का दे दिया। 9.328 वैश्य यह कभी न समझें कि मैं पशुपालन नहीं करुँगा।
40. जातक, 3, 401
41. जातक, 3, 479
42. पाराजिक, पृ. 9
43. पाचित्तिय, पृ. 145
44. अर्थशास्त्र पृ. 49 (शामाशास्त्री का संस्करण)
45. स्ट्रेवो, 15.1.41 से आगे फिलीन, 6.22; एरियन 17।
46. सुत्तनिपात, ब्राह्मण धम्मिक सुत्त।
    'गावो नो परमपिता यासु जायन्ति ओसधा, अन्नदा, बलदा, चेता वण्णदा सुखदा तथा'
47. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 159।।

नारी मुक्ति का उद्‌घोष : 'शकुन्तिका'

डॉ० अनिल सिंह

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सोनुभाऊ बसवंत महाविद्यालय, शहापुर, ठाणे (महाराष्ट्र)

भगवानदास मोरवाल हिंदी के ऐसे स्थापित साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं पर अत्यंत ही सार्थक लेखन कार्य किया है। उनके कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं जिसमें उन्होंने न केवल समाज के प्रत्येक वर्ग को केंद्र में रखा है बल्कि समस्याओं का सामान्यीकरण करते हुए उन्हें प्रस्तुत किया है। उनका पहला उपन्यास 'काला पहाड़' सन 1999 में प्रकाशित हुआ था। आज इस घटना को इक्कीस वर्ष हो चुके हैं और इस लंबे अंतराल में उनकी कलम लगातार सक्रिय रही है।'काला पहाड़'के बाद'बाबुल तेरा देश में','रेत','नरक मसीहा','हलाला','सुर बंजारन','वंचना'और'शकुंतिका'जैसे चर्चित उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा उनके'सिला हुआ आदमी','सूर्यास्त से पहले','अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार','सीढ़ियाँ मां और उसका देवता','लक्ष्मण रेखा'जैसे कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इस तरह उन्होंने अपने कथा लेखन से हिंदी साहित्य को पिछले इक्कीस वर्षों में अत्यंत समृद्ध किया है। यह आलेख स्त्री-विमर्श की दृष्टि से उनके सद्य प्रकाशित उपन्यास'शकुन्तिका' का मूल्यांकन करने हेतु लिखा गया है।

ऐसा नहीं है कि स्त्री विमर्श की दृष्टि से उनके अन्य उपन्यासों पर भी चर्चा नहीं की जा सकती है। उनके लगभग सभी उपन्यासों में स्त्री संदर्भों को अत्यंत तत्परता के साथ उठाया गया है। स्त्रियों के संदर्भ में हमारे समाज में कई परंपराएं ऐसी हैं जो उनकी अस्मिता को छिन्न-भिन्न करने का काम करती हैं। ऐसे संदर्भों को केंद्र में रखते हुए उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रमुखता से उनकी चर्चा की है। उनके उपन्यास'रेत','वंचना','सुर बंजारन','हलाला'आदि सभी इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।'शकुंतिका'उपन्यास में भी उन्होंने मध्यमवर्गीय समाज में स्त्री जाति को लेकर तमाम संदर्भों को न केवल प्रमुखता से उठाया है बल्कि मशाल का धर्म निभाते हुए एक मार्ग इंगित करने का प्रयास भी किया है। जिससे स्त्रियों से संबंधित तमाम सामाजिक समस्याओं का निराकरण भी सुनिश्चित किया जा सके। इस तरह उनका लेखन एक सार्थक दिशा की ओर निरंतर बढ़ता रहा है।

'शकुंतिका'उपन्यास में भगवानदास मोरवाल ने मध्यमवर्गीय परिवारों की कथा का आयोजन किया है। उपन्यास के केंद्र में दो परिवार हैं - भगवती और दुर्गा का परिवार। जहाँ भगवती के परिवार में संतानों के रूप में लड़कियाँ ही लड़कियाँ हैं, वहीं दुर्गा के परिवार में केवल लड़के ही हैं। इस कथा का आयोजन करते हुए भगवानदास मोरवाल ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि मध्यमवर्गीय परिवारों में जो एक संकुचित पुरुष प्रधान सोच है, वह कितनी निरर्थक है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह आयोजन कोई काल्पनिक आयोजन नहीं है वास्तव में हमें इस तरह के न जाने कितने उदाहरण प्रगतिशील मानसिकता के मध्यमवर्गीय परिवारों में देखने को मिल सकते हैं। फिर भी एक बड़ी संख्या ऐसी है जो बदलती परिस्थितियों में बदलने को जरा भी तैयार नहीं है और इस उपन्यास की सार्थकता इन्हीं अर्थों में बहुत ज्यादा है।

'शकुन्तिका'उपन्यास में भगवानदास मोरवाल ने जिन दो परिवारों को कथा के केंद्र में रखा है उनमें पहला परिवार भगवती का परिवार है, और इस परिवार में भगवती के अतिरिक्त उसके पति दशरथ, दो बेटे - बलवंत और रुपेश, बहूएँ रेवती और जयंती आदि हैं। कथा को सार्थकता देते हुए बलवंत और रेवती की तीन बेटियां सिया, गार्गी और बुलबुल हैं तथा रुपेश और जयंती के द्वारा गोद ली हुई एक अन्य पुत्री पीहू भी है। इस तरह यह परिवार स्त्री-चरित्र प्रधान परिवार है और इस परिवार में जो पुरुष दर्शाए गए हैं वे भी सहनशील और सहिष्णु मानसिकता के हैं। इनके चरित्र में प्रगतिशील सोच के दर्शन स्पष्ट रूप से किए जा सकते हैं। यद्यपि उपन्यास के प्रारंभ में भगवती सहित इस परिवार के सभी पुरुष पात्र रूढ़िवादी सोच और समझ से प्रभावित दिखाए गए हैं पर वे सभी समय की नब्ज को पहचानने में भी समर्थ है और यह प्रश्न बार-बार उपस्थित होने पर कि परिवार में संतान के रूप में एक

पुत्र भी होना चाहिए - बलवंत, रेवती तथा रुपेश और जयंती द्वारा जिस तरह से प्रतिक्रिया दी जाती है, उससे इनकी प्रगतिशील मानसिकता स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

इस उपन्यास में जो दूसरा परिवार दर्शाया गया है, वह दुर्गा का परिवार है और इस परिवार में दुर्गा के पति उग्रसेन हैं। उनके दो बेटे नागदत्त और अभय हैं। दुर्गा और उग्रसेन के चार पोते भी हैं। और जैसा कि अमूमन होता है लड़कों के किशोरावस्था में बिगड़ जाने की संभावनाएं बहुत ज्यादा होती हैं तो उपन्यासकार ने सहज ढंग से इन सभी पुरुष संतानों को बिगड़ैल संतानों के रूप में चित्रित किया है, जिन्हें न तो अपने बड़े बुजुर्गों की चिंता है और न ही संस्कारों से जिनका कुछ भी लेना देना है। यह वही बेटे हैं, जिनके जन्म के समय दुर्गा और उग्रसेन बड़े-बड़े उत्सव का आयोजन करते हैं, फूले नहीं समाते हैं और मोहल्ले भर में मिठाइयां बटवाते हैं। परंतु यही पोते बड़े होकर उनके दुख का कारण बनते हैं पुरुषवादी मानसिकता से समृद्ध इस परिवार में सचमुच संस्कारों की बड़ी कमी है, जिसको लेकर दुर्गा और उग्रसेन दोनों ही बड़े व्यथित रहते हैं। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में जिस ढंग से परिस्थितियों का आयोजन किया है, वह यही दर्शाता है कि रूढ़िवादी सोच के कारण हम स्वयं ही कितने दुखों को आमंत्रित कर बैठते हैं।

पूरा उपन्यास भगवानदास मोरवाल की वर्णनात्मक शैली से सजा हुआ है। अत्यंत सहज और समर्थ भाषा में लिखा गया यह उपन्यास सीधे तौर पर आने वाली पीढ़ी की सोच को बदलने की मानसिकता से संपन्न उपन्यास है। उपन्यासकार ने जिस ढंग से इस उपन्यास में घटनाओं का गुम्फन किया है, वह स्पष्ट रूप से रूढ़िवादी मानसिकता को बदलने की प्रेरणा देता है। भगवती और दशरथ के परिवार में जन्मी बेटियाँ कुछ अंतराल तक तो भगवती की मायूसी का कारण बनी रहती हैं, पर जैसे ही वे एक-एक करके प्रगति पथ को प्रशस्त करती हुई आगे बढ़ती हैं, भगवती की सारी मायूसी दूर होती चली जाती है और एक दिन यही बेटियाँ जब अपने को इस दुनिया में जीने लायक बनाने के लिए घर से चली जाती हैं तो उनके दुख का कोई ठिकाना नहीं रहता। जब सिया और गार्गी के बाद पीहू भी शिक्षा के लिए ऑस्ट्रेलिया चली जाती है तब की स्थिति का वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखता है, ष्अगले दिन सवेरे दशरथ और भगवती उठे तो पाया जो नाद उनके कानों में देर तक गूँजता रहता था, वह जैसे अचानक मौन हो गया। लगा मानो घर की सारी मोखियाँ और रोशनदान सुने हो गए हैं। एक बार तो बेख्याली के चलते दशरथ के मुंह से निकलते-निकलते रह गया,^पीहू, बेटा अखबार आ गया हो तो दे जाना!* मगर वह अपने आप को रोक गया।ष1 बलवंत और रेवती की सबसे बड़ी बेटी सिया जहाँ कानून की उच्चशिक्षा ग्रहण करती है वहीं दूसरी बेटी चिकित्सा शास्त्र की उच्चशिक्षा के लिए चयनित कर ली जाती है। इन दोनों बेटियों की शिक्षा कई बार परिवार सहित अपने अड़ोस-पड़ोस को संकटों से बचाती है। बलवंत और रेवती की इन दो बेटियों के अतिरिक्त तीसरी बेटी बुलबुल जोकि पढ़ने-लिखने में औसत दर्जे की दर्शाई गई है, वह रूढ़िवादी मानसिकता के दायरे में रहते हुए विवाह आदि करके अपने घर भेज दी जाती है। उसके पास खुद के स्वाभिमान को बचाने के लिए अपनी कोई योग्यता नहीं होती है और जब अपनी ससुराल में वह संकटों में फंसती है तो स्वयं की रक्षा कर पाने में असमर्थ दिखाई देती है। ऐसे में उपन्यासकार ने सिया और गार्गी के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि लड़कियों का आज के युग में स्वावलंबी होना कितना अनिवार्य हो चुका है। सिया और गार्गी के साहस के कारण ही बुलबुल के पति नरेंद्र को अपनी गलती का एहसास होता है। उसे समझाते हुए दशरथ कहता है, ष्दामाद जी, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। दरअसल क्या है कि आपके परिवार में कोई बेटी नहीं है। इसीलिए आपको नहीं पता कि बेटियों का दर्द क्या होता है। जिस दिन तुम्हारे बेटी पैदा होगी न, उस दिन पता चलेगा कि एक बेटी का दर्द क्या होता।ष2

भगवती और दशरथ के परिवार में ही उनके पुत्र रुपेश और जयंती के द्वारा नि:संतान होने के कारण गोद लेने की प्रक्रिया अपनाई जाती है और इस विचार-विमर्श में भगवती अपने पुत्र और बहू को एक स्त्री संतान ही गोद लेने का परामर्श देती है। अपने माता-पिता के परामर्श का सम्मान करते हुए रुपेश और जयंती के द्वारा पीहू के रूप में एक पुत्री को गोद लिया जाता है। अपने अच्छे संस्कारों के कारण यह परिवार अपनी इस गोद ली हुई पुत्री के लिए वह सबकुछ करता है जो अपने स्वयं के संतान के लिए किया जा सकता है। पीहू भी निराश नहीं करती। वह अपनी अन्य बहनों से बढ़ी-चढ़ी है। उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए न केवल ऑस्ट्रेलिया जाती है बल्कि शिक्षा हासिल करने के बाद वहीं उसे एक बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनी में अच्छे पद पर काम करने के लिए नियुक्ति भी मिल जाती है। पीहू अपनी सच्चाई जानती है कि वह एक गोद ली हुई संतान है। फिर भी जैसा कि हम जानते हैं स्त्रियों का मोह-माया से कुछ विशेष संबंध होता ही है, पीहू अपने परिवार से गहरे बंधनों से बंधी हुई है। वह विदेश छोड़कर अपने परिवार के साथ रहना चाहती है। अपने देश में ही कुछ करना चाहती है। इसीलिए वह विदेशी कंपनी द्वारा दिया गया आकर्षक ऑफर ठुकरा देती है जिस पर उसका परिवार उसे समझाते हुए कहता है, ष्देख पीहू, मौका बार-बार नहीं आते हैं। यह तो अच्छा हुआ जो कंपनी

ने दो महीने का टाइम दे दिया, वरना यह मौका तेरे हाथ से निकल चुका था। फिर पता नहीं तेरा क्या होता। चाचा जी, ठीक कह रहे हैं। यहां के जो हाल हैं, हम सब जानते हैं। ऐसा कर तुरंत कंपनी को मेल करके अपनी कंसेंट भेज दे और जितनी जल्दी हो यहां से जाकर ज्वाइन कर ले।ष्ठ अपने परिवार के बुजुर्ग की मृत्यु की खबर सुन वह भारत आती है। वह न केवल अपने परिवार की सभी परंपराओं का पालन करती है बल्कि अपनी सच्चाई के अनुरूप वह इस बात के लिए कहीं न कहीं एहसानमंद भी महसूस करती है कि उसे दत्तक पुत्री के रूप में इतना अच्छा परिवार मिला, जहाँ न केवल उसे अपनापन मिला बल्कि शायद उसके अपने मां-बाप भी उसके लिए इतना न कर पाते जितना उसे यहाँ मिला। अपनी भावनात्मक संतुष्टि के लिए वह अपने अनाथालय में एक बड़ी धनराशि दान के रुप में भी देती है, वह भी देते हुए उसे कम ही लगती है जिस पर अनाथालय की सुपरिंटेंडेंट कहता है, ष्कम, मैडम आप इस तीस लाख डोनेशन को कम कह रही हैं। इस आश्रम के इतिहास में आज तक किसी ने इतना बड़ा डोनेशन दिया ही नहीं है। जो देते भी हैं, सबसे पहले यही कहते हैं कि यहां उनके नाम का यहां पत्थर जरूर लगना चाहिए। आप सोच नहीं सकती मैडम की इस डोनेशन से हमारी उन बच्चियों को कितना सहारा मिलेगा, जो हर समय सूनी आंखों से उन छात्रों को निहारती रहती हैं, जिनकी मासूम आंखों को यह नहीं पता कि जिसे वे आसमान समझ रही हैं, वह आसमान नहीं बंद बाड़े की छत है। सचमुच आप बड़ी भाग्यशाली हैं। जरूर आपने पिछले जन्म में मोती दान किए होंगे, जो ऐसे दादा-दादी और माता-पिता मिले हैं। समझ में नहीं आ रहा है कि मैं आपका आभार किन शब्दों में व्यक्त करूं।ष्4 वह अपने दादा और दादी के नाम से एक एन.जी.ओ. भी बनाती है और यह सब वह अपने साथ हुए सदव्यवहार के कारण करने को प्रेरित होती है। इस तरह इस उपन्यास में भगवानदास मोरवाल ने जिन स्थितियों और परिस्थितियों का चित्रण किया है उससे न केवल स्त्रियों के संबंध में तमाम सामाजिक धारणाओं का खुलासा होता है बल्कि उन धारणाओं को बदलने के प्रति एक मानसिकता भी निर्मित होती है।

भगवानदास मोरवाल ने इस उपन्यास में रूढ़िवादी और प्रगतिशील दोनों ही पक्षों का सार्थक चित्रण किया है। रूढ़िवादी तत्वों को स्पष्ट करता हुआ दुर्गा और उग्रसेन का परिवार है, जहां हजारों वर्षों से चली आती पुरुषवादी मानसिकता का दर्शन पाठकों को मिलता है। वहीं दूसरी तरफ भगवती और दशरथ का परिवार है जो बदलते संदर्भों में अपनी मानसिकता को बदलने के लिए कृत संकल्पित है। उपन्यासकार ने विभिन्न स्थितियों और परिस्थितियों का सृजन करके रूढ़िवादी मानसिकता और तौर-तरीकों के दुष्प्रभावों को अत्यंत सफलतापूर्वक चित्रित किया है। दुर्गा की यह मायूसी कि काश उसके परिवार में भी एक लड़की होती बदलते हुए संदर्भों को ही चित्रित करता है। उपन्यास में आए हुए कई अवसरों पर यह मायूसी हमें देखने को मिलती है। दुर्गा और उग्रसेन के पोतों का बिगड़ना, नागदत्त और अभय का घर छोड़कर अपने-अपने घरों में बस जाना, दुर्गा और उग्रसेन को भगवान भरोसे छोड़ दिया जाना, आदि स्वार्थी मानसिकता की ओर ही संकेत करते हैं। वहीं दूसरी तरफ सिया, गार्गी, पीहू आदि का अपने परिवार के प्रति लगाव, प्रेम और समर्पण आदि इस बात की ओर संकेत करते हैं कि स्त्रियों को परिवार में सही भूमिका दिया जाना कितना जरूरी है और सही भूमिका मिलने के बाद वे जिस ढंग से नेतृत्व करती हैं वह न केवल परिवार के लिए बल्कि समाज के लिए भी कितना अर्थमय बनता है।

वस्तुतः भगवानदास मोरवाल का यह उपन्यास स्त्री-विमर्श की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। हमारे समाज को यदि सही अर्थों में सशक्त बनना है तो आधी आबादी के प्रति हमें सही दृष्टिकोण अपनाना ही होगा। भगवानदास मोरवाल ने इस उपन्यास में रूढ़िवादी मानसिकता पर करारा प्रहार किया है और यह संदेश देने की कोशिश की है कि समाज में बदलाव के लिए मानसिकता में बदलाव अत्यंत अनिवार्य है और बिना मानसिकता बदले समाज को सही अर्थों में बदला नहीं जा सकता। यह एक रक्तहीन क्रांति की तरह है। सिया, गार्गी और पीहू के रूप में जिस तरह से उन्होंने समाज में बढ़ते नारी सशक्तिकरण को प्रतिबिंबित किया है, वह शकुन्तिका जैसे उपन्यास को और भी अनूठा बना देता है।

संदर्भ

1. शकुन्तिका - भगवानदास मोरवाल; पृष्ठ 103; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. शकुन्तिका - भगवानदास मोरवाल; पृष्ठ 100; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. शकुन्तिका - भगवानदास मोरवाल; पृष्ठ 110; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. शकुन्तिका - भगवानदास मोरवाल; पृष्ठ 115; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

बिहार में अलगाववादी साम्प्रदायिक तनाव में जिन्ना की भूमिका

डॉ० रुमा कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), इतिहास विभाग,
एल०एन०टी० कॉलेज, मुजफ्फरपुर

1930 के दशक के आरंभ में देश के राजनीतिक जीवन के लिए दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि साम्प्रदायिकता एक सर्वाधिक विघटनकारी शक्ति के रूप में विकसित हो चुकी थी। साम्प्रदायिक एकता को प्रोत्साहन देना भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का एक प्रमुख उद्देश्य था। बिहार का काँग्रेसी मंत्रिमंडल इसके लिए सर्वाधिक प्रयत्न कर रही थी। सरकार इस पर कृतसंकल्प थी कि साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ाने के प्रयत्न कठोरता के साथ दबा दिये जायेंगे।[1] बिहार विधानसभा में 27 सितम्बर, 1937 को भाषण करते हुए बिहार के गवर्नर श्री हैलेट ने कहा ''मैं महसूस करता हूँ कि वर्तमान सत्र में नये संविधान के थोड़े दिनों के अनुभव से ज्ञात होता है कि सभी अलपसंख्यकों को अपना विचार प्रकट करने के पूर्ण अवसर प्राप्त हैं।''[2]

कई कारणों से दोनों सम्प्रदायों में विद्वेष की भावना बढ़ रही थी और जहाँ-तहाँ साम्प्रदायिक चखमुख या झड़पें हो रही थीं। बिहार की पूर्वकालिक साम्प्रदायिक एकता नई शक्ति के संघात से टूट रही थीं। मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण काँग्रेस विरोधी हो गया था। बिहार में उसका प्रभाव बढ़ रहा था। बिहार मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी समिति की 1 अप्रैल, 1937 को बैठक हुई। इसमें बिहार मंत्रिमंडल में मुसलमानों के अल्प प्रतिनिधित्व की आलोचना की गई और श्री जिन्ना को पटना आने का आमंत्रण दिया गया। 28 अगस्त, 1937 को मुस्लिम लीग की एक सभा में वन्दे मातरम् के राष्ट्रीय गीत के रूप में गाये जाने के विरोध का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया और सरकार से सार्वजनिक सभाओं, स्कूल या कॉलेजों में उसको गाये जाने पर प्रतिबंध लगाने का आग्रह किया गया।

अक्टूबर (1937) के अंत में श्री जिन्ना बिहार की यात्रा पर आये। सभी स्थानीय मुस्लिम पार्टियों को मुस्लिम लीग के अंतर्गत विलयन करने के उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप यूनाइटेड मुस्लिम पार्टी और अहरार पार्टी लीग में सम्मिलित हो गई किन्तु विधान मंडल में सबसे बड़ी मुस्लिम पार्टी होते हुए बिहार इंडिपेंडेंट पार्टी के साथ श्री जिन्ना की वार्ताएँ सफल नहीं नहीं हुई।[3]

बिहार मुस्लिम लीग की अलगाववादी गतिविधियाँ

मुस्लिम लीग में अधिकाधिक संख्या में मुसलमान सम्मेलन हो रहे थे। अनेक स्थानों पर उसकी शाखाएँ खुल रही थीं और उनकी सभाएँ हो रही थीं। जनवरी, 1938 को श्री जिन्ना फिर बिहार आये और गया में मुसलमानों की एक बड़ी सभा में भाषण किया। 16 अप्रैल, 17 मार्च, 1938 को पटना में भी मुसलमानों की सभाएँ हुई। इसके अध्यक्ष, श्री अब्दुल अजीज थे। उस समय तक बिहार में 70 हजार सदस्य बनाने का दावा किया गया। शेखपुरा में मुस्लिम लीग सम्मेलन होने के बाद गया में एक दूसरा सम्मेलन 23 अप्रैल, 1938 को किया गया। इसमें मंत्रिमंडल की कठोर शब्दों में आलोचना की गई। साक्षरता आन्दोलन और मुस्लिम जन-संपर्क आन्दोलन अभियान पर विशेष रूप से रोष प्रकट किया गया। मोमीन सम्प्रदाय के उन्नयन के लिए 10 हजार रुपयों का अनुदान दिये जाने की ''यह कहकर आलोचना की गई कि यह मुस्लिम सम्प्रदाय में फूट डालने का प्रयत्न था।'' बिहारशरीफ में 15-16 मई को मुस्लिम लीग सम्मेलन हुआ। इसमें श्री अब्दुल अजीज ने अध्यक्षता की। स्थानीय संस्थाओं में मुसलमान छात्र गड़बड़ी मचा रहे थे। जून 1938 में प्रान्तीय लीग कार्यकारिणी ने प्रान्तीय प्रशासन में मुसलमानों की नियुक्ति तथा आर्थिक या प्रशासनिक क्षेत्रों में

मुसलमानों के हित की उपेक्षा या उनके साथ भेद-भाव किए जाने पर विस्तृत सूचना एकत्र करने के उद्देश्य से एक प्रश्नावली अपने शाखा कार्यालयों को प्रसारित की। यह भी निर्णय किया गया कि प्रान्त भर में अंजुमनों या वार्ड कमिटियाँ की स्थापना की जाए। स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के चुनाव का बहिष्कार किया जा रहा था। समस्तीपुर अनुमंडलीय सम्मेलन (19 जून) में एक प्रस्ताव स्वीकृत करके पृथक् निर्वाचन प्रणाली लागू नहीं किए जाने तथा आगामी जिला बोर्ड के चुनावों का बहिष्कार करने का निर्णय किया गया। डाल्टेनगंज में इन दिनों नगरपालिका के लिए चुनाव हो रहा था। मुस्लिम लीग के प्रावधान में मुसलमानों ने इसका बहिष्कार किया। मुस्लिम लीग नामक एक उर्दू पत्रिका का जुलाई, 1938 को प्रकाशन शुरू हुआ। 16 अगस्त, 1938 को लीग के सदस्यों ने फिलस्तीन दिवस मनाया। जुलाई और अगस्त के महीनों में कई स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए।[4]

कभी-कभी बुराई के गर्भ से भी भलाई का उदय होता है। ''अगस्त के अन्त में साम्प्रदायिक स्थिति में किंचित सुधार लक्षित हुआ'', खास करके मुस्लिम लीग के सदस्यों में। सिवान में दोनों साम्प्रदायों के नेताओं ने एक एकता समिति की स्थापना की। मुंगेर के बरबीघा में भी एक समिति की स्थापना की गई। किन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि प्रान्त भर में मुस्लिम लीग की अनेक सभाएँ हो रही थीं और उनमें साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाया जा रहा था। पटना में 1-2 अक्टूबर, 1938 को अखिल भारतीय मुस्लिम एडुकेशन सम्मेलन का अधिवेशन बंगाल के प्रधानमंत्री, श्री फजलुल हक की अध्यक्षता में हुआ। इसमें बिहार मंत्रिमंडल की सुरक्षा नीति और वार्धा सुरक्षा योजना की आलोचना की गई। श्री हक के उद्घाटन भाषण एवं अन्य भाषणों में अलगाववादी राजनीति के स्वर से हिन्दी अखबारों एवं जनता में व्यापक रोष हुआ।[5]

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का 26वाँ अधिवेशन 26 दिसम्बर, 1938 को पटना में शुरू हुआ तथा श्री मुहम्मद अली जिन्ना की अध्यक्षता में तीन दिनों तक चलता रहा। स्वागतकारिणी के अध्यक्ष श्री अब्दुल अजीज ने अपने भाषण में मुसलमानों के पृथक् व्यक्तित्व पर बल देते हुए कहा कि ''काँग्रेस वास्तव में हिन्दू राज्य की स्थापना करना चाहती है।'' अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री जिन्ना ने कहा कि ''काँग्रेस नेतृत्व अपनी संस्कृति दूसरों पर लादने और हिन्दू राज्य की स्थापना पर तुली हुई है।'' एक तत्कालीन रिपोर्ट के अनुसार संघ योजना के विरुद्ध एक प्रस्ताव प्रस्तत करते हुए मौलाना जफर अली खाँ ने उसे भारतीयों पर एक वृहत राजनैतिक धोखेबाजी कहा। मुसलमानों द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई संबंधी प्रस्ताव पर काफी वाद-विवाद हुआ। इस क्रम में कांग्रेसी सरकारों पर अनेक तरह के आरोप किये गये। विशेष कर के विद्यामंदिर, मुस्लिम जन-सम्पर्क आन्दोलन, वन्दे मातरम्, राष्ट्र झण्डा और हिन्दी का सार्वदेशीय भाषा बनाने की आलोचना की गई। सरकार पर मुसलमानों के साथ भेद-भाव एवं जुर्म करने के अनेक तरह के आरोप किये गये। एक वक्तव्य में बिहार के शिक्षा मंत्री ने वंदे मातरम् और राष्ट्रीय झण्डा फहराये जाने के संबंध में सरकार की नीति स्पष्ट की। वंदे मातरम् के संबंध में गाया जाना ऐच्छिक कर दिया गया और उसकी प्रथम दो पंक्तियाँ ही माना जाना निर्धारित किया गया। झण्डा के संबंध में यह अनुशंसा की गई कि शिक्षा संस्थानों पर प्रबंध समिति एवं छात्रों के निर्णय करने पर झण्डे फहराये जायें।

अखिल भारतीय मुसलमान छात्र सम्मेलन का अधिवेशन 29 दिसम्बर, 1938 को हुआ। इसका उद्घाटन श्री मोहम्मद अली जिन्ना और अध्यक्षता महमूदाबाद के राजा ने की। 1939 में बिहार के विभिन्न स्थानों पर मुस्लिम लीग के जलसे एवं सभाएँ होती रहीं। छात्रों के कर्तव्य के संबंध में राजा ने कहा ''हम पर देश के अन्य साम्प्रदायों से अपने को अलग करने तथा डर और घृणा को अपना उपकरण बनाने के आरोप किये जाते हैं। यह आप शिक्षित नौजवानों का दायित्व है कि अपने कर्तव्यों से इसे निराधार प्रमाणित कर दें।'' मुस्लिम लीग दिवस और फिलस्तीन दिवस क्रमशः 5 और 6 फरवरी (1939) को मनाये गये। इन अवसरों पर मुस्लिम लीग के तत्वावधान में अनेक सभाएँ हुई जुलूसें निकाली गईं। मुस्लिम लीग की सभी शाखा संस्थाओं में ब्रितानी प्रधानमंत्री के पास फिलस्तीन में यहूदियों का आप्रवसान बन्द करने तथा अरब राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करने के हेतु तार भेजने को कहा गया। प्रान्तीय सरकार ने भी भारतीय सरकार को प्रान्त के प्रमुख मुसलमानों एवं विधान मंडल की ओर से अरब दिवस के प्रति सहानुभूतिपूर्ण विचार करने के संबंध में एक प्रतिवेदन भेजा गया। बिहार में मुस्लिम लीग की अलगाववादी गतिविधि बढ़ रही थी। बंगाल के मंत्री श्री नजीमउद्दीन की बिहार यात्रा के बाद से स्वयंसेवकों की भर्ती एवं प्रशिक्षण का काम जोर-शोर से चलाया जा रहा था। मुस्लिम लीग की गतिविधि दामिन-कोह तक फैल गई थी और राजमहल, साहेबगंज तथा बोरियों में स्वयंसेवकों को कवायद करते देखा जाता था।[6]

पटना में 12 मार्च को बिहार प्रांतीय मुस्लिम लीग सम्मेलन में इस आशय प्रस्ताव स्वीकार हुआ कि प्रांत में यदि सरकार द्वारा वार्धा योजना लागू की जायेगी तो मुसलमान सविनय अवज्ञा आरंभ करेंगे। सम्मेलन में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी से सविनय अवज्ञा शुरू करने की अनुमति देने का अनुरोध किया गया।

लीग के तत्वावधान में कई जाँच समितियों ने देश की यात्रा की और संचित आँकड़ों के आधार पर काँग्रेसी सरकार के विरुद्ध आरोपों की एक सूची प्रकाशित की किन्तु इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। बिहार काँग्रेस मंत्रिमंडल ने देश के अन्य काँग्रेस मंत्रिमंडलों की तरह इनके समुचित उत्तर प्रकाशित किये और यह सिद्ध किया कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के प्रति हर तरह से न्याय किया जा रहा था। बिहार में मुस्लिम लीग से अलग दो अन्य मुस्लिम संगठन भी काम कर रहे थे। ये थे जमायते-उ-उलेमा और मोमीन जमायत। दरभंगा में 25 जून, 1929 को मोमीन सम्प्रदाय की ओर से यह माँग पेश की गई कि मुसलमानों के लिए सुरक्षित स्थानों में से आधा मोमीन सम्प्रदाय को दिया जाए। बेतिया में जुलाई 1938 में जमायत-उल-उलेमा की एक सभा हुई। इसमें मुस्लिम लीग की कार्रवाईयों की कठोर आलोचना की गई।[7]

15 फरवरी, 1938 ई. को राजनैतिक बंदियों की रिहाई के प्रश्न को लेकर बिहार ''मंत्रिमंडल ने अपना त्याग-पत्र दे दिया।'' 22 फरवरी, 1938 ई. को जब वायसराय ने आश्वासन दिया कि जिन राजबंदियों के मामलों की जाँच प्रधानमंत्री कर चुके हैं, उन्हें रिहा कर दिया जायेगा तब कहीं बिहार मंत्रिमंडल ने अपना त्याग-पत्र वापस लिया। 19 मार्च, 1938 ई. तक राजबंदी रिहा कर दिये गये। द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ होने पर जब काँग्रेसी मंत्रिमंडलों से बिना राय लिये ही वायसराय ने यह घोषणा कर दी कि भारत भी युद्ध में शामिल है, तब देश के सभी काँग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिया। महात्मा गाँधी के बाह्वान पर पूरे देश में व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ किया गया, जिसमें बिहार के लोगों ने भी काफी उत्साह के साथ भाग लिया।

बिहार मंत्रिमंडल में 31 अक्टूबर, 1939 को जब त्याग-पत्र दे दिया तब बिहार के गवर्नर ने उसे स्वीकार करते हुए 3 नवम्बर, 1939 को ''गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट'' की धारा 93 के अंतर्गत अधिघोषणा जारी करके प्रान्त में संपूर्ण व्यवस्थापिका एवं प्रशासनिक अधिकार स्वयं ग्रहण कर लिया। उस समय वायसराय एवं काँग्रेसी नेताओं अथवा अन्य पार्टी के मध्य बातचीत चल रही थी इसलिए बिहार सरकार ने 4 और 5 नवम्बर को अपने अधिकारियों को काँग्रेस एवं अन्य सरकार विरोधी पार्टियों के प्रति ''सतर्कता एवं संयम से काम लेने'' के आदेश दिये। उन्हें कहा गया कि आपातकालीन प्रशासन की अवधि में यथासंभव शत्रुता या कटुता से बचना चाहिए। इस निर्देश के साथ-साथ उन्हें यह भी बता दिया गया कि ''जहाँ जरुरी हो तत्काल सुदृढ़ कार्रवाई करने में हिचकिचाहट या कमजोरी नहीं होनी चाहिए। स्थिति के अनुरूप विधान अथवा सरकारी आदेश के अनुसार जो भी आवश्यक हो, अवश्य किया जाना चाहिए। यदि शांति और व्यवस्था पर खतरा हो अथवा प्रशासन में या सामान्य जीवन एवं कामकाज में हस्तक्षेप करने के प्रयत्न किए जायें तो सबसे पहले कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने तथा प्रशासन को ठीक से चलाते रहने की आवश्यकता होगी और इसके लिए सभी आवश्यक कार्रवाईयाँ बिना किसी भय या पक्षपात के की जायेगी। नवम्बर के अंत में बिहार सरकार ने एक प्रचार विभाग की स्थापना की। इसका उद्देश्य सरकारी परिपत्र के अनुसार ''युद्ध विरोधी प्रचार अभियान का प्रभाव रोकने पर मुख्यत: अपने को केन्द्रित रखना था।'' कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के इस्तीफे एवं उनके फलस्वरूप राष्ट्रवादी भारत की सर्वाधिक पार्टियों का असहयोग युद्ध संकट में ब्रितानी सरकार के लिए जनता की विजय थी।''[8] असंतुष्ट विद्रोही एवं विक्षुब्ध भारत हिटलर के विरुद्ध उपयुक्त प्रचार सामग्री नहीं हो सकता था। अत: भारत सचिव एवं वायसराय की ओर से नये वक्तव्य प्रचारित किये गये। इनकी भाषा पहले से अधिक चिकनी-चुपड़ी थी। वायसराय ने गाँधीजी, काँग्रेस अध्यक्ष, राजेन्द्र प्रसाद और मुस्लिम लीग के अध्यक्ष, मुहम्मद अली जिन्ना से बातें कीं। किन्तु कोई बात तय नहीं हो सकी और गतिरोध बना रहा।

लीग के द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का न केवल काँग्रेस और बहुसंख्यक संगठनों वरन् अनेक मुस्लिम संगठनों द्वारा विरोध किया गया। यद्यपि यह द्वि-राष्ट्र सिद्धांत एक राजनीतिक मूर्खता थी लेकिन स्वार्थी राजनीतिज्ञों द्वारा इस मूर्खता का अपने लाभ के लिये सर्वोत्तम उपयोग किया गया। लीग अपनी इस माँग को दृढ़तापूर्वक अपनाये रही। इस संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए क्रिप्स प्रस्ताव, राजगोपालचारी योजना और कैबिनेट मिशन योजना के रूप में जो प्रयत्न किये गये, वे लीग की हठधर्मिता से टकराकर असफल हो गये।

लीग के लाहौर अधिवेशन में बिहार के अनेक मुस्लिम नेताओं ने भाग लिया था। 13, 14 अप्रैल, 1940 को छपरा में मुस्लिम लीग का एक सम्मेलन हुआ। इसमें लखनऊ का चौधरी खलीकुजमा मुख्य वक्ता था। उसने लोगों से श्री जिन्ना और मुस्लिम लीग के प्रस्ताव का समर्थन करने की अपील की एवं मुसलमानों को अपना भेद-भाव भुला देने को कहा। 19 अप्रैल को बिहार के विभिन्न स्थानों पर पाकिस्तान दिवस मनाया गया। इसमें भारत-विभाजन संबंधी लाहौर प्रस्ताव पढ़ा गया एवं स्वीकृत किया गया। दूसरी ओर अहरार पार्टी और मोमीनों ने उसकी निंदा की।

बिहार प्रान्तीय मुस्लिम राजनैतिक सम्मेलन भागलपुर जिलान्तर्गत कहलगाँव थाना के सोनहौला नामक गाँव में जुलाई 1940 में हुआ। इसकी अध्यक्षता सैयद अब्दुल्ला बेलवी ने की। इसमें से भी अधिकतर भाषणों में मुस्लिम लीग, जिन्ना और ब्रितानी नीति की निन्दा की गई थी तथा काँग्रेस की नीतियों का समर्थन किया गया था। श्री बेलवी ने इस अवसर पर कहा ''अब तक हमें कहा जाता था कि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता का अभाव है हमें मालूम है कि यह एक झूठा बहाना है। सत्य यह है कि ब्रितानी सरकार शक्ति त्यागना नहीं चाहती जहाँ तक हमारे आंतरिक मतभेद का सवाल है हमें इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि ऐसे मतभेदों को मिलजुलकर शांति के साथ समाप्त करने के हेतु लोगो में पर्याप्त देशभक्ति तथा अक्लमंदी है।''[9] लेकिन यह तभी होगा जबकि देश के सच्चे नेताओं को इसका भरोसा हो कि भारत को जो स्वतंत्रता दी जा रही है वह सच्ची है।

धीरे-धीरे मुस्लिम लीग की नाराजगी और स्पष्ट हो गई और यह काँग्रेस मंत्रिमंडलों के खिलाफ कटु प्रचार के रूप में व्यक्त हुई। काँग्रेस मंत्रिमंडलों पर यह आरोप लगाया गया कि वे मुसलमानों के प्रति भेद-भाव की नीति अपना रहे हैं। सन् 1940 के लाहौर प्रस्ताव से पहले ही हिन्दू-मुस्लिम समस्या को हल करने के लिए भारतीय सीमाओं के पुनर्निर्धारण की एक के बाद एक अनेक योजनाएँ सामने आईं। ये सुझाव लीग ओर लीग-इतर दोनों ही क्षेत्रों से आये। उदाहरण के तौर पर एस.ए. लतीफ ने यह सुझाव रखा कि यदि देश में विभिन्न जातियों के संघर्ष को रोकना है तो इसका एकमात्र हल यह है कि देश को सांस्कृतिक एकता में बाँधे रखा जाए। सिकन्दर हयात खाँ का यह मत था कि अल्पसंख्यकों के धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए सन् 1935 के अधिनियम द्वारा जो संघीय व्यवस्था प्रदान की गई थी उसमें संशोधन किया जाए। अपनी योजना में उन्होंने निरंकुश केंद्र सरकार के खिलाफ सुरक्षा उपायों की व्यवस्था की। इन दोनों योजनाओं में जहाँ मुसलमानों की माँगों को पूरी करने के लिए भारत की सीमाओं को फिर से बाँटने की बात कही गई थी अलीगढ़ योजना में पहली बार इस बात पर जोर दिया गया कि भारतीय मुसलमान अपने-आप में एक राष्ट्र हैं और वे हिंदू, अंग्रेज या अन्य किसी जाति के प्रभुत्व में नहीं रह सकते। अत: उन्होंने दो प्रभुत्व-संपन्न राज्यों ''भारत में पुनर्विभाजन की माँग की-मुस्लिम भारत और हिंदू भारत।''[10]

मुसलमानों के लिए एक अलग राज्य बनाने का प्रस्ताव 23 मार्च, 1940 को मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पास किया गया था। इसमें कहा गया, ''भारत की समस्या का चरित्र अंत: सांप्रदायिक नहीं है वरन् स्पष्ट रूप से अंतर्राष्ट्रीय किस्म का है और इसी रूप में इस पर विचार किया जाना चाहिए। अब हमारे लिए एकमात्र रास्ता यह रह गया है कि हम भारत को 'स्वायत्त राष्ट्रीय राज्यों' में विभाजित करके प्रमुख राष्ट्रों को अलग-अलग हो जाने दें। जिन्ना ने मीटिंग में यह घोषणा की कि मुसलमान किसी ऐसे संविधान को स्वीकार नहीं करेंगे जिसके फलस्वरूप हिंदू-बहुल वाली सरकार बने। लीग का यह प्रस्ताव इस बात का प्रमाण है कि उच्चस्तरीय मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली मुस्लिम लीग के नेतृत्व की चिंतनधारा किस दिशा में जा रही थी। इसके बाद से इस विचार ने, जो अब तक असंभव माना जाता था, भारतीय राजनीति में नवीन अर्थ और आयाम ग्रहण किए। मुस्लिम जनसामान्य को अपने खेमे में लाने के लिए मुस्लिम लीग ने एक आर्थिक कार्यक्रम भी शामिल किया था ताकि वह अपने अनुयायियों से यह कह सके कि पाकिस्तान के लिए जो संघर्ष लड़ा जा रहा है वह रोजी-रोटी और आर्थिक संपन्नता का भी संघर्ष है। इस प्रकार पाकिस्तान की संकल्पना को एक नया अर्थ और एक नया आधार दिया गया।

1940 ई. में गाँधीजी के नेतृत्व में काँग्रेस में व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया। 1942 ई. में इसने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का रूप धारण कर लिया। इस विद्रोह से सरकार को देश की जनता की शक्ति तथा दृढ़ संकल्प का पता लगा। गाँधी जी तथा अन्य क्रांतिकारियों को जेल में ठूँस दिया गया। 1944 ई. में गाँधीजी को कारामुक्त कर दिया गया। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में काँग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाया और संविधान सभा में नया संविधान बनाना शुरु कर दिया। इसी बीच मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान के निर्माण की आवाज उठाई और सीधी कार्रवाई का नारा बुलंद किया। फलस्वरूप, हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक दंगा शुरु हुआ। अत्याचार, लूट-मार और अगलगी का नंगा नाच देखने को मिला। गाँधी जी ने नोआखली का दौरा किया। दंगे की ज्वाला कलकत्ता, बिहार, पंजाब तथा दिल्ली में भी फैल गई। गाँधीजी ने सभी क्षेत्रों का दौरा किया और सांप्रदायिक एकता कायम करने का प्रयास किया।

सन्दर्भ सूची:-

1. मुसरूल हसन, *नेशनलिज्म एण्ड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इंडिया, 1885-1930*, मनोहर, न्यू दिल्ली, 1990, पृ. 282-286.
2. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, *भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सांविधानिक विकास*, भारती भवन, पटना, पृ. 275-276.
3. उपरोक्त.
4. सत्या एम. राय, *भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, पृ. 355.
5. के.के. दत्त, *बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास*, भाग-3, बिहार, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974, पृ. 322-323.
6. आई. अहमद, *कास्ट एण्ड सोशल स्ट्रेटिफिकेशन अमंग मुस्लिम्स*, दिल्ली, 1973, पृ. 588.
7. उपरोक्त.
8. आयशा जलाल, ''एक्सप्लोडिंग कम्युनलिज्म'' इन एस वोस एण्ड आयशा जलाल (एडिटेड) नेशनलिज्म, *डेमोक्रेसी एण्ड डवेलपमेंट : स्टेट एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड, न्यू दिल्ली, 1997, पृ. 76-77.
9. उपरोक्त.
10. सेल मायाराम, *रेसिसटिंग रीजन्स : मिथ, मेमोरी एण्ड शेपिंग ऑफ ए मुस्लिम आइडेनटिटी*, ऑक्सफोर्ड, न्यू दिल्ली, 1997, पृ. 68.

अध्यापकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन

प्रज्ञा सिंह

एम0एड्0, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

संक्षिप्त साराँश

प्रस्तुत शोधपत्र का अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अनुसंधान है जो सर्वेक्षणात्मक विधि द्वारा समपन्न हुआ। जो बक्सा विकास खण्ड के समस्त प्राथमिक स्तर के अध्यापकों की समष्टि पर यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल 400 छात्रों पर किया गया। ऑकड़ों का संकलन सन्तोष कुमार गुप्ता के शिक्षण अभिक्षमता मापनी द्वारा किया गया और प्रसरण विश्लेषण अनुपात की सहायता से परिणाम निकाला कि लिंग व क्षेत्र के आधार पर शिक्षकों की शिक्षण दक्षता समान होती है।

मुख्य शब्दः विवरणात्मक, सर्वेक्षणात्मक, प्रसरण अनुपात, शिक्षण दक्षता, समष्टि, न्यादर्श।

प्रस्तावना

सामान्य ज्ञान के अतुलित एवं असीमित भण्डार को विश्वविद्यालयों में अपनाने का अधिकाधिक प्रयास किया जाता हैं, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की शिक्षा में जितनी विविधता, व्यापकता तथा परिणात्मकर्ता आज हैं वह पहले नहीं थी। विद्यालयों में बढ़ते राजनैतिक दबाव एवं शिक्षा में हो रहें इनके निरन्तर प्रयोगों की वजह से विद्यालयी वातावरण प्रदूषित दिखायी पड़ता हैं, परिणाम स्वरुप विद्यालय की स्थापना का उद्देश्यपूर्ण नहीं हो पा रहा है। छात्र-छात्राओं की रुचि ज्ञान प्राप्त करने के बजाय किसी भी प्रकार से उच्चतम् अंक के साथ प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की होती हैं।

वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के निर्देशनों तथा शैक्षणिक व्यवसायिक तथा वैयक्तिक क्षेत्र में विद्यार्थियों की विशेष योग्यता अभिरुचि एवं उनसे उत्पन्न दक्षता का समझना अति आवश्यक समझा जाता हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये अभिक्षमता, अभिरुचि, रुचि तथा दक्षता के परीक्षणों का निर्माण किया गया हैं। शिक्षा प्रणाली की कुशलता शिक्षकों की योग्यता, दक्षता एवं प्रतिबद्धघ्ता पर निर्भर करती है। अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली का भी असफल होना अवश्य समभावी हैं।

समस्या की पृष्ठभूमि

व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन की सफलता में दक्षता एवं प्रतिबद्धता का विशेष महत्व होता है। व्यवसाय से सम्बन्धित दक्षता एवं प्रतिबद्धता के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यवसाय में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता हैं, जैसे एक डॉक्टर ने यदि उसमें चिकित्सीय दक्षता एवं प्रतिबद्धता हैं तो वह चिकित्सा के क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता हैं। एक इन्जीनियर हैं, यदि उसमें इन्जीनियरिंग की दक्षता एवं प्रतिबद्धता हैं तो वह सफल एवं दक्ष इन्जीनियर होगा। गृहिणी ने घर के काम करने की दक्षता एवं प्रतिबद्धता नहीं है तो वह योग्य एवं दक्ष गृहिणी नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार एक अध्यापक में शिक्षण कार्य को भलिभाँति सम्पन्न करने के लिये शिक्षण की दक्षता एवं प्रतिबद्धता का होना नितान्त आवश्यक हैं। वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षण प्रक्रिया में दक्षता एवं प्रतिबद्धता का अभाव लगता हैं जिसके कारण शिक्षा की गुणवक्ता में निरन्तर गिरावट देखने को मिल रहीं हैं। इसी कारण से शोधकर्त्ता ने अपनी समस्या के अध्ययन का शीर्षक निम्न ढ़ग से रखा हैं।

अध्ययन का औचित्य

शिक्षानीतियॉ शिक्षा सिद्धान्त शिक्षा की प्रविधियॉ आदि बालकों की अर्न्तनिहित शक्तियों के विकास के लिये बनायी गयी हैं, परन्तु अध्यापक अपने शिक्षण को नीरस बनाता हुआ छात्रों को मानसिक रुप से कक्षा में उपस्थिति करने में असफल रहता हैं। जिसका परिणाम है कि अधिगम स्तर की अवनति और सृजनात्मकता की क्षति होती हैं। बचपन की अवस्था से ही विद्यार्थी रटकर परीक्षा पास करना सीख जाता हैं। कुछ शिक्षक अभिभावकों के यहॉ बच्चों के ट्यूशन व कोंचिग भी पढ़ाने पहुॅचते हैं। जिससे उनका आर्थिक विकास तो होता है लेकिन बच्चों कि सावेंगिक हत्या हो जाती हैं, और भविष्य का कुंठित नन्हा प्रौढ़ बनता जाता हैं। हमारे यहॉ अध्यापक अपने व्यवसाय को मात्र एक पेट भरने का व्यवसाय समझने पर तुला हुआ हैं, जबकि शिक्षण व्यवसाय का उद्देश्य यह नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति में शोधकर्त्ता के मन में कुछ स्वाभाविक प्रश्न उठते हो कि क्या आज अध्यापकों की दक्षता कक्षा के बाहर ट्यूशन या कोंचिग तक सीमित हो गयी हैं? एक प्रश्न और उठता है कि क्या आज का शिक्षक अपनी शिक्षण प्रक्रिया के प्रति वचनबद्ध नहीं है? क्या शिक्षकों की दक्षता एवं प्रतिबद्धता में कोई अन्तर हैं? ऐसे ही कुछ प्रश्न है। जिनका समाधान प्राप्त करने के लिये शोधार्थी ने शोध के निमित्त प्रस्तुत समस्या का चयन किया हैं।

आधार

प्रस्तुत अध्ययन में आधार के रुप में कुछ साहित्य का गहन छानबीन की गयी जिनके संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

सतिंदर कौर (2018) ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष पाया कि शिक्षण अभिक्षमता का सम्बंध विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि से होता है। सिंधू (2015) ने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि शिक्षकों की शिक्षण योग्यता उनके बुद्धि को प्रभावित करती है। गौंडी साधना (2015) के अध्ययन से परिणाम पाया कि शिक्षण योग्यता उनके कार्यसंतुष्टि तथा समायोजिन से जुड़ी होती है। सिंह यू. पी. (2001) ने स्ववित्तपोषी महाविद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण योग्यता का अध्ययन करते हुये पाया कि सरकारी शिक्षक उच्च थे। शर्मा (2016) ने माध्यमिक स्तर पर कार्य करते हुये पाया कि पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता उच्च होती है। शाहिल अहमद खान (2016) ने अध्ययन से पाया कि शिक्षण अभिक्षमता तथा समायोजन में सम्बन्ध पाया जाता है। शर्मा प्रवीण (2017) ने बताया कि शिक्षण अभिक्षमता ही शिक्षा का मूल आधार है। राय (2018) कि अध्यापक की शिक्षण अभिक्षमता का सम्बंध शिक्षण प्रभावशीलता से घनिष्ठ सम्बंन्धित है। नाथन बेरोंज (2019) कि उच्च शैक्षणिक अभिक्षमता से सफलता जल्दी मिलती है। शारदा प्रसाद सिंह (2021) का अध्ययन है कि माध्यमिक स्तर पर पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता महिला शिक्षकों की तुलना में अधिक है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य था कि "प्राथमिक स्तर पर अध्यापकों की लिंग व क्षेत्र के आधार पर शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन करना"

परिकल्पनायें

प्रस्तुत अध्ययन में शून्य परिकल्पना परीक्षण हेतु बनायी थी कि "प्राथमिक स्तर पर अध्यापकों की लिंग व क्षेत्र के आधार पर शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं है।"

विधि परक विज्ञान

प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का है। इसे सर्वेक्षण विधि द्वारा जौनपुर जनपद के विकास खण्ड बक्सा के समस्त प्राथमिक स्कूल के अध्यापकों की समष्टि पर 400 अध्यापकों के यादृच्छिक रुप से चयनित न्यादर्श पर किया गया था जिसमे 200 शिक्षक व 200 शिक्षिका शामिल थी। शोध उपकरण शिक्षण दक्षता मापनी सन्तोष कुमार गुप्ता द्वारा निर्मित तथा मानकीकृत है। ऑकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रसरण अनुपात ज्ञात किया गया था।

विश्लेषण तथा व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषण का आधार उद्देश्य बनाया गया था जिसके लिये निर्मित शून्य परिकल्पना के परीक्षण हेतु निम्नलिखित विश्लेषण तालिका बनायी गयी थी।

तालिका-1: पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं की शिक्षण दक्षता सम्बन्धी प्रसरण विश्लेषण तालिका

विचरण के स्रोत	df	s.s.	m.s.s.	Fk~ ratio	P
समूह के मध्य	1	288.68	288.68	3.29	असार्थक
समूह के अन्दर	398	34842.46	87.54		
योग	399				

df (1,398) .05 =k 3.86

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं के शिक्षण दक्षता पर प्रसरण अनुपात 3.29 है। df (1,398) के .05 सार्थकता स्तर पर 3.86 से कम है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष व महिला शिक्षक परस्पर शिक्षण दक्षता समान स्तर की होती है।

तालिका-2: ग्रामीण तथा शहरी शिक्षकों की शिक्षण दक्षता सम्बन्धी प्रसरण विश्लेषण तालिका

विचरण के स्रोत	df	s.s.	m.s.s.	Fk~ ratio	P
समूह के मध्य	1	311.46	311.46	2.72	असार्थक
समूह के अन्दर	398	35641.24	114.43		
योग	399				

df (1,398) .05 =k 3.86

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण तथा शहरी शिक्षकों के शिक्षण दक्षता पर प्रसरण अनुपात 2.72 है। df (1,398) के .05 सार्थकता स्तर पर 3.86 से कम है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण व शहरी शिक्षक परस्पर शिक्षण दक्षता समान स्तर की होती है।

शोध निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये है।

1. शिक्षण दक्षता के लिये पुरुष शिक्षक व महिला शिक्षिकाओं दोनों परस्पर समानता रखते है।
2. ग्रामीण व शहरी शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन उपरोक्त शिक्षण और शोध के अलावा उच्चतर शिक्षा संस्थान अन्य महत्वपूर्ण जिम्मेदारियॉ निभायेगें जैसे अन्य उच्चतर शिक्षा संस्थानएं को विकसित और स्थापित करने में सहयोग करेगी। सामुदायिक सहभागिता और सेवा, कार्यप्रणाली के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान, उच्चतर शिक्षा प्रणाली के प्राध्यापकों को योग्यता का विकास और स्कूली शिक्षा में योगदान जिन्हें वे उपयुक्त संसाधनों प्रोत्साहनों और संरचनाओं को मुहैया करने के माध्यम से निर्वहन करेगें।

2040 सभी वर्तमान उच्चतर शिक्षा संस्थाएं अपने को बहुविषयक संस्थान के रुप में स्थापित करेंगी बुनियादी ढाँचे को इष्टितम उपयोग के लिये और जीवन्त बहुविषयक समुदायों के निर्माण के लिये हजारों की संख्या में छात्रों का नांमाकन करेगें। चूंकि इस प्रक्रिया में समय लगेंगा सभी उच्चतर शिक्षा संसिान सबसे पहले 2030 तक बहुविषयक संस्थान योजना बनायेगें फिर धीरे-धीरे वाछित नांमाकन करेगें।

वंचित क्षेत्रों में पूर्ण उपलब्धता न्यायसंगतता और उचित समावेश के लिये उचित संख्या उच्चतर शिक्षा संस्थान स्थापित व विकसित किये जायेगें। 2030 तक प्रत्येक जिले या उसके समीप कम से कम एक बड़ा बहुविषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान होगें। श्रेष्ठ गुणवत्तापूर्ण उच्चतर शिक्षा संस्थान सार्वजनिक और निजी दोनों को विकसित करने की दिशा में ठोस कदम उठाये जायेंगे जिनके निर्देश का माध्यम स्थानीय/भारतीय भाषाओं का द्विभाषिक होगा इसका उद्देश्य सकल नामांकन अनुपात को 2018 में 26.3% से बढ़कर प्रतिवर्ष 2035 तक 50% करना होगा। हलांकि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में कई नये संस्थानों का विकास किया जा सकता है। लेकिन क्षमता निर्माण का एक बड़ा भाग मौजूद इकिाहे का समेकित महत्वपूर्ण रुप से विस्तारित और बेहतर बनाने के माध्यम से प्राप्त किया जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोंडी साधना (2015); "शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि व व्यवसायिक प्रतिबद्धता" शोधगंगा।
2. नायन बेरोज (2019); "शिक्षक प्रभावशीलता और छात्र परिणामों पर साहित्य की समीक्षा" प्मात् स्प्रिंगर
3. राय राधा (2018); "शिक्षक प्रभावशीलता" प्श्रात् वाल-5 इसू-3
4. सर्तितर कौर (2018); "कार्यसंतुष्टि तथा शिक्षण अभिक्षमता" शोधगंगा.
5. सिंह यू.पी. (2001); "स्वावित्तपोषी अध्यापकों की व्यवसायिक प्रतिबद्धता" प्ब्थस्प
6. सिंधु पूनम (2015); "बी. एड. छात्रों की शिक्षण योग्यता का अध्ययन" शोधगंगा.
7. शर्मा आभा (2016); "शिक्षण व्यवसाय तथा अभिक्षमता" रिसर्चगेट.
8. शर्मा प्रवीण (2017); "शिक्षण अभिक्षमता तथा समायोजन" प्श्रब्त् वाल-15 अंक. 1 जन.-2017.
9. शाहिल अहमद खान (2016); "शिक्षण अभिक्षमता तथा व्यवसायिक प्रतिबद्धता" आर्मटी इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ टीचर एज्यूकेशन अप्रैल 2016.
10. सिंह शारदा (2021); "शिक्षण अभिक्षमता व व्यवसायिक प्रतिबद्धता" शोध प्रबन्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर.
11. तहिर कलीन सिद्दकी (2010): "ए स्टडीघ ऑफ टीचर काम्पीटेन्सीज एण्ड टीचिन्ग प्रैक्टिसेज फार स्कूल इप्रेक्टिवनेस इन वकर्स वेलफेयर माडल स्कूल। पी- एच0 डी0 (शिक्षाशास्त्र) फाउण्डेशन युनिवर्सिटी कालेज ऑफ लिवरल आर्ट एण्ड साइंसेज रावलपिण्डी, पाक्स्तिान। स्त्रोत गूगल।
12. राज, मिनाक्षी, पी0 के0 (1988): फैक्टर्स इफेंक्टिंग टीचिंग काम्पीटेन्सी ऑफ बी0एड्0 ट्रेनीज इन टीचिंग फिजिकल साइन्स पी- एच0 डी0 (शिक्षाशास्त्र) मद्रास युनिवर्सिटी मद्रास। एम0बी0 बुच0 सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च। वाल्यूम-04 पृष्ट-978.
13. शर्मा, आर0 डी0 (1985): एन एक्सपेरिमेण्टल स्टड़ी इन टू दी इफेक्ट ऑफ वैरीएसन ऑफ मॉडल प्रजेन्टर आन टीचिन्ग काम्पीटेन्स ऑफ टीचर ट्रेनीज। पी-एच0 डी0 (शिक्षाशास्त्र) मेरठ युनिवर्सिटी मेरठ, एम0बी0 बुच0 सेकण्ड सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च। वाल्यूम- 04 पृष्ट-987.
14. सिंह, और प्रसाद (1993): "शिक्षकों की बर्हिमुखी व्यक्तित्व एवं कार्यसंतुष्टि का शिक्षण दक्षता पर प्रभाव पी-एच0 डी0 (शिक्षाशास्त्र) मेरठ युनिवर्सिटी मेरठ।

गाँधी दर्शन में स्वदेशी की अवधारणा: एक अध्ययन

दीक्षा

दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

'स्वदेशी' मातृभूमि के प्रति अनुराग को दृढ़ता प्रदान करने वाला व्रत है।[1] स्वदेशी का तात्पर्य है अपने देश से प्रेम तथा अपने देश में उत्पन्न एवं निर्मित वस्तुओं का ही व्यवहारिक जीवन में उपयोग करना एवं विदेशों में बनी हुई वस्तुओं का त्याग करना। मातृभूमि के लिए देशवासियों में प्रतिबद्धता आवश्यक है। यदि देशवासी अपने देश की वस्तु से घृणा करते हैं और विदेश की वस्तुओं से प्रेम करते हैं तो यहाँ देश के प्रति प्रेम नहीं है। अहिंसा धर्म का निर्वाह करने के लिए हमें स्वदेशी का पालन करना नितान्त आवश्यक है। अपनी भाषा, अपने यहाँ के बने हुए कपड़े तथा अन्य सामानों का उपयोग करना चाहिए, जिससे देश में बेरोजगारी कम होगी, श्रम की महत्ता मिलेगी और देश उन्नति की ओर अग्रसर होगा। परिश्रम करने वाले का मनोबल ऊँचा होगा तथा व्यक्ति को अपने अन्दर स्वदेशी की भावना जागृति करने की इच्छाशक्ति बढ़ेगी। गाँधी का कहना है कि ''गरीबों के लिए रोटी ही अध्यात्म है। भूख से पीड़ित उन लाखों करोड़ों लोगों पर किसी और चीज का प्रभाव पड़ ही नहीं सकता। कोई दूसरी बात उनके हृदय को छू ही नहीं सकती। लेकिन उनके पास आप रोटी लेकर जाइए वे आपको भगवान की तरह पूजेंगे। रोटी के सिवा और उन्हें कुछ सूझ ही नहीं सकता।'' यह दुर्लभ कार्य स्वदेशी की भावना को, बेरोजगारी की दर को कम करके ही किया जा सकता है।

किन्तु अन्य अच्छी चीजों की भाँति स्वदेशी का भी बिना सोचे विचारे पालन किया जाय तो उससे नुकसान हो सकता है। इस खतरे से बचना चाहिए। विदेशी माल को सिर्फ विदेशी होने के कारण अस्वीकार करना और अपने देश में ऐसी वस्तुएँ तैयार करने में राष्ट्र का समय और धन बर्बाद करना, जिनके लिए वहाँ अनुकूलता नहीं है, बहुत बड़ी मूर्खता है और स्वदेशी की भावना का भंग है। स्वेदशी-का सच्चा उपासक कभी विदेशियों के प्रति अपने मन में दुर्भाव नहीं रखेगा वह संसार में किसी के प्रति भी बैर भाव नहीं रखेगा। स्वदेशी धर्म घृणा का धर्म नहीं है। वह नि:स्वार्थ सेवा का सिद्धान्त हैं जिसकी जड़ शुद्धतम अहिंसा अर्थात् 'प्रेम' मे है।[2] स्वदेशी की व्यापक व्याख्या यह है कि विदेशी वस्तुओं को छोड़कर सारी देशी वस्तुओं का उपयोग करना। इसके पीछे कारण यह है कि देशी वस्तुओं का उपयोग देश के उद्योगों की रक्षा के लिए, जरूरी है खास तौर पर उन उद्योगों की रक्षा के लिए, जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायेगा। इसलिए मेरी राय में जो स्वदेशी धर्म प्रत्येक विदेशी वस्तु को, भले ही वह कितनी ही उपकारक क्यों न हो और किसी को दरिद्र की क्यों न बनाती है, बहिष्कार करता है, वह संकुचित स्वदेशी धर्म है।[3] स्वदेशी शुद्ध परमार्थ पर आधारित है, परमार्थ की भावना से अपने पड़ोसी या देश की सेवा करने वाला मूलत: विश्व सेल के सम्पूर्ण योग में वृद्धि करता है। स्वदेशी का पालन करते हुए समाज के हित का ध्यान रखा जाना चाहिए। यदि मानवता को स्वदेशी के पालन से कोई ठेस पहुँचता है तो इसे त्याग देना चाहिए। इस प्रकार इसका आधार राजनैतिक न होकर आध्यात्मिक है। आध्यात्मिक होने के कारण यह आत्मा का धर्म है जिससे आन्तरिक आत्मा की एकता की स्थापना होती है। गाँधी ने कहा है कि- ''स्वदेशी आत्मा का धर्म है पर वह भूल गया है, इससे उसके विषय में व्रत लेने की जरूरत रहती है। आत्मा के लिए स्वदेशी का अन्तिम अर्थ सारे स्थूल संबंधों से आत्यधिक मुक्ति है।[4]

गाँधी के इन विचारों से नई चेतना जागृत हुई। अपने निकटवर्ती की सेवा के साथ ही पवित्र देशभक्ति तथा सम्बन्धित संस्थाओं के उन्नति के विषय में चिन्तन का स्रोत फूट चला। विवेकशक्ति का लोगों में विकास हुआ और लोग हानि-लाभ के विषय में सोचने लगे। पड़ोस और देश की सेवा पर सभी का समान अधिकार है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि स्वदेशी का पालन करते समय

स्वार्थों की टकराहट नहीं होती है। सभी भ्रान्तियाँ स्वदेशी का सही अर्थ न समझ पाने के कारण होती हैं। परिवार का मोह, उसके लिए धन चुरायें, अन्यत्र प्रपंच रचूँ और कहूँ की यह स्वदेशी है तो यह गलत है। हमें उनके प्रति मेरा जो धर्म हैं उसका पालन करना चाहिए। उस धर्म की खोज करते हुए और पालन करते हुए मुझे सर्वव्यापी धर्म मिल जाता है। स्वधर्म के पालन से स्वधर्मों को या परधर्मों को कभी हानि नहीं पहुँच सकती और न पहुँचनी चाहिए। स्वदेशी में स्वार्थ नहीं है अथवा है भी तो शुद्ध स्वार्थ है। शुद्ध स्वार्थ यादिन परमार्थ, शुद्ध स्वेदशी यानि परमार्थ की पराकाष्ठा।[5] स्वदेशी की व्याख्या करने पर विश्व प्रेम और विश्व सेवा की झलक दिखलायी पड़ती है। वास्तव में यदि सभी लोग स्वदेशी का पालन करने लगे तो सबका कल्याण संभव हो जाये। इसका आधार ही प्रेम और सेवा है। प्रेम और सेवा का पालन करने वाला किसी से किसी भी रूप में किसी भी समय द्वेष और घृणा करेगा ही नहीं। उस समय समाज में सर्वोदय की संकल्पना चरितार्थ होती नजर आयेगी। गाँधी ने कहा है-स्वदेशी यह नहीं है कि अपने गड्ढे में डूब मरे, किन्तु स्वदेशी के माने हैं कि अपने गड्ढ़े को सार्वजनिक समुद्र में होम करना।[6]

वास्तव में सत्याग्रह एक संवर्धित विज्ञान हैं। गाँधी ने अपने जीवनकाल में इसकी उपयोगिता व क्षमता का प्रदर्शन न केवल राजनीतिक आजादी हासिल करने के लिए किया वरन् शोषण, अत्याचार व अन्य बुराइयों के खिलाफ भी इसका प्रयोग किया। गाँधी का मानना था कि सर्वोदय की संकल्पना बिना सत्याग्रह के नीतियों का क्रियान्वयन किये संभव नहीं। सभी प्राणियों का सभी प्रकार से उदय सत्याग्रह के नियमों का पालन करने पर ही संभव है। गाँधी के मतानुसार सर्वोदय का अर्थ आदर्श समाज-व्यवस्था है। इसका आधार सर्वोदय है जो प्रेम पर आधारित है।[7] इसलिए इसमें निरपवाद रूप से राजा और रंग, हिन्दू और मुसलमान, छूत और अछूत, काले और गोरे, सन्त और पापी सबके लिए स्थान है। किसी भी व्यक्ति या समूह का दमन, शोषण या विनाश नहीं किया जायेगा। इस व्यवस्था में सब बराबर के सदस्य होंगे, सबको उनकी मेहनत की पैदावार में हिस्सा मिलेगा, बलवान दुर्बलों की रक्षा करेंगे और उनके ट्रस्टी का काम करेंगे तथा प्रत्येक सदस्य सबके कल्याण का ध्यान रखेगा। चूँकि सर्वोदय का एक मुख्य लक्षण 'प्रेम' के खातिर आत्म समर्पण करना, सर्वस्व दे देना या मर मिटना है, इसलिए सर्वोदय की सिद्धि के लिए संयम एवं कष्ट-सहन आवश्यक है। भारत में सदियों से त्याग और कठोर आत्म-संयम की परम्परा चली आयी है, इसलिए वह सर्वोदय के लिए सबसे अनुकूल भूमि है। गांधी ने पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव का प्रबल विरोध केवल इसीलिए किया कि वह जानते थे यह हमें सर्वोदय अथवा सामाजिक न्याय की दिशा में नहीं ले जायेगा। यह सिर्फ लोभ, संघर्ष और बलवानों द्वारा निर्बलों के दमन और शोषण को ही जन्म देगा, चाहे व्यवस्था पूँजीवादी हो या साम्यवादी।

पुनश्च, गाँधी आदर्श समाज व्यवस्था के निरर्थक चित्र खींचने में विश्वास नहीं रखते थे। उन्हें विश्वास था कि अगर हम वर्तमान को ध्यान में रखकर आदर्श पर अमल करें, तो हमारा उद्देश्य अवश्य सिद्ध होगा। वे रोजमर्रा सामने आने वाली समस्याओं को सर्वोदय के दृष्टिकोण से हल करने का प्रयत्न करते थे। सर्वोदय को व्यवहार रूप प्रदान करने के लिए उन्होंने न्यास का सिद्धान्त दिया और आदर्श वाक्य को व्यवहारित करने का सफल प्रयास किया। सत्याग्रह सिद्धान्त के मार्ग पर चलते हुए गाँधी के सर्वोदय का व्यवहारिक रूप न्यासवादिता (ट्रस्टीशिप) का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1 जटाशंकर: नैतिक दर्शन के विविध आयाम, श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान इलाहाबाद, पृ0 118

2 गाँधी महात्मा, सर्वोदय नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ0 27

3 यंग इण्डिया, 17-6-26, पृ0 3

4 सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड-32, पृ0 67

5 गाँधी एम0के0, मंगल प्रभाव, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ0 59-60

6 नवजीवन, 2.2.1928, पृ0 1

7 गाँधी एम0के0, सर्वोदय नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ0 3

भारत में केंद्र राज्य संबंधः तनाव के कारण व सुझाव

डॉ० देवेन्द्र कुमार साहू

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय लाल श्याम शाह महाविद्यालय, मानपुर, जिला. राजनांदगांव, छत्तीसगढ़

सारांश

केंद्र राज्य के मध्य विद्यायी संबंधों को प्रभावित करते हैं। परंपरागत संघात्मक सिद्धांत के अनुसरण से अधिक हमारे देश के संविधान निर्माताओं ने देश की एकता एवं अखंडता को प्राथमिकता दी है। इसके अतिरिक्त देश के विकास के लिए केंद्रीय निमंत्रण भी आवश्यक माना गया है। भारत का संविधान अपने स्वरूप से में संघीय है तथा समस्त शक्तियाँ (विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय) केंद्र और राज्यों के मध्य विभाजित की हुई है। भारत देश के संविधान में एकल न्यायिक व्यवस्था की स्थापना की गई है साथ ही जो केंद्रीय कानूनों की तरह राज्य कानूनों को भी लागू करती है परन्तु केंद्र राज्यों के बीच अनेक क्षेत्रों में तनाव भी देखे गए हैं, जो संघात्मक शासन के लिए बहुत ही गंभीर चुनौती भी है। केंद्र राज्य दोनों ही संविधान से शक्तियाँ ग्रहण करते हैं और ये दोनों क्षेत्र अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र भी है, लेकिन शक्तियों के प्रयोग के द्वारा कई बार तनाव उभर कर आते हैं, जिनका उचित समाधान किया जाना अत्यंत जरूरी है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत में केंद्र राज्य संबंधों में तनाव के कारण व सुझावों का वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्दः केन्द्र-राज्य संबध, संविधान, भरतीय संघवाद, प्रशासनिक शक्तियाँ।

भूमिका

भारतीय संविधान का स्वरूप संघात्मक है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद.1 में यह उल्लेख किया गया है कि भारत ''राज्यों का संघ होगा'' भारत में शासन की संघीय प्रणाली को अपनाया गया है, जिसमें समस्त शक्तियों को केंद्र एवं राज्यों के बीच संविधान के प्रावधानों के अनुसार विभाजित किया गया है। संविधान के भाग-9 में संघ और राज्यों के बीच संबंध के दो अध्याय दिए गए हैं। भारतीय संविधान के भाग-12 में केंद्र राज्य संबंधों का स्पष्ट वर्णन किया गया है।

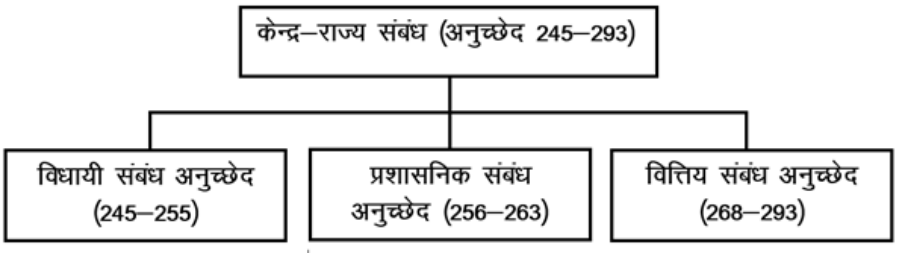

केंद्र राज्य संबंध से अभिप्राय किसी लोकतांत्रिक राष्ट्रीय राज्य में संघवादी केन्द्र और उसकी इकाइयों के बीच के अपने संबंध से होता है। भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में केंद्र व राज्यों के मध्य शक्तियों का बंटवारा किया गया है। शक्तियों का बंटवारा निम्न सूचियों के अनुसार किया गया है।

1. संघ सूची
2. राज्य सूची
3. समवर्ती सूची

हमारे देश में संघ सूची पर कानून बनाने का अधिकार संसद को है लेकिन इसमें राष्ट्रीय स्तर के विषय शामिल हैं, जिनकी संख्या पहले 97 थी परन्तु वर्त्तमान में इनकी संख्या 100 है। राज्य सूची पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों की विधानसभाओं का है। इसके अंदर क्षेत्रीय स्तर के विषय भी शामिल हैं, जिनकी संख्या पहले 66 थी जो कि अब 61 है। समवर्ती सूची में उल्लेखित विषयों में केंद्र व राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार है इसमें पहले 47 विषय थे, जो अब बढ़कर 52 विषय हो गए हैं। इस प्रकार हमारे यहाँ पर शक्तियों का बंटवारा किया गया है।

केंद्र राज्य संबंधों पर गठित आयोग

भारत में केंद्र व राज्यों संबंधी विवादों की समीक्षा करने के लिए समय-समय पर केंद्र व राज्यों की सरकारों द्वारा कई आयोग व समितियां गठित की गई है, जिनमें से अधिकांश ने शक्तिशाली केंद्रीय सरकार को पुरजोर समर्थन किया है और अपनी रिपोर्ट के माध्यम से भी इन लोगों ने कई तरह की सिफारिशें भी की है, जिसमें मुख्य समितियाँ निम्नलिखित है, जो इस प्रकार है -

- प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-1969)
- राजमन्नार समिति (1969-1971)
- सरकारिया आयोग (1983-1987)
- पुंछी आयोग (2007-2010)

केंद्र व राज्य संबंधों में तनाव के कारण

संविधान द्वारा केंद्र तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन किया गया है। यह विभाजन केंद्र के पक्ष में है तथा संघीय सरकार को राज्यों के मुकाबले में बहुत अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। ऐसा होने पर भी सन् 1967 तक केंद्र तथा राज्यों के संबंध अच्छे रहे और उनमें से कोई भी वैधानिक, प्रशासनिक व वित्तीय संघर्ष भी उत्पन्न नहीं हुए। इसका मुख्य कारण यह था-केंद्र तथा राज्यों में एक ही राजनीतिक दल अर्थात् कांग्रेस दल की सरकारों का होना। सन् 1967 के चुनावों के बाद केंद्र में पुनः कांग्रेस दल की सरकार की स्थापना हुई, परन्तु कई राज्यों के अंदर (पंजाब, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु आदि में) गैर-कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हुई। इन सरकारों द्वारा राज्यों को अधिक शक्तियाँ देने की मांग की गई, जिसमें केंद्र तथा राज्यों में संघर्ष उत्पन्न हो गया। संघ तथा राज्यों में तनाव के मुख्य कारण निम्नलिखित रहे हैं-

- सबसे अधिक विवाद तो राज्यपालों की नियुक्ति तथा उनकी भूमिका को लेकर रहता है। आमतौर पर राज्यपालों की नियुक्ति तथा पदविमुक्ति में केंद्र सरकार मनमाने तरीके से निर्णय लेती है। इसमें मुख्यमंत्रियों की सलाह या सहमति को महत्व नहीं दिया जाता बल्कि राज्यपाल की केंद्र सरकार के एजेंट की तरह राज्य सरकारों से बर्ताव करते हैं। उदाहरण के लिए कर्नाटक में 2018 में हुए विधानसभा चुनाव परिणाम के बाद राज्यपाल की भूमिका विवादित रही है।
- दूसरा कारण राज्यों द्वारा शासन संविधान के उपबंधों के तहत नहीं चलाया जाने पर केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकार को बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन लागू करना है। संविधान लागू होने के तुरंत बाद से ही इस प्रावधान का दुरुपयोग शुरू हो गया या जो कि अभी तक उत्तर प्रदेश तथा केरल में नौ-नौ बार, पंजाब में 8 बार और बिहार में 9 बार इसका प्रयोग किया जा चुका है। राज्यों की मांग है कि इस अनुच्छेद को संविधान से हटाया जाए या इसमें व्यापक संशोधन किए जाए।

- नौकरशाही भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है जिस पर केंद्र व राज्यों के बीच कई तरह के मतभेद दिखाई देते हैं।
- केंद्र को यह भी अधिकार है कि राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा आदि के संदर्भ में केंद्र राज्य से अर्धसैनिक बलों की नियुक्ति कर सकता है। यह स्थिति और भी अधिक विवादित तब हो जाती है जब केंद्र और राज्यों में अलग-अलग सरकारें काम करती है तथा राज्य सरकार की नीतियां केंद्र से मेल नहीं खाती हैं।
- अखिल भारतीय सेवाएं भी राज्यों की स्वायत्तता को कम करती है क्योंकि कई बार इसमें अधिकारी केंद्र के एजेंट की भांति व्यवहार करने लगते हैं। अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों का वेतन उत्सव का होता है जो राज्य की वित्तीय स्थिति को प्रभावित करता है। इन सभी अधिकारियों की नियुक्ति पदोन्नति और बर्खास्तगी का अधिकार केंद्र सरकार का होता है। इसलिए इन अधिकारियों में राज्यों के प्रति अपनत्व की भावना नहीं होती है।
- हाल ही में केंद्र राज्यों के यहाँ संबंधों में तनाव का कारण राज्यों के बढ़ते दायित्व और सीमित से रहा है। उदाहरण के लिए बिहार के मुख्यमंत्री ने केंद्र द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं का विरोध किया दरअसल उनका आरोप है कि केंद्रीय योजनाओं में औसतन 40 प्रतिशत हिस्सा राज्यों को व्यय करना पड़ता है लेकिन वह केंद्र सरकार को चला जाता है।
- जिन राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें होती है वहाँ पर उनके साथ विळाीय आवंटन में भी वेद भेदभाव किया जाता है। ऐसा आरोप राज्य सरकारें केंद्र सरकार पर लगाती आई है।
- केंद्र और राज्यों के संबंध में तनाव का एक बड़ा कारण राज्यों की केंद्र पर वित्तीय निर्भरता है। कई बार यह देखने में भी आया है कि राज्यों के पास वित्तीय संसाधनों की कमी रहती है जबकि उनके दायित्व लगातार बढ़ रहे हैं।
- वर्त्तमान में केंद्र राज्यों के संबंध में खटास की एक मुख्य वजह आर्थिक नियोजन है। हांलाकि नीति आयोग द्वारा इस तनाव को कम करने के लिए प्रयास भी किए गए हैं। इसके बावजूद भी तनाव बरकरार है।
- केंद्र की सरकार को यह भी अधिकार है कि यह राष्ट्रीय सुरक्षा सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा आदि के संदर्भ में केंद्र राज्य में अर्धसैनिक बलों की नियुक्ति कर सकता है। यह स्थिति और अधिक विवादित तब हो जाती है जब केंद्र व राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकारें काम करती है और राज्य सरकार की नीतियां केंद्र से मेल नहीं खाती है।

केंद्र राज्य के मतभेदों को दूर करने संबंधित सुरक्षा

- संविधान के विशेषज्ञों राजनीतिज्ञों समीक्षा को विरोधी दलों गैर-कांग्रेसी राज्य सरकारों के माध्यम से केंद्र राज्य मतभेदों को दूर करने की दिशा में मुख्यत: निम्न सुझाव दिए गए हैं जिनका वर्णन इस प्रकार से है।
- राज्यपालों न्यायाधीशों नीति आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति के परामर्श द्वारा होनी चाहिए।
- राज्यों के आर्थिक मामलों को निपटाने हेतु एक स्थाई एवं गैर-राजनीतिक समिति गठित की जानी चाहिए जो केंद्र व राज्यों के बीच अधिक समन्वय का कार्य करें।
- किसी भी व्यक्ति को केवल एक बार ही किसी राज्य का राज्यपाल नियुक्त किया जाए तथा उसके रिटायर होने के उपरांत न तो उसको कोई लाभ का पद दिया जाए और न ही उसे सक्रिय राजनीति में भाग लेने के लिए छोड़ा जाए।
- अखिल भारतीय सेवा के जो भी अधिकारी राज्य सेवा में रहे उन पर पूरी तरह से नियंत्रण राज्यों की सरकारों का होना चाहिए।
- अनुच्छेद 263 के अनुसार अंतर्जातीय परिषद की स्थापना की जाए जो राष्ट्रपति को सलाह देने का भी कार्य करें।
- केंद्र राज्यों की सूची के विषयों में कतई हस्तक्षेप न करें। राज्य सूची के विषयों संबंधी कार्यक्रम लागू करने व उन पर धन कम करने आए आदि का पूरा उत्तरदायित्व राज्य सरकार पर रहे।
- विळा आयोग को भी स्थाई संस्था के रूप में परिवर्तित किया जाए। इस आयोग का परामर्श केंद्र के लिए बंधनकारी होना चाहिए।
- नीति आयोग को स्वायत्त सांविधानिक स्तर प्रदान किए जाएं।
- राज्यों को कुछ लचीले विळाीय स्रोत प्रदान किए जाए ताकि उनकी आय बढ़ सके परन्तु इस दिशा में कुछ कदम तो उठाए गए हैं लेकिन अभी तक इन विषय में बहुत कुछ किया जाना शेष है।

- भारतीय संविधान में स्वरूप में संघात्मक किंतु आत्मा से एकात्मक बनाया जाए ताकि इसके लिए आवश्यक हो कि समवर्ती सूची के कुछ विषयों को राज्य सूची में शामिल किया जाए।

निष्कर्ष

भारत के संविधान ने केंद्र-राज्य संबंध के बीच शक्तियों के वितरण की निश्चित और सुस्पष्ट योजना अपनायी है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् केंद्र-राज्य संबंधों का मसला अत्यधिक संवेदनशील मामला रहा है इनमें मुद्दा चाहे अलग भाषाओं की पहचान, असमान विकास, राज्यों के गठन का हो, पुनर्गठन का हो या फिर विशेष राज्य का दर्जा देने से जुड़ा हो, ये सब केंद्र-राज्य संबंधों की सीमा में ही आते हैं। इनके अलावा देश में शिक्षा व्यापार जैसे विषयों पर नीति निर्माण के सवाल उठने पर भी उनके केंद्र में है तथा केंद्र व राज्य के बीच में इनको लेकर क्या आपसी समझ है, यही महत्वपूर्ण होता है। भारतीय संविधान में भी विधायी, प्रशासनिक व वित्तीय शक्तियों का सुस्पष्ट बटवारा केंद्र और राज्यों के बीच किया गया है। संघात्मक व्यवस्था में जहां पर भी केंद्रीय और राज्य सरकारों का अस्तित्व है वहाँ कुछ न कुछ मतभेदों का बना रहना स्वाभाविक है।

सन्दर्भ सूची

1. https://himwikipedia.org/wiki
2. https://ignited.in
3. दृष्टि,''मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग, भारतीय राजनीति, संविधान एंव प्रशासनिक संरचना भाग-2, पृ. 28
4. https://www.drishtiias.com/paper2
5. https://dhyeyaias.in//india-uniohism
6. https://www.vivacepanrama.com
7. https://www.spsccracker.com
8. https://hindi the priutin/india
9. एम. लक्ष्मीकांत, ''भारतीय राजव्यवस्था'', डाटा मेग्राहिल, पृ. 30-33

राजस्थानी लोक संस्कृति में श्री एवं समृद्धि का प्रतीक - माण्ड़नें

डॉ० प्रीति गुप्ता

असि० प्रोफेसर (चित्रकला विभाग), एच० वी० एम० पी० जी० कॉलेज, रायसी, (हरिद्वार), उत्तराखण्ड

माण्ड़नें हमारी कला संस्कृति के सर्वाधिक मुखर संवाहक है। लोक कला के माण्ड़ने राजस्थानी धार्मिक लोक संस्कृति की देन है। माण्ड़ना बनाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। आदिमानव भी सूनी दीवारों को सजाता था, पशु-पक्षी, शिकार और नृत्य करते हुए चित्र बनाता था। सतिया, चन्द्र आदि नवपाषाण काल के चित्रों में भी प्राप्त होते है। आर्यों ने भारत में आगमन पर अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वरूण, आदि प्राकृतिक शक्तियों की उपासना के लिए वेदी को विभिन्न प्रकार की रेखाओं, वृत्त, आयत में अनेक अनाजों और हल्दी, आटे, कुमकुम द्वारा सुन्दर आकृतियों को सजाने का प्रावधान किया। इस 'धोरां री धरती' के राजस्थानी माण्ड़नों की तो बात ही अलग है। इनका अपना अलग रूप है और यह रूप मिला है उन्हें राजस्थान की परम्पराओं, रीति-रिवाज और रहन-सहन से। ये अवसर विशेष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। राजस्थान में किसी भी शुभ कार्य की शुरूआत बिना माण्ड़ने बनाये अधूरी या अशुभ मानी जाती है।

माण्ड़ने आड़ी-तिरछी रेखाएं मात्र नहीं है, ये रेखाएं विधाता द्वारा खींची गई रेखाओं से भिन्न है, कुछ रेखाएँ हम खींचकर अपना भाग्य बनाते हैं और कुछ रेखाएँ जमीन पर खींचकर सुख समृद्धि की कामना करते है। इन रेखाओं का समूह ही 'मांड़ना' है।

मान्यता है कि जिस घर में माण्ड़नों का सुंदर अंकन होता है उस घर में लक्ष्मी जी का निवास रहता है। राजस्थान में प्रत्येक पर्व पर माण्ड़ने बनाने की परम्परा है।

मांड़ना का अर्थ- मांड़णा, मंड़न शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है-सज्जा या अंलकृत करना। संस्कृत के मंड़न शब्द का अपभ्रंश है माण्ड़ना।

राजस्थान में माण्ड़ना अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है जैसे चितेरा चित्र मांड़ता है, चिट्ठी मांड़ी जाती है, मेंहदी मांड़ी जाती है आदि परन्तु आजकल घर की लिपाई-पुताई के बाद जो चित्र बनाए जाते हैं, वे ही मांड़ने राजस्थानी उच्चारण में माण्ड़ने कहलाने लगे। पश्चिमी राजस्थान में मांड़ना को 'सेडी लगाना' के नाम से जाना जाता है क्योंकि ये सफेद खडिया से बनाये जाते है।

माण्ड़ना के विभिन्न नामकरण- माण्ड़ने किसी न किसी रूप व नाम से पूरे भारतवर्ष में जनमानस में व्याप्त है। इन माण्ड़नों की तकनीक, आकृति तथा माध्यम हर प्रदेश में पृथक होता है क्योंकि वहाँ की अपनी अलग रीति-रिवाज और परम्पराएं होती है जिनमें उस प्रदेश की झलक देखने को मिलती है। बंगाल में इन्हें 'अल्पना' कहा जाता है वहाँ चावलों को पीसकर उसका लेप बनाकर चित्रण किया जाता है। वहाँ की मुख्य आकृतियाँ मछली, सूर्य, चन्द्र, लक्ष्मी के चरण तथा पत्तियाँ और लताएँ हैं। गुजरात में इसे 'साथिया' और महाराष्ट्र में 'रंगोली' कहते है। गुजरात में रंगों के माध्यम से स्वास्तिक व कुछ ज्यामितीय नमूने बनाये जाते है। उत्तर प्रदेश में 'चौक पूरना' या 'सोन' कहते है। चौक आटा, हल्दी और कुमकुम से पूरा जाता है जबकि सोन चावल को पीसकर व गेरू से बनाये जाते हैं। गढ़वाल में 'आपना' व केरल में 'कोलम' कहा जाता है। इसमें गाय के गोबर से धरती को लीपकर उस पर विभिन्न रंगों के फूल व पंखुडियाँ बनायी जाती है। 'ब्रज' व 'बुंदेलखण्ड' में 'सांझा' कहा जाता है व राजस्थान में 'मांड़ना' नाम से ये अलंकरण जाने जाते है, जो खडिया और गेरू से बनाये जाते है।

माण्ड़ना की प्राचीनता- मांड़नों का अंकन सदियों से हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक आस्थाओं का प्रतीक रहा है। इसको आध्यात्मिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है तभी तो वैदिक काल में हवन और यज्ञों में वेदी का निर्माण करते समय भी चित्र बनाये जाते थे। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदाता कहा गया है और चित्र की उपस्थिति को घर में मंगल का प्रतीक माना है-

''कलानाम् प्रवरं चित्रम, धर्म, कामार्थ, मोक्षदम्
मांगल्यम् प्रथम हेतद्, गृहेयत्र प्रतिष्ठितम्।।''[1]

वात्सायन कृत कामसूत्र में (चौथी शता0 में) जीवनोपयोगी कलाओं को भी सम्मिलित किया गया है जिसमें आलेख्यम (सं0-4) और मणिभूमिकर्म (सं0-9) हमारे विषय से सम्बन्धित है। शुक्रनीतिसार भी चित्राद्यालेखनम् के विषय में बताता है कि उनमें भोजपत्रों के कटे हुए पत्रों की रचना करना, फर्श पर विविध रंग के फलों और रंगे हुए चावलों से तरह-तरह के चित्र बनाना (तन्दुल कुसुम-विकार), फूल बिछाना आदि आते हैं।[2] 'शास्त्रोल्लास' में चन्दन और अगर के चूर्ण के रंगों से चर्चा मिलती है। कालिदास भी रघुवंश में पूजन स्थल पर बने माण्ड़नों का उल्लेख करते है। विवाह के अवसर पर बनाये जाने वाले माण्ड़नों का बहुत ही सुन्दर वर्णन बाणभट्ट के हर्षचरित में भी मिलता है।

कतिपय संदर्भ जैन साहित्य से भी मिलता है। पद्मचरित में विमलसूरि कहते है कि आषाढ़ शुक्ल पक्ष के आठवें दिन चौत्य की पूजा आरम्भ करते समय चौत्य का फर्श धोया जाता है और पांच रंगों से रंगावली बनायी जाती है। हेमचन्द्र (1088-1172) की देशीनाममाला फर्श की सजावट के लिए 'ऐपन' शब्द का प्रयोग करती है, जिसे विभिन्न उत्सवों पर घरों को सजाने के लिए बनाते है।[3] रंगावली को समाज के विभिन्न वर्गों ने अपने रीतिरिवाज और देशकाल के अनुसार अपनाया है।

किवदंतियाँ- माण्ड़नों के उद्‌गम के साथ बहुत सी रोचक किवदन्तियाँ भी जुड़ी है। कहा जाता है कि लक्ष्मण की खींची हुई रेखा में वह शक्ति थी कि रावण कुटिया में प्रवेश नहीं पा सका और रेखा के प्रभाव से ही सीता की रक्षा हुई। रेखा लाँघने पर ही रावण सीताजी का हरण कर पाया था। अन्य प्रचलित दंत कथा के अनुसार कृष्ण के बिछोह में तड़पती गोपियां समय व्यतीत करने के लिए धरती पर विभिन्न आकृतियाँ बनाती थीं। भगवान राम के अयोध्या आगमन पर अयोध्यावासियों ने घरों को माण्ड़नों से सजाया था।

राजस्थान में मांड़ना-मांड़ने की परम्परा- किसी भी परम्परा के पीछे जो जनमानस की भावनाएं होती हैं वो घर की बड़ी-बूढ़ी औरतें बनाती हैं। इस सजीव कला के पीछे भी एक लोकधारणा प्रचलित है, एक गांव में एक विधवा के सात बेटे और सात बहुएं थीं। सबसे छोटी बहू आयी तो उसने घर झाड़-बुहारकर लीप-पोतकर नयनरम्य बना दिया। उसके बाद उसने पांडू से तरह-तरह के माण्ड़नें मांड़े। लक्ष्मीजी अमावस्या की अंधेरी रात में घूम रही थीं। उनके चरणों से रक्त बह रहा था उन्होंने घर के सामने ठिठककर देखा, तो उनका पहला चरण पड़घ घर के बाहर बने मांड़ने पर। लक्ष्मी जी पूरे घर में घूमी और कमरे में मंडे मांड़ने रूपी एक रथ पर विश्राम करने के लिए विराजमान हो गई। बहू ने लक्ष्मी जी के पांवों से बहते रक्त को साफ किया और जहां-जहां रक्त गिरा था वहां सफेद पांडू से चारों ओर भरत (रंग से भरावन वाला डिजाइन) भर दी। बहू ने कहा-जब तक मैं यह 'भरत भरूं' तब तक आप आराम करें और सूखने पर लिपे-पुते घर की शोभा देखना। लक्ष्मी जी बहू की चतुराई पर खुश हुई और उस परिवार को सुख-समृद्धि का वरदान देकर जाते-जाते अपने दोनों पैरों की छाप 'पगल्ये' उस घर के द्वार पर बनाकर कहा-''जब तक ये चिन्ह यहां पर बने रहेंगे तब तक मैं किसी न किसी रूप में इस घर में बनी रहूंगी।'' कहते है तब से दीपावली पर मांड़ने और पगल्ये बनाने की परम्परा बनी।

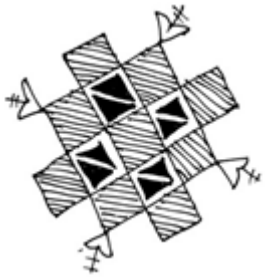

राजस्थान की परम्परा है कि आंगन धोने या लीपने के बाद उसे सूना नहीं रखते, अपशकुन माना जाता है। ''विश्वास किया जाता है कि इस कला का जन्म सुख, समृद्धि, धन प्रदात्री धरती माता को प्रसन्न करने के लिए हुआ होगा।''[4] मांड़ने स्त्रियों की कलात्मक अभिरूचि के साथ-साथ उनके पीछे छिपी मान्यताओं और संस्कारों को भी व्यक्त करते हैं। माण्ड़नें राजस्थान के सभी त्यौहारों, उत्सवों, धार्मिक अनुष्ठान जन्म-मरण पर भी चित्रित किये जाते हैं।

लोककला मांड़ना समाज और धर्म के संरक्षण से लोक मानस को अनुरंजन और कलानंद देने वाली एक अनुपम माध्यम बनी। घर-आंगन में अलंकरण या मांड़ने के रूप में सत्यम, शिवम और सुन्दरम की भावना प्रतिस्थापित हो गई।

ग्रामीण अंचल में बने माण्ड़नों में लोक-संस्कृति, सहजता व सरलता मिलती है। माण्ड़नों का स्वरूप बहुत वृहद् है। अलग-अलग जाति के लोग अपने क्षेत्र और अवधारणा के अनुसार माण्ड़ने माण्ड़ते है। माण्ड़नों का चित्रण क्षेत्र, जाति, त्यौहारों, रूपाकारों के आधार पर किया जा सकता है।

1. जाति के आधार पर मांड़नो का चित्रण

वैश्य परिवार- इन परिवारों में परिष्कृत मांड़ने विकसित हुए है। जमीन पर बने ये माण्ड़ने मांगलिक व त्यौहारों से जुड़े है।

ब्राह्मण व खाती- इन परिवारों में माण्ड़नों में फूल, चौक, डमरू, हीड़, पान, लड्डू आदि अधिक मांड़े जाते है। ये मांड़ने, निवाई, झिलाम, वनस्थली (टोंक) में देखने को मिलते हैं, इनमें बेलें, जुआ, चीरण, भरती से मूल आकारों को वृहद् और अलंकृत रूप दे दिया जाता है। यहां के गांवों के इन परिवारों के मांड़ने लोक-जीवन के परिष्कृत मांड़ने कहे जाते हैं।

मीणा जाति के माण्ड़ने- मीणा जाति में दीवारों पर माण्ड़नों का प्रचलन है। आंगन चौक व दीवारों के किनारे पर बनी माण्ड़नों की वृहद रूप में इतनी सुन्दर पच्चीकारी मीणों के अतिरिक्त किसी गांव में नहीं मिलेगी। इनके घरों की दीवारों के माण्ड़नों पर विचरते मोर, फुदकती चिडिघ्याँ, झाड़ों पर बैठे तोते, इठलाती गुजरिया अपनी नई दुनिया का सृजन करते है। मीणा समुदाय अब किसान बन गया है और उनके जीवन में स्थिरता आ गई है। इसका बदलाव इनकी कला में झलकता है। मीणा समुदाय के मूल में अब भी उनके आदिम पात्र व जनजाति नजर आते है। ये माण्डने टोंक व सवाई माधोपुर में देखे जा सकते हैं।

भीलों के मांण्ड़ने- भील जनजाति के मांड़ने विषयवस्तु एवं तकनीक से बिल्कुल अलग नजर आते हैं। यहां सफेद रंग की खड़िया की सतह पर लाल रंग की गेरू तकनीक से आकृतियाँ बनाई जाती है। शादी विवाह के समय लाल गेरू से 'मायरात' व 'चौरी' (विवाह के समय बनाई जाने वाली आकृतियाँ) उकेरते है। इस आयताकार आकृति में मंदिर के शिखर जैसी शंक्वाकार आकृति बनाई जाती है। मध्य में नवविवाहित जोड़ा और शिखर पर मोर की आकृति बनायी जाती है।

गूजर अहीरों के माण्ड़ने- टोंक जिले में गूजरों के घर में बहुत तरह के माण्ड़ने देखने को मिलते है। जिनमें पगल्या, फूल, हीड5, रथ आदि के माण्ड़नें मिलते है।

2. क्षेत्र के आधार पर मांड़नों का चित्रण

माण्ड़ना में क्षेत्र के आधार पर आकार-प्रकार विषयवस्तु एवं रचना में काफी अंतर देखने को मिला है।

पूर्वी राजस्थान के सवाई माधोपुर और टोंक जिले के मांड़ने- यहाँ गोबर से लिपे सोंधी मिट्टी की गंध लिए माण्ड़नों की आभा ही अलग होती है। इस जिले में गावों में उत्कृष्ट माण्ड़नें बने हैं। इस क्षेत्र को नागर चाल क्षेत्र भी कहा जाता है। इसमें टोंक व सवाई माधोपुर जिला भी आता है। इन जिलों में दीवारों पर उकेरे जाने वाले माण्ड़नें उनकी रेखाओं की खूबसूरती और भावनात्मकता के लिए जाने जाते हैं।

दक्षिण राजस्थान बासवाडा-उदयपुर के मांड़ने- उदयपुर के मांड़ने विषय-वस्तु और तकनीक से बिल्कुल अलग है। यहां सफेद रंग की खड़िया की सतह पर लाल रंग में गेरू से मांड़ने मांड़े जाते है।

पश्चिमी राजस्थान के मांड़ने- पश्चिम राजस्थान में बाड़मेर जिला आता है। यहां पर मांड़ने केवल साज-सज्जा के लिए और संकेत चिन्हों पर आधारित होते है। मिरासी समुदाय और राजपूत समुदाय के लोग अपने मकानों को विभिन्न उत्सवों और आयोजनो के अवसर पर 'सेड़ी लगाते' है अर्थात सफेद खड़िया से पोतते है। बाड़मेर जिले के श्रीमाली ब्राह्मण वैदिक मण्डल बनाते है इनका निर्धारित ज्यामितीय स्वरूप और परिमाण है। इनका आकार लम्बाई-चौडाई में एक से डेढ़ फीट तक का होता है। निश्चित संख्या में बिन्दु लगाकर इन्हें रेखाओं से आपस में जोड़ा जाता है।

इस प्रकार क्षेत्र के आधार पर पूर्वी क्षेत्र और पश्चिम क्षेत्र के माण्ड़नों में बहुत अन्तर है-

1. सवाई माधोपुर के माण्ड़नें गेरू खड़िया से बने है जबकि बाड़मेर में विभिन्न रंगों से माण्ड़नें बने है।

2. पूर्वी क्षेत्र में मांड़नों की कोई निश्चित माप नहीं होती जबकि पश्चिम क्षेत्र में एक निश्चित माप से माण्ड़ने बनाये जाते हैं। ये माप में एक से ढाई फीट तक होते हैं।

3. पूर्वी क्षेत्र में माण्ड़नें विभिन्न त्यौहारों, उत्सवों एवं पर्वों पर बनाये जाते हैं जबकि पश्चिम क्षेत्र में विवाह आदि अवसर पर विशेष रूप से। दक्षिण अर्थात् उदयपुर क्षेत्र में भी विवाह आदि पर मांड़ने अधिक बनाये जाते है।

4. पूर्वी क्षेत्र में माण्ड़नें के मुख्य आकार के बाद उसे भरती आदि से बढ़ाया जाता है और पश्चिमी राजस्थान में बिन्दुओं की सहायता से दो रेखाओं को बढ़ाया जाता है।

अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि इन क्षेत्रों की कला परम्परा तो एक जैसी है परन्तु यदि इन क्षेत्रों की आपस में तुलना की जाए तो ज्ञात होता है कि विषय-वस्तु, शैली एवं तकनीक भिन्न है। एक ही जाति के लोगों में क्षेत्र के अनुसार भिन्नता देखने को प्राप्त होती है।

वर्ष भर अलग-अलग व्रत अनुष्ठानों पर तरह-तरह के मांड़णे मांड़े जाते हैं।[6] तभी तो आपस में बतलाती गांव की औरतें कह उठती हैं-

''अजी पूछोई मत आ तिवारो को, खेतां में काम अलग, लीपणों-पोतणों अलग, माण्ड़णों ऊपर सूं। घणोई काम रहै छै। घर द्वार आच्छो लागै छै मांण्ड़ना सूं।[7]

3 ''रूपाकारों के आधार पर चित्रण

माण्ड़नों का वर्गीकरण माण्ड़नों की विभिन्न आकृतियों व आकार के आधार पर भी किया जा सकता है। जिसका वर्णन इस प्रकार है–1. वर्गाकार मांड़ने, 2. अनियमित वर्ग, और त्रिभुज मांड़ने, 3. वृत्ताकार मांड़ने, 4. अनियमित षटकोणीय मांड़ने

1. वर्गाकार माण्ड़ने– वर्गाकार माण्ड़नों में वर्ग का उपयोग किया जाता है। मध्य में छोटा वर्ग व उसके चारों ओर चार वर्ग और बनाये जाते है अथवा अपनी रूचि के अनुसार ग्रामीण महिलाएं वर्ग बनाकर मांड़ती है। सतिया भी वर्गाकार का उदाहरण है। चौपड़, शतरंज आदि भी वर्गाकार मांड़ने है। उदयपुर में विवाह के 'मायरात' भी वर्गाकार मांड़े जाते है। दो वर्गो को काटकर अष्टकोण रूप में भी मांड़ने बने है।

2. अनियमित वर्ग, त्रिभुज और वृत्ताकार मांड़ने– इस प्रकार के मांड़नो में चौक आकृतियाँ, वर्गों, त्रिभुजों एवं वृत्तों के संयोजन से बनाई जाती है। कुछ मांड़नों में वर्ग अथवा वृत्त के ऊपर अर्धवृत्त या त्रिभुज बनाकर भरत के विविध नमूने बना दिये जाते है। वर्ग और वृत्त आदि ज्यामितीय आकारों में बिन्दु (जुआरा), आड़ी–तिरछी रेखाओं से भराई (चीरन), समतल रंग भरना (भरती) व घुंड़ी मुड़ी रेखाओं से अलंकारिक रूप प्रदान किये जाते है।

3. वृत्ताकार मांड़ने– कोटा, बूंदी, झालावाड़ क्षेत्रों में वृत्ताकार चौक की आकृतियाँ अधिक प्रचलित है। भूमि पर इन मांड़नों को बनाने के लिए धागे की मदद ली जाती है। वृत्त प्रतीकात्मक रूप से अनन्त को दर्शाता है जिसका न आदि है न अन्त। ईश्वर की एक वृत्त के रूप में व जीव की एक बिन्दू के रूप में कल्पना की गई है। इन माण्ड़नों में मुख्याकार वृत्त होता है परन्तु मध्य में वर्ग, षटकोण त्रिभुज आदि का प्रयोग करते हुए भरत से भरा जाता है।

4. अनियमित त्रिकोणीय, षटकोणीय मांड़ने– छोटे त्रिकोण मांड़ने बनाने की भी परम्परा राजस्थान में है। दस कुण्ड़ा का माण्ड़ना षटकोण पर आधारित होता है। वर्गाकार चौक को बढ़ाने के लिए वर्ग के चारो कोनों पर चार चौक ओर बनाकर ''पाँच चौक'' कहा जाता है। चौक के चारों किनारों पर सिंघाड़े की आकृति बनायी जाती है तब ''सिंघाड़ा चौक'' कहते है। नौ कुण्ड़ों का माण्डना अष्टकोण पर आधारित होता है इसे ''फीणी चौक''भी कहते है। इसी प्रकार से चंग भी बनाया जाता है।

माण्ड़नों के प्रकार– धार्मिक लोक तत्व को प्रदर्शित करने वाले मांड़नों का अध्ययन करने से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि मांड़ने चार प्रकार के है। इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से है–

(1) व्रत, त्यौहारों के माण्ड़नें (होली, दीपावली, रक्षाबन्धन, गणगौर)

(2) प्रतीकात्मक माण्ड़नें (स्वास्तिक, कलश, पगल्या)

(3) संस्कार सम्बन्धी माण्ड़नें (विवाह सम्बन्धी)

(4) विविध माण्ड़नें (पशु–पक्षी, फूल–पत्ती, हटड़ी, बीजणा)

(1) व्रत, त्यौहारों पर बनने वाले माण्ड़ने- कुछ विद्वानों ने माण्ड़नों का वर्गीकरण उनके रूपों व त्यौहारों के आधार पर किया है। लोक कला मर्मज्ञ ''स्व0 रामनिवास वर्मा'' ने मांड़नों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। मकर संक्रान्ति पर फीणियाँ, पतंग डोर, गणगौर पर गौर का बेसण, गुणा, रक्षाबंधन पर श्रवण, चौत्र के नवरात्रों पर माता और पथ की माता, शीतलाष्टमी पर शीतला माता, होली पर चंग, खांड़ा, ढोलकों, होली का डंड़ा आदि, जन्म होने पर पगल्ये, शादी विवाह में चौक, गलीचे, पगल्ये आदि, सावणी तीज पर लहरिया, चौक, चूनड़ी पान घेवर आदि दीपावली पर चौकड़ी का जोड़, ड़ाबा का जोड़, साट्या का जोड़, एक बीजणी, कमल का फूल, पगल्या, हीड़, सात दिए, चार बीजणी, ड़मरू, पान, लक्ष्मी गणेश आदि बनाते है। राजस्थान में महिलाएँ प्रत्येक त्यौहार होली, दीवाली, व्रत, अनुष्ठान, पर्व पर माण्ड़नों को अनुपम चित्रशैली से बनाती है। इनका विवरण इस प्रकार है-

(क) होली- चौत्र मास में घर आंगन भांति-भांति के मांड़णों से निखर जाता है। यह रंगों का और हर्षोल्लास का त्यौहार है। 'होली का डंड़ा' और 'होली का लाल्या' हाड़ौती क्षेत्र में बनते है। होली का लाल्या भक्त प्रहलाद को दर्शाता है जबकि होली का डंड़ा यह होलिका को प्रदर्शित करता है। होली संगीत और रंगों का त्यौहार है। इस समय 'ड़फ' और 'चंग' वाद्ययंत्रों की थाप पर नृत्य किया जाता है। इसलिए चंग, ड़फ, ड़ांड़िया, खण्ड आदि होली के अवसर पर बनाये जाने वाले मांड़ने में दिखाई देते है। ड़फ, चंग एवं थाली वृत्ताकार बनाई जाती है और केन्द्रीय नमूने के रूप में होती है। जबकि तलवार, खंड (शस्त्र), गुणा (मिठाई) केन्द्रीय नमूने के सहायक के रूप में शेष आकृति को पूर्ण करने के लिए बनाए जाते हैं ।

(ख) गणगौर का मांड़ना- गणगौर का त्यौहार चौत्र मास की प्रतिपदा (धुलैन्डी) से 16 दिनों तक चलता है। इस अवसर पर बनाई जाने वाली आकृतियों को गौर का बेसणा कहा जाता है। लाल पृष्ठभूमि पर सफेद चॉक (चूना या खड़िया) से बनाए गये टपकी नमूने (बिन्दू, डॉट) ऐसे लगते है, जैसे मानो मोती सजाए गये हो। गणगौर पर चूंकि विशेष मिठाई घेवर और गुणे बनाए जाते है, तो फर्श पर मांड़णों की आकृतियों में चौक के साथ इन्हीं को प्रतीकात्मक रूप में बनाया जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों में भी फर्श सज्जा का उल्लेख मिलता है-

रंगीला ईसर गौरां ले पधारो म्हारे पावणा
अजी हां जी प्यारा पावणा
घिस-घिस चंदन अंगन लिपांवा
मोतियां रा चौक पुरावणां।

(ग) तीज- यह पर्व श्रावण मास की तृतीया को मनाया जाता है। इस अवसर लहरिया का चौक का मांड़ना बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त फूल, घेवर, पान आदि प्रचलित है।

(घ) वट सावित्री व्रत- इस अवसर पर वट के वृक्ष को मांड़ा जाता है। यह व्रत ज्येष्ठ अमावस्या को होता है। मांड़ने में पेड़ की जड़, तना, शाखाएं आदि सभी बनाएं जाते है परन्तु इस वृक्ष की पत्तियाँ नहीं होती। तने के ऊपर एक वर्ग बनाया जाता है, जिसमें एक महिला की आकृति बनाई जाती है। जो हाथ में जल का भरा पात्र लिए हुए है। वर्ग के नीचे जड़े निकली हुई बनायी जाती है, जो पृथ्वी में जाती प्रतीत होती है। इस अवसर पर मांड़णों में बीजणी और जलपात्र बनाए जाते है, जो ग्रीष्म ऋतु के प्रतीक है।[8]

(ड) सवरण का मांड़ना- श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस दिन दरवाजे के दोनों ओर सरवण मांड़ा जाता है। इस मांड़ने में कांवड़ में श्रवण कुमार अपने अंधे माता-पिता को ले जाते हुए प्रतीकात्मक रूप में बनाये जाते हैं। इसे विषम संख्या में 5, 7, 9 दरवाजों पर द्वार के दोनों तरफ बनाया जाता है। इसमें दरवाजों पर सूर्य, फूल, स्वास्तिक, राधा-कृष्ण आदि भी लिखा

जाता है। यह बनाने वाली महिला अपनी कलात्मक अभिरूचि के अनुसार सजावटी या रेखीय भी बना सकती है। यह खड़िया से चौकोर पोतकर गेरू से मांड़ा जाता है।

(च) दीवाली का माण्ड़ना- दीपावली ही एक ऐसा पर्व है जिस दिन आंगन व दीवारों पर सर्वाधिक मांड़ने बनाये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में घर और दीवारों को गोबर से लीपकर मांड़ने बनाये जाते है। गृहणियों की कल्पना उन दीवारों और आंगन में साकार रूप प्रदान करती है। दीपावली पर बनाये गये मांड़ने आकार में बड़े होते हैं और इनके इधर-उधर छोटे मांड़ने और सजावटी नमूने होते हैं। यह त्यौहार सुख समृद्धि की देवी लक्ष्मी जी के आगमन में मनाया जाता है इसलिए लक्ष्मी जी के पैर पूरे घर में बनाए जाते हैं। इन माण्ड़नों की आकृति का केन्द्र आंगन होता है व मुख्य द्वार पर पगल्ये बनते है। इसके अलावा टपकी, लड्डू हीड़, हटकी, कुवल्या, चौपड़घ, रथ, डमरू, घर-घर मांड़े जाते हैं। ये मांड़ने अन्न, फसल एवं मिठाई आदि से संबंधित होते है। सांठा गन्ना को, गुणा या फीणी का चौक मिठाई को, हटकी रसोई घर को व तराजू-बाट व्यापारी वर्ग को प्रदर्शित करता है। पान, दीपक, कमल का फूल मांड़े जाते हैं। ये माण्ड़नें घर में सौभाग्य की वृद्धि के साथ-साथ घर आंगन को पवित्र भी करते है।

(2) राजस्थानी प्रतीकात्मक माण्ड़नें- प्रतीक में अर्थ उसी प्रकार छिपा रहता है जिस प्रकार वृक्ष में बीज। प्रतीक गूढ अर्थ की अभिव्यक्ति करते है। प्रतीक का अर्थ 'चिन्ह' है। विश्वकोष में इसके अनेक अर्थ बताए हैं-अवयव, अंग, पता, निशान आदि।[9] कुछ विद्वानों ने प्रतीक को आध्यात्मिक जगत से ही जोड़ा है जबकि प्रतीक का क्षेत्र बहुत व्यापक है। लोक कला में चित्रण ही प्रतीक रूप में होता है।

प्रतीक का अर्थ व परिभाषा- जिससे प्रतीत होता है या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति होती है उसे प्रतीक कहते हैं- ''प्रतीयते अनेन इति प्रतीकम[10]। डॉ0 राजकुमार वर्मा के अनुसार- प्रतीक व्यष्टि में समष्टि का सम्पोषण है।[11] डॉ0 राजबली पाण्डेय ने प्रतीक के विषय में कहा है-''अपने समान गुणों या विशेषताओं अथवा मानसिक सम्बन्ध के कारण जिस वस्तु को देखते या सुनते ही कोई अन्य लक्षित वस्तु तत्काल ही स्मरण हो जाती है उसे प्रतीक कहा जाता है।[12] प्रतीक कई प्रकार के होते हैं-(क) भौतिक जगत सम्बन्धी प्रतीक (ख) रीति-रिवाज सम्बन्धी प्रतीक (ग) भावात्मक प्रतीक।

राजस्थान में भी प्रतीकात्मक माण्ड़नें और प्रतीक चिन्ह बनाये जाते हैं। प्रत्येक माण्ड़नें में प्रतीक चिन्ह अभिव्यक्त होता है। उदाहरणस्वरूप सरवण के मांड़ने में श्रवण कुमार को प्रतीक रूप में अधिकतर मांड़ा जाता है। कहीं-कहीं ही उन्हें पूर्ण चित्रित किया जाता है। गुणा और फीणी का चौक मिठाई का प्रतीक है। चंग, ड़फ भी वाद्य यंत्रों का प्रतीक है। मकर संक्राति पर बना वृत्ताकार चौक भी सूर्य और समय की गति का प्रतीक है। बीजणी का मांड़ना ग्रीष्म ऋतु का प्रतीक है अर्थात पंखा गर्मी का प्रतीक है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु में लहरिया का मांड़णा बनाया जाता है।

प्रतीकात्मक माण्ड़नें के विशेष अर्थ- दो त्रिभुज को जोड़कर बनाया चौक तथा कमल लक्ष्मी जी का प्रतीक है। लड्डू मिठाई का, दीपक प्रकाश का, हटडी रसोई घर का, तराजू-बाट व्यापार का, चौपड़ मनोरंजन का, भरड़ी, बाजरे की बाली का प्रतीक है। कुछ प्रतीक मांड़नें इस प्रकार है-

(क) स्वास्तिक- स्वास्तिक राजस्थान में सतिया या साथिया नाम से भी जाना जाता है। स्वास्तिक अनेक प्रतीक अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। ये गणेश जी का प्रतीक चिन्ह है इसलिए सभी विध्न बाधाओं और भाग्योदय हेतु सतिया बनाया जाता है। इसे सूर्य का प्रतीक व इसकी चारों भुजाओं का चारों दिशाएँ, चार वर्ण, चार आश्रम भी माना गया है। आकार में सरल व मांगलिक चिन्ह होने के कारण इसका उपयोग सभी जगह किया जाता है। सतिया के माण्ड़नों में सतिया का जाल बनाया जाता है या अंत में बार-बार दोहराया भी जाता है। सतिया मंगलमय जीवन का सूचक है। प्राय: घर के दरवाजे पर गणेश जी की मूर्ति होती है। मूर्ति न होने पर जल से उस स्थान को शुद्ध करके वहाँ पर रोली से स्वास्तिक बनाकर पूजा की जाती है।

(ख) पगल्या- पगल्या का अर्थ 'पद' होता है जो कि मांड़नों में लक्ष्मी जी के पैरों का प्रतीक है। दीपावली पर घर-घर में पगल्या बनते है। दामाद के आने पर भी पगल्या बनाये जाते हैं, इन पगल्यों को अन्य माण्ड़नों के साथ जोड़कर भी बनाया जाता है। काली का पगल्या काली का प्रतीक है इसी प्रकार बीजणी का पगल्या, सांकल का पगल्या आदि है। बहू-बेटियों से घर परिवार में सुख-समृद्धि रहती है इसी वजह से बेटी के विदा होते समय व आते समय पगल्या बनाये जाते हैं, अत: पगल्या को सुख-समृद्धि दात्री लक्ष्मी के शुभ प्रतीक और लक्ष्मी की उपस्थिति के रूप में मान लिया गया है।

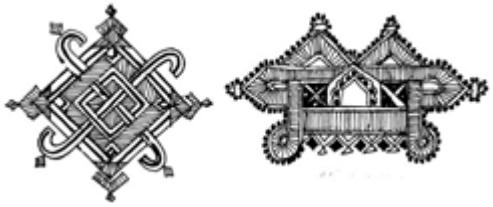

(ग) कलश (चरू)- कलश जल के पात्र होते हैं जिसको किसी मांगलिक अवसर विवाह, पर्व-त्यौहार आदि पर बनाया जाता है। कलश को विष्णु भगवान का प्रतीक रूप माना गया है। कलश सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतीक भी माना जाता है क्योंकि ब्रह्माण्ड का आकार भी कलश के समान है। इसमें समस्त सृष्टि का समावेश माना जाता है। इसलिए किसी भी संस्कार या मंगल कार्य एवं पूजा में कलश का विधान है। कलश में वरूण देवता का भी वास है। विभिन्न त्यौहारों पर प्रवेश द्वार की पहली सीढ़ी पर ये चरू अर्थात कलश बनाये जाते है। एक सीढ़ी पर दो ही कलश बनते हैं।

(घ) केरी चौक- चौक मांड़ना मन की प्रसन्नता का प्रतीक है। कैरी चौक से आम के मौसम का प्रदर्शन होता है। यह ग्रीष्म ऋतु में घर के आंगन में बनाया जाता है। स्वस्थ रहने की कामना से इसे बनाया जाता है कहते हैं इसे बनाने से पर्यावरण की शुद्धता एवं स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। केरी चौक का महिलाएं गीत भी गाती हुई कहती है-

''काची काची केरयां न तोड मत लीज्यो
अणभायी न खाय मत लीज्यो
पक जाव घणो सुवाद कागज म मांड़ लीज्यो।''

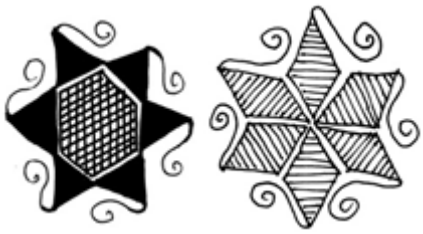

(3) संस्कार सम्बन्धी मांड़ने- पर्व, त्यौहारों, व्रत आदि के अतिरिक्त शुभ एवं मांगलिक अवसर पर माण्ड़नें मांड़े जाते हैं। राजस्थान में किसी भी शुभ अवसर अथवा संस्कार पर चौक मांड़ने की परम्परा रही है। इनका आकार और आकृति बनाने वाले की कल्पना पर निर्भर करता है। विभिन्न संस्कारों पर उन्हीं के अनुसार चौक मांड़ा जाता है। जन्म, विवाह, अतिथि आगमन, छठी, नामकरण आदि अवसरों पर उत्साहपूर्वक आवश्यक रूप से अर्थपूर्ण मांड़ने मांड़े जाते हैं। इन अवसरों पर मांड़ना बनाने का उद्देश्य उत्सव मनाना तो है ही साथ ही बच्चे, माँ और घर को बुरी नजर से बचाना भी है। इन सभी मांड़नों में शुभ चिन्ह सतिया, कलश, सूर्य-चन्द्र, सिंदूर, हल्दी एवं काजल की टपकियाँ बनाते है। मुख्य रूप से रथ, कलश, कुवल्या, मिठाई, सतिया, चौक, रथ, बंदनवार आदि भी बनाये जाते हैं।

सूरज का चौक- छठी पूजन, जन्मोत्सव, नामकरण, सूरज पूजन, कुआं पूजन पर सूरज का चौक मांड़ना आंगन में बनाया जाता है। यह मांड़ना वृत्ताकार होता है और बीच में सूर्य बना होता है। यह चौक प्रेम और उल्लास का प्रतीक है। सूर्य गतिमान और प्रकाशवान होता है। कामना की जाती है कि बालक का जीवन भी सूर्य की भांति प्रकाशित होता रहे।

(4) विभिन्न प्रकार के मांड़ने- शुभ अवसर व अतिथि के आगमन पर फूलों का चौक मांड़ा जाता है, यह मन की प्रसन्नता का प्रतीक है। इसमें चार फूलों का चौक, छः फूलों का चौक, सात फूलों का चौक, आठ फूलों का चौक अवसर के अनुसार बनाया जाता है। कोयली, सांकल का चौक, बीजणी का चौक भी बनाया जाता है।

मायरात व हॉक- विवाह अवसर पर उदयपुर में भील जाति में 'मायरात' उकेरे जाते हैं, ये मायरात वर्गाकार या आयताकार होते हैं। मध्य में नवविवाहित जोड़ा बनाया जाता है। इसको सफेद सतह पर गेरू से उकेरा जाता है। ठीक इसी तरह प्रवेश द्वार पर 'हाक' भी बनाया जाता है। इसमें कुछ आकृतियां और बनाकर 'बरना का हॉड़' बनाया जाता है। इसमें पारम्परिक गहने भी बनाये जाते हैं।

बहू पसारा- यह मांड़ना बहू के घर आने के समय बनाया जाता है। नववधू के आने से घर में पारिवारिक शान्ति, श्री व समृद्धि आए इस कामना से इसे दहलीज पर बनाया जाता है। इस अवसर पर ग्रामीण औरतें गीत भी गाती हैं-

''घर में बहू पसारा मंडता
सात कूण्डा प पग धरता
सुगना सूं मंगल करता री
पूजूं देहलडी।''

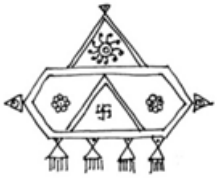

पनिहारिन- यह मांड़ना विवाह अवसर पर मकान के गोखड़े (प्रवेश द्वार) के ऊपर आले में बनाया जाता है। परिवार में सुख-समृद्धि रहे यही कामना रहती है।

रथ व पान- रथ किसी अतिथि के आगमन या वर के आगमन पर बनाते है, दीवाली पर लक्ष्मी जी के आगमन पर भी इसको बनाते हैं। पान का मांड़णा शुभ अवसर पर मांड़ा जाता है।

कुवल्या- कुवल्या 'चौखट' को कहते है। दरवाजे के दोनों तरफ दीवारों को सजाने के लिए इन्हें बनाया जाता है इसलिए इन्हें कुवल्या कहते हैं। ये नमूने प्रायः दरवाजे के दोनों ओर एक समान बनाये जाते हैं।

गलीचा- विवाह, पर्व, मांगलिक अवसर आदि पर सबसे पहले घर की महिलाएं मांड़ने मांड़ती है। वे मांड़नों का भव्य संसार बना देती है कोई भी घर का कोना सूना नहीं छोड़ती। मांड़ने का सृजन करते समय हर महिला की अपनी कल्पना होती है। घर

का आंगन, पीछे का चौक, चूल्हे का स्थान, बरामदा, खंभा, सीढ़ी, देहरी आदि सभी को उनके अनुरूप सजाया जाता है। इन मांड़नों की आकृति का केन्द्र चौक हो सकता है, लेकिन शेष भाग को छोटे-छोटे नमूनों, जाली, टपकी (बिन्दू), लड्डू, हीड़, हटकी, गमला, कुवल्या, पगल्या, चौपड़घ आदि से भरकर मांड़नों का गलीचा बना दिया जाता है। दीवारों पर मोर-मोरनी का जोड़ा, फूलड़ी-फूलड़ा, सजावटी आकृतियाँ बनायी जाती है। किनारे बेल से बनाती जाती है। इन्हें मांड़ने बनाने के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। ये कला तो माँ से बेटी में स्वत: ही आत्मसात हो जाती है।

बाजोट- यह मांड़णा घर में स्थित देवताओं के कमरे में बनाया जाता है। इष्टदेव प्रसन्न रहें, आपदाओं से बचाते रहे। परिवार खुशी और सम्पन्नता से परिपूर्ण रहें इसी कामना से यह मांड़ना बनाया जाता है। स्त्रियाँ गीत गाती है कि-

''जरा सो देख रे छोरा, सजी बाज्योटा न रखूं
सावो आग्यों रे छोरा, बणी बाड़योटा परखूं।।''

बेल-बूटे एवं भरत- सभी संस्कारों पर घर की दीवारों के चारों ओर तथा चबूतरों के चारों तरफ बेल बनाकर मांड़ देती है। इनमें छोटे-छोटे बूटे भी बनाये जाते हैं। रेखायें लहरदार, कोणदार, क्षैतिज, उर्ध्वाकार होती है।

चूल्हे के भैरूजी:- घर में जहां चूल्हा रखा जाता है उनके ऊपरी दीवार पर इन्हें स्थापित (अंकित) किया जाता है। सिंदूर और तेल का घोल तैयार करके पहले कुलभैरव और बाद में दोनों तरफ काले-गोरे भैरव बनाये जाते है। जिन घरों में इस कुल देवता की स्थापना होती है वहां गृहणी शादी एवं अन्य पर्वो पर सर्वप्रथम इनके लिए गुड़ के चूरमे का भोग बनाती है और विधि-विधान से पूजा करती है।

मातृका स्थापना:- शादी विवाह के अवसर पर देव स्थापना की परम्परा राजस्थान में भी होती है। सर्वप्रथम गणेशजी की स्थापना होती है फिर मातृका स्थापना की जाती है। वहां घी से पांच लाइनें बना दी जाती है ऊपर गोबर से पांच मुख बनाकर लाल वस्त्र, रूई मौली इत्यादि से पूजा की जाती है। यहां दूल्हा-दुल्हन को बैठाकर पूजा की जाती है।[13]

फुलड़ा-फुलड़ी:- फुलड़ा-फुलड़ी में छोटे-छोटे आकार के फूल, पत्ती, षटभुज, त्रिभुज, अष्टभुज पत्र सूरज आदि होते है। इन रूपकारो से मांड़नें का आंगन भरा हुआ प्रतीत होता है। आकार तो छोटे-छोटे होते है परन्तु आंगन को भर देते है।

पशु-पक्षी:- राजस्थान में मांड़ने पशु-पक्षी, मोर, चिड़ा-चिड़ी आदि मांड़े जाते है। इनमें विशेषता यह है कि दीवार पर बनी आकृतियों में शतरंज, बाबड़ी आदि की भरत भरी जाती है। ये मांड़ने घर की सज्जा, अतिथियों व घर में देवी-देवतओं के आगमन व उनके स्वागत में बनाये जाते है।

चौपड़:- चौपड़ एक खेल है जिसे पासों से खेला जाता है। राजस्थान में चौपड़ का आंगन चौक बनाने व मांड़नों मे किया जाता है। कही पर चौपड़ से भरत की जाती है अर्थात मांड़ने को भरा जाता है।

हीड़:- राजस्थानी भाषा में हीड़ या अटेरन लकड़ी के उस उपकरण को कहते है, जिस पर जुलाहे कच्चा सूत लपेटते है। ये हीड़ की आकृति आंगन को भरने व दीपावली पर विशेष रूप से बनायी जाती है।

हटकी:- रसोईघर में मसाले रखने वाली मसालेदानी को ध्यान में रखकर ये माण्ड़ने बनाये गये है। हटकी की आकृति में मुख्यत: चार वर्ग होते है। दीपावली पर मिटट्ी से बनी हटकी मिलती है जिसमें खील-बताशे आदि रखे जाते है। महिलाएं जिस वस्तु को भी देखती थी, उसे अपने मांड़ने में स्थान अवश्य दे देती थी।

बीजणी:- राजस्थान में हाथ से झलने वाली पंखी को बीजणी कहते है ये मांड़ने गर्मी की ऋतु को दर्शाते है। बीजणी का चौक भी मांड़ा जाता है। एक बीजणी का चौक, चार बीजणी का, आठ बीजणी का चौक और दस बीजणी का चौक मांड़ा जाता है।

डमरू:- डमरू भगवान शिव का वाद्य यन्त्र है। इसे भी राजस्थानी महिलाओ ने अपने मांड़ने में स्थान दिया है। दीपावली पर डमरू को बनाया जाता है।

यद्यपि इनके अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे नमूने भी बनाये जाते है जो कि माण्ड़नों को भरने एवं विस्तार के कार्य हेतु प्रयोग किये जाते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं-

(1) जो मांड़ने की अंदर की जगह भरने या सुन्दरता बढ़ाने के लिए अंत या छोर पर बनाए जाते हैं।

(2) मांड़ने बढ़ाने के लिए विशेष रूप से छोटे 2 नमूने बनाए जाते हैं लेकिन किसी वस्तु के स्वतंत्र रूप होते हैं।

(3) स्वतंत्र रूप से मांड़ने की आकृति के साथ-साथ ये नमूने मांड़ने को विस्तार भी देते है।

इस प्रकार मांड़ने घर के आंगन की सज्जा के साथ धार्मिक पक्ष भी रखते है। घर में सुख-समृद्वि, श्री का वास हो यही कामना मांड़ना चित्रण में निहित रहती है। दीवारों पर बने मांड़ने का पक्ष धार्मिक नहीं सौन्दर्यात्मक है, इसलिए इन्हें बनाने में स्त्रियां अधिक स्वतंत्र है, इनकी कल्पना सहज रूप से निखरती है।[14] राजस्थान में मांड़ने की विविधता और भव्यता लोगों को दातों तले उंगली दबाने के लिए मजबूर कर देती है। ये बनाने वाली महिला की भावाभिव्यक्ति तथा उसके सौन्दर्यबोध को प्रदर्शित करते है। उनके चित्रांकन में उनके प्रत्येक पहलू की झलक मिल जाती है। इन चित्रण का मनोवैज्ञानिक प्रभाव सुख सौभाग्य के साथ-साथ यह भी होता है कि स्त्रियां अनेक मानसिक उलझनों एवं तनावों से बची रहती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, डॉ0 चन्द्रमणि-राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, 2010, पृ0 76, पत्रिका प्रकाशन
2. कोठारी कंचन- दादी मांड़या माण्ड़णा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पृ0 10
3. कोठारी कंचन- दादी मांड़या माण्ड़णा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पृ0 10
4. सिंह, डॉ0 चन्द्रमणि-राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, जयपुर, 2010, पृ0 76
5. लकड़ी का एक उपकरण जिस पर जुलाहे कच्चा सूत कातकर लपेटते है। वे लोग इसे कई आकृतियों में बनाते है। राजस्थानी भाषा में इसे 'हीड़' या 'अटेरन' कहते है।
6. भटनागर, रेखा- आकृति, जयपुर 1996, पृ0 सं0 29 से 30
7. परमार ,सावित्री- लोक संस्कृति के शिखर, जयपुर 1997, पृ0 168
8. कोठारी, कंचन- दादी मांड़या माण्ड़णा, पत्रिका प्रकाशन, 2016, जयपुर
9. मलिक, डॉ0 भीमसिंह- लोक धारा के नए आयाम, दिल्ली, पृ0 168
10. हिन्दी शब्द सागर, भाग-3, पृ0 2208
11. वर्मा, डॉ0 रामकुमार- साहित्यशास्त्र, पृ0 118
12. फॉसेट, थामस-द सिम्बल लैंग्वेज ऑफ रिलीजन, पृ0 27
13. मिश्रा, सुमन-मांड़ना, कला पत्रिका प्रकाशन, जयपुर 2013, पृष्ठ सं0 27
14. आकृति-लोक कला विशेषांक- जुलाई-सितम्बर, 1990, जयपुर, पृष्ठ सं0 18

समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना

डॉ० आर०पी० वर्मा

एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, राजकीय महाविद्यालय गोसाईंखेड़ा, उन्नाव, उ०प्र०

समकालीन साहित्य वही कहा जा सकता है, जिसमें समसामयिक परिवेश बखूबी अपने हर अंदाज से अपनी उपस्थिति दर्ज करता हुआ नजर आये। समकालीन समाज को आज कई मुद्दो से जूझना पड़ रहा है। आज एक तरफ वैश्वीकरण का साया समाज को अपने आगोश में लिए हुए है, तो दूसरी तरफ संचार साधनों और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव को समाज महसूस कर रहा है। नारी, दलित, आदिवासी विमर्श अपने चरमोत्कर्ष पर है। बच्चों की अपनी लगत समस्याएं हैं। आतंकवाद और धार्मिक उन्माद समाज को कड़ चुनौती दे रहा है। मानवीय मूल्यों में आ रही गिरावट भी चिंता का विषय है। पर्यावरण को बचाना आज के समय की गंभीर चुनौती है। पर्यावरण संरक्षा के प्रति पूरा विश्व चिंचित है, क्योंकि मानव जीवन की डोर इसके साथ बंधी हुई है। प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है और प्रकृति के सुखद साहचर्य में ही मानव जीवन का विकास संभव है। प्रकृति और पर्यावरण के बगैर मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अगर पूरी मानवता पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होने का प्रयत्न कर रही है तो हिंदी साहित्य और विशेषकर हिंदी कविता इससे निर्लिप्त कैसे रह सकती है। हिंदी की समकालीन कविता में पर्यावरण के प्रति कवियों की संवेदनशीलता और पर्यावरण को बचाने की उनकी बेचौनी अवलोकित होती है। मौसम चक्र गड़बड़ाने को लेकर ओजोन पर्त में छेउ होने के हादसे एवं उसके दुष्परिणाम से कवि चिंतित है। कवि शिशुपाल सिंह नहीं चाहिए मुझे एक और लातूर शीर्षक कविता में प्रदूषण के रोक-थाम की वकालत करते हुए लिखते हैं -

फैल रहा है प्रदूषण, विकृति और विक्षेभ
यथा स्थिति से कहीं मुक्ति
कब तक चलेगा यह निर्मम चक्र
नहीं चाहिए मुझे एक और लातूर।

आज का कवि इस कठिन समय को संभव करने के लिए तमाम औजारों का प्रयोग कर रहे हैं। इसमें एक साथ कई नीढ़ियाँ सक्रिय और सृजनरत हैं। सृजन में आवेग, छटापटाहट, बेचौनी के साथ जीवन्तता और ईमानदारी भी है। प्रतिबद्धता और अनिवार्यता उसका प्रधान गुण है। हेमंत कुकरेती लिखते हैं -

राख हो चुके होंगे कई चन्द्रमा
आकाश के ध्वस्त दरवाजों को बार-बार छोड़कर
जाते
हवा के पर्दों से गुमान होगा खिड़की पर बैठा है
कोई
..... जब यह मिलेगा
धरती के सारे सागर हो गए होंगे कीचड़
आसपास जहाँ तक मिट्टी होगी देखना लोगों को

डकडबाई होगी उनकी आवाज
बावले से फिरते होंगे मारे मारे।

पूंजीवादी मानसिकता, वैश्वीकरण, बाजारवाद आदि ने प्रकृति के प्रति लोगों को उदासीन और असंवेदनशील बना दिया है। दिलीप कुमार तेतारवे लिखते हैं –

मेरी वसुधा, आज पहाड़ पर बसंत नहीं आया
या आया भी हो, तो पहाड बोल नहीं सकता।
वह गूंगा हो गया है
उसकी सभी नदियाँ
अब खिलखिलाती नहीं।
उसके प्राण स्वरूप झरने में
अब सुरताल नहीं।

रामदरश मिश्र इस त्रासदी को ज्यों बयान करते हैं –

उसने सोने चांदी के पहाड़ पर
बारूद के पेड़ लगाये हैं।
जिनकी विशाक्त सांसों से झुलस गयी हैं
नवस्पतियाँ
टूट गये हैं चिडिघ्यों के पंख।
तेजाब सा खलबला रहा है नदियों का पानी
जल गए मौसमों के रंग औश्र वे एक दूसरे में
सपा गए हैं
और आदमी एक प्यासा शेर बन कर रह गया है।

दूसरी ओर कवि गोविन्द कुमार गुंजन पर्यावरर्णीय चेतना जगाते हुए लिखते है–

धरती का घूमना जारी रहेगा
होते रहेंगे दिवस मास
मौसम बदलते रहेंगे।

परमाणु विस्फोटो के बाद भी आयेंगी पूर्णिमाएं और समंदरों का सीना फूल जायेगा कामना से –

किसी खंडकर में बजेगी कोई वायलिन
और कोई भर जायेगा भावना से।

कहीं कवि पर्यावरण के कहर से क्षुब्ध है, तो कहीं संभावना से परिपूर्ण है। वह आशावादी है, थकना नहीं, झूझता है। कवि प्रकृति से लेकर समकालीन जीवन यथार्थ के वृहद सवालों से गहरा साक्षात्कार करता है। समकालीन कविताएं अपने बचाव में कहीं विम्ब और प्रतीक का सहारा लेती है, तो कहीं सहज और सपाट है जो अपने दृश्यों की रेखाएं खींच अपना अभिप्राय प्रकट करने का प्रयत्न करती है। अकाल, सूखा, भूकंप, अनावृष्टि, घटता जल स्तर आदि प्रकृति के प्रति हमारे अप्राकृतिक आचरण के परिणाम हैं। रेवती रमण की कविता पेड़ बोलता है में पेड़ और मानव के बीच के रिश्ते प्रकट होते हैं –

हम होंगे, झरेंगे सभ्यता-संस्कृति के बीज
हम न होंगे, बच नहीं पायेंगे
बरसात, बसंत तुम और न यह जिन्दगी।

नगर वासियों और तथाकथित पढ़े-लिखे लोगों की अपेक्षा असभ्य, अशिक्षित, और गंवार कहे जाने वाले आदिवासी प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा में पूर्ण तत्पर है। प्रकृति उनकी माँ है और प्रकृति ही उनका भगवान है। प्रकृति की सुरक्षित गोद में ही वह अपने को महफूज समझते हैं और नगरों की उपभोक्तावादी दौड़ से अपने को कोसों दूर रखते हैं। सीमा आजाद अपनी कविता आदिवासी-1 में आदिवासियों के प्रकृति के प्रति स्नेहिल भाव को प्रकट करते हुए लिखती हैं -

पत्थर को
दूध पिलाते हो,
तुम
इस धती के
विकसित और सभी वासी हो
हम
नहीं खिलते पीले फूल सरसों के।
मेंड पर फैले स्वर्णिम आभाव
कट चुके अमलतास भी।

पर्यावरण का प्रदूषण सम्पूर्ण समाज को प्रदूषित कर रहा है। ओम प्रकाश महरा चिंतित भी हैं और उपाय भी बताते हैं -

गगनभेदी तोपें उगलती हैं जहरीले प्रदूषण
आयें इन धुयों से हम अपने निर्मल आकाश को
गन्दा होने से बचाएं

प्रकृति संतुलन के असंतुलन होने पर उसके परिणाम मानव समाज के लिए अत्न्त भयावह होंगे। इन सम्बन्ध में कवि की चिंता दृष्टव्य है -

न छोड़ो प्रकृति को
अन्यथा एक दिन मांगेगी हमसे, तुमसे
तरुणाई का एक एक क्षण और
करेगी भयंकर बगावत।

सुनामी लहरों की तबाही से हुए पर्यावरण के विनाश से दुखी सतीश जायसवाल लिखते हैं -

समुद्र निकल आया वहां अभी-अभी
कहां चली गई यहां की इमारतें
किस देश से चले आये अचानक
इतने सारे जहाज उपक गए क्षितिज पर
सुबह-सबेरे जब लो उठेंगे सोकर
हैरान होंगे अपने शहर को न पाकर।

कमलेश भद्ट 'कमल' ने पर्यावरण चेतना पर अनेक गीत लिखें हैं। उनके गजल संग्रह श्यांक, रेत, पानी में वे नदी के छत-विक्षत स्वरूप पर दु:ख होते हैं -

हमने विष पिलाकर आजमाया है बहुत
अब हमें भी विष पिलाकर आजमाएगी नदी।

अशोक अंजुम की व्यथा देखें -

आरी ने घायल किये हरियाली के पांव,
कंक्रीट में दब गया वह होरी का गांव।

मदन कश्यप अपने कविता-संग्रह लेकिन उदास है पृथ्वी में लिखते हैं -

गनीमत है
कि सड़कें पैदल चलने का भाड़ा नहीं मांगतीं
हालांकि शहर घरों में मुश्किल से आ पाती है
फिर भी धूप पर कोई टैक्स नहीं है।

चन्द्र शेखर साकल्ले लिखते हैं -

बस इतना पानी बचा देना
कि वह नहाकर धूप में अपने
बाल सुखा सके
बस इतनी लकडिघ्याँ बचा देना
कि वो दो समय चूल्हा जलाकर
खाना पका सके
बस इतना अन्न बचा देना
कि वह अपने परिवार का
पेट भर सके
बस इतना कपास बचा देना
कि वह अपने बदन पर कपड़ा
लपेट सके
बस इतनी जमीन बचा देना
कि वह अपनी कथरी बिछा सके
शेष दुनिया तुम्हारी है
उसे लूटो और नष्ट कर दो।
पेट भर सके
बस।

समकालीन कविता में पर्यावरण चेतना के स्वर तो सुनायी पड़ते हैं मगर बहुत ही धीमे सुर में अभी इस समस्या को सतही तौर पर ही लिया जा रहा है मगर यह मामला बहुत ही गंभीर है ओर गंभीर चिंतन और बेबाक अभिव्यक्ति की मांग करता है। महानगर गैस के चौम्बर बन गए हैं और मनुष्य की लालची सोच, सीमित सोच और असंवेदनशीलता ने नयी पीढ़ी के लोगों को असमय ही बीमारियों के चंगुल में धकेल दिया है। जहरीले वातावरण में रहकर जीवन कैसे सुरक्षित रह सकता है? जब जीवन ही नहीं रहेगा, तब जीवन और जीवन के विविध रंगों की बात करना मायने नहीं रखता। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि की बात तभी आगे बढ़ सकती है अगर हमारा जीवन सुरक्षित होगा और इसके लिए पर्यावरण को बचाना और समाज को अपने प्राकृतिक वातावरण को बचाने के लिए संवेदनशील बनाना साहित्यकारों का दायित्व है और विशेषकर समकालीन कवि महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अत: आज की कविता आज के इस गंभीर मसले को कविता का मुख्य विषय बनाकर अपनी अहम भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ

1. वागर्थ, नवम्बर 2003, दिसम्बर, 2016
2. इन्द्रप्रस्थ भारती, जनपद मार्च, 2004
3. गंध, अगस्त, 1993
4. अक्षरा, मार्च-अप्रैल, 1991
5. युद्धरत आदमी, जुलाई-दिसम्बर, 1999
6. अक्षर पर्व, अप्रैल, 2005
7. नया ज्ञानोदय, अक्टूबर, 2016
8. समकालीन भारतीय साहित्य, सितम्बर अक्टूबर, 2000
9. हंस मार्च, 2005
10. रेत पर नंगे पांव, नन्द भारद्वाज
11. समकालीन के अथो में हिन्दी कविता-संपादक प्रो0 (डॉ0) सुखदेव सिंह मिन्हास, पृ0 101
12. समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना - प्रो0 सुखदेव सिंह मिन्हास, पृ0 37 से 44 तक

राजस्थानी चित्रकला का एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० आशा रानी

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कुमारी मायावती राजकीय महिला पीजी कालेज बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

सारांश

''राजस्थान में चित्रकला का मौलिक स्वरूप परम्परागत रूप से प्रचचिल था। परन्तु भारतीय चित्रकला के दायरे में राजस्थान की चित्रकला को उचित स्थान प्राप्त नही हो सका। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थानी चित्रकला के न केवल स्वतन्त्र अस्तित्व पर चर्चा की गयी है, अपितु भारतीय चित्रकला के इतिहास में राजस्थानी चित्रकला का भी बडा महत्व है। इस तथ्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।''

राजस्थान भौगोलिक पराकाष्ठाओं और रंगों की विषमताओं की भूमि है। इसके पूर्वी भाग में चंबल के किनारे-किनारे मालवा की गहरी काली और उपजाऊ भूमि है, तो पश्चिमी राजस्थान का अधिकांश हिस्सा निर्जल रेगिस्तानी इलाका है। राजस्थान के ये दोनो चरम विपरीत प्राकृतिक दृश्य आश्चर्यजनक रूप से मनोमुग्धकारी है। भौगोलिक और जयवायु - संबंधी इन जैसी चरम स्थितियों में जीवन एक बडी चुनौती होता है, पर बहादुर और साहसी राजस्थानियों ने इस चुनौती का सदा ही मुस्कराहट के साथ सामना किया है।

रंग राजस्थानी जीवन का अनिवार्य अंग है। क्या कला और क्या स्थापत्य, क्या वेशभूषा और क्या रीति-रिवाज, सभी में रंगों की महत्वपूर्ण भूमिका है। रंग उसकी जीवन शक्ति का प्रतीक है। राजस्थानी चित्रकला में रेखाओं की जो सशक्तता है और चकाचौंध कर देने वाले रंगो की जो छटा सर्वत्र बिखरी हुई दिखाई देती है, वे मिलकर राजस्थानी जीवन की ऊर्जस्विता के लिए एक प्रभावशाली व्यतिरेकी परिदृश्य उपस्थित कर देती है।

सर्वप्रथम 1916 ई0 में आनन्द कुमार स्वामी ने यह रहस्योद्घाटन किया था कि राजस्थान में भी चित्रकला का एक सम्पन्न स्वरूप विद्यमान है।[1] डब्ल्यू. एच. ब्राउन ने कुछ चित्रो के नमूनों के आधार पर इसे राजपूत शैली कहा है।[2] लेकिन एन0 सी0 मेहता ने तो मत व्यक्त किया कि ये चित्र हिन्दू शैली के है।[3] लेकिन शनैः शनैः शोधकर्ताओं के प्रयत्नों के फलस्वरूप राजस्थानी नरेशो के संग्रह में चित्रों के श्रेष्ठ और प्र्याप्त संख्या में नमुने उपलब्ध होने लगे, जिससे यह स्पष्ट होता गया कि राजास्थानी चित्रकला को मात्र हिन्दू शैली अथवा राजपूत शैली नहीं कहा जा सकता। वरन् राजस्थानी चित्रकला में अनेक राजपूत शैलियों को सम्मलित किया जा सकता है।[4] अब इन शैलियो को मेवाड़, मारवाड़, किशनगढ़, जयपुर, अलवर, बीकानेर, कोटा, बूदी, नाथद्वार आदि शैलियॉ कहा जाता है।

राजस्थान की प्राचीन चित्रकला के नमूने हमें प्राप्त नहीं होते। फिर भी भग्नावशेषों में उपलब्ध तक्षणकला, मुर्तिकला आदि के नमुनों से यह अनुमान लगा सकते है कि राजस्थान में चित्रकला की समृद्ध परम्परा रही होगी। प्रसिद्ध विद्वान ओझा जी ने कुछ प्राचीन सिक्कों का उल्लेख किया है।[5] जिन पर अंकित पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, स्तूप, स्वास्तिक, पुरूष आदि की आकृतियों से हम राजस्थान की प्राचीनता का अनुमान लगा सकते है। आहड़, बैराठ, रंगमहल आदि स्थानो पर खुदाई से प्राप्त सामाग्री से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीनकाल में राजस्थान में, चित्रकला की वैभवशाली परम्परा थी।

राजस्थान में तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने मारवाड़ में सातवी शताब्दी में शृंगधर नामक चित्रकार का उल्लेख किया है जो राजस्थानी चित्रकला का प्रथम चित्रकार माना जाता है। 7वीं एवं 8वीं शताब्दी के लगभग जब भारत में अजन्ता चित्रकला परम्परा

समृद्ध हो रही थी। उस समय अरब आग्रमणकारियों की वजह से कुछ चित्रकार राजस्थान में भी आये थे ये चित्रकार अपने साथ अजन्ता चित्रकला की समृद्ध परम्परा भी लाये थे। अत: राजस्थानी चित्रकला, अजन्ता चित्रकला शैली के प्रभाव से अछूती न रह सकी। इन कलाकारो ने अपनी अजन्ता चित्रकला शैली में स्थानीय मौलिक शैलियों को मिलाकर यहॉ की चित्रकला में एक नवीनता उत्पन्न कर दी। इस नयी शैली में, चूंकि अनेक जैन ग्रन्थों को चित्रित किया गया था अत: इसे जैन शैली कहा जाने लगा।[6] इस शैली में अनेक गैर जैन ग्रन्थ जैसे बाल गोपाल स्तुति, दुर्गा सप्तशती, गीत गोविन्द आदि भी चित्रित किये गये। इसलिये इसे गुजराती शैली भी कहा गया लेकिन राय कृष्णदास और श्री एन0 सी0 मेहता का कहना है कि इसे अपभ्रंश शैली कहना चाहिये। क्योंकि उस समय के साहित्य को अपभ्रंश साहित्य कहा जाता है।

हम इस शैली को जैन शैली, गुजराती शैली, पश्चिम भारतीय शैली अथवा अपभ्रंश शैली कुछ भी कह लें। लेकिन यह तो निर्विवाद है कि राजस्थान की स्थानीय मौलिक परम्परा और अजन्ता परम्परा के सामंजस्य से उत्पन्न इस नई शैली की अविरल प्रगति होती रही है।[7]

राजस्थान की चित्रकला के सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ जैसलमेर संग्रहालय में 1060 ई0 के 'ओद्य नियुक्ति वृति व दस वैकालिक सूत्र चूर्णि हैं' इन दोनो ग्रन्थो को भारतीय कला का द्वीप स्तम्भ कहा जाता है। मेवाड़ के महाराण कुम्भा के समय से राजस्थानी चित्रकला का अत्याधिक उदय हुआ।8 इसलिये मेवाड़ को ''राजस्थान की चित्रकला की जन्मभूमि माना जाता है।''

आज हम राजस्थानी कला शैली के जो भी चित्र देखते है उनका उदभव किसी एक स्थान पर न होकर विभिन्न रियासतों के राजकीय संरक्षण में हुआ। यहॉ के कलाकारों ने राग-रागिनी, नायक-नायिका, कृष्णलीला, रामायण, दुर्गा सप्तशती, शिव चरित्र., जैन धर्म बारहमासा, ढोलामारू, पाबूजी, हड़बूजी, गणगौर तीज अन्य उत्सव व त्यौहारा, युद्ध, नाथ - पंथ, दादु - पंथ, प्याऊ, पनघट नारी, श्रृंगार, लोक कथाऐं, देवी देवताओं, आखेट, श्रीनाथ जी आदि असंख्य विषयों को चित्रित कर लघुचित्रों की भरमार कर दी। ऋतु वर्णन तथा कृष्ण लीलाओं को विषय बनाकर कलाकारों ने श्रृंगार तथा प्रेम के नाना स्वरूपों को जीवन अभिव्यक्ति प्रदान की है।[9]

इसी क्रम में मध्यकाल में राजस्थानी नरेशो एवं मुगल सम्राट के बीच समागम बढ़ने के कारण राजस्थानी चित्रकला मुगल प्रभाव में विकसित हुई। मेवाड़ के महाराज अमरसिंह ने (1597 - 1620 ई0) चावंड में रागमाला चित्रित करने के लिए नासिरूद्दीन नामक एक मुस्लिम चित्रकार को आमंत्रित किया था। नासिरूद्दीन न केवल लोदी परम्परा से प्रभावित था बल्कि वह मुगल शैली से भी प्रभावित था हिन्दू और मुस्लिम दोनो सम्प्रदायों के चित्रकार, जिन्होने चित्रकला की नई तकनीकी को ग्रहण कर लिया था। जहॉ कही भी उनको संरक्षण मिला, वे अपनी सेवाऍ देने लगे। नई परिवर्तित शैली में स्थानीय विशेषताऍ सम्मिलित होने के कारण 17वीं और 18वीं शताब्दी में राजस्थान में मेवाड़, मारवाड़, बूंदी, कोटा, बीकानेर, सिरोही, जैसलमेर, आमेर और बाद में जयपुर आदि राज्यो में नई शैलियां विकसित होने लगी कार्ल खण्डालवाला ने 17वीं शताब्दी और 18वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल को राजस्थानी चित्रकला का स्वर्ण युग कहा है।

राजस्थानी चित्रकला शैली की विभिन्न शैलियां प्रचलित है। जैसे मेवाड़ चित्रकला शैली मारवाड़ बूंदी चित्रकला शैली कोटा चित्रकला शैली जोधपुर चित्रकला शैली बीकानेर चित्रकला शैली किशनगढ़ चित्रकला शैली जयपुर चित्रकला शैली किशनगढ़ चित्रकला शैली आदि।

मेवाड़ की चित्रकला शैली में यहॉ की वीरता के सदृश ही आकर्षक रही है। मेवाड़ शैली में रसिक प्रिया, रागमाला, गीतगोविन्द, मालती - माधव, पृथ्वीराजरासो, दुर्गा सप्तशती आदि विषयो पर आधारित लघुचित्रो का निर्माण अधिक हुआ है। मेवाड़ चित्रकला शैली में चमकदार रंगों का प्रयोग अधिक किया गया है।

बूंदी चित्रकला शैली में लाल, पीले रंगो की प्रचुरता, छोटा कद, प्रकृति का सतरंगी चित्रण विशेष रूप से पाया जाता है। रसिक प्रिया, कवि प्रिया, बिहारी सतसई, नायक - नायिका, भेद ऋतुवर्णन बुंदी चित्रकला शैली के प्रमुख विषय है। इस शैली में पशुपक्षियों का श्रेष्ठ चित्रण हुआ है। इसलिए इसे पशु-पक्षियो की चित्रकला शैली भी कहा जाता है।[10]

कोटा की चित्रकला शैली और मुगल शैली का सामंजस्य होते हुए भी कोटा में एक नवीन शैली आरम्भ होती है। इसमे स्त्रियों के चित्र प्रतिमा के समान दिखाई देते है, जो या तो शीशे में अपना मुँह देख रही है या वृक्ष की डाली को पकडे हुए है। सिर के बाल काफी ऊचॉई से आरम्भ होते है तथा अस्वाभाविक रूप से लम्बे लगते है उनका ललाट काफी चौड़ा, ऑखें बड़ी - बड़ी, नाक छोटी, ठुड्डी गोल, वक्षस्थल काफी ऊँचा और कमर अत्याधिक पतली दिखायी गयी है। इन चित्रो में गहरे नीले और हरे रंगों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। चित्रो के किनारे लाल, काले और सुनहरे रंगों से बनाये गये है।

जोधपुर शैली (मारवाड़ शैली) में चित्रों का विषय अधिकतर राजकीय था। इस शैली में अजन्ता शैली की परम्परा का निर्वाह किया गया है। मुगल शैली के प्रभाव के कारण, इसमें विलासिता पूर्ण चित्र बनाये गये है राव मालदेव (1531 से 1562 ई0) को मारवाड़ की कला एवं संस्कृति का सम्पूर्ण श्रेय इन्हे ही जाता है। इस शैली मे बारमासा, रागमाला, गीतगोविन्द, ढोलामारू, रामकथा, कृष्णलीला, शिवपुराण, आखेट व दरबार, नायक - नायिका विषयक चित्र पर्याप्त मात्रा मे बने।[11]

बीकानेर शैली के चित्रो में मुख्य विषय वस्तु महाभारत, रामायण, कृष्णलीला एवं नायक - नायिका भेद है। इसके अतिरिक्त यहॉ रसिक प्रिया, शाल - भंजिका, भागवत् पुराण एवं राजस्थानी लोक कथाओं का अंकन यहां के चित्रो का मुख्य विषय वस्तु है।

बीकानेर शैली में पंजाबी, मुगल और दकक्नी चित्रकला का प्रभाव था। राजा राय सिंह के समय चित्रकला प्रारम्भ हुई बीकानेर शैली के उदभ्व का श्रय यहॉ के उस्ताओ को दिया जाता है। कालांतर मे इनको उस्ता कहा जाने लगा ऊंट की खाल पर की जाने वाली चित्रकारी उस्ता कला कहलाती है इसमें लाल, बैंगनी, स्लेटी रंगों का प्रयोग किया गया है फूल - पत्तियों पहाड़ व रेत के टीलो का चित्रण अधिक किया गया है रामायण, कृष्णलीला, महाभारत, नायक - नायिका, रागमाला, रसिकप्रिया, श्रंगारिक - आख्यान, दरबार - आखेट आदि विषयो पर आधारित लघु चित्रों का निर्माण अधिक हुआ।[12]

किशनगढ़ शैली में वल्लभ संप्रदाय का प्रभाव अधिक था। वल्लभ संप्रदाय के प्रभाव के कारण भगवान श्री कृष्ण के चित्र अधिक बनाए गये सावंतसिंह (नागरी दास) के समय किशनगढ़ चित्रकला का स्वर्ण काल था मोरध्वज निहालचंद ने रसिक बिहारी का व्यक्तिगत चित्र बनाया था जिसे बणी - ठणी कहा जाता है। इसमें नारी सौंदर्य सफेद और गुलाबी रंगो का अधिक प्रयोग हुआ।[13]

जयपुर शैली के चित्रो मे भक्ति तथा श्रृंगार का सुन्दर समंवय मिलता है। कृष्ण लीला, राग रागिनी, रासलीला के अतिरिक्त शिकार तथा हाथियो की लड़ाई के अद्भुत चित्र बनाये गये है विस्तृत मैदान, वृक्ष, मन्दिर के शिखर, अश्वारोही आदि प्रथानुरूप ही मीनारो व विस्तृत शैलमालाओं का खुलकर चित्रण हुआ है।[14]

इन शैलियो के अलावा राजस्थान मे अलवर शैली उणियारा शैली और नाथद्वारा शैली का भी अपना महत्व है।

राजस्थान की इन समस्त शैलियो के अध्ययन से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि शैलियों में विभिन्नता होते हुए भी सभी मे मौलिक एकता है राजस्थान के चित्रकारों ने सदैव प्रसिद्धि की कामना से कला की सेवा की है और यही उनकी मौलिकता और सम्पन्नता का प्रमुख कारण है।

सन्दर्भ सूची

1. कुमार स्वामी: राजपूत पेन्टिग, प्रस्तावना, पृ0-9
2. डब्ल्यू. एच. ब्राउन: इण्डियन पेंटिंग, पृ0-5
3. एन. सी. मेहता: स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिंग, पृ0-5
4. डा0 गोपीनाथ शर्मा: ऐतिहासिक निबन्ध राजस्थान, पृ0-17
5. नगरी प्रचारिणी पत्रिका, संख्या 2013, पृ0 22-40, मॉर्डन रिव्यू 1956 में डॉ0 जी. एन. शर्मा का लेख
6. कार्ल जे. खण्डालवाला: कुमार स्वामी की पुस्तक राजपूत पेंटिंग का फारवर्ड पृ0 6
7. श्री धीरेन्द्र वर्मा द्वारा अजन्ता की गुफाएं पृ0 38
8. ओझा: उदयपुर राज्य का इतिहास भाग 1, पृ0 315
9. प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम का बुलेटिन, 1969 मे कार्ल खण्डालवाला का लेख
10. बूंदी चित्रकला शैली का अधिकांश विवरण रूप लेखा भाग-35
11. डा0 पद्मजा शर्मा: जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल, पृ0 252
12. डा0 जी. एन. शर्मा: राजस्थान स्टडीज, पृ0 149-50
13. डा0 मुल्कराज आनन्द: एल्बम ऑफ इण्डियन पेंटिंग्ज, पृ0 132
14. डा0 मुल्कराज आनन्द: एल्बम ऑफ इण्डियन पेंन्टिंग्ज, पृ0 134-135

मध्यकालीन गीत-संगीत (सल्तनत काल)

डॉ० रियाजुल हसन

कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

''भारतीय संगीत तथा उससे सम्बन्धित नृत्य और नाटक की परम्परा अत्यन्त प्राचीन युगीन है किन्तु विभिन्न युगों में कला का सूत्रबद्ध इतिहास हमें उपलब्ध नहीं है। इन कलाओं के क्रमबद्ध अध्ययन के लिये मूल सामग्री यत्र-तत्र प्राचीन ग्रन्थों में साहित्यिक एवं धार्मिक तथा अधिकांषत: शिल्पकला और ऐतिहासिक कृतियों में बिखरी पड़ी है। संगीत, नृत्य और नाटक पर कुछ पुस्तकें भी लिखी गयी हैं। जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भोज (1010-1055ई0) तथा सोमेश्वर (1131ई0) और सारंगदेव (1210-1247 ई0) का संगीत रत्नाकर है।

प्राचीन शास्त्रीय लेखक भारत द्वारा उनकी पुस्तक ''भारतीय नाटक-शास्त्र'' में निर्धारित मौलिक तत्वों का अनुसरण करते हुए ये ग्रन्थ उनके ही समय के इन विषयों के विकास का निश्चित स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। सारंगदेव ने नाट्य-सामग्री सूची तथा रचना की ऐसी अनेक विशेषताओं का वर्णन किया है। जो भारत के समय से अस्तित्व में आयी थी। संगीत रत्नाकर के आधार पर बहुत से संस्कृत ग्रन्थ इस विषय पर लिखे गये। जैसे पारसदेव का संगीत-समयसार, सुधा कलष (लगभग 1350ई0) तथा अन्य विशेषज्ञों की कृतियाँ। तेरहवीं शताब्दी में जयदेव द्वारा रचित गीत-गोविन्द ने समस्त भारतवर्ष में संगीत नृत्य तथा नाटक की कलाओं में क्रान्ति ला दी।[1] उत्तर तथा दक्षिण में इस पर लिखीं गयी अनेक टीकाऐं इस बात का प्रमाण हैं कि इसे एक मौलिक रचनात्मक ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त हुई थी। इन टीकाओं में मेवाड़ के राजा राणा कुम्भा (1443-1468ई0) की ''संगीतराज'' महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि इसने ''गीत-गोविन्द'' के प्रत्येक गीत के संगीत को निर्धारित किया था। तथा उसकी व्याख्या की थी। मध्ययुग के भक्ति आन्दोलन ने भक्ति-संगीत को बहुत अधिक शिक्त प्रदान की तथा सन्तों और संगीतज्ञों को प्रेरणा प्रदान की। नामदेव (1270-1350 ई0) व देशोपन्त (1551-1616 ई0) के पद एवं मीराबाई, सूरदास और तुलसीदास व अन्य सन्तों के भजन देश के अनेक भागों में गाये जाने लगे थे। देश भर के मन्दिर भी गायन एवं बाद्य, दोनों प्रकार के संगीत के केन्द्र बन गये थे। स्वाधीन अथवा अर्द्ध-स्वाधीन हिन्दू शासकों के दरबार भी संगीतज्ञों के लिए संरक्षण स्थल तथा शास्त्रीय परम्परा की रक्षा हेतू अनुकूल स्थान थे।[2]

दरबारी संरक्षण में कमी के साथ-साथ संगीत भी पतोन्मुख होने लगा तथा उसके उच्च स्तर में भी गिरावट आने लगी। किन्तु यह परम्परा ऐसे विभिन्न घरानों अथवा सम्प्रदायों में सुरक्षित बनी रही जो भूतपूर्व सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्र-स्थलों में प्रस्फुटित हुए थे।

वैदिक काल में तीन प्रकार के बाद्य-यन्त्रों का वर्णन मिलता है। जिनमें पहला फूँक से बनजे वाले, दूसरा प्रहार से बजने वाले और तीसरा घर्षण से बजने वाले थे। जबकि तारों की वीणा को बजाना संगीत की परिपक्वता का द्योतक था। मौर्य और गुप्त-काल में उदार राजकीय संरक्षण के परिणामस्वरूप संगीत में अत्यधिक विकास हुआ। भारतीय शास्त्रीय संगीत में छ: मुख्य राग तथा तीस रागनियाँ होती है। परम्परा के अनुसार माना जाता है कि संगीत की उत्पत्ति ब्राह्मा के द्वारा हुई। महादेव द्वारा उसे अस्तित्व प्रदान किया गया तथा दैवीय अनुमति से बड़े-बड़े उस्तादों ने उसकी साधना की हैं। वर्ष की ऋतुओं, दिन के घण्टों तथा गायक के मनोभाव के अनुसार संगीत बदल जाता है। हिन्दुओं के अनुसार वर्ष को छ: ऋतुओं में बाँटा गया है। प्रत्येक ऋतु का अपना अलग राग होता है। मुख्य राग भैरव, हिण्डोल, मेघ, श्रीराग, दीपक तथा मालकोस है। हिन्दू विचारधारा के अनुसार प्रत्येक राग अर्द्ध-देवता है। जिसका विवाह पाँच रागनियों से हुआ है। इस प्रकार से कुल छ: राग और तीस रागनियाँ होती हैं।

दिन को भी छः भागों में बाँटा गया है। प्रत्येक भाग के लिए अलग-अलग राग निर्धारित किये गये हैं। इस प्रकार भैरव राग सामान्यतः प्रातः चार बजे से प्रातः आठ बजे तक, हिण्डोल प्रातः आठ बजे से दोपहर बारह बजे तक, मेघ दोपहर बारह बजे से शाम के चार बजे तक, श्रीराग शाम के चार बजे से रात के आठ बजे तक, दीपक रात के आठ बजे से रात के बारह बजे तक तथा मालकोस रात के बारह बजे से प्रातः चार बजे तक गाया जाता है।[3]

दिल्ली सल्तनत काल (1206-1526ई0) मध्यकालीन भारतीय इतिहास में एक नये युग के नाम से जाना जाता है। कुरान में संगीत वर्जित होने के बावजूद भी समय-समय पर मुस्लिम सुल्तानों सामन्तों और स्वयं खलीफा द्वारा उसे प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।[4] मुसलमानों के भारत आगमन के साथ संगीत के क्षेत्र में कुछ परिवर्तन हुए। नवीन रागों और बाद्य-यन्त्रों का जन्म हुआ। सल्तनत-काल का सर्वमान्य सर्वाधिक प्रसिद्ध संगीतज्ञ अमीर खुसरो (1253-1325ई0) था। जिसने भारतीय संगीत की उत्कृष्टता का वर्णन अपनी पुस्तक 'नूह-सिपहर' (नव-आकाष) में किया है। उसने लिखा है

''भारतीय संगीत से हृदय और आत्मा उद्वेलित हो जाते हैं। भारतीय संगीत केवल मनुष्य मात्र को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि यह पशुओं तक को मन्त्र-मुग्ध कर देता है। हिरन संगीत से अवाक् खड़े रह जाते हैं और उनका आसानी से शिकार कर लिया जाता है''।[5] अमीर खुसरो ने भारतीय और ईरानी संगीत सिद्धान्तों के मिश्रण से कुछ नवीन रागों को अविष्कृत किया जो भारतीय-ईरानी संस्कृति के विशिष्ट लक्षण हैं। कव्वाली का जन्मदाता अमीर खुसरो था। 'ख्याल' और 'तराना' जैसी संगीत की नई विधाओं के कारण संगीत के स्वरूप में परिवर्तन आया।

अमीर खुसरो सुल्तान बलबन का दरबारी कवि व संगीतकार था। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरों जो अपने युग का महान संगीतज्ञ था, सूफी संत निजामुद्दीन औलिया का शिष्य था। उसने अपनी पुस्तक 'नूह-सिपेहर' में भारतीय संगीत की प्रशंसा करते हुए लिखा है। कि ''भारतवर्ष के संगीत की समानता संसार के किसी भी भाग में नही हो सकती। यहाँ का संगीत अग्नि के समान है। जो हृदय तथा प्राण में अग्नि भड़का देता है। संसार के भिन्न-भिन्न भागों से लोगों ने आकर यहाँ संगीत की शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न किया किन्तु वर्षों के प्रयास पर भी उन्हें यहाँ के किसी ताल-स्वर का ज्ञान न हो सका। यहाँ का संगीत केवल मनुष्य को ही नहीं वरन् पशुओं को भी उत्तेजित कर देता है। मृगं संगीत से कृत्रिम निंद्रा में ग्रस्त हो जाते हैं और बिना धनुष बाण के शिकार हो जाते है''।[6]

इस काल में भारतीय संगीत में कुछ नए-नए तत्वों का सम्मिश्रण किया गया। जो मुसलमानों के साथ 13वीं शताब्दी के आरम्भ में भारतवर्ष में आये थे। ईरानी संगीत की कुछ विशेषताऐं यहाँ स्वीकार की गयी, और कुछ नये राग व नई पद्धतियों का आविष्कार हुआ। अमीर खुसरो के सन्दर्भ में ही हमें इस सम्मेलन के प्रमाणित उल्लेख मिलते हैं। उसने भारतीय संगीत शास्त्र का गहन अध्ययन किया। वह ईरानी पद्धति के चार उसूल, बारह पदे आदि सिद्धान्तों से भी भली-भाँति परिचित था। उसने भारतीय और ईरानी सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से कुछ नये राग निकाले जो मध्यकालीन भारतीय ईरानी संस्कृति के विशिष्ट लक्षण हैं। 15वीं एवं 16वीं सदी में लिखे गये 'रागदर्पण' के अनुसार अमीर खुसरो ने निम्नलिखित नए रागों का सूत्रपात किया:

मुजीर, सरपर्द बसीट गजन तराना
ऐमन फिरोदस्त सुहिल फरगान निगार।
मुवाफिक कौल साजगारी बारवर्ज शाहान
जिलाफ ख्याल, उससाक मुनम।।[7]

खुसरो ने जो नये-नये राग निकाले उनमें भारतीय और ईरानी दोनों पद्धतियों का सौन्दर्य और मिठास था।

संगीत को इस युग मे बड़े व्यापक पैमाने पर राजकीय संरक्षण और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। कड़घ मानिकपुर के शासक मलिक सुल्तान शाह के पुत्र बहादुर मलिन ने संगीतज्ञों का एक बृहत सम्मेलन बुलाया। इसमें संगीत रत्नाकर आदि संगीत के 18 ग्रन्थों को एकत्रित करके सब विवादग्रस्त विषयों का निर्णय कराया गया।[8] परिणाम स्वरूप 1428 ई0 में संगीत शिरोमणि नामक ग्रन्थ की रचना हुई जिसमें कुल निर्णित बातें संकलित थी।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (1486-1516) भी संगीत के एक बहुत बड़े कोविद थे। उन्होंने संगीताचार्यों का एक विशाल सम्मेलन बुलाया जिसमें रागों का विधिवत वर्गीकरण किया गया। इसके आधार पर ''मानकुतुहल'' नामक एक बहुमूल्य ग्रन्थ लिखा

गया। जिसमें संगीत कला की सूक्ष्मतम बातों का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया। मानसिंह ने ध्रुवपद को पुर्नजीवित किया और कुछ नये राग निकाले।[9] उन्होंने ग्वालियर में शास्त्रीय संगीत की एक परम्परा प्रारम्भ की विश्वविख्यात तानसेन भी इसी परम्परा के शिष्य थे। राजा मानसिंह ने शास्त्रीय संगीत के ग्रन्थ ''राग-दर्पण'' का फारसी में अनुवाद किया। इससे भारतीय संगीत का शास्त्रीय-ज्ञान, विद्वान मुसलमानों को भी उपलब्ध हुआ। मानसिंह के दरबार में बड़े-बड़े गवैये मौजूद थे। जैसे बैजू, पाण्डवी, लोहांग और नायक भिक्षु।

मध्यकालीन संगीत को ग्यालियर संगीत ने नया जीवन, नई चेतना और एक नया कलेवर दिया। 15वीं सदी में ही पंडित दामोदर मिश्र ने ''संगीत दर्पण'' नामक संगीत के एक महान ग्रन्थ की रचना की। इससे संगीत शास्त्र में शिव मत की स्थापना हुई। पंडित लोयन ने ''राग-तरंगिणी'' नामक एक ग्रन्थ लिखा, इसमें यमन और फरदोस्त रागों का वर्णन है। जो मुस्लिम पद्धति के सुन्दर तत्वों की स्वीकारोक्ति का परिचायक है। तत्कालीन युग में संगीत मनोरंजन का एक प्रमुख साधन था। कैकुबाद के शासन में संगीत-सम्मेलनों का वर्णन स्वयं अमीर खुसरो ने किया था। खिलजी शासक जलालुद्दीन भी संगीत प्रेमी था। उसके दरबार में मुहम्मद शाह, नुसरत खातून और मेहर अफरोज जैसे संगीतज्ञ आश्रित थे। अलाउद्दीन खिलजी भी संगीत से लगाव रखता था।

ऐसा कहा जाता है, कि ''गोपाल नायक नामक दक्षिण का एक कवि एक बार अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में आया था, और खुसरो के साथ उसकी संगीत-प्रतियोगिता हुई थी''।[10]

सूफी संतों की धार्मिक उदारता के कारण सल्तनत-काल में संगीत को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। जिसे वे संगीत के स्थान पर 'समा' कहते थे। सूफी सन्तों की खानकाहों में इस प्रकार के संगीत सम्मेलन होने का वर्णन मिलता है।[11] तुगलक काल के प्रसिद्ध शेख निजामुद्दीन औलिया के संगीत प्रेम के कारण कट्टर मुस्लिम वर्ग उनका विरोधी था। सुल्तान गियासुद्दीन उन्हें धर्म-भ्रष्ट सिद्ध करना चाहता था। परन्तु वह अपने उद्देष्य में सफल नहीं हुआ। मुहम्मद तुगलक अपने पिता की अपेक्षा उदार था। उसे संगीत का चाव था। उसके दरबार में लगभग एक सहस्र उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। तत्कालीन प्रसिद्ध इतिहासकार अफीफ ने लिखा है कि ''फिरोज तुगलक संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान करता था। प्रत्येक शुक्रवार की नमाज के बाद संगीतज्ञ महल में एकत्रित होते थे और उसके सामने अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करते थे''।

जौनपुर का शर्की शासक इब्राहीम (1400-1436ई0) एवं उसका पौत्र हुसैन शाह शर्की (1457-1479ई0) संगीत प्रेमी थे।

उन्होंने सभी संगीतज्ञों को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। मेवाड़ के महाराणा कुम्भा खुद एक महान संगीतज्ञ थे। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर भी संगीत में रूचि रखते थे। उन्होंने संगीतज्ञों का एक विशाल सम्मेलन बुलाया था। ग्वालियर में शास्त्रीय संगीत परम्परा को जीवित रखा। लोदी शासक सिकन्दर लोदी भी संगीत प्रेमी था। परन्तु मुल्लाओं के डर से वह प्रकट रूप में संगीत-प्रेम प्रदर्शित नहीं करता था। परन्तु गुप्त रूप से वह संगीत-गोष्ठियों का रसास्वादन करता था। विजयनगर का शासक कृष्णदेव भी संगीत प्रेमी था। उसके शासन में अनेक संगीत ग्रन्थ लिखे गये।

मध्ययुग में किसी समय प्राचीन शास्त्रीय संगीत हिन्दुस्तानी और दक्षिणी भारतीय अथवा कर्नाटक संगीतज्ञों में विभाजित हो गया था। विद्वान इस प्रचलित धारणा पर एक मत नहीं है, कि हिन्दुस्तानी संगीत के प्रारम्भ का श्रेय अमीर खुसरो को था। किंतु इस बात में सन्देह नहीं कि उत्तरी भारत में प्राचीन शास्त्रीय संगीत पर कुछ सीमा तक फारसी संगीत के मौलिक स्वरूप और रचना में कोई अन्तर नहीं आया। विदेशी मुसलमान जो भारत में आये उनके पास स्वयं की कोई संगीत विद्या नहीं थी। हाँ केवल सूफी मुसलमान ऐसे थे जो अक्सर अर्द्ध-धार्मिक सम्मेलन संगठित करते थे। जिनमें कव्वालियाँ गायी जाती थी। संगीत का यही स्वरूप अर्थात कव्वाली ही दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक दिनों में प्रचलित था।

कट्टर मुलसमानों ने संगीत को निष्चित रूप से अधार्मिक कार्य माना और उसकी भर्त्सना की। किंतु कुरान ग्रन्थ के अधिकांष टीकाकारों का मत था, कि संगीत न तो अच्छा है और न बुरा।[12] दिल्ली सल्तनत के काल में भी संगीत के प्रति ऐसा ही उदासीन दृष्टिकोण था, और परिणामस्वरूप वही पर संगीत कला को अनियमित रूप से ही राज-दरबार द्वारा संरक्षण प्राप्त हुआ। फिर भी गुजरात के मुसलमान विद्वानों द्वारा संगीत पर ''गुनयात-उल-मुन्या'' सर्वप्रथम पुस्तक लिखी गयी, और शर्की सुल्तानों के समय ''संगीत शिरोमणि'' का संकलन किया गया।

संगीत शिरोमणि ग्रन्थ के संकलन में सहायता करने के लिए देष कि विभिन्न भागों से हिन्दू पण्डित तथा संगीत शास्त्री आर्मंत्रित किये गये थे। हुसैन शाह शर्की भी इस कला में अत्यन्त निपुण था। यह कहा जाता है, कि ''खियाल'' का आविष्कार उसी ने किया

था।[13] काश्मीर के जैनुद्दीन (1420-1470ई0) तथा दक्षिण के राज्यों के कुछ शासक संगीत से प्रेम करते थे। प्रान्तीय राज्यों के कुछ सुल्तानों विशेषकर मालवा और गुजरात के सुल्तानों ने संगीत को बढ़ावा दिया तथा संगीत शास्त्रियों को संरक्षण प्रदान किया। उदाहरण के तौर पर मांडू के बाज बहादुर इस कला के प्रति आसक्त थे। चौदहवीं शताब्दीं के अतं तक यद्यपि हिन्दू दार्षनिक विचारों तथा सिद्धान्तों का मुस्लिम मस्तिष्क पर कम प्रभाव पड़ा था। परन्तु हिन्दी गीतों (भक्तिगीत) और उनके कहने के ढंग ने, सूफी संतो को ही नहीं बल्कि हिन्दू और मुसलमानों को निकट ला दिया। ''सियार-अल-औलिया'' तथा 'जवामी-अल-कलीम' में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। जिनमें हिन्दी गीत मुसलमानों में विभोरता की भावनायें लायीं। ''कभी-कभी हिन्दी संगीत शेख निजामुद्दीन औलिया को बहुत उत्तेजित कर देते थे। जबकि फारसी की गजल उन पर कोई प्रभाव नहीं डालती थी''। जवामी-अल-कलीम में एक वार्तालाप हैं। जिससे पता चलता है, कि गेसूदराज के समय में भारतीय संगीत का अध्ययन किया जाने लगा था। हिन्दी के भक्ति गीतों ने समा में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति - पृष्ठ सं0-225
2. चौधरी एस0सी0राय - सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक भारत का इतिहास - पृष्ठ सं0-229
3. श्रीवास्तव परमानन्द लाल - मध्यकालीन भारत में हिन्दू मुस्लिम सद्भाव, पृष्ठ सं0-125
4. नूह-सिपेहर अनु0 रिजवी - खिलजी कालीन भारत, पृष्ठ सं0-179
5. वही, पृष्ठ सं0 179
6. श्रीवास्तव परमानन्द लाल - मध्यकालीन भारत में हिन्दू मुस्लिम सद्भाव, पृष्ठ सं0-127
7. रामनाथ - मध्यकालीन भारतीय कलायें और उनका विकास, पृष्ठ सं0-25
8. श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति - पृष्ठ सं0-228
9. खुराना के0एल0 - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति- पृष्ठ सं0-199
10. वृहस्पति - मुसलमान और भारतीय संगीत-पृष्ठ सं0-32,33
11. श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति - पृष्ठ सं0-227
12. श्रीवास्तव परमानन्द लाल - मध्यकालीन भारत में हिन्दू मुस्लिम सद्भाव - पृष्ठ सं0-127
13. सिंह रामफल - हिन्दू -मुस्लिम, सांस्कृतिक एकता का इतिहास - पृष्ठ सं0-131

दलित चेतना एवं साहित्य

डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.

साहित्य एवं साहित्यकार कभी दलित नहीं होता। वह सदैव कम्र: कमनीय एवं उच्चतम मानसिक भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित होता है। साहित्य का स्वरूप आलोचनात्मक या प्रतिक्रियात्मक अवश्य होता है किन्तु विचारशून्य नहीं। यहाँ आवश्यकता इस बात की है कि पहले यह मान लिया जाए कि साहित्य है क्या? अर्थात् जिसमें लोकमंगल की विराट भावना एवं उदात्त मानवीय मूल्यों का समावेश हो, उसे साहित्य कहते हैं। जहाँ साहित्य है वहाँ राहित्य हो ही नहीं सकता। साहित्य में सब कुछ सम्मिलित होने का भावनियोजित है। सामाजिक व्यवस्था को राजनैतिक दृष्टि से व्याख्यायित करने का अर्थ साहित्य नहीं है। जिस प्रकार मानव मूल्य मानवीय अन्तरात्मा से उद्भूत उच्चादर्श है उसी प्रकार साहित्य श्रेष्ठ मानव के मन की भागीरथी है। जैसे मूल्यों की महत्ता क्रियाशील जीवन में ही चरितार्थ होती है ठीक उसी प्रकार आचरण के आसंग से साहित्य का जन्म होता है।

मनुस्मृति में जिस वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख आया है वह जन्मना न होकर कर्मणाधारित है। जिस व्यक्ति में जिस प्रकार की दक्षता देखी गयी उसे उस वर्ण (समूह) के अन्तर्गत समझा गया। यही कारण है कि सन्त साहित्य में मानवीय संवेदन जितनी उभरकर आई वह अन्यत्र नहीं। जाति और वर्ण के थोथे और अनर्गल बन्धनों को निर्गुणियां सन्तों ने स्वीकार नहीं किया। क्योंकि इन्हीं बन्धनों ने मानव-मानव की एकता को खण्डित कर दिया और भेद-भाव, राग-द्वेष तथा परस्पर कलह का भाव दृढ़ से दृढ़तर होता गया। वर्णाश्रम धर्म की ऐसी जटिल ग्रंथियों का खोलना बहुत सहज न था परन्तु कबीर जैसे साधक सन्तों ने निर्भय हाकर एक स्वर से इसे तोड़ने का संकल्प ले लिया और इसकी असत्यता पर सम्यक रूप से विचार किया। सच तो यह है कि समस्त निगुर्ण साहित्य ने हमारी सांस्कृतिक चेतना के उस पहलू को प्रथम बार प्रस्तुत किया जिसे देखने और समझने की हमारी दृष्टि विलुप्त हो चुकी थी। वास्तव में भारतीय चिन्तनधारा का यह एक कलंक था जिसका प्रक्षालन, परिमार्जन अपरिहार्य था।

भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों में अखण्डता और जिस स्वरूप पर बराबर बल दिया जाता रहा उसका सुदृढ़ प्राचीरी प्रासाद जाति और वर्ण के झंझावातों में पूर्णतया ढह गया। किन्तु इस प्रासाद को पुनर्स्थापित करने का श्रेय भारतीय सन्तों को ही है। वैदिक धर्म, पौराणिकता, इस्लाम की कट्टरता आदि सबको इन श्रेष्ठ साहित्यकारों ने टकसालने का कार्य किया। जातिवाद और सम्प्रदाय से ऊपर उठने की जो दृष्टि भारतीय साहित्यकारों ने दी वह सचमुच बड़ी उपलब्धि थी।

मानवीय प्रेम और शान्ति भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता है। प्रेम और शान्तिभाव के व्यापक स्वरूप की अभिव्यंजना और उसकी सशक्त अभिव्यक्ति के कारण ही रहीम, रसखान, जायसी, कबीर, दयाबाई, रज्जोबाई, सहजोबाई, रैदास प्रभृत कवियों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है तथा जन-जन में रमे हुए हैं। वस्तुत: तत्त्व-चिन्तन के लिए अन्तदर्शन की प्रवृत्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती और साधक के लिए सत्य का बोध और आत्म-साक्षात्कार की उमंग उस साहित्य-साधना की समुज्जवल कड़ी है, इसीलिए अनुपमेय साहित्यकारों ने कहा- ''जाति-पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को कोई।

साहित्य और सर्जक को सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता किन्तु आज साहित्य और साहित्यकारों को भी राजनैतिक प्रदूषण परिधि में निहित स्वार्थों के लिए घसीटा जा रहा है। आज चारों ओर अम्बेडकर के साहित्य को लेकर कुत्सित बुद्धि वाले समवर्गी उनकी उच्चास्थाओं का खण्डन करने पर तुले हैं। किसी ऊँचे कद को सब दिशाओ से जोड़ना ही सबसे बड़ी भूल है। अम्बेडकर श्रेष्ठ राजनैतिक चिंतक हो सकते हैं। अत: समाज को उनके राजनैतिक वैदुष्य का लाभ लेना चाहिए। उनके समाज-दर्शन का उपयोग

होना चाहिए। लोकनायक तुलसी से लेकर गाँधी तक की सामाजिक दृष्टि समत्व योगमूलक था। वे समाज में समन्वय के प्रणेता थे, प्रकारान्तर से मानव मात्र क प्रात समदर्शी दृष्टि रखते थे।

आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण की उद्‌गाथा प्रकृति के जिस सूक्ष्म तत्त्व से प्रारम्भ किया वह है- विरहित क्रौंची। एक साधारण पक्षी का वियोग किसी मर्मी को आदि कवि बना देगा इसे कोई नहीं जानता था किन्तु उस रचना से प्रवाहित होने वाले मानवीय स्रोत को कोई भी अनदेखा नहीं कर सकता। शायद यही कारण है कि रामकथा परम्परा में बाल्मीकि रामायण को आधार ग्रन्थ माना गया। यदि वैदिक साहित्य से लेकर अद्यतन साहित्य तक दृष्टि-निक्षेप किया जाए तो तमाम सारे कवि-लेखक ऐसे हैं जो जन्मना दलित किन्तु कर्म से श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। साहित्यकार में जब आत्म-एकता के आधार पर समिष्टगत मानवीय भावों का जागरण होता है तभी वह और उसकी रचना कालातीत हो जाती है। लोक-जीवन और लोक-संवेदना को आधार बनाकर जिन साहित्यकारों ने अपनी वाणी उजागर किया वे निस्सन्देह जाति और वर्ण से कोसों दूर निकल गए। छायावादी साहित्य में निराला से अधिक अभिजात्य शायद ही कोई हो किन्तु निम्न वर्गों के प्रति सर्वाधिक संवेदना निराला के साहित्य में आई है। उनके हृदय में दलितों के प्रति अपार करुणा एवं सहानुभूति है इसी प्रकार तुलसी के राम, जटायु, विटप, पाषान, यवन, अजामिल तथा वनैले जीव-जन्तुओं तथा दलितों के प्रति उदारमना है। इसी प्रकार जो भी सृजनकर्ता अपने साहित्य का समर्पण लोक चेतना को करता है वह चाहे दलित हो अथवा अभिजन युगों-युगों तक अमर कृतिकार हो जाता है। वैसे तो व्यक्ति और समाज के मध्य एक स्वाभाविक गत्यात्मकता होती है, एक आन्तरिक वेग होता है। इसलिए यदि कोई बाहरी दबाव या तनाव न हो, कोई प्रतिबद्धता न हो तो सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना अबाध गति से विकसित होती रहती है। वह साहित्य जिसका विकास अयत्नज (भावयित्री प्रतिभा से) होता है, समाज पर उसका अमिट प्रभाव परिलक्षित होता है। समाज और साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं। अतः समरस परिस्थितियों में भौतिक एवं साहित्यिक विकास नैसर्गिक गति से चलता रहता है। ऐसा साहित्य जो किसी वर्ग, जाति, धर्म, पंथ या सम्प्रदाय को लक्ष्यकर सायास रचा जाता है वह रुढ़, संकुचित एवं समयसापेक्ष होता है तथा उसका रसोद्रेक भी खण्डवत होता है।

प्रत्येक व्यक्ति के कुछ मानसिक संस्कार होते हैं, उसकी एक विशेष चित्तवृत्ति होती है, उसके अनुसार वह उनकी उपादेयता को परखकर देखता है तथा अपने चिन्तन की पुष्टि करता है। समय परिवर्तनशील है। समय के साथ-साथ सामाजिक मानदण्ड एवं साहित्य का स्वरूप भी परिवर्तित होता है। इसे स्वीकारने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। आधुनिक चिंतन में मूल्य संकट, नैतिकता का ह्रास तथा आदर्शों के अभाव का मूल कारण प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियाँ हैं। जीवन के वैषम्य, संघर्ष, द्वन्द्व, प्रतिस्पर्धा, शक्ति प्रदर्शन की विभीषिका ने मानव समाज एवं साहित्य के अस्तित्त्व को संकट में डाल दिया है। अवसर मिलने पर एक वर्ग दूसरे पर कीचड़ उछालने का कार्य करता है। विज्ञान के भयावह वास और आर्थिक उतार-चढ़ाव ने आज मानव जीवन को घोर तमस में डाल दिया है। आज के युग में लिखना चाहिए, यह बहुत कम लोग जानते हैं। आज जो कुछ लिखा जा रहा है वह सब साहित्य नहीं है बल्कि सनसनीखेज या चामत्कारिक खबर भले ही हो सकती है वही भी दष्टिकोणविहीन। ऐसा कोई भी लेखन जिसका उद्देश्य वैयक्तिक हित चिन्तन या निहित स्वार्थ है, साहित्य की कोटि में नहीं आ सकता। भारतीय विचारधारा और परम्परा प्राप्त जीवन-दर्शन के मूल तत्त्वों का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय मनीषा व्यक्ति विकास या व्यक्ति सुख तक सीमित न होकर सम्पूर्ण संसार को सुखी और समृद्ध देखने में विश्वास करती है। भारतीय विचारकों की सोच व्यक्ति सीमा का अतिक्रमण कर समष्टि तक व्याप्त है और उस सोच में केवल भौतिक सुख ही नहीं वरन् मानसिक और अध्यात्मिक शान्ति का भी समावेश है।

आज राष्ट्र और धर्म के नाम पर अपवित्र भेद, बुद्धि की निष्ठा मूढ़ता पृथ्वी को रक्तरंजित कर रही है। परस्पर हिंसा से भी अधिक सांघातिक घृणा मनुष्य को पग-पग पर अपमानित कर रही है। मनुष्य के अन्दर अभी तक पशु जीवित है। वह पशु हमें यह समझने नहीं देता कि मनुष्य की वास्तविक शक्ति अक्रोध में है. क्षमा में है. दया में है, प्रेम में है पर दुःख कातरता में है। पाशविकता की सहायता से सिद्धि लाभ की दुराशा मनुष्य में विद्यमान है। दूषित लेखन में मानवता आत्मकेन्द्रित सुख की तलाश में भटककर करा रही है। यदि समष्टि सुख के उपाय खोजने का प्रयत्न किया जाय तो साहित्य में मानववाद की प्रतिष्ठा का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

संसार को सुखी बनाने के लिए किसी एक राष्ट्र वर्ण या जाति के अभ्युदय से कल्याण सम्भव नहीं है। समूचे विश्व के सुकृत्य एवं सत्साहित्य ही जागतिक कल्याण कर सकता है। जिस साहित्य में मात्र प्रवंचना है वह साहित्य टिकाऊ नहीं रह सकता। जिस वाङ्मय में अनुभव नहीं होता वह निष्प्रभ एवं निष्प्राण होता है। जिस साहित्य के अनुभव का स्वर होता है वही वाङ्मय जीवन्त

एवं चिरस्थायी होता है। वर्ण एवं जाति विषयक लेखन साहित्य नहीं वरन् लोकसृजन हो सकता है। संसार में मनुष्य मात्र की समानवृत्ति कभी नहीं हो सकती। अतएव साहित्य का स्वरूप सदैव एक-सा हो यह सम्भव ही नहीं है। आज के साहित्य में श्रद्धा कम तिरस्कार अधिक है। जिस साहित्य में श्रद्धा एवं तपस्या का भाव नहीं होता वह चाहे कितने ही पवित्र पंथ का साहित्य क्यों न हो, ज्ञानबोधक नहीं हो सकता। गीता में भगवान ने कहा है कि जो अधिकृत न हो एवं जिसमें तप एवं भक्तिमय समन्वय न हो तथा अनुभव विहीन हो, उससे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। वह लेखन जो अतीत से अछूता वर्तमान से विमुक्त तथा अनागत से असंपृक्त है, किसी भी समाज के लिए स्पृहणीय नहीं हो सकता। जो साहित्य सबसे ऊँचे दर्जे का है वह विद्वान के लिए उतना ही सुन्दर होता है जितना जनसाधारण के लिए। ऐसे साहित्य में अभिजात्य एवं दलित का कोई वर्गभेद नहीं होता। मुंशी प्रेमचन्द ने ठीक ही कहा है- 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममे गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं।'

जिस साहित्य में आत्मा की मुक्तावस्था एवं हृदय की रसदशा नहीं हाती, वह साहित्य सर्वाधिक भले हो पर स्थायी एवं रसवान नहीं हो सकता। आज व्यक्ति मानस का निरन्तर पतन, चारित्रिक हास व अनैतिकता में वृद्धि मूल्यहीनता की ओर संकेत करते हैं साथ ही साथ इसका प्रभाव साहित्य पर भी दिखायी देता है। हम आत्मवत् सर्वभूतेष देखने के पक्षधर हो गए किन्तु आत्मस्वरूप को अब तक नहीं समझ सके। हम साहित्य में भी पूर्वाग्रह एवं दुराग्रह को खोजते फिरते हैं मेरा विचार है कि साहित्य में समग्र और समग्र में साहित्य को देखने का प्रयास किया जाए तो श्रेयस्कर होगा।

संदर्भ सूची

1. दलित साहित्य - ओमप्रकाश वाल्मीकि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. दलित साहित्य: सम्वेदना के आयाम - पी0 रवि0, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. दलित साहित्य: नई चुनौतियाँ, डॉ0 कठेरियाँ, प्रभात प्रकाशन, 2016
4. गुलाम गिरी - ज्योतिबा फुले, बुद्धम प्रकाशन।
5. जाति-पाँति का विनाश - डॉ0 अम्बेडकर, बुद्धम प्रकाशन।

प्रसाद के काव्य में वर्ण वक्रता

डॉ० रश्मि कुमारी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कुमारी मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर

शोध सारांश

कविवर प्रसाद ऐसे विरल रचनाकार हैं, जिन्होंने अपनी काव्य लेखनी के बल पर विशिष्ट चेतना का अभिषेक किया है। प्रसाद 'काव्य और शास्त्र' दोनों के ज्ञाता थे। यही कारण है कि उनके काव्य में काव्य शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों का निदर्शन सहज ही हो जाता है। यद्यपि वक्रोक्ति के समस्त रूप चाहे वर्ण वक्रता हो या पदपूर्वाध वक्रता, या वाक्य व प्रकरण वक्रता सभी किसी न किसी रूप में प्रसाद के काव्य में विद्यमान है किन्तु इस शोध आलेख में केवल वर्ण वक्रता पर प्रकाश डाला गया है।

वक्रोक्ति शब्द का सामान्य अर्थ है- टेढ़ा, तिरछा या कुछ विचित्र। सामान्यतः वक्रोक्ति शब्द 'वक्र' तथा 'उक्ति' के योग से बना है। ''वक्रोक्ति काव्य-जीवितम् आचार्य भामह ने वक्रोक्ति को सर्वालंकार-प्रसू कहा है। इसी धारणा के फलस्वरूप वक्रोक्ति आगे चलकर स्वाभावोक्ति तथा रसोक्ति के समानान्तर एक वाङ्मय के रूप में विख्यात हुई तथा एक काव्य सिद्धान्त बनने लगी। वक्रोक्ति सिद्धान्त के अनुसार काव्य सौन्दर्य की उक्ति की विचित्रता में अन्तर्भूत है तथा विचित्र उक्ति ही काव्य की आत्मा है। इस दृष्टिकोण को लेकर आचार्य कुन्तक ने 10वीं शताब्दी में अपने नण्यमत की स्थापना करते हुए 'वक्रोक्ति जीवितम्' की रचना की। कुन्तक ने वक्रोक्ति को 'वैदग्ध्यभंगी-भणिति' कहा है।''[1]

''आचार्य आनंदवर्धन ने भामह के चिंतन का पिष्टपेषण करते हुए सभी अलंकारों को अतिशयोक्ति गर्भता तथा अतिश्योक्ति को सर्वालंकार रूपा कहा है।''[2]

संस्कृत आचार्यों के विभिन्न विचारों पर अधिक विमर्श न करते हुए प्रसाद के काव्य में सर्वप्रथम वर्ण-वक्रता पर विश्लेषणात्मक दृष्टि डालते हैं। वर्णों की आकृति से काव्य में एक अलौकिक सौन्दर्य उत्पन्न होता है, जो सहृदय की भावना को, उसकी चेतना को अति चौतन्यता की ओर उन्मुख करता है।

प्रसाद अप्रितम काव्य प्रतिभा के धनी है। उनका वर्ण-बोध अत्यंत सूक्ष्म एवं प्रखर है, अंग्रेजी के कीट्स तथा संस्कृत के बाण व कालिदास की तरह। वर्ण दृष्टि को सर्वाधिक आकृष्ट करने वाला तत्व है, सम्भवतः इसलिए प्रसाद ने अर्थ व्यंजना में चित्रात्मक की सृवित के लिए वर्ण-वैचित्रय पर विशिष्ट ध्यान दिया है। उन्होंने प्रसंगानुकूल सुगठित वर्ण विन्यास द्वारा प्रसंगों का चित्र जा खींचा है। इसलिए प्रसाद ने काव्य को ऐसा वर्षमय चित्र कहा है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है।''[3]

अपनी कलात्मकता से प्रसाद ने अपनी कल्पना को इस तरह अभिव्यक्त किया है कि वर्ण नवीन भाव बोधों की रमणीय व्यंजना करते प्रतीत होते हैं-

1. भरे क्रोध जल जलद युग, भिरत करत आघात।[4]
2. सुमन देखिए खिले खिलजात है।[5]

प्रसाद कृत 'चित्राधार' में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते है- जहाँ वर्ण वैभव की छटा कदम-कदम पर देखी जा सकती है।

चित चौन चाहत है
चाह में भरी है, चेति

चौत चन्द्र नेक तो
चकोरी को निहारिय[6]

'कानन-कुसुम', 'झरना' तथा 'लहर' प्रसाद के मुक्तक काव्य संग्रह है। कानन कुसुम की अधिकांश कविताएँ इतिवृत्तात्मक हैं, इनमें परम्परा का पालन है तथा भावों की गहनता एवं कलात्मक सौन्दर्य का अभाव है लेकिन इसके बावजूद कुछ कविताओं में भावनाओं की प्राजेल अभिव्यक्ति हुई है।''[7]

वस्तुत: विलक्षण वर्ण प्रयोग में प्रसाद की अदुभत प्रतिभा क, निदर्शन होता है, निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है- वर्ण मैत्री का माधुर्य देखते ही बनता है-

किसके तममय अन्तरतम में
झिल्ली की झनकार हो रही
स्मृति सन्नाटे से भर जाती
चपला ले विश्राम सो रही।[8]
हरितवन कुसुमित है द्रम वृन्द
बरसता है मलयज मकरन्द
स्नेहमय सुधा दीप है चन्द
खेलता शिशु होकर आनंद।[9]

प्रसाद के मुक्तक-काव्य में यमक वर्णाकृत्तियों के सुन्दर उदाहरण यत्र तत्र देखने को मिलते है। कवि ने विभिन्न वर्ण समूहों को इस प्रकार संयोजित किया है, कि वे नाद सौंदर्य की सृजित करते हुए पाठक को चमत्कृत करने की शक्ति से परिपूर्ण ही निम्न पंक्तियाँ इसकी बानगी भर है-

1. धूल का खेल लगे खेलने[10]
2. मिलने चलते जब दो कम आकर्षण भय चुम्बन बन।[11]

प्रसाद के खड़ी बोली के प्रबंध काव्यों में भी यत्र तत्र वर्ण वक्रता के उदाहरणों की भरगार है। चाहे 'प्रेम पथिक' हो या 'महाराणा का महत्व'। 'आंसू' हो या 'कामायनी' इनके साथ-साथ 'लहर' में संकलित 'अशोक की चिंता', 'पेंशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' आदि ऐतिहासिक कविताओं को इसी वर्ग में माना जा सकता है, क्योंकि ये सभी ऐतिहासिक कविताएँ अपने कलेवर में प्रबन्धात्मक है। 'आंसू' प्रसाद का उत्कृष्ट विप्रलब्भ काव्य है। इसमें प्रेम वेदना का निरूपण करते हुए प्रसाद ने अंतकरण की उन सम्पूर्ण भावनाओं का बड़ी तत्परता व तल्लीनता के साथ निरूपण किया है, जो युवा प्रेमी हृदय में हलचल मचाया करती हैं।''[12]

प्रबन्ध काव्यों में प्रसाद की महती प्रतिभा उद्घाटित हुई है। प्रसाद ने अपनी कल्पना से जिस भाव जगत का निर्माण किया है उससे उनकी प्रबंध रचनाओं में वर्ण विन्यास की अद्भुत छटा दृष्टिगोचर होती है- यथा

इस करूणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनि बजती।[13]
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी।[14]

'प्रेम-पथिक' में नायक द्वारा नायिका के पुन मिलन पर अतिशय आश्चर्य मिश्रित भाव शब्द केवल 'कहाँ' शब्द की प्रतिध्वनि से अत्यंत भाव परक एवं मनोहारी प्रतीत हो रहे हैं-

यथा-

यह कैसा है वेश? तुम्हारा वह सब वैभव कहा गया?
कहाँ स्निग्थ सौन्दर्य तुम्हारा? वह लावण्य कहाँ है अब?
वह सब अलस कटाक्ष कहाँ है? वे घुंघराले बाल कहाँ।[15]

प्रसाद ने मूलरूप से काव्य जगत को अपनाया किन्तु उनका कवि कथ न केवल उनके काव्य जगत तक जीवित रहा वरन उन्होंने अपने नाटकों में भी अपनी इस छवि को बरकरार रखा। डॉ0 नगेन्द्र लिखते हैं ''प्रसाद मूल रूप में कवि है और उनका यह कवि रूप उनके नाटकों में भी पूर्ण आधिपत्य एवं गरिमा के साथ मुखरित हुआ है। इसलिए उनके नाटक मधुवेष्ठित हैं तथा उनमें काव्य की अटल गहराई है।[16]

अनुप्रास मिश्रित, वर्णावृत्तियाँ विचारों, भावनाओं व कल्पनाओं को उद्धेलित करने में पूर्ण सक्षम है। कुछ नाटक गीतों की पंक्तियाँ सहज ही उल्लेखनीय हैं- वर्गान्त वर्ण वक्रता के उदाहरण दृष्टव्य हैं-

यह किरणों की कोमलधारा
बहती ले अनुराग तुम्हारा
फिर भी प्यासा हृदय हमारा
व्यथा घूमती मतवाली है।[17]

× × × × ×

मधु माधव ऋतु की रजनी
रसीली सुन कोकिल की तान
सुखी कर साजन को सजनी
छबीली छोड़ हठीली मान।[18]

प्रसाद के नाट्यगीतों में भावों के अनुकूल वर्ण संघटना ने जिस वैचित्र्य व लालित्य को बल दिया है, उनकी उत्कृष्ट झलक निम्न कविताओं से स्पष्ट ध्वनित हो रही है यथा-

कही तड़प कर गिरे न बिजली
कही न वर्षा हो कालिमा की।
तुम्हें न पाकर शशांक मेरे,
बना शून्य यह हृदय नहीं है।।
तड़प रही है कही कौकिला,
कही पपीहा पुकारता है।
यही विरूद्ध क्या तुम्हें सुहाता,
कि नील नीरद सदय नहीं है।''[19]

हिमाद्री तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमत्र्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञा सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है- बढ़े चलो, बढ़े चलो।।[20]

प्रसाद की ये ओजस्वी पंक्तियाँ अपनी वर्ण संयोजन क्षमता के कारण पाठक व सहृदय के मन में ओज व जोश को भरने में सक्षम है।

वर्ण वक्रता की दृष्टि से प्रसाद के महाकाव्य 'कामयनी' को मुख्य स्थान दिखा जा सकता है- जिसमें आचार्य कुन्तक द्वारा निरूपित वर्ण वक्रता का सुन्दर संयोजन सहज रूप में सर्वत्र बिखरा हुआ है। कामायनी में वर्णावृत्तियाँ अद्‌भुत नाद सौन्दर्य उत्पन्न

करती हुई है वर्ण विन्घस की स्वाभिपर वक्रता को सुन्दर रूप में उकेरती प्रतीत होती है, तथा कति की सम्पूर्ण अनुभूति को उद्घाटित करते हुए उसके प्रभाव को हियुणित कर देती है- कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-

इस सुकुमाकर के कानन के
अरुण पराग पटल छाया में,
इठलाती सोती जगती ये
अपनी भाव भरी माया में।[21]

'कायामनी' में ऐसे वर्गान्त वर्णों से युक्त स्पर्शी वर्णों की वक्रता की मधुर विलास दर्शनीय है जहाँ कवि ने अपने सूक्ष्म वर्ण बोध का गहन निदर्शन किया है यथा-

सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का-साा जब सानन्द[22]

× × × ×

तुम फूल उठोगी लतिका-सी
कम्पित कर सुख सौरभ तरंग[23]

आचार्य कुन्तक ने चमक अलंकार का पृथक-अस्तित्व न मानकर उसे वर्ण वक्रता की श्रेणी में ही रखा है। प्रसाद की कृतियों में यद्यपि चमक का प्रयोग अल्पांश में हुआ है- किन्तु कामायनी की कुछ पंक्तियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण बन पड़ी है। यथा-

देव! बता दो, अमर वेदना
लेकर कब मरना होगा।[24]

× × × ×

मैं सुरभि खोजता भटकूँगा।[25]
वन-वन बन कस्तूरी कुरंग

कामायनी में नाद-सौन्दर्य का भी विलक्षण प्रयोग हुआ जो पूरे महाकाव्य में यत्र-तत्र बिखरे हुए है, जो वस्तु स्थिति का वास्तविक रूप चित्रित करने में पूर्ण सफल प्रतीत होते हैं यथा-

छप-छप का होता शब्द विरल,
धर-धर कंप रहति, दीप्ति तरल।[26]

स्पष्ट है कामायनी के वर्ण विन्यास में ध्वन्यात्मक वर्णों का सौन्दर्य विलक्षण ही बन पड़ा है। प्रसाद ने नादात्मक सौन्दर्य लाने के लिए अपने प्रयासों में कोमलता एवं मसृणता का संचार करने के लिए खड़ी बोली के कितने ही तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। अस्तु कामायनी में वर्णों का कुशल संयोजन देखने को मिलता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रसाद अनुभूति प्रणव कवि की श्रेणी में आते हैं। निसन्देह उनका काव्य मन वीणा को झंकृत करने में पूर्ण रूपेण सक्षम है। प्रसाद के वर्ण न केवल नाद की अनुभूति कराते है, वरण हमारी भावनाओं को भी जगाते प्रतीत होते है। कविवर प्रसाद ने अपनी कृतियों में कहीं भी वर्णगत सौंदर्य में कहीं भी अर्थवक्ता को मंदिम नहीं होने दिया है। निश्चय ही प्रसाद का काव्य वर्ण वक्रता के कोमल रंगों से रंग कर नवीन आभा से प्रदीप्त हो उठा है।

संदर्भ सूची:

1. हिन्दी वक्रोकित जीवितम्, पृ0 10
2. हिन्दी ध्वन्यालोक पृ0 394-395
3. स्कन्दगुप्त पृ0 12
4. उर्वशी, पृ0 19
5. चित्राधार पराण, पृ0 169

6. चित्राधार मकरन्द बिन्दु, पृ0 182
7. प्रसाद काव्य का नया मूल्यांकन- डॉ0 युगेश्वर, पृ0 34
8. झरना (विवाद), पृ0 29
9. झरना (असंतोष), पृ0 39
10. झरना, पृ0 75
11. झरना, पृ0 30
12. आसू भाव्य- डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ0 16
13. आंसू, पृ0 8
14. आंसू, पृ0 15
15. प्रेम पथिक, पृ0 24
16. आधुनिक हिन्दी नाटक, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 10
17. एक घूट, पृ0 23
18. जनमेजय का नाग यज्ञ, पृ0 53
19. आजात शत्रु, पृ0 69
20. चन्द्रगुप्त, पृ0 117
21. कामायनी रहस्य सर्ग, पृ0 242
22. कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ0 57
23. कामायनी, ईष्यासर्ग, पृ0 147
24. कामायनी, आशासर्ग, पृ0 37
25. कामायनी, ईष्यासर्ग, पृ0 147
26. कामायनी, दर्शनसर्ग, पृ0 228
27. कामायनी में, काव्य, संस्कृति और दर्शन, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सैना, पृ0 210

हिन्दी में प्रेमाख्यान (सूफी) परम्परा का प्रवर्तन एवं विकास

डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), कालीचरण पी०जी० कॉलेज, लखनऊ

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के आरम्भ से पूर्व ही एक ऐसी काव्य परम्परा का प्रवर्तन हो चुका था, जिसे विभिन्न विद्वानों ने विविध नामों से पुकारा है, यथा- प्रेममार्गी (सूफी) शाखा, प्रेम काव्य, प्रेमकथानक काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, सूफी काव्य इत्यादि[1] अर्थात् भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अन्तर्गत सन्त काव्य एवं सूफी काव्य नामक ये दो शाखाएँ विकसित हुई हैं। नाम से ही स्पष्ट है कि इस शाखा में प्रेम तत्त्व की प्रधानता परिलक्षित होती है। इसमें उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। यह स्वच्छन्द प्रेम है, जिसे अँग्रेजी में 'रोमांस' कहा गया है। इस प्रेम भावना में शुद्ध स्वच्छन्दतापूर्ण दृष्टिकोण, साहसपूर्ण क्रियाकलाप व सौन्दर्य भावना विद्यमान रही है एवं यह मर्यादावादी दाम्पत्य प्रेम से हटकर है। यह स्वच्छन्द प्रेम समाज की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता है। हिन्दी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान ग्रन्थों में इसी 'रोमांस' का चित्रण किया गया है। यद्यपि इन प्रेमाख्यानकों में अनिवार्यत: सूफी धर्म की मान्यताओं का निरूपण है किन्तु सभी प्रेमाख्यानकों में नहीं। सूफी कवियों का मुख्य उद्देश्य जन जीवन में प्रेम का सन्देश फैलाना ही रहा था और इसीलिए उन्होंने प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना की। साथ ही यह सूफी मतवाद कभी भी जीवन की उपेक्षा करके नहीं चला।

इस काव्य परम्परा के उद्गमस्त्रोत व पूर्व परम्परा के सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप में कह सकते हैं कि यह परम्परा 'महाभारत' के प्रेमाख्यानों से लेकर अपभ्रंश के कवियों तक अनेक रूपों, तत्त्वों तथा प्रवृत्तियों को ग्रहण करती हुई और गुजरात, राजस्थान व अवध प्रदेश में होती हुई आधुनिक भाषाओं में पहुँची। यह भारतीय साहित्य की एक सर्वाधिक दीर्घ, सशक्त व व्यापक परम्परा है, जिसका प्रसार उत्तर भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में हुआ है। कीलर, बेनफी व हर्टेल जैसे महान् यूरोपीय विद्वानों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि भारतीय प्रेमाख्यानों की ही एक शाखा सिकन्दर के साथ यूनान में पहुँची थी, जो क्रमश: रोम, इटली, जर्मनी, स्पेन तथा इंग्लैण्ड की विभिन्न भाषाओं में विकसित होती हुई समस्त यूरोप में फैल गई। विश्व साहित्य में इसी शाखा या परम्परा को 'रोमांस काव्य की धारा' कहा जाता है।

प्रेम व त्याग सूफीमत की वह भित्ति रही है, जिस पर प्रेम साधना का भव्य मन्दिर निर्मित हुआ है। ब्रह्म तादात्म्य प्राप्त करना ही इन सूफिय्यों का परम लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति ये सांसारिक त्याग, आन्तरिक पवित्रता एवं आध्यात्मिक चिन्तन के माध्यम से करते हैं। इस आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति ये सूफी साधना द्वारा करते हैं। सूफी साधना के चार पड़ाव (या स्थितियाँ) हैं- शरीअत (कर्म काण्ड), तरीकत (उपासना काण्ड), हक़ीक़त (ज्ञान काण्ड), मारिफत (सिद्धावस्था)।[2] सूफीमत में जिन विभिन्न स्थितियों तथा विधियों का विधान हुआ है, उनके द्वारा अन्त में आत्ममिलन की स्थिति ही आती है जिसे 'फना' (लौकिक जीवन की समाप्ति) एवं 'बकघ' (अलौकिक जीवन की प्राप्ति) कहा गया है।[3] इन चारों पड़ावों का चित्रण इन काव्यों में हुआ है।

सूफ़ियों का मुख्य उद्देश्य अधिकाधिक सामंजस्य व समन्वय को स्थापित करना रहा है। नि:सन्देह सूफी काव्यों में भारतीय आध्यात्मिक तत्त्वों का योग मिलता है। इस काव्य परम्परा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं, यथा- इसमें अधिकांश कवि मुसलमान हैं, जिन्होंने मसनवी शैली का प्रयोग किया है। ये काव्य ग्रन्थ स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण करने वाली साहसिक प्रेम कथाओं के अन्तर्गत आते हैं। प्रेमाख्यानकों का नामकरण प्राय: नायिका के नाम पर किया गया है। इनमें सभी कथानक रूढ़ियों का पालन हुआ है। ये रूढ़ियाँ

हैं- स्वप्नदर्शन या चित्रदर्शन से प्रेम उत्पन्न होना, मन्दिर या उपवन में नायक-नायिका का मिलन, अलौकिक शक्तियों द्वारा सहायता, उड़ने वाली राजकुमारियाँ इत्यादि। लोक पक्ष व हिन्दू संस्कृति का चित्रण प्रायः सभी प्रेमाख्यानकों में है। शृंगार रस की प्रधानता एवं वस्तु वर्णन प्रमुख हो गया है। खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति का अभाव, दोहा-चौपाई शैली व अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है। इसमें कहीं-कहीं रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी है। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की साधना इनका लक्ष्य है तथा काव्य परम्परा के कवियों ने नायिका को परमात्मा एवं नायक को जीवात्मा के रूप में चित्रित किया है।

हिन्दी में इस परम्परा के प्रवर्तन व विकास के सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'मृगावती' (1501) के रचयिता कुतुबन को इस परम्परा का प्रथम कवि, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ईश्वरदास की 'सत्यवतीकथा' (1500) को इस परम्परा की प्रथम कृति, डॉ0 रामकुमार वर्मा ने मुल्ला दाऊद के 'चन्दायन' (1379) से इस परम्परा का प्रवर्तन स्वीकार किया है, परन्तु प्राचीन प्रेमाख्यान 'हंसावली' जिसकी रचना असाइत द्वारा 1370ई0 में की गई थी, इसकी ओर इन विद्वानों का ध्यान नहीं गया। इसलिए इस प्राचीन हिन्दी प्रेमाख्यान को ही इस परम्परा के प्रवर्तक काव्य के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि इससे पूर्व कोई अन्य ऐसा काव्य नहीं प्राप्त हुआ है।[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नूर मुहम्मद से सूफी परम्परा की समाप्ति मानी है, परन्तु नए तथ्यों के प्रकाश में यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि यह धारा सन् 1917 ई0 तक चलती रही। सम्भवतः नसीर का 'प्रेम दर्पण' इस परम्परा की अन्तिम रचना मानी गई है।[5]

'हंसावली' कृति में राजस्थानी भाषा के प्राचीन रूप का प्रयोग हुआ है। डॉ0 मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तक 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में स्पष्ट रूप से लिखा है कि भाषा की दृष्टि से इस कृति को निःसंकोच राजस्थानी (हिन्दी) में स्थान दिया जा सकता है। असाइत ने इस कृति का रचनास्त्रोत विक्रम एवं बैताल की कथा को बनाया है। इसमें कवि ने प्रेमकथा व वीरकथा दोनों रूपों का चित्रण किया है। विषयवस्तु व शैली की दृष्टि से इसमें वे सभी प्रवृत्तियाँ उपलब्ध हैं जो भारतीय प्रेमाख्यानों की विशेषता रही है, यथा- स्वप्नदर्शन द्वारा प्रेमोत्पत्ति, योगी वेश में नायक का घर से निकलना, साहसपूर्ण यात्रा, पूर्व जन्म की स्मृति, कन्यापक्ष द्वारा नायक के मार्ग में अवरोध, दैवी शक्ति की सहायता से नायक-नायिका का मिलन इत्यादि। यह काव्य शैली की दृष्टि से भी हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा का प्रथम प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है।

मुल्ला दाऊद की 'चन्दायन' इस परम्परा का दूसरा काव्य है। डॉ0 माताप्रसाद गुप्त के अनुसार इस रचना का प्रारम्भिक अंश दोनों परम्पराओं में समाहित हो सकता है, परन्तु मुख्य रूप से इसकी रचना प्राकृत अपभ्रंश साहित्यों की परम्परा में कडवकों में की गई है तथा प्रत्येक कडवक चौपाई की पाँच अर्द्धालियों व एक दोहे या मिलते-जुलते छन्द का है।[6] डॉ0 श्याम मनोहर पाण्डेय के कथनानुसार, ''सूफी प्रेमदर्शन का समस्त परिपार्श्व 'चन्दायन' में प्रस्तुत किया गया है। प्रेम का मरण मार्ग, नखशिख आदि में अलौकिक सौन्दर्य का संकेत, नायक और बाजुर आदि की मूर्च्छाएँ- सभी सूफी तत्त्वों की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं।''[7] इसकी भाषा अवधी एवं शैली भावानुकूल व सरल है।

दामोदर कवि की कृति 'लखनसेन-पद्मावतीकथा' (1459ई0) वीरकथा है, किन्तु वास्तव में इसमें राजा लक्ष्मणसेन व राजकुमारी पद्मावती के प्रथम दर्शनजन्य प्रेम का चित्रण रोमानी शैली में हुआ है। छन्द योजना में चौपाई के अतिरिक्त दोहा, सोरठा आदि का भी प्रयोग किया गया है। भाषा राजस्थानी व शैली में इतिवृत्तात्मकता अधिक है। कवि ने इस कृति में बीच-बीच में संस्कृत की उक्तियों के साथ ही कामशास्त्र व नायिकाभेद के शास्त्रीय तत्त्वों का भी समन्वय यत्र-तत्र किया है।

'सत्यवतीकथा' (1501) के रचयिता ईश्वरदास हैं, जो सगुणोपासक भक्त थे, जिन पर सूफीमत का आरोपण सम्भव नहीं हुआ है किन्तु सौन्दर्य, प्रेम व विरह के निरूपण तथा अवधी भाषा, दोहा-चौपाई शैली आदि की दृष्टि से ये हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा के उच्चकोटि के कवियों में से एक माने जा सकते हैं।

कुतुबन कृत 'मृगावती' में दर्शनजन्य प्रेम का निरूपण अत्यन्त भावात्मक शैली में हुआ है। परम्परागत प्रेमाख्यानों की विभिन्न प्रवृत्तियों का भी इसमें समन्वय अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया है। कथा की परिणति अपभ्रंश के जैनकाव्यों की परम्परा के अनुसार शान्त रस में होती है। भाषा अवधी, दोहा-चौपाई छन्दों के प्रयोग के साथ इस रचना की शैली में प्रायः सरलता, प्रवाह व सरसता दिखाई दी है।

'माधवानल-कामकन्दला' (1527) नामक कृति में रचयिता गणपति ने प्रेम का निरूपण अत्यन्त रोमांचक शैली में किया है। इसकी भाषा राजस्थानी है। छन्द योजना की दृष्टि से इसमें केवल दोहे का प्रयोग हुआ है। सौन्दर्य, प्रेम, शौर्य के साथ ही इसमें धार्मिक तत्त्वों व नैतिक उपदेशों का भी समन्वय किया गया है।

जायसी कृत पद्मावत (1540ई0) इस परम्परा का प्रौढ़तम काव्य माना जाता है। अवधी भाषा एवं दोहा-चौपाई शैली में रचित यह महाकाव्य स्वीकार किया गया है। इसकी कथावस्तु का पूर्वार्द्ध कल्पित व उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक माना जाता है। जायसी ने इस महाकाव्य में सूफी काव्यों में प्रचलित 'मसनवी शैली' का आश्रय लिया है। इसमें शाहेवक्त 'शेरशाह' की प्रशंसा की गई है। नागमती का वियोग वर्णन हिन्दी के श्रेष्ठ विरह वर्णनों में गिना गया है। साहित्यकार 'विजयदेव नारायण साही के अनुसार, जायसी की 'पद्मावत' हिन्दी में अपने ढंग की एक अकेली ट्रैजिक कृति है।'[8] कवितत्त्व एवं भावव्यंजना की दृष्टि से 'पद्मावत' अत्यन्त उच्चकोटि का काव्य है। इसे उच्चकोटि का प्रबन्ध काव्य भी स्वीकार किया गया है।

इसमें पद्मावती के सौन्दर्य, नागमती के विरह, रत्नसेन के साहस, त्याग व शौर्य की व्यंजना अत्यन्त प्रभावोत्पादक शैली में अभिव्यक्त हुई है। भारतीय कथाकाव्य की इसमें प्राय: सभी रूढ़ियों व प्रवृत्तियों का नियोजन सफलतापूर्वक हुआ है। काव्य की शैली में सर्वत्र प्रौढ़ता व गम्भीरता परिलक्षित होती है। छन्द योजना में नियमित रूप से चौपाई व दोहे का प्रयोग हुआ है। मध्यकालीन आख्यानों में विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान को गुम्फित करने की भी प्रवृत्ति रही है। भारतीय दर्शन, ज्योतिष, कामशास्त्र, पाकशास्त्र, बागवानी, शस्त्रविद्या इत्यादि के परम्परागत ज्ञान का गुम्फन इसमें चेष्टापूर्वक किया गया है।

जायसी द्वारा रचित अन्य काव्यों में 'अखरावट', 'आख़िरी कलाम', 'चित्ररेखा', 'कहरानामा', 'मसलानामा' इत्यादि उल्लेखनीय हैं। 'चित्ररेखा' एक लघु प्रेमाख्यान व शेष अत्यन्त छोटी-छोटी रचनाएँ हैं जो कवि की विचारधारा के विभिन्न पक्षों व नए-नए प्रयोगों के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

मंझन कृत 'मधुमालती' में प्रेम के उच्च व उदात्त स्वरूप की व्यंजना की गई है, जिसमें कवि पूर्णत: सफल हुआ है। सामान्यत: हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायक को बहुपत्नीवादी दिखाया गया है, किन्तु यह प्रेमाख्यान इसका अपवाद है। इसमें अवधी भाषा व दोहा-चौपाई के प्रयोग के साथ ही शैली में सरलता व सरसता दृष्टिगोचर होती है।

कल्लोल कवि द्वारा रचित 'ढोला-मारू रा दूहा' राजस्थानी प्रेमाख्यान है। प्रेम व विरह की मार्मिकता की दृष्टि से यह अत्यन्त उच्चकोटि का काव्य है। काव्य शैली की दृष्टि से भी यह परम्परागत प्रेमाख्यानों से भिन्न है और इसमें केवल दोहों का प्रयोग हुआ है।[9]

'माधवानल-कामकन्दला चौपाई' (1556) की रचना कुशललाभ द्वारा की गई है। इसमें चौपाइयों के बीच-बीच में दोहा, सोरठा, गाथा आदि का प्रयोग हुआ है एवं इसकी भाषा राजस्थानी है।

नन्ददास द्वारा रचित 'रूपमंजरी' (1568) में प्रेमाख्यान परम्परा की विभिन्न प्रवृत्तियों का समन्वय करते हुए रूपमंजरी व कृष्ण के प्रेम का चित्रण अत्यन्त स्वच्छन्द रूप में किया गया है। यह ब्रजभाषा में रचित है। इसमें दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग हुआ है। काव्यत्व की दृष्टि से यह रचना अत्यन्त प्रौढ़ व मार्मिक है। इसमें कवि का लक्ष्य वैवाहिक बन्धनों का विरोध करते हुए परकीया भाव या उपपत्ति रस की स्थापना करना है, जिसका समर्थन उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया है। कवि ने इसमें नायिका के रूप सौन्दर्य, प्रणय वेदना, विरह इत्यादि के निरूपण में अतिशयोक्तिपूर्ण शैली का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य प्रेमाख्यानक काव्यों में जैन श्रावक जटमल की 'प्रेमविलास-प्रेमलता की कथा' (1556ई0), आलम कवि की 'माधवानल-कामकन्दला' (1584), नारायणदास की 'छिताई वार्ता' (1590), उस्मान की 'चित्रावली' (1613), पुहकर की 'रसरतन' (1618), शेख नबी की 'ज्ञानदीप' (1619) प्रसिद्ध रही हैं। जान कवि ने 78 काव्य ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें 29 प्रेमाख्यान हैं। सर्वाधिक प्रेमाख्यानों की रचना करने का श्रेय इन्हें ही जाता है। इसके अतिरिक्त नल दमयन्ती सम्बन्धी प्रेमाख्यान काव्य में नरपति व्यास व मुकुन्द सिंह का नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं के नाम हैं- 'नल दमयन्ती' (1625), 'नल चरित्र' (1641)।[10]

हिन्दी का सम्पूर्ण सूफी प्रेमाख्यान काव्य मसनवी काव्य रूप में ही रचित रहा है। अरबी-फारसी लोक भाषा काव्य में वर्णमाला क्रमानुसार प्रणाली से काव्य रचना करने का प्रचलन रहा है जो मनोरंजन हेतु मौखिक रूप में प्रचलित थी। यह परम्परा सूफिध्यों द्वारा भारत में प्रविष्ट होकर यहाँ के सन्तों को प्रभावित करने में समर्थ हुई। इस सन्दर्भ में उद्धृत है- ''वस्तुत: सन्तों में इस प्रकार के काव्य रूप की रचना फारसी प्रभाव का ही द्योतन करती है। फारसी में 'अलिफनामा' का बहुत प्रचलन रहा है। इसके अन्तर्गत कवियों ने सम्पूर्ण वर्णमाला के अक्षरों को लेकर पद्य रचना की है। जायसी ने इसी पद्धति पर 'अखरावट' भी लिखा है। सन्तों को 'ककहरा' या 'अलिफनामा' की रचना में फारसी कवियों से ही प्रेरणा मिली।''[11] हिन्दी के इन प्रेमाख्यानों में मुख्य रूप से

दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यान ('ढोला-मारू रा दूहा', 'बीसलदेव रास', 'लखनसेन पद्मावती' आदि), कामपरक प्रेमाख्यान ('मधुमालती', 'रसरतन', 'सदयवत्स सावलिंगा', 'माधवानल-कामकन्दला प्रबन्ध' इत्यादि), सतपरक प्रेमाख्यान ('छिताई वार्ता', 'मैनासत' आदि) तथा अध्यात्मपरक प्रेमाख्यान ('रूपमंजरी', 'प्रेमप्रगास', 'वेलिक्रिसन रुकमणी री', 'पुहुपावती' इत्यादि) उभरकर सामने आए हैं।[12]

निष्कर्षत: प्रेमाख्यान (सूफी) परम्परा ही हिन्दी की एक ऐसी काव्य परम्परा है, जिसका प्राकृत, संस्कृत व अपभ्रंश की कथाकाव्य परम्परा से सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ है और जिसमें भारतीय साहित्य परम्परा की विभिन्न कथानक-रूढिघ्यों व काव्य प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व विद्यमान है। इसे मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की सबसे दीर्घ व व्यापक परम्परा कहा जा सकता है। लोकाश्रय में मुक्त रूप में पोषित होने वाली यही एक परम्परा है, जिसने मध्ययुगीन जनता की काव्य रूचि व मनोरंजन की अभिलाषा को रोमांचक आख्यानों द्वारा तुष्ट किया है तथा इसने जनसाधारण के ज्ञानकोश में अभिवृद्धि करने में भी सहायता पहुँचाई है। नि:सन्देह ये प्रेमाख्यान मानवीय हृदय की नैसर्गिक भावनाओं के काव्य रहे हैं। इनमें प्रेम की स्निग्ध पुकार, विरह की तड़प व आत्म समर्पण का आग्रह है और इसीलिए ऐसी रचनाएँ हमारे हृदय को सहज ही स्पर्श करती हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 हरदयाल, पृष्ठ 135, संस्करण चालीसवाँ 2012, मयूर पेपरबैक्स नोएडा।
2. हिन्दी कविता: इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में (12वीं शताब्दी-14वीं शताब्दी) प्रथम खण्ड, जमीला अघली जाफरी, पृष्ठ 68-69, संस्करण प्रथम 1975ई0, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
3. वही, पृष्ठ 70 ।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 हरदयाल, पृष्ठ 152, संस्करण चालीसवाँ 2012, मयूर पेपरबैक्स नोएडा।
5. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ0 श्याम मनोहर पाण्डेय, पृष्ठ 5-6, द्वितीय संशोधित संस्करण सितम्बर 1982, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
6. चान्दायन, भूमिका, पृष्ठ 16 ।
7. हिन्दी कविता: इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में (12वीं शताब्दी-14वीं शताब्दी) प्रथम खण्ड, जमीला अघली जाफरी, पृष्ठ 165, संस्करण प्रथम 1975ई0, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
8. हिन्दी साहित्य और सम्वेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 43, संस्करण बाइसवाँ 2011 व पुनर्मुद्रण 2014, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 हरदयाल, पृष्ठ 157-158, संस्करण चालीसवाँ 2012, मयूर पेपरबैक्स नोएडा।
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ 169-171, सत्ताईसवाँ पुनर्मुद्रित संस्करण 2000, मयूर पेपरबैक्स नोएडा।
11. काव्य रूपों के मूल स्त्रोत और उनका विकास, डॉ0 शकुन्तला दूबे, पृष्ठ 398, संस्करण प्रथम 1958ई0, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।
12. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, श्याम मनोहर पाण्डेय, पृष्ठ 13, द्वितीय संशोधित संस्करण सितम्बर 1982, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

अकबर के अन्तर्गत प्रशासनिक एकीकरण

डॉ० सुशील कुमार सिंह

एसोसियेट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर (उ.प्र.) - 228 118

शोध सारांश

प्रस्तुत आलेख का प्रमुख उदेश्य अकबर के अंतर्गत मुगल शासन - व्यवस्था और उस पर अकबर की विकसित नवीन विश्वदृष्टि सुलह-ए-कुल के प्रभावों के ऐतिहासिक अध्ययन का विश्लेषण करना है। अकबर के अंतर्गत प्रशासनिक ढांचे का विकास क्रमिक विकास की प्रक्रिया तथा एक लंबे काल के प्रयोग एवं अनुभव का परिणाम था। तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत मे तुर्को के अंतर्गत दिल्ली सल्तनत नामक एक स्वायत्त राजनीतिक सत्ता की स्थापना हुयी। यह भारत मे सर्वथा नवीन प्रकार के शासन की स्थापना थी। इसके साथ भारत मे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों पर दूरगामी प्रभाव पड़े। प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत भी नवीन तत्व जुड़े। जब हम सल्तनत कालीन प्रशासनिक ढांचे पर दृष्टिपात करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि इसने कई विभिन्न कारकों से प्रेरणा पायी, तथा यह कई तत्वों का मिश्रण है। दूसरे शब्दों में इसका आरंभिक ढांचा अब्बासी खलीफा के अंतर्गत तैयार हुआ किंतु इस पर सलजुक एवं गजनवी पद्धति का भी प्रभाव पड़ा। इसके विकास में ईरानी मॉडल का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा, साथ ही भारत में प्रचलित मॉडल ने भी इस ढांचे को प्रभावित किया। सल्तनत काल मे फारसी संस्थाओं को देशी परिस्थितियों के अनकूल ढाला गया। फिर मुगल काल में इसने सुदृढ़ आधार ग्रहण किया जो मुख्यत:अकबर की देन है। अकबर ने न केवल केंद्रीय प्रशासन में एक अधिक विकसित ढांचे को स्थापित करने का प्रयास किया वरन उसने पहली बार एक मानक प्रांतीय प्रशासन की भी नीव डाली। अकबर के अंतर्गत प्रशासनिक ढांचे की दो विशेषतायें थी। एक प्रशासनिक एकरूपता और दूसरी रोक और संतुलन। फिर उसका विचार था कि शासक और धर्म गुरु को अलग - अलग नही होना चाहिए बल्कि एक होना चाहिए नही तो राज्य पर संकट आ सकता है। यही कारण है कि वह महजरनामा के माध्यम से दोनों का प्रधान बना। फिर उसका विश्वास था कि सभी गुणों के रहते हुए भी यदि शासक में सभी धर्मों को समान रूप से स्वीकार करने का दृष्टिकोण नही है तो वह शासक पद के लिए अयोग्य है।

कुंजी शब्द- सुलह-ए-कुल, महजरनामा, धर्मिक सहिष्णुता, शासन-व्यवस्था, प्रशासनिक एकरूपता।

मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर और उसका उत्तराधिकारी हुमायूँ दोनों नवस्थापित मुगल साम्राज्य के उत्तर भारत मे विस्तार और उसको सुदृढ करने के उद्देश्य से लगातार युद्धों में व्यस्त रहे। उन्हें साम्राज्य के स्थायित्व के लिए एक उन्नत प्रशासनिक ढांचे के निर्माण का अवसर न मिला। 'मुगल प्रशासनिक व्यवस्था और उसके आधारभूत सिद्धान्त प्रतिभाशाली अकबर की ही देन है।'[1] अकबर शेरशाह की शासन पद्धति से भी प्रभावित था। अकबर ने तुर्क-अफगान शासन पद्धति में आवश्यकतानुसार संशोधन और परिवर्धन किये। अकबर के अंतर्गत मुगल राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था विभिन्न राजनीतिक आदर्शों और परंपराओं के समन्वय एवं मिश्रित स्थिति को दर्शाता है। मुगल राजनीतिक व्यवस्था में अरबी - फारसी और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के तत्वों का एक स्पष्ट संश्लेषण दृष्टिगोचर होता है। जैसे मुगल राज्य के विभिन्न विभाग, पद फारसी अथवा ईरानी प्रभाव को दर्शाते हैं, मुगल राज्य में पारस्परिक अधीक्षण के सिद्धांत, अंकुश और संतुलन का सिद्धांत अरबी प्रभावों को दर्शाता है तो स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था, भू-राजस्व व्यवस्था में भारतीय व्यवस्था के तत्व स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार मुगल सरकार भारतीय तथा गैर भारतीय तत्वों का सम्मिश्रण थी। यदि ठीक -ठीक कहें, तो कह सकते हैं कि 'यह भारतीय वातावरण में ईरानी अरबी प्रणाली थी।'[2] फिर

इसी के साथ मुगल राजनीतिक व्यवस्था के विकास में अकबर के शासकीय दृष्टिकोण का भी एक विशेष महत्व रहा। अकबर के अंतर्गत मुगल साम्राज्य की प्रकृति अखिल भारतीय थी। उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा एक सार्वभौम शासक बनने की थी न कि किसी वर्ग विशेष या धर्म विशेष के लोगो का शासक होने की। उसके सुलह- ए-कुल के आदर्श उसकी प्रशासनिक व्यवस्था में भी परिलक्षित होते हैं। 'अकबर को भलीभांति ज्ञात था कि साम्राज्य को दीर्घकालीन बनाने के लिये शासक को राजतंत्र की सीमित, संकुचित एवं संकीर्ण अवधारणा (राजतंत्र का इस्लामी सिद्धान्त) को अस्वीकार करना चाहिए और राज्य के धर्मिक स्वरूप को बदलकर धर्मनिरपेक्ष स्तर लाना चाहिए।'[3] अकबर ने धर्मनिरपेक्षता को शासन संचालन की नींव बनाया। बिना धार्मिक भेदभाव के अपने राज्य में निवास करने वाली सभी प्रजा के प्रति प्रशासनिक एकरुपता की नीति अपनायी। सभी के रक्षा, उन्नति और सुख के लिए प्रयास किये। उदाहरण के लिए मुगलो के अन्तर्गत अभिजात्य वर्ग मिश्रित किस्म का था। मनसबदारी व्यवस्था में भी सभी वर्गों के व्यक्तियों को उनकी योग्यता एवं प्रतिभा के अनुसार स्थान एवं पदोन्नति दी जाती थी।

अकबर का केंद्रीय प्रशासन- केंद्रीय प्रशासन में कई विभागों की स्थापना की गयी। उनके कार्य तथा दायित्व स्पष्ट किए गए। किन्तु उनमें स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता न थी। 'उनका कार्य बादशाह के आदेशों एवं उसकी इच्छाओं को कार्यन्वित करना था। बादशाह उनकी नियुक्ति करता तथा उन्हें अपदस्थ कर सकता था।'[4] और फिर विभिन्न विभागों के बीच उचित रोक और संतुलन स्थापित किया गया। फिर प्रशासनिक अधिकारियों के सार्वजनिक और निजी जीवन से सम्बंधित अचार सहिंता भी अकबर ने स्थापित कर दी ताकि वे साम्राज्य के मजबूत स्तंभ के रूप में रहें।

बादशाह- प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। दिल्ली के सुल्तान खलीफा का नायब थे जबकि मुगल पादशाह थे, अत: ये सम्प्रभु और सर्वशक्तिमान थे। सर्वशक्तिमान की धारा निरंकुश थी। कार्यपालिका, विधानपालिका और न्यायपालिका की शक्तियां उसमे निहित थी। वह धार्मिक व्यवस्था का भी प्रधान था। उत्तराधिकार के नियम में वंशानुगत तत्व को जोड़कर बादशाह की स्थिति को और भी मजबूत बना दिया गया। व्यवहार में वह अक्षुण्ण शक्तियो का उपभोग करता था उसके अनेक विशेषाधिकार थे। 'सिद्धान्त रूप में मुगल साम्राज्य में केंद्रीकृत निरंकुश प्रशासनिक व्यवस्था थी।'[5] परंतु औपचारिक रूप से उसके शक्ति पर कुछ सीमायें थी। फिर अकबर एक स्वेच्छाचारी शासक नही था। 'सर्वशक्तिमान होते हुए भी अकबर ने एक उदार तानाशाह की ही तरह शासन किया।'[6] अकबर के शासन का सैद्धांतिक आदर्श 'फरें इजदी' से निर्देशित हुआ था यानी कि शहंशाह में खुदाई नूर होता है और इस आधार पर उसके गुणों के कारण उसकी सत्ता बुनियादी सीमाओं और प्रश्नों से परे हो जाती थी। उसके गुण पितृवत शासन, जिसने उचित और अनुचित के बीच भेद करने की विशिष्ट योग्यता थी और अनुचित को दंडित करना उसकी जिम्मेदारी थी। उचित और अनुचित का भेद विवेक सम्मत होता था। विवेक उदारता और करुणा जैसे दो तत्वों से निर्देशित होता था और फिर यह शासक अपनी बुद्धिगत क्षमता के आधार पर धर्म की सम्मत व्याख्या करने में सक्षम होगा और धर्म के अनुसार यह ऐसे व्यवहार का आदर्श रखेगा जिसमें हर गुलाब के फूलों से कांटो को निकाल दिया जाएगा और पूर्ण शांति या सब के लिए शांति का आदर्श 'सुलह -ए -कुल' विकसित होगा। इस आधार पर अबुलफजल के अनुसार- 'फरें इजदी का बुनियादी तर्क यह बना कि अल्लाह अपने मानने वाले और ना मानने वालों के बीच फर्क नहीं करता है उसी के नूर से रोशन यह शासक भी धर्म विशेष के मानने और नहीं मानने वालों के बीच फर्क नहीं करता।' डॉक्टर आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव के शब्दों में- 'कुरान के सिद्धांत के अनुसार मुगल सम्राट केवल मुसलमानों का ही शासक था अर्थात वह अमीरुल मोमिनीन अथवा सच्चे धर्म (इस्लाम) के मानने वालों का प्रधान था और शासक के रूप में मुस्लिम जनता का नाम मात्र का उत्तरदायी था।.....बाबर और हुमायूँ इस्लाम धर्म में बताये गये राजा के कर्तव्यों पर विश्वास रखते थे और यथाशक्ति कुरान के नियमों का पालन करते थे, किंतु अकबर स्वेच्छाचारी सकता अत: वह इस्लाम धर्म में बताये गये राजा के कर्तव्यों को मान कर मुसलमानों का अमीरुल मोमिनीन न बना। अकबर में जाति और धर्म का कोई पक्षपात न था, अत: वह अपनी सारी प्रजा का ही शासक था। उसका विश्वास था कि हजारों गुणों के रहते हुए भी यदि शासक के हृदय में धार्मिक सहिष्णुता नहीं है और वह सभी धर्म और जाति के मनुष्यों का समान रूप से आदर नहीं नहीं करता, तो वह शासक जैसे महान पद के लिए सर्वथा अयोग्य है।'[7]

केंद्रीय प्रशासन के विभाग- केंद्रीय प्रशासन के महत्वपूर्ण विभागों में प्रथम विभाग वकील का विभाग था। मध्य एशियाई और तिमूरी परंपरा में उसे अत्यधिक शक्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वह सरकार की विभिन्न शाखाओं जिनमें राजस्व विभाग एवं सेना विभाग भी शामिल थे कि निगरानी करता था। उदाहरण के लिये बाबर के वकील निजामुद्दीन मुहम्मद खलीफा तथा हुमायूँ के वकील हिन्दू बेग वित्तीय मामलों के निरीक्षण के साथ -साथ युद्ध मैदान में सेना का भी नेतृत्व करते थे। फिर आगे वकील के पद पर

बैरम खां की नियुक्ति के साथ वकील की शक्ति और बढ़ गयी। बैरम खां के उदाहरण और अन्य मुस्लिम राजतंत्रों से प्रेरित होकर अकबर ने वकील के अधिकारों में अत्यंत कमी कर दी और उसे चार विभागों के बीच बांट दिया। यद्यपि अभी अधिकारी तंत्र के पदानुक्रम में उसकी स्थिति सर्वोच्च बनी रही। आगे इस पद का महत्व और कम होता चला गया। कभी - कभी लंबे अंतराल तक इस पद को खाली रखा गया उदाहरण के लिये जहाँगीर के शासनकाल के के पहले चार एवं इक्कीसवें वर्ष के अतिरिक्त वकील का पद प्राय: खाली ही रहा। शाहजहाँ ने अपने शासनकाल के पहले चौदह वर्ष तक आसफ खां को वकील के पद पर रखा और फिर इस पद को समाप्त कर दिया। किंतु अभी भी यह एक प्रतिष्ठित पद था जो किसी वरिष्ठ अमीर को दिया जाता था। अकबर ने वकील पद के अधिकार एवं कर्तव्यों को जिन चार विभागों में बांटा था ये विभाग निम्नलिखित थे-

1. वजीर या दीवान का विभाग- प्रशासनिक मामलों के अतिरिक्त ये राजस्व संबंधी समस्त प्रशासन राजस्व निर्धारण, राजस्व वसूली तथा आय- व्यय के ब्यौरे से संबंध विभाग था। राजकीय कोष का निरीक्षण तथा लेखा संबंधी जांच करना उसका प्राथमिक कार्य था।यह प्रत्येक विभाग में होने वाले सभी लेन - देन एवं भुगतानों का व्यक्तिगत तौर पर निरीक्षण करता था।वजीर के रूप में उसकी स्थिति प्रधानमंत्री के सदृश थी। 'वित्त मंत्री के रूप में वह प्रमुख दीवान अथवा दीवान -ए-आला कहलाता था। उसके अधीन अनेक प्रांतीय दीवान होते थे।'[8] वह सभी प्रांतीय दीवानों से प्रत्यक्ष संबंध रखता था तथा वे उसकी निगरानी में कार्य करते थे। उसके अनुमोदन के बिना नियुक्ति तथा पदोन्नति संबंधी कोई नया आदेश जारी नहीं किया जा सकता था। फिर अकबर इस बात के प्रति भी अत्यधिक सजग था कि कहीं दीवान का पद अत्यधिक शक्तिशाली ना हो जाए। अकबर ने दीवान की शक्ति पर नियंत्रण रखने के लिए उसे राज्य की वित्तीय स्थिति का ब्यौरा प्रतिदिन प्रस्तुत करने का आदेश दिया। फिर अकबर के दीवान बहुत मामूली सामाजिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति थे तथा उन्होंने राजस्व मामले में अपने ज्ञान तथा अनुभव के कारण इस पद को प्राप्त किया था। यद्यपि वे सम्राट के अधिक करीब हुआ करते थे तथापि उन्हें उन्हें आम तौर पर ऊँचे मनसब नहीं दिए जाते थे। इसके अतिरिक्त एक ही साथ दो -दो, तीन -तीन दीवानों को नियुक्त कर दिया जाता था ताकि वह एक दूसरे पर उचित रोक और संतुलन स्थापित कर सकें।
2. मीर बख्शी का विभाग- सल्तनत काल में भी यह विभाग मौजूद था परन्तु वह दीवान- ए-अर्ज के नाम से जाना जाता था। फिर मीर बक्शी की शक्ति और प्रभाव दीवान-ए-अर्ज से ज्यादा थी। क्योंकि सभी अमीरों को एक सैनिक दर्जा या मनसब दिया जाता था। यह सैनिक विभाग का प्रधान था किंतु वह प्रधान सेनापति नहीं था। यह साम्राज्य का सबसे बड़ा भुगतान अधिकारी था। वह सम्राट के पास मनसबदारों की नियुक्ति तथा पदोन्नत की अनुशंसा करता था। सम्राट के समक्ष्य सैन्य विभाग संबंधी सभी मामले रखता था। वह व्यक्तिगत तौर पर घोड़े के दाग तथा सैनिकों की उपस्थिति की जाँच करता था। सूबे में आने वाले और दरबार की नियुक्ति पर बाहर जाने वाले सभी उच्च पदाधिकारियों को बादशाह के सम्मुख मीर बक्शी पेश करता था। राजमहल की सुरक्षा के लिए सैन्य प्रबंध भी वही करता था। वह प्रांतीय बख्शीयों और वाकया नवीसों से सीधा संपर्क रखता था। वह यात्रा, शिकार और युद्ध क्षेत्र आदि में सम्राट के साथ रहता था। दरबार मे मनसबदारों के ओहदे के अनुसार उनका स्थान निर्धारित करना भी उसी का काम था। दरबार मे उसकी इस जिम्मेदारी के कारण उसका सम्मान काफी बढ़ गया था। केंद्र में मीर बक्शी की सहायता के लिये दो अन्य बक्शी भी होते थे। मीर बक्शी के पद पर भी उचित रोक और संतुलन की व्यवस्था थी। उदाहरण के लिए मीर बक्शी मनसबदारों की नियुक्ति की अनुसंशा करता था। बादशाह व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर संबंधित मनसबदार की नियुक्ति करता था। फिर मीर बक्शी उसके तनख्वाह की अनुसंशा जागीर अथवा नगद के रूप में करता था। फिर दीवान -ए -आला के विभाग से उसके जागीर का निर्धारण होता था।
3. मीर समाँ अथवा खानसामा का विभाग- यह शाही हरम का प्रधान माना जाता था। शाही परिवार की जरूरतों की देखभाल करता था। सल्तनत काल मे राजघराने की देख-रेख के लिये ऐसा कोई अलग विभाग नही था। यही राजकीय कारखानों का अधिकारी भी होता था। युद्ध के अस्त्र से लेकर विलास की वस्तुओं तक के उत्पादन का निरीक्षण करना भी उसका उत्तरदायित्व था। सम्भवत: इस विभाग का स्पष्ट विकास जहाँगीर के काल मे हुआ क्योंकि अकबर के काल मे हम मीर-ए-समाँ नामक अधिकारी के बदले दीवान ए- बयूतत की चर्चा सुनते हैं। आगे इस पद का महत्व काफी बढ़ गया था तथा यह पद किसी विश्वस्त मनसबदार को ही दिया जाता था। फिर इस पद पर भी रोक और संतुलन स्थापित करने की उचित व्यवस्था की गयी थी। उदाहरण के लिये वह सीधे बादशाह के अधीन था परन्तु धनराशि आवंटित कराने और लेखा परीक्षण के लिये उसे दीवान से संपर्क करना पड़ता था।

4. सद्र-उस-सद्र (केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्धित)- केंद्रीय प्रशासन से संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण विभाग सद्र उस सद्र का विभाग था। 'सद्र-उस-सद्र' धार्मिक मामलों का प्रधान होता था। यह साम्राज्य के सभी सद्रो का प्रधान होता था। धार्मिक मामलों में वह अकबर का प्रमुख सलाहकार था। उसका मुख्य कार्य शरीयत के कानून का संरक्षण करना था। वह काजी और मुफ्तियों के नियुक्ति का पर्यवेक्षण भी करता था।'[9] वजीफा तथा सयूरगल का वितरण करना भी उसका दायित्व था।वह कभी कभी प्रमुख न्यायाधीश का भी काम करता था। परन्तु महजर की घोषणा के बाद उसके पद का महत्व कम हो गया था। अकबर के शासन काल मे अब्दुल नवी ने इस पद का दुरुपयोग किया फलत: अकबर ने उसे इस पद से हटाया। 1579 में अकबर ने इस विभाग से सम्बंधित दो महत्वपूर्ण परिवर्तन किए-प्रथम तो उन्हें मदद-ए-माश के आवंटन की अनुशंसा मात्र करने का अधिकार दिया गया और दूसरी नीति यह थी कि इस पद पर ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति दी जाय जो सुलह-ए-कुल में विश्वास करे। शाहजहाँ के शासनकाल तक मुख्य सद्र और मुख्य काजी का पद एक ही व्यक्ति को दिया गया। औरंगजेब के काल मे ये दोनों पद अलग-अलग कर दिए गये। इससे सद्र की शक्ति में और कमी आयी।

प्रांतीय प्रशासन- अकबर के काल में प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, मानक प्रांतीय प्रशासन के ढांचे का विकास। सल्तनत काल मे साम्राज्य का विभाजन विभिन्न भागों में किया गया था परंतु उस काल मे सीमांकित प्रान्तों का विकास नही हुआ था। फिर आगे बाबर तथा हुमायु का शासनकाल अल्प रहा। वे इस दिशा में कोई निश्चित कदम नही उठा सके। आगे शेरशाह का शासनकाल प्रशासनिक संरचनाओं के विकास में एक बृहत्तर प्रयोग का काल था किंतु इस काल मे स्थानीय प्रशासन का एक मानक ढांचा अवश्य विकसित हुआ परन्तु प्रांतीय प्रशासन का कोई मानक ढांचा विकसित नही हो सका। अत: मानक प्रांतीय प्रशासन के विकास का श्रेय अकबर को दिया जाता है। '1581 में पूरे साम्राज्य को बारह सूबों- बंगाल, बिहार, इलाहाबाद, अवध, आगरा, दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, काबुल, अजमेर, मालवा और गुजरात में विभक्त किया गया।'[10] बाद में बरार, खानदेश और अहमदनगर भी सूबा बन गए इस प्रकार अकबर के अंतिम दिनों में सूबों की संख्या पन्द्रह हो गयी थी।

साम्राज्य को स्पष्ट सीमांकित क्षेत्रों (सूबों) में विभाजित करने के बाद उन पर एक निश्चित संख्या में तथा एक निश्चित स्तर के अधिकारियों की नियुक्ति की गयी। प्रांतीय प्रशासन में केंद्रीय सरकार का बेहतर नियंत्रण बनाए रखने के लिए विभिन्न अधिकारियों के बीच रोक और संतुलन स्थापित किया गया। प्रत्येक सूबा कई सरकारों (जिलों) में, सरकार परगनों (महालों) में तथा परगने गावों में बँटे थे। शाहजहाँ के शासनकाल में चकला नामक प्रशासनिक इकाई जो कई परगनो से मिलकर बनी थी सामने आयी। प्रांतीय प्रशासन केंद्रीय प्रशासन का छोटा रूप था। इसमें निम्नलिखित प्रमुख अधिकारी होते थे-

1. सूबे का प्रशासक सिपहसालार (नाजिम) कहलाता था, जिसे जनसाधारण की भाषा मे सूबेदार कहते थे। इसकी नियुक्ति खुद बादशाह करता था। आमतौर पर इसका कार्यकाल तीन वर्ष का होता था। यह प्रांतीय स्तर पर राजनैतिक और सैनिक दोनों प्रकार के कर्तब्यों का निर्वाह करता था तथा उसका मुखिया था। कानून व्यवस्था, कृषि, व्यापार-वाणिज्य और जनकल्याणी कार्यो को प्रोत्साहित करने वाला सूबेदार सफल माना जाता था।
2. प्रत्येक सूबे में वित्त विभाग का सर्वेसर्वा एक वित्तीय अधिकारी भी होता था, जिसे प्रांतीय दीवान कहते थे। यह स्वतंत्र अधिकारी था। यह सूबेदार के प्रति नही बल्कि सीधे केंद्रीय शाही दीवान के प्रति उत्तरदायी होता था। यह सूबे की राजस्व वसूली का निरीक्षण करता था तथा प्रान्तों में दीवानी मुकदमों का निर्णय भी करता था। इस प्रकार दीवान को सूबेदार से अलग करके और दीवान के हाथों में वित्तीय मामले देकर अकबर सूबेदारों की शक्ति पर अंकुश लगाने में सफल हुआ।
3. प्रांतीय प्रशासन से संबंधित एक अन्य अधिकारी प्रांतीय बख्शी था। सम्राट द्वारा मीर बख्शी की अनुशंसा पर प्रांतीय बख्शी की नियुक्ति की जाती थी। यह प्रांतीय सूबेदार के प्रति उत्तरदायी होता था। उसके कार्य केंद्रीय मीरबख्शी के समान प्रांत स्तर पर होते थे।
4. प्रांतीय सदर और काजी 'ये दोनों पद साधारणत: एक ही व्यक्ति को दिया जाता था। यह धार्मिक और धर्मार्थ किये जाने वाले कार्यो का मंत्री होता था। उसकी नियुक्ति सम्राट केंद्रीय सदर के परामर्श से करता था। इसका कार्य क्षेत्र बहुत ही व्यापक था।'[11] जैसे उन व्यक्तियों का नाम भेजना जो वजीफा या जागीर प्राप्त करने के पात्र हैं, फौजदारी मामलों का निर्णय करना इत्यादि।
5. वाकिया नवीस तथा सवानह-नवीस-यह सूबे के गुप्तचर विभाग का प्रमुख होता था।
6. कोतवाल- बड़े नगरों व सूबे की राजधानी में कोतवाल नियुक्त होते थे। यह मुख्य नगर पुलिस का प्रधान था।

7. मीर बहर- जल सेना का प्रधान होता था। यही नाव और पुलों की चुंगी तथा बन्दरगाहों पर कर वसूल करने का प्रबंध करता था।

इस प्रकार गहराई से अवलोकन करने पर क्या होता है कि अकबर ने प्रत्येक विभाग और संस्था को एक दूसरे से पृथक तथा स्वतंत्र रखकर प्रांतीय अधिकारियों पर नियंत्रण रखने में सफलता पायी। इसके अतिरिक्त सम्राट द्वारा सूबे के प्रशासन का निरीक्षण तथा लगभग तीन साल की अवधि में पदाधिकारियों के स्थानांतरण आदि के माध्यम से प्रांतीय अधिकारियों पर बेहतर नियंत्रण बनाए रखा।

स्थानीय प्रशासन- फिर जैसा कि हम जानते हैं कि स्थानीय प्रशासन में एक मानक ढांचे का विकास शेरशाह के काल में ही हो चुका था। शेरशाह के अंतर्गत हमें स्पष्ट रूप से सरकार तथा परगना के स्तर पर प्रशासनिक इकाई की सूचना मिलती है। फिर मुगल काल में स्थानीय प्रशासन को और भी सक्षम बनाने का प्रयास किया गया।

सरकार (जिला) प्रशासन- प्रत्येक मुगल प्रान्त कई सरकारों में विभक्त था। अकबर के प्रांत में कुल 124 सरकारें थी।'[12] जिसका प्रशासन निम्नलिखित अधिकारियों द्वारा चलाया जाता था-

1. फौजदार- यह सरकार का कार्यकारी प्रधान होता था। फौजदार के कई प्रकार के दायित्व निश्चित किए गए जैसे क्षेत्रीय स्तर पर सेना का रखरखाव, निरीक्षण, भू-राजस्व वसूली में अमलगुजारो की सहायता करना तथा विद्रोही जमीदारों के विरुद्ध जागीरदारों को जमादामी की वसूली में सहयोग भी करना इत्यादि। इस प्रकार वह प्रजा पर मुगल सम्राट की इच्छा लागू करने वाली शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था।
2. अमलगुजार- सर्वप्रमुख राजस्व समाहर्ता था।इसका मुख्य कार्य अपने अधीनस्थ अधिकारियों के मध्यम से यह जिले के राजस्व वसूली का निर्धारण और निरीक्षण करना था।
3. बित्तिक्ची तथा खजानेदार- अमलगुजार के अधीन लिपिक या सचिव था ,जो लगान व भूमि संबंधी सभी कागजात तैयार करता था। खजानेदार जिले का खजांची था।

परगने का प्रशासन- यह सरकार से छोटी शासकीय इकाई थी। इसके प्रमुख अधिकारी थे-

1. शिकदार- यह परगने का कार्यकारी अधिकारी होता था।इसका मुख्य कार्य परगने में शान्ति कायम रखना और राजस्व वसूली में आमिल की मदद करना था।
2. आमिल- यह परगने का वित्तिय अधिकारी था तथा दीवानी मुकदमों का फैसला भी करता था)
3. कारकुन और फोतदार- यह कारकुन परगने के लिपिक होते थे तथा फोतदार परगने का खजांची होता था।
4. कानूनगो- यह परगने के पटवारियों का अधिकारी था,यह भूमि संबधी रिकॉर्ड रखता था एवं राजस्व जमा करता था।अबुलफजल के अनुसार कानूनगों किसानों का आश्रयदाता था क्योंकि वही फसलों और लोगो इत्यादि का पूरा विवरण रखता था।

ग्राम प्रशासन- यह प्रशासन की सबसे निचली इकाई थी। प्रत्येक परगने में अनेक गाँव होते थे। गाँवों को मौजा या मावदा या डीह कहा जाता था। इसका मुखिया मुकद्दम या चौधरी या पटेल कहलाता था। गाँव में शान्ति, कानून व्यवस्था की जिम्मेदारी मुकद्दम की होती थी। राजस्व वसूली का कार्य एक दूसरा अधिकारी पटवारी करता था, किन्तु गाँव के प्रशासन में उसका कोई बहुत महत्व नही था। मुकद्दम भू-राजस्व वसूली में उसकी सहायता करता था।ष्अबुल फजल गांव प्रशासन के संबंध में कोई जानकारी नहीं प्रदान करता संभवत अकबर ने पहले से चले आ रहे हैं गांव प्रशासन को मान्यता दी तथा उसमें हस्तक्षेप नहीं की।'[13]

इस प्रकार अकबर के अधीन एक सक्षम प्रशासनिक ढांचे का विकास हुआ जो न केवल डेढ़ सौ वर्षो तक मुगल साम्राज्य को जोड़े रखा। वरन मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात भी 18वीं सदी के अंत तक इसने विभिन्न भारतीय राज्यों तथा ब्रिटिश कंपनी की प्रशासनिक संरचना को प्रभावित किया। जहाँ तक उसके राजधर्म का उसके उत्तराधकरियों में निरंतरता का प्रश्न है तो 'जहाँगीर ने कुछ सुधारों के साथ अकबर के राजधर्म का पालन किया। किंतु जहाँगीर के शासनकाल में इस्लामी सिद्धांतों की ओर जाने की प्रवृत्ति पुनः प्रत्यक्ष दिखायी देने लगी। शाहजहाँ ने अकबर के सिद्धांतों का बिल्कुल ही त्याग कर दिया था और उसके पुत्र औरंगजेब ने इस्लाम में बताए गए राज- सिद्धांतों का पूर्ण रुप से पालन किया। औरंगजेब के बाद जो मुगल सम्राट हुए वे अत्यंत दुर्बल स्वभाव के होने के कारण उसके पद चिन्हों पर न चल सके किंतु उन्होंने भी इस्लामी राजधर्म पर अपना विश्वास सदा बनाए रखा।'[14]

यहाँ एक प्रश्न और महत्वपूर्ण हो जाता है कि अकबर के द्वारा स्थापित मुगल प्रशासन का झुकाव कहाँ तक केंद्रीकरण की ओर रहा।गहराई से विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि अकबर के अधीन स्थापित राज्य केंद्रीकरण की दृष्टि से पूर्व काल की तुलना में कहीं पर चढ़कर था। इस काल के प्रशासनिक ढांचे पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि यह क्रमिक विकास तथा निरंतर सुधार का परिणाम था। अकबर ने पूर्व काल की पद्धति से प्रेरणा ली तथा नवीन परिस्थितियों के अनुसार उसने उसमे सुधार भी किया। मुगल बादशाह अकबर को विरासत में एक ऐसी सरंचना प्राप्त हुई थी जो दिल्ली सल्तनत के अनुभवों पर आधारित थी। जैसा कि हमे ज्ञात होता है कि सल्तनत काल की प्रशासनिक संरचना में भारत मे प्रचलित सामंती पद्धति की तुलना में केंद्रीकरण का तत्व अधिक दिखता है। तुर्की शासन के अंतर्गत प्रशासनिक सुधारों के क्रम में केंद्रीकरण पर बल दिया गया। यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों के दबाव में राज्य को इस केंद्रीकरण के साथ समझौता भी करना पड़ा था। उदाहरण के लिये अमीर वर्ग के सहयोग और सामंजस्य पर बल दिया गया। फिर हिंदू कुलीनों के प्रति भी समझौतावादी रुख अपनाया गया एक दो अपवादों को छोड़कर ग्रामीण क्षेत्र में हिंदू कुलीनों का वर्चस्व बना रहा। फिर भू-राजस्व व्यवस्था में कमोबेश भारत में प्रचलित पद्धति ही कायम रही। किंतु आगे अकबर कालीन प्रशासनिक सरंचना में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को और प्रोत्साहन मिला। उसके काल में किए जाने वाले प्रशासनिक सुधारों का बल केंद्रीकरण पर रहा। किंतु कई बातों में तथा तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल इस केंद्रीकरण की कुछ सीमाएं भी बनी रहीं।

केंद्रीय प्रशासन से लेकर स्थानीय प्रशासन तक मुगल प्रशासनिक ढांचे की दो महत्वपूर्ण विशेषता थी। प्रथम प्रशासनिक एकरूपता द्वितीय रोक और संतुलन। अर्थात केंद्रीय प्रशासन में विभिन्न विभाग एक दूसरे पर रोक और संतुलन स्थापित करते थे।फिर इस काल में प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। सल्तनत काल के विपरीत जब प्रान्तीय प्रशासन, स्थानीय प्रशासन का कोई सम्यक ढांचा विकसित नही हो पाया था मुगल काल मे सक्षम स्थानीय और मानक प्रांतीय प्रशासन के ढांचे का विकास। फिर मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का एक अन्य महत्वपूर्ण अभिलक्षण था- मनसबदारी पद्धति का विकास। मुगल प्रशासन एक व्यापक ब्यूरोक्रेसी पर आधारित था। इसके माध्यम से अकबर ने अमीर वर्ग, सैन्य अधिकारी एवं नौकरशाही सभी को एक सूत्र में संगठित कर दिया। मनसबदारी मुगलों के अधीन केंद्रीकरण का एक महत्वपूर्ण अभिकरण बन गयी। फिर इसके माध्यम से अकबर ने ग्रामीण कुलीन वर्ग पर भी मुगल नौकरशाही को आरोपित कर दिया। फिर गहराई से पर्यवेक्षण करने पर प्रशासनिक केंद्रीकरण का तत्व हमें भू-राजस्व व्यवस्था में भी देखने को मिलता है। मुगलों के अंतर्गत राज्य ग्रामीण क्षेत्र में अपनी शक्ति एवं प्रभाव के विस्तार के लिए बहुत अधिक प्रयत्नशील था। इसके लिए कई प्रकार के कदम उठाए गये। प्रथम ग्रामीण क्षेत्र में पुराने जमीदारों के प्रभाव को सीमित करने के लिए मदद-ए-माश प्राप्तकर्ता के रूप में नए जमीदारों को स्थापित किया गया। दूसरे अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य का बल इस बात पर रहा कि अधिक से अधिक पेशकश देने वाले जमीदारों को खराज देने वाले जमीदारों में तब्दील कर दिया जाय। यही वजह है कि जमीदारों को भू राजस्व प्रशासन से जोड़ दिया गया है तथा राजस्व का दस प्रतिशत उन्हें नानकर के रूप में उन्हें प्रदान किया जाता रहा। फिर अकबर ने मौद्रिक एकरूपता पर भी बल दिया।

मुगल काल में राजत्व की गरिमा तथा तामझाम पूर्व काल की तुलना में कहीं बढ़ गये। मुगल बादशाह अपनी पैतृक परंपरा तिमूर और चंगेजखान से जोड़ते थे। अत: कोई मुगल अमीर उनसे बराबरी का दावा नही कर सकता था।राजत्व ने अर्धदैविक चरित्र ग्रहण कर लिया। फिर उत्कृष्ट स्थापत्यों के माध्यम से मुगल राज्य को एक दृश्य अभिव्यक्ति प्राप्त हुयी।

यद्यपि आधुनिक मानदंडों पर अगर हम इस केंद्रीकरण का परीक्षण करते हैं तो इसकी कुछ सीमाएं स्पष्ट होती है-

1. मुगल साम्राज्य विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था अत: इतने बड़े साम्राज्य में मध्य युग में प्रशासनिक एकरूपता जैसी चीज बड़ी दुर्लभ प्रतीत होती है। राज्य को निश्चय ही क्षेत्रीय स्तर पर प्रभावशाली तत्वों एवं कुलीनों के साथ समझौता करना पड़ा होगा।
2. उस काल में उन्नत यातायात एवं संचार के साधन का भी अभाव था अत: साम्राज्य के विभिन्न भागों में एक समान नियंत्रण जैसा उद्देश्य व्यवहारिक नहीं लगता।
3. उसी प्रकार मुगल नौकरशाही एक व्यवसायिक नौकरशाही ना होकर व्यक्तिपरक नौकरशाही ही बनी रही अत: यह केंद्रीकरण के महत्वपूर्ण अभिकरण के रूप में बहुत प्रभावी नहीं हो सकती।

फिर भी इतना तो माना जा की मध्ययुगीन मानदंडों पर मुगल साम्राज्य एक केन्द्रीत साम्राज्य का उदाहरण है तथा पूर्व साम्राज्यों की तुलना में अकबर के अंतर्गत केंद्रीकरण की दिशा में कहीं बढ़-चढ़कर प्रगति हुयी। यद्यपि इस केंद्रीकरण के मार्ग में कुछ बाधायें थी फिर भी राज्य का झुकाव केंद्रीकरण की ओर था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सरकार, जदुनाथ, मुगल शासन पद्धति, (अनु०) चौबे, विजयनारायण, पृ. 8
2. सरकार, जदुनाथ, मुगल शासन पद्धति, (अनु०) चौबे, विजयनारायण, पृ. 4
3. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, अकबरमहान, (अनु०) गुप्त, भगवानदास, भाग-2,पृ. 9
4. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, अकबरमहान, (अनु०) गुप्त, भगवानदास, भाग-2, पृ. 59-60
5. सरकार, जदुनाथ, मुगल शासन पद्धति, (अनु०) चौबे, विजयनारायण, पृ. 8
6. आइने अकबरी, भाग-1,पृ०4-9
7. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, अकबरमहान, (अनु०) गुप्त, भगवानदास, भाग-2,पृ. 443
8. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, भाग-2, पृ. 605
9. अकबरनामा, भाग-3, पृ. 282
10. आइनेअकबरी, भाग-1, पृ. 129
11. आइनेअकबरी, भाग-1, पृ. 141-349
12. प्रधान,दी पॉलिटिकल सिस्टम ऑफ दि जाट्स इन नार्दन इंडिया, पृ. 97-98
13. अहमद, लईक, मुगलकालीन भारत, पृ. 99
14. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, अकबरमहान, (अनु०) गुप्त, भगवानदास, भाग-2,पृ. 445

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सक्रियता का उनके पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में अध्ययन

चंद्रावती जोशी

एसोसिएट प्रोफेसर बी.एडण विभाग, एम. बी. राजकीय पी. जी. महाविद्यालय, हल्द्वानी जिला, नैनीताल (उत्तराखंड)

दीपेश चंद्र जोशी

एम. बी. राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, हल्द्वानी जिला, नैनीताल (उत्तराखंड)

सारांश

किसी भी राष्ट्र के भविष्य की बागडोर उसकी युवा पीढ़ी की सक्रियता पर निर्भर करती है, क्योंकि युवा पीढ़ी को ही राष्ट्र के विकास की रीढ़ माना जाता है। विद्यालयों में, महाविद्यालयों में पढ़ने वाली युवा ही कल समाज में जाकर समाज के विकास में अहम भूमिका निभाते हैं।

युवाओं की सक्रियता के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक उसका परिवार अर्थात उसका पारिवारिक वातावरण होता है। पारिवारिक वातावरण बालक को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि सभी अंगों पर प्रभाव डालता है।अत: युवाओं की सक्रियता के लिए पारिवारिक वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में "स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सक्रियता का उनके पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में" अध्ययन किया गया है। जिसमें कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं को सम्मिलित किया गया है। न्यादर्श तकनीक के रूप में यादृच्छिक तकनीक का उपयोग किया गया था। न्यादर्श का आकार 120 का था जिसमें 60 छात्र तथा 60 छात्राओं को सम्मिलित किया गया। प्रदत्तो के संकलन हेतु सर्वे विधि का प्रयोग किया गया तथा प्रदत्तो के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन तथा पियरसन आर गुणांक का प्रयोग किया गया। शोध अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि पारिवारिक वातावरण के आयामों में विद्यार्थियों के सक्रियता स्तर पर धनात्मक सह सम्बन्ध पाया गया।

प्रस्तावना - शिक्षा वह ज्योति है जो मानव के जीवन में अज्ञान रूपी अंधकार में उजाला प्रदान करती है। शिक्षा से ही व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है तथा व्यक्ति के विकास से ही परिवार समाज और संपूर्ण राष्ट्र का विकास होता है। किसी भी देश की उन्नति ,विकास एवं संपन्नता उस देश की शिक्षा पर निर्भर करती है, जो देश जितना शिक्षित होगा उतना अधिक विकसित होगा। शिक्षा का प्रथम उद्देश्य बालकों को संस्कार युक्त एवं श्रेष्ठ सामाजिक व्यक्ति बनाना है। बालक का सर्वांगीण विकास कई तत्वों पर निर्भर करता है जैसे मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, पर्यावरणीय इत्यादि का बालकों की सक्रियता तथा सामाजिक तथ्यों से सीधा संबंध होता है। सामाजिक अवधारणा के अंतर्गत बालक के माता-पिता, उसकी शिक्षा, परिवार आदि मुख्य रूप से आते हैं। यह सभी चर बालक की सक्रियता को प्रभावित करते हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रबुद्ध छात्रों की चेतना जागृत हो तथा वे अपनी और अपने आसपास की कठिनाइयों को समझें, उनके प्रति जागरूक हो एवं उन समस्याओं के समाधान में सकारात्मक योगदान प्रदान करें। राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रूप से भाग लेकर राष्ट्र के उत्थान में सहायता प्रदान करें, तथा व्यक्तिगत धरातल से ऊपर उठकर एक निश्चित तथा सार्थक परिवर्तन की दिशा में संपूर्ण रचनात्मक विवेक के साथ बड़े। युवाओं की सक्रियता के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक उसका परिवार अर्थात उसका पारिवारिक वातावरण होता है, पारिवारिक वातावरण बालक को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास के सभी आयामों पर प्रभाव डालता है। बालक का सर्वांगीण या बहुमुखी विकास तभी संभव है जब उसे अच्छे वातावरण में रखा जाए या वातावरण ऐसा हो जिसमें बालक की वंशानुक्रमी विशेषताओं का सही उपयोग हो सके।

आज का युवा छात्र भविष्य का भाग्य व भावी नागरिक है और प्रत्येक छात्र को हर क्षेत्र में सक्रियता के साथ अग्रसर होना चाहिए। विद्या द्वारा मानव के बौद्धिक स्रोतों का संचालन होता है तथा उसके वाह्य तथा आंतरिक गुणों का विकास होता है। अत: विद्या अर्जन कर रहे छात्रों से आशा की जाती है ,कि वह स्वयं को आदर्श व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करें। वर्तमान समय मे छात्रों की राजनीति से संबंधों के निषेध की बात कही जाती है और उसे तटस्थ रहने को कहा जाता है। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि आज का विद्यार्थी वर्ग आने वाले कल का जिम्मेदार वयस्क ही नहीं, समाज का सबसे संवेदनशील हिस्सा ही नहीं वरन अपने अंदर परिवर्तन की असीम छटपटाहट अनुभव करता हुआ सबसे अधिक ऊर्जावान हिस्सा भी है और इस ऊर्जा का सबसे प्रभावशाली कारक छात्र का पारिवारिक वातावरण है, जो उनमें यह ऊर्जा संकलित करता है तथा समय आने पर यह ऊर्जा परिलक्षित होती है। परिवार में ही मानवीय जीवन का विकास होता है इस हेतु घर में सुव्यवस्थित ,अनुकूल वातावरण, मनोवैज्ञानिक व भौतिक वातावरण के साथ सक्रियता का वातावरण होना आवश्यक है।अत: युवाओं को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय रहना चाहिए, चाहे वह राजनीति का ही क्षेत्र क्यों न हो।

सैनी 1978 छात्रों की पृष्ट्भूमि का अध्ययन करते हए पाया कि अधिकतर छात्र –कृषि सम्बन्धी पृष्ट्भूमि के थे। छात्र नेताओ ने माना की छात्र यूनियन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी समुदाय का सर्वांगीड़ विकास करना होना चाहिए। असवाल 1982 ने पाया की 52.5% छात्रों ने विभिन्न राष्ट्रीय ईस्टर की राजनैतिक पार्टियो में अपनी भागीदारी सुनिश्चित की अन्य संकायो की अपेक्षा कला और वडिजाय के छात्रों ने अधिक सक्रियता की।

सोलंकी 1984 के अनुसार छात्र नेतृत्व क्षमता व प्रभावपूर्ण स्थिति प्राप्त करने के लिए स्वच्छ व मजबूत राजनितिक सम्बन्धो के सन्दर्भ में आकर्षण गुणों का समावेश लिए होता है। टंडन 1990 ने अपने शोध में छात्र –सक्रियता से सम्बंधित सामाजिक –मनोवैज्ञानिक कारको का अध्ययन किया। अध्ययन में निष्कर्ष निकाला गया की सक्रिय छात्र निष्क्रिय छात्रों की तुलना में अधिक बुद्धिमान थे। 1998 ने एम. बी. ए व सी. ए और विधि छात्रों के व्यक्तितव, जीवन केंद्र और पारिवारिक वातावरण का तुलनातमक अध्ययन किया और पाया की एम बी ए व सी ए और विधि छात्रों के व्यक्तितव, जीवन केंद्र और पारिवारिक वातावरण में सार्थक अंतर था।

उपरोक्त शोधों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पारिवारिक वातावरण का सकारात्मक होना या ना होना विद्यार्थियों में सक्रियता के स्तर पर प्रभाव डालता है साथ ही छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को भी प्रभावित करता है। इस कारण पारिवारिक वातावरण एक प्रभावी कारक है विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने माना है पारिवारिक सहयोग न होने के कारण सक्रियता का स्तर सामान्य या सामान्य से कम होता है।

शोध का औचित्य प्रस्तुत शोध में स्नातक स्तर के विद्यार्थियोंकी सक्रियता का उनके पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में अध्ययन करनेका प्रयास किया गया है। सक्रियता से तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी कीराजनीतिक सक्रियता के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण है। उनके अभिभावक उस क्षेत्र के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण रखते हैं। वर्तमान समय में राजनैतिक क्षेत्र में चाहे वह क्षेत्र विद्यालय क्यों नहो सकारात्मक तथ्यों की अपेक्षा नकारात्मक पहलुओं को अधिक देखा जाता है, इस शोध के द्वारा यह सोच बदलने का प्रयास किया गया है। शोध के द्वारा शिक्षकों, अभिभावकों में राजनीतिक सक्रियता के प्रतिएक सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। जिससे कि वह अपने बालक के इस प्रकार के व्यवहारों को समझ सकें तथा नकारात्मक पक्षों को छोड़कर

उनके सकारात्मक पक्षोंको जानने की कोशिश करें। वर्तमान समय में राजनीति सक्रियता के अंतर्गत कई प्रकार केनकारात्मक पक्ष देखने को मिलते हैं जिस कारण अभिभावक नहीं चाहतेकि उनके बालक या पाल्य इस क्षेत्र में आगे जाएं या विद्यालयों में इसप्रकार के कार्यों में भाग लें तथा इस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करें। यह शोध इस प्रकार के नकारात्मक दृष्टिकोण को दूर करने के लिए एकमार्ग प्रशस्त करता है, जिससे कि आज का युवा वर्ग अपने कार्यों से इसनकारात्मकता को दूर करके इनसे जुड़े अनेक सकारात्मक पहलुओं कोअपने माता-पिता, अध्यापकों, साथियों तथा संपूर्ण लोगों के सामने प्रदर्शित करें तथा भविष्य में एक अच्छा राजनेता बन कर देश के हितोंके लिए कार्य करें तथा सबके समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करें क्योंकिदेश की बागडोर युवा शक्ति के हाथ में ही सफल होती है।इस शोध के द्वारा यह प्रयास किया गया है कि किस प्रकार राजनीतिक सक्रियता के सकारात्मक पक्षों को सबके समक्ष लाया जा सके और ही यह संभव तभी हो सकता है जब बालक में यह गुण शुरुआत से ही उत्पन्न किए जाएं जिसके लिए इसी प्रकार की पारिवारिक वातावरण की आवश्यकता होगी कि परिवार का वातावरण किस प्रकार का हो जिससे बालक में यह गुण उत्पन्न हो सके या विकसित हो सकें। अत: स्पष्ट है कि इस शोध के परिणामों से अभिभावकों एवं शिक्षकों के साथ-साथ युवा पीढ़ी को भी लाभ प्राप्त होगा। प्रस्तुत अध्ययन सोबन सिंह जीना परिसर अल्मोड़ा में स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सक्रियता का अध्ययन उसके पारिवारिक वातावरण के सन्दर्भ में करने का एक प्रयास है।

चरों की सक्रियात्मक परिभाषा

विद्यार्थी सक्रियता स्तर मापनी-सक्रियता और विरोध एक दूसरे के पूरक की तरह प्रयोग किए जाते है।सक्रियता एक सामाजिक घटना है जो युवाओं के प्रतिकूल व्यवहार का प्रतिबिंब है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में सक्रियता से तात्पर्य यह है कि विद्यार्थियों की राजनीतिक सक्रियता के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण है। उनके अभिभावक उस क्षेत्र के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण रखते हैं।

पारिवारिक वातावरण- परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है। परिवार बालक की शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देता है।घर शिक्षा के अनौपचारिक साधन के रूप में कार्य करता है जिसमें बालक शिक्षा के विभिन्न आयामों तथा संबंधों की सीख ग्रहण करता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में पारिवारिक वातावरण को संसजगता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, स्वीकृति एवं देखभाल, स्वतंत्रता, सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास, संगठन, नियंत्रण आदि विभिन्न आयामों के परिपेक्ष्य में देखा गया है।

शोध के उद्देश्य

1. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना।
2. स्नातक स्तर के बालकों के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य सह-संबंध का अध्ययन करना।
3. स्नातक स्तर के बालिकाओं के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना

1. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।
2. स्नातक स्तर के बालकों के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।
3. स्नातक स्तर की बालिकाओं के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।

शोध विधि- शोधार्थी के द्वारा इस शोध अध्ययन में वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है

शोध का सीमांकन

1. प्रस्तुत अध्ययन में कुमाऊं विश्वविद्यालय से संबद्ध सोबन सिंह जीना परिसर अल्मोड़ा के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को अध्ययन के विषय के रूप में सम्मिलित किया गया है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में स्नातक स्तर के केवल कला तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में स्नातक स्तर पर अध्यनरत 120 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया है जिसमें ६० छात्र (३० विज्ञानं एवं ३० कला) एवं ६० छात्राएं (३० विज्ञानं एवं ३० कला) के लिए गएँ हैं।

आंकड़ों का संकलन- न्यादर्श के रूप में चयनित स्नातक विद्यार्थियों को शोध सम्बन्धी उपकरणों पर निर्देश देने के उपरांत सक्रियता मापनी एवं पारिवारिक वातावरण मापनी को प्रसारित कर और उसको भरवाकर आंकड़ें एकत्रित किये गए।

प्रयुक्त सांखियकी- इस शोध अध्ययन हेतु प्रदत्तों के संग्रह के पश्चात् विश्लेषण के लिए पियर्सन सह-सम्बन्ध विधि का प्रयोग किया गया।

शोध उपकरण-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में डॉ आर. आर. शर्मा (वर्ष 1988) द्वारा निर्मित विद्यार्थी सक्रियता स्तर मापनी एवं डॉ एन. के. चड्ढा (वर्ष 1993) द्वारा निर्मित पारिवारिक वातावरण मापनी का प्रयोग किया गया है।

परिणामो की व्याख्या-शोध अध्ययन से सम्बंधित आंकड़ों का विश्लेषण करने के पश्चात् प्राप्त परिणामो की निम्न प्रकार से व्याख्या की गयी है।

तालिका 1: स्नातक स्तर के विद्यार्थियों (N=120) के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य सह-संबंध गुणांको का विवरण-

चर	पारिवारिक वातावरण (आयाम)	सार्थकता स्तर (df)	सहसंबंध गुणांक (r)	परिणाम
सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण	संसजगता (Cohesion)	118	0.335*	सार्थक
	अभिव्यक्ति(Expressiveness)		0.2939*	सार्थक
	संघर्ष(Conflict)		0.335*	सार्थक
	स्वीकृति एवं देखभाल(Acceptance & Caring)		0.231**	सार्थक
	स्वतंत्रता		0.204**	सार्थक
	सक्रियमनोरंजकअभिविन्यास(Active-recreational orientation)		0.341*	सार्थक
	संगठन(Organization)		0.137	असार्थक
	नियंत्रण(control)		0.186	असार्थक

0.01*सार्थकता स्तर

0.05**सार्थकता स्तर

उपरोक्त तालिका -1 में स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के 8 आयामों के मध्य सह -संबंध गुणांको को प्रदर्शित किया गया है। स्वतंत्रता अंश 118 पर सक्रियता के साथ पारिवारिक वातावरण के आयाम ससंजकता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, सक्रिय मनोरंजक, अभिविन्यास, के आर गुणांक क्रमशः 0.335 ,0.2939 ,0.335 ,0.335 ,0.341 हैं, जोकि आर

तालिका में सार्थकता स्तर 0.01 के मान 0.254 से अधिक है तथा पारिवारिक वातावरण के अन्य आयाम स्वीकृति एवं देखभाल, स्वतंत्रता का सहसंबंध गुणांक क्रमशः 0.231, 0.204है जोकि आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 के मान 0.195 से अधिक है।

अतः यह मान इंगित करता है कि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के आयाम ससंजकता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, स्वीकृति एवं देखभाल, स्वतंत्रता, सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास में धनात्मक सहसंबंध है। इसका संभावित कारण यह हो सकता है कि वर्तमान समय में अभिभावक अपने बालकों के प्रति पूर्णतः जागरुक एवं उनके प्रति पूर्णरूपसे सचेत हैं। तथा अभिभावकों का व्यवहार उनके पाल्यों के प्रति इस प्रकार का होता है कि जिससे वहअपनेपाल्योंकी मनोवृति से भलीभांति अवगत हो जाते हैं। तथा अभिभावक यह जानते हैं कि किस स्तर पर अपने बालक के किस प्रकार के व्यवहारों को स्वीकृत करना है या अस्वीकृतकरना है, जिसके कारण स्नातक स्तर के विद्यार्थियोंकेसक्रियता स्तरएवं पारिवारिक वातावरण के मध्य धनात्मकसह-संबंध प्राप्त हुआ।

अर्थात उपर्युक्त आयामों की अधिकता होने पर विद्यार्थियों की सक्रियता स्तर में वृद्धि होती है।

तालिका 2: स्नातक स्तर के बालकों (N=60) के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य सह-संबंध गुणांको का विवरण-

चर	पारिवारिक वातावरण (आयाम)	सार्थकता स्तर (df)	सहसंबंध गुणांक (r)	परिणाम
सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण	संसजगता (Cohesion)	58	0.368*	सार्थक
	अभिव्यक्ति(Expressiveness)		0.349**	सार्थक
	संघर्ष(Conflict)		0.375*	सार्थक
	स्वीकृति एवं देखभाल(Acceptance & Caring)		0.194	असार्थक
	स्वतंत्रता		0.243	असार्थक
	सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास(Active-recreational orientation)		0.344**	सार्थक
	संगठन(Organization)		0.119	असार्थक
	नियंत्रण(control)		0.105	असार्थक

0.01*सार्थकता स्तर

0.05**सार्थकता स्तर

उपरोक्त तालिका में स्नातक स्तर के बालकों की सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के 8 आयामों के मध्य सहसंबंध गुणांकओं को प्रदर्शित किया गया है स्वतंत्रता अंश 58 पर सक्रियता के साथ पारिवारिक वातावरण के आयाम ससंजक ता संघर्ष के सहसंबंध गुणांक क्रमशः 0.368, 0.375 है जो कि आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.01 के मान 0.354तथा सार्थकता स्तर 0. 05 के मान 0.273 से अधिक है तथा पारिवारिक वातावरण के अन्य आयाम अभिव्यक्ति, सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास के सहसंबंध गुणांक क्रमशः 0.349, 0.344 है, जोकि आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 के मान 0.273 से अधिक हैं।अतः यह मान इंगित करता है कि स्नातक स्तर के बालकोंकी सक्रियता तथा पारिवारिक वातावरण के आयाम ससंजकता, संघर्ष, अभिव्यक्ति, सक्रिय

मनोरंजक अभिविन्यास में धनात्मक सहसंबंध है। इसका संभावित कारण यह हो सकता है कि उपरोक्त आयामों को ध्यान में रखकर अभिभावकों द्वारा बालकों को प्रेरित किया जाता हो कि वह किस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सक्रिय भूमिका निभा सकें।

तालिका 3: स्नातक स्तर के बालिकाओ (N=60) के सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्य सह-संबंध गुणांको का विवरण-

चर	पारिवारिक वातावरण (आयाम)	सार्थकता स्तर (df)	सहसंबंध गुणांक (r)	परिणाम
सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण	संसजगता (Cohesion)	58	0.265	सार्थक
	अभिव्यक्ति(Expressiveness)		0.211	सार्थक
	संघर्ष(Conflict)		0.230	सार्थक
	स्वीकृति एवं देखभाल(Acceptance & Caring)		0.290**	असार्थक
	स्वतंत्रता(Independence)		0.172	असार्थक
	सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास(Active-recreational orientation)		0.404*	सार्थक
	संगठन(Organization)		0.228	असार्थक
	नियंत्रण(control)		0.296**	असार्थक

0.01*सार्थकता स्तर

0.05**सार्थकता स्तर

उपरोक्त तालिका में स्नातक स्तर के बालिकाओ की सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के 8 आयामों के मध्य सहसंबंध गुणांको प्रदर्शित किया गया है स्वतंत्रता अंश 58 पर सक्रियता के साथ पारिवारिक वातावरण के आयाम के सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास सहसंबंध गुणांक क्रमशः 0.404, है जोकि आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.01 के मान 0.354 तथा सार्थकता स्तर 0.05 के मान 0.273 से अधिक है तथा पारिवारिक वातावरण के अन्य आयाम स्वीकृति एवं देखभाल तथा नियंत्रण के सहसंबंध गुणांक क्रमशः 0.290, 0.296 है, जोकि आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 के मान 0.273 से अधिक हैं।

इसका संभावित कारण यह हो सकता है कि वर्तमान समाज में अभिभावक, छात्र एवं छात्राओं दोनों पर समान रूप से ध्यान देते होंगे जिस कारण बालिकाओं की सक्रियता स्तर एवं पारिवारिक वातावरण के मध्यधनात्मक सहसंबंध पाया गया

शोध के निष्कर्ष

1. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण के निम्न आयामों ससंजकता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास, स्वीकृति एवदेखभाल, स्वतंत्रता के मध्य सार्थक सह-संबंध पाया गया। तथा स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण के अन्य आयाम संगठन एवं नियंत्रण के मध्य कोई सार्थक से संबंध नहीं पाया गया।
2. स्नातक स्तर के बालको की सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण के निम्न आयामों ससंजकता, संघर्ष, अभिव्यक्ति, सक्रिय मनोरंजक अभिविन्यास के मध्य धनात्मक सार्थक सह-संबंध पाया गया। तथा अन्य आयामों स्वीकृति एवं देखभाल, स्वतंत्रता, संगठन एवं नियंत्रण के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं पाया गया।

3. स्नातक स्तर के बालिकाओं की सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण के निम्न आयामों सक्रिय मनोरंजन अभिविन्यास, स्वीकृत एवं देखभाल, नियंत्रण के मध्य धनात्मक सार्थक सह-संबंध पाया गया तथा स्नातक स्तर की बालिकाओं की सक्रियता एवं पारिवारिक वातावरण के अन्य आयामों ससंजकता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, स्वतंत्रता, संगठन के मध्य कोई सार्थक सह- संबंध नहीं पाया गया।

शैक्षिक उपादेयता-प्रस्तुत शोध के परिणामों से अभिभावकों, शिक्षकों एवं ऐसे छात्रों को लाभ होगा जो राजनीति के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं। अभिभावकयह जानने मे सक्षम हो सकेंगे की उनके पाल्यों को उन्हें किस प्रकार कावातावरण देना है जिससे वह उनके क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सके

उसमें ऐसे गुणों का विकास कर सकें जिससे वह अपने क्षेत्र में सक्रियभागीदारी निभा सकें। तथा शिक्षकों को यह लाभ प्राप्त होगा कि वहअपने विद्यार्थियों के इस प्रकार के व्यवहार को समझने में सक्षम होसकेंगे और उनका उचित प्रकार से मार्गदर्शन करें कर सकेंगे जिससे किउनके व्यवहारों के पीछे छुपे कारणों को समझा जा सके तथा उनकासमय-समय पर दिशा निर्देशन किया जा सके।शोध का अध्ययन विद्यार्थियों तथा युवा वर्गों के लिए भी उतना हीमहत्वपूर्ण है जितना कि अभिभावकों एवं शिक्षकों के लिए क्योंकि मुख्यरूप में विद्यार्थियों को ही इस व्यवहार को प्रदर्शित करना है। तथा शोधकी सहायता से वह नकारात्मक एवं सकारात्मक तथ्यों को जान सकेंगेतथा तथा विभिन्न घटनाओं या क्रियाकलापों के प्रति अपना दृष्टिकोणसकारात्मक कर सकेंगे तथा आगे बढ़कर अपने सकारात्मक दृष्टिकोणएवं क्रियाकलापों से देश के विकास के लिए कार्य कर सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

सैनी. 1978 स्टूडेंट पॉलिटिक्स इन एन इंडियन यूनिवर्सिटीज पी एच डी।

असवाल, जी. एस. 1982. अ स्टडी ऑफ स्टूडेंट्स एक्टिविज्म एज रिलेटेड टू पर्सनालिटी फैक्टर्स एंड सोसिओ-इकनोमिक कंडीशंस .डी .फील एजुकेशन, गढ़वाल यूनिवर्सिटी।

सोलंकी, सी. पी. 1974. दी पैटर्न ऑफ स्टूडेंटन्स लीडरशिप इन कॉलेज ऑफ मेरठ यूनिवर्सिटी।

टंडन, वनिता. 1990. सोसिओ-साइकोलॉजिकल फैक्टर्स इन एक्टिविज्म, दिल्ली।

तिवारी, कुलदीप. कुमार. 1998. शोध प्रबंध, सी० एस० जे०एम० विश्वविद्यालय।

त्रिपाठी, रीना, 2001. पीएचडी शोध प्रबंध सी०एस० जे० एम० विश्वविद्यालय।

भटनागर, सुरेश. 2010. कोठारी कमीशन और शैक्षिक परिवर्तन. आर.लाल. बुक डि पो, मेरठ, उघ्र प्रदेश.

ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका

डॉ० किरन सिंह

विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर, उ० प्र०

सारांश

आजादी के बाद से देश का समग्र विकास भारत सरकार का मुख्य उद्देश्य है। पहले की योजनाओं में विकास के लिए मुख्य जोर कृषि, उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य और संबद्ध क्षेत्रों पर रखा गया था, लेकिन जल्द ही यह महसूस किया गया कि ग्रामीण भारत के विकास से ही देश का सर्वांगीण विकास संभव है। इसे ध्यान में रखते हुए, 1992 में भारत के संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम के तहत पंचायती राज संस्थाओं की शुरुआत की गई है। ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) के माध्यम से समाज के लोकतांत्रिक ढांचे को मजबूत करने के उपाय शामिल हैं। इसमें ग्रामीण बुनियादी ढांचे में सुधार के उपाय, ग्रामीण परिवारों की आय में सुधार और शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा तंत्र से संबंधित वितरण प्रणाली शामिल हैं। भारत सरकार ने ग्रामीण भारत के विकास के लिए कई कदम उठाए हैं और इसके लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय के नियंत्रण में ग्रामीण विकास विभाग की स्थापना की गई है। पंचायतों से भारत में ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है, विशेषकर स्वतंत्रता के बाद। केंद्र और राज्य दोनों सरकारों और विभिन्न समितियों के योजना दस्तावेजों ने राजनीति में इन निकायों के महत्व पर जोर दिया है। पंचवर्षीय योजनाओं, विशेषकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास में पंचायतों की भूमिका पर विशेष बल दिया गया। प्रस्तुत शोध पत्र में सामान्य रूप से ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जनपद के कुछ चुने हुए गांवों पर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

परिचय

पंचायतों से भारत में ग्रामीण विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की उम्मीद है, विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद। भारतीय संदर्भ में विकास में मानकों में ग्रामीण विकास अधिक महत्व रखता है क्योंकि इन क्षेत्रों में देश की कुल जनसंख्या का 72.22 प्रतिशत (2001 की जनगणना) अभी भी निवास करता है। केंद्र और राज्य दोनों सरकारों और विभिन्न समितियों के योजना दस्तावेजों ने राजनीति में इन निकायों के महत्व पर जोर दिया है। पंचवर्षीय योजनाओं, विशेषकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास में पंचायतों की भूमिका पर विशेष बल दिया गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक और आर्थिक जीवन के परिवर्तन को अपने विकास के लक्ष्य के रूप में रखते हुए ग्राम विकास के लिए एक पंचायत की परिकल्पना की गई थी। यह कहता है कि, ग्रामीण प्रगति पूरी तरह से गाँव में एक सक्रिय संगठन के अस्तित्व पर निर्भर करती है जो कमजोर वर्गों सहित सभी लोगों को प्रशासन की सहायता से किए जाने वाले सामान्य कार्यक्रमों में ला सकती है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में पंचायतों को नागरिक, विकासात्मक, भूमि प्रबंधन, भूमि सुधार और न्यायिक कार्य करने के लिए बाध्य किया गया। राष्ट्रीय नेता की बाद की योजनाओं और नीतिगत घोषणाओं में ग्राम विकास में पंचायतों की भूमिका पर जोर दिया गया।

ग्रामीण पुनर्निर्माण और विकास के साधन के रूप में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका पर जोर देने की आवश्यकता ही नहीं है, बल्कि उन्हें न केवल राजनीतिक भागीदारी की संस्थाओं के रूप में बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास की संस्थाओं के रूप में व्यापक शक्तियों और वित्तीय संसाधनों के साथ पुनर्गठित किया गया है। पंचायती राज दो व्यापक छवियों से जुड़ा हुआ है। पहला, यह अपने आप में एक सरकार है और दूसरा यह राज्य सरकार की एक एजेंसी है। सामाजिक और आर्थिक विकास, समन्वय भूमिकाओं के लिए नियोजन के एकीकृत अभ्यास में, वर्तमान संरचना सरकार की एक त्रि-स्तरीय प्रतिनिधि संरचना है जहां प्रशासक, निर्वाचित नेता और स्थानीय आबादी विकास के प्रयास में भाग लेती है। वास्तव में निर्वाचित प्रतिनिधि निर्णय लेने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, नेताओं को विकास की प्रक्रिया की सुविधा के रूप में माना जाता है। चूंकि ग्रामीण विकास नीतियों का जोर विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी ला रहा है, इसलिए नेताओं के माध्यम से इसे हासिल करना संभव है। प्रशासकों को गांवों के जीवन और विकास में मिशनरी उत्साह के साथ भाग लेने के लिए स्वीकार किया जाता है और इन संस्थानों को सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के प्रभावी साधन बनने के लिए प्रेरित किया जाना है।

पंचायती राज संस्थाओं का विकास कैसे होता है?

ग्रामीण विकास भारत में लोगों के नेतृत्व वाली प्रक्रिया के बजाय बड़े पैमाने पर सरकार समर्थित प्रक्रिया रही है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को तैयार करने और लागू करने के लिए एक उपयुक्त संस्थागत संरचना की आवश्यकता होती है। भारत में पंचायत राज संस्थान (पीआरआई) की स्थापना से इस आवश्यकता को पूरा किया गया। इसके अलावा, पंचायती राज संस्थाएं, स्थानीय स्वशासी निकाय होने के नाते, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन में लोगों की भागीदारी और भागीदारी का अवसर सुनिश्चित करती हैं। इस प्रकार, च्त्प् को भारत में ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने का कार्य सौंपा गया है। स्वतंत्रता के बाद से हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक और नियोजन नीति पर एक उपयुक्त ग्रामीण, आर्थिक और सामाजिक बुनियादी ढांचे के निर्माण और समग्र विकास को बढ़ावा देने पर अधिक जोर दिया गया है। हमारे काउंटी की योजना नीति ने कृषि और ग्रामीण विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। पहली पंचवर्षीय योजना से परिकल्पित उपायों का ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास पर काफी प्रभाव पड़ा। पहली पंचवर्षीय योजना में यह निर्धारित किया गया था कि 'ग्रामीण इलाकों के मानव शक्ति संसाधनों के उपयोग और स्थानीय संसाधनों के अधिकतम उपयोग के आधार पर कृषि का विकास, देश के तीव्र विकास की कुंजी है।'

योजना परियोजनाओं पर समिति के शब्दों में, 'जब तक हम एक प्रतिनिधि और लोकतांत्रिक संस्था की खोज या निर्माण नहीं करते हैं जो स्थानीय हितों, पर्यवेक्षण और देखभाल की आपूर्ति करेगी, यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्थानीय वस्तुओं पर धन का व्यय जरूरतों और इच्छाओं के अनुरूप है। स्थानीय हित पैदा करने और विकास के क्षेत्र में स्थानीय पहल को उत्तेजित करने में सक्षम होने के साथ इसे निवेश करें' और टीम ने भारत में ग्रामीण विकास के साधन के रूप में काम करने के लिए पंचायत राज के त्रि-स्तरीय मॉडल की सिफारिश की। पंचायतें लंबे समय से अस्तित्व में हैं। शक्तियों, कार्यों और वित्तीय संसाधनों के संबंध में वर्तमान व्यवस्था स्पष्ट रूप से अतीत से खुद को अलग करती है। वर्तमान प्रणाली के चार मुख्य पहलू हैं -

- संविधान का लोकतंत्रीकरण और पंचायतों की सार्वभौमिक स्थापना।
- राज्य से इन निकायों को अधिक शक्तियों का हस्तांतरण,
- कृषि और संबद्ध गतिविधियों, स्वास्थ्य और कल्याण और शिक्षा के संबंध में पंचायतों को और अधिक कार्यों के दायरे का विस्तार और हस्तांतरण और
- इन निकायों की संसाधन स्थिति को मजबूत करना।

ग्रामीण विकास को आम तौर पर एक बहु-क्षेत्रीय गतिविधि के रूप में माना जाता है जिसमें कृषि विकास, ग्रामीण उद्योगों के अलावा, सामाजिक ओवर हेड सुविधाओं या बुनियादी ढांचे की स्थापना या सुधार, जैसे कि स्कूल, क्लीनिक, सड़क, संचार, जल आपूर्ति, बाजार, कल्याण स्रोत शामिल हैं। बेहतर पोषण, साक्षरता, वयस्क शिक्षा आदि। ग्रामीण विकास का प्राथमिक उद्देश्य ग्रामीण जनता, विशेष रूप से गरीब और कमजोर वर्गों की गुणवत्ता को समृद्ध करना है। पंचायत राज संस्थाओं (पीआरआई) के माध्यम से लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का कार्यान्वयन स्थानीय पहल और विकासात्मक गतिविधियों में भागीदारी का अवसर प्रदान करने के लिए था।

गांधीजी के अनुसार, ''भारतीय स्वतंत्रता की शुरुआत नीचे से होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव एक गणतंत्र या पंचायत होना चाहिए जिसके पास पूर्ण अधिकार हों। पंचायतों की शक्ति जितनी अधिक होगी, लोगों के लिए उतना ही अच्छा होगा"। उनके लिए ष्स्वराजष् का अर्थ था किसान और मजदूर में अंतिम अधिकार का निहित होना। सच्चा लोकतंत्र नीचे से हर गांव के लोग नहीं चला सकते।

इस आलोक में संविधान 73वां (संशोधन) अधिनियम, 1992 ने पंचायती राज की अवधारणा को एक नया आयाम प्रदान किया है। दूसरे शब्दों में, लोगों की भागीदारी की अवधारणा को एक वैचारिक प्रतिबद्धता के रूप में माना जाना चाहिए और इसलिए, लोगों की भागीदारी को वैधता देने के लिए विधायी और संरचनात्मक उपाय शुरू किए जाने चाहिए।

पंचायती राज संस्थाएँ स्थानीय सरकार की शक्तियों के साथ गाँव, ब्लॉक और जिला स्तर पर वैधानिक रूप से निर्वाचित निकाय हैं। पंचायती राज का प्राथमिक उद्देश्य जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के आधार को मजबूत करना और प्रत्येक गांव के लोगों को जाति, वर्ग और पंथ के बावजूद पूरी आबादी के हित में गहन और निरंतर विकास प्राप्त करने में सक्षम बनाना है।

पंचायती राज या स्थानीय स्वशासन प्रशासनिक सत्ता के लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की एक कवायद है। प्रणाली निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है।

- गांव से लेकर जिला स्तर तक स्थानीय स्वशासी निकायों का त्रिस्तरीय ढांचा होना चाहिए, जिसमें निचले से उच्च स्तर तक का जैविक जुड़ाव हो।
- इन निकायों को सत्ता और जिम्मेदारी का वास्तविक हस्तांतरण होना चाहिए।
- इन निकायों को अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन हस्तांतरित किए जाने चाहिए।
- इन स्तरों पर सभी विकास कार्यक्रमों को इन निकायों के माध्यम से संचालित किया जाना चाहिए।
- विकसित प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो भविष्य में शक्ति और जिम्मेदारी के और अधिक विकेन्द्रीकरण की सुविधा प्रदान करे।

देश का भविष्य वास्तव में प्रभावी पंचायती राज और लोगों की भागीदारी या सहयोग पर निर्भर करता है। यह एकमात्र प्रभावी साधन है जो हमारी योजना प्रक्रिया में गति और सार डाल सकता है और उत्पादकता के लिए देश के संसाधनों का सबसे प्रभावी उपयोग सुनिश्चित कर सकता है। इसमें लोकतंत्र और अर्थव्यवस्था के साथ-साथ लोगों के विकास दोनों का भविष्य निहित है। आने वाले वर्षों में पंचायती राज ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय लोगों के एकीकृत विकास का उत्प्रेरक एजेंट होगा।

ग्रामीण विकास क्या है?

विकास एक व्यापक अवधारणा है जिसमें मानव जीवन के हर पहलू को शामिल किया गया है। यह अनिवार्य रूप से राज्य द्वारा की गई एक गतिविधि है जिसमें समाज के लाभ के लिए सरकार की ओर से नीति निर्माण और निष्पादन शामिल है। दूसरी ओर, ग्रामीण विकास का अर्थ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास है ताकि लोग एक सुखद जीवन जी सकें। यह एक व्यापक, समावेशी शब्द है जो ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विकास को ध्यान में रखता है। इसमें पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से समाज के लोकतांत्रिक ढांचे को मजबूत करने के उपायों के साथ-साथ ग्रामीण बुनियादी ढांचे में सुधार के उपाय, ग्रामीण परिवारों की आय में सुधार और शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा तंत्र से संबंधित वितरण प्रणाली शामिल हैं।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में गरीबी और बेरोजगारी को कम करने, स्वास्थ्य और शैक्षिक स्थिति में सुधार करने और ग्रामीण आबादी के भोजन, आश्रय और कपड़े जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने का प्रस्ताव है। इसे साकार करने के लिए, भारत सरकार ने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), इंदिरा आवास योजना (आईएवाई), संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (एसजीआरवाई), प्रधान मंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई), एकीकृत जैसी कुछ विकासात्मक योजनाएं शुरू कीं। बाल विकास सेवाएं (प्ब्वै), ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास (क्ॅब्।), आदि। इन सभी योजनाओं का उद्देश्य ग्रामीण और शहरी आबादी के बीच की खाई को कम करना है जो असंतुलन को कम करने और विकास प्रक्रिया को गति देने में मदद करेगी।

'ग्रामीण विकास' शब्द केंद्रीय रुचि का है और दुनिया के विकसित और विकासशील दोनों देशों में व्यापक रूप से प्रशंसित है। हालांकि ग्रामीण विकास की कोई सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य परिभाषा नहीं है और इस शब्द का प्रयोग विभिन्न तरीकों से और व्यापक रूप से भिन्न संदर्भों में किया जाता है। एक अवधारणा के रूप में, यह ग्रामीण लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास को दर्शाता है। इस अर्थ में, यह एक व्यापक और बहु-आयामी अवधारणा है और इसमें कृषि और संबद्ध गतिविधियों का विकास शामिल है - ग्राम और कुटीर उद्योग और शिल्प, सामाजिक-आर्थिक आधारभूत संरचना, सामुदायिक सेवाएं और सुविधाएं, और सबसे बढ़कर, ग्रामीण क्षेत्रों में मानव संसाधन . एक घटना के रूप में, यह विभिन्न भौतिक, तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और संस्थागत कारकों के बीच बातचीत का परिणाम है। एक रणनीति के रूप में, इसे लोगों के एक विशिष्ट समूह, ग्रामीण गरीबों के आर्थिक और सामाजिक कल्याण में सुधार के लिए डिजाइन किया गया है। एक अनुशासन के रूप में, यह प्रकृति में बहु-विषयक है जो कृषि, सामाजिक, व्यवहारिक, इंजीनियरिंग और प्रबंधन विज्ञान के प्रतिच्छेदन का प्रतिनिधित्व करता है।

निष्कर्ष - पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से अध्ययन गांव के ग्रामीण आदिवासी लोगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन आया है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन ने लोगों के सामाजिक और राजनीतिक मामलों को भी प्रभावित किया है। आर्थिक क्षेत्र में, इन कार्यक्रमों ने गाँव की आर्थिक स्थिति में सुधार को आकार दिया है। परिणामस्वरूप, अधिकांश आदिवासी ग्रामीणों ने अतिरिक्त आय अर्जित कर ली है।

मनरेगा, एसजीआरवाई, आईएवाई (आवास योजना) और बिजली योजना जैसे राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (आरजीजीवीवाई) जैसे कार्यक्रमों ने गरीब आदिवासी ग्रामीणों को गरीबी रेखा से ऊपर रखने के लिए विभिन्न लाभकारी गतिविधियों का उत्पादन किया है। इसके अलावा, नवनिर्मित जनजातीय घरों में आरजीजीवीवाई के माध्यम से बिजली प्रदान की गई थी जो अध्ययन आदिवासी गांव में ढांचागत विकास की संचयी प्रगति को इंगित करता है।

REFERENCES

- Chauhan, A. 2014. "Need of Rural Development in India for Nation Building." Asian Mirror- International Journal of Research I (I): 1-8.
- Dahama, O.P. 1993. Extension and Rural Welfare. Agra: Ram Prasad and Sons Publishers.
- Dayal, R. 1970. Panchayat Raj in India. New Delhi: Metropolitan Book Company.
- Govt. of India. 1957. Report of the Team for the Study of Community Projects and National Extension Service. New Delhi: Committee on Plan Projects, National Development Council.
- Kadam, R.N. 2012. "Role of Gram Panchayati in Rural Development: A Study of Uttur Village of Mudhol Taluka, Bagalkot District (Karnataka)." International Journal of Research in Finance & Marketing2 (10): 14-29.
- Mishra, A.K., N. Akhtar & S. Tarika. 2011. "Role of the Panchayati Raj Institutions in Rural Development (An Analytical Study of Uttar Pradesh)." Management Insight VII (1): 44-53.
- Panda, S. and A. Majumder. 2013. "A Review of Rural Development Programmes in India." International Journal of Research in Sociology and Social Anthropology1 (2): 37-40.
- Pandit, A.S. and B.V. Kulkarni. 2012. "The Role of Jat Panchayat in Rural Development." Online International Interdisciplinary Research Journal II (VI): 159-163.
- Singh, K. 1995. Planning and Funding Ecodevelopment Projects in and Around Protected Areas in India; Consultancy Report. Dehradun: Wildlife Institute of India.
- Thanikasalam, S and S. Saraswathy. 2014. "Role of Gram Panchayat in Rural Development: A Study of Vagurani Village of Usilampatti Block of Madurai District (Tamil Nadu)." International Journal of Humanities and Social Science Invention 3 (1): 49-56.
- Vijaykumar, A. 1999. "Panchayat System in India: An Overview." In Panchayat System in India: Historical, Constitutional and Financial Analysis, edited by R. Ghosh and A.K. Pramanik. New Delhi: Kanishka.

राजस्थान में 15वीं विधानसभा चुनाव 2018 और मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक

देवेन्द्र कुमार

शोधार्थी, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर

भारतीय संविधान द्वारा राज्य के दायित्वों के साथ साथ सरकार के स्वरूपों का भी निर्धारण किया गया है। हमारे यहाँ शासन प्रणाली के रूप में संघातक व्यवस्था के साथ संसदीय शासन प्रणाली को समन्वित किया गया है। चूंकि राजस्थान भारतीय संघ का सबसे बड़ा प्रान्त हैं, अतः यहाँ भी संसदीय शासन प्रणाली (मंत्रीमंडल शासन प्रणाली) प्रभावी है। यहाँ प्रत्येक पांच साल में राज्य विधानसभा के चुनाव होते हैं। इसी कड़ी में 7 दिसम्बर 2018 को राज्य में 15वीं विधानसभा के चुनाव हेतु मतदान हुए। कुल 200 सीटों में से कांग्रेस गठबंधन को 101, भाजपा को 73 तथा अन्य को 26 सीटें मिली हैं। इन सीटों का वर्गवार, श्रेणीवार, क्षेत्रवार एवं अन्य पहलुओं की दृष्टि से भी इस आलेख में विश्लेषण किया गया हैं। 15वीं विधानसभा के चुनाव के लिए दोनों मुख्य दलों के चुनावी घोषणा-पत्रों तथा 15वीं विधानसभा के प्रमुख पदाधिकारियों का विवरण भी इस आलेख में है।

राजस्थान में सभी 200 सीटों पर 15वीं विधानसभा के लिए 7 दिसम्बर, 2018 को प्रथम चरण में चुनाव संपन्न हुए। विधानसभा क्षेत्र राजस्थान में कुल 200 विधानसभा क्षेत्र हैं। इन 200 सीटों में से 34 सीटें अनुसूचित जाति (एस.सी.) के लिए तथा 25 सीटें अनुसूचित जनजाति (एस.टी.) के लिए आरक्षित हैं। इनके अलावा शेष 141 सीटें सामान्य हैं जो सभी वर्गों के लिए खुली हुई हैं। सामान्य सीटों पर अजा, अजजा, ब्राह्मण, मुस्लिम, महिला या कोई और चुनाव लड़ सकता है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का सबसे बड़ा विधानसभा क्षेत्र जैसलमेर है, जो 28874 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का सबसे छोटा विधानसभा क्षेत्र किशनपोल (जयपुर) है, जो मात्र 5.7 वर्ग किमी. क्षेत्र में है।

15वीं विधानसभा चुनावः मतदान केन्द्र

प्रदेश में 15वीं विधानसभा के चुनाव के लिए कुल 51687 मतदान केन्द्र बनाये गये। इनमें से 209 आदर्श मतदान केन्द्र तथा 259 पिंक मतदान केन्द्र बनाए गए। राज्य के मुख्य निर्वाचन अधिकारी आनन्द कुमार के अनुसार राज्य के कुल 51687 मतदान केन्द्रों में से 13382 संवेदनशील माने गये, जिनमें से 4982 पर माइक्रो ऑब्जर्वर, 3948 पर वीडियोग्राफर, 3138 पर वेबकास्टिंग और 7791 पर केन्द्रीय सुरक्षा बल (ब्च्थ्) की तैनाती की गई।

15वीं विधानसभाः राजस्थान में मतदाता

प्रदेश में 28 सितम्बर 2018 की मतदाता सूचियों का अंतिम प्रकाशन किया गया। इसके अनुसार प्रदेश में वर्ष 2018 में 15वीं विधानसभा के चुनाव के समय कुल मतदाता 4 करोड़ 74 लाख79 हजार 402 थे। इनमें से पुरूष मतदाताओं की संख्या 2 करोड़ 47 लाख 60 हजार 755 है, जबकि महिला मतदाता 2 करोड़ 27 लाख 18 हजार 647 ही है। पुरूषों की तुलना में 20 लाख 42 हजार 105 महिला मतदाता कम हैं।

इस लिहाज से 1000 पुरूषों की तुलना में महिला वोटर की संख्या 918 है। गत 46 साल में 1000 पुरूषों पर महिला वोटरों की संख्या में 195 वोटरों की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है। अब 1000 पुरूषों की तुलना में 82 महिला मतदाता कम हैं।

15वीं विधानसभा के चुनाव

2018 के समय प्रदेश में 20 लाख नए मतदाता थे। प्रदेश में 2018 के चनाव के समय सर्वाधिक मतदाता जयपुर जिले में तथा सबसे कम मतदाता जैसलमेर जिले में हैं।

15वीं विधानसभा: प्रत्याशी

15वीं विधानसभा के लिए राज्य की 200 सीटों के लिए 88 दलों के 2294 उम्मीदवारों ने ताल ठोकी।

सर्वाधिक प्रत्याशी

किशनपोल विधानसभा क्षेत्र से सर्वाधिक 71 प्रत्याशी चुनावी मैदान में थे। इनमें से 187 महिलाएं थीं। सबसे कम प्रत्याशी जालोर, हिण्डौन सिटी व सिकराय विधानसभा क्षेत्रों से सबसे कम 4-4 प्रत्याशी चुनावी मैदान में थे।

दलीय स्थिति 2018 2013

दलीय स्थिति 2018 2013					
2018 में दलीय स्थिति			2013 में दलीय स्थिति		
क्र.सं.	दल	सीट	क्र.सं.	दल	सीट
1.	कांग्रेस (INC)	100	1.	भाजपा (BJP)	163
2.	भाजपा (BJP)	73	2.	कांग्रेस (INC)	21
3.	बसपा (BSP)	06	3.	राजपा (NPP)	04
4.	रालोपा (RLTP)	03	4.	बसपा (BSP)	03
5.	माकपा (CPM)	02	5.	नेयूजपा (एनजूजेडपी)	02
6.	रालोदा (RLD)	01	6.	अन्य	07
7.	निर्दलीय	13	7.	–	.
कुल सीटें		200	कुल सीटें		200

31 जनवरी,2019 को अलवर की रामगढ़ सीट के परिणाम के बाद राजस्थान की 15वीं विधानसभा में दलीय स्थिति इस प्रकार है-

क्र.सं.	पार्टी	प्राप्त सीटें
1.	कांग्रेस (INC)	100 (+79)
2.	भाजपा (BJP)	73 (-90)
3.	बसपा (BSP)	06
4.	रालोपा (RLTP)	03
5.	माकपा (CPM)	02
6.	भाट्रापा (CPM)	02
7.	रालोद (RLD)	01
8.	निर्दलीय	13
कुल विधानसभा सीटें		200

2018	2013
भाजपा– 38.8% (–6.7:)	भाजपा – 45.2
कांग्रेस– 39.3% (5.89:)	कांग्रेस – 33.1
अन्य – 21.9% (–6.7:)	अन्य – 13.5
IND–9.5%	IND–8.2%

इस प्रकार 7 दिसम्बर, 2018 को हुए विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को 39.3 फीसदी मत मिले हैं जो पिछली बार से 5.89 फीसदी अधिक हैं, वहीं भाजपा को 38.8 फीसदी मत मिले हैं जो भाजपा के वोट में 6.7 फीसदी की गिरावट दर्शाता है।

मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक

1. सत्तारूढ़ दल का आचरण (Behavior of the Rulling Party)

मतदान व्यवहार पर सत्ताधारी दल के आचरण का अवश्य प्रभाव पड़ता है। यदि सत्ताधारी दल पूर्व कार्यकाल तक निष्क्रियता उदासीनता एवं कर्तव्यविमुखता की स्थिति में रहे तो मतदाता चुनाव के समय उसके विरोध में मत डालते हैं। जैसे इंग्लैंड में हाल ही के वर्गों में एक लंबे समय तक रूढ़िवादी दल (Conservative Party) सत्ता में रहा लेकिन मई 1997 के चुनाव में मतदाताओं ने उसके विरुद्ध मतदान किया और लेबर पार्टी (Labpur Party) को सत्ता सौंपी।

2. तत्कालीन मामले (Immediate Issues)

तत्काल मामले भी मतदान व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरणतया भारत में 1977 के चुनाव में कांग्रेस सरकार द्वारा आपातकाल की घोषणा करना एक महत्वपूर्ण मामला था, जिसका मतदान व्यवहार पर काफी प्रभाव पड़ा और मतदाताओं ने कांग्रेस की अपेक्षा जनता पार्टी के पक्ष में मतदान किया। इसी तरह नवंबर 1998 के चार राज्यों के विधानसभा चुनाव के कुछ महीनों पहले अचानक कई वस्तुओं के मूल्य बढ़ गए, जिससे प्रभावित लोगों ने भाजपा की अपेक्षा कांग्रेस को मत दिए।

3. लोकवादी नारे (Pepullical Slogans)

मतदाताओं का व्यवहार लोकवादी नारों से भी प्रभावित होता है। चुनाव के समय राजनीतिक दलों द्वारा मतदाताओं को ऐसे सब्जबाग दिखाए जाते हैं, जिनसे मतदाता प्रभावित हो जाते हैं। विशेष रूप से भारत जैसे देश में जहां की अधिकांश जनता अशिक्षित हैं, लोकवादी नारों से जनता जल्दी प्रभावित होती है। शिक्षित मतदाताओं पर भी लोकवादी नारों का काफी प्रभाव पड़ता है।

4. धन की भूमिका (Role of Money)

चुनावों में खर्च किया जाने वाला धन मतदान पर अवश्य प्रभाव डालता है। विशेष रूप से उन देशों में जहां की अधिकांश जनता गरीब है, मतदाताओं को धन के लालच द्वारा प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। यहां तक कि मतदाताओं के वोट भी खरीदने के प्रयास किए जाते हैं। ऐसे असंख्य उदाहरण मिलते हैं जब चुनावों में प्रत्याशियों द्वारा बड़ी-बड़ी धनराशि खर्च की गई है और जिनके परिणाम स्वरूप मतदान व्यवहार पर प्रभाव पड़ा है।

5. राजनीतिक दलों की विचारधारा, नीतियां एवं कार्यक्रम (Ideologles, Policies and Programme of Political Parties)

कई मतदाता राजनीतिक दलों की विचारधारा से प्रभावित होते हैं जबकि मतदाताओं का एक बड़ा वर्ग ऐसा भी होता है जो राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों को देखकर वोट देता है। नीतियों और कार्यक्रमों के द्वारा मतदाताओं को उन बातों की जानकारी मिलती है जो राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति के बाद करना चाहते हैं। यद्यपि भारतीय मतदाता राजनीतिक दलों के चुनाव घोषणा पत्र को प्रायः पढ़ते नहीं हैं, जिनमें राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों का वर्णन किया गया होता है, फिर अनेक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में राजनीतिक दलों द्वारा जारी चुनाव घोषणा पत्र मतदाताओं को प्रभावित करते हैं।

6. चुनाव प्रचार (Election Campaign)

एक व्यवस्थित और प्रभावशाली चुनाव प्रचार भी मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करता है। प्रभावशाली चुनाव प्रचार मतदाताओं का पार्टी के प्रति रुझान बढ़ाता है। विभिन्न राजनीतिक दल अपने श्रेष्ठ राजनीतिक वक्ताओं द्वारा चुनाव प्रचार में जोर लगा देते हैं, वे उसी मतदाता को मत देते हैं जो उनकी भाषा में बात कर सकता है।

7. युद्ध अथवा राष्ट्रीय संकट

युद्ध अथवा राष्ट्रीय संकट एक अप्रत्याशित घटना है, जिसका मतदाताओं के व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रीय संकट के समय सभी मतदाता अपने संकुचित भावना से बाहर निकलकर एक सक्षम राजनीतिक दल एक योग्य नेतृत्व की प्राप्ति के लिए मतदान करते हैं। राष्ट्रीय संकट के समय मतदाता प्राय: उस नेतृत्व के पक्ष में वोट डालते हैं जो प्रत्येक परिस्थिति में राष्ट्रीय मनोबल को ऊंचा बनाए रखे। श्रीमती इंदिरा गांधी को 1971 के भारत-पाक युद्ध के समय मतदाताओं ने ऐसा ही समर्थन दिया था।

8. राजनीतिक स्थिरता की अभिलाषा (Hope of Poliltical Stability)

मतदान व्यवहार पर राजनीतिक स्थिरता की इच्छा का भी प्रभाव पड़ता हैं। यदि देश राजनीतिक स्थायित्व के दौर से गुजर रहा हो तो मतदाता उस राजनीतिक दल को वोट देना पसंद करते हैं जो स्थायित्व का वायदा करे।

9. दलित और आदिवासी

रोहित वेमुला की आत्महत्या से लेकर ऊना में गौरक्षकों द्वारा दलितों की पिटाई तक सरकार निशाने पर रही है। फिर एससी-एसटी एक्ट पर हुए विवाद के बाद दलितों का यह गुस्सा और बढ़ गया। अब छत्तीसगढ़ में बीजेपी की हार और झारखंड में आदिवासियों की वन भूमि से बेदखली के फैसले से सरकार के लिए राह आसान नहीं होगी।

10. महिलाएं

देश की आधी आबादी यानी महिलाएं चुनाव में अहम भूमिका में होंगी। केंद्र सरकार ने टॉइलेट निर्माण, एलपीजी गैस की सुविधा और बलात्कार के मामलों पर सख्ती जैसे कदम उठाए हैं। इससे उन्हें महिलाओं का वोट मिलने का भरोसा है। बड़े नेता एमजीआर, एनटीआर, जयललिता से लेकर शिवराज सिंह चौहान और नीतीश कुमार को अब तक महिलाओं का जबरदस्त सपोर्ट मिला है।

11. युवा वोटर

युवा वोटर्स इस चुनाव में अहम भूमिका निभाने वाले हैं, जो पार्टी नई शुरुआत करके युवाओं के लिए नए वादे लेकर आएगी युवा उसकी तरफ आकर्षित हो सकते हैं। माना जा रहा है कि सोशल मीडिया के जरिए मुद्दों पर बारीक नजर रख रहे युवा काफी समझदारी से किसी को चुनेंगे। अगर यह माना जाए कि पहली बार वोट डाल रहे शख्स को फिलहाल रोजगार की उतनी चिंता नहीं होगी तो वह अन्य चीजों से भी प्रभावित हो सकता है। जैसे वह उस संगठन की तरफ जा सकते हैं जिससे पहले से जुड़े हुए हैं।

12. स्थिर और मजबूत नेता बनाम विविधता और साझा लीडरशिप

2014 की तरह है चुनाव में बीजेपी नरेंद्र मोदी के चेहरे पर लड़ा, वहीं विपक्षी गठबंधन दिखाया कि लोकतंत्र में साझे तरीके से कामों को बांटकर किया जाना चाहिए।

बीजेपी यह मुद्दा भी उठाएगी कि विपक्षी पार्टियों के पास पीएम के लिए कोई चेहरा ही नहीं है। वहीं कांग्रेस का बचाव करते हुए कह सकते हैं कि गठबंधन भारत के विभिन्न समाज के लिए बेहतर है।

13. गौरक्षा

2014 के चुनाव में बीजेपी ने अवैध गौहत्या पर बैन लगाने की बात कही थी। इसने पार्टी के फेवर में भी काम किया, लेकिन इसके लागू होने के बाद भी लोगों में नाराजगी रही। यह नाराजगी खेती के जरिए अपना घर चला रहे किसानों में दिखी। दूसरी तरह अवैध गौहत्या पर बैन से मुस्लिम समाज के लोग भी नाराज हो गए। नुकसान की पूर्ति के लिए सरकार ने गौ संरक्षण केंद्र बनाने की बात कही, लेकिन इसका कितना फायदा होगा या कहा नहीं जा सकता। साफ है कि किसानों को गौरक्षा से दिक्कत नहीं है, लेकिन वह अपने हिस्से का फंड उधर नहीं जाने देना चाहेंगे।

14. मोदी फैक्टर

भारतीय जनता पार्टी को यकीन था कि अमित शाह के नेतृत्व में पार्टी पीएम मोदी की गुडविल को वोटों में तब्दील करने में कामयाब हुई। बालाकोट एयरस्ट्राइक के बाद बीजेपी का उत्साह और बढ़ गया है। वहीं कांग्रेस मानकर चल रही है कि मोदी का करिश्मा अब 2014 जैसा नहीं है क्योंकि चुनावी वादे पूरे ही नहीं हुए। कांग्रेस की कैंपेनिंग मोदी सरकार द्वारा पूर्व में किए गए वादों पर ही थी, जिससे ब्रैंड नमो का 'जादू' कम हो। ऐसा प्रयास किया गया, कांग्रेस के लिए यह जरूरी भी है क्योंकि पिछले कुछ विधानसभा चुनाव में बीजेपी के खिलाफ वोट देने वाले लोगों ने भी साफ तौर पर कहा था कि वह लोकसभा में तो मोदी को ही वोट देंगे।

15. कल्याणकारी स्कीम्स

मोदी सरकार ने अपने कार्यकाल में बहुत सारी कल्याणकारी और विकास योजना को लांच किया। उज्ज्वला, स्वच्छ भारत, पीएम किसान, आयुष्मान भारत इसमें प्रमुख है। वही नोटबंदी जैसे कदम ने भी 'सूट बूट की सरकार' के लेबल लगे विपक्ष को झटका देने में मदद की है। हाल ही में हुए विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को बढ़त मिली है, इसके बाद उन्होंने लोगों को रिझाने के लिए तीन राज्यों में कर्ज माफी की घोषणा भी कर दी, राहुल ने सरकार में आने के बाद बेसिक इनकम देने का वादा भी किया है यह कांग्रेस का फायदा करवा सकता है।

16. सोशल मीडिया

इस मुद्दे की साल 2014 में पहली बार एंट्री हुई। यह चुनाव में एक अहम खिलाड़ी की तरह नजर आया। एजेंडा सेट करने में सोशल मीडिया का भरपूर इस्तेमाल किया गया। पांच साल पहले मोदी की जीत का सबसे बड़ा श्रेय सोशल मीडिया को ही दिया गया। इसके बाद कांग्रेस ने भी इस कमी को पूरा करने की कोशिश की। कांग्रेस को इस मोर्चे को संभालने में समय लगा, लेकिन वह अब बेहद प्रभावी ढंग से आ गई है।

17. भ्रष्टाचार

2014 के चुनाव में कांग्रेस को इससे सबसे ज्यादा नुकसान हुआ था। इसके बाद ही कांग्रेस को अब तक की सबसे बड़ी हार का सामना करना पड़ा था। पीएम मोदी ने अपने कार्यकाल में पूरी कोशिश की है कि बीजेपी पर ऐसे आरोप न लग पाएं। यहां तक कि पीएम ने कई जगह पर यह भी कहा है भी है कि उनके कार्यकाल में उनकी सरकार पर भ्रष्टाचार का कोई भी आरोप नहीं लगा है।

लोगों ने नोटबंदी के कड़वे घूंट को भी इसलिए आसानी से पी लिया, क्योंकि उन्हें लगता है कि पीएम भ्रष्टाचार खत्म करने के लिए कदम उठा रहे हैं। हालांकि अभी तक इस बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है कि राहुल गांधी की तरफ से लगाए जा रहे राफेल घोटाले के आरोप का जनता पर क्या असर पड़ेगा।

18. जातीय समीकरण

भारत में अब तक हुए चुनाव में जातीय समीकरण के आधार पर किसी भी पार्टी की मजबूती का अंदाजा लगाना बेहद आसान रहा है, लेकिन इस बार का चुनाव इस मामले पर काफी अलग रहने वाला है। विपक्ष मोदी को हराने के लिए इस बार जातीय समीकरण को आधार बना रहा है। विपक्ष का मानना है कि यूपी में यादव, जाट और मुसलमान के साथ आने से बीजेपी को हराना काफी आसान होगा, वहीं बिहार में कांग्रेस समेत कई विपक्षी दलों ने लालू के साथ गठबंधन कर ओबीसी और मुसलमानों को एकजुट करने की कोशिश की है। बीजेपी को 2014 में बड़ी जीत इसलिए मिली थी, क्योंकि मोदी कुछ उन जातियों का भी समर्थन मिला था जिन्हें आमतौर पर विपक्षी पार्टियों का आधार माना जाता है। मध्यप्रदेश और राजस्थान में बीजेपी को मिली हार के पीछे तथ्य दिए गए उच्च वर्ग बीजेपीसे दूर हो रहा है। ऐसे में बीजेपी ने गरीब स्वर्णों को 10% आरक्षण देकर उन्हें अपने खेमे में बनाए रखने की कोशिश की है।

19. गांव किसान का मुद्दा

किसान या कहें कि ग्रामीण वोटर्स ने 2014 में मोदी सरकार की जीत में बड़ा रोल निभाया था वहीं इस बार कृषि निवेश में बेहतर रिटर्न न मिलने से ग्रामीण वोटरों में नाराजगी है। नोटबंदी जैसे कदमों ने इस मुद्दे को अहम बना दिया है। राजस्थान, छत्तीसगढ़

और मध्यप्रदेश के चुनाव में कांग्रेस ने इस मुद्दे का पूरा फायदा उठाने की कोशिश की और उन्हें सफलता भी मिली। इसके बाद बीजेपी ने कई और रास्तों से किसानों की मदद कर इस कमी को पूरा करने की कोशिश की है।

20. नौकरी

मोदी सरकार के खिलाफ विपक्ष की तरकष में ' रोजगार का तीर ' सबसे अहम है। कांग्रेस समेत तमाम विपक्षी पार्टी सरकार को कई बार इस मुद्दे पर घेर चुकी हैं। मोदी सरकार को 2014 में नौकरियों का वादा करने पर बड़ी सफलता मिली थी, लेकिन कहीं न कहीं वह इस वादे को पूरा करने में सफल नहीं दिख रहे हैं। सरकार पर डेटा में हेरफेर कर इस मुद्दे के प्रति गंभीरता नहीं बरतने का आरोप लगता रहा है। सरकार ने ईपीएफओ नंबर बढ़ने और मुद्रा लोन की संख्या बढ़ने का हवाला देकर रोजगार का वादा पूरा करने के सबूत देने की कोशिश की है, लेकिन विपक्ष इसे कहीं भी सहमत नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. अग्रवाल.जे.सी.एवं चौधरी एन.के.-इलेक्शन इन इण्डिया, 1952-1996 क्षिप्रा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996.
2. अरस्तू,-पॉलिटिक्स बुक-।।। सैट- 8.
3. अग्निहोत्री रामावतार, ट्वेल्थ पार्लियामेंटरी इलेक्शन, जनरल इलेक्शन 1998 कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1998.
4. आर्शीवादम्, एडी.एण्ड कृष्णकांत मिश्र,-राजनीति विज्ञान, एसचन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2002,ऽ
5. आडवाणी, एल.के.-द पीपुलबिट्रेयड, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 1979. ऽ
6. ईस्टनडेविड,-दि पॉलिटिकल सिस्टमः इनक्वायरी इन टू द स्टेट ऑफ पॉलिटिकल साईन्स, साईंटिफिक बुक एजेन्सीज, कलकत्ता. ऽ
7. एल्डर्सवर्थ, एस.एण्ड. बशीरूद्दीन एहमद,-सिटीजन एण्ड् पॉलिटिक्सः मास पॉलिटिक्स विहेवियर इन इण्डिया, 1971 शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस शिकागो, न्यूयार्क, 1977.
8. काश्यप सुभाष, -संवैधानिक विकास एवं स्वतंत्रता संघर्ष, 1993. ऽ
9. काश्यप सुभाष, -दल,बदल एवं राज्यों की राजनीति, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 2002,
10. गांगुल वी.एवं गांगुली, एम. -वोटिंग बिहेवियर इन चेनि्जग सोसायटी, स्टर्लिंग पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,1975.
11. गोयल ओ.पी. -कास्ट एण्ड वोटिंग बिहेवियर, रितु पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1978ऽ
12. गोयल ओ.पी. -इंडियन गर्वनमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, लाईट एण्ड लाईफ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1977.
13. गिल काईस्ट-प्रिन्सिपल ऑफ पॉलिटिकल साईन्स. ऽ
14. गैटिल आर.जी. -पॉलिटिक्लथ्योरी, पृष्ठ- 20.
15. चौथरी डी.एस.एण्ड कार, जी.के.-इलेक्शन इलेक्टोरल बिहेवियर इन इण्डिया, कानि पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1992.
16. जॉन्स मोरिस, -इंडियन गर्वनमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, लंदन, 1957.
17. जॉन्स मोरिस, -पार्लियामेंन्ट इन इण्डिया, लंदन, 1957. ऽ
18. जैन एम.पी, इंडियन कांस्टीट्यशन लॉ, बम्बई, 1970. ऽ
19. जैन, पुखराज एवं फडिया बाबूलाल, -भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2004,
20. जैन, धर्मचन्द्र, -भारतीय राजनीतिकः इन्दिरा से राजीव तक, प्रिन्टवेल पब्लिशर्स, जयपुर, 1990. ऽ
21. जौहरी, जे.सी. एण्ड जौहरी सीमा -आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004.

कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

राजेश कुमार

शोधार्थी, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कालेज, आजमगढ़

डॉ० आसिफ कमाल

शोध निर्देशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कालेज, आजमगढ़

संक्षिप्त सारांश

जीवन का अस्तित्व एवं निरन्तरता बनाये रखने के लिए कुछ जन्मजात प्रवृत्तियों को लेकर इस संसार में जन्म लेता है। अत: प्रत्येक मनुष्य के अन्दर कुछ जन्मजात शक्तियाँ निहित होती है जिनके प्रस्फुटन से व्यक्तित्व का विकास होता है मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का प्रस्फुटन शिक्षा द्वारा ही सम्भव होता है किसी भी राष्ट्र को अग्रणी बनाने में राष्ट्र के भैतिक एवं मानवीय संसाधन ही उत्तरदायी होते है। कोई भी राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है जब उस राष्ट्र के सभी नागरिकों के विकास के सर्वोत्तम अवसर प्राप्त हो तथा वे लाभ उठाने में समर्थ हों। वस्तुत: मानव जाति के विकास का प्रमुख आधार ही शिक्षा है जिसके फलस्वरुप शिक्षा के द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का अधिकतम् विकास करके उसके ज्ञान, बोध, कौशल में अधिकतम् विकास किया जाता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा जनतांत्रिक देश है और जनतांत्रिक शासन प्रणाली बहुत ही कोमल होती है इसके असफल होने की अनेक सम्भावनायें रहती है। जनतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की सफलता सफल नागरिको पर निर्भर करती है। जनतंत्र देश के लिये सत्यवादी स्वतंत्र तथा निष्पक्ष विचार वाले अनुशासित सहयोगी तथा उदार राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत नागरिकों की आवश्यकता पड़ती है। वर्तमान युग में विश्व के सभी राष्ट्रों में औद्योगिक प्रगति की होड़ लगी है अपनी औद्योगिक प्रगति में हम अन्य राष्ट्रों के साथ उस समय तक नहीं चल सकते हैं जब तक कि हमारे नवयुवक इस प्रकार की गति में सक्षम न हों। दूसरे आजकल की शिक्षा पूर्णतया सैद्धांतिक है। वह बालकों को कोई व्यवहारिक ज्ञान नहीं प्रदान करती है। वह केवल पुस्तकीय है तथा वर्तमान शिक्षा बालकों में शारीरिक श्रम के प्रति कोई अच्छी आस्था विकसित नहीं करती है। महात्मा ज्योतिबाफूले, पोरियार और बाबा साहब अम्बेडकर भी निचली जातियों के नेता थे जिन्होंने भारत की महिलाओं को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये विभिन्न पहल की।

मुख्य शब्द:- व्यावसायिक अभिवृत्ति, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, CR मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- आज के तकनीकी और वैज्ञानिक युग में अजीविका या रोटी-रोजी की समस्या सम्पूर्ण वर्गों के सामने है। इस समस्या के निराकरण हेतु व्यक्ति किसी न किसी प्रकार का रोजगार या नौकरी करता है। परन्तु आवश्यकता यह है कि उसे अपने व्यवसाय में सफलता पाने के लिए उसका स्वयं का शिक्षित होना अपेक्षित है। इसमें भी यदि व्यवसाय से सम्बन्धित शिक्षा मिले तो सफलता की और भी सम्भावना बढ़ जाती है। उपरोक्त तत्वों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने कुछ ऐसे उपाय किये है। जिससे बेरोजगारी में वृद्धि न हो। साथ ही साथ सभी शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार मिल सके। भारत सरकार ने विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से स्नातक स्तर पर ऐसी शिक्षा का प्रारुप तैयार किया है जो व्यावसायिक है। स्नातक स्तर पर शिक्षा को रोजगारपरक

प्रासंगिक तथा जीवनोपयोगी बनाने की दृष्टि से इस स्तर का पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। हमारी परम्परागत् शिक्षा प्रणाली में संज्ञानात्मक पक्ष (मानसिक तथा बौद्धिक पक्ष) पर अधिक बल दिया जाता रहा है और संज्ञानेत्तर पक्ष (कौशलात्मक एवं भौतिक पक्ष) की प्रायः उपेक्षा होती रही है।

अतः पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा के समावेश से छात्रों के विकास से सम्बद्ध पक्षों को सम्पुष्ट एवं समृद्ध करने में व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत विभिन्न व्यावसायों या समाजोपयोगी उत्पादन कायों की शिक्षा विशेष रुप से उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है।

भारत एक महान प्रजातान्त्रिक देश है और प्रजातन्त्र की सफलता हेतु शिक्षा का बहुआयामी होना आवश्यक है। व्यावसायिक शिक्षा का राष्ट्रीय तथा प्रदेश में प्रचलित पाठ्यक्रम में समावेश किया गया है, वह बालक के सृजनात्मक प्रवृत्तियों को प्रशिक्षित करते हुए उनमें विविध रुचियों का विकास करता है। इसलिए व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्रों की रुचियों की विविधता, कार्यक्षमता, स्थानीय पर्यावरण में आवश्यक सामग्री की सुलभता पठन-पाठन हेतु अपेक्षित सुविधाओं की व्यवस्था आदि को ध्यान में रखते हुए स्नातक शिक्षा के कार्यक्रम का संचालन किया जा रहा है, इससे देश के विभिन्न व्यवसायों में कुशल व्यक्तियों की वृद्धि होगी। वे श्रम के महत्व को समझ सकेंगे। सम्यक रुप से व्यक्ति में आत्मनिर्भरता का विकास होगा।

अध्ययन की पृष्ठभूमिः- वैदिक काल में आज की व्यावसायिक शिक्षा को कर्म की शिक्षा कहा जाता था। प्रारम्भिक वैदिक काल में यह शिक्षा छात्रों की योग्यता और क्षमता के आधार पर उन्हें दी जाती थी। प्राचीन भारत में व्यावसायिक शिक्षा का क्या रुप था, क्या व्यवस्था थी, इसका प्रमाण प्राचीन साहित्य से बहुत कम मिलता है। जो कुछ प्रमाण मिलते है उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध किसी न किसी रुप में अवश्य होता था। तभी तो प्राचीन भारतीय समाज को औद्योगिक निपुणता और आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त हो सकी थी। प्राचीन भारत के उद्योगों द्वारा निर्मित अनेक वस्तुओं का व्यापार विदेशों तक विस्तृत था, जल मार्ग से प्राचीन भारतवासी परिचित थे और उनका सम्बन्ध पाश्चात्य देशों से था। जातकों में वर्णित अनेक व्यावसायिक यात्राएं इसका प्रमाण है जल मार्ग द्वारा व्यापार करने के लिये जलपोतों की आवश्यकता थी और भारतवर्ष में बड़े मजबूत विशाल जहाज बड़ी संख्या में बनाये जाते थे। सुदूर देशों को माल ले जाने तथा वहाँ से ले आने वाले जहाज के व्यापारियों को पर्याप्त आर्थिक आय होती थी। थल-मार्ग से भी सीमा प्रान्त के किरातों के साथ-साथ चमड़े, दरी तथा कपड़ें का व्यापार होता था।

प्राचीन भारत की व्यापारिक प्रगति में भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहित किया और भारतीय गृह उद्योगों द्वारा अनेक वस्तुओं का निर्माण होने लगा। भारतवर्ष में सुन्दर मजबूत तथा आकर्षक मिट्टी के बर्तन बनते थे। बढ़ई अनेक प्रकार की लकड़ी की वस्तुएँ जैसे पलंग, कुर्सी, नाँव, जहाज, रथ आदि बनाया करते थे। गृह कारखानों द्वारा ऊनी, रेशमी, मलमल आदि महीन कपड़ों की माँग पूरी हो जाती थी। हाथी दाँत का सामान भारत में प्राचीन काल से ही बहुत अच्छा बनता था। इसके अतिरिक्त कारपोी, सुगन्धित द्रव्य, सोना, रत्न, अस्त्र, शस्त्र भारतीय व्यवसाय की प्रमुख वस्तुएँ थी।

अध्ययन का औचित्यः- समाज का शिक्षा पर प्रभाव और शिक्षा का समाज पर प्रभाव नकारात्मक नहीं जा सकता है क्योंकि समाज शिक्षा की व्यवस्था करता है समाज के स्वरुप का प्रभाव शिक्षा की प्रकृति पर पड़ता है जैसा समाज का स्वरुप होगा वह शिक्षा को वैसे ही व्यवस्थित करता है। भारत एक लोकतांत्रिक देश है तो शिक्षा की प्रकृति उद्देश्य उसके संगठन एवं वातावरण में लोकतांत्रिक आदर्श प्रकृति की होती है। तानाशाही समाज की शिक्षा में अनुशासन व आज्ञाकारिता आदि पर बल दिया जाता है। समाजवादी देश की शिक्षा में समाजवादी तत्व व स्वरुप दिखायी देते हैं। परन्तु प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में सभी आयु, वर्ग, लिंग, जाति, धर्म, रंग के लोगों को समान शिक्षा का अवसर दिया गया है। जिस समाज की आम तौर पर दशा अच्छी होती है वहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर उसका प्रभाव पड़ता है। शिक्षा का प्रसार इसलिये अमीर देशों में जल्दी हुआ। भारत जैसे देशों में आज भी शिक्षा के लिये जो खर्च होने चाहिये नहीं हो पा रहे है। आर्थिक रुप से सम्पन्न समाज अच्छे विद्यालय खोलने में सक्षम होता है जिसके फलस्वरुप व्यावसायिक, प्राविधिक, प्रौद्योगिक, वैज्ञानिक आदि पक्षों का अधिक से अधिक विकास हेतु संसाधन उपलब्ध रहता है। आर्थिक रुप से विपन्न देशों में समाज की शिक्षा भी विपन्नता धारण किये रहती है।

शिक्षा पर समाज के आदर्शों का प्रभाव पड़ता है जैसे भारत में शिक्षा के स्वरुप पर डॉ0 राधाकृष्णन ने लिखा है कि ''शिक्षा को व्यक्ति और समाज दोनों का उत्थान करना चाहिये । तब हमारी शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्यों, लक्ष्यों, शिक्षण विधियों पाठ्यक्रम

व शिक्षार्थी, शिक्षक के गुणों की संकल्पना पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।'' इस प्रकार भारतीय समाज की आवश्यकता है, गरीबी बेरोजगारी को दूर करना, असमानता को दूर करना, लोकतंत्रिक मूल्यों का समावेश करना ही शिक्षा का उद्देश्य व पाठ्यक्रम होना चाहिये। शिक्षा व्यवस्था में समाज के दृष्टिकोण का भी प्रभाव पड़ता है यदि समाज रुढिघ्वादी दृष्टिकोण का है तो शैक्षिक प्रशासन, अनुशासन व पाठ्यक्रम में इसकी स्पष्ट छाप दिखायी देती है। समाज के उदार दृष्टिकोण का प्रभाव वहाँ की शिक्षा व्यवस्था में देखी जा सकती है। जैसे वैदिक युगीन समाज का दृष्टिकोण अध्यात्मिक था तब उस समय शिक्षा की व्यवस्था धार्मिक थी। इसी प्रकार से जनतांत्रिक दृष्टिकोण एवं उदार शिक्षा का प्रभाव शिक्षा व्यवस्था में स्पष्ट दिखायी देता है। आधुनिक काल में व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी उत्तरवैदिक कालीन विचार मान्य नही है। आज संसार के अधिकतर देशों में लोकतन्त्र शासन प्रणाली है लोकतन्त्र मनुष्य-मनुष्य में किसी भी प्रकार का भेद नही करता। आज सभी मनुष्यों को अपनी योग्यता एवं क्षमतानुसार किसी भी प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है और ऐसा ही प्रारम्भिक वैदिक काल में था। कहना न होगा कि यह देन भी वैदिक कालीन शिक्षा की ही देन है और इस बीच व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र और अनुरुप ये जो अन्तर हुआ है वह तो विकास प्रक्रिया का परिणाम है। वैदिक कालीन शिक्षा के मुख्य केन्द्र तक्षशिला, केकय, मिथिला, प्रयाग, काशी, काँची आदि द्वारा व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। वैदिक काल में छात्रों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कौशलों में दक्ष बनाने के साथ ही जीविका का निर्वाह करने के लिए तैयार किया जाता था। जीविकोपार्जन के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बालकों को व्यावसायिक शिक्षा शिक्षा में कृषि एवं वाणिज्य की शिक्षा औषधि शास्त्र की शिक्षा सैनिक शिक्षा आदि का विकास हुआ उपयोगी हस्त कलाओं में पीतल व मिट्टी की वस्तुयें बनाना, लकड़ी का सामान बनाना, कपड़ा बुनना एवं सोनें और चाँदी के आभूषण बनाना आदि की शिक्षा दी जाती थी।

साहित्यावलोकनः- सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से होता है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ळा को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रुपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से अनुसंधानकर्ळा को निम्नलिखित लाभ है-

1. यह आवश्यक पुनरावृत्ति से बचाता है।
2. शोध प्रबन्ध के एक महत्वपूर्ण अंग के रुप में अनुसंधानकर्त्ता के ज्ञान, उसकी स्पष्टता तथा कुशलता को स्पष्ट करता है।
3. सभी प्रकार के विज्ञानों तथा शास्त्रों में अनुसंधान कार्य का आधार होता है इसके अभाव में एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं।
4. अब तक उस क्षेत्र में हो चुके कार्य की सूचना देता है।
5. पहले किये गये कार्य के आंकड़े वर्तमान अध्ययन में सहायक होते है।
6. यह समस्या के चुनाव, विश्लेषण एवं कथन में सहायक होता है।
7. यह समस्या के अध्ययन में सूझ पैदा करता है।
8. अनुसंधानकर्ळा के समय की बचत करता है।
9. समस्या के सीमांकन में सहायक होता है।
10. इसके अध्ययन की रुपरेखा तैयार करने में सहायता मिलती है।
11. अनुसंधानकर्ळा को त्रुटियों से बचाता है, एवं समाधान रखता है।
12. अध्ययन की विधि में सुधार कर श्रम की बचत करता है तथा अनुसंधानकर्ळा में आत्म-विश्वास उत्पन्न करता है।

टॉम मार्सिकोव्सकी (2019); ''क्षेत्र के शुरुआती दिनों में से अभिवृत्ति पर अध्ययन सैद्धाँतिक व अनुभवजन्य तरीके से किया जो एक दूसरे पर निर्भरता का दावा करते हैं और अभिवृत्ति एक अग्रदूत जैसा कार्य करती है जो नियमित रुप से अनुसंधान, मूल्यांकन, अभ्यास व विकास के लिये अति आवश्यक है जिससे भविष्य में रोजगार परक बनने का अवसर मिलता है।''

डी0 रॉठी देवी (2019); ''व्यावसायिक शिक्षा विद्यालयों के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा से पहले की व्यवसाय चयन हेतु शिक्षा प्रदान करती है। वर्तमान अध्ययन तमिलनाडु के चेन्नई शहर के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के अभिवृत्ति का अध्ययन

व्यावसायिक शिक्षा के प्रति से जुड़ा है। जिसमें 158 बच्चों पर साक्षात्कार प्रविधि से अभिवृत्ति को मापा गया और लिकर्ट मापनी के आधार पर कुल 13 अभिवृत्तियों पर प्रतिक्रिया ली गयी। कुछ बच्चों ने पूर्ण सहमति, कुछ ने अनिश्चिति और कुछ ने असहमति जताया। परिणाम आया कि व्यावसायिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर छात्र व छात्राओं के मध्य पाया गया। छात्रों ने छात्राओं की तुलना में अधिक रुचि दिखाई। छात्रों के उम्र का आधार व्यावसायिक शिक्षा के प्रति क्रमिक देखने को मिला। प्रस्तुत अध्ययन यह सुझाव देता है कि कैरियर गाइडेंस माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर आवश्यक रुप से दिये जाने चाहिये जिससे विद्यार्थियों को भविष्य के रोजगार चयन में सफलता मिले और वे भविष्य में रोजगारपरक हो सकें।''

पामंकास (2021); ''इस अध्ययन ने मैकेनिकल इन्जीनियरिंग में व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक अनुभावात्मक शिक्षण डिजाइन के उपयोग का मूल्यांकन किया। शोध का उद्देश्य फेल्डर सिल्वरमैन की छात्र सीखने की शैलियों पर विचार करके कोल्ब के चरणों के अनुसार डिजाइन की गई वर्कशीट का उपयोग करके सीखने की गतिविधियों में भाग लेने के बाद छात्रों के दृष्टिकोण और प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण करना है। यह शोध गुणात्मक डेटा विश्लेषण को नियोजित किया गया था। डेटा को एक यादृच्छिक विधि द्वारा तकनीकि विश्लेषण करके 10वीं कक्षा में 28 उत्तरदाताओं के साथ एकत्र किया गया था। वर्णनात्मक गुणात्मक विश्लेषण का उपयोग करके डेटा का विश्लेषण किया गया था। अनुभवात्मक सीखने की गतिविधियों को ठोस अनुभव चिन्तनशील अवलोकन अर्मूत अवधारणा और सक्रिय प्रयोग किया गया था। यह दिखाया गया था, कि छात्रों के पास सकारात्मक दृष्टिकोण व प्रतिक्रिया है। प्रायोगिक गतिविधियाँ छात्रों को मैंकेनिकल इंन्जीनियरिंग की बुनियादी ज्ञान सीखने में मद् करती है। वे सीखने की गतिविधियों में भाग लेने का आनन्द लेते है। प्रायोगिक अधिगम गतिविधियों को मनोरंजक रुचिकर और समझने में आसान माना जाता है। छात्र पाठ्यक्रम सामग्री को वास्तविक जीवन को स्थितियों को जोड़ सकते है। जिससे छात्रों को सीखने को बढ़ाने और उनके द्वारा सीखे गये ज्ञान को अपने स्वयं के ज्ञान को जोड़ने में लाभ हो सकता है। वह सुझाव दिया गया है कि अनुभवात्मक डिजाइन का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाता है। और व्यावसायिक हाईस्कूल में सीखने के सिद्धान्त और अभ्यास के बीच सम्बन्धों का पता लगा सकता है। छात्र पाठ्य सामग्री को वास्तविक जीवन की स्थिति से जोड़ सकते है। जिससे छात्रों को सीखने को बढ़ाने और उनके द्वारा सीखे गये ज्ञान को अपने स्वयं के अनुभवों से जोड़ने में लाभ हो सकता है। यह सुझाव दिया गया है कि अनुभवात्मक डिजाइन का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है। और व्यावसायिक हाईस्कूल में सीखने के सिद्धान्त और अभ्यास के बीच सम्बन्धों का पता लग सकता है।''

सैडेले एम0 जे0 (2021); ''एक अध्यापक अपने बचकानी हरकतों के लिये नाश्ते की टेबल पर अपने साथियों से चर्चा कर रहे थे कि हमे 'बदमाशी' शब्द पर रोक लगानी चाहिए क्योंकि यह एक तरह का उत्पीड़न होता है। आंकलन में नि:सन्देह वे सही थे यह शब्दावली के प्रयोग करने में हीर समझ आता है जो हमारे क्षेत्र में आम है। जबकि बदमाशी एक प्राथमिक विधान के शब्द जैसी लगती है। मैने महसूस किया कि सूचनात्मक स्लाईड शो के लिये चर्चा को फिर से शुरु की गयी थी। शायद उसके पीछे एक प्रतिबद्धता ही थी जो अध्यापक के इस तरह के बचकाने व्यवहारों से उसे दूर करने का स्वप्रयास प्रेरित करती है।''

रवि (2021): ''स्नातक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी अध्यापकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नही ग्रामीण शिक्षकों में शहरी शिक्षकों की तुलना में व्यावसाय के प्रति व्यावसायिक प्रतिबद्धता अधिक पायी जाती है।''

शारदा प्रसाद सिंह (2021): ''इनके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता महिला शिक्षकों की तुलना में अधिक है।''

कुमार सन्तोष (2021); ''शिक्षा से सम्बन्धित योजनाओं को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करना शिक्षकों के व्यक्तिगत व्यवहार शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं और व्यावसायिक अभिवृत्ति पर निर्भर करता है। पूर्णत: प्रतिबद्ध, सृजनशील शिक्षकों ने शिक्षा प्रणाली में व्याप्त असंतोष नगण्य लाभों के बावजूद अपने-अपने व्यावसायिक दायित्वों के समपर्ण के साथ सफलता पूर्ण किया है। दूसरी तरफ संख्या में ऐसे व्यक्ति भी अध्यापक बन जाते है जिनमें शिक्षण अभिक्षमता व अभिवृत्ति की कमी होती है। ऐसे शिक्षकों के कारण हमारे शिक्षातंत्र पर अँगुली उठती है। इस शोधपत्र के आँकड़ों के विश्लेषण व व्याख्या से हम कह सकते है कि लिंग के आधार पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के व्यावसायिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। जबकि विषय के आधार पर कला वर्ग के अपेक्षा विज्ञान वर्ग शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति अधिक पायी जाती है। अत: कला वर्ग के शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति अधिक सजग होकर रुचि के साथ शिक्षण कार्य सम्पादित करना चाहिये जिससे भविष्य में होने वाले इस प्रकार के शोध या सर्वेक्षण यह अन्तर परिलक्षित न हो।''

अध्ययन का उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''कला तथा विज्ञान के विथार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना''।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि ''कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।''

शोध विधिः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा अमतल (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा veeir का अर्थ to look होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेंत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टिः- प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समस्त वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर में अध्यनरत् आजमगढ़ जनपद के कला वर्ग, वाणिज्य वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को लिया गया था। समष्टि की विशेषतायें निम्नलिखित है। समष्टि परिमित तथा अपरिमित दो प्रकार की होती है। जिसमें प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि परिमित प्रकार की है प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समांगी प्रकार की है क्योंकि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के चयन की योग्यता का मानक एक ही होता है। किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण ईकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

N=1200

आजमगढ़ जनपद के समस्त अनुदानित महाविद्यालय के विद्यार्थी

प्रतिदर्शः- प्रस्तुत अध्ययन के प्रतिदर्श का आकार 1200 होगा। किसी बड़ी राशि में से चुनी हुई एक छोटी सी मात्रा को प्रतिदर्श या नमूना है। यह माना जाता है कि प्रतिदर्श के सांख्यिकीय गुण पूरी राशि के सांख्यिकीय गुणों का प्रतिनिधित्व करते है।

न्यादर्शः- शोधकर्त्ता द्वारा समय धन के अभाव के कारण आगमनात्मक प्रविधि अपनाते हुए समष्टि से एक छोटा समूह अध्ययन हेतु चयनित किया जाता है। जिसे न्यादर्श कहते है। न्यादर्श पूरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन में आजमगढ़ जनपद के यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल बारह सौ विद्यार्थियों का चयन किया गया था जिनके वितरण का आधार क्षेत्र, लिंग, विषय तथा वित्तपोषण था। अनुसंधान में प्रायः प्रचलित विधि का प्रयोग सम्भव नही होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन धन, समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकतः अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्राचलिक विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्राचलिक विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है।

यदि समष्टि का स्वरुप सजातीय रहता है, तब प्रतिदर्श के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होतीं, परन्तु जब समष्टि का स्वरुप विषम जातीय रहता है, तब प्रतिदर्श की इकाईयों के चयन के लिए प्रतिचयन प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है।

तालिका 1: न्यादर्श वितरण

क्र.सं.	महाविद्यालय का नाम	कला वर्ग	वाणिज्य वर्ग	विज्ञान वर्ग
1.	श्री दुर्गाजी चन्देश्वर महाविद्यालय आजमगढ़	200	250	200
2.	शिब्ली नेशनल कालेज आजमगढ़	100	150	200
3.	गांधी पी0जी0 कालेज माल्टारी आजमगढ़	100	00	00
	कुल योग – 1200	400	400	400

शोध उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु शोध उपकरण स्वनिर्मित था जिसका मानकीकरण किया गया था।

व्यावसायिक अभिवृत्ति मापनी:- प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत शोधकर्त्ता द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली व्यावसायिक अभिवृत्ति के मापन हेतु बनायी गयी थी। जो अपने विषय विशेषज्ञ यानी निर्देशक के सुझाव के आधार पर कुल 110 कथन बनाये गये जो लिकर्ट मापनी के तीनों बिन्दु सहमत, अनिश्चित व असहमत पर बने थे। जिनसे टी - विश्लेषण सार्थक होने पर यानी .05 पर 1.96 से अधिक मूल्य के कुल 370 विद्यार्थियों के प्रतिदर्श पर किया गया था और सार्थकता के आधार पर कुल 60 कथन चयनित हुये जिन्हें पूर्ण रुप से फाइनल रखते हुये उपकरण को अन्तिम रुप दिया गया। इसकी टेस्ट-रीटेस्ट विश्वसनीयता गुणांक 0.72 और विशेषज्ञ वैधता गुणांक 0.81 प्राप्त हुआ। इसका मानक प्रतिशतांक था। इसका अंकन सकारात्मक कथन पर सहमत के लिये 02, अनिश्चित पर 01 तथा असहमत पर 0 अंक और नकारात्मक होने पर क्रमशः 0, 1, 2, रखा गया है।

तालिका-2 कथनों का विवरण

सकारात्मक कथन	1, 4, 5, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 32, 33, 34, 35, 36, 38, 39, 40, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 51, 52, 54, 56, 57, 59, 60
नकारात्मक कथन	2, 3, 6, 7, 16, 31, 37, 41, 50, 53, 55, 58

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''कला तथा विज्ञान के विद्याार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना'' इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना परीक्षण के लिये बनायी गयी थी ''कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।'' इसके परीक्षण हेतु निम्नलिखित विश्लेषण तालिका 3 निर्मित की गयी थी।

तालिका-3: कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति सम्बन्धी टी-विश्लेषण तालिका

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी.मूल्य	सार्थकता
कला वर्ग	400	80.48	11.34			असार्थक
विज्ञान वर्ग	400	82.13	12.48	0.88	1.87	.05=1.96

df (798) at .05 = 1.96

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि कला वर्ग के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का मध्यमान 80.48 व मानक विचलन 11.34 है जबकि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मध्यमान 82.13 तथा मानक विचलन 12.48 है जिससे अभिकलित मानक त्रुटि 0.88 है और अभिकलित टी-मूल्य 1.87 है जो df (798) के .05 सार्थकता स्तर पर 1.96 से कम है जिसके आधार पर बनायी गयी शून्य परिकल्पना ''कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।'' स्थापित हो जाती है और स्पष्ट होता है कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति समान स्तर की होती है। कुमार सन्तोष (2021) का अध्ययन प्रस्तुत अध्ययन का विरोधी है। प्रस्तुत परिणाम के सम्भवतः कारण है कि व्यावसायिक अभिवृत्ति कला व विज्ञान वर्ग के समान है। इसलिये कि आजमगढ़ जनपद का परिवेश निजी व्यवसाय के क्षेत्र कम विकसित है जिससे विद्यार्थियों ने अपनी रुचि समान रुप से दिखायी दे रही है।

शोध निष्कर्ष:- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषण व व्याख्या से निष्कर्ष प्राप्त हुये। कला वर्ग व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिवृत्ति समान होती है।

शैक्षिक निहितार्थ:- मानव एक सामाजिक प्राणी है जिसकी मूलभूत आवश्यकतायें रोटी, कपड़ा, मकान, चिकित्सा व सुरक्षा है जिसके लिये उसे श्रम करना पड़ता है। शारीरिक श्रम या मानसिक श्रम करना पड़ता है। केवल शारीरिक रुप से परिश्रम करने पर मूलभूत आवश्यकतायें ही पूर्ति हो पाती है यदि परिवार में पत्नि, बच्चे, माता-पिता आदि हों तो खर्च पूरा नहीं पड़ता है जिसके

कारण पूरी पीढ़ियां शारीरिक श्रम में उदरपूर्ति में लग जाती है। दूसरा होता है मानसिक श्रम जिसके लिये मानसिक विकास हेतु समाज ने विद्यालय खोल रखे है जहाँ पर शिक्षा दी जाती है। विद्यालय शिक्षा के साथ-साथ अनुशासन व शारीरिक श्रम भी प्रशिक्षित करते है जिसमें कृषि, कुटीर उद्योग, इत्यादि की जानकारी व प्रशिक्षण बचपन से दिया जाता है जिसे सीखते व करते हुये बच्चा बड़ा होता है और उसी क्षेत्र में अपने व्यावसाय की तलाश करता है और पाने पर विकास का साधन बना लेता है। स्वतंत्र भारत को विरासत में गरीबी और अशिक्षा मिली थी परन्तु हमारे राजनेताओं के अथक प्रयास से स्वतंत्रता के बाद निरन्तर स्थितियों में सुधार आ रहा है और हमारे बच्चे विद्यालय की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। हमारा भारतीय समाज जाति, धर्म, रंग, लिंग इत्यादि में विभाजित होते हुये भी अनेकता में एकता व अखंडता के साथ-साथ वसुधैव कुटुम्बकम का आदर्श संजोये आगे बढ़ रहा है। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न समितियां और आयोगों ने बढ़कर कार्य किया है जिससे आज हमारी शिक्षा दर व लिंग असमानता में गिरावट आयी है। विद्यालय हमारे देश के वे कारखाने है जहाँ बच्चे भविष्य के लिये तराशे जाते है। 1968 के शिक्षा नीति में इस बात का वर्णन आता है जो डॉ0 दौलत सिंह कोठारी ने (1964-66) के अभिलेख में सुझाव दिया था कि शिक्षा में हमें सैद्धांतिक भाग सिखाने के साथ-साथ व्यवहारिक व व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था भी वृहत् पैमाने पर सामान्य पाठ्यक्रम के साथ करना होगा। 1968 की शिक्षा नीति विशेषकर कुटीर प्रशिक्षण व कृषि व्यवसाय की तरफ अग्रसर किया परन्तु 1986 की शिक्षा नीति एक अध्याय ही व्यावसायिक शिक्षा पर प्रस्तावित किया जिससे व्यवसाय की शिक्षा सभी क्षेत्रों में बढ़ायी जाय। चिकित्सा, इंजीनियरिंग के साथ-साथ अन्य सभी क्षेत्रों में रोजगार की शिक्षा को पाठ्यक्रम का अंग बनाने की व्यवस्था में तभी से सरकारें लगी है।

हमारे देश की शिक्षा जो सामान्य रुप से दी जाती थी उस कक्षा में भी बच्चे किसानों के घर से आते है जिन्हें कृषि व्यावसाय भली-भाँति पता है वही से कृषि पर बहाल व प्रशिक्षण देने की बात कहीं गयी जिसका पाठ्यक्रम कृषि विश्वविद्यालयों और महाविद्यालय में प्रशिक्षित प्राध्यापकों व वैज्ञानिकों द्वारा चलाया जाता है। इन्हीं व्यवसाय के आधार पर कृषि में पशुपालन या डेयरी उद्योग, भेड़ पालन, बकरी पालन, सूअर पालन, मूर्गी पालन, मत्स्यपालन, बागवानी, बगीचा अर्थात् फलों की खेती, फूलों की खेती, सब्जी की खेती इत्यादि आज व्यावसाय का रुप ले चुकी है। हमारा याश्चीर्य उ0प्र0 गन्ने की खेती व बागवानी से मसहूर है जो निरन्तर इन कृषि से अच्छा व्यवसाय कर रहा है। आज तो सरकारे, समितियां और स्वयं सेवी संस्थायें भी छोटे-छोटे कास्तकारों से किराये पर जमीन लेकर एक बड़ा फार्म बना रही हैं जहाँ वैज्ञानिक खेती एक बड़े व्यवसाय के रुप में प्रफुल्लित हो रही है। हमारे देश में कपास की खेती, जूट की खेती, ऊलेन इत्यादि उद्योग इसी कृषि के सहारे हैं जो आज पूरी दुनियाँ के लिये एक निशान बन चुके हैं। हमारी व्यावसायिक संस्थायें व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करके आज किसानों व श्रमिकों को प्रशिक्षित कर रहें हैं जिससे एक समय आजाद हुये भारत की जनसंख्या के पेंट भारने के लिये राशन बाहर से मंगवाना पड़ता था आज बचने पर गोदामों में सड़ रहा है। करोना काल में गरीब परिवारों को मुफ्त में राशन वितरण करने के बाद भी समाप्त नहीं हो रहा है। अत: कृषि व्यवसाय अपना रास्ता पकड़ चुका है। कृषि व्यवसाय एक महत्वपूर्ण व्यवसाय होने के साथ-साथ अपनी पूँजी का स्वयं वृद्धि कारक भी सिद्ध हो रहा है।

व्यावसायिक शिक्षा आधुनिक युग की नयी माँग है। व्यावसायिक शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुये इसे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 में सम्मिलित किया गया है। वर्तमान में उसी शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का स्थान दिया जाता है जो छात्रों को जीविकोपार्जन करने योग्य बनायें। शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक शिक्षा को जोड़ने का प्रथम प्रयास कोठारी आयोग 1964-66 ने किया था। इस आयोग ने सरकार की माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण का सुझाव दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- पामंकास (2021); ''मैंकेनिकल इन्जीनियरिंग में अनुभावात्मक सीखने की ओर व्यावसायिक छात्र का रवैया व प्रतिक्रिया'' फरवरी 2021 औपन इंन्जीनियरिंग 264/268.
- रवि (2021): ''स्नातक स्तर के शिक्षकों के दायित्वबोध एवम् उनकी अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता का एक अध्ययन'' शोध प्रबन्ध राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर।

- डी0 रॉठी देवी (2019); ''एट्टीच्यूड ऑफ स्टूडेंट्स टूवार्डस वाकेंशनल एज्यूकेशन विथ रेफेरेन्स टू चेन्नई सिटी'' द इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इंडिया साइकोलॉजी टवसण् 07ए प्ैन्:03ण्
- शारदा प्रसाद सिंह (2021): ''माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता एवं उनकी व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता का एक अध्ययन'' शोध प्रबन्ध राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर।
- कुमार सन्तोष (2021); ''माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन'' इंडियन जर्नल सोरा - पोल 08 (01):93-94.
- मौर्य एच0सी0 (1990); ''विश्वविद्यालय और पूर्व विश्वविद्यालयी व्याख्याताओं की शैक्षिक दक्षता, व्यक्तित्व व अभिवृत्ति के बीच सम्बन्ध के अध्ययन का प्रयास'' पी-एच.डी. शोध आगरा विश्वविद्यालय.
- रामशकल पांण्डेय: ''विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा-शास्त्री' अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा.
- रेड्डी बी0एम0 (1991); ''आन्ध्र प्रदेश में माध्यमिक विशलयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति व शिक्षण अभियोग्यता का उनके लिंग, आयु, विभाग व वर्ग के सम्बन्ध से सम्बन्ध निर्धारण का प्रयास'' पी-एच0डी0 एजूकेशन, उसमानिया विश्वविद्यालय.
- हरग्रीव्य ए0 (1997): 'रीयिंकिग एज्यूकेशनल वान जीई दिल और दिमाग के साथ एलेक्जौड्रिया वी.ए. एसोसियेशन फार सुपे संशोध क और पाठ्यचर्या विकास ई. एन. टी।

राजेंद्र यादव के कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ० सुषमा पाल

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, मुरादाबाद

सारांश

(कथा-साहित्य अभिनव उपलब्धियों सहित, संकीर्ण वीथिका से निकलकर विराट जन-प्रवाह में घुलमिल गया है। जहाँ तक कथा-साहित्य पर मनोविज्ञान के प्रभाव का प्रश्न है, इतना ही कहना पर्याप्त है कि पहले कथा-साहित्य मनोविज्ञान से प्रभावित होता था। अब उसने मनोविज्ञान को आत्मसात् कर लिया है। साहित्य का विषय है मानव-मन। मानव संवेदनाएँ, उसका भीतर-बाहर सब कुछ और मानव की संवेदनाओं का अध्ययन मनोविज्ञान करता है। वस्तुत: मानव-जीवन के प्रति कथाकार की दृष्टि और जीवन में व्याप्त विविध स्थितियाँ, समस्याएँ प्रश्न- एक साथ कथा-साहित्य और मनुष्य के सम्बन्धों को नया रूप देते हैं, जिससे पीछे से आती साहित्यिक रूढ़ता को परिवर्तन का बिन्दु मिलता है।राजेंद्र यादव के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक पक्षों का स्पष्ट विवेचन किया गया है। इनकी कहानियों में व्यक्ति के भीतर उभरते व्यक्तित्व से उत्पन्न संघर्षों का निदर्शन दृष्टिगत होता है। राजेंद्र यादव ने कहानी एवं उपन्यासों के माध्यम से पात्रों की सूक्ष्म मानसिक प्रक्रियाओं को खोलने का प्रयास किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के द्वारा व्यक्ति के मन के मनोवेगों, मनोविकारों एवं अनुभूतियों की व्याख्या की गयी है।)

आधुनिक हिन्दी कथाकारों ने बदलते परिवेश के अनुरूप अपनी जीवनदृष्टि में मनोविश्लेषण के विभिन्न सिद्धान्तों का समावेश करते हुए साहित्य को एक बार फिर जीवन के ठोस धरातल पर ला खड़ा किया। "मनोविज्ञान का प्रकृत स्वरूप व प्रभाव सामयिक विषमताओं के यथार्थ की उपज है।'' कथा-साहित्य में मनोविज्ञान आन्तरिक एव बाह्य उभयपक्षीय व्यवहार दोनों से ही सम्बद्ध है। व्यवहार दूसरे लोग भी देख सकते है। अत: मनुष्य के व्यवहारों के दो पक्ष होते हैं- एक बाहरी और दूसरा भीतरी, एक शारीरिक दूसरा मानसिक, इन्हीं मानवीय व्यवहारों के अध्ययन को मनोविज्ञान कहते हैं।

मनोविज्ञान का प्रयोग पूर्णरूप से कथा-साहित्य के प्रत्येक स्थिति को प्रभावित करता है। गढ़े-गढ़ाए आदर्श चरित्रों के स्थान पर जिन्दगी के बीच घुसकर वहीं से औदात्य और खघमियों से संश्लिष्ट व्यक्तियों का ग्रहण उसे मनोविश्लेषण के नजदीक ले आया। "कथा-साहित्य का क्षेत्र विस्तृत है। आधुनिक जीवन की भागदौड़ के बीच, जटिलतर होते जा रहे जीवन की जितनी यथार्थ अभिव्यक्ति कथा-साहित्य में संभव है। उतनी अन्य किसी विधा में नहीं।''[1] सैद्धान्तिक आधार की व्यावहारिक पुष्टि प्रदान करते हुए उसने मानव के अन्तर्बाह्य पक्षों में पृथकत्व होने पर भी उन्हें परस्पर सम्बद्ध बताया। कथा-साहित्य का सम्बन्ध जीवन के यथार्थ से होता है। "मानव जीवन के अन्तर-यथार्थ को उद्घाटित करते हुए कहानी एवं उपन्यास मनोविज्ञान के बहुत समीप हो जाते हैं।''[2] मानसिक नियतत्ववाद का अवलम्ब लेकर उसने सिद्ध कर दिया कि मानसिक तथ्य आकस्मिक नहीं होते, उनके पीछे कारण होता है। "अत: स्वप्नों, कल्पनाओं, स्मृति-ह्रास तथा जिह्वा-स्खलन आदि की तर्कपूर्ण व्याख्याएँ सम्भव हैं।"[3] व्यवहार का कोई न कोई कारक अवश्य होता है। "यदि व्यवहार का चेतनात्मक प्रेरक नहीं होता, तो अचेतनात्मक प्रेरक अवश्य होगा।"[4] रूढ़ियों के प्रति विद्रोहात्मक दृष्टिकोण अपनाती आधुनिक हिन्दी कहानी यह आस्था व्यक्त करती है कि मानव-जीवन को संचालित और विकसित करने वाली आदिम और नैसर्गिक वृत्ति 'काम' पर समाज के अनावश्यक और अनुचित बन्धन मनुष्य के स्वाभाविक विकास में बाधा ही नहीं, अनेक मानसिक विकृतियों के जन्मदाता भी हैं।

कथा-साहित्य में मनोविज्ञान के विविध पक्षों का निदर्शन स्वाभाविक रूप से दृष्टिगत होता है। वस्तुतः मानव-मन की परिवर्तित होती मनोदशाओं का चित्रण करने वाले कथा-साहित्य में मनोविज्ञान का प्रतिपादन स्वतः हो जाता है। अतः कथा-साहित्य में मनोविज्ञान अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कथा-साहित्य में व्यक्ति के संघर्षों, अन्तर्द्वन्द्व क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का अंकन परिलक्षित होता है।

स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य के क्षेत्र में राजेन्द्र यादव का श्रेष्ठ स्थान है। नवीन संदर्भो के अधुनातन प्रयोगों के प्रति इनका विशेष आग्रह रहता है। इनका कथा साहित्य मनोवैज्ञानिक खोज के प्रति एक नये कोण का परिचय देता है । इन्होंने आज के युग में बदलते, टूटते, बनते बिखरते सम्बन्धों के अनेक पहलुओं को अपने कथा साहित्य का आधार बनाया है। राजेन्द्र यादव की 'छोटे-छोटे ताजमहल' परिणय और प्रणय की कहानी है, जो ताजमहल की छाया में घटित होती है। कहानी के अन्दर एक और कहानी है, मि0 देव और राका की कहानी । यह कहानी दो स्वरों पर बोलती है।मीरा और विजय का खिंचाव ओर दुराव सम्बन्धों के तनाव के कारण है। ताजमहल में दोनों मिलते हैं और बिना कुछ कहे लौट जाते हैं। भीतर से दोनों इतने कमजोर हैं कि कुछ निर्णय नहीं ले पाते हैं, रह-रहकर अतीत से जुड़ जाते हैं। दोनों का द्वन्द्व अनेक शाखाओं में बँटा हुआ है जो एक-दूसरे से भिन्न है। अपने में ही खोये दोनों एक-दूसरे की उपस्थिति से चौंक-चौंक पड़ते हैं-"कुछ कह रही थी क्या? मैं? नहीं तो।"[5] जैसे कुछ अप्रत्याशित घटने का दोनों को इंतजार है।

इनकी कुछ कहानियाँ लघु उपन्यास के रूप में चर्चित हुई हैं। 'उसका बचपन', 'वे दिन', 'प्रतीक्षा', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'अभिमन्यु की हत्या', 'एक कटी हुई कहानी' आदि कहानियों में छोटी-छोटी घटनाएँ या प्रतिक्रियाएँ हैं, जो किसी मनोवैज्ञानिक उद्देश्य की सहायक हैं । अन्तर के संघर्ष की कहानी का रूप देने वाली पात्र के चारों ओर की बाह्य परिस्थितियाँ हैं । इनके पात्र का चित्रण दो स्तरों पर होता है- समष्टिगत स्तर और व्यक्तिगत स्तर । पात्र समाज में रहते हुए भी अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत रहते हैं, अतः द्वन्द्व समाज से व्यक्ति की ओर और व्यक्ति से समाज की ओर चक्कर काटता रहता है। यही स्वर 'देवताओं की मूर्तियाँ', 'खेल खिलौने', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'अभिमन्यु की आत्महत्या', 'किनारे से किनारे तक', 'टूटना', 'अपने पार' तथा 'प्रतीक्षा' आदि कहानी संग्रहों की विभिन्न कहानियों में गूँजता रहता है।

राजेन्द्र यादव की 'भय' कहानी आर्थिक शोषण की इंतिहा का संकेत करती है। रहीमबख्श एक गैराज का नौकर है, जो क्रूर और अत्याचारी मालिक के नृशंस व्यवहार से कभी भयभीत नहीं होता है। वह अपने मालिक के नृशंस व्यवहार का विरोध न करके उसे सहजता से स्वीकार करता है। मालिक द्वारा शोषण का शिकार होने पर भी रहीमबख्श असुरक्षा का भय किये बिना सुरक्षित होने की अनुभूति करता है। आर्थिक मजबूरियों के संदर्भ में यह जारी स्थिति निर्मित होती है। जहाँ घुटन की अनुभूति भी समाप्त हो जाती है। "आर्थिक प्रभाव या आर्थिक दबाव किस तरह से मानवीय मूल्यों के लिए संकट बनकर उपस्थित हुए हैं, और उसे स्वार्थ केन्द्रित कर रहे हैं।"[6]

राजेन्द्र यादव की 'टूटना' कहानी में अभिजात्य वर्ग की लीना के सम्मुख किशोर इस प्रकार हीनग्रन्थि का शिकार हो जाता है कि उनके अलगाव की स्थिति आ जाती है। संस्कारगत असमानता के कारण पति-पत्नी के बीच बढ़ती दूरी तनाव उत्पन्न करती है। उच्च वर्ग के प्रति उनकी घृणा लीना के पिता दीक्षित के प्रति घृणा में तथा लीना के प्रति उसके व्यवहार में व्यक्त होती है। छोटे-छोटे प्रसंगों को लेकर वह कटु हो जाता है- अपने सहकारी अंग्रेजी विभाग के मेहता द्वारा लीना के जन्मदिन पर उपहार में दी गई सिल्क की साड़ी को देख उन दोनों के सम्बन्धों का संदिग्ध मान उग्र हो उठता है- "लाट साहब की बच्ची कहती"- हमें इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स है। ... हममें बातचीत, उठने-बैठने के मैनर्स नहीं हैं। ... हम कंजूस और बदजबात हैं ... बड़े बाप की बेटी और मिठबोली तो आप हैं । या तो जो मन में आये सो करने दो, या ये सब सुनो ... जिन्दगी तबाह करके रख दी ... भाई-भाभी के पास नहीं गये माँ-बाप की तरह उन्होंने पढ़ाया-लिखाया और शादी के बाद उन्हें धेले की मदद भी नहीं कर सके ... अपने लिए रूमाल नहीं लिया । कुछ बचे, तो लें ... दिन-रात कालेज में मेहनत करो, थीसिस के बहाने ट्यूशन करने जाओ ... और यहाँ दिल की भरी है ... कोठीदूबंगला, नौकर-चाकर ... बाप की नवाबी । 'देखा किशोर पापा को ... बीस बार कहूँगा । रोक, तू मुझे रोक । नकलची बन्दर कहीं के । साले अंग्रेजी की नकल कर करके, उनके जूते चाट-चाट कर आज साहब बन गये हैं ... हा-हा-हा, साहब दस सेर क्रीम लाये थे .... बोस्की की चादरें ... दो-दो हजार के गलीचे ....।'"[7] कई बार वैचारिक-बौद्धिक समानता के होते हुए भी संस्कार जीवनस्तर व रहन-सहन के तौर तरीकों में असमानता होना भी पति-पत्नी के बीच तनाव का कारण होता है । प्रस्तुत कहानी में असमानता से लेकर अस्तित्व संकट तक, तनाव और द्वन्द्व की विभिन्न स्थितियों को उभारा है।

राजेन्द्र यादव की 'दायरा' कहानी के हरिबाबू एक सज्जन व्यक्ति हैं। किन्तु आर्थिक संकट से ग्रस्त हो जाने के कारण प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए मेहमानों के सामने अब भी अपने आपको उच्चवर्गीय सम्पन्न व्यक्ति दिखाने का प्रयास करते हैं। इसी सम्पन्नता के प्रयास को दिखाने के लिए उदार, हाथों से खर्च करते जाते हैं । परिवार में आर्थिक संकट आ जाने से प्रतिष्ठा के मोह में ऐसी झूठी जिंदगी जीने पर मजबूर हो गए हैं जो उन्हें आत्मप्रवंचना की स्थिति तक पहुँचा देती है। आर्थिक कारणों से ही मनोविज्ञान का जन्म होता है। इस मनोविज्ञान के मूल कारण में व्यक्ति के टूटते जाने की प्रक्रिया को उभारा है। 'खेल' कहानी की लेखा का हीरेन द्वारा विवाह प्रस्ताव अस्वीकार कर देने पर लेखा का चेतन उसका आलोचक निन्दक बन गया है। अब भी उसके हृदय में हीरेन के प्रति प्रेम जीवित है । वह बार-बार उसी कमरे में जाती है, जहाँ हीरेन होता है। उसे देखकर और उसकी बातों को सुनकर लेखा को सुख मिलता है लेकिन उसका चेतन यह स्वीकारने को तैयार नहीं- इसीलिए युक्तिपूर्वक वह चेतन को आश्वस्त करती है कि हीरेन के प्रति प्यार के कारण नहीं, स्थानाभाव के कारण उसे बार-बार उसी कमरे में जाना पड़ता है, जहाँ हीरेन होता है।[8]

'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी की लक्ष्मी के जन्म के साथ ही घर के वैभव सम्पन्न हो जाने के कारण अन्धविश्वासी पिता ने दरिद्रता के भय से उसका विवाह नहीं किया । विवाह न होने के कारण वह असमायोजित होकर उन्माद का शिकार हो गई है। निरन्तर कामवृत्ति के दमनजन्य तनाव के बाद उसका समायोजन विफल हो जाता है और वह उन्मादग्रस्त हो जाती है। "दौरे में घण्टे दो घण्टे वह बिल्कुल पागल हो जाती है। उछलती-कूदती है, बुरी-बुरी गालियाँ बकती है, बेमतलब रोती-हँसती है, चीजें उठा-उठाकर इधर-उधर फेंकती है। जो चीजें सामने होती हैं, उसे तोड़-फोड़ देती है। जो हाथ में आता है उससे मारपीट शुरू कर देती है और सारे कपड़े उतारकर फेंक देती है। बिल्कुल नंगी हो जाती है और जांघें और छाती पीट-पीटकर अपने बाप से कहती है ... ले, तूने मुझे अपने लिए रखा है, मुझे खा, मुझे चबा, मुझे भोग ...'"[9] इस कहानी में विवाह न होने के कारण व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक उन्माद को व्यक्त किया गया है, जिससे वह असामान्य हो गया है। यही असमान्यता मानसिक असंतोष, द्वन्द्व विफलता, भिन्न शारीरिक विकारों का रूप ले लेती है।

'अनदेखे अनजान पुल' उपन्यास में राजेन्द्र यादव ने नारी के कुण्ठित स्वभाव का वर्णन किया है । नारी रूप सौन्दर्य न पाने पर अन्तर्मन में उठने वाले तूफानों का सामना करती है। निन्नी रंग काला, होंठ साँवले ओर मसूड़े जरूरत से ज्यादा लाल होने के कारण बड़ी डरावनी लगती थी, परन्तु उसके केश ही उसके सारे व्यक्तित्व में सबसे सुन्दर, लम्बे, घने, काले कि देखने वाला भी चकित रह जाता । "केशों की वजह से अपने को कुछ संतोष दे लेती थी। उससे जो शादी करने आता अस्वीकार कर देता था । कालिज में वह कल्लोपरी के नाम से प्रसिद्ध थी । दुर्भाग्यवश वह किसी की पत्नी या प्रेयसी नहीं बन सकी ।' अपनी कुरूपता को दूर करने को उसने लाख कोशिश की थी । सभी प्रकार के क्रीम, पाउडर उसने अपने चेहरे पर मले थे जो त्वचा निखारने के लिए अभिनेत्रियाँ विज्ञापनों में बताती थीं।"[10] बचपन में उसने भगवान की कितनी मनौतियाँ की थीं। किन्तु उसकी कुरूपता में कोई फर्क नहीं आया था। "कौन से मनोकामना पूर्ण करने वाले व्रत व मंत्रों का पाठ उसने नहीं किया, कौन से उपवास उसने नहीं किये, कितना रगड़-रगड़कर नहाई और कौन से उबटन क्रीम नहीं मले।"[11] स्वयं को प्रभावशाली बनाने का उसने कई बार प्रयत्न किया, लेकिन हर बार वह असफल रही। अन्त में उसने यह स्वीकार किया कि वह- "देखने में कुरूप, मन में पापिनी और बुद्धि से अस्थिर है।"[12] इस प्रकार निन्नी के मन में हीनता ग्रन्थि की जड़ जम जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत कहानी में कुरूपता को दूर करने के लिए निन्नी पढ़-लिखकर उच्च पद पर विराजमान हो जाती है, तब उसके पद की श्रेष्ठता के कारण किसी का ध्यान उसकी कुरूपता की ओर नहीं जाता है।

राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' में जया की उच्च आकांक्षाएँ सपने उच्च श्रेणी के हैं । उसका प्रेमी शरद बताता है कि ऐसे सपने प्रायः अपूर्ण रह जाते हैं- "जहाँ भी तुम्हारा विवाह होगा या जहाँ भी तुम जाओगी, वहाँ की स्थति में और तुम्हारे सपनों में कोई संगति नहीं होगी।"[13] जया का व्यक्तित्व प्रखर है। उसके माँ-बाप उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी करना चाहते हैं तो शरद से परामर्श करती है तथा उस पर विश्वास करके स्वदेश महल आ जाती है। घर और शहर छोड़ने पर उसे बेहद मानसिक कष्ट होता है । परन्तु प्रेम के लिए सभी कुछ सहन कर लेती है। प्रस्तुत उपन्यास में मानसिक परिस्थितियों एवं उनसे उद्भूत जीवन कुण्ठाओं के संदर्भ में मनुष्य के बहुपक्षीय व्यक्तित्व उसकी दुर्बलताओं और यथार्थ जीवन स्थितियों के संघर्ष से उद्भूत उसकी विशेषताओं का चित्रण किया गया है। आज की जटिल सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य अत्यन्त दुरूह हो गया है।

राजेन्द्र यादव के 'कुलटा' उपन्यास में मिसेज तेजपाल को कहानियाँ पढ़ने का बहुत शौक था । वह कठपुतली नहीं थी, वह एक मस्त जीव थी। मिसेज तेजपाल को मरी-मरी जिंदगी जीने, कपड़ो और खाने की बातें, पार्टियाँ अटेण्ड करना और क्लबों में

जाना पसंद था । बच्चे को जन्म देना और पतियों की राह देखना, जरा भी पसन्द नहीं था। अपने पति मेजर तेजपाल के साथ उसका हर समय संघर्ष रहता है । मेजर को जो बात जो चीज, जो स्थान पसन्द होता, वह उसको नापसन्द होता था। तेजपाल को लम्बे बाल पसन्द थे, तो वह कटवाकर बाब्ड हेयर रखती थी। जब उसका नाम पूछा जाता तो मिसेज तेजपाल की प्रखर चेतना इन शब्दों में व्यक्त होती है- 'नाम ही क्या, पहले जाने कितनी चीजें थीं, जो छूट गयीं, मसलन शादी के बाद सिर्फ लेफ्टीनेंट की बीवी थी, अब मेजर की हूँ, दो-तीन साल बाद मिसेज कर्नल हो जाऊँगी।"[14] ऐसा महसूस होता है कि वह इस जिंदगी से तंग आ चुकी थी । मि0 तेजपाल नपुंसक हैं और यही मिसेज तेजपाल के जीवन की ट्रेजडी है। "अमुक्त काम-वासनाओं को संतुष्ट करने के लिए पता नहीं वह अल्सेशियन कुतिया उन्हें कहाँ खींच ले गयी।[15] प्रस्तुत उपन्यास में मिसेज तेजपाल के कुण्ठित होते व्यक्तित्व का प्रतिपादन किया गया है।

राजेंद्र यादव के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक पक्षों का स्पष्ट विवेचन किया गया है। इनकी कहानियों में व्यक्ति के भीतर उभरते व्यक्तित्व से उत्पन्न संघर्षों का निदर्शन दृष्टिगत होता है। राजेंद्र यादव ने कहानी एवं उपन्यासों के माध्यम से पात्रों की सूक्ष्म मानसिक प्रक्रियाओं को खोलने का प्रयास किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के द्वारा व्यक्ति के मन के मनोवेगों, मनोविकारों एवं अनुभूतियों की व्याख्या की गयी है।

संदर्भ-संकेत:

1. शुक्ला डॉ लक्ष्मी, भारतीय मनोविज्ञान, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, पृष्ठ 4
2. सूरज नारायण मुंशी, रोगी मन, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, पृष्ठ 20
3. आचार्य डॉ0 इन्दिरा: आधुनिक हिंदी कहानी, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृष्ठ 87
4. शर्मा0 डॉ0 ले0 डी0, मनोविज्ञान की पद्धतियां एवं सिद्धांत, एटलांटिक पब्लिशर एंड डिस्ट्रीब्यूटर दिल्ली, पृष्ठ 289
5. यादव राजेंद्र, एक दुनिया समानांतर,राधाकमल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 30
6. यादव राजेंद्र, टूटना, टूटना और अन्य कहानियां, अक्षर प्रकाशन दिल्ली 1996, पृष्ठ 156
7. यादव राजेंद्र, छोटे-छोटे ताजमहल, राजपाल एंड संस 1972, पृष्ठ 33
8. यादव राजेंद्र, जहां लक्ष्मी कैद है, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ 295
9. यादव राजेंद्र, अनदेखे अनजाने पुल, राजपाल एंड संस, दिल्ली 1963, पृष्ठ 27
10. वही, पृष्ठ 11
11. वही, पृष्ठ 123
12. यादव राजेंद्र, उखड़े हुए लोग, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ 22
13. यादव राजेंद्र, कुलटा, मसिजीवी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1958, पृष्ठ 107
14. वही, पृष्ठ 25

महिलाओं के स्वरोजगार के मार्ग में बाधक कारक

डॉ० वीरेन्द्र सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

डॉ० रमाकान्त ठाकुर

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

शोध सारांश

पुरूष व महिला मानव समाज के अस्तित्व कें लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है, लेकिन कतिपय कारणों से महिलाओं की प्रस्थिति पुरूषों की तुलना में निम्न है। जागरूकता, नगरीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण आदि के कारण महिलाएँ अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सजग हुई है। स्वावलम्बी बनने के लिए वह घर की चहारदीवारी से निकलकर स्वरोजगार की ओर उन्मुख हो रही हैं। लेकिन उनके समक्ष कई समस्याएँ हैं, जिनमें शिक्षा व प्रशिक्षण की कमी, विवाह से सम्बन्धित समस्याएँ, पूँजी की कमी, भूमिका संघर्ष की स्थिति प्रमुख हैं। इन समस्याओं के कारण आम महिलाएँ स्वरोजगार करने की हिम्मत नहीं कर पातीं। लेकिन आर्थिक चुनौतियों के कारण उक्त समस्याओं के बावजूद महिलाएँ स्वरोजगार की ओर उन्मुख हो रही हैं और उसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हो रही हैं। यदि महिलाओं के मार्ग से उन समस्याओं को दूर कर दिया जाये तो स्वरोजगार के क्षेत्र में महिलाएँ आगे बढ़कर शीघ्र ही आर्थिक स्वावलम्बन को प्राप्त कर लेंगी, जिससे न केवल उनका व्यक्तिगत जीवन बल्कि सामाजिक जीवन स्तर भी उन्नत हो जाएगा।

प्रस्तावना

यद्यपि संवैधानिक रूप से भारत में लिंग भेद समाप्त कर दिया गया है तथापि व्यवहार में आज की महिलाएं कई समस्याओं से घिरी हैं। यह समस्याएं उस समय और बढ़ जाती हैं जब महिलाऐं घर की चहारदीवारी पार कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करती है। महिला समस्याओं पर आधारित मासिक पत्रिका फेमिना के अंक दिसम्बर, 1991[1] के संपादकीय ने महिला समस्या पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "लगता था कि आजादी के बाद महिलाओं की स्थिति बेहतर होगी। नई शिक्षा एवं तकनीक आधुनिक समाज में जागृति लाएगी और महिलाएं पुरुषों की तरह समान अवसर पाकर एक नए समाज की संरचना में हाथ बँटायेंगी, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा हुआ नहीं। महिलाएं सार्वजनिक जीवन में आगे जरूर आई हैं और आजकल लगभग हर क्षेत्र में पहले की तुलना में ज्यादा दिखाई दे रही हैं, पर महिलाओं की समस्याएं कम नहीं हुई है। परिणाम यह है कि महिलाएं आज भी अपने को असुरक्षित महसूस करती हैं। कामकाजी आधुनिक महिलाओं को भी अक्सर कई अवरोधों का सामना करना पड़ता है इस प्रकार घरेलू, रोजगाररत, ग्रामीण या शहरी, परम्परागत् और आधुनिक महिलायें समान रूप से उपेक्षा और दमन की शिकार हो रही है।" महिला समस्या की चर्चा करते हुए संगीता महादानी[2] लिखती हैं, ऐसा नहीं है कि महिला समस्या का दौर सिर्फ भारत में ही है, पाश्चात्य देश भी इससे अछूते

नहीं है। प्राप्त ऑकड़ों के अनुसार ब्रिटेन में 50 प्रतिशत पत्नियों के साथ उनके पति ही बलात्कार करते हैं। कार्यस्थल पर सहकर्मियों द्वारा शारीरिक मानसिक उत्पीड़न के चलते स्त्री-पुरुष विभाजन की स्थिति बनी है। महिलाओं को अपने प्रति हुए अपराधों में नारीगत् स्वाभाविक लज्जा भी अपराध को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हुई है।" श्रीमती इंदिरा गांधी[3] ने भी विचार व्यक्त किया था कि "नारी वर्ग की क्षमता के पुष्पों को पूर्ण रुप से खिलने से सदा रोका जाता रहा है। उन पर वैचारिक व अभिव्यक्तात्मक अत्याचार किये गये।" इस प्रकार एक क्रूर सच्चाई यह है कि सड़क से सदन तक महिलाएँ समस्याग्रस्त हैं। इसका उदाहरण राज्यसभा में घटित काण्ड है जिसमें कांग्रेस के रत्नाकर पाण्डे ने तेलगु देशम की रेणुका चौधरी पर घिनौने लांछन लगाये। तमिलनाडु विधानसभा में भी सुश्री जयललिता की साड़ी फाड़ दी गई थी।

यद्यपि महिलाओं के संरक्षण हेतु बहुत सारे कानून बनाए गए, इसके बावजूद महिलाओं की समस्याएं कम नहीं हुई। स्वरोजगारर्त महिलायें भी इसका अपवाद नहीं हैं। भारतीय महिलाऐं न तो स्वतंत्र हैं और न ही इनकी इतनी स्वावलंबी कि अपने निर्णय स्वयं ले सकें। हाँ, इतना जरूर है कि चहारदीवारी में बंधी महिलाएं बड़ी मुसीबत से घर की दहलीज के बाहर उन क्षेत्रों में कदम रख रही हैं जहां अब तक पुरूषों का एकाधिकार था। पर ऐसी महिलाओं का संख्या अभी भी बहुत कम है। घर की दहलीज लॉघने वाली महिलाऐं भी बहुत खुश नहीं हैं। अक्सर उनकी अस्मिता पर आघात होते रहते है। वे पुरुष अहं की शिकार होती रहती हैं। महिला चाहे कितनी ही आय प्राप्त कर लें, उसे पुरुष प्रताड़ना झेलनी ही पड़ती है। भारतीय समाज में कुछ ऐसी रूढ़ियां सक्रिय हैं, जिनके कारण महिलाओं का जीवन समस्यायुक्त बन गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ[4] की एक रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश की एक तिहाई महिलाएं ऐसी हैं, जिन्हें यह भी अधिकार नहीं है कि वह घर में दोनों वक्त का भोजन अपनी मर्जी से पका सकें। हॉटे ने भारतीय महिलाओं की बदलती हुई प्रस्थिति के संदर्भ में बहुआयामी सर्वेक्षण किया है, दक्षिण एशिया में महिलाओं की श्रमशक्ति में सहभागिता के संदर्भ में परंपरागत प्रथाओं, मूल्यों एवं रीति-रिवाजों के माध्यम से कई समस्याएं अवरोधक के रूप में उपस्थित हुई है।

महिलाओं की आर्थिक भूमिका पुरुषों की आर्थिक भूमिका से भिन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी कम होती है। सिर्फ प्राथमिक, अकुशल और सीमांत कार्यों में इन्हें रोजगार मिल पाता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि देश में उपलब्ध विभिन्न रोजगारों का वितरण महिला-पुरुष के बीच एक समान नहीं है और उनकी आय में भी अंतर है। महिलाओं को स्वरोजगार हेतु जिन प्रमुख समस्याओं से रूबरू होना पड़ता है उसका विश्लेषण निम्नवत है-

शिक्षा एवं प्रशिक्षण की समस्या

शिक्षा व्यक्ति के लिए विकास की प्राथमिक शर्त हैं। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति न तो अपने अधिकार एवं कर्तव्यो का निर्वहन कर सकता है और न ही इस जटिल व्यवस्था में विकास। यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा 14 वर्ष तक की आयु के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की सैद्धांतिक व्यवस्था की गई है लेकिन व्यवहार में स्थिति भिन्न है। दुर्भाग्यवश, भारतीय समाज में महिला शिक्षा के महत्व को प्राथमिकता प्रदान नहीं की जाती हैं। महिलाओं की शिक्षा के प्रति सरकार तो सरकार, परिवार भी उदासीन रहता है। इसका कारण शिक्षा को नौकरियों से जोड़कर देखना होता है। ऐसी स्थिति में लोग यह सोचते हैं कि महिलाओं को कौन सी नौकरी करवानी है। जबकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य वास्तव में व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का विकास करना और उसे योग्य नागरिक बनाना है, ताकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह सफल हो सके। भारत में नियोजित विकास के द्वारा महिला शिक्षा पर बल दिया गया है फिर भी पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता में काफी अंतर है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है-

महिला - पुरूष की तुलनात्मक साक्षारता दर

वर्ष	*साक्षरतादर*		
	पुरूष	*महिला*	*कुल*
1951	27.16	8.86	18.33
1961	40.4	15.35	28.31
1971	45.95	21.97	34.45
1981	56.38	29.76	43.57

1991	64.13	39.29	52.21
2001	75.26	53.67	64.83
2011	82.14	65.46	74.04

स्रोत: : https://censusindia.gov.in

तालिका से स्पष्ट है कि भारत में महिला शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है किंतु अभी भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता का स्तर काफी निम्न है। इसके लिए अनेक व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारण उत्तरदायी हैं। आज भी महिलाओं को पराया धन समझकर उनकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर कम ध्यान दिया जाता है। गरीबी, पर्दा प्रथा, विद्यालयों की दूरी, कम आयु में विवाह इत्यादि महिला शिक्षा के मार्ग में बाधाएं हैं।

विवाह से संबंधित समस्याएँ

विवाह एक सार्वभौमिक सामाजिक संस्था है लेकिन विवाह की प्रकृति विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न हैं। जहां हिंदू समाज में विवाह एक धार्मिक संस्कार माना जाता है वही मुस्लिम समाज में एक सामाजिक समझौता, जबकि ईसाई समाज इसे मित्रता के रूप में लेता है। हिंदू समाज में पति-पत्नी का संबंध स्थाई एवं जन्म जन्मांतर तक का माना गया है। हॉबल[5] के अनुसार ''विवाह सामाजिक आदर्श-मानदंडों की वह समग्रता है जो विवाहित व्यक्तियों के आपसी संबंधों को, उनके रक्त संबंधियों, संतानों और समाज के साथ संबन्धों को परिभाषित और नियंत्रित करती है।''

विवाह के पश्चात व्यक्ति को नई भूमिकाओं को निभाना पड़ता है। इससे व्यक्ति की योग्यता की परख होती है जैसा कि राबर्ट ओ0 ब्लड[6] का मानना है कि विवाह में महत्वपूर्ण बात यह है कि किस प्रकार एक साथी की भूमिका निर्वहन दूसरे साथी की भूमिका अपेक्षाओं के कितना अनुकूल है। इसी प्रकार क्रूस[7] के अनुसार विवाह एक विभाजन रेखा है जो कि जनक परिवार तथा जनन परिवार के बीच दोनों परिवारों में व्यक्ति की भूमिका के संदर्भ में खींची गई है। जनक परिवार में भूमिकायें, शैशव, बचपन और किशोरावस्था में बदलती रहती है तथा उनमें दायित्वबोध नहीं होता किंतु जनन परिवार में भूमिकाऐं पत्नी के रूप में मां के रूप में गृहणी तथा बहू के रूप में विविध अपेक्षाओं एवं दायित्वों वाली होती है। इस प्रकार विवाह की सफलता दायित्व संतुलन पर निर्भर करती है तथा महिलाओं को संतुलन के लिए समायोजन की आवश्यकता होती है। यह एक युग्म व्यवस्था है। संतुलन बनाए रखने के लिए स्वरोजगाररत महिलाओं को रोजगार के अतिरिक्त खाना बनाना, सफाई करना बच्चों की देखभाल करना इत्यादि कई भूमिकाएं निभानी होती है। ऐसा नहीं होने पर कई समस्याएं पैदा होती है। विवाह से संबंधित समस्याओं में विवाह पूर्व यौन संबंध विवाहेत्तर यौन सम्बन्ध दहेज, बेमेल विवाह, बाँझपन या पुत्र न होना इत्यादि होती है।

रोजगार से सम्बन्धित समस्याएँ

भारतीय समाज संक्रमण काल से गुजर रहा है जो परम्परा एवं आधुनिकता के बीचं झूलने के समान है।यद्यपि नगरों में महिलाये परम्परागत् मान्यताओं को त्यागकर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रही है फिर भी उन्हें इसके लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड. रहा है। भारतीय संविधान की धारा 19 (1) जी में कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता है किन्तु स्वरोजगार हेतु महिलाओं पर आज भी अंकुश रखने का प्रयत्न किया जाता है। विवाह के पूर्व महिलायें अपने रोजगार सम्बन्धी निर्णय अपने माता-पिता की इच्छानुसार लेती है, और विवाह के पश्चात पति की इच्छाओं पर ही रोजगार सम्बन्धी निर्णय ले सकती है। बोहरा'[8] ने सिल्क उत्पादन में लगी बिहार की स्वरोजगाररत् महिलाओं पर आधारित अध्ययन के द्वारा बताया कि महिलायें घरेलू कार्यों के साथ-साथ रोजगार से सम्बन्धित कार्यों में भी शोषण का सामना करती है। इस प्रकार स्वरोजगार की स्वतंत्रता की अनुपस्थिति में महिलाओं का विकास बाधित होता है।

नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में नयी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुयी है, जिनमें महिलाओं का स्वरोजगार के क्षेत्र में प्रवेश प्रमुख है। महिलाओं को गृह एवं रोजगार हेतु 18 घण्टे तक कार्य करना पड. रहा है। पारिवारिक भरण पोषण व स्वयं के सुखमय जीवन निर्वाह के लिए उन्हें दोने व लिफाफे बनाने, कूड.ा बीनने, गृह शिक्षण, पापड़ बनाने, सिलाई-कढ़ाई व बुटीक संचालन, अगरबत्ती बनाने तथा फल- सब्जी व मछली बेचने इत्यादि कार्य करने पड़ते हैं। लेकिन बिडम्बना यह है कि जो महिलायें जिन स्वरोजगारों में संलग्न है, उन्हें उस रोजगार के प्रबन्धकीय संचालन की विशेष जानकारी नहीं है। परिणामस्वरूप

लाभ- हानि का जोखिम अधिक बना रहता है। इस संदर्भ में एम0 रत्ना सुदर्शन'[9] का मत है कि रोजगार से सम्बन्धित जानकारी के अभाव में महिलाओं को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। कभी-कभी तो उन्हें हानि भी उठानी पड़ती है ऐसी स्थिति में न सिर्फ उनका रोजगार समाप्त होता है बल्कि उनका पारिवारिक जीवन भी विघटित हो जाता है।

जनवरी 1997 में संपन्न हुए पेइचिंग विश्व महिला सम्मेलन में यह तथ्य बार-बार उभरकर सामने आया कि आर्थिक विपन्नता का सबसे बडा. कारण महिलाओं की भागीदारी का अभाव है। इसके लिए लिंगभेद भी प्रमुख कारण है। महिलाओं को स्वरोजगार के सिलसिले में लिंग भेद का शिकार होना पड़ता है, क्योंकि रोजगार चयन में भी लिंग का ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार स्वरोजगार प्राप्त करने से लेकर अपने पारिवारिक सामाजिक दायित्वों को निभाना नगरीय महिलाओं के लिए एक गम्भीर चुनौती है। इतना ही नहीं स्वरोजगार स्थल पर भी उसे स्वस्थ वातावरण उपलब्ध नहीं है। एक ओर स्वरोजगार को बनाये रखने के लिए वह अथक परिश्रम करती है तो दूसरी ओर उसे पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का भी सामंजस्य बनाने की चुनौती से उन्हें मानसिक व शारीरिक तनाव से गुजरना पडता है।। इस प्रकार हम देखते हैं कि महिलायें विषम परिस्थितियों में कार्य करती हैं।

स्वरोजगार स्थल से सम्बन्धित समस्याएं

भारत जैसे विकासशील देश में महिलाओं के लिए स्वरोजगार हेतु स्थल का चयन एक चुनौती भरा काम है, क्योंकि उन्हें स्वयं को शारीरिक और मानसिंक अत्याचारों से जूझना पड.ता है। स्वरोजगाररत् महिलाओं पर हावी होने की पुरूषोचित अहंकार की प्रवृति उनके रोजगार स्थल पर विविध बाधायें पहुँचाती है। स्वाभाविक रूप से इन विषम परिस्थितियों में काम करने से पुरूषों की तुलना में स्त्रियों को अत्यधिक तनाव, श्रम और हताशा का सामना करना पड.ता है। एम0 के0 राज'[10] का कहना है कि विकास के साथ-साथ महिलायें घर से बाहर बाजार में अपने शोंषण के लिए संघर्षरत् है। अतएव उनकी वास्तविक स्थितियों का विश्लेषण करने के लिए नये प्रारूपों की आवश्यकता है, जिनमें महिलाओं द्वारा निर्णय निर्माण में सहभागिता के स्तर तथा विभिन्न मूल्यों, प्रथाओं और परम्पराओं के परिवेश में रहने वाली महिलाओं के जीवन के अन्य पक्षों का विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

कर्यस्थल हेतु घर से बाहर निकलते ही चाहे पैदल हो या सार्वजनिक वाहन उनमें महिलाओं को शारीरिक उत्पीड.न का शिकार होना पड.ता है। यह उत्पीड.न विधवा महिलाओं के साथ और भी बढ़ जाता है, क्योंकि उनके चरित्र को लोग संदेहात्मक दृष्टि से देखते हैं तथा लोगों को उनके चरित्र पर कीचड. उछालने में जरा भी संकोच नहीं होता। ऐसी स्थिति में लोगों के ताने और व्यंग्य उन्हें असहनीय मानसिक पीड.ा पहुंचाते है। कार्य स्थल के इर्द -गिर्द पुरूष रोजगारी उनपर द्विअर्थी शब्दों के बाण चलाते हैं।

पूँजी की समस्या

रोजगार एवं उत्पादन हेतु पूँजी अति आवश्यक है अर्थात पूँजी आर्थिक विकास की मूलभूत आवश्यकता है। भारत जैसे देश में न केवल पूँजी की कमी है वरन् पूँजी निर्माण की दर भी बहुत धीमी है। इस दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था को पूँजी-गरीब अर्थव्यवस्था कहा जाता है। पूँजी की कमी के कारण इस देश में प्रति व्यक्ति उत्पादकता का स्तर निम्न है, जिससे प्रति व्यक्ति आय में कमी हो जाती है। पूँजी निर्माण बचत पर निर्भर करता है। भारत में निम्न आय एवं ऊँची उपभोग प्रवृति के कारण बचत व निवेंश की दर निम्न रहती है, जिससे उत्पादन एवं रोजगार बाधित हो जाता है। प्रो0 नर्क्से[11] के अनुसार'' विकासशील देशों में आय को देखते हुए बचत अनुपात के कम होने का वास्तविक कारण प्रदर्शनकारी प्रभाव है, जिससे निर्धन देशों के लोग उन्नत देशों के जीवन स्तर की नकल करने की प्रबल आकांक्षा बनाये रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बढ़ती हुई आय मुख्य रूप से बढ़े हुए खर्चों के कारण समाप्त हो जाती है और कुछ बचतें नगण्य हो जाती है। प्रो नर्कसे ने इसी श्रृंखला को निर्धनता का दुष्चक्र कहा है। संयुक्त राष्ट्र की स्टेटिस्टिकल ईयर बुक के अनुसार ''पूँजी निर्माण की दर जापान में 39 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में 30 प्रतिशत, ग्रेट ब्रिटेन में 22 प्रतिशत, अमेरिका में 16 प्रतिशत है, जबकि भारत में यह दर मात्र 13.7 प्रतिशत है। पूँजी निर्माण की कमी से आर्थिक क्रियाओं का विस्तार करने, नई आर्थिक क्रियाओं को प्रारम्भ करने तथा नयी तकनीक को अपनाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पूँजी के अभाव में बाजार में प्रतियोगिता के कारण कम पूँजी वाले नहीं टिक पाते है। परिणामस्वरूप उनका रोजगार या तो समाप्त हो जाता है या हानि में चलने लगता है।

भूमिका संघर्ष की समस्या

प्रत्येक समाज में प्रत्येक व्यक्ति को एक समय विशेष में जो स्थिति प्राप्त होती है तथा जिसके कारण वह व्यक्ति जाना जाता है, उसे व्यक्ति की प्रस्थिति कहते हैं तथा इस प्रस्थिति से जुड़े हुये कार्य को उसकी भूमिका कहते हैं अर्थात् भूमिका प्रस्थिति से

अन्तर्सम्बन्धित है। जब कभी व्यक्ति की प्रस्थिति के समक्ष एक ही समय में एक से अधिक भूमिकाओं के निर्वहन का दायित्व आ जाता है तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति के सामने प्राथमिकता के आधार पर भूमिका चयन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति को भूमिका संघर्ष कहते हैं। भारतीय महिलायें, विशेषकर स्वरोजगाररत् महिलायें, भूमिका संघर्ष की समस्या से अधिक ग्रसित रहती हैं, क्योंकि उनके सामने बच्चों के पालन-पोषण, सास-ससुर की देखभाल के साथ-साथ पति की सेवायें भी जुड़ी रहती हैं। ऐसी स्थिति में स्वरोजगाररत् महिलायें अपने रोजगार से सम्बन्धित भूमिका एवं पारिवारिक भूमिका के बीच किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती हैं। प्रो० अमत्र्यसेन एवं ज्यांद्रीज[12] ने इसे महिला की वृहत्तर भूमिका का दमन कहा है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक विकास कुंठित हो जाता है। महिलाओं को कहीं आने-जाने में पिता, पति या पुत्र की इजाजत लेनी होती है। परिणामस्वरूप उनका सामाजिक सम्बन्ध अधिक विकसित नहीं होता है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उनके स्वरोजगार पर पड़ता है।

आज महिलायें परम्परागत समाज की रूकावटों एवं बन्धनों से निकल कर खुले समाज की विशिष्टताओं से साक्षात्कार करने लगी हैं। आज महिला घर की चहारदीवारी के अन्दर सिमटी हुई सजी-धजी गुड़िया न होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के बराबर कार्य करने और जोखिम उठाने के लिए अपने को प्रस्तुत कर रही है। आज महिलायें कार्य एवं स्वरोजगार की ओर उन्मुख हुई हैं किन्तु पारिवारिक दायित्वों एवं समायोजन के दायित्वों के निर्वहन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि अभी भी महिलाओं की भूमिकाओं के प्रति समाज की सोच में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आया है। भारतीय संविधान पुरूषों एवं स्त्रियों के बीच अधिकारों की समानता को मान्यता तो देता है परन्तु साथ-ही-साथ स्त्रियों की भूमिकाओं और क्रिया क्षेत्रों में स्पष्ट भेद को स्वीकार करता है। आज भी स्त्री को मुख्य रूप से घर से सम्बन्धित माना जाता है। आज भी स्त्रियाँ सामान्यतया घरेलू भूमिकाओं के लिए तैयार और समाजीकृत की जाती है। स्त्रियाँ चाहे खेतों में काम करें या कारखानों में, खानों में कार्य करें या भवन निर्माण में कार्य करें, सम्मानित सेवाओं में कार्य करें या स्वरोजगार करें - हर स्थिति में उनसे उसी प्रकार गृह कार्यों के निर्वहन की आशा की जाती है जैसे की गृह कार्य तक सीमित रहने वाली स्त्री से की जाती है। पारिवारिक व आर्थिक समस्याओं पर निर्णय लेना तथा राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करना अभी भी पुरूषों की ही धरोहर माना जाता है।

घर से बाहर नौकरी या स्वरोजगार जो कि अपेक्षाकृत हाल के वर्षों का नवीनतम परिदृश्य है, के कारण महिलाओं में जहाँ एक ओर अर्जित शिक्षा के व्यवहारिक उपयोग, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना, स्वेच्छा से कार्य करने की प्रवृत्ति एवं निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है तो वहीं दूसरी ओर नि:सन्देह महिलाओं के सम्मुख कुछ समस्याएं एवं कठिनाइयाँ भी उत्पन्न हुई है। पारिवारिक संरचना का महत्वपूर्ण अंग होने के कारण महिलाओं के ऊपर घर, गृहस्थी एवं बच्चों का गुरूतरदायित्व होता है, जबकि दूसरी ओर स्वरोजगार स्थल की औपचारिकताओं एवं विभिन्न समस्याओं से तालमेल एवं अनुकूलन करते हुए कार्य करना अपरिहार्य होता है। फलस्वरूप ऐसी महिलाओं को घर एवं स्वरोजगार स्थल-इन दोनों जगहों पर वातावरण, सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का प्रत्यक्षत: सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं में विशेषकर दो प्रकार की समस्याओं की चर्चा की जा सकती है -

(क) द्विपक्षीय प्रतिबद्धता से उत्पन्न आन्तरिक संघर्ष।

(ख) व्यवहारिक स्तर की समस्याएं अर्थात पारिवारिक दायित्वों या भूमिकाओं के साथ-साथ स्वरोजगार से जुड़ी भूमिकाओं के बीच समायोजन सम्बन्धी समस्याऐं।

समायोजन में असंगति या समायोजन का अभाव उक्त दोनों प्रकार की भूमिकाओं के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है जिसका प्रभाव महिला के घर, परिवार, स्वास्थ्य एवं स्वरोजगार पर पड़ता है। परिवार एवं स्वरोजगार इन दोनों स्थलों की अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है। परम्परागत भारतीय परिवारों में स्त्री को गृहलक्ष्मी के रूप में जहाँ स्वार्थविमुख एवं सहयोगी बनना आवश्यक है, वहीं स्वरोजगार में सफल बनने के लिए उसे स्वार्थी एवं प्रतियोगी बनना पघ्ड़ता है। इस तरह परस्पर विरोधी तत्वों एवं उत्तरदायित्वों की पूर्ति के प्रयास में लगी हुई महिला असामन्जस्य एवं दुविधा की स्थिति में रहती है। विभिन्न विद्वानों के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि इन परस्पर विरोधी स्थितियों के परिणामस्वरूप महिलाओं के आचरण में संतुलन एवं समन्वय नहीं हो पाता है। विवाहित महिलायें तुलनात्मक रूप से भूमिका संघर्ष से अधिक प्रभावित होती है। इस प्रकार महिलाओं के समक्ष भूमिका संघर्ष की समस्या एक बाधक तत्व के रूप में प्रकट होती है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि स्वरोजगार के मार्ग में महिलाओं के समक्ष कई समस्याएँ आती हैं, जिनमें शिक्षण, प्रशिक्षण का अभाव, विवाह से सम्बन्धित समस्याएँ, पूँजी का अभाव, स्वरोजगार स्थल का परिवेश व उनके प्रति पुरूषों का दृष्टिकोण तथा भूमिका संघर्ष महत्वपूर्ण है। जब तक इन समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता तब तक महिलाओं

का स्वरोजगार के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना कठिन है। इसके बावजूद महिलाएँ दिन-प्रतिदिन स्वरोजगार के क्षेत्र में आगे बढ़ती जा रही है, जो उसके उज्जवल भविष्य के लिए आवश्यक भी है।

संदर्भ

1. प्रयाग शुक्ल, नारी उत्पीड़न, फेमिना, टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक दिसम्बर, 1991 पृ0सं0-3
2. संगीता महादानी, स्त्री को लड़नी है नई लड़ाई, फेमिना अंक दिसम्बर 1991, पृ0सं0 5
3. एम.ए. अन्सारी, नारी चेतना और अपराध, पंचशील प्रकाशन, 1989 जयपुर, पृ0सं0 247-48
4. महिला सबलीकरण, परीक्षा मंथन, समसामयिक निबंध 2002, पृ0सं0 71
5. हॉबल: एम.एल. गुप्ता व डी.डी. शर्मा द्वारा उद्धृत समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ.सं. 129
6. राबर्ट ओ. ब्लड: द मैरिज, द फ्री प्रेस ग्लैंको, इलिनॉइस 1960, पृ.सं. 189
7. कूस: मैरिज - द फ्री प्रेस, ग्लैंक्रों, इलिनॉइस, 1953, पृ.सं. 44
8. बोहरा, जी: वूमेन इन बिहार: ए स्टडी ऑफ देयर रोल इन तसर सिल्क प्रोडक्शन, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988 पृ. सं. 163
9. एम. रत्ना सुदर्शन: आर्थिक अधिकारिता का महत्व, योजना, अगस्त 2001, पृ.सं. 16
10. एम.के. राज: वूमेन स्टडीज, ई.पी. डब्ल्यू यू वाल्यूम 23, नं. 18, 1988, पृ.सं. 892-894
11. प्रो. नर्क्से: जे.पी. मिश्र द्वारा उद्घृत भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, वाराणासी, 2003, पृ.सं. 24
12. अमत्र्यसेन एवं ज्यांद्रीज: भारतीय राज्यों का विकास - कुछ प्रादेशिक अध्ययन, अनुवादक - भवानी शंकर बागला, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 2000, पृ.सं. 57

स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनशीलता का अध्ययन

रामप्रवेश यादव

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह

शोध निर्देशक शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

संक्षिप्त सारांश

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और विकास का सबसे सशक्त माध्यम है। यह न केवल समाज को विकास के मार्ग पर अग्रसर करती है बल्कि समाज के अनुभव और संस्कृति को संरक्षित भी करती है। इसके द्वारा ही समाज और सदस्यों में आधारभूत कौशल, अभिवृळ्ाि और मूल्यों का विकास होता है। कोई भी समाज व राष्ट्र अपने देश के नागरिकों को शिक्षित किये बिना विकास का लक्ष्य प्राप्त नही कर सकता। अत: आज बेहतर शिक्षा प्राप्त करना, प्रत्येक व्यक्ति का मूलभूत अधिकार बन चुका है। शिक्षा मानव समाज के लिए कोई नयी चीज नहीं है बल्कि यह सामाजिक विकास के प्रत्येक चरण में किसी न किसी रुप में विद्यमान रही है परन्तु वर्तमान समय में विज्ञान और तकनीकि विकास के कारण शिक्षा की प्रक्रिया को वैज्ञानिक व उपयोगी बनाने पर बल दिया जा रहा है जिससे व्यक्ति के क्षमताओं का अधिकतम विकास किया जा सके। आज शिक्षा के स्तर को बेहतर बनाने हेतु अनेकों शोध कार्य किये जा रहे है, जिससे शिक्षा को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप में प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान की जा सके। आज शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विद्यार्थियों की सम्प्राप्ति को बेहतर बनाने हेतु सरकारी एवं गैरसरकारी स्तर पर अनेकों प्रयास किये जा रहें है, लेकिन कुछ ऐसे कारक भी है जो विद्यार्थियों की शैक्षिक सम्प्राप्ति को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित करते है जैसे-बुद्धि का स्तर, समायोजन क्षमता, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक वातावरण और सामाजिक आर्थिक स्तर आदि।

मुख्य शब्द:- शाब्दिक सृजनशीलता, मानकीकृत मापनी, अभिवृत्ति, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, CR मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- वैज्ञानिक तथा तकनीकि उपलब्धियों को अधिकाधिक अर्जित करने के लिये विभिन्न क्षेत्रों में सृजनात्मक व्यक्तियों को खोजना एक राष्ट्रीय आवश्यकता बन गयी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मक व्यक्ति होते है। किन्तु यह आवश्यक नहीं हैं कि एक क्षेत्र में सृजनात्मक व्यक्ति अन्य क्षेत्रों में भी उतना ही सृजनात्मक हो, परन्तु किसी व्यक्ति को वास्तविक रुप में सृजनात्मक उस समय कहा जाता है जब उसके कार्य में कुछ नवीनता तथा नैतिकता हो- नवीनता एवं नैतिकता होने के लिये व्यक्ति का मानसिक रूप से स्वस्थ्य होना अत्यन्त आवश्यक होता है। क्योंकि मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति का उसके सृजनात्मकता में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। आज शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मकता का उपयोग चरम सीमा तक हो रहा है। व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य के आधार पर सृजनात्मकता का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में करते है। विद्यार्थियों में उनके मानसिक स्वास्थ्य की सृजनात्मकता के विकसित होने में महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्ति ही कुशल सृजनात्मक होता है। और सृजनात्मकता का समावेश होने पर ही नवीन अविस्कारों का जन्म होता है। जिनका उपयोग मानवजीवन के कल्याण हेतु किया

जाता है। भारतीय शिक्षा तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों में इस दिशा में सराहनीय कार्य किया जा रहा है।

समस्या की पृष्ठभूमि:- मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मकता का विकास यूँ तो अधिक परिलक्षित होता है जो व्यक्ति को नवीन अविष्कार करने में जटिल समस्याओं का समाधान करने में तथा जीवन को सुखमय बनाने में मानव को सहयोग करती है। स्नातक शिक्षा तक आते-आते बालकों में मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मकता का अध्ययन करने में तथा जीवन को बालमय बनाने में मानव को सहयोग प्रदान करती है। इसी अद्‌भूत तथा मूल्यांकन योग्यता को सृजनात्मकता एवं मानसिक स्वास्थ्य की संज्ञा प्रदान किया गया है। मानवता सदैव सृजनात्मकता से प्रभावित होती है। कला, तकनीकी, दर्शन सभी प्रकार के क्षेत्रों तथा व्यवसायों में सृजनात्मकता एवं मानसिक स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरती जा रही है। दोनों प्रकार का उचित प्रयोग एक सारभूत प्रक्रिया है। जिससे मानव स्वयं की साधारण से परे रखता है। यह एक प्रक्रिया है जो कि सराहनीय अधिगम तथा विचार नवीनता का सृजन करती है। जिससे हम वाह्य जगत के उद्देश्यों तथा घटनाओं से सम्बन्धित होते है और इस अद्‌भूत और मनोहारी योग्यता को ही सृजनात्मकतापूर्ण मानसिक स्वास्थ्य की संज्ञा दी जाती है। वही मानसिक रूप से स्वास्थ्य सृजनात्मक मानव समाज देश एवं जाति के विकास एवं प्रगति के लिये आकर्षण भीड़ प्रदान करती है। अत: प्रत्येक देश से यह अपेक्षा है कि वह मानसिक रूप से स्वस्थ्य एवं सृजनात्मक विद्यार्थियों का सृजन करे। और उन्हें उपर्युक्त पर्यावरण प्रदान कर उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध कर उनकी प्रतिभा विकसित करने का सुअवसर प्रदान करे। मानसिक रूप से स्वस्थ्य एवं सृजनात्मक विद्यार्थी भविष्य में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्तियों को निर्देशित करने तथा जाति, समाज एवं राष्ट्र को सफलता एवं प्रगति के शिखर पर ले जाने में सहायक हो सकेगे। अत्यन्त तीव्रगति से बढ़ते हुये वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विकास में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को इतना जटिल एवं समस्या मुक्त बना दिया है कि प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मकता की आवश्यकता एवं मानसिक स्वास्थ्य की जरुरत का अनुभव किया जाने लगा है।

प्रतियोगितापूर्ण संसार एवं समस्यामुक्त समाज में मानसिक रूप से स्वस्थ्य एवं सृजनात्मक मस्तिष्क का होना निहतान्त आवश्यक है।

अध्ययन का औचित्य:- आज के प्रतियोगितापूर्ण संसार में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक सोच एवं सृजनात्मक मस्तिष्क की आवश्यकता है। अत: प्रत्येक देश का यह कर्तव्य है कि वह मानसिक रूप से स्वस्थ्य एवं सृजनशील विद्यार्थियों की खोज करने के लिये समुचित प्रबन्ध करे तथा उनकी प्रतिभा को विकसित करने का सुअवसर प्रदान करे।

क्योंकि विद्यार्थी ही आने वाले दिनों में देश का प्रतिनिधित्व करेगें। आज के शिक्षा व्यवस्था में कही न कही मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मक सिद्धान्तों को जानने का प्रयास किया जा रहा है। विशेषकर N.C.E.R.T के द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम में इस दिशा में सराहनीय कार्य किया जा रहा है। नये पाठ्यक्रम चाहे बेसिक के हो या माध्यमिक के हो सबमे विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखा जा रहा है और उनकी शाब्दिक सृजनात्मकता को भी विकशित करने का पूरा ध्यान रखा गया है। स्नातक स्तर पर भी विद्यार्थियों के लिये नई शिक्षा व्यवस्था हो या पहले की शिक्षा व्यवस्था हो सबमे कुछ न कुछ ध्यान दिया गया है, और आगे भी शोधकर्त्ता को उक्त के विषय में जानने की इच्छा है, क्योंकि वर्तमान परिस्थितियों में विद्यार्थियों को बहुत से मानसिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। स्नातक शिक्षा में खुद को व्यवस्थित करना एवं अपने कार्यों में सृजनात्मकता को लाना ये सब उनके कार्यों के बड़े दायरे होते है।

1 प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा विद्यार्थियों में सृजनात्मकता के स्तर की झाँकी मिलती है।

2 प्रस्तुत अध्ययन में इस तथ्य की जानकारी मिलती है कि विद्यार्थियों की मानसिक स्थिति उनके सृजनात्मक कार्यों में कैसी है।

3 प्रस्तुत अध्ययन में इस बात की पुष्टि होती है कि ग्रामीण एवं शहरी वर्ग के विद्यार्थियों में मानसिक स्वास्थ्य का अन्तर होता है।

4 प्रस्तुत अध्ययन में बालक एवं बालिकाओं की सृजनात्मकता का प्रभाव उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

5 उच्च तथा निम्न सृजनात्मकता का सम्बन्ध क्रमश: उच्च तथा निम्न शैक्षिक निष्पादन से होती है।

6 स्नातक स्तर शिक्षा के लिहाज से सबसे महत्वपूर्ण समय होता है। यही वह अवस्था होती है जब छात्र प्रवीण एवं उत्कृष्ठ करता है।

साहित्यावलोकनः- सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रुपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण को व्यवस्थित करनाः- सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण करने के पश्चात् उसे सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि बिना सुव्यवस्थित किये उस साहित्य सर्वेक्षण का कोई महत्व नहीं होता है। और न ही उससे कोई लाभ प्राप्त होगा। अतः साहित्य को व्यवस्थित करना एक कला है। अतः हर सर्वेक्षण की एक स्पष्ट व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक सर्वेक्षण प्रकरण का ऐतिहासिक विकास देता है, एवं इसका हाल का स्तर एक साक्ष्य प्रस्तुत करते है तथा यह दिखलाते है कि किस प्रकार प्रस्तावित अध्ययन विचारणीय विषय है तथा किस प्रकार दूसरे पहलू को समझने में सहायता करेगा यद्यपि कोई भी विषय सभी दृष्टिकोण से सर्वोत्तम नहीं होता है। सर्वेक्षण हमेशा चयनात्मक, सुव्यवस्थित तथा समस्या से स्पष्ट रुप से सम्बन्धित होना चाहिए।

अतः सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण किसी अनुसंधानकर्ता की वास्तविक योजना तथा उसके बाद कार्यान्वयन का एक महत्वपूर्ण पूर्वाक्षेपित वस्तु है। सम्बन्धित साहित्य पूर्व के अनुसंधान के लेखों का सारांश प्रस्तुत करता है। प्रभावशाली अनुसंधान अतीत के ज्ञान पर निर्भर होता है। यह पुनरावृत्ति को समाप्त करता है। अध्ययनों के उदाहरणों द्वारा जो काफी सहमति दर्शाते हैं तथा विपरीत निष्कर्ष भी होते है। यह अनुसंधान हेतु एक पृष्ठिभूमि प्रदान करता है। व्यवस्थिति सर्वेक्षण वर्तमान ज्ञान को तेज करने और समझ को परिभाषित करने में सहायता करता है। यह क्षेत्र में अध्ययनों के विषय में सूचना प्राप्त करने में सहायता करता है। अनावश्यक आवृत्ति से रक्षा करता है। अनुसंधान को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने में मार्गदर्शन करता है। अतः वे अध्ययन जो वर्तमान समस्या से साधारण ढ़ग से सम्बन्धित है, इस अध्याय में समाविष्ट किये गये है। उनका वर्णन निम्नलिखित शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा रहा है-

एलिसा कूपर्स (2018); ''शिक्षा के भीतर रचनात्मकता के महत्व को 21वीं सदी के आवश्यक कौशल के रुप में मान्यता प्राप्त है। इस आधार पर इस लेख का पहला उद्देश्य जटिल गतिशील प्रणाली सिद्धांतों के आधार पर एक ढ़ाचे के विकास के माध्यम से सैद्धांतिक एकीकरण प्रदान करता है जो बच्चों की रचनात्मकता का वर्णन और व्याख्या करता है। इस माडल का उपयोग बच्चों की रचनात्मकता विकसित करने में शिक्षा की भूमिका पर अलग-अलग विचारों को समझने के लिये किया जाता है। हमारा दूसरा उद्देश्य अनुभवजन्य एकीकरण है। त्रिआयामी वर्गीकरण में आधार पर हमने प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की रचनात्मकता पर 184 अध्ययनों की समीक्षा की है हमारे परिणाम बताते हैं कि रचनात्मकता को अक्सर एक स्थिर, समंकित निर्माण के रुप में मापा-जाता है। सैद्धांतिक मॉडल इसमें उपयोगी है।''

शर्मा. आर. (2018); ''सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है। जो अनिवार्य रुप से नये हों और जिन्हें वह पहले से न जानता है जो व्यक्ति इस प्रकार नवीन कार्य करते हों उन्हें सृजनाशील या सृजनकर्त्ता कहा जाता है। और जिस प्रतिभा के आधार पर वह नयी कर्तव्य नवीन रचना का अविष्कार करते है उसे सृजनात्मकता कहा जाता है।''

लिंडा डार्लिंग (2019); ''यह लेख शोध के हाल के संश्लेषण में उल्लिखित, सीखने, और विकास के विज्ञान के बारे में एक उभरती हुयी आम सहमति के स्कूल और कक्षा अभ्यासों के निहितार्थों को बताया है। एक विकासात्मक प्रणाली ढ़ाँचे में समीक्षा को व्यवस्थित करते हुये, हम सीखने के विज्ञान और शैक्षिक अनुसंधान की कई शाखाओं के साक्ष्य को अच्छी तरह से जाँच की गयी रणनीतियों के बारे में संश्लेषित करते है जो बच्चों के कल्याण, स्वास्थ्य विकास और हस्तांतरणीय सीखने को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक रिश्तों और सीखने के अवसरों का समर्थन करते हैं। इसके अलावा हम उन प्रथाओं के बारे में अनुसंधान की समीक्षा करते है जो शिक्षकों को व्यक्तिगत परिवर्तनशीलता का जबाब देने में मदद् करते है प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना कर सकते है और लचीलापन का समर्थन कर सकते है जैसे कि स्कूल सभी बच्चों को वयस्कता के साथ सकारात्मक मार्ग खोजने में सक्षम कर सकते हैं।''

ब्लाद पी. (2021); ''हम रचनात्मक अनुभव की एक कार्यशील परिभाषा का प्रस्ताव करते है जिसमें अपरिचित के साथ सैद्धांतिक जुड़ाव और अपरिचित तरीकों से परिचित से सम्पर्क करने की इच्छा शामिल है। दूसरे राज्यों में एक रचनात्मक अनुभव को उपन्यास व्यक्ति के रुप में परिभाषित किया जा सकता है, जो सार्थक कार्यों व अंतःक्रियायों पर आधारित होता है, जो सिद्धान्तों

द्वारा चिन्हित होता है। खुले पुनः गैररैखिकता, बहुदृष्टिकोण और भविष्य उन्मुखता। हमारी परिभाषा रैन को और जेंगत द्वारा दी गयी मानक परिभाषा के साथ कुछ सम्भवतः ये साझा करती है। जिसमें यह अभी भी नवीनता और प्रभावशीलता के महत्व को पहचानती है लेकिन उस परिभाषा से परे जाती है कि रचनात्मक अनुभवों को चित्रित करने के लिये नवीनता और सार्थकता पर्याप्त नहीं है।''

अध्ययन का उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ळा द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि. स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनशीलता का अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि '' स्नातक स्तर पर ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों तथा छात्र व छात्राओं में शाब्दिक सृजनशीलता के लिये मुख्य प्रभाव तथा अर्न्तक्रियात्मक प्रभाव के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।''

शोध विधिः- प्रस्तुत शोध कार्य वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि से किया जायेगा।

सर्वेक्षण विधिः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विश्लेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। शब्द सर्वे ;नतअमलद्ध की उत्पत्ति शब्द सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा very (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा veeir का अर्थ to look होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेंत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण। विद्धानों ने विभिन्न नामों का जैसे ''नामैटिव'' 'डेस्क्रिप्टिव' (वर्णनात्मक) सर्वे, स्टेट्स (स्तर) या ट्रेन्ड्रस (प्रचल) आदि का अनुसंधान के विवरण के लिये उपयोग किया गया है।

समष्टिः- प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समस्त स्नातक स्तर के विद्यार्थी थे। समष्टि की विशेषतायें निम्नलिखित है। समष्टि परिमित तथा अपरिमित दो प्रकार की होती है। जिसमें प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि परिमित प्रकार की है क्योंकि छात्रों की संख्या सीमित होती है। प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समांगी प्रकार की है क्योंकि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों का चयन किया गया था। किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण ईकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

N=600

जौनपुर जनपद के समस्त स्नातक स्तर के विद्यार्थी

प्रतिदर्शः- प्रस्तुत अध्ययन के प्रतिदर्श का आकार 600 होगा। किसी बड़ी राशि में से चुनी हुई एक छोटी सी मात्रा को प्रतिदर्श या नमूना है। यह माना जाता है कि प्रतिदर्श के सांख्यिकीय गुण पूरी राशि के सांख्यिकीय गुणों का प्रतिनिधित्व करते है।

न्यादर्शः- किसी भी अनुसंधान के लिए यह सम्भव नहीं है कि पूरी जनसंख्या के समग्र व्यक्तियों के अपनी खोज का विषय बना सके। इसलिए जनसंख्या में से वे कुछ ऐसी ईकाइयों का चयन कर लेते है जो कि समग्र का प्रतिनिधित्व करें। और जिन पर किए गये अध्ययन के आधार पर समग्र के लिए निष्कर्ष निकाले जा सकें।

शोधकर्त्ता द्वारा समय धन के अभाव के कारण आगमनात्मक प्रविधि अपनाते हुए समष्टि से एक छोटा समूह अध्ययन हेतु चयनित किया जाता है। जिसे न्यादर्श कहते है। न्यादर्श पूरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल चार सौ अध्यापकों का चयन किया गया था जिनके वितरण का आधार क्षेत्र, लिंग, विषय तथा वित्तपोषण था। अनुसंधान में प्रायः प्रचलित विधि का प्रयोग सम्भव नही होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन धन, समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकतः अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्राचलिक विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्राचलिक विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है।

यदि समष्टि का स्वरुप सजातीय रहता है, तब प्रतिदर्श के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होतीं, परन्तु जब समष्टि का स्वरुप विषम जातीय रहता है, तब प्रतिदर्श की इकाईयों के चयन के लिए प्रतिचयन प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है।

प्रतिचयनः- समष्टि से प्रतिदर्शज के चयन करने के तरीके को प्रतिदर्शज कहते है। जिसमें यादृच्छिक चयन प्रविधि द्वारा किया गया था जिसमें लाटरी रीति को प्रयोग किया गया पहले माध्यमिक विद्यालय का चयन लाटरी विधि द्वारा किया गया।

तालिका 1: न्यादर्श में चयनित महाविद्यालय का वितरण-

क्र0सं0	महाविद्यालय	संख्या
1.	राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर	50
2.	तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर	65
3.	राजा श्री कृष्णदत्त पी.जी. कालेज, जौनपुर	75
4.	श्री गणेश राय पी0जी0 कालेज डोभी, जौनपुर	75
5.	सैनिक गिरजा शंकर महाविद्यालय केराकत, जौनपुर	65
6.	मो0 हसन पी0जी0 कालेज, जौनपुर	50
7.	शिब्ली नेशनल पी0जी0 कालेज, आजमगढ़	70
8.	श्री दुर्गा जी0पी0 कालेज चन्देश्वर, आजमगढ़	50
9.	मड़ियाहू पी0जी0 कालेज, जौनपुर	50
10.	कौशल्या महाविद्यालय मड़ियाहूँ, जौनपुर	50
योग		**600**

शोध उपकरणः- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु शोध उपकरण मानकीकृत किये गये थे।

शाब्दिक सृजनात्मकता - डॉ0 बाकर मेंहदी जामियाँ मिलियाँ इस्लातियाँ, दिल्ली

सृजनात्मकता का शाब्दिक परीक्षणः- सृजनात्मक चिन्तन का शाब्दिक परीक्षण का निर्माण बाकर मेंहदी ने 1973 में किया। इसका संशोधन 1985 में किया गया, प्रस्तुत परीक्षण में चार उप परीक्षण सम्मिलित है।

यदि ऐसा हो जाये- प्रथम उप परीक्षण परिणाम परीक्षण है, जिसे यदि ऐसा हो जाये तो' के नाम से इंगित किया गया है। इस परीक्षण में तीन आवश्यक बातें दी गई है।

क. यदि मनुष्य पक्षियों की भाँति उड़ने लगे तो क्या होगा।

ख. यदि आपके विद्यालय में पहिये लग जाये तो क्या होगा ?

ग. यदि मनुष्य को खाने की आवश्यकता न रहे तो क्या होगा?

इस उपपरीक्षण के लिये कुल 15 मिनट का समय लगा, प्रत्येक परीक्षार्थी को उक्त प्रश्न का उत्तर देते समय जितने भी परिणाम याद आयें या वह सोच सके, दिये हुए स्थानों पर लिखने होते है। परिस्थिति के काल्पनिक होने के कारण अनुभव का प्रभाव उत्तरों पर नही पड़ता और परीक्षार्थी को उत्तर देने की असीमित सुविधा रहती है परीक्षण में कल्पना जगत में उड़ने की मौलिकता दर्शाने की पूरी छुट उपलब्ध होती है। कार्य सरल बनाने के लिए प्रारम्भ में एक उदाहरण देकर समझाया गया है।

वस्तुओं के नये-नये प्रयोग- यह एक असामान्य परीक्षण है जिसे वस्तुओं के नये-नये प्रयोग की संज्ञा दी गई है, इस उपपरीक्षण में तीन सामान्य वस्तुओं के काम दिये गये है यथा-

क. पत्थर का टुकड़ा ?

ख. लकड़ी की एक छड़ी ?

ग. पानी ?

इस परीक्षण द्वारा मूल परिप्रेक्ष्य से होकर मौलिक रुप से सोचने का अवसर प्राप्त होता है, इस परीक्षण में प्रत्येक के लिये 04 मिनट तथा कुल 12 मिनट का समय निर्धारित है।

नये सम्बन्ध का पता लगाना- यह नवीन सम्बन्धों का परीक्षण है जिसे नये सम्बन्धों का पता लगाने की संज्ञा दी जाती है। यथा-

क. पेड़ और मकान ?

ख. कुर्सी और सीढ़ी ?

ग. हवा और पानी ?

विषयी को प्रत्येक जोड़े के सम्बन्धों को बताना होता है, इसके द्वारा युक्त कल्पना और मौलिकता के अवसर प्राप्त होते है। इस परीक्षण के लिए भी 15 मिनट का समय निर्धारित है, और प्रत्येक प्रश्न के लिए 05 मिनट समय निश्चित है।

वस्तुओं को मनोरंजक बनाना- यह वस्तुओं को रुचिकर बनाने का परीक्षण है, जिसे ''वस्तुओं को मनोरंजक बनाना'' शीर्षक दिया गया है, इस परीक्षण में परीक्षार्थी का एक लकड़ी के सारे खिलौने के बारे में सोचना होता है।

घोड़े के एक सादे खिलौने को ध्यान में रखते हुए उन नवीन निराले एवं मनोरंजक तरीको को लिखना होता है। जिसके द्वारा खिलौने में ऐसा परिवर्तन लाया जा सके कि बच्चों को वह खिलौना खेलने से आनन्द की अनुभूति हो इस परीक्षण के लिए 06 मिनट का समय निर्धारित किया गया है। इस प्रकार परीक्षण पुस्तकालयों में वितरित करने एवं निर्देशन देने के अतिरिक्त पूरे परीक्षण के लिए 98 मिनट का समय दिया जाता है।

परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता- परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता वाह्य कसौटी के आधार पर निश्चित की जाती है, प्रस्तुत परीक्षण की वैधता तथा विश्वसनीयता की जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों द्वारा सूचना का तथा उसके मित्र सहपाठी तथा कक्षा अध्यापिका / अध्यापक से उसके सम्बन्ध में सूचना से मिलान किया गया तथा उनमें पर्याप्त समानता पायी गयी।

प्रदत्तों का एकत्रीकरण तथा परीक्षणों का प्रशासन:- न्यादर्श के चयन के पश्चात् चयनित विद्यालयों के संस्था प्रधानों से सम्पर्क किया गया तथा उनके प्रदत्तों में संकलन हेतु अनुमति प्रदान करने का अनुग्रह किया उनकी अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् तथा उसके निर्दिष्टतानुसार कक्षा 11 के एक सेक्सन के कक्षाध्यापक/कक्षाध्यापिकाओं से सम्पर्क किया तथा उपस्थिति छात्र/छात्राओं को यादृच्छिक क्रम में संगठित किया तथा सर्वप्रथम चयनित विद्यार्थियों को अध्ययन का उद्देश्य तथा प्रयोजन बनाकर परीक्षण से सम्बन्धित बुकलेट वितरित किया प्रत्येक परीक्षण के लिए आवश्यक समस्त निर्देश परीक्षण के प्रशासन से पूर्व प्रशासन के दौरान यथा समय प्रदान किये विद्यार्थियों को समय-समय पर कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया विद्यार्थी सुचारु रुप से कार्य कर रहा है या नही यह देखने के लिए कक्षा में निरीक्षण कार्य। कार्य समाप्त होने पर विद्यार्थियों से दोनों परीक्षणों की बुकलेट एकत्रित कर ली तथा अन्त में प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिका, कक्षाध्यापक/कक्षाध्यापिका तथा विद्यार्थियों को अनेक सहयोग के लिए धन्यवाद प्रदान किया।

गणना:- विद्यार्थियों द्वारा व्यक्त किये गये तथ्यों का तब तक वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नही जब तक कि इन्हें सांख्यिकी परीक्षण हेतु अंकों में न परिवर्तित कर लिया जाये। विद्यार्थियों पर दोनों परीक्षण का प्रशासन करने के पश्चात् प्राप्त उत्तर प्रदत्तों की गणना निम्नलिखित प्रकार से की गयी ।

अध्ययन का उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनशीलता का अध्ययन करना'' इस उद्देश्य के पूर्ति हेतु परीक्षण के लिये शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि ''स्नातक स्तर पर ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों तथा छात्र व छात्राओं में शाब्दिक सृजनशीलता के लिये मुख्य प्रभाव तथा अर्न्तक्रियात्मक प्रभाव के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।'' इसके परीक्षण हेतु निम्नलिखित विश्लेषण तालिकाये निर्मित हुयी।

तालिका-2: ग्रामीण व शहरी तथा छात्र व छात्राओं के शाब्दिक सृजनशीलता के लिये सी.आर.मूल्य विश्लेषण तालिका-

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी.आर.मूल्य
ग्रामीण विद्यार्थी	300	59.34	18.76	1.51	0.43 असार्थक
शहरी विद्यार्थी	300	58.69	17.98		
छात्र	300	62.38	19.16	1.62	0.57 .01 पर सार्थक
छात्रायें	300	59.83	20.08		

df (598) at .05 = 1.96

.01 = 2.58

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि शाब्दिक सृजनात्मकता के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः ग्रामीण विद्यार्थियों के लिये 59.34, 18.76 और शहरी विद्यार्थियों के लिये 58.69 व 17.98 है जबकि छात्रों के लिये 62.38 तथा 19.16 और छात्राओं का 59.83 तथा 20.08 है। अभिकलित मानक त्रुटि ग्रामीण व शहरी के मध्य 1.51 तथा छात्र व छात्राओं के लिये 1.62 है जबकि अभिकलित सी.आर.मूल्य ग्रामीण व शहरी के लिये 0.43 तथा छात्र व छात्राओं के लिये 0.57 है जो कि df (598) के .05 सार्थकता स्तर पर 1.96 से बहुत कम है जिसके आधार पर बनायी गयी शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्र व लिंग दोनों के आधार पर शाब्दिक सृजनशीलता समान होती है। अतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनशीलता एक जैसी होती है। छात्र व छात्राओं की सृजनशीलता समान होती है। इस परिणाम के सम्भवतः कारण है कि शाब्दिक सृजनशीलता जिसमें प्रवाह लचनीयता तथा मौलिकता का सम्मिश्रण होती है जो सभी में होती है इसीलिये क्षेत्र व लिंग से प्रभावित नहीं होती है।

तालिका-3: ग्रामीण तथा शहरी व छात्र और छात्राओं की शाब्दिक सृजनशीलता प्राप्तांक सम्बन्धी 2 ग 2 प्रसरण विश्लेषण तालिका

विचरण के स्रोत	df	S.S.	MSS	F. Value	P
मुख्य प्रभावः— (ग्रामीण X शहरी)	1	249.14	249.14	3.15	NS
(छात्र X छात्रायें)	1	242.38	242.38	3.03	0.01
अर्न्तक्रियात्मक प्रभावः— (ग्रामीण X शहरी) X(छात्र X छात्रायें)	1	282.14	282.14	3.53	0.01
त्रुटि प्रसरण	596	47556.15	79.79		
योग	599				

df (1,596) at 0.05 = 3.85
0-01 = 6-99

उपरोक्त प्रसरण विश्लेषण तालिका में मुख्य प्रभाव के लिये शाब्दिक सृजनशीलता का प्रसरण योग ग्रामीण व शहरी के लिये 249.14 तथा प्रसरण अनुपात 3.15 है। छात्र व छात्राओं के लिये 242.38 और 3.03 है जबकि अर्न्तक्रियात्मक प्रभाव पर 282.14 और 3.53 है। अभिकलित सभी प्रसरण अनुपात सार्थकता स्तर .05 पर df (1,596) पर असार्थक है क्योंकि कम है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकार होती है और स्पष्ट होता है कि ग्रामीण व शहरी विद्यार्थी समान शाब्दिक सृजनशीलता वाली होती है। छात्र व छात्रायें भी शाब्दिक सृजनशीलता में समान होते है। क्षेत्र व लिंग के मध्य कोई अर्न्तक्रियात्मक प्रभाव नहीं है। परिणाम के समर्थन यादव रामप्रवेश (2018) का अध्ययन करता है।

शोध निष्कर्षः- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषणोपरान्त निष्कर्ष प्राप्त हुये है।

1. ग्रामीण तथा शहरी, छात्र व छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर अर्न्तक्रियात्मक प्रभाव पड़ता है।
2. शाब्दिक सृजनशीलता पर ग्रामीण शहरी विद्यार्थी समान होते है।

शैक्षिक निहितार्थः- माता-पिता अपने बच्चों की समस्यायों को ठीक करने या दोष लगाने की कोशिश करने के लिये सलाह के साथ-साथ कूद पड़ने हैं लेकिन इससे किशोरों के भविष्य में अपने माता-पिता के साथ खुले रहने की सम्भावना कम हो सकती है। आप उनके लिये भावनात्मक रुप से सुरक्षित और आपके पास आना आसान बनाना चाहते हैं। ताकि आप उनके जीवन का हिस्सा बन सके।

किशोरों के लिये कुछ दिनों के लिये नीचे या बाहर होना समान बात हैं लेकिन आप यदि एक महत्वपूर्ण मनोदशा या व्यवहार परिवर्तन देखते है जो दो सप्ताह से अधिक समय तक रहता है तो इसका मतलब यह हो सकता है कि कुछ और चल रहा है। जैसे

कि अवसाद। यदि आपको लगता है कि आपका किशोर उदास हो सकता है तो तुरन्त अपने बच्चें के लिए पेशेवर उपचार की तलाश करें। अवसाद गम्भीर है और अनुपचारित छोड़ दिया जाय तो यह जीवन के लिये खतरा हो सकता है। आपके किशोर को आपके मार्गदर्शन की आवश्यकता है, भले ही वे सोच सकते हैं कि वे नहीं करते है। उनके विकास को समझने से आप उन्हें स्वतन्त्र जिम्मेदार वयस्क बनने में सहायता कर सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- बीट्रिस (2017); ''क्रियेटिव टास्कस एण्ड एकेडेमिक एचिवमेंट: ए स्टडी ऑन रोमानियन पालीटेक्टीन अन्डरग्रेजुयेट स्ऊडेंट्स'' प्रोसेडिया, सोशल एण्ड बिहैविश्ल साइंस पेज 116 (2014) 924-928.
- नाकानो (2018); ''रचनात्मकता और नवाचार: 21वीं सदी के लिये कौशल रचनात्मकता और नवाचार '' अनुमान साइकाल 35 (3) जून-सितम्बर 2018.
- एलिसा कूपर्स (2018); ''बच्चों की रचनात्मकता: एक सैद्धान्तिक रुपरेखा और व्यवस्थित समीक्षा'' सेज जर्नल्स 10.3102.
- शर्मा. आर. (2018); ''सृजनात्मकता या सृजनशील का अर्थ'' rsharma bol of spot.com.
- लिंडा डार्लिंग (2019); ''सीखने और विकास के विज्ञान में शैक्षिक अभ्यास का निहितार्थ'' अनुप्रयुक्त विकास विज्ञान खण्ड - 24, 2019- अंक-2.
- ब्लाद पी. (2021); ''क्रियेटिव एक्सपेरियेंस: ए नान स्टैडर्ड डीफीनिशन ऑफ क्रियेटीविटी'' क्रियेटीविटी रिसर्च जर्नल वाल. 33, 2021 इसू-02.
- मर्टिन कुस्का (2021); ''भावनात्मक रचनात्मकता: ए मेटा एनासार्सर, तथा एकीकृत समीक्षा'' रचनात्मक अनुसंधान जर्नल 2021, 151-160.
- कार्ल आर. व्हाइट (1982); ''सामाजिक आर्थिक स्थिति और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच सम्बन्ध'' मनोवैज्ञानिक बुलेटिन 91 (3), 461, 1982.
- जिताओं फैम (2001); ''माता-पिता की भागीदारी और छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि एक मेटा विश्लेषण'' शैक्षिक मनोविज्ञान समीक्षा 13 (1) 1-22, 2001.
- ओवैद अल (2005); ''शैक्षणिक उपलब्धि और कुवैती छात्रों में चिन्ता, आत्मसम्मान आशावाद और निराशावाद के साथ इसका सम्बन्ध'' सामाजिक व्यवहार और व्यक्तित्व एक अर्न्तराष्ट्रीय पत्रिका 33 (1) 95 - 104, 2005.

नागार्जुन की भाषिक संरचना

डॉ० (श्रीमती) प्रभा सिंह

एसो० प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), सेण्ट एंड्रयूज कॉलेज, गोरखपुर

नई कविता यथार्थ से प्रेरित है और इस यथार्थ की आधार भूमि जीवन की सार्थकता का अनुसंधान है, इसीलिये नई कविता के सौन्दर्य बोध में शिशुवत् जिज्ञासा अथवा रोमनियत नहीं है। यह काव्य-प्रवृत्ति सुन्दर और असुन्दर दोनों को समान रूप से काव्य का विषय मानती है। आज के लघु मानव की लघुता के संदर्भ में अपने सौन्दर्य-बोध का विकास नई कविता को स्वीकार है। छायावादी काव्य-प्रवृत्ति में पारलौकिकता, शिशुवत् जिज्ञासा का भाव, अस्तित्व के प्रति ईमानदारी की कमी तथा शब्दों के प्रति एक विशेष प्रकार का मोह और छन्द-सृजन में भी जहाँ-तहाँ कृत्रिमता विद्यमान है। लेकिन नई कविता मानव की इस विशिष्टता पर आधारित है कि वह एक लघु मानव के परिवेश की लघुतागत अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि नई कविता के प्रत्येक शिल्पगत मूल्य में उसकी सौन्दर्यानुभूति के साथ यथार्थ भी समाहित है। चूँकि नई कविता वर्तमान जीवन की यथार्थता को सबसे पहले स्वीकार करती है, इसीलिये नई कविता में सौन्दर्य के सभी घटक वैज्ञानिक दृष्टि से संयोजित और यथार्थसम्मत है। नई कविता के शब्द चयन, भाषा संयोजन अलंकरण, छन्द और शैली विधि-विधान आदि सभी में यथार्थवादिता है। जो लोग नई कविता में केवल अस्वाभाविकता और विलक्षणता का उल्लेख करते हैं, वे नई कविता के सौन्दर्यगत प्रतिमानों से अनभिज्ञ है। नई कविता निरर्थक शब्दों और उपमानों के संग्रह में अविश्वास करती है। छन्दों की व्यर्थ तोड़-मरोड़ भी नई कविता को स्वीकार नहीं है। इस सम्बन्ध में गिरिजा कुमार माथुर के विचार उद्धरणीय हैं- ''छन्दों की व्यर्थ तोड़-मरोड़ जान-बूझ कर गद्य बनाने का यत्न अथवा छन्द, लय, अन्तः संगीत की अज्ञानता, दूर-दूर तक के असम्बद्ध उपमानों का संग्रह, रद्दी, छिछोरे, ओछे, निकृष्ट, फूहड या शालीनता रहित वैयक्तिक व्यापारों की अभिव्यंजना खोखले प्रतीक, स्थानीय देशज या जनपदीय शब्द अथवा उपमाओं की ठूंस-ठास, नई फिलासफी या विचार, आदर्श देने के लिये उलझी-सुलझी अर्थहीन बौद्धिकता और तर्क आदि से न तो कविता में नयापन आता है और न उसमें कोई चमत्कारी साहित्य-प्रवर्तन होता है, श्रेष्ठ कविता होने या काव्य-साहित्य को समृद्ध करने की बात तो दूर रही।''

भाषिक संरचना- नागार्जुन के काव्य-शिल्प पर विचार करते समय हम सबसे पहले उनकी भाषिक संरचना का अध्ययन करते है। उन्होंने शब्द चयन में किसी असामान्य प्रवृत्ति का परिचय न देते हुये उसकी सहजता को स्वीकार किया है। भाषिक संरचना का विश्लेषण करने में शब्द-चयन, वाक्य-गठन, प्रतीक-योजना, बिम्ब-योजना तथा निजन्धरी कथाओं के संकेत का अध्ययन किया जाता है। नागार्जुन की आरम्भिक कविताओं की भाषा काव्यशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर अभिधेयात्मक प्रतीत होती है। नागार्जुन की प्रारम्भिक रचनाओं की भाषा में अभिधेयात्मक सुस्पष्टता तथा इनकी बाद की रचनाओं में मुहावरेदारी और प्रतीक-विधान तथा अन्तिम चरण की कविताओं में प्रतीकों की अधिकता दिखाई पड़ती है। नागार्जुन की भाषा का अध्ययन करने से नई कविता में अभिधा-शक्ति और मुहावरेदारी के साथ ही सामान्य जनता की भाषा का पैनापन तथा सम्प्रेषणीयता स्वतः व्यक्त होती है। नागार्जुन की भाषा का विकासात्मक अध्ययन करने के अतिरिक्त परीक्षण का एक और नया वैज्ञानिक संदर्भ भी है। भाषा के समृद्ध बनाने के लिये बोलचाल की भाषा, विदेशी भाषा, भारतीय धर्म और संस्कृति की भाषा तथा मुहावरेदारी को भी नागार्जुन ने अपनी काव्य की भाषा में स्थान दिया है। उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों को मिलाकर यदि एक स्थान पर प्रस्तुत किया जाय तो इन तीनों काव्य-योजनाओं को अलग-अलग करके उनमें प्रयुक्त शब्दावली तथा मुहावरेदारी का सफल अध्ययन किया जा सकता है।

छन्दों के क्षेत्र में निराला ने जब नई जमीन तोड़ने की कोशिश की, कुहराम मच गया था जैसे कोई अनहोनी घट रही हो, किन्तु परम्परा तभी सार्थक जीवन्त और गतिशील बन पाती है जब उसको निरन्तर नए-नए प्रयोगों के स्तर पर उतारते हुये उसकी सामर्थ्य

को रचनात्मक चुनौती दी जाय। निराल और नागार्जुन ऐसे ही कवि हैं, अन्यथा 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' की रचना करने वाला कवि 'कुकुरमुत्ता' की रचना में कैसे प्रवृत्त होता। नागार्जुन ने कालिदास के साहित्य का गम्भीर और विशिष्ट स्वाध्याय किया है। 'बादल को घिरते' देखा है जैसी क्लासिक कविता लिखी है, जिनकी कुछ पंक्तियों को हम उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं-

शत-शत निर्झर निर्झरनी कल
मुखरित देवदारू कानन में
शोषित धवल भोजपत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर
रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुन्तल को साजे
इन्द्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में
कानों में कुवलय लटकाय
शतदल लाल कमल बेणी में
रजत-रचित मणि खचित कलामय
पान-पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने

इसी कविता में आगे कवि लिखता है-

मृगछालों पर पलथी मारे/महिरारूप आँखों वाले उन/
उम्मद किन्नर-किन्नरियों का/मृदुल मनोरम अंगुलियों को/
वंशी पर फिरते देखा है/बादल को घिरते देखा है।

दूसरी ओर नागार्जुन की यह कविता भी उनकी भाषा का एक उदाहरण हमारे समक्ष प्रकट करती है-

धूप में पसर कर लेती है
मोटी तगड़ी अधेड़ मादा सुअर
यह भी तो मादरे हिन्दी की बेटी है।
भरे-पूरे बारह थनों वाली

इसीलिये वे अपनी अभिव्यक्ति को 'घोर' औघड़ी कहते हैं जिसमें अभिशाप भी है और गाली भी। ठेठ बोलियों के छिनाल, रखैल, चुड़ैल जैसे भदेश शब्द भी हैं और शब्द को ब्रह्म निरूपित करने वाली भाषा के भी। इसीलिये नागार्जुन की कोई हदबन्दी नहीं दिखाई जा सकती, सिर्फ उसकी चहल कदमी का जायजा लिया जा सकता है। वैदिक श्रचाओं से प्रारम्भ होकर लौकिक संस्कृति से होती हुई उनकी कविता खड़ी बोली के ठाठ और गॅवई अभिव्यक्तियों तक को समेटे हुये है। भयानक संग्रहकारी है यह जिसमें अंग्रेजी, बंग्ला, मैथिली, अवधी का धड़ल्ले से उपयोग किया गया है। उनकी एक कविता है जिसकी शुरूआत ही बंग्ला की पंक्ति से होती है- 'घाकचों खो कोल एइजे गाँधी महात्मा एक कविता का शीर्षक अंग्रेजी में है- 'प्लीज एक्सक्यूज मी' अंग्रेजी और बंगला के अलावा उनकी कविता में उर्दू शैली की झलक भी खूब मिलती है-

हमसफर को सलाम, हमसफर को सलाम
सूबा-ए-बिहहर के जौहर को सलाम।

ढेठ खड़ी बोली और परिष्कृत खड़ी बोली के तो खैर वे कवि ही हैं-'अकाल' और 'कालीदास' वाली रचनाएं उनकी भाषा के मंजाव और साफ-सुथरेपन के उदाहरण के रूप में उपस्थित की जा सकती है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भाषा के संदर्भ

में नागार्जुन का दृष्टिकोण सर्वग्राही है। सच्चे जनकवि की यह पहली पहचान है, नागार्जुन का दृष्टिकोण लोकहितकारी है। तुलसीदास की तरह उनकी कविता भी लोक के मंगल की भावना से लिखी गई है। नागार्जुन की कविता ललकारती है और बाज की तरह अपने शिकार पर टूट पड़ती है, इस वजह से वह आक्रामक भी है। नागार्जुन जन-जीवन से न केवल जुड़े हुये हैं, बल्कि उसके प्रति उनके मन में गहरी करूणा और स्नेह भी है। वे शब्द चुनते नहीं, जनता की बोलचाल को कविता में सीधे उठा लाते हैं, जैसे-

चन्दू, मैंने सपना देखा, इम्तिहान में बैठे हो तुम।
चन्दू मैंने सपना देखा, पुलिस यान में बैठे हो तुम।
चन्दू मैंने सपना देखा, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा।
चन्दू मैंने सपना देखा, भभूआ से तूँ पटना लौटा।

इसी प्रकार की भाषा का एक अन्य उदाहरण -'प्यासी पथराई आँखें' काव्य संग्रह में मिलती है जो निम्नांकित है-

बीत गई सर्दी, बीत गया माघ,
रानी की खसम ने, मारा है बाघ।

काव्य-भाषा के इस अनेक रूपी संसार में-जहाँ कि अराजकता होनी ही थी-व्याकरण और शास्त्र की मर्यादायें भी खूब हैं। यहाँ शब्द जितने बहुरंगी हैं, वाक्य उतने ही खुले-खुले 'धान कूटती किशोरियों की कोकिल-कंठी तान/देखिये न, आखिर तक रोकती रही मैं/मगर इनपर तो भूत हो गया सवार/लेकर कर्ज, बनवाया है मकान'। कहीं काव्य की पंक्तियाँ एकदम संक्षिप्त और सागर्मित है-

क्या खूब।
क्या खूब।
कर लाई सिक्योर विज्ञापन के आर्डर।'

नागार्जुन की भाषा का एक नमूना यह भी है-

चुप-चुप तो मौत है
पीप है कठौत है
बक्को भी, खॉसो भी, खुनको भी
.....x.....xx.....xx.....xx
सनको भी, अकड़ो भी, तुनको भी।

'बादल को घिरते देखा', कविता में बाइस पंक्तियों का एक ही टुकड़ा है, जो हमें बाणभट्ट की दीर्घ सामासिक पदावली की याद दिलाता है। सामान्यत: तो नागार्जुन शब्दों और वाक्यों की सादगी किन्तु अर्थ की गम्भीरता के कवि हैं। उनके सीधे-सादे पदों में भी वचन-भंगिमा और भाव-गूढ़ता है। 'सौन्दर्य प्रतियोगिता, तो फिर क्या हुआ', 'प्रेत का बयान' आदि कविताओं में उनकी भाषा उस पैने औजार की तरह है जिसकी धार दूर से ही चमकती है। नागार्जुन इस यथार्थ सत्य को जानते हैं कि 'कविताई' दिखाने की जरूरत आज उतनी नहीं है, जितनी कि लोक कंठ के गूंगेपन को मुखरता में परिक्त करने की।

नागार्जुन की कविताओं में नई शब्द रचना और शब्द-संगीत का अनूठा चमत्कार दिखाई पड़ता है- कुबेर के छौने', 'चितकबरी चाँदनी', नितंब भंजन, नखरंजनी, वेतन-सर्वस्व -बुद्धिजीवी, झबरा माथा, ठूठ बाँह, दृग-अंजनी, भक्त-भ्रम-भंजनी-प्रज्ञाकर, वयस्क बुजुर्ग, सुधाशिरोमणि, जलधि-पैजनी, दूधिया पानी, स्रब्ध निगाहें, गथित निगाहें, सिंदूरित, शब्द खोर लोक सगाई, चाँदी की बेटी, कंचन का दूल्हा, बेचौनी का माफ, युगनन्दनी, विज्ञापन सुन्दरी, सिन्दूरी छलना, बलुआही कछार, क्षीण बल, गजराज, दिव्य-मूत्र, छिनाल पुरवइया, रेती पर टहलाना, निरन्नर जनता, लिंग-लौल्य, जैसे शब्द समूह एक ओर है तो दूसरी ओर द्वित्व ध्वनि योजना वाले शब्दों की भी बहार कम नहीं है। झूमता-झामता, सांसद-फांसद, कथित-कथन, मथित-मथन, आदरणीय-फादरणीय, रचना-फचना, निर्दलीय-अर्दलीय, टहलना-बूलना आदि। शब्दों की यह योजना कवेल नागार्जुन के ही वश का है। नागार्जुन संस्कृत पण्डितों की दकियानूसी जमात से बाहर निकल कर जनभाषा के विशाल सागर में गोते लगा रहे हैं। यही उनका आत्मविश्वास है,

जो हर क्षण नए और साहसिक प्रयोग की खोज में रहता है। जनता के गुस्से में उपयोगी गाली का भी वे प्रयोग कर डालते हैं- हिटलर की मौसी, मुसोलिनी की नानी, महामहिम, महामही, उल्लू के पटठे आदि।

नागार्जुन के मुहावरे भी कम रोचक नहीं है। उनके यहाँ दु:खी मूक युवतियाँ, ढेर-ढेर सी हँसी और छतफाड़ ठहाका लगाती हैं। महीन मुस्कानों और इकन्नी भर स्वेच्छा-सुखों की तो कोई बात नहीं। प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में नागार्जुन की भाषा की कोमलता और कल्पना-प्रवणता की विपुल बानगी मिलती है। वहाँ झींगुर शहनाई बजाते हैं, मेघ धिन-धिन धा धनक-धनक बजते हैं, और अपने पंख खुजलाते हैं, नीलम की घाटी में उनका श्वेत कमल खिलता है।

नागार्जुन की काव्य-भाषा में अद्‌भूत नाटकीयता, संगीतमयता, ध्वनि-रमणीयता और चित्रात्मकता है। काव्य-भाषा की समस्त शक्तियाँ अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ प्रस्तुत होती है।

नागार्जुन की कविताओं को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि हम अपने ही समय की कविता को अपनी ही भाषाओं में पढ़ रहे है। परिवेश का सम्पूर्ण राजनीतिक चेहरा तो इसमें दिख ही सकता है, इस रोशनी में उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, अर्थशास्त्रीय, नैतिक और अधिभौतिक छाप भी खोजी जा सकती है। 'भस्मासुर' और पौराणिक संदर्भ वाले काव्य में बोलचाल अथवा टिपिकल बोलचालकी इस तरह से कवि संगति बैठाता है जैसे गुलाब की कडिघ्यों की मेड़ पर भटकटैया के नीले-पीले फूल हों-

कहती हैं क्या सजनी?
होश संभाल
चाट न जाएं हाय हमारे गाल
प्रभु के गले लटकते मोटे व्याल
सर्प-स्पर्श सुख की आदत तो डाल
भुगते में फिर होगा जो हाल/

इतना ही नहीं, नागार्जुन की वाड़ी बड़ी ही आलंकारिक और छविमुखी भी है। उनकी कुछ उपमाएं देखने योग्य हैं-

बिल्लौरी कांच सी कांतिबाली यह गर्दम
बरग सी छतनार ऐसी पीठ
नन्हें मयूर से ये नेग
देखी नहीं होगी ऐसी खूबसूरती।

'प्रेत का बयान' कविता में भाषा की नाटकीयता देखिये-

खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़ हड़
काँपा कुछ हाड़ों का मानवीय ढांचा
नचा कर लम्बी चमचों-सा पंचगुरा ढाँचा
रूखी-पतली किट-किट आवाज में
प्रेम ने जवाब दिया .....
महाराज!
सच-सच कहूँगा
झूठ नहीं बोलूँगा।

संगीत और नाटक दोनों का साथ सुन्दर उदाहरण के रूप में यह प्रस्तुत है-

इन्दू जी, इन्दू जी
क्या हुआ आपको?

सत्ता की मस्ती में भूल गई बाप की।
क्या हुआ आपको?

और केवल संगीत सुनना हो तो उसका भी उदाहरण प्रस्तुत है–

बस सर्विस बन्द थी
तीन दिन तीन रात
लगता था जन-जन की
हृदयगति मन्द थी
तीन दिन तीन रात।

ध्वनि संगीत का एक नमूना यह भी देखने योग्य है–

धिन-धिन धा धमक धमक
मेघ बजे
दामिनी वह गई चमक
मेघ बजे
.....xx.....xx
फूल कदम्ब
टहनी-टहनी में कंदुक सम झूले कदम्ब।
फूले कदम्ब।

निष्कर्षत: नागार्जुन के काव्य में तीन स्तरों पर भाषा का रूप दिखाई पड़ता है। पहला स्तर आलंकारिक और कल्पना प्रवणता का है, तो दूसरा स्तर धनघोर क्लासिकी है जहाँ उनकी तटस्थ छेनी और कलाकारी हमारे सामने होती है। तीसरा स्तर वह है जिसे हम भाषा का यथार्थवादी स्वरूप कह सकते हैं। मैथिल-जीवन से अन्तरंग परिचय होने के कारण वहाँ की टिपिकल ध्वनियाँ, रीति-रिवाज और बोल-चाल भी अपने आप आ जाती है। भाषा की यह अनौपचारिक छवि अन्यत्र दुर्लभ है। जनवादी भाषा कहना ही इसके साथ सबसे बड़ा न्याय होगा। भले ही विषय के अनुरूप वह अपना रूप बदल लेती हैं, तब भी सम्प्रेण-धर्म का निर्वाह करना नहीं छोड़ती। विषयानुकूल शब्द-योजना और वस्तु-निर्देश उसकी असाधारण विशेषताएं हैं, जो कविता को संवेग के धरातल से उठा कर जीवन के मंच पर प्रतिष्ठित करती है। इस प्रकार नागार्जुन की भाषित संरचना बहुरंगी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. नागार्जुन का रचना संसार- विजय बहादुर सिंह, सम्भावना प्रकाशन प्रथम संस्करण-1982
2. हिन्दी कविता के प्रतिमान - डॉ0 लक्ष्मीकान्त शर्मा भारतीय प्रेस प्रकाशन, प्रथम संस्करण।
3. प्रयोगवाद और नई कविता- डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, समकालीन प्रकाशन, वाराणसी, 1966 ई0।
4. नई कविता -सीमाएं और सम्भावनाएं- गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 102
5. खिचड़ी विप्लव देखा हमने- नागार्जुन, पृ0 35
6. प्यासी पथराई आँखे- नागार्जुन, पृ0 19
7. तुमने कहा था- नागार्जुन, पृ0 74

पश्चिमीकरण का भारतीय ग्रामीण समाज पर प्रभाव

डॉ0 सपना सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर-समाजशास्त्र, टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़

सारांश

आधुनिक ग्रामीण भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने में जिन प्रक्रियाओं व सामाजिक शक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उनमें पश्चिमीकरण की प्रक्रिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वैसे भारत अति प्राचीन काल से ही अनेक विदेशी आक्रमणों का शिकार बनता रहा है। परन्तु अंग्रेजों ने अपने लम्बे शासन काल में भारत का घनिष्ठ परिचय पश्चिमी या पाश्चात्य संस्कृति से न केवल कराया अपितु इस ढंग से शासन व्यवस्था को व्यवस्थित किया कि भारतीय समाज में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन स्वत: ही उत्पन्न हो गये। इस प्रकार पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने सम्पूर्ण भारतीय जनजीवन को प्रभावित किया और परिवर्तनों को गति प्रदान की वैसे तो परिवर्तन सदा ही होता रहता है, पर पश्चिमीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज में परिवर्तन की गति अत्यन्त तेज हो गई और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों व ग्रामीण व नगरीय समुदायों में महत्वपूर्ण परिवर्तन उभरकर सामने आये। ये परिवर्तन अच्छे थे या बुरे, यह दूसरा प्रश्न है, वास्तविक तथ्य यह है कि पश्चिमीकरण ने भारत में तीव्र सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था के कायम हो जाने के बाद से ही हमारा सम्पर्क पश्चिमी या ब्रिटिश संस्कृति से स्थापित हुआ और दिन-पर-दिन घनिष्ठ होता गया। अंग्रेज शासक वर्ग थे और उनका उद्देश्य भारतीयों को भी अपने सांस्कृतिक जाल में फंसाना था, अत: हमारे लिये स्वयं को उनकी संस्कृति के प्रभावों से विमुक्त रखना सम्भव न हुआ। साथ ही उस पश्चिमी संस्कृति में कुछ अच्छाइयाँ, अनेक आधुनिक व प्रगतिशील तत्व एवं असंख्य प्रलोभन भी थे। साथ ही अंग्रेजों का दबाव व प्रभाव भी हमारे ऊपर था। हम उनकी संस्कृति के प्रति आकर्षित हुए और उन्हें अपनाया। फलत: प्रौद्योगिकी से लेकर हमारी जातिप्रथा, संयुक्त परिवार, विवाह, धर्म, कला, प्रथा, परम्परा, साहित्य, संगीत, विचार, आदर्श, लक्ष्य और मूल्य सभी में पश्चिमी संस्कृति की एक अमिट छाप लग गई, हम पश्चिम के रंग में काफी हद तक रंग गये। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को ही 'पश्चिमीकरण' की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में पश्चिमीकरण परिवर्तन की उस प्रक्रिया का द्योतक है जो कि भारतीय जनजीवन, समाज व संस्कृति के विभिन्न पक्षों में उस पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई जिसे कि अंग्रेज शासक अपने साथ लाये थे।

पश्चिमीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप भारतीयों के जीवन में अनेक परिवर्तन आए हैं। समाज की संरचनात्मक विशेषताओं, सम्बन्धों के स्वरूपों में परिवर्तन आए हैं। यह परिवर्तन-नगरीय और ग्रामीण-दोनों ही संस्कृतियों में हुए हैं। भारतीय ग्रामीण समाज पर पश्चिमीकरण का प्रभाव, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संस्थाओं आदि पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप भारतीयों के नगरीय एवं ग्रामीण जीवन व उनसे सम्बन्धित संस्थाओं में अनेक परिवर्तन आए हैं। ये परिवर्तन जाति-प्रथा, संयुक्त-परिवार व्यवस्था, विवाह, स्त्रियों की स्थिति और खान-पान व व्यवहार प्रतिमानों में स्पष्टतया देखे जा सकते हैं, जो निम्न हैं-

भारत में जाति-प्रथा का रूप खण्डात्मक था। समाज में उनकी स्थिति उच्च व निम्न क्रम में थी, परस्पर खान-पान, छुआछूत, मेलजोल संभव न था तथा व्यवसाय भी वंश-परंपरा से निर्धारित थे। प्रत्येक जाति की अपनी पंचायत होती थी जो समाज में व्यक्ति

को अनुचित कर्म करने पर दण्डित करती थी। जाति-व्यवस्था के आधार पर ही व्यक्ति का पद व भूमिका निर्धारित थी। पश्चिमीकरण के प्रभाव से जाति की संरचनात्मक और संस्थात्मक विशेषताओं में परिवर्तन आया। विभिन्न जातियों के बीच स्थिति संस्तरण अथवा ऊँच-नीच का भाव औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के परिणामस्वरूप परिवर्तित हो रहा है। किसी एक जाति का किसी एक व्यवसाय पर एकाधिकार समाप्त हो गया। निम्न जातियों को भी अपनी सामाजिक स्थिति सुधारने का अवसर मिल गया जिसे श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की प्रक्रिया कहा है।

पश्चिमीकरण के प्रभाव ने जाति व्यवस्था में स्थित अनेक प्रतिबंधों को भी समाप्त कर दिया- जजमानी-प्रथा की समाप्ति, छुआछूत की प्रथा की समाप्ति, खान-पान संबंधी निषेधों में कमी, जाति पंचायत की समाप्ति, जातीय ऊँच-नीच की भावना की समाप्ति आदि इसके महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं। पश्चिमीकरण के प्रभाव ने सुधारात्मक आंदोलनों को जन्म दिया और 19वीं शताब्दी में यह विचारधारा प्रबल हुई कि जाति-व्यवस्था मानव द्वारा निर्मित है अतः इसे समाप्त किया जा सकता है, इस प्रकार जाति-व्यवस्था का परिवर्तन वर्ग-व्यवस्था में हो गया। सभी लोग फैक्ट्री आदि में साथ-साथ काम करने लगे और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एकजुट होकर संगठन बनाने लगे हैं। इस प्रकार पश्चिमीकरण के प्रभाव से वर्ग-चेतना का उदय हुआ है और जाति के बन्धनों में शिथिलता आई है।

भारत में प्राचीन काल से संयुक्त परिवार की परम्परा प्रचलित थी। एक परिवार में तीन या चार पीढिघ्यां साथ-साथ रहती थी, जिनकी सामूहिक सम्पत्ति, भोजन व आवास आदि होता था, परिवार का वयोवृद्ध मुखिया उसका संचालन करता था। पश्चिमीकरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप व्यक्तिवादिता, भौतिकवाद, समानता आदि मूल्यों का विकास हुआ है। परिवार के स्तर पर भी व्यक्तिवादिता व भौतिकता की भावना बढ़ी है, जिसने नई पीढ़ी को स्वतंत्रता व अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट किया है। अब व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण स्वयं द्वारा उपार्जित आय पर उन्हीं का अधिकार होता है। त्याग, बलिदान आदि के मूल्य तिरोहित हो गए। परिणामतः संयुक्त परिवार टूटने लगे और उनके स्थान पर एकाकी परिवार (जिसमें पति-पत्नी व उनके बच्चे होते हैं) की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। नगरीकरण व औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने भी इस प्रकार की भावना को प्रोत्साहित किया है। पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा का विकास हुआ, नौकरी व व्यवसाय के अवसरों में वृद्धि हुई, लोग अपने परिवार को छोड़कर दूर देशों में रहने लगे। समानता के प्रभाव के कारण स्त्रियां अपने अधिकारों की मांग करने लगीं और संयुक्त परिवारों को वे निभा न पाई। फलतः संयुक्त परिवारों का स्थान एकाकी परिवार ने ले लिया।

पश्चिमीकरण का प्रभाव विवाह संस्था पर भी पड़ा है। प्राचीन परम्परा में विवाह अपनी जाति में ही होता था। विवाह का अर्थ दो परिवारों के बीच संबंध माना जाता था किन्तु शिक्षा के प्रभाव ने व्यक्ति को प्रगतिवादी बना दिया है, आज का युवा पढ़ लिखकर जीविकोपार्जन करने लग जाता है तथी वह विवाह करता है और विवाह में जीवन साथी का चुनाव स्वयं की सहमति से होता है। प्राचीन मान्यताएं अब समाप्त हो गई हैं। अब अपनी जाति में विवाह करना भी अनिवार्य नहीं है। बाल-विवाह, अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह, कुलीन-विवाह व बहु-विवाह आदि की मान्यताएं अब समाप्त हो चुकी हैं। पश्चिमीकरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप अनेक परिवर्तन हुए, जैसे- बाल विवाह कम हुए, विधवा-पुनर्विवाह को मान्यता मिली है, विलम्ब विवाह होने लगे, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह व कोर्ट में जाकर विवाह होने लगे। विवाह धार्मिक संस्कार न रहकर अब पति-पत्नी के मध्य का समझौता बन गया है। पत्नी भी अब पति को एक सहयोगी, मित्र ही समझती है। 'कन्यादान' के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है, तलाक का प्रचलन बढ़ा है। सारांशतः पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप विवाह की मान्यताओं में पर्याप्त अन्तर आया है।

परम्परागत समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज में अनेक कुरीतियां थी जिनका प्रभाव स्त्रियों पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता था। सती-प्रथा का प्रचलन, पर्दा-प्रथा, बहु विवाह, कुलीन विवाह, विधवा विवाह पर नियंत्रण, बाल-विवाह व देवदासी प्रथा आदि प्रचलन में थे। स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर तक ही सीमित था। पश्चिमीकरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप शिक्षा का प्रसार हुआ, स्त्रियां शिक्षित हुई और घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर बाहर के क्षेत्रों में काम करने लगीं। इससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई, वे पुरूषों के समान प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगीं। उनमें जागृति आई और उनकी पारम्परिक स्थिति भी बदली। समाज में उनकी स्थिति को सुधारने के अनेक प्रयास समाज-सुधारकों द्वारा किए गए। सती-प्रथा का अन्त, बाल-विवाह की समाप्ति, विधवा-पुनर्विववाह का प्रचलन, विलम्ब-विवाह व प्रेम-विवाह आदि ने उन्हें समाज में प्रतिष्ठित किया है। वे अब अलग नहीं रह गई हैं बल्कि राष्ट्रीय प्रगति में अपना सहयोग प्रदान कर रही हैं, यह सब पश्चिमीकरण के प्रभाव का परिणाम है।

पश्चिमीकरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीयों के खान-पान, रहन-सहन और व्यवहार के प्रतिमानों में अनेक परिवर्तन आए हैं। पहले ब्राह्मण लोग व उच्च वर्ग मांस-मदिरा, सिगरेट आदि व्यसनों से दूर थे, वे सात्विक भोजन करते थे, भोजन से पूर्व स्नान करते थे, उनका रहन-सहन सरल व सादा था, शुद्ध वस्त्र धारण करते थे, भारतीय वेशभूषा धारण करते थे, सम्बोधन में शिष्टता, सम्मान-प्रदर्शन व स्नेह-प्रदर्शन सभी भारतीय परम्परा के अनुरूप था, किन्तु पश्चिमीकरण के प्रभाव ने इस सभी प्रतिमानों में अनेक परिवर्तन किए हैं। अब उच्च वर्ग व सभी जातियां भोजन में प्याज, लहसुन, मांस, मदिरा, अण्डे आदि का प्रयोग करने लगी हैं।

अब मेज-कुर्सी पर भोजन करना, भोजन करते समय जूते पहने रहना, होटलों में खाना, चाय आदि का पान करना, स्वाभाविक बातें हो गई हैं। अब पहनावा भी विदेशी या पश्चिमीकरण से प्रभावित हो गया है। धोती-कुर्ते के स्थान पर पैण्ट, कमीज, टाई, सूट आदि का प्रचलन हो गया है। स्त्रियां भी हर प्रकार की पोशाक धारण करना अपना अधिकार मानने लगी हैं। फैशन का प्रचलन हो गया है। परिवार के सदस्यों के प्रति सम्बोधन में पश्चिमीकरण की छाप स्पष्टतया दिखाई देती है। मम्मी, डैडी, हाय, हैलो, 'हाथ मिलाना', गुडनाइट, गुडमार्निंग जैसा व्यवहार अपनाना आज अत्यधिक प्रचलन में आ गया है। यही नहीं भारतीय भोजन का स्थान अब पाश्चात्य भोजन ने ले लिया है। होटलों में भोजन करने का प्रचलन बढ़ा है, भोजन में कांटे-छूरी का प्रयोग बढ़ रहा है। इस तरह हमारी जीवन शैली में पाश्चात्यीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है।

पश्चिमीकरण के पूर्व का भारत अनेक रियासतों और रजवाड़ों में बंटा हुआ था, सामन्ती शासन की व्यवस्था भी, प्रथागत न्याय व्यवस्था का प्रचलन था। शासन का कार्य पंचायतें करती थीं, जिनके अपने-अपने नियम कानून थे, जो धार्मिकता पर आश्रित थे।

पश्चिमीकरण के पश्चात् भारत की सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन हो गया। अंग्रेजी शासन काल के दौरान पंचायतों के अधिकार छिन गए, धार्मिकता पर आधारित सिद्धान्त समाप्त कर दिए गए और भारत में एक समन्वित शासन व्यवस्था लागू हो गई। देश के समस्त कानून संहिताबद्ध हो गए। यह संवैधानिक व्यवस्था पश्चिमी और पूर्वी विचारधाराओं का एक सम्मिलित रूप कही जा सकती है। भारत के प्रजातंत्रात्मक आदर्शों पर भी पश्चिमीकरण का ही प्रभाव है। स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर भी सभी सिद्धान्त उसी रूप में स्वीकार किए गए हैं। भारत की राष्ट्रीय चेतना का विकास भी पश्चिमीकरण की ही देन है। देश में पुलिस व फौज की व्यवस्था की गई, संचार व यातायात के साधनों का प्रचलन हुआ, इन सबसे प्रशासन की कार्य प्रणाली में सुगमता आई। आधुनिक प्रजातंत्र और संसदीय प्रणाली का स्वरूप विकसित हुआ। नई शिक्षा प्रणाली, प्रेस, अखबार आदि के कारण लोगों में जनचेतना विकसित हुई, उनमें राष्ट्रीयता की भावना बढ़ी और भारत एक संगठित राष्ट्र के रूप में उभर कर आया, जिसने अंग्रेजों को ही जड़ से हटा दिया। इस प्रकार पश्चिमीकरण के प्रभाव ने अनेक आशातीत उपलब्धियां प्रदान की हैं, वहीं दूसरी ओर इसके कारण भाषावाद, प्रान्तीयतावाद, क्षेत्रीयतावाद, नौकरशाही, साम्प्रदायिकता और जातिवाद जैसी कुत्सित भावनाएं यहां विकसित हुई हैं। भारत-हिन्दू और मुसलमान- दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया जिसका परिणाम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान है। पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद की विचारधाराओं का उदय हुआ। इस प्रकार पश्चिमीकरण के प्रभाव के कुछ विपरीत परिणाम भी निकले किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पश्चिमीकरण ने भारत को मौलिक अधिकारों व स्वतंत्रता-समानता के विचारों से परिचित कराया।

प्राचीन काल से ही भारत में धार्मिकता का गहरा प्रभाव था जो बाद में कुछ ज्यादा ही बिगड़ता गया। वैदिक मंत्रों का स्थान धार्मिक कर्मकाण्डों ने ले लिया। एक वर्ग विशेष को अनेक अधिकार प्रदान कर दिए गए। लोगों की देवी-देवताओं में आस्था बढ़ती गई और धीरे-धीरे अन्धविश्वास, रूढिघ्वादिता, भाग्यवादिता, भूत-प्रेत, शकुन-अपशकुन प्रत्येक व्यवहार भारतीयों में दिखाई देने लगे। यही नहीं अनेक बुराइयां धर्म के नाम पर प्रभावी हो रही थीं। देवदासी प्रथा, सती-प्रथा, छुआछूत, बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, पर्दा-प्रथा, मृत्यु-भोज, और मानव-बलि आदि का चलन इतना बढ़ गया कि धर्म सामान्य व्यक्ति को समझ से परे हो गया।

पश्चिमीकरण की शिक्षा के प्रभाव से लोगों में जनचेतना विकसित हुई। अनेक धार्मिक सुधारवादी आंदोलन हुए, ईसाई धर्म प्रचारकों ने भी इन बुराईयों को समाप्त करने का पुरजोर प्रयास किया, उन्होंने धर्म के उपयोगी पक्ष और मानवतावादी दृष्टिकोण से परिचय कराया। इन सबका प्रभाव अन्त में लोगों पर पड़ा। धार्मिक कर्मकाण्डों का खण्डन किया गया। लोगों की ईश्वर व धर्म में आस्था कम हुई, रूढिघ्वादिता की समाप्ति हुई, हिन्दू धर्म में मानवतावादी विचारों को अपनाया गया। अनेक लोगों ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया, वे ईसाई बन गए। धर्म के नाम पर समाज में प्रचलित सभी कुरीतियों का विरोध हुआ। इस प्रकार पश्चिम के प्रभाव के परिणामस्वरूप धार्मिक बुराईयां समाप्त हुई; पश्चिमीकरण के प्रभाव ने ही धर्मनिरपेक्ष समाज का निर्माण किया, जिसमें सभी धर्मों की अच्छाइयां को स्वीकारा गया है।

प्राचीन समय में आश्रम व्यवस्था विद्यमान थी। प्रथम आश्रम- ब्रह्मचर्याश्रम था, जिसमें शिष्य गुरूकुल में जाकर विद्या-अध्ययन करता था। शिक्षा उस समय ब्राह्मणों तक सीमित थी क्योंकि जातीय व्यवस्था में सभी जातियों के कार्य व्यवहार निश्चित थे। ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ आदि करना था, अतः वे ही शिक्षा ग्रहण करते थे, वह भी संस्कृतनिष्ठ। जब अंग्रेज भारत में आए और उन्हें अपना राजकार्य चलाने के लिए अंग्रेजी माध्यम से पढ़े लिखे बाबुओं की आवश्यकता हुई तो उन्होंने भारत में सार्वभौमिक शिक्षा प्रणाली लागू की और अंग्रेजी शिक्षा संस्थाएं खोलीं क्योंकि लॉर्ड मैकाले की नीति ही भारत में अंग्रेजी बाबू बनाने की थी। इन शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करके लोग राजकार्य में सहयोग करने लगे। राजकीय सेवा में उन्हें वरीयता प्रदान की गई। वास्तव में लॉर्ड मैकाले की इस शिक्षा का उद्देश्य भारतीय समाज को योरोपीय ढांचे में ढालना था, इस शिक्षा को ग्रहण कर भारतीय लोगों की जीवन शैली, विचारों, आदर्शों और मूल्यों में आशातीत परिवर्तन आया क्योंकि इस शिक्षा में धर्मनिरपेक्षतावाद, विज्ञानवाद, उदारवाद, प्रजातंत्रवाद, तार्किकतावाद, समानता और स्वतंत्रता के आदर्श निहित थे।

इसका प्रभाव यह हुआ कि अंग्रेजी शिक्षा के कारण अनेक अन्धविश्वासों, धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों, बाह्याडम्बरों का अन्त हुआ। अनेक सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन हुए और लोगों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुई। एक प्रबुद्ध बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ, जिसने भारत को अंग्रेजों के शासन से मुक्त कराया। शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय समाज प्रगतिशील बना। आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी, प्रशासन आदि का विकास इसी शिक्षा का परिणाम है। कृषि, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कानून एवं अन्य प्रशिक्षण उसी शिक्षा का परिणाम है। आज भारतीयों में तार्किकता, वैज्ञानिकता और धर्म निरपेक्षता का जो दृष्टिकोण विकसित हुआ है, वह इस शिक्षा का ही योगदान है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि पश्चिमीकरण का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में लोगों को प्रबुद्ध बनाने की दिशा में पड़ा है।

पश्चिमीकरण का भारतीय साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। यद्यपि भारत में राष्ट्रीय साहित्य का प्रारम्भ पश्चिमीकरण के पूर्व ही हो चुका था। अनेक पद्य रचनाएं हुईं। बंकिम चन्द्र चटर्जी, जयशंकर प्रसाद आदि ने राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत रचनाएँ लिखीं। गद्य शैली का विकास भी हो चुका था किन्तु पश्चिमीकरण के प्रभाव से साहित्य की विचारधारा में अनेक परिवर्तन आए। अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से भारतीय विद्वान विश्व के साहित्य की जानकारी कर सके और अपने साहित्य को समृद्ध करने लगे। भारतीय लेखक और कवियों ने पश्चिमी शैली का अनुकरण किया। शेक्सपीयर, बर्नाड शॉ, कीट्स, शैली व जॉनसन आदि साहित्यकारों की रचनाओं के हिंदी अनुवाद किए जाने लगे। अंग्रेजी सोनेट आदि का अनुकरण हिन्दी कविताओं में होने लगा। हिंदी में छायावाद, रहस्यवाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद का विकास हुआ जो अंग्रेजी की रूमानी विचारधारा के आधार पर रहस्यात्मक रूप से विचारों को अभिव्यक्त करती हैं। महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'प्रसाद' आदि इनमें प्रमुख कवि थे। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए मिशनरियों ने प्रादेशिक भाषाओं की लिपि व व्याकरण तैयार किया, प्रेस खोले, अखबार प्रकाशित किए और गद्य साहित्य का विकास किया। विदेशी विद्वानों ने भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण किया, संस्कृत साहित्य को जन सामान्य तक पहुंचाया। ग्रियर्सन का 'भारत का भाषा-सर्वेक्षण' महत्त्वपूर्ण योगदान है। अंग्रेजों और जर्मन विद्वानों ने संस्कृत साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद किया और भारतीयों को इसकी वास्तविकता से परिचित कराया। संस्कृत साहित्य में निहित कला, दर्शन और धर्म आदि का ज्ञान जनसामान्य को कराने में पश्चिमी साहित्यकारों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य पर पश्चिमी साहित्य का प्रभाव पड़ा है।

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण-अर्थव्यवस्था थी, जिसकी मुख्य विशेषताएं कुटीर उद्योग धंधे व कृषि कही जा सकती है। कृषक अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करते थे, साप्ताहिक मेलों में उत्पादित वस्तुएं खरीदी व बेची जाती थीं। पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े उद्योगों का विकास हुआ, बड़े-बड़े कारखाने और मिल स्थापित किए गए, जिनमें मशीनों की सहायता से बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा; इससे ग्रामीण कुटीर उद्योगों पर विपरीत असर पड़ा। किसानों द्वारा तैयार किया गया माल मशीनों द्वारा तैयार किए गए माल की तुलना में कमजोर पड़ गया। पश्चिमीकरण के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ा। किसानों ने भी कपास, जूट, गन्ना, तिलहन, तम्बाकू आदि की खेती करना प्रारम्भ किया, कृषि में आधुनिक यंत्र, खाद, बीज आदि का उत्पादन होने लगा। अंग्रेजों ने भूमि व्यवस्था की नई पद्धति विकसित की जिसका प्रभाव यहां की आर्थिक संरचना पर पड़ा, कृषकों को लगान देना आवश्यक कर दिया गया इससे उनमें ऋणग्रस्तता बढ़ने लगी। अब वे न तो आत्म निर्भर रह गए और न ही

आर्थिक रूप से सम्पन्न। अत: वे नए पेशों को अपनाने के लिए बाध्य हो गए। खेतों का उप-विभाजन होने लगा, भूमि पर वैयक्तिक स्वामित्व होने लगा, जमींदारी प्रथा आदि के कारण अनेक समस्याएं सामने आती गईं। इस प्रकार पूँजीवादी-व्यवस्था के परिणामस्वरूप कृषकों की आर्थिक स्थिति निरन्तर बिगड़ती गई।

पश्चिमीकरण का नगरों की आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा; औद्योगीकरण के कारण व्यापार बढ़ने लगे, इससे श्रम विभाजन व विशेषीकरण उत्पन्न हुआ; श्रमिकों का अमानवीय शोषण होने लगा; श्रमिकों को उनके श्रम का वास्तविक पुरस्कार न मिलने से मालिक और श्रमिक के मध्य संघर्ष बढ़ता गया। इससे अनेक समस्याएँ बढ़ी । मजदूर अपनी माँगों को मनवाने के लिए हड़तालें, तालाबन्दी, घेराव आदि प्रकिया अपनानें लगे। मजदूर संघ बनने लगें और वर्ग संघर्ष बढता गया। इस प्रकार पश्चिमीकरण के प्रभाव के परिणाम स्वरूप ऐसी अर्थव्यवस्था विकसित हुई, जिसमें अधिक श्रम करने वाले को कम आर्थिक सुविधाएँ मिली। परिणामत: समाज में बेकारी, गरीबी, भिक्षावृत्ति, कुपोषण, वेश्यावृत्ति, मद्यपान जैसी समस्याएँ प्रकाश मे आई है। श्रमिकों की समस्याओं के समाधान के लिए कानून एवं कल्याणकारी योजनाएँ बनी है समाजवादी व्यवस्था लागू की गई है किन्तु श्रमिकों की समस्याओं का निवारण सम्भव नहीं हो सका है। पश्चिमीकरण के प्रभाव के कारण भारतीय आर्थिक संरचना में अनेक अच्छे-बुरे प्रभाव पड़े हैं।

पश्चिमी सभ्यता ने भारत में पूर्णतया नवीन शैली की स्थापना की है। पाश्चात्य संगीत की 'बैले शैली' आज सामान्य जीवन, उत्सवों व चलचित्रों आदि में खूब प्रचलित हो रही है। आज हमारे जीवन में शास्त्रीय संगीत के स्थान पर लोक संगीत और लोक गीतों का महत्व बढ़ा है, जो ईसाई मिशनरियों के प्रभाव का परिणाम है। भारतीय समाज में पश्चिमी संगीत व नृत्य का प्रचलन बढ़ा है; चलचित्रों में पाश्चात्य धुनें, पश्चिमी वाद्य यंत्र जैसे- वॉयलन, गिटार, माउथ ऑगर्न और पश्चिमी नृत्य, जैसे- कैबरे, ट्विस्ट, शेक आदि का प्रचलन भी खूब बढ़ा है। उच्च वर्ग में स्त्री पुरूषों को यूरोपीय ढंग से साथ-साथ नृत्य करना व पश्चिमी संगीत में अभिरुचि भारत में पश्चिमीकरण का ही प्रभाव है।

निष्कर्षत: पश्चिमीकरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय समाज के अनेक पक्षों पर प्रभाव पड़ा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् पश्चिमीकरण की प्रक्रिया और भी विकसित हुई है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, मशीनों का आविष्कार, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति आदि पश्चिमीकरण का ही परिणाम है।

संदर्भ:

1. भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, डॉ0 रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, डॉ0 गिरीश चन्द्र कुलश्रेष्ठ, प्रकाशक - प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली, पंचम संस्करण-1985।
2. ग्रामीण समाजशास्त्र, डॉ0 एम0एम0 लवानिया, शशी के. जैन, प्रकाशक- रिसर्च पब्लिकेशन, 89 त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, संस्करण 2005
3. ग्रामीण समाजशास्त्र, वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, प्रकाशक - पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण-1999।
4. भारतीय समाज, जगदीश प्रसाद मिश्र, सुधा मिश्रा, भारत प्रकाशन 17 अशोक मार्ग लखनऊ-226001, तृतीय संस्करण 2001।
5. भारतीय सामाजिक संगठन, आर0एस0 मुखर्जी, जे0के0 अग्रवाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद, संस्करण 1972
6. कल्चर चेन्ज इन इण्डिया, योगेन्द्र सिंह, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, दिल्ली, संस्करण 2003
7. ग्रामीण-नगरीय समाजशास्त्र, राम गणेश यादव, प्रकाशक - ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण 2014
8. भारतीय समाज तथा संस्थाएं, गोपाल कृष्ण अग्रवाल, साहित्य भवन, आगरा, संस्करण 1972
9. भारतीय समाज की संरचना, श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, प्रकाशक साहित्य भण्डार 50, चाहचन्द, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1989
10. भारतीय समाज और संस्कृति, प्रो0 सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण 1985।

"'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में नारी विमर्श"

डॉ० सुनील एम. पाटिल

आर. सी. पटेल कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय शिरपुर, धुलिया

इक्कीसवीं सदी विमर्शो की सदी हैं। इन सारे विमर्शो ने समाज को पूरी ताकद के साथ केंद्र में खडा किया हैं। ऐसे समाज के बारे में हम कह सकते हैं कि कोई खास समुदाय जब अधिकतर समुदाय को प्रभाव और नियंत्रण में रखता हैं उस खास समुदाय को केंद्र कहा जाता हैं। हमारा पूरा समाज दो स्तंभों पर खडा हैं। एक पुरुष और स्त्री, पहले से ही दोनों का काम आपसी सहयोग से बच्चे पैदा करना और मानव वंश को आगे बढाना हैं। नारी का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व या पहचान नहीं थी। वह पुरुष की अर्धांगिनी के रुप में जानी जाती थी। मनू ने तो स्त्री के लिए विधान किया था कि - 'वह पुत्री के रुप में पिता का रक्षण में, पत्नी के रुप में पति का रक्षण में तथा माँ के रूप में पुत्र के रक्षण में अपना जीवन यापन करें।'

नारी प्रकृति का सुंदरतम उपहार हैं। साथ - साथ प्रकृति का मूलाधार भी हैं। सहिष्णुता, धैर्य एवं वात्सल्य के अक्षय गुणों से युक्त रही हैं। परिवार रुपी संस्था को सुव्यवस्थित बनाने का उत्तरदायित्व नारी पर निर्भय रहा हैं। भारतीय परिवार में नारी केवल वासना की पूर्ति के लिए नही बल्की धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधन रहे हैं। नारी पत्नित्व के सौभाग्य से धर्मपत्नी, अर्धांगिनी, प्रेमिका एवं अर्थाजन में सहयोगिनी रही हैं। सारे रीति-रिवाज, परंपरा और संस्कृति सिर्फ उनके लिए होती हैं, ताकि उनका शोषण किया जा सके। भारतीय संस्कृति में नारी में माँ का स्वरूप देखा गया हैं और शास्त्रो में उसे पूजनीय माना गया हैं, नारी माँ के रुप में करुणा, प्रेम एवं त्याग की मूर्ती के रुप में सम्मानित होते हुए भी सामाजिक जीवन में केवल भोग्या बनकर रह गई हैं।

'उपन्यास' कथा साहित्य में सबसे प्रभावशाली और सशक्त विधा हैं --- उसमें जीवन की वे सारी झलकियां मिलती हैं --- जिसे लेखक केवल देखता ही नही बल्की उनका अनुभव भी करता हैं --- तथा समय - समय पर उन्हें काफी हद तक भोग कर आत्मसात करता हैं --- उसमें मानवीय संवेदनाओं और पल - पल बढते परिवेश का सूक्ष्म अंकन किया हैं।

आज साहित्य के क्षेत्र में अनेक विमर्श उभरकर सामने आये हैं। जिसमें नारी विमर्श एक गंभीर एवं ज्वलंत मुद्धा हैं। इस विमर्श के तहत नारी को केंद्र में रखकर उससे संबंधित समस्याओं पर गहन चिंतन मनन चल रहा हैं। नारी विमर्श एक आंदोलन हैं जो नारी के अधिकारों एवं उसकी मुक्ती के लिए पितृसत्तामका के विरोध में खडा हुआ हैं।

नारी विमर्श का मूल उद्देश्य नारी - मुक्ती हैं स नारी विमर्श अस्मिता एवं अस्तित्व की लढाई हैं, जो अपने अस्तित्व के प्रति साक्षात्कार कराती हैं। आज की नारी ने पुरुषो को चुनौती दी हैं कि उसके बिना भी एक सम्मानजनक एवं आत्मनिर्भर जीवन जीने में सक्षम हैं। नारी विमर्श का उद्देश्य पुरुषो का विरोध करना नही हैं अपितु उनकी संकुचित मानसिकता का विरोध करना हैं। जो स्त्री - पुरुष के बीच भेदभाव को पैदा करती हैं। नारी विमर्श एक व्यापक दृष्टी हैं, जो बौद्धिकता का विकास करता हैं। स्त्री - पुरुष के बीच सामंजस्य की स्थापना करना चाहता हैं।

'पिछले पन्ने की औरतें' यह शरदसिंह द्वारा लिखित पहला उपन्यास हैं। इस उपन्यास में बेडिया समाज की स्त्रियों के त्रासदीपूर्ण जीवन को उजागर किया गया हैं। बेडनी औरतों के जीवन - यथार्थ को आधार बनाकर लिखा गया यह हिंदी साहित्य का पहला उपन्यास हैं। जिसमें उन औरतों की पीडा अभिव्यक्त हुई हैं। जो सदियों से पुरुष - प्रधान समाज द्वारा बनाई गई परंपराओं का अंधानुकरण के कारण अभिशप्त जीवन जीने को विवश हैं। 'राई' नृत्य की आड में बेडनियों वेश्यावृति करती हैं। बेडिया एक

घुमक्कड खानाबदोश जाति हैं, जो बिहार, उत्तप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं बंगलादेश में पाई जाती हैं। इस समाज जाति का अपना इतिहास रहा हैं। जब देश स्वतंत्र था, तब इस समाज की स्त्रियों का इस्तेमाल विषकन्याओं या जासूस के तौर पर किया जाता था। अंग्रेजों के आने के बाद इस समाज के पुरुषो ने लगतार उनके खिलाफ लड़ाई लड़ी एवं लूट - पाट की स इस कारण अंग्रेजों ने इस जाति को आपराधिक जाति घोषित कर दिया। अधिकांश पुरुष या तो जेल में राहतें थे या पुलिस की ङर से फरार रहते थे। घर का खर्च चलाने के लिए महिलाओं को विवशतापूर्वक वेश्यावृति अपनानी पडी तत्पश्चत देह - व्यापार की मजबूरी को परंपरा का नाम देकर समाज के पुरूषो ने मान्यता दे दी और उनकी कमाई पर अपना जीवन - यापन करने लगे।

उपन्यास का आरंभ भोपाल यात्रा से होता हैं। बस में उनकी मुलकात संयोगवंश बेडनी श्यामा से होती हैं, जो पथरीया गांव में रहती हैं। पथरीया गांव की हर लडकी को पूर्ण शारीरिक विकास के बाद परंपरानुसार वेश्यावृत्ति के धंधे में उतार दिया जाता था। श्यामा भी इसी परंपरा की शिकार थी। वह धनिक पुरुष की रखैल बन कर रह रही थी। उसकी स्वीकृति से ही वह 'राई' नृत्य के साथ - साथ देह व्यापार भी करती हैं। लेखक इस धंधे को छोड देने की नसीहत पर श्यामा का जबाब उसकी आर्थिक विवशता को प्रकट करता हैं कि "छोड दूंगी तो खाऊंगी कहां से ? अपना, अपने बच्चों का, परिवार का पेट पालने के लिए कुछ तो करना ही होगा"[1] इसे स्पष्ट हो जाता हैं कि आर्थिकता के कारण ही बेडनियां वासना - लोलुप पुरूषो के आगे नाचती हैं और जरुरत पडने पर देह - व्यापार करती हैं।

बेडिया समाज के पुरुष अपने स्वार्थ के लिए अपने घर की औरतों की इज्जत का सौदा करने में भी तनिक संकोच नही करते स यहाँ तक की एक पढा - लिखा बेडिया युवक भी आरामपरस्त जीवन जीने के लिए स्वयं काम न करके अपने घर की औरतों की कमाई पर घर - गृहस्थी चलाने के लिए उन्हें नरक भरा जीवन जीने के लिए छोड देते हैं। रामखेलावन इसका सशक्त उदाहरण हैं। रामखेलावन एक पढा - लिखा युवक होने के बावजूद अपनी स्वार्थपूर्ती हेतु अपनी बहन को वेश्यावृत्ति के दलदल से निकालने के बजाय उसे वही पर नरक भरा जीवन जीने के लिए छोड देता हैं। लेखक के कहने पर रामखेलावन कहता हैं कि "यदि तुम्हें अपनी बहन का धंधा अच्छा नही लगता तो तुमने उसे रोका क्यों नही?"[2] रामखेलावन का उत्तर -- "रोकता कैसा? यदि रोकता तो घर के सब ----"[3] इसी तथ्य का घोतक हैं कि बेडिया समाज औरतों की कमाई पर निर्भर होने के कारण 'राई' नृत्य अथवा बेडनी के रुप में औरतों का शोषण कर रहा हैं। बेडिया समाज ने बेडिनियों के लिए ऐसी स्थितियां निर्माण कर दी हैं कि वे चाहकर भी इस दलदल से निकल नही पाती। बेडनी होने का कलंक उन्हें समाज दृष्टी में एक स्त्री का नही मात्र वेश्या का स्थान देता हैं। उपन्यास की पात्रा श्यामा जिसे वेश्यावृत्ति का धंधा छोडकर कोई अन्य काम करने के लिए कहा जाता हैं उसका सभ्य समाज से सीधा प्रश्न हैं कि "मुझे कौन काम देगा ? मै जहाँ भी जाऊंगी वहां भी मालिकों की दृष्टी में तो राहूँगी एक बेडनी ही -- लोग काम देने के बदले मुझे अपने बिस्तर पर ले जाना अधिक पसंद करेंगे।"[4] इसे स्पष्ट हो जाता हैं कि बेडनी के लिए एक सामान्य स्त्री का जीवन जीना संभव नही होता।

उपन्यास में चित्रित लगभग सभी बेडनी एक सामान्य स्त्री की तरह घर - परिवार में सम्मान की तरह रहना चाहती हैं स उनकी इच्छा होती हैं कि उनका एक पति हो, अपना घर हो, उनके बच्चों को उनके पिता का नाम मिले तथा समाज में सम्मान - जनक जीवन जीने का अधिकार मिले। बेडिया समाज में फुलवा जैसी अनेक बेडनियां आज भी अपने भविष्य के लिए चिंतित हैं। वे लडकी कि बजाय लडके को जन्म देना चाहती हैं ताकि वह अपनी माँ को उस दलदल से निकाल कर सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार दिला सके। अन्यथा बेटी को तो पुनः माँ की तरह एक बेडनी का ही जीवन जीना पडेगा।

किसी भी बेडनी की बेटी अपने माथे पर से बेडनी का कलंक नही मिटा पाती। उपन्यास की पात्रा गुड्डी के माध्यम से लेखक ने बेडनियों की स्थिति को उजागर किया हैं। गुड्डी एक तरफ ससुरालवालों द्वारा बेडनी होने के ताने सुनती हैं तो दुसरी तरफ उसका पति उससे देह - व्यापार के लिए विवश करता हैं। गुड्डी द्वारा विरोध करने पर उसका स्पष्ट कहना था - "तू क्या समझती हैं कि तुझे तो मै इसलिए ब्याहकर लाया हूँ कि तुमसे धंधा करा संकू स"[5] इस स्पष्ट होता हैं कि बेडनी की बेटी को भी समाज में सामान्य स्त्री की तरह जीने का अधिकार नही हैं। पुरुष ने नारी को अपनी संपत्ति ही नही समझा, बल्की उसकी घोर निंदा भी की हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में पुरुष की क्रूरता एवं अमानवीयता के अनेक किस्से भरे पडे हैं। पुरुष की बर्बरता की शिकार होती हुई स्त्री की कारुणिक स्थिति का चित्रण चंदा के माध्यम से देखा जा सकता हैं। उससे विवाह का आश्वासन देकर उसके साथ छल करता हैं। इतना ही नही उसे बंदीगृह में कैद करके उसके साथ यौन शोषण भी करता हैं। तथा अत्याचार भी करता हैं। वह उसकी देह

को नोचता - खरोचता हैं कि उसे मर्मज्ञ पीडा भी देता हैं। वह उससे मुक्त भी होना चाहती हैं, किन्तु उसके आतंक के आगे वह कुछ भी करने में असमर्थ थी। वह उसे धमकाते हुए कहता हैं कि "तूने अगर मुझे छोडकर जाने के बारे में सोचा भी तो मै तेरे टूकडे - टूकडे करके अपने पालतू मगरमच्छो को खिला दूंगा।"[6]

पुरुष - स्त्री को परंपराओं कि जंजीरों में बांधकर उसे घर कि चार दीवारी में कैद करके उसके अस्तित्व को समाप्त कर देता हैं स वह अपनी पत्नी को मान - मर्यादाओं एवं संस्कारों में ढली हुई स्त्री के रुप में देखना चाहती है। जिसके लिए पर पुरुष को देखना भी अपराध हो, वही दूसरी तरफ पर नारी को वह एक 'आइटम' के रुप में देखना चाहता हैं। पुरुष अपनी पत्नी के रहते हुए भी पराई स्त्रियों के साथ दैहिक संबंध बनाता हैं, किन्तु अपनी स्त्री को अन्य पुरुष के साथ वह कदापि सहन नही कर सकता। इसका ज्वलंत उदाहरण उपन्यास का पात्र जसवंत अनिता को अपनी वासना कि वस्तु बनाने के लिए उसका अपहरण कर लेता हैं। जब लेखक उससे कहता हैं कि "मगर सोचो, यदि तुम्हारी पत्नी किसी बेडिया को पसंद करें तो?[7]" जसवंत को यह बात बर्दाश्त नही होती और वह भडकते हुए कहता हैं - "मै उसे जिंदा न गाड दूंगा स"[8] इस प्रकार पुरुष अपनी पत्नी और प्रेमिका से एकनिष्ठ प्रेम की अपेक्षा तो रखता हैं, किन्तु स्वयं उन अपेक्षाओं पर खरा नही उतरता।

आज शिक्षा ने स्त्री के अंधकारमय जीवन में ज्ञान का संचार किया हैं। जीवन एवं समाज के विविध आयमों को नए ढंग से सोचने-समझने की नई दृष्टी दी हैं। उपन्यास में चंपा की माँ शिक्षा का प्रबल समर्थन करते हुए कहती हैं कि "जो पढाई से मिलता हैं वह तिजोरी, तख्त और तलवार से भी नही मिल सकता हैं।"[9] इससे स्पष्ट होता हैं कि शिक्षा से बढकर एक स्त्री के लिए कुछ भी महत्वपूर्ण नही होना चाहिए। अत: शिक्षा ही मुक्ती का द्वार हैं जिसके आधार पर वह अपने अधिकारों को पहचानकर पुरूषो के समान अपना अस्तित्व स्थापित कर सकती हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता हैं कि लेखक ने इस उपन्यास में बेडनियों की मूलभूत समस्याओं को दिखाने के साथ - साथ सामाजिक विद्रुपताओं पर भी गहरा प्रहार किया हैं। 'राई' नृत्य की आड में बेडनियों का वेश्यावृत्ति करना परंपरा के नाम पर कलंक हैं। सदियों से पुरुष समाज इस परंपरा का नाम देकर स्त्री का शारीरिक तथा मानसिक शोषण करता आ रहा हैं। लेखक ने इन औरतों के माध्यम से उन तमाम औरतों की समस्याओं को भी चित्रित किया हैं। जो वर्षो से पुरुष प्रधान समाज द्वारा शोषित हैं। लेखक का मुख्य उद्देश्य यह हैं कि बेडनी समाज की औरतों के भीतरी चेतना पैदा करना हैं ताकि वे इस परंपरा को तोडकर उन्नति की मुख्यधारा से जुड सकें।

संदर्भ

1) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 12
2) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 24
3) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 228
4) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 07
5) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 235
6) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 299
7) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 49
8) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 210
9) 'पिछले पन्ने की औरतें' डॉ. शरद सिंह, पृष्ट - 210

मृदुला गर्ग की रचनाओं में नारी विमर्श

डॉ० नम्रता जैन

सहायक प्राध्यापिका, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

प्रस्ताबना

हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध बनाने में अनेक महिला कथाकारों का सहयोग रहा है, जिन्होंने अपने श्रेष्ठ एवं बौद्धिक लेखन ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। वर्तमान दशक में उनका लेखन और भी परिष्कृत एवं उच्च स्तर का हो गया है। समसामयिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रचना करके उन्होंने अपनी जागरूकता, बौद्धिकता एवं व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। इन लेखिकाओं के नाम हैं- मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डेय, मैत्रेयी पुष्पा, सुधा अरोडा, नमिता सिंह, नासिरा, प्रतिमा वर्मा, चित्रामुद्गल, सूर्यमाला मंजुला भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, कुसुम असल, राजी सेठ, कृष्णा सोबती, ममता कलिया, मन्नू भण्डारी, अलका सरावगी, सुधा-अरोडा आदि।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार साहित्य में उन्हीं बातों को लिखता है जो उसे समाज में दिखाई पड़ती है। मृदुला गर्ग एक लेखिका, कवियित्री, नाटककार या मात्र निबंधकार नहीं है बल्कि वह सम्पूर्ण साहित्यकार है। जबकि रचनाकार अपने आपको साहित्य की किसी एक विद्या से बांच लेता है मृदुला गर्ग ने अपने आपको इन सब से स्वतंत्र रखा है। यही स्वतंत्रता इनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है। मृदुला गर्ग ने अपने साहित्य को व्यक्तिवाद, अमूर्त या रोचकता भर से नहीं बाघा है न ही किसी ऐतिहासिक पुरुष की आदर्शमता को अपनाया है। उनका लेखन उनके व्यक्तित्व की तरह ही बंधनों से स्वच्छद एवं मुक्त है। बचनों से प्रेम की मात्र कल्पना से या यौनिक उत्कंठा से। लेखिका स्वीकारती है कि - ष्यौनिक इच्छा और यौनिकता में बहुत अन्तर है पर पूर्वाग्रह कायम है।

आमतौर पर लेखक या लेखिका की रचनाओं को उनके व्यक्तित्व से जोड़ कर देखा जाता है अथवा उपन्यास या कहानी के मुख्य पात्र को ही रचनाकार की आत्मा मान लिया जाता है। किन्तु इनमें पर्याप्त अन्तर है जब रचनाकार उपन्यास लिखता है तो वह पात्रों का चयन मुख्य पात्र के आस-पास बुनता है। जबकि वही रचनाकार जब कविता लिखता है तो उसकी रचना कल्पना से कोसों दूर समाज की यथार्थ के धरातल पर जाकर गिर जाती है।

मृदुला गर्ग के साहित्य में नारी का व्यक्तित्व

मृदुला गर्ग ने अपने साहित्य में स्वय (नारी) के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्वित किया है। स्वतंत्रता और स्वच्छदता में अन्तर होता है। सभी स्वतंत्र है, किन्तु सभी स्वच्छद नहीं है। मृदुला गर्ग के व्यक्तित्व में उपर्युक्त दोनों बातें झलकती हैं। जब यह किसी विषय में कहती है तो किसी से डरती नहीं है और जो यह कहती है उसे निडरता के साथ लिखती है। भारतीय समाज में परिवार, स्त्री स्त्रीत्व और स्त्री की भूमिका सदैव से आश्चर्यचकित (विस्मित) करने वाली रही है। कभी वह देवी के रूप में पूजनीय है। तो कभी परिवार के यौन उत्कठा का शिकार रही है लेकिन वह कहती कुछ नहीं है। कुछ न कहना, दर्द सहना, भयभीत रहना स्त्री का धर्म है। और ऐसा लगता है वह इसमें खुश भी है। लेखिका अपने साहित्य में स्त्री के बंधन को तोड़ना चाहती है, यह उन्मुक्त होकर जीवन का आनन्द लेना चाहती है। जीवन के प्रत्येक क्षण को संजोकर अपनी यादों के रूप में सजाना चाहती है।

मृदुला गर्ग स्त्री के मन की व्यथा को अपने कहानी उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से कहना चाहती है। उन्होंने अपने उपन्यासों में सभ्रात महिला पात्रों का चयन किया है, जो सोचने समझने और अपनी यौनिक इच्छाओं को पति प्रेमी के समक्ष कहने में शर्म

महसूस नहीं करती है। ये पात्र बुद्धिजीवी है, स्वतंत्र है और परिवार का अभिन्न अंग है। यह पात्र केवल कपोल कल्पना नहीं करते हैं अपितु कल्पनाओं को साकार भी करते हैं। लेखन कला है स्त्री इस कला से प्यार करती है। यह अपनी कला का मोल नहीं मांगती अपितु साहस के साथ समर्पण मांगती है।

ष्मेरा मूल्य मेरे खूबसूरत जिस्म से है। अत्यंत सरलता के साथ कही गई यह बात प्रत्येक स्त्री जानती है। स्त्रियों के मन में उसकी खूबसूरती को लेकर खास जगह होती है। वह अपने जिस्म में किसी भी प्रकार का दाग नहीं लगने देना चाहती हैं। स्त्री में सजने-संवरने का गुण होता है, वह सुन्दर दिखना चाहती है. सुन्दरता से ही पुरुष को आकर्षित किया जा सकता है। उसके मन में प्रेम जगाया जा सकता है। मृदुला गर्ग की वैचारिकता, बौद्धिकता उनकी कही बातों से प्रकट होती है, वो कहती है, मे शांत थी, मेरी भावनाएँ नियंत्रण में रहती थीं, में एकातप्रिय और अकली रहना पसंद करती थी। जब मेरा पहला बच्चा पैदा हुआ तो मेरे भीतर जड़ भावात्मक लावा बाहर आ गया। मैंने अपनी भावनाओं पर शर्मिन्दा होना छोड़ दिया और यह रचनात्मकता के लिए जरूरी है। इनके लिए औरत का अर्थ लेखन है।

लेखन में दो अनुभूतियों प्रमुख है। पहला, मन और शरीर के बीच का अन्तर और दूसरी देश की स्वतंत्रता, जो हमें एक विद्रुप की तरह मिली थी। उन्होंने अपने को पुरुष से कमतर कभी नहीं समझा, किन्तु पहले शादी फिर शादी के बाद हुये बच्चे के दर्द को केवल स्वयं द्वारा भोगना इनके मन को विचलित करता है। इनका कहना है कि सैक्स एक स्त्री-पुरुष की सामान्य क्रिया है किन्तु बच्चा पैदा करना नारी के लिए पीडादायक है। वे अपने शरीर के प्रति अचानक सजग हो गई। भावनाओं, प्यार और यौनेच्छा में अन्तर करना सीख गई। उन्होंने अनुभव किया मन और शरीर अलग है इसे ही उन्होंने लेखन में विकसित किया। वस्तुत लेखिका का पात्र एक यथार्थ जीवन जीना चाहता है। सच्चाई की बात हो, प्यार छुपकर या चोखे से न किया जाये। प्यार जीवन है पति के लिए प्रेमी के लिए और परिवार के लिए भी लेखिका इन सबको प्राप्त करने के लिए कल्पनाओं का सहारा नहीं लेना चाहती। यह अनुभव करना चाहती है प्यार को वह इसके लिए प्रयोग करती है सफल होती है और सफलता प्राप्त होने पर सत्य की तलाश खत्म हो जाती है। स्त्री प्रेम सुन्दरता से उत्पन्न होता है, घृणा कायरों का हथियार है। सबसे खास बात लेखिका की यह है कि सभी पात्र सतुष्ट है किसी को किसी से शिकायत नहीं है। उन्मुक्त प्रेम का वर्णन अति शालीनता के साथ किया जाना लेखिका की उत्कृष्ट लेखनी को प्रदर्शित करता है।

मृदुला गर्ग के साहित्य में नारी विमर्श

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक नारी अनेक वर्जनाओं का शिकार होती रही है। स्त्री और पुरुष समाज निर्माण के दो आवश्यक अंग हैं, जो एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है, परन्तु समाज संचालन में एक को खुली छूट और दूसरे पर तमाम वर्जनाएँ क्यों? ये वर्जनाएँ स्त्री जीवन के सतत प्रवाह में यदि गतिरोध न भी पैदा करें तो भी उसे कुंठित अवश्य करती हैं। पुरुष और स्त्री सृष्टि के निर्माता और संचालक तत्त्व हैं

स्त्री विमर्श ने जिस प्रकार पितृसत्तात्मक मूल्यों, अवधारणाओं को चुनौती दी है, उसके विरुद्ध संवाद करते हुए उन मूल्यों को खारिज किया है, उससे स्त्री की समाज में बदलती हुई स्थिति, दृष्टि और भूमिका का प्रश्न नये परिप्रेक्ष्य में उभर कर सामने आया है। स्त्री-विमर्श में उठने वाले सवाल मात्र स्त्रियों से जुड़े हुए ही नहीं अपितु उनसे हमें पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मापदण्डों, पैतृक मूल्यों लिंग भेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के अन्तर्निहित कारणों को समझने की भी गहरी दृष्टि प्राप्त होती है।

स्त्री समाज को रचती है और समाज स्त्री को रचता है। जिस मानव को स्त्री अपने गर्भ में 9 महीने पालकर इस दुनिया में लाती है। जिसे वह उँगली पकड़कर चलना सिखाती है, वही उसके उसके चाल-चलन का हिसाब रखने लगता है यही स्त्री की नियति है। स्त्री प्रेम है स्त्री विश्वास है स्त्री शक्ति है, स्त्री सयम है। यही प्रेम अगर स्त्री खुद को करने लगती है तो वह गलत है। यही विश्वास अगर उसका अपने ऊपर हो तो वह गलत है. यही धैर्य अगर वह मुश्किलों से लड़ने के लिए इस्तेमाल करें और हर मुश्किल से लड़कर खड़ी हो जाए तो वह बहुत गलत है। समाज ने स्त्री को देश माना है और उसकी देह पर शिकंजे कस दिए। पर स्त्री का एक मन भी है, दिमाग भी है और जिन स्त्रियों के मन और दिमाग जिंदा रह पाए. ये शिकजे से मुक्त हो गई।

उच्च मध्यमवर्गीय नारी

उच्चवर्ग से होड़ लेता मध्यम वर्ग आज उच्च मध्यम वर्ग के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। आचार-विचार, रहन-सहन में वह उच्चवर्ग के समकक्ष खड़ा तो दिखता है, किन्तु उसकी जड़ें उतनी मजबूत नहीं कि उच्चवर्ग की भाँति झंझावातों को सहता हुआ खड़ा रह सके। समाज में उच्चमध्यमवर्गीय नारी की छवि आर्थिक तथा वैचारिक स्तर पर स्वतन्त्र दिखती है। मध्यम वर्ग जहाँ अपनी रुढ़ियों, परम्पराओं से अधिक चिपका रहता है। बंदिशों के बारे में अधिक सोचता है, वहीं उच्चमध्यम वर्ग इन सबको अनदेखा करता चलता है। मृदुला गर्ग का साहित्य इसी वर्ग की नारियों का प्रतिनिधित्व करता है। उसके हिस्से की धूप उपन्यास की नायिका मनीषा अध्यापिका और लेखिका है। फैक्ट्री मालिक की पत्नी है। नोकरी करना उसकी आवश्यकता नहीं बल्कि खाली समय को भरना मात्र है। मनीषा पारम्परिक सोच की अपेक्षा स्वतन्त्र विचारों वाली है। पति होते हुए प्रेमी से सम्बन्ध बनाना उसकी वैचारिक स्वतन्त्रता को व्यक्त करता है।

वज उपन्यास की नायिका सविता व्यापारिक घराने की है तथा जन की बहू है। पड़ी लिखी है, किन्तु आर्थिक पकट उसकी मजबूत है, जो उच्च मध्यमवर्गीय मानसिकता की देन है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास की नायिका मनु उद्योगपति की पत्नी है। भौतिक सुख सुविधाओं से युक्त जीवन है, लेकिन मन के अभाव को भरने में भी सक्षम है। पति तथा प्रेमी की औपचारिकताओं को पूरा करती रहती है। किन्तु किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाती, यह उच्चमध्यम वर्ग की स्थिति है कि यह चाहता तो सब कुछ है, किन्तु निर्णय लेने में असमर्थ दिखता है। 'अनित्य' उपन्यास में काजल, संगीता तथा प्रभा बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा स्वभाव व वैचारिक स्तर पर आक्रामक दिखती हैं, वहीं श्यामा, शुभा बुद्धिजीवी तो हैं किन्तु आक्रामक नहीं। उनके स्वभाव में एक अभिजात्यपन दिखता है। जो उच्चवर्गीय नारी की पारम्परिक छवि को प्रदर्शित करता है।

'में और में उपन्यास की नायिक माधवी सुविधा भोगी सम्पन्न पर की मालकिन है। अधि सम्पन्न होने के कारण पक लेखन से जुड़ी है, किन्तु चौवं बिल्कुल नहीं है। इसी उतावलेपन के कारण यह कौशल कुमार के चक्कर में पड़ जाती है। इससे माधवी को एक ओर तो लेखकीय सन्तुष्टि मिलती रहती है, किन्तु दूसरी और यह आर्थिक शोषण का शिकार होती रहती है। रचनात्मक प्रवृत्ति के कारण वह वर्ग विषमता के दर्द को तो महसूस करती है, किन्तु उच्चवर्गीय मानसिकता से भी गुका नहीं हो पाती। गरीब, लाचार कौशल से उसे हमदर्दी तो है, किन्तु बराबर में बैठाने से संकोच करती है। श्कठगुलाबश उपन्यास में प्रमुख नारी पात्र स्मिता असीमा और मारियान इस वर्ग में आती है। किन्तु स्मिता और मारियान की अपेक्षा, असीमा तेज-तर्रार और आक्रामक स्वभाव की है। बौद्धिक और आर्थिक स्तर पर तीनों समान है। कामकाजी हैं, आत्मनिर्भर हैं। अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हैं। इन पात्रों पर कोई सामाजिक दबाय काम नहीं करता, वे जो सोचती हैं, वही करती है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में आजादी के बाद आये परिवर्तन तथा अंग्रेजों के मातहत रहे वर्ग को दर्शाया गया है। उस वर्ग की महिलाओं का नेतृत्व करती गुल, मोगरा तथा कनकलता पात्र महिलाओं की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति तथा जीवन शैली को प्रतिबिम्बित करती है। जो विशेष तौर पर आजादी के दौर में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से हिस्सा लेने वाली महिलाएं हैं। ये भले ही क्रान्तिकारी संगठन से न जुड़ी हों, किन्तु मानसिक तथा वैचारिक स्तर पर उनकी समर्थक रहीं है।

उपन्यासों की भांति कई कहानियां भी इस वर्ग को चिन्हित करती हैं, जिसमें श्अक्सश श्बाहरी जन इस कहानी में मिडिल क्लास (मध्यमवर्गीय) स्त्री जब हाई प्रोफाइल (अभिजात वर्ग) समाज में आती है, तो वह अपने स्व तक को भुलाकर उनसे तालमेल बैठाने का प्रयास तो करती है, किन्तु यह अभिजात्य वर्ग पूर्णत: उन्हें स्वीकार नहीं कर पाता। उन्हें बार-बार यह एहसास दिलाया जाता है कि वे मिडिल क्लास है। इसी प्रकार 'रेशम', 'संगत', 'विलोम', 'शहर के नाम', 'अवकाश', 'कितनी कैदें', 'दुनिया का कायदा', 'हरी बिंदी', 'ग्लेशियर से', 'तुक', 'अगर य होता', 'यह मैं हूँ', 'लिली ऑफ दि थैली', 'जीरो अक्स', 'विचल', 'एक और विवाह', 'मेरा', 'झूलती कुर्सी', 'खरीददार', 'खाली' 'बांसफल', 'नकार', 'मिजाज', 'छत पर दस्तक', 'बाकी दावत', 'बीच का मौसम', 'मंजूर नामन्जूर', 'साठ साल की औरत', 'कलि में सत', 'वो दूसरी' आदि कहानियाँ उच्चमध्यम वर्ग की स्त्रियों की भावदशा, मनोदशा, बौद्धिकता, स्वच्छन्दता तथा संघर्षो को व्यक्त करती है। कहानियों के साथ नाटकों में भी उच्चमध्यम वर्ग का वर्णन है, जिसमें कितनी कैदे, दुलहन एक पहाडको, साम, दाम, दंड, भेद्र, 'एक और अजनबी' है।

निम्न वर्ग और नारी

मृदुला गर्ग की रचनाओं में निम्न वर्गीय स्त्री का चरित्र विभिन्न रूपों में देखने को मिलता है- श्वंशजश उपन्यास में विमला, फिलिप की बेटी है। फिलिप शराबी तथा जुआड़ी है। उसके चार बच्चे हैं। विमला सबसे बड़ी है और ट्यूशन पढ़ा कर, वह अपने भाई-बहनों को पालती है। फिलीप, विमला के प्रति अपना कर्तव्य पूरा नहीं करता पर पिता होने के नाते स्वामित्व का अधिकार बखूबी जताता है। विमला का पिता उस पर बहुत अत्याचार करता है, यहां तक कि वह अपने ही पैसों से अपनी जरूरत का सामान तक नहीं खरीद पाती। एक घटना ष्बस बाकी?", "मुझे जरूरत थे, खर्च हो गये पापा पचहत्तर रुपये! क्या जरूरत थी, हरामजादी ? पाउडर क्रीम लगाकर किसे मोहने जाती है?" "स्कूल में दोपहर को जो खाती हूँ उसी का पैसा चुकाया है ओ हो, नवाबजादी पच्चीस रुपये की पत्तले चाट गयी और यहाँ बच्चे फांके कर रहे हैं।" नहीं मुझे एक धोती खरीदनी पड़ी। पहली बिल्कुल फट गयी थी।" "हां मेमसाहिबा को गर्वनर की पार्टी में जाना था। निकाल पैसे वरना मारकर मुंह टेढा कर दूँगा।" नहीं हैं तो कहाँ से दूँ ?" ष्हरामजादी! बवजात! मुझे आंखे विखलाती है ? रुपये निकालेगी या फोड़ दूँ आंख !" यहाँ विमला अपने ही घर में शोषित है। ज्यादातर ऐसा तबका जहाँ घर का मुखिया या पुरुष समाज जुआखोरी, शराबखोरी के चलते अपने बीबी, बच्चों पर अत्याचार करता है। वह उनकी कमाई को शराब और जुएं में उड़ा देता है। उनके घरों की औरतें, बच्चे लोगों के घरों में काम करते हैं या छोटे-छोटे कारखानों में काम करते हैं। उनकी सारी कमाई शराब और जुएं की भेट चढ़ जाती है, और विरोध करने पर लात घूंसे और गालियां निकलती हैं। यही है निम्न वर्ग की दासता। किन्तु उससे भिन्न 'अनित्य' उपन्यास की स्वर्णा का चरित्र है। स्वर्णा, अविजित के घर काम करने वाली नौकरानी है। स्वभावगत वह तेज-तर्रार आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी स्त्री है। स्वर्णा के चरित्र पर लेखिका अपने बचपन की घटना बताती है कि- "स्वर्णा को मैने स्वयं जीवन में झेला है। वह हमारे घर पर काम करती थी (मेरे बचपन में) शरदचंद्र के उपन्यासों के सेवकों की तरह वफादार होते हुए भी उसकी प्रतिक्रियाएँ तीखी, तल्ख और दो टूक हुआ करती थीं। मौका आने पर जब उसे वफादारी और स्वतन्त्र जीवन के बीच चुनाव करना पड़ा तो उसने स्वतन्त्रता को ही चुना। स्वर्णा की बातों का असर कुछ ऐसा होता था कि मैं अक्सर खाने की मेज से बिना खाये उठ जाया करती थी। आठ-नौ बरस की उम्र में ही उसने एक अपराध बोध मेरे भीतर जगा दिया था और उसी की प्रेरणा का नतीजा है यह उपन्यास।"

स्वर्णा स्वयं कमाती है, इसलिए स्वाभिमान के साथ उसे जीवन जीना आता है। जब भी उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है, वह किसी की परवाह नहीं करती। 'अनित्य' उपन्यास में वह भले ही एक नौकरानी की भूमिका में हो, किन्तु उसके स्वभाव से सभी सशंकित रहते हैं। स्वर्णा की भाँति ही 'कठगुलाब' उपन्यास में नर्मदा का चरित्र है। नर्मदा का चरित्र गतिशील चरित्र हैं। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक उसका जीवन संघर्षरत रहा है। बचपन से ही चूड़ी के कारखाने में काम करके अपने अधपगले भाई का पालन पोषण करती है। माँ-बाप न होने के कारण बहन के घर में रहती है। जिस जीजा को वह अपना पिता समान समझती थी, वहीं बहन पर दबाव बना कर उससे जबरन शादी कर लेता है। उसकी कमाई से ही बहन का घर चलता। जिस भाई के लिए वह दिन रात खपती रही, वही भाई बड़ा होने पर शादी करके अलग हो जाता है। जिस-जिस पर उसने भरोसा किया उन्हीं के द्वारा यह ठुकराई गई। बचपन से ठोकरें खाई नर्मदा, उपन्यास के अन्त तक आते-आते सशक्त रूप में उभर कर सामने आती है। दबी, कुचली, शोषित नर्मदा एक शेरनी की तरह दहाड़ना भी सीख जाती है। इस सब के बावजूद नर्मदा का चरित्र स्मिता से ज्यादा मजबूत दिखता है। स्मिता तो संघर्ष करती है, किन्तु उसकी अन्तरआत्मा मर चुकी होती है। वहीं नर्मदा के अन्दर दया प्रेम का भाव विद्यमान रहता है। जो नमिता के पति की सेवा के रूप में दिखताश्पोंगल- पोलीश कहानी की सोनम्मा अशिक्षित तथा गांव में रहती जरूर है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कला की परख उसे नहीं है। विदेशी महिला के कहे शब्द कि गरीब लोग हैं, इन बेचारों को कला का क्या ज्ञान ?" तो उसे लगा कि किसी ने उसके गाल पर तमाचा मार दिया हो, जबकि यह सच है कि जितनी भी प्राचीन कलाएं / लोक कलाएं हैं, वह इन्हीं निम्न वर्ग के अनपढ़ ग्रामीणजनों द्वारा संरक्षित हैं। सोनम्मा गरीब जरूर है, पर कला का सौदा नहीं करती। श्दो एक फूलश कहानी की शांतम्मा कर्नाटक की मशहूर कला कसूती कढ़ाई करने में माहिर है, स्त्री के मन में पुरुष के प्रति जो आकर्षण दिखता है उसे 'मेरे देश की मिट्टी अहा' कहानी में लैला के माध्यम से देख सकते हैं। मौलवी साहब के जवान बेटे को देख सहसा उसका मन बोल उठा "क्या जवां मर्द था। पुलिसिया जीजावर जैसा रोबीला और सेहत मन्द, ऊपर से जवान और खूबसूरत लैला की सांस ऊपर की ऊपर अटक गयी। पेट में चाहत की वह मरोड़ उठी कि लगा गश खा जायेगी।" शारीरिक आकर्षण भी स्त्री की प्रेमानुभूति को आकृष्ट करता है। स्त्री की प्रेम भावना किसी उम्र की मोहताज नहीं रहती। 'साठ साल की

औरत' कहानी की नायिका सुरभि घोष युवावस्था में डॉ० चन्द्र से एक चर्च में मिलती है। चर्च की दायें-बायें घुमावदार सीढ़ियों को चढ़ते वक्त बार-बार मिलना और बिछड़ जाने की प्रक्रिया देख नायिका सोचती है कि- ष्यह बार-बार बिछड़ कर मिल पाना, कितनी बड़ी नियामत है। हर्ष और विषाद की मिली जुली तरंगें उसे झकझोर कर दिल के भीतर से एक शब्द ऊपर खींच रही थीं। वहीं उसके चारों तरफ बज रहा था- मिलन! आखिरी पड़ाव आने पर दोनों एक साथ थे। ऐसी स्थिति में नायिका कामना कर उठती है कि "डॉ० चन्द उसे वहीं, तभी, फौरन प्यार करें। छाती पर भींच कर मुंह ऊपर उठायें, चुमें बार-बार चुमें पागल कर देने वाली हसरत के साथ बाह इंतजार करती रही कि वे उसकी चाहत पर अमल करें। प्यार करे, पर ये करें। यानि माननीय स्त्री प्रेम में पहल नहीं करती ह चाहती है कि पुरुष करे। बीस साल बाद जब वह साठ साल की हो चुकी तब फिर से वह डॉ० चन्द्र को उसी चर्च में बुलाती है सीढ़ियाँ चढ़ती है और आखिरी पड़ाव पर वह डॉ० चन्द्र का इन्तजार नहीं करती बल्कि स्वयं ही उसे अपनी बाहों में घेर लेती है।

'अनित्य' उपन्यास में संगीता के द्वारा एकतरफा प्रेम को दर्शाया गया है। संगीता, अविजित के प्रति आकृष्ट रहती है। अविजित से उसके शारीरिक संबंध भी रहते हैं, लेकिन अविजित उसे स्वीकार नहीं करता। अविजित द्वारा तिरस्कृत होने पर भी उसके मन में अविजित के प्रति प्रेम समाप्त नहीं होता। अन्त तक वह अविजित का इन्तजार करती है। काजल बनर्जी भी अविजित से एकतरफा प्रेम करती है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि स्त्री की प्रेमानुभूति के अपने-अपने माप दण्ड हैं। कोई पुरुष के शरीर के प्रति आकृष्ट है, तो कोई उसके विचारों से प्रभावित किसी की पुरुष को लेकर अपनी धारणा है, तो कोई वासना रहित होकर प्रेम बांटना चाहती है।

नारी की प्रसव वेदना

संसार में स्त्री का एक रूप माँ के रूप में प्रतिष्ठित है। स्त्री के बेटी, बहन, पत्नी प्रेमिका आदि रूपों में माँ का रूप सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। किन्तु इस रूप, इस स्थान को पाने के लिए उसे किस असहनीय पीड़ा से होकर गुजरना पड़ता है उसे एक स्त्री ही समझ सकती है। मातृत्व को प्राप्त करने तथा संतान के जन्म के बाद स्त्री को जो सुख या आनन्द की अनुभूति होती है, वह एक असहनीय पीड़ा तथा वेदना से गुजर कर प्राप्त होती है। नारी की सहनशीलता उसे इस पीड़ा को सहने की शक्ति देती है। अक्सर सुना जाता है कि बच्चे के जन्म के समय स्त्री का दूसरा जन्म होता है अर्थात प्रसव पीड़ा मृत्यु के समान पीड़ादायक होती है। कभी-कभी शिशु को जन्म देते समय गर्भवती महिलाओं की मृत्यु तक हो जाती है। कई महिलाएँ अशिक्षा तथा प्रसव की सुविधा न होने पर काल का ग्रास बनती देखी गई हैं। गाँवों में यह प्रतिशत अधिक है। स्त्री के प्रसव काल में उसे होने वाली पीड़ा को सहने वाला कोई दूसरा नहीं होता, वह उसे स्वयं ही झेलनी पड़ती है। मृदुला जी ने इस अकेलेपन पर अपने विचार व्यक्त किये हैं कि - "जन्म और मृत्यु के समय तो हर कोई अकेला होता है पर स्त्री के पास एक तीसरा अकेलापन भी है। जन्म देने का अकेलापन। यह एक ऐसी क्रिया है जो नितान्त अकेले निपटानी पड़ती है। प्रेम, सेक्स और गर्भधारण के लिए अन्य व्यक्ति की आवश्यकता होती है, पर जन्म देते हुए कोई साथ नहीं होता। निपट अकेली औरत अपने भीतर से एक सम्पूर्ण मानव को जन्म देती है।

उपसंहार

मृदुला गर्ग का कथा-संसार उनके व्यक्तित्व को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करता है। किन्तु ऊँचाई प्राप्त होने के बाद भी धरातल पर ही खड़ा रहता है। उनका सरल स्वभाव लेखनी कला को नया आयाम देता है। जैसे कोई बीज से नन्हा पौधा पानी पड़ने से अभी-अभी स्फुटित हुआ है। नारी स्वतंत्रता उनके व्यक्तित्व और रचना दोनों में डालकती है। नारी उत्थान उनका विषय नहीं है किन्तु नारी उन्मुक्त विचार उनका लेखन है जो निरन्तर उनके व्यक्तित्व को निखार रहा है। मृदुला गर्ग आधुनिक युग की एक सफल लेखिका है। आपका व्यक्तित्व और कृतित्व वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। मृदुला जी ने गद्य साहित्य की सभी शैली में अपनी रचना को प्रस्तुत किया है। वर्तमान भौतिकवादी जीवन में मनुष्य के सम्बन्धों को लेकर लेखन करना स्त्री के लिए एक गंभीर चुनौती थी इस चुनौती की मृदुला जी ने बखूबी निभाया है। वे एक अच्छी साहित्यकार के साथ एक अच्छी मनीर विदुषी महिला भी है जो सच कहने से नहीं डरती है।

मृदुला जी ने अपने कथा संसार में जीवन मूल्यों के आदर्शों को प्रकट करने का कार्य बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। वे अपने स्त्रीमन को सर्वोच्च प्रस्तुति करने का प्रयास करती है। वे अपने कथा-साहित्य में जीवन के उन अनुछुए पहलुओं को प्रकट करने का प्रयास करती है जो अभी तक साहित्य की दृष्टि अलग-थलग पडे थे। स्त्री मन की पीड़ा को समझने का कार्य आसान नहीं है स्त्रियों के सामने विषम परिस्थितियाँ होती है और वह अपना सारा जीवन परिवार रिश्तेदार और त्याग में ही गुजार देती है। किन्तु इसके बाद भी उसे स्त्री होने का सम्मान नहीं मिल पाता है। मृदुला जी ने बड़े आत्मीय ढंग से स्त्रियों के सम्मान और अधिकार के पक्ष में अपने कथा-संसार को रचा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- 'वशंज'- मृदुला गर्ग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ संख्या 108-106
- 'मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी - डॉ० रमा नवले, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या 179
- 'चर्चित कहानियाँ'- मृदुला गर्ग, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ 52
- 'मृदुला गर्ग का कथा साहित्य - डॉ० तारा अग्रवाल, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2004, पृष्ठ संख्या 106
- वही, पृष्ठ संख्या 56
- 'शहर के नामश- मृदुला गर्ग, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 103 दिल्ली,
- "मेरे देश की मिट्टी, अहा- मृदुला गर्ग, नेशनल पेपर बैक्स, दिल्ली प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 11-12
- 'मृदुला गर्ग का कथा साहित्य - डॉ. तारा अग्रवाल, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 119

व्यापार में आचार-विचार

डॉ० रोमी अरोड़ा

सह - प्राध्यापक, एस.आर. सरकार महाविद्यालय, अमृतसर 143001

व्यापार के अदर अ.वि. होना कोई नया विषय नही है। बहुत समय से ही यह दार्शनिकों के विचारों का एक गर्म मुछा बना हुआ है। व्यापार के अंदर किस किस तरह का मानव व्यवहार होना चाहिए इस निष्कर्ष पर पहुचनें की कोशिश इस शोध पत्र के अंदर की गई है।

आचार वि. का मतलब है कि इस के अंदर व्यवहार के कुछ मापदंड होने चाहिए। या फिर ऐसे भी कह सकते हैं कि हमारा व्यवहार उस माप दंड के अनुसार हो और उससे हम अपने व्यापार को उचित उच्चाइयों तक ले जा सके। इस को और साधारण शब्दों में हम सिंद्धान्त का अनुसरण करना भी कह सकते है। ये सिद्धान्त ही इस निष्कर्ष तक पहुंचने है कि रोज मर्रा के व्यापार के समय किस तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

शोध पत्र का उद्देश्य: क्या व्यापार के अंदर सिंद्धातिक अ. वि. होने की जरूरत है। जैसे कि हमसब जाते है कि हम मुकाबले के युग में पनप रहे है। स्कूल और कालेज के बच्चों का आपरा में मुकाबला होता है। कई बार ये मुकाबला ही उन्हें ज्यादा मेहनत करने पर मजबूर कर देता है और उनकी स्तर पहले से बेहतर हो जाता है। इस को स्वस्थ प्रतिस्पर्धा हमेशा प्रतिस्पर्धा भी कहते है। परन्तु प्रतिस्पर्धा हमेंशा ही स्वस्थ नहीं होती और उस समय यह कई तरह के नकारात्मक व्यवहार को जन्म देती है। कई बार तो यहां तक देखा गया है कि व्यापार में प्रतिस्पर्धा आपस में झगड़ा और दुश्मनी तक पैदा कर देती है । ये सिर्फ तब होता है जब हम प्रतिस्पर्धा को सकारात्मक तरीके से नही लेते । अ. वि. का क्षेत्र हमें ठीक और गलत का ज्ञान ही नही देता अपितु नैतिक सिंद्धातों का ज्ञान करवा के उनको अनुसरण के योग्य बनाता है। अ. वि. सारे नैतिक सिद्धातों का संग्रह है इसका अध्ययन हमें निष्पक्ष होना भी सिखाता है। अचित और अनुचित का ज्ञान होने पर ही हम उचित को अनुसरण कर पाएंगे । जो भी ठीक है वो अ. वि. के अधीन हैं और जो भी गल्त है वो अ. वि. के विपरीत है।

व्यापार का अ. वि. क्या है।: हर व्यापार का मुख्य उद्देश्य किसी की तो लाभ कमाना ही है परन्तु इस लाभ को हमें किसी की सेहत या जिंदगी के साथ खिलवाड़ करके नहीं कमाना चाहिए। इस लिए व्यापार के अ. वि. के अर्न्तगत कि सब से पहले उत्तम गुण वाले पद्धाथों का उत्पादन किया जाए और उन्हें उचित मूल्य पर ही ग्राहकों तक पहुंचाया जाए। किसी तरह की मिलावट करना उनका उद्देश्य नही होना चाहिए । भ्रामक विज्ञापन का होना भी यह दर्शाता है कि व्यापार में सिर्फ लाभ को भी उचित स्थान दिया गया है और अ. वि. को व्यापार में लाया नही गया हो, असली रूप से पदार्थ भी उस गुणवता का ही होना चाहिए।

भार और मापन का उचित न होना भी दर्शाता है कि व्यापार के अंदर अ. वि. का अनुसरण नही किया जा रहा। हर पदार्थ की पैकिंग के समय उस पर उसका सही मापन और भार ही दर्शाना चाहिए।

जहां पर पदार्थों का उत्पादन हो रहा है वहां काम कर रहे कमियों को उचित वेतन देना, अच्छे कार्यकारी परिस्थितियां देंना और उनको शोषण न करना भी व्यापार के अ. वि. का अभिन्न अंग है। पतिस्पर्धा को बढ़ावा देना जरूरी है परन्तु ये हमेशा सकारात्मक ही हो हर बात का ख्याल भी रखा जाए। अनुचित प्रतिस्पर्धा किसी का भी फायदा करने में सक्षम सरकार को लाभ के उपर सही मात्रा में टैक्स का भुगतान करना भी अनिवार्य है। यहां यै कहना भी उचित है कि सरकार को ये टैक्स रूपी आमदन को सामान्य जनता के फायदे के लिए ही खर्च करने होंगे जैसे कि सड़को का निर्माण पुलो का निर्माण पीने का पानी शुद्ध करवाना इत्यादि। इस आमदन को वो अपने निजी कामों के लिए खर्च करे यां वोट जीतने के लिए ऐसे ही किसी पर लुटाए तो बहुत अनुचित होगा।

व्यापार के डा. वि. हमें बताते हैं कि क्या करना ठीक है और क्या करना ठीक नहीं है। समाज की भलाई के लिए हर किसी को आगे आना होगा। छोटे व्यापारियों के उत्थान के बारे भी सेचना होगा। उनकी रोजी रोटी भी उतनी ही जरूरी है। ये न हो कि उनको व्यापार या अपनी दुकान को बंद करने की नौबत आ जाए। हर व्यापार का अपनी सीमाएं निर्धारित करनी होंगी और हर व्यापारी को आ. वि. को अपनाना आवश्यक है। हालाकि सरकार की ओर से ये अनिवार्य नहीं है। हालांकि सरकार की ओर से ये अनिवार्य ही है परन्तु ये हमारी नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि आ. वि. को अपनाना चाहिए। यह एक आत्म अनुशासन के सामान है। कानून को नीव में लाने की आवश्यकता नही है।

हर व्यापारी को आ. वि. के बारे में कुछ शिक्षा देने की जरूरत है ताकि उनका मार्गदर्शन हो सके कि कैसे अ. वि. को अपनाते हुए वो सिर्फ दूसरों का ही भला नहीं करेंगे अपितु समय के साथ साथ उनका अपना लाभ भी बढ़ेगा।

इस तरह से उनको आ. वि. के फायदे ज्ञान होंगे और वो इन्हें खुशी-खुशी अपनाएंगे। इस वर्ष को करने में व्यापार संघ भी बहुत बड़ा योगदान दे सकता है।

हमारे समाज के उपर व्यापारिक अ. वि. का होना अभी भी एक नई संकल्पना है। हर व्यापार के अंदर उसका स्तर अलग-अलग है। यहां तक कि हर देश में भी इसका बदलाव हो जाता है। जैसे कि एक देश के लिए जो सही है दूसरे के लिए वो गलत भी हो सकता है। विकसित देशों में इसको उचित तरीके से अपनाया जा चुका है परन्तु बाकियों में अभी ये अपनी जगह नही बना पाया।

संदर्भ

ओ सी फैरल (1990) बिजनैस ऐथिक्स
कुरत स्टैननैरी (2018) बिजनैस ऐथिक्स
मैनुअल डी (1982) बिजनैस ऐथिक्स
ब्रनाउ मीस (2019) द राइज ऑफ बिजनैस
एनउरिउ (2004) बिजनैस ऐथिक्स

महाविद्यालय में पारस्परिक तनाव के निराकरण में प्राचार्यो की भूमिका

रत्नेश कुमार जैन

प्राचार्य, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

एक प्राचार्य को शिक्षा संस्था में अनेक भूमिकाओं में विविध प्रकार के कार्य को उत्तरदायित्व होता है। "प्राचार्य को महाविद्यालय के संचालन में विविध प्रकार के व्यक्तियों, शैक्षिक समितियों, अध्यापकों, छात्रों अभिभावको प्रबन्धन समिति तथा उच्च अधिकारियों से सम्बन्ध रखने होते हैं। इसलिए प्राचार्य के उत्तरदायित्वों और भूमिकाओं के निवर्हन में समन्वय भी रखना होता है। प्राचार्य को भूमिका निवर्हन में एक विशेष प्रकार के सम्बन्धों को बनाना होता है, जो उन परिस्थितियों में उत्तरदायित्वों तथा अधिकारों को निर्धारित करते हैं। भूमिकाओं के निवर्हन मे समन्वय की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। भूमिका निवर्हन में सम्बन्धों में समन्वय न होने पर पारस्परिक तनाव तथा समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार विचारों, दृष्टिकोणों और भावनाओं में अन्तर होने पर समन्वय के स्थान पर संघर्ष की सम्भावना बढ़ती है और प्राचार्य को अपनी भूमिका निवर्हन में कठिनाई उत्पन्न होती है जिससे प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव (conflict) उत्पन्न हो जाता है।"

महाविद्यालयी शिक्षा में संघर्ष सम्बन्धों को प्रभावित करता है, जिससे क्रियाओं में समन्वय नहीं हो पाता और महाविद्यालय में समस्याएँ उत्पन्न होती है। यदि प्राचार्य में अहम् भावना अधिक है तो भी सम्बन्धों में संघर्ष की सम्भावना होती है। सम्बन्धों में संघर्ष के परिणाम स्वरूप विविध प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती है, जो महाविद्यालय में पारस्परिक तनाव को उत्पन्न करती हैं। इसलिए प्रबन्धन में समस्याएँ एवं पारस्परिक तनाव होते हैं। यह प्रत्यय समाजशास्त्र का हैं, जिनका उपयोग आज प्रबन्धन एवं प्रशासन में भी किया जाने लगा है। कोई भी प्रशासक अपने क्षेत्र में सभी को प्रसन्न नहीं कर सकता, भूमिका और उत्तरदायित्व के निवर्हन में संघर्ष उत्पन्न होना स्वभाविक है, क्योंकि प्राचार्य को कुछ नियमों के अन्तर्गत ही निर्णय लेने होते हैं। निर्णय जिसके पक्ष में होता है वह प्रसन्न हो जाता है और जिसके विरोध में होता है वह असन्तुष्ट या अप्रसन्न होने सम्बन्धों के कटुता आ जाती है। अधिकांश निर्णय ऐसे होते हैं, जो छात्रों के सम्बन्ध में लेने पड़ते हैं छात्रों की अनुशासनहीनता के लिए कठोर निर्णय भी लेने पड़ते हैं, जिससे छात्र प्रधानाचार्य के विरोध में अक्सर आन्दोलन आरम्भ करते हैं, जिससे महाविद्यालय के प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव उत्पन्न होती है।

शिक्षा प्रबन्धन के विभिन्न स्तरों- नियोजन संगठन, प्रशासन पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण में जो निर्णय महाविद्यालय की प्रगति और विकास के लिए किए जाते हैं वह कभी-कभी शिक्षकों और छात्रों दोनों के लिए अनुकूल नहीं होते हैं। ऐसे स्थिति में महाविद्यालय प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव की स्थिति अधिक गम्भीर हो जाती है। राजकीय प्रबन्धन तन्त्र भी कभी-कभी ऐसे निर्णय करते हैं जो प्राचार्य, शिक्षक, छात्र एवं प्रबन्धनों के हित में नहीं होते। ऐसे स्थिति में विद्यालयों के बन्द होने की सम्भावना होने लगती है। शिक्षा के अन्तर्गत जबकि किसी नये आयाम, नये पाठ्यक्रमों तथा नये आव्यूहों को सम्मिलित करने का प्रश्न आता है, तब अधिकतर शिक्षक इसका विरोध करते हैं। क्योंकि वह नये आयामों को पसन्द नहीं करते। जिस परम्परागत ढंग से वह कार्य करते आ रहे हैं, उसी को करने के अभ्यस्त हो जाते हैं।

प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव का अर्थ (Meaning of Interpersonal Conflicts)

पारस्परिक तनाव का अर्थ होता है विकेन्द्रीकरण या सर्जनात्मकता तथा अतुलनीय विचारधारा का समूहों में अन्तः प्रक्रिया होना। मोरटन डयूरच का कथन है कि पारस्परिक तनाव एक अतुलनीय प्रयास है अथवा ऐसा प्रतीत होता है कि एक अनोखे लक्ष्य की तरफ अग्रसर हो रहे हैं। इससे उपलब्धि होगी वह दूसरों के आधार पर की जायेगी अर्थात् इसके परिणाम दूसरों को भुगतने पड़ेंगे।

पारस्परिक तनाव की परिस्थिति में दोनों की ही सम्भावना होती है और इसके यही प्रयास किया जाते हैं कि इसके पराजय न होकर हमारी विजय होगी। इस प्रकार से समूहों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न होता है, वैचारिक भिन्नता होती है और वह द्वेष भावना का कारण बनती है, जिससे प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव उत्पन्न होता है।"

प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव के कारक (Factors of Interpersonal Conflicts)

प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव के अनेक कारण होते हैं, क्योंकि पारस्परिक तनाव के कारण तथा परिस्थितियाँ सदैव भिन्न प्रकार की होती है। इसलिए कारणों के सम्बन्ध में सामान्यीकरण करना कठिन होता है। फिर भी कुछ सामान्य कारणों का उल्लेख यहाँ किया गया है

(1) आकस्मिक परिस्थिति

(2) विभिन्न दलों की भावात्मक स्थिति

(3) व्यक्तियों की मानसिक स्थिति

इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित पंक्तियों में दिया गया है

(1) आकस्मिक परिस्थिति - महाविद्यालयी शिक्षा के अन्तर्गत कई दल क्रियाशील रहते हैं। जैसे- छात्र संघ, शिक्षक संघ तथा समुदाय की राजनैतिक दल इन दलों के नेताओं का लक्ष्य रचनात्मक कम होता है, अपर्तु प्रबन्धन की कमजोरियों की खोज में रहते हैं और जब कभी उन्हें कोई प्रबन्धन की कमजोरी का पता चलता है, तो वह उसके विरोध में आन्दोलन आरम्भ कर देते हैं। जब कोई निर्णय नियमों के विरूद्ध महाविद्यालय के हित में प्रबन्धन लेता है, तब भी उसका विरोध किया जाता है। जिससे पारस्परिक मन-मुटाव उत्पन्न हो जाता है।

(2) विभिन्न दलों की भावात्मक स्थिति - महाविद्यालय के अन्तर्गत जो संगठन कियाशील होते हैं उनके सभी के अपने-अपने लक्ष्य एवं आवश्यकताएँ होती हैं। उनमें ऐसी भावना कम होती है कि अन्य संगठनों के साथ भी समन्वय रखें, अपितु उनकी ऐसे भावना हो जाती है कि वह विरोध रचनात्मक कार्यों को न करके विरोध के लिए ही किया जाता है। साध ारणत: इस भावना से प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव अधिक उत्पन्न होते हैं।

(3) व्यक्तियों की मानसिक स्थिति - व्यक्तियो की मानसिक स्थिति ऐसी होती है कि परिस्थिति जैसी है वह वैसा समझने का प्रयास नहीं करते अपितु वह जैसा सोचते है वैसा ही उसका प्रत्यक्षीकरण करते हैं। यह तथ्य मनोवैज्ञानिक है तथा स्वाभविक भी है क्योंकि व्यक्ति का चिन्तन उसकी मानसिक अवस्था से नियन्त्रित होता है, उससे परे वह नहीं सोच सकता है। इसलिए वह अच्छे कार्यों तथा रचनात्मक कार्यों को भी पसन्द नहीं करता है और व्यक्तियों के सम्बन्धों में समन्वय का अभाव रहता है। जिससे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है, और महाविद्यालय के प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव का मुख्य कारण होता है।

प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव के स्रोत (Sources of Interpersonal Conflicts)

सामान्यत: प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव के अनेक स्रोत होते हैं, क्योंकि महाविद्यालय की शिक्षा में प्राचार्य की विभिन्न भूमिकाएँ होती है और विभिन्न प्रकार के लोगों से अलग-अलग तरह से सम्बन्ध रखने होते हैं। सभी के कार्यों में समन्वय रखना प्राचार्य का ही उत्तरदायित्व होता है।

पारस्परिक तनाव के स्रोतों को लॉयस पोन्डी ने तीन वर्गों में विभाजित किया है।

(1) प्रबन्धन में व्यवस्था के स्रोतों का अभाव इससे प्रतियोगी भावनाओं का विकास होता है। महाविद्यालय के उपलब्ध स्रोतों को पाने के सभी प्रयास करते हैं, जबकि सभी को उपलब्ध होना सम्भव नहीं होता है।

(2) महाविद्यालय का जब एक घटक दूसरे घटक के कार्यों पर अधिकार करना चाहता है तब परस्पर संघर्ष की भावना उत्पन्न होती है। जैसे- प्राचार्य शिक्षकों के कार्यों में हस्तक्षेप करना चाहता है अथवा छात्र शिक्षकों के कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं। इस तरह के परस्पर हस्तक्षेप से भी संघर्ष उत्पन्न होते हैं।

(3) महाविद्यालय के लक्ष्यों का विकेन्द्रीकरण और रचनात्मक कार्यों को महत्व देना- इससे महाविद्यालय के सभी घटक सहमत

नहीं होते हैं और महाविद्यालय में कोई भी नवीन परिवर्तन का विरोध करते हैं। परस्पर महाविद्यालय के घटक एक-दूसरे पर अधिकार जमाना चाहते हैं।

भारत के विश्वविद्यालयों में पारस्परिक तनाव की परिस्थितियाँ अधिक पाई जाती है, क्योंकि छात्र प्रौढ होते हैं और अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इसलिए वह कर्तव्यों की अपेक्षा अधिकारों के लिए आन्दोलन करते हैं, छात्र संघ बनाते हैं। छात्र संघ के अधिकारी सदैव यह प्रयास करते हैं कि हमने छात्रों के कल्याण के लिए बहुत कुछ करना चाहिए। इस भावना से महाविद्यालय में प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। यह छात्र संघ महाविद्यालय की सुविधाओं, छात्रवृत्तियों तथा वित्तीय सहायता के सम्बन्ध में कुलपति के समक्ष समस्या उत्पन्न करते रहते हैं।

प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव के प्रकार (Types of Interpersonal Conflicts)

प्रबन्ध के पारस्परिक तनाव के प्रकारों को सीमित करना भी कठिन है क्योंकि पारस्परिक तनाव के कारण तथा परिस्थितियाँ अपने ही तरफ की होती हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में सामान्यीकरण करना सरल नहीं होता है। कुछ विद्वानों ने प्रबन्धन के पारस्परिक तनाव को चार प्रकार का बताया है। परन्तु इन्हें प्रकार की बजाय पारस्परिक तनाव की अवस्थाएँ कहना अधिक उचित है। पारस्परिक तनाव की अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं, जिन्हें पारस्परिक तनाव के प्रकार भी कहा जा सकता है

(1) आन्तरिक पारस्परिक तनाव
(2) पारस्परिक तनाव का प्रत्यक्षीकरण
(3) पारस्परिक तनाव की अनुभूति
(4) पारस्परिक तनाव की अभिव्यक्ति
(5) पारस्परिक तनाव
(6) व्यवस्था के अन्तर्गत पारस्परिक तनाव
(7) महाविद्यालय समुदाय का पारस्परिक तनाव
(8) व्यक्तिगत-संस्थागत पारस्परिक तनाव

इन अवस्थाओं के अतिरिक्त पारस्परिक तनाव के महत्वपूर्ण प्रकार सांस्कृतिक पारस्परिक तनाव की मानी जाती है। जिसका प्रबन्धन में विशेष महत्व होता है। इसका विवरण निम्नलिखित पंक्तियों में किया गया है।

सांस्कृतिक पारस्परिक तनाव (Cultural Interpersonal Conflicts)

मार्च एवं साईमन ने सांस्कृतिक पारस्परिक तनाव की परिभाषा दी है। उनका कथन है कि जब निर्णय की प्रक्रिया का स्तर गिर जाता है तब परिस्थितियों में गलत ढंग से विद्यालयों में कार्य करने की प्रवृत्ति होने लगती है। इसके कारण महाविद्यालय में पारस्परिक तनाव उत्पन्न होते हैं। निर्णय की प्रक्रिया के स्तर की गिरावट सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर होती है। यदि हमारी संस्कृति और मूल्य का स्तर समाज के अनुरूप होता है तब मूल्यों से पलायन की प्रवृति नहीं होती है। जब हम अपने कार्यों और उत्तरदायित्वों से पलायन करने लगते हैं तब हमारी कार्य शैली और भावनाओं में भी अन्तर आता है और प्रबन्धन में क्रियाओं के अन्तर्गत समन्वय होना कठिन हो जाता है। कभी-कभी शिक्षकों और छात्रों में उनकी रचनात्मक प्रवृति नहीं रहती बल्कि प्रबन्धन को हानि पहुँचाने की प्रवृति बनती है। प्रबन्धन के अधिकारियों के प्रति उनमें द्वेष भावना आ जाती है। जिसकी कभी-कभी विश्वमहाविद्यालय तथा शिक्षा संस्थाओं में उसके दुष्परिणाम देखे गये हैं। भारत के चार क्षेत्रीय महाविद्यालयों, भूनेश्वर, मैसूर, भोपाल एवं अजमेर की घटनाएँ इसी पारस्परिक तनाव के उदाहरण हैं।

वास्तव में इसे प्रबन्धन का पारस्परिक तनाव कहना उचित प्रतीत नहीं होता अपितु ये नयी संस्कृति का पारस्परिक तनाव है, क्योंकि छात्रों का विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा स्कूलों के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं रहा है, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली के बड़ी जटिल समस्याएँ भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में उत्पन्न हो रही है और यह सांस्कृतिक पारस्परिक तनाव बड़ी तीव्र गति से बढ़ रहा है। आधुनिक समय में इसका प्रभाव अधिक दिखाई दे रहा है। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है

कि शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को और शिक्षकों को जितनी अधिक स्वतन्त्रता दी गई है, उसका वह सकारात्मक उपयोग न करके उसका सही उपयोग नहीं किया जा रहा है।

महाविद्यालय के प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव में प्राचार्य की भूमिका (Role of Headmaster in Interpersonal Conflict)

प्राचार्य की महत्वपूर्ण भूमिका प्रबन्धन में पारस्परिक संघर्ष का निराकरण तथा समाधान करना है। महाविद्यालय के भावात्मक एवं सामाजिक वातावरण को बनाये रखने के लिए पारस्परिक संघर्ष अथवा तनाव नहीं होना चाहिए। महाविद्यालय में पारस्परिक संघर्ष का उत्तरदायी प्राचार्य ही होता है। महाविद्यालय में पारस्परिक तनाव की स्थिति से महाविद्यालय का सम्पूर्ण प्रबन्धन प्रभावित होता है। इसलिए प्राचार्य को इस भूमिका में निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखना चाहिए।

(1) महाविद्यालय के शिक्षकों, छात्रों तथा अन्य कर्मचारियों की मानसिक स्थिति को समझना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों की प्रशंसा चाहता है। इसलिए प्राचार्य की प्रशंसा करनी चाहिए और उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि बिना अभिप्रेरणा के अधिगम नहीं होता है और दण्ड से विकास एवं सुधार नहीं किया जा सकता है। कक्षा में शिक्षकों छात्रों के वांछित व्यवहारों को पर ध्यान न दिया जाए। इसी प्रविधि का उपयोग प्राचार्य अपनी प्रशासनिक भूमिका में शिक्षकों एवं कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना चाहिए। वांछित कार्यों की पुनर्बलन देना चाहिए। आवक्षित कार्यों में सुधार हेतु सुझाव देना चाहिए या उन्हें अनदेखा करना चाहिए।

(2) यदि पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव है वह भी पुनर्बलन एवं अभिप्रेरणा से कम किया जा सकता है। शिक्षकों के कार्यों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण ही अपेक्षित होता है।

(3) प्राचार्य अपने अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों का वरिष्ठ शिक्षकों को स्वतन्त्र भार सौंप देता है। ऐसी स्थिति में अनेक कार्यों की प्रशंसा एवं सराहना करना चाहिए। जिससे उन्हें अपने कार्यों को और उत्साह से करने का साहस बढ़ता है। ऐसे सभी शिक्षक अपने कार्यों में गुणवत्ता लाने का प्रयास करते हैं। शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों को अभिप्रेरणा से ऊर्जा मिलती है और उत्साह बढ़ता है। कार्य करने की गति वृद्धि होती है।

(4) जहाँ तक सम्भव हो प्राचार्य को अपने अधिकारों का दण्ड के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए। जो शिक्षक अपना कार्य नहीं करते उन्हें कभी-कभी सुझाव देना चाहिए और अवांछित कार्यों पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

(5) यदि महाविद्यालय के प्रबन्धन में पारस्परिक तनाव की परिस्थिति उत्पन्न हो गई हो, ऐसी स्थिति में उपरोक्त प्रतिमानों का उपयोग करना चाहिए। प्रणाली विश्लेषण आयाम का उपयोग वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक होता है। क्योंकि इस आयाम से तनाव के कारणों का निदान किया जाता है उनके उपचार से महाविद्यालय तनाव का निराकरण किया जा सकता है।

(6) प्राचार्य को समय-सारणी में शिक्षकों को समान कार्यभार देने का प्रयास करना चाहिए। शिक्षण कांलाश लगभग सभी के समान होने चाहिए। प्राचार्य को भी शिक्षण में भाग लेना चाहिए।

(7) महाविद्यालय के प्रशासन एवं प्रबन्धन में शिक्षकों को स्वतन्त्र कार्यभारों का वितरण करने में वरिष्ठता सूची का अनुसरण करना चाहिए। यदि वरिष्ठ शिक्षक स्वतन्त्र कार्यभार के संचालन में असमर्थता व्यक्ति करें तभी अगले वरिष्ठ शिक्षक को कार्य भार दिया जाए। प्राचार्य को स्वतन्त्र कार्यभार सौंपने पर उसमें अधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(8) किन्हीं दो व्यक्तियों अथवा दो समूहों में तनाव की स्थिति में प्राचार्य को हस्तक्षेप करना चाहिए और दोनों समूहों को सुनकर ही निष्पक्ष रूप में कुछ निर्णय अथवा सुझाव देना चाहिए। उनमें समझौता कराने का ही प्रयास करना चाहिए।

(9) प्राचार्य को सामूहिक अभिप्रेरणा भी देनी चाहिए परन्तु व्यक्तिगत रूप में अभिप्रेरणा अधिक प्रभावशाली होती है।

(10) प्राचार्य को उत्तम कार्यों के लिए पारितोषक देने की व्यवस्था करनी चाहिए। महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर उत्तम शिक्षक, उत्तम कर्मचारी तथा उत्तम छात्र को प्रमाणपत्र तथा पारितोषक देने का आयोजन करना चाहिए।

(11) जिन शिक्षकों के परीक्षाफल उत्तम हो उन्हें भी प्रोत्साहित किया जाए। प्राचार्य द्वारा प्रमाणपत्र दिया जाए तथा प्रतीक चिन्ह भी दिया जा सकता है।

(12) प्राचार्य की भूमिकाओं में वस्तुनिष्ठता एवं निष्पक्षता होनी चाहिए। प्राचार्य को विभाजन एवं शासन की नीति को नहीं अपनाना चाहिए। इस नीति से पारस्परिक तनाव में वृद्धि होती है।

(13) प्राचार्य को अभिप्रेरणा के अर्थ, प्रकृति एवं प्रविधियों का बोध होना चाहिए। अपने प्रशासन में अभिप्रेरणा तथा पुनर्बलन के महत्व एवं उपयोगिता को समझना चाहिए। अभिप्रेरणा की प्रविधियों का समुचित उपयोग करना चाहिए।

(14) प्राचार्य को महाविद्यालय की परिस्थिति में पारस्परिक तनाव के अर्थ, कारणों तथा निवारण हेतु प्रविधियों का बोध होना चाहिए और उनका समुचित उपयोग करने का प्रयास करना चाहिए।

(15) प्राचार्य को महाविद्यालय में परिवीक्षण प्रणाली को विकसित करना चाहिए। जिससे महाविद्यालय के कार्य संचालन की पारदर्शिता निरन्तर रखी जा सकती है जिससे तनाव की स्थति उत्पन्न होने की सम्भावना कम होती है।

(16) महाविद्यालय के तनाव सम्बन्धी गम्भीर परिस्थिति में एक समिति का गठन भी किया जा सकता है। जिसमें सभी दलों के व्यक्तियों की सदस्यता को सम्मिलित किया जाए जिससे उसके निर्णय सभी को मान्य हो सके।

जौनपुर जिला में कृषि आधुनिकीकरण के पर्यावरण पर प्रभाव का भौगोलिक अध्ययन

विकास सिंह

Research Scholar, Depatment of Geography M.B.G. P.G. College, Kumaun University, Nainital

आलोक कुमार

Research Scholar, Depatment of Geography D.S.B. Campus, Kumaun University, Nainital

शोध सार :

भारत कृषि प्रधान देश है । जहां उत्तर प्रदेश राज्य के जौनपुर जिले के 90 से 91% आबादी आजीविका के लिए पूर्णत: कृषि या कृषि आधारित उद्योगों पर निर्भर ह, परंतु यहां परंपरागत कृषि तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण पिछड़ी हुई थी । भारत में हरित क्रांति अध्ययन क्षेत्र को कृषि आधारित आधुनिक तकनीकी ज्ञान को प्रभावित किया है । यद्यपि आधुनिक कृषि प्रणाली के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई है लेकिन इसके कारण होने वाला नुकसान इस उत्पादन द्वारा प्राप्त लाभ से बहुत अधिक है क्योंकि यह आधुनिक कृषि पर्यावरण पारिस्थितिकी के लिए घातक साबित हो रही है । जिसके कारण भूमि प्रदूषण ए जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा मानव स्वास्थ्य से संबंधित जैसी समस्याएं पैदा होती हैं । जिसके कारण कृषि पारिस्थितिकी तंत्र भी अव्यवस्थित हो रही है । प्रस्तुत शोध कार्य में विभिन्न पारिस्थितिकी अध्ययन एवं पर्यावरण पर प्रभाव जौनपुर जिला रवि, खरीफ, जायद में उत्पादित फसलों के निरंतर संतुलित विकास के लिए किया गया है ।

आधुनिक कृषि, कृषि की परिस्थिकिकी तंत्र, पर्यावरण प्रदूषण, रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, कीटनाशकों का प्रभाव, कृषि में सिंचाई का उपयोग और आधुनिक कृषि ।

प्रस्तावना

जौनपुर भारतीय राज्य उत्तर प्रदेश का जिला है । यह वाराणसी मंडल के अंतर्गत आता है । इसका अक्षांशीय विस्तार 24.24° डिगो उत्तरी से 26.12° उत्तरी और देशांतरीय विस्तार 82.7° डिग्री पूरब से 83.5° पूरब के बीच फैली हुई है । गोमती, सई पैतृक नदियां हैं । इनके अलावा वरुणा पीली मयूर आदि छोटी नदियां है । मिट्टी मुख्य रूप से रेतीली, चिकनी बलुई है । जौनपुर जिले में खनिजों की कमी है । जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 4038 वर्ग किलोमीटर है । भारत जैसे विकासशील और प्रगतिशील देश में कृषि के हर क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से शुरू हुई । ज्यादतियों की समस्या के लिए नवीनतम कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने से किस क्षेत्र में अपेक्षित सफलता मिली जिसके परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई । इससे खाद्य आपूर्ति समस्या का निदान हुआ । कृषि मशीनीकरण रासायनिक उर्वरकों बीजों की उन्नत किस्मों कीटनाशकों भंडारण के नए तरीकों परिवहन और संरक्षण ने सभी संभव बना दिए द्य इस क्षेत्र में हरित क्रांति और कृषि आधुनिकीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ए कुछ अर्थशास्त्रियों और कृषि वैज्ञानिकों ने हरित क्रांति को कृषि आधुनिकीकरण कहा परिणाम स्वरूप हरित क्रांति

के कारण कृषि उत्पादों का मात्रात्मक विकास हुआ लेकिन इसके परिणाम स्वरूप भूमि पर रसायनों का दुष्प्रभाव ने कृषि क्षेत्र में गुणात्मक धारण को जन्म दिया जिसके अध्ययन करना भी बहुत महत्वपूर्ण हैं । अत्यधिक सिंचाई के कारण मिट्टी खारा और क्षारीय हो गई, भूजल स्तर की गहराई बढ़ी, ट्रैक्टर, बुलडोजर, जेसीबी और अन्य अयांत्रिक संसाधनों ने पर्यावरण असंतुलन का कारण बना है और कई पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हुई हैं जिनका मानव और कृषि दोनों पर प्रभाव पड़ा है ।

शोध समस्या का चयन

जनसंख्या के तीव्र वृद्धि मानसून की अस्थिरता खाद्यान्न की गिरती हुई उत्पादकता, भूमि भरण कृषकों की निरक्षरता, सीमित जल संसाधन, बाढ़ तथा सूखे की स्थिति आदि महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं । जनपद जौनपुर की कुल क्षेत्रफल 4038 वर्ग किलोमीटर है तथा जनसंख्या घनत्व 1113 प्रति व्यक्ति वर्ग किलोमीटर है बढ़ती जनसंख्या दबाव की वजह से कृषि क्षेत्र में चुनौतियां उत्पन्न हो रही हैं ।

अनुसंधान कार्य का उद्देश्य

अध्ययन क्षेत्र जौनपुर जिला का मुख्य उद्देश्य कृषि विकास के स्तर और पर्यावरणीय प्रभाव चुनौतियों पर कृषि आधुनिकीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव को प्रस्तुत करना है । अध्ययन के क्षेत्र में यह शोध इस बात पर किया गया है कि कृषि विकास में आधुनिक तकनीक का कितना उपयोग किया गया है और इसके परिणाम स्वरूप संसाधनों को इकट्ठा करने का प्रयास किया जाना चाहिए। आधुनिकीकरण के माध्यम से पर्यावरण गिरावट का जायजा लेना चुनौतियों का समाधान करके समाधान प्रस्तुत करना प्रस्तुत शोध कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य हैं 1 अध्ययन क्षेत्र में पर्यावरण प्रबंधन का अध्ययन करना । 2. अध्ययन क्षेत्र में कृषि आधुनिकीकरण किस से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन करना ।

अनुसंधान कार्य की अवधारणा

किसी भी तरह का शोध कार्य करने से पहले हम कुछ परिकल्पनाए करते हैं । यह परिकल्पना सकारात्मक या नकारात्मक भी हो सकती है । प्रस्तुत शोध कार्य में कुछ परिकल्पना ही की गई हैं जो इस प्रकार हैं

1. अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या दबाव के परिणाम स्वरूप कृषि आधुनिकीकरण में लगातार परिवर्तन हो रहा है
2. अध्ययन क्षेत्र में बदलते कृषि पैटर्न और आधुनिकीकरण के कारण पर्यावरणीय समस्याएं बढ़ रही हैं ।
3. अध्ययन क्षेत्र में कृषि में पोषक तत्वों की निरंतर कमी हो रही है ।

अध्ययन विधि और डेटा का संकलन

किसी भी शोध कार्य करने के लिए शोधकर्ता को तथ्यों के संकलन ए संकलन के तरीकों और डेटा और शोध रिपोर्ट के वर्गीकरण विश्लेषण के लिए एक निश्चित प्रारूप का अध्ययन करना होता है । प्रस्तुत शोध कार्य दो तरह से अनुभवजन और मानचित्रण द्वारा किया गया है । अध्ययन क्षेत्र के सूक्ष्म अध्ययन के लिए यदृक्षिक विधि द्वारा प्राथमिक डेटा एकत्र किया गया है । जो जौनपुर जिला के कुछ गांव के लिए किए गए थे । इसमें लोगों के जीवन स्तर का आकलन किया गया है और आधुनिकीकरण के प्रभाव को लोगों के जीवन स्तर पर समझाया गया है यह सभी शोध कार्य प्रश्नावली और अनुभवजन्य विधि द्वारा किया गया है । फिल्ड सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक डाटा सरकारी डेटा की तुलना में अधिक उपयोगी और विश्वसनीय है । जौनपुर जिला के सभी प्रकार के द्वितीयक डाटा संबंधित विभागों से लिए गए हैं अन्य शोध संबंधित जानकारी भारत सरकार व उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित सूचनाओं पत्र . पत्रिकाओं एवं इंटरनेट से प्राप्त की गई है ।

जौनपुर जिला में कृषि पर पर्यावरण का अध्ययन

पूंजीवादी औद्योगिकरण के साथ शहरी विकास सड़क निर्माण और अन्य कार्यों के लिए मूल्यवान कृषि भूमि का उपयोग जौनपुर में एक कठिन समस्या बन गई है विकसित देशों में हर साल 3000 वर्ग किलोमीटर किस भूमि का उपयोग शहरी विकास के लिए किया जाता है मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों के तहत गैर कृषि उद्देश्यों के लिए 2 बिलियन हेक्टेयर भूमि का उपयोग किया जा

रहा है इस तरह हमारे ग्रह के भौगोलिक मानचित्र से उपजाऊ भूमि का एक पूरा महाद्वीप गायब हो गया है हाल के वर्षों में यह प्रक्रिया भूमि के उपयोग के कारण अधिक तीव्र गति से बढ़ी है ।

1. कृषि पारिस्थितिकी पर पर्यावरण का प्रभाव जौनपुर जिला में जनसंख्या की भारी वृद्धि के साथ . साथ खाद्यान्नों की समस्या भी पैदा होने लगी है ए क्योंकि इसमें अधिक उत्पादन के लिए नए प्रयोग किए जा रहे हैं । जो हमारे पर्यावरण पर पारिस्थितिकी और पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकी असंतुलन को भी प्रभावित कर रहे हैं । कारण की समस्या यह है कि कृषि एक मौलिक परंपरा है जिसके तहत किसान अपने खेत के जैविक और अजैविक घटकों को संतुलित करके कृषि कार्य करता है । यह अपने आप में एक पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र है । खेत में पौधे ए जीवाणु ए कवक ए जीव ; जैसे कछुए द्ध जैव. कारक और खनिज लवण उर्वरक ; प्राकृतिक और कृत्रिम द्ध और अन्य रसायन अकार्बनिक घटक है । यह दोनों घटक जैविक और अजैविक प्रतिक्रिया करते हैं और जब इसकी मात्रा अधिक हो जाती है तो कृषि भूमि प्रदूषित होने लगती है वर्तमान समय में यह कृषि में नए प्रयोगों के साथ और बढ़ गया है ।
2. कृषि का स्वरूप बदलना पहले कृषि पारंपरिक साधनों से की जाती थी । जिसमें अधिक समय लगता था लेकिन इससे पर्यावरणीय पारिस्थितिक की समस्याएं नहीं होती थी । लेकिन अच्छे उत्पादन के लिए कृषि में व्यापक मशीनीकरण का उपयोग होने से उसका स्वरूप बदल गया जिसके कारण पशुपालन का स्वरूप भी बदलने लगा । जिसके कारण पशुशक्ति के बजाय मशीनों का उपयोग किया जाने लगा है । जिसके कारण पशुओं की संख्या कम होती जा रही है परिणाम स्वरूप कृषि में पारंपरिक उर्वरकों का उपयोग कम हो रहा है । जिससे उनकी अस्थाई उर्वरता शक्ति कम होती जा रही है । यही नहीं साधनों के उपयोग से खेत में जैविक घटकों का तेजी से विनाश हो रहा है और खेत के जैविक घटक असंतुलित होते जा रहे हैं । जिससे उत्पादकता प्रभावित हो रही है । इस प्रकार के प्रभाव जौनपुर जिला के समस्त क्षेत्रों में परिलक्षित होते हैं ।
3. कीटनाशकों का प्रभाव कृषि में उच्च पैदावार और खरपतवार और कीटों के लिए कीटनाशकों का उपयोग भी तेज गति से बढ़ रहा है । एक ओर जहां खरपतवार और कीट नष्ट हो गए हैं ए कृषि उपज में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर इसके भयानक परिणाम भी परिलक्षित हो रहे हैं । खरपतवार और कीट एक कार्बनिक घटक है जो अन्य कार्बनिक घटको और अजैविक घटकों के साथ काम करते हैं और ऊपर नुकसान का कारण बनते हैं । इसे नष्ट करने के लिए किसान कीटनाशक रसायन को और खरपतवारनाशको का उपयोग करता है । नतीजतन ए खेत का अकार्बनिक घटक असंतुलित हो जाता है । साथ ही वे मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं । कारण यह है कि कीटनाशक दवाएं पौधों के माध्यम से जीवों के शरीर में प्रवेश करती हैं और कई बीमारियों को जन्म दे रही हैं । भारत में पिछले 30 वर्षों के दौरान कीटनाशकों के उपयोग में 11 गुना वृद्धि हुई है लेकिन कीड़ों द्वारा इन कीटनाशकों के प्रतिरोध के विकास के कारण कृषि उपज का नुकसान 2 गुना से अधिक बढ़ गया है । लगभग यह स्थिति पूरी दुनिया के लिए है । एफ ण् ए ण् ओ के अनुसार कीटनाशकों के प्रसार के कारण दुनिया में हर साल लगभग 10000 लोग मर रहे हैं । इन रसायनों ने कृषि भूमि में कितनी मात्रा में प्रवेश किया है कि उनकी मूल प्रकृति ; जैविक और अजैविक घटकों पर आधारित द्ध बदल गई हैं । कारण यह है कि जहां से कीटनाशक फसल को पूरी तरह से कीटों से बचाने में सक्षम नहीं है वहीं दूसरी ओर वे उन कीटाणु को भी मार देते हैं जिनमें उन कीड़ों को मारने की क्षमता थी । इसके साथ ही वे नए कीटाणुओं को भी जन्म दे रहे हैं जिनमें दवाओं को बेअसर करने की अपार क्षमता है ।
4. कृषि में सिंचाई का उपयोग कृषि में सिंचाई का उपयोग भी तेज गति से बढ़ रहा है । जिसके लिए जौनपुर जिला में नलकूप का निर्माण किया जा रहा है ए जिसके कारण कृषि उत्पादन में विविधता के साथ . साथ उत्पादन भी बड़ा है । लेकिन उनके दूरगामी भयानक परिणाम भी हो रहे हैं अनियोजित सिंचाई के कारण कृषि क्षेत्र को भारी नुकसान हो रहा है । एक तरफ खेतों में पानी भर जाने के कारण एक तरफ कई बीमारियां हो रही है दूसरी तरफ पड़ोसी इलाकों का भूजल स्तर भी ऊपर आ रहा है । नलकूपों के निर्माण के कारण मिट्टी का कटाव और भूस्खलन भी बढ़ रहा है और वन विनाश के कारण जानवरों का जीवन भी खतरे में है ए और कृषि भूमि भी नष्ट हो रही है । घटते जलस्तर के कारण लोगों को विस्थापित होना पड़ता है जिसके कारण उनकी पूरी आजीविका बदल जाती है और ऐसे परिवारों में बेरोजगारी भी बढ़ जाती है इस तरह पूरा पारिस्थितिकी तंत्र अस्त व्यस्त हो रहा है अनियोजित सिंचाई के कारण जौनपुर जिला में भूजल का दोहन अधिक होने लगा है ।

5. आधुनिक कृषि का प्रभाव जौनपुर जिला में सघन कृष करके एक और जहां कई तरह की फसलें उगाई जा रही है वहीं दूसरी ओर वहां की जमीन में एनण्पीण्केण् ए कैलशियम ए मैग्निशियम सल्फर और मैगनीज लोहा ए तांबा ए जस्ता ए बोरान ए आज जैसे अन्य पोषक तत्वों की कमी हो रही है । जिसके भयानक दीर्घकालिक परिणाम होंगे । जौनपुर में आमतौर पर 45: भूमि जिंक की कमी है 5: भूमि मैगनीज और 11: भूमि में लोहे की कमी है । इन सूक्ष्म तत्व की कमी उन राज्यों में अधिक है जहां सिंचित भूमि अधिक है सघन खेती की जाती है और पैदावार अधिक ली जाती है । कृषि विकास में एक नया प्रयोग जैव प्रौद्योगिकी में किया जा रहा है । जिससे यदि प्राप्त किया जा सकता है तो असीमित लाभ हो सकता है लेकिन अनजाने में इसका गंभीर परिणाम भुगतना पड़ सकता है कारण यह है कि थोड़ी सी भी चूक पूरी जैव विविधता को खत्म कर सकती है ।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि हम इस आधुनिक कृषि को पूरी तरह से अस्वीकार नहीं कर सकते । क्योंकि हमें बढ़ती आबादी के लिए भोजन की आवश्यकता है जरूरत इस बात की है कि हम आधुनिक कृषि को और पारंपरिक कृषि के बीच समन्वय स्थापित करके कृषि करें उर्वरकों कीटनाशकों और अनियोजित सिंचाई के बजाय उनके उचित उपयोग पर ध्यान दें और स्वदेशी खाद और बीज का उपयोग करना ना भूले । कीड़ों के उन्मूलन के लिए अंधा कीटनाशकों का उपयोग ना करें और जैविक आधार पर उन्हें प्राकृतिक रूप में नष्ट करने का एक समाधान ढूंढ इस तरह आधुनिक कृषि और पारंपरिक कृषि के बीच समन्वय स्थापित करके हम पर्यावरण और पारिस्थितिकी की रक्षा करते हुए विकास की दिशा सुनिश्चित कर सकते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिवारी ए आर ण् सी ए ; 2012 द्ध रू भारत का भूगोल ए प्रकाशन प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद ए पृष्ठ 163.182
2. सिंह ए सविन्द्र ए ; 2015 द्ध रू पर्यावरण भूगोल ए प्रकाशन प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद
3. हुसैन ए माजिद ; 1999 द्ध रू कृषि भूगोल ए रावत प्रकाशन नई दिल्ली ।
4. पांडे एश और कमलेश ; 1999 द्ध रू कृषि भूगोल ए वसुंधरा प्रकाशन गोरखपुर उत्तर प्रदेश
5. शर्मा सुरेश चंद्र ; 1971 द्ध जिला इटावा उत्तर भारत भूगोल जनरल में भूमि उपयोग
6. जिला सांखिकीय पत्रिका 2017.2018 जौनपुर जनपद उत्तर प्रदेश

जनकवि रमेश रंजक

डॉ० राम सेवक

पूर्व शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, म० प्र०

'जन-जन की तरूणाई' को जगाने के लिए रमेश रंजक ने लोकगीतों का सहारा लिया। वस्तुतः गीतों को लोकगीतों की परम्परा से जोडने की जरूरत पड़ती है। जब यह महसूस किया जाता हैं कि गीतों का संप्रेषण क्षेत्र केवल काव्य-गोष्ठियों या सम्मेलन ही नहीं है। जनता से जुड़ने की प्रक्रिया के दौरान ही अपनी बात को जनता की जुबान में कहने की आवश्यकता बढ जाती है। भारत में लोकगीतों की एक विशिष्ट परंपरा रही है। आज भी भारत का ग्रामीण अंचल इन लोकगीतों में अपनी भावनाओं, आकांक्षाओं और सपनो को ढूढ़ता है, लेकिन नये बदलाव के साथ न जुड़ पाने के कारण धीरे-धीरे यह अमानत इतिहास के गर्भ में विलीन होती जा रही है। इसकी जीवंतता, सहज संप्रेषणीयता और सरलता की उपेक्षा के कारण हिन्दी साहित्य के नवगीतों में लोकतत्व गौण होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में नवगीत इतने 'एब्सट्रेक्ट' होते चले गए कि राग और लय के कारण ही वे अपना क्षणिक प्रभाव डाल पाते है।

लोकगीतों की रचना सामूहिक मूल्य है। इनकी रचना किसने, क्यों और कब की, यह जानने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। अंचल विशेष में प्रचलित लोकगीतों को सभी अपनी थाती समझते हैँ। दूसरे, इन गीतों में इसी कारण से समयानुकूल परिवर्तन होता चला जाता है।

अतएव इनकी जीवंतता हमेशा बनी रहती है। लोकगीत व्यक्ति के निजी कार्यो से नहीं, सामूहिक कार्यो से जुड़े हैँ। बुवाई, कटाई, शादी, तीज-त्यौहार, ब्याह, भजन, उत्सव तथा ऐसे ही सामूहिक श्रम और कार्यक्रम के क्षणों में लोकगीत गाए जाते हैं। विश्राम के क्षणों में भी लोकगीतों को सामान्यतः समूहों से ही गाया जाता हैं। इन सब कारणों से लोकगीतों के साथ संगठन की शक्ति एवं एकता जुडी है। इसलिए इस माध्यम से लोगों को सरलता से संगठित किया जा सकता है तथा सामाजिक दायित्व के प्रति लोगों को जागरूक किया जा सकता है।

रमेश रंजक ने लोकगीत की निम्न विषेषताएं बताई हैं- ''लय और धुन, कथात्मकता और पुनरावृत्ति।''[1] ये तीनों विषेषताएं रंजक के लोकगीतों में मौजूद है। रंजक के सभी लोकगीत लोकधुनों पर आधारित हैँ। तथा-तत्व के लिए रंजक जी ने ग्रामीण जीवन से सबंधित विभिन्न प्रसंगों को आधार बनाकर गीत लिखे हैं। जैसे किसान पतोहू का गीत, बाल विवाहिता का गीत, अछूत कन्या की मल्हार, गरीबों की ज्यौनार, पीहर लौटती लड़की का गीत आदि। इसी तरह से तीज-त्योहार क प्रसंगों को भी गीत रचना का आधार बनाया गया है। जैसे सावन, होली, फसल कटाई आदि से संबंधित गीत। अधिकांश गीतों के विषय पारंपरिक है, किन्तु वस्तु बदल जाने से उनमें नई ताजगी का एहसास होता है, नये संदर्भ के आलोक में लिखे होने से लोकगीतों को एक नाया आयाम मिला है। रमेश रंजक जी ने यह विशेष रूप से सावधानी रखी है कि गीतों में सामान्यजन की आवाज और लोकतत्व को सुरक्षित रखने के लिए उसके 'फार्म' में बहुत अधिक परिवर्तन करने की कोशिष नहीं की, वरन् जाने-पहचाने प्रसंगों को लोकगीतों के लिए प्रयुक्त किया है। इन पारंपरिक प्रसंगो के द्वारा अपनी बात को बड़ी सावधानी, सांकेतिक एवं सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करने में रंजक ने सफलता प्राप्त की है, जैसे 'किसान पतोहू का गीत' -

''ननदी छाटे थानेदारी,
सासु लगे सरकार''[2]

यहाँ व्यंग्य ननद और सास से हटकर ही पुलिस तथा सरकार पर केन्द्रित हो जाता है- 'राज-मजूरिन की होली' गीत में गरीब की किस्मत की हौली के प्रसंग के साथ बड़ी सूक्ष्मता से जोड़ा गया हैं-

''रंग के भाग ठिठौली लिखी है
रूप के भाग में चीर
अपने तो मजूर के भाग है
भाल पर स्याम लकीर।'' [3]

रंजक के लोकगीत उनके गीतों की तरह ही सफल गीत है। जन-आन्दोलन के समय गाये जाने वाले गीतों में कुछ ऐसी विशिष्टताएँ होनी जरूरी है जो उन्हें सामान्य गीतों से अलग करती है। ऐसे गीतों में कथ्य का संप्रेषण तीव्र गति से होना चाहिए। कानों में पड़ते ही यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कवि क्या कहना चाहता है। दूसरी विषेषता यह होनी चाहिए कि लोकगीतों में राग और लय का प्रयोग प्रयाण गीतों की तरह हो, अर्थात् ऐसे राग में गीत होना चाहिए कि हर एक की जुबान पर आसानी से चढ़ सके। तीसरे, ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए जो कि आमफहम हो तथा जिन्हें सरलता से उचारित किया जा सके। इनके अतिरिक्त लोकगीतों में ज्वाला का ताप होना चाहिए न कि जल की षीतलता। उनमें गीत, तीव्रता और उतार-चढ़ाव का ऐसा संयोजन होना चाहिए कि गाते हुये लोगों में सहज ही उत्साह का संचार होता चला जाय। भावों और विचारों में विशिष्टता होने से लोकगीत कमजोर पड़ जाते हैं। इसलिए भावों में सरलता और संगीत तथा विंचारों में स्पष्टता और सुबोधता का होना अनिवार्य है।

''रमेश रंजक के जनवादी गीतों में ये सारी विशेषताएं विद्यमान है, किन्तु 'बैल नहीं है.....', 'चक्का जाम हुआ', 'परदे के पीछे', 'आग का गीत', 'लावा उठेगा' तथा 'बीस हाथ की दुर्गा आई' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'बैल नहीं है'..... गीत का कुछ पंक्तियों के विष्लेषण से इन सभी विशेषताओं को आंका जा सकता है-

''दूर देश का दाना-पानी नहीं चइये
नहिं चइये सरकार सयानि नहिं चइये'' [4]

गरीब के जीवन के दर्द की तल्खी इतनी गहराई स छूती है कि कवि की गहरी संवेदना का आभास अनायास हो जाता है। लोकगीतों में जो तलस्पर्षी आत्मीयता होती है, उसी आत्मीयता के कारण रमेश रजक के इन गीतों की सार्थकता हमें स्पष्ट हो जाती है। रंजक को ग्रामीण जीवन का केवल गहरा ज्ञान ही नहीं है, इन गीतों से यह भी प्रमाणित होता है कि वे इनकी रचना करते समय स्वयं भी लोकमय हो जाते हैँ। यहीं कारण है कि रमेश रंजक के गीतों में भारत का ग्रामीण जीवन अपने पूरे सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त हुआ है। 'किरन के पांव' संग्रह में ग्रामीण नारी- सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए रीतिकालीन उपमानों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ रंजक का सौन्दर्य-बोध एक राज-मजूरिन के सौन्दर्य -चित्र से देखा जा सकता है-

''गारे कै पाँय, पसीने को अँचरा,
सीस पे धूल के बाल
सजनवा! हमको न भावे गुलाल।'' [5]

रमेश रंजक के नवगीतों, लोकगीतों एवं कविताओं का यह रचना संसार अद्वितीय है। जनवादी आंदोलनों की सार्थकता इसी बात में है कि रंजक जैस सबल गीतकारों का सहयोग उसे मिला हैं। रंजक से पूर्व नवगीतवादियों को साहित्य में कभी गंभीरता से नहीं लिया गया। प्रेम और प्रकृति के गीत गाने वाले इन गीतकारों की रचनाएं, अनुकृतियां ही थी, किन्तु आज गीतकारों का काव्य-क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान है, जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। रंजक जी ने गीत-परंपरा को नई गति प्रदान की है। इनकी रचनात्मक क्षमता ऊर्ध्वमुखी है और यह अपेक्षा करना समीचीन है कि रंजक के द्वारा गीत परम्परा विशेषत: जनवादी गीत परम्परा निरंतर अपने विकास पथ पर अग्रसर होती रही है।

संदर्भ सूची

1 गीत कवि रमेश रंजक: डॉ0 महेश उपाध्याय (भूमिका)। पृष्ठ - 01
2 इतिहास दुबारा लिखो: रमेश रंजक। पृष्ठ -49
3 इतिहास दुबारा लिखो: रमेश रंजक। पृष्ठ -51
4 इतिहास दुबारा लिखो: रमेश रंजक। पृष्ठ -25
5 इतिहास दुबारा लिखो: रमेश रंजक। पृष्ठ -50

जनपद जौनपुर में भूमि उपयोग प्रतिरूप एक भौगोलिक अध्ययन

रमा शंकर यादव

शोध छात्र (NET, JRF) भूगोल विभाग वर्धमान कालेज बिजनौर, एम.जे.पी. रोहिल खण्ड वि0 विद्यालय बरेली उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना-भूमि उपयोग प्रतिरूप अलग-अलग जलवायु क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होती है काफी हद तक भूमि उपयोग प्रतिरूप जलवायु द्वारा निर्धारिट होती है। भूमि उपयोग प्रतिरूप विष्व की अधिकांश जनसंख्या की आर्थिक दशा को प्रकट करती है इस शोध का मुख्य उद्देश्य शोध क्षेत्र (जौनपुर) में भूमि उपयोग का प्रतिरूप कैसा है।

यहाँ के लोग अपनी भूमि का कृषि क्षेत्र एवं अन्य क्षेत्रों में किस प्रकार से उपयोग कर रहें है। यह एक प्रकार का संसाधन है जिसका उपयोग लोग अपने समाजिक आर्थिक विकास के साथ-साथ गणात्मक एवं समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भूमि संसाधन का उचित उपयोग करते है।

कृषि आधारित अर्थव्यवस्था केलिए भूमि उपयोग प्रतिरूप एक आधारभूल संकल्पना है। यह भौगोलिक संकल्पना कृषि संसाधन में वृद्धि हेतु एक महत्वपूर्ण तकनीक साबित होती हैं क्षेत्रीय भूमि उपयोग प्रतिरूप भौगोलिक दशाओं को प्रदर्शित करती है। अलग-अलग क्षेत्रों में उसकी भौतिक दशा के अनुसार समायोजन करना पडता हैं यद्यपि भूमि उपयोग प्रतिरूप प्रत्यक्ष रूप से वहा के भौतिक दशाओं द्वारा नियन्त्रित होती है। लेकिन और भी कारक है जिससे भूमि उपयोग प्रतिरूप निर्धारित होते है। जैसे मानव, तथा अन्य आर्थिक तत्व जनाधिक्य के कारण स्थान विशेष की भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन होने लगते है।

भूमि उपयोग का अर्थ एक विशेष क्षेत्र में भूमि का उपयोग किन-किन कार्यो हेतु तथा कितनी भूमि कृषि के लिए एवं कितनी निवास के लिए कितनी खाद्यान्न फसलों के लिए है और कितनी व्यवसायिक कृषि हेतु है इत्यादि। भूमि मानव समाज के लिए एक आधार भूत संसाधन है। विकसित एवं खाली भूमियो का एक निष्चित समय में क्रमबद्ध एवं सुनियोजित तरीके से उपयोग में लाना ही एक वैज्ञानिक भूमि उपयोग कहा जा सकता है।

"कुछ आधारभूत समान लक्षण के आधार पर भूमि की उपयागिता को पहचान एवं समझ द्वारा विभिन्न भूमियों का तार्किक वर्गीकरण कर एक सुनियोजित क्रम में रखना ही भूमि उपयोग प्रतिरूप का मूख्य उद्देश्य होता है। जिससे अधिकतम मानव समाज का कल्याण हो सके।" (Chowdaiah 2001) भूमि उपयोग प्रतिरूप का महत्व यह है कि इससे जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न खाद्यान्न समस्याओ का समाधान किया जा सकता है। अत: भूमि का सुसंगठित एवं तर्कसंगत उपयोग बढती जनसंख्या एवं कम होती भूमि के बीच एक बेहतर समायोजन के लिए एक नायाब तरीका है। जिससे काफी कुछ समस्याओं का समाधान ढूढा जा सकता है।

भूमि उपयोग की योजना द्वारा सूक्ष्म स्तर पर भूमियो का सर्वेक्षण कर अधिकतम भूमि किस क्षेत्र के लिए उपयोग हो रहा है और किस क्षेत्र के लिए अधिकतम होना चाहिए यह निर्धारित करना अति आवष्यक होता है। सघन भूमि उपयोग, मानव और प्राकृति संससधनों के बीच अधिकतम उपयोग नयी तकनीको एवं प्रौधोगिकी द्वारा ही संभव है। बंजर, आर्द्र भूमि, जलप्लवित भूमि वर्षा द्वारा निर्मित खण्ढ भूमियों का सुधार नवीन तकनीको की सहायता से ही संभव है जो कृषि योग्य भूमि या निवास योग्य भूमि में परिवर्तित कर उपयोग योग्य बनाया जा सकता है।

भूगोल द्वारा भूमि उपयोग और योजना के बीच अन्तर्निहित सम्बन्धों को प्रकट कर उपलब्ध भूमि और उसके मॉग की पूर्ति नवीन तकनीको के माध्यम से सर्वेक्षण कर उसकी अवस्थिति, जलवायु दशाए, किस कार्य के लिए अनुकूल है इसका वैज्ञानिक आकलन कर विशेष क्षेत्र की भूमि को उपयोग योग्य वर्गो में विभाजित करने के लिए भूमि उपयोग प्रतिरूप के तरीको का प्रयोग कर सही माँग की पूर्ति को संभव बनाया जा सकता है।

सीमित भूमि संसाधनो द्वारा अधिकतम लाभ की नीति के अनुसरण से भूमि उपयोग प्रतिरूप को अपना कर प्रत्येक क्षेत्र जैसें कृषि कार्य, निवास हेतु भूमि, उद्योगो की स्थापना हेतु भूमि, शिक्षा, खेल के मैदान, विभिन्न सरकारी कार्यालय हेतु भूमिओ का आवंटन इत्यादि।

विष्व में भूमि उपयोग प्रतिरूप में विविधता देखने को मिलती है। जिसके लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी है जैसे- सूर्यप्रकाश वितरण में विभिन्नता, वर्षा वितरण में, भूमियों का अपवाह प्रतिरूप किस प्रकार का है, किस प्रकार के तत्व किस भूमि में उपलब्ध है तथा किस तत्व की कमी है। जो कृषि भमि की स्थानीय विभिन्नता को निर्धारित करता है। प्रायोगिक उद्देश्य हेतु फसल उत्पादन के लिए कौन सी फसल किस जलवायु में अत्यधिक उपयोगी है। अर्थात फसल के लिए कौन सी जलवायु अनुकूल है दोनो में सामंजस्य होना अनिवार्य है तभी अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है। योजना बनाने का मुख्य उद्देश्य भूमि उपयोग प्रतिरूप इस प्रकार का हों जो सुनियोजित एवं सुसंगठित हो जिससे कम से कम भूमि में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

कभी-कभी उपयोग योग्य भूमियों पर विभिन्न प्रतिबन्ध लगे होते हैं भूमि उपयोग के आधार पर कही अत्यधिक उपयोग तो कही कम उपयोग और कही-कही तो व्यर्थ पडी भूमि पर गलत ढंग से उपयागे हो रहा है। इसके अन्तर्गत हम भूमि का उपयोग सुनियोजित ढंग से करके अधिकतम उपयोग कर सकते है।

उद्देश्य- इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य है।

1. विभिन्न प्रकार की भूमिओ का वर्गीकरण कर विश्लेषण करना।
2. ब्लाक स्तर पर भूमि उपयोग प्रतिरूप में विभिन्नता को ज्ञात करना।
3. जौनपुर जिला मे भूमि उपयोग प्रतिरूप में क्या परिवर्तन हुआ है।

आंकडों का स्रोत और प्रविधि

इस अध्ययन का आधार द्वितीयक आँकडा है जो जिला सांख्यिकीय प्रत्रिका जौनपुर जिला जिसका प्रकाशन आर्थिकीय और सांख्यिकीय विभाग जौनपुर से होता है। 1999-2000 से 2013-2014 के बीच के वर्षो में ब्लाक सतर पर उपलब्ध भुमि उपयोग प्रतिरूप के श्रेणियों के आंकडों के आधार पर भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिर्वतन का विश्लेषण किया गया है।

आंकडो का वर्गीकरण, टेबल निर्माण, उसका विश्लेषण, संश्लेषण एक सुनियोजित सांख्यिकीय प्रक्रिया, सांख्यिकीय विधि, कार्टोग्राफिक तकनीक की सहायता ली गयी है।

ब्लाक स्तर पर अध्ययन क्षेत्र को विभाजित कर भूमि उपयोग को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है जो मानचित्र पर पाईग्राफ, के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

शोध क्षेत्र

स्थिति एवं विस्तार- यहाँ की भौगोलिक स्थिति 24.240 उ. अक्षांश से 26.120 उ. अक्षांश तथा 82.70 पूर्वी देशांतर से 83. 50 पूर्वी देशांतर, तक विस्तृत है। जौनपुर जिले का नाम ''जौनपुर'' मुहम्मद बिन तुगलक (जौना खाँ) के नाम पर उनके भाई फिरोजषाह तुगलक द्वारा रखा गया था। जौनपुर का स्वर्णकाल शर्कियो के काल में आता है। जब यह पूरे भारत का एक प्रमुख शक्ति केन्द्र बन कर उभरता है। 1394 के आसपास मलिक सरवर ने जौनपुर को शर्की साम्राज्य के रूप में स्थापित किया। गोमती और सई यहाँ की दो प्रमुख नदिया है। मिट्टी मुख्य रूप ये रेतीले, चिकनी बलुई है। इसकी सीमाए पश्चिम में प्रतापगढ़ तथा इलाहाबाद दक्षिण में वाराणसी, पूर्व में गाजीपुर एवं आजमगढ़ और उत्तर में सुल्तानपुर जनपद स्थित है। प्राचीन ग्रंथों एवं अभिलेखों के अनुसार यह जनपद अवध में सम्मिलित था प्रशासनिक दृष्टि से इसे पाँच-छः तहसीलो यथा- शाहगंज, मछलीशहर, जौनपुर, मडियाहू, केराकत और बदलापुर कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4038 किलोमीटर है। जनगणना 2011 के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 4494204 जिसमे 2220465 पुरूष और 2273739 महिला है कुल साक्षर जनसंख्या 2731677 है जिसमें 1565394 पुरूष और 1166283 महिला साक्षर है।

Map Jaunpur District

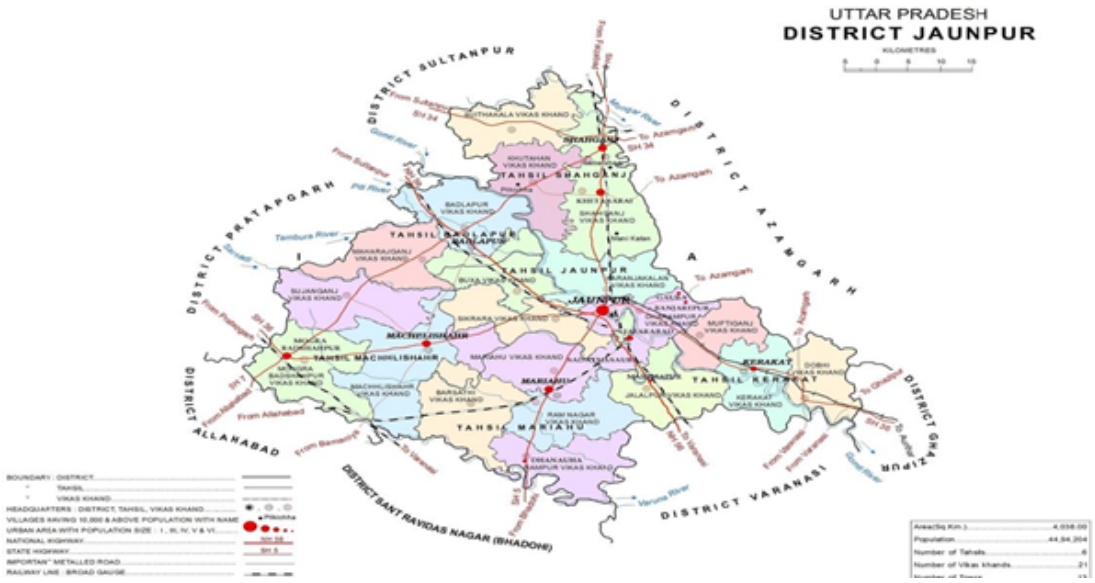

भूमि उपयोग का वर्गीकरण

भूमि उपयोग वर्गीकरण एक ऐसा वर्गीकरण है। जो भूमि के आवरण और भूमि उपयोग गतिविधि के प्रकार के बारे में जानकारी प्रदान करता है। यह भूमि पर पर्यावरणीय प्रभाव या वैकल्पिक उपयोग के आकलन की सुविधा प्रदान करता है। कुछ समान लक्षणो, मौलिक उपयोगिता, के आधार पर भूमियों का वर्गीकरण ही भूमि उपयोग वर्गीकरण कहा जाता है। सेन्सस ऑफ इण्डिया द्वारा भूमि उपयोग को 9 विभिन्न श्रेणियों में बाँटा था। किंतु बाद में मुख्य रूपसे 5 भूमि उपयोग श्रेणियों में बाटा गया हैं 1. वन भूमि, 2. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य 3. कृष्य बेकार भूमि 4. परतीभूमि 5. शुद्ध कृषित क्षेत्र जौनपुर जिला का सम्पूर्ण भूमि उपयोग प्रतिरूप 2013-14 में 1. वन भूमि .080 प्रतिशत है। 2. ऊसर एवं कृशि के अयोग्य 2.06 प्रतिशत, कृष्य बेकार भूमि 2.39 प्रतिशत, परती भूमि 10.11 प्रतिशत है तथा शुद्ध बोया गया भूमि 85.36 प्रतिशत है। कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का Table-1 के अनुसार

Table :1 Land use pattern in Jaunpur district-1999-2000 to 2013-14

S.N.	Land use category	Total Area (in Hect)	1999-2000 in (%)	Total Area (in Hect)	2013-14 (M %)	Changes in %
1.	Forest Land	63	.018	264	.080	0.06
2.	Area not Available for cultivation	7096	2.14	6737	2.06	0.08
3.	other uncultivable waste Land excluding follow Land	8145	2.45	7807	2.39	-0.06
4.	Follow Land	24778	7.46	33038	10.11	+2.65
5.	Net sown Area	291724	87.92	278783	85.36	-2.56
Total Reported Area		331806	100.00	326629	100	

Source: www.updes.up.nic.in/sptrika

ब्लाकस्तर पर भूमि उपयोग प्रतिरूप का विकास

अध्ययन क्षेत्र का भूमि उपयोग प्रतिरूप ब्लाक स्तर पर विभिन्नताओं से युक्त है जिसक कारण भौतिक दशाएं, सामाजिक आर्थिक क्रियाएं और भू-आकृतिक संरचना एवं संगठन मिट्टी के प्रकार वर्षा या सभी कारक निर्धारित करते है कि कौन सी कृषि किस भूमि पर उगाई जा सकती है।

1. वन के अन्तर्गत क्षेत्र- भूमि उपयोग प्रतिरूप में वन क्षेत्र की मात्रा में वृद्धि हो रही है 1999-2000 में 63 हेक्टेयर से 2013-14 में 264 हेक्टेयर हो गया है। इसमें कुछ ब्लाकों में धनात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहा है। 1999-2000 से 2013-14 के समयान्तराल में जबकि कुछ ब्लाक ऐसे है जिसमें कोई परिवर्तन नही हुआ है जैसे बदलापुर, करंजाकला, और मुगराबादशाहपुर इत्यादि लेकिन जो परिवर्तन देखने को मिल रहा है उसका कारण भारत सरकार, एवं राज्य सरकारो द्वारा परिस्थतिकी संतुलन को बनाये रखने हेतु एवं क्षेत्रों एवं वनस्पतियों में वृद्धि लाने का प्रयास कर रही हैं इसके पीछे अन्तराष्ट्रीय दबाव भी है। जिसमें वैश्विक तापमान में हो रही वृद्धि को कम करने हेतु पारिस्थितिक संतुलन होना जरूरी है जिसके जिए न केवल सरकार बल्कि वहाँ की जनता में इन संकटों के प्रति संवेदेनशील एवं सतर्क रहना आवश्यक है।

2. ऊसर एवं कृशि के अयोग्य भूमि-

1. इस श्रेणी के भूमि उपयोग के अन्तर्गत वे भूमि आती है जो कृषि के योग्य नही है जिसमें कृषि करना आर्थिक रूप से उचित नही है।
2. इसी में वे भूमि भी आती हैं जिन्हे हम ऊसर या परती भूमि कहते है जिसमें कृषि कार्य नही होता है। इसके अन्तर्गत भूमि का एक बडा हिस्सा आता है। जिसमें कृषि कार्य नही होता बल्कि इसमें फैक्टरी, रोड, नहर, निवास हेतु कालोनी, निर्माण, सरकारी कार्यालय, कूडास्थल, पशुबाडा, इत्यादि प्रायोगिक रूप से इस प्रकार की जमीन अनउत्पादक, व्यर्थ तथा कृषि के अयोग्य होती है यहाँ पर जलमग्न ऊसर वनस्पति विहीन एवं परती भूमि होती है।

जौनपुर जिले में 1999-2000 के समय में 7096 हेक्टेयर जमीन ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के अन्तर्गत आती थी। जबकि 2013-14 में 6737 हेक्टेयर रह गयी। 1999-2000 से 2013-14 में इस प्रकर की जमीन में कमी आयी है। इसका मुख्यकारण इसमें पौध रोपड़, एवं सरकारी एवं गैर सरकारी स्कूल, कार्यालय, पशु बाडों का निर्माण हुआ है।

जौनपुर जिले के कुछ ब्लाकों मे इसके अन्तर्गत आने वाली भूमि में कमी हुई जैसे 1999-2000 में सुइथाकला में 340 हेक्टेयर जबकि 2013-14 में इसकी भूमि 269 रह गयी वहीं खुटहन में 1999-2000 307 हेक्टेयर से घटकर 234 हेक्टेयर भूमी रह गयी जबकि कुछ ब्लाकों में इसकी मात्रा वही है। जैसे शाहगंज 1999-2000 में 430 हेक्टेयर से 2013-14 में 448 हेक्टेयर हो गया किन्तु अधिकतर ब्लाकों में इस श्रेणी की भूमि में कमी देखी गयी जिसे हम टेबल संख्या 2 में देख सकते है।

इसका मुख्य कारण बढती जनसंखा दबाव के साथ-साथ सरकार द्वारा पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखने के लिए तथा भूमि सुधार कर वन रोंपड योग्य बनाना।

Table-2 Development Block wise Land use pattern in 1999-2000

			Fallow Land		Area not available for caltivation		Other uncultivation wast Land		Net sown Area	
S.N.	Deveolopment block	Totel Area in Hect	Hect	Present	Hect	Present	Hect	Present	Hect	Present
1.	सुइथाकला	20659	1311	6.35	340	1.64	364	1.76	15304	74.07
2.	शाहगंज	29693	3702	12.56	430	1.45	392	1.32	20119	67.75
3.	खुटहन	19610	1141	5.82	307	1.56	318	1.62	14299	72.91
4.	करजाकला	17627	374	2.12	280	1.58	470	2.66	13464	76.38

5.	बदलापुर	21302	870	4.08	259	1.22	371	1.74	16649	78.15
6.	महराजगंज	18599	1355	7.28	263	1.41	358	1.92	13559	72.90
7.	बक्सा	16954	852	5.02	180	1.06	209	1.23	12786	75.41
8.	सुजानगंज	22611	1056	4.67	308	1.36	462	2.04	16392	72.49
9.	मुगराबादशाहपुर	23154	1254	5.41	740	3.28	637	2.75	16661	71.95
10.	मछलीशहर	27626	2450	8.86	756	2.73	740	2.67	19242	69.65
11.	मडियाहू	22734	1514	6.65	642	2.8	671	2.95	16833	74.04
12.	बरसठी	22489	1238	5.50	281	1.24	522	2.32	15517	68.99
13.	सिकरारा	15731	1036	6.58	200	1.27	372	2.36	11982	76.16
14.	धर्मापुर	10113	740	7.32	189	1.86	208	2.05	6962	68.84
15.	रामनगर	14410	618	4.28	378	2.62	360	2.49	10627	73.74
16.	रामपुर	20680	878	4.24	300	1.45	414	2.00	16016	77.44
17.	मुफ्तीगंज	13269	901	6.79	225	1.69	262	1.97	9516	71.71
18.	जलालपुर	15139	956	6.31	267	1.76	236	1.55	11185	73.88
19.	केराकत	16174	960	5.93	227	1.40	210	1.29	12045	74.47
20.	डोभी	14653	659	4.49	216	1.47	206	1.40	11107	75.80
21.	सिरकोनी	13758	709	5.15	276	2.00	357	2.59	9752	70.88
	Totel -	331806	24778	7.50	7096	2.14%	8145	2.45	291724	87.92

स्रोत- जिला अर्थ सांख्यिकीय विभाग जौनपुर

w.w.w.updes.up.nic.in.spatriaka

3. कृष्य बेकार भूमि

इस श्रेणी की भूमि के अन्तर्गत पशुचारण भूमि, परती कृष्य बेकार भूमि, वन भूमि, उद्यान भूमि आते है। इसके अन्तर्गत कृषि भूमि भी आती है किन्तुयह बेकार हो जाता है। इसके कुछ कारण जैसे नदी बाढ़ प्रभावित क्षेत्र, अवांछित खरपतवारो का विस्तार, मृदा अपरदन, खराब अपवाह प्रतिरूप विभिन्न मौसमों में जलाभाव पशुचारण भूमि के अन्तर्गत सभी प्रकार की चरने वाली घास भूमियाँ आती है। चाहे वे स्थायी चारागाह हो या अर्द्ध चारागाह हो या नही झाडी के अन्तर्गत जगंल, बगीचे, आते है। ये कृषि योग्य भूमि के अन्तर्गत रखे जाते है। ये शुद्ध कृषित भूमि के अन्तर्गत नही रखे जाते है। इस प्रकार क्षेत्रों में वृक्ष जैसे आम, महुआ, शीशम, बबूल काटेदार झाडियों की अधिकता पायी जाती है।

जौनपुर जिला में 1999-2000 के आंकडों के अनुसार कृष्य बेकार भूमि 8145 हेक्टेयर लगभग 2.45 प्रतिशत क्षेत्र पर विस्तार था जबकि 2013-14 में इसका विस्तार 7807 हेक्टेयर 2.39 प्रतिशत क्षेत्र पर ही था इसका प्रमुख कारण इबढ़-खाबड, कटी-फटी भू-आकृति का होना जिनका निर्माण वर्षा, बाढ ग्रस्त नदियों द्वारा हुआ हैं। जिससे मृदा अपरउन के करण उबड-खाबड (उत्खात भूमि) कटी-फटी भूमि का निर्माण हुआ है 1999-2000 के अनुसार सर्वाधिक कृष्य बेकार भूमि मछलीशहर ब्लाक में 740 हेक्टेयर 2.67 प्रतिशत, मुगराबादशाहपुर ब्लाक में 637 हेक्टेयर 2.75 प्रतिशत, मडियाहू में 671 हेक्टेयर 2.95 प्रतिशत, तथा सबसे कम कृष्य

बेकार भूमि डोमी ब्लाक में 206 हेक्टेयर 1.40 प्रतिशत भूमि, बक्सा ब्लाक में 209 हेक्टेयर 1.23 प्रतिशत भूमि धर्मापुर ब्लाक में 208 हेक्टेयर 2.05 प्रतिशत भूमि आती है।

जबकि 2013-14 में सर्वाधिक कृष्य बेकार भूमि शाहगंज 700 हेक्टेयर 2.39 प्रतिशत भूमि, बरसठी 682 हैक्टेयर 3.14 प्रतिशत, रामपुर 576 हेक्टेयर 2.84 जबकि 2013-14 में सबसे कम कृष्य बेकार भूमि 168 हेक्टेयर 1.12 प्रतिशत डोभी ब्लाक में है। इसके बाद बक्सा ब्लाक -169 हेक्टेयर 0.98 प्रतिशत जलालपुर 194 हेक्टेयर 1.31 प्रतिशत। Table NO. 2, 3 के अनुसार

Table-3 Development Block wise Land use pattern in 2013-2014

			Fallow Land		Area not available for caltivation		Other uncultivation wast Land		Net sown Area	
S.N.	Deveolopment Block	Totel Area in Hect	Hect	Present	Hect	Present	Hect	Present	Hect	Present
1.	सुइथाकला	20441	1180	5.77	269	1.32	423	2.06	12397	60.64
2.	शाहगंज	292442	1845	6.31	448	1.53	700	2.39	18483	63.20
3.	खुटहन	19771	1843	9.32	234	1.18	463	2.34	12370	62.56
4.	करंजाकला	17661	796	4.51	265	1.50	434	2.46	13360	75.64
5.	बदलापुर	21289	1250	5.87	203	0.95	464	2.26	15962	74.97
6.	मछराजगंज	18652	1625	8.71	213	1.14	310	1.66	13280	71.19
7.	बक्सा	17102	915	5.35	125	0.73	169	0.98	13049	76.30
8.	सुजानगंज	22454	1635	7.28	274	1.22	380	1.69	15875	70.70
9.	मुगराबदशाहपुर	23246	1638	7.04	889	3.82	234	1.00	16691	71.80
10.	मछलीशहर	25991	1782	6.86	824	3.17	407	1.56	18504	71.19
11.	मडियाहू	21297	1539	7.23	396	1.86	496	2.33	15176	71.25
12.	बरसठी	21717	1796	8.36	496	2.28	682	3.14	14864	68.44
13.	सिकरारा	14648	1370	9.35	196	1.34	287	1.95	10946	74.72
14.	धर्मापुर	9153	518	5.66	112	1.22	197	2.15	6768	73.94
15.	रामनगर	18243	1361	7.46	432	2.36	531	2.91	12635	69.25
16.	रामपुर	20240	2818	13.92	256	1.26	576	2.84	13394	66.17
17.	मुफ्तीगंज	13164	1411	10.72	205	1.56	485	3.68	9614	73.0
18.	जलालपुर	14716	1445	9.82	275	1.86	194	1.31	10724	72.87
9.	केराकत	16115	1954	9.64	193	1.19	286	1.77	11695	72.57
20.	डोभी	15014	1519	10.12	226	1.50	168	1.12	10968	73.05
21.	सिरकोनी	16739	2743	16.38	195	1.16	216	1.29	10679	63.79
	Totel -	331806	33038	10.00%	6737	2.03%	7807	2.35%	278783	84.01

स्रोत- जिला अर्थ सांख्यिकीय विभाग जौनपुर (w.w.w.updes.up.nic.in.spatriaka)

परती भूमि

परती भूमियाँ वे भूमियाँ होती है जिसमें रिर्पोटिंग के समय कृषि कार्य नही होता है किन्तु भविष्य में हो सकता है कृषि कार्य के अन्तर्गत आए जब उनमें पुनः उर्वरा शक्ति आ जाए परती भूमियों को भी हम वर्तमान परी या अन्य परती भूमियों में वगीकृत कर सकते है। वर्तमान परती वह है जो वर्तमान कृषि वर्ष में पुनः उर्वरा शक्ति प्राप्त हेतु छोड़ दिया जाता है कुछ अन्य कारण भी हो सकते है। जैसे- आर्थिक, कृषक का विचार, जलाभाव, और नमी की कमी इत्यादि। परती भूमि के अन्तर्गत वही भूमियों को लाया जाता है जिसमें कम से कम एक वर्ष अधिक से अधिक 5 वर्ष तक कृषि कार्य न होता हो। परती भूमि कृषि का ही भाग हैं अन्तर केवल इतना हैं कि रिर्पोटिंग टाइम पर परती भूमि पर कृषि कार्य जारी नहीं रहता हैं पर जब की दुसरी में कृषि कार्य जारी रहता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत 1999-2000 के आंकाडों के आधार पर 24778 हैक्टेयर (7.5 प्रतिशत) भूमि थी जो 2013-14 के आंकड़ों के अनुसार 33038 हेक्टेयर (10.0 प्रतिशत) भूमि है। जौनपूर जिले के परती भूमि में 1999-2000 से 2013-14 के बीच वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण कृषको का कृषि के प्रति हतोत्साहन जिसके पीछे मुख्य कारण बढती लागत कम उत्पादकता, जलाभाव, मौसम की अनियमितता इत्यादि है।

परिवर्तित भूमि उपयोग प्रतिरूप

भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन भौतिक और अभौतिक पर्यावरण का प्रतिफल है। किसी क्षेत्र में कृषि विकास को प्रतिबिम्बित करने वाले सूचक परिवर्तित भूमि उपयोग प्रतिरूप का भी प्रतिनिधित्व करता है। जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और औद्योगीकरण भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तनलाने वाला मुख्य कारक है। अन्य महत्वपूण कारकों में रोड निर्माण, निवास हेतु कालोनी निर्माण नये शहरो का बसाव खाद्यान्न संकट से उत्पन्न अतिरिक्त दबाव आधार भूत संरचनाओं का निर्माण इत्यादि ये सभी कारक मिलकर भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन लाते है।

अध्ययन क्षेत्र में 1999-2000 से 2013-14 के आंकडों के अनुसार जनपद जौनपुर के विभिन्न ब्लाको में हुए भूमि उपयोग प्रतिरूपों के अनुसार वनभूमि में वृद्धि 1999-2000 से 2013-14 समयकाल में 64 हेक्टेयर से 264 हेक्टेयर की है जिसमें धनात्मक परिवर्तन देखने को मिला जिसमें वन भूमि में वृद्धि हुई .062 प्रतिशत का जबकि ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि में 1999-2000 में 7096 हेक्टेयर (2.14) से घटकर 2013-14 में 6737 हेक्टेयर रह गया है। जो- 0.08% ऋणात्मक उर को दर्शाता है। वही कृष्य बेकार भूमि जो 1999-2000 से 2013-14 में 8145 हेक्टेयर 2.45% से 7807 हेक्टेयर 2.39% हो गया इसे श्रेणी में भी -0.06% की कमी आयी है। जिसमें ऋणात्मक परिवर्तन देखा गया है। जबकि परती भूमि धनात्मक वृद्धि देखी गयी है। 1999-2000 से 2013-14 तक 24778 हेक्टेयर 7.46% से बढकर 33038 हेक्टेयर 10.11% कुल वृद्धि 2.65% की हुई। शुद्ध बोया गया क्षेत्र 1999-2000 से 2013-2014 के बीच 291724 हेक्टयर 87.92% से घटकर 278783 हेक्टेयर 85.36% कुल कमी 2.56% थी। जो ऋणात्मक परिवर्तन को दर्शाता है जैसाकि में प्रदर्शित है। जैसा कि Table NO. 4 में प्रदर्शित है।

Table-4 Development Block wise Land use pattern in 1999-2000 to 2013-2014

S.N.	*Deveolopment Block*	*Fallow Land*	*Area not available for caltivation*	*Other uncultivation wast Land*	*Net sown Area*
1.	सुइथाकला	.58	-0.32	+0.5	-13.43
2.	षाहगंज	-6.25	0.08	1.07	-4.55
3.	खुटहन	3.5	-0.38	0.72	-10.35
4.	करजाकला	2.39	-0.08	-0.2	-0.74
5.	बदलापुर	1.79	-0.27	+0.52	-3.18
6.	महराजगंज	1.43	-0.27	-0.26	-1.71
7.	बक्सा	-0.33	-0.33	-0.25	-0.89
8.	सुजानगंज	2.61	+0.14	-0.35	-1.79
9.	मुगराबादशाहपुर	1.63	-0.54	-1.75	-0.15

10.	मछलीशहर	−2	−0.41	-1.1	+1.54
11.	मडियाहू	.58	-0.94	-0.62	-2.79
12.	बरसठी	2.86	1.04	?0.82	-0.55
13.	सिकरारा	2.77	0.04	-0.41	-1.44
14.	धर्मापुर	-1.66	-0.64	+0.1	+5.1
15.	रामनगर	3.18	-1.36	+0.42	-4.49
16.	रामपुर	9.68	-0.19	+0.84	-11.24
17.	मुफ्तीगंज	3.93	-0.13	1.71	+1.29
18.	जलालपुर	3.51	?0.1	-0.24	-1.01
19.	केराकत	3.71	-0.21	-0.48	-1.9
20.	डोभी	5.63	0.03	-.028	-2.75
21.	सिरकोनी	11.23	-0.84	-1.3	-7.09
	Totel-	+2.65	-0.08	-0.06	-2.56

Source- Computed from District statistical Hand Book Jaunpur District U.P.

शुद्ध बोया गया क्षेत्र

शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल जिसमें प्रत्येक कृषि वर्ष में फसलें उगायी जाती है और प्रत्येक वर्ष एक ही नही कई फसले उगायी जाती है। भूमि उपयोग प्रतिरूप में इसका बहुत महत्व है। यही कृषकों एवं आम जनता का अन्नदाता है। कृषि वर्ष में वास्तविक कृषित क्षेत्रफल को दर्शाता है यही नही बल्कि कृषि क्षेत्र में हो रहे विकास व नुकसान को भी दर्शाता है। भूमि उपयोग प्रतिरूप में इसका महत्वपूण रोल है क्योंकि किसी भी देष के खाद्यान्न उत्पादन का मुख्य आधार कहा जा सकता है।

शुद्ध बोया गया क्षेत्र प्रत्येक वर्ष कम होता चला जा रहा है। जौनपुर जिले में जहाँ 1999-2000 में 291724 हेक्टेयर 87.92 प्रतिशत या जो 2013-14 के आंकडों के अनुसार 278783 हेक्टेयर 84.01 प्रतिशत रह गया था यह दर्शाता है कि जौनपुर जिले में ब्लाक स्तर पर शुद्ध बोये गये क्षेत्रों में विभिन्नताएं है। और शुद्ध बायें गये क्षेत्र में कमी का मुख्य कारण, बढती जनसंख्या, आवास की माँग आधारभूत संरचना निर्माण में भूमि उपयोग जैसे रोड निर्माण सरकारी कार्यालय, खेल मैदान, चरागाह, पशुबाडा निर्माण इत्यादि। 1999-2000 में सर्वाधिक शुद्ध बोया गया क्षेत्र शाहगंज ब्लांक में 20119 हेक्टेयर 67.75 प्रतिशत या और सबसे कम धर्मापुर ब्लाक मे 6962 हेक्टेयर 68.84 प्रतिशत था। जबकि 2013-14 में सर्वाधिक शुद्ध बोया गया क्षेत्र शाहगंज ब्लाक में 63.20 या वही सबसे कम शुद्ध बोया गया क्षेत्र धर्मापुर ब्लाक में 6768 हेक्टेयर 73.94 प्रतिशत था। टेबल संख्या: 2-3 के अनुसार

इस अध्ययन से शुद्ध बोये गये भूमि का कम होने का कारण ज्ञात हुआ जिससे उपरोक्त अतिक्ति बंजर भुमि, परती भुमि वृक्षो एवं झाडियों में वृद्धि, सिंचित क्षेत्र विस्तार में असफल प्रयास, अन्य कारणों में मृदा परिच्छेदिका मुख्य कारण है। मृदा परिच्छेदिका मेंविभिन्नता भी महत्वपूर्ण रोल निभाती है।

निष्कर्ष

भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन भूमि उपयोग की विभिन्न श्रेणियों में होनेवाले परिवर्तन पर आधारित होता है। जनपद जौनपुर के भूमि उपनयोग प्रतिरूप में परिवर्तन का विश्लेषण 1999-2000 से 2013-14 के समयान्तराल में हुए भूमि उपयोग के आंकडों पर आधारित है। जिसका कुल समयान्तराल 14 वर्श का है। जिसमें विभिन्न परिवर्तन देखने को मिला जैसे- वन भूमि उपयोग में परिवर्तन 63 हेक्टेयर से 264 हेक्टेयर हो गया जिसमें 201 हेक्टेयर की वृद्धि जबकि प्रतिशत वृद्धि -062 प्रतिशत है।

वही ऊसर एवं कृषि के अयोग्य (Area not available for cultivation)

7096 हेक्टेयर से घकर 6737 हेक्टेयर रह गया जिसमें कुल 0.08 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। जबकि कृष्य बेकार भूमि में भी 8145 हेक्टेयर से कम होकर 7807 हेक्टेयर पर गया कुल कमी 0.06 प्रतिशत का ऋणात्कम परिवर्तन देखने को मिला परती

भूमि 24778 हेक्टेयर से 33038 हो गया कुल वृद्धि 2.65 प्रतिशत की धनात्मक परिवर्तन को प्रदर्शित करता है। वही शुद्ध बोये गये क्षेत्र में कुल क्षेत्रफल 291724 से घटकर 278783 हेक्टेयर रह गया कुल 2.56 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आंशिक परिर्वन प्रत्येक श्रेणी के भूमि उपयोग में देखने को मिला किसी में धनात्मक परिवर्तन तो कही पर ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है। जैसे वन भूमि उपयोग में धनात्मक परिवर्तन तो वही ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमि में ऋणात्मक परिवर्तन देखा गया परती भूमि में धनात्मक परिवर्तन दिखा जबकि शुद्ध बोया गया क्षेत्र तथा कृष्य बेकार भूमि में भी ऋणात्मक परिवर्तन देखने को मिलता।

संदर्भ सूची-

1. योजना, कुरूक्षेत्र तथा भूगोल और आप पत्रिका (मासिक)
2. अर्थ एवं संख्या प्रभाग जौनपुर
3. w.w.w.updesh.up.nic.in/spatriks
2. District statistical Handbook Jaunpur 1999 and 2014 http//upea.up.nic.in
3. Kaur D. 1991 changing patterns of Agriculturaql Laqnd use rawat publications Jainpur pg.50
4. Khan. M.S.A. 2006 changing land use pattern and Rural Transformation in Eastern Uttar Pradesh Ph.D thesis A.M.U. Aligarh
5. Mishra B.N. 1990 Land utilastion and management in India
6. Rao.V.L.S.P. 1959 the role of Geographers in Land use planning Bomabay Geographical magzine vol. 6-7, No- 2pp 39-44
7. Singh A.K. and Dwivedi Amrita 2012 population pressure and Land use changes in chakia Block of chandali District up nationa; Geographical Journal of india vol. 58. pt (2)pp.115-116
8. Vaidya B.C. 1997 Agricultural land use in India study in yashoda Basin. Manal publication New Delhi Pp 81-100

उपन्यासों में नारी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति

डॉ० सुनीता

आर०जी०(पी०जी०) कॉलेज, मेरठ, चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

संगीता

शोधार्थी, आर०जी०(पी०जी०) कॉलेज, मेरठ

पुराख्यानों से लगाकर अधुनातन साहित्य तक काव्य और कथा सर्जना के केन्द्रीय तत्व के रूप में प्रेम को व्यापक स्वीकृति एवं अभिव्यक्ति मिलती आई है। उपन्यासों में इनकी अनिवार्यता का सबसे बड़ा प्रमाण भी मिलता है। कोई प्रेम के चाक्षुण-दैहिक रूप को तो कोई इसके आत्मीय स्वरूप को श्रेष्ठ बताता रहा है। मानवीय गुणों में प्रेम को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी गई है परन्तु लोकप्रियता के शिखर पर मुकुट की तरह सजे रहने वाले इस शब्द की सर्वमान्य परिभाषा नहीं मिल पाती है। प्रेम जहाँ जैविक धरातल छोड़कर उन्नत होकर अध्यात्म की भावभूमि पर प्रस्थापित होता है तो उसे प्रेम का उदात्त रूप या अलौकिक प्रेम की संज्ञा दी जाती है। वास्तव में प्रेम की उद्भावना भौतिक धरातल पर ही होती है परन्तु उसका उन्नयन या उन्मेष आध्यात्मक की भूमि पर होता है।

नर और नारी का प्रारम्भिक प्रेम सौन्दर्य और भोग परक होता है परन्तु जब उसे चिंतन का स्पर्श मिलता है, तब उसमें कामना के बदले भक्ति का भाव बलवन्तर हो जाता है। जो व्यक्ति को प्रेमी से परिव्राजक या स्नेही से संन्यासी बना देता है। जैनेन्द्र इसी बात का स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं-''जाने अनजाने सब में श्रद्धा किंचित रहती है और हर पुरुष के जीवन में कोई न कोई स्त्री अवश्य ऐसी होती है, जिसके प्रति उसे कामना से अधिक भक्ति होती है। उसके वह पैर तो छू सकता है, लेकिन भोग की कामना नहीं कर सकता है।''[1]

'यत्र नार्यस्तु पूज्यते, तत्र रमन्ते देवता' का आदर्श मानने वाले हमारे देश में वर्षों से नारी की उपेक्षा की जा रही है। उसे मात्र कामिनी या विलास की मूर्ति के रूप में देखा जा रहा है। विद्वानों ने भी नारी को माया कहकर नारी का त्याग कर दिया है। उसे संसार से निवृत्ति का मार्ग श्रेयस्कर बताया है। हालाँकि स्त्री और पुरुष समाज जीवन के सम-समान महत्त्व के घटक हैं। दोनों रथ रूपी जीवन के दो पहिये हैं। फिर भी प्राचीन काल से लेकर आजतक पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को दोयम स्थान ही प्राप्त हुआ है।

आधुनिक काल में समाज के सभी क्षेत्रों में नयी-नयी विचार धाराओं के आगमन, समाज सुधार के प्रयत्नों एवं राजनीतिक नियमों के कारण नारी उत्कर्ष पर बल दिया जाने लगा। समाज में हो रहे परिवर्तन का साहित्यकारों पर भी प्रभाव पड़ा है। नारी को पारम्परिक रूप से निकालकर एक स्वतंत्र व्यक्तित्व देने के लिए उसे विविध रूपों, आयामों में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। कहीं वह पत्नी है तो कहीं उसकी प्रेयसी और सहचरी भी है। पत्नी के दर्जे में मुंशी प्रेमचन्द ने 'निर्मला' उपन्यास में नारी के उस रूप पर प्रकाश डाला है, जो पुरुषों से दूरी बनाकर रखती है। उसका भी एक कारण था अनमेल विवाह। प्रेमचन्द निर्मला के बारे में लिखते हैं- ''अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुका कर, देह चुराकर निकलती थी। अब उसी अवस्था

का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती-फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।''[2] स्त्री में अपने प्रकृति दत्तसौन्दर्य का अहं व्यक्त होता है। भगवतीचरण चरण वर्मा ने अपने उपन्यास 'चित्रलेखा' में ऐसी ही एक स्त्री का रूप प्रस्तुत किया है- ''चित्रलेखा की अधखुली आँखों में मतवालापन था और उसके अरुण कपोलों में उल्लास था। यौवन की उमंग में सौन्दर्य किलोलें कर रहा था। आलिंगन के पाश में वासना हँस रही थी।''[3] एक स्त्री त्याग, बलिदान और राष्ट्र सेवा के भाव से परिपूर्ण दिखाई देती है। कुछ उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित नारी को पहले स्त्री बताया है, बाद में पत्नी या प्रेयसी, क्योंकि जहाँ उसका स्त्रीत्व का या नारी धर्म का प्रश्न आता है तो वह अपने स्त्रीत्व की प्रधानता देती हुई दिखाई गयी है। जैनेन्द्र की विचारधारा में- ''स्त्रीत्व को खोकर स्त्री अपनी सही सार्थकता कभी प्राप्त नहीं कर सकेगी।''[4] माँ बनकर नारी समष्टि का भार वहन करने वाली महत्त्वपूर्ण इकाई बन जाती है।उसकी अल्हड़ता, चंचलता, दायित्व में बदल जाती है। उसे अपनी जिंदगी जीने का एक नया सहारा और बल मिल जाता है। डॉङ्क्ष विधाबिन्दु सिंहा नारी भावना के आधार बिन्दु पहचान कराते हुए कहती हैं- ''नारी अपनी मातृशक्ति की पहचान जिस दिन खोना शुरू कर देगी उसका व्यक्तित्व खण्ड-खण्ड होना शुरू हो जाएगा। शायद यह खतरा उपस्थित हो गया है।''[5] उपन्यासों में नारी के जिन विविध रूपों को प्रस्तुत किया गया है उसमें अहंकारी, गर्विष्ठ एवं आत्म संघर्षित नारी का चित्रण भी प्राप्त होता है। वैसे देखा जाए तो स्त्री के जीवन की सार्थकता मातृत्व में ही निहित होती है। मातृत्व एक दायित्व होता है। स्वातंत्रय नहीं। एक स्त्री निपट, स्वच्छंद रहना चाहती है। उसके मूल में अगर यही अभिलाषा रहती है कि वह माता बनने से बची रहे और पुरुष के प्रति उसका प्रेयसी रूप ही प्रतिष्ठित बना रहे तो एक स्त्री के लिए इससे बड़ी प्रवंचना कोई नहीं हो सकती। अंततः उसे पछतावा ही हाथ लगता है। स्त्री अधिकारों की बात की जाये तो आधुनिक युग में स्त्री और पुरुष दोनों समान अधिकारों के हकदार हैं, किन्तु पितृसत्तात्मक समाज लिंग के आधार पर स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित रखता है। उसे हाशिए पर जीवन जीने के लिए बाध्य कर देता है। इन असमानताओं के खिलाफ तथा स्त्रियों के अधिकार प्राप्ति हेतु किये जाना वाला संघर्ष ही नारी मुक्ति आन्दोलन है। हिन्दी साहित्य में महिला उपन्यास लेखिकाओं का दायरा घर-परिवार तक ही सीमित नहीं रहा है। उनका प्रभाव समाज और राष्ट्र में भी रहा है। 'मन्नू भंडारी का 'महाभोज', महाश्वेता देवी का 'जंगल के दावेदार', कृष्णा सोबती का 'जिन्दगी नामा', कुरेतल एन हैदर का 'आग का दरिया', प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता', नासिरा शर्मा का 'जिंदा मुहावरे', चित्रा मुदगल का 'आंवा', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी', मृदला गर्ग का 'चित्तकोबरा', राजी सेठ का 'तत्तसम' और 'निष्कवच' आदि उपन्यासों में स्त्री का यथार्थवादी स्वरूप देखने को मिलता है।

मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' एक सफल स्त्रीवादी उपन्यास है। जो पुरुष प्रधान समाज में जीने वाली स्त्रियों के शोषण एवं मुक्ति की कथा कहता है। स्मिता, मरियम, नर्मदा, असीमा, नीरजा आदि इस उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र हैं। यह सभी पुरुष समाज की निर्लज्ज व्यवस्था से मुक्ति पाने की अभिलाषा रखती हैं। 'सूरज मुखी अंधेरे की' या 'इंसाफ के तराजू' की मृदुला गर्ग कहती हैं- ''नायिका की तरह, मैं खुद को दूषित पानी क्यों नहीं मानती? खुदकुशी करने को मेरा जमीर मुझे नहीं उकसाता? मेरा मन मुझे धिक्कारता था तो सिर्फ इसलिए कि मैंने प्रतिशोध नहीं लिया। भगौड़े की तरह पलायन क्यों किया? पर क्या एक बेहतर जिन्दगी जीने का ख्याल देखना बुजदिली है।''[6]

साहित्यकारों ने उपन्यास में नारी के जिन विविध रूपों को प्रस्तुत किया है। उनमें अहंकारी, गर्विष्ठ एवं आत्म संघर्षित नारी का चित्रण भी प्राप्त होता है। ऐसी नारी ग्रहस्थ जीवन के बंधन को तोड़कर महत्वाकांक्षा के आकाश में मुक्त विचरण करना चाहती है। अपने रूप के अहं से प्रेरित होकर पुरुषों से स्पर्धा में लीन होकर अपने उत्तरदायित्व से मुख मोड़ती है। परन्तु अंत में ऐसी स्त्री अपने प्रयोजन में असफल होकर आत्म संघर्ष की आग में स्वयं जलती हुई दिखाई देती है।

जैनेन्द्र के 'सुखदा' उपन्यास की बात की जाए तो उसमें एक अंहकारी, गर्विष्ठ एवं आत्म संघर्षित स्त्री का रूप सामने आता है। बचपन में मिले लाड़-प्यार और वैभव के कारण उसमें अहं एवं रूप गर्विता उत्पन्न हो जाता है। जब उसकी शादी हो जाती है तब उसके रूप के कारण अहं में भी वृद्धि होती है। वह स्वयं उसे प्रकट करते हुए कहती है- ''मैंने जाना था कि मैं सुन्दरी हूँ। इसका गर्व मुझे था। लेकिन पति मुझे सामने बिठाकर बिना कुछ बोले लगातार कई मिनट तक मुग्ध दृष्टि से निहारते रह जाते थे। तब मैंने मन ही मन में मान लिया था कि मैं असामान्य रूप से हूँ।''[7] पुरुष प्रधान समाज में कभी-कभी शिक्षित एवं गुण सम्पन्न होने के बावजूद स्त्री को आत्म संघर्ष की आँच में तपना पड़ता है। 'कल्याणी' उपन्यास की कल्याणी एक ऐसी आधुनिक नारी है, जो विलायत से डॉक्टरी पास करके आई है। वह अत्यंत पतिव्रता, धर्मपरायणा, सद्विचारी पत्नी है। अपने पति का वह आदर और सम्मान करती है। फिर भी स्वार्थी और संकुचित विचारों वाले पति के व्यवहार के कारण कल्याणी आत्म संघर्ष करती है। कल्याणी

के आत्म संघर्ष को उपन्यासकार ने इस तरह व्यक्त किया है-''मैं पति परायण हो जाऊँ या डॉक्टरी की कमाई करके दूँ। दोनों एक साथ होना कठिन है। पैर दो नावों पर रहेंगे तो हालत डगमग रहेगी और जो मेरे ही चुनने की बात हो, तो मैं कहूँगी डॉक्टर मैं नहीं बनना चाहती पर अगर तुमको डॉक्टरी की आमदनी भी चाहिए, उसके बिना अगर नहीं चलता हो तो पतिव्रता की माँग उतनी कसी नहीं रखी जा सकेगी। थोड़ा उसे उदार करना होगा।''[8] स्वाभिमान और स्वच्छन्दता मानव व्यक्तित्व के ऐसे गुण हैं जो सही दिशा में हो तो व्यक्ति का विकास करता है, अन्यथा उसे पतन की ओर ले जाता है। रूपसिंह चन्देल के उपन्यास 'दगैल' में विनीता एक ऐसी ही स्वाभिमान स्त्री के रूप में सामने आती है। जो सर्वप्रथम अपने स्वाभिमान को प्राथमिकता देती है। पुरुष शिक्षित हो या अशिक्षित उसका निशाना हमेशा एक स्त्री ही रही है। 'दगैल' उपन्यास की महिला पात्र विनीता जो एक शिक्षित महिला के रूप में सामने आती है। विनीता विश्वविद्यालय की तरफ से नवीन शुक्ल को अपने शोध निर्देशक के रूप में पाती है। लेकिन विनीता के लिए नवीन शुक्ल की आदत एक भेडिये से भी ज्यादा खतरनाक साबित होती है। वो शोध निर्देशक बाद में, पुरुष पहले होता है। आदिम युग से आज तक पुरुष ने स्त्री को नोचा ही है। नवीन शुक्ल भी विनीता पर भूखे भेड़िये की तरह नजर बनाये रखता है और समय मिलते ही उस पर वार भी करता है। लेकिन विनीता थोड़ी होशियारी दिखाकर उसकी आँखों में लाल मिर्च पाउडर डाल देती है। और विनीता अपने कागजों को बैग में ठूंस लेती है। विनीता अपने स्वाभिमान को बचाने के लिए पीङ्कएचङ्कडीङ्क की उपाधि भी दाव पर लगाने के लिए राजी हो जाती है और कहती है- ''भाड में जाये डॉक्टरेट।''[9]

रूपसिंह चन्देल ने अपने उपन्यासों में ऐसी स्त्रियों को भी प्रस्तुत किया है, जो अपनी आबरू को बचाने में अपना भविष्य दाव पर लगा देती हैं। दूसरी तरफ आधुनिक युग की ऐसी स्त्री पात्र का चरित्र भी उजागर किया है जो भविष्य को बनाने में अपनी आबरू ही दाव पर लगा देती हैं। 'गलियारे' उपन्यास में रूपसिंह चन्देल ने रिश्तों में घनिष्ठता और रिश्तों में बिखराव को प्रमुख विषय बनाया है। एक स्त्री अपने स्वार्थ के लिए आज के समय में किसी भी रिश्ते की बलि चढ़ा सकती है। प्रीति एक ऐसी ही स्त्री साबित होती है। प्रीति सुधांशु से लव मैरिज करती है लेकिन बाद में उसे छोड़ देती है। प्रीति और सुधांशु दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का द्वन्द्व है। एक संस्कृति जो कुलीन है और दूसरी संस्कृति जो अकुलीन है। अत: दोनों के मार्ग पृथक-पृथक हो जाते हैं। दो संस्कृतियों के अलग-अलग 'गलियारे' उपन्यास में स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। कुलीन संस्कृति जहाँ पतन का शिकार होती है तो वहीं ग्राम्य संस्कृति अपने सपनों के संग घुट-घुटकर मर जाती है। प्रीति एक आधुनिक स्त्री है जो ऊँचा पद पाने के लालच में अपने प्यार का गला घोंट देती है। प्रीति अपने बॉस की बाहों में समा जाती है। उसे बिल्कुल भी अपने पति सुधांशु का डर नहीं रहता। एक दिन वह अपने बॉस के साथ अपने ही घर में एक रात, एक ही बिस्तर पर सोती है और सुधांशु के बारे में सोचकर कहती है-''यदि सुधांशु ने देखा भी होगा तो क्या अपनी जिन्दगी अपने ढंग से जीने का हक मुझे नहीं। पराश्रिता हूँ नहीं कि पति के आगे-पीछे होती रहूँ..... किसे बुलाना है, किससे मिलने जाना है.... टिपिकल भारतीय महिलाओं की भाँति पतियों से पूछकर हर काम करूँ?''[10] वैसे एक स्त्री प्रेम की साक्षात प्रतिमूर्ति होती है। सभ्यता और संस्कृति का विकास करते हुए मनुष्य ने अन्य जीवन मूल्यों के साथ-साथ 'प्रेम' नामक मूल्य का निर्माण भी किया था। जिसकी बुनियाद में स्त्री पुरुष का नि:शेष समर्पण होता है। एक-दूसरे के लिए आत्मोसर्ग की भावना होती है। मन और देह से हमेशा के लिए एक होने की चाह होती है। विविध संघर्षों को झेलकर अंत में समाज की मान्यता एवं स्वीकृति प्राप्त करने की भावना होती है। वास्तव में प्रेम मानव-मन की एक विशेष अनुभूति होती है। जो उसके मन में वासना को मिटाकर उसकी आत्मा को पवित्र बना देती है। लेकिन कभी-कभी प्रेम का स्वरूप आत्मा को अपवित्र भी बना देता है। वस्तुत: आज के जीवन में प्रेम, रोमांस, विवाह, सेक्स आदि के विविध रूप व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन को काफी दूर तक प्रभावित करते हैं। लेकिन कई बार प्रेम जीवन का आधार भी बनता है तो कभी भ्रम और छलावा। आधुनिकता की ओट में व्यक्ति को स्वतंत्रता, मुक्ति की छटपटाहट है। पात्र चाहे पुरुष हो या स्त्री वह अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता का पक्षधर रहता है। डॉ. इन्द्रमाली प्रकाश श्रीमाली के शदों में-''नारी लौकिक धरातल पर सब कुछ हासिल करना चाहती है परन्तु निर्णय की स्वतन्त्रता मिलने पर भी वह उसी स्वतन्त्रता से दु:ख को झेलने या उसे काटने का साहस नहीं जुटा पाती है।''[11] जैनेन्द्र के 'सुनीता' उपन्यास में रोमांटिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। स्त्री का सौन्दर्य, स्त्री का प्रेम, पुरुष के हृदय को परिवर्तित भी कर सकता है। इतना ही नहीं उसके लक्ष्यहीन जीवन को उपयोगी एवं सार्थक भी बना सकता है। हरि प्रसन्न जब सुनीता के घर आया था तब स्त्री जाति से भागने वाला एकाकी पुरुष था, परन्तु सुनीता के सैन्दर्य आकर्षण ने उसके अहं को मानो तोड़ दिया था। इसलिए चाँदनी रात में खुले पत्थर पर सो रही सुनीता को देखकर सोचता है- ''ओह! रेश्मी वस्त्र चाँदनी रात में कैसे खिल रहे है और यह मुखड़ा विनिद्रित, सम्पुष्टि कैसा प्यारा लग रहा है। कैसा प्यारा और जहर।''[12] जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' उपन्यास की मृणाल भी शीला के भाई के आकर्षण में

बंधकर रोमांटिक प्रेम की अनुभूति करती हुई प्रेम गगन में चिड़िया बनकर उड़ना चाहती है। मृणाल कहती है-''मैं चिड़िया होना चाहती हूँ। हाँ चिड़िया! उसके छोटे-छोटे पंख होते हैं। पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे उड जाती है। क्यो रे, कैसी मौज है। नन्हीं-सी चिड़िया, नन्हीं सी पूँछ। मैं चिडिघ्या बनना चाहती हूँ।''[13] प्रेम जहाँ जैविक धरातल छोड़कर उन्नत होकर अध्यात्म की भावभूमि पर प्रस्थापित होता है तो उसे प्रेम का उदात्त रूप या अलौकिक प्रेम की संज्ञा दी जाती है। वास्तव में प्रेम की उद्भावना भौतिक धरातल पर ही होती है, परन्तु उसका उन्नयन या उन्मेष आध्यात्म की भूमि पर होता है। इसलिए नर और नारी का प्रारंभिक प्रेम सौन्दर्य और भोग परक होता है, परन्तु जब उसे चिंतन का स्पर्श मिलता है, तब उसमें कामना के बदले भक्ति का भाव बलवन्तर बन जाता है। जो व्यक्ति को प्रेमी से परिव्राजक या स्नेही से संन्यासी बना देता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि एक स्त्री को विविध शिल्प और कला कौशल में भी पारंगत होना चाहिए। उसे उन सब गुणों को प्राप्त करना चाहिए जो उसे हर क्षेत्र में या समाज में आभायुक्त बनाए। वह अपने पास-पड़ोस और समाज में हो रहे अन्याय के विरूद्ध खड़ी हो और न्याय का साथ दे। अपने बेटे और बेटियों को भी सही शिक्षा और संस्कार दें। विशेष तौर पर बेटों को स्त्रियों का सम्मान करना सिखायें। उन्हें कभी भी ऐसी शिक्षा न दें कि वह बेटा है जैसे चाहे जी सकता है। बेटा और बेटी दोनों को स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता का अंतर अच्छी तरह समझाएं। उन्हें प्रेम दें पर अनुशासन में भी रखें। रिश्तों की गरिमा को समझाएं। भारत के ग्रामीण स्त्रियों की स्थिति अभी भी अच्छी नहीं है। वहीं शहरों में कुछ स्त्रियाँ स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छंद हो गई है। सफलता का मार्ग अपने देश की सभ्यता और संस्कृति को भेंट चढ़ाकर या पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण किसी के भी हित में नहीं है। न उनके और न दूसरे के। अपने देश की मर्यादाओं को ध्यान में रखकर प्रगतिशील होना ही हितकर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैनेन्द्र कुमार - 'सोच विचार' रचनावली खण्ड-8, पृ. सं.-721
2. मुंशी प्रेमचन्द 'निर्मला', पृ. सं.-29
3. भगवती चरण वर्मा- 'चित्रलेखा', पृ. सं.-6
4. जैनेन्द्र कुमार- 'घर-बाहर' रचनावली खण्ड-7, पृ. सं.-198
5. डॉ. सावित्री मिश्र- 'जैनेन्द्र सृजन और सन्दर्भ' पृ. सं.-122
6. मृदुला गर्ग 'कठगुलाब' पृ. सं.-32
7. जैनेन्द्र कुमार- 'सुखदा' रचनावली खण्ड-1 पृ. सं.-497
8. जैनेन्द्र कुमार- 'कल्याणी' रचनावली खण्ड-1 पृ. सं.-399
9. रूपसिंह चन्देल 'दगैल' पृ. स.ं-55
10. रूपसिंह चन्देल 'गलियारे' पृ. सं.-204
11. डॉ. इन्द्र प्रकाश श्रीमाली 'समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रेम- पृ. सं.-208
12. जैनेन्द्र कुमार- 'सुनीता' रचनावली खण्ड-1 पृ. सं.-297
13. जैनेन्द्र कुमार- 'त्यागपत्र' रचनावली खण्ड-1 पृ. सं.-315

पाकिस्तानी परमाणु बम निर्माण में चीन की भूमिका

प्रा० डॉ० आर०एस० पवार

संरक्षणाशास्त्र विभाग प्रमुख, आर.सी.पटेल कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, शिरपूर जि.धुलिया, महाराष्ट्र

प्रस्तावना

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि कभी भी पाकिस्तान की हथियारों की आपूर्ति बाहर से हुई है। इस क्षेत्र में अस्थिरता एवं असंतुन को बढावा मिला है। साथ ही उसका प्रतिकूल प्रभाव भारत पाक संबंधोपर पड़ा है। भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव को जटिल बनाने के कुछ बाह्य शक्तियों ने एक विशेष भूमिका अदा की। इस प्रकार की शक्तियों में सबसे पहले संयुक्त राज्य अमेरिका का नाम लिया जा सकता है। जिसने पाकिस्तान को न केवल हथियारों के साथ ही उसके परमाणु कार्यक्रम का उद्‌भव एवं विकास में विशेष योगदान भी दिया है।

उद्देश्य

1. पाकिस्तानी परमाणु बम का उद्‌भव व विकास का अध्ययन करना।
2. पाकिस्तानी परमाणु बम निर्मिती में चीन की भूमिका को उजागर करना।
3. पाकिस्तानी परमाणु बम निर्मिती प्रक्रिया में अमेरिका की भूमिका का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. पाकिस्तान भारत से पहले तीन लढाईयां हार चुका है जिसका बदला लेने के लिए उसे परमाणु बम की आवश्यकता पड़ी।
2. चीन भारत को अपना शत्रु मानता है इसलिए चीन ने पाकिस्तान को खुले रूप में समर्थन दिया।
3. पाकिस्तान अपने सभी परमाणु संयत्र अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी के लिए अगर खोल नही देता तो अमेरिका से पाकिस्तान को दी जाने वाली शेष आर्थिक और शस्त्रास्त्र सहायता तब तक रोक दी जाए।

पुर्ववर्ती संशोधन कार्य

डॉ.सुभाष कपिला इन्होंने China India Military Confrontation इस ग्रंथ में चीन तथा पाकिस्तान की सैन्य व्यवस्था संबंधोपर प्रकाश डाला हुआ है। प्रो. लल्लनजी सिंह इन्होंने भारतीय रक्षा एवं सुरक्षा इस ग्रंथ में चीन द्वारा पाकिस्तान को दी गई सैनिकी सहायता के बारे में अध्ययन किया है। वसीम अहमद खान इन्होंने भारत-चीन-पाकिस्तान संबंध इस ग्रंथ में भारत-चीन-पाकिस्तान विदेश नीति तथा आण्विक क्षमता का अध्ययन किया है।

उपरोक्त अध्ययन से यह पता चलता है कि, पाकिस्तानी परमाणु कार्यक्रमचीन की विशेष भूमिका रही है यह विषय पर अधिक अध्ययन नही हुआ है। इसलिए मेरा यह प्रयास रहा है कि पाकिस्तानी परमाणु बम निर्माण में चीन की भूमिकाविषय पर अध्ययन किया जायेगा।

विषय विवेचन

पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम मेंन केवल अमेरिका ने उसे सहायता प्रदान की बल्कि चीन और फ्रांस ने भी महत्वपूर्ण सहायता दी। चीन और पाकिस्तान भारत के पडोसी होने के साथ-साथ दोनों देश भारत को अपना शत्रु मानते है। पाकिस्तान भारत से तीन लढाईयां हार चुका है जिसका बदला लेने के लिए उसने परमाणु बम का सहारा लिया, और इसके लिए पाकिस्तान को परमाणु बम सम्बन्धी सामग्री की आवश्यकता पडी जो उसने अमेरिका के अलावा चीन व फ्रांस से प्राप्त करने का निर्णय लिया।

सन 1957 में पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री सुहरावर्दी ने यह घोषणा की कि, ''मैं चीन के साथ मैत्री चाहता हूँ। मैं इस विषय में अकेला नहीं हूँ। मुझे इस बात का निश्चय है कि जब संकट का समय आयेगा, चीन हमारी सहायता करेगा।'' सुहारावर्दी की इस आशा ने उस समय रंग लाना शुरू किया जब सन 1959 से चीन और भारत के सम्बन्धों में सीमा प्रश्न को लेकर कटुता बढने लगी। सन 1961 से पाकिस्तानी की ऐसी किसी प्रतिरक्षा संगठन में रूची नहीं है, जिसकी रचना चीन के विरूध्द की गयी हो। अक्तूबर, सन 1962 में भारत पर चीन के आक्रमण के समय से पाकिस्तान चीन के साथ अपने सम्बन्धों को घनिष्ठ बनाने में निरन्तर प्रयत्नशील रहा है। इस काल में चीन के साथ पाकिस्तान ने अनेक समझौते किए इस काल में चीन के साथ सैनिक सहायता प्राप्त करना था।

जब फ्रांस ने अमेरिका के दबाव में आकर पाकिस्तान को कुछ समय तक प्रोसेसिंग प्लांट देना मंजूर नहीं किया तो सन 1976 में भुट्टो साहब की नजर चीन पर पडी। अमेरिका ने अपनी चीन दोस्ती का दम भरते हुए चीन को एटमी हथियार बनाने मे सहायता पहुंचाई है। वरना चीन के पास एटमी हथियार बनाने का सन 1960 तक जो तरीका था वह पुराना और महंगा था। सन 1976 में अपनी चीन यात्रा के दौरान जुल्फिकार अली भुट्टो ने हालैण्ड के आम्लेलो से डॉ कादिर खान द्वारा चुराई गई स्कीम को चीन के सामने रखा।

बहरहाल पाकिस्तान ने चीन से आग्रह किया कि वह उसे परमाणु तकनीकी व साजसामान की पूर्ति करे जिससे कि पाकिस्तान की योजना दिसम्बर सन 1977 में ही प्रथम परमाणु बम के विस्फोट की थी, परन्तु इस समय से 6 माह पूर्व की जनरल जिया ने युध्दों को अपदस्थ करके सत्ता सम्भाल ली और भुट्टो का इस्लामी बम का स्वप्न उनके जीवन काल में पूरा न हो सका और चीन का सहयोग भी इस स्थिति में कुछ समय के लिए स्थगित हो गया।

अपने अस्तित्व के आरम्भिक दिनों से ही पाकिस्तान चीन के साथ अच्छे सम्बन्ध कायम रखने की आवश्यकता के प्रति सजग था और चीन ने भी पाकिस्तान का साथ खुले रूप में दिया क्योंकि चीन जानता था कि-पाकिस्तान के इस कदम के मूल में भारत विरोधी भावना मुख्य रूप से काम कर रही थी। इसलिए चीन ने पाकिस्तान को परमाणु बम बनाने के लिए महत्वपूर्ण उपकरण प्रदान किए।

ज्ञातव्य है कि नाभकिय क्षमता के उद्देश्य से पाकिस्तान को सन 1975 से ही चीन की प्रौद्योगिकी प्राप्त हो रही थी। उस समय बताया गया था कि चीन के बारह वैज्ञानिक पाकिस्तान की इस मामले में सहायता कर रहे थे। इसलिए पाकिस्तान के प्रमुख दैनिक समाचार पत्र डॉन ने अपने 30 मई सन 19७6 के सम्पादकीय में लिखा था कि पाकिस्तान की सैन्य व्यवस्था को सक्षम बनाने जाने में चीन का योगदान प्रशंसनीय है। इसी प्रकार 4 जून सन 1976 को पेकिंग रिव्यू में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया कि चीन पाक सैनिक वार्ता अब काफी स्तर पर है, रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि भुट्टो की चीन यात्रा के दौरान सन 1974 में चीन पाक के मध्य जिन समझौते पर प्रारम्भिक बातचीत की गई थी जिनमें केवल पाकिस्तान की सैनिक व्यवस्था को आधुनिकीकृत करने में चीन द्वारा सहयोग का भी विषय शामिल था। इन समझौते को भावी आवश्यकताओं के अनुरूप नवीनतम रूप देने का प्रयास किया गया।

बरहाल पाकिस्तान की महत्वाकांक्षा स्थल सेना व जल सेना से अधिक अपनी वायु सेना की प्रहारक क्षमता में अधिक से अधिक वृध्दि करने की है। इसलिए सन 1979 के प्रारम्भ में फ्रांस के साथ मिराज-3 व मिराज-5 किस्म के विमान खरीदने का 33 करोड डालर का एक अनुबन्ध किया गया जिसके अन्तर्गत इनकी आपूर्ति सन 1981-83 तक कभी भी प्रारम्भ की जानी थी। सन 1980

तक 200 करोड डालर मूल्य का सैनिक साज सामान जिसमें लडाकू सामान, विमान, टैंक, गश्ती नौकायें व अन्य हथियार सम्मिलित थी, पाकिस्तान को चीन से प्राप्त हो चुका था। जिसकी कोई कीमत नही देनी पडी। इसके अलावा उसे सऊदी अरब व अन्य इस्लामी देशों से पर्याप्त सहायता मिली थी, जिसका उपयोग वह अपनी सेनाओं के आधुनिकीकरण के लिए करता रहा है।

पाकिस्तान और चीन परमाणु क्षेत्र में घनिष्ट सहयोग कर रहे है। अमेरिकाके सिनेटर एलन क्रेस्टन ने इन दोनों देशों पर परमाणु क्षेत्र पर सांठ-गाठ करने का आरोप लगाया था। उनका कहना था कि चीन पाकिस्तान को परमाणु बम की ट्रिगर सिखा रहा है और अब पाकिस्तान परमाणु विस्फोट किए बिना बम बना सकता है। चीन पाकिस्तान को सेन्ट्रीफ्युज विधी को अधिक कारगर बनाने में सहायता दे रहा था तो पाकिस्तान चीन को युरेनियम को परिष्कृत करने की विधियॉ विकसित करने में सहयोग दे रहा था। पाकिस्तान ने चीन को कुछ नये परमाणु डिजाइन भी दिये और सेन्ट्रीफ्युज विधि को अधिक कारगर बनाने के साथ-साथ पाकिस्तान में प्लूटोनियम को फिर से इस्तेमाल लायक बनाने का काम भी जारी था।

अब यह बात एकदम स्पष्ट हो चुकी है कि पाकिस्तान को परमाणु बम बनाने में चीनबडें पैमाने पर सहायता देता रहा है। परमाणु बम के सिलसिले में चीन और पाकिस्तान की इस मिली भगत को बेनकाब किया अमेरिका के सिनेटर एलन क्रेस्टन ने अमेरिका सीनेट में एक विस्तृत दस्तावेज प्रस्तुत करके उन्होंने आशंका व्यक्त की कि पाकिस्तान सन 1986 में अमेरिका से मिलने वाली शेष 3.2 अरब डालर की आर्थिक और शस्त्र सहायता प्राप्त करने तक प्रतीक्षा कर रहा है। जिसके बाद वह परमाणु विस्फोट कर देगा। क्रेस्टन ने मांग की कि पाकिस्तान को दी जाने वाली शेष आर्थिक और शस्त्रास्त्र सहायता तब तक रोक दी जाए जब तक कि वह अपने सभी परमाणु संयत्र अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी के लिए खोल नहीं देता। अमेरिकी गुप्तचर संस्था का कहना है कि सन 1983 में जब चीन ने अपने बमों मेंसे एक का डिजाइन और दो बम बनाने के लिए पर्याप्त यूरेनियम पाकिस्तान को दिया था। उस समय पाकिस्तान को परमाणु बम बनाने की क्षमता प्राप्त हो गयी थी। इस चीन का सहयोग का नतीजा 4 मई 1983 को उस समय सामने आया जब यह खबर उड़ी कि पाकिस्तान ने चीन के लोपनार नामक स्थान में अपने एटम बम की परीक्षा की है।

ज्ञातव्य है, सन 1996 में यद्यपि पाकिस्तान और चीन ने साथ ही इस बात का खण्डन किया कि चीन रावलपिण्डी के निकट एक मिसाइल फैक्टरी कायम कर रहा है। तथापि अब इस बात के अकाट्य प्रभाव प्राप्त हो गये है कि चीन निश्चित रूप से पाकिस्तान के मिसाइल और नाभकिय कार्यक्रमों में न केवल सहयोग दे रहा है वरन् उसे पूरा भी कर रहा है। चीन पाकिस्तान को परमाणु रिएक्टर स्थापित करने में मदद दे रहा है। उसके सहयोग से चश्मा में 300 मेगावाट का एक परमाणु संयत्र के 1998 में चालू हो जाने की आशा थी। जो कि हल्केपानी वाला रिएक्टर होगा और इसमें अल्पबर्ध्दत युरेनियम का इस्तेमाल होगा। यह अन्तर्राष्ट्रीय आण्विक ऊर्जा एजेन्सी के मापदण्ड के अनुरूप कार्य करेगा। इतना ही नहीं चीनी रक्षा वैज्ञानिकों की सहायता से ही काहुटा केन्द्र एवं आइजनहावर द्वारा लगाए गए रिएक्टर का आधुनिकीकरण किया गया। पाकिस्तान के अति गुप्त प्लूटोनियम उत्पादक रिएक्टर का निर्माण सन 1980 कि दशक के मध्य सिन्धु नदी के किनारे गुप्त स्थान पर शुरू हुआ था जो कि अब पूरा होने वाला है। इस तरह चीनी तकनीकी के मदद से पाकिस्तान परमाणु बम बनाने में सक्षम हो गया है।

निष्कर्ष

1. पाकिस्तान भारत से तीन लढाईयां हार चुका है जिसका बदला लेने के लिए उसे परमाणु बम की आवश्यकता पड़ी।
2. पाकिस्तानी परमाणु बम निर्मिती प्रक्रिया में चीन के साथ अन्य देशों की अहंम भूमिका रही है।
3. पाकिस्तानी सैन्य आधुनिकीकरण में चीन की सक्रिय भूमिका रही है।
4. पाकिस्तान अपने सभी परमाणु संयत्र अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी के लिए मना कर दिया इसलिए अमेरिका ने पाकिस्तान को आर्थिक और शस्त्रास्त्र सहायता रोक दी हैं।

समारोप

चीन और पाकिस्तान का गुप्त सैन्य गठजोड एक बार फिर सार्वजनिक हो गया है। चीन पाकिस्तान के जनसंहारक हथियार कार्यक्रम को लगातार समर्थन दे रहा है। पाकिस्तानी परमाणु बम निर्मिती प्रक्रिया में चीन ने हमेशा पाकिस्तान की मदद की है। चीन

और अन्य देशों की सहायता से पाकिस्तान ने परमाणु कार्यक्रम पूरी तरह से विकसित किया है। पाकिस्तान ने 28 व 30 मई 1998 को 6 परमाणु परीक्षण से इस बात की पुष्टि हो चुकी है।

संदर्भ

1. डॉ.लल्लन जी सिंह: 1993, राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा, प्रकाश बुक डिपो बरेली
2. डॉ.परशुराम गुप्त: 1985, परमाणु निरस्त्रीकरण, प्रकाश बुक डिपो बरेली
3. डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव: 2006, भारतीय परमाणु नीती, राधा पब्लीकेशन नई दिल्ली
4. डॉ.राजेंद्र प्रसाद: 1993, राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा, प्रकाश बुक डिपो बरेली
5. डॉ.सुरेंद्र मिश्र आकाश मिश्र: 1999, भारत-पाक सम्बध, प्रकाश बुक डिपो बरेली
6. कृष्णानंद शुक्ल: 2008, विश्व का परमाणु संकट, राधा पब्लीकेशन नई दिल्ली
7. जे.एन.दिक्षित: 2003, भारत पाक संबंध, ग्यान बुक डेपो नई दिल्ली
8. खान वसिम अहमद: 2010, भारत-चीन-पाकिस्तान संबंध, डिस्कवरी पब्लिकेशन नई दिल्ली
9. राघवन वी आर: 1999, सियाचीन कॉन्फ्लिक्ट विदआऊट एंड, नई दिल्ली
10. एरिक आर्नेट: 1995, मिलिटरी टेक्नॉलॉजी द केस ऑफ चायना, सिपरी इअर बुक
11- Kapila Subhash : 2015, China India Military Confraontation, Partridge India

भारत के वित्तीय क्षेत्र में सूचना प्रोद्योगिकी की भूमिका

डॉ० प्रमोद कुमार त्रिपाठी

सहायक आचार्य, वाणिज्य विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कालेज, गोरखपुर

सूचना प्रोद्योगिकी ने प्रायः समाज के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लाकर मानव जीवन को सहज बनाने का कार्य किया। भारत में बैकिंग सहित वित्तीय क्षेत्र तो इससे विशेष रूप से लाभान्वित हुआ है। सूचना प्रोद्योगिकी के कारण बैकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र जहाँ नई-नई सुविधाओं से लैस हुए है, वही इनके कार्यों में पारदर्शिता भी बढ़ी है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सूचना प्रोद्योगिकी के कारण बैकिंग एवं वित्तीय सेवाओं तक लोगों की पहुंच बढ़ी है। इनकी भूमिका से 12वीं पंचवर्षीय योजना का केन्द्र बिन्दू भी तीव्र संपोषणीय एवं अधिक समावेशी विकास करना था।[1] जिससे समावेशी विकास एवं वित्तीय समावेशन जैसी प्रक्रियाओं को गति एवं बल मिला है।

बैकिंग एवं वित्तीय में समग्र रूप से बेहतर आंतरिक व्यवस्था बेहतर ग्राहक सेवा एवं समूची व्यवस्था के बेहतर निष्पादन के रूप में सूचना प्रोद्योगिकी के लाभकारी प्रभाव जिस तरह से परिलक्षित हुए है, उसे देखते हुए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सूचना प्रोद्योगिकी को बैकिंग एवं वित्तीय प्रणाली में अधिकाधिक प्रोत्साहन दिए जाने के प्रयास सुनिश्चित किए जा रहे हैं। इसका पता भारतीय रिजर्व बैंक के उस दृष्टि दस्तावेज से चलता है, जिसमें प्रोद्योगिकीय अनुप्रयोग प्राविधियां किए जाने पर विशेष बल दिया गया है। इसमें जहां नियमन एवं पर्यवेक्षण के लिए सूचना प्रोद्योगिकी को वित्तीय एवं बैकिंग प्रणाली में सक्रिय रूप से प्रोत्साहन दिए जाने की बात कही गई है, वहीं यह भी प्रस्ताव है कि एक विशिष्ट संस्थान के रूप में बैकिंग प्रोद्योगिकी शोध एवं विकास संस्थान की स्थापना की जाए।

यकीनन सूचना प्रोद्योगिकी ने एटीएम, इंटरनेट बैकिंग, कोर बैकिंग सेवा एवं साक्षी भुगतान प्रणाली जैसे अपने अभिनव एवं अधुनातन माध्यमों से भारत के वित्तीय एवं बैकिंग क्षेत्र को एक नवीन चेहरा प्रदान करने का काम किया है। ई-बैकिंग ने बैकिंग एवं वित्तीय दुनिया को बहुत ही सहज एवं सरल बनाने का काम किया है। वस्तुतः मौजूदा दौर ई-बैकिंग का ही है, जिसके माध्यम से आप घर बैठे बैकिंग से जुड़े अनेक कार्य कर सकते है। आनलाइन बैकिंग, इलेक्ट्रानिक फंड ट्रांसफर, मोबाइल बैकिंग, कार्ड पेमेंट आदि इसी के घटक हैं। एटीएम, डेबिट कार्ड एवं क्रेडिट कार्ड के रूप में ग्राहकों को जो सुविधाए मिली हैं, वे प्रशंसनीय हैं। कुछ समय पूर्व भारत सरकार द्वारा स्वदेशी पेमेंट गेटवे कार्ड रूपे (RuPay) जारी किया जा चुका है। इसके जारी होने से भारत विश्व के उन विशिष्ट देशों में शामिल हो गया है, जिनके पास अपनी स्वदेशी कार्ड भुगतान प्रणाली है। रूपे कार्ड के माध्यम से लोगों द्वारा 'वीसा' (Visa) एव 'मास्टर कार्ड' (Master Card) की तरह एटीएम से धन निकाला जा सकेगा खरीदारी भी की जा सकेगी। एटीएम से धन निकासी आसान हुई है। भले ही आपका खाता किसी भी बैंक में हो और आप कहीं भी हो, एटीएम से धन की निकासी कर सकते हैं। सिर्फ धन निकासी ही नहीं कर सकते, आवश्यकता महसूस होने पर अपना बैलेंस भी चेक कर सकते हैं। एटीएम को परस्पर तंत्रबद्ध कर इस साझी भुगतान प्रणाली को संभव बनाने में सूचना प्रौद्योगिकी ने केंद्रीय भूमिका निभाई है। अब सफर आदि के दौरान लोगों को भारी भरकम धनराशि लेकर चलने का जोखिम नहीं उठाना पड़ता। एटीएम कार्ड अपने पास रखिए और सुरक्षित सफर करिए। मुद्रा वह धुरी है, जिसके चारो ओर आर्थिक विज्ञान चक्राकार घूमता है। मुद्रा ने कीमत संयंत्र विकसित किया है, व्यापक स्तर पर क्रय-विक्रय, बाजार व्यवस्था, व्यापार एवं वाणिज्य की रचना की है। डॉ0 वाई.पी. रेड्डी ने मुद्रा आपूर्ति के संकेतकों मे व्यापक परिवर्तन का सुझाव दिया।[2]

''सूचना प्रौद्योगिकी के कारण बैंकिंग एवं वित्तीय सेवाओं तक लोगों की पहुंच बढ़ी है, जिससे समावेशी विकास एवं वित्तीय समावेशन जैसी प्रक्रियाओं को गति एवं बल मिला है।''

ई-बैंकिंग के तहत 'इलेक्ट्रॉनिक क्लियरिंग सर्विस' (ईसीएस) से बार-बार एवं आवधिक आधार पर किए जाने वाले निधि अंतरणों में त्वरितता एवं पारदर्शिता आई है तथा इस इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से मुद्रा के थोक अंतरण की सुविधा प्राप्त कर ग्राहक लाभान्वित हो रहे है। इसी प्रकार 'नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड्स ट्रांसफर' (एनईएफटी) सुविधा को देशव्यापी आधार प्रदान किया गया है। यह एक ऐसी सुविधा है, जिसका लाभ उठाकर व्यक्ति, फर्म एवं कंपनियां, बैंक की किसी एक शाखा से देश में स्थित अन्य किसी बैंक शाखा में खातेदार व्यक्तियों, फर्मों एवं कंपनियों को निधि का अंतरण कर सकते है। सबसे अच्छी बात यह है कि इसमें मूल रूप से राशि भेजने वालों (प्रेषकों) को बिना बैंक खाते के भी निधि अंतरित करने की सुविधा प्रदान की गई है। निधि अंतरण पद्धतियों के विकास के क्रम में 'रीयल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट' (आरटीजीएस) प्रणाली भी महत्त्वपूर्ण साबित हुई है। बड़ी निधियों (न्यूनतम दो लाख रुपये) की बैंकिंग चेनल द्वारा मुद्रा अंतरण की इस सर्वाधिक तेज प्रणाली ने वास्तविक समय एवं सकल आधार पर मुद्रा अंतरण को गति प्रदान की है। उल्लेखनीय है कि वित्तीय क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की उपादेयता को देखते हुए ही डाक विभाग ने भी मोबाइल मनीऑर्डर, इंस्टेंट मनीऑर्डर (आईएमओ) एवं इलेक्ट्रॉनिक मनीऑर्डर (ईएमओ) की सेवाएं प्रारंभ की हैं, जो कि द्रुतगामी हैं। इस प्रकार परंपरागत सेवाओं को तकनीक के प्रयोग से आधुनिक स्वरूप प्रदान किया जा रहा है। स्पष्ट है कि सूचना प्रौद्योगिकी ने देश के बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र को एक ऐसा मजबूत तकनीकी आधार एवं संजाल प्रदान किया है, जिससे त्वरितता बढ़ी है, तो फासले घटे हैं। कामकाज में तेजी भी बढ़ी है। बैंकों के कम्प्यूटरीकरण से जहां कामकाज में दक्षता और कुशलता बढ़ी है, वहीं एक पारदर्शी वातावरण बना है। यह अकारण नहीं है कि बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र में शत-प्रतिशत कम्प्यूटरीकरण के निर्देश केंद्रीय सतर्कता आयोग द्वारा दिए गए हैं। आधुनिक सूचना क्रांति का सूत्रपात प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्थर सी क्लार्क की संकल्पना से शुरू हुआ।[3]

सूचना प्रौद्योगिकी के कारण अनेक स्तरों पर भारत बैकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र लाभान्वित हुआ है। ई-बैंकिंग का सबसे अच्छा लाभ यह मिला है कि इससे बैंकिंग सेवाएं तंत्रबद्ध हुई हैं. भूगतान प्रणाली अस्तित्व में आई है। परिणामस्वरूप परिचालन लागत में कमी आई है। लेन-देन की लागत में कमी आई है। लेन-देन की लागत में 10: की कमी आई है। सूचना प्रौद्योगिकी ने जहां बैंकों को कुशल एवं दक्ष बनाने का काम किया है, वहीं व्यापार परिचालनों को सरल व सहज बनाया है। इस वजह से जहां ग्राहक शीघ्र एवं सीधी सुविधाओं से जुड़े हैं. वहीं व्यावसायिक प्रक्रियाओं के लागत मूल्यों में कमी आई है। सूचना प्रौद्योगिकी विशिष्ट रूप से नए उत्पादों और सेवाओं को द्रुत गति से प्रस्तुत करने में बैंकों के लिए सहायक सिद्ध हुई है। ई बैकिंग ने करोबारी क्षेत्र के साथ वित्तीय क्षेत्रों में भी लेन-देन की सुविधा को सहज बना दिया है। इस प्रकार वैश्वीकरण के युग में सूचना प्रौद्योगिकी ने क्रांति ला दी है।[4]

सूचना प्रौद्योगिकी की मदद से हम समावेशी विकास एवं इसी के एक महत्त्वपूर्ण घटक वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) की दिशा में सधे कदमों से आगे बढ़ रहे है। इस प्रकार जहां हम भारत की आर्थिक संवृद्धि को पर्याप्त रूप से समावेशित बनाने में सफल हो रहे हैं, वहीं इसके अनिवार्य घटक वित्तीय समावेशन के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में भी आगे बढ़ रहे है। सूचना प्रौद्योगिक के कारण बैंकिंग एवं वित्तीय सेवाओं को व्यापक विस्तार मिला है परिणामस्वरूप अल्प आय तथा कमजोर वर्ग के उस बड़े समूह को जो सामान्य रूप से प्रचलित बैंकिंग प्रणाली से लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जाता है, को वहनीय लागत पर बैंकिंग सेवाओं एवं बैकिंग उत्पादों से प्राप्त होने वाला लाभ उपलब्ध हुआ है। इस वर्ग की पहुंच बैंकिंग सेवाओं तक बढ़ने से अब सामान्य बैंकिंग प्रणाली परिणाममूल सिद्ध हो रही है। इसका एक लाभ इस रूप में भी दिख रहा है जहां देश का वंचित एवं गरीब तबका बैंकिंग सेवाओं के दायरे में आने से सूदखोरों, महाजनों एवं निजी वित्तीय संस्थाओं के चंगुल से मुक्त हो रहा है, वहीं वित्तीय मामलों के प्रति उसमें जागरूकता चेतना बढ़ रही है। यह तबका जहां बैंकिंग सेवाओं एवं उत्पादो के महत्त्व को जान पाया है, वहीं उसमें नियमित बचत जैसी आदत विकसित हो रही हैं।

''सूचना प्रौद्योगिकी ने देश के बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र को एक ऐसा मजबूत तकनीकी आधार एवं

संजाल प्रदान किया है, जिससे त्वरितता बढ़ी है,
फासले घटे हैं। कामकाज में तेजी भी बढ़ी है।
बैंक के कम्प्यूटरीकरण से जहां कामकाज में

दक्षता और कुशलता बढ़ी है, वहीं एक पारदर्शी वातावरण बना है।''

सूचना प्रौद्योगिकी की एक महत्त्वपूर्ण देन यह भी है कि बैंक द्वारा तैयार किए गए तकनीकी ढांचे के आधार पर ही हम समावेशन के देशव्यापी वृहद अभियान 'प्रधानमंत्री जन धन का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन कर पाए हैं। इस योजना से सभी परिवारों को एक यथोचित दूरी के भीतर बैंकिंग सुविधाओं तक सार्वभौमिक पहुंच सनिश्चित करवाई जा रही 'जीरो बैलेंस' पर खाता खोलने की सुविधा प्रदान की गई है। दूसरी तरफ एलपीजी हेतु प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण 'पहल' के क्रियान्वयन में भी सूचना प्रोद्योगिकी की केन्द्रीय भूमिका है। इस प्रोद्योगिकी की मदद से ही आधार संख्या को बैंक खाते एवं एलपीजी उपभोक्ता की आईडी से तंत्रबद्ध करना संभव हुआ है। आज यह योजना यदि विश्व की सबसे बड़ी प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण योजना बन गई है, तो इसमें सूचना प्रोद्योगिकी का बड़ा योगदान है। दूसरी तरफ रोजगार हड़पती इस तकनीक ने भावी बेरोजगार पीढ़ियों के लिए चुनौतियां खड़ी कर रही है।[5]

यह कहना असंगत न होगा कि अन्य क्षेत्रों की भांति भारत के बैकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र के लिए भी सूचना प्रोद्योगिकी सुविधाकारी एवं नवप्रवर्तनकारी सिद्ध हुई है। इस तकनीक ने जहां उलझावपूर्ण के संपादन को आसान बनाया है, वहीं पारदर्शिता एवं कुशलता को बढ़ाकर बैकिंग एवं वित्तीय सेवाओं को नए आयाम दिए हैं। जहां बैकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र की आंतरिक व्यवस्था सुचारू हुई है, वहीं बेहतर ग्राहक सेवा का सूत्रपात हुआ है। उम्मीद है कि भविष्य में वित्तीय क्षेत्र में सूचना प्रोद्योगिकी के और लाभकारी प्रभाव देखने को मिलेंगे। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग भारत में तीव्रतम विकासशील क्षेत्र है। भारत का सकल घरेलू उत्पाद 2009-10 से निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। विगत कुछ वर्षों में अत्याधिक माँग के कारण भारत एशिया प्रशान्त क्षेत्र में तीव्र वृद्धि वाला सूचना प्रौद्योगिकी बाजार बन गया है।

संदर्भ

1. 12 वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17)
2. डॉ. वाई.पी. रेड्डी, भारतीय अर्थव्यवस्था, परीक्षा वाणी, इलाहाबाद पेज नं. 200।
3. आर.के. वैश्य, वही पेज, 160।
4. मिश्रा एवं पूरी, भारतीय अर्थव्यवस्था।
5. नीति आयोग रिर्पोट, नेशनल स्ट्रैटजी फॉर आर्टिफिशियल इंलेलिजेंस।

लम्बी कविता का सौन्दर्यशास्त्र और मुक्तिबोध की कविता

सतीश कुमार

शोध छात्रए हिन्दी विभाग. डी ए वी पी जी कॉलेजए आजमगढ़
सम्बध्द, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालयए जौनपुर

शोध-संक्षिप्त

मुख्यत: हिन्दी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र पर आधारित है। पाश्चात्य साहित्य की सौन्दर्यदृष्टि पूंजीवादी एवं सामन्तवादी है। जबकि संस्कृत साहित्य का मूलाधार सामन्तवादी एवं ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण हिन्दी साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र पर संस्कृत साहित्य का पूर्णाधिकार विराजमान रहा वह भी एक लम्बे अर्से तक पर धीरे-धीरे जब भारतीय साहित्यकार पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन करते है उसका विश्लेषण करते है तो पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र की छाप हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों की रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है।

पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र में हिन्दी साहित्य पर प्रभाव को लेकर डॉ0 मस्तराम कपूर की टिप्पणी ध्यान आकर्षित करती है, उनका मानना है- ''पश्चिमी साहित्यशास्त्र के सम्पर्क में आने के बाद भी हमने अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार नहीं किया बल्कि उसकी जैसे-तैसे अपने साहित्य के साथ संगति बैठाने की कोशिश की। शुक्ल जी ने यह कार्य बड़ी ही चतुराई से किया कि पश्चिमी शास्त्र की अवधारणाओं को भारतीय साहित्यशास्त्र की मूल धारणाएँ बना दिया।''[1]

साहित्य का लक्ष्य या उद्देश्य या प्रश्न उसके सौन्दर्यशास्त्र से गहरे रूप से जुड़ा है। बिना लक्ष्य या उद्देश्य को उद्घाटित किए सौन्दर्यशास्त्र की कसौटियों का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। पाश्चात्य चिंतन और भारतीय चिंतन में साहित्य के उद्देश्य को लेकर प्रकारांतर से एक बहस चलती जा रही है। इसी बहस ने साहित्य और कला के विषय एवं रूप के निर्धारण में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्य एवं कला क्या लक्ष्यपरक होती है या वह केवल अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति तक ही सीमित है? क्या साहित्य एवं कला अपने एक उद्देश्य को पाकर आगे बढ़ती है या शब्दों द्वारा स्रपेषित होकर समाप्त हो जाती है। कला के बारे में बताते हुए अर्स्ट फिशर ने कहा-''समस्त कला अपने काल से अनुबंधित होती है और जहाँ तक वह एक खास ऐतिहासिक स्थिति के विचारों और आकांक्षाओं से, आवश्यकताओं और आशाओं से मेल खाती है, मानवता का प्रतिनिधित्व करती है, लेकिन इसके साथ ही कला इस सीमा के पार भी जाती है। उस ऐतिहासिक क्षण में वह निरंतर विकास का आश्वासन देते हुए मानवता के एक क्षण को भी जन्म देती है।?

फिशर ने काव्य का उद्देश्य मानव भावनाओं को अभिव्यक्ति देना माना है। वह अपने युग की आशाओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। उनका प्रतिनिधित्व करता है और मनुष्य को उसके विकास का आश्वासन देता है। उन्होंने काव्य के केन्द्र में मनुष्य को रखा है। इस मायने में यह परिभाषा उपयुक्त है। काव्य मनुष्य के सामाजिक अनुभवों, अंतर्विरोधों को सामने लाता है। ऐसे में वह मानवेत्तर कैसे हो सकता है? किसी भी काव्य-कला का उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास ही होना चाहिए। इसके साथ ही काव्य केवल यथास्थिति का निरुपण करने वाला नहीं हो बल्कि उसमें जीवन और समाज का मूल्यांकन भी होना चाहिए।

काव्य अपने परिवेश का विवेचन करता है। वह यथास्थितिवादी चेतना के विरोध में परिवर्तनकारी मूल्यों का वाहक भी होता है। इसीलिए लेखक से उम्मीद की जाती है कि वह अपने समकालीन प्रतिक्रियावादी मूल्यों और उत्पीड़नकारी सत्ता-संस्थाओं की आलोचना भी करे। ऐसा नहीं होने पर काव्य-मात्र सत्ता संस्थानों का स्तुतिगान बनकर रह जाएगा। पाश्चात्य विचारकों के अलावा प्राचीन काल से ही भारतीय विद्वानों ने काव्य के लक्ष्य को लेकर अपने-अपने विचार अपनी तर्क पद्धति के आधार पर सामने रखे हैं। प्राचीन भारतीय चिंतन में काव्य के बारे में शुरूआती दौर से ही काव्य किसे कहा जाए, काव्य हेतु क्या है और काव्य का प्रयोजन क्या हो, इसे लेकर एक लंबी चिंतन प्रक्रिया चली। इसमें हम 'नाट्यशास्त्र' के रचनाकार भरत क`मत को देखते हैं। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में दृश्य काव्य के आधार पर कहा कि-''धर्म, यश, आयुष्मता, हित भावना, बुद्धिवर्द्धन, लोकोपदेश एवं विश्रांति काव्य के प्रयोजन हैं। वामन ने आगे चलकर काव्य के दो लक्ष्य या प्रयोजनों को स्पष्ट किया। उनके अनुसार कीर्ति और प्रीति (आनंद) ही दो प्रयोजन हैं। कुंतक ने 'परमानंद-प्राप्ति' को काव्य का मुख्य प्रयोजन माना तो आनंदवर्धन ने 'आनंद' को उसका लक्ष्य घोषित किया। मम्मट ने इसे आगे बढ़ाते हुए इसकी विस्तार से विवेचना की और यश, अर्थ, व्यवहार, ज्ञान, विश्वेतर क्षति, सद्यः परनिवृत्ति एवं कांति सम्मित उपदेश को मिलाकर काव्य के छह लक्ष्य (प्रयोजन) निर्धारित किए।

संस्कृत के उपर्युक्त आचार्यों ने काव्य के तथ्य के रूप में यज्ञ, आनंद एवं अर्थ का निर्धारण किया। यह तीनों लक्ष्य सर्वप्रथम केवल कवि तक ही सीमित हो जाते हैं। इसमें किसी समाज या समुदाय और मनुष्य का कोई भी हित शामिल नहीं हो पाता। यानी कवि केवल अपनी प्रसिद्धि को ध्यान में रखकर ही रचना करता है। संस्कृत का अधिकांश बौद्ध रचनाओं को छोड़कर सत्ता-संस्थानों के नखदंतों को पैना करता रहा और उनका स्तुतिगान करके मानवेत्तर महाकाव्य की रचना करता रहा। अगर कहीं किसी महाकाव्य में मनुष्य है भी तो उसकी सौन्दर्यानुभूति या देहानुभूति स्त्री देह पर ही नजरें गड़ाए नख-शिख वर्णन करती रही है। वे साहित्य को भाषा, अलंकार और वाक्चातुर्य से तो सजाते रहे लेकिन मनुष्य की पीड़ा और सृजन क्षमता को रेखांकित कर उसे गरिमा देने की कोशिश नहीं की। कालिदास का मन बारिश में भीगी मिट्टी की सोंधी-सोंधी महक पर तो अटक गया लेकिन उसी वारिश ने एक किसान की चमकीली, आँखों और मुस्तकराते होंठों के कोनों की रेखा को कैसे महकाया इसे कहां पकड़ पाए थे कालिदास? इसीलिए इनका सारा सौंदर्य निर्जीव भावना, बांझ क्षमताओं और जहरीली कसौटियों से बना है।''[2]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि-''साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसके आंकलन से दूरदर्शिता बढ़े, बुद्धि की तीव्रता प्राप्त हो, हृदय में एक बार संजीवनी शक्ति की धारा बहने लगे, मनोवेग परिष्कृत हो जाए और आत्मगौरव की उद्भावना होकर वह पराकाष्ठा को पहुँच जाए। मनोरंजन भाव के लिए प्रस्तुत किए गए साहित्य से भी चरित्र को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए।[3] द्विवेदी जी की इस परिभाषा से कम से कम मनुष्य के चारित्रिक गुण-दोष शामिल हुए। हालांकि उन्होंने इसमें मनुष्य के नैतिक विकास, चरित्र की उन्नति और मनोभावों की परिष्कृति को महत्त्वपूर्ण माना ह। साहित्य संस्कृत की नितांत वैयक्तिक और कवि की भावना से निकलकर पाठक तक जा पहुँचा है। लेकिन इसमें वह चूक जाते हैं कि जब भारतीय समाज, जाति-धर्म और वर्गों में विभाजित है तो अपने वर्गीय और जाति हित में बंधे रचनाकार क्या मानवतावादी साहित्य की रचना कर पाएँगे? सदियों से अनपढ़-गंवार दलित स्त्री और श्रमिक क्या उनके साहित्य के लक्ष्य में कहीं शामिल हैं? आत्मगौरव और गरिमा तो केवल उनके लिए है जिन्हें समाज में सम्मान और बेहतर जीवन जीने की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। लेकिन जिनका समाज में कहीं कोई सम्मान नहीं है, सबसे निम्नतर जीवन जीने को जो अभिशप्त हैं, वह शोषित हैं और अन्याय सह रहे हैं, यह आदर्शवादी बातें क्या उन्हें प्रेरित करेंगी। उनके साहित्य के लक्ष्य में मानवीय पीड़ा, दलित-स्त्री हित और सबके लिए समान जीवन की परिभाषा शामिल नहीं है।[4]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सौन्दर्यानुभूति को भी रसानुभूति के स्तर पर ही देखा है उनका कहना है-''कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अंतस्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। यह तदाकार परिणति ही रसमग्नता भी है। आचार्य शुक्ल लोक की सामान्य भावभूमि और सामान्य हृदय की स्थिति की भांति ही सौन्दर्य के सामान्य आदर्श को भी कल्पना करते हैं। उसे आत्यंतिक वस्तुनिष्ठता और आत्यंतिक व्यक्तिनिष्ठता के बीच लोक-सामान्य धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। सौन्दर्यानुभूति को वे मंगलविधायिनी मानते हैं। उनके अनुसार ''तुलसी और सूर ऐसे सगुणोपासक भक्त राम और कृष्ण की सौन्दर्य भावना में मग्न होकर ऐसी मंगलदशा का अनुभव कर गए हैं, जिसके सामने कैवल्य या मुक्ति की कामना का कहीं पता नहीं लगता।[5]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में-''लोक में फैली दु:ख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनंदकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचंडता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरूद्धों का ही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। आचार्य शुक्ल 'सुंदर' शब्द को काव्य के स्वरूप को लक्षित कराने में असमर्थ मानते हैं। 'सुंदर' शब्द उन्हें ब्राह्यार्थ की ओर संकेत करता जान पड़ता है और इससे काव्यानुभूति का स्वरूप संकुचित होता है। काव्य के अंतर्गत 'सौन्दर्य' प्रेम का आलंबन होकर ही आ सकता है। चमत्कारपूर्ण उक्तियों को भी सुंदर कहा जाता है। ऐसी उक्तियों तथा बेल-बूटे और नक्काशी की सौन्दर्यभावना हल्की रूचि का परिणाम है।''[6]

महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद हिन्दी के दूसरे बड़े आलोचक हैं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल। हिन्दी के प्रगतिशील सवर्ण साहित्यकारों और आलोचकों ने आचार्य शुक्ल को बहुत ही प्रगतिशील और वस्तुवादी नजरिये वाला सिद्ध करने का प्रयास किया है, लेकिन हम स्वयं उनकी प्रगतिशीलता और वस्तुवादिता की परख करने की कोशिश करते हैं। डॉ0 देवेन्द्र त्यागी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि- ''शुक्ल जी रसवादी समीक्षक हैं। काव्य प्रयोजन के संबंध में उनकी धारणा का निरूपण रसानुभूति को केन्द्र में रखकर ही किया जा सकता है। अभिनव गुप्त की भांति उन्होंने भी 'प्रीति' को काव्य का फल माना है। यहाँ प्रीति से उनका अभिप्राय: काव्यस्वाद, रसानुभूति या काव्य सौन्दर्य से है। उनके अनुसार पाठक के हृदय में विभावादि का संयोजन भी काव्य का उद्देश्य है। उन्होंने कवि कल्पना की उत्कृष्ठता की कसौटी विभावादि के निरूपण को ही माना है।

काव्य का परम श्रेष्ठ प्रयोजक वही है जो हृदय को मुक्तावस्था में पहुँचा सके। हृदय की मुक्तावस्था से उनका अभिप्राय रसानुभूति की पराकाष्ठा से है। काव्य का प्रयोजन आत्मिक रहस्य का विवेचन नहीं है, अपितु अध्येता के हृदय को लोक जीवन में लीन करना है। लोकजीवन में लीन करने का अभिप्राय है- हृदय में लोकमंगल की भावना का उद्रेक। काव्य का सौन्दर्य अथवा काव्यस्वाद वही सार्थक है जो लोकमंगल के भावों से उद्भूत हुआ हो। इस प्रकार शुक्ल जी के मन में काव्य का सर्वोपरि प्रयोजन है- जो लोकमंगलोन्मुख रसदशा हृदय की मुक्त दशा तक पाठक को पहुँचा सके।''[7]

उपर्युक्त मत से डॉ0 देवेन्द्र त्यागी ने आचार्य शुक्ल के प्रयोजन को बहुत ही सकारात्मक बनाकर प्रस्तुत करने की भरसक कोशिश की है। लेकिन सर्वप्रथम इस पर विचार होना चाहिए कि जब शुक्ल जी रसवादी समीक्षक हैं तो उनका मूल आशय क्या है? जाहिर सी बात है कि उनका मूल आशय यही होगा कि काव्य के रस को पाठक भी अपने भीतर महसूस करे। काव्य के मूल भाव को श्रोता तक किस प्रकार पहुँचाया जाए। मूल भाव का पाठक या श्रोता के मन में संचयन हो और वह रसदशा की प्राप्ति करे। रसदशा में पहुँचने के लिए पाठक को अपने हृदय के मनोवेगों-मनोभावों से मुक्त होना होगा। इसीलिए वह 'हृदय की मुक्तावस्था' को रसदशा मानते हैं। हाँ, इसमें वह 'लोकमंगल' कार्य की तरफ उन्मुख होने की बात अवश्य करते हैं। लेकिन हम यह जानना चाहते हैं कि आधुनिक युग में व्याप्त तनाव, मनुष्य जीवन के अंतर्विरोध, परिस्थितियों का घात-संघात और मनुष्यपन के भीतर तुरंत आते-जाते भावों की प्रक्रिया में क्या वह अपने उन मनोवेगों से मुक्त होकर काव्य की रसदशा तक पहुँच सकता है? आज मनुष्य की जीवन इतना जटिल हुआ है कि उसे केवल विभाव-अनुभाव और संचारी भाव के आधार पर नहीं समझा जा सकता। उसके लिए मनुष्य की परिस्थितियों को समझना अनिवार्य है, और जहाँ तक लोकमंगल की तरफ उन्मुख होने की बात है तो कैसा लोकमंगल हो उसका आदर्श रूप उन्होंने तुलसी के रामराज्य के रूप में प्रस्तुत किया है यानी कि सब कुछ विश्लेषण किया हुआ आदर्श समाज की परिकल्पना प्रस्तुत है यानी कि सब कुछ विश्लेषण किया हुआ आदर्श समाज की परिकल्पना प्रस्तुत है।

संदर्भ:-

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली चौथी आवृत्ति, 2011, पृष्ठ सं0-45
2. सूरज बड़त्या, सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र, भारतीय दलित अध्ययन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ-122-123
3. संचयन, महावीर प्रसाद द्विवेदी निबंध से पृष्ठ-150
4. सूरज बड़त्या, सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र, भारतीय दलित अध्ययन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ-123
5. हिन्दी आलोक की परिभाषिक शब्दावली, डॉ0 अमरनाथ, राजकमल प्रकाश, चौथा संस्करण, पृष्ठ-384
6. रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-09
7. काव्यांग विवेक, देवेन्द्र त्यागी, पृष्ठ-741

भारत में दलित महिलाओं का योगदानः बिहार के संदर्भ में

श्वेता कुमारी

इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना, शोध छात्रा

सार

राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व एक सफल लोकतंत्र के स्तंभ हैं। यह लेख गांव आधारित दलित महिलाओं के नजरिए से भारतीय लोकतंत्र की पड़ताल करता है; यह इस बारे में है कि दलित महिलाएं 'राजनीतिक' को कैसे समझती हैं और उससे जुड़ती हैं और वे अपने प्रतिनिधियों को कैसे देखती हैं। लेख में बनाया गया तर्क यह है कि दलित महिलाएं राजनीति और प्रतिनिधित्व को अपने दैनिक अनुभवों के सुविधाजनक बिंदु से जाति, वर्ग और लिंग के संदर्भ में अपनी अलग स्थिति से देखती हैं।

मुख्य-शब्द लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व; दलित महिलाएं; राजनीतिक भागीदारी; योगदान।

लोकतंत्र के विचार को आज जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है उनमें अधिनायकवाद; राजनीतिक, सांप्रदायिक और जातीय आधार चरम ध्रुवीकरण पर हैं। बढ़ती आर्थिक और सामाजिक असमानताएं- ऐसे विषय हैं जो न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर में तेजी से रूढिघ्वादी शासन की पृष्ठभूमि के खिलाफ सामयिक प्रासंगिकता के हैं। लोकतंत्र का गला घोंटने या इसे केवल तकनीकी तक सीमित करने का प्रयास केवल वास्तविक लोकतांत्रिक व्यवस्था की रक्षा और मजबूत करने की आवश्यकता को उजागर करता है। एक सफल लोकतंत्र के लिए राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व आवश्यक तत्व हैं, जैसा कि एक वास्तविक अर्थ में समझा जाता है। भारत के संदर्भ में, इस क्षेत्र में लोकतंत्र और प्रतिनिधित्व, चुनावी प्रणाली के सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जो भारतीय लोकतंत्र की सफलताओं और विफलताओं की व्याख्या करता है क्योंकि यह दशकों से विकसित हुआ।[1]

समाज में किसी भी वर्ग की महिलाओं की वास्तविक स्थिति, उनके अधिकार और उनकी समस्याओं का अध्ययन उनकी पारिवारिक संरचना में ही संभव है। परिवार में महिलाओं की माँ, पत्नी, बहू, बहन के रूप में पृथक-पृथक भूमिका होती है। इस स्थिति में सामान्य नारी अधिकार, परिवार के व्यवस्थापरक ढाँचे पर निर्भर करते हैं। यह तो निर्विवाद तथ्य है कि लैंगिक असमानता के व्यावहारिक कारणों से महिलाओं को अपने घर परिवार व समाज में विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है।

किसी भी समाज और राष्ट्र का विकास तभी संभव है जब उस समाज में महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार व अवसर प्राप्त हों। इन अधिकारों व अवसरों की कानूनी व सैद्धान्तिक मान्यता के साथ-साथ समाज में व्यावहारिक स्वीकार्यता भी अनिवार्य है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का आकलन करते हुए हम देखते हैं कि कानूनी व सैद्धान्तिक संदर्भों में महिलाओं के अधिकारों व अवसरों में कोई कमी नहीं है, परन्तु व्यावहारिक स्वीकार्यता के संदर्भ में अभी अभीष्ट लक्ष्य तक हम नहीं पहुँच सके हैं। जब हम महिला समानता एवं सशक्तिकरण की बात करते हैं तो महिला की स्थिति का आकलन लैंगिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सूचकों के आधार पर किया जा सकता है। जैसे- कार्यात्मक सहभागिता, शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन अवधि, सुरक्षा, सार्वजनिक/निजी जीवन में निर्णय-प्रक्रिया में सहभागिता आदि।[2]

चूँकि दलित महिलाओं के पास सामाजिक और सांस्कृतिक सत्ता नहीं होती इसलिए समाज का सबल सत्ताधारी वर्ग उन्हें कमतर और अपमान के योग्य ही समझता है। दलित महिलाओं की सामाजिक स्थिति और उनके दर्जे का मानक उनकी जाति और वर्ग तथा उनका जेंडर यानी उनका औरत होना ही निर्धारित करता है। ऊँची जातियों द्वारा अपने सामाजिक ढाँचे की चौकसी दलित महिलाओं

पर प्रतीकात्मक व शारीरिक हिंसा करके की जाती है। राज्य का दमनकारी और वैचारिक ढाँचा भी इस जाति-वर्ग-वर्ण पदानुक्रम को बरकरार रखने में ऊँची जाति को पूरा सहयोग प्रदान करता है। अधिकतर मामलों में देखा गया है कि हिंसा करने वालों के साथ राजनैतिक सत्ताधारियों की ताकत होती है।

अधिकांश दलित महिलाएँ काम की तलाश में निकलती हैं और सब्जी बेचना, झाड़ू-पोंछा लगाना, इस्त्री करना, दाई आदि का कार्य करती हैं। इसलिए सबसे ज्यादा असुरक्षित भी वही हैं, लेकिन यही परिस्थितियाँ उन्हें अन्य महिलाओं के मुकाबले निडर और जुझारू बनाती हैं और विपरीत परिस्थितियों में रहना सिखाती हैं। स्त्री-पुरूष में समानता के मूलभूत अधिकार की दुहाई देने के बाद भी कामकाजी महिलाओं के प्रति, काम पर रखने, वेतन, अवकाश काम के घंटे और अन्य सुविधाओं के मामलों में वर्तमान समय में भी भेदभाव विद्यमान है। अन्य प्रकार से उनके यौन शोषण आदि की बात अलग ही है। असंगठित क्षेत्र की श्रमिक महिलाओं के साथ इस प्रकार का अन्याय और अधिक ही पाया जाता है।

दलित महिलाएं अपनी जाति, वर्ग और गरीबी की तिहरी मार झेलती हैं। उन्हें जाति सीढ़ीबद्धता व छूआछूत के साथ-साथ आर्थिक, राजनैतिक, कानूनी, धार्मिक व सांस्कृतिक भेदभाव और दमन झेलना पड़ता है। दलित महिलाएं अशिक्षित, कुपोषित व अपने समुदाय और परिवार में भी सबसे निचले स्तर पर होती हैं। उनका अपने श्रम और आर्थिक संसाधनों पर भी कोई हक नहीं होता। हालांकि वे भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, फिर भी उनकी गिनती किसानों में नहीं की जाती। वे निर्यात के लिए अनाज तो उगाती हैं, पर अपने लिए दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए भी उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। इसके अलावा दलित महिलाओं को अपने फैसले लेने का भी अधिकार नहीं मिलता। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वे हमारे समाज, परिवार व समुदाय की हाशियेदार किनारी पर हैं। वे न सिर्फ ऊँची जाति के स्त्री-पुरुष बल्कि दूसरी अनुसूचित जातियों व अपनी जाति के पुरुषों के शोषण, अपमान और उत्पीड़न को निरन्तर सहती हैं।[3]

पिछले कुछ वर्षों में दलित महिलाओं ने अपने ऊपर सदियों से चले आ रहे अन्याय-अपमान के ढाँचों को चुनौती देकर अपने हकघें और अपनी जगह बनाने के लिए सकारात्मक प्रयास किए हैं। इस परिवर्तन का श्रेय उनकी अपनी हिम्मत के साथ-साथ आन्दोलनों, संगठनों व दलित समूहों को भी जाता है। दलित औरतें अब आत्मविश्वासी बन रही हैं और अन्याय के खिघ्लाफ मुखर भी हो रही हैं। शोषण के बावजूद अपनी उत्तरजीविका के लिए संघर्षरत ये महिलाएं अपने परिवार व समुदाय की बेहतरी के लिए जूझ रही हैं।[4]

स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण का दलित महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर मिश्रित प्रभाव पड़ा है। एक ओर जहाँ आधुनिकीकरण ने दलित महिलाओं को शिक्षा एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये हैं जिसके फलस्वरूप वे आर्थिक रूप से सशक्त हुई हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बदलते सामाजिक प्रतिमानों तथा जातिभेद की प्रबलता कम होने से उन्हें भी सम्मानजनक सामाजिक स्तर प्राप्त हो रहा है। वहीं, दूसरी ओर संस्कृतिकरण का प्रभाव भी परिलक्षित हो रहा है। दलित महिलाओं को भी पारिवारिक हिंसा एवं लिंगभेद का सामना अधिक तीव्रता से करना पड़ रहा है। बहुत-सी ऐसी परंपराएं जो पहले दलित परिवारों में नहीं थीं, आधुनिकीकरण के प्रभाव-स्वरूप अब वे उनमें भी घर कर गई हैं जिससे परिवार के अन्दर उनकी स्वतंत्रता कम हुई है।

भारत में दलित महिलाओं को त्रिस्तरीय अवसरों की उपलब्धता है। प्रथम, राजनीतिक दलों के स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से दलित महिलाओं की भागीदारी दिखाई पड़ती है। वह शहरी परिवेश हो अथवा ग्रामीण, राष्ट्रीय राजनीति से लेकर पंचायत तक में दलित महिलाओं को प्रतिनिधित्व करने का सुअवसर मिल रहा है। द्वितीय, संस्थागत स्तर पर, राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना, महिला अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध संगठन है जिसने विधिक अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। महिला आयोग की स्थापना के पश्चात् एक महत्वपूर्ण प्रयास 73 वें व 74वाँ संविधान संशोधन रहा है जिसके अन्तर्गत दलित महिलाओं को स्थानीय स्तर पर 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया ताकि दलित महिलाओं के अधिकारों एवं नेतृत्व की वास्तविक रूप से क्रियान्वित किया जा सके। तृतीय, आंदोलन की राजनीति के स्तर पर, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय अथवा स्थानीय मुद्दों पर संगठित होकर प्रतिरोध प्रदर्शित करना एवं उसके माध्यम से राजनीतिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करना भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है।[5]

जातिगत आधार पर किये गये आरक्षण से कुछ जाति विशेष की महिलाओं को लाभ मिला। लेकिन महिलाओं का एक बड़ा

वर्ग जो आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करता है, मुख्यधारा से वंचित रहा। महिलाओं की स्थिति प्राचीन काल से धीरे-धीरे निम्न होती गई एवं महिलाओं को आरक्षण की जरूरत इसलिये पड़ी क्योंकि महिलाएँ चाहे वह किसी भी वर्ग की क्यों न हो, उन्हें पुराने रीति-रिवाजों के अनुसार पर्दा प्रथा एवं संकीर्ण मानसिकता वाले पुरूष वर्ग के अधीन ही रहना पड़ता था एवं महिलाओं को स्वतंत्र रूप से जीवन जीने का अधिकार नही था, प्रत्येक जगह बंधन हुआ करता था जिसके फलस्वरूप महिलाओं का शोषण हो रहा था। दुनिया की आधी आबादी वाली महिलाओं को उनके वास्तविक अधिकार एवं शोषण से मुक्ति दिलाने के लिये एवं उन्हें सतत् विकास की धारा में जोड़ने के लिये आरक्षण अत्यंत कारगर सिद्ध हुआ है।[6]

1975 में पहली बार जन प्रतिनिधित्व के साथ महिलाओं की स्थिति को जोड़कर देखा गया। अब महिलाओं के लिये समान राजनीतिक अधिकार की वकालत की जाने लगी। इस संदर्भ में 1995 में महिला अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह सम्मेलन चीन की राजधानी बींजिंग में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के मंच से विश्वस्तरीय महिला संगठनों के प्रतिनिधियों ने पुरूषों के समान राजनीतिक अधिकारों की मांग की। इस अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में कई महिला सांसदों एवं अन्य सामाजिक संगठनों के माध्यम से महिलाओं ने इसमें सक्रिय सहभागिता निभाई और इन्होंने सभी जन प्रतिनिधियों का ध्यान आकर्षित किया।[7]

इस प्रकार की हलचलों का प्रभाव यह हुआ कि 1995 में ही पहली बार महिला आरक्षण से संबंधित 81 वाँ संविधान संशोधन विधेयक संसद में पेश किया गया। लेकिन यह संसदों की संकुचित मानसिकता ही कही जाएगी कि प्रत्येक सरकार इस विधेयक को प्रस्तुत तो करती है किन्तु पारित नहीं करवा पा रही है। इस प्रकार भारत जैसे दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में पुरूषों की यह संकुचित मानसिकता का परिचायक है।

राजनैतिक सशक्तिकरण एवं महिला लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए विधेयक राज्य सभा में रखा गया किन्तु यह पास नहीं हो सका। यद्यपि राज्य सभा में पेश किया गया यह विधेयक पहला प्रयास नहीं था बल्कि इसकी कोशिश 1984-85 के दौरान अपने प्रधानमंत्रित्व काल में राजीव गाँधी ने की थी। पंचायती राज संस्थाओं और अन्य स्थानीय निकायों को संविधान में स्थान देने की योजना बनाते समय संसद और विधान मण्डलों के लिए भी ऐसे कदम की रूपरेखा बनी लेकिन बाद में यह सफल नहीं हो सकी।

वर्तमान में महिलाओं के शैक्षणिक स्तर में तेजी से वृद्धि हुई है। नारी मुक्ति की समस्या अब प्रायः समाप्त हो गयी है। उच्च शिक्षा के प्रभावों ने महिलाओं को प्रशासनिक सेवाओं तथा अन्य उच्च पदों पर पहुँचने का अवसर दिया है। अब महिलाओं ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में विकास के प्रतिमानों को स्पर्श किया जिससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।

जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह राजनीतिक क्षेत्र में भी दलितों पर अनेक निर्योग्यतायें लादी गयी थी, उनकी राजनीतिक सहभागिता लगभग शून्य थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ये निर्योग्यतायें समाप्त हो गई और उन्हें अन्य नागरिकों के समान ही अधिकार प्राप्त हो गये। दलित महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम स्थानीय निकायों में आरक्षण की व्यवस्था है जिसके परिणामस्वरूप आज वे वार्ड पार्षद्, सरपंच, महापौर, एवं जिला परिषद् अध्यक्ष के पद पर सक्रिय भागीदारी निभा रही है। 2018 के आंकड़ों के अनुसार 20, 42, 749 निर्वाचित प्रतिनिधि है जिनमें 34.44 प्रतिशत (7,24,107) महिलायें है। ग्राम पंचायतों मे निर्वाचित होने वाली महिलाओं का प्रतिशत 34.95 है, पंचायतों में महिलाओं का प्रतिशत 34.50 है, जिला पंचायतों में 34.59 प्रतिशत है। इनमें से ग्राम पंचायतों में दलित जाति की 3, 31, 133 महिलायें, पंचायतों में 23,758 महिलायें तथा जिला पंचायतों में 2,100 महिलायें निर्वाचित हुई है।[8]

यद्यपि पंचायती राज अधिनियम लागू होने के बाद जब बिहार में दलित महिलाओं ने राजनीतिक सहभागिता शुरू की तो प्रारंभिक अवस्था में उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। राज्य के चुनाव में खड़े होने पर उन्हें पीटा जाता था, बलात्कार किया जाता था या अन्य तरीकों से प्रताडिघ्त किया जाता था ताकि वे अपना नाम वापस ले लें। परिवार के पुरूष सदस्य उनके नाम पर कार्य करते थे, मीटिंग में उन्हें नही बुलाया जाता था, यदि वे मीटिंग में जाती भी थी तो उन्हें बोलने नही दिया जाता था। उनकी निरक्षरता का लाभ उठाया जाता है। निम्न जाति की होने के कारण अन्य लोग उनके साथ बैठना नहीं चाहते। लिंग, जातिगत भेदभाव और पुरूष प्रधान राजनीति के कारण दलित महिलाओं को अनेक प्रकार की प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ रहा है बावजूद इसके वे शनैः शनैः अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। वे बिहार के स्थानीय स्तर की राजनीति में शामिल हो रही हैं और अपनी अयोग्यता व अकुशलता को निर्धारित करने वाले मिथकों को छिन्न भिन्न कर रही हैं। आरक्षित सीटों पर उनकी संख्या लगातार बढ़ रही है,

कहीं सामान्य सीट पर भी दलित महिला सरपंच बनी है, कई महिलायें दूसरी या तीसरी बार भी जीती हैं। चुनाव में आरक्षण के चलते महिला भागीदारी का ग्राफ तेजी से बढ़ रहा है। वे अपने क्षेत्र की आवश्यकता को ध्यान में रखकर निरंतर विकास कार्य कर रही हैं। अधिकांश महिलाओं की प्राथमिकता पानी व शिक्षा है, क्योंकि अशिक्षा के अभिशाप को उनसे बेहतर कोई नहीं समझ सकता। इसके अलावा बिहार जैसे राज्य में ऐसे कई उदाहरण है, जहाँ इन निर्वाचित महिलाओं ने आगे आकर अन्य महिलाओं के सहयोग से मद्यपान, भ्रष्टाचार, वृद्धावस्था पेंशन, राशन वितरण की सुचारू व्यवस्था की दिशा में सराहनीय कार्य किये हैं।[9]

राजनीतिक आरक्षण के बाद बिहार की दलित महिलाओं में बहुत जागरूकरता आई है। आज ये दलित महिलाएँ न केवल चुनाव लड़ रही हैं बल्कि जीत भी रही हैं। जहाँ पहले उनके पति उनके स्थान पर चुनाव कार्य करते थे, अब स्वयं करने लगी हैं। वे न केवल आज मीटिंग में शामिल होती हैं बल्कि अपने क्षेत्र के लिए आवाज भी बुलन्द कर रही हैं। अपने क्षेत्र के विकास के लिए हर संभव प्रयास कर रही है। स्पष्ट है कि नगरीय स्थानीय संस्थाओं के दलित महिला प्रतिनिधि की कार्यशैली मूक दर्शक के रूप में देखते रहने की मजबूरी से पीडिघ्त नहीं है। उनकी समझ में आने लगा है कि उनके क्षेत्र में भ्रष्टाचार का स्वरूप क्या है? चाहे वह रोजगार देने में हो या सार्वजनिक वितरण की वस्तुओं को देने में हो। महिला होने के कारण उपेक्षित रही महिला प्रतिनिधि न्याय क ी
पक्षधर है। प्रारम्भ में उन्हें काम-काज में कुछ कठिनाईयां आती थी, लेकिन अब उनकी क्षमता एवं सामर्थ्य बढ़ती जा रही है।

वोट देने का अधिकार सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार है। 19वीं सदी तक यह अधिकार कई देशों में संपत्ति के स्वामित्व के आधार पर दिया जाता था। स्वतंत्र भारत में, संस्थापकों ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की शुरुआत के माध्यम से राजनीतिक समानता हासिल करने की मांग की। लेकिन फिर भी यह आशंका थी कि सामाजिक असमानताएं इस लक्ष्य की प्राप्ति को सीमित कर सकती हैं, जो वास्तव में सच साबित हुआ है। भूमि अधिकारों का स्वामित्व सीधे आर्थिक सुरक्षा और निर्णय लेने वाले प्राधिकरण से संबंधित है। साक्ष्य यह भी दर्शाते हैं कि जहां महिलाओं को भू-स्वामित्व अधिकार प्राप्त हैं, वहां उनके घरेलू हिंसा के शिकार होने की संभावना कम है; वे अधिक उत्पादक हैं और शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्य और पोषण सुरक्षा के मामले में सकारात्मक गुणक प्रभाव डालते हैं। हालाँकि, दुर्भाग्यपूर्ण वास्तविकता यह है कि जहाँ भारत में 85 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएँ कृषि में हैं, उनमें से केवल 13 प्रतिशत के पास ही भूमि है। इस अर्थ में, दलित महिला कृषि श्रमिकों के लिए संपत्ति के अधिकारों की कमी और राजनीतिक के साथ उनके जुड़ाव के क्या निहितार्थ हैं?[10]

ऐतिहासिक रूप से, किसान भारतीय लोकतंत्र में एक महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक निर्वाचन क्षेत्र रहे हैं - मतदाताओं के रूप में, किसान आंदोलनों के नेताओं के रूप में, राजनेताओं के रूप में या राजनीतिक दलों के साथ जुड़े समूहों के रूप में। किसान एक समेकित समूह नहीं हैं; बल्कि वे जाति, क्षेत्र, धर्म आदि की पहचान से परिभाषित होते हैं। फिर भी, वे विभिन्न मुद्दों पर भारतीय राज्य के साथ संलग्न हैं- उत्पादक रोजगार का प्रावधान, औपचारिक ऋण, सिंचाई सुविधाएं, बेहतर एमएसपी (न्यूनतम समर्थन मूल्य), कृषि बाजार में सुधार और इसी तरह - सभी 'सार्वजनिक' डोमेन से संबंधित हैं। लेकिन भारतीय राज्य महिलाओं को किसानों के रूप में मान्यता न देकर एक जिज्ञासु मामला प्रस्तुत करता है, इस प्रकार उन्हें सभी अधिकारों से वंचित करता है। भारतीय राज्य के अनुसार, भूमि के स्वामित्व को एक किसान के रूप में मान्यता प्राप्त होना आवश्यक है। इसलिए, भारतीय राज्य की नजर में, महिलाएं किसान नहीं हैं और यह अदृश्यता राज्य के साथ-साथ बाजार के साथ-साथ उनके सार्वजनिक जुड़ाव पर एक गंभीर बाधा है। यह, पितृसत्तात्मक सामाजिक-सांस्कृतिक मानसिकता के साथ, महिलाओं को अपने पति, भाइयों और पिता पर निर्भर के रूप में रूढिघ्बद्धता प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, भले ही हिंदू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम 2005 ने महिलाओं को सहदायिक बना दिया हो, पुत्रों के लिए निरंतर वरीयता और भेदभावपूर्ण राज्य और व्यक्तिगत कानूनों और रीति-रिवाजों ने महिलाओं को इस अधिकार को महसूस करने से रोक दिया है।

निष्कर्ष

73वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय संस्था में एक-तिहाई पदों पर आरक्षण का प्रावधान किया गया है। परिणामस्वरूप पूरे देश में लाखों दलित महिलाएं स्थानीय संस्था के कामकाज में प्रत्यक्ष रूप से भागीदार बन गई हैं। इसका राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव तभी दिखाई देगा, जब महिलायें अपने आपको सशक्त भूमिका में प्रस्तुत करेंगी। इस संशोधन के उपरांत वर्षों से संघर्ष कर रही दलित महिलाएं नगरीय स्थानीय संस्था के प्रतिनिधियों के रूप में सत्ता में सीधे भागीदार हुई। लेकिन सत्ता संचालन का

सूत्र दलित महिलाओं के हाथ में देना किसी एक वर्ग के लिए बड़ा असहज कदम था, विरोध हुआ, बाधायें खड़ी की गयी, सहयोग भी नहीं मिला, लेकिन इस परंपरागत संघर्ष में दलित महिलाओं ने हौसला नहीं छोड़ा। जहां जैसे अवसर मिला उन्होंने अपने आप को सिद्ध किया।

संदर्भ

1. ऑस्टिन, जी. (1999), लोकतांत्रिक संविधान की कार्यप्रणाली में चयनित अध्याय-भारतीय अनुभव का इतिहास, ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. चंदोक, एन., कुमार, आर. (2013), भारतीय लोकतंत्र: संज्ञानात्मक मानचित्र, के.सी. (एड.), आईसीएसएसआर अनुसंधान सर्वेक्षण और अन्वेषण: राजनीति विज्ञान, वॉल्यूम 2. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. दामोदरन, एच. (2015 जुलाई 6), दलितों में भूमिहीनता अधिक है लेकिन अधिक आदिवासी 'वंचित' हैं। इंडियन एक्सप्रेस।
4. डिसूजा, पीआर (2000)। भारत में ग्रामीण विकेंद्रीकरण का अवलोकन: पंचायती राज कानून और प्रशासनिक सुधार का बहु-राज्यीय अध्ययन, वॉल्यूम 3, बैकग्राउंड पेपर नं, 1.
5. हेलर, पी. (2009), ब्राजील, भारत और दक्षिण अफ्रीका में लोकतांत्रिक गहराई: एक तुलनात्मक ढांचे की ओर, जर्नल ऑफ एशियन एंड अफ्रीकन स्टडीज, 44(1), 123-149।
6. जयल, एन.जी., प्रकाश, ए., शर्मा, पी.के. (सं.) (2007), परिचय, भारत में स्थानीय शासन: विकेंद्रीकरण और उससे आगे, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. मेहरोत्रा, आई. (2013), ग्रामीण महिला श्रम की राजनीतिक अर्थव्यवस्था: पूर्वी उत्तर प्रदेश (यूपी), भारत में श्रम संबंधों का एक अध्ययन, अप्रकाशित पीएचडी थीसिस, स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन, लंदन।
8. मेहरोत्रा, आई, (2017), पूंजीवाद और पुरुष श्रम को सब्सिडी देना: अस्वतंत्र दलित महिला श्रम संबंधों का घोटाला, आनंदी, एस., कपाडिघ्या, के. (सं.) दलित महिलाएं: भारत में एक वैकल्पिक राजनीति की मोहरा, ऑक्सन: रूटलेज।
9. सिंह, एस.एस. (2013), हस्तक्षेप, पहचान और सीमांतता: मुसहरों का एक नृवंशविज्ञान खाता। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 4(20), 52-59।
10. स्टीवंस, एच. (2018 फरवरी 13), आजादी के सात दशक बाद भी अधिकांश दलित किसान भूमिहीन हैं, हिंदुस्तान टाइम्स।

भारतीय चुनाव प्रणाली और मतदान व्यवहार

प्रताप सिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

डॉ० खेमचंद महावर

शोध निर्देशक, एसोसियट प्रोफेसर, राजेश पायलट राजकीय स्नात्तकोतर महाविद्यालय, लालसोट, दौसा, राजस्थान

सार

भारत सबसे बड़ा लोकतांत्रिक और गणतंत्र देश है। किसी भी लोकतांत्रिक और गणतांत्रिक देश में चुनाव जरूरी होते हैं। लोकतंत्र में लोगों को अपनी पसंद की सरकार द्वारा शासित होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। लोग अपने प्रतिनिधियों को चुनावों के माध्यम से चुनते हैं जो दुनिया भर के लोकतंत्रों की सामान्य विशेषताएं हैं। लेकिन ये चुनाव स्वतंत्र, निष्पक्ष, पारदर्शी और निष्पक्ष रूप से होने चाहिए। इस उद्देश्य के लिए भारत का संविधान एक स्वायत्त निर्वाचन आयोग प्रदान करता है (अनुच्छेद 324-329), जिसमें एक मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (वर्तमान में दो अन्य चुनाव आयुक्त) शामिल हैं।

की वर्डस- लोकतंत्र, चुनाव आयोग, मतदान व्यवहार

परिचय- चुनाव आयोग भारत के संविधान के सिद्धांतों के अनुसार नियमित अंतराल पर निष्पक्ष और निष्पक्ष चुनाव कराने का प्रयास करता रहा है, इसके लिए उसने हाल के दिनों में कई नई पहल की हैं। इनमें से उल्लेखनीय हैं, राजनीतिक दलों द्वारा प्रसारण - प्रसारण के लिए राज्य के स्वामित्व वाले इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उपयोग की योजना, राजनीति के अपराधीकरण की जाँच करना, कम्प्यूटरीकृत मतदाता सूची, मतदाताओं को पहचान पत्र प्रदान करना, खातों के रखरखाव की प्रक्रिया को सरल बनाना और उन्हें भरना। उम्मीदवारों द्वारा समान और आदर्श आचार संहिता के सख्त अनुपालन के लिए, चुनाव के दौरान प्रतियोगियों को एक समान अवसर प्रदान करने के लिए, बीएलओ (बूथ स्तर के अधिकारी) और मतदाता जागरूकता कार्यक्रम, ईवीएम, (इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन) की नियुक्ति) वेब कास्टिंग, आदि। अब तक, वीएम तारकुंडे समिति, दिनेश गोस्वामी समिति, इंद्रजीत गुप्ता समिति, विधि आयोग जैसी कई समितियांध्आयोग नियुक्त किए गए हैं। भारतीय चुनाव प्रणाली में इतने सारे सुधारों को अपनाया गया है, भले ही यह उनमें से कई दोषों से पीडिघ्त रहा हो, जिनमें से कुछ पर चर्चा की गई है।

उद्देश्यः-

1. चुनाव आयोग और भारतीय चुनाव प्रणाली की व्याख्या करने के लिए
2. भारतीय चुनाव प्रणाली के सामने आने वाली समस्याओं का पता लगाने के लिए
3. स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी चुनाव के उपाय सुझाना

भारत निर्वाचन आयोग (ईसीआई) -भारत का चुनाव आयोग 25 जनवरी 1950 को संविधान के अनुसार स्थापित एक स्थायी संवैधानिक निकाय है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने भारत के चुनाव आयोग के उद्देश्यों को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया: ''हमारा देश विशाल है, जिसमें विभिन्न जातियों, भाषाओं, संस्कृतियों, धर्मों, आदि के लोग रहते हैं। अखिल भारतीय स्तर के मुख्य चुनाव

आयुक्त से युक्त चुनाव आयोग को अन्याय को रोकने के लिए आवश्यक है जो किसी के साथ भी हो सकता है। यह केंद्रीय निकाय स्थानीय प्रभावों से मुक्त होकर काम करता है और देश में संपूर्ण चुनाव तंत्र पर इसका नियंत्रण होगा।3

भारतीय संविधान भाग XV में, अनुच्छेद 324-329 भारत के चुनाव आयोग से संबंधित है। मूल रूप से आयोग में केवल एक मुख्य चुनाव आयुक्त था, वर्तमान में इसमें मुख्य चुनाव आयुक्त और दो चुनाव आयुक्त शामिल हैं। पहली बार दो अतिरिक्त आयुक्तों की नियुक्ति 16 अक्टूबर 1989 को की गई थी लेकिन उनका कार्यकाल 1 जनवरी 1990 तक था। बाद में 1 अक्टूबर 1993 को दो अतिरिक्त आयुक्तों की नियुक्ति की गई।

चुनाव आयुक्त नियुक्त किए गए। तब से त्री-सदस्यीय आयोग बहुमत से निर्णय लेने की शक्ति के साथ काम कर रहा है।

राज्य स्तर पर, राज्य चुनाव आयोग का नेतृत्व मुख्य चुनाव आयुक्त द्वारा किया जाता है, जिसकी नियुक्ति उस विशेष राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है। राज्य चुनाव आयोग को स्थानीय निकायों के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने और पंचायत राज को नियमित अंतराल में सभी चुनावों के संचालन के लिए मतदाता सूची तैयार करने के निर्देश और नियंत्रण की शक्तियां निहित हैं।

भारतीय चुनावी प्रणाली:-भारत के संविधान ने भारत के चुनाव आयोग में प्रत्येक राज्य के संसद और विधानमंडल और भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के कार्यालयों के चुनावों के संचालन के लिए पूरी प्रक्रिया का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण निहित किया है।

भारतीय चुनाव प्रणाली को मोटे तौर पर दो भागों में बांटा गया है, वे प्रत्यक्ष चुनाव हैं एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर। लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और केंद्र शासित प्रदेशों की विधानसभाओं के सदस्यों के चुनाव के लिए पहली प्रणाली का पालन किया जाता है। दूसरा, भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति, राज्य सभा के सदस्यों और विधान परिषदों के सदस्यों के लिए एकल संक्रमणीय वोट के माध्यम से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनाव हुआ।

भारतीय चुनाव प्रणाली की मुख्य विशेषताएं:

1. चुनाव सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर होते हैं। जो भारत का नागरिक है और जिसकी आयु 18 वर्ष से कम नहीं है, वह भारत की मतदाता सूची में मतदाता के रूप में पंजीकरण करा सकता है। धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है।
2. यहां है लोकसभा और राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों (84 सीटों) और अनुसूचित जनजातियों (47 सीटों) के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान है, लेकिन राज्यसभा में संघ स्तर और विधान परिषदों में आरक्षण का ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। राज्य स्तर।
3. सामान्य सीटों के लिए आम मतदाता सूची के माध्यम से क्षेत्रीय आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाता है। निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन आयोगों (1952, 1963, 1973 और 2002) की सहायता से किया जाता है, जिनकी नियुक्ति प्रत्येक दस वर्षों के बाद होने वाली जनगणना के बाद की जाती है। निर्वाचन क्षेत्रों के संशोधन का परिणाम यह होता है कि क्षेत्रध्सीमाएँ बदल जाती हैं। चुनाव से चुनाव तक, लेकिन निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या वर्ष 2026 तक नहीं बदली जाएगी।
4. लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए गुप्त मतदान के माध्यम से मतदान होता है। जनता के लिए अपनी इच्छा को स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से व्यक्त करना सबसे महत्वपूर्ण और पूर्वापेक्षा है। राज्य सभा और राज्यों की परिषद के लिए उन चुनावों में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए खुली मतपत्र प्रणाली की शुरुआत की गई है।
5. राजनीतिक दल चुनावी प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा हैं। भारत में बहुदलीय प्रणाली कार्य कर रही है।
6. मतदान का निर्धारण वैध मतों के सापेक्ष बहुमत के आधार पर किया जाता है।

बहुमत प्रणाली- वर्तमान बहुमत प्रणाली कई समस्याओं की ओर ले जाती है। यह केवल यह तय करती है कि मतदान प्रतिशत प्राप्त करने के बावजूद प्रतियोगियों में से किसे बहुमत मिलता है, लेकिन कभी-कभी यह प्रतिशत कुल मतों के 25 प्रतिशत से भी कम होता है, भले ही वे चुनाव में जीत जाते हैं, यह जीतने वाला व्यक्ति अल्पसंख्यक वाले निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता

है वोट देता है, लेकिन वह 100 प्रतिशत लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। यह व्यवस्था जाति और सांप्रदायिक के आधार पर समाज में विभाजनकारी राजनीति की ओर ले जाती है।

इसके बजाय जीतने के लिए किसी भी चुनाव में 50 प्रतिशत से अधिक वोट प्राप्त करने चाहिए। यदि किसी को पहले दौर में नहीं मिल सकता है, तो दूसरे दौर का चुनाव शीर्ष दो उम्मीदवारों के बीच होना चाहिए। यह लोगों के बीच सामूहिकता की ओर जाता है और जाति की राजनीति और सांप्रदायिकता जैसी धूर्त राजनीति का भी पतन करता है। किसी भी राजनीतिक दल को सभी समूहों के लोगों का समर्थन मिलना चाहिए अन्यथा चुनाव में कोई भी जीत नहीं सकता है।

धन शक्ति-धन-बल का प्रभाव भी हमारी चुनावी व्यवस्था में एक बड़ा दोष है। आज के समय में चुनाव महंगा हो गया है। कभी-कभी राजनीतिक दल और उम्मीदवार भी उस बार-बार होने वाले चुनावों से डरते हैं। खरीद-बिक्री से वोट बाजार के सामान की तरह हो रहे हैं। अतीत में उद्योगपति व व्यापारी राजनीतिक दलों की सहायता करते थे लेकिन वर्तमान में वे सीधे चुनाव में भाग लेते हैं, वे सीधे चुनाव लड़ रहे हैं, कभी-कभी, वे क्रमशः सांसद, राज्यसभा की एमएलसी सीटें और राज्यों की विधान परिषदों की सीटों को राजनीतिक दलों आदि से खरीदते हैं। एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) के एक सर्वेक्षण के अनुसार, लोकसभा के 82 फीसदी सदस्य करोड़पति हैं। यह आंकड़ा 2004 और 2009 के लोकसभा सांसदों की तुलना में काफी अधिक है जहां क्रमशः 30: और 58: हैं। निम्न तालिका 16वीं लोकसभा के सांसदों की पार्टीवार औसत संपत्ति दर्शाती है।

तालिका 1: 16वीं लोकसभा में पार्टीवार सांसदों की औसत संपत्ति

राजनीतिक दल में पार्टी के सांसदों की औसत संपत्तिवां लोकसभा (रुपये करोड़ में)	
बी जे पी	11.6 करोड़
कांग्रेस	16.7 करोड़
अन्नाद्रमुक	6.5 करोड़
बीजद	16.5 करोड़
एसएचएस	9.2 करोड़
तेदेपा	64 करोड़
टीआरएस	63.7 करोड़
सीपीआई (एम)	79.8 लाख
लोजपा	2.5 करोड़
राकांपा	37.3 करोड़
राजद	4.3 करोड़
पीडीपी	39.7 करोड़
जद (यू)	1.7 करोड़
एएपी	3 करोड़

स्रोतः एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स

16वीं लोकसभा में अविभाजित आंध्र प्रदेश के सांसदों के पास अधिक है 50 करोड़ से अधिक की औसत संपत्ति है। किसी भी पार्टी और राज्य के पास इतना औसत नहीं है। भारतीय जनता पार्टी के सांसदों के पास औसत संपत्ति। 11.6 करोड़ हैं। सीपीआई (एम) पार्टी के सांसदों के पास केवल 79.8 लाख के साथ सबसे कम औसत संपत्ति है।

वे चुनाव में बहुत पैसा खर्च कर रहे हैं, अब यह उन्माद बन गया है और चुनाव में पैसा खर्च करने को लेकर प्रतियोगियों और पार्टियों के बीच प्रतिस्पर्धा है। यह व्यय दो प्रकार का होता हैः 1. कानून के तहत अनुमेय सीमा के भीतर अनुमत

2. कानून के तहत अनुमति नहीं है।

इसे रोकने के लिए हर साल राजनीतिक दलों के आय-व्यय का ऑडिट होना चाहिए। उनका लेनदेन या तो चेक या डीडी होना चाहिए। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के खर्च में राजनीतिक दलों का खर्च भी शामिल होता है. राजनीतिक दल चुनाव से बहुत पहले से भारी धन खर्च कर रहे हैं, लेकिन इसे चुनावी खर्च नहीं माना जाता है। आम चुनाव से पहले कम से कम छह महीने की अवधि के लिए राजनीतिक दलों के खर्च को भी चुनाव आयोग द्वारा उम्मीदवारों के खर्च के रूप में माना जाता है। प्रेक्षक अपने-अपने आवंटित क्षेत्र में सभी प्रकार के व्ययों को दर्ज करने के लिए सक्रिय रहें। यदि इस तरह के उल्लंघन होते हैं तो गंभीर कार्रवाई की घोषणा की जानी चाहिए और कार्रवाई की जानी चाहिए। साथ ही सेवा उन्मुख, जनसेवा के प्रति समर्पित लोगों को प्रोत्साहित किया जाएगा।

सरकारी तंत्र का दुरूपयोग-राज्य स्तर और केंद्र सरकार दोनों पर सत्ताधारी दलों और सरकारों द्वारा सरकारी तंत्र का दुरुपयोग किया जाता है। सरकार जनता के पैसे से चुनाव से पहले ही फोटो वाले विज्ञापन जारी करती है। कभी-कभी कुछ मंत्री, मुख्यमंत्री और राज्यपाल आधिकारिक तौर पर जाते हैं और पार्टी के लिए प्रचार करते हैं। सरकारी वाहन, नौकरशाही का भी पार्टी लाभ के लिए उपयोग किया जाता है। सरकारें पार्टी के फायदे के लिए ट्रांसफर का इस्तेमाल करती हैं।

चुनाव आयोग ने दिशा-निर्देश जारी किए, लेकिन उन्हें सख्ती से और ठीक से लागू करने की देखभाल करनी होगी। चुनाव आयोग के पास अपनी मशीनरी होनी चाहिए, यह संघ और राज्य सरकारों के कार्यकारी निकायों पर निर्भर नहीं है।

बाहुबल-बाहुबल और वर्चस्व भारतीय चुनावी व्यवस्था में एक और बड़ा झटका है। बूथ कैप्चरिंग, हेराफेरी, मतदाताओं और पोलिंग स्टाफ को डराना, चुनाव से पहले, चुनाव के दौरान और बाद में हिंसा बाहुबल के विभिन्न रूप हैं। उपरोक्त कदाचार और निष्पक्ष चुनाव को रोकने के लिए वर्तमान उपाय पर्याप्त नहीं हैं। कई बार इसमें हेराफेरी भी की जाती है. इसलिए सभी मतदान केंद्रों को सीसी कैमरों (क्लोज्ड सर्किट कैमरा) और वेब कास्टिंग से कवर किया गया है। सभी मतदान केंद्रों पर सीसी कैमरे लगाए जाएं और इंटरनेट के जरिए वेब कास्टिंग की जाए। आधार नंबर के लिंकेज के साथ बायो-मीट्रिक सिस्टम शुरू किया जाएगा, जैसे एटीएम मतदाता विशेष केंद्रों के माध्यम से कुछ समय के लिए अपने वोट का उपयोग कर सकते हैं। इसके लिए ईसीआई इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग कार्ड जारी कर सकता है।

गैर-गंभीर उम्मीदवार-चुनाव लड़ने वाले गैर-गंभीर उम्मीदवारों को रोकना चाहिए। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु के मोदाकुरिची विधानसभा क्षेत्र में चुनाव प्रक्रिया को बाधित करने के इरादे से 1996 में तमिलनाडु विधानसभा के आम चुनाव के दौरान 1033 उम्मीदवार थे। बैलेट पेपर एक पुस्तिका के रूप में थे। ऐसे उदाहरण भी हैं जब भी सुरक्षा जमा में वृद्धि होती है तो चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की औसत संख्या कम हो जाती है। 1996 में लोकसभा के लिए जमानत राशि को 500 से बढ़ाकर 10000 और विधान सभा चुनावों के लिए 2500- से 5000 कर दिया गया था। जमानत राशि के इस संशोधन ने वांछित परिणाम दिए, यह 1998 के लोकसभा चुनावों में अनुभव किया गया था, 1998 के लोकसभा चुनाव में लड़ने वाले उम्मीदवारों की औसत संख्या 09 थी। और 16वीं लोकसभा के आम चुनावों में 15। इसे हर पांच साल या लोकसभा के आम चुनावों से पहले कम से कम 50 प्रतिशत बढ़ाया जाना चाहिए। चुनाव लड़ने के लिए किसी भी सामाजिक सेवा गतिविधियों में भाग लेना भी एक न्यूनतम आवश्यकता है।

राजनीति का अपराधीकरण-राजनीति का अपराधीकरण हमारी वर्तमान राजनीति में एक गंभीर मुद्दा है। कानून बनाने वालों पर आपराधिक आरोप न लगे, इसलिए कानून को उन्हें चुनाव से दूर रखना चाहिए। वर्तमान 16वीं लोकसभा में 543 में से 53 सदस्य गंभीर आपराधिक आरोपों का सामना कर रहे हैं, यदि वे दोषी पाए जाते हैं, तो वे अयोग्य हो जाएंगे। एडीआर की रिपोर्ट के अनुसार नए सांसदों में से 34 प्रतिशत पर आपराधिक आरोप हैं, 2004 और 2009 में प्रतिशत क्रमशः 24 और 30 था। एडीआर रिपोर्ट के अनुसार जनप्रतिनिधित्व कानून के 8(1) और 8(3) के तहत सांसदों द्वारा घोषित आपराधिक मामलों की औसत पेंडेंसी 10 साल 10 है। निम्न तालिका 2 16वीं लोकसभा में आपराधिक कार्यवाही का सामना कर रहे सांसदों के पार्टीवार प्रतिशत को दर्शाती है।

16वीं लोकसभा में आपराधिक कार्यवाही का सामना कर रहे पार्टीवार सांसद

राजनीतिक दल	सांसदों का प्रतिशत (पार्टी वार) आपराधिक कार्यवाही का सामना करना पड़ रहा है।
औसत 34	प्रतिशत
बी जे पी	35 प्रतिशत
कांग्रेस	18 प्रतिशत
अन्नाद्रमुक	16 प्रतिशत
बीजद	15 प्रतिशत
एसएचएस	83 प्रतिशत
तेदेपा	38 प्रतिशत
टीआरएस	46 प्रतिशत
सीपीआई (एम)	56 प्रतिशत
लोजपा	67 प्रतिशत
राकांपा	80 प्रतिशत
राजद	100 प्रतिशत
पीडीपी	33 प्रतिशत
जद (यू)	50 प्रतिशत
एएपी	00 प्रतिशत

स्रोतः एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स

उपरोक्त तालिका में हम देख सकते हैं कि राजद के सभी सांसद आपराधिक आरोपों से ग्रसित हैं। वर्तमान लोकसभा में आप के सांसदों पर 0.0 प्रतिशत आपराधिक आरोप हैं। सभी पार्टियों के खिलाफ आपराधिक आरोप सांसदों का औसत 34 फीसदी है.

नेताओं के लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट हों, सब पेंडिंग-छह महीने के भीतर मामलों या उत्पन्न मामलों का निपटारा किया जाएगा। जब तक वे सभी आरोपों को साफ नहीं कर देते, उन्हें संघ या राज्य या स्थानीय निकायों में चुनाव लड़ने की अनुमति दी जाती है।

अवसरवादी गठबंधन सरकारें-चुनाव के बाद गठबंधन भी हमारी राजनीतिक व्यवस्था का एक बड़ा दोष है। वे चुनाव में अलग-अलग विचारधाराओं के साथ लड़ते हैं लेकिन चुनाव के बाद केवल सत्ता के लिए, फिर से चुनाव रोकने के नाम पर सरकार बनाने के लिए एक साथ जुड़ना भी जनता की राय के खिलाफ है। इसलिए चुनाव से पहले गठबंधनों को ही अनुमति दी जाएगी, इसके लिए कानून में आवश्यक संशोधन किए जाएंगे।

राजनीतिक दलबदल भी एक प्रमुख मुद्दा है, खासकर राज्य स्तर की राजनीति में। एक पार्टी से एक विशेष विचारधारा के साथ चुने जाते हैं जिसे जनता का समर्थन प्राप्त होता है लेकिन चुनाव के बाद वे एक पार्टी से दूसरी पार्टी में कूद जाते हैं।

पेड न्यूज-पेड न्यूज भारतीय चुनावी प्रणाली में एक नवीनतम गंभीर मुद्दा है। प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया के अनुसार ''कोई भी समाचार या विश्लेषण किसी भी मीडिया या तो प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक में नकद या वस्तु के रूप में मूल्य के लिए दिखाई देता है''। वास्तव में इसकी जांच में कठिनाई हो रही है, इसलिए तंत्र को मजबूत किया जाएगा।

निष्कर्ष-

उपरोक्त सभी चर्चाओं के बाद वर्तमान बहुमत प्रणाली को चुनाव जीतने के लिए 50 प्रतिशत से अधिक वोटों से बदल दिया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों के खर्च को भी उम्मीदवारों के खर्च में शामिल किया जाना चाहिए। खातों को जवाबदेह और ऑडिट किया जाना चाहिए, ईसीआई वित्तीय व्यय पर्यवेक्षकों को सक्रिय किया जाना चाहिए। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों के सभी प्रकार के खर्चों को दर्ज करें। कानून बनाने वाले घर दागियों से मुक्त हों ताकि राजनीतिक नेताओं पर आरोप-प्रत्यारोप

के लिए विशेष फास्ट ट्रैक कोर्ट स्थापित किए जाएं। राजनीतिक दलबदल में सदस्यों या पार्टियों को अयोग्य घोषित करने की शक्ति ईसीआई के हाथ में है, लेकिन स्पीकर या अध्यक्षों के पास नहीं है। चुनाव के बाद गठबंधन बनाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। पेड न्यूज की विशेष व्यवस्था से सख्ती से जांच कराई जाएगी।

References:-

- A.G. Shreedhara Babu, Indian Constitution, Kuvempu University, DDE,Shimoga, Karnataka.P.172-173
- Dr. Agarala Eswara ReddiDr.D.Sundara Ram; Uppala Publishing House-New Delhi110002; P.2.
- Dr. M. Bhaskara Raju(2015), Indian Electroal System, Paripex, 4 (11), Pp-28-30
- India 2014 A Reference Annual, Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India; P.67.
- Subhash C. Kashyap, Our Political System; National Book Trust, India, New Delhi; P.302.
- http://www.thehindu.com/news/national/16th-lok-sabha-will-be-. richest-have-most-mps-with-cri.

हिंदी साहित्य में पत्रकारिता का योगदान

सर्वजीत गांधी

शोध छात्र, हिंदी विभाग, साबरमती यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

हिंदी पत्रकारिता का प्रश्न राष्ट्रभाषा और खड़ी बोली के विकास से भी संबंधित रहा है। हिंदी भाषा विकास की पूरी प्रक्रिया हिंदी पत्रकारिता के भाषा विश्लेषण के माध्यम से समझी जा सकती है। इस विकास में भाषा के प्रति जागरूक पत्रकारों का अपना अपना योगदान हिंदी को मिलता रहा है। ये पत्रकार हिंदी भाषी भी थे और हिंदीतर भाषा-भाषी भी। इनमें से कई बोली क्षेत्रों के थे, कुछ पहले साहित्यकार थे बाद में पत्रकार बने, तो कुछ ने पत्रकारिता से शुरू करके साहित्य जगत में अपना स्थान बनाया। इन सभी ने अखिल भारतीय स्तर पर बोली और समझी जाने वाली भाषा हिंदी के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित किया। इनके लिए हिंदी और राष्ट्रीयता एक दूसरे के पर्याय थे। क्योंकि ये पत्रकार भिन्न भाषा परिवेशों के थे इसलिए हिंदी पत्रकारिता में शैली वैविध्य अपनी चरम अवस्था में दिखाई देता है।

हिंदी पत्रकारिता का यह सौभाग्य रहा कि समय और समाज के प्रति जागरूक पत्रकारों ने निश्चित लक्ष्य के लिए इससे अपने को जोड़ा। वे लक्ष्य थे राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक उत्थान और लोकजागरण। तब पत्रकारिता एक मिशन थी, राष्ट्रीय महत्व के उद्देश्य पत्रकारिता की कसौटी थे और पत्रकार एक निडर व्यक्तित्व लेकर खुद भी आगे बढ़ता था और दूसरों को प्रेरित करता था। हिंदी के इन पत्रकारों ने न तो ब्रिटिश साम्राज्य के सामने घुटने टेके और न ही अपने आदर्शों से च्युत हुए इसीलिए समाज में इन पत्रकारों को अथाह सम्मान मिला।

हिंदी पत्रकारिता के विकासक्रम में कुछ पत्रकार प्रकाशस्तंभ बने जिन्होंने अपने समय में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और अनेक युवकों को लक्ष्यवेधी पत्रकारिता के लिए तैयार किया। असल में वह पूरा शुरूआती समय हिंदी पत्रकारिता का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। हिंदी के गौरव को स्थापित करने, हिंदी साहित्य को बहुमुखी बनाने, भारतीय भाषाओं की रचनाओं को हिंदी में लाने, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के महत्व पर टिप्पणी करने तथा इन सबके साथ सामाजिक उत्थान का निरंतर प्रयत्न करने में ये सभी पत्रकार अपने अपने समय में अग्रणी रहे। हिंदी प्रदीप' के संपादक बालकृष्ण भट्ट केवल पत्रकार ही नहीं, उद्‌भट साहित्यकार भी थे। विभिन्न विधाओं में उन्होंने रचनाएँ कीं जिन्हें पढ़ने पर यह पता चलता है कि- "भट्ट जी की शैली में कितना ओज और प्रभाव था। सरल और मुहावरेदार हिंदी लिखना उन्हीं से आगे अपने वाले पत्रकारों ने सीखा। हिंदी पत्रकारिता बालकृष्ण भट्ट की कई कारणों से ऋणी है। एक तो उन्होंने निर्भीक पत्रकारिता को जन्म दिया, दूसरे गंभीर लेखन में भी सहजता बनाए रखने की शैली निर्मित की, तीसरे हिंदी साहित्य की समीक्षा को उन्होंने प्रशस्त किया और चौथे हिंदी पत्रकारिता पर ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी प्रकार के अत्याचार का उन्होंने खुलकर विरोध किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र (कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालाबोधिनी) हिंदी पत्रकारिता के ही नहीं, आधुनिक हिंदी के भी जन्मदाता माने जाते हैं। भारतेंदु ने अपने पत्रों और नाटकों के द्वारा आधुनिक हिंदी गद्य को इस तरह विकसित करने का प्रयत्न किया कि वह जनसाधारण तक पहुँच सके। संस्कृत और उर्दू - दोनों की अतिवादिता से हिंदी को बचाते हुए उन्होंने बोलचाल की हिंदी को ही साहित्यिकता प्रदान करके ऐसी शैली ईजाद की जो वास्तव में हिंदी की केंद्रीय शैली थी और जिसे बाद में गांधी और प्रेमचंद ने 'हिंदुस्तानी' कहकर अखिल भारतीय व्यवहार की मान्यता प्रदान की। भारतेंदु के लिए स्वभाषा की उन्नति ही सभी प्रकार की उन्नतियों का मूलाधार थी। 'बालाबोधिनी' महिलाओं पर केंद्रित हिंदी की पहली पत्रिका है। इसमें महिलाओं ने लिखा और भारतेंदु की प्रेरणा से अनेक महिलाएँ हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में आई। ज्ञान विज्ञान की दिशा में हिंदी पत्रकारिता को समृद्ध करने का कार्य भी भारतेंदु ने ही पहली बार किया। इतिहास, विज्ञान और समाजोपयोगी सामयिक विषयों पर उनकी पत्रिकाओं में उत्कृष्ट सामग्र छपती थी।

प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण) आधुनिक हिंदी के सचेतन पत्रकार माने जा सकते हैं। उन्होंने हिंदी गद्य और पद्य दोनों को नया संस्कार दिया। इनके समय तक प्रचलित हिंदी या तो अरबी-फारसी निष्ठ थी, या संस्कृतनिष्ठ, अथवा उसमें भारतेंदु की तरह बोलियों का असंतुलित मिश्रण था। मिश्र जी ने ठोस हिंदी गद्य को जन्म दिया। देशज, उर्दू और संस्कृत का जितना सुंदर मिश्रित प्रयोग मिश्र जी में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। वे हिंदी की प्रकृति को एक विशिष्ट शैली में ढालने वाले पहले पत्रकार थे।

महामना मदनमोहन मालवीय (हिंदोस्थान, अद्‌भुदय, मर्यादा) का हिंदी के प्रति दृष्टिकोण दृढ़ था। वे हिंदी के कट्टर समर्थक थे। अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना उन्होंने अपने इसी हिंदी प्रेम के कारण की थी। वे समय-समय पर अनेक पत्रों से संबद्ध हुए। हिंदी के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत साफ था कि हिंदी भाषा और नागरी अक्षर के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता सिद्ध हो सकती है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी हिंदू विश्वविद्यालय और हिंदी प्रकाशन मंडल की स्थापना करके उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के उत्थान का रास्ता ही भारत के उत्थान का एक मात्र रास्ता है। मालवीय जी वाणी के धनी थे, जितना प्रभावशाली बोलते थे, उतना ही प्रभावशाली लिखते थे। हिंदी भाषा का ओज उनकी पत्रकारिता से प्रकाशित होता है।

मेहता लज्जाराम शर्मा (सर्वहित, वेंकटेश्वर समाचार) गुजराती भाषी थे, लेकिन हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया था। उनका दृढ़ विश्वास था कि 'एक-न-एक दिन पूरे भारत में हिंदी का डंका बजेगा, प्रांतीय भाषाएँ हिंदी की आरती उतारेंगी, बहन उर्दू इसकी बलैया लेगी तथा अंग्रेजी हतप्रभ होकर हिंदी के गले में फूलों की माला पहनाएगी। हिंदी और उर्दू, दोनों भाषाओं की पत्रकारिता को प्रतिष्ठित करने वाले बाबू बालमुकुंद गुप्त (अखबारे-चुनार, हिंदी बंगवासी, भारतमित्र) ने पत्रकारिता को साहित्य निर्माण और भाषा चिंतन का भी माध्यम बनाया। गुप्त जी ने 'भारत मित्र' में महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' में प्रयुक्त 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर जो लेखमाला लिखी, वह पर्याप्त चर्चा का विषय बनी। इसी तरह उन्होंने 'वेंकटेश्वर समाचार' के मेहता लज्जाराम शर्मा द्वारा प्रयुक्त 'शेष' शब्द पर भी खुली चर्चा की। उनकी ये चर्चाएँ उनकी भाषाई चेतना को व्यक्त करने वाली हैं। वे मूलत: उर्दू के पत्रकार थे इसलिए जब हिंदी की सहज चपलता में व्यवधान होता देखते थे तो विचलित हो जाते थे। उनकी व्यंग्योक्तियाँ अत्यंत प्रखर होती थीं। इससे हिंदी पत्रकारिता को नई शैली भी मिली और निर्भीकता, दृढ़ता और ओजस्विता के साथ विनोदप्रियता का अद्‌भुत सम्मिश्रण भी। वे वास्तव में राष्ट्रव्यापी साहित्यिक विवादों के जनक और व्यंग्यात्मक शैली के अग्रदूत पत्रकार थे। उर्दू भाषा के साथ वे हिंदी की हिमायत करते थे। उर्दू और हिंदी के विवाद में उन्होंने हमेशा हिंदी का पक्ष लिया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (सरस्वती) हिंदी पत्रकारिता के शलाक पुरुष हैं। हिंदी के प्रति उनकी धारणा दृढ़ थी। वे उसे सुगठित, सुव्यवस्थित और सर्वमान्य स्वरूप प्रदान करना चाहते थे। 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी को नई गति और शक्ति देने का जो कार्य द्विवेदी जी ने किया, उसका कोई सानी नहीं है। अपनी दृढ़ता के चलते ही उन्होंने अनेक पत्रकारों और साहित्यकारों को खड़ीबोली हिंदी में लिखने के लिए प्रेरित किया और 'सरस्वती' में छापकर उन्हें स्थापित किया। द्विवेदी जी ने हिंदी भाषा के परिष्कार का अनथक प्रयत्न किया और हिंदी में लेखकों तथा कवियों की एक पीढ़ी तैयार की। उनका यह दृढ़ मत था कि गद्य और पद्य की भाषा पृथक पृथक नहीं होनी चाहिए।

माधव राव सप्रे (छत्तीसगढ मित्र, कर्मवीर) राष्ट्रीयता की प्रतिमूर्ति थे। उनकी हिंदी निष्ठा अपराजेय थी। उनका कहना था, "मैं महाराष्ट्रीय हूँ, परंतु हिंदी के विषय में मुझे उतना ही अभिमान है जितना किसी भी हिंदी भाषी को हो सकता है। मैं चाहता हूँ कि इस राष्ट्रभाषा के सामने भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भूल जाए कि मैं महाराष्ट्रीय हूँ, बंगाली हूँ, गुजराती हूँ या मदरासी हूँ।

हिंदी के मूर्धन्य कथाकार प्रेमचंद का एक प्रेरक स्वरूप उनके जागरूक पत्रकार का भी है। 'माधुरी', 'जागरण' और 'हंस' का संपादन करके उन्होंने अपनी इस प्रतिभा का भी उत्कृष्ट उदाहरण पेश किया और हिंदुस्तानी शैली को सर्वग्राह्य तथा लोकप्रिय बनाने का महत्व कार्य किया।

हिंदी के मासिक पत्रों के संपादन में जो ख्याति महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचंद की है वैसी ही ख्याति दैनिक पत्रों के संपादन में बाबूराव विष्णुराव पराड़कर (आज) की है। दैनिक हिंदी पत्रकारिता के वे आदि-पुरुष कहे जा सकते है। उन्होंने हिंदी भाषा का मानकीकरण ही नहीं, आधुनिकीकरण भी किया और हिंदी की पारिभाषिक शब्द संपदा की अभिवृद्धि की।

माखनलाल चतुर्वेदी (कर्मवीर, प्रभा, प्रताप) साहित्य, समाज और राजनीति, तीनों को अपनी पत्रकारिता में समेटकर चलते थे। उनकी साहित्य साधना भी अद्‌भुत थी। उनके भाषण और लेखन में इतना ओज था कि वे भावों को जिस तरह चाहते, प्रकट कर

लेते थे। उनका यह स्वरूप भी उनके पत्रों के लिए वरदान साबित हुआ। उनका लेखन हिंदी भाषा के प्रांजल प्रयोग का उदाहरण है। उनका यह कहना था कि -श' ऐसा लिखो जिसमें अनहोनापन हो, ऐसा बोलो जिस पर दुहराहट के दाग न पड़े हों।

अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी (अभ्युदय, प्रताप) ने हिंदी पत्रकारिता में बलिदान और आचरण का अमर संदेश प्रसारित किया और हिंदी भाषा को ओजस्वी लेखन का मुहावरा प्रदान किया। इसी प्रकार शिवपूजन सहाय (मारवाड़ी सुधार, मतवाला, माधुरी) अकेले ऐसे पत्रकार हैं जिनका हिंदी की विविध शैलियों पर समान अधिकार था।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता में अज्ञेय (प्रतीक, नया प्रतीक, दिनमान, नवभारत टाइम्स) ने साहित्यिक पत्रकारिता को नवीन दिशाओं की ओर मोड़ा। 'शब्द' के प्रति वे सचेत थे इसलिए भाषा और काव्य भाषा पर 'प्रतीक' में संपादकीय, लेख, चचाएँ, परिचर्चाएँ प्रकाशित होती रहती थीं। अज्ञेय ने 'दिनमान' के माध्यम से राजनैतिक समीक्षा और समाचार विवेचन की शैली हिंदी में विकसित की। उन्होंने 'नवभारत टाइम्स' के साहित्यिक- सांस्कृतिक परिशिष्ट को ऊँचाई प्रदान की जिससे कि दैनिक पत्र का पाठक भी इनके महत्व को समझने लगा।

धर्मवीर भारती (धर्मयुग) ने सर्वसमावेशी लोकप्रिय पत्रिका की संकल्पना साकार की जिसमें राजनैतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक सामग्री के साथ ही फिल्म, खेल, महिला जगत, बालजगत जैसे स्तंभ सम्मिलित हुए। धर्मवीर भारती की जागरूक दृष्टि ने हिंदी रंगमंच व लोक कलाओं को भी महत्व दिया और नई नई विधाओं जैसे यात्रावृत्तांत, रिपोर्ताज, डायरी आदि में लेखन को भी। इससे हिंदी भाषा की अनेकानेक विधाओं और प्रयुक्तियों का बहुआयामी विकास हुआ।

आर्येंद्र शर्मा (कल्पना) मूलत: वैयाकरण थे। उनकी पुस्तक 'बेसिक ग्रामर ऑफ हिंदी' भारत सरकार ने प्रकाशित की जिसे आज भी हिंदी का मानक व्याकरण माना जाता है। भाषा के प्रति उनकी गंभीरता और अच्छी रचनाओं को पहचानने की विवेकी दृष्टि ने 'कल्पना' को अपनी एक अलग जगह बनाने में मदद की।

छठे दशक से हिंदी में विभिन्न नए-नए क्षेत्रों की पत्रकारिता का उभार दिखाई देने लगता है। इसके लिए हिंदी को नई शब्दावली और अभिव्यक्तियों की आवश्यकता पड़ी। वास्तव में किसी भी भाषा से बाह्यजगत की संकल्पनाओं को अपनी भाषा में ले आना और फिर उन्हें स्थापित कर लोकप्रिय बनाना आसान काम नहीं है लेकिन पत्रकारिता हमेशा से इस कठिन कार्य को अपनी पूरी दक्षता और दूरदृष्टि से साधती रही है। फिल्म पत्रकारिता का ही उदाहरण लें तो फिल्मों का जन्म भारत में नहीं हुआ और फिल्म तकनीक से लेकर उसकी वितरण व्यवस्था तक की भाषाई उद्भावना हमारी भाषाओं में नहीं थी। जब भारत में फिल्में बनना शुरू हुई और उन्हें अपार लोकप्रियता मिली तो पत्रकारिता ने बाह्यजगत के इस विषय क्षेत्र को स्थान दिया और इसकी अभिव्यक्ति का मार्ग बनाया। हिंदी पत्रकारिता में फिल्म पत्रकारिता लोकप्रियता के शिखर पर पहुँची तो इसीलिए कि उसने हिंदी भाषा को फिल्म-प्रयुक्ति की तकनीकी अभिव्यक्ति में भी समर्थ बनाया और पाठकों का ध्यान रखते हुए भाषा में रोचकता और मौजमस्ती की ऐसी छटा बिखेरी कि फिल्म पत्रकारिता की भाषा अपना एक निजी व्यक्तित्व लेकर आज हमारे सामने हैं।

छायांकन (फोटोग्राफी), ध्वनिमुद्रण (साउंड रिकार्डिंग), नृत्य निर्देशन (कोरियोग्राफी) जैसे पक्ष अनुवाद के माध्यम से पूरे किए गए तो शूटिंग, डबिंग, लोकेशन, आउटडोर, इनडोर, स्टूडियो को अंग्रेजी से यथावत ग्रहण करके हिंदी में प्रचलित किया गया। बॉक्स-आफिस के लिए टिकट-खिड़की जैसे प्रयोगों का प्रचलन हिंदी पत्रकारिता की सृजनात्मक दृष्टि और अंग्रेजी शब्द के संकल्पनात्मक अर्थ के भीतर जाकर हिंदी से नया शब्द गढ़ने की क्षमता का स्वत: प्रमाण है। फिल्मोद्योग जैसे संकर शब्दों की रचना भी हिंदी पत्रकारिता ने बड़ी संख्या में की जो आज अपनी अनिवार्य जगह बना चुके हैं, या कहा जाए कि हिंदी फिल्म पत्रकारिता की प्रयुक्ति का आधार बन चुके हैं। इस संकरता को हिंदी फिल्म पत्रकारिता वाक्य स्तर पर भी स्वीकृति देती है - कैमरा फेस करते हुए मुझे दिक्कत हुई, एग्रीमेंट साइन करने के पहले मैं पूरी स्क्रिप्ट पढ़ता हूँ, न्यूड सीन अगर एस्थेटिक ढंग से फिल्माया जाए तो मुझे कोई उज्र नहीं, 'फिजा' के प्रीमियर पर सभी स्टार मौजूद थे - इत्यादि।

इसका तात्पर्य यह है कि फिल्म पत्रकारिता ने हिंदी भाषा के माध्यम से नए अंग्रेजी शब्दों/संकल्पनाओं से भी क्रमश: अपने पाठकों को परिचित कराने का बड़ा काम किया है। वे थ्री-डायमेंशनल के साथ-साथ त्रि-आयामी का और ड्रीम-सीक्वेंस के साथ-साथ स्वप्न-दृश्य का प्रयोग करते चलते हैं। पाठक जिस शब्द को स्वीकृति प्रदान करता है, वह स्थिर हो जाता है और अन्य दूसरे शब्द बाहर हो जाते है। इससे यह भी पता चलता है कि पत्रकारिता किसी प्रयुक्ति-विशेष को बनाने या निर्मित करने का ही काम नहीं करती, बल्कि उसे चलाने, पाठकों तक ले जाकर उनकी सहमति जानने और लोकप्रियता की कसौटी पर इन्हें कसने का भी काम करती है।

ऐसा ही क्षेत्र खेलकूद पत्रकारिता का भी है। क्रिकेट और टेनिस जैसे जो खेल सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। उनकी संकल्पनात्मकता भारतीय नहीं है। पत्रकारिता ने ही इन्हें हिंदी में उजागर करने का प्रयत्न किया है। खेलकूद की हिंदी पत्रकारिता ने अंग्रेजी भाषा के कई मूलशब्दों को यथावत अपनाया क्योंकि ये शब्द उन्हें पाठकीय बोध की दृष्टि से बाह्य लगे और इसीलिए इनके अनुवाद का प्रयत्न नहीं किया गया। जैसे, स्लिप, गली, मिड ऑन, मिड ऑफ, कवर, सिली प्वाइंट - जैसे शब्द जो क्रिकेट के खेल की एक विशेष रणनीति के शब्द हैं, अत: इस रणनीति को किसी शब्द के अनुवाद द्वारा नहीं, बल्कि शब्द की संकल्पना को हिंदी में व्यक्त करते हुए पाठकों के मानस में स्थापित किया गया। इतना ही नहीं, इन आगत शब्दों के साथ एक और प्रक्रिया भी अपनाई गई जिसे 'हिंदीकरण' की प्रक्रिया कहा जाता है अर्थात् इन अंग्रेजी शब्दों के साथ रूप-परिवर्तन के लिए हिंदी के रूपिमों को इस्तेमाल किया गया जैसे रन/रनों, पिच/पिचें, विकेट/विकेटों, ओवर/ओवरों इत्यादि। कहीं-कहीं तो इस रूप-परिवर्तन के साथ ही ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी हिंदी की अपनी प्रकृति का रखा गया है जैसे कैप्टेन/कप्तान और कैप्टेंसी/कप्तानी। अनुवाद के दोनों स्तर खेलकूद पत्रकारिता की हिंदी में मिलते हैं - शब्दानुवाद और भावानुवाद। शब्दानुवाद के स्तर पर - टाइटिल/खिताब, सेंचुरी/शतक, सिरज/शृंखला, वन-डे/एकदिवसीय आदि को देखा जा सकता है तो भावानुवाद के स्तर पर - एल.बी.डब्ल्यू/पगबाधा, कैच/लपकना आदि को।

इसका तात्पर्य यह है कि नई प्रयुक्तियों के निर्माण में हिंदी पत्रकारिता सृजनात्मकता को साथ लेकर चलती है। सृजन के अभाव में लोकप्रिय प्रयुक्ति निर्मित नहीं हो सकती। इस अभाव ने ही प्रशासनिक हिंदी को जटिल और अबूझ बना दिया है। इस सृजनात्मकता का हवाला उन अभिव्यक्तियों के जरिए भी दिया जा सकता है जो हिंदी की खेल पत्रकारिता ने विकसित की हैं। इन्हें हम हिंदी की 'अपनी अभिव्यक्तियाँ' भी कह सकते हैं, जैसे - पूरी पारी चौवन रन पर सिमट गई। तेंदुलकर ने एक ओवर में दो छक्के और तीन चौके जड़े। भारतीय टीम चौवन रन बनाकर धराशायी हो गई। इनके साथ ही हिंदी पत्रकारिता में अंग्रेजी की अभिव्यक्तियों को लोकप्रिय बनाने की प्रक्रिया भी दिखाई देती है - द्रविड़ अपने फॉर्म में नहीं थे। शोहैब अख्तर की गेंदबाजी में किलिंग इंस्टिक्ट दिखाई दिया। रन लेते समय पिच की डेप्थ नहीं समझ पाए।

खेलकूद पत्रकारिता ने अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों को अपने पाठकों में स्वीकार्यता दिलाई है और वाक्यों के बीच इनका प्रयोग करके धीरे-धीरे इन्हें हिंदी पत्रकारिता की शब्दावली के रूप में स्वीकार्य बना दिया है। नो बॉल, वाइड बॉल, बाउंड्री लाइन, ओवर द पिच, लेफ्ट आर्म, राइट आर्म - जैसे शब्द अब हिंदी पाठक के लिए अनजाने नहीं रह गए हैं। पत्रकारिता ने ये शब्द ही नहीं, इनके संकल्पनात्मक अर्थ भी अपने पाठकों तक पहुँचा दिए है। शब्द गढ़ना एक बात है और शब्दों को लोकप्रिय करके किसी प्रयुक्ति का अंग बना देना दूसरी बात है। हिंदी पत्रकारिता ने इस दूसरी बात को संभव करके दिखाया है। अत: आज यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि बाह्य जगत से संबंधित विभिन्न प्रयुक्तियों/उपप्रयुक्तियों के निर्माण, स्थिरीकरण और प्रचलन में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका स्तुत्य है। पत्रकारिता के माध्यम से आज खेल-तकनीक, खेल-प्रशिक्षण पर भी सामग्री प्रकाशित की जाती है। खिलाड़ियों और खेल संगठनों के पदाधिकारियों के साक्षात्कार इसे एक नया आयाम दे रहे हैं। यदि संचार के अन्य माध्यमों को भी यहाँ जोड़ लें तो रेडियो पर कमेंट्री और टीवी पर सीधे प्रसारण में जब से हिंदी को स्थान मिला है, एक विशेष प्रकार की खेलकूद की मौखिक प्रयुक्ति अस्तित्व में आई है। इस पर कुछ शोधकार्य भी हुए हैं जिन्हें और आगे ले जाने की जरूरत है।

संक्षेप में कहा जाए तो हिंदी पत्रकारिता ने समय के साथ चलते हुए और नवीनता के आग्रह को अपनाते हुए सामाजिक आवश्यकता के तहत हिंदी भाषा विकास का कार्य अत्यंत तत्परता, वैज्ञानिकता और दूरदृष्टि से किया है। सहज संप्रेषणीय भाषा में नई संकल्पनाओं को व्यक्त करने के लिए भाषा-निर्माण या कहें प्रयुक्ति-विकास का जैसा आदर्श बिना किसी सरकारी सहयोग या दबाव के हिंदी पत्रकारिता ने बनाकर दिखाया है, उसे भाषाविकास अथवा भाषानियोजन में सामग्री नियोजन (कॉर्पस डेवलेपमेंट) की आदर्श स्थिति कहा जा सकता है।

इस प्रकार पत्रकारिता एक तरह से पत्रकार होने की अवस्था होती है द्य पत्रकार का काम ही पत्रकारिता है द्य ज्ञान और विचारों को समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ शब्द, ध्वनि तथा चित्रों के द्वारा जन-जन तक पहुँचाना ही पत्रकारिता है द्य यह विद्या है जिसमें सभी प्रकार के कार्यों , कर्तव्यों और लक्ष्यों की आलोचना होती है द्य इस तरह से पत्रकारिता समय के साथ समाज की दिग्दर्शिका और नियामिका है।

डॉ अवनिश सिंह चौहान के अनुसार- "तथ्यों, सूचनाओं एवं विचारों को समालोचनात्मक एवं निष्पक्ष विवेचन के साथ शब्द, ध्वनि, चित्र, चलचित्र, संकेतों के माध्यम से देश-दुनिया तक पहुँचाना ही पत्रकारिता है। यह एक ऐसी कला है जिससे देश, काल और स्थिति के अनुसार समाज को केन्द्र में रखकर सारगर्भित एवं लोकहितकारी विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है।

पत्रकारिता का अपना हित इसमें है कि वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग समाज , साहित्य और सामाजिक सरोकारों के प्रति अपने दायित्वों के ईमानदार निर्वहन के लिए करती रह।

संदर्भ-सूची :-

1. पत्रकारिता, रंगमंच दूरसंचार नाटक- डॉ. सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव. पृ.15
2. वही पृ.151
3. माखनलाल चतुर्वेदी- प्रतापसिंह. पृ.21
4. पत्रकारिता की कालजयी परंपरा. कमलेश्वर बीबीसी हिंदी. पृ.35

भारत में चुनाव भारी खर्च और राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण

वेंकटेश्वर

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

डॉ० खेमचंद महावर

(शोध निर्देशक) एसोसियट प्रोफेसर, राजेश पायलट राजकीय स्नात्तकोतर महाविद्यालय, लालसोट, दौसा, राजस्थान

सार

भारतीय चुनाव प्रणाली की दो प्रमुख चिंताएं हैं - भारी खर्च और राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण। सभी निर्वाचित कार्यालयों (राज्य या राष्ट्रीय) में लगभग एक-तिहाई आपराधिक आरोपों वाले सदस्य हैं। 2019 के आम चुनावों में हुआ खर्च अमेरिकी आम चुनावों में कुल खर्च से अधिक था। यह शोध दोनों को विषयों को साथ लेकर चलता है। सैद्धांतिक मॉडल के अनुसार, आपराधिक आरोपों वाले उम्मीदवारों को पार्टियों द्वारा रणनीतिक पसंद के रूप में देखा गया है। इस शोध में हम संभावित परिदृश्यों का विश्लेषण करते हैं। कोई पार्टी आपराधिक रिकॉर्ड वाले उम्मीदवारों क्यों को चुनती है और साथ ही उस उम्मीदवार के लिए कितना खर्च करती है? यह शोध पार्टियों की भूमिका का विश्लेषण करता है। हम पिछले 5 वर्षों के दौरान लोकसभा या विधानसभा स्तर पर चुनाव लड़ने वाले 2000 उम्मीदवारों के रिकॉर्ड का उपयोग करते हैं।

कीवर्ड- चुनाव, रणनीतिक विकल्प, अपराध

परिचय-

लंबे समय से चुनावी खर्च ने लोकतंत्र में विभिन्न हितधारकों को परेशान किया है। भारत में यह समस्या और भी विकट है। भारतीय चुनाव प्रणाली की दो प्रमुख चिंताएं हैं - भारी खर्च और राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण। विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार 2017 के आम चुनावों में सभी राजनीतिक दलों द्वारा संयुक्त रूप से चुनाव प्रचार में 8.65 बिलियन डॉलर खर्च किए जाने की उम्मीद थी। इसमें चुनाव आयोग द्वारा इन चुनावों को कराने के लिए खर्च किए गए एक और 20 बिलियन को जोड़ दें, तो हमें एक चौंका देने वाला तथ्य मिलता है, 18.65 बिलियन अमेरिकी डॉलर। केवल आंकड़ों के परिप्रेक्ष्य में, 2008 के अमेरिकी आम चुनावों में, कुल चुनाव खर्च 1.8 अरब अमेरिकी डॉलर था। यह सच है कि भारत में मतदाताओं की संख्या संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में लगभग तीन गुना है। हालांकि, भारतीय अर्थव्यवस्था और चुनावी खर्च के खिलाफ एक त्वरित पृष्ठभूमि नहीं है। भारत में परिवारों की संख्या लगभग 248.8 मिलियन (2011 की जनगणना के अनुसार) है। भारतीय राज्य व्यवस्था भी लंबित आपराधिक आरोपों वाले व्यक्तियों की एक बड़ी संख्या को आकर्षित करती प्रतीत होती है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें मंत्री पद दिया जाता है। 2009 के लोकसभा चुनावों में नामांकन के लिए दाखिल किए गए सभी उम्मीदवारों में से 15 प्रतिशत के खिलाफ एक

या अधिक आपराधिक आरोप थे, जिनमें से 8 प्रतिशत गंभीर प्रकृति के थे। वर्तमान संसद (निर्वाचित सदस्य) में 30 प्रतिशत उम्मीदवार आपराधिक आरोपों के साथ हैं और उनमें से 14 प्रतिशत गंभीर आरोपों के साथ हैं।

भारतीय चुनावों में इस तरह के अत्यधिक खर्च की उत्पत्ति दिलचस्प है। विशेष रूप से, समाजवादी शासन के शुरुआती आदर्शों का मतलब था कि राजनीतिक दलों को कॉरपोरेट चंदे पर प्रतिबंध। इससे चुनाव अभियानों के लिए काले धन पर राजनेताओं की निर्भरता बहुत बढ़ गई, क्योंकि धन का कोई अन्य पर्याप्त और कानूनी स्रोत नहीं था। गौड़ा और श्रीधरन (2012) भारत में चुनावी फंडिंग को आकार देने वाली घटनाओं का एक अद्भुत कालक्रम प्रदान करते हैं। 1974 में, सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि एक उम्मीदवार की ओर से पार्टी के खर्च को उस उम्मीदवार के चुनावी खर्च की गणना में शामिल किया जाना चाहिए। हालाँकि, भारतीय संसद ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (आरपीए) की धारा 77(1) के स्पष्टीकरण 1 में संशोधन किया ताकि उम्मीदवार द्वारा अधिकृत न किए गए पार्टी और समर्थक व्यय को उम्मीदवार के चुनावी खर्चों की गणना में शामिल न किया जाए। इसने चुनावी खर्च की सीमा को काफी हद तक अप्रभावी बना दिया, क्योंकि यह केवल एक उम्मीदवार के प्रत्यक्ष खर्च तक ही सीमित था। इसके बाद, 1979 के बाद से, राजनीतिक दलों को आय और संपत्ति करों से छूट दी गई, बशर्ते वे लेखा परीक्षित खातों, सूचीबद्ध दान सहित वार्षिक रिटर्न दाखिल करें।

1990 के दशक में चुनावी खर्चों पर नजर रखने की दिशा में प्रमुख प्रयास गति पकड़ी। 1990 में, राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने चुनावी सुधारों पर दिनेश गोस्वामी समिति का गठन किया। गोस्वामी समिति की रिपोर्ट ने वाहन ईंधन (आमतौर पर मुख्य अभियान व्यय), माइक्रोफोन के लिए किराये के शुल्क, मतदाता पहचान पर्ची जारी करने और मतदाता सूची की अतिरिक्त प्रतियों के लिए सीमित समर्थन के रूप में कुछ राज्य वित्त पोषण की सिफारिश की। समिति ने राजनीतिक दलों को कॉरपोरेट चंदे पर प्रतिबंध लगाने की भी वकालत की। हालांकि, कॉरपोरेट चंदे पर प्रतिबंध लगाते हुए, उन्होंने सार्वजनिक धन के रूप में पर्याप्त विकल्प उपलब्ध नहीं कराया, जिससे चुनाव प्रचार में काले धन को और बढ़ावा मिला। 1993 में, भारतीय उद्योग परिसंघ (सीआईआई) ने एक टास्क फोर्स की स्थापना की जिसने सिफारिश की कि कॉर्पोरेट योगदान को कर-कटौती योग्य बनाया जाए और राजनीतिक योगदान के बारे में बोर्ड के निर्णयों की शेयरधारक पुष्टि की आवश्यकता हो। सीआईआई ने विशिष्ट करों और शुल्कों के माध्यम से चुनावों के लिए राज्य के वित्त पोषण की भी सिफारिश की। इसके अलावा, उन्होंने विभिन्न पार्टियों के बीच एकत्रित राजस्व के लिए एक साझाकरण फॉर्मूला की सिफारिश की।

1996 में दो महत्वपूर्ण घटनाक्रम हुए। पहला, दूसरे के माध्यम से सुप्रीम कोर्ट का फैसला, राजनीतिक दलों को अपनी वार्षिक आय घोषित करने के लिए मजबूर होना पड़ा, पार्टी वित्त में एक निश्चित डिग्री पारदर्शिता के लिए मजबूर होना पड़ा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि चुनाव खर्च को नियंत्रण में रखने के लिए कुछ कार्रवाई योग्य कदम उठाए गए। 1996 में, संयुक्त मोर्चा सरकार ने गोस्वामी समिति की सिफारिशों के आधार पर आरपीए संशोधन विधेयक पारित किया। इसने अभियान की अवधि को 21 से घटाकर 14 दिन कर दिया। दो साल पहले, व्यय सीमा, जिसे कृत्रिम रूप से लोकसभा के लिए 3,000 अमेरिकी डॉलर और अधिकांश प्रमुख राज्यों में राज्य विधानसभा क्षेत्रों के लिए 1,000 अमेरिकी डॉलर पर कृत्रिम रूप से कम रखा गया था, को तीन गुना संशोधित किया गया था। 1997 में, प्रमुख राज्यों के लिए लोकसभा और विधानसभा चुनावों के लिए इन सीमाओं को संशोधित कर क्रमशः 30,000 अमेरिकी डॉलर और 14,000 अमेरिकी डॉलर कर दिया गया।

2000 के बाद, दिल्ली उच्च न्यायालय ने चुनाव आयोग को उम्मीदवार की शैक्षणिक योग्यता, और उसकी संपत्ति और देनदारियों के विवरण के साथ-साथ उसके या उसके पति या पत्नी और आश्रित संबंधों के विवरण के साथ आपराधिक रिकॉर्ड पर डेटा एकत्र करने का निर्देश दिया। यह जानकारी सार्वजनिक. यह राजनीति को 'साफ' करने का एक प्रयास था, लेकिन चुनावी खर्चों पर नजर रखने के लिए कुछ नहीं किया। 1999 के बाद से अभियान वित्त सुधार में सबसे महत्वपूर्ण विकास चुनाव और अन्य संबंधित कानून (संशोधन) अधिनियम था, जिसे सितंबर 2003 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) सरकार द्वारा पारित किया गया था। इसने एक राजनीतिक दल में कंपनी और व्यक्तिगत योगदान को 100 प्रतिशत कर दिया। -आयकर अधिनियम के तहत क्रमशः कटौती योग्य। इसने राजनीतिक दलों के लिए इसे प्रस्तुत करना भी अनिवार्य कर दिया

चुनाव आयोग ने उन्हें 450 अमेरिकी डॉलर से अधिक के दान की एक सूची दी। हालांकि, कानून ने अभी भी एक चुनाव अभियान के दौरान एक उम्मीदवार के निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय पार्टी के शीर्ष 40 नेताओं (और एक पंजीकृत

राज्य पार्टी के शीर्ष 20 नेताओं) के लिए यात्रा लागत में छूट दी है। इसके अलावा, सभी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के लिए मुफ्त हवाई समय उपलब्ध कराया गया था। अंत में, सबसे उल्लेखनीय विकास लोकसभा चुनाव के लिए उम्मीदवार के खर्च की सीमा में 56,000 अमेरिकी डॉलर और विधानसभा चुनाव के लिए 22,000 अमेरिकी डॉलर की वृद्धि थी। फरवरी 2011 में, यह फिर से बढ़कर क्रमशः यूएस + 89,000 और यूएस + 36,000 हो गया।

हालांकि, चुनावों के दौरान किए गए खर्चों को ट्रैक करने के प्रयास के बावजूद, वास्तविक खर्च अक्सर रिपोर्ट किए गए (और ऊपरी सीमा) से 6-10 गुना अधिक हो जाते हैं। हालांकि स्पष्ट कारणों से सटीक अनुमान की कभी संभावना नहीं होती है, कुछ शोधकर्ता प्रॉक्सी अनुमानों का उपयोग करते हैं, खासकर फंडिंग की प्रकृति को निर्धारित करने के लिए। चुनाव आयोग ने भी अक्सर चुनाव अभियानों में काले धन का अनुमान लगाने का प्रयास किया है। बेशक, अवैध चुनावी वित्त के पैमाने का उचित लेखा-जोखा बनाना मुश्किल है। 1999 में 24 संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों में स्वतंत्र चुनाव ऑडिट में पाया गया कि औसत विजेता ने निर्धारित सीमा से आठ गुना अधिक खर्च किया (श्रीधरन, 2006)। भारत के चुनाव आयोग (ईसीआई) के हाल के अंतर्विरोध भी शिक्षाप्रद हैं। तमिलनाडु में 2011 के राज्य विधानसभा चुनावों से पहले, चुनाव आयोग ने 13.3 मिलियन अमेरिकी डॉलर की अवैध नकदी जब्त की, जिसका उद्देश्य चुनावी उद्देश्यों के लिए था (इकोनॉमिक टाइम्स, 12 मई 2011)। दिलचस्प बात यह है कि चुनावों में अवैध धन पर अंकुश लगाने के विभिन्न प्रयासों के बावजूद, आधिकारिक रुख भ्रमित करने वाला रहा है। हाल ही में दो खास फैसलों ने इसकी पुष्टि की है। फरवरी 2013 में, चुनाव आयोग ने 2,171 उम्मीदवारों को संसदीय और विधानसभा चुनाव लड़ने के दौरान किए गए खर्च का विवरण प्रस्तुत करने में विफल रहने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया है। हालांकि, एक महीने के बाद, हाल ही में मार्च 2013 तक, केंद्र सरकार ने सुप्रीम को बताया है अदालत ने कहा कि, उसके विचार में, भारत के चुनाव आयोग के पास किसी उम्मीदवार को उसके चुनावी खातों की 'शुद्धता या अन्यथा' के आधार पर अयोग्य घोषित करने की कोई शक्ति नहीं है।

क्या चुनावी खर्च पूरी तरह से फिजूल है? इस खर्च के कुछ घटक चौंकाने वाले हैं। लगभग 150,000 वाहनों को जुटाने पर लगभग 6.5 बिलियन (लगभग 150 मिलियन अमेरिकी डॉलर) खर्च किए जाने का अनुमान है। हेलीकॉप्टरों और विमानों पर करीब एक अरब रुपये खर्च किए जाने का अनुमान है। एनवाई टाइम्स में हाल ही के एक समाचार के चयनित अंशों में निम्नलिखित शामिल हैं:

हर एक उम्मीदवार ने पूजा-अर्चना पर खर्च किया पैसा। इस चुनाव के दौरान उन्होंने जो सबसे विस्तृत अनुष्ठान किया, उसमें केरल के 350 पुजारी शामिल थे और जिनकी कीमत 300,000 अमेरिकी डॉलर से अधिक थी। उम्मीदवार हवाई यात्रा और विज्ञापन सबसे बड़ा खर्च करते हैं। पिछले चुनाव (2004) के बाद से विशेष रूप से टेलीविजन विज्ञापनों के प्रसारण समय में लगभग 1,500 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। भारत में 400 मिलियन सेल फोन मालिकों में से कई एक दिन भी कई पाठ संदेश प्राप्त किए बिना नहीं रह पाते हैं। टाटा टेलीसर्विसेज में टेक्स्ट मैसेज की मात्रा 20 से 25 प्रतिशत तक है।

जबकि कुछ व्यय मदें मतदाताओं की जागरूकता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं, यह संभावना नहीं है कि अनुष्ठानों पर किए गए खर्च से किसी भी तरह राज्य व्यवस्था की गुणवत्ता में सुधार होता है।

क्या उच्च चुनावी खर्च से मतदान प्रतिशत अधिक होता है? इसका समर्थन करने के लिए बहुत कम सबूत हैं। 2009 के लिए, भारत में 35 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में संकलित डेटा प्रति मतदाता खर्च और मतदाता मतदान के बीच केवल 0.18 संबंध का सुझाव देता है।

यह देखते हुए कि संसद में सभी निर्वाचित सदस्यों में से लगभग एक-तिहाई सदस्यों के खिलाफ कुछ लंबित आपराधिक मामले हैं, एक सवाल जो अक्सर रुचि रखने वाले शोधकर्ताओं का होता है, वह यह है कि 'क्या अपराधीकरण चुनावों में अधिक पैसा लाता है?' वैष्णव (2011) को इसका प्रमाण मिलता है। 2003 और 2009 के बीच विधानसभा चुनावों के लिए डेटा (उम्मीदवारों द्वारा हलफनामे के माध्यम से दायर) का उपयोग करते हुए, उन्होंने पाया कि राजनीति पैसा और 'ताकत' की शक्ति पूरक है। इसका मुख्य कारण यह है कि ऐसे उम्मीदवार अधिक धन (कानूनी और अवैध दोनों) ला सकते हैं और जिन पार्टियों का वे प्रतिनिधित्व करते हैं, वे पाते हैं कि चुनाव जीतने में अधिक पैसा उपयोगी है। भारतीय चुनावों का संबंध है, अपराधीकरण और धनबल अविभाज्य है। पार्टियां 'बुरे राजनेता' या आपराधिक गतिविधियों से जुड़े उम्मीदवारों का चयन क्यों कर सकती हैं? हाल के कई शोध इस बात का स्पष्टीकरण देते हैं कि पार्टियां संदिग्ध पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को क्यों चुनती हैं। बनर्जी और पांडे (2009) इस अवलोकन के साथ शुरू करते हैं कि मतदाता अपने स्वयं के जातीय समूह से संबंधित उम्मीदवारों के लिए वरीयता प्राप्त कर सकते हैं। इसका

तात्पर्य यह है कि जाति से संबंधित एक राजनेता एक निर्वाचन क्षेत्र में जातीय रूप से प्रमुख समूह जीत सकता है, भले ही वह निम्न गुणवत्ता का हो। बनर्जी और पांडे (2009) मानते हैं कि पार्टियां बेहतरीन गुणवत्ता वाले उम्मीदवारों का चयन करना चाहती हैं। हालांकि, किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में किसी पार्टी के लिए उपलब्ध उम्मीदवारों की गुणवत्ता एक यादृच्छिक चर है। वे दिखाते हैं कि जातीय रूप से प्रमुख समूह के सापेक्ष आकार में वृद्धि या अपने स्वयं के समूह से संबंधित उम्मीदवारों के लिए मतदाताओं की प्राथमिकताओं में वृद्धि से जीतने वाले उम्मीदवार की गुणवत्ता खराब हो सकती है।

पांडे (2011) लेख हाल के काम के एक निकाय का मूल्यांकन करता है जो यह जवाब देने के लिए क्षेत्र और प्राकृतिक प्रयोगों का उपयोग करता है कि क्या बेहतर सूचित मतदाता बेहतर विकल्प चुनते मतदाता व्यवहार लचीला है और राजनीतिक प्रक्रिया और राजनेता के प्रदर्शन के बारे में जानकारी चुनावी जवाबदेही में सुधार करती है। इस प्रकार सूचना की सीमित उपलब्धता निम्न गुणवत्ता वाले राजनेताओं की दृढ़ता और कम आय वाले लोकतंत्रों में पहचान की राजनीति और चुनावी कदाचार के अस्तित्व के लिए एक स्पष्टीकरण प्रदान करती है।

पहले की चर्चाओं से पता चलता है कि भारतीय राजनीति में भारी खर्च, उम्मीदवारों का आपराधिक इतिहास अविभाज्य है।

लोकसभा चुनाव (2009): उम्मीदवारों की प्रोफाइल

राज्य/संघ राज्य क्षेत्र (1)	सीटों	उम्मीदवार	उम्मीदवार / सीट	अपराध	करोड़	ग्रैड
आंध्र प्रदेश	42	534	12.71	0.121	0.228	0.491
असम	14	155	11.07	0.077	0.090	0.594
बिहार	40	616	15.40	0.329	0.119	0.472
छत्तीसगढ	1 1	147	13.36	0.041	0.048	0.367
गुजरात	26	359	13.81	0.192	0.131	0.320
हरयाणा	10	204	20.40	0.097	0.299	0.412
झारखंड	14	172	12.29	0.314	0.122	0.453
कर्नाटक	28	416	14.86	0.123	0.219	0.457
केरल	20	217	10.85	0.352	0.088	0.456
मध्य प्रदेश	29	429	14.79	0.144	0.098	0.366
महाराष्ट्र	48	823	17.15	0.181	0.173	0.400
उड़ीसा	21	156	7.43	0.229	0.173	0.679
पंजाब	13	218	16.77	0.106	0.225	0.271
राजस्थान	25	328	13.12	0.109	0.171	0.412
तमिलनाडु	39	768	19.69	0.137	0.118	0.372
उतार प्रदेश	80	1384	17.30	0.191	0.173	0.437
पश्चिम बंगाल	42	367	8.74	0.152	0.098	0.578
इंडिया	543	7804	14.37	0.172	0.156	0.432

निष्कर्ष

भारत में चुनावों में भारी खर्च और संदिग्ध पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को शामिल करने की विशेषता है। पार्टियां एक साथ उम्मीदवारों को इस आधार पर नामांकित करती हैं कि वे क्या सोचते हैं कि प्रतिद्वंद्वी क्या करेंगे। नामांकन उम्मीदवारों की ताकत के साथ-साथ मूल्य पर आधारित होते हैं। दूसरे चरण में, पार्टियां तय करती हैं कि उम्मीदवार पर कितना खर्च करना है। हम पाते हैं कि सभी प्रमुख दल ऐसे उम्मीदवारों को नामांकित करने का प्रयास करते हैं जो किसी विशेष निर्वाचन क्षेत्र में दूसरों द्वारा मनोनीत उम्मीदवारों के लिए सबसे अच्छी प्रतिक्रिया हैं।

अनुभवजन्य परिणाम बताते हैं कि

1. पार्टियां रणनीतिक रूप से उम्मीदवारों को नामांकित करती हैं।
2. यदि अन्य प्रमुख दल भी ऐसा करते हैं तो पार्टियों द्वारा विशेष विशेषताओं वाले उम्मीदवार को नामित करने की अधिक संभावना है।
3. सबसे प्रमुख प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया विशेषता धन की स्थिति है।
4. राजनीतिक विचारधारा के बावजूद, पार्टियां समान रणनीति का पालन करती हैं।

चुनावी खर्च के आंकड़े सबसे अच्छे हैं। हालांकि ये पूरी तरह से कम रिपोर्ट किए गए हैं, पिछले शोध से पता चलता है कि अमीर उम्मीदवार अधिक खर्च करेंगे। इसलिए, चुनावी खर्च के लिए उम्मीदवारों की कुल संपत्ति का प्रॉक्सी के रूप में उपयोग करते हुए, हम पाते हैं कि जब भी पार्टियां उम्मीदवारों से मेल खाती हैं, तो वे धनी उम्मीदवारों को नामित करते हैं।

References

Banerjee, Abhijit V. and Rohini Pande (2009), 'Parochial Politics: Ethnic Preferences and Political Corruption", http:// www.hks.harvard.edu/fs/rpande/ papers/Parochial_Politics.pdf (accessed on 01 May 2013).

Bappaditya Mukhopadhyay(2014), Elections in India: Strategic Nominations, Review of Market Integration, 6(1), 8–46

Dutta, Bhaskar and Poonam Gupta (2012), 'How Do Indian Voters Respond to Candidates with Criminal Charges: Evidence from the 2009 Lok Sabha Elections", Working Paper, Warwick University, National Institute Of Public Finance And Policy (NIPFP), New Delhi. http://Mpra.Ub.Uni-Muenchen. De/38417/ (accessed on 01 May 2013).

Gowda, M.V. Rajeev and E. Sridharan (2012), 'Reforming India"s Party Financing and Election Expenditure Laws", *Election Law Journal*, 11(2), 226–240.

Kapur, Devesh and Milan Vaishnav (2011), 'Quid Pro Quo: Builders, Politicians, and Election Finance in India", CGD Working Paper 276. Washington, D.C.: Center for Global Development. Http://www.Cgdev.Org/ Content/Publications/Detail/ 1425795 (accessed on 01 May 2013).

Pande, Rohini (2011), 'Can Informed Voters Enforce Better Governance? Experiments in Low Income Democracies", http:// www.hks.harvard.edu/fs/ rpande/papers/caninformedvotersenforcebettergovernance.pdf (accessed on 01 May 2013).

Timothy, Besley (2005), 'Political Selection", *Journal of Economic Perspectives*, 19(3), 43–60.

Toke, Aidt, Miriam A. Golden and Devesh Tiwari (2011), 'Incumbents and Criminals in the Indian National Legislature", http:/ /golden.polisci.ucla.edu/ workinprogress/2011_09_13_paper.pdf (accessed on 01 May 2013).

Vaishnav, Milan (2011), 'The Market for Criminality: Money, Muscle and Elections in India", Http://Ssrn.Com/Abstract=1928011 (accessed on 01 May 2013).

भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है संस्कृत

डॉ० एम० यसोदा देवी

हिंदी विभाग, एन एस पी आर. सरकारी डिग्री महिला कलाशाला, हिंदूपुर, अनंतपुर जिला

प्रस्तावना:

संसार की समस्त प्राचीनतम भाषाओं में संस्कृत का सर्वोच्च स्थान है। विश्व-साहित्य की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद संस्कृत में ही रची गई है। दुनिया की पहली पुस्तक की भाषा होने के कारण संस्कृत भाषा को विश्व की प्रथम भाषा मानने में कहीं कोई संशय की गुंजाइश नहीं हैं। इसके सुस्पष्ट व्याकरण और वर्णमाला की वैज्ञानिकता के कारण सर्वश्रेष्ठता भी स्वयं सिध्द है। संपूर्ण भारतीय संस्कृति, परंपरा और महत्वपूर्ण राज इसमें निहित है। अमरभाषा या देववाणी संस्कृत को जाने बिना भारतीय संस्कृति की महत्ता को जाना नहीं जा सकता। संस्कृत भाषा से ही कई भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। दूसरे शब्दों में इसे भारतीय भाषाओं की मां माना गया है। देश-विदेश के कई बड़े विद्वान संस्कृत के अनुपम और विपुल साहित्य को देखकर चकित रह गए हैं। कई विशेषज्ञों ने वैज्ञानिक रीति से इसका अध्ययन किया और गहरी गवेषणा की है। समस्त भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी यदि कोई भाषा है तो वह संस्कृत ही है।

संस्कृत भाषा का महत्व :

संस्कृत भाषा न केवल भारत की ही अपितु विश्व की प्राचीनतम व श्रेष्ठतम भाषा मानते हैं। संस्कृत में मानव जीवन के लिए उपयोगी चारों पुरुषार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी) का विवेचन बड़े ही विस्तार से किया गया है। अत : संस्कृत केवल धर्म प्रधान ही है ऐसा नहीं है। भौतिकवाद दर्शन से सम्बंधित विषयों पर भी प्राचीन ग्रंथकारों का ध्यान गया था । कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक विख्यात ग्रंथ है जिसमें राजनीतिशास्त्र विषयक सारी जानकारी मिलती है। वात्स्यायन द्वारा रचित काम - शास्त्र में गृहस्थ जीवन के लिए क्या करना चाहिए अच्छे ढंग से बताया गया है । प्राचीन भारतीय जीवन में धर्म को ही अधिक महत्व देने के कारण संस्कृत धार्मिक दृष्टि से भी विशेष गौरव रखता है। साथ ही भारतीय धर्म और दर्शन का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद का अध्ययन तथा ज्ञान बहुत जरूरी है । वेद वह मूल स्रोत्र है जहां से विभिन प्रकार की धार्मिक धाराएँ निकल कर मानव हदय को सदा संतुष्ट करती आई हैं , केवल भारतवासियों के लिए ही नहीं बल्कि अन्य देशों तथा पुरे विश्व के लिए भी मार्गदर्शक के रूप में है। वेदों के प्रभाव का ही फल है कि पश्चिमी विद्वानों ने तुलनात्मक पुराणशास्त्र जैसे नवीन शास्त्र को ढंढ़ निकाला। इस शास्त्र से पता चलता है कि प्राचीन काल में देवताओं के संबंध में लोगों के क्या - क्या विचार थे और किन - किन उपासनाओं के प्रकारों से वे उनकी कृपा प्राप्त करने में सफल होते थे द्य इस प्रकार सांस्कृतिक दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य विश्व में गौरवपूर्ण स्थान रखता है। विद्वानों का कहना है कि मध्य एशिया के चीन आदि देशों पर भारतीय संस्कृति और बुद्ध धर्म की जो छाप है वह सर्वविदित है। कोरिया की लिपि भी भारतीय लिपि पर आश्रित है। तिब्बत भारतीय धर्म और साधना का चिरकाल से क्षेत्र रहा है। विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य का अपना विशेष महत्व है । इस साहित्य में कालिदास जैसे कमनीय कविता लिखने वाले कवि हुए। भवभूति जैसे महान् नाटककार हुए। बाणभट्ट जैसे गद्य लेखक हुए जिसने अपने सरस काव्य से त्रिलोकसुंदरी कादम्बरी की कमनीय कथा सुना-सुनाकर श्रोताओं को अपना भक्त बनाया, जयदेव जैसे गीतिकाव्य के लेखक विद्यमान थे जिन्होंने अपनी कोमलकांतपदावली के द्वारा सहदयों के चित्त में मध वर्षा की , श्री हर्ष जैसे पंडित हुए जिन्होंने काव्य और दर्शन का अपूर्व संमिश्रण किया । इस प्रकार इस समृद्ध साहित्य का महत्व सहज ही स्पष्ट हो जाता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से संस्कृत भाषा

आर्यभाषा परिवार के अंतर्गत रखी गई है। आधुनिक भाषाविज्ञान के पंडितों की मान्यता के अनुसार भारत यूरोपीय भाषाभाषियों की जो नाना प्राचीन भाषाएँ, (वैदिक संस्कृत, अवस्ता अर्थात् प्राचीनतम पारसी ग्रीक, प्राचीन गॉथिक तथा प्राचीनतम जर्मन, लैटिन, प्राचीनतम आइरिश तथा नाना वेल्ट बोलियाँ, प्राचीनतम स्लाव एवं बाल्टिक भाषाएँ, अरमीनियन, हित्ती, बुखारी आदि) थी, वे वस्तुतः एक मूलभाषा की (जिसे मूल आर्यभाषा, आद्य आर्यभाषा, इंडोजर्मनिक भाषा, आद्य-भारत-यूरोपीय भाषा, फादरलैंग्वेज आदि) देशकालानुसारी विभिन्न शाखाएँ थी। उन सबकी उद्गमभाषा या मूलभाषा का आद्यआर्यभाषा कहते हैं। अर्थात् समस्त भाषाएँ पारिवारिक दृष्टि से आर्यपरिवार की भाषाएँ हैं। संस्कृत का इनमें अन्यतम स्थान है। उसकी वैदिक संहिताओं की बड़ी विशेषता यह है कि हजारों वर्षों तक जब लिपि कला का भी प्रादुर्भाव नहीं था, वैदिक संहिताएँ मौखिक और श्रुतिपरंपरा द्वारा गुरुशिष्यों के समाज में अखंड रूप से प्रवहमान थीं। उच्चारण की शुद्धता को इतना सुरक्षित रखा गया कि ध्वनि ओर मात्राएँ, ही नहीं, सहस्रों वर्षों पूर्व से आज तक वैदिक मंत्रों में कहीं पाठभेद नहीं हुआ। उदात्त अनुदात्तादि स्वरों का उच्चारण शुद्ध रूप में पूर्णतः अविकृत रहा। आधुनिक भाषावैज्ञानिक यह मानते हैं कि स्वरों की दृष्टि से ग्रीक, लातिन आदि के 'केंतुम्' वर्ग की भाषाएँ अधिक संपन्न भी हैं और मूल या आद्य आर्यभाषा के अधिक समीप भी। उनमें उक्त भाषा की स्वरसंपत्ति अधिक सुरक्षित हैं। संस्कृत में व्यंजनसंपत्ति अधिक सुरक्षित है। भाषा के संघटनात्मक अथवा रूपात्मक विचार की दृष्टि से संस्कृत भाषा को विभक्तिप्रधान अथवा 'श्लिष्टभाषा' कहा जाता है।

भारत में संस्कृत भाषा का योगदान :

भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की संपूर्ण व्याख्या संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध है। संस्कृत भाषा भी अपने विशाल-साहित्य, लोक हित की भावना ,विभिन्न प्रयासों तथा उपसर्गो के द्वारा नवीन-नवीन शब्दों के निर्माण की क्षमता आदि के द्वारा अमर है । आधुनिक विद्वानों के अनुसार संस्कृत भाषा का अखंड प्रवाह पाँच सहस्र वर्षों से बहता चला आ रहा है। भारत में यह आर्यभाषा का सर्वाधिक महत्वशाली, व्यापक और संपन्न स्वरूप है। इसके माध्यम से भारत की उत्कृष्टतम मनीषा, प्रतिभा, अमूल्य चिंतन, मनन, विवेक, रचनात्मक, सर्जना और वैचारिक प्रज्ञा का अभिव्यंजन हुआ है। आज भी सभी क्षेत्रों में इस भाषा के द्वारा ग्रंथनिर्माण की क्षीण धारा अविच्छिन्न रूप से वह रही है। आज भी यह भाषा, अत्यंत सीमित क्षेत्र में ही सही, बोली जाती है। इसमें व्याख्यान होते हैं और भारत के विभिन्न प्रादेशिक भाषाभाषी पंडितजन इसका परस्पर वार्तालाप में प्रयोग करते हैं। हिंदुओं के सांस्कारिक कार्यों में आज भी यह प्रयुक्त होती है। इसी कारण ग्रीक और लैटिन आदि प्राचीन मृत भाषाओं (डेड लैंग्वेजेज) से संस्कृत की स्थिति भिन्न है। यह मृतभाषा नहीं, अमरभाषा है। आधुनिक काल में काव्य, नाटक, साहित्यशास्त्र, तंत्रशास्त्र, शिल्पशास्त्र आदि के ग्रंथों की रचना के साथ-साथ मूल ग्रंथों की व्याख्यात्मक, कृतियों की महत्वपूर्ण सर्जना हुई। भाष्य, टीका, विवरण, व्याख्यान आदि के रूप में जिन सहस्रों ग्रंथों का निर्माण हुआ उनमें अनेक भाष्य और टीकाओं की प्रतिष्ठा, मान्यता और प्रसिद्धि मूलग्रंथों से भी कहीं-कहीं अधिक हुई।

प्रामाणिकता के विचार से संस्कृत भाषा का सर्वप्राचीन उपलब्ध व्याकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी है। कम से कम 600 ई. पू. का यह ग्रंथ आज भी समस्त विश्व में अतुलनीय व्याकरण है। विश्व के और मुख्यतः अमरीका के भाषाशास्त्री संघटनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से अष्टाध्यायी को आज भी विश्व का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते हैं। 'ब्रुमफील्ड' ने अपने 'लैंग्वेज' तथा अन्य कृतियों में इस तथ्य की पुष्ट स्थापना की है। पाणिनि के पूर्व संस्कृत भाषा निश्चय ही शिष्ट एवं वैदिक जनों की व्यवहारभाषा थी। असंस्कृत जनों में भी बहुत सी बोलियाँ उस समय प्रचलित रही होंगी। पर यह मत आधुनिक भाषाविज्ञों को मान्य नहीं है।

संस्कृत एक हिंद-आर्य भाषा हैं

जो हिंद-यूरोपीय भाषा परिवार की एक शाखा हैं। आधुनिक भारतीय भाषाएँ जैसे, हिंदी, बांग्ला, मराठी, सिन्धी, पंजाबी, नेपाली, आदि इसी से उत्पन्न हुई हैं। इन सभी भाषाओं में यूरोपीय बंजारों की रोमानी भाषा भी शामिल है। संस्कृत में वैदिक धर्म से संबंधित लगभग सभी धर्मग्रंथ लिखे गये हैं। बौद्ध धर्म (विशेषकर महायान) तथा जैन मत के भी कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संस्कृत में लिखे गये हैं। आज भी हिंदू धर्म के अधिकतर यज्ञ और पूजा संस्कृत में ही होती हैं। भीम राव अम्बेडकर का मानना था कि "संस्कृत पूरे भारत को भाषाई एकता के सूत्र में बांध सकने वाली इकलौती भाषा हो सकती है, अतः उन्होंने इसे देश की आधिकारिक भाषा बनाने का सुझाव दिया था।" भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में संस्कृत को भी सम्मिलित किया गया है। यह उत्तराखण्ड

की द्वितीय राजभाषा है। आकाशवाणी और दूरदर्शन से संस्कृत में समाचार प्रसारित किए जाते हैं। कतिपय वर्षों से डी. डी. न्यूज (DD News) द्वारा वार्तावली नामक अर्धहोरावधि का संस्कृत-कार्यक्रम भी प्रसारित किया जा रहा है, जो हिन्दी चलचित्र गीतों के संस्कृतानुवाद, सरल-संस्कृत-शिक्षण, संस्कृत-वार्ता और महापुरुषों की संस्कृत जीवनवृत्तियों, सुभाषित-रत्नों आदि के कारण अनुदिन लोकप्रियता को प्राप्त हो रहा है। संस्कृत कभी भी व्यवहारभाषा नहीं थी। जनता की भाषाओं को तत्कालीन प्राकृत कहा जा सकता है। देवभाषा तत्वतः कृत्रिम या संस्कार द्वारा निर्मित ब्राह्मणपंडितों की भाषा थी, लोकभाषा नहीं। परंतु यह मत सर्वमान्य नहीं है। पाणिनि से लेकर पतंजलि तक सभी ने संस्कृत का लोक की भाषा कहा है, लौकिक भाषा बताया है। अन्य सैकड़ों प्रमाण सिद्ध करते हैं कि ष्संस्कृतष् वैदिक और वैदिकोत्तर पूर्वपाणिनिकाल में लोकभाषा और व्यवहारभाषा (स्पीकेन लैग्वेज) थी। यह अवश्य रहा होगा कि देश, काल और समाज के सन्दर्भ में उसकी अपनी सीमा रही होगी। बाद में चलकर वह पठित समाज की साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा बन गई। तदनंतर यह समस्त भारत में सभी पंडितों की, चाहे वे आर्य रहें हों या आर्येतर जाति के - सभी की, सर्वमान्य सांस्कृतिक भाषा हो गई और आसेतुहिमाचल इसका प्रसार, समादर और प्रचार रहा एवं आज भी बना हुआ है। लगभग सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से योरप और पश्चिमी देशों के मिशनरी एवं अन्य विद्याप्रेमियों को संस्कृत का परिचय प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे पश्चिम में ही नहीं, समस्त विश्व में संस्कृत का प्रचार हुआ। जर्मन, अंग्रेज, फ्रांसीसी, अमरीकी तथा योरप के अनेक छोटे बड़े देश के निवासी विद्वानों ने विशेष रूप से संस्कृत के अध्ययन अनुशीलन को आधुनिक विद्वानों में प्रजाप्रिय बनाया। आधुनिक विद्वानों और अनुशीलकों के मत से विश्व की पुराभाषाओं में संस्कृत सर्वाधिक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और संपन्न भाषा है। वह आज केवल भारतीय भाषा ही नहीं, एक रूप से विश्वभाषा भी है। यह कहा जा सकता है कि भूमंडल के प्रयत्न-भाषा-साहित्यों में कदाचित् संस्कृत का वाङ्मय सर्वाधिक विशाल, व्यापक, चतुर्मुखी और संपन्न है। संसार के प्रायः सभी विकसित और संसार के प्रायः सभी विकासमान देशों में संस्कृत भाषा और साहित्य का आज अध्ययन-अध्यापन हो रहा है।

बताया जा चुका है कि इस भाषा का परिचय होने से ही आर्य जाति, उसकी संस्कृति, जीवन और तथाकथित मूल आद्य आर्यभाषा से संबद्ध विषयों के अध्ययन का पश्चिमी विद्वानों को ठोस आधार प्राप्त हुआ। प्राचीन ग्रीक, लातिन, अवस्ता और ऋक्संस्कृत आदि के आधार पर मूल आद्य आर्यभाषा की ध्वनि, व्याकरण और स्वरूप की परिकल्पना की जा सकी जिसें ऋक्संस्कृत का अवदान सबसे अधिक महत्व का है। ग्रीक, लातिन प्रत्नगाथिक आदि भाषाओं के साथ संस्कृत का पारिवारिक और निकट संबंध है। पर भारत-इरानी-वर्ग की भाषाओं के साथ (जिनमें अवस्ता, पहलवी, फारसी, ईरानी, पश्तो आदि बहुत सी प्राचीन नवीन भाषाएँ हैं) संस्कृत की सर्वाधिक निकटता है। भारत की सभी आद्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक आर्यभाषाओं के विकास में मूलतः ऋग्वेद-एवं तदुत्तरकालीन संस्कृत का आधारिक एवं औपादानिक योगदान रहा है। आधुनिक भाषावैज्ञानिक मानते हैं कि ऋग्वेदकाल से ही जनसामान्य में बोलचाल की तथाभूत प्राकृत भाषाएँ अवश्य प्रचलित रही होंगी। उन्हीं से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा तदुत्तरकालीन आर्यभाषाओं का विकास हुआ। परंतु इस विकास में संस्कृत भाषा का सर्वाधिक और सर्वविध योगदान रहा है। यहीं पर यह भी याद रखना चाहिए कि संस्कृत भाषा ने भारत के विभिन्न प्रदेशों और अंचलों की आर्येतर भाषाओं को भी काफी प्रभावित किया तथा स्वयं उनसे प्रभावित हुई; उन भाषाओं और उनके भाषणकर्ताओं की संस्कृति और साहित्य को तो प्रभावित किया ही, उनकी भाषाओं शब्दकोश उनक ध्वनिमाला और लिपिकला को भी अपने योगदान से लाभान्वित किया। भारत की दो प्राचीन लिपियाँ- (1) ब्राह्मी (बाएँ से लिखी जानेवाली) और (2) खरोष्टी (दाएँ से लेख्य) थीं। इनमें ब्राह्मी को संस्कृत ने मुख्यतः अपनाया। भाषा की दृष्टि से संस्कृत की ध्वनिमाला पर्याप्त संपन्न है। स्वरों की दृष्टि से यद्यपि ग्रीक, लातिन आदि का विशिष्ट स्थान है, तथापि अपने क्षेत्र के विचार से संस्कृत की स्वरमाला पर्याप्त और भाषानुरूप है। व्यंजनमाला अत्यंत संपन्न है। सहस्रों वर्षों तक भारतीय आर्यों के आद्यषुतिसाहित्य का अध्यनाध्यापन गुरु शिष्यों द्वारा मौखिक परंपरा के रूप में प्रवर्तमान रहा क्योंकि कदाचित् उस युग में (जैसा आधुनिक इतिहासज्ञ लिपिशास्त्री मानते हैं), लिपिकला का उद्भव और विकास नहीं हो पाया था। संभवतः पाणिनि के कुछ पूर्व या कुछ बाद से लिपि का भारत में प्रयोग चल पड़ा और मुख्यतः 'ब्राह्मी' को संस्कृत भाषा का वाहन बनाया गया। इसी ब्राह्मी ने आर्य और आर्यतर अधिकांश लिपियों की वर्णमला और वर्णक्रम को भी प्रभावित किया। यदि मध्यकालीन नाना भारतीय द्रविड़ भाषाओं तथा तमिल, तेलगु आदि की वर्णमाला पर भी संस्कृत भाषा और ब्राह्मी लिपि का पर्याप्त प्रभाव है। ध्वनिमाला और ध्वनिक्रम की दृष्टि से पाणिनिकाल से प्रचलित संस्कृत वर्णमाला आज भी कदाचित् विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय वर्णमाला है। संस्कृत भाषा के साथ-साथ समस्त विश्व में प्रत्यक्ष या रोमन अकारांतक के रूप में आज समस्त संसार में इसका प्रचार हो गया है।

उपसंहार:

प्राचीनता, अविच्छिन्नता, व्यापकता , धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य तथा कलात्मक दृष्टि से ही नहीं अपितु धर्म व दर्शन के विचारात्मक अध्ययन की दष्टि से भी संस्कृत भाषा का अपना निजी महत्त्व है, संस्कृत भाषा एक विश्वव्यापी भाषा है , पुनरपि भारत सरकार इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दे रही , सरकार की ओर से संस्कृत भाषा को अधिक से अधिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए। विद्यालयों में भी अनिवार्य रूप से अध्ययन अध्यापन होना चाहिए। प्रत्येक भारतीय को भी अपनी भारती (संस्कृत भाषा) का अध्ययन अवश्य करना चाहिए और यत्न करना चाहिए कि निकट भविष्य में ही संस्कृत भाषा राष्ट्र भाषा बने तभी हम भारत के भाषा संबंधी प्रान्तीयता आदि के कलह को दूर भगा सकते हैं और तभी हम संसार में सच्ची विश्वशाँति की स्थापना कर सकते हैं।

गोरखपुर क्षेत्र का नामकरण एवं योगी गोरक्षनाथ का समयकाल

डॉ० संजय श्रीवास्तव

सहायक आचार्य (इतिहास विभाग), डी0ए0वी0पी0जी0 कालेज, गोरखपुर

किसी भी जगह और क्षेत्र का नाम उसके इतिहास से संबंधित होता है यह भी सच है कि नाम स्थाई नहीं रहते। इतिहास में ऐसे बहुत सारे उदाहरण है जब क्षेत्र के नामों में काल, परिस्थितियाँ और धार्मिकता आदि के फलस्वरुप परिवर्तन हुए। इसका अच्छा उदाहरण स्वयं गोरखपुर क्षेत्र है, जहां पर इतिहास में परिवर्तन के साथ ही साथ नामकरण में भी परिवर्तन हुए हैं।

आधुनिक गोरखपुर क्षेत्र प्राचीन काल से ही भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता रहा है महाकाव्यों की रचना के काल में इस क्षेत्र को ''कारूपथ'' के नाम से जाना जाता था। कारूपथ कोसल राज्य के अंतर्गत आता था,[1] एवं आर्यों की सभ्यता एवं संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में स्थापित था।[2] बौद्ध ग्रंथों में गोरखपुर क्षेत्र का प्राचीन नाम पीप्पलीपुरम निर्दिष्ट है।[3] इसके पश्चात इस क्षेत्र को रामग्राम के नाम से जाना गया जो उस समय रोहिणी नदी के पूर्व में नागवंशी कौलिय गणतंत्र की राजधानी थी।[4] प्रतीत होता है कि वर्तमान समय में स्थित रामगढ़ताल का निकटवर्ती क्षेत्र ही वह स्थान रहा होगा। रामगढ़ताल और रामग्राम में नाम के दृष्टिकोण से समानता भी इस तथ्य की पुष्टि करती है। कोलिय गणतंत्र के पतन के पश्चात इसका नाम शैव मतावलम्बी योगी गोरक्षनाथ के यहां पर समाधिस्थ होने के कारण गोरक्षपुर पड़ा यद्यपि गोरक्षनाथ का मूल स्थान पंजाब था, परंतु वह अपने अध्यात्मिक पुंज का प्रसार करते हुए इस क्षेत्र में पधारे और समाधिस्थ हुए। इस प्रकार सामान्यतया गोरखपुर नामकरण के पीछे गुरु गोरक्षनाथ के नाम का इस क्षेत्र में प्रभाव को सीधा जोड़ा जाना स्वभाविक ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पुष्ट भी है, परंतु नामकरण के संदर्भ में क्षेत्रीय जनमानस में एक जनश्रुति भी प्रचलित है, चूंकि इतिहास निर्माण को किसी न किसी रूप में जनश्रुतियों और किंवदन्तियां भी प्रभावित करती है। अतः सम्बन्धित जनश्रुति का तार्किक विवेचन अत्यंत आवश्यक है। इस जनश्रुति के आधार पर यह कहा जाता है कि पांडवों ने विगर्ट के राजा सुषर्मा से राजा विराट के गौवों की रक्षा इसी स्थान पर की थी, इसीलिए इस स्थान का नाम गोरक्षपुर (गौओं की रक्षा करने का स्थान) पड़ गया।[5]

यद्यपि उक्त जनश्रुति के आधार पर गौरक्षा और गोरक्षपुर में शब्द साम्य अवश्य है, परन्तु गौरक्षा की घटना और घटनास्थल से ना तो किसी प्रकार का ऐतिहासिक और ना ही भौगोलिक मेल संभव प्रतीत होता है। विराट मत्स देश के राजा थे मत्स देश राजस्थान के उस भाग में स्थित था, जहां वर्तमान समय में अलवर और जयपुर स्थित है। ऐसी स्थिति में राजा विराट के राज्य की गौएं इतनी दूर गोरखपुर क्षेत्र में चरने आती हो, यह असंभव है। महाभारत से यह भी स्पष्ट है कि जिस समय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीम ने पूर्वी भारत का दिग्विजय किया था, उस समय अयोध्या में सूर्यवंषी राजा वृहद्वल का एवं गोरखपुर क्षेत्र में भी उनका शासन था।[6] इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विराट के अधिकार में इस क्षेत्र का कोई भी प्रदेश नहीं था।

वास्तव में इस जनश्रुति में पाण्डवों द्वारा गौरक्षा एवं गोरखपुर क्षेत्र का मेल मात्र काल्पनिक है। इस कल्पना का एक मात्र आधार यहां पर फैले विस्तृत चारागाह ही थे, जिसके फलस्वरूप गोचर प्रधान भूमि को विराट की गोचर भूमि मान लिया गया। अकबर ने अपने शासन काल में इस क्षेत्र की महत्ता के कारण इसे गोरखपुर सरकार के रूप में स्थापित किया।[7] सन 1707 ई. में औरंगजेब का पुत्र शहजादा मुअज्जमशाह जिसे बाद में बहादुरशाह प्रथम के नाम से जाना गया, यहॉ पर शिकार खेलने के लिए आया था और कुछ दिनों के लिए यहॉ रूका भी था।[8] मुअज्जमशाह ने यहां पर अपने निवास अवधि में एक मस्जिद का निर्माण करवाया जिसे

जामी मस्जिद या बड़ी मस्जिद के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में यह गोरखपुर नगर क्षेत्र में स्थित शाहमारूफ मुहल्ले में स्थित है। मुअज्जमशाह की यहॉ पर निवास अवधि में गोरखपुर का नाम एक बार फिर परिवर्तित होकर मुअज्जमशाह के नाम पर मुअज्जमाबाद हो गया। मुअज्जमाबाद के रूप में गोरखपुर क्षेत्र का नाम सन् 1801 ई. तक यहॉ की सरकारी फाइलों में प्रयोग होता रहा।[9] मुअज्जमशाह ने अपने निवास अवधि में किस प्रकार का प्रभाव क्षेत्रीय जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया, यह एक विचारणीय प्रश्न है। उसके द्वारा किये गये मस्जिद निर्माण के कार्य ने निश्चित रूप से उसे क्षेत्रीय मुस्लिम वर्ग में सम्मानित बना दिया गया होगा। शाह अहमद अली ने इसी अवधि में मुअज्जमशाह पर आधारित अपनी पुस्तक 'तारीख-ए-मुअज्जमाबाद' जो फारसी भाषा में लिखी थी। इस अवधि में शहजादे द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में किये गये किसी कार्य का उल्लेख नहीं मिलता।

इस प्रकार यह स्वीकारणीय तथ्य है कि गोरक्षनाथ का प्रभाव जो लम्बे समय से जनमानस में प्रचलित था उसे मुअज्जमशाह का प्रभाव लम्बे समय तक धूमिल नहीं कर सका एवं गोरखपुर क्षेत्र का मुअज्जमाबाद नामकरण मुअज्जमशाह के यहॉ से जाने के पश्चात क्रमशः धूमिल होता गया और धीरे-धीरे पुनः गोरखपुर नाम से यह क्षेत्र जाना जाने लगा।

गोरखपुर क्षेत्र के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में योगी गोरक्षनाथ की महत्ता को स्वीकार करते हुए यह आवश्यक है कि इस योगी के समय काल को निर्धारित किया जाय। यद्यपि योगी गोरक्षनाथ जो मूल रूप से पंजाब क्षेत्र के थे, परन्तु उनके समय को जिन इतिहासकारों एवं विद्वानों ने अपने प्रमाणों के आधार पर निश्चित किया है, उनमें पर्याप्त मतभेद स्पष्ट होते हैं, अतः उनके समय निर्धारण का कार्य एक जटिल प्रक्रिया है। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि योगी गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ, जालंधरनाथ एवं कृष्णपाद के लगभग समकालीन थे। अतः ऐसी स्थिति में यदि उक्त सिद्धपुरूषों में किसी एक का भी समय का सही-सही पता चल जाय तो गोरक्षनाथ के समय को अनुमानित करना आसान हो जायेगा। परन्तु उपरोक्त किसी भी सिद्धपुरूष के समय का ठीक-ठीक निर्धारण अभी तक संभव नहीं हो पाया है।

ब्रिग्स ने नेपाल की बौद्ध शैव परम्परा के आधार पर गोरक्षनाथ का समय 7वीं- 8वीं शताब्दी के मध्य होने का अनुमान किया है। बंगाल की शैव बौद्ध परम्परा ने अपने प्रमाणों के आधार पर गोरक्षनाथ को 12वीं शताब्दी के पूर्व का व्यक्ति माना है।10 डॉ0 अशोक प्रभाकर कामथ ने अपने साक्ष्यों के आधार पर गोरक्षनाथ के समय को सन् 1058 ई. से सन् 1156 ई. के बीच माना है।[11] गोरक्षनाथ को कबीर (सन् 1440-1518 ई.), नानक (सन् 1469-1538 ई.), बाबा फरीद एवं मधुसूदन सरस्वती के समय से भी समबद्ध किया गया।[12]

नागेन्द्रनाथ वसु द्वारा संग्रहीत 16वीं शताब्दी की रचना अच्युतानन्द की शुन्य संहिता थी। शुन्य संहिता के 70वें अध्याय में नागार्जुन, गोरक्षनाथ एवं मल्लिकानाथ का उल्लेख है। इस प्रकार इस पुस्तक के अनुसार गोरक्षनाथ को सोलहवीं शताब्दी से पूर्व का व्यक्ति माना जाना चाहिए।[13] इन्साइक्लोपीडिया के अनुसार गोरक्षनाथ के एक शिष्य धर्मनाथ ने 14वीं शताब्दी में कच्छ (गुजरात) में 'कनफटा सम्प्रदाय' का प्रचार किया था।[14] इस मत के आधार पर योगी गोरक्षनाथ का समय 14वीं शताब्दी से पूर्व अनुमानित किया जा सकता है। डॉ0 राम कुमार वर्मा गोरक्षनाथ को संत ज्ञानेश्वर के प्रपितामह अम्बक पंत, जिनका समयकाल लगभग संवत 1250 निर्धारित है, का समकालीन मानते हैं और इसी के आधार पर गोरक्षनाथ का समय 13वीं शताब्दी का मध्य निर्धारित करते हैं।[15] महाराष्ट्रियन विद्वान जोग गोरक्षनाथ के समय का विचार करते हुए उन्हे 1075 ई. के आस पास का एवं मत्स्येन्द्रनाथ का सन् 975 ई. के आस पास मानते है।[16] रूसी विद्वान बेसीलिफ ने तिब्बती ग्रन्थमाला के प्रमाण में गोरक्षनाथ का सयम 8वीं शताब्दी के लगभग माना है।[17]

इस प्रकार समग्र रूप से विवेचित किया जाय तो स्पष्ट होगा कि योगी गोरक्षनाथ के समय को लेकर विभिन्न विचारकों ने 8वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी के मध्य तक के समय को अनुमानित किया है। वास्तव में काल निर्धारण के सम्बन्ध में विद्वानों के ये मतभेद योगी गोरक्षनाथ के व्यापक एवं अपरिहार्य प्रभाव की पुष्टि करते हैं, अनेक विद्वानों द्वारा कुछ मध्यकालीन प्रभावशाली संतो के समयकाल से योगी गोरक्षनाथ का समयकाल आबद्ध करने का प्रयास यह स्पष्ट करता है कि उस समय की संत परम्परा में योगी गोरक्षनाथ माननीय और अति महत्वपूर्ण थे। अंत में गोरखपुर क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियॉ, ऐतिहासिक ज्ञान, किम्बदन्तियॉ और क्षेत्रीय प्रभाव के आधार पर योगी गोरक्षनाथ की अवधि को 9वीं-10वीं सदी के मध्य अनुमानित करना अधिक सही है।

संदर्भ-

1. बाल्मिकी रामायण, उत्तराखण्ड, अध्याय 102, पाण्डेय, डॉ0 राजबली: गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ 4.
2. त्रिपाठी, आर.एस.: प्रचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 41.
3. राव, डॉ0 वी.वी. (सम्पादक) युगयुगीन सरयूपार गोरखपुर परिक्षेत्र का इतिहास, पृष्ठ 16.
4. महापरिनिर्वाण सुत्र.
5. पाण्डेय, डॉ0 राजबली: गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ 5.
6. वही, पृष्ठ 11.
7. फजल अबुल: आइन-ए-अकबरी,, (अंग्रेजी अनुवाद एच.एस.जैरेट) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 100.
8. खान, साकी मुस्तैद: मआसीर-ए-आलमगीर (अंग्रेजी अनुवाद सरकार, जे.एन. ए हिस्ट्री आफ इम्परर औरंगजेब आलमगीर, पृष्ठ 202 एवं फ्यूहरर ए.: दी मोनयूमेन्टल एंटीक्यूटीज एण्ड इन्सक्रिपशन्स इन दी नार्थ वेस्ट प्रबिन्सेज एण्ड अवध, पृ. 202.
9. एलेक्जेंडर इ.वी.: स्टेस्टिकल, डिस्क्रिप्टीव एण्ड हिस्टोरिकल एकाउंट आफ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज, गोरखपरु डिस्ट्रिक्ट (इलाहाबाद) पृ. 124.
10. रागेय राघव: गोरखनाथ और उनका युग, पृ.28-29.
11. कामथ, डॉ. अशोक प्रभाकर: महाराष्ट्र के नाथपंथीय कवियों का हिन्दी काव्य, पृ.93.
12. पाण्डेय, डॉ. दिवाकर: गोरखनाथ और उनकी परम्परा का साहित्य, पृ.14 एवं शर्मा, डॉ. सरनाम: कबीर एक विवेचन, पृ.26.
13. मल्लिक, कल्याणी, नाथ सम्प्रदाय का इतिहास, दर्शन एवं साधना प्रणाली, पृ. 40-41.
14. योगवाणी (1977) अंक 5, पृ. 23.
15. वर्मा, डॉ. राम कुमार: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 18.
16. कामथ, डॉ. अशोक प्रभाकर: वही पृ.77-78.
17. मजुमदार, सुरेश चन्द्र नाथ: राजगुरू योगीवंश, पृ. 205.

डॉ० जगन्नाथ मिश्र के सामाजिक चिंतन एवं कार्य

नीतू कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

सार

लालू प्रसाद द्वारा बिहार की राजनीति को राष्ट्रीय बहस में लाने से बहुत पहले, जगन्नाथ मिश्रा ही थे जिन्होंने राज्य के नेताओं को जाति और समुदाय को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करना सिखाया था। 1977 के चुनाव के झटके के बाद, जगन्नाथ मिश्रा ने उर्दू को बिहार की दूसरी भाषा घोषित करके मुसलमानों को कांग्रेस पार्टी के लिए एक ठोस वोट बैंक में बदल दिया। जगन्नाथ मिश्रा तीन बार के कार्यकाल के लिए बिहार के मुख्यमंत्री बने - कभी पूरा कार्यकाल पूरा नहीं किया। लेकिन बिहार के मुख्यमंत्री के कार्यालय का उपयोग करते हुए, जगन्नाथ मिश्रा ने खुद को अपने समय के सबसे बड़े नेता के रूप में स्थापित किया। इस पत्र में डॉ0 जगन्नाथ मिश्र के सामाजक चिंतन एवं कार्य का संक्षिप्त अवलोकन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

मुख्य-शब्दः कैरियर; राजनीति; कार्य एवं योगदान; विवाद।

परिचय

जगन्नाथ मिश्र का जन्म 24 जून 1937 को बिहार के बलूवा बाजार (सुपौल) में हुआ था। वर्तमान में वे पटना में रहते थे। उनकी पत्नी का नाम वीणा था, जिनका 72 वर्ष की आयु में 22 जनवरी 2018 को दिल्ली के मेदांता अस्पताल में निधन हो गया। उनके बड़े भाई ललित नारायण मिश्रा ने 1973 और 1975 के बीच भारत के रेल मंत्री के रूप में कार्य किया। उनकी हत्या के समय, एलएन मिश्रा को कई लोगों द्वारा कांग्रेस में इंदिरा गांधी की राजनीतिक स्थिति के लिए एक चुनौती के रूप में माना जा रहा था। जगन्नाथ मिश्रा उस समय बिहार विधानसभा में पहली बार विधायक थे, लेकिन परिवार को शांत करने और जनता के बीच किसी भी नकारात्मक धारणा का मुकाबला करने के लिए, इंदिरा गांधी ने उन्हें बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में चुना। उन्होंने अब्दुल गफूर की जगह ली। जगन्नाथ मिश्र के बेटे, नीतीश मिश्रा भी एक राजनेता हैं और उन्होंने कैबिनेट मंत्री के रूप में कार्य किया है। डॉ. जगन्नाथ मिश्रा एक भारतीय राजनीतिज्ञ और शिक्षाविद थे। जो तीन बार बिहार के मुख्यमंत्री रह चुके हैं।[1] वह 1975 में पहली बार बिहार के मुख्यमंत्री बने। दूसरी बार 1980 और आखिरी बार 1989 से 1990 तक बिहार के मुख्यमंत्री रहे। डॉ. मिश्र खुद को एक अर्थशास्त्री के रूप में पसंद करते थे। वह यह कहते हुए कभी नहीं थके कि उन्होंने राजनीति में सक्रिय रहते हुए कई शोध विद्वानों का मार्गदर्शन किया। उनके मार्गदर्शन में लगभग 20-30 शोधार्थियों ने पी-एच0 डी0 किया। अपने शिक्षण करियर की ओर बढ़ते हुए, मिश्रा ने बिहार विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में काम किया और पीएचडी की पढ़ाई के दौरान लगभग 40 शोध पत्र लिखे। जगन्नाथ मिश्रा एक भारतीय राजनेता थे जिन्होंने बिहार के मुख्यमंत्री और केंद्रीय कैबिनेट में मंत्री के रूप में कार्य किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उच्च स्तर पर शामिल, वे 1975-1977, 1980-1983 और 1989-1990 तक तीन बार बिहार के मुख्यमंत्री चुने गए। बिहार में, वह 70 और 80 के दशक के अंत में सबसे शक्तिशाली कांग्रेस नेता थे और उन्हें कांग्रेस में सबसे बड़े जन नेता के रूप में दर्जा दिया गया था। जगन्नाथ मिश्र को प्यार से "डॉक्टर साहब" और "मौलाना" कहा जाता था। उन्होंने कई शोध पत्र लिखे और कई पुस्तकों का लेखन और संपादन भी किया।[2]

कैरियर का आरंभ

जगन्नाथ मिश्रा ने अपने करियर की शुरुआत एक व्याख्याता के रूप में की और बाद में बिहार विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बने। 1989 में, उन्होंने वरिष्ठ कांग्रेस नेता और बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री स्वर्गीय सत्येंद्र नारायण सिन्हा की जगह ली और तीसरी बार बिहार के मुख्यमंत्री बने। जगन्नाथ मिश्रा 1953 और 1960 के बीच विनोबा भावे द्वारा शुरू किए गए भूदान आंदोलन में शामिल थे और उन्होंने अपनी विरासत में मिली अधिकांश भूमि भूमिहीनों को दे दी। कांग्रेस छोड़ने के बाद, वह राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी और बाद में जनता दल (यूनाइटेड) में शामिल हो गए।

वह राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों के सदस्य थे, लेकिन बिहार के समस्तीपुर में एक रेलवे समारोह में बम विस्फोट में अपने भाई की हत्या के तुरंत बाद 1975 में मुख्यमंत्री की सेवा पर आ गए। बम हमले में मिश्रा भी गंभीर रूप से घायल हो गये लेकिन बच गये।

उनका पहला कार्यकाल बमुश्किल कुछ वर्षों तक चला क्योंकि राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया गया था, जो छात्र आंदोलन का केंद्र बन गया था, जिसे "जेपी आंदोलन" के रूप में जाना जाता था, जिसने आपातकाल की पृष्ठभूमि प्रदान की थी।[3]

एक बार डॉ. मिश्रा को समतावादी बग ने काट लिया था। उन्होंने खुद को जगन्नाथ कहते हुए अपनी जाति का नाम छोड़ दिया। कुछ महीनों बाद जब चुनाव की घोषणा हुई तो उन्होंने मिश्रा की पूंछ वापस ले ली।

यह कहना राजनीतिक रूप से सही नहीं हो सकता है कि छोटे भाई ने अपने बड़े भाई की हत्या से पैदा हुए शून्य को भर दिया, लेकिन तथ्य निर्विवाद है। कई लोगों ने मुख्यमंत्री के रूप में उनकी नियुक्ति को एक प्लेसबो के रूप में देखा। जल्द ही, डॉ मिश्रा बिहार के ताकतवर नेता के रूप में उभरे। वह जनता को खुश करना जानते थे। जैसे मुख्यमंत्री ए.के. एंटनी जिन्होंने सरकार से वेतन देने की बात कहकर निजी स्कूल के शिक्षकों का दिल जीत लिया, इस निर्णय को मूर्खतापूर्ण माना, डॉ मिश्रा ने निजी स्कूलों का राष्ट्रीयकरण किया, जिससे राज्य के खजाने पर भारी वित्तीय बोझ पड़ा। अपने दूसरे कार्यकाल में उन्होंने एक और लोकलुभावन कदम उठाया। उन्होंने उर्दू को राज्य की दूसरी आधिकारिक भाषा घोषित किया। उनके साथी मैथिल ब्राह्मण परेशान थे क्योंकि वे अपनी मातृभाषा के लिए बेहतर स्थिति चाहते थे लेकिन उन्हें "मौलाना जगन्नाथ" कहा जाने लगा। वह तब तक अल्पसंख्यकों के प्रिय बने रहे जब तक कि लालू प्रसाद यादव ने उन्हें उस प्रतिष्ठित पद से हटा नहीं दिया।[4]

वे तीन बार मुख्यमंत्री बने। यह एक ऐसा दौर था जब सत्ता सवर्ण जातियों का संरक्षण थी। कांग्रेस राम लखन सिंह यादव जैसे प्रख्यात नेता को मुख्यमंत्री बनाने के लिए तैयार नहीं थी। इसके बजाय, एक चंद्रशेखर सिंह को राज्यसभा से लाया गया था। एक बार उनकी पत्नी वीणा को पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल में भर्ती कराया गया था। उस समय, एक लोकप्रिय मांग थी कि केवल बिहारियों को सरकारी नर्स के रूप में नौकरी दी जानी चाहिए, उस समय किसी ने विधानसभा में इस मुद्दे को उठाया और डॉ. मिश्रा ने यह मांग स्वीकार कर ली।

डॉ. मिश्रा को एक महान असंतुष्ट के रूप में भी याद किया जाएगा। उन्होंने सी.एस. सिंह और एस.एन. सिन्हा जैसे साथी कांग्रेसियों को मुख्यमंत्री के रूप में आराम से रहने की अनुमति नहीं दी। लालू यादव के उत्तराधिकारी के रूप में आने और मंडल की राजनीति ने बिहार की राजनीति में डॉ मिश्रा के युग का अंत कर दिया। वह अपने राजनीतिक दबदबे को फिर कभी हासिल नहीं कर सके। उनका किसी से किसी का नहीं बनने का सफर था। डॉ मिश्रा के शासन काल में ही चारा घोटाला शुरू हुआ था। लालू यादव के शासन काल में इसका भंडाफोड़ होने तक इस पर किसी का ध्यान नहीं गया। ऐसे कई लोग हैं जो मानते हैं कि इस घोटाले को उनका संरक्षण प्राप्त था। घोटाले का अध्ययन करने पर पता चलता है कि यह स्थानीय स्तर पर धोखाधड़ी का मामला था। यह विश्वास करना मुश्किल है कि इसे डॉ मिश्रा या लालू यादव का संरक्षण प्राप्त था। जबकि डॉ. मिश्रा लगभग सुरक्षित बच गए, लालू यादव वही हैं जिन्हें "अंतरात्मा का कैदी" कहा जा सकता है।[5]

बिहार के आखिरी कांग्रेसी मुख्यमंत्री और कार्यालय का दावा करने वाले वे अंतिम ब्राह्मण नेता थे। बिहार, उत्तर प्रदेश के साथ, कम से कम साठ के दशक के बाद से, उत्तर भारत में सामाजिक और राजनीतिक मंथन का केंद्र रहा था, जिसके परिणामस्वरूप "कांग्रेस प्रणाली" का क्रमिक पतन हुआ और उच्च जाति के प्रभुत्व का ह्रास हुआ। 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने और सबाल्टर्न नेताओं के उदय के साथ, यह सोचा गया कि हिंदी पट्टी में उच्च जाति की राजनीति के प्रभुत्व का युग मर गया और दफन हो गया। मिश्रा पुरानी व्यवस्था के अंतिम दिग्गज थे। "डॉ साहब" उस समय से एक नेता थे जब कांग्रेस अपने

समर्थकों के लिए एक "अम्ब्रेला पार्टी" और अपने विरोधियों के लिए एक प्रमुख सामंती ताकत थी। बिहार में, कई लोगों ने पार्टी को एक प्रतिगामी शक्ति के रूप में देखा, विशेष रूप से ओ.बी.सी. और दलितों के साथ उसके व्यवहार के संदर्भ में। लालू और नीतीश कुमार के नेतृत्व में ओ.बी.सी. का दावा, एक सामाजिक गठबंधन को जोड़ने के बारे में था जो वैचारिक रूप से सुसंगत और संख्यात्मक रूप से शक्तिशाली दोनों था। मुस्लिम, यादव, ओ.बी.सी. समग्र रूप से और दलित, एक राजनीतिक रूप से प्रभावशाली ताकत बन गए, जिसने गरिमा और सामाजिक न्याय के प्रवचन की शक्ति में वृद्धि देखी।[6]

मिश्रा पहली बार 1975 में बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त हुए और 1977 तक बने रहे। वह 1980 और 1983 के बीच तीन साल के लिए कार्यालय में लौटे। 1989 में, राजद प्रमुख लालू प्रसाद द्वारा उत्तराधिकारी बनने से पहले मिश्रा को आखिरी बार बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में चुना गया था। पेशे से शिक्षक, वरिष्ठ नेता ने कांग्रेस के शासन में केंद्रीय मंत्री के रूप में भी काम किया और बाद में राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) और फिर जनता दल यूनाइटेड (जेडीयू) में शामिल होने के लिए पुरानी पार्टी छोड़ दी। वर्तमान में, वह एक भारतीय जन कांग्रेस थे। बिहार में सबसे शक्तिशाली कांग्रेस नेताओं में से एक के रूप में जाने जाते हैं, मिश्रा को बिहार प्रेस विधेयक के सफल रूप से पारित होने में उनकी भूमिका के लिए जाना जाता है, जो किसी भी मुद्रित सामग्री के प्रकाशन, बिक्री और कब्जे पर प्रतिबंध लगाता है जो "अपमानजनक" या "बेहद अभद्र" या ब्लैकमेल करने का इरादा था। वह 1953 और 1960 के बीच संत विनोबा भावे के भूदान आंदोलन का भी सक्रिय हिस्सा थे।[7]

बिहार की राजनीति में विरासत

लालू प्रसाद यादव के उभरने से पहले वे अल्पसंख्यकों के बीच लोकप्रिय नेता थे। उन्हें कांग्रेस के पक्ष में मुसलमानों को मजबूत करने का श्रेय दिया जाता था और इस कारण उन्हें "मौलाना जगन्नाथ" भी कहा जाता था। उन्होंने उर्दू को बिहार की दूसरी भाषा घोषित करके समुदाय तक पहुंच बनाई थी। जैसा कि हिंदुस्तान टाइम्स में एक लेख में उल्लेख किया गया है, मिश्रा को शिक्षा के क्षेत्र में उनकी पहल के लिए याद किया जाता है, जैसे संस्कृत स्कूलों, मदरसों और विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना। उनके नेतृत्व में ही राज्य में संस्कृत शिक्षा बोर्ड, बिहार इंटरमीडिएट काउंसिल और विभिन्न भाषाओं की अकादमियों की स्थापना की गई थी।[8]

मिश्रा, जबकि मीडिया के अनुकूल माने जाते थे, उन्हें चौथी संपत्ति के सामूहिक आक्रोश का सामना करना पड़ा, जब उनकी सरकार ने 31 जुलाई, 1982 को बिहार विधानसभा में 'प्रेस बिल', एक ऐसा उपकरण पारित किया, जिसमें प्रेस की स्वतंत्रता को कम करने की मांग की गई थी। बिल के बारे में कहा जाता है कि इंदिरा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त था। इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हमले के रूप में देखा गया और इसके कारण बड़े पैमाने पर राष्ट्रव्यापी आक्रोश फैल गया।

बाद में, इंदिरा गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी के रूप में राजीव गांधी के उभरने के साथ, पार्टी के आलाकमान के साथ मिश्रा की दूरी चौड़ी होने लगी। उन्होंने खनिजों पर रॉयल्टी तय करने की केंद्र की शक्तियों पर सवाल उठाया, जब खनिज समृद्ध झारखंड बिहार का हिस्सा था। इसके बाद, मिश्रा को मुख्यमंत्री पद से हटा दिया गया और उनकी जगह चंद्रशेखर सिंह को नियुक्त किया गया।

जगन्नाथ मिश्र का योगदान

जगन्नाथ मिश्रा ने लोकलुभावनवाद का समर्थन और अभ्यास किया, और 1977 में राज्य भर में सैकड़ों निजी प्राथमिक, मध्य और उच्च विद्यालयों को अपने कब्जे में लेकर शिक्षकों के बीच लोकप्रियता अर्जित की। 10 जून 1980 को, बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में अपने दूसरे कार्यकाल की पहली कैबिनेट बैठक के दौरान, मिश्रा ने उर्दू को राज्य की दूसरी आधिकारिक भाषा बनाने के लिए राज्य राजभाषा अधिनियम में संशोधन करने का वादा किया। 19 सितंबर 1980 को जगन्नाथ मिश्र के नेतृत्व वाली राज्य सरकार ने उर्दू को राज्य की दूसरी आधिकारिक भाषा के रूप में अधिसूचित किया।

अपने दूसरे और सबसे लंबे कार्यकाल में – तीन साल और दो महीने – मुख्यमंत्री के रूप में, जगन्नाथ मिश्रा ने 1983 में केंद्र सरकार की खनन नीति के खिलाफ खुलकर बात की। उन्होंने बिहार विधानसभा में दो घंटे तक इंदिरा गांधी सरकार की आलोचना की। उन्होंने तर्क दिया कि एक खरीदार के रूप में, केंद्र को बिहार द्वारा उत्पादित खनिजों के लिए रॉयल्टी दरें तय नहीं करनी चाहिए। तब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने उनकी अस्वाभाविक आलोचना को हल्के में नहीं लिया। उन्हें दिल्ली बुलाया गया और तीन सप्ताह

में जगन्नाथ मिश्रा को मुख्यमंत्री पद से बर्खास्त कर दिया गया। दिलचस्प बात यह है कि इंदिरा गांधी ने बिहार प्रेस विधेयक पर जगन्नाथ मिश्रा का समर्थन किया था, जिसका उद्देश्य प्रेस को बंद करना था। बिहार प्रेस बिल ने राज्य में जबरदस्त हंगामा किया। बिहार प्रेस बिल के विरोध में लगभग 10,000 अखबारों ने अपना प्रकाशन बंद कर दिया। राष्ट्रव्यापी विरोध प्रदर्शनों ने बिहार की जगन्नाथ मिश्रा सरकार को उस विधेयक को वापस लेने के लिए मजबूर कर दिया, जिसे राष्ट्रपति की सहमति का इंतजार था – भारत के इतिहास में पहली बार। लेकिन इंदिरा गांधी ने जगन्नाथ मिश्रा का बचाव करते हुए कहा कि बिल में प्रेस का गला घोंटने के लिए कुछ भी नहीं है।[9]

बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में जगन्नाथ मिश्रा का आखिरी कार्यकाल बोफोर्स घोटाले के कारण कांग्रेस विरोधी भावना के मद्देनजर आया था। 1990 के बिहार चुनाव में उन्हें कांग्रेस को बचाने के लिए लाया गया था। लेकिन जब बिहार चुनाव हुआ, तब तक मंडल आयोग की रिपोर्ट आ चुकी थी और वीपी सिंह के जनता दल के पक्ष में नए जातिगत गठबंधन बन रहे थे। कांग्रेस की हार हुई और लालू प्रसाद ने बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में जगन्नाथ मिश्र की जगह ली।

संयोग से, दोनों नेताओं को 1980 के दशक के अंत और 1990 के दशक की शुरुआत में चारा घोटाले से जुड़े मामलों में दोषी ठहराया गया था। सजा 2013 में आई लेकिन राजनीतिक रूप से, जगन्नाथ मिश्रा 1990 के दशक के अंत में बिहार में अप्रासंगिक हो गए थे। 2014 में, जगन्नाथ मिश्रा राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी में कुछ समय बिताने के बाद नीतीश कुमार के जनता दल (यूनाइटेड) में शामिल हो गए।

'चारा घोटाला' विवाद

90 के दशक के दौरान उन्हें केंद्रीय मंत्रिमंडल में भी जगह मिली। 30 सितंबर 2013 को रांची की एक विशेष अदालत ने उन्हें चारा घोटाले में 44 अन्य लोगों को सजा सुनाई। उस समय, उन्हें चार साल की कैद और 200,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई थी। अपने राजनीतिक जीवन के उत्तरार्ध में, वह चारा घोटाले में उलझ गए, जो उनके उत्तराधिकारी लालू प्रसाद के कार्यकाल के दौरान सामने आया था। प्रसाद के साथ, उन्हें कुछ मामलों में दोषी ठहराया गया था। मौत से पहले वह पिछले कुछ महीनों से जमानत पर थे। चारा घोटाले में आरोपी रहे मिश्रा और कांग्रेस बिहार में अपनी किस्मत को फिर से जिंदा करने में नाकाम रहे हैं और पिछड़ी जाति का गठबंधन बिखर गया है, वहीं बीजेपी राज्य में एक ताकत बनकर उभरी है. हालांकि नीतीश कुमार सरकार में कनिष्ठ सहयोगी का प्रभाव लगातार बढ़ा है। जहां भाजपा ने विभिन्न समुदायों के सदस्यों को पदों की पेशकश करके अपने सामाजिक आधार का विस्तार करने की मांग की है, वहीं कई पार्टी और आरएसएस के नेताओं ने जाति-आधारित आरक्षण पर सवाल उठाया है। जगन्नाथ मिश्रा के मुख्यमंत्री रहने के तीस साल बाद, उच्च जाति के मुख्यमंत्री की संभावना अब दूर की कौड़ी नहीं लगती।[10]

निष्कर्ष

बताया जाता हैं कि कांग्रेस ने जगन्नाथ मिश्रा को इस तरह से लाया था कि वह उन्हें अपने काबू में कर सकें, लेकिन जगन्नाथ मिश्रा कांग्रेस के हाथ से बाहर साबित हुए। कांग्रेस मजबूत थी, लेकिन जगन्नाथ मिश्र अपने भाई की मृत्यु पर सहानुभूति का एक अभूतपूर्व सहारा थे। धीरे-धीरे, लोगों के साथ उनका जुड़ाव बढ़ता गया और वे "भूमि के नेता" मार्का कहावत से जुड़ गए। लेकिन इस मजबूत नेता को राजीव गांधी पर और भरोसा नहीं हो सका। कभी खड़े नहीं हुए, लेकिन कांग्रेस के बड़े नेताओं के करीब रहे। कांग्रेस के भीतर जगन्नाथ मिश्रा जैसा गुट था और इसी के दम पर जगन्नाथ मिश्र कांग्रेस में डटे रहे, कहा जाता था कि ललित नारायण उतनी अच्छी पकड़ नहीं बना पाए, जितनी उनके भाई जगन्नाथ मिश्रा ने बनाई थी। कांग्रेस पार्टी के "फॉरवर्ड ब्लॉक" का हिस्सा थी। आज वे ब्राह्मणों में प्रसिद्धि के साथ मिथिला के क्षेत्रों में बहुत प्रसिद्ध हैं।

संदर्भ

1. दत्ता, प्रभाष के (19 अगस्त 2019), "जगन्नाथ मिश्रा: मौलाना के नाम से जाने जाने वाले, बिहार के पूर्व सीएम ने इंदिरा गांधी सरकार को खुली चुनौती दी", इंडिया टुडे।
2. क्लेबोर्न, विलियम (4 सितंबर 1982), "भारतीय समाचार पत्र, समाचार एजेंसियों ने सख्त प्रेस विधेयक का विरोध किया – वाशिंगटन पोस्ट", वाशिंगटन पोस्ट।

3. सिन्हा, अरुण, (2005), नीतीश कुमार एंड द राइज ऑफ बिहार, पेंग्विन, न्यू दिल्ली।
4. कुमार, अश्विनी (2008), सामुदायिक योद्धा: बिहार में राज्य, किसान और जाति सेना, एंथम प्रेस. पृ0 68-70
5. द हिन्दू, 19 अगस्त 2019।
6. देवघरिया, जयदीप (3 अक्टूबर 2013), चारा घोटाला: लालू प्रसाद को पांच साल, जगन्नाथ मिश्रा को चार साल की सजा, द टाइम्स ऑफ इण्डिया।
7. राय, कोलेश्वर, (1998), बिहार का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, 1998।
8. सिंह, संतोष (2005), रूल्ड ऑर मिसरूल्ड, ब्लूम्सबरी, यू दिल्ली।
9. राजेश कुमार, ठाकुर (19 अगस्त 2019), "बिहार के पूर्व सीएम जगन्नाथ मिश्रा का बुधवार को पूरे राजकीय सम्मान के साथ अंतिम संस्कार किया जाएगा," द न्यू इंडियन एक्सप्रेस।
10. द टाइम्स ऑफ इंडिया, 3 अक्टूबर 2003।

सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने मे ग्राम सभा की भूमिका : सामुदायिक स्वास्थ्य के विशेष संदर्भ में

सचिन पाटीदार

शोधार्थी, समाज विज्ञान अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविध्यालय, इंदौर (म.प्र,)

रश्मि जैन

शोध निर्देशक, समाज विज्ञान अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविध्यालय, इंदौर (म.प्र,)

सारांश

भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा सबसे ज्यादा आबादी वाला देश है। यहां की कुल जनसंख्या का लगभग 68.48 प्रतिशत भाग गांवो में निवास करता है। भारत में शहरी अधोसंरचना का तो विकास तेजी से हो रहा है, किंतु ग्रामीण भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार से संबंधित आधारभुत अधोसंरचना की उपलब्धता अभी पर्याप्त नहीं है। इसी अपर्याप्तता को ध्यान मे रखकर सामुदायिक चिंतन, नियोजन, क्रियांन्वयन और मुल्यांकन में जन सहयोग और जन सहभागिता के लिये ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम सभा एक महत्वपुर्ण मंच है, जो लोगो मे जगरुकता, सतर्कता, सुद्रढ़ता और सृजनात्मकता के अवसर प्रदान कर सकती है। ग्राम सभा संक्रामक और गैर संक्रामक रोगो से बचने और लड़ने के लिये सामुदयिक रणनीति तैयार करने और संगठित प्रयास करने के लिये एक साधन के रुप मे उपयोगी भी है। प्रस्तुत शोध पत्र सामुदायिक स्वास्थ्य के विकास को सतत विकास के दृष्टिकोण से सामुदायिक सहयोग एवं सहभागिता में ग्राम सभा की भूमिका का वर्णन करने के साथ-साथ सामुदायिक विकास और सामुदायिक सामुदायिक स्वास्थ्य से संबंधित अवसंरचना की स्थिति को प्रदर्शित करने का प्रयास करता है। प्रस्तुत शोध पत्र शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं, तथा क्षेत्र में कार्य करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं का ध्यान ग्राम सभा के माध्यम से सामुदायिक विकास एवं सामुदायिक स्वास्थ्य के विकास के प्रति आकर्षित करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में वर्णात्मक अनुसंधान प्रविधी पर आधारित है, जिसमें विभिन्न द्वीतीयक स्त्रोतों का प्रयोग समस्या से संबंधित को तथ्यों को उजागर करने में और विषय का वर्णन करने मे किया गया है।

प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों ने 2015 के सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों एजेंडा के बाद 25 सितंबर 2015 को सतत विकास लक्ष्यों पर अपनी सहमति व्यक्त की है। सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों को 2000 से 2015 तक की अवधि में पूरा कर लिया गया और इसके बाद 2015 से 2030 तक की अवधि के लिये सतत विकास लक्ष्य वैश्विक कार्यवाही का मार्गदर्शन करेंगे। भारत भी सतत विकास लक्ष्यों पर सहमति प्रकट करने वाले देशों में से एक है। सतत विकास के सभी लक्ष्य से स्थानीय शासन के दैनिक कार्यों से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से संबंधित हैं, तो कहा जा सकता है कि स्थानीय शासन प्रणाली के रूप में ग्रामसभा पंचायती राज संस्थाओं में

ग्राम पंचायत का एक अभिन्न अंग है, जो सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में निश्चित रूप से और स्थानीय सामुदायिक स्वास्थ्य और खुशहाली को बनाए रखने लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। प्रस्तुत शोध आलेख मे ग्रामीण स्वास्थ्य अवसंरचना की स्थिति और सतत विकास के संदर्भ में सामुदायिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने से सम्बंधित ग्राम सभा के कार्यो और भुमिका का वर्णन करता है। प्रस्तुत शोध पत्र सतत विकास के लक्ष्य क्रमांक 3 उत्तम स्वास्थ्य सुनिश्चित करने और हर उम्र में सब की खुशहाली को प्रोत्साहन प्रदान करने से संबंधित है। शोध पत्र के प्रारम्भिक चरण में शोध के उद्देश्य और अनुसंधान मे प्रयुक्त शोध प्रविधी का स्पष्टिकरण दिया गया है। इसके पश्चात अनुसंधान समस्या के अवधारणात्मक स्वरुप का वर्णित करने के साथ ही सम्बंधित साहित्य का अवलोकन और विवेचन किया गया है।

उद्देश्य

प्रयुक्त विषय के चयन मुख्य उद्देश्य भारत में ग्रामीण सामुदायिक स्वास्थ्य से संबंधित सतत विकास के प्रयासों का अध्ययन करना है। सतत विकास के संदर्भ मे सामुदायिक स्वास्थ्य की स्थिति को जानने और स्थिति में सुधार के लिए त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के जमीनी स्तर ग्राम पंचायत मे ग्राम सभा द्वारा किए गए सहभागी प्रयासों के अध्ययन को ध्यान मे रखते हुये उपरोक्त विषय के अंतर्गत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. सतत विकास के संदर्भ में भारत में सामुदायिक स्वास्थ्य की स्थिति का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण सामुदायिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में ग्रामसभा की भूमिका का वर्णन करना।

शोध प्रविधि -

प्रस्तुत अध्ययन में समस्या को समझने और उसको वर्णित करने के लिये वर्णात्मक अनुसंधान का प्रयोग किया गया है। अनुसंधान ने विषय से सम्बंधित द्वितियक स्त्रोतो से प्राप्त उपयोगी साहित्य के अध्ययन के लिये वर्णात्मक अनुसंधान का प्रयोग अनुसंधान के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया गया है। अनुसंधान में विभिन्न द्वीतीयक स्त्रोतों जैसे-शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्रों से प्राप्त उपयोगी जानकारी एवं तथ्यों का समावेशन किया गया है, इसी के साथ भारत सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा अध्ययन विषय से संबंधित प्रकाशित विभिन्न प्रतिवेदनो से प्राप्त गुणात्मक और संख्यात्मक तथ्यों का प्रयोग समस्या के विश्लेषण व विवेचन मे किया गया है।

आधारभुत अवधारणाऐं-

ग्रामसभा

सभा भारतीय संविधान का 73 वा संविधान संशोधन 1992 में पंचायती राज संस्थाओं के विस्तार और विकास की दृष्टि से मील का पत्थर साबित हुआ है। यद्यपि पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए भारतीय ग्रामीण सामुदायिक विकास का आधार रही है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के अनुसार ग्राम सभा का अर्थ, जिसमें ग्राम पंचायत क्षेत्र से संबंधित मतदाता सूची में पंजीकृत व्यक्ति शामिल होते हैं।

ग्रामसभा भारतीय संविधान का एक घटक है और साथ ही ग्रामीण स्तर पर बहु-स्तरीय कार्य करने के लिए वैधानिक निकाय भी है। ग्राम सभा की स्थापना का मुख्य उद्देश्य जमीनी स्तर पर लोगों की भागीदारी के साथ विकेंद्रीकृत योजना और मूल्यांकन करना है। ग्राम सभा के अभिन्न अंग के रूप में सामाजिक अंकेक्षण को देखा जा सकता है। ग्रामसभा के माध्यम से सामूहिक ज्ञान और अनुभव से पंचायती राज को संस्थाओं को कार्य के निष्पादन में मार्गदर्शन के साथ ही प्रशासन और जवाबदेही में पारदर्शिता सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है।

सामुदायिक स्वास्थ्य

सामुदायिक स्वास्थ्य चिकित्सा की विशेषता है, जो एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के लोगों के शारीरिक और मानसिक कल्याण पर केंद्रित है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के रूप इस महत्वपूर्ण उपखंड में समुदाय के सदस्यों को उनके स्वास्थ्य को बनाए रखने और सुधारने, संक्रामक रोगों के प्रसार को रोकने, प्राकृतिक आपदाओं के लिए तैयार करने में मदद करने की पहल शामिल है। (एश्ले ब्रुक, 2019)

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सामुदायिक स्वास्थ्य, समुदाय के सदस्यों की स्वास्थ्य की देखभाल सुनिश्चित करने, उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली समस्याओं और समुदाय को प्रदान की जाने वाली स्वास्थ्य देखभाल की समग्रता से संबंधित है।

सतत विकास

सतत विकास को मानव विकास के लक्ष्यों को पूरा करने वाली एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है, जो प्राकृतिक संसाधनों को प्रदान करने वाली प्राकृतिक प्रणाली और सामाजिक और आर्थिक सेवाओं की निर्भरता वाली पारिस्थितिकी को बनाए रखती है। सतत विकास की आधुनिक अवधारणा को मजबूती से ब्रुटलैंड आयोग की रिपोर्ट में दिया गया है। ब्रुटलैंड आयोग द्वारा दी गई इस प्रारंभिक रिपोर्ट में सतत विकास व सतत वन प्रबंधन और बीसवीं सदी में पर्यावरण से संबंधित चिंताओं को चिन्हित किया गया है। पर्यावरण से आशय जहां हम रहते हैं और विकास वह है, जो हम सभी अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए प्रयास करते हैं। (ब्रुटलैंड रिपोर्ट-1987)

जैसे-जैसे सतत विकास की अवधारणा विकसित हुई, यह सामाजिक विकास, आर्थिक विकास और भविष्य की पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को संरक्षित करने पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की ओर स्थानांतरित होती गई। सतत विकास लक्ष्य पर 25 सितंबर 2015 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा में 193 देशों द्वारा एजेंडा 2030, जिसका विषय ट्रांसफॉर्मिंग अवर वर्ल्ड: द एजेंडा 2030 फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट था, को अंगीकृत किया गया। सतत विकास का आधिकारीक एजेंडा एक विस्तृत प्रतिवेदन है, जिसमें 17 सतत विकास लक्ष्यों की रूपरेखा और इससे जुड़े 169 लक्ष्यो का वर्णन किया गया है। इसमें निम्नलिखित लक्ष्य शामिल है-

1. शुन्य गरीबी
2. शुन्य भुखमरी
3. उत्तम स्वास्थ्य और खुशहाली
4. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा
5. लैंगिक समानता
6. स्वच्छ जल और स्वच्छता,
7. सस्ती और प्रदूषण मुक्त ऊर्जा
8. उत्कृष्ट कार्य और आर्थिक समृद्धि
9. उद्योग, नवाचार और बुनियादी सुविधाएं
10. असमानता में कमी
11. संवहनीय शहर और समुदाय
12. संवहनीय उपभोग और उत्पादन
13. जलवायु कार्रवाई
14. जलीय जीवो की सुरक्षा
15. स्थलीय जीवो की सुरक्षा
16. शांति, न्याय और सशक्त संस्थाएं
17. लक्ष्यों हेतु भागीदारी(स्त्रोत- सतत विकास लक्ष्य, यु.एन.डी.पी.)

साहित्य का पुनरावलोकन

नार्थ (1993)स्थानीय स्वशासन नागरिक समाज के एक भाग को निर्मित करता है जिसमें नागरिकों को स्थानीय महत्व के मुद्दों पर निर्णय प्रक्रिया में निर्णय प्रक्रिया में निर्णय को विकसित करने बनाने और लागू करने में भाग लेने का अधिकार है।

जायसवाल. एन, (2015) द्वारा "रूरल हेल्थ सिस्टम इन इंडिया रिव्यू" विषय पर किए गए अध्ययन में उन्होंने 1990 से 2008 की मध्यावधि से संबंधित 7 देशों के आंकड़ों को प्रस्तुत करते हुए ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था की चुनोतियों का अवलोकन किया तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अपर्याप्त भौतिक अवसंरचना, मौजूदा ग्रामीण अस्पतालों का कम उपयोग, अपर्याप्त मानव संसाधन, चिकित्सकों

का उदासीन रवैया, अनियमित निजी चिकित्सा पेशेवरों का प्रभुत्व, ग्रामीण क्षेत्रों में महामारी से लड़ने की तैयारी का नहीं होना, उच्च नवजात शिशु मृत्यु दर, असमान टीकाकरण जैसी समस्याओं पर इन्होंने प्रकाश डाला है।

बोरा एवं सैकिया (2018) द्वारा "न्यूनेटल एंड अंडर फाइव मोर्टिलिटी रेट इन इंडियन डिस्ट्रिक्ट्स विद रेफरेंस टु सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल 3: एन एनालिसिस ऑफ द नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे ऑफ इंडिया" विषय पर अध्ययन किया गया। इन्होंने पाया कि नवजात शिशुओं की मृत्यु दर और 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर दोनों भारतीय जिलों में काफी भिन्नता है। 2030 के सतत विकास लक्ष्य के अनुसार भारत के लिए अनुमानित नवजात शिशु मृत्यु दर से लगभग 2.4 गुना अधिक है, जबकि 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर अनुमानित से लगभग दोगुना है। भारत मे 9% जिले ऐसे है, जहां जिला स्तर पर सतत विकास लक्ष्य के तीसरे लक्ष्य के लक्षित नवजात शिशु मृत्यु दर के लक्ष्य को प्रप्त कर चुके हैं। लगभग आधे 315 जिलों के 2030 तक सतत विकास लक्ष्य के लक्षित आंकड़ों को प्राप्त करने की संभावना कम है। भले ही भले ही वह भारतीय राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के दो अवधि में होने वाले दोनों सर्वेक्षणों में नवजात शिशु की मृत्यु दर में कटौती महसूस कर रहे हो।

वि, कंचरला एवं अन्य (2017) द्वारा "टोटल प्रिवेंशन ऑफ द फोलिक-एसिड प्रिवेंटेबल स्पाइना फिबिडा एंड एनेंसेफेलि वुल्ड रिडुस चाइल्ड मोर्टालिटी इन इंडियारू इंप्लीकेशन इन अचिविंग टारगेट 3.2 ओफ द सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स" विषय पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि 2015 में फोलिक एसिड के हस्तक्षेप से एफएपी एसबीए के लगभग 116070 मामलों और एफएपी एसबीए से जुड़े 101565 पांच वर्ष से कम उम्र की मृत्यु को रोका जा सकता था। एफएपी एसएबी की रोकथाम से सालाना नवजात शिशु और 5 साल से कम उम्र की मृत्यु के क्रमशः 10.2 और 8.9% और 8.3% की कमी आयी है। इस कटौती को नवजात और 5 साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर में कमी क्रमशः 18.5 फीसदी और 17.2 फीसदी तक कम किया जाना है, जिसकी भारत को अभी 2030 तक सतत विकास लक्ष्य 3.2 को प्राप्त करने की आवश्यकता है।

जॉन एस 2018 द्वारा "एनसीडी प्रिवेंशनः अ पथ वे टू इंडिया सस्टेनेबल डेवलपमेंट" विषय पर किए गए अध्ययन में भारत के तम्बाकु को पिछड़ेपन का कारण और परिणाम बताया है। तंबाकू की आपूर्ति और उपयोग परिवार और देश के स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, पर्यावरण, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं गरीबी उन्मूलन के प्रयासों को कमजोर करता है। साथ ही इन्होने सुझाव दिया कि तंबाकू की रोकथाम के माध्यम से भारत में विकास कार्यक्रमों के परिणामों में संभावित सुधार किये जा सकते है।

चौधरी. सज्जन (2019) में "रिसर्च ऑन सस्टेनेबल डेवलपमेंट इन इंडिया" विषय पर किए गए अध्ययन में इन्होंने सतत विकास के लक्ष्य का वर्णन भारत के संदर्भ में किया और भविष्य की अनुसंधान की आवश्यकताओं को सुझाया है।

मित्रा. अनुपम, और शुक्ल. शिवांगी, (2019) ने एन इंपिरियल स्टडी ऑन अवायबिलिटी ऑफ रूरल हेल्थ केयर सर्विसेज इन रूरल विलेज एस पर द इंडियन पब्लिक हेल्थ स्टैंडर्ड्स विषय पर इन्होंने अध्ययन किया जिसमें 80 उत्तर दाताओं को अध्ययन में शामिल किया गया इनके द्वारा प्रबंध की आवश्यकता हो, जिसमें अवसंरचना कार्मिक की गुणवत्ता चिकित्सकीय देखभाल प्रशासनिक प्रक्रिया है सुरक्षा उपायों सामाजिक जवाबदेही जैसी सेवाओं की गुणवत्ता का अध्ययन किया गया और विश्लेषण किया गया।

वि. सेल्वम तथा अन्य द्वारा 2019 में "अवेयरनेस एंड परसेप्शन ऑफ हेल्थ अमंग द रूरल विमेन" विषय पर किए गए अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की कमी ग्रामीण महिलाओं के मध्य एक प्रमुख एवं पहली प्राथमिकता वाली समस्या है, जबकि जल जनित रोग, डेंगू, मलेरिया, है जो जैसे रोगों का मुद्दा दूसरे स्थान पर रहा, वही स्वच्छता तीसरे स्थान पर और स्वास्थ्य केंद्रों की दूरी चौथे स्थान की रहने वाले प्रमुख मुद्दे है।

विवेचन-

उपरोक्त साहित्य का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण स्वास्थ्य आज भी एक बहुत बड़ी चुनौती है। ग्रामीण स्वास्थ्य से संबंधित आधारभूत अवसंरचना की अभी भी पर्याप्त उपलब्धता नहीं है। स्थानीय समुदाय की सामुदायिक स्वास्थ्य संबंधी नियोजन में सहभागिता की कमी और स्वास्थ संबंधी मुद्दों के निवारण के प्रति ग्रामीण लोगों का उदासीन रवैया भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। ग्रामिण स्वास्थ्य केंद्रों की कमी और उपलब्ध स्वास्थ्य केंद्रों में मानव संसाधन एवं आधारभूत सुविधाओं की कमी भी एक गम्भीर समस्या के रुप मे बनी हुई है। भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के सबंध के तथ्यात्मक वर्णन प्रस्तुत तालिका मे किया गया है-

तालिका क्रमांक-1 पंचवर्षीय योजनाओ के दौरान प्राथमिक स्वास्थ केंद्र की संख्या

क्रमांक	*पंचवर्षीय योजना*	*प्राथमिक स्वास्थ केंद्र की संख्या*	*वृद्धि दर (प्रतिषत मे)*
1.	सातवी पंचवर्षीय योजना(1985-90)	18671	104.84
2.	आठवी पंचवर्षीय योजना(1992-97)	22149	18.63
3.	नौवी पंचवर्षीय योजना(1997-22	22875	3.28
4.	दसवी पंचवर्षीय योजना(2002-07)	22370	2.21
5.	ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना(2007-12)	24049	7.51
6.	बारहवी पंचवर्षीय योजना(2012-17)	25308	5.24

स्त्रोत- ग्रामीण स्वास्थ्य सांख्यिकी, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

उपरोक्त तालिका में ग्रामीण स्वास्थ्य अवसंरचना का वर्णन विभिन्न आयामों के आधार पर किया गया है, जिसमें प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की ग्रामीण क्षेत्रों मे उपलब्धता को विभिन्न वर्षो में दर्शाया गया है। तालिका भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या को प्रदर्शित करती है, जिसमें वर्ष 1981 से 2017 तक कुल 6 पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या की वृद्धि को प्रतिशत में दर्शाया गया है। इस तालिका के अवलोकन से पता चलता है, कि भारत मे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या की में सबसे अधिक वृद्धि दर छठीं पंचवर्षीय योजना में 104% देखी गई सबसे कम वृद्धि दर दसवीं पंचवर्षीय योजना में 2.21 प्रतिशत देखी गई।

तालिका क्रमांक-2 में भारत में स्वास्थ्य संबंधी भौतिक अवसंरचना की स्थिति को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया, जिसमें वर्ल्ड कप 2018-19 व 2019-20 से संबंधित ग्रामिण सामुदायिक उप स्वास्थ्य केंद्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका क्रमांक-2 भारत में स्वास्थ अवसंरचना की स्थिति

वर्ष	*उप-केंद्रो की संख्या*	*प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रो की संख्या*	*सामुदायिक स्वास्थ केंद्रो की संख्या*
2018-19	157411	24855	5335
2019-20	155404	24918	518

स्त्रोत- ग्रामीण स्वास्थ्य सांख्यिकी : स्वास्थ्य एवम परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार (2018.19 व 2019.20)

भारत में मार्च 2019 तक, कुल 160713 उप केंद्र (एससी), जिनमे से 157411 ग्रामीण क्षेत्रो मे कार्यशील हैं। 157411 उप केंद्र है जिनमें से 7821 उप केंद्र को ग्रामीण क्षेत्रों में हेल्थ एंड वेलनेस सेंटर (एचडब्ल्यूसी) में बदल दिया गया है। इसी तरह, भारत में 30045 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी), जिसमे से 24855 ग्रामीण प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के रुप मे कार्यरत हैं। 24855 ग्रामीण प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में से, 8242 ग्रामीण प्राथमिक स्वास्थ्य (पीएचसी) को ग्रामीण क्षेत्रों में हेल्थ एंड वेलनेस सेंटर (एचडब्ल्यूसी) में बदल दिया गया है। देश में 5685 सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (सीएचसी) है, जिनमे से 5335 ग्रामीण सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र के रुप मे कर्यरत हैं। उपरोक्त केंद्रों की संख्या मार्च 2020 तक उप केंद्रों की संख्या 155404, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या 24918 और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या 5183 है।

एससी, पीएचसी और सीएचसी की वर्तमान संख्या भारतीय लोक स्वास्थ्य मानव प्रणाली (आईपीएचएस मानक) के अनुसार नहीं है। स्वास्थ्य सुविधाओं के द्वारा कवर की गई औसत ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात भारतीय लोक स्वास्थ्य मानक के मापदंड के अनुसार 3000 से 5000 जनसंख्या पर एक उप स्वास्थ्य केंद्र होना चाहिए, जबकि वर्तमान में 5729 जनसंख्या के पर एक उप स्वास्थ्य केंद्र आता है। इसी प्रकार 20,000 से 30,000 जनसंख्या के ऊपर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की उपलब्धता होनी चाहिए, जबकि भारत में वर्तमान में 35730 पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र उपलब्ध है। वहीं भारतीय लोक स्वास्थ्य मानक के मापदंड के अनुसार सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र के द्वारा कवर की जाने वाली मानव जनसंख्या 80000 से 120000 होनी चाहिए, जो कि भारत

में वर्तमान में 171779 जनसंख्या पर एक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र की उपलब्धत है। अर्थात् एससी, पीएचसी और सीएचसी की वर्तमान संख्या भारतीय लोक स्वास्थ्य मानव प्रणाली(आईपीएचएस) मानक के अनुसार नही है।

यदि स्वास्थ्य केंद्रों के द्वारा कवर की गई गांव की संख्या को देखा जाए, तो एक उप- स्वास्थ्य केंद्र 4 गांव को, एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र 27 गांव को, वही एक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र 128 गांव को कवर औसतन कवर करता है। मार्च 2020 तक देश में रेफरल इकाइयों की संख्या 3313 है, जिनमें से 1706 सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, 821 उप-जिला या संभागीय अस्पताल, 668 जिला अस्पताल और 118 मेडिकल कॉलेज स्तर पर रेफरल इकाइयां उपलब्ध है।

शोध पत्र सतत विकास के लक्ष्य क्रमांक 3 उत्तम स्वास्थ्य सुनिश्चित करने और हर उम्र में सब की खुशहाली को प्रोत्साहन प्रदान करने से संबंधित है। इस लक्ष्य में निम्नलिखित टारगेट और भारत स्थिति है-

- वर्ष 2030 तक वैश्विक मातृ मृत्यु दर को 70 प्रति एक लाख से कम करना। 2019-20 तक भारत में मातृ मृत्यु दर 113 है।
- वर्ष 2030 तक सभी देशों में नवजात शिशुओं की मृत्यु दर 12/1000 तक कम करना और 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर को 25/1000 तक का लक्ष्य हासिल करना। भारत में 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर 2019-20 तक 36/1000 है।
- वर्ष 2030 तक एड्स, तपेदिक, मलेरिया, और उपेक्षित उष्णकटिबंधीय रोगों की महामारी की समाप्ति तथा हेपेटाइटिस, जल जनित रोगों और अन्य संचारी रोगों के विरुद्ध लड़ना। भारत मे 2019-20 तक आकड़ों के अनुसार 177/1 लाख तपेदिक के मरिज, 2019 तक 0.5/1000 एड्स से संक्रमित गये।
- गैर संचारी रोगों से होने वाली मृत्यु दर की रोकथाम और उपचार के द्वारा एक तिहाई तक कमी लाना और मानसिक स्वास्थ्य और खुशहाली को प्रोत्साहन देना।
- नारकोटिक ड्रग्स और शराब के हानिकारक उपयोग सहित माधवराव के उपयोग की रोकथाम और उपचार को सुदृढ़ करना।
- 2020 तक सड़क और यातायात दुर्घटनाओं से होने वाली मौतों और क्षति की संख्या को आधी करना भारत मे 2015 तक सड़क और यातायात दुर्घटनाओं मौतों की संख्या 1,46,133 और क्षति की संख्या 5,00,279 थी, जो 2019 मौतों की संख्या 1,51,113 और क्षति की संख्या 5,00,279 4,51,361 रही।
- 2030 तक परिवार नियोजन सूचना और शिक्षा सहित योन और प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की सार्वभौमिक पहुंच को सुनिश्चित करना तथा प्रजनन स्वास्थ्य को राष्ट्रीय रणनीति और कार्यक्रम में एकीकरण करना।
- सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज प्राप्त करना, जिसमें वित्तीय जोखिम संरक्षण, आवश्यक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की गुणवत्तापूर्ण पहुंच और सभी के लिए सुरक्षित प्रभावी और गुणवत्तापूर्ण सस्ती दवा और टिंको की पहुंच को सुनिश्चित करना। भारत में 2019 तक प्रति परिवार 13% मासिक स्वास्थ्य पर खर्च आता है, 94% संस्थागत प्रसव हुये, 9-11 माह के 91% बच्चों का टिकाकरण किया गया।
- 2030 तक हानिकारक रसायनों, वायु जनित और मृदा प्रदूषण और संदूषण से होने वाली मृत्यु और बीमारियों में कमी लाना।
- जहां तक हो सके सभी देशों में तंबाकू नियंत्रण पर हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन के फ्रेमवर्क के क्रियान्वयन को प्रभावी बनाना।
- संचारी तथा गैर संचारी रोगों की दवा और टिकों के अनुसंधान को बढ़ावा देना, जो कि प्राथमिक रूप से विकासशील देशों पर ज्यादा प्रभाव डालते हैं तथा वहां टिकों और दवाओं की सस्ती पहुंच प्रदान करना, जिसकी पुष्टि दोहा घोषणा पत्र के ट्रिप्स समझौते में की गई है।
- स्वास्थ्य से सम्बंधी वित्त में पर्याप्त वृद्धि और विकासशील देशों में तथा विशेषत: कम विकसित देशों और छोटे द्विपो वाले देशों में स्वास्थ्य कर्मचारियों की भर्ती विकास, प्रशिक्षण और क्षमता को बढ़ावा देना। भारत मे 2019-20 तक प्रति 10000 जनसंख्या पर चिकित्सक, नर्स और दाईयों की कुल उपलब्धता 37 है, जिसकी संख्या 2030 तक 45 होनी चाहिये।

- वैश्विक और राष्ट्रीय स्वास्थ्य जोखिम प्रबंधन और पूर्व चेतावनी की क्षमता का विकास सभी देशों में, विशेषत: विकासशील देशों में करना।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है, कि अभी भारत में सतत विकास के लक्ष्य क्रमांक 3 के टारगेट्स को प्राप्त करने मे अभी काफी मात्रा में काम किया जाना बाकि है, जिसे सरकार के साथ जनता के सहयूग से प्राप्त किया जा सकता है।

सामुदायिक स्वास्थ्य मे ग्राम सभा की भुमिका एवम सुझाव

ग्रामसभा के माध्यम से सतत सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक सहभागिता की गुणवत्ता एवं उसके प्रकारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामुदायिक सहभागिता के प्रकार एवं गुणवत्ता को विभिन्न स्वरुपों में देखा जा सकता है। जैसे समुदाय के निवासियों से समुदाय के सशक्तिकरण से संबंधित साधारण जानकारी का होना। समुदाय के अंतिम छोर से लेकर कार्यक्रम नियोजक तक एक निर्माणकर्ता की भुमिका में होना, जिसको कि समुदाय के एक व्यक्ति के रूप में समझा जा सकता है, की विभिन्न परियोजनाओं के अनुमोदन, नियोजन में भागीदारी को एक महत्वपुर्ण घट्क के रूप में देखा जा सकता है। दूसरे स्तर पर सामुदायिक सहभागिता एवं गुणवत्ता के प्रकार को जांचने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के संबंध मे समुदाय के हितधारको के सुझाव एवं मतों की अभिव्यक्ति और उनकी सहमति और असहमति के विकल्प के रुप में ग्राम सभा एक महत्वपुर्ण मंच है।

ग्रामीण सामुदायिक स्वास्थ के विकास में सतत विकास के लक्ष्य क्रमंक 3 को प्राप्त करने में ग्रामसभा निम्नलिखित प्रकार से भुमिका निभा सकती हैं-

- आर्थिक गतिविधियो को बढावा देने में - ग्राम सभा के माध्यम से गरीबी के हर स्वरूप को समाप्त करने के लिए मनरेगा के क्रियान्वयन में, ग्राम स्तर पर कौशल विकास, उद्यमिता विकास और रोजगार की स्थितियां निर्मित करने के लिए विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा एक गैर सरकारी संगठन में, समुदाय के साथ ही विभिन्न योजनाओं की सेवाओं की सामुदायिक पहुंच को सुनिश्चित करने में, जैसे कि सामाजिक सुरक्षा, आवास, जल, विद्युत, स्वच्छता व स्वास्थ्य सुविधाओ की प्रभावी पहुंच को सुनिश्चित करने में सक्रिय भुमिका निभा सकती है।
- खाद्य सुरक्षा, पोषण सुधार के लिये - भुखमरी की समाप्ति, खाद्य सुरक्षा, पोषण सुधार और धारणीय कृषि को बढ़ावा देने के लिए ग्राम सभा द्वारा ग्राम पंचायत की सहायता के लिए-
    1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत आने वाले परिवारों का पंजीयन सुनिश्चित करने में सहयोग देकर,
    2. बच्चों, गर्भवती, महिलाओं, किशोरी बालिकाओं को एकीकृत बाल विकास योजना के अंतर्गत पंजीकृत करने में सहयोग देकर,
    3. वृद्धजनों, किसानों मछुवारों एवं खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य श्रंखला से जुड़े अन्य लोगों का पंजीयन करने में योगदान देकर,
    4. वृद्धजनों को सामुदायिक सहायता प्रणाली के माध्यम से वृद्धजनों एवं अन्य लोगों को पोषण प्रदान करने की प्रणाली का निर्माण करने में सहायता करके,
    5. 3 वर्ष से कम के बच्चों तथा गर्भवती एवं धात्री महिलाओं के लिए घर पहुंच राशन की सुविधा सुनिश्चित करने व मध्यान भोजन की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने में,
    6. स्थानीय स्तर पर उपलब्ध पोषक खाद्य पदार्थों की पहचान करने तथा उनके उत्पादन को बढ़ावा देने और साथ ही कृषि संबंधित क्रियाओं से सम्बंन्धित स्थानीय स्तर पर लघु खाद्य उत्पादकों को प्रोत्साहित करने भुमिका निभा सकती है,
- ग्राम पंचायत विकास योजना - पोषण एवं आहार से जुड़े विभिन्न मुद्दों को ग्राम पंचायत विकास योजना में शामिल करने, स्थानीय स्तर पर होने वाली स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के मुद्दों को ग्राम सभा के माध्यम से ग्राम पंचायत विकास योजना में उठाने महत्वपुर्ण भुमिका निभा सकती है।
- युद्ध स्तर पर कार्य करके- सबके लिये उत्तम स्वास्थ्य सुनिश्चित करने तथा हर उम्र की खुशहाली को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिये ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम सभा के माध्यम से स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं का तथा संपूर्ण स्वच्छता, जल

जनित रोगों एवं संचारी रोगों के विरुद्ध युद्ध स्तर पर कार्य करके, स्वच्छता को बनाए रखने एवं इस संबंध में चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं के क्रियांवयन में ग्राम पंचायत की मदद एवं पंचायत की कार्य प्रणालि की निगरानी व सूचना, शिक्षा और संचार रणनीति के माध्यम से पोषण शिक्षा को बढ़ावा देने भुमिका निभा सकती है।

- समितियों का निर्माण और प्रभावी क्रियान्वयन- ग्राम पंचायत स्तर पर स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं पोषण समितियों का निर्माण और प्रभावी क्रियान्वयन, रोगी कल्याण समितियों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करना, ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम पंचायत स्तर पर 24×7 रेफरल सेवा को जोड़ना एवं आपातकालीन सेवा को प्रदान करने वाली अधोसंरचना से जोड़ना और ग्राम पंचायत स्तर पर परिवार नियोजन सेवा तथा स्वास्थ्य विभाग के द्वारा प्रदान की जाने वाली शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के साथ समन्वय स्थापित करने में ग्राम पंचायत अपनी सक्रिय भुमिका निभा सकती है।
- जागरूकता- ग्राम सभा के माध्यम से संचारी तथा गैर संचारी संक्रामक रोगों से संबंधित जागरूकता को बढावा देना, विभिन्न स्वास्थ्य सम्बंधित योजनाओ से लोगो को अवगत कराना व योजनाओं की जानकारी प्रदान करना एवं कारक जनित रोगों से बचाव के लिए जागरूकता को सामुदायिक स्तर पर बढ़ावा देना, ग्राम पंचायत स्तर पर विभिन्न मादक द्रव्य, नशा, नारकोटिक, ड्रग तथा शराब के उपयोग से होने वाली समस्याओं और इनके नुकसान की सामुदायिक जागरूकता पैदा करने कार्यो में ग्राम सभा एक महत्वपुर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष-

भारत सरकार द्वारा वर्तमान में देश के कुल सकल घरेलु उत्पाद का 1.5 प्रतिशत ही स्वास्थ पर खर्च किया जाता है, जिसे 2025 तक 2.5 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में सबके लिये उत्तम स्वास्थ्य की उपलब्धता एक बहुत बड़ी चुनौती है। सतत विकास लक्ष्य के लक्ष्य क्रमांक 3 के उप-लक्ष्य जैसे मातृ मृत्यु दर को कम करना, शिशु मृत्यु दर को कम करना, संक्रामक और घातक बीमारियो जैसे एचआईवी एड्स, ट्यूबरकुलोसिस, हेपेटाइटिस जैसे संचारी रोगों की समाप्ति करना, नशीले पदार्थों के सेवन की रोकथाम करना, सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवाओ का विस्तार, जिसमें वित्तीय जोखिम सुरक्षा, गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की उपलब्धता, सुरक्षित प्रभावी गुणवत्तापूर्ण एवं सस्ती दवाओं एवं टीकाकरण की पहुंच सुनिश्चित करना और इसी के साथ क्षमता विकास जैसे कार्य को 2030 तक लक्ष्यित रखा गया है। भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता की स्थिति में सुधार तथा स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं की गुणवत्तापूर्ण पहुंच को सुनिश्चित करने में पंचायती राज संस्थाओं के समन्वय एवं उसमें जन सहभागिता के माध्यम से विभिन्न रोगों के प्रति जागरूकता, रोगों से लड़ने के लिए जन सहयोग एवं स्थानीय जागरूकता से सामुदायिक स्तर पर स्वास्थ्य को उत्तम बनाया जा सकता है, जिसमें ग्राम सभा एक राजनीतिक साधन के साथ-साथ जन सहयोग एवं जन सहभागिता के लिए एक सुदृढ़ मंच का कार्य कर सकती है। इसमें सभी सामाजिक वर्गों एवं विभिन्न आयु समूहों के लोग, सब आगे आकर सामुदायिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने एवं स्वास्थ्य सेवाओं को जरूरतमंद लोगों तक पहुंच को बेहतर बनाने में अपना सहयोग दे सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

युनाईटेड नेशंस,(1987). ब्रूट्लेंड कमीशन रिपोर्ट, युनाईटेड नेशंस, न्यु योर्क https://sustainabledevelopment.un.org/content/documents/21252030%20Agenda%20for%20Sustainable%20Development%20web.pdf

द कोंस्टिट्युशन(73 अमेंड्मेंट) एक्ट 1992 https://legislative.gov.in/constitution&seventy&third&amendment&act&1992

नार्थ, डी. (1993). पैराडॉक्स ऑफ वेस्ट. www.fpn.asu.ru/files/north%205.doc

वी जोसेफि,एल. डोर्स(2000). इंफोर्मेशन नीड्स ओफ रुरल हेल्थ प्रोफेशन: अ रिविव ओफ द लिटरेचर. बुलेटिन ओफ मेडिकल लाइब्रेरि एसोशिएशन, https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC35256/

इंडिकेटर्स ऑफ सस्टेनेबल डेवलपमेंट, गाइडलाइन एंड मेथाडोलॉजी, यूनाइटेड नेशंस, न्यू यॉर्क. अक्टूबर 2007 (थर्ड एडिशन)

केनी, एस. (2007). डेवलपिंग कम्युनिटीज फॉर फ्यूचर((थर्ड एडिशन), साउथ मेल्बर्नू थॉम्पसनस्ट्रेंज, टी.,- बैली, ए.(2008). सस्टेनेबल डेवलपमेन्ट: लिंकिंग एकोनोमी, सोसायटी, एंवायर्मेंट. ऑर्गनाईजेशन फोर एकोनोमिक कोओरेशन एंड डेवलपमेंट। https://books.google.co.in/books/about/Developing_Communities_for_the_Future.html?id=lohTewAACAAJ&redir_esc=y

अफरिदी,एफ, (2008). केन कोम्युनिटि मानिटरिंग इम्प्रुव द अकाउंटिबिलिटी ओफ पब्लिक आफिसियल्स, एकोनोमिक अंड पोलिटिकल विकलि.43(42). http://www.jstor.org/stable/40278075

बुफोली, मेडालेना, केपोलोंगो. एंड अदर्स (2013). सस्टेनेबल हेल्थकेयर : हाउ टु एक्सेस एंड इम्प्रूव हेल्थकेयर स्ट्रक्चर्स सस्टेनिबिलिटि. https://www.researchgate.netèpublicationè256763541½Sustainable½Healthcare½how½to½assess½and½improve½healthcare½structures'½sustainability

गोल्ड्मेन, रिचर्ड्स. बनेल, रबेक्का. पॉस्नर, सेम्यूल (2014). व्हाट इस 'कोम्मुनिटी हेल्थ'? एक्सेमाइनिंग द मीनिंग ऑफ एन इवोल्विंग फिल्ड इन पब्लिक हेल्थ.. प्रिवेंटिव मेडिसीन. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/25069043/

जायसवाल, नीलमणी. (2015). रूरल हेल्थ सिस्टम इन इंडिया होरीजोन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल वर्क एंड ह्यूमन सर्विसेस प्रैक्टिस. 3. 29-37. https://www.hrpub.org/journals/article_info.php?aid=2525

कंचरला, विजया, एवं अन्य (2017). टोटल प्रिवेंशन ऑफ द फोलिक-एसिड प्रिवेंटेबल स्पाइना फिबिडा एंड एनेंसेफेलि वुल्ड रिडुस चाइल्ड मोर्टालिटी इन इंडिया: इंप्लीकेशन इन अचिविंग टारगेट 3.2 ओफ द सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/29195033/

बोरा.के.जयंत, और सैकिया. नंदिता (2018). "न्यूनेटल एंड अंडर फाइव मोर्टिलिटी रेट इन इंडियन डिस्ट्रिक्ट्स विद रेफरेंस टु सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल 3 : एन एनालिसिस ऑफ द नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे ऑफ इंडिया (2015-16) https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC6066210/

जॉन, शोबा. (2018) द्वारा "एनसीडी प्रिवेंशन : अ पथ वे टू इंडिया सस्टेनेबल डेवलपमेंट" https://www.ijrte.org/wp&content/uploads/papers/v8i2S3/B12260782S319.pdf

चौधरी, सज्जन. (2019). अ रिसर्च ऑन स्नेह व डेवलपमेंट इन इंडिया इंटरनेशनल जनरल एंड टेक्नोलॉजी एंड इंजीनियरिंग ISSN: 2277-3878 वोलुम-8, ईशु-2एस3, जुलाई 2019. https://www.ijrte.org/wp&content/uploads/papers/v8i2S3/B12260782S319.pdf

सेल्वान, डी. अशोक , पी. प्रथीपकांथ (2019).अवेयरनेस एंड पर्सेप्शन ओफ हेल्थ इशुज एमंग रुरल वुमन. इंटरनेशन जर्नल ओफ रिसेंत टेक्नोलोजी एंड इंजिनियरिंग. ISSN: 2278-3075 https://www.ijrte.org/wp&content/uploads/papers/v7i5s/Es211601751919-pdfjksM

एक्सीडेंट्स इन ईंडिया (2019). ½- https://morth.nic.in/sites/default/files/RA_Uploading.pdf रुरल हेल्थकेयर स्टेटिस्टिक्स(2019). नेशनल रुरल हेल्थ मिशन, मिनिस्ट्रि ओफ हेल्थ अंड फेमिलि वेल्फेर. ग्रामीण स्वास्थ्य सांख्यिकि(2019). राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, स्वाास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार. https://hmis.nhp.gov.in/downloadfile?filepath=publications/Rural-Health-Statistics/RHS%202019-20.pdf

एश्ले ब्रुक(2019).व्हाट इस कम्युनिटी डेवलपमेंट एंड व्हाय इज इट इंपॉर्टेंट, https://www-rasmussen-edu/degrees/health&sciences/blog/what&is&community&health/

ग्राम सभा एंड इट्स फंक्शंसए जर्नल ऑफ इंडिया(2020) https://journalsofindia.com/gram&sabha&and&its&functions

एसडीजी इंडिया इंडेक्स एंड डेशबोर्ड(2021).पार्टनरशीप इन थे डिकेड ओफ एक्शन, नीति आयोग, भारत सरकार. www.niti.gov.in/writereaddata/files/SDG_3-0_Final_04-03-2021_Web_Spreads.pdf

ओब्जेक्टिव्स ऑफ पंचायती राज इंस्टिट्यूशन- ग्राम सभा, नीति आयोग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. https://niti.gov.in/planningcommission.gov.in/docs/reports/sereport/ser/bihinter/st_bihch11.pdf

सस्टेनेबल डेवलपमेंट, यूनेस्को. https://en,unesco.org/themes/education&sustainable&development/what&is&esd/sd

व्हाट इस कम्युनिटी डेवलपमेंट, ऑस्ट्रेलियन इंस्टीट्यूट ऑफ फैमिली स्टडीज ऑस्ट्रेलियन गवर्नमेंट. https://aifs.gov.au/cfca/eÛpert&panel&project/what&community&development

सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स एंड ग्राम पंचायत. https://www.in.undp.org/content/dam/india/docs/Gram%20Panchayat%20Brochure.pdf

सतत विकास लक्ष्य, यु.एन.डी.पी., https://www.undp.org/sustainable-development-goals

पंचायती राज व्यवस्था, ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका

अंकित कुमार गुप्ता

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, शहीद स्मारक राजकीय महाविद्यालय यूसुफपुर मुहम्मदाबाद, गाजीपुर,
(सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर)

नवसहस्त्राब्दी में नव-संकल्प का सूत्रपात किया भारत ने वर्ष 2001 को स्त्री-सशक्तिकरण वर्ष घोषित करके, किन्तु इस दिशा में मील का पत्थर सिद्ध हुए 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन, जिनकी बदौलत आज पूरे देश में 15 लाख और उत्तर प्रदेश में 189570 जिसमें 112845 केवल अनुसूचित जनजाति वर्ग की महिलाएँ जमीनी लोकतांत्रिक संस्थाओं के सदस्य और अध्यक्ष पद पर काबिज है। पंचायती राज संस्थाओं की सफलता के लिए महिला भागीदारी आज एक अहम् पहलू है। महिला प्रतिनिधित्व ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी तरक्की का एक साझा मंच प्रदान करता है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को जहाँ अधिक जिम्मेदारिया मिली हैं वहीं उनके अधिकार एवं उत्तरदायित्वों में भी बढ़ोत्तरी हुई है। पंचायती राज व्यवस्था में यदि महिलाओं ने पहली बार आरक्षण के तहत ग्राम पंचायत, जिला पंचायत का चुनाव लड़ा, चुनाव जीतने के बाद उन्होंने विकास कार्यो के जरिए ग्रामीणों का इस कदर दिल जीता कि उन्हें दोबारा सामान्य सीट होने के बाद भी प्रधान चुना गया। देशभर के करीब पांच हजार से अधिक ऐसी पंच व प्रधान है, जो पहली बार महिला के लिए आरक्षित ग्राम पंचायत व वार्ड से चुनाव जीती थीं, लेकिन दोबारा आरक्षण के तहत सामान्य सीट होने पर भी उन्हें विजय हासिल हुई। आज वे सफल जनप्रतिनिधि के रूप में ग्रामवासियों की हर समस्या का समाधान कर रही है। इन दिनों पूरे देश में करीब 10 लाख से अधिक महिलाएं पंच से प्रधान के रूप में अपनी भूमिका निभा रही है। इसके अलावा करीब 50 हजार पंचायत समिति में तो करीब दह हजार जिला परिषद में भागीदारी निभा रही है। इस तरह देखा जाए तो आज देश में पंचायत-स्तर पर महिला जनप्रतिनिधियों की भागीदारी लगातार बढ़ रही है। फिलहाल पंचायतों की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या 28.18 लाख है जो कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों का 36.87 प्रतिशत है।

आरक्षण से महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में अधिक से अधिक स्थान मिला है लेकिन क्या वह अधिकार एवं दायित्वों का बेहतर निवर्हन कर पायी है? पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को दायित्व मिलने के उपरांत ग्रामीण विकास में कौन से बदलाव आये है। जिससे महिलाएँ भी सषक्त हुई है और ग्रामीण विकास को भी नया आयाम मिला है। देश के ग्राम्य जीवन में बसे जनजातीय समाज के लिए सरकार की कोशिश यह होती है कि अधिक से अधिक योजनाओं के क्रियान्वयन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका पंचायत की हो, पंचायत की भागीदारी के बिना कोई भी योजना नहीं चलाई जाये जिससे पंचायतों की भागीदारी बढ़ने से ग्राम पंचायत के कार्य तथा दखल का दायरा भी बढ़ गया है।

पंचायाती राज संस्थाओं का मुख्य कार्य ग्रामीण विकास के लिए सहभागिता के आधार पर योजना बनाना, उनको लागू करना, उनका मूल्यांकन करना है। 73 वें संविधान संशोधन के अनुच्छेद 243 (छ) के अनुसार पंचायतें अपने स्तर पर आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजना बनाएगी। इस कार्य को करते समय वे संविधान की 11 वीं अनुसूची में सूचीबद्ध 29 विषयों से सम्बन्धित व स्कीमों को भी कार्यान्वित करेगी। ग्यारहवीं अनुसूची में खेती-बाड़ी से लेकर गाँव की परिसम्पत्तियों के रख-रखाव की स्कीमें शामिल हैं।

रोटी के अभाव में भूखे पेट सोना, इलाज के अभाव में अकाल ही काल की गोद में समा जाना आदिवासी क्षेत्रों की कड़वी सच्चाई है। अपनी पारम्परिक अर्थव्यवस्था जोकि पूर्णत: वनों पर आधारित थी, के छिन्न-भिन्न हो जाने से वे दर-दर की ठोकरें खाने का विषय है। घने जंगल एवं वन्य प्राणी जिनसे वे मनोवैज्ञानिक रूप से जुड़े थे ओर जो उनके जीवनयापन के आधार था, अब नष्ट हो गए हैं। इस प्रक्रिया से जहां एक ओर प्राकृतिक संतुलन बिगड़ा वहीं दूसरी ओर आदिवासी और ज्यादा गरीब एवं असहाय हुए हैं। उनकी हस्तकला क्षीण हो गई है, संगीत और नृत्य जो उनके आनंद एवं उत्सव के साधन थे, अब कहीं दिखाई नहीं देते। 60 वर्षो के विकास के प्रतिफल में यदि आदिवासियों को कुछ मिला है तो वह है विस्थापन और पलायन। विस्थापन विकास के नये मंदिरों से उपजी समस्या है जिसने पलायन को और अधिक बढ़ाया है। जिस कारण इस समाज को अधिक योजनाओं के लाभ की आवश्यकता महसूस होती है जिससे इनके परिवार का भरण-पोषण संभव हो सके और इसी बात को ध्यान रखते हुए केन्द्र तथा राज्य सरकार जो योजनाएँ बनाती हैं उन योजनाओं में इस वर्ग को अधिक से अधिक लाभ देने का उद्देश्य होता है।

वर्ष 2005 में पारित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के तहत ही राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (NREGS) का संचालन हो रहा है। 2 अक्टूबर 2009 से इसे महात्मा गांधी के नाम पर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम कर दिया गया। अधिनियम के तहत ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले परिवारों को एक वित्तीय वर्ष मे 100 दिवस के रोजगार मांगने का अधिकार उपलब्ध कराया गया है। देश में यह योजना 2 फरवरी, 2006 को आन्ध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले से शुरू की गई नरेगा के प्राथमिक चरण में 200 पिछड़े जिले रखे गऐ थे। इससे पूर्व सन् 2005 में 'राष्ट्रीय काम के बदले अनाज कार्यक्रम' के द्वारा नरेगा का पायलट परीक्षण सफलतापूर्वक हो चुका था। इस योजना की सफलता एवं उपयोगिता को देखते हुए योजना को 01 अप्रैल 2008 से देश के सभी 614 ग्रामीण जिलों तक विस्तारित कर दिया गया। मध्यप्रदेश के 18 जिले में 02 फरवरी 2006 से अधिनियम को पारित किया गया। अधिनियम का क्रियान्वयन क्षेत्र 1 अप्रैल 2007 से 31 जिलों में विस्तारित किया गया। अब यह अधिनियम 01 अप्रैल 2008 से प्रदेश के सभी 50 जिलों के ग्रामीण अंचल में लागू कर दिया गया।

योजना का क्रियान्वयन तो ग्राम पंचायत स्तर पर ही होना है। इसलिए योजना के प्रस्ताव से लेकर योजना की सफलता तक के लिए लिये ग्राम पंचायतों की अहम भूमिका होती है। योजना के तहत कार्य का प्रस्ताव ग्राम सभा तैयार करती है। ग्राम पंचायत की यह जिम्मेदारी होती है कि वह वयस्क है या नहीं। जॉबकार्ड जारी करने, काम मांगने वालों को निर्धारित समय में काम देने, उन्हें मजदूरी देने तथा उनके आय-व्यय का ब्यौरा रखने का काम ग्राम पंचायत का ही होता है। कार्यो की गुणवत्ता ओर उपयोगिता के पुख्ता प्रबंध के लिए सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था सुनिश्चित की गई है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम देश के सभी प्रदेशों में सतत् सामाजिक अंकेक्षण एक रचनात्मक पहलू है। जिससे योजना के क्रियान्वयन से पारदर्शिता, सहभागिता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है। यह भ्रष्टाचार पर प्रभावी नियंत्रण का माध्यम भी है।

सामाजिक अंकेक्षण के दौरान ग्राम सभा द्वारा मजदूरों की सामाजिक संपरीक्षा समिति का गठन किया जाता है। इस समिति में एक तिहाई महिलाएं सदस्य होती हैं। समिति कार्यो से सम्बन्धित विभिन्न जानकारियों का निरीक्षण एवं सत्यापन करती हैं। समिति ग्रामसभा के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। ग्रामसभा में परिवारों के पंजीकरण कार्य, जॉबकार्ड के वितरण, रोजगार के आवेदनों की प्राप्ति, परियोजना सूची की तैयारी, स्थानों का चयन, तकनीकी अनुमानों की तैयारी, मंजूरी, कार्यो का मूल्यांकन आदि के कार्य किए जाते है। इसके साथ ही व्यक्तियों को काम के बंटवारे, उनके क्रियान्वयन, देख-रेख, बेरोजगारी भत्ते का भुगतान, मजदूरी का भुगतान एवं अन्य कार्यो का सामाजिक अंकेक्षण किया जाता है।

कार्यक्रम की देख-रेख कार्य में स्थानीय समुदाय को शामिल करने के लिए प्रत्येक गांव में स्थानीय सतर्कता एवं मूल्यांकन समितियां गठित की गई हैं। समिति के सदस्यों द्वारा उनके ग्राम क्षेत्र में योजना के अंतर्गत कार्यान्वित होने वाले कार्यो का पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन किया जाता है। समिति द्वारा योजना के सभी कार्यो और पक्षों की निगरानी की जाती है जैसे-कार्य स्थल पर मिलने वाली सुविधाएं, कार्यस्थल पर मास्टर रोल का संधारण, योजना सम्बन्धी रिकार्डो का संचारण सही हो इत्यादि। समिति के सदस्य जनप्रतिनिधि और ग्रामसभा के सदस्यों के साथ समन्वय स्थापित कर कार्यो को सम्पादित करते हैं। उनका यह दायित्व है कि कार्य के संचालन में कोई विरोधाभास उत्पन्न नहीं हो। समिति प्रत्येक तीन माह में किए जाने वाले सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया में ग्रामसभा की भी मदद करती है।

जनजातीय क्षेत्र में कृषि जोत का छोटा आकार, अनुपजाऊ भूमि, सिंचाई स्रोतों एवं बिजली का अभाव, स्थानीय श्रम की अनुपलब्धता एवं ऋणग्रस्तता आदि के कारण प्रतिवर्ष यह समुदाय छह या सात माह के लिये रोजगार की तलाश में पास के राज्यो में पलायन करता है। लक्षित सार्वजनिक प्रणाली हेतु जून 2003 में किए गए एक सर्वे के अनुसार, सम्पूर्ण देश में करीब 27,007 परिवार स्थायी रूप से पलायन कर गऐ थे। आदिवासियों की खेती की स्थिति संतोषजनक न होने के कारण उनके पालन-पोषण किये जाने में कठिनाई होती है और उनके जीविका यापन के लिए उन्हें गांव से बाहर जाना पड़ता है।

पलायन के कारण एक तरफ तो जनजातीय समुदाय को कई समस्याओं यथा-पशुधन, गहने एवं भूमि को बेचना या गिरवी रखना, अपनों से दूर जहां काम मिला उस व्यवस्था द्वारा शोषण आदि का सामना करना पड़ता है वहीं दूसरी ओर शासकीय योजनाओं का क्रियान्वयन भी बाधित होता है। बच्चे स्कूल छोड़कर माता-पिता के साथ पलायन कर जाते है और जब गांवों में बुजुर्गो के अलावा कोई बचता ही नहीं तो योजनाओं का क्रियान्वयन किस हद तक हो पाता होगा यह स्वयं सिद्ध है। पलायन एवं बेरोजगारी की समस्या एक-दूसरे से जुड़ी हुई है। इस समस्या से आदिवासी समुदाय को निजात दिलाने के लिये विगत छह दशकों से सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाएं कृतसंकल्प हैं किन्तु इन सब के बावजूद पलायन एवं बेराजगारी का आंकड़ा आदिवासी समुदाय के संदर्भ उल्लेखनीय बना रहा है। इस प्रकार पलायन को रोकने के लिए सारे प्रयास काफी नहीं कहे जा सकते हैं, ग्रामीण विकास की कुछ योजनाओं को छोड़कर उनके पास अपने परिवार के जीवन-यापन का कोई सहारा नहीं है। गरीबी, बीमारी, भुखमरी, बेरोजगारी और पलायन की मार झेल रहे जनजातीय समुदाय के लिये महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का सहारा बनकर उभरी है। लाखों जनजातीय समाज के व्यक्तियों को इस योजना के माध्यम से ग्राम पंचायतों ने रोजगार उपलब्ध कराकर उनके जीवन-यापन के मार्ग को प्रशस्त किया है। जिस काम की तलाश में जनजातीय समाज के लोग खाना-बदोश का जीवन व्यतीत करने को मजबूर थे। इब उन्हें अपने गांवों में ही रोजगार मिलने लगा है। अभी तक के वर्षो में जितने लोगों को इस योजनान्तर्गत ग्राम पंचायतों ने रोजगार उपलब्ध करवाया है उसमें से 16.64 प्रतिशत जनजातीय परिवार के लोग है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम से जहाँ लाखों जनजातीय समाज के लोगों को रोजगार मिला है वहीं इस योजना तथा इसकी उपयोजना अंतर्गत जनजातीय समाज को मिलने वाले लाभ से कई लोगों को लाभ मिला है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम की अनुसूची के पैरा 1 के बिन्दु क्रमांक-4 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित/जनजातियों/गरीबी रेखा से नीचे के परिवार/भूमि सुधार के हितग्राहियों/इंदिरा आवास योजना, लघु सीमांत कृषक परिवार के निजी भूमि पर सिंचाई सुविधा, बागवानी और भूमि विकास सुविधा के कार्य कराने की व्यवस्था की गई है। योजना की उपयोजना जिसमें कपिलधारा के अंतर्गत नवीन सिंचाई के साधन विकसित करना, भूमि-शिल्प उपयोजना से भूमि सुधार के कार्य आदि उपयोजना ने जहाँ जनजातीय किसानों की भूमि में उत्पादन बढ़ाया है वहीं नंदन फलोद्यान, निर्मल वाटिका तथा वन्या उपयोजना ने जनजातियों के लिये स्वरोजगार के नये द्वार खोले हैं। मनरेगा योजनान्तर्गत सभी योजनाओं व इसकी उपयोजनाओं में आदिवासियों के लिऐ 30 प्रतिशत कार्य देने का प्रावधान है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) द्वारा मई 2009 में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार-दक्षिण एशिया में आर्थिक मंदी का बहुत खराब दौर दिखाई दे रहा है तथा आगामी कुछ वर्ष और भयावाह हो सकते हैं किन्तु भारत द्वारा सामाजिक सुरक्षा के रूप में संचालित की जा रही रोजगार गारंटी योजना ने देश को इस संकट से बचा लिया। दरअसल इस योजना के द्वारा देश के करोड़ों व्यक्तियों के हाथों तक विगत तीन वर्षो में एक निश्चित न्यूनतम राशि पहुंची है जिसने इन परिवारों की क्रयशक्ति में वृद्धि की है। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण क्षेत्रों उपभोक्ता बाजार को विस्तार मिला है और इससे उत्पादन इकाइयों को व्यापक आघात नहीं झेलना पड़ा है। चूंकि नरेगा के अन्तर्गत जॉब कार्डधारकों को वर्ष में न्यूनतम 100 दिन का रोजगार प्रति परिवार सुनिश्चित किया गया है अत: आजीविका की बड़ी चिन्ता से मुक्ति भी मिली है।

पंचायती राज व्यवस्था से ग्रामीण विकास को नया आयाम मिला है, ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले ग्रामीण जनों के विकास के लिए बनाये जाने वाली कार्य योजना में लोगों की सहभागिता होती है और मुख्यत: पंचायती राज व्यवस्था में महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों को निभाने वाले जनप्रतिनिधि की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। पंचायती राज व्यवस्था से ग्रामीण विकास को गति मिली है और इसके लिए स्थानीय प्रतिनिधियों की महत्वपूर्ण भूमिका है खासकर ग्रामीण महिलाओं ने भी इसमें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. वर्मा (संपादक), पूर्वोक्त, राजेश कुमार केशरी, जनसंख्या - नियंत्रण का पंचायती राज माडल, पृष्ठ 434
2. योजना, पूर्वोक्त, सुरेन्द्र कुमार कटारिया (जनसंख्या-नियंत्रण में पंचायती राज की भूमिका), वर्ष 43, अंक 4, जुलाई 1999, पृष्ठ 24
3. पंचायती राज अपडेट (संदीप थिंडे, विकलांगों की स्थिति सुधारने में पंचायती राज संस्थाओं की अहम भूमिका), मई 2014.
4. योजना (मासिक पत्रिका), उदय सिंह राजपूत (आदिवासियों का सहारा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना), सूचना और प्रसारण मंत्रालय, योजना भवन, नई दिल्ली, वर्ष 53, अंक 8, अगस्त 2008, पृष्ठ 28
5. वर्मा, सवलिया बिहारी, पंचायती राज, स्वयंसेवी संगठन एवं ग्रामीण विकास, श्रीवल्लभ शरण (पंचायत के पाँच तत्व), आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2 पृष्ठ 3

नगर नियोजन

गोकुल सरकार

शोधार्थी, भूगोल विभाग, बी0एन0एम0यू0, मधेपुरा

सारांशः- नगरीय क्षेत्रों में भूमि उपयोग नियंत्रण एवं नगरीय प्रदेश की डिजाइन से संबंधित एक तकनीकी एवं राजनीतिक प्रक्रिया है। किसी भी नगर के विकास एवं निर्माण के लिए उसे योजनाबद्ध तरीके से बसाना या उसका विकास करना ही नगर नियोजन कहलाता है।

वर्तमान समय में नगरीय समाज में अनेक भौतिक कमियाँ आ रही है जिससे नगरों का विकास अनियमित ढंग से हो रहा है, परिणामस्वरूप नगरों में अनेक प्रकार की समस्याएँ जैसे मकानों की कमी, प्रदूषण की समस्या, अपराध में वृद्धि, शारीरिक एवं मानसिक परेशानियाँ, गंदी बस्तियों का आविर्भाव, जल जमाव की समस्या आदि भयावह रूप में प्रकट हो रही है। इन समस्याओं का समाधान नगर के द्वारा ही किया जा सकता है।

हालांकि प्राचीन भारत में नगर नियोजन की कला काफी विकसित थी। भारतीय नगरों के अवशेष इसका प्रमाण है, किन्तु हाल ही में केरल में आई विनाशकारी बाढ़ एवं कुछ समय पूर्व मुंबई के सिंधिया हाउस में लगी भीषण आग ने नीति निर्माताओं को एक समन्वित शहरी नियोजन की आवश्यकता पर फिर से सोंचने पर मजबूर किया है। नगरीय समस्याओं के ठोस समाधान के लिए शहरी नियोजन की अति आवश्यकता है। इसी को देखते हुए हम लेख में शहरी नियोजन के कमजोर पक्षों पर प्रकाश डालने के साथ साथ बेहतर प्रबंधन से संबंधित पर प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे।

कुट शब्दः- नियोजन, जनसंख्या, आर्थिक-सामाजिक विकास, भूमि।

प्रस्तावनाः- नगर नियोजन एवं आवश्यकताएँः- नगर नियोजन की संकल्पना के विषय में विद्वानों का मत अलग-अलग है, फिर भी नगर नियोजन की योजना से पहले उद्देश्य निर्धारित करना चाहिए। नगर नियोजन के मुख्य तीन उद्देश्य होते हैं- स्वास्थ्य, सौंदर्य एवं उपयोगी सेवाएँ व सुविधाएँ। नगर के लोगों के लिए उत्तम स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियाँ प्रदान करना, भूमि का सही ढंग से उपयोग करना, उपलब्ध साधनों के आधार पर नगर को अधिकाधिक सुंदर बनाना, नगरवासियों को उपयोगी आवश्यक सेवाएँ जैसे पीने का पानी, उत्तम जल प्रवाह की व्यवस्था, विद्युत सीवरेज आदि की व्यवस्था करना है। नगर नियोजन व्यापारिक, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक कार्यों को प्रोत्साहन देता है ताकि बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर सृजित हो तथा नगर समृद्ध बने।

इस समय भारत तीव्र नगरीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है। शहरी क्षेत्रों रोजगार के अवसर अधिक है। अतः यहाँ ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में लोग अधिक धन कमाते हैं और राष्ट्रीय आय में योगदान करते हैं। आँकड़ों के अनुसार 2001 तक भारत की आबादी का 27.8 प्रतिशत हिस्सा शहरों में रहता था। 2011 तक 31.16 प्रतिशत और यू०एन० अर्बनाइजेशन प्रोस्पेक्टस 2018 रिपोर्ट के अनुसार भारत के जनसंख्या का करीब 34 प्रतिशत हिस्सा शहरी क्षेत्र में निवास करने लगी है। मेगासाइज अर्बन कलस्टर (50 लाख से अधिक जनसंख्या वाला शहर) की तलना में स्मॉल अर्बन कलस्टर की संख्या तेजी से बढ़ रही है। शहरों में बेतहासा जनसंख्या वृद्धि से शहर अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा है।

भारत के ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही इलाकों में आपदाएँ आती रहती है लेकिन शहर ज्यादा जनसंख्या घनत्व के कारण इन आपदाओं के प्रति संवेदनशील होता है। हर आपदा तेजी से हो रहे शहरीकरण की प्रक्रिया में हुई गलतियों को उजागर कर देती है। इन समस्याओं को देखते हुए देश के शहरों के लिए एक ठोस शहरी नियोजन की आवश्यकता है जिससे वैज्ञानिक एवं तार्किक आधार पर आधारित मास्टर प्लान की व्यवस्था हो।

कमजोर या खराब नियोजन किस प्रकार विभिन्न गंभीर परिस्थितियों को जन्म देती है?

देश की वर्तमान शहरी नियोजन व्यवस्था भूमि उपयोग के पुराने तरीकों पर आधारित है। इसे आगे बढ़ाते हुए ऐसी योजना और प्रक्रिया अपनानी होगी जो वर्तमान प्रौद्योगिकी के अनुरूप एवं उपयोगी हो।

- शहरी नियोजन और स्थानीय शासन के बीच आपसी तालमेल का न होना भी हमारे नियोजन प्रक्रिया की एक कमी है। हालांकि 74वें संवैधानिक संशोधन में शहरी और स्थानीय सरकारों को सशक्त बनाने की बातें कही गयी है लेकिन इसका प्रभाव अब तक नगण्य है।
- जनसंख्या का बढ़ता दबाव शहरों के विकास पर दबाव डालता है। मानवीय जरूरत को पूरा करने के लिए किये गये कार्य बुनियादी पारिस्थितिकीय तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं जिनकी क्षतिपूर्ति करना एक समय सीमा के बाद संभव नहीं हो पाता है। शहरी नियोजन में व्याप्त कमियाँ इन आपदाओं को और अधिक गंभीर बना देता है।
- बढ़ती जनसंख्या की आधारभूत जरूरतों को पूरा करने के क्रम में भवन निर्माण संबंधी विभिन्न मानकों एवं नीतियों का अनुपालन सही तरीके से नहीं हो पा रहा है। आमतौर पर भवनों के डिजाइन में अग्नि सुरक्षा संबंधी प्रावधान नदारत रहते हैं। शहरों में अंधाधुंध एयरकंडीश्नर, रेफ्रिजरेटर एवं वाटर कूलर इत्यादि के इस्तेमाल से तापमान में बढ़ोत्तरी होना जो विभिन्न प्रकार के समस्याओं को जन्म देती है।
- अगर हम आपदाओं पर नजर डालें तो 2013 का केदारनाथ बाढ़ 2014 में जम्मू काश्मीर में मानव निर्मित आपदा है। जो शहरों के किनारे अनियोजित विकास की देन था।
- केरल की बाढ़ की बात करे तो माधव गाडगिल कमिटी ने 2011 में पश्चिमी घाट को संवेदनशीलता पर एक रिपोर्ट सौंपी थी जिसमें जैव विविधता के संबंध में बातें कही गयी थी। इस क्षेत्र में कुछ नए औद्योगिक एवं खनन क्रियाओं पर रोक लगाते हुए कड़े विनियमन की बात कही गयी थी। इस रिपोर्ट को अनदेखी कर अनियंत्रित खनन, निर्माण संबंधी गतिविधियाँ एवं दोषपूर्ण बाँध प्रावधान केरल बाढ़ का कारण बना।

शहरी नियोजन के बेहतर प्रबंधन के लिए कुछ महत्वपूर्ण सरकारी प्रयास:

- भारत के पहले नेशनल कमीशन ऑफ अर्बनाइजेशन ने 1988 में शहरी नीति रिपोर्ट सौंपी थी। इसके बाद 1992 में 73वों एवं 74वाँ संवैधानिक संशोधन लाया गया जिसे पंचायती राज एक्ट एवं नगरपालिका एक्ट के नाम से जाना जाता है। इसका उद्देश्य आर्थिक एवं स्थानीय नियोजन द्वारा गाँव एवं शहरों का विकास करना था, किंतु कुछ राज्यों ने ही इसे अपनाया।
- इसके बाद भारत सरकार ने जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरीकरण मिशन, 2005 अपनाया।
- 2015 में भारत सरकार ने स्मार्ट सिटी मिशन शुरू किया जिसका उद्देश पाँच वर्षों के अंदर 100 शहरों की स्थिति में सुधार लाना था। 2015 में ही आधनिक सुविधाओं के साथ अधिक से अधिक शहरों के विकास के लिए AMRUT;kuh Atal Mission For Rejurenation And Urban Transformation लायी गयी।
- चूंकि शहरी विकास राज्य का विषय है इसलिए अभी तक ऐसी कोई व्यापक राष्ट्रीय नीति नहीं बन पाई है जो शहरीकरण से संबंधित योजना को बताये।

शहरी नियोजन के बेहतर प्रबंधन के लिए और क्या किये जाने की जरूरत है?

- शहरी नियोजन के बेहतर प्रबंधन के लिए सबसे पहले प्रभावी शहरी नियोजन में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है तभी विश्व स्तरीय शहरी भारत का निर्माण हो सकेगा। संविधान की 12वीं अनुसूची के तहत सूचीबद्ध कार्यों में शहरी नियोजन, भूमि उपयोग का विनियमन और आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए योजना का निर्माण करना शामिल है। इसलिए राज्यों से उम्मीद की जाती है कि वे इन कार्यों को नगर निगम को सौंप दें।
- 74वें संविधान संशोधन के अनुसार पेट्रोपोलिटन सिटीमेट्रोपोलिटन प्लानिंग कमिटी के गठन की व्यवस्था की गयी है। जो स्थानीय निकायों द्वारा तैयार योजनाओं को मेट्रोपोलिटन क्षेत्र में एकीकत करेंगे। आपको बता दें कि मेट्रोपोलिटन सिटी उन शहरों को कहा जाता है जिनकी जनसंख्या दस लाख से ऊपर होती है।
- 3 लाख से ऊपर वाले प्रत्येक शहर के लिए वार्ड कमिटी के गठन की बात भी की गयी है जो नगरपालिका संबंधी कार्यो को देखेगा। इन सभी संस्थानों को नियोजन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बनाना आवश्यक है। वहीं दूसरी तरफ देखते

है कि शहरी निकायों के ऊपर विकेन्द्रीकरण के नाम पर बहुत अधिक जिम्मेदारियों सौंपी गयी हैं जिसका ईमानदारी से पालन करना जरूरी है।

- स्थानीय निकायों के पास निरीक्षण कार्यो के लिए श्रम शक्ति की भी कमी रहती है। इसलिए पेपर वर्क में कमी लाते हुए सिस्टम को ऑनलाइन बनाने पर ध्यान देने की जरूरत है। वर्तमान की अप्रवल संबंधी प्रक्रियाओं का आधुनिकीकरण भी जरूरत है।
- शहरीकरण को देश के आर्थिक विकास का अभिन्न अंग मानते हुए भारत सरकार के थिंक टैंक नीति आयोग ने कुशल एवं टिकाऊ सार्वजनिक परिवहन को नीति में शामिल करने की बात कही है। नीति आयोग में 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों के लिए एक एकीकत महानगर परिवहन प्राधिकरण के गठन का सुझाव भी दिया है। ये समन्वित सार्वजनिक परिवहन योजना को तैयार करेंगे।
- हाल की एक रिपोर्ट में यह बात सामने आयी है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन एवं ऊर्जा उपभोग के मामले में मेट्रोपोलिटन सिटीज ने मेगासिटीज के बनिस्पत बेहतर प्रदर्शन किए हैं। इसका कारण यहाँ जनसंख्या, यात्रा अनुपात एवं वाहनों की संख्या का निम्न होना बताया है। कोलकाता एवं मुंबई दोनों ने भूमि उपयोग के साथ सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को अच्छे तरीके से एकीकृत किया है। 2004 में नॉन मोटराइज्ड ट्रांसपोर्ट अपनाने वाला मुंबई पहला शहर बन चुका है। इसका उद्देश्य साइकिल ट्रैक और ग्रीन सेक्टर का नेटवर्क तैयार कर वॉकिंग एवं साइकि्लंग करने वालों की संख्या में वृद्धि करना था।
- शहरी ताप द्वीप संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए दक्षिणी भारत में सड़कों को उत्तर-दक्षिण दिशा में बनाने पर जोर दिया जा रहा है ताकि सीधी पड़ने वाली सूर्य की रोशनी को टाला जा सके। शहरी नियोजन में सड़कों के विभिन्न हिस्सों, छतों के ऊपरी हिस्से को सफेद पेंट करने जैसे कार्यों को शामिल किया गया है जिससे सूर्य विकिरण को अधिक से परावर्तित किया जा सके।
- शहरों में भी वर्षा जल संचय त्पद ूजमत ेंतअमेजपदह को सख्ती से लाग करना जरूरी है जिससे भूमिगत जल भंडार सुरक्षित रहे। भूगर्भ जल संकट से बचा जा सके।
- शहर में उचित अनुपात में हरी पट्टी की व्यवस्था करनी चाहिए एवं स्लम बस्ती का उचित बसाव योजना बनानी चाहिए। साथ ही साथ गाँवों के विकास एवं सुविधा सम्पन्न बनाने की जरूरत है जहाँ सभी प्रकार के सुख सुविधा उपलब्ध हैं जिससे गाँवों से शहर की ओर पलायन रोका जा सके तभी नियोजन कार्य संभव है।

निष्कर्ष: अतएव शहर का अंधाधुंध विकास हो रहा है जिसके कारण अनेक प्रकार की समस्याएँ जन्म ले रही है जिसके समाधान के लिए सरकार द्वारा अनेक प्रयास भी किये जा रहे, अनेक नियम भी बनाये जा रहे जिनका पालन इमानदारी से भी हो रहा है।

अत: राष्ट्रीय, प्रादेशिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर इमानदारी से नियमों का पालन कर शहर नियोजन पर सख्ती से काम करने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बंसल, सुरेश चन्द्र (2007), नगरीय भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
2. शर्मा, नन्देश्वर (2007), बिहार की भौगोलिक समीक्षा, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।
3. सिन्हा, वी.एन.पी. (1992), बिहार का भूगोल, राजेश प्रकाशन, दिल्ली।
4. सिन्हा, एम.एम.पी. एवं वाला, सीमा (2007), नगरीय भूगोल, राजेश प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. योजना एवं कुरुक्षेत्र, 2007
6. पटना क्षेत्रीय विकास प्राधिकार रिपोर्ट-2007

अन्य पिछडा वर्ग महिला का शिक्षा में सहभागिता - धुले (महाराष्ट्र) जनपद एक भौगोलिक अध्ययन

संजय बी० घोडसे

सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, श्री. शि. वि. प्र. संस्था का
भाऊसाहेब ना. स. पाटील साहित्य एवं मु. फि. मु. अ. वाणिज्य महाविद्यालय, धुले (महाराष्ट्र)

Abstract

देश के प्रगती में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत मे महिलाओं की कुल आबादी 50 प्रतिशत है। इतनी बडी आबादी होने के बावजूद यह समुदाय राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक रुप से काफी पिछडा है। महिलाओ के मुल्यांकन हेतु उनका सामाजिक रुपरेखा का अध्ययन करना आवश्यक है। सामाजिक संरचनाए, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मुल्य प्रणालीयों का प्रभाव पुरुषो एवं महिलाओं के व्यवहार संबंधी प्रत्याशाओ पर पडता है। मानवी विकास हेतु महत्वपुर्ण शर्त यह है की प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की समान सहभागिता हो, इस से केवल महिला का विकास होगा वरन् समाज भी प्रगती की ओर अग्रसर होगा। चूंकी अन्य पिछडा वर्गमहिलाएं सामाजिक पिछडेपण के कारण ही समाज के मुख्य धारा से पीछे रह गयी है। इसी दृष्टी से यह आवश्यक है की अन्य पिछडा वर्ग महिला के शिक्षा मे सहभागिता इस विषय पर भौगोलिक विश्लेषण एवं अध्ययन हो।

शहरी बस्तियों मे ग्रामिण बस्तियो के अनुपात मे 66 प्रतिशत अन्य पिछडा वर्ग महिलाए प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता ले रही है। शहरी बस्तिया मानवी विकास के लिए अनुकुल एवं केंद्रबिंदु माने जाते है ऐसे क्षेत्र में 66 प्रतिशत महिला प्राथमिक शिक्षा मे सहभागिता दिखाई देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी बस्तियों मे स्कुलों मे अन्य पिछडा वर्ग महिला का दाखिला, स्कुल की उपलब्धता, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिती, शिक्षा का महत्व के संदर्भ मे जागृतता स्तर समाधान कारक स्थिति मे है। ग्रामिण बस्तियो मे अन्य पिछडा वर्ग महिला की सहभागिता का औसत 57.95 प्रतिशत है, जो की शहरी बस्तियों की अन्य पिछडा वर्ग महिला की सहभागिता औसत से कम है। ग्रामिण बस्तियों के पहाडो से सटीक बस्तियों मे अन्य पिछडा वर्ग महिला का प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता का औसत सबसे अधिक 68.42 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट है की यहां के अभिभावक शिक्षा के संदर्भ मे जागृत है।

1. प्रस्तावना (Introduction)

महिला देश की लगभग आधी आबादी कवर करती है। देश का पूरी तरह से विकास करने के लिए महिला शिक्षा बहुत महत्वपुर्ण है।महिला शिक्षा भारत के लिए सामाजिक और आर्थिक रुप से विकसित होने का एक बडा अवसर है। एक शिक्षित महिला मे अपने घर और पेशेवर जीवन को संभालने की क्षमता रखती है। भौगोलिक प्रदेश का सांस्कृतिक भूदृश्य वहॉ के मानवीय क्रियाओ का

प्रतिफल होता है। केवल मनुष्य है जो संसाधनो का नियामक व मानव कल्याण हेतु उनका उपयोग करता है। इस प्रकार विविध क्षेत्रों में क्रियान्वयन के परिणामस्वरुप मनुष्य स्वयं किसी प्रदेश का एक महत्वपूर्ण संसाधन है। भारत जैसे विकासोन्मुख देश में जहां प्रादेशिक स्तर पर मानव संख्या में तिव्रगति से वृध्दि हो रही है, संख्या सम्बन्धी भौगोलिक अनुसन्धान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

वर्तमान समय में अणु युध्द, अत्याधिक जनसंख्या दबाव, अमीर-गरीब की खाई, बेरोजगारी, दहशतवाद, विश्वतापमान, शिक्षा सुविधाए आदी समस्याए है जो मानवीय सभ्यता के सम्मुख महत्वपुर्ण चुनौती के रुप में स्थित है।भारत मे प्राचीन काल से परंपरागत तरह से विविध जाती-धर्म जनसंख्या का एक समान सामाजिक एवं आर्थिक विकास यह भी एक समस्या है। प्रस्तुत शोधपत्र में धुले जनपद के अन्य पिछडा वर्ग महिलाओं की शिक्षा मे सहभागिता एवं उनकी स्थिति का अध्ययन किया गया है। भारत सरकार द्वारा उन जातीयों को वर्गीकृत करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक सामुहिक शब्द है जो शैक्षिक या सामाजिक रुप से वंचित है। वर्तमान समय मे भी अन्य पिछडा वर्गके संबंध की सामाजिक स्थिति मे सुधार के आशाओं के अनुरुप परिलक्षित नही हुए है। इन समस्याओं से निजात पाने के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र की समस्याओं का सिलसिलेवार विवरण के साथ-साथ तार्किक समाधान प्रस्तुत किया जाय। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के प्रयास में विश्व स्तर पर किसी न किसी रुप में निति निर्माता एवं शिक्षाविदों व्दारा एकैडेमिक बहस जारी है। उसी बहस में एकैडेमिक साहित्य का निर्माण करने का इस शोध पत्र का एक छोटासा प्रयास है।

2. अभ्यास क्षेत्र (Study Area) –

धुले उत्तरी महाराष्ट्र का मध्यप्रदेश एवं गुजरात राज्य के सीमा से सटीक एक महत्वपुर्ण जनपद है। ब्रिटीश कालीन पश्चिम खानदेश का धुले जनपद मुख्यालय रहा है। धुले जनपद महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं गुजरात तीनो राज्यों का एक महत्वपुर्ण जंक्शन है, जहां से राष्ट्रीय महामार्ग 3 मुंबई-आग्रा, 6 सुरत- नागपूर एवं 211 धुले-सोलापूर आदी महामार्ग जाते है। धुले जनपद का त्रिकोणी आकार अपनेआपको और भौगोलिक क्षेत्र से अलग प्रस्तुत करता है। जनपद का विस्तार 2028 'उत्तरी अक्षांश से 2161' उत्तरी अक्षांश एवं 7350 'पूर्व से 7511' पूर्व देशांतर तक है। धुले जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल 8063 वर्ग कि. मी. है जों कि महाराष्ट्र राज्य का 2.6 प्रतिशत है। जनपद के उत्तर मे सतपुडा पर्वत, आग्नेय दिशा में सह्याद्री पर्वत के उप शाखाओं (चनते) से ढका हुआ है। जनपद का सेन्टर पार्ट तापी नदी के संचयन से बनी सुपिक जमीन से ढका हुआ है, जिसके चलते यहा कृषी व्यवसाय किया जाता है। जनपद भौगोलिक क्षेत्र शुष्क पर्णपाती जलवायु रिजन में समाविष्ट होता है। इसी कारण यहां 674 मिलिमीटर तक मान्सून की वर्षा होती है। जनवरी महिना सबसे जादा शीत होता है, इस समय यहां का तापमान 16.2 सेल्शिएस तक निचे आ जाता है। फरवरी के मध्य से तापमान में धीरे-धीरे बढोत्तरी शुरु होकर मई में सरासरी कमाल तापमान 40.7 सेल्शिएस तक बढ जाता है।

3. उद्देश (Objective) -

इस शोध परीयोजना का प्रमुख उद्देश धुले जनपद की अन्य पिछडा वर्गमहिला जनसंख्या का शिक्षा पध्दती में सहभागिता का भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत करना है। राष्ट्र एवं प्रदेश स्तर पर तीव्र गति से बढती जनसंख्या एवं उनके लिए उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं की उचित पूर्ति के लिए क्षेत्रीय स्तर पर अन्य पिछडा वर्गमहिलाका शिक्षा में सहभागिता के भौगोलिक विश्लेषण की महती आवश्यकता है। मुख्यत: शोध परीयोजना से सम्बन्धित उद्देश निम्न लिखित है-

1) अन्य पिछडा वर्गमहिलाशिक्षा सहभागिता का अध्ययन करना।
2) अन्य पिछडा वर्गमहिला की भौतिक, सामाजिक व आर्थिक विशेषताओं का अध्ययन करना।
3) अन्य पिछडा वर्गमहिला के सन्तुलित विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करना।

4. परिकल्पानाएं (Hypothesis) –

धुले जनपद अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत अन्य पिछडा वर्गमहिला शिक्षा सहभागीता एवं सुविधा के विविध आयोमों के अध्ययन के समय जिन मुख्य परिकल्पनाओं का निरीक्षण किया गया है वे निम्नलिखित है-

1) अन्य पिछडा वर्गमहिला शिक्षा सहभागिता का विशिष्ट रुप एवं औसत उपस्थित है।

2) अन्य पिछडा वर्गमहिला की शिक्षा औसत भौतिक एवं सामाजिक कारको व्दारा प्रभावित होती है।

5. संशोधन पध्दती (Research Methodology)-

धुले जनपद में जनसंख्या अनुपात विविध जाति के अनुसार विविध रुप में पाया जाता है। धुले जनपद के भौगोलिक विशेषताओं के अनुरुप अन्य पिछडा वर्गमहिला जनसंख्या का वितरण, विकास एवं सामाजिक स्तर बना हुआ है। उपर लिखित उद्देश के अनुसार अध्ययन करने हेतु धुले जनपद के प्राथमिक एवं व्दितीय जनसंख्या सामग्री जैसे कि क्षेत्र सर्व्हे, डिस्ट्रीक्ट सामाजिक एवं आर्थिक समालोचन का आधार लिया गया है। इस के साथ-साथ संदर्भ ग्रंथ एवं शोध पत्रिकाओं का आधार लिया गया है।

6. निष्कर्ष (Conclusion)-

देश के प्रगती में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत मे अन्य पिछडा वर्गकी कुल आबादी 27 प्रतिशत है। इतनी बडी आबादी होने के बावजूद यह समुदाय राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक रुप से थोडा पिछडा है। महिलाओ के मुल्यांकन हेतु उनका सामाजिक रुपरेखा का अध्ययन करना आवश्यक है। सामाजिक संरचनाए, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मुल्य प्रणालीयों का प्रभाव पुरुषो एवं महिलाओं के व्यवहार संबंधी प्रत्याशाओ पर पडता है। मानवी विकास हेतु महत्वपुर्ण शर्त यह है की प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की समान सहभागिता हो, इस से केवल महिला का विकास होगा वरन् समाज भी प्रगती की ओर अग्रसर होगा। अन्य पिछडा वर्गमहिलाएं सामाजिक पिछडेपण के कारण ही समाज के मुख्य धारा से पीछे रह गयी है। इसी दृष्टी से यह आवश्यक है की अन्य पिछडा वर्गमहिला के शिक्षा मे सहभागिता इस विषय पर भौगोलिक विश्लेषण एवं अध्ययन हो।

धुले जनपद आबादी का 27.91 प्रतिशत संख्या शहरी एवं 72.09 प्रतिशत संख्या ग्रामिण बस्तीयों में निवास करती है। इसलिए इस शोध निबंध के सर्वेक्षण हेतु अन्य पिछडा वर्गमहिला का कुल 80प्रतिशत नमूना ग्रामिण बस्तियों से लिया गया है। नमूना में बस्तीयों के प्रतिरुप के अनुसार शहरी, ग्रामिण- सडक के किनारी, पहाडों से सटीक एवं मैदानी बस्तियों का समावेश किया गया है।

तालिका क्रमांक – 1 अन्य पिछडा वर्गमहिला नमूना संख्या

भौगोलिक विशेष क्षेत्र	शहरी बस्तियाँ	ग्रामिण बस्तियाँ			कुल नमूना संख्या
		सडक किनारी बस्तियाँ	पहाडों से सटीक बस्तियाँ	मैदानी बस्तियाँ	
अन्य पिछडा वर्गमहिला कुल नमूना संख्या	14	42	24	24	104
प्राथमिक शिक्षा प्राप्त अन्य पिछडा वर्गमहिला संख्या	09	15	04	10	38

उगमस्त्रोत- क्षेत्र कार्य – (जनवरी-फरवरी-2015)

सर्वेक्षण हेतु लिए गए शहरी बस्ती की अन्य पिछडा वर्ग महिला नमूना 23 संख्या के 60.86 प्रतिशत (14) महिला साक्षर है एवं 39.14 प्रतिशत महिला (09) निरक्षर है। इस संख्या से यह स्पष्ट होता है की शहरी बस्तियों मे अन्य पिछडा वर्ग महिलाओं की प्राथमिक शिक्षा मे सहभागिता असमाधान कारक है। सडक के किनारो के सटीक बस्तीयो में कुल 57 अन्य पिछडा वर्ग

महिलाओं का सर्वेक्षण नमूना के तौर पर किया गया। इनमे से 73.68 प्रतिशत महिलाओं (42) ने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की है एवं बाकी की 26.32 प्रतिशत महिला (15) प्राथमिक शिक्षा से वंचित रही ह ै अन्य पिछडा वर्ग महिला का शिक्षा में सहभागिता का औसत बहुत अच्छा दिखाई देता है। पहाडो से सटीक बस्तीयो की अन्य पिछडा वर्गमहिला नमूना की कुल संख्या 28ली गयी थी। नमूना की कुल संख्या के 85.71 प्रतिशत महिलाओंने (24) प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की है। बाकी 14.29 प्रतिशत महिलाएं (04) प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नही कर पाई। मैदानी प्रदेश के बस्तीयो में से कुल 34 नमूना संख्या का चयन किया गया था। नमूना संख्या के 70.58 प्रतिशत महिलाओं (24) ने प्राथमिक शिक्षा का लाभ लिया है। बाकी 29.42 प्रतिशत मैदानी प्रदेश के बस्तीयोंकी अन्य पिछडा वर्गकी महिला (10) प्राथमिक शिक्षा का लाभ नही उठा पाई। धुले पूर्ण जनपद के लिए अन्य पिछडा वर्ग महिला नमूना संख्या 142 के सर्वेक्षण के बाद मिली संख्या का विश्लेषण अनुसार 73 प्रतिशत महिला (104) प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की है, जबकी 27.00 प्रतिशत अन्य पिछडा वर्गमहिला (38) प्राथमिक शिक्षा से वंचित है।

अन्य पिछडा वर्गमहिला शिक्षा सहभागिता अध्ययन से यह स्पष्ट होता है की

1. शहरी बस्तियों मे ग्रामिण बस्तियो के अनुपात मे केवल 60.86 प्रतिशत अन्य पिछडा वर्ग महिलाए प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता ले पा रही है जो की ग्रामिण बस्तियों से कम है।
2. शहरी बस्तिया मानवी विकास के लिए अनुकुल एवं केंद्रबिंदु माने जाते है इसी लिए शहरी बस्तिया क्षेत्र में केवल 60. 86 प्रतिशत महिला प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता लेते दिखाई देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी बस्तियों मे स्कुलों मे अन्य पिछडा वर्गमहिला का दाखिला, स्कुल की उपलब्धता, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिती, शिक्षा का महत्व के संदर्भ मे जागृतता स्तर असमाधान कारक स्थिति मे है।
3. ग्रामिण बस्तियो मे अन्य पिछडा वर्गमहिला की सहभागिता का औसत 75.63 प्रतिशत है, जो की शहरी बस्तियों की अन्य पिछडा वर्गमहिला की सहभागिता औसत से अधिक है।
4. ग्रामिण बस्तियों के पहाडो से सटीक बस्तियों मे अन्य पिछडा वर्ग महिला का प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता का औसत सबसे अधिक 85.71 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट है की यहां के अभिभावक शिक्षा के संदर्भ मे जागृत है।
5. अन्य पिछडा वर्ग महिला का प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता का औसत को भौतिक सुविधा अर्थात आर्थिक (इनकम) स्थिती, स्कुल अंतर, सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक कारको द्वारा बहुत अधिक प्रभावित नही होता है।
6. अन्य पिछडा वर्ग महिलाओं के जनजीवन के सामाजिक उत्थान या विकास की संभावनाएं सुनिश्चित करनी चाहिए।
7. अन्य पिछडा वर्ग महिलाओं के पुर्ण विकास के लिए जरुरी हे की, समाज और पुरुष अपने विचारों एवं अपनी मानसिकता में बदलाव लाएं और महिलाओं का सहयोग करें।
8. ग्रामिण अन्य पिछडा वर्ग महिला बहुलक क्षेत्रों मे शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढानी होगी।
9. पुरुषों की भांति महिलाओं की शिक्षा का महत्व समजना होगा।
10. राष्ट्रीय साक्षरता, शिक्षा का अधिकार अधिनियम शिक्षा कार्यक्रम को ग्रामिण क्षेत्रों मे अधिक बलपूर्वक फैलाना होगा।

महिला शिक्षा द्वारा ही राष्ट्र एवं समाज का विकास परिलक्षित होता है। समाज के विकास मे महिला शिक्षा का की अहम् भूमिका होती है। इसलिए महिलाओं को समाज की रचनात्मक शक्ति कहा जाता है।

अध्ययन के समय जिन मुख्य परिकल्पनाओं का निरीक्षण किया गया है वे निम्नलिखित है-

1) अन्य पिछडा वर्ग महिला शिक्षा सहभागिता (66 प्रतिशत) का खास रुप में एवं औसत उपस्थित है। यह परीकल्पना सत्य है उपरोक्त विश्लेषण के बाद यह परिकल्पना स्विकृत है।
2) अन्य पिछडा वर्ग महिला की शिक्षा औसत भौतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारको व्दारा प्रभावित है यह परीकल्पना सत्य है उपरोक्त विश्लेषण के बाद यह परिकल्पना स्विकृत है।

7) References –

1. R. S. Tripathi, J. P. Vishwakarma (1986). Urban Impact of the Literacy and Occupational structure of Scheduled Caste Population in Bundelkhand region in UP. *The Geographical Observer*, Vol No. XXII, 46-55.

2. Ray. J. (1992, December). The Problem of Girls Education in Dhankenal District- Orissa. *Centre for Education Studies-Indian Institute of Education,* Kothrud-Pune. Pune Maharashtra, India.
3. Satardu Sikdar, Mukharji Anit N. (2012). Enrolment and Dropout Rate in School Education. *Economic and Political weekly, pp.27-31*
4. AIU. (1999). *Education and Women Empowerment*. New Delhi: Association of Indian Universities, Combred Indrajeet Marg New Delhi.
5. Anita. (2009) Education Attainment and Occupation of Women in Hariyana- A Geographical Analysis. Unpublished Ph. D. thesis. Jawarharlal Nehru University, Delhi.
6. Azita Rajabi, Kariman Bostani. (2009). Social Justice and Education Opportunities in Zahedn-Iran. The Deccan Geographer, Vol.48 No.2
7. https://censusindia.gov.in/2011census/population_enumeration.html
8. https://mahades.maharashtra.gov.in/home.do?lang=en
9. https://dhule.gov.in/mr/
10. https://dhule.nic.in/
11. http://yojana.gov.in/Recent_archive_English_2015.asp

'मनोहरश्याम जोशी' कृत 'क्याप' में अभिव्यक्त उत्तर-आधुनिकता

डॉ० विश्वम्भर पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर, उ0प्र0

निर्भय कुमार सिंह

शोध छात्र (हिंदी), सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर, उ0प्र0

शोध सारांश

उत्तर-आधुनिक विमर्शों से युक्त बहुचर्चित उपन्यास 'क्याप' 'मनोहर श्याम जोशी' कृत समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें जोशी जी ने उत्तर-आधुनिकता के विविध पहलुओं को अभिव्यक्त किया है, जो इस शोध पत्र की मूल अवधारणा है। हाशिए कृत समाज दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, प्रेम और रोमांस के अतियथार्थ स्वरूप को उत्तर-आधुनिकता के आइने में मार्क्स एवं गाँधी के विचारों के सन्दर्भ द्वारा विश्लेषित करना भी, क्याप के सन्दर्भ को लेकर, इस शोध पत्र का महत्वपूर्ण विषय है।

बीज शब्द: उत्तर-आधुनिकता, राजनीति, धर्म, नारी-विमर्श, दलित-विमर्श, अस्पृश्यता।

'मनोहरश्याम जोशी' कृत 'क्याप' (2001) एक बहुचर्चित औपन्यासिक कृति है, जिसमें जोशी जी ने उत्तर-आधुनिक विमर्श से सम्बन्धित लक्षणों को उनकी पूरी सम्पूर्णता के साथ चित्रित किया है। प्रेम सम्बन्धों की कोमल व्यंजना किस तरीके से जातिगत भेदों को तोड़ती हुई एक वृहद संरचना को खण्डित करती है। इसका विशद विश्लेषण 'क्याप' में उत्तर आधुनिकतावादी चिन्तनधारा के समन्वित प्रयासों द्वारा प्रतिफलित हुआ है। 'डॉ0 रामचन्द्र तिवारी' के अनुसार ''क्याप में मनोहर श्याम जोशी जी ने अपनी परिचित उत्तर आधुनिक शैली में कूर्मांचल के कस्तूरी कोट की कहानी कही है। इस क्षेत्र की कथा के सूत्र तो चौदहवीं शताब्दी तक जाते हैं, किन्तु मूल कथा देश की आजादी की लड़ाई से आरम्भ होती है।''[1]

'क्याप' उपन्यास अपने विस्तृत फलकों के साथ बहुत सारे हाशिए कृत लोगों के समकालीन विमर्शों को केन्द्रीकृत कर रहा है, जो उत्तर-आधुनिकतावादी चिन्तनधारा को विकास के रास्ते की ओर ले जा रहा है। 'क्याप' उपन्यास में जोशी जी ने राजनीति, धर्म, अर्थ, प्रेम, विसंगति के सामाजिक स्वरूप पर खुलकर प्रहार किया है।

'मनोहर श्याम जोशी' कृत 'क्याप' में अभिव्यक्त उत्तर-आधुनिकता का स्वरूप

'मनोहर श्याम जोशी' कृत 'क्याप' एक उत्तर-आधुनिक विमर्शात्मक कृति है, जिसमें जीवन के प्रत्येक पहलुओं के स्तर पर उत्तर-आधुनिकता की विशेषताएँ अपनी पूरी लाक्षणिकता के साथ विद्यमान हैं। सुविधानुसार 'क्याप' में अभिव्यक्त उत्तर-आधुनिकता का बिन्दुवार विवेचन कुछ इस प्रकार है।

1. 'क्याप' में अभिव्यक्त राजनीतिक क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता।
2. 'क्याप' में अभिव्यक्त धार्मिक क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता।

3. 'क्याप' में अभिव्यक्त दलित विमर्शात्मक उत्तर-आधुनिकता।
4. 'क्याप' में अभिव्यक्त स्त्री विमर्शात्मक उत्तर-आधुनिकता।
5. 'क्याप' में अभिव्यक्त प्रेम और रोमांस के क्षेत्र की अतियथार्थतावादी उत्तर-आधुनिकता।
6. 'क्याप' में अभिव्यक्त आदिवासी क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता।

'क्याप' में अभिव्यक्त राजनीतिक क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता

'मनोहर श्याम जोशी' कृत 'क्याप' में राजनीतिक उत्तर-आधुनिकता व्यापक सन्दर्भ में व्याप्त है ''भवानीदत्तज्यू ने इस रणनीति से मेरे बौज्यू का, जो डूमों के मुखिया थे, मन जीत लिया। अल्पसंख्यक ब्राह्मणों और बहुसंख्यक हरिजनों का एक संयुक्त मोर्चा बन गया, भले ही नया नाम मिल जाने पर भी डूम ब्राह्मणों के लिए डूम ही रहे।''[2]

उपर्युक्त कथनानुसार क्षेत्रीय वोट बैंकों को मजबूत करने का सराहनीय प्रयास सम्भव बनाया जा रहा है, जो 'क्याप' में अभिव्यक्त राजनीतिक क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता है। 'क्याप' में राजनीति का जो भद्दा स्तर विद्यमान है, उसके पीछे महात्मा गाँधी और महात्मा मार्क्स की विचारधाराओं का नकारात्मक पक्ष सक्रिय है। 'क्याप' उपन्यास में 'मनोहर श्याम जोशी' जी ने उत्तर-आधुनिक अवधारणा को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखा है ''मार्क्स मुनि के शास्त्र की वही व्याख्या ठीक होती है, जिसे कालखण्ड विशेष की परिस्थितियों में क्रान्तिकारियों के नेता ने क्रान्ति का और किसान मजदूरों का हित आगे बढ़ाने की दृष्टि से उचित समझा हो। नेता में आस्था और विश्वास रखने वाले ही क्रान्ति के सच्चे सिपाही हो सकते हैं।''[3]

'क्याप' उपन्यास में 'मनोहर श्याम जोशी' जी ने कांग्रेस पार्टी, जो स्वतंत्रता के बाद तुरन्त सत्ता पर काबिज हुई, जिसने भारतीय समाज को रामराज्य की व्यवस्था का काल्पनिक लोक प्रदान किया था, ने किस तरीके से भारतीय जनमानस का मजाक बनाया इसका वर्णन इस उपन्यास की अंतरवस्तु है। स्वतन्त्रता के पश्चात् जिस हाशिए कृत समाज को राजनीतिक स्तर प्रदान करने की बात कही गई थी, वह महज मखौल बन गई और राजनीति के सिरे से निम्नवर्ग और मध्यवर्ग खारिज होता चला गया, यह 'क्याप' में अभिव्यक्त राजनीतिक क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता है।

'क्याप' में अभिव्यक्त धार्मिक क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता

मार्क्सवादी चिन्तनधारा ने धर्म के स्वरूप पर कुठाराघात किया- ''मार्क्स को गरज कर यह कहते सुनता कि धर्म तो गरीबों के लिए बनाई गई अफीम है। जैसे भूख से बिलखते बच्चे को चुप कराने के लिए अफीम चटा देते हैं, न वैसे ही अमीरों के जुल्म से बिलखते गरीबों को धर्म चटा देते हैं। मैं गरीब मार्क्स को जंमीदार कन्या के प्यार में पड़ते हुए और उसे पत्नी बनाकर असम्भव को सम्भव करते देखता।''[4]

मार्क्सवादी समानता के सिद्धान्त की जो व्यापक पारिभाषिकी 'क्याप' में वर्णित है। ऐसा लगता है कि 'क्याप' के माध्यम से मार्क्सवाद की समस्त आधारभूमि का अवलोकन प्रस्तुत किया जा रहा है ''अभी तो तू मार्क्स की दो बातें ही गाँठ बांध ले पहली यह कि हम जैसे गरीबों के पास खोने के लिए पाँव में पड़ी बेड़ियाँ ही हैं, और पाने के लिए सारी दुनिया। दूसरी बात यह कि जो जितना दे सके उससे उतना लिया जाय और जिसकी जितनी जरूरत हो उसको उतना दिया जाय। मतलब यह हुआ कि दुनिया हम गरीबों को मिल जाएगी, है न कका? उन्होंने मेरे गाल थपथपा दिए- हाँ, कोई गरीब अमीर नहीं रह जाएगा, क्रान्ति हो जाएगी। पाँव की बेंड़ियाँ जो आप बता रहे थे, मुझे तो कहीं नहीं दिखती। दिखेंगी तब जब आँखें खुलेंगी और आँखे तब खुलेंगी जब मार्क्स को समझ सकेगा।''[5] 'क्याप' में धर्म को अफीम की संज्ञा देकर धर्म की जटिल संरचना को हिलाने का कार्य किया गया है, जो 'क्याप' में अभिव्यक्त धार्मिक क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता को अभिव्यक्त करती है।

'क्याप' में अभिव्यक्त दलित विमर्शात्मक उत्तर-आधुनिकता

'क्याप' उपन्यास में हाशिए कृत समाज की भी बात वृहद स्तर पर की गई है, जो उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा के अन्तर्गत आता है। दलित विमर्श के स्वरूप पर भी 'मनोहरश्याम जोशी जी' ने पूरी बारीकी के साथ नजर डाली है- ''इस मौके पर दूर से ही पर उनके दर्शन पाकर मेरे बिरादर धन्य हो रहे थे, क्योंकि कस्तूरी कोट में कोई बामण पहली बार किसी डूम की मौत में जाकर अपशकुन मोल ले रहा था। हमारे यहाँ रिवाज यह था कि ऐसे मौके पर बेहद ढीठ डूम तो मौत की खबर सवर्ण को दे देने के लिए उसके घर से बाहर जाकर कातर स्वर में कहता- मेरा फलाँ-फलाँ खत्म हो गया महाराज! घर में कफन-कातर के लिए एक धेला भी नहीं है कहा। इस तरह की कातर गुहार को सुनना भी अपशकुन माना जाता था। ऐसे किस्से प्रचलित थे कि अमूक सवर्ण

के दो बच्चों ने सुबह-सुबह ऐसी ही कातर पुकार सुनी किसी डूम की तो जाने क्या हुआ होगा, उसी समय उन्हें बुखार चढ़ गया और एक तो तीन ही दिन बाद खत्म हो गया। दूसरा दस दिन बाद। इसीलिए ऐसी खबर लाने वाले को आता देखकर पहले ही चन्द सिक्के निकालकर रख छोड़ते थे कि दूर से ही फेंक दें।''[6]

'क्याप' एक उत्तर-आधुनिक चिन्तन से समन्वित व्यापक उपन्यास है, जिसमें प्रत्येक स्तर पर दलित विमर्श विद्यमान है ''वह निगोड़ी जवानी मैंने तब बिन मांगे पाली, जब मैं ऊर्बादत्तज्यूं के घर के पिछवाड़े में भवानीदत्तज्यूं से दान में मिली पीतल की थाली कटोरी लिए खड़ा था, कि घर का नौकर बासी रोटी सब्जी दूर से उसमें गिरा दे।''[7]

हाशिए कृत विमर्शों में सर्वप्रमुख दलित विमर्श 'क्याप' उपन्यास की अन्तर्वस्तु में समाहित है, जिस समाज में छुआछूत, अस्पृश्यता की जड़ें परम्परावादी गांठों के सहारे जमीन में धंसी हुई हों वहाँ पर शिक्षा ही सभी प्रकार की विसंगतियों को दूर कर सकती है। 'क्याप' में भी कथावाचक विश्वविद्यालयी शिक्षा का हवाला कुछ इस प्रकार देता है ''मेरा जैसा डूम भी विश्वविद्यालय में पढ़ने जा रहा है।''[8]

'क्याप' में एक जगह अस्पृश्यता की तो हद ही हो गयी है ''अरे मैं तो उस बात तक का नतीजा भुगतता रहा था जिसके लिए मैं किसी तरह कसूरवार नहीं ठहराया जा सकता था। आखिर मैंने तो किसी डिम्ब और शुक्राणु को मुझे डूम पैदा करने के लिए नहीं उकसाया था, कि मैं जहाँ से भी गुजरूँ वहाँ ऐसी अपवित्रता वास करने लगे, जिसे केवल गोमूत्र की बास ही दूर कर सकती हो। तो नतीजे भुगतने का मैं आदी था लेकिन इस बात के लिए मैं मानसिक रूप से तैयार न था कि ऐन स्वर्गभोग के क्षण में मुझे धकियाकर नर्क भोग के लिए भेज दिया जायेगा।''[9] दलितों की सबसे बड़ी पीड़ा अस्पृश्यता की ही होती है, जो इस उपन्यास का उच्चीकृत स्वरूप बन गया है। 'क्याप' उपन्यास में दलितों की समस्याओं को कथावाचक की शिक्षा प्रणाली के अवरोधों के माध्यम से देखा जा सकता है।

'क्याप' में अभिव्यक्त स्त्री विमर्शात्मक उत्तर-आधुनिकता

'क्याप' में महिलाओं को भी समानता का दर्जा देने की दलील पेश की गई है। 'मनोहर श्याम जोशी' ने 'क्याप' नामक उत्तर-आधुनिक उपन्यास में स्त्रियों की शिक्षा पद्धति को लेकर कुछ इस प्रकार विचार व्यक्त किए हैं ''सवर्णों के घरों में डूम का सा दर्जा पाने वाली स्त्रियों की प्रतिनिधि उत्तरा को भी उच्च शिक्षा दिलाई जा रही है। यों जब ऊर्बादत्तज्यूं ने उत्तरा को विश्वविद्यालय के पास आधुनिक किस्म के कालेज में दाखिला न दिलाकर उसे कालेज में भिजवाया, जिसकी छात्राएँ एक कटघरा नुमा गाड़ी में बैठाकर लाई ले जाई जाती थीं और उस कटघरे की सलाखों पर भी एक मोटा पर्दा पड़ा रहा करता था, तब मैं दोहरी हताशा का शिकार हुआ खैर उत्तरा का दाखिला पर्दानशीं कालेज में करवाने के लिए मैने उसके स्वाधीनता सेनानी पिता को तब उतना दोषी नहीं ठहराया जितना की समाज के पराधीन मानस को।''[10]

पुरूष प्रधान सत्ता ही नारी संकट का मूल कारण नहीं है, कभी-कभी महिलाओं का दृष्टिकोण भी महिलाओं को लेकर अत्यन्त संकुचित हो जाता है। 'क्याप' नामक उपन्यास में ऊर्बादत्तज्यूं अपनी बेटी की शिक्षा-दीक्षा को लेकर बहुत ही सचेत है लेकिन ''बुबू ने इस बात का घोर विरोध किया कि डूम को उनकी भद्दे यानी भतीजी का ट्यूटर नियुक्त किया जा रहा है। वह तो उसे आठवें दर्जे से आगे पढ़ाने के पक्ष में ही नहीं थी, लेकिन ऊर्बादत्तज्यूं ने उन्हें डांट दिया और कहा कि जब यह उत्तरा अपने पाँच भाई बहनों में सबसे छोटी मगर सबसे होशियार है, तो मैं इसे क्यों न पढाऊँ?''[11] उपर्युक्त कथनों के माध्यम से स्त्रियों की लचर शिक्षा व्यवस्था के लिए महिलाएँ भी उसी स्तर पर जिम्मेदार हैं, जिस स्तर पर पुरूष। यह भी एक उत्तर-आधुनिक चित्र ही है।

'क्याप' में अभिव्यक्त प्रेम और रोमांस के क्षेत्र की अतियथार्थतावादी उत्तर-आधुनिकता

'क्याप' एक बेहतरीन अंदाज में लिखी गई प्रेमकथा भी है- ''अनजाने का वैसे ही अपना एक खास आकर्षण होता है, और फिर ये स्त्रियाँ तो स्वयं भी बहुत आकर्षक थीं। हैरीसन को इन औरतों में भी मुख्य नर्तकी हल्ली सबसे अधिक आकर्षक लगी। हैरीसन सुन्दरी हल्ली को अपलक देखता रहा और बराबर यही सोचता कि काश मैं इसे बढिघ्या विलायती साबुन से नहला सकूँ, इसका साज शृंगार करवा सकूँ और फिर इसे पेरिश से मंगवाई हुई कोई नटखट पोशाक पहनाकर अपने साथ लिटा सकूँ।''[12]

'हैरीसन' तथा 'हल्ली' विविध जाति और धर्म के अुनयायी हैं, लेकिन ब्राह्मणवादी पंडित ने किस तरीके की व्यवस्था की है, जिससे ये दोनों एक हो गये हैं' ''हैरीसन हम शूद्रों का दामाद बन सका तो इन तथाकथित ब्राह्मणों के पूर्वजों की कृपा से ही लेकिन हैरीसन से मान-सम्मान, तगड़ी, दान-दक्षिणा और विलायती विद्या पाने के बावजूद उन्हें यह खटका था कि फिरंगी साहब के ससुर बनकर इन ससुरे शूद्रों का सिर चढ़ गया है।''[13]

कथावाचक और उत्तरा का प्रेम सम्बन्ध पढ़ने और पढ़ाने के बीच में इस तरह परवान चढ़ा कि ''उत्तरा के छोटे-छोटे , भावुक शब्दावली में लिखे और मेरे बारे में तरह-तरह की जिज्ञासाओं से भरे पत्र आने लगे। जवाब में मैं लम्बे-लम्बे पत्र भेजने लगा, जिनमें अन्तरंगता से अधिक बौद्धिकता का प्रदर्शन हुआ करता था। मानों मैं उसकी ब्राह्मण होने की सामाजिक श्रेष्ठता को अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता से ध्वस्त कर देना चाहता होऊँ। मैं व्यक्तिगत मुद्दे उठाता भी था तो महज इसलिए कि यह सुनने का सुख पा सकूँ कि उसे मुझमें कितनी सारी चीजें अच्छी लगती हैं।''[14] समग्रत: प्रेम और रोमांस के क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता में 'जीन बौद्रिआ' कृत भ्लचमत तमंसपजल विद्यमान है।

'क्याप' में अभिव्यक्त आदिवासी क्षेत्र की उत्तर-आधुनिकता

'क्याप' उपन्यास में आदिवासी जीवन की झलक भी पूरी सजगता से पाई जाती है ''अगर कहानी के शीर्षक से मुझे खीझ हुई तो उसकी शैली से भी मैं तिलमिला उठा। अरे आप मुझे दारू पिलाकर जो कुछ सुन ले गये हैं, उसे सीधे-सीधे ढंग से और साफ-साफ शब्दों में लिखिए न। मगर नहीं। कुर्मांचली तो उत्तर-आधुनिक हैं। तो उसके यहाँ होता क्या है कि कथा के दो मुख्य पात्र वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक मेधातिथि जोशी और क्षेत्रीय वन, खनन तथा भूमाफिया के सरगना हरध्यानु बाटलागी ढिणमिणाण भैरव मन्दिर के प्रांगण में आमने-सामने चुपचाप बैठे दारू की घूँट भरते रहते हैं और मन ही मन एक-दूसरे से बाते करते रहते हैं।''[15]

'क्याप' में अभिव्यक्त उत्तर-आधुनिकतावादी विचारों का ढेर सा लग गया है। भले ही उसका परिप्रेक्ष्य राजनीतिक ही क्यों न हो? सच तो यह है कि आज किसी भी राजनीतिक दल को अपने इतिहास से कोई दिलचस्पी नहीं रह गई है। इतिहास का अन्त भी उत्तर-आधुनिकतावादी चिन्तन धारा का ही बिन्दु है। अत: 'इतिहास के अन्त' की घोषणा भी उत्तर-आधुनिक विचार है, जिसको वैश्विक धरातल पर 'मनोहर श्याम जोशी' जी ने अभिव्यक्त किया है।

समग्रत: 'क्याप' में 'मनोहर श्याम जोशी' जी ने सर्वत्र उत्तर-आधुनिकता के तत्वों को रेखांकित करते हुए यह सिद्ध कर दिया है, कि 'क्याप' एक उत्तर-आधुनिक औपन्यासिक कृति है। सर्वप्रथम कुर्मांचल के पहाड़ी क्षेत्र के जंगली जीवन का वर्णन, हाशिए कृत लोगों में दलितों की शिक्षा पद्धति, महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था, कांग्रेस, मार्क्स और गाँधीवादी दर्शन की भूमिका, अस्पृश्यता जाति-पांति आदि को व्यापक परिदृश्य में देखा गया है, तथा इसी क्रम में हैरीसन तथा हल्ली और कथावाचक तथा उत्तरा के प्रेम सम्बन्ध की बारीकियों का पूरी संजीदगी के साथ विश्लेषण किया गया है। पुलिसिया भ्रष्टाचार भी अपनी समग्रता के साथ स्पष्ट हुआ है। अत: 'क्याप- समग्र रूप से एक उत्तर-आधुनिक औपन्यासिक रचना है, जिसमें 'मनोहर श्याम जोशी' की उत्तर-आधुनिक दृष्टि का परिचय मिलता है।

सन्दर्भ:

1. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, 'हिन्दी उपन्यास', विश्वविद्यालय, प्रकाशन वाराणसी, संस्करण (2010), पृष्ठ सं0 - 151-152
2. मनोहर श्याम जोशी, 'क्याप', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण (2018), पृष्ठ सं0 - 35
3. वही, पृष्ठ सं0 - 41
4. वही, पृष्ठ सं0 - 42
5. वही, पृष्ठ सं0 - 43
6. वही, पृष्ठ सं0 - 44-45
7. वही, पृष्ठ सं0 - 57
8. वही, पृष्ठ सं0 - 58
9. वही, पृष्ठ सं0 - 73
10. वही, पृष्ठ सं0 - 19
11. वही, पृष्ठ सं0 - 47
12. वही, पृष्ठ सं0 - 58-59
13. वही, पृष्ठ सं0 - 52
14. वही, पृष्ठ सं0 - 61
15. वही, पृष्ठ सं0 - 10

बड़वानी जिले की कपास विपणन व्यवस्था का अध्ययन

डॉ० विजय ग्रेवाल

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय राणापुर जिला झाबुआ

प्रस्तावना:- पुराने क्षेत्रीय आत्मनिर्भरता के दिनो में कपास का विपणन बहुत सरल था। गाँव में ही चरखे की सहायता से कपास मे से बिनौला अलग कर लिया जाता था। जिन किया हुआ कपास दुर-दुर तक, बरार से बंगाल तक भेजा जाता था। विदेषी माँग बढ़ने पर बंगाल व गुजरात का कपास बंदरगाहो को जाने लगा तथा बम्बई व खम्भात की खाड़ी इग्लैण्ड को निर्यात करने वाले प्रमुख केन्द्र बन गये, विदेषी माँग उत्पन्न होने से कुछ समस्याएँ उत्पन्न हुई जैसे थोक विपणन का विकास, कपास की जिनिग व प्रेसिंग मे सुधार, और यातायात मे वृद्धि कुछ ही दिनों मे जिनिग फैक्ट्रिया और महत्वपूर्ण कपास विपणन रेल द्धारा जोड दिये गये और मुम्बई मे इनका अंतिम बाजार उत्पन्न हो गया सन् 1854 मे कपास के व्यापार मे लगी बम्बई की युरोपियन फर्मो ने मिलकर बम्बई कपास विपणन की स्थापना की 1892 से 1917 के बीच विभिन्न स्वार्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक व्यापारीक संघ स्थापित किये गये इसी बीच भारतीय कपड़ा उघोग ने भी पर्याप्त प्रगति की और इन सबका परिणाम यह हुआ की भारत का अधिकांष कपास स्थानीय कपड़ा मिलो व हाथ करंघा के उपयोग मे आ जाता। आधुनिक विपणन की एक महत्वपूर्ण विषेषता यह है कि कभी-कभी वस्तुओ के उत्पादन से पहले ही उनका विपणन कर दिया जाता है। और कभी विकृय से पहले लम्बी अवधि तक भण्डारग्रह मे रखना पढ़ता है, मिले आज जो कपड़ा बेचती हे उन्हे बहुत पहले तैयार कर दिया गया था तथा आज जो वस्तुएं उत्पादित की जा रही है उन्हे कुछ माह बाद विकृय के लिय उपलब्ध कराया जा सकेगा मिले का काम बंद ना हो और ये लगातार चलती रहे इसके लिए मिले कपास की अग्रिम खरीदी करती है और बहुत से व्यापारी मिलो को कपास बेचने के सौदे तब कर देते है जब वास्तव मे कपास को चुनने का काम षुरू नही होता है उत्पादन प्रकिृया मे समग्र तत्व के कारण यह आवष्यक हो जाता है कि वर्तमान या हाजिर सौदो और भविष्य के अलावा फायदे के सौदो मे अन्तर किया जाये इन सौदो मे प्रमुख अन्तर करने और माल की सुपुदुगी के बीच लगता है। तत्काल या केवल कुछ निष्चित दिनो के भीतर देनी पढ़ती है जब सुपुदुगी लम्बी अवधि के बाद दी जाती है तो समझो की अग्रिम या भावी मे सौदे कहा जाता है।

भारत मे किसान कपास को कपास के रूप मे बेच देता है, बहुत कम किसान कपास को रूई के रूप मे बेचते है। किसान अपने कपास को गाँव मे ही या निकटवर्ती मण्डी मे बेचता है गाँव के प्राथमिक बाजार मे संग्रहण का काम गाँव के छोटे व्यापारी करते है, कुछ क्षेत्रो मे जिनिंग फैक्ट्रियो के ऐजन्ट भी गाँव मे जाते है, और कपास का कृय करते है भारत के अनेक ऐसे राज्य है जिनमे कपास का गाँवो मे ही बेचने की प्रथा का चलन है परन्तु अब धीरे-धीरे उसमे सुधार आया है। और किसान कपास का विपणन मंडिघ्यो में करने लगे है परन्तु पहले 85 प्रतिषत कपास गाँव मे ही बेच दिया जाता था।

बड़वानी जिले मे कपास का विपणन:- जिले मे कपास का विपणन नियमित रूप से किया जाता है, जिले मे विपणन के लिए कृषि उपज मण्डी है जिसमें कपास का विपणन बड़ी मात्रा मे किया जाता है जिले मे कुल 6 उपज मडिघ्या है जो निम्न है।

1. बड़वानी
2. सेधवा
3. राजपुर

4. निवाली
5. पानसेमल
6. अजड

इन मंडिघ्यो मे से सबसे ज्यादा कपास की आवाक सेधवा व पानसेमल और अजड मंड़ी मे होती है। कृषि उपज मंडी मे सितंबर से मार्च माह तक कपास का विपणन बड़ी मात्रा मे किया जाता है। जिले मे कपास के विपणन मे कृषि मंडी को 3.35 करोड रू. की आय हुई है, जिले में पहली कपास का विपणन कम मात्रा मे होता था। पर अब अधिक होने लगा है। जिससे कहा जा सकता है कि कपास का उत्पादन व विपणन की मात्रा मे वृद्धि हुई है। जिले में कपास का विपणन व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित हो और कृषक को उसकी उपज का पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त हो तो वे कपास की पैदावार व रकबा बढाने का प्रयास करेगे इसी प्रकार कपास को मिले तक पहुचाने के बीच के खर्च कम किए जाए तो रूई मिलो को सस्ते दामो पर मिल सकेगी इससे उपभोक्ता को तैयार कपड़ा भी सस्ते दामो पर उपलब्ध हो सकेगा। अत: कृषक व उपभोक्ता के बीच की कडिघ्यो मे जो अनावष्यक है। उन्हे घटाकर व जो खामिया है उन्हे दुर करके कपास की विपणन व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। इस वर्ष कपास का विपणन मे कुछ मात्रा मे वृद्धि मानी जा सकती है।

बड़वानी जिले मे कपास विपणन मे आये परिवर्तन:- जिले मे कपास का विपणन पहले गाँवो मे ही कर दिया जाता है, परन्तु अब कपास का विपणन के लिए कपास को षहर या किसी निकटवर्ती मडिघ्यो मे कपास का विपणन किया जाता है। वर्तमान मे हाजिर सौदो और भविष्य के अलावा फायदे के सौदो मे अन्तर किया जाये इन सौदो मे प्रमुख अंतर उसे अवधि का होता है जो समझोते पर हस्ताक्षर करने और माल की सुपुदुगी के बीच लगता है, तत्काल या हाजिर सौदो मे माल की सुपुर्दुगी तत्काल या केवल कुछ निष्चित दोनो के भीतर देनी पढ़ती है जब सुपुर्दुगी लम्बी अवधि के बाद दी जाती है तो समझौते को अग्रिम या भावी सौदे कहा जाता है।

जिले मे कपास की आवक की रफ्तार अब कम हो गई प्रतिदिन10 से15 वाहन की कृषि उपज मंड़ी पहुच रहे है। स्थानीय क्षेत्रो मे कपास आवक लगभग बंद हो गई है। महाराष्ट्र क्षेत्र से ही कपास के वाहन पहुच रहे है इस वर्ष कपास का भाव पिछले वर्ष से थोडा बेहतर है जिससे कपास विपणन मे कुछ मात्रा मे वृद्धि मानी जा सकती है, इसके चलते इस वर्ष पिछले वर्ष की तुलना मे कपास की आवक थोड़ी पिछड गई वर्ष 2015 में फरवरी माह तक लगभग 9 लाख 34 हजार 340 क्विंटल कपास की आवक हुई है। जिससे की विपणन मे कमी हुई है जो पिछले वर्ष की तुलना मे 2 लाख 70 हजार 340 क्विंटल कम है लेकिन भाव बेहतर रहने से मंडी की आय मे बढोत्तरी हुई है इस वर्ष मंडी को करीब 3 करोड 35 लाख रू. की आय हुई है, कपास का भाव 41 सौ 6 हजार रू. प्रति क्विंटल तक रहा है। कपास के विपणन मे कपास की आवक के कारण ही कपास मे वुद्धि हुई है।

बड़वानी जिले मे कपास के विपणन मे आने वाली समस्याए:-

1. जिले मे कपास की यह आवक लगभग डेढ़-दो माह तक जारी रहती है इससे जहाँ कीमते गिर जाती है, वही यातायात की समस्या और भण्डारण की समस्याओ भी बडी हो जाती है।
2. जिले मे 80 प्रतिषत किसानो के पास बैलगाडिया एवं कुछ के पास ट्रेक्टर ट्रालिया है गाँव के बडे कृषक या गैर कृषक की ट्रैक्टर ट्राली मे कई छोटे कृषक मिलकर अपना कपास भर लाते एवं इसके बदले किराया चुकाते है यह भी विपणन मे आने वाली एक समस्या है।
3. नोटबंदी के दोरान कपास की आवक जहाँ काफी कम हो गई वही किसानो ने भी कैष की किल्लत के चलते कपास की बिक्री से थोडी दुरी बनाए रखी हालांकी नोटबंदी का असर समाप्त होते ही कपास की आवक सामान्य हो गई थी। जो कि विपणन मे आने वाली एक समस्या थी।
4. कपास का विपणन के उदेष्य से सहकारी समिति बनाकर समिति को प्राप्त पुरी कपास का श्रेणीयन करने के बाद से सहकारी समिति बनाई गई थी, पर उचित प्रबंधन न होने के कारण से समितियॉ ढीक प्रकार से संचालित न हो सकी।
5. कपास विपणन की यह भी एक महत्वपूर्ण समस्या है, जिसमें परिवाहन सुविधा का अभाव है, जो कि एक बुनियादी आवष्यकता है। जिले में परिवाहन की समस्या कपास विपणन के लिए बाधक है।
6. जिले मे कपास विपणन करते समय मूल्य में भी अभाव रहता है, क्योकि 85 प्रतिषत किसान गाँवो से ही कपास का विपणन करने आता है।

7. जिले मे आधारभूत संरचना की कमी तथा मंडियो मे भ्रष्टाचार का बोलबाला होता है। जिससे किसान को कपास के विपणन में उनकी उपज की उचित कीमत नही मिलती है।
8. कपास विपणन की एक समस्या यह भी है कि इसमें वायदा बाजार से अनियमितता होती है। क्योकि कपास विपणन मे वायदा कारोबार का आंषिक अंष है, इसलिए जरूरी है कि किसानो के इसके बारे मे समुचित जानकारी दी जाए।

• **निष्कर्ष:**- बड़वानी जिले में कपास का विपणन बड़ी मात्रा में किया जाता है। क्योकि पहले की विपणन से प्रक्रिया स`अब की विपणन प्रक्रिया मे बड़ी मात्रा मे परिवर्तन हुआ है। क्योकि पहले जिले मे कपास का उत्पादन कम होता था पर अब पहले से बड़वानी जिले मे कपास का उत्पादन अधिक होने लगा है, इससे विपणन प्रक्रिया मे भी बड़ी मात्रा में वृद्धि हुई है। और पहले विपणन प्रक्रिया मे अनेक कठिनाईया होती थी परन्तु अब विपणन व्यवस्था मे पहले से विपणन प्रक्रिया मे सुधार आया है। क्योकि पहले कपास का विपणन गॉवो मे ही कर दिया जाता था। परन्तु अब कपास का विपणन मण्डियो मे किया जाता है, वे भी नियमित रूप से किया जाता है। जिससे की कपास की उत्पादनषीलता का पता लगाया जा सकता है। जिससे की जिले मे कपास की विपणन मे हुई वृद्धि का पता लगाया जा सकता है।

जिससे कपास के विपणन मे कपास की आवक मे वृद्धि होती है।

संदर्भ सूची

- वेब दुनिया
- भारतीय कपास निगम लिमिडेट
- कृषक जगत
- पत्रिका
- वाटर इंडिया

भारतीय समाज में महिला स्वास्थ्य संरक्षणः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

अभिषेक कुमार सरोज

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, (उ0प्र0)

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानव सभ्यता की प्रगति एवं विकास स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। वर्तमान शताब्दी में विश्वव्यापी स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मिलेनियम डवलपमेन्ट गोल के अन्तर्गत स्वास्थ्य को सम्मिलित किया गया है जिससे स्वास्थ्य को विकास के सूचनांक के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई है। स्वास्थ्य डाक्टर, सामाजिक सेवा एवं अस्पताल का ही मुख्य मुद्दा नहीं है, यह एक सामाजिक न्याय का मुद्दा है।

एक राष्ट्र के स्वास्थ्य का स्तर न केवल सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण घटक है, वरन् आर्थिक विकास एवं आन्तरिक स्थिरता, निरन्तरता एवं परिवर्तन के लिए भी आवश्यक है। जैसा कि कहावत भी है - स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग का निवास होता है। स्वस्थ्य नागरिकों द्वारा ही स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। अतः किसी भी राष्ट् का विकास एवं प्रगति उसके नागरिकों के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। आयुर्वेद विशेषज्ञ चरक ने कहा था कि जीवन के चारों उद्देश्यों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य बहुत आवश्यक है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ-मात्र रोगों का अभाव नहीं है, वरन् स्वस्थ शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक तंदुरूस्ती की सकारात्मक अवस्था है। इसी प्रकार स्वास्थ्य के अन्तर्गत न केवल शारीरिक व मानसिक, अपितु सामाजिक आयाम को भी व्यापक अर्थो में सम्मिलित किया गया है। वस्तुतः स्वास्थ्य एक समग्र अवधारणा है जिसके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, भावनात्मक, वोकेशलन के अतिरिक्त दार्शनिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, शैक्षणिक, पोषणात्मक, रोगथामात्मक आदि आयाम है।

स्वास्थ्य का सम्बन्ध मात्र दवाइयों से नहीं होता है, वरन् इसके अनेक निर्धारित तत्व हैं, पैतृक आनुवांशिकता, पर्यावरण, जीवन पद्वति, सामाजिक - आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य सेवा, में अन्य माध्यमों द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था, खाद्य एवं कृषि, शिक्षा, उद्योग, सामाजिक कल्याण, ग्रामीण विकास तथा जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने वाली सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक नीतियाँ जैसे रोजगार, आवास, वेतन वृद्धि, स्वास्थ्य कार्यक्रम, परिवार कल्याण से सम्बन्धित आदि। इसलिए स्वास्थ्य संरक्षण एवं परिमार्जन का उत्तरदायित्व भी बहुआयामी/बहुस्तरीय होता है। यह व्यक्तिगत, सामुदायिक, राज्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक व्याप्त होता है।

स्वास्थ्य का महत्व मात्र रोगों तथा अक्षमता के उपचार तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसमें स्वस्थ्य देख रेख के अवरोधक, विकासात्मक, उपचारात्मक पुनः स्थापक पहलू भी आते हैं। यह एक मौलिक अधिकार है। नागरिकों को समुचित स्वास्थ एवं चिकित्सा उपलब्ध कराना राज्य का सर्वोपरि कर्तव्य है, जिसके बिना नागरिकों को संविधान द्वारा प्रदत्त जीवन और स्वतन्त्रता के अधिकार का सुख और लाभ अर्थहीन है।

स्वास्थ्य संरक्षण इसका अर्थ चिकित्सीय सेवा से अधिक है। इसमें केवल परम्परागत जन स्वास्थ्य सेवाओं को ही शामिल नहीं किया जाता, वरन् समुदाय तथा व्यक्ति को प्रदान की जाने वाली चिकित्सीय नर्सिग तथा दन्त चिकित्सा सेवाओं को भी सम्मिलित किया जाता है जिसका उद्देश्य स्वास्थ सम्वर्धन, स्वास्थ्य व्यवस्थापन और स्वास्थ्य पुनः स्थापन है। साथ ही स्वास्थ्य शिक्षा तथा अनुसंधान से भी सम्बन्धित है। स्वास्थ्य संरक्षण जो जनाधिकार के रूप में मान्यता मिली है। सरकार का महत्वपूर्ण दायित्व है कि

वह प्रजाति, धर्म, जाति, ग्रामीण-नगरीय तथा धनी-निर्धन में भेद-भाव के बिना प्रत्येक नागरिक को स्वास्थ्य संरक्षण प्रदान करे। महिला स्वास्थ्य संरक्षण-जन स्वास्थ्य संरक्षण क्रियायें सभी वर्गो, महिला व पुरूषों के लिए धर्म, जाति, लिंग, आर्थिक प्रस्थिति तथा अन्य भिन्नताओं पर विचार किये बिना समान रूप से सभी के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

देश के स्वास्थ्य नागरिक उसकी पूँजी होते हैं। एक पुरानी कहावत है कि अच्छा स्वास्थ्य ही अच्छे सेहत की कुंजी होती है। यह कहावत आज के जीवन चक्र में पूरी तरह से लागू होती है। स्वस्थ मनुष्य स्वस्थ समाज का निर्माण करता है और समाज ही देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास की सीढ़ी होता है इसलिए देश के हर नागरिक का स्वस्थ होना देश की मजबूती के लिए जरूरी है। एक स्वस्थ शरीर की कुंजी क्या है? संतुलित भोजन जो शरीर में ईधन के तौर पर काम आता है। हमारी शरीर में जब भी भोजन के सन्तुलन में कमी आती है, हमारा शरीर कुपोषण का शिकार हो जाता है।

समाज मनुष्य की कई मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करता है, समाज जनसंख्या का अनुरक्षण/भरणपोषण करता है। समाज को आगे गतिमान करने का श्रेय एक ऐसे समूह को जाता है। हमारे समाज का मुख्य आधार महिलाएँ है, यह सम्पूर्ण विश्व, समाज महिलाओं पर निर्भर है, परन्तु महिलाओं पर समाज का सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित नहीं है। महिलाएँ ही समाज का आधार स्तम्भ है परन्तु विडम्बना यह है कि महिलाएँ कुपोषण से ग्रसित है। यह समाज का दीन-हीन समूह है जिसको हेय की दृष्टि से देखा जाता है।

भारतीय समाज में 15 से लेकर 45 वर्ष तक की महिलाएँ विशेष रूप से कुपोषण से ग्रसित है। कुपोषण से ग्रसित महिलाएँ केवल ग्रामीण समाज से ही नहीं अपितु उच्चतर समाज में भी निहित है। मुम्बई, कोलकाता तथा चेन्नई जैसे महानगरों में किये गये अध्ययन से पता चलता है कि लड़को, पुरूषों की तुलना में कहीं अधिक संख्या में लडकियाँ, स्त्रियाँ श्रेणी-2, श्रेणी-3 के कुपोषण से ग्रसित है। यह गरीबी अपर्याप्त पोषण तथा उपेक्षा का मिला-जुला असर है।

स्वास्थ्य उसे कहते हैं जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ हो। (डब्लूएचओ0 के अनुसार)। यह चारों प्रकार का स्वास्थ्य जो सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करते हैं का सीधा सम्बन्ध पोषण से होता है क्योंकि पूर्ण पोषण न मिलने से शरीर की सभी तन्त्र प्रणाली पर प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप शरीर में विकृतियाँ एवं रोग जन्म लेते हैं। शरीर रोग से ग्रस्त होने पर मनुष्य के सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य के यही सारे नियम महिलाओं पर भी लागू होते हैं। अत: महिला स्वास्थ्य को, महिला सामाजिक स्थिति भी अधिक प्रभावित करती है। यदि महिलाओं को उचित एवं पूर्ण पोषण प्राप्त नहीं होता है तो महिला के शरीर से प्रारम्भ होकर समाज के सम्पूर्ण तन्त्र पर उसका प्रभाव पड़ता है।

वे सभी क्रियायें जैसे भोज्य पदार्थ ग्रहण करना, पाचन, अवशोषण, उपापचय, उत्सर्जन आदि जिससे शरीर की वृद्धि, मरम्मत एवं सभी जैविक प्रणाली को कार्य करने की क्षमता (शक्ति) मिलती है एवं शरीर एक संतुलित आकार से वृद्धि करता है और सुचारू रूप से क्रियान्वित होता है उसे पोषण कहते हैं। पोषित शरीर का अर्थ है शरीर को पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार प्राप्त हो। जिससे शरीर की सभी क्रियाये सम्पादित होती रहे एवं आवश्यतानुसार शरीर के अन्दर कार्बोहाइड्रेड, लिपिड प्रोटीन, विटामिन्स, मिनरल आदि भी संतुलित रहे ताकि शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बना रहे और व्यक्ति के विचारों में, कार्यो में प्रबलता एवं उत्साह का संचार हो।

महिला संरक्षण के सन्दर्भ में भारत सरकार द्वारा महिलाओं के स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में अनेक कानूनों का निर्माण भी किया है। इस सम्बन्ध में बाल विवाह प्रतिबन्ध (संशोधन) अधिनियम (1978) द्वारा लड़कियों को विवाह की उम्र 15 से 18 कर दी गई। भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय अधिनियम, भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन करके बलात्कार और महिलाओं के विरूद्ध उस तरह से अपराधों के लिए सजा को और कड़ा तथा प्रभावी कर दिया गया। अनैतिक देह व्यापार प्रतिबन्ध एक्ट 1956 (संशोधन 1986) कर वेश्यावृत्ति पर रोक लगाई गई, दहेज निषेध अधिनियम 1961 तथा 1986 में भी संशोधन कर व्यवस्थाओं को कड़ा एवं प्रभावी बनाया गया। घरेलू हिंसा निवारण अधिनियम 2005 बनाया गया। छेडछाड़, मानसिक प्रताड़ना आदि के लिए भी वैधानिक प्रावधान किये गये, ताकि महिला स्वास्थ्य के सामाजिक आयामों को मजबूती प्रदान की जा सके। इसके अलावा मानव संसाधन विकास मन्त्रालय में महिला एवं बाल विकास विभाग की स्थापना की गई, जिसके द्वारा महिला स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार आदि के लिए विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाओं का संचालन किया जा रहा है।

नेशनल फेमिली प्रोग्राम 1952, न्यूट्रीशनल अनिमिया प्रोक्जीलोम्सिस प्रोग्राम 1970, चाइल्ड सरवाइवल एण्ड सेफ मदर हुड प्रोग्राम, रिप्रोडक्टिव एण्ड चाइल्ड हेल्थ प्रोग्राम 1997 आदि भी चलाये गये। मई 1977 विश्व स्वास्थ्य सभा में लोगों की आधारभूत

स्वास्थ्य आवश्यकताओं पर बैठक में असन्तुष्टि और समस्याओं के तीन दशक बाद यह निश्चित किया गया कि सरकारों का यह मुख्य सामाजिक उद्देश्य है कि लोगों की स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराएँ और विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य की घोषणा की गई।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का प्रारम्भ 12 अप्रैल 2005 को सुदूरतम ग्रामीण क्षेत्रों में निधर्नतम परिवारों तक इसकी पहुँच वहनीय और विश्वसनीय गुणवत्ता पूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ मुहैया कराने हेतु किया गया था। राष्ट्रीय ग्रमीण स्वास्थ्य मिशन का गठन मुख्यत: उत्तर भारत के 18 राज्यों में किया गया। ये राज्य वे है जिनके जन स्वास्थ्य सूचकांक निश्चित रूप से कमजोर हैं। अत: इन राज्यों को अतिरिक्त संसाधन एवं ऊर्जा की आवश्यकता है एन आर एच एम का मुख्य उद्देश्य गरीब और कमजोर वर्गो को सुलभ, जवाबदेह प्रभावी और विश्वसनीय प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँ विशेष रूप से मुहैया कराना है। इसका उद्देश्य अधिकृत स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा) सम्वर्ग का सृजन, समुन्नत अस्पताल परिचयों के माध्यम में ग्रामीण स्वास्थ्य परिचयों सेवाओं के अन्तर को पूरा करना तथा आन्तरिक और अन्तरक्षत्रिय अभिमुखीकरण को सुधारने और संसाधनों का प्रभावी उपयोग करने के लिए जिला स्तर पर कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण करना भी है। इस मिशन का अन्य उद्देश्य राष्ट्रीय नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु राष्ट्रीय, राज्य जिला तथा तहसील स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं, स्वयं की संस्थाओं और अन्य हितधारकों की हिस्सेदारी के जरिए समाज में कार्यक्रमों की स्वीकारता को और बढ़ाना है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत जननी सुरक्षा योजना, प्रधानमन्त्री स्वास्थ्य योजना केन्द्र के द्वारा प्रायोजित की गई है। जननी सुरक्षा योजना के अन्तर्गत प्रसव तथा प्रसव के उपरान्त देखभाल के साथ नकद सहायता भी प्रदान की जाती हैं इसका लाभ मात्र मृत्युदर को कम करना है। मार्च 2006 में प्रधानमन्त्री स्वास्थ्य मिशन द्वारा स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के उपलक्ष्य में क्षेत्रीय असन्तुलन को सुधारने तथा उच्च स्तरीय चिकित्सा शिक्षा की सुविधाओं में तेजी लाने का प्रयास किया गया है। परिवार योजना, सुरक्षित मातृत्व, बाल उत्तर जीवितता को बढ़ावा, किशोर स्वास्थ्य एवम् विकास को बढ़ावा, वंचित समूह के लिए आर सी एच एवं प्रजनन शिशु स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करने पर बल दिया गया।

इस प्रकार भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से महिला स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में अनन्य प्रयास किये जा रहे है। वर्तमान में स्वास्थ्य सहसाब्दि विकास लक्ष्य के 8 लक्ष्यों में समाहित होने के कारण भारत सरकार भी इसे मुख्य विकास लक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिए कृत संकल्प है। महिला स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में एन आर एच एम एक स्वर्णिम आभा किरण के रूप में है।

इसके बावजूद भारत में मातृ मृत्यु दर, कन्या भ्रूण हत्या, कुपोषण, एनीमिया, बाल-विवाह एवं बाल मातृत्व आदि के कारण महिला स्वास्थ्य सूचकांक में भारत की स्थिति बहुत पीछे है। यद्यपि भारत में स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में बड़े पैमाने पर प्रयास किये जा रहे हैं, फिर भी महिलाओं की जागरूकता में कमी, अशिक्षा, आर्थिक पिछड़ापन, पितृसत्तात्मक पारिवारिक संरचना, स्वयं के प्रति सोच का अभाव, घरेलू कार्यो का भार एवं व्यस्तता, पिछड़ापन एवं अन्धविश्वास आदि कारणों से उनके स्वास्थ्य संरक्षण योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों तथा कानूनों का पूर्णत: लाभ नहीं मिल रहा है। इस हेतु आवश्यकता इस बात की है कि महिला स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में प्रयासों की गति को तीव्र किया जाना चाहिए तथा क्रियान्वयन करना चाहिए। साथ ही उन सुझाओं एवं निदानों की खोज की जानी चाहिए, जिनसे महिलाओं का स्वास्थ्य संरक्षण सम्भव हो सके और स्वस्थ्य भारत का निर्माण हो सके।

सन्दर्भ सूची

1. निरामया, एन आर एच एम, आई ई सी ब्यूरो, निदेशालय चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाऐं, भारत सरकार दिल्ली, 2018
2. पार्क के0 प्रिवेन्टिव एण्ड शोशल मेडिसिन, बनारसी दास भनाते पब्लिशर्स, जबलपुर, 2000
3. देसाई नीरा, आधुनिक भारत में महिलाएँ, वोरा एण्ड कम्पनी मुम्बई, 2017
4. सिन्हा पुष्पा, ग्रामीण भारत में महिला कुपोषण (लेख) कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका, ग्रामीण विकास मन्त्रालय नई दिल्ली, 2005
5. अल्फ्रेड डिसूजा, समसामयिक भारत में महिलाएँ, मनोहर पब्लिकेशन दिल्ली, 2005
6. मुकर्जी रवीन्द्र नाथ, सामाजिक समस्याएँ, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2015
7. बनर्जी, शुभंकर, महिलाओं का स्वास्थ्य संरक्षण, (लेख) कुरूक्षेत्र मासिक

तनाव प्रबन्धन में योग शिक्षा की उपादेयता

बिनीता

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ० योगेंद्र पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

'तनाव' सच माने तो शिशु जन्म से ही तनाव से जुड़ना शुरू कर देता है। जन्म के साथ ही वजन कम-ज्यादा, दुर्बळ-मोटा, गोरा-काला है, बाद अभ्यास, नंबर कम-अधिक, भोजन का मात्रा, हर जगह तुलना परिणामतः उत्साह-निरूत्साह, भय, चिंता आदि से तनावग्रस्त होना। इस पर वैज्ञानिक दौर के कारणस्वरूप तीव्र परिवर्तन आने से मानव वैश्वीकरण, भौगोलीकरण के शिकंजे में जकड़ता चला गया, प्रतिस्पर्धा में फंसता चला गया। अब तुलनात्मक प्रतिस्पर्धा ने घर की दहलीज लांघकर, परिवार, गाँव, देश से भी आगे निकलकर विश्व में स्थान ले लिया है, फलस्वरूप मानव तनाव से अधिक से अधिक ग्रस्त होता चला गया, यही उसके मानसिक व शारीरिक रूप से दुर्बल एवं व्याधिग्रस्त होने का कारण बना।

प्राचीन काल में शारीरिक रूप से कष्टप्रद जीवनशैली के पश्चात् भी आपस में प्रतिस्पर्धा कम थी, जीवन में उत्साह था व समय का अभाव न था, इसलिए मनोरंजन के सीमित साधन भी जैसे शाम के बाद सामूहिक गान, नृत्य, नाटिका भी सहज ही तनाव मुक्त कर देते थे।

वर्तमान में पृथ्वी के मुट्ठी में आ जाने से समय का अत्यधिक अभाव होता चला गया, आपस में प्रतिस्पर्धा बढ़ती चली गयी, शारीरिक श्रम की कमी होती गई, सुपाच्य, नियमित तथा समय पर आहार लेने का समय नहीं मिल पाता एवं नियमित समय में निद्रा का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप मानव मानसिक व्याधियों, जैसे स्वभाव में चिड़चिड़ापन, विस्मृति, भोजन में अरुचि, अनिद्रा, रिश्तों में दुरियाँ, असुरक्षितता तथा शारीरिक व्याधियों से ग्रसित होना आदि नुकसान से ग्रस्त होने लगा है। ऐसा कहा जाता है कि इसका मुख्य कारण मनोशारीरिक (Psycho somatic Disorder) है जोकि अत्यधिक मानसिक तनाव (Mental Stress) के कारण होती है।

प्रायः देखा जाता है कि जब मनःस्थिति एवं परिस्थिति में असंतुलन की स्थिति का निर्माण होता है, कारण चाहे व्यक्तिगत हो, सामाजिक हो या आर्थिक हो, इसी प्रकार स्थान भी चाहे घर हो, समाज हो अथवा कार्यस्थल हो, इसी प्रकार असामंजस्य पारिवारिक हो, समाज से हो अथवा कार्यक्षेत्र में सहयोगियों से या अधिकारी के असहयोग से हो अथवा बार-बार की प्रताड़ना से हो, इस मानसिक स्थिति से जुझना पड़ता है और यहीं पर इस तनाव नामक विकृति का जन्म होता है।

मानवीय जीवन में कठीन प्रसंग आते हैं जब हमें अत्यंत प्रतिकुल परिस्थिति से सामना करना पड़ता है। इस कारण मानवीय मन पर दबाव या तनाव की परिस्थिति निर्माण हो हम अस्थिर हो उठते हैं। हमारी निर्णय क्षमता पर विपरित परिणाम पड़ता है, जो कि हमारे प्रकृति के बिल्कुल विपरित है। आज के व्यस्त तथा स्पर्धात्मक जीवनशैली में, वैज्ञानिक तथा तकनिकी युग में स्थिरता, अस्मिता, आत्मियता, मनशांती कहीं धुमिल सी दिखलाई पड़ती है, जिनकी आवश्यकता मानव को नित्य ही महसुस होती है। किन्तु ठीक इसके विपरित आज अत्यधिक गतिशील और प्रतिस्पर्धी युग में, मनुष्य को सभी प्रकार के तनाव उसके जीवन के सभी क्षेत्रों

में प्रभावित कर रहा है। तनाव किसी के स्वास्थ, कार्य-प्रदर्शन, सामाजिक जीवन और परिवार के सदस्यों के साथ सम्बन्ध को प्रभावित करता है। तनाव को हानिकाक शारीरिक और भावनात्मक प्रतिक्रिया के रूप में भी परिभाषित किया गया है। तनाव एक मूक हत्यारा है और तनाव व्यक्ति के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिक कल्याण पर हानीकारक प्रभाव डालता है।

योग-

योग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्वर्श करता है तथा व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा विश्व स्तर की समस्याओं का स्पष्ट समाधान प्रस्तुत करने में पूर्णतया सक्षम है। योग व्यक्तिगत है, पर इसका लाभ सार्वजनिक है। दूसरी तरफ इस दर्शन की मान्यता है कि ''योगाभ्यास का अभ्यास ही न करें बल्कि योगमय जीवन जीयें। यह सार्वभौमिक कथन स्पष्ट रूप से वर्तमान समस्याओं के समाधान में सक्षम है। योग प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता में विद्यमान है। योग से सम्पूर्ण शरीर को विश्राम प्राप्त होता है। इसमें श्वास की गति का कम होना (श्वास शांत और गहन हो जाती है) और मस्तिष्क शांत हो जाता है, जिससे ध्यान और एकाग्रता में सुधार होता है। इससे शरीर की चेतनता, भावनाओं और मस्तिष्क में भी सुधार होता है, जिससे आरोग्य प्रदान करने वाली 'जीवन ऊर्जा' प्रवाह में भी सुधार होता है। इससे आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है और हम अपने स्वास्थ्य का स्वयं ध्यान रखने लगते हैं।

योग शिक्षा का महत्व -

भारतीय वाङ्मय में शिक्षा को जीवन के शाश्वत् मूल्य के रूप में आदरणीय स्थान दिया गया है। शिक्षा को विद्या या ज्ञान के रूप में संज्ञापित किया गया है। वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भगवतगीता में ज्ञान या शिक्षा को संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं पवित्र तत्व बताया गया है। शिक्षा जगत् में योग का विशेष महत्व है, क्योंकि आज के वर्तमान परिवेश में अधिकतर छात्र एवं छात्राएँ शारीरिक मानसिक रूप से अस्वस्थ्य रहते हैं, जिसके कारण उनमें शिक्षा का विकास जितना होना चाहिए, उतना नहीं हो पा रहा है। योग के नियमित अभ्यास से मस्तिष्क शक्तिशाली एवं संतुलित रहता है।

योग के द्वारा छात्र एवं छात्राएँ मस्तिष्क को शुद्ध करके विचार शक्ति में वृद्धि कर सकते हैं साथ ही विद्यार्थियों को अपने काम में भी ध्यान केंद्रीत करने में सहायता मिलती है। योग के चमत्कार को सकल विश्व ने स्वीकार किया है, इसी कारण योग शिक्षा जितनी कम उम्र में ली जाय, उतना ही शरीर को अधिक लाभ मिलता है।बच्चों का शरीर अधिक लचकदार होता है, इसलिए बच्चें तथ्यों को जल्दी और आसानी से सीख जाते हैं। योग करने से बच्चे स्वस्थ और निरोग रहते हैं तथा दैनिक जीवन में होने वाले तनाव में भी कमी आती है, इसलिए कहा गया है कि 'योगाभ्यास से अधिक महत्व योगमय जीवन का है।'

तनाव प्रबन्धन में योग -

हम सभी किसी न किसी कारणवश तनाव, चिंता और अवसाद में रहते हैं। ये मुद्दे हमारे दैनिक जीवन के प्रमुख अंग बन गए हैं। बदलती जीवनशैली के कारण मानव जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन होता है। तनाव प्रबन्धन तकनिकी के कई नये रूप आज प्रचलन में आ गए हैं। इसके पश्चात् भी, प्राचीन योग की जड़ें आज भी अत्यधिक मजबूत और स्वयं में अद्वितीय है। योग ने अनेकों को, उनके जीवन से जुड़ी विभिन्न शारीरिक व मानसिक व्याधियों से मुक्त होने में मदद की है। यह निर्विवाद है कि तनाव बहुत सारे शारीरिक और मानसिक व्याधियों को जन्म देता है। मुद्दे अनेक हैं, समाधान एक है- योग। योग उपरोक्त सभी मुद्दों का उत्तर और बहुत कुछ है। योग वह है जो जनसामान्य को सहज रूप से जीने में समर्थ बनाता है। योग की तकनीक जादू नहीं बल्कि अभ्यास है। पुरुष और महिला योग से काफी लाभान्वित होकर तनाव मुक्त जीवन जी सकते हैं। योग की तकनीक में शारीरिक आसन, श्वास से जुड़े प्राणायाम, मन से जुड़े ध्यान, धारणा, समाधी, विश्राम आदि शामिल होते है, जो तनाव को दूर करने में आपकी मदद करते हैं। योग की महत्व जन-जन तक पहुँचाने, उसके लाभों का अनुभव व साक्षात्कार कराने के लिए अधिक संख्या में लोगों को जोड़ने के लिए हर साल 21 जून को विश्व योग दिवस मनाया जाता है।

अध्ययनों से पता चलता है कि तनाव सम्बन्धी विकार धीरे-धीरे चार चरणों के माध्यम से विकसित होते हैं। सबसे पहले, सहानुभूति तंत्रिका तंत्र की अधिक उत्तेजना के कारण चिंता, चिड़चिड़ापन और अनिद्रा जैसे मनोवैज्ञानिक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। दूसरे चरण में उच्च रक्तचाप, दिल की धड़कन बढ़ जाती है और आंतों की गतिशीलता बढ़ जाती है। तीसरे चरण में, एक अधिक

गहरा शारीरिक या जैव रसायनिक असंतुलन होता है और अंतिम चौथे चरण में, अपरिवर्तनीय लक्षण उत्पन्न होते हैं, जिन्हें अक्सर सर्जिकल या दिर्घकालनीन प्रबन्धन की आवश्यकता होती है। सहानुभूति सक्रियण में वृद्धि और एड्रेनालाइन सहित तनाव हार्मोन की रिहाई, हृदयगति, रक्तचाप, श्वास शरीर के तापमान और मांसपेशियों के तनाव में वृद्धि होती है।

चुंकि, किसी भी सकारात्मक परिणाम की उम्मीद करने से पहले नियमित अभ्यास और विश्वास प्रमुख बिंदु है। आपको खुद पर और इस तथ्य पर विश्वास करना होगा कि नियमित अभ्यास से आप तनाव से छुटकारा पा लेंगे। योग में आसन आपको आराम प्रदान कर उन सभी विचारों से राहत देते हैं, जो आपके दिमाग में उथल-पुथल चला रहे हैं। अपने आस-पास या अपने परिवार के बच्चों पर या जो हमेशा सहज होते हैं, उन पर ध्यान केंद्रीत करने पर आप देखेंगे कि वे अक्सर चुटकलों आदि में खेलते-खेलते फटाफट अपनी चिंताओं को भूल जाते हैं, उनके तनाव कम हो जाते हैं। ठीक यही कार्य योग करता है।

उम्र के साथ हमारी जिम्मेदारियाँ बढ़ती चली जाती हैं, कभी प्रभावशाली दिखने और कभी गंभीर दिखने की धुन में हम सहज और खुश रहना भूल जाते हैं, हमारी चंचलता कहीं खो सी जाती है। ये हमें तनाव से जोड़ती चली जाती है और हम अक्सर शराब, ड्रग्स और एंटिडिप्रेसेंट जैसे तनाव पर काबु पाने के नकारात्मक तरिकों में पड़ जाते हैं। कुछ तो भयावह कदम भी उठाते हैं।

योग आपके लिए तनाव का प्रबन्धन करके इसे नियंत्रित करने में मदद करता है। अब हम तनाव प्रबन्धन के लिए योग के विभिन्न लाभों को समझेंगे।

1. मन शरीर और आत्मा का मिलन-आसन व श्वांस के सही अभ्यास का संयोजन मन, शरीर और आत्मा को एकजुट करता है। इन तीनों का असंतुलन स्वास्थ के मुद्दों और अवांछित मानसिक तनाव को जन्म देते हैं। स्वास्थ विशेषज्ञों और योगिया ने पुष्टि की है कि योग ने लोगों को तनाव से काफी हद तक राहत दी है।
2. बेहतर निंद-योग में व्यायाम के कुछ रूप आपको शांतिपूर्ण तथा अच्छी निंद के लिए मदद रूप सिद्ध होते हैं। अधिकांशत: लोग को अपने जीवन के विभिन्न अवांछित मुद्दों के कारण उन्हें ठीक से सोने में असमर्थता की शिकायत होती है। नियमित योग अभ्यास से अनिद्रा से मुक्त होकर जीवन में अपनी जिम्मेदारियों के प्रति अधिक ध्यान केंद्रीत कर पाते हैं।
3. बढ़ी हुई ऊर्जा -तनाव प्रबन्धन के लिए योग में श्वास सम्बन्धित व्यायाम, प्राणायाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। सांस लेने और छोड़ने की सही तकनीक के साथ धीमी सांस का अभ्यास, श्वास पर नियंत्रण, शरीर में अधिक सकारात्मक ऊर्जा लाती है। वैज्ञानिक रूप से यह ऑक्सीजन को शरीर में अधिक से अधिक ग्रहण करने में मदद करता है, जिससे ताजगी तथा आराम की अनुभूति होती है।
4. एकाग्रता में वृद्धि -योगआसन तनाव को नियंत्रित कर शरीर को आराम देता है। जब हम चिंतित या व्यतिथ होते हैं तो हम सभी को भूलने की बिमारी हो जाती है, या मन उलझनों से ग्रसित हो जाता है। योग शांत मन के साथ स्थितियों से निपटने के लिए एक बेहतर एकाग्रता प्रदान करता है।
5. ताहरे विश्राम का अनुभव -तनाव प्रबन्धन के लिए योग एक महत्त्वपूर्ण कारक है। तनाव प्रबन्धन के दौरान अपेक्षित आवश्यक बातों में से एक है मन की सहजता। ध्यान के योग उन अल्फा तरंगों को संतुलित करता है, जो आपके दिमाग को आराम देने के लिए आवश्यक है। जब आप सांस के व्यायाम करते हैं तो आपकी हृदय की गति सामान्य हो जाती है और रक्तचाप सामान्य हो जाता है।
6. आत्मविश्वास में वृद्धि -तनाव अक्सर हमें तोड़ देता है और आत्मविश्वास के साथ जीवन में निर्णय लेने के स्थान पर हमें असुरक्षा का भाव देता है। हम हर चीज में भ्रमित और अनिर्णय की स्थिति महसुस करने लगते हैं और दूसरों का समर्थन चाहते हैं। तनाव प्रबन्धन के लिए योग आंतरिक आमविश्वास को वापस लाने का अच्छा विकल्प है।
7. आंतरिक उपचार -तनावग्रस्त होने पर हमारी चिकित्सा प्रक्रिया बिखर जाती है, जो लोग योगआसानों का नियमित अभ्यास करते हैं। वे महसुस करेंगे कि संकट के समय या चरम तनाव की स्थिति में सही पहलू पर ताकत बनाने और ऊर्जा का सम्पूर्ण उपयोग करने में मदद मिलती है।

निष्कर्ष -

योग को एक पूर्ण विज्ञान कहा जाता है, क्योंकि यह ॅण्भ्ण्व्ण् द्वारा सभी शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्तरों पर व्यक्ति को सम्बोधित करके स्वास्थ्य की परिभाषा को पुरा करता है। तनाव डॉक्टरों सहित सभी आयु समूहों और सभी क्षेत्रों और व्यवसायों

के लोगों को प्रभावित करता है। हालांकि तनाव को कम करने के लिए उपचार के कई तरिके उपलब्ध है, लेकिन लोग दवाओं के बगैर ही तनाव से राहत पाने के लिए एक विकल्प खोजने की कोशिश कर रहे हैं। योगिक विज्ञान 5000 वर्षों से कायम है और अब स्वास्थ पर महत्त्वपूर्ण लाभ के लिए वैज्ञानिक अध्ययनों के मध्यम से सिद्ध किया जा रहा है।

अंत में जीवन के स्थायी रूप से तनाव को खत्म करने के लिए योग एक जादु की छड़ी नहीं है। तनाव एक पार्सल है, जिसे आप हर दिन प्राप्त करेंगे। हालांकि योग के अभ्यास के साथ आप स्थितियों को बेहतर तरिके से संभालने के लिए एक सकारात्मक व्यक्तित्व और आत्मविश्वासपूर्ण दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं।

आजकल पूरी दुनिया में योगसाधना से असंख्य व्यक्ति लाभान्वित हो रहे है, जिसे प्राचीनकाल से लेकर आजतक योग के महान आचार्यो द्वारा परिक्षित किया गया है। योग जीवंत होती जा रही है।

योग की सुदरतम् खुबी यह है कि बुढ़े हो या युवा, स्वस्थ हो या कमजोर सभी के लिए योगाभ्यास लाभप्रद है और यह सभी को उन्नति की ओर अग्रसर करता है और यह सभी को उन्नति की ओर अग्रसर करता है।उम्र के साथ-साथ आपकी आसन की समझ और अधिक परिष्कृत हो जाती है। हम योगआसन के तकनीक पर नियमित अभ्यास कर बाह्य और आंतरिक क्षमता पर अधिक कार्य करने लगते हैं और अंततः हम सिर्फ आनंद में जी रहे होते हैं।

मानवीय जीवन में कई प्रसंग आते हैं जब हमें अत्यंत प्रतिकुल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इस कारण मानवीय मन पर दबाव या तनाव की परिस्थिति का निर्माण होने पर हम अस्थिर हो उठते हैं। हमारी निर्णय क्षमता पर विपरित परिणाम पड़ता है, जो कि हमारे प्रकृति के बिल्कुल विपरित है। आज के व्यस्त तथा स्पर्धात्मक जीवनशैली में, वैज्ञानिक तथा तकनीक युग में स्थिरता, अस्मिता, आत्मिता, मन की शांति कहीं धुमिल सी जान पड़ती है, जिसकी आवश्यकता मानव को नित्य ही महसूस होती है।

योग हमारे लिए कभी भी अनजाना नहीं रहा है। हम यह तब से कर रहे हैं जब हम बच्चे थे। चाहे यह मर्जरासन हो जो रीढ़ को मजबुत बनाता है या पवनमुक्तासन जो पाचनशक्ति को बढ़ाता है। हम शिशुओं को पूरे दिन योग के कोई न कोई रूप को करते हुए पायेंगे। बहुत से लोगों के लिए योग के बहुत से मायने हो सकते हैं। वस्तुतः योग यह 'योग के जरिये आपके जीवन की सकारात्मक दिशा' तय करने के लिए दृढ़ संकल्प है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. भारतीय मानसशास्त्रसार्थ आणी सविवरण अथवा पातांजली योगदर्शन लेखकः कृष्नाजी केशव कोल्हटकर पातांजली योगसूत्र-रविशंकर
1- http://www.hindikiduniya.com/essay/essay-on-importance-of-yoga-in-hindi/retrivedon20/10/21
2- http://www/siddhiyoga.com/hi/yoga-for-stress-management/retrivedon18/10/21

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में महात्मा गॉधी और स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

कृष्ण सिंह अधिकारी

रिसर्च स्कॉलर, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० मंजुला सिंह

प्रो० शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

सार

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है, अतएव प्रकृति का कोई भी प्राणी त्रिगुण से रहित नहीं है। विशेष कारणों से किसी में सत्त्व अधिक होता है, तो किसी में रजोगुण अथवा किसी में तमोगुण। कोई भी प्राणी इनसे मुक्त नहीं है। किसी भी युग में किसी समाज ने उत्कर्ष-प्राणी में स्त्रियों के सम्मान की अवहेलना का कोई भाव प्रदर्शित नहीं किया और न असभ्यावस्था में ही स्त्रियों की उपयोगिता किसी रूप में कम की जा सकी। वर्तमान युग विज्ञान और सूचना तकनीकी का युग है जिससे समाज का भूमण्डलीकरण हो रहा है, फलस्वरूप किसी समाज अथवा राष्ट्र की समस्याएँ विश्व की समस्याएँ तथा विश्व की समस्याएँ उस समाज या राष्ट्र की हैं। आज स्त्री शिक्षा केवल एक समाज अथवा राष्ट्र की समस्याएं नही है, बल्कि ये भूमण्डलीय समस्यायें हैं। हाँ यह अवश्य है कि विकासशील देशों में विकसित देशों की अपेक्षा ये समस्यायें अधिक विकराल है। वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था सामाजिक वर्गीकरण ही पैदा नहीं करती बल्कि लिंग भेद की बढ़ावा देने वाली है। विकासशील देशों को कुछ अन्य विकट समस्याओं का भी सामना करना पड़ा है, जैसे निरक्षरता, दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, अधिकारों के हनन् आदि स्त्री शिक्षा की प्रमुख समस्यायें हैं। इन समस्याओं का दार्शनिक विचारों से समाधान करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत शोध अध्ययन की अनुभूति हुई।

1.1 प्रस्तावना

जगत की रचना ही प्रकृति को लेकर हुई है। स्त्रियों के मान और उपयोग में कमी या भेद समय-समय पर अवश्य रहा है, किन्तु पुरूष के स्वार्थ को ही उसका कारण समझ लेना हमारी भूल होगी। समय, स्थान, रूचि और परिस्थिति के कारण समाज के नियम सभी देशों के सभी काल में एक तरह के नहीं रहने पाते और संशोधन की आवश्यकता भी किसी न किसी समय में हमारे सामने आ खड़ी होती है, किन्तु निर्माण या संशोधन का संबंध बाह्य स्वरूप से ही होता है। भारतवर्ष सदा से धर्म प्रधान राष्ट्र रहा है। यहाँ पूर्वकाल से ही ऋषि-महर्षि, संत-महात्मा, यती-सती एवं धर्मोपदेशक गुरू होते आये है, जिन्होंने अपने दिव्य आचरणों और प्रेरक वचनों से समाज को प्रभावित किया है। यहाँ के नर-नारी सदा से धर्म के आदर्श रहे हैं। स्त्री शिक्षा के संबंध में विभिन्न भारतीय शास्त्रों, आचार्यों, समाजसुधारकों शिक्षाशास्त्रियों ने भारतवर्ष में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित किया। स्त्रियॉ राजनीतिक,

सामाजिक तथा प्रशासनिक कार्यों मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। इस दृष्टि से भारतवर्ष अवश्य भाग्यवान् है कि यहाँ की जनता का ध्यान प्रतिदिन शिक्षा की ओर आकर्षित होता जा रहा है। स्त्री-पुरूष और बच्चे सभी इस ओर उन्मुख हो गये हैं। परन्तु किसके लिए कौन पथ श्रेयस्कर है, इसका निर्णय नहीं हो पा रहा है। लक्ष्यहीन पथिक की भाँति जिसके जी में जो आता है वह उधर की उड़ान मार रहा है।

अत: शिक्षा का युग होने पर भी आश्चर्य है कि स्त्री-पुरूष किसी को भी अपने कर्तव्य का ध्यान नहीं है। पथ का ज्ञान नहीं है। सोचने पर हम इसी तथ्य पर पहुंचते है कि हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति ही ऐसी है जिसने पुरूष और स्त्री की पवित्र भावनाओं को नष्ट कर उन्हें परानुकरण-परायण बना दिया है और उन्हें शक्तिहीन बनाकर मानसिक परतंत्रता की श्रंखला में आबद्ध कर दिया है। उनके मस्तिष्क के लिए ऐसे विषय मिलते है, जो उनके सार्वजनिक जीवन के लिए अनुपयुक्त और हानिकारक सिद्ध होते हैं।

1.2 गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम

गाँधी जी की शिक्षा योजना को बेसिक शिक्षा की संज्ञा दी जाती है। इस शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रिया-प्रधान है तथा इसका उद्देश्य बालक को कार्य, प्रयोग एवं खोज द्वारा उसकी शारीरिक, मानसिक और आत्यात्मिक शक्तियों का विकास करना है जिससे वह आत्मनिर्भर रहते हुए समाज का उपयोगी अंग बन जाये। गाँधी जी ने अपने क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम में मातृभाषा बेसिक क्राफ्ट, गणित, समाजशास्त्र, सामान्य विज्ञान, कला तथा संगीत आदि विषयों के प्रमुख स्थान दिया। उन्होंने बताया कि पहली कक्षा से लेकर पाँचवी कक्षा तक के सभी बालक कविताओं के लिए एक सा पाठ्यक्रम होना चाहिए। इसके पश्चात् बालकों को बेसिक क्राफ्ट की तथा बालिकाओं को गृह-विज्ञान की शिक्षा मिलनी परम आवश्यक है।

ध्यान देने की बात है कि गाँधी जी की शिक्षा योजना प्राथमिक एवं लघु माध्यमिक कक्षा स्तर तक ही सीमित है। इस दृष्टि से उनके द्वारा संगठित किया हुआ पाठ्यक्रम भी केवल इसी स्तर तक के लिए है। आगे उन्होंने अपने द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिस पाठ्यचर्या की संरचना की वह कुछ इस प्रकार थी- ''हस्त कौशल एवं उद्योग, कढ़ाई, बुनाई, बागवानी, कृषि, काष्ठकला, चर्मकार्य, पुस्तक कला, मिट्टी, का काम और मछली पालन आदि) मातृभाषा, हिन्दुस्तानी (आज की दृष्टि से राष्ट्रभाषा हिन्दी उनके लिए जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।) व्यवहारिक गणित (अंक गणित बीज गणित रेखा गणित और नाप-तौल आदि) सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और समाज-शास्त्र) सामान्य विज्ञान (बागवानी, वनस्पति विज्ञान, प्राणी-विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान), संगीत, चित्र, काव्य, स्वास्थ्य विज्ञान (सफाई व्यायाम ओर खेल-कूद आदि) और आचरण शिक्षा (नैतिक शिक्षा, समाज सेवा एवं अन्य सामाजिक कार्य) और इसमें सबसे अधिक बल हस्त-कौशलों पर दिया था और उसके बाद मातृभाषा पर।

गाँधी जी के द्वारा निर्धारित शिक्षा के प्रकार को निरूपित करने से पूर्व उनके द्वारा शिक्षा के सम्प्रत्यय को समझ लेना परमावश्यक है। गाँधी जी के अनुसार शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास के रूप में स्वीकार की जा सकती है उनकी दृष्टि में साक्षरता शिक्षा नहीं है, यह तो न शिक्षा का प्रारम्भ है ओर न अन्त। यह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित करने का साधन है। शिक्षा को परिभाषित करते हुए गाँधी जी ने स्वयं लिखा है- शिक्षा से मेरा तात्पर्य है- ''बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चहुमुखी विकास।''

1.2.1 जन-शिक्षा - गाँधी जी के समय भारत में लगभग 13 प्रतिशत लोग साक्षर थे। विद्यालयी शिक्षा के अभाव में उनमें न आत्मविश्वास था ओर न जागररूकता थी। तब हम प्रगति कैसे करते। गाँधी जी ने अशिक्षा के अभिशाप से बचने के लिए जन शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। जन-शिक्षा दो रूपों में होगी- एक तो बालकों को शिक्षित करने के लिए इन्होंने बेसिक शिक्षा योजना प्रस्तुत की। यह शिक्षा की राष्ट्रीय योजना थी जिसमें 7 से 14 वर्ष के बालकों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा पर बल दिया गया था। इस शिक्षा को गाँधी जी ने हस्त कौशलों पर केन्द्रित किया, एक तो इसलिए कि हस्त-कौशल हमारे जीवन के आधारभूत कार्य हैं।

1.2.2 स्त्री शिक्षा - गाँधी जी स्त्री को ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना मानते थे। गाँधी जी ने इस बात को स्पष्ट किया कि यद्यपि पुरुष और स्त्री का कार्य क्षेत्र थोड़ा भिन्न होता है लेकिन उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताएं समान होती हैं। इसलिए दोनों को अपने-अपने विकास के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया कि मुख्य रूप से स्त्री को पत्नी, माता व समाज के

निर्माता के रूप में कार्य करना होता है। पहले दो कार्यों में वह पुरूष से भिन्न अवश्य होती है पर अपने तीसरे उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए उसे अपनी सभ्यता व संस्कृति का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। परन्तु किसी की स्थिति में स्त्रियों को संगीत व नृत्य से दूर रखना चाहते थे। इनका मत था कि ये क्रियाएं वासना को बढ़ावा देती है, ये स्त्री व पुरुष की शिक्षा में केवल इतना ही अन्तर करते थे कि स्त्रियों को गृह कार्य की अतिरिक्त शिक्षा दी जाये। स्त्री पुरुष को समाज में बराबर का स्थान देकर उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर गाँधी जी ने समाज का बड़ा उपकार किया है।

1.2.3 सह-शिक्षा - गाँधी जी ने लड़के-लड़कियों को एक साथ रखकर पढ़ाने के प्रयोग किये थे ओर उनके आधार पर सह-शिक्षा की सम्भावना स्वीकार की थी। गाँधी जी के अनुसार प्राइमरी व उच्च स्तर पर सह-शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है परन्तु किशोरावस्था पर यह उचित नहीं होती। अपने इस मत को व्यक्त करते समय ये प्रत्येक समाज को यहां छूट देते हैं कि वह अपने पर्यावरण को दृष्टि में रखते हुए सहशिक्षा को स्वीकार व अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हो। इस प्रकार गाँधी सहशिक्षा के सम्बन्ध में सामाजिक पर्यावरण पर निर्भर करते थे।

1.3 विवेकानन्द जी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होता है। स्वामी जी ने अपने द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक विस्तृत पाठ्यक्रम का विधान प्रस्तुत किया। उन्होंने शिक्षा की पाठ्यचर्या में मनुष्य के शारीरिक विकास हेतु खेलकूद, व्यायाम और यौगिक क्रियाओं और मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु भाषा, कला, संगीत, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित और विज्ञान विषयों को स्थान देने पर बल दिया। भाषा के सम्बन्ध में स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। इनकी दृष्टि से अपने सामान्य जीवन के लिए मातृभाषा, अपने धर्म-दर्शन को समझने के लिए संस्कृत भाषा अपने देश को समझने के लिए प्रादेशिक भाषाओं एवं विदेशी ज्ञान विज्ञान एवं तकनीकी को समझने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। अत: इन भाषाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए। कला को एक मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग मानते थे। और इसके अन्तर्गत चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य और अभिनय सभी को पाठ्यक्रम में स्थान देने के पक्ष में थे। इनका तर्क था कि भारत का इतिहास पढ़ने से बच्चों में स्वदेश-प्रेम विकसित होगा और यूरोप का इतिहास पढ़ने से वे भौतिक श्री प्राप्त करने के लिए कर्मशील होंगे। इन्होंने राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को पाठ्यक्रम में स्थान देने पर भी बल देते थे। इनका विश्वास था कि इन दोनों विषयों के अध्ययन से बच्चों में राजनैतिक चेतना जागृत होगी और वे आर्थिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करेंगें। मनुष्यों में समाज सेवा का भाव उत्पन्न करने और उन्हें समाज की ओर उन्मुख करने के लिए स्वामी जी ने शिक्षा के सभी स्तरों पर समाज सेवा को अनिवार्य करने पर बल दिया।

इस प्रकार शिक्षा की पाठ्य चर्या के विषय में स्वामी जी का दृष्टिकोण अति व्यापक था और क्यों न होता, इन्होंने अपने देश के उच्चतम धर्मदर्शन को पढ़ा और समझा था और पाश्चात्य जगत के भौतिक वैभव को अपनी आँखों से देखा था। ये जानते थे कि पाश्चात्य जगत के भौतिक ज्ञान से हम अपना भौतिक विकास कर सकते हैं और अपने देश के आध्यात्मिक ज्ञान से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकते हैं। इस प्रकार शिक्षा की पाठ्यचर्या के विषय में स्वामी जी का दृष्टिकोण अति आधुनिक और अति व्यापक था। स्वामी जी शिक्षा को केवल एक वर्ग तक सीमित रखने में विश्वास नहीं रखते थे इसलिए उन्होंने शिक्षा को कई स्वरूपों में विभाजित किया जो इस प्रकार है-

1.3.1 जनसाधारण की शिक्षा - स्वामी जी के समय अपने देश की स्थिति बड़ी दयनीय थी। इसके विपरीत पश्चिमी देशों की दशा बहुत अच्छी थी। वहाँ के लोग सम्पन्न थे और वैभवशाली जीवन जी रहे थे, स्वामी जी ने इस सबको अपनी आँखों से देखा था। इन्होंने अनुभव किया कि राजनीतिक पराधीनता, आर्थिक विपन्नता, सामाजिक पिछड़ेपन और धार्मिक अन्ध विश्वासों इन सबका मूल कारण अशिक्षा है। इन्होंने उद्घोष किया कि जब तक भारत के सभी नर-नारी शिक्षित नहीं होते तक तक हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकते। इन्होंने समाज और राज्य से जन-शिक्षा की व्यवस्था की अपेक्षा की। जनशिक्षा से स्वामी जी का तात्पर्य बच्चों, युवकों और अशिक्षित प्रौढ़ों सबको शिक्षित करने से था। इन्होंने शिक्षित लोगों का आह्वाहन किया कि वे अशिक्षित प्रौढ़ों और वृद्धों को साक्षर बनायें, उन्हें शिक्षित करें। उस समय शिक्षा जन-साधारण को सुलभ नहीं थी। इसका क्षेत्र केवल समर्थ व्यक्तियों तक ही सीमित था। दीन-दु:खियों तथा निम्न वर्ग के लोगों को भर-पेट भोजन भी नहीं मिल पाता था। अत: स्वामी जी ने तत्कालीन भारतीय समुदाय की आर्थिक दृष्टि से हीन दशा को सुधारने के लिए जन-साधारण की शिक्षा पर बल दिया और कहा, मैं जनसाधारण की अवहेलना करना महान राष्ट्रीय पाप समझता हूँ यह हमारे पतन का मुख्य कारण है। जब तक भारत की

सामान्य जनता को एक बार फिर उपयुक्त शिक्षा, अच्छा भोजन तथा अच्छी सुरक्षा नहीं प्रदान की जायेगी तब तक प्रत्येक राजनीति बेकार सिद्ध होगी।

1.3.2 स्त्री शिक्षा- स्वामी जी अपने देश की स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति बड़े सचेत थे। उनका उद्घोष था कि नारी का सम्मान करो, उन्हें शिक्षित करो और उन्हें आगे बढ़ने के लिए अवसर दो। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज को शिक्षित नहीं कर सकते और जब तक समाज को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज अथवा राष्ट्र को विकसित नहीं कर सकते। परन्तु स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण पूर्णतया भारतीय था। ये उन्हें आदर्श गृहणी, आदर्श माताएं आदर्श शिक्षिकाएं और समाज सुधारक बनाना चाहते थे। ये नारियों के लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे जिसके द्वारा ऐसी नारियों का निर्माण हो जो पवित्र हो निर्णय हो, गृहस्थ धर्म के निर्वाह में निपुण हो, वीर पुत्रों को जन्म दे, आदर्श मातएं बने और समाज को उचित शिक्षा दें।

1.3.3 सह-शिक्षा- स्वामी जी सह-शिक्षा के विरोधी थे। उनका पहला तर्क तो यह था कि स्त्री-पुरुषों की शिक्षा की पाठ्यचर्या समान नहीं होती इसलिए उन्हें साथ-साथ कैसे पढ़ाया जा सकता है। उनका दूसरा तर्क यह था कि सह-शिक्षा आत्म संयम में बाधक होती है। ये लड़कियों के लिए अलग विद्यालयों की स्थापना करने और उनमें केवल स्त्री शिक्षिकाओं की नियुक्ति करने के पक्ष में थे।

1.4 निष्कर्ष

महात्मा गॉधी और स्वामी विवेकानन्द जी के के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचार एवं सिद्धान्त आधुनिक भारतीय परिस्थितियों में अमल किए जा रहे हैं। परन्तु अभी और भी सुधार हम इन महान शिक्षाविदों के विचारों से कर सकते हैं। अभी स्त्री शिक्षा सम्बन्धी तथा खास तौर पर ग्रामीण स्त्री शिक्षा सम्बन्धी अनेकों समस्यायें हैं पर उन समस्याओं का समाधान हम इन महान शिक्षा दार्शनिकों के शैक्षिक विचारों पर अमल करके कर सकते हैं। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी और विवेकानन्द द्वारा दिए गए सुझावों को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण करना चाहिए जिससे स्त्री शिक्षा की समस्या पर नियंत्रण पाया जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- कुलकर्णी, शरद अनन्त (2009) द्वितीय संस्करण ,"गांधी जी एवं विवेकानन्द जी के विचार दर्शन", खण्ड-4, सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली।
- माथुर, एस0 एस0 (2011) "गांधी जी के शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- शर्मा, आर0 ए0 (2009) "तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, मूल्यमीमांसा एवं शिक्षा", सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ।
- शर्मा, आर0ए0 (2011) "शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ।
- शर्मा, आर0ए0 (2005) "शिक्षा अनुसंधान", सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ।
- शर्मा, आर0ए0 (2003) "शिक्षा अनुसंधान", सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ।
- त्रिपाठी, लालबचन (2006) "मनोवैज्ञानिक अनुसंधान विधियाँ", ,एच0पी0भार्गव बुक हाउस, कचहरी घाट, आगरा।
- मित्तल, एम0एल0 (2012) "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", इन्टरनैशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
- भिशीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द (2001) द्वितीय संस्करण, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन" खण्ड-5 (राष्ट्र की अवधारणा), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नई दिल्ली।
- राठौर, कुसुम लता (2009) प्रथम संस्करण, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ।
- ऑबेराय, सुरेश चन्द्र (2005) "शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन", आर0 लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलेज, मेरठ।

केदारनाथ सिंह के काव्य में मानवीय संवेदना

सविता

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, रामनगर पी0जी0 कॉलेज, रामनगर, बाराबंकी (उ0प्र0)

केदारनाथ सिंह हिन्दी साहित्य के बहुमुखी एवं प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं, उन्होंने अपनी विशिष्ट सोच एवं अपनी लेखनी से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। केदारनाथ सिंह ने कविता के साथ-साथ निबन्ध एवं आलोचना को भी अपने लेखन से निरंतर मजबूत करने का प्रयास किया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के माध्यम से इन्होंने अपने विचार व्यक्त किए हैं। अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तीसरा सप्तक' के कवि के रूप में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं केदारनाथ सिंह ने ग्रामीण जीवन, शहरी जीवन, साधारण मनुष्य, प्रकृति प्रेम, प्रेमानुभूमि और विस्थापन बोध आदि को अपने साहित्यमें समाविष्ट किया है। उनकी कविताएँ कवि की तीव्र संवेदना और गहन जीवनानुभवों पर आधारित हैं। यथार्थ का सूक्ष्म चित्रण इनकी कवितओं की प्रमुख विशेषता है। काव्य के परिवेश और आधुनिक भाव बोध को व्यक्त करने में कवि की भाषा और उसमें प्रयुक्त बिम्बपूर्ण रूप से समर्थ रहे हैं।

मानवीय संवेदना केदारनाथ सिंह के काव्य की प्रमुख विशेषता है। आज मानवीय संवेदना का निरंतर ह्रास हो रहा है, पारिवारिक जीवन बिखता चला जा रहा है और मानव जीवन में मशीनों के निरंतर हस्तक्षेप से नई बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं। हमारे परम्परागत रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, खान-पान, वेशभूषा आदि सभी को नव उपनिवेशवादी शक्तियाँ इन्हें पिछड़ा हुआ और दकियानूसी बताकर लगातार हम पर थोपने का दबाव बना रही हैं और बाजार के माध्यम से अपनी संस्कृति हम पर थोपना चाहती हैं। वैश्वीकरण द्वारा दिखाये गये सपने उदारीकरण और निजीकरण की आग में झुलस रहे हैं और इनके पुरोधा अपना उल्लू सीधा करने में जुटे हैं। देश स्वयं को सर्वशक्तिमान मानते हुए भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की आड़ में विकासशील और तीसरी दुनिया के गरीब देशों को अपना शिकार बना रहे हैं। वस्तुतः आज का समय आर्थिक साम्राज्यवाद का है।

केदारनाथ सिंह आज के सजग रचनाकारों में से एक हैं। उन्होंने बदले हुए परिवेश और परिस्थिति के बाद भी सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। केदारनाथ सिंह की अधिकांश कविताएँ अपने परिवेश के साथ रागपूर्ण और तनावपूर्ण सम्बन्धों के बीच पैदा हुई हैं। इन कविताओं में अकेलेपन, विस्थापन की पीड़ा, आर्थिक विषमता, पूँजीवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के साथ-साथ मानवीय संवेदना आदि अभिव्यक्त हुई हैं। 'उत्तर कबीर' कविता संग्रह के माध्यम से आज की विखण्डित और विडम्बनाओं से भरी वास्तविकता को कबीर की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। जिसका एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"पानी भूल गया है
आग से अपना रिस्ता
आग को याद नहीं
हवा का स्पर्श
हवा बहती है
गंध से कटी-कटी
गंध से टूट गई है

पृथ्वी की लय,
आकाश की बातचीत।"[1]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में मानवीय संवेदना व्यक्त हुई है। मानवीय संवेदना से सम्बन्धित कविताओं में 'दवा की तलाश में एक बेचौन आत्मा', 'गूंज', 'बची हुई करुणा', 'कूड़ा और चिडिघ्या के बीच फँसी एक प्रेम कविता', ठण्ड में गौरैया' आदि हैं। केदारनाथ सिंह की कविताएँ लोक-संस्कृति पर पूँजीवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति के पड़ते दुष्प्रभाव को तीव्रता से व्यक्त करती हैं। 'कुदाल', 'लोरी' और कुएँ' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। केदारनाथ सिंह की कविताओं के सन्दर्भ में अपूर्वानन्द के विचार दृष्टव्य हैं- "अकेलेपन और विस्थापन की गहरी पीड़ा अपनी सार्थकता की निरन्तर खोज की व्यथा, विकास के अमानुषिक और अप्राकृतिक तर्कों और अर्थों से भरी इस दुनिया में 'निरर्थक' भावनाओं, संवेदनाओं के लिए जगह बना लेने की छटपटाहट और समाज को अपने शिकंजे में कस रहे विस्मरण से निरन्तर संघर्ष की वेदना केदारनाथ सिंह की कविताओं में अभिव्यक्ति हुई है।"[2]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में जीवनानुभव के वैविध्यता, स्मृतियों का आख्यान, आदमी की पक्षधरता, प्रतिरोध, प्रकृति और मनुष्य का अन्तर्सम्बन्ध, ग्राम और कस्बाई जीवन का यथार्थ, बाजारवाद एवं पूँजीवाद का तीव्र विरोध, लोक-भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति आदि से सम्बन्धित अनेक कविताएँ हैं। इन कविाओं में केदारनाथ सिहं ने समकालीन जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया है। कवि की संवेदनशीलता, मानवीय सम्बन्धों की प्रगाढ़ता, जीवन अनुभव, स्मृति, इतिहास, कला, संस्कृति और प्रकृति का सुन्दर समन्वय है। इनकी कविताओं में भूमण्डलीकरण, बाजारवाद, उदारीकरण और निजीकरण के अनेक अन्तर्विरोधों को देखा जा सकता है। केदारनाथ सिंह के काव्य के सन्दर्भ में कवि और आलोचक अनिल त्रिपाठी के विचार दृष्टव्य हैं- "सृष्टि पर पहरा, संग्रह की कविताएँ अपनी तमाम खूबियों एवं विलक्षणताओं के कारण न केवल कवि की बल्कि हमारी हिन्दी कविता की उपलब्धि है। इन कविताओं के अन्त:करण का आयतन बेहद बड़ा है जहाँ कवि की रचना प्रकिया पर इन कविताओं के हाथ के निशान अमिट रहेंगे।"[3]

मानवीय संवेदना एक ऐसा सार्वभौमिक परन्तु व्यक्तिनिष्ठ मनोभाव है जिसका उद्देश्य केवल मनुष्य समाज का ही नहीं अपितु समस्त जीवों का हित है और जिसकी मूल भावना 'वसुधैव कुटुम्बकम' की व्यावहारिक जीवंतता है। मानवीय संवेदना भौतिकवादी समाज की स्वार्थपरक पहुँच से मीलों दूर, व्यक्ति की मार्मिकता, परानुभूति और प्रत्येक मानवीय मूल्य में समाहित ऐसा मूल तत्व है, जिसकी अभिव्यक्ति हमारे भाव, भाषा, धारणा, प्रेरणा, आचरण और व्यवहार में होती है। हम एक ऐसे समाज का हिस्सा हैं जहाँ सामाजिक और मानवीय मूल्यों की नींव रखी गई थी और जहाँ हमारे आचरण और कर्म उत्कृष्ट मानवीय संवेदनाओं और जीवन मूल्यों को सहेज कर रखते थे।

मानव प्रवृत्ति हमारे समाज की वास्तविकता को बयां करती हैं। हम मानवीय संवेदना के मामले में व्यक्तिगत, सामाजिक और तंत्र तीनों स्तर पर विफल होते जा रहे हैं। मानवीय संवेदनाओं से विमुख और उस पर गहरी चोट करती ऐसी सभी सामाजिक घटनाएँ समाज को सम्पूर्ण रूप में तो प्रभावित करती ही हैं, व्यक्तिगत रूप में भी लोगों की भावनाओं और व्यवहार में बड़े बदलाव लाती हैं। यह सभी चीजें हमें मनोवैज्ञानिक अस्थिरता की तरफ धकेल रही हैं, जहाँ न हमारा चित्त शांत है न हमारे संवेग। दिन पर दिन संवेगों की नकारात्मकता की तरफ बढ़ता झुकाव और एकाग्रचित मन हमारे निर्णय प्रक्रिया को भी कमजोर करता जा रहा है। आज हम मानवीय संवेदना जैसे विषयों पर न तो संजीदा हैं और न ही आत्मचिंतन करने की स्थिति में खुद को सबल पाते हैं। केदारनाथ सिंह का बचपन गाँव में बीता है और ग्रामीण परिवेश का इन पर गहरा प्रभाव रहा है। इनके अन्दर स्मृतियों का जो कोश है उसका सबसे बड़ा श्रोत गाँव है। गाँव के प्रति गहरा लगाव होने के कारण इनके काव्य में सबसे अधिक ग्राम्य जीवन का चित्रण देखने को मिलता है। केदारनाथ सिंह 'चिट्ठी' नामक कविता में 'दिल्ली' जैसे महानगर में रहते हुए भी अपने गाँव चकिया को स्मरण करते हुए लिखते हैं-

"कल गाँव से
एक चिट्ठी आई
बहुत दिनों बाद
शायद नदी ने भेजी थी
न दिन

न तारीख
न सिरनामा
बस ऊपर कोने में
एक बूँद की तरह
टँका था
छोटा-सा प्यारा-सा
गाँव का नाम
चकिया।"[4]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में गाँव और ग्रामीण परिवेश बिल्कुल नये ढंग से उभारा है। इनकी कविताओं में जहाँ भी गाँव का वर्णन हुआ है, वहाँ पूरा ग्रामीण परिवेश उपस्थित है जिसमें धूल-धक्कड़, खेती-बाड़ी, नदी-नाले, गाँव, सिवान, रेत आदि से जुड़ी अनेक स्मृतियों को देखा जा सकता है। कवि केदारनाथ सिंह की जड़ें ग्रामीण जीवनानुभवों में है। यह अनुभव लोकचेतना से जुड़कर 'बोझे', 'दाने', 'रास्ता' आदि कविताओं में मुखरित हुआ है। 'बोझे' शीर्षक कविता में बोझों के उठ जाने के बाद दुनिया के खाली एवं सूनी लगने की पीड़ा से कवि व्यथित हो उठता है। कवि के विचार दृष्टव्य हैं-

"और लो
अब बँध चुके बबोझे
बँध चुका बहुत कुछ
जो गन्ध और हँसी की तरह
फैला हुआ था
कुछ लोग अब भी खड़े हैं
अपने बोझे के इन्तजार में
मैं उन्हें देखता हूँ
और हो जाता हूँ परेशान
क्योंकि बोझे अब धीरे-धीरे
कम होते जा रहे हैं।"[5]

केदारनाथ सिंह को अपने साहित्य में ग्रामीण परिवेश के प्रति गहरा लगाव है। इस सम्बन्ध में कवि का कथन है- "एक छोटे से शहर से दिल्ली आने के बाद बोध का मेरा धरातल निश्चय ही समृद्ध हुआ है, पर गाँव-कस्बे का जनजीवन मैंने सदा अपने भीतर बसा रखा है। आज भी उनसे मिलने का कोई अवसर मैं चूकता नहीं। महानगर और गाँव-कस्बे की स्थितियों का जो विरोध या तनाव मैंने महसूस किया है, उसके कारण अपनी जड़ों से मेरा लगाव और गहरा हुआ है।"[6]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में राजनीतिक उपनिवेश की जगह बौद्धिक उपनिवेश ने ले ली है, जिससे आत्म चेतना और सामाजिक चिंतन कुंद हो गया है। इस सन्दर्भ में विमलेश कुमार वर्मा के विचार दृष्टव्य हैं- "बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, बड़े-बड़े उद्योग अपने स्वार्थ मेंइतने लिप्त हैं कि उनसे होने वाले पर्यावरण प्रदूषण की उन्हें कोई चिन्ता नहीं रही है, अमृत प्रवाही नदियों, नालों में बदल रही है, बादलों ने मुँह मोड़ लिया है अथवा दिशाएँ बदल दी हैं। गल्फस्ट्रीम पिघल रही हैं लेकिन इन बातों की चिन्ता भूमण्डलीकरण के नियामकों को नहीं है आज भूमण्डलीकरण के दौर में पृथ्वी के प्रति बर्ताव देखे तो पता चलेगा की वैश्वीकरण से हमारी संस्कृति के क्या सम्बन्ध है।"[7] कुल मिलाकर नव-औपनिवेशवाद एवं उपभोगवाद हमारी सबसे बड़ी चिन्ता है क्योंकि यह केवल दस से बीस प्रतिशत पूँजीपति वर्ग और उच्च-मध्यम वर्ग के भोग-विलास का विश्वजाल है परन्तु जो इलेक्ट्रानिक साधन हैं, पश्चिम के जो अनेक राष्ट्रीय और सामाजिक मूल्य है, जीवन दृष्टि की वैज्ञानिकता और तथ्यपरकता है। ज्ञान, अन्वेषण, भाषा, संस्कृति के विकास की जो तत्परता है, सार्वजनिक सेवाओं में जो नियमितता और ईमानदारी है। उनमें से अनेक अच्छाईयाँ हमें लेनी

होंगी। हमारे जैसे बहुलतावादी देश के भीतर यदि विश्व की श्रेष्ठ अनुगूंज सुनाई पड़ती है तो वह हमारी सहिष्णुता और उदारता के अनुरूप ही होगी।

केदारनाथ सिंह ने मानवता विरोधी बाजारवादी अर्थव्यवस्था के दुष्परिणामों को महसूस किया है। आज के समय में विकास का आधार माने जाने वाले मॉल संस्कृति के चलते जीवन मूल्य ढहते जा रहे हैं। मनुष्य को त्रासद स्थिति से गुजरना पड़ रहा है। मॉल संस्कृति विकास के नाम पर विनाश कर रही है। 'काली सदरी' नामक कविता में कवि ने संवेदनाओं और परम्पराओं को न बचा पाने की अपनी पीड़ा व्यक्त की है। कस्बे की धूल को वह भले ही न बचा पया हो परन्तु जर्जर सदरी आज भी उसके पास है, जिसका एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"बगल के मॉल में
मैंने घंटों तलाश की
पर इससे बेहतर उपहार
मुझे मिला ही नहीं
देश की राजधानी में।"[8]

केदारनाथ सिंह एक संवेदनशील कवि हैं। इनकी कविताएँ आधुनिक भावबोध से युक्त हैं। वर्तमान समय में हो रहे सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों पर कवि की गहरी एवं सजगपूर्ण दृष्टि है। आधुनिक समय में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं और जीविका की पूर्ति के लिए गाँव से महानगरों की तरफ तेजी से भाग रहा है। शहर की बेहतर सुख-सुविधाएँ मनुष्य को अपने मूल स्थान से दूर कर रही हैं। मनुष्य अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने गाँव और अपने लोगों से दूर होता जा रहा है। जिसके कारण उसके अन्दर विस्थापन की पीड़ा व्याप्त हो गई है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में बाजारवाद, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, भूमण्डलीकरण, निजीकरण आदि के अन्तर्विरोध को देखा जा सकता है। इन सबके दुष्परिणामों को केदारनाथ सिंह की कविताओं में संवेदनात्मक रूप में देखा जा सकता है।

केदारनाथ सिंह के काव्य में मानवीय संवेदना की दृष्टि परिलक्षित होती है, उन्होंने अपने कवि कर्म के माध्यम से समाज के विभिन्न रूपों का यथार्थ चित्रण किया है। केदारनाथ सिंह की काव्य सृजना अतीत और वर्तमान के आत्मानुभव, ग्राम्य जीवन की संवेदना और शहरी जीवन के विरोधाभासों, अभिजात्य वर्ग, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं निम्न वर्ग के संघर्षों का अपनी कविताओं में कलात्मक ढंग से रेखांकन किया है।

सन्दर्भ सूची-

1. केदारनाथ सिंह, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, पृ0 137
2. अनिल त्रिपाठी, सम्पादक-मिट्टी की रोशनी, पृ0 115-116
3. अखिलेश, सम्पादक-तद्भव, अप्रैल 2014, पृ0 227
4. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ0 98
5. वही, पृ0 78
6. वही, मेरे साक्षात्कार, पृ0 39
7. विमलेश कान्ति वर्मा, भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ0 416
8. केदारनाथ सिंह, सृष्टि पर पहरा, पृ0 104

पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन की पाठ्य पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

देवेन्द्र कुमार

शोध अध्येता, (पीएचडी शिक्षाशास्त्र), महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ

प्रोफेसर रामबली यादव

शोध निर्देशक, शिक्षाशास्त्र विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ

भूमिका

जीवन में सफलता का आधार वास्तव में शिक्षा में निहित है। समय के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते हैं। स्वतन्त्रता के बाद भारत में शिक्षा को सामाजीकरण का सशक्त साधन मानते हुए इसके द्वारा वैयक्तिकता व नागरिकता के गुणों को विकसित करने का प्रयत्न किया गया। आजकल हम शिक्षा को व्यवसायोन्मुख करने का यत्न कर रहे हैं। उत्तम सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण व हस्तांतरण पर भी ध्यान दिया जा रहा है। शिक्षा मानव जीवन का एक सुसंस्कृत एवं महत्वपूर्ण पक्ष है। इसके द्वारा मानव अपना आर्थिक विकास करता है एवं जीवन में पूर्णता प्राप्त करता है। शिक्षा के द्वारा ही संसार को आर्थिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति होती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था-'हमें वह शिक्षा चाहिए जिससे कि चरित्र बनता है, मन की शक्ति बढ़ती है, प्रतिभा का विस्तार होता है और आदमी अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।'

कुंजीभूत शब्द - सामाजीकरण, वैयक्तिकता, व्यवसायोन्मुख, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, प्रतिभा, चरित्र।

शिक्षा मानव समाज की संरचना एवं व्यक्ति के भावी जीवन के दिशा निर्देशन का मूल आधार है। अतः शिक्षा का स्वरूप इतना व्यापक होना आवश्यक है जिससे अपेक्षाओं एवं उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हो सके। पूर्व माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थी निश्चय ही ज्ञान एवं चिन्तन की ओर अग्रसर होकर विषय को गहनता से समझने में रूचि लेने लगता है। उसकी कल्पना-शक्ति का विकास होने लगता है तथा जीवन के प्रत्येक रहस्य को जानने की जिज्ञासा प्रबल होने लगती है।

मनुष्य में संग्रह की मूल प्रवृत्ति जन्मजात होती है। इसी मूल प्रवृत्ति के सन्तोष के लिए मनुष्य कुछ ना कुछ वस्तुयें संग्रहीत करते रहते हैं। मनुष्य अपने ज्ञान एवं अनुभवों को भी संचित करता है। इसी से आज हमारे पास मानव-सभ्यता और संस्कृति के विकास से सम्बन्धित निधियाँ संचित हैं। पुस्तकें भी इन्हीं संग्रहीत निधियों में से एक हैं। मनुष्य ने अपने अर्जित अनुभवों और ज्ञान को भावी संतति के लिये संचित रखने के लिये उसे लिपिबद्ध किया है। यही लिपिबद्ध प्रयास आज हमें पुस्तकों के रूप में मिलता है। पुस्तकों द्वारा ज्ञान को संचित ही नहीं किया जाता है अपितु इन पुस्तकों के माध्यम से नई पीढ़ी को ज्ञान दिया जाता है।

पाठ्य-पुस्तकों का एक ऐसा प्रकार हैं, जिनमें मौलिक और स्थायी महत्व की पुस्तकों से कुछ सामग्री चयन करके विविध स्तरों के विद्यार्थियों के लिए हम पुस्तकों के रूप में व्यवस्थित कर लेते हैं। शिक्षक अपने शिक्षण की तैयारी में इनका प्रयोग करता है

तथा छात्र परीक्षा की तैयारी के लिए इनका अध्ययन करता है। इन पाठ्य पुस्तकों का विद्यार्थियों के लिये अत्यधिक महत्व होता है। पुस्तकें हमारे जीवन का अविच्छिन्न अंग बन चुकी हैं। स्त्री-पुरूष का जीवन पुस्तकों के अभाव में प्रायः शून्यवत् है। पुस्तकें हमारा जीवन हैं, प्राण-दायिनी शक्तियों का स्रोत हैं, दुख-सुख की संगिनी और मार्ग-दर्शिका हैं। पुस्तकों के अभाव में हम अतुल विचार और ज्ञान के उस प्रकाश पुंज से वंचित रह जायेंगे जिसे हमारे कर्मठतापूर्ण पुरूषों ने, तत्ववेत्ता ऋषि-महर्षियों ने, तपस्वी महात्माओं ने मननशील विद्वान मनीषियों ने, मौलिक विचारकों ने, कुशल राजनीतिज्ञों ने समय-समय पर समाज और जगत के हितार्थ लिपिबद्ध किया है तथा जो आज कागज, मुद्रण-कला एवं अन्य साधनों के आविष्कार के कारण हमें सहज ही उपलब्ध हैं। उनके ज्ञान और अनुभव से संचित ये अमूल्य धरोहरें पुस्तकों के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं जिन्हें जिज्ञासु बनकर अध्ययन करने पर किसी भी क्षण उस वस्तु से हम अपना ज्ञान और अनुभव बढ़ा सकते हैं और अपना दुरूह मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। पुस्तकों के अध्ययन, चिन्तन और मनन से मनुष्य की ज्ञान-परिधि विस्तृत होती है तथा वह अपनी शक्तियों से परिचित होकर आत्म विकास के लिए सचेष्ट एवं सक्रिय होता है। पुस्तकों को आधार मानकर ही हम आत्म-चिंतन और मानसिक शान्ति का प्रयास करते हैं। वर्तमान में बुद्धिजीवी युग में पुस्तकों से अलग रहकर ज्ञानार्जन की दिशा में प्रगति करने, विषय-वस्तु की तह में जाने की कल्पना कठिन ही नहीं होती अपितु असम्भव है।

हम लोग सोचते हैं, अध्ययन करते हैं और चिन्तन तथा मनन करने के पश्चात् किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। यह निर्णय हमारी अनुभूतियों एवं अर्जित ज्ञान पर ही आधारित रहता है। यदि हमारी अर्जित ज्ञान की परिधि सीमित हो तो हमारा भाव जगत संकुचित और हमारा निर्णय दोषपूर्ण होगा। अतः शिक्षा-शास्त्रियों, मनीषियों एवं विद्वानों का यह कर्तव्य है कि वे ऐसी पुस्तकों का निर्माण करें जिनके अध्ययन से हमारे ज्ञान का विस्तार हो तथा भावी जगत उन्नत एवं विशाल हो।

मानव सभ्यता के प्रारम्भ में ज्ञान मौखिक रूप से दिया जाता था। लिखने की कला का विकास लगभग छः हजार वर्ष पूर्व ही हुआ। इससे पहले ज्ञान को कंठस्थ करने की ही व्यवस्था थी। वैदिक काल में भी वेदों के श्लोकों को गुरू द्वारा शिष्यों को कंठस्थ कराया जाता था।

प्राचीन तथा मध्यकाल में पुस्तकें भोज-पत्रों और ताम्र-पत्रों पर तैयार की जाती थीं। ये पुस्तकें हस्तलिखित होती थीं और इनकी संख्या इतनी कम होती थी कि वे प्रत्येक विद्यार्थी को उपलब्ध नहीं थीं। इसी से इस काल में मौखिक शिक्षा की व्यवस्था थी। जब कागज का आविष्कार हुआ, तब पुस्तकों का मनचाही प्रतियों में छपना सम्भव हो सका। पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर पाठ्य-पुस्तकों के विकास का इतिहास सोलहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम, कमेनियस (1592-1600 ई.) ने भाषा शिक्षण की पाठ्य पुस्तक लिखी थी। इसके बाद पाठ्य पुस्तकों के महत्व को देखते हुए इसका प्रचलन बढ़ता गया तथा अनेक शिक्षाविदों एवं विषय-विशेषज्ञों द्वारा पाठ्य-पुस्तकें लिखी जाने लगीं।

19वीं शताब्दी में फ्रोबेल, डीवी तथा महात्मा गांधी ने पुस्तकीय ज्ञान का विरोध किया तथा अनुभव-केन्द्रित एवं क्रिया-प्रधान शिक्षा पर बल दिया। परिणामस्वरूप पाठ्य-पुस्तकों के महत्व को कम समझा जाने लगा, किन्तु तथ्यों, सिद्धान्तों आदि के बोधगम्यता की दृष्टि से इनकी पूर्ण उपेक्षा नहीं की जा सकी।

कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने पुस्तक विहीन शिक्षण के भी प्रयोग किये किन्तु वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि पाठ्य-पुस्तकों का अंत नहीं हो सकता। अतः अब यह सिद्ध हो चुका है कि पाठ्य-पुस्तकों के अभाव में शिक्षण प्रक्रिया सम्भव नहीं है।

भारत में पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में सबसे पहला मुद्रणालय सन् 1824 ई0 में कलकत्ता में स्थापित हुआ जिसका नाम था 'कलकत्ता शिक्षा-प्रेस'। इसी से भारत में पुस्तकों की छपाई का काम प्रारम्भ हुआ। सन् 1854 ई0 में वुड के घोषणा-पत्र में पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन की संस्तुति हुई तो अंग्रेजी, संस्कृत और फारसी में कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई। किन्तु किसी भी आयोग ने तब पाठ्य-पुस्तकों के गठन पर बल नहीं दिया क्योंकि सन् 1882 के भारतीय शिक्षा आयोग, सन् 1918 के कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, सन् 1929 की हर्टाग समिति तथा सन् 1936-37 ई0 की वुड एवट रिपोर्ट में पाठ्य पुस्तकों की रचना और सुधार के सम्बन्ध में कोई सुझाव नहीं मिलता। सन् 1910 ई0 के बाद भारतीय नेताओं ने शिक्षा की ओर ध्यान तो दिया परन्तु वे भी पाठ्य-पुस्तकों की समस्या तक अन्य बाधाओं के कारण नहीं पहुँच सके।

सन् 1935 ई0 में 'गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट' के अनुसार जब कुछ प्रान्तों में स्वायत्त शासन का प्रारम्भ हुआ तो कुछ राष्ट्रीय नेताओं ने पाठ्य-पुस्तकों की रचना और सुधार पर भी ध्यान दिया। सन् 1937-38 ई0 की प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने

पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये। सन् 1952-53 में मुदालियर आयोग की स्थापना हुई। उसने प्रचलित पाठ्य पुस्तकों की आलोचना करते हुये उनमें सुधार लाने पर बल दिया। पाठ्य-पुस्तकों से सम्बन्धित एक समिति के गठन पर भी बल दिया।

सन् 1954 ई0 में फोर्ड फाउण्डेशन के अन्तर्गत एक अन्तर्राष्ट्रीय दल ने प्रचलित भारतीय पाठ्य-पुस्तकों का निरीक्षण किया। उसने सुझाव दिया कि भारतीय सरकार प्रकाशन और लेखन सम्बन्धी कुछ नियम बनाये और उन्हीं के अधीन प्रकाशक एवं लेखक पुस्तकें तैयार करें। परन्तु सरकार इनके प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने हाथ में न ले।

सन् 1964-66 ई0 में कोठारी आयोग ने पाठ्य-पुस्तकों पर अधिक ध्यान दिया। उसने कहा कि उच्च कोटि के विद्वान पाठ्य-पुस्तकों की रचना में रूचि लेते तथा सम्बन्धित अधिकारी पाठ्य-पुस्तकों की स्वीकृति एवं चुनाव में बेईमानी करते हैं। अत: इस क्षेत्र में अनुसंधान की बहुत आवश्यकता है तथा पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन सरकारी शिक्षा विभाग द्वारा किया जाना चाहिये।

शैक्षिक तकनीकी के विकास से पाठ्य पुस्तकों के लिखने के ढंग में भी परिवर्तन हुए हैं। हमारे देश में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.), नई दिल्ली द्वारा भी इस क्षेत्र में कार्य किया जा रहा है। इस प्रकार परम्परागत पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ इनके कई तरह के नवीन रूप भी प्रस्तुत किये गये हैं उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण कार्य किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान पाठ्य-पुस्तकों की उपयोगिता

सामाजिक विज्ञान में भी पाठ्य-पुस्तकों की अत्यधिक उपयोगिता एवं महत्ता है। बालक-बालिकाओं को सामाजिक विज्ञान का यथोचित ज्ञान देने के लिए पाठ्य-पुस्तकें एक उत्तम, उपयोगी और आवश्यक उपकरण हैं। इनसे इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र एवं अर्थशास्त्र आदि के शिक्षण की व्यवस्था सुलभ हो जाती हैं। सामाजिक विज्ञान में पाठ्य-पुस्तकों का प्रमुख कार्य मात्र सूचनायें देना नहीं होता, बल्कि सूचनाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को सीखने की ओर प्रवृत्त करते हुए उन्हें देश सम्बन्धी योग्यताओं की प्राप्ति में सहायता करना होता है। देश के क्षेत्र सम्बन्धी ज्ञान एवं योग्यता की अभिवृद्धि ही पाठ्य-पुस्तक का प्रधान कार्य है।

1.2 सम्बन्धी साहित्य का सर्वेक्षण

अन्वेषण कार्य में प्रस्तुत शोध विषय के गहन विज्ञान के बाद अन्वेषण से सम्बन्धित साहित्य की समालोचना एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जो कि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से शोध-कार्य पर प्रभाव डालती है। प्रत्येक शोध-अध्ययन नये विचारों, नये ज्ञान, नयी योजनाओं में सहयोग देता है। अत: यह बहुत ही आवश्यक हो जाता है कि सम्बन्धित क्षेत्र के ज्ञान, विचार तथा शोध का गहराई से अध्ययन करें जो कि इसे आगे बढ़ाता है। समालोचना केवल सिद्धान्तरूप से ही महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् यह सम्बन्धित विषय क्षेत्र के अन्त:दृष्टिज्ञान को उजागर करता है तथा सम्बन्धित शोध के लिए सैद्धान्तिक आधार तथा अध्ययन से सम्बन्धित कार्य-विधि के लिये उपयुक्त साधन चुनने में सहायक होता है। समालोचना की महत्ता के बारे में बैस्टा ने लिखा है:-

> *'विषय से सम्बन्धित साहित्य का गहन अध्ययन करने से शोधकर्ता को पता चल जाता है कि सम्बन्धित क्षेत्र में क्या-क्या कार्य हो चुका है और उनके क्या निष्कर्ष निकले तथा सम्बन्धित क्षेत्र में किस पद्धति का प्रयोग किया जाये तथा सम्बन्धित क्षेत्र में कौन-कौन सी अनसुलझी समस्याऐं रह गयी हैं।' (बेस्ट0 जॉन0 डब्लू, रिसर्च इन एजूकेशन, थर्ड एडीशन, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्राईवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 1978)।*

1.3 अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

शिक्षा एक ऐसा सबल माध्यम है जिसके द्वारा हमारी सभ्यता, संस्कृति और परम्पराएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानान्तरित होती रहती हैं। पाठ्य-पुस्तक संस्कृति एवं परम्पराओं में बदलाव लाने में महत्वपूर्ण साधन का काम करती हैं। यह ज्ञान का एक संक्षिप्त रूप हैं, जिन्हें शिक्षा प्राप्ति के एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह राष्ट्रीय संस्कृति का प्रतीक है। देश के विचार, आदर्श, मूल्य तथा प्रतिमान आदि को पाठ्य-पुस्तकों द्वारा सरलता पूर्वक जाना जा सकता है। पाठ्यक्रम में निहित अनुभवों के संकलन, लिखित प्रस्तुतीकरण सीखे हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति और अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से पाठ्य-पुस्तकें अपरिहार्य हैं।

पूर्व माध्यमिक स्तर पर छात्र लेखन एवं पठन की किंचित दक्षता प्राप्त कर लेता है। अतः इस स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों में भाषायी पक्ष के साथ-साथ स्तरानुकूल सटीक जानकारी का समावेश भी महत्वपूर्ण है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए "पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन" के अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गयी। यह ज्ञात करना आवश्यक है कि वर्तमान पूर्व माध्यमिक स्तर की सामाजिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें इस स्तर के लिए पूर्णरूप से उपयोगी हैं या नहीं।

1.4 पाठ्य-पुस्तकों के मूल्यांकन के लिए मानदण्ड

पाठ्य-पुस्तकों का चुनाव तथा निर्धारण करने से पूर्व यह आवश्यक है कि वस्तुनिष्ठ मानदण्डों के आधार पर उनका मूल्यांकन किया जाये। किसी भी पुस्तक का मूल्यांकन करने के लिए निम्न मानदण्ड स्थापित किये जा सकते हैं यथा:-

1. पुस्तक का यांत्रिक पहलू

इसके अन्तर्गत पाठ्य-पुस्तक का बाह्य स्वरूप, आकार, पृष्ठ संख्या, जिल्द, कागज की किस्म, छपाई की स्पष्टता, सज-धज तथा हाशिया आदि सम्मिलित हैं।

2. पाठ्य पुस्तक की व्यवस्था

इस मानदण्ड के अनुसार पाठ्य-पुस्तक के भीतर विषय का विभाजन, उसकी श्रृंखलाबद्धता, तार्किकता, सारांश तथा अभ्यासार्थ प्रश्नों की व्यवस्था पर ध्यान दिया जाता है।

3. प्रस्तुतीकरण

इसके अन्तर्गत पाठ्य-पुस्तक की भाषा-शैली, उसमें प्रयुक्त शब्दावली, प्रतिपादन पद्धति, विषय की स्पष्टता एवं बोधग्राह्यता आदि निहित हैं।

4. उदाहरण

इसके अन्तर्गत चित्रों, रेखाचित्रों, मानचित्रों तथा चार्टों की शुद्धता, उपयोगिता, स्पष्टता, रोचकता, वस्तुनिष्ठता यथास्थानता तथा आकार आदि पर विचार किया जाता है। पाठ्य-पुस्तक के लिए ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

5. अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रत्येक पाठ के अंत में दिये गये अभ्यासार्थ प्रश्नों का विषय-वस्तु से सम्बन्ध, उनकी व्यापकता, प्रेरणात्मक शक्ति, स्पष्टता, शुद्धता, विश्वसनीयता तथा कठिनाई स्तर निर्धारित करना आवश्यक है। अभ्यासार्थ प्रश्नों का मूल्यांकन इन्हीं दृष्टियों से किया जाता है।

6. सहायक ग्रन्थों की सूची

पाठ्य-पुस्तक में प्रस्तुत सहायक ग्रन्थों की सूची तथा निर्देशन की छात्रों तथा शिक्षकों की दृष्टि से उपयोगिता, उसकी व्यवहारिकता, निश्चितता, उपलब्धता, विश्वसनीयता एवं वैधता पर विचार करना परमावश्यक है।

7. अनुक्रमाणिका एवं विषय-सूची

इसके अन्तर्गत पाठ्य-पुस्तक के अन्दर दी हुई विषय-सूची की पूर्णता, स्पष्टता, व्यवस्था, व्यवहारिक उपयोगिता तथा संगठन आदि पर ध्यान दिया जाता है।

8. लेखक

इसके अन्तर्गत लेखक की योग्यता, लेखन तथा शिक्षण अनुभव, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा वर्तमान व्यवसाय आदि पर विचार करना होता है।

उपरोक्त मानदण्डों पर ध्यान देते हुए पंच पद रेटिंग स्केल के रूप में पाठ्य-पुस्तकों का मूल्यांकन सम्भव है और प्रत्येक पाठ्य-पुस्तक के सम्बन्ध में अंक निर्धारित किये जा सकते हैं। पंच पद रेटिंग स्केल का स्वरूप निम्न होता है:-

Table 1.1

वर्गक्रम	*अंक*
सर्वोत्तम	5
अच्छा	4
साधारण	3
निकृष्ट	2
निकृष्टतम	1

उपरोक्त मानदण्ड के अनुसार पाठ्य-पुस्तक की रेटिंग इन पाँच पदों में की जायेगी। रेटिंग के बाद उन्हें आंकिक रूप में परिवर्तित कर दिया जायेगा। इस रेटिंग स्केल में आठ मानदण्ड दिये गये हैं। इन मानदण्डों के अनुसार आगे के खानों में रेटिंग करना है। रेटिंग प्रदर्शित करने के लिए (६) चिन्ह का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण:- पाठ्य-पुस्तक का शीर्षक 'A'

Table 1.2

क्र. सं.	*मानदण्ड*	*सर्वोत्कृष्ट (अंक 5)*	*अच्छा (अंक 4)*	*साधारण (अंक 3)*	*निकृष्ट (अंक 2)*	*निकृष्टतम (अंक 1)*
1.	पाठ्य-पुस्तक का यांत्रिक पक्ष		✓			
2.	पाठ्य-पुस्तक की व्यवस्था			✓		
3.	प्रस्तुतीकरण			✓		
4.	उदाहरण			✓		
5.	अभ्यासार्थ प्रश्न			✓		
6.	सहायक ग्रन्थों की सूची			✓		
7.	विषय-सूची				✓	
8.	लेखक		✓			
	कुल योग		8	15	2	

हस्ताक्षर रेटिंगकर्त्ता

अंकों का कुल योग:- 8 + 15 + 2 = 25

प्रतिशत रेटिंग :- 25 ÷ 40 × 100 × 62.5% (अच्छा)

इस प्रकार रेटिंग करने के बाद इन्हें अंकों में परिवर्तित किया जाता है। उक्त पाठ्य-पुस्तक शीर्षक 'A' का मूल्यांकन करने के लिए आठों मानदण्डों के रेटिंग अंक न्यूनतम आठ तथा अधिकतम चालीस हैं। उक्त पाठ्य-पुस्तक शीर्षक 'A' का रेटिंग करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि यह पुस्तक साधारण से कुछ अच्छी है।

1.5 अध्ययन के उद्देश्य

1. उत्तर प्रदेश में पूर्व माध्यमिक स्तर पर बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा निर्धारित सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना।
2. एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित पूर्व माध्यमिक स्तर की सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना।
3. मानकों के परिप्रेक्ष्य में उक्त दोनों पाठ्य-पुस्तकों की तुलना करना।

4. पाठ्य-पुस्तकों के मानकों के सन्दर्भ में शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन।
5. एन.सी.ई.आर.टी. व बेसिक शिक्षा परिषद् की सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का मूल्यों के सन्दर्भ में अध्ययन करना।

1.6 अध्ययन विधि

इस शोध अध्ययन में पूर्व माध्यमिक स्तर पर बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश तथा एन.सी.ई.आर.टी. की सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों की विषय-वस्तु का विश्लेषण किया जायेगा तथा सर्वेक्षण-विधि का प्रयोग किया जायेगा। पाठ्य-पुस्तकों का मूल्यांकन पांच बिन्दुओं पर आधारित मापक द्वारा किया जायेगा जो एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा निर्धारित है।

1.7 अध्ययन उपकरण

पूर्व माध्यमिक स्तर के सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों से प्रश्नावली के द्वारा उत्तर प्राप्त किये जायेंगे। प्रश्नावली के द्वारा प्राप्त उत्तरों से प्रतिशत निकालकर निष्कर्ष निकाला जायेगा। आंकड़े एकत्र करने के लिए शोधकर्ता द्वारा तैयार प्रश्नावली का प्रयोग किया जायेगा।

1.7.1 अध्ययन की सीमायें

1. यह अध्ययन कक्षा VIth, VIIth तथा VIIIth की सामाजिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों पर आधारित होगा।
2. यह अध्ययन उत्तर प्रदेश क्षेत्र के पूर्व माध्यमिक विद्यालयों की बेसिक शिक्षा परिषद व एन.सी.ई.आर.टी. की सामाजिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों पर किया जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ए0 पी0 शर्मा : भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, अशोक पब्लिशिंग हाऊस, 83, गांधीनगर, मेरठ
2. डॉ0 आर0ए0 शर्मा : शिक्षा और मनोविज्ञान में प्रारम्भिक सांख्यिकी, आई0 पी0 एच0, मेरठ
3. ऑल इण्डिया बोमन कांफ्रेंस : वोमन एण्ड सोशल इन जस्टिस, नव जीवन प्रेस, अहमदाबाद
4. बुच एम0 वी0 (एडी) : थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0 (1997)
5. बुच एम0 वी0 (एडी) : फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0 (2019)
6. बुच एम0 वी0 (एडी) : फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0 (2005)
7. पाठक, पी0 डी0 एण्ड त्यागी, जी0 एस0 डी0, 'इण्डियन एजूकेशन कमीशन एण्ड कमेटीज' आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर, 2016।
8. मिनीस्टरी ऑफ एच0आर0डी0: गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, 'नेशनल पॉलिसी ऑन ऐजूकेशन, 2006।
9. सामाजिक विज्ञान शिक्षण, बी0 के0 माहेश्वरी, बी0 एल0 शर्मा
10. सामाजिक विज्ञान शिक्षण, डॉ0 सोती शिवेन्द्र चन्द्र, वीरेन्द्र वर्मा
11. सामाजिक विज्ञान शिक्षण, प्रो0 भंवर लाल गर्ग

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' का तुलनात्मक अध्ययन

गीता पांडे

शोधार्थिनीं, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० हलधर यादव

शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

1.1 प्रस्तावना

जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ है तभी से भारत अपनी शिक्षा, दर्शन तथा मानवीय मूल्यों के लिए प्रसिद्ध रहा है। हमारी संस्कृति अपने विभिन्न मूल्यों के कारण ही विश्व प्रसिद्ध है। शिक्षा मानव जीवन का आधार है। मानव का विकास एवं उन्नयन शिक्षा पर ही आधारित है शिक्षा के द्वारा ही मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का विकास सम्भव है। शिक्षा व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज अपने नागरिकों के विकास के लिए शिक्षा प्रक्रिया का उपयोग करके अपने ज्ञान कौशल, अवबोध, अभिवृत्तियों, मूल्यों आदि का जीवन में उन्नत समावेश करना चाहता है। जिससे उसके नागरिक अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन सफलतापूर्वक कर सके। इसके साथ ही शिक्षा समाज को विघटित करने वाले विभिन्न कारकों का खण्डन करके समाज को एकीकृत एवं संगठित करने का कार्य करती है।

चिन्तन एवं अनुभवों के आधार पर जे० कृष्णमूर्ति ने मूल्यों की गहन व्याख्या की है। उनका मानना है कि मूल्यों को पहचानना व उनको आत्मसात करना व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है। विवेक से ही व्यक्ति अच्छे-बुरे का भेद कर अच्छे गुणों का चयन करता है। किसी व्यक्ति के विवेक को कोई भी शिक्षक गुरू, संत एवं शिक्षण प्रणाली उजागर नहीं कर सकती और न ही किसी अन्य व्यक्ति को दिया जा सकता है। मूल्य एवं विवेक व्यक्ति की अर्न्तनिहित क्षमताएँ हैं जिनमें अन्तर करना कठिन कार्य है। सरस्वती के वाहन हंस को विवेकशील माना जाता है उसमें दूध एवं पानी को अलग करने की क्षमता होती है। इसी प्रकार व्यक्ति विवेक द्वारा सदगुणों का चयन कर उन्हें आत्मसात करता है। मूल्यों को मन में बैठाने के सन्दर्भ में विवेक तत्व, आलोचनात्मक विश्लेषण एवं चिन्तन सदगुणों के चयन की प्रवृत्ति तथा भावपूर्ण क्रिया से अभिव्यक्ति होती है।

मूल्य प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने मूल्य होते है जैसे दया, धर्म, सेवा, स्नेह, अनुशासन, समानता, स्वतन्त्रता, ईमानदारी, वफादारी आदि। परन्तु आज के समय में व्यक्ति के मूल्यों में निरन्तर कमी आती जा रही है और वह एक वैज्ञानिक मशीन बनकर रह गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि समाज में अनिवार्य मूल्यों में निरन्तर कमी के कारण पाठ्यक्रम में तथा शिक्षा व्यवस्था के समयानुसार परिवर्तन आवश्यक हो गया है ताकि शिक्षा द्वारा सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों को विकसित किया जा सके।

आधुनिक मानव स्वार्थ प्रधान होता जा रहा है। अतएव वह अपने बालकों में अच्छे संस्कार नहीं दे पा रहे हैं। इसी कारण विद्यालयों पर इस शिक्षा हेतु दायित्व आधिक हो जाता है। आज समाज में आध्यात्मिक, नैतिक व सामाजिक मूल्यों में आये ह्रास की वजह से व्यक्तियों की धारणाएँ दूषित हो गयी हैं। हर तरफ चाहे वह राजनीतिज्ञ हो अथवा उच्चस्तरीय अधिकारी या फिर निम्न स्तरीय कर्मचारी, डॉक्टर, वकील, अध्यापक एवं न्यायपालिका जैसे क्षेत्रों में भी अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार का माहौल व्याप्त है। कोई भी अपने कर्तव्यों का निर्वहन भली-भाँति नहीं कर पा रहा है। थोड़े जो ईमानदार हैं, उनकी आवाज दबकर रह जा रही है। चारों ओर अनैतिक वातावरण व्याप्त है, यह सब मूल्यों के अभाव का ही कारण है। अतएव इस समय जीवन मूल्यों की शिक्षा प्रदान किए जाने की महती आवश्यकता महसूस हो रही है।

सामाजिक मूल्यों से ही विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों का निर्धारण होता है तथा व्यक्ति को उचित एवं अनुचित का ज्ञान होता है। पारसन्स एवं शिल्स के अनुसार सामाजिक मूल्य सामाजिक व्यवहार के कठोर नियन्त्रक हैं। उनके अनुसार सामाजिक मूल्यों के बिना सामाजिक जीवन असम्भव है, सामाजिक व्यवस्था सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकती तथा व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपनी आवश्यकताओं एवं जरूरतों को भावात्मक रूप से नहीं बता पाएँगे। संक्षेप में सामाजिक मूल्यों का महत्त्व है-

सामाजिक मूल्य मानसिक धारणाएँ हैं। अतरू जिस प्रकार समाज अमूर्त है उसी प्रकार मूल्य भी अमूर्त होते हैं। अन्य शब्दों में, सामाजिक मूल्यों को न तो देखा जा सकता है और न ही इनको स्पर्श किया जा सकता है, इनका केवल अनुभव किया जा सकता है।

सामाजिक मूल्य व्यक्ति के लक्ष्यों, साधनों व तरीकों के चयन के पैमाने हैं। हम सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही किसी एक लक्ष्य को अन्य की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता देते हैं।

1.2 सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

किसी भी विषय के विकास में शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्त्ता को प्रारम्भिक अवस्था के सैद्धान्तिक एवं संशोधित साहित्य का अध्ययन करना होता है। बिना सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन किये मौलिक अनुसंधान सम्बन्धी ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होगी। सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन एवं सर्वेक्षण अनुसंधानकर्त्ता को नवीनतम ज्ञान की प्राप्ति कराता है।

- एजिऑनी (1977) ने एक लेख प्रकाशित किया जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि मूल्यों के विशुद्धीकरण अथवा नैतिक शिक्षा तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक विद्यालयों की सामाजिक एवं व्यवसायिक आचार नीति स्वयं स्वीकृत मानदण्डों पर दृढ़ नहीं हो जाती।
- भार्गव, आई० (1986) ने बच्चों के नैतिक विकास की आंशिक एवं औपचारिक संक्रियाओं और उनसे सम्बन्धित गृह एवं शैक्षिक पर्यावरण सम्बन्धी चरो के तुलनात्मक अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त किये।
- गुप्ता, (1989) ने किशोरों के नैतिक एवं व्यक्तिगत मूल्यों पर उनके लैंगिक एवं क्षेत्रीय विभिन्नता के प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि किशोरों के व्यक्तिक मूल्यों पर क्षेत्रीय विभिन्नता का आवश्यक रूप से प्रभाव पड़ता है। उत्तर प्रदेश राज्य के पूर्वी भाग में रहने वाले किशोरों के व्यक्तिक मूल्य प्रदेश के पश्चिमी भाग में रहने वाले किशोरों की अपेक्षा उच्च थे। लैंगिक विभिन्नता को किशोरों के नैतिक विकास में शामिल एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में पाया गया।
- बाजपेयी, (1991) ने नैतिक नियमों एवं मूल्यों के विकास में शिक्षा पाठ्यक्रम के हस्तक्षेप एवं उनके सहज प्रभाव का प्रयोगात्मक अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि बच्चों में नैतिक नियमों के विकास में मध्यवर्ती कार्यक्रमों द्वारा वृद्धि होती है, उन्होंने निष्कर्ष प्राप्त किया कि जो बच्चे इन कार्यक्रमों में सहभागिता करते हैं उनमें सही एवं गलत का निर्णय लेने की योग्यता अर्जित हो जाती है।
- धुल एवं खत्री, (2002) ने बच्चों के नैतिक तर्क-वितर्क के आधार पर मूल्यों के स्पष्टीकरण के प्रभाव का अध्ययन उनके माता-पिता के अभिवृत्ति के सम्बन्ध में किया। अध्ययन के निष्कर्ष इस प्रकार थे।

1. मूल्य स्पष्टीकरण तकनीक का बच्चों के नैतिक तर्क-वितर्क विकास पर सार्थक धनात्मक प्रभाव पड़ता है।
2. मूल्यों के स्पष्टीकरण के परिणामस्वरूप, बच्चों के नैतिक तर्क-वितर्क विकास पर उनके माता-पिता के व्यवहार का सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

- कालिया एवं शियोरन, (2004) ने अनुसूचित जाति एवं अन्य जाति के युवा पुरूषों के मूल्यों एवं अनुसूचित जाति एवं अन्य जाति की युवा महिलाओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के निष्कर्षानुसार यह पाया गया कि अनुसूचित जाति के युवा पुरूष अनुसूचित जाति की युवा महिलाओं की अपेक्षा अधिक सैद्धान्तिक एवं धार्मिक हैं। अन्य मूल्यों में दोनों समूहों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
- अग्रवाल एवं अग्रवाल, (2006) ने गुजरात की हिंसा एवं हत्याकांड की घटना, पर्यावरण प्रदूषण, महिलाओं के विरूद्ध हिंसा, बाल श्रम आदि ने मूल्यों की भूमिका की व्याख्या की। शिक्षा का लक्ष्य बच्चों में ज्ञान के अतिरिक्त भौतिक, मानसिक, नैतिक एवं धार्मिक विकास का एकीकरण होना चाहिए। भाषा एवं साहित्य का सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में अहम एवं सार्थक स्थान है।
- बग्गा, निर्मल (2011) ने पाठ्य वस्तु शिक्षण के साथ मूल्यों के एकीकरण पर लेख प्रस्तुत किया। सामाजिक एवं राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण नैतिक और धार्मिक शिक्षा का विद्यालय पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं रह गया है। जो विचार, प्रत्यय एवं मूल्य छोटी उम्र में सीखे जाते हैं वे अर्द्धचेतन की गहराई में पहुँचकर स्मृति में रहते हैं। ये बच्चे बड़े होकर एक जिम्मेदार व्यस्क बनते हैं जो समाज में बदलाव ला सकते हैं। कुछ उच्च कक्षाओं के प्रारम्भिक स्तर पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों का एकीकरण सुन्दरतापूर्वक किया जा सकता है।
- खान, अक्सा, (2012) ने किशोरों के स्वास्थ्य मूल्य पर उनके माता-पिता की शिक्षा एवं व्यवसाय के प्रभाव का अध्ययन किया। दत्त संकलन के लिए डॉ० जी०पी० शैरी एवं प्रो० आर०पी० वर्मा द्वारा निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि पिता की शिक्षा और व्यवसाय का प्रभाव उनके लड़के एवं लड़कियों के स्वास्थ्य मूल्य पर पड़ता है। इसी क्रम में माता की शिक्षा एवं व्यवसाय भी उनके लड़को एवं लड़कियों के स्वास्थ्य मूल्य को प्रभावित करता है।
- शर्मा, निधि (2013) ने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक मूल्यों की प्रासंगिकता का अध्ययन किया क्योंकि मूल्यों की अवनति हमारे राष्ट्र के विकास की प्रमुख समस्या हैं अध्ययन में पाया गया कि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक मूल्य शिक्षा के वर्तमान परिप्रेक्ष्य जैसे शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा पद्धति, शिक्षक-शिष्य सम्बन्ध, अनुशासन की विधि, शिक्षण एवं पाठ्यक्रम की विधि आदि में अत्यन्त लाभकारी है।

1.3 समस्या कथन

वर्तमान शोध की समस्या को स्पष्ट रूप से इन शब्दों में उल्लिखित किया गया है -

"प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।"

1.4 अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में शोधकर्त्ता द्वारा निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं -

1. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' का अध्ययन करना।
2. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों की तुलना करना।
3. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के विभिन्न आयामों का अध्ययन करना।

1.5 शोध परिकल्पना

प्रस्तुत अनुसंधान में शोधकर्त्ता ने सभी तथ्यों एवं उद्देश्यों पर विचार करने के पश्चात् निम्नांकित शून्य ;भ्वद्ध परिकल्पनाओं का निर्माण किया है -

1. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर सार्थक नहीं है।
2. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।
3. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।

1.6 अनुसंधान विधि

इसलिए इस शोध कार्य में शोधकर्त्ता ने विश्वसनीय एवं ठोस परिणामों की प्राप्ति हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

आँकड़ो का प्रस्तुतीकरण, व्याख्या एवं विष्लेशण

शिक्षा स्तर के आधार पर नैतिक मूल्यों की गणना

परिकल्पना संख्याः 1.1

"मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर सार्थक नहीं है।"

तालिका सं०-1.1: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' की तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम -

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमान अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	26.54	1.53	5.35	3.288
उच्च प्राथमिक स्तर	204	28.07		3.79	

- सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्याः

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों का क्रान्तिक अनुपात 3.288 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से अधिक है। अतः शिक्षा स्तर के आधार पर प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर पाया गया है।

अतः उपरोक्त परिकल्पना सं0-1.1 मेरठ जनपद के प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में अन्तर सार्थक नहीं है" को अस्वीकृत किया जाता है।

शिक्षा स्तर के आधार पर नैतिक मूल्यों की गणना

परिकल्पना संख्याः 1.2

"मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।"

तालिका सं०-1.2: प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम में तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम -

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमानों का अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	6.36	0.02	1.56	0.137
उच्च प्राथमिक स्तर	204	6.34		1.33	

• सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्या:

प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम का क्रान्तिक अनुपात 0.137 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से कम है। उपरोक्तानुसार प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम में सार्थक अन्तर नहीं है। अत: परिकल्पना संख्या 1.2 को स्वीकृत किया जाता है।

परिकल्पना संख्या: 1.3

"मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।"

तालिका सं०-1.3: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम -

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमानों का अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	6.83	0.22	1.65	1.502
उच्च प्राथमिक स्तर	204	7.05		1.24	

• सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्या:

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम का क्रान्तिक अनुपात 1.502 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से कम है। अत: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में सार्थक अन्तर नहीं है तथा शोध परिकल्पना संख्या 1.3 को स्वीकृत किया जाता है।

शिक्षा स्तर के आधार पर नैतिक मूल्यों की गणना

परिकल्पना संख्या: 1.4

"मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।"

तालिका सं०-1.4: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम में तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम -

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमानों का अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	7.15	0.84	1.73	5.562
उच्च प्राथमिक स्तर	204	7.99		1.24	

• सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्या:

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम का क्रान्तिक मूल्य 5.562 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से अधिक है। अत: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम में सार्थक अन्तर है तथा शोध परिकल्पना संख्या 1.4 को अस्वीकृत किया जाता है।

शोध निष्कर्ष:

1. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर सार्थक पाया गया। अत: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्य' 0.05 सार्थकता स्तर पर एक समान नहीं है। दोनों समूहों के मध्यमान के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में 'नैतिक मूल्यों' का विकास उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा कम हुआ है।
2. मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'झूठ बोलना' सम्बन्धी आयाम में 0.05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक नहीं पाया गया। अत: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'झूठ बोलना' सम्बन्धी आयाम पर उनके शिक्षा स्तर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और वह दोनों स्तरों के लिए समान है।
3. मेरठ जनपद प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में 0.05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक पाया गया। अत: इस आयाम पर शिक्षा स्तर का प्रभाव पड़ता है। दोनों स्तर के विद्यार्थियों में इस आयाम की स्थिति एक समान नहीं है। दोनों समूहों के मध्यमानों से पता चलता है कि यह आयाम उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में अधिक विकसित है।
4. मेरठ जनपद प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'चोरी करना' सम्बन्धी आयाम में 0.05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक पाया गया। अत: विद्यार्थियों का शिक्षा का स्तर सम्बन्धित आयाम को प्रभावित करता है। दोनों स्तर के विद्यार्थियों में यह आयाम समान रूप से विकसित नहीं है। दोनों समूहों के मध्यमानों से ज्ञात होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में सम्बन्धित आयाम अधिक विकसित है।
5. मेरठ जनपद प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'धोखा देना' सम्बन्धी आयाम में 0. 05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक पाया गया। अत: सम्बन्धित आयाम भी शिक्षा के स्तर द्वारा प्रभावित होता है तथा दोनों स्तर के विद्यार्थियों में 'धोखा देना' सम्बन्धी आयाम की स्थिति एक समान नहीं है। दोनों स्तर के विद्यार्थियों के सम्बन्धि त आयाम के मध्यमानों को देखकर ज्ञात होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा यह आयाम अधिक विकसित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Agarwal Reena & Agarwal Ranjana (2006) : Educating for human rights by inculcating values Universal news Vol. 44 No. 05, Jan 30 – Feb. 05, 2006 Page 50 – 52.
2. Bagga, Nirmal, (2011) : "Integration of values with content teaching', The primary teacher, vol. 36 NCERT Campus New Delhi, Page-72.
3. Bhatnagar, R.P. (2010) : "Reading methodology of research in Education, R. Lall Book Depot Meerut, Page – 181.
4. Buch, M.B. 2007 : Sixth survey of Research in Education, Vol. I, 1993 – 2000, NCERT, New Delhi Page 344 – 395.
5. Kaul, Lokesh, (2011) : "Methodalogy of Educational research', Vikas Publishing house, Pvt. Ltd., New Delhi, Page 165 – 182.
6. Khan Aqsa, (2012) : "The effect of Parental Education and occupation on health value their adolescents' Prachi journal of Psycho-cultural dimensions, Vol. 28, Page – 95.
7. कपिल, एल०के० (2012), "अनुसंधान विधियाँ", एच०पी० भार्गव बुक हाऊस, आगरा, पृष्ठ सं०-35, 148, 366.
8. चौधरी, रेनू (2007), "मूल्य एवं नैतिक शिक्षण", श्री कविता प्रकाशन, जयपुर पृष्ठ सं० 3-7
9. तिवारी, चन्दा (2007), "मापन मूल्यांकन एवं प्रश्न-पत्र संरचना", जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, पृष्ठ सं०-28-31
10. पाण्डेय, के०पी० (2010), "अन्वेषिका" शिक्षक शिक्षा की भारतीय पत्रिका, वोल्यूम-07, पृष्ठ सं०-13
11. राजपाल, एच०सी० (2008), "आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य", पृष्ठ सं०-78
12. राय, पी०एन० एवं राय सी०पी० (2012), "अनुसंधान परिचय", लक्ष्मी नारायण प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ सं०-62

स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन

डॉ० हलधर यादव

शोध निर्देशक, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, सीतापुर रोड, लखनऊ

ओमपाल सिंह

शोध अध्येता (पीएचडी) शिक्षा शास्त्र विभाग, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, सीतापुर रोड, लखनऊ

प्रस्तावना

भारतीय शिक्षा का इतिहास बहुत विस्तृत एवं व्यापक है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय समाज का स्वरूप एवं आवश्यकतायें परिवर्तित होती रही हैं। इस परिवर्तन के साथ ही शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन आया है। इस कथन को ध्यान में रखकर भारतीय इतिहास को प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक काल में विभक्त किया गया है। शिक्षा समाज का गतिशील अंग है। समाज के गतिशील होने के कारण उनकी आवश्यकतायें परिवर्तित होती रहती हैं। इन्हीं की पूर्ति के निमित्त शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। समाज का स्वरूप देश और काल की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। देश विरोध की सामाजिक आवश्यकताओं एवं मान्यतायें अन्य देश से भिन्न होती है, अतएव शिक्षा के स्वरूप में भी भिन्नता आ जाती है। काल के आधार पर देश की आवश्यकताओं में परिवर्तन होने के कारण उसकी सामाजिक संरचना में परिवर्तन हो सकता है। इसका कारण देश-विदेश के एक युग में ही शिक्षा का स्वरूप एवं आकार दूसरे तरह का हो सकता है और दूसरे काल में दूसरे तरह का।

अतीत, वर्तमान और भविश्य समाज के अनवरत प्रवाह पर घटनाओं को निश्चित करने की विधि मात्र है। इतिहास के द्रष्टव्य परिवर्तनों एवं नवीनताओं में अन्तर देखना अत्यावश्यक हो जाता है। ऐसी ही स्थिति में वर्तमान का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जा सकता है।

वैदिक कालीन शिक्षा हमारी प्राचीनतम संस्कृति है। प्राचीन भारत की यह विशेशता रही कि इसका निर्माण राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धार्मिक क्षेत्र में हुआ। भारतीय संस्कृति धर्म की भावनाओं से ओत-प्रोत है। हमारे पूर्वजों ने जीवन को एक व्यापक दृश्टिकोण से देखा। ''वसुधैव-कुटुम्बकम'' ही उनका आदर्श था। ''सर्व भूत हितेरत:'' उनका कर्तव्य था। शिक्षा द्वारा व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष की प्राप्ति करता था। मोक्ष प्राप्त करना ही जीवन का उद्येश्य था। इसी दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा के अर्थ तथा उद्येश्य निर्धारित हुए।

वैदिक काल व स्वामी रामदेव दोनों ने ईश्वर शक्ति तथा धार्मिक भावना, चरित्र निर्माण मोक्ष की प्राप्ति, चारित्रिक विकास तथा राष्ट्रीय चेतना का विकास करना को अपने मुख्य उद्देश्य माना है। यहाँ दोनों उद्देश्यों को ''वैज्ञानिक दृष्टिकोण व विश्लेषणात्मक बुद्धि का विकास करना'' शिक्षा की प्रक्रिया में सम्मिलित किया।

वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था समस्याओं के दौर से गुजर रही है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत भी कतिपय ऐसी ही समस्याएँ रही होंगी। परन्तु, हमारे तत्कालीन आचार्यों ने अपने ज्ञान, अनुभव तथा प्रशासनिक क्षमता के द्वारा विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का

निराकरण एवं उन्मूलन करते हुए सुदृढ़ शिक्षा संगठन एवं परम्पराओं को विकसित किया। हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम वैदिक शिक्षा दर्शन एवं विधियों का अध्ययन करें तथा यह जानने का प्रयास करे कि वर्तमान शिक्षा सम्बन्धी कठिनाइयों एवं समस्याओं को हल करने में वैदिक शिक्षा दर्शन किस सीमा तक सहायक सिद्ध हो सकती है।

आज ऐसा लगता है हमारी शिक्षा में कहीं गम्भीर त्रुटि है। भारतवर्ष की पवित्र भूमि सदियों से अपनी अध्यात्मिक विशिश्टता एवं ऊर्जा के लिये विश्व विख्यात है। यहां पर समय-समय पर अनेक ऋषि-मुनियों ने यथा वेदव्यास, आदि शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा महर्षि अरविन्द आदि ने अपने जीवन, अपने आचरण, अपने विचारों एवं कार्यों से समूची मानवता तथा शिक्षा को समपोशित एवं आलोकित कर उसे सही दिशा देने का महान् कार्य सम्पन्न किया है। उसी ऋषि परम्परा की कड़ी में एक नया नाम है-स्वामी रामदेव।

1.1.2 वैदिक कालीन शैक्षिक विचार

वैदिक कालीन शैक्षिक विचारों को निम्नलिखित शिर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है-

वैदिक काल के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य

''सा विद्या या विमुक्तये'' उक्त कथन द्वारा शिक्षा को मोक्ष प्राप्त करने का साधन व प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। वैदिक समाज के प्रारम्भिक चरण में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त न्यून था। ब्राह्मण वर्ग का ही इस पर एकाधिकार था। ज्ञान के प्रसार प्रचार का अधिकार उन्हीं को था तथा यज्ञ एवं धार्मिक अनुष्ठान् उन्हीं के द्वारा सम्पन्न होते थे। शैक्षकीय व्यवसाय को अपनाये जाने के कारण अध्ययन अध्यापन उनके लिये आवश्यक था।

उत्तर वैदिक काल में प्रशासन, युद्ध, रक्षा तथा धनुर्वेद आदि का अध्ययन करना क्षत्रिय वर्ण का सहज एवं स्वभाविक व्यवसाय था। क्षत्रिय समाज के ज्ञानार्जन में हितार्थ सैन्य शिक्षा में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए तक्षशिला एवं उसके परिसर में अनेक गुरूकुलों की स्थापना हुई। कालान्तर में यह संस्थायें प्रसिद्ध सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में विख्यात हुई। उत्तोत्तर वैदिक काल में वैश्यों को भी वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त हो गया। परन्तु इस वर्ग का मूल धर्म कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि होने के कारण वेदादि के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान न दिया। जीवन के अन्य कार्य कलापों में वे इतने व्यस्त रहे कि उन्होंने व्यवस्था से लाभ नहीं उठाया।

चतुर्थ वर्ण शूद्रों का था। इन्हें धर्मग्रन्थों के अध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं था लेकिन प्रतिभावान छात्रों के लिए गुरूकुल के द्वारा खुले हुए थे। इनका मुख्य कार्य धर्म-द्विजों की पिरचर्या करना था इस कारण यह वर्ग निज गृहों में परम्परागत व्यवसायों में प्रशिक्षण प्राप्त करके जीवकोपार्जन करता था।

1.1.3 वैदिककालीन शिक्षा के उद्देश्य

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस समय की शिक्षा पूर्ण रूप से धर्म पर आधारित थी और जीवन का प्रमुख उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति था। इसके लिये वेद, धार्मिक ग्रन्थों एवं इनमें वर्णित विषयों का अध्ययन आवश्यक एवं वांछनीय था। इनके अध्ययन के लिए चारित्रिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक गुणों की आवश्यकता होती थी।

''ईश्वर भक्ति तथा धार्मिक भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक, सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार प्राचीन भारत में शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श थे।'' (डॉ0 अल्तेकर)

तत्कालीन समाज यह अपेक्षा करता था कि विद्यार्थी ज्ञानोपार्जन के उपरान्त समाज के विकास में योगदान करेंगे। इस विवेचन से शिक्षा के उद्देश्य स्वत: हो जाते हैं।

यहाँ पर शोधकर्त्ता ने शिक्षा के विपुल उद्देश्यों पर निम्न रूप से प्रकाश डाला है-

(अ) मोक्ष की प्राप्ति

वैदिक काल में शिक्षा को मोक्ष प्राप्ति के एक साधन के रूप में माना गया था।

''प्राचीन समय में शिक्षा केवल शिक्षा प्राप्त करना न था। शिक्षा धर्म के लिए तथा धर्म का एक अंग थी। शिक्षा मोक्ष प्राप्त करने अथवा आत्मानुभूति का साधन थी। यही जीवन का परम लक्ष्य था।''(राधा कुमुद मुखर्जी)

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिये परा एवं अपरा विद्याओं का ज्ञान अपरिहार्य था।

(ब) चारित्रिक विकास

वैदिक युगीन शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत विद्यार्थी में चरित्र निर्माण पर सर्वाधिक बल दिया जाता था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए छात्रों को धार्मिक तथा नैतिक उपदेश दिये जाते थे और उन्हें स्वस्थ्य वातावरण में रखा जाता था। इस समय शिक्षा गुरूओं द्वारा आश्रमों में दी जाती थी और गुरू अपने चरित्र एवं व्यवहार से अपने शिष्यों को प्रभावित करते हुये उनके चरित्र के निर्माण का प्रयास करते थे।

''इस पद्धति का आयोजन इस प्रकार का था कि छात्र का जीवन के प्रति दृष्टिकोण व्यापक हो जाए, उसमें ज्ञान की ज्योति जगे, उसकी बुद्धि प्रखर हो और व्यक्तित्व का विकास हो। इस प्रकार के प्रयास से उसके चरित्र बल का विकास हो।''(गोखले, बी0जी0)

हमारे प्राचीन शिक्षाशास्त्री एवं दर्शनशास्त्री वैयक्तिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं से भली भाँति परिचित थे। उसके अनुसार ही उन्होंने पाठ्यक्रम का निर्माण किया। इस प्रकार वैदिक युगीन पाठ्यक्रम में धार्मिक विषयों के साथ ही अनेकानेक विधाओं, कलाओं तथा विशिश्ट विषयों को स्थान प्रदान किया गया था।

1.1.4 पाठ्यक्रम

वैदिक कालीन शिक्षा संगठन में धार्मिक पाठ्यक्रम का विशेष महत्व था। इसके प्रमुख सेतु चतुर्वेद थे। धर्म को आधार मानते हुये लौकिक विषयों का ज्ञान भी छात्रों को दिया जाता था जहाँ एक ओर छात्रों को वेद मंत्र, यज्ञ विधि, पुराण, उपनिषद् और ब्राह्मण आदि धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता था वहीं उन्हें इन ग्रन्थों का सही ढंग से अध्ययन करने के लिए व्याकरण, उच्चारण और छन्द शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। उन्हें मंत्रों को कंठस्थ कराया जाता था।

इस समय तक गणित, ज्योतिष, काव्य, इतिहास, दर्शन, राजनीति शास्त्र व अर्थशास्त्र, कृषि विज्ञान, आयुर्वेद, शल्य विज्ञान, सैनिक शिक्षा तथा वास्तुकला आदि विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया था। इस तथ्य की पुष्टि छान्दोग्य उपनिषद् के इस कहानी से होती है जिसमें स्नातन कुमार के प्रश्न के उत्तर में नारद जी कहते है-

''वे वेदों के अतिरिक्त वैदिक व्याकरण, कल्प राशि (गणित), दैव-विद्या, ब्रह्म-विद्या, भूत-विद्या, नक्षत्र-विद्या आदि अनेक विद्याओं को जानते हैं। तर्कशास्त्र को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। इसके अतिरिक्त राशि-विद्या (अंकशास्त्र), निधि-विद्या (भूगर्भ-विद्या) एकापन (आचार शास्त्र) तथा क्षेत्र-विद्या (सैन्य विज्ञान) का भी अध्ययन होता था।''

वैदिक युगीन शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत स्त्री शिक्षा का भी प्रावधान था। बालकों की भाँति बालिकाओं का भी संस्कार होता था और तत्पश्चात् वे ब्रह्मचारिणी के रूप में धर्मशास्त्रों का अध्ययन करती थी। वास्तव मे कन्या का वह ब्रह्मचर्य-काल उसके आगामी गृहस्थ जीवन के लिये तैयारी मात्र था।

हमारे प्राचीन शिक्षाशास्त्री एवं दर्शनशास्त्री वैयक्तिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं, आवश्यकताओं एवं महत्वकांक्षाओं से भली भाँति परिचित थे। इसके अनुसार ही उन्होंने पाठ्यक्रम का निर्माण किया । इस प्रकार वैदिक युगीन पाठ्यक्रम बहुमुखी था। इनमें धार्मिक विशयों में साथ ही अनेकानेक विद्याओं, कलाओं या विज्ञानों तथा विशिश्ट विशयों को शामिल किया गया था।

1.1.4.1 धार्मिक विशयक पाठ्यक्रम (वेद)

आर्यो का जीवन दर्शन मूलत: मोक्ष से मन्दप्राणित था। इसके लिए याज्ञिक अनुष्ठान् आवश्यक एवं अपरिहार्य थे क्योंकि वैदिक कालीन शिक्षा संगठन में धार्मिक पाठ्यक्रम का विशेष महत्व थ। धार्मिक पाठ्यक्रमों के प्रमुख स्रोत चतुर्वेद थे। याज्ञिक कर्मकाण्डों से सम्बन्धित सिद्वान्तों एवं क्रियाओं के प्रतिपादन के लिये ऋग्वेद, यर्युवेद तथा सामवेद का अध्ययन अध्यापन आवश्यक था। ऋग्वेद तथा सामवेद आदि के अध्ययन के द्वारा ही याज्ञिक अनुष्ठान् विधिवत सम्पन्न हो पाते थे तथा मनुष्य के लिए मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता था। वैदिक काल में इन्हें त्रयी दिशा विद्या के नाम से जाना जाता था इनके अध्ययन को स्वस्थ्य कहते थे तथा इनका अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को क्षेत्रिय कहते थे। इनमें दक्षता प्राप्त करने के पश्चात उन्हें त्रिशुक की संज्ञा प्रदान की जाती थी।

वेदों के उपर्युक्त महत्व के कारण ही तत्कालीन साहित्य में इनके महात्मय का विशद् वर्णन मिलता है। वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार स्वयं प्रजापति ने वेदों का प्रचार किया। श्वेताश्वर उपनिषद् के अनुसार परमात्मा ने ब्रह्म को उत्पन्न करके उसे वेदों का ज्ञान कराया। वैदिक मान्यता के अनुसार वेद अनादि और अनन्त है तथा उनका ज्ञान कई जन्मों में सम्भव नहीं है।

मोक्ष प्राप्ति के लिए तथा अलौकिक तत्वों के रहस्य को जानने के लिये वेदों का बहुत अधिक महत्व था और इसीलिए उनका अनुशीलन अत्यावश्यक था। शष्ट्-प्राप्ति तथा अनिष्ठ-परिहार के अलौकिक उपाय का स्रोत वेद ही था। वेद की महत्ता इसी में थी कि प्रत्यक्ष अनुमान के द्वारा दुबौध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान कराता था। इसका ज्ञान तार्किक शिरोमणि भी सहस्त्रों अनुमानों की सहायता से भी नहीं कर सकता। इस अलौकि उपाय को जानने का एकमात्र साधन वेद ही थे। वैदिक कालीन मान्यता के अनुसार सदगति प्राप्ति हेतु वेद-वेदांगों का अध्ययन प्रत्येक ब्राह्मण का सहज धर्म होना चाहिए। वेद शास्त्र के तत्व को जानने वाला व्यक्ति इस लोक में रहता हुआ भी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है अतः वेदों का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक है।

उपनिषद् ग्रन्थ वेदों में वर्णित ईश्वरीय ज्ञान की विवेचना करते हुये ब्रह्म ज्ञान का दार्शनिक विवरण प्रस्तुत करते हैं। सूत्र ग्रन्थ वैदिक ग्रन्थों में वर्णित यज्ञादि तथा विवाहोपनयनादि कर्मो का क्रमबद्ध एवं व्यवहारिक वर्णन करते है।

1.2 सम्बन्धित शोध साहित्य का सर्वेक्षण

अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का निर्देशन है। अतीत में किया गया कार्य भावी कार्य के लिए दिशा निर्देश करता है। अनुभव कार्य की प्रकृति एवं प्रक्रिया की स्पष्टता को विकसित करता है। ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसा होता है। खोज एवं अनुसंधान की एक सतत् प्रक्रिया है। इसको निरंतर गतिमान रखने में अतीत के कार्यो की समीक्षा अनिवार्य रूप से भाग लेती हैं। सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के बिना अनुसंधानकर्त्ता का कार्य अन्धे के डंडे का सहारा जैसा लक्ष्यहीन कार्य होगा।

जिस प्रकार भवन निर्माण के लिए आधार का होना अनिवार्य है उसी प्रकार अनुसंधान के सम्बन्धित साहित्य का पुनरोवलोकन। पूर्व साहित्य के पुनरावलोकन से अनुसंधान कर्त्ता को अपने अनुसंधान-विधान की रचना में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो सकती हैं। अतीत के संचित एवं अलिखित ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान का सृजन करता है। मनुष्य के ज्ञान में अटूट क्रमिकता एवं प्रगतिशीलता होती हैं। जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक को रोग निदान हेतु औषधि सम्बन्धी ज्ञान आवश्यक है उसी प्रकार एक अच्छे अनुसंधान के लिए सम्बंधित साहित्य का अध्ययन।

गुड़, बार तथा स्केटस सम्बन्धित साहित्य के लक्ष्यों का विश्लेषण निम्न प्रकार से करते हैं -

- यह प्रदर्शित करने के लिए कि बिना आगामी अन्वेशण किये ही क्या उपलब्ध साक्ष्य प्राप्त समस्या का समाधान उपयुक्त ढंग से कर सकता है ? इस प्रकार पुनरावृत्ति होने का निवारण हो जाता है।
- समस्या के समाधान की दृश्टि से उपयोगी विचार सिद्वान्त अथवा परिकल्पनाएं उपलब्ध करना।
- परिणामों की व्याख्या करने की दृश्टि से उपयोगी तथा तुलनात्मक दस्तों की खोज करना।
- शोधकर्त्ता की सामान्य विद्वता में योग प्रदान करना।

साहित्य का सर्वेक्षण अनुसांधान की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण कदम तथा अनुसंधान की प्रक्रिया का प्राथमिक आधार है। समस्या से सम्बन्धित साहित्य के अवलोकन द्वारा हमें ज्ञात होता है कि पूर्व में इस समस्या से सम्बधित क्या कार्य हुए है ? यह समस्या सम्बन्धित साहित्य के आलोचनात्मक एवं संवेगात्मक पक्ष को लेकर होना चाहिए ताकि सर्वेक्षण से अनुसंधान में आवश्यक पुनरावृति न हो सकें और शोधकर्त्ता विद्वता प्राप्त कर सकें। इस प्रकार उसे अनुसंधान के नियम क्षेत्र के वर्तमान ज्ञान की सीमा रेखा की जानकारी हो जाती है। प्राचीन ग्रंथों एवं अनुसंधानों के अध्ययन से उसे अपने अनुसंधान के कार्यो की मौलिक संरचना करने में अर्न्तदृष्टि प्राप्त होती हैं। पूर्व अनुसंधान कर्ताओं के द्वारा सुलझायी गयी समास्याओं का समस्या विशेष की परिसीमाओं को समझने में सहायता प्रदान करते है (विश्वकर्मा, वी0पी0, 1994)।

साहित्य अवलोकन से शोधकर्त्ता के निम्नलिखित ज्ञान प्राप्त होते हैं -

- सत्यापन के लिए कुछ अनुसंधान को नवीन परिस्थितियों की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति में हमें इससे सहायता मिल सकती है।
- साहित्य के पुनरावलोकन द्वारा समय, श्रम एवं धन की बचत होती है क्योंकि किये गये कार्य की पुनरावृति होने की सम्भावना नहीं होती है।
- सम्बंधित साहित्य के अवलोकन से समस्या के समाधान को संचित विधि अपनाने में सहायता मिलती है।
- पूर्व साहित्य के अवलोकन को अनुसंधानकर्त्ताको अपने अनुसंधान विधान की रचना के लिए अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है।

- पूर्व सम्बन्धित साहित्य के अवलोकन से विचार सिद्वान्त, परिकल्पना, और परिसीमन के निर्माण में नैतिकता आती है।
- प्राचीन साहित्य के अवलोकन से प्राप्त परिकल्पनाओं के विश्लेषण द्वारा अपने परिणाम को सरल बनाने की चेष्टा कर सकते है।
- पूर्व अनुसंधानों के अध्ययन से अन्य सम्बन्धित नवीन अनुसंधानों का पता लग सकता है। अच्छे अनुसंधानों में समस्या से सम्बन्धित विषयों को उच्च कोटि के लेखों में छिपी हुई समस्याओं की चेतना अपनी समस्याओं की परिसीमाओ को समझने तथा उसे स्पष्ट बनाने में सहायक सिद्ध होती है।

1. चटर्जी ने अपने शोध ''एन्सियण्ट हिन्दू एजूकेशन ऐज डिस्क्राइब्ड एन उपनिषद'' विषय पर अनुसंधान कार्य किया जिसका प्रमुख उद्देश्य उपनिषदों में वर्णित हिन्दू शिक्षा का विश्लेषण करना है तथा यह देखना है कि किस प्रकार इसने व्यक्ति विशेष के आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक विकास में सहायता पहुँचायी। इस शोध कार्य के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन शिक्षा में ज्ञानार्जन हेतु छात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि एवं अनुवांशिकता का विशेष महत्व था तथा पाठ्यक्रम में धार्मिक विषयों के साथ ही लौकिक विषयों को भी सम्मिलित किया गया था (चटर्जी, सी0 1950)।
2. गोखले ने ''बुद्धिस्ट एजूकेशन इन इण्डिया एण्ड एब्रॉड'' विषय पर अध्ययन किया जिसका उद्देश्य बौद्ध धर्म के विभन्न अंगों में शिक्षा के उद्भव और विकास, उसको प्रभावित करने वाले अनेक घटकों का अलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। शोधकर्त्ता ने इसकी तुलना ब्राह्मणीय, जैन, मुस्लिम तथा ईसाई शिक्षा संगठनों से भी की है। इस अध्ययन कार्य में कार्य की संप्राप्तियों से प्राप्त होता है कि बौद्ध-शिक्षा पाठ्यक्रम में मूलत: धार्मिक विशयों का सन्निवेश किया गया था। परन्तु कालान्तर में इसमें अनेक विद्याओं, उद्योगों तथा विविध सम्प्रदायों के दार्शनिक विषयों को भी स्थान प्रदान किया गया (गोखले, वी0बी0 1951)।
3. जैन शिक्षा-व्यवस्था के सम्पूर्ण अंगों का ऐतिहासकि सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुये पाण्डेय ने अपने शोध कार्य दि जैन सिस्टम ऑफ एजूकेशन में इसकी तुलना ब्राहमणयी, बौद्ध एवं यूरोपीय शिक्षा-पद्धति से की है। इस कार्य के परिणामों से ज्ञात होता है कि जैन शिक्षा संगठन पूर्णतया धार्मिक था। इसके उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण करने में सक्षम थे (पाण्डेय,एन0 देश 1955)।
4. वर्तमान भारतीय शिक्षा-व्यवस्था से सम्बन्धित कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुयेदिवाकर ने ''ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ दि एजूकेशनल फिलास्फी ऑफ उपनिषद्'' नामक अनुसंधान कार्य में औपनिषदिक दर्शन की पृष्ठभूमि में शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्य विशयों तथा शिक्षण विधियों आदि का अध्ययन विस्तृत रूप से किया है। इस अध्ययन के निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि उपनिषद् को महत्व दिया गया था तथापि अन्य उपयेागी एवं व्यवहारिक विषयों की उपेक्षा नहीं की गयी थी। शैक्षिक आदर्श एवं मान्यतायें बालकों का सर्वांगीण विकास करने में समर्थ थी। दिवाकर, एस0एम0 (1960)।
5. सफाया ने ''ए क्रिटिकल एण्ड हिस्टारिकल एनालिसिस ऑफ साइकोलाजीकल स्पैकुलेशन इन इण्डियन फिलासफिकल लिटरेचर'' पर अनुसंधान कार्य किया। इस अध्ययन का प्रमुख अभिप्राय भारतीय दार्शनिक साहित्य में मनोवैज्ञानिक परिकल्पनाओं का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण करना है तथा अनुभव अवलोकन, तर्क, अन्त:दृश्टि तथा अन्तर्चिन्तन आदि मनोवैज्ञानिक विधियों का आधार दार्शनिक ग्रन्थों में खोजना है। इस शोध -कार्य के निष्कर्षो से ज्ञात होता है कि दर्शन सम्बन्धी विषयों के लिए अपनाई जाने वाली शिक्षण विधियाँ पूर्णतया उपयुक्त एवं मनोवैज्ञानिक थी तथा इनके प्रयोग से विशय-वस्तु छात्रों के लिये बाह्य एवं आकर्षक हो जाती थी (सफाया, आर0एन0 1965)।
6. अपने शोधकार्य "एजूकेशन इन एन्सियन्ट इण्डिया विद स्पेशल रेफरेन्स टू वाल्मीकि रामायण'' पर झा, एच0 ने अध्ययन किया। शोध-कार्य का प्रमुख अभिप्राय वाल्मीकि रामायण के संदर्भ विशेष में प्राचीन भारतीय शिक्षा का विशिष्ट अध्ययन करना है। इस कार्य के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि रामायण-काल में शैक्षिक संगठनात्मक स्वरूप, आदर्शात्मक शैक्षिक उद्देश्यों का विशेश महत्व था। अध्ययनकर्त्ता का मत है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित शैक्षिक दृष्टिकोणों को वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में सन्निहित किया जा सकता है (झा, एच0 1972)।

7. शर्मा एम0 एल0 ने अपने शोध कार्य ''रामराज के शैक्षिक निहितार्थ'' के अन्तर्गत तुलसीकृत रामचरित मानस के उतरकाण्ड के संदर्भ में अध्ययन किया। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्यों में रामचरितमानस के उतरकाण्ड में वर्णित रामराज के विशेषताओं का वर्गीकरण एवं विवेचना करना तथा रामराज की विशेषताओं की प्रसांगिकता के आध ार पर वर्तमान भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के लिए कुछ व्यवहारिक सुझाव देना और तत्सम्बन्धित शिक्षा को निर्दिष्ट करना था। इस अध्ययन में पाया गया कि वैदिक साहित्य के अध्ययन एवं वेद पुराणों की कथा सुनने एवं शास्त्रानुकूल व्यवहार करने से मनुश्य का जीवन आदर्श बन सकता है। मनुष्यों को प्रकृति के तत्वों के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। रामराज के अधीन अपनाये जाने वाले नागरिक गुणों के द्वारा भारतीय नागरिकों को आदर्श नागरिक और भारतीय समाज को आदर्श समाज बनाया जा सकता है (शर्मा, एम एल 1998)।
8. "स्वामी रामदेव के दर्शन में निहित शैक्षिक विचारों का अध्ययन'' विषय पर किए गए अनुसंधान कार्य में शर्मा, आशीष ने पाया कि स्वामी रामदेव जी के शैक्षिक विचार वर्तमान सन्दर्भ में प्रसांगिक हैं। (शर्मा, आशीष 2008)
9. अग्रवाल शिल्पीने "आचार्य रजनीश के शैक्षिक विचारों की प्रासांगिकता'' पर शोधकार्य किया। अपने अध्ययन में इन्होंने पाया कि आधुनिक समय में इनके विचार प्रसांगिक हैं (अग्रवाल शिल्पी 2009)।
10. "आचार्य विनोवा भावे के आधुनिक भारतीय शिक्षा में उपादेयता'' विषय पर विपिन ने शोध कार्य किया और पाया कि आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक विचार वर्तमान समय में उपादेय है (कुमार विपिन 2009)।

उपरोक्त सर्वेक्षणात्मक कार्यों की विवेचना से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में अब तक जितने भी अनुसंधान कार्य हुए है उन सभी में वैदिक कालीन शिक्षा दर्शन से हमारे देश में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, किन्तु अनुसंधान की दृष्टि से उनका तुलनात्मक अध्ययन स्वामी रामदेव जी के सन्दर्भ में नहीं हुआ है। अत: शोधकर्त्ता द्वारा उक्त शीर्षक पर गहन विश्लेषण के साथ सम्बन्धित विषय पर अनुसन्धान हेतु शीर्षक का चयन किया गया है।

1.3 समस्या कथन

वर्तमान शोध समस्या को स्पष्ट रूप से निम्न शीर्षक के रूप में प्रस्तुत-"स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन'' है।

1.4 उद्देश्य

निम्नलिखित उद्देश्यों के आधार पर अध्ययन किया जाएगा -

- वैदिक कालीन शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना।
- स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों को सूत्रबद्ध करना।
- वैदिक कालीन और स्वामी रामदेव के शिक्षा दर्शन की क्रमबद्ध एवं तुलनात्मक विवचेना करना।

वर्तमान परिस्थितियों के अध्ययनों से स्पष्ट है कि वर्तमान मानव समाज विभिन्न प्रकार के प्रयोगों के दौर से गुजर रहा है। हम यह अनुभव करते हैं कि विगत् दो शताब्दियों से हमने विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में काफी प्रगति कर ली है लेकिन हमारी प्रगति की तुलना में इसके द्वारा इससे कहीं अधिक समस्यायें उत्पन्न हुई है। यह स्पष्ट तौर पर अनुभव किया जा चुका है कि व्यक्तित्व निर्माण व समाज का विकास एक दूसरे से अलग नहीं वरन् एक ही प्रक्रिया है।

स्वामी विवेकानन्द जी भी कहते है ''ऐ भारत यही तेरे लिए भयानक खतरे की बात है कि पाश्चात्य संस्कृतियों की नकल करने की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि भले बुरे का निश्चय, अब विचार, बुद्धि, शास्त्र तथा हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता है। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें चाहें, वहीं अच्छा है तथा जिसकी निन्दा करें या जिसे न चाहें, वही बुरा है। खेद है इससे बड़ी मूर्खता का परिचय भला और क्या होगा''। वे आगे लिखते हैं याद रखो दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं जहाँ की संस्थायें अपने ध्येय और आदर्श में इस देश की संस्थाओं से सचमुच अच्छी हों। मैने संसार के प्राय: सभी देशों में जाति प्रथा देखी है पर कहीं भी उसकी पृष्ठभूमि और उसके उद्देश्य उतने महान नहीं है जितने की यहाँ भारतवर्ष के।

स्वामी विवेकानन्द जी का मत था कि सर्वप्रथम हमारे उपनिषदों, पुराणों एवं अन्य शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य निहित है, उन्हें सब ग्रन्थों के पृष्ठों से बाहर लाकर, मठों की चहारदीवारियों को भेदकर, वनों की नीरवता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय विशेष के

हाथों से छीनकर देश में सर्वत्र विखेर देना चाहिए ताकि ये सत्य सम्पूर्ण देश की जनता के जीवन को आलोकित करें।

स्वामी रामदेव का मत है कि शिक्षा वह नहीं जो स्कूलों में पढ़ायी जाये और व्यक्ति के व्यवहार में कोई परिवर्तन न लाये। बल्कि शिक्षा वह है जो व्यक्ति का जीवन रूपान्तरित कर दे, उसकी सोच बदल दे, उसकी जीवन शैली बदल दे। आज स्वामी रामदेव ने योग शिक्षा को इतना सरल, वैज्ञानिक और व्यावहारिक बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत किया कि उसकी उपयोगिता को देखते हुये समाज ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। स्वामी रामदेव के विचारों ने इस देश में योग क्रान्ति ला दी है। लोग आहार-विहार में संयम रखने लगे हैं। पथ्य-अपथ्य का विचार करके भोजन ग्रहण करते हैं व ब्रह्म मुहुर्त की बेला में योग एवं प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। यह बात स्वामी रामदेव की प्रभाविता, प्रमाणिकता एवं उपयोगिता सिद्ध करती है। स्वामी रामदेव के प्रभाव से राजस्थान, बिहार, गुजरात एवं कई अन्य राज्यों ने स्कूली शिक्षा में योग को पाठ्यक्रम में स्थान दिया है।

उ.प्र. में भी शारीरिक शिक्षाा को अनिवार्य बना दिया गया है तथा शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्वामी रामदेव की शिक्षाओं को शामिल किया गया है।

1.5 अध्ययन सामग्री का चयन

इसके लिए विभिन्न प्रकार की पुस्तकें, सन्दर्भ-ग्रंथ,पत्र-पत्रिकाएँ, शिक्षाशालाओं के विचार एवं दूरदर्शन चौनलों से उपलब्ध सामग्री को आधार बनाया जाएगा। इसके अलावा अध्ययनकर्त्ता द्वारा मेरठ, लखनऊ एवं हरिद्वार के विभिन्न शैक्षिक संस्थानों के पुस्तकालयों से उपलब्ध सामग्रीयों का अध्ययन तथा स्वामी रामदेव द्वारा संचालित पतंजलि योग पीठ के विभिन्न केन्द्रों के शैक्षिक भ्रमण से उपलब्ध तथ्यों को आधार बनाया जाएगा।

1.5.1 अध्ययन की शोध विधि

शोध, मानव को प्रगति के पथ पर ले जाने वाला एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक साधन है। यह ज्ञान की खोज वैज्ञानिक ढंग से करने की प्रक्रिया है। वास्तव में अनुसंधान एक प्रक्रिया है जिसमें प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर किसी समस्या का विश्वसनीय समाधान ज्ञात किया जाात है। अनुसंधान में नवीन तथ्यों की खोज की जाती है तथा नवीन सत्यों का प्रतिपादन किया जाता है। शोधकार्य द्वारा प्राचीन प्रत्ययों तथा सत्यों का नवीन अर्थापन किया जाता है।

''अनुसंधान अधिक औपचारिक, व्यवस्थित तथा गहन प्रक्रिया है जिसमें वैज्ञानिक विधि विश्लेषण को प्रयुक्त किया जाता है। अनुसंधान में व्यवस्थित स्वरूप को सम्मिलित किया जाता है जिसके फलस्वरूप निष्कर्ष निकाले जाते हैं और उनका औपचारिक आलेख तैयार किया जाता है (वेस्ट, जॉन डब्ल्यू0,1963)।'''

इस समस्या के अध्ययन करने हेतु ऐतिहासिक सर्वेक्षण विधि व दार्शनिक अनुसंधान विधि को संयुक्त रूप में अपनाया गया है। इस विधि के अनुरूप स्वामी रामदेव तथा वैदिक काल के सम्बन्ध में उपलब्धि साहित्य प्रतिवेदन, उनके द्वारा लिखित पुस्तकें तथा शिक्षा सम्मेलनों एवं समितियों में उनके विचारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण करके विचारों में निहित मूल्यों का सत्यापन भी किया गया है।

1.5.2 ऐतिहासिक अनुसंधान

इतिहास व्यक्ति की उपलब्धियों का सार्थक प्रमाण है। यह व्यक्तियों, घटनाओं समय तथा स्थानों के बीच सम्बन्धों का तथ्यात्मक विवरण है। ऐतिहासिक समस्याओं के अन्वेशण में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग ऐतिहासिक अनुसंधान है। इसमें समस्या की सीमायें एवं पहचान, परिकल्पनाओं का निर्माण, आंकडों का संग्रह, सत्यापन, सप्रमाणता एंव विश्लेषण, परिकल्पना की जाँच एवं ऐतिहासिक विवरण का आलेख निहित होता है।

1.6 निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययनोपरान्त शोधकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि-

1. स्वामी रामदेव के विचारों को शिक्षा के पहलु को ध्यान में रखते हुए बृहत अनुसंधान कार्य किया जाये।
2. उनकी शैली एवं प्रभाव का अध्ययन किया जाये ताकि कक्षा शिक्षण को और प्रभावशाली बनाया जा सके।

3. स्कूली शिक्षा के विभिन्न कक्षाओं के स्तरानुरूप स्वामी रामदेव से विचार करने के बाद योग सम्बन्धित पाठ्यक्रमों का विकास किया जाये।
4. सम्पूर्ण देश के विद्यालयों में योग शिक्षा को अनिवार्य स्थान दिया जाये। योग को शिक्षा में अलग से सामान्य शिक्षा के रूप में शामिल किया जाना चाहिए न कि शारीरिक शिक्षा के रूप में एक भाग के तहत।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुड,सी वी, बार ए0 एस स्केट्स डी ई0 (1936) मेथोडोलोजी आफ एजुकेशनल रिसर्च, एपलेटान काण्ट्री को0 इन्क न्यूयार्क।
2. वेस्ट, जे0डब्लू0(1963) रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया प्रा0लि0।
3. कर्लिगर एफ0एन0(1969)फाउन्डेशन आफ विहेवियर रिसर्च एपलेटान काण्ट्री को0 इन्क न्यूयार्क।
4. ओड0 एल0 के0(2004) शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
5. कपिल, एच0 के0 (2003) अनुसन्धान विधियां, व्यवहापरक विज्ञानों में हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन, आगरा।
6. कौल, लोकेश (2004) शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नई दिल्ली।
7. लाल रमनबिहारी (1997) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तौगी पब्लिकेशन, मेरठ।
8. शर्मा, आर0ए0 (2006) शिक्षा अनुसन्धान, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
9. विश्वकर्मा वी0 पी0 (1994) ''सामान्य एवं अन्धे बालक बालिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन'' क्षेत्रिय शिक्षा संस्थान (एन0सी0ई0आर0टी0) अजमेर द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती वि0 वि0 अजमेर को समर्पित, प्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध। पेज 48-89
10. वेस्ट जान डब्यू एवं जेम्स वी0कान (2003) रिसर्च इन एजूकेशन, प्रिन्टिस हाल पब्लिकेशन लि0, दिल्ली।
11. स्वामी रामदेव (2004) योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
12. स्वामी रामदेव (2004) औषध दर्षन, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
13. स्वामी रामदेव (2004) प्राणायाम रहस्य, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
14. स्वामी रामदेव (2005) योग दर्शन, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
15. स्वामी रामदेव (2005) मोटापा व मधुमेह के लिए योग, दिव्य प्रकाशन हरिद्वार।
16. स्वामी रामदेव (2006) विज्ञान की कसौटी पर योग, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।

हिंदी संत साहित्य पर बौद्ध धर्म-दर्शन का प्रभाव

जितेन्द्र सिंह

शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मध्यकालीन हिंदी साहित्य का पूर्व मध्य युग भक्ति काल के नाम से अभिहित किया जाता है। इस काल में भक्तिपरक रचनाओ की प्रधानता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत 1375 से संवत 1700 तक के काल खण्ड को भक्ति काल कहा है। भक्ति काल में काव्य की धाराएँ हुई- निर्गुण काव्य धारा और सगुण काव्य धारा। इन दोनों धाराओं की दो-दो शाखाएँ हुई। निर्गुण धारा की दो शाखाएँ-ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी हुई। सगुण धारा की दो शाखाएँ-राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा।

भक्ति कालीन साहित्य पर बौद्ध धर्म का अप्रत्यक्ष प्रभाव रहा। भक्तिकाल के उद्भव में ही बौद्ध धर्म प्रभाव माना जाता है। सगुण भक्ति काव्य धारा में बौद्ध प्रभाव गौण है। क्योंकि सगुण भक्ति करने वाले कवि राम और कृष्ण की उपासना करते थे। वे वैष्णव भक्ति के लिए सगुण पद्य की रचनाएँ करते थे।

प्रेमाश्रयी शाखा का काव्य सूफी काव्य कहलाता है। सूफी मत इस्लाम से निकला है। इस्लाम में शरीयत (कर्मकांड) की प्रतिक्रिया सूफी मत है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वैदिक कर्मकांड का परिणाम वैष्णव मत है। सूफी मत के प्रेमतत्व में इश्क हकीकी एवं इश्क मजाजी की भावना निहित है।बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव संत काव्य पर पड़ा।

हिंदी साहित्य में निर्गुणोपासक ज्ञानाश्रयी कवियों को सन्त कहा गया। संत शब्द की उत्पत्ति सत्य शब्द से मानी जाती है। सत्य रूपी परम तत्व का साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति को संत कहा जाता है। सन्त आत्मोन्नती और लोकमंगल की कामना करता है। संत कवियों में कबीर, दादू, नानक, रैदास, सुंदरदास प्रमुख हुए।

संतों की बोलियों पर नाथ पंथियों की अंतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, कुंडलिनी योग, सहज साधना, एकेश्वरवाद है। संतो पर बौद्ध धर्म का प्रभाव बौद्ध सिद्धों और नाथों से होते हुए पहुँचा। ''बौद्ध तत्ववाद, जो निश्चय ही बौद्ध आचार्यों की चिंता का देन था, मध्य युग के हिंदी साहित्य के उस अंग पर अपना निश्चित पद चिन्ह छोड़ गया है जिसे 'संत साहित्य' कहा गय है।''[1]

रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, ''अगर बुद्ध नहीं होते तो इस देश में दादू और कबीर, नानक और हरिदास निरंजनी में से कोई नही हुआ होता। जाति प्रथा को शिथिल करके एंव वर्णाश्रम-धर्म को चुनौती देकर बुद्ध और उनकी परंपरा के अन्य साधुओं ने ही भारत में वह अवस्था उत्पन्न की, जिसमें निर्गुनियाँ सन्तों का मत फूल-फल सका।''[2]

बौद्ध धर्म का प्रभाव संपूर्ण संत परंपरा पड़ा। संत पंरपरा पर बौद्ध प्रभाव निम्नलिखित हैं

बाह्यआडंबर का खंडन-

बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्मकाण्डों और यज्ञ आदि की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। बुद्ध ने बाह्य आडंबर का खंडन कर आत्मशोधन पर बल दिया यही आडंबर निषेध बौद्ध सिद्धों और नाथों के यहाँ मिलता हुआ। संत परंपरा में भी बाह्य आडंबर का खंडन मिलता है। सभी संतो ने पूजा-पाठ की बजाय आचरण और सद्भावना को महत्व दिया। तात्कालीन समय में हिन्दू-मुस्लिम आदि धर्मों के अंदर कर्मकांड और आडंबरों का बोलबाल था। हिन्दू मन्दिरों में मूर्ती-पूजा, वेद पाठ, कर्मकांड व्याप्त था। संत कबीर के पद्यों में इनके प्रति तीखी प्रतिक्रिया मिलती है।

तीरथ में सब पानी है होवे नहीं कछु अन्हाय देखा।
प्रतिमा सकल तो जड़ हैं भाई, बोलें नही बोलाय देखा।
पुरान कोरान सवै बात है, या घट का परदा खोल देखा।
अनुभव की बात कबीर कहै यह, सब है झूठी पोल देखा।'[3]

संत कबीर ने किसी को नहीं बख्शा। जहाँ भी उन्हें अनुचित लगा, उन्हौने प्रतिक्रिया दी। मुस्लिम त्यौहारों पर रोजा रखते है और नमाज पढ़ते हैं। कबीर ने इसकी भर्त्सना की-

'दिनभर रोजा रहत है राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बदगी, कैसे खुसी खुदाय।।[4]

कबीर, कर्मकांड, मूर्तीपूजा, तीर्थ यात्रा आदि के कट्टर विरोधी थे। ईश्वर को घट-घट में व्याप्त मानते थे।

'मोकों कहाँ ढूढेंइ बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मै मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरन्ते मिलि हौं, पल भर की तलास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वांसो की स्वाँस में।।'[5]

यही प्रवृत्ति संपूर्ण संत परंपरा में दिखाई पड़ती है। प्राय: सभी संतो ने एक स्वर में बाह्याचारो की भर्त्सना की।

''संत कवियों ने वैदिक साहित्य, वैदिक परंपराओं एवं बाह्याचारों की जो आलोचना आधोपांत की है, वह सत्य बौद्ध धर्म का ही प्रभाव है।''6

जाति-वर्ण विरोध-

बौद्ध धर्म में वर्णाश्रम व्यवस्था और जाति का निषेध किया गया है। बुद्ध ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और सर्वोच्चता को नकार दिया था। बौद्ध सिद्धों और नाथों ने जाति और वर्ण व्यवस्था पर व्यंग्य किया। सिद्धों और नाथों की यही प्रवृत्ति संत साहित्य में भी मिलती है। इनके यहाँ छुआछूत और भेदभाव का कोई स्थान नहीं है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो वर्णाश्रम व्यवस्था और जाति प्रथा का विरोध संत काव्य परंपरा का आधार है। कबीर का प्रसिद्ध पद्य है-

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार की, पड़ी रहने दो म्यान।'[7]
संत रैदास ने जाति भेदभाव पर व्यंग्य किया-
'जाति ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा।
रामराज की सेवा कीन्ही, कहि रविदास चमारा।'[8]

गौतम बुद्ध ने ब्राह्मणों की जातिगत श्रेष्ठता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा किया। उन्हौने कहा कि जन्म के आधार पर कोई कैसे श्रेष्ठ हो सकता है। कबीरदास भी ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर सवाल खड़ा करते हैं-

'जे तू बाभन बभनीं जाया।
तौ आंन बाट होई काहे न आया।'9

जाति का विरोध सभी संत ने किया है। रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, ''बौद्ध धर्म ने जातिवाद का जो डटकर विरोध किया, उसी से मध्यकाल में जाकर निर्गुण मत का प्रचार करने वाले सन्तों को यह साहस हुआ कि वे भी जाति-प्रथा को नहीं मानें।''10

गुरू महिमा का वर्णन-बौद्ध सिद्धों और नाथों ने गुरू को अत्यंत महत्व दिया। सिद्धों ने माना कि सिद्धि गुरू के अभाव में नहीं हो सकती। गुरू के प्रति यही भाव संत मत में भी है। संतो ने भी गुरू को मार्गदर्शक और उद्धारक माना। स्वयं कबीर ने गुरू को ईश्वर से साक्षात्कार कराने वाला माना है-

गुरू गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरू आपने जिन गोविन्द दियो बताए।''11

संतो में गुरू परंपरा पायी जाती है। सिक्ख पंथ में दस गुरू हुए। बच्चन सिंह तात्कालीन समय के गुरू महत्व के बारे में लिखते हैं- ''उस समय गुरू का बहुत अधिक महत्व था। प्रायः सभी संत-भक्तों ने गुरू का गुणानुवाद किया है।''[12]

कायायोग-

बौद्ध धर्म का आधार शील और अनुशासन है। गौतम बुद्ध ने निर्वाण की प्राप्ति के लिए अष्टांगिक मार्ग दिया। अष्टांगिक मार्ग मूलतः शारीरिक साधना है। बौद्ध सिद्ध भी काया योग पर बल देते है। नाथों ने भी को अपनाया। नाथमार्ग के परवर्ती ग्रन्थें में हठयोग कुण्डलिनी रहस्य के बारें में वर्णन है। संतों ने भी शारीरिक शुचिता और साधना को अपनाया। संत मानते थे कि देह में ही समस्त तीर्थ और देवता उपस्थित हैं। अतः वे शारीरिक शोधन पर बल देते है-

'जल विच कमल, कमल विचल कलियां, जहैवासुदेव अविनाशी।
घर में गंगा, घर में जमुना, नहीं द्वारिक कासी।
घर वस्तु बाहर क्यों ढूढे, बन बन फिरा उदासी।
कहै जन सिंगा, सुनो भाई साधो अमरपुर के वासी।''[13]

उलटबाँसी-

बौद्ध सिद्धों की बानियों में भी उलटबाँसी मिलती है। बौद्ध सिद्धों की भाषा को संधा भाषा कहा गया है। अर्थात जो भाषा शाम के समय अस्पष्ट दिखने वाली वस्तुओं के समान है। संत परंपरा ने इसी भाषा को अपनाया। उन्हौने अपने पदों में साधना को जन-जीवन के प्रतीकों को लेकर समझाया है। कबीर का एक पद्य-

'नैया बिचल नदिया डूबति जाए।'[14]

इस तरह और कई विशेषताएँ है जिसे संतो ने बौद्ध धर्म से ग्रहण किया। बौद्ध सिद्ध स्वानुभूति पर बल देते थे। संतो ने भी अपने निजी अनुभव को आम जन से साझा किया। बौद्ध सिद्धों शास्त्रज्ञान और रूढिघ्यों को अस्वीकार किया। संतो ने भी शास्त्रज्ञान की तरफ आकर्षित नहीं हुए उन्हौने सहजज्ञान को अपनाया-

'मैं कहता हूँ आंखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।'[15]

बौद्ध धर्म ने सदाचरण पर बल दिया। संत भी सदाचरण के लिए जाने जाते है। संतो की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ सामान्य जनजीवन के निकट है। संत काव्य की भाषा जन सामान्य की भाषा है। इनके पद्यों में ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी तथा राजस्थानी का प्रयोग मिलता है। बुद्ध ने उपदेश जन सामान्य की भाषा में दिया बुद्ध के समय आम जन की भाषा पालि थी।

बौद्ध धर्म के मूल में सत्य और अहिंसा है। यह पंचमहाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) के अन्तर्गत आताहै। संतकाव्य में लोभ-मोह-हिंसा आदि की निंदा मिलती है।

समग्र दृष्टि से देखा जाए तो संत मत बौद्ध धर्म के निकट है। संतो के ब्रह्म उपासना और बौद्ध धर्म के अनिश्वरवाद के मुख्य अन्तर को छोड़ दिया जाए तो संतो की प्रवृत्ति और विशेषताएँ बौद्ध धर्म से प्रभावित है।

सन्दर्भ सूची-

1. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2019, पृ0सं0-32
2. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, लोक भारती, प्रकाशन, संस्करण-2019, पृ0सं0-188
3. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2016 पृ0सं0-202
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2014, पृ0सं0-51
5. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2014, पृ0सं0-179

6. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र (सं0), मयूर प्रकाशन, संस्करण-2017, पृ0सं0-114
7. कबीर बचनावली, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', बाणी प्रकाशन, संस्करण-2010, पृ0सं0-122
8. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2016, पृ0सं0-93
9. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2019, पृ0सं0-39
10. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, लोक भारती, प्रकाशन, संस्करण-2019, पृ0सं0-187
11. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र (सं0), मयूर प्रकाशन, संस्करण-2017, पृ0सं0-115
12. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2016, पृ0सं0-86
13. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र (सं0), मयूर प्रकाशन, संस्करण-2017, पृ0सं0-125
14. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2014, पृ0सं0-51
15. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र (सं0), मयूर प्रकाशन, संस्करण-2017, पृ0सं0-120

आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य एवं विकास

शिप्रा अग्रवाल

शोधार्थिनी, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० हलधर यादव

शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत संसार का गुरू रहा है। इसका अतीत रत्नों से भी अधिक जाज्वल्यमान रहा है। यह 'सोने की चिडिघ्या' कहा जाता था। इसकी संस्कृति करोड़ों वर्ष पुरानी है। देवना भी स्वर्ग से भारत-भूमि में आने को लालायित रहते हैं, पर यह बड़े दु:ख की बात है कि ऐसा विश्व-शिरोमणि भारत देश आज पतन की ओर जा रहा है। राष्ट्र का नैतिक चरित्र ह्रासोन्मुख क्यों होता जा रहा है? यह एक विचारणीय विषय है। भारत अपनी जिस विशेषता के कारण विश्व मान्य है वह है उसका धर्म और दर्शन। इसी के बल पर यहाँ के निवासी कभी देवतुल्य जीवन जीते थे, परन्तु आज स्थिति विपरीत हो गयी है तो भी यदि हम सच्चे मन से प्रयत्न करें तो पुन: वह गौरव प्राप्त कर सकते हैं।

वेद समग्र ज्ञान का उत्स है जिसका उद्भव ब्रह्मा जी से है वैदिक साहित्य अत्यन्त विशाल है। इसमें संहिता ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषद् सम्मिलित हैं। वेदार्थ के सम्यगव बोध के लिए शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष-इन छ: वेदांगों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के व्यापक स्वरूप को प्रकट करने के लिए साजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं विश्वजनीन सभी विषय समाहित हैं।

देश और समाज को पतन से बचाने के लिए नैतिक शिक्षा भारत के हर विद्यालय में अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए-इस विषय में दो मत नहीं हो सकते, किन्तु नैतिक शिक्षा कैसे दी जाए यह एक विवादास्पद विषय है। शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए गठित आयामों ने समय-समय पर नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता तो स्वीकार की और अपनी योजना भी प्रस्तुत की, किन्तु उसका कार्यान्वयन बहुत कम देखने में आया।

1.1 वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। तब यह अनुमान लगाया जा सकता हैं। कि उस काल में यह शिक्षा केवल शिक्षित परिवारों के बच्चों तक सीमित थी और इसका कोई सर्वमान्य स्वरूप निश्चित नहीं था। परिणाम यह हुआ कि इस काल में प्राथमिक शिक्षा का समुचित विकास नहीं हो सका।

1.2 बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं ने अपने मठों एवं विहारों में प्राथमिक एवं उच्च, दोनों स्तरों की शिक्षा की व्यवस्था शुरू की। यह शिक्षा बौद्ध संघों के नियन्त्रण में थी, इसलिए दोनों स्तरों की शिक्षा का स्वरूप निश्चित हुआ, उनके उद्देश्य निश्चित हुए और उनके

पाठ्यक्रम निश्चित हुए। बौद्धों ने अपने मठों एवं विहारों में सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्रवेश देना शुरू किया, परिणामस्वरूप सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के अवसर सुलभ हुए, परन्तु ये बौद्ध मठ एवं विहार देश के सभी स्थानों पर स्थित नहीं थे, इसलिए इस काल में भी प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ नहीं बनाया जा सका। हाँ, एक ओर बौद्ध मळों एवं विहारों में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होने और दूसरी ओर बौद्धों की टक्कर में ब्राह्मणों द्वारा पाठशालाओं की स्थापना होने से प्राथमिक शिक्षा का विकास अवश्य प्रारम्भ हुआ।

1.3 पूर्व मुगल काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

1192 में मौहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर भारत में मुस्लिम राज्य की नींव डाली। इस विजय के बाद वह तो स्वदेश लौट गया, परन्तु अपने सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली का शासक बना गया। 1206 में मौहम्मद गौरी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का बादशाह बन गया और उसने बख्तियार खिलजी को अपना सेनापति बनाया। शिक्षा के क्षेत्र में उसका पहला कदम था बख्तियार खिलजी द्वारा उस समय के विश्वविख्यात बौद्ध विश्वविद्यालय नालन्दा और क्रिमशिला के भवनों को धराशायी करवाना, उनके पुस्तकालयों को जलवाना और उनके शिक्षकों को मरवा डालना। परिणामत: बौद्ध शिक्षा के अन्य क्षेत्र भयवश स्वयं बन्द हो गए, परन्तु ब्राह्मणीय शिक्षा केन्द्र दबे पाँव अवश्य चलते रहे। कुतुबुद्दीन ऐबक का शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा बड़ा कार्य था- स्थान-स्थान पर मस्जिदें बनवाना और उनके साथ प्राथमिक शिक्षा केन्द्र मकतबों का निर्माण एवं संचालन। इन मकतबों में अरबी और फारसी भाषाओं का अध्ययन और कुरान शरीफ की आयतों को कण्ठस्थ करना अनिवार्य था, परिणामत: हिन्दू जाति के बच्चे इनमें प्रवेश नहीं लेते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक के बाद दिल्ली की गद्दी पर जो भी मुसलमान बादशाह बैठे उन्होंने जगह-जगह मकतब और मदरसे स्थापित करने का कार्य जारी रखा। 1451 में भारत में लोदी वंश का शासन स्थापित हुआ। लोदी वंश के द्वितीय बादशाह सिकन्दर लोदी ने आगरा को अपनी राजधानी बनाया और आगरा, मथुरा तथा कुछ अन्य स्थानों पर अनेक मकतब और मदरसों का निर्माण कराया। सिकन्दर लोदी उदार प्रवृति का व्यक्ति था, उसके शासन काल में हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार किया गया, परिणामत: मकतबों के साथ-साथ ब्राह्मणीय पाठशालाओं की संख्या भी बढ़ी और हिन्दू बच्चों ने मकतबों और पाठशालाओं में प्रवेश लेना शुरू किया और प्राथमिक शिक्षा के विकास में कुछ गति आई।

1.4 मुगलकाल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

1556 में बाबर ने लोदी वंश के अन्तिम बादशाह इब्राहिम लोदी को पराजित कर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। बाबर अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं का विद्वान था। उसने अपने शासन काल में यहाँ अनेक मकतबों और मदरसों का निर्माण कराया। बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूँ ने भी शिक्षा के प्रसार में रूचि ली। हुमायूँ के बाद उसका बेटा अकबर गद्दी पर बैठा। अकबर स्वयं पढ़ा-लिखा नहीं था, परन्तु वह कला और विद्या का बड़ा प्रेमी था, साथ ही वह बहुत उदार प्रवृति का व्यक्ति था। उसने अपने शासन काल में आगरा, फतेहपुर सीकरी और अन्य स्थानों पर अनेक मकतब और मदरसों का निर्माण कराया और इनमें भारतीय भाषाओं की शिक्षा की भी व्यवस्था की और इनमें हिन्दू-मुसलमान दोनों के बच्चों को समान स्थान दिया। साथ ही उसने हिन्दू शिक्षण संस्थाओं को भी आर्थिक सहायता देना शुरू किया। परिणामत: उसके शासन काल में शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक विकास हुआ, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी। अकबर के बाद उसका बेटा जहाँगीर गद्दी पर बैठा। उसने पुराने मकतब और मदरसों की मरम्मत कराई और उनकी आर्थिक सहायता जारी रखी। जहाँगीर के उत्तराधिकारी शाहजहाँ ने भी इस कार्य को जारी रखा। परन्तु कुछ वर्ष बाद ही शाहजहाँ को गद्दी से हटाकर उसका बेटा औरंगजेब बादशाह बन बैठा। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था, हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार बहुत द्वेषपूर्ण था। उसने गद्दी पर बैठते ही हिन्दू शिक्षण संस्थाओं को नष्ट करवा डाला और उनके स्थान पर मुस्लिम शिक्षण संस्थाएँ-मकतब और मदरसे स्थापित किए।

1.5 ईसाई मिशनरी काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

भारत में आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश करने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को हैं। यहाँ सर्वप्रथम 1510 में पुर्तगाली व्यापारी और उनके साथ पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया, उन्होंने गोआ, कोचीन और बान्द्रा में प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की। इन स्कूलों में पुर्तगाली भाषा, स्थानीय भाषा, गणित और स्थानीय शिल्पों की शिक्षा की व्यवस्था थी। इनके बाद 1613 में ब्रिटिश

व्यापारी और उनके साथ ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया। इनके बाद इस देश में 1667 में फ्रांसीसी व्यापारी और फ्रांसीसी ईसाई मिशनरियों और 1680 में डेन व्यापारी और डेन ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया।

कम्पनी शासन काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

1757 के प्लासी युद्ध और 1764 के बक्सर युद्ध की विजय के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी तत्कालीन बंगाल, बिहार और मगध प्रान्त की शासक बन गई, उसके हौंसले बुलन्द हो गए। 1773 में इंग्लैण्ड की सरकार ने रेग्युलेटिंग एक्ट पास किया और उसके तहत वारेन हेस्टिंग को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया और इस प्रकार यहाँ एक नए युग की शुरूआत हुई। 1793 में ब्रिटेन की पार्लियामैन्ट ने कम्पनी को नया आज्ञापत्र प्रसारित किया। यूँ तो इस आज्ञा पत्र में कम्पनी को अपने अधीन भारतीयों की शिक्षा व्यवस्था करने का कोई आदेश नहीं दिया गया था, परन्तु फिर भी उसने यहाँ अंग्रेजी प्रणाली के विद्यालय और महाविद्यालयों की स्थापना की। 1807 में लार्ड मिन्टों भारत के नए गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। उन्होंने भारतीय पद्धति के विद्यालयों की वकालत की, परन्तु ब्रिटेन संसद में विरोध होने के कारण वे ऐसा नहीं कर सकें।

1.6 ब्रिटिश शासन काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

1857 में भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति का दमन करने के बाद 1858 से यहाँ सीधे ब्रिटेन की सरकार का शासन स्थापित हो गया। लॉर्ड कैनिंग यहाँ के प्रथम गवर्नर जनरल एवं वायसराय नियुक्त हुए। 1859 में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा कर लगाया और इससे प्राप्त धनराशि से प्राथमिक शिक्षा के विकास का प्रयत्न शुरू किया, परन्तु इसमें उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। 1882 में उसने भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में इसके चार सुझाव बड़े महत्वपूर्ण थे। एक यह कि सरकार प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों पर छोड़ दे और प्रान्तीय सरकारें इन निकायों को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ में। तीसरा यह कि प्रान्तीय सरकारें इन भाषाओं के विकास के लिए प्रयत्न करें। और चौथा यह कि प्राथमिक शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जाए। इसकी सिफारिशों के आधार पर प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों को सौंप दिया गया। इन स्थानीय निकायों ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न शुरू किए। परिणाम स्वरूप प्राथमिक शिक्षा में विकास शुरू हुआ।

1.7 स्वतन्त्र भारत में प्राथमिक शिक्षा का विकास

15 अगस्त, 1947 को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। तब से अब तक के समय को स्वतन्त्र काल कहते हैं। 26 जनवरी, 1950 से हमारे देश में हमारा अपना संविधान लागू हुआ। प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में इसकी 45 वीं धारा में स्पष्ट निर्देश है- राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से दस वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा'' और बस तभी से हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क करने की ओर ठोस प्रयास किये गये, यह बात दूसरी है कि उस लक्ष्य को हम 10 वर्षों के अन्दर तो क्या आज 75 वर्ष बाद भी प्राप्त नहीं कर सके हैं।

इस बीच देश में राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर आई। राष्ट्रीय नेताओं ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की माँग की। इस सन्दर्भ में तत्कालीन बड़ौदा नरेश सियाजीराव गायकवाड़ का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 1892 में 9 ग्रामों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा योजना लागू की। इस कार्य में उन्हें पूरी सफलता मिली, परिणामत: 1906 में उन्होंने एक अधिनियम द्वारा अपने पूरे राज्य में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। 1910 में गोपालकृष्ण गोखले ने केन्द्रीय धारा सभा में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में एक प्रस्ताव रखा। सरकार ने प्रस्ताव तो स्वीकार नहीं किया, परन्तु उसके लिए प्रयत्न करने का आश्वासन अवश्य दिया। जब सरकार ने इस ओर कोई कदम नहीं उठाया तो मार्च, 1911 में गोखले ने इसे केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया। यह विधेयक भी पास नहीं हुआ, परन्तु इससे देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने हेतु एक मुहिम शुरू अवश्य हो गई सरकार ने 1913 में शिक्षा सम्बन्धी नए प्रस्ताव की घोषणा की। इस शिक्षा नीति, 1913 में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में चार घोषणाएँ बड़ी महत्वपूर्ण थीं- पहली यह कि निम्न प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाए। दूसरी यह कि आवश्यतानुसार उच्च प्राथमिक स्कूल स्थापित किए जाएँ। तीसरी यह कि व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाए। और चौथी यह कि देशीपाठशालाओं को उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाए। इसके तहत 1920 तक तत्कालीन 11 में से 8 प्रान्तों (बम्बई, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल, बिहार,

उड़ीसा, मध्य प्रदेश और मद्रास) में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम पास किए गए और प्राथमिक विद्यालयों की संख्या बढ़कर 1,05,017 हो गई और इनमें पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या बढ़कर 61,09,752 हो गई। परन्तु इतनी वृद्धि होने के बाद भी उस समय 6-11 आयु वर्ग के केवल 25 प्रतिशत बच्चे ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उसी बीच 1921 में प्रान्तीय सरकारों में भारतीयों का प्रतिनिधित्व हुआ, उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए कुछ ठोस कदम उठाए। परिणामस्वरूप 1936-37 में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या बढ़कर 1,12,244 हो गई और इनमें पढ़ने वाले बच्चों की संख्या बढ़कर 1,02,24,288 हो गई।

1.8 तथ्य और आंकड़े

जबकि भारत सरकार प्राथमिक शिक्षा पर बहुत अधिक जोर दे रही है, भारत की 1991 की जनगणना के अनुसार, 6 से 14 वर्ष की आयु के कम से कम 3.5 करोड़ बच्चे स्कूल में नहीं जा रहे हैं। इसमें थोड़ा और जोड़ें तो कक्षा 1 में दाखिला लेने वाले सभी बच्चों में से एक तिहाई से कुछ अधिक ही कक्षा 8 तक जाते हैं। इसमें से 53: के आसपास 5 से 9 वर्ष आयु वर्ग की लड़कियां हैं, जो अभी-भी अशिक्षित हैं।

प्राथमिक शिक्षा को 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा भी कहा जाता है। इन वर्षों को बच्चों के लिए महत्वपूर्ण बुनियादी वर्ष माना जाता है, जब उनके जीवन की आधारभूत बातें सुदृढ़ता प्राप्त करती है, उनका व्यक्तिगत कौशल, उनकी समझ, भाषागत योग्यता, परिष्कृत रचनात्मकता आदि विकसित होते हैं।

आज, प्राथमिक स्तर पर सभी मान्यता प्राप्त विध्यालयों में से 80% विध्यालय सरकार द्वारा संचालित या समर्थित हैं, जिसके कारण भारत शिक्षा प्रदान करने वाला सबसे बड़ा देश है। नरेंद्र मोदी सरकार ने शिक्षा से जुड़ी कई आशाजनक योजनाएं शुरू की है।

प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए सर्व शिक्षा अभियान को भारत के प्रमुख कार्यक्रम के रूप में लागू किया गया था, जिसमें शिक्षा के लिए सर्वव्याप्त, सुलभ पहुँच व उसका प्रतिधारण, शिक्षा में लिंग व सामाजिक ऊँच-नीच आधारित अंतर को पाटने और बच्चों के अधिगमन स्तर में वृद्धि के लिए सर्वव्याप्त पहुंच प्रदान करने के लिए आदेशित किया गया है।

अन्य बातों के साथ-साथ मध्यवर्ती कोशिशों के रूप में अन्य योजनाएं भी शामिल थीं, जिसमें नए स्कूलों का निर्माण और विकास, अतिरिक्त शिक्षकों कि नियुक्ति, सेवारत शिक्षकों को नियमित प्रशिक्षण, अधिगम परिणामों में सुधार सुनिश्चित करने के लिए अन्य शैक्षणिक सहायता सामाग्री, जैसे मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, यूनिफार्म आदि। हालांकि, योजना का कार्यान्वयन दुर्भाग्यवश बहुत धीमी गति से किया गया, परिणामत: प्रवेश दर में तेजी नहीं रही। 2016 में एनसीईआरटी द्वारा किए गए एक सर्वे के अनुसार, अब तक कक्षा 3, 5 और 8 के लिए समग्र अधिगम में मामूली सुधार हुआ है।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए लोकप्रिय नीति के कुछ अन्य मध्यवर्ती सुधारों के रूप में 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ', 'ई-पाठशाला', 'राष्ट्रीय अविष्कार अभियान', 'स्वयं' आदि कार्यक्रम है।

जबकि 'निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009' 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों को स्कूलों में मुफ्त और अनिवार्य प्रवेश, उपस्थिति और प्राथमिक शिक्षा को पूरा करने के मौलिक अधिकार को एक कानूनी स्वरूप प्रदान करता है, फिर भी नामांकन करने वाले और अपनी प्राथमिक स्कूली शिक्षा पूरी करने वाले बच्चों के बीच एक संख्यात्मक अंतर है।

2011 में, शिक्षा के अधिकार के एक आदेशानुसार सभी निजी स्कूलों को सामाजिक रूप से वंचित और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के बच्चों के लिए 25: सीटें आरक्षित करनी पड़ी। इस प्रावधान ने बेहतर भारत के लिए सामाजिक समावेश को प्रोत्साहित किया होगा, लेकिन अधिनियम के लागू होने से लेकर अब तक केवल 8: स्कूलों ने आरटीई का अनुपालन किया गया है।

1.9 आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य

जहाँ तक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करने की बात है, इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम भारतीय शिक्षा आयोग ने विचार व्यक्त किए। उसने प्राथमिक शिक्षा के केवल दो उद्देश्य निश्चित किए थे- एक जन शिक्षा का प्रसार और दूसरा व्यवहारिक जीवन की शिक्षा। बस, तब से अब तक हम इन्हीं उद्देश्यों को भाषायी अन्तर से अभिव्यक्ति करते रहे हैं। नवम्बर, 2000 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद ने विद्यालयी शिक्षा के 20-25 उद्देश्य निश्चित किए हैं। उन उद्देश्यों के आधार पर हम

प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं-

- बच्चों को स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का ज्ञान कराना और स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाओं में प्रशिक्षित करना।
- बच्चों को उनकी मातृभाषा और उनके प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान कराना।
- बच्चों में सामूहिकता की भावना विकसित करना, उन्हें वर्ग भेद से ऊपर उठाना और जीवन कला में प्रशिक्षित करना।
- बच्चों को सांस्कृतिक क्रियाओं- उत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य आदि में भाग लेने की ओर अग्रसर करना और उनमें सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना।
- बच्चों में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का विकास करना, उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना।
- बच्चों को शरीर श्रम के अवसर देना, उनमें शारीरिक श्रम के प्रति आदर भाव पैदा करना और उनकी सृजनात्मक शक्ति को सचेष्ट करना।
- बच्चों को एक-दूसरे का सम्मान करने की ओर प्रवृत्त करना और उन्हें प्रेम, सहानुभूति और सहयोग से कार्य करने की ओर उन्मुख करना।
- बच्चों को पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सचेत करना, उनमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास करना।
- बच्चों को विभिन्न धर्मो के पैगम्बरों और उनकी शिक्षाओं से परिचित कराना, उनमें सर्वधर्म सद्भाव विकसित करना।

Bibliography

1. कपिल, एच. के. 2001, 'अनुसंधान विधियाँ', भार्गव बुक हाउस, आगरा, पेज न0 12
2. पूर्ववत्
3. कोहली, विजय कुमार, 1975, 'भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ', कृष्णा ब्रादर्स चॉक अड्डा टांडा, जालन्धर, पेज नं0 116
4. कौल, लोकेश, 1984, 'शिक्षा अनुसंधान की कार्यप्रणाली', विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, पेज नं0 - 46
5. यूनुस एव. एम. एम. तथा सिंह कर्ण कर्ण (2007) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, गोविंद प्रकाशन, लखीमपुर खीरी, पृ. 32
6. यादव मोना (2009) - कसतूरबा गांधी बालिका विद्यालय - बालिका शिक्षा के लिए सार्थक पहल, प्राथमिक शिक्षक, एन, सी.ई. आर.टी., नयी दिल्ली। पृ. 10
7. दैनिक जागरण (2009) - कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के उच्चीकरण करने का प्रस्ताव, दैनिक समाचार पत्र, जागरण प्रकाशन, लखनऊ, 2 नवंबर , पृ. 9
8. चौधरी, सुजीत कुमार 2005, रोल ऑफ लैंग्वेज इन एजुकेशन एंड फॉरमेशन ऑफ सोशल स्टेटस, जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, नवंबर, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
9. दशोरा, राकेश एंड अनुश्री शर्मा 2003, रोल ऑफ ट्राइबल वीमन इन एजुकेशन, योजना वपब्लिकेशन डिवीजन, जून
10. गेरे.एम.एस. 1970, फील्ड स्टडीज इन द सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन ऑल इंडिया रिपोर्ट, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
11. शिव दत्त त्रिवेदी सामुदायिक शिक्षा एवं सहभागिता के संबंध में विकासात्मक क्रियाकलाप राज्य शिक्षा संस्थन, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद
12. स्त्री-पुरूष समानता, अक्टूबर 2006, योजना मासिक पत्रिका भवन, संसद माग, नयी दिल्ली
13. भारत सरकार 2000 , सबके लिए शिक्षा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली।

वर्तमान युग में महर्षि पतंजलि के शिक्षा दर्शन की उपादेयता

मनोज कुमार सकलानी

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० हलधर यादव

शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

शताब्दियों के अनुभवों के आधार पर चीन में एक कहावत प्रचलित है कि "अगर आप एक वर्ष के लिए योजना बना रहे हैं तो धान रोपिए, दस वर्षीय योजना बना रहे हैं तो वृक्ष लगाइए, परन्तु अगर सौ वर्ष के लिये योजना बना रहे हैं तो लोगों को शिक्षित प्रशिक्षित कीजिये।" अंग्रेज भी भारत को सैकड़ों वर्षों तक गुलाम बनाए रखना चाहते थे, उनकी इस योजना की पूर्ति के लिये भारतीयों के राष्ट्रीय गौरव और आत्मविश्वास को भंग कर उन्हें हीन भावना से ग्रसित और काले अंग्रेजों के रूप में विकसित करना आवश्यक था। उन्होंने यह किया भी। भारत की अपनी स्वदेशी और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षण व्यवस्था को समाप्त कर उस पर यूरोपीय पद्धति की शिक्षा थोपी। आजादी के पश्चात् के हमारे शासक अगर भारत को आत्मविश्वास और आत्मगौरव से सम्पन्न एक राष्ट्र के रूप में विकसित करना चाहते तो यूरोपीय शिक्षा पद्धति के स्थान पर भारत की अपनी परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा पद्धति की पुनर्स्थापना करनी चाहिये थी। संक्रमणकालीन भारत को हीन तथा हताशा से युक्त कराने के लिए भी विदेशियों द्वारा जबरन थोपी गई शिक्षा प्रणाली से मुक्ति आवश्यक थी, परन्तु सरकार ने उसी जबरन थोपी गई और राष्ट्रीय मानस के अनुपयुक्त शिक्षा पद्धति को भी निरन्तर जारी रखने का निर्णय लिया।

यद्यपि आजादी मिलने के बाद सरकार ने इस शिक्षा पद्धति में सुधार करने के लिए अनेकानेक प्रयत्न भी किये। सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक आयोग और समितियाँ बनाई गई। जिन्होंने शिक्षा में सुधार करने हेतु अनेक सुझाव दिये। सरकार ने उन सुझावों में से कुछ पर अमल भी किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी बनाई गयी, लेकिन वही ढाक के तीन पात, शिक्षा में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हो पाया है और आज हमारी शिक्षा व्यवस्था मात्र कमियों से ही नहीं वरन् गम्भीर विकृतियों से ग्रसित है। इसके माध्यम से एक संवेदनशील आदर्शों से प्रेरित और सामाजिक दायित्वों के प्रति जागरूक पीढ़ी के निर्माण के स्थान पर संस्कृति विहीन, स्वार्थ प्रेरित तथा प्रेम, सहयोग, सहकार आदि गुणों से विहीन पीढ़ी का निर्माण हो रहा है।

महर्षि पतंजलि की विचारधारा में धर्म तथा नैतिकता को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हमारे देश के धर्म निरपेक्ष देशको पतंजलि के विचारों से सर्वाधिक प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि इनकी धर्म व नैतिकता की परिभाषा विश्व मानवता को अपने में समाहित करती है। उसमें संकीर्णता का लेशमात्र भी नहीं है। महर्षि पतंजलि ने धर्म का अर्थ चरित्र निर्माण, सदाचरण और कार्यों के सुसंस्कार से लिया और मानव सेवा को ही प्रमुख धर्म माना। इसके अनुसार धार्मिक शिक्षा के दो पक्ष हैं। प्रथम चरित्र एवं आचरण का परिष्कार जो सत्यानुराग के लिए अति आवश्यक है और द्वितीय ज्ञानेन्द्रियों का विकास और संस्कार जिसके अनुभवों से सुखानुभूति हो।

शिक्षा देश के भविष्य की नीव है और उसे मजबूत करने में पिछले पचास वर्षों में कोताही हुई है। शिक्षा में सुधार करने का कार्य इतना बड़ा था कि उसको राष्ट्रीय चुनौती के रूप में स्वीकार नहीं किया गया और उसे जितनी प्राथमिकता मिलनी चाहिये थी, उतनी नहीं मिली। अभी तक हम उस मोह जाल से पूर्णत: नहीं निकल पाए हैं जो लार्ड मैकाले ने एक शताब्दी पूर्व हम पर फेंका था। शिक्षा के क्षेत्र में आज जैसी अराजकता और दिशाहीनता व्याप्त है, वैसी शायद पहले कभी नहीं थी। युद्ध, हिंसा, मूल्यहीनता और भौतिकवादी आँधी से त्रस्त मानवता को उसके विपन्न वर्तमान और अंधकारमय भविष्य में मार्ग निर्देशन के लिए महर्षि पतंजलि का प्रबुद्ध और व्यवहारिक शिक्षा दर्शन आशादीप बन सकता है। इनका शिक्षा दर्शन वर्तमान शिक्षा के दोषों का निवारण करके आदर्श शिक्षा प्रणाली की संरचना में सार्थक योगदान दे सकता है। इनके शैक्षिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इनके विचारों और प्रयोगों को समझा जाये और उन पर अमल किया जाये।

1.1 दार्शनिक पृष्ठभूमि

महर्षि पतंजलि योग दर्शन के रचियता थे। यह प्रेरणा उन्हें अपने गुरू पाणिनी से प्राप्त हुई। पाणिनी एक महान दार्शनिक व वेदों, उपनिषदों व पुराणों के ज्ञाता थे। उनके गुरू महर्षि कपिल थे जिन्होंने सांख्य दर्शन रचा। पाणिनी के जीवन पर उनके गुरू भगवान कपिल की अमिट छाप थी। महर्षि पतंजलि को भी अपने गुरू से दार्शनिक चिन्तनधारा विरासत में प्राप्त हुई। पाणिनी अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान थे और ऐसे गुरू के सान्निधय में रहकर महर्षि पतंजलि भी अलौकिक प्रतिभा के धनी हो गये थे। महर्षि पतंजलि ने अपने गुरू पाणिनी की रचना अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिख दिया। महर्षि पतंजलि जीवन के भौतिक व आध्यात्मिक दोनों पक्षों का विकास करना चाहते थे। वह चित्त को एक स्थान पर केन्द्रित करने के लिये योग को महत्वपूर्ण बताते हैं, क्योंकि योग के द्वारा मनुष्य जन्म-मरण के बंधनों से छूट सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आठ उपाय बताये हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, और समाधि। महर्षि पतंजलि ने योग का अन्त ध्यान व समाधि बतलाया है। जब मनुष्य समाधि की अवस्था तक पहुँचता है तो वह संसार से सम्बन्ध तोड़ लेता है। ईश्वर ही चिन्तन का लक्ष्य है वही उद्देश्य प्राप्ति में हमारी सहायता करता है।

1.2 धार्मिक पृष्ठभूमि

महर्षि पतंजलि के समय में भारतवर्ष धार्मिक अन्धता, कर्मकाण्डों व कुरीतियों से ग्रस्त था। धर्म के विश्वस्त व्याख्याता के रूप में जाने वाला उच्च वर्ग अपनी स्वार्थपरता के वशीभूत होकर धर्म एवं ईश्वरादेश के आधार पर नृशंस और कुरीतिपूर्ण सामाजिक आड़म्बरों को प्रोत्साहित कर रहा था। ब्राह्मणों ने अपना अत्याचारी रूप धारण कर लिया था तथा धर्म के नाम पर बलियाँ दी जाने लगी थी।

महर्षि पतंजलि के काल में ब्राह्मण धर्म स्थूल रूप में था तथा उपनिषदों का ज्ञानवाद उसका सूक्ष्म रूप था। इस युग में वैदिक कर्मकाण्डों और अनुष्ठानों की प्रधानता थी किन्तु ब्राह्मण धर्म के बौद्धिक व आध्यात्मिक पक्ष से भी लोग प्रभावित थे। कुछ ऐसे ब्राह्मण भी थे जिनके जीवन में इन कर्मकाण्डों का कोई स्थान नहीं था वे अपना सारा समय चिन्तन, मनन, तप और ध्यान में लगाकर जीवन को शुद्ध बनाते थे। उन्हें सांसारिक वस्तुओं से कोई लगाव नहीं था। वे अपना सारा समय ज्ञान की प्राप्ति तथा ज्ञान प्रदान करने में व्यतीत करते थे। यह ठीक है कि समाज के बहु-प्रतिष्ठित कुलीन वर्ग वेदों व धर्म में विश्वास करते थे व कर्मकाण्डों, आडम्बरों में अधिक विश्वास करते थे परन्तु समाज में कई ऐसे विचारशील पुरूष थे जो इन आडम्बरों को हेय दृष्टि से देखते थे। महर्षि पतंजलि भी उन विचारशील पुरूषों में से एक थे। उनके जीवन पर उनकी माता के धार्मिक विचारों का प्रभाव था। और उससे भी अधिक अपने गुरू पाणिनी की धार्मिक विचारधारा का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

1.3 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

किसी भी देश की संस्कृति का उसके नागरिकों पर पूर्ण प्रभाव होता है। भारतीय संस्कृति की नीव प्राचीन काल से ही धर्म पर आधारित है। भारतीय संस्कृति के अनुसार धर्म ही मनुष्य को पशुओं से अलग करता है।

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र शुरू से ही "आत्मानं विजानाति" (अपने आपको जानो) रहा है। भारतीय संस्कृति के निर्माता ऋषि और मुनि इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य अपने आपको जाने, क्योंकि संसार के सत्य को जानने का केवल यही एक उपाय है। भारतीय संस्कृति बर्हिमुखी होने की अपेक्षा अर्न्तमुखी अधिक है। इसमें भौतिकता की तुलना में आध्यात्मिकता पर अधिक जोर दिया गया है। इन्हीं सब बातों से हमारी संस्कृति प्रभावित है जो मनुष्य पर पूरा प्रभाव डालती है।

इसी संस्कृति की प्रेरणा महर्षि पतंजलि को अपने समय के आध्यात्मिक विचारों से प्राप्त हुई। उनका दर्शन भी भारतीय संस्कृति से प्रभावित है और लौकिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता की भावना से ओतप्रोत हैं। भारतीय संस्कृति में दर्शन को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के पोषक हमारे ऋषि-मुनि ही हैं। उन्होंने ही अपने वेदों, दर्शनों, उपनिषदों, पुराणों तथा महाकाव्यों में इस संस्कृति को सुरक्षित रखा है जिसका प्रभाव आगे आने वाले प्रत्येक मानव को प्राप्त है। इन सब ग्रन्थों का प्रभाव ही महर्षि पतंजलि के जीवन पर भी पड़ा। उन्होंने भी हमारी संस्कृति को सुरक्षित करने के लिये अपने तीन प्रमुख ग्रन्थों की रचना की। महाभाष्य में उन्होंने अपने समय की तत्कालीन घटनाओं व संस्कृति का उल्लेख किया।

1.4 सामाजिक पृष्ठभूमि

वैदिक काल से मध्य काल तक आते-आते भारत की सामाजिक स्थिति में बहुत बदलाव आ गया था। भारत की सामाजिक स्थिति निरन्तर पतन की ओर जा रही थी। समाज जातियों में विभक्त था। उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को हीन दृष्टि से देखते थे। ब्राह्मणों को समाज में सबसे उच्च स्थान प्राप्त था। सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा का भार भी ब्राह्मणों पर ही था परन्तु धीरे-धीरे ब्राह्मणों ने अपना अत्याचारी रूप धारण कर लिया था। ब्राह्मण अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग करने लगे थे। वह दूसरी जातियों व धर्मों के प्रति घृणा की भावना रखने लगे थे।

योग दर्शन में उन्होंने सबसे बड़ा धर्म ईश्वर की प्राप्ति माना है। योग कोई धर्म विशेष के लिये नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति को सुखी बनाने के लिये है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति चाहे व किसी भी जाति व धर्म से सम्बन्धित हो योग से निरोग हो सकता है। महर्षि पतंजलि ने मानव जाति के कल्याण के लिये 'चरक संहिता' की भी रचना की। यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो आयुर्वेद के द्वारा मनुष्य का कल्याण करे। राजा भोज ने तो उन्हें मन के चिकित्सक के साथ-साथ तन का चिकित्सक भी कहा है।

1.5 महर्षि पतंजलि की दार्शनिक विचारधारा

महर्षि पतंजलि एक सच्चे दार्शनिक ही नहीं थे बल्कि दर्शन के निर्माता भी थे। उनका अपना अलग एक दर्शन था 'योग दर्शन'। योग दर्शन के द्वारा उन्होंने अपनी दार्शनिक विचारधारा को जन-जन तक पहुँचाया। उन्होंने जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मूल्यों व सत्यों को प्राप्त करना बतलाया है। ये आध्यात्मिक मूल्य हैं-सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम। महर्षि पतंजलि ने ये मूल्य सदैव अमर बतलाये हैं। और यह मूल्य हमें योग के द्वारा प्राप्त होते हैं। योग की अन्तिम अवस्था व्यक्ति को परमतत्व से मिला देती है। व्यक्ति को योग के द्वारा ही आत्मानुभूति होती है। वह स्वयं को भली प्रकार से जानने लगता है और आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त कर लेता है।

महर्षि पतंजलि की दार्शनिक विचारधारा के तीनों तत्व अग्रलिखित हैं-

1.6 तत्व मीमांसा

तत्व मीमांसा को ग्रीक भाषा में 'मेटा फिजिक्स' कहते हैं। जिसका शाब्दिक अर्थ है मेटा अर्थात् परे तथा फिजिक्स अर्थात् स्वभाव या प्रकृति।

तत्व मीमांसा दर्शन की वह शाखा है जिसका लक्ष्य 'यथार्थ' की प्रकृति को स्पष्ट करना है। इसके माध्यम से जगत तथा व्यक्ति के 'अस्तित्व' के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

महर्षि पतंजलि ने तात्विक मीमांसा में आध्यात्मिक पक्ष एवं भौतिक पक्ष अंगीकृत किया है। उनके अनुसार शिक्षा मोक्ष एवं पूर्णता की प्राप्ति का साधन है। महर्षि पतंजलि ने शिक्षा के अन्दर व्यक्ति के विकास को सर्वोपरि माना है। शिक्षा ही व्यक्तित्व का, शरीर का तथा मानसिक शक्तियों का विकास करती है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आत्म-सन्तोष एवं आत्म-नियंत्रण भी है क्योंकि व्यक्ति को शिक्षा ही अनुशासन की भावना सिखाती है जिसके द्वारा ये दोनों भावनाएं विकसित होती हैं।

महर्षि पतंजलि ने संसार को दुखों का घर बताया है। इन दुखों से मुक्ति का मार्ग योग शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। योग शिक्षा व्यक्ति का आध्यात्मिक, शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक विकास करती है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार एक शिक्षक को ऐसी शिक्षा प्रदान करनी चाहिये जो बालक का चहुँमुखी विकास करने में सहायक हो।

1.7 ज्ञान मीमांसा

अंग्रेजी का 'एपिस्टोमालाजी' शब्द ग्रीक भाषा के एपिस्टीम से बना है जिसका अर्थ है 'ज्ञान' प्राप्त करना अथवा जानना। दर्शनशास्त्र की इस शाखा में ज्ञान की उत्पत्ति, उसकी संरचना एवं प्रकृति, विधि, वैधता तथा सीमाओं के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त होता है। सत्य क्या है जिन विधियों के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त करना सम्भव है, उस पर प्रकाश डालना ज्ञान मीमांसा का मुख्य प्रयोज्य है।

ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत ज्ञान प्राप्त करने की अधोलिखित चार विधियाँ हैं-

(1) तर्कसंगत उपागम-इस उपागम के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय विशुद्ध तर्क की पद्धति को माना जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान, शुद्ध एवं सत्य माना जाता है।

(2) इन्द्रियानुभवपरक उपागम-इस उपागम में पाँचों इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया जाता है।

(3) प्रेरणात्मक उपागम-इस उपागम में ज्ञान प्राप्त करने हेतु अन्तर्बोध, प्रेरणा तथा सत्य की सहज अनुभूति को विशेष महत्व दिया गया है। सिद्ध पुरूषों द्वारा प्रदत्त ज्ञान इसी श्रेणी में आता है।

(4) सत्तावादी उपागम-ज्ञान प्राप्त करने के इस उपागम में महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि वास्तविक या यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति ऐसी सत्ता के माध्यम से होती है जिसकी वैधता एवं विशुद्धता को चुनौती न दी जा सके। धर्म, सरकार तथा विशेषज्ञों द्वारा प्राप्त ज्ञान को इसी कोटि में रखा जा सकता है।

महर्षि पतंजलि ने अनुसन्धान विधि को भी श्रेष्ठ बताया है जिसके द्वारा बालक स्वयं नई-नई खोज करके सीखे, इस प्रकार का ज्ञान स्थायी होता है। पतंजलि ने प्रश्नोत्तर विधि, व्याख्यान विधि, सम्वाद विधि तथा श्रवण विधियों को भी बालकों के लिये श्रेष्ठ माना है। इन विधियों के द्वारा बालक शीघ्रता से ज्ञान ग्रहण करके अपने जीवन के लिये उपयोगी बना सकता है।

1.8 मूल्य मीमांसा

मूल्य मीमांसा से तात्पर्य दर्शन की उस शाखा से है जिसमें मूल्यों व आचरण सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या होती है। इसके माध्यम से अच्छे या बुरे व्यवहार की परख करने के लिये मानक सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है जिससे मूल्यों के आधारभूत स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। अंग्रेजी भाषा के 'एक्सिआलाजी' शब्द ग्रीक भाषा के 'एक्सिअस' से निकला है जिसका अर्थ है मूल्य या अर्हता।

महर्षि पतंजलि के मूल्य मीमांसा के अन्तर्गत आत्मानुभूति, ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष सभी को एक ही अर्थ में लिया जाता है। उनकी दृष्टि इस आत्मतत्व की अनुभूति ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग अथवा किसी के द्वारा भी की जा सकती है।

महर्षि पतंजलि ने मूल्य मीमांसा के अन्तर्गत ऐसी शिक्षा को स्थान दिया है जिसके उद्देश्य तथा मूल्य समाज के मूल्यों तथा उद्देश्यों के अनुसार हो अन्यथा शिक्षा व समाज में तालमेल नहीं होगा और शिक्षा का पूरा तन्त्र निरर्थक हो जायेगा। स्वस्थ शिक्षा प्रणाली वह होती है जिसके अन्तर्गत पढ़ाये जाने वाली पाठ्य सामग्री तथा विषय तथा उनकी दिशा एवं सामर्थ्य समाज की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं के प्रति न केवल संवेदनशील हो बल्कि मूल्यों व लक्ष्यों के अनुकूल ढलने की क्षमता भी रखते हो।

महर्षि पतंजलि ने पाठ्यक्रम को तीन बिन्दुओं के आधार पर महत्व दिया है भौतिक शरीर की रचना हेतु, भाषिक सुरक्षा हेतु तथा आत्मिक सुरक्षा हेतु।

महर्षि पतंजलि ने शिक्षा के सामाजिक व आध्यात्मिक महत्व को स्वीकारा है। योग के अनुसार शिक्षा एक सामाजिक अनिवार्यता है। इसकी पूर्ति हेतु कठोर अनुशासन की आवश्यकता है। योग पाठ्यक्रम में हमें ऐसे बिन्दु देखने को मिलते हैं, जो मनुष्य को विभिन्न अवस्थाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार के व्यावहारिक एवं सामाजिक मूल्यों को विकसित करते हैं तथा व्यक्ति को आत्म-नियंत्रण हेतु प्रशिक्षित करते हैं। और व्यक्ति अपने सामाजिक मूल्यों को संरक्षित करता है। मानव द्वारा आध्यात्म की उत्कृष्ट कोटि की प्राप्ति योग के पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य हैं।

योग दर्शन के पाठ्यक्रम से बालक के शारीरिक विकास की प्राप्ति होती है। अतः इस प्रकार योग दर्शन के पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य चरम सत्य की प्राप्ति करना है। यही मूल्य मीमांसा का सार तत्व है।

महर्षि पतंजलि के समय में समाज में अनेक कुरीतियाँ, आड़म्बरों तथा प्रथाओं का जन्म हो चुका था। पशु बलि तथा मनुष्य बलि भी दी जाती थी। समाज इन प्रथाओं के लिए पशु हत्या व मानव हत्या करने से भी नहीं घबराते थे। स्त्रियों की दशा जहाँ वैदिक काल में बहुत अच्छी थी वह धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर होने लगी थी। स्त्रियों का सम्मान समाज में थोड़ा कम होने लगा था। उन्हें पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। समाज में सभी वर्गों के व्यक्ति आपस में धर्म के नाम पर लड़ रहे थे। ऐसी स्थितियों के कारण समाज में आपसी भेदभाव, छुआ-छूत तथा अस्पृश्यता, असहयोग की भावनाओं ने जन्म ले लिया था।

महर्षि पतंजलि इन सामाजिक व्यवस्थाओं को सिरे से नकारते हुए अपने ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने योग दर्शन के द्वारा समाज को एक ऐसी सामाजिकता की भावना का विकास किया जो अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. माहेश्वरी, विजेन्द्र किशोर : भारतीय शिक्षा दर्शन इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ-2007
2. लाल, रमन बिहारी : शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तौगी पब्लिकेशन, मेरठ-1990
3. स्वामी करपात्री जी महाराज : 'मार्क्सवाद और रामराज्य', गीता प्रेस, गोरखपुर-1928
4. रॉस जे0 एस0 : 'ग्राउण्ड वर्क ऑफ एजूकेशनल थ्योरी, जार्ज जी0 हार्प एण्ड कम्पनी, 1949
5. पाण्डेय, कामना प्रसाद : 'नवीन शिक्षा दर्शन' अभिताश प्रकाशन मेरठ-1991
6. फिक्टे, जे0 सी0 : एड्रेसेज टू जर्मन नेशन; अनुवादित द्वारा जेनर, आर0 एफ0 ओपन कोर्ट पब्लिशिंग कम्पनी लंदन
7. नायक, जे0 पी0, नुरूल्ला सैयद : 'भारतीय शिक्षा का इतिहास' दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि0 1976
8. चौबे, सरयू प्रसाद : 'भारतीय शिक्षा का इतिहास', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-1985
9. सिंहल, महेश चन्द्र : 'भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ', 'राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, जयपुर-1970
10. डॉ0 शर्मा, भीष्म दत्त : 'महान शिक्षा दार्शनिक के रूप में आद्य जगद्गुरू शंकराचार्य', अनु प्रकाशन, मेरठ 1985
11. व्हाइट हेड, एन0 एन0 : "दा एम्स ऑफ ऐजूकेशन", मैनटर बुक्स, दा न्यू अमेरिकन लाइब्रेरी, सप्तम संस्करण
12. शर्मा, आर0 ए0 : "पाठ्यक्रम विकास" ईगल बुक्स ईण्टरनेशनल, मेरठ, 1994
13. मुखर्जी, हिमांशु भूषण : "एजूकेशन फॉर फुलनैस" एशिया पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, बम्बई, 1962
14. मुखर्जी, आर0 ऐ0 : "डैसटिनी ऑफ सिविलाईजेशन", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1964
15. लीन ई0 : "व्हाज इज ऐजुकेशन", बर्नस एण्ड फैब्स वासबोर्न लिमिटेड, द्वितीय संस्करण, 1945
16. किलपैट्रिक, डब्ल्यू0 एच0 : "ऐजुकेशन फॉर ए चेजिंग वर्ल्ड", मैकमिलन एण्ड कम्पनी इण्डिया लिमिटेड, प्रथम संस्करण 1932
17. कबीर हुमाँयू : "इण्डियन फिलासफी ऑफ ऐजुकेशन", बाम्बे एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1964
18. ड्यूबी, जॉन : "एक्सपेरिमेन्ट एण्ड एजूकेशन", मैकमिलन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, तृतीय संस्करण 1952
19. ड्यूबी, जे0 : "डेमोक्रेसी एण्ड ऐजुकेशन" मैकमिलन एण्ड कम्पनी इण्डिया लिमिटेड, संस्करण, 1957
20. दुबे, रमाकान्त : "विश्व के कुछ महान शिक्षा शास्त्री" मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
21. कोठारी, डी0 एस0 : शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 1964-66 शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

केदारनाथ सिंह: जीवन और जगत को मथने वाली अनुगूँज की गूँज

डॉ० वाचस्पति यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू कॉलेज, एटा (उ०प्र०)

कविता अपने समय के यथार्थ को पिरोए मानव-मन की सहज अभिव्यक्ति है। यह यथार्थ हताश का हो सकता है, राजनैतिक चेतना का हो सकता है या फिर सौंदर्य का हो सकता है। कविता में आयी ये स्थितियाँ समाज के मन पर पड़ने वाले प्रभाव को माना जाता रहा है। किंतु सही मायनों में कविता वही होती है जो उस समय के मनुष्य के संवेदनशील तत्वों को आत्मसात् करते हुए व्यक्ति को उसके यथार्थ और जीवनगत अनुभवों से उसका परिचय कराए। केदारनाथ सिंह की कविता इन्ही जीवनगत-यथार्थ से गुजरती हुई हमारे सामने उपस्थित होती है।

हिंदी साहित्य के कवियों में केदारनाथ सिंह एक सशक्त हस्ताक्षर की भाँति अपनी-अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति बनाए हुए हैं। इसकी परख उनके कविता में आए सामान्य व्यक्ति की पीड़ा, चिंता तथा भूमंडलीकरण के युग में छिजते मनुष्य की वेदना आदि से कर सकते हैं। केदारनाथ सिंह की कविता सामाजिक विकास-क्रम में वस्तु के स्तर पर जमीन और उसकी गंध से जुड़ी हुई है। उनकी कविताओं में लोक जीवन जैसी सहजता और सरसता है सहजता और सरलता है। साथ ही कथ्य का खरापन भी। हालांकि केदारनाथ सिंह का जीवन पूर्व के कवियों जैसा संघर्षमय नहीं था, फिर भी उनकी सहजता उनके वैचारिक परिवेशगत संघर्षों से निकली है।

केदारनाथ सिंह की कविता सन् 1952-53 से साहित्य की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में छपी रही है। शुरूआती दौर में इनकी रचनाएँ 'हमारी पीढ़ी' नामक पत्रिकाओं में छपती थी। कविता की धार और बिंब-विधान के कारण केदारनाथ सिंह की कविता अज्ञेय के 'तीसरा सप्तक' में अपनी जगह बनाई। इनकी रचनाओं में अभी बिल्कुल अभी, 'जमीन पक रही है', तालस्ताय और साइकिल शामिल रचनाएँ 'अकाल में सारस', 'यहाँ से देखो', 'बाघ', सृष्टि पर पहरा' उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ यहाँ से देखो, मतदान केन्द्रों पर झपकी आदि हैं।

संयमित आवेग, जीवन के प्रति दृष्टि तथा बिम्ब के प्रति सतर्कता और तराशी हुई कविता लिखने का संस्कार केदारनाथ सिंह को प्रारंभिक दौर से ही प्राप्त हुए हैं। इनकी कविताएँ स्थानिक और वैश्विक एक साथ दोनों स्तरों को छूती हैं। कविता बहुत ही साधारण ढंग से अपनी धरती की सोंधी गंध के विविध रूपों से शुरू होकर धीरे-धीरे वह असाधारण रूप से विश्व-समुदाय के जीवन के सुख-दुख से जुड़ जाती है। वह इतिहास की यात्रा करती हुई भविष्य के प्रति चिंतातुर भी है-

आप विश्वास करें
मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ
वह पक रही है
और आप देखेंगे- यह भूख के बारे में

आग का बयान है
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है
आप देखेंगे
दीवारे धीरे-धीरे

स्वाद में बदल रही हैं।

केदारनाथ सिंह का लोक और उसकी संस्कृति से बहुत गहरा नाता रहा है। गाँव उनकी कविता में जिस रूप में चित्रित होता है, वह मनुष्यता, प्रति और विराट सृष्टि का एक विहंगम रूप है। अरुण कमल 'अकाल में सारस' की कविताओं में आए गाँव और उसके बदलते हुए यथार्थ के विषय लिखते हैं- ''गाँव और गाँव के संदर्भ बिल्कुल नए ढंग से इन कविताओं में आये हैं। गाँव पर लिखी कविताएँ प्राय: आंचलिक हो जाती हैं, स्वयं भी ग्रामीण लगने लगती हैं। साथ ही साथ एक प्रकार के मोह का भाव भी यहां रहता है। गाँव का जीवन प्राय: नॉस्टेल्जिया के साथ कविता में आता है। केदारनाथ सिंह ने इन कविताओं के जरिए गाँव को एक नए ढंग से, आधुनिक तरीके से देखने की कोशिश की है। संभवत: यह ऐसी पहली महत्वपूर्ण कोशिश है। इसीलिए उनके गाँव पुराने तरह के पारंपरिक गाँव नहीं हैं जिनकी स्तुति हिंदी कविता ने निरंतर की है। यहाँ गाँव का जीवन कोई पृथक निर्दोष जीवन नहीं है- कोई स्वायत्त अंचल नहीं है। यह शेष संपूर्ण जीवन में ही प्रशस्त है। वास्तव जीवन में एक ही है- एक ही पीड़ा और संघर्ष का विस्तार। 'सूर्यास्त के बाद एक अंधेरी बस्ती से गुजरते हुए' के उपर्युक्त पाठ से यह स्पष्ट है। इन कविताओं की सबसे बड़ी खूबी है- आंचलिकता से मुक्ति।"2 बाजार और उसकी शक्तियों ने शहरों को ही नहीं बल्कि गाँवों को भी प्रभावित किया है। आज के उपभोक्तावादी युग में जीवनगत संस्कार और मूल्य की जड़े कमजोर हुई हैं। प्रकृति और मनुष्यता के बीच मौन टकराव ने व्यक्ति को उस छोर पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ वह स्वयं से जूझता हुआ नजर आता है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में इसकी चिंता साफ छलकती है-

जड़ों की डगमग खड़ाऊँ पहने
वह सामने खड़ा था
सिवान पर प्रहरी
जैसे मुक्तिबोध का ब्रह्म राक्षस
एक सूखता हुआ लंबा झरनाठ वृक्ष
जिसके शीर्ष पर हिल रहे
तीन-चार पत्ते।''[3]

केदारनाथ सिंह भले ही महानगर और उसकी दिनचर्या में रह रहे थे, लेकिन लोक और उसकी संस्कृति के प्रति उनका मोह कभी कम नहीं हुआ था। उन्हें यह बात पता और एहसास भी है कि लोक-जीवन ही उनकी कविता की भावभूमि है। लोक का अपना चरित्र है और जीवनगत संस्कार। केदारनाथ सिंह आधुनिकता के जिस देशज स्वरूप को लेकर आगे बढ़ते हैं वह लोक से कटाव नहीं है। अपितु लोक और उसके जीवनगत मूल्यों से जुड़ाव है, इसीलिए उन्होंने 'मातृभाषा' कविता में अपने जड़ों की ओर लौटने की बात करते हैं-

जैसे चिटियाँ लौटती हैं
बिलों में
कठफोड़वा लौटता है
काठ के पास
वायुयान लौटते हैं एक के बाद एक
लाल आसमान में डैने पसारे हुए
हवाई अड्डे की ओर

ओ मेरी भाषा
मैं लौटता हूँ तुम में
जब चुप रहते-रहत
अकड़ जाती है मेरी जीभ
दुखने लगती है
मेरी आत्मा। "[4]

आस्थावादी विचारक एवं युगबोध के कवि केदारनाथ सिंह मनुष्य जीवन के धूप-छांव और उसकी दारुड़ स्थिति को सहज भाव में कविता में उतारते हैं उनकी कविताओं में जीवन के प्रति सदैव आस्था दिखाई देती है। दलगत, राजनीति या साहित्यिक मठाधीश से इतर यह जन-कवि अपनी प्रतिबद्धता से कभी समझौता नहीं किया। केदारनाथ सिंह जनता की वाणी में जनता की अनुभूतियों को कविता के माध्यम से उनकी अपनी माटी से स्पर्श कराया है-

एक दिन भक् से
मूंगा मोती
हल्दी प्याज
कबीर निराला
झींगुर कुहासा
सभी के आशय स्पष्ट हो जाएंगे
जैसे धूप खपरैलों पर जाते-जाते यकायक स्पष्ट हो जाती है।[5]

केदारनाथ सिंह अपने क्षेत्र की आंचलिकता को कलात्मक एवं भावुक बिंब में कविता में पिरोकर सामाजिक संचेतना का निर्वाह करते हैं। उनका समूचा काव्य जीवन और जगत से जूझती हुई दिखाई पड़ती है। निराशा की बेला में कवि आशा और उम्मीद की राह को नहीं छोड़ता है। केदारनाथ सिंह 'पृथ्वी रहेगी' कविता में इसी विश्वास को प्रकट करते हुए कहते हैं-

मुझे विश्वास है
यह पृथ्वी रहेगी
यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में
यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में
रहती है दीमक
जैसे दाने में रह लेता है घुन
यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अंदर
यदि और कहीं नहीं तो मेरी जुबान
और मेरी नश्वरता में
यह रहेगी।''[6]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में 'कैनवास' विस्तृत और बहुआयामी है। मानवीय-मूल्यों और संवेदना के प्रति इनका गहरा लगाव है। इनकी कविताओं में परंपरा का विरोध नहीं है अपितु परंपरा और आधुनिकता का सांमजस्य है जिसे केदारनाथ सिंह मानव-मूल्य का सशक्त माध्यम मानते हैं। 'केदारनाथ सिंह चीजों का वर्णन ठीक-ठीक करने वाले हिंदी के विरले कवियों में से है और चीजों का ठीक-ठीक वर्णन जहाँ एक ओर सौंदर्य और उल्लास की ओर ले जाता है वहाँ जीवन की विसगतियों, एब्सर्डिटीज की ओर भी ले जाता है।''[7]

अंत में, समकालीन हिंदी कविता में केदारनाथ सिंह कविता को नयी दृष्टि तथा नए मार्ग प्रदान किए हैं। उनकी कविताओं में गाँव-जवार का चित्र तथा जनपदीय आभा है। आंचलिकता और उसकी स्थिति का साफ दृश्य है। वे व्यक्ति जीवन के छोटे-छोटे हिस्से और उनकी दारुड़-स्थिति को कविता में ढालकर एक बड़े फलक पर ले जाते हैं। कुल मिलाकर उनकी कविताओं में जीवन और जगत को मथने वाले समस्याओं और विविध मुद्दों की अनुगूंज की गूंज है।

संदर्भ

1. नन्द किशोर नवल- समकालीन काव्य यात्रा, पृ0 24-25
2. अरूण कमल - कवि केदार नाथ सिंह पृ0 218
3. केदार नाथ सिंह- सृष्टि पर पहरा, पृ0 40
4. केदारनाथ सिंह - अकाल में सारस, पृ0 11
5. वही, पृ0 83
6. केदारनाथ सिंह - पच्चास कविताएँ, पृ0 30
7. विष्णु खरे - कवि केदारनाथ सिंह, पृ0 240

स्नातमक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

ममता मेहरा

शोधार्थिनी, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० मंजुला सिंह

शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा मानव का सम्पूर्ण विकास करती है। यह सर्वमान्य सत्य है प्रत्येक अभिभावक का यह सपना होता है कि उसका बालक उत्तम से उत्तम शिक्षा ग्रहण करे तथा अपने शिक्षण काल में वह पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करे। जब बालक पूर्ण संतुष्टि के साथ शिक्षा गृहण करता है तब शिक्षा के क्षेत्र में धीरे-धीरे सीखकर ज्ञान के शिखर तक पहुँचता है और देश के विकास में अपनी भागीदारी करता है।

वास्तव में शिक्षा मानव तथा समाज दोनों के लिए आवश्यक है। मानव के द्वारा समाज का तथा समाज में रहकर मानव का विकास होता है। शिक्षा के द्वारा ही मानव की अपने अधिकारों, उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है तथा शिक्षा ही मानव को इन अधिकार, दायित्व एवं कर्तव्यों का पालन करना सीखाती है। शिक्षा की लोकतन्त्र/प्रजातंत्र की रीढ़ की हड्डी माना गया है। अत: लोकतंत्र की सफलता के लिए तथा मनुष्य में लोकतंत्र की गुणवत्ता की भावना को बनाये रखने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता को समृद्ध करना तथा तथा उसका प्रसार करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रजातांत्रिक शिक्षा प्रणाली में मनुष्य/प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रूचि, योग्यता, क्षमता, आवश्यकता के अनुसार अधिकतम विकास के अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं जिससे मानव को पूर्ण संतुष्टि प्राप्त हो सके और वह राष्ट्रहित में अपना पूर्ण योगदान दे सके।

वस्तु स्थिति यह है कि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक को एक सुखी, सम्पन्न तथा प्रसन्न जीवन का आनन्द लेने योग्य बनाया जाता है। शिक्षा के संकुचित तथा व्यापक दोनों ही अर्थों का समन्वय प्रगतिशील दिशा में करते हुए शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में उपस्थित हो जाती है। जो चेतन तथा अवचेतन रूप से बालक की व्यक्तिगत रूचियों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा सामाजकि आदर्शों, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास करती है एवं उसके व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्तन करती है कि व्यक्ति तथा समाज दोनों ही उन्नति के शिखर पर चढ़ते रहे।

1. सुकरात- "शिक्षा का अर्थ है- "प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में अदृश्य रूप से विद्यमान संसार के सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना है।"

2. फ्रोबिल- "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात् शक्तियाँ बहार प्रकट होती है।"
3. विवेकानन्द- "शिक्षा मनुष्य के अन्दर सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है।" ये सब परिभाषायें शिक्षा को जन्मजात् शक्तियों को व्यक्त करने की प्रक्रिया के रूप में प्रदर्शित करती है।
4. टैगोर- "शिक्षा का अर्थ मस्तिष्क को इस योग्य बनाना है कि वह सत्य की खोज कर सके ..... तथा अपना बनाते हुए उसे व्यक्त कर सके।"
5. पेस्टालॉजी- "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात् शक्तियों का स्वाभाविक, समरूप तथा प्रगतिशील विकास है।"

1.1 सामाजिक पक्ष एवं आर्थिक पक्ष

भारत प्राचीन काल से विभिन्न सामाजिक वर्गों में विभाजित रहा है। जाति, धर्म एवं उच्च, मध्यम, निम्न वर्ग समाज को समानता का अनुभव कराते हुए प्रतीत नहीं होते। फलतः प्रत्येक वर्ग प्रत्येक पक्ष में पिछड़ता चला जाता है। भारत आर्थिक स्पर्धा में अन्य राष्ट्रों से पिछड़ता जा रहा है। इससे उत्पादन, उत्पादकता तथा वितरण उपभोक्ता के बीच एक बड़ी दीवार के रूप में बाधा विकसित करने हेतु मध्यस्थ व्यक्तियों मुनाफाखोरी, रिश्वत, कमीशन बिक्रीकर, सरकार की आर्थिक योजनाओं का सही रूप में लागू न करना, वैज्ञानिकता तकनीकी विधियों का प्रयोग न करना, आर्थिक मूल्यों का ह्रास होना, श्रम के प्रति अनिष्ठता, वस्तुओं के संग्रह पर बल, स्वावलम्बन की कमी, कर्त्तव्य परायणता का ह्रास जैसे आर्थिक बुराईयों ने हमारी आर्थिक व्यवस्था को चौपट बना दिया है।

1.2 सम्बन्धित साहितय का सर्वेक्षण

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र से सम्बन्धित किशोर बालक एवं बालिकाओं के संदर्भ में विद्वानों द्वारा अनेक अध्ययन कार्य किये जा चुके हैं, यथा-

अजवानी, जे0सी0 एवं रंगत्ता, जे0 (2007)- द्वारा किशोरों में शाब्दिक धारणाशक्ति एवं संस्थिति-नियंत्रण के निर्धारकों से सम्बन्धित अध्ययन किया गया, अध्ययन के अन्तर्गत प्रतिदर्श के रूप में 400 किशोर बालक एवं बालिकाओं का यादृच्छिक चयन किया गया, प्राप्त परिणाम के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि शाब्दिक धारणाशक्ति पर संस्थिति नियंत्रण के दोनों रूपों (आन्तरिक सांस्थिति नियंत्रण एवं बाह्य सांस्थिति नियंत्रण) का प्रभाव पड़ता है। जिसमें सांस्थिति नियंत्रण के निर्धारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अध्ययन परिणाम .01 विश्वास स्तर पर सार्थक पाया गया।

मेज, सिल्वा, इरीन, डॉर्स आदि (2007-2008)- द्वारा एक अध्ययन किशोरावस्था के महाविद्यालीय छात्रों में अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक सफलता (शैक्षिक उपलब्धि) के संदर्भ में 200 प्रतिदर्शित छात्रों के दो समूहों (बालक/बालिकाओं) पर किया गया। प्राप्त परिणाम के आधार पर स्पष्ट हुआ कि बालक एवं बालिकाओं की अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया गया। जिससे निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में बालिकाएँ बालकों से उच्च स्तर पर होती है। जबकि अन्य अभिप्रेरणात्मक प्रवृत्ति निम्न होती है।

लिवलीट, निकाले आदि (2006)- द्वारा एक अध्ययन नौकरी पेशा अभिभावकों से सम्बन्धित किशोरों के विचारों व उनके महत्व तथा भविष्य उन्मुखता के संदर्भ में किया गया। अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया कि नौकरी पेशा माता-पिता के बच्चों में भविष्य के संदर्भ में क्या विचार व उपयोगिताशीलता पायी जाती है, ऐसे बच्चों में विचारशीलता व विचारों की उपयोगशीलता तथा भविष्य के बारे में किस प्रकार की उन्मुखता पायी जाती है। अध्ययनित दोनों समूहों (बालक/बालिकाओं) से सम्बन्धित प्राप्त परिणाम से स्पष्ट हुआ, कि बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में भविष्योन्मुखी विचारों की कमी पायी जाती है। जबकि वैयक्तिक विचारों की अधिकता पायी जाती है। जिस पर माता-पिता के कार्य व्यवहार का प्रभाव पाया जाता है।

रंजन कुमार एवं राम ध्यान राम (2010)- द्वारा हरिजन छात्रों में आत्म सम्प्रत्यय एवं सांस्थिति नियंत्रण का अध्ययन उनके अधिवास एवं शैक्षिक स्तर के संदर्भ में किया गया। अध्ययन के अन्तर्गत कुल 300 हरिजन छात्रो का चयन ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों से उच्च एवं निम्न आर्थिक व सामाजिक स्तर के आधार यादृच्छिक रूप से किया गया। जिसमें 150 छात्र ग्रामीण परिवेश से तथा 150 छात्र नगरीय परिवेश से चयनित किये गये। अध्ययन से प्राप्त परिणाम से स्पष्ट हुआ, कि हरिजन छात्रों के आत्म सम्प्रत्यय

एवं सांस्थिति नियंत्रण पर अधिवास का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है जो उनके शैक्षिक स्तर में ह्रास उत्पन्न करता है। परिणाम में देखा गया कि ग्रामीण छात्रों की अपेक्षा नगरीय छात्रों का शैक्षिक स्तर उच्च पाया गया उनके आत्म सप्रत्यय का सकारात्मक विकास पाया गया और सांस्थिति नियंत्रण के दोनों प्रारूपों में समानता पायी गयी जबकि ग्रामीण परिवेश के छात्रों में उक्त प्रक्रियाओं में ह्रास का मूल कारण सामाजिक आर्थिक पिछड़ापन व आत्म का अल्पविकास है। अस्तु अधिवास एवं शैक्षिक स्तर पर हरिजन छात्रों में सार्थक अन्तर पाया गया।

पाण्डेय, एस0 एवं लक्ष्मी (2006)- द्वारा आश्रित किशोरों की व्यक्तित्व विशेषताओं से सम्बन्धित एक अध्ययन 200 प्रतिदर्श (किशोरों) पर किया गया। जिसमें 100 किशोर बालकों एवं 100 किशोर बालिकाओं का यादृच्छिक चयन अध्ययनार्थ किया गया। प्राप्त परिणाम हेतु सोलह कारक व्यक्तित्व प्रश्नावली (16 P.F.) एस0डी0 कपूर नई दिल्ली का उपयोग किया गया। प्राप्त परिणाम से स्पष्ट हुआ कि आश्रित किशोरों की अपेक्षा आश्रित किशोरियों में व्यक्तित्व के कारक A.B.C.L.M.N. Q1 Q3 पर सार्थक अन्तर पाया गया। जबकि शेष कारकों पर कोई अन्तर नहीं पाया गया। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक (बुद्धि) पर आश्रित किशोरों व किशोरियों में अन्तर पाया गया।

1.3 शोध समस्या का कथन

अध्ययन की समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-''स्नात्मक स्तर पर कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।''

1.4 शोध के उद्देश्य

1. स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनत विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि के भौतिक सुविधा आयाम का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि के पाठ्य सहगामी क्रियाओं आयाम का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि के परीक्षा प्रणाली आयाम का तुलनात्मक अध्ययन करना।

1.5 परिकल्पनाएँ

स्नातक स्तर पर कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

1. स्नातक स्तर कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्यनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि के परीक्षा प्रणाली आयाम में कोई अन्तर नहीं है।
2. स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्यनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि के पुस्तकालय आयाम में काई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्यनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि के शिक्षक आयाम में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

1.6 अनुसंधान की विधि एवं प्रक्रिया

आधुनिक अनुसंधानों के क्षेत्र प्राय: विस्तृत होते हैं और इस विशाल क्षेत्र की समस्त जनसंख्या व इकाईयों का अध्ययन करने के लिए अधिक समय व पूँजी की आवश्यकता होती है जो साधारणता उपलब्ध नहीं हो पाते। सीमित समय व सीमित पूँजी में अध्ययन निर्देशन पद्धति के द्वारा ही सबसे उपयुक्त माना जाता है। जनसंख्या में से कुछ ऐसी जनसंख्या या इकाईयाँ चुन ली जाती हैं जो समग्र जनसख्या का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हो, इन पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाली इकाईयों को हम न्यादर्श कहते हैं। इन इकाईयों में जनसंख्या की पूर्ण आधारभूत विशेषताएँ होनी चाहिए।

न्यादर्श की संरचना-1.1

क्र० सं०	महाविद्यालय का नाम	विद्यार्थियों की संख्या
1	मेरठ कॉलिज, मेरठ	48
2	एन0ए0एस0 कॉलिज, मेरठ	48
3	डी०एन०कॉलिज, मेरठ।	48
4	शहीद मंगल पाण्डेय महिला महाविद्यालय, मेरठ	48
5	आर0जी0 पी0जी0 डिग्री कॉलिज, मेरठ	48
	योग	**240**

1.6.1 अनुसंधान के उपकरण

अनुसंधान के लिए यह आवश्यक है कि उसे उपकरणों, विधियों एवं पात्रों की व्याख्या का ज्ञान हो, तथा उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि इन उपकरणों से किस प्रकार के आंकड़े तथा सूचनाएँ प्राप्त होंगी तथा उसकी क्या-क्या विशेषताएँ व सीमाएँ हैं तथा किन अवधारणों पर इनका प्रयोग किया जा सकता है। तथा इनकी विश्वसनीयता, वैधता एवं वस्तुनिष्ठता क्या हैं? इसके साथ ही अनुसंधानकर्ता में उपकरणों को प्रयोग करने तथा उनसे प्राप्त आंकड़े को विश्लेषण करने का कौशल भी होना चाहिए।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थिनी ने जिस उपकरण को प्रयुक्त करना अपेक्षित समझा है वह निम्न प्रकार हैं-

1.6.2 छात्र शैक्षिक सन्तोष मापनी-

छात्रों की शैक्षिक संतुष्टि के मापन के लिए डॉ. अलका गुप्ता द्वारा निर्मित ''छात्र शैक्षिक संतोष मापनी'' का प्रयोग किया गया है।

छात्र शैक्षिक संतोष मापनी लिकर्ट प्रकार की निर्धारण मापनी है जिसमें कुल 72 कथन हैं। छात्र सन्तुष्टि से सम्बन्धित नो आयामों में से प्रत्येक आयाम में आठ-आठ कथन हैं कथन संख्या-4, 5, 8, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 25, 42, 45, 46, 48, 56, 60, 61, 62, 63 व 64 सकारात्मक हैं शेष सभी कथन नकारात्मक हैं। मापनी के प्रथम 8 कथन पाठ्यक्रम से कथन संख्या-9 से 16 तक भौतिक सुविधाओं से, कथन संख्या-17 से 24 तक पाठ्य सहगामी क्रियाओं से, कथन संख्या 25 से 32 तक परीक्षा प्रणाली से, कथन संख्या 33 से 40 तक पुस्तकालय से, कथन संख्या-41 से 48 तक शिक्षक से, कथन संख्या-49 से 56 तक शिक्षण विधि से कथन संख्या 57 से 64 तक सहपाठी समूह से तथा कथन संख्या 65 से 72 तक प्रशासन से सम्बन्धित है।

1.7 सांख्यिकीय विश्लेषण एवं व्याख्या

सारणी संख्या-1.1: स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के भौतिक सुविधाएँ आयाम की तुलना

क्र०सं०	समूह का नाम	कुल (N)	मध्यमान (M)	मनक विचलन	टी मान	सार्थकता का स्तर
1	कला वर्ग	30	24.90	7.12	0.61	सार्थक नहीं है।
2	विज्ञान वर्ग	30	25.96	6.32		

सारणी संख्या 1.1 में स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के भौतिक सुविधाएँ आयाम की तुलना टी मान के रूप में की गयी है।सारणी को देखने से ज्ञात होता है। कि कला वर्ग का मध्यमान 24.90 एवं मानक विचलन 7.12 तथा विज्ञान वर्ग का मध्यमान 25.96 तथा मानक विचलन 6.32 प्राप्त हुआ है। टी का मान 0.61 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। क्योंकि टी सारणी के अनुसार 58 df के लिए सार्थकता के 0.05 स्तर पर न्यूनतम मान 1.96 है तथा प्राप्त टी का मान सारणी के अनुसार प्राप्त न्यूनतम मान से कम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कला एवं विज्ञान वर्ग के शिथार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के भौतिक सुविधाएँ आयाम में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या-1.2: स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के पाठ्य सहगामी क्रियाएँ आयाम की तुलना

क्र०सं०	समूह का नाम	कुल (N)	मध्यमान (M)	मनक विचलन	टी मान	सार्थकता का स्तर
1	कला वर्ग	30	26.10	5.98	2.17	सार्थक नहीं है।
2	विज्ञान वर्ग	30	29.13	4.92		

सारणी संख्या 1.2 में स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के पाठ्य सहगामी क्रियाएँ आयाम की तुलना टी मान के रूप में की गयी है।सारणी को देखने से ज्ञात होता है। कि कला वर्ग का मध्यमान 26.10 एवं मानक विचलन 5.98 तथा विज्ञान वर्ग का मध्यमान 29.13 तथा मानक विचलन 4.92 प्राप्त हुआ है। टी का मान 2.17 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। क्योंकि टी सारणी के अनुसार 58 df के लिए सार्थकता के 0.05 स्तर पर न्यूनतम मान 1.96 है तथा प्राप्त टी का मान सारणी के अनुसार प्राप्त न्यूनतम मान से कम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कला एवं विज्ञान वर्ग के शिथार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के पाठ्य सहगामी क्रियाएँ आयाम में सार्थक अन्तर है।

सारणी संख्या-1.3: स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के परीक्षा प्रणाली आयाम की तुलना

क्र०सं०	समूह का नाम	कुल (N)	मध्यमान (M)	मनक विचलन	टी मान	सार्थकता का स्तर
1	कला वर्ग	120	24.97	5.42	0.07	सार्थक नहीं है।
2	विज्ञान वर्ग	120	24.90	5.28		

सारणी संख्या 1.3 में स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के परीक्षा प्रणाली आयाम की तुलना टी मान के रूप में की गयी है।सारणी को देखने से ज्ञात होता है। कि कला वर्ग का मध्यमान 24.97 एवं मानक विचलन 5.42 तथा विज्ञान वर्ग का मध्यमान 24.90 तथा मानक विचलन 5.28 प्राप्त हुआ है। टी का मान 0.07 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। क्योंकि टी सारणी के अनुसार 58 df के लिए सार्थकता के 0.05 स्तर पर न्यूनतम मान 1.96 है तथा प्राप्त टी का मान सारणी के अनुसार प्राप्त न्यूनतम मान से कम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कला एवं विज्ञान वर्ग के शिथार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के परीक्षा प्रणाली आयाम में सार्थक अन्तर है।

1.8 निष्कर्ष एवं सुझाव

शोध निष्कर्ष नामक प्रस्तुत अध्याय में शोधकत्री ने सर्वप्रथम शोध परिकल्पनाओं की वैधता का परीक्षण किया, उसके बाद शोध परिकल्पनाओं की वैधता के आधार पर शोध परिणामों का उल्लेख किया है तथा शोध परिणामों के आधार पर शोध निष्कर्षों का प्रस्तुतीकरण किया गया है। अग्रिम पंक्तियों में शोध परिकल्पनाओं की वैधता का परीक्षण किया गया है।

शोध परिकल्पनाओं की वैधता का परीक्षण

1. परिकल्पना संख्या-''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के परीक्षा प्रणाली आयाम में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' इस परिकल्पना के सन्दर्भ में टी का मान 0.07 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अर्थात् स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के परीक्षा प्रणाली आयाम में कोई सार्थ अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. परिकल्पना संख्या-''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के पुस्तकालय आयाम में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' इस परिकल्पना के सन्दर्भ में टी का मान 0.38 प्राप्त हुआ जो 0. 05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अर्थात् स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के पुस्तकालय आयाम में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
3. परिकल्पना संख्या -''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के शिक्षक आयाम में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' इस परिकल्पना के सन्दर्भ में टी का मान 2.36 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है अर्थात् स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययन विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के शिक्षक आयाम में कोई सार्थक अन्तर पाया जाता है।
4. परिकल्पना संख्या -''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के सहपाठी समूह आयाम में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' इस परिकल्पना के सन्दर्भ में टी का मान 0.08 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अर्थात् स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि के सहपाठी समूह आयाम में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शोध परिणाम

1. स्नातक स्तर पर कला वर्ग में अध्ययनरत 20 प्रतिशत छात्र उच्च शैक्षिक संतुष्टि वाले, 10 प्रतिशत छात्र निम्न सन्तुष्टि वाले व 70 प्रतिशत छात्र सामान्य शैक्षिक सन्तुष्टि रखने वाले पाये गये।
2. स्नातक स्तर पर विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत 20 प्रतिशत छात्र उच्च शैक्षिक संतुष्टि वाले, 13 प्रतिशत छात्र निम्न सन्तुष्टि वाले व 67 प्रतिशत छात्र सामान्य शैक्षिक सन्तुष्टि रखने वाले पाये गये।
3. स्नातक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक सन्तुष्टि पाठ्यक्रम आयाम पर सामान पायी गयी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, आर0ए0 (1993) शोध प्रबन्ध लेखन इण्टरनेशनल पब्लिशिंक हाउस, मेरठ।
2. शर्मा, आर0ए0 (1999-2000) शिक्षा अनुसंधान, राज प्रिंटर्स, मेरठ।
3. कृष्ण कुमार, शिक्षा का उद्देश्य और शिक्षा की व्यवस्था भारतीय आधुनिक शिक्षा, 23 अंक, 4 अप्रैल।
4. भटनागर, ए0बी0, शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली 2011, मेरठ आर0 लाल बुक डिपो।
5. गुप्ता, डॉ. अलका, शैक्षिक सन्तुष्टि, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2010।
6. वर्मा, एस0बी0 (1996), ब्रहत विश्व सूक्ति कोष, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन।
7. पुष्पलता कुशवाहा, शैक्षिक प्रबन्धन एवं विद्यालय संगठन, आस्था प्रकाशन, जयपुर।
8. पाठक वीण व्यास-शिक्षा के विविध आयाम।
9. शर्मा आर0ए0 विद्यालय प्रबन्ध तथा शिक्षण शास्त्र, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।

10. शर्मा, आर0ए0: अध्यापक शिक्षा, इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस, मेरठ।
11. ब्च एम0बी0: थर्डसर्वेइन एज्यूकेशन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (1983)
12. सक्सेना, एन0आर0 मिश्रा बी0के0 मोहन्ती आर0के0 अध्यापक, शिक्षा, सूर्या प्रकाशन, मेरठ
13. कुकान (1993) विशाल प्रकाशन मन्दिन, मेरठ।
14. शर्मा, हरस्वरूप (1990) सांख्यिकीय विधियाँ। राम प्रकाश एण्ड सन्स, आगरा।
15. रायजादा, डा. बी.एस. (1996) शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व, राजस्थान तत्व, राजस्थान हिन्दी अकादमी, राजस्थान।
16. डॉ. मधु शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि।
17. बेस्ट जे. डब्ल्यू, शिक्षा अनुसधान नई दिल्ली (1963)
18. एन0सी0ई0आर0टी0 नई दिल्ली 122, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005।
19. बुच, एम0पी0 ए सर्वे ऑफ रिसर्च एन एजूकेशन सी0ए0एस0ई0 एस0एस0 यूनिवर्सिटी, बड़ौदा, 1972।
20. भारत में शिक्षा (1960-61) दिल्ली, शिक्षा मंत्रालय।
21. चक्रवर्ती मोहन-मॉर्डन इश्यूज इन एजूकेशन।
22. बेस्ट जे डब्ल्यू-रिसर्च एजूकेशन प्रोन्टिस हॉल न्यू देहली, 1963।

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन

पूनम रानी

शोधार्थिनी, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ।

डॉ० हलधर यादव

शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

1.1 जीवन परिचय

स्वामी विवेकानन्द का जन्म मकर संक्रान्ति के दिन 12 जनवरी, 1863 को क्षत्रिय परिवार में बंगाल राज्य के कलकत्ता शहर में हुआ था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त एक सुसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित वकील थे। इनकी माता भुवनेश्वरी देवी एक पवित्र एवं विदुशी व धार्मिक महिला थी। इनका बचपन का नाम नरेन्द्र दत्त था। ये अपने माता-पिता के छटवे तथा जीवित रहने वाले पुत्रों में प्रथम थे। इसलिये ये अपने परिवार में सबके प्रिय थे। इनकी माता ने इन्हें बचपन में ही इन्हें रामायण महाभारत तथा पुराणों की कथा सुनने पर बल दिया। अत: इस पारिवारिक धार्मिक वातावरण ने इनको आरम्भ से ही गम्भीर, चिन्तनशील, धर्मनिष्ठ और कर्मनिष्ठ बना दिया। नरेन्द्र जी की बुद्धि बड़ी कुषाग्र थी। इन्होंने साहित्य इतिहास, कनिता और दर्शन का गहरा अध्ययन किया। इसके साथ-साथ संगीत वाद्य-यन्त्र, अश्वारोहण, व्यायाम और तैराकों में भी ये कुशल थे। हरबर्ट स्नेन्सर तथा जान स्टुअर्ट मिल उनके प्रिय दार्शनिक थे तथा वर्डसवर्थ एवं शैले उनके प्रिय कवि। नरेन्द्र नाथ अपने आचरण में बड़े संयमी थे। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे प्रार्थना, उपासना और ध्यान में लीन रहते थे। अत: ये विद्यार्थी जीवन में अपने सुन्दर शरीर, प्रखर प्रतिभा तथा बातचीत के अलौकिक ढंग के कारण लोकप्रिय बन गये। ये ज्ञान के प्रकाश में मंडित, आध्यात्मिक तेज से प्रदीप्त चुम्बकीय आकर्षण से युक्त, अत्यन्त प्रभावी व्यक्तित्व के थे। उनके प्रधानाचार्य मिस्टर हैस्ट्री ने उनके विषय में कहा था- "नरेन्द्रनाथ दत्त वस्तुत: प्रतिभाशाली है। मैने विश्व के विभिन्न देशों की यात्रायें की हैं किन्तु किशोरावस्था में ही इसके समान योग्य एवं महान क्षमताओं वाला युवक मुझे जर्मन विश्वविद्यालयों में भी नहीं मिला। यह निश्चित ही जीवन में यश प्राप्त करेगा। एक दिन प्राचार्य हैस्ट्री ने उनका परिचय स्वामी रामकृष्ण परमहंस से कराया। वे स्वामी रामकृष्ण परमहंस से इतना अधिक प्रभावित हुए कि वे उनके भक्त बन गये। उनके सम्पर्क में नरेन्द्र जी छ: वर्ष रहे और उनसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके नरेन्द्र नाथ से विवेकानन्द बन गये। अगस्त 1886 में स्वामी रामकृष्ण परमहंस का स्वर्गवास हो गया। स्वर्ग सिधारने से चार दिन पूर्व अपना उत्तराधिकार उनको देते हुए रामकृष्ण परमहंस ने कहा था "आज अपना सब कुछ तुम्हें देकर मैं रंक बन गया हूँ। मैंने योग द्वारा जिस शक्ति को तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट किया है उससे तुम अपने जीवन में महान कार्य करोगे। अपने इस कार्य को पूर्ण करने के बाद ही तुम वहाँ जाओगे जहाँ से तुम आये हो।" अपने गुरू के उपदेशों और विचारों के प्रचार के लिए स्वामी विवेकानन्द ने विश्व भ्रमण किया। स्वामी विवेकानन्द दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए 24-25 दिसम्बर 1892 को कन्याकुमारी पहुँचे। इन्होंने यहाँ के मन्दिर में देवी कन्याकुमारी के दर्शन किये और समुद्र की एक चट्टान पर तपस्या में लीन हो गये। कहा जाता है कि इन्हें यहाँ दिव्य अनुभूति हुई और यही इन्होंने मातृ-भूमि की सेवा में लगने की प्रतिज्ञा की।

1893 में स्वामी विवेकानन्द विश्व भ्रमण पर निकल पड़े। 11 सितम्बर 1893 में स्वामी जी ने अमेरिका के शिकागो नगर में सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लिया। वहाँ पर रोमन कैथोलिक ईसाइयों ने अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए इस धर्म सभा का आयोजन किया था। स्वामी जी ने वहाँ पर अपना भाषण "अमेरिकावासी भाइयों व बहनों" कहकर शुरू किया। इन शब्दों को सुनकर सभी श्रोताओं पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। डॉ0 एम0 लक्ष्मीकुमारी के शब्दों में-स्वभावत: स्वामी जी के वक्तव्य की सत्यता, ज्ञान की गहराई, कल्पना की व्यापकता उनके शब्दों की विरल प्रमाणिकता से परिपूर्ण करती हुई आत्मानुभूति की सघनता, और इन सबसे ऊपर नेत्रों में तेजोमय सौन्दर्य से युक्त उनका सर्वाधिक मन-मोहन व्यक्तित्व तथा घण्टियों की तरह बजती मधुर आवाज सबने समन्वित होकर उन्हें उस धर्म सभा का केन्द्रीय पुरूष बना दिया जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था। उन्होंनें तुरन्त ही वहाँ अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया। विश्व धर्म संसद के श्रोताओं मात्र के मध्य ही नहीं बल्कि अमेरिका के विशेष महत्वपूर्ण महानुभावों में तथा इसके बाद इंग्लैण्ड तथा यूरोप में भी। उनकी सार्वजनिक घोषणा ने एक सच्चे विश्व बन्धुत्व की लहर उत्पन्न कर दी। जिसने एक अद्वितीय एवं व्यापक विचार के साथ अपने शक्तिशाली सम्मोहन में सैकड़ों पुरूषों एवं महिलाओं को बांध लिया। पश्चिम के समाज में उनके प्रवेश से भारत की समस्याओं के प्रति सहानुभूति के द्वार खुल गये और हमारे अपने देश में नवीन आत्मगौरव एवं विकास का नया सूत्रपात हुआ जिसका प्रभाव देश के स्वतन्त्रता संघर्ष पर भी पड़ा। वे सनातन धर्म को वैज्ञानिक तार्किकता के तेज प्रकाश से देशवासियों के सम्मुख लाये और अपने ज्ञान से लोगों का मार्गदर्शन किया।

1.2 जीवन दर्शन

स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन मानव जीवन के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक है। उन्होंने बताया कि जीवन एक संघर्ष है। इस संघर्ष में केवल समर्थ की विजय होती है तथा असमर्थ का विनाश हो जाता है। अत: विजय प्राप्त करके जीवित रहने के लिए व्यक्ति को जीवन की प्रत्येक चुनौती के साथ डटकर संघर्ष करना चाहिए। स्वामी जी को तात्कालिक जनता के कष्टों को देख बड़ा दुख होता था। एक दिन उन्होंने कहा-"आज हम लोग दीन-हीन हो गये हैं, हम प्रत्येक कार्य को दूसरों से डरकर करते है, डरते हुए बोलते हैं, डरते हुए सोचते हैं। ऐसा लगता है कि हमने शत्रुओं के देश में जन्म लिया है। मित्रों के नहीं।" स्वामी जी के जीवन दर्शन के अंगों का विवरण निम्न रूप से दिया जा सकता है।

1. वेदान्त दर्शन में विश्वास
2. मनुष्य की महत्ता में विश्वास
3. आत्मानुभूति में विश्वास
4. आध्यात्मिकता में विश्वास
5. निर्भीकता, सत्यता और स्वतन्त्रता में विश्वास
6. मानव सेवा की भावना में विश्वास

1.3. शिक्षा दर्शन

स्वामी जी अपने समय की, मैकाले द्वारा प्रचारित अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के विरोधी थे। उनके अनुसार यह शिक्षा मनुष्य निर्माण करने वाली शिक्षा नहीं है क्योंकि इस शिक्षा का उद्देश्य मात्र बाबुओं की संख्या बढ़ाना था। स्वामी जी भारत में ऐसी शिक्षा चाहते थे जिससे व्यक्ति चरित्रवान बने। साथ-साथ आत्मनिर्भर भी बने। उन्हीं के शब्दों में-"हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क को शक्ति बढ़ती, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।"

स्वामी जी सैद्धान्तिक शिक्षा की तुलना में व्यावहारिक शिक्षा पर बल देते थे। उन्हीं के शब्दों में "तुम्हें कार्य के सब क्षेत्रों में व्यावहारिक होना पड़ेगा, सिद्धान्तों के ढेरों ने सम्पूर्ण देश का विनाश कर दिया है।" स्वामी जी के शिक्षा-दर्शन सम्बन्धी आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. शिक्षा ऐसी हो जिससे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास हो सके।
2. शिक्षा ऐसी हो जिससे व्यक्ति के चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो तथा व्यक्ति आत्मनिर्भर बने।
3. बालकों के समान ही बालिकाओं को भी शिक्षा दी जानी चाहिए।

4. धार्मिक शिक्षा पुस्तकों से नहीं वरन् व्यवहार, आचरण एवं संस्कारों के माध्यम से दी जानी चाहिए।
5. पाठ्यक्रम में लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विषय रखने चाहिए।
6. शिक्षा गुरूगृह में ही प्राप्त की जा सकती है।
7. शिक्षक एवं छात्र में महिमामय एवं गरिमामय सम्बन्ध होने चाहिए।
8. जन साधारण को शिक्षित करने का प्रयास करना चाहिए।
9. नारी शिक्षा का केन्द्र धर्म होना चाहिए।
10. देश को औद्योगिक प्रगति के लिए प्राविधिक शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।
11. राष्ट्रीय एवं मानवीय शिक्षा परिवार से प्रारम्भ होनी चाहिए।
12. केवल पुस्तकों का अध्ययन ही शिक्षा नहीं है।
13. ज्ञान व्यक्ति के मन में विद्यमान होता है। वह स्वयं ही सीखता है।
14. शिक्षक एक मित्र, दार्शनिक तथा पर्थ-प्रदर्शक है। उसे सहानुभूतिपूर्ण ढंग से बालक के मस्तिष्क में स्थित ज्ञान का पथ-प्रदर्शन करना चाहिए।

1.4. मानवतावादी दर्शन

स्वामी विवेकानन्द ने मानव धर्म को परिभाषित करते हुए कहा कि ईश्वर सम्बन्धी सभी सिद्धान्त सगुण, निर्गुण, अनन्त, नैतिक नियम अथवा आदर्श मानव धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत आने चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मानव जीवन का प्रथम लक्ष्य ज्ञान तथा दूसरा लक्ष्य सुख है। सुख तथा ज्ञान मुक्ति की ओर ही ले जाते हैं परन्तु जब तक प्रत्येक प्राणी मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता तब तक कोई भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। जब तक सभी सुखी नहीं हो जाते कोई भी सुखी नहीं हो सकता। आत्म प्रतिष्ठान नहीं आत्म त्याग ही सर्वोच्च लोक का धर्म है। समस्या का हल निस्वार्थ भाव से ही हो सकता है। धर्म की उत्पत्ति प्रखर आत्म त्याग से ही हो सकती है। अपने लिए कुछ भी मत चाहो, सब दूसरों के लिए करो यही सच्चा मानव धर्म है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में- "धर्म का अर्थ न गिरजे में जाना है न ललाट रंगना है न विचित्र ढंग का वस्तु धारण करना है। इन्द्र धनुष के सब रंगों से तुम अपने को चाहे भले ही रंग लो किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नहीं है यदि तुमने ईश्वन का साक्षात्कार नहीं किया तब यह सब व्यर्थ है जिसने हृदय को रंग लिया उसके लिए दूसरे रंग की आवश्यकता नहीं, यही धर्म का सच्चा अनुभव है।"

वास्तव में समाज को आर्थिक कल्याण और भौतिक सुख अवश्य ही प्रदान करने चाहिए परन्तु अन्तिम लक्ष्य आत्मा का विकास और पूर्णता है-चाहे उसके कुछ भी अर्थ हो, यह आत्मा ही मनुष्य के अन्तर्गत मानवता है। इसलिए मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य मानवता का साक्षात्कार है। उन्हीं के शब्दों में जीवों में मनुष्य ही सर्वोच्च जीव है और यह लोग ही सर्वोच्च लोक है। ईश्वर को मनुष्य की अपेक्षा बड़ा समझकर हम उसको कल्पना नहीं कर पाते, इसलिए हमारा ईश्वर भी मानव है और मानव ही ईश्वर है। स्वामी जी मानव सेवा को ही सबसे बड़ा धर्म मानते हैं तथा उन्होंने दरिद्र नारायण की पूजा को ही सबसे बड़ी पूजा माना है। राष्ट्र सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य होना चाहिए।

1.5. शिक्षा का अर्थ

स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त को व्यवहारिक रूप प्रदान किया वे मनुष्य को जन्म से पूर्ण मानते हैं और इसी पूर्णता की अभिव्यक्ति को वे शिक्षा कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ मनुष्य में निहित शक्तियों का पूर्ण विकास है न कि मात्र सूचनाओं का संग्रह। उनके अनुसार "यदि शिक्षा का अर्थ्ज्ञ सूचनाओं से होता, तो पुस्तकालय संसार के सर्वश्रेष्ठ संत होते तथा विश्व कोष ऋषि बन जाते।" उन्हीं के शब्दों में, "शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।" स्वामी जी का कहना है कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से सुखी नहीं होते, तब तक ज्ञान, भक्ति और योग ये सब कल्पना की वस्तु हैं। अत: केवल पुस्तकीय ज्ञान ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा का अर्थ ऐसे ज्ञान की प्राप्ति से है जिससे जीवन का निर्माण हो, मनुष्यत्व आये, चरित्र का गठन हो तन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य आत्मनिर्भर बने।

1.6 स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा में योगदान

एक शिक्षा शास्त्री के रूप में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिष्ठा बहुत अधिक व्यापक है। संक्षेप में भारतीय शिक्षा को उनकी देन का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है।

1. स्वामी जी ने वेदान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। उन्होंने मानवता को बहुत ऊँचा स्थान दिया। उन्होंने कहा कि मानव सेवा से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। उन्होंने मानव मं ही ईश्वर के दर्शन किये और मानव सेवा को ही ईश्वर सेवा माना। उनके अनुसार शिक्षक को बालक में मानव सेवा की भावना का विकास करना चाहिए।
2. स्वामी जी ने परमानुभूति की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल दिया। उन्होंन कहा जब तक भौतिक दृष्टि से सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, भक्ति और योग सब कल्पना की वस्तु है अतः शिक्षा इस प्रकार की हो जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर बन सके।
3. स्वामी जी द्वारा बताये गये शिक्षा के उद्देश्य वर्तमान परिस्थितियों में अत्यन्त उपयोगी है। वे बालक की उन्नति और विकास में योगदान दे सकते हैं।
4. पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में स्वामी जी के विचार अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने आत्म अनुभूति के लिए आध्यात्मिक और लौकिक उन्नति के लिए सभी विषयों पर बल दिया है।
5. स्वामी जी ने बालकों के लिए प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल दिया है जिससे बालकों को रोजगार मिल सके।
6. स्वामी जी संस्कृत को सर्वोत्तम भाषा मानते थे। उनका विश्वास था कि संस्कृत के द्वारा भारतीय गौरव, गरिमा के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है लेकिन वे संस्कृत के साथ-साथ अन्य भाषाओं के ज्ञान प्राप्त करने पर भी बल देते हैं।
7. स्वामी जी ने शारीरिक शिक्षा पर विशेष बल दिया उनके अनुसार बालक को स्वस्थ और बलिष्ठ बनाना भी आवश्यक है जिससे बालक परिश्रम करने वाले अंगों से युक्त हो सके। इसके लिए उन्होंने पाठ्यक्रम में खेलकूद तथा व्यायाम की क्रियाओं को शामिल करन का सुझाव दिया।
8. स्वामी जी न जन साधारण की शिक्षा सम्बन्धी विचार भारत की वर्तमान परिस्थितियों में अत्यन्त उपयोगी है। उन्हीं के शब्दां में "मेरे विचार से जन साधारण की अवहलना करना महान राष्ट्रीय पाप और हमारे पतन का कारण है। जब तक भारत की सामान्य जनता को एक बार फिर अच्छी शिक्षा, अच्छा भोजन और अच्छी सुरक्षा प्रदान नहीं की जायेगी तब तक अधि क से अधिक राजनीति भी व्यर्थ होगी। वे हमारी शिक्षा के लिए धन देते हैं। हमारे मन्दिरों का निर्माण करते हैं पर इसके बदले में उन्हें मिलता क्या है मात्र ठोकरे। वे हमारे दासों के समान है यदि हम भारत का पुनरूत्थान करना चाहते हैं, तो हमें उनको शिक्षित करना होगा।"
9. स्वामी जी स्त्रियों की शिक्षा के पक्षधर थे तथा देश के विकास क लिए उनके उत्थान पर बल देते थ। उन्हीं के शब्दों में "पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षित करो तब वे आपको बताये कि उनके लिए कौन से सुधार आवश्यक हैं। उनक मामलों में बोलन वाले तुम कान होते हो।"
10. स्वामी जी ने धार्मिक शिक्षा का समर्थन किया है। यह धर्म को मनुष्य जीवन के शाश्वत मूल्यों के उद्घोषक के रूप मं स्वीकार करते थे। यह सभी धर्मों को बराबर महत्व देते थे। इन्हीं के शब्दों में "संसार के सब धर्म एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं।"

सहायक ग्रन्थ सूची

1. स्वामी दयानन्द : सत्यार्थ प्रकाश
2. सुरेश भटनागर : आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, लॉयल बुक डिपो, मेरठ
3. हुमांयू कबीर : शिक्षा का भारतीय दर्शन, बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाऊस
4. एस0 पी0 चौबे : शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाज शास्त्रीय आधार, प्रकाशक-इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ

5. डॉ0 रमाकान्त दुबे : विश्व के कुछ महान शिक्षा शास्त्री, प्रकाशक, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
6. राम शक्ल पाण्डेय : भारतीय शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-2
7. राम शक्ल पाण्डेय : विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-2
8. राम शक्ल पाण्डेय : शिक्षा की दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2
9. विवेकानन्द : शिक्षा संस्कृति और समाज, प्रभात प्रकाशन, 205 चावड़ी बाजार, नई दिल्ली
10. रघुनाथ पाठक : आर्य समाज की उपलब्धियाँ
11. गिरीश पचौरी : शिक्षा सिद्धान्त, लॉयल बुक डिपो, मेरठ
12. गिरीश पचौरी : शिक्षा दर्शन, ओरियन्टल पब्लिशिंग हाऊस, परेड, कानपुर
13. एन0 आर0 स्वरूप सक्सेना : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, लायल बुक डिपो, मेरठ
14. रमन बिहारी लाल : शिक्षा सिद्धान्त, रस्तौगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ
15. सरयुप्रसाद चौबे : शिक्षा दर्शन, यूनिवर्सल पब्लिशर्स, 1003, आगरा
16. स्वामी विवेकानन्द : शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम, कलकत्ता
17. 29 अप्रैल 2003 : मेरठ हिन्दी समाचार पत्र, अमर उजाला
18. जॉन, एस0 ब्रुबेकर : मार्डन फिलासफी ऑफ एजूकेशन टाटा मेग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी प्राईवेट लिमिटेड, बम्बई, नई दिल्ली
19. डॉ0 उर्मिला शर्मा : समकालीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन में मानवतावाद शोध ग्रन्थ, प्रकाश विनीत पब्लिकेशन मेरठ

शिक्षा नीति में आरक्षित और औसत छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध का अध्ययन

शशि शर्मा

शोधार्थिनी, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० हलधर यादव

शिक्षा संकायए महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

सार

शिक्षा नीति में व्यावसायिक शिक्षा को दी गई प्राथमिकता के अनुसार, फरवरी 1988 में माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की एक केंद्र प्रायोजित योजना शुरू की गई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत रोजगार क्षमता को बढ़ाना, मांग और मांग के बीच बेमेल को कम करना था। कुशल जनशक्ति की आपूर्ति और उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों के लिए एक विकल्प प्रदान करना।व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को व्यवसाय के लिए तैयार करना और उन्हें आवश्यक कौशल के साथ काम की दुनिया में प्रवेश करने में सक्षम बनाना है। इस कारण से, सामान्य शिक्षा के 10 साल पूरे करने के बाद, छात्र तकनीकी प्रक्रियाओं का नया व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने, मैनुअल संचालन को विनियमित करने और व्यापार के कुछ कौशल और चाल के बारे में बताता है। अंतिम, लेकिन कम से कम नहीं, छात्र को नागरिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए।व्यावसायिक महत्व के कारण, महात्मा गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की थी।

मुख्य शब्द - शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षा प्रणाली, आरक्षित और औसत छात्र, सक्षम बनाना

परिचय

यह बुनियादी शिक्षा कार्योन्मुखी या शिल्प केन्द्रित है। बुनियादी शिक्षा में शिल्प, बच्चे की रचनात्मक क्षमताओं को प्रशिक्षित करता है। जीवन में बाद में यह प्रशिक्षण युवाओं में किसी कार्य को कुशलतापूर्वक और शान से करने के लिए एक आंतरिक आग्रह पैदा करता है। इसलिए गांधी जी ने शिक्षा के स्वावलंबी पहलू के महत्व को पहचाना। वह चाहते थे कि हर लड़का और लड़की स्कूल से इस कदर सुसज्जित हों कि वे अपना वजन खुद खींच सकें, अगर वे कोई अच्छा पेशा पाने में असफल होते हैं। इसलिए उन्होंने दावा किया कि शिक्षा उनके लिए बेरोजगारी के खिलाफ एक तरह का बीमा होना चाहिए।पचास के दशक के दौरान उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक रूप से उन्मुख शिक्षा की प्रणाली की शुरूआत ने शिक्षा के मानकों में महत्वपूर्ण सुधार के लिए एक व्यावहारिक क्षेत्र बनाया। इस प्रणाली का उद्देश्य छात्रों को स्कूल स्तर पर उनकी योग्यता और क्षमताओं के अनुरूप अध्ययन के क्षेत्र का चयन करने के लिए निर्देशित करना है। छात्रों के लिए विषयों के चयन के साथ यह प्रणाली स्कूल में पढ़ाई पूरी होने

के बाद इस विकल्प को छोड़ने के बजाय एक विशेष पेशे के लिए प्रारंभिक चरण में शिक्षा को तैयार करने का एक प्रयास है।एक व्यक्ति जो खुद को अकादमिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से बेहतर बनाने की इच्छा रखता है, वह तभी संतुष्ट होगा जब उसकी उपलब्धियां उसके द्वारा निर्धारित लक्ष्यों तक पहुंचेंगी, भले ही दूसरे उसकी उपलब्धि को कैसे देखें, इसका मतलब यह है कि व्यक्ति अहंकार उसकी आकांक्षा में शामिल है .जैसे-जैसे बच्चा अपनी कल्पनाओं और बाल कल्पनाओं के प्रभाव से अपनी अभीप्सा को विकसित करता है। इन्हें अवास्तविक माना जाता है क्योंकि ये बच्चों की कल्पनाओं और भ्रांतियों पर आधारित होते हैं। जब बच्चा बढ़ता है और स्कूल या कॉलेज स्तर पर शिक्षा प्राप्त करता है, तो वह 'महत्वाकांक्षी' हो जाता है लेकिन आकांक्षा में अवास्तविक नहीं होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि परिपक्व व्यक्ति वास्तविक रूप से सोचने में सक्षम होगा। स्कूल स्तर पर एक छात्र के रूप में उसकी शिक्षा और व्यवसाय के संबंध में आकांक्षा विकसित होती है। इसीलिए, विषय का कोई भी विकल्प किसी एक विषय के प्रति रुचि के कारण होता है, अपने जीवन में निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने की आकांक्षा के कारण होता है।

1.1 भारत में व्यावसायिक शिक्षा का विकास

भारत में प्राचीन काल में भी व्यावसायिक शिक्षा कुछ अन्य रूपों में मौजूद थी। पुत्र अपने बड़ों से कार्य सीखता और महारत हासिल करता। पहला तकनीकी प्रशिक्षण केंद्र 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के समुचित कार्य का परिणाम था। भारत में ब्रिटिश काल में, पर्यवेक्षकों को सार्वजनिक भवन, सड़कों, नहरों और बर्तनों के निर्माण और रखरखाव की निगरानी के लिए प्रशिक्षित किया गया था। यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में बुनकर अधिकतर निरक्षर थे।

भारत में पहला औद्योगिक स्कूल 1842 में मद्रास में शुरू किया गया था जो वहां स्थित गन कैरिज फैक्ट्री से जुड़ा था। पहला इंजीनियरिंग कॉलेज उत्तर प्रदेश के रुड़की में स्थापित किया गया था, जो अब उत्तराखंड राज्य में है, जिसमें सिविल इंजीनियरों को प्रशिक्षित करने के लिए 1847 में ऊपरी गंगा नहर परियोजना के लिए पास की बड़ी कार्यशालाओं का निर्माण किया गया था। इसके बाद, अन्य शहरों जैसे पुणे में, कलकत्ता में, बॉम्बे में और बाद में दिल्ली में और अधिक इंजीनियरिंग कॉलेज स्थापित किए गए ताकि भारत को गैर-पेशेवर दोनों तरह की इंजीनियरिंग शिक्षा में बहुत मजबूत आधार बनाया जा सके। इंजीनियरिंग पीएचडी तक की पेशकश की है। 8 कुलीन भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों में स्तर। सरकारी संस्थानों, सार्वजनिक और निजी तकनीकी संस्थानों और पॉलिटेक्निक द्वारा डिप्लोमा और सर्टिफिकेट स्तर के पाठ्यक्रम पेश किए जाते हैं।

1947 में, भारत को स्वतंत्रता मिली, तब से डिप्लोमा और सर्टिफिकेट स्तर पर टीवीईटी कार्यक्रमों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करने के लिए तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों और पॉलिटेक्निक का एक नेटवर्क स्थापित किया गया है। इसी समय, भारतीय वायु सेना, सेना और नौसेना के विकास में पर्याप्त व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास शामिल है। ये टीवीईटी स्नातकों के गुणवत्ता स्रोत बने हुए हैं, ज्यादातर सेना के लिए लेकिन विमानन उद्योग जैसे नागरिक उद्योगों के लिए भी तेजी से बढ़ रहे हैं। रिलायंस, टाटा जैसी बड़ी कंपनियों और कई आईटी फर्मों ने अपने कर्मचारियों की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए इन-हाउस प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित किए हैं। साथ ही, ग्रामीण और स्लम समुदायों को प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करने के लिए सामुदायिक आउटरीच कार्यक्रमों का एक नेटवर्क स्थापित किया गया है। शिक्षा से संबंधित विभिन्न आयोगों का गठन किया गया और उन्होंने व्यावसायिक शिक्षा की सिफारिश की।

भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की निगरानी केंद्र सरकार के 20 मंत्रालयों द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए, देश भर में कृषि केंद्रों के विस्तार का एक नेटवर्क जो ग्रामीण श्रमिकों और किसानों के लिए तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम प्रदान करता है, कृषि मंत्रालय द्वारा आयोजित किया जाता है। एक अन्य संगठन है जिसे खान मंत्रालय के नाम से जाना जाता है जो खान श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसी तरह, भारत में एक और संगठन है जो ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए काम कर रहा है। समुदाय के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के लिए काम कर रहा है।

1.2 भारत में व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण प्रणाली (वीईटी)

भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (टीवीईटी) प्रणाली त्रि-स्तरीय प्रणाली के माध्यम से मानव संसाधन विकसित करती है:

- स्नातकोत्तर और स्नातक स्तर के विशेषज्ञ (जैसे आईआईटी, एनआईटी और इंजीनियरिंग कॉलेज) प्रौद्योगिकीविदों और इंजीनियरों के रूप में प्रशिक्षित हैं।

- डिप्लोमा स्तर के स्नातक जो पॉलिटेक्निक में पर्यवेक्षकों और तकनीशियनों के रूप में प्रशिक्षित हैं।
- व्यावसायिक स्ट्रीम में उच्चतर माध्यमिक छात्रों के लिए प्रमाणपत्र-स्तर और आईटीआई में प्रशिक्षित लोगों के साथ-साथ कुशल और अर्ध-कुशल श्रमिकों के रूप में औपचारिक शिक्षुता के माध्यम से।

भारत सरकार के 17 से अधिक मंत्रालय या विभाग औपचारिक या गैर-औपचारिक वीईटी कार्यक्रमों को प्रदान या वित्त पोषण कर रहे हैं। इस प्रकार प्रस्तावित वीईटी कार्यक्रमों की कुल वार्षिक प्रशिक्षण क्षमता लगभग पच्चीस लाख होने का अनुमान है। हालांकि, लक्ष्य समूह, अवधि, प्रवेश योग्यता, पाठ्यक्रम, परीक्षण और प्रमाणन आदि के संदर्भ में विभिन्न कार्यक्रमों के बीच बहुत भिन्नता है, जिसके परिणामस्वरूप योग्यता, समकक्षता और ऊर्ध्वाधर गतिशीलता की मान्यता से संबंधित समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

1.3 भारत में व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम विकसित करने की आवश्यकता

भारत को एक 'यंग नेशन' के रूप में जाना जाता है, जिसमें हर साल दो करोड़ और अस्सी लाख युवाओं की आबादी जुड़ती है। देश में केवल लगभग 2.45 मिलियन व्यावसायिक प्रशिक्षण सीटें उपलब्ध हैं जबकि लगभग 12.78 मिलियन व्यक्ति हर साल श्रम बाजार में प्रवेश करते हैं। लगभग 90% रोजगार के अवसरों के लिए व्यावसायिक विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है, कुछ ऐसा जो कॉलेजों और स्कूलों में बड़े पैमाने पर प्रदान नहीं किया जा रहा है।

व्यावसायिक शिक्षा की पेशकश में अनिवार्य 'लचीलापन' लाने और उद्योग के साथ साझेदारी में 'मॉड्यूलर योग्यता आधारित पाठ्यक्रम' के विकास के लिए प्रस्तावित अधिकांश सुधार नियोक्ताओं (उद्योग) और लक्षित समूहों दोनों की जरूरतों के अनुरूप फायदेमंद होंगे। कुशल कर्मचारियों की कमी को कम करना।

1.4 अनुसंधान क्रियाविधि

1.4.1 परीक्षण का डिजाइन और निर्माण

16 पीएफ फॉर्म बी में दिए गए प्रत्येक कारक के लिए 10-13 आइटम हैं। स्टैंसिल द्वारा स्कोरिंग में अधिकतम सुविधा देने और विविधता और रुचि सुनिश्चित करने के लिए एक योजना द्वारा निर्धारित मोटे तौर पर चक्रीय क्रम में प्रश्नों की व्यवस्था की जाती है। परीक्षार्थी। 16 पीएफ टेस्ट के फॉर्म ए का निर्माण फॉर्म बी, सी, डी, ई और एफ के समकक्ष डिजाइन किया गया है। फॉर्म ए और बी में प्रत्येक में 187 आइटम हैं जिनमें औसत पाठक या परीक्षण विषय के लिए प्रति फॉर्म 45 से 55 मिनट की आवश्यकता होती है।

1.4.2 उत्तर देने का तरीका

प्रत्येक प्रश्न के लिए तीन वैकल्पिक उत्तर दिए गए हैं, क्योंकि दो वैकल्पिक "मजबूर पसंद" स्थिति, सड़क के किसी भी बीच में समझौता करने से मना करती है, एक विकृत वितरण को मजबूर करती है, कोई भी परीक्षार्थी की ओर से परीक्षण के प्रति घृणा पैदा कर सकता है। यह विशेष रूप से औसत या उच्च बुद्धि वाले व्यक्ति के मामले में है जिनके लिए फॉर्म ए और बी डिजाइन किए गए हैं। बच्चों के साथ या कम बुद्धिमान, कम सक्षम या सांस्कृतिक रूप से वंचित वयस्कों के साथ, दो-विकल्प वाला डिजाइन बेहतर दिखाई देता है और इस तरह के डिजाइन का उपयोग ऐसी आबादी (फॉर्म ई और एफ) के उपयोग के लिए बनाए गए 16 पीएफ के 'कम साक्षर' पैमानों में किया जाता है।

1.4.3 परिणाम और चर्चा

1.4.4 प्राथमिक कारकों की व्याख्या

हैंडबुक और अन्य जगहों पर विस्तार से चर्चा की गई विधियों का उपयोग करके, विभिन्न मानदंडों पर स्कोर की भविष्यवाणी, और विभिन्न नैदानिक नैदानिक समूहों के लिए व्यक्तियों के असाइनमेंट को बीमांकिक रूप से किया जा सकता है। जहां मानदंड के साथ कोई संबंध ज्ञात नहीं है, कारकों की मनोवैज्ञानिक प्रकृति का ज्ञान प्रारंभिक भविष्यवाणी का मार्गदर्शन करना चाहिए जब तक कि किसी विशेष स्थिति में अनुभवजन्य अध्ययन नहीं किया जा सके। इसके अलावा, यहां तक कि जहां सहसंबंध, एक निश्चित मानदंड के बारे में बीमांकिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। सीखने, परिपक्वता आदि के साथ व्यक्तित्व के परिवर्तन या जीवन की स्थिति में प्रत्याशित परिवर्तनों की अनुमति देने के लिए तत्काल सांख्यिकीय गणनाओं में मनोवैज्ञानिक निर्णय जोड़ना वांछनीय है।

16PF द्वारा मापे गए प्रत्येक प्राथमिक कारक में एक वर्णानुक्रमिक पदनाम (। से फ.,) और एक संक्षिप्त शीर्षक होता है, जिसे व्यवसायी सबसे अधिक उपयोग करेगा। कारकों की परिभाषाएं और व्याख्याएं, 'जैसा कि नीचे दिया गया है, संक्षिप्त, गैर-तकनीकी, और निश्चित रूप से, हैंडबुक और अन्य आईबीपीएफ स्रोत पुस्तकों में उपलब्ध अधिक गहन चर्चाओं की तुलना में कम सटीक हैं। इसके अलावा, अच्छी तरह से परिभाषित व्यावसायिक और नैदानिक समूहों के लिए हैंडबुक में दी गई बड़ी संख्या में प्रोफाइल मनोवैज्ञानिक को कारकों के अर्थ और संचालन में अतिरिक्त अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

परिकल्पना -1: उच्च और निम्न व्यक्तित्व विशेषता वाले पेशेवर कॉलेजों के छात्र अपनी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण रूप से भिन्न नहीं होते हैं। इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए शोधकर्ता ने टी-परीक्षण का प्रयोग निम्न प्रकार से किया है:-

तालिका 1.1: उनके व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में उच्च और निम्न व्यक्तित्व विशेषता के बीच टी-परीक्षण का परिणाम।

व्यक्तित्व गुण	N	माध्य	मानक विचलन	t-value	P-Value	Significance
उच्च व्यक्तित्व विशेषता	240	49.21	10.12	3.21	0.01	Significant
निम्न व्यक्तित्व विशेषता	240	51.78	8.50			

तालिका 1 के परिणाम दर्शाते हैं कि प्राप्त ज-मान 3.21, df/478 पर 0.01 (2.59) के महत्व के स्तर पर ज-मान से अधिक है क्योंकि यह मान 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण है, इसलिए यह 0.05(1.97) पर महत्वपूर्ण होगा। स्तर भी df/478 पर। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना -2: कॉलेजों के आरक्षित, औसत और आउटगोइंग छात्र अपनी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण रूप से भिन्न नहीं हैं। इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए शोधकर्ता ने एनोवा और टी-टेस्ट दोनों को निम्नलिखित तरीके से लागू किया है: -

तालिका 1.2: आरक्षित, औसत और आउटगोइंग छात्रों का उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में माध्य और एसडी मान

समूह	Reserved	Average	Outgoing
N	100	253	127
SUMS	003333	008459	003886
माध्य	0043.44	0044.52	0049.84
मानक विचलन	0013.300	0015.84	0016.34

तालिका 1.3: आरक्षित, औसत और आउटगोइंग छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में एनोवा परीक्षा का परिणाम।

SV	N	DF	S.S.	MSS	F-value	P-value	Sig.
Betweengroup		2	1548.42	774.21			
Withingroup		477	85654.68				
Total	480	479	87203.10	241.74	3.20	0.05	Significant

तालिका 3 स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि प्राप्त एफ-वैल्यू 3.20, एफ-वैल्यू से 0.05 (3.01) महत्व के स्तर df/479 पर अधिक है। यह मान 0.05 (3.01) पर महत्वपूर्ण है लेकिन यह 0.01 के स्तर (4.65) पर df / 479 पर महत्वपूर्ण नहीं होगा। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

1.5 निष्कर्ष

शिक्षा नीति में व्यावसायिक शिक्षा को दी गई प्राथमिकता के अनुसार, फरवरी 1988 में माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की एक केंद्र प्रायोजित योजना शुरू की गई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत रोजगार क्षमता को बढ़ाना, मांग और मांग के बीच बेमेल को कम करना था। कुशल जनशक्ति की आपूर्ति और उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों के लिए एक विकल्प प्रदान करना। उच्च और निम्न व्यक्तित्व के व्यावसायिक विकल्पों पर व्यक्तित्व के प्रभाव के संबंध में, आरक्षित, औसत और आउटगोइंग, कम बुद्धिमान, औसत बुद्धि और अधिक बुद्धिमान, भावना से प्रभावित, औसत और भावनात्मक रूप से स्थिर, शर्मीली, औसत और उद्यमशील, कठोर दिमाग, औसत दिमागी और कोमल दिमाग, व्यावहारिक, औसत और कल्पनाशील, समूह पर निर्भर, औसत और आत्मनिर्भर, आराम से, औसत और तनावग्रस्त छात्रों का पेशेवर कॉलेज के छात्रों पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व के प्रभाव के संबंध में व्यावसायिक विकल्पों पर सह-संबंध विनम्र, औसत और मुखर, शांत, औसत और खुश-भाग्यशाली, समीचीन, औसत और कर्तव्यनिष्ठ, भरोसेमंद औसत और संदिग्ध, स्पष्ट, औसत और चतुर, रखा, औसत और आशंकित, रूढिघ्वादी औसत और प्रयोग, अनुशासनहीन आत्म-संघर्ष, औसत और नियंत्रित छात्रों का पेशेवर कॉलेज के छात्रों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

उच्च, मध्यम और निम्न एसईएस छात्रों में व्यावसायिक आकांक्षा और व्यावसायिक विकल्पों के संबंध में अंतर है।

एसईएस के पारस्परिक प्रभाव के संबंध में, व्यावसायिक आकांक्षाओं पर व्यक्तित्व और लिंग (लड़के और लड़कियों) का व्यावसायिक कॉलेजों के छात्रों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और पेशेवर कॉलेजों के व्यावसायिक विकल्पों पर एसईएस, व्यक्तित्व और लिंग के परस्पर प्रभाव का प्रभाव पड़ता है।

संदर्भ सूची

- डायन्स, आरआर क्लार्क, ए और डिनिट्ज, एस (2017)। व्यावसायिक आकांक्षा के स्तर। एक परिवर्तनीय अमेरिकी समाजशास्त्रीय समीक्षा के रूप में पारिवारिक अनुभव के कुछ पहलू, 21, 212-214।
- एडवर्ड टी. क्लार्क। "व्यावसायिक वरीयता और धारणा पर सेक्स और सामाजिक वर्ग का प्रभाव"। कार्मिक और मार्गदर्शन जर्नल, 45, 440- 44, जनवरी, 2017.
- एडवर्ड्स, ए.एम. (2017)। संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए तुलनात्मक व्यावसायिक सांख्यिकी 1870-1940। वाशिंगटन डी.सी.: सरकारी मुद्रण कार्यालय।
- इग्वुचुकुवु । (2016)। अंम्बरा राज्य में वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की नौकरी की आकांक्षाओं का सहसंबंध। अप्रकाशित एम. एड परियोजना (अप्रकाशित), ननमदी अजिघ्कीवे विश्वविद्यालय, अवका।, अवका।

- एम्पे, एल.टी. (2018)। सामाजिक वर्ग और व्यावसायिक आकांक्षा - निरपेक्ष और सापेक्ष माप की तुलना। अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, 21, 703-709।
- एर्ब, थॉमस, ओ। (2018)। प्रारंभिक किशोरों की कैरियर वरीयताएँ: आयु और लिंग अंतर। प्रारंभिक किशोरावस्था का जर्नल, 3 (4), 349-359।
- एस्लिंगर, सीडब्ल्यू (2018)। चयनित बारहवीं कक्षा की महिला छात्रों की शैक्षिक और व्यावसायिक आकांक्षाएँ और अपेक्षाएँ और शैक्षिक, व्यक्तिगत और पारिवारिक विशेषताएँ। निबंध सार इंटरनेशनल, 37(1-ए), 255.
- फॉर्म, डब्ल्यू.एच. और गेश-वेंडर, जे.ए. (2017)। नौकरी की संतुष्टि का सामाजिक संदर्भ आधार। मैनुअल श्रमिकों का मामला। अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, 27, 228-237।
- फ्रैंक, जे। (2017)। आकांक्षा के स्तर के कुछ पहलुओं में व्यक्तिगत अंतर अमेरिकन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी। 47 (91), 119-128।
- फ्रेड, एफ.डी. (2018)। व्यक्तित्व लक्षण और व्यावसायिक विकल्प: हॉलैंड के सिद्धांत का एक परीक्षण एक अप्रकाशित एम.एड. परियोजना (अप्रकाशित), इबादान विश्वविद्यालय, इबादान।
- फुक्वा, डी.आर., सीवर्थ, टी.बी. और न्यूमैन, जे.एल. (2017)। कैरियर अनिर्णय और चिंता का संबंध: एक बहुभिन्नरूपी परीक्षा। जर्नल ऑफ वोकेशनल बिहेवियर, 30, 175-186।
- गास्केल, जेन। (2017)। हाई स्कूल की लड़कियों की सेक्स भूमिका विचारधारा और आकांक्षाएं। मनोवैज्ञानिक सार, 63(1).
- गौर, जे.एस. (2017)। दिल्ली में उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की व्यावसायिक आकांक्षाओं पर बुद्धि के स्तर का प्रभाव। इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी, (जनवरी), 49(2), 139-148।

दलित जीवन को चित्रित करती आत्मकथा 'मुर्दहिया'

डॉ० सचेन्द्र कुमार

असि0 प्रोफेसर - हिन्दी, फुन्दी सिंह लौना, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जालौन, उ0प्र0

हिन्दी साहित्य में दलित लेखकों के द्वारा अपनी-अपनी आत्मकथा लिखी गई हैं, जिनमें प्रमुख दलित लेखक हैं-मोहनदास नैमिशराय कृत 'अपने-अपने पिंजरे', ओमप्रकाश बाल्मीकि कृत 'जूठन', सूरजपाल चौहान कृत 'तिरस्कृत', रूपनारायण सोनकर कृत 'नागफनी', श्योराज सिंह बेचैन कृत 'मेरा बपचन मेरे कन्धों पर', माताप्रसाद कृत 'झोपड़ी से राजभवन तक' एवं सुशीला टाकभौरे कृत 'शिकंजे का दर्द' आदि प्रमुख रचनाएँ मिलती हैं। उक्त सभी रचनाओं में लेखकों द्वारा समाज में व्याप्त कड़वे सत्य का उजागर किया गया है, जिसे वह वर्षों से सहता चला आ रहा है। इन्हीं दलित लेखकों में डॉ0 तुलसीराम की 'मुर्दहिया' आत्मकथा का नाम लिया जाता है। जिसमें लेखक ने अपने समाज में दर-दर सहे गये उन दर्दों को उजागर किया है जो ऊँची जाति के लोगों द्वारा गरीब जाति के लोगों को सताया जाता रहा है। दलित जीवन की प्रत्येक घटनाओं को इस लेख के माध्यम से उजागर की जा रही हैं।

'मुर्दहिया' लेखक डॉ0 तुलसी राम की जन्मस्थली ग्राम धरमपुर जिला आजमगढ़ उत्तर प्रदेश से सम्बन्धित है। जन्मस्थली के साथ-साथ लेखक की कर्मस्थली भी है। वे लिखते हैं- ''चरवाही से लेकर हरवाही तक सारे रास्ते वहीं से गुजरते थे। इतना ही नहीं, स्कूल हो या दुकान, बाजार हो या मन्दिर, यहाँ तक कि मजदूरी के लिए कलकत्ता वाली रेलगाड़ी पकड़ना हो तो भी मुर्दहिया से गुजरना पड़ता था।''[1] समस्त घटनाएँ मुर्दहिया को केन्द्र में रखकर किया है। लेखक का जन्म चमार जाति में हुआ था जिसे समाज के ऊँची जाति वाले अछूत समझते थे। वे प्रत्येक जगह पर अपमानित किये जाते थे। जिस स्कूल में वे पढ़ते थे वहाँ के कुएं से पानी पीना या कुआं छू लेना भी बहुत बड़ी समस्या थी आत्मकथा में लिखते हैं ''स्कूल के पास एक कुआं था जिसके चबूतरे तक को हम दलित बच्चे छू नहीं सकते थे।''[2] अछूत का दंश इतना गहरा लगा हुआ था कि जो भी पानी पिलाता वह इतनी ऊँचाई से पानी डालता कि मुंह तक पानी ही नहीं जाता पर पूरा शरीर भीग जाता था। कम उम्र का होने के कारण लेखक इसे समझ नहीं पाता था कि ऐसा ये सब उन दलित छात्रों के साथ क्यों हो रहा है। वे बताते हैं कि ''पानी पीना वास्तव में एक विकट समस्या थी। कभी-कभी तो हम चुपके से पोखरे पर चले जाते, जिसका पानी गहन जलकुम्भियों से ढका रहता था। हम जलकुम्भियों को हटाकर उसका पानी पीते।''[3]

स्कूल में जो पानी पिलाने का काम करता था वह एक ब्राह्मण छात्र था जो नौ वर्ष की आयु में पढ़ने आया था उसकों मास्टर साहब ने हम दलित छात्रों को पानी पिलाने के कार्य में लगा देते थे। छुआ-छूत की एक घटना को उन्होंने आत्मकथा में लिखा है- ''कक्षा चार में ही एक बार मिसिर बाबा पानी पिलाने कुएं पर गए। घिर्री पर डोर चढ़ाकर बाल्टी को कुएं में डाला। मैंने कुतूहलवश कुएं के चबूतरे को एक उंगली से क्षण भर के लिए छू दिया। किन्तु मिसिर बाबा बाल्टी को कुएं में डूबाते हुए नीचे से कनखिया पीछे देख रहे थे और मुझे उंगली चबूतरे से लगाते हुए उन्होंने देख लिया मेरे द्वारा इस महापातकी क्रिया से उनका ब्राह्मणत्व इतना आहत हुआ कि उनके हाथ से डोर छूट गई और बाल्टी कुएं की तलहटी में जा पहुंची मिसिर शोर मचाते हुए मुंशी जी के पास दौड़े और चिल्लाते रहे कि चमरा ने कुआं छू लिया।''[4]

तुलसीराम जी का जन्म दलित जाति में हुआ था किन्तु वह पढ़ने में ऊँची जाति के छात्रों से भी तेज थे, गणित के सवाल तुरन्त हल कर देते थे। कहते हैं कि ''गणित में मुझे शत-प्रतिशत अंक मिलते थे।''[5] स्कूल में गणित के सवालों को लेकर प्रश्न पूछे

जाते मैं बता ले जाता किन्तु दूसरे छात्र नहीं बता पाते तो मास्टर साहब उन छात्रों को मुझसे चाटा मरवाते इस पर सभी छात्र मुझसे घृणा करते थे क्योंकि एक तो मै दलित चमार जाति का था और दूसरा मेरी एक आंख से न दिखना। इससे सवर्ण जाति के छात्र मेंटल के दौरान जाति सूचक शब्दों से तथा एक आंख से न दिखाई देने को लेकर मेरा उपहास उड़ाते हुए कहते ''ले अमरूद ए काना ए काना। यानी एक आना का बिगड़ा हुआ रूप 'ए काना'।''[6] मेरी पढ़ाई से स्कूल के सभी मास्टर बहुत खुश थे जिनमें हेडमास्टर परशुराम सिंह पढ़ाते थे। वे मुझसे ही उन्हें मरवाते थे वे प्राय: कहते ''ठीक से सवाल पढिच्के ना अइबा त येही चमरै से रोज पिटवाइब।''[7] वे कहते हैं कि स्कूल में मुझे परशुराम सिंह जो हेडमास्टर थे सबसे ज्यादा मेरी प्रशंसा करते थे और कहते कि ''ई चमरा एक दिन हमरे स्कूले क इज्जत बढ़ाई।''[8]

कहते हैं कि दलित जाति का कोई भी व्यक्ति चाहे कितने ही ऊँचे ओहदे पर पहुंच जाये किन्तु जाति उसका पीछा नहीं छोड़ती है ऐसा ही मेरे स्कूल के समय हुआ जब मैं चौथी कक्षा में पढ़ रहा था उस समय स्कूल चेक करने एक डिप्टी साहब आने वाले थे वे लिखते हैं ''स्कूल के अध्यापकों के बीच बड़ा हड़कम्प मच गया था जिसका प्रमुख कारण था कि डिप्टी साहब चमार थे। हड़कम्प इस सवाल पर सबसे ज्यादा मचा हुआ था कि खाना तो रोज की तरह अध्यापकों के चौके में बन जायेगा, किन्तु अपनी थाली में कैसे खिलाएंगे ? हेडमास्टर साहब ने मुझसे कहा कि मैं अपने घर से एक लोटा तथा थाली लाऊं, किन्तु यह बात किसी को भी न बताऊं।''[9]

पुरानी परम्परा के अनुसार भोजन करने के पहले नहाया जाना चाहिए इस पुरानी परम्परा को मेरी दादी ने उस समय कहा था करने के लिए जब में पांचवी कक्षा की परीक्षा देने के लिए गांव से सातमील दूर 'बबुरा धनहुआ' नामक स्कूल जाना था। जब सभी छात्र परीक्षा केन्द्र तक पहुंच गये और दोपहर के बाद परीक्षा होनी थी सभी ने अपना-अपना भोजन करना शुरू कर दिया था उस समय मुझे अपनी दादी की याद आई वह कहती थी जब भी भोजन करना उसके पहले स्नान करना और 'जय चमरिया माई' की प्रार्थना करते हुए उन्हें धार पुजौरा चखने की मनौती जरूर करना ताकि परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास हो जाऊँ। जब लेखक स्नान करने के लिए आस-पास किसी तालाब पर जाता है उसी समय रास्ते में रामचरन यादव मिलते हैं और पूछते हैं कि कहां जाते हो लेखक अपनी आत्मकथा में इसका चित्रण इस प्रकार किया है ''पोखरे की तरफ से आते हुए रामचरन यादव जी मुझे देखकर बोल पड़े: 'आज त कौनो काम न होई। ई कनवा सम्हने पडिघ गयल।' इसके बाद उन्होंने तेज आवाज में पूछा: 'कहंबा जात हउवे रे कनवा?' मैंने पोखरे में नहाने जाने की बात बता दी। इतना सुनते ही उन्होंने उसी शेरपुर कुटी की रामलीला के ऋषि परशुराम की तरह रौद्र मुद्रा में चाटा तानते हुए आदेश दिया: 'जल्दी से भाग चमार कहीं क । बड़कन लोगन के पोखरा में तू नहइबे ?''[10] एक तो एक आंख से न दिखना तो उसका अपशकुन और दलित जाति में जन्म लेना उसका भी दंश झेलना लेखक को लगातार हर परिस्थिति में करना पड़ा किन्तु इन सब परेशानियों को झेलते हुए भी उन्होंने अपनी पढ़ाई पर आंच नहीं आने दी और लगातार आगे बढ़ते गये।

तुलसी राम जी ने उस समय की गरीबी का चित्रण अपनी आत्मकथा मुर्दहिया में जगह-जगह किया है वे बताते हैं कि जब घर में खाद्यान्न नही होता था तब भुखमरी के समय खेतों से चूहों को मारकर खाये जाते थे तथा बरसाती मछलियां भी खूब खायी जाती थीं। मुर्दहिया में इसका चित्रण इस प्रकार किया है- ''मै भी अन्य बच्चों के साथ टिन की बाल्टी तथा झाड़ू लेकर जाता और झाड़ू से चूहों को मार-मारकर बाल्टी भर जाने पर उन्हें लाता था। इन चूहों को पहले घर के लोग रहट्ठा यानी अरहर का डंठल जलाकर उस पर खूब सेंकते थे। इस तरह चूहों के बाल बिल्कुल जल जाते थे। इसके बाद उन्हें साफ करके बोटी-बोटी काट दिया जाता। फिर मसाला डालकर उसका मांस पकाकर खाया जाता था। इस तरह के मैदानी चूहों का मांस बहुत स्वादिष्ट होता था। उन बरसाती कड़की के दिनों में इस प्रकार के चूहें जब तक उपलब्ध रहते सभी दलित दाल-सब्जी के बदले उन्हीं से गुजारा करते थे।''[11]

लेखक ने भुखमरी के चित्रण के साथ-साथ उस समय के घरों की स्थिति का वर्णन किया है उस समय घरों की स्थिति ठीक नहीं थी बरसात के समय अक्सर पानी टपकने लगता था जिससे बैठने और रात में सोने को भी सही से नहीं मिलता था। जाड़े के दिनों में और विकट समस्या उत्पन्न हो जाती थी जब ओढने को नहीं मिलता जिससे रात भर ठिठुरते रहते थे। प्रात: काल जब धूप में सभी दलित बच्चे बैठते और एक गीत यह गाते ''अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेवा-ओढ़त लुगरी बिछावत लेवा' जाड़ा भगाने के लिए हम सभी बच्चे एक और गाना गातें: 'दऊ दऊ घाम करा, सुगवा सलाम करा, तोहरे बलकवन के जड़वत हो'। इस तरह जाड़े की रातें कट जाती थीं।''[12]

भुखमरी के समय का वर्णन वे बार-बार अपनी आत्मकथा में मार्मिक ढ़ंग से करते हैं, कहते हैं कि उस अकाल के समय लोग मरे हुए जानवर खा जाते थे बताते हैं कि ''गांव के जोखू पांडेय का एक बैल मर गया। मुर्दहिया पर सारे जुड़े कर्मकांड सम्पन्न हुए जोखू पांडेय के हरवाहे द्वारा चमड़ा छुड़ाया जाने के बाद उसी के घर की एक रमौती नामक दलित महिला जो मुर्दहिया पर घास छील रही थी, उससे रहा नहीं गया। वह डांगर के लालचवश खुर्पा लेकर गिद्धों से भिड़ गई और मरे हुए बैल का कलेजा काटकर उनके खूंखार चोंचों से बचते हुए घास से भरी टोकरी में छिपाकर घर लाई। मेरे साथ अनेक दलित बच्चे यह नजारा देख रहे थे। सभी बच्चे चिल्लाने लगे: रमौती घरे डांगर ले जाति है'।''[13] कहते हैं कि उस समय डांगर कोई भी दलित नहीं खाते थे बल्कि उसकी खाल छीलकर उसे अच्छे दाम में बेंच देते थे। तुलसी राम जी भी कई बार अपने घर वालों के साथ डांगर छीलने जाया करते थे जो उन्हें बहुत खराब लगता था किन्तु घर वालों के कहने पर यह सब करना पड़ता था। जो भी डांगर खाते थे उसे समाज से अलग कर दिया जाता था उसे कुजाति घोषित करके सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था और यदि वह व्यक्ति पुन: समाज में शामिल होना चाहे तो पहले समाज के सबसे बड़े मुखिया चौधरी से कहता फिर चौधरी पंचायत बुलाकर उसे समाज में शामिल होने तथा कुजाति का दाग साफ करने के लिए उसका परिवार पूरी बिरादरी को सुअर और भात खिलाये तब जाकर वह समाज में सम्मिलित होता था। ''अकाल की उस भुखमरी में 'सुअर-भात' की दावत एक अनोखी घटना थी।''[14] इन समयों में लोग जमीदारों के अक्सर कर्जी बने रहते थे। और जीवन भर कर्ज चुकाते रहते थे जो और बढता जाता था। जैसा कि प्रेमचन्द की कहानी 'सवा सेर गेंहूँ' में इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है।

लेखक तुलसी राम जी कहते हैं कि मै पढ़ने-लिखने में ठीक तो था ही मेरी पढ़ाई से मेरे ही कक्षा के पढ़ने वाले छात्र मुझसे घृणा करने लगे थे, क्योंकि रेखागणित की प्रमेय मैं बहुत ही सरल ढंग से हल कर देता था और दूसरे छात्रों को भी बताता था। आत्मकथा मुर्दहिया में उन्होंने इसका वर्णन इस प्रकार किया है ''मेरी कक्षा के कुछ छात्र मुझसे बहुत चिढ़ने लगे। जिनमें एक थे हीरालाल। वे लोहार जाति के थे, किन्तु अकारण वे मुझे 'चमरा-चमरा' कहकर बुलाते तथा बात-बात पर गालियां देने लगते थे।''[15]

कहते हैं कि हाईस्कूल की परीक्षा के दौरान मै अपने सहपाठी चिन्तामणि सिंह के कमरे पर उन्हें परीक्षा की तैयारी कराने अक्सर रोज जाया करता था एक दिन वहां हीरालाल ने मुझे देख लिया वे मुझे जाति सूचक शब्दों से गालियां देना शुरू कर दिया मुझे मारा भी आत्मकथा में इसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं ''मुझे देखते ही हीरालाल ने कहा: 'का रे चमरा तं येहों आ गइले।' इस पर मैनें उनसे कहा कि आप मुझसे इस तरह क्यों बात करते हैं? मेरा इतना कहना था कि हीरालाल मेरे ऊपर शेर की तरह झपट पड़े और जब तक चिन्तामणि सिंह उन्हें पकड़ें, वे तब तक मुझे चार चांटे लगा चुके थे। ये वही हीरालाल थे, जो मुझे बुलाने के लिए हमेशा 'चमरा-चमरा' शब्द का इस्तेमाल किया करते थे।''[16] दलित जाति में जन्म लेने के कारण लोग मेरा नाम नहीं लेते थे। सीधे जाति के नाम से पुकारते थे क्योंकि मेरी जाति से उन्हें घृणा होती थी। परीक्षा का परिणाम जब आता है तो मेरा नाम सबसे टाप लिस्ट में सबसे ऊपर होता है। उस पर गांव के सवर्ण लोग इस प्रकार कहते है ''बाबा के घर आने के खबर चारों तरफ फैल गई, जिसके परिणामस्वरूप उस पूरे क्षेत्र के सवर्णों में 'चमरा टाप कइलै' की ध्वनि गूंज उठी। मेरे गांव के अनेक ब्राह्मण भी घर आकर मेरी तारीफ करते नहीं थकते थें। किन्तु वे सभी पुन: यह बताना नहीं भूलते थे कि ज्यादा पढ़ने से लोग 'पागल' हो जाते हैं। ऐसा लगता था कि मेरे गांव के ब्राह्मण मुझे हर हाल में 'पागल' होने से बचा लेना चहते थे।''[17]

समाज में हर प्रकार के लोग रहते हैं। तुलसी राम जी जिस स्कूल में कक्षा दस के विद्यार्थी थे, वह स्कूल एक सवर्ण जाति का था, जिनका नाम बाबा हरिहर दास था। वे ही उस स्कूल के संस्थापक थे। वहां सभी अध्यापक सवर्ण जाति के ही थे, जिनमें एक ऐसे अध्यापक थे जो लेखक तुलसी राम को सदैव प्रोत्साहित किया करते थे। उनका नाम था सुग्रीव सिंह। वे हमेशा उनकी बड़ाई करते रहते थे वे जानते थे कि कुछ छात्र मुझसे घृणा करते हैं, तो इस पर कहते कि 'इन लंठवन से मत डरिहा, इनकर ठकुरई ना चली'।''[18] अध्यापक सुग्रीव सिंह सदैव लेखक के पक्ष में ही रहते थे।

निम्न जाति से लोग आज भी चिढ़ते हैं भले ही वे कितने ऊँचे-ऊँचे पदों पर पहुंच जायें, किन्तु जाति उनका पीछा नहीं छोड़ती है। तुलसी राम जी बताते हैं कि जब मै हाईस्कूल की परीक्षा देने के लिए चंडेसर अपने सहपाठी चिन्तामणि सिंह के साथ आया तो कमरा ढूंढ़ने के लिए उनके साथ कालेज के पास एक बाजार था जहां वे कमरा लेकर किराये पर रहते थे। उस मकान का मालिक केवल सवर्ण जाति के लोगों को ही कमरा देता था वे आत्मकथा में लिखते है ''चिन्तामणि सिंह मुझे अपने साथ रखना चाहते थे किन्तु मकान मालिक ने पहले ही साफ कह दिया था कि किसी 'चमार-सियार' को नहीं रहने दिया जायेगा।''[19]

लेखक ने भ्रष्टाचार की पोल खोलकर दिखना चाहा कि गरीब छात्रों के लिए बने हास्टल में भी हास्टल संचालक छात्रों से घूस लेकर रहने देते थे वे मुर्दहिया में लिखते है ''यद्यपि इन हॉस्टलों में दलित छात्रों को मुफ्त में रहने का प्रावधान था, किन्तु मैनेजर बिना घूस लिये किसी को प्रवेश नहीं देते थे। दस रुपये से लेकर बीस रुपये तक का दिये जाने वाला यह घूस सन् 1964 के हिसाब से एक बड़ी धनराशि हुआ करती थी मुझे भी दस रुपया लेकर प्रवेश दिया गया था।''[20]

इस प्रकार कह सकते हैं कि तुलसीराम जी ने मुर्दहिया के माध्यम से दलित जीवन का चित्रण यथातथ्य किया है। उसे जो भी पढ़ता है वह दहल जाता है मुर्दहिया की सभी घटनाएँ पाठक को अन्दर से झकझोर कर रख देती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. 'मुर्दहिया': डॉ0 तुलसी राम, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 1-बी0, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012 पृष्ठ सं0 05 भूमिका से
2. वही, पृष्ठ सं0 54
3. वही, पृष्ठ सं0 54
4. वही, पृष्ठ सं0 55
5. वही, पृष्ठ सं0 58
6. वही, पृष्ठ सं0 59
7. वही, पृष्ठ सं0 59
8. वही, पृष्ठ सं0 59
9. वही, पृष्ठ सं0 60
10. वही, पृष्ठ सं0 83
11. वही, पृष्ठ सं0 33
12. वही, पृष्ठ सं0 34
13. वही, पृष्ठ सं0 89
14. वही, पृष्ठ सं0 89
15. वही, पृष्ठ सं0 139
16. वही, पृष्ठ सं0 156
17. वही, पृष्ठ सं0 160
18. वही, पृष्ठ सं0 150
19. वही, पृष्ठ सं0 155
20. वही, पृष्ठ सं0 168

राजनीति से जुड़ी दलित महिलाओं की सामाजिक-पारिवारिक समस्यायें: कुछ मुद्दे

अन्नपूर्णा भारती

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

लैंगिक असमानता पूरे विश्व में पायी जाती है और भारत इससे अछूत नहीं है। यह असमानता कभी-कभी हिंसा का रूप ले लेती है। समाज 'जैविक-पुरूष' एवं 'जैविक स्त्री' के लिए क्रमशः 'पुरूषत्व' एवं 'स्त्रीत्व' के गुणों को निर्धारित कर उसे आदमी एवं औरत में बदल देता है (बिसवाल, 2008) इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन लखनऊ जिले के दो ग्राम अनैया खरगापुर और लक्ष्मनपुर की दलित महिलाओं पर आधारित है। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए इस शोध पत्र के तीन उद्देश्य हैं:- (1) दलित महिलाओं की पारिवारिक प्रस्थिति के बारे में जानना, (2) दलित महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति का आंकलन करना, (3) दलित महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा का विश्लेषण करना। इन ग्रामों में महिलाओं के शिक्षा का स्तर काफी निम्न है साथ-साथ महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव है। ये महिलाएं विभिन्न प्रकार की हिंसा का शिकार हो रही हैं जैसे कि मारपीट, गाली-गलौज इत्यादि। ये महिलाएँ अपने ऊपर हो रही किसी भी प्रकार की हिंसा का विरोध करने में सक्षम नहीं है। रूढिघ्वादी विचारधारा से ग्रसित होने के कारण महिलाओं में यह भावना व्याप्त होती है कि उनका पति ही उनका परमेश्वर है और यदि उन्होंने अपने पति परमेश्वर का विरोध किया तो वे पाप की भागी हो जायेंगी। इसी कारण से अधिकांश महिलाएँ अपने प्रति होने वाली हिंसा का विरोध नहीं कर पाती। प्रस्तुत शोध पत्र में महिलाओं पर हो रही घरेलू हिंसा का आंकलन करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया, जिसके माध्यम से अनेक आधारभूत जानकारियाँ प्राप्त की गयी।

सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यः ऑकले (बिसवाल, 2008 से उद्धृत. पेज नं0 215) के अनुसार, ''जेण्डर वस्तुतः संस्कृति का मामला है।'' वह मानती हैं कि लैंगिक विभेद समाज द्वारा निर्मित होता है जो उस सेक्स के बीच की भिन्नता पर आधारित होता है जो प्रकृति से जैविक होते हैं। उनका मानना है कि ''केवल यही नहीं है कि सेक्स के आधार पर श्रम का विभाजन सार्वभौमिक नहीं है, बल्कि ऐसा किए जाने का कोई तार्किक कारण नहीं है। वे अप्रकट (अदृश्य) वैज्ञानिक ताकत के बजाय इस मानवीय आविष्कार के लिए अपनी सृष्टि का ऋणी है।'' परिवार में लड़की को शारीरिक,मानसिक व भौतिक रूप से कमजोर किया जाता है जबकि लड़के के इन पक्षों को मजबूत बनाया जाता है। पराया-धन बताकर लड़की को पराश्रित के रूप में पाला जाता है और लड़के को सारी सम्पत्ति देकर स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया जाता है। लड़के में यह आत्मविश्वास की बाहर कुछ भी हो जाय अपना घर तो है ही। लड़की में यह गांठ कि बाहर पता नहीं उस पर क्या गुजरेंगी, क्योंकि मां-बाप के घर में तो उसका कुछ अपना है ही नहीं।

समाज में किसी भी वर्ग की महिलाओं की वास्तविक स्थिति उनके अधिकार और उनकी समस्याओं का अध्ययन उनकी पारिवारिक समस्याओं का अध्ययन उनकी पारिवारिक संरचना में ही संभव है। परिवार में महिलाओं की माँ, पत्नी, बहू, बहन के रूप में पृथक-पृथक भूमिका होती हैं इस स्थिति में सामान्य नारी अधिकार, परिवार के व्यवस्था परक ढाँचे पर निर्भर करते हैं। यह तो निर्विवाद तथ्य है कि लैंगिक असमानता के व्यवहारिक कारणों से महिलाओं को अपने घर परिवार व समाज में विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का आंकलन करते हुए हम देखते हैं कि कानूनी व सैद्धान्तिक संदर्भो में महिलाओं के अधिकारों व अवसरों में कोई कमी नहीं है, परन्तु व्यवहारिक स्वीकार्यता के संदर्भ में अभी अभीष्ट लक्ष्य तक हम नहीं पहुँच सके हैं। समानता के संवैधानिक आश्वासन व व्यवस्था के बावजूद पितृसत्तामक व्यवस्था की मजबूत पकड़ की वजह से लैंगिक विषमताओं को पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सका है। भारतीय समाज में लैंगिक असमानता की जड़े दरअसल सत्ता

व शक्ति सम्बन्धों, जाति, वर्ग संस्तरण, सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं, प्रथाओं व नियमों पर आधारित रही हैं। आर्टनर (1970) महिलाओं की प्रस्थिति में "सार्वभौमिक गिरावट की विवेचना करते हैं। उनका मानना है कि संस्कृति के सार्वभौमिक मूल्यांकन में संस्कृति का प्रकृति से श्रेष्ठ होना महिलाओं की निम्न प्रस्थिति का कारण है। स्त्रियां प्रकृति के समीप हैं क्योंकि उनकी शारीरिक बनावट तथा मनोवैज्ञानिक प्रकार्य प्राकृतिक प्रक्रियाओं जैसे संतानोत्पति आदि से ज्यादा सम्बन्धित है जबकि पुरूष संस्कृति के ज्यादा निकट है क्योंकि उनकी सोचने की प्रक्रिया को महिलाओं की अपेक्षा ज्यादा अमूर्त तथा वस्तुनिष्ठ माना जाता है।

दलित महिलाएं अपनी जाति, वर्ग और गरीबी की तिहरी मार झेलती हैं। उन्हें जाति रुढिष्बद्धता व छुआछूत के साथ-साथ आर्थिक, राजनैतिक, कानूनी, धार्मिक व सांस्कृतिक भेदभाव और दमन झेलना पड़ता है। दलित महिलाएं अशिक्षित, कुपोषित व अपने समुदाय और परिवार में सबसे निचले स्तर पर होती हैं। उनका अपने श्रम और आर्थिक संसाधनों पर भी कोई हक नहीं होता। हालांकि वे भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, फिर भी उनकी गिनती किसानों में नहीं की जाती। वे निर्यात के लिए अनाज तो उगाती हैं पर उनके लिए दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए भी उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। इसके अलावा दलित महिलाओं को अपने फैसले लेने का भी अधिकार नहीं मिलता। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वे हमारे समाज, परिवार व समुदाय की हाशियेदार किनारी पर हैं। वे न सिर्फ ऊँची जाति के स्त्री-पुरूष हैं बल्कि दूसरी अनुसूचित जातियों व अपनी जाति के पुरूषों के शोषण, अपमान और उत्पीड़न को निरन्तर सहती है। यह सच्चाई अवश्य है कि गरीब दलित परिवारों में मेहनत मजदूरी करने के कारण स्त्री अपने बारे में निर्णय लेने के कुछ हक भी हासिल कर लेती है।

दलित महिला की समस्यायें: महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की समस्या कोई नई नहीं है। भारतीय समाज में महिलाएं एक लम्बे समय काल से अवमानना, यातना और शोषण का शिकार रही हैं, जितने काल के हमारे पास सामाजिक संगठन और पारिवारिक जीवन के लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं। स्वाधीनता के पश्चात् हमारे समाज में महिलाओं के समर्थन में बनाए गए कानूनों, महिलाओं में शिक्षा के फैलाव और महिलाओं की धीरे-धीरे बढ़ती हुई आर्थिक स्वतन्त्रता के बावजूद असंख्य महिलाएं अब भी हिंसा की शिकार हैं उनको पीटा जाता है, उनका अपहरण किया जाता है, उनके साथ बलात्कार किया जाता है, उनको जला दिया जाता है या उनकी हत्या कर दी जाती है।

घरेलू हिंसा के मामलों, जैसे पत्नी को पीटना और परिवार की स्त्रियों के साथ किया गया कौटुम्बिक व्यभिचार की कभी शिकायत नहीं की जाती। अब तक स्त्री-पुरूष के मध्य समानता एक मिथ्या मात्र बनी हुई है। अधिकतर शिक्षित परिवारों में यह भेद आज भी देखने को मिलता है। लड़कियों को बचपन से ही यह शिक्षा दी जाती कि विवाह उनके लिए प्राथमिक रूप से तथा उद्यम और शैक्षिक उपलब्धि या नौकरी इत्यादि द्वितीयक रूप से महत्वपूर्ण है पुरूष घर में अपनी प्रबल स्थिति को बनाए रखने के लिए आक्रामक एवं अक्सर हिंसक व्यवहार करते हैं महिलाओं के प्रति इस प्रकार के दुर्व्यवहार को मूक अपराध की संज्ञा दी गई है। विवाह के सन्दर्भ में महिला के प्रति हिंसा तक बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है जब एक पत्नी पति से आशा करती है कि वह उसे स्नेह और सुरक्षा प्रदान करेगा किन्तु वह उसे प्रताडिघ्त करता है, उससे महिला को धक्का लगता है कि जिस व्यक्ति पर वह सबसे अधिक विश्वास करती है वही व्यक्ति उसे प्रताडिघ्त करता है। यह उसके जीवन में हताशा उत्पन्न करता है क्योंकि पत्नी पति के घर उसी पर निर्भर होती है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों की कई समस्यायें है जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, तलाक, कार्यशील महिलाएं एवं समस्यायें इत्यादि (आहूजा, 2009.पेज नं0 238-254)।

महिलाओं के साथ हिंसा का मूल कारण समाज में बढ़ता अपराधीकरण, संचार साधनों द्वारा हिंसा की घटनाओं को दिखाया जाना, हिंसा की घटनाओं तथा परिणामों को जानने के पर्याप्त साधन, कानूनी प्रावधानों के क्रियान्वयन की ढीली-ढाली व्यवस्था और परम्परागत मूल्यों को पतन महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा के अन्य कारण हैं। महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में जागरूकता फैलाने में संचार साधनों की सराहनीय भूमिका रही है। विश्व के प्रत्येक देश में महिलाओं के मानवाधिकारों का हनन होता है। लिंग भेद एक जैविक भेद है जबकि लिंग एक सामाजिक संरचना है। महिलाओं के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाता है और उन्हें प्रताडिघ्त किया जाता है (बिसवाल, 2008)।

फ्रेंडी (1970) का विश्लेषण पुरूष प्रभुत्व एवं लिंग सम्बन्धी श्रम विभाजन पर आधारित है। उनके अनुसार कुछ समाजों में बर्तन बनाना, बुनाई सम्बन्धी कार्य प्राकृतिक रूप से पुरूषों का तथा कुछ समाजों में महिलाओं की अपेक्षा ये कार्य पुरूषों द्वारा संपन्न किए जाते हैं वहाँ ये अधिक सम्मानजनक माने जाते हैं। फ्रेंडी के अनुसार पुरूष प्रभुत्व की मात्रा उस संख्या का परिणाम है जिसके द्वारा

पुरूषों को घरेलू समूह के बाहर 'वस्तु वितरण' जैसे बड़े अधिकार प्राप्त होते हैं। पुरूष प्रभुत्व व लिंगीय भूमिकाएं संस्कृति द्वारा निर्धारित होती है।

दूबे (1994), भारत में ज्यादातर स्त्रियों को विरासत की सम्पत्ति नहीं मिलती। आज भी नए प्रावधान के बावजूद सामान्यत: स्त्रियों को यह हक नहीं मिलता। बहनें पिता की सम्पत्ति में यह सोचकर हक नहीं मांगती कि भाइयों से उसके सम्बन्ध बिगड़ जायेंगे और पिता के न रहने पर उसे भाईयों से मदद की जरूरत पड़ सकती है। यह बात देश के अलग-अलग हिस्सों से जुटाये गये साक्ष्यों से पुष्टि नहीं होती है कि पति की भूमि में स्त्री का कोई स्वामित्व नहीं होता। विधवा के तौर पर उसके पास उत्तराधिकार के सीमित अधिकार होते हैं लेकिन उनका उपयोग भी अक्सर नहीं किया जाता।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व: भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण सामाजिक संरचना में ही स्थित है परन्तु आज भी ग्रामीण लोग निर्धनता, साक्षरता का अभाव तथा निम्न स्तर एंव अन्य सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से घिरे हुए है, खासकर दलित जाति की महिलाएं। अत: आवश्यक है कि गाँवो में दलित महिलाओं पर हो रहे घरेलू हिंसा का समुचित रूप में मूल्यांकन किया जाये ताकि आने वाली कठिनाइयों को ज्ञात कर उन्हें दूर किया जा सके। इस कारण इस विषय पर शोध किया जाना आवश्यक एंव महत्वपूर्ण है। अत: इस दृष्टि से शोध विषय एंव प्रांसगिकता समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सार्थक एंव तार्किक प्रतीत होती है।

दलित महिलाओं के अनुसूची द्वारा प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण सारणी के माध्यम से किया गया है। जो इन दलित महिलाओं की गतिशीलता के आयामों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। साक्षात्कार द्वारा जो तथ्य प्राप्त हुए हैं, उनको सारणीबद्ध किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची द्वारा तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण और सारणीयन के पश्चात् प्राप्त तथ्यों की विवेचना शोध संरचना का एक स्तर है। सांख्यकीय विधियों के द्वारा तथ्यों का सम्पादन करके उनका विश्लेषण किया गया। तथ्यों की विवेचना द्वारा यथास्थिति और प्रवृत्ति की ओर संकेत किया गया हैं तथा अध्ययन उद्देश्यों के आधार पर निष्कर्षों को वर्णित किया गया है। प्राथमिक स्रोतों पर आधारित तथ्य मूल आधार या केन्द्र बिन्दु होते हैं, वहीं द्वितीयक स्रोत शोध अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की प्रमाणिकता के सत्यापन का आधार प्रदान करते हैं। विश्लेषण के लिए हमने 10 सारणियों का प्रयोग किया तत्पश्चात् शोध से सम्बन्धित उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया।

विश्लेषण: सारणी 1 में ग्राम लक्ष्मनपुर और अनैया खरगापुर का आयुवार वर्गीकरण किया गया है। इस अध्ययन में चयनित लोगों की संख्या 100 है जिसमें 15-25 वर्ष की आयु वाली महिलाएं 20 हैं तथा 20-35 वर्ष की आयु वाली महिलाएं 45 हैं तथा 36 से ऊपर की आयु वाली महिलाएं 35 हैं। प्रस्तुत अध्ययन में इन आयु की महिलाओं को इसलिए चुना गया है क्योंकि 15-25 वर्ष के लोग युवा में गिने जाते हैं तथा 26-35 वर्ष की आयु वाले लोग अनुभवी माने जाते हैं। इस गांव में 36 वर्ष की आयु वाली महिलाओं का चयन भी किया गया है क्योंकि इस अध्ययन में युवाओं तथा अनुभवी महिलाओ का चयन विशेष रूप से किया गया है। लक्ष्मनपुर और अनैया खरगापुर ग्राम के उत्तरदात्रियों की वैवाहिक स्तर का वर्गीकरण सारणी 2 में किया गया हैं इसमें वैवाहिक स्तर वाले उत्तरदात्रियों की संख्या सबसे अधिक है जिनकी संख्या 60 है साथ ही इसमें उन महिला उत्तरदात्रियों का भी चयन है जो अविवाहित हैं या फिर विधवा हैं इसमें अविवाहित उत्तरदाताओं की संख्या 15 तथा विधवा उत्तरदाताओं की संख्या 25 है अत: इस अध्ययन में विवाहित महिलाओं का विचार अविवाहित तथा विधवा महिला उत्तरदाताओं से भिन्न था तथा इनकी समस्यायें भी एक-दूसरे से भिन्न थी।

सारणी 3 के विवरण द्वारा यह स्पष्ट होता है कि 26 प्रतिशत महिलाओं से पूछने पर पता चलता है कि उनके साथ हिंसा होता है। 39 प्रतिशत महिलाओं ने नहीं में जवाब दिया जबकि 35 प्रतिशत महिलाओ ने कहा कि हां कभी-कभी उनके साथ हिंसा होती है। इसमें ऐसे उत्तरदात्री भी शामिल हैं जो शिक्षित होते हुए भी अपने उपर हो रहे हिंसा को सहन कर रही हैं। सारणी 4 से यह स्पष्ट है कि 10 प्रतिशत महिलाओं की स्थिति पुरूषों से बेहतर है, जबकि 52 प्रतिशत महिलाओं की स्थिति पुरूषों से कम है। 38 प्रतिशत महिलाओं की स्थिति पुरूषों के समान है इस प्रकार महिलाओं का यह मानना था कि उनकी स्थिति पुरूषों से निम्न है। इस प्रकार महिलाओं की स्थिति पुरूषों की अपेक्षा अत्यधिक दयनीय है उन्हें पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है।

सारणी 5 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वर्तमान में महिलाओं के प्रति पुरूषों के व्यवहार में परिवर्तन आया है जो अध्ययन से प्राप्त आकड़ों से स्पष्ट होता है कि केवल 18 परिवारों में ही पुरूष अपनी पत्नियों पर प्रभुत्व जमाते हैं जबकि 24 परिवारों मे महिला के साथ उनके पतियों का व्यवहार समानता का है। कुछ परिवारो मे महिला के प्रति उनके पतियों का व्यवहार विरोधाभाष

का है तथा कुछ परिवारों में महिला के प्रति उनके पतियों का व्यवहार मिला-जुला है। अतः कुछ मामलो में समानता तथा कुछ मामलो में विरोध की स्थिति उत्पन्न होती है।

सारणी 6 में 62 उत्तरदात्रियां मानती हैं कि उनके परिवार में महिलाओं को नौकरी करने की स्वतन्त्रता है जबकि 38 उत्तरदात्रियां मानती हैं कि उनके परिवार में यदि कोई महिला नौकरी करना चाहती है तो उसे नौकरी करने की आजादी नहीं है। इससे स्पष्ट है कि गांव में भी वर्तमान समय में महिलाओं के द्वारा नौकरी किये जाने की सोच में सकरात्मक परिवर्तन आया है। सारणी 7 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक भारतीय समाज किसी भी स्तर पर लड़कियों को लड़को के समान अधिकार देने का पक्षधर नहीं रहा। स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में भी स्थिति असमानता की रही है जहां लड़को को सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता तथा निर्णय लेने के अधिकार प्राप्त हैं वहीं लड़कियो को किसी भी क्षेत्र में स्वंय निर्णय लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है न तो वे अपनी इच्छानुसार रोजगार अपना सकती हैं न जीवनसाथी का चयन कर सकती हैं यहां तक कि घर की चहारदीवारी से बाहर निकलने के लिए भी उन पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। 45 उत्तरदात्री मानती है कि लड़कियों को भी स्वतन्त्रता मिलना चाहिए, जबकि 55 उत्तरदात्रियां लड़कियों की स्वतन्त्रता के विरूद्ध हैं क्योंकि वे मानती है कि लड़कियों को स्वतन्त्रता मिलने से वे बिगड़ जाती है। यद्यपि वर्तमान समय में अनेक परिवर्तनकारी शक्तियों के प्रभाव स्वरूप जिसमें शिक्षा का स्थान महत्वपूर्ण है। इन पारम्परिक विचारों में परिवर्तन आ रहा है और धीरे-धीरे लड़कियों की स्वतन्त्रता में वृद्धि हो रही है।

सारणी 8 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि महिलाएं किसी न किसी रूप में हिंसा का शिकार होती रही हैं। इसके पीछे पुरूषों की रूढिग्वादी मानसिकता, उनका महिलाओं पर प्रभुत्वता, उन्हें हर चीज में नीचा दिखाना इत्यादि है। अध्ययन से प्राप्त आंकड़ो के विश्लेषण के आधार पर पाया गया कि कुल उत्तरदात्रियों में से 85 उत्तरदात्री मानती हैं कि महिलाओं के प्रति हो रही हिंसा का प्रमुख कारण पुरूषों की रूढिग्वादी विचारधारा ही है। जबकि 15 उत्तरदात्री मानती है कि उनके प्रति पुरूषों द्वारा जो भी हिंसा होती है उसमें पुरूषों की रूढिग्वादी विचारधारा का कोई महत्व नहीं है। सारणी 9 से स्पष्ट है कि महिलाएं अब पहले की अपेक्षा अपने प्रति हो रही हिंसा का विरोध करने लगी हैं। अध्ययन में पाया गया 36 उत्तरदात्रियां अपने प्रति हो रही किसी भी प्रकार की हिंसा का विरोध नहीं करती, बल्कि उसे अपनी किस्मत समझकर उससे समझौता कर लेती हैं। ऐसी उत्तरदात्रियों की संख्या 64 है वे अपने प्रति हो रहे हिंसात्मक व्यवहार को स्वीकार करती है क्योंकि वे मानती है कि उनका पति उनके लिए देव तुल्य है इसलिए उनका किसी भी प्रकार का विरोध वे नहीं करती है।

प्रस्तुत शोध पत्र में ''राजनीति से जुड़ी दलित महिलाओं की सामाजिक-पारिवारिक समस्यायें: कुछ मुद्दे'' विषय पर अध्ययन उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद के गोसाईगंज ब्लॉक के दो गांव लक्ष्मनपुर व अनैया खरगापुर में किया गया है। इसमें क्षेत्रीय कार्य विधि को अपनाया गया है। इस अध्ययन हेतु प्राथमिक एंव द्वितीय स्त्रोतों से सूचनाएं संकलित की गयी हैं। इसके लिए शोध क्षेत्र से 100 महिला उत्तरदाताओं को चुना गया। महिलाओं का उत्पीड़न, अपमान, शोषण, दमन, तिरस्कार एंव यन्त्रणा उतना ही प्राचीन है जितना कि पारिवारिक जीवन का इतिहास। यघपि सामाजिक विधान के परिप्रेक्ष्य में भारतीय महिलाएं अन्य कई देशों की महिलाओं से आगे हैं, किन्तु महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की प्रक्रिया इतनी मन्द, अव्यवस्थित और अंसगत रही है कि सामाजिक, आर्थिक एंव राजनैतिक रूप से वे पुरूषों से काफी पीछे हैं।

सारणी

सारणी नं 1: उत्तरदात्रियों का आयुवार वर्गीकरण

क्रम सं0	आयु	(ग्राम–लक्ष्मनपुर, अनैया खरगापुर) संख्या
1. 2. 3.	15–25 26–36 37 से ऊपर	20 45 35
कुल		100

सारणी नं0 2: उत्तरदात्रियों का वैवाहिक स्तर का वर्गीकरण

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2. 3.	अविवाहित विवाहित विधवा	15 60 25
कुल		100

सारणी नं0 3: महिलाओं के साथ हिंसा या विरोधाभाष

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2. 3.	हाँ नहीं कभी–कभी	26 37 35
कुल		100

सारणी न0 4: पुरूषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2. 3.	पुरूषों से बेहतर पुरूषों से कम पुरूषों के समान	10 52 38
कुल		100

सारणी नं0 5: आपके पति का आपके साथ बर्ताव

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2. 3. 4.	प्रभुत्वता समानता विरोधाभाष मिली–जुली	18 24 17 41
कुल		100

सारणी नं0 6: लड़की की स्वतन्त्रता के प्रति दृष्टिकोण

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2.	हाँ नहीं	45 55
कुल		100

सारणी नं0 7: महिलाओं के प्रति हिंसा में पुरूषों की रूढिघ्वादी विचारधारा

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2.	हाँ नहीं	36 64
कुल		100

सारणी नं0 8: हिंसा के प्रति महिला का विरोध

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2.	हाँ नहीं	36 64
कुल		100

सारणी नं0 9: हिंसा को कम करने में स्त्री शिक्षा का महत्व

क्रम सं0	आयु	संख्या
1. 2.	हाँ नहीं	75 25
कुल		100

निष्कर्षः प्रस्तुत शोध पत्र में राजनीति से जुड़ी दलित महिलाओं की पारिवारिक व सामाजिक स्थिति तथा उन पर हो रही घरेलू हिंसा का गहन अध्ययन किया गया है। आज लगभग सभी राज्यों एंव केन्द्र शासित प्रदेशों में घरेलू हिंसा से सम्बन्धित खबरें आये दिन सुनने व देखने को मिलती हैं। पिछले दशकों में स्त्री के प्रति हिंसा में काफी वृद्धि हुई है तथा यह समाज वैज्ञानिकों, नीति-निर्धारकों, समाज-सुधारकों व अन्य सभी के लिए एक गहन चिन्ता का विषय बना हुआ है। आज स्त्री के प्रति घरेलू हिंसा में लगातार वृद्धि होती जा रही है। विवाह के समय प्रत्येक स्त्री का यह सपना होता है कि उसका जीवन सुखमय होगा परन्तु इसके विपरीत सैकड़ों विवाहित महिलाओं के सपने टूट जाते हैं। वे अपने पति द्वारा और सास-ससुर व ननद द्वारा मारपीट का शिकार होती रहती हैं। उन्हें उनके शोषण व यातना का शिकार होना पड़ता हैं यहाँ उनकी चीख पुकार सुनने वाला कोई नहीं होता। सबसे दुःखद बात तो यह है कि अपने साथ हो रहे ऐसी घटनाओं को वह छुपाती हुई उसे अपनी किस्मत समझकर चुपचाप सहन करती रहती हैं उनके पड़ोसी भी इस मामले में हस्तक्षेप करना पसन्द नहीं करते क्योंकि यह सब पति-पत्नी व उनके परिवार के मध्य अन्दरूनी मामला होता है।

आजकल केवल भारत में ही नहीं, अपितु अनेक देशों में स्त्रियां घरेलू हिंसा का शिकार हैं। रोजाना अनगिनत स्त्रियों से उनके पतियों तथा परिजनों द्वारा मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एंव लैंगिक रूप से दुर्व्यवहार किया जा रहा है। अनेक समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययन के दौरान पाया कि अनेक कामकाजी स्त्रियों का अपनी राय पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है। प्रतिमााह जितना वेतन उन्हें मिलता है वह पति द्वारा धमकाकर या अन्य किसी दबाव से उनसे ले लिया जाता है। उन्हें घर का सारा काम करने के साथ-साथ व्यवसाय के दायित्वों को भी पूरा करना होता है। घरेलू हिंसा में दहेज हत्यायें, पत्नी के साथ भावात्मक एंव लैगिंक दुर्व्यवहार, पत्नी को पीटना, यौन शोषण, बुजुर्ग स्त्रियों पर अत्याचार, भ्रुण हत्यायें आदि हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय समाज में स्त्री के लिए विवाह में दहेज अनिवार्य है इसलिए दहेज की समस्या विकराल होती जा रही हैं। आयें दिन समाचारों में, न्यूज पेपर में वधुओं को जलाने की खबरें प्रकाशित होती हैं। इसके सम्बन्ध में सरकार द्वारा कठोर कानून बनाए गए फिर भी घटनाएं होती रहती हैं। इन कानूनों द्वारा गांवो की महिलाओं को जागरूक करने का प्रयास किया जा रहा है। घरेलू हिंसा को रोकने हेतु अनेक नियम बनाए गए हैं तथा विभिन्न महिला संगठन भी इस मामले में अपनी आवाज उठाते रहते हैं। हालांकि सरकार द्वारा अनेक नियम कानून बनाये जाने के बावजूद अपेक्षित परिणाम नहीं मिले हैं। इसके लिए गांवो की महिलाओं को शिक्षित करने की आवश्यकता हैं क्योंकि यहां अधिकांश महिलांए अशिक्षित होने की वजह से अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं जिसकी वजह से वे इन नियम-कानूनों का लाभ नहीं उठा पाती। अत: यहां की महिलाओं का शिक्षित होना अति आवश्यक है।

26 फीसदी महिलाओं ने पुरूषों द्वारा अपने ऊपर किए गए हिंसा या विरोधाभाष को स्वीकार किया है जबकि 39 फीसदी महिलाओं ने बताया कि उनके गांव में महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय है उनके साथ आये दिन हिंसा होती रहती है और अपने साथ हो रहे शोषण व अत्याचार का वो विरोध भी नहीं करती और उसे चुपचाप सहती रहती हैं। 43 फीसदी महिलाओं का कहना था कि उनके माता-पिता बेटे व बेटी में भेदभाव करते हैं वे अपने बेटे को बेटी से ज्यादा शिक्षित करना चाहते थे। यहां 85 फीसदी महिलाओं ने महिलाओं पर हो रहे घरेलू हिंसा का कारण पुरूषों की रूढिघ्वादी विचारधारा को वाजिब बताया हैं। घरेलू हिंसा का स्तर घटाने के लिए महिला व पुरूष दोनों को अपने व्यवहार में बदलाव करना होगा। इसमें अधिकारों का दुरूपयोग भी शामिल है जिनके कारण महिलाओं को घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

सन्दर्भ सूची:

- बिसवाल, तपन. 2008. मानवाधिकार जेन्डर एवं पर्यावरण. नई दिल्ली: बीबा बुक्स प्रा0 लि0।
- आर्टनर, एस0 बी0. 1970. द डेवोल्यूशन ऑफ वूमेन. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- आहूजा, राम. 2009. सामाजिक समस्यायें. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स।
- दुबे, एस0सी0. 1994. शिक्षा, समाज और भविष्य. नई दिल्ली: कृष्नन प्रकाशन।
- फ्रेडी, अर्नस्टाइन. 1970. वूमेन एण्ड मेन: एन एन्थ्रोपोलॉजिकल व्यू. दिल्ली: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

वैदिक एवं पौराणिक काल में पर्यावरण संरक्षण पर एक अध्ययन

डॉ० संजीव कुमार

सहायक आचार्य, इतिहास, से.ने.म.टी.राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, झुंझुनूं (राजस्थान)

सारांशः-

प्रस्तुत पत्र का उद्देश्य वैदिक काल में पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना का अध्ययन करना है। वेद, उपनिषद् और पुराणों के मन्त्रों एवं सूक्तियों में अनेक जगह पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना का विवरण मिलता है। जो इस बात को सत्यापित करता है कि वैदिक एवं पौराणिक काल में पर्यावरण के प्रति चेतना थी। वैदिक कालीन मानव प्रकृति को जीवनदात्री समझता था तथा उसके सभी घटकों जैसे- अग्नि, वायु व जल आदि को सुरसम्य मानकर पूजता था। जब वैदिक कालीन समाज पर्वों व शुभ अवसरों पर प्रकृति का पूजन करता था तो इससे प्रकृति प्रेम का भाव स्फूटित होता था। यह भाव ही पर्यावरण संरक्षण का बुनियादी आधार बनता था। समूची सृष्टि पंचमहाभूत अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश से बनी है। यही पाँच तत्व मिलकर समूचे विश्व ब्राह्मण्ड के जड़, चेतन और जीवों का निर्माण और पोषण करते है। यदि ये जीवनदायी तत्व शुद्ध एवं संरक्षित रहे तो जीवन भी शुद्ध और सुरक्षित रहता है। इन पाँच तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। पर्यावरण का संतुलन ही जीवन चक्र को नियंत्रित करता है और इसमें गतिरोध आते ही जीवन संकट में पड़ जाता है। यही कारण है कि इसकी सुरक्षा की चिंता प्राचीनकाल से होती आ रही है।

मुख्य शब्दः- वेद, पुराण, पर्यावरण, संरक्षण, सृष्टि, ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, ऋषि, प्रदूषण, आरण्य, उपनिषद, वांग्मय, पंचमहाभूत।

परि + आवरण इन दो शब्दों के मेल से पर्यावरण शब्द का निर्माण हुआ- जिसका अर्थ है- चारों ओर से घेरने वाला। इस घेरे में सभी सजीव एवं निर्जीव तत्व विद्यमान है। वेदों को सृष्टि विज्ञान का मुख्य ग्रन्थ माना गया है। इसमें सृष्टि के जीवनदायी तत्वों की विशेषताओं का काफी सूक्ष्म व विस्तृत विवरण है। ऋग्वेद में अग्नि के रूप, रूपान्तर और उसके गुणों की व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में वायु के गुणों, कार्यों और उसके विभिन्न रूपों का आख्यान मिलता है। अथर्ववेद में पृथ्वी तत्व का वर्णन हुआ है। भारतीय ऋषियों ने पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन हेतु स्वमनीषा द्वारा समस्त विज्ञान को वैदिक मन्त्रों में समाविष्ट करके विनाश के भय से आध्यात्मिक विषयों को वैज्ञानिक विषयों से जोड़ दिया, जेसे अथर्ववेद में -

सूर्यो में चक्षुवातः प्रागोऽन्तरिक्षमात्या पृथ्वी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयस्मि स आत्मानं निदधैद्यावपृथिवीभ्या गोपीथाय।।[1]

अर्थात् मेरी आँखे सूर्यवत प्रकाशमान, प्राण वायु समान गतिमान, आत्मा अन्तरिक्ष समान मध्यवर्ती और शरीर पृथ्वी तुल्य सहनशील है ऐसा में बिना आवरण प्रसिद्ध हूँ सर्वज्ञात हूँ, अपनी आत्मा सूर्य और पृथ्वी रक्षार्थ अर्पित करता हूँ। वैदिक महर्षियों ने इन प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना। इसलिए उन दिनों जड़-चेतन सभी रूपों की उपासना व अभ्यर्थना की जाती थी। इसलिए वैदिक युग में समस्त सृष्टि में सुख-शान्ति व समृद्धि का वातावरण था।

यजुर्वेद के शान्ति पाठ् में पर्यावरण के सभी तत्वों को शांत और सन्तुलित बनाये रखने का उक्त भाव है, वही इसका तात्पर्य है कि समूचे विश्व का पर्यावरण संतुलित और परिष्कृत हो। ऑक्सीजन को वेदों में प्राणवायु कहा गया है। वेदों के अनुसार वायु

की शुद्धता बनाये रखना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। इसे प्रदूषित करने वाला अपराधी व अक्षम्य है। अथर्ववेद पवन देवता से कहता है कि वायु-प्रदूषित करने वाले कार्यों और प्रवृत्तियों को नष्ट किया जाए-

वायो यत ते तपस्तेन तं प्रतितप।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।[2]

ऋग्वेद में वायु के औषधीय महत्व को स्वीकारा गया है। ऋग्वेद की एक ऋचा कहती है- हे वायु! अपनी औषधि ले आओ और यहाँ से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो। अतः ऋग्वेद में वायु से प्रार्थना की गई है- पातु वातो अन्तरिक्षात।[3] अर्थात् वायु अन्तरिक्ष के विकारों से हमारी रक्षा करे। ऋग्वेद में एक ऋषि अतिवेग से वायु के प्रवाहित होने पर कहता है- यत्सीमत्तं न धूनुथा।[4] हे पवन! तुम तृण, वृक्षादि- युक्त खेतों को मत उजाड़ो। ऐसी प्रार्थना पर्यावरण- सुरक्षा की चेतना को जागृत करती है जो पर्यावरण संरक्षण में वेदों की महती देन है। सामवेद में जीवन की मंगल कामना और प्रकृति की अविरल उपासना के भाव वर्णित है। सामवेद कहता है- हे इन्द्र, सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिए औषधि की उत्पत्ति करो। हे सोम, आपने ही औषधियों, जलों और पशुओं को उत्पन्न किया है। पृथ्वी जैव विविधता की पोषक व रक्षक है। ऋषियों का अधोलिखित उद्धार भूमिरूपी माता की रक्षा के अन्तर्भाव को प्रकट करता है- माता भूमिः पुत्रोऽहम पृथिव्याः[5] भूमि माता है मैं उसका पुत्र हूँ। अथर्ववेद के पृथ्वीसुक्त में ऋषि धरा की महानता के अनन्त गुणों पर विस्मत हो कह उठते है, हे माता! आपके लिए ईश्वर ने शीत, वर्षा तथा बसंत ऋतुएं बनाई है। दिन रात के चक्र स्थापित किए है। इसके लिए हम ईश्वर के आभारी है। वे खनन से पूर्व धरती माता से प्रार्थना करते है-

यतते भूमि विस्वनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम।।[6]

कि हे मा, जीविकोपार्जन के लिए हम ऐसा करने को बाध्य है, किन्तु हम ईश्वर से प्रार्थना करते है वह तुम्हें पुनः हरा भरा कर दे। तेरा जो भाग खोदू, वह पुनः शीघ्र उग जावे।

इसी प्रकार पर्यावरण के विभिन्न घटकों के लिए शुभ आकांक्षाएं की गई है, जैसे- शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सुखरूप होकर बहे।[7] पवन हमारे लिए सुखकारी चले।[8] समस्त दिशाऐं हमें मित्रवत सुख दे।[9] दिन-रात हमारे लिए सुखकारी हो।[10] आज वैज्ञानिकों ने भी मौसम में बदलाव को नियंत्रित करने में बादलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकारा है।[11] उन्होंने शोध में कहा है कि मध्यम स्तर के बादल छोटी-छोटी बूंदों और बर्फ के कणों का निर्माण करते है। उन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में नई सेटेलाइट तकनीकी को वैज्ञानिक रहस्यों को उजागर करने में बहुत ही सुफलगामी एवं सहयोगी बताया।

वैदिक काल में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को 'स्वस्ति' कहा गया अर्थात् प्रकृति के सर्व सुलभ पदार्थों को सुरक्षित रखना ही 'स्वस्ति' है। सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, अग्नि को देवता के रूप में मंत्रोंच्चारण द्वारा आह्वान करते हुऐ उनसे रक्षा की कामना की ताकि धरती से आकाश तक पर्यावरण सन्तुलित रहे। पर्यावरण की महत्वपूर्ण इकाई वृक्ष माना गया, इनके बिना धरती का कोई अस्तित्व ही नही है। वृक्षों के महत्व को स्वीकार करते हुए मत्स्य पुराण में कहा गया है-

"दश कूप समा वापी, दश वापी समोहदः।
दशह्रद समः पूत्रों, दश पुत्रो समो द्रुमः।।

अर्थात् दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावडिघ्यों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। इस धरा पर प्रकृति की देन जल सुखदायक, जीवन का आधार व रक्षक है। ऋषि मेघातिधि काण्व कहते है-

अप्स्वडन्तरमृतमप्सु भेषजमपायुत प्रशस्तये देवा भवत वाजिनः।[12]

हे मनुष्यों! अमृत समान और गुणकारी जल का सदुपयोग, प्रशंसा एवं स्तुतिकारक बनो। मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली नदियों को ऋषियों के मातृवत् पूजा है। यजुर्वेद में जल प्रदूषित करना मना किया गया है- मा आपो हिंसीः।[13] जल को नष्ट मत करो, हानि मत पहुँचाओ। इस कथन से जल को शुद्ध रखने के साथ उसको समाप्त न करने की बात स्पष्ट प्रतीत होती है। ऋग्वेद में जलाशयों के जल-रक्षार्थ खड़े वृक्षों को काटने से इन्कार किया गया है। यदर्षासं मोषधा वृक्षं।[14] जल किनारे खड़े वृक्षों को मत

उखाड़ो। ऊपरलिखित वर्णन से व्यक्त है कि वैदिक युग में जल-संरक्षण की प्रथा प्रचलित थी। वेदो में जल संरक्षणार्थ उपलब्ध निर्देशों और उपदेशानुसार हमे जल का उचित प्रयोग करते हुए उसे संरक्षित करना चाहिए।

वेदों में पर्यावरण निर्माण एवं संरक्षण की आधारभूत शक्ति के रूप में अग्नि तत्व की स्तुति की गई है। मधुच्छन्दा ऋषि द्वारा कथित ऋग्वेद का प्रथमपद 'अग्निमीले' अग्निसंरक्षण के सभी पक्षों की व्याख्या में समर्थ है। वेदों में एक शक्ति के रूप में अग्नि के त्रिविध रूप हैं- पार्थिव, अन्तरिक्ष स्थानिय तथा द्यौ स्थानिय सूर्य। वेदों में सौर-ऊर्जा को पर्यावरण संरक्षण में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। सूर्य की ऊर्जा और द्युति विकास और वृद्धि की द्योतक होने से सर्वार्थ अपेक्षित है-

सूर्यः यतेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चा।[15]

हे सूर्य! जो तुम्हारी दीपन शक्ति है, उसमें हमें प्रदीप्त करो। अथर्ववेद में अग्नितत्व को हानि पहुँचाने वाले के लिए दण्डविधान भी है- अग्नेयतते तपस्तेन तं प्रतितप। हे अग्नि! जो तुम्हे कष्ट पहुँचाए, उसे तुम तपाओ, पीडिघ्त करो। साथ में अग्नि प्रार्थना की गई है कि जिस कारण लोग तुम्हे दूषित करते है, उन कारणों को हटाओ। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में सौर ऊर्जा का यशोगान प्राप्त होता है। इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणः।[16] अर्थात् हे सूर्यदेव! तुम्हारी प्रदत्त ऊर्जा और अन्न कार्यसाधक है, हमें आप श्रेष्ठ कर्म में लगाएं- वेदों में ऋषियों ने प्राकृतिक ऊर्जा को कार्य में लाने हेतु आग्रह किया है। सौर-ऊर्जा प्राकृतिक व गैर परम्परागत ऊर्जा का ऐसा बड़ा स्रोत है, जो पर्यावरण शुद्धता के संरक्षण में शत प्रतिशत सक्षम है।

वैदिक काल से ही प्राकृतिक तत्वों को ईश्वरीय रूप में स्वीकारते हुए रोग-शोक, आधि-व्याधि, अनावृष्टि-अतिवृष्टि जैसी आपदाओं से मुक्ति के लिए पूजन-अर्चन के साथ यज्ञ किया जाता रहा है। इसके पीछे कारण था यज्ञ में आहूत की जाने वाली सामग्रीयों से वातावरण शुद्ध व पवित्र होता था इसलिए यज्ञ करने की परम्परा आज तक चली आ रही है। यजुर्वेद पूर्णतः यज्ञपरक है। संसार की समस्त प्रक्रिया यज्ञमय है। पर्यावरण की सुरक्षा यज्ञ में और यज्ञ का संरक्षण उसके निरन्तर क्रियान्वयन में विद्यमान है। यज्ञ से सुगन्धित द्रव्यों का धुआँ अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर वहाँ स्थित प्रदूषण को समाप्त करने में समर्थ है। जिससे शुद्धता होती है। अतः शुद्ध तत्वों के रक्षार्थ यज्ञ करना चाहिए।

अग्नये काव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमये स्वाहा

अपहताऽसुरा रक्षांसि वेदिषदः।[17]

सभी पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने वाले अग्नि और सोम को विद्वानों के सहयोग से संयुक्त करके संसार में फैले दोषों को दूर करिये एवं प्रकृति व्याप्त गुणों की रक्षा कीजिए। यह यज्ञ से ही सम्भव है, इसी से विश्व की सत्ता और सुरक्षा है। छान्दोयोपनिषद में लिखा है- पुरूषो वाव यज्ञः मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है आन्तरिक दृष्टि से वह मानव को श्रेष्ठ भावनाओं से प्रेरित करता है और बाह्य रूप से वातावरण को पवित्र करने वाला है। भौतिक व आध्यात्मिक शुद्धिकरण तथा दोनों में सामंजस्य बनाना ही वैदिक यज्ञों का प्रमुख उद्देश्य है। स्वयं और स्वयं के कारणों को जानने व सुरक्षित रखने में ही सम्पूर्ण पर्यावरण सुरक्षित है। यजुर्वेद में वृक्षों को वर्षा कराने में सहयोगी माना गया है इसके लिए यज्ञों का आयोजन होता था।

कृषिश्र में यज्ञेन कल्पताम- यज्ञ की सहायता से खेती करो।

वृष्टिश्र में यज्ञेन कल्पताम्- वर्षा हेतु यज्ञ करो।

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु-[18] *जब तक हम चाहे तब वर्षा हो,*

वांछित स्थान पर हो।

कृषि वायु, वृक्ष इनके संरक्षण एवं शुद्धीकरण में यज्ञकार्य लाभप्रद है। वैदिककाल में पर्यावरण में व्याप्त अनावश्यक जीवाणुओं व अन्य विकारों को समाप्त करने हेतु वर्ष पर्यन्त ऋतु अनुसार यज्ञ किये जाते थे ताकि पर्यावरण प्राणियों के अनुकूल बना रहे।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में भूमि के चारों और विद्यमान 'यकृतउत्ब' (ओजोन परत) का उल्लेख है। अथर्ववेद में इस ओजोन परत का रंग जिरव्यय अर्थात् सुनहरी बताया गय है। मंत्रों से स्पष्ट है कि ओजोन परत पृथ्वी की रक्षा करती है। इसे हानि पहुँचाना संकटदायी है। ऋग्वेद का कथन है कि शब्द शक्ति का ही सूक्ष्म रूप विद्युत तरंग है और मन से भी सूक्ष्मतर है। वैदिक विधि के अनुसार वेदमन्त्रों आदि का सस्वर मधुर ध्वनि से पाठ, भजन, कीर्तन, संगीत आदि का आयोजन और प्रसार ध्वनि प्रदूषण की समस्या का काफी अंश तक हल कर सकेगा। वैदिक कर्मकाण्डो की अनेक विधाओं ने भी पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया

है। अरण्यो में रहकर पर्यावरण के प्रति विशेष जागरूक रहने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य का सृजन कर विश्व में पर्यावरण के महत्त्व को रेखांकित किया है। भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से पेड़-पौधों, खेतों इत्यादि को पूजनीय माना गया है और इनके प्रति आदरभाव दृष्टिगोचर होता रहा है। यही कारण है कि आज भी भारतीय स्त्रियों द्वारा विभिन्न व्रत त्यौहारों पर पीपल, तुलसी, नीम, वट, आम्र, केला और जामुनादि वृक्षों की पूजा किया जाना वृक्षों के प्रति उनकी आत्मीयता, सम्मान और संरक्षण की भावना को परिलक्षित करवाता है। वैदिक ऋषियों के अनुसार सभी को वनों की पोषणता, औषधियों एवं उसकी गुणवत्ता का ज्ञान होना चाहिए ताकि लोग वनों का संरक्षण व संवर्धन करे। इसी सन्दर्भ में अरण्यानी सूक्त में एरम्मद ऋषि कहते है-

अरण्यान्यरणरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।[19]

हे वनसमूह! तुम पहले से अपने आप आगे-आगे बढ़ते रहते हो। ऋषि माता वनदेवी से प्रार्थना करते है कि वनौषधियों को भविष्य में सुरक्षित रखे। अरण्यानी सूक्त पर्यावरण रक्षा, वास्पतिक समुन्नत चेतना का ही नही, अपितु मानव कल्याणार्थ उनके उपयोग व नियोजन की व्यापक जानकारी का अभूतपूर्व निदर्शन है। भूमि, जलाशय, समुद्र, पर्वतो पर उत्पन्न वृक्षादि वनस्पति नितान्त रक्षणीय है, संवर्धनीय है। वायु की गुणवत्ता इससे बढ़ती है जिससे पर्यावरण शुद्ध होता है।

आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी है। 'अरण्ये भवमेति अरण्यकम कहकर आरण्यक का अर्थ स्पष्ट किया गया है। वृहदारण्यक भी अरण्येनुव्यामानत्वात अरण्यकम के रूप में इसका समर्थन करता है। इसका विषय प्राणविद्या है। अंतरिक्ष और वायु से प्राण का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण के जैविक और अजैविक तत्वों में भी वायु और अंतरिक्ष का विशेष योगदान रहता है। सृष्टि के सभी तत्वों में इन दोनों का समावेश है। इन्हीं गुणों के कारण सृष्टि के सभी तत्वों को प्राणशक्ति मिलती है जिससे विकास की गति अग्रसर होती है। उपनिषदों में जल, वायु, पृथ्वी और अन्तरिक्ष का विशद वर्णन हुआ है। इसमें प्रकृति की महत्ता को पर्याप्त मान्यता प्रदान की गई है। इनके अनुसार पदार्थ की उत्पत्ति एवं जीव जगत की सृष्टि अग्नि जल और पृथ्वी के विनियोग से हुई है। श्वेताश्वेतर उपनिषद् ने इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की विवेचना की है। छांदोग्य उपनिषद् स्पष्ट करता है कि पृथ्वी, जल और पुरूष सभी प्रकृति के घटक है। पृथ्वी का रस जल है और जल का रस औषध है। औषधियों का रस पुरूष है, पुरूष का रसा वाणी, वाणी का ऋचा, ऋचा का साम और साम का रस उद्गीथ है, अर्थात् पृथ्वी तत्व में ही सब तत्वों को प्राणवान बनाने के प्रमुख कारण है।

वैदिक वांग्मय में दर्शन भी पर्यावरण की चिंतन चेतना से ओतप्रोत रहे है। सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरूष के समन्वय को सृष्टि का कारण माना है। प्रकृति जड़ व स्थल होते हुए भी अति सूक्ष्म है। अतः प्रकृति समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है चूंकि प्रकृति को यहाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शाया है। इसलिए इसमें पर्यावरण अनायास ही जीवंत हो उठा है। न्यायदर्शन में ईश्वर एवं जीव के साथ प्रकृति भी महत्वपूर्ण घटक है। वैदिक एवं दार्शनिक साहित्य की ही भाँति पुराणों में भी पर्यावरण के घटकों को पूजनीय माना गया है। प्रकृति के इन घटकों में देवत्व का भाव भी दर्शाया गया है। यहाँ मिट्टी प्रस्तर के पहाड़ को देवात्मा हिमालय बताया गया है तो नदियों को देवी का पर्याय माना है, जिसमें पुण्योताय गंगा का स्वरूप तो अवर्णनीय है। पुराणों के अनुसार ईश्वर संसार के कल्याणार्थ कभी मत्स्य का आकार ग्रहण करते है तो कभी कछुआ, हँस बनकर इनकी महत्ता प्रतिपादित करते है। सिंह और बराह के रूप में आकर सभी जीवों की श्रेष्ठता घोषित करते है। भारतीय वैदिक साहित्य में कुछ पुराण प्राकृतिक घटको जैसे- अग्नि, वायु व वरूण इत्यादि के नाम पर रखे गये, जिसका उद्देश्य अग्नि, वायु व वरूण का उल्लेख करना ही नहीं बल्कि उसके महत्त्व को रेखांकित करते हुए घटक की पवित्रता सर्वस्थापित करना ताकि समाज पर्यावरण संरक्षण को धर्म की आज्ञा माने। पुराणों का समय वेदकाल से प्रारम्भ होकर सोलहवीं सदी के अंतिम कालखण्ड तक माना गया है। इतनी लम्बी अवधि में भी पर्यावरण के प्रति पर्याप्त सजगता और जागरूकता का रूझान मिलता है। सिन्धु सभ्यता के युग में द्राविडो की जीवन शैली में पर्यावरण प्रेम को दर्शाया गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय वन की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अभ्यारण्यों की पाँच श्रेणियां होती थी। सम्राट अशोक के शासन काल में सर्वप्रथम वन्य जीव संरक्षण हेतु नियम बनाये गये थे। इसके पश्चात भी यह सिलसिला चलता रहा।

पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुऐ वेद में मानव को पर्यावरण के प्रति सजग रहने तथा उसके ज्ञान हेतु पुनः आदेश दिया गया है-

पूषा विष्णुर्हवन सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हत्त्वम्।[20]

अर्थात् सब का पोषक सूर्य, सर्वत्र व्यापक वायु, सप्तस्थलों पर उपलब्ध नदी आदि का जल, व्यापक अन्तरिक्ष, बादल, वनस्पति और पृथिवी सब मेरी पुकार सुने। हम मानव इनके गुणों को जानें तथा इनसे यथोचित उपकार ग्रहण करे। इस प्रकार वेदों में प्राकृतिक देवों को आह्वान करके ऋषियों ने सजगता दिखाई है ताकि प्रकृति का सन्तुलन बना रहे।

पर्यावरण संरक्षण की इस सुदीर्घ एवं अतिप्राचीन परम्परा को आधुनिकता की आग ने भारी नुकसान पहुँचाया है। दोहन और शोषण, वैभव एवं विलास की रीति नीति से पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। फलतः जीवन भी संकटग्रस्त है। सब और विपिन्नता है। प्राकृतिक आपदाओं का क्रूर तांडव है। वैज्ञानिक हो या राजनेता, सभी प्रकृति के क्रोधावेश से डरे-सहमे है। समाधान की खोज के इन पलों में सार्थक निदान के लिए जरूरी है कि हम अपनी विरासत को संभाले। पर्यावरण संरक्षण की टूट बिखर रही कडिघ्यो को पुनः जोड़े। हममें से प्रत्येक मन-वाणी-कर्म से इस सत्य का वेदकालीन महर्षियों के स्वर में स्वर मिलाकर सस्वर उद्घोष करे- ऊँ द्यौ शान्तिः अंतरिक्ष शांतिः पृथ्वी शांतिः आपः शांतिः। जब हम अपने आचरण व्यवहार से माता प्रकृति के कोप को शांत करेंगे, तभी हमारा अपना जीवन भी शांत और सुखी होगा।

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद ए/9/7
2. अथर्ववेद 2/20/1
3. ऋग्वेद 10/147/1
4. ऋग्वेद 1/37/6
5. वेदो में पर्यावरण शिक्षा- पृ. 72
6. अथर्ववेद 12/1/35
7. ऋग्वेद 7/35/4
8. यजुर्वेद 36/10/1
9. अथर्ववेद 19/15/16
10. यजुर्वेद 36/11/1
11. टेक्सास ए एण्ड एम युनिवर्सिटी के प्रोफेसर शइमा नसीरी नवभारत, 4 जनवरी 2011 रायपुर संस्करण पृष्ठ 5 पर
12. ऋग्वेद 1/23/19
13. यजुर्वेद 6/22
14. ऋग्वेद 5/54/6
15. अथर्ववेद 2/21/3
16. वेदों में पर्यावरण शिक्षा, पृ. 14
17. यजुर्वेद 2/21
18. यजुर्वेद 22/22
19. अथर्ववेद 4/4/20/2
20. ऋग्वेद 8/54/4

गुरदयाल सिंह के उपन्यासों में परिवारिक समस्याएँ

कलवीर कौर

रिसर्च स्कॉलर (पी.एचडी), हिन्दी विभाग, देश भगत युनिवर्सिटी, मण्डी गोबिंदगढ़, पंजाब

गुरदयाल सिंह पंजाबी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। वे पंजाब के जैतो नामक गाँव के रहने वाले थे। उन्होंने 1957 में अपने साहित्यिक कैरियर की शुरूआत की। उन्होंने सबसे पहले भांगावाले नामक लधुकथा की रचना की। गुरदयाल सिंह ने अपना सारा जीवन पंजाबी साहित्य को अर्पित कर दिया। उन्होंने लगभग 10 उपन्यासों की रचना की। गुरदयाल सिंह ने अपने उपन्यासों में परिवारिक समस्याओं का बहुत ही बारीकी से चित्रण किया है। गुरदयाल सिंह ने पिछले समय से लगातार परिवर्तित हो रही सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ तथा उसके परिवार पर पड़ने वाले दुष्परिणामों का वण्रन किया है।

डॉ. चमनलाल के अनुसार - ''प्रत्येक युग में ऐसा प्रतिनिध साहित्य कम प्रस्तुत होता है, जिसमें उस युग के जीवन को उस काल के यथार्थ को उसकी अधिकाधिक पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति किया जा सके, किन्तु किसी भी युग में कोई भी साहित्य रूप तभी श्रेष्ठ व पूर्ण पाता है, जब उस युग के साहित्यकार की अपने काल के जीवन यथार्थ की पकड़ गहरी व बहुतस्तरीय होती है।''[1]

परिवारिक रिश्तों पर आधारित गुरदयाल सिंह का 'मढ़ी दा दीवा' नाकम उपन्यास बहुत ही प्रसिद्ध उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दो पीढ़ीयों की स्थितियों का चित्रण प्रस्तुत किया है, उपन्यास में एक तरफ पहली पीढ़ी में मालिक-मजदूर के आपसी रिश्तों का वर्णन किया है जो भले ही जरूरतों पर आधारित हो पर उसमें कटुता नहीं पाई जाती। लेखक ने स्पष्ट किया है कि धर्म सिंह नामक जाट का अपने सीरी जगसीर सिंह (निम्न श्रेणी) से इन्सानियत का रिश्ता था। भले ही वे समाज के रीति-रिवाजों के भय से सबके सामने अपने आपसी सम्बन्ध को छुपाते थे परन्तु उनके बीच के इन्सानियत के रिश्ते को नकारा नहीं जा सकता। इस सम्बन्ध में उपन्यासकार कहते हैं - "धर्म सिंह और जगसीर का बापू, इक्ठे मेले जाया करते थे तो उन्होंने एक रंग की पगड़ियां एक जैसे ही कुर्ते और एक जैसी जरी की कढ़ाई वाली जुतियां पहन रखी होती। लोक-लाज के भय से धर्म सिंह का बापू और जगसीर का बापू के साथ, किसी के सामने बैठ कर खाता-पीता न था, उन दोनों को खेत में बेरी के नीचे नारियल की ठूठी में शराब पीते थी देखा था।''[2]

धीरे-धीरे जैसे-जैसे धर्म सिंह के परिवार को नौकर की जरूरत नहीं रही तो परिवार जैसे रहने वाले मालिक और सीरी के बीच का रिश्ता पलभर में बिखर गया। पहले धर्म सिंह के अनुसार सारा काम-काज चलता था परन्तु जैसे ही सारा काम-काज धर्म सिंह के लड़के के हाथ में सारा कुछ जाता है तो सीरी और उसके परिवार को उसकी औकात दिखा देता है। एक बार जब जगसीर की माँ धर्म सिंह के घर पर किसी जरूरत के लिए जाती है तो वह कहती है - "कम-जात, सारी उम्र हमारा नकम खा कर, अब हराम करने लगा है।''[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि नई पीढ़ी की बदलती हुई मानसिकता ने पीढ़ियों से चले आ रहे मधुर पारिवारिक सम्बन्धों को क्षण भर में तार-तार कर दिया और जगसीर के परिवार को अपनी असलियत करवा दिया। इसके अलावा गुरदयाल सिंह ने स्पष्ट किया है कि सारी उम्र करने के बाद भी जगसीर के परिवार की गरीबी ज्यों की त्यों बनी रहती है और जगसीर के पारिवारिक बोझ तले दबे रहने के कारण उसकी शादी की उम्र भी निकल जाती है। उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि जगसीर के पिता की मेहनत करने के कारण भन्ते (धर्म सिंह का बेटा) का परिवार दिन दुनी रात चौगुनी तरक्की करता है और उनकी मेहनत और त्याग को पूरी तरह से अनदेखा कर देता है।

गुरदयाल सिंह का दूसरा बहुचर्चित उपन्यास परसा है। इस उपन्यास में भी गुरदयाल सिंह ने नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के आपसी मतभेद के कारण परिवार विखण्डन का चित्रण किया है। उपन्यास का मुख्य पात्र परसा है जो अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् अपने तीन पुत्रों को पालता है और सोचता है कि उसके पुत्र बड़े होकर पढ़-लिख उसके नक्शे कदमों पर चलेंगे और समाज को अपने अनुसार बदलने का दम रखेंगे परन्तु ऐसा कतयी नहीं होता। उसके दो बेटे पोहला और जेठा पढ़ लिखकर आधुनिक सभ्यता को अपना लेते हैं। एक पुत्र विदेश चला जाता है और दूसरा विदेश चला जाता है। यह सब देखकर परसा अपने पुत्रों से सम्बन्ध खत्म कर देता है। अपने पुत्रों के सम्बन्ध में परसा कहता है - "मेरे दो तो साले सोला-सोला जमात भी पढ़ गए, उन्होंने कौन से कीले उसार दिए? गधे की भाँति ढोते फिरते हैं - एक अपनी सरकार का, दूसरा पुरानी गई गुजरी बंदर कौम का।"[4] उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि परसा सोचता है कि हमें समाज को अपने अनुसार बदलना चाहिए न कि अपने आप को समाज के अनुसार। परसा मानव उद्धार में यकीन रखता है परन्तु उसके दो बड़े बेटे मानव उद्धार की अपेक्षा पैसा कमाने में यकीन रखते हैं परन्तु परसा पैसे को कुछ नहीं समझता।

उसका एक पुत्र बसन्ता पढ़ता नहीं है और इधर-उधर भटकता रहता है। परसा सोचता है कि वह उसके नक्शे कदमों पर चलता है परन्तु वास्तविकता कुछ और ही होती है। गुरदयाल सिंह ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम स्पट करने का प्रयत्न किया है कि परसा और उसके पुत्रों में आपसी समझ के अभाव में पूरा परिवार तार-तार हो जाता है।

गुरदयाल सिंह का तीसरा सबसे महत्वपूर्णउपन्यास "रेत दी इक मुट्ठ" है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि परिवार को सम्भालने के लिए केवल धन का होना ही पर्याप्त नहीं है। बहुत ज्यादा धनी व्यक्ति जीवन में हमेशा खुश रहे यह जरूरी नहीं है। जीवन में खुश रहने के लिए अगर धन का होना जितना आवश्यक है उतना ही अपनों का साथ भी अनिवार्य है। उपन्यास का मुख्य पात्र अमर है, जो यह यवर्गोय परिवार से सम्बन्ध रखता है उसका नाना उसे एक ही बात समझाता है कि ध नही जीवन में सर्वस्व है अमर बस एक ही बात सोचता है कि वह अपने परिवार को खुश रखने के लिए अधिक से अधिक धन कमाएगा। इसी होड़ में वह इतना आगे निकल जाता है कि धन कमाने की इस दौड़ में उसका परिवार बहुत ही पीछे रह जाता है। उसकी पत्नी और उसके बच्चे उसके साथ को तरसते रह जाते हैं। उसकी पत्नी चाहती है कि उसका पति उसे जी भर कर प्यार करे। पति के साथ के अभाव में सोनी की शारीरिक दृप्ती भी नहीं हो पाती जिसके कारण वह प्रीतू और गुरकीरत जैसे लोगों को अपना आज सौंप कर दृप्ती प्राप्त करना चाहती है। इधर अमर सिंह की पत्नी पति के साथ के अभाव में अपने पतिव्रता के मार्ग से भटक जाती है और उधर अमर सिंह पैदा कमाने की धुन में इतना आगे निकल जाता है कि उसे पास-चाहते हुए भी अपने परिवार के वापस आने के लिए कोई रास्ता नहीं बचता। उपन्यासकार ने पूँजीवाद व्यवस्था को भी परिवार क अलगाव का मुख्य कारण माना है इस सम्बन्ध में वे कहते हैं कि - "अमर सिंह उच्च आकांक्षाओं का धारणी मध्यवर्गीय व्यक्ति है जो तीव्रता से अमीर बनने की धुन में खुद से एवं अपने परिवार से भी विरक्त हो जाता है एवं अन्त में सवैविघटन और परिवार विघटन भोगता हुआ महसूस करता है, जैसे जीवन रेत की तरह उसकी मुट्ठी से खिसक जाता है। वह अपनी और अपने परिवार की जिन्दगी स्वर्ग बनाने की मध्यवर्गीय अकांक्षा में फंसा हुआ न अपना ख्याल रख सकता है न ही अपने परिवार का।"[5] पैसे के प्रति जरूरत से ज्यादा आकांक्षा रखना भी कष्टदायी साबित होता है जैसा कि अमर सिंह पैसे के लालच में अपने और अपने परिवार के जीवन को नीरस ही नहीं बनाता बल्कि पूरी तरह से नष्ट कर देता है।

गुरदयाल सिंह कृत 'सांझ-सवेर' उपन्यास पारिवारिक दृष्टि से अत्यनत महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत उपन्यास में दो परिवारों की कथा समानान्तर रूप से चलती है। पहला परिवार दसौंधा सिंह का है एवं दूसरा परिवार उसके बड़े भाई बूटा सिंह का है। दसौंधा सिंह सारे आदर्शो को ताक में रख कर जायज-नजायज तरीकों से अपनी जमीन में वृद्धि करने में लगा रहता है। ऐसा करते हुए उसे पता ही नहीं लगता कि कब उसका पूरा का पूरा परिवार उसके नियन्त्रण से बाहर हो जाता है। दसौंधा सिंह के बड़े पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी बड़ी बहूत बिना किसी से सलाह किए ही झूठे आदर्शवादी रिश्तों के बन्धन से अपने आप को कब मुक्त कर लेती है, इसकी भनक दसौंधा सिंह को बहत देर से लगती है, क्योंकि उसका ध्यान अपने परिवार की तरफ न हो कर धन कमाने की तरफ ज्यादा था। इस सम्बन्ध में गुरदयाल सिंह कहते हैं - "उसका यह कर्म ग्रामीण जीवन में आई गतिशीलता का प्रमाण भी है और खत्म हो रहे आदर्शवादी संस्कारों का सूचक भी"[6] इतना ही नहीं दसौंधा सिंह का छोटा पुत्र जरनैल भी पतित हो जाता है। वह दिन प्रतिदिन किसी न किसी उलझता रहता है। उसकी इन हरकतों का दुष्परिणाम दसौंधा सिंह के साथ-साथ जरनैल की पत्नी को भी भुगतना पड़ता है। अन्त में बलात्कारी बचने के द्वारा आपसी मतभेद के कारण जरनैल का कत्ल करवा देता है। जरनैल की मृत्यु दसौंधा सिंह को पूरी तरह से तोड़ कर रख देती है।

दूसरी तरफ उसका भाई बूटा धर की अपेक्षा अपने आदर्शों को ज्यादा तरजीह देता है। बूटा सिंह के तीन पुत्र थे। वह मेहनत करने में यकीन रखता है। मेहनती व्यक्ति अपनी घर की जरूरतों को तो कुछ हद तक पूरा कर सकता है परन्तु वह धनवान नहीं बन सकता है। ईमानदार होने के कारण बूटा सिंह के बेटे में किसी हद तक आपसी प्रेम बचा हुआ है। पैसा ज्यादा न होने के कारण बूटा सिंह को अपने बेटों के ताने अक्सर सुनने को मिलते हैं। उसके पुत्र अपने पिता को ताने देते हुए कहते हैं - "क्यों दसौंधे चाचे की तरह हमें तिहसमीआं उसार कर दी है, जो हमसे संभाली नहीं गई? मसा ई की खुड्डा वाल साढ़े ग्यारह घुमा वाली ढेरी तुझसे बारह नहीं बनी और चिल्ला-चिल्ला कर सलाह तो ऐसे देने लग पड़ता है जैसे पहाड़ों पत्थर ढोते हुए घुटने टेढ़े हो गए हों, अकड़ता बता किस बात पर है? इस प्रकार भले ही दसौंधा सिंह की तरह बूटा सिंह को सामाजिक तिरस्कार का सामना नहीं करना पड़ता पर आर्थिक अभाव के कारण अपने पुत्रों के ताने तो सुनने ही पड़ते हैं। अन्त: हम देखते हैं कि जो दसौंधा सिंह धन के लालच में दूसरों के घर उजाड़ता रहता है अन्त में उसका अपना घर पूरी तरह से तहस नहस हो जाता है। आदर्शों को सर्वोपरि मानने वाले बूटा सिंह की अपेक्षा वह फिर भी मन से शान्त और संतुष्ट है।

प्रस्तुत उपन्यास का तीसरा पात्र बचना सिंह है। जो एक नंबर का मवाली एवं बलात्कारी है। उसका नैतिकता से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं है। उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि पहले दूसरों की बहु-बेटियों के भी अपने घर की इज्जत समझा जाता था परन्तु बचने जैसे घटिया लोगों ने इस सोच पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। वह गरीबों की बहु-बेटियों को उठा कर ले जाता और उनकी पत भ्रष्ट करता। उस सम्बन्ध में सुन्दर की माँ गाँव की बुर्जुग औरतों से आप-बीत सांझी करती हुई कहती है - "मेरा कोई कसूर नहीं आबो, रो हरामी जबरदस्ती उठाकर ले गए और मुझे बहुत तसीहे दिए।"[7] इस प्रकार गुरदयाल सिंह ने स्पष्ट किया है कि बचने जैसे लोग सामाजिक आदर्शों का दिन-प्रतिदिन कत्ल कर रहे हैं।

गुरदयाल सिंह ने ''अन्ने घोड़े का दान'' बहुत ही महत्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में गुरदयाल सिंह ने एक साथ कई परिवारों का चित्रण किया है जो गरीबी के कारण संताप भोगते रहते हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र मेलू है जो हरित क्रान्ति के प्रभाव के कारण गाँव में काम न मिलने के कारण गाँव से शहर आ जाता है। वह सोचता है कि वह शहर में मजदूरी करके अपने बूढ़े माँ-बाप का सहारा बनेगा और साथ ही अपने परिवार का भी आसानी से पालन पोषण करेगा। शहर आने पर जब उसको अपना भरनपोषण करना भी मुश्किल हो जाता है तो उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाता है। वह कठिन मेहनत करता है परन्तु उसकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं आता। एक बार मेलू की पत्नी अपने मायके से वापिस आती है, तो रास्ते में उसे देखकर उसका लड़का उसे आवाज लगाता है, तो वह उन्हें अनदेखा कर देता है। इसका एकमात्र कारण आर्थिक मंदहाली थी। इससे अतिरिक्त दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है। उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि गरीबी ऐसी चीज है जो न चाहते हुए भी अपनों को अपनों से दूर कर देती है। आर्थिक मंदहाली से पीडिघ्त लोग चाहकर भी एक दूसरे की मदद नहीं कर पाते। मेलू की दयनीय स्थिति को देखते हुए मेलू का साला अपनी बहन की मदद करना चाहता है परन्तु उसकी अपनी स्थिति भी इतनी अच्छी न थी कि वह अपनी बहन की मदद कर सके। ऐसा करने के लिए जब वह अपनी पत्नी से कहता है तो उसकी पत्नी उसे असलीयत से जागरूक करवाते हुए कहती है कि - "गाँव में कौन सा कोई हमारे लिए अनाज का ढेर लगाकर बैठा है, यही मजदूरी करके वहां खानी है, वही यद्यं पर कर रहे हैं। जब आए थे, तब कौन सा शौंक से आए थे। साल भर काम नहीं मिला, सिर्फ दिहाड़ी से क्या बनता है और गाँव में दिहाड़ी कितनी देर चलती है? क्षण भर सांस लेकर कहती है - और अब तो न इधर के न उधर के। सीर कमाने लायक अब उसकी देह रही नहीं, उसकी वताओं अब किधर जाए।"[8] इस प्रकार बहुत ही भयानक आर्थिक स्थिति ऊभर कर सामने आती है। इतना ही नहीं ऊधर गाँव में बैठे मेलू के माँ-बाप सोचते हैं कि गाँव में रहकर भूखे मरने से तो बेहतर है कि वे मेलू के पास शहर जा कर रहे और आराम से अपना जीवन निर्वाह करे पर उन्हें क्या पता कि उनका बेटा मेलू शहर में भी आर्थिक मंदहाली से बुरी तरह झूझ रहा है। स्थिति तब तो और भी दयनीय हो जाती है जब मेलू के माता-पिता आंखों में एक आशा की किरण लिए गाँव के जीवन से सिववत होकर शहर की ओर प्रस्थान कर देते हैं और उनका बेटा आर्थिक हालत में सुधार न आने के कारण गाँव की ओर प्रस्थान कर देता है। दूसरा परिवार शिल्ले बिहारी का है जिसकी भी स्थिति मेलू की तरह असहनीय है।

इस प्रकार हम निष्कर्म पर पहुँचते हैं कि गुरदयाल सिंह के उपन्यासों में परिवारिक समस्याओं का इस प्रकार स्पष्ट चित्रण किया गया है कि पाठक उन सभी समस्याओं में इस कदर डूब जाता है कि हृदय उन परिस्थितियों का अनुभव करते हुए पाठक हृदय द्रवित हो उठता है।

सन्दर्भ-सूची

1. डॉ. चमन लाल, साहित्य संस्कृति का समाजशास्त्रीय अवलोचन, पृष्ठ-92
2. गुरदयाल सिंह मढ़ी दा दीवा नवयुग पब्लिश्रज, दिल्ली, पृष्ठ-13
3. वही, पृष्ठ-56
4. गुरदयाल सिंह परसा सुखजीत प्रकाशन जैतो, पृष्ठ-66
5. सं0 केसर सिंह, परख (पंजाबी नावल विशेष अंक) गुरदयाल सिंह 'रेत दी इक मुट्ठ' - अमानवीयकरन एवं अलगाव बोध, मेजर सिंह रंधावा, पृष्ठ-58
6. सं0 पूरन सिंह बेदी, गुरदयाल सिंह का नावल जगत ''सांझ-सवेरे'' - एक परिचय अमरजीत कंग, पृष्ठ-222
7. गुरदयाल सिंह 'सांझ-सवेरे', पृष्ठ-123
8. गुरदयाल सिंह अन्ने घोड़े दा दान, नवयुग पब्लिश्रज दिल्ली, पृष्ठ-49

डॉ० भीमराव अम्बेडकर की पत्रकारिता एवं दलितों में राजनीतिक चेतना का महत्व

बबीता मलिक

शोधार्थिनी, राजनीति विभाग, आर0एस0एस0 (पी0जी0) कालेज, पिलुखवा, हापुड़.

डॉ० राजीव कुमार

शोध निदेशक, एसोसियेट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, राजनीति विभाग,
आर0एस0एस0 (पी0जी0) कालेज, पिलुखवा हापुड़.

1.1 सार-

किसी भी देश की राजनैतिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये स्वतन्त्र पत्रकारिता का होना अति आवश्यक है। यह दुर्बल शरीर में एक संयत्र की तरह कार्य करती है। बिना पत्रकारिता के साहित्य समाज का दर्पण नहीं कहला सकती। जब तक मीडिया में हरेक तबके की यथोचित भागीदारी नहीं होगी, सूचना का एकपक्षीय, आग्रहपूर्ण और असंतुलित प्रसार जारी रहेगा। इस असंतुलित प्रसार के प्रतिरोध में ही आंबेडकर ने दलितों के अपने खुद की मीडिया की जोरदार वकालत की थी। वे मानते थे कि अछूतों के साथ होनेवाले अन्याय के खिलाफ दलित पत्रकारिता ही संघर्ष कर सकती है। हिंदुस्तान का भावी राज्य एक सत्तात्मक या प्रजा सत्तात्मक न होकर प्रजा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य होने वाले हैं। इस प्रकार के राज्य को स्वराज्य होने के लिए मतदान का अधिकार विस्तृत करके जातिवार प्रतिनिधित्व देना जरूरी है। हिंदू धर्म ने कुछ जातियों को श्रेष्ठ और वरिष्ठ व कुछ को कनिष्ठ और अपवित्र ठहराया है। स्वाभिमान शून्य नीचे की जातियों के लोग ऊपर की जातियों को पूज्य मानते हैं और शील शून्य ऊपर की जाति के लोग नम्र भाव रखनेवाली इन जातियों को नीच मानते हैं। दलित उम्मीदवार को ऊंची जाति का मतदाता नीच समझकर मत नहीं देगा और आश्चर्य की बात यह है कि ब्राह्मणेतर और बहिष्कृत लोग बाह्मण सेवा का सुनहरा संयोग आया देख पुण्य संचय करने के लिए उनके पैरों में गिरने को दौड़ पड़ेंगे।

1.2 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में 20वीं शताब्दी यदि किसी एक विशेष उपलब्धि के लिए स्मरणीय रही है तो वह है, राजनीतिक जगत में दलितों के राजनीतिक अधिकारों को स्वीकार करना और उन्हें समान नागरिक के रूप में मताधिकार प्रदान किया जाना। यद्वपि भारत के वैदिक काल में सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त थे जिसमें दलित एवं महिलाऐं भी शामिल थी। जिसके कारण वैदिक काल को स्वर्णकाल कहा जाता है। परन्तु वैदिक काल के पश्चात् जैसे-जैसे समय गुजरता गया वैसे-वैसे ही सामाजिक असमानता बढ़ती गयी जिसके प्रमाण वैदिक काल के पश्चात् आये उत्तर वैदिक काल में प्रमाणिक तौर पर लगाये जाने लगे। जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेदभाव पैदा होने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान के द्वारा दलितों को समान नागरिकों के रूप में अधिकार प्रदान किये गये। परन्तु सदियों से चली आ रही सामाजिक मानसिकता, जो दलितों की समानता को किसी भी

क्षेत्र में सहन नहीं कर पाई थी वह इसे राजनीतिक क्षेत्र में कैसे स्वीकार करती। परिणाम स्वरूप स्वतन्त्रता के बाद भी दलितों का भारतीय राजनीति में प्रतिनिधित्व लगभग नगण्य रहा। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा दलितों को निचले स्तर पर आरक्षण प्रदान करके राजनीतिक चेतना जागृत करने का मार्ग प्रशस्त किया। डा0 अम्बेडकर ने दलित समाज के लिए जो सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास हेतु कार्य किये उससे वे दलित वर्ग के लिए आदर्श एवं प्रेरणा स्रोत बने। उन्होंने भारतीय संविधान द्वारा इस वर्ग को अधिकार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी इस परम्परा को आगे चलकर मान्यवर कांशीराम ने अपने राजनीतिक नेतृत्व के स्वपन को पूरा करने का प्रयास किया। दलित समाज में राजनीतिक चेतना का प्रचार-प्रसार करके उन्हें एक राजनीतिक मंच प्रदान कया।

बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर का मानना था कि दलितों को जागरूक बनाने और उन्हें संगठित करने के लिए उनका अपना स्वयं का मीडिया अति आवश्यक है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने 31 जनवरी 1920 को मराठी पाक्षिक 'मूकनायक' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। 'मूकनायक' यानी मूक लोगों का नायक। 'मूकनायक' के प्रवेशांक की संपादकीय में आंबेडकर ने इसके प्रकाशन के औचित्य के बारे में लिखा था, "बहिष्कृत लोगों पर हो रहे और भविष्य में होनेवाले अन्याय के उपाय सोचकर उनकी भावी उन्नति व उनके मार्ग के सच्चे स्वरूप की चर्चा करने के लिए वर्तमान पत्रों में जगह नहीं। अधिसंख्य समाचार पत्र विशिष्ट जातियों के हित साधन करनेवाले हैं। कभी-कभी उनका आलाप इतर जातियों को अहितकारक होता है।" इसी संपादकीय टिप्पणी में आंबेडकर लिखते हैं, "हिंदू समाज एक मीनार है। एक-एक जाति इस मीनार का एक-एक तल है और एक से दूसरे तल में जाने का कोई मार्ग नहीं। जो जिस तल में जन्म लेता है, उसी तल में मरता है।" वे कहते हैं, "परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार न होने के कारण प्रत्येक जाति इन घनिष्ठ संबंधों में स्वयंभू जाति है। रोटी-बेटी व्यवहार के अभाव कायम रहने से परायापन स्पृश्यापृश्य भावना से इतना ओत-प्रोत है कि यह जाति हिंदू समाज से बाहर है, ऐसा कहना चाहिए।" आंबेडकर ने इस संपादकीय टिप्पणी में ये शब्द 97 वर्ष पहले जो कहा था, वही आज का भी कटु यथार्थ है।

आंबेडकर के समय भी मीडिया में जातिगत पूर्वग्रह था और आज भी है। मीडिया के ढांचे के जातिगत पूर्वग्रहों से प्रभावित होने तथा मीडिया संस्थानों में उच्च पदों पर सवर्णों का कब्जा होने से कई बार दलितों के साथ होनेवाले अन्याय की खबरों की अनदेखी होती है। यानी मीडिया उत्पादों पर सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रभाव सामग्री के चयन, प्रकाशन तथा प्रसारण में देखा जाता है। जाहिर है कि जब तक मीडिया में हरेक तबके की यथोचित भागीदारी नहीं होगी, सूचना का एकपक्षीय, आग्रहपूर्ण और असंतुलित प्रसार जारी रहेगा। इसमें आंबेडकर ने मुख्यत: निम्न बिंदुओं को उठाया है:

1.3 बाबा साहब डा. भीम राव अंबेडकर

'मूकनायक' की आरंभिक दर्जनभर संपादकीय टिप्पणियां आंबेडकर ने स्वयं लिखी थी। संपादकीय टिप्पणियों को मिलाकर आंबेडकर के कुल 40 लेख 'मूकनायक' में छपे जिनमें मुख्यत: जातिगत गैर बराबरी के खिलाफ आवाज बुलंद की गई है। 'मूकनायक' के दूसरे संपादक ध्रुवनाथ घोलप और आंबेडकर के बीच विवाद होने के कारण उसका प्रकाशन अप्रैल 1923 में बंद हो गया। उसके चार साल बाद 3 अप्रैल 1927 को आंबेडकर ने दूसरा मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' निकाला। वह 1929 तक निकलता रहा। बाबा साहेब अछूतों की कमजोरियों को भी ठीक-ठीक पहचानते थे और उसकी खुलकर आलोचना करते थे। उनके इस आलोचनात्मक विवेक की झलक हम 'बहिष्कृत भारत' के दूसरे अंक यानी 22 अप्रैल 1927 के अंक में प्रकाशित उनकी संपादकीय टिप्पणी में पा सकते हैं, "आचार-विचार और आचरण में शुद्धि नहीं आएगी, अछूत समाज में जागृति और प्रगति के बीज कभी नहीं उगेंगे। आज की स्थिति पथरीली बंजर मन:स्थिति है। इसमें कोई भी अंकुर नहीं फूटेगा इसलिए मन को सुसंस्कृत करने के लिए पठन-पाठन व्यवसाय का अवलंबन करना चाहिए।" आलोचनात्मक विवेक के समांतर आंबेडकर ने दलितों के आरक्षण का सवाल जोर-शोर से उठाया था ताकि दलितों को ऊपर उठाया जा सके। 20 मई 1927 को प्रकाशित 'बहिष्कृत भारत' के चौथे अंक की संपादकीय में बाबा साहेब ने जो लिखा उसके मुताबिक पिछड़े वर्ग को आगे लाने के लिए सरकारी नौकरियों में उसे प्रथम स्थान मिलना चाहिए। यह विचार प्रगतिशील लोगों को अस्वीकार नहीं है परंतु यदि धन के स्वामी कुबेर पर अपनी संपत्ति सब लोगों में समान रूप से बांटने का प्रसंग आए तो अंतिम पायदान पर रहने वाले अति शूद्रों के अधिकार के सवाल पर कथित तौर पर प्रगतिशील व्यक्ति भी आश्चर्य करेंगे। 3 जून 1927 को निकले 'बहिष्कृत भारत' के पांचवें अंक में आंबेडकर ने आजकल के प्रश्न स्तंभ में एडिनवरो में भारतीय विद्यार्थियों के साथ भेदभाव पर कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की। उन्होंने लिखा था, "विलायत में जानेवाले बहुत

अमीरों के बच्चे होते हैं। वे खेलते-खेलते पढ़ाई करते हैं। उनके प्रति अतिशय सहानुभूति रखने का कोई कारण नहीं। वर्णभेद पर जीनेवाले लोगों की वर्णभेद के विरुद्ध शिकायत पर कौन खबर लेगा? इनमें स्वयं इतना वर्णभेद घुसा है कि अछूतों को भारतीय स्पृश्यों की किसी भी व्यवस्था में स्थान नहीं मिलता।" 'बहिष्कृत भारत' में आंबेडकर ने 'महार और उनका वतन' शीर्षक से चार किश्तों में संपादकीय लिखी। 23 दिसंबर 1927 के अंक में 'बहिष्कृत भारत' की संपादकीय का शीर्षक है: 'अस्पृश्यों की उन्नति का आधार।' यानी मुख्यतया अस्पृश्यों की उन्नति के लिए ही बाबा साहेब की पत्रकारिता संघर्षशील रही।

1.4 आंबेडकर द्वारा सम्पादित पत्र एवं पत्रिकाएँ

बाबा साहेब डा. भीमराव आंबेडकर ने दलित समाज में जागृति लाने के लिए कई पत्र एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं सम्पादन किया। इन पत्र-पत्रिकाओं ने उनके दलित आंदोलन को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अगर देखा जाय तो डा. आंबेडकर ही दलित पत्रकारिता के आधार स्तम्भ हैं। वे दलित पत्रिकारिता के प्रथम संपादक, संस्थापक एवं प्रकाशक हैं उनके द्वारा संपादित पत्र आज की पत्रकारिता के लिए एक मानदण्ड हैं। डा. आंबेडकर द्वारा निकाले गये पत्र-पत्रिकाओं की संक्षेप में जानकारी निम्नवत है-

(1) मूक नायक इस मराठी पाक्षिक पत्र का प्रकाशन 31 जनवरी, 1920 को हुआ। इसके संपादक पाण्डुराम नन्दराम भटकर थे जो कि महार जाति से संबंध रखते थे। आंबेडकर इस पत्र के अधिकृत संपादक नहीं थे, लेकिन वे ही इस पत्र की जान थे। एक प्रकार से यह पत्र उन्हीं की आवाज का दूसरा लिखित रूप था। 'मूक नायक' सभी प्रकार से मूक-दलितों की ही आवाज थीए जिसमें उनकी पीड़ाएं बोलती थीं इस पत्र ने दलितों में एक नयी चेतना का संचार किया गया तथा उन्हें अपने अधिकारों के लिए आंदोलित होने को उकसाया। यह पत्र आर्थिक अभावों के चलते बहुत दिन तक तो नहीं चल सका लेकिन एक चेतना की लहर दौड़ाने के अपने उद्देश्य में कामयाब रहा।

(2) बहिष्कृत भारत अल्प समय में ही 'मूक-नायक' के बन्द हो जाने के बाद डा. आंबेडकर ने 3 अप्रैल 1927 को अपना दूसरा मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' निकाला। यह पत्र बाम्बे से प्रकाशित होता था। इसका संपादन डा. आंबेडकर खुद करते थे। इसके माध्यम से वे अस्पृश्य समाज की समस्याओं और शिकायतों को सामने लाने का कार्य करते थे तथा साथ ही साथ अपने आलोचकों को जवाब भी देने का कार्य करते थे। इस पत्र के एक सम्पादकीय में उन्होंने लिखा कि यदि तिलक अछूतों के बीच पैदा होते तो यह नारा नहीं लगाते कि ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'' बल्कि वह यह कहते कि ''छुआछूत का उन्मूलन मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।'' इस पत्र ने भी दलित जागृति का महत्वपूर्ण कार्य किया।

(3) समता इस पत्र का प्रकाशन 29 जून, 1928 को आरम्भ हुआ। यह पत्र डा. आंबेडकर द्वारा समाज सुधार हेतु स्थापित संस्था 'समता संघ' का मुख पत्र था। इसके संपादक के तौर पर डा. आंबेडकर ने देवराव विष्णु नाइक की नियुक्ति की थी।

(4) जनता 'समता' पत्र बन्द होने के बाद डा. आंबेडकर ने इसका पुनर्प्रकाशन 'जनता' के नाम से किया। इसका प्रवेशांक 24 नवम्बर, 1930 को आया। यह फरवरी 1956 तक कुल 26 साल तक चलता रहा। इस पत्र के माध्यम से डा. आंबेडकर ने दलित समस्याओं को उठाने का बखूबी कार्य किया।

(5) प्रबुद्ध भारत 14 अक्टूबर, 1956 को बाबा साहेब डा. आंबेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। इसी के साथ ही 'जनता' पत्र का नाम बदलकर उन्होंने 'प्रबुद्ध भारत' कर दिया। इस पत्र के मुखशीर्ष पर 'अखिल भारतीय दलित फेडरेशन का मुखपत्र' छपता था।

1.5 आम्बेडकर की पत्रकारिता

इसकी प्रमुख वजह ये थी कि आम्बेडकर, इस अखबार का मार्गदर्शन करने के लिए उपलब्ध नहीं थे। वो उच्च शिक्षा के लिए विदेश चले गए थे। इसके अलावा अखबार को न तो विज्ञापन मिल पा रहे थे और न ही उसके ग्राहकों की संख्या इतनी ज्यादा थी कि उससे अखबार के प्रकाशन का खर्च निकाला जा सके।

आम्बेडकर की पत्रकारिता का अध्ययन करने वाले गंगाधर पंतवाने कहते हैं कि, मूकनायक का उदय, भारत के अछूतों के स्वाधीनता आंदोलन के लिए वरदान साबित हुआ था। इसने अछूतों की दशा-दिशा बदलने वाला विचार जनता के बीच स्थापित किया। मूकनायक का प्रकाशन बंद होने के बाद, आम्बेडकर एक बार फिर से पत्रकारिता के क्षेत्र में कूदे। जब उन्होंने 3 अप्रैल 1927 को

बहिष्कृत भारत के नाम से नई पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। ये वही दौर था, जब आम्बेडकर का महाद आंदोलन जोर पकड़ रहा था। बहिष्कृत भारत का प्रकाशन 15 नवंबर 1929 तक होता रहा।

1.6 बहिष्कृत भारत का प्रकाशन

कुल मिला कर इसके 43 संस्करण प्रकाशित हुए थे। हालांकि, बहिष्कृत भारत का प्रकाशन भी आर्थिक दिक्कतों की वजह से बंद करना पड़ा। मूकनायक और बहिष्कृत भारत के हर संस्करण की कीमत महज डेढ़ आने हुआ करती थी। जब कि इस की सालाना कीमत डाक के खर्च को मिलाकर केवल 3 रुपए थी (पंतवाने, पेज-76)।

इसी दौरान समता नाम के एक और पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ, जिससे बहिष्कृत भारत को नई जिंदगी मिली। उसे 24 नवंबर 1930 से जनता के नए नाम से प्रकाशित किया जाने लगा। जनता, भारत में दलितों के सब से लंबे समय तक प्रकाशित होने वाले अखबारों में से है। जो 25 वर्ष तक छपता रहा था।

जनता का नाम बाद में बदल कर, प्रबुद्ध भारत कर दिया गया था। ये सन् 1956 से 1961 का वही दौर था, जब आम्बेडकर के आंदोलन को नई धार मिली थी। इस तरह हम ये कह सकते हैं कि बहिष्कृत भारत असल में अलग-अलग नामों से लगातार 33 वर्षों तक प्रकाशित होता रहा था।

1.7 स्वतंत्रत दलित मीडिया

ये भारत में सब से लंबे समय तक प्रकाशित होने वाला स्वतंत्रत दलित मीडिया प्रकाशन था। इस दौरान, आम्बेडकर ने अपने मिशन को चलाने में, बड़ी चतुराई से सवर्ण जाति के पत्रकारों और संपादकों को इस्तेमाल किया। आम्बेडकर ने जिन प्रकाशनों की शुरुआत की, आगे चल कर उनमें से कई के संपादक ब्राह्मण रहे थे।

इनमें से जो प्रमुख नाम थे, वो हैं- डीवी नायक (जिन्होंने समता का भी संपादन किया) और ब्राहमन ब्राह्मनेत्तर, बीआर कादरेकर (जनता) और जीएन सहस्रबुद्धे (बहिष्कृत भारत और जनता)। इन ब्राह्मण संपादकों के अलावा दलित संपादकों जैसे बी सी काम्बले, और यशवंत आम्बेडकर ने जनता का संपादकीय काम-काज संभाला था।

"डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की पत्रकारिता एवं दलितों में राजनीतिक चेतना का महत्व" शोध विषय रहा है यह दलित समुदाय में राजनीतिक चेतना को दर्शाता है। जिसे तर्कपूर्ण बनाने के लिए जिला मेरठ से 200 निदर्शनों का चयन आयु, लिंग, शिक्षा, जातिसमूह और व्यवसाय के आधार पर किया गया है। जिसमें 25 प्रश्नों की एक प्रश्नावली भी तैयार की गई थी जिसके आधार पर जनसमूह के विचारों को जानने का प्रयास किया गया व साथ ही स्थानीय नेतृत्व का दृष्टिकोण जानने की भी कोशिश की की गई।

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तरदाताओं के वर्गीकरण को एक तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है जो निम्न प्रकार हैं:-

आयु वर्ष में				लिंग		शिक्षा				जाति समूह				व्यवसाय			
18–35	36–50	51–65	66–ऊपर	पु0	म0	साक्षर		निरीक्षर		एस0सी0	ओ0बी0सी0	सा0	अ0सं0	नौकरी	कृषि	मजदूर	अन्य
						पुरुष	महिला	पुरुष	महिला								
70	60	40	30	140	60	120	55	20	5	46	56	74	24	40	60	30	70
कुल योग= 200				कुल योग= 200		कुल योग= 200		कुल योग = 200		कुल योग = 200				कुल योग = 200			

1. आयु के आधार पर उत्तरदाताओं को चार भागों में विभाजित किया गया है। 18-35 वर्ष की आयु के 70 उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया गया जो कुल संख्या का 35 प्रतिशत है। 36-50 वर्ष की आयु के 60 उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया गया, जो कुल संख्या का 30 प्रतिशत है। 51-65 वर्ष की आयु के 40 उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया गया। जो कुल संख्या का 20 प्रतिशत है व 65 से अधिक आयु के 30 उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया गया, जो कुल संख्या का 15 प्रतिशत है।

2. लिंग के आधार पर उत्तरदाताओं को दो भागों में विभाजित किया गया है पुरूष और महिला/जिसमें 140 पुरूष और 60 महिलाओं से साक्षात्कार किये गये जो कि पुरूषों का 70 प्रतिशत व महिलाओं का 30 प्रतिशत है।
3. शिक्षा के आधार पर भी उत्तरदाताओं को दो भागों में विभाजित किया गया है साक्षर व निरक्षर। साक्षर व निरक्षर उत्तरदाताओं को भी दो भागों में विभाजित किया गया है पुरूष व महिला। साक्षर उत्तरदाताओं में 120 पुरूषों से साक्षात्कार किया गया जो कुल संख्या का 60 प्रतिशत है। 55 साक्षर महिलाओं से साक्षात्कार किया गया जो कुल संख्या का 27.5 प्रतिशत है। इसी प्रकार 20 निरक्षर पुरूषों से साक्षात्कार किया गया जो कुल संख्या का 10 प्रतिशत है व 5 निरक्षर महिलाओं से साक्षात्कार किया गया जो कुल संख्या का 2.5 प्रतिशत है।
4. जाति समूह के आधार पर भी उत्तरदाताओं को चार भागों में विभाति किया गया है। अनुसूचित जाति वर्ग, अन्य पिछडा वर्ग, सामान्य वर्ग व अल्पसंख्यक वर्ग। जिसमें 46 अनुसूचित जाति वर्ग के लोगों से साक्षात्कार किया गया है जो कुल संख्या का 23 प्रतिशत है। 56 अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों से साक्षात्कार किया गया जो कुल संख्या का 28 प्रतिशत है। 74 सामान्य वर्ग के लोगों से साक्षात्कार किया गया जो कुल संख्या का 37 प्रतिशत है। 24 अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों से साक्षात्कार किया गया जिसमें, मुस्लिम, इसाई, जैन व बौद्ध को शामिल किया गया जो कुल संख्या का 12 प्रतिशत है।
5. व्यवसाय के आधार पर भी उत्तरदाताओं को चार भागों में विभाजित किया गया है नौकरी पेशा वाले, किसान, मजदूर व अन्य जिसमें 40 साक्षात्कार नौकरी पेशा करने वाले लोगों से किये गये जो कुल संख्या का 20 प्रतिशत है। 60 किसान लोगों से जो कुल संख्या का 30 प्रतिशत है। 30 साक्षात्कार मजदूरी करने वाले लोगों से किये गये जो कुल संख्या का 15 प्रतिशत है। 70 साक्षात्कार 'अन्य' लोगों से किये गये जिसमें छात्र, राजनीतिज्ञ, गृहणी, सेवानिवृत्त व्यक्ति, व्यापारी और समाजसेवी आदि जो कुल संख्या का 35 प्रतिशत है।

1.8 निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने पत्रकारिता को मानवीय मूल्य और मानवीय स्वतंत्रता के अत्यंत उपयुक्त साधन सिद्द किया। "बिना किसी प्रयोजन के समाचार देना, निर्भयतापूर्वक उन लोगों की निंदा करना जो गलत रास्ते पर जा रहें हों-फिर चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों व पूरे समुदाय के हितों की रक्षा करने वाली नीति को प्रतिपादित करना" पत्रकारिता का यह पहला कर्तव्य डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भारतीय पत्रकारिता में एक नया अध्याय के रूप में जोड दिया।

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि डॉ.भीमराव अम्बेडकर का भारतीय पत्रकारिता में विशेष योगदान है। डॉ. अम्बेडकर ने बहुजन समाज के विकास को ध्यान में रखते हुए बहुजन समाज की मुक्ति के लिए सेवाभाव से पत्रकारिता को आगे बढ़ाया, समाज सुधारक, समाज चिंतक, पत्रकार, संविधानशिल्पी के रूप में अंबेडकर की पहचान आज सारी दुनिया में है। डॉ. अम्बेडकर की पत्रकारिता का स्वतंत्रता आंदोलन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी पत्रकारिता में भी बहुजन वर्ग का अपना एक अलग स्थान रहा है तथा बहुजन वर्ग ने भी पत्रकारिता के माध्यम से अपने विभिन्न लक्ष्यों को पूरा किया है। इस पत्रकारिता का लक्ष्य रहा है- बहुजन वर्ग की विभिन्न समस्याओं से लड़ना। बहुजन वर्ग ने पत्रकारिता में पूरा सहयोग दिया है जिसके परिणामस्वरूप बहुजन पत्रकारिता ने आज अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

संदर्भ सूचि

1. बी0आर0 अम्बेडकर, 'द अन्टचेबल्स', भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, द्वितीय संस्करण, 1969, पृ0- 2
2. अमरेंद्र कुमार.युग प्रवर्तक पत्रकार और पत्रकारिता, पृष्ठ.113
3. संपा पांडुरंग नंदराम भटकर मूकनायक, (काक गर्जना),31 जुलाई,1920,पृष्ठ.52
4. बलवीर सक्सेना दृभारत रत्न, पृष्ठ. 210
5. डॉ. रमेश जाधव लोकराजा शाहू छत्रपति पृष्ठ.204.205
6. ओमप्रकाश बाल्मीकी, 'सदियों का संताप', गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2008, पृ0- 45.
7. के0एल0 चंचरीक, 'आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन', यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृ0- 355.

8. एच0एल0 दुसाध, 'उ0प्र0 में बसपा की सफलता, सोशल इंजीनियरिंग का कमाल या कुछ और (एक चुनावी अध्ययन), दुसाध प्रकाशन, देवरिया, 2008, पृ0- 48.
9. एच0एल0 दुसाध, 'डाइवर्सिटी दलित सशक्तिकरण का सर्वोत्तम औजार, दलित लेखक संघ, नई दिल्ली, 2005, पृ0- 201.
10. अजय कुमार, 'दलित पैंथर आन्दोलन', गौतम बुक सेन्टर दिल्ली, 2006, पृ0- 125
11. प्रभात कुमार, 'बहुजन समाज के अनमोल रत्न', देवनंदिनी पब्लिकेशन, दिल्ली, 2009, पृ0-45.
12. महीप सिंह व चन्द्रकांत बांदिवडेकर, 'साहित्य और दलित चेतना', अभिव्यंजना प्रकाशन, बी 70/72 डी0एम0आई0डी0सी0 काम्पलैक्स, लारेंस रोड दिल्ली, 2000, पृ0- 32
13. बाबा साहेब डा. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-1, पृ0 35
14. बाबा साहेब डा. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-15, पृ0 10।
15. डा. बाबा साहेब आंबेडकर जीवन चरित, धनंजय कीर, हिन्दी अनुवाद- गजानन सुर्वे, पृ0 387.

केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय तथा निजी विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण का अध्ययन

वीरेन्द्र प्रताप यादव

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह

शोध निर्देशक, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

संक्षिप्त सारांश-

भारत में वैदिक काल के गुरुकुलों को विश्वविद्यालय का प्राचीन रुप कहा जा सकता है क्योंकि उन्हीं में उच्च शिक्षा की व्यवस्था की बाद में उपनिषद् तथा ब्राहमण काल में हम परिषदों को विश्वविद्यालय के रुप में कार्य करते हुये पाते हैं। ये परिषदें पांडित्यपूर्ण अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के सम्मेलन के रुप में होती थी और उपाधियाँ प्रदान करने की अधिकारिणी थी। बौद्धकाल में शिक्षा के सुसंगठित केन्द्रों की स्थापना हुई जिसमें तक्षशिला व नालन्दा प्रसिद्ध थे इनमें शुल्क लिया जाता था। पाठ्यक्रम में वेद वेदांग तथा विभिन्न कलायें जैसे चिकित्सा, शल्य, ज्योतिष, नक्षत्रगणना, कृषि बही खाता, धर्नुविज्ञान आदि सम्मलित थे। बौद्ध व जैन दर्शन तथा तर्क शास्त्र पढ़ाये जाते थे। मुसलमानों के आक्रमण तथा उनके द्वारा राजस्थापना से प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय नष्ट हो गये मुसलमानों ने विभिन्न स्थानों पर उच्च शिक्षा के लिये मदरसा अथवा महाविद्यालय स्थापित किये। इस काल में लाहौर, दिल्ली, रामपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, जौनपुर, अजमेर, बीदर आदि के मदरसे मसहूर थे। इनमें अरबी, फारसी, साहित्य, इतिहास, दर्शन, राजनीति, कानून, ज्योतिष, ज्यामितीय, अध्यात्मशास्त्र, धर्मविज्ञान आदि विषय पढ़ाये जाते थे। वस्तुतः यही मदरसे ही विश्वविद्यालयी शिक्षा की व्यवस्था करते थे।

मुख्य शब्दः- शैक्षिक वातावरण, अमानकीकृत मापनी, अभिवृत्ति मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, ब्त् मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावनाः- शिक्षा के व्यावसायीकरण से आज भावी पीढ़ी में एक संकट बना हुआ है। शिक्षकों से बड़ी उम्मीद लगायी जाती हैं परन्तु आज अन्तिम विकल्प के रूप में युवक व युवतियाँ शिक्षण व्यवसाय चुनती हैं। ऐसी दशा में काफी संख्या में ऐसे व्यक्ति शिक्षक बन जाते हैं जिनमें न तो शिक्षण अभिक्षमता होती है और न ही अभिव्यक्ति। अनुपयुक्त शिक्षकों के कारण हमारा शिक्षा तंत्र पंगु हो गया है तथा हमारे शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शारीरिक दक्षता, प्रभावी वक्तृता, पहलशक्ति, प्रत्ययात्मक स्पष्टता, लेखन क्षमता, बौद्धिक योग्यता, जिज्ञासा, ज्ञानार्जन के प्रति प्रेम, निरंतर शिक्षण प्रवीणता सुधारने की अभिप्रेरणा, शैक्षिक सहायक सामग्री का निर्माण करने की इच्छा व कुशलता, मानवीय मूल्यों आदि का विकास करने में असफल रहते हैं। भावी व वर्तमान शिक्षकों की गुणवत्ता में अभिवृद्धि के लिए उपर्युक्त अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का संगठन व संचालन अत्यावश्यक है।

शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंगों- अध्यापक, छात्र व पाठ्यक्रम में अध्यापक का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वैदिक काल में अध्यापन कार्य एक आध्यात्मिक कार्य माना जाता था। उस समय की सामाजिक व्यवस्था में सभी आदर्श अध्यापक के चारों ओर केन्द्रित रहते थे। इस समय का अध्यापक वैदिक रूझान व श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त, अपने विषय में निपुणता प्राप्त, अध्यापन के प्रति समर्पित, सद्आचरण करने वाला, ब्रह्मचर्य का पालन तथा सर्वोच्च सत्ता के ज्ञान के प्रति लालायित रहता था। मध्यकाल में अध्यापक प्रशिक्षण उपेक्षित रहा। इस काल में मौलवी अध्यापन कार्य करते थे। चौदहवीं शताब्दी में कक्षा नायकीय प्रणाली अधिक प्रचलित थी। ब्रिटिश काल में अध्यापन एक वृत्ति के रूप में विकसित होने लगा था। सन् 1819 में कलकत्ता विद्यालय समाज ने प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया। 1924 में बम्बई में देशी विद्यालय समाज, 1926 में मद्रास शिक्षा समाज ने प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की। सन् 1882 में अनेक प्रशिक्षण विद्यालय तथा महाविद्यालय खोले गये तथा 1904 में लॉर्ड कर्जन के प्रयास से प्रशिक्षण को काफी शक्ति मिली। बींसवीं शताब्दी के प्रथम कुछ दशकों में प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई तथा स्नातकों तथा पूर्व स्नातकों के लिए अलग-अलग प्रशिक्षण प्रारम्भ किये गये।

अध्ययन की पृष्ठभूमिः- शिक्षा का दीपक जलाने के लिये हमारे समाज ने विद्यालयों की स्थापना किये हैं। जहाँ से बौद्धिक साचे में नागरिक को ढाला जाता है। विद्यालय समाज की एक ऐसी संस्था है जहाँ जीवनधारी नागरिक को संजोया जाता है। इसी प्रकार उच्च शिक्षा के लिये विश्वविद्यालयों की संकल्पना छुपी सबसे पहले पूर्व के जमाने में उच्च शिक्षा गुरुकुल, बौद्धबिहारों, मठों तथा मदरसों में दी जाती थी परन्तु 1850 के बाद से इन्हें व्यवस्थित करते हुये विश्वविद्यालय बनाये गये जिन्हें अब केन्द्रीय, प्रान्तीय व निजी विश्वविद्यालयों का रुप दिया गया है।

भारत में केन्द्रीय विश्वविद्यालय या संघ विश्वविद्यालय संसद के एक अधिनियम द्वारा स्थापित किये गये है और शिक्षा मंत्रालय में उच्च शिक्षा विभाग के दायरे में होते हैं। सामान्य तौर पर भारत के विश्वविद्यालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त हैं, जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 से अपनी शक्ति प्राप्त करते है। इसके अलावा 15 व्यावसायिक परिषदों की स्थापना की जाती है जो मान्यता और समन्वय के विभिन्न पहलूओं को नियंत्रित करती है। केन्द्रीय विश्वविद्यालय इसके अलावा केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम 2009, जो उनके उद्देश्य, शक्तियों शासन आदि को नियंत्रित करता है। इस प्रकार 12 नये विश्वविद्यालयों की स्थापना किये है। 31 मार्च 2021 तक यू0जी0सी0 द्वारा केन्द्रीय विश्वविद्यालय 54 हो चुके है। यूजीसी द्वारा नियंत्रित अन्य प्रकार के विश्वविद्यालयों में शामिल हैं।

1. राज्य विश्वविद्यालय भारत के प्रत्येक राज्य व क्षेत्र द्वारा चलाये जाते हैं, और आमतौर पर स्थानीय विधानसभा अधिनियम द्वारा स्थापित किये जाते हैं।
2. डीम्ड यूनिवर्सिटी या डीम्ड टू बी0 यूनिवर्सिटी, यू0जी0सी0 अधिनियम 1956 की धारा 03 के तहत यू0जी0सी0 की सलाह पर उच्च शिक्षा विभाग द्वारा दी गयी स्वायत्तता की स्थिति हैं।
3. निजी विश्वविद्यालय यू0जी0सी0 द्वारा अनुमोदित हैं, वे डिग्री दे सकते है लेकिन उन्हें ऑफ कैंपस सम्बद्ध कालेज रखने की अनुमति नहीं है।

उपरोक्त विश्वविद्यालयों के अलावा अन्य संस्थानों को स्वायत्त रुप से डिग्री प्रदान करने की अनुमति दी जाती है। ये संस्थान कॉलेजों से सम्बन्ध नहीं है इन्हें अधिकारिक रुप से विश्वविद्यालय नहीं स्वायत्तता संस्था के नाम से जाना जाता है जो उच्च शिक्षा विभाग के प्रशासनिक नियन्त्रण में आते है। इन संगठनों में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय प्रोद्योगिकी संस्थान, भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, भारतीय इन्जीनियरिंग विज्ञान और प्रोद्योगिकी संस्था, भारतीय प्रबन्धन संस्थान, राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, अखिल भारतीय आर्युविज्ञान संस्थान तथा अन्य स्वायत्त संस्थान।

अध्ययन का औचित्यः- विश्वविद्यालय के वर्तमान परिवेश के बारे में हमारी समझ को अद्यतन करने के लिए आंतरिक और बाहरी दोनों और अपने हितधारकों से विचार एकत्र करने के लिए हमने एक बाहरी पर्यावरण व स्कैन एक आन्तरिक पर्यावरण स्कैन और छात्रों शिक्षकों और कर्मचारियों, पूर्व छात्रों/एई के विचारों का सर्वेक्षण किया/न्यासी सदस्यों के बोर्ड और सामुदायिक हितधारकों का चयन करें। इस प्रक्रिया में बड़ी मात्रा में मूल्यवान जानकारी की खोज की गई थी। पर्यावरण स्कैन कार्य समूह विश्वविद्यालय

के बाहरी वातावरण का एक स्नैपशॉट विकसित करने में पाँच प्राथमिक क्षेत्रों की खोज की शिक्षा, स्वास्थ्य, देखभाल, कार्यबल, प्रौद्योगिक और अनुसंधान शिक्षा के क्षेत्र में इस समूह में वैश्विक स्वास्थ्य में पर्यावरणीय कारकों अन्य देशों में परिसरों स्वास्थ्य देखभाल शिक्षा के लिए स्थान सम्बन्धी विचार, दान, चिकित्सा शिक्षा में सुधार अनौपचारिक शिक्षा के लिये क्रेडिट प्राप्त करने की प्रवृित शिक्षण की छात्रवृत्ति, प्रौद्योगिक में शोध किया। शिक्षा और संकाय विकास उन्होंने नोट किया उदाहरण के लिए –

1. वैश्विक स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रमों और अर्न्तराष्ट्रीय परिसरों में रुचि बढ़ रही है।
2. प्रौद्योगिकी के विचारों को बदलने के लिए रणनीति विचार और निवेश की आवश्यकता होती है।
3. मौजूदा आर्थिक परिस्थितियों के कारण पूर्व छात्रों/एई आउटरीच में वृद्धि दान में गिरावट का प्रतिकार कर सकती है। लोगों को सीखने के तरीके में समकालीन नवचारों और समझ के कारण चिकित्सा शिक्षा में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता होती है। जिसमें नए पाठ्यक्रम नई शिक्षा शास्त्र और मूल्यांकन के लिए नये रुपों की आवश्यकता होती है। डिजिटल प्रौद्योगिकी हमारे सीखने और काम करने के तरीके को बदल रही है और एक प्रतिक्रिया है। ''डिजिटल लर्निंग वैज को अनौपचारिक शिक्षा के लिए क्रेडिट के रुप में पेश करना। स्वास्थ्य विज्ञान शिक्षा में छात्रवृत्ति की परिभाषा का व्यापक बनाने की आवश्यकता है ताकि शिक्षण में छात्रवृत्ति और अन्य सीखने से सम्बन्धित गतिविधियों को शामिल किया जा सके। संकाय के प्रोफाइल को ऊपर उठाना और उनके विकास को बढ़ाना संस्थान के सबसे मूल्यवान संसाधन में एक बुद्धिमान यह स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में स्वास्थ्य देखभाल में सुधार की गंम्भीर आवश्यकता है और यह एक बड़े बदलाव के दौर से गुजर रहा है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से लाभः– सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से अनुसंधानकर्त्ता को निम्नलिखित लाभ है–

1. यह आवश्यक पुनरावृत्ति से बचाता है।
2. शोध प्रबन्ध के एक महत्वपूर्ण अंग के रुप में अनुसंधानकर्त्ता के ज्ञान, उसकी स्पष्टता तथा कुशलता को स्पष्ट करता है।
3. सभी प्रकार के विज्ञानों तथा शास्त्रों में अनुसंधान कार्य का आधार होता है इसके अभाव में एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं।
4. अब तक उस क्षेत्र में हो चुके कार्य की सूचना देता है।
5. पहले किये गये कार्य के आंकड़े वर्तमान अध्ययन में सहायक होते है।
6. यह समस्या के चुनाव, विश्लेषण एवं कथन में सहायक होता है।
7. यह समस्या के अध्ययन में सूझ पैदा करता है।
8. अनुसंधानकर्त्ता के समय की बचत करता है।
9. समस्या के सीमांकन में सहायक होता है।
10. इसके अध्ययन की रुपरेखा तैयार करने में सहायता मिलती है।
11. अनुसंधानकर्त्ता को त्रुटियों से बचाता है, एवं समाधान रखता है।
12. अध्ययन की विधि में सुधार कर श्रम की बचत करता है तथा अनुसंधानकर्त्ता में आत्म–विश्वास उत्पन्न करता है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण को व्यवस्थित करनाः– सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण करने के पश्चात् उसे सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि बिना सुव्यवस्थित किये उस साहित्य सर्वेक्षण का कोई महत्व नहीं होता है। और न ही उससे कोई लाभ प्राप्त होगा। अतः साहित्य को व्यवस्थित करना एक कला है। अतः हर सर्वेक्षण की एक स्पष्ट व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक सर्वेक्षण प्रकरण का ऐतिहासिक विकास देता है, एवं इसका हाल का स्तर एक साक्ष्य प्रस्तुत करते है तथा यह दिखलाते है कि किस प्रकार प्रस्तावित अध्ययन विचारणीय विषय है तथा किस प्रकार दूसरे पहलू को समझने में सहायता करेगा यद्यपि कोई भी विषय सभी दृष्टिकोण से सर्वोत्तम नहीं होता है। सर्वेक्षण हमेशा चयनात्मक, सुव्यवस्थित तथा समस्या से स्पष्ट रुप से सम्बन्धित होना चाहिए।

अग्रवाल निधि (2020); ''शिक्षा एक अखंड तत्व है। शिक्षा का वास्तविक और मूल कार्य मनुष्य का आन्तरिक व चरित्रात्मक रुप से नवनिर्माण करना है जो व्यक्ति, समाज व पर्यावरण तीनों का सामांजस्य करके मानव को सत्यम् शिवम्, सुन्दरम् की तरफ

ले जा सके। शिक्षा मानवीय चेतना का वह सांस्कृति पक्ष है जिससे व्यक्ति का बहुमुखी विकास होता है। इस अध्ययन को सर्वेक्षणात्मक बुद्धि द्वारा किया गया जिसके लिये यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया। साक्षात्कार प्रविधि से आँकड़ों का संकलन किया गया परिणाम आया कि शालेय वातावरण तथा शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक सहसम्बन्ध होता हैं।''

एडवर्ड (2021); ''यह अध्ययन विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का उन्हें प्रभावित करने वाले विद्यालयी पर्यावरण की जाँच करने से सम्बन्धित थी। यह सर्वे विधि से यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा 132 सेवापूर्व शिक्षकों पर की गयी इस अध्ययन का परिणाम व्यक्त करता है कि जो कक्षायें पर्याप्त स्थान में नहीं बनी है तो उन्हें कम्प्यूटर सीखने में कठिनाई होती है।''

ग्लैड्स (2021); ''यह अध्ययन वे शहर के विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों पर की गयी ताकि यह पता लग सके कि विद्यालय पर्यावरण को बढ़ाने व सुरक्षित करने में उनका प्रयास क्या है विद्यालय प्राथमिक स्तर के थे और विद्यालयी पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिये मैक्सिको की सरकार द्वारा काफी अनुदान दिया जाता है अध्ययन से परिणाम आया कि जिस स्तर पर सरकार ने लक्ष्य रखा था उस स्तर तक प्रयास नहीं किया गया। जो प्रयास किये गये वो सन्तोषजनक नहीं पाये गये।''

यादव विनय प्रकाश (2022); ''ने अपने अध्ययन को माध्यमिकस्तर पर किया और उद्देश्य के रुप में लिंग के आधार पर प्रभाव के प्रयास को जानना चाहा। प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक प्रकार का शोध था जो सर्वेक्षण विधि द्वारा सम्पन्न किया गया। जौनपुर जनपद के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी ही जनसंख्या थे। यादृच्छिक चयन विधि द्वारा दो विद्यालयों से 25-25 कुल 50 विद्यार्थियों का चयन किया किया। आँकड़ों का संकलन बीना शाह की मापनी द्वारा किया गया। शैक्षिक उपलब्धि के लिये कक्षा 10 के प्राप्तांक लिये गये। टी. परीक्षण एनोवा द्वारा विश्लेषण हुआ निष्कर्ष पाया गया कि लिंग के आधार पर विद्यालयी वातावरण का प्रभाव सम्पूर्ण विद्यार्थियों यानि छात्र-छात्राओं पर समान पड़ता है।''

अध्ययन का उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि. ''केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय तथा निजी विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि ''केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय तथा निजी विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण में सार्थक अन्तर नहीं है।''

शोध के प्रकारः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। बेस्ट के शब्दों में, ''विवरणात्मक अनुसंधान वर्तमान स्थिति की व्याख्या तथा विवेचना प्रस्तुत करता है। इसका सम्बन्ध उन स्थितियों तथा सम्बन्धों से है जिनका अस्तित्व वर्तमान में है, अथवा उन व्यवहारों से है, जो कि प्रचलित है, व उन दृष्टिकोणों अथवा अभिवृत्तियों से है, जिनका प्रचलन है, व ऐसे प्रक्रमों से है, जोकि सक्रिय है, तथा अपने प्रभावों से है, जिन्हें अनुभव किया जा रहा है, अथवा उपनीतियों से है, जोकि विकासशील हैं।

स्पष्टतः ऐसे अनुसंधान का स्वरुप अत्यधिक व्यापक, विस्तृत तथा विषम होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अध्ययन-जैसे सर्वेक्षण, विकासात्मक अध्ययन, व्यक्तिवृत अध्ययन, अर्न्तवस्तु अध्ययन, जनमत अध्ययन, सहसम्बन्ध अध्ययन, व उन्नति अध्ययन आदि सम्मिलित रहते हैं। इन विभिन्न तथा विविध अध्ययनों को एक ही प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत सम्मिलित करना निश्चितत: सुविधाजनक तथा वैधानिक है।

शोध विधिः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंग्लिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा very (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा veeir का अर्थ to look होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्राय: सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टि:- प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि इलाहाबाद जनपद में अध्ययनरत् समस्त स्नातक के विद्यार्थी है जो केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय तथा निजी विश्वविद्यालयों अध्ययनरत् है। किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण ईकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

प्रतिदर्श:- प्रस्तुत अध्ययन का न्यादर्श कुल 600 विद्यार्थियों का है जो केन्द्रीय विश्वविद्यालय से 200, राज्य विश्वविद्यालय से 200 तथा निजी विश्वविद्यालय से 200 रहे और इन्हें तीनों संकायों से लिया गया। कला संकाय, विज्ञान संकाय व वाणिज्य संकाय से होगा। किसी बड़ी राशि में से चुनी हुई एक छोटी सी मात्रा को प्रतिदर्श या नमूना है। यह माना जाता है कि प्रतिदर्श के सांख्यिकीय गुण पूरी राशि के सांख्यिकीय गुणों का प्रतिनिधित्व करते है।

न्यादर्श:- शोधकर्त्ता द्वारा समय और धन के अभाव के कारण आगमनात्मक प्रविधि अपनाते हुए समष्टि से एक छोटा समूह अध्ययन हेतु चयनित किया जाता है। जिसे न्यादर्श कहते है। न्यादर्श पूरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन में इलाहाबाद जनपद के यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल छः सौ स्नातक स्तर के विद्यार्थी का चयन किया गया था जिनके वितरण का आधार संकाय था। अनुसंधान में प्रायः प्रचलित विधि का प्रयोग सम्भव नही होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन धन, समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकतः अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्राचलिक विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्राचलिक विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है।

यदि समष्टि का स्वरुप सजातीय रहता है, तब प्रतिदर्श के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होतीं, परन्तु जब समष्टि का स्वरुप विषम जातीय रहता है, तब प्रतिदर्श की इकाईयों के चयन के लिए प्रतिचयन प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है।

तालिका-1 न्यादर्श विवरण

क्र.सं.	विश्वविद्यालय	कला संकाय	विज्ञान संकाय	वाणिज्य संकाय
1.	इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय	70	60	70
2.	रज्जू भैया राज्य विश्वविद्यालय प्रयागराज	60	70	70
3.	नेहरु ग्राम भारती निजी विश्वविद्यालय कोरवां प्रयागराज	70	70	60
कुल योग–600		**200**	**200**	**200**

प्रतिदर्श:- न्यादर्श के चयन करने की विधि या तकनीकी ही प्रतिदर्शज कहलाती है जो प्रस्तुत अध्ययन में यादृच्छिक प्रविधि द्वारा की गयी थी। एक साधारण यादृच्छिक नमूना एक निष्पक्ष सर्वेक्षण तकनीकी है। सरल यादृच्छिक नमूना नमूनाकरण का एक मूल प्रकार है, क्योंकि यह अन्य अधिक जटिल नमूनाकरण विधियों का एक घटक हो सकता है। सरल यादृच्छिक नमूने का सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक वस्तु को चुने जाने की समान संभावना है।जिसमें यादृच्छिक चयन प्रविधि द्वारा किया गया था जिसमें लॉटरी रीति को प्रयोग किया गया पहले महाविद्यालय का चयन लाटरी विधि द्वारा किया गया।

शोध उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के संकलन हेतु जो शोध उपकरण मानकीकृत प्रयुक्त हुये थे वे इस प्रकार है-

शैक्षिक वातावरण मापनी:- शैक्षिक वातावरण मापनी स्वनिर्मित है जिसे शोधकर्त्ता ने अपने निर्देशिका के साथ मिलकर बनाया था इसमें कुल 80 कथन बनाये गये थे और अन्त में मानकीकृत करने के बाद कुल 50 कथनों की सूची तैयार हुई इसके सभी कथनों का ड्राफ्ट की कापी 370 स्नातक द्वितीय स्तर के विद्यार्थियों पर प्रशासित किया गया, अंकन किया गया और अंकों के आरोही क्रम में व्यवस्थित करते हुये ऊपर के 27 प्रतिशत यानी 100 तथा नीचे के 27 प्रतिशत अधिक 100 उत्तर पुस्तिकाओं के प्रत्येक कथन पर टी-परीक्षण ज्ञात किया गया जो 1.96 से अधिक रहे उन्हीं का संकलन किया गया है ऐसे कुल 50 कथन चयन हुये थे।

प्रत्येक कथन के सामने सहमत, अनिश्चित व असहमत बना हुआ है जिसमें किसी एक पर प्रतिक्रिया देनी है। सहमति पर होने से (02) अनिश्चित पर (01) तथा असहमत पर (0) अंक प्रदान करना है। व्याख्यात्मक मापन प्रतिशतांक था।

तालिका-2 मानक वितरण

क्र.सं.	अंकन	गुण वर्ग
1.	80–100	अति उच्च
2.	60–80	उच्च
3.	40–60	औसत
4.	20–40	निम्न
5.	0–20	अतिनिम्न

प्रयुक्त सांख्यिकी तकनीकी:- प्रस्तुत अध्ययन में CR मूल्य 2 × 2 प्रसरण विश्लेषण सारणी तथा प्रोडक्ट मूमेंन्ट सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग आंकड़ों के विश्लेषण हेतु किया गया।

तालिका-3

a×b×c *कारकीय अभिकल्प में वर्ग योगों तथा कर्इ का विभाजन*

स्रोत	**df**	**Ss**	**ms**	**f**
मुख्य प्रभाव				
कारक A	(a-1)	ss_A	ms_A	ms_A/ms_E
कारक B	(b-1)	ss_B	ms_B	ms_B/ ms_E
कारक C	(c-1)	ss_C	ms_c	ms_c/ ms_E
द्विमार्गी अन्तर्क्रिया				
A×B	(a-1) (b-1)	$ss_{A\times B}$	$ms_{A\times B}$	$ms_{A\times B}/ ms_E$
A×C	(a-1) (c-1)	$ss_{A\times C}$	$ms_{A\times C}$	$ms_{A\times C}/ ms_E$
B×C	(b-1) (c-1)	$ss_{B\times C}$	$ms_{B\times C}$	$ms_{B\times C}/ ms_E$
त्रिमार्गी अन्तर्क्रिया				
a×b×c	(a-1) (b-1) (c-1)	$ss_{A\times B\times C}$	$ms_{A\times B\times C}$	$ms_{A\times B\times C}/ ms_E$
समूहों के अन्दर त्रुटि	(N-abc)	ss_E	ms_E	
कुल	(N-1)	ss_T	ms_T	

मास्टर चार्ट का प्रारुप:-

आंकड़ों को संग्रहित करने के लिये जो मास्टर चार्ट का प्रारुप बनाया था वो निम्नलिखित है।

क्र.सं.	विभाग	विश्वविद्यालय	भौक्षिक वातावरण	उपलब्धि अभिप्रेरणा	भौक्षिक निश्पादन
1.	Art	केन्द्रीय	28	27	65
2.	,,	,,	30	43	62
3.	,,	,,	35	30	52
4.	Comerce	राज्य	,,	42	,,
5.	,,	,,	38	,,	,,
6.	,,	,,	,,	,,	,,
7.	,,	,,	82	,,	,,
8.	,,	,,	,,	,,	,,
9.	Science	निजी	,,	,,	,,
10.	,,	,,	,,	,,	,,
11.	,,	,,	,,	,,	,,
12.	,,	,,	,,	,,	72
13.	,,	,,	,,	,,	,,
600	,,	,,	42	47	,,

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण तथा व्याख्याः- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय तथा निजी विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन करना।'' इसके लिये परीक्षण हेतु शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि ''केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय तथा निजी विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण में सार्थक अन्तर नहीं है।'' इसके लिये निम्नलिखित विश्लेषण तालिका तैयार हुयी।

तालिका 4

केन्द्रीय, राज्य व निजी विश्वविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण सम्बन्धी सी.आर. मूल्य विश्लेषण तालिका

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी.आर. मूल्य	तुलनात्मक समूह
केन्द्रीय विश्वविद्यालय	200	33.42	9.83	0.91	5.03	केन्द्रीय व राज्य
राज्य विश्वविद्यालय	200	28.84	8.94	0.90	4.41	केन्द्रीय व निजी
निजी विश्वविद्यालय	200	29.46	8.13	0.84	0.74	राज्य व निजी

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक वातावरण पर मध्यमान 33.42 व मानक विचलन 9.83 था। राज्य विश्वविद्यालय के मध्यमान 28.84 मानक विचलन 8.94 था और निजी विश्वविद्यालय के मध्यमान 29.46 व मानक विचलन 8.13 था केन्द्रीय विश्वविद्यालय व राज्य विश्वविद्यालय के अभिकलित मानकत्रुटि 0.91 तथा सी.आर. मूल्य 5.03 था जो df (398) के 0.05 सार्थकता स्तर पर अधिक था जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय शैक्षिक वातावरण में उच्च स्तर का है। केन्द्रीय या निजी विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण की अभिकलित मानक त्रुटि 0.90 तथा सी.आर. मूल्य 4.41 था जो कि (398) के सार्थकता स्तर पर 1.96 से अधिक है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण उच्च होता है। जबकि राज्य विश्वविद्यालय व निजी विश्वविद्यालय के बीच अभिकलित मानक त्रुटि 0.84 तथा सी.आर. मूल्य 0.74 था जिसकों सार्थकता .05 पर df (398) के 1.96 से कम है और स्पष्ट हो जाता है कि अधिगम वातावरण शैक्षिक परिस्थिति के लिये राज्य विश्वविद्यालय

व निजी विश्वविद्यालय एक समान होते है। इसके सम्भवत: कारण है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय का बजट अपने भौतिक वातावरण तथा आंतरिक रचना के लिये अधिक मिलता है इसलिये केन्द्रीय विश्वविद्यालय का शैक्षिक वातावरण उच्च स्तर का होता है।

शोध निष्कर्ष:- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषणोपरान्त निष्कर्ष प्राप्त हुये है।

1. निजी विश्वविद्यालय के कला, वाणिज्य व विज्ञान के विद्यार्थियों की शैक्षिक वातावरण प्रतिक्रियायें समान है।
2. केन्द्रीय विश्वविद्यालय का शैक्षिक वातावरण निजी विश्वविद्यालय की तुलना में उच्च स्तर का होता है।
3. राज्य विश्वविद्यालय का शैक्षिक वातावरण निजी विश्वविद्यालय की तुलना में उच्च स्तर का होता है।

शैक्षिक निहितार्थ:- प्रस्तुत अध्ययन शिक्षालय से जुड़ा है जिसमें शालये वातावरण पर केन्द्रित करते हुये आगे बढ़ाया गया है। शिक्षार्थी की अध्ययन करने के लिये जब विश्वविद्यालय का चयन करना होता है वह उसके प्रासपेक्ट्स को पढ़ता है। प्रास्पेक्ट्स में लिखे हुये विश्वविद्यालय के अनुभव जैसे कि पाठ्यक्रम उपर्युक्त संस्थान को विकसित करने में कितना मद्दतगार हुआ है, क्या प्रांस्पेक्टस में किये गये रिकॉडर्स उचित है, यह जाँच लेना भी आवश्यक है, इसके उपरान्त ही कहीं विद्यार्थी अपने लिये उचित वातावरण वाले विश्वविद्यालय का चुनाव कर पाने में सक्षम हो पाता है, विवरणिका में विश्वविद्यालय भी प्रगति जिसमें स्पोटर्स प्राकृतिक पर्यावरण, एक्स्ट्रा क्रियाकलाप जो कि विद्यार्थी में व्यक्तित्व में बहुमुखी प्रतिभा वाला बनाता है इस सभी का उचित उल्लेख होना चाहिये तथा अनुशासन व शिक्षण व्यवस्था के पैटर्न का भी उल्लेख होना चाहिये जिसे पढ़ना विद्यार्थी आसानी से अपने लिये उपर्युक्त संस्था का चुनाव कर सकें। विश्वविद्यालय में कितने वर्ग के पाठ्यक्रम है जिसे विज्ञान, मानविकी, वाणिज्य, कला इत्यादि में समझने के लिए भी विश्वविद्यालय की विवरणिका महत्वपूर्ण होती है।

सन्दर्भ

- अग्रवाल निधि (2020); ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में संस्थागत् पर्यावरण का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन'' इन्टर नेशनल जर्नल ऑफ एडवांसेस इन सोशल साइंसेज वाल.08, इसू-03 पीयर-2020.
- गुप्ता विजय (2021); ''सरकारी एवं निजी शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन'' एडवांसेज एण्ड साइकोलोजी रिसर्चर्स इन एलायड एज्यूकेशन मल्टीडिसिप्लीनेरी एकेडेमिक रिसर्च.
- एडवर्ड (2021); ''एनालिसिस ऑफ स्कूल इनवायरामेंटल फैक्टर एफेक्टिंग कालेज स्टूडेंट्स एकेडेमिक एचिवमेंट'' इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ ऑफ ह्युमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज वाल. 11, नं0-07, जुलाई 2021 -2220-8488.
- ग्लैड्स (2021); ''इन्सट्रक्शनल एण्ड डिस्ट्रीव्यूटेड लीडरशिप इन द चेंजिंग स्कूल इनवायरामेंट इन प्रमोटिंग आर्गेनाइजेशनल इफेक्टिवनेस'' प्रासीडिंग ऑफ द द्वितीय विश्व सम्मेलन शिक्षा पर 2.4.2021
- यादव विनय प्रकाश (2022); ''विद्यालयी वातावरण के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन'' शोधपत्र, शोधसोर्यक बाइमंथली मनुष्कृट नं0-21416.
- थामस जी0 (2002); ''एचिवमेंट मोटीवेशन '' शोध पत्र द ग्रेजुएट कालेज यूनिवर्सिटी ऑफ विल्कोन्सिन रटाउट अगस्त 2002.
- बकमास्टर डेनिस (2008); ''छात्र प्ररेणा एक साहित्यक समीक्षा'' सम्मेलन-2008, 29 जून-02जुलाई.

शबरी खण्डकाव्य एवं वर्णव्यवस्था का प्रश्न

पुनीत तिवारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उ0प्र0

सारांश-

मिथकीय साहित्य मानव सभ्यता के सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों के अमिट कोश के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। आज के भौतिकवादी यांत्रिक सभ्यता से उपजी विषमताओं के समाधान के लिए मिथकीय कथाओं,उनके पात्रों को साहित्य की विभिन्न विधाओं में विषयवस्तु के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। प्रस्तुत खण्डकाव्य के द्वारा वर्तमान में उपस्थित समाज की असंगतियों से प्रभावित परिवेश में मिथकों की सार्थकता एवं प्रासगिकता के माध्यम से वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रश्न एवं उसके समाधान पर विचार किया गया है।

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। विज्ञान तर्क और बुद्धि की बात स्वीकार करता है। जब मिथक विज्ञान के युग से गुजरा तो आदर्शवादिता से हटकर मिथकों का भी बुद्धिवादीकरण हुआ। "मिथकों का इतिहास तीन मोड़ों से गुजरा है। एक धर्म, मिथक धर्म और अधर्म का विवके देता था। इसलिए कई बार मिथक और धर्म को एक समझ लेने की प्रवृत्ति देखी जाती है। दूसरा दौर आया जब मिथक विज्ञान युग से गुजरे और इस तरह से मिथकों का बुद्धिवादीकरण हुआ।"[1] मिथक और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है अत: जब साहित्य हमारे प्राचीन स्थापित पुराकथाओं को आधार बनाकर आधुनिकता के आइनें में यथार्थ का दर्शन कराते हैं तो कहीं न कहीं दृष्टिगत यथार्थ न केवल अपना प्रभाव व्यक्ति तथा समाज पर डालता है अपितु एक कदम आगे बढ़कर वह हृदयाघात की स्थिति में परिलक्षित होता है। वह व्यक्ति तथा समाज को यह विचार करने पर विवश कर देता है कि वर्तमान परिदृश्य ऐसा ही होना चाहिए जैसा वह है या इस परिदृश्य में बदलाव की आवश्यकता है। ''मिथकों में एक सार्वभौम सन्देश होता हैं..... मिथक अच्छाई और बुराई के बीच संघर्ष की कथा कहता है, सत् और असत् के बीच, विवके और अविवेक के बीच संघर्ष की कथा कहता है।''[2]

रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य की आधारशिला हैं। दोनो ही ग्रन्थ केवल साहित्य विधा के अस्तित्व को धारण नहीं करते अपितु ये भारतीय जीवन मूल्य, नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य एवं सांस्कृतिक मूल्यों के संचित कोश हैं। ''रामायण का अध्ययन न केवल साहित्यिक सांस्कृतिक एवम् ऐतिहासिक दृष्टि से अपितु व्यवहारिक दृष्टि से भी परम उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह भारतीय जीवन मूल्यों की आधारशिला है। यह उन समस्त दार्शनिक तथ्यों एवं नैतिक आदर्शों का जाज्वल्यमान कोश है, जिन पर विविधता से युक्त भारतियों का जीवन अवलम्बित है।''[3]

प्रत्येक युग की कविता किसी न किसी तथ्य- कथ्य, सोच- विचार, परिस्थिति- परिवेश से प्रभावित होती हैं और उससे प्रेरणा ग्रहण करती है। दूसरे सप्तक के कवि श्री नरेश मेहता जी आधुनिक काल के उन कवियों में स्थान पाते हैं जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से समाज और समयानुरूप बदलते हुए युग संदर्भो को अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु मिथकों का न सिर्फ अपने काव्य में प्रयोग किया अपितु अपनी काव्य कौशल से उन मिथकीय पात्रों को आधुनिक काल में भी सजीवता प्रदान की। श्री नरेश मेहता जी का 'शबरी' खण्डकाव्य इसका एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। कवि ने मिथकीय पात्र शबरी(श्रमणा) के माध्यम से समाज में व्याप्त असमानता, अस्पृश्यता तथा नारी की जड़वादी स्थिति को चुनौती देने के साथ ही वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रश्न पर प्रस्तुत काव्य के माध्यम से विचार एवं समाधान प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है। शबरी खण्डकाव्य का प्रकाशन 1977 ई० मे हुआ। 'शबरी' खण्डकाव्य के कथानक को कवि ने पांच सर्गो मे विभाजित किया है- (1) त्रेता, (2) पम्पासर , (3) तपस्या, (4) परीक्षा, (5)

दर्शन। प्रथम सर्ग 'त्रेता' में शबरी के माध्यम से त्रेता युग की व्यथामयी दीनहीन नारी की कथा है साथ ही ग्राम्य सभ्यता के समाज मे हो रहे परिवर्तनों का चित्रण किया है। द्वितीय सर्ग 'पम्पासर' मे शबरी द्वारा मतंग ऋषि से वार्तालाप एवं आश्रम मे प्रवेश की कथा है। तृतीय सर्ग 'तपस्या' में कवि ने दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार कोई प्राणी अपने कर्मो से अपनी प्रस्थिति को स्थापित कर सकता है। चतुर्थ सर्ग 'परीक्षा' मे शबरी के व्यक्ति्व, कर्म और भक्तिभाव की परीक्षा होती है। 'शबरी' के अंतिम सर्ग 'दर्शन' मे प्रभु श्री राम शबरी को दर्शन देते हैं और समाज मे शबरी की प्रतिष्ठा को स्वीकारते हैं। इस प्रकार शबरी की कथा सरल, सरस तथा प्रभावपूर्ण मार्मिक प्रसंगों से परिपूर्ण रचना है।

शबरी खण्डकाव्य का पौराणिक आधार बाल्मीकि रामायण है। यद्यपि तुलसी कृत रामचरितमानस में भी शबरी का प्रसंग आता है किन्तु तुलसी बाबा के यहाँ शबरी केवल भगवान की अनन्य उपासक के रूप में आती है जबकि बाल्मीकि रामायण में शबरी अपनी सम्पूर्ण दलित जाति का प्रतिनिधित्व करती हुई मानवी स्वरूप में अवतरित होती है। नरेश मेहता भी शबरी की भूमिका में स्वीकार करते हैं कि-"शबरी की कथा निम्न वर्ग की एक साधारण स्त्री के आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्षस्थ पात्रों, चरित्रों में भी अपनी पहचान बनाए रखती है।"[4] नरेश मेहता जी की शबरी भी मानवीय देह रूपा है। भले ही उसने एक निम्न वर्ग में जन्म लिया हो किन्तु वह भी अपने उत्थान को लेकर सजग है-"कौन जन्म का पुण्य जगा/श्रमणा शबरी के मन में/पाप कर्म ही लिखा हुआ है/क्या मेरे जीवन में।"[5] इतना ही नहीं वह तो प्रश्न भी करती है कि आत्मा की उन्नति का अधिकार केवल उच्च वर्ग के लोगों का ही है-"क्या आत्मा की उन्नति केवल /है उच्च वर्ग तक ही सीमित? प्रभु तो हैं सबके पिता, भला/उनका आराधन क्यों सीमित?"[6] इस वैज्ञानिक युग में मानव निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है किन्तु फिर भी वर्ण भेद,जाति भेद एक समस्या के रूप में समाज में व्यापत हैं। यह व्याप्ति केवल अशिक्षित लोगों में ही नहीं बल्कि शिक्षित लोगों में भी परिलक्षित होती है। यह समस्या तब और विषम रूप धारण कर लेती है, जब कोई निम्न वर्ग का बुद्धिजीवी उच्च वर्ग की प्रस्थिति को पाने का प्रयास करता है। शबरी भील जाति की स्त्री है। उसे अपने कुल-कुटुम्ब के द्वारा की जाने वाली हिंसा से घृणा होती है, वह सिर्फ अपनी आत्मिक और आध्यात्मिक उन्ति चाहती है। शबरी का मानना है कि व्यक्ति अपने जन्म से नहीं अपितु कर्म एवं संघर्ष से ऊर्ध्वता को प्राप्त कर सकता है -"सब बन्धन से कहीं श्रेष्ठ है/उस प्रभु का ही बन्धन/कुल-कुटुम्ब की चिन्ता से/अच्छा है प्रभु अराधन।"[7]

शबरी के द्वारा जब अपना उद्देश्य ऋषि मतंग के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो एक वह स्वयं उसको आश्रम में प्रवेश देने से संकोच करते हैं- ''मै शबर जाति की श्यामा हूँ/ प्रभु सेवा मेरा इष्ट हुआ/..... कैसे अछूत स्त्री को मैं /रख सकता अपने आश्रम में?"[8] किन्तु शबरी की अनन्य भक्ति से प्रभावित होकर वह भी स्वीकार कर लेते हैं- "कीचड़ में कमल खिला है यह/.....बोले मतंग-'बेटी शबरी!/यदि अन्त्यज तू, तो कौन श्रेष्ठ?"[9]

वर्ण भेद, जाति भेद के दंश ने व्यक्ति को व्यक्ति के विरूद्ध ही खड़ा कर दिया है। इस विरोधात्मक स्वर की तीव्रता भी इतनी प्रगाढ़ होती है कि यदि कोई व्यक्ति निम्न वर्ग के उत्थान के लिए क्रियाशील हो तो उसे भी लोगों के कटाक्ष का शिकार होना पड़ जाता है- "कुछ ने मुँह बिचकाया, कुछ ने/मुस्कान-कुटिलता दरसायी।"[10] इसके बाद भी यदि किसी बुद्धिजीवी द्वारा निम्न वर्ग की सहायता की जाती है तो समाज उसे बहिष्कृत करने से भी पीछे नहीं रहता। मतंग ऋषि द्वारा शबरी को आश्रम में प्रवेश देने की सजा बहिष्कार के रूप में दी जाती है-"स्वीकार न हो यदि उनको /सारे समाज का निर्णय /तो बहिष्कार करने का/करना ही होगा निश्चय।"[11] यह बहिष्कार का दंश सिर्फ साथ देने उच्च वर्ग के व्यक्ति को ही नहीं झेलना पड़ता अपितु यह भय निम्न वर्ग के व्यक्ति को भी सताता है। इसलिए जब मतंग ऋषि शबरी को कुटिया में प्रवेश के लिए बोलते है तो शबरी सोचती है-"ऋषि को आपत्ति न थी /पर वे ही तो संसार नहीं/"[12] ऐसा समाज जिसने उच्च कुल की पुष्त्री एवं पुत्रवधू सीता की भी अग्नि परीक्षा ले ली ,वह समाज शूद्र जाति की स्त्री को भला कैसे स्वीकार कर सकता है?- "सामाजिकता के अंकुश/से ऊपर धर्म नहीं है/ये यज्ञ-याग औ पूजन /शूद्रों का कर्म नहीं है।"[13] नरेश मेहता जी ने मतंग ऋषि के माध्यम से समाज को यह समझाने का प्रयास किया कि व्यक्ति की जाति उसके कर्म का निर्धारण नहीं करते अपितु व्यक्ति का कर्म उसका व्यक्तित्व एवं पहचान बनाते हैं। इसलिए समाज को चाहिए कि व्यक्ति-व्यक्ति के भेद को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार एवं समान अवसर प्रदान करना चाहिए। इस ज्वलन्त प्रश्न का समाधान नरेश जी ने नवीन सन्दर्भो में किया है। कवि का विचार है कि अन्त्यज जाति से सम्बन्धित व्यक्ति भी अपने कर्मो से उच्च प्रस्थिति को प्राप्त कर सकता है, किन्तु वर्ग व्यवस्था प्रधान समाज में वर्ग मुक्त होना अत्यधिक विकट हो गया है- "फलत: हमारा समाज श्रम और कर्म दोनों ही क्षेत्रों में वैसे ही भटक गया है जैसे की तपते मरूस्थल में कोई सार्थ खो जाता है।"[14] शबरी

अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता और भेद को अपने द्वारा ऊर्ध्वता में परिणत करती है। उसका यह संघर्ष वर्तमान संदर्भ में भी प्रासंगिक परिलक्षित होता है। सामाजिक विषमता, समाज की मूढ़ता और जड़वादी प्रवृत्ति की विचारधारा के कारण वर्तमान में भी कुतर्क की ही स्थिति विद्यमान है। ऐसी संलापहीन अवस्था में व्यक्ति केवल अपने को ही जाग्रत कर सकता है। व्यक्ति स्वयं के संघर्ष के बल पर ही खुद को 'समाज' में परिवर्तित कर सकता है- "कल तक जो जंगल जंगल/थी घास-पात जैसी है/थी दया पात्र जो सबकी/अब वह आश्रम की तुलसी।"[15] मनुष्या अपने संकल्प से ही महान बनता है। भाव के भूखे राम स्वयं शबरी से मिलने के लिए मतंग ऋषि के पास आते है- "मैं सुन आया हूँ शबरी/ की सारी तप गाथा को /होगी कृतार्थ मानवता/सुनकर सुगन्ध गाथा को।"[16]

निष्कर्षतः 'शबरी' के मिथक की मूल संवेदना व्यक्ति की अस्मिता को सिद्ध करना है। व्यक्ति अपने संकल्प से अपनी पहचान समाज में स्थापित करता है,उसके लिए उसे अनेक संघर्षों से गुजरना पड़ता है ,यही संघर्ष समाज में उसका स्थान निर्धारण करते हैं- "प्रभु बोले मन्द स्वरों में/जनता को कर सम्बोधन/शबरी तो जगज्जननि है/मैं हुआ आज ही पावन।"[17] नरेश मेहता जी भी 'शबरी' की भूमिका में स्वीकार करते हैं कि-"जिस युग कि यह कथा है,उस समय सामाजिक स्तर भले ही वर्ण व्यवस्था का विधान रहा हो, पर व्यक्ति कर्म के द्वारा वर्ण मुक्त हाने की चेष्टा कर सकता था। शबरी की कथा में यही वर्ण मुक्त होने की चेष्टा है।"[18] इस प्रकार शबरी खण्डकाव्य में कवि ने यह स्पष्ट किया है की व्यक्ति की वैचारिक ऊर्ध्वता व्यक्ति को जाति, धर्म, वर्ण आदि से ऊपर उठाकर उसे पूज्यनीय बना देती है। हमें भी वर्तमान समय में ऐसे ही समाज का निर्माण करना होगा जहाँ व्यक्ति के स्थान का निर्धारण उसका कर्म करे न की जाति या वर्ण।

सन्दर्भ

(1) उद्धृत-सं० डॉ० शैलजा भारद्वाज, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में महाभरत का मिथक (मिथक और साहित्य: प्रो० शम्भुनाथ), पृ० 14, चिन्तन प्रकाशन, हंसपुरम, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2015

(2) उद्धृत-सं० डॉ० शैलजा भारद्वाज, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में महाभरत का मिथक (मिथक और साहित्य: प्रो० शम्भुनाथ), पृ० 14, चिन्तन प्रकाशन, हंसपुरम, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2015

(3) सराविया, डॉ० सोनल, रामायण आधारित आधुनिक खण्डकाव्यों मे मिथकीय प्रयोग, पृ० 56, सरस्वती प्रकाशन, नौबस्ता कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018

(4) मेहता, श्री नरेश, 'भूमिका', शबरी, लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, सं0-2015।

(5) मेहता, श्री नरेश , पृ0 07, शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, सं0-2015।

(6) मेहता, श्री नरेष, पृ0 19, शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, सं0-2015।

(7) मेहता , श्री नरेश , पृ0 08, शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।

(8) मेहता , श्री नरेश , पृ0 18, शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।

(9) मेहता , श्री नरेश , पृ0 20-21, शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।

(10) मेहता , श्री नरेश , पृ0 22 , शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।

(11) मेहता , श्री नरेश , पृ0 47, शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।

(12) मेहता , श्री नरेश , पृ0 22 , शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।।

(13) मेहता , श्री नरेश , पृ0 43 , शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।

(14) मेहता , श्री नरेश, 'भूमिका', शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद,सं0-2015।

(15) मेहता , श्री नरेश , पृ0 39, शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, सं0-2015।

(16) मेहता , श्री नरेश , पृ0 70 , शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, सं0-2015।

(17) मेहता , श्री नरेश , पृ0 78 , शबरी , लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, सं0-2015।

(18) मेहता, श्री नरेश, 'भूमिका', शबरी, लोक भारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, सं0-2015।

संयुक्त राष्ट्र संघ की नीतियों में भारत का योगदान

डॉ० वंदना वाजपेयी

सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान, श्री जमनालाल रामलाल कीमती कन्या महाविद्यालय रामपुरा, जिला नीमच, मध्य प्रदेश

भारत में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की प्राप्ति में जितना सहयोग दिया है, उतना अन्य किसी देश ने नहीं दिया है। भारत प्रारम्भ से ही यह आग्रह करता रहा है, कि सभी सदस्य राष्ट्रों को मानवाधिकारों से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करके राष्ट्रों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों की स्थापना पर बल दिया है। भारत ने उपनिवेशवाद व रंगभेद की नीति से ऐशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रों को मुक्त कराया है। भारत ने दक्षिण अफ्रीका से रंगभेद की नीति का खात्मा करने में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भारत ने नवोदित राष्ट्रों की स्वतन्त्रता को संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से सुदृढ़ बनाया है तथा भारत ने विश्वशान्ति कायम करने दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ की पूरी मदद की है। भारत ने न्यायपूर्ण नि:शस्त्रीकरण के सभी प्रयासों का स्वागत किया है।

- ब्रिटिश राज (1945-1947)
- डोमिनियन ऑफ इंडिया (1947-1950)
- भारत गणराज्य (1950-वर्तमान)
- पूर्ण सदस्य
- 30 अक्टूबर 1945
- स्थायी प्रतिनिधि टीएस तिरुमूर्ति

संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व के देशों का प्रतिनिधि संगठन है। इसकी रचना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना तथा युद्ध की विभीषिका रोकने के उद्देश्य से की गयी थी। भारत की मूल नीति युद्ध विरोधी एवं शान्तिप्रियता की होने के कारण वह इस संस्था का प्रारंभिक सदस्य बना और आज भी इसके अनेक संस्थानों एवं समितियों का सक्रिय सदस्य है। इसकी स्थापना 1 जून 1945 को सेनफ्रांसिस्कों सम्मेलन में चार्टर पर 51 देशों के हस्ताक्षर के परिणामस्वरूप 25 अक्टूबर 1945 को हुई। ''यूनाइटेड नेशन'' यह नाम अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट द्वारा दिया गया है। इस संगठन को 1920 में स्थापित एक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन लीग ऑफ नेशन्स का उत्तराधिकारी माना जाता है। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र संघ में 192 सदस्य देश है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय (24 अक्टूबर 1945) भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद के शिकंजे से आजाद होने के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ में स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में शामिल हुआ। सदस्यता ग्रहण करने के बाद भारत की भूमिका संयुक्त राष्ट्र संघ में काफी महत्वपूर्ण रही है और भारत की गिनती उन गिने-चुने सदस्य राष्ट्रों में है, जो इसे शक्तिशाली एवं प्रभावकारी बनाना चाहते हैं। भारत आँठ कार्यकालों (कुल चल रहे 16 वर्षो) के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का एक गैर-स्थायी सदस्य रहा है।

साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद की नीति में भारतः-

साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की तुलना एक ऐसे टोप से की जाती है, जिसे कोई भी पहन लेता है। अतः उसका रूप, आकार, और अर्थ सुनिश्चय नहीं रह गया है। साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी को कभी बड़ी प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता था और साम्राज्यवादी

देशों को विश्व कल्याण का प्रतीक माना जाता था, लेकिन आज के लोकतांत्रिक युग में ''साम्राज्यवादी'', ''उपनिवेशवादी'' या विस्तारवादी शब्द बदनाम और अपमानजनक शब्द बन गये हैं। कोई देश अपने आगे ''साम्राज्यवादी'' शब्द लगाना पसन्द नहीं करता है। यहाँ तक की साम्राज्यवादी देश भी अपने को ऐसा कहलाने से इन्कार करते हैं।

रेमण्ड ब्यूएल के शब्दों में, ''एक सरकार द्वारा दूसरी सरकार पर प्रत्येक अन्यायोचित माँग, प्रत्येक आक्रामक युद्ध साम्राज्यिक युद्ध कहलाता है। भारत ने स्वयं उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी दासता का दयनीय युग देखा था। इसलिये स्वतंत्रता प्राप्ति के पष्चात भारत का वह अभियान हो गया कि वह विश्व में उपनिवेशवाद के अन्त का तथा सभी के लिए स्वतंत्रता का प्रमुख प्रवक्ता बने। औपनिवेशिक बन्धन के मुक्त होने के बाद बहुत से देशों को भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ सदस्यता प्रदान करने की वकालत की और इनके पक्ष में जनमत खड़ा किया, यह उल्लेखनीय है कि नवोदित राष्ट्रों द्वारा सदस्यता पाने हेतु आवेदन देने पर विश्व की बड़ी शक्तियों के द्वारा नकारात्मक भूमिका निभाई गई, जिसका भारत ने डटकर विरोध किया, 1962 ई. में पड़ोसी देश चीन भारत का दुश्मन बन चुका था, फिर भी उसने विश्व की बड़ी शक्तियों की इच्छा के विरूद्ध उसकी संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल कराने की पूरी कोशिश की और अन्तोगत्वा अपने प्रयास में सफल भी रहा। संयुक्त राष्ट्र में भारत द्वारा उपनिवेशवाद के विरूद्ध तथा सभी के लिए स्वतंत्रता के अभियान का ही परिणाम था, कि तीस वर्षों में संसार के साठ से अधिक देश स्वतंत्र हो चुके है।

नि:शस्त्रीकरण वार्ताएँ और भारत की भूमिका (1982-84):-

1982-83 के दौरान भारत ने जेनेवा में नि:शस्त्रीकरण सम्बन्धी समिति में महत्वपूर्ण ओर रचनात्मक भूमिका अदा की। भारत का दृष्टिकोण यही रहा कि नाभिकीय युद्ध रोकने के विभिन्न मुद्दों पर प्रकाश डाला जाए और नाभिकीय नि:शस्त्रीकरण के लिए आवश्यक उपाय करने के बारे में बहुआयामी वार्ताओं पर जोर दिया जाए। गुट-निरपेक्ष और तटस्थ देशों के सहयोग से भारत दिए गए दबावों के फलस्वरूप नाभिकीय युद्ध रोकने के लिए कुछ उपयुक्त और व्यावहारिक उपायों पर सहमति बनाए जाने के लिए एक तदर्थ कार्यदल की स्थापना पर मतैक्य हो सका। समाजवादी देशों के प्रतिनिधियों के ग्रुप ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया।

संयुक्त राष्ट्र महासभा का दूसरा विशेष अधिवेशन 7 जून से 10 जुलाई, 1982 को न्यूयार्क में हुआ। प्रारम्भिक समिति का सदस्य होने के नाते भारत ने अन्य गुट-निरपेक्ष वाले देशों के साथ मिलकर प्रयत्न किया कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान नाभिकीय युद्ध को रोकने और नाभिकीय नि:शस्त्रीकरण से सम्बन्धित आवश्यक मसलों पर केन्द्रित रहे। भारत ने कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव नाभिकीय हथियारों पर रोक से सम्बन्धित प्रस्तुत किए थे। इसमें कहा गया कि नाभिकीय हथियार रखने वाले सभी राज्य नाभिकीय हथियारों की रोक पर सहमत हों और उसके प्रयोग के निषेध पर एक अभिसमय स्वीकार किया जाए। भारत ने अभिसमय का मसौदा भी विचारार्थ प्रस्तुत किया।

तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने नि:शस्त्रीकरण विषय पर निम्नलिखित ठोस कार्यक्रम का एक सुझाव प्रस्तुत किया-

1. अधिवेशन में नाभिकीय हथियारों का प्रयोग न करने से सम्बन्धित एवं बाध्यकारी अभिसमय पर बातचीत की जाए।
2. नाभिकीय हथियारों के मौजूदा भण्डारों में कमी करने से पूर्व नाभिकीय हथियारों के उत्पादन और विस्तार पर रोक लगाई जानी चाहिए और नाभिकीय हथियारों के निर्माण की विखण्डनीय सामग्री यूरेनियम के उत्पादन में कमी की जानी चाहिए।
3. सभी प्रकार नाभिकीय हथियारों के परीक्षण तत्काल रोके जाने चाहिए।
4. इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नि:शस्त्रीकरण वार्ता पुन: निर्धारित समय-सीमा में और पूर्ण नि:शस्त्रीकरण सन्धि सम्पन्न कराने के लिए करें, जिस पर गत वर्षों में स्वीकृत सिद्धान्तों और सन्धि प्रारूपों में आवश्यक संशोधन करें। जो सम्बन्धित समस्याएँ बहुत जटिल हो गई हैं तथा उस समय में जो बुनियादी दृष्टिकोण और सिद्धान्त तैयार किए गये थे, वे आज की पृष्ठभूमि में हो।
5. संयुक्त राष्ट्र और इसके विशेष अभिकरणों को, नाभिकीय युद्ध के खतरों, विश्व-अर्थव्यवस्था पर हथियारों की होड़ के दुष्प्रभावों तथा नि:शस्त्रीकरण के सकारात्मक पहलुओं और विकास के साथ इसके सम्बन्ध में विभिन्न राष्ट्रों को पहल करनी चाहिए।

नि:शस्त्रीकरण के प्रयास और भारत:-

संयुक्त राष्ट्र संघ का एक उद्देश्य नि:शस्त्रीकरण रहा है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र के इस प्रयास में सदैव अपना सक्रिय योगदान दिया है। भारत की दृढ़ आस्था है कि नि:शस्त्रीकरण द्वारा जो धन शेष बचता है उसका प्रयोग विकास एवं प्रगति में किया जाये। अपनी नीति के अनुकूल भार परमाणु शक्ति का उपयोग केवल शान्तिपूर्ण कार्यों में ही करने के लिए कृतसंकल्प है। भारत संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के अन्तर्गत तथा उसके बाहर नि:शस्त्रीकरण विशेषकर परमाणु शस्त्रों के नि:शस्त्रीकरण का प्रबल समर्थक रहा है। 28 अक्टूबर 1959 को जब सामान्य व पूर्ण नि:शस्त्रीकरण का प्रस्ताव आया तो भारत ने उसका पूरा समर्थन किया। कृष्णामेनन के नेतृत्व में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने पूर्ण नि:शस्त्रीकरण के सोवियत रूस व इंग्लैंड के प्रस्ताव का समर्थन किया। जिसमें व्यापक नि:शस्त्रीकरण की बात कही गई थी।

नि:शस्त्रीकरण के उद्देश्य से भारत ने वर्ष 1993 में व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध का प्रस्ताव रखा। जिसे बदलकर Comprehensive Test Ban Treaty 1995 के रूप में प्रस्तुत किया गया। भारत ने इस सन्धि पर भी हस्ताक्षर नहीं किए, क्योंकि इसमें नि:शस्त्रीकरण के बिन्दु नहीं थे तथा परमाणु शस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों को प्रयोगशालाओं में परीक्षण कर परमाणु हथियारों के संवर्द्धन की छूट थी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत भेदभाव रहित व्यापक व सार्वजनिक नि:शस्त्रीकरण का पक्षधर रहा है, लेकिन परमाणु शस्त्र राष्ट्रों ने अपने शस्त्रों को नष्ट रने पर सहमति कभी नहीं व्यक्त की, अपने शस्त्रों व प्रभुत्व को सुरक्षित कर गैर-परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों पर प्रतिबंध लगाना चाहते है। भारत इसका पक्षधर नहीं है। इस प्रकार के सन्धि प्रस्ताव पर सहमति न देना भारत सरकार के इस निश्चय का संकेत है कि यद्यपि भारत परमाणु शक्ति के शान्तिपूर्ण प्रयोग के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है लेकिन वह सम्भावित खतरों को ध्यान में रखते हुए अपनी सुरक्षा की दृष्टि से इस बात के लिए दरवाजा खुला रखना चाहता है कि आवश्यकता पढ़ने पर वह भी परमाणु अस्त्रों का निर्माण करने के लिए स्वतंत्र रहेगा।

रंगभेद तथा जातिभेद की नीति और भारत:-

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में सदा ही जातिभेद तथा रंगभेद नीति का विरोधी रहा है। भारत की सदैव से यह मान्यता रही है कि रंगभेद और जातिभेद साम्राज्यवाद के दूसरे रूप है। जाति के आधार पर अथवा रंगभेद के आधार पर कोई भी शासन अन्य लोगों पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकता है। जातिभेद एवं नस्लवाद की नीति मानव गरिमा एवं विश्व-शान्ति के लिए एक बड़ा अभिशाप है, जिसके विरूद्ध भारत निरन्तर संघर्ष कर रहा है, विशेष रूप से रंगभेद नीति के विरूद्ध, जिसे दक्षिणी अफ्रीका की अल्पमत गोरी सरकार अपना रही है। सन् 1946 में महासभा प्रथम अधिवेशन में ही भारत ने दक्षिण अफ्रीका के भारतीय मूल के निवासियों के प्रति अपनायी जा रही जातिभेद नीति अपनायी जा रही जातिभेद नीति का प्रश्न उठाया था। महासभा ने एक प्रस्ताव पारित करके जातिभेद को संयुक्त राष्ट्र घोषणा-पत्र का विरोधी घोषित कर दिया। इस प्रस्ताव से दक्षिणी अफ्रीका के उन लोगों में बल, आशा तथा उत्साह का संचार हुआ जो जातिभेद के विरूद्ध संघर्ष में जुटे हुए थे। भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के सभी प्रस्तावों को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिए दक्षिण अफ्रीका सरकार के कूटनीतिक, आर्थिक और वाणिज्य संबंधों को विच्छेद कर लिया। सन् 1946 में ही भारत ने प्रिटोरिया से अपने उच्चायुक्त को वापस बुला लिया और उसके विरूद्ध आर्थिक अनुशास्तियों को लागू कर दिया। रंगभेद नीति के आधार पर भारत ने अंगोला के मुक्ति आंदोलन का समर्थन किया तथा सेडेशिया के स्वतंत्रता संग्राम के पक्ष में मत व्यक्त करते हुए भारत ने रंगभेद पर आधारित अल्पमत सरकारों को तुरंत समाप्त करने के पक्ष में विचार व्यक्त किए।

संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के स्थायी प्रतिनिधियों ने रंगभेद नीति के विरूद्ध विश्व जनमत का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत रंगभेद के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र विशेष समिति का संरक्षक है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा भारी बहुमत से पारित रंगभेद संबंधी संकल्पों की रूपरेखा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी तरह भारत ने 10 दिसम्बर 1948 को महासभा द्वारा अंगीकार की गई मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का समर्थन किया, क्योंकि इस घोषणा में सभी व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का समर्थन किया गया था तथा जातीय भेदभाव की मनाही की गई थी।

नये सदस्यों का प्रवेश एवं भारत का योगदानः-

भारत ने 1955 में संयुक्त राष्ट्र संघ के नये सदस्यों को प्रवेश के संबंध में 1950 से चले आ रहे गतिरोध का अन्त करने में महत्वपूर्ण भाग लिया। इस संबंध में सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका ने असहयोगी रूख अपनाया। नवम्बर 1955 में जब सोवियत नेता खुश्चेव और बुल्गानिन भारत आये तो नेहरू जी ने अमेरिका और सोवियत रूस के मध्य एक समझौता करवाया। यह तय हुआ कि संयुक्त राज्य अमरिका सोवियत समर्थित देशों के संघ में प्रवेश को वीटों न करें। इसी प्रकार सोवियत रूस भी पश्चिमी देशों द्वारा समर्थित देशों को वीटों न करें। भारत द्वारा प्रेरित इस पारस्परिक सहयोग के परिणामस्वरूप 1955 में 16 देश यू.एस.ओ. के नये सदस्य बने। इस घटना को संयुक्त राष्ट्र संघ को Package Deal कहा जाता है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और भारतः-

मानव अधिकारों की 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सार्वभौम घोषणा की गयी। इसका उद्देश्य था कि विश्व के सभी राष्ट्र मनुष्य के मूलभूत अधिकारों को अपने संविधान में गारंटी दें। भारत ने इसी घोषणा को ध्यान में रखकर अपने संविधान में मौलिक अधिकारों को स्थान दिया और तब से भारत निरंतर अपने यहाँ तथा विश्व में अन्य सभी राज्यों में मानव की मौलिक स्वतंत्रताओं को बनाये रखने के लिए प्रयासशील है। भारत इन मानव अधिकारों का सबसे बड़ा प्रवक्ता है। प्रति वर्ष सम्पूर्ण देश में 24 अक्टूबर को संयुक्त राष्ट्र दिवस और 10 दिसंबर को मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की शान्ति स्थापना कार्यों की कूटनीति और भारतः-

संयुक्त राष्ट्र ने भारत के रचनात्मक कूटनीति का ठोस नमूना है, कांगो संकट (1960-64)। कांगो संकट शुद्ध रूप से दोनों महाशक्तियों के स्वार्थों का परिणाम था। भारत ने इस शक्ति प्रतिस्पर्धा में किसी भी पक्ष का अक्षरशः समर्थन नहीं किया। कांगो में संयुक्त राष्ट्र की शान्ति स्थापक गतिविधियों में जन, धन और सामग्री तीनों की दृष्टि से भारत का योगदान सर्वाधिक था। पूरे संकट के दौरान भारतीय दृष्टिकोण सामंजस्यता पर आधारित था। स्वेज संकट (1956) के दौरान भी भारत ने इसी सूझबूझ का परिचय दिया। कोरिया की समस्या के समाधान में भारत के सक्रिय योगदान से तीसरे महायुद्ध को टाला जा सका। भारत के प्रयासों के फलस्वरूप ही 27 जुलाई 1953 को पानमुन जोन में कोरिया युद्ध-विराम संधि पर हस्ताक्षर हुए। युद्धबन्दियों की समस्या को हल करने के लिए तटस्थ राष्ट्रों का एक आयोग नियुक्त किया गया, जिसकी भारत ने अध्यक्षता की। इस संदर्भ में भारत के जनरल थिमैया का योगदान अत्यधिक महत्व रखता है। इसी तरह कुवैत समस्या और कम्बोडिया समस्या के समाधान में भी भारत ने अपना योगदान दिया।

भारत ने संयुक्त राष्ट्र के अन्य विभिन्न कूटनीतिक कार्यों में समय-समय पर सहयोग प्रदान किया है। जिसमें भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के झण्डे के तहत सबसे बड़ा सैन्य समूह कोरिया में 1950 में भेजा गया। 6112 लोगों का यह समूह 1954 तक वहाँ रहा। इसी प्रकार मिश्र, लेबनान, इराक, ईरान में भी भारतीय शान्ति सैनिक भेजे गये। 1954 से 1970 तक भारत ने हिन्द चीन में करीब 4000 सैनिक तैनात किए थे। सन् 1956 ई. में भारत ने स्वेज संकट के समाधान हेतु संयुक्त राष्ट्र के अनुरोध पर संयुक्त राष्ट्र की आपातकालीन सेना में अपने सैनिक भेजे। इसी तरह का सहयोग भारत ने कांगो संकट के समय संयुक्त राष्ट्र की आपातकालीन सेना में अपने सैनिक भेज कर किया। संयुक्त राष्ट्र के अनुरोध पर भारत ने सोमालिया में संयुक्त राष्ट्र की कार्यवाही के लिए लगभग 5000 सैनिकों की एक बिग्रेड भेजी जिसमें सभी रैंकों के लोग थे। भारत ने मोजाम्बिक में भी संयुक्त राष्ट्र कार्यवाही के लिए सैनिक भेजकर योगदान दिया जिसमें सभी रैंकों के लगभग 973 लोग थे। पूरे विश्व में संयुक्त राष्ट्र की शांति स्थापना की मौजूदा 17 कार्यवाहियों में इस समय लगभग 80000 गैर सैनिक कार्यरत है जिसमें भारत ने 6000 कार्मिक मुहैया कराये है। 2005 में भारत ने सूडान में संयुक्त राष्ट्र संघ मिशन में 2800 शान्ति सैनिक भेजे है। उरफूर (पश्चिम सूडान) में 2007 में शान्ति सेनाओं में भारत की भागीदारी रही है।

इस रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व में आने के समय से लेकर आज तक भारत के योगदान एवं सहयोग को देखते हुए भारत का सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता की माँग करना वाजिब है। वर्ष 1998 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने से संयुक्त राष्ट्र के कई सदस्य राष्ट्रों ने भारत की आलोचना की है लेकिन यह सत्य है कि भारत द्वारा राष्ट्रीय हित में ही इस प्रकार के परीक्षण

किए गए है। इसलिए संयुक्त राष्ट्र के ढाँचे एवं चार्टर में आज के परिप्रेक्ष्य में बदलाव आवश्यक है। अगर आने वाले समय में सुरक्षा परिषद् में कुछ बदलाव होता है, भारत का दावा सबसे पहले बनता है।

वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण मुद्दे है -नि:शस्त्रीकरण, मानव अधिकार, पर्यावरण संरक्षण, व्यापार वार्ताए, आतंकवाद इत्यादि। इन सभी मुद्दों में भारत की भूमिका विभिन्न मंचों पर विकासशील देशों के पक्ष को सशक्त करने पर है। भारत इन सभी मुद्दों में विकासशील देशों व अपने हितों को ध्यान में रखते हुए एक बहुपक्षीय, सार्वभौमिक एवं समानतापूर्ण तथा भेदभाव रहित दृष्टिकोण का समर्थक है। यदि भारत सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बन जाता है तो संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत की भूमिका व योगदान अधिक प्रभावी हो सकता है।

सन्दर्भ

- प्रतियोगिता दर्पण (मासिक पत्रिका)
- क्रॉनिकल (मासिक पत्रिका)
- जनसत्ता दैनिक समाचार पत्र
- प्रतियोगिता दर्पण - अतिरिक्त अंक (भारतीय राज्य व्यवस्था एवं राष्ट्रीय आंदोलन)
- डॉ. वी.एन. फाडिया, राजनीतिक विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- डॉ. नन्दलाल- राजनीतिक विज्ञान- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा
- डॉ. नागपाल- भारत और विश्व राजनीति- गुप्ता साहित्य भंडार उज्जैन छठा संशोधित परिवर्द्धित संस्करण 1983-1984
- डॉ. प्रभुदत्त शर्मा- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (सिद्धान्त एवं व्यवहार) कॉलेज बुक डिपो-जयपुर, नई दिल्ली, मुंबई संस्करण- 1988 पेज नं. 166, 167 पूरी तरह से संशोधित और अद्यतन संस्करण

प्रभा खेतान कृत 'पीली आँधी' उपन्यास में सामन्ती व्यवस्था का सशक्त प्रतिरोध

विकास कुमार

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी, उ0प्र0

शोध सारांश-

भारतीय संस्कृति एवं समाज में पुरुष वर्चस्व प्राचीन काल से ही रहा है। जैविक भिन्नता के कारण नारी की ऐसी मानसिक बनावट की गयी है कि वह दैहिकता के परे आ ही नहीं सकी। आज तक वह 'भोग्या' या पुरुषों की सम्पत्ति बनी हुई है। उसके शोषण से ही भारतीय परिवारों का अस्तित्व बना हुआ है। जिसके खून-पसीने से मकान, घर बनता है, उस घर में उसी के शोषण का इतिहास लिखा जाता है। वर्तमान युग परिवर्तन का युग है, आज समाज के प्रतिमान बदले हैं। नारी अपनी अस्मिता, अस्तित्व के प्रति सजग हुई है। अत: साहित्य में भी उसको 'व्यक्ति' की गरिमा प्रदान करने की कोशिश की जा रही है। पुरुष रचनाकार अपनी रचना में स्त्री के प्रति भले ही न्याय कर ले मगर व्यवहार में प्राय: नहीं कर पाता। पारम्परिक सामन्तवादी दृष्टि उस पर प्रभावी हो जाती है। रचनाकार यदि स्त्री है और वह स्त्री-चेतना से सम्पन्न है, तो अपेक्षा होती है कि वह स्त्री के मानवीय रूप को प्रस्तुत कर, उसे अधिकार दिलाने की पहल अवश्य करेगी, जिससे स्त्री वंचित रही है। प्रभा खेतान का उपन्यास 'पीली आँधी' इसी दिशा में एक सार्थक प्रयास है।

प्रमुख शब्द- सामंतवाद, मुक्ति, चहारदीवारी, विद्रोह, संयुक्त परिवार, गुलामी।

सामाजिक एवं पारिवारिक ढाँचे में जो समस्याएँ आधिकांशत: जन्म लेती हैं, उनका सम्बन्ध मुख्यत: स्त्री से होता. है। आज भी स्त्री मानसिक और शारीरिक रूप से जूझ रही है, बस उत्पीड़न के ढंग बदल गये हैं। जब वह घर में कैद थी तब भी उसकी ढेरों समस्यायें थीं और आज भी जब वह बाहर की दुनिया में पूर्ण आत्मनिर्भरता के रास्ते तलाश रही है। आज समस्याओं और शोषण का रूप बदल चुका है, किन्तु उसकी भयावहता वही है। प्रभा जी के इस उपन्यास से प्रत्यक्ष होता है- राधाबाई, ताई जी और सोमा तीन पीढ़ियों का यह परिवार यहाँ समस्यायें तो वही हैं, लेकिन समय के परिवर्तन के साथ हर बार उनका रूप बदल जाता है। समय चाहे पिछड़ा हो अथवा विकसित, समस्या नहीं की वहीं है। प्रभाजी लिखती हैं- "व्यवस्था को तोड़ने वाली औरत को जहाँ समाज सौ कोड़े लगाता है, वहाँ पुरुष को मंच पर क्रान्तिकारी कहकर बैठाता है। औरत हर तरह मरती है, लेकिन मुझे रोती हुई औरत नहीं अच्छी लगती। मुझे औरत की इस निष्क्रियता पर झुंझलाहट होती है। यह क्या घुट-घुटकर मरना।''

उपन्यास में संयुक्त परिवार को टूटने से बनाने के लिए स्त्री का जीवन एक कैदी के समान व्यतीत होता है, घर की स्त्रियों के खाने, पहनने, कहीं जाने, सोने आदि पर नियंत्रण है। परिवार की इज्जत की दाँव पर रखकर पीली आँधी की नायिका सोमा एक क्रान्तिकारी कदम उठाती है, वह अपनी माँ बनने की इच्छा-पूर्ति हेतु करोड़पति पति का घर छोड़कर अपने प्रेमी के साथ रहने चली जाती है। सोमा का यह कदम सामंतवादी व्यवस्था के प्रतिरोध का एक क्रान्तिकारी कदम है। उपन्यास में विवाह संस्था के अस्तित्व की ही कटघरे में खड़ा कर दिया गया है। आधुनिक चेतना से सम्पन्न सोमा जब पारम्परिक व्यवस्था को तोड़ती है अर्थात् जब उसने अपने नपुंसक पति के साथ घुट-घुटकर जीना अस्वीकार कर देती है, तो पुरुष समाज उसे कुलटा, कुलक्षिणी आदि से परिभाषित कर अपनी भड़ास निकालने लगता है।

उपन्यास की पटकथा उस समय की है, जब देश गुलाम था। प्रजा को दोहरी गुलामी भुगतनी पड़ती थी। उपन्यास में कई पीढ़ियों की कहानी है। पहली पीढ़ी की स्त्रियाँ घूँघट की लम्बाई में स्वयं को समेटे पुरुष की बैसाखी के सहारे चलती हैं। समय गुजरने के साथ ही रुंगटा हाउस में आती है, जो जीवन के विषय में जागरूक सोच रखती हैं। सोमा गौतम की पत्नी और रूंगटा हाउस की छोटी बहू है, वह एक पढ़ी-लिखी लड़की होने के साथ ही खुले विचारों में पली-बढ़ी है, जो अपनी खुशियों को परम्परा के नाम पर बलिदान करने के पक्ष में नहीं हैं। सोमा के पिता ने अपनी बेटियों की परवरिस आधुनिक विचारों के साथ किया है, किन्तु विवाह की बात पर उन्होंने भी उसी परम्परा में बँधकर लड़की को बोझ समझकर उतार फेंका। पत्नी भी वैसे तो आधुनिक खयालों की हैं, किन्तु परम्पराओं से पूरी तरह नहीं उबर पायी हैं। वे बेटियों से कहती हैं कि, "संतोषी माँ का व्रत करो, सोलह सोमवार करो... अच्छा घर-वर मिलेगा।"[2]

सोमा का विवाह रूंगटा परिवार में हो जाता है, पति उसे बिल्कुल पसन्द नहीं है। विवाह के पहले ही वह माता-पिता से कहती है कि गौतम उसे पसन्द नहीं है, पर उसकी बात पर कोई ध्यान ही नहीं देता। सोमा को अपनी आकांक्षाओं और माता-पिता की इच्छा या इज्जत के बीच एक को चुनना पड़ता है, वह माँ बाप की इज्जत चुनती है और खुशी-खुशी विवाह कर लेती है। विवाह के बाद की पहली ही रात सोभा के लिए चोट थी शरीर पर, लेकिन महीने भर में शरीर को चोट सहने की आदत पड़ गयी। एक ऐसा भी समय आया, जब सोमा उन काँच के किरचों का कोलाज बनाती रही और उसमें अपनी जिन्दगी का चेहरा ढूँढ़ती रही, किन्तु कहीं भी एक सफल दाम्पत्य का चेहरा नहीं उभर पाया। रुँगटा हाउस की परम्परा, व्यवस्था, कायदे कानून न जाने किस दलदल में सोभा के पैर उलझते चले आ रहे थे।

प्रभा जी के इस उपन्यास में स्त्री के सपने कुछ बदले हुए हैं, वह अपने जीवन के आर्थिक पक्ष को इतना महत्त्व न देकर अपने मातृत्व व प्रेम सम्बन्धों को महत्त्वपूर्ण मानती है। उषाकीर्ति राणावत लिखती हैं, "प्रभा जी के उपन्यासों की नायिका अपनी अस्मिता की पहचान एवं धन कमाने घर से निकलती है। आर्थिक स्वतन्त्रता उनके जीवन की पहली शर्त है, लेकिन पीली आँधी की नायिका आर्थिक पक्ष को उतना महत्त्व नहीं देती, वे मातृत्व के लिए अर्थ को छोड़ सकती है।"[3] यह सामंती व्यवस्था के खिलाफ सशक्त प्रतिरोध का क्रान्तिकारी कदम केवल पढ़ी-लिखी सोमा ने ही उठाया है। जबकि सोमा की जिठानी अपने पति को उसके अन्य स्त्री के साथ प्रेम सम्बन्ध के साथ स्वीकारने को मजबूर बनी बैठी है। सोमा जैसे क्रान्तिकारी कदम कम ही लोग उठा पाते हैं। वास्तव में यहाँ केवल सोमा का सपना ही नहीं व्यक्त हुआ है, बल्कि यह हर उस स्त्री का सपना हैं, जो बन्धन में पड़ी छटपटा रही है।

सोमा सुजीत से प्रेम तो करती ही है, साथ ही उसके बच्चे की माँ भी बनना चाहती है। उसका पति गौतम उसे माँ बनने का सुख दे पाने में असमर्थ है, किन्तु इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं है कि उसकी पत्नी किसी और के बच्चे की माँ बने। वह सोभा को प्रताड़ित करके उस पर दबाव डालने का भी प्रयास करता है, ताकि वह अपने गर्भ में पल रही सन्तान को मार दे। वास्तव में गौतम ने स्वयं सोमा को धोखा दिया है, क्योंकि वह समलैंगिक है और अनेक पुरुषों से उसके समलैंगिक सम्बन्ध हैं, फिर भी गौतम सोमा के इस पराये बीज को अपने घर में पनपने देने को तैयार नहीं है। वह सोमा को गालियों के आभूषण से नहला देता है, जैसे-छिनाल, वेश्या, गिरी हुई औरत आदि-आदि। सोमा उससे स्पष्ट शब्दों में कह देती है, "सच क्या है, यह तुम जानते हो गौतम। नैतिकता का सवाल और वह भी तुम उठा रहे हो? और चूँकि हम दोनों अपनी-अपनी जगह पर जो हो सकते हैं, वही हैं। अतः तुम्हारा आरोप और लांछन कहाँ तक जायज है।"[4]

गौतम सोमा को धमकाता है कि वह इस बात को घर में सबके सामने बोल देगा। सोमा थोड़ी देर के लिए सिहरती है, लेकिन शायद अब वह इन सबके लिए पूरी तरह से तैयार हो जाती है। अब यह केवल गौतम से तलाक चाहती है। सोमा में विद्रोह करने की क्षमता भी है और वह अपने अधिकारों के लिए लड़ना भी जानती है। उसने सुजीत से प्रेम किया है और उसके बच्चे को पाप मानने से इन्कार करती है। उसके लिए सुजीत स्वर्ग है और गौतम नर्क। सोमा को संगमरमर तथा एयरकंडीशन वाली सुरक्षा नहीं चाहिए, बल्कि उसे अपना अदना-सा प्यार ही मूल्यवान लगता है। वह समाज की दोगली और खोखली नीति से परेशान है। इसलिए वह इस प्रपंच की ही त्याग देती है, लोग उसे पागल कहते हैं, किन्तु उसका कथन है, "हाँ जब औरत अपने लिए रोटी हैं, कुछ माँगती है तब पागल ही कहलाती है।"[5]

सोमा नैतिक-अनैतिक तथा वैद्य-अवैध की उलझन में भले ही विचाराधीन रही हो, पर सोमा का माँ बनने का फैसला अडिग था, इसमें उसे कोई दुविधा न थी, इसी कारण उसने सुजीत को यह झूठ बताया था कि वह पिल्स लेती है, जबकि उसने ऐसा नहीं किया था। इस प्रकार यह बच्चा कोई प्रेम का हादसा नहीं था और इस बच्चे को प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जन्म देना चाहती थी, चाहे उसे कोई भी कष्ट उठाना पड़े। गौतम जब बच्चे को मारने के लिए कहता है, तो वह उसका स्पष्ट शब्दों में प्रतिरोध करती है-

''मैं पूछता हूँ तुम दवा नहीं लोगी?
नहीं...
मुझे घरवालों को बताना पड़ेगा
बता दो.....।''[6]

उपन्यास में चित्रा एक ऐसी स्त्री है, जिसके कदम बिल्कुल सधे हुए हैं। उसके शब्दों में अभिव्यक्ति, आत्मशक्ति तथा अपने विचारों के प्रति आस्था है। आठ महीनों तक उसने सोमा को एक दोस्त की तरह नहीं, बल्कि बड़ी बहन की तरह खयाल रखा। सोमा को हमेशा यह पीड़ा कचोटती रहती कि चित्रा के दु:ख का कारण वह ही है। चित्रा उसे यह जताना चाहती है कि सुजीत के छोड़ने का उसे कोई दु:ख नहीं है। वह कहती है, "हाँ दु:ख तो हुआ था। मैंने कहा ना जब सुजीत ने पहले-पहल इस सम्बन्ध की चर्चा की थी, तो मैं भी रोई थी। सुजीत को धोखेबाज कहा था। फिर बाद में लगा कि यह धोखा तो मैं स्वयं को दे रही हूँ। जब प्रेम ही नहीं, तब किस बात की जलालत? प्रेम की भीख नहीं माँगी जाती। मेरा कोई अपना आत्मसम्मान नहीं और फिर यह किस शास्त्र में लिखा है कि किसी से प्रेम को तो ताउम्र करते जाओ।''[7]

चित्रा न केवल सीमा को उसका बेटा सौपती है, बल्कि उसे बी.एड. की परीक्षा भी दिलवाती है और कॉलेज में नौकरी के लिए भी प्रयास करती है। वह सोमा के बच्चे को अपना नाम भी देती है, जिससे उसे नाजायज न कहा जा सके। उपन्यास में सोमा ही नहीं चित्रा भी अपने जीवन को आत्मसम्मान के साथ नयी दिशा देती है।

वह अपने पति से पत्नी के अधिकार की मांग नहीं करती और न ही प्रेम की भीख माँगती है। वह सोमा से कहती है, "उस दिन तूफान मेरे घर भी उठा था। लेकिन जब प्यार नहीं, तब इस व्यवस्था को ढोने से क्या फायदा, क्या इससे अच्छा नहीं कि मैं हट जाऊँ।''[8] चित्रा भी अपनी आत्मशक्ति का परिचय देती है। वह अपने प्यार सुजीत के जीवन में खुशियाँ भर कर देती है। वह सोमा से सौत की तरह ईर्ष्या नहीं, बल्कि बहन की तरह प्यार करती है। सोमा के विद्रोह में भी वह सारथी की तरह उसका साथ देती हैं।

सोमा का विद्रोह समाज के लिए एक क्रान्तिकारी कदम है, क्योंकि सोमा जैसी स्त्रियाँ समाज में कम ही हैं, जो इस सामंतवादी व्यवस्था को तोड़ने का साहस कर पाती हैं। अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए रुँगटा हाउस की मर्यादा और सामाजिक लोकपक्ष की परवाह न करके सुजीत से प्रेम करती है, गर्भवती होती है और उसे जन्म भी देती है। वह पूरे परिवार की उपेक्षाओं और यंत्रणाओं को झेलकर भी गर्भपात कराने से इन्कार कर देती है। रुँगटा परिवार को छोड़कर वह सुजीत के घर चली आती है और स्वयं नौकरी करके आत्मनिर्भर भी बनती है। सोमा का स्वयं की इस प्रकार प्रतिस्थापित करना किसी कल्पना से कम नहीं है। प्रभा जी सोमा जैसी स्त्रियों के विद्रोह को उचित ठहराते हुए लिखती हैं, "स्त्री को अपनी खामोशी तोड़नी होगी। आदिकाल से चले आ रहे अत्याचारों के बारे में अब दुनिया को बताना होगा।''[9]

वस्तुत: भारतीय समाज की संरचना सामंतवादी है, इसलिए स्त्री के लिए उसे तोड़कर निकल पाना अत्यन्त कठिन होता है। संयुक्त परिवार के बन्धनों से निकलकर, उसकी मर्यादाओं को तोड़कर विवाहेतर सम्बन्ध बनाना इस समाज के लिए कदापि स्वाकार्य नहीं है। सोमा पढ़ी-लिखी स्त्री है, वह बन्धनों को स्वीकार कर घुट-घुटकर जीना नहीं चाहती, इसलिए सुझीत से सम्बन्ध बनाती है। वह यह भी जानती है कि समाज में इस सम्बन्ध पर कैसी प्रतिक्रिया होगी, लेकिन सबकुछ स्वीकार कर वह अपनी बच्चे की इच्छा पूरी करती है। वह सुजीत से कहती है, "सुजीत! मैं तुमसे प्यार करती हूँ। मैं जानती हूँ तुम विवाहित हो, मैं भी विवाहित हूँ और हमारा यह अवैध सम्बन्ध, दुनिया क्या कहेगी समाज क्या कहेगा? तुम्हारी पत्नी मुझे धोखेबाज कहेगी? यही न, लेकिन मैं क्या करूँ सुजीत? सबकुछ जानते हुए भी मैं अपने आप को रोक नहीं पा रही हूँ.....। यदि दो व्यक्ति एक साथ नहीं रह सकते, यदि कहीं कोई गहरी कमी हो, तब सम्बन्ध को तोड़ा भी जा सकता है बल्कि तोड़ ही देना चाहिए।"[10]

निष्कर्ष- उपन्यास में सोमा जैसी स्त्री पात्र की रचना कर प्रभा जी ने उस सामंतवादी व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध किया है, जिसे तोड़ पाना आसान नहीं है। समाज की दृष्टि में सोमा बिल्कुल गलत है, लेकिन इसी समाज में ऐसी घटनाएँ प्रायः देखने को मिल जाती हैं, तो क्या इसे नकारा जा सकता है। अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करना कथा गुनाह है और यदि गुनाह भी है तो सोमा जैसी स्त्रियाँ उसे करने से नहीं हिचकतीं। यदि वे ऐसा नहीं करतीं तो चहारदीवारी के भीतर घुट-घुटकर मर जाती हैं। अपने लिए कुछ माँगना पागलपन नहीं है। सोमा अन्ततः अपने संघर्ष में सफल होकर एक सुखपूर्ण जीवन की तलाश कर लेती है, जो उसके जीवन का अपना यथार्थ है।

सन्दर्भ

1. प्रसाद, प्रतिमा - प्रभा खेतान के इतिहास में सामाजिक यथार्थ और स्त्री, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2019, पृ०-73.
2. खेतान, प्रभा-पीली आँधी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2002, पृ०-158.
3. राणावत, उषा कीर्ति-प्रभा खेतान का औन्यासिक संसार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2005, पृ०-49.
4. खेतान, प्रभा-पीली आँधी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2005, पृ०-248.
5. वही, पृ०-252.
6. वही, पृ०-247.
7. वही, पृ०-256
8. वही, पृ0-247.
9. खेतान, प्रभा-बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2007, पृ०-209
10. खेतान, प्रभा-पीली आँधी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2002, पृ०-244-245.

आख्यान काव्य परम्परा और रीतिकाल

ममता देवी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उ0प्र0

सारांश-

समाज में स्थापित मान्य कथाएँ आख्यान के रूप में साहित्य के प्रत्येक कालखण्ड में प्राप्त होती है, और यह कालक्रम हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक परिलक्षित होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन आख्यान परक साहित्य को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। विवेचनोपरान्त हम यह देखते है कि रीतिकालीन शृंगारिकता के प्रवाह में भी आख्यान परम्परा ने भक्ति के बीज को सिंचित रखा है, और सामंती वातावरण और शृंगारिकता के बीच भक्ति के पुष्प का प्रस्फुटन भी मिलता है।

भक्ति का अविरल प्रवाह जब दक्षिण भारत से उत्तर की ओर बढ़ा तो, उसे उत्तर भारत में अबाध साहित्य सिंचित क्षेत्र प्राप्त हुआ। जहाँ वैष्णव भक्ति अभी तक आराध्य, श्रवण, कीर्तन तक ही सीमित थी, वहीं उत्तर भारतीय कवियों ने सामाजिक यथार्थ से जोड़कर साहित्यिक वाणी प्रदान की। समाज विभिन्न व्यक्तियों के सामूहिकता का विकास है, फलस्वरूप विभिन्न मतों का विकास अवश्यम्भावी है। भक्ति का स्वरूप भी इन्ही मतों के अनुसार विकसित हुआ। भक्तिकाल में विभाजित सगुण-निर्गुण धारा में सगुण काव्य धारा आगे भी विभिन्न विधाओं में प्रवाहमान रही, परन्तु निर्गुण धारा शिथिल पड़ गयी। उत्तर मध्यकाल में सामंती व्यवस्था, शृंगारिक वातावरण के मध्य सगुण काव्यधारा के रामभक्ति शाखा, कृष्ण भक्ति धारा की अपेक्षा कम स्थान बना पायी, क्योंकि तुलसी कृत 'मानस' के बरगद ने एक विशिष्ट स्थान घेर कर अन्य कवियों को पनपने का अवसर ही नही प्रदान किया। 'राम' का मर्यादा पूर्ण जीवन पुरूषोत्तम रूप, त्यागशील पूर्ण स्वभाव, उत्तरकालीन सामंत शाही युद्ध, प्रेम के साथ प्रवाहमान न हो सका। 'कृष्ण' के कई ऐसे स्वरूप और लीलाएँ है, जो रीतिकालीन समय और परिवेश में ढ़लते हुए भी नैतिकता, आत्यसंयम, अनुशासन और धर्म के साथ जीवन मूल्य को अपनाते हुए साहित्य परम्परा में स्थान नियत करते है।

रीतिकाल की अखण्ड परम्परा पर दृष्टिपात करे तों संम्वत् 1600 से 1700 तक वस्तुतः इस कालखण्ड की प्रस्तावना ही है। ''अभिनय का आरम्भ इसके अनंतर हुआ। भक्ति की रचनायें स0 1700 तक छायी हुई थी। इधर भक्ति का वेग कम पड़ा, उधर शृंगार की धारा वेगवती हुई, भक्ति अपना प्रभाव इन कवियों पर भी डाल गयी। उन्होने नायक-नायिका के रूप में श्रीकृष्ण या राधिका या गोपियों को स्वीकार किया।''[1]

भक्ति काल में चरम पर प्रज्वलित आख्यान की मशाल रीतिकाल में शृंगार की मादकता एवं भोग विलास के चादर तले दब कर मद्धम पड़ गयी। कहीं-कहीं रीतिकालीन कवि भक्तिकालीन कवियों की तरह सम्प्रदाय में भी रूचि रखते दिखाई पड़ते हैं। केशवदास जहाँ वल्लभ सम्प्रदाय में आस्था रखते हैं, तो अन्य कवि राधावादी रसिक सम्प्रदायों में आस्था रखने लगते है। ''इन सम्प्रदायों में प्रेमाभक्ति की एकांत प्रतिष्ठा थी, और शृंगार की प्रायः सभी सारणियाँ भक्ति साधना में समर्पित हो गयी थी।''[2]

भक्तिकाल का सख्य, दास्य, दैन्य भाव रीतिकालीन श्रृंगारिक वातावरण में वासनामय रूप धारण करने लगा था। राजाओं का आपसी वैमनस्य, राष्ट्रीयता के पतन ने चेतना को अवरूद्ध कर दिया, फलस्वरूप नवीन साहित्य सर्जना एवं मंगलकारी साहित्य का सर्जन रूद्ध हो गया। संस्कृत में रचे शास्त्रीय ग्रंथों का दोहा, सवैया, कविता आदि के अनूदित रूप लक्षण ग्रंथ के रूप में सामने आये। जिनमें काव्य तत्व के लक्षणों के विवेचन हेतु कृष्ण विषयक सामाग्री का प्रयोग किया गया। ''वस्तुतः भक्तिकाल की काव्य

परम्परा का विकृत स्वरूप हो गया जो अतीव सज-धज के साथ अपनी सत्ता उद्घोषित करने लगी।'[3] रीतिकालीन आख्यान परम्परा पर अगर दृष्टिपात करें तो रीतिकालीन परम्परा में भक्ति विषयक रचनाओं की प्रचुरता व्यवस्थित या क्रमबद्ध नही दिखाई पड़ती, परन्तु छिटपुट द्रष्ट्रव्य होते है। 'वद्यापति' के 'पदावली' से निकल कर 'सूर के वात्सल्य' एवं 'भ्रमरगीत' से होते हुए 'नंददास' के 'भ्रमरगीत' की तार्किकता से सिंचित होते हुए रीतिकालीन धरा पर कृष्ण आख्यान प्रवेश करता है।

'तुलसी के मानस' के बरगद की विशाल छाया ने राम काव्यधारा को सम्पूर्णता प्रदान की। जो आगे चलकर 'केशवदास' की 'रामचंद्रिका' के संवादो के साथ क्षीण होने लगती है। भक्ति एवं रीति के संधि काल पर खड़े 'केशवदास' कुछ रचनाओं को छोड़कर शृंगार परक रीति निरूपण तथा राधा-कृष्ण की प्रेम परम्परा को राम काव्य परम्परा की तरह लेकर आगे बढ़ते है। सीता-राम की अनुपम जोड़ी केशव को सुखद प्रतीत होती है। सीता के नेत्र चकोर जैसे और रघुनाथ तो सूर्यवंश के सूर्य हैं ही-"सीता नयन चकोर सखि, रबि बंशी रघुनाथ/रामचन्द्र सियकमल मुख, भलो बन्यो है साथ/"[4] आख्यानकाव्य परम्परा में 'रामचंद्रिका' की महत्ता रीतिकाल के शृंगारिक वातावरण में आध्यात्म, भक्ति साधना को निरूपित करती, ब्रज भाषा की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। जिसे 'केशवदास' ने संवादो के माध्यम से जीवंतता प्रदान की है- ''रे कपि कौन तू घ् अक्ष को घातक दून बली रघुनंदन जू को/को रघुनंदन रे ? त्रिसिरा-खर-दूषन-भूषन भू को।''[5]

'चिंतामणि' ने अधिकांशत: काव्यांग निरूपण ही किया, आख्यान परक रचनाएँ न के बराबर मिलते है, परन्तु मधुर ललिता शृंगार रस से पूरित राधा-कृष्ण प्रेम आख्यान का वर्णन अनायास ही आ गया है। 'मतिराम' के सरल अभिव्यंजना में, शृंगारिकता के नायक 'कृष्ण' 'रसराज एवं साहित्यसार' के उदाहरणों में आकर दाम्पत्य जीवन के अनुभूतियों, विरही नायिकाओं के हृदयातल की मार्मिकता को व्यंजित करते है।- "द्वै बनमाल हिए लगिए अरू,/ द्वै मुरली अधरा रस लीजै।"[6] जहाँ इस काल के कवि, भक्ति भावना से हटकर संयोग-वियोग की मादकता में डूब आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लगे थे, वहीं 'बिहारी लाल' एकमात्र ग्रंथ 'सतसई' द्वारा रीति, भक्ति, नीति की त्रिवेणी में साहित्य का परिष्कार करते है। 'सतसई में मुक्तको में हास-विलास के मध्य रासलीला मग्न कृष्ण दीख पड़ते है। यहाँ गोपियाँ प्रेम में, विविध क्रीड़ाओं, मनोवृत्तियों, परिहास आदि क्रियाओं द्वारा कृष्ण को सताती है, मनाती है।-'बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाई,/ सौंह करैं, भौंहनि हंसे, दैन कहै, नटि जाई।'[7] बिहारी का मानना है कि इस मायावी संसार में मनुष्य गुण-अवगुण के साथ कर्मफल पाने हेतु बार-बार ईश्वर की शरण में जाये, वही गोपीनाथ इस भवसागर से पार करा सकते हैं- "किजै चित्त सोई तरौ, जिहिं पतितन के साथ/मेरे गुण-औगुण-गणन गनौ न गोपीनाथ।"[8] 'भूषण' यद्यपि वीर रस के कवि है, परन्तु इनके पदो में आख्यान के सहारे वीरता को प्रकट किया गया है। 'इन्होने श्री कृष्ण-शिशुपाल युद्ध, प्रघुम्न-सिंहस्थ युद्ध, प्रद्युम्न काल-संवर युद्ध आदि का वितार पूर्वक वर्णन किया है।'[9] तथा पूर्व प्रचलित नृसिंह बलराम राम, आदि आख्यान चरित्र नायकों के सहारे काव्य को लोक प्रचलित किया-''इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर,/ रावन सदभं पर रघुकुल राज है।'[10]

रीतिकालीन राधाकृष्ण की रासलीला परक कल्लोलिनी धारा में रूढिघ्यों परम्पराओं से मुक्त, स्वच्छ प्रेम में 'घनानंद' का प्रवेश, ब्रजभाषा की मधुरता ने रीतिकाव्य को सुघर बना दिया। सुजान के छलपूर्वक व्यवहार ने घनानंद को वृन्दावन की गलियों में रमा दिया। कृष्ण प्रेम और उनकी अगाध लीला में अनुरक्त 'घनानंद' ने सुजान के पर्याय में कृष्ण को रखा। घनानंद प्रेम के लिए भक्ति को अनिवार्य मानते हैं। ये ऐसे कवि हैं, जो प्रेम के चातक को भक्ति रस से तृप्ति प्रदान करना चाहते है, परन्तु यह रस ब्रजधाम में ही प्राप्त होगा, जहाँ सब कुछ प्रेरणा स्त्रोत है:-"गुरनि बतायो, राधा मोहन ही गायो सदा,/सुखद सुहायो वृदांवन गाढ़े गहि रे।.. .....जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,/पावन पुलिन पै पतित परे रहि रे।।"[11] 'कवित रत्नाकर' में 'रामाख्यान' को निरूपित करने वाले 'सेनापति' मधुराभक्ति को प्रश्रय देते हैं। रीतिकालीन वातावरण में अनुप्रासों की छटा के साथ राधा-कृष्ण के होलिकोत्सव का 'पद्माकर' मनोहारी वर्णन करते है:- 'फागु की भीर, अभीरन में गहि गोविन्द लै गयी भीतर गोरी।'[12] 'बाबा दीनदयाल गिरि' ने 'अनुराग बाग' में कृष्ण के नाना लीलाओं कवित्तों में वर्णित किये हैं। 'विश्वनाथ नवरत्न' में शिव-पार्वती की स्तुति प्राप्त होती है।

रीतिकाल के कुछ अन्य कवियों की छिटपुट रूप में रचनाएँ आख्यान काव्य परम्परा को जीवित रखते नजर आते है। 'रसिक गोविन्द' कृत रामायण सूचनिका, कलियुग रासो, समय प्रबंध, जिसमें राधा-कृष्ण की ऋतुचर्या का वर्णन है। 'युगलरस माधुरी' रोला छंद में राधा-कृष्ण के वृंदावन बिहार की अद्भुत छटा बिखेरता है। 'सबल सिंह' कृत 'महाभारत' 'गुरूगोविन्द सिंह' कृत 'चण्डी चरित' जिसमें 'दुर्गासप्तशती' को अत्यन्त सुन्दर तरीके से उद्धृत किया गया है। 'गोकुलदास' कृत 'महाभारत' 'ललकदास' कृत

'सत्योपाख्यान' है, जिसमें राम के जन्म पर बधाई, बाल-लीला, एवं विवाहोत्सव का वर्णन है। 'धरि निज अंक राम को माता/ लह्यो मोद लखि मुख मृदु गाता।'[13]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रीतिकालीन वातावरण में कवियो का उद्देश्य मूलत: काव्य सृजन था, यदा-कदा अपने ग्रंथो के उदाहरणो को व्यक्त करने हेतु पौराणिक घटनाओं को प्रसंगानुसार ग्रहण किये। 'भिखारीदास' ने स्पष्ट घोषणा की है कि वे तो काव्य रचना ही कर रहे है:-'आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई/ न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।'[14] परन्तु शृंगारिक वातावरण में पोषित कवियों का हृदय भक्ति भाव से परे नहीं था। 'बिहारी' संसार की समस्त बाधाओं से मुक्ति हेतु ष्राधा नागरिष् को सम्बोधित करते है। 'सेनापति' वृंदावन की कुंज वीथियों में ध्यान लगाये रहते है। 'देव' सांवले कृष्ण के कमल रूपी नेत्रों को अपने नैनन की कजरा में बसाये रखना चाहते है, तो 'बेनी कवि' राधिका कन्हाई को अपने 'हिया में बिहरे' हेतु पुकारते हैं।

सन्दर्भ

1. घनानंद ग्रंथावली, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूमिका से, पृ० सं० 23।
2. रीतिकाव्य संग्रह, सं० विजयपाल सिंह, पृ० सं० 20।
3. मध्ययुगीन काव्य संग्रह, सं० डॉ० सत्यनारायण सिंह, पृ० सं० 12।
4. रीतिकाव्य संग्रह, सं० विजयपाल सिंह, पृ० सं० 55।
5. वही, पृ० सं० 58।
6. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, मध्यकालीन काव्यभाषा, पृ० 142।
7. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, मध्यकालीन काव्य भाषा, पृ० सं० 161।
8. व्यास, डॉ० ज्योति, मध्यकाल के अनमोल रत्न, पृ० 91।
9. वही, पृ० सं० 119।
10. वही, पृ० सं० 166।
11. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० सं० 249।
12. रीतिकाव्य संग्रह, सं० विजयपाल सिंह, पृ० सं० 121।
13. शुक्ल, रामचन्द्र, आचार्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० सं० 248।
14. 1/8/काव्यनिर्णय, भिखारीदास।

राजेन्द्र अवस्थी के कथा-साहित्य में राजनीतिक स्वरूप

डॉक्टर दीपा त्यागी

शोध पर्यवेक्षक एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग आई. एन.पी.जी. कॉलेज विभाग मेरठ

आशु चौधरी

शोधार्थी, हिंदी विभाग आई. एन.पी.जी. कॉलेज मेरठ

1.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज में राजनीति का विशेष स्थान रहा है जो विभिन्न कोणों से सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते किसी भी स्थिति में राजनीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। देश को आजादी मिलने के पश्चात् राजनीतिक घटनाओं ने सामाजिक जीवन को विशेष रूप से आंदोलित किया है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्ट राजनीति प्रवेशकर चुकी है। वर्तमान राजनीति के भ्रष्ट स्वरूप के बारे में डॉ. रमेश देशमुख ने लिखा है कि- ''देश की बहुमुखी राजनीति का पतन हुआ है। उसने नैतिकता के सभी मूल्य ध्वस्त कर दिए। अब जनता के सभी मसले चाहे वे रोटी के हो, चाहे धर्म के या वोट की नीति से तय होने लगे, सत्ता द्वारा भ्रष्टाचार और दुश्चरित्रता के संरक्षण एवं अपराध तथा राजनीति के गठजोड़ ने जन जीवन में असहायता और असुरक्षा की भावना भर दी। वोट की राजनीति ने संकीर्ण जातिवाद और गुटबंदी को भरपूर प्रश्रय दिया। परिणामस्वरूप जनता का विश्वास सभी प्रकार संवैधानिक रक्षात्मक इकाइयों से उठ गया।'' राजेन्द्र अवस्थी के कथा-साहित्य में राजनीति से प्रभावित समाज जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। साहित्य में राजनीति का समावेश सहज स्वाभाविक होता है, राजनीति, समाज और साहित्य तीनों में पारस्परिक सम्बन्ध है। राजेन्द्र अवस्थी के कथा-साहित्य में तद्युगीन राजनीति के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है।

1.2 यथा-वोट की राजनीति

आधुनिक काल की राजनीति वोट पर आधारित है। राजनीतिक दृष्टिकोण से नेता बनने के इच्छुक व्यक्ति के लिए चुनाव ऐसा अवसर होता है कि जिसमें व्यक्ति अधिक से अधिक वोट बटोर सकता है। वोट प्राप्त करने के लिए राजनेता किसी भी हद तक जा सकते हैं। वे अपनी पार्टी की जीत के लिए कोई अच्छा बुरा काम करने को तैयार हो जाते हैं तथा जनता को तरह-तरह के प्रलोभन देकर वोट हासिल करते हैं। भंगी दरवाजा उपन्यास में सेठ धाकिया मोहन सिंह से कहता है कि तुम्हारी पार्टी हार रही है उस पर श्याम बाबू कहते हैं- ''बस इतनी बात से डर गया तू, धकिया खाया खेला आदमी है, परन्तु उतना बेवकूफभी है।'' इसके बाद श्यामबाबू ने गुरुमंत्र दिया। मोहनसिंह ने गाँव भर के लोगों को बुलाया। किसी को दोस्ती से, किसी को कुछ ले देकर, फिर ठाठ से जुलूस निकाला। जुलूस में देवी के रथ ने कमाल कर दिया, श्रद्धा से घर-घर के दरवाजे खुल गये।

राजनीति के नाम पर सदैव से ही जनता को ठगा जाता रहा है। उसकी भावनाओं से खिलवाड़ होता रहा है। राजनेता जनता का शोषण करके अकूत वैभव इकट्ठा कर विलासी जीवन जीते रहे हैं।

भंगी दरवाजा उपन्यास में मुगलकालीन शासकों की विलासिता व दूरदर्शिता पर प्रकाश डाला है- मुगलकालीन शासक भी जनहित की ओर ध्यान न देकर अपने रास रंग और ऐशो आराम में लिप्त रहे। श्याम बाबू ने अपनी बेटी रूपाली को बताया कि-''हिन्दुस्तान यहीं यानी माडू में ही बेचा गया था। किसने बेचा था, पापा। ''शाहजहाँ ने।'' शाहजहाँ खुर्रम यहाँ आया तो उसकी मल्लिका गर्भवती थी। हिन्डोला महल देखा है न, वहीं उसकी बेटी हुई उसका नाम थारोशनआरा। उस समय एक अंग्रेज डा. सर टामस भी यही था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारी था। टामस ने बादशाह की बहुत मदद की। बच्ची हुई तो जश्न मनाया गया। उसी समय बादशाह का मूड आया और माडू में ही ईस्ट इंडिया कम्पनी को सूरत, भड़ौत, मछलीपट्टम और कलकत्ता में खुलकर काम करने का फरमान मिल गया। रूपाली, एक तो हमलावर बादशाह, फिर हिन्दू राजाओं की धरती पर कब्जा और अंत विदेशी अंग्रेजों को दान। सभी लोग जानते हैं कि ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापारी से सत्ता की ओर स्थापित हुई माडू की घटनासत्ता का केन्द्र बनी।''

1.3 पद का दुरूपयोग

राजनीति कार्यकर्ता राजनीति के प्रत्येक हथकण्डे से अवगत होते हैं। अधिकारों के नाम पर राजनेताओं ने हमेशा जनता के साथ धोखा किया है। अपनेपद के मद में वे जन विरोधी कार्य करने से भी नहीं चूकते। राजेन्द्र अवस्थी केकथा-साहित्य में विकृत राजनीति के भी दर्शन होते हैं।

''महुआ आम के जंगल'' कहानी में अंग्रेज अफसर गाँव में लोगों पर अत्याचार करता है। अपने पद का दुरूपयोग करते हुए युवतियों पर बुरी नजर रखता है। गाँव के मुखिया को जब वह कोड़े लगाता है तो मुखिया अपने आपको धन्य मानता है।

''गाँव के मुखिया को जब यह खबर लगी कि यह गोरा अफसर उस जिलेका सबसे बड़ा साहब है और उसके गाँव की जाँच करने आया है, तो वह कोड़ेकी मार भूल गया। अपने को वह धन्य मानने लगा। गाँव में आने वाले हर अफसर की सेवा करना उसका काम था। वह जानता था कि इन्हीं अफसरों केबल पर गाँव सुखी रह सकता है।

इसी तरह राजनीति में कार्यकर्ता पद को प्राप्त करने के लिए वे रैली औरभाड़े की भीड़ जुटाने में कुशल होते हैं- ''जनसेवा'' कहानी मंत्री के स्वागत केलिए टंडन साहब ने बेशुमार इन्तजाम करवाये। टंडन जब शामियाने की ओर मुस्कराते हुए पहुँचा तो शामियाने का सूनापन देकर उसे धक्का लगा। दो-चार दूसरे कायकर्ता इधर-उधर घूम रहे थे। टंडन ने एक को बुलाकर पूछा, ''ठेकेदार साहब कहाँ है? टंडन ने क्रोध से मुँह बनाते हुए कहा, अपने को क्या समझते हैंये किसान? मिनिस्टर साहब के लिए क्या ये इन्तजार नहीं कर सकते? सच है,जब तक जनता को धक्के न लगाए जाए, वह रास्ते पर नहीं आती।''

''बंगला नंबर दस'' कहानी में सोम साहब मंत्री जी के निजी दोस्त हैं लेकिन मंत्रीजी को मिलने का वक्त नहीं है-''दो चार घण्टे की प्रतीक्षा के बाद भी जब मंत्रीजी बंगले की पोर्च में खड़ी कार में बैठकर सर्र से चले जाते हैं तब भी वे सबबिना शिकायत किए और मुँह से एक भी शब्द निकाले, मुस्कराते हुए वहाँ से खिसक जाते हैं। उसे लगता था, यह मंत्री का बंगला नहीं, किसी नबाव की कोठी है, जहाँ का सफाई-जमादार अपनी एक झाड़ू से हर सस्ती और कीमती चीज कोबुहार कर नाली में फेंक देता है। प्रतीक्षारत ये सभी कृपाकांक्षी वैसे ही फेंके जा रहे हैं। उसे संतोष था, मंत्री जी दो घंटे देर से भले मिले हो वह बुहारा नहीं गया। उन्होंने उसे बुलाकर पूछा है, ''क्यो सोम, कोई बात तो नहीं?'' सोम जबाव नहीं दे सका और मंत्री जी की कार पोर्च से खिसक गई।''

1.4 पद लिप्सा

आज के समय में प्रजातंत्र प्रणाली ढोंग साबित हो रही है। किसी भी राजनीतिक दल और नेता को देश की उन्नति व जनता की भलाई की फिक्र नहीं। अपने पद को प्राप्त करने के लिए लाखों रूपये खर्च करके मंत्री की कृपा दृष्टि का पात्र बनते हैं।

''जनसेवा'' कहानी में मिनिस्टर साहब के स्वागत के लिए टंडन साहब नेडाक बंगले का रात भर में नक्शा ही बदल दिया। बाहरी दीवारों पर सिल्क पापलीन सी सफेदी, फटे हुए परदे बदल गये थे। फर्नीचर पर नया रंग-रोगन किया जा चुका था। कोरीडोर के नीचे सीढियों पर सदा-बहार हरियाली वाले गमले रख दिए गए थे। लॉन में बदरपुर की मिट्टी यू बिछा दी गई थी, जैसे कोई कालीन बिछाया गया हो। लाल कपड़ों पर सुनहरे अक्षरों में कोई नारा लिखा था। पीछे से केवल 'जय' शब्द ही पढ़ा जाता था और टंडन के लिए महत्व भी उसी शब्द का था। 'जय' और 'जयकार' के नारे वह तब से लगा रहा है, जब वह मामूली स्वयं सेवक था।

उसके बाद जब वह थोड़ा बढा तो स्टेज पर जाने लगा। इसके बाद जमाना बदला और टंडन स्टेज पर यूं चक्कर काटने वाला आदमी नहीं रहा। वह एम.एल.ए. हो गया था। किस तरह उसने यह पद पाया और किन-किन लोगों की उसने किस तरह सेवा की, टंडन उन्हें दोहराना याद नहीं करना चाहता। अब वह पब्लिक सर्वेण्ट है। हमेशा हँसते-मुस्कराते लोगों से मिलता है। उसकी चाल में एक अनोखापन आ गया है।''

वर्तमान राजनेता सत्ता मोह में फँसे रहे हैं। वे, जिस भी दल का पलड़ा भारी होता है, सत्ता प्राप्त करने की सम्भावना रहती है, दल बदलु नेता उसी दलसे नाता जोड़ लेते हैं। ''प्रतीक्षा'' कहानी की नायिका ने सत्ता के लिए किसी अंजान पुरुष सत्यवान से संबंध बनाने का मन बना लिया। वह भगवान से प्रार्थना करती है- ''हे भगवान, आपने एक सावित्री को तीन वर दिए थे, इस सावित्री को केवल दो वर चाहिए-एक सत्यवान दूसरा सत्ता।'' सत्ता का वर माँगते समय उसके विचार एक दम साफ थे। वह चाहती थी कि फिर दल बदलू जोर दिखाए और 'प्रतीक्षा' वाली तख्ती वहाँ से उठकर इस शहर के बीच में लग जाए।''

1.5 राजनेताओं में भ्रष्टचार व मौका परस्ती

राजनेता जनता को वश में करने की सभी तरकीबे जानते हैं और उनका प्रयोग करते हैं। वे समय की नजाकत को देखकर ही कोई कदम उठाते हैं। वेजनता को भ्रमित करने के लए उसकी सबसे कमजोर नस का सहारा लेते हैं। जब जहाँ जैसी जरूरत हो वैसा चरित्र ओढ़ लेते हैं। ''भंगी दरवाजा'' उपन्यास मेंचुनाव सभा मोहन सिंह की है, जय-जयकार श्याम बाबू की हो रही है और फिर घोषणा की कि श्यामबाबू को हाइकमान ने बुला लिया है। सेठ धकिया के लिए यह जबरदस्त धक्का था। वह चुपचाप खिसक कर अपने पेट्रोल पम्प में पहुँच गया।

राजनीति में धोखा देना मुश्किल कार्य नहीं हैं जो राजनेता किसी दूसरे की मदद करता है वही चुनाव जीतने के बाद उसी के पाँव के तले की मिट्टी निकाली जाती है।

उक्त उपन्यास में ''मोहनसिंह....मोहनसिंह।'' श्यामबाबू ने ओंठ भींचे, ''आज यह समय आ गया है चुनाव के बाद उसे कितनी मेहनत के बाद मिनिस्टर बनाया गया, क्या नहीं किया, आज यहाँ आकर वह भी यूं कट गया। इसलिए कि मैं अब इसी पार्टी में नहीं रहा, पार्टी क्या होती है, होता आदमी है। राजनीति में पार्टी का महत्व भी क्या है- जब चाहो बदल लो- चले जाओ, चले आओ।

श्यामबाबू ने अपनी दाहिनी हथेली अपने सिर पर दे मारी और जोर से चीख निकली, मोहनसिंह! उनके दाँत ऐसे बँध गए थे जैसे किसी ने सीं दिए हो।

रूपाली जोर से चिल्लायी और जहाँ श्यामबाबू बैठे थे, उनकी ओर भागी, ''पापा,पापा, यह क्या हो गया आपको? आप कोई साधारण राजनेता नहीं है। राजनीति में जो धोखा न दें, वह राजनीति का पहाड़ा नहीं जानता।

''मैं साले मोहन सिंह की हत्या करवा दूँगा।''

1.6 राजनेताओं के झूठे आश्वासन

राजनेताओं को चुनाव लड़ने के लिए विभिन्न पड़ावों से गुजरना पड़ता है।उन्हें पार्टी का टिकट लेने के लिए और चुनाव जीतने के लिए अपने नैतिक सिद्धान्तों से गिरना पड़ता है। टिकटार्थी को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, दोनों कोहर प्रकार से समझौता करना पड़ता है।

''भंगी दरवाजा'' उपन्यास में श्यामबाबू रूपाली से कहते हैं कि-

''टिकट माँगने वाले किस दयनीय मुद्रा में आते हैं, सोचा भी नहीं जा सकता।

औरतों के साथ मिलने का एक खास तरीका होता है।

''एक दिन एक खूबसूरत महिला अपनी माँ के साथ वहाँ मिलने आई। आधे घंटे बाद मैंनें चीखने-चिल्लाने की आवाजें सुनी। देखूँ, क्या है? खजांची जी की मुसीबत- एक महिला उन्हें चप्पल मार रही है और वे चिल्ला रहे हैं। मैंने उस महिला का हाथ पकड घलिया, क्या हुआ?''

''हरामजादा! यह राजनीति होती है! नहीं चाहिए मेरी बेटी को टिकट-विकट!'' नेताजी बोले- 'तुम्हें चुनाव का टिकट चाहिए न! तुम्हारे एरिया से पाँच महिलाएँ आ चुकी हैं। एक बात सीख लो, राजनीति की दुनिया आसान नहीं है।

पहले टिकट चाहिए, फिर चुनाव में मदद और जीत कर आए तो मंत्री या उपमंत्री। ये पद राजा और महाराजाओं के पद है। यहाँ तक पहुँचने के लिए कई कुर्बानियाँ देनी पड़ती हैं।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक व्यक्ति शोषण से त्रस्त हैं। राजनीति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति पर प्रभाव डालती है। राजनेताओं ने अपनी स्वार्थ लिप्सा के कारण राजनीति को कलुषित बना दिया है। भ्रष्टाचार, पद लिप्सा, झूठे आश्वासन और स्वार्थी प्रवृतियों का समावेश एक साथ राजनेताओं में देखने को मिलता है। जिसका वर्णन राजेन्द्र अवस्थी ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से किया है।

1.7 राजनेताओं द्वारा साम्प्रदायिकता विद्वेष फैलाना

'साम्प्रदायिकता' भारत में एक जनजीवन को ग्रसित अभिशाप है। साम्प्रदायिकता इसका विष भारत में आज से नहीं बल्कि अंग्रेजों के जमाने से बोया गया है। ''साम्प्रदायिकता'' एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है। इसमें व्यक्ति बदले की भावना से ग्रसित हो जाता है और अच्छाई-बुराई को भूल जाता है उसकी बुद्धिपर पाशविकता हावी हो जाती है।''

साम्प्रदायिक दंगे फैलाने में राजनीतिज्ञों का प्रमुख योगदान होता है। अवस्थीजी के साहित्य में साम्प्रदायिकता का प्रभावी व मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। 'जाने कितनी आँखें' उपन्यास में अंग्रेज शासन काल में सांप्रदादिक संघर्ष का वर्णन मार्मिक ढंग से किया गया है मास्टर बदरी प्रसाद और करीम मियाँ गाँव के मुख्य आदमी थे। दोनों अपने-अपने धर्म के कट्टर पक्षपाती भी थे। बदरी प्रसाद रोजपूजा के समय ही नमाज की बाँग देते हैं। दोनों के बीच में इसी बात पर हमेशा झगड़ा भी होता रहता है। करीम मियाँ के मन में यह विचार है कि ''मास्टर जानबूझकर नमाज के वक्त ही शंख फूँकता है उसे शंख की आवाज रोते कुत्ते जैसी सुनाई पड़ती है।'' बदरी प्रसाद ने तो एक अलग दृष्टिकोण से प्रतिरोध किया। उनका मानना है कि -''क्या अल्ला, क्या बम भोला, सब एक हैं, करीम मियाँ। फिर तुम तो जानते हो कि जबसे लखनपुर से आया हूँ, रोज शंख फूँक रहा हूँ। वह शंख मेरे साथ हर जगह रहा है। यह मेरे बाप दादों की देन है।'' उन दोनों के विचारों में भेद होने पर भी दोनों ने अपने धार्मिक आचार को जारी रखा और वे झगड़ते भी रहे।

राजनीति में भी राजनैतिक दल साम्प्रदायिकता को चुनाव जीतने को हथियार के रूप में अपना लेते है। ''देश में जितने भी साम्प्रदायिक दंगे होते हैं हत्याएँ और लूटपाट होती हैं। इसमें किसी न किसी राजनैतिक दल का हाथ होता है। दुनिया में सबसे ज्यादा निरपराध आम जनता की जो हत्याएँ हुई हैं, जो खून की नदियाँ वही है वह धर्म के कारण ही। धर्म कितना क्रूर होता है हत्यारा होता है यह हमने भारत विभाजन के समय देखा है।''

''भंगी दरवाजा'' उपन्यास में वर्तमान समय के साम्प्रदायिक लूट-पाट का चित्रण देखने को मिलता है। श्याम बाबू विदेश मंत्री पद पर विराजते समय कमिश्नर साहब ने एक बार जानकारी दी कि जिले में हिन्दू मुसलमानों के बीच दंगे शुरू होन`लगे है तो श्याम बाबू ने कमिश्नर को जनता को नियन्त्रण में रखने का हुकुम दिया- ''उन्होंने भाषण भी दिया और जनता को समझाया कि जाति, धर्म और सम्प्रदाय सुविधा के लिए है। इनका उपयोग अमन चौन कायम करने में किया जाए।'' श्याम बाबू के उचित समय पर विवेक के साथ काम करने से दंगा खत्म हुआ। इस प्रकार राजेन्द्र अवस्थी ने साम्प्रदायिकता का चित्रण किया है।

1.8 ग्रामीण जीवन में राजनैतिक चेतना

राजनीति से अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य अनुशासित एवं स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहता है। अनेक राजनीतिज्ञों ने 'राजनीति' की व्यवस्था की है।

मनु ने सम्भवत: इसी स्थिति को ध्यान में रखकर कहा है-

''न राज्यं न च राजासीत् न दण्डो न च दण्डिक:।
धर्मेणैवैवै प्रज्रजा: सर्वा वर्तन्ते स्व परम्परम्।।

अर्थात् न तो राज्य था न राजा था, न दण्ड था न दण्ड देने वाला था।

अत: स्पष्ट होता है कि विविधता के परिणामस्वरूप जन्म लेने वाले संघर्षों का तालमेल बिठाने की प्रक्रिया ही राजनीतिक सक्रियता है।'' हिन्दी साहित्य पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि राजनैतिक चेतना का स्फुरण बहुतायत से प्रेमचन्द और उनके परवर्ती उपन्यास में अधिक मिलता है।

आदिवासी समाज ने अंगेजों के आतंक से त्रस्त होने के कारण स्वतन्त्रता के लिए बहुत संघर्ष किये उनके ''जंगल के फूल'' उपन्यास में गुण्ड धूर का छोटा भाई डिबरी बताता है कि ''सुलक इस समय दन्तोबाडा में है और वह वहाँ बड़ा काम कर रहा है इत्ता बड़ा कि शायद इनमें से कोई न कर सके।

अंग्रेजी सैनिकों ने आदिवासियों को बन्दी तो बनाया परन्तु कुछ आदिवासी उनकी कैद से भागने में सफल हो गये फिर भी वह अपने तीर कमान से लड़ते रहे तब सुलक ने आदेश दिया।

''धावा करो, अंधेरे में आदिवासियों ने तीर छोड़े। सरकारी फौजों ने भीठाँय-ठाँय कर उन पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। तीर और गोलियों कीवर्षा घंटों हुई। रात बीत गई और अलबेतू का परछाई जैसे उजाला उतर आया, पर लड़ाई में किसी तरह की कमजोरी नहीं आई। दोनों ओर के सिपाही मरते रहे, किसी ने हिम्मत न हारी।'' इस प्रकार आदिवासी भी अपनी जमीन व जंगलों के लिए निरन्तर संघर्षरत दिखाई देते हैं।

वे अपने वोट का मूल्य अच्छी तरह समझते हैं। वे चाहते हैं कि गाँव मेंठीक ने चुनाव हो इसके प्रचार-प्रसार के लिए नेता गाँव में आते हैं। ''सूरज किरन की छाँव'' उपन्यास में पादरी चुनाव में जीतने के लिए बड़ी हिम्मत कर रहाहै। दिन राज पैदल गाँव-गाँव घूमकर अपना प्रचार करता हुआ कहता है-''चुनकर आ गया तो सारे गाँव को सर्ग बना देगा। कोई कभी भूखों नहीं मरेगा और किसी को बेघरबार नहीं रहना पड़ेगा।''

आदिवासी स्त्रियाँ भी चुनाव और अमूल्य वोट के प्रति सचेत रहती है-

''सूरज किरन की छाँव' उपन्यास में बेजों जब वोट डालने जाती है तो एक पलखड़ी होकर सोचने लगी। बार-बार चारों पेटियों पर नजर डालती थी, पर वह आकर बैल जोड़ी छाप वाली पेटी में थम जाती थी। सोच रही थी-''एक चित्र में मैंने नेहरूजी का हाथ जोड़कर वोट माँगते देखा था। सोच रही थी- देवता खुद वोट माँग रहा है उसे छोड़कर फिर किसे वोट दूँ। पर जोसेफ का चेहरा जैसे ही आँखों के सामने आया, सब भूल गयी। चुपचाप खजूर के पेड़ वाली पेटी में वोट डालकर चली आयी।

दूसरा वोट मुझे दिया गया मैं फिर एक दूसरे कमरे में गयी। पर वोट डालने का जी नहीं हुआ। अपना वोट एक पेटी के ऊपर रखकर चली आयी-बस देखेगा, उठा लेगा। अन्दर डालने में ही क्या धरा है? पैरों में आज जो बेड़ी पड़ीहै कल भी पड़ी रहेगी- चाहे कोई जीते, कोई हारे। नेहरू का राज हो या पादरी की हकूमत, मेरे लिए दोनों में कोई अन्तर नही है।''

अंग्रेजों ने आदिवासी स्त्रियों को भी बहुत यातनाएँ दी। उनके साथमार-पीट की, परन्तु वे औरतें बहुत बहादुर थी उन्होंने अपने पुरुषों का साथ नही छोड़ा। बहादुर शेरनी की तरह उनका सामना किया। उनमें एकता की भावना कूट-कूट कर भरी है।

''जंगल के फूल'' उपन्यास में जब ग्रयर टेकरी के पास एक सैनिक खड़ा था उनके साथ हजारों सैनिक आदिवासियो को नेता का नाम पूछने के लिए खड़े थे लेकिन- ''सैकड़ों बैंत खाकर भी किसी ने नाम नहीं बताया। औरतों को भी बेरहमी से बेंतों द्वारा पीटा गया। कई को जमींन पर घसीटा गया। सारे दिनमार पीट का सिलसिला जारी रहा। इन बेचारे आदिवासियों को ऐसा धोखा दिया गया था, जैसा यहाँ के लोगों ने आज तक न कभी देखा था और न सुना था।''

अत: स्पष्ट है कि ग्रामीण चेतना के संवाहक तत्वों में राजनीतिक प्रभाव महत्वपूर्ण है। आज लोक अन्याय और शोषण के विरूद्ध संगठित हो रहा है।

1.9 आदिवासी समाज व उनकी पंचायतें

भारतीय ग्रामीण समाज में ग्राम पंचायतों का अपना एक स्थान होता है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में ग्राम पंचायतों की विशिष्ट भूमिका थी तथा आज भी भारत सरकार द्वारा इन ग्राम पंचायतों की फिर से स्थापना कर एक महत्वपूर्ण अभियान चलाया है। हर्ष देव मालवीय के अनुसार- ''भारत पंचायत का उद्‌भव पूर्णत: प्राचीन था और उस समय सह प्रकार्यात्मक दृष्टि से ऐसे आधार के रूप में आ गयी थीजिस पर हमारी संस्कृति फली-फूली ओर समृद्ध हुई।'' अर्थात् प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में ग्राम पंचायतों को एक संस्था के रूप में स्थापित कर गाँवों के चहुँमुखी विकास के लिए आवश्यक माना गया।

गाँवों में स्थापित इन पंचायतों को सच्चे निष्पक्ष न्याय को करने वाली संस्था माना गया है। पंचायत को सत्य और असत्य, पाप-पुण्य का फैसला करने का अधिकार है। गाँव के पंचों को देवता के समान माना जाता है क्योंकि पंचों से मिलकर पंचायत का निर्माण होता है। ये पंच ही प्रत्यक्ष अनुभव व जाँच के आधार पर अपना निर्णय लेते हैं।

आदिवासी समाज में भी किसी घटना की जानकारी प्राप्त करना या फैसला करना पंचायत का काम है। आदिवासियों में पंचायत का अपना विशेष महत्व है। आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था का बहुत बड़ा आधार है। किसी किसी प्रकारके झगड़े विवाद, सामाजिक समस्याओं का निपटारा इन्हीं के माध्यम से किया जाता है। गाँव का मुखिया पंचायत का अध्यक्ष होता है जिसे गायता कहते हैं, इसके आलावा पेरमा, हरगुण्डा सिरहा पंचायत की अदालत की कार्यवाही में हिस्सा लेते हैं।

इस प्रकार आदिवासी समाज में पंचायत का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज मेंउचित व अनुचित काम या लड़ाई-झगड़े की समस्या को सुलझाने के लिए पंचायत होती है और पंचों के द्वारा दिया गया निर्णय ही सर्वोपरि होता है। उसे कोई भीनकार नहीं सकता।

1.10 निष्कर्ष

राजेन्द्र अवस्थी ने उपन्यासों व कहानियों में तदयुगीन आर्थिक व राजनीतिक परिवेश का यथार्थ चित्रण बड़ी ही सजगता पूर्वक किया गया है। आज के वैज्ञानिक युग में अर्थ प्रमुख है। शिक्षित ग्रामीण लोक धन अर्जित करने के लिए शहरीकरण से प्रभावित होकर शहर की ओर गमन कर रहे हैं। मानवीय संवेदनाएँ आज गौण हा`गयी हैं। आज के समय में धन ही मनुष्य का स्तरीकरण करता है जिसके कारण सामाजिक सम्बन्ध विकृत हो चुके हैं। अर्थ की विषमता ने समाज में भेद उत्पन्न किया है। उत्पादन साधनों पर स्वामित्व रखने वाला वर्ग और इन पर आश्रित घोर परिश्रम करके जीने वाला श्रमजीवी वर्ग। शोषण की चक्की मे पिसता चला गया।

नारी घर से बाहर जाकर धन अर्जित करती है जिससे जीवन में अलगाव उत्पन्न होने लगा तथा स्वावलम्बन के कारण उसमें चेतना भी जाग्रत हुई।

राजनीति के प्रति अवस्थी का सर्तक दृष्टिकोण था। उसके अनुसार ही उन्होंने राजनीति की गतिविधियों पर पैनी दृष्टि डालकर राजनीति की गन्दगी कायथार्थ चित्रण किया और उनके विरूद्ध आवाज उठाई। विदेशी शासक आम जनताके विरूद्ध कूटनीति अपनाकर उनका शोषण कर रहे थे। लेकिन लोगों ने अग्रेजों की साजिश समझी और उनके विरूद्ध लड़ने लगे। आदिवासी समाज ने अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई की।

कोई भी व्यक्ति राजनीति से अछूता नहीं है। यह प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति पर प्रभाव डालती है। राजनेताओं ने अपनी स्वार्थ लिप्सा के कारण जनता का भरपूर शोषण किया। भ्रष्टाचार, रिश्वत व स्वार्थी प्रवृत्तियों का समावेश आज की राजनीति में देखने को मिलता है। चुनावों में हिंसा एवं अर्थ की प्रधानता होती है। स्वार्थ व अवसरवादिता आज की राजनीति के प्रमुख अंग है। राजेन्द्र अवस्थी ने राजनीतिक यथार्थ का गहराई से चित्रण किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- राजेन्द्र अवस्थी-'सूरज किरन की छाँव', संस्करण-1958, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली।
- राजेन्द्र अवस्थी-'जंगल के फूल', संस्करण-1960, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली।
- राजेन्द्र अवस्थी-'सीपियाँ', संस्करण-1968, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
- राजेन्द्र अवस्थी-'जाने कितनी आँखें', संस्करण-1970, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली।
- राजेन्द्र अवस्थी-'बहता हुआ पानी', संस्करण-1971,कल्याणी शिक्षा परिषद नई दिल्ली।
- राजेन्द्र अवस्थी-'अकेली आवाज', संस्करण-1976, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली।
- राजेन्द्र अवस्थी-'बीमार शहर', संस्करण-1976, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली।
- राजेन्द्र अवस्थी-मछली बाजार', संस्करण-1981, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली।
- गार्गी चौधरी, विजयदान देथा, लोक एवं संस्कृति प्रकाशक, नवजीवन पब्लिकेशन, जयपुर।
- गुलाब राय-'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', संस्करण, संवत् 2009, साहित्य प्रकाशक मन्दिर, ग्वालियर।
- गुलाब राय-'काव्य के रूप', पाँचवा संस्करण 1964, आत्माराम, दिल्ली।
- गोपाल राय-'हिन्दी कहानी का इतिहास (भाग-प्रथम)', प्रथम संस्करण-2008, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., नई दिल्ली।
- घनश्याम धर त्रिपाठी-'भारतीय सामाजिक व्यवस्था', संस्करण-2012, आस्था प्रकाशन, जयपुर।

अद्‌भुत कथा साहित्यकार: अमृत लाल नागर

पूनम त्यागी

शोधरत, हिन्दी विभाग, विश्वभारती, शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल

सार

अमृतलाल नागर देश के अग्रणी लेखकों में से एक हैं। अमृतलाल नागर ने एक पत्रकार के रूप में शुरुआत की, लेकिन धीरे-धीरे वे देश के फिल्म उद्योग में एक सक्रिय लेखक के रूप में आगे बढ़े। दिसंबर 1953 और मई 1956 तक, उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो, लखनऊ में एक नाटक निर्माता के रूप में काम किया। लेकिन, अंततः उन्होंने इस्तीफा दे दिया और अपना पूरा समय स्वतंत्र लेखन के लिए समर्पित कर दिया। हिन्दी साहित्य में, अमृतलाल नागर नवाबों के वंशजों की बोलचाल की भाषा की नकल करते हुए अपने विनोदी और व्यंग्यात्मक रेखाचित्रों से प्रसिद्ध हुए, हालांकि पतनशील फिर भी हमेशा उदासीन रहे। अमृतलाल नागर की लेखन की एक अद्वितीय मजाकिया शैली है। उन्होंने कई लघु कथाएँ और उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें से सभी लखनऊ के जीवन में व्याप्त हैं। 'ये कोठेवालियां' चौक, लखनऊ में वेश्याओं के अंतरंग रेखाचित्रों को चित्रित करती है। 'सुहाग के नुपुर' मूल रूप से एक रेडियो-नाटक था और बाद में इसे तमिल क्लासिक कहानी 'सिलप्पादिकारम' पर आधारित एक नॉवेलेट में बदल दिया गया। लेकिन उनके सामाजिक उपन्यासों में सबसे अविस्मरणीय चरित्र बुंद और समुद्र में 'बुआ' का है। उनका देर से लंबा उपन्यास अमृत और विश जिसके लिए उन्हें वर्ष 1967 में साहित्य अकादमी पुरस्कार और वर्ष 1970 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार मिला, एक लंबी घुमावदार बल्कि ढीली निर्मित रिगमारोल है जहां फिर से वह संवाद पर अपनी महारत दिखाते हैं।

मुख्य-शब्दः कथा साहित्य; विलक्षण लेखनी; आम भाषा।

परिचय

पंडित अमृत लाल एक महत्वपूर्ण नाम है। उनका जन्म 17 अगस्त 1916 को आगरा के गोकलपुरा मोहल्ला में एक बहुत ही सम्मानित गुजराती ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित राजा राम नगर था। और उनके दादा पंडित शिवराम नागर लखनऊ शिफ्ट हो गए और वहीं रहने लगे। 1935 में, जब अमृत लाल 19 वर्ष के थे, उनके पिता की आकस्मिक मृत्यु हो गई। परिवार का बोझ उनके कंधों पर आ गया। उन्होंने सामान्य स्तर की शिक्षा प्राप्त की थी। अपने पिता के बाद नागरजी को परिवार की दैनिक प्राथमिक जरूरतों की चिंता करनी पड़ी। उन्हें एक बीमा कंपनी में डिस्पैचर की नौकरी 30 रुपये प्रति माह पर मिली।

कुछ लोगों का कहना है कि इस सेवा के पीछे का कारण आर्थिक तंगी पर इतना आना नहीं था जितना कि उन लोगों से छुटकारा पाना था जो अक्सर ऐसे सवाल पूछकर नागरजी को शर्मिंदा करते थे- अब आप क्या करने का प्रस्ताव रखते हैं, बेहतर है कि कुछ सेवा और इसी तरह की सेवा करें। नागरजी ने पूरे मन से सेवा की, लेकिन उन्हें इसे छोड़ना पड़ा, क्योंकि अधिकारी के साथ उनका कुछ झगड़ा हुआ था। उन्होंने यहां सिर्फ 17 दिन काम किया।

प्रारंभिक जीवन और गुण

1940 के दौरान, अमृत लाल सिनेमा की दुनिया में नौकरी खोजने के लिए बॉम्बे गए। 7 साल बाद वे लखनऊ वापस आए। बंबई में 7 साल की इस अवधि के दौरान, उन्हें नाम और प्रसिद्धि दोनों मिलती है। इस युग के दौरान वह खुद को दुनिया में एक साहित्यिक व्यक्ति के रूप में बनाता है। लखनऊ में रहने के दौरान उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में उपलब्धियां हासिल करना जारी रखा। सरकार भारत सरकार ने उन्हें ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली में निर्माता के पद पर नियुक्त किया। 1953 से 1955 तक उन्होंने वहां

दो साल काम किया। चमकदार रंग, स्वस्थ शरीर, मुंह में सुपारी, आंखों में भांग के नशे का असर, कानों तक बालों का झड़ना- यह था पंडित का व्यक्तित्व अमृत लाल नागर। वह बहुत ही मधुरभाषी थे और उन्हें हास्य पसंद था। संक्षेप में, नागरजी देखने में अच्छे थे और अमृत जैसी मीठी और मनभावन भाषा बोलते थे।

अमृत लाल के कुछ व्यक्तित्व

लखनऊ की दयालुता और पूर्णतावाद नागरजी के रहन-सहन और आचरण का अंग बन गया था। नागरजी के इस व्यक्तित्व को उनके उपन्यासों में झाँकते हुए देखा जा सकता है। दूसरे के शब्दों में, उपन्यासकार। यह कहना बहुत अधिक नहीं होगा कि नागरजी लखनऊ के विकास और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। नागरजी के व्यवहार संज्ञानात्मक थे, और उन्होंने 'चकलस' - बुद्धि और हास्य की पत्रिकाओं का इस्तेमाल किया। आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा, 'चकलाओं' से गुजरने के बाद मेरा मृत हृदय फिर से जीवित हो गया।

अमृत लाल एक महान मास्टरमाइंड के रूप में पैदा हुए और अपने पिता के दोस्तों, पंडित, की सहानुभूति और स्नेह पाने का एक अच्छा भाग्य था। माधव शुक्ल बाबू श्याम सुंदर दास, पंडित ब्रज नारायण 'चाकस्त' आदि। इस प्रतिष्ठित संघ ने उनकी प्रतिभा और दृष्टि निर्देशन को भी सामने लाया।

पौराणिक कार्य

1928 में साइमन कमीशन का बहिष्कार भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की महान घटना है। उस समय नागरजी की आयु लगभग 13 वर्ष थी, उस घटना का उन पर बहुत गंभीर प्रभाव पड़ा। तदनुसार, राष्ट्रवाद और विद्रोह की इस भावना की नींव पर उनकी साहित्यिक रचना का घर बनाया जाने लगा। इस अवधि के दौरान नागरजी ने प्रसाद की आंसू की पैरोडी, हितैषी में तीन कविताएँ, और सोहनलाल द्विवेदी की किसान और कुछ अन्य कविताएँ लिखीं। उनकी पहली कहानी प्रयाशचित एक स्थानीय पत्रिका 'आनंद' में प्रकाशित हुई थी। वह तब 15 साल का था। 1935 में, उनकी कहानियों का पहला संग्रह 'वाटिका' प्रकाशित हुआ था। उपन्यासकार नागरजी का यह पहला कदम था। अमृत लाल कथा के बड़े प्रतिभाशाली लेखक थे। उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ, बच्चों के लिए साहित्य, हास्य और व्यंग्य, नाटक और उपन्यास लिखे, लेकिन मूल रूप से वे एक उपन्यासकार थे। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे। लगभग हर उपन्यास में हम सामाजिक जागरूकता देख सकते हैं। प्रेमचंद की तरह नागरजी भी कहानियों में मानवीय मूल्यों का बहुत अच्छा सृजन करते हैं।

साहित्य के निर्माता

नागरजी साहित्य को जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग मानते थे। उनका कहना है कि 'जीवन को आगे बढ़ाने के लिए साहित्य के अलावा भी बहुत कुछ करना पड़ता है। वास्तव में उन्होंने परिवार और समाज दोनों के प्रति एक व्यक्ति की जिम्मेदारी को स्वीकार किया है, यही कारण है कि हम उनके उपन्यासों में स्वस्थ सामाजिक जीवन का दर्शन पाते हैं।

नागरजी हमेशा राजनीति और गंदी पार्टियों की राजनीति से अमित्र रहे। वह कभी भी किसी भी प्रकार की राजनीति से नहीं जुड़े थे - सामान्य और साहित्यिक। उनके बाहरी और आंतरिक दोनों व्यक्तित्व शत-प्रतिशत शुद्ध भारतीय हैं, डॉ. रामविलास शर्मा ने उनके बारे में लिखा है कि 'नागरजी जो कुछ भी कहते हैं, वह बिना किसी आरक्षण के है जो किसी भी चीज या किसी से बेखबर है। उसे जो कुछ भी कहना होता, वह व्यक्ति के मुंह पर ही कह देता।

अमृत लाली की कहानियां

अवषेश, एक दिल हजार अफसाने, एक दिल हजार दास्तान, एटम बम, पंचवन दस्ता और सात कहानियां, उत्तरचारहवा, चक्करदार सेरिहियां, और अंधेरा, चरहट ना दूजो रंग, नुक्कड़ पर, बात की बात और युगवतार।

एक उपन्यासकार के रूप में

नागरजी के पास उपन्यासों की अपनी साख संपत्ति है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं सेठ बांके मल, महाकाल, बूंद और समुंद्र' और अमृत और विष' इनके अलावा, उनके बहुचर्चित उपन्यास नवाबी मसनद, गदर के फूल, शत्रुंज के मोहरे, ये कोठेवलियन और सुहाग के नूपुर हैं।

पुरस्कार और उपलब्धियां

हिन्दी साहित्य की लंबी सेवा के दौरान नागरजी को कई पुरस्कार और सम्मान मिले। अमृत और विष पर उन्हें 1947 में साहित्य अकादमी पुरस्कार और 1970 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार दिया गया। 1981 में भारत की केंद्र सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया। 1986 में, बिहार की राज्य सरकार ने उन्हें राजेंद्र प्रसाद शिकार सम्मान से सम्मानित किया, 1989 में उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार ने उन्हें लोगों में जागरूकता लाने के लिए सम्मानित किया। हिन्दी साहित्य में लगभग 60 वर्षों की सेवा के बाद, नागरजी 74 वर्ष की आयु में किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज लखनऊ में स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर गए।

अमृतलाल नागर ने कई कहानियाँ और हास्य उपाख्यान दिए हैं और साहित्य के अलावा उनकी अन्य रुचियों में पुरातत्व भी शामिल है। अमृतलाल नागर लंबे समय तक किसी भी संस्था, साहित्य या अन्य से जुड़े नहीं रहे। उन्हें अपनी मातृभाषा गुजराती के अलावा संस्कृत भाषा, बंगाली भाषा, मराठी भाषा और उर्दू भाषा सहित कई भाषाओं का ज्ञान है। अमृतलाल नागर ने गोडसे भाटाजी की मराठी पुस्तक मजा प्रवास (मेरी यात्रा) का अनुवाद किया। भारतीय साहित्य में अमृतलाल नागर का बहुत बड़ा योगदान है। उनके कुछ लोकप्रिय उपन्यासों में सात घूंघट वाला मुखड़ा, मानस का हंस, नाचयो बहुत गोपाल, खंजन नयन, ओरछा की नर्तकी, चकलास, करवात, पीठियां, गदर के फूल और अमृत और विष शामिल हैं। अमृतलाल नागर के बाल साहित्य में बजरंगी पहलवान, बजरंगी नौरंगी और नटखट चाची शामिल हैं। अमृतलाल नागर को भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था।

अमृतलाल नागर बीसवीं सदी के प्रमुख हिंदी लेखकों में से एक थे। उन्होंने एक लेखक और पत्रकार के रूप में शुरुआत की, लेकिन 7 साल तक भारतीय फिल्म उद्योग में एक सक्रिय लेखक बने रहे। उन्होंने दिसंबर 1953 और मई 1956 के बीच ऑल इंडिया रेडियो में एक नाटक निर्माता के रूप में काम किया। इस बिंदु पर उन्होंने महसूस किया कि एक नियमित नौकरी हमेशा उनके साहित्यिक जीवन में बाधा होगी, इसलिए उन्होंने खुद को स्वतंत्र लेखन के लिए समर्पित कर दिया।

अक्सर प्रेमचंद के सच्चे साहित्यिक उत्तराधिकारी के रूप में उद्धृत, अमृतलाल नागर ने एक साहित्यकार के रूप में अपनी स्वतंत्र और विशिष्ट पहचान बनाई और भारतीय साहित्य के सबसे महत्वपूर्ण और बहुआयामी रचनात्मक लेखकों में से एक के रूप में गिना जाता है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. राम बिलास शर्मा के शब्दों में, "निस्संदेह अमृतलाल नागर को एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार के रूप में याद किया जाएगा। मेरे लिए, वे कथा साहित्य के एक बहुत बड़े मूर्तिकार हैं। उन्होंने दोनों मानक (मानक) हिंदी की शक्ति का खुलासा किया है। , साथ ही गैर-मानक (ghair&manak) सामान्य की हिंदी''।

अमृतलाल नागर की वास्तविक प्रतिभा उनकी कहानियों और उपन्यासों में पात्रों की एक श्रृंखला विकसित करने की कला में निहित है। अमृतलाल नागर हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक और निर्देशक थे। उनकी विशेषता कॉमेडी, ड्रामा, आत्मकथाएँ और बच्चों के उपन्यास थे। उनका जन्म 17 अगस्त, 1916 को गोकुलपुरा, आगरा, भारत में हुआ था। उनके माता-पिता का नाम विद्यावती और राजाराम नगर है। उनका विवाह प्रतिभा से हुआ था, जिनकी मातृभाषा सावित्री देवी थी। उनकी शादी 31 जनवरी, 1932 को हुई थी। उनके चार बच्चे थे, कुमुद नगर, आरती पांड्या, शरद नगर और डॉ अचला नगर। उनकी पहली नौकरी लखनऊ में ऑल इंडिया यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी में क्लर्क की थी। हालाँकि, उन्होंने इसे अठारह दिनों के भीतर छोड़ दिया। इस बीच, वह नवल किशोर प्रेस और माधुरी के लिए स्वतंत्र लेखन भी कर रहे थे। उन्होंने एक पत्रकार के रूप में भी काम किया और 1940 में सात साल तक फिल्म के निर्माताओं और निर्देशकों के लिए लिखना शुरू किया।

वह डबिंग में एक विशेषज्ञ थे जिसमें फिल्म के संवादों को एक भाषा से दूसरी भाषा में बिना उसका सार खोए अनुवाद करना शामिल है। बहुरानी, चोर, संगम, गुंजन, कुंवारा बाप, कल्पना, उल्झान, किसी से ना कहना, राजा और पराया धन जैसी मोशन पिक्चर की पटकथा और संवादों की सफलता उन्हीं की बदौलत है। उन्होंने पार्टीआग, स्कंदगुप्त, ईदगाह, युगावतार, चेतसिंह, रूपिया तुम्हें खा गया, नुक्कड़ पर और आओ बच्चन नाटक लिखे नाम के नाटकों का निर्देशन भी किया है। इस बीच उन्होंने तीन साल ऑल इंडिया रेडियो में भी काम किया। बाद में, उन्होंने सब कुछ छोड़कर केवल लेखन पर ध्यान केंद्रित करने का फैसला किया।

उन्होंने महाकाल, त्रिलोक विजय, गदर के फूल, निंदिया आजा: ए लोरी, पीढिघ्यां, ये कोठेवलियान, बजरंगी नौरंगी ए चिल्ड्रन नॉवेल, बूँद और समुद्र, जिंके साथ जिया, करवा, टुकडे टुडके दास्तान, शत्रुंज के मोह जैसी किताबें लिखी हैं। महाप्रभु, अग्नि गर्भ, आओ बच्चन नाटक लिखे, साहित्य और संस्कृति, सुहाग के नूपुर, नवाबी मसनद, बिखरे टिंके, सतखंडी हवेली का मलिक, सेठ बंकेमल, अमृत और विष, कृपा दयान चले, खंजन नयन, हम फिदाये लखनौ, सात मुखड़ा, मेरी श्रेष्ठ व्यंग रचनाएं, नाचयो बहुत

गोपाल, एकदा नैमिषारण्ये, चक्कलस, नटखट चाची: कहानियां, शांति निकेतन के संत का बचपन, मानस का हंस, और भी बहुत कुछ।

उन्होंने पुराने लखनऊ के अवशेषों को खोजने में पुरातत्व दल की भी मदद की। वह इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन (इप्टा) या भारतीय जन नाट्य संघ, कार्यकारी बोर्ड उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान और इंडो-सोवियत सांस्कृतिक सोसायटी की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षता समिति के सदस्य भी थे। वह उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, विशेष सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के विशिष्ट पुरस्कार, भारत भारती पुरस्कार और पद्म भूषण के प्राप्तकर्ता भी हैं। कई प्रकाशन गृहों ने उनकी रचनाओं का कई भाषाओं में अनुवाद किया है।

सरल शब्दों और रूपक में ज्ञान के ये मोती किसी ऐसे व्यक्ति से आ सकते हैं, जिसका जीवन में साहित्य जितना ही ठोस आधार हो। अमृतलाल नागर के पास दोनों थे। 17 अगस्त 1916 को आगरा में जन्मे नगर जी बीसवीं सदी के लखनऊ में पले-बढ़े, "साइमन गो बैक'' के नारे से जागते हुए, 1928 में लाठी चार्ज में घायल हुए उस विरोध में भाग लेने से प्रेरित होकर एक कविता लिखी। 1857 के विद्रोह की विफलता को देखते हुए, यह शहर एक स्वतंत्र भारत की आकांक्षाओं के साथ स्मार्ट हो रहा था। यह अभी भी लोककथाओं का हिस्सा था, जैसा कि अंग्रेजों के हाथों में मूल निवासियों की क्रूरता और विनाश की कहानियां थीं। यह पुनर्वास और पुन: जागृति के इस युग में था कि इस युवा लड़के को अपने अकेले बचपन से कहानियों और उपाख्यानों में शरण मिली। अरब नाइट्स, फसाना-ए-आजाद, गुल-ए-बकावली आदि की कहानियों के रूप में "किस्सागो'' (बल्लादेर या कहानीकार) अभी भी आसपास थे। गुजराती नगर कबीले का यह बेहद संवेदनशील लड़का यह सब भिगो रहा था और धीरे-धीरे पाया गया खुद ऐसी कविताएँ लिख रहे थे जो अक्सर उनके स्वयं के प्रवेश द्वारा तुकबंदी वाले शब्द थे। उन्होंने गद्य को अपनी अभिव्यक्ति के वाहन के रूप में बहुत पहले ही महसूस किया और कुछ कहानियाँ लिखीं, एक ऐसी यात्रा शुरू की जो न केवल विपुल होगी, बल्कि हिंदी साहित्य के विशाल क्षेत्र में अमृतलाल नागर के लिए एक अद्वितीय स्थान बनाने के लिए पर्याप्त उदार भी होगी।

"अपने स्वयं के अनुभव से लिखें" एक सलाह थी जो शरत चंद्र से 1930 के दशक में बहुत छोटे अमृतलाल नगर में आई थी। शरत बाबू भारतीय साहित्य के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, जिन्हें यह युवा लड़का जानता था, लेकिन जब उर्दू-हिंदी गद्य के बादशाह प्रेमचंद ने उनके लेखन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्हें एक नोट लिखा, जिसमें कहा गया था कि मुझे आपसे यथार्थवादी कहानियों की उम्मीद है, अमृतलाल नागर रुक गए और आत्मनिरीक्षण किया। एक मानवीय उद्यम के रूप में कला उनके लिए मायने रखती थी। उन्होंने टॉल्स्टॉय को याद किया जिन्होंने कहीं कहा था कि "कला केवल मनोरंजन का एक रूप नहीं है, बल्कि सामाजिक रूप से प्रासंगिक होना चाहिए'' और 18-19 के इस लड़के ने इन जीवन-परिवर्तनकारी प्रभावों के साथ एक लेखक के रूप में वयस्कता हासिल की। उन्होंने अपने विषयों और दर्शकों को इस तरह से चुना जिससे जनता के साथ जुड़ाव बना रहे। फसाना आजाद की प्रसिद्धि के रतन सरशर का एक बड़ा प्रभाव था, जैसे प्रेमचंद, शरत चंद्र और टॉल्स्टॉय। इन सभी विविध लेखकों के तत्वों का संश्लेषण अमृतलाल नागर के लेखन में पाया जा सकता है।

मानद संपादकीय सहायता के लिए प्रेषण क्लर्क के रूप में संक्षिप्त कार्यकाल के बाद, नागरजी बॉम्बे, कोल्हापुर, पुणे और चेन्नई के बीच टॉकी सिनेमा के नए माध्यम के लिए पटकथा और संवाद लिखने के लिए चले गए। सिनेमा के लिए लेखन के इस अनुभव ने उन्हें शब्दों की दृश्य और वर्णनात्मक शक्ति की गहरी समझ दी। इसने शब्दों के प्रयोग में अर्थव्यवस्था की भावना भी पैदा की। उदय शंकर की कल्पना ऐसी ही एक फिल्म थी एम.एस.सुब्बुलक्ष्मी की मीरा। वे हिंदी में डबिंग के लिए क्षेत्रीय फिल्मों के संवाद का अनुवाद करने वाले शुरुआती लेखकों में से एक थे। लेकिन फिल्म उद्योग के अनिश्चित और निर्मम व्यावसायिक तरीकों ने आदर्शवादी नागरजी को मोहभंग कर दिया और उन्होंने सिनेमा की इस दुनिया को अपना स्वामी बनने के लिए छोड़ दिया और अपने पसंदीदा शहर लखनऊ लौट आए। इन शहरों में अपने प्रवास के दौरान नागरजी ने कुछ मराठी और गुजराती लेखकों और नाटकों का हिंदी में अनुवाद भी किया।

टिनसेल की दुनिया को छोड़कर, उन्होंने अपने पहले प्रमुख उपन्यास महाकाल (1947) पर काम शुरू किया, जिसे बाद में भूक के नाम से जाना गया, इसके बाद कई लघु कथाएँ, बच्चों के लिए लेखन, और 1953-56 तक आकाशवाणी, लखनऊ में नौकरी की गई, जिसे उन्होंने एक पूर्ण बनने के लिए छोड़ दिया। समय लेखक। लगभग उसी समय बूँद और समुद्र (1956) एक उत्कृष्ट कृति आई जिसे अभी भी हिंदी साहित्य के बेहतरीन उपन्यासों में से एक के रूप में दर्जा दिया गया है। उनके पहले के उपन्यास

की तरह सामाजिक यथार्थवाद की परंपरा में लिखे गए कहानी में पात्रों के जीवन को बृहत्तर सामाजिक विकास से जोड़ते हुए, एक बूंद और सागर के रूपक का उपयोग करते हुए। अपने परिचित लखनऊ शहर में स्थापित, इस उपन्यास ने पाठकों की एक पूरी पीढ़ी को प्रेरित किया और नागर जी को ताराशंकर बंदोपाध्याय, बंकिम चंद चटर्जी, शरत चंद्र और प्रेमचंद जैसे महान भारतीय उपन्यासकारों की आकाशगंगा में एक स्थायी स्थान दिया। यह ध्यान देने योग्य है कि उस समय लखनऊ में मजाज, अली सरदार जाफरी, सज्जाद जहीर जैसे कवियों के अलावा हिंदी लेखन के दो अन्य प्रमुख दिग्गज, यशपाल और भगवती चरण वर्मा थे, लेकिन नागर जी साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र बने रहे। शहर किसी भी 'वाद' या समूह से संबद्धता के बिना सभी तिमाहियों में आसानी से आगे बढ़ रहा है। वे प्रगतिशील लेखक संघ के गैर राजनीतिक वैकल्पिक मंच लखनऊ लेखक संघ के अध्यक्ष थे, जहां मनोहर श्याम जोशी, के.एन.काकर, रघुवीर सहाय, कुंवर नारायण, कैलाश बाजपेयी और अन्य जैसे नए लेखक उनके साथ बातचीत करेंगे और उनके काम पर चर्चा करेंगे। उन्हें बच्चों के लिए लिखने और शौकीनों के साथ नाटकों का मंचन करने का भी समय मिलता। उनके बाद के उपन्यास शत्रुंज के मोहरे (1959), सुहाग के नुपुर (1960) शिलापादिकारम से कन्नगी और कोवलन की कहानी पर, और कई छोटी कहानियों ने उन्हें हिंदी लेखकों के बीच प्रेमचंद के सच्चे उत्तराधिकारी का दर्जा दिया। उन्होंने अद्वितीय, ये कोठेवलियां (1960), पेशेवर वेश्याओं और वेश्याओं का एक लेख लिखा, जिसे उनकी समकालीन दुर्दशा के अध्ययन और सर्वेक्षण के रूप में प्रलेखित किया गया। उनके लेखन के लिए पुरस्कारों के मामले में पहचान बहुत जल्द हुई; बूंद और समुद्र को काशी नगरी प्रचारनी सभा का बटुक प्रसाद पुरस्कार (1958-1961) और सुधाकर पदक मिला, जबकि सुहाग के नूपुर को उत्तर प्रदेश सरकार का प्रेमचंद पुरस्कार (1962-63) मिला। लेकिन उनके अगले प्रमुख उपन्यास के लिए बड़े पुरस्कार स्टोर में थे। पुरानी पीढ़ी की यादों और लेखक के स्वयं के अनुभवों पर आधारित अमृत और विष ने एक बड़े कैनवास पर विविध पात्रों और स्थितियों का एक चित्रमाला प्रस्तुत किया। अमृत और विष विभिन्न स्तरों पर काम करता है, जो हिंदी उपन्यासों में शायद ही कभी देखी गई जटिलता को सामने लाता है। इसने आधुनिकतावादी रुख के साथ तथ्यों और कल्पना के बीच एक दिलचस्प समानांतर बनाया जिसने एक विशाल पाठक वर्ग की कल्पना को पकड़ लिया। अमृत और विश ने 1967 का प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार और 1970 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार प्राप्त किया, जिससे नागर जी को देश के मास्टर कहानीकारों के शीर्ष पर रखा गया, जिससे उनकी रचनाओं का कई भाषाओं में अनुवाद किया गया।

हास्य और जीवन के उत्साह के साथ उपहार में, नागर जी की तीस से अधिक प्रकाशित रचनाएँ थीं जिनमें गुजराती और मराठी के अनुवाद शामिल हैं। नागरजी को अपने विषयों और पात्रों पर विस्तार से शोध करने के लिए बहुत मेहनत करने की आदत थी, परिचित करने के लिए कई यात्राएं कीं। शब्दों को कागज पर उतारने से पहले तब वे अंतिम मसौदा तैयार करने के लिए खुद को अलग कर लेते थे और एक पांडुलिपि के साथ वापस आते थे जो उस विषय पर अंतिम और निश्चित साहित्यिक कृति बन जाती थी। तुलसीदास और सूरदास पर उपन्यासों ने उन्हें बनारस और मथुरा / वृंदावन की गलियों में घूमने के लिए प्रेरित किया, अपनी प्रजा से जुड़ी घटनाओं और कहानियों का संग्रह किया। इस प्रकार मानस का हंस, जीवन पर रामचरित मानस लिखने वाले महान कवि तुलसीदास को 1972 में मध्य प्रदेश सरकार का अखिल भारतीय वीर सिंह देव पुरस्कार, 1973-1974 में उत्तर प्रदेश सरकार का राज्य साहित्य पुरस्कार और श्री 1978 में रामकृष्ण हरजिमल डालमिया पुरस्कार अब तक की सबसे प्रशंसित आत्मकथाओं में से एक है। खंजन नयन, कवि सूरदास के जीवन पर जीवनी, 1984 में भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता का नथमल भुवाल्का पुरस्कार प्राप्त किया और शेखर सेन के प्रसिद्ध स्टेज शो सहित सूरदास पर अध्ययन के लिए संदर्भ का स्रोत रहा है। एक उच्च जाति की महिला की निचली जाति के पुरुष से शादी करने वाली नाच्यो बहुत गोपाल की गाथा, एक मेहतर बनने से साहित्यिक और सामाजिक हलकों में काफी हलचल हुई। उन्होंने ओरछा की नर्तकी, चकला, करवा, पीढिघ्यां, गदर के फूल, शत्रुंज के मोहरे, उपन्यास भी लिखे, जिनमें बड़े कैनवास हैं और बहुत धाराप्रवाह कथाओं के साथ ऐतिहासिकता की भावना है।

यह सहज, संवादी स्वभाव नागरजी के लेखन की पहचान बना रहेगा, जैसा कि उनकी भाषा होगी, जो कि देवनागरी लिपि में खादी बोली के संश्लेषित गंगा-जामनी संस्करण का निर्माण करते हुए, परिष्कृत सुलभ हिंदी के साथ रोजमर्रा के उर्दू और बोलचाल के शब्दों का स्वतंत्र रूप से उपयोग करती थी। वह अपने समय के सबसे लोकप्रिय लेखक भी थे, नियमित रूप से पत्रिकाओं और मंचों में दिखाई देते थे। इतिहास और उपाख्यानों के अपने विश्वकोश भंडार के साथ, नागरजी को अवध परंपराओं पर एक अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया था। कई लोगों के लिए वह अपने जीवनकाल में लखनऊ तहजीब के सच्चे प्रतीक और प्रतिनिधि थे। लखनऊ के चौक में उनकी हवेली लेखकों, शोधार्थियों, रंगमंच कर्मियों और उनसे मिलने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए

एक खुला घर बना रहेगा, और नागरजी एक बहुत दयालु मेजबान होंगे। बाबूजी, जैसा कि उन्हें प्यार से बुलाया जाता था, उन लेखकों में सबसे अधिक देखे गए, जिन्हें मैंने अब तक जाना है, कई महत्वपूर्ण कलाकारों के साथ लखनऊ की यात्रा के दौरान उनके यात्रा कार्यक्रम में उनके साथ सबसे शीर्ष एजेंडा के रूप में बैठक हुई। वह अपनी लेखन प्रतिबद्धताओं और समय सीमा के बावजूद, उनसे मिलने और सवालों के जवाब देने वाले सभी लोगों का मनोरंजन करने के लिए समय निकाल सकते थे। चाहे वह सत्यजीत रे हो या श्याम बेनेगल, धर्मवीर भारती या अमृता प्रीतम, नागरजी जब भी लखनऊ जाते तो उनके लिए उनसे अवश्य मिलना चाहिए। फिर भी, अपने ध्यान या समाधि में एक साधु या योगी की तरह, बाबूजी अपने दो बेटों और उनके छोटे बच्चों के संयुक्त परिवार की हलचल में लिखते थे, बा (उनकी पत्नी प्रतिभाजी) द्वारा संचालित, जो उनके माध्यम से उनके लिए एक लंगर बने रहे। घटनापूर्ण जीवन, सभी पारिवारिक मामलों का ध्यान रखते हुए, उन्हें लिखने की स्वतंत्रता दी। वह अपनी लेखन डेस्क पर बैठते थे और अपनी पीढ़ी के सबसे विपुल लेखक में से एक बने रहने के लिए नियमित रूप से कई घंटे लिखते थे, बच्चों के लिए एक बड़ी मात्रा के अलावा लघु कथाएँ, व्यंग्य, नाटक, रेडियो फीचर लिखने के लिए समय निकालते थे। उन्हें 1981 में भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण और 1989 में साहित्य अकादमी फेलोशिप के अलावा प्रतिष्ठित संस्थानों से कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया था। लेकिन उनके लिए असली पुरस्कार जनता द्वारा अपने रूप में पहचाने जाने वाले व्यक्ति के रूप में बने रहना था। इस पान प्रेमी, सुंदर आदमी को अपने पारंपरिक सफेद धोती कुर्ते में साइकिल रिक्शा और कारों में आराम से घूमते हुए देखना काफी सुखद था। एक साहित्यिक सहयोगी के साथ सड़क पर आदमी। उर्दू शायरी में नजीर अकबराबादी की तरह, नागर जी दिल से एक जनवादी (पीपुल्स राइटर) बने रहेंगे, एक सौंदर्य कौशल के साथ पात्रों और कहानियों को गढ़ते हुए, जिसने उनके पाठकों और पात्रों का उत्थान किया, अपने शब्दों से सबसे हाशिए पर पड़े और दलितों को सम्मान देना।

निष्कर्ष

अमृतलाल नागर ने एक साहित्यकार के रूप में अपनी स्वतंत्र और विशिष्ट पहचान बनाई और बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्य के सबसे महत्वपूर्ण और बहुआयामी रचनात्मक लेखकों में से एक बने हुए हैं। अमीरों के किस्सागोस या बैलेडियर्स के विपरीत, उन्होंने अपने दर्शकों के रूप में आम आदमी को चुना, लेखन का एक निकाय बनाया, जो कि जिस पड़ोस में वह रहता था, वह अपने सबसे असंख्य और उदार मिश्रण में जीवन का जश्न मनाने वाला कार्निवल है।

संदर्भ

1. नागर, अमृतलाल, भूख, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण - 2005
2. नागर, अमृतलाल, बूँद और समुद्र, किताबमहल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - 1990
3. नागर, अमृतलाल, सेठ बाँके लाल, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण - 2007
4. नागर, अमृतलाल, शतरंज के मोहरे, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण - 2003
5. नागर, अमृतलाल, सुहाग के नुपुर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2001
6. अरोड़ा, डॉ. अतुल, आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिंदी उपन्यास, पब्लिकेशन ब्यूरो चंडीगढ़, संस्करण - 1998
7. रावत, डॉ अनीता, अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता, चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, संस्करण - 2005
8. शर्मा, डॉ केशव कुमार, अमृतलाल नागर के उपन्यासों में यथार्थ बोध और गांधी-दर्शन, अमर प्रकाशन मथुरा, संस्करण - 2009
9. पवार, डॉ. गणेश, अमृतलाल नागर के कथा साहित्य का विवेचन, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण - 1995
10. बंसल, डॉ पुष्पा अमृतलाल नागर, भारतीय उपन्यासकार, दिनमान प्रकाशन दिल्ली, संस्करण - 2001

भारतीय संस्कृति के पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती

डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, संत विनोबा पी0जी0 कालेज, देवरिया, उ0प्र0

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय समाज की अलौकिक विभूति थे। आपका प्रादुर्भाव उस समय हुआ, जब भारतीय संस्कृति विदेशी प्रभाव से आक्रांत थी। शिक्षित वर्ग पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंध से अपना स्वाभिमान, आत्म गौरव और अपनी प्राचीन गरिमा को भूल रहा था। हिन्दू धर्म को जड़ता तथा परम्परागत विचारधाराओं से मुक्त करने के निमित्त आपने 1875 ई0 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज के माध्यम से आपने अपने आन्दोलन को एक सुव्यवस्थित दिशा और गति प्रदान की।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय संस्कृति के पूर्ण पोषक थे। उन्हें प्राचीन भारतीय आदर्श सर्वथा मान्य था। प्राचीन मान्यताओं को अपनाने में ऋषियों, मुनियों एवं अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के समर्थन में ही वे भारतीय जनता का कल्याण देखते थे। उनका नारा था-'वेदों की ओर लौटो' इस एक सिद्धान्त मात्र में ही उनका समस्त जीवन दर्शन छिपा हुआ है। वे क्या चहाते थे और किन मान्यताओं एव आदर्शों को अपनाने मे भारत के सभी वर्गों का कल्याण है, इसका आभास 'वेदों की ओर लौटो' से स्पष्ट हो जाता है। वे सच्चे अर्थ में आदर्शवादी थे। जीवन के समस्त पहलू में उनका आदर्श था। महात्मा गांधी जी का कहना था 'गाँवों की ओर लौटो'। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रुसो ने भी 'प्रकृति की ओर लौटो' का नारा दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक संस्कृति के महान पोषक थे। प्राचीन वैदिक परम्परा में शिक्षा वह है, जिससे विद्या मिलती है। स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा उसे कहते हैं, जिसमें विद्या, सभ्यता, धर्मात्मायन और जितेन्द्रियता आदि सद्गुणों का प्रस्फुटन हो तथा अविद्या का नाश हो। उनके अनुसार दर्शन के आधार चार वेद हैं। इनको वो ब्रह्मवाक्य मानते थे। इनके अतिरिक्त वे किसी और आधार को विश्वसनीय नहीं समझते थे। धर्म, मन, वचन और कर्म से सत्य और न्याय का पालन करने वाला होता है। धर्म के अन्तर्गत उन्होंने भक्ति को भी महत्त्व सप्रदान किया। उनके अनुसार ईश्वर भक्ति के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। स्वामी दयानन्द का दर्शन पूर्णत: वेदों पर आधारित था। उन्होंने उन वैदिक उपदेशों को अपने ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करके उन्हें सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाते हुए उनके महत्त्व को प्रकाशित करने का प्रयास किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय संस्कृति के पूर्ण पोषक होने के ही कारण स्वामी जी सादा जीवन, उच्च विचार के सिद्धान्तों को अपनाते हैं और प्रत्येक बालक, शिक्षक, अभिभावक, माता-पिता को भी अपने जीवन में इस परम उज्ज्वल आदर्श को अपनाने पर बल देते हैं। शिक्षा का आदर्श वे मानते हैं सादा जीवन उच्च विचार के संस्कार का निर्माण। भारतीय संस्कृति की रक्षा का उपाय वे इसी आदर्श को स्वीकार करने में देखते थे। उन्होंने बड़े स्पष्ट रूप में कहा है 'मानव जीवन का कल्याण और प्रगति इसी में है।' उनका कहना अक्षरश: सत्य है। आज भारतीय समाज में यह आदर्श लुप्त होता जा रहा है। चूँकि समाज में इस आदर्श का लोप हो रहा है, अत: विद्यालयों में भी इसका ह्रास स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय स्तर के किसी भी युवक का जीवन अब प्राय: न तो सादा और न उच्च भावना से ओत-प्रोत है। आदर्शवाद का सर्वथा ह्रास हो गया है। आज पूरा देश अनुशासन की समस्या से चिंतित है। इसका मूल कारण यह भी है कि आज के विद्यार्थियों में ही नहीं, अपितु शिक्षकों एवं

अभिभावकों में भी कृत्रिमता की भावना जड़ जमाती जा रही है। हमारे समक्ष ऊँचा आदर्श नहीं है और हमारा जीवन आडम्बरपूर्ण हो गया है। इस सामाजिक और मनोवैज्ञानिक मन:स्थिति में आमूल परिवर्तन करना ही पड़ेगा। विश्व में जितने महान पुरुष हुए हैं, सभी के सामने महान लक्ष्य और उच्च विचार थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल और पवित्र था। उच्च आदर्श के कारण ही उन्होंने करोड़ों भारतीय जनता का कल्याण किया और आज भी उनकी संस्था ''आर्य समाज'' हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति के रक्षा तथा पुनरुद्धार में अनवरत संलग्न है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा-दर्शन में आदर्शवाद, प्रकृतिवाद और यथार्थवाद का सफल समन्वय परिलक्षित होता हैं वे सच्चे अर्थों में मानवतावदी थे। वे मात्र स्वदेश का ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व का कल्याण चाहते थे। मानव-कल्याणार्थ ही उन्होंने अपना जीवन त्याग दिया। सत्तर वर्ष की अवस्था में यूनान के महान् चिंतक महात्मा सुकरात ने भावी युग के सत्य और ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अविचलित और निर्विकार भाव मुद्रा में अदालत की कठोर आज्ञा को अंगीकार करते हुए जहर का प्याला चूमा था और उसे गले के नीचे उतार मृत्यु का सहर्ष स्वागत किया था। ठीक उसी प्रकार भारत के तपस्वी स्वामी दयानन्द ने भी उनसठ वर्ष की अवस्था में जनकल्याणार्थ अपने को उत्सर्ग कर दिया और मृत्यु का आलिंगन करते हुए कहा-''ईश्वर तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।'' वे विस्तुत: भारतीयों को सर्वप्रकारेण उन्नत और सुखी देखना चाहते थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती प्राचीन भारत में प्रचलित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्श को अपनाने पर बल देते हैं। शिक्षा-प्रणाली के क्षेत्र में उन्होंने गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के आदर्श को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। प्राचीन भारतीय गुरुकुल के आदर्शमय जीवन को ही भारतीय समाज के लिए आदर्श मानते हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशवान बनाने के लिए शिक्षा का विधान किया गया था। प्राचीन भारत का निर्माण धार्मिक तत्वों के आधार पर हुआ था। प्राचीन भारतीयों का धार्मिक और नैतिक जीवन जगत प्रसिद्ध है। धार्मिक जीवन के कारण उनका दृष्टिकोण भी सर्वथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक होता था। अत: शिक्षा का उद्देश्य भी धर्म से पूर्णत: प्रभावित होता था। विद्यार्थी के अन्दर धार्मिक प्रवृत्ति को जाग्रत करना ही शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य था। विद्यार्थियों का गुरुकुल जीवन धार्मिक एवं आध्यात्मिक आधार पर इस प्रकार गठित था कि अपने भावी जीन में आध्यात्मवाद, आत्मनिग्रह एवं आत्म संयम आदि सद्गुणों की ओर से स्वत: प्रवृत्ति होते थे।

स्वामी दयानन्द ने मन, वचन और कर्म से भारतवासियों का उत्थान चाहा। उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचारी रहकर अपना समस्त जीवन अपने समाज के कल्याणार्थ व्यतीत किया। समाज में प्रत्येक पहलू को उन्होंने अपनी अलौकिक दृष्टि से देखा ओर कल्याणार्थ मार्ग प्रशस्त किया। भारतीय बालक-बालिकाओं के कमजोर स्वास्थ्य को देख उन्हें बहुत दु:ख होता था। प्लेटो चाहते थे कि आदर्श समाज के नागरिक स्वस्थ हो, अस्वस्थ होना वे लज्जाजनक समझते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि आदर्श समाज के लिए स्वस्थ व्यक्तियों का होना अनिवार्य है। अत: शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में ही शारीरिक विकास की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। रूसो बालकों को शारीरिक सुदृढ़ता प्रदान करना चाहते हैं। रूसो अपनी पुस्तक एमिल में लिखते हैं-''दुर्बलता ही दुष्टता का जन्मदायिनी शक्ति है। बालक निर्बल होने के कारण ही अनैतिक होता है। उसे पुष्ट बनाओ, देखो वह बुराई छोड़ देगा। जो सब कुछ करने में समर्थ है, वह बुरा नहीं होता है।''

प्राचीन भारत में सुन्दर, पुष्ट और बलवान शरीर तथा स्वास्थ्य की शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था। उनका विश्वास था कि व्यक्ति का मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक विकास एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध है कि उन्हें विलग नहीं किया जा सकता है। शरीर को स्वस्थ रखने की पवित्र दृढ़ भावना एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जिसकी परिधि के अन्तर्गत अन्य गुण मड़राते हैं।

स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य उच्च चरित्र का निर्माण करना है। मनुष्य का चरित्र उसके विभिन्न कार्यों और इच्छाओं की समष्टि, उसके मान के समस्त झुकाओं का योग है। सुख और दु:ख उसकी आत्मा होकर क्रमश: जिस प्रकार धारावाहित होते हैं वे उसका अपनी द्वारा तथा संस्कार अपना छोड़ जाते हैं। शिक्षा का उद्देश्य मानव को नैतिक गुणों से सम्पन्न करना है। मानवीय गुणों की सम्पन्नता ही नैतिकता है। नैतिकता में सत्य, शिवम, सुन्दरम तथा धर्म की प्राप्ति के भाव निहित हैं।

विद्यार्थियों को उच्च आदर्शों की प्राप्ति तभी होगी, जब वे सरल जीवन व्यतीत करेंगे। रुसो, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी के समान ही स्वामी दयानन्द ने भी बालक-बालिकाओं में मिथ्याडम्बर को अशोभनीय बतलाया है। विद्यार्थी जीवन को पवित्र और आदर्श रखने के लिए दिखावटीपन अथवा अन्य सजावट को त्यागना पड़ेगा। सादे जीवन और उच्च विचार का प्रभाव बहुत सूक्ष्म तथा स्थायी होता है। स्वामी जी ने विद्यालय वातावरण को भी सरल एवं पवित्र बनाने पर बल दिया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विद्यार्थियों के खान-पान, आचार-विचार, वेश-भूषा सभी जगह सादगी के सिद्धान्त को अपनाने को बतलाते हैं। उनका विचार था कि प्रत्येक विद्यार्थी को एक समान भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा दी जाए और यह तभी सम्भव होगा, जब हमारा रहन-सहन सादा एवं पवित्र बनेगा। उन्होंने शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए मनुस्मृति के उस उद्देश्य को धारण करने को कहा, जिसमें बतलाया गया है कि गुरु अपने शिष्यों के मस्तिष्क में यह भावना उत्पन्न करें कि धन और सांसारिक सुखों से विमुख हुए बिना वास्तविक धर्म का ज्ञान सम्भव नहीं है।

विद्यार्थी को विद्यालय में आते ही गायत्री मंत्र का उपदेश करके संध्योपासन, स्नान, आचमन एवं प्राणायान आदि क्रियायें सिखायी जानी चाहिए। स्नान से शरीर के बाहरी अवयवयों की शुद्धि होती है। स्नान भोजन के पूर्व करना चाहिए। प्राणायाम से आन्तरिक शुद्धि होती है और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता है। इससे मन आदि इंद्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। केवल पुरुषों को ही नहीं, बल्कि स्त्रियों को भी योगाभ्यास करना चाहिए। संध्योपासन को ब्रह्म यज्ञ भी कहते हैं। आचमन में जल को हथेली में लेकर सके मूल और मध्य देश में ओष्ठ लगाकर वह जल ओष्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचाया जाता है, जिससे कंठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति होती है। इसके पश्चात् मार्जन, अर्थात् मध्यमा और अनामिका उगली के अग्रभाग से नेत्र आदि अंगों पर जल छिड़कने से आलस्य दूर होता है। इसके बाद प्राणायाम, मनसा परिक्रमण, उपस्थान, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति समझनी चाहिए।

वैदिककालीन शिक्षा के समान ब्राह्मण युग में भी गुरु और शिष्य का आत्मिक, आध्यात्मिक एवं सुमधुर सम्बन्ध बना रहा। पिता-पुत्र के समान, गुरु-शिष्य का यह पवित्र धामिक सम्बन्ध अत्यन्त मधुर था। गुरु-सेवा में किसी प्रकार की भी त्रुटि उसकी कर्तव्यहीनता का सूचक थी। वैदिककालीन शिक्षा प्रणाली में आचार्य देवों भव की पवित्र भावना आज भी वतमान बनी रही है। गुरु गृह का समस्त कार्यभार सम्भालना ब्रह्मचारी का दायित्व था। साथ ही उसको गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना पड़ता था। शिष्य गुरु का कभी विरोध नहीं कर सकता था। उसे गुरु की पत्नी और पुत्रों का भी आदर करना होता था।

वैदिक युग के समान शिक्षण पद्धति मौखिक थी। विषयों को कंठस्थ करा दिया जाता था, क्योंकि तब भी ग्रंथ लिखित रूप में नहीं थे। इस प्रकार शिक्षा एक पीढ़ी से दूरी पीढ़ी को मौखिक रूप से हस्तान्तरित होती थी। ब्राह्मण काल में सूत्र-पद्धति, प्रश्नोत्तर-पद्धति और शास्तार्थ पद्धति भी पठन-पाठन की प्रमुख विधियां थीं। शिक्षा प्रणाली वयक्तिगत थी। प्रत्येक शिष्य को अलग-अलग शिक्षा दी जाती थी, परन्तु सामूहिक रूप में भी समय-समय पर उन्हें विषय रटाया और समझाया जाता था। प्राचीन गुरुकुल आश्रम का शिक्षक-शिष्य सम्बन्ध धार्मिक, नैतिक, सहयोग, विनय तथा शील के उच्च आदर्श पर अवस्थित होने के फलस्वरूप श्रेष्ठ कोटि का माना जाता था। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों को दण्डित करने की समस्या ही नहीं उपस्थित होती थी, क्योंकि छात्रों में अनुशासनहीनता और आचरणहीनता नहीं के बराबर थी। ये सादा जीवन एवं उच्च विचार के सिद्धान्त को अपनाते थे। आधुनिक शिक्षा का यह मनोवैज्ञानिक तत्व भारतीयों को उसी युग में मान्य था। गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या कम होती थी। अतः शिक्षक उन पर व्यक्तिगत ध्यान देकर उनका व्यक्तिगत विकास कर पाते थे।

वर्तमान काल में प्रचलित योजना पद्धति (Project Method) उस काल में भी प्रचलित थी। गुरु अपने गुरुकुल में अपने शिष्यों द्वारा कुछ न कुछ आवश्यक योजना सम्पादित कराते थे। यज्ञ की तैयारी में वेदी के लिए ईंट बनाना, वेदी की लम्बाई-चौड़ाई के आधार पर आकृति निश्चित करना, विभिन्न आवश्यक सामग्रियों को इकट्ठा करना, हवन के लिए लकड़ी लाना तथा यज्ञ शाला की सजावट आदि की व्यवस्था शिष्यों को ही करनी पड़ती थी। विद्यार्थी आश्रम का मकान भी बनाते थे। शिक्षा का रूप सामूहिक था।

प्राचीन गुरुकुलों में हमें उन कतिपय मनोवैज्ञानिक तत्वों का दर्शन होता है, जिनकी महत्ता का प्रतिपादन वर्तमान शिक्षा-मनोवैज्ञानिक करते हैं, कितने आश्चर्य की बात है कि ई0पू0 2000 वर्ष पहले भारतीय समाज मनोवैज्ञानिक की आधुनिक महत्ता से अवगत कराया था। तभी अपनी शिक्षण संस्थाओं में उसका सफल प्रयोग करता था। महर्षि दयानन्द इस आदर्श के पोषक थे।

स्वामी दयानन्द स्त्री शिक्षा के पक्ष में थे। उन्होंने कहा था कि वेदों में कहीं पर ऐसा निर्देश नहीं है कि नारियों वेदों के अध्ययन के लिए अनुपयुक्त हैं। अतः स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप में शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार है। जिस प्रकार पुरुष व्याकरण, धर्म और अपने व्यवसाय सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ते हैं, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी व्याकरण, धर्म, चिकित्सा, गणित, अर्थशास्त्र आदि का अध्ययन करना आवश्यक है। इस प्रकार अध्ययन द्वारा वे सत्य, उचित व्यवहार, अपने पति के प्रति सद्व्यवहार, अपने बच्चों को पालने तथा उनकी व्यावहारिक शिक्षा-दीक्षा के निरीक्षण और गृह कार्य की कुशलता का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय संस्कृति के पूर्ण पोषक थे। आपका सबसे बड़ा योगदान हिन्दू जनता को सशक्त और सप्राण बनाया। सदियों के आक्रमण से कमजोर बनी हुई जनता को उन्होंने पुनः शक्ति का संदेश दिया। स्वामी दयानन्द जन जागरण के अग्रदूत थे और प्राचीन आदर्शों को जनजीवन की भीत बनाना उनका कार्यक्रम था। नैतिक आदर्शों से युक्त होने पर सामाजिक और राजनैतिक समृद्धि प्राप्त होगी, ऐसा उनका विश्वास था। इस प्रकार वे सर्वविध लौकिक, नैतिक और सामाजिक अभ्युदय के प्रबल उद्घोषक थे।

सन्दर्भः

1. विद्या वाचस्पति, इन्द्रः भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास।
2. वर्मा, वी0एन0 प्रसादः विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पटना बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
3. वर्मा, वी0पी0ः आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
4. चौधरी, एस0सी0 रायः आधुनिक भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एव आर्थिक इतिहास, सरजीत पब्लिकेशन्स
5. अवस्थी, अवस्थीः आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
6. सिंह, अयोध्याः भारत का मुक्ति संग्राम, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
7. पाण्डेय, आर0एस0, उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन।
8. चौबे, एस0पी0ः भारतीय शिक्षा दर्शन, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
9. दाधीच, कमालमिया, एम0के0ः महात्मा गांधी विश्वकोश, नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाउऊ, नई दिल्ली।
10. गांधी के शैक्षिक विचार, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्।
11. मिश्रा एम0के0 और अन्य, गांधी और शिक्षा, नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

21वी सदी में भारत-अफ्रीका संबंध

नितेश कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, राज ऋषि भर्तृहरि विश्वविद्यालय अलवर, राजस्थान

शोध आलेख सार

अफ्रीका के प्रति भारत का दृष्टिकोण सदैव मित्रतापूर्ण तथा सहयोगात्मक रहा है। इस शोध आलेख में भारत-अफ्रीका संबंधों पर प्रकाष डाला जाएगा। भारत-अफ्रीका के मध्य राजनैतिक, आर्थिक, निवेषात्मक तथा सांस्कृतिक संबंध है। सभी पक्षों का विवेचनात्मक मूल्याकंन किया जाएगा। भारत एवं अफ्रीका के मध्य विदेषी संबंधों को राष्ट्रीय हित तथा बदलते वैष्विक परिदृष्य के आधार पर बढ़ावा दिया गया है। अफ्रीका के प्रति भारत का दृष्टिकोण भारतीय विदेष नीति से परिलक्षित होता है। भारतीय विदेश नीति का आधार (i) शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, पारस्परिक सहयोग, अहस्तक्षेप, निरशस्त्रीकरण तथा विकास रहा है। (ii) अपने राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देना। इन्हीं मूल तत्वों को ध्यान में रखते हुए अफ्रीका के साथ संबंधों को बढ़ावा दिया गया है। इस आलेख में भारत द्वारा अफ्रीका के साथ संबंधों को बनाने के लिए किए गए प्रयासों को बताया जाएगा। भारत आर्थिक क्षेत्र में अफ्रीकी राष्ट्रों का महत्वपूर्ण हिस्सेदार बनता जा रहा है। भारत एवं अफ्रीका के मध्य व्यापार, निवेश, खाद्य सुरक्षा, सूचना एवं संचार तकनीकी, शांति एवं सुरक्षा तथा सुशासन के क्षेत्र में मिलकर कार्य किया जा रहा है। इस शोध आलेख में सार्वजनिक क्षेत्र तथ नागरिक समाज द्वारा किए जा रहे कार्यो पर प्रकाश डाला जाएगा।

मूल शब्दः राजनैतिक, सांस्कृतिक, अहस्तक्षेप, निरषस्त्रीकरण, राष्ट्रीय हित, सुषासन, नागरिक समाज।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः

भारत एवं अफ्रीका के बीच संबंधों का एक लम्बा एवं सुनहरा इतिहास रहा है। प्राचीन काल में सिंधु सभ्यता एवं नील सभ्यता के बीच व्यापारिक संबंधों के साक्ष्य प्राप्त हुए है। मध्यकाल में भी भारत एवं अफ्रीका के बीच व्यापारिक संबंध थे। आधुनिक काल में भारत एवं अफ्रीका दोनों पष्चिमी राष्ट्रों के उपनिवेष रहे है। इसी दौरान भारतीय मजदूरों का अफ्रीका में पलायन हुआ। दक्षिणी एवं पूर्वी अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों की संख्या अधिक है। द्वितीय विष्व युद्ध के बाद भारत-अफ्रीका संबंधों को सम्प्रथुता, पारस्परिक सहयोग, अहस्तक्षेप, समानता तथा उपनिवेशवाद का उन्मूलन आदि सिद्धान्तों के आधार पर बढ़ावा दिया गया। इसी दौरान भारत-अफ्रीका के बीच दक्षिण-दक्षिण सहयोग को बढ़ावा दिया गया। एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रों की एकता के लिए बाण्डुंग सम्मेलन, 1955 को आयोजन भारत द्वारा किया गया। शीत युद्ध के द्वौर में भारत-अफ्रीकी राष्ट्रों द्वारा गुटनिरपेक्षता को बढ़ावा दिया गया। प्रथम गुटनिरपेक्षता सम्मेलन, बेलग्रेड, 1961 में भारत-अफ्रीकी राष्ट्रों द्वारा एकता का परिचय दिया गया।

1991 के बाद भारत-अफ्रीकी संबंधों में एक नए दौर का प्रारम्भ हुआ। भारत द्वारा उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नीति को अपना लिया गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय विदेश नीति में व्यापार एवं निवेश को बढ़ावा देने वालों तत्वों पर बल दिया गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय विदेश नीति में व्यापार एवं निवेश को बढ़ावा देने वालो तत्वों पर बल दिया गया। भारत द्वारा इस दौरान अफ्रीका के साथ व्यापारिक रिश्तों को बढावा दिया गया। भारत एवं अफ्रीका के द्वारा विष्व व्यापार संगठन में भी आपसी सहयोग किया जा रहा है। भारत एवं अफ्रीका मिलकर आपसी विकास को बढ़ावा देने की रणनीति पर काम कर रहे है।

राजनैतिक संबंध

भारत-अफ्रीका के बीच राजनैतिक संबंध ऐतिहासिक, सौहाद्रपूर्ण तथा मैत्रीपूर्ण रहे है। 21 वी सदी की शुरूआत से ही भारत-अफ्रीका के बीच राजनैतिक वार्ताओं का दौर लगातार जारी रहा है। दोनों पक्षों के शीर्ष नेतृव्य के द्वारा आपसी यात्राओं, सम्मेलनों तथा द्विपक्षीय वार्ताओं को बढ़ावा दिया गया है। भारत-अफ्रीका के मध्य राजनैतिक संबंधों को बढ़ावा देने के लिए सयुक्त आयोग का गठन किया गया। भारतीय विदेश नीति में अफ्रीका के प्रति नए दृष्टिकोण 'फोकस अफ्रीका' का समावेश किया गया। भारतीय राजनयिकों द्वारा अफ्रीकी राष्ट्रों के साथ राजनयिक संबंधों को बनाया जा रहा है। भारत-अफ्रीका के बीच द्विपक्षीय राजनैतिक संबंधों को अन्तः सरकारी आयोगों (व्यापार, आर्थिक, निवेश तथा सांस्कृतिक) के गठन के द्वारा मजबूती मिली। इस दौरान भारतीय विदेश मंत्रालय द्वारा लगातार अफ्रीकी राष्ट्रों के साथ कई दौर की वार्ताओं का आयोजन किया गया। भारत-अफ्रीकी राष्ट्रों के बीच लगातार आर्थिक सहयोग तथा सहायता के क्षेत्र में सयुक्त परियोजनाओं को बढ़ावा दिया गया। भारत द्वारा अफ्रीका के सब सहारा क्षेत्र के राष्ट्रों के साथ संबंधों को बनाने में नया आयाम दिया गया। भारत एवं अफ्रीका के मध्य राजनैतिक संबंधों को आपसी सहयोग एवं विकास के लक्ष्य के साथ निरतंर बढ़ाया जा रहा है।

प्रथम भारत-अफ्रीका फोरम सम्मेलन का आयोजन 4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 2008 को नई दिल्ली में हुआ। इस सम्मेलन 14 अफ्रीकी राष्ट्रों द्वारा भाग लिया गया। इस सम्मेलन के माध्यम से भारत-अफ्रीका एकता को बढ़ावा दिया गया। इस सम्मेलन में बढ़ते तेल मूल्य तथा खाधान्न विशेष चर्चा के विषय रहे। भारत द्वारा अफ्रीकी राष्ट्रों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा क्षेत्र में मदद का आश्वासन दिया गया।

द्वितीय भारत-अफ्रीका फोरम सम्मेलन का आयोजन वर्ष 2011 में अदिस अबाबा, इथोपिया में किया गया। जिसमें भारत तथा 15 अफ्रीकी राष्ट्रों के द्वारा भाग लिया गया। इस सम्मेलन बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत-अफ्रीका साझेदारी को कैसे लाभदायक बनाया जाए पर चर्चा की गयी।

भारत-अफ्रीका के बीच समूह-77 तथा नाम पंचों के माध्यम से भी आपसी भाइचारे को शति मिली। दक्षिण-दक्षिण सहयोग के माध्यम से भी भारत-अफ्रीका एक साथ मिलकर कार्य कर रहे है। भारत एवं अफ्रीका के बीच संयुक्त राष्ट्र तथा सहयोगी संस्थानों में भी एकता का परिचय लिया गया। विश्व व्यापार संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश में भी भारत-अफ्रीकी राष्ट्रों की एकजुटता देखी जा सकती है। भारत-अफ्रीका दोनों विकासशील कर्ता है। भारत अफ्रीका में आपसी सहयोग एवं सद्भाव की भावना है।

व्यापार एवं वाणिज्य

भारत-अफ्रीका के मध्य व्यापार, निवेश तथा आर्थिक सहयोग को लगातार गति मिल रही है। पिछले एक लम्बे दौर के ठहराव के बाद वर्ष 2000 से व्यापार एवं वाणिज्य का ग्राफ लगातार वृद्धि कर रहा है। अफ्रीका में भारतीय निर्यात वर्ष 2000 में 2040. 76 मिलियन डॉलर से बढ़कर वर्ष 2010 में 15604 मिलियन डॉलर हो गया। भारतीय निर्यात की वार्षिक वृद्धि दर 7 प्रतिशत रही। अफ्रीका से भारतीय आयात वर्ष 2000 में 1044.70 मिलियन डॉलर से बढ़कर वर्ष 2010 में 24642.17 मिलियन डॉलर हो गया।

भारत-अफ्रीका के बीच व्यापार में सबसे ज्यादा हिस्सा ऊर्जा क्षेत्र का रहा है। भारत की बढ़ती आर्थिक विकास दर के लिए ऊर्जा संसाधन महत्वपूर्ण उत्पाद है। अफ्रीका से आयातित तेल संसाधनों की वार्षिक वृद्धि दर लगभग 48 प्रतिशत है। भारतीय आयात में तेल की हिस्सेदारी लगभग 15 प्रतिषत ही भारत द्वारा अफ्रीका को परिष्कृत तेल का निर्यात किया जाता है। अफ्रीका में तेल परिष्करण की सुविधा बहुत ही कम है। तेल के अलावा अफ्रीका में कोयला, गैस, यूरोवियम के भंडार है। दक्षिण अफ्रीका तथा मोजाम्बिक में कोयला, अल्जीरिया, नाईजीरिया में प्राकृतिक गैस मलावी, दक्षिण अफ्रीका तथा नामीबिया में यूरेनियम के भंडार पाए जाते है।

भारत एवं अफ्रीका के मध्य कृषि क्षेत्र की व्यापार में हिस्सेदारी बढ़ रही है। अफ्रीका में खाधान्न की भारी कमी है। अफ्रीका कृषि तकनीक में भी पिछड़ा मालद्वीप है। कृषि संसाधनों में चावल की हिस्सेदारी सर्वाधिक है। मांस, चीनी एवं मछली उत्पाद की भी हिस्सेदारी बढ़ रही है।

पश्चिमी अफ्रीकी राष्ट्र तेल संसाधनों से सम्पन्न राष्ट्र है। जिसकी भारत को सबसे ज्यादा जरूरत है। पूर्वी अफ्रीकी राष्ट्रों को भारतीय निर्यात सर्वाधिक है। अफ्रीकी राष्ट्र तेल, प्राकृतिक गैस, खनिज तथा अणु ऊर्जा संसाधनों से परिपूर्ण है। अफ्रीकी राष्ट्रों द्वारा

भारत को कई खनिज उत्पादों का निर्यात किया जाता है। भारत द्वारा अफ्रीका से रत्न एवं ज्वारातों का आयात किया जाता है। भारत द्वारा अफ्रीका को तकनीक संसाधनों का निर्यात किया जाता है। भारतीय निर्यात बहुपक्षीय उत्पादों का है। पिछले दषक में भारतीय निर्यात में लगातार वृद्धि दिखाई दे रही है। भारत द्वारा अफ्रीका के साथ कई संयुक्त उघम स्थापित किए गए है। भारत द्वारा "फोकस अफ्रीका" रणनीति के माध्यम से अफ्रीका के साथ व्यापार को पुर्नसंरचित किया जा रहा है। भारत अपनी ऊर्जा संसाधनों की पूर्ति के लिए अफ्रीकी राष्ट्रों के साथ आर्थिक संबंधों को सुदृढ़ कर रहा है।

निवेशात्मक पक्ष

20वीं सदी भारत द्वारा अफ्रीका में बहुत कम मात्रा में निवेष किया गया था। इस दौर में सीमित मात्रा एवं क्षेत्र में भारत द्वारा निवेश किया गया (पूर्वी अफ्रीकी राष्ट्र) परन्तु 21 वी सदी की शुरूआत से ही भारत द्वारा अफ्रीका में किया गये निवेष की मात्रा में वृद्धि दर्ज की गयी। भारत द्वारा अफ्रीकी राष्ट्रों के तेल संसाधन, खनन, रसायन, प्राकृतिक गैस तथा संचार एवं सूचना क्षेत्र में निवेश किया गया।

भारत इस समय अफ्रीका में पाँचवां सबसे बड़ा निवेशकर्ता राष्ट्र है। भारत द्वारा वर्ष 2000 में 9.2 बिलियन डॉलर से 2011 में 14.1 बिलियन डॉलर निवेश किया गया। भारतीय सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की कई कंपनियों द्वारा अफ्रीका के खनिज, ऊर्जा तथा संचार एवं सूचना क्षेत्र में कई परियोजनाएँ चलाई जा रही है। ओएनजीसी विदेश लिमिटेड द्वारा मिस्त्र, सूडान, नाईजीरिया, नाईजर आदि के तेल एवं प्राकृतिक गैस क्षेत्र में निवेष किया गया है। मॉरीसस, सूडान, मिस्त्र, नाईजीरिया तथा लिबिया में भारतीय निवेश की मात्रा सर्वाधिक है।

अफ्रीकी राष्ट्र मॉरिसस के द्वारा भारत में सर्वाधिक निवेश किया गया है। मॉरिसस द्वारा लगभग 40 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्राप्त होता है। मोरक्को एवं दक्षिण अफ्रीका से भी भारत में निवेश की मात्रा अधिक है। अफ्रीकी राष्ट्रों द्वारा वर्ष 2000 में 1.5 बिलियन डॉलर से वर्ष 2010 में 7 बिलियन डॉलर तक निवेश प्राप्त हुआ।

कृषि क्षेत्र

भारत-अफ्रीका के मध्य कृषि क्षेत्र में संबंधों को लगातार गति मिल रही है। लगभग 70 भारतीय कृषि कंपनीयों द्वारा अफ्रीका में निवेश किया जा रहा है। भारत कंपनियों का पंसदीदा स्थान पूर्वी अफ्रीकी राष्ट्र है। पूर्वी अफ्रीकी राष्ट्रों में मक्का पाँम आयंल तथा चावल क्षेत्र थे निवेश किया गया है। भारतीय बीज उत्पादक कंपनियों द्वारा भी अफ्रीका में निवेश किया जा रत्न है। भारतीय कृषि तकनीक तथा नवाचार से अफ्रीकी राष्ट्रों को खाधान्न उत्पादन में लाभ मिल रत्न है।

विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र

भारत-अफ्रीका के बीच विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में सहयोग महत्वपूर्ण है। 1964 में भारत द्वारा अफ्रीकी राष्ट्रों के लिए भारतीय तकनीकी एवं आर्थिक सहयोग परियोजना का शुभारम्भ किया गया। इस प्रोग्राम के माध्यम से भारत द्वारा अफ्रीकी राष्ट्रों को तकनीकी सहायता एवं नवाचार प्रदत्त किया गया। भारतीय विज्ञान एवं तकनीकी विभाग द्वारा अफ्रीकी राष्ट्रों के लिए कई नए प्रोग्रामों को लॉच किया गया। जिसमें अफ्रीकी छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ, शिक्षण सुविधाएँ एवं अवसंरचना प्रदान की जा रही है। भारत द्वारा अफ्रीका को संचार एवं सूचना क्षेत्र में महत्वपूर्ण सहयोग दिया जा रहा है। पान अफ्रीका-ई नेटवर्क परियोजना के माध्यम से अफ्रीकी राष्ट्रों की मदद की जा रही है। अफ्रीकी मानव संसाधन के लिए डीजिटल शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है। संचार एवं सूचना क्षेत्र में आर्थिक मदद तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई जा रही है।

निष्कर्ष

भारत-अफ्रीका के बीच संबंधों को आपसी भाइचारे तथा विकास को बढ़ावा देने वाला बनाया गया है। इस दौर भारत-अफ्रीकी की साझेदारी बहुत महत्वपूर्ण साबित होगी। राजनैतिक, आर्थिक, वाणिज्यक तथा विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में भारत द्वारा अफ्रीका के साथ मिलकर कार्य किया जा रहा है। भारत-अफ्रीका द्वारा वैश्विक घटनाक्रमों पर भी एकजुटता दिखाई जा रही है। दक्षिण-दक्षिण सहयोग की रणनीति के माध्यम से दोनों साथ मिलकर चुनौतियों का सामना कर रहे है। इस दौर आर्थिक क्षेत्र में संबंधों को नई

गति मिली है। भारत द्वारा अफ्रीकी राष्ट्रों की आर्थिक मदद की जा रही है। अफ्रीका के विकास में भारत की अहम भूमिका है। भारत–अफ्रीका मिलकर आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकते है। भारतीय विदेश नीति में अफ्रीकी राष्ट्रों के प्रति सदैव मित्रता की भावना विद्यमान रही है। इस युग में भारत–अफ्रीका की साझेदारी को आसमान की ऊचाइयों तक ले जाना दोनों का कार्य है। भारत–अफ्रीका दोनों साथ मिलकर आतंकवाद, पर्यावरणीय मुद्दे, निरशस्त्रीकरण तथा मानवाधिकारों आदि विषयों पर अपनी एकजुटता तथा साझेदारी का परिचय दे रहे है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, एस.के. भारत–अफ्रीका संबंध, प्रशांत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016
2. दुबे, अजय कुमार, इण्डिया अफ्रीका संबंध–नई सोच, मानस प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
3. नेहरू, जवाहरलाल, इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी, एनबीटी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1964।
4. नार्थप, डेविड, अफ्रीकाज डिस्करी ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, यूर्निवसिटी प्रेस, न्यूर्याक, 2014।
5. दिवारा, मंथिया, अफ्रीका एण्ड इण्डिया रिलेषन, हार्वड विश्वविद्यालय प्रेस, हार्वड 1988।
6. आस्टिन, राफेल अफ्रीका इकांनामिक हिस्ट्री एन एवं प्रकाशन, लंदन, 1987।
7. टेलर, इयान इण्डिया राइज इन अफ्रीका आक्सफार्ड विश्वविद्यालय प्रेस, लंदन, 2012।
8. Ceatre of policy Research , Indian Economic Diplomacy, Uyne 2012
9. CII/HTO, India-Africa: South-South Trade and investment for Development , 2008.
10. मोहती, एस.के. इण्डिया–अफ्रीका इकोनॉमिक पार्टनरशिप, नई दिल्ली, 2008।
11. India-Africa: South-South Trade and Investment, 2008.
12. EXIM Bank, Ministry of Commerce and Industry Report, 2008.
13. Ministry of External Affairs Annual Report 2004 to 2010.
14. Conferation of Indian Industry and World Trade Organization, India-Africa Trade, 2010.
15. दुबे, अजय कुमार, इण्डिया अफ्रीका कॉपरेषन, मानस प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
16. Government of India, Depart of Commerce, EXIM Bank Report, 2010.
17. http/www.imf.org/external/pubs/2009
18. टेलर, इयान, इण्याज इकोनॉमिक डिप्लोमेसी झ अफ्रीका।
19. http/www.mea.org/annual Report/2009
20. http/www.Commerce.gov.in.

लोकतन्त्र एवं दलीय व्यवस्था

डॉ० उमाकान्त पासवान

असिस्टेंट प्रोफेसर, जे0एन0 कालेज ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

लोकतंत्र को अंग्रेजी में डेमोक्रेसी (DEMOCRACY) कहते हैं, जो ग्रीक शब्द 'डेमोक्रेसिया' (DEMOKRATIA) से बना है। ग्रीक 'डेमोक्रेसिया' दो शब्दों 'डेमोस (Demos) एवं क्रेसिया (Kratia) से मिलकर बना है डेमोस का अर्थ हैं जनता एवं क्रेसिया का अर्थ हैं 'शासन व्यवस्था। इस प्रकार 'डेमोक्रेसिया' का अर्थ हुआ जनता द्वारा शासन करने की व्यवस्था। हिन्दी में इसके लिए तीन शब्द प्रचलित है- लोकतंत्र, प्रजातंत्र और जनतंत्र। ये तीनों शब्द विशेष ऐतिहासिक संदर्भों से जुड़े हुए हैं। लोकतंत्र का लोक अत्यंत प्राचीन है, वह जनपदों के युग का है परलोक का विरोधी और गांवों में रहने वालों का सूचक। प्रजातंत्र सामंती युग से जुड़ा है, वह राजतंत्र का विरोधी है और राजा को छोड़कर बाकी पूरे समाज का द्योतक। जनतंत्र का जन वैसे तो बहुत पुराना हैं, लेकिन आधुनिक युग में वह शासित और दमित जनता का सूचक है। जो शासन व्यवस्था जनता की हो और जनता द्वारा संचालित हो, वही जनतंत्र है।[1]

लोकतंत्र वह शासन प्रणाली है जिसमें जनता का शासन हो। यहाँ यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि केवल जनता का शासन वास्तविक लोकतंत्र नहीं है, बल्कि इसमें सभी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र और लिंग को समान रूप से शासन में भागीदारी का अवसर मिलना भी आवश्यक है।[2] जनतंत्र के तीन जाने-माने लक्षण हैं, वे हैं- स्वतंत्रता, समानता, और भाईचारा। जिस देश के समाज और शासन व्यवस्था में ये तीनों एक साथ न हों, उसे जनतांत्रिक कहना जनतंत्र का मजाक उड़ाना है। इन तीनों में सबसे महत्वपूर्ण और बाकी दो का पोषक है समानता। इसके अभाव में या कम होने की स्थिति में न स्वतंत्रता सार्थक हो सकती है और न भाईचारा संभव होता है।[3]

समाज के प्रकार के रूप में लोकतन्त्र से एक उस ढंग के समाज का बोध होता, जिसमें प्रत्येक मनुष्य की तरह होता है, सब व्यक्ति समान समझे जाते है और इसलिये सब व्यक्ति जाति, रंग, लिंग, सम्पत्ति अथवा धर्म के भेद के बिना समान अधिकार एवं अवसर का उपभोग करते हैं। पर इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय यह है कि लोकतंत्र के जिस आदर्श की बात ऊपर कही गयी है, व्यवहार में उसका निर्वाह बड़ा कठिन होता है। लोकतंत्र का क्रियान्वयन साधारणत: दलों के माध्यम से होता है तथा दलीय राजनीति के कारण तथा जनसाधारण में राजनीतिक जागरूकता की कमी के कारण अनेक समस्यायें भी उत्पन्न होती है।[4]

भारत में राज्यों की राजनीति के अध्ययन के सम्बन्ध में मायनर वीनर[5] एवं इकबाल नारायण[6] ने इस तथ्य को स्वीकृत किया कि विशिष्ट ऐतिहासिक सांस्कृतिक, सामाजिक तथा वैचारिक सन्दर्भ में मूल आधार यह हैं कि प्रत्येक राज्य की अपना अलग अनुभव रहा हैं। इन दो विद्वानों ने राज्यों की राजनीति के अध्ययन के लिए एक सुनिश्चित सैद्धान्तिक और तुलनात्मक ढाँचे के विकास के लिए प्रयत्न किये हैं। प्रत्येक राज्य एक बड़ी व्यवस्था का एक भाग हैं। परन्तु फिर भी हर एक का विश्लेषण किया जा सकता हैं तथा इसका उन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ, जिसमें राजनीति चल रही हैं तथा सरकार की कार्य क्षमता के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सकता हैं।

भारतीय लोकतंत्र शासन की संरचना के केन्द्र में है। यह अवसर का सृजन करता है, नेतृत्व को ताकत देता है और आशा का संचार करता है। भारत की राष्ट्रीय मूल्य प्रणाली के बड़े विचलनों ने प्रशासनिक कार्यप्रणाली के साथ-साथ लोकसेवा के बौद्धिक ढांचे, पुलिस और न्यायपालिका पर भी अपना प्रभाव डाला है।[7]

भारतीय संविधान में संघीय व्यवस्था के प्रावधान होने के परिणामस्वरूप भारत देश में त्रिस्तरीय राजनीतिक चरण दृष्टिगत होते है। इन चरणों में राष्ट्रीय राजनीति, राज्य राजनीति एवं स्थानीय राजनीति प्रमुख है। जहाँ राष्ट्रीय राजनीति आधुनिकतावादी जबकि स्थानीय राजनीति परम्परावाद का प्रतिनिधित्व करती है। वहीं राज्य राजनीति के अन्तर्गत आधुनिकता एवं परम्परावाद दोनों के ही तत्व सम्मिश्रित रूप से प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि भारत की संघीय व्यवस्था में राज्यों की राजनीति गाँवों एवं कस्बों से लेकर शहरों से होते हुए राजधानी तक को एक कड़ी के रूप में जोड़ने का कार्य करती है। उल्लेखानीय है कि भारतीय संघ की विभिन्न राज्यों की राजनीति को राज्य राजनीति के रूप में विवेचित किया गया है। राज्यों की राजनीति का अध्ययन राजनीतिक व्यवस्था के अंग के रूप में तथा स्वतंत्र राजनीति के स्तरों पर दोनों ही प्रकार से किया जा सकता है। हालांकि भारत की संघीय व्यवस्था में राज्य को एक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है तथा राज्यों में शक्ति का वितरण समान रूप में हुआ है तथापि भाषायी सामाजिक एवं सांगठनिक संरचना के भिन्न होने के परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यों की राजनैतिक प्रवृत्तियों में पर्याप्त अन्तर दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार एक ही संवैधानिक आधारों पर निर्मित हुई व्यवस्थागत परिपाटी का पालन करते हुए भी विभिन्न राज्यों की अपनी भिन्न राजनीति पहचान है। यही कारण है कि संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों एवं राज्य राजनीति की भूमिका महत्वपूर्ण है। राज्य राजनीति के संदर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य का विवेचन करते हुए विचारकों के इस समूह का यह भी मानना है कि लोक कल्याण के संदर्भ में राज्य सरकारें ही वास्तविक रूप में विभिन्न तीतियों की प्रतिपादन करता है तथा उनकों प्रभाव में लाने का महत्वपूर्ण कार्य भी राज्य सरकारों का ही है। हालांकि विकास कार्यक्रमों के संदर्भ में प्राथमिक भूमिका का निर्वहन केन्द्र सरकारें करती है तथापि उनको प्रभावी बनाने एवं समुचित क्रियान्वयन हेतु राज्य सरकारें ही महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि संविधान द्वारा सभी प्रकार के विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित शक्तियां राज्य सरकारों को प्रदान की गयी है।[8]

संघ के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द Federation लैटिन भाषा के शब्द थ्वमकने से लिया गया है जिसका अर्थ 'संधि' या 'समझौता' होता है। एक राज्य, जो किसी संधि या समझौते का परिणाम होता है, एक संघ है। एक संघ राज्य एक ऐसा राजनीतिक गठन है जो राष्ट्रीय एकता और राज्य के अधिकारों की रक्षा के लिए शक्ति प्राप्त करता है। यह सरकार की ऐसी व्यवस्था है जिसमें सरकार का कोई भी स्तर न तो पूर्ण रूप से दूसरे पर आश्रित है और न ही पूर्ण रूप से दूसरे से स्वतन्त्र है।[9]

संघवाद ऐसा साधन है जो ऐसी प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है जो विविधता भरे समाज को एकसूत्र में बांधने की क्षमता रखता है। संघवाद से सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता और विभिन्न जातीय और क्षेत्रीय समूहों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। यह राष्ट्रीय एकता, विविधताओं में सामंजस्य, साझा आर्थिक हितों को बढ़ावा देने और समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधानों को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में, संघवाद एक प्रणाली है जो स्वशासन और सत्ता के बंटवारे तथा संघ के विभिन्न हिस्सों के हितों संतुलन को बढ़ावा देती है और भारत में संघवाद एक राष्ट्र द्वारा निर्मित नहीं है। यह केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की एक लम्बी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया है।[10]

संघवाद वह यन्त्र है, जिसके द्वारा राज्य की सारी शक्तियों का विभाजन दो प्रकार की सरकारों के मध्य हो जाता है। ये दो प्रकार की सरकारें केन्द्रीय और राज्य सरकारों के रूप में होती है। संघीय राज्य एक ऐसी राजनैतिक रचना है, जिसमें राष्ट्रीय एकता और शक्ति तथा प्रदेशों के अधिकारों की रक्षा करते हुए दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है। ऐसी शासन प्रणालियों के केन्द्रीय ओर स्थानीय संगठन एक प्रभुसत्ता के अन्तर्गत स्थिर होते हैं और ये दोनों प्रकार अपने निश्चित अधिकार क्षेत्र की सीमाओं में जो सामान्य संविधान द्वारा निर्धारित की गयी है, सर्वोपरि होते हैं। वस्तुतः संघवाद का सिद्धान्त ''सीमित सरकार'' से सम्बन्धित है। संघवाद राष्ट्रीय सार्वभौमिकता और राज्यों के अधिकारों की पृथक, माँगों में जिन साधन द्वारा समन्वय और एकता स्थापित करता है, वह लिखित संविधान होता है, जिसके द्वारा सार्वभौमिकता सम्बन्धी शक्तियों का विभाजन केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के मध्य किया जाता है। फिर संघवाद का मूल कारण शक्ति विभाजन का सिद्वान्त है। के.सी. व्हीयर के अनुसरा, ''संघीय सिद्धान्त से मेरा तात्पर्य शक्ति के विभाजन के तरीके से है, जिससे सामान्य (संघीय) एवं क्षेत्राधिकारी (राज्यों) सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में समान एवं पृथक होती हैं।''[11]

भारत में प्रथम आम चुनावों से लेकर 1967 तक केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस की सरकारें रही तथा नेहरू के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण संघीय सम्बन्धों में कोई भी तनाव या विवाद देखने को नहीं मिला। इस दौरान शक्तिशाली केन्द्र की परम्परा का निर्वहन हुआ तथा संघवाद का केन्द्रीकृत रूप कायम रहा। परन्तु चौथे आम चुनावों के बाद भारतीय राजनीति में अनेक परिवर्तन देखने को

मिले। इस काल को उथल-पुथल, उहापोह तथा कुछ सीमा तक क्रान्ति का काल भी कहा जा सकता है। कांग्रेस के एकछत्र शासन में शासन का सहजतापूर्वक तथा सरलतापूर्वक संचालन अब भूतकाल की घटना बन चुकी थी। आन्दोलन, आक्रोश, बन्द, हिंसात्मक विद्रोह की घटनाएँ अनशन और आत्मदाह की राजनीति, साम्प्रदायिक दंगे तथा अराजकता भारतीय राजनीति के अभिन्न अंग बन गये। विध्वंस, बिखराव और विघटन की राजनीति स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होने सौदेबाजी वाली बन गई जिसमें क्षेत्रीय दल महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें हैं। 1989 से लेकर 2004 तक भारतीय संसदीय लोकतन्त्र इसी प्रकार के कटु अनुभवों से गुजरता रहा और आगे चलकर 14वीं तथा 15वीं लोकसभा चुनावों के बाद का परिदृश्य भी यही रहा।[14]

गठबन्धन के इस युग में सत्ता राज्यों की ओर हस्तांतरित हो गई और केन्द्र में सरकार गठित करने की प्रक्रिया में क्षेत्रीय दल प्रमुख अवयव बन गए। क्षेत्रीय दलों के राज्य स्तरीय प्रमुख यह तय कर रहे हैं कि उनकी पार्टी से कौन केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होगा। इन नेताओं की राय मंत्रियों के विभागों के बंटवारे में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यूपीए प्रथम (2004) की सरकार में आरजेडी के लालू प्रसाद ने गृह मंत्रालय और एलजेपी के रामविलास पासवान ने रेल मंत्रालय की मांग की। काफी विचार-विमर्श के बाद लालू प्रसाद को रेल मंत्रालय और रामविलास पासवान को रसायन, उर्वरक एवं इस्पात मंत्रालय पर मनाया गया। ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब क्षेत्रीय दल प्रशासकीय प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रधानमंत्री की शक्ति और स्थिति कमजोर होती गई।[15]

हालात ऐसे है कि अब प्रधानमंत्री क्षेत्रीय दलों से निर्देशित और नियंत्रित होता है जिनके नेता ताकतवर मुख्यमंत्री के.करूणानिधि, लालू प्रसाद, मायावती, जे. जयललिता, एन. चन्द्रबाबू नायडू और अन्य हैं। हालांकि अंतिम शक्ति और सत्ता प्रधानमंत्री में निहित है, फिर भी प्रधानमंत्री को गठबन्धन सहयोगियों की शर्तों पर काम करना होता है। दूसरी ओर राष्ट्रपति की भूमिका में इजाफा हो रहा है। गठबन्धन की स्थिति में वह सरकार के गठन के लिए अपनी विवेकाधीन शक्तियों सरकार को गति प्रदान करते हैं। ब्राईस ने सभी स्वतन्त्र देशों में राजनीतिक दलों को आवश्यक माना है। सर्वसत्ताधिकारवादी देशों में भी एकमात्र राजनीतिक दल ही राजनीति जीवन में अहम् भूमिका अदा करता है। रूस और चीन में भी दल-प्रणाली का उतना ही महत्व हैं, जितना भारत, ब्रिटेन व अमेरिका में है। आधुनिकता और राजनीतिक चेतना के प्रतीक दल लोकतन्त्रीय और निरंकुश सभी प्रकार की शासन-व्यवस्थाओं में महत्व रखते हैं। जनता और सरकार में कड़ी का काम करके राजनीतिक दल ही किसी राजनीतिक व्यवस्था रूपी गाड़ी को गति देते हैं। जनता को शिक्षा देना व राजनीतिक चेतना का विकास करने, जनमत को तैयार करने, सरकार पर नियन्त्रण रखने तथा उसे निरंकुश बनने से रोकने में राजनीतिक दल ही अम् भूमिका निभाते हैं। इसी कारण आज राजनीतिक दलों को राजनीतिक व्यवस्था की धुरी कहा जाने लगा है। यहाँ के अधिकांश राजनीतिक दल विचारधारा के आधार पर न संगठित होते हैं, न चुनाव लड़ते हैं और न चुनाव में जीतकर सरकार बनाने के बाद काम करते है। वे लोकतंत्र के बदले दलतंत्र की स्थापना करते हैं वादाखिलाफी भारतीय राजनीतिक दलों की जानी पहचानी विशेषता है।[18]

विभिन्न राज्यों में 1967 के पश्चात् गैर कांग्रेसी दल चुनावी राजनीति के कारण जाति एवं दलीय प्रणाली के नवीन समीकरण सामने आये हैं क्षेत्रीय दलों की संख्या, भूमिका एवं प्रभाव में अभिवृद्धि होने से राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर दलीय व्यवस्था में विभिन्नता उत्पन्न हुई हैं जिसने राज्य राजनीति को भी प्रभावित किया है।[19]

भारत में कई चिंतकों ने चुनाव प्रणाली को भ्रष्टाचार की जननी बताया है। महंगे चुनाव लड़कर सत्ता में आने वाले राजनीतिज्ञों की प्राथमिकता किसी भी तरह से मान अर्जित करके अपने पैसे वसूल करने और आने वाले चुनावों के लिए मान संग्रह और पार्टी की आर्थिक ताकत बढ़ाने की होती है।[20]

राजनीतिक दलः अर्थ और परिभाषा

साधारण शब्दों में राजनीतिक दल एक ऐसा संगठन है जो सम्पूर्ण देश या समाज के व्यापक हित के सन्दर्भ में अपने सेवार्थियों के हितों को बढ़ावा देने के लिए निश्चित सिद्धान्तों, नीतियों और कार्यक्रम का समर्थन करता है और उन्हें कार्यान्वित करने के उद्देश्य से राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है। राजनीतिक दल को अनेक विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

मसलदान के अनुसार-''राजनीतिक दल उस स्वैच्छिक समूह को कहते हैं जो कुछ सामान्य राजनीतिक व सामाजिक सिद्धान्तों के आधार पर तथा कुछ सामान्य लक्ष्यों और आदर्शों की पूर्ति के लिए शासन चलाने का प्रयत्न करता है तथा अपने सदस्यों को सत्तारूढ़ करने की चेष्टा करता है और उसके लिए चुनाव तथा अन्य साधनों का भी प्रयोग करता है।''

फ्रेडरिक के अनुसार- ''एक राजनीतिक दल उन व्यक्तियों का समूह है जो अपने नेताओं के लिए शासकीय नियन्त्रण प्राप्त करने अथवा उसे बनाए रखने के उद्देश्य से स्थायी रूप से संगठित होते हैं और आगे अनुशासित रहकर लाभ प्राप्त करने के प्रयास करते हैं।''

बर्फ के अनुसार ''राजनीतिक दल मनुष्यों का एक समूह है जो कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर जिनमें वे सहमत हैं, अपने सामूहिक प्रयत्नों से राष्ट्रीय हित को आगे बढ़ाने के लिए एकता में बंधे होते हैं।''[21] वहीं मैकाइवर ने राजनीतिक दल को एक ऐसा समुदाय माना है जिसका संगठन किसी विशेष सिद्धान्त या नीति के समर्थन के लिए हुआ है और वह संविधानिक साधनों द्वारा सरकार बनाने के लिए इस सिद्धान्त या नीति का सहारा लेता है।

गिलक्राइस्ट के अनुसार- ''राजनीतिक दल व्यक्तियों के उस समुदाय को कहते हैं जिसके सदस्यों के राजनीतिक विचार एक से होते हैं और जो एक राजनीतिक इकाई की तरह कार्य करके सरकार पर नियन्त्रण करने की चेष्टा करते हैं।'' मैक्स वेबर के अनुसार- ''राजनीतिक दल स्वेच्छा से बनाया हुआ वह संगठन है जो शासन शक्ति को अपने हाथ में लेना चाहता है और इसको हस्तगत करने के लिए प्रचार तथा आन्दोलन का सहारा लेता है। इस शासन शक्ति को हाथ में लेने के पीछे एक ही उद्देश्य हो सकता है जो या तो वस्तुनिष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति है या व्यक्तिगत स्वार्थ या दोनों है।''

गैटल के अनुसार- ''राजनीतिक दल नागरिकों का वह समुदाय है जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है और अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार को नियन्त्रित करना तथा अपनी सामान्य नीति की पूर्ति करना चाहता है।''

लीकाक के अनुसार-''राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो एक जगह मिलकर एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक प्रश्नों पर एक जैसे होते हैं और वे सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।''

राबर्ट सी0 बोन के अनुसार- ''राजनीतिक दल व्यक्तियों का ऐसा संगठन है जो अपने उद्देश्यों को सरकार पर औपचारिक नियन्त्रण प्राप्त करके, समाज में मूल्यों के अधिकारिक वितरण में प्राथमिकता के प्रकरण बनाकर, प्राप्त करता है।''

पालोम्बरा के अनुसार-''राजनीतिक दल एक औपचारिक संगठन है जिसका स्व-चेतन व प्रमुख उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को सार्वजनिक पदों पर पहुंचाना तथा उन पर नियन्त्रण बनाए रखना है जो अकेले या किसी से मिलकर शासन तन्त्र पर अपना नियन्त्रण करेंगे।''

इस प्रकार राजनीतिक दल के बारे में अनेक विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएं दी है जो राजनीतिक दल के सिद्धान्त, संगठन, कार्यक्रम, प्रकृति आदि पर प्रकाश डालती हैं। पालोम्बरा तथा राबर्ट सी0 बोन ने राजनीतिक दल की जो यथार्थ परिभाषाएं दी हैं, वे राजनीतिक दल के संगठन, कार्यक्रम तथा प्रकृति को पूरी तरह परिभाषित करती है।

लोकतंत्र तथा राजनीतिक दलों में इतना गहरा सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरे की उन्नति असंभव है। राजनीतिक दल ही देश में राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर जनमत तैयार करते हैं। लोगों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते है तथा स्थायी सरकार की स्थापना करते हैं। वे चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं और विधानमंडल में बहुमत प्राप्त करके सरकार पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। चुनावों में जिस राजनीतिक दल को विधानमंडल में बहुमत प्राप्त हो जाता है। वह दल सरकार का गठन करता है। अन्य राजनीतिक दल विरोधी दल का निर्णय करते हैं और सरकार को स्वेच्छाचारी बनने से रोकते हैं तथा उसकी निरंकुशता पर अंकुश लगाते हैं।

भारत में राजनीतिक दलों का उदय

आधुनिक राज्यों में राजनीतिक दल महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य संस्था बन चुके हैं। ये व्यक्तिगत हितों को संकलित करते हैं, समूहों को संगठित करते हैं तथा राजनीतिक सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। किसी भी पद्धति में उनकी भूमिका इन तथ्य से प्रमाणित

होती है कि आगे या पीछे किसी-न-किसी तरीके से अच्छाई या बुराई, संदेह तथा विरोध के बावजूद, उनका उदय सभी राज्यों में हो चुका है। राजनीतिक दलों का जन्म भिन्न-भिन्न समय तथा परिस्थितियों में होता है। उनका जन्म तथा विकास ही अकसर उनके उद्देश्य, विचारधारा, संगठन-रूप तथा साधनों का निर्णय करता है।[22]

आधुनिक राजनीतिक प्रणालियों तथा प्रक्रियाओं में राजनीतिक दलों का विश्वास है कि उनका सबसे मुख्य कार्य राजनीतिक सत्ता पर काबू पाना है। इसी कारण चुनाव-द्वंद्व में सफलता प्राप्त करने के लिए साझेदारी के नमूने को अधिक लाभकारी समझा जाता है। इसमें राष्ट्र के मूल विषयों पर खींचातानी तथा विशिष्ट विचारधारा पर आधारित राजनीति का पालन करने की बजाय ऐसा मेल-जोल किया जाता है जिसमें अधिक-से-अधिक हितों तथा समूहों की रक्षा हो सके। इसलिए इनमें तथा अन्य देशों में जिन्होंने ऐसी प्रणालियों का पालन किया है, वह दलीय पद्धति अधिक टिकाऊ है, जिसमें क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन लाने की बजाय आम तौर पर यथास्थिति का पालन किया जाता है। इस प्रकार की दलीय पद्धति, राजनीतिक प्रणाली की रक्षा के लिए, दो या अधिक राजनीतिक दलों के बीच मूल मुद्दों पर मतैक्य की आवश्यकता उत्पन्न कर देती है, ताकि राजनीतिक प्रणाली को स्थायित्व प्रदान किया जा सके। इसलिए पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों में राजनीतिक प्रणाली के रक्षक तथा उसकी अंतरात्मा-धारक के रूप में मजबूत द्वि-दलीय ढाँचे से, जिसमें समान मूल्य-ढाँचे पर जोर दिया जाता है तथा जहाँ दलों की नीतियों तथा प्रशासन में भेद बताना कठिन है, दलों के तथा उनकी कार्य-प्रणाली के प्रति लोगों के विश्वास में कमी आई है। इसीलिए हित-समूह अधिक सुदृढ़ होते जा रहे हैं, उनका बड़े पैमाने पर लॉबी-प्रचार, दलीय तंत्र से अलग विरोध प्रदर्शनों तथा आंदोलनों में आग लेने में वृद्धि होती जा रही है। इसके बावजूद द्वि-दलीय प्रणाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तथा विशेषकर चुनाव और विधायी प्रणाली में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए जीवित है, भले ही यह कोई वैकल्पिक रास्ता प्रदान न करती है।[23]

भारत के संदर्भ में भी, राजनीतिक व्यवस्था के उदय तथा ऐतिहासिक विकास ने दलीय व्यवस्था के रूप को निश्चित किया है। दलों की विचारधारा, उद्देश्य, नीति तथा संगठन इस बात पर निर्भर रहे हैं कि कोई दल कब और कैसे अस्तित्व में आया तथा स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में दलीय पद्धति का किस प्रकार विकास हुआ है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ब्रिटिश संसदीय पद्धति के अनुरूप लोकतंत्रीय पद्धति को अपनाने की उत्सुकता ने, भारत को राज्य-तंत्र चलाने के लिए दलीय पद्धति की शीघ्र गठन करने के लिए प्रेरित किया। इसके लिए सरल और तीव्र विधि यही थी कि राष्ट्रीय आंदोलन की अग्रदूत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को नए शासक दल के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए।

भारत में राजनैतिक दलों का विकास ब्रिटिश शासन के विरूद्ध स्वतंत्रता आन्दोलन के रूप में आरम्भ हुआ था। 19वीं शताब्दी के 'पूना सार्वजनिक सभा' मद्रास में 'महाजन सभा' तथा कल्कत्ता में भारतीय एसोसिएशन तथा मुबंई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन जैसे संगठनों की स्थापना हुई। परन्तु भारत के सबसे पहले राजनीतिक दल कांग्रेस की स्थापना 1885 में हुई और धीरे-धीरे करके सभी वर्गों के लोग इसमें शामिल होने लगे। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस का विरोध करने के लिए सन् 1906 में 'मुस्लिम लीग' (Muslim Leagee) की स्थापना करवाने में सहयोग दिया। इसके विरोध में हिंदुओं ने अपने को संगठित करने तथा अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए सन् 1916 में हिन्दू महासभा की स्थापना की। सन् 1924 में भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हुई। सन् 1934 में मोतीलाल नेहरू द्वारा 'स्वतंत्र पार्टी' की स्थापना की गई। सन् 1938 में सुभाष चन्द्र बोस ने कांग्रेस पार्टी से त्यागपत्र देकर अपने अलग दल 'फारवर्ड ब्लाक' (Farward Block) की स्थापना की।[24]

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का दल के रूप में तुरंत परिवर्तन इससे पूर्व हुए आंदोलनों में एकमात्र उदाहरण था, जिसने अपने-आपको आधुनिक राजनीतिक उपकरण में परिवर्तित कर लिया। इससे भारत में लोकतंत्र के भविष्य, दलीय पद्धति के विकास तथा कांग्रेस दल के संगठन पर काफी प्रभाव पड़ा।[25] राष्ट्रीय आंदोलन परिवर्तन से नई कांग्रेस (जिसे बाद में राष्ट्रीय कांग्रेस कहा गया) संसार में सबसे प्राचीन तथा बड़े दलों में से एक दल बन गई तथा गैर-साम्यवादी दलों में सबसे बड़ा दल बन गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को सफलतम उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलन, जिसने भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया तथा सफलता प्राप्त की, बनने की विरासत से काफी लाभ पहुँचा। इस विरासत को आधार बनाकर तथा उन क्षेत्रों में अपने प्रभाव का विस्तार कर जहाँ यह पहले नहीं पहुँच पाई थी, कांग्रेस चुनाव जीतने तथा सत्ता सँभालने के योग्य बनी। इसे नेहरू, पटेल तथा मौलाना आजाघ्द आदि जैसे योग्य, दूरदर्शी तथा कांग्रेस आंदोलन के अगुआ व्यक्तियों का नेतृत्व प्राप्त था, जिससे यह शीघ्र ही आर्थिक नीतियाँ बनाने तथा सामाजिक-राजनीतिक मोर्चों पर बहुत कार्यक्रम लागू करने के योग्य बन गई।

इस प्रकार के परिवर्तन में कांग्रेस को स्वतंत्रता-आंदोलन की एक अन्य विशेषता ने भी लाभान्वित किया और वह था इसका बहुदलीय, बहु-वर्गीय तथा बहु-समाजशास्त्रीय स्वरूप। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक ऐसा आंदोलन था जिसका साठ से अधिक वर्षों से धीरे-धीरे विकास हुआ था तथा विचारधारा एवं अन्य विचारों की विभिन्नता के बावजूद इसने अनेक व्यक्तियों का मिला-जुला संगठन बनाया जिसका सबसे मुख्य उद्देश्य था स्वतंत्रता की प्राप्ति। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, मतैक्य का दायरा सिकुड़ना था और मतभेद उभरकर सामने आने थे। बहुत-से गुटों ने विचारधारा, नीति तथा निजी संबंधों के बारे में मतभेदों को स्पष्ट करना शुरू कर दिया। कुछ व्यक्तियों ने तो कांग्रेस दल को त्यागकर अलग दल बना लिये, किन्तु बहुत से सदस्य इसी में टिके रहें। उन्होंने कांग्रेस को विजय गठबंधन का स्वरूप प्रदान किया, जो समायोजन की निति के पालन द्वारा स्थायी सरकार बना सके। कांग्रेस ने इस प्रकार प्रभुत्वशाली भूस्वामी-वर्ग तथा गरीब किसानों, ग्रामीण धनिकों, तथा शहरी एकाधिकारी उद्योगपतियों, विशिष्ट वर्ग तथा भारत के जनसमूह के बीच एकता लाने वाली शकित की छवि बना ली। इस समदर्शी तथा बहुआयामी चरित्र से कांग्रेस को काफी चुनाव-समर्थन मिला, जिससे भारत में लोकतंत्र स्थापित हो सका, प्रतिस्पर्धी वातावरण उत्पन्न हुआ तथा साथ-ही-साथ ''एकदल के प्रभुत्ववाली पद्धति'' की स्थापना हो गई।[26] इस प्रकार के प्रभुत्व से अकसर ऐसा लगता था कि इसने राज्य-व्यवस्था के प्रतिस्पर्धी चरित्र को समाप्त कर दिया है, साथ ही इसने नए हैं, इस प्रकार ऐसे संकेंद्र वृत्त विद्यमान हैं, जो भिन्न-भिन्न विचारधाराओं, मतों यहाँ तक कि धर्म, जाति तथा भाषा के समागमों और अकसर परस्पर-विरोधी समाजशास्त्रीय तालमेलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार की स्थिति ने कांग्रेस को अकसर समझौते करने, उग्र रूख से हटने तथा मध्य मार्ग अपनाने वाली पार्टी के रूप में दिखाई पड़ने पर मजबूर किया है। इस प्रकार के मध्यमार्गी रूख के कुशल प्रयोग ने इसे शासक दल के रूप में केवल सत्ता सम्भालने में ही सहायता नहीं की, अपितु इससे अन्य राजनीतिक दल कांग्रेस के हिस्से की तरह दिखाई देते हैं, जो अनेक पैबंदों की तरह चिपके हुए-से लगते हैं।

कुछ राजनीतिक समीक्षों के विचार में यह केंद्रीय और परिधीय आकृति हैं, जिसमें कांग्रेस तो केंद्र है और अन्य राजनीतिक दल परिधि हैं, जो स्वयं को गठबंधनों, सूझबूझ तथा लॉबी जैसे साधनों द्वारा कांग्रेस के उन गुटों से सीधा संपर्क बना लेते हैं, जो उनके दृष्टिकोण से सहमत हों।[29] इस वर्णन का अर्थ यह है कि गैर-कांग्रेसी दल भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के केवल उपांग, तथा प्रभाव में शक्तिहीन ही नहीं थे, अपितु वे एक-दूसरे के करीबघ होने की बजाय कांग्रेस के अधिक करीब थे। बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि इस प्रकार का विचार वास्तव में सत्य नहीं था। गैर-कांग्रेसी दलों में गठजोड़ 1957 से पूर्व ही प्रारंभ हो चुका था और उनमें से कुछ की क्षेत्रीय राजनीति में केंद्रीय तथा महत्त्वपूर्ण स्थिति थी और उन्होंने राज्य सरकारें भी बनाई थीं।

संदर्भ सूची

1. पाण्डेय, मैनेजर (2013), भारत में जनतंत्र का सच, जलवायु, संयुक्तांक, फरवरी 2012-जनवरी 2013, पृ0 12-14
2. सिंह, सूरजभान (2013), भारतीय लोकतंत्र और समाजिक परिवर्तन, इंडियन जर्नल आफ अप्लाइड रिसर्च, वा0-3 इश्यू-8 अगस्त-13 पृ0 632-633
3. पाण्डेय, मैनेजर (2013, - पृ0 14-15
4. शुक्ला, कमलेश कुमार (2011), लोकतंत्र और मतदान व्यवहार, रिसर्च जर्नल आफ सोशल एण्ड लाइफ साइंस, वा0-वर्ष-6 दिसम्बर-11
5. वीनर, मायनर (1968), स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन
6. नरायण, इकबाल (1976), स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, द्वितीय संस्करण, मीताक्षी प्रकाशन मेरठ
7. सिंह, बाल्मिकि प्रसाद (2013), भारत में सुशासन की चुनौतिया नयी पहल की जरूरत, योजना जनवरी-13 पृ0 7-12
8. क्राइसेस इन इंडियन पालिटिक्स, मेनस्ट्रीम, 14 मार्च 2009 वा0-ग्स्टप्प् नं0-13
9. अवस्थी, एस0एस0 (2000), इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, हरआन्द पब्लिकेशन नई दिल्ली पृ0 118.
10. सिन्हा, मनोज (2012), समकालीन भारत एक परिचय, ओरियंट ब्लैकस्कन, नई दिल्ली पृ0 306-307
11. गहलोत, एन0एस0 (2004), भारतीय रजनीतिक व्यकरण, दशा एवं रिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ0 10
12. जैन, धर्मनंद (2000) भारतीय लोकतंत्र (भाग-3) प्रिंटलेब पब्लिशर्स, जयपुर पृ0 11

13. सिंह एम0पी0 एवं सक्सेना, रेखा (2008), इंडियन पॉलिटिक्स, कन्टेन्दटेरी ---- एण्ड कन्सर्न्स, प्रिंटिंग हाल आफ इंडिया, नई दिल्ली 2008 पृ0 152
14. सिंह, कमलेश कुमार (2008), भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली 2008 पृ0 191-192
15. सिन्हा, मनोज (2012), समकालीन भारत एक परिचय, ओरियंट ब्लैकस्कान, नई दिल्ली पृ0 310
16. सिंह, सूरजभान (2013), भारतीय लोकतंत्र और समाजिक परिवर्तन, इंडियन जर्नरल आफ अप्लाइड रिसर्च वा0-3, अगस्त-13, पृ0 632-33
17. पाण्डेय, मैनेजर (2013), भारत में जनतंत्र का सच, जलवायु, संयुक्तांक फरवरी 2012-जनवरी 2013, पृ0-12-14
18. शुक्ल, अखिलेश एवं शुक्ला, संध्या (2013), राजनीति और निर्धारिक कारकों का स्वरूप, रिसर्च जर्नल आफ मैनेजमेंट एण्ड साइंस वा0-8, वर्ष-4 मार्च-13
19. पयर्न, कैलाश चंद्र (2013), पारदर्शिता व दक्षता से सुशासन संभव योजना, जनवरी-13 पृ0 37-39
20. लैंगफोर्ड, पी0 (1981), राइटिंग एण्ड स्पीचेस आफ एडमंड वर्क, क्लेरेण्डा प्रेस आक्सफोर्ड पृ0 317
21. कौशिश, सुशीला (1990), भारतीय शासन एवं राजनीति, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली पृ0 329
22. कौशिश, सुशीला (1990), पृ0 328-329
23. राम, राकेश (1999), भारत में शासन पद्वति एवं राजनीतिक दलों की भूमिका विवेक प्रकाशन मेरठ, पृ0 162
24. फ्रेंकिल, एफ0 (1978), इण्डियाज पॉलिटिकल इकोनामी 1947-1977, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस पृ0 89
25. कोठारी, रजनी (1967), पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्शन सृडीज, एलाइड पब्लिशर्स नई दिल्ली पृ0 102
26. वीनर, मायनर (1967), पार्टी पृ0 65-97
27. ब्रीचर, माइकेल (1966), नेहरूज मेंटल, दि पॉलिटिक्स आफ सक्सेशन इन इंडिया, फ्रेडरिक, न्यूर्याक, पृ0 430-37
28. कोठारी, रजकी (1970), पॉलिटिक्स इनन इंडिया, ओरियंट लागमैन, नई दिल्ली, पृ0 65

मीडिया में हिंसा: संभावित प्रभाव एवं कारण

डॉ० मानिनी श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

डॉ० जया भारती

असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर

सारांश (ABSTRACT): हिंसा खुद बिकती है। यह दिलचस्प है, यह जिज्ञासा जगाता है और इसके कारण, टीवी श्रृंखला, फिल्में, समाचार, वीडियो गेम और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म एक ऐसी जगह बन गए हैं जहां इसे आसानी से पाया जा सकता है। इसलिए, यह एक आवश्यक बहस है कि क्या मास मीडिया में हिंसा का तीव्र स्तर व्यक्तियों को संवेदनशील बनाता है और वास्तविक जीवन में हिंसा की आवृत्ति को बढ़ाता है। अनुसंधान ने बच्चों और किशोरों के लिए विभिन्न प्रकार की शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के साथ मीडिया हिंसा के संपर्क को जोड़ा है, जिसमें आक्रामक और हिंसक व्यवहार, बदमाशी, हिंसा के प्रति असंवेदनशीलता, भय, अवसाद, बुरे सपने और नींद की गड़बड़ी शामिल हैं। क्रॉस-सांस्कृतिक अध्ययनों में मीडिया एक्सपोजर और आक्रामकता और हिंसा में वृद्धि के बीच लगातार और महत्वपूर्ण संबंध पाए गए हैं; क्षेत्र प्रयोगों, प्रयोगशाला प्रयोगों, क्रॉस-अनुभागीय अध्ययनों और अनुदैर्ध्य अध्ययनों में; और बच्चों, किशोरों और युवा वयस्कों के साथ। बच्चे मीडिया से प्रभावित होते हैं - वे अवलोकन, अनुकरण और व्यवहारों को अपनाकर सीखते हैं। कई अलग-अलग मनोवैज्ञानिक और शारीरिक प्रक्रियाएं आक्रामक दृष्टिकोणों, विश्वासों, व्यवहारों और भावनाओं पर मीडिया-हिंसा के प्रभावों को रेखांकित करती है।

वस्तुत: टेलीविजन की शुरुआत के बाद से, माता-पिता, शिक्षक, विधायक और मानसिक स्वास्थ्य पेशेवर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव को समझना चाहते हैं, विशेष रूप से बच्चों पर विशेष चिंता का विषय हिंसा का चित्रण रहा है, विशेष रूप से 1970 के दशक में मनोवैज्ञानिक अल्बर्ट बंडुरा के काम को देखते हुए। सामाजिक शिक्षा और बच्चों की प्रवृत्ति जो वे देखते हैं उसका अनुकरण करने के लिए। मीडिया में हिंसा दर्शकों के आक्रामक व्यवहार के जोखिम को बढ़ाती है, हालांकि यह कई लोगों का केवल एक संभावित नकारात्मक प्रभाव है। माता-पिता की उचित देखभाल और समर्थन के बिना, किशोर दमनकारी, सत्तावादी वयस्कों में बदल सकते हैं और अगली पीढ़ी पर इस आक्रामकता और नकारात्मकता को पारित कर सकते हैं।

हिंसक मीडिया सामग्री रचनात्मकता और कल्पना की इच्छा को भी मार सकती है और रचनात्मक, समस्या समाधान परिदृश्यों और शांतिपूर्ण परिणामों के लिए उनकी क्षमता को बाधित कर सकती है। मीडिया में हिंसा में कैरल वेकेसर कहते हैं: ''हम जानते हैं कि जिस तरह हिंसक परिवार हिंसक बच्चे पैदा करते हैं, उसी तरह संघर्ष समाधान के विकल्पों की एक सीमित शब्दावली हिंसा का एक चिंतनशील उपयोग पैदा करती है''। जैसे-जैसे कंप्यूटर ग्राफिक्स और विशेष प्रभाव अधिक यथार्थवादी होते जाते हैं, किशोर पर हिंसक सामग्री का प्रभाव गहरे मनोवैज्ञानिक स्तर तक जाता है।

मीडिया हिंसा से कोई भी सुरक्षित नहीं है, लेकिन कुछ समूहों और श्रेणियों में अपराधी व्यवहार का अधिक जोखिम होता है, और मीडिया को उन नकारात्मक प्रभावों के लिए अपनी जिम्मेदारी को स्वीकार करना चाहिए जो घरेलू दुर्व्यवहार के इतिहास वाले

किशोरों और हाशिए पर हैं। राष्ट्रीय अपराध पीड़ित सर्वेक्षण (एनसीवीएस) के अनुसार, "हिंसक अपराध की संभावना 16 से 24 वर्ष की उम्र को खतरनाक समय बनाती है। 1973 से 1992 तक संकलित आंकड़ों ने 16-19 और 20-24 आयु समूहों को सबसे अधिक बार हिंसक अपराध पीड़ितों की उच्चतम दर की सूचना दी" (गुल और लुकस)।

हम सभी जानते हैं कि फिल्मों और टीवी श्रृंखलाओं में एक्शन और हिंसक दृश्यों पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है क्योंकि वे दर्शकों का ध्यान आसानी से खींचने में मदद करते हैं। एक समाचार के लिए एक शीर्षक तैयार करते समय, शीर्षक में सबसे महत्वपूर्ण विशेषता का उपयोग आज भी व्यापक रूप से लोकप्रिय है और इस वजह से, इसमें शारीरिक हिंसा का कोई भी तत्व केंद्र स्तर पर होता है। सबसे हड़ताली शीर्षक उन शब्दों या वाक्यों को उजागर करता है जो हिंसा को सबसे कठोर तरीके से व्यक्त करते हैं। यहां तक कि समाचार भी रिपोर्टर और पाठक दोनों को हिंसा को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने वाले विशेषणों और क्रियाविशेषणों के उपयोग के बिना कमजोर लग सकता है। मानसिक स्वास्थ्य ने टेलीविजन पर हिंसा देखने के इन प्रमुख प्रभावों की पहचान की:

1. बच्चे दूसरों के दर्द और पीड़ा के प्रति कम संवेदनशील हो सकते हैं।
2. बच्चे अपने आसपास की दुनिया से अधिक भयभीत हो सकते हैं।
3. बच्चों के दूसरों के प्रति आक्रामक या हानिकारक तरीके से व्यवहार करने की अधिक संभावना हो सकती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने हिंसा को ''शारीरिक बल या शक्ति का जानबूझकर उपयोग, धमकी या वास्तविक, स्वयं के खिलाफ, किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ, या किसी समूह या समुदाय के खिलाफ परिभाषित किया है, जिसके परिणामस्वरूप या तो परिणाम होने की उच्च संभावना है।''

''हिंसक व्यवहार'' से, अधिकांश आधुनिक आक्रामकता और हिंसा के विद्वानों का अर्थ है ''आक्रामक व्यवहार (जैसा कि ऊपर परिभाषित किया गया है) जिसमें चिकित्सा की आवश्यकता के लिए पर्याप्त गंभीर नुकसान पहुंचाने का एक उचित मौका है।

''मीडिया हिंसा'' से हमारा तात्पर्य उन दृश्यों और कहानी से है जिनमें कम से कम एक चरित्र ''आक्रामकता'' की उपरोक्त परिभाषा का उपयोग करते हुए, ''हिंसा'' की परिभाषा का उपयोग करते हुए कम से कम एक अन्य चरित्र के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है। इस प्रकार, टेलीविजन शो, फिल्में और वीडियो गेम जिनमें पात्र लड़ते हैं (उदाहरण के लिए पावर रेंजर्स), या एक दूसरे के बारे में मतलबी बातें कहते हैं (अक्सर रिलेशनल आक्रामकता कहा जाता है), या बुरे लोगों को मारते हैं, सभी मीडिया हिंसा के उदाहरण हैं, भले ही कोई खून नहीं है, कोई गोर नहीं है, दर्द में कोई चीख नहीं है। इस परिभाषा के अनुसार, अधिकांश आधुनिक वीडियो गेम जिन्हें वीडियो गेम उद्योग द्वारा बच्चों के लिए उपयुक्त माना जाता है - कुछ अनुमानों के अनुसार 90 प्रतिशत तक - हिंसक वीडियो गेम हैं।

मीडिया हिंसा आक्रामकता को कैसे बढाती है?

मीडिया में हिंसा का अस्तित्व कई वर्षों से चर्चा का विषय रहा है और कई वैज्ञानिक अध्ययनों का विषय भी रहा है। सबसे सरल व्याख्या यह है कि मीडिया में हिंसा का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह बिक्री की सुविधा प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में, यह सुनिश्चित करता है कि मीडिया सामग्री को व्यापक दर्शकों द्वारा पसंद और उपभोग किया जाए। मीडिया हिंसा के विद्वानों ने इसमें शामिल कई बुनियादी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की पहचान की है। वे अल्पकालिक बनाम दीर्घकालिक प्रभावों के लिए कुछ हद तक भिन्न हैं, लेकिन वे सभी विभिन्न प्रकार के सीखने को शामिल करते हैं। अल्पकालिक प्रभाव वे हैं जो एक्सपोजर के तुरंत बाद होते हैं। मीडिया हिंसा के जोखिम के मुख्य तरीके अल्पावधि में आक्रामकता को बढ़ाते हैं:

- देखे गए व्यवहार की प्रत्यक्ष नकल
- व्यवहारों, विश्वासों और आक्रामकता के अपेक्षित लाभों की अवलोकन संबंधी शिक्षा
- बढ़ी हुई उत्तेजना
- आक्रामकता से संबंधित सोचने और महसूस करने के तरीकों का भड़काना
- संक्षेप में, हिंसक मीडिया को देखने या चलाने के बाद कम से कम एक संक्षिप्त अवधि के लिए, उजागर व्यक्ति अधिक आक्रामक तरीके से सोचता है, अधिक आक्रामक महसूस करता है, यह मानता है कि अन्य उसके प्रति शत्रुतापूर्ण हैं और आक्रामक समाधानों को अधिक स्वीकार्य और लाभकारी मानते हैं। अल्पकालिक प्रभाव आमतौर पर जल्दी से समाप्त हो जाते हैं।

हालांकि, हिंसक मीडिया के बार-बार संपर्क के साथ, बच्चा या किशोर इन अल्पकालिक पाठों को अधिक स्थायी तरीके से ''सीखता है'', जैसे गुणन सारणी का अभ्यास करना या शतरंज खेलना उन कौशलों पर प्रदर्शन में सुधार करता है। यही है, व्यक्ति संघर्ष के आक्रामक समाधानों के बारे में अधिक सकारात्मक विश्वास रखता है, विकसित करता है जिसे कभी-कभी ''शत्रुतापूर्ण एट्रिब्यूशन पूर्वाग्रह'' कहा जाता है (एक शत्रुतापूर्ण तरीके से अस्पष्ट नकारात्मक घटनाओं को देखने की प्रवृत्ति) और अधिक आश्वस्त हो जाता है कि एक आक्रामक कार्रवाई उनका हिस्सा काम करेगा। इस बात के भी प्रमाण बढ़ रहे हैं कि बार-बार रक्त, जमा हुआ खून और अत्यधिक हिंसक मीडिया के अन्य पहलुओं के संपर्क में आने से दूसरों के दर्द और पीड़ा के प्रति भावनात्मक निराशा हो सकती है। बदले में, इस तरह के डिसेन्सिटाइजेशन से बिल्ट-इन ब्रेक में से एक को हटाकर आक्रामकता में वृद्धि हो सकती है जो आम तौर पर आक्रामकता और हिंसा को रोकता है। इसके अलावा, यह असंवेदनशीलता प्रभाव हिंसा के शिकार को देखते समय सामाजिक, सहानुभूतिपूर्ण, मददगार व्यवहार की संभावना को कम करता है।

कई वर्षों से, अमेरिकन एकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स ने मुख्य रूप से ध्यान की कमी के बारे में चिंता के कारण, टीवी और कंप्यूटर सहित किसी भी प्रकार के स्क्रीन मीडिया के बच्चों के संपर्क पर बहुत सख्त सीमा की सिफारिश की है। उदाहरण के लिए, वे अनुशंसा करते हैं कि 2 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को इलेक्ट्रॉनिक स्क्रीन, यहां तक कि अहिंसक मीडिया के संपर्क में नहीं आना चाहिए। बच्चों, किशोरों और युवा वयस्कों के साथ हाल के शोध से पता चलता है कि अहिंसक और हिंसक मीडिया दोनों वास्तविक दुनिया की ध्यान समस्याओं में योगदान करते हैं, जैसे कि ध्यान घाटे विकार और ध्यान घाटे की सक्रियता विकार। इसके अलावा, ये ध्यान समस्याएं आक्रामक व्यवहार, विशेष रूप से आवेगी प्रकार की आक्रामकता से दृढ़ता से जुड़ी हुई हैं।

हिंसा एक ऐसी घटना है जो पारंपरिक मास मीडिया जैसे टेलीविजन, समाचार पत्रों या वीडियो गेम जैसे वर्चुअल प्लेटफॉर्म में आसानी से सामने आती है और व्यक्तियों पर इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। इस विषय पर नैदानिक अध्ययनों से पता चलता है कि हिंसक प्रवृत्तियों, आक्रामकता और अंतर्मुखता जैसे अवांछनीय व्यवहार युवा लोगों में अधिक प्रचलित व्यवहार पैटर्न हैं जो हिंसा के संपर्क में हैं। इस स्थिति का सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि वास्तविक जीवन में हिंसा का अनुभव करने की आवश्यकता नहीं होती है। वीडियो गेम, टेलीविजन या सिनेमा में हिंसक सामग्री के संपर्क में आने से लगभग समान प्रभाव पड़ सकता है। मीडिया में हिंसा के परिणामस्वरूप, लोग यह मानने लग सकते हैं कि दुनिया में हिंसा वास्तव में उससे कहीं अधिक प्रचलित है। यह समाचार मीडिया में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा के महत्व पर प्रकाश डालता है। हालांकि कुछ प्रथाएं जैसे कि कई कानूनी नियम, नैतिक सिद्धांत, प्रकाशन नियम और जिम्मेदारियां मीडिया हिंसा के हानिकारक प्रभावों से व्यक्ति और समाज की रक्षा के लिए निर्धारित की गई हैं, मीडिया सामग्री में हिंसा की उपस्थिति को पूरी तरह से समाप्त करना संभव नहीं है। हालांकि, हालांकि हिंसक प्रस्तुतियों के हानिकारक प्रभावों को रोकने के लिए चेतावनी प्रतीकों जैसे उपाय हैं, कम से कम बच्चों के लिए, आज के डिजिटल युग में मीडिया सामग्री तक पहुंच को सीमित करना संभव नहीं लगता है।

निष्कर्ष (CONCLUSION)

अहिंसक इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कई प्रभाव सकारात्मक हैं, लेकिन अधिकांश हिंसक मीडिया प्रभाव नकारात्मक हैं। माता-पिता और अन्य देखभालकर्ता हिंसक मीडिया के हानिकारक प्रभावों को कई तरीकों से कम कर सकते हैं, जैसे कि बच्चे के वातावरण में सकारात्मक या ''सुरक्षात्मक'' कारकों को बढ़ाकर, और हिंसक मीडिया के संपर्क को कम करके। यह कोई आसान काम नहीं है, लेकिन इसे बहुत कम या बिना किसी खर्च के किया जा सकता है। ऐसा करने के लाभ स्वस्थ, खुश, अधिक सफल बच्चे, किशोर और युवा वयस्क हैं। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप से मीडिया से जुड़ा हुआ है। जागने से सोने तक वह अखबार, पत्र-पत्रिकाओं, मोबाइल फोन, इंटरनेट अथवा टेलीविजन के विभिन्न चौनल से जानकारी प्राप्त करता है। जिसका लोगों की सोच व विचार पर असर पड़ता है। मुख्य वक्ता डॉ. आशुतोष अंगिरस ने वर्तमान मीडिया में हिंसक दृश्यों, घटनाओं, सूचनाओं का जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में बताया। डॉ. आशुतोष ने कहा कि एक ओर विज्ञापन एवं मनोरंजन प्रदान करने वाले कार्यक्रम व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं, व्यक्ति का मनोरंजन करते हैं, वहीं इनमें परोसे जाने वाले हिंसक दृश्य लोगों के जीवन को प्रभावित करता है। उन्होंने कहा कि विज्ञापन भले ही वस्तु संबंधित हो, लेकिन व्यापारी व उद्योगपति के हित का काम करते

हैं। वे किसी न किसी रूप में उपभोक्ता के दिल और दिमाग को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार मनोरंजन के कार्यक्रम में भी हिंसक दृश्य दिखाए जाने से लोग विचलित हो जाते हैं। अब मीडिया की जिम्मेदारी बनती है कि वे इन दृश्यों को किस रूप और मात्रा में दिखाएं। उन्होंने कहा कि मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह युवा पीढ़ी के समक्ष भारतीय संस्कृति, दर्शन और देशहित के लिए प्रेरित करने वाले दृश्य प्रस्तुत करें। सबसे सामान्य शब्दों में, हिंसा का अर्थ है निर्ममता, कठोर व्यवहार और पाशविक बल। यद्यपि हिंसा की अवधारणा, जिसके कई अलग-अलग प्रकार हैं, आम तौर पर शारीरिक प्रभावों को संदर्भित करती है, अन्य प्रकार की हिंसा भी होती है जैसे कि मनोवैज्ञानिक, मौखिक, अशाब्दिक और यौन हिंसा। आश्चर्य की बात यह है कि मीडिया में हिंसा का प्रसंस्करण और प्रस्तुतिकरण उतना ही पुराना है जितना कि मास मीडिया का इतिहास। इस तरह सभी प्रकार की हिंसा लोगों को जानी-पहचानी या सामान्य लग सकती है। कई लोगों के लिए, यह तथ्य कि उन्होंने अपने दैनिक जीवन में कभी भी इस तरह की हिंसा का सामना नहीं किया है या कभी नहीं किया है, इस बिंदु पर इसका महत्व खो देता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची (REFERENCES)

1. http://public.psych.iastate.edu/caa/StatementsonMediaViolence.html.
2. Jesse Feldman, statement in hearings before Subcommittee on Communications of Committee on Commerce, United States Senate, Serial #92-52 (Washington, D.C.: U.S. Government Printing Office, 1972) 25-27.
3. Wekesser, Carol. Violence in the Media. London: Greenhaven Press, 1995.
4. Gall, Timothy, and Daniel M. Lucas. Statistics on Weapons & Violence. Detroit: Gale Research, 1996

भारतीय समाज में जातीय और धार्मिक संगठनो की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० प्रेमलता

एसोसिएट प्रोफेसर, सामाज शास्त्र विभाग, दाऊ दयाल महिला पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

सारांश

संगठन उन सभी समूहों को कहा जाता है; जो लोगों के समूह से बने होते हैं, जो लोगों या समुदाय के लाभ के लिए उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए रणनीतियों की योजना बनाने के लिए राय, मूल्य, विश्व साक्षात्कार, हितों और चिंताओं को साझा करते हैं।

सामाजिक संगठनों के सबसे आम उदाहरण राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, व्यावसायिक, शैक्षिक और पर्यावरण संगठन हैं। संगठन तरह-तरह के हो सकते हैं - सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सैनिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक आदि।

हालाँकि, परिवार मौलिक सामाजिक संगठन और समाज का आधार है, क्योंकि इसमें प्रत्येक नागरिक की पहचान एक नाम और उपनाम से की जाती है।

एक सामाजिक संगठन के प्रत्येक सदस्य में विशिष्ट विशेषताएं हैं जो उन्हें विभिन्न उपकरणों के माध्यम से घोषित उद्देश्य को प्राप्त करने की अनुमति देती हैं। नतीजतन, प्रत्येक सामाजिक संगठन अपने सामाजिक कार्य के अनुसार अद्वितीय है।

समय और जरुरत के हिसाब से सामाजिक संगठन हमेशा बनते-बिगड़ते रहते और हैं और लोगों के एक निश्चित समूह को प्रभावित करता है।

उदाहरण के लिए, परिवारों की सामाजिक संरचनाएं बदल गई हैं, क्योंकि सामाजिक और सांस्कृतिक जरूरतों में लगातार बदलाव होता है, और इसलिए घर में भी भूमिकाएं होती हैं। सांस्कृतिक या राजनीतिक संगठनों का भी यही हाल है।

जातीय समूह मनुष्यों का एक ऐसा समूह होता है जिसके सदस्य किसी वास्तविक या काल्पनिक सांझी वंश-परंपरा के माध्यम से अपने आप को एक नस्ल के वंशज मानते हैं। यह सांझी विरासत वंशक्रम, इतिहास, रक्त-संबंध, धर्म, भाषा, सांझे क्षेत्र, राष्ट्रीयता या भौतिक रूप-रंग (यानि लोगों की शक्ल-सूरत) पर आधारित हो सकती है। एक जातीय समूह के सदस्य अपने एक जातीय समूह से संबंधित होने से अवगत होते हैं; इसके अलावा जातीय पहचान दूसरों द्वारा उस समूह की विशिष्टता के रूप में पहचाने जाने से भी चिह्नित होती है।

भारत में जातीय श्रेणियां सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं हैं। 1,652 मातृभाषाओं को बोले जाने और/या 645 अनुसूचित जनजाति जिसके अंतर्गत लोग आते हैं, के आधार पर जनसंख्या को वर्गीकृत किया जाता है।

धार्मिक स्थलों और गतिविधियों को आयोजित करने के लिए कुछ बुनियादी ढांचे की आवश्यकता होती है। इस कारण से धार्मिक संगठनों का निर्माण किया जाता है। प्रस्तुत लेख भारत में मौजूद विभिन्न जातीय और धार्मिक संगठनों की समीक्षा करता है।

मूलशब्द: भारतीय समाज, जातीय, धार्मिक संगठन, भूमिका, राजनीति

परिचय

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्यशील होते हैं तो संगठन की आवश्यकता पड़ती है। उद्देश्य के अल्पकालीन होने से संगठन की आवश्यकता में कमी नहीं आती। किसी भी बड़े सामाजिक कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व से उसको संचालित करने के लिए संगठन का निर्माण कर लिया जाना चाहिए। बगैर संगठन के किसी भी उद्देश्य की प्रभावपूर्ण ढंग से पूर्ति संभव नहीं है। एक अच्छा संगठन किसी निष्क्रिय उपक्रम को भी जीवन प्रदान कर सकता है। संगठन सम्पूर्ण प्रबन्ध के संचालन का केन्द्र है जिसके द्वारा मानवीय प्रयासों को समन्वित करके उन्हें सहक्रियाशील बनाया जाता है। संगठन कार्यों, साधनों व सम्बन्धों की एक औपचारिक अवस्था है जिसके माध्यम से प्रबन्ध अपना कार्य सम्पन्न करता है। यह प्रबन्ध का तंत्र एवं शरीर रचना है। संगठित प्रयासों के द्वारा ही उपक्रम की योजनाओं एवं आवश्यकताओं को साकार किया जा सकता है। एक सुदृढ़ संगठन व्यवसाय की प्रत्येक समस्या का उत्तर है।

जातीय संगठन और उनकी भूमिका

वे मानव संसाधनों के अस्तित्व और प्रशासन की वृत्ति के हिस्से के रूप में मुख्य सामाजिक संगठन थे। इनसे भीड़, वंश, गोत्र, परिवार निकले, जब तक कि जिन समुदायों, समाजों और संगठनों को यह ज्ञात नहीं है, वे स्थापित हो चुके थे। वे मनुष्य के रूप में और हमारे इतिहास के विकास का एक अनिवार्य हिस्सा हैं।

जाति व्यवस्था को लेकर समाज में द्वंद्व-अंतर्द्वंद्व के सिलसिले की शुरुआत उसी समय से मानी जा सकती है, जब से वर्ण व्यवस्था के स्थान पर जाति व्यवस्था का प्रचलन शुरू हुआ। जातियों के राजनीतिकरण ने इस प्रक्रिया को आगे तक चलते रहने के लिए पुख्ता कर दिया और इसी का नतीजा है कि हाल में हुए विधानसभा चुनावों के दौरान राजनीतिक गणितज्ञ सामाजिक जातियों को ध्यान में रखकर मतों का राजनीतिक गुणा-भाग करते नजर आए।

जातीय संगठन अपनी जाति के लोगों को राजनीतिक दलों के मुकाबले संगठित रखने में ज्यादा सफल रहे हैं। यही ध्यान में रखते हुए राजनीतिक दल जातीय संगठनों और उनके नेताओं को पूरी तवज्जो देते हैं और राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के लिए उनका उपयोग करने में कामयाब रहे हैं।

जातीय प्रभाव स्थानीय राजनीति में तो है ही, केरल, तमिलनाडु, बिहार, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, हरियाणा और राजस्थान जैसे राज्यों की राजनीति में भी इसका अच्छा-खासा दबदबा है।

हालांकि एक लोकतांत्रिक देश के नाते संविधान के अनुच्छेद 15 में राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में भेदभाव नहीं किए जाने की बात कही गई है। लेकिन विरोधाभास है कि सरकारी औहादे के लिए आवेदन या चयन की प्रक्रिया के वक्त जाति को प्रमुखता दी जाती है।

जाति प्रथा के कारण ही भारत के विभिन्न धार्मिक समूह सामाजिक और राजनीतिक रूप से एक दूसरे के समीप नहीं आ सके जिसके कारण एक सुदृढ़ समाज का निर्माण नहीं हो सका।

धार्मिक संगठनों की भूमिका

भारत की जनगणना 2011 के अनुसार देश की कुल जनसंख्या में हिन्दू 79.8 प्रतिशत, मुसलमान 14.2 प्रतिशत, ईसाई 2.3 प्रतिशत, सिख 1.7 प्रतिशत, बौद्ध 0.70 %, जैन 0.37, और अन्य धर्मों को मानने वाले का प्रतिशत 0.6 है।

इनमें से प्रत्येक धर्म भी कई मतों में बंटा हुआ है, जैसे हिन्दू धर्म वैष्णव शैव, शाक्त जैसे सम्प्रदायों में बंटा हुआ है। इन सम्प्रदायों के भी उनके उपसम्प्रदाय हैं। जैसे शैव सम्प्रदाय के लोग वीरशैव, कालामुख आदि उपसम्प्रदायों में विभाजित हैं। हिन्दू धर्म में कई सुधार आन्दोलन चले जिसके कारण इसके और उपविभाजनक सामने आए। इनमें से एक विभाजन सनातन और आर्य समाज में हुआ। इसके अलावा हिन्दू धर्म में रामभक्ति, कृष्ण भक्ति, कबीर पंथी और नाथ पंथी आदि की भी विशद परम्परा है। विचारधारा के स्तर पर भी कई मत सामने आए जिनमें रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद और शंकराचार्य के अद्वैतवाद को ज्यादा स्वीकार्यता मिली। हिन्दू

धर्म के तहत पनपी जाति और वर्ण सम्बन्धी सामाजिक व्यवस्था भी हिन्दू धर्म में सामाजिक विविधता को दर्शाती है। हिन्दू धर्म में चार वर्ण-ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्वीकार किए गए हैं।इन वर्णों में कई क्रमागत उपविभाजन हैं। प्राय: यही माना जाता है कि जाति इन्हीं उपविभाजनों को प्रदर्शित करती है।

सुधार आंदोलन

जाति प्रथा की अनेक बुराइयों तथा ऊच-नीच, अस्पृश्यता भेदभाव शोषण व अन्याय से संत महात्माओं व प्रबुद्ध भारतीयों ने सुधार आंदोलन किए। इनमें उल्लेखनीय है समाज ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, दलित सेवा संघ व ईश्वर भक्त आश्रम।

इन्होंने समतावादी समाज की स्थापना की दिशा में प्रयास किए और उच्च जातियों को हृदय परिवर्तन के लिए प्रेरित किया। इन्होंने स्वस्थ जनमत तैयार करने की दिशा में सराहनीय प्रयास किए। निम्न जातियों में नई आशा व जीवन का संचार हुआ उन्हें लगा कि अधिकार मांगने से नहीं वरन संघर्ष से ही मिल सकते हैं।

संगठन का नाम	स्थान	संस्थापक	वर्ष	उद्देश्य
आत्मीय सभा	कलकत्ता	**राजा राम मोहन रॉय**	1815	हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराईयों को दूर करना और एकेश्वरवाद का प्रसार
ब्रह्म समाज	कलकत्ता	**राजा राम मोहन रॉय**	1828	हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराईयों को दूर करना और एकेश्वरवाद का प्रसार
बंगाल युवा आन्दोलन	कलकत्ता	**हेनरी लुईस विवियन डेरेजियो**	1828	सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक सुधार
धर्म सभा	कलकत्ता	**राधाकांत देव**	1829	ब्रह्म समाज के विरुद्ध हिन्दू कट्टरपंथ का समर्थन करना
तत्वबोधिनी	कलकत्ता	**देवेन्द्र नाथ टैगोर**	1826	ब्रह्म समाज के विचारों का प्रसार
परमहंस मंडली	बम्बई		1849	जाति प्रथा को दूर करने का प्रयास करना
राधास्वामी सत्संग	आगरा	**शिवदयाल सिंह**	1861	एकेश्वरवाद का प्रसार
आदि ब्रह्म समाज	कलकत्ता	**केशव चन्द्र सेन**	1865	सामाजिक सुधार
प्रार्थना समाज	बम्बई	**महादेव गोविन्द रानाडे, डा. आत्माराम पांडुरंग**	1867	हिन्दू धार्मिक प्रथाओं और और विचारधारा में सुधार
सत्य शोधक समाज	महाराष्ट्र	**ज्योतिबा फुले**	1873	दलित वर्ग को शिक्षित करके उन्हें स्वतंत्र कराने और अपने अधिकारो के प्रति जागरूक बनाने के लिए
आर्य समाज	बम्बई	**स्वामी दयानंद सरस्वती**	1875	हिन्दू धर्म में सुधार और हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन को रोकना
थियोसोफिकल सोसायटी	न्यूयार्क, अड्यार	**हेलेना ब्लावत्सकी, हेनरी स्टील ओल्कॉट**	1875	प्राचीन धर्म, दर्शन एवं मानवीय समाज का प्रचार
साधारण ब्रह्म समाज	कलकत्ता	**आनंद मोहन बोस, शिवनाथ शास्त्री**	1878	सामाजिक सुधार
दक्कन एजूकेशन सोसायटी	पूना	**गोपाल गणेश अगरकर, वी. एस. आप्टे**	1884	शिक्षा व्यवस्था में सुधार, और छात्रों में देश-प्रेम का भाव पैदा करना
इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस	बम्बई	**एम. जे. रानाडे**	1887	स्त्रियों की दशा सुधारने का प्रयास करना
देव समाज	लाहौर	**शिव नारायण अग्निहोत्री**	1887	इसके अनुयायी गुरु की पूजा करते थे
राम कृष्ण मिशन	बेलूर	**स्वामी विवेकानन्द**	1897	अंतर्राष्ट्रीय स्टार पर मानवता का भाव पैदा करना
सर्वेंट ऑफ़ इंडिया	बम्बई	**गोपाल कृष्ण गोखले**	1905	मातृभूमि की सेवा के लिए भारत-वासियों को तैयार करना
पूना सेवा सदन	पूना	**रमा बाई रानाडे, जी. के. देवधर**	1909	महिलाओं की दशा सुधरने का प्रयास करना
सोशल सर्विस लीग	बम्बई	**एन. एम. जोशी**	1911	मानव के सुविधाजनक एवं उपयोगी वातावरण तैयार करना
सेवा समिति	इलाहाबाद	**एच. एन. कुंजरू**	1914	प्राकृतिक आपदाओं के समय समाज की सेवा करना और सिखा को प्रोत्साहित करना
सेवा समिति बॉय स्काउट एसोसिएशन	बम्बई	**श्रीराम बाजपेई**	1914	बॉय स्काउट के जरिये भारतीयता पैदा करना

वोमेन इंडिया एसोसिएशन	मद्रास		1923	इसके प्रयासों से 1926 में आल इंडिया वोमेन्स कान्फ्रेंस शुरू हुई
रहनुमाई माजदयासन सभा	बम्बई	**दादाभाई नैरोजी एस. एस. बंगाली**	1851	पारसी धर्म के विचारों से लोगों को अवगत कराने के लिए एवं पारसी महिलाओं की दशा सुधारने का प्रयास करना
स्वामी नारायण संप्रदाय	गुजरात	**स्वामी सहजानंद**	1830	समाज में शांति और सदभावना कायम करना
वहाबी आन्दोलन	सिताना	**सैय्यद अहमद**	1820	इस्लाम में व्याप्त बुराईयों को दूर करना
देवबंद आन्दोलन	देवबंद सहारनपुर	**मुहम्मद कासिम ननौत्वी, रशीद अहमद गंगोही**	1867	आर्थिक रूप से अक्षम छात्रों की शिक्षा एवं चरित्र निर्माण
अलीगढ आन्दोलन	अलीगढ	**सर सैय्यद अहमद खां**	1864	मुस्लिमों के बीच अधिनिक पश्चिमी शिक्षा को प्रोत्साहित करना
फरैजी आन्दोलन	बंगाल	**हाजी शरियतुल्ला**	1838	इस्लाम के मूल सिद्धांतों (फरैद) पर बल देना
अहमदिया आन्दोलन	कादियां, गुरदासपुर, पंजाब	**मिर्जा गुलाम अहमद**	1889	इस्लाम की रक्षा करना
ताय्यूनी आन्दोलन	कलकत्ता	**करामत अली जौनपुरी**	1839	मूलतः फरैजियों के विरुद्ध एक धार्मिक आन्दोलन
भारत स्त्री मंडल	कलकत्ता	**सरलाबाला देवी चौधरानी**	1910	स्त्रियों को उनके घर पर ही शिक्षित करने का प्रयास
निष्काम कर्म मठ	पूना	**अन्ना साहब कर्वे**	1908	महिलाओं की उच्च शिक्षा के लिए प्रयास
शान्ति निकेतन एवं विश्व भारती	कलकत्ता	**रवीन्द्र नाथ टैगोर**	1921	ऐसे शिक्षा केन्द्र की स्थापना की जाए, जहाँ पूर्व और पश्चिम को मिलाया जा सके
मद्रास हिन्दू एसोसिएशन	मद्रास	**वीरेशालिंगम पंतुलु**	1892	सामाजिक शुद्धतावादी आन्दोलन
भारत धर्म महामंडल	वाराणसी	**एम. एम. मालवीय, दीनदयाल शर्मा, गोपाल कृष्ण गोखले**		
मानव धर्म सभा	कलकत्ता	**मेहताजी दुर्गाराम मशाराम**		
वेद समाज	मद्रास	**श्री धरालु नायडु**	1864	ब्रह्म समाज के अस्तिकवादी दर्शन में विश्वास रखते हुए हिन्दू धर्म की परिसीमाओं के भीतर सामाजिक सुधार
राजमुंदरी रिफार्म एसोसिएशन	हैदराबाद	**वीरेशालिंगम पंतुलु**		
भारतीय सेवा मंडल		**अमृतलाल विट्ठलदास**		
हरिजन सेवक संघ		**महात्मा गाँधी**		

भारत में धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक संस्कृति की मौजूदगी के बावजूद स्वतंत्र्भारत में धार्मिक आधार पर कई राजनीतिक दलों का गठन हुआ है, मसलनखशिरोमाणि अकाली दल, हिन्दू महासभा, बजरंग दल, विश्व हिन्दू परिषद्, रामराज्य परिषद्, शिव सेना, मुस्लिम लीग आदि। इन दलों के अस्तित्वखनिर्माण में धार्मिक एवं सामुदायिक तत्वों की प्रधान भूमिका रही है। ये दल चुनाव में धार्मिक पक्षों को प्रधानता देते हैं और प्रत्याशियों के चयन से लेकर वोट मांगने और मतप्रबंधन करने तक में धर्म को बुनियादी तत्व के रूप में मान्यता देते हैं। इन दलों द्वारा अपने सांप्रदायिक हितवर्द्धन के नाम पर चुनावी राजनीति का संचालन किया जाता है। चुनावी मुद्दों के रूप में जहां हिन्दू धार्मिक दलों द्वारा राम मंदिर का निर्माण, गौ हत्या बन्द करो, गंगा सफाई योजना जैसे धार्मिक प्रसंगों को प्रमुखता से उभारा जाता है, वहीं मुस्लिम लीग द्वारा चुनावी मुद्दों में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा तथा सभी मामलों में उनकी उपेक्षा की बातें मुख्य रूप से उठायी जाती हैं।

धर्म आधारित लगभग सभी दलों की सक्रियता देश के किसी खास हिस्से में केन्द्रित हैं, जैसे मुस्लिम लीग का कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में है जो मालाबार मापाला समुदाय के बल पर जीवित है। ऐसे ही सिक्खों के अकाली दल की सक्रियता पंजाब में और शिवसेना का कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र में है। हिन्दू महासभा सैद्धान्तिक स्तर पर तो एक राष्ट्रीय पार्टी है, लेकिन व्यवहार में यह मुख्य रूप से मध्यप्रदेश तथा उसके आसपास के इलाकों में सक्रिय है।

निष्कर्ष

भारत एक विविधतावादी राष्ट्र है अर्थात यहां विभिन्न प्रकार की बोलियाँ, भाषाएँ और सभ्यतायें एवं अनेक धर्म और जातियां मिलती हैं। जातियाँ संगठन बनाकर जातियां अपने हितों को व्यक्त करते हैं।

च्मू रिसर्च सेंटर के एक नए सर्वेक्षण के अनुसार भारत के औपनिवेशिक शासन से आजाद होने के 70 वर्षों से अधिक समय के बाद, भारतीयों को आम तौर पर लगता है कि उनके देश ने स्वतंत्रता के बाद के अपने आदर्शों में से एक का पूरा पालन किया है: एक ऐसा समाज जहां कई धर्मों के अनुयायी स्वतंत्र रूप से रहते हुए अपने धर्मों का पालन कर सकते हैं।

भारत की विशाल जनसंख्या विविध होने के साथ-साथ धर्मनिष्ठ भी है। न केवल दुनिया के अधिकांश हिंदू, जैन और सिक्ख भारत में रहते हैं, बल्कि यह दुनिया की सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी में से एक और लाखों ईसाइयों और बौद्धों का घर भी है।

भारत में धार्मिक संस्थाएं न सिर्फ कारोबारी संस्थानों की तरह चलाई जाती हैं बल्कि एक सर्वे के अनुसार आधुनिक उद्यमों की तरह अपने ग्राहकों यानी भक्तों की वफादारी बनाए रखने के लिए यह कारोबार फैलाया भी गया है।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल,जी.के.(2018), ग्रामीण समाजशास्त्र, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस।
2. विद्याभूशण,सचदेव,डी.आर., (2018), समाजशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली।
3. सिंह, जे.पी (2019), आधुनिक भारत का समाज, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
4. गुप्ता, एम.एल., शर्मा, डी.डी. (2016), समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा।

- अबीजादेह, आराश, "Ethnicity, Race, and a Possible Humanity" वर्ल्ड ऑर्डर, 33.1 (2001): 23-34. (अनुच्छेद जो जातीयता और कुल वशं के सामाजिक निर्माण की पड़ताल करता है।)
- बार्थ, फ्रेड्रिक. एथनिक ग्रुप्स एंड बाउनड्रीज. दी सोशल ओर्ग्नाईजेशन ऑफ कल्चरल डिफरेंस, ओस्लो: यूनीवरसिटेट्सफॉरलागेट, 1969
- बिलिंगर, माइकल एस. (2007), "Another **observe** Ethnicity as a Biological Concept: Moving Anthropology Beyond the Race Concept", क्रिटिक ऑफ एन्थ्रोपोलोजी 27, 1:5-35.
- कोल, सी.एल "Nike's अमेरिका/ अमेरिकाज माइकल जॉर्डन", माइकल जॉर्डन, इंक.: कॉर्पोरेट सपोर्ट, मीडिया कल्चर, एंड लेट मोडर्न अमेरिका. (न्यूयॉर्क: सनी प्रेस, 2001)।
- Dünnhaupt, जेरहार्ड, ''दी बीवाइलड्रिंग जर्मन बाउनड्रीज'', में: Festschrift for P. M. Mitchell (हेडलबर्ग: विंटर 1989)।
- आइसेंक, एच. जे., रेस, एड्युकेशन और इंटेलिजेंस (लंदन: टेम्पल स्मिथ, 1971) (ISBN 0-85117-009-9)
- हार्टमन, डगलस. ''मध्यरात्रि बास्केट बॉल और मनोरंजन, रेस और जोखिम-पर शहरी युवा की सांस्कृतिक राजनीति'', पर नोट्स जर्नल ऑफ सपोर्ट एंड सोशल इशुज. 25 (2001): 339-366.

माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

अमित कुमार

शोध छात्र (शिक्षक-शिक्षा विभाग), राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0
सम्बद्ध- वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ0प्र0

डॉ० श्रीमती अनुभा शुक्ला

असिस्टेन्ट प्रोफेसर (शिक्षक-शिक्षा विभाग), राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0
सम्बद्ध- वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ0प्र0

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने अमेठी जनपद में अवस्थिति ग्रामीण तथा शहरी विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों, अध्ययनरत् छात्रों तथा सम्बन्धित छात्रों के अभिभावकों से स्व:निर्मित प्रश्नावली के माध्यम से व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित किये गये तथा प्राप्त आंकड़ों का उपयुक्त सांख्यिकीय की सहायता से विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों में ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के मुकाबले अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति पायी गई तथा छात्रों की अभिवृत्ति छात्राओं से बेहतर प्राप्त हुई।

मुख्य शब्द- व्यावसायिक निर्देशन एवं अभिवृत्ति।

प्रस्तावना:

1. निर्देशन
2. व्यावसायिक निर्देशन
3. व्यावसायिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति

1. निर्देशन- निर्देशन का तात्पर्य है, एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति या समूह को निर्देशन देना जो उनकी समस्या का हल खोजने में सहायता करना। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा और जीवन में आने वाली अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधान को खोजना और परिस्थितियों से सामांजस्य स्थापित करने आदि कार्यों में सहायता करना ही निर्देशन कहलाता है।

निर्देशन की परिभाषा- कोठारी आयोग के अनुसार- ''निर्देशन किसी विद्यार्थी की शैक्षिक संस्थाओं, घरों में समायोजन के योग्य बनाना तथा उनके व्यक्तित्व के सभी पक्षों में सहायता करना।''

बर्नार्ड और फुलमर के अनुसार- ''निर्देशन वे सभी क्रियाएँ हैं जो व्यक्ति को आत्मसिद्धि को उन्नत करती है।''

रुथ स्ट्रंग के अनुसार- ''निर्देशन का उद्देश्य बालक में विद्यमान सम्भावनाओं के रुप में अधिकतम विकास को बढ़ावा देना है।''

मायर्स के अनुसार- ''निर्देशन व्यक्ति को नैसर्गिक क्षमताओं तथा यत्नपूर्वक प्रशिक्षण से प्राप्त योग्यताओं को संरक्षित रखने का एक मूल प्रयास है। इसके लिए व्यक्ति् को वे समस्त सुविधाएं उपलब्ध कराता है, जिससे वह अपने विकास के लिए पहचान कर सके।''

2. व्यावसायिक निर्देशन- व्यावसायिक निर्देशन, व्यक्तियों के गुणों एवं व्यवसाय के साथ उनके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए, व्यक्ति को व्यवसाय के चयन एवं उसकी प्रकृति में आने वाली समस्याओं को सुलझाने में प्रदान की जाने वाली सहायता को कहते हैं। नेशनल वोकेशनल गाइडेंस एसोएिशन के द्वारा 1924 में उल्लेख किया है- ''व्यावसायिक निर्देशन व्यवसाय को चुनने के लिए तैयार करके, उसमें प्रवेश करने तथा उसमें विकास करने हेतु सूचना देने, अनुभव देने तथा सुझाव देने की प्रक्रिया मात्र है।''

फ्रैंक पारसन्स के अनुसार,- ''व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को किसी व्यवसाय के चुनाव करने के लिए तथा उसमें प्रवेश करने एवं प्रगति करने हेतु सहायता करने का प्रक्रम है। इसका सम्बन्ध मुख्य रूप से भविष्य की योजना बनाने एवं विकल्पों के चुनाव में व्यक्ति को सहायता प्रदान करने से हैं ये निर्णय एवं वैकल्पिक चुनाव को संतोष तक व्यावसायिक समायोजन प्रदान करने के लिए आवश्यक है।''

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार- ''व्यावसायिक निर्देशन, व्यक्तियों के गुणों एवं व्यवसाय के साथ उनके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए, व्यक्ति को व्यवसाय के चयन एवं उसकी प्रकृति में आने वाली समस्याओं को सुलझाने में प्रदान की जाने वाली सहायता को कहते हैं।''

3. व्यावसायिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति- व्यावसायिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति का आशय है-व्यक्तियों में व्यावसायिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक व नकारात्मक रूप से अपनी प्रतिक्रिया देना। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यावसायिक निर्देशन के लिए व्यक्ति की रुचि, क्षमता, योग्यता तथा अपने विचार अभिवृत्ति हो सकती है, जिससे आधार पर व्यक्ति व्यावसायिक निर्देशन के प्रति अपने विचार व्यक्त करता है, जो सकारात्मक व नकारात्मक हो सकते हैं। व्यवसाय चुनने से सम्बन्धित समस्या का हल व्यावसायिक निर्देशन की सहायता से किया जाता है जो छात्र, शिक्षक तथा अभिभावक में व्यावसायिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति धनात्मक व ऋणात्मक हो सकती है।

शोध का औचित्य- व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता भारतीय परिवेश में एक अलग-अलग स्थान रखती है, क्योंकि यहाँ के विद्यार्थियों की समस्या का रूप अलग-अलग होता है। छात्र, शिक्षक तथा अभिभावक इन तीनों को उचित व्यावसायिक निर्देशन प्रदान किया जाए ताकि वे तीनों व्यवसाय के उद्देश्यों को हर स्तर पर व्यवसाय सभी क्षेत्र में प्राप्त करने में अपनी भूमिका निभा सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यावसायिक निर्देशन अध्यापक तथा छात्रों के लिए जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण अभिभावक के लिए भी है। व्यावसायिक निर्देशन के महत्व को समझते हुए शोधकर्ता ने विभिन्न शोध प्रपत्रों, शोध कार्यों, लघु शोध इत्यादि का व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में अध्ययन किया तथा यह पाया कि व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में कई अध्ययन हुए हैं परन्तु व्यावसायिक निर्देशन की भूमिका को सार्थक बनाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व व्यावसायिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक 'अभिवृत्ति' के संदर्भ में कोई अध्ययन नहीं किया गया अस्तु शोधकर्ता ने प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के संदर्भ में शिक्षकों, छात्रों व अभिभावकों की व्यावसायिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करने का निश्चय किया है।

समस्या कथन- ''माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन''।

तकनीकी शब्दों की परिभाषा-

1. माध्यमिक स्तर
2. व्यावसायिक निर्देशन

3. शिक्षक, छात्र तथा अभिभावक
4. अभिवृत्ति

1. **माध्यमिक स्तर**- प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक से अभिप्राय कक्षा-9 तथा कक्षा-10 से है।
2. **व्यावसायिक निर्देशन**- प्रस्तुत अध्ययन में व्यावसायिक निर्देशन से अभिप्राय व्यवसाय सम्बन्धी किसी भी समस्या के समाधान हेतु सहायता करना या व्यवसाय के क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने में सहायता देना।
3. **शिक्षक, छात्र तथा अभिभावक**- प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षक से अभिप्राय कक्षा-9 तथा कक्षा-10 में कार्यरत शिक्षकों से है तथा छात्र से अभिप्राय कक्षा-9 तथा कक्षा-10 में अध्ययनरत् छात्रों से है। इसके अतिरिक्त अभिभावक से अभिप्राय कक्षा-9 तथा कक्षा-10 में अध्ययनरत् छात्रों के अभिभावकों से है।
4. **अभिवृत्ति**- प्रस्तुत अध्ययन में अभिवृत्ति से अभिप्राय शिक्षक, छात्र व अभिभावकों के व्यावसायिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक व नकारात्मक दृष्टिकोण से है।

शोध के उद्देश्य-

1. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
2. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
3. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
4. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र व छात्राओं में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
5. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
6. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना।
7. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएं-

1. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नही है।
3. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
4. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र व छात्राओं में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नही है।
5. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
6. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया का कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

7. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया का कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

शोध का परिसीमन-

1. प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत जनपद अमेठी के बहादुरपुर ब्लाक में अवस्थित समस्त माध्यामिक स्तर के विद्यालयों में सम्मिलित किया गया है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा-9 तथा कक्षा-10 में अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों तथा 100 अभिभावकों को सम्मिलित किया गया।
3. प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा-9 तथा कक्षा-10 को पढ़ाने वाले 100 शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है।

शोध अभिकल्प- किसी भी शोध अनुसंधान को निश्चित समय में पूर्ण करने व सफल रूप से प्रतिपादित करने के लिए स्पष्ट शोध अभिकल्प का होना अति आवश्यक है। शोध अभिकल्प के अन्तर्गत भविष्य में किये जाने वाले कार्य को क्रमबद्ध व प्रभावपूर्ण तरीके से किये जाने के लिए बनायी जाने वाली योजना को सम्मिलित किया जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य शोधकर्ता को एक ढांचा प्रदान करना तथा ऊपरी दृष्टि निर्धारित करना होता है।

शोध अभिकल्प के अन्तर्गग्त निम्नलिखित रूपरेखा बनायी जाती है-

1. शोध विधि
2. आंकड़ों का स्रोत
3. शोध क्षेत्र
4. समष्टि (जनसंख्या)
5. प्रतिदर्श
6. शोध उपकरण
7. शोध उपकरणों का प्रशासन, आंकड़ों का एकीकरण का अंकन
8. शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियां।

- **शोध विधि**- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा वर्णनात्मक विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण प्रविधि का प्रयोग किया गया है।
- **आंकड़ों का स्रोत**- प्रस्तुत अध्ययन के लिए शोधकर्ता द्वारा तीन स्रोतों की सहातया से आंकड़े एकत्रित किये गये हैं जो कि इस प्रकार है-

क) अमेठी जनपद के ब्लाक बहादुरपुर के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों से प्राप्त आंकड़े।

ख) अमेठी जनपद के ब्लाक बहादुरपुर के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों से प्राप्त आंकड़े।

ग) अमेठी जनपद के ब्लाक बहादुरपुर के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों से प्राप्त आंकड़े।

- **शोध का क्षेत्र**- प्रस्तुत अध्ययन का शोध का क्षेत्र अमेठी जनपद है, जिसके अन्तर्गत सभी माध्यमिक विद्यालयों को प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।
- **समष्टि (जनसंख्या)**- प्रस्तुत अध्ययन में समष्टि से अभिप्राय अमेठी जनपद के अन्तर्गत आने वाली सभी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों, अध्ययनरत् विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों को सम्मिलित किया गया है।
- **प्रतिदर्श**- प्रतिदर्श से अभिप्राय समष्टि के उस भाग से होता है जिसमें समष्टि की अधिकतम विशेषताओं का समावेश हो तथा वह सम्पूर्ण समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुनिष्ठता की विशेषता होने के कारण शोधकर्ता ने प्रतिदर्श विधि का चयन किया गया है, जिसके अन्तर्गत द्विस्तरीय प्रथम स्तर पर ब्लाक का चयन तथा द्वितीय स्तर पर 10 ग्रामीण तथा 10 शहरी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का चयन किया गया है। इन विद्यालयों से कक्षा-9 तथा कक्षा-10

के 460 विद्यार्थियों, 140 शिक्षकों तथा 180 अभिभावकों से आंकड़े एकत्रित किये गये हैं, जिनमें से 380 विद्यार्थियों, 120 शिक्षकों तथा 140 अभिभावकों के द्वारा भरे गये उपकरणों को उपयुक्त पाया गया, जिनका विवरण निम्न सारणी के द्वारा दिया गया है–

सारणी–1

क्र0 सं0	विद्यालय का नाम	शहरी/ ग्रामीण	विद्यार्थियों की संख्या	शिक्षकों की सं0	अभिभावकों की संख्या
1.	राजकीय इण्टर कालेज, जायस, अमेठी	शहरी	25	8	10
2.	राजकीय बालिका इण्टर कालेज जायस, अमेठी	शहरी	20	7	8
3.	राजकीय इण्टर कालेज फुरसतगंज, अमेठी	शहरी	18	5	7
4.	राजकीय बालिका इण्टर कालेज फुरसतगंज अमेठी	शहरी	16	5	6
5.	सिटी पब्लिक स्कूल जायस अमेठी	शहरी	21	7	9
6.	ब्लाशन् इण्टर कालेज जायस अमेठी	शहरी	19	6	7
7.	सरस्वती शिशु मंदिर हाईस्कूल जायस अमेठी।	शहरी	20	6	8
8.	एस0एन0ए0 इण्टर कालेज जायस अमेठी	शहरी	15	5	5
9.	मलिक मोहम्मद भारतीय इण्टर कालेज जायस, अमेठी	शहरी	27	9	11
10	ताज मेमोरियल पब्लिक हाईस्कूल जायस अमेठी	शहरी	14	4	5
11	आदर्श पब्लिक हाईस्कूल बहादुरपुर, अमेठी	ग्रामीण	25	8	9
12	वीरांगना अवन्तिबाई लोधी हाईस्कूल ओदारी, अमेठी	ग्रामीण	18	6	7
13	राजकीय हाईस्कूल तेन्दुआ, अमेठी	ग्रामीण	23	7	8
14	अलेमिया हाईस्कूल ओदारी अमेठी	ग्रामीण	16	5	5
15	नेशनल पब्लिक स्कूल बहादुरपुर, अमेठी	ग्रामीण	17	6	6
16	सच्चो देवी इण्टर कालेज शाहनऊ, अमेठी	ग्रामीण	22	7	8
17	अष्टभुजा हाईस्कूल शाहनऊ अमेठी	ग्रामीण	20	6	7
18	बी0पी0 कुशवाहा इण्टर कालेज बहादुरपुर, अमेठी	ग्रामीण	15	5	5
19	ए0एस0 शिशु मंदिर पुरे फत्ते बहादुरपुर, अमेठी	ग्रामीण	14	4	4
20	सुभाष चन्द्र बोस इण्टर कालेज फुरसतगंज, अमेठी	ग्रामीण	15	4	5
		कुल योग	380	120	140

• **शोध उपकरण**– किसी शोध अध्ययन के गुणवत्ता उसके अन्तर्गत प्रयुक्त किये गये शोध उपकरणों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। प्रस्तुत अध्ययन में व्यावसायिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति को मापने के लिए निम्नलिखित अभिवृत्ति मापनियों का प्रयोग किया गया है–

1. व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति।
2. व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति।
3. व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति।

- शोध उपकरणों का प्रशासन, आंकड़ों का एकीकरण व अंकन- शोधकर्ता द्वारा प्रतिदर्श के रूप में चयनित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा विद्यार्थियों के अभिभावकों से आंकड़ों का संकलन करने हेतु विद्यालयों के प्रधानाचार्यों से आज्ञा व सहमति प्राप्त की गई, जिसके पश्चात् शोधकर्ता ने शिक्षकों व विद्यार्थियों को उपयुक्त निर्देश देते हुए मापनी का वितरण किया तथा उनसे यह अनुरोध किया कि वे सभी कथनों का उत्तर ईमानदारी से दे तथा उनके द्वारा दी जाने वाली जानकारी को गोपनीय रखी जायेगी। इसी के साथ शिक्षकों तथा विद्यार्थियों से मापनी भरण के पश्चात् संग्रहित कर ली गयी तथा विद्यार्थियों को एक मापनी अतिरिक्त देते हुए उनसे यह अनुरोध किया गया कि वे अपने अभिभावकों से भी अभिभावक मापनी को पूर्ण कराकर अगले दो दिवसों में अपने शिक्षकों के पास जमा करा दें। दो दिन पश्चात् विद्यार्थियों द्वारा जमा की गई प्रतियों को शिक्षकों से ले लिया गया। अन्त में विद्यालयों के प्रधानाचार्यों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के सहयोग के लिए शोधकर्ता द्वारा आभार व्यक्त किया गया। यह प्रक्रिया प्रत्येक विद्यालय में अपनायी गई।
- शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी विधि- उपरोक्त वर्णित मापनियों की सहायता से संकलित आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए निम्नलिखित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया-

  क) टी-परीक्षण/क्रांतिक अनुपात

  ख) प्रसरण विश्लेषण (ANOVA)

आंकड़ों का विश्लेषण तथा व्याख्या- उद्देश्यों द्वारा परिकल्पनाओं को आधार मानते हुए आंकड़ों का विश्लेषण उद्देश्यवार निम्न सारणियों से स्पष्ट है-

सारणी-2

विवरण	संख्या	d of	मध्यगान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
शहरी विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190	378	45.36	$s \in = 0.501$	$\alpha = 0.05$	1.96	7.54	H_0^*
ग्रामीण विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190		41.58					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के मुकाबले अधिक बेहतर है, जिसका सम्भावित कारण शहरों में पाई जाने वाली व्यावसायिक शिक्षा के प्रति जागरूकता तथा विद्यालय में उपलब्ध व्यावसायिक सेवाओं का होना हो सकता है।

सारणी-3

विवरण	संख्या	d of	मध्यगान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
शहरी शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60	118	44.94	$s \in = 0.418$	$\alpha = 0.05$	1.96	4.118	H_0^*
ग्रामीण शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60		43.22					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- शहरी क्षेत्र के शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों के मुकाबले अधिक बेहतर है, जिसका सम्भावित कारण शहरों के विद्यालयों में दी जा रही। व्यावसायिक शिक्षा तथा व्यावसायिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का होना हो सकता है।

सारणी-4

विवरण	संख्या	d of	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
शहरी क्षेत्र के अभिभावकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	70	138	37.04	$s \in = 0.505$	$\alpha = 0.05$	1.96	5.628	H_0^*
ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	70		34.2					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के अभिभावकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के अभिभावकों के मुकाबले अधिक सकारात्मक पायी जा रही है जिसका सम्भावित कारण शहरी क्षेत्र में पाई जाने वाली व्यावसायिक व तकनीकी सुविधाएँ, अभिभावक अपने भविष्य के प्रति जागरूकता तथा व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रों का होना हो सकता है।

सारणी-5

विवरण	संख्या	d of	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
छात्रों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190	378	45.06	$s \in = 0.542$	$\alpha = 0.05$	1.96	5.86	H_0^*
छात्राओं में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190		41.88					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- छात्र की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति छात्राओं के मुकाबले अधिक बेहतर है, जिसका सम्भावित कारक छात्र में व्यावसायिक शिक्षा के प्रति अधिक जागरूकता का होना तथा उच्च स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा की ओर उन्मुख होना हो सकता है।

सारणी-6

विवरण	संख्या	d of	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
पुरुष शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60	118	45.10	$s \in = 0.403$	$\alpha = 0.05$	1.96	5.066	H_0^*
महिला शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60		43.06					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति महिला शिक्षकों के मुकाबले बेहतर है, जिसका सम्भावित कारण व्यवसाय के प्रति जागरूक होना और व्यावसायिक निर्देशन की सेवाओं की ओर अधिक उन्मुख होना हो सकता है।

2 × 2 प्रसरण विश्लेषण सारणी- विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति।

सारणी-7

प्रसरण का स्रोत	स्वतंत्रता का स्तर (*dof*)	*SS*	*MSS*	सार्थकता स्तर	*F* का नाम	*P* का नाम
लिंग(A)	1	153.015	153.015	α = 0.05	32.18	P<0.001
स्थान(B)	1	257.415	257.415		54.135	P<0.001
(A) x (B)	1	6.202	6.202		1.304	P=0.256
त्रुटि	377	456.483	4.755			
योग	**380**					

व्याख्या- लिंग तथा स्थान जैसे चरों का पृथक रूप से विद्यार्थियों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर सार्थक प्रभाव पड़ रहा है, परन्तु इन दोनों चरों का अन्त:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं है, जिसका सम्भावित कारण लिंग और स्थान में कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध का न होना हो सकता है।

2 × 2 प्रसरण विश्लेषण सारणी- शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति।

सारणी-8

प्रसरण का स्रोत	स्वतंत्रता का स्तर (*dof*)	*SS*	*MSS*	सार्थकता स्तर	*F* का नाम	*P* का नाम
लिंग(A)	1	74.907	74.907	α = 0.05	20.466	P<0.001
स्थान(B)	1	44.827	44.827		12.247	P<0.001
(A) x (B)	1	1.127	1.127		0.308	P=0.0580
त्रुटि	117	351.367	3.660			
योग	**120**					

व्याख्या- शिक्षकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग तथा स्थान के सार्थक प्रभाव को दर्शाता है और लिंग तथा स्थान के अन्त:क्रियात्मक प्रभाव को गैर सार्थक दर्शाता है, जिसका सम्भावित कारण लिंग तथा स्थान का आपस में कोई सम्बन्ध में नहीं होना हो सकता है।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में आंकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष जो व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर आधारित है, जो इस प्रकार निम्नलिखित है-

1. माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की व्यासायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मुकाबले अधिक बेहतर पायी गई तथा दोनों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के औसत प्राप्तांक में काई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
2. माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति

ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के मुकाबले सकारात्मक है तथा दोनों व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का औसत प्राप्तांक में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।

3. माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावकों के मुकाबले अधिक बेहतर पाया गया है तथा दोनों व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
4. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति छात्राओं के मुकाबले सकारात्मक पायी गयी है तथा बालक व बालिकाओं की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का औसत प्राप्तांक में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। बालिकाओं को व्यावसायिक निर्देशन के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है।
5. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का औसत प्राप्तांक महिला शिक्षकों में कम पाया गया तथा दोनों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति महिला शिक्षकों की अपेक्षा पुरुष शिक्षकों में अधिक बेहतर पायी गयी है।
6. **(ए) लिंग का प्रभाव**- विद्यार्थियों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यक के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग का प्रभाव सार्थक पाया गया है।

   (बी) स्थान का प्रभाव- विद्यार्थियों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर स्थान का प्रभाव सार्थक तथा सकारात्मक पाया गया है।

   (सी) अन्तःक्रियात्मक प्रभाव- विद्यार्थियों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग तथा स्थान का कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं होने के कारण लिंग तथा स्थान का अन्तःक्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं पाया गया है।
7. **(ए) लिंग का प्रभाव**- शिक्षकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग का प्रभाव अधिक सार्थक रूप से पाया गया है।

   (बी) स्थान का प्रभाव- शिक्षकों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति स्थान का प्रभाव सकारात्मक तथा सार्थक पाया गया है।

   (सी) अन्तःक्रियात्मक प्रभाव- शिक्षकों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग तथा स्थान का कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध न होने के कारण दोनों चरों (लिंग व स्थान) का अन्तःक्रियात्मक प्रभाव सार्थक व सकारात्मक नहीं पाया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. डॉ0 दिनेश कुमार, शैक्षिक अनुसंधान प्रणाली एवं सांख्यिकी, लक्ष्मी पब्लिकेशन-113, गोल्डेन हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0पी0 आधुनिक मापन एवं मूल्याकंन, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
3. गुप्ता, एस0पी0 सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
4. जायसवाल, सीताराम शिक्षा में निर्देशन परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, उत्तर प्रदेश।
5. कौल, लोकेश, शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, ई0-28, सेक्टर-8, नोएड (यू0पी0)।
6. पाण्डे, डॉ0 कल्पलता, वोकेशनल गाइडेन्स एवं कैरियर काउसिंलिंग, नितिन प्रिन्टर्स, प्रयागराज।
7. सिंह, अरुण कुमार, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, 41 यू0ए0 बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
8. शर्मा, डॉ0 आर0ए0, शिक्षा अनुसंधान के मूलतत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
9. शर्मा, डॉ0 आर0ए0, चतुर्वेदी डॉ0 शिखा, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।

वेबसाइट-

- www.google.com
- wwwwikipedia.com

भारतीय संगीत और संगीत शास्त्र

डॉ० प्रेम चन्द्र कुशवाहा

संगीत विभाग, श्री चित्रगुप्त पी.जी. कॉलेज, मैनपुरी, उ.प्र.

सारांश

भारतीय संगीत से, सम्पूर्ण भारतवर्ष की गायन वादन कला का बोध होता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की 2 प्रणालियाँ हैं। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति अथवा कर्नाटक संगीत प्रणाली और दूसरी हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली, जो कि समुचे उत्तर भारतवर्ष मे प्रचलित है। दक्षिण भारतीय संगीत कलात्मक खूबियों से परिपूर्ण है। और उसमें जनता जनार्दन को आकर्षित करने की और समाज मे संगीत कला की मौलिक विधियों द्वारा कलात्मक संस्कार करने की क्षमता है।

हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली के गायन वादन में, जन साधारण को कला की ओर आकर्षित करते हुए, भावना तथा रस का ऐसा स्त्रोत बहता है कि श्रोतृवर्ग स्वरसागर में डूब जाता है। इससे न केवल मनोरंजन होता है अपितु आत्मानन्द की अनुभूति भी होती है; जो कि योगीजन अपनी आत्मसमाधि मे लाभ करते हैं।

नाद

आवाज अथवा ध्वनि विशेष को नाद कहते हैं। दो पदार्थों के परस्पर टकराने से नाद या आवाज उत्पन्न होती है। इसके दो भेद हैं - एक, जो नाद क्षणिक हो, लहर शून्य अथवा जड़ हो, तो वह आवाज संगीत के लिये अनुपयोगी तथा स्वर शून्य रहेगी। लेकिन दूसरे प्रकार की आवाज कुछ देर तक वायुमंडल पर अपना मधुर प्रभाव डालती है। वह सस्वर होने के कारण संगीत के लिये उपयोगी है।

नाद के दो प्रकार हैं, अनहद नाद और लौकिक नाद। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जिसने संगीत रूपी दैवी शक्ति को न सुना हो। नदियों की मधुर कलकल ध्वनि, झरनों की झरझर, पक्षियों का कूजन किसने नहीं सुना है। प्रकृति प्रदत्त जो नाद लहरी उत्पन्न होती है, वह अनहद नाद का स्वरूप है जो कि प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन जो नाद स्वर लहरी, दो वस्तुओं के परस्पर घर्षण से अथवा टकराने से पैदा होती है उसे लौकिक नाद कहते हैं।

वातावरण पर अपने नाद को बिखेरने के लिये, बाह्य हवा पर कंठ के अँदर से उत्पन्न होने वाली वजनदार हवा जब परस्पर टकराती है, उसी समय कंठ स्थित श्स्वर तंतुश (Vocal Cords) नाद पैदा करते हैं। अतः मानव प्राणी द्वारा निर्मित आवाज लौकिक है।

स्वर

स्वर एक निश्चित ऊँचाई की आवाज का नाम है। यह कर्ण मधुर आनंददायी होता है। जिसमें स्थिरता होनी चाहिये, जिसे कुछ देर सुनने पर, मन में आनंद की लहर पैदा होनी चाहिये। यह अनुभूति की वस्तु है। भारतीय संगीत में एक स्वर की उँचाई से ठीक दुगुनी उँचाई के स्वर के बीच 22 संगीतोपयोगि नाद हैं जिन्हें ''श्रुति'' कहा गया है। इन्हीं दोनो उँचाईयों के बीच निश्चित श्रुतियों पर सात शुद्ध स्वर विद्यमान हैं जिन्हें सा, रे, ग, म, प, ध और नि, से जाना जाता है और जिनके नाम क्रमशः षडज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हैं। इसे सप्तक के नाम से जाना जाता है।

प्राय: गायक अथवा गायिका के आवाज कि रेंज तीन सप्तक तक सीमित होती है। जिसमें गायक के प्राकृतिक सप्तक को मध्य सप्तक कहते है। मध्य सप्तक से कम फ्रिक्वेंसी वाले सप्तक को मंद्र सप्तक एवम उँची फ्रिक्वेंसी वाले सप्तक को तार सप्तक कहते है।

उपरोक्त सात शुद्ध स्वरों में 'सा' और 'प' अचल स्वर हैं पर बाकी 5 स्वर अपनी जगह से हटते हैं, जिनमें रे, ग, ध, नि ये चार स्वर नीचे की तरफ हटते हैं और उन्हे कोमल स्वर कहते हैं। इसी तरह मध्यम ऊपर की तरफ हटता है और उसे तीव्र स्वर कहते हैं। इस तरह एक सप्तक में कोमल, शुद्ध और तीव्र स्वर मिलाकर कुल 12 स्वर होते हैं। 12 स्वरों के नाम इस प्रकार हैं - सा, रे- कोमल, रे- शुद्ध, ग- कोमल, ग- शुद्ध, म- शुद्ध, म- तीव्र, पंचम, ध- कोमल, ध- शुद्ध, नि- कोमल और नि- शुद्ध।

वर्ण

वर्ण का अर्थ है मोड। संगीत मे 4 प्रकार के वर्ण होते हैं:

- आरोही वर्ण - केवल आरोह मात्र। तात्पर्य यह कि नीची आवाज को ऊँचाई की ओर ले जाना। फिर चाहे वह एक स्वर तक ही ऊँची क्यों न हो, आरोही वर्ण है।
- अवरोही वर्ण - केवल अवरोह मात्र। ऊँची से नीची आवाज ले आना।
- स्थाई वर्ण - एक ही जगह पर रुकते हुए कुछ देर तक कायम रहना। जैसे - ममम धध गग रेरे पप आदि।
- संचारी वर्ण - ऊपर लिखे हुए तीनो वर्णों का मिला-जुला रूप। जहाँ से मन चाहा वहाँ को आवाज कि दिशा बदल दी या एक ही स्थान पर रुक गये।

आरोह-अवरोह

आरोह : (सा से सा') अर्थात मध्य सप्तक के सा से तार सप्तक के सा तक चढाने की क्रिया का नाम है आरोह।

अवरोह : सा' से सा अर्थात तार सप्तक से मध्य सप्तक के सा तक उतरने का नाम है अवरोह।

राग

स्वरों की ऐसी मधुर तथा आकर्षक ध्वनि जो सुनिश्चित् आरोह-अवरोह, जाति, समय, वर्ण, वादी-संवादी, मुख्य-अंग आदि नियमों से बद्घ हो और जो वायुमंडल पर अपना प्रभाव अंकित करने मे समर्थ हो। वातावरण पर प्रभाव डालने के लिये राग मे गायन, वादन के अविभाज्य 8 अंगों का प्रयोग होना चाहिये।

ये 8 अंग या अष्टांग इस प्रकार हैं: स्वर, गीत, ताल और लय, आलाप, तान, मींड, गमक एवं बोलआलाप और बोलतान। उपर्युक्त 8 अंगों के समुचित प्रयोग के द्वारा ही राग को सजाया जाता है।

जाति

राग स्वरूप अपने विशेष प्रकार के आरोह-अवरोह के क्रम में रहता है। जिस राग में सातों स्वर सा रे ग म प ध नि हों उसे सम्पूर्ण-सम्पूर्ण जाति कहते हैं। इसी प्रकार 6 स्वरों के क्रम को षाढव। 5 स्वरों के क्रम को औढव और 4 स्वरों को सुरतर कहते हैं। ध्यान में रखें कि आरोह में जितने स्वर लगेंगे उससे कहीं अधिक या कम से कम आरोह के बराबर स्वर अवरोह में आने चाहिये। आरोह की अपेक्षा अवरोह में कम स्वर भारतीय संगीत में नहीं लिये जाते कारण वह नितान्त अस्वाभाविक बात है। इस प्रकार जातियों के कुल 10 प्रकार बनते हैं -

#	आरोह	अवरोह	जाती	राग
1	5	5	औढव - औढव	भूपाली, गुणकली, मेघ मल्हार
2	5	6	औढव - षाढव	देसी, शुद्ध सारंग
3	5	7	औढव - सम्पूर्ण	बसंत, बिहाग,

हमीर				
4	6	6	षाढव - षाढव	नायकी कानड़ा,
गुर्जरी तोड़ी, ललित				
5	6	7	षाढव - सम्पूर्ण	अड़ाना, कौसी
कानड़ा				
6	7	6	सम्पूर्ण - षाढव	मिया मल्हार
7	7	7	सम्पूर्ण - सम्पूर्ण	अहीर भैरव,
यमन				

थाट

संस्कृत में थाट का अर्थ है मेल। थाट, यह रागों के वर्गीकरण हेतु तैयार की हुई पद्धति है। पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने १० थाट प्रचिलित किये जिनको कोमल, शुद्ध और तीव्र स्वरों के आधार पर बनाया गया जो निम्न हैं - (१) कल्याण (२) बिलावल (३) खमाज (४) भैरव (५) पूर्वी (६) मारवा (७) काफी (८) आसावरी (९) भैरवी (१०) तोड़ी। उपरोक्त राग पद्धति प्रचलन में होते हुए भी आज बहुत से ऐसे राग हैं जो इन थाटों के खांचों में नहीं बैठते। अत: कुछ विद्वान इन्हें नकारते हुए रागांग पद्धति अर्थात राग वाचक स्वर समूह तथा उसके आरोह अवरोह को ही मान्यता देते हैं।

वादी/संवादी

राग एक माहौल या वातावरण विशेष का नाम है जो रंजक भी है। स्पष्ट रूप से इस वातावरण निर्मिती के केंद्र में वह स्वरावली है जो रागवाचक है इसे रागांग कहते हैं। इस रागांग का केंद्र बिंदु होता है वादी स्वर। इसे राग का जीव या प्राण स्वर भी कहा गया है। राग को राज्य की संज्ञा देकर वादी स्वर को उसका राजा कहा जाता है। स्पष्टत: वादी का प्रयोग अन्य स्वरों की अपेक्षा सर्वाधिक होता है तथा इस पर ठहराव भी अधिक होता है।

यह सर्वविदित है की एक सप्तक में दो भाव पैदा होते हैं - षड्ज-पंचम (सा-प) व षड्ज-मध्यम (सा-म) भाव। इस परिपेक्ष्य में यदि वादी स्वर पूर्वांग में है तो उसका, उस स्वर से संवाद करने वाला, उक्त दोनों भावों में से किसी एक भाव में (किसी निश्चित राग के अनुसार), उत्तरांग में एक स्वर जरूर होगा जो सप्तक के दोनों अंगों (पूर्वांग या उत्तरांग) को संतुलित कर राग की रंजकता में वृद्धि करने में सहायक होगा। इस स्वर को संवादी स्वर कहते हैं। वादी और संवादी स्वर पूर्वांग और उत्तरांग की तुलना पर समान वजन के होने चाहिए तभी राग स्वरुप शुद्ध शास्त्रीय और रस स्रोत बहाने में समर्थ होगा।

घराना

भारतीय संगीत में संगीत शिक्षा एक कंठ से दूसरे कंठ में ज्यों की त्यों उतारी जाती है। जिसे नायकी ढंग की शिक्षा कहते हैं। और जब एक ही गुरू के अनेक शिष्य हो जाते हैं तो उन्हें घराना या परम्परा कहा जाता है। किराना घराना, ग्वालियर घराना, आगरा घराना, जयपुर घराना इत्यादि घराने भारतीय संगीत में प्रसिद्ध हैं।

आविर्भाव-तिरोभाव

आविर्भाव व तिरोभाव भारतीय संगीत में अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। किसी भी राग के स्वरों को ऐसे क्रम में लगाना, जिससे किसी दूसरे राग की छाया दृष्टिगोचर होने लगे उसे तिरोभाव कहते हैं। परन्तु राग के मार्मिक स्वर पुन: लगाकर राग का आविर्भाव किया जाता है जिससे रागरूप स्पष्ट अपने रूप में आ जाए, आविर्भाव कहलाता है।

आविर्भाव-तिरोभाव बहुत कलापूर्ण है और अनुभवी, राग विज्ञान के दक्ष लोगों द्वारा ही संभव है अन्यथा इसमें राग स्वरूप नष्ट होने की अधिक संभावना रहती है।

मनाक् तथा इषत् स्पर्श

मींड जहाँ से प्रारम्भ होती है उस स्वर का आभास जो कानों के द्वारा सूक्ष्मतर ढंग से सुना जाता है, उस प्रारंभिक आभास वाले स्वर को इषत् स्पर्श कहते हैं।

जिस प्रकार मन में कहीं से भी विचार आते हैं तदनुसार मींड आती हुई दिखाई दे, लेकिन कहाँ से आ रही है वह सिर्फ मन द्वारा ही जान सकते हैं उसे मनाक् स्पर्श कहते हैं।

लाग-डाट

मींड के आरोह को लाग और मींड के अवरोह को डाट कहते हैं। इशत् और मनाक् स्पर्श लाग-डाट के आगे की स्थितियाँ हैं।

श्रुति

भारतीय शास्त्रीय संगीत श्रुतिव्यवस्था पर प्रतिष्ठित है और अनेक राग, जैसे राग बहार आदि, हमें आज के १२ स्वरों के प्रचलित वातावरण से श्रुतियों की ओर खींचते हैं। श्रुति का अर्थ है वह सूक्ष्म नाद लहरी जो कि श्रवणेन्द्रिय (कान) के द्वारा सुनी जा सके। और ऐसी 22 श्रुतियां, सा से सां (मध्य सप्तक के सा से तार सप्तक के सा तक) तक अवस्थित है।

पूर्वांग-उत्तरांग

मध्य सप्तक के आधे भाग यानि षडज, ऋषभ, गंधार व मध्यम स्वरों को पूर्वांग कहते हैं। तथा दूसरे भाग यानि पंचम, धैवत, निषाद व तार-षडज को उत्तरांग कहते हैं।

पुरुष राग

प्राचीन काल के संगीत विश्लेषण के अनुसार छह (6) पुरुष राग और छत्तीस (36) रागिनियाँ या उनकी भार्याएँ हैं। वे 6 राग हैं भैरव, मालकौंस, हिन्डोल, श्रीराग, दीपक और मेघ।

ताल

ताल एक निश्चित मात्राओं मे बंधा और उसमे उपयोग में आने वाले बोलों के निश्चित् वजन को कहते हैं। मात्रा (beat) किसी भी ताल के न्यूनतम अवयव को कहते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली में विभिन्न तालों का प्रयोग किया जाता है। जैसे, एकताल, त्रिताल (तीनताल), झपताल, केहरवा, दादरा, झूमरा, तिलवाड़ा, दीपचंदी, चांचर, चौताल, आडा-चौताल, रूपक, चंद्रक्रीड़ा, सवारी, पंजाबी, धुमाली, धमार इत्यादि।

हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली में प्रचलित गायन के प्रकार

हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली में निम्न गायन के प्रकार प्रचलित हैं - ध्रुवपद, लक्षण गीत, टप्पा, सरगम, कव्वाली, धमार, ठुमरी, तराना, भजन, गीत, खयाल, होरी, चतुरंग, गजल, लोक-गीत, नाट्य संगीत, सुगम संगीत, खटके और मुरकियाँ ।

- ध्रुवपद - गंभीर सार्थ शब्दावली, गांभीर्य से ओतप्रोत स्वर संयोजन द्वारा जो प्रबन्ध गाये जाते हैं वे ही हैं ध्रुवपद। गंभीर नाद से लय के चमत्कार सहित जो तान शून्य गीत हैं वह है ध्रुवपद। इसमें प्रयुक्त होने वाले ताल हैं - ब्रम्हताल, मत्ततात, गजझंपा, चौताल, शूलफाक आदि। इसे गाते समय दुगनी चौगनी आड़ी कुआड़ी बियाड़ी लय का काम करना होता है।
- लक्षण गीत - राग स्वरूप को व्यक्त करने वाली कविता जो छोटे ख्याल के रूप में बंधी रहती है लक्षण गीत कहलाती है।
- टप्पा - टप्पा का अर्थ है निश्चित स्थान पर पहुंचना या ठहरी हुई मंजिल तय करना। गुजरात, काठियावाड से पंजाब, काबुल, बलोचिस्तान के व्यापारी जब पूर्व परम्परा के अनुसार ऊंटों के काफिलों पर से राजपुताना की मरुभूमि में से यात्रा करते हुए ठहरी हुई मंजिलों तक पहुंचकर पड़ाव डाला करते थे, उस समय पंजाब की प्रेमगाथाओं के लोकगीत, हीर-राँझा, सोहिनी-महिवाल आदि से भरी हुई भावना से गाये जाते थे। उनका संकलन हुसैन शर्की के द्वारा हुआ। शोरी मियां ने इन्हें विशेष रागों में रचा। यही पंजाबी भाषा की रचनाएँ टप्पा कहलाती हैं। टप्पा, भारतीय संगीत के मुरकी, तान, आलाप, मीड

के अंगों कि सहायता से गाया जाता है। पंजाबी ताल इसमें प्रयुक्त होता है। टप्पा गायन के लिये विशेष प्रकार का तरल, मधुर, खुला हुआ कन्ठ आवश्यक है, जिसमें गले की तैयारी विशेषता रखती है।

- सरगम – स्वरों की ऐसी मधुर मालिका जो कर्णमधुर एवं आकर्षक हो और राग रूप को स्पष्ट कर दे वही सरगम है। इसे आलाप के बजाय स्वरों का उच्चार करते हुये गाया जाता है।
- कव्वाली – कव्वाली नामक ताल में जो प्रबंध गाया जाता है वह है कव्वाली। विशेषकर मुस्लिम भजन प्रणाली जिन्हें खम्सा और नात् कव्वाली कहते हैं।
- धमार – धमार नामक ताल में होरी के प्रसंग के गीत जो कि ध्रुवपद शैली पर गाये जाते हैं, धमार कहलाते हैं।
- ठुमरी – राधाकृष्ण के या प्रेम की भावना से परिपूर्ण श्रंगारिक गीत जिसका अर्थ मिलन अथवा विरह की भावना में लिपटा रहता है, खटकेदार स्वरसंगतियों और भावानुकूल बोल आलापों एवं बोलॅतानों से सजाते हुए अर्थ सुस्पष्ट करके गाया जाता है उसे ठुमरी कहते हैं। लखनऊ, बनारस तथा पंजाब शैली की ठुमरियां अपनी अपनी विशेषता से परिपूर्ण होती हैं। इसमे प्रयक्त होने वाले ताल हैं पंजाबी, चांचर, दीपचंदी, कहरवा और दादरा आदि।
- तराना – वीणा वादन के आघात प्रत्याघातों को निरर्थक दमदार बोलों द्वारा व्यक्त करते हुए वाद्य संगीत कि चमाचम सुरावट कंठ द्वारा निकालना और लय के बांटों का रसभंग न होते हुए सफल प्रदर्शन तराना गायन की अविभाज्य विशेषता है। तेज लय में ना ना ना दिर दिरर्रर्र आदि कहने का नाम तराना नही है। वीणावादन का सफल प्रदर्शन कंठ द्वारा होना चाहिये, वही तराना है।
- भजन – सूरदास, मीरा, तुलसी, युगलप्रिया, प्रताप बाला, जाम सुत्ता, कबीर आदि संतों द्वारा रचे हुए ईश्वर के गुणानुवाद तथा लीलाओं के वर्णन के प्रबन्ध जिन्हे गायन करके आत्मानन्द व आत्मतुष्टि अनुभूत की जाती है उसे भजन कहते हैं। इनके ताल हैं कहरवा, धुमाली, दादरा आदि।
- गीत – आधुनिक कवियों द्वारा रचे हुए भावगीत जो शब्द अर्थ प्रधान रहते हैं लोकॅसंगीत के आधार पर अर्थानुकूल गाये जाते हैं इन्हें ही गीत कहते हैं।
- खयाल अथवा ख्याल – ख्याल फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है कल्पना। ख्याल के २ भेद हैं। पहिला है बड़ा ख्याल और दूसरा छोटा ख्याल। बड़ा ख्याल, विलम्बित लय में ध्रुवपद की गंभीरता के साथ गाया जाता है और कल्पना के आधार पर विस्तारित किया जाता है। इसे गाते समय आठों अंगों का व्यवहार समुचित किया जाता है। बड़े ख्याल में प्रयुक्त होने वाले ताल हैं एकताल, तिलवाड़ा, झूमरा, रूपक, झपताल, आड़ा–चौताल, आदिताल आदि।

  छोटा ख्याल चंचल सरस चमत्कार प्रधान और लय के आकर्षण से परिपूर्ण होता है इसे गाते समय भी आठों अंगों का प्रयोग किया जाता है। त्रिताल, एकताल, झपताल, रूपक और आड़ा–चौताल आदि द्रुतलय में बजाये जाते हैं जो कि छोटे ख्याल में प्रयुक्त होते हैं।
- होरी – होली के प्रसंग की कविता या गीत जो ठुमरी के आधार पर गाया जाता है, होरी कहलाता है।
- चतुरंग अथवा चतरंग – चतरंग गीत का ऐसा प्रकार है जिसमें चार प्रकार के प्रबंध दर्शन एक साथ होते हैं, ख्याल, तराना, सरगम और तबला या पखावज की छोटी सी परन, इनका समावेश होता है चतरंग में।
- गजल – उर्दू भाषा की शायरी या कविता गायन को गजल गायन कहते हैं। यह शब्द प्रधान, अर्थ दर्शक, गीत प्रकार है जो कि विशेष प्रकार के खटके, मुरकियों आदि से मंडित किया जाता है। इसमें कहरवा, धुमाली, दादरा आदि तालों का प्रयोग किया जाता है।
- खटके और मुरकियाँ – सुन्दर मुरकियाँ ही ठुमरी की जान है। मुरकी वह मीठी रसीली स्वर योजनाएँ हैं, जो मधुर भाव से कोमल कंठ द्वारा ली जाती हैं। जबकि खटके की स्वर योजनाएँ भरे हुए कंठ द्वारा निकाली जाती हैं। यही मुरकी और खटके में भेद है।
- लोक–गीत – यह संगीत दूर दराज के गावों में गाया जाता है, और इसके अनेक रूप विविध भाषाओं में देखने को मिलते हैं। चौती, कजरी आदि लोकगीत के रूप हैं।

- नाट्य संगीत - नाटकों में गाया जाने वाला संगीत नाट्य संगीत कहलाता है।
- सुगम संगीत - शास्त्रीय संगीत से सुगम अथवा सरल संगीत, सुगम संगीत कहलाता है। इसमें गाई जाने वाली विधाएँ हैं गीत, गजल, भजन, कव्वाली, लोक-गीत इत्यादि।

गायकी के 8 अंग (अष्टांग गायकी)

वातावरण पर प्रभाव डालने के लिये राग मे गायन, वादन के अविभाज्य 8 अंगों का प्रयोग होना चाहिये। ये 8 अंग या अष्टांग इस प्रकार हैं - स्वर, गीत, ताल और लय, आलाप, तान, मींड, गमक एवं बोलआलाप और बोलतान। उपर्युक्त 8 अंगों के समुचित प्रयोग के द्वारा ही राग को सजाया जाता है।

- स्वर - स्वर एक निश्चित ऊँचाई की आवाज का नाम है। यह कर्ण मधुर आनंददायी होती है। जिसमें स्थिरता होनी चाहिये, जिसे कुछ देर सुनने पर मन में आनंद की लहर पैदा होनी चाहिये। यह अनुभूति की वस्तु है। सा, रे, ग, म, प, ध और नि जिन्हें क्रमशः षडज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद के नाम से ग्रंथों में वर्णित किया गया है। 12 स्वरों के नाम इस प्रकार हैं - सा, रे कोमल, रे शुद्ध, ग कोमल, ग शुद्ध, म शुद्ध, म तीव्र, पंचम, ध कोमल, ध शुद्ध, नि कोमल और नि शुद्ध।
- गीत, बंदिश - बंदिश, परम आकर्षक सरस स्वर में डूबी हुई, भावना प्रधान एवं अर्थ को सुस्पष्ट करने वाली होनी चाहिये। गायक के कंठ द्वारा अपने सत्य रूप में अभिव्यक्त होने चाहिये गीत।
- ताल - ताल एक निश्चित मात्राओं मे बंधा और उसमे उपयोग में आने वाले बोलों के निश्चित् वजन को कहते हैं। मात्रा (beat) किसी भी ताल के न्यूनतम अवयव को कहते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली में विभिन्न तालों का प्रयोग किया जाता है। जैसे, एकताल, त्रिताल (तीनताल), झपताल, केहरवा, दादरा, झूमरा, तिलवाड़ा, दीपचंदी, चांचर, चौताल, आडा-चौताल, रूपक, चंद्रक्रीड़ा, सवारी, पंजाबी, धुमाली, धमार इत्यादि।
- आलाप अथवा बेहेलावे - आकार में स्वर की ताकत और आवश्यक भाव धारा बहाने के लिये, धीमी गति से, हृदयवेध ी ढंग से, जो राग स्वरों के छोटे-छोटे स्वर समूह, रुकते हुए लिये जाते हैं वे ही आलाप हैं। मींड प्रधान सरस स्वर योजना ही आलाप का आधार है।
- तान - राग के स्वरों को तरंग या लहर के समान, न रुकते हुए, न ठिठकते हुए सरस लयपूर्ण स्वर योजनाएं तरंगित की जाती हैं वे हैं तानें। मोती के दाने के समान एक-एक स्वर का दाना सुस्पष्ट और आकर्षक होना चाहिये, तभी तान का अंग सही माना जाता है।
- मींड - मींड का अर्थ होता है घर्षण, घसीट। किसी भी स्वर से आवाज को न तोडते हुए दूसरे स्वर तक घसीटते हुए ले जाने कि क्रिया को मींड कहते हैं। सुलझे हुए मस्तिष्क और स्वर संस्कारित कंठ की चरम अवस्था होने पर ही मींड कंठ द्वारा तय होती है।
- गमक - मींड के स्वरों के साथ आवश्यक स्वर को उसके पिछले स्वर से धक्का देना पड़ता है ऐसी क्रिया को गमक कहते हैं।
- बोल-आलाप बोल-तान - आलाप तानों में लय के प्रकारों के साथ रसभंग न होते हुए भावानुकूल अर्थानुकूल गीत की शब्दावली कहना ही बोल-आलाप बोल-तान की अपनी विशेषता है।

लय

लय किन्ही दो मात्राओं के बीच कि समयावधि को कहते हैं। लय ३ प्रकार की होती हैं - विलंबित-लय, मध्य-लय एवं द्रुत-लय। ताल के निश्चित् समयचक्र में सुनिश्चित् गति अर्थात् लय से किन्चित् भी न चूकते हुए सम पर अचूक आना, ताल और लय की कसौटी है।

मात्रा

समय का माना हुआ टुकडा या भाग, यह ही ताल की नाड़ी है। सतत् मनन, चिंतन द्वारा इसकी लम्बाई एक सी रखने का प्रयत्न होना चाहिये। क्योंकि, किसी भी ताल की मात्राएँ बराबर होती हैं। अतः इन मात्राओं को एक सा रखना ही ताल, लय में पूर्णता प्राप्त

करना है। लय यदि ठीक होगी तो ताल बराबर आयेगा ही। और ताल के शुद्घ होने पर सम, सम पर आयेगी। इस प्रकार इनका एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध है।

ताली या ताल

ताल का अर्थ है ताली देना। दूसरे अर्थ में ताल निश्चित समय चक्र का नाम है। जैसे - ताल तीनताल या त्रिताल में ताल 3 हैं इसका अर्थ यह है कि इसके 16 मात्रा के समय चक्र में 3 स्थानों पर ताली देते हैं। 1ली, 5वी तथा 13वीं मात्रा पर ताली दी जाती है। जबकि 9वी मात्रा पर खाली अथवा काल होता है। खाली के बाद जो ताली आती है वह 1ली, 2री, 3री इस प्रकार इसका क्रम रहता है।

काल या खाली

काल का मतलब है खाली या शून्य। काल का शाब्दिक अर्थ है मृत्यु समय। मृत्यु होने पर जैसे मनुष्य संसार को खाली कर देता है उसी भाँति काल है। काल प्राय: ताल चक्र के मध्य में रहता है। कुछ अपवाद छोड़कर जैसे रूपक ताल में खाली 1ली मात्रा पर होती है। खाली के बाद जो ताली आती है वह 1ली, 2री, 3री इस प्रकार इसका क्रम रहता है।

सम

सम ताल के आरंभ को कहते हैं। सम सदैव किसी भी ताल की १ली मात्रा पर आती है। और इसके आने पर गायन-वादन में स्वाभाविक जोर व आकर्षण पैदा हो जाता है। सम यदि अपने स्थान पर नहीं आई तो सारा मजा फीका हो जाता है। और साधारण श्रोताओं की समझ में आ जाता है कि कहीं कुछ बिगड़ गया है।

निष्कर्ष

घराना, भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य की वह परंपरा है जो एक ही श्रेणी की कला को कुछ विशेषताओं के कारण दो या अनेक उप श्रेणियों में बाँटती है।

घराना (परिवार, कुटुंब), हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की विशिष्ट शैली है, क्योंकि हिंदुस्तानी संगीत बहुत विशाल भौगोलिक क्षेत्र में विस्तृत है, कालांतर में इसमें अनेक भाषाई तथा शैलीगत बदलाव आए हैं।

इसके अलावा शास्त्रीय संगीत की गुरु-शिष्य परंपरा में प्रत्येक गुरु व उस्ताद अपने हाव-भाव अपने शिष्यों की जमात को देता जाता है। घराना किसी क्षेत्र विशेष का प्रतीक होने के अलावा, व्यक्तिगत आदतों की पहचान बन गया है, यह परंपरा ज्यादातर संगीत शिक्षा के पारंपरिक तरीके तथा संचार सुविधाओं के अभाव के कारण फली-फूली, क्योंकि इन परिस्थितियों में शिष्यों की पहुँच संगीत की अन्य शैलियों तक बन नहीं पाती थी।

संगीत में घराने की उत्पत्ति या निर्माण के कारण शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में चहुँमुखी विकास एवं प्रचार-प्रसार भी होता गया परन्तु विकासात्मक स्वरूप के बाद उसका विकृत रूप भी प्रत्यक्ष रूप से सामने आया। प्राचीन गायक ध्रुवपदों में देवी-देवताओं की रचनाएँ गाते थे, इसके पश्चात् धीरे-धीरे राजाश्रयी गायक अपनी रचनाओं को राजा-महाराजाओं के गुणगान, उनकी समृद्धता व शुभकामना में समर्पित करने लगे।

इससे भी अधिक खराब स्थिति तब हुई जब गायक नायक-नायिकाओं के रूप-वर्णन व प्रेम प्रसंगों पर आधारित ध्रुवपदों की रचनाएँ संगीत सभाओं में गाने लगे। फिर भी इस बदलाव से घरानेदार शास्त्रीय संगीत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। घराने के उद्गम के पश्चात् एक ही घराने के शिष्य समुदाय कुछ परिस्थितियों के दास होकर अन्य घरानों की शरण में आए। इससे एक ही घराने से कई घरानों का निर्माण ही नहीं वरन् इनकी शाखा-प्रशाखाएँ बढ़ती गयीं।

घराने का संस्थापक तथा उसकी परम्परा के शिष्य, प्रशिष्य अपने घराने की लोकप्रियता के लिये नये-नये प्रयोग कर लोगों से सहानुभूति अर्जित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। मात्र क्षणिक सहानुभूति से शैली चिरस्थायी नहीं हो पाती।

अलग-अलग शैलियों का संगीत-परिभाषा, उत्पत्ति, विकास, एवं विभिन्न मत प्रणेता जब कि घराने को माना गया है, फिर भी घराने में निर्मित शैली सौंदर्ययुक्त, रसपूर्ण होने के साथ ही जन-जन सुखाय होना चाहिये।

सन्दर्भ

1. डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पंचम संस्करण, 2004
2. डॉ. सुशील कुमार चौबे, हमारा आधुनिक संगीत, छेदा लाल, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्करण, 2005
3. डॉ. राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, रस-दोष छनद अलंकार निरूपण, रेल्वे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ
4. प्रो. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, संगीत निबंध संग्रह, संगीत सदन प्रकाशन, 134 साउथ मलाका, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण, 2003
5. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र., प्रथम संस्करण, फरवरी, 1964
6. अमल दाश शर्मा, संगीतायन, आर्य प्रकाशन मण्डल, प्रथम संस्करण, जनवरी, 1984
7. पं. भगवत शरण शर्मा, संगीत निबंध मंजरी, रविशंकर शर्मा, रामपुरी, खुरजा, प्रथम संस्करण, 1992
8. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' संगीत संजीवनी, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, अंसारी रोड, दरियागंज, प्रथम संस्करण, 2005
9. ओमप्रकाश चौरसिया, संगीत-रस, परंपरा और विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
10. पं. वि. रा. आठवले, नादचिंतन, संस्कार प्रकाशन, अभ्युदयनगर, मुम्बई, प्रथम संस्करण, अगस्त 2008
11. संगीत श्री- एन.सी.इ.आर.टी.

- *Kirana*, by Roshan Ara Begum. Published by Gramophone Co. of India, 1994.
- *Khyâl: Creativity Within North India's Classical Music Tradition*, by Bonnie C Wade. Published by Press Synidcate of the University of Cambridge, 1984.
- Suryanarayan, Renuka (2019-08-08). "Conveying the essence of Jaipur-Atrauli gharana". The Hindu (अंग्रेजी में). आइ०एस०एस०एन० 0971-751X

कोरोना लाकडाउन के दौरान युवाओं की मीडिया पर निर्भरता (एक अध्ययन कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल के सन्दर्भ में)

हर्षवर्धन पाण्डे

शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

शोध सार

कोरोना वायरस से सहमी दुनिया ने इससे बचाव हेतु जहाँ लाकडाउन और सामाजिक दूरी का सहारा लिया वहीँ भारत में भी इस वायरस का तेजी से प्रसार हुआ है। संकट के इस दौर में भारत में जहाँ मजदूरों के पलायन ने चिंता को बढ़ाने का काम किया है वहीँ निजी क्षेत्र में छंटनी के संकट ने बेरोजगारों के सामने तमाम मुश्किलों का पहाड़ खड़ा कर दिया है। ऐसे माहौल के बीच मीडिया ने सूचना सम्प्रेषण में एक बड़ी भूमिका निभाई। कोरोना से बीच बचाव में जहाँ सरकार का जोर टेस्टिंग और ट्रेसिंग पर है वहीँ मीडिया ने भी जनजागरूकता के माध्यम से सही सूचनाएं देने की कोशिश की है। हालाँकि इस दौर में सोशल मीडिया के प्रसार से फेक न्यूज का अम्बार भी लगा है जिसने मीडिया की विश्वसनीयता पर एक बार फिर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है लेकिन कोरोना लाकडाउन में आमजन की मीडिया पर निर्भरता पहले की तुलना में काफी बढ़ी है। प्रस्तुत शोधपत्र में कोरोना लाकडाउन के दौरान युवाओं की मीडिया पर निर्भरता को समझने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन वर्णात्मक है जिसमें सर्वेक्षण के माध्यम से कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल देव सिंह बिष्ट कैम्पस के 200 उत्तरदाताओं से निदर्शन के माध्यम से आंकड़ों का संकलन किया गया है। सामाजिक दूरी और लाकडाउन के नियमों का पालन करते हुए गूगल फार्म का प्रयोग किया गया है जिसमें यह निष्कर्ष निकला लाकडाउन के दौरान अन्य दिनों के मुकाबले आमजन की मीडिया पर निर्भरता काफी बढ़ी है।

शब्द कुंजी : लाकडाउन, कोविड -19, कोरोना,मीडिया, युवा, मीडिया, उपयोग

प्रस्तावना

कोरोना वायरस ने पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया है। किसी ने शायद ही सोचा होगा कोरोना के कारण विश्व अर्थव्यवस्था, उत्पादकता और सामाजिकता ठहर सी जाएगी। आज पूरी दुनिया में यही स्थिति कोरोना महामारी के कारण उत्पन्न हो गई है। कोरोना के कारण हुई वैश्विक तालाबंदी के चलते विश्व की अर्थव्यवस्था को बड़ा नुकसान झेलना पड़ा है। भारत की आर्थिक विकास दर भी हिचकोले खा रही है वहीँ यातायात प्रणालियां रुकी पड़ी हैं। स्वास्थ्य, पर्यटन व्यवसाय भी मंदी के दौर में है। अनुसन्धान और तकनीक केवल महामारी के नियंत्रण के जुगाड़ में जुटी हुई है। मृत्यु दर की रफ्तार बढ़ने से लोगों में मानसिक तनाव बढ़ने लगा है। इस आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक तूफान के पीछे चीन की साजिशों की खबरें आ रही हैं।

अमरीकी लेखक डीन कूकज ने 1981 में ही अपने उपन्यास द आईज आफ डार्कनेस में कोरोना वायरस की भविष्यवाणी करते हुए इसे बुहान 400 कामन घातक वायरस का उल्लेख कर दिया था। लेखक ने इसे घातक बताते हुए इसकी उत्पत्ति वुहान शहर से बाहर एक जैविक हथियारों की प्रयोगशाला में होने का उल्लेख किया था। सिल्विया ब्राउन ने दएंड आफ डेज ऐट प्रिडिक्शन अबाउट द एंड आफ वर्ल्ड में लिखा है 2020 के आसपास पूरी दुनिया में निमोनिया जैसी संक्रामक बीमारी फैलेगी, जो फेफड़ों

को नुकसान पहुंचाएगी। चीनी सेना पी एल ए के जनरल बांग स्यांगज और चाऊ ल्यांग ने अन रजिस्टर्ड वार फेयर टू डिस्ट्राय अमरीका चायनीज प्लेन में लिखा चीन सीधे- सीधे सुपर पावर अमरीका को पराजित नहीं कर सकता अत: उसे अन्य अप्रत्यक्ष माध्यमों से अमरीकी अर्थव्यवस्था पर चोट करनी होगी। चीन ने कोरोना की सूचनाओं को छुपाने का काम किया जिस काम में उसे विश्व स्वास्थ्य संगठन का पूरा सहयोग मिला। देखते ही देखते यह वायरस पूरी दुनिया में फैल गया।

भारत में एक दिन के जनता कर्फ्यू के बाद 25 मार्च 2020 को पहला लाकडाउन लगाया गया जो 21 दिन (25 मार्च -14 अप्रैल) चला। इसके बाद 15 अप्रैल से 3 मई तक 14 दिनों का दूसरा लाकडाउन लगाया गया। 4 मई से 17 मई 2020 तक तीसरे चरण का लाकडाउन लगाया गया। लाकडाउन ने लोगों को घरों में कैद कर दिया जिसके चलते तमाम सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक गतिविधियाँ ठप्प हो गई जिसके चलते आमजन की मीडिया पर निर्भरता बढ़ने लगी। लोग अपना समय बिताने के लिए मीडिया का सहारा लेने लगे। इसी दौर में सोशल मीडिया पर आमजन की निर्भरता काफी तेजी के साथ बढ़ी। लोग अपनों के बीच नहीं जा सके लेकिन सोशल मीडिया के माध्यम से वे एक दूसरे से जुड़े रहे। इसी दौर में फेक न्यूज का भी तेजी से प्रसार भी हुआ।

किसी ने कहा अखबार पढ़ने से कोरोना तेजी से फैलता है तो सोसाइटीज में लोगों ने अखबार पढ़ने ही बंद कर दिए। इसका असर यह हुआ कि कोरोना काल में अखबारों के पेज कम हो गए और विज्ञापन बाजार में सीधी गिरावट दर्ज की गई। टीवी चौनलों और रेडियो ने भी इस दौरान लोगों की जरूरतों का ध्यान रखते हुए कोरोना को लेकर समाचारों का रेला लगाने में देरी नहीं की। दूरदर्शन जैसे प्रसारक ने भी इस दौरान अपनी दर्शक संख्या में इजाफा करने में सफलता हासिल की। इस दौरान रामायण, महाभारत और श्रीकृष्णा जैसे धार्मिक कार्यक्रमों ने उसकी लोकप्रियता में ईजाफा किया वहीँ आमजन को भी मनोरंजन का एक माध्यम प्रदान किया। इस सम्बन्ध में आज यहाँ पर मीडिया का उपयोगिता और परितुष्टि सिद्दांत का जिक्र करना जरूरी हो जाता है क्योंकि समाज जैसे- जैसे आधुनिक हुआ वैसे ही मीडिया पर निर्भरता और बढ़ने लगी। अपनी सूचना और मनोरंजन संबधी जरूरतों को पूरा करने के लिए जनता इन जनसंचार माध्यमों पर निर्भर होने लगती है, जिसका आकलन मीडिया के उपयोग के बाद किया जा सकता है।

साहित्य पुनरावलोकन

के पाठक, एपेडेमिक बनाम फेकिड़ेमिक शीर्षक से 2 मई 2020 को नवभारत टाइम्स दिल्ली में पृष्ठ 8 में संपादकीय प्रकाशित हुआ है जिसमें इस बात की तस्दीक की गई है भ्रामक सूचनाएं कोविड के खिलाफ लड़ाई को कमजोर कर रही है।

हैमरकाफ संस्था 2020 ने 28 मार्च को दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, चेन्नई के 1300 लोगों पर एक सर्वेक्षण किया जिससे पता चलता है लाकडाउन से पहले लोग जहाँ सोशल मीडिया में अपने 150 मिनट खर्च करते थे वहीँ लाकडाउन के पहले सप्ताह में यह आंकड़ा बढ़कर 280 मिनट यानी 4 घंटे से अधिक हो गया जो आश्चर्यजनक है। साथ ही ओटीटी प्लेटफार्म में भी इस दौरान 71 फीसदी की बढ़ोतरी दर्ज हुई है।

एजेड कंपनी ने बेंगलुरु, दिल्ली, मुंबई, पुणे, कोलकाता, हैदराबाद में एक सर्वे किया जिसके अनुसार समाचार पढ़ने वाले पाठकों की दर तेजी से घट रही है। लाकडाउन से पहले जहाँ 3 करोड़ लोग समाचार पत्र पढ़ते थे वहीँ लाकडाउन में ये घटकर 2.1 करोड़ हो गए। समाचार पत्रों को पढ़ने में दिया जाने वाला समय भी 36 मिनट से बढ़कर 48 मिनट हो गया है। इस दौरान टेलीविजन के दर्शक भी बढे हैं। लाकडाउन से पहले जहाँ हर दर्शक 2 घंटे 48 मिनट टी .वी देखते थे वहीँ लाकडाउन में ये समय बढ़कर 3. 30 घंटे हो गया।

बार्क निल्सन 2020 के अपने शोध में पाया है लाकडाउन के दौरान टी वी देखने वाले दर्शकों की संख्या में 38 फीसदी का इजाफा हुआ है।

सेलुलर आपरेटर्स एसोसियेशन आफ इंडिया के अनुसार लाकडाउन के बाद से डाटा की खपत में तकरीबन 30 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई है।

उपकल्पना

1. कोरोना लाकडाउन के दौरान लोगों ने मीडिया के माध्यम से तमाम सूचनाएं प्राप्त की।

2. कोरोना लाकडाउन के दौरान लोगों ने मनोरंजन के लिए मीडिया का उपयोग किया।
3. कोरोना लाकडाउन में लोग सोशल मीडिया के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े रहे।
4. कोरोना काल में टी वी चौनलों ने कोरोना से जुडी अधिक खबरें दिखाकर अपनी टीआरपी को बढ़ाने का काम किया।
5. कोरोना काल में फेक न्यूज का प्रसार भी तेज हुआ है।

उद्देश्य

1. लाकडाउन के दौरान युवाओं की मीडिया उपभोग की आदतों का पता लगाना।
2. लाकडाउन के दौरान युवाओं की मीडिया जरूरतों का अध्ययन करना।
3. कोरोना महामारी के दौर में मीडिया पर युवाओं की निर्भरता का अध्ययन।
4. मीडिया की सूचनाओं के माध्यम से युवाओं के जीवन में होने वाले बदलाव का अध्ययन करना।
5. लाकडाउन के दौरान युवाओं के मीडिया के उपभोग का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि

निदर्शन का प्रयोग करते हुए कुमाऊँ विश्वविद्यालय के देव सिंह बिष्ट कैम्पस में कला संकाय के अंतर्गत अध्ययनरत बी .ए, एम. ए और पीएच.डी के 200 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। आंकड़ों के संकलन के लिए सामाजिक दूरी का पालन करते हुए गूगल फार्म बनाकर व्हाटसएप पर उत्तरदाताओं के पास भेजा गया। 18 से 30 वर्ष के बीच के 200 उत्तरदाताओं में से 100 उत्तरदाता (50 प्रतिशत पुरुष) और 100 उत्तरदाता (50 प्रतिशत महिलाओं) को प्रस्तुत अध्ययन में शामिल किया गया। 15 अप्रैल 2020 से 30 अप्रैल 2020 के बीच यह आनलाइन सर्वे किया गया। सभी आंकड़े आनलाइन गूगल फार्म सर्वे के माध्यम से लिए गए हैं, जिसमें आनलाइन प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत के अंतर्गत प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोत के तहत आनलाइन वेबसाइट, पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, दैनिक समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि के माध्यम से आंकड़े संकलित किए गए हैं।

परिणाम विश्लेषण

- कोरोना लाकडाउन में सूचनाओं के लिए 56 फीसदी युवाओं की निर्भरता जहां टीवी समाचार चौनलों में रही वहीँ 11 फीसदी लोग रेडियो और 22 फीसदी लोग समाचार पत्रों और 11 फीसदी लोग सोशल मीडिया पर निर्भर रहे।
- कोरोना लाकडाउन में 40 फीसदी युवाओं ने 6 से 8 घंटे का समय मीडिया के उपभोग में बिताया वहीँ 22 फीसदी युवाओं ने से 4 से 6 घंटे और 30 फीसदी युवाओं ने 2 से 4 घंटे 8 फीसदी युवाओं ने 0 से 2 घंटे का समय प्रतिदिन मीडिया के उपभोग में बिताया।
- कोरोना लाकडाउन में मनोरंजन के लिए 31 फीसदी युवाओं ने फिल्म का सहारा लिया, 23 फीसदी ने ओटीटी, 17 फीसदी ने टी वी धारावाहिकों का, 22 फीसदी ने संगीत का और 7 फीसदी ने अन्य का।
- कोरोना लाकडाउन के दौरान 34 फीसदी युवाओं की रूचि कोरोना से बचाव की खबरों में रही वहीँ 23 फीसदी युवा अर्थव्यवस्था पर पड़ रहे प्रभाव को लेकर चिंतित नजर आये वहीँ 24 फीसदी युवाओं की रूचि कोरोना पर शोध से जुडी खबरों की तरफ रही।19 फीसदी युवाओं की रूचि अन्य खबरों की तरफ रही।
- 50 फीसदी युवाओं ने यह कहा लाकडाउन में संवाद के लिए उन्होनें सोशल मीडिया का सहारा लिया।
- व्हाटसएप 57 फीसदी युवाओं की जहाँ पसंद रहा वहीँ 23 फीसदी युवाओं को फेसबुक रास आया। 15 फीसदी युवाओं को ट्विट्टर पसंद आया वहीँ 5 फीसदी युवाओं को अन्य पसंद आये।
- मीडिया के विभिन्न माध्यमों से कोरोना के लाकडाउन के दौरान युवाओं को जो सूचनाएं मिली 40 फीसदी ने जहाँ उन्हें सूचित किया वहीँ 34 फीसदी ने भयभीत, 20 फीसदी ने उन्हें बैचौन किया वहीँ 6 फीसदी ने अन्य का विकल्प सुझाया।

- कोरोना को लेकर मीडिया की कवरेज संतुलित रही ऐसा 40 फीसदी ने माना वहीँ 50 फीसदी ने माना यह असंतुलित रही। 10 फीसदी ने कुछ कह नहीं सकते का विकल्प सुझाया।
- कोरोना काल में फेक न्यूज के प्रसार में सोशल मीडिया की बड़ी भूमिका रही इस कथन पर 67 फीसदी लोग सहमत दिखाई दिए वहीँ 23 फीसदी असहमत और 10 फीसदी कुछ कह पाने की स्थिति में नहीं थे।
- कोरोना लाकडाउन में अखबार खरीदने से कोरोना बढ़ सकता है। इस कथन के पक्ष में 60 फीसदी लोग सहमत 40 फीसदी असहमत नजर आये।
- 70 फीसदी लोगों ने माना कोरोना को लेकर टीवी समाचार चौनलों की कवरेज उन्हें डरा रही है। 30 फीसदी लोग अखबारों की जानकारी को आज भी विश्वसनीय मान रहे हैं।
- कोरोना के लाकडाउन के दौरान मीडिया न होता तो घरों में उनका समय व्यतीत करना मुश्किल हो जाता। इस कथन से 100 फीसदी लोग सहमत नजर आते हैं।
- कोरोना लाकडाउन के दौरान कोरोना से जुडी खबरों की अधिक से अधिक कवरेज टीवी समाचार चौनलों की टीआरपी को बढ़ाने का काम कर रही है। 80 फीसदी युवा इससे सहमत नजर आये वहीँ 20 फीसदी असहमत।
- लाकडाउन के दौरान 40 फीसदी युवा समय व्यतीत करने के लिए मीडिया का उपयोग कर रहे हैं वहीँ 30 फीसदी युवा कोरोना की जानकारी के लिए 20 फीसदी लोग ज्ञान में वृद्धि के लिए और शेष 10 फीसदी अन्य कामों के लिए कर रहे हैं।
- 60 फीसदी युवा ऐसा मानते हैं कोरोना पर मीडिया द्वारा नकारात्मक खबरें चलायी गई 40 फीसदी युवा मानते हैं मीडिया द्वारा सकारात्मक खबरें चलाई गई।
- 87 फीसदी युवाओं ने ऐसा माना लाकडाउन होने के कारण उन्होनें सामान्य दिनों के मुकाबले अधिक समय मीडिया के उपयोग में व्यतीत किया।

निष्कर्ष

शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि आज भी सूचना और मनोरंजन के लिए युवा मीडिया पर निर्भर हैं। कोरोना के लाकडाउन के दौरान सभी युवा फिल्म, ओटीटी के साथ टीवी धारावाहिकों का सहारा ले रहे हैं। अपनों से जुड़े रहने के लिए वे सोशल मीडिया को भी अपनी प्राथमिकता दे रहे हैं। लाकडाउन से पहले सुबह समाचार पत्रों पर निर्भरता अधिक हुआ करती थी लेकिन लाकडाउन में कोरोना के गहराते साए ने अखबारों को भी नहीं छोड़ा। अखबारों से कोरोना का प्रसार होता है इसकी फेक न्यूज इतनी तेज चली कि युवाओं ने अपने घरों में अखबार पढ़ना तक छोड़ दिया। इसके चलते टीवी देखने वाले युवाओं दर्शकों की संख्या में इजाफा देखा गया है। समाचारों के साथ युवाओं ने फिल्में भी देखी वहीँ वेब सीरीज और संगीत से भी अपना भरपूर मनोरंजन किया। मीडिया कोरोना की अत्यधिक सूचनाएं देने का प्रयास कर रहा है वहीँ सोशल मीडिया फेक न्यूज का प्रसार करने में लगा हुआ है। टीवी समाचार चौनलों की कोरोना को लेकर की जा रही अत्यधिक कवरेज युवाओं को डरा रही है लेकिन यह भी सच है कोरोना के लाकडाउन के दौरान मीडिया न होता तो घरों में युवाओं का समय व्यतीत करना मुश्किल हो जाता इस कथन से अधिकांश युवा सहमत नजर आते हैं। वहीँ कोरोना लाकडाउन के दौरान कोरोना से जुड़ी खबरों की अधिक से अधिक कवरेज टी वी समाचार चौनलों की टीआरपी को बढ़ाने का काम कर रही है इससे भी अधिकांश युवा पूरी तरह से सहमत नजर आते हैं। लाकडाउन के दौरान युवाओं ने मीडिया के माध्यम से अपने समय का पूरा उपयोग किया। मीडिया के चुनाव को लेकर युवाओं की आदतों में भी सामान्य दिनों के मुकाबले काफी बदलाव देखने को मिला है।

शोध सीमा

प्रस्तुत शोध पत्र में केवल आनलाइन उत्तरदाताओं का चयनित कर उनकी राय को स्थान दिया गया है। वैश्विक महामारी के दौर में लोग किस तरह मीडिया का उपयोग करना चाह रहे हैं इसकी पड़ताल आसानी से संभव हो सकती है। 15 अप्रैल 2020 से 30 अप्रैल 2020 के बीच ये आनलाइन सर्वे लोगों के बीच किया गया।

शोध की उपयोगिता

यह शोध लाकडाउन के दौरान आमजन की रुचियों को समझने में मददगार साबित हो सकता है। समाचार पत्र, पत्रिकाओं, रेडियो, टीवी जैसे परंपरागत माध्यमों पर निर्भर होने वाला युवा कोरोना के वैश्विक संकटकाल में मीडिया को भरोसेमंद मान रहा है इसका पता चल जायेगा। परंपरागत माध्यम अपनी जगह पर हैं लेकिन नए माध्यम और बदलती तकनीक ने मीडिया के अपने हिसाब से इस्तेमाल करने के बहुत सारे विकल्प आज उपलब्ध करवा दिए हैं। युवाओं की निर्भरता अब नए जमाने के अनुरूप नए माध्यमों पर अधिक बढ़ रही है। कोरोना जैसी महामारी के दौर में आने वाली चुनौतियों के मुकाबले के लिए यह शोध संचार माध्यमों को भविष्य के लिए तैयार कर सकेगा।

संदर्भ :

1. covid-19-lockdown-indian-users-flock-to-fb-and-whatsapp-general-news-sites-see-numbersrise-8242811.html
2. Kumar ,M , Diwedi ,S Impact of corona virus imposed lockdown on Indian populationAnd their habits , International Journal of ScienceAnd helath care Research 5(2), page 88-97, 2020
3. https://://timesofindia.indiatimes.com/business/india-business/whatsapps-user-base-hits-2bn-mark/articleshow/74108379.cms
4. https://www.who.int/docs/default-source/coronaviruse/mental-health-considerations.pdf?sfvrsn=6d3578af_2
5. https://wan-ifra.org/2020/04/covid-19-indian-publishers-promote-safety-of-print-newspapers
6. https://www.outlookindia.com/website/story/business-news-whatsapp-reduces-forward-message-limit-to-one-chat-at-a-time-to-curb-fake-news-amid-covid-19/350236
7. https://www.jagran.com/news/national-during-coroavirus-lockdown-people-are-getting -boared-of-social-media -jagran-special-20176811.html
8. https://navodaytimes.in/news/khabare/coronavirus-covid19-health-ministry-narendra-modi/141014/
9. https:// www.bbc.com/hindi/india-52101362
10. https://hindi.webduniya.com/hindi-essay/social-media-essay-117061900033-1.html
11. https://www.prabhasakshi.com/national/lockdown-87-percent-traffic-on-social-media-people-are-spending-4 hours-daily
12. विमर, आर. डी. एवं डॉमिनिक, जे. आर. (2017). Mass Media ResearchAn Introducation लंदन: सीनेज लर्नि ग इंडिया प्रा इवेट लिमि टेड
13. https://m.uttamhindu.com /article/social –media-leads-to-disintegration-of-society/46735

महाकवि भवभूति के नाटकों में कर्मफल सिद्धान्तः एक विवेचन

डॉ० शालिनी अग्रवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर, उ०प्र०

भारतीय दर्शन के प्रत्येक सम्प्रदाय प्रायः कर्मवाद को स्वीकार करते हैं। कर्मवाद के अनुसार प्रत्येक प्राणी को उसके द्वारा किए गए कर्मो का फल अनिवार्य रूप से भोगना ही पड़ता है, कोई भी कर्म कभी भी फल प्रदान किए बिना नष्ट नहीं होता।

'क्रियते इति कर्म' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो कुछ भी किया जाये वह कर्म है, चाहे वह कायिक हो, मानसिक हो अथवा वाचिक सभी कर्म की परिधि में परिगणनीय होते हैं। श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार प्राणी त्रिगुणात्मिका अविद्या से अवश होकर कर्म करते ही हैं बिना कर्म किए कोई भी नहीं रह सकता।[1]

भवभूति के अनुसार कर्मफल सिद्धान्त का स्वरूप प्रस्तुत करने के पूर्व कर्मफल सिद्धान्त को सुस्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय दर्शन के प्रत्येक सम्प्रदायों में कर्मफलवाद को मान्यता प्राप्त होने के बावजूद योग दर्शन में कर्मफल सिद्धान्त का अत्यन्त स्पष्ट और विशद स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। पातञ्जल योग सूत्रों में कर्मफल सिद्धान्त का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया है, कि प्रत्येक प्राणी के द्वारा किए गए कर्मो का चित्त में एक संस्कार सा बन जाता है, जिसे 'कर्माशय' या 'कर्म संस्कार' कहा जाता है। ये कर्माशय ही फलभोग प्रदान करते हैं। कर्म दो प्रकार के होते हैं। शुभकर्म तथा अशुभ कर्म। इन्हें ही धर्म तथा अधर्म, पुण्य तथा पाप के नाम से भी अभिहित किय जाता है। ये शुभाशुभ कर्म सुखदुःखमोहात्मक फल प्रदान करते हैं। शुभाशुभ कर्मो की अनिवार्य फलप्रदता के बारे में कहा भी गया है कि ये कर्म करोड़ों कल्पों में भी फलभोग दिए बिना शान्त नहीं होते।[2] अब प्रश्न यह है कि ये शुभाशुभ कर्म और उनसे बनने वाले कर्माशय या कर्म संस्कारों का क्रम जो 'वटबीजन्याय' से अनवरत चलता रहता है उसका कारण क्या है? और उससे मुक्ति कैसे मिल सकती है? इस जिज्ञासा का समाधान योगशास्त्र में इस प्रकार किया गया है कि शुभाशुभ का मूल केन्द्र अविद्या ही है, क्योंकि अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश इन पञ्च क्लेशों[3] से युक्त चित्तवृत्ति वाले व्यक्ति के द्वारा किए गए कर्म ही संस्कार उत्पन्न करते हैं, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अविद्या, अहंकार, राग, द्वेष और मोह से उपरञ्जित मन से ही सारे कर्म करता है और फल भोग पाता है। पातञ्जल योग के अनुसार ये 'कर्माशय' या कर्म संस्कार क्लेशमूलक होते हैं और दृष्टजन्म (वर्तमान जन्म) तथा अदृष्टजन्म (भविष्यज्जन्म) में फल भोगने योग्य होते हैं।

अगले सूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने कर्माशयों का मूल कारण पञ्च क्लेशों का होना स्पष्ट स्वीकार करते हुए बताया है कि जब तक चित्त में पञ्चक्लेशों की सत्ता है, तभी तक किए गये कर्म फलभोग के बन्धन होते हैं, अन्यथा नहीं।[4] ये कर्माशय जन्म, आयु अथवा जीवनावधि और सुख-दुःख मोहात्मक फलभोग-तीन प्रकार से फल प्रदान करते हैं। कुछ कर्माशय केवल जन्मनामक फल देते हैं। कुछ कर्माशय जन्म और आयु दोनों का निर्धारण करते हैं और कुछ कर्म संस्कार जन्म, आयु तथा फलभोग तीनों का निश्चय करते हैं। इसी आधार पर इन्हें क्रमशः एक विपाक, द्विविपाक तथा त्रिविपाक कर्माशयों की भी संज्ञा दी जाती है। ये सभी कर्माशय पञ्चक्लेशों की चित्तवृत्ति में विद्यमानतः रहने तक ही फल देते हैं अन्यथा नहीं। जैसे जौ के दाने तुषा (भूसी) से ढके रहने पर ही अंकुरित होने की क्षमता रखते हैं और तुषा रहित होने पर उनकी अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है, ठीक इसी तरह कर्माशय पञ्चक्लेशों के होने तक ही फल देने की सामर्थ्य रखते हैं। निरासक्त अथवा क्लेश शून्य मन से कर्म किए जाने पर फल भोग नहीं दे सकते, इसीलिए गीता में 'निष्काम' अथवा निरासक्त होकर कर्म करने पर बल दिया गया है। यही कर्मयोग बन जाता है।[5]

पातञ्जल योग सूत्र की व्याख्या करते समय व्यासमुनि ने भाष्य में उल्लेख किया है कि प्राणी के द्वारा जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त किए गए शुभाशुभ कर्मों का एक गठ्ठर जैसा चित्त में बन जाता है, जो मत्स्य ग्रन्थि सदृश अत्यन्त सूक्ष्म रूप में बना होता है। ये ही कर्म संस्कार या कर्माशय कहलाता है। जो मृत्यु के समय खुलकर अगले जन्म की योनि, आयुसीमा और सुखदुखादि की न्यूनाधिक्य भाव निश्चय करता है।

वर्तमान जन्म और भविष्य जन्मों में फल भोगने की स्थिति को ध्यान में रखकर कर्माशयों को तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है- प्रारब्ध, संचित तथा क्रियमाण कर्म। जो कर्म किए गए हैं और जिन कर्मों का फल प्राप्त नहीं हुआ है वे संचित कर्म हैं। वे कर्म जो किए जा रहे हैं, वे क्रियमाण कर्म कहलाते हैं और जो कर्म पूर्वजन्मों में किए गए हैं तथा जिनका फलभोग नहीं हो सका है, वे प्रारब्ध कर्म कहे जाते हैं। प्रारब्ध कर्मों का भाग्य, दैव, विधि आदि भी कहा जाता है।

गीताकार ने तत्त्वज्ञान से अविद्यानाशपूर्वक कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त होने का वर्णन किया है। गीता के अनुसार 'ज्ञानाग्नि सारे कर्मों को भस्म कर देती है।[6] यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि ज्ञानाग्नि केवल संचित तथा क्रियमाण कर्मों को ही दग्ध कर सकती है, प्रारब्ध कर्मों को नहीं, क्योंकि जो कर्म अपना फल देना शुरू कर चुके हैं उनकी फल प्रदता को तत्त्व ज्ञान रूपी अग्नि भी समाप्त नहीं कर सकती। यही कारण है कि तत्त्व साक्षात्कार होने के बाद तत्त्वज्ञानी पुरुषों को भी प्रारब्ध फल भोग होने पर शरीर धारण करना पड़ता है। उनकी यह दशा 'जीवन्मुक्ति' अवस्था कहलाती है। प्रारब्ध भोग समाप्त होने पर 'विदेहमुक्ति' प्राप्त होती है।

इस प्रकार पातञ्जल योगसूत्र में कर्मफल परम्परा का नाश एकमात्र तत्त्वज्ञान से ही माना गया है, क्योंकि अज्ञान या अविद्या के द्वारा संचालित कर्म-फल-परम्परा तो केवल ज्ञान से ही नष्ट हो सकती है। ज्ञानप्राप्ति से कर्मफल परम्परा के नष्ट होते ही प्राणी आवागमन चक्र से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार कर्म-फल सिद्धान्त तथा पुनर्जन्मवाद दोनों एक तथ्य को सुस्पष्ट करते हैं, क्योंकि कर्मफल भोग के लिए बारम्बार शरीर धारण करना पड़ता है। कर्मफल शृंखला का नाश होते ही बारम्बार संसार में आवागमन होने की समाप्ति हो जाती है और प्राणी मुक्त हो जाता है।

संक्षेप में कर्मफल सिद्धान्त का स्वरूप प्रतिपादन करने के पश्चात् अब विवेचन का विषय महाकवि भवभूति के नाटकों में कर्मफल सिद्धान्त प्रतिपादन का विचार किया जाना अपेक्षित है। भवभूति शुभाशुभ कर्म तथा कर्मफल सिद्धान्त के समर्थक जान पड़ते हैं।

'मालतीमाधवम्' में भी भवभूति ने मालती से कहलवाया है कि मन्दभाग्य के लिए अपने दु:खों से छुटकारा पाने के लिए मरना भी इतना आसान नहीं होता, क्योंकि कर्म के प्रभाववश वह अपने कृत्य-अकृत्य को भोग रहा होता है।[7]

महाकवि कर्म तथा तज्जन्य फल के दार्शनिक सिद्धान्त को मानते हैं। उनके विचार से भवितव्यता या होनी बड़ी बलवान होती है, जिसे किसी भी प्रकार से नष्ट या परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उनकी इन मान्यताओं का मूल आधार प्राणी के द्वारा कृत कर्म ही हैं।

भवभूति ने अपने नाटकों में प्रारब्ध कर्मों के विपाकाभिमुख होने की स्थिति को दुनिवार्य बताया है। उनके अनुसार प्राणी भवितव्यता से नियन्त्रित होकर शुभाशुभ कर्मों को करने में प्रवृत्त होता है।[8]

उन्होंने 'मालतीमाधवम्' में इसी तथ्य को अभिव्यक्त करते हुए मकरन्द के मुख से कहलवाया है कि यह मेरा चित्त सन्ताप परम्परा रूप महाविपत्ति के लिए किसी कारण के अपेक्षा न करता हुआ उस (ललना) में आसक्त हो गया है। सबको पीडिघ्त करने वाली भगवती भवितव्यता (नियति) ही प्राय: प्राणी का शुभाशुभ का विधान करती है।9

महाकवि भवभूति के अनुसार संसार में सभी प्राणियों को पापकर्म करने से उस पाप का दुखद फल भोगना ही पड़ता है। मालती का सान्त्वना देते हुए माधव कहता है- हे महाभागे! डरो मत। मृत्यु के समय में अशङ्का छोड़कर किये गए प्रलाप के सुनने से निष्प्रतिबन्ध रूप से अपने प्रेम को प्रकाशित करने वाला वह यह तुम्हारा प्रणयी सामने ही है। हे सुन्दरी! कम्प का परित्याग करो। इस समय यहाँ पर यह पापी विपरीत परिणाम वाले पाप के भयङ्कर फल का अनुभव करेगा।[10]

नियति मनुष्यों के प्रयत्नों के विपरीत शुभ तथा अशुभ का विधान करती है। किसी व्यक्ति विशेष के प्रति अतिशय प्रगाढ़ प्रेम भी नियति का ही परिणाम होता है-

सन्तापसन्तति महाव्यसनाय तस्या-
मासक्तमेतदनपेक्षित हेतु चेतः।
प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः
सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव।।[11]

पूर्वजन्मार्जित शुभाशुभ कर्मों की फलोन्मुखता 'प्रारब्ध' कहलाता है, जिसकी फलप्रदता का नाश तत्त्वज्ञान से भी सम्भव नहीं हो पाता और यह प्रारब्ध फलभोग कब कहाँ और किस प्रकार प्राप्त होता है? इसका अनुमान कर पाना असम्भव होता है। भवभूति ने 'मालतीमाधवम्' में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है कि भाग्य पर विश्वास तथा पाप करने वाले को उसका परिणाम भी भोगना पड़ता है, यह मत दृढ़ शब्दों में अभिव्यक्त हो रहा है। भाग्य का दयाशून्य यह कौन सा अपराध है? फूलों के समान कोमल मालती की मौत सामने है, यह भाग्य या क्रूर नियति का कोई दैव प्रक्रम है। माधव अपने कथनों से मालती को सान्त्वना तो देता है; परन्तु पाप करने वाले को उसका परिणाम भी भोगना होता है। यह मत भी दृढ़ शब्दों में व्यञ्जित कर रहा है।

कृत्य कर्म के द्वारा ही पुनर्जन्म व मोक्ष की प्राप्ति होती है। भवभूति ने यह भी स्वीकारा है कि सत्पुरुषों के सम्पर्क से होने वाले मरण भी तरने वाले होते हैं। शम्बूक शूद्र मुनि राम द्वारा मारे जाने पर दिव्य रूप में राम से कहता है, यमराज से भी अभय देने वाले आपके दण्डधारी होने पर यह ब्राह्मण पुत्र जीवित हो गया है। यह मेरी दिव्य रूप प्राप्ति हुई है, इसलिए यह शम्बूक नामधारी शूद्रमुनि शिर से आपके चरणों पर प्रणत है। सत्पुरुषों के सम्पर्क से मरण भी मोक्षदायी होता है।[12]

इससे प्रतीत होता है कि सत्पुरुषों द्वारा यदि मृत्यु भी हो तो मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इससे दो तथ्य सामने आते हैं, कि सत्कर्म से शुभफल की प्राप्ति होती है, चाहे वह शूद्र ही क्यों न हो, शम्बूक को तप का शुभ फल ही मिला।

राम ने ब्राह्मण पुत्र को पुनरुज्जीवित कर दिया। इससे स्पष्ट होता है कि भवभूति पुनर्जन्म पर विश्वास करते थे।

वेदों तथा स्मृतियों में नितान्त निष्ठा रखने वाले भवभूति भारतीय दर्शन के कर्म एवं पुनर्जन्मवाद सिद्धान्त में दृढ़ आस्था रखते है। 'उत्तरराम-चरितम्' के द्वितीय अङ्क के निम्नलिखित श्लोक में कहा गया है कि शम्बूकवध के पश्चात् उत्पन्न दिव्य पुरुष को राम उसकी तपस्या के परिणाम स्वरूप आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि हे दिव्यरूपधारी शम्बूक! अब तुम उग्र तपस्या का फल भोगो।[13]

पुनः यही उल्लिखित एक श्लोक से यह भी स्पष्ट होता है कि कठोर तपस्या, रूप, पुण्य कर्म का फल वैराज नामक तैजस लोक की प्राप्ति है। जहाँ पहुँचकर प्राणी आनन्द आमोद का अनुभव करता है।[14] यहाँ भाव यह है कि राम ने प्रसन्न होकर शम्बूक के पुण्यों के रूप में स्वर्ग लोक तथा वैराज नाम के सदा प्रकाशमान लोक प्रदान कर दिये जो कल्याणकारी हैं। उल्लेखनीय है कि इस श्लोक से भवभूति का स्वर्ग-नरक तथा परलोक पर विश्वास भी अभिव्यक्त होता है। स्वर्ग तथा नरक मानने से यह स्पष्ट होता है कि शुभ कर्मों से पुण्य फल तथा अशुभ कर्मों से पाप फल की प्राप्ति होती है। इस लोक के अतिरिक्त परलोक में कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इस मान्यता पर भी प्रकाश पड़ता है।

अधोलोक तथा नरकलोक भी होता है। अपने-अपने कर्मों के अनुसार यह प्राप्त होता है। इस प्रकार का कथन भवभूति ने एक वाक्य में इङ्गित किया है।[15] अर्थात् ऋषिजन ऐसा मानते हैं कि जो लोग आत्महत्या करने वाले होते हैं, उन्हें मरने पर अन्धतामिस्त्र अर्थात् गाढ़ अन्धकार से युक्त तथा असूर्यलोक अर्थात् सूर्य के प्रकाश से रहित लोक मिलते है।[16] अन्धतामिस्त्र से अभिप्राय है, अन्धा बना देने वाले अन्धकारमय तथा असूर्या का तात्पर्य है, सूर्य के प्रकाश से रहित लोक। भवभूति का यह कथन श्रुतियों में आए इस तथ्य का ही प्रतिपादन करता है, जिसके अनुसार उन्होंने अपनी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उन दो उद्धरणों को तो लिया ही है, साथ ही अपने स्वर्ग-नरक तथा लोक-परलोक के प्रति विश्वास को भी प्रकाशित किया है।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च ---- इत्यादि पद्य में जिन लोकों में आनन्द (आध्यात्मिक सुख) आमोद दिव्य विषयों का सुख तथा जहाँ पवित्र सम्पत्तियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व) हैं। वे ज्योतिर्मय मङ्गलकारी वैराज[17] नामक प्रसिद्ध लोक अर्थात् ब्रह्मलोक तुम्हें प्राप्त हों और तुम वहाँ निवास करो। राम द्वारा दिये गए इस आशीर्वाद में 'यत्रानन्दाश्च' का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

निष्कर्षतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि महाकवि भवभूति ने अपने नाट्य साहित्य में कर्म-सिद्धान्त का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट स्वीकृत किया है कि प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों के अनुसार ही उसके फल का भागी होता है। इसलिए मनुष्य को श्रेष्ठ फल हेतु उत्तम कर्म ही करने चाहिए।

संदर्भ सूची-

1. गीता नहि कश्चित क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्।
   कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। -3/5
2. अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम् नाभुङ्क्तं
   क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि।। -महाभारत
3. अविद्याऽस्मिता रागद्वेषभिनिवेशाः पंचक्लेशाः।। -योगसूत्र
4. क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः। -यो0 सू0
5. तस्मादसक्तः सततं कार्य कर्म समाचर
   असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः -गीता 3/19
   तथा
   मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
   निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्ध्यस्व विगतज्वरः।। -गीता 3/30
   तथा
   न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
   इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्नस स बध्यते।। -गीता 4/14
6. यस्य सर्वे समारम्भाः काम-सङ्कल्पवर्जिताः।
   ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।
   -गीता 4/19
   तथा
   यथैधांसि समिद्धोऽग्नि-भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
   ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।
   -गीता 4/37
7. मरणमपि मे मन्दभागधेयाया अभिमतमति दुर्लभं भवति।
   -मा0 मा0 6/7 का उत्तरांश
8. को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तो
   र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे।।
   -उ0 च0 7/4 तथा मा0 मा0 10/13
9. प्रायः शुभं च विद्धात्यशुभं च जन्तोः
   सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव।।
   -मा0 मा0 1/24
10. मरण समये त्यक्ताशङ्कं प्रलापनिरर्गल
    प्रकटित निजस्नेहः सोऽयं सखा पुर एव ते।
    सुतनु! विसृजोत्कम्पं संप्रत्यसाविह पाप्मनः
    फलमनुभवत्युग्रं पापः प्रतीपविपाकिनः।।
    -मा0 मा0 5/26

11. द्रष्टव्य 'मालतीमाधवम्' 1/24
12. दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे
    संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।
    शम्बूक एष शिरसा चरणो नतस्ते
    सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति।।
    – उ0 च0 2/11
13. तदनुभूयतां उग्रस्यतपस्या परिपाकः।
    –द्रष्टव्य उ0 च0 द्वितीयोऽङ्कः, पृ0 सं0 178
14. यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च संपदः।
    वैराज नाम ते लोकास्तैजसा सन्तु ते शिवाः।।
    –उ0 च0 2/12
15. नाद्यापि मम दग्धदेहः पतति। अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोका-
    स्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यते।
    – उ0 च0 4/3 का उत्तरार्ध, पृ0 सं0 330
16. असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृताः।
    तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः।।
    –यजु0/ईशा0/40/3
17. वैराजाः – ये ब्रह्मलोक अथवा सत्यलोक भी कहलाते हैं, जिसे प्राप्त करने वालों का पुनर्जन्म नहीं होता है।
    –द्र0 उ0 च0, पृ0 सं0 109

नगरीय संस्कृति का उद्‌भव एवं विकास - एक अध्ययन

छाया कुमारी

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, बी0एन0एम0यू0, मधेपुरा

नगरीय संस्कृति का उद्‌भव एवं विकास बुद्ध के जन्म के समय तक हो चुका था। ऐसी संस्कृति का प्रभाव एक साथ कष्टकारक एवं उद्धार करने वाला (agonçing and emancipating) दोनों तरह का था। प्राचीन सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था, जिसके सिद्धांतों की नींव ब्राह्मण परंपरा के कर्मकांडों पर आधारित थी, वैदिक सभ्यता के पूर्वी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व बनाए रखने में असफल रही थी। इसके अलावा, नगरीकरण की नई सामाजिक व्यवस्था ने इस वैचारिक शून्यता (ideological vacuum) को और भी बढ़ा दिया था। इसके परिणामस्वरूप, एक पूर्णत: नए एवं विस्तृत धार्मिक एवं दार्शनिक चिंतन (religiophilosophical speculation) का जन्म हुआ। इस प्रकार की असामान्य परिस्थितियों की विवशताओं ने न केवल इनके नए विश्लेषण खोजे बल्कि नए सामाजिक नियमों (ethos) के लिए भी पृष्ठभूमि तैयार की। परिणामत: व्रतदीक्षिक अन्वेषकों (professional seekers) का एक विशेष वर्ग बड़ी तेजी से पनपने लगा, जिसने नए प्रश्नों एवं उनके संभावित उत्तरों पर ध्यान केंद्रित कर, नई सामाजिक व्यवस्था को ढाँचा प्रदान करने का प्रयास किया।

कुँजी:- संस्कृति, सामाजिक, धार्मिक, सभ्यता।

प्रारंभ में कुछ विद्वानों की मान्यता थी कि बौद्ध धर्म विभिन्न प्रकार की प्राक्‌बौद्ध काल में उत्पन्न परिस्थितियों के विकास (जैसे- याज्ञिक कर्मकांडों द्वारा जीव हिंसा, अंधविश्वास तथा बौद्धिक गतिरोध का उतपन्न होना, लिंग तथा जाति आधारित असमानता आदि) के विरुद्ध एक आन्दोलन मात्र था। एस. राधाकृष्णन तथा डी.आर. भण्डारकर जैसे विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि बौद्ध धर्म एक ऐसी नैतिक व्यवस्था थी, जो वैदिक धर्म में उत्पन्न कुरीतियों को दूर करने का प्रयास कर रही थी। एस. राधाकृष्णन तथा भण्डारकर के विचारों में त्रुटि यह थी कि उन्होंने बौद्ध धर्म के आर्थिक तथा सामाजिक आयामों को अनदेखा कर इसे पूर्णत: वैचारिक आंदोलन के रूप में देखा। जी.सी. पाण्डे तथा जी.एस.पी. मिश्रा ने बौद्ध धर्म के उद्धव को वैदिकोत्तर तथा प्राक-वैदिक श्रमण परंपरा के पुनरूत्थान के रूप में देखा है, जो ब्राह्मण धर्म से परे विरक्ति पर आधारित था। उनके विचार में यह परंपरा, जिसने संसारनिरोध तथा संसारमुक्ति पर जोर दिया, ऋग्वैदिक काल में कार्यशील परंपरा द्वारा दबा दी गई थी। लेकिन श्रमण परंपरा ने स्वयं को पुन:प्रतिष्ठित किया तथा इसे दु:खी मानवता द्वारा, जी.एस. पाण्डे के अनुसार, तब स्वीकार किया गया जब कार्य तथा पूजा, धन तथा कल्याण, मनुष्य तथा प्रकृति की वैदिक समता कर्कशतापूर्वक तोड़ दी गई। बौद्ध धर्म सबसे अधिक सफल हुआ क्योंकि यह प्राक-वैदिक तथा वैदिकेत्तर श्रमण परंपरा की अत्यधिक व्यवस्थित तथा सुस्पष्ट अभिव्यक्ति था। हालाँकि यह नकारा नहीं जा सकता कि बौद्ध धर्म ने बहुत सी प्राक-बौद्धकालीन संकल्पनाओं को ग्रहण करने के साथ-साथ उनमें संशोधन किया परंतु इस परिकल्पना की कमी यह है कि इसमें बौद्ध धर्म की मौलिकता तथा पूर्णता (originality and wholesomeness) की ओर ध्यान नहीं दिया गया। जी. एस. घुर्ये तथा एन. दत्त जैसे सामाजिक वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया कि बौद्ध धर्म तथा इसके समसामयिक मत ब्राह्मणों के विरूद्ध क्षत्रियों द्वारा सामाजिक वर्चस्व हेतु चलाए गए संघर्ष का परिणाम थे। उनके अनुसार क्षत्रियों ने अपने महत्त्व का दावा उस समय करना शुरू किया जब ब्राह्मण याज्ञिक कर्मकांडों पर अपने एकमात्र प्रभुत्व द्वारा क्षत्रियों सहित समाज के अन्य वर्गों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर चुके थे। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के इस मिथ्याभिमान पर प्रहार करने के उद्देश्य से आम जनसमूह, विशेषकर समाज के विकासोन्मुख संपन्न वर्गों जैसे प्रभावशाली व्यापारियों, की सहायता चाही। यद्यपि यह नहीं नकारा जा सकता कि क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के इस

मिथ्याभिमान पर रोष प्रकट किया, परंतु ऐसे रोष को ही बौद्ध धर्म जैसे आंदोलनों के उद्भव की पर्याप्त व्याख्या नहीं माना जा सकता। यह सत्य है कि बुद्ध न केवल क्षत्रिय कुल में पैदा हुए थे बल्कि तत्कालीन राजाओं ने भी बौद्ध धर्म को सहायता प्रदान की थी और बौद्ध धर्म द्वारा सामाजिक वर्णव्यवस्था में क्षत्रियों को ब्राह्मणों से ऊँचा स्थान दिया गया है। इन दो अनुत्पादक वर्गों (non-producing classes) में कुछ वैमनस्य, जो स्वाभाविक था, अवश्य रहा होगा परंतु इसे अत्यधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। अस्तु टी. डब्ल्यू. रायस डेविड्स की ऐसी कुछ विद्वानों का विश्वास है कि वैदिक काल के अंतिम समय में लौह तकनीक के विकास एवं उसके प्रयोग के परिणामस्वरूप समाज में गुणात्मक परिवर्तन आया था तथा इसने गंगा घाटी के नगरीकरण को जन्म दिया। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति को गंगा घाटी में नगरीकरण के साथ जोड़कर देखा जाता है। दूसरे शब्दों में बौद्ध धर्म के उद्भव को गंगा घाटी में लोहे के उपकरणों के बढ़ते हुए प्रयोग के परिणाम के रूप में देखा जाता है। इन विद्वानों का कहना है कि लौह तकनीक ने कृषि के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, जिससे अधिशेष उत्पादन (production of surplus) में सहायता मिली और इस प्रकार नगरीय केंद्रों, जो कि दस्तकारी एवं व्यापार पर आधारित थे, का उद्भव हुआ। इस नगरीकरण से बहुत सी समस्याएँ पैदा हुई जिनका सैद्धांतिक (वैचारिक) स्तर पर समाधान आवश्यक था ताकि कृषि का आधार अधिक विस्तृत हो तथा प्रभावी सामाजिक ढाँचा (prevailing social structure) अधिक दृढ़ हो सके। इन विद्वानों का विश्वास है कि बुद्ध ने इन्हीं कारणों से पशु हिंसा की निंदा की तथा शिल्प, व्यापार और सूदखोरी आदि को वैधता प्रदान की। उन्होंने असंबद्ध महिलाओं (alienated women) तथा सार्वजनिक भोजनालयों (public eating houses) को सामाजिक मान्यता प्रदान की। बौद्ध धर्म की ओर जनसाधारण को आकर्षित करने के उद्देश्य से बौद्ध भिक्षुओं को सलाह दी गई थी कि वे ब्राह्मण पुरोहितों के आडंबरपूर्ण, लोभी एवं असंयमी जीवन के विपरीत सादगीपूर्ण और पवित्र जीवन व्यतीत करे। इस प्रकार लौह तकनीक के बढ़ते प्रयोग को बौद्ध धर्म के उद्भव एवं सफलता के एक उत्तरदायी कारण के रूप में देखा जाता है।

एक सामाजिक-सांस्कृतिक (धार्मिक) प्राणी के रुप में मानव की कुछ आवश्यकताएं होती हैं। मानव को सामाजिक प्राणी के रुप में अपना अस्तित्व बनायें रखने के लिए आवश्यकताओं के संदर्भ में अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते है उनके प्रयत्नों के सिलसलें में ही अनेक व्यवस्थाओं का विकास हो जाता है और उनके आधार पर यह पता चलता है कि समकालीन समाज में क्या उचित हैं क्या अनुचित है। यही विचार या नियम नैतिकता के अन्तर्गत आते हैं। वास्तव में नैतिक नियम या विचार हमें कुछ कार्यो या व्यवहारों को करने की अनुमति देते हैं जैसे अमुक कार्यों को हमें करना चाहिए, छुआछुत को नहीं मानना चाहिए, पर्दा प्रथा समाप्त होनी चाहिए, परिवार नियोजन होना चाहिए। इस प्रकार विचारो के अन्तर्गत यह भाव जुड़ा होता है कि कुछ व्यवहार या कार्य अनुचित है। जिसे नहीं करना चाहिए। मानव का चिन्तन उसे विचार देता है और विचार से व्यवहार प्रभावित होते हैं। व्यवहार सामाजिक संगठन को प्रभावित करते हैं और प्रभावों से उत्पन्न नवीन स्थितियाँ नि:सन्देह सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन की द्योतक मानी जाती हैं।

समाजिक सांस्कृतिक मूल्य व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं, यदि वे परिवर्तित होते हैं तो उससे भी सामाजिक परिवर्तन होता है। ग्रामीण समुदाय में मूल्यों का संघर्ष आधुनिक सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण कहा जा सकता है। यहाँ पुरानी पीढ़ी के लोग अब भी परम्परागत सामाजिक मूल्यों को धारण किए हुए हैं जबकि नई पीढ़ी के सदस्य नये मूल्यों को लेकर चल रहे हैं मूल्यों में संघर्ष के कारण ही परम्परागत सामाजिक ढाँचा परिवर्तित हो रहा है। फैशन के क्षेत्र में आए दिन परिवर्तन हो रहे हैं। आज ग्रामीण समुदाया में भी लोग जिन्स, पैन्ट, शर्ट इत्यादि नए फैशन के जहाँ अजीबो गरीब मान्यताएं विद्यमान थी जिनमें सोमरस तथा मद्यपान का भारतीय समाज में प्रचलन था अब उनके स्थान पर पवित्रता एवं उससे सम्बन्धित धारणाओं को उच्च जातियों के द्वारा निम्न जातियों के लोग ग्रहण कर रहे हैं।

नगरीय संस्कृति के प्रभाव के कारण धार्मिक तथा सांस्कृतिक ग्रामीण जीवन तेजी से परिवर्तित हो रहा है। धर्म के महत्व में कमी का प्रमुख कारण नवीनतम संचार साधन रहे है। खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन के साथ जीवन के ढंग आदि में भी व्यापक परिवर्तन हुए है। ग्रामीण जीवन शैली बदलकर नगरीय जीवन के रूप में रूपान्तरित हो रही है। वास्तव में परिवर्तन की यह प्रक्रिया विगत के कुछ दशकों में अत्यधिक तीव्र हुई जिसके परिणाम स्वरूप व्यापक परिवर्तन आये है।

परम्परागत ग्रामीण आर्थिक जीवन में नगरीय संस्कृति के प्रभाव के कारण उनके दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। आज समस्त ग्रामीण आर्थिक क्रियाएं नगरीयकृत प्रतीत होती हैं। उनके व्यवहारों में नीतिगत परिवर्तन दिखाई पड़ रहा। आज ग्रामीण समाज में बचत के स्थान पर खर्च को अपनाया जा रहा है। दिखावे की संस्कृति नगरों की ही देन है। वास्तव में ग्रामीण

जनों के आय-व्यय से लेकर उपभोग तथा उत्पादन प्रणाली तक नगरीय संस्कृति के रंग-ढंग से रची बसी प्रतीत हो रही है। कर्ता की शक्ति का हास हो रहा हैं जिसके स्थान पर शक्ति के विकेन्द्रीकरण को भी देखा जा सकता जा सकता हैं। कृषि के स्थान पर अन्य व्यवसाय खासतौर पर नौकरी पेशे का महत्व बढ़ा है। परम्परागत व्यवसाय अब समाप्त हो रहे हैं। साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जजमानी व्यवस्था मृत प्राय: हो गई हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. एस. राधाकृष्णन, इंडियन फिलोसफी, Vol-I 1923, पृष्ठ-352
2. Upreti, G.B., The Early Buddhist World outlook in Historical Perspective, Delhi, 1997, Page 25
3. Panday, G.C. Studies in the origins of Buddhism, 1957, Page 25.
4. Mishra, G.S.P., Development of Buddhist Extics, New Delhi, 1984, Page- 36-38
5. वही, पृष्ठ-40
6. पाण्डेय, जी.सी. पूर्वोक्त, पृष्ठ-62
7. घूरिये, जी.एस. कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, लंदन, 1932, पृष्ठ-67
8. Dutt, N., Origin and Growth of Caste in India, Vol-1, Calcutta, 1968, Page 63-65

सामाजिक असमानता तथा निर्धनता

डॉ० रीभा सिंह

पी-एच०डी०, समाजशास्त्र विभाग, बी०एन०एम०यू०, मधेपुरा

स्वतंत्रता के प्रारंभिक दशक से ही भारत में निर्धनता को दूर करने के लिये उस पर सीधे प्रहार शुरू किये गये। इसके लिये पहली पंचवर्षीय योजना में भी सामुदायिक विकास के कार्यक्रम चलाये गये। गरीबी दूर करने के सबसे महत्वपूर्ण साधन भारत के ग्रामीण आंचल में विकास की गति में तेजी लाना था। क्योंकि गरीबी की सबसे अधिक आबादी गांवों में ही थी। गांवों की कुल आबादी में से अधिकांश जनता लोग कंगाली का जीवन जी रहे थे। गांववासी या तो अपने आसपास उपलब्ध संसाधनों से जीवनयापनं करते थे, बिमारी, बेरोजगारी, बाढ के कारण ग्रामीण जन संसाधनों के घोर अभाव में जी रहे थे। इसलिये मात्र सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में तेजी लाने के लिये कई प्रकार की योजनाएं और कार्यक्रम चलाने का प्रयास किया।

कुँजीः- स्वतंत्रता, गरीबी, निर्धनता, सामाजिक परिवर्तन, नगरीय संस्कृति, महिलाओं की स्थिति।

प्रारम्भिक प्रयास सभी कठिनाइयों और समस्याओं को दूर करने के लिये किये गये। सहकारित और मिलजुलकर अपनी मुश्किलें दूर करने की प्रेरणा उन्हें विदेशी शासन से संघर्ष के दिनों से ही मिली थी। इसलिये गांवों की दशा सुधारने के काम का आरम्भ भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों से किया गया।

सामान्यतया निर्धनता का अर्थ उस सामाजिक प्रकिया से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। जब समाज का एक बड़ा भाग न्यूनतम जीवन स्तर से वंचित रहकर जीवन स्तर पर गुजर-बसर करता है तो यह कहा जा सकता है कि समाज में व्यापक निर्धनता व्याप्त है। निर्धनता की यह समस्या भारत सहित विश्व के प्रत्येक विकासशील देशों में देखी जा सकती है। तीसरी दुनिया के देशों में तो निर्धनता व्यापक स्तर पर विद्यमान है ही लेकिन विकसित देशों में भी इसका अस्तित्व है किन्तु वह विकासशील देशों मेंय निर्धनता की तुलना में अत्यल्प है।

सभी समाजों में निर्धनता को परिभाषित करने के प्रयास किये गये हैं और सभी समाजों में निर्धनता का आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना से सम्बन्धित है। इसी के आधार पर न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर और अच्छे जीवन स्तर के बीच एक रेखा खींची जाती है जिसे निर्धनता रेखा अथवा गरीबी रेखा के नाम से अभिव्यक्त किया जाता है।

एक सामाजिक-सांस्कृतिक (धार्मिक) प्राणी के रुप में मानव की कुछ आवश्यकताएं होती हैं। मानव को सामाजिक प्राणी के रुप में अपना अस्तित्व बनायें रखने के लिए आवश्यकताओं के संदर्भ में अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते है उनके प्रयत्नों के सिलसलें में ही अनेक व्यवस्थाओं का विकास हो जाता है और उनके आधार पर यह पता चलता है कि समकालीन समाज में क्या उचित हैं क्या अनुचित है। यही विचार या नियम नैतिकता के अन्तर्गत आते हैं। वास्तव में नैतिक नियम या विचार हमें कुछ कार्यो या व्यवहारों को करने की अनुमति देते हैं जैसे अमुक कार्यों को हमें करना चाहिए, छुआछुत को नहीं मानना चाहिए, पर्दा प्रथा समाप्त होनी चाहिए, परिवार नियोजन होना चाहिए। इस प्रकार विचारो के अन्तर्गत यह भाव जुड़ा होता है कि कुछ व्यवहार या कार्य अनुचित है। जिसे नहीं करना चाहिए। मानव का चिन्तन उसे विचार देता है और विचार से व्यवहार प्रभावित होते हैं। व्यवहार सामाजिक संगठन को प्रभावित करते हैं और प्रभावों से उत्पन्न नवीन स्थितियाँ नि:सन्देह सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन की द्योतक मानी जाती हैं।

समाजिक सांस्कृतिक मूल्य व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं, यदि वे परिवर्तित होते हैं तो उससे भी सामाजिक परिवर्तन होता है। ग्रामीण समुदाय में मूल्यों का संघर्ष आधुनिक सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण कहा जा सकता है। यहाँ पुरानी पीढ़ी के लोग अब भी परम्परागत सामाजिक मूल्यों को धारण किए हुए हैं जबकि नई पीढ़ी के सदस्य नये मूल्यों को लेकर चल रहे हैं

मूल्यों में संघर्ष के कारण ही परम्परागत सामाजिक ढाँचा परिवर्तित हो रहा है। फैशन के क्षेत्र में आए दिन परिवर्तन हो रहे हैं। आज ग्रामीण समुदाया में भी लोग जिन्स, पैन्ट, शर्ट इत्यादि नए फैशन के जहाँ अजीबो गरीब मान्यताएं विद्यमान थी जिनमें सोमरस तथा मद्यपान का भारतीय समाज में प्रचलन था अब उनके स्थान पर पवित्रता एवं उससे सम्बन्धित धारणाओं को उच्च जातियों के द्वारा निम्न जातियों के लोग ग्रहण कर रहे हैं।

नगरीय संस्कृति के प्रभाव के कारण धार्मिक तथा सांस्कृतिक ग्रामीण जीवन तेजी से परिवर्तित हो रहा है। धर्म के महत्व में कमी का प्रमुख कारण नवीनतम संचार साधन रहे है। खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन के साथ जीवन के ढ़ंग आदि में भी व्यापक परिवर्तन हुए है। ग्रामीण जीवन शैली बदलकर नगरीय जीवन के रूप में रूपान्तरित हो रही है। वास्तव में परिवर्तन की यह प्रक्रिया विगत के कुछ दशकों में अत्यधिक तीव्र हुई जिसके परिणाम स्वरूप व्यापक परिवर्तन आये है।

भारतीय ग्रामीण महिलाओं की स्थिति अभी भी अत्यन्त दयनीय है। महिलाएं सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक सभी पहलुओं में तुलनात्मक रूप से पुरुषों से अत्यधिक पिछड़ी हुई हैं। यद्यपि स्वतंत्रता के उपरान्त लोगों की आय और सामान्य जीवन स्तर में अत्यधिक सुम् पार हुआ है, वहीं महिलाओं की स्थिति में तुलनात्मक दृष्टि से वांछित सुध पार नहीं हो पाया है। जनांककीय स्थिति निरंतर दयनीय होती जा रही है। सन् 1951 से लेकर 2001 तक की जनगणना से प्राप्त आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या में निरंतर कमी आती जा रही है। वर्तमान समय में प्रति हजार पुरुषों पर मात्र 923 महिलाएं है। यह आर्थिक विकास के विपरीत है। क्योंकि यदि आर्थिक विकास हो रहा है तो लोगों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार होता है जिसका प्रभाव महिलाओं पर भी सकारात्मक पड़ना चाहिए। विकसित देशों से यदि तुलना करें तो हम कह सकते हैं कि आर्थिक विकास के साथ-साथ महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है और प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। अत: लिंगानुपात का कम होना यह इंगित करता है कि महिलाओं की स्थिति दयनीय है और इससे सम्बद्ध समस्याएं भी अत्यधिक जटिल हो सकती हैं। यद्यपि 1981-91 में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा 58.7 वर्ष तथा पुरुषों की जीवन प्रत्याशा 57.7 वर्ष से अधिक है, लेकिन पिछले दशकों में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा पुरूषों से कम रही है। महिलाओं में साक्षरता भी पुरूषों की तुलना में अत्यधिक कम है। व्यवसाय और राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी भी अत्यन्त कम है। 1991 की जनगणना के अनुसार महिलाओं की साक्षरता 35.4 प्रतिशत थी जबकि पुरुषों की साक्षरता 63. 9 प्रतिशत थी। यद्यपि महिलाओं के जीवन प्रत्याशा व पोषण के स्तर में 1990 के दशक में अत्यधिक सुधार हुआ है, लेकिन सभी महत्वपूर्ण पक्षों के अवलोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। ग्रामीण परिवेश में जीवन यापन करने वाले परिवारों में महिलाओं की स्थिति तुलनात्मक रूप से अधिक दयनीय पायी जाती है।

ग्रामीण विकास के लिये गांवों में रहने वाले को रोजगार देने के लिये इतनी योजनाएं बनाई गई तथा अब भी बनाई तथा चलाई जा रही है। फिर भी पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नहीं हुई है। महिलाओं से गरीबी, निरक्षरता तथा कुपोषण आदि की समस्याएं जुड़ी है। कोई भी खुशहाल परिवार अपने बच्चों को निरक्षर बनाए रखना नहीं चाहेगा। जैसे-जैसे सम्पन्न बढ़ती है, स्त्रियों की जीवन स्थितियों में भी परिवर्तन आता है।

जनसंख्या नियंत्रण के लिये भी परिवार नियोजन काफी सरल सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा ग्रामीण लोगों में चेतना पैदा हुई है। जो लोग शिक्षित हैं उनमें छोटे परिवार की उपयोगिता पर गहरा अहसास है। इसका प्रमाण है केरल। जहां देश की सबसे अधिक शिक्षा तथा साक्षरता है और जनसंख्या की वृद्धि दर सबसे कम है। शिक्षित वर्ग यह जानता है कि यदि परिवार छोटा होगा तो सीमित आय के बावजूद बेहतर ढंग से जीवन-यापन संभव हो सकेगा तथा बच्चों की देख-रेख ज्यादा अच्छी तरह हो सकेगी। अत: ग्रामीण महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा अत्यधिक साक्षर बनाना है। महिलाओं की भागीदारी हरेक क्षेत्र में जैसे ग्रामीण विकास में निर्णायक भूमिका संभव हो सकेगी।

मानवीय विकास में यातायात, स्वास्थ्य स्वच्छ, विद्युत व्यवस्था, जल, बाल मृत्युदर, प्रजनन दर, शिक्षा का प्रसार, बाल विकास, प्रसूति महिलाओं को सुविधाएं प्रदान करना इत्यादि अति आवश्यक है। जिससे देश ही नहीं, वरन् गांवों का विकास भी सम्भव होगा जिससे लोगों की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक सभी पहलुओं में सुधार होगा। महिलाओं का सर्वांगीण विकास ही आर्थिक विकास है।

हमारे देश में बहुत विविधता है। अत: सामाजिक-आर्थिक स्थितियां भी गई तरह से हैं। जैसे प्राकृतिक संसाधनों जैसे तालाब, निर्धनता एक आर्थिक स्थिति है। किन्तु यह सामाजिक पद को प्रकट करती है। क्योंकि इससे व्यक्ति के आर्थिक स्थिति को घनिष्ठ सम्बन्ध है।

निर्धनता का अर्थ उस सामाजिक किया से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की युनियाद आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर सकता है। भारतीय ग्रामीण जनजीवन निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा, रूढिघ्वादिता आदि अनेक समस्याओं से घिरा है। जनसंख्या वृद्धि के कारण निर्धनता, अबिरोजगारी, बेरोजगारी, कुपोषण जैसी समस्याओं ने उग्र रूप धारण कर लिया है। उत्पादन आय जीवन स्तर और पोषण अत्यधिक निम्न अवस्था में है और बहुसंख्यक जनसंख्या भूख से त्रस्त है।

निर्धनता का आशय उस सामाजिक प्रकिया से है जिससे समाज का एक बड़ा भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता है। बुनियादी अथवा आधारभूत आवश्यकताओं के अन्तर्गत भोजन, वस्त्र तथा आवास की न्यूनतम सुविधाएँ भी शामिल है। अत: यदि किसी को एक न्यूनतम स्तर पर भी इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो जाती है तो उस व्यक्ति को निर्धन कहा जाता है। जब समाज का एक बहुत बड़ा भाग न्यूनतम जीवन स्तर से संचित रहता है तथा केवल निर्याह स्तर पर गुजरा करता है तो समाज में व्यापक निर्धनता विद्यमान रहती है।

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व भारतीय गाँवों में आज की भाँति गरीबी नहीं था। ग्रामवासी आर्थिक दष्टि से आत्मनिर्भर और सम्पन्न नहीं, तो कम से कम जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं को जुटाने में समर्थ थे। निर्धनता के लिए अनेक व्यक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारक उत्तरदायी है। अंग-भंग, बिमारी व पागलपन, अंधापन, बहरापन, बुढ़ापा, दुर्घटनाआदि व्यक्ति को निर्धनता के फन्दे में डालते है।

प्राकृतिक विपदाये अतिवृष्टि, अनावृष्टि, कीड़े-मकोड़े का उत्पात, उपजाउ भूमि का अभाव, सिंचाई के सामानों की कमी खराब मौसम, भूचाल, महामारी आदि प्राकृतिक घटनायें व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक संकटों को बनाये रखने में उत्तरदायी होता है।

सामाजिक आर्थिक परप्रिक्ष्य में निर्धनता का असमानता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। निर्धनता वह दशा है जिसमें व्यक्ति या तो अपर्याप्त आय अथवा मूर्खतापूर्ण व्यय के कारण अपने जीवन स्तर को इतना ऊँचा उठा नहीं पाता है कि उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बनी रहें।

सामाजिक विधाओं के विभिन्न परिप्रेक्ष्य में निर्धनता की अवधारणा को भिन्न-भिन्न रूपों एवं आयामों में परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। निर्धनता विकास से सम्बन्धित है। चूंकि अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है। इसलिए ये गाँवों के विकास से सम्बन्धित है।

ग्रामीण विकास को दो पक्षों में विश्लेषित किया जा सकता है। प्रथमत: यह आर्थिक आधारों पर ग्रामीण लोगों के स्तर को उपर उठाने तथा ग्रामीण समाज के आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले सुविधाओं एवं संसाधनों के द्वारा सामाजिक कल्याण की स्थापना में निहित है। जैसे पेयजल, स्वास्थ्य प्रारम्भिक शिक्षा. ग्रामीण संचार एवं यातायात में वृद्धि आदि।

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत संगठन और विघटन दो शक्तियों का समावेश देखने को मिलता है। प्रथम स्तर पर समाज के रचनात्मक विकास के प्रमाण से सम्बन्धित अवधारणा सामाजिक संगठन एवं सामाजिक व्यवस्था को संकेत करती है। दूसरी तरफ विघटन व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने की अवधारणा से सम्बन्धित है। ग्रामीण निर्धनता भी सामाजिक विघटन का एक अंग है।

"निर्धनता एक ऐसी दशा है जिसमें कोई व्यक्ति अपर्याप्त आय अथवा विवेकहीन व्यय के कारण जीवन-स्तर को उतना ऊँचा नहीं रख पाता है जिससे कि उसकी शारीरिक तथा मानसिक कुशलता बनी रह सके और वह स्वयं एवं उसके स्वाभाविक आश्रितजन उस समाज के मानकों के अनुकूल उपयोगी ढ़ंग से कार्य करने में असमर्थ रहते हैं जिसका कि वह सदस्य है।"

सामान्य अर्थ में धन के अभाव को निर्धनता की संज्ञा दी जाती है। किन्तु अधिक वैज्ञानिक अर्थ में निर्धनता एक ऐसा निम्नस्थ जीवन स्तर है जिसमें व्यक्ति अपने और अपने आश्रितों के व्यक्तित्व का भौतिक, मानसिक और सामाजिक विकास करने में पूर्णतया असमर्थ रहता है। प्राय: निर्धनता की परिभाषा विकसित, अल्पविकसित और विकासशील देशों में अलग-अलग मानदण्डों के आधार पर की गयी है, क्योंकि उनके आर्थिक विकास के स्तर में अन्तर है।

इन देशों में निर्धनता को परिभाषित करने में दो भिन्न मानदण्डों का प्रयोग किया गया है। एक मानक 'पौषणिक' है तथा दूसरा मानक 'सापेक्षिक वंचन' है। पौषणिक मानक का प्रयोग विकासशील देशों में किया गया है। इसके अनुसार बुनियादी मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर निर्धनता का निर्धारण किया जाता है। इस अर्थ में पूर्ण निर्धनता वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति का जीवन निर्वाह स्तर इतना निम्नस्थ होता है कि वह अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूर्णतया असमर्थ रहता है। इसका आकलन इस आधार पर होता है कि शारीरिक कार्य क्षमता और स्वास्थ्य की रक्षा के लिए एक व्यक्ति को प्रतिदिन

के भोजन में पर्याप्त कैलोरी (सामान्यत: 2250 कैलोरी) होनी चाहिए। वे व्यक्ति जो कम आय के कारण अपने प्रतिदिन के भोजन में यह न्यूनतम मात्रा भी जुटा नहीं पाते, उन्हें गरीबी की रेखा से नीचे रखा जाता है। गरीबी रेखा की अवधारणा का प्रयोग गरीब व्यक्तियों और अमीर व्यक्तियों में अन्तर करने के उद्देश्य से किया जाता है। यह रेखा उस आय स्तर के हिसाब से निर्धारित की जाती है, जिसे एक व्यक्ति की वस्तुओं और सेवाओं की खपत का न्यूनतम स्तर बनाये रखने के लिए पर्याप्त माना जाता है। जिन व्यक्तियों की आय गरीबी की रेखा से कम होती है उन्हें गरीब माना जाता है। यह पूर्ण निर्धनता या गरीबी या जीवन निर्वाह स्तर का मापदण्ड है, जिसकी परिभाषा किसी पूर्ण-निर्धारित मानकों के आधार पर की जाती है।

भारत में निर्धनता की समस्या व इसकी विकरालता केवल आज के समाज की समस्या व विकरालता नहीं है बल्कि यह समस्या इस देश में युगों-युगों से चली आ रही है। समाज चाहे प्राचीनकालीन हो या मध्यकालीन अथवा आधुनिक कालीन, निर्धनता का कराहता स्वर इन सभी कालों में सुनाई पड़ता है। यद्यपि एक मत यह भी है कि अपने अतीत काल में भारत की गणना विश्व के समृद्धतम देशों में किया जाता था तभी तो उसे 'सोने की चिडिघ्या' कहकर पुकारा गया। इसके बावजूद हमारे पास इतनी विपुल ऐतिहासिक सामग्री है जिसके आधार पर यह स्वीकार करना ही होगा कि निर्धनता सभी युगों व कालों में एक सामान्य समस्या रही है। वेदों एवं धर्मशास्त्रों में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ ईश्वर व देवता विशेष की आराधना करते समय निर्धनता को दूर करने की महती प्रार्थना की गयी है। ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मप्रधान साहित्य के अतिरिक्त जिनसे तत्कालीन समाज की विषमताओं का पता चलता है। इतिहास और साहित्य दोनों की विधाओं से संयुक्त अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनसे वर्ण एवं जाति पर आधारित असमानतावादी समाज-व्यवस्था, जो अब तक प्रवाहमान है, के विकसित होने की बात की पुष्टि होती है। विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों, स्मतियों से जो सामाजिक और धार्मिक जीवन मुखर होता है, उनसे भी अमीरी और गरीबी के विविध पक्ष उद्घाटित होते हैं। अमीरी और गरीबी की ऐतिहासिक प्रमाणिकता की पुष्टि अभिलेख, मुद्राएँ, अवशेष, स्मारक आदि विविध पुरातात्त्विक सामग्रियों से भी होती है। विदेशी लेखकों और यात्रियों के विवरण भी भारतीय समाज की समृद्धता और निर्धनता के भण्डार को उजागर करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- जी0के0 अग्रवाल: भारतीय सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक परिवर्तन, आगरा बुक स्टोर, आगरा-1986
- निरूपमा प्रकाश: शिड्यूल्ड कास्ट्स सोशियो इकोनामिक चेंजेज, छुग पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1989
- बी0 कुप्पुस्वामी: सोशल चेन्ज इन इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, प्राइवेट लि0, 1977
- सी० परवथम्मा: शिड्यूल्ड कास्ट्स एट दि क्रासरोड, आशीष पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, 1989
- सोरन सिंह: शिड्यूल्ड कास्ट्स ऑफ इण्डिया डाइमेंशन आफ सोशल चेन्ज, ग्यान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1987
- दूबे सत्यनारायण: जौनपुर का गौरवशाली इतिहास, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013

पत्रिका एवं समाचार-पत्र

- विकास पुस्तिका, जनपद-जौनपुर, वर्ष 2006 से वर्ष 2015
- विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों को सौंपी गयी योजनाएं एक परिचय-पंचायती राज विभाग, जौनपुर उ0प्र0
- कुरुक्षेत्र
- योजना
- एस. राधाकृष्णन, इंडियन फिलोसफी, टवस.प् 1923, पृष्ठ-352

1- Upreti, G.B., The Early Buddhist World outlook in Historical Perspective, Delhi, 1997, Page 25
2- Panday, G.C. Studies in the origins of Buddhism, 1957, Page 25.
3- Mishra, G.S.P., Development of Buddhist Extics, New Delhi, 1984, Page- 36-38
4. वही, पृष्ठ-40
5. पाण्डेय, जी.सी. पूर्वोक्त, पृष्ठ-62
6. घूरिये, जी.एस. कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, लंदन, 1932, पृष्ठ-67
7. Dutt, N., Origin and Growth of Caste in India, Vol-1, Calcutta, 1968, Page 63-65

वैश्विक राजनीति के बदलते आयाम, संयुक्त राष्ट्र संघ और नाटो की भूमिका

डॉ० यतेन्द्र सिंह

एसोसियेट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री चित्रगुप्त पी. जी. कॉलेज, मैनपुरी, उ०प्र०

सारांश

सम्पूर्ण विश्व अनेक राष्ट्र-राज्यों में बँटा हुआ है, लेकिन जो विद्वान इसे एक वैश्विक व्यवस्था के रूप में देखने पर जोर देते हैं, वे इस विभाजन को एकता के सन्दर्भ में समझने का प्रयास करते हैं। उनका मानना है कि सामाजिक सीमाओं और सामाजिक निर्णय लेने के अध्ययन के लिए राष्ट्र-राज्यों को एक इकाई के रूप में लेने के बजाय वैश्विक प्रणाली को विश्लेषण का आधार होना चाहिए। इस बौद्धिक परियोजना के आधार पर बने सूत्रीकरण को 'वैश्विक व्यवस्था-सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है। इसका विकास पचास के दशक में प्रतिपादित निर्भरता सिद्धांत के कट्टरपंथी प्रस्तावों और इतिहासलेखन के फ्रेंच एनल्स स्कूल से प्रभावित है।

विश्वव्यापी राजनीति को एक वैश्विक राजनीति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो सबसे पहले, दुनिया भर में सभी मनुष्यों के बीच आम तौर पर राजनीतिक संबद्धता की सामाजिकता प्रदर्शित करता है, और दूसरा, यह सुझाव देता है कि इस सामाजिकता को समाजवाद के रूप में परिभाषित किया गया है। अन्य रूपों पर नैतिक या संगठनात्मक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त होना चाहिए।

मूलशब्द

अंतर्राष्ट्रीय संबंध, संयुक्त राष्ट्र संघ, नाटो, सहयोग, क्षेत्रवाद

परिचय

अंतर्राष्ट्रीय संबंध दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच संबंधों की प्रकृति को संदर्भित करता है, जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और रणनीतिक संबंध स्थापित होते हैं। दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच संबंध कई पहलुओं से निर्धारित होते हैं, जिनमें राष्ट्र की शासन प्रणाली, भौगोलिक स्थिति, संसाधनों की उपलब्धता, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विकास, विचारधारा और ऐतिहासिक मूल्य आदि शामिल हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंध अंतर्राष्ट्रीय संगठन, वैश्विक व्यापार मॉडल और नेतृत्व क्षमताओं से भी प्रभावित होते हैं। राष्ट्र की सुरक्षा और समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए, न केवल पड़ोसी देशों के साथ, बल्कि अन्य राष्ट्रों के साथ भी सकारात्मक और सौहार्दपूर्ण संबंध मददगार साबित होते हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रवाद का प्रभाव बढ़ने लगा, राजनीतिक और आर्थिक सहयोग ने क्षेत्रवाद की विचारधारा को एक नई दिशा प्रदान की, परिणामस्वरूप पड़ोसी देश या समान विचारधारा वाले देश एक मंच साझा करने लगे। क्षेत्रवाद के रूप में पहला संगठन यूरोपीय संघ के रूप में आया, जिसने यूरोप के सभी देशों को एक मंच पर इकट्ठा किया और अपने राज्यों के विकास के लिए सामूहिक प्रयास किए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, आर्थिक, सामाजिक और रक्षा संबंधी समस्याओं को हल करने के लिए कई क्षेत्रीय संगठनों का गठन किया गया था।

हम गुंजाइश और गति दोनों के मामले में अभूतपूर्व परिवर्तन के युग में जी रहे हैं। शक्ति संतुलन बदलता रहता है और प्रौद्योगिकी में परिवर्तन एक ऐसी दुनिया का निर्माण कर रहे हैं जहाँ सत्ता बहुत बड़े पैमाने पर है न कि केवल राज्यों के हाथों में। हम स्पष्ट रूप से अंतरराष्ट्रीय प्रणाली में एक ऐसी स्थिति की ओर बढ़ रहे हैं जहां परिणाम उत्पन्न करने या निर्धारित करने की क्षमता कई प्रमुख शक्तियों के पास है। यह दो-ध्रुवीय शीत युद्ध की दुनिया या एक-ध्रुवीय युग से बहुत दूर है, और इसका पश्चिम और अमेरिकी पतन के प्रश्न के प्रति आपके दृष्टिकोण से कोई लेना-देना नहीं है।

वैश्वीकरण ने अन्योन्याश्रयता पैदा की है, जिसमें पूरा विश्व एक दूसरे से जुड़ रहा है। यदि वैश्विक राजनीति के गुरुत्वाकर्षण का केंद्र, और बहुत जल्द अर्थव्यवस्था, एशिया बन गई है, तो अब एशिया प्रतिद्वंद्विता का कॉकपिट और एक ऐसा मंच बन गया है जिस पर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा खेली जाती है। चीन का उदय इस बात पर सवाल उठा रहा है कि क्या वह आर्थिक रूप से प्रभावशाली होगा और वह क्या भू-राजनीतिक भूमिका निभाएगा।

द्वितीय विश्व युद्ध (जिसे उदार विश्व व्यवस्था के रूप में जाना जाता है) के बाद स्थापित विश्व व्यवस्था के नियम विजयी पश्चिमी देशों की राजधानियों में लिखे गए थे। यह व्यवस्था अब टूटने की कगार पर है। विघटन एक तरह से 2001 में 9/11 के आतंकी हमलों के बाद से ही शुरू हो गया था। 9/11 की दहशत के बाद अमेरिका द्वारा शुरू किए गए आतंक के खिलाफ युद्ध के कारण, उन्होंने खुद अमेरिका के साथ संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों की जड़ें खोदने की शुरुआत की, जिसकी नींव पश्चिमी देशों ने रखी थी। 2008 के आर्थिक संकट के समय तक, अमेरिकी नेतृत्व कमजोर होता गया और समानांतर में, चीन ने वैश्विक मंच पर अपनी दस्तक दी।

संयुक्त राष्ट्र संगठन

संयुक्त राष्ट्र विश्व का सबसे बड़ा अंतरराष्ट्रीय संगठन है। विश्व स्तर पर एक ऐसा अंतरराष्ट्रीय संगठन बनाने के लिए यह दूसरा प्रयास था। इससे पहले प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद युद्ध और हिंसा को रोकने के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी, लेकिन यह संगठन युद्ध को रोकने में सफल नहीं हो सका। द्वितीय विश्व युद्ध के विनाश की भयावहता को देखते हुए, युद्ध के दौरान ही, दुनिया के प्रमुख नेताओं ने एक संगठन बनाने का विचार किया जो आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की भयावहता से बचाएगा, साथ ही साथ शांति भंग करने के प्रयासों को रोक देगा। दुनिया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्टूबर 1945 को 51 देशों द्वारा की गई थी। ये देश अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने, राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करने, सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देने, बेहतर जीवन स्तर और मानवाधिकार प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध थे।

अव्यवस्थित अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था, महामंदी, विभिन्न राज्यों के बीच वार्ता में मतभेद आदि ने इस संगठन को विफल बना दिया। 1930 के दशक के असंख्य संकटों और चुनौतियों का सामना करने में इसकी अक्षमता संघ की विफलता का परिणाम थी।

संयुक्त राष्ट्र ने अपने अस्तित्व के पिछले लगभग 6 दशकों में अपने सभी उद्देश्यों और जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए हर संभव प्रयास किया है। इसके बावजूद न तो युद्धों को पूरी तरह से रोका जा सका और न ही कई विवादों को उचित समय पर सुलझाया जा सका।

आजकल संयुक्त राष्ट्र का विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों पर कोई प्रभाव नहीं है। इराक पर अमेरिकी हमले ने संयुक्त राष्ट्र के अस्तित्व पर सवालिया निशान लगा दिया है। यद्यपि सुरक्षा परिषद के प्रत्येक सदस्य ने किसी न किसी समय संयुक्त राष्ट्र की अवहेलना की है, लेकिन इराक पर अमेरिकी आक्रमण के रूप में दुनिया के इतने मजबूत विरोध के बावजूद ऐसा कभी नहीं हुआ है। यह युद्ध राज्यों की संप्रभुता की अवधारणा के क्षरण और हानि का प्रतीक है।

संयुक्त राष्ट्र के औचित्य के बारे में जो प्रश्न उठाए गए हैं, ये तत्व मूल रूप से दिखाई दे रहे हैं, जैसे राष्ट्रों की गुटबाजी, एकध्रुवीय व्यवस्था, राष्ट्रीय संप्रभुता का सिद्धांत, अंतर्राष्ट्रीय भावना की कमी, सैन्य शक्ति की कमी, वीटो का दुरुपयोग, अमेरिकी साम्राज्यवाद। विचारधारा और विश्व हितों के लिए अमेरिकी हितों को चुनौती देना।

वास्तव में इसकी प्रासंगिकता को लेकर उठे सवाल का मूल कारण वर्तमान अंतरराष्ट्रीय राजनीति का माहौल है।

संयुक्त राष्ट्र के पूर्व राजदूत, डोर गोल्ड ने ष्टॉवर ऑफ बेबल: हाउ द यूनाइटेड नेशंस हैज फ्यूल ग्लोबल कैओसष् नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने संयुक्त राष्ट्र की आलोचना करते हुए लिखा है, ष्इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। किसी भी अंतरराष्ट्रीय विवाद को सुलझाने के लिए।

दूसरी ओर, शीत युद्ध की समाप्ति के बाद के वर्तमान परिदृश्य में भी संयुक्त राष्ट्र की शैली में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया है। इतिहास के विषय पर केंद्रित एक प्रतिष्ठित टीवी चौनल श्इतिहासश ने इसकी पुष्टि की है। वास्तव में, चौनल ने अपनी वेबसाइट पर संयुक्त राष्ट्र को भड़काऊ नीतियों के समर्थक, विवादास्पद स्वास्थ्य विकल्प प्रदान करने और नौकरशाह होने के रूप में संबोधित किया।

नाटो

नाटो दुनिया का सबसे बड़ा सैन्य गठबंधन है, जिसकी दुनिया भर में मौजूदगी है। इसका सबसे बड़ा सदस्य अमेरिका है, जबकि सबसे छोटा सदस्य 200 सैनिकों वाला आइसलैंड है।

नाटो 1949 में सोवियत संघ के विरोध में बनाया गया था। नाटो के लक्ष्य सोवियत संघ में साम्यवाद के प्रसार को रोकना, यूरोपीय राष्ट्रों को सुरक्षा प्रदान करना और सैन्य और आर्थिक विकास करना आदि हैं।

नाटो के गठन ने दो विश्व महाशक्तियों, अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत युद्ध को हवा दी। सोवियत संघ ने इसे साम्यवाद के विरोध में देखा और जवाब में वारसा संधि नामक एक सैन्य संगठन का आयोजन करके पूर्वी यूरोप के देशों में अपना प्रभाव स्थापित करने की कोशिश की।

यह सोवियत संघ का पतन था जिसने नाटो को अपनी भूमिका को फिर से रणनीतिक करने के लिए प्रेरित किया। नाटो चार्टर के अनुच्छेद 5 की व्याख्या सदस्य राज्यों के हितों की रक्षा के लिए गैर-सदस्य राज्यों को शामिल करने के लिए की गई थी। साथ ही, यदि कोई सदस्य कहीं नाटो का हस्तक्षेप चाहता है, तो प्रस्ताव पर चर्चा की जा सकती है और गवर्निंग काउंसिल द्वारा अनुमोदित किया जा सकता है।

1990 के दशक की शुरुआत में इराक पर आक्रमण एक उदाहरण है जिसने नाटो चार्टर का पालन नहीं किया। 1999 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की मंजूरी के बाद कोसोवो में हस्तक्षेप किया गया था। उस समय, एक सिद्धांत उभरा कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) जनादेश प्राप्त करने के बाद नाटो युद्ध में जा सकता है। इस तरह के सिद्धांत ने नाटो को रूस या चीन के वीटो पर निर्भर बना दिया होगा, इसलिए इस विचार को खारिज कर दिया गया था।

नाटो ने अमेरिकी विदेश नीति को भी प्रभावित किया। नाटो के जरिए यूरोप समेत दुनिया के कई देशों में अमेरिका का दखल बढ़ा।

क्षेत्रवाद की बदलती प्रकृति

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में कोई भी देश पूर्णकालिक मित्र या शत्रु नहीं होता है। आज जो देश मित्र है वह कभी भी शत्रु की श्रेणी में आ सकता है। यही कारण है कि एक साधारण लक्ष्य को पूरा करने के लिए क्षेत्रीय संगठन बनाया जाता है, लेकिन सभी देश एक साथ सहयोग करने में सक्षम नहीं होते हैं। क्योंकि सभी देशों की प्राथमिकताएं और लक्ष्य अलग-अलग होते हैं। दक्षिण एशिया में सार्क की विफलता का मुख्य कारण सदस्य देशों के बीच आपसी संघर्ष है, सार्क देश आपसी विवादों को सुलझाने में लगातार विफल रहा है। भारत ने आर्थिक विकास के लिए ब्रिक्स या बिम्सटेक जैसे संगठनों में रुचि दिखाना शुरू कर दिया है, स्वतंत्र नीति में शामिल नहीं होने के लिए द्वितीय विश्व युद्ध के बाद गुटनिरपेक्ष आंदोलन शुरू किया और शीत युद्ध (कम्युनिस्ट और पूंजीवादी) से उभरे दो गुटों लेकिन गैर- सरेखित आंदोलन भी अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रहा, परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय संगठन अब राजनीतिक नहीं बल्कि आर्थिक थे, जैसे ब्रिक्स, क्वाड (अमेरिका, भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया का समूह), बिम्सटेक, संघाई सहयोग संगठन, आदि। वर्तमान में स्थिति, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति आर्थिक सहयोग की ओर बढ़ रही है।

निष्कर्ष

शब्द ष्नई विश्व व्यवस्थाष इतिहास में एक नई अवधि को संदर्भित करता है जिसने विश्व राजनीतिक विचार और शक्ति संतुलन में नाटकीय परिवर्तन देखा। शब्द की विभिन्न व्याख्याओं के बावजूद, यह मुख्य रूप से विश्व-शासन की वैचारिक धारणा से जुड़ा है, केवल वैश्विक समस्याओं को पहचानने, समझने या संबोधित करने के लिए नए सामूहिक प्रयासों के अर्थ में, जो व्यक्तिगत राष्ट्र-राज्यों की क्षमता से अधिक है। परे हैं।

वाक्यांश ष्न्यू वर्ल्ड ऑर्डरष या इसी तरह की भाषा का इस्तेमाल प्रथम विश्व युद्ध के अंत की अवधि में वुडरो विल्सन के अंतर्राष्ट्रीय शांति के दृष्टिकोण के संबंध में किया गया था; विल्सन ने राष्ट्र संघ से आक्रमण और संघर्ष को रोकने का आह्वान किया। द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में संयुक्त राष्ट्र और ब्रेटन वुड्स प्रणाली की योजनाओं का वर्णन करते समय इस वाक्यांश का उपयोग एक हद तक किया गया था, आंशिक रूप से राष्ट्र संघ के साथ इसके नकारात्मक संघों के कारण। हालांकि, कई टिप्पणीकारों ने द्वितीय विश्व युद्ध के विजेताओं द्वारा आयोजित आदेश को ष्नई विश्व व्यवस्थाष के रूप में पूर्वव्यापी रूप से लागू किया है। कई देश आज चीन और पश्चिम के बीच तेजी से बदलते और उभर रहे शक्ति के नए संतुलन को संतुलित करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

अमेरिका नियम आधारित व्यवस्था की बात तो करता है लेकिन अपने बनाए नियमों का कभी पालन नहीं करता। जब अपने हितों की बात आती है, तो अमेरिका संयुक्त राष्ट्र की मंजूरी या वैश्विक सहमति के बिना किसी भी देश पर हमला करता है। उदाहरण वियतनाम, कोरिया, इराक, अफगानिस्तान आदि हैं। बड़ी शक्तियों के लिए कोई नियम नहीं हैं।

वर्तमान में, भारत पर अंतर्राष्ट्रीय विकास का प्रभाव बढ़ रहा है। हमारा स्वास्थ्य, हमारी सुरक्षा, हमारी वृद्धि और समृद्धि के साथ-साथ हमारे जीवन की गुणवत्ता देश की सीमाओं के पार जो कुछ भी हो रहा है, उससे लगातार प्रभावित होती है। यही कारण है कि हम पड़ोस में होने वाली घटनाओं को नजरअंदाज करने की हिम्मत नहीं कर सकते, भले ही ये घटनाएं दूर-दूर तक हो रही हों। दरअसल, आज की दुनिया में दूसरों के बारे में जानकारी रखना आपके लिए फायदेमंद रहेगा।

सन्दर्भ

1. इमैनुएल वालर्स्टीन (1974-1989), द मॉडर्न वर्ल्ड सिस्टम, तीन खण्ड, एकेडेमिक प्रेस, न्यूयॉर्क.
2. ए. जोलबर्ग (1981), 'ओरिजिंस ऑफ मॉडर्न वर्ल्ड सिस्टम', वर्ल्ड पॉलिटिक्स, अंक 33.
3. आर. डेनमार्क (1999), 'वर्ल्ड सिस्टम हिस्ट्री : फ्रॉम ट्रेडिशनल इंटरनैशनल पॉलिटिक्स टु द स्टडी ऑफ ग्लोबल रिलेशंस', इंटरनैशनल स्टडीज रिव्यू, अंक 1.
4. ए. फ्रैंक और बी. जिल्स (सम्पा.) (1993), द वर्ल्ड सिस्टम : फाइव हंड्रेड इयर्स ऑर फाइव थाउजेंड इयर्स?, रॉटलेज, लंदन.
5. टी. होपकिंस (1982), वर्ल्ड सिस्टम्स एनालैसिस : थियरी ऐंड मैथडॉलॅजी, सेज, बेवर्ली हिल्स, सीए.
6. Baylis, John, Steve Smith, and Patricia Owens. *The Globalization of World Politics: An Introduction to International Relations* (2011)
7. Diamond, Jared (1997). Guns, Germs, and Steel. Jonathan Cape. ISBN 9780224038096.
8. Munoz, J. Mark (2013). Handbook on the Geopolitics of Business. Edward Elgar Publishing : UK. ISBN 9780857939746
9. O'Loughlin, John; Heske, Henning (1991). Kliot, N; Waterman, S (eds.). From War to a Discipline for Peace. The Political Geography of Conflict and Peace. London: Belhaven Press.

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श: एक विश्लेषण

क्रमांक शुक्ला

प्रवक्ता, बेनीमाधव तिवारी इन्टर कॉलेज, आटा जालौन (उ. प्र.)

सारांश

ऐसा लेखन जिसमें नारी के जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण किया जाता है, नारी साहित्य कहलाता है। प्रेमचंद से लेकर राजेंद्र यादव तक कई पुरुष लेखकों ने महिलाओं की समस्या को उकेरा है। लेकिन पुरुष लेखकों का लेखन उस रूप में नहीं था जिस सशक्त रूप में स्वयं महिला लेखकों ने अपनी लेखन को चलाया है।

जहां तक हिन्दी साहित्य में महिलाओं की चर्चा का सवाल है, भारतीय साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से हमारे देश में हुए नारीवादी आंदोलनों से काफी प्रभावित रहा है। इसकी पृष्ठभूमि के रूप में यूरोप और अमेरिका की नारीवादी विचारधारा ने इसे आगे बढ़ाया है। इसे स्वीकार करने के बावजूद यह कहा जा सकता है कि कई बार महिलाओं का यह जागरण दुनिया की सभी महिलाओं द्वारा सभी पुरुषों के विरोध में एक विचारधारा के रूप में उभरा और कभी-कभी यह महिलाओं की आजादी की वकालत करने वाले साहित्य के रूप में सामने आया।

हिन्दी साहित्य में नारी की चर्चा का जन्म छायावाद काल से माना जाता है। महादेवी वर्मा की श्रृंखला का हिस्सा महिला सशक्तिकरण का एक सुंदर उदाहरण है।

सामाजिक सरोकारों से प्रभावित बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं के बीच लंबे समय से लगातार चर्चा और चिंता का विषय रहा है कि, आज भी हिंदी में महिलाओं के प्रश्न पर मौलिक लेखन बहुत कम हो रहा है। नारी मुक्ति की सैद्धान्तिक अवधारणाओं और साहित्य में प्रचलित नारी आन्दोलन के प्रस्तावों के अंतर या एकतरफा संदर्भ में पहला प्रश्न यह उठता है कि हिन्दी साहित्य जगत में नारी विमर्श का क्या अर्थ है? साहित्य, जिसे कथा, कहानी, आलोचना, कविता आदि मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने के माध्यम के रूप में देखा जाता है, यह महिलाओं और अन्य हाशिए के लोगों के जीवन को कैसे चित्रित करता है? इस शोध लेख ने यह समझने का प्रयास किया गया है कि, आज तक साहित्य अपने यथार्थवादी होने का दावा करते हुए भी स्त्री-विमर्श की मूल अवधारणाओं को रेखांकित कर आम लोगों में किसी प्रकार की संवेदनशीलता विकसित करने में सफल रहा है?

मूल शब्द : हिंदी, साहित्य, नारी, विमर्श

परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी चेतना और सृजन के बीच में ऊँची दिवार खड़ी दिखाई देती है। पश्चिम के प्रभाव से आधुनिक काल में एक नई चेतना का विकास हुआ। हिन्दी लेखकों ने नारी पात्रों के प्रति उनकी महानता को पूर्ण संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। पिछले 50 सालों में महिलाओं को लेकर काफी काम किया गया है। लेकिन समाजशास्त्र की दृष्टि से महिलाओं की चर्चा बहुत बाद में हिन्दी साहित्य में बहस का विषय बनी। डॉ. ओमप्रकाश लिखते हैं- "1974 में श्प्रगतिशील महिला संगठनश का गठन हुआ, जिसके बाद महिलाओं के मुद्दों को अखबारों, पत्रिकाओं आदि में प्रमुखता मिलने लगी।श्श वैदिक काल महिलाओं का उत्कर्ष काल रहा है, लेकिन धीरे-धीरे समय चक्र के परिवर्तन के कारण महिलाओं की हार और शोषण का युग शुरू हो गया।

हिंदी साहित्य की आदि-कविता, धार्मिक प्रवचनों और वीर गाथाओं के रूप में लिखी गई है। तत्कालीन परिस्थितियों और परिवेश

के अनुसार वीर काल में नारी के कामिनी और वीरांगना रूप दृष्टिगोचर होते हैं। इस समाज की कविता में, ''जकी बेटी सुंदर देख ताही पाई जाए धरे हथियार''। कहावत सच होती है। उस समय नारी संघर्ष के बीज रूप में थी क्योंकि राजा-महाराजा भी स्त्रियों के कारण लड़ते थे। वीर पत्नी ने अपने स्वामी के वीर कर्मों में ही अपने जीवन का अर्थ समझा। यदि उसके पति को भी वीरगति प्राप्त हो जाती तो वह उसके साथ मरने को राजी हो जाती।

कहने का तात्पर्य यह है कि वीर काव्य ही नहीं, उस समय का धार्मिक काव्य भी स्त्रियों के प्रति उदार नहीं था। जैन आचार्यों, सिद्धों, नाथों ने भी नारी के प्रति विकृति की आवाज को मुखरित किया है। 1500-1700 का काल भक्ति युग माना जाता है। हिन्दी साहित्य का भक्ति काल राजनीतिक उथल-पुथल का काल था, जिसके फलस्वरूप कवि का मन ईश्वर की शरण में जाने लगा। इस काल के काव्य में नारी चित्रण मुख्यत: दो रूपों में हुआ। एक ओर वह एक उत्कृष्ट आदर्श आराधना के रूप में, दूसरी ओर एक सामान्य महिला के रूप में।

भक्ति काल के निर्गुण संत कवियों ने नारी को मुक्ति के मार्ग में बाधक बताया है। सुंदरदास के अनुसार, ''नारी विष का बीज है, विष की लता है"। इन सब से ज्ञात होता है कि उसने स्त्री का कामिनी रूप ही देखा है। उसका मातृ रूप और पति रूप नहीं। दूसरी ओर संत कवियों ने नारी के मातृ और देशभक्त रूप को सम्मान की दृष्टि से देखा है। वहीं तुलसीदास जैसे कवियों ने नारी को ताड़ना का अधिकार मानकर उसे पशु के रूप में स्वीकार किया है। शायद ही किसी कवि ने नारी के प्रति इतने सम्मानजनक शब्दों का प्रयोग किया हो। सूफियों के अनुसार नारी प्रेम और पूजा की वस्तु है। प्रेम और पूजा की प्राप्ति योग, त्याग, तप और त्याग से ही होती है। उनका प्रेम लौकिक और अलौकिक दोनों है। सूरदास जी ने अपने काव्य में विभिन्न रूपों, उनकी मान्यताओं और मूल्यों को सरल और सटीक तरीके से चित्रित किया है। सूर ने नारी हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। सूरसागर के प्रथम खण्ड में कृष्ण की कथा सुनाने से पहले कवि स्त्री को नाग से भी अधिक भयानक मानता है और लिखता है कि श्साँप का विष काटने पर ही व्याप्त होता है, परन्तु स्त्री मनुष्य के मन को अपने साथ मूर्छित कर देती है।

ऐसे समय में जब नारी नर्क के द्वार, सर्प, अध्यात्म में बाधक, पशु-समान जैसी उपमाओं से अलंकृत थी, उस समय यह बहुत आश्चर्य की बात थी कि कृष्ण की एक भक्त मीराबाई पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ गई और अपनी निजता के अनुसार रही। मीरा में एक आत्मा थी, स्त्रीत्व की भावना थी, जो पूर्णता के लिए तरसती थी। ऐसे काव्य में प्रेम-विभाजन होता है, विलासिता के प्रति समर्पित स्त्री का चित्र दिलचस्प लगता है, लेकिन यह कभी भी स्त्री के स्वतंत्र और समर्थ अस्तित्व का आभास नहीं देता और न ही उससे उसका समग्र व्यक्तित्व उभरता है।

भक्तिकाल में कवियों ने नारी के दृष्टिकोण से उन्हें नाग और नर्क का द्वार बताया है, वहीं दूसरी ओर उनकी आत्मा को नारी के रूप में अंकित किया है। दूसरी ओर स्त्री को मुक्ति के मार्ग में बाधक मानकर उसकी उपेक्षा की जाती है और साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आम स्त्री के प्रति उनका रवैया उदार नहीं है।

यौवन के आकर्षण की आंधी में कर्मकांड कवियों ने नारी के रूप का ही वर्णन किया है। कहीं-कहीं तो यह स्वाभाविकता की सीमा को लांघता हुआ नजर आता है। कर्मकाण्डों में कवि की समस्त भावनाओं का केन्द्र नारी ही है। कामिनी का उनका रूप प्रिय था। संस्कार कवियों ने यौवन के आकर्षण की आंधी में नारी के रूप का वर्णन किया है। कभी-कभी तो स्वाभाविकता की सीमा को पार करने जैसा लगता है।

रीतिकाल के कवियों की निगाह स्त्री के नाखूनों और उसके मांसल शरीर पर ही टिकी थी। इन कवियों की दृष्टि में यशोदा के मातृत्व की गरिमा का कहीं कोई स्थान नहीं था। रीतिकाल में नीतिशास्त्र में भी स्थिर प्रतिमा को समुद्र के बीच में बाधक माना गया है। संत कवियों की भाँति नीतिव्य के कवियों में स्त्रियों के सम्पर्क का परित्याग करने की बात कही गई है। इन कवियों के लिए महिलाएं पुरुषों की तरह स्वतंत्र नहीं थीं, बल्कि मनोरंजन की सामग्री थीं। रीतिकाल के कवियों ने स्त्री को प्रेमी ही बताया है। स्त्रीत्व की गरिमा का दर्शन कहीं देखने को नहीं मिलता। इसी कारण रीतिकाल के कवियों की कविताएँ श्रृंगार रस पर आधारित थीं। सेनापति, बिहारी, मतिराम आदि की निगाहें स्त्री की सुंदरता और उसकी शारीरिक सुंदरता पर ही टिकी थीं। अत: स्पष्ट है कि इन कवियों की दृष्टि सदैव वासना और विलासिता में रही है। कवि मुख्य रूप से अपने संरक्षकों की साधना करते थे। कर्मकांडों में तो कहावतों में भी कहीं नारी को सम्मान नहीं मिला।

आधुनिक काल (1900 से वर्तमान तक) प्रारंभ हो चुका था। देश के हालात बदलने लगे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीय समाज की विचारधारा में कुछ परिवर्तन आया और पश्चिमी साहित्य में वर्णित मानवीय प्रेम ने भी इन कवियों को प्रभावित किया। श्रीमती एनी बेसेंट, जीके देवधर, ईश्वर चंद्र विद्या सागर, चंद्र सेन, महात्मा गांधी आदि समाज सुधारकों ने भारतीय महिलाओं की गिरती स्थिति में सुधार के लिए मजबूत समर्थन दिया। भारतेन्दु जी ने स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए 'बालवबोधिनी' नाम की पत्रिका प्रकाशित की और स्त्री-पुरुष समानता और नारी मुक्ति का नारा दिया। इस युग में कवियों ने इस बात पर बल दिया है कि नारी ही मानव और समाज को सुधार सकती है। इस विषय में रायदेवी प्रसाद पूर्ण की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं - ''नारी सुधार विश्व में प्रसिद्ध है, नारी संवारने से धन शक्ति सिद्ध हुई है''। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक समय में महिलाओं को कम ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें 'जननी जन्मभूमिस् स्वर्गदापि गरियासी' कहा जाने लगा, जिसका अर्थ है माता और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।

इस युग के कवियों में स्त्री-पुरूष के बीच समानता की भावना, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति और मानवीय आदर्शों के रूप में थी। इन कवियों ने राधा-कृष्ण के प्रेम को आदर्श प्रेम बताने के साथ-साथ श्रृंगार, काम की लालसा आदि की निंदा करते हुए उनकी पूजा की है।

दिवेदी युग में कवियों का मानना था कि महिलाओं को सम्मान दिए बिना समाज प्रगति नहीं कर सकता। इस युग में पहली बार हम नारीत्व की उच्च भावना का विकास देख रहे हैं। नारी पक्ष का समर्थन करते हुए दिवेदी जी कहती हैं-

''हम पति को भगवान मानते हैं, हम भी बच्चों की दासी हैं,
सदा सेवा करो, यह मत सोचो कि तुम भूखे-प्यासे हो,
हे भगवान, मैं इस पर भी सादृश्य कैसे प्राप्त करूं?
ढोल जैसे तदन अधिकारी, हम बने हैं''।

छायावादी कविता मूल रूप से एक सुंदर कविता है, फिर भी इन कवियों ने महिलाओं को सम्मान, पत्नी, प्रेमिका के रूप में माना है। प्रसाद की कामायनी में श्रद्धा पत्नी और मां के रूप में, निराला की विधवा पीड़िता की पत्नी में, बेटी का रूप श्सरोज स्मृतिश में या दिव्य शक्तिमयी कल्याणी जैसे छायादार कवियों द्वारा लिखी गई कुछ अन्य कविताएं। उनमें प्रेम की भावना पवित्रता, ईमानदारी, गहराई है।

जब अमृता शेरगिल जैसे चित्रकार ने जर्मनी से लौटने पर अपने चित्रों से एक भारतीय महिला को उकेरा, तो कविता के क्षेत्र में एक महिला कैसे पीछे रह सकती है? साहित्य के क्षेत्र में प्रताप कुथरी बाई, सरस्वती देवी, निधि रानी, ज्वाला देवी, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि कवियित्रीयों का उदय हुआ। उन्होंने प्रेम-भावना, प्रेम-भावना और नारी बलिदान और राष्ट्रवाद के गीत गाए हैं।

इसलिए आधुनिक काल के कवियों ने अपनी कृतियों में नारी के महत्व को स्थापित किया है। आज की नारी में स्वाभिमान और आत्म समर्पण की भावना प्रमुख है। उसे आज अपने अधिकारों की चिंता है क्योंकि वह शिक्षित है। नारी, अनादि काल से मानव हृदय की भावुक प्रवृत्तियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रही है।

निष्कर्ष

हिंदी में स्त्री विमर्श केवल पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है। इसके और भी आयाम हैं जिनको हमारे आलोचकों द्वारा भी तलाशने की जरूरत है। इन्हें केवल कुछ नामों के आधार पर एक निश्चित दायरे में नहीं बांधा जा सकता। कला साहित्य के प्रत्येक वैचारिक संघर्ष के पीछे हमारे समय और समाज के परिवर्तनों को ध्यान में रखना आवश्यक है। यहां तक कि महिलाओं की स्थिति को निर्धारित करने वाली संस्थाओं में परिवर्तन को भी लक्षित करने की आवश्यकता है।

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नारी अनादि काल से पीड़ित एवं शोषण का शिकार रही है। कभी घर की इज्जत बताकर तो कभी देवी कहकर चारदीवारी में कैद कर लिया। नारी प्रवचन इन पारंपरिक पितृसत्तात्मक बेड़ियों को तोड़ने की लड़ाई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. समकालीन महिला लेखन - डा. ओमप्रकाश शर्मा; पृ. २१, पूजा प्रकाशन, नई दिल्ली-संस्करण
2. हिंदी साहित्य का इतिहास - डा. रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ८२, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली- संस्करण; १९९६
3. समकालीन हिंदी के पत्र साहित्य में नारी विषयक चिंतन- मध्य युगीन साहित्य में नारी भावना (लेख), उषा पाण्डेय, पृ. ६८, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण; १९९३
4. हिंदी महाकाव्यों में नारी चित्रण ख़डा. श्याम सुन्दर व्यास, पृ. १७८ सुन्दरदास-सुन्दर ग्रंथावली, पृ. ४३४, राधा पब्लिकेशन-नई दिल्ली, संस्करण; १९७७
5. समकालीन हिंदी पत्रकरिता में हिंदी संदर्भ - डा. रमेश कुमार त्रिपाठी, नमन प्रकाशन- नई दिल्ली-११०००२, प्रथम संस्करण; २००७
6. सेवा समर्पण, नारी विशेषांक, प्रताप लहरी-प्रतापनारायण मिश्र, पृ. १६०, सेवा कुञ्ज-नई दिल्ली, संस्करण, अप्रैल २००४
7. रसज्ञ रंजन- महावीर प्रसाद दिवेदी, पृ. ६०, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, संस्करण; १९२०
8. हिंदी महाकाव्यों में नारी चित्रण - डा. श्याम सुन्दर व्यास, स्वर्ण धूलि-सुमित्रा नंदन पंत, पृ.33, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण; १९७७

माध्यमिक स्तर के दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के लिये जीवन कौशल शिक्षा प्रशिक्षण की आवश्यकता एवं महत्वः एक अध्ययन

बबिता सक्सेना

शोधार्थिनी, विशेष शिक्षा संकाय, डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ0प्र0

डा० मृत्युंजय मिश्रा

एसोसिएट प्रोफेसर, विशेष शिक्षा संकाय, डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ0प्र0

प्रस्तावनाः

किसी भी राष्ट्र की उन्नति, उसका सामाजिक आर्थिक विकास, उसकी सीमाओं की सुरक्षा एवं अन्य समस्त प्रकार की प्रगति, उस देश में निवास करने वाले नागरिकों (मानव संसाधन) पर निर्भर करता है। मानव संसाधन में सभी प्रकार के व्यक्ति जैसेः - महिला-पुरूष, ट्रांस जेन्डर, युवा-वृद्ध, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, सभी धर्म एवं विचारधारा को मानने वाले लोग, दृष्टिबाधित एवं अन्य निःशक्त जन आदि सम्मिलित रहते हैं। किसी देश में जिस स्तर का मानव संसाधन होगा, उसी स्तर का वह देश होगा। क्योंकि किसी देश में रहने वाले लोगों अथवा उस देश के मानव संसाधन का स्तर, उसी तरह का होता है, जिस तरह कि उस देश में शिक्षा पद्धति एवं शिक्षा व्यवस्था प्रचलन में होती है।

वर्तमान भारतीय समाज प्राचीन भारतीय संस्कृति, वैश्वीकरण के पश्चात वैश्विक एवं पाश्चात्य संस्कृति के ऐंसे संक्रमण काल से गुजर रहा है, जिसमें दृष्टिबाधित किशोर क्या करें? क्या अपनायें ? क्या छोड़े ? किस मार्ग पर चले? समझ नही पा रहा है। उलझनों और तनावों से ग्रस्त है। वही दूसरी ओर पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों में बदलाव देखें जा रहे है। वह इन परिवर्तनों से भी कुप्रभावित हो रहा है। जबकि किशोरावस्था एक ऐसा काल है जब बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक और सभी क्षमतायें बहुत अधिक होती हैं, परन्तु दुर्भाग्य से अधिकांश किशोर अपनी क्षमताओं का उपयोग करने में असमर्थ है जबकि यही किशोर आगे चलकर युवा नागरिक बनते है। तब भी क्या हो सकता है जब जनसंख्या के ऑकड़ों के अनुसार भारत युवाओं का देश हो। इस परिस्थिति में शैक्षिक उत्कृष्टता और निष्पादन के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक (साइको सोशल) सक्षमता की जरूरत बढ गई है, ताकि दृष्टिबाधित किशोर/भावी युवा नागरिक अपनी क्षमताओं का पूरा-पूरा लाभ उठाने और जीवन में आने वाली चुनौतियों का प्रभावी तरीके से सामना करने में सक्षम हो सके और देश के भविष्य के लिये एक सशक्त उम्मीद बन सके।

शिक्षाः-शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वागींण विकास का आधार है। देश की उन्नति और विकास की संवाहक है तथा प्रत्येक महत्वाकांक्षी समाज की सर्वोच्च प्राथमिकता है। मानवता के सर्वोत्तम आदर्शो को पाने का मार्ग है। "शिक्षा का उद्देश्य न केवल विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक उत्थान एवं संर्वागीणं विकास को सुनिश्चित करना है बल्कि उनमें उन क्षमताओं को भी बढाना है जिससे वे हर समस्या को हल करने की और हर चुनौती के साथ सामना करने के योग्य हो सके।"

जीवन कौशल शिक्षाः- मनुष्य होना अपने आप में ही जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता को जन्म देता है। अन्य जीव अपनी नैसर्गिक क्षमताओं को स्वतः ही पा लेते है परन्तु मानव को इसे आवश्यक शिक्षा, प्रशिक्षण, संस्कार, एवं प्रयास से अर्जित करना पड़ता है। यह सही है कि जन्म के साथ ही अधिकतर बच्चे प्रतिभावान होतें हैं परन्तु क्षमतायें होना यह सुनिश्चित नही करता कि सभी मानव इन विशिष्ट गुणों/कौशलों से परिपूर्ण होंगें। सभी मनुष्यों को, जीवन को सफलता पूर्वक जीने के लिये, समाज में पूर्ण रूप से सामाजिक होकर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र का श्रेष्ठ नागरिक बनने के लिए, आदर्श मानव बनने के लिये, इन क्षमताओं का प्रयोग करना सीखना पड़ता है।

वास्तव में मानव शिशु इतने अपरिपक्व होते है कि यदि उन्हें खुद के भरोसे छोड़ दिया जाये और दूसरों का मार्गदर्शन व सहायता न मिले तो वो उन मूलभूत क्षमताओं को भी हासिल नही कर पायेगें, जो उनके भौतिक आस्तित्व के लिये आवश्यक है। इसलिए हमें जरूरत होती है- "जीवन कौशल प्रशिक्षण" की।

जीवन कौशल सम्प्रत्ययः- जीवन कौशल अनुकूल तथा सकारात्मक व्यवहार की वे योग्यतायें है जो व्यक्तियों को दैनिक जीवन की मॉगों और चुनौतियों से प्रभावी तरीके से निपटने के लिए सक्षम बनाती है। दबाव का सामना करने की हमारी योग्यता इस बात पर निर्भर करती है कि हम दैनिक जीवन की मॉगों के प्रति संतुलन करने तथा उनके सम्बंध में व्यवहार करने के लिये तथा अपने जीवन में साम्यावस्था बनाये रखने के लिये कितने तैयार है? यह जीवन कौशल सीखें एवं आत्मसात किये जा सकते है, जिनमें आवष्यकता अनुसार व्यवहार कुषलता भी प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उनमें सुधार भी किया जा सकता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1999 में जीवन कौशल को परिभाषित करते हुये कहा है:- "यह जीने की कला और ऐंसी योग्यता है जिसके कारण अपने परिवेश के अनुकूल खुद को ढाला जा सके तथा अनुकूल व्यवहार किया जा सके जिससे कि व्यक्ति अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन की अपेक्षाओं और चुनौतियो का समाधान प्रभावी रूप से करे।"

जीवन कौशल का दृष्टिकोण न केवल ज्ञान बॉटने पर लक्षित है, अपितु इसका लक्ष्य व्यवहार परिमार्जन तथा अर्न्तव्यैक्तिक कौशल को विकसित करना भी है। जिससे किशोरों एवं युवाओं में बेहतर स्वस्थ्य विकल्प का चयन करने, नकारात्मक दबावों का विरोध करने तथा जोखिमपूर्ण व्यवहार से बचने के उत्तरदायित्व की क्षमता को बढाया जा सके।

"जीवन कौशल शिक्षा" किशोरों एवं युवाओं का अधिकार है। क्योंकि यह उन्हें स्वयं को, शोषण तथा जीवन में नकारात्मकता से बचाती है। जैसे-कुंठा, दुश्चिंतन, गम्भीर रोगों (अवसाद, तनाव, उच्च या निम्न रक्त चाप, यौन संक्रमण, एवं एड्स आदि), आपराधिक प्रवृत्ति के कुकृत्यों (चोरी, लूट, धोखाधड़ी, गबन, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, बलात्कार, प्रेम के नाम पर अप्रेम-मोह-पागलपन-एकतरफा प्रेम एवं जबरदस्ती, पढाई छोड़ना, घर से भागना, आत्महत्या करना आदि)

"जीवन कौशल शिक्षा" एवं "शिक्षा"- जीवन कौशल शिक्षा, शिक्षा से अलग नही बल्कि शिक्षा की व्यापकता में अर्न्तनिहित है। शिक्षा के बारे में एक बात कही जा सकती है कि यह समय के साथ बदलने, सुधरने तथा नयी जानकारी, शोध, निष्कर्ष आदि को अपने में आत्मसात् करते हुये और अधिक समृद्ध होने वाली सतत् प्रक्रिया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा परिभाषित "जीवन कौशल"

यूनीसेफ, संयुक्त राष्ट्र संघ के मार्गदर्शन पर शिक्षा के क्षेत्र में विश्व स्वास्थ्य संगठन(डब्लू0एच0ओ0-1993) द्वारा परिभाषित किये गये, दस जीवन कौशलों को अपनाया गया है, भारत में सी0बी0एस0सी0 ने भी अपनाया और माना कि इनको किशोरों में विकसित किया जाना आवष्यक है, जो अग्रलिखित है-

1. **स्वः की पहचान (Self Awareness)** - अपनी क्षमता, मर्यादा, रूचि-अभिरूचि, आकांक्षा पहचानने का कौशल।
2. **समानुभूति (Empathy)** - दूसरे की भूमिका में जाकर, विचार करने का कौशल।
3. **समस्या का समाधान (Problem Solving)** - उपलब्ध विकल्पों में से उचित और संभाव्य विकल्प चुनकर कार्यवाही करने का कौशल।
4. **निर्णय क्षमता (Decision Making)** - समस्या हल करने की प्रक्रिया में उचित और संभाव्य विकल्प चुनने का कौशल।
5. **प्रभावशाली विचार विमर्श (Effective Communication)** -अपने विचारों को शाब्दिक एवं अशाब्दिक माध्यमों द्वारा प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करने का कौशल।

6. **गहन और विश्लेषणात्मक विचार (Critical Thinking)** - उपलब्ध जानकारी का वस्तुनिष्ठता से विश्लेषण और परीक्षण करने का कौशल।
7. **रचनात्मक विचार (Creative Thinking)**- पारम्परिक और पुनरावृत्ति की उपलब्ध पद्धति की अपेक्षा भिन्न और अभिनव पद्धति से किसी समस्या अथवा परिस्थिति के विषय मे विचार करने का कौशल।
8. **पारस्परिक सम्बन्ध (Interpersonal Relation)**- दैनिक जीवन में निरन्तर सम्पक्र में रहने वालों के साथ जो सम्बन्ध है उसे पहचान कर विशुद्ध और स्नेहपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का कौशल।
9. **भावनाओं का समायोजन (Coping with Emotions)** - अपनी तथा दूसरे की भावनाओं का तथा उनके प्रभावों को पहचान कर उसपर नियत्रंण रखने का कौशल।
10. **तनाव का समायोजन (Coping with Stress)** - तनाव के कारणों को खोजकर और उनके शारीरिक और मानसिक प्रभावों को ध्यान में रखकर उनका व्यवस्थापन करने का कौशल।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन:

नाकुला और निकिटोपॉलस (2001) ने प्रारम्भिक अवस्था के किशोर विद्यार्थियों के अर्न्तव्यैक्तिक विकास पर, जीवन कौशल का प्रभाव जानने के लिये अध्ययन 120 विद्यार्थियों के प्रतिदर्ष को चुनकर दो समूहों पर प्रयोगात्मक प्री टेस्ट एवं पोस्ट टेस्ट विधि से अध्ययन किया। ऑकड़ों के विश्लेषण से यह पाया कि जीवन कौशल प्रशिक्षण से क्रियाशीलता एवं सक्रियता में सुधार हुआ।

शर्मा (2003) ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों पर जीवन कौशल विकास और उसके स्तर पर अध्ययन किया। पाया कि जीवन कौशल अत्यधिक सहायक होते है तथा मातृत्व शिक्षा उच्च जीवन कौशल स्तर से सार्थक रूप से सम्बन्धित है।

अलबर्टी एट अल के अनुसार (2004) जीवन कौशल प्रशिक्षण उन महत्वपूर्ण सोच क्षमताओं को बढाता है जो भविष्य में जीवन को सक्रिय रूप से जीने में, नौकरी में जिम्मेदार होने में, और भविष्य की योजनाओं में भी प्रभाव डालते है।

स्मिथ और एट अल (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि जीवन कौशल प्रशिक्षण के उपरान्त पारस्परिक संबधों में महत्वपूर्ण सुधार और आक्रमकता में कमी हुयी और व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं में भी सुधार हुआ।

टटल एट अल (2006) ने अपने अध्यन के परिणाम में पाया विद्यार्थियों आसाधारण रूप से सकारात्मकता एवं लचीलेपन में संवर्धन हुआ उन्होने छात्रों के पाठ्यक्रम में जीवन कौशल शिक्षा प्रशिक्षण को जोड़नें की वकालत की।

रहमती (2010) ने सामाजिक समायोजन पर जीवन कौशल प्रशिक्षण की प्रभाविकता जानने के लिये अध्ययन किया। 20 प्रतिभागियों को यादृच्छिक विधि द्वारा नियंत्रित समूह एवं प्रायोगिक समूह में उनको विभाजित किया। जो आयु और समायोजन की स्थिति में बराबर के थे। सामाजिक समायोजन को Tahmasian peer rejection test और Mattson सामाजिक कौशल परीक्षण द्वारा निर्धारित किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला कि जीवन कौशल प्रशिक्षण उनके सामाजिक समायोजन में सहायक होते है।

अकबर (2011) ने हाईस्कूल के बच्चों का, जीवन सन्तुष्टि के प्रति जीवन कौशल प्रशिक्षण का प्रभाव जानने के लिये अध्ययन किया। प्रतिदर्ष के रूप में 24 विद्यार्थियों को प्रायोगात्मक समूह और नियंत्रित समूहों में विभाजित कर, प्रायोगिक प्री टेस्ट-पोस्ट टेस्ट विधि का प्रयोग किया, और अध्ययन के लिये जीवन सन्तुष्टि मापक उपकरण का प्रयोग किया। निष्कर्ष रूप में, 95: हाईस्कूल के बच्चों की जीवन सन्तुष्टि और विष्वास को, जीवन कौशल प्रशिक्षण बढाता है।

वृंदा एवं राव (2011) ने अपने अध्ययन में साबित किया कि जीवन कौशल शिक्षा प्रशिक्षण के द्वारा विद्यार्थियों में मनोदैहिक दक्षताओं को बढाया जा सकता है।

रवीन्द्र (2012) ने किशोरों के मध्य जीवन कौशल का प्रभाव जानने के लिये अध्ययन किया। अध्ययन में 120 किशोर प्रतिदर्श के रूप में लिये गये तथा प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग किया गया। जीवन कौशल प्रशिक्षण पैकेज उपकरण का प्रयोग किया गया। संग्रहित ऑकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि जीवन कौशल शिक्षा से नशीली दवाइयों के सेवन की लत, यौन अपराधों, बिना विवाह गर्भधारण एवं आत्महत्या जैसे व्यवहारों पर नियंत्रण होता है।

साओजी और गंजी (2013) के इस अध्ययन का उद्देश्य, विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य सुधार/विकास पर जीवन कौशल कार्यक्रम प्रशिक्षण की प्रभाविकता की खोज करना था। जिसमें विश्वविद्यालय के 60 पूर्व स्नातक छात्रों को प्रतिदर्श के रूप में लिया। बिना नियंत्रित समूह के प्री टेस्ट, पोस्ट टेस्ट डिजाइन का प्रयोग किया। प्रतिभागियों ने सामान्य स्वास्थ्य सम्बन्धित प्रश्नावली का उत्तर दिया। जीवन कौशल प्रशिक्षण के पहले और बाद में टी-टेस्ट सांख्यिकी के द्वारा ऑकड़ों का विश्लेषण किया और परिणाम सामने आया कि विद्यार्थियों पर जीवन कौशल प्रशिक्षण का सार्थक प्रभाव होता है साथ ही यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि इस प्रशिक्षण से लड़कों की अपेक्षाकृत लड़कियॉं, अधिक लाभान्वित होती हैं।

पुष्पकुमरा, जे (2013) ने अपने अध्ययन में दिखाया कि जीवन कौशल प्रशिक्षण की एक विस्तृत श्रंखला मादक द्रव्यों के सेवन, किशोरियों में गर्भधारण, हिंसा बदमाशी को रोकने में और किशोरों में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को बढावा देने में प्रभावी था।

रूडबरी, जेड, सहदी पुर ई, और **गल्ले एस** (2013) ने अपने शोध निष्कर्ष में पाया कि जीवन कौशल प्रशिक्षण का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और सार्वजनिक स्वास्थ्य, सामाजिक विकास, भावनात्मक एवं सामाजिक समायोजन में सुधार करता है।

पुजार और हुनसाल (2014) ने कर्नाटक की किशोरियों के मध्य जीवन कौशल विकास पर हस्तक्षेप का प्रभाव जानने के लिये अध्ययन किया और सार्थक वृद्धि पायी। उन्होने यह भी देखा कि जीवन कौशल शिक्षा सहायक होती है।

अध्ययन की आवश्यकता:

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किशोरावस्था की आयु 10-19 वर्ष को माना गया है, परन्तु सामान्यत: 13-19 आयुवर्ग के बालकों को किशोर माना जाता है। यही आयु वर्ग माध्यमिक स्तर की शिक्षा का है। यह अवस्था जहॉं एक ओर वयस्क होने के लिये शारीरिक परिवर्तन की होती है, वही दूसरी ओर मानसिक रूप से तूफान एवं तनाव भरी होती है। इस अवस्था मे किशोरवय बालक/बालिकायें, सब जानने एवं समझने के क्रम में, प्रयोग एवं अनुभव करना चाहते है, कुछ अभिनव/नवीन/नवाचार करना चाहते है। यह समय अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा एवं रोमांच की भूख को शान्त करने की, बलवती इच्छा का समय है। ऐसे में ज्यादातर किशोर जोखिम के खतरे लेने का, दुस्साहस भी करना चाहते है और अक्सर कर भी जाते है जिसका परिणाम बहुत दु:खदायी भी हो सकता है। इस अवस्था में निरन्तर प्रेमपूर्ण देखभाल एवं मित्रतापूर्ण सहायता की आवश्यकता होती है। और "इस आवश्यकता की पूर्ति केवल ऐसी शिक्षा देने से हो सकती है जो सदैव उसके साथ रहे- जीवन जीने की कला और कुशलता बनकर।" प्रत्येक बालक विशेष प्रतिभायें एवं सम्भावनायें लेकर जन्मता है, चाहे वह सामान्य बालक/बालिका हो या दृष्टिबाधित बालक/बालिका। शिक्षा का कार्य विद्यार्थी को संतुलित एवं सर्वांगींण विकास की ओर ले जाने के साथ-साथ उनमें कौशलों का विकास करने का भी है। जिससे उसमें परिवार, समाज एवं राष्ट्र की अपेक्षा के अनुरूप आदर्श नागरिक बनने के क्रम में, उसके जीवन की सार्थकता एवं सफलता के लिये अनिवार्य एवं आवश्यक कौशलों का विकास भी हो। इसके लिये हम अपने किशोरों को जीवन सागर के तूफान में अनियत्रित, ऐसे ही, बिना प्रेमपूर्ण देखभाल एवं मित्रता पूर्ण सहायता के, स्वतंत्र एवं बेसहारा नही छोड़ सकते। चाहे वह सामान्य विद्यार्थी हो अथवा दृष्टिबाधित विद्यार्थी। हमें उन्हें अनिवार्य रूप से जीवन कौशल विकास प्रशिक्षण देने की आवश्यकता होती है, व्यवस्थित जीवन कौशल शिक्षा प्रशिक्षण की आवश्यकता सामान्य विद्यार्थ्रियों के साथ-साथ, दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के लिये और अधिक आवश्यक है।

जीवन कौशल शिक्षा प्रशिक्षण का महत्व:- जीवन कौशल योग्यताओं एवं क्षमताओं के महत्व का आंकलन इस तरह से भी किया जा सकता है कि हम सबका जीवन, जीवन की लगभग 80 प्रतिशत बारम्बार घटित होने वाली एक समान घटनाओं से भरा हुआ है बावजूद इसके समाज में लगभग एक ही परिस्थिति एवं पर्यावरण में पले-बढे एवं शिक्षित हुये बहुत से व्यक्ति सफल भी हो जातें है और बड़ी संख्या में असफल भी रहते है। सुव्यवस्थित, नियंत्रित, और योजनाबद्ध तरीके से जीवन कौशल शिक्षा प्रशिक्षण के अभाव में, यह पूरी तरह अनिश्चित है कि किसमें जीवन कौशल का विकास होगा? या उनमें कितने कौशलों का कितनी मात्रा में होगा? और कब तक होगा? जीवन कौशल शिक्षा मात्र विषय विशेष के तथ्यों को पाठ्यक्रम के अनुसार अवगत करा कर, वर्ष बीतने पर लिखित-मौखिक परीक्षा कराकर प्रमाणपत्र वितरण ही नही है बल्कि यह बालक के मन मष्तिष्क एवं व्यवहार प्रक्रिया में निश्चित कुशलताओं का बीजारोपण के बाद उन्हें नियंत्रित प्रशिक्षण के वातावरण में पुष्पित पल्लवित कर, उनका विकास सुनिश्चित करना है।

सारांश एवं निष्कर्ष-

प्रत्येक शिक्षक की सबसे बड़ी इच्छा होती है कि जब भी उसके शिष्य को जीवन समर रूपी परीक्षा में उतारा जाये तो वह वहा अच्छे अंको से उत्तीर्ण हो। इसी तरह प्रत्येक माता-पिता चाहते है कि उनके पुत्र/पुत्री को जीवन रूपी महासागर में जाने के पहले इस प्रकार पारंगत कर दिया जाये कि वह न केवल वहॉ डूबने से बचें बल्कि भलीभांति तैरकर पार कर जाये।

जीवन सफल हो, सुख खुशी एवं आनन्द से परिपूर्ण हो, जीवन का पल-पल उत्सव एवं आह्लाद से भरा हो जिसपर गर्व किया जा सके या जो गौरवपूर्ण हो, सृजनशील एवं उपयोगी हो सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होता हो, बालक का व्यक्तित्व मानवता की परम सम्भावना को पाने की ओर अग्रसर होता हो, गुणों मूल्यों एवं प्रतिभा से समृद्ध हो, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति, सक्षमता एवं सामर्थ्य के नये कीर्तिमान स्थापित करता हो। वह न केवल शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ हो, बल्कि वह रोगों एवं मनोरोगों से भी पूर्णत: रहित हो।

इन सबके अतिरिक्त जीवन आगे बढ़ने पर पछतावा रहित हो। यह टीस कभी नह हो कि काष एक बार फिर से जीवन जीने को मिले और मैं अपनी की गयी त्रुटियों का सुधार कर एक बार त्रुटिरहित जीवन जी सकूॅ। लेकिन यह एक कड़वी वास्तविकता है कि बीता समय कभी वापस नही आ सकता, किसी को भी दुबारा जीवन जीने का मौका नही मिलता। जीवन का एक-एक पल हमारे लिये एक अन्तिम अवसर होता है उसे एक बार ही त्रुटिपूर्ण या त्रुटिरहित तरीके से जिया जा सकता है। जीवन को त्रुटिरहित/श्रेष्ठता से जिया जाये, इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी किशोरावस्था तक में ही, उन कुशलताओ में प्रशिक्षित कर दिया जायें जिन्हें अनिवार्य जीवन कौशल कहते है।

REFERENCES:

Nakkula, M. J., & Nikitopoulos, C. E. (2001). Negotiation training and interpersonal Development : Exploratory study of early adolescents in Argentina. *Journal of Adolescence,* 36(1), 1-20.
http://web.mit.edu/curhan/www/docs/PYN_Adolescence.pdf

Sharma, S. (2003). Measuring life skills of adolescents in a secondary school of Kathmandu: An experience. *Kathmandu university Medical Journal*, 1(3), 170-176. http://www.kumj.com.np/issue/3/170-176.pdf

Nair, M. K. C. (2005). *Family Life & Life Skills Education for Adolescents*. Child development Centre,MedicalCollege,Thiruvananthapuram,India. http://www.jiacam.org/0102/Jiacam05_2_3.pdf

Rahmati, B., Adibrad, N., Tahmasian, K., & Salehsedghpour, B. (2010).

The Effectiveness of Life Skill Training on Social Adjustment in Children. *Procedia Social and Behavioural Sciences,* 5(1), 870–874.
https://ac.els-cdn.com/S1877042810015752/1-s2.0-S1877042810015752-main.pdf?_tid=53be00fa-0b3f-11e8-916e-00000aacb35d&acdnat=1517922905_1393d6e26795c6831906c167f4d3c14d

Akbar, M. (2011). Survey the Effects of Life Skills Training on Tabriz High School Student's

Satisfaction of Life. *Procedia - Social and Behavioral Sciences,* 30, 1843-1845.
https://ac.els-cdn.com/S1877042811021811/1-s2.0-S1877042811021811-main.pdf?_tid=1b781afe-0b40-11e8-8ccc-00000aacb35e&acdnat=1517923240_b02550aad8bf6f7342fcb42d4db88a03

Raveendra, H. N. (2012). Life skill approach- an interactive approach. *IOSR journal of Nursing and health science*, 1(1), 29-32.
http://iosrjournals.org/iosr-jnhs/papers/vol1-issue1/F0112932.pdf?id=1642

Savoji, A. P., & Ganji, Kamran., (2013). Increasing mental health of university students through Life Skills Training (LST). *Procedia - Social and Behavioral Sciences,* 84, 1255 – 1259.
https://www.researchgate.net/publication/275542332_Increasing_Mental_Health_of_University_Students_through_Life_Skills_Training_LST

Pujar, L. & Hunshal, S. C. (2014). Impact of intervention on life skill development among adolescent girls. *Karnataka Journal of Agricultural Science*, 27 (1), http://web.inflibnet.ac.in/ojs/index.php/KJAS/article/viewFile/2038/1685

विभिन्न कालों में प्राथमिक शिक्षा की भारतवर्ष में स्थिति का अध्ययन

जयप्रकाश यादव

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० हलधर यादव

शिक्षा संकाय, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

1.1 प्रस्तावना:

शिक्षा अति प्राचीनकाल से मानव के सर्वांगीण विकास का एकमात्र स्रोत रहा है। चूँकि मानव एक सामाजिक प्राणी है और उसे समाज में रहकर ही जीवन व्यतीत करना होता है इसलिए उसे समाज क्रे साथ अनुकूलन स्थापित करने की शिक्षा दी जाती है और शिक्षा के माध्यम से वह स्वयं को ऐसा बना लेता है कि समाज में रहकर सभी प्रकार की परिस्थितियों का सामना कर सके।

प्राचीनकाल से अब तक शिक्षा ने मानव को ज्ञान विज्ञान की अपार सम्पदा दी है जिसके फलस्वरूप भविष्य में भी उससे मानवता का मार्ग निरन्तर प्रशस्त होता रहा है। वास्तव में देखा जाए तो शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक राष्ट्रीय प्रगति, सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनिवार्य है। शिक्षा ही मनुष्य को विवेकशील और ज्ञान सम्पन्न बनाती है तभी तो वह अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट व श्रेष्ठ माना जाता है। शिक्षा ही बालक में निहित समस्त शक्तियों को प्रकाशित करती है। अत: हम कह सकते हैं कि "शिक्षा" किसी भी परिवार, समाज, राज्य व देश की प्रगति की महत्वपूर्णता नींव है।

जिस प्रकार एक ओर शिक्षा बालक का सर्वांगीण विकास करके उसे तेजस्वी, बुद्धिमान, चरित्रवान, विद्वान तथा वीर बनाती है, उसी प्रकार दूसरी ओर शिक्षा समाज की उन्नति के लिए एक आवश्यक तथा शक्तिशाली साधन है शिक्षा के द्वारा समाज भावी पीढ़ी के बालकों को उच्च आदर्शों, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों तथा परम्पराओं आदि सांस्कृतिक सम्पत्ति को इस प्रकार से हस्तान्तरित करता है कि उनके हृदय में देश-प्रेम तथा त्याग की भावना प्रज्जवलित हो सके।

राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान शिक्षा का है उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनैतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर देश की पूरी जनसंख्या से होता है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से सम्बंध होता है।

शिक्षा को प्राचीन काल से ही सामाजिक संरचना सांस्कृतिक विकास, आर्थिक उन्नति राजनैतिक चेतना के लिए सर्वोत्तम साध न माना जाता है।

भारतीय परिस्थितियों में तो प्राथमिक शिक्षा का ओर भी महत्व है, क्योकि अधिकांश भारतीय धर्म के शिकंजें में बुरी तरह जकड़े हुए हैं। विभिन्न तरह के अंधविश्वासो व रूढिघ्वादी विचारधारा में विश्वास करते हैं। शिक्षा द्वारा ही व्यक्तियों की मानसिकता में सुधार लाया जा सकता है। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा द्वारा शक्ति व प्रयासों का सही व उचित दिशा में प्रयोग करके हम देश को सही दिशा में ले जा सकतें है।

ऐसी शोचनीय हालत में खुद सरकारी आंकड़ों के अनुसार यदि 36.77 प्रतिशत बालक स्कूल छोड़कर चले जाते हैं तो आश्चर्य की क्या बात है। बुनियादी सुविधाओं के अभाव के अतिरिक्त कक्षाओं में ज्यादा भीड़-भाड़, शिक्षकों का अपर्याप्त प्रशिक्षण और उनकी अनियमित उपस्थिति, बच्चों के साथ बुरा व्यवहार तथा असंगत व बोझिल पाठ्यक्रम भी अन्य कारण हैं, जो बच्चे को बीच में स्कूल छोड़ देने के लिए बाध्य करने के लिए उत्तरदायी पाए गए।

सबके लिए प्रारम्भिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था, नई तकनीक का प्रयोग और भारतवर्ष में जन्मी विचारधाराओं तथा अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर 'स्कूल शिक्षा' की सारी व्यवस्था का पुनःनिर्माण आवश्यक है। स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर शिक्षा के सार्वजनीकरण को लेकर हम बहुत पीछे रह गए हैं। विकास जिस तेजी से हो रहा है, उसके लिए आवश्यक है कि अब हमारा देश शिक्षा के क्षेत्र में सभी को साथ लेकर ऐसे प्रयास करे जो व्यवहारिक हों और जिनके परिणाम हमें सही समय पर दृष्टिगोचर हो सकें। शिक्षा के लिए एक अलग दृष्टि की आवश्यकता है, जो भारतीय गरिमा, गौरव, विविधता और एकता का एक साथ सम्मान कर सकें और ऐसे नागरिक तैयार करने का प्रयत्न कर सकें जिनमें देशभक्ति की भावनाएँ विकसित हों, जिससे देश और समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

1.2 प्राथमिक शिक्षा का अर्थ

प्राथमिक शब्द का सामान्य अर्थ है-प्रारम्भिक, मुख्य। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का अर्थ हुआ-प्रारम्भिक शिक्षा, मुख्य शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा इसलिए कि यह बच्चों को प्रारम्भ में दी जाती है और मुख्य शिक्षा इसलिए कि यह अग्रिम शिक्षा की नींव होती है। विश्व के विभिन्न देशों में आवश्यकता और सुविधा के अनुसार इसकी अवधि अलग-अलग है। हमारे देश में वर्तमान में 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों की कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत आती है। कक्षा 1 से 5 तक प्राथमिक, तथा कक्षा 6 से 8 तक को उच्च प्राथमिक शिक्षा कहा गया है और आज पूरे देश के लिए इस प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य और एक आधारभूत पाठ्यचर्या निश्चित है।

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानव की सभ्यता का। वैदिक काल को इतिहास का प्राचीनतम काल माना जाता है, इस युग में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। लगभग 5 वर्ष की आयु पर किसी शुभ दिन बच्चे का 'विद्यारम्भ संस्कार' किया जाता था। यह संस्कार परिवार के कुल पुरोहित द्वारा कराया जाता था। इसके बाद बच्चे की शिक्षा नियमित रूप से प्रारम्भ होती थी।

इस काल में उच्च शिक्षा का प्रारम्भ 8 से 12 वर्ष की आयु पर गुरूकुल में प्रवेश करने पर होता था। गुरूकुल मे प्रवेश के समय 'उपनयन संस्कार' होता था। इस संस्कार के बाद ही उच्च शिक्षा प्रारम्भ होती थी। अतः उस समय यह शिक्षा केवल शिक्षित परिवारों के बच्चों तक सीमित थी और इसका कोई सर्वमान्य स्वरूप निश्चित नहीं था। परिणाम यह हुआ कि इस काल में प्राथमिक शिक्षा का समुचित विकास नहीं हो सका।

बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा

बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं ने अपने मठों एवं विहारों में प्राथमिक एवं उच्च, दोनों स्तरों की शिक्षा व्यवस्था शुरू की। यह शिक्षा बौद्ध संघों के नियन्त्रण में थी, इसलिए दोनों स्तरों की शिक्षा के स्वरूप निश्चित हुए। बौद्धों ने अपने मठों एवं विहारों में सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्रवेश देना शुरू किया, परिणामस्वरूप सभी जाति और वर्गों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के अवसर सुलभ हुए, परन्तु ये बौद्ध, मठ तथा विहार देश के सभी स्थानों पर स्थित नहीं थे, इसलिए इस काल में भी प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ नहीं बनाया जा सका। हाँ, एक ओर बौद्ध मठों एवं विहारो में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होने और दूसरी ओर बौद्धों की टक्कर में ब्राह्मणों द्वारा पाठशालाओं की स्थापना होने से प्राथमिक शिक्षा का विकास अवश्य प्रारम्भ हुआ।

मुस्लिम युग में प्राथमिक शिक्षा

मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दो स्तरों में विभाजित थी-प्राथमिक और उच्च। प्राथमिक स्तर पर सभी विषय अनिवार्य रूप से पढ़ाए जाते थे। इस शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक स्तर पर लिपि ज्ञान, कुरान शरीफ का 30वां भाग, लिखना, पढ़ना, अंकगणित, पत्र लेखन, बातचीत और अर्जीनवीसी पढ़ाई सिखाई जाती थी। बच्चों को प्रारम्भ से ही कुरान शरीफ की कुछ आयतें

रटाई जाती थीं और इस्लाम पैगम्बरों और मुसलमान फकीरों की जीवनियाँ पढ़ाई जाती थी। इनके अतिरिक्त अरबी-फारसी के कवियों की कविताएँ पढ़ाई जाती थी। बच्चों के नैतिक विकास के लिए उन्हें शेरदादी की प्रसिद्ध पुस्तकें गुलिस्तां और बोस्ताँ पढ़ाई जाती थीं। इस काल में प्रारम्भ से ही बच्चों के उच्चारण और लेख पर बहुत ध्यान दिया जाता था और उन्हें शुद्ध उच्चारण और सुलेख का अभ्यास कराया जाता था।

ब्रिटिश काल में प्राथमिक शिक्षा

इस काल में सरकार द्वारा समय - समय पर शिक्षा में सुधार हेतु आयोग तथा समितियों का गठन किया गया। जिन्होनें तत्कालीन प्राथमिक शिक्षा का गहनता से अध्ययन कर उसमें सुधार एवं प्रसार हेतु अनेक सुझाव तथा सिफारिशें प्रस्तुत की। इसके विपरीत अनेक सुधारको ने भी समय- समय पर अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करते हुऐ इसके प्रसार पर बल दिया। अत: इस काल में प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित समय- समय पर दिये गये सुझाव तथा सिफारिशों का विवरण इस प्रकार हैं-

भारतीय शिक्षा आयोग या हंटर कमीशन (1882-1883) व प्राथमिक शिक्षा

भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति मुख्य रूप से वुड डिस्पेच मे घोषित शिक्षा नीति 1854 के क्रियान्वयन तथा परिणामों का अध्ययन करने और भारत में प्राथमिक शिक्षा की तत्कालीन स्थिति का अध्ययन करने और उसमें सुधार एवं विकास के उपाय खोजने के उद्देश्य हेतु की गई थी अत: इस आयोग द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार सबसे अधिक चिन्ता भारत में प्राथमिक शिक्षा के विकास की थी। इस आयोग द्वारा प्राथमिक शिक्षा के विकास हेतु निम्न सुझाव दिए गए:-

1. प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन और वित्त का भार स्थानीय निकायों को सौंपने का सुझाव दिया।
2. आयोग की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा के निम्न उद्देश्य निश्चित किए गए:-
   (क) जन शिक्षा का प्रसार।
   (ख) व्यवहारिक जीवन की शिक्षा।
3. प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ (प्रान्तीय भाषाएँ) होनी चाहिए।
4. प्राथमिक शिक्षा में सुधार हेतु प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया।
5. प्राथमिक शिक्षा में प्रसार के लिए देशी पाठशालाओं को प्रोत्साहन देने पर बल दिया।
6. प्राथमिक शिक्षा जीवन के व्यवहारिक पक्ष से सम्बन्धित होनी चाहिए।

गोखले का बिल और शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (1911-1913) व प्राथमिक शिक्षा

उस समय सरकार द्वारा किये गये अध्ययन मे यह पाया गया कि कुछ प्रशासनिक और आर्थिक कठिनाइयों के कारण अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो पा रही है अत: सर्वप्रथम सन् 1911 में इससे सम्बधित एक प्रस्ताव 'केन्दीय धारा सभा' मे पेश किया गया परन्तु यह पास नही हो सका। फिर 21 फरवरी सन् 1913 को सरकार द्वारा नवीन शिक्षा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसमें शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों को निर्धारित कर उसके विभिन्न पहलुओं में सुधार के लिए अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की गई, जिसे सरकार ने स्वीकृत कर लिया। इस प्रस्ताव में प्राथमिक शिक्षा के लिए निम्न सुझाव दिये गये:-

1. निम्न प्राथमिक स्कूल की संख्या में वृद्धि की जाए।
2. आवश्यतानुसार निम्न प्राथमिक स्कूलों को उच्च प्राथमिक स्कूलों में विकसित किया जाए।
3. जिन क्षेत्रों में स्थानीय निकाय प्राथमिक स्कूलों की व्यवथा न कर पाएँ, वहाँ व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जाए।
4. सभी प्रकार के प्राथमिक स्कूलों के निरीक्षण की वयवस्था की जाए।
5. प्राथमिक शिक्षक कम से कम मिडिल पास हों और एक वर्ष का शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त हो।
6. सामान्यत: कक्षा में 30-40 छात्र हों, 50 से अधिक कभी नहीं।
7. देशी स्कूलों-मकतब और पाठशालाओं को उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाए।
8. प्राथमिक स्कूल स्वच्छ स्थानों पर स्थापित किये जाऐं तथा उनके लिए सस्ते भवनों का निर्माण कराया जाऐ।

हर्टाग समिति (1927-29) व प्राथमिक शिक्षा

हर्टाग समिति के अध्ययन के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकला कि पिछले 50 वर्षों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की गति जनसंख्या वृद्धि की दृष्टि से बहुत धीमी रही थी और साक्षरता प्रतिशत बढ़ने के स्थान पर घटा था। समिति की रिपोर्ट के अनुसार अपव्यय व अवरोधन की समस्या को प्राथमिक शिक्षा की प्रमुख समस्या माना। अत: समिति ने अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या को रोकने के लिए निम्न सुझाव दिए:-

1. प्राथमिक शिक्षा का भार पूर्णतया स्थानीय निकायों पर न छोड़ा जाए।
2. प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने में शीघ्रता न की जाए।
3. प्राथमिक विघ्यालय निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाए।
4. जिन प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति ठीक नहीं है, उन्हें बन्द कर दिया जाए।
5. प्राथमिक शिक्षा की न्यूनतम अवधि 4 वर्ष की जाए।
6. प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी विषयों को स्थान दिया जाए।
7. प्राथमिक विद्यालयों को मनोरंजन, ग्राम सुधार और प्रौढ़ शिक्षा का केन्द्र बनाया जाए।
8. प्राथमिक विद्यालयों में योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जाए।

वर्धा योजना 1937 प्राथमिक शिक्षा

'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन' या 'वर्धा शिक्षा सम्मेलन' के सभापतित्व स्वयं गांधी जी के अध्ययन के अनुसार प्राथमिक शिक्षा अपव्ययपूर्ण और हानिप्रद थी। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा में सुधार के लिए शिक्षा का एक नया स्वरूप अर्थात् बेसिक शिक्षा स्वीकार किया, जिसके अनुसार शिक्षा निम्नलिखित रूप में स्वीकार की गई:-

1. 7 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
2. शिल्प का चुनाव बच्चों की योग्यता और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर किया जाए।
3. बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग हो और उनसे आर्थिक लाभ किया जाए, स्कूलों का व्यय पूरा किया जाए।
4. शिल्पों की शिक्षा इस प्रकार की जाए कि उससे बच्चे जीविकोपार्जन कर सकें।
5. शिल्पों की शिक्षा में आर्थिक महत्व के साथ-साथ उसके सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व को स्थान दिया जाए।

सार्जेन्ट योजना, 1944 व प्राथमिक शिक्षा

सार्जेन्ट महोदय की अध्यक्षता में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा (सरकारी और गैर सरकारी) का सर्वेक्षण किया, और बेसिक शिक्षा को स्वीकार किया, परन्तु कुछ परिवर्तनों के साथ उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्राथमिक शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाने की बात नहीं सोचनी चाहिए, क्योंकि बच्चों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ उपयोगी नहीं होती, उन्हें बेचा नहीं जा सकता। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिए:-

1. 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए 8 वर्षीय अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
2. जूनियर बेसिक शिक्षा का रूप क्रियात्मक होना चाहिए।
3. जूनियर बेसिक विद्यालयों में अध्यापक-छात्र अनुपात 1:30 होना चाहिए।
4. जूनियर बेसिक स्तर पर अंग्रेजी को अनिवार्य न किया जाए।
5. प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय रोकने के लिए उसे अनिवार्य बनाना आवश्यक है।
6. सीनियर बेसिक विद्यालय लड़के-लड़कियों के लिए अलग होने चाहिए।
7. उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं को प्रमाण पत्र दिए जाएँ।

8. सीनियर बेसिक विद्यालयों में सामूहिक क्रियाओं को विशेष महत्व दिया जाए।
9. जूनियर बेसिक विद्यालयों में सह-शिक्षा होगी।
10. जूनियर बेसिक विद्यालयों में जहाँ तक सम्भव हो महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जाए।

स्वतन्त्र भारत से प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति

स्वतन्त्रता के उपरान्त सन् 1950 में जब देश का संविधान लागू हुआ तो दस वर्ष के अन्दर 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा व्यवस्था के प्रयास किए जाने लगे। सन् 1957 में केन्द्र में 'अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद' का गठन किया गया। इस परिषद ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए, परिणामस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों की संख्या तथा उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। इसी बीच सन् 1966 में कोठारी कमीशन की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई। इस कमीशन ने पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यकों और कबीलों के बच्चों की शिक्षा प्राप्ति की ओर ध्यान आकर्षित किया और इसके फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों तथा उनके छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई। इसी बीच 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE, 1986) की घोषणा हुई। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण पर बल दिया।

इस योजना के दौरान प्राथमिक विद्यालयों की दशा सुधारने के लिए 1987-88 में 'ब्लैक बोर्ड योजना' शुरू की गई। इसके साथ 1994 में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े जिलों में 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' शुरू किया गया, जिससे पिछड़े जिलों में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार हो सके। 15 अगस्त, 1995 को 'पौष्टिक आहार सहायता का राष्ट्रीय कार्यक्रम' शुरू किया गया। इसका उद्देश्य बच्चों के नामांकन, उपस्थिति और उन्हें स्कूल में रोके रखना है तथा इसके साथ ही जनवरी, 2001 में 'सर्वशिक्षा अभियान' शुरू किया गया और इसका लक्ष्य सन् 2010 तक सभी बच्चों को 8 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कराना निश्चित किया गया।

वर्तमान में 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) चल रही है। इस योजना में शिक्षा के लिए कुल 2,69,873 करोड़ रूपयों का प्रावधान किया गया है, जिनमें से 1,25,380 करोड़ रूपये प्राथमिक शिक्षा के विस्तार एवं उन्नयन के लिए निर्धारित किए गए हैं। इस योजना के दौरान 2009 में शिक्षा का अधिकार नियम (Right to Education Act, 2009) पास किया गया। इस अधिनियम के अनुसार 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों को कक्षा 1 से 8 तक की नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार है। सरकार ने इसे 1 अप्रैल, 2010 से इसे कानून के रूप में लागू भी कर दिया है। इस योजना के द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति की समय-सीमा प्राय: 3 वर्ष है।

अत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्राथमिक शिक्षा में सुधार एवं प्रसार हेतु सरकार द्वारा किये गये प्रयास निम्न हैं-

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग), 1964-66 व प्राथमिक शिक्षा

इस आयोग का कार्यक्षेत्र पूरे देश की तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कर उसमें सुधार के लिए सुझाव देना था। अत: आयोग ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का गहराई से अध्ययन कर उसके प्रति व्याप्त असन्तोष के कारणों का पता लगाया और इसमें सुधार के लिए प्राथमिक स्तर पर निम्न सुझाव दिए:-

1. सन् 1985-86 तक 6-14 आयु वर्ग के बच्चों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त किया जाए।
2. 11 से 14 वर्ष के उन सभी बचों के लिए जिन्होंने किसी कारण प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नहीं की है, 1 वर्षीय साक्षरता कक्षाएँ चलाई जाएँ।
3. पिछड़ी, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए प्राथमिक विद्यालय खोले जाएँ।
4. मन्दबुद्धि और विकलांग बच्चों के लिए अलग से स्कूल खोले जाएँ।
5. ऐसे बच्चे जो किसी कारण प्राथमिक शिक्षा के बाद पढ़ने की स्थिति में नहीं हैं, उन्हें प्राथमिक स्तर पर ही किसी हस्तकार्य में निपुण किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 व प्राथमिक शिक्षा

सन् 1986 में सरकार द्वारा किए गए सर्वेक्षण में यह पाया गया कि शिक्षा राष्ट्र की मांगों को पूरा करने में असमर्थ है, इसका पुर्ननिरीक्षण होना चाहिए और पुनर्गठन होना चाहिए। अत: केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा के पुनर्गठन के उद्देश्य हेतु नई शिक्षा नीति लागू की, जिसके अनुसार प्राथमिक शिक्षा सर्वसुलभ बनाने के लिए निम्न कार्य किये जायेंगे:-

1. सन् 1995 तक 1 किमी॰ की दूरी पर सभी बच्चों को प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध कराये जायेंगे।
2. सन् 1995 तक 11 से 14 आयु वर्ग के शत प्रतिशत बच्चों को भी उच्च प्राथमिक शिक्षा सुलभ करा दी जाएगी।
3. प्राथमिक विद्यालयों की दशा को सुधारने के उद्देश्य से 'ब्लैक बोर्ड योजना; को लागू किया गया।
4. ऐसे बच्चे जो किसी कारण औपचारिक शिक्षा केन्द्रों पर नहीं जा पाते हैं, उनके लिए निरौपचारिक शिक्षा केन्द्र (Non Formal Centre) खोले जाएँगे।

राममूर्ति समीक्षा समिति, 1990 व प्राथमिक शिक्षा

इस समिति द्वारा किए किए गए अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार यह स्वीकार किया गया कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के कार्य को गम्भीरता से नहीं लिया जा रहा है। सन् 1990-91 तक ब्लैक बोर्ड योजना के अन्तर्गत 50 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों को इसका लाभ पहुँचाना था, परन्तु तब (1990) तक केवल 30 प्रतिशत विद्यालयों को ही इसका लाभ पहुँचा था। अत: इस सन्दर्भ में समिति ने प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित निम्न सुझाव दिये:-

1. प्राथमिक स्तर पर शत प्रतिशत नामांकन, शत प्रतिशत रूकाव और शत् प्रतिशत सफलता के लिए ठोस कदम उठाये जायेंगे।
2. प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए ब्लैक बोर्ड योजना को चालू रखा जाए और उसे गति प्रदान की जाए।
3. प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए ब्लैक बोर्ड योजना के साथ-साथ शिक्षकों, समुदाय और सामाजिक पर्यावरण में भी सुधार किया जाए।

सर्वशिक्षा अभियान (2001) व प्राथमिक शिक्षा

नवीं पंच वर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान प्राथमिक शिक्षा के प्रसार व उन्नयन हेतु सन् 2001 जनवरी में 'सर्व शिक्षा अभियान' शुरू किया गया। जिसके निम्न उद्देश्य थे:-

1. नामांकन बढ़ाना।
2. विद्यालय छोड़ने वाले छात्रों की संख्या घटाना।
3. सामाजिक व लैंगिक अनुपात को कम करना।
4. प्राथमिक शिक्षा का स्तर सुधारना ताकि सभी इससे लाभान्वित हो सके।

वास्तविकताऐं:-

शिक्षा के इस अभियान ने शैक्षिक क्षेत्र में न केवल नामांकन को बढ़ाया अपितु अपव्यय व अवरोधन की समस्या भी दूर करने में सहयोग दिया। वास्तविकता को इस प्रकार समझा जा सकता है -

1 घर से विद्यालय की दूरी 1 कि0मी0 से कम होने के कारण आज 65 प्रतिशत छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

2 वर्ष 2000 में लिंग अनुपात अधिक अर्थात 1000 बालकों पर 900 बालिकाऐं थी परन्तु लैंगिक स्तर में सुधार के फलस्वरूप सन् 2008 में लैंगिक अनुपात 1000 पर 930 देखा गया।

3 निचले वर्गों के लोगों का शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ा है, विद्यालय में छात्रों और छात्राओं की उपस्थिति एवं नामांकन मे तीव्र वृद्धि हुई है।

4 2009 के अन्त तक 2.7 करोड़ बच्चों को विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों मे रखा गया व उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गई तथा 2.6 करोड़ बच्चों का सामान्य विद्यालयों में नामांकन हुआ।

5 प्राथमिक विद्यालयों से उच्च प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश 2002 मे 75 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 83 प्रतिशत तक जा पहुँचा।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने आरटीई अधिनियम के कार्यान्वयन और परिणामस्वरूप सर्वशिक्षा अभियान के सुधार के सम्बन्ध में एक विशेष समिति गठित की थी, विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों के आधार पर के मापदण्डों को आरटीई के मापदण्डों और मानकों के अनुरूप बनाने के लिए संशोधन किया गया। जिससे शिक्षा के सर्वसुलभ लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। इस अधिनियम के प्रावधान इस प्रकार हैं:-

1. यह गैर दाखिल बच्चे की आयु के अनुसार कक्षा में दाखिला देने का प्रावधान करता है।
2. यह नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने, तथा सरकार केन्द्र एवं अन्य जिम्मेदारियों की हिस्सेदारी में उपयुक्त सरकारी, स्थानीय प्राधिकरणों एवं अभिभावकों के कर्त्तव्यों एवं जिम्मेदारियों को विनिर्दिष्ट करता है।
3. यह अन्य बातों के साथ शिक्षक अनुपात छात्र (पीटीआर), भवन एवं अवसंरचना, स्कूल के कार्य घंटों, शिक्षकों के कार्य घंटों से सम्बन्धित मानक एवं मानदंड निहित करता है।

उपलब्धियॉ

अत: इस योजना के तहत चलाए गये कार्यक्रमों की सितम्बर 2010 तक की उपलब्धियाँ निम्न है-

1 3,09,727 नये स्कूल खोलना।
2 2,54,935, नई स्कूल बिल्डिंगों का निर्माण।
3 11,66,868 अतिरिक्त कक्षा-कक्षों का निर्माण।
4 1,90,961 पेयजल सुविधाओं का प्रावधान।
5 3,47,857 शौचालयों का निर्माण।
6 11.13 लाख शिक्षकों की नियुक्ति।
7 14.02 लाख शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण (प्रतिवर्ष)।
8 8.70 करोड़ बच्चों को नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों की आपूर्ति (प्रतिवर्ष)।

वर्तमान पंचवर्षीय योजना (2007-12)

केन्द्रीय सरकार ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए कुल 269873 करोड़ रूपयों का प्रावधान किया गया है, जिनमें से 1,25,380 करोड़ रूपये प्राथमिक शिक्षा, 84943 करोड रूपये उच्च शिक्षा, 53550 करोड रूपये माध्यमिक शिक्षा तथा 6000 करोड रूपये प्रौढ शिक्षा के लिये प्रावधान है।अत: सबसे ज्यादा प्रावधान इस योजना में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार एवं उन्नयन के लिए निर्धारित किए गए हैं। सरकारी सूचनाओं के अनुसार इस योजना का मुख्य लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना है।

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

गत वित्तीय वर्ष में केन्द्र सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के लिए राज्य को 857 करोड़ रूपये मुहैया करवाए थे, इस अभियान में स्कूलों में नामांकन बढ़ाना, स्कूलों में मूलभूत सुविधाएँ मुहैया करवाने जैसे मदों के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था है। परन्तु उत्तर प्रदेश में अभी भी 17 लाख बच्चे ऐसे हैं जो किसी भी स्कूल में नामांकित नहीं हैं। इनमें से अधिकांश लड़कियाँ हैं।

राज्य में साक्षरता का प्रतिशत मात्र 57 है। महिला साक्षरता तो और भी कम है, केवल 43 फीसदी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (2009-10) की रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य में 70 प्रतिशत प्राइमरी स्कूलों में बिजली नहीं है। 90 प्रतिशत स्कूलों में कम्प्यूटर नहीं है। पर्याप्त शिक्षक नहीं हैं और 50 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में अभी शौचाल्य की व्यवस्था नहीं है। ऐसे में बच्चों की संख्या घटना स्वाभाविक है।

भारत में प्राइमरी शिक्षा की स्थिति पर नेशनल यूनीवर्सिटी ऑफ एजूकेशन प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन (न्यूपा) रिपोर्ट तैयार कर रहा है। न्यूपा ने राज्यवार प्राइमरी एवं मिडिल स्कूलों के सम्बन्ध में मिले विभिन्न आँकड़ों की प्राथमिक रिपोर्ट जारी की है, जिसके अनुसार तमिलनाडू, केरल, चंडीगढ़ तथा गुजरात जैसे राज्यों की तुलना में उत्तर भारत के राज्यों में प्राथमिक शिक्षा खासकर सरकारी क्षेत्र की काफी चिंताजनक है। खासकर उत्तर प्रदेश में स्कूलों के सुधार करने के लिए बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान में उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा के मामले में देश में 23वीं रैंक से गिरकर 29वें स्थान पर पहुँच गया है।

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली बाधायें

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के मार्ग में तमाम ऐसी समस्यायें हैं जो इसके प्रसार में बाधक हैं। जब तक इन समस्याओं का निराकरण नहीं होगा, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य पूरा नहीं होगा। ये समस्यायें निम्नलिखित हैं:-

1. प्रशासन, वित्त एवं नियन्त्रण की समस्या।
2. जनसंख्या में वृद्धि।
3. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की समस्या।
4. अनुसूचित जाति एवं जनजाति क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने की समस्या।
5. विकलांग एवं मन्दबुद्धि बालकों के लिए प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की समस्या।
6. पाठ्यक्रम की एकरूपता एवं बस्ते के बोझ की समस्या।
7. प्राथमिक विद्यालयों की दयनीय स्थिति।
8. अपव्यय एवं अवरोध की समस्या।
9. ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा की कमी।

Bibliography

1. Chaube, S.P. : Problems of Indian Education.
2. Dixit, A : The extent and college of the failure of compulsory as Children to Join School Primary Educational Department, Bombay, 1956.
3. Masavi, M : Wastage adn Stagnation in Primary Education is Tribal research and Training Institute, Gujrat Vidyapeeth, Ahmedabad, 1976.
4. Naik, C : A survey of Dropout and non errolment of children in the 6–14 age group, Indian Institute of Education, Pune, 1981.
5. Paras Nath Ray : An Introduction toResearch Methods.
6. Pandey, R.S. : Current Problems of Indian Education.
7. Primary Educational Department : Bombay Municipal corporation the extent and College of the failure of Compulsory as children to join school in sample.
8. Masavi, M : Wastage adn Stagnation in Primary Education is Tribal research and Training Institute, Gujrat Vidyapeeth, Ahmedabad, 1976.
9. Naik, C : A survey of Dropout and non errolment of children in the 6–14 age group, Indian Institute of Education, Pune, 1981.
10. लाल, रमन बिहारी (1973): शिक्षा सिद्धान्त और प्रयोग, रस्तौगी पब्लिकेशन, मेरठ द्वारा प्रकाशित।
11. रावत, भारती (2008): देहरादून जिले में "प्राथमिक स्तर पर अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या का अध्ययन।" हेमवती बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर को प्रस्तुत अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध।
12. सिंह, अन्विति (2011): भारतीय आधुनिक शिक्षा, जनवरी 2011।
13. शर्मा, सुधीर कुमार (2011): "भारतीय आधुनिक शिक्षा" जनवरी, 2011।
14. वर्मा, जी०एस० (2006): "शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध" इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ।
15. त्रिपाठी, के०एन० (2013): उत्तर प्रदेश - एक समग्र अध्ययन, बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद।

मानवेन्द्रनाथ रॉय के राजनीतिक विचार

डॉ० सुबोध कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डीएवी पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर (यू.पी.)

सरांश- मानवेन्द्रनाथ नाथ रॉय (जन्म नरेंद्र नाथ भट्टाचार्य जिन्हें एम.एन. रॉय के नाम से जाना जाता है) एक भारतीय मार्क्सवादी क्रांतिकारी, कट्टरपंथी कार्यकर्ता और राजनीतिक सिद्धांतकार थे, साथ ही 20वीं सदी में एक प्रसिद्ध दार्शनिक भी थे। रॉय मैक्सिकन कम्युनिस्ट पार्टी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (ताशकंद समूह) के संस्थापक थे। वह कम्युनिस्ट इंटरनेशनल और रूस के चीन के सहयोगी के कांग्रेस के प्रतिनिधि भी थे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद में, रॉय रूढिघ्वादी मार्क्सवाद से दूर चले गए और उदारवाद और साम्यवाद के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हुए कट्टरपंथी मानवतावाद के दर्शन का समर्थन किया। जहां एक ओर एशिया तथा भारत को साम्यवाद का सन्देश उन्होंने दिया वहां दूसरी ओर उन्हींने सर्वप्रथम साम्यवाद की भर्त्सना कर सारे विश्व को मानववाद का संदेश भी दिया । साम्यवाद की त्रिमूर्ति लेनिन, स्टालिन तथा ट्राटस्की के प्रत्यन्त निकट रह कर तथा मैक्सिको, चीन व भारत को साम्यवाद का मार्ग दिखाकर जिस तरह से मानवीय स्वातन्त्र्य का उद्घोष किया उसका दूसरा उदाहरण विश्व में नहीं मिलता । यदि भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से ऊपर उठकर विचार किया जाये तो यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उनका नवमानववाद भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन की विश्व को एक अनुपम देन है ।

मुख्य शब्दः- मानवेन्द्रनाथ रॉय, राजनीतिक विचार, समाजवाद, नवमानववाद।

प्रस्तावनाः- मार्च-अप्रैल 1887 में एक शिक्षक दीनबन्धु भट्टाचार्य के घर में नरेंद्रद्र नाथ भट्टाचार्य (एम. एन. राय) का मूल नाम का जन्म 24 परगना जिले के अरबलिया गाव में हुआ था। दीनबन्धु भट्टाचार्य सुधारवादी दृष्टिकोण के व्यक्ति थे। रूढिघ्यों से जकड़े समाज में पिता के सुधारवादी दृष्टिकोण का प्रभाव नरेंद्रद्र की जिन्दगी पर पड़ा। लेकिन बंगाल के क्रांतिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव में वे अपने किशोर अवस्था में ही आ गये, जो पूरी जिन्दगी उनके साथ जुड़ा रहा। उन्हीं शुरूआती दौर में उनके कुछ मूल भावनात्मक एवं बौद्विक सरोकारों ने आकार ग्रहण किया। एम. एन. राय एक प्रतिबद्व क्रांतिकारी हो गये। उनकी शिक्षा बाधि त हुई। उनकी पारिवारिक कठिनाइयों के चलते भी ऐसा हुआ होगा। नये स्थापित राष्ट्रीय महाविद्यालय, जिसके साथ श्री अरविन्दो जुड़े हुए थे, से नरेंद्र ने इंटेंस परीक्षा में उनीर्णता प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने बंगाल तकनीकी संस्थान में दाखिला लिया लेकिन वर्ष 1907 में एक राजनैतिक डकैती में शामिल होने के चलते, संस्थान का त्याग कर दिया। राय की शुरूआती गतिविधियों एवं साहसिक कार्रवाइयों तथा बाद में उनके राजनैतिक एवं बौद्विक विकास को समझने के लिये, राष्ट्रीय क्रांतिकारी आन्दोलन या अतिवादी राष्ट्रवाद की विचारधारा को समझना आवश्यक है। भारत के समाजवादी चिन्तकों में मानवेन्द्रनाथ रॉय का अनूठा स्थान रहा है। वे न केवल भारत में समाजवाद के ही अग्रगण्य थे अपितु साम्यवाद के प्रसार एक प्रचार के भी अग्रदूत रहे। भारत में साम्यवाद का अध्याय उन्हीं के नाम से प्रारम्भ होता है किन्तु जितनी प्रबलता से उन्होंने साम्यवाद का समर्थन किया उतनी ही प्रबलता से उन्होंने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में उसका विरोध भी किया।[1]

बंगाल के बंटवारे से (1905) पूरे देश में, खासकर बंगाल में वेध की लहर दौड़ गई। जुझारू राष्ट्रीयतावाद को और आगे बढ़ने का मौका मिला। आवेश से भरे बंगाल के क्रांतिकारी आगे की योजना बनाने में जुट गये। जल्द ही उनके बीच मतभेद उभर गये। उनके बीच जो अतिवादी थे, वे ब्रिटिश शासकों के खिलाफ आंतकवादी कार्रवाई के जरिये उनके हौसले को तोड़ना चाहते थे तथा प्रशासन को प्रभावहीन बनाना चाहते थे। दूसरे लोग आतंकवाद को तिलांजलि देकर अंतिम तौर पर सना पर कब्जा करने के लिये संगठित सैनिक तैयारी करना चाहते थे। इस समूह के नेता अनुभवी प्रमथ मित्रा थे। उनकी मृत्यु के बाद नेतृत्व का भार जतीन मुखर्जी

के कंधे पर आ गया। नरेंद्र भट्टाचार्य उनके सिपहसालाकारों में से एक हो गये।[2] हालांकि नरेंद्र की साहसिक कार्रवाइयों का विस्तार प्रथम विश्वयुद्ध के शुरू होने के बाद हुआ लेकिन उस समय तक वे एक अति साहसी क्रांतिकारी बन चुके थे। वे 1907 में 'चिंगरीपोटा' डकैती मामले में गिरल्तार हुए लेकिन पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में मुक्त कर दिये गये। वे फिर 1910 में हावड़ा षड्यंत्रा मामले में गिरल्तार किये गये और एक अभियोगी कैदी के रूप में 20 महीनों तक जेल में बंद रहे। जेल से छूटने के बाद, वे थोड़े दिनों के लिये सन्यासी बन गये, लेकिन जल्द ही वे राजनीति में लौट आये।

रॉय सहित कई भारतीय राष्ट्रवादी आश्वस्त हो गए कि केवल अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से ही भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से अलग करने के लिए पर्याप्त होगा। इस लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए, क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने कैसर विल्हेम के जर्मनी की प्रतिद्वंद्वी साम्राज्यवादी शक्ति को धन और हथियारों के संभावित स्रोत के रूप में देखा। अगस्त 1914 में ब्रिटेन और जर्मनी के बीच एक विशाल यूरोपीय युद्ध छिड़ गया। बर्लिन में भारतीय क्रांतिकारी समिति के रूप में संगठित प्रवासी भारतीय राष्ट्रवादियों ने भारत में ब्रिटिश-विरोधी सशस्त्र संघर्ष के लिए सहायता के समर्थन में जर्मन सरकार के लिए एक अनौपचारिक दृष्टिकोण अपनाया। ये संपर्क अनुकूल थे और वर्ष के अंत में भारत में यह बात पहुंची कि जर्मन ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष शुरू करने के लिए आवश्यक धन और सामग्री प्रदान करने के लिए सहमत हो गए हैं।[3]

आने वाले संघर्ष के लिए धन और आयुध प्राप्त करने का कार्य नरेन भट्टाचार्य को सौंपा गया था। भट्टाचार्य को पहले जावा भेजा गया, जहां अगले दो महीनों में वह कुछ सीमित धन प्राप्त करने में सक्षम था, हालांकि कोई हथियार नहीं था। 1915 की शुरुआत में, भट्टाचार्य ने फिर से प्रस्थान किया, भारत को अस्पष्ट रूप से वादा किए गए जर्मन हथियारों की तलाश में छोड़ दिया, जिनके बारे में माना जाता था कि वे रास्ते में कहीं प्रशांत क्षेत्र में थे। रॉय 16 साल तक अपनी मातृभूमि फिर से नहीं देख पाएंगे।

भारत में रॉय की राजनीतिक गतिविधि संक्षिप्त साबित हुई, 21 जुलाई 1931 को उन्हें 1924 में जारी गिरफ्तारी वारंट पर बॉम्बे में गिरफ्तार किया गया। रॉय को भारतीय दंड संहिता की धारा 121-ए के तहत आरोपों का सामना करने के लिए कानपुर ले जाया गया, ष्भारत में राजा सम्राट को उनकी संप्रभुता से वंचित करने की साजिश। खुली अदालत में कोई सुनवाई नहीं हुई; बल्कि, कार्यवाही उस जेल के अंदर आयोजित की गई जिसमें रॉय को रखा गया था। रॉय को न तो जूरी ने सुनवाई की अनुमति दी और न ही बचाव पक्ष के गवाहों ने, और न ही उन्हें बचाव में बयान देने की अनुमति दी गई। कार्यवाही 3 नवंबर 1931 से 9 जनवरी 1932 तक चलाई गई, उस समय रॉय को 12 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। रॉय को उनकी सजा पूरी करने के लिए तुरंत सशस्त्र गार्ड के तहत बरेली सेंट्रल जेल ले जाया गया, हालांकि, वह बचाव के बयान की तस्करी करने में सक्षम थे, जिसे उन्हें अदालत में पेश करने की अनुमति नहीं थी। यह अस्वीकृत घोषणा भारत में रॉय के समर्थकों द्वारा माई डिफेंस के रूप में, और न्यू यॉर्क में संक्षिप्त रूप में आई एक्यूज के रूप में प्रकाशित की गई थी।[4]

मानवेन्द्रनाथ रॉय के राजनीतिक विचार, लोकतान्त्रिक व्यवस्था का सार नागरिकों में इस भावना का विकास करना है कि शासनतन्त्र में उनका भी साझा है। स्वतन्त्रता को साकार बनाने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति पर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रतिबन्ध कम से कम हों। समाज के आमूल पुनर्निर्माण करने के लिए व्यक्ति की प्राथमिकता को मानकर चलना आवश्यक है। संगठन, नियन्त्रण तथा तालमेल की समग्रवादी कार्यप्रणाली का प्रयोग करके व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन करना उचित नहीं है। इसलिए जनता का अभिक्रम आवश्यक है । जॉन डीवी के इस कथन में सत्य है कि जनता परीक्षण, भूल तथा प्रयोग के द्वारा ही लोकतन्त्र की कार्यप्रणाली में प्रशिक्षित हो सकती है। संसदीय लोकतन्त्र का जो व्यावहारिक रूप देखने को मिलता है। उसमें भयंकर दोष हैं। चुनावों के बीच के काल में जनता के हाथों में कोई शक्ति नहीं रहती। संकट के समय लोकतन्त्र में विधि का शासन भी व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करने में असमर्थ रहता है। इसलिए राय ने संगठित का निरूपण किया जिसके अन्तर्गत शिखर पर बैठा हुआ कोई प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न व्यक्ति आदेश नहीं देगा बल्कि शक्ति जनता की स्थानीय समितियों के हाथों में होगी।[5] औपचारिक संसदीय लोकतन्त्र ने निर्वाचकों को एक ऐसी भीड़ का रूप दे दिया है जो पूर्णत: छिन्न - भिन्न और असहाय होती है। केवल संगठित लोकतन्त्र ही राज्य के ऊपर वास्तविक नियन्त्रण कायम रख सकता है। राय ने लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद की मिथ्या कल्पना का भी परित्याग करने का आग्रह किया है। वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें सामाजिक प्रविधि और मानव बुद्धि तथा निर्माण की संगृहीत शक्तियों को व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा सामाजिक कल्याण एवं प्रगति के आदर्शों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रयोग किया जायेगा।[6]

रॉय को राष्ट्रवाद के सिद्धांत से घृणा हो चुकी थी। यद्यपि उन्होंने अपना राजनीतिक जीवन एक राष्ट्रवादी क्रांतिकारी के रूप में ही शुरू किया था किन्तु अध्ययन तथा मनन - चिन्तन ने उनको राष्ट्रवाद का विरोधी बना दिया। जो कुछ राष्ट्रवाद उनमें शेष था वह मार्क्सवाद के प्रभाव में समाप्त हो गया था। रॉय का यह विचार था कि राष्ट्रवाद भावुकता पर आधारित होने के कारण किसी भी वैज्ञानिक राजनीतिक चिन्तन का आाधार नहीं बन सकता। वे राष्ट्रवाद के सिद्धांत को निरर्थक मानते थे। वे राष्ट्र बाद को निरर्थक मानते हुए उसे पूजीवादी शोषण तथा औपनिवेशिक विस्तारवाद का प्रतीक मानते थे। वे राष्ट्रवाद को फासीवाद का प्रेरक भी मानते थे। फासीवाद से उन्हें घुरणा थी । उनकी दृष्टि में मानवीय अस्तित्व को ध्वस्त करने में फासीवाद से बढ़ कर कोई और विचारधारा नहीं हो सकती थी। वे इसी कारण से भारतीय राष्ट्रवाद के कट्टर भालोचक थे। रॉय अंतर्राष्ट्रवाद के प्रतीक थे। विश्व बन्धुत्व तथा विश्व एकता में उनका विश्वास था। उनकी दृष्टि से इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि समस्त मानव संस्कृति का एक ही उद्गम है। वे मानते थे कि विश्व एकीकरण अवश्य स्थापित होगा।[7] उन्होंने इस विचारधारा का इसलिए भी समर्थन किया कि इसके द्वारा आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा, गरीबी तथा बेकारी दूर की जा सकती है, यदि राष्ट्रीय राज्यों का स्थान एक विश्व-राज्य ले ले। वे मानव व मानवता के बीच और किसी वस्तु को सहन नहीं कर सकते थे। उनका अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण वंश, रंग, राष्ट्रीयता या अन्य किसी भी तत्त्व से सीमित नहीं था। वे समाजवादी व्यवस्था की थोथी अंतर्राष्ट्रीयता में विश्वास नहीं करते थे। उन्हें इसका कटु अनुभव था कि विश्व के समस्त श्रमिक पूंजीवादी शोषण के विरूद्ध एक होने को तैयार नहीं थे। राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों ने समाजवादी सिद्धांत को ताक पर रख दिया था। उनके विचार से साम्यवादी तथा समाजवादी दोनों ही राष्ट्रवाद के विचार से ग्रस्त थे, यहां तक कि वे साम्यवाद को राष्ट्रवाद का हो उग्रतर रूप मानने लगे। उन्हें साम्यवाद से इसी कारण से चिढ़ हो गयी कि साम्यवादी अंतर्राष्ट्रवाद का प्रचार तो करते थे पर व्यवहार में राष्ट्रवादी थे। इस तरह रॉय का उग्रमानववाद एक सच्चे अंतर्राष्ट्रवाद का प्रतीक तथा उसकी प्राप्ति का साधन है।[8]

राय की संगठित लोकतन्त्र और दलविहीन लोकतन्त्र की धारणा के अनुसार राज्य का ढाँचा संगठित स्थानीय लोकतान्त्रिक निकायों के आधार पर निर्मित होना चाहिए। ये निकाय राष्ट्र के लिए राजनीतिक आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन साथ विद्यालयों का काम करेंगे और जनता को अपने सामाजिक तथा राजनीतिक उत्तरदायित्वों को चतुराई के पूरा करने का प्रशिक्षण देंगे। वे नागरिकों को उनके सर्वोच्च अधिकारों के सम्बन्ध में सचेत बनायेंगे और उन्हें ऐसी शिक्षा देंगे जिससे वे अपने कर्तव्यों का चतुराई के साथ तथा उद्देश्यपूर्वक पालन कर सकें। शासकों पर प्रत्याहान, जनमत संग्रह आदि प्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक प्रतिबन्धों के द्वारा निरन्तर नियन्त्रण रखा जायेगा। राय को चाहिए था कि इसमें अधिक्रम की प्रथा को भी सम्मिलित कर देते। केवल इन स्थानीय लोकतान्त्रिक निकायों के चुनाव के लिए प्रत्याशी खड़े करने का अधिकार होगा। लोग दलगत, वर्गगत अथवा अन्य संकीर्ण स्वार्थो को ध्यान में रखकर मतदान नहीं करेंगे, उन्हें एकमात्र ध्यान इस बात का होगा कि नैतिक साख, राजनीतिक स्वतन्त्रता की भावना तथा आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न लोग उच्च पदों पर पहुँचें। ये संगठित स्थानीय लोकतान्त्रिक निकाय तभी सफलतापूर्वक काम कर सकते हैं जबकि जनता में नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनर्जागरण के गुणों और मूल्यों का व्यापक रूप से प्रचार हो।[9] दूसरे शब्दों में, इस लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना से पहले मानसिक प्रबुद्धीकरण का होना आवश्यक है। यह व्यवस्था बिना राजनीतिक दलों की मध्यस्थता के कार्य करेगी। एक अर्थ में राय रूसो के प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, क्योंकि इससे सम्पूर्ण वयस्क जनता को लोक समितियों के द्वारा शासन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर मिल जाता है। इस योजना की सफलता जनता के उन वर्गों पर निर्भर करती है जो नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से विकसित हैं। वे एक राजनीतिक दल के रूप में संयुक्त होंगे और उनका एकमात्र काम जनता के बौद्धिक तथा नैतिक कल्याण का अभिवर्धन करना होगा। आध्यात्मिक स्वतन्त्रता से सम्पन्न पुरुषों तथा स्त्रियों का यह दल शक्ति पर अधिकार करने का प्रयत्न नहीं करेगा। वे इस बात को भली - भाँति जानते हैं कि वैयक्तिक स्वायत्तता तथा शक्ति के संचय में परस्पर तीव्र विरोध है। इस आध्यात्मिक दल का -यदि उनके लिए दल शब्द का प्रयोग किया जा सके - मुख्य उद्देश्य लोक समितियों के संगठन में सहायता देना होगा और ये समितियाँ लोकतान्त्रिक शक्ति का मुख्य केन्द्र होंगी।[10]

रॉय ने अपने दर्शन में मानव स्वतंत्रता और प्रगति सुनिश्चित करने के लिए साधन तैयार किए। बाघा जतिन को याद करते हुए, जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ मानव जाति का प्रतिनिधित्व कियाष, रॉय ने एक सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के आदर्श के लिए काम किया जिसमें मनुष्य में सर्वश्रेष्ठ प्रकट हो सके। 1947 में, उन्होंने अपनी थीसिस को एक घोषणापत्र, न्यू ह्यूमनिज्म के रूप में विस्तृत किया, जिसके एक सदी पहले मार्क्स द्वारा कम्युनिस्ट घोषणापत्र के रूप में महत्वपूर्ण होने की उम्मीद थी। 5 जनवरी 1954 को रॉय की मौत के लिए सांत्वना के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका के एक व्याख्यान दौरे को निलंबित कर दिया गया था। 1987 में ऑक्सफोर्ड

यूनिवर्सिटी प्रेस ने एम.एन. के चयनित कार्यों का प्रकाशन शुरू किया। रॉय। 1997 तक कुल 4 खंड प्रकाशित हुए, जिसमें रॉय के लेखन को उनके जेल के वर्षों के दौरान एकत्रित किया गया। 2008 में परियोजना संपादक सिबनारायण रे की मृत्यु हो गई, हालांकि, 40, और रॉय वर्क्स प्रकाशन परियोजना को समय से पहले समाप्त कर दिया गया था। टी.एम. तारकुंडे, गोवर्धनदास पारेख, वी.बी. कार्णिक, सुनील भट्टाचार्य, बी.आर. सुनथंकर, सलील वाघ, वी.आर. जवाहिरे और डॉ. नलिनी तारालेकर जैसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व एम. एन. रॉय और उनके दर्शन से प्रभावित थे।

संदर्भ ग्रंथ-

1. वी.बी. कार्णिक, एम.एन. रॉय-राजनीतिक जीवनी, नव जागृति समाज, बॉम्बे, 1978, पृ. 45
2. सत्यव्रत राय चौधरी, भारत में वामपंथ, 1917-1941, पालग्रेव मैकमिलन, इंग्लैंड, 2007, पृ. 11
3. सिबनारायण रे, एम.एन. के चयनित कार्य,1932-1936, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1997, पृ.142
4. ट्रिब्यून, लाहौर, 24 और 27 दिसंबर 1936
5. एम. शिवैया, न्यू ह्यूमनिज्म एंड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स- ए स्टडी ऑफ एम.एन. रॉय, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1977, पृ. 23
6. पूर्वोक्त, पृ. 45
7. रीता सिन्हा, राजनीतिक विचार एम.एन. रॉय, राष्ट्रीय पुस्तक संगठन, नई दिल्ली, 1991, पृ. 63
8. पूर्वोक्त, पृ. 71
9. सदा नंद तलवार, एम.एन. के राजनीतिक विचार रॉय, खोसला पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1978, पृ. 112
10. जे.बी.एच. वाडिया, एम.एन. रॉय, द मैन- एन इनकंप्लीट, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे 1983, पृ. 178

दुर्गा भाभी का क्रांतिकारी संघर्ष

डा० ईशा शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एम एम एच कॉलेज, गाजियाबाद

शोध सारांश

भारतीय स्वाधीनता संग्राम विस्तृत परिप्रेक्ष्य में उन सभी राजनैतिक संगठनों, विचारधाराओं एवं आंदोलनों को अपने में समाहित किए हुए है जिनका एक ही लक्षित उद्देश्य था 'भारत से ब्रिटिश आधिपत्य का अन्त'। इस स्वतन्त्रता संग्राम में विभिन्न राष्ट्रीय व प्रादेशिक आंदोलन, विद्रोह आदि प्रयत्न सम्मिलित हैं परन्तु मुख्यरूप से अहिंसात्मक व क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में दो समानान्तर धाराएं दृष्टिगत होती हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति का श्रेय मुख्यत: गांधीजी के नेतृत्व में संचालित अहिंसात्मक आंदोलन को जाता है किन्तु क्रांतिकारी आंदोलन की भूमिका के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। क्रांतिकारियों के योगदान का वास्तविक मूल्यांकन तत्कालीन राजनैतिक परिपेक्ष्य में नहीं हो सका था और उनके सारे क्रियाकलाप कांग्रेस महासभा द्वारा निन्दनीय ठहराए जा रहे थे। यह एक विलक्षण संयोग था कि जिन घटनाओं से पराधीन देश की जन भावना उद्वेलित होकर साम्राज्यवादियों के विरुद्ध कुछ करने की प्रेरणा देती थी उन घटनाओं के लिए उत्तरदायी कर्मठ क्रांतिकारी अपने युग के प्रसिद्ध कर्णधारों द्वारा उपेक्षित और निन्दित होते रहे थे। हाल ही में ब्रिटेन की वारविक यूनिवर्सिटी के जाने-माने इतिहासकार प्रो. डेविड हार्डियन ने सूरत के एक विश्वविद्यालय में "नॉन वॉईलेंट रेजिसटेंस इन इंडिया ड्यूरिंग 1915-1947" विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा कि देश की आजादी के लिए महात्मा गांधी के अहिंसक आंदोलन की सफलता में परोक्ष रूप से सरदार भगत सिंह और चन्द्रशेखर आजाद की आतंकी गतिविधियों का हाथ भी था, जो उन दिनों हिंदुस्तान रिपब्लिक सोशलिस्ट एसोसिएशन जैसे आतंकी संगठन के जरिए आतंकी गतिविधियों में संलग्न थे। प्रो. हार्डियन का कहना था कि अहिंसक आंदोलन की सफलता के पीछे मुख्य कारण यही होता है कि सत्ता और शासन आतंकी गतिविधियों में सक्रिय लोगों की तुलना में अहिंसक आंदोलनकारियों से बात करना अधिक आसान समझते हैं।[1]

पाठ्यपुस्तकों में क्रांतिकारियों को आतंकी बताए जाने पर अनेक बार विवाद हुए। प्रश्न यह उठता है कि आजादी के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले तथा अपने सम्पूर्ण जीवन को देश के लिए समर्पित करनेवाले इन महान क्रांतिकारियों को इनका अपेक्षित महत्व कब प्राप्त होगा ? क्रांतिकारियों के कार्य, जिन्हें वे एक्शन कहकर पुकारते थे, सोची-समझी योजना के अन्तर्गत किए जाते थे। क्रांतिकारियों की दृष्टि में साध्य पवित्रता ही साधनों का औचित्य था। 'हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक संगठन' के जन्मदाता श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने इसके घोषणापत्र में कहा था कि "जिस प्रकार बसंत का आगमन नहीं रोका जा सकता, उसी प्रकार आदर्श एवं विचार, तलवार द्वारा नहीं कुचले जा सकते"।

यद्यपि क्रांति का धारा प्रवाह सम्पूर्ण भारत में बह चला था लेकिन पंजाब के नेशनल कॉलेज, लाहौर के विद्यार्थियों में जिस तीव्रता के साथ इसकी प्रगति हुई वह अद्वितीय है। भगत सिंह, भगवतीचरण वोहरा, उनकी पत्नी श्रीमती दुर्गादेवी वोहरा, जो दल के साथियों में 'भाभी' नाम से पुकारी जाती थीं, सुखदेव, यशपाल आदि अनेक विद्यार्थी इसी नेशनल कॉलेज में अध्ययन तथा द्वारिकादास लाइब्रेरी एवं सर्वेन्टस् ऑफ पीपुल्स सोसाइटी के सम्पर्क से क्रांतिकारी चेतना से अभिभूत हो चले थे।[2] इन्हीं साथियों द्वारा गठित नौजवान भारत सभा ने क्रांतिकारी दल के खुले मंच के रूप में प्रचार का कार्य तथा उग्र विचारों से युक्त युवकों को अपनी ओर खींचने का कार्य सफतापूर्वक किया। इस सभा के लैटरहैड पर एक नारा भी छपा था 'Service, Sacrifice and sffuering'।[3]

साइमन कमीशन[4] का लाहौर में बहिष्कार करते हुए, साम्राज्यवादी शासकों की हिंसात्मक कार्यवाही[5] के परिणामस्वरूप पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई। दुर्गाजी भी इस जलूस में सम्मिलित थीं। 'जयचन्द विद्यालंकार की बहन पार्वतीदेवी

कमालिया तथा पिंडीदास की दो लड़कियां सुदेश और स्वदेश भी साथ थीं। सम्भवत: सुशीला दीदी या लीलावती भी साथ थीं। इतने विशाल जलूस में हम पांच स्त्रियां नगण्य सी थीं लेकिन इसके बावजूद घायलों की सेवा का कार्य यथासम्भव हमीं लोगों ने किया। चिकित्सा का कोई सामान तो था नहीं अत: रूमाल आदि से काम चलाना पड़ा'।[6] सारे देश में इस घटना की तीव्र प्रतिक्रियाएं हुईं[7] परन्तु नौजवान भारत सभा के तेजस्वी सदस्यों ने इस घटना का प्रतिकार लेने की चुनौती को स्वीकार किया।[8] इसके फलस्वरूप 18 दिसम्बर 1928 को लाहौर में सांडर्स हत्याकाण्ड घटित हुआ। यह घटना क्रांतिकारी दल हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ (हिसप्रस) के सुनियोजित कार्यक्रम का अंग थी। दल ने गुप्त पर्चा चिपका कर इसे घोषित और स्वीकृत किया।[9]

इस घटना के बाद यह आवश्यक था कि सक्रिय कार्यकर्ता लाहौर से बाहर चले जाएं किन्तु भगत सिंह का लाहौर से बाहर निकलना एक कठिन समस्या थी (क्योंकि भगत सिंह बहुत दिनों से फरार थे। पुलिस उनकी फिराक में थी। पुलिस में उन्हें पहचानने वाले लोग भी थे। दशहरा बम कांड के समय लिया गया चित्र भी पुलिस के पास था।)[10]। यहां से दुर्गा भाभी के क्रांतिकारी जीवन का एक नया और महत्वपूर्ण अध्याय प्रारम्भ होता है। इस योजना के प्रणेता कौन थे? आज नहीं मालूम। यह योजना सांडर्स वध के बाद बनी अथवा उससे पूर्व यह जानने का भी हमारे पास कोई पुष्ट व विश्वसनीय साधन नहीं है। इस हत्याकांड के दो विश्वसनीय कार्यकर्ताओं (भगत सिंह व राजगुरू) को एक ही योजना के अन्तर्गत लाहौर से बाहर निकाला गया। इस योजना को क्रियान्वित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व नाजुक भूमिका दुर्गा भाभी की थी। दल ने इस अत्यन्त गोपनीय व महत्वपूर्ण कार्य हेतु उन्हें ही क्यों चुना? यह एक लक्ष्य करने योग्य रहस्य है। वे कुछ दिनों पहले से ही गुप्त क्रांतिकारी कार्यों में अपनी हिस्सेदारी का निर्वाह दृढ़ता व निष्ठा के साथ कर रही थीं।

मेरठ षड्यंत्र केस के सिलसिले में पुलिस द्वारा परेशान किए जाने के फलस्वरूप भगवतीचरणजी फरार हो चुके थे। दुर्गाजी का निवास भी सी.आई.डी. की निगरानी में था। 19 दिसम्बर 1928 की रात सी.आई.डी. पुलिस कर्मचारियों के चले जाने पर सुखदेव (जो हिसप्रस की पंजाब शाखा के संगठनकर्ता थे) आए। उन्होंने पुछा-"कहीं बाहर जा सकती हो? कुछ लोगों को लाहौर से बाहर निकालना है। खतरा भी बहुत अधिक है। तुम पर व लड़के (शची) पर आंच आ सकती है"। मैंने क्षण भर सोचा और सुखदेव को हां कह दी[11]। रात्रि लगभग 10बजे सुखदेव पुन: आए उनके साथ एक 'साहब' थे जो तिरछा फैल्ट हैट लगाए ओवरकोट पहने थे, साथ ही उनका एक नौकर भी था[12]। भाभी ने सभी को कमरे में बैठाया। सुखदेव ने पूछा- "भाभी इसे पहचानती हो?" भाभी ने ध्यान से देखा लेकिन पहचान नहीं पाई। भाभी को परेशान देख भगत सिंह हंस पड़े और बोले- भाभी जब तुम ही नहीं पहचान पाई तो ब्रिटिश गुप्तचर पुलिस मुझे नहीं पहचान सकेगी[13]। सब हंस पड़े। उस खतरनाक घड़ी में भी इनकी हंसी कैसी विचित्र रही होगी। 20दिसम्बर की प्रात: भाभी के एकमात्र पुत्र 'शची' को गोद में लिए, पत्नी बनी दुर्गाजी, भगत सिंह के साथ ट्रेन में बैठ गई लेकिन उनके मन में विचारों व आशंकाओं का कैसा द्वन्द चल रहा होगा यह अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। यह समय दुर्गाजी के लिए कठिन परीक्षा का समय था। इलाहाबाद के शाहजादपुर गांव के जमींदार परिवार में जन्मीं तथा लाहौर के रायसाहब परिवार में वधु के रूप में आई दुर्गा प्रारम्भ में एक सरल सीधी देहाती बहू के रूप में ही थीं लेकिन पति के देश के प्रति समर्पित रूप को देखकर वह शनै: शनै: स्वयं भी उनकी अनुगामिनी हो गईं। इस समय घर से बाहर निकलकर दल के एक महत्वपूर्ण सदस्य को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देने का दायित्व दुर्गाजी पर ही निर्भर था। उनकी एक चूक तीनों की जान ले सकती थी। इस कार्य को वे बड़ी कुशलता व सहजता से कर गईं। इसमें दुर्गाजी की निष्ठा, समर्पण भाव एवं कलाकारिता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्रमुख क्रांतिकारी दल 'हिसप्रस' का यही एक मात्र एक्शन ऐसा था जो कि पूरी तरह गोपनीय रहा तथा इसका खुलासा तब हुआ जब 'दिल्ली एसेम्बली बम कांड' के बाद देश भर में गिरफ्तारियों का दौर चला तथा जयगोपाल, हंसराज वोहरा, फणींद्रनाथ घोष आदि के मुखबिर बन जाने के कारण वास्तविकता के कुछ पहलू सामने आए।

लाहौर में जब भगत सिंह आदि पर लाहौर षड्यन्त्र केस का मुकदमा चल रहा था तो जून, 1929 के आस-पास लाहौर में एक प्रबल बचाव समिति गठित की गई जिसने अभियुक्तों के बचाव तथा उनके परिवार वालों की सहायता के लिए चन्दा एकत्र करना शुरू कर दिया[14]। इस चंदे को बोलचाल की भाषा में 'भगत सिंह डिफेंस निधि' का नाम दिया गया था। शहीद भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह उस निधि के मुख्य संचालक थे[15]। श्रीमती दुर्गा भाभी ने इस बचाव समिति में तन-मन-धन से समर्पित होकर कार्य किया। भगवतीचरण की अनुपस्थिति में साथियों की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने अपने कंधों पर ले ली। भाभी का घर बाहर से आनेवाले साथियों के लिए 'खुली सराय' हो गया था। जेल में अपने साथियों की रुचि का खाना भेजना, बीमारों के लिए उपयुक्त

भोजन लेकर जाना, आवश्यकतानुसार कपड़े, तेल, साबुन, जूते अर्थात् जरूरत भर की सभी चीजें मुहैया कराना दुर्गाजी का रोजाना का कार्य हो गया।

दुर्गा भाभी ने स्वयं लिखा था– "उस ऐतिहासिक मुकदमे का अपना एक रंग था। एक विचारधारा का प्रवाह था जिसने देश भर में तहलका मचा दिया था। जेल के बाहर प्रचार का कार्य करना, संसार भर की क्रांतियों का अध्ययन, जेल के साथियों के लिए वैसी ही प्रेरणात्मक पुस्तकों का चुनाव करना, अंदर तथा बाहर सम्पर्क स्थापित करना तथा उनकी डिफेंस का उचित प्रबंध करना, महत्वपूर्ण कार्य बन गया था[16]।"

यहां एक अन्य घटना का उल्लेख करना भी उचित होगा। यह घटना थी रेलवे क्लियरिंग एकाउन्टस् ऑफिस की धनराशि को लूटने की योजना। इसके सम्बन्ध में मुखबिर कैलाशपति ने कोर्ट को अपने बयान में बताया था – "पंजाब से खबर मिली थी कि धन की कमी के कारण (भगत सिंह आदि) साथियों को जेल से छुड़ाने की योजना क्रियान्वित नहीं हो सकती अत: शीघ्रातिशीघ्र धन इकट्ठा किया जाए। इस संबंध में आजाद, भगवतीचरण और मैं (कैलाशपति) ने मिलकर रेलवे कर्मचारियों की तनख्वाह के लिए 'रेलवे क्लियरिंग एकाउन्टस् ऑफिस' को जानेवाली धनराशि को लूटने की योजना बनाई.....लेकिन इसी बीच दुर्गादेवी जो भगवतीचरण की पत्नी है, ने 'रेस्क्यू प्लान' को क्रियान्वित करने हेतु 3,000 रुपया दल को दिया। अत: धन लूटने की योजना त्याग दी गई"।[17]

इसके अतिरिक्त दल के लिए शस्त्रों का संग्रह करने में भी दुर्गाजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। दुर्गाजी ने अपने साक्षात्कार में बताया था कि एकबार मुझे बम के खोल लाने के लिए रावलपिंडी भेजा गया था। शिववर्मा ने मुझे बताया कि कलकत्ता कांग्रेस के समय यतीन्द्रनाथ दास ने बम बनाना सिखाते समय दो बम-शैल दिए कि ऐसे खोल बनवाए जाएं। भगत सिंह ने ये खोल सुखदेव को दे दिए। सम्भवतया यह खोल रावलपिंडी में बनवाए गए थे जिन्हें दुर्गा भाभी रावलपिंडी से बड़ी कठिनाई से लाहौर तक सुरक्षित ले आईं।

अपनी फरारी के दौरान भी दुर्गाजी को 3 बार शस्त्र लाने के लिए जयपुर भेजा गया था। जयपुर के राज दरबार में एक राजवैद्य थे श्री मुक्तिनारायण शुक्ल, दुर्गाजी उन्हीं के पास ठहरती थीं क्योंकि उन दिनों रजवाड़ों से शस्त्र आसानी से मिल जाया करते थे। मारवाड़ीवेश में हथियार अपने शरीर पर बांधकर लाने पड़ते थे क्योंकि सामान की तलाशी ली जाती थी लेकिन महिला पुलिस न होने के कारण महिलाओं की तलाशी नहीं ली जाती थी। इस प्रकार शस्त्र संग्रहण में दुर्गाजी पुरुषों की अपेक्षा अधिक सफल सिद्ध हुईं। दल के द्वारा बनाई गई भगत सिंह व दत्त को जेल से छुड़ाने की योजना के अन्तर्गत बम-परीक्षण करते समय भगवती भाई शहादत को प्राप्त हुए, उस दुर्घटनाकाल में ऐसे दारूण समाचार को उस अमर शहीद की परिणीता दुर्गा किस रूप में ग्रहण करेंगी, यह समस्या थी जो अभी जीवन के चौबीसवें वर्ष में कदम रखनेवाली थीं। समाचार सुनकर दुर्गाजी एकदम खामोश हो गईं। चीखने चिल्लाने और विलाप प्रलाप का अवसर ही कहां था[18]। गुप्तचर पुलिस का जाल जो फैला था। आगे आनेवाली घटनाओं ने प्रमाणित किया कि वह वीर महिला कुछ क्षणों के लिए चाहे किंकर्तव्यविमूढ़ भले ही हो गई हों किन्तु आगे चलकर अपने नाम के अनुरूप द्विगुणित शक्ति से क्रांतिकारी क्रियाकलाप में संलग्न हो गईं। मानो शहीद पति की आन्तरिक शक्ति सूक्ष्मरूप से उसके व्यक्तित्व में ही समाहित हो गई हो।

नियति देखिए, अगले ही दिन बहावलपुर कोठी में रखे शेष दो बम भी फट गए तथा इन क्रांतिकारियों को तितर बितर हो जाना पड़ा। दुर्गाजी 15 दिन तक लाहौर में एक इन्जीनियर के यहां रहीं जिसका नाम था– केवलकृष्ण। धन्वन्तरि ने यह इन्तजाम किया था। दुर्गाजी का भी लाहौर से बाहर निकलना आसान नहीं था। दुर्गाजी के ही शब्दों में, वहां पर मुझे पुलिस इतना ज्यादा जानती थी, क्योंकि जब भगत सिंह का केस चल रहा था तब डिफेंस कमेटी में भी काम करती थी और दूसरी गतिविधियों में भी कार्यरत रहती थी, अत: पुलिस से नजर बचाकर निकलना कठिन था। अत: मुझे मुसलमान महिला के रूप में बुर्का पहनकर लाहौर छोड़ना पड़ा। वहां से दिल्ली पहुंचकर, चूना मण्डी में दौलतरामपुरी, जो रेलवे में कार्यरत थे के यहां महीना भर रहना पड़ा। यहां रहते हुए चन्द्रशेखर ने दल के बचे सदस्यों से परामर्श कर यह निश्चय किया कि दिल्ली, संयुक्त प्रांत तथा पंजाब में सरकार की व पुलिस की गतिविधियां तीव्र हैं अत: दक्षिण में दल का पुर्नसंगठन किया जाए। इस उद्देश्य से दुर्गाजी, विश्वनाथ तथा सुखदेवराज के साथ बम्बई पहुंची वहां धन्वन्तरि की कोशिशों के पश्चात पूर्व गदर पार्टी के बाबा पृथ्वी सिंह आजाद से सम्पर्क स्थापित किया गया।

वहां दुर्गाभाभी अपने पुत्र शची सहित विश्वनाथ वैशम्पायन के चाचा रघुनाथ वैशम्पायन के घर ठहरीं। वीर सावरकर के बड़े भाई बाबा साहब सावरकर से भी सम्पर्क स्थापित किया गया। कोई योजना बनाने की बात चल रही थी इसी बीच 7अक्टूबर 1930 को लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों को फैसला सुनाया गया इसमें भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को फांसी की सजा सुनाई गई। इस निर्णय पर विरोध प्रकट करने हेतु शीघ्र ही कोई एक्शन करने का निर्णय लिया तथा अपनी योजना पर स्वीकृति लेने हेतु वैशम्पायन को आजाद के पास भेजा। योजना यह थी कि बम्बई के अंग्रेज पुलिस कमिश्नर को गोली से उड़ा दिया जाए। निश्चित हुआ कि दुर्गाभाभी शारदा नाम से एक पारसी महिला के रूप में मुलाकात हेतु उनके पास अपना कार्ड भेजेंगी, बुलाने पर दुर्गा व सुखदेवराज पुलिस कमिश्नर के निकट जाएंगे और उस पर गोली चलाएंगे, पृथ्वी सिंह आजाद बाहर ही गाड़ी में प्रतीक्षा करेंगे तथा सम्भव रक्षा करेंगे। बम्बई षड्यन्त्र केस की प्रोसीडिंग्स इलाहाबाद से निकलने वाले पत्र 'भविष्य' में उस समय प्रकाशित की गई थी उसी का वर्णन है कि - "इकबाली गवाह मि. मोघे ने बयान देते हुए कहाकि 9अक्टूबर को मैं श्रीयुत वैशम्पायन से मिला उन्होंने मुझे श्रीयुत देवधर के पास मोटर का प्रबंध करने के लिए भेजा। देवधर ने श्री शिन्दे की सहायता से मोटरकार का प्रबंध कर दिया।. .....श्री बापट ने मोटरकार की परीक्षा की तथा कहाकि यह काम लायक है"।[19] (बापट, मिलिट्री का अवकाशप्राप्त सैनिक था और सधा हुआ ड्राईवर था)

अत: योजना के अनुरूप ये लोग मालाबार हिल रोड पर गाड़ी लेकर गए तो उस समय उस सड़क पर जाने पर रास्ता पंजाब की कुल्लेदार पगड़ीवाली पुलिस से घिरा था। आने जानेवाली सभी गाड़ियों के नंबर नोट किए जाते थे तथा उधर से रास्ता बन्द था। अत: गाड़ी वहां से हटा ली गई तथा काफी देर तक इधर उधर घूमते रहे। फिर वह गाड़ी लैमिंग्टन रोड पुलिस चौकी के आगे जा खड़ी हो गई। मालाबार हिल रोड की ओर से एक गाड़ी आई, दुर्गाभाभी के अनुसार जिस पर ऐसा लगा गवर्नर का झंडा लगा है उसमें से उतरते अंग्रेज अफसर पर पृथ्वी सिंह आजाद ने आदेश दिया और हमने गोलियां चला दीं तथा गाड़ी भगा दी गई।[20] इसकी पुष्टि मि. गर्वे (एक्साईज इंसपैक्टर) व इकबाली गवाह के बयानों से भी होती है।

बम्बई, 31वीं जनवरी को मि. गर्वे ने गवाही देते हुए कहाकि मैं फोर्ट विभाग का एक्साईज इंसपैक्टर हूं। मुझे याद है कि 9अक्टूबर 1930 की रात को लैमिंग्टन रोड की पुलिस चौकी पर गोली चली थी मैं सिनेमा के अन्तिम खेल से लौट रहा था। 12बजे आध ी रात का समय था। मैं फुटपाथ पर चल रहा था कि एक मोटर मेरे पास से गुजरी। उसके पीछे मि. टेलर बैठा हुआ था। मोटर पुलिस स्टेशन के सामने रुकी। सार्जेंट टेलर मोटर से उतरा और मोटर में बैठी महिलाओं की सहायता करने लगा कि इतने में फायर की आवाज हुई। मैंने देखा सड़क की दूसरी ओर एक कार खड़ी है।.....मैंने देखा कि आक्रमणकारियों की मोटर में 3 व्यक्ति और एक ड्राईवर है। पिछली सीट पर एक व्यक्ति बैठा था जिसके लम्बे-लम्बे बाल थे। गोली चलाकर कार वहां से रफूचक्कर हुई। मैं पीछे भागा और देखा कि उसका नंबर एक्स-813 है।[21]

इकबाली गवाह मि. मोघे ने कहाकि श्री बापट ने मुझे बताया कि हम पिछले 3 दिनों से पुलिस कमिश्नर की तलाश में थे। श्री स्वामी (बम्बई निवास के दौरान श्री सुखदेवराज, बाबा पृथ्वी सिंह आजाद व दुर्गाभाभी क्रमश: बुद्धिमान, स्वामीराव व शारदा के नामों से जाने जाते थे। ऐसा सुरक्षा कारणों से किया जाता था।) ने बताया कि पहले वह मालाबार हिल, पुलिस कमिश्नर की तलाश में गए परन्तु कड़ा बन्दोबस्त होने के कारण वे कुछ न कर सके। आखिरकार बहुत से पुलिस थानों का चक्कर काटते हुए हम लैमिंग्टन रोड पुलिस स्टेशन पहुंचे। श्री स्वामी ने यह भी कहाकि हमने आज सरदार भगत सिंह का बदला ले लिया है। हमें अब एक परचा छपवाकर बांटना चाहिए। गवाह ने कचहरी में एक परचा शिनाख्त किया जोकि श्री स्वामी ने छपवाने के लिए लिखा था।

इस घटना के बाद ये लोग तितर बितर हो गए। दुर्गाभाभी व सुखदेवराज सान्ताक्रूज होते हुए कल्याण स्टेशन पहुंचे तथा वहां से कानपुर की ओर प्रस्थान किया लेकिन ये लोग सीधे कानपुर नहीं पहुंचे। बम्बई षड्यन्त्र केस के दौरान कल्याण रेलवे स्टेशन के क्लर्क मि. राजकिशोर त्रिवेदी ने गवाही देते हुए कहाकि 11अक्टूबर को कल्याण से चालीसगांव तक की ढाई टिकटें एक सज्जन ने खरीदी थीं।[22]

इस तरह इस गोलीकांड के प्रमुख अभियुक्त श्रीमती दुर्गादेवी उर्फ शारदा, श्री सुखदेवराज उर्फ बुद्धिमान, श्री स्वामीराव उर्फ नाना साहब (पृथ्वी सिंह आजाद), श्री विश्वनाथ वैशम्पायन फरार घोषित कर दिए गए। बड़ी संख्या में गिरफ्तारियां की गईं और बम्बई में लम्बे बाल वाले युवकों को पुलिस पकड़कर पीटती रही। लेकिन दुर्गा भाभी तो उनकी पहुंच से बहुत दूर जा चुकी थीं। यद्यपि

यह केस एक लम्बे समय तक चला लेकिन महत्वपूर्ण गवाहों व मुखबिरों के होते हुए भी मुख्य अभियुक्तों के पकड़े न जा सकने के कारण बंद कर देना पड़ा।

कानपुर पहुंचने पर दल के नेता आजाद के क्रोध का सामना भी दुर्गाभाभी को ही करना पड़ा। इस घटना के विषय में पत्रों में पढ़कर वे अत्यन्त खिन्न थे। आजाद एक सटीक योजना निर्माता थे अत: इस प्रकार किसी योजना का असफल हो जाना उनके क्रोध को जन्म दे देता था। क्योंकि योजना का निर्माण करते समय उसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पक्षों पर विचार जरूरी होता है। लेकिन इस योजना में सम्भवतया दोनों पक्षों को नहीं देखा गया था और फिर यदि योजना सफल हो जाती तो आजाद उसकी त्रुटियों पर ध्यान न देते लेकिन प्रस्तावित योजना का असफल हो जाना और उसके स्थान पर पुलिस सार्जेंट पर हमला करके घायल कर देना जैसा मामूली काण्ड कर देना जिसमें व्यर्थ का जोखिम था उन्हें कदापि सहन नहीं था। लेकिन आजाद सदैव की भांति इस बार भी कुछ समय पश्चात ही सहज हो गए।

किसी भी योजना का सफल या असफल होना परिस्थितियों के अतिरिक्त उसके नेता पर भी निर्भर होता है यदि पृथ्वी सिंह आजाद ने उस समय इन्हें शूट करने का आदेश न दिया होता तो यह शूटिंग केस न होता। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि अन्य जो भी कारण रहे हों तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप उचित निर्णय न लेने के कारण यह योजना उचित रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकी। लेकिन इस घटना से दुर्गाभाभी के व्यक्तित्व में इस रूप में निखार आता है कि विधवा होने के बाद भी उन्होंने अग्रणी बनने का जो संकल्प लिया था वे उस पद से कभी विमुक्त नहीं हुईं तथा सदैव दल के प्रति अपनी निष्ठा व भक्ति को बनाए रखा। यह एक्शन दुर्गाजी के स्वाधीन व्यक्तित्व का परिचायक है। आजाद के नेतृत्व बिना तथा योजना की स्वीकृति आने के पूर्व ही इस योजना का अपने साहस व निर्णय द्वारा क्रियान्वित हो जाना पृथ्वी सिंह आजाद के साथ दुर्गाजी के चरित्र को भी उभारता है।

यह लेमिंग्टन रोड गोलीकाण्ड चाहे अपने एक उद्देश्य में असफल रहा हो परन्तु अपने दूसरे उद्देश्य में सफल रहा कि भगत सिंह आदि की फांसी के निर्णय के विरुद्ध क्रांतिकारी दल व भारतीय जन मानस का क्रोध इस घटना में प्रकट हुआ।

दुर्गाभाभी कानपुर से इलाहाबाद, बनारस पुन: इलाहाबाद भ्रमण करती रहीं। यह वह समय था जब गांधी-इर्विन पैक्ट की वार्ताएं चल रही थीं। दुर्गाभाभी और सुशीलादीदी गांधीजी से मिलने दिल्ली गईं। वहां जाने का उद्देश्य था कि गांधीजी को इस बात के लिए मना लें कि गांधी इर्विन पैक्ट में भगत सिंह आदि की फांसी के निर्णय को रोकने के लिए एक धारा रखी जाए।

प्यारेलाल एण्ड सन्स के रघुनन्दन शरण जो कांग्रेस व क्रांतिकारियों के मध्य कड़ी थे, दुर्गाभाभी व सुशीलादीदी को डा. अंसारी की कोठी पर ले गए थे। पं. नेहरू को इन लोगों ने अपने आने का उद्देश्य बताया और यह भी कहा कि हम लोग फरार हैं। गांध ीजी से मिलने पर उन्होंने कहाकि- 'तुम आ गईं हो अच्छा किया स्वयं को आश्रम में समर्पित कर दो, मैं तुम्हें पुलिस से बचा लूंगा।' दुर्गाजी ने कहा कि मैं अपने बचाव के लिए नहीं भगत सिंह आदि के विषय में बात कर रही हूं। गांधीजी ने इनकी बात वायसराय से कहने के लिए साफ-साफ मना कर दिया। दुर्गाभाभी व सुशीलादीदी द्वारा इस प्रकार समर्पण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। अत: वे लौट आईं। अपनी इस फरारी के दौरान दुर्गाजी अनेक स्थानों पर घूमती रहीं। मसूरी, देहरादून, ऋषिकेश, हरिद्वार, धर्मशाला। साथ ही पुलिस व सीआईडी भी इनकी खोज में पीछे-पीछे थीं। देहरादून में एक इसी प्रकार का प्रसंग है। वहां एक सीआईडी इन्सपैक्टर शिवानन्द द्वारा दुर्गाजी पहचान ली गईं लेकिन इससे पूर्व कि पंजाब पुलिस वहां पहुंचती, दुर्गाजी, सम्पूर्ण सिंह टण्डन व आचार्य उदयवीर शास्त्री (जो भगवतीचरण, भगत सिंह आदि के लाहौर नेशनल कॉलेज में शिक्षक रह चुके थे) के साथ निकल गईं। काफी दूर साइकिलों पर चलने के पश्चात ये लोग पैदल चले। मार्ग में दुर्गाजी के पैरों में छाले पड़ गए तो बहंगी बनाकर उसमें दुर्गाजी को बैठाकर ये लोग हरिद्वार पहुंचे। इस प्रकार एक बार पुन: वह पकड़ में नहीं आ पाईं। लेकिन उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि इस प्रकार छिपकर अधिक दिनों तक कैसे रहा जा सकता है क्योंकि दल की ओर से काम भी नहीं हो पा रहा था। भगत सिंह, भगवतीचरण, चन्द्रशेखर की शहादत के बाद दल छिन्न भिन्न हो गया था तथा बड़ी संख्या में सदस्य जेलों में थे। अत: भाभी ने लाहौर आकर फ्री प्रेस ऑफ इण्डिया में बयान दिया, उन्हें, 12सितम्बर 1939 को रेग्यूलेशन 1818 पैरा 3 के अन्तर्गत, गिरफ्तार कर लिया गया। दुर्गाजी लाहौर षड्यन्त्र केस (प्रथम) व बम्बई षड्यन्त्र केस की फरार थीं लेकिन ये दोनों केस समाप्त हो चुके थे और सरकार पुन: केस आरम्भ नहीं कर सकती थी साथ ही दुर्गाजी के खिलाफ कोई विश्वसनीय व स्पष्ट प्रमाण भी उपलब्ध नहीं था। अत: केस नहीं चलाया गया।

यदि हम दल के सामान्य कार्यों को छोड़ते चलें तो दुर्गाजी के क्रांतिकारी जीवन की दो घटनाएं ही पर्याप्त हैं जो सिद्ध करती हैं कि दल की सक्रिय सदस्या के रूप में जिस रूप का उन्होंने निर्वाह किया वह भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण है। इससे दुर्गाभाभी का एक साहसी, निर्भीक दृढ़ निश्चयवाली युवती का चरित्र उभरता है।

आज ये घटनाएं इतिहास की वस्तुएं हैं। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में इन घटनाओं का महत्व तब भी था जब हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व ने उसका अवमूल्यन कर दिया था या उसे नकार दिया था। लेकिन आज के निष्पक्ष इतिहासकार के लिए ये घटनाएं महत्वहीन नहीं हैं। गांधीजी का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ कि बम्बई शूटिंग के विषय में गांधीजी ने कोई टिप्पणी नहीं की। लगता है वे सम्भवत: यह सिद्ध करना चाहते थे कि इन तुच्छ घटनाओं की ओर ध्यान नहीं देते हैं। लेकिन यह सत्य है कि इन क्रांतिकारियों के कार्यों से जन मानस की भावनाएं आन्दोलित होती थीं और इन उभरी जनभावनाओं का अपने पक्ष में दोहन करने का कार्य कांग्रेस नेतृत्व ने किया जो निरन्तर इन क्रियाकलापों की निन्दा करता रहा है। जनता आन्दोलित तो क्रांतिकारियों के कार्यों से होती थी लेकिन उन्हें अपनी भावनाओं और आवेगों के प्रत्यक्षीकरण के लिए मंच कांग्रेस का ही दिखाई देता था अत: वे उसी के चारों ओर एकत्र हो जाते थे। क्रांतिकारी के जीवन में घटनाओं का बाहुल्य तो होता है किन्तु सभी घटनाएं इस योग्य नहीं होतीं कि उनका इतिहास में विशेष महत्व हो। केवल कुछ ही घटनाएं ऐसी होती हैं जिनके आलोक से देश का एक कौना ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश आलोकित हो उठता है। दुर्गाजी के जीवन की उपर्युक्त सांकेतिक घटनाएं न केवल उनके व्यक्तित्व को उभारती है बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय इतिहास को प्रभावित करती और दिशा देती हैं।

संदर्भ सूची

1. दिनेश पाठक, हाशिए पर क्यों हैं शहीदे-ए-आजम, इतिहास के पन्ने, मासिक पत्रिका अहा जिंदगी, मई 2014 अंक, प्रकाशक दैनिक भास्कर समूह, पृष्ठ 54
2. दुर्गाभाभी से लेखिका द्वारा शोध प्रबंध लिखने के दौरान लिए गए साक्षातकार
3. कामरेड रामचन्द्र, नौजवान भारत सभा एण्ड हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन, दिल्ली, 1986, पृ. 15
4. सी.एफ. एन्ड्रूज, इण्डिया एण्ड साइमन कमीशन, लंदन,1931, पृ.33
5. यशपाल, सिंहावलोकन प्रथम भाग, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984, एवं राजेन्द्र कसवां, क्रांतिकारी भगवती भाई, हिन्द पाकेट बुक्स दिल्ली, 1974, पृ. 30
6. तदैव, दुर्गाभाभी से लेखिका द्वारा .....
7. दि इण्डियन क्वाटरली रजिस्टर, वॉल्यूम 1, 1929 पृ. 186,एन.ए.आई. गृह विभाग (राजनीतिक) फाइल 22/11/29 पुलिस दिनांक 7. 03.1929, पृ. 28,29
8. शिव वर्मा, संस्मृतियां, समाजवादी साहित्य सदन,कानपुर, पृ. 29
9. शिव वर्मा (सम्पादक), शहीद भगत सिंह की चुनी हुई कृतियां, समाजवादी साहित्य सदन,कानपुर, 1987, पृ. 95
10. वीरेन्द्र सिन्धु, युगदृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युन्जय पुरखे, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1982
11. तदैव, दुर्गाभाभी से लेखिका द्वारा .....
12. तदैव
13. तदैव
14. जितेन्द्रनाथ सान्याल, अमर शहीद सरदार भगत सिंह, क्रांतिकारी प्रकाशन, 1970, पृ.105
15. श्री सत्यदेव विद्यालंकार, दीदी सुशीला मोहन, मारवाड़ी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 33
16. तदैव, दुर्गाभाभी से लेखिका द्वारा .....
17. मुखबिर कैलाशपति का बयान, प्रोसीडिंग्स, दिल्ली षड्यन्त्र केस दिनांक 19मई 1931
18. तदैव, दुर्गाभाभी से लेखिका द्वारा .....
19. मि. मोघे का बयान, बम्बई षड्यन्त्र केस प्रोसीडिंग्स, भविष्य साप्ताहिक, इलाहाबाद, 5फरवरी1931,पृ.4,5
20. पृथ्वी सिंह आजाद, क्रांतिपथ का पथिक (मेरी आत्मकथा), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1970, पृ. 187
21. भविष्य साप्ताहिक, इलाहाबाद, 12फरवरी 1931, पृ. 7
22. तदैव

रामायण : दार्शनिक चेतना

डॉ० सुगन्धा जैन

असिस्टेंट प्रो०, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

कामार्थगुणसंयुक्तं, धर्मार्थगुण सविस्तरम्।
समुद्रमिव रत्नाढ्यम् सर्वश्रुति मनोहरम्।।

रत्ननिधि, रत्नाकरसम आदि काव्य 'रामायण' वैदिक वांग्मय रूपी महोदधि से नि:सृत, दार्शनिक विचारधाराओं से मण्डित, गुण, अलंकार, ध्वनि, रस, छन्द आदि काव्यात्मक वैभव संपन्न अद्वितीय महाकाव्य है। वाल्मीकि कृत यह काव्यरत्न अपनी पवित्र वाक् से राम रूप सागर से समन्वित हो तीनों लोगों को पवित्र कर रहा है –

वाल्मीकि गिरी संभूता रामाम्भोनिधिसङ्गता।
श्रीमद्रामायणी गङ्गा – पुनाति भुवनत्रयम्।।

महर्षि वाल्मीकि रत्न निधि रामायण श्रीरूपा सीता जी के महनीय चरित्र का गान है –

काव्यरामायणं कृत्स्नं सीताश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधम् इत्येवं चकार चरितव्रत:।।

रामायण समस्त कलाओं का, विद्याओं का और ज्ञान का आगार हैं।[1] योगी भी रामधन रूप रामायण में रत होकर नित्यानंद का आस्वादन करते नहीं थकते हैं। राम पद में ही वह ब्रह्मानंद की प्राप्ति कर लेते हैं। श्री राम के अनुपम चरित का गान करने वाला यह काव्य यथार्थ में दर्शन की परिसीमा है। यहां समस्त दर्शन अपने राग में तल्लीन विश्व को आलोक देते हुए परिलक्षित होते हैं। रामायण में दर्शन इंद्रधनुषी छटा के रूप में निरंतर शोभायमान है। रामायण के पद-पद में दार्शनिक रहस्य, गूढ़ चिंतन एवं ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा प्राप्त होती है। दार्शनिकता की दृष्टि से रामायण संस्कृत वांग्मय का सूर्य-रूप उच्च कोटि का महाकाव्य है।

"रमायाइदम् चरितम् इति रामम्, रामस्य अयनम् इति रामायणम्" शत कल्पवल्ली उदार चरित्र सीता जी एवं ब्रह्म सहोदर त्रैलोक्याधिपति श्री राम[2] के विचित्र, परम- पवित्र, महनीय चरित्र की सुवास से सर्वथा सुरभित और सौम्य रूप 'रामायण' वेदांत, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, चार्वाक, बौद्ध और जैन आदि समस्त दार्शनिक विचारों से मंडित समोज्जवल रचना है। पग – पग पर दर्शन सुगन्धि रामायण के कथानक, पात्र, घटना, क्रम, शैली आदि को सुरभित करती हुई प्रतीत होती है। दर्शन की गूढ़, विचित्र परिकल्पनाओं को देखते हुए यह अनुभूति होती है कि मानो रामायण से ही उसने जीवंतता को प्राप्त किया हो। दर्शन के गहन रहस्यों का उद्घाटन करते हुए महर्षि की गंभीर गिरा परमसत्ता के तत्व विवेचन में सर्वत्र साफल्य को प्राप्त हुई है।

वास्तविकता यही है कि दर्शन की आधार भित्ति वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद या अन्य दर्शनशास्त्र न होकर मानव शक्ति-चिंतन है, जिसने सर्वप्रथम मानव को उसके 'स्व' को जानने की जिज्ञासा प्रदान की। यह वैचारिक सूत्र था जिसने उसे न केवल आश्चर्यचकित किया वरन् उसके हृदय को, मन को, मस्तिष्क को पूर्णत: आंदोलित कर, सामान्य धरातल से ऊपर उठा कर गहन चिंतन की शांत गुहा में प्रवेश कराकर सत्यानंद की ओर अग्रसर कर दिया। 'शब्द' वही परंतु अर्थों की गहराई नापने की क्षमता प्रदान कर शब्द की आत्मा से सामीप्यता प्रदान करा दी। ऐसी दिव्य दृष्टि महर्षि वाल्मीकि की रही जो उनके काव्य में सर्वत्र व्याप्त है। आवश्यकता उस क्षमता की है जो उस अप्रतिम शक्ति का अवलोकन कराने में सक्षम हो।

रामायण में वेदान्तिक चेतना

महर्षि बाल्मीकि ने आदि काव्य में ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जीव, माया, ज्ञान आदि का सूक्ष्म चित्रण किया है। उनके श्रामश विराट और व्यापक- रूप में ब्रह्म , साकार- रूप में ईश्वर और राम रूप में ईश्वर अवतारी जीव हैं। उनके स्वयं के रूप पर जगत् शक्ति (माया) का आरोप होते ही सृष्टि प्रक्रिया प्रारंभ हो उठती है। वेदान्तानुसार माया से आरोपित होने पर ही ब्रह्म में सृष्टि का अवलोकन होता है। श्रीमदध्यात्मरामायण के 'राम - हृदय' नामक प्रथम सर्ग में भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं की, परब्रह्म श्री राम अपनी माया से ही संपूर्ण जगत की रचना कर इसके बाहर भीतर सब ओर विशाल अंबर की भांति व्याप्त हैं तथा अपनी माया से आरोपित हो वह विश्व का परिपालन कर रहे हैं -

स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा,
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः।
सर्वान्तरस्थौपि निगूढ़ं आत्मा,
स्वमायया सृष्टिमिदं विचष्टे।।[3]

रामायण में 'ब्रह्म' को सनातन, अव्यय, वासुदेव, अनश्वर, परमतत्व आदि नामों से संबोधित किया गया है। अध्यात्म रामायण भी उन्हें प्रकृति से परे 'परमात्मा', अनादि, पुरुषोत्तम आदि के रूप में स्वीकार करता है।[4] यथार्थ भी यही है कि वह परमघन, चतुर्भुजाधारी श्रीहरि ही हैं।[5] उनके वेदांत - ब्रह्म होने व उनकी विभूतियों से मंडित होने के असंख्य उदाहरण रामायण में सर्वत्र विद्यमान हैं। स्वयं श्री महर्षि वाल्मीकि जी कहते हैं -

जगत्सृष्ट्यन्तकर्तारमजमव्यक्तरूपिणम्।
आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम्।। [6]

अर्थात श्री राम जो परब्रह्म रूप हैं सर्वशक्तिमान हैं वही जगत के रचयिता हैं, संहारकर्ता हैं, अजन्मा, अव्यक्त रूप समस्त लोकों के आधार, आराध्य और परम गरिमामय हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने 'आत्म तत्व' को परमात्मतत्व से अभिन्न नहीं माना है क्योंकि वह आत्मा ना देह रूप है, न इन्द्रिय रूप है, न प्राण रूप है, न चित्त, वासना, जीव, स्पंद, जगत् रूप है, न देशकाल वस्तु से परिछिन्न ही है।[7] वह तो शरीर आदि से बाहर और भीतर व्याप्त अविनाशी ब्रह्म है।

वेदांत - दर्शन में 'उपक्रम' अनुबंध- चतुष्टय के रूप में विख्यात है, जो रामायण को भी समलंकृत करता है। परब्रह्म परमात्मा स्वरुप भगवान विष्णु के चरित्र का गान करने वाले अलौकिक, दिव्य, काव्य ग्रंथ 'रामायण' में यह चारों बंध 'अधिकारी, विषय, संबन्ध और प्रयोजन' स्तंभ - चतुष्टय के रूप में विद्यमान हैं। जिसमें सर्वप्रथम अद्वितीय रामायण को पढ़ने का अधिकारी वही है जो कि कल्याण प्राप्ति की इच्छा रखता हो -

चिन्तयेद् राघवं नित्यं श्रेयः प्राप्तुं य इच्छति [8]

महर्षि बाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' लोक कल्याण हेतु विरचित परम तत्व के चरित्र का गान है जिसके अंतर्गत श्री हरि की संपूर्ण लीलाओं का, उनके मानव रूप का, दुष्टों के संहार का, धर्म की स्थापना, अलौकिक प्रेम, आदर्श, ज्ञान, विद्या लोकव्यवहार, कर्तव्य, कर्म आदि समस्त विषयों का वर्णन है, जो संसार के कल्याण हेतु हितकर हैं। ये अलौकिक रामकथा महर्षि को हाथ पर रखे हुए आँवले के समान अपने दिव्य तेज द्वारा प्रत्यक्ष हो गई थी[9]। जो प्रथमतः उन्हीं के सर्वानंदावाप्ति का प्रतीक है। इस अनुपम ग्रंथ का साक्षात संबंध परब्रह्म रूप श्री राम से ही है जो स्वयं में आदिकाव्य की अपूर्वता का परिचायक है। इस मोक्षकथा का परम प्रयोजन जीवनमुक्ति ही है[10]।

परिणाम और विवर्त को व्याख्यायित करते हुए वेदांत दर्शन में कहा गया है कि, किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की मिथ्या प्रतीति विवर्त है। अतः संसार ब्रह्म का विवर्त है न कि परिणाम। कारण यह है कि ब्रह्म में जगत का आभास होता है न कि परिणति, अतः अध्यात्म रामायण में भी श्री राम को परिणाम ही कहा गया है -

आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो[11]

श्री राम की अनासक्ति उनके परिणाम हीन होने की परिचायक है क्योंकि, आकांक्षा का संबंध अंतत: परिणाम से ही होता है - नैवाहं राज्यमिच्छामिसुखं न च मेदिनीम्

नैव सर्वानिमान् कामान् न स्वर्गे न च जीवितुम्[12]

श्रीराम स्वयं ब्रह्म हैं - "विष्णु अक्षरं पुरुषोत्तमम्" और उनकी माया श्री सीता जी हैं -

मां विद्धि मूलप्रकृतिम् ...।

तस्यसन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता

तत्सन्निध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतैऽबुधै: [13]।।

अर्थात वेदांत सम्मत समस्त तत्व - विचार रामायण में पूर्णत: परिलक्षित होते हैं। ब्रह्म, अज्ञान और माया, सृष्टि - प्रक्रिया, अध्यारोप, अपवाद आदि सभी वेदांतिक तत्व रामायण में प्रसंगत: यत्र - तत्र तथ्यात्मक रूप से रत्न जड़ित होकर विद्यमान हैं।

रामायण में सांख्यपरक चेतना

आदिकाव्य में व्याप्त राम और सीता के जीवन- दर्शन की गुप्त गुहा में प्रवेश किया जाए तो उस पर सांख्य की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। राम पुरुषोत्तम नारायण हैं तो सीता जगत जननी प्रकृति स्वरूपा नारायणी है[14]। प्रकृति में संक्षोभ (हलचल) से सर्वप्रथम 'सत - रज और तम' तीनों गुण न्यूनाधिक होने लगते हैं। तब सत्व-गुण की प्रधानता से महत्त-तत्व उत्पन्न होता है, रजोगुण की प्रधानता से अहंकार तथा तमोगुण की प्रधानता से पञ्चतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार प्रकृति से संपूर्ण 23 तत्व रूप जड़- जंगम सृष्टि का निर्माण होता है[15]।

अध्यात्म रामायण में प्रकृति रूपा सीता से संपूर्ण सृष्टि चक्र की उत्पत्ति का विशद वर्णन किया गया है -

त्वया संक्षोभ्यमाणा सा महत्त्वं प्रसूयते

महत्तत्त्वादहङ्कारस्त्वया सञ्चोदितादभूत।।

राजसानीन्द्रियाण्येव सात्त्विका देवता मन:

तेभ्यौऽभवत्सूत्ररूपं लिङ्ग सर्वगतंमहत् [16]।।

राम सांख्य के पुरुष के समान प्रकृति से परे इंद्रियों के अविषय, निर्मल, शांत, निर्विकार, निरंजन, निर्गुण, निष्क्रिय, निरवयव, चित्ततत्व पुरुषोत्तम हैं। पुरुष रूप वह सांख्यवत् प्रकृति के साथ संयुक्त होने पर ही प्रकृति के गुणों से युक्त होकर कर्ता और भोक्ता रूप में प्रतिभासित होने लगते हैं।[17] माता सीता सदैव उनकी सहधर्मिणी के रूप में उनके साथ उपस्थित रहती हैं - "इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव" तथा जनक दुहिता सीता भी छाया की भांति हमेशा उनकी अनुगामी हैं- "छायेवानुगतासदा"

मनस्वी राम प्रकृति के सत्- रज्- तम् आदि गुणों से संयुक्त रहने के फलस्वरुप उनके गुणों में दृढ़ता से रत रहते हैं -

मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पित:[18] तथा सीता के गुणों पर मोहित होकर निर्गुण होते हुए भी गुणवान भासित होते हैं। प्रकृतिवत् सीता जी श्रीराम के अभिप्राय को स्वत: अनुभूत कर लेती हैं -

"अन्तर्गतमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा।

तस्य भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा।।[19]

सांख्य सम्मत बुद्धि आदि तत्व को महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में मनुष्य की चेतना में विद्यमान सूक्ष्म विवेचन शक्ति के रूप में वर्णित किया है -

"सूक्ष्म बुद्धिर्विचारय"[20] *तथा "शक्ता: सूक्ष्मासुर्बुद्धिषु"*[21]

आदि कवि ने बुद्धि के सभी रूपों का रमणीय रूप अपनी कृति में अंकित किया है। सांख्य के अनुसार एहलौकिक कल्याण एवं नि:श्रेयस का हेतु धर्म तत्व रामायण का मूल है। धर्म के अधीन रामायण पात्र निरंतर आदर्श के प्रतीकात्मक रूप दृष्टिगोचर होते हैं। सांख्य के पुरुष श्रीराम और प्रकृति सीता, प्रजा के प्रति उनकी वात्सल्य पूर्ण दृष्टि एहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की परिचायिका है। यदि राजसिक बुद्धि कैकेयी हैं तो रावण आदि राक्षसी- बुद्धि, तामसी ख़ चेतना स्वरूप हैं। लोकोपकारक श्रीराम के

गुण, विद्याएं सात्विक गूढ़चेतना का पर्याय हैं। आदि काव्य रामायण में सत्य की प्रतिष्ठापना में सांख्यसम्मत मुक्ति के गूढ़ बिंदु समाहित हैं –

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्येत परम्

आदिकाव्य रामायण में सांख्य सम्मत सत्कार्यवाद की पूर्ण उपस्थिति परिलक्षित होती है। वहाँ भगवान विष्णु का राम रूप में जन्म लेना, अनेक वर्षों तक पृथ्वी पर रहकर जीव रूप में कष्ट भोगना, पुनः राज्य प्राप्ति, अन्ततः अपने श्री विग्रह में लय प्राप्ति सभी के पीछे मूल कारण नारद मुनि और पर्वत मुनि का श्राप था[22] तथा कार्य रावण का विनाश था। राम रूप में अवतार ग्रहण करना तथा विष्णु रूप में विलीन होना दोनों ही 'सत्' हैं फलतः 'सत्' से संबंधित कार्य और कारण दोनों ही साथ होंगे। ठीक इसी प्रकार माता लक्ष्मी का पृथ्वी पर अवतरित होने का कारण भी रुष्ट नारद मुनि का श्राप था[23] एवं रावण द्वारा ब्रह्मा जी से मांगा हुआ वरदान था[24], जिसके गर्भ में ही रावण नाश रूप कार्य छिपा हुआ था। जिसकी पूर्ति भगवान राम और सीता जी के जन्म के पश्चात हुई थी। आदि महाकाव्य स्वयं में सत्कार्यवाद का स्पष्ट उदाहरण है। महर्षि वाल्मीकि के सहृदय मनःसागर में सुप्त काव्यत्व शक्ति को क्रौंच के करुण निनाद ने जागृत कर दिया गया था, जो आदि काव्य की सृष्टि का कारण बना एवं उससे जनित व्यापार रामायण रूप कार्य हुआ। स्वयं सिद्ध है कि नियत कार्य (काव्योत्पत्ति) नियत कारण (काव्यत्व शक्ति एवं दिव्य ज्ञान) से ही सृजित होता है।

सांख्य सम्मत प्रमाणों की अद्भुत छटा भी महाकाव्य में द्योतित है। आदि काव्य रामायण स्वयं ही एक अद्भुत विश्व प्रसिद्ध आर्ष ऋषि प्रणीत, महनीय रचना है, जिसमें यत्र तत्र ब्रह्मविद्याओं का, दार्शनिक अनुभूतियों का, तत्वों का वर्णन प्राप्तव्य है। वैदिक वांग्मय वत्, लौकिक साहित्य का मूल यह महाकाव्य स्वयं आप्त वचन होने से आप्त प्रमाण का परिचायक है। प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण के आधार पर ही महर्षि ने श्रीराम (ब्रह्म) के चरित्र का बोध कराया था अतः इस कृति का मूल अनुमान प्रमाण ही है तथापि ऋषि ने प्रत्यक्ष और अनुमान आदि दार्शनिक शब्दों का अनेकशः प्रयोग किया है। "प्रत्यक्षमिव दर्शित[25]" "आत्मानुमात् पश्यामि मग्नस्त्वं शोक सागरे रामः[26] "आदि के द्वारा कवि ने प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण के बल पर ही सत्य का अवलोकन किया है। स्पष्टतः सांख्य दर्शन की स्वर्णिम ज्योति से प्रतिबिंबित आदि काव्य रामायण संस्कृत वांग्मय की गूढ़ गुहाओं को आलोकित कर रहा है।

मोक्ष की प्राप्ति के समय श्री राम बुद्धि, सुख-दुख, इच्छा-द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म तथा संस्कार आदि विशेष गुणों का सर्वथा त्याग कर शरीर से मुक्त होकर विदेह स्थिति में पहुंचकर अपने श्री विग्रह में लीन हो जाते हैं। जो न्याय मतानुसार अपवर्ग का उदाहरण है। न्याय दर्शन की षोडश तत्व विथिका – प्रमाण, प्रमेय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान आदि का ज्ञान कराते हुए निःश्रेयस की प्राप्ति पर समस्त जगत् को मानव के परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुए प्रतीत होते हैं। आदि कवि वाल्मीकि ने "यथाकालं यथान्यायं", "ततस्ते न्यायतः कृत्वा प्रविभागम्", "यथाक्रमं यथा न्यायं", "यदयंन्यायदृष्टार्थः" आदि कहकर यत्र तत्र न्याय दर्शन की तत्व पताकाओं को प्रदर्शित किया है।

वैशेषिक दर्शन के नौ में से छठा द्रव्य 'काल' है। यह काल सभी क्रिया, गति एवं परिवर्तन को उत्पन्न करने वाली शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। तंत्रमत में अंतरिक्ष में काल की अवस्थिति है और इस काल से ही जरा की उत्पत्ति होती है। विष्णु पुराण में काल को 'परब्रह्म' का रूप माना गया है। तिथ्यादितत्व में दी गई परिभाषा के अनुसार 'काल' आदि और निधन (विनाश) रहित, रुद्र और संकर्षण है। समस्त भूतों की कलना करने के कारण इसे काल कहते हैं।

कलनात सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः

महर्षि बाल्मीकि ने काल को सबसे बड़ी शक्ति और नियामक माना है यदि उनकी दृष्टि से यह कहा जाए कि काल ही परब्रह्म है तो अत्युक्ति नहीं होगी। उन्होंने काल को व्याख्यायित करते हुए कहा है –

नात्मनः काम करो हि पुरुषौयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चौनं कृतान्तः परिकर्षिति[27]।।

कवि ने दैव और काल दोनों के लिए ही कृतान्त शब्द का प्रयोग किया है।

कृतान्त एव सौमित्रे द्रष्टव्य मत्प्रवासेन[28]

आत्मा और परमात्मा के चिन्तन के साथ ही योग साधना का भी जन्म हुआ। वेदों में साधक शिर और हृदय को आपस में संयुक्त कर प्राण को सिर के मध्य में और मस्तिष्क के ऊपर प्रेरित करता है[29]। किन्तु जो साधक सांसारिक लिप्साओं से ऊपर हो इन्द्रियों व मन को वशीभूत कर योग द्वारा आत्मानन्द में लीन हो जाता है उसे रामायण में आत्मवान्, नियतात्मा, समाधिमान भवितात्मा आदि नामों से संबोधित किया गया है। वाल्मीकि रामायण में योगी पुरुष स्वयं श्री राम हैं।

रामायण में ऋषि जाबालि भौतिकवादी विचारों से युक्त हैं और सम्पूर्ण राक्षस जाति भी भौतिकता का ही अनुगमन करती हुई प्रतीत होती है। दोनों का ही दर्शन नास्तिक विचारों का परिणाम है। जबकि लंका में वेद ध्वनि भी होती है, पूजापाठ भी तथापि आचरण सात्विकता से रहित ही है। महर्षि जाबालि के श्री राम को दिए गये वचनों में चार्वाक की शुद्धता परिलक्षित है

निष्कर्ष

'रामायण' महाकवि वाल्मीकि की गूढ़ दार्शनिक रहस्यों को समाविष्ट किए ज्ञान उदधि रूप अप्रतिम रचना है। जिसमें समस्त दर्शन पल पल अवगाहन करते और रहस्यमयी मुक्ताफेनों से सुसज्जित होते प्रतीत होते हैं। शायद ही कोई ऐसी दार्शनिक विचारधारा हो जो रामायण सागर में न मिलती हो। जहॉ एक ओर रामायण लौकिक धरातल पर अतुलनीय ग्रन्थ है जिसमें समस्त लौकिक ज्ञान, संस्कृतियॉ, नीति, आचरण, धर्म, आदर्श, व्यवहार, प्रेरणायें समाहित हैं वहीं अलौकिक तेज पुञ्ज रूप दर्शन तत्व भी निहित हैं। रामायण का दार्शनिक सन्देश मुक्ति की प्राप्ति है, प्रकाश की ओर गमन है, वास्तविकता को अपनाना है, निःश्रेयस के साथ जीवनमूल्यों का अधिगम है। क्योंकि यही वे स्तम्भ हैं जिन पर संस्कृति का महान प्रासाद अवस्थित होता है। अतः श्री राम के आचरण को स्वयं में अवतरित करने वाला मोक्ष गति को प्राप्त होता है। रावण जैसे महातेजस्वी का आचरण भी पतन का कारक है। यह अतुलित दार्शनिक चिंतन ही रामायण का मूल है। जिसे महाकवि ने भारतीय दर्शन की कसौटी पर रखकर समाज के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित कर दिखाया है।

इति शुभम्

1. यस्मिन् रमन्ते मनुष्या विद्ययौज्ञानंविप्लवे
   तं गुरुं रामेति रमणाद् राम इत्यपि
   रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि
   इति रामपदेनैतत् परं ब्रह्ममि धीयते
2. त्रैलोक्याधिपति विष्णुं सर्वलोकनमस्कृताम् ख्र उत्तर कांड ख्र 17-26 , रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
3. बालकाण्ड- 1/18 ख्र श्रीमदध्यात्मरामायण (वेदव्यास), अनु० मुनीलाल, गीता प्रेस गोरखपुर , पृष्ठ -21
4. बालकाण्ड- 1/17 श्रीमदध्यात्मरामायण (वेदव्यास), अनु० मुनीलाल, गीता प्रेस गोरखपुर र , पृष्ठ -21
5. अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते चराघव
   लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ।।
   युद्धकाण्ड 117/14 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
6. उत्तर कांड 6/2 , रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
7. त्वमप्रमेयश्चदुरासदश्च - किष्किन्धा काण्ड 24/37 , रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
8. उत्तर कांड 111/20 , रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
9. "ततः पश्यति धर्मात्मा तत् सर्व योगमास्थितः
   पुरा यत् तत्रनिवृत्तं पाणावामलकं यथा" - बालकाण्ड, 3/6 , रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
10. "चतुर्वर्गप्रदं नित्यं चरितं राघवस्त तु" - उत्तरकाण्ड, 111/23 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
11. बालकाण्ड- 1/43, श्रीमदध्यात्मरामायण (वेदव्यास) अनु० मुनीलाल - गीता प्रेस गोरखपुर र , पृष्ठ -23

12. अयोध्या काण्ड - 34/47 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
13. बालकाण्ड- 1/34, 35 श्रीमदध्यात्मरामायण (वेदव्यास) अनु० मुनीलाल - गीता प्रेस गोरखपुर र, पृष्ठ -22-23
14. "रामः साक्षात् परं ज्योतिः परं धाम परः पुमान्, एवं
"सीतायाः मूल भूतायाः प्रकृतेः "
---- "अद्भुत रामायण, 1/19,11 (महर्षि वाल्मीकि), स०-रामकुमार राय, प्राच्य प्रकाशन जगतगंज, वाराणसी पृष्ठ -3 एवं पृष्ठ- 2
15. "मूल प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त
षोडकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।। - सांख्यकारिका (ईश्वर कृष्ण) -3
16. अरण्यकाण्ड - सर्ग -3, - 23,24,25,26 श्रीमदध्यात्मरामायण (वेदव्यास), अनु० मुनीलाल, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ - 129
17. "तस्मात्तत्संयोगदचेतनं चेतनावदिवलिङ्गम्
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः" -सांख्यकारिका (ईश्वर कृष्ण) -20
18. बालकाण्ड, 77/26 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
19. बालकाण्ड,77/27 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
20. बालकाण्ड,77/28 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
21.वाल्मीकि रामायणलकाण्ड,77/29 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
22. ---- "अद्भुत रामायण, 4/58-64 (महर्षि वाल्मीकि), स०-रामकुमार राय, प्राच्य प्रकाशन जगतगंज, वाराणसी पृष्ठ -27, 28
23. "अद्भुत रामायण, 6 / 15,16 (महर्षि वाल्मीकि), स०-रामकुमार राय, प्राच्य प्रकाशन जगतगंज, वाराणसी पृष्ठ -42
24. अद्भुत रामायण, 8 / 10,12 (महर्षि वाल्मीकि), स०-रामकुमार राय, प्राच्य प्रकाशन जगतगंज, वाराणसी पृष्ठ -65
25. बालकाण्ड, 4/8 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
26. किष्किन्धा काण्ड , 10/34 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
27. अयोध्याकाण्ड, 105/15 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
28. अयोध्याकाण्ड, 22/15 रामायण- महर्षि वाल्मीकि, स०-रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर
29. अथर्ववेद. 10/2/26, क्षेमकरण टीका, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

व्यावसायिक कॉलेजों के कम बुद्धिमान, औसत बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान छात्र अपनी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध का अध्ययन

हुस्ना बानो

शोध छात्रा, शिक्षा शास्त्र विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ, यू0पी0

डॉ० संजीव कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ, यू0पी0

शिक्षा नीति में व्यावसायिक शिक्षा को दी गई प्राथमिकता के अनुसार, फरवरी 1988 में माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की एक केंद्र प्रायोजित योजना शुरू की गई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत रोजगार क्षमता को बढ़ाना, मांग और मांग के बीच बेमेल को कम करना था। कुशल जनशक्ति की आपूर्ति और उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों के लिए एक विकल्प प्रदान करना। व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को व्यवसाय के लिए तैयार करना और उन्हें आवश्यक कौशल के साथ काम की दुनिया में प्रवेश करने में सक्षम बनाना है। इस कारण से, सामान्य शिक्षा के 10 साल पूरे करने के बाद, छात्र तकनीकी प्रक्रियाओं का नया व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने, मैनुअल संचालन को विनियमित करने और व्यापार के कुछ कौशल और चाल के बारे में बताता है। अंतिम, लेकिन कम से कम नहीं, छात्र को नागरिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। व्यावसायिक महत्व के कारण, महात्मा गांध ी जी ने बुनियादी शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की थी। यह बुनियादी शिक्षा कार्योन्मुखी या शिल्प केन्द्रित है। बुनियादी शिक्षा में शिल्प, बच्चे की रचनात्मक क्षमताओं को प्रशिक्षित करता है। जीवन में बाद में यह प्रशिक्षण युवाओं में किसी कार्य को कुशलतापूर्वक और शान से करने के लिए एक आंतरिक आग्रह पैदा करता है। इसलिए गांधी जी ने शिक्षा के स्वावलंबी पहलू के महत्व को पहचाना। वह चाहते थे कि हर लड़का और लड़की स्कूल से इस कदर सुसज्जित हों कि वे अपना वजन खुद खींच सकें, अगर वे कोई अच्छा पेशा पाने में असफल होते हैं। इसलिए उन्होंने दावा किया कि शिक्षा उनके लिए बेरोजगारी के खिलाफ एक तरह का बीमा होना चाहिए।

मुख्य शब्दः औद्योगिक प्रशिक्षण, माध्यमिक स्तर, उच्च माध्यमिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा।

परिचय

व्यावसायिक शिक्षा का स्तर

व्यावसायिक बुनियादी शिक्षाः व्यावसायिक बुनियादी शिक्षा एक आंशिक माध्यमिक स्तर की शिक्षा है जो माध्यमिक स्तर की व्यावसायिक योग्यता प्रदान करती है।

व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा: यह मध्यम स्तर की व्यावसायिक शिक्षा है जो तीसरे स्तर की व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करती है।

व्यावसायिक आगे की शिक्षा: यह एक विशिष्ट व्यावसायिक शिक्षा है जो पूर्व शिक्षा और पेशेवर अनुभव वाले वयस्कों को एक विशेष व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करने का अवसर देती है।

व्यावसायिक सेवाकालीन प्रशिक्षण: यह एक विशिष्ट व्यावसायिक शिक्षा है जो किसी व्यक्ति को श्रम बाजार की आवश्यकता के अनुसार उनकी उम्र और पिछली शिक्षा या व्यावसायिक योग्यता के अनुसार व्यवस्थित व्यावसायिक ज्ञान और कौशल हासिल करने का अवसर देती है। किसी व्यक्ति के लिए ऐसी शिक्षा प्राप्त करने पर कोई रोक नहीं है जो एक व्यक्ति को उद्यम में काम करने के लिए तैयार करती है।

व्यावसायिक उन्मुख शिक्षा: यह खेल, कला और संस्कृति में मूल्य अभिविन्यास बनाने वाले व्यक्ति द्वारा अर्जित व्यवस्थित ज्ञान और कौशल है। इसके अलावा, प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा का स्तर, यह विशिष्ट क्षेत्रों में तकनीकी शिक्षा के अधिग्रहण के लिए तैयारी करने का अवसर देता है।

आम तौर पर व्यावसायिक प्रारंभिक शिक्षा, आंशिक माध्यमिक शिक्षा या व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए नीचे दिए गए अनुसार दो प्रकार के स्कूल हो सकते हैं;

(1) ट्रेड स्कूल,

(2) व्यावसायिक माध्यमिक विद्यालय या तकनीकी विद्यालय।

अधूरी शिक्षा वाले और कुछ मामलों में बुनियादी शिक्षा वाले लोगों को भी ट्रेड स्कूलों में प्रवेश दिया जाता है। बुनियादी शिक्षा के साथ कार्यक्रम पेशेवर अधूरे बुनियादी शिक्षा कार्यक्रमों को पूरा करते हैं जो पेशेवर लाली पर केंद्रित होते हैं, जो पहले व्यावसायिक योग्यता स्तर के अनुरूप सरल कार्य कार्यों के प्रदर्शन की अनुमति देता है।

दूसरे व्यावसायिक योग्यता स्तर के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करने के लिए ट्रेड स्कूल प्राथमिक स्कूल शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करते हैं। इन शैक्षिक कार्यक्रमों की समयावधि 2 से 3 वर्ष है।

व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रमों की पेशकश करने वाले व्यावसायिक माध्यमिक विद्यालयों के लिए बुनियादी शिक्षा अनिवार्य है। इस तरह के कार्यक्रम की समय अवधि ज्यादातर 4 वर्ष है, क्योंकि एक साथ सामान्य माध्यमिक और व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करता है। ये स्कूल पहले से अर्जित माध्यमिक शिक्षा वाले छात्रों के लिए एक साल और दो साल के व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम चलाने में सक्षम हैं। इस तरह के कार्यक्रम तीसरे व्यावसायिक योग्यता स्तर के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करने पर जोर देते हैं। व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रमों में एकीकृत सामान्य विषय हैं जो स्नातकों को अपने कौशल और ज्ञान को बढ़ाने के लिए उच्च स्तर के शिक्षा कार्यक्रमों में अध्ययन करने का अधिकार देते हैं।

तकनीकी स्कूल व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रम देते हैं, लेकिन व्यावसायिक माध्यमिक विद्यालयों की तुलना में, इन स्कूलों को व्यावसायिक शिक्षा केंद्र का दर्जा दिया जाता है, जो स्कूल के संचालन और उच्च शैक्षिक प्रदर्शन की आवश्यकताओं की ओर इशारा करते हैं।

तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (टीवीईटी) प्रणाली

भारत में शिक्षा क्षेत्र के हर दूसरे हिस्से के रूप में, भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (टीवीईटी) प्रणाली वर्तमान में इसकी संरचना, पाठ्यक्रम और परीक्षा प्रणाली में बड़े पैमाने पर सुधार के दौर से गुजर रही है। भारत में अर्थव्यवस्था लगभग 8.5% वार्षिक की दर से बढ़ रही है जिसके परिणामस्वरूप उद्योग सुशिक्षित और प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी से जूझ रहे हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या का लगभग 53% 25 वर्ष से कम आयु वर्ग के युवा हैं और लगभग 31 करोड़ लोग 14 से 25 वर्ष की आयु के हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अधिकांश एशियाई देशों में औसतन 60% की तुलना में इस जनसंख्या के केवल 5% के पास TVET योग्यता है। भारत का 90% से अधिक व्यापार कार्यबल गैर-औपचारिक क्षेत्रों में काम कर रहा है। इस प्रकार यह अतिश्योक्ति नहीं होगी कि भारत में सरकारी उद्योग वर्तमान तेजी से विकास प्रशिक्षित और सुशिक्षित कर्मचारियों की कमी से प्रभावित है।

कोठारी आयोग ने खूबसूरती से कहा है, "हम स्कूली शिक्षा के भविष्य के रुझान को सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के एक उपयोगी मिश्रण की ओर देखते हैं, सामान्य शिक्षा जिसमें पूर्व-व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के कुछ तत्व शामिल हैं और इसकी बारी सामान्य शिक्षा का एक तत्व है। आने वाले वर्षों में जिस तरह के समाज में हम तेजी से जी रहे होंगे, दोनों के बीच पूर्ण अलगाव न केवल अवांछनीय होगा, बल्कि असंभव भी होगा।

इस कथन में "पूर्व-व्यावसायिक" शब्द का प्रयोग किया गया है। व्यावसायिक शिक्षा उच्च प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालय के बाद आगे की व्यावसायिक शिक्षा के अवसर प्रदान करने, प्राथमिक व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करने, उच्च शिक्षा जारी रखने का अधिकार और व्यावसायिक शिक्षा जारी रखने के लिए कौशल विकसित करने, गणित, विज्ञान का ज्ञान, अच्छा करने के लक्ष्य पर आधारित है। संचार कौशल, एक विदेशी भाषा में संवाद करने की गुणवत्ता और आधुनिक और उन्नत रोजगार बाजार परिदृश्य के लिए आवश्यक नई सूचना प्रौद्योगिकियों का उपयोग करने की गुणवत्ता।

भारत में व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा की वर्तमान संरचना

भारत में व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा संस्थान नीचे दिए गए हैं;

1. स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग (एमएचआरडी): यह वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम प्रदान करता है।
2. उच्च शिक्षा विभाग (एमएचआरडी): यह संगठन देश में तकनीकी शिक्षा के लिए जिम्मेदार है।
3. रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय (श्रम और जनशक्ति मंत्रालय): यह संगठन न केवल व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करता है बल्कि रोजगार के कार्य भी करता है।

भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की निगरानी केंद्र सरकार के 20 मंत्रालयों द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए, देश भर में कृषि केंद्रों के विस्तार का एक नेटवर्क जो ग्रामीण श्रमिकों और किसानों के लिए तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम प्रदान करता है, कृषि मंत्रालय द्वारा आयोजित किया जाता है। एक अन्य संगठन है जिसे खान मंत्रालय के नाम से जाना जाता है जो खान श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसी तरह, भारत में एक और संगठन है जो ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए काम कर रहा है। समुदाय के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के लिए काम कर रहा है।

भारत में व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण प्रणाली (वीईटी)

भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (टीवीईटी) प्रणाली त्रि-स्तरीय प्रणाली के माध्यम से मानव संसाधन विकसित करती है:

- स्नातकोत्तर और स्नातक स्तर के विशेषज्ञ (जैसे आईआईटी, एनआईटी और इंजीनियरिंग कॉलेज) प्रौद्योगिकीविदों और इंजीनियरों के रूप में प्रशिक्षित हैं।
- डिप्लोमा स्तर के स्नातक जो पॉलिटेक्निक में पर्यवेक्षकों और तकनीशियनों के रूप में प्रशिक्षित हैं।
- व्यावसायिक स्ट्रीम में उच्चतर माध्यमिक छात्रों के लिए प्रमाणपत्र-स्तर और आईटीआई में प्रशिक्षित लोगों के साथ-साथ कुशल और अर्ध-कुशल श्रमिकों के रूप में औपचारिक शिक्षुता के माध्यम से।

भारत सरकार के 17 से अधिक मंत्रालय या विभाग औपचारिक या गैर-औपचारिक वीईटी कार्यक्रमों को प्रदान या वित्त पोषण कर रहे हैं। इस प्रकार प्रस्तावित वीईटी कार्यक्रमों की कुल वार्षिक प्रशिक्षण क्षमता लगभग पच्चीस लाख होने का अनुमान है। हालांकि, लक्ष्य समूह, अवधि, प्रवेश योग्यता, पाठ्यक्रम, परीक्षण और प्रमाणन आदि के संदर्भ में विभिन्न कार्यक्रमों के बीच बहुत भिन्नता है, जिसके परिणामस्वरूप योग्यता, समकक्षता और ऊर्ध्वाधर गतिशीलता की मान्यता से संबंधित समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

अनुसंधान क्रियाविधि

अध्ययन की विधि

वर्तमान अध्ययन का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक कॉलेज के छात्रों की व्यावसायिक आकांक्षा और व्यावसायिक पसंद पर कुछ व्यक्तित्व सहसंबंधों और सामाजिक आर्थिक स्थिति के अंत:क्रियात्मक प्रभाव को निर्धारित करना था। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य

आश्रित चर पर स्वतंत्र चरों के मुख्य प्रभावों का पता लगाना भी है। वर्तमान अध्ययन की प्रकृति एवं उद्देश्यों के साथ-साथ शोध सर्वेक्षण पद्धति के संसाधनों को ध्यान में रखते हुए इस उद्देश्य के लिए वर्णनात्मक शोध पद्धति के अंतर्गत प्रयोग किया गया है। सभी मानदंडों और शर्तों का कड़ाई से पालन किया गया है, जो सर्वेक्षण पद्धति के लिए आवश्यक हैं।

शोधकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से लिंग व्यक्तित्व के मुख्य प्रभावों, छात्र की व्यावसायिक आकांक्षा और व्यावसायिक पसंद पर सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया। शोधकर्ता ने इन सभी चरों अर्थात व्यक्तित्व, सामाजिक आर्थिक स्थिति, व्यावसायिक आकांक्षा पर लिंग और व्यावसायिक कॉलेज के छात्रों की व्यावसायिक पसंद के बीच बातचीत के प्रभाव का भी अध्ययन किया।

जनसंख्या और नमूना

वर्तमान अध्ययन में जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया गया है।

- यूपीटीयू लखनऊ से संबद्ध मेरठ शहर के इंजीनियरिंग (सूचना प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिक्स और संचार, यांत्रिक शाखा (बी.टेक) छात्र) के सभी प्रथम वर्ष के छात्र।
- CCS विश्वविद्यालय मेरठ से संबद्ध मेरठ शहर के BBA (प्रबंधन) संस्थान के सभी प्रथम वर्ष के छात्र।
- मेरठ शहर के सभी शिक्षक शिक्षा (बी.एड छात्र) संस्थान से संबद्ध सीसीएस यूनिवर्सिटी मेरठ।

शोधकर्ता ने मेरठ शहर के कुल व्यावसायिक संस्थानों की सूची के माध्यम से व्यावसायिक संस्थानों (इंजीनियरिंग, प्रबंधन (बीबीए), शिक्षक शिक्षा (बी.एड) की एक सूची तैयार की। यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से 15 व्यावसायिक कॉलेजों (इंजीनियरिंग, प्रबंधन, शिक्षक शिक्षा) का चयन किया गया। (लॉटरी विधि) चयनित छात्रों की कुल संख्या 480 थी, प्रत्येक चरण में यादृच्छिक नमूनाकरण (लॉटरी पद्धति) का उपयोग किया गया था। कुल नमूने में 480 छात्र शामिल हैं, जिसमें 15 व्यावसायिक कॉलेजों के कुल छात्रों में से 240 लड़के और 240 लड़कियों का चयन किया गया था।

नमूनाकरण श्रेणी का विवरण निम्नलिखित तालिकाओं में दिया गया है:

इंजीनियरिंग छात्रों का वितरण

तालिका 1: इंजीनियरिंग कॉलेजों के नाम और उत्तरदाताओं की संख्या

Category of students	Course from which this students are taken	Respondents		Total
		Boys	Girls	
Engineering	College of Engineering & Rural TechnologyPartapur, Meerut	16	16	32
Engineering	ABSS Institute of Technology Roorkee road,Meerut	16	16	32
Engineering	Shri Nath ji Institute for technical Education	16	16	32
Engineering	Panchwati Institute of Engineering & Technology Meerut	16	16	32
Engineering	Radha Govind Engineering College, GarhRoad, Meerut	16	16	32

परिणाम और चर्चा

परिकल्पना-1: व्यावसायिक कॉलेजों के कम बुद्धिमान, औसत बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान छात्र अपनी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण रूप से भिन्न नहीं होते हैं। इस परिकल्पना के संबंध में शोधकर्ता ने निम्नलिखित तरीके से परीक्षण के लिए एनोवा और टी-टेस्ट लागू किया है: -

तालिका 2: कम बुद्धिमान, औसत बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान छात्रों का औसत और एसडी मान उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में

Groups	Less intelligent	Average intelligent	More intelligent
N	86	288	106
SUMS	004941	005563	005174
MEANS	0041.18	0047.36	0043.12
SD	0015.76	0015.86	0014.60

तालिका 3: कम बुद्धिमान, औसत बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में एनोवा परीक्षण के परिणाम।

SV	N	DF	SS	MSS	F value	P-Value	Significance
Between group	480	2	1645.82	822.91	3.43	0.05	Significant
Within group		477	85557.28	239.66			
Total		479	87203.10				

तालिका 3 के परिणाम दर्शाते हैं कि प्राप्त F–मान 3.43, df/479 पर महत्व के 0.05 (3.01) स्तर पर F–मान से अधिक है। यह मान महत्वपूर्ण है 0.05 के स्तर पर, लेकिन यह 0.01 (4.65) के स्तर पर df / 479 पर महत्वपूर्ण नहीं होगा। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

तालिका 4 कम बुद्धिमान, औसत बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में टी-टेस्ट की परिणाम तालिका।

Test Columns	N–1	N–2	Mean–1	Mean–2	SD-1	SD–2	t-value	P-value	Significace
Less intelligent with Average intelligent	86	288	41.18	47.36	15.76	15.86	2.35	0.05	Significant
Less intelligent with More intelligent,	86	106	41.18	43.12	15.76	14.60	1.99	0.05	Significant
Average intelligent with More intelligent	288	106	47.36	43.12	15.86	14.60	2.01	0.05	Significant

तालिका 4 कम बुद्धिमान और औसत बुद्धिमान के बीच टी–परीक्षण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्राप्त टी–मान (2.35) डीएफ/372 पर महत्व के 0.05 (1.97) स्तर पर टी–मान से अधिक है। यह मान 0.05 के स्तर पर महत्वपूर्ण है लेकिन यह 0.01 (2.59) के स्तर पर df/372 पर महत्वपूर्ण नहीं होगा। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिणाम तालिका 4 कम बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान के बीच टी–परीक्षण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्राप्त टी–मान (1. 99) डीएफ/190 पर महत्व के 0.05 (1.97) स्तर पर टी–मान से अधिक है। यह मान 0.05 के स्तर पर महत्वपूर्ण है लेकिन यह

0.01 (2.59) के स्तर पर df/190 पर महत्वपूर्ण नहीं होगा। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिणाम तालिका 4 औसत बुद्धिमान और अधिक बुद्धिमान के बीच टी-परीक्षण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्राप्त टी-मान (2.01) डीएफ/392 पर महत्व के 0.05 (1.97) स्तर पर टी-मान से अधिक है। यह मान 0.05 के स्तर पर महत्वपूर्ण है लेकिन यह 0.01 (2.58) के स्तर पर df/392 पर महत्वपूर्ण नहीं होगा। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष

मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं और परामर्शदाताओं के लिए निहितार्थ

मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं के लिए अध्ययन की खोज कई तरह से उपयोगी हो सकती है। जिससे छात्रों की समस्या का समाधान हो सके। मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं और परामर्शदाताओं को छात्रों की व्यावसायिक आकांक्षा और व्यवसाय की पसंद पर विभिन्न विशेषताओं और प्रभाव को समझने की जरूरत है। अध्ययन का परिणाम काउंसलर को इस संबंध में सीआरएस प्रदान करने में हो सकता है। मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं को यह समझने के लिए भी अध्ययन द्वारा निर्देशित किया जा सकता है कि छात्र-परामर्शदाता और मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं के लिए मार्गदर्शन समर्थन के रूप में तत्काल और तत्काल उपयोगी क्या है, जो कभी भी परामर्श और मार्गदर्शन कार्य से संबंधित हैं, सहायता के लिए ऐसी सेवाओं की व्यवस्था कर सकते हैं व्यक्तित्व कारकों में सुधार के लिए छात्र अपने भविष्य के व्यावसायिक विकास और अपने अध्ययन में अपनी बौद्धिक क्षमता को चौनलाइज करने के लिए अपना भविष्य बनाते हैं।

सामाजिक-प्रगति और राष्ट्र की मांगों के लिए निहितार्थ

कुल मिलाकर, अतीत और वर्तमान पूर्वानुमान केंद्रित प्रतीत होते हैं। व्यावसायिक आकांक्षाओं और व्यवसाय के विकल्पों में सबसे अधिक भेद करने वाले चरों पर कुशल भविष्यवाणी की खोज प्रश्न को संतुष्ट कर सकती है। छात्र की व्यावसायिक आकांक्षा और व्यावसायिक पसंद की भविष्यवाणी को उन सभी के लिए अधिक कुशल और प्रभावी कैसे बनाया जा सकता है जो छात्र के उत्पादन में सुधार में संलग्न हैं। अध्ययन की खोज ऐसी मूल्यवान और उपयोगी जानकारी प्रदान करने के लायक है।

अध्ययन के बहिर्वाह का सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह छात्र की प्रगति की जाँच की पड़ताल करता है। अध्ययन खुद को साबित करता है

सामाजिक प्रगति के लिए छात्रों के अग्रेषण और योगदान में विचारोत्तेजक। वाहक निर्णय प्रक्रिया में व्यवसाय की पसंद पर छात्रों की आकांक्षा को प्रभावित करने वाले कारक के अध्ययन से उत्पन्न गठन, शैक्षिक कार्यक्रमों को डिजाइन करने में लगभग सैद्धांतिक और व्यावहारिक महत्व का है, जिसका अध्ययन विभिन्न पृष्ठभूमि वाले छात्रों की आवश्यकता के लिए किया जाता है। इस प्रकार, राष्ट्रीय मांग के विभिन्न दायरों के लिए संभावित प्रतिभाओं की पहचान प्रदान करने में सहायक बनें।

संदर्भ सूची

- हार्नेट, एस (2018)। कॉलेज के छात्रों की व्यावसायिक वरीयता। निबंध सार। 29, 11-ए
- हार्वे, एम.जी. और केरिन, आर.ए. (2018)। किशोरों की व्यावसायिक आकांक्षाओं पर सामाजिक स्तरीकरण और आयु का प्रभाव। जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 71(5), 262-266।
- हॉसन, जे। (2018)। नौवीं कक्षा की लड़कियों की व्यावसायिक पसंद और उनके माता-पिता का व्यावसायिक स्तर। व्यावसायिक मार्गदर्शन त्रैमासिक, 13, 261-264।
- हेर, ई.एल. (2018)। कैरियर विकास और इसका अभ्यास: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। कैरियर विकास त्रैमासिक, 3, 1-16।
- हेविट, जे। (2018)। करियर की पसंद को प्रभावित करने वाले कारक। 15/02/2010 को ूमीवू.बवउ से उद्धृत।
- हेविट, एल.एस. (2016)। प्राथमिक स्कूली बच्चों की करियर आकांक्षाओं में आयु और लिंग अंतर। जर्नल ऑफ सोशल साइकोलॉजी, 96(2), 173-177.

- हॉजकिन्स, बीजे और पार, ए (2017)। अल्बर्टा में ग्रामीण और शहरी पुरुष किशोरों के बीच शैक्षिक और व्यावसायिक आकांक्षाएं। शैक्षिक अनुसंधान के अल्बर्टिया जर्नल, 11(4), 255-262।
- होल्डन, जीएस (2017)। शैक्षिक योग्यता और व्यावसायिक पसंद की सापेक्ष दृढ़ता। कार्मिक और मार्गदर्शन जर्नल, 40, 36-41।
- हॉलैंड जे.एल. (2017) द प्रेजेंट स्टेटस ऑफ ए थ्योरी ऑफ वोकेशनल चॉइस। व्यावसायिक विकास पर परिप्रेक्ष्य। बाल्टीमोर: अमेरिकन पर्सनेल एंड गाइडेंस एसोसिएशन।
- हॉलैंड, जे.एल., गॉट, एफ. और गोइग। जी.डी. (2017)। स्कूल रिपोर्ट्स के सामाजिक संगठन के लिए व्यावसायिक आकांक्षा केंद्र के लिए एक टोपोलॉजी लागू करना- जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय, 176, 19।
- हॉल्ट, पी.पी. और स्मिथ, एम.सी. (2018)। व्यावसायिक विकल्पों, प्राथमिकताओं और आकांक्षाओं की संख्या और विविधता में आयु और लिंग अंतर। व्यावसायिक मनोविज्ञान का जर्नल, 51 (2), 119-125।
- हॉवेल, ग्वेन्डोलिन जेनकिंस, (2018)। माता-पिता के प्रभाव, आत्म-अवधारणा, एसईएस, जाति और लिंग का भविष्यवाणियों और कैरियर की परिपक्वता के रूप में उपयोग करते हुए एक बहु प्रतिगमन विश्लेषण। निबंध सार इंटरनेशनल। 50 (3) 649।
- इंडोवु, ए.आई. और डेरे, ए.ओ. (2017)। नाइजीरिया में हाई स्कूल सीनियर्स की सामाजिक आर्थिक स्थिति और व्यावसायिक आकांक्षाएं, शैक्षिक परामर्श जर्नल, 20(4), 136-192।
- जैक्सन, एम., मीरा, एम. और अरोड़ा, एम. (2017)। ग्रामीण युवाओं के पिता की पहचान, उपलब्धि और व्यावसायिक व्यवहार। व्यावसायिक व्यवहार के जर्नल, 4(1), 85-96.

आदर्शमूलक नीतिशास्त्र एवं विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र में सम्बन्ध

डॉ० प्रमोद कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय ज्ञानपुर, भदोही, उ0प्र0

शोध सारांश:

नीतिशास्त्र की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र वह आदर्शमूलक अथवा नियामकविज्ञान है जो मनुष्य के आचरण का किसी आदर्श के परिप्रेक्ष्य में सम्यक् अध्ययन करता है। यह मनुष्य के लिये ऐसे आदर्शों का निरूपण करता है जिनके अनुसार वह अपने कर्त्तव्यों का निर्धारण कर सके एवं अपने चरित्र का निर्माण कर सके, साथ ही साथ उन्हीं आदर्शों अथवा सिद्धान्तों के आलोक में अपने तथा अन्य व्यक्तियों के कर्मो एवं चरित्रों का सम्यक् मूल्यांकन भी कर सके। आदर्शमूलक नीतिशास्त्र ही व्यक्ति को वह प्रेरणा प्रदान करता है जिससे वह अपनी इच्छाओं भावनाओं अथवा सहज वृत्तियों से ऊपर उठकर कर्त्तव्य एवं औचित्य के प्रत्यय के अनुरूप अपने आचरण को दिशा देता है, एवं व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों एवं चरित्र को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है।एक तरफ मानकीय नीतिशास्त्र के सम्मुख जहाँ व्यक्ति एवं उसका आचरण अथवा चरित्र है, तो वहीं दूसरी तरफ अधि नीतिशास्त्र के सम्मुख सम्पूर्ण नैतिक भाषा है। मानकीय नीतिशास्त्र व्यावहारिक जीवन से सीधे तौर पर संपर्क स्थापित करता है, जबकि अधिनीतिशास्त्र नैतिक भाषा के अर्थ-विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण को महत्व देता है और इसीलिये यद्यपि यह व्यावहारिक जीवन से सीधे तौर पर संबंधित नहीं है, तथापि मानकीय नीतिशास्त्र की कुछ मौलिक संकल्पनाओं पर प्रकाश डालने में अधि नीतिशास्त्र का विशेष महत्त्व है।

Keywords :- नीतिशास्त्र, अधिनीतिशास्त्र, उपयोगितावाद, आदर्शमूलक नीतिशास्त्र।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र एक आदर्शमूलक आकारिक विज्ञान भी है। इसका स्वरूप तथ्यात्मक एवं अमूर्त दोनों होता है। यह अन्य आकारिक विज्ञान जैसे-गणित एवं तर्कशास्त्र की भांति अमूर्त चिंतन भी करता है किन्तु यह केवल अमूर्त एवं वैचारिक चिंतन मात्र नहीं है, बल्कि इसका स्वरूप आदर्श मूलक भी है। यह आदर्शों, मूल्यों एवं प्रतिमानों को परिभाषित एवं निर्धारित करने का प्रयास भी करता है। यद्यपि यह अपने विषयवस्तु के लिए मानव-व्यवहारों से संबंधित तथ्यों पर आधारित होता है। नीतिशास्त्र से आदर्शमूलक नीतिशास्त्र का ही बोध होता है। नीतिशास्त्र की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र वह आदर्शमूलक अथवा नियामक है जो मनुष्य के आचरण का किसी आदर्श के परिप्रेक्ष्य में सम्यक् अध्ययन करता है। यह मनुष्य के लिये ऐसे आदर्शों का निरूपण करता है जिनके अनुसार वह अपने कर्त्तव्यों का निर्धारण कर सके एवं अपने चरित्र का निर्माण कर सके, साथ ही साथ उन्हीं आदर्शों अथवा सिद्धान्तों के आलोक में अपने तथा अन्य व्यक्तियों के कर्मो एवं चरित्रों का सम्यक् मूल्यांकन भी कर सके। उपरोक्त कार्य के लिये शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित, कर्तव्य आदि मूलभूत नैतिक संप्रत्ययों की आवश्यकता होती है, क्योंकि नैतिक आचरण एवं सम्पूर्ण नैतिकता की व्याख्या इन्हीं संप्रत्ययों के माध्यम से होती है। इसी कारण से हम इन संप्रत्ययों एवं निर्णयों को एक व्यापक अर्थ में 'नैतिक संप्रत्यय' कहते हैं। किन्तु व्यावहारिक जीवन में हम इन्हीं संप्रत्ययों का प्रयोग नीति से भिन्न सन्दर्भो में भी करते हैं। जैसे- जब हम कहते हैं कि ''यह एक अच्छी कार है'' तब हम यहाँ 'अच्छा' (Good) शब्द का प्रयोग नीति-भिन्न अथवा निर्नैतिक प्रसंग में करते हैं। अत: नैतिक संप्रत्ययों और निर्णयों के नैतिक और निर्नैतिक प्रयोगों को स्पष्ट करने तथा समझने के लिये सर्वप्रथम इन संप्रत्ययों और निर्णयों के विभिन्न प्रकार के प्रयोगों तथा अर्थों को स्पष्ट करना आवश्यक होता है। यद्यपि इस

तरह के अर्थपरक् विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण के कार्य, नीति निर्धारण के कार्य में अत्यधिक सहायता पहुँचाते हैं, किन्तु इस प्रकार का कार्य स्वयं मानकीय नीतिशास्त्र नहीं करता है, अपितु यह कार्य विशेष रूप से अधिनीतिशास्त्र से संबंधित है। आदर्श-मूलक नीतिशास्त्र एवं अधिनीतिशास्त्र के बीच स्थित इसी प्रकार के अन्तर को स्पष्ट करते हुये जॉन यास्पर्स कहते हैं कि ''नीतिशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले मुख्य शब्द शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य आदि हैं। इन शब्दों के अर्थों के संबंध में कभी समाप्त न होने वाला वाद-विवाद चला है। इस नीतिशास्त्रीय अर्थ-विश्लेषण एवं इन अर्थों के पारस्परिक संबंधों पर विचार करने वाला शास्त्र ही अधिनीतिशास्त्र है। जबकि नीतिशास्त्र का वह दूसरा भाग अर्थात् मानकीय अथवा आदर्शमूलक नीतिशास्त्र है, जिसको सुकरात, प्लेटो, अरस्तू के समय से ही प्रधानता दी जाती रही है। मानकीय नीतिशास्त्र का कार्य ऐसे सर्वस्वीकृत एवं तर्कसंगत सिद्धान्तों को खोज निकालना है कि किस प्रकार की बातें अच्छी हैं और किस प्रकार के कार्य उचित हैं''[1]

अधिनीतिशास्त्र का उद्देश्य व्यावहारिक जीवन में मनुष्य का मार्गदर्शन करना नहीं है। यह मानवीय आचरण के संदर्भ में किसी मानकीय सिद्धान्त का प्रतिपादन भी नहीं करता है, वस्तुतः नैतिकता के सन्दर्भ में दिये गये सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्तों द्वारा आदर्शमूलक नीतिशास्त्र व्यावहारिक जीवन में मनुष्य के आचरण का मार्गदर्शन करता है। आदर्शमूलक नीतिशास्त्र ही व्यक्ति को वह प्रेरणा प्रदान करता है जिससे वह अपनी इच्छाओं भावनाओं अथवा सहज वृत्तियों से ऊपर उठकर कर्त्तव्य एवं औचित्य के प्रत्यय के अनुरूप अपने आचरण को दिशा देता है, एवं व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों एवं चरित्र को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। उदाहरणार्थ उपयोगितावाद एक नैतिक सिद्धान्त है जो हमें यह बताता है कि ''अधिकतम मनुष्यों का अधिकतम सुख अथवा आनन्द ही मनुष्य के लिये सर्वोच्च शुभ है'', अतः अधिकतम मनुष्यों के अधिकतम सुख के आधार पर ही उसके कर्मों के औचित्य अथवा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय किया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानकीय नीतिशास्त्र के सम्मुख जो समस्यायें हैं वे अधिनीतिशास्त्र की समस्याओं से मूलतः भिन्न हैं। मानकीय नीतिशास्त्र हमें यह बताता है कि हमारे लिये परम शुभ क्या है? और हमें क्या करना चाहिये? जबकि अधिनीतिशास्त्र ''अमुक वस्तु हमारे लिये शुभ है'' अथवा अमुक ''अमुक कर्म हमारा कर्त्तव्य है'' इत्यादि नैतिक निर्णयों के अर्थ एवं स्वरूप का स्पष्टीकरण एवं विश्लेषण करता है, साथ ही इन निर्णयों में प्रयुक्त नैतिक शब्दों अथवा प्रत्ययों के अर्थ का भी विश्लेषण करता है। मानकीय नीतिशास्त्र मनुष्य के आचरण एवं चरित्र को मार्गदर्शन प्रदान करने के लिये नैतिक मूल्यों पर आधारित कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है और इन सिद्धान्तों के समर्थन में तर्क प्रस्तुत करता है। जबकि अधिनीतिशास्त्र इन तर्कों के स्वरूप एवं इनकी विधियों की परीक्षा करता है। इस कार्य में अधिनीतिशास्त्र नैतिक भाषा को ही अपनी विषयवस्तु बनाता है, और नैतिक भाषा के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये उसका विश्लेषण करता है।

यद्यपि नैतिक दर्शन की इन दोनों विधाओं का स्वरूप और क्षेत्र भिन्न-भिन्न है तथापि इन दोनों के बीच कोई अलंघ्य खाई नहीं है। हम ऐसा भी नहीं कह सकते कि दोनों पूर्णतः भिन्न एवं परस्पर स्वतंत्र हैं। वास्तव में अधिनीतिशास्त्र मानकीय नीतिशास्त्र का पूरक अथवा सहायक है। अधिनीतिशास्त्र उन नैतिक निर्णयों के अर्थ एवं स्वरूप का स्पष्टीकरण विश्लेषण एवं प्रमाणीकरण करता है, जिनको मानकीय नीतिशास्त्र अपने सिद्धान्तों के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है, और जो व्यावहारिक जीवन में हमारा मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार मानकीय नीतिशास्त्र में प्रयुक्त नैतिक निर्णयों एवं तार्किक युक्तियों के अर्थ एवं स्वरूप को भलीभाँति समझने के लिये अधिनीतिशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से अधिनीतिशास्त्र का मानकीय नीतिशास्त्र के पूरक अथवा सहायक के रूप में विशेष महत्त्व है।

मानकीय नीतिशास्त्र का उद्देश्य नैतिक आदर्शों अथवा सिद्धान्तों की स्थापना करना है, जबकि अधिनीतिशास्त्र का उद्देश्य नैतिक प्रत्ययों अथवा निर्णयों का स्वतंत्र रूप से विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण करना है, यही कारण है कि इसे विश्लेषणात्मक अथवा आलोचनात्मक नीतिशास्त्र भी कहते है। एक तरफ मानकीय नीतिशास्त्र के सम्मुख जहाँ व्यक्ति एवं उसका आचरण अथवा चरित्र है, तो वहीं दूसरी तरफ अधिनीतिशास्त्र के सम्मुख सम्पूर्ण नैतिक भाषा है। मानकीय नीतिशास्त्र व्यावहारिक जीवन से सीधे तौर पर संपर्क स्थापित करता है, जबकि अधिनीतिशास्त्र नैतिक भाषा के अर्थ-विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण को महत्व देता है और इसीलिये यद्यपि यह व्यावहारिक जीवन से सीधे तौर पर संबंधित नहीं है, तथापि मानकीय नीतिशास्त्र की कुछ मौलिक संकल्पनाओं पर प्रकाश डालने में अधिनीतिशास्त्र का विशेष महत्त्व है। जैसे, 'शुभ' अथवा 'कर्त्तव्य' के प्रत्यय के विश्लेषण के द्वारा अधिनीतिशास्त्र इनके वास्तविक अर्थ के बारे में विचार करता है और इनसे संबंधित अनेक पक्ष हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे इन प्रत्ययों के व्यावहारिक जीवन में होने वाले प्रयोगों पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः हम कह सकते हैं कि परोक्ष रूप से अधिनीतिशास्त्र भी हमारे

जीवन को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त अधिनीतिशास्त्र में ऐसी विधियों का भी अध्ययन किया जाता है, जिनके आधार पर नैतिक निर्णयों को उचित या अनुचित बताया जा सकता है जबकि नीतिशास्त्र में हम मूल रूप से ऐसे नैतिक आदर्शों अथवा सिद्धान्तों का अध्ययन करते हैं जो कि नैतिक निर्णयों के स्रोत होते हैं।

अधिनीतिशास्त्र वस्तुतः शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित, कर्त्तव्य आदि नैतिक शब्दों के वास्तविक अर्थ का पता लगाता है और यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि जब हम इन शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वास्तव में हम क्या कहना चाहते हैं। जबकि मानकीय नीतिशास्त्र नैतिक मूल्यों अथवा आदर्शों के अनुरूप शब्दों अथवा प्रत्ययों का प्रयोग करके हमारे व्यावहारिक जीवन में हमारा मार्गदर्शन करने का प्रयास करता है। मानकीय नीतिशास्त्र नैतिक मूल्यों पर आधारित आदर्शों अथवा सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है और उन्हें पुष्ट करने के लिये कुछ तर्क भी देता है। जैसे-मिल अपने सुखवाद एवं उपयोगितावाद को सिद्ध करने के लिये तर्क देता है कि ''प्रत्येक व्यक्ति का सुख उसके लिए शुभ है अतः 'सामान्य सुख' व्यक्ति समुच्चय के लिए शुभ है।''[2] अधिनीतिशास्त्र का कार्य इन सभी तर्कों की परीक्षा करना है, और इन तर्कों को उचित अथवा अनुचित सिद्ध करना है। अधिनीतिशास्त्र यह भी परीक्षा करता है नीतिशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले तर्कों का स्वरूप अन्य विज्ञानों में प्रयुक्त होने वाले तर्कों से किस प्रकार से भिन्न है। अतः अधि नीतिशास्त्र, मानकीय नीतिशास्त्र में प्रयुक्त समस्त तर्कों की परीक्षा करता है।

अधिनीतिशास्त्र की उपर्युक्त इस मूल अभिवृत्ति के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि, इसका मूल उद्देश्य आदर्शमूलक नीतिशास्त्र के क्षेत्र में आने वाले नैतिक सिद्धान्तों एवं नैतिक निर्णयों का विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन करना है। मानकीय नीतिशास्त्र जिन विषयों और समस्याओं को अछूता छोड़ देता है, अधिनीतिशास्त्र उन्हीं को अपने क्षेत्र के अन्तर्गत रखता है, किन्तु इसका कार्य मानकीय नीतिशास्त्र के नैतिक सिद्धान्तों का खण्डन अथवा मण्डन करना नहीं है, अपितु इसका कार्य नैतिक निर्णयों एवं संप्रत्ययों का विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण करना है।

तार्किक भाववाद एवं भाषा विश्लेषण दर्शन के प्रभाव में ए0जे0 एयर, आर0एम0हेयर आदि कुछ समकालीन दार्शनिकों ने केवल अधिनीतिशास्त्र के अध्ययन को ही सम्पूर्ण नैतिक दर्शन मान लिया है। कार्नेप के अनुसार-''मानकीय नीतिशास्त्र तथ्यों की परीक्षा नहीं है, अपितु वह इस बात की जाँच करने का मिथ्या दावा करता है कि 'क्या शुभ है' और 'क्या अशुभ है', 'क्या करना उचित है' और 'क्या अनुचित' इस प्रकार दार्शनिक नीतिशास्त्र का उद्देश्य मानवीय कर्मों के लिये मानकों अथवा नैतिक मूल्य के विषय में निर्णयों का वर्णन करना है।''[3] इसी प्रकार आर0एम0 हेयर का कथन है कि- ''नीतिशास्त्र नैतिक शब्दों के तार्किक गुणों का अध्ययन है।''[4] इस प्रकार नीतिशास्त्र के अध्ययन में अधिनीतिशास्त्र को इतना अधिक महत्त्व प्रदान किया है कि यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि नीतिशास्त्र एवं अधिनीतिशास्त्र में कौन प्रमुख है? किन्तु इस विषय में संशय करना निराधार है, वस्तुतः नीतिशास्त्र को गौण मानकर अधिनीतिशास्त्र को ही सम्पूर्ण नैतिक दर्शन मानना अनुचित एवं एकांगी दृष्टिकोण का परिचायक है, क्योंकि यदि नीतिशास्त्र का अस्तित्त्व न होता तो अधिनीतिशास्त्र विषयशून्य होकर मात्र वितंडा ही रह जाता। यद्यपि इसमें संदेह नहीं है कि अधिनीतिशास्त्र एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधा है, जिससे नीतिशास्त्र को और अधिक समझने में मदद मिलती है, किन्तु नैतिक निर्णयों और प्रत्ययों के स्पष्टीकरण के अतिरिक्त यह भाषागत बौद्धिक व्यायाम ही प्रतीत होता है। वास्तव में अधिनीतिशास्त्र मानकीय नीतिशास्त्र को समझने का एक महत्वपूर्ण साधन है। मानकीय नीतिशास्त्र के निर्णयों एवं सिद्धान्तों के अभाव में अधिनीतिशास्त्र की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। अतः इस दृष्टिकोण के अनुरूप अपने अस्तित्त्व की सार्थकता के लिये अधिनीतिशास्त्र अंततः मानकीय नीतिशास्त्र पर ही निर्भर है। इस स्थिति में अधिनीतिशास्त्र को अपने आप में साध्य तथा सम्पूर्ण नैतिक दर्शन नहीं माना जा सकता है।

वास्तव में अधिनीतिशास्त्र स्वतः साध्य एवं सम्पूर्ण नैतिक दर्शन न होकर, नैतिक दर्शन की एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसकी सहायता से हम नैतिक भाषा के अर्थ और स्वरूप को भलीभांति समझ सकते हैं। इस प्रकार मानकीय नीतिशास्त्र की समस्याओं के समुचित, तर्कपूर्ण एवं संतोषप्रद समाधान में अधिनीतिशास्त्र निश्चय ही हमारी विशेष सहायता कर सकता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि नैतिक भाषा के स्पष्टीकरण के माध्यम से अधिनीतिशास्त्र मानकीय नीतिशास्त्र के पूरक अथवा सहायक की भूमिका निभाता है और इस रूप में इसका अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वास्तव में अधिनीतिशास्त्र को हम ''नैतिक भाषा का विज्ञान'' कह सकते हैं, क्योंकि यह नैतिक भाषा के सभी पक्षों एवं आयामों का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन एवं विश्लेषण करता है। अन्य सभी प्रकार के वैज्ञानिक विश्लेषण की भाँति नैतिक भाषा के विश्लेषण में भी अधिनीतिशास्त्री यथा सम्भव तटस्थ एवं निष्पक्ष भाव रखता है। नैतिक निर्णय के अर्थ, स्वरूप एवं प्रमाणीकरण का विश्लेषण करते हुये वह किसी विशेष मानकीय

नैतिक सिद्धान्त का समर्थन या खण्डन नहीं करता है। वह स्वयं निष्पक्ष एवं तटस्थ रहकर इन निर्णयों का उसी रूप में स्पष्टीकरण करने का प्रयास करता है, जिस रूप में हम इन निर्णयों का अपने व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करते हैं। नैतिक निर्णयों की निष्पक्ष एवं व्यवस्थित व्याख्या के कारण ही हमारे लिये अधिनीतिशास्त्र का अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है।

संदर्भः-

1. दार्शनिक विश्लेषण परिचय, जॉन यास्पर्स, बिहार ग्रंथ अकादमी, 1974, पृ0-845।
2. जे0एस0 मिल, यूटिलिटोरियनिज्म, पृ0 52-53।
3. रुडोल्फ कार्नेप, फिलासफी एण्ड लॉजिकल सिंटेक्स, पृ0-23।
4. आर0एम0 हेयर, फ्रीडम एण्ड रीजन, पृ0-97

आरक्षण के विरूद्ध समाजिक अवधारणा एक अध्ययन

प्रदीप कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण)

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत आरक्षण के लागू होने के फलस्वरूप विहार में सामाजिक-आर्थिक भावना एवं उनकी विरोधी गतिविधियों का अध्ययन किया गया है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं संगठन वर्णों एवं जातियों पर ही आधारित रही है। जाति व्यवस्था यद्यपि संवैधानिक दृष्टि से कोई अपना स्थान नहीं रखती है फिर भी परोक्ष रूप से संपूर्ण भारत में लोकतंत्र को आधारशिला जाति पर भी आधारित है। उच्चतम और निम्नता के क्रम में भारत की समस्या जातियाँ समाजिक संगठन एवं व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आज भी प्रभावी है जबकि अनेकानेक प्रकार की विकृतियाँ इस व्यवस्था में आ चुकी है। संविधान का समादर करते हुए संपूर्ण भारत में जाति व्यवस्था को समाप्त ही कर देना चाहिए। जाति व्यवस्था के अन्तर्गत उच्च जातियों ने अपने से नीचे की जातियों का जितना शोषण तथा दोहन किया है तथा जितना उन्हें यातनाएं दी गई हैं ? वो समाजिकता और मानवता की पायदान पर कभी भी पड़ने के लिए अधिकारी नहीं हो सकती है। समय-समय पर प्राचीन काल से लेकर आज तक समाजिक दार्शनिकों तथा अध्यात्मिक पुरूषों द्वारा शोषण विहीन समाजिक व्यवस्था का चिंतन तो आवश्य किया जा रहा है, किन्तु आज तक कोई प्रभावी कदम नहीं' उठाया जा सका है। समाजिक व्यवस्था में जाति व्यवस्था दैनिक शक्तियों के खप में प्रवेश कर गई, इसलिए किसी में इतनी क्षमता नहीं हो सकी कि वो इसमें सुधार कर सके या व्यवस्था को हमेशा के लिए समाप्त कर सके। 19वीं शताब्दी में जब इस जाति व्यवस्था का विकृत रूप परिलक्षित होने लगा, तो नई क्रान्ति का शुरूआत हुआ। राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों का अभ्युदय हुआ। समाज सुधारकों का एक ऐसा दौड़ चला की सभी नागरिकों में यह भावना घर कर गई कि भले ही यह जाति व्यवस्था समाप्त न हो, परन्तु इसके दुष्परिणाम जो सम्पूर्ण मानवता एवं समाजिकता को लील रही है तथा मनुष्य को जानवर सदृश्य बना दिया है उसे हर सम्भव प्रयास से दूर किया जाना चाहिए।

कोई भी समाजिक व्यवस्था एवं समाजिक संगठन की योजना बहुत ज्यादा, बहुत अधिक समय तक न तो स्थित होती है और न ही स्थायी होती है, समय की परिस्थितियों के फलस्वरूप समाजिक व्यवस्था धाराशायी हो जाती है, और उसी आधार पर प्रस्तावना भारतीय समाज, नागरिकों का एक ऐसा बड़ा समूह है, जिसका एक बड़ा हिस्सा केवल आर्थिक पर नयी समाजिक संरचना की नींव पड़ती है और समाजिक संगठन तथा समाजिक व्यवस्था बनती है। कार्ल मार्क्स का भी यही सिद्धांत है, परन्तु घोर आश्चर्य है कि शताब्दियों के व्यवस्थित होने के बाद भारत में आज भी जाति व्यवस्था किसी न किसी रूप में जीवित रहती है और इसको तिलांजली देने की पहल भारत की समान्त जनता तो नहीं कर सकती है हमारे राष्ट्र के नायक भी नहीं कर सके, उन्होंने स्वतंत्रता के प्रारम्भ में समाजिक न्याय आदि का नारा तो बुलंद किया परन्तु अपने लोकतांत्रिक व्यवस्था को जीवित रखने के लिए जाति व्यवस्था के शरण में आ गये। जातिवाद के नारो को बुलंद करते हुए जानाधार प्राप्त करने के लिए जातिय व्यवस्था का ही सहारा लिया जाति व्यवस्था को अध्यात्मिक पक्ष एवं आज्ञात शक्तियों से जोड़ दिया गया।[1]

युगों से समय के थपेड़ों को खाती हुई जाति व्यवस्था अपने लचीलेपन के कारण बढ़ी है लचीलेपन के कारण ही यह उत्तर वैदिक काल से लेकर बौद्ध धर्म इस्लाम धर्म, विदेशी संस्कृति, अंग्रेजी संस्कृति, महात्मा गांधी, अम्बेडकर-लोहिया आदि जाति विरोधी धर्म युद्धों की चुनौतियों का सामना करती हुई आज भी वर्चस्व व्यवस्था, व्यवस्था के अन्तर्गत उच्चता और निम्नता के क्रम में जो

जातियाँ उच्च और सामन्ती तथा अधिकार प्राप्त होने का दावा करने लगी हैं उन्होंने अपने से नीचे के क्रम वाली जातियों को व्यवस्था का अंग न मानकर उनकी उपेक्षा किया। उनको अपने से अलग भी माना और सभी प्रकार की भौतिक तथा अभौतिक सुविधाओं से दूर रखने का काम किया। इसलिए भारत में पिछड़ी जातियों एवं निम्न जातियों का विशलेषण प्रदान करके उनको समाजिक व्यवस्था का अंग मानते हुए उनको अलग-थलग कर दिया। उन्हें समाजिक समानता, योग्यता को समान्य सुविधाओं से वंचित कर दिया गया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उत्तरोत्तर भारत की एक बड़ी जनसंख्या बहुत पिदे छूट गयी। उच्च जाति में उनकी उपेक्षा करते हुए समस्त सुविधाओं से वंचित कर दिया और उन्हें पिदे छोड़ दिया।[2]

राजाराम मोहन राय के नत्योक्रान्ति के उपरान्त सुधारों का एक ऐसा दौर चला जिसके अन्तर्गत धार्मिक सम्पत्ति तथा राजनैतिक क्रान्ति वालों ने यह अनुभव किया कि जब तक सारी विषमताओं को दूर कर भारत की समस्त जनता को एक सूत्र में नहीं बांधा जायेगा तब तक यह सम्भव नहीं है कि भारत में किसी प्रकार का सुधार हो सके। राजाराम मोहन राय, पंडीत रामादाई, टैगोर, ज्ञानेन्द्र सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, आदि महान विभूतियों ने अननरत रूप से समस्त भारतीय जनता को आन्दोलित करने का प्रयास किया, और मृत्यु सदृश्य भारतीय समाजिक व्यवस्था को समय-समय पर आक्सीजन देकर जीवित रखने का प्रयास किया। उन्हीं के पदचिन्हों पर चलने का प्रयास करते हुए, स्वतंत्रता आन्दोलनकारियों में अपना आन्दोलन प्रारम्भ किया। गोपालकृष्ण गोखले, विपिन चन्द्रपा, लालालाजपतराय से लेकर सुभाष चन्द्रबोस, और एम0 के0 गाँधी जैसे राजनीतिक आंदोलन चलाने वालों में भारत को एक सूत्र में बांधने के जातीय व्यवस्थ में पिछड़ेपन की उपेक्षा की विकृतियों को दूर करने का हर सम्भव प्रयास किया है जातिये व्यस्या की अधिष्ठता अपनी संकीर्ण मानसिकता पर कोई आंच नहीं आने दिये। पिछड़ेपन की शोषण का अहसास होना प्रारम्भ हो गया और यही कारण है कि पिछड़ी जातियों ने भी स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया।[3]

15 अगस्त 1947 को जब भारत आजाद हुआ तो उस समय संविधान के अन्तर्गत हर सम्भव प्रयास किया गया, कि पिछड़ापन को दूर किया जाय। इसी उद्देश्य से भारत के संविधान के अनु0 340 के अन्तर्गत प्रथम पिछड़ा आयोग का गठन काका कालेकर की अध्यक्षता में 20 जनवरी 1953 को किया गया। कालेककर आयोग ने भारत में समस्त राज्यों में स्थित उन जातियों का सर्वेक्षण किया जिन्हें हम पिछड़ेपन के विशेषण से जोड़ सकते हैं। इस आयोग ने सामाजिक तथा ज़ैनरिक दृष्टि से पिछड़ेपन के जो मानक को निर्धारित किया है वे निम्नलिखित हैं।

(1) वे जातियाँ जो जाति व्यवस्था के क्रम में समाज में निम्न समाजिक परिस्थिति प्राप्त हो।

(2) वे जातियाँ जिनका एक बहुत बड़ा भाग अशिक्षित हो और शिक्षा का प्रचार एवं सुविधाएँ उन तक नहीं पहुँच पाती हों। उनमें साक्षण होने की भावना उत्पन्न होना उनकी प्राथमिकता हो।

(3) वे जातियाँ जिनका प्रतिनिधित्व सरकारी नौकरी में या तो अपर्याप्त हो या बिल्कुल ही नहीं हो।

(4) व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग के क्षेत्र में उनका कोई प्रतिनिधित्व न हो सर्वेक्षण के उपरान्त आयोग ने 2399 जातियों को इन मानकों के अधार पर चिन्हित किया जिसमें 837 जाति में जिनकी अनुमानित जनसंख्या उस समय 11.5करोड़ थी, आयोग ने अनुभव किया कि भारत में समतावादी समाज कि स्थापना के लिए और भारत के विकास के लिए सुविधाओं से वंचित थे जातियाँ बहुत है। बड़ा बाधक है जिसके बिना कोई भी योजना उनकी उपेक्षा करके नहीं चलायी जा सकती है।[4]

समतावादी विचारः-

भारतीय समाज प्रारम्भ से ही वर्ण एवं जाति में विभाजित रहा है। एक सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग रहा है। जाति व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज उच्च जाति, मध्यम जाति एवं निम्न जाति में विभक्त रहा है जिसका मूल मानक जनजाति हो रहा है इसलिए किसी भी समाजिक, आर्थिक, राजनीति जीवन प्रणाली में जन के अधार पर अपमानित भावना सम्मानित किया जाय। यह भावना कभी भी न्यायकारी एवं जानकारी नहीं माना जा सकता है। इस मान्यताओं के कारण ही प्राचीन काल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्त तक भारत की जनसंख्या का एक प्रमुख भाग राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलग-थलग रहा है। अमानुषिक अलगाव एवं अपमान भारतीय समाज के लिए एक अभिशाप रहा है। और उसी के परिणाम स्वरूप भारत का एक बहुत बड़ा जन समुदाय समाज से अलग-थलग रह कर उपेक्षित जीवन जी रहा है।[5]

आरक्षण शब्द का प्रयोग विभिन्न हितों एवं उद्देश्यों की प्रति के लिए किया जाता है। भारत तथा विदेशों में की अनेकानेक शब्दों के माध्यम से आरक्षण के भावनाआं को दर्शाया गया है। जैसे- संरक्षात्मक विभेदीकरण, रचात्मक, भेदभाव, सकरात्मक संरक्षात्मक विभेदीकरण, प्रतिकात्मक विभेदीकरण, समाजिक वरीयता, शासकीय संरक्षण आरक्षण शब्द के लिए किसी भी शब्द का प्रयोग किया जाय। भारत से लेकर किसी भी देश का सबकी भावना एक ही है।

आरक्षण सर्वप्रथम अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के उत्थान के लिए गठित हुए परन्तु मंडल आयोग के लागू होने के उपरान्त आरक्षण की सुविधाओं को पिछड़े वर्गों में सम्मान रूप से प्रदान की गई। इसलिए आरक्षण के उद्देश्य सदैव एक ही रहें चाहे वह किसी भी वर्ग के लिए प्रदान किये गये हों। आरक्षण के मुख्यत: दो उद्देश्य हैं।

(1) समाजिक न्याय प्रदान करना।

(2) राजनीतिक संतुलन कायम करना।

(1) समाजिक न्याय- संविधान की पहल ही समाजिक न्याय है समाजिक न्याय से तात्पर्य है कि समान रूप से देश के प्रत्येक नागरिक को अधिकारों एवं सुविधाओं में भेदभाव किसी की पारंपरिक सांस्कृतिक, समाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि आधार पर नहीं बरती जाय। प्रत्येक भारतीय, भारत का एक नागरिक है सभी सम्मान है इसलिए किसी की अधार पर किसी भी नागरिक के प्रति न तो दोहरा व्यवहार होगा और न ही दोहरी सुविधाएँ होंगी और न ही दोहरा मानदण्ड होगा। समाजिक न्याय प्रदान करने के लिए आरक्षण ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो समाजिक न्याय प्रदान करा सकती है। इसी समाजिक न्याय और मण्डल आयोग की सिफारिश पर कानस्टूडशनल, क्लब के समागार में लेखकों, पत्रकारों और बुद्धजीवियों के द्वारा सर्वसम्मति से निर्णय हुआकी जाति व्यवस्था का उन्मूलन किया जाय। 10000 जातियों उजातियों में जो देश बटा हुआ हुआ है उन्हें चार-पांच समूहों में विभाजित किया जाय समस्त जनसंख्या को द्विज भूस्वामी किसान भूमिहीन, किसान, करीगर, अनुसूचित जातियों जन जातियोंको इन समूहों में रखना होगा और इसको सत्ता के आरक्षण के आधार पर समुचित हिस्सा तय करना होग, ताकि मात्र उच्च जातियों और वर्ग के लोग भी सत्ता और सुझावों का लाभ न उठा सकें।[6]

राजनीतिक संतुलन- भारतीय संविधान निर्माण के पूर्व सभी समाजिक, आर्थिक और कानूनी विद्वान इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि भारतीय समाज व्यवस्था में अपने समय में सनातन विधि विद्वानों से निर्मित एवं संचालित है और समाजिक संरचना सोपानवत है। या किसी भी स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं है लोकतांत्रिक व्यवस्था तभी हो सकती जब सभी को समाजिक न्याय मिल सके और सभी को समान माना जाय। संविधान निर्माताओं में भारतीय समाजिक राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के लिए संविधान का निर्माण किया किसी भी देश का संविधान विशुद्ध रूप से राजनीति का विषय होता है जिसमें सख्त संरचना निहित होती है। संविधान मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव विवेक की राजनीतिक इच्छा है। आरक्षण के विरोधियों ने हर मोड़ पर अपनी आवाज की बुलंद की। लेकिन सत्य यही है कि भेदभाव और शोषण पर आधारित समाजिक व्यवस्था अभी भी मजबूत है। इस व्यवस्था का चरित्र भी अजीब है जब चाहे जैसे भी चाहे अपने को समायोजित कर लेती है नब्बे के दशक में मंडल कमीशन की अनुशंसाओं का लागू होना ऐसे ही प्रयासों और समाजिक न्याय के लिए संघर्षरत पिछड़े लोगों की उपलब्धि थी। पिछले बीस वर्षों से आरक्षण के माध्यम से अपनी हिस्सेदारी और हक प्राप्त करने वालों में मेरिट के मिथ को घता बना दिया है। फिर भी जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में पिछड़ी एवं दलित जातियों के साथ भेद भाव जारी है।[7]

आरक्षण के पिछे की मूल भावना में पिछड़ी 'सम्मान' का रहा है। क्योंकि भेदभाव के ऐतिहासिक और समाजिक संदर्भ को वर्तमान से अलग नहीं किया जा सकता है इतिहास का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि सामाजिक भेद-भाव के मानक दैवीय या अलौकिक नहीं है बल्कि इन्हें मनुष्यों ने ही स्थापित किया है उदाहरणस्वरूप, स्कूल के दिनों में जब बच्चे आपस में एक दूसरों का माजाक करते थे या चिढ़ाते थे तो प्रेमपूर्वक कही गयी कुछ बातें और बातों का निहितार्थ अब समझ में आता है। जैसे, ''अहिर-बहीर बम्कोकड़ा के लासा, अहिरा पदलस भइल तमाशा'' यह गाली मजाक लगती है लेकिन किसी पिछड़े के मनोबल को बाल्यावस्था तोड़ने के लिए काफी है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी गालियां पिछड़ों दलितों महिलाओं और अल्पसंख्यकों को लक्ष्य करके किसी साजिश के तहत व्यवहार में लायी गयीं।[8]

अत: आरक्षण विरोधियों ने आरक्षण के खिलाफ हमेशा ही अपनी आवाज की बुलंद किया है तथा आरक्षण व्यवस्था को प्रभावी नहीं होने के लिए हर सम्भव प्रयास किया है किन्तु सत्य तो यही है कि भेदभाव और शोषण पर आधारित समाजिक व्यवस्था अभी

भी इतना मजबूत है कि समाज को समता के पटल पर लाना अभी भी बहुत बड़ी चुनौती है। कुछ समाज सुधारक तथा बुद्धिजीवियों ने इस समस्या के निवारण का प्रयास कर रहे हैं।

लेकिन भारतीय समाज में हर तबके के लोगों को अपने बीच समानता लाने के अधिक से अधिक शिक्षित होना तथा अपने शिक्षा के माध्यम से ही आगे आने का प्रयास करना होगा। हाँ कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण एक लंगड़े व्यक्ति के लिए लाठी के समान होना चाहिए जिसका वह सहारा लेकर अपनी हिम्मत और जिम्मेदारी के साथ आगे बढ़ने का प्रयास कर सके। उन्हें आरक्षण को एक लग्जरी गाड़ी के समान मानकर आसानी से आगे बढ़ने के प्रयास में नहीं होना चाहिए।

यदि हमारे समाज के प्रत्येक तबके के लोग यह समझ जायें कि आरक्षण जैसा मुद्दा कभी बनेगें ही नहीं। आरक्षण विरोधि अपने इस तर्क पर सही भी हैं क्योंकि आरक्षण के माध्यम से अयोग्य भी आगे बढ़ेगें तो वह एक बेहतर समाज की कल्पना को कभी भी सार्थक नहीं होने देंगे। अत: आरक्षण के साथ-साथ उस व्यक्ति को उस कार्य के प्रति योग्य कर्तव्यनिष्ठ और जिम्मेदार होना होगा तभी एक बेहतर समाज का निर्माण हो सकता है।

संदर्भ

1. जनशक्ति, 5 सितम्बर 1990
2. हिन्दुस्तान 6 जनवरी 1992
3. गिरीश मिथ/ब्रजकुमार पाण्डेय, नन्दलाल गुप्ता, कम्युनिस्ट राइरस हन विहार द्वारा सम्पादित पुस्तक से, पृ. 285, 1999.
4. गिरीश मिथ/ब्रजकुमार पाण्डेय, नन्दलाल गुप्ता, कम्युनिस्ट राइरस हन विहार द्वारा सम्पादित पुस्तक से, पृ. 286, 1999.
5. मुक्ती संघर्ष अक्टूबर 1990.
6. मुक्ती संघर्ष, फरवरी 1998.
7. लोकं लहर, अगस्त 1990.
8. मुक्ती संघर्ष, फरवरी 1993.

डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम द्वारा कल्पित शिक्षक की अवधारणा

पाटिल कंचन गोपाल

शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र, हिमगिरी जी यूनिवर्सिटी देहरादून

सार:

यह गुणात्मक अध्ययन गुणात्मक आंकड़ों के आधार पर डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम द्वारा परिकल्पित शिक्षक की अवधारणा का पता लगाने से संबंधित है। सामग्री विश्लेषण और व्याख्यात्मक विश्लेषण पद्धति का उपयोग यहां किया जाता है। अध्ययन में शिक्षकों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों पर प्रकाश डाला गया है। अध्ययन के निष्कर्ष इस प्रकार हैं: शिक्षक में पढ़ाने का जुनून और क्षमता होनी चाहिए - विपरीत परिस्थितियों को अवसर में बदलने के लिए, सैद्धांतिक ज्ञान को व्यावहारिक उदाहरणों के साथ पढ़ाने और एक छात्र के नेतृत्व की गुणवत्ता को विकसित करने के लिए। इस पत्र के माध्यम से डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम द्वारा कल्पित शिक्षक की अवधारणा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: गुरु; शिक्षक; जिम्मेदारी; रोल मॉडल संकेताक्षर-एमआईटी- मद्रास प्रौद्योगिकी संस्थान

परिचय

शिक्षक सभी युगों में शिक्षा के प्रमुख हितधारकों में से एक है। भारत में जैविक माता-पिता के बाद शिक्षक का स्थान है। मूल अवधारणाएं हैं: मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, और आचार्य देवो भव (तैत्तिरीय-उपनिषद)[1]। शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली से 'गुरु' से वर्तमान शिक्षा में 'शिक्षक' तक एक लंबी यात्रा है और आज की शिक्षा में प्रासंगिक है। स्वामी विवेकानंद, ऋषि अरबिंद, रवींद्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी ने शिक्षा में शिक्षक की भूमिका को महत्व दिया है। भारत के 11वें राष्ट्रपति और वैज्ञानिक-दार्शनिक अवुल पकिर जैनुलाब्दीन अब्दुल कलाम ने शिक्षा में शिक्षक की भूमिका पर जोर दिया है। शोधकर्ता डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम के भाषणों का विश्लेषण शिक्षक की उनकी अवधारणा को समझने के लिए करता है। डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम के अनुसार- "शिक्षण एक बहुत ही महान पेशा है जो एक व्यक्ति के चरित्र, क्षमता और भविष्य को आकार देता है। अगर लोग मुझे एक अच्छे शिक्षक के रूप में याद करते हैं तो यह मेरे लिए सबसे बड़ा सम्मान होगा"[2]

लेखक और दार्शनिक वास्तविक शिक्षक हैं जो अक्सर समाज के लाभ के लिए अपने विचार व्यक्त करते हैं। शिक्षा को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता है और अलग-अलग दृष्टिकोण वाले लोग जीवन को दृष्टि के विभिन्न कोणों से समझते हैं। डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम को उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के भीतर देखा जाना चाहिए, भारत के सुदूर छोर से यह कुल ग्रामीण नागरिक, रामेश्वरम, एक नाविक के परिवार से आते हैं, जो उच्चतम और दुर्लभ की सादगी के साथ संयुक्त प्रतिभा के कारण ऊंचाइयों तक जाता है। वास्तव में वे सर्वोच्च कोटि के उल्लेखनीय विचारक हैं।

डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम के जीवन के कई पहलू हैं। वह कुछ के लिए 'मिसाइल मैन' हैं। उन्होंने 200 भारतीय सोब्रीकेट अर्जित किए हैं। वह दूसरे के लिए 'सपने देखने वाला' है। बच्चों के लिए वह अच्छाई के प्रवाह को फैलाने के लिए प्रेरणा के पंख हैं। अवुल पकिर जिनलाबदीन अब्दुल कलाम को आमतौर पर डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम के नाम से जाना जाता है। वह भारतीय

अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान के एक एयरोस्पेस इंजीनियर, प्रोफेसर और चांसलर हैं। राष्ट्रपति के रूप में अपने समय के दौरान, उन्हें "जनता के राष्ट्रपति" के रूप में जाना जाता था, डॉ कलाम ने लगातार शिक्षा पर अपने विचारों का योगदान दिया है।

एक असाधारण शिक्षक के रूप में

नरसिम्हा रोड्डम उनसे पहली बार 1962 में मिले और 40 से अधिक वर्षों तक विभिन्न क्षमताओं में उनके साथ कई स्थानों पर काम किया। वह कहते हैं, "हालांकि कलाम एक पेशेवर शिक्षक नहीं थे, लेकिन वे सभी बच्चों के लिए एक असाधारण शिक्षक थे। उन्होंने शिक्षा को राष्ट्र और बच्चों के भविष्य को आकार देने में एक महत्वपूर्ण कारक माना। उनका मानना था कि यह युवाओं को आगे बढ़ने में मदद कर सकता है। मुझे अभी भी याद है जब सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल -3 की अवधारणा की गई थी और कलाम इसका नेतृत्व कर रहे थे। वैज्ञानिक समुदाय के कई लोग इस युवक पर संदेह कर रहे थे क्योंकि उसके पास मास्टर्स डिग्री या पीएचडी नहीं था। लेकिन यह एक एयरोस्पेस इंजीनियर सतीश धवन और उनकी टीम थे, जिन्हें कलाम पर भरोसा था। ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्होंने वह सब कुछ दिया जो उन्होंने वादा किया था। जब SLV-III को आखिरकार लॉन्च किया गया, तो टीम ने साबित कर दिया कि भारत जैसा देश भी सफलतापूर्वक उपग्रह लॉन्च कर सकता है ।

उनका कार्यकाल समाप्त होने और सेवा से सेवानिवृत्त होने के बाद, वे भारतीय विज्ञान संस्थान में सेवा करना चाहते थे। लेकिन उन्हें इस संस्थान में उपयुक्त पद नहीं मिला। कलाम ने विभिन्न अवसरों पर आईआईएससी का दौरा किया। उन्होंने नवंबर 2011 में हाई-स्पीड एरोडायनामिक्स में सेंटर ऑफ एक्सीलेंस का उद्घाटन भी किया। उनका नाम अब आई. आई. एस. सी. के एक बोर्ड पर अंकित है। इन सबके अलावा, संस्थान के पास कलाम का उपहार भी है जो उन्हें उनके सेवानिवृत्त होने के बाद दिया गया था। चेहरे पर उस विनम्र मुस्कान के साथ कलाम की एक विशाल पेंटिंग मानो वह असली हो। यह एक कलाकार एम जी कम्मार द्वारा चित्रित किया गया है और विश्वेश्वर्या प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय द्वारा मिसाइल मैन को प्रस्तुत किया गया था।

अध्ययन का उद्देश्य:

डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम के शिक्षक की अवधारणा का अध्ययन करने के लिए।

अध्ययन का परिसीमन:

1. वर्तमान अध्ययन डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की चयनित पुस्तकों तक सीमित है।
2. वर्तमान अध्ययन डॉ. ए.पी.जे द्वारा परिकल्पित शिक्षक की अवधारणा तक सीमित है। अब्दुल कलाम
3. वर्तमान अध्ययन लिखित आंकड़ों के आधार पर गुणात्मक अध्ययन तक सीमित है।

अध्ययन का महत्व

1. वर्तमान अध्ययन का परिणाम शिक्षाविद, प्रधानाचार्य, शिक्षकों, माता-पिता, नीति निर्माता और विशेष रूप से शोधकर्ता के लिए गुणात्मक शोध करने के लिए उपयोगी होगा।
2. अब तक, गुणात्मक शोध ज्यादातर शैक्षिक विचारों पर किए जाते हैं, लेकिन यहां शोधकर्ता ने वैज्ञानिक होने के बावजूद डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम के शिक्षक की अवधारणा का अध्ययन करने का प्रयास किया।

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन

अध्ययन के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रासंगिक अध्ययनों की समीक्षा की गई है। पारीक,-हि.प्र.(2018)[3] ने डॉ. ए.पी. जे. अब्दुल कलाम के उद्देश्य शैक्षिक विचारों पर विचार करने के लिए डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम पर एक अध्ययन किया है। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष हैं: शिक्षा चरित्र निर्माण और छात्रों के बीच मानवीय मूल्यों को विकसित करने के लिए बनाई जाती है। शिक्षण की विधि 'करने की विधि द्वारा अधिगम प्रदान करना' है। शिक्षण एक महान पेशा है जो व्यक्ति के चरित्र, क्षमता और भविष्य को आकार देता है। चौहान,-के.आर.(2017)[4] ने शिक्षा व्यवस्था पर डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की सोच पर गुणात्मक शोध कार्य किया है। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष हैं: सम्मान की भावना का जागरण, युवाओं का स्वाभिमान, प्रबुद्ध नागरिक शिक्षा का आदर्श वाक्य है। त्रिवेदी,-ए.(2017)[5] ने अपने वर्णनात्मक शोध में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का अध्ययन करने के उद्देश्य पर विचार किया। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष हैं: शिक्षा का उद्देश्य प्रबुद्ध नागरिक पैदा करना, बच्चे को रचनात्मकता,

धार्मिकता और साहस के साथ एक नेता के रूप में बदलना है। शिक्षक की भूमिका छात्रों को अपने सपने को पूरा करने के लिए पूछताछ, रचनात्मकता, नैतिकता की क्षमता का निर्माण करने के लिए प्रेरित करना है। रूपैनवार,-ए.(2016)[6] ने एपीजे अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों और विचारों पर गुणात्मक शोध कार्य किया है। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष हैं: डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम एक महान शिक्षक, दूरदर्शी, समाज सुधारक और लोकतांत्रिक शिक्षाविद हैं। उन्होंने गृह पुस्तकालय, रचनात्मक कक्षा कक्ष और रचनात्मक नेतृत्व की अवधारणा पेश की। आशा,-टी.एस.(2013)[7] ने डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के उद्देश्य शैक्षिक विचारों और इसकी सामाजिक प्रासंगिकता पर विचार करने के लिए। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं: शिक्षा एक बच्चे को एक नेता के रूप में बदलने की एक अंतहीन यात्रा है और बच्चे और युवाओं में 'हम यह कर सकते हैं' की भावना पैदा करना जो मानव की गरिमा, आत्म सम्मान, ड्राइंग के साथ सार्वभौमिक भाईचारे को बढ़ाती है।[8]

कार्यप्रणाली

अध्ययन पूरी तरह से गुणात्मक है- गैर-मात्रात्मक डेटा के आधार पर प्रकृति में वर्णनात्मक।

डेटा के स्रोत

डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम (प्राथमिक डेटा) की पुस्तकें, व्याख्यान और लेख और डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम (माध्यमिक डेटा) पर पुस्तकें, व्याख्यान, शोध पत्र, लेख।

तथ्यों का संग्रहण:

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की पुस्तकों से विशेष रूप से 'विंग्स ऑफ फायर' और 'इग्नाइटेड माइंड्स' और शोध उद्देश्य के आधार पर वेब साइटों और समाचार पत्र से एकत्रित माध्यमिक तथ्य से एकत्र किए जाते हैं। कोडित डेटा की कोडिंग और वर्गीकरण के बाद शोधकर्ता ने 27 विचार इकाइयों को उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण विधि द्वारा चुना जो शिक्षक की अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य के साथ पुष्टि के माध्यम से डेटा की जाँच की जाती है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि चयनित डेटा एक ही निष्कर्ष प्रदान कर सकता है।

तथ्यों का विश्लेषण और विवेचन:

पढ़ाने का जुनून:

शोधकर्ता ने बताया कि "बिना प्यार के पकाई गई रोटी कड़वी रोटी है जो खिलाती है लेकिन आधे आदमी की भूख," - जो अपने दिल से काम नहीं कर सकते, लेकिन एक खोखली, आधी-अधूरी सफलता मिलती है जो चारों ओर कड़वाहट पैदा करती है"।[9] डॉ. ए.पी.जे.अब्दुल कलाम के अनुसार बचपन में- जब वे रामेश्वरम के एक पंचायत प्राथमिक विद्यालय में पढ़ रहे थे; उनके शिक्षक मथु अय्यर उन पर बहुत अधिक रुचि रखते थे। एक दिन डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम अपने स्कूल से अनुपस्थित थे और उसी दिन शाम को उनके शिक्षक मथु अय्यर अपने पिता से स्कूल में उनकी अनुपस्थिति के बारे में पूछने के लिए उनके घर आए। दरअसल शिक्षक मथु अय्यर को पढ़ाना बहुत पसंद था और वह विद्यार्थियों में व्यक्तिगत रुचि लेते थे। तो शिक्षक में पढ़ाने का जुनून होना चाहिए।[10]

व्यावहारिक उदाहरणों के साथ सैद्धांतिक ज्ञान का शिक्षण

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के अनुसार उनके शिक्षक श्री सुब्रमण्यम अय्यर उनके स्कूल के एक महान शिक्षक थे जो व्यावहारिक उदाहरण के साथ सैद्धांतिक ज्ञान पढ़ाते थे। एक बार शिक्षक श्री सुब्रमण्यम अय्यर सभी छात्रों को उड़ते पक्षियों को समझाने के लिए रामेश्वरम के समुद्र तट पर ले गए थे। उन्होंने दिखाया कि कैसे समुद्री पक्षी अपने शरीर की स्थिति के अद्भुत गठन के साथ उड़ रहे थे, पूंछ, शरीर और सिर की अलग-अलग स्थिति के साथ अपने पंख फड़फड़ा रहे थे। सभी छात्रों ने पाया कि पक्षी अपनी इच्छा के अनुसार उड़ सकते हैं और अपने स्वयं के जीवन और प्रेरणा से संचालित हो सकते हैं जैसा वे चाहते हैं। यह डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के जीवन का महत्वपूर्ण मोड़ था और उसी क्षण डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने उड़ान विज्ञान के रूप में अपने भविष्य के अध्ययन के पाठ्यक्रम को अंतिम रूप दिया। उसी समय डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपने शिक्षक से उड़ान अध्ययन की आगे की प्रगति के बारे में पूछा। उनके शिक्षक ने उन्हें स्कूल की परीक्षा पूरी करने और उड़ान विज्ञान का अध्ययन करने के लिए कॉलेज जाने के लिए उत्तर दिया। अपने शिक्षक से प्रश्न पूछने और शिक्षक द्वारा दिए गए दृश्य उदाहरण

ने उनके जीवन और दृष्टि को आकार दिया। तो शिक्षक में युवाओं को सोचने की अनुमति देकर उन्हें प्रज्वलित करने का गुण होना चाहिए।[11] इस प्रकार निष्कर्ष है कि शिक्षक को सैद्धांतिक ज्ञान को व्यावहारिक उदाहरणों के साथ पढ़ाना चाहिए।

प्रतिकूलता को अवसर के रूप में बदलना

वैचारिक विश्लेषण के लिए डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का दृष्टिकोण भिन्न था। डॉ विक्रम साराभाई के बारे में डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम ने कहा- "उन्होंने कभी निर्देश नहीं दिए; बल्कि, विचारों के एक मुक्त आदान-प्रदान के माध्यम से, उन्होंने हमें नए इलाके में आगे बढ़ाया, जो अक्सर एक अप्रत्याशित समाधान का खुलासा करता था"।[12] डॉ. साराभी ने अपने पिता की मृत्यु पर डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को सांत्वना दी और कहा - "जब संकट आए, तो अपने कष्टों की प्रासंगिकता को समझने की कोशिश करें। प्रतिकूलता हमेशा आत्मनिरीक्षण के अवसर प्रस्तुत करती है"[13]। इस प्रकबार निष्कर्ष है कि शिक्षक में विपरीत परिस्थितियों को अवसर के रूप में बदलने की क्षमता होनी चाहिए।

नेतृत्व गुणवत्ता का विकास

डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम डॉ. ब्रह्म प्रकाश से प्रेरित थे। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के अनुसार "डॉ ब्रह्म प्रकाश एक बहुत ही बुद्धिमान परामर्शदाता थे जिन्होंने मुझे अपने मिशन के उद्देश्यों से विचलित होने पर बहुमूल्य मार्गदर्शन दिया।" डॉ. ब्रह्मा डॉ. ए. पी.जे. अब्दुल कलाम के नेतृत्व कौशल को आकार देने में एक बुद्धिमान परामर्शदाता थे। अवधारणात्मक विश्लेषण के माध्यम से शोधकर्ता यह निष्कर्ष निकालता है कि शिक्षक में छात्र के नेतृत्व की गुणवत्ता विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए।

क्षमताओं का पता लगाने के लिए छात्र पर दबाव बनाना

एमआईटी, चेन्नई में डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम ने अपने पाठ्यक्रम के तीसरे वर्ष के दौरान एमआईटी के निदेशक प्रोफेसर श्रीनिवासन की देखरेख में छह अन्य छात्रों के साथ एक निम्न स्तर के हमले वाले विमान को डिजाइन करने के लिए एक परियोजना को सौंपा था। . जब प्रोफेसर श्रीनिवासन ने परियोजना की प्रगति की समीक्षा की तो वे डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की प्रगति से निराश हुए और कहा, "देखो, युवक आज शुक्रवार की दोपहर है। मैं आपको तीन दिन का समय देता हूं। यदि सोमवार की सुबह तक मुझे कॉन्फिग्यारेशन डिजाइन नहीं मिला तो आपकी छात्रवृत्ति बंद कर दी जाएगी"।[15] बिना छात्रवृत्ति के डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख सकते थे। डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने अपनी टीम के साथी के साथ चौबीसों घंटे एक साथ काम करना शुरू किया। दो दिनों के बाद (रविवार) अचानक प्रोफेसर श्रीनिवासन परियोजना की निगरानी के लिए आए और प्रशंसा के साथ कहा- "मुझे पता था कि मैं आपको तनाव में डाल रहा था और आपको एक कठिन समय सीमा को पूरा करने के लिए कह रहा था, आपने सिस्टम डिजाइन में बहुत अच्छा काम किया है"।[16] इसलिए शिक्षक को छात्रों पर क्षमताओं का पता लगाने के लिए दबाव बनाना चाहिए।

रोल मॉडल के रूप में शिक्षक

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के अनुसार - "मैंने कहा, 'जब आप बड़े हो रहे हैं, तो पंद्रह वर्ष की आयु तक कहें, मैं आपके पिता, आपकी माँ और आपके स्कूल के शिक्षकों के बारे में सबसे अच्छा रोल मॉडल सोच सकता हूँ"।[17] डॉ. ए.पी.जे के अनुसार अब्दुल कलाम दुनिया में कोई दूसरा पेशा नहीं है जो समाज के लिए शिक्षक से ज्यादा महत्वपूर्ण हो। शिक्षक किसी भी देश की रीढ़ होते हैं, वह स्तंभ जिस पर आकांक्षाओं को हकीकत में बदला जाता है। शिक्षक का दायित्व है कि वह अपने जीवन को एक महान व्यक्ति के रूप में पोषित करे जिसका अनुसरण छात्र कर सकें। उनका कर्तव्य है कि छात्रों के बीच ऐसा माहौल बनाया जाए कि वे जीवन भर पाठ को समझ सकें।[18] इसलिए शिक्षक को छात्रों के नैतिक चरित्र के निर्माण और प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के लिए गुरु की भूमिका निभानी चाहिए। छात्र सपने देखते हैं और शिक्षक उन्हें इसे पूरा करने के लिए आश्वस्त करते हैं। एक छात्र के चरित्र को आकार देने, रचनात्मकता को बढ़ावा देने और सीखने में छात्र की रुचि के विकास में शिक्षक की बड़ी जिम्मेदारी होती है। शिक्षकों द्वारा देखे गए शैक्षणिक प्रदर्शन में छात्रों के बीच किसी भी विचलन के लिए माता-पिता के ध्यान में लाया जाना चाहिए।[19]

अध्ययन के निष्कर्ष

1. शिक्षक में पढ़ाने का जुनून होना चाहिए।
2. शिक्षक को सैद्धांतिक ज्ञान व्यावहारिक उदाहरणों के साथ पढ़ाना चाहिए।
3. शिक्षक में विपत्ति को अवसर के रूप में बदलने की क्षमता होनी चाहिए।
4. शिक्षक में छात्र के नेतृत्व की गुणवत्ता विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए।
5. शिक्षक को छात्रों पर उनकी क्षमताओं का पता लगाने के लिए दबाव बनाना चाहिए।
6. शिक्षक छात्रों के लिए एक आदर्श होता है।

अध्ययन का निष्कर्ष: भोजन, कपड़ा और आवास के बाद शिक्षा प्रमुख आवश्यकता है। शिक्षक शैक्षिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हितधारक है। अध्ययन में यह शामिल है कि; शिक्षक के पास छात्रों को रचनात्मक बनाने और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 – "भारत एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति" के दृष्टिकोण का प्रतिकार करने के लिए एक अच्छा नागरिक बनने के लिए सर्वांगीण क्षमताओं को विकसित करने की दृष्टि होनी चाहिए।

सुझाव:

1. डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम और अन्य प्रमुख व्यक्तित्व के शिक्षक की अवधारणा पर एक तुलनात्मक अध्ययन।
2. शिक्षा में शिक्षक, माता-पिता और छात्र की भूमिका पर एक अध्ययन।

संदर्भ

1. तत्तिरीय उपनिषद
2. त्रिवेदी, ए. (2017), डॉ. ए.पी.जे. के शैक्षिक विचार अब्दुल कलाम, इंटरनेशनल एजुकेशन एंड रिसर्च जर्नल (आईईआरजे), वॉल्यूम 3, अंक 5, पृष्ठ 263।
3. पारीक, एच.पी. (2018), ए पी जे अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार, अकादमिक अनुसंधान और विकास के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल। वॉल्यूम। 3, अंक.1, पीपी. 126-128
4. चौहान, के.आर. (2017), डॉ. ए.पी.जे. की शिक्षा प्रणाली पर चिंतन का एक अध्ययन। अब्दुल कलाम, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ऑल सब्जेक्ट इन मल्टी लैंग्वेजेज, खंड 5, अंक। 8, पीपी .17-22
5. त्रिवेदी, ए (2017), डॉ एपीजे अब्दुल कलाम का शैक्षिक विचार, अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा और अनुसंधान जर्नल (आईईआरजे), खंड 3, अंक 5, पीपी 262-264
6. रूपैनवार, ए. (2016), एपीजे अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार और विचार एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, पीएच.डी. इंटीग्रल यूनिवर्सिटी की थीसिस।
7. आशा, टी.एस. (2013), शिक्षा और इसकी सामाजिक प्रासंगिकता में ए पी जे अब्दुल कलाम के विचार।
8. स्वामी तत्त्वसरानंद और एन.बी. बिस्वास (सं.)। (2016), शिक्षा के दर्शन में शोधों की आलोचना। बेलूर मठ: रामकृष्ण मिशन शिक्षामंदिर, पीपी 238-253।
9. कलाम, ए.पी.जे. अब्दुल, और तिवारी, ए.के. (1999), विंग्स ऑफ फायर: एन ऑटोबायोग्राफी ऑफ डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम। हैदराबाद: भारत. यूनिवर्सिटी प्रेस (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड। पी. 45.
10. मिश्रा, ए (2015, 4 सितंबर) एपीजे अब्दुल कलाम द्वारा शिक्षक के 4 महान गुण होने चाहिए।
11. वही
12. कलाम, ए.पी. जे. अब्दुल, और तिवारी, ए.के. (1999), विंग्स ऑफ फायर: एन ऑटोबायोग्राफी ऑफ डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम। हैदराबाद: भारत. यूनिवर्सिटी प्रेस (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड। पृष्ठ 44
13. वही (संदर्भ-12, पृष्ठ-45)
14. वही (संदर्भ-12; पृष्ठ-97)

15. वही (संदर्भ-12; पृष्ठ-20)
16. वही (संदर्भ-12; पी-20)
17. कलाम, ए.पी.जे. अब्दुल. (2002), इग्नाइटेड माइंड्स: अनलीशिंग द पावर इन इंडिया इंडिया। पेंगुइन किताबें। पृष्ठ-22
18. चौहान, के. आर. (2017), डॉ. ए.पी.जे. की शिक्षा प्रणाली पर चिंतन का एक अध्ययन। अब्दुल कलाम, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ऑल सब्जेक्ट्स इन मल्टी लैंग्स। खंड 5, अंक 8, पीपी.17-21
19. आशा, टी.एस. (2013, 14 जून), शिक्षा और इसकी सामाजिक प्रासंगिकता में एपीजे अब्दुल कलाम के विचार, पृ. 39

उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के हथकरघा बुनकरों की समस्याओं का अध्ययन

चाँदनी सिंह

शोधार्थी समाज कार्य विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, राजस्थान

डॉ० बिजेन्द्र प्रधान

सह-आचार्य, समाज कार्य विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, राजस्थान

शारांश –

चिर काल से ही भारत में हथकरघा उद्योग एक बहुत ही पुराना व परम्परागत उद्योग है। भारत में हथकरघा क्षेत्र कृषि के बाद दूसरा सबसे बड़ा रोजगार का साधन है। यह उद्योग ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के 43.31 लाख लोगों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार उपलब्ध कराता है। औद्योगिकीकरण एवं आधुनिक मशीनों के विकास के कारण हथकरघा के क्षेत्र में गिरावट आई है। हथकरघा उद्योग के द्वारा सामना की जा रही समस्या प्रकृति में लगातार है। इस उद्योग के सांस्कृतिक महत्व को बनाये रखने हेतु वर्तमान अध्ययन उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद को आधार मानते हुए हथकरघा बुनकरों की विभिन्न समस्याओं को समझने का एक प्रयास है। ये विभिन्न समस्याएं जैसे- नई तकनीकी (पावरलूम) का हस्तक्षेप, पूंजीवादी नियंत्रण, कच्चे माल की अपर्याप्त उपलब्धता एवं ऊँची कीमत मजदूरी में कमी आदि है। वर्तमान अध्ययन प्रकृति में वर्णनात्मक है। इस अध्ययन में आँकड़ों का संग्रहण प्रत्यक्ष साक्षात्कार विधि द्वारा साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। तत्पश्चात् आँकड़ों का विश्लेषण करने के पश्चात निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना –

भारत में हथकरघा क्षेत्र कृषि के पश्चात् लोगों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सर्वाधिक रोजगार प्रदान करने वाला प्रदूषण रहित विकेन्द्रीत एक कुटीर उद्योग है। हथकरघा बुनाई का भारतीय अर्थव्यवस्था में एक अद्वितीय स्थान है। भारतीय हथकरघा उत्पादों की पहचान् प्राचीन काल से ही उच्च कोटि एवं दोषरहित गुणवत्ता से की जाती रही है। इनमें राजस्थान, ओडिशा के बंधेज की रंगाई, वाराणसी के सिल्क व चन्देरी का मलमल, मछलीपट्टनम् के छींटदार एवं खूबसूरत कपड़े, पंजाब के खेस, बड़ोदरा की पटोला साडिय्याँ इत्यादि शामिल है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों व पावरलूम के अतिक्रमण से हथकरघा बुनकरों एवं इस उद्योग के सांस्कृतिक व परम्परागत धरोहर को संरक्षित करने के लिए कई प्रकार के उपाय किये है। हथकरघा अधिनियम, 1985 ने धोती, लुंगी, किनारी वाली साडिय्यों जैसे 22 पारम्परिक वस्त्रों को विशिष्ट हथकरघा उत्पादन से अलग कर दिया व इन्हें पावरलूम क्षेत्र के दायरे से बाहर कर दिया। हथकरघा क्षेत्र भारत में दूसरा सबसे बड़ा रोजगार उपलब्ध कराने वाला क्षेत्र है। यह देश भर में 2.38 मिलियन करघों के साथ विभिन्न समुदायों के 4.33 मिलियन लोगों को जीविकोपार्जन का साधन प्रदान करता है। यह उद्योग देश के कपड़ा उत्पादन में लगभग 15 प्रतिशत योगदान देता है एवं निर्यात आय में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। पूरे विश्व में लगभग 95 प्रतिशत हाथ से बने हुए कपड़े भारत के ही है। इस उद्योग के गौरवशाली इतिहास एवं वर्तमान परिपेक्ष्य

में इस उद्योग की प्रासंगिकता को स्वीकार करते हुए हमारी सरकार हथकरघा उत्पादित कपड़ों एवं बुनकरों के पुनरूत्थान के प्रति कटिबद्ध है। वर्तमान समय में हथकरघा उद्योग बहुत सारी जटिल समस्याओं का सामना कर रहे हैं जो कि दूसरे उद्योग नहीं कर रहे हैं यद्यपि सरकार द्वारा केन्द्र स्तर पर व राज्य स्तर पर हथकरघा उद्योग को सशक्त पुर्नजीवित करने के लए हथकरघा उद्योग की उत्पादकता व विपणन के विकास के लिए लगातार प्रयास किया जा रहा है। इसके पश्चात् भी यह दृष्टिगत है कि हथकरघा उद्योग विभिन्न क्षेत्रों जैसे उत्पादन, विपणन और वित्त के क्षेत्र में विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा है। फलस्वरूप इस क्षेत्र को लाभदायक बनाने के क्रम में इस उद्योग की समस्याओं का पहचान किया जाना चाहिए व इस उद्योग की शक्ति और कमजोरी का अनुमान भी लगाया जाना चाहिए। इस प्रकार इस अध्ययन का उद्देश्य हथकरघा क्षेत्र की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना है एवं इसे बेहतर बनाने हेतु तथा आगे ले जाने हेतु एक उपयुक्त सुझाव देना है।

अध्ययन की आवश्यकता -

भारत में हथकरघा उद्योग एक परम्परागत एवं प्रचीन उद्योग है। यह उद्योग देश के बहुत सारे लोगों के रोजगार का एक स्रोत है। इसके पश्चात् भी यह उद्योग बहुत सारी चुनौतियों का सामना कर रहा है। यह अध्ययन इन समस्याओं के निवारण के लिए सुझाव के साथ-साथ हथकरघा बुनकरों द्वारा सामना की जाने वाली कुछ मुख्य समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करता है ये समस्याएं है -

- अपर्याप्त आर्थिक संसाधन
- कच्चे माल की आपूर्ति का अभाव
- धागे के खराब गुणवत्ता एवं अनुपलब्धता
- मास्टर बुनक का अनुचित व्यवहार
- डिजाइनों में नवाचारों एवं रंगों के संयोजन की कमी
- करघों का उन्नयन का अभाव
- बुनकर सदस्यों के बीच पारस्परिक सहयोग का अभाव

इस सन्दर्भ में यहाँ हथकरघा बुनकरों के द्वारा सामना की जा रही समस्याओं जैसे बुनकरों पर समस्याओं का प्रभाव, हथकरघा बुनकरों के जीवन स्तर की स्थिति के व्यापक अध्ययन की आवश्यकता है।

साहित्यों का पुनरावलोकन-

1. **श्याम सुन्दरी, बी0 (207)**- ने अपने अध्ययन में बताया कि हथकरघा उद्योग की मुख्य समस्या, हथकरघा उत्पादों का उपभोक्ता की माँग एवं रूचि के अनुसार गुणवत्तापूर्ण न होना व इस उद्योग में कम पूंजी निवेश को बताया है। अत: इसके लिए उन्होंने सुझाव दिया कि वर्तमान में प्रचलित आधुनिक प्राद्योगिकी का उपयोग कर हथकरघा उत्पादों को ग्राहकों की माँगों व रूचि के अनुरूप तैयार किया जाए तथा इसके लिए बुनकरों को पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाए।
2. **सिंह अमृता एवं शैलजा डी0नायक (2009)**- ने अपने अध्ययन में पाया कि बनारस के हथरकरघा बुनकर जिनको यह व्यवसाय परम्परागत तौर से विरासत में मिला है। उनकी गरीब सामाजिक-आर्थिक स्थिति के कारण उनकी स्थिति बहुत ही दयनीय है। उनमें से अधिकांश श्रमिक मजदूर बुनकर है जो दस घण्टे से अधिक मजदूरी करने के पश्चात् भी न्यूनतम मजदूरी पाते है। अत: सरकार को इसे ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।
3. **गोस्वामी, डॉ0 आर व डॉ0 आर जैन (2014)**- के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य हथकरघा उद्योग की विभिन्न समस्याओं को जानना व आगे के लिए एक उपयुक्त रणनीति बनाने हेतु सुझाव देना था। इस अध्ययन के प्राप्त निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि हथकरघा संगठन कच्चे माल के नियोजन, उत्पाद नियोजन व प्रचार कार्यक्रम की कोई समुचित व्यवस्थित कार्ययोजना लागू नहीं कर रहे है।
4. **शा, तनुश्री (2015)**- के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले में रहने वाले हथकरघा बुनकरों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करना है। ये समस्याएं नवीन प्रौद्योगिकी का हस्तक्षेप (पारलूम), पूँजीवादी नियंत्रण मजदूरी में कमी, धागे की अपर्याप्त आपूर्ति व मूल्य में वृद्धि आदि है। ये सभी समस्याएँ हथकरघा उद्योग को उत्थान से अवशान की ओर धकेल रहे है। इस अध्ययन में मुख्यत: पाया गया कि युवा पीढ़ी को इस उद्योग के बजाए पावरलूम उद्योग में

रूचि है इस कारण से हथकरघा स्थापित नहीं करना चाहते है। अत: इन्होंने सुझाव दिया कि हथकरघा बुनकरों के उत्थान के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन का निर्धारण करना चाहिए।

5. **राव, डॉ0 श्रीनिवास व डॉ0 एन0 श्रीधर (2017)** - ने ''प्राब्लम्स ऑफ हैण्डलूम वीवर्स इन आन्ध्र प्रदेश- अ स्टडी ऑफ कृष्णा डिस्ट्रिक'' विषय पर किए गये अपने अध्ययन में पाया कि हथकरघा उद्योग बहुत सारी समस्याओं से जूझ रहा है। जिसमें वित्तीय समस्या व विपणन का समस्या मुख्य है। हथकरघा उद्योग की इन समस्याओं को दूर करने हेतु सरकार द्वारा बहुत से कार्यक्रमों एवं योजनाओं का कार्यान्वयन किया जा रहा है परन्तु अधिकांश बुनकरों में जागरूकता की कमी होने के कारण यह योजनाएं बुनकरों तक नहीं पहुंच पा रही हैं।

अध्ययन का उद्देश्य-

1. हथकरघा उद्योग का वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
2. हथकरघा बुनकरों द्वारा सामान की जा रही विभिन्न समस्याओं का पता लगाना।
3. हथकरघा उद्योग के सुधार एवं विकास हेतु उपर्युक्त सुझाव देना।

शोध विधि -

आँकड़ों का स्रोत-

यह अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इस अध्ययन में आँकड़ों का संग्रह 120 उत्तरदाताओं पर साक्षात्कार अनुसूची द्वारा प्रत्यक्ष वैयक्तिक साक्षात्कार विधि का उपयोग करते हुए किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों का संग्रह विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, लेखों, किताबों आदि के द्वारा प्रदत्त आंकड़ों के आधार पर किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र-

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के काशी विद्यापीठ व सेवापुरी ब्लॉक में किया गया है।

निदर्शन विधि -

प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का उपयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण व व्याख्या-

आँकड़ों का संग्रह साक्षात्कार अनुसूची के उपयोग द्वारा 120 उत्तरदाताओं से एकत्र किया गया है व आँकड़ों का विश्लेषण वित्तीय समस्याओं उत्पादन समस्याओं, विपणन समस्याओं एवं स्वास्थ्य समस्याओं के आधार पर सामान्य प्रतिशत विधि द्वारा किया गया है।

1. **वित्त की समस्या** - हथकरघा क्षेत्र उत्पाद की दृष्टि से अपनी प्रकृति में अत्यन्त ही विविधतापूर्ण उद्योग है। यह उद्योग उत्पादों में लचीलापन देने में सक्षम है। यह उद्योग विकेन्द्रीकृत है, एवं ग्रामीण व नगरीय दोनों क्षेत्रों में स्थित है। यह उद्योग तभी जीवित रह सकता है जब सरकार कठिनतम परिस्थितियों में काम करने वाले बहुत से बुनकरों को समान पुनर्वास सुविधा प्रदान करें एवं बुनकर काम की गुणवत्ता बनाये रखे।

सारणी संख्या-1 : वित्त की समस्या

वित्तीय समस्या	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत (%)
हाँ	96	80
नहीं	24	20
कुल	**120**	**100**

सारणी संख्या-1 के अनुसार अधिकार उत्तरदाता के पास वित्तीय समस्या है। 120 उत्तरदाताओं में से 80 प्रतिशत बुनकर वित्तीय समस्या से जूझ रहे है तथा बहुत कम उत्तरदाता 21 प्रतिशत वित्तीय समस्याओ का सामना नहीं कर रहे है।

2. **उत्पादन की समस्या** - हथकरघा उद्योग में संलग्न बुनकरों की सबसे मुख्य समस्या कच्चे माल (धागा, रंग एवं उससे जुड़े पदार्थों) की अपर्याप्त व अनियमित आपूर्ति की समस्या है। हथकरघा उद्योग में संलग्न बुनकरों को सही समय व सही कीमत पर कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो पाता है। बुनकर सहाकरी समीतियों द्वारा कच्चे माल की अपर्याप्त केन्द्र व राज्य सरकारें हथकरघा बुनकरों, बुनकर सहकारी समितियेां की शेयर पूंजी को मजबूत करने, समितियेां के प्रबन्धन में सुधार हेतु तथा करघों के आधुनिकीकरण के लिए सहायता प्रदान करती है। फिर भी ये समितियाँ बुनकरों की आर्थिक स्थिति को मजबूत नहीं कर पा रही है। क्योंकि बुनकर लिये गये ऋण को समय से चुकाने में समर्थ नहीं होते है और इस प्रकार बुनकर वित्तीय कमी के कारण हथकरघा उत्पादों का बेहतर तरीके से उत्पादन एवं विपणन नहीं कर पाते है।

आपूर्ति हो पाती है। इस प्रकार कच्चे माल की अनुपलब्धता के कारण बुनकरों का कार्य निश्चित रूप से प्रभावित होगा।

धागों की गुणवत्ता का अभाव- धागों की गुणवत्ता में अभाव के कारण उत्पादन कम गुणवत्ता का होता है।

कच्चे माल का अभाव - कच्चे माल के अभाव के कारण धागों की पर्याप्त आपूर्ति नहीं हो पाती है। करघों के उन्नयन में कमी कम उत्पादन का एक प्रमुख कारण है।

नवीन डिजाइनों का अप्रभावी कार्यान्वयन -

नये नये डिजाइनों के अप्रभावी कार्यान्वयन के कारण बुनकर ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते है।

सारणी संख्या-2 : उत्पादन समस्या

उत्पादन समस्या	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत (%)
हाँ	108	90
नहीं	12	10
कुल	**120**	**100**

सारणी संख्या-2 से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता के पास उत्पादन की भी समस्या है। 120 उत्तरदाताओ में से 90 प्रतिशत बुनकर उत्पादन की समस्याओं का सामना कर रहे है जबकि बहुत कम 10 प्रतिशत उत्तरदाता उत्पादन समस्याओं का सामना नहीं करते है।

3. **विपणन समस्या** - घरेलु बाजारों में हथकरघों उत्पादों के मूल्यों में आयी कमी के कई कारण है। इसका एक व्यापक व उदय कारण हथकरघा उद्योग वर्तमान प्रचलित बाजार व उपभोक्ताओं की रूचियों की अवहेलना करता है। विपणन समस्या एक मुख्य समस्या है जो कि हथकरघा उद्योग के विकास हेतु उपयुक्त रणनीति में बांधा उत्पन्न करती है।

हथकरघा उत्पादों के मूल्यों की अधिकता एवं आधुनिक डिजाइनों का न होना व परम्परागत हथकरघा का उपयोग कर हथकरघा उत्पादों को उत्पादित करना व उपयुक्त विपणन प्रणाली का अभावहीनता भी विपणन सर्मस्या एक मुख्य कारण है।

सारणी संख्या-3 : विपणन समस्या

विपणन समस्या	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत (%)
हाँ	111	92.5
नहीं	09	7.5
कुल	**120**	**100**

सारणी संख्या-3 के अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अधिकांशत: उत्तरदाताओं को विपणन की समस्या है। कुल 120 उत्तरदाताओं में से 92.5 प्रतिशत बुनकर विपणन सम्बन्धी समस्या से जूझ रहे है। जबकि इनमें से केवल 7.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं को विपणन सम्बन्धी कोई भी समस्या प्रतीत नहीं होती है।

4. **स्वास्थ्य समस्या** - यह सर्वविदित है कि स्वास्थ्य ही सर्वोत्तम धन है। जहां व्यक्ति सभी प्रकार की शारीरिक व मानसिक बीमारियों में मुक्त होता है। बेहतर स्वास्थ्य उत्पादकता व उत्पादन के हेतु आवश्यक शर्तो में से एक है। हथकरघा उद्योग में संलग्न

हथकरघा बुनकरों को कई प्रकार की व्यवसायिक स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रस्त होना बहुत आम बात है। यह समस्याएं गम्भीर व तीव्र तब और होती है जब बुनकर वृद्धावस्था को प्राप्त करते है। हथकरघा बुनकरों से जुड़ी कुछ समस्याओं निम्न है दृष्टि का कमजोर होना जोड़ों का दर्द, घुटने का दर्द, पीठ का दर्द, दिल की बीमारियां, फेफड़ों की बीमारियां, उच्च व निम्न रक्तचाप एवं फाइलेरिया आदि। खराब स्वास्थ्य समस्याओं के कारण ही अधिकांश बुनकर अपनी उम्र से अधिक उम्र के दिखाई देने लगते है।

सारणी संख्या-4 : स्वास्थ्य की समस्या

स्वास्थ्य समस्या	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत (%)
कमजोर दृष्टि	39	32.5
पीठ दर्द	51	42.5
घुटनों/जोड़ों का दर्द	22	18.33
फेफड़ों की समस्या	08	06.66
कुल-	**120**	**100**

सारणी संख्या-4 से प्राप्त आकड़ों से स्पष्ट होता है कि 120 उत्तरदाताओं के से अधिकांश 42.5 प्रतिशत उत्तरदाता पीठ दर्द की समस्या से जूझ रहे है। सबसे कम 6.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं को फेफड़ों की समस्या है। उपरोकत सारणी के अनुसार 32.5 प्रतिशत उत्तरदाता कमजोर दृष्टि की समस्या से एवं 18.33 प्रतिशत उत्तरदाता घुटनों व जोड़ों की समस्या से जूझ रहे है।

5. **मजदूरी की समस्या** - हथकरघा क्षेत्र एक श्रम प्रधान क्षेत्र हैं जहाँ पर हथकरघा बुनकरों की मजदूरी संतोषजनक होनी चाहिए। सामान्य तौर पर धारणा है कि श्रम प्रधान क्षेत्र पूंजी प्रधान क्षेत्रों की तुलना में कम मजदूरी प्राप्त करते हैं। हथकरघा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं हैं। हथकरघा बुनकरों को उनकी उत्पादन की क्षमता के अनुरूप अपर्याप्त मजदूरी मिलती है। सामान्य तौर पर एक हथकरघा बुनकर को एक साड़ी बुनने के लिए 400-600 रूपया ही प्राप्त होते है। जबकि एक साड़ी बनाने के लिए 4 से 5 दिन का समय लगता हैं। बुनकरों की एक दिन की सामान्यत: औसत आय 100-150 रूपया ही है।

सारणी संख्या-5 : मजदूरी की समस्या

बुनकरों के एक दिन की औसत आय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत (%)
100-200 रूपया	68	56.66
201-300 रूपया	38	31.66
301 से या उससे अधिक	14	11.67
कुल-	**120**	**100**

सारणी संख्या-5 द्वारा प्राप्त आकड़ों के अनुसार 120 उत्तरदाताओं में से 56.66 प्रतिशत बुनकर 100-150 रूपया के बीच की मजदूरी अपने कार्य के पश्चात् प्राप्त करते हैं जबकि 31.66 प्रतिशत बुनकर 200-300 रूपया तथा सबसे कम 11.67 प्रतिशत बुनकर 301 रूपया या उससे अधिक प्रतिदिन की मजदूरी के रूप में प्राप्त करते है।

सुझाव -

हथकरघा उद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए बुनकरों को अपने दृष्टिकोण को पारम्परिक से आधुनिक में बदलना होगा। बाजार व ग्राहकों की मांग एवं अपेक्षाओं के अनुरूप डिजाइनों में परिवर्तन करना होगा। स्थानीय ब्रांड, छवि का निर्माण, उत्पादों में गुणवत्ता, उत्पाद में नवाचार व विपणन नीतियो में आधुनिक तकनीकी का उपयोग घरेलु व अन्तराष्ट्रीय बाजार को बढ़ाता है। उत्पादन गतिविधियों में प्रौद्योगिकी का उन्नयन, विशिष्ट कार्य घंटों का रखरखाव, उत्पादन के बुनियादी ढांचे का विकास व कौशल विकास उत्पादन के साथ ही गुणवत्ता में सुधार करता है। केन्द्र व राज्य सरकारों को कौशल विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों को लागू करना, तकनीकी परिवर्तनों पर बुनकरों में जागरूकता उत्पन्न करना, जो हथकरघा उद्योग के लिए उपर्युक्त है, के लिए वित्तीय सहायता,

प्रौद्योगिकी का उन्नयन, ऋण सुविधाएं प्रदान करने के लिए बेहतर प्रणाली, विपणन सुविधाओं का विकास, युवाओं को प्रोफेशनल के रूप में अपनाने हेतु एवं विश्वास सुनिश्चित कराने के लिए उपयुक्त रणनीति को लागू करना चाहिए।

निष्कर्ष -

हथकरघा क्षेत्र राज्य के साथ ही साथ राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया में एक सक्रिय भूमिका निर्वहन करता है। इस क्षेत्र को बुनकरों के पारम्परिक कौशल के कारण महत्वपूर्ण माना गया है। जो स्थानीय लोगों की जरूरतों व मांगों को समुचित रूप से पूरा करते है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में हथकरघा उद्योग की अलग ही क्षमता है। यह सरल एवं उपर्युक्त तकनीकी से सम्बद्ध है। विश्व जो कि स्वच्छ हवा व पानी की मांग कर रहा है वहां हथकरघा उद्योग की प्रकृति अच्छी तरह से उसके अनुकूल हैं। क्योंकि यह प्रकृति में पर्यावरण के अनुकूल हैं। हथकरघा क्षेत्र के पास एक आत्मनिर्भर तंत्र है। इस उद्योग की कौशल एवं क्षमता की विरासत किसी भी आधुनिक प्रशिक्षण व शैक्षिक संस्था दायरे व पहुंच से ऊपर हैं। व्यवसाय के रूप में हथकरघा बुनाई को लेने के लिए सभी प्रकार के समुदायों के लिए इसमें पर्याप्त लचीलापन है।

हथकरघा प्रतिनिधियों के विकास एवं वृध्दि करने के लिए इस क्षेत्र का दायरा बढ़ाने के लिए कच्चे माल, वित्त विपणन सुविधाओं और अन्य आवश्यक आवश्यकताओं को प्रदान करने के लिए उचित उपाय किये जाने चाहिए। इस क्षेत्र की पूर्ण क्षमता का अहसास कराने के लिए विकास में बाधा डालने वाली समस्याओं को दूर किया जाना चाहिए। केन्द्र व राज्य दोनों सरकारों को सतत् विकास प्राप्त करने में हथकरघा की भूमिका का मान्यता प्रदान करते हुए इसके महत्व को अंगीकार करना चाहिए।

संदर्भ सूची -

1. Renthlei, Lalmalsawmi (2019), "Socioeconomic condition of handloom weavers: A case study of weavers in Zuangtui cluster, Aizawl, Mizoram," Senhri Journal of Multidisciplinary Studies, Vol. 4 No. 1 P.p. 54-62.
2. श्याम सुन्दरी, बी0 (207), ''हथकरघा विपणन - एक नवीन दृष्टि, योजना अंक-4 पृ0 11-19
3. Singh, Amrita and Shailja, D. Naik (2019), "Status of Banaras weavers : A profile", Karnataka J, Agric. Sci. 22 (2) . (408-411)
4. Goswami, R and R. Jain 214, "Strategy for sustainable development of handloom industry,"Golobal journal of finance and management, vol. 6, No.2 P.p. 93-98.
5. Tansushree, Sha. (2015), "A study of present situation of the traditional handloom weavers of Varanasi, U.P. India", International research journal of social science, vol. 4 (3) , 48-53.
6. Rao, Dr, Srinivas and Dr. M. Sridhar (2017), "Problem of handloom weavers in Andhra Pradesh : A study of Krishna District," International Journal of Hunanities &Social Science.

शक्ति की अवधारणा एक अध्ययन

डॉ० सुधीर कुमार शुक्ल

सहायक आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर

राजनीतिक चिन्तन में थ्यूसीडाइस जैसे यूनानी विचारकों ने शक्ति को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया व उनके अनुसार राज्य का शक्तिशाली होना ही उसके अस्तित्व एवं विजय के लिए महत्वपूर्ण है। जबकि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में यह वर्णन किया है कि राज्य यदि शक्तिशाली नहीं है, तो उसका क्षीण होना निश्चित है तथा राज्य की शक्ति में वृद्धि व विस्तार के लिए कौटिल्य ने साम, दाम, दण्ड एवं भेद सभी उपायों का समर्थन किया।

आधुनिक पाश्चात्य चिन्तन में मैकियावेली के अनुसार राज्य को शक्तिशाली बनाना ही राजा का सबसे बड़ा नैतिक धर्म है। उसने मानवीय स्वभाव का विश्लेषण करते हुए कहा कि मानव मूलत: स्वभाव से स्वार्थी, और लालची है जिसे भय के द्वारा ही नियंत्रित किया जा सकता है। उसने नैतिकता के परम्परागत मानदण्डों में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया तथा राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए किए गए सभी उपाय नैतिक हैं। मैकियावेली के लिए फ्रेंच, स्पेन जैसे शक्तिशाली राज्यों का मूल कारण एक निरंकुश शक्तिशाली राजा की उपस्थिति थी। यदि एक शक्तिशाली राजा हो जाए तो इटली की सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है। मानव को भय के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है, क्योकि स्वार्थी व्यक्ति को केवल प्रेम से नियंत्रित नहीं किया जा सकता, प्रेम तभी तक होता है, जब तक व्यक्ति का स्वार्थ होता है। अत: मैकियावेली के सम्पूर्ण चिन्तन में शक्ति को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया। हॉब्स ने मैकियावेली की व्यावहारिक व सामान्य मान्यताओं को एक सैद्धान्तिक आधार प्रदान कर दिया और हॉब्स के विचारों में भी शक्ति को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया। इसलिए प्राकृतिक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति शक्ति के लिए संघर्षरत थे, क्योंकि मानवीय स्वभाव में ही शक्ति की आकांक्षा एवं यशकृति प्राप्त करने की इच्छा विद्यमान होती है। इसलिए प्राकृतिक अवस्था से प्राणों की रक्षा के लिए मनुष्यों ने आपस में एक समझौता किया और इस समझौते का आधार भी शक्ति है। क्योंकि हॉब्स के शब्दों में समझौता बिना तलवार के कागज के टुकड़े का भाग है। उसने भी स्पष्ट माना कि मनुष्य का स्वभाव स्वार्थी है, केवल इसे दंड के भय द्वारा ही नियंत्रित किया जा सकता है।

अत: 'लेबायथा' में शक्ति को केन्द्रीय महत्व प्रदत्त है, हॉब्स के लिए राज्य का अभिप्राय पूर्ण शक्तिशाली राज्य से है। अत: हॉब्स किसी भी रूप में विभाजित सीमित सत्ता को स्वीकार नहीं किया है। उसके लिए ऐसी शक्तिशाली राज्य की आवश्यकता व्यक्तियों के आत्मसंरक्षण के लिए आवश्यक है, क्योंकि यदि शक्तिशाली राज्य नहीं होगा तो परिणाम, अराजकता के रूप में होगी।

मार्क्सवादी विचारधारा में शक्ति आर्थिक आधार पर प्रभावी प्रतीत होता है, क्योंकि मार्कस के कथनानुसार आर्थिक रूप में प्रभुत्वशाली वर्ग का राज्य पर भी नियंत्रण होता है। अत: मार्कस के विचारों में राज्य की शक्ति के बजाए उत्पादन के साधन एवं उत्पादन के संबंधों पर बल प्रदान किया गया है। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में सर्वहारा वर्ग का सदैव शोषण होता है। इसलिए पूंजीवादी प्रणाली के विध्वंस के द्वारा ही उसने साम्यवादी समाज की भविष्यवाणी की। जबकि समकालीन नव-मार्कसवादी ग्रामसी से ज्यादा प्रभावित हैं ग्रामसी का मानना था कि विकसित पूंजीवादी देशों में पूंजीवादी बने रहने के कारण पूंजीवाद द्वारा समाज पर आधिपत्य स्थापित कर लेना है तथा यह आधिपत्य सहमति द्वारा स्थापित हुआ है। पूंजीवाद व्यवस्था ने समाज में अपनी वैधता स्थापित कर ली है। अत: ग्रामसी के विचारों में वैचारिक शक्ति ज्यादा महत्वपूर्ण होती है।

समाज में एक विशिष्ट वर्ग व दूसरा सामान्य वर्ग होता है। विशिष्ट वर्ग के लोग समाज में मुट्ठी भर होते हैं या इनकी संख्या कम होती है, लेकिन यही अल्पसंख्यक या मुट्ठी भर लोग समाज में शक्ति व शासन के केंद्र में होते हैं। लेकिन मूल प्रश्न उत्पन्न

होता है कि शासन मुट्ठी भर ही लोगों का क्यों? पैरेटो के अनुसार व्यक्ति में कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक गुण होते हैं, जिनके कारण व्यक्ति विशिष्ट बनता है। उसके अनुसार किसी व्यक्ति में लोमड़ी जैसी चालाकी व शेर जैसे साहस की आवश्यकता होती है, तथा शासक वर्ग अनेक प्रकार की मिथ्या धारणाएँ उत्पन्न करके समाज पर शासन करता है। पैरेटो के अनुसार विशिष्ट वर्ग दो प्रकार के होते हैं।

1. शासक विशिष्ट वर्ग।
2. गैर-शासक विशिष्ट वर्ग।

पैरेटो ने इतिहास का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि इतिहास कुलीनों की कब्रगाह है। अत: सदैव शासन विशिष्ट वर्ग का ही हुआ है। विशिष्ट वर्ग में सम्मिलित व्यक्ति सदैव एक से नहीं रहते, अपितु इनमें सम्मिलित व्यक्ति सदैव एक से नहीं रहते, बल्कि इनमें परिवर्तन होता रहता है। इसी प्रकार विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त ने राजनीतिक व्यवस्था में पाई जाने वाली शासन प्रणालियाँ हैं। अत: स्पष्ट रूप में वर्गवाद, मार्कसवाद के अनुरूप है।

पैरेटो ने विशिष्ट वर्गों के लिए परिसंचालन की अवधारणा को स्वीकार किया। एक विशिष्ट वर्ग अपने गुणों की पूर्ति के लिए दूसरे विशिष्ट वर्ग की सहायता लेता है. जब व्यक्ति के विशिष्ट मनोवैज्ञानिक गुणों में क्षय होता है तो वह विशिष्ट वर्ग का भाग नहीं होता तथा शासन में रहते हुए यदि विशिष्ट वर्ग का दृष्टिकोण धार्मिक व मानववादी हो गया तो स्वाभाविक रूप में उसके स्थान पर दूसरा विशिष्ट वर्ग आ जाता है। इसलिए शक्ति का अभिप्राय चालाकी और साहस के गुणों की बेहतर समन्वय है। आधुनिक समाज में व्यक्ति को संगठन के नाम से जाना जाता है, जो कि एक जटिल समाज माना जाता है। मिशेल के नियम को गुटतंत्र का लौह-नियम कहा जाता है, जिसका अर्थ ऐसा शासन जो कुछ शक्तिशाली लोगों द्वारा होता है, जिसे तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता। पैरेटो, मोस्का, मिशेल विशिष्ट वर्गवादी विचारक हैं। मोस्का के अनुसार समाज सदैव दो भागों में विभक्त होता है। (1) जो शासन करता है, उनकी संख्या कम होती है। (2) जो शासित होता है, उनकी संख्या अधिक होती है।

मोस्का के अनुसार समाज का अल्पमत भाग अत्यधिक संगठित होता है। यही अल्पमत भाग बहुसंख्यकों को नियंत्रित व निदर्शित करता है। यह वास्तविकता है कि सभी देशों में राजनीतिक सत्ता का प्रबंध केवल मुट्ठीभर अल्पसंख्यक लोग अपने विशिष्ट गुणों के कारण आम जनता से स्वाभाविक रूप में अलग हो जाते हैं।

उसके अनुसार ये मुट्ठीभर शासक भौतिक, बौद्धिक, नैतिक सभी रूपों में श्रेष्ठ होते हैं। यद्यपि कभी-कभी विशिष्ट वर्ग-उत्तराधिकार के कारण श्रेष्ठताएँ प्राप्त कर लेते हैं। मोस्का ने विशिष्ट वर्गों के निर्माण में मनोवैज्ञानिक गुणों के अलावा सामाजिक कारकों को महत्वपूर्ण माना। उदाहरण- परम्परागत समाजों में सैन्य रूप में बहादुर होना शासक वर्ग में सम्मिलित होने का आधार था, जबकि आधुनिक समाज में सम्पत्तिशाली होना शासक वर्ग में सम्मिलित होने का आधार हो गया, क्योंकि सम्पत्तिशाली लोगों के लिए अच्छी शिक्षा व बेहतर प्रशिक्षण आसान होता है। मोस्का, पैरेटो की भांति यह स्वीकार किया कि विशिष्ट वर्गों का शासन केवल बल के आधार पर न होकर कुछ राजनीतिक सूत्रों के निर्माण के माध्यम से होता है। उसके अनुसार विशिष्ट वर्गों का परिसंचरण होता है, लेकिन शासन सदैव विशिष्ट वर्ग का ही होता है। उसने विशिष्ट वर्गों के उदय के निम्नलिखित सामाजिक कारणों का उल्लेख किया

1. सम्पत्ति के नये स्रोत का उदय होना।
2. ज्ञान के नये स्रोत का उदय होना।
3. नये धर्म का उदय।
4. नयी विचारधारा का पनपना ।
5. विदेशी लोगों के साथ व्यापार।
6. नयी खोज का होना।

मोस्का ने विशिष्ट वर्गों में उपविशिष्ट वर्गों की संकल्पना सम्मिलित की व उपविशिष्ट वगों में नौकरशाही व तकनीकी विशेषज्ञों को रखा गया। अत: मोस्का भी लोकतंत्र व समाजवाद जैसी संकल्पना को अस्वीकृत किया। उसके अनुसार शासन केवल मुट्ठीभर लोगों का होता है, लेकिन पैरेटो का मत इस बिंदु पर भिन्न है, क्योंकि पैरेटो ने व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुणों को सार्वभौमिक बनाने

का प्रयास किया, जबकि मोस्का ने विभिन्न देशकाल, परिस्थितियों में अलग-अलग विशिष्ट वगों की कल्पना की।

अमेरिका के संदर्भ में शक्ति का विश्लेषण। अमेरिकी समाजशास्त्री सी. राइट्स मिल्स ने विशिष्ट वर्ग व शक्ति का विश्लेषण अमेरिकी संदर्भ में किया व उनके अनुसार विशिष्ट वर्ग का निर्माण मनोवैज्ञानिक कारणों से न होकर संस्थात्मक कारणों से होता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अमेरिकी समाज में शक्ति का विश्लेषण करते हुए उन्होंने शक्ति वर्ग की धारणा प्रस्तुत की। इस शक्ति वर्ग में उन्होंने व्यापारिक सैन्य, संघीय सरकार के राजनेताओं के संगठनों को शामिल किया। मिल्स के अनुसार शक्ति अभिजन का अभिप्राय इन्हीं तीन समूहों से है। इन समूहों के गतिविधि याँ अतसंबधी होती है। अत: शक्ति अभिजन में राजनैतिक सैन्य व आर्थिक तीनों प्रकार की शक्तियों का समावेश होता है। मिल्स की यह कल्पना आइजन हॉबर ने पहले ही व्यक्त की थी। उन्होंने सैन्य-उद्योगों की संकल्पना के रूप में व्यक्त किया। मिल्स ने अमेरिकी पूंजीवाद को सैन्य पूंजीवादी की संज्ञा दी है।

उनके अनुसार तीन समूहों में आपसी संसक्ता होती है जिसका मूल कारण तीनों समूहों की समान सामाजिक-शैक्षिक पृष्ठभूमि है। उनके अनुसार तीनों समूहों में अदला-बदली देखी जाती है। अत: एक व्यवसायी राजनेता या सैन्य पदाधिकारी राजनेता बन सकता है। मिल्स के अनुसार ये शक्ति के दलाल है जिसमें अमेरिका में लोकतंत्र एक शर्म है, वास्तविकता नहीं।

मिल्स के अनुसार अमेरिकी समाज पर विशिष्ट वर्ग का प्रभुत्व है, वे किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है। बल्कि द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका का प्रवेश, परमाणु बम का हिरोशिमा पर गिराया जाना इन्हीं शक्ति अभिजनों द्वारा पूर्व निर्धारित था, जिस पर आम जनता का कोई नियंत्रण नहीं था। ये शक्ति अभिजन आम जनता को नियंत्रित व जोड़-तोड़ करते हैं। अमेरिका के दोनों दलों के मध्य वास्तविक रूप में कोई अन्तर नहीं है।

बहुलवादियों के अनुसार शक्ति की संकल्पना बहुलवादियों के अनुसार समाज में शक्ति का उर्धवाधर विभाजन नहीं होकर क्षैतिज विभाजन होता है। इसलिए समाज में अनेक समूह होते है व इन समूहों में शक्तियाँ बिखरी होती हैं। इसलिए शक्ति का कोई एक केंद्र निर्धारित नहीं किया जा सकता। बल्कि शक्ति विभिन्न समूहों में बिखरी होती है व राबर्ट डहल के अनुसार यह मूलत. बहुलतंत्र है या पोलार्की है। जिसमें अनेक समूह शक्ति के परस्पर प्रतिस्पर्धा करते हैं व आपस में सौदेबाजी करते हैं लेकिन बहुलवादियों की इस मान्यता को नव-बहुलवादियों ने अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि उनके अनुसार समाज में शक्तिशाली रूप व्यापारिक संगठनों में केन्द्रित होता है।

आधुनिक राजनीति विज्ञान, शक्ति के विज्ञान के रूप में

हेराल्ड लॉसवेल, कॉप्लान के अनुसार शक्ति की संकल्पना सम्पूर्ण राजनीति विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण संकल्पना है। राजनीतिक प्रक्रिया वस्तुत: शक्ति को आकार देना, विघटित करना व प्रयोग करने का नाम है। अत: राजनीति विज्ञान में व्यावहारिकवादी क्रान्ति के पश्चात् शक्ति के अध्ययन को राजनीति विज्ञान का अध्ययन माना गया। आधुनिक समय में इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले विचारक जार्ज कैटलिन, चार्लस मेरियम हेराल्ड लॉसवेल जैसे व्यक्ति मुख्य हैं। अत: आधुनिक राजनीति वैज्ञानिकों ने शक्ति के अनुभवात्मक अध्ययन का प्रयास किया।

अत: राजनीति विज्ञान का अभिप्राय केवल राज्य सरकार के विज्ञान से न होकर, अपितु इसका क्षेत्र शक्ति व प्रभाव है। कुछ लोग इसे नियंत्रण की कला के रूप में देखते हैं। स्टीवन ल्यूकस ने शक्ति के तीन आयामों का वर्णन करते हुए कहा कि शक्ति में निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करने की क्षमता है। इसमें राजनीतिक मुद्दे को प्रभावित करने की योग्यता है। यह लोगों के विचारों पर नियंत्रण करना है।

संदर्भ

1. पंत गुप्त जैन ग्राजनीति शास्त्र के आधार' सेन्ट्रल पब्लिसिंग हाउस इलाहाबाद 2004, पृ. 253-54.
2. रावर्ट मिशेल्स पोलिटिकल पार्लिन, पृ.333
3. सी.राइट मिल, दी पावर इलाईट, पृ. 04.
4. ब्राडेल सेलरू पावर द न्यू सोसल एनालिसिस.
5. जेसी जोहदी, राजनीतिक संकल्पनाएँ एवं विचार धाराएँ एस.वी.पी.डी. सगरा, पृ.7-8
6. बी.एल. फाइन, अवधारणाएँ, एवं विचारधाराएँ, साहित्य भवन आगरा,पृ.2-5

मार्क्सवाद के साहित्यक प्रतिमान और हिन्दी साहित्य

डॉ० यतीन्द्र सिंह कुशवाहा

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, डी.ए-वी. कॉलेज, कानपुर

मार्क्सवाद वह विचारधारा है जिसका सम्बन्ध कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंजेल्स, लेनिन आदि विचारकों से है। प्रगतिवादी कविता का वैचारिक आधार मार्क्सवाद है। मार्क्स ने दो प्रमुख सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया। प्रथम सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति एवं जगत के नियमों की व्याख्या करता है वहीं ऐतिहासिक भौतिकवाद मनुष्य के सम्पूर्ण इतिहास की व्याख्या करता है।

मार्क्स का मानना है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में अन्तर्विरोध होते हैं जिसके कारण पक्ष एवं विपक्ष में द्वन्द्व निरन्तर चलता है। इनके संघर्ष से एक नवीन स्थिति सम्पक्ष का उद्‌भव होता है जो वास्तविकता में एक समझौता है। कालान्तर में यह सम्पक्ष स्वयं एक पक्ष के रूप आकार ग्रहण कर लेता है तथा यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। मार्क्स इसे निषेध के निषेध का नियम के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

मार्क्स उत्पादन के संसाधनों के आधार पर समाज की व्याख्या करते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि किसी भी समाज की व्याख्या उसकी उत्पादन संरचना के आधार पर हो सकती है। समाज की शेष संरचनाएं राजनैतिक, कला, साहित्य इसी आधारभूत संरचना द्वारा निर्धारित होने वाली बाह्य संरचनाएँ या ऊपरी संरचनाएं हैं। स्पष्ट है कि साहित्य यहाँ स्वतंत्र नहीं अपितु उत्पादन प्रणाली का उपउत्पाद ;ठल च्तवकनबजद्ध है। इस उत्पादन प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन के सम्बन्धों की व्याख्या एक महत्वपूर्ण पक्ष है। मार्क्स के अनुसार कुछ अल्पसंख्यक लोग उत्पादन के ससाधनों के स्वामी बन जाते हैं तथा बिना श्रम में धनार्जन करते हें जबकि बहुसंख्यक वर्ग बहुत सीमित आम के द्वारा जीवनयापन करता है। प्रत्येक समाज में यही दो वर्ग होते हैं जिन्हें मार्क्स शोषक तथा शोषित वर्ग कहते हैं।

मार्क्स शोषित वर्ग की समस्याओं का समाधान मात्र हिंसक क्रान्ति के रूप में ही स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि शोषित वर्ग चेतना की उत्पत्ति होने पर अपने हितों के प्रति जागरूक हो जाता है तथा क्रान्ति की सम्भावना निर्मित होती है। मार्क्स भाववादी विचारकों की हृदय परिवर्तन की संकल्पना से असहमत हैं क्योंकि मार्क्स के अनुसार भौतिक परिस्थितियों के परिवर्तन से ही विचारों में परिवर्तन संभव है न कि विचार मात्र के परिवर्तन से भौतिक परिस्थितियों में।

मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद मानव इतिहास की वह अवस्था है जहाँ औद्योगिक उत्पादन की प्रचुरता के कारण मनुष्य की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति संभव है किन्तु इन पर पूँजीवादियों का स्वामित्व या अधिकार स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप सर्वहारा वर्ग को वे मानवीय परिस्थितियाँ उपलब्ध नहीं होती हैं जिसकी संभावना थी। अतः पूँजीपति वर्ग को समाप्त करना विश्व के सभी मजदूरों के लिए आवश्यक है। हिंसक क्रान्तिकारी समाप्ति का मार्ग है। हिंसक क्रान्ति के पश्चात ही समाजवाद भी स्थिति आयेगी जिसमें सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होगी। यह एक संक्रमणशील अवस्था होगी जिसके बाद साम्यवाद की अवस्था आयेगी जो मानवीय इतिहास की आदर्श व्यवस्था होगी। इसमें न धर्म होगा न शोषण, न अलगाव, न राष्ट्र न विवाह, न परिवार। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रूचि के अनुसार संसाधनों की प्राप्ति होगी।

मार्क्स धर्म एवं राष्ट्र जैसी संकल्पनाओं का पूर्ण निषेध किया है। वह धर्म को अफीक के समान स्वीकार करते हैं जो शोषित व्यक्ति को उसमें वास्तविक शत्रु से संघर्ष करने के स्थान पर अलौकिक तथा मिथ्या सुखों के लिए प्रेरित करता है। राष्ट्र भी एक धर्म की भाँति मिथ्या सुखों के लिए प्रेरित करता है। राष्ट्र भी धर्म की भाँति मिथ्या चेतना है क्योंकि वह वास्तविक विभेद के स्थान पर कृत्रिम भौगोलिक विभेद स्थापित करता है। मार्क्स विवाह एवं परिवार समस्याओं का भी विरोधी है क्योंकि ये संस्थाएँ निजी सम्पत्ति की सुरक्षा एवं स्थानान्तरण के लिए विभक्ति है न कि प्राकृतिक रूप से। मार्क्स नारी को शोषित वर्ग के अन्तर्गत तथा पुरूष को शोषक वर्ग के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं।

मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य स्वायन्त या स्वतंत्र रचना नहीं है बल्कि समाज की उत्पादन प्रणाली का ही एक उपउत्पाद है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी समाज का साहित्य वहाँ की अर्थव्यवस्था के स्वरूप से निर्मित होता है। उदाहरण के रूप में महाकाव्य तथा उपन्यास हैं। महाकाव्य मुख्यत: सामन्तवादी समाज में ही रचे जाते हैं जबकि उपन्यास का सम्बन्ध औद्योगिकीकरण से। साहित्य सोद्देश्य होता है। उसका उद्देश्य है शोषित वर्ग को शोषण के प्रति जागरूक करना तथा क्रान्ति हेतु तैयार करना है। यह जागरण कार्य मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को सौंपा था। जो साहित्य सर्वहारा के हित में नहीं वह साहित्य नहीं शोषण को बनाये रखने की व्यवस्था है। लेनिन स्पष्ट घोषणा करते हें कि साहित्य क्रान्ति का हथियार मात्र है।

मार्क्सवाद साहित्य में वस्तु को सर्वाधिक महत्व देता है रूप को गौण मानता हैं रूप् अथवा शिल्प तो वस्तु के अनुरूप स्वत: परिवर्तित होता है क्योंकि रूप शिल्प का उपउत्पाद है। यद्यपि कालान्तर में जार्ज लुकास आदि चिन्ताओं ने वस्तु तथा रूप में आनुपातिक सम्बन्ध को संशोधित किया तथा शिल्प को भी कुछ महत्व देना प्रारम्भ किया। यही कारण है कि प्रख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने विषयवस्तु तथा कलात्मक सौन्दर्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर भारतेन्दु युग, निराला और प्रेमचन्द्र का मूल्यांकन किया। वह प्राचीन समाज और साहित्य का मूल्याकंन करने की मार्क्सवादी पद्धति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''यह आवश्यक नहीं है कि शोषक वर्ग ने जिन नैतिक अथवा कलात्मक मूल्यों का निर्माण किया है। वे सभी शोषण मुक्त वर्ग के लिए अनुपयोगी हो..... प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन में हमें मार्क्सवाद से यह सहायता मिलती है कि हम उसकी विषय वस्तु और कलात्मक सौन्दर्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर उनका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं।''

मार्क्सवाद साहित्य रचना की क्षमता को ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा के रूप में स्वीकार नहीं करता है। साहित्यकार में साहित्य रचने की क्षमता जन्म जन्मान्तरीय है वस्तुत: प्रत्येक व्यक्ति के शरीर पर ही उसकी चेतना निर्भर होती है क्योंकि शारीरिक भिन्नता के परिणामस्वरूप चेतना के स्तर पर भी कुछ उसकी चेतना रचनात्मक लेखन में अधिक समर्थ हो। एक अन्य महत्वपूर्ण तथा यह है कि मार्क्सवाद का स्पष्ट मानना है कि कोई भी रचनाकार समाज से स्वतंत्र नहीं होता है उसके साहित्यिक दायित्वों से उसके सामायिक दायित्व अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इसी सामाजिक दायित्व की पूर्ति हेतु रचनाकार के लिये यह आवश्यक है कि वह शोषित वर्ग को न्याय दिलाने की प्रक्रिया में सक्रिया रूप में सहायक हो। मार्क्सवाद साहित्य और समाज में साहित्य को गौण तथा समाज को प्रमुख स्वीकार करता है। यह अवधारणा कहीं न कहीं साहित्यकार की मौलिकता तथा उसकी वैयक्तिक उद्भावनाओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

प्रगतिवाद का चेतना सम्बन्धी विचार भी मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित है। मार्क्सवाद का दार्शनिक चिन्तन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हे। जिसमें भौतिकवाद का अर्थ है कि ब्रह्माण्ड की अन्तिम सत्ता अपनी प्रकृति में भौतिक है। चेतना की व्याख्या करते हुए मार्क्स का मत है कि वह भौतिक शरीर का ही एक गुण है न किस आत्मा जैसी किसी आध्यात्मिक सत्ता का। उनके अनुसार मानवीय शरीर ऐसी भौतिक संरचना है जिसमें चेतना एक गुण के रूप में उपस्थित है। चेतना की उत्पत्ति ही नहीं चेतना का स्वरूप भी भौतिक स्थितियों से निर्धारित होता है।

मार्क्स अपने ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्त में वह कहता है कि किसी भी व्यक्ति की चेतना उसकी वर्गीय या आथ्रिक स्थिति से निर्धारित होती है। वह हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त को निरर्थक मानता है क्योंकि चेतना परिवर्तन से भौतिक स्थितियों का परिवर्तन असंभव है किन्तु भौतिक परिस्थितियों के परिवर्तन से ही चेतना परिवर्तित होती हे। इस अवधारणा का समर्थन अब्राहम मैल्लो नामक मनोवैज्ञानिक विचारक ने अपने आवश्यकता सोपना सिद्धान्त के द्वारा किया है। इस सिान्त के अनुसार मानव व्यवहार भौतिक आवश्यकताओं, सुरक्षा आवश्यकताओं, सामाजिक आवश्यकताओं, महत्वाकांक्षा आवश्यकताओं तथा आत्म सिद्धीकरण की आवश्यकता के आरोही क्रम में परिवर्तित होता है अर्थात् मानवीय चेतना का विकास सर्वप्रथम भौतिक आवश्यकताओं से ही प्रारंभ होता है। प्रगतिवाद में चेतना की मार्क्सवादी अवधारणा केन्द्र में हैं इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' व्यक्त होती है -

पूँजी से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता
छल नहीं सकता जन को
मुक्ति के मन को।

यथार्थवाद साहित्य के सन्दर्भ में इस दृष्टिकोण को कहा जाता है जो आदर्शवाद का विरोधी है तथा वास्तविकता को यथातथ्य बिना किसी लागलपेट के अंकित करने का पक्षधर है। इसका आरंभ आधुनिक युग के साथ हुआ क्योंकि आधुनिक जीवन दृष्टि ईश्वर और ईश्वरीय लोक के स्थान पर मनुष्य एवं मानवीय लोक को केन्द्र में रखने को अधिक आवश्यक समझती है। यथार्थवाद यथार्थ को वस्तुनिष्ठता से पकड़ने का प्रयास करता है किन्तु इतिहास की जटिलता तथा गतिशीलता दृष्टिकोण के परिवर्तन से यर्थाा की व्याख्याओं को परिवर्तित कर देना है।

प्रगतिवादियों का दाता है कि यथार्थ को देखने की एक ही तात्विक एवं वास्तविक दृष्टि है और वह है समाजवादी यथार्थवाद। जिसके अन्तर्गत उत्पादन प्रणाली मुख्य कारक है और समाज की समस्त संरचनायें उत्पादन प्रणाली से ही निर्धारित होती हैं। किन्तु यथार्थ को इतना सरल और एक आयामी दृष्टि से देखना न तो उचित है और न ही तर्कसंगत क्योंकि यथार्थ की पहचान हेतु अनेक दृष्टियाँ भी हैं यथा मनोवैज्ञानिक यथार्थवादियों का मत है कि मनुष्य की वास्तविकता की पहचान उसके चेतन और अचेतन के विश्लेषण से होती है। चेतन यथार्थ का एक सीमित अंश है वह समस्त अभिव्यक्ति या यथार्थ न होकर संयमित और नियंत्रित अभिव्यक्ति है। एक अन्य दृष्टि अतियथार्थवादियों की है जो मानते हैं कि मानव का यथार्थ समाज में विद्यमान सामाजिक संरचनाओं के अभाव के सन्दर्भ में भी समझ जा सकता है क्योंकि हम जिस मनुष्य को जानते हैं वह तो सामाजिक संरचनाओं द्वारा प्रभावित मनुष्य है न कि सहज मनुष्य। एक दृष्टि प्रेमचन्द्र जैसे साहित्यकारों की भी है जिसे सामाजिक यथार्थवाद के रूप में स्वीकारा जाता है कि समाज के सभी पक्षों की अन्तक्रियाओं से ही यथार्थ की पहचान होती है जिसमें अर्थव्यवस्था अधिक प्रभावशाली कारक तो हो सकती है किन्तु एकमात्र निर्धारक कारक नहीं। अन्य अनेक विचारकों ने भी यथार्थ की नवीन अवधारणायें प्रस्तुत की है यथा भौगोलिक यथार्थवाद, चिकित्सकीय यथार्थवाद, आँचलिक यथार्थवाद एवं सामाजिक यथार्थवाद आदि।

प्रगतिवाद के सन्दर्भ में एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण वैचारिक भ्रम या समस्या प्रगतिवाद तथा प्रगतिशील के अन्तर के सम्बन्ध में है। प्रगतिवादियों की मान्यता है कि इनमें कोई तात्विक अन्तर नहीं है क्यों कि समाज की जड़ता और प्रतिक्रियावादी शक्तियों को पहचानने का कार्य प्रगतिवादी दृष्टि से ही संभव हो सकता है। अन्य दृष्टिकोण यथास्थितिवादी हैं। यही कारण है कि वे प्रगतिशील न होकर प्रगतिविरोधी हैं। नामवर सिंह तो यहाँ तक कह देते हैं इन दोनों में अंतर करना बाल की खाल निकालने के बराबर है।

किन्तु जो विचारक प्रगतिवाद में आस्था नहीं रखते है उनका विचार इसके विपरीत है उनका दावा है कि प्रगतिवाद या उनके दार्शनिक स्त्रोत मार्क्सवाद को न तो अनिवार्यत: प्रगतिशील मानना आवश्यक है और न ही मार्क्सवाद प्रगतिशीलता की एकमात्र अभिव्यक्ति है। अनेक विचारक ऐसे हुये हैं जो मार्क्स के पूर्व की विद्यमान थे यथा कबीर घनानन्द आदि। अनेक विचारक ऐसे हुये जो मार्क्स के समय या उसमें बाद हुए किन्तु उन्होंने मार्क्स के विचारों को नहीं स्वीकारा अस्वीकृति का कारण वैचारिक असहमति थी अथवा मार्क्स के विचारों की जानकारी न होना यथा विवेकानन्द, विनोबा भावे आदि। इन सभी विचारकों को प्रगतिशील मानना आवश्यक है क्योंकि अपने-अपने तरीके से इन सभी विचारकों ने तत्कालीन अमानवीय स्थितियों का विरोध किया है। प्रगतिवादी समीक्षक डॉ. रामविलास शर्म के निम्नाकिंत वक्तव्य इस सम्बन्ध में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है -

इस समस्या को थोड़ी देर के लिए हम छोड़ देते हैं कि वेदों ने वर्ण व्यवस्था कायम की पर नहीं। मान लीजिये कायम की तो ऐतिहासिक विकास क्रम में वह प्रगतिशील थी या नहीं? निस्संदेह जैसे आदिम साम्यवाद के मुकाबले में दास प्रथा प्रगतिशील थी, वैसे ही दास प्रथा के मुकाबले में वर्ण व्यवस्था भी प्रगतिशील थी।''

'यद्यपि डॉ. रामविलास शर्मा की विषय वस्तु में ही निष्ठा व्यक्त करते हैं वह लिखते हैं - ''कला और विषय वस्तु दोनों ही समान रूप से साहित्य रचना के लिए निर्णायक महत्व की नहीं है। निर्णायक भूमिका हमेशा विषय वस्तु की होती है।''

डॉ0 रामविलास शर्मा प्रगतिशील की व्यापक अवधारणा में विश्वास करते हैं। प्रगतिशील साहित्य के सम्बन्ध में उनकी मान्यताएं अग्राकिंत हैं- प्रथम, प्रगतिशील साहित्य भारतीय जनता की सांस्कृतिक विरासत का ऐतिहासिक विकास है; द्वितीय, प्रगतिशील साहित्य राष्ट्रीय स्वाधीनता, शांति और जनतंत्र के लिए संघर्ष का साहित्य है; तृतीय प्रगतिशील साहित्य देश से सामग्राज्यवाद-सामंतवाद की संस्कृति को निकालने के लिए संघर्ष करता है; चतुर्थ, प्रगतिशील साहित्य विभिन्न भाषावर इलाकों की जनता में एकता कायम

करता है और उनकी आपसी मित्रता और भाईचारे को दृढ़ करता है; पंचम, प्रगतिशील साहित्य 'विज्ञान से प्रेम' और 'कला जनता के लिए' इन दो सिद्धान्तों को मिलाकर चलता है; शष्ठ, प्रगतिशील साहित्य जनता की सेवा करने वाले तमाम साम्राज्य विरोधी और सामंत विरोधी लेखकों की एकता को दृढ़ करने से विकसित होता है।

विचारकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो प्रगतिवाद को अनिवार्यत: प्रगतिशील नहीं है यथा एम.एन. राय ने मार्क्सवाद के साथ दीर्घकाल बिताने के पश्चात् मार्क्सवाद को त्याग दिया। उनका मत था कि यह दर्शन मनुष्य की प्रगति में उतना सहायक नहीं जितना इस दर्शन से अपेक्षा की गयी थी।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशीलता व्यापक दृष्टिकोण है जो किसी निश्चित समय या स्थान तक सीमित नहीं है। इसके विपरीत प्रगतिवाद एक विशेष दृष्टिकोण है जो निश्चित समय तथा स्थान से संदर्भित है। प्रगतिवाद सामान्यत: प्रगतिशीलता में अन्तर्निहित है किन्तु कुछ बिन्दु पर जहाँ यह एकतरफा और जड़ से जाता है एवं स्वयं ही प्रगतिशीलता का विरोधी हो जाता है।

संदर्भ सूची

- डॉ. रामविलास शर्मा, साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन, पृष्ठ-21
- डॉ. रामविलास शर्मा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृष्ठ-27
- डॉ. रामविलास शर्मा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृष्ठ-08

गदर काव्य छंद-विधान

डॉ० हरबंस सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

छंद कविता का आवश्यक ओर प्रमुख तत्व है। पुराने साहित्य में छंद के बना कविता की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, चाहे आधुनिक युग में छंद-मुक्त रचना को भी कविता मान लिया जाता है। परन्तु फिर भी कविता में छंद की महत्त अभी भी भली भांति स्वीकार की जाती है। इसीलिए छंद कविता का महत्त्वपूर्ण अंग है।[1] वेदों के 6 अंगों में से एक अंग छंद को माना गया है। पुरातन समय में छंद बंद के बिना विद्या अधूरी मानी जाती थी, क्योंकि एक विशेष व्यवस्था में बंधी होने पर यह अधिक प्रभावशाली हो जाती थी। जिसे संगीत के लय में पढ़ा जा सकता था।

छंद भी कई प्रकार के होते है - प्रमुख रूप से तीन वर्गों के होते -वार्णिक, मात्रिक और गण।

वार्णिक छंद: जिन छंदों की बनावट विशेष गिने चुने अक्षरों के हिसाब से होती हैं जो छंद अक्षरों की गितनी के हिसाब से बने होते है, उनको वर्णिक छंद कहते है।

मात्रिक छंद: जिन छंदों की बनावट विशेष गिनी हुई मात्राओं के अनुसार होती हे, जो केवल मात्रा की गिनती के हिसाब से बनाये जाते है, उनको मात्रिक छंद कहते हैं।

गण छंद - जिन छंदों की बनावट विशेष गिने चुने गुणों के हिसाब से होती है जो छंद केवल गुणों के हिसाब से होती है, जो छंद केवल गुणों को छंद कहते है।

कवित्त: कवित्त एक वार्णिक छंद है, जिसमें चार तुक होती है और प्रत्येक तुक में 31 या 32 अक्षर होते है। पहले आठ-आठ अक्षर पर विराम और अंतिम (चौथा) विराम सात या आठ अंक्षरों पर अर्थात् तुक के अंत में होता है। कवित्त का एक उदाहरण इस प्रकार है -

रंग में भंग डाल कर किया बदरंग हमें,
लग गया जंग कहाँ से हमारी तलवार को।
दुखों में जान घिरी जिंदगी बेहाल हुई,
तोड़ नहीं सकते गुलामी की तार को।
उड़ जाए दुख और भूख की कड़वी लोरी,
जूते से अगर निकाले जो फिरंगी बदकार को।[2]

सवैया: वार्णिक सवैया वह छंद है जिसकी चार तुक होती है प्रत्येक तुक में 23 या 24 अक्षर इस प्रकार होते है कि प्रथम विराम 12 अक्षरों पर और दूसरा 11 या 12 अक्षरों पर होता है, अर्थात तुक के अंत में होता है।[3] सवैया भारतीय काव्य का सर्वप्रिय छंद है।

गदर के समस्त उद्देश्य और प्रेरणा को व्यक्त करने वाला एक सवैया इस प्रकार है - बीरों बल धरण करो उपकार, चंडाल, भक्तिकार से हिंदी को बदमाश की पोल देख सब सोल, यह वक्त अनमोल ना यूँ नीति के ढंग से नितसंग उठो, अब संग फिरंग के जंग मचानें पकड़ो शलशीर दलेर बनो, करके दूर अंधेर सवेरा दिखाये। आलस्य छोड़ विचार करो कुछ, हिम्मत हार कर कुछ कर दिखाये। अच्छा है आज पकड़ लो हथियार, जो वे दुशमन को मार दुख हटायें।1[4]

दोहरा: दोहरा एक ऐसा मात्रिक छंद होता है, जिस की दो तुकें होती है। प्रत्येक तुक में 24 मात्राएँ इस प्रकार जुड़ी होती है कि प्रथम विराम 13 और दूसरा विराम 11 पर होता है अर्थात् अंत में होता है और प्रत्येक तुकों का तुकांत मिलता है।[5] गदर काव्य में दोहरा केवल कोरडे छंदों के प्रारम्भ में गदर की गूँज में संकलित मिलते है, जिनकी गिनती 13 है। वास्तव में दोहरा संबंधित छंद में आने वाले विषय-वस्तु के विषय में संकेत करने के लिए लिखा जाता है। यह दोहरा युक्त कोरडा छंद गुलाम और गदरी के शीर्षक के अंतर्गत लिखे हुए है और 'प्रीतम' की रचना में दिखाये गये हैं। इस गदर की गूंज लड़ी नं. 6 को ठीक करके और बड़ा कर 1933 में दूसरी बार छापी गई पुस्तक में सम्मलित है। 'गुलाम' शीर्षक के अंतर्गत दोहरे इस प्रकार है -

1. बातें सुन पुरातनी ऐसे ही जाता भूल
   सुख अंग्रेजी राज के पल में जाता भूल।
2. राज-राज चिल्लाते लेकर खाली हाथ
   पैसा, इलम ना पास ऐसे ही डालते सथ

बैंत-बैंत वास्तव में पंजाबी का छंद नहीं है। यह अरबी और फारसी के छंदों के नमूनों के आधर पर पंजाबी में बनाया गया है। इन बोलियों में दो ऐसे तुकों वाले छंदों को बैंत कहते हैं जिनका तुकांत मिलता है। बैतों में मात्राओं की गिनती का ध्यान नहीं रखा जाता, केवल तुकांत के मेल वाली तुकों के ही जोड़े बनाने पर ध्यान होता है।

बैंत गदर-काव्य का प्रमुख छंद है। गदर (साप्ताहिक) में 127 और गदर मासिक में 53, इंडिया और कैनेड में 21 और 'गदर की गूंज' के 5 संकलनों में 79 सहित स्वतंत्र रूप से मुख्यतया श्रेष्ठ बैत शामिल हैं।

गदर गाव्य में दो पैंतीस अक्षरी, चार बारहमाह, एक सीहरफी में बैंत छंद का प्रयोग किया गया है। जिसी क्रमाकर संख्या 70, 40 और 15 है। ऐसे गदर-काव्य की बैतों की संख्या 441 बनती है जिनमें गदर का मनोरथ, उद्देश्य, कार्य और अपील को अधिक से अधिक प्रभावशाली ढंग से दिखाया गया है। गदर काव्य के समय पंजाबी बैंतबाजी में अखाड़ों और मुशायरों में ही सवाल जवाब किया करते थे। गदर काव्य की कोई भी सौंची बैंत छंद के बिना नहीं है। दो पृष्ठों और चार पृष्ठों में भी बैंत को ही मुख्य छंद बनाया गदर-काव्य के प्रमुख कवियों में भाई भगवान सिंह प्रीतम, हरनाम सिंह टंडीलाट, मुनशा सिंह दुखी तीन बड़े कवि माने गये है। उदाहरण के लिए एक बैंत प्रस्तुत है -

साथ दिल के प्रेम से गदर पढ़ना,
इसके साथ ही बचेगी जान हमारी।
किसी काम के अन्य अखबार नहीं।
ऐसे ही सर से उतारते अर्थी हमारी
जब बदलेगी 'गदर' विचार हमारे
तभी चलेगी तोप मैदानहमारी
इस गदर को पालना धर्म हमारा
बड़ा सुंदर गदर का है आसरा हमारा
अगर अभी भी न गदर की कदर
धरती होगी पूरी उजाड़ हमारी।

काफी: काफी अरबी माला का शब्द है, जिसके अर्थ बेनियाज करने वाला, आगे आगे चलनेवाला, ज्ञानवान और जरूरतपूरी करने वाला है। साधु ईश्वर दास ने एक तर्ज पर ही काफियां लिख लिख करके एक छंद के रूप में इसे प्रचलित कर दिया। गदरी कवियों ने इसको एक छंद के रूप में ही प्रयुक्त किया है शीर्षक भी काफी लिखे है।[6]

गदर लहर की कविता में संकलित काफियां 11 है। 'गदर/हिन्दुस्तानी गदर (सप्ताहिक) 10 काफियां और युगातरी (मासिक) और 'गदर पार्टी का जनम' में एक-एक काफी संकलित है। गदर-काव्य की सर्वाधिक प्रसिद्ध काफी है -

गदर पार्टी बीड़ा उठाया हिंद आजाद करवाने का।
आओ। शेरो गदर मजाओं मौका नहीं खोने का।

फौज बहुत पास हमारे भाई हमारे बेड़ों में।
नाम करे न तो भी कई
बलिदानी बसते नगर खेडियां में।
लोक हिंद के बड़े शौदाई फंस गये मजहबी झगड़ों में।
राजनीति का पता नहीं कोई झगड़ने लगे बखेड़ों में।
टुकड़े से सब भूखे करते फिकर स्वर्ग को जाने का।
आओ। शेरों स्वर्ग को जाने का मचाये मौका नहीं गंवाने का।[7]

झोक: यह काफी जैसा एक प्रकार का गीत है, जिसमें आम तौर पर किसी बिरहा का वर्णन होता है। पंजाबी के मुस्लमान कवियों ने हजरत मुहम्मद और धार्मिक हस्तियों के विषय में झोकों की रचनाएँ की है। जैसे मौलवी मुहम्मद अकबर अली गुरदास पुरी की झोंक 'हजरत रसूल करीम' और मूसा लुध्यिानवी की झोक ईमात हुसैन' और 'झोक ईनाम कासिम आदि। 123 इसकी सर्वप्रियता का पता उस नोट से लगता है जो 8 दिसंबर, 1913 में गदर में छपा है –

यह गीत झोक के भाव से गाते है। उम्मीद है कि सब भाई इस को लच्छी और बंतों के गीतों से अच्छी निगाह से देखेगें क्योंकि यह आजादी का विचार देते है और वह बरबादी का।

इस टिप्पणी से लोक-धारा की कविता ओर गदर की कविता का अंतर भी स्पष्ट हो जाता है। झोक की प्रसिद्धि का एक कारण 'पगड़ी संभाल जहां की सर्वप्रियता भी है क्योंकि लाला बांके दयाल के इस गीत की स्थायी की झोक की तर्ज पर है।

सोए हुए तुम जागो शेर, सोए हुए तुम जगे रे।[8]

कोरडा – कोरडा एक वार्णिक छंद है जिसमें चार या उससे अधिक पंक्तियां होती है और प्रत्येक पंक्ति में 13 या 14 अक्षर इस प्रकार जोड़ होते कि पहला विराम 6 या 7 अक्षरों पर और दूसरा अगले सात अक्षरों पर अर्थात् तुक के अंत में होता है।[9] प्रथम गदर पर लिखा कोरड़ा इस प्रकार है-

हिंद के बहादुरों क्यों बैठे चुप जी।
आग लगी देश, ना सहो धूप जी।
बुझनी तो यह है ही शरीर त्याग कर।
बनी लिए शेरों के क्या जाना भाग कर।

डियूढ़ – यह एक प्रकार का मात्रिक छंद है। इसकी चार पंक्तियां होती है। मात्रा की गिनती के कारण डियूढ़ के तीन रूप होते है, पर अधिक प्रसिद्ध वह रूप है जिसकी प्रत्येक तुक में मात्राएं होती है। पहला विराम 16 पर और दूसरा आगे की 12 पर और तीसरा आगे वाली आठ पंक्तियों पर अर्थात् तुक के आखिर में होती है। दूसरे और तीसरे विराम पर एक-एक गुरू या दो-दो गुरू होते हैं। चारों पंक्तियों के अंतिम तुकों का भी मिलान होता है।[10] गदरी काव्य में 5 डिरूढ़ां मिलती है। डॉ. केसर सिंह के अनुसार डियूढ छंद का नाम दोभंगी और मदनहर भी है। उदाहरणार्थ –

एक मौका हे गदर करने का,
इस से अधिक न खोजों, सुस्ती छोड़ों।
बीच शिंकजे जालिम फँसा अब,
इसका सिर तोड़ों, खोपड़ी फोड़ों।
शेर जैसे गजभर इन की गर्दन,
पकड़ करोडो, खूब निचोड़ों।[11]

दवैया: दवैया चार पंक्तियों का एक मात्रिक छंद है। जिसकी प्रत्येक पंक्ति में 28 मात्राएं होती है। अंत में शुरू होता है। प्रथम विराम 16 पर और दूसरा विराम 12 पर होता है और तुकांत दो-दो पंक्तियां का होता है।[12]

दोतुका: गदर-काव्य में दो कविताओं 'फिरंगी फँस गया' और 'झूठा फरंगी' दो पंक्तियों में लिखी मिलती है। उदारहणार्थ

बीच कड़की फँस गया बदजात फिरंगी
लेने देने आ गये बन गये बढंगी
फाँ सिर नहीं घूटता बहुत चली चाले,
किये यत्न बहुतेरे बड़ी

'झूठा फिरंगी' की अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं-

बिरहा छंद -बिरहा छंद अपने ईष्ट और प्रेमी से अलगांव के भाव को प्रगाढ़ करने वाली कविता है जिसके लिए कोई निश्चित छंद नही होता। यह एक प्रकार का शोक गीत होता है। जिसके लिए कोई निश्चित छंद नहीं होता। इसमें गदर की हार का पहली बार अहसास दिखाया गया है। इस कविता का शीर्षक है भारत माता बुलाती है अपने 'हिंद' सुपुत्रों को जिसका वर्णन इस प्रकार है -

बिरहा छंद: भारत माता बुलाती है
अपने ''हिन्दी'' सुपुत्रों को
जोवन था जोर है भी सुखों में जनमी।
सुखों की खेल गोदी खेलने के राह हुई।
सुंदर था रूप मेरा सुंदर थी शान वाला,
दौलत भी बहुत घर में अब अपार हुई
ताकत भी अभिभाव था बहुत बड़े दिल का जोश भरा,
का जोश था एक से मैं चार हुई।
बड़ी करोड़ बचे लाड़ से पाले
बच्चों की छत्तर छाया ठंडी में मैं शीतल हुई।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रो. करतार सिंह, नवीन पंजाबी पिगल, पन्ना 13
2. गदर लहर दी कविता, पन्ना 123
3. गदर लहर की कविता, पन्ना 303
4. गदर लहर की कविता, पन्ना 92
5. गदर लहर की कविता, पन्ना 70-71
6. गदर लहर की कविता, पन्ना 148-151
7. गदर लहर की कविता, पन्ना 71
8. गदर लहर की कविता, पन्ना 90
9. गदर लहर की कविता, पन्ना 43-74
10. गदर लहर की कविता, पन्ना 39
11. गदर लहर की कविता, पन्ना 206-208
12. गदर लहर की कविता, पन्ना 209

कबीर : पुनर्पाठ

डॉ० निम्मी ए.ए.

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरल

'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, वह देश – भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है'[1]। महान कथाकार प्रेमचंद के उपर्युक्त मंतव्य को मैं कबीर दास से जोड़कर पढ़ने की कोशिश करना चहूंगी। चूंकि कबीर हिन्दी के प्रथम जन कवि, समाज सुधारक एवं विचारक थे जिन्होंने भारतीय साहित्य एवं समाज को तमस से ज्योति का रास्ता दिखाया। पाँच सौ वर्ष पहले कबीर हमारे बीच विचार बनकर आये थे और व्यवहार बनकर अमर हो गए।

प्रत्येक युग का साहित्य उस समय के समाज से प्रभावित होता है। अत: साहित्य केलिए समाज सापेक्ष होना अत्यंत जरूरी है। यद्यपि कबीर का साहित्य अपने समाज से संपृक्त है तथापि आज तक के समाज को भी आत्मसात करने में सक्षम हुए है। उनके विचार इसी वजह से विशिष्ट और कालजयी है। भारतीय साहित्य और समाज के महान संत कबीर ने वाकई हमारे समक्ष जिन बहुमूल्य विचारों को रखा, काबिलेगौर है कि आगे चल कर कई महान संतों तथा दार्शनिकों के साहित्य का आधार यही दर्शन बना। कबीर की सोच और साहित्य दरअसल मिलजुलकर समाज को जोड़ने का दर्शन है। वे किसी एक धर्म के नहीं है। बल्कि सबके है। उनकी अनोखी शैली इस तरह की थी कि वे किसी धर्म का विरोध नहीं करते थे। लेकिन धर्म, जाति, पंत, व संप्रदाय के नाम पर समाज को बांटने वालों की वे खूब खबर भी लेते थे। उन्होंने अपने महत्वपूर्ण विचारों के जरिए पथ भष्ट समाज को सही रास्ते पर लाने की कोशिश की। उन्हें समाज की बुराइयां व्यक्तिगत रूप से न सिर्फ प्रभावित करती थी बल्कि उन्हें गहरी चोट भी पहूंचाती थी। विजयेन्द्र स्नातक के लफ्जों में 'कबीर सहज में आस्था रखने वाले मानववादी व्यक्ति थे। इस्लाम को स्वीकार करने पर भी मजहबी कट्टरता से वे कोसों दूर थे। उनका कोई लगाव किसी रूढ और अंध – मर्यादा में नहीं था'[2]।

वे मानववादी है, यथार्थवादी है और समाज में बराबरी के समर्थक है। वे धार्मिक कुरीतियों पर सीधे चोट करते है। वे अपने आप में एक रहस्य है। उन्हें समझना आसान नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सही फरमाया है 'वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधू होकर भी साधू नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे'[3]। वे किसी एक समय के नही है बल्कि पूरे समय के पूरे प्रवाह में उनकी अर्थवत्ता बनी हुई है। वे धर्म, जाति, वर्ग, वर्ण, और क्षेत्र की दीवारों से ऊंचे है। 'संस्कृति की चाहे कितनी ही गंभीर और जटिल परिभाषाएँ की जाय, किन्तु पर दुख कातरता और अपरिग्रह से बड़ा कोई दूसरा गुण सुसंस्कृत व्यक्ति में नहीं होता। मानवतावाद में विश्वास रखने वाला व्यक्ति ही दरअसल सभ्य एवं सुसंस्कृत पुरुष है। कबीर ने अपने जीवन में दूसरों केलिए कष्ट को स्वीकार किया था। उनकी तमाम जिंदगी पर दुख कातिर व्यतीत हुआ'[4]–

सुखिया सब संसार है खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै।।[5]

मौजूदा समय में जब पूरे विश्व में धर्म के नाम पर आतंकवाद फैला हुआ है तब कबीर के विचारों को याद करना और उन्हें जीवन में उतारना बहुत प्रासंगिक लगता है। चूंकि 'सद्गुरु कबीर साहब ने एक नए समाज की कल्पना की जो बाह्य से अधिक आभ्यंतर को देखेगा, जो मानवीय भाव-भूमि पर स्थापित होगा। वहाँ हिन्दू नहीं होगा, मुसलमान नहीं होगा, ब्राह्मण-शूद्र, काजी-मुल्ला, ऊंच-नीच, गरीब-अमीर, पापी-पुण्यवान सबका बाध होगा। विवेक और सदाचरण की सामान्य-भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित सम्पूर्ण मानवता समान होगी'[6]।

कबीर एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाँडों के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्त्ति, बाह्याडम्बर, अंधविश्वास, धार्मिक कुरीतियाँ, सांप्रदायिक वैषम्य आदि को उन्होंने अपनी जिंदगी से खारिज रखा। उन्होंने ज्ञान का मार्ग अपनाया जिसके मूल में प्रेम था। उन्होंने इसी सोच को अपने दोहों में जाहिर किया –

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।[7]

आज के संदर्भों में विश्व – संत कबीर के पुनर्पाठ की दरकार है। चूंकि उनके समय से भी विकराल दौर से हम गुजर रहे हैं। फिलहाल पहले से भी अधिक कारगर शोषण के हथियार कई स्तरों पर ईजाद हो गए हैं। आज के लिए सबसे बड़ा खतरा सांप्रदायिकता के बढ़ते कदमों में बेड़ियाँ डालने का है। अत: आज की जरूरत सांप्रदायिकता के खिलाफ लड़ने की है। हालांकि लड़ने वाले कम हैं और लड़ाने वाले अधिक हैं। उन्होंने खुद जातिगत वैषम्य का विष-दंश झेल था। आज के बतौर उस जमाने में भी जाति प्रथा पर आधारित जन्मगत श्रेष्ठता का प्रचलन था। मगर कबीर को यह असह्या था। अत: उन्होंने व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं, कर्मों और गुणों के आधार पर श्रेष्ठ माना। यदि हम उनकी इस मान्यता को स्वीकार करें तो मजहबी जुनून कहीं का खत्म होता। मजहबी मतवालापन के खिलाफ उनकी आवाज इस तरह गूँजती है –

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार की पड़े रहने दो म्यान।।[8]

मौजूदा समय में ईश्वर विज्ञापन का जरिया साबित होता है। धर्म की जबरन बिक्री हो रही। कबीर के मुताबिक ध्वनि विस्तारक यंत्रों के जरिए नमाज तथा पूजा – पाठ करने से मतलब है भगवान को बहरा साबित करना –

कांकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई बनाय।
ता छड़ी मुल्ला बांगदे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।[9]

सांप्रदायिकता आज की सबसे ज्वलंत समस्या है। जिसकी बदौलत तमाम देश रोगग्रस्त बन गया है। हमारा प्रबुद्ध समाज यह जानते है कि जिसको वे पूजते है, वह महज पत्थर है। बावजूद इसके हम इतने अंधविश्वासों में जकडे हुए है कि उसी पत्थर को लेकर बारंबार झगते रहते है। हालांकि इसे भावनात्मक समझने का और स्वीकारने का संकट जरूर है। कबीर ने इन तमाम हालातों के खिलाफ घोर प्रतिशोध दर्ज किया है –

पाथर पूजै हरी मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते तो चक्की भली, पीसि खाय संसार।।[10]

बाह्याडम्बर के खिलाफ भी प्रतिरोध करते है। कोई व्यक्ति लम्बे समय तक हाथ में मोती की माला लेकर तो घुमाता है, पर उसके मन का भाव नहीं बदलता, उसके मन की हलचल शांत नहीं होती। कबीर की ऐसे व्यक्ति को सलाह है कि हाथ की इस माला को फेरना छोड़ कर मन के मोतियों को बदलो या फेरो –

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर,
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।[11]

इस संसार में आकर कबीर अपने जीवन में बस यही चाहते हैं कि सबका भला हो और संसार में यदि किसी से दोस्ती नहीं तो दुश्मनी भी न हो –

कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर,
ना काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।[12]

कबीर के मुताबिक प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर है, लिहाजा उसे बाहर कहीं ईश्वर के वास्ते भटकने की जरूरत नहीं। उन्होंने कहा है कि तुम्हारा शरीर ही वह मंदिर है, जिसके भीतर तुम्हारा साई बसता है –

तेरा साईं तूझ में, जाग सके तो जाग।[13]

दरअसल आज के ठोंगी धर्मावलंबियाँ धर्म का कारोबार कर रहे हैं। इस बात का खेद व प्रतिरोध कबीर को था। ऐसे में उन्होंने घर में रहते हुए संन्यास को नया अर्थ दिया। उन्होंने बताया कि बाल-बच्चों के साथ रहते हुए, रोजी-रोटी कमाते हुए, चरखा चलाते हुए और कपड़ा बेचकर, पैसा कमाकर भी संन्यासी हुआ जा सकता है। यह संन्यास का नया अर्थ था, जिसकी घोषणा कबीर ने डंके की चोट पर की। कबीर के पुनर्पाठ से मतलब है - हम सच्ची धार्मिकता और दिखावे की धार्मिकता में फर्क करना सीखें। बहरहाल कबीर का जो व्यापक परिप्रेक्ष्य है, वह नई आधुनिक चेतना का, नए श्रमशील और स्वावलंबी भारत के निर्माण में वाकई कारगर है। उनकी राय में जब मैं इस संसार में बुराई खोजने चला तो मुझे कोई बुरा न मिला। जब मैंने अपने मन में झाँक कर देखा तो पाया कि मुझसे बुरा कोई नहीं है।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।[14]

कबीर ने अपनी दार्शनिक मान्यताओं को बड़े सीधे और सहज ढंग से सरल भाषा में जनसामान्य के सम्मुख प्रस्तुत किया। चूँकि इनके सारे काव्य-कर्म का केंद्र सामान्य जनता है जोकि दार्शनिक मान्यताओं से दूर अपने दैनिक जीवन में संघर्षरत है तथा जो अशिक्षित भी है, इसलिए कबीर ने सीधी एवं सरल भाषा का प्रयोग किया है -

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं फल लागे अति दूर।।[15]

कबीर कथनी की जगह करनी को तरजीह देते थे। वे आडम्बर की जगह आचरण और इंसान के भीतर छिपे सत्य को उकेरने की कोशिश करते रहते थे। उनकी यही सोच व समझ उन्हें उस दौर से लेकर आज के दौर तक का सही नायक बनाती हैं।

मध्यकालीन भारत के समाज और साहित्य को जिन लोगों ने प्रभावित किया कबीर उनमें अव्वल है। कबीर एक समाज सुधारक है, विचारक है, कवि हैं, संत है, विचार धारा है और खुद अपने आप में एक संस्था है। कबीर का दर्शन आज के हालात में काफी अहम रखता है। इस सदी में हिंदी साहित्य की पढ़ाई उनके सिवाय अधूरी है। अपने तकरीबन सौ साल के जीवन में कबीर ने जितना कहा और लिखा है, वह आने वाले हजारों वर्षों केलिए सबक है। कबीर सिर्फ किताबों तक सीमित नहीं है। वे लोगों के जीवन में समाया है। कबीर के विचारों की सार्थकता दिनों दिन बढती जा रही है। उनका तमाम जीवन सत्य की खोज और असत्यस के खण्डन में बीता है। वह मान्यताओं को तोड़ने वाले तथा गलत परंपराओं का तिरस्कार करने वाले समाज सुधारक है।

मौजूदा समय में वे ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते है। वे यह बताते है कि जहाँ प्रतिरोध है, उसके साथ-साथ गहरी करुणा भी होनी चाहिए। उनकी भाषा शैली लोगों को आकर्षित करती है। उनकी भाषा पंजाबी, राजस्तानी, खड़ी बोली, अवधि, पूर्वी और ब्रज जैसी बोलियों की खिचड़ी है, जिसे सधुक्कड़ी कहा जाता है। वे किसी भाषा या बोली के बंधन में भी नहीं बंधे है। वे लोगों की भाषा में उनसे संवाद करते रहे। लिहाजा कबीर भाषा, धर्म, समाज और समय के दीवारों से परे है।

फिलहाल हम देखते है कि धर्म राजनीति का हिस्सा हो गया है। जातियां अस्मिता तलाश रही है। ऐसी हालातों में एक ऐसा कबीर चाहिए जो यह कह सके कि जो तुम जातियों की बात कर रहे हो यह भी गलत है, ईश्वर है क्या? ईश्वर मन्दिर का नही है। जो सवाल उन्होंने उस समय उठाए थे। उन सवालों की आज की तरह उपादेयता है चूंकि सवालों का जवाब उन्हीं से तलाशना चाहिए। बहरहाल जब तक देश में धर्म की सियासत होगी, जातियां रहेगी, जब तक देश में कटुता रहेगी, जब तक वैमनस्व रहेगा, प्रतिशोध रहेगा तब तक कबीर जीवित रहेंगे और निरंतर उनकी प्रासंगिकता लगातार बढती रहेगी।

निष्कर्षतः कबीर अपने समय से आगे है और अनंतकाल तक अमर रहेगा। और शायद इसलिए वे कहते है -

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या?
रहें आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या?[16]

संदर्भ

1. प्रेमचंद - कुछ विचार, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली, पृ - 22

2. संपादक विजयेन्द्र स्नातक – कबीर, राधाकृष्ण, १९६५, पृ – 244
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, नवीं सं २००४, पृ –144
4. वहीं, पृ – 245
5. रामकिशोर शर्मा – कबीर ग्रंथावली, लोकभरती प्रकाशन, नवां सं २०१३, पृ – 144
6. सं. डॉ. बलदेव वंशी – पूरा कबीर, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, २०१०, पृ – 238
7. रामकिशोर शर्मा – कबीर ग्रंथावली, लोकभरती प्रकाशन, नवां सं २०१३, पृ – 214
8. वहीं
9. वहीं
10. वहीं
11. वहीं
12. वहीं
13. वहीं
14. वहीं
15. वहीं
16. वहीं

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका

डॉ० हर्षेन्द्र प्रताप सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव, उत्तर प्रदेश

सार

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से काफी नीचे है। यद्यपि किसी भी समाज में महिला जनसंख्या का आकार 50 प्रतिशत से कम है, विकासात्मक पहलुओं में उनकी भागीदारी विशेष समुदाय में महिलाओं के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के कारण बहुत कम है। समाज में समग्र परिवर्तन के कारण, सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी भी बढ़ रही है, महिलाओं के लिए वैधानिक प्रावधानों के लिए ग्रामीण विकास के क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन (पंचायत राज) में महिला प्रतिनिधियों की भूमिका एवं उनकी राजनीतिक जागरूकता बढ़ रही है। इस पत्र के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः पंचायती राज; संरचना; महिला सशक्तिकरण; भूमिका।

परिचय

कई देशों में महिलाओं के पास अभी भी संपत्ति का उत्तराधिकार, अपनी जमीन, शिक्षा प्राप्त करने, ऋण प्राप्त करने, आय अर्जित करने या घर से बाहर काम करने, अपनी प्रजनन क्षमता को नियंत्रित करने का अधिकार नहीं है। घरेलू या सामाजिक स्तर पर निर्णय लेने में उनका अभी भी व्यापक रूप से कम प्रतिनिधित्व है। महिलाओं के लिए उच्च गुणवत्ता वाले जीवन की संभावनाओं को सुधारने के लिए मामूली आय सृजन परियोजनाओं के माध्यम से सशक्तिकरण स्पष्ट रूप से अपर्याप्त है। विश्व बैंक ने सशक्तिकरण की पहचान गरीबी में कमी के प्रमुख घटक तत्वों में से एक और प्राथमिक विकास सहायता लक्ष्य के रूप में की है। बैंक ने भी विकास सहायता में जेंडर को मुख्य धारा में लाने को प्राथमिकता दी है, और इस आशय की एक महत्वाकांक्षी रणनीति को लागू करने की प्रक्रिया में है। विकास लक्ष्य के रूप में महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना एक दोहरे तर्क पर आधारित हैः कि सामाजिक न्याय मानव कल्याण का एक महत्वपूर्ण पहलू है और आंतरिक रूप से अनुसरण करने योग्य है, और यह कि महिला सशक्तिकरण अन्य उद्देश्यों के लिए एक साधन है। उदाहरण के लिए, विश्व बैंक (2001ए) की एक हालिया नीति अनुसंधान रिपोर्ट, लैंगिक समानता को अपने आप में एक विकास उद्देश्य के रूप में और विकास को बढ़ावा देने, गरीबी को कम करने और बेहतर शासन को बढ़ावा देने के साधन के रूप में पहचानती है। महिला सशक्तिकरण का समर्थन करने के लिए इसी तरह के दोहरे तर्क को पिछले एक दशक में कई उच्च-स्तरीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों (जैसे, बीजिंग प्लेटफॉर्म फॉर एक्शन, बीजिंग + 5 घोषणा और संकल्प, काहिरा) में दिए गए नीति वक्तव्यों में व्यक्त किया गया है।[1]

भारत में लैंगिक समानता का सिद्धांत भारत के संविधान (प्रस्तावना और मौलिक अधिकारों में) में निहित है जहां संविधान महिलाओं को गुणवत्ता प्रदान करता है। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग, जिसे 1990 में महिलाओं के अधिकारों और कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिए संसद के एक अधिनियम के माध्यम से स्थापित किया गया था, को अधिकार सुनिश्चित करने और महिला सशक्तिकरण की दिशा में काम करने के लिए सर्वोच्च निकाय माना जाता है। लगातार पंचवर्षीय योजनाओं ने महिलाओं को

आर्थिक रूप से मजबूत बनाने की दिशा में प्रयास किए हैं। हालांकि, सामाजिक पदानुक्रम में, महिलाएं, ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की तुलना में निचले स्तर पर बनी हुई हैं।

भारत में महिला साक्षरता दर 63.86 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में 39.42 प्रतिशत है और ग्रामीण भारत में महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा में शिक्षा उत्प्रेरक बनी हुई है। गांवों में सबसे बड़ी समस्या यह है कि वंचित महिलाएं अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों से अनजान हैं। महिलाओं के सशक्तिकरण से बेहतर न्याय, बेहतर जीवन और एक स्थिर समाज सुनिश्चित होगा।

'भारत निर्माण', 'शाइनिंग इंडिया', 'फील गुड', 'इंद्रधनुष', 'सामाजिक आर्थिक विकास', 'मुख्यधारा', 'राष्ट्रीय निर्माण प्रक्रिया', 'ग्रास रूट एडमिनिस्ट्रेशन' और 'सुशासन' की अवधारणा ग्रामीण दलित महिलाओं की भागीदारी और सशक्तिकर बिना संभव नहीं है। अमत्र्य सेन के अनुसार, "घरेलू निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं को अपने लिए अनुकूल परिणाम प्राप्त करने की संभावना कम होती है। उन्हें लगता है कि उनकी दीर्घकालिक सुरक्षा उनके कल्याण को पुरुष अधिकारियों के आंकड़ों के अधीन करने में निहित है।[2]

महात्मा गांधी का लगभग पूरा जीवन देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के लिए समर्पित था। गांधी न केवल देश को विदेशी शोषण से मुक्त करना चाहते थे, वे अंधविश्वास और अज्ञानता के बंधन को भी दूर करना चाहते थे, जिसने समाज को स्थिर बना दिया था। ऐसे समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत खराब थी। इसलिए गांधीजी ने महिलाओं का मुद्दा उठाया। मानवता के प्रबल प्रेमी के रूप में वे अन्याय और असमानता के शत्रु थे। उन्हें महिलाओं और उनकी समस्याओं की समझ थी और उनके प्रति गहरी सहानुभूति थी। महिलाओं की मुक्ति के लिए गांधीजी के प्रयास उनके प्रति उनके विश्वासों और दृष्टिकोण का प्रतिबिंब थे।

1993 में भारत के संविधान का 73वां संशोधन महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण को सुनिश्चित करने के लिए मील का पत्थर है।

महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण

महात्मा गांधीजी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं और ग्राम पंचायत में महिलाओं की समान भागीदारी और सत्ता के प्रति समर्पण पर जोर देते थे। पंचायत राज अधिनियम स्थानीय प्रशासन में लोगों की सक्रिय भागीदारी के लिए उन्हें प्रश्न करने की शक्ति प्रदान करता है और उनके गांवों के विकास के लिए योजना बनाने में उनकी भागीदारी का अनुरोध करता है। स्वयं सहायता समूह की महिलाएं अब मानसिक रूप से तैयार हैं और उनमें स्थानीय और विधायी चुनाव लड़ने का नैतिक साहस है। इस बात की पूरी संभावना है कि भविष्य में स्वयं सहायता समूह के विकास से भारत में बड़ी संख्या में महिला नेता उपलब्ध होंगी। भारत सरकार, राज्य सरकारें और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और यूनिसेफ जैसी कई अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां बाल श्रम से निपटने के लिए कार्यक्रम विकसित करने में शामिल रही हैं। बाल श्रम के उन्मूलन के लिए मां और बच्चे को सशक्त बनाने के लिए स्वयं सहायता समूह का उपयोग करने पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है। प्रक्रिया पिछले कुछ वर्षों से चल रही है और अब तक बाल श्रम के उन्मूलन के लिए 384 स्वयं सहायता समूहों का गठन किया गया है। भारतीय संविधान में 73वें और 74वें संशोधन (1993) को महिलाओं के लिए राजनीतिक सत्ता संरचना में समान पहुंच और बढ़ी हुई भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में एक सफलता के रूप में माना जाता है।[3]

महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण

आर्थिक स्वतंत्रता या विरासत में मिली या स्व-सृजित आय तक पहुंच को महिलाओं के सशक्तिकरण का प्रमुख साधन माना जाता है। समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (भारत) सुरक्षात्मक कानून और समानता के सिद्धांतों की स्थापना की दिशा में एक बड़ा कदम था, क्योंकि यह पुरुषों और महिला श्रमिकों को समान पारिश्रमिक और रोजगार के मामले में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव की रोकथाम प्रदान करता है। नई नीति पहल के अनुसार "विजन 2000: तमिलनाडु में महिलाओं की उन्नति के लिए नीति" के रूप में जाना जाता है, तमिलनाडु में प्रत्येक परियोजना और कार्यक्रम को इस तरह से डिजाइन करने का निर्णय लिया गया था जो महिलाओं की भूमिकाओं को फिर से परिभाषित करेगा और पुरुषों, जैसे कि यह उन्हें समान भागीदार के रूप में काम करने में सक्षम बनाएगा। महिलाओं के विकास के लिए तमिलनाडु निगम की स्थापना सभी कार्यक्रमों और परियोजनाओं में महिलाओं को मुख्य धारा में लाने के लिए एक नोडल बिंदु के रूप में कार्य करने के लिए की गई थी। इस नीति को सभी माध्यमों से सभी संगठनों,

सरकारी और गैर-सरकारी, जो महिलाओं के हित के लिए काम करते हैं, को प्रसारित किया गया है। स्वयं सहायता-समूह की मुख्य गतिविधि बचत और ऋण की स्थापना है। बचत लोगों को योजना बनाने और भविष्य की जरूरतों के लिए प्रोत्साहित करती है। समूह के सदस्य खुली चर्चा करते हैं और विभिन्न विकल्पों के बारे में सोचते हैं। इस तरह की चर्चा सदस्यों के विश्लेषणात्मक और समस्या समाधान कौशल को मजबूत करने में मदद करती है। उद्यमशीलता की विशेषताएँ पहल, रचनात्मकता, लचीलापन, नेतृत्व, स्वतंत्रता, समस्या समाधान, प्रेरक, परिकलित जोखिम लेना, उपलब्धि की आवश्यकता, कड़ी मेहनत और गलतियों से सीखना हैं।[4]

पंचायती राज

पंचायती राज एक दक्षिण एशियाई राजनीतिक व्यवस्था है जो मुख्य रूप से भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, त्रिनिदाद और टोबैगो और नेपाल में पाई जाती है। यह दक्षिण एशिया में स्थानीय सरकार की सबसे पुरानी प्रणाली है। राज शब्द का अर्थ है "शासन" और पंचायत का अर्थ है "विधानसभा" (अयात) पाँच (पंच) की। परंपरागत रूप से पंचायतों में स्थानीय समुदाय द्वारा चुने और स्वीकार किए गए बुद्धिमान और सम्मानित बुजुर्ग शामिल होते थे। हालांकि, ऐसी विधानसभाओं के अलग-अलग रूप थे। परंपरागत रूप से, ये सभाएँ व्यक्तियों और गाँवों के बीच विवादों को सुलझाती थीं। पंचायत के नेता को अक्सर मुखिया या सरपंच कहा जाता था, एक निर्वाचित या आम तौर पर स्वीकृत पद। भारत के आधुनिक पंचायती राज और इसकी ग्राम पंचायतों को न तो पारंपरिक व्यवस्था से भ्रमित किया जाना चाहिए और न ही उत्तर भारत में पाई जाने वाली अतिरिक्त संवैधानिक खाप पंचायतों (या जाति पंचायतों) के साथ।

महात्मा गांधी ने भारत की राजनीतिक व्यवस्था की नींव के रूप में पंचायत राज की वकालत की। यह सरकार का एक विकेन्द्रीकृत रूप होता जहाँ प्रत्येक गाँव अपने स्वयं के मामलों के लिए जिम्मेदार होता। ऐसी दृष्टि के लिए शब्द ग्राम स्वराज ("ग्राम स्वशासन") था। इसके बजाय भारत ने सरकार का एक अत्यधिक केंद्रीकृत रूप विकसित किया। हालांकि, इसे कई प्रशासनिक कार्यों के स्थानीय स्तर पर विकेंद्रीकरण, निर्वाचित ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाने के द्वारा नियंत्रित किया गया है। गांधी द्वारा परिकल्पित पारंपरिक पंचायती राज प्रणाली और 1992 में भारत में औपचारिक रूप से लागू की गई प्रणाली के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं।[5]

भारत में पंचायती राज

प्राचीन काल

ऋग्वेद (1700 ईसा पूर्व) के समय में, सबूत बताते हैं कि 'सभा' नामक स्वशासी ग्राम निकाय मौजूद थे। समय बीतने के साथ, ये निकाय पंचायत (पांच व्यक्तियों की परिषद्) बन गए। पंचायतें लगभग हर गाँव में जमीनी स्तर पर शासन की कार्यात्मक संस्थाएँ थीं। ग्राम पंचायत या निर्वाचित परिषद् के पास कार्यकारी और न्यायिक दोनों तरह की बड़ी शक्तियाँ थीं। इस पंचायत द्वारा भूमि का वितरण किया जाता था जो उपज से कर भी वसूल करती थी और गाँव की ओर से सरकार के हिस्से का भुगतान करती थी। इनमें से कई ग्राम परिषदों के ऊपर एक बड़ी पंचायत या परिषद थी जो पर्यवेक्षण और यदि आवश्यक हो तो हस्तक्षेप करती थी। मध्ययुगीन काल में मुगल शासन के अधीन जातिवाद और सामंतवादी शासन व्यवस्था ने धीरे-धीरे गांवों में स्वशासन का क्षरण किया। शासक और लोगों के बीच सामंती प्रमुखों और राजस्व संग्रहकर्ताओं (जमींदारों) का एक नया वर्ग उभरा। और, इसलिए गांवों में स्वशासन का ठहराव और पतन शुरू हुआ।

मध्यकाल

सल्तनत काल के दौरान दिल्ली के सुल्तानों को पता था कि भारत जैसे विशाल देश पर सीधे केंद्र से शासन करना असंभव होगा। इसलिए उन्होंने सुचारू शासन के लिए विभिन्न स्थानीय निकायों की स्थापना की। मध्यकाल में गाँवों में पंचायतों का प्रचलन था। गांवों से कृषि उत्पाद राज्य के राजस्व का मुख्य स्रोत था।

ब्रिटिश काल

स्वशासन ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य साम्राज्यवादी हितों की रक्षा करना था। ऐसी वस्तु से ही स्थानीय स्तर पर शक्तियाँ दी जाती थीं। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय प्रशासन पर अधिक ध्यान दिया गया।

1883-85 के दौरान कई प्रांतों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित किए गए। शक्तियों के दुरुपयोग के मामले में स्थानीय बोर्डों को हटाया जा सकता है। ब्रिटिश नौकरशाही ने भारतीय को स्थानीय स्वशासन के लिए पर्याप्त अनुभवी माना। प्राचीन काल में ग्राम पंचायत सफलतापूर्वक कार्य करती थी। प्रभावी राज्य नियंत्रण और प्रबंधन था और यह गांव के लिए एकमात्र स्थानीय एजेंसी थी।[6]

आजादी के बाद की अवधि

पंचायत राज को कई चरणों से गुजरना पड़ा। पहली पंचवर्षीय योजना योजना प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी और लोगों की भागीदारी लाने में विफल रही, जिसमें योजना निर्माण कार्यान्वयन और निगरानी शामिल थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उस क्षेत्र की ग्राम पंचायतों के मनोनीत प्रतिनिधियों और कुछ अन्य लोकप्रिय संगठनों जैसे को-ऑपरेटिव सोसायटी। लेकिन यह योजना विकेंद्रीकरण को संतोषजनक ढंग से पूरा करने में विफल रही। इसलिए, विकेंद्रीकरण के विभिन्न पहलुओं पर केंद्र को सलाह देने के लिए विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा समितियों का गठन किया गया था।

कम से कम आंशिक रूप से जमीनी स्तर पर लोगों की प्रत्यक्ष राजनीतिक भागीदारी का गांधीवादी लक्ष्य प्रदान करने के लिए, 1956 में, राष्ट्रीय विकास परिषद् ने बलवंत राय मेहता के अधीन एक समिति नियुक्त की, जिसने 1957 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उसने सिफारिश की:- 3-स्तरीय संरचना जिसमें जिला स्तर पर जिला परिषद, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत शामिल हैं। राष्ट्रीय स्तर पर स्थानीय मामलों से निपटने के असफल प्रयासों के कारण, 1992 में, स्थानीय स्वशासन के लिए एक संगठन के रूप में अपने पहले इस्तेमाल किए गए उद्देश्य के लिए पंचायतों का पुन: परिचय भारत में लगभग 250,000 ग्राम पंचायतें हैं, जो व्यापक हैं और भारतनेट और डिजिटल इंडिया पहल के तहत सक्षम हैं।[7]

संरचना

ग्राम पंचायतें पंचायत राज संस्थाओं (या पीआरआई) में आधार स्तर पर पंचायतें हैं, जो 73वें संशोधन द्वारा शासित हैं, जो ग्रामीण स्थानीय सरकारों से संबंधित है।

- जिला (या शीर्ष) स्तर पर पंचायत
- मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत
- आधार स्तर पर पंचायत

ग्राम पंचायत को वार्डों में विभाजित किया जाता है और प्रत्येक वार्ड का प्रतिनिधित्व एक वार्ड सदस्य द्वारा किया जाता है, जिसे पंच या पंचायत सदस्य भी कहा जाता है, जिसे सीधे ग्रामीणों द्वारा चुना जाता है। पंचायत की अध्यक्षता गांव के अध्यक्ष द्वारा की जाती है, जिसे सरपंच कहा जाता है। निर्वाचित प्रतिनिधियों का कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। पंचायत का सचिव एक गैर-निर्वाचित प्रतिनिधि होता है, जिसे राज्य सरकार द्वारा पंचायत गतिविधियों की देखरेख के लिए नियुक्त किया जाता है।

नई पंचायत राज संस्थाएं

भारतीय संविधान के 73वें और 74वें संशोधन (1993) ने महिलाओं के लिए राजनीतिक सत्ता संरचना में समान पहुंच और बढ़ी हुई भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में एक सफलता के रूप में कार्य किया है। सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की प्रक्रिया में पंचायती राज संस्थाएं केंद्रीय भूमिका निभाती हैं। पंचायती राज संस्थाएं और स्थानीय सरकारें जमीनी स्तर पर महिलाओं के लिए राष्ट्रीय नीति के कार्यान्वयन और क्रियान्वयन में सक्रिय रूप से शामिल हैं।

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के लिए 73वां संविधान संशोधन ऐतिहासिक मील का पत्थर

आबादी के वंचित वर्गों, विशेष रूप से महिलाओं, अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के हितों की रक्षा के लिए, और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए, प्रावधान के साथ 73वां और 74वां संवैधानिक संशोधन पारित किया गया था। 23 अप्रैल 1993 को आरक्षण का। अधिनियम ने स्थानीय स्वशासी निकायों में सभी सीटों में से एक तिहाई सीटें क्रमश: ग्रामीण (पंचायतों के सभी तीन स्तरों) और शहरी क्षेत्रों (नगर निकाय) के लिए महिलाओं

के लिए और अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण उनके अनुपात में आरक्षित किया। हालांकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण अन्य निर्वाचित निकायों (राष्ट्रीय और राज्य विधान सभाओं) में है, 73वां संशोधन भारत में पहला ऐसा संशोधन है जिसने स्थानीय निकाय चुनाव में महिलाओं के आरक्षण को अनिवार्य कर दिया है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुच्छेद 243डी में विस्तार से बताया गया है कि स्थानीय पंचायत चुनाव में महिलाओं और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अन्य लोगों को तीनों स्तरों पर किस प्रकार से आरक्षण प्रदान किया जाना है।[8]

निर्वाचित सीटों के लिए आरक्षण निम्नलिखित पैटर्न में संविधान द्वारा अनिवार्य है:

- प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले कुल स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। इसमें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए प्रदान किया गया आरक्षण शामिल है (अनुच्छेद 243डी (3))
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों के लिए प्रदान किए गए आरक्षण के भीतर, जैसा कि ऊपर वर्णित है, प्रत्येक पंचायत में विभिन्न श्रेणियों के लिए आरक्षित सीटों की कुल संख्या का एक तिहाई से कम नहीं अनुसूचित जाति/एसटी (अनुच्छेद 243 डी (2)
- इन सीटों को एक पंचायत (243डी (1) और (3)) के भीतर विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में रोटेशन द्वारा आवंटित किया जा सकता है।

सभी क्षेत्रों में प्रगति हासिल करने के लिए लैंगिक समानता और महिलाओं के सशक्तिकरण को विश्व स्तर पर एक प्रमुख तत्व के रूप में मान्यता प्राप्त है। महिलाओं के विकास को बढ़ावा देने के लिए, संयुक्त राष्ट्र ने 18 दिसंबर 1979 को महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन अपनाया, जो 3 सितंबर 1981 को लागू हुआ। स्वतंत्रता के बाद बने भारतीय संविधान में और उसके बाद के संशोधनों में यह कारक लगातार और हमेशा महसूस किया गया था कि सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने की जरूरत है। 1959 में बलवंत राज महता समिति की सिफारिशों के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था को अपनाया गया। फिर, यह स्वीकार किया गया कि महिला विकास की अनदेखी देश के समग्र विकास को नहीं कर सकती है। इन कारणों से, पंचायतों में महिलाओं की एक तिहाई भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए 1992 में 73 वां संवैधानिक संशोधन पारित किया गया था जो पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत करेगा। इस संशोधन के पारित होने के साथ, ग्राम सभा (ग्राम समिति) का संविधान अनिवार्य हो गया और पंचायत में महिला सदस्यों की कुल संख्या कुल संख्या का एक तिहाई हो गई। व्यवस्था में इस परिवर्तन का चमत्कारी प्रभाव पंचायतों में नेतृत्व के लिए लाखों महिलाओं को सामने लाया। इस संशोधन को अपनाने से पंचायती राज व्यवस्था को देश के लोकतांत्रिक प्रशासन के तीसरे चरण के घटक के रूप में मान्यता मिली, तो दूसरी ओर महिलाओं के अस्तित्व के अधिकारों को भी विधिवत स्वीकार किया गया। महिलाओं की छिपी क्षमता को सामने लाने के लिए संविधान का यह संशोधन एक प्रासंगिक कदम था। इसने भारत में ग्राम पंचायतों की योजना बनाने, निर्णय लेने, कार्यान्वयन और वितरण प्रणाली की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी की कल्पना की है।[9]

भारत में, 2007-08 में पंचायत राज मंत्रालय द्वारा नियुक्त निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों पर राष्ट्रव्यापी अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला था कि पुरुषों के रिश्तेदारों के लिए महिलाओं को प्रॉक्सी बनाने की पूर्व धारणाओं ने धीरे-धीरे उस मान्यता को स्थान दिया है जिसने राजनीतिक में भाग लेने का अवसर दिया है। प्रणाली, महिलाएं अपने पुरुष समकक्षों की तरह ही सक्षम हैं। महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों ने अपने कार्यालय का उपयोग न केवल मुख्य धारा के लिंग मुद्दों के लिए बल्कि समग्र रूप से समुदाय की विकास आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और स्वास्थ्य, स्वच्छता, बचपन की देखभाल, पीने के पानी आदि जैसे मुद्दों पर भी किया है, जिनका महिलाओं के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है।यह पंचायतों में महिला नेताओं के प्रति सकारात्मक विकास को दर्शाता है। दूसरी ओर महिलाओं को सीटों के आरक्षण की पद्धति के माध्यम से स्थानीय राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ाया जाता है और इस तरह वे "महत्वपूर्ण जन" बनाते हैं जिसके परिणामस्वरूप शासन महिलाओं के प्रति अधिक उत्तरदायी होना चाहिए। महिलाओं के विकास की प्रक्रिया के माध्यम से भी चल रही है, राजनीति में महिलाओं के लिए यह स्थान विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है, क्योंकि समाजीकरण प्रक्रिया ने पुरुषों और महिलाओं के बीच सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के अंतर पैदा

किए हैं और पुरुषों को पदानुक्रम के शीर्ष पर रखा है, जिन्होंने महिलाओं को अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति नहीं देगा। यह समस्या बहुआयामी है और एकल समाधान की पेशकश नहीं की जा सकती क्योंकि जटिल कारक और परिस्थितियाँ समस्या का मूल हैं।[10]

अध्ययन का उद्देश्य

उपरोक्त रुचि को साकार करने के लिए, निम्नलिखित उद्देश्य तैयार किए गए थे।

1. महिला प्रतिनिधियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना
2. स्थानीय स्वशासन में महिला प्रतिनिधियों के बीच राजनीतिक जागरूकता का विश्लेषण करना।
3. पंचायत राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों की समस्याओं का परीक्षण करना
4. ग्रामीण विकास में महिला प्रतिनिधियों की भूमिका का आकलन करना

अध्ययन का विश्लेषण

आंकड़ों का विश्लेषण मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों तरह से किया गया था। सांख्यिकीय विश्लेषण उपकरणों के सांख्यिकीय तरीकों का उपयोग करके किया गया था जो विभिन्न माध्यमों से डेटा को बढ़ाते थे।

नेतृत्व की गुणवत्ता की पहचान करने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण संकेतकों में से एक है। 33.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूरी कर ली थी और 25.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास प्राथमिक स्तर की शिक्षा थी और उनमें से 18.1 प्रतिशत निरक्षर थे। ऐसा पाया कि महिला प्रतिनिधियों की शिक्षा का स्तर निम्न था।

राजनीतिक मामलों के बारे में जागरूकता पैदा करने से संबंधित मीडिया के प्रभाव की व्याख्या करते हुए यह पाया गया कि 55.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे समाचार पत्र पढ़कर राजनीतिक रूप से जागरूक हो गए, 97.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने फिल्में देखकर और 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने राजनीतिक रूप से रेडियो सुनकर जागरूक हो गया।

अध्ययन क्षेत्र की 53 प्रतिशत महिला प्रतिनिधियों को परिवार के सदस्यों के माध्यम से राजनीतिक मामलों की जानकारी मिली क्योंकि परिवार के सदस्य अक्सर परिवार में राजनीतिक मामलों पर चर्चा करते हैं। 25.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने टेलीविजन के माध्यम से सूचना प्राप्त की।

50.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पारिवारिक दबाव के कारण चुनाव लड़ा था। यह इंगित करता है कि चुनाव में महिलाओं की भागीदारी परिवार के सदस्यों की पसंद से नियंत्रित होती थी। 36.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने केवल महिला आरक्षण नीति के कारण पंचायती राज चुनाव में चुनाव लड़ा।

बैठकों में महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों की भागीदारी दर की जांच करने के लिए एक विश्लेषण का प्रयास किया गया है। 84. 9 प्रतिशत महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों ने अपने पुरुष परिवार के सदस्यों के साथ बैठकों में भाग लिया।

निष्कर्ष

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

भारतीय संविधान ने समानता को एक मौलिक सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठापित किया है और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं को समान अवसर देने के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं। इसलिए राष्ट्र ने समानता लाने के लिए एक नया एजेंडा अपनाया। इसलिए, पंचायत राज व्यवस्था 73वें संविधान संशोधन में सन्निहित राजनीतिक और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की परिकल्पना करती है। इस संवैधानिक संशोधन की प्रतियोगिता में ग्रामीण नेतृत्व विशेषकर महिलाओं ने बहुत महत्व ग्रहण किया है और उनका नेतृत्व विभिन्न विकास कार्यक्रमों को बनाने और लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह न केवल महिलाओं के लिए बल्कि पूरे देश के लिए विकास, सुख और समृद्धि का प्रतीक है।

महिलाओं के लिए आरक्षण का अनिवार्य प्रावधान उनके राजनीतिक जागरण और सशक्तिकरण की दिशा में एक कदम है। लेकिन, वास्तव में इस आरक्षण नीति के कारण कई महिलाएं कानूनी और परिस्थितिजन्य रूप से राजनीति में आने के लिए मजबूर

हैं। चूंकि, वे अनुभवहीन हैं और राजनीति के संपर्क में नहीं हैं, इसलिए वे बैठकों में भाग लेने से हिचकते हैं। आत्मविश्वास की कमी भी उन्हें अपनी शक्तियों, अधिकारों का दावा करने और अपने कर्तव्यों का पालन करने से रोकती है। समाज और राष्ट्र में उनकी क्षमताओं, क्षमताओं और भूमिका का एहसास निश्चित रूप से उनकी स्वयं की छवि को मजबूत करेगा और उनमें प्रभावी ढंग से कार्रवाई करने के लिए आत्मविश्वास को बढ़ावा देगा। इसलिए, महिला प्रतिनिधियों को राजनीतिक रूप से जागृत करने की आवश्यकता है, न केवल उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में बल्कि संविधान की प्रकृति, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और पंचायत राज संस्थाओं के मूल्यों, 73 वें संशोधन और इसके प्रावधानों, इस संशोधन अधिनियम के महत्व और विभिन्न विकासात्मक गतिविधियों के बारे में भी जागरूक होने की आवश्यकता है। आवश्यक परिवर्तन को प्राप्त करने के लिए रचनात्मक और प्रभावी होने की उनकी क्षमता को स्पष्ट करने के लिए कार्यक्रमों की आवश्यकता है, जिसे संशोधन अधिनियम और योजनाकारों ने इस शक्तिशाली के माध्यम से प्राप्त करने का सपना देखा है।

आरक्षण नीति अधिक प्रभावी होगी यदि उनके परिवार के पुरुष सदस्य पंचायत नेता के रूप में अपने कर्तव्यों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। पुरुष सदस्यों के अहस्तक्षेप को ऐसे पुरुष सदस्यों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करते हुए लागू किया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों को निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के मामलों में पुरुष हस्तक्षेप को रोकने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए और सबसे बढ़कर प्रत्येक राजनीतिक दल को स्वेच्छा से पार्टी के भीतर ही आरक्षण नीति को अपनाने के लिए आगे आना चाहिए।

एकत्र किए गए आंकड़ों और इस अध्ययन में प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर, यह देखा गया है कि महिला प्रतिनिधियों को एक विशेष राजनीतिक उन्मुख अवसरों में भाग लेने के लिए उन्हें राजनीतिक रूप से सामाजिक बनाने की आवश्यकता है। यह निश्चित रूप से उनके स्वयं के आत्मविश्वास के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा और इस प्रकार अधीनस्थों पर समग्र नियंत्रण बनाए रखा जाएगा। यह महिला प्रतिनिधियों के लिए अपने-अपने क्षेत्रों में ग्रामीण जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए बहुत नैतिक प्रोत्साहन होगा।

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया न केवल अर्थव्यवस्था, शिक्षा, चिकित्सा सुविधाओं आदि के पूर्ण संतोषजनक स्तर के संदर्भ में निहित है, बल्कि इस अध्ययन के ब्रह्मांड के रूप में ग्रामीण बुनियादी सुविधाओं पर निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की गतिशील भूमिका प्रदर्शन भी है। इस संदर्भ में, यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि पंचायत में महिला प्रतिनिधि की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. अम्बेडकर एस.एन. 2000. काम पर नया पंचायती राज, जयपुर: एबीडी पब्लिशर्स, पृ. 42
2. अम्बेडकर एसएन 2004, पंचायती राज और जमीनी स्तर की राजनीति: मुद्दे और परिप्रेक्ष्य। जर्नल ऑफ सोशल डेवलपमेंट एंड जस्टिस, 6(3): 72-76
3. अम्बेडकर एसएन 2006, काम पर नया पंचायती राज, जयपुर: ज्ञान पब्लिशर्स, पृ. 69
4. भगत एन 2004, ग्रास रूट डेमोक्रेसी में महिलाएं, नई दिल्ली: ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, पृ. 132
5. भास्कर के 1997. केरल में महिला पंचायत सदस्य: एक प्रोफाइल, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 7(2): 13- 20
6. बोस ए 2000. महिलाओं का सशक्तिकरण: कैसे और कब, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 36(51): 22-28
7. चंद्रशेखर ए 1991, महिला जिला परिषद और मंडल सदस्यों की प्रोफाइल और भागीदारी, ग्रामीण विकास जर्नल, 10(6): 15-23
8. दास सी 1999, भारतीय महिला: कार्य, शक्ति और स्थिति, बॉम्बे: हिमालय पब्लिशिंग हाउस, पृ 72
9. गौड़ा जी 1998, पंचायती राज संस्थानों की महिला नेताओं का राजनीतिक संबंध: कर्नाटक से एक अनुभवजन्य साक्ष्य, प्रशासनिक परिवर्तन, 25(2): 84- 89
10. मुखोपाध्याय ए, 1995, कुल्टीकरी पश्चिम बंगाल हो केवल सभी महिला ग्राम पंचायत। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 128(4): 17-25

चौधरी चरण सिंह जी के आर्थिक विचार एवं उनके विचारों की उपयोगिता का विश्लेषण

डॉ० ममता शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ

गीता

शोधछात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ

सार–

चौधरी चरण सिंह के अनुसार यदि हमे प्रगति करनी है तो बेरोजगारी और-अर्द्धबेरोजगारी को जल्दी से जल्दी खत्म करना होगा। यहां पर चरण सिंह पर गांधी का प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है। हमें अपनी आर्थिक नीति का उद्देश्य कुल राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने से बदलकर, उत्पादक रोजगार बढ़ाने का करना होगा। अधिक रोजगार की व्यवस्था से कुल राष्ट्रीय उत्पादन में तो वृद्धि होंगी ही, परन्तु यदि हमें कम रोजगार की व्यवस्था और कुल राष्ट्रीय उत्पादन के ऊँचे रेट के बीच में तथा उत्पादन के कम रेट मगर ज्यादा रोजगार के बीच में चुनाव करना हो, तो वाद वाली स्थिति को चुनना चाहिए। चौधरी चरण सिंह का विचार था कि ऐसे उद्योगों को तरजीह नहीं दी जा सकती जिसमें आदमियों की खपत कम हो और मशीनों के जरिये ही सारा काम निपटा लिया जाये।

1.1 प्रस्तावना–

चौधरी चरण सिंह की आर्थिक नीति का मूल आधार देश की आम जनता थी। इस बात को ध्यान में रखकर ही वे अपनी आर्थिक एवं प्रशासनिक नीति का निर्धारण किया करते थे। चौधरी चरण सिंह ने एक अर्थशास्त्री के रूप में लेखन तथा चिन्तन किया। उनका आर्थिक लेखन मुख्यत: भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं तथा निराकरण के उपायों से सम्बन्धित है। अधिकांश रूप में उनका आर्थिक चिन्तन कृषक वर्ग की समस्याओं से है। चरण सिंह ने अपने समस्त आर्थिक विचारों की प्रस्तुति मे गांधीवाद का सहारा लिया, अपने जीवन के आरम्भिक वर्षों में जब काँग्रेस में थे तब भी काँग्रेस के समाजवादी दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे। क्योंकि अनके प्रेरणास्रोत महात्मा गाँधी और स्वामी दयानन्द थे। चौधरी चरण सिंह बडेघ उद्योग पतियों के प्रभुत्व के खिलाफ थी। उनकी अपनी पसन्द गाँधी की अर्थनीति थी। गाँधी जी का समर्थन करते हुए उन्होने स्वीकार किया कि योजनाओं का स्रोत नीचे से होना चाहिए। योजनाएं उपर से न थोपकर गरीबों से शुरू करनी चाहिए कृषि को ही प्रधानता मिलनी चाहिए जो अन्न तथा वस्त्र का स्रोत है इसके विपरीत नेहरू ने अपनी आर्थिक नीति में भारी उद्योगों को कृषि तथा छोटे उद्योगों की तुलना में ज्यादा महत्व दिया परिणामत: बेरोजगारी बढ़ी, गाँधी के समान ही चौधरी चरण सिंह ने भी मानव श्रम के अधिकतम उपयोग का समर्थन किया है उनके अनुसार लघु उद्योगों से इस देश की विशाल जनशक्ति को लगा कर देश का आर्थिक विकास किया जा सकता है। चौधरी चरण सिह का कहना था कि यदि कृषि के लिए भूमि सीमित है तो उसकी प्रति इकाई से अधिकतम उत्पादकता का लक्ष्य होना चाहिए। चौधरी चरण सिह ने गाँधी के समान ही अति अनिवार्य क्षेत्रों को छोड़कर बाकी हर उद्योग में बड़ी-बड़ी मिलों को लगाने का विरोध किया।

केन्द्रीय वित्त मंत्री के रूप मे भी चरण सिंह ने जो बजट प्रस्तुत किया उसमें बडेघ्-बडेघ् उद्योग धन्धो पर भारी टेक्स लगाकर और छोटे उद्योग पर टेक्स घटाकर अपनी इसी नीति को व्यवहारिक जामा पहनाया। जमीदारी उन्मूलन, भूमिकर, चकबन्दी, न्यूनतम मूल्यनीति, आर्दश, जोत आदि नीति उनकी आर्थिक नीति के प्रमुख आधार है तथा कृषक ग्राम सुधार नीति के प्रर्याय है। उनकी इसी विचारधारा ने उन्हे गाँव बनाम शहर की राजनीति के लिए धरातल प्रदान किया। उन्होने बार-बार कहा भारत गाँव में रहता है शहरों में नहीं। चरण सिंह ने कहा था कि नेहरू को प्रधानमंत्री बनाया जाना महात्मा गाँधी की सबसे बड़ी भूल थी क्योंकि नेहरू शहरी पृष्टभूमि के थें। नेहरू ने सहकारी खेती के विचार का भी विरोध किया। वो जानते थे कि सामूहिक खेती मानव स्वभाव के विरूद्ध है। चौधरी चरण सिह की धारणा थी कि यदि ग्रामीण क्षेत्र में अधिक धन पहुचेगा तो वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए किसी न किसी रूप में लाभप्रद होगा। जनता पार्टी के शासन काल में कृषि विकास को प्राथमिकता दी गयी तथा भोजन का 40 प्रतिशत उस पर व्यय किया जाना तय होना चौधरी चरण सिह की आर्थिक विचारधारा को स्पस्ट रूप से परिल्क्षित करता है। सन् 2000 की विज्ञान काँग्रेस में डॉ0 स्वामीनाथन जैसे कृषि विशेषज्ञों ने देश को समर्थ तथा शक्ति शाली बनाने के लिए कृषि का समूचित विकास करने पर बल दिया।

1.2 कृषि विषय का दृष्टिकोण:

खेती के प्रश्न पर गांधी एवं नेहरू सहकारी पद्धति के हिमायती थे। गांधी का पक्का विश्वास था कि जब तक हम सहकारी खेती की पद्धति को नहीं अपनायेगें तब तक हमे खेती का पूरा-पूरा लाभ नही मिलेगाा। गाँधी का सहकारी खेती का तात्पर्य जमीन, पूँजा, साधन, पशु, बीज, आदि सभी चीजों पर सबका सम्मिलित स्वामित्व तथा सभी मिलकर खेती करें, से था नेहरू ने भी सामूहिक खेती की घोर वकालत की किन्तु गांधी के विचारों से प्रभावित होते हुये भी चरण सिंह ने सहकारी खेती मे गांधी के विपरीत हानि अधिक एवं लाभ कम देखा। चरण सिह का मानना था कि सहकारी खेती मे सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना के अन्तर्गत कार्य होगा और सामूहिक उत्तरदायित्व का तात्पर्य किसी का भी उत्तरदायित्व नही। चरण सिंह का मानना था कि जब दो सगे भाई मिलकर सामूहिक खेती नही करपाते तो सामूहिक रूप से यह कैसे सम्भव है। चौधरी चरण सिंह अपनी पुस्तक "इण्डियाज इकोनोमिक पालिसी: ''द गांधी ब्लू प्रिन्ट'' में लिखा है कि ''भूमि की सम्पत्ति पर प्रति व्यक्ति (पत्नी व बच्चे शामिल है) हथबन्दी की सीमा 27.5 एकड़ से अधिक न हो और अतिरिक्त जमीन भूमिहिनों के बीच या ऐसे किसान जिनके पास ढ़ाई एकड़ से कम जमीन हो बाट दी जाय''। नवम्बर 1963 में राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में नेहरू ने कहा था'' कृषि ही अन्य सभी से अपेक्षाकृत अधिक महत्व पूर्ण है। कृषि ही है जिससे प्रगति के लिए साधन सम्पत्ति जुटती है यदि हम कृषि मे असफल रहते है तो हम अद्योग में भी असफल हो जाते है। उद्योग नि:सन्देह बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन उसकी प्रगति तब तक नहीं हो सकती जब तक की कृषि ठोस से स्थायी व प्रगतिशील न हों किन्तु चरण सिंह नेहरू की इस प्रकार की स्वीकारोंक्तियों को उनकी विचारधारा में परिवर्तन नहीं अपितु उनकी कूटनीति व उपदेश नीति का एक हिस्सा मानते है। श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा का कहना है कि कृषि तथा अर्थव्यवस्था के प्रश्न पर नेहरू के विचार चरण सिह के समान ही थें लेकिन नेहरू को ये आभास देर से हुआ।

पोलैण्ड, चीन, यूगोस्लाविया, तथा सोवियत रूस आदि देशों के अनुभव किसी सीमा तक यह सिद्ध करते है कि चौधरी चरण सिंह की राय सही थी खेती के सामूहिकरण से पहुँची हानि से उवरने के लिएसोवियत सुधार के लिए प्रयास कर रहे है। रूस जैसे देश ने भी निजी स्वामित्व की व्यवस्था को धीरे-धीरे पुन: स्थापित किया जा रहा है पश्चिमी जगत में सरकारें व अर्थशास्त्री श्रमिक की उत्पादकता बढ़ाने के प्रति चिन्तित रहते है जबकि हमें एक राष्ट्र के रूप में पूँजीं की वृद्धि करने की दिशा में चिन्तन करना चाहिय इसलिए कि हमारे पास पूँजी की कमी है। न कि विकसित देशो की भाँति श्रम की चौधरी चरण सिंह की अवधारणा थी कि कुल श्रम प्रधान उद्योगों में श्रमिक ही सबसे बड़ा हिस्सा प्राप्त करता है जबकि पूँजी प्रधान इकाई में पूँजी पति। इसके साथ ही सम्भवत: हर व्यक्ति सहमत होगा कि स्वरोजगार ही श्रम प्रधान तकनीक है और निश्चित करती है कि मजदूरी के रोजगार भाड़े से हर मायने में बेहतर है।

चौधरी चरण सिंह का कृषि विषयक दृष्टिकोण बड़ा सटीक, तर्कसंगत, और राष्ट्रहित से भरा हुआ है। बड़े फार्मों के प्रबंध में अपव्यय होता है वहाँ मजदूरों की देखभाल करना मुश्किल होता है जिसके कारण उस जगह बड़ी मशीनों का प्रयोग होने लगा है। इस तरह ये मजदूरों की जगह प्राप्त कर लेती है। फलत: बेकारी बढ़ने लगती है। अत: चरण सिंह छोटी खेती के पक्षधर थे इससे कई फायदे थे आदमियों की संख्या बढ़ती है, काम लगन से होता है जो मशीनों द्वारा कृषि उत्पादन बढ़ाना चाहते थे उनके लिए

चौधरी चरण सिंह का कहना है कि "यदि बड़ी-बड़ी मशीनों से ही उत्पादन बढ़ना होता तो अमेरिका व रूस जहाँ बड़ी-बड़ी मशीनो का प्रयाग होता है प्रति एकड़ उत्पादन पश्चिमी यूरोप व जापान से जहाँ उनकी तुलना में कम मशीनो का प्रयोग है कत न होता।" मशीनीकृत बड़े फार्मो पर उत्पादन दर छोटी जोत के अनुपात में न केवल कम ही रहता है वरन् बेरोजगारी को भी बढ़ाता है। चौधरी चरण सिंह को खेती व किसान की हर स्थिति का पता था जिसके कारण चरण सिंह मशीनो के प्रयोग के विरूद्ध थे। चरण सिंह का मानना था कि पं0 नेहरू व इंदिरा गांधी का कृषि कि विषयक दृष्टिकोण मशीनीकृत बड़े फार्मो का पोषक था, जो भारत के लिये कतई उपयुक्त नही है क्योंकि यह बेरोजगारी को बढ़ाने वाला, सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा पर कुठारा घात करने वाले है। चरण सिंह का मानना था कि भूमि बर्बाद होने की चीज नहीं है। उस पर जो लोग मेहनत करते है वे न केवल उत्पादन बढाघ्ते है वरन् उनके अंदर सुरक्षा की भावना बढ़ती है। इस तरह की सुरक्षा भावना और किसी रोजगार में नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि चौधरी चरण सिंह देश के 46.30 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व रखने वाले और 21.05 प्रतिशत खेतिहर मजदूरों अर्थात् कुल 57. 41 प्रतिशत लोंगों के पक्षधर थे। साथ ही इनको देश की गरीबी दूर करने वाला वर्ग भी मानते थे इसी कारण वे कृषि पर पूँजी न लगाने वाली सरकार की आलोचना करते थे।

1.3 बेरोजगारी:

चौधरी चरण सिंह की आर्थिक नीति का मूल स्वर है देश से गरीबी मिटाना, हर व्यक्ति को काम दिलाना ताकि वह अपने परिवार का पालन कर सके और देश-शोषक समाज को, शोषण के अयोग्य बना सके। यथार्थ में, वह यह मानते थे कि जब देश से बेकारी, गरीबी, अशिक्षा और रहने के लिए घर की कमी दूर हो जायेगी तो देश से लूट-मार, चोरी डकैती तथा अनेशासनहीनता कम हो जायेगी। समाज के एक बड़े वर्ग को खुशहाल बनाने के लिए लघु उद्योगों के विकास पर बल देते थें। वह भारी उद्योगों के विरोधी न थे, पर मानते थे कि भरी उद्योंगो का विकास राष्ट्रीय पूंजी के आधार पर नहीं किया जा सकता, क्योकि अभी देश के पास उसका अभाव है। अत: उनकी मान्यता है लघु-उद्योगों से ही देश को सम्पन्न बनाया जा सकता है। भारी उद्योगों के विकास के विरोध में, उनका अत्यंत सबल तर्क था कि 'भारत की विशाल जनसंख्या के लिए भारी उद्योगों के रोजगार की गुजांइश नहीं है। आज हम देखते हैं कि देश में भारी उद्योगों की बाढ़ आ गयी है। वर्तमान सरकार ने सार्वजनकि क्षेत्र के उद्योगों को, भी निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया है। फिर भी रोजगार के अवसर लेशमात्र भी नहीं बढ़े हैं। आर्थिक दृष्टि से देश और उसकी जनता को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनका विचार था-'अपने ही साधनों की ताकत से धैर्यपूर्वक राष्ट्र का नीचे से क्रमिक विकास।

1.4 भूमि सुधार:

उ0प्र0 में लागू किए गये भूमि-सुधार अपने स्वरूप में बड़े क्रांतिकारी थे। बिना किसी भय या विरोधाभाष के यह दावा किया जा सकता है कि विश्व में कहीं भी लोकतंत्र के अन्तर्गत शोषितों की सहायता के लिए इस तरह के दूरगामी उपाय नहीं किए गये हैं। इस कठिनतम काश्तकारी की हैरान कर देने वाली जटिलता और राज्य का आकर विशाल होने के कारण कठिनतम कार्य को पूरा करने का सारा श्रेय हर मायने में निर्विवाद रूप से चरण सिंह को जाता है। चौधरी चरण सिंह चाहे संसदीय सचिव रहे या मंत्री हमेशा दृढ़ संकल्पी रूख दिखाया, वह मानते थे कि प्रदत्त स्थितियों में छोटे फार्म बडे फार्मों की अपेक्षा एकड़-प्रति एकड़ ज्यादा उपज देते थे। वे बड़े फार्मो की अपेक्षा ज्यादा रोजगार जुटाते थे। देहाती क्षेत्रों में आय की घोर विषमता को दूर करते थे और यह कि जो व्यक्ति अपने हल के नीचे छोटे से छोटे भूखण्ड का स्वामी था वह अपने अन्य किसी भी देशवासी की अपेक्षा लोकतंत्र का बड़ा प्रहरी था। डब्लू0ए0लैंड जिसकी भूमि सुधार और कृषि के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्धान है आपने सन् 1963 में एक रिर्पोट योजना आयोग को पेश करते हुए कहा था कि अभी तक उ0प्र0 को छोड़कर देश के अन्य भागों के किसानों को अपने हल से जोतने वाली जमीन का मालिक नहीं बनाया गया। भूमि सुधारों पर लिखी गयी पुस्तक वी0एल0 दॉडेघ्कर एवं एम0एन0 खुसरू की रिपोट्स से जाहिर होता है कि इन कानूनों से देश के किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ। जोतने वाले किसानों को जमीन का मालिक बनाने वाले कानून के अभाव में अनेक स्थानों पर जमींदारों ने खेतों से बेदखल कर दिया और कई राज्यों में तो मंत्रियों तक ने, जो पहले बड़ी जोत के मालिक नहीं थे बड़ी हिकमतों से बड़ी-बड़ी जोते प्राप्त कर ली। अकेले महाराष्ट्र में 1948 में कृषि सुधार कानून के बावजूद, भूस्वामियों ने इस मौके का लाभ उठाकर 17 लाख एकड़ भूमि, किसानों से ही छीनकर अपने काबू में कर ली। भूमि सुधार से होने वाले लाभों का परिणाम है कि किसान पैदावार अधिक कर रहे हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भूमिसुधार

के कारण किसान के वह भूमि प्राप्त हुई जिसे प्राप्त करने की इच्छा दुनिया के हर किसान के मन में होती है। सामाजिक क्षेत्र में इन सुधारों के कारण ग्रामीण क्षेत्रों का वर्गभेद प्राय: समाप्त हो गया है। यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि जमींदारों की सम्पत्ति समाप्त हो जाने पर उनका गांवों से प्रभाव भी समाप्त हो गया होगा। जहाँ जमीदारों का वर्ग लुप्त हो गया वहां भूतपूर्व काश्तकार के न तो कोई अधिकार थे जिनकी वह रक्षा करता न कोई शक्ति भी जिसका वह प्रभाव कर सकता, न कोई सम्पत्ति थीं जिसका उसको मोह होता और न कोई लालसा थी जिसे आसरे वह जीवन संघर्ष करता किन्तु फिर भी जमींदार का भय सदा उसके सर पर सवार रहता था। लेकिन आज हालत बदल गयी हैं अब किसान को समाज में एक उनच स्थान प्राप्त है और उसके अपने अधिकार है। साथ ही अपने गांव की सम्पत्ति और सरकार में वह भागीदार है। भूमि-सुधार का राजनैतिक परिणाम भी कम महत्व का नहीं है। इन किसानों के अन्दर निजी सम्पत्ति की भावना उत्पन्न करके इस सुधार ने उन्हें वर्ग संघर्ष का विरोधी बना दिया अपनी भूमि के मालिक लाखों खातेदार पैदा हो जाने से एक नया रास्ता खुला स्थायी ग्राम समाज स्थापित हुआ और राजनीतिक चरमयंत्रवाद के विरूद्ध एक आड पैदा हो गयी है। भूमि सुधार के परिणाम स्वरूप शांति विध्वंसकों और शांतिपूर्ण व्यवस्था के विरोधियों को बहुत धक्का लगा है।

1.5 आर्थिक विचारों की उपयोगिता:

चौधरी चरण सिंह के आर्थिक विचार जहाँ एक ओर अपने अनुभवों पर आधारित थे वहीं दूसरी ओर गाँधी के आर्थिक विचारों से भी प्रभावित थे। चरण सिंह के आर्थिक विचार क्रांतिकारी थे। उनके अधिकतर आर्थिक विचार कृषि क्षेत्र से ही जुड़े थे। किसानों के उत्थान के लिये चरण सिंह ने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया। उनका मानना था कि प्रदेश की 80 प्रतिशत आबादी ग्रामों में वास करती है। अत: किसी भी नीति का निर्माण करते समय उनका विशेष रूप से ध्यान रखना होगा। गाँधी के ही समान चरण सिंह के आर्थिक विचार ग्रामोन्मुखी थे। चरण सिंह के आर्थिक विचारों को यदि असली जामा पहनाया जाये तो आज भारत अनेकों आर्थिक समस्याओं से उबर सकता है।

आज देश जिन महत्त्वपूर्ण समस्याओं से जूझ रहा है, उसमें आर्थिक समस्या प्रमुख हैं। चौधरी चरण सिंह गाँधीजी से प्रभावित थे अत: उन पर गाँधीजी के आर्थिक विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। आज के भारत की परिस्थितियों में चरण सिंह के आर्थिक विचार उपयोगी हैं। चौधरी चरण सिंह ने अपने को किसान का बेटा कहलाने का भी पूरा-पूरा सबूत जमींदारी कानून के माध्यम से दिया है। उ.प्र में जमींदारी उन्मूलन की शुरुआत चौधरी चरण सिंह ने की। उन्हें प्रदेश के लाखों किसानों की गरीबी ओर खेती की परेशानियों की जानकारी थी और जब जमींदारी उन्मूलन कानून के माध्यम से किसानों को उनकी काश्तकारी के अधिकार दिये गये तो प्रदेश में एक क्रांति सी आ गयी। किसान खेती के पीढ़ी दर पीढ़ी काश्त करते हुए भी उस जमीन के टुकड़े के मालिक नहीं थे। वे चरण सिंह की दृढ़तापूर्ण कार्रवाई के फलस्वरूप एक दिन उनके स्वामी बन गये। अंग्रेजों के जाने के बाद पहली बार उन्होंने आजादी की साँस ली। किसानों के छोटे-छोटे झोपड़े जो छोटे-बड़े जमींदारों की मल्कियत थे और किसी भी समय वे किसान को बेदखल किये जा सकते थे। इस खतरे से हमेशा के लिए बचाये और भूमिहीन किसान अपने घर और जमीन के सही माने में मालिक बने।

चौधरी चरण सिंह ने जमींदारी उन्मूलन के अलावा उ.प्र. में भूमि सुधार लागू करके एक क्रांतिकारी काम किया, जो आज के किसानों के लिये काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। विश्व में कहीं भी लोकतंत्र के अन्तर्गत शोषितों की सहायता के लिए इस तरह के दूरगामी उपाय नहीं किये गये हैं। इस कठिन कार्य को पूरा करने का सारा श्रेय हर मायने में निर्विवाद रूप से चरण सिंह को जाता है। आज का किसान भूमि सुधार की वजह से अधिक पैदावार पैदा कर रहा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भूमि सुधार के कारण किसान को वह भूमि प्राप्त हुई जिसे प्राप्त करने की इच्छा दुनिया के हर किसान के मन में होती है। सामाजिक क्षेत्र में इन सुधारों के कारण ग्रामीण क्षेत्रों का वर्ग भेद प्राय: समाप्त हो गया है तथा काश्तकारों का स्थान समाज में ऊँचा उठ गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चौधरी चरण सिंह के भूमि-सुधार कार्यक्रम की वजह से आज के किसान को अपने अधिकार प्राप्त हैं तथा साथ ही अपने गाँव की सम्पत्ति और सरकार में वह भागीदार हैं।

चौधरी चरण सिंह किसानों के हिमायती थे। अत: उन्होंने चकबन्दी कराकर एक और क्रांतिकारी काम किया। मोटे तौर पर चकबन्दी का अर्थ किसानों के बिखरे हुये खेतों को दो,तीन चकों में इकट्ठा करना होता है, लेकिन चकबन्दी का उद्देश्य इससे कुछ अधिक है। उ.प्र. के किसानों की जोतें दस से लेकर बीस स्थानों तक फैली हुई थीं इसलिए उसके सामने फसलों की रखवाली

एवं सिंचाई तथा बैलों को एक कोने से दूसरे कोने तक ले जाने में बड़ी दिक्कतें होती थीं। चकबन्दी होने के बाद ये सभी परेशानियां दूर हो गयीं तथा किसानों की पैदावार भी बढ़ गयी। चकबंदी का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि किसान तथा सरकार के बीच सीधे सम्पर्क स्थापित हो गया।जमींदार हमेशा लगान वृद्धि से किसान को परेशान करता था, वह स्वत: ही इस विपत्ति से छुटकारा पा गया। पानी के बंटवारे के सवाल पर झगड़े समाप्त हो गये तथा मानव श्रम की भी बचत हो गयी। चौधरी चरण सिंह के इस प्रयास से उ.प्र. के किसानों के लिए चकबन्दी एक वरदान के रूप में सामने आई। देश का दुर्भाग्य है कि इस देश के कुछ राज्यों जैसे- आन्ध्र प्रदेश, जम्मू काश्मीर, आसाम, केरल, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल के किसान आज भी इस लाभ से वंचित हैं। अभी भी चकबन्दी होना शेष है अत: इसे तत्काल करवाया जाये देश की आर्थिक उन्नति के लिए यह जरूरी है।

चौधरी चरण सिंह न केवल किसानों के सच्चे हमदर्द थे वरन् उनकी समस्याओं से निजात दिलाने के लिए हमेशा प्रयत्नशील भी रहा करते थे। इसी कड़ी में उन्होंने मंडी समिति की व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण काम किया। चौधरी चरण सिंह में जन हितकारी सोच, कुशाग्रबुद्धि और विलक्षण प्रतिभा का समन्वय शुरू से ही देखने को मिला। उन्हें पता था कि किस तरह से भिन्न-भिन्न टैक्स लगाकर किसान की लुटाई की जाती है। साथ ही कम तुलाई तथा भण्डारण की व्यवस्था न होने से उसे कितनी असुविधा का सामना करना पड़ता है। चरण सिंह ने किसानों की असुविधाओं को दूर करने के लिए मंडी समिति की व्यवस्था की थी जिसके फलस्वरूप आज भी किसान सुखी है।

चौधरी चरण सिंह ने कुशल प्रशासक का परिचय देते हुए पटवारियों के पदों को समाप्त कर दिया था। वे जानते थे कि यह शोषण एवं अन्याय करनेवाली संस्था है। उस समय पटवारी किसानों का भाग्य विधाता होता था। पटवारी की कलम चित्रगुप्त की कलम थी वे जो लिख देते थे वही ब्रह्मा का लेख हो जाता था। पटवारी किसानों से मनमाना पैसा वसूलते थे। चौधरी चरण सिंह ने पटवारियों के जगह लेखपालों की नियुक्ति कर एक क्रांतिकारी कार्य किया जिसके फलस्वरूप सदियों से चली आ रही किसानों की क्रूर कहानी समाप्त हो गयी।

नई व्यवस्था में लेखपाल घर-घर जाकर मौके पर सही स्थिति का पता लगाता था तथा क्षेत्र के सभी व्यक्तियों के इन्तखाब मौके पर जाकर देता था। नामों में परिवर्तन अब न्यायालय के आदेश से ही हो सकता है। लेखपाल स्वयं नहीं कर सकता। चरण सिंह की यह दूरदृष्टि एवं कुशल प्रशासनिक क्षमता ही थी जिसने कृषकों को पटवारियों के अत्याचारों से मुक्त करवाया।

चौधरी चरण सिंह हमारे बीच नहीं है किन्तु उन्होंने अपने जीवन में जिन सिद्धान्तों का, मूल्यों का निर्माण किया, वह आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर रहे हैं और करते रहेंगे। आज देश में बेरोजगारी की भारी समस्या है। चौधरी चरण सिंह ने लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति पर बल दिया था ताकि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सके। साथ ही उन्होंने कृषि और किसानों की हालत में सुधार की हिमायत की थी। यदि चरण सिंह के विचारों को आज भी लागू किया जाये तो बहुत हद तक बेरोजगारी की समस्या से निजात मिल सकती है। चरण सिंह रोजगार के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने के समर्थक थे, जिससे कार्य करने के लिए इच्छुक व्यक्ति के कार्य उपलब्ध हो सके इसलिए तकनीकी प्रशिक्षण लघु रोजगार परामर्श समितियों की सुविधा उपलब्ध करवाना सरकारी दायित्व समझते थे। असलियत में उनकी नीतियों, सिद्धान्तों पर चलकर यह देश मौजूदा समस्याओं से छुटकारा पा सकता है।

चौधरी चरण सिंह का विचार था कि ऐसे उद्योगों को तरजीह नहीं दी जा सकती जिसमें आदमियों की खपत कम हो और मशीनों के जरिये ही सारा काम निपटा लिया जाये। भारत में ऐसे छोटे-छोटे कुटीर उद्योग धंधों की जरूरत है जिसमें उत्पादन में अधिक लोगों की भागीदारी हो साथ ही इन कुटीर उद्योगों को गाँव कस्बों में ही स्थापित किया जाय ताकि कृषि उत्पादन को इनमें खपाया जा सके। चरण सिंह का यह विचार निश्चित ही अधिक से अधिक लोगों को रोजगार का अवसर उपलब्ध करायेगा तथा उनकी क्रयशक्ति बढ़ेगी साथ ही कृषि भूमि पर बोझ कम होगा। उनका तर्क था कि 1940 से पूर्व अमेरिका में खेती पर निर्भर जनसंख्या का 23 प्रतिशत था वह घटकर अब 5 प्रतिशत रह गया, परिणाम यह हुआ कि उत्पादन में लगातार बढ़ोत्तरी हुई। इस तरह बेरोजगारी दूर करने तथा देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए चौधरी चरण सिंह की नीतियों पर अमल किया जाये तो राष्ट्र के हालात सुधर सकते हैं।

चौधरी चरण सिंह ने बहुत गहराई से महसूस किया था कि जब तक जन्मदर को कम नहीं किया जाता देश दुर्दशा की खाई से नहीं निकल सकता है। वे कहते थे कि केवल जनचेतना के द्वारा ही हम इस पर काबू पा सकते हैं जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण

राष्ट्र के हित में है जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए एक ऐसा कानून और कार्यक्रम बनाना होगा जो जनता के सभी वर्ग का बराबर योगदान प्राप्त कर सके। चरण सिंह जनसंख्या के पक्षधर थे क्योंकि वे जानते थे कि जनसंख्या देश की आर्थिक नीति तथा रोजगार को प्रभावित करती है। इसलिए उन्होंने लड़कियों की विवाह की उम्र बढ़ाने पर बल दिया था इस बात को आज महसूस किया जाता है। आर्थिक उत्पादन और जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में आज भी निरंतर कार्य किया जा सकता है।

चौधरी चरण सिंह सहकारिता के विरोधी थे आज कोआपरेटिव के संगठन असफल होते दिख रहे हैं। इससे पता चलता है कि चरण सिंह का दृष्टिकोण सहकारिता पर सही था। उन्होंने कहा था कि भूमि और श्रम के एककीकरण से कृषि के उत्पादन में वृद्धि होने के बावजूद कमी ही आयेगी और यह योजना अव्यावहारिक होने के साथ-साथ हमारी लोकतांत्रिक जीवन पद्धति के प्रतिकूल भी है। चरण सिंह जानते थे कि सहकारी खेती को लागू करने वाला प्रस्ताव देश के लिए हितकर नहीं होगा और यह सिद्ध हो गया है कि उनका विचार देश के हित में था। वे कहते थे कि जब रूस जैसे देश में सहकारी खेती की योजना सफल नहीं हुई तो भारत में कैसे सफल हो सकती है। आज देश महसूस कर रहा है कि चौधरी चरण सिंह का इस पर दृष्टिकोण सही था।

1.6 निष्कर्ष-

प्रो0 परिमल दास चौ0 चरण सिंह की समस्त आर्थिक नीति के गर्ग को समझते हुए लिखते है कि देश में पिछड़ों की राजनीति गाँव और गरीबी की राजनीति के अलावा और कुछ नहीं बन सकती। राष्ट्रीय स्तर पर बहुसंख्यक के वर्चस्व की स्थापना ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान आर्थिक नीति से जुड़ी है। कम से कम शुरू के चरणों में ऊँची जाति ऊँचे वर्ग और अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों के लिए गाँधी दकिया नूसी और पुरातनपंथी थे। लोहिया सिरफिरे और चरण सिंह कुलक या जाट नेता। कई दफा उनकी चाल या दांव गलत भले ही रहा हो, पर रण कौशल कभी गलत नहीं रहा भारत के सर्वहारा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता कभी भी कमजोर नहीं हुई। आधुनिकता के नाम पर अनावश्यक तौर पर नऐ मशीनी औजार देश में लाकर देश की अर्थव्यवस्था को नव उपनिवेशवाद के शिकंजे में फंसाया जा रहा है। इसके अचानक परिणाम दिखने लग गए हैं। गाँधी जी, लोहिया, चरण सिंह द्वारा दिए गये वैचारिक विकल्प को क्रियान्वित करके ही देश को इस अनिवार्य संकट से बचाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- भारत की भयावह आर्थिक स्थिति - चरण सिंह
- इण्डियाज इकोनामिक पॉलिसी ''द गाँधीपन ब्लू प्रिन्ट'' - चरण सिंह
- टू मिस्टेक्स ऑफ गांधी जी - चरण सिंह व करगेती
- दास कैपीटल - कार्ल मार्क्स
- बींसवी सदी की राजनीतिक विचारधाराए - गुर्ती सुब्रहमण्य
- मार्डन पोलिटिकल थ्योरी - सी0ई0यम0जोद
- प्लेटो एण्ड हिज प्रेडीसर्स - बारकर
- राजदर्शन का स्वाध्याय - सी0एल0वेपर
- रीसेन्ट पोलिटिकल थॉट - कोकर
- आधुनिक तकनीकी विचारों का इतिहास - जे0पी0सूद
- सर्वोदय तत्व दर्शन - गोपी नाथ धवन
- महात्माँ गांधी के विचार - आर.के.प्रभु व यू0आर0 राव
- भारत की गरीबी और उसका समाधान - चरणसिंह

सामाजिक-आर्थिक न्याय और समावेशी विकासः भारत के संदर्भ में एक अध्ययन

एन राजेन्द्र सिंह

सहायक आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय अलवर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत में सामाजिक अन्याय और आर्थिक विषमता की जड़ें बहुत गहरी हैं। अनेक संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों के बावजूद भी सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य अपने आदर्श से अभी बहुत दूर है। सामाजिक भेदभाव, जिसका मुख्य आधार धर्म, लिंग और जाति है और आर्थिक विषमाताएँ भारत में समावेशी विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बनकर खड़े हुए हैं। संविधान द्वारा लोककल्याणकारी और समाजवादी राज्य के आदर्शों को अंगीकार किए जाने के बावजूद भी समावेशी विकास की स्थापना का लक्ष्य अभी बहुत दूर है, इसलिए इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। अभी तक की शिथिल प्रगति को देखते हुए इस दिशा में राजनीतिक और प्रशासनिक इच्छा शक्ति के साथ साथ समयानुकूल प्रबंधन तकनीक को अपनाए जाने की आवश्यकता है ताकि समावेशी विकास की धारणा को मूर्त रूप देकर आम आदमी को एक बेहतर और गरिमामय जीवन जीने के मौलिक अधिकार को साकार किया जा सके। समावेशी विकास के लिए "भारत और इंडिया" नामक विभाजन को समाप्त कर शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के समान विकास के लिए सतत प्रयास अपेक्षित हैं। प्रस्तुत पत्र भारत में समावेशी विकास और समावेशी लोकतन्त्र की स्थापना के मार्ग में विद्यमान सामाजिक आर्थिक चुनौतियों का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि इन चुनौतियों से निपटने के लिए सही रणनीति क्या हो सकती है और उसका प्रभावी क्रियान्वयन किस प्रकार सुनिश्चित किया जा सकता है?

मुख्य शब्द

सामाजिक आर्थिक न्याय, समवेशी विकास, समावेशी लोकतन्त्र, संविधान, राजनीतिक-प्रशासनिक इच्छा शक्ति, लोककल्याण कारी और समाजवादी राज्य, उदारीकरण।

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र और एक उभरती हुई आर्थिक महाशक्ति है। 1991 में वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के रूप में अपनाए गए आर्थिक सुधारों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को निस्संदेह मजबूती प्रदान की है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता एवं आकार बढ़ा है। विकास दर में वृद्धि के परिणामस्वरूप सामाजिक-आर्थिक खुशहाली के स्तर में वृद्धि हुई है, लेकिन तीव्र आर्थिक संवृद्धि का लाभ समाज के सभी वर्गों तथा राष्ट्र के सभी क्षेत्रों तक समान रूप से नहीं पहुंच पाया है। सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ आज भी भारतीय लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था और नीति निर्माताओं के सामने गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रहीं है। भारत में सामाजिक व आर्थिक विषमताएं दशकों से विद्यमान हैं परन्तु उदारीकरण के बाद ये तेजी से बढ़ी हैं। सामाजिक और आर्थिक संवृद्धि और विकास के लाभों से वंचित तबकों के लिए सामाजिक और आथिक न्याय की प्राप्ति सुनिश्चित कर ही समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जाना संभव है। 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) के दृष्टि पत्र में समावेशी विकास पर बल दिया गया है। आर्थिक व सामाजिक समानता के बिना राजनीतिक लोकतंत्र खोखला व निरर्थक है। पंडित

नेहरु के शब्दों में "मताधिकार का उस व्यक्ति के लिए कोई महत्व नहीं है तो निर्धन और निर्बल है। ऐसे व्यक्ति के लिए जो भूखा है राजनीतिक लोकतंत्र अपने आप में पर्याप्त नहीं है।" इसी प्रकार डॉक्टर अंबेडकर ने कहा था कि "यदि राजनीतिक लोकतंत्र का आधार सामाजिक लोकतंत्र नहीं है तो वह नष्ट हो जाएगा।"

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1. भारतीय सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य की समीक्षा।
2. सामाजिक-आर्थिक न्याय और समावेशी विकास के मार्ग की चुनौतियों का अध्ययन करना।
3. सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना के माध्यम से समवेशी विकास की धारणा को साकार करने की रणनीतियों और उपायों की चर्चा करना।

शोध पद्धति

शोध की पद्धति वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है जो मुख्य रूप से द्वितीय समंको पर आधारित है। शोध पत्र हेतु आवश्यक आंकड़ा संकलन के लिए विभिन्न स्रोतों जैसे - आर्थिक सर्वेक्षण, मानवाधिकार व जनगणना रिपोर्टस, एनआरसीबी रिपोर्ट, ऑक्सफैम रिपोर्ट एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं जैसे योजना, कुरूक्षेत्र, इकॉनोमिकल और पॉलिटिकल वीकली आदि के अलावा जर्नल्स में प्रकाशित शोध पत्र एवं आलेखों का अध्ययन तथा विश्लेषण किया गया है।

साहित्यावलोकन

थॉमस पिकेटी ने The Economics of Inequality (2015) में समय के साथ असमानता में परिवर्तन की व्याख्या की है और यह समझाने का प्रयास किया है कि असमानता कैसे उत्पन्न होती है तथा अर्थशास्त्री उसका मापन किस प्रकार करते हैं।

के. पी. कन्नन के अपनी पुस्तक Interrogating Inclusive Growth: Poverty and Inequality in India (2014) में नव उदारवादी नीतियों का रोजगार, गरीबी व असमानताओं पर अध्ययन किया है और बाजार आधारित आर्थिक सुधारों की नीतियों की आलोचना की है क्योंकि आर्थिक विकास के लाभ से गरीब व पिछड़ों को नहीं मिल पाये।

कनक कान्ति बागची ने उनकी पुस्तक Regional Disparities in India's Socio &Economic Development (2011) में प्राकृतिक कारकों के साथ साथ मानवजनित कारकों को देश में क्षेत्रीय असन्तुलन के लिए उत्तरदायी बताया गया है।

अर्पिता बनर्जी व प्रयत कुमार कुड़ी ने Development Disparities in India (2013) में विकास के तीन प्रमुख आयामों- आर्थिक विकास, मानव विकास व कृषि विकास को समन्वित करके योजनागत विकास के चार दशकों में उत्पन्न क्षेत्रीय असमानताओं की प्रकृति तथा उनके कारणों को स्पष्ट किया है।

मधु सुदन घोष ने Liberalçation, Growth and Regional Disparities in India (2013) नाम से प्रकाशित अपनी पुस्तक में आर्थिक सुधारों के बाद दो दशकों में राज्य व क्षेत्रीय स्तर पर कृषि, सेवा क्षेत्र व उद्योगों से सृजित आय में क्षेत्रवार वृद्धि तथा असमानताओं को बताया है तथा रोजगार की प्रवृत्ति, ग्रामीण गरीबी, नीचे की ओर रिसाव प्रक्रिया एवं ग्रामीण भारत में आर्थिक वृद्धि के समावेशीकरण पर बल दिया है।

वी. नचीमुथु ने अपनी पुस्तक Regional Economic Disparities in India (2009) में बताया है कि आर्थिक विकास का लाभ देश के सभी राज्यों व क्षेत्रों को समानरूप से नहीं मिला और ऐतिहासिक कारणों से जनित असमानताओं को अभी तक भी समाप्त नहीं किया जा सका है।

परिचर्चा

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश और एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति है जिसने विज्ञान-तकनीकी और आर्थिक क्षेत्र में निरंतर विकास के पथ पर आगे बढ़ते हुए परमाणु विज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान और आर्थिक क्षेत्र में अनेक ऊंचाइयों को हासिल किया

है। यहाँ एक ओर बड़ी संख्या में प्रशिक्षित व कुशल श्रमशक्ति, गुणवत्तापूर्ण तकनीकी व प्रबन्धकीय प्रतिभाएं तथा एक बड़ा युवावर्ग है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक व आर्थिक विषमताएं, उच्च शिशु मृत्युदर, बड़ी संख्या में महिलाओं व बच्चों में रक्ताल्पता (एनीमिया) तथा कुपोषण, गरीबी, बेरोजगारी निरक्षरता, सामाजिक-धार्मिक भेदभाव, जातिवाद, सांप्रदायिकतावाद जैसी समस्याएं हैं जो भारतीय लोकतन्त्र को निरंतर चुनौती पेश करती रहती हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 121 करोड है जिसमें महिलाओं की संख्या 58.64 करोड़ दलितों की संख्या 20.14 करोड दलित, आदिवासियों की संख्या 10.45 करोड तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक की संख्या 17.22 करोड हैं। लगभग सात दशकों की नियोजित आर्थिक विकास प्रक्रिया के बाद भी आर्थिक विकास का लाभ समाज के इन वर्गों को समान रूप से नहीं मिल पाया है। आज भी भारतीय समाज के ये वर्ग (महिला, दलित, आदिवासी तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक) न केवल सामाजिक वंचना, भेदभाव और शोषण के शिकार हैं अपितु अपने अस्तित्व के लिए भी संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद आर्थिक विकास दर में वृद्धि हुई है, अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता एवं आकार भी बढ़ा है लेकिन विकास का प्रभाव क्षेत्रीय रूप से समान नहीं रहा । देश के उत्तरी व पूर्वी राज्यों की तुलना में दक्षिणी व पश्चिमी राज्यों का सामाजिक व आर्थिक विकास अधिक तीव्र गति से हुआ है जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय स्तर पर आर्थिक विषमताओं के साथ आय, रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सूचकाकों में भी अन्तराल बढ़ा है। ग्रामीण-शहरी विभाजन और भी गहरा हो गया जिसे प्रायरू "भारत और इंडिया" के विभाजन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जहां एक ओर आर्थिक समृद्धि और विकास के कारण शहरी क्षेत्रों में सम्पन्नता तेजी से बढ़ी है और जीवन स्तर में सुधार हुआ है वहीं दूसरी ओर देश के ग्रामीण क्षेत्रों तक इसका लाभ अपेक्षानुसार नहीं मिल पाया है, जिसके कारण वे आर्थिक पिछड़ापन और गतिहीनता का सामना कर रहे है। भारत में कृषि संकट व ग्रामीण बैचेनी का परिणाम किसानों में बढ़ती हुई आत्महत्या की घटनाओं के रूप में दिखाई देता है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया के बावजूद भी दलितों पर बढ़ता हुआ अत्याचार, आदिवासियों का विस्थापन, लैंगिक विभेद, धार्मिक विभाजन एवं वैचारिक असहनशीलता या असहिष्णुता भारतीय सामाजिक परिदृश्य में स्पष्ट रूप दिखाई देती है।

11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) का मुख्य फोकस समावेशी विकास था क्योंकि बिना आर्थिक व सामाजिक समानता के राजनीतिक लोकतंत्र खोखला व निरर्थक होता है। शोध पत्र में विषमताओं और असमानताओं को क्षेत्रीय, ग्रामीण-शहरी, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, लैंगिक आधार पर वगीकृत करके इस तथ्य को रेखांकित किया है कि राष्ट्र के सभी क्षेत्रों तथा समाज के सभी वर्गों को आर्थिक विकास का लाभ समान रूप से मिले, तभी सुस्थिर व समावेशी विकास की अवधारणा सार्थक होगी।

आर्थिक विषमताएं

आजादी के समय देश के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य अनेक आर्थिक व सामाजिक विषमताएं विद्यमान थी। 1950 के आरम्भिक दशक में योजनागत विकास के माध्यम से इन विषमताओं और असमानताओं को दूर करके विभिन्न क्षेत्रों का संतुलित आर्थिक विकास करने का प्रयास किया गया। सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए तत्कालीन सरकार द्वारा विभिन्न नीतियां और योजनाएँ बनाई गई और सामाजिक-आर्थिक आधारभूत ढाँचे को मजबूत करने के लिए एवं देश के विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक निवेश के साथ-साथ निजी निवेश को भी प्रोत्साहन दिया गया । योजना काल के प्रथम तीन दशकों तक यह प्रक्रिया जारी रही परन्तु ये प्रयास अपेक्षित रूप से सफल नहीं हो सके। देश में वर्ष 1991 से वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के रूप में आर्थिक सुधारों का एक नया दौर शुरू हुआ जिसमें सरकार ने निजी निवेश और विदेशी निवेश को आर्थिक विकास का इंजन माना। जिन राज्यों में आर्थिक व सामाजिक बुनियादी ढांचा मजबूत था उनमें निजी निवेश तेजी से हुआ। दूसरी ओर जिन प्रदेशों में आर्थिक व सामाजिक बुनियादी ढांचा मजबूत नहीं था उनमें निजी निवेश बहुत कम हो पाया। इन राज्यों द्वारा अपने संसाधनों और केन्द्र की सहायता से आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर होने का प्रयास किया गया।

विगत लगभग तीन दशकों में देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न आर्थिक परिवेश के कारण क्षेत्रीय विषमताएं बढ़ी हैं। जहां एक ओर पश्चिमी व दक्षिणी राज्यों में आर्थिक समृद्धि तेजी से बढ़ी है जबकि देश के पूर्वी व उत्तरी राज्य विकास की धारा में पीछे छूट गये । वहीं दूसरी ओर इन पिछड़े राज्यों में जनसंख्या वृद्धि का भार अगड़े राज्यों की तुलना में अधिक रहा है परिणामस्वरूप इन राज्यों में प्रति व्यक्ति आय नीची रह गई। उदारीकरण के बाद आर्थिक समृद्धि का केन्द्र दक्षिणी-पश्चिमी राज्यों की ओर और जनसंख्या भार का केन्द्र उत्तरी व पूर्वी राज्यों की ओर स्थानान्तरित हो गया। देश के विकसित राज्यों में शिक्षा व रोजगार के अधिक

अवसरों का सृजन हुआ लेकिन अविकसित और अल्पविकसित राज्यों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण श्रमशक्ति अधिक तेजी से बढ़ी परिणामस्वरूप रोजगार की तलाश में इन क्षेत्रों से लोगों का विकसित राज्यों और शहरों की ओर पलायन होने लगा। आर्थिक असमानता पर ऑक्सफैम की रिपोर्ट-2020 (टाइम टू केयर) के अनुसार शीर्ष के 1प्रतिशत लोगों की संपत्ति में 46प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि नीचे की 50प्रतिशत आबादी की संपत्ति में सिर्फ 3: की वृद्धि देखी गई।

सामाजिक विषमताएं

यदि पिछले तीन दशकों में सामाजिक विकास पर दृष्टिपात किया जाये तो ज्ञात होता है कि क्षेत्रवार सामाजिक विकास का सन्तुलन भी बिगड़ा हैं। आर्थिक रूप से सम्पन्न राज्यों में जहां शिक्षा, साक्षरता, स्वास्थ्य एवं अन्य सामाजिक सुविधाओं की स्थितियां बेहतर हुई हैं, वहीं इन राज्यों में आर्थिक विकास के लाभों का वितरण अधिक समावेशी रहा है और सामाजिक जुडाव भी बेहतर हुआ है। इन राज्यों में सामाजिक विकास कार्यक्रमों पर सार्वजनिक व्यय भी पिछड़े राज्यों की तुलना में अधिक हुआ है। सम्पन्न राज्यों में सार्वजनिक खर्च में कुशलता, बेहतर राजकोषीय प्रबंधन और अनुशासन के साथ-साथ कानून-व्यवस्था की स्थितियों में सुधार हुआ है। निजी क्षेत्र द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं आदि पर किया गया निवेश सार्वजनिक खर्च पर निर्भरता को कम करता है। उच्च व तकनीकी शिक्षा पर किए गए निजी निवेश के कारण पश्चिमी व दक्षिणी राज्यों का सामाजिक विकास अधिक तीव्र गति से हुआ है, परन्तु पिछड़े राज्यों में यह संभव नहीं हो सका, परिणामस्वरूप क्षेत्रीय विषमताएं और बढ़ गईं। पिछड़े राज्यों में निजी निवेश मुख्यत: खनन क्षेत्र में अधिक हुआ और वह भी कुछ विशेष राज्यों जैसे उडीसा, झारखण्ड व छत्तीसगढ़ तक ही सीमित रहा।

देश के राज्यों में सामाजिक प्रगति का स्तर भी भिन्न भिन्न रहा है। आर्थिक विकास की दृष्टि से सम्पन्न राज्यों में शिक्षा, रोजगार के अवसरों की उपलब्धता, कानून-व्यवस्था आदि विकास के संकेतक पिछड़े राज्यों से बेहतर हैं, परन्तु सामाजिक प्रगति रिपोर्ट-2017 यह उद्घाटित करती है कि आर्थिक विकास व सामाजिक प्रगति के मध्य कोई प्रत्यक्ष व स्थायी संबन्ध नहीं होता है। यह संभव है कि किसी राज्य का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अधिक होने पर भी वहां का समाज पिछड़ा रह सकता है। भारत में सामाजिक प्रगति के मापन के लिए इन्सटीट्यूट फॉर कम्पीटिटीवनेस ने नीति आयोग के सहयोग से सामाजिक प्रगति सूचकांक 2017 विकसित किया है। इस सूचकांक में 2005-2016 के आंकडे यह प्रदर्शित करते हैं कि देश में उल्लेखनीय आर्थिक परिवर्तनों के साथ जीवन की गुणवत्ता में समग्र सुधार हुआ है, परन्तु हम अभी भी स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं को अपने नागरिकों को पर्याप्त रूप में उपलब्ध कराने में असफल रहें हैं। उच्च आर्थिक वृद्धि दर के साथ-साथ सामाजिक विकास के कार्यक्रमों को लागू किया गया जिनका देश के सामाजिक विकास की दिशा में सकारात्मक असर हुआ है। इनसे विकास प्रक्रिया को समावेशी बनाने में सहायता मिली है।

आय व सम्पत्ति संबंधी असमानताएँ

पिछले तीन दशकों में सरकारों की दोषपूर्ण नीतियों के कारण भारत में आर्थिक असमानता में वृद्धि हुई है। ऑक्सफेम इण्डिया की रिपोर्ट द वाईडनिंग गेप्स इण्डिया इनइक्विलीटी रिपोर्ट- 2018 में भारत में असमानता कि स्थिति, उसके कारणों तथा समाधानों को बताया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व में सर्वाधिक तेज गति से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से है लेकिन आय व सम्पत्ति के केन्द्रीकरण के कारण गरीब तथा अमीरों के बीच अन्तराल बढ़ा है।

आर्थिक असमानता पर अध्ययन करने वाले अर्थशास्त्रियों के एक समूह वर्ल्ड इनइक्विलिटीलैब द्वारा जारी वर्ल्ड इनइक्विलिटी रिपोर्ट- 2018 में कहा है कि भारत में आर्थिक असमानता 1980 के बाद बहुत तेज गति से बढ़ी है तथा आय असमानता काफी ऊंचे स्तर पर पहुंच गई है। शीर्ष 0.1 प्रतिशत सबसे अमीरों की कुल सम्पदा बढ़कर निचले 50 प्रतिशत लोगों की कुल सम्पत्ति से भी अधिक हो गई हैं।

ग्रामीण और शहरी विभाजन

भारत एक कृषि प्रधान देश है और गांधी के अनुसार भारत की आत्मा इसके गांवों में ही निवास करती है। भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल का 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। जनगणना 2011 के अनुसार देश में 640867 गाँव 7935 कस्बे तथा 4041 शहर हैं। भारत की दो-तिहाई से अधिक जनसंख्या गाँवों में निवास करती है।

भारत की जनसंख्या 2011

भारत की कुल जनसंख्या	शहरी जनसंख्या	ग्रामीण जनसंख्या
1210193422	377105760	833087662
100प्रतिशत	31.16प्रतिशत	68.84प्रतिशत

भारत में आर्थिक व सामाजिक विकास की दृष्टि से शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों का विभाजन हमेशा से रहा है लेकिन पिछले तीन दशकों में यह अन्तराल और अधिक बढ़ गया है। आर्थिक नियोजन के प्रारम्भिक तीन दशकों (1980-81 तक) में शहरी और ग्रामीण आय का अनुपात 1.6 (1951) से बढ़कर 2.1 (1980-90) हो गया परन्तु 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद यह तीव्र गति से बढ़ा है। शहरों में अभूतपूर्व आर्थिक सम्पन्नता का दिखाई देती है तो ग्रामीण क्षेत्र आर्थिक गतिहीनता का शिकार हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और बेहतर जीवन स्तर जैसी बुनियादी सुविधाओं की तलाश में ग्रामीण आबादी का शहरों की ओर पलायन लगातार बढ़ रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आय व रोजगार का प्रमुख स्रोत है लेकिन देश का कृषि क्षेत्र संकट में है। बदली हुई आर्थिक परिस्थितियों के कारण कृषि क्षेत्र पर दबाव काफी बढ़ गया है। अधिकांश किसान कर्ज में डूबे हुए हैं, कृषि संकट के कारण किसानों में एक प्रकार की बेचौनी और उदासी साफ दिखाई देती है जिसकी परिणति किसानों द्वारा आत्महत्या की बढ़ती हुई घटनाओं के रूप में हो रही है। दूसरी ओर ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, अनिश्चित वर्षा, सूखा, बाढ़ आदि ने भी किसानों की पीड़ा को बढ़ा दिया है।

फसल खराब होने, उपज का उचित मूल्य न मिलने और कर्ज के जाल में फंसने के कारण पिछले दो दशकों में लाखों किसान आत्महत्या कर चुके हैं। देश के अलग-अलग हिस्सों में किसानों का बढ़ता विरोध कृषि संकट, ग्रामीण बेचौनी और किसान की निराशा और गुस्से को व्यक्त करने के लिए काफी है। उदाहरण के लिए, दिल्ली में जंतर मंतर पर तमिलनाडु के किसानों का प्रदर्शन (2017), मध्य प्रदेश और राजस्थान (2017) एवं महाराष्ट्र में किसानों का पैदल मार्च (2018) आदि।

भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का सापेक्षिक योगदान निरंतर घट रहा है । 1950-51 में यह लगभग 55.40 प्रतिशत था जो 2006-07 में घटकर 18 प्रतिशत, 2015-16 में केवल 17.46 प्रतिशत और 2018-19 में 14.4 प्रतिशत रह गया है। यह कमी मुख्यत: सकल मूल्य वृद्धि में फसल क्षेत्र के अंश के वर्ष 2015-16 के 9.2 प्रतिशत से वर्ष 2017-18 में घटकर 8.7 प्रतिशत हो जाने से हुई है।,जबकि कृषि पर आश्रित जनसंख्या का अनुपात अभी भी लगभग 50 प्रतिशत से अधिक है । इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय शहरी क्षेत्रों की तुलना में बहुत कम हो गई है और ग्रामीण-शहरी विभाजन का अंतराल और अधिक बढ़ गया है। आर्थिक विकास में शहरों से न सिर्फ ग्रामीण क्षेत्र पीछे हैं, बल्कि शिक्षा और साक्षरता के आंकड़े भी उनके पक्ष में नहीं हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में कुल साक्षरता दर 74 प्रतिशत में से शहरी 85 प्रतिशत और ग्रामीण साक्षरता 68 प्रतिशत है।

सामाजिक, धार्मिक और लैंगिक भेदभाव

प्राचीन वर्ण व्यवस्था द्वारा स्थापित तथाकथित सामाजिक विभाजन का दुष्परिणाम आज भी जाति व्यवस्था पर आधारित सामाजिक भेदभाव के रूप में विद्यमान है जो आर्थिक और सामाजिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है। 21वीं सदी का भारतीय समाज असंख्य जातियों और वर्गों में बंटा हुआ है, जो सामाजिक भेदभाव का सबसे बड़ा कारण है। भारत की कुल 121 करोड जनसंख्या में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या क्रमशरू 16.6 एवं 8.6 प्रतिशत है। संविधान द्वारा प्रत्याभूत सामाजिक समानता के बावजूद भी देश में दलितों व आदिवासियों के साथ बड़े पैमाने पर भेदभाव किया जाता है। ये वर्ग आज भी समाज में हाशिये पर है और शोषण, अत्याचार, भेदभाव और सामाजिक वंचना से पीड़ित हैं। इसका मूल कारण असमानता तथा सामाजिक भेदभाव है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रोफेसर अमर्त्यसेन ने बताया हैं कि किस प्रकार सामाजिक बहिष्करण से सामाजिक वंचनाओं का जन्म होता है और व्यक्तिगत अवसरों को सीमित कर दिया जाता है। प्रोफेसर अमर्त्यसेन के अनुसार, गरीबी देश में वंचित वर्गों के लिए एक बड़ी अयोग्यता है और जाति व्यवस्था ने इस अयोग्यता को बढ़ाने में नकारात्मक भूमिका निभाई है।

संविधान में प्रत्याभूत सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण एवं आरक्षण के कारण अनुसूचित जातियों व जनजातियों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अवसर उपलब्ध हुए हैं लेकिन समाज की असमान आर्थिक संरचना के कारण एक

विशेष वर्ग ही इनसे लाभान्वित हो सका है। शेष आबादी आज भी गरीबी एवं अवसरों की सीमित उपलब्धता के कारण विकास के लाभों से वंचित है। दलित वर्ग की श्रमशक्ति का अधिकांश भाग अंसगठित क्षेत्र में कार्यरत है जहाँ काम की दशाएं निम्न स्तरीय हैं, जो उनके शोषण व अत्याचार का प्रमुख कारण है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) द्वारा जारी की जाने वाली विभिन्न रिपोर्ट अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के विरूद्ध बढ़ते अपराधों की कहानी कहती नजर आती हैं।

1976 के 42वें संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द जोड़कर भारत को एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया । बावजूद इसके आज भी भारत में धार्मिक भेदभाव की जड़ें बहुत गहरी जमी हुई हैं। सियासत द्वारा राजनीति फायदे और ध्रुवीकरण के लिए धर्म का इस्तेमाल आम बात है। इसके कारण देश में सांप्रदायिक माहौल बना रहता जिसकी परिणति धार्मिक उन्माद और दंगों के रूप में होती है। देश की कुल जनसंख्या में 20 प्रतिशत से अधिक आबादी धार्मिक अल्पसंख्यकों की है जिनमें मुसलमान प्रमुख हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में 14.23 प्रतिशत (17.22 करोड़) मुस्लिम अल्पसंख्यक निवास करते है। मुस्लिम अल्पसंख्यकों की राजनीति और प्रशासन में भागीदारी तुलनात्मक रूप से बहुत कम है। देश की 14.23 फीसद आबादी का देश की संसद में प्रतिनिधित्व केवल 4.2 प्रतिशत है जिसे एक स्वस्थ्य एवं समावेशी लोकतन्त्र का सूचक नहीं माना जा सकता है। देश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के कारण अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों को राजनीतिक और प्रशासनिक संस्थाओं में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा है।

अरस्तु के कथनानुसार किसी भी राष्ट्र में महिलाओं की उन्नति या अवनति पर ही उस राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर करती है। लेकिन भारतीय समाज महिलाएं आज भी लैंगिक भेदभाव की शिकार है। भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान और पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा शासित है, जिसके परिणाम समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति, उपेक्षित व्यवहार और भेदभाव के रूप में दिखाई देते हैं। सदियों से महिलाओं के साथ सामाजिक व आर्थिक स्तर पर भेदभाव होता आया है और यह आज भी विद्यमान है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ें समाज महिलाओं की स्थिति और उन पर होने वाले अत्याचरों, शोषण और दुराचार की कहानी कहते नजर आते हैं।

देश में महिला लिंगानुपात 2011 में 940 है और बाल लिंगानुपात 914 है। निम्न लिंगानुपात समाज में बालिकाओं के प्रति दोयम व्यवहार और भेदभाव को दर्शाता है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा, भेदभाव और पुरुष प्रधान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के कारण देश में बाल लिंगानुपात खतरनाक स्तर पर पहुंच गया है। मां के गर्भ में लड़कियों के मारे जाने की बढ़ती घटनाओं के कारण यह अनुपात लगातार कम होता जा रहा है। समाज की इस प्रकार की विकृत मानसिकता महिलाओं के विकास में बाधक है। इस संदर्भ में सरकार द्वारा बेटी बचाओ और बेटी पढाओ अभियान एक महत्वपूर्ण पहल है।

देश में पर्याप्त कानूनी प्रावधानों के बावजूद महिलाओं को उनके सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकार नहीं मिले हैं। विधायिका में 33 प्रतिशत प्रतिनित्धित्व की प्रत्याभूति देने वाला महिला आरक्षण विधेयक समाज की पुरुषवादी सोच और मानसिकता के कारण आज तक संसद में लंबित है। महिलाओं का एक बहुत बड़ा वर्ग आज भी आर्थिक रूप से पुरुष पर आश्रित हैं। महिलाओं द्वारा किये जाने वाले घरेलू कार्यों को आर्थिक गतिविधि नहीं माना जाता है। इनके कार्यों को सकल घरेलू उत्पाद की गणना में शामिल नहीं किया जाता। भारतीय समाज में प्रचलित मूल्य व प्रतिमान महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक विकास में अवरोधक है।

निष्कर्ष व सुझाव

भारत में सामाजिक-आर्थिक न्याय और समावेशी विकास के लिए सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक भेदभाव सबसे बड़ी बाधा है। आज विकास की दृष्टि से हमारा देश "भारत और इंडिया" में विभाजित दिखाई देता है। देश में ग्रामीण क्षेत्र उपेक्षा और भेदभाव का शिकार है। दलित, महिला और अल्पसंख्यक वर्ग (मुख्य रूप से मुस्लिम वर्ग) आज भी सामाजिक-आर्थिक वंचना और भेदभाव से पीड़ित हैं। यद्यपि भारत का संविधान सभी नागरिकों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करता है परन्तु संबन्धित कानूनों और नीतियों का उचित और प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन नहीं होने के कारण हमारे समाज में आर्थिक व सामाजिक विषमताएं अन्यायकारी रूप धारण कर चुकी हैं। 1991 में वैश्वीकरण, उदारीकारण और निजीकारण के रूप में अपनाए आर्थिक सुधारो के कारण आर्थिक समृद्धि में वृद्धि हुई है परंतु इसका लाभ समाज के सभी नागरिकों व क्षेत्रों को समान रूप से नहीं मिला है, जिसके कारण देश में पहले से ही विद्यमान सामाजिक व आर्थिक विषमताओं में और अधिक वृद्धि हो गई है। तत्कालीन सत्ताधारियों की दोषपूर्ण नीतियों के कारण देश की अधिकांश जनता आर्थिक विकास के लाभों से आज भी महरूम है, जैसा कि प्रोफेसर एम. एस.

स्वामीनाथन ने कहा है "भारत में असमानता का कारण दोषपूर्ण राजनीतिक व आर्थिक नीतियाँ हैं।" भारत में सामाजिक-आर्थिक न्याय और समावेशी विकास के लिए आवश्यक है कि जितना जोर आज स्मार्ट शहरों की स्थापना पर दिया जा रहा है उतना ही जोर देश स्मार्ट विलेज की स्थापना पर दिया जाये। इसमें कोई संदेह नहीं है कि शहरों का पोषण के ग्रामीण क्षेत्रों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास पर निर्भर है। देश में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के समान विकास के साथ साथ समाज के सभी वर्गों विशेष रूप से महिलाओं, दलितो और अल्पसंख्यकों को भी विकास के लाभ पहुंचाकर उन्हे मुख्य धारा में लाने के लिए ईमानदार और प्रभावी उपाय आवश्यक हैं। देश के सभी क्षेत्रों और वर्गों का समुचित और संतुलित विकास ही देश की सामाजिक-आर्थिक न्याय, समावेशी विकास और सामवेशी लोकतन्त्र की स्थापना को साकार कर सकता है।

संदर्भः

1. Ghos, Madhusudan (2013); Liberalization, Growth and Regional Disparities in India, Springer.
2. Baghchi, K.K. (2011); Regional Disparities in India's Socio-Economic Development, New Century Publication.
3. Nachimuthu, V. (2009); Regional Economic Disparities in India, NewCentury Publication.
4. सिंह, आशुतोष कुमार;बदलते गांव उभरता भारत, कुरूक्षेत्र, दिसम्बर 2015
5. नामदेव, समावेशी लोकतंत्र-आदर्श और यथार्थ योजना, अगस्त 2013
6. पई सुधा, वंचित वर्ग का बहिष्कार और हाशिये की स्थिति। योजना अगस्त 2013
7. Kurian, N.J.; Widening Economic & Social Disparities Implications for India, Review Article, 2007.
8. Swaminathan, M.S.; Impact of Climate Change and Sustainable Agriculture, Yojana Dec. 2015.
9. Udin, Nazeer; Muslim Minority Exclusion and Development Issues: Need for Inclusive Policy, Zenith International Journal of Multidisciplinary Research, Vol.2, January 2012.
10. ऑक्सफेम इण्डिया रिपोर्टय वाईडनिंग गेप्स इण्डिया इनइक्विलीटी रिपोर्ट- 2018
11. ऑक्सफैम रिपोर्ट-2020; टाइम टू केयर
12. चौधरी, कृष्ण चन्द्र; ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, कुरुक्षेत्र अगस्त, 2013
13. सिंह, रहीस; विषमता में समावेशी लोकतंत्र कैसे संभव, योजना, अगस्त 2013.
14. आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19, भारत सरकार
15. ग्रामीण भारत 2011 के लिए सामाजिक आर्थिक जाति जनगणना (एसईसीसी)
16. भारत की जनगणना-2011 रिपोर्ट
17. सच्चर समिति की रिपोर्ट; भारत के मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति, नवंबर 2006
18. एनसीआरबी रिपोर्ट

अमरकान्त की कहानियों में सामाजिक वर्गीय जीवन का संक्षिप्त विश्लेषण

डॉ० कनुभाई बिछिया भाई निनामा

कला संकाय, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा, गुजरात

ओमप्रकाश

रिसर्च स्कॉलर, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा, गुजरात

1.1 सार-

अमरकांत प्रेमचन्द की परम्परा के कथाकार हैं। परम्परा का विकास करने वाला ही परम्परा का कथाकार कहा जाता है। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को एक लम्बी याता सम्पन्न करायी है। उनके कथा साहित्य की विषय-वस्तु और स्वर विविधपूर्ण हैं जिनमें 'सारंगा सदावृक्ष' और 'आत्माराम' जैसी लोकवार्ता का आश्रय लेकर चलने वाली कहानियाँ 'दिल की रानी' और 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी ऐतिहासिक कहानियाँ, 'दो बैलों की कथा' जैसी प्रतीकात्मक कहानियाँ 'मैकू', 'इस्तीफा', 'बड़े घर की बेटी' जैसी हृदय परिवर्तन पर आधारित कहानियाँ और आद्यांत सामाजिक यथार्थ यानी सामाजिक विषमता का निर्वाह करने वाली 'पूस की रात' और कफन जैसी कहानियाँ सम्मिलित हैं। प्रेमचन्द ने प्रधानत: आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहानियाँ लिखी हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में स्वाधीनता आन्दोलन की दीप्ति और आदर्शवाद विद्यमान है। अमरकांत ने अपने कथा साहित्य का सूतर्पात प्रेमचन्द की इन्हीं परवर्ती कहानियों से पकड़ा है। अपने लेखन के प्रारम्भिक दौर में अमरकांत प्रेमचन्द की ऐतिहासिक दृष्टि सम्पन्नता एवं प्रगतिशीलता से प्रभावित हुए। प्रेमचन्द ने जिस भूमि पर लाकर कथा साहित्य को छोड़ा, अमरकांत ने वहीं से कथा साहित्य को उठाया है।

1.2 प्रस्तावना-

अमरकांत का कथा साहित्य कहीं आस-पास की दुनिया का अर्थ खोलती है, कहीं छोटी-छोटी परिस्थितियों की पीड़ा उभारती है, तो कहीं आदर्शवादी नुस्खों के खोखलेपन, ढोंग भरी अक्षमता, व्यक्तिवादिता, स्वार्थ एवं धूर्तता पर से पर्दा उठाती है। घटना और दृष्टिकोण के सामंजस्य से रची ये दिलचस्प, सार्थक और कलात्मक रचनायें भारतीय समाज एवं जीवन की सम्भावनाओं के संघर्ष को आगे बढ़ाती हैं।अमरकांत का कथा साहित्य अपने समय और समाज की जीवन्त सार्थक अभिव्यक्ति है। उसके भीतर से जीवन-यथार्थ की धड़कनों को सुना और महसूस किया जा सकता है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में जीवन यथार्थ को पूरी गहराई, जटिलता और सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया है। उनके कथा-साहित्य की मुख्य शक्ति है उनकी अपने आस-पास की रोजमर्रा के यथार्थ को जानने-समझने की तीव्र संवेदनीय दृष्टि। जनसमुदाय के निकट सम्पर्क से वे बराबर शक्ति ग्रहण करते रहे। यही वजह है कि वे बहुत सहजता के साथ जीवनगत यथार्थ की पेचीदा सम्बन्धों को बारीकी से पकड़ने और रचनाशीलता में ढालने में समर्थ रहे हैं। मानव मूल्यों में उनकी आस्था कभी डांवाडोल नहीं हुई, यह उनके बहुविध वृहद् कथा संसार का बड़ा सच है। अमरकांत के यहाँ

जीवन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। जीवन की यह निरंतरता संघर्ष की निरंतरता भी है और संघर्ष की निरंतरता बहुमूल्य मूल्यों को सहेजे रखने की निरंतरता को संकेतिक करती है। महनीय मूल्यों के साथ कथाकार की गहरी सम्बद्धता ही है कि आज तक उनकी रचनाशीलता की ऊर्जा बरकरार है।

1.3 समाज के विभिन्न सम्बन्धों में प्रस्तुत दृष्टिकोण

अमरकांत मध्यवर्गीय कस्बाई समाज के ऐसे समृद्ध और सशक्त कथाकार हैं जिन्होंने इस समाज के सामने उनकी समस्त समस्याओं, आशा व आकांक्षाओं, अच्छाइयों और बुराइयों को परत-दर-परत उकेर दिया है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द के बाद उनकी ही पृष्ठभूमि में रचना करने का श्रेय नि:संकोच कथाकार अमरकांत को जाता है, जिन्होंने उनकी परम्परा का बखूबी निर्वाह किया है। ''प्रेमचन्द की विडम्बना थी सवर्ण वर्ण की थोपी हुई बैकुण्ठ की कल्पना। यह वर्ग माया की ठगनी रूप में जीता है। अमरकांत की विडम्बना थी सवर्ण वर्ण की थोपी हुई बैकुण्ठ की कल्पना। यह वर्ग माया की ठगनी रूप में जीता है। अमरकांत की विडम्बना यह है कि उच्च वर्ण की हँसी-ईमानदारी और भलाई के बाद क्रूर यथार्थ।''

अमरकांत इस दशक के सभी कथाकारों में एक मात्र ऐसे कथाकार हैं जो प्रेमचन्द के सबसे निकट हैं। उनके कथा साहित्य में खासतौर पर निम्न मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चितर्ण मिलता है। अगर प्रेमचन्द जमीन पर खड़े होकर आकाश की तरफ झांकते हैं तो अमरकांत यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर जमीन की गहराई में झांकते हैं।

अमरकांत ने अपने कथा साहित्य में निम्नमध्यवर्गीय पार्तो के जिस करुण स्थिति का चितर्ण किया है उतना समकालीन कथाकारों में अन्यत्र दुर्लभ है। अमरकांत की संवेदना अत्यन्त व्यापक तथा दृष्टिफलक अत्यन्त तीव्र है जिसका परिणाम हमारी आँखों के सामने उनके कथा साहित्य के रूप में प्रस्तुत है। उनके कथा साहित्य को पढ़ने से प्रतीत होता है कि उनके कथा के पात्र और कथा की समस्त घटनाएँ एक तस्वीर की भाँति हमारी आँखों के सामने से गुजर रहे हों। अमरकांत के लेखन ने मानवीय अनुभव की व्यापकता और मानवीय मन की संकीर्णता को पूरी तरह से पहचाना है।

अमरकांत स्वयं मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुए थे और वह भली प्रकार जानते थे कि मध्यवर्ग का व्यक्ति किस प्रकार अपना जीवन यापन करने के लिए संघर्षरत रहता है। उन्होंने बचपन से ही निम्नमध्यवर्गीय परिवार व समाज को देखा-परखा है, पाठक वर्ग उनके प्रत्येक कहानी को उठाकर देख सकते हैं, सभी में मध्य वर्ग की विभीषिका का ज्वलंत साक्ष्य उपलब्ध होता है। अमरकांत गाँव से जुड़े कथाकार हैं। गाँव के शान-शौकत से सभी लोग भली-भाँति परिचित हैं कि वहाँ का ठाट-बाट कैसा होता है, सभी रइसों के घर के सामने छोटे-छोटे किसान, मजदूर व निर्धन-गरीब हाजिरी लगाने आते हैं और अपनी समस्याओं को बताकर उनको पूरा करने के लिए गिड़गिड़ाते हैं। यह बात अलग है कि उनका स्वार्थ पूरा होता है कि नहीं। इन समस्त बातों से कथाकार अच्छी तरह से परिचित थे। निम्न वर्ग के बारे में जितना ज्ञान अमरकांत को है शायद उतना अन्य किसी साहित्यकार को नहीं है। अमरकांत स्वयं अपने आत्मकथ्य में इस बात को स्वीकार करते हैं और बताते हैं-

''दरवाजे पर रोज दुखिया, दरिद्र, अपाहिज बेसहारा लोग आते थे, मुँह खोल गिड़गिड़ाते थे और लोगों की डाँट-डपट खाते थे। किसी दावत समारोह के बाद मेहतर लोग कूड़े पर फेंके गए जूठे पत्तलों के लिए आपस में लड़ते थे। इन दृश्यों को देखकर वह उदास हो जाते।'' स्पष्ट है कि जिसके आँखों के सामने ऐसी ज्वलंत समस्याएँ उपस्थित रही हों तो उनके कथा साहित्य में इन समस्याओं का प्रभाव कैसे नहीं पड़ेगा।

अमरकांत के सामने आजादी के बाद की कठिन परिस्थितियाँ रही हैं और रहा है उससे उत्पन्न तिक्त दु:ख। उनके कथा साहित्य में इस अनिवार्य विसंगत यथार्थ का विवरण भी है और विडम्बना बोध भी और है अपनी आकांक्षा और हताशा, क्षुद्रताओं और महानताओं को जीता-संघर्ष करता सामान्यजन, जो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी जीवनेच्छा को, जिजीविषा को सहेजे रखता है। सच ही अमरकांत के कथा साहित्य में जिन्दगी की जद्दोजहद में जिन्दगी की चाह शिद्दत से शामिल है। जीवन के तमाम अन्तर्विरोधों का खुलासा करते हुए अमरकांत ने कहीं भी कथ्य पर विचारधारा का मुलम्मा नहीं चढ़ाया।

अमरकांत आगरा में प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े तबसे बराबर संगणक के लिए काम करते रहे। उन्होंने अपनी रचनाशीलता में पूरी तन्मयता से उत्पीडिघ्त-बेबस मानवता की बौनी अनुभूतियों का सूक्ष्म जीवंत चित्र उपस्थित कर जता दिया कि पक्षधर यथार्थ का मायने क्या होता है? उनके शुरूआती दौर की 'जिन्दगी और जोंक', 'डिप्टी कलक्टरी', 'दोपहर का भोजन' जैसी

अत्यन्तमहत्वपूर्ण कहानियों में पसरी चुप्पी के बीच का सघन संश्लिष्ट यथार्थ ही मुखर हो बता देता है कि यही सही विचारधारात्मक संलग्नता है। अभावग्रस्त दीन-हीन चरितों के अन्तर्द्वन्द्वों का, उनके तीखे-यातनापूर्ण संघर्षो का और मौन रहकर दहला देने वाली सच्चाइयों का यथार्थ अंकन ही उनकी रचनाशीलता को सामाजिक संघर्षो के वृहत्तर उद्देश्यों से सम्बद्ध कर देता है। निश्चित ही जन-सामान्य की नीतियों और उलझावों के सहज सरल पर जटिल जीवन चितों को आन्दोलित कर जाती है उन्हें व्यग्र और बेचौन बना देती है।

गिरिराज किशोर अमरकांत के बारे में बताते हैं कि- ''अमरकांत के सम्पूर्ण कथा साहित्य से यह पता चलता है कि अमरकांत ने जिन्दगी के अभावों को रचनात्मकता की भट्ठी में ईंधन की तरह झोंका है और उससे अपने रचनाकार को तपाकर खरा किया है, अपने अभावों और लेखन के बीच एक ऐसा समीकरण स्थापित करके चले हैं जो आमतौर से संभव नहीं होता, उनके रचनाकार की इस विशिष्टता ने उन्हें बहुत से मानसिक संकटों से बचा लिया है। अपने उन अभावों से ही उन्होंने लेखक को समृद्ध करने का काम किया है।''

अमरकांत का कथा साहित्य निम्नमध्यवर्गीय परिवार की भीतरी तनाव की कथा है। अतीत और भविष्य से निश्चिंत होकर उनके कथा साहित्य में वर्तमान जटिलताओं के प्रति एक समझदार सवाल है। मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति आलोचनात्मक रूख ही अमरकांत के कथा साहित्य को समर्थ और सार्थक बनाता है। किसी भी रचनाकार के रचना निर्माण में उसका परिवेश बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व को निर्मित और कृतित्त्व को विनिर्मित करता है। अमरकांत स्वयं मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुए, मध्यवर्ग का व्यक्ति प्राय: बुद्धिवादी रहा है, इतिहास प्राय: इस बात का गवाह रहा है। समाज के नये विचारों का प्रचार करने का श्रेय इसी वर्ग का रहा है, चूँकि मध्यवर्ग बुद्धिवादी रहा है इस कारण सामाजिक समस्याओं की परख करने में पूर्णतया सक्षम रहा है। अमरकांत के कथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता वातावरण के निर्माण में उनकी सार्थकता है। अपनी बात कहने के लिए जिस वातावरण का निर्माण करते हैं, उसमें उतनी यथार्थता और स्वाभाविकता होता है कि कहीं कोई आरोपण प्रतीत नहीं होता।

अमरकांत के यहाँ मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ विविध रूपों में झाँकता दिखाई देता है। इन्होंने अपने कथा साहित्य में मध्यवर्गीय परिवार की व्यथा, आर्थिक तंगी, टोना-टोटका, सफेदपोशी के लिए संघर्ष, पर्यटन में किफायत, मध्यवर्गीय मुहल्लों की समस्या, मकान की परेशानी, निजी मकान पर गर्व, मध्यवर्गीय परिवारों में वृद्धावस्था, स्नेह का अभाव, मध्यवर्गीय प्रेम, मध्यवर्ग का अफसोस, मध्यवर्ग का झूठ व उनके द्वारा आरोपित सामूहिक आयोजन, मध्यवर्ग की विकास कार्यों में संलग्नता आदि का यथार्थ एवं जीवन्त चितर्ण उपस्थित किया।

अमरकांत मुख्यत: मध्यवर्ग के कथाकार हैं। मध्यवर्ग के अन्तर्गत निम्नवर्ग की जीवन रीति, स्वभाव संस्कार, विचार पद्धति तथा विभिन्न प्रकार की कुण्ठाओं एवं उनके प्रभावों को परखने में इनमें पैनी दृष्टि है। निम्न-मध्यवर्ग के जीवन का सजीव चितर्ण करने की सफलता का रहस्य अमरकांत का अपना निजी जीवन है। अमरकांत का जीवन निम्न-मध्यवर्ग समाज की मानसिक कुण्ठाओं, नैतिक वर्जनाओं तथा विषमताओं के परिवेश में विकसित हुआ है। जीवन के तिक्त अनुभवों द्वारा विकट भावभूतियों ने उनके व्यक्तित्व तथा दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। इसी कारण इनके कथा में मध्यवर्गीय पात्र अधिक सजीव लगते हैं और इन्होंने अपने कहानियों में मध्यवर्ग की जिन समस्याओं को उठाया है वह यथार्थ में मध्यवर्गीय जीवन की कहानी सुनाते हैं।

अमरकांत के कथा साहित्य में व्यक्ति जीवन का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचनाओं में व्यक्ति की आशा-आकांक्षा, दु:ख-दर्द, गरीबी संघर्ष, जिजीविषा मुखरित हुई है। किस प्रकार पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियां उसे व्यक्ति को गलत रास्ते पर चलने के लिए मजबूर करती है। उसकी जिजीविषा को समाप्त कर उसे आत्मघाती कदम उठाने के लिए विवश करती हैं लेकिन इन्ही विपरीत पारिवारिक सामाजिक परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति तो हताश निराश होकर टूट जाते हैं, कुण्ठाग्रस्त हो जाते है। आत्महत्या जैसे कदम उठा लेते हैं। समाज विरोधी हो जाते हैं लेकिन कुछ व्यक्ति इन विपरीत परिस्थितियों से टकराते है। अपनी अन्तिम सांस तक लड़ते हैं और हार नही मानते हैं। जैसे 'जिन्दगी और जोंक' कहानी का मुख्य पात्र रजुआ।

महादेवी वर्मा के शब्दों में-''संघर्ष की कला लेकर तो मनुष्य उत्पन्न ही हुआ है, उसे सीखने कही जाना नही पड़ता। यदि वास्तव में मनुष्य ने इतने युगों में कुछ सीखा है तो वह जीने की कला कही जा सकती है और यह कला रजुआ को बाखूबी आती है।

रजुआ अमरकांत का देखा हुआ पात्र है। मोहल्ले में जिस दिन उसका आगमन हुआ लेखक ने उसे उसी दिन देखा था। रजुआ पर साड़ी चोरी करने का आरोप लगता है। उसकी पिटाई होती है। इस घटना के बाद वह इसी मुहल्ले में रहने लगता है। लोग उससे

अपना छोटा-छोटा काम करवाने लगते हैं, और कुछ खाने पीने को दे देते है। अमरकांत ने लिखा है कि ''उसकी सेवाओं की उपयोग सम्बन्धी खीचतानी से उसका सामाजीकरण हो गया। मोहल्ले का कोई भी व्यक्ति उसे दो चार रूपये देकर स्थायी रूप से नौकर रखने को तैयार न हुआ, क्यों कि वह इतना शक्तिशाली कतई न था कि चौबीस घंटे नौकर की महान जिम्मेदारियां संभाल सके।..... .अब न वह शिवनाथ बाबू के यहां टिकता और न जमुनालाल के यहाँ क्यों कि उसको कोई टिकने ही न देता। इसको रजुआ ने भी समझ लिया और मोहल्ले के लोगों ने भी, वह अब किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, बल्कि सारे मोहल्ले का नौकर हो गया।

रजुआ का जीवन यथार्थ हमारे समाज की उस सच्चाई को प्रकट कर देती है जिसमें व्यक्ति के शोषण का भी सामाजीकरण हो जाता है और वह कुछ कर नही सकता क्यों कि जीना है तो किसी भी हद तक जाना होगा। रजुआ हर परिस्थिति को स्वीकार करता है। और बदले में जो कुछ मिल जाता है उसी में प्रसन्न हो जाता है। ''मैंने घूमकर एक निगाह उस पर डाली। उसके हाथ में एक रोटी और थोड़ा-सा अचार था और वह सुअर की भांति चापुड़-चापुड़ खा रहा था। बीच-बीच में वह मुस्करा पड़ता जैसे कोई बड़ी मंजिल सर करके बैठा हो।

इसी कहानी के पात्र शिवनाथ बाबू जैसे व्यक्ति के माध्यम से अमरकांत ने समाज के शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों की कलई खोली है। शिवनाथ बाबू जैसे लोग गरीबों की मजबूरी का फायदा उठाकर उनका अमानवीयता की हद तक शोषण करते है और स्वयं को बड़ा सहृदय, परमार्थी व दयाशील प्रकट करते हैं। शिवनाथ बाबू ने ही रजुआ को साड़ी चोरी के इलजाम में पीटा था लेकिन बाद में जब उन्हे लगा कि वह उनके काम का है तो उसे बुलाकर अपने यहां रहने-खाने को कहते है। रजुआ उनके यहां रहने लगता है और काम के बदले में उसे मिलता है सिर्फ दो जून का भोजन-''लेकिन एक दिन उन्होंने किसी शुभ मुहुर्त में उसे सड़क से गुजरते समय संकेत से बुलाया और तिरछी नजर से देखते हुए, मुस्करा कर बोले, देख बे, तूने चाहे जो भी किया, हमसे तो यह सब नही देखा जाता दर-दर भटकता रहता है। कुत्ते-सुअर का जीवन जीता है। आज से इधर-उधर भटकना छोड़, आराम से यहीं रह और दोनों जून भरपेट खा।''

'जिन्दगी और जोंक 'अमरकांत की एक प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी का प्रमुख पात्र 'रजुआ' जितना निरीह व दयनीय है उतना ही काइयां भी तथा निम्नमध्यवर्गीय गुणों से युक्त है। वह अंधविश्वासी है तथा भूत प्रेत कों मानता है। दाढ़ी बढ़ाकर शनीचरी देवी को जल चढ़ाता है। पगली को फुसलाकर अपनी शरीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है। इसी तरह मूस कहानी का 'मूस' भी एक निरीह व शोषित पात्र हैं। वह परबतिया के इशारे पर नाचता रहता है। ''वह इतना दबा-दबा रहता कि परबतिया उससे दो शब्द मीठा बोलना भी जरूरी नहीं समझती। वह सदा रूखाई से पेश आती। ..... परवतिया उसको अक्सर 'दो वित्ते का मर्द' कहकर अपनी उच्चता और प्रभुत्व की पुष्टि करती रहती है।''

मध्यवर्गीय व्यक्ति भाग्यवादी होता है। उसे अपने कर्म व परिश्रम से ज्यादा ईश्वर पर विश्वास होता है। तभी तो 'डिप्टी कलक्टरी' के शकलदीप बाबू को भाग्य व भगवान पर ज्यादा भरोसा है। वे अपनी पत्नी को पूजा पाठ करने को कहते है। स्वयं भी मन्दिर जाने लगते है। ''नारायण की अम्माँ आजकल तुम्हारा पूजा पाठ नहीं होता क्या ?'' .... ''सुनते हैं सच्चे मन से राधास्वामी की पूजा करने से सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते है।'' इस तर्कहीन व्यवस्था में व्यक्ति को जब मेहनत व ईमानदारी के बावजूद भी फल नहीं मिलता तो उसका भाग्यवादी हो जाना स्वाभाविक भी है। व्यक्ति को जब अपने परिश्रम का फल नहीं मिलता तो उसके लिए कर्मठता निरर्थक हो जाती हैं। श्रम के प्रति उसका उत्साह व विश्वास समाप्त हो जाता है।' गगन बिहारी 'का सुन्दरलाल इसी तरह का पात्र हैं। जो बड़ी-बड़ी योजनाएं तेा बनाता है लेकिन उसे क्रियान्वित नहीं कर पाता क्योंकि वह अपने कार्य के प्रति निष्क्रिय है। इसके पीछे हमारे समाज की तर्कहीन व्यवस्था जिम्मेदार है। जहां व्यावसायिक सफलता परिश्रम व मेहनत से नहीं बल्कि चमत्कार से प्राप्त होता है। ''उसने निश्चय कर लिया कि होमियोपैथी डाक्टरी करके ही अब वह जीवन में आगे बढ़ेगा। यह कार्य कठिन नहीं।''. ... '' होमियापैथी में पता नहीं कितनी प्रतिक्षा करनी पड़े, लेकिन इसमें तो चट बोइए और पट काटिए। ..... खेती में उसकी प्रतिभा निश्चित रूप से चमक सकती है।'' अन्त में वह व्यापार करने की सोचता है लेकिन उसे भी क्रियान्वित नहीं कर पाता है।

1.4 निष्कर्ष-

अमरकांत उन रचनाकारों में हैं जिनकी कहानियाँ न केवल कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ हैं बल्कि जो हमारे समय का अपूर्ण ही सही प्रमाणिक दस्तावेज हैं। आज यह कार्य अनेक पुराने समाजवेत्ता रचनाकार कर रहे हैं लेकिन हमारे विषमताग्रस्त सामाजिक वातावरण की तर्कहीनता, असुरक्षा, संतार्स का सर्वाधिक विश्वसनीय और मार्मिक चितर्ण अमरकांत की कहानियों में

मिलता है। नि:संदेह गहरी मानवीय संवेदनाओं एवं व्यापक सहानुभूतियों से ही रचना प्रभावशाली एवं संप्रेषणीय बनती है। अंत में हम कह सकते है कि अमरकांत ने मध्यवर्गीय व्यक्ति, परिवार व समाज के अन्तर्सम्बन्धों को, उनके यथार्थ को प्रमाणित ढ़ग से चित्रित किया है। अमरकांत ने यह स्पष्ट किया है व्यक्ति पर परिवार व समाज का गहरा असर होता है तथा व्यक्ति भी समाज को गहरे रूप से प्रभावित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- उषा प्रियम्बदा, रूकोगी नहीं राधिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवीं आवृत्ति-2010
- डा0 एलाङ्बम विजयलक्ष्मी,समकालीन हिन्दी उपन्यास: समय से साक्षात्कार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2006
- डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, सामाजिक विघटन, एस बी पी डी पब्लिशिंग हाउस, आगरा, ग्यारहवाँ संस्करण-2010
- डॉ0 जय जय राम उपाध्याय, भारत का संविधान, सेन्ट्रल ला एजेन्सी इलाहाबाद-2013
- वीरेन्द्र यादव, प्रगतिशीलता के पक्ष में, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद प्रथम संस्करण-2014
- फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवीं आवृत्ति-2006
- नामवर सिंह, कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण-2012
- अमरकांत, सुन्नर पांडे की पतोह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2015
- अमरकांत, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियों (दूसरा खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2013
- अमरकांत, इन्ही हथियारों से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2014
- अमरकांत, बीच की दीवार (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2008
- अमरकांत, काले-उजले दिन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2014
- अमरकांत, कुछ यादें, कुछ बातें (संस्मरण), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2014

तहसील फरीदपुर में जनसंख्यात्मक वितरण-एक भौगोलिक विश्लेषण

डॉ० ए० के० एस० राना

निर्देशक, प्रभारी एवं एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, वर्धमान कॉलिज, बिजनौर

बादाम सिंह

शोधार्थी, एम० ए० (भूगोल) नेट

सारांशः

तहसील फरीदपुर में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 472366 व्यक्ति है जो जनपद बरेली की कुल जनसंख्या का 10.61% है जिसमें 252975 पुरूष एवं 219391 स्त्रियां सम्मिलित है जो तहसील की कुल जनसंख्या का क्रमशः 53.55% एवं 46.45% है। ग्रामीण जनंसख्या 384637 व्यक्ति है, जो तहसील की कुल जनसंख्या का 81.43% है जिसमें 206808 पुरूष एवं 177829 स्त्रियां सम्मिलित है। जबकि नगरीय क्षेत्र में 46167 पुरूष एवं 41562 स्त्रियां सम्मिलित है जो नगरीय जनसंख्या का 52.62% एवं 47.38% है। कुल नगरीय जनसंख्या 87729 व्यक्ति है जो तहसील की जनसंख्या का 18.57% है। तहसील फरीदपुर में जनघनत्व 662 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। तहसील फरीदपुर में वर्ष 2001-2011 तक की समयावधि में 19.50% की जनसंख्या वृद्धि दर्ज हुई है।

प्रस्तावनाः

जनसंख्या भूगोल, भूगोल की एक नवीन शाखा है। इसका श्रेय प्रमुखतः संयुक्त राज्य अमेरिका के ग्लैन ट्रिवार्था को है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मनुष्य वह केन्द्र है जहाँ से क्षेत्रीय लक्षणों का निर्धारण करने में योगदान प्राप्त होता है। किसी भी देश की वर्तमान स्थिति का आंकलन वहाँ की आर्थिक विकास और जनसंख्या के ही हिसाब से तय किया जाता है। यह दोनों एक राष्ट्र के विकास के सबसे बड़े कारक होते है। भारत जैसे देश में जनसंख्या वृद्धि एक खतरनाक स्तर पर पहुँच गई है। भले ही हम विश्व के सबसे ज्यादा युवा वाला देश होने का दावा करते है पर सच यही है कि अब हमारे देश की जनसंख्या यहाँ की आर्थिक स्थिति को काफी नुकसान पहुँचा रही है। जनसंख्या किसी भी देश के विकास के लिए सबसे बड़ा अवरोध पैदा कर सकती है। वर्ष 2011 के जनगणना के आंकड़ों के लिहाज से देखें तो हमारे देश की जनसंख्या 121.27 करोड़ हो गई है यानी कि 2001 की जनसंख्या में लगभग 17.70 फीसदी का इजाफा हुआ है। जनंसख्या वृद्धि ने हमारे देश के समक्ष बेरोजगारी, खाद्य, समस्या, कुपोषण, प्रति व्यक्ति आय, गरीबी, मकानों की कमी, मंहगाई, कृषि विकास में बाधा, बचत एवं पूँजी में कमी, शहरी क्षेत्रों में घनत्व जैसी ढेर सारी समस्याओं को उत्पन्न कर चुकी है। हम इन समस्याओं से निपटने की लगातार कोशिश तो कर रहे है पर समाधान बहुत कम निकल कर सामने आते है।

अध्ययन क्षेत्रः

प्रस्तुत शोध-पत्र का क्षेत्र तहसील फरीदपुर है जो रूहलेखण्ड भौगोलिक क्षेत्र जनपद बरेली के अन्तर्गत स्थित है। तहसील फरीदपुर का अक्षांशीय विस्तार 28^0 10' से 28^0 40' उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय विस्तार 79^0 25' से 79^0 50' पूर्वी देशान्तर के अन्तर्गत है तथा भौगोलिक क्षेत्रफल 713.77 वर्ग किलोमीटर है। अध्ययन क्षेत्र के उत्तर में तहसील नबावगंज एवं बरेली सदर, दक्षिण में दातागंज एवं तिलहर तहसील, पूर्व में तहसील बीसलपुर एवं पश्चिम में आंवला एवं बरेली सदर तहसील स्थित है।

प्रशासनिक दृष्टि से 01 तहसील (फरीदपुर), 02 विकासखण्ड (फरीदपुर एवं भुता), 22 न्याय पंचायत, 142 ग्राम पंचायत एवं 329 राजस्व ग्राम तथा 02 नगरीय केन्द्र शामिल है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 4.72 लाख व्यक्ति एवं जनघनत्व 662 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। ऐतिहासिक दृष्टि से फरीदपुर को मूल रूप से परा नाम से जाना जाता था। अकबर के पश्चात् जब जहाँगीर सिंहासन पर बैठा तब फरीद खाँ यहाँ का सुबेदार नियुक्त हुआ। नबाब फरीद खाँ ने अपने नाम से बरेली से 22 किलोमीटर दूर फरीदपुर की नीवं डाली। परा मोहल्ला अब भी फरीदपुर में मौजूद हैं। यहाँ फतेहगंज पूर्वी के स्थान पर रूहेलों का नबाब अवध तथा अंग्रेजों से 1774 में युद्ध हुआ जिसमें रूहेले हार गए थे। फरीदपुर तहसील की स्थापना 1815 में हुई थी।

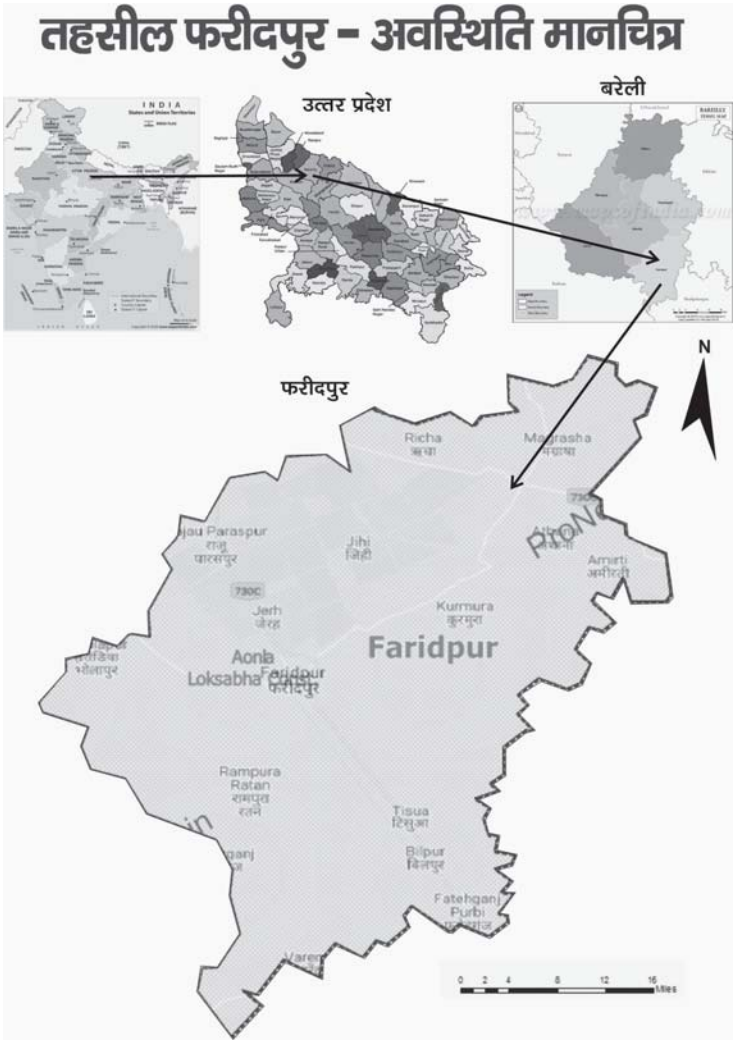

प्राकृतिक दशायें:

तहसील फरीदपुर मुख्यत: एक मैदानी भू-भाग है जिसका निमार्ण रामगंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा लाए गए अवसाद के निक्षेपण से हुआ है। सम्पूर्ण क्षेत्र की औसत ऊँचाई 175 मीटर है। यहाँ पर अवसादी परतदार चट्टानें मिलती है। रामगंगा यहाँ की मुख्य नदी है। इसके अलावा नकटिया, पूर्वी बहगुल, किच्छा एवं अनेक जल धारायें बहती है। यहाँ पर झीलों एवं तालाबों की संख्या 75% है। भूमिगत जल स्तर की गहराई 5.5 मीटर है। तहसील फरीदपुर की जलवायु मानसूनी है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 35^{O}C एवं शीतकालीन औसत तापमान 15^{O}C है। वार्षिक वर्षा 90 सेन्टीमीटर है। सापेक्षिक आर्द्रता 75% एवं औसत वायु की गति 5.50 किलोमीटर प्रति घण्टा है। सामान्य जाड़ा उष्ण ग्रीष्म ऋतु, गर्म 'लू' हवाओं का चलना तथा वर्षा काल में वर्षा प्राप्ति मुख्य जलवायुविक विशेषतायें है। यहाँ पर उपजाऊ जलोढ़ मिट्टियां मिलती है। जिनमें बांगर एवं खादर प्रमुख है जिसमें चिकनी, दोमट, बलुई एंव सिल्ट युक्त बलुई मिट्टी है। खनिजों की दृष्टि से यह क्षेत्र पूर्णतया शून्य है। प्राकृतिक वनस्पति सड़कों, रेलमार्गो के किनारे व बंजर और ऊसर भूमि पर ही मिलती है। मात्र 305 हेक्टेयर भाग पर ही वन क्षेत्र फैला है। नदियों एवं झाड़ियो के किनारे वन्य जीवों की अनेक प्रजातियाँ देखने को मिलती है।

जनसंख्या वितरण:

पृथ्वी पर जनसंख्या के वितरण में आदि काल से अब तक समय-समय पर परिवर्तन हुए है। आज की विषम परिस्थितियों को देखते हुए यह अनुमान लगाना कठिन होगा कि परिवर्तन किस प्रकार के होंगें। वर्तमान वितरण की सर्वाधिक मुख्य विशेषता यह है कि कुछ क्षेत्रों में मनुष्यों का निवास अति विषम है। केवल कुछ थोड़े से प्रदेश ऐसे है जहाँ मानव निवास बहुत अधिक सघन है, जबकि बहुत बड़े भू-भाग खाली पड़े हुए है। वर्तमान वितरण में इतनी अधिक विषमता के बहुत से जटिल कारण है। मानवीय वितरण पर वातावरण के तत्वों और देश की उत्पादन क्षमता का प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक वातावरण जैसे- जलवायु, मिट्टियाँ भूमि की बनावट, जल-पूर्ति के साधन, प्राकृतिक वनस्पति एंव खनिज पदार्थो का मुख्य प्रभाव होता है। कुछ अंशों में सांस्कृतिक विषमताओं के कारण भी जनसंख्या का वितरण है। सांस्कृतिक विषमताओं में, आर्थिक विकास की अवस्था, प्राविधिक तन्त्र, साज-सज्जा, सामाजिक संगठन, धार्मिक विश्वास और जीवन-दर्शन सम्मिलित है। इस प्रकार जनसंख्या के वितरण पर सांस्कृतिक तथ्यों का महत्व बहुत बढ़ जाता है।

तहसील फरीदपुर में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 472366 व्यक्ति है जो जनपद बरेली की कुल जनसंख्या का 10.61% है जिसमें 252975 पुरूष एवं 219391 स्त्रियां सम्मिलित है जो तहसील की कुल जनसंख्या का क्रमश: 53.55% एवं 46.45% है। ग्रामीण जनंसख्या 384637 व्यक्ति है, जो तहसील की कुल जनसंख्या का 81.43% है जिसमें 206808 पुरूष एवं 177829 स्त्रियां सम्मिलित है। जबकि नगरीय क्षेत्र में 46167 पुरूष एवं 41562 स्त्रियां सम्मिलित है जो नगरीय जनसंख्या का 52.62% एवं 47. 38% है। कुल नगरीय जनसंख्या 87729 व्यक्ति है जो तहसील की जनसंख्या का 18.57% है।

तहसील फरीदपुर में विकासखण्ड स्तर पर फरीदपुर विकासखण्ड की कुल जनसंख्या 175652 व्यक्ति है। जिसमें 94893 पुरूष एवं 80759 स्त्रियां सम्मिलित है जो विकासखण्ड की कुल जनसंख्या का 54.02% एवं 45.98% है। जबकि ग्रामीण जनसंख्या 45. 66% जनसंख्या इस विकासखण्ड के अधीन है। विकासखण्ड भुता में 208985 व्यक्ति निवास करते है जो ग्रामीण जनसंख्या का 54. 33% है। इसमें 111915 पुरूष एवं 97070 स्त्रियां सम्मिलित है। विकासखण्ड की कुल जनसंख्या का 53.55% एवं 46.45% है। न्याय पंचायत स्तर पर नगरिया विक्रम, रजऊ परसपुर फैजनगर, गांगेपुरा, अंगदपुर खमरिया एवं भुता मे 20 से 30 हजार के मध्य व्यक्ति निवास करते है। जबकि एरिया न्यायपंचायत की जनसंख्या 10 हजार व्यक्ति से कम है। न्यायपंचायत स्तर पर सर्वाधिक जनसंख्या 27874 व्यक्ति नगरीय विक्रम न्यायपंचायत (विकासखण्ड फरीदपुर) में है जिमसें 15041 पुरूष एवं 12833 स्त्रियां सम्मिलित है जो न्यायपंचायत की जनसंख्या का 53.96% एवं 46.04% है। जबकि इसके विपरीत सबसे कम जनसंख्या 9083 व्यक्ति न्यायपंचायत रूरिया में है जिसमें 5025 पुरूष एवं 4058 स्त्रियां सम्मिलित है जो न्यायपंचायत की जनसंख्या का 55.32% एवं 44. 68% है। जैसा कि तालिका- में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या - 01 : तहसील फरीदपुर में जनसंख्या वितरण, घनत्व एवं वृद्धि, 2011

क्र0 सं0	न्यायपंचायत	पुरूश	स्त्री	कुल	व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में	जनसंख्या वृद्धि 2001–2011
1–	नगरिया विक्रम	15041	12833	27874	645	23.25
2–	रजऊ परसपुर	13625	12046	25671	666	23.75
3–	लौंगपुर	10043	8305	18348	528	22.30
4–	रूरिया	5025	4058	9083	261	18.55
5–	न्वादा बिलसण्डी	7916	6144	14060	577	19.65
6–	ढढरूआ	6022	5081	11103	485	21.80
7–	रम्पुरा तख्ता	9403	8095	17498	534	22, 10
8–	नगरिया कला	6950	6084	13034	423	19.45
9–	शिवपुरी	10473	9099	19572	481	23.06
10–	भगवानपुर कुन्दन	10395	9014	19049	491	21.60
	विकासखण्ड फरीदपुर	**94893**	**80759**	**175652**	**535**	**21.18**
11–	कुआंडाडा	6908	5938	12846	481	18.30
12–	अठाना	8554	7165	15719	491	22.40
13–	फौजनगर	10850	9337	20187	585	23.05
14–	मेहतरपुर करोड़	18345	7345	15690	533	21.80
15–	टिसुआ	7550	6478	14028	437	19.30
16–	गांगपुरा	12884	11397	24281	684	23.90
17–	ककराकलॉ	7747	6681	14428	456	21.20
18–	अंगदपरु खमरिया	11873	10446	22319	652	23.08
19–	बुधौली	9480	8267	17747	622	22.15
20–	भुता	12105	10631	22736	674	23.35
21–	पिपरथरा	5863	5010	10873	410	29.55
22–	दलपुरा	9756	8464	18220	600	21.70
	विकासखण्ड भुता	**111915**	**97070**	**208985**	**556**	**22.96**
	योग ग्रामीण	**206808**	**177829**	**384637**	**547**	**20.75**
	नगरीय योग	**46167**	**41562**	**87729**	**8492**	**19.25**
	योग जनपद	**252975**	**219391**	**472366**	**662**	**19.50**

स्रोतः 1. जिला सांख्यिकीय पत्रिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बरेली।

2. विकासखण्ड मुख्यालय से प्राप्त सूचना पर आधारित।

ज्नसंख्या घनत्वः

घनत्व में एक आनुपातिक सम्बन्ध होता है, जिसका सम्बन्ध जनसंख्या के आकार एवं निवासित भूमि के क्षेत्रफल से होता है (जैसा प्रति वर्ग किलोमीटर भूमि पर रहने वाले मनुष्यों की संख्या) घनत्व अनेक प्रकार के होते है, अधिक उपयोग में आने वाला घनत्व का प्रकार गणितीय घनत्व है। इसमें मानव स्थल-अनुपात के आधार पर विचार किया जाता है। अर्थात् प्रदेश की कुल जनसंख्या को प्रदेश के कुल क्षेत्रफल से भाग कर देते है। इस प्रकार प्रति वर्ग किलोमीटर भूमि पर निवास करने वाली जनसंख्या ज्ञात हो जाती है। घनत्व पर वितरण दर्शाने के लिए इकाई क्षेत्र के प्रति वर्ग किलोमीटर पर निवासित जनसंख्या को दर्शाया जाता है।

तहसील फरीदपुर में जनघनत्व 662 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। ग्रामीण क्षेत्र में 547 व्यक्ति एवं नगरीय क्षेत्र में 8492 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते है। विकासखण्ड स्तर पर फरीदपुर विकासखण्ड में 535 व्यक्ति एवं विकासखण्ड भुता में 556 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते है। न्यायपंचायत स्तर पर नगरिया विक्रम, रजऊपरसपुर, गांगेपुरा, अंगदपुर खमरिया, बुधौली, भुता एवं दलपुरा में जनघनत्व 600-700 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के मध्य मिलता है। जबकि रूरिया, ढढरूआ, नगरिया कला, शिवपुरी, भगवान कुन्दन, कुआं डांडा, अठाना, टिसुआ, ककराकलॉ एवं पिपरथरा न्यायपंचायतों में जनघनत्व 500 व्यक्ति से कम मिलता है। न्याय पंचायत स्तर पर सर्वाधिक जनघनत्व 684 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर मीटर गांगेपुरा न्यायपंचायत (विकासखण्ड भुता) में है जबकि इसके विपरीत सबसे कम जनघनत्व 261 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर न्यायपंचायत रूरिया (फरीदपुर विकासखण्ड) के अन्तर्गत है।

जनसंख्या वृद्धिः

जनसंख्या वृद्धि का अर्थ अधिकतर एक क्षेत्र विशेष में किसी समय रह रहे लोगों की संख्या में परिवर्तन से है। यह परिवर्तन नकारात्मक भी हो सकता है और सकारात्मक भी। ऐसे परिवर्तन को कुल संख्या में परिवर्तन और प्रतिशत परिवर्तन दोनों तरह से मापा जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि को प्रतिशत परिवर्तन के रूप में मापने के लिए कुल जनसंख्या में परिवर्तन को पहले उस स्थान पर रह रही जनसंख्या से विभाजित कर लिया जाता है तथा फिर उसे 100 से गुणा किया जाता है।

तहसील फरीदपुर में वर्ष 1951 में कुल जनसंख्या 146510 व्यक्ति थी जो वर्ष 1961 में 14.50% वृद्धि के साथ 167919 व्यक्ति हो गई थी। वर्ष 1971 में 17.50% बढोत्तरी के साथ 196396 व्यक्ति, वर्ष 1981 में 18.75% वृद्धि के साथ 238056 व्यक्ति, वर्ष 1991 में 20.25% बढोत्तरी के साथ 298501 व्यक्ति वर्ष 2001 में 21.50% वृद्धि के साथ 380256 व्यक्ति एवं वर्ष 2011 में 19. 50% वृद्धि के साथ 472366 व्यक्ति हो गई है। इस प्रकार 1951-2011 की समयावधि में तहसील फरीदपुर की कुल जनसंख्या में 222.40% की वृद्धि दर्ज की गई है। जैसा कि तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या - 02 : तहसील फरीदपुर में जनसंख्या वृद्धि, 1951-2011

जनगणना वर्ष	जनसंख्या	प्रतिशत वृद्धि/ह्रास
1951	146510	–
1961	167919	14.50
1971	196396	17.50
1981	238056	18.75
1991	298501	20.25
2001	380256	21.50
2011	472366	19.50
कुल वृद्धि 1951–2011	**+325856**	**+222.40**

स्रोतः 1. जिला सांख्यिकीय पत्रिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बरेली।

2. विकासखण्ड मुख्यालय से प्राप्त सूचना पर आधारित।

तहसील फरीदपुर में वर्ष 2001-2011 तक की समयावधि में 19.50% की वृद्धि दर्ज हुई है। ग्रामीण जनसंख्या में 20.75% एवं नगरीय जनसंख्या में 19.25% की वृद्धि हुई है। विकासखण्ड फरीदपुर में जनसंख्या वृद्धि 21.18% एवं भुता विकासखण्ड में यह वृद्धि 22.96% है। न्यायपंचायत स्तर पर नगरिया विक्रम, रजऊपरसपुर, शिवपुरी, फैजनगर, गांगेपुरा, अंगदपुर खमरिया भुता न्यायपंचायतों में जनसंख्या वृद्धि की दर 23% से अधिक रही है। जबकि रूरिया, नवादा बिलसण्डी, नगरिया कला, टिसुआ, पिपरथरा न्यायपंचायतों में जनसंख्या वृद्धि की दर 20% से कम रही है। जबकि शेष न्यायपंचायतों में जनसंख्या वृद्धि की दर 20 से 23% रही है।

निष्कर्षः

प्रस्तुत शोध-पत्र से प्राप्त परिणामों को निष्कर्ष रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया हैः-

1. जनसंख्या वृद्धि की दृष्टि से तहसील फरीदपुर (जनपद बरेली) में तेजी से परिवर्तन देखने को मिला है। नगरीय क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि की दर अधिक है।
2. जनसंख्या वितरण के विश्लेषण से स्पष्ट है कि यहाँ पर सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल एवं विद्युत आपूर्ति वाले क्षेत्रों में जनसंख्या का संकेन्द्रण तेजी से बढ़ा है। जबकि सामाजिक-आर्थिक असुविधाओं वाले क्षेत्र में जनसंख्या विरल रूप में पाई जाती है।
3. साक्षरता की दृष्टि से यहाँ पर अभी भी प्रतिशत कम है। ग्रामीण क्षेत्र में यह स्थिति और गम्भीर हैं। हालांकि नगरीय क्षेत्र में कुछ सुधार दिखलाई पड़ते है। सर्व शिक्षा अभियान के तहत यहाँॐ पर साक्षरता की दर को बढाने के प्रयास किए जा रहे है।

4. लिंगानुपात की दृष्टि से तहसील फरीदपुर नगर व ग्रामीण क्षेत्रों में राष्ट्रीय व प्रदेशीय औसत से कम अंकित किया गया है जिसका मुख्य कारण यहाँ की बढ़ती हुई औद्योगिक व अन्य आर्थिक क्रियायें मुख्य है। इन क्रियाओं में बड़े पैमाने पर पुरूष प्रधान प्रवास पाया जाता है। लिंगानुपात असन्तुलन की ओर बढ़ता जा रहा है जो कि चिन्ता का विषय हैं।
5. कार्यशील जनसंख्या से आशय है कि यहॉ पर कार्यशील जनसंख्या कम है। कुल कार्यशील जनसंख्या में कृषकों की संख्या अधिक हैं। हालांकि औद्योगिक एवं अन्य व्यवसायों में भी लोगों की भागीदारी बढ़ी है। यहॉ पर अनेकों प्रकार के सरकारी, अर्द्ध सरकारी एवं निजी क्षेत्र के प्रमुख संस्थानों का तेजी से विकास हुआ है।

सन्दर्भ

1. मामोरिया, सी0बी0 एवं सिसौदिया एम0 एस0 2014 : भारत का भूगोल, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस आगरा पृश्ठ-44
2. चौहान, पी0आर0 एवं प्रसार महातम 2004 : भारत का वृहद भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर पृष्ठ-166
3. चान्दना, आर0सी0 2009 : जनसंख्या भूगोल, कलयाणी पब्लिकेशन्स दिल्ली पृष्ठ-55
4. गोसल, जी0एस0 19ध्82 : रिसेन्ट पापुलेशन ग्रोथ इन इण्डिया' पापुलेशन ज्योग्राफी, वाल्यूम 4 पृष्ठ-33
5. यादव, एच0 एल0 1986 : जनसंख्या भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन दाऊदपुर गोरखपुर पृष्ठ-7
6. ठाकुर, बी0 एस0 : अधिवास और जनसंख्या भूगोल, कानपुर पृष्ठ-115
7. जिला सांख्यिकीय पत्रिका अर्थ एंव संख्या प्रभाग जनपद बरेली 2018
8. विकासखंण्ड मुख्यालय से प्राप्त सूचना पर आधारित

अमिश त्रिपाठी के शिव रचनात्रय में वर्तमान प्रासंगीकता

पटेल रविचंद्र बाबूलाल

Ph.D शोधार्थी, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी

अमिश त्रिपाठी एक इंग्लिश साहित्यकार है उनकी शिव रचनात्रय श्रुखला कि तीन किताबें मेलुहा, नागाओ का रहस्यऔर वायुपुत्रो की शपथ अनुदित सहित्य है,यह ईस पूर्वे के समय पर आधारित कहानी है। वह एक मिथक है, जो शिव के नीलकंठ बनने की सफर पर आधारित है। यह कहानी हमें पौराणिक होकर भी आधुनिक दुनिया में गोता लगाने पर मजबूर कर देती है। और हमको आज के आधुनिक युग से जोडती है। "समकालीन और शहरी कहानी को मिलाने की त्रिपाठी की सोच ही उनकी किताबो की सफलता का राज है। हालाकि कहानी काल्पनिक है, लेकिन, उनके चरित्र और ऐतिहासिक वर्णन आधारभूत हैद्धि.हार्पर स बाजार का कहना है।"[१]

शिव रचनात्रयी में एक तिब्बटी नेता को नीलकंठ बनाने की सफर की शुरुआत सोमरस ने की थी। उस वक्त सोमरस मेलुहा के लोगों के लिए अमृत था। सोमरस का बहुत-सा लाभ मेलुहा और उनके लोगों को हुआ था। आम जनता अगर शिव न होते तो उनको सोमरस के दूसरे पहलू को कभी न देख पाती। वह कभी न जान पाती कि वह अपने फायदे के लिए जिस सोमरस का पान कर रहे हैं वह दूसरी और उसके उत्पादन का कचरा और मानव शरीर के अंदर उसकी प्रतिक्रिया विनाश ही विनाश फैला रही है। यानी कि मानव जाति का सर्वनाश। सोमरस तो अमिश का एक सिद्धांत है। वास्तव में आज के जमाने में हमारे जीवन में जबसे हम सुबह उठना शुरू करते हैं तब से लेकर जब तक रात को सो ते नहीं तब तक कि हमारी जीवनशैली सोमरस से भरी पडी है।

सोमरस जैसी लाभदायी और भयानक चीजें-

"महान अच्छाई कभी-कभी महाबुराई की ओर ले जाती है।"[२]

बिजली-

अगर हमारे जीवन को आज सबसे ज्यादा प्रभावित किया हो और सबसे ज्यादा फायदा पहुँचाया हो तो वह है बिजली। बिजली की खोज होते ही इन्शान कि जीवन में रोशनी ही रोशनी हो गई। मानो विकास रूपी ट्रेन बिजली रूपी पटरियों पर चढकर बहुत आगे निकल गया। आज ऐसा कोई देश नहीं है, ऐसा कोई शहर नहीं हैं और ऐसा कोई गाँव नहीं है जो बिजली के उपयोग से अनजान हो। सुबह से श्याम हम जो भी कार्य करते हैं उसमें बिजली का विशेष महत्व होता है। अगर थोडी देर के लिए भी बिजली चली जाए तो मानो हमारा जीवन रुक जाता है। हम त्राहिमाम पुकार उठते हैं। हम भी क्या करे हम जो भी चीजो का इस्तेमाल करते हैं वह ज्यादातर चीजें बिजली से चलती हैं या बिजली से बनती हैं।

आज इन्सान बिजली का उत्पादन करने के लिए बहुत जागृत हो गया है। बिजली पैदा करने के लिए तरह-तरह के नुस्खे का इस्तेमाल होता है। सबसे ज्यादा कोयला जो कुदरत की देन है उसमे से बनती है। उससे पर्यावरण को नुक्सान होता है मगर बहुत गंभीर नहीं। सूर्य से भी बिजली का उत्पादन होता है और यह बहुत अच्छी बात है पर वह ज्यादा नहीं होता। जापान जैसे जगह की कमी वाले देश बिजली के उत्पादन के लिए यूरेनियम,थोरियम जैसे परमाणु पर आधारित थे। जो एक मुट्ठी भर यूरेनियम से बहुत सारी बिजली उत्पादन होती थी वह अच्छी बात है। लेकिन जिस प्रकार सोमरस का कचरा बहुत भयानक होता है उसी प्रकार से

परमाणु ऊर्जा के उत्पादन के बाद उसके कचरे का निकल करना बडा प्रश्न बन जाता है और बिजली के उत्पादन के समय अगर परमाणु विकिरण बाहर आ जाये या लिक हो जाए तो मानव जाति जोखिम में आ सकती है। उसका पहला कडुवा अनुभव भी जापान देश को हुआ। यह अनुभव मार्च, २०११ को हुआ जब उसके न्यूक्लियर यूनिट जो विधृत उत्पादन के यूनिट है; वह लीक हुए और किसी दुर्घटना में टूट गए उसमें बहुत सारे लोगों ने जान गँवाए है और आज भी वह विस्तार इंसानो के लिए प्रतिबंधित है। जापान की दुर्घटना से बहुत सारे देशों ने सबक लिया है। यह जरूरी नहीं है कि सबक लेने के लिए हम किसी दुर्घटना का इंतजार करे। हम अमिश जैसे लेखको की किताबों से भी सिख ले सकते हैं। "हा प्राचीन संस्कृत में भगवद्गीता में एक सुंदर पंक्ति है जिसमें यह बात छुपी हुई है। अति सर्वत्र वर्जयेत्। अती से बचना चाहिए। किसी भी चीज का अति रेक बहुत बुरी बात है।"[३]

रासायनिक खाद-

सोमरस का अतिरिक्त पान हमारे शरीर में जिस प्रकार कुदरती प्रक्रियाओं को बदल देता था और इन्सान के बच्चों को अतिरिक्त अंग प्रदान करता था या कोई अंग कम होता था। कृतिका जैसी औरत बांज बन जाती थी तो सोमरस के इस पहलु पर रासायनिक खाद खरा उतरता है।

आज विश्व में जिस प्रकार से मानव वस्ती का अंक बढ़ रहा है, उसके सामने पृथ्वी तो बड़ी नहीं होगी ना! और सबको खाना भी तो चाहिए? इसीलिए इन्सान ने रासायनिक खाद और दवाईयाँ बनाना शुरू कर दिया; जिससे कम जमीन से ज्यादा फसल ले सके और कीटक और जीवजंतु से फसल को नुक्सान न हो इसीलिए जंतुनाश, कीटनाशक दवाइयों का इस्तेमाल करने लगा। उससे इन्सान को नजदीकी फायदा होने लगा और ज्यादा से ज्यादा फायदा लेने के लिए वह ज्यादा से ज्यादा दवाईयाँ और रासायनिक खाद का उपयोग करने लगा। होना क्या था? इसका परिणाम इन्सान को मिलना ही था। आज राजस्थान से पंजाब जाते हुए एक विस्तार ऐसा पडता है की वहाँ के लोगों में सबसे ज्यादा केन्सर का प्रमाण है क्योंकि वहाँ ज्यादा गेंहू की फसल के लिये रासायनिक खाद और दवाईयों का ज्यादा इस्तेमाल होता है। केन्सर सिर्फ तम्बाकू खाने से होता है ऐसा नहीं; क्योंकि आज हम जो भी सब्जी, फल, अनाज, कठोर का खाने में उपयोग करतें वह सभी हम जहर में पकाते है और उसका परिणाम के लिए हमें तैयार रहना होगा या हमें किसान बनकर कुदरती खेती करनी पडेगी। सोचो हमें क्या चाहिए नजदीकी फायदा और दूर का नुक्सान या नजदीकी नुक्सान और दूर का फायदा?

आज हर स्त्रियों के अस्पताल के आगे 'टेस्ट ट्यूब बेबी' के बोर्ड लगे हुए होते हैं क्योंकि सोमरस का बुरा असर होने से कृतिका बांज बन गई है। उसी प्रकार से आज के जमाने की रासायनिक दवाओं वाले खुराक सें बहुत सारी स्त्रियाँ 'कृतिका' बन गई है और इस बात को हम जितना ज्यादा और जल्दी समझ सके उतना अच्छा है वरना समय आने पर जिस प्रकार महर्षि भृगु भी समझ गए थे वैसे हमको भी समय की चमाट से सबकुछ समझ में आ जाएँगा। "द इंडियन एक्सप्रेस ने लिखा है की त्रिपाठी उन उभरते लेखको में से है जो इतिहास और मिथक को खंगालकर उसे रोचक रूप में प्रस्तुत करते है।"[४]

शराब-

शराब और सोमरस का पुराना संबंध है। दोनों का असर भी एक जैसा है। क्योंकि सोमरसएक औषधि है। उसके साथ दवा-दारू का नाम भी जुडा हुआ है। अगर आप सोमरस की तरह इसका सावधानी से और जागृकता से उपयोग करोगे तो यह तुम्हारे लिए बहुत फायदेमंद रहेगा वह; औषधि बन जायेगा। जिस प्रकार से लोग सोमरस का पान अधिक जीने की लालच से करते थे उन लोगो को उसका भयंकर परिणाम भोगना पडता था। इसी प्रकार शराब सही स्थल और योग्य मात्रा में न ली जाए, ज्यादा गर्म वातावरण में ली जाए तो वह आपके शरीर के सारे अंग बिगड भी सकती है और वही शराब एकदम ठंडे प्रदेश में औषध का काम करके इन्सान को गर्मी प्रदान करती है।

इस प्रकार जो इन्सान खुद पर काबू नहीं रखता है और अति का त्याग नहीं करता है; उस इन्सान को अपनी मौत के लिए तैयार रहना चाहिए। "द इंडियन एक्सप्रेस का कहना है की ..किताब अपने आप में दर्शन आध्यात्मिक संदेश, राज, युद्ध और रहस्य समेटे हुए है।"[५]

मिनरल वॉटर-

आजकल यह शब्द ज्यादा सुनाई देता है। क्या है यह मिनरल वॉटर? इसकी क्या जरूरत है? आजकल पानीजन्य रोग इतने बढ गए हैं कि अगर हम अच्छा और शुद्ध पानी न पियेंगे तो हम बिमार पड सकते हैं। इसीलिए वैज्ञानिकों ने ऐसी मशीनें ईजाद की; वह पानी में से सारी अशुद्धियों को निकालकर एक दम शुद्ध बना दे और हमारी सेहत भी अच्छी रहे।

जिस प्रकार सोमरस अच्छा है, पर उसकी अतिशयोक्ति अच्छी नही हैं उसी प्रकार से मिनरल वॉटर के ज्यादा उपयोग और अतिशुद्ध पानी में बिल्कुल क्षार चला जाता है और हमारे शरीर को भी तो कुछ क्षार तो चाहिए। यानी कि अतिशुद्ध पानी से हमारे शरीर में कुछ कमिया हो जाती है जिसका परिणाम हमें भुगतना पडता हैं। इसीलिए शुद्ध बनो पर बहुत शुद्ध बनना अच्छी बात नहीं हैं।

एलोपेथी दवाईयाँ-

सोमरस जिस प्रकार से कम समय में ज्यादा फायदे देता था, वैसे ही एक चीज जो हमारे जीवन में घुलमिल गई है जो बहुत कम समय में हमें दर्द से छुटकारा देती है, वह है एलोपेथी दवाईयाँ। आज विज्ञान का विकाश चारो और फैल गया है इसीलिए आज इन्सान बीमार होता है तो उसे कुछ ही घंटों में उसका ईलाज किया जा सकता है जिसके लिए हम विज्ञान के आविष्कार के आभारी रहेंगे।

लेकिन जिस प्रकार से सोमरस हमारे शरीर में धीरे-धीरे जो तबाही मचता है वैसी ही तबाही ये एलोपेथी दवाईया मचाती है। इसके जरूरत से ज्यादा उपयोग के कारण हमारे शरीरके अंगों को नुक्सान करता है वह किडनी या हार्ट की बिमारी के रूप में बाहर आ सकता है। इसीलिए अमिश हमे जगाने आया है और कहानी के अंत में जिस तरह प्रभु नीलकंठ शहरो का आरामदायक जीवन को छोड कैलाश पर्वत पर पहुँच जाते हैं उसी प्रकार से हमें भी वापस कुदरत के पास लौट जाना चाहिए कहीं देर ना हो जाए। एलोपेथी का इस्तेमाल करना चाहिए, पर योग्य जरूरत पर। बाकी तो वापस आयुर्वेद में लौट चलना चाहिए। क्योंकि वह शाश्वत सुख है जिसका नाश नहीं हो सकता। जिसका कोई बुरा प्रभाव हम पर और वातावरण पर नहीं होता क्योंकि कुदरत की चीज कुदरत में ही मिल जाती है।"आउटलुक मानता है की ..एक मजबूत कहानी, जिसमें एक्शन के साथ-साथ गहरी और सहज धारणा भी है। अमिश निराश नहीं कराते। ङ्घ.नागाओं का रहश्य पाठकों के लिए जिज्ञासा और उत्साह से लबरेज है।"[६]

नागाजाति के जैसा बुरा है यह आतंकवाद-

शिव राचनात्रय में नागाजाति का एक अलग ही अस्तित्व है। क्योंकि नागाओं की परछाई भी लोग लेना नहीं चाहते। नाम लेने से ही उसके मुँह खुले के खुले रह जाते और इन्सान सहमे से रह जाते। नागाजाति के लोगो के बारे में कोई बात करने को भी तैयार नहीं थे। अगर कहीं भी कोई भी बुरा काम होता था तो उनका दोष उन लोगों पर थोपा जाता था। अरे सम्राट दक्ष जैसे लोग अपने राजकीय लाभ के लिए स्वुथ जैसे लोगों को नागा के कपडे पहनाकर नीलकंठ की हत्या का षडयंत्र रचते थे। नागा लोग तो बस यह चाहते थे की उनका प्रदेश जो संपूर्ण कुदरत के सानिध्य में है वह संपूर्ण सुरक्षित रहे। कोई भी यह जानने की हिम्मत नहीं करता कि नागा लोग कौन हैं और कैसे वह एक अच्छे योद्धा कैसे बनते हैं? एक शिव ही ऐसा नेता है जो उनके प्रदेश में जाने का खतरा उठाता है। फिर वहाँ जाकर तय करता है कि ये लोग कोई बुरे लोग नहीं है। यह तो औषधि का व्यापार करके धन कमाते हैं; कोई बुराई करनेवाले नहीं है। हाँ, वे तब क्रोधित हो जाते हैं जब समाज उनके साथ बुरा व्यवहार करता है। एक बेटा-बेटी इसीलिए नागा प्रदेश में छोडे जाते है कि उसका कोई अंग कम या ज्यादा है। बताओ उसमे उस बच्चों का क्या दोष?

आज आतंकवाद इतना बढ गया है कि आए दिन शहरों में बम धमाके होते हैं। आज दहशत में ज्यादा जीते हैं। पता नहीं इन्सान-इन्सान का दुश्मन कैसे बन गया? आज के जमाने में हमें प्रभु नीलकंठ के जैसा बहादुर नेता चाहिए जो निडरता से आतंकवादीयों के बीच जा सके, उन्हें इस आतंकवाद की वजह पूछ सके। क्योंकि संसार का एक सीधा-सादा नियम है। वह न्यूटन का नियम के नाम से जाना जाता है जैसा आघात वैसा प्रत्याघात। इसीलिए हमें आतंकवाद का सामना करना पडता है। कौन है आतंकवादी लोग? जिस प्रकार नागजाति के लोग मेलुहा के ही लोगों की संतान थे।

उसी प्रकार विकसित देशों की नीति, धन कमाने की लालच विस्तारवाद की नीति और समृद्ध होने लालसा ही आतंकवाद पैदा करती है। एक देश के लिए जो आतंकवाद है वह दूसरे देश के लिए क्रांति क्यों बन जाती है? सालो पहले हमारे देश में अंग्रेज थे और उनसे छुटकारा पाने के लिए हमारी जो प्रवृत्तियाँ थी वह किसी आतंकवादियों से कम नहीं थी। हमारे भी क्रांतिकारीओं ने बम धमाके किए थे, खून-खराबा भी किया था। पर हम क्रांति के नाम से जानते हैं क्योंकि हमारी माँग सच्ची थी पर उसे पाने का रास्ता गलत था। और महात्मा गांधी जैसे महान नेता ने हमारी क्रांति को सही राह दिखाई थी और वह एक नेता ही होता है जो क्रांति को आतंकवाद बनने से रोक सकता है। जिस प्रकार शिव नागालोगों के बीच में जाकर उनको समझता है उसी प्रकार आज जो देश

आतंकवाद को खत्म करने के लिए एक जुट हुए है। वह क्यों यह जानना नहीं चाहते कि आखिर एक आदमी मरने के लिए क्यों तैयार हो जाता है? स्वर्ग जैसी दुनिया को छोड़कर नर्क में जाने के लिए अपनी छाती पर बम क्यों बंधवाता है? ऐसा उसके साथ क्या हुआ है कि वह एक मानव होकर मानव का ही दुश्मन बन गया है। उसको क्या चाहिए? क्या वह पागल है? क्या वे सभी लोग पागल है? वे कोन से धर्म से है? क्या उस धर्म में ऐसा करने को कहा है?

ये जो प्रश्न बताए गए हैं ये प्रश्न ऐसे ही नहीं पूछे गए। अगर आतंकवाद से लडने वाले देशों में से कोई एक देश को भी इन प्रश्नों के उत्तर मिल जाए तो वह देश अकेला ही आतंकवाद के सामने लडे बिना ही उस आतंकवाद को खत्म कर सकता है। लेकिन सत्य कडुआ होता है। जिस प्रकार से मेलुहा की राज्य व्यवस्था ने जाने अनजाने में नागाजाति के लोगों को जो अन्याय किया और उसकी जो प्रतिकिया उनको मिली उसी प्रकार से आज जो आतंकवाद की जो रेखाएँ है; जो चित्र हैं उसे देखेगें तो हमें पता चलेगा कि धर्म से ज्यादा विस्तार दिखाई देगा। इसका क्या मतलब है? इसका एक ही मतलब हो सकता है कि आज जो विकसित देश हैं वह देश अन्य की संपति हडप करना चाहते है। परिणामस्वरूप वह देश गरीब बनता है और अंत में गरीबी हावी होते ही वह विद्रोह कर देती है जो बड़े पैमाने में आतंकवाद का स्वरूप लेता है। और जैसे जैसे लोग उससे जुडते जाते है; उनके पास पैसे आतेजाते है तब सही अर्थ में उसको पैदा करने वाले लोगों पर खतरा उठता है। आतंकवाद पैदा होने का अमिश ने एक दूसरा भी रास्ता बताया है। जिस प्रकार दक्ष के मुताबिक सूर्यवंशी के साम्राज्य को कमझोर बनाने के लिए चंद्रवंशी लोग नागा लोगों का उपयोग करते थे। उसी प्रकार से आज एक देश दूसरे देश को कमझोर बनाने के लिए कुछ लोगों को पैसे की लालच देकर बुरे काम करवाते हैं। वह लोग मजबुर होते है; हालात के मारे होते है। समाज के त्यागे हुए होते है। इसीलिए वह मजबुरी में निम्न काम करने को तैयार हो जाते है; पर अंत में क्या होता है? वे आतंकवादी लोग उसी देश पे भारी पडते है, जिसने उसे जन्म दिया।

आज वैश्विक फलक पर आतंकवाद जैसी गम्भीर समस्या को सुलजाने के लिए नीलकंठ और सती जैसे ईमानदार नेताओं की जरूरत है। क्योंकि सच्चई के लिए सती अपने ही माता-पिता का त्याग कर देती है। अपनी जन्मभूमि से विद्रोह कर देती है और दुनिया के आगे दक्ष जैसे बुरे नेताओं को खुला कर देती है; उसके पिता होने के बावजूद भी। अगर हमको भी ऐसे नीलकंठ और सती मिल जाए तो दुनिया में आतंकवाद खत्म हो जाए और पूरी दुनिया में फिर से रामराज्य की स्थापना हो जाए।

स्वच्छ भारत मिशन और मेलुहान प्रजा-

दुनियाभर में क्या सिर्फ भारत को ही इस मिशन की जरूरत है? हा; भारत में ही इस मिशन की जरूरत है। क्योंकि अपने देश को गंदा करने वाला भारतीय किसी विदेश में जाता है तो वहाँ तो बहुत सुधर जाता है कुडा कुडावानी में ही डालता है। और यहाँ तो वो कहीं भी कुडा डाल देता है। कहीं भी पेशाब कर देता है। इसको और अच्छे तरीके से समझने के लिए हम शिव रचनात्रय में गोते लगाएँगे।

शिव रचनात्रय में सूर्यवंशी का मेलुहा और चंद्रवंशी का स्वदीप यानी कि अयोध्या। मेलुहा के जो लोग हैं वह पहले से सैद्धांतिक जीवन जीते आये हैं। कोई भी कार्य वह नियम के विरुद्ध नहीं करते, उनकी जो व्यवस्था है वही शायद ऐसी है कि इन्सान खुद नियमों के बीच अच्छी तरह से फिट हो जाता है। क्योंकि मेलुहा बाहर के लोगों को सबसे ज्यादा आश्रय देता है पर उनकी जो कामगिरी है, जो व्यवस्था है। उसके कारण बाहर से आये एक भी इन्सान को रात को खाली पेट नहीं सोना पडता और बाहर खुले में नहीं सोना पडता। उसके लिए उसके योग्य मकान भी तैयार होते हैं। उसके सामने शिव जब अयोध्या पहुचते हैं और वहाँ के प्रसिद्ध राम मंदिर जाते हैं तो रास्ते की बहुत सी गंदकि, हर मोड पर एक भिक्षुसे इतनी ठंडी में भी फटे कपडे पहनकर बाहर फुटपाथ पर सोने वाले लोगों को देख शिव चौक उठता है।

जितना फर्क मेलुहा और स्वदीप में है उतना ही फर्क विकसित देश और भारत में भी है। जो सबसे बडी ताकत होनी चाहिए। वही आज हमारी कमझोरी है हमारी जनसंख्या। आज स्वच्छ भारत मिशन जिस प्रकार से चल रहा है वह काबिलेतारीफ है लेकिन हमको ऐसा भी मिशन चलाना पडता है वह हमारा दुर्भाग्य है। क्योंकि स्वच्छता मेलुहा के लोगों की तरह हमारे जीवन में होनी चाहिए। पर हमारे नेता मेलुहा के मंत्रिओं की तरह ईमानदार नहीं है उसकी पोल भी मीडिया वालों ने खोलकर बताया था कि एक नेता ने फोटो खिंचवाने के लिए पहले फुटपाथ पर कुडा डाला और फिर झाडू लेकर सफाई करते हुए फोटो खिंचवाए। हम जब से छोटे होते है तब से हमारे घर के आसपास का कुडा, महोल्ले, गली, सोसायटी के आसपास क कुडा, शहरों में जगह-जगह कुडा देखने से हमें कुडा-कचरा देखने की आदत हो जाती है और जिधर भी कुडे का ढेर होता है। उधर जाकर हम कुडा डाल आतें है। हम

विदेश जाते है तो वहाँ के स्वच्छ रोड, स्वच्छ शहर देखकर आश्चर्य होता है और स्वच्छ जगह पर कुडा फेकने का मन नहीं होता। वहाँ की व्यवस्थापन समिति द्वारा जगह-जगह कूडेदान, चाहे वो गली हो, हाई-वे हो या कुछ भी हो आपको कूडेदान मिलेगा। इस व्यवस्था से वे शहर स्वच्छ रखते है। अगर हमारे भारत में; पुरे देश में एक ही दिन में गली, महोल्ला, शहर, गावँ में से सारा कुडा चला जाएँगा और अच्छे कूडेदान हर जगह रखे जाएँगे समय-समय पर खाली कर दिएँ जायेंगे। और जो काम प्रीति से नहीं होता वह भीति से होता है इसीलिए साथ में कडक कायदे कानून बनायेंगे। उस दिन हमें ऐसे मिशन नहीं चलाने पडेंगे। हमारा राज्य मेलुहा बन जायेगा।

सती जैसी शसक्त नारी-

आज संसार में दो तरह की नारियाँ हैँ। एक वह है जो पहले अपने पिता की गोदमें खेलती है और शादी के बाद अपने पति की छत्र-छाया में रहती है। दूसरी सती की तरह संपूर्ण स्वाभिमान से जीती है और आज समाज को सती जैसी शसक्त नारियोँ की जरूरत है क्योंकि नारीचेतन के बगैर संसार का विकास नहीं हो सकता। शिव की तरह हमें भी आज नारी की शक्ति को पहचानना होगा और उनको पुरुषों के साथ खडा होने देना होगा। हमें शिव की तरह अपनी सोच बनाकर समझना होगा कि संसार का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो सकता है। जिस प्रकार शिव सती को युद्ध के लिए भी तैयार करते हैं उसी प्रकार हमें सती को एक आदर्श समझकर हमारे समाज की भी स्त्रिओं को तैयार करना होगा।

संदर्भ ग्रंथसूची

क्रमपुस्तक कानामलेखक का नामपृष्ठ संख्या

१) वयुपुत्रों की सपथ : अमीश त्रिपाठी, ३
२) वयुपुत्रों की सपथ : अमीश त्रिपाठी, १०३
३) वयुपुत्रों की सपथ : अमीश त्रिपाठी, १०३
४) मेलुहा : अमीश त्रिपाठी, १०
५) वयुपुत्रों की सपथ : अमीश त्रिपाठी, ३
६) नागाओं का रहस्यअमीश त्रिपाठी, १०
७) नागाओं का रहस्यअमीश त्रिपाठी, २१२
८) मेलुहा : अमीश त्रिपाठी, ४०८
९) मेलुहा : अमीश त्रिपाठी, ४०२
१०) मेलुहा : अमीश त्रिपाठी, ३५६
११) मेलुहा : अमीश त्रिपाठी, ४०२
१२) वयुपुत्रों की सपथ : अमीश त्रिपाठी, ५०७
१३) वयुपुत्रों की सपथ : अमीश त्रिपाठी, १४४
१४) वयुपुत्रों की सपथ : अमीश त्रिपाठी, ५०६

भारत में शिक्षक शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य

कमल चन्द्र गहतोड़ी

शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ० कल्पना पाटनी लखेड़ा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

सार:

यह लेख शिक्षक शिक्षा और शिक्षकों की गुणवत्ता के वर्तमान परिदृश्य की जांच करने का प्रयास करता है। भारत दुनिया में शिक्षक शिक्षा की सबसे बड़ी प्रणालियों में से एक है। शिक्षा के विश्वविद्यालय विभागों और उनके संबद्ध कॉलेजों और सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों के अलावा; निजी और स्व-वित्तपोषित कॉलेज और मुक्त विश्वविद्यालय भी शिक्षक शिक्षा में लगे हुए हैं। यद्यपि अधिकांश शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम लगभग समान हैं, फिर भी उनके मानक संस्थानों और विश्वविद्यालयों में भिन्न होते हैं। शिक्षकों की शिक्षा न केवल सक्षम, प्रतिबद्ध और पेशेवर रूप से योग्य शिक्षकों को तैयार करके स्कूली शिक्षा में सुधार की सुविधा प्रदान करती है, जो सिस्टम की मांग को पूरा कर सकते हैं, बल्कि स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा के बीच एक सेतु के रूप में भी कार्य करते हैं। कुछ क्षेत्रों में, शिक्षकों की आपूर्ति मांग से कहीं अधिक है, जबकि अन्य में योग्य शिक्षकों के रूप में अत्यधिक कमी है, जिसके परिणामस्वरूप कम-योग्य और अयोग्य व्यक्तियों की नियुक्ति होती है। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के रूप में शिक्षक शिक्षा की भूमिका को सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त है। लेकिन भारत में शिक्षक शिक्षा, अपने इतिहास के कारण और इसके नियंत्रण से परे विभिन्न कारकों के कारण, कुल मिलाकर स्कूली शिक्षा तक ही सीमित है। स्पष्ट रूप से शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों और शिक्षक शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता का प्रत्यक्ष परिणाम है।

मुख्य-शब्द: शिक्षक शिक्षा, एनसीटीई, व्यावसायिक शिक्षा।

परिचय

भारत में शिक्षक शिक्षा नीति समय के साथ विकसित हुई है और शिक्षा पर समितियों/आयोगों की विभिन्न रिपोर्टों में निहित सिफारिशों पर आधारित है, जिनमें महत्वपूर्ण हैं कोठारी आयोग (1966), चट्टोपाध्याय समिति (1985), शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (एनपीई 1986/92), आचार्य राममूर्ति समिति (1990), यशपाल समिति (1993), और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ, 2005)। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009, जो 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ, देश में शिक्षक शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।[1]

कानूनी और संस्थागत ढांचा

देश के संघीय ढांचे के भीतर, जबकि केंद्र सरकार द्वारा शिक्षक शिक्षा पर व्यापक नीति और कानूनी ढांचा प्रदान किया जाता है, विभिन्न कार्यक्रमों और योजनाओं का कार्यान्वयन बड़े पैमाने पर राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। स्कूली बच्चों की सीखने

की उपलब्धियों में सुधार के व्यापक उद्देश्य के भीतर, दोहरी रणनीति है (ए) स्कूल प्रणाली (सेवा पूर्व प्रशिक्षण) के लिए शिक्षकों को तैयार करना; और (बी) मौजूदा स्कूल शिक्षकों (सेवाकालीन प्रशिक्षण) की क्षमता में सुधार।[2]

सेवा पूर्व प्रशिक्षण के लिए, राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई), केंद्र सरकार का एक सांविधिक निकाय, देश में शिक्षक शिक्षा के नियोजित और समन्वित विकास के लिए जिम्मेदार है। एनसीटीई विभिन्न शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रमों के लिए मानदंड और मानक, शिक्षक शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता, पाठ्यक्रम और सामग्री और अवधि और विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए छात्र-शिक्षकों के प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करता है। यह ऐसे पाठ्यक्रमों को शुरू करने में रुचि रखने वाले संस्थानों (सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त और स्व-वित्तपोषित) को भी मान्यता प्रदान करता है और उनके मानकों और गुणवत्ता को विनियमित करने और निगरानी करने के लिए अंतर्निहित तंत्र है।

सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए, देश में सरकारी स्वामित्व वाले शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों (टीटीआई) का एक बड़ा नेटवर्क है, जो स्कूल शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन टीटीआई का फैलाव लंबवत और क्षैतिज दोनों है। राष्ट्रीय स्तर पर, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी), अपने छह क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों (आरईआई) के साथ विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए कई मॉड्यूल तैयार करता है और शिक्षकों और शिक्षक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए विशिष्ट कार्यक्रम भी चलाता है। नेशनल यूनिवर्सिटी ऑन एजुकेशन अल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन (एनयूईपीए) द्वारा संस्थागत सहायता भी प्रदान की जाती है। NCERt एवं NUEp दोनों राष्ट्रीय स्तर के स्वायत्त निकाय हैं।[3] राज्य स्तर पर, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एससीईआरटी), शिक्षक प्रशिक्षण के लिए मॉड्यूल तैयार करती है और शिक्षक शिक्षकों और स्कूल शिक्षकों के लिए विशेष पाठ्यक्रम संचालित करती है। शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (सीटीई) और शिक्षा में उन्नत शिक्षा संस्थान (आईएएसई) माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों और शिक्षक शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। जिला स्तर पर, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (DIETs) द्वारा सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। ब्लॉक संसाधन केंद्र (बीआरसी) और क्लस्टर संसाधन केंद्र (सीआरसी) स्कूल शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए ऊर्ध्वाधर पदानुक्रम में संस्थानों के सबसे निचले पायदान पर हैं। इनके अलावा, सिविल सोसाइटी, गैर सहायता प्राप्त स्कूलों और अन्य प्रतिष्ठानों की सक्रिय भूमिका के साथ सेवाकालीन प्रशिक्षण भी दिया जाता है।[4]

शिक्षक शिक्षा इस सिद्धांत पर आधारित है कि "शिक्षक पैदा होते हैं, पैदा नहीं होते" इस धारणा के विपरीत, "शिक्षक पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते"। चूंकि शिक्षण को एक कला और विज्ञान माना जाता है, शिक्षक को न केवल ज्ञान प्राप्त करना होता है, बल्कि कौशल भी प्राप्त करना होता है जिसे "व्यापार की चाल" कहा जाता है। "इतिहास की शुरुआत से ही शिक्षा ने विकास, विविधता और विस्तार करना जारी रखा है। प्रत्येक देश अपनी अनूठी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को व्यक्त करने और बढ़ावा देने और समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी शिक्षा प्रणाली विकसित करता है।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) 1986 के ये शब्द बाद में 1992 में संशोधित किए गए, भारतीय शिक्षा को दिशा देते हैं। नीति आगे इस बात पर जोर देती है कि "भारत सरकार भी हर पांच साल में समीक्षा करेगी; की गई प्रगति और आगे के विकास के लिए दिशा-निर्देशों की सिफारिश करना"। पूर्वोक्त कथनों के आलोक में, राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई), एक सांविधिक निकाय, जिसे भारत सरकार द्वारा देश में शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार और मानकों के रखरखाव के लिए स्थापित किया गया है। इन वर्षों के दौरान, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों के साथ-साथ सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्यों में बड़े पैमाने पर और दूरगामी विकास के साथ-साथ परिवर्तन हुए हैं। इन घटनाओं ने शिक्षा को प्रभावित किया है, जिसमें भारतीय शिक्षक शिक्षा की समीक्षा और सुधार के लिए शिक्षक शिक्षा का आह्वान भी शामिल है।[5] राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद को इस तरह के विकास के साथ-साथ भविष्य में गुणवत्ता संबंधी चिंताओं के लिए विभिन्न स्तरों पर शिक्षक शिक्षा को उत्तरदायी बनाने के लिए उपयुक्त उपाय शुरू करने होंगे। शिक्षक शिक्षा में जनशक्ति नियोजन व्यावहारिक रूप से अनुपस्थित है। शिक्षकों की शिक्षा न केवल सक्षम, प्रतिबद्ध और पेशेवर रूप से योग्य शिक्षकों को तैयार करके स्कूली शिक्षा में सुधार की सुविधा प्रदान करती है, जो सिस्टम की मांग को पूरा कर सकते हैं, बल्कि स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा के बीच एक सेतु के रूप में भी कार्य करते हैं। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के रूप में शिक्षक शिक्षा की भूमिका को सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त है। इसका उद्देश्य प्रबुद्ध नागरिकों का निर्माण और उत्पादन करना है। लेकिन भारत में शिक्षक शिक्षा, अपने इतिहास के कारण और इसके नियंत्रण से परे विभिन्न कारकों के कारण, कुल मिलाकर स्कूली शिक्षा तक ही सीमित है।

शिक्षक शिक्षा की सेवा करते हैं, जो मानव निर्माण का एक प्रभावी साधन है। शिक्षक इस कला को पूर्व-सेवा शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से सीखते हैं। शिक्षक शिक्षा का एक कमजोर कार्यक्रम इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। यह शिक्षकों की पेशेवर स्थिति को बढ़ाने, उनमें समाज, उनके छात्रों और उनके पेशे के प्रति अधिक प्रतिबद्धता विकसित करने, उनकी पेशेवर दक्षताओं और प्रदर्शन कौशल को बढ़ाने और उन्हें नई चुनौतियों का सामना करने के लिए सशक्त बनाने के उद्देश्यों के साथ है जो राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद ने लाई है।

भारत में शिक्षक शिक्षा का एक लंबा अतीत है लेकिन एक छोटा इतिहास है। वैदिक काल की गुरुकुल-केंद्रित परंपरा बौद्ध विहार-आधारित प्रणाली के प्रभाव में कुछ हद तक संशोधित और समृद्ध हुई थी। यह 11 वीं शताब्दी ईस्वी तक जारी रहा। मुसलमानों के आगमन ने एक समानांतर मकतब-आधारित परंपरा का उदय देखा और दोनों परंपराएं अंग्रेजों के आने तक साथ-साथ फलती-फूलती रहीं। इस अवधि के दौरान दोनों परंपराओं में कुछ संशोधन हुए। लिए गए निर्णयों के ऐतिहासिक अभिलेख, उपलब्ध कराए गए वित्त और उनके कार्यान्वयन और बाद में मूल्यांकन अंग्रेजों द्वारा प्रलेखन के कारण अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित रूप से व्यवस्थित हो गए।[6]

15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता हमारे राष्ट्र के इतिहास में एक निर्णायक क्षण है। इस दिशा में पहला कदम विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) की स्थापना थी, जिसने शिक्षकों की सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षा और शिक्षक तैयारी के कार्यक्रम को विश्वविद्यालय प्रणाली से जोड़ने के संबंध में बहुमूल्य सुझाव दिए। इसके बाद स्कूली शिक्षा की स्थिति की जांच के लिए नियुक्त माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) ने शिक्षकों की तैयारी के बारे में विशेष सुझाव दिए। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उच्च शिक्षा समिति, (1954) और महिला शिक्षा (1959) पर भी अपने-अपने क्षेत्रों में शिक्षक शिक्षा के लिए बहुमूल्य सुझाव दिए, लेकिन उनके सीमित दायरे के कारण उन्होंने राष्ट्रीय ध्यान आकर्षित नहीं किया।[7]

शिक्षा पर समीक्षा समिति (1960) ने शिक्षा और अनुसंधान में स्नातकोत्तर अध्ययन, प्रशासकों की शिक्षा और शिक्षक शिक्षकों की योग्यता के बारे में प्रमुख सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों में से अधिकांश को स्वीकार कर लिया गया और लागू कर दिया गया। केंद्र, राज्य, विश्वविद्यालय और सार्वजनिक और निजी उद्यम शिक्षक शिक्षा की देखभाल करते थे। इसके अलावा, इसकी समस्याओं की समग्रता में जांच नहीं की गई थी। शिक्षक शिक्षा के लिए संसाधनों की उपलब्धता भी एक समस्या थी। इसके अलावा, शिक्षा के एजेंडे में शिक्षक शिक्षा को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया था।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने एक व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसने शिक्षा के सभी चरणों और पहलुओं को शामिल करते हुए शिक्षा की एक समान राष्ट्रीय संरचना की स्थापना के आधार के रूप में कार्य किया। इसने शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों की व्यावसायिक तैयारी की आवश्यकता पर बल दिया। इसने सिफारिश की कि इसके अलगाव को हटा दिया जाए और अभ्यास शिक्षण और सेवाकालीन शिक्षा के महत्व पर जोर दिया जाए। इसने शिक्षकों और उनके शिक्षकों को पेशे की ओर आकर्षित करने के लिए शिक्षकों की तैयारी, बेहतर वेतन और बेहतर सेवा शर्तों के लिए अधिक धन आवंटित करने की सिफारिश की। आयोग की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) तैयार की गई। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) के कामकाज की भी समीक्षा की गई। एनसीईआरटी और उसके क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों से शिक्षकों की शिक्षा में बड़ी भूमिका निभाने की अपेक्षा की गई थी।[8]

गैर-सांविधिक राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) की स्थापना 1974 में भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा की गई थी और यह एनसीईआरटी में स्थित था। इसके परिणामस्वरूप, कई विश्वविद्यालयों और राज्य सरकारों ने शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को संशोधित किया। इस अवधि के दौरान, राष्ट्रीय शिक्षक आयोग (1983) ने शिक्षक शिक्षा की समस्याओं और समाज में शिक्षकों की स्थिति का गहराई से अध्ययन किया। एनपीई (1986) के बाद एक कार्य योजना (1986) आई, जिसमें नीति को कार्रवाई में आवश्यक परिवर्तन के बारे में विवरण प्रदान किया गया। इसका जोर सेवाकालीन और सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों, कंप्यूटर शिक्षा और शिक्षक तैयारी के नए और वैकल्पिक मॉडल दोनों के संवर्धन पर था। यह जानकर खुशी होती है कि एनपीई (1986) में दिए गए निर्देशों और कार्य योजना की सिफारिशों को बड़े पैमाने पर उत्साहजनक परिणामों के साथ लागू किया गया था। दूरगामी शैक्षिक और सांस्कृतिक परिणामों के साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी में नए विकास, उत्तर आधुनिकता की चुनौतियाँ, प्रति-संस्कृति, मूल्य संकट और उत्तर-औद्योगिक समाज स्पष्ट हो गए।

पिछले दो दशकों के दौरान शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम की कड़ी आलोचना हुई है और उनकी कमजोरियों को अच्छी तरह से उजागर किया गया है। इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों की अवधि बढ़ाए बिना इन लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अकादमिक और व्यावसायिक कौशल एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं। पुराने शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम के कारण प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित शिक्षकों के प्रदर्शन में शायद ही कोई अंतर है। शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम को चिकित्सा विज्ञान के पाठ्यक्रम की तरह समग्र रूप से एकीकृत और मिश्रित करना होगा। इस प्रकार, शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम का पुनर्निर्माण समय की एक प्रमुख आवश्यकता बन गया है। इसे सूचना आधारित से अनुभव आधारित में बदलना होगा।[9]

पिछली आधी सदी में और विशेष रूप से, हाल के दशकों में, शिक्षण अधिगम में भारी बदलाव आया है। एक निरंकुश गुरु के बजाय सीखने के सूत्रधार के रूप में शिक्षक की भूमिका के साथ छात्र केंद्रित कक्षाओं की ओर एक बदलाव आया है। अतीत के विपरीत जब शिक्षक को पाठ्यचर्या की सामग्री को छात्रों के एक निष्क्रिय श्रोताओं को स्थानांतरित करने के लिए सौंपा गया था, आज कक्षा में नए प्रयोग किए जा रहे हैं जिनमें परियोजना आधारित शिक्षा, सोच कौशल का विकास और खोज सीखने के दृष्टिकोण शामिल हैं। कई शिक्षक नए पाठ्यक्रम के पीछे की अवधारणाओं को लागू करने के लिए ठीक से प्रशिक्षित नहीं हैं और कई पाठ्यक्रम को ठीक से लागू करने के लिए सुसज्जित नहीं हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षक शिक्षा केंद्रों और शिक्षक शिक्षा में अपनाए जाने वाले पाठ्यक्रम में शिक्षा के नए रुझानों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

जब तक राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) ने इन संस्थानों के लिए अनिवार्य मानदंडों और मानकों पर जोर नहीं दिया, तब तक शिक्षक शिक्षा संस्थान पूरे राज्य में लाभकारी उद्देश्यों के साथ फल-फूल रहे हैं। उनके हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप, कई संस्थानों ने कक्षाओं के साथ भवनों का निर्माण किया है और उनके मानकों को पूरा करने के लिए बुनियादी ढांचे की खरीद की है। इन संस्थानों को सरकारी वेतनमान में शिक्षक-शिक्षकों के वेतन को मूल राशि तक बढ़ाने के लिए भी मजबूर किया गया था। लेकिन बाद में, एनसीटीई के हस्तक्षेप की प्रभावशीलता कम हो गई और निजी शिक्षण संस्थानों की शक्तिशाली लॉबी ने अपनी शिक्षक शिक्षा की दुकानें चलाने का अपना रास्ता बना लिया।

यहां तक कि जब समय-समय पर वेतन संशोधन से स्थायी कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि होती है, तो उनके समकक्ष बी.एड. केंद्र केवल मामूली वृद्धि का सपना देख सकते हैं। कहा जाता है कि निजी संस्थानों की शक्तिशाली लॉबी भी शिक्षकों को उचित व्यवहार प्रदान करने में विश्वविद्यालयों की अनिच्छा को प्रभावित करती है। एनसीटीई, अतीत के विपरीत, खामोश और अलग-थलग प्रतीत होता है और ऐसा ही माननीय करता है। शिक्षा मंत्री। कोई भी निजी शिक्षा संस्थान के आकाओं को परेशान नहीं करना चाहता। यह स्वयं शिक्षक शिक्षा समुदायों को अलग-थलग करने के लिए लाभ उन्मुख प्रबंधन के लिए पर्याप्त गुंजाइश प्रदान करता है। शिक्षक शिक्षण संस्थानों में शिक्षक प्रशिक्षुओं का मूल्यांकन एक और बड़ा मजाक है। उच्च उपलब्धि प्राप्त करने वालों और कम उपलब्धि प्राप्त करने वालों के बीच अंकों का अंतर न्यूनतम है और संकाय सदस्यों को या तो प्रशिक्षुओं को उच्च स्कोर करने के लिए प्रोत्साहित करने या आलसी को कम अंकों के साथ दंडित करने में कम से कम परेशान किया जाता है। इस प्रकार, इन संस्थानों में प्रवेश करने वाले अधिकांश प्रशिक्षु उड़ते हुए रंग के साथ सामने आते हैं।[10]

समग्र प्रगति के लिए शैक्षिक भागीदारी के स्तर में सुधार की आवश्यकता सर्वविदित है। इसे साकार करने में शैक्षणिक संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षा की प्रकृति और कार्य को बदलने के लिए की गई विभिन्न पहलों में परिलक्षित होती है - औपचारिक और अनौपचारिक दोनों। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की सार्वभौमिक पहुंच विकास के लिए आवश्यक मानी जाती है। इसके लिए शिक्षक शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है ताकि गुणवत्तापूर्ण शिक्षक तैयार किए जा सकें। हाल के दशकों में केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त विभिन्न आयोगों और समितियों ने शिक्षा प्रणाली की जरूरतों के अनुकूल गुणवत्तापूर्ण शिक्षक शिक्षा की आवश्यकता पर हमेशा जोर दिया है। पिछले वर्षों के दौरान, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में तेजी से बदलाव के कारण नए जोर दिए गए हैं। यह प्रणाली अभी भी ऐसे शिक्षकों को तैयार करती है जो जरूरी नहीं कि पेशेवर रूप से सक्षम हों और प्रारंभिक शिक्षक तैयारी कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध हों। बड़ी संख्या में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान जो उपदेश देते हैं उसका अभ्यास नहीं करते हैं। अधिग्रहीत कौशल और सीखी गई पद्धतियों में से कई का वास्तविक स्कूल प्रणाली में शायद ही कभी अभ्यास किया जाता है। यह पाठ्यक्रम में यथार्थवाद और गतिशीलता लाने की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

निष्कर्ष

सिद्धांत और व्यवहार दोनों में अध्ययन के पाठ्यक्रमों को पुनर्गठित किया जाना चाहिए। एक शिक्षक शिक्षा विभाग इसलिए चाहिए; विशेष नवोन्मेषी कार्यक्रम आयोजित करना अर्थात संगोष्ठी, संगोष्ठी का संयोजन, व्याख्यान के साथ चर्चा, टीम शिक्षण और पैनल चर्चा। बीएड की प्रवेश प्रक्रिया पूरी तरह से व्यवस्थित किया जाना चाहिए। प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग में एक नियोजन इकाई होनी चाहिए। इस इकाई का कार्य स्कूलों के विभिन्न स्तरों पर शिक्षकों की मांग और आपूर्ति को विनियमित करना होना चाहिए। अभ्यास करने वाले स्कूलों को विश्वास में लेना होगा। इसके लिए शिक्षक महाविद्यालयों के स्टाफ के सदस्यों को स्कूलों के साथ निकटता से जोड़ा जाना चाहिए। शिक्षक शिक्षा में पत्राचार पाठ्यक्रम, प्रवेश के लिए एक सख्त और उच्च स्क्रीन और मूल्यांकन के सटीक तरीके के साथ प्रदान किए जाने चाहिए।

संदर्भ

1. शुक्ला, रमा शंकर, (1989) 'शिक्षक शिक्षा' - दशा और दिशा, राज प्रकाशन, जयपुर, पृ. 73
2. सुखिया एस.पी. (1997) - 'स्कूल प्रशासन', आगरा प्रकाशन, आगरा, पृ. 49
3. वही, पृ. 51
4. 'संशिक्षा', वार्षिक पत्रिका (2001) - शिक्षा संकाय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ. 36
5. शिक्षक शिक्षा - प्रशिक्षित और सामरिक, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 54
6. वही, पृ. 57
7. वही, पृ. 59
8. जोशी और मेहता (1995) - 'प्रिंसिपल्स एंड प्रॉब्लम्स ऑफ टीचर ट्रेनिंग', राज हिंदी अकादमी, जयपुर, पृ. 91
9. वही, पृ. 92
10. कौर एस, (2013), भारत में शिक्षक शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस एंड रिसर्च, 2 (12) पृ. 262-264

हिन्दी भाषा वर्ण-विचार, वर्तनी और शुद्धिकरण

डॉ० अर्जुन के० तडवी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री ओर श्रीमती पी. के. कोटावाला, आर्ट्स कोलेज, पाटन

वर्तनी का सामान्य अर्थ होता है हिज्जे के दोष जिसे अंग्रेजी में स्पेलिंग (Spelling) कहते हैं। अंग्रेजी में आज भी शब्दों की यही स्पेलिंग याद करनी पडती है। कम्प्युटर में स्पैल चौक लगा है तो सही वर्तनी बताता है। हिन्दी में प्राय: यह कहा जाता है जो हम बोलते हैं वही लिखते हैं किन्तु पिछले पचहत्तर वर्षो के अनुभवने हमें सिखा दिया है कि हिन्दी में भी उतनी व्यवस्था पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है। यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि क्षेत्रीय और आंचलिक उच्चारण के प्रभाव, भ्रम और आलस्य आदि के कारण हिन्दी में वर्तनी की भूलें होती चली आ रही है। वर्तनी के बारे में निम्नांकित बिंदु विचारणीय हैं।

१. शब्द में प्रयुक्त वर्णो की क्रमिकता को वर्तनी कहते है।

२. वर्तनी भाषा का वर्तमान है।

३. वर्तनी भाषा का अनुशासित आवर्तन है।

४. वर्तनी शब्दों का संस्कारित पद विन्यास है।

हिन्दी वर्तनी की एकरुपता लाने के लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने एक विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों को स्वीकृत किया और १९६९ में केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय ने हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण शीर्षक से एक पुस्तिका प्रस्थापित की। इसीको आधार मानकर यहाँ वर्तनी संबंधी नियमों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्ण स्तर पर वर्तनी - व्यवस्था :

वर्तनी में वर्ण स्तर पर स्वर-व्यंजन, मात्राओं और संयुक्त व्यंजन की चर्चा की जा चुकी है।

हिन्दी वर्णमाला

- स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ
- व्यंजन - क ख ग घ ङ
  च छ ज झ त्र
  ट ठ ड ढ़ ण
  त थ द ध न
  प फ ब भ म
  य र ल व
  श ष स ह (स्पर्श व्यंजन)

अमानक वर्ण वे हैं पहले लिखे जाते थे, उनका स्मरण करना भी अब आवश्यक नहीं। प्रत्येक भाषा की लिपि पुरानी है पर उच्चारण बदलता रहता है इसलिए वर्तनी की समस्या सदैव रहेगी। अत: हमें निम्नांकित बातों का ध्यान रखना होगा ख्र

(१) खड़ीपाई वाले व्यंजन :

जिनके अंत में खड़ीपाई होती है वे निम्नप्रकार हैं - ख, ग, घ, च, ज, झ, ण, त, थ, ध, न, प, व, म, भ, य, ल, व, श, ष, स। इन वर्णो में या व्यंजनों में मात्रा का संयोजन के साथ ही होगा जैसे गेंद तू।

जब खड़ीपाई वाले व्यंजन को किसी अन्य व्यंजन से संयोजित करके मिलाते हैं तो खड़ीपाई को हटा दिया जाता है, जैसे - ख्याति, लग्न, कुत्ता, ध्वनि, श्लोक, न्यास, प्यास, शय्या।

(२) मध्य में खड़ीपाई वाले वर्ण :

कुछ वर्णो की खड़ीपाई बहुत छोटी होती है और इसके नीचे वर्ण का रुप कुछ गोल होता हैं। जैसे - छ, ट, ठ, ड, ढ, द, ह ऐसे व्यंजनों के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए, जाएँ, जैसे - लटटू, बुडढा, विद्या।

(३) मध्य में खड़ीपाई वाले वर्ण :

वे वर्ण जिसके मध्य में खड़ीपाई होती है। जैसे- क, फ, फ इनके संयुक्ताक्षर बनाते समय पर घ्यान रखा जाता है कि बीच की मात्रा पर खड़ीपाई लगाई जाती है। जैसे पक्का, दफतर।

(४) विशिष्ट वर्ण - र :

संयुक्त 'र' के तीनों रूप मान्य है और चले रहेंगे, जैसे- राष्ट्र, धर्म और प्रकार।

'र' की स्थिति मात्रा संयोजन और संयुक्ताक्षर बनाने में महत्वपूर्ण होती है। 'र' में उ और ऊ की मात्रा वर्ण के बीच में लगती है जैसे - र् + उ = रू, र् + ऊ = रू। 'र' के साथ व्यंजन संयोजन की दो निम्नलिखित स्थितियाँ हो सकती है -

(१) स्वर रहित ‍+ व्यंजन

(२) स्व रहित + व्यंजन

स्वर रहित ‍के साथ जब किसी व्यंजन का संयोजन किया जाता है तो र परवर्ती व्यंजन के उपर लिखा जाता है, जैसे - ध + र् + म = धर्म, अ + ‍= अर्थ।

स्वर रहित व्यंजन + स्वर सहित र - जब कोई स्वर रहित व्यंजन 'र' वर्ण के साथ जुड़ता है तो स्वर रहित व्यंजन का रूप नहीं बदलता और 'र' अपना रूप बदलकर पूर्ववर्ती व्यंजन की खड़ीपाई के नीचे जुड़ जाता है, जैसे- क् + र + म = क्रम, श्र + र + म = श्रम, त् + र + स्त = त्रस्त।

हिन्दी वर्तनी और मानकीकरण

किसी भी भाषा के सीखने-सीखने में सहायक बनने वाले दो प्रमुख तत्व हैं -

(१) व्याकरण

(२) लिपि

लिपि का एक पक्ष है - सामान्य और विशिष्ट स्वनों के अलग प्रतीक वर्णो की समृध्धि, उनका परस्पर आकार-भेद, लिखावट में सरलता तथा स्थान-लाघव एवं प्रयत्न लाघव।

लिपि का दूसरा पक्ष है वर्तनी। एक ही स्वन को प्रकट करने के लिए विविध रूपी वर्णो का प्रयोग वर्तनी को जटिल बना देता है और यह लिपि का एक सामान्य दोष माना जाता है। यद्यपि देवनागरी लिपि में यह दोष न्यूनतम है, फिर भी उसकी कुछ अपनी विशिष्ट कठिनाईयाँ भी हैं।

इन सभी कठिनाईयाँ को दूर कर हिन्दी वर्तनी में एकरुपता लाने के लिए भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय ने सन १९६१ में एक विशेषज्ञ समिति नियुकत की थी। समिति ने अप्रैल, १९६२ में अपनी अंतिम सिफारिसें प्रस्तुत की, जिन्हें सरकारने स्वीकृत किया है। १९६७ में 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' शीर्षक पुस्तिका में व्याख्या तथा उदाहरण सहित प्रकाशित किया गया था। स्कूलों

की पाठय पुस्तकों में, विशेष रुप से 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंघान और प्रशिक्षण परिषद' दवारा प्रकाशित हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों में वर्तनी के इसी मानक स्वरुप का प्रयोग किया जा रहा है। अन्य पुस्तक, बोर्डी, हिन्दी के प्रकाशनों तथा पत्रकारिता क्षेत्र की निजी संस्थाओं से संगह है कि हिन्दी के सावेदेशिक हिन्दी को ध्यान में रखते हुए इस मानकीकृत हिन्दी वर्तनी वाले रुप का ही प्रयोग करें।

१. कारक चिह्न या परसर्ग

हिन्दी के कारक चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रातिपदिक से पृथक लिखे जाए। जैसे - राम ने राम को, स्त्री का, स्त्री से, आदि। सर्वनाम शब्दों में चिह्न प्रातिपदिक के साथ मिलाकर लिखें जाएँ। जैसे-तूने, आपने, तुमसे, उसने, उसको, उससे, उसपर, मुझको, मुझसे आदि (मेरे को, मेरे से आदि रुप व्याकरण सम्मत नहीं हैं।)

सर्वनामों के साथ यदि दो कारक चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक लिखा जाए। जैसे - उसके लिए, इसमें से।

सर्वनाम और कारक चिह्न के बीच 'ही' श्तुकश आदि निपात हो तो कारक चिह्न को पृथक लिखा जाए। जैसे - आप ही के लिए, मुझतक को।

२. संयुक्त क्रिया पद

संयुक्त किया पदों में सभी अंगीभूत क्रियाएँ पृथक-पृथक लिखी जाएँ। जैसे- पढा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, किया करता था, पदा करता था, खोया करेगा, घूमता रहेगा, बढते चले जा रहे हैं आदि।

३. योजक चिह्न (हाइफन)

योजक चिह्न (हाइफन) विधान स्पष्टता में लिए किया गया है।

(१) द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाता है। जैसे- राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती, पढ़ना-लिखना आदि।

(२) सा, से, सी आदि से पूर्व हाइफन रखा जाता है जैसे- तुम-सा, चाक-से तीखे।

(३) ये सभी युग्म वर्तनी और अर्ध दोनों से दृष्टियों से भिन्न-भिन्न शब्द है।

(४) अव्यय

(१) 'तक', 'साथ' आदि अव्यय पृथक लिखे जाएँ। जैसे - यहाँ तक, आपके साथ।

(२) ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, जब, तब, यहाँ, वहाँ, कहाँ, सदा, क्यों, श्री, जी, तक, यभर, मात्र, साथ, कि, किंतु, मगर, लेकिन, चाहे, या तथा यथा और आदि। जैसे- आप ही ले लिए, मुझ तक कों, आपके साथ, देश भर, दिन भर वह इतना, मुझे जाने तो दो, पचास रुपए मात्र, सम्मानार्थक, श्श्रीश और श्जी अव्यय भी पृथक लिखें जाएँ जैसे - श्री राम, कन्हैयालाल जी, महात्माजी आदि।

५. अनुस्वार / शिरोबिंदु / बिंदी

अनुस्वार व्यंजन है और अनुनासिक स्वर का नासिस्य विकार। हिन्दी में ये दोनों अर्थभेद भी हैं। अत: हिन्दी में अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता चिह्न (ँ) दोनों ही प्रचलित रहेंगे।

(१) संस्कृत शब्दों में अनुस्वार का प्रयोग अन्यवर्गीय वर्णो (य से ह तक) से पहले यथावत रहेगा। जैसे - संयोग, संरक्षण, संलग्न, संवाद, अंश, कंस, सिंह आदि।

(२) संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म का सूचक है। जैसे - अहं (अहम्), एवं (एवं), शिवं (शिवम्)

(३) पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रुप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे वाऽमय, अन्य, चिन्मय, उन्मुख आदि।

(४) पंचम वर्ण यदि द्रित्व रुप में (साथ-साथ) आए तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा जैसे - अन्न, सम्मेलन सम्मति आदि। (अंन, संमेलन, संमति रुप ग्राह्य नहीं होंगे)

६. *अनुनासिक चिह्न (चंद्रबिंदु (ँ)*

हिन्दी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।

अनुनासिक चिह्न व्यंजन ही है। स्वरों का ध्वनिगुण है। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में मुँह और नाक से हवा निकलती है। जैसे - आँ, ऊँ, एँ, माँ, हूँ, आएँ।

७. *विसर्ग (:)*

(१) संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे शब्द यदि तत्सम रूप में प्रयोग हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए। जैसे - 'दु:खानुभूति में यदि उस शब्द के तदभत रुप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रुप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे 'दुख-सुख के साथी'।

(२) तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। जैसे - अत:, पुन:, स्वत:, मूलत:, अंतत:, वस्तुत: अदि।

(३) 'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है अत: उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी हालत में न किया जाए (अत:, पुन: आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा।

(४) दु:साहस/दुस्साहस, नि:शब्द/ निरशब्द के उभय रुप मान्य होंगे। इनमें द्रवित्व वाले रुप को प्राथमिकता दी जाए।

(५) तदभव / देशी शब्दों के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम:) शब्द से कुछ दूरी पर हो जैसे :- अत:, यों है :-

हल् चिह्न (्)

(्) को हल् चिह्न कहा जाए न कि हलंत व्यंजन के नीचे लगा हल् चिह्न उस व्यंजन के स्वर रहित होने की सूचना देते हैं, यानी वह व्यंजन विशुद्ध रुप से व्यंजन है। इस तरह से श्जगतश, हलंत शब्द कहा जाएगा क्योंकि यह शब्द व्यंजनांत है, स्वगत नहीं।

संयुक्ताक्षर बनाने के नियम ३ १ २ २ के अनुसार ड, छ, ट्, ठ्, ड, द्व, द्र, ह् में हल् चिह्न का ही प्रयोग होगा। जैसे- चिह्न, बुड्ढा, विद्वान आदि में

संदर्भ - संकेत

(१) हिन्दी भाषा और लिपि - डॉ. अनार गोपलाणी

(२) हिन्दी भाषा और सरल व्याकरण - डॉ. अर्जुन के. तडवी

(३) हिन्दी व्याकरण - डॉ. रामशरण वर्मा हिन्दी उच्चारण और वर्तनी - डॉ इन्दुबाला तिवारी

(४) हिन्दी भाषा विज्ञान - डॉ. रामचरण शर्मा

मनरेगा: रोजगार के अवसर पैदा करने का सशक्त माध्यम

सुनीता कुमारी

शोध छात्रा, अर्थशास्त्र, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ० अशोक कुमार मिश्रा

सह. आचार्य, स्नातकोत्तर विभाग, अर्थशास्त्र, जेड० ए० आई० पी०जी० कॉलेज, सीवान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सार

भारत की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ग्रामीण लोगों के लिए रोजगार एक ऐसा विषय है जिस पर विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली कार्रवाइयों और पहलों के एक प्रमुख घटक के रूप में केंद्र और राज्य सरकारों और नागरिक समाज से गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। शिक्षा और रोजगार दो सबसे शक्तिशाली हथियार हैं। ग्रामीण गरीबी के खिलाफ लड़ने और सतत् विकास हासिल करना आवश्यक है। इस दिशा में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) एक बड़ा क्रांतिकारी कदम है। इसलिए, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आजीविका सुरक्षा को उस क्षेत्र के बुनियादी ढांचे के आधार को विकसित करने वाले कार्यों के माध्यम से मजदूरी रोजगार पैदा करना है।

मुख्य-शब्द: रोजगार; उद्देश्य; आर्थिक उन्नति; ग्रामीण विकास।

परिचय

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगारी गारंटी अधिनियम का उद्देश्य एक वित्तीय वर्ष में सौ दिन के वेतन सहित रोजगार गारंटी के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाना है। इस अधिनियम के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में घर के वयस्क सदस्य को स्वयं सेवक के तौर पर अकुशल कार्यों में लगाया जाता है। ग्रामीण परिवारों के वयस्क सदस्य, ग्राम पंचायत के पास एक तस्वीर के साथ अपना नाम, उम्र और पता जमा करते हैं। जांच के बाद पंचायत, घरों को पंजीकृत करता है और एक जॉब कार्ड प्रदान करता है। जॉब कार्ड में, पंजीकृत वयस्क सदस्य का ब्यौरा और उसकी फोटो शामिल होती है। एक पंजीकृत व्यक्ति या तो पंचायत या कार्यक्रम अधिकारी को लिखित रूप से (निरंतर काम के कम से कम चौदह दिनों के लिए) काम करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। काम न मिलने पर दैनिक बेरोजगारी भत्ता आवेदक को भुगतान किया जाएगा। इस अधिनियम के तहत पुरूषों और महिलाओं के बीच किसी भी भेदभाव की अनुमति नहीं है। इसलिए, पुरूषों और महिलाओं को समान वेतन भुगतान किया जाना चाहिए। सभी वयस्क रोजगार के लिए आवेदन कर सकते हैं। मनरेगा ग्रामीण विकास और रोजगार के दोहरे लक्ष्य को प्राप्त करता

है।[1] मनरेगा यह उल्लेख करता है कि कार्य को ग्रामीण विकास गतिविधियों के एक विशिष्ट सेट की ओर उन्मुख होना चाहिए जैसे, जल संरक्षण और संचयन, वनीकरण, ग्रामीण संपर्क तंत्र, बाढ़ नियंत्रण और सुरक्षा जिसमें शामिल है तटबंधों का निर्माण और मरम्मत आदि। नए तालाबों की खुदाई, रिसाव टैंक और छोटे बांधों के निर्माण को भी महत्व दिया जाता है। कार्यरत लोगों को भूमि समतल, वृक्षारोपण जैसे कार्य प्रदान किये जाते हैं। आवेदनों का सत्यापन ग्राम पंचायतों के संबंध में स्थानीय निवास के बारे में होता है और घर को एक इकाई के रूप में माना जाता है। सत्यापन के तहत यह तथ्य पता लगाया जाता है कि आवेदक घर का वयस्क सदस्य है या नहीं। सत्यापन के बाद, ग्राम पंचायत पंजीकरण रजिस्टर में सभी विवरण दर्ज करती है। प्रत्येक पंजीकृत घर को एक पंजीकरण संख्या प्रदान की जाती है।[2]

मनरेगा के तहत केन्द्र सरकार मजदूरी की लागत, माल की लागत का तीन चौथाई और प्रशासनिक लागत का कुछ प्रतिशत वहन करती है। राज्य सरकारें बेरोजगारी भत्ता, माल की लागत का एक चौथाई और राज्य परिषद् की प्रशासनिक लागत को वहन करती है। चूंकि राज्य सरकारें बेरोजगारी भत्ता देती हैं, उन्हें श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने के लिए भारती प्रोत्साहन दिया जाता है। हालांकि, बेरोजगारी भत्ते की राशि को निश्चित करना राज्य सरकार पर निर्भर है, जो इस शर्त के अधीन है कि यह पहले 30 दिनों के लिए न्यूनतम मजदूरी के एक चौथाई भाग से कम ना हो और उसके बाद न्यूनतम मजदूरी का आधा से कम न हो। प्रति परिवार 100 दिनों का रोजगार (या बेरोजगारी भत्ता) सक्षम और इच्छुक श्रमिकों को हर वित्तीय वर्ष में प्रदान किया जाना चाहिए।[3]

मनरेगा, दुनिया में अपनी तरह की सबसे बड़ी पहलों में से एक है। वित्तीय वर्ष 2006-2007 के लिए राष्ट्रीय बजट 113 बीलियन रूपए था और अब पूरी तरह चालू होकर इसलिए लागत 2009-1010 वित्तीय वर्ष में 391 बीलियन रूपये हो गई। कुछ लोगों का सुझाव था कि इसका वित्त पोषण उन्नत कर प्रशासन और सुधारों के माध्यम से किया जा सकता है, जबकि अभी तक कर-जीडीपी अनुपात वास्तव में गिरता जा रहा है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण आलोचना यह है कि सार्वजनिक कार्य योजनाओं का अंतिम उत्वाद (जैसे जल संरक्षण, भूमि विकास, वनीकरण, सिंचाई प्रणाली का प्रावधान, सड़क निर्माण या बाढ़ नियंत्रण) असुरक्षित हैं जिन पर समाज के अमीर वर्ग कब्जा कर सकते हैं।[4] मध्य प्रदेश में मनरेगा एक निगरीन अध्ययन में दिखााय गया कि इस योजना के तहत की जा रही गतिविधियां सभी गांवों में कमोबेश मानकीकृत हो गई थी, जिसमें स्थानीय परामर्श नही के बराबर था। आगे की चिंताओं में यह तथ्य शामिल है कि स्थानीय सरकार के भ्रष्टाचार के कारण समाज के कुछ खााास वर्गों को बाहर रखा जाता है। ऐसा भी पाया गया कि स्थानीय सरकारों ने काम में लगे व्यक्तियों की वास्तविक संख्या से अधिक नौकरी कार्डों का दावा किया ताकि आवश्यकता से अधिक फंड को हासिक किया जा सके, जिसे फिर स्थानीय अधिकारियों द्वारा गबन कर लिया जाता है। जॉब कार्ड प्राप्त करने के लिए 50 रूपए तक की रिश्वत दी जाती है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में हुई बढ़ोत्तरी को देखते हुए न्यूनतम मजदूरी बढ़ाकर एक सौ साठ रूपए करने के केन्द्र सरकार के फैसले को एक मानवीय कदम कहा जा सकता है। हालांकि महंगाई जिस अनुपात में बढ़ रही है, उसमें दैनिक तेईस रूपए की बढ़ोत्तरी पर्याप्त नहीं है। इससे औद्योगिक मजदूरों के हाथ में महीने में 4800 रूपए ही आएंगे।[5] कहां तो यह सरकार न्यूनतम मजदूरी बढ़ाकर पंद्रह हजार रूपए मासिक करने पर विचार कर रही थी, लेकिन हम पाते हैं कि उसने इस मामले में पुराने ढर्रे पर ही चलने का फैसला किया। तथ्य यह भी है कि न्यूनतम मजदूरी सभी राज्यों में एक समान नहीं है और यह मजदूरों की मांग और आपूर्त्ति पर भी कमोबेश निर्भर करती है। लेकिन इस बढ़ोत्तरी का लाभ यह होगा कि मनरेगा जैसी योजनाओं में, जिसे विश्व बैंक अब दुनिया का सबसे बड़ा सार्वजनिक रोजगार कार्यक्रम बता चुका है, देश के करीब 15 प्रतिशत लोगों को बढ़ी हुई मजदूरी मिलेगी। बेशक असंगठित क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी में बढ़ोत्तरी का हर जगह अनुपालन नहीं होता, लेकिन इससे यह नैतिक बाध्यता तो पैदा होती ही है कि इससे कम मजदूरी नहीं दी जा सकेगी। न्यूनतम मजदूरी में यह वृद्धि मध्य और उच्च मध्यवर्ग के वेतन में होने वाली वृद्धि की तुलना में बहुत कम है, पर जिस देश में गरीबों को बड़ी आबादी है और सामाजिक-आर्थिक जनगणना के सामने आए आंकड़े खासकर ग्रामीण भारत की जिस दयनीय स्थिति का खुलासा करते हैं, उसके परिप्रेक्ष्य में न्यूनतम मजदूरी में आनुपातिक रूप से कम ही सही, पर हो रही वृद्धि की बिल्कुल अनदेखी भी नहीं की जा सकेगी। इससे कम से कम यह भरोसा तो मिलता है कि आर्थिक उदारीकरण की तेज रफ्तार के बीच गरीबों की बेहतरी की चिंता है। चूंकि मनरेगा के रूप में दुनिया की सबसे बड़ी सामाजिक सुरक्षा योजना इस देश में चल रही है, ऐसे में सरकार को चाहिए कि वह इस योजना को न सिर्फ जारी रखे, बल्कि इसके जरिये ज्यादा से ज्यादा लोगों को आंशिक रोजगार के दायरे में लाए।

सरकार ने बजट में मनरेगा का आबंटन तो बढ़ाया, पर साल में निर्धारित कार्यदिवसों की संख्या घटी है, जो चिंतित करने वाली बात है। बेहतर हो कि न्यूनतम मजदूरी बढ़ाने के बाद अब मनरेगा में सालाना कार्यदिवस बढ़ाने की दिशा में भी कदम उठाया जाए, ताकि गरीबों को इसका फायदा मिले।[6]

रोजगार किसी भी देश और समाज के आर्थिक विकास की कुंजी है। जिस गति रोजगार पाने वालों की संख्या और उनकी आमदनी में बढ़ोत्तरी होती है उसी गति से देश विकास के पथ पर अग्रसर होता है। यह सच्चाई स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान ही गांधीजी ने पहचान ली थी और उन्होंने ग्रामीण स्वराज्य का नारा दिया था जिसमें गांव के प्रत्येक व्यक्ति के पास सार्थक काम और अपने आप में आत्मनिर्भर इकाई के रूप में गांव की कल्पना की थी। आजादी के बाद गांवों में विकास और वहां के लोगों के लिए कृषि के साथ-साथ रोजगार के दूसरे अवसर जुटाने के उद्देश्य से तरह - तरह की योजनाएं चलायी गयी। भारत में गांवों में रोजगार की व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे देश की लगभग दो तिहाई आबादी गुांवों में बसती है। हालांकि शहरीकरण के विस्तार के कारण ग्रामीण आबादी का अनुपात हाल के वर्षों में कुछ कम हुआ है किन्तु 2001 की जनगणना के आंकड़ों के मुताबिक 72.2 प्रतिशल लोग गांवों में तथा 27.8 प्रतिशत शहरों में बसे थे। जाहिर है कि गांवों में लोगों के लिए रोजगार जुटाए बिना भारत को विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा करने का सपना पूरा नहीं होगा।[7]

यह सच है कि 2005 में शुरू हुए मनरेगा की शुरूआत के बाद गांवों में रोजगार का स्वरूप बदला है और इसके अनेक सकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं किन्तु यह कार्यक्रम एक रोजगार गारंटी कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे के उन परिवारों के एक समर्थ व्यक्ति को न्यूनतम रोजगार उपलब्ध कराने का प्रावधान है जिनके पास रोजगार का कोई साधन नहीं है। इसलिए केवल इस कार्यक्रम के भरोसे ग्रामीण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस अनूठे कार्यक्रम से पहले भी समय-समय पर अनेक योजनाएं चलाई गई है जिनके माध्यम से लोगों को सीधे रोजगार देने के साथ-साथ उन्हें रोजगार प्राप्त करने और अपना काम - धंधा चलाने लायक कौशल व क्षमता प्राप्त करने में सहायता देने के प्रयास किए गए हैं। इन सभी योजनाओं के फलस्वरूप देश की बढ़ती आबादी के अनुरूप नौकरियों और व्यवसाय की व्यवस्था करने में मदद मिली है। साथ ही विभिन्न योजनाओं के तहत गांवों में बैंकों तथा अन्य वित्तीय मदद से अपनी क्षमता और हुनर के अनुरूप काम-धंधे चलाकर परिवार का भरण-पोषण कर सकें और गांवों के विकास में योगदान दे सकें। इस सिलसिले में 2004 में चलाई गई 'काम के बदले अनाज' योजना काफी कारगर सिद्ध हुई । इसके अंतर्गत गांवों में संपत्ति निर्माण के विविध कार्यक्रमों में काम करने वालों को वेतना के रूप में नकद रकम के साथ - साथ निश्चित मात्रा में अनाज दिया जाता था। असल में इस कार्यक्रम से ही मनरेगा की आधार भूमि तैयार हुई। इसमें पहली बार 100 दिन के रोजगार की गारंटी का प्रावधान किया गया । यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और भुखमरी कम करने में काफी मददगार साबित हुई। यह योजना मनरेगा में मिला दी गई है।[8]

रोजगार जुटाने की दिशा में एक और उल्लेखनीय कदम स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना के रूप में उठाया गया। 199 में प्रारंभ की गई इस योजना के अंतर्गत स्वयंसहायता समूहों को बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से आर्थिक मदद मिलती है। कुछ राज्यों में यह योजना बहुत बढ़िया चल रही है और इसतें स्वयंसेवी संगठन बढ़-चढ़ कर सहयोग दे रहे हैं। विकलांगों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के स्वयंसहायता समूहों को मिलने वाली राशि का 50 प्रतिशत हिस्सा ऋण तथा 50 प्रतिशत हिस्सा सब्सिडी के रूप में होता है। इस योजना की विशेषता यह है कि इसमें ज्यादा जोर ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गों यानी महिलाओं, विकलांगों तथा अनुसूचित जातियों/ जनजातियों के उत्थान पर दिया जाता है। 2009 तक लगभग 67 लाख स्वरोजगारियों के साढ़े 22 हजार स्वयंसहायता समूहों को सहायता दी गई। इनमें 45 प्रतिशत लोग अनुसूचित जातियों/ जनजातियों के थे।[9]

ग्रामीण रोजगार में गति लाने तथा गांवों में रह रहे लोगोां का जीवन-स्तर बेहतर बनाने के उद्देश्य से भारत निर्माण का बहुआयामी कार्यक्रम शुरू किया गया है जिसके अंतर्गत सड़कें, आवास तथा अन्य निर्माण कार्य हाथ में लिए जाते हैं जिनसे बुनियादी ढ़ांचा तो खड़ा होता ही है साथ में बड़ी संख्या में ग्रामीण लोगों को काम भी मिल जाता है। इस कार्यक्रम के 6 अंग हैं जिनमें प्रमुख हैं- प्रधानमंत्री सड़क योजना तथा इंदिरा आवास योजना। इंदिरा आवास योजना गांवों में बेघर लोगों को मकान उपलब्ध कराने तथा उनके निर्माण में बेरोजगारों को काम दिलाने के लिए 1985-86 में शुरू की गई थी। इसके अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को नया मकान बनाने या मौजूदा मकानों में सुधार/ मरम्मत करने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है। इसमें अनुसूचित जातियों/ जनजातियों के लोगों को रियासत दी जाती है। इस योजना का 75 प्रतिशत खर्च केन्द्र और 25 प्रतिशत राज्य सरकारें उठाती हैं।[10]

अध्ययन पद्धति

सामाजिक अनुसंधान की विशिष्ट प्रकृति, सीमित समय एवं वैयक्तिक प्रयास को दृष्टि में रखते हुए शोध के अन्तर्गत बिहार राज्य के गोपालगंज जिले से 300 उत्तरदात्रियों का चयन आनुपातिक स्तरित दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का समग्र मनरेगा में काम कर रही महिला मजदूर है। प्राथमिक स्रोत के आधार पर संग्रहीत तथ्यों का सारणीयन एवं विश्लेषण निम्न प्रकार किया गया है।

तालिका सं0 1: क्या मनरेगा के अन्तर्गत रोजगार सुनिश्चित होने से लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुई है?

क्र0 सं0	*मासिक आय*	*अभिमत*		*कुल(प्रतिशत)*
		हां(प्रतिशत)	*नही(प्रतिशत)*	
1	0–3000	90(30.00)	30(10.00)	120(40.00)
2	3001–6000	51(17.00)	21(07.00)	72(24.00)
3	6001–9000	39(13.00)	21(07.00)	60(20.00)
4	9001 एवंइससे अधिक	30(10.00)	18(06.00)	48(16.00)
5	कुल	210(70.00)	90(30.00)	300(100.00)

तालिका संख्या 1 मनरेगा के अन्तर्गत रोजगार सुनिश्चित होने से लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार के आधार पर तैयार किया गया है। तालिका से पता चलता है कि 300 में से 210(70.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने बताया है कि वास्तव में मनरेगा के अन्तर्गत रोजगार सुनिश्चित होने से लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुई है। सरकार द्वारा मनरेगा कार्यक्रम आने से लोगों की दयनीय स्थिति में काफी सुधार हुआ है। गांव के आसपास ही काम मिल जाता है। जिससे घर परिवार का भी देखभाल हो जाता है। साथ ही काम करने से पैसा मिलने से उनकी आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है। इसके विपरीत केवल 90(30.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने इस संबंध में नकारात्मक जवाब दिए हैं।

ग्राफ सं0 1

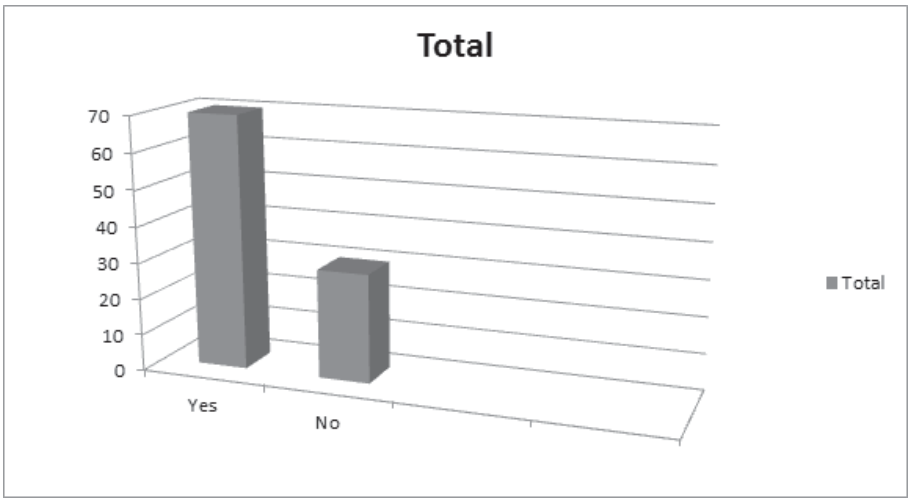

तालिका सं0 2: क्या मनरेगा में गरीब, वंचितों, विकलांगों और महिलाओं के लिए रोजगार के समान अवसर प्रदान करती है?

क्र0 सं0	*मासिक आय*	*अभिमत*		*कुल(प्रतिशत)*
		हां(प्रतिशत)	*नही(प्रतिशत)*	
1	0-3000	87(29.00)	33(11.00)	120(40.00)
2	3001-6000	45(15.00)	27(09.00)	72(24.00)
3	6001-9000	36(12.00)	24(08.00)	60(20.00)
4	9001 एवं इससे अधिक	39(13.00)	09(03.00)	48(16.00)
5	कुल	207(69.00)	93(31.00)	300(100.00)

उपर्युक्त तालिका संख्या 2 मनरेगा में गरीब, वंचितों, विकलांगों और महिलाओं के लिए रोजगार के समान अवसर प्रदान करने के आधार पर तैयार किया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि 300 में से 207(69.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने बताया है कि वास्तव में मनरेगा में गरीब, वंचितों, विकलांगों और महिलाओं के लिए रोजगार के समान अवसर प्रदान करती है। काम की मांग के आधार पर हर किसी को भी मनरेगा के अंतर्गत काम दिया जाता है, चाहे वह गरीब हो या वंचित हो या विकलांग हो या फिर महिला हो, सबों को रोजगार के समान अवसर उपलब्ध हैं। इसके विपरीत केवल 93(31.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने नकारात्मक जवाब देते हुए बताया कि ऐसा नहीं होता है।

ग्राफ सं0 2

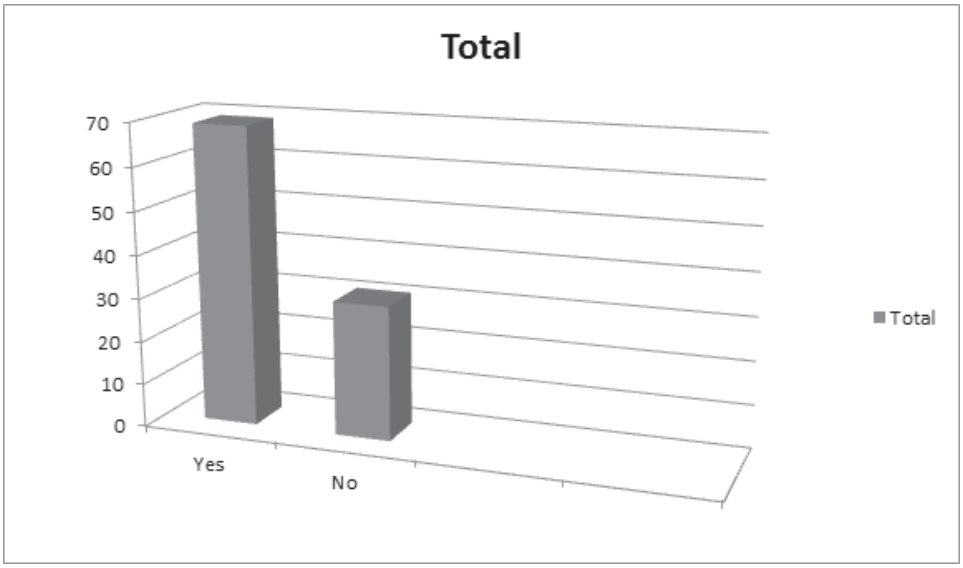

तालिका सं0 3: क्या मनरेगा ग्रामीण लोगों की क्रय - शक्ति को बढ़ाने में सहायक होती है?

क्र0 सं0	*मासिक आय*	*अभिमत*		*कुल(प्रतिशत)*
		हां(प्रतिशत)	*नही(प्रतिशत)*	
1	0-3000	75(25.00)	45(15.00)	120(40.00)
2	3001-6000	48(16.00)	24(08.00)	72(24.00)

3	6001-9000	45(15.00)	15(05.00)	60(20.00)
4	9001 एवं इससे अधिक	33(11.00)	15(05.00)	48(16.00)
5	कुल	201(67.00)	99(33.00)	300(100.00)

उपर्युक्त तालिका संख्या 3 मनरेगा ग्रामीण लोगों की क्रय - शक्ति को बढ़ाने में सहायक के आधार पर तैयार किया गया है। प्रस्तुत तालिका के आधार पर स्पष्ट है कि 300 में 201(67.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने बताया कि मनरेगा में ग्रामीण लोगों की क्रय - शक्ति को बढ़ाने में सहायक होती है। मनरेगा में काम करने से मजदूरों को पैसे मिलते हैं। उन पैसों के आधार पर वे अपना जीवन यापन करते हैं। पैसा मिलने के उपरांत पहले की अपेक्षा उनकी क्रय - शक्ति में बढ़ोत्तरी होना स्वाभाविक है। किन्तु इसके विपरीत केवल 99(33.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने इस संबंध में नकारात्मक जवाब दिए हैं।

ग्राफ सं0 3

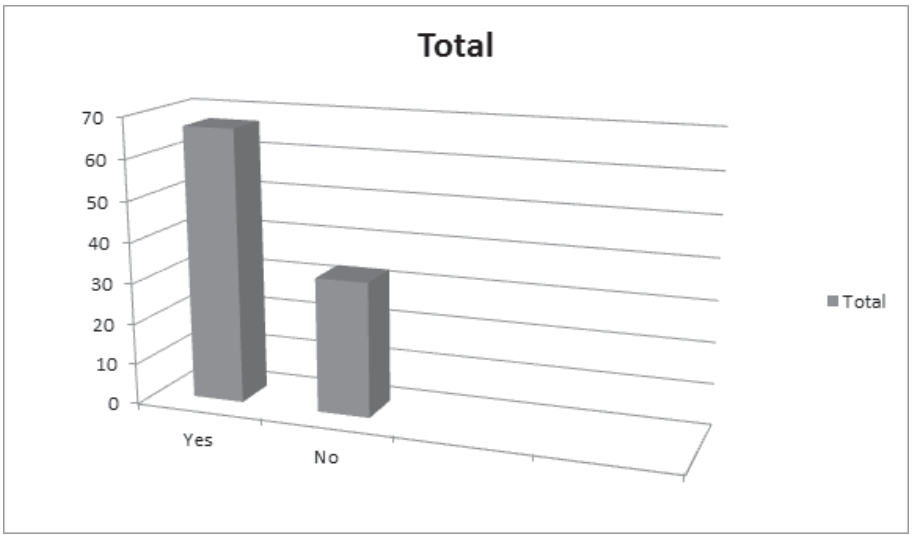

तालिका सं0 4: क्या मनरेगा में बिचौलियों और ठेकेदारों की पहुंच से दूर रखने के मकसद से मजदूरी सीधे श्रमिकों के खाते में भेजे जाने का प्रावधान किए गए हैं?

क्र0 सं0	*मासिक आय*	*अभिमत*		*कुल(प्रतिशत)*
		हां(प्रतिशत)	*नही(प्रतिशत)*	
1	0-3000	72(24.00)	48(16.00)	120(40.00)
2	3001-6000	51(17.00)	21(07.00)	72(24.00)
3	6001-9000	33(11.00)	27(09.00)	60(20.00)
4	9001 एवं इससे अधिक	36(12.00)	12(04.00)	48(16.00)
5	कुल	192(64.00)	108(36.00)	300(100.00)

तालिका संख्या 4 मनरेगा में बिचौलियों और ठेकेदारों की पहुंच से दूर रखने के मकसद से मजदूरी सीधे श्रमिकों के खाते में भेजे जाने के प्रावधान के आधार पर तैयार किए गए हैं। तालिका से स्पष्ट है कि 300 उत्तरदाताओं में से 192(64.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने बताया कि अक्सर काम दिलाने के बहाने मनरेगा में काम करने वाले मजदूर बिचौलियों द्वारा ठगे जाते हैं। काम तो

मजदूर करते हैं किन्तु बिचौलिये बीच में कमीशन खा जाते हैं। अत: इस कमजोरी को दूर करने के लिए मजदूर के खाते में सीधे पैसे भेजने का प्रावधान सरकार द्वारा किया गया है। ताकि उसे वाजिब एवं पूरे पैसे मिल सके। इसके विपरीत 108(36.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने इस संबंध में नकारात्मक जवाब दिए।

ग्राफ सं0 4

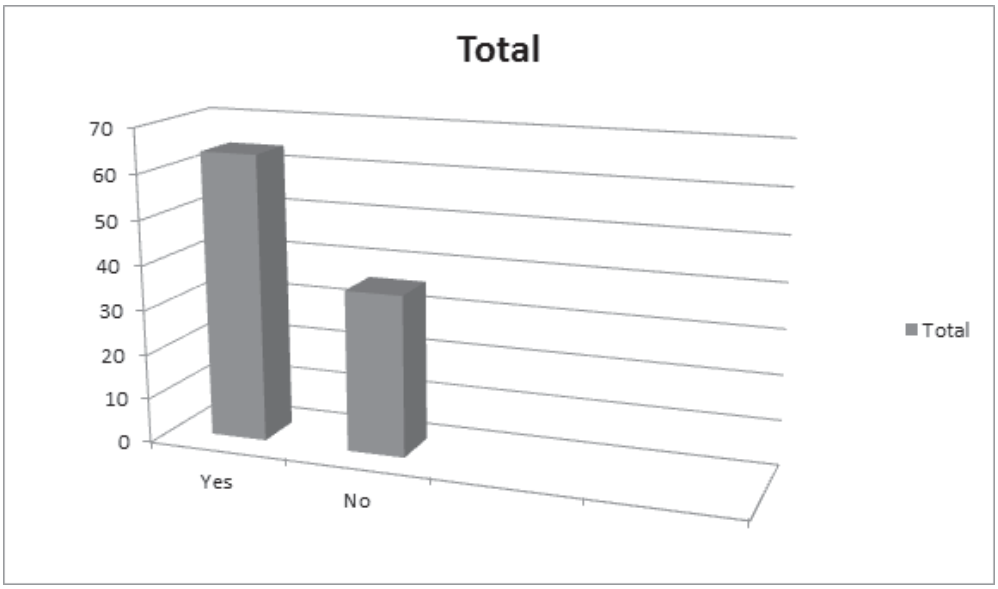

तालिका सं0 5: क्या मनरेगा का उद्देश्य रोजगार गारंटी के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाना है?

क्र0 सं0	*मासिक आय*	*अभिमत*		*कुल(प्रतिशत)*
		हां(प्रतिशत)	*नही(प्रतिशत)*	
1	0-3000	99(33.00)	21(07.00)	120(40.00)
2	3001-6000	42(14.00)	30(10.00)	72(24.00)
3	6001-9000	48(16.00)	12(04.00)	60(20.00)
4	9001 एवं इससे अधिक	33(11.00)	15(05.00)	48(16.00)
5	कुल	222(74.00)	78(26.00)	300(100.00)

उपर्युक्त तालिका संख्या 5 मनरेगा का उद्देश्य रोजगार गारंटी के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाने के आधार पर तैयार किया गया है। दिए गए तालिका से स्पष्ट है कि 300 में से 222(74.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने सकारात्मक जवाब देते हुए बताया कि वास्तव में मनरेगा में काम मिलने से अपने ही ग्रामीण क्षेत्र में यह आजीविका की सुरक्षा को बढ़ाता है। किन्तु इसके विपरीत केवल 78(26.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने नकारात्मक जवाब देते हुए बताया कि ऐसी स्थिति नहीं है।

ग्राफ सं0 5

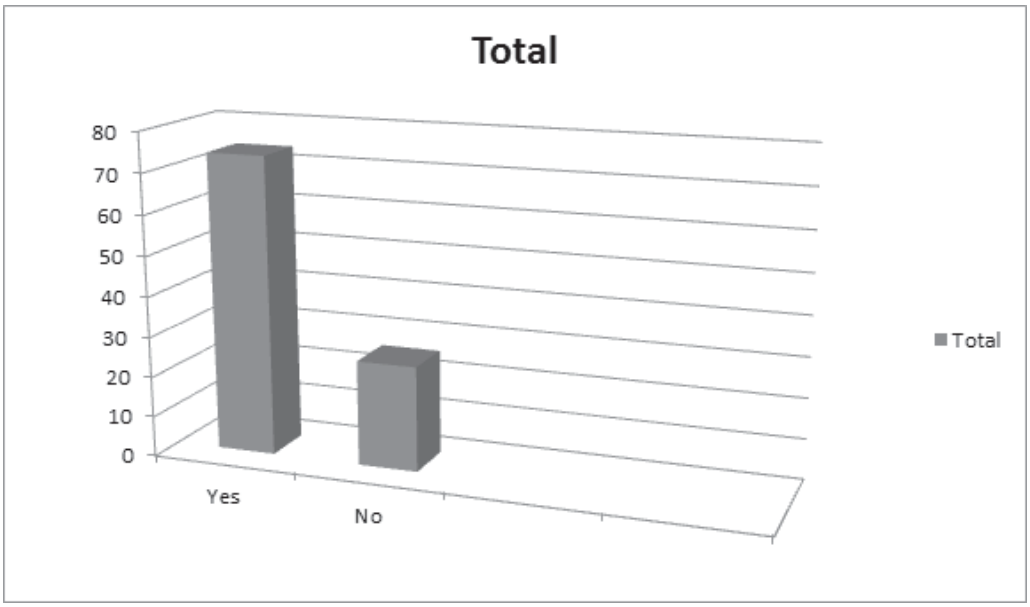

निष्कर्ष

मनरेगा में काम मिलने से जिस किसी भी जाति वर्ग से लोग इसमें काम करते हैं, वे सभी एक साथ मिलकर एक ही योजना में काम करते हैं। जिससे उनके बीच के आपस की दूरी एवं छुआछूत की भावना में भी कमी आई है। इस प्रकार समाज में उनकी स्थिति में पहले की अपेक्षा काफी सुधार हुआ है। मनरेगा में जो भी काम की मांग करता है उसे काम का समान अवसर उपलब्ध कराया जाता है। इसमें ऐसा नहीं है कि कोई दबंग है तो उसे ज्यादा काम का अवसर मिलेगा और यदि कोई कमजोर वर्ग से है तो उसे कम काम का अवसर मिलेगा, बल्कि सबों को समान अवसर उपलब्ध कराया जाता है।

इससे समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ है। मनरेगा कार्यक्रम के आने से अधिकांश लोगों को अपने ही आसपास के परिक्षेत्र में काम मिलने लगा है, जिससे प्रवास की समस्या में पहले की अपेक्षा कमी आने लगी है। परिणामस्वरूप लोगों के मन में इसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न होने लगा है। काम मिलने से लोगों में आर्थिक स्थिति अच्छी रहती है। जिससे मन में शांति रहती है। इसके विपरीत बिना काम के पैसे हाथ में नहीं रहने से मन अशांत रहता है और तरह – तरह के मन में कुविचार आते रहते हैं।

संदर्भ

1. अफरीदी, एफ. (2016), मनरेगा के 10 साल और आगे का रास्ता, ई-संगोष्ठी, भारत के लिए विचार, नई दिल्ली।
2. बैरिएंटोस, ए. और जे. स्कॉट (2008), सामाजिक स्थानान्तरण और विकास एक समीक्षा। ठॅच्प् वर्किंग पेपर 52, ब्रूक्स वर्ल्ड पॉवर्टी इंस्टीट्यूट, यूनिवर्सिटी ऑफ मैनचेस्टर, मैनचेस्टर।
3. चक्रवर्ती, पी. (2007), रोजगार गारंटी का कार्यान्वयन: एक प्रारंभिक मूल्यांकन, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, वॉल्यूम। 42, नंबर 7, फरवरी।
4. दत्ता, पी., आर.मुर्गई, एम. रैवलियन, और डी. डे वाले (2012), क्या भारत की रोजगार गारंटी योजना रोजगार की गारंटी देती है? वर्ल्ड बैंक, पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर नंबर: 6003।

5. खेड़ा, आर., और एन. नायक (2009), महिला श्रमिक और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, वॉल्यूम की धारणाएं। एक्सएलआईवी, नंबर 43, अक्टूबर।
6. नारायणन, एस (2016)। मनरेगा और इसकी संपत्ति, भारत के लिए विचार, नई दिल्ली।
7. प्रभु, के. एस. (2009), मानव गरीबी उन्मूलन के लिए सशर्त नकद हस्तांतरण योजनाएं: भारत के लिए प्रासंगिकता, चर्चा पत्र: 1 अप्रैल।
8. रेड्डी, डी.एन. एट अल, (2010), सामाजिक सुरक्षा के रूप में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी, आईडीएस बुलेटिन, वॉल्यूम। 41 नंबर 4, जुलाई।
9. सेन, के. (2016), मनरेगा, 10 साल: गिलास आधा भरा या आधा खाली? भारत के लिए विचार, नई दिल्ली।
10. सुब्बाराव, के., सी. डेल निनो, सी. एंड्रयूज, और सी. रोड्रिगेज-अलास (2013), एक सुरक्षा जाल के रूप में लोक निर्माण: डिजाइन, साक्ष्य और कार्यान्वयन, वाशिंगटन डी.सी.: विश्व बैंक।

मौर्यकालीन भूमि स्वामित्त्वः एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० स्वर्ण मणि

सहायक प्राचार्य, इतिहास विभाग, टी0पी0 कॉलेज मधेपुरा, बिहार

सार

उन दिनों राजाओं या राज्यों में निहित भूमि जो निचली जातियों या किसानों को पट्टे पर दी जाती थी। बंजर भूमि को खेती योग्य बनाने के लिए, राज्य ने कुछ प्रारंभिक वर्षों के लिए करों की छूट और मवेशियों, बीजों और कृषि उपकरणों की आपूर्ति के माध्यम से अन्य रियायतें दीं, जिन्हें बाद में चुकाना आवश्यक था। लेकिन ये किसान कोई जमीन नहीं बेच सकते थे, उन्हें इस पर खेती करनी थी और राज्य को राजस्व देना था। सीता भूमि के इन काश्तकारों को अर्ध-सीटिका या आधा बटाईदार कहा जाता था क्योंकि वे अपनी फसल के केवल एक हिस्से के हकदार थे, बाकी राज्य को राजस्व के रूप में जाते थे। इस पत्र के माध्यम से मौर्यकालीन भूमि स्वामित्व पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः भूमि स्वामित्त्व; भू-राजस्व; बंटाईदारी; भूमि अनुदान; अभिजात वर्ग।

परिचय

सिकंदर के जाने के तुरंत बाद चंद्रगुप्त मौर्य ने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। चंद्रगुप्त, अपने गुरु, चाणक्य द्वारा निर्देशित, अंतिम नंद राजा, धन नंद को उखाड़ फेंका और खुद को मगध के राजा का ताज पहनाया। इस प्रकार भारत का पहला ज्ञात राजनीतिक एकीकरण तब शुरू हुआ जब उसकी सेना ने लगभग पूरे भारत पर विजय प्राप्त कर ली। उसके अधीन मौर्य साम्राज्य कर्नाटक से अफगानिस्तान तक और सिंधु नदी से बंगाल तक फैला था। उसने पंजाब के यूनानी गवर्नर सेल्यूकस निकेटर पर भी हमला किया और उसे हरा दिया। इसके बाद चंद्रगुप्त और सेल्यूकस के बीच एक संधि पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके तहत सेल्यूकस ने पंजाब और सिंध को चंद्रगुप्त को सौंप दिया और अपनी बेटी की शादी चंद्रगुप्त से कर दी।

राजस्व संग्रह अब गंगा घाटी के मौर्य-पूर्व साम्राज्यों के छोटे मूल और विकास के तहत किए गए कार्यों से अलग था। यह कार्य कठिन था क्योंकि भारत में घने जंगल थे जो गंगा घाटी में बसे कृषि और अधिशेष आबादी की अलग-अलग जेबों को अलग करते थे। इसके अलावा, आदिवासी जनजातियाँ भी थीं जो जंगलों में घूमते हुए कृषि का अभ्यास करती थीं। इस प्रकार विशाल साम्राज्य को एक भरोसेमंद राजस्व संग्रह प्रणाली के तहत लाने के लिए, राज्य को राजस्व के उचित और व्यवस्थित संग्रह को सुनिश्चित करने के लिए साधारण राजस्व संग्रह से परे और अधिक मौलिक प्रयास करने पड़े। पहले मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त के प्रमुख सलाहकार चाणक्य द्वारा लिखित राजनीतिक-आर्थिक संगठन के सिद्धांतों पर एक संस्कृत क्लासिक अर्थशास्त्र, आधिकारिक स्रोत है जो मौर्य राज्य प्रशासनिक प्रणाली का एक विचार देता है। मौर्य राज्य बसे हुए कृषि का विस्तार करने और सीमांत पहाड़ी जनजातियों के विघटित अवशेषों को तोड़ने के उद्देश्य से केंद्रीय भूमि समाशोधन एजेंसी बन गया, जिसके सदस्य इन नई साफ की गई वन भूमि पर श्रमिक-किसानों को उपलब्ध कराने के उपयोगी स्रोत के रूप में काम कर सकते थे। मौर्यकालीन कृषि में दो प्रकार की जोत होती थी। पहला, राष्ट्र प्रकार की जोत पूर्व-मौर्य काल में अधीन रहे पूर्व आदिवासी कुलीन वर्गों की जोत का प्रत्यक्ष वंशज था। राष्ट्र की जोत काफी हद तक अपने आंतरिक कामकाज और प्रशासन में राज्य मशीनरी से स्वतंत्र थी।[1]

उनका एकमात्र दायित्व राज्य को राष्ट्र करों का नियमित भुगतान था। दूसरे प्रकार की जोत सीता प्रकार की थी, जो आदिवासियों की मदद से वन भूमि को साफ करके बनाई गई थी, जिनकी आदिवासी जीवन शैली को मौर्य शासन द्वारा व्यवस्थित रूप से नष्ट कर दिया गया था। सीता जोत मुख्य रूप से विस्थापित आदिवासियों के श्रम से वन भूमि को साफ करने का परिणाम थी। जंगलों की सफाई ने उन जनजातियों के साथ संपर्क खोला जो अभी भी दूर के क्षेत्रों में मौर्य राज्य के विघटन की प्रक्रिया का सामना कर रहे थे। यह राजशाही राजस्व प्रणाली और बसे हुए कृषि के मार्जिन की शुरुआत थी। राज्य के स्वामित्व वाली सीता भूमि पर राज्य का घनिष्ठ नियंत्रण था, जिसे विशेष अनुमति के बिना बेचा या हस्तांतरित नहीं किया जा सकता था। इस भूमि को काश्तकार की संपत्ति नहीं बनाया गया था। यह उसे उसके जीवनकाल के लिए पट्टे पर दिया गया था और वह इस शर्त पर पट्टा धारण कर सकता था कि वह भूमि पर खेती करता और करों का भुगतान करता। गैर-खेती के लिए दंड पट्टे पर दी गई भूमि की जब्ती थी। मौर्य राज्य के अधिकतम परिणामों के साथ गहन खेती पर जोर देने से पता चलता है कि मौर्य काल में करों का फसल के आकार के साथ घनिष्ठ संबंध था। इसलिए अधिकतम परिणाम पर जोर देना राज्य के राजस्व संग्रह को बढ़ाने के हित में था। सामान्य जनजातीय एकता को जन्म देने वाले कार्य की अनुमति नहीं थी। यहां तक कि धार्मिक संघों को भी प्रतिबंधित कर दिया गया था। इस प्रकार किसी भी सार्वजनिक मंच की स्थापना पर रोक लगाकर मौर्य राज्य ने किसान जनता से किसी भी लोकप्रिय प्रतिरोध की सभी संभावनाओं को पूरी तरह से समाप्त कर दिया।[2]

अनुत्पादक नागरिकों की किसी भी जिम्मेदारी को लेने के लिए मौर्य राज्य की अनिच्छा, इसका सबूत है- अशोक से पहले इन सीता भूमि पर बौद्ध और जैन भिक्षुओं के प्रवेश को रोकना, जिसका उद्देश्य किसानों के अनुत्पादक भिक्षुओं के रूपांतरण को रोकना भी था। अर्थशास्त्र के अनुसार गांवों में कोई भी भवन नहीं होगा, जिसका उपयोग खेल और मनोरंजन गतिविधियों के लिए किया जा सकता है, और न ही अभिनेता, नर्तक, गायक, ढोलकिया, बफून (वाग्जीवन) और बार्ड (कुशिलाव) के काम में कोई बाधा उत्पन्न करते हैं। इन अत्यंत सख्त उपायों को जनपदों नामक पृथक और असंबद्ध कृषि गांवों में से प्रत्येक के लिए संरक्षित सीमाओं की स्थापना करके लागू किया गया था। इन आंतरिक सीमाओं ने टोल और कर संग्रह के उद्देश्य से और किसानों के आंदोलनों पर नियंत्रण के लिए काम किया। इस नियंत्रित शासन ने मौर्यों को साम्राज्य का एक अत्यधिक केंद्रीकृत चरित्र बनाने में मदद की। इसे मौर्य समाजवाद कहा जा सकता है जिसका अर्थ है उत्पादन के आईएनएस का राज्य स्वामित्व। कृषि भूमि जोत के अलावा, इसके पास गोदामों, शिपयार्ड और खानों का भी स्वामित्व था। संक्षेप में, मौर्य अर्थव्यवस्था न केवल मध्यस्थ राजस्व संग्रहकर्ताओं के बिना, बल्कि बड़े पैमाने पर उन दिनों के भारी और बुनियादी उद्योगों में उत्पादन के साधनों के व्यक्तिगत मालिकों के बिना भी काम करती थी। राज्य अब तक उत्पादन के साधनों का सबसे बड़ा मालिक और सामान्य आर्थिक कामकाज का आयोजक था।[3]

गंगा घाटी के अधिक आबादी वाले क्षेत्र से अधिशेष बसने वालों का मसौदा तैयार करके नई बस्तियों की स्थापना की गई और घटती हुई बस्तियों को मजबूत किया गया। आम तौर पर निचली जातियों को गंगा घाटी से बाहर निकलने और नई कृषि बस्तियों में बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। उन्हें जमीन पट्टे पर दी गई थी। कुंवारी भूमि को खेती योग्य बनाने के लिए, राज्य ने कुछ प्रारंभिक वर्षों के लिए करों की छूट और मवेशियों, बीजों और कृषि उपकरणों की आपूर्ति के माध्यम से अन्य रियायतें दीं, जिन्हें बाद में चुकाना आवश्यक था। लेकिन ये किसान कोई जमीन नहीं बेच सकते थे, उन्हें इस पर खेती करनी थी और राज्य को राजस्व देना था। मध्यकाल के जागीरदारों के विपरीत मौर्य राजस्व संग्रहकर्ता राज्य के वेतनभोगी कर्मचारी थे। इसलिए दो तरह के लोग थे, एक उच्च नागरिक और दूसरा सर्वहारा वर्ग, जो सीता राज्य पर काम करते थे, उनके पास खेतों का स्वामित्व था, लेकिन जिस भूमि पर वे खेती करते थे, उस पर उनका कोई दावा नहीं था। सीता भूमि के इन काश्तकारों को अर्ध-सीतिका या आधा बटाईदार कहा जाता था क्योंकि वे अपनी फसल के केवल एक हिस्से के हकदार थे, बाकी राज्य को राजस्व के रूप में जाते थे। ये संबंध मूल रूप से प्रकृति में सामंती थे और मौर्यों के बाद के विभिन्न राजवंशों द्वारा संरक्षित किए गए थे।[4]

भू-राजस्व संगठन

शास्त्रीय लेखकों का कहना है कि कुछ गांवों को कराधान से छूट दी गई थी। वे शायद दुर्लभ अपवाद थे और वास्तव में, यह सुझाव दिया गया है कि ऐसा इसलिए था क्योंकि इन गांवों ने राज्य को सैनिक प्रदान किए होंगे। विद्वानों द्वारा यह भी सुझाव दिया गया है कि कुछ गांवों में कुंवारी मिट्टी को खेती के तहत लाने के लिए कुछ समय के लिए करों की छूट की अनुमति दी गई थी। मौर्य राज्य के लिए आवश्यक आवश्यक संसाधन केवल भू-राजस्व से ही प्राप्त किए जा सकते थे। इसलिए, भू-राजस्व संग्रह को

कुशलतापूर्वक व्यवस्थित किया जाना था ताकि लोगों से अधिकतम संभव अधिशेष को हथिया लिया जा सके। आमतौर पर यह कहा जाता है कि मौर्य शासन प्राचीन भारत में कराधान की प्रणाली में सुधार के इतिहास में एक मील का पत्थर स्थापित करता है। मौर्यों ने वास्तव में भू-राजस्व के निर्धारण को बहुत महत्व दिया और इसका सर्वोच्च अधिकारी संशर्ता था। सन्निधाता राज्य के खजाने का मुख्य संरक्षक था। चूंकि राजस्व भी वस्तु के रूप में एकत्र किया जाता था, भंडारण की सुविधा प्रदान करना भी उत्तरार्द्ध का कर्तव्य था। शास्त्रीय लेखकों का उल्लेख है कि किसानों द्वारा उपज का 114वां हिस्सा कर के रूप में दिया जाता था। वे यह भी सुझाव देते हैं कि उनके द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी। भूमि कर (भागा) राजस्व का मुख्य मद था। ग्रंथों के अनुसार यह उपज के 116वें हिस्से की दर से लगाया जाता था। लेकिन यह संभव है कि मौया काल में यह काफी अधिक था और उपज के 114वें हिस्से की दर से लगाया जाता था। अशोक के लुंबिनी शिलालेख में कहा गया है कि जब वह लुंबिनी गए थे। बुद्ध की जन्मस्थली, उन्होंने गाँव को बाली के भुगतान से छूट दी और भाग के भुगतान को घटा दिया गया। यहां तक कि अशोक के बुद्ध के प्रति बहुत सम्मान ने सम्राट को गांव को करों के भुगतान से पूरी तरह छूट देने के लिए प्रेरित नहीं किया।[5]

बटाईदारी एक और तरीका था जिसके द्वारा राज्य कृषि संसाधनों को एकत्र करता था। बटाईदारों को पहले स्थान पर बीज, बैल आदि प्रदान किए जाते थे, और खेती के लिए कृषि योग्य भूमि प्राप्त होती थी। इस तरह की स्थिति में किसानों ने शायद अपनी आधी उपज राज्य को दे दी।

उपरोक्त करों को बड़ी संख्या में प्रथागत देय राशियों द्वारा पूरक किया गया था, जो कि एम.यू.आर.एन साम्राज्य की अर्थव्यवस्था थी जिसे किसानों को भुगतान करना पड़ता था। मौर्यों ने कुछ नए कर भी लागू किए और पहले से मौजूद करों को और अधिक प्रभावी बना दिया। पिंडकारा नामक कर का भुगतान पतियों द्वारा किया जाता था, जिसका आकलन गांवों के समूहों पर किया जाता था। यह स्वभाव से भी प्रथागत था। अक्सर गाँवों को अपने-अपने क्षेत्रों से गुजरने वाली शाही सेना को आपूर्ति करनी पड़ती थी और इससे उनका बोझ स्वाभाविक रूप से बढ़ जाता था। हिरण्य की सही प्रकृति भी ज्ञात नहीं है, लेकिन शायद यह नकद में भुगतान किया गया कर था क्योंकि हिरण्य का शाब्दिक अर्थ सोना होता है। बाली, वैदिक काल से पारंपरिक रूप से ज्ञात लेवी, मौर्यों के अधीन जारी रही, और उपरोक्त सभी करों का वर्णन कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र में किया गया है, जिन्होंने किसानों पर काफी बोझ डाला होगा। फिर भी, वह यह अनुशंसा करना जारी रखता है कि यदि राज्य अभी भी अपनी आवश्यकताओं से कम पड़ता है, तो आपातकाल की अवधि के लिए कई अन्य वित्तीय उपायों का उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, ऐसा ही एक उपाय था, प्राणायाम, जिसका शाब्दिक अर्थ स्नेह का उपहार था। यह सबसे पहले पाणिनि द्वारा वर्णित एक कर है, लेकिन अर्थशास्त्र में पहली बार इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। यह मिट्टी की प्रकृति के अनुसार उपज का तिहाई था। यह आमतौर पर एक स्वैच्छिक उपहार के रूप में व्याख्या की जाती है, लेकिन एक बार व्यवहार में आने के बाद, वास्तव में यह अनिवार्य हो गया होगा। इसके अलावा, आपातकाल के समय में किसानों को दो फसलें उगाने के लिए मजबूर किया जा सकता था। इन उपायों के महत्व पर लगातार जोर दिया गया क्योंकि देश में अकाल का सामना करना पड़ा था, और इन अंधकारमय अवधियों के दौरान राजस्व संग्रह का स्तर स्वाभाविक रूप से गिर गया होगा।[6]

भूमि अनुदान और नए ग्रामीण अभिजात वर्ग

सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों से, हम भूमि के अनुदान प्राप्त करते हुए पाते हैं, जिनमें से कई अभिलेखों में दर्ज किए गए थे। इनमें से कुछ शिलालेख पत्थर पर थे, लेकिन अधिकांश तांबे की प्लेटों पर थे जो संभवतः भूमि प्राप्त करने वालों को लेन-देन के रिकॉर्ड के रूप में दिए गए थे। जो अभिलेख बचे हैं वे आम तौर पर धार्मिक संस्थानों या ब्राह्मणों को अनुदान के बारे में हैं। अधिकांश शिलालेख संस्कृत में थे। कुछ मामलों में, और विशेष रूप से सातवीं शताब्दी के बाद से, शिलालेख का कुछ हिस्सा संस्कृत में था, जबकि शेष स्थानीय भाषा जैसे तमिल या तेलुगु में था।[7]

प्रभावती गुप्ता प्रारंभिक भारतीय इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण शासकों में से एक, चंद्रगुप्त द्वितीय (सी। 375-415 सीई) की बेटी थीं। उनका विवाह एक अन्य महत्वपूर्ण शासक परिवार में हुआ था, वाकाटक परिवार, जो दक्कन में शक्तिशाली थे। संस्कृत के कानूनी ग्रंथों के अनुसार, महिलाओं को भूमि जैसे संसाधनों तक स्वतंत्र पहुंच नहीं होनी चाहिए। हालाँकि, शिलालेख इंगित करता है कि प्रभावती की भूमि तक पहुँच थी, जिसे उसने तब प्रदान किया था। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि वह एक रानी थी

(शुरुआती भारतीय इतिहास से ज्ञात कुछ लोगों में से एक), और इसलिए उसकी स्थिति असाधारण थी। यह भी संभव है कि कानूनी ग्रंथों के प्रावधानों को समान रूप से लागू नहीं किया गया था।[8]

शिलालेख हमें ग्रामीण आबादी के बारे में भी एक विचार देता है - इनमें ब्राह्मण और किसान शामिल थे, साथ ही साथ अन्य जिन्हें राजा या उनके प्रतिनिधियों को कई प्रकार की उपज प्रदान करने की उम्मीद थी। और शिलालेख के अनुसार, उन्हें गांव के नए स्वामी की बात माननी होगी, और शायद उन्हें ये सभी बकाया चुकाना होगा।[9]

इस तरह के भूमि अनुदान देश के कई हिस्सों में पाए गए हैं। दान की गई भूमि के आकार में क्षेत्रीय भिन्नताएँ थीं - छोटे भूखंडों से लेकर बंजर भूमि के विशाल हिस्सों तक - और दानदाताओं (अनुदान प्राप्तकर्ताओं) को दिए गए अधिकार। भूमि अनुदान का प्रभाव इतिहासकारों के बीच गरमागरम बहस का विषय है। कुछ लोगों का मानना है कि भूमि अनुदान शासक वंशों द्वारा कृषि को नए क्षेत्रों में विस्तारित करने के लिए अपनाई गई रणनीति का हिस्सा थे। दूसरों का सुझाव है कि भूमि अनुदान कमजोर राजनीतिक शक्ति का संकेत था: जैसे राजा अपने सामंतों पर नियंत्रण खो रहे थे, उन्होंने भूमि अनुदान देकर सहयोगियों को जीतने की कोशिश की। उन्हें यह भी लगता है कि राजाओं ने खुद को सुपरमैन के रूप में पेश करने की कोशिश की क्योंकि वे नियंत्रण खो रहे थे: वे कम से कम सत्ता का एक बहाना पेश करना चाहते थे।[10]

भूमि अनुदान किसानों और राज्य के बीच संबंधों में कुछ अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। हालांकि, ऐसे लोग थे जो अक्सर अधिकारियों या सामंतों की पहुंच से बाहर थे: चरवाहे, मछुआरे और शिकारी-संग्रहकर्ता, मोबाइल या अर्धसैनिक कारीगर और शिफ्टिंग किसान। आमतौर पर, ऐसे समूह अपने जीवन और लेन-देन का विस्तृत रिकॉर्ड नहीं रखते थे।

निष्कर्ष

चूंकि भू-राजस्व मौर्य अर्थव्यवस्था की रीढ़ था, अर्थशास्त्र राज्य की राजस्व प्रणाली को डिजाइन करने में सावधान है। यह विभिन्न प्रकार के गांवों को परिभाषित करने में विशेष रूप से कर लगाया जाता है क्योंकि मिट्टी की उर्वरता जगह-जगह भिन्न होती है। राजस्व संग्रहकर्ताओं और मूल्यांकनकर्ताओं की विशेष श्रेणियों पर भी ध्यान दिया जाता है। निस्संदेह, मौर्य राज्य ने, कम से कम अपने प्रमुख क्षेत्रों में, एक पर्याप्त भू-राजस्व संग्रह सुनिश्चित किया होगा जिसके बिना सरकारी मशीनरी और सेना को बनाए रखना मुश्किल होता।

संदर्भ

1. श्वार्ज, एफ.एफ., डाई ग्रिचेन और डाई मौर्य-राजवंश, प्रॉब्लम इहरर गेगेंसिटिजेन बेजीहुंगेन, इन: एफ. अल्थीम / आर. स्टीहल (सं.), गेस्चिच्टे मित्तेलासियंस इम अल्टरटम। बर्लिन 1970, 267-316।
2. अलहाकून, एच, बाद के मौर्य, 232 ईसा पूर्व से 180 ईसा पूर्व, दिल्ली 1980.
3. फुसमैन, जी.., प्राचीन भारत में केंद्रीय और प्रांतीय प्रशासन: मौर्य साम्राज्य की समस्या, में: प्भ्त् 14 (1987/88), 43-78।
4. वही, पृ. 79
5. गोयल, एस.आर., कौटिल्य अर्थशास्त्र, इसके लेखक, मौर्य काल के लिए तिथि और प्रासंगिकता, जोधपुर 2000.
6. वही।
7. मुखर्जी, बी.एन., मौर्य साम्राज्य का चरित्र, कलकत्ता 2000.
8. शास्त्री, के.ए.एन. (सं.), नंदों और मौर्यों का युग, बनारस 1952.
9. थापर, आर., अशोक और मौर्यों का पतन। लंदन 1961, 2. एड। दिल्ली 1973।
10. थापर, आर., मौर्य पुनरीक्षित। कलकत्ता 1987.

वनवासी सामुदायिक अधिकारों के मुद्दे और पहचान

प्रीती

पी० एच० डी०, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

यह भारतीय सभ्यता की नींव रही है जिसमें प्रकृति को जननी का रूप देकर इससे प्राप्त सभी प्राकृतिक स्त्रोंतो जैसे वन, वनों में निवास करने वाले जीव जन्तु, नदियों, पहाडों आदि को देवी देवताओं का निवास स्थान मान कर उनकी पूजा अर्चना करना भारतीय सभ्यता का आधार रहा है। इस परम्परा का वास्तविक उदाहरण आज हम भारत की कई वनवासी जनजातियों की सांस्कृतिक परम्परा और धार्मिक मान्यताओं में सहज ही देख सकतें हैं। लेकिन भारत में पश्चिमी विचारधारा का इतनी गहराई तक प्रभाव पडने के कारण हमेशा से ही वनवासी अधिकारों जिसें वामपंथी बुद्विजीवी वनवासी मुद्दे कह कर संबोधित करते आये है का समाधान यह वामपंथी व मार्क्सवादी विचारक भारतीय संविधान और उसकी न्यायिक प्रक्रिया के परे नक्सलवाद और मार्क्सवादी क्रांति में देखते आये है। इस मानसिकता ने भारतीय वनवासियों के मुददों और मांगों को इतना जटिल बना दिया है कि आज तक वनवासियों को जिस भारतीय संविधान के अन्तर्गत संरक्षण प्रदान किया गया है उसके दायरे में लाना एक समस्या हो गया है।

मसलन इन सब स्थितियों के परिणामस्वरूप आज वनवासियों का मुद्दा इतना महत्वपूर्ण बन गया है कि पर्यावरण से जुड़े व उन पर निर्भर विभिन्न समूह कई इकॉलोजिकल खेमो में बट चुके हैं। जो इस ओर इशारा करते है कि पर्यावरण आज किसी विशिष्ट समुदाय की समस्या नही अपितु एक आम समस्या हैं। जिसका प्रभाव विश्व के हर कोने को प्रभावित कर रहा हैं। पर्यावरण के इस प्रभाव से अछूते न रहने का अन्य कारण वैश्विकरण और तकनीकी के क्षेत्र में मीडिया का प्रबल होना हैं। क्योंकि वह समय-समय पर पर्यावरण व उस पर निर्भर जीवों पर पड़ने वाले प्रभावों को अपने विभिन्न माध्यमों के द्वारा लोगों से अवगत करवाता रहता है।

दरअसल मानव जीवन की यह तीव्र प्रगति और विकास के लिये खत्म न होने वाली उत्सुकता ही है जिसके कारण व्यक्ति विकास की दौड़ का चरम बिंदु निश्चित ही नही कर पा रहा हैं। इसके चलते वह पर्यावरण को खत्म न होने वाला खजाना मान कर बस नये-नये अविष्कार करता जा रहा है जिसका उदाहरण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित किया गया 'विकसित' श्रेणी का खेमा हैं। जिसके आधार पर आज सभी देशों के आर्थिक व सामरिक क्षेत्रों को महत्वपूर्ण मानते हुये विश्व को विकसित, विकासशील, और अविकसित देशों की श्रेणी में विभाजित कर दिया गया है। जिसे विश्व अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कहा जाता हैं। विकास की इस स्थिति के विषय में 'मॅकनील' का कहना था कि आर्थिक समृद्धि और तकनीकी विकास का यह जुड़ाव मात्र लोगों की संख्या या समृद्धि से ही नही जुड़ा अपितु यह धरती पर लोगों के प्रभाव से भी जुड़ा हुआ था।

अत: इस क्षेत्र में यदि भारतीय वनवासी अधिकारों के मुद्दों को देखा जाये तो यह मुद्दा शुरू से ही काफी पेचिदा रहा है जिसकी निरंतरता अभी तक बरकरार हैं। ऐसा इसलिये क्योकि हमेशा से ही इस मुददे को पूर्ण रूप से राजनीतिक आवरण पहनाया जाता रहा हैं।

वनवासियों की संस्कृति, परम्परा और भाषा संबंधी विविधता के अलावा पर्यावरण को सदियों से सुरक्षित करने की उनकी पुरातन समझ को तब नकारा गया जब औपनिवेशिक सरकार की आंखें भारत के अमूल्य प्राकृतिक संसाधनों पर पडी। मसलन वह इस बात से भली भांति परिचित हो चुके थे कि इन संसाधनों के पलायन से वह ज्यादा मुनाफा कमा सकते है। परिणामस्वरूप 1865 के बाद वन विभाग के निर्माण के साथ ही भारतीय प्राकृतिक संसाधनों का खुब क्षरण किया गया। इसमें सबसे सहायक वाईट बर्डन सिद्वान्त रहा जिसमें वनवासी सभ्यता को असभ्य बता कर उन्हें उनके ही वनों से बहिष्कृत कर दिया गया।

इस प्रकार शोषण के इस रूप को तेजी से कानूनी जामा पहना कर ऐसी वन नीतियों बनाई गई जिनके माध्यम से वनों का दोहन कानूनी रूप से किया जाना आसान हों। उदाहरण भारतीय वन नीति 1927 जिसके द्वारा पहली बार वनों का विभाजन कर वनवासियों को उन्हीं की भूमि से बाहर कर दिया गया। शोषण की इसी प्रवृति को स्वतंत्रता के बाद यूपीए सरकार द्वारा भली भांति आगे बढाया गया जिसके तहत 1952, 1972, 1988 और 2006 की वन नीतियों शामिल हैं। जिन के द्वारा वनवासियों की पहचान और हकदारी के मामलों को इतना पेचिदा व कानूनी रूप से इतना उलझा दिया गया कि आज अधिकतर वनवासी व खानाबदोश जनजातियां लुप्त हो चुकी है या फिर अपनी परम्पराओं से दूर हो कर ईसाई या मुस्लिम धर्मो में धर्मान्तरण का शिकार हो चुकी हैं।

वन एक सांझा अस्तित्व

पर्यावरणीय असन्तुलन की ओर वैश्विक स्तर पर ध्यान सर्वप्रथम अमेरिकी समुन्द्र वैज्ञानिक 'रसेल कारसन' की पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' के प्रकाशन से आकर्षित हुआ। कारसन ने इस पुस्तक में चेताया कि खेती में उपयोग होने वाले कीटाणुनाशको के अध्कि उपयोग से न सिर्फ भूमि की उर्वरकता को हानि पहुँच रही है अपितु यह कीटाणुनाशक पर्यावरण के लिये भी हानिकारक हैं। 1960 और 1970 के दशक में भारत में पर्यावरणीय चिंता के प्रति 'ग्रासरूट संवेदनशीलता' को देखते हुये पर्यावरणीय आन्दोंलनो का दौर आरंभ हुआ। इस संदर्भ में माध्व गॉडगिल और रामचंद्र गुहा व घनश्याम शाह द्वारा बहुत सारे कारणो को उजागर करते हुये इसका विस्तृत विश्लेषण किया गया हैं। इन पर्यावरणवेताओं या इकॉलोजिस्ट द्वारा पर्यावरण को औपनिवेशिक दौर से ही काफी महत्वपूर्ण मुद्दा बताया गया है। इनके अनुसार भारतीय पर्यावरणीय समस्या का आरंम्भ औपनिवेशिक दौर में हो गया था। जब अंग्रेजों ने भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर मजबूत पकड़ बनाने के लिये 1865 में वन विभाग के जरिये पर्यावरण को राज्य की सम्पदा घोषित करते हुये वनों में रहने वाले वनवासियों को वनों से बहिष्कृत कर दिया। इस प्रकार यहाँ इस बात का विवेचन करना अति आवश्यक होगा कि वनवासियों द्वारा वनों पर अपनी संपूर्ण निर्भरता का यह दौर कोई आज की उपज नही है। अपितु यह विरोध तो औपनिवेशिक दौर से ही चला आ रहा हैं। उदाहरण 'बिरसा मुंडा का विद्रोह' परन्तु यह बात भी सत्य है कि इन सामाजिक विद्रोहो का यह रूप उस समय कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित था।

1970 के दौर में इन 'ग्रासरूट विद्रोहों ' का रूप राष्ट्रीय हो चुका है जिसका कारण समकालीन समय में बनाई गई नीतियों में वनों से वनवासियों को पूर्ण रूप से बर्खास्त कर उनके अध्किारों पर कानूनी पाबंदी लगाना रहा। इसे आज हम विस्थापन के रूप में महसुस कर सकते हैं। इन सामाजिक या ग्रासरूट आंदोलनों के विषय में विचारकों के अलग अलग मत हैं। जैसे 'सिंह' इन आंदोलनों के उठने का कारण आपसी संगठन और सामुदायिक चेतना के भाव को मानते है जिसके अन्तर्गत स्थानीय लोगों द्वारा अपने गुस्से को प्रकट करने का तरीका कानून का पालन न करना होता हैं। इस प्रकार के आंदोलनों में वन संरक्षण व पर्यावरण स्थानीय सामुदायिक अधिकारों व मान्यताओं से जुड़ा होता है जिसे कई विख्यात विचारकों जैसे 'रजनी कोठारी' सरीखे विद्वानों ने 'गैर दलिय राजनितिक प्रक्रिया' तो कई विद्वानों ने 'सामाजिक आन्दोंलन' कहा हैं। इस प्रकार के जनजातीय आंदोलनों को 'महापात्र' ने मुख्य तीन भागों में विभाजित किया है। पहला 'प्रतिक्रियावादी आन्दोलन' जो मुख्य रूप से पुराने दिनों को पुनः बहाल करने के लिये किये जाते हैं। दूसरा 'रूढ़िवादी आन्दोंलन' जो यथास्थिति बनाये रखने पर जोर देते है और तीसरा 'संशोधनवादी आन्दोलन' जो सामाजिक व्यवस्था में सुधार व शुद्धीकरण के लिये किये जाते हैं। महापात्र का मानना है कि आज के सामाजिक आन्दोलन केवल बदलावों तक ही सीमित नही रह गये है। अपितु राजनीतिक दल इन वनवासी समुदायों की जमकर राजनीतिक गोलबंदी कर उनके मुद्दों को अपने हित में इस्तेमाल करते हैं। बिहार, छतीसगढ़ कुछ ऐसे राज्य है जहाँ वनवासी समुदाय राजनीतिक दलों के रूप में उभर रहे हैं। बहरहाल इस बात से इंकार नही किया जा सकता है कि अब स्थानीय स्तर पर सामाजिक आंदोलनों की चिंता 'हकदारी' तक सीमित न रह कर 'दावों' के रूप में उभर कर सामने आ रही हैं। जिसके मुख्य दो कारण महत्वपूर्ण रहे है पहला कारण वनवासियों की धर्मिक मान्यताये रही है जिसके विषय में 'डेविड हार्डिमैन' कहते है कि वनवासियों द्वारा किये जाने वाले आन्दोंलन का मुख्य कारण उनकी धर्मिक चेतना पर पड़े प्रभाव को भी माना जा सकता है जो प्रचीन काल से इनकी सामाजिकता का केन्द्र रहा हैं।

इस प्रकार के असंतोष का कारण राज्य और स्थानीय लोगो के बीच व्याप्त समस्या को माना जा सकता है। जिसके कारण कभी भी स्थानीय मांगो को इतनी अहमियत नही दी जाती। इस रवैये का दूसरा और बड़ा कारण आर्थिक असन्तुलन हैं। जिसके चलते सदैव विकास का पींड़ इन वनवासियों या समाज के गरीब तबको के माथे फोड़ा जाता हैं। इसी आर्थिक समस्या का एक पक्ष इन जनजातियों का पुर्नवास की समस्या है जिसके कारण लगातार इनके अधिकारों की मांग जोर पकड़ रही हैं। उदाहरणतः पिछले कुछ

वर्षो में 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' के बाद से स्थानीय लोगो ने बांधे के निर्माण के विरोध में कई आन्दोलन उठाये है। क्योकि इन बांधे के निर्माण के चलते बड़ी संख्या में वनवासियों को उनके मूल स्थान से पुर्नस्थापित किया हैं। कुछ स्थानों पर तो वनवासियों ने अध्कि मुआवजे और एक बेहतर पुर्नवास नीति की मांग भी की है। साथ ही उन्होंने विकासवादी मॉडल की आलोचना करते हुये यह भी कहा है कि ऐसा विकास किस काम का जो लोगो को उनके प्राकृतिक संसाधनों से दूर कर उन्हें वन संबंधी अधिकारों से दूर कर दे।

विद्वानों का कहना है कि वनों पर नियंत्रण जमाने के इस खेल में अपने प्रयासो को भूनाने के लिये अंग्रेजों ने कानूनी नीतियों का दाव खेला। परिणामस्वरूप वनों के संदर्भ में कई नियंत्रणकारी नीतियों का निर्माण किया गया। जैसे 1885 का बॉम्बे फॉरेस्ट इनक्यूआयरी कमीशन, 1913 का मद्रास प्रेसिडेन्सी एक्ट, 1927 का भारतीय वन अधिनियम आदि। यह कुछ ऐसे अधिनियम रहें जिनके द्वारा अंग्रेजों ने वनों में रहने वाले वनवासियों को अतिक्रमणकारी कह कर उन्हें उनकी वन सम्पदा से पूर्ण रूप से बहिष्कृत कर दिया। वनों से वनवासियों के बहिष्करण का दौर ऐसा नही है कि अंग्रेजी शासन के समाप्त होने के पश्चात खत्म हो गया। अपितु वनों के संदर्भ में तो सदैव औपनिवेशिक दौर की नीतियों की नियमितता बरकरार रखी गई हैं।

इस प्रकार वनों के संदर्भ में न तो औपनिवेशिक सरकार और न ही स्वतंत्रता के बाद कॉग्रेस सरकार के नियंत्रण में ही कमी आई। मसलन यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद भी वनवासियों के न तो शोषण का दौर ही रूका, बस एक के बाद एक नियंत्रणकारी नीतियों का निर्माण किया जाता रहा हैं। चाहें फिर वो 1952 की पहली राष्ट्रीय वन नीति हो, जिसमें 1927 की वन नीति को सही बताते हुये सुधर के नाम पर 'सार्वजनिक हित' को 'राष्ट्रीय हित' में परिवर्तित कर दिया गया और वनों पर राज्य के नियंत्रण को और मजबूत करते हुये वनों को चार श्रेणीयो में बांट कर वनों से वनवासियों को बहिष्कृत कर दिया जाना हो या फिर 1980 और 1988 की वन नीति हो, सभी में राज्य द्वारा वनों पर नियंत्राण के संदर्भ में औपनिवेशिक तरीके को ही अपनाया गया। इन नीतियों के कारण भारत में वनों के संदर्भ में कई जन-आंदोलनों का उभार हुआ। वनों के सरंक्षण के संदर्भ में स्थानीय आंदोलनों के इतने विस्तृत रूप में उभरने का कारण भारतीय वन सम्पदा को स्थानीय लोगों द्वारा एक सांझा संसाधन मानना रहा है जिसके कारण कई समुदाय वनों से अपनी पहचान को जोड़कर देखते आये हैं। अत: वनों से जुड़े इस मुददे पर मुख्य रूप से औपनिवेशिक दौर से ही विवाद रहा है क्योकि आमतौर पर इस बात पर तों हमेशा असहमति रही ही है कि वनों के किन स्त्रोतों को मुख्य संसाधन मानते हुये राष्ट्रीय हित के लिये उपयोगी माना जाये और इन संसाधनों पर किसका नियंत्रण स्थापित किया जाये? साथ ही एक बड़ा मुद्दा इन वनवासियों को विकास की मुख्य धारा में शामिल करते हुये इनके आर्थिक समायोजन का भी विषय भी बहस का मुद्दा रहा जिससे सदैव यूपीए सरकार अपना पल्ला झाड़ती आई है।

मसलन इस सब में यह सवाल भी उठना लाजमी है कि क्या वास्तव में शहरो में बैठ कर कोई शहरी नौकरशाह बाबू वनों में रहने वाले वनवासियों के लिये न्यायपूर्ण नीतियों का निर्माण कर सकते हैं? ऐसा सवाल किया जाना इसलिये आवश्यक है क्योंकि भारतीय सभ्यता का मूल उसकी विविधता में समाहित है इसलिये ग्रामिण व वनवासी समस्याओं का समाधान एक ही चश्में से करना न्यायपूर्ण नही माना जा सकता। इस तरह औपनिवेशिक दौर से ही वनों से जुड़ा सांझा अस्तित्व का मामला सदैव अधर में ही लटकता रहा हैं क्योकि वनों को सदैव फायदे का सौदा माना जाता रहा हैं। इस सब में यह बात भी बहुत महत्वपूर्ण है कि 1996 में बना 'पेसा' पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र विस्तार) अधिनियम, कुछ ऐसे अधिनियमों में से है जिसमें वनों के संदर्भ में राज्य ने कल्याणकारी भूमिका निभाते हुये वनों पर स्थानीय नियंत्रण को महत्व दिया तथा साथ ही ग्राम सभा को शक्तिशाली बनाया।

अत: वनों पर वनवासियों के सामुदायिक अधिकारों को बढ़ावा और तब मिला जब 2006 के वन अधिकार अधिनियम के निर्माण के द्वारा वनों पर वनवासियों के सामुदायिक अधिकारों की स्वीकृति को 'ऐतिहासिक अन्याय' कह कर स्वीकार लिया गया और वनों पर वनवासियों को मालिकाना हक देने की बात की गई। इस प्रयास को राज्य का सकारात्मक प्रयास माना गया परन्तु इसकी कानूनी पेचीदगियों के आधार पर इस अधिनियम की भी आलोचना की गई।

दो विश्व युद्ध यह बात स्पष्ट कर चुके थे कि किसी देश की आर्थिक मजबूती अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसके स्वतंत्र अस्तित्व के लिये कितनी आवश्यक हैं। इस तरह इन विपरीत परिस्थितियों से सबक लेते हुये भारत ने विकास को महत्व दिया और नेहरूवादी विकास मॉडल को स्वीकार किया तथा तीव्र विकास स्तर को प्राप्त करने के लिये भारी औद्योगिक विकास का रास्ता चुना। मसलन इस समय भारत द्वारा पर्यावरण को अन्य या द्वितीय की श्रेणी में रखने का कारण यह रहा कि 1980 के आरंभ में ही विकास का

एक ऐसा मॉडल पेश करने का प्रयास किया गया जिसमें 'इकोलॉजी' और 'समानता' दोनों को ही समान महत्व दिया गया था। यह समानता संसाधनों की समानता न होकर आर्थिक दौड़ में शामिल होने की प्रतिस्पर्धा की ओर झूकी थी जिसकी आड़ में वन संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया गया। उदाहरण के लिये इंदिरा गाँधी द्वारा स्टोकहोम (1972) पर्यावरण विश्व सम्मेलन में दिया गया भाषण हैं। जिसमें इंदिरा गाँधी ने गरीबी को पर्यावरण क्षरंण से बड़ा दानव बताते हुये कहा कि 'हम नही चाहते कि पर्यावरण और बर्बाद हो लेकिन हम एक पल के लिये भी यह नही भूल सकते है कि बड़ी संख्या में लोग गरीबी से जूझ रहे हैं। क्या गरीबी और जरूरत सबसे बड़े प्रदूषक नही हैं। गरीबी की स्थिति कायम रहने तक पर्यावरण में सुधार नही किया जा सकता और सच यह भी है कि विज्ञान और तकनीकी विकास के बिना गरीबी खत्म नही की जा सकती।'

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य जो गौर करने लायक है वह यह है कि, जहां स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विकास एक महत्वपूर्ण चुनौती थी वहीं गरीबी के चरम पर खडे वनवासियों की सभ्यता, संस्कृति व उनकी परम्परा को बनाये रखना भी एक महत्वपूर्ण जरूरत थी। लेकिन इंदिरा गांधी द्वारा दिये गये भाषण में इस महत्व को पूर्णत: नकार दिया गया। परिणामस्वरूप जिन वनवासी समस्याओं का समाधान अर्थिक समावेश की योजनाओं के जरिये सरलता से की जा सकती थी उनसे यूपीए सरकार द्वारा पूर्णत: नाता तोड़ दिया गया। मसलन तीव्र विकास के लिये हरित क्रांति को बढावा दिया गया वहीं वनों का तेजी से सफाया कर वनवासियों का भी सफाया किया गया। यूपीए सरकार के दौर में दशकों तक वनवासियों के आर्थिक विकास व समावेश पर कोई महत्वपूर्ण कदम नही उठाये गयें। फलस्वरूप वर्तमान में भारतीय गरीबों की संख्या का एक बडा हिस्सा इन्हीं वनवासी जनजातियों का है।

कार्बन उत्सर्जन की समस्या के संदर्भ में दी जाने वाली दलील एक और अन्य समस्या है जिसने वनवासियों और उनसे जुडे मुद्दों को और हशिये पर ला कर खड़ा कर दिया है। जिसके अनुसार पर्यावरण के प्रत्येक विश्व सम्मेलन में विकसित राष्ट्र हमेशा अध्कि 'कार्बन उर्त्सन' का कारण विकासशील देशों पर यह कह कर थोपते आये है कि यह देश जल्दी विकसित राष्ट्र की श्रेणी में शामिल होने के लालच में तीव्र गति से अपने देशों में भारी औद्योगिकरण का विस्तार कर रहे हैं। अत: वास्तव में यही अध्कि कार्बन उत्सर्जन के जिम्मेदार है और वही विकासशील देश यह दलील देते आये है कि क्योकि विकसित देशो में पहले औद्योगिकरण आया है। इसलिये यही ज्यादा कार्बन उर्त्सन के जिम्मेदार हैं। बहरहाल यदि पर्यावरण के संदर्भ में भारत को देखा जाये तो यहाँ हमेशा पर्यावरणीय मुद्दा बड़ा ही संवेदनशील रहा है जिसका कारण विचारक वनों पर निर्भर वनवासियों को मानते हैं। जो सदैव अपने अस्तित्व को वनों व वन संसाधनों से जोड़ते आये हैं। इस तरह भारत में जब से पर्यावरणीय आंदोलनों का दौर चला चाहे फिर वो चिपको आन्दोलन हो, संथाल आन्दोलन, छोटानागपुर आन्दोलन या फिर वेदान्ता और पोस्को के विरूद्ध उठ रहे आन्दोलन, सभी में वन व वृक्ष केन्द्रिय मुद्दा रहा हैं। अत: समय-समय पर पर्यावरण सरंक्षण के लिये उठाये गये कदमों में यह मानना स्वाभाविक है कि हमें वही करना चाहिये जो हमारी पृथ्वी और देश के हित में हो परन्तु फिर यह तय करना कठिन हो जाता है कि कौन यह तय करेगा कि भलाई किन बातो में है तथा किसकी भलाई सर्वोच्च।

यह समझना आवश्यक है कि पर्यावरण जहाँ फायदे का सौदा रहा है वहीं इनसे जुड़े वनवासी समुदायों के अधिकारों में पूर्व सरकार द्वारा औपनिवेशिक दौर से ही काफी काट छांट की गई है। जिसके चलते वनों पर निर्भर यह जनजाति समुदाय हाशिए की स्थति में आ खड़े हुये हैं। वनों के सरंक्षण के संदर्भ में कई विचारधारायें विभाजित रूप से पर्यावरण के सरंक्षण की मांग करते आये है। जहाँ साम्राज्यवादी विचारधारा ने पर्यावरणीय संसाधनों को राज्य का नियंत्रण क्षेत्र मानते हुये साम्राज्यवादी हित को सर्वोच्चता दी वही 'हाईमोर्डरनीज्मवादी विचारधारा' के खेमों ने विकास को सर्वोपरी मानते हुये वनों को द्वितीयक वरीर्यता वाला क्षेत्रा माना। इसी तरह 'मध्यमवर्गीय विचारधारा' ने एक निश्चित ऐजेन्डे के तहत वन नीतियों तक अपनी पहुँच बनाई जिसके तहत जंगल के वनवासी समुदायों ने मिश्रित जंगलों को समाप्त कर उनके स्थान पर एक ही तरह के वृक्षों के रोपण की वन विभाग की नीति का विरोध किया। इन सब विवादों में सरंक्षणवादी और पर्यावरणवादी विवाद काफी महत्वपूर्ण रहे हैं। सरंक्षणवादी विचारधारा तो वन नीतियों में इतनी प्रभावकारी रही है कि उनकी वन जीवन के सरंक्षण के लिये जो चिंता है वो केवल जंगली जानवरों के सरंक्षण तक सीमित रही है को वन अधिकार अधिनियम 2006 में भी दोहराया गया हैं। जिसके तहत वनों में रहने वाले जंगली जानवरों के विकास के लिये मानवीय उपस्थिति को घातक मानते हुये 'क्रिटिकल वाईल्ड लाईफ हेबिटेट' (सी डब्ल्यू एच) का निर्माण किया गया हैं। वही दूसरी विचारधारा 'पर्यावरणीय' या 'ईकोलॉजिकल' विचारधारा है जो जंगलों को वनवासियों के अस्तित्व व जीविका से जोड़कर देखते है तथा जंगलों में वनवासियों के पारम्पारिक अधिकारों की मांग करते हैं। यह विचारधारा वास्तव में वनों में वनवासी या

मानवीय स्थिति को जंगली जैवविविधता के लिये घातक न मानकर सहजीवी मानती हैं। इसी विचारधारा की तर्ज पर वनों में रहने वाले वनवासी समुदायों ने अपने संसाधनों की मांग की हैं जिस पर वर्तमान न्यायिक व्यवस्था सजगता के साथ कार्य कर रही है।

संदर्भ

- Baviskar, A. (1995a). *The Political Use of Sociology for the Depressed in Maharashtra.* in '*Land Reforms in India: Performance and Challenges in Gujarat and Maharashtra.* (ed.). Shah, G. and Sha, D.C, New Delhi, Sage Publications.
- Carson, R. (1962). *Silent Spring(Special Anniversary Edition).* Houghton Mifflin, Boston.
- *Forest Conservation Act 1980* Ministry of Law and Justice, New Delhi.
- Gadgil, M. and Guha, R. (1992). *This Fissured Land: An Ecological History of India.,*Delhi, Oxford University Press.
- Guha, R (2000).*Environmentalism: A Global History.* Delhi, Oxford University Press.
- Guha and Martinez, A. (1997). *Varieties of Environmentalism, North and South*, Delhi, Oxford University Press.
- Gandhi, I.(1972). *Man and His World,*Speech at UN Conference of the Human Environment, Stockholm, 14. June. 1972, and Gandhi, I. (1983).*On Peoples and Problems*,Hodder and Stoughton, London 1982, 2nd Edition, 1983, pp. 60-67.
- Hardiman, D. (1984).*Adivasi Assertion in South Gujarat: The Devi Movement of 1922-23.* in Subaltern Studies III, (ed.) Guha, R., Delhi, Oxford University Press.
- Kothari, R. (1988). *State Against Democracy: In Search of Humane Governance* Delhi, Ajanta.
- Kothari, A. (2005). *"Bungle in the Jungle"* in *Seminar:552*, Augest.
- Singh, K. S. (1986). *Agrarian Dimentions of Tribal Movements.* in *Agrarian Struggles in India after Independence.* (ed.) Desai, A. R., New Delhi.
- Mahapatra, A. K. (1968). *Social Movements Among Tribal in Eastern India.* Sociologies, 18(1).
- Munshi, I. (2012). *The Adivasi Question: Issues of Land, Forest and Livelihood*, Economic and Political Weekly, Orient Blackswan, New Delhi, pp.1-3.
- Shah, G. (2009). *Social Movement in India: A Review of Literature.* Sage Publication, India. Pvt. Ltd.

वैयाकरण सम्प्रदाय में धातु एवं क्रिया का स्वरूप

डॉ० योगेन्द्र कुमार धामा

सह-आचार्य, संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बामनवास, सवाई माधोपुर, राजस्थान

शब्दों को व्याकृत करने की प्रक्रिया के साथ ही उसमें निहित मूल तत्त्व की खोज को बल मिला। जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन आचार्य इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी भी अर्थवान् शब्द के मूल में कोई न कोई 'मूलार्थ' या 'अर्थमूल' अवश्य निहित रहता है।[1] इस मूलार्थ या अर्थमूल को कालान्तर में धातु की संज्ञा दी गई और शब्द विवृत्ति के प्रसंग में फिर प्रकृति-प्रत्यय में प्रकृति को धातु के नाम से पुकारा गया। वैदिक शब्दों की निरुक्ति प्रक्रिया को इस अन्वेषण से एक निश्चित दिशा मिली। जिसका समग्रतः विकास हम निरुक्त में पाते हैं। इस धातु के आधार पर चलने वाली प्रक्रिया से कुछ ऐसे शब्दों का पृथकीकरण भी किया गया, जिनकी सिद्धि किसी धातु एवं प्रत्यय की निश्चित प्रक्रिया से नही की जा सकती थी। उन्हें उणादि नाम दिया गया।

धातुओं का प्राचीन स्वरूप वर्तमान में उपलब्ध 'धातु' जैसा व्यवस्थित नहीं था। स्वाभाविक है उस समय शब्दों से धातु की खोज की जा रही थी। शब्द के अर्थ से धातु का अर्थ निश्चय किया जाता रहा होगा। यद्यपि वेद में प्राप्त सहस्रशः धातु प्रयोग व्यवस्थित रूप में उपलब्ध थे, किन्तु उनके इस व्यवस्थित रूप तकभी अल्पज्ञ मानव एक प्रक्रिया के माध्यम से पहुंचा। शब्द से धातु निर्माण की प्रक्रिया आज भी संस्कृत व्याकरण से सर्वथा लुप्त नही है। नाम-धातु प्रक्रिया एवं कण्वादिगण पठित धातुएं इसका उदाहरण है। इस संदर्भ में डाक्टर चौनानी ने माना है कि प्राचीन काल में प्रतिपादिक से आख्यात बना लिए जाते थे तथा शब्द तिङ्गन्त रूप से युक्त 'धातु' पदवाच्य था तथा सुबन्त एवं तिङ्गन्त रूप से रहित शब्द 'निपात' पदवाच्य।[2] पल्सुले ने भी निरुक्त में आख्यात के रूप में पठित तिङ्गन्त रूपों के आधार पर तिङ्गन्त रूपों को ही धातु पदवाच्य माना है।[3] धातु की खोज की इस प्रक्रिया में धातु, प्रत्यय, विकरण ऐसी अनेक स्थितियां तो निश्चय ही व्याकरण की प्रौढ़तम स्थिति को दर्शाती है। प्राचीन परम्परा में इन सबका ज्यादा महत्व नही रहा होगा। जैसा कि हमें निरुक्त के इस वाक्य से आभासित होता है- 'अर्थनित्यः परिक्षेत न संस्कारमाद्रियेत'[4] साथ ही यह एक आश्चर्य जनकतथ्य है कि निरुक्त में प्रयुक्त सभी पद व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा निर्दुष्ट हैं।

धातु का स्वरूप-

वैयाकरणों के मतानुसार शब्द तीन प्रकार के होते हैं- धातुज, अधातुज और नामज। पचति, पठति आदि क्रिया शब्दों तथा पाचकपाठकआदि नाम शब्दों के भेद से धातुज शब्द दो प्रकार के हैं। वृक्षादि नाम, उपसर्ग, निपात और अव्यय अधातुज अर्थात् रूढ़ माने जाते हैं। तद्धित प्रत्ययान्त शब्द नामज होते हैं। समासयुक्त पद उक्त त्रिविध शब्दों के समुदाय मात्र होते हैं- अतः उनकी पृथक् गणना नहीं की जाती।

धातुज शब्दों के विश्लेषण के पूर्व विचारणीय है कि धातु किसे कहते हैं। वैयाकरण निकाय में धातु शब्द का लक्षण इस प्रकार किया जाता है- 'दधाति विविधं शब्दरूपं यः स धातुः' अर्थात् जो शब्दों के विविध रूपों को धारण करने वाला, निष्पादन करने वाला शब्दों में अन्तः प्रविष्ट सूक्ष्म रूप है, वह धातु कहलाता है। माधवीय धातुवृत्ति की भूमिका में धातु पद का विवेचन करते हुए स्वामी द्वारिकाप्रसाद शास्त्री ने लिखा है- 'दधाति-धारयति क्रियारूपमर्थं भ्वादिगण पाठमर्यादां च दधाति 'सर्वनाम धातुजमाह' इति सिद्धान्तान्निष्पादन द्वारा प्रातिपदिकानि पुष्णातीति वा धातुः'अर्थात् जो क्रिया रूप अर्थों को धारण करने वाले हैं, महर्षि पाणिनिकृत धातुपाठ पठित धातुओं की मर्यादा को अपने में धारण करता है एवं आचार्य यास्कके 'सर्वनाम धातुजमाह' इन सिद्धान्तानुसार सभी प्रातिपदिकों के स्वरूप को मूलरूप में धारण करता है, वह धातु कहलाता है।

'धातु' शब्द जुहोत्यादिगणस्थ 'डुधाञ् धारणपोषणयो:[5] धातु से औणादिकतुन् प्रत्ययान्त निष्पन्न होता है। निस्सन्देह वैयाकरणों द्वारा प्रदर्शित धातु लक्षण 'दधाति शब्द स्वरूपं य: स धातु' के अनुसार जो शब्दों के स्वरूप को धारण करता है, वही धातु है। अर्थात् वह मूलभूत शब्द जो मूल नाम विभक्तियों से युक्त होकर नाम का द्योतन करे, तिङ् प्रत्ययों से युक्त होकर क्रिया को प्रकाशित करे और किसी भी प्रकार प्रत्यय का सान्निध्य प्राप्त न होने पर जो स्वार्थ मात्र का द्योतकहो वह धातु है।

महर्षि पतञ्जलि ने 'क्रियावचनो धातु:'[6] तथा 'भाववचनो धातु:'[7] इस प्रकार 'धातु' शब्द के दो लक्षण किये हैं। क्योंकि यदि केवल 'क्रियावचनो धातु:' यह लक्षण ही किया जाता, तो धातु का यह लक्षण अस्ति, भवति, विद्यते आदि में घटित नहीं होता। अत: उन्होंने 'भाववचनो धातु:' यह लक्षण भी किया। इस लक्षण में अस्ति, भवति, विद्यते आदि की समस्या का स्वत: ही समाधान हो जाता है, क्योंकि ये सभी भाववचन अर्थात् होना अर्थ का बोध कराती हैं -

भाष्यकारानुसार व्यापार तीन प्रकार का होता है।

1. व्यापार विशेष
2. सपरिस्पन्द व्यापार सामान्य
3. अपरिस्पन्द व्यापार सामान्य

पचति आदि क्रिया पद व्यापार विशेष के बोधकहैं। करोति सपरिस्पन्द व्यापार सामान्य का बोधकहै। अस्ति, भवति, विद्यते आदि अपरिस्पन्द व्यापार सामान्य का बोध कराते हैं 'क्रियावचनो धातु:' यह लक्षण सपरिस्पन्द व्यापार सामान्य को ध्यान में रख कर किया गया है। 'भाववचनो धातु:' यह सपरिस्पन्द एवं अपरिस्पन्द व्यापार सामान्य, इन दोनों ही दृष्टियों से ठीकहै।

निरुक्त में 'धातु'शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है-'धातुर्दधातेरिति'।[8] अर्थात् जो अर्थों को धारण करे उसे धातु कहते हैं। अन्य गोपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों में भी पाणिनि निर्दिष्ट क्रियावाची शब्द के लिए ही 'धातु' शब्द का व्यवहार होने से उसकी प्राचीनता स्पष्ट है। अनेकअर्थों का जो वाचकहो उसे 'धातु' कहते हैं, इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ की भ्वादि धातुओं से संगति होने से उसे अन्वर्थ माना जाता है।

व्याकरण के क्षेत्र में शब्दों की प्रकृति तथा प्रत्ययादि का अध्ययन किया जाता है। व्याकरण धातु और प्रत्ययादि का प्रत्ययायक है। अत: व्याकरण में धातु की प्रधानता स्वयंसिद्ध है।

नित्य पुल्लिंग धातु शब्द के कोशों के अनुसार अनेकअर्थ हैं। जैसे- मूलभूत तत्व, सामग्री या मूल भाग। विज्ञान के क्षेत्र में यह शब्द सोना-चांदी आदि खनिज पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे-'त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागै: शिलायाम्'[9] इस पंक्ति में धातु से अभिप्राय किसी खनिज पदार्थ से है। आयुर्वेद में यह शब्द रस, रक्त, मांस आदि शरीरस्थ पदार्थों की अभिव्यक्ति करता है। दार्शनिकजगत् में जहाँ धातु शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है, वहाँ इसके पंचमहाभूत इन्द्रिय, जीव, परमात्मा आदि अर्थ मिलते हैं। संस्कृत व्याकरणानुसार यद्यपि इसके अनेकनिर्वचनों द्वारा इसका अर्थ स्पष्ट किया गया है तथापि पाणिनीय व्याकरण में यह शब्द पारिभाषिकरूप में प्रयुक्त हुआ है।

'तत्राधुनिक: संकेत: परिभाषा: तया चार्थं बोधकं पदं पारिभाषिकम्। यथा शास्त्रकारादिसंकेतित नदी वृद्ध्यादि पदम। तथा च क्रियावाचकत्वे सति भ्वादिगणपतितत्वे सति पाणिनीयसंकेतसम्बन्धेन धातुपदवत्वमेव धातुत्वम्। यथा गोपथे 'को धातु: किं प्रातिपदिकं क: प्रत्यय:'इति।

जिस प्रकार एकधागे में अनुस्यूत अनेकमणकों का समूह माला कहलाता है। उसी प्रकार अनेकअवान्तर क्रियाओं का काल्पनिकसमूह धातु कहलाता है। जिस प्रकार वेदान्त में सृष्टि का मूलभूत तत्व ब्रह्म को स्वीकार किया गया है, उसी प्रकार व्याकरण में शब्दों का आधारभूत मूल तत्व धातु को स्वीकार किया गया है।

अत: सार रूप में धातु के विषय में यह कहा जा सकता है कि आवश्यकता अनुसार ब्रह्म के समान विविध रूपों में परिणत होने वाला मूल शब्द ही धातु है।

धातुओं काअकर्मक, सकर्मकस्वरूप-

आचार्य नागेश ने अपने ग्रंथ परमलघुमंजुषा में विस्तार से इसका वर्णन किया है। उनके अनुसार यदि धातु को मीमांसकों की तरह केवल फल का वाचकमान लिया जाए, तो धातुओं की सकर्मकऔर अकर्मकावस्था नहीं बन सकेगी। जैसे- 'डुकृञ् करणे'

धातु को यदि केवल फलवाची माना जाए तो उसका अर्थ यत्न करना बन जाएगा और 'यती प्रयत्ने' धातु की तरह कृ धातु भी अकर्मकहो जाएगी। परन्तु - धातु का केवल फलस्थानीय यत्न करना अर्थ भी मानना आवश्यकहै। अतः यदि फल और व्यापार दोनों को धातुवाच्य न माना जाए तो धातुओं की सकर्मकऔर अकर्मकव्यवस्था नही हो पाएगी। क्योंकि 'फलसमानाधिकरण व्यापार वाचकत्वमकर्मकत्वम्'[10] ऐसा अकर्मकका लक्षण है। अर्थात् जिन धातुओं के फल और व्यापार एकही अधिकरण में रहते हों, वे अकर्मकहोती हैं। यथा- 'देवदत्तः शेते' यहाँ पर निद्रारूपी फल और उसके लिए किया गया लेटने का व्यापार दोनों एक ही अधिवकरण (देवदत्त) में हैं। उसी प्रकार 'फलव्यधिकरण व्यापार वाचकत्वं सकर्मकत्वम्'[11] ऐसा सकर्मकलक्षण है। अर्थात् जिन धातुओं के फल और व्यापार भिन्न-भिन्न अधिकरणों में रहते हैं वे सकर्मक कहलाती है। जैसे- 'देवदत्तः तण्डुलान् पचति' इस वाक्य में धात्वर्थ फल विक्लिप्ति तण्डुलों में है, और व्यापार के भिन्न-भिन्न अधिकरणों में रहने के कारण यह सकर्मक है।

क्रिया स्वरूप निर्धारण

अब आख्यात अर्थात् क्रिया क्या है ? इस प्रश्न पर विचार करते हैं। आचार्य यास्कभाव प्रधान को आख्यात कहते हैं।

'भावप्रधानमाख्यातं सत्वप्रधानानि नामानि'।[12]

इस लक्षण के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ने दो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। प्रथम व्याख्या के अनुसार भाव क्रिया से भिन्न है। क्रिया के द्वारा भाव की उत्पत्ति होती है। अर्थात् यदि क्रिया व्यापार (स्वरूप) है, तो भाव उसका फल है। दूसरी व्याख्या के अनुसार भाव से तात्पर्य व्यापार और फल दोनों ही हैं। भाव से अभिप्राय 'धातु' से है। क्रिया पद में प्रकृत्यर्थ की प्रधानता और प्रत्ययार्थ की विशेषता होती है।

नागेश के अनुसार क्रिया शब्द 'क्रियते अनेन' इस व्युत्पत्ति के अनुसार व्यापार अर्थ का बोधकहै, क्योंकि व्यापार से ही क्रिया की जाती है। 'क्रियते इयम् इति क्रिया' इस व्युत्पत्ति के अनुसार क्रिया पद का अर्थ फल होता है। क्योंकि व्यापार द्वारा फल की ही सिद्धि की जाती है। इसलिए यास्कद्वारा प्रस्तुत क्रिया (भाव) शब्द व्यापार और फल दोनों अर्थों का बोधक है।

वस्तुतः क्रिया अर्थात् व्यापार ही भाव है, यही आचार्य यास्ककी अपनी मान्यता है। तभी 'पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्टे'[13] आचार्य यास्कका यह कथन संगत होता है। क्योंकि पूर्वापरीभाव व्यापार समूह में ही होता है, फल में नहीं।

आचार्य पाणिनि ने साक्षात् रूप में क्रिया लक्षण कहीं नहीं किया है। उन्होंने क्रिया रूपों को तिङन्त पद माना है। तिङ् प्रत्यय धातु से होते हैं, और धातु का अर्थ भाव (क्रिया) है, यह बात पाणिनि के भावार्थकप्रत्ययों के विधान से सिद्ध होती है। उन्होंने स्थान-स्थान पर भाव और क्रिया शब्द का ही प्रयोग प्रायः धात्वर्थ के लिए किया है।[14] इस प्रकार निष्कर्षतः पाणिनि भाववाचकऔर व्यापार वाचकको ही क्रिया पद मानते हैं।

आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में 'धातु' के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए दो लक्षणों को प्रस्तुत किया है- 'क्रियावचनो धातुः' तथा 'भाववचनो धातुः'। इनकी व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि सामान्यतः सभी धातुओं में करना अर्थ विद्यमान रहता है। अतः 'क्रियावचनो धातुः'धातु का यह लक्षण किया जा सकता है। क्योंकि किं करोति? पचति, किं करिष्यति? पक्ष्यति इत्यादि प्रयोगों में पच एवं कृ धातु का सामानाधिकरण्य है। परन्तु अस्ति, भवति, विद्यते आदि प्रयोग में करोति पद के साथ उनका सामानाधिकरण्य न होने से यह लक्षण घटित नहीं होता है। अतः 'भाववचनो धातुः' धातु का यह लक्षण करना भी उपयुक्त है। इस लक्षण से अस्ति, भवति, विद्यते आदि की समस्या का स्वतः समाधान हो जाता है। क्योंकि ये सभी भाववचन अर्थात् होना अर्थ का बोध कराती हैं।

इन दोनों लक्षणों की आवश्यकता को महाभाष्य के (उद्योत) टीकाकार ने स्पष्ट किया है। उनके अभिप्रायानुसार संस्कृत की धातुओं से दो प्रकार का व्यापार प्रकट होता है। एकसपरिस्पन्द और दूसरा अपरिस्पन्द। सपरिस्पन्द ऐसे व्यापार को कहते है जिसमें शरीर की चेष्टा होती है। अपरिस्पन्द में चेष्टा का होना आवश्यकनहीं है।[15] महाभाष्यकार ने 'क्रियावचनो धातुः' यह लक्षण सपरिस्पन्द व्यापार सामान्य को ध्यान में रखकर किया है, तथा 'भाववचनो धातुः' यह लक्षण सपरिस्पन्द एवं अपरिस्पन्द व्यापार सामान्य, इन दोनों को ही ध्यान में रखकर किया है। इस प्रकार आचार्य पतंजलि के अनुसार क्रिया और भाव ये दोनों ही शब्द व्यापार सामान्य के वाचक हैं।

महाभाष्यकार ने क्रिया को अप्रत्यक्ष माना है, क्योंकि वह समूह रूप में नही दिखाई जा सकती।[16] भर्तृहरि ने इस अप्रत्यक्षता को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस प्रकार गौः पद ग्, औ और विसर्ग, इन तीनों वर्णों के क्षणस्थायी होने पर भी चरमप्रत्यक्ष काल में गौः पद का बोध कराता है, उसी प्रकार क्रिया के अनेकव्यापार अखण्ड रूप में भासित होते हैं।[17]

क्रिया की अखण्डता एवं एकत्व को स्थापित करते हुए महाभाष्यकार ने कहा है कि पचति, पचतः इत्यादि पदों से क्रिया के एकत्व, द्वित्व और बहुत्व का बोध नहीं होता, अपितु कर्ता की संख्या मात्र का ही बोध होता है। एक, दो अथवा अधिककर्ताओं द्वारा की गई क्रिया एकही प्रकार की होती है। इसी प्रकार पचति, पचसि, पचामि आदि पदों से क्रिया के पुरुष आदि का बोध नहीं होता है। क्योंकि क्रिया में पुरुष भेद भी नहीं है। इनसे तो कर्तृगत पुरुष भेद का ही बोध होता है।[18]

कुछ आचार्यों के मत में क्रिया से अधिकविशेष का बोध नहीं होता। वह जाति अर्थात् सामान्य की बोधकहोती है। जिस प्रकार गौ शब्द कहने पर किसी विशेष गाय का बोध न होकर गौ सामान्य का बोध होता है। उसी प्रकार पच् से किसी तण्डुल विशेष के पाकका बोध न होकर पाकसामान्य का बोध होता है। इसी विषय को स्पष्ट करते हुए भर्तृहरि ने वाक्यदीय के तृतीय काण्ड के क्रियासमुद्देश नामकप्रकरण में कहा है–

जातिमन्ये क्रियामाहुनेकव्यक्तिवर्तिनीम्।

असाध्या व्यक्तिरूपेण ससाध्येवोपलभ्यते।।[19]

इस प्रकार ऊपर क्रिया के जिस स्वरूप का विवेचन किया गया है, उसके बोधकपदों को संस्कृत के वैयाकरणों ने आख्यात कहा है। आख्यात पद धातु और प्रत्यय का समूह होता है।

संदर्भ

1. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास – पृ. 400
2. धातुपाठों में अर्थ निर्देश – पृ. 4
3. पल्सुले – द संस्कृत धातुपाठाज, ए क्रिटिकल स्टडी – पृ. 10
4. निरुक्त – 2.1
5. पाणिनीय धातुपाठ जुहोत्यादिगण – 10 (1092)
6. महाभाष्य 1.3.1
7. महाभाष्य 1.3.1
8. निरुक्त 1.6
9. मेघदूत – 105
10. परम लघु मंजुषा – नागेश धात्वर्थविचार
11. परम लघु मंजुषा – नागेश धात्वर्थविचार
12. निरुक्त 1.1.1
13. निरुक्त 1.1.1
14. पाणिनीय अष्टाध्यायी 2.3.15, 2.3.14, 3.4.2
15. महाभाष्य – उद्योत – 1.3.1
16. महाभाष्य 1.3.1
17. वाक्य पदीय – तृतीय काण्ड क्रियासमुद्देश 7, 8
18. महाभाष्य 1.2.64
19. वाक्य पदीय – तृतीय काण्ड क्रियासमुद्देश – 21

साठोत्तरी कविताका उद्‌भव एवं उसका प्रारम्भिक स्वरूप

डॉ० जया द्विवेदी

एसोसिएटप्रोफेसर (हिंदी विभाग), के. बी. पी. जी. कॉलेज, मिर्जापुर, (उत्तर प्रदेश) भारत

सन् 1960 ई. के बाद की पीढ़ी द्वारा रचित काव्य को हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी कविता के नाम से जाना जाता है, जिसमें विद्रोह एवं अराजकता का स्वर प्रधान था।साथ ही साथ सहजता एवं जनवादी चेतना की समानान्तर काव्य धारा भी साहित्य-क्षेत्र में प्रवहमान रही थी, जो आगे चलकर प्रधान हो गयी।साठोत्तरी हिन्दी कविता की मूल प्रवृत्तियाँ इस काल के युवा कवियों के काव्य में उनके निजी स्वर अपने मूल प्रवृत्तियों के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। इन युवा कवियों ने इसी स्वर के बल पर परम्परा की रूढ़ अभिव्यक्तियों को तोड़ा है और समकालीन समाज, राजनीति तथा व्यवस्था से मोहभंग की स्थिति को उजागर किया है।

सामान्य दृष्टि से साठोत्तरी शब्द की व्युत्पत्ति 'साठ +उत्तर + ई' से हुई है जिसका अर्थ है - सन् 1960 के बाद कविता। जब हम साठोत्तरी हिंदी कविता के तात्पर्य को जानने की कोशिश करते हैं तो अनेक परिस्थितियाँ एवं कारण मिलते हैं उनसे कुछ स्पष्ट होता है। युगीन परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर सदैव परिलक्षित होता रहा है। आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल की परिस्थितियां अलग थी। उन परिस्थितियों में लिखे गए साहित्य की विशेषताएं एवं प्रवृत्तियां भी भिन्न-भिन्न होती है। अत: यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि समय के साथ-साथ साहित्य में भी कुछ विशेषताएंभी समयानुसार परिवर्तित होने लगती है। आधुनिक युग की कविता में अपने युग/आंदोलनों की प्रवृत्तियां उस समय की परिस्थितियों एवं विशेषताओं को व्यक्त करती है।सन् 1960 के आते-आते परिस्थितियाँ बहुत तेजी से परिवर्तित होती है। परिणामत: प्रबुद्ध चिंतक, कवि एवं आलोचक वर्ग इस बात को स्वीकार करने लगते हैं कि साठ के बाद की कविता को 'साठोत्तरी कविता' नाम दिया जाएँ। इस प्रकार सन् 1960 के उपरांत साहित्यिक परिस्थितियां पूर्णत: परिवर्तित हो गई थी। डॉ. मनमोहन सहगलइस ओर इशारा करते है - "प्रस्तुत विषय पर कुछ भी कहने से पूर्व मैं अपनी अवधारणा स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं कालावधि से बाँधकर किसी भी साहित्य विधा को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं।साठोत्तरी या पैंसठोत्तरी ऐसे शब्द है जो साहित्य अलौकिकता, स्थायित्व एवं युग-युगांतर के लिए घातक है, इसलिए मैं उपन्यास अथवा किसी अन्य साहित्यिक संकोच में बंद नहीं करूंगा। प्रदत्त विषय किसी विशेष युग चेतना से बंधा है, बस इतना समझ लेना ही पर्याप्त है।"[1]

सन1960 के आस-पासमानवतावादी कविता अस्तित्व में आना प्रारम्भ होने लगती है और नई कविता अपने अंतिम अवस्था की अग्रसर हो रही थी।साठोत्तरी कविता जीवन की खीझ, असन्तोष, निराशा, कुंठाऔर कड़वाहट का स्वर है। यह समाज की मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति मोहभंग प्रकट करती है। साठोत्तरी कविता जीवन के उन अनुभूतियों को स्वर देती है जो जीवन की वास्तविकताओं से मन में उभरती है। "सन् साठ के आसपास नयी कविता की धारा अपने से कुछ अलग होती दिखने लगी। साठ के बाद जो नया मोड़ लक्षित होता है वह एकाएक दिखनेवाली कोई नवीन वस्तु नहीं, वरन् नयी कविता से ही फूटा हुआ है। साठ के बाद की कविता में असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर बहुत साफ तौर पर उभरा है। नयी कविता में भी असंतोष और अस्वीकृति का स्वर विद्यमान है, किन्तु साठ के बाद इस स्वर ने और तीखे व्यंग्य और विद्रोह का रूप धारण कर लिया है, जीवन की टूटती मूर्तियों के बहुत करीब जाकर उनकी टूटने की तल्खी, व्यथा और उसमें से फूटती अस्वीकृति की उग्रता को पहचाना है।"[2] इन्हीं दिनों हिन्दी नवलेखन की समस्याओं को लेकर समालोचकों ने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए। सन 1958 में नरेश मेहता

एवं श्रीकांत वर्मा के सम्पादन में 'कृति' जिसका प्रकाशन 'नवलेखन की अभिनय हिन्दी मासिक' पत्रिका ने किया। यह अज्ञेय के भी विरुद्ध थी और प्रगतिवादी विचारकों के भी।'कृति' की दृष्टि आधुनिक संचेतना और नई प्रवृत्ति के पक्षधर थी।सन1958 में ही रामविलास शर्मा ने 'कृति' के द्वारा समर्थित विचारों के दावों के संबंध में कहा – "इस तरह'कृति' प्रगतिवाद व प्रगतिवाद और नयी कविता से जोड़ा जो मुक्ति की सूचना जातीयता और राष्ट्रीयता की चेतना, मृत्यु पर मनुष्य की और दासता पर स्वाधीनता की विजय से स्फूर्त अनुभव की कविता थी।"

साठ के दशक में कविता-आंदोलन बरसाती बाढ़ की तरह आये, जिनका मुख्य स्वर व्यवस्था-विरोधी आंदोलनों के साथ-साथ व्यवस्था-समर्थक आंदोलनों के भी थे। लेकिन इन सभी आंदोलनों में सुव्यवस्थित चिंतन का बहुतअभाव था, जिसके कारण प्राय: ये सभी आंदोलन क्षणजीवी सिद्ध हुए। साठोत्तरी कविता के मुख्य आंदोलनों का सामान्य परिचय द्रष्टव्य है।[3] बहुत से आंदोलन और नारे तो समय के साथ-साथ हवा की गर्द में उड़ गये किंतु कुछ काव्य-आंदोलन विकास के पथ पर अग्रसर रहें। वस्तुत: इन आंदोलनों को पोषित करने वाली कविताएं काफी हद तक एक-दूसरे से मिलती-जुलती थी तथा कभी-कभी तो एक ही कवि कई आंदोलनों का अनुगामी रहा। साहित्य-रचना का यह दौर आंदोलनों की अराजक बाढ़ का समय रहा। "नयी कविता के उपरान्त हिन्दी काव्य के क्षेत्र में थोड़ी सी ही अवधि में इतने अधिक नारे सुनाई दिये, इतने अधिक आन्दोलन आये कि विश्व के किसी अन्य साहित्य में इतनी कम अवधि में इतने अधिक नारे और आंदोलन कभी नहीं उत्पन्न हुए।"[4]

1. सनातन सूर्योदयी कविता (प्रवर्तक – वीरेंद्र कुमार जैन, मार्च 1962 के श्भारतीश के अंक में वीरेंद्र कुमार जैन ने 'सनातन सूर्योदयी' नयी कविता की घोषणा की)
2. अपरंपरावादी कविता
3. अन्यथावादी कविता
4. सीमांत कविता
5. युयुत्सावादी कविता (प्रवर्तक शलभश्रीराम सिंह। 'युयुत्सा' का शाब्दिक अर्थ – संघर्ष करने की इच्छा[5], युयुत्सावादी कविता का संबंध श्युयुत्साश नामक पत्रिका से रहा है।अप्रैल 1965 की 'रूपाम्बरा' में 'प्रारंभ' के अंतर्गत स्वदेश भारतीय द्वारा 'सबका एक मात्र कारण युयुत्सा' की घोषणा करते हुए शलभ श्रीराम सिंह का यह उद्धरण दिया गया था)
6. अस्वीकृत कविता (प्रवर्तक – श्रीराम शुक्ल, 'उत्कर्ष' पत्रिका के जुलाई 1969 के अंक में श्रीराम शुक्ल ने 'अस्वीकृत कविता' का नारा बुलंद किया)
7. अकविता (प्रवर्तक –जगदीश चतुर्वेदी, 'अकविता' का सूत्रधार डॉ० श्याम परमार को माना गया है, अकविता पत्रिका का संपादन 1965 में इन्होंने ही किया था। वस्तुत: 'अकविता' पत्रिका के तीन संपादक थे- जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार और रवींद्रनाथ त्यागी। जगदीश चतुर्वेदी ने अकविता के लिए 'एंटीपोयट्री' शब्द का प्रयोग किया है)
8. सकविता
9. अभिनव कविता (सन 1963 ई.में 'प्रारम्भ' पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसके संपादक जगदीश चतुर्वेदी थे।इसी से अभिनव कविता का प्रारम्भ माना जाता है। इसमें कुल 11 कवि शामिल थे)
10. अधुनातन कविता
11. नूतन कविता
12. नाटकीय कविता
13. विचार कविता – (जून 1973 ई. में महीप सिंह एवं डॉ. नरेंद्र मोहन द्वारा संचेतना पत्रिका के द्वारा 'विचार कविता'आंदोलनका प्रवर्तन किया गया)
14. एंटी कविता
15. निर्दिशायामी कविता (प्रवर्तक ख्रसत्यदेव राजहंस)
16. लिंग्वादलमोतवादी कविता
17. एब्सर्ड कविता

18. गीत कविता
19. नवप्रगतिवादी कविता (कविता नामक पत्रिका के (1966) अंक में नवल किशोर ने नवप्रगतिशील काव्य की अवधारणा पर प्रकाश डाला है)
20. सांप्रतिक कविता (प्रवर्तक - श्याम नारायण)
21. बीट कविता/भूखी पीढ़ी काव्य (इंग्लैंड की आक्रोश पीढ़ी के समानान्तर अमेरिका में 1952 में 'बीटजनरेशन' की स्थापना जैककैरुआक एवं एलेनगिन्सबर्गने की है। 'बीट साहित्य' की सर्वाधिक प्रचलित कृतियाँ हैं एलेनगिन्सबर्ग की ष्हाउलष (1956), विलियमबरोज. की 'नेकेडलन्च' (1959) व जेककेरुआक की 'ऑन द रोड' (1957)। 'हाउल' व 'नेकेडलन्च' में अश्लीलता को केन्द्र बिंदु बनाया गया था। बीट का प्रभाव हिन्दी में मुख्यतः बांग्ला की भूखी-पीढ़ी के माध्यम से आया। भूखी पीढ़ी काव्य में भ्रष्ट यौनाचरण, कुत्सित, वीभत्स क्रियाकलाप, नग्नता, अश्लीलता का स्वर प्रमुखता से उभरा है। हिन्दी में बीट पीढ़ी के प्रवर्तक राजकमल चौधरी है।
22. ठोस कविता
23. विद्रोही कविता
24. क्षुत्कातर कविता
25. समकालीन कविता (सन 1976 ई. विशंभरनाथ उपाध्याय की रचना 'समकालीन कविता की भूमिका' से इसका प्रवर्तन होता है, इसे विचार कविता का पर्याय भी कहा गया है)
26. समाहारात्मक कविता
27. कबीरपंथी कविता
28. उत्कविता
29. विकविता
30. कैप्सूल या सूत्र कविता (प्रवर्तक - ओंकारनाथ त्रिपाठी, 2-3 शब्दों वाली, 3-3 पंक्तियों के लघु कलेवर की कविता को कैप्सूल या सूत्र कविता कहते है। गागर में सागर भरने वाली कविता 'कैप्सूल कविता' को बिंबवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद का समन्वय कहा गया। इसे आगे आने वाली कल की कविता भी कहा जाता है)
31. बोध कविता
32. द्वीपांतर कविता
33. अति कविता
34. टटकी कविता (प्रवर्तक - रामवचन राय)
35. ताजी कविता ('ताजी कविता' के प्रवर्तक लक्ष्मीकांत वर्मा है)
36. प्रतिबद्ध कविता/ वाम कविता (प्रवर्तक - डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव)
37. अगली कविता
38. शुद्ध कविता
39. निषेध कविता (जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में 'निषेध' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसी से निषेध कविता आंदोलन का प्रारम्भ माना जाता है)
40. नंगी कविता
41. स्वस्थ कविता
42. आज की कविता (प्रवर्तक - हरीश भादाणी। युयुत्सा, रूपांबरा, कविता सरीखे महत्वपूर्ण पत्रिकाओं के अतिरिक्त हरीश भादाणी के संपादकत्व में प्रकाशित 'वातायन' पत्रिका ने भी संघर्ष मूलक काव्यन्दोलन को गति प्रदान की)
43. गलत कविता
44. सही कविता

45. प्राप्त कविता
46. सहज कविता (सहज कविता का सूत्रधार डॉ० रवीन्द्रभ्रमर को माना गया है। मार्च 1967 में सहज कविता की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई)
47. नवगीत (नवगीत का नाम फरवरी 1958 में मुजफ्फरपुर से प्रकाशित 'गीतांगिनी' नामक पत्रिका में दिखाई दिया। 'नवगीत' का प्रथम समवेत संकलन 'कविता' 1964 में ओम प्रभाकर के संपादन में प्रकाशित हुआ)
48. अगीत (अगीत का कवि कोरी कल्पना या काल्पनिक बिंबों और प्रतिकों को महत्व न देकर अपने व्यक्तित्व से समर्पित परिवेश में अपनी प्रतिक्रियाओं सहित जीवन यापन करते हुए जीवन का फिर से संस्कार करना पसंद करता है[6])
49. एं6टी गीत
50. प्रतिश्रुत पीढ़ी (सन 1968 ई. में डॉ. रणजीत के संपादन में 8 कवियों की रचनाएँ 'प्रतिश्रुत पीढ़ी' शीर्षक से प्रकाशित हुई। प्रतिश्रुत पीढ़ी के कवियों ने प्रयोगवाद कविता एवं अकविता को क्रमशः अस्वस्थ एवं कुत्सित कविताकरार दिया एवं नवप्रगतिशील-काव्यन्दोलन को प्रबल रूप में आगे बढ़ाते हुए प्रतिश्रुत की व्याख्या की। इसमें 'मानवता वाद' का स्वर प्रमुख है।
51. जनवादी कविता

सन् 1962 में भारत-चीन युद्ध में, जब भारत की शर्मनाक हार हुई तो हमारे साहित्यकारों में भी विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी।परिणामस्वरूप भारतीय नेताओं का मजाक उड़ना, भारतीय परिवेश, जनतंत्र एवं लोकतंत्र जैसे शब्दों का उपहास कविता का सामान्य विषय हो गया था। डॉ. कृष्णदत्तपालीवाल ने साठोत्तरी कविता को समकालीन कविता कहा है तथा इसे विभिन्न काव्य-आंदोलनों का लेखा-जोखा बताया है। साठोत्तरी कविता बहुत तीव्र गति से कवि के परिवर्तित मिजाज का एहसास कराती रहती है। इसी परिवर्तन से ही सहज कविता, ठोस कविता, अकविता, भूखी दिगंबर पीढ़ी की कविता, संत्रास कविता, पोस्टर कविता,, जागो जंगी कविता आदि काव्य आंदोलनों की सूचना इस कालावधि में दी है, इस दौर की कविता ने पाठक को चौंकाकर खबरदार किया है, सार्वजनिकता, राजनीतिक दर्शन, शिल्पगत नवीन अन्वेषण तथा जीवन के नवीन मुहावरे को हठधर्मी-निश्चय से प्रतिष्ठित करना चाहा। साठोत्तरी कविता ने नई पीढ़ी के तीव्र विद्रोह एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति के स्वर की प्रधानता को लक्ष्य करके कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा है - "नई कविता की पीढ़ी और नयी युवा साठोत्तरी कविता में अचानक टकराहट के साथ एक ताकतवर धूल भय बवंडर उठा, उसने उसकी मिट्टी उठाई कि देखने वालों कि आँखों में रेत कि किरकिराहट और आँख मसलने में व्याकुलता का भाव अधिक था। कई युवा पीढ़ी का विद्रोह इतना तेज था कि पुराना आसमान नये सागर में डूब गया, रातों रात को कविभूमि ऊपरी सतह से लेकर उभरी उस पर रगड़ के निशान स्पष्ट देखने लगे।" साठोत्तरी हिन्दी साहित्य का प्रथम दशक विशेषतः आधुनिकतावादकि विचारधारा से प्रभावित था । इस संदर्भ में ध्यान रहें कि आधुनिक और आधुनिकता में अन्तर है। 'आधुनिक' 'मध्यकाल' से अलगाव की सूचना देता है। 'आधुनिक' वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगीकरण का एक परिणाम है जबकि 'आधुनिकता' औद्योगीकरण की अतिशयता, महानगरीय एकरसता, दो महायुद्धों की विभीषिका का प्रतिफल है। इस संबंध में डॉ० बच्चन सिंह के वक्तव्य दृष्टव्य है "वस्तुतः नवीन ज्ञान-विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न विषम मानवीय स्थितियों के नये, गैर-रोमांटिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम 'आधुनिकता' है।"

छठे दशक में कांग्रेस के दीर्घकालीन शासन में किए गए वादों के खोखलेपन, वक्तव्यों के कुहासे, पंचवर्षीय योजनाओं का मोह,चीन से पराजय, दल-बदल की राजनीति, नोट-वोट की राजनीति, भ्रष्टाचार, दुराचार आदि के संबंध में यह कहना होगा कि "साठोत्तरी कवि के लिए राजनीति जीवंत सच्चाई रही है, लेकिन इस राजनीति में उसे राहत देने कि अपेक्षा आहत ही अधिक किया है।" देश आर्थिक समस्याओं एवं राजनीतिज्ञों द्वारा किए गए थे वादों की चपेट में आकर टूट चुका था। महँगाई व युद्धों की भीषणता ने जन-सामान्य के अस्तित्व को खतरे में डालकर उनको भयभीत कर दिया। इस भययुक्त वातावरण में जिस प्रकार का साहित्य रचा जाएगा आप उसका अन्दाजा लगा सकते है। कवियों ने छंद, लय आदि को तवज्जो न देते हुए सपाटबयानी से अपनी बात को कहा। जिससे यह कविता गद्यात्मक अधिक है। अपनी बात को समझाने के लिए बिम्बों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया गया है। राजकमल चौधरी के 'मुक्ति प्रसंग' में सपाटबयानी का एक उदाहरण देखिए -

''देह की राजनीति से विकट सन्निकट
और कोई राजनीति नहीं है।
संजय
अन्न और अफीम की राजनीति यहीं से शुरू होती है
जन्म लेता है यही मृग मारीच।''[8]

छठे दशक के परिवेश ने विद्रोह के लिए उर्वर भूमि तैयारकिया, किन्तु उससे जिस प्रकार का विद्रोह पनपना चाहिए था, वह न होकर एक अन्य प्रकार का बीज अंकुरित हुआ। सन् 1964 में भूखी पीढ़ी के कुछ कवियों को अश्लीलता के आरोप में गिरफ्तार किया गया। इस आंदोलन ने हिन्दी कवियों को एक विशेष प्रकार की तीखी व्यंग्यता प्रदान की। उस व्यंग्य में खुलापन के साथ-साथ मारक प्रभाव भी उत्पन्न करता है-

अकाल पीड़ित
नक्शे की व्यवस्था करता
मंत्री खिलखिलाता, कर बढ़ता
भत्ते बनाता
पूंछ हिलाता
आ रहा
मतदान की पेटी के पास

साठोत्तरी कविता की प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृतियाँ-साठोत्तरी कविता के कथानक को दो भिन्न-भिन्न धाराओं में विभाजित करके देखा जा सकता है-मोहभंग तथा विद्रोह।

अहं की प्रमुखता - कविता के स्वर में वैयक्तिकता का समावेश वस्तुतः छायावादी युग से प्रारम्भ हो गया था। काल क्रमानुसार उसकी अभिव्यक्ति के प्रारूप में परिवर्तन होते गये। प्रगतिवादी युग में अहं का समाजीकरण हो चुका था, प्रयोगवादी युग में उसका स्वरूप अहं मान्यता का हो गया और उसकी अभिव्यक्ति वस्तुतः विस्फोटक रही। नयी कविता काल में यह सामाजिकता से संबद्ध हो गया और उसकी अभिव्यक्ति में कुछ गुनगुनापन आ गया। इसके उपरांत साठोत्तरी युगके कवियों ने अपने आपको प्रायः आत्मरति एवं आत्मश्लाघा के घेरे में कैद कर लिया। कवि के जीवन संघर्ष से दूर रहकर अपनी दुनिया में मस्तमौला दिखाई पड़ता है -

इस अत्यंत व्यवस्थित मन में
कोई भी उलझाव नहीं है
कोई जटिल समस्या घेरे हुए नहीं
कोई दिग्भ्रम का भाव नहीं[9]

यथार्थ अनुभूति की प्रवृत्ति - इसको ठोस सार्वजनिकता भी कहा गया है। इसके साथ प्रायः द्वन्द्वात्मक स्वरूप के दर्शन हो जाते है। इस प्रवृत्ति को लेकर चलने वाली कविताओं की संख्या काफी अधिक है तथा इनके संदर्भों में बहुत अधिक वैविध्य है -

ख्याल जो अभी
बना नहीं है
मन जो अभी
मना नहीं है
दुख जो अभी
घना नहीं है
शब्दों में कहना है

और कहना है अभी
शुरू किए देता हूँ
तमाम जोखिमें ली हैं,
एक और
जोखिम लेता हूं।[10] *(कविता - अपरिहार्य)*

चीन आक्रमण के प्रतिरोध में जो सैनिक युद्ध लड़ने गये थे, उनको दी गयी सामग्री प्राय: दोयम दर्जे की या अपर्याप्त थी। कहते तो ये भी है कि बंदूक की गोलियों में बारूद की जगह बालू भरी थी। हिमालय के अत्यधिक ठंडे क्षेत्र में युद्ध के लिए जाने वाले सिपाही नंगे पांव थे। ठंडे परिवेश को झेलने, सहने, नकारने, किलकारने, सम्हालने और फटकारने की विभिन्न सीमाएँ इन कवियों में रही।बाह्य यथार्थ की प्रामाणिक अनुभूति उस समय के कवियों की कविताओं में प्राय: दिखाई देती थी -

खतरा होता है उन तिजोरियों की
संकट के समय जो मुंह बन्द किये रहतीहैं (रामदरस मिश्र)

साठोत्तरीकवियों ने यथार्थ की जो अनुभूति की है, वस्तुत: बाह्य यथार्थ की अनुभूति को अनेक कवियों ने इतना घिसा की उसका रंग ही उड़ गया। परिवेश के खोखलेपन को उजागर करने के लिए जिन विद्रोही और अकवितावादियों ने मुखौटे लगाये थे वो भूत जल्दी ही उतरते गए। इन्होंने परिवेश का सही नक्शा, विसंगतियों के कारण और स्वरूप के जीवनरूप को प्रस्तुत न कर पाने के कारण परिवेश का वैसा ही अनुभव किया।

मैं अनुभव कर रहा हूँ
सब कुछ
बस छू कर
छला जाता है
आकाश भीसूर्य से
जो दूसरे दिन
आता नहीं है
कोई और सूर्य भेज देता है।
विजेता है कौन और

किसकी पराजय है -

सारा संसार अपने कामों में
फँसाए अपनी उँगलियाँ
उधेड़बुन करता है। (कविता - माया-दर्पण)[11]

राजनीति के प्रति जागरूकता-साठोत्तरी कविता का उदय राजनीतिक जागरूकता के क्रोध में हुआ है। इस युग के कवियों में राजनीति के प्रति पर्याप्त चेतना के दर्शन होते है। इस संदर्भ में कुछ कवियों में पर्याप्त आक्रोश भी परिलक्षित होता है। जनतंत्र, भूख, त्रासदी आदि पर ही अनेक कविताएं लिखी गई, जिसमें तीव्र असंतोष की अभिव्यक्ति मिल जाएगी -

यह जनता...
जनतंत्र में
उसकी श्रद्धा
अटूट है

उसको समझा दिया गया है कि यहाँ
ऐसा जनतंत्र है जिसमें
जिंदा रहने के लिए
घोड़े और घास को
एक जैसी छूट है
कैसी विडंबना है
कैसा झूठ है
दरअस्ल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।[12] *(कविता -संसद से सड़क तक)*

साठोत्तरी कवियों का रुझान वामपंथी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावितरहा, लेकिन अभिव्यक्ति के स्तर पर यह चेतना कुंठित हो जाने के कारण निष्प्रभ होकर रह जाती है या अपनी अक्षमता के कारण अभिव्यक्त नहीं हो पाती है।

भावभूमि के प्रति व्यापक विस्तार - साठोत्तरी कविता की कई कविताओं में संवेदना की व्यापकता देखने को मिल जाती है।आनंद उमंग भरती हुई तरंग और आशा भरे अह्लाद के दर्शन होते है। इन कवियों को कहीं युद्ध का आतंक दिखाई देता है, कहीं विज्ञान के ध्वंसात्मक रूप को देखकर इनका मन तड़प उठता है। इस युग के कवियों में राजनीतिक बुराइयों से जूझने की जिजीविषा के भी दर्शन होते है। परंतु लहजे में गर्मजोशी, तनाव की उग्रता और खोज की भरपूर प्रवृत्ति होते हुए भी कहीं उसमें ठंडापनहै और कहीं भाषा की एकरूपता। इस युग के कवियों ने भिन्न-भिन्न मुद्दों पर जो व्यंग्य कियेहैं, वे कई स्थलों पर बहुत ही सशक्त एवं जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया है -

खुश किस्मत है वे जो
चुप रहकर देखते रहे सारा दृश्य
गिनते रहे शव
सुनते रहे
क्रिकेट और मौसम के समाचार।[13] *(कविता - प्रजापति)*

अभिव्यंजना रूढ़ि-यह एक शिल्पगत प्रवृत्ति है। साठोत्तरी कविता के आलोचकों ने मूलत: तीन काव्य प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है-सपाटबयानी, नूतन शब्द-भण्डार और अभिव्यंजनारूपी कथ्य के समान शिल्प के क्षेत्र में भी साठोत्तरी कविता ने अभिव्यंजना की रूढ़ि को पकड़ा है। जिससे कवियों की सपाटबयानी का स्वर एक जैसा हो गया। ऐसा लगता है कि सभी कवि एक-सी अभिव्यंजना को अपनाकर मानो जड़वत हो गए अथवा गतानुगतिका के शिकार हो गए। इस युग के कवियों के शब्द भंडार को देखकर लगता है कि इनके पास पचास-साठ शब्दों से अधिक कुछ और है ही नहीं। साठोत्तरी कविता का सबसे बड़ा दोष यह था कि उसके कथ्य और भंगिमाएँ अभिव्यंजना रूढ़ि से बुरी तरह त्रस्त हो चुकी थी, जिसके कारण उनमें भयंकर एकरूपता आ गयी थी।

"बीस बरस बीत गए
"लालसा मनुष्य की तिलतिल कर मिट गयी।
टूटते-टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जायेगा कि

बीस साल धोखा दिया गया
वहींमुझसे फिर कहा जाएगा
विश्वास करने को।"[14]

अपनी पुनरावृत्ति तथा दूसरों में एक-सी प्रतिच्छायाशब्दों का अतिशय प्रयोग में भी दिखाई पड़ती है। जनतंत्र, भूख, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अहिंसा, कुर्सी, भीख, जनता, राष्ट्रभाषा, त्याग, पंचशील, समाजवाद, लूट, दल, स्वतन्त्रता, वादे, योजनाएँ, संसद, संविधान आदि जिनका प्रत्येक कविता में भरपूर मात्र में प्रयोग होता है, और कुछ शाब्दिक हेर-फेर भी जनतंत्र-लोकतंत्र-प्रजातंत्र सपाटबानी के नाम पर इन कविताओं में कहीं कलंक लगी भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। "बात कहने में अनुभव कि सच्चाई कम, ढोंग ज्यादा पनपा है। जो कवि आराम कि जिंदगी जी रहे हैं वे ऊब तथा संन्यास का झूठानाटक कविता में रचते हैं।"[15] कहीं-कहीं फूहड़ अभिव्यक्ति का नंगापन देखने को मिलता है और ऐसा लगता है कि कविता के नाम पर एक भद्दा मजाक किया गया है।इस युग के कवियों ने शहरी जीवन में व्याप्त तनाव, संत्रास, कुंठा, आदि का यथार्थ चित्रण करने में अपनी सम्पूर्ण ताकत लगा दी।

"नहीं
माँ तीस साल पहले
पिता के चुंबनों को धरण करती"[16]

साठोत्तरी कविता का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके कथन और भंगिमाओं में भयंकर एकरसता आ गयी है। विद्रोह और राजनीतिक परक कविताएं एक-दूसरे की नकल या एक ही कवि द्वारा लिखी हुई प्रतीत होती है। उनके शब्दों, वाक्य गठन, उनके कथन में अजीब साम्य है। इस अभिव्यंजनारूढ़ि का मुख्य कारण यह है कि कवि का आक्रोश वैयक्तिक से सामूहिक हो गया। इस युग का कवि दोनों जिम्मेदारी को एक साथ ढो रहा है। साठोत्तरी कवियों के कथन और भंगिमाओं में भयंकर अभद्रता दिखाई पड़ती है। इनकी कविताओं में प्राप्त विद्रोह अधिकांश दिखावटी, चौकने वाला और दिशा हारा है।साठोत्तरी कवि परम्परागत काव्य भाषा का बहिष्कार करके लोक प्रचलित एवं सर्वमान्य भाषा को जन-जीवन के समीप लाने का कार्य किया।उसमें अश्लील प्रयोग तथा सपाटबानी के दोष अवश्य मिलते है, लेकिन कुछ कवियों में राजनीतिक बुराइयों से जूझने के लिए के लिए प्रतिबद्ध दिखाई पड़ते है।कुछ कविताएं तनाव, विसंगतियाँ, राजनीतिक दुरभसंधियों, विडंबनाओं आदि को अधिक उजागर करती है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है, कि स्वतन्त्रता ने जहाँ मनुष्य के अन्दर नवीन ऊर्जा का संचार किया और उसका आशारूपी वृक्षफल-फूलकर हरा भरा खड़ा हुआ। उस पर भारत-चीन युद्ध रूप कुदाल चल गई और वह धड़ाम से गिर पड़ा। इस निराशा व मोहभंग की स्थिति ने उसके अन्तर्मन में चेतना पैदा की। इसी चेतना के फलस्वरूप उसने स्वानुभूत को अपने काव्य में उतारा। चूंकि जन-जन उस पीड़ा को भोग रहा था जो उस समय समाज में व्याप्त थी। कवि भी उनसे अछूता नहीं था। कवियों की इस पीड़ा को छंदों, तुकों व अलंकारों में बँधी हुई भाषा प्रकट करने में असमर्थ थी। इसलिए स्वतन्त्रता के बाद की कविता में गद्यात्मकता का पुटविद्यमान है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1 डॉ. मनमोहन सहगल - बदलती हुई युग चेतना और साठोत्तरी उपन्यास (लेख), पृष्ठ-199
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक- डॉ० नगेन्द्र एवं सुरेशचंद्र गुप्त, मयूर पेपरबैक्स, 33वां संस्करण-2007, पृष्ठ-647.
3 हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग-14, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण-1970, पृष्ठ-159
4 हिंदी साहित्य का वृहत्इतिहास, भाग-14, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण-1970, पृष्ठ-159.
5 समकालीन कविता का राजनीतिक स्वरूप - श्रीनिवास यादव, आनंद प्रकाशन, कोलकाता ख्र प्रथम संस्करण-2018, पृष्ठ-40
6 स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास (द्वितीय महायुद्धोत्तर) - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृष्ठ-132

7 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1997, पृष्ठ-37.
8 राजकमल चौधरी, 'मुक्तिप्रसंग'
9 अंकित होने दो (कविता संग्रह) - अजित कुमार
10 अँधेरी कविताएं - भवानी प्रसाद मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1967,पृष्ठ-1
11 माया-दर्पण (कविता संग्रह) - श्रीकांत वर्मा, संस्करण - 1967
12 पठकथा (कविता-संग्रह) - सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'
13 प्रतिनिधि कविताएं, जलसाघर - श्रीकांत वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1986, पृष्ठ-91
14 आत्महत्या के विरुद्ध-रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली -प्रथम संस्करण-1967, पृष्ठ.-85-86
15 नया सृजन : नया बोध - डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल
16 बची हुई पृथ्वी - लीलाधार जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण-2003

वर्तमान परिदृश्य में 'मधुमेह' रोग के कारणों का अध्ययन

वन्दना सिंह यादव

शोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

प्रस्तावना

Introduction

वॉशिंगटन विश्वविद्यालय के हेल्थ मैट्रिक्स एवं इवैलुएशन संस्थान द्वारा किए गए अध्ययन के मुताबिक लगभग पूरी दुनिया में मधुमेह से पीडिघ्त लोगो की संख्या में काफी तेजी से इजाफा हुआ है। 1990 से 2013 के बीच दुनियाभर में मधुमेह के ऑकड़ों में 45 फीसदी की दर से इजाफा हुआ है तथा भारत में 1990 के बाद से मधुमेह के आंकड़ों में 123 फीसदी की दर से इजाफा हुआ है। 188 देशो को लेकर किए गए इस अध्ययन में यह बात सामने आई है कि इस बीमारी से ज्यादा विकासशील देश ही प्रभावित है। इनमें चीन, भारत और मैक्सिकों में इस बीमारी का प्रकोप अपेक्षाकृत अधिक है। चीन में तो यह बीमारी विकराल रूप धारण कर चुकी है। यहाँ बीते दो दशकों में इसके आंकड़ो में 163 फीसदी की दर से बढ़ोत्तरी हुई है। यही नही दुनिया में मधुमेह रोगियों की संख्या भी सबसे अधिक चीन में ही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार यदि इस बीमारी पर नियन्त्रण न पाया गया तो 2030 तक 44 करोड़ से ज्यादा लोग मधुमेह से पीडिघ्त होंगे। यही नही मधुमेह के कारण मृत्यु के करीब 80 प्रतिशत मामले मध्य व निम्न आय वाले देश होंगें। वहीं वर्ल्ड इनोवेशन समिट फार हेल्थ की रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2035 में टाइप-2 डायबिटीज से पीड़ितों की संख्या साठ करोड़ तक पहुँच जाएगी।

भारत मे मधुमेह की स्थिति :-

- भारत मे मधुमेह रोगियो की संख्या तेजी से बढ़ रही है द्य वर्तमान समय मे सात करोड़ मधुमेह रोगियों के साथ भारत का दुनिया भर मे पहला स्थान है।
- भारत मे बीते दो दशको मे 123 फीसदी की दर से मधुमेह बढ़ा है।
- महिलाओ मे 109 और पुरुषो मे 136 फीसदी की दर से इजाफा हुआ।
- 1995 मे 1.94 करोड़ भारतीय मधुमेह से पीड़ित थे 2014 मे तिगुनी बढ़ोत्तरी हुई और 6.68 करोड़ लोगो पीड़ित पाए गए।
- दुनिया मे पीड़ित आबादी के हिसाब से 17 फीसदी मामले केवल भारत मे है ।(12) भारत में वर्ष 2025 तक मधुमेह रोगियों की संख्या 6.99 करोड़ होगी, जबकि वर्ष 2030 तक आठ करोड़ के पार हो जाएगी।

मधुमेह के कारण

(Cause of Diabetes)

मधुमेह रोग होने के कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित है -

1. वंशानुक्रम कारण (Genetic Factors)

मधुमेह रोग वंशानुक्रम का रोग है। माता-पिता से यह रोग उनकी संतानों तक पहुंचता है। यदि मधुमेह 40 वर्ष की आयु से पूर्व हो जाता है तो इसका कारण वंशानुक्रम होता है। मधुमेह रोग यदि माता-पिता दोनों को होता है तो उनकी संतानों को यह रोग होता है। यदि माता-पिता दोनों में से एक को मधुमेह है तो उस स्थिति में कुछ संतानों को मधुमेह हो सकता है। यदि माँ को मधुमेह रोग है व पिता इस रोग का वाहक (Diabetic Carrier) है तो उसके दोनों लड़कों को मधुमेह होगा लेकिन लड़कियां इस रोग की वाहनकर्ता होंगी।

Carrier या वाहक से तात्पर्य है कि इनमें व्यक्तियों के शरीर में रोग के लक्षण प्रकट नहीं होते है लेकिन वे इस रोग को अपनी संतानों तक पहुंचाते है। यदि पिता को मधुमेह है व माँ सामान्य है तो उसके सभी लड़के व लड़कियां इस रोग के वाहक हो सकते है। इसी प्रकार यदि माता व पिता दोनों इस रोग के वाहक हैं तो उनकी कुछ संतानें सामान्य होंगी। कुछ मधुमेह रोग की वाहक होंगी व कुछ संतानों में मधुमेह रोग हो सकता है। एक पुत्र व एक पुत्री वाहक होगा एक पुत्र रोग का वाहक नहीं है, बल्कि एक पुत्री को मधुमेह रोग है।

2. वातावरण सम्बन्धी कारण (Environmental Factors) -

अल्पश्रम, अधिकांश बैठे बैठे व अधिक मानसिक कार्य करना, मानसिक तनाव, कुपोषण, संक्रामक रोगों से पीड़ित रहना, दवाओं के प्रभाव से तथा अनियमित खाने से, गर्भावस्था आदि वातावरणीय कारणों से मधुमेह हो सकता है।

(I) आयु (Age):- यह किसी भी आयु में हो सकता है। परन्तु 45 वर्ष की आयु के बाद मधुमेह होने की आशंका बढ़ जाती है।

(II) लिंग (Sex):- एक नये शोध के मुताबिक 11 साल की उम्र में शारीरिक रूप से परिपक्व होने वाली किशोरिया जब बड़ी होकर माँ बनती है, तो इस दौरान उनको मधुमेह का खतरा 39% तक बढ़ जाता है। जबकि 14 साल की उम्र के बाद शारीरिक परिपक्वता के लक्ष्ण प्रकट होने पर किशोरियों को आगे चलकर मधुमेह का खतरा बेहद कम रहता है। जो किशोरिया शारीरिक रूप से जल्द परिपक्व हो जाती हैं, उनको आगे चलकर माँ बनने के दौरान मधुमेह का खतरा सबसे ज्यादा होता है। इतना ही नही, इससे गर्भ में पल रहे शिशु भी टाइप 2 मधुमेह समेत अन्य बीमारियों की चपेट में आ सकते हैं।

एक अन्य शोध के अनुसार महिलाओ की तुलना में पुरुष ज्यादा मधुमेह की चपेट में आते है, हालाकि पुरुष मधुमेह की चपेट में क्यों ज्यादा आते है इसका कोई साफ कारण नही है लेकिन टेस्टोस्टेरोन इसमें अहम भूमिका निभाता है।

(III) मोटापा व भारी वजन (Obesity):- मोटापे या वजन बढ़ने से जुड़े कई अध्ययनो के नतीजे बेहद चौकाने वाले है। जर्नल आफ द एकेडमी आफ न्यूट्रीशन एंड डायटेटिक्स में प्रकाशित अध्ययन बताता है कि जो लोग कम सोते है या जिनकी नीद पूरी नही होती है, वे दूसरे दिन स्नैक्स के रूप में अत्यधिक कैलोरीज की चीजें खाते हैं, क्योंकि उन्हें भूख बहुत लगती है। अमेरिका की ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के एक अध्ययन में बताया गया की जो लोग 7-8 घण्टे से कम नीद लेते है, वे दिन में अपने भोजन में अतिरिक्त शुगर, फैट, कैफीन, स्नैक्स और कार्बोहाइड्रेट का इस्तेमाल करते हैं। उनके पूरे दिन के खाने में एक बार जंक फूड जरुर होता है, जो उनके वजन बढने का सबसे बड़ा कारण बनता है। शोधकर्ताओं के अनुसार, रात को देर से सोने की वजह से हम खान-पान में बहुत अनियमित हो जाते है। नीद पूरी न होने की वजह से हम चिडचिडे भी हो जाते हैं और शांत रहने के लिए कुछ भी खा लेते हैं। इसको ऐसे समझिए, जेसे अगर आप रात को देर तक कुछ कर रही हैं, सोई नही हैं तो जाहिर है की आपको भूख भी लगेगी। बेवक्त आप कुछ खाएगी और फिर सो जाएगी। इस पूरी भोजन के पचने का कोई चांस ही नहीं है। सुबह आपकी नीद पूरी नहीं होगी या फिर आप देर से उठेगी और उस केलोरी को बर्न नही कर पायेगी, तो जाहिर तौर पर वजन पर इसका गहरा असर पड़ेगा।

(IV) हार्मोन्स (Harmones):- नये शोध के अनुसार हार्मोन की मदद से बचपन से ही टाइप-2 मधुमेह के कारणों का पता लगाया जा सकेगा। लॉस एंजिलिस में किये गये शोध के मुताबिक लेप्टिन नामक हार्मोन गर्भ में ही शिशु के मस्तिष्क और पैन्कियाज (अग्नाशय) के बीच न्यूरान सम्पर्क की विकास प्रक्रिया को बाधित करने लगता है। नतीजतन पैन्कियाज की कार्यप्रणाली अनियंत्रित हो जाती है। मालूम हो की इसी ग्रन्थि से ब्लड में शुगर की मात्रा को नियंत्रित करने वाले हार्मोन इन्सुलिन का स्राव होता है।

पैन्कियाज के मस्तिष्क के सम्पर्क में नही होने के कारण इन्सुलिन की मात्रा के असन्तुलित रहने का खतरा रहता है। इसके कम या ज्यादा होने पर मधुमेह की आशंका बढ़ जाती है।

दक्षिण कोरिया के शोधकर्ताओं ने जर्नल आफ क्लिनिकल एंडोक्राइनोलाजी एंड मेटाबोलिज्म में छपे शोध में यह जानकारी दी है की मधुमेह के मरीजों में पैन्कियाज (अग्नाशय) के कैंसर का खतरा कई गुना बढ़ जाता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि पैन्कियाज (अग्नाशय) के कैंसर का जल्द पता लगाना मुश्किल है। इसकी पहचान आखिरी स्टेज में हो पाती है। उस वक्त कैंसर शरीर के अन्य अंगो में पहुंच चुका होता है। शोध के दौरान 2.5 करोड़ लोगो के रक्त में ग्लूकोस के स्तर और पैन्कियाज (अग्नाशय) कैंसर के सम्बन्ध का विश्लेषण किया गया। अध्ययन में पाया गया की रक्त में शुगर की मात्रा बढने से पैन्कियाज (अग्नाशय) कैंसर का खतरा भी बढ़ता जाता है।

(V) मानसिक तनाव व चिन्ता (Mental Tension & Worry):- अधिक मानसिक तनाव वाले व्यक्ति में मधुमेह रोग की सम्भावना बढ़ जाती है।

3. गर्भावस्था (Pregnency):-

गर्भावधि मधुमेह एक ऐसा मधुमेह है, जो गर्भावस्था के दौरान हो सकता है। अन्य प्रकार के मधुमेह की तरह ही यह भी उच्च रक्त शर्करा के कारण होता है, जो गर्भवती महिला और अजन्मे बच्चें दोनों के स्वास्थ को प्रभावित कर सकता है कुछ महिलाओ को गर्भधारण से पहले ही मधुमेह होता है इसे प्री - गेस्टेशनल डायबिटीज कहते हैं, गर्भावस्था के दौरान होने वाले मधुमेह को गेस्टेशनल डायबिटीज कहा जाता है द्य गर्भावस्था में महिला के शरीर में ग्लूकोज के उपयोग का स्तर बदल सकता है इससे उसे गर्भकालीन मधुमेह हो सकता है इस दौरान गर्भनाल (प्लेसेंटा) बच्चे को पोषक तत्व और आक्सीजन देता है, प्लेसेंटा भी हार्मोन बनाती है ऐसे में अगर किसी महिला को धुंधली दृष्टि, थकान, अधिक प्यास लगना, बार ख़बार पेशाब आना, वजन कम होना और विशेष रूप से योनी, त्वचा तथा मूत्राशय में संक्रमण का खतरा नजर आए, तो उसे तुरंत अपने डाक्टर से परामर्श लेना चाहिए। गर्भकालीन मधुमेह में उपचार के साथ चीनी के सेवन को सीमित करना चाहिए गर्भावधि मधुमेह के कई कारण हो सकते हैं, जैसे:- 25 वर्ष से अधिक आयु, मोटापा, मधुमेह का पारिवारिक इतिहास या गर्भावधि मधुमेह के साथ पहली गर्भावस्था आदि।

4. कम सोना या शिफ्ट ड्यूटी/नींद की अनियमितता :-

एक नये शोध के मुताबिक रात में काम करने से रक्त में ग्लूकोस का स्तर अनियमित हो जाता है, जिससे टाइप टू डायबिटीज होने की आशंका बढ़ जाती है। दिन में काम करने वालों के बजाय नाईट शिफ्ट में काम करने वालों में ग्लूकोज का स्तर 16% बढ़ गया। बोस्टन में वीमेंस हॉस्पिटल एंड हावर्ड मेडिकल स्कूल और ब्रिघम के मेडिकल क्रोनोबायोलाजी प्रोग्राम आफ द डिवीजन आफ स्लीप मेडिसिन के शोधकर्ता क्रिस्टोफर मारिस के मुताबिक "एक रात भी काम करना ग्लूकोस के स्तर को अनियमित कर देता है। एक अन्य अध्ययन में अमेरिकी अध्ययनकर्तोओं का कहना है हमने आठ साल तक 1000 लोगों पर अध्ययन किया। अध्ययन में शामिल लोग रोज अपनी दिनचर्या का रिकार्ड कम्पूटर में दर्ज करते थे। माह के अंत में इन रिकॉर्डो का वैज्ञानिक अध्ययन करते थे। अध्ययन से पता चला कि जो लोग प्रतिदिन छह घण्टे से कम नीद ले रहे थे, उनके शरीर में ब्लड शुगर का लेवल सही नही था।

5. चिकित्सकीय कारण (Medical Factor):-

कभी-कभी दवाइयां जैसे- कार्टिकास्टेरायड का प्रयोग करने से इन्सुलिन की क्रियाशीलता कम हो जाती व ग्लूकोज ग्लाइकोजन में परिवर्तित नहीं हो पाता है। जब अग्नाशय इन्सुलिन की आवश्यक मात्रा उत्पन्न नही कर पाता या अग्नाशय अधिवृक्क, थायराइड, पीयूष ग्रन्थि के हार्मोन की उत्पत्ति असन्तुलित हो जाती तो मधुमेह रोग उत्पन्न हो जाता है।

मधुमेह से पीड़ित व्यक्तियों में हृदय रोग अधिक पाया जाता है। मोटापे के कारण भी हृदय पर बोझ पड़ता है।

एक अन्य नवीन शोध "मधुमेह रोग के लिए जिम्मेदार नये जीन की पहचान"

मधुमेह रोग में जीन की भूमिका को लेकर एक नवीन विश्वव्यापी अध्ययन किया गया। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने इसके लिए जिम्मेदार नये जीन की पहचान करने का दावा किया है। यह टाइप -2 मधुमेह में भूमिका निभाता है। इसका नाम एसीएसएल -5

है, इसकी मदद से विशेष प्रोटीन इन्सुलिन को पहचानने की प्रकिया को नियंत्रित करता है। इसमें गडबड़ी होने पर मधुमेह की समस्या सामने आती है। भविष्य में एसीएसएल -5 को नियंत्रित कर टाइप -2 मधुमेह का निदान सम्भव हो सकेगा। मैंनचेस्टर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर एंड्रयू मौरिस के नेतृत्व में किये गये अध्ययन के नतीजों को नेचर जेनेटिक्स पत्रिका में प्रकाशित किया गया है कि दुनिया में पिछले तीन दशकों में टाइप -2 मधुमेह के मामलों में चार गुना वृद्धि हुई है। इसका प्रमुख केंद्र एशिया और खासतौर पर भारत और चीन हैं। भारतीयों में टाइप -2 मधुमेह का जोखिम ज्यादा माना जाता है, इसकी वजह मोटापा और जन्म से इन्सुलिन प्रतिरोधी क्षमता का ज्यादा होना है। अध्ययन के अनुसार, भारतीयों में यूरोपीय लोगों की तुलना में अधिक आनुवंशिक भिन्नता है, जिससे यूरोपीय डाटा का उपयोग करके भारतीयों में टाइप-2 मधुमेह के जोखिम का अनुमान लगाना मुश्किल हो जाता है। भारतीयों समेत वैज्ञानिकों के एक दल ने अध्ययन के जरिए इस बात पर नई रोशनी डाली है की जीन टाइप-2 मधुमेह में किस तरह योगदान देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ''डायबिटीज डे से पहले दिल्ली मधुमेह शोध सस्थान को मिले गिनीज रिकार्ड" Auailable From : https : // khabar. ndtv .com >delhi.2017 Nov12.
2. "... तो भारत मे सबसे ज्यादा होगे मधुमेह के रोगीश्श, अमर उजाला वाराणसी, मंगलवार जून 16, 2015, पृ०सं. 16
3. डॉ० सिंह अनीता : उपचारात्मक पोषण, प्रकाशक : स्टार पब्लिकेशन आगरा, संस्करण : नवीन परिवर्धित संस्करण, पृ०सं 202
4. डॉ० खनुजा रीना : आहार एवं पोषण विज्ञान, प्रकाशक: अग्रवाल पब्लिकेशन, संस्करण: चतुर्थ संस्करण: 2013/2014, पृ०सं. 617, 618
5. "जल्द शारीरिक विकास बनती है महिलाओं में डायबिटीज की वजह", अमर उजाला वाराणसी, जनवरी 28, 2016, पृ०सं. 16
6. "आपकी नींद और आपका वजन", अमर उजाला रूपायन, वाराणसी, शुक्रवार, नवम्बर 12, 2021, पृ०सं 4
7. "गर्भावस्था के दौर में डायबिटीज", अमर उजाला रूपायन, वाराणसी, शुक्रवार, नवम्बर 6,2020, पृ०सं 12
8. "रात मे काम करने से डायबिटीज सम्भव", अमर उजाला वाराणसी, रविवार, दिसम्बर 15,2013, पृ०सं. 20
9. "नींद बचाए डायबीटिज से'', संगिनी, दैनिक जागरण, वाराणसी, अगस्त 3, 2013 पृ0सं0 3
10. "डायबिटीज में जीन के योगदान का पता चला'', दैनिक जागरण, वाराणसी, मई 14, 2022, पृ०सं 15

विचित्र नाटक: एक अवलोकन

डॉ० ज्योति कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गुरू गोविन्द सिंह कॉलेज ऑफ कामर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

'विचित्र नाटक' गुरु गोबिंद सिंह प्रणीत 'दशम ग्रन्थ' की एक महत्वपूर्ण कृति है। जिसमें कवि ने अपने जीवन की 32 वर्ष की घटनाओं को आत्मकथात्मक पद्यात्मक जीवनी के रूप में लिपिबद्ध किया है। गुरु गोबिंद सिंह जी नें अपने 42 वर्षीय अल्पकालिक जीवन में अनेक उच्च, महत्वपूर्ण और प्रेरणाप्रद कार्यों द्वारा भारतीय इतिहास पर अपनी अमिट छाप अंकित की।

'विचित्र नाटक' गुरु गोबिंद सिंह जी की आत्मकथा चौदह अध्यायों में विभाजित है। कवि ने मंगलाचरण के रूप में काल - अकाल पुरुष की स्तुति करते हुए ईश्वर से ग्रन्थ को पूर्ण करने के लिए कृपा की आराधना की। तत्पश्चात अपनी वंशावली का उल्लेख करते हुए कवि नें अपने जीवन में घटित अनेक युद्धों का सजीव वर्णन किया। अस्त्रों - शस्त्रों की टकराहट, नगाड़ो की ध्वनि, युद्ध में हुई विनाश - लीला का वर्णन युद्ध को तो साकार करता ही है, कृति के ऐतिहासिक महत्व में भी बढ़ोतरी करता है। अंतिम अध्याय में नम्रता के पुंज गुरु जी कृति की समाप्ति के लिए ईश्वर का आभार व्यक्त करते हुए सर्वकाल को अपना पिता और देवि कालिका को अपनी माता स्वीकारते हैं। इस प्रकार इस जीवनात्मक खंडकाव्य में गुरु गोबिंद सिंह जी नें अपनी आत्मकथा प्रस्तुत की है।

Keywords: विचित्र नाटक, आत्मकथा, युद्ध - वर्णन, गुरु गोबिंद सिंह, काल - पुरुष

भूमिका

'विचित्र-नाटक' के प्रणेता गुरु गोबिन्द जी रीतिकाल में अन्यतम स्थान के अधिकारी हैं। उनकी गणना श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। उनका 'दशम ग्रन्थ' इसका साक्षात् प्रमाण है। वे एक समर्थ व सशक्त कवि थे। कहा जाता है कि व्यवस्था के जो 6-7 वर्ष उन्होंने पांवटा में व्यतीत किए थे, उसमें उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण काव्यों की सर्जना की। वहाँ अनेक कवि गुरु जी के दरबार की शोभा वृद्धि करते थे। उनमें से 52 कवि तो गुरू जी की स्थायी सेवा में थे। गुरू गोबिन्द सिंह अप्रतिम कवि होने के साथ-साथ रणनीति-कुशल योद्धा, अद्‌भुत दार्शनिक, समाज-सेवी, धर्म-परायण, सर्वस्व त्यागी, प्रभुभक्त एवं साधु स्वभाव के व्यक्ति थे। गुरू गोबिन्द सिंह जी ने औरंगजेब के अत्याचारों से उत्पीडिघ्त हिन्दू जनता की रक्षा के लिए मात्र अपना ही नहीं अपने पिता एवं चारों पुत्रों का भी बलिदान कर दिया। उन्होंने अपने 42 वर्षीय अल्पकालिक जीवन में अपने उच्च, महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणाप्रद कार्यों द्वारा भारतीय समाज, सभ्यता और राजनैतिक इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। उनका उदय 17वीं शताब्दी के अन्धकारमय युग में एक ज्वलन्त उदाहरण के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है।

आलेख

'विचित्र-नाटक' शीर्षक पढ़ते ही पाठक यह अनुमान करता है कि प्रस्तुत कृति मानो कोई दृश्य काव्य है; किन्तु यहाँ पर नाटक शब्द से तात्पर्य किसी साधारण नाटक से नहीं है अपितु अनेक विचित्रताओं से युक्त इस सृष्टि को गुरू गोबिन्द सिंह मात्र एक नाटक के रूप में स्वीकार करते हैं, जिस नाटक में सृष्टि के रंगमंच पर आकर भिन्न-भिन्न पात्र काल पुरूष की आज्ञानुसार अभिनय करते

रहते हैं- काल-पुरूष सूत्रधार है और पात्रों का निर्माता है। घटनाएँ अभिनय से उत्पन्न होती हैं और इसी क्रम से नाटक चक्र चलता रहता है। इसीलिए गुरू गोबिन्द सिंह ने अपनी आत्मकथा को 'विचित्र-नाटक' शीर्षक से सम्बोधित किया है।

'विचित्र-नाटक' नामक गुरू गोबिन्द सिंह जी की आत्मकथा चौदह अध्यायों में विभाजित है और इसमें कुल 471 छन्द हैं।

प्रथम अध्याय 'श्री काल जी की स्तुति' में गुरू जी ने खड्ग की स्तुति की है, तदुपरान्त खड्ग धारण करने वाली की। मंगलाचरण के रूप में ईश्वर की कृपा में विश्वास रखते हुए ग्रन्थ प्रारम्भ एवं पूर्ण करने के लिए प्रेरणा तथा सहायता की याचना की है-

'पूरण करौ ग्रन्थ इहु तुम मुहि करहु सहाइ' *1 - 1/1*

गुरू जी के अनुसार खड्ग को धारण करने वाला वह अकाल पुरूष सर्वव्यापक एवं सर्वनियन्ता है। न उसका कोई रूप है, न रेखा है न आदि है, न अन्त है। वह अनेक जड़-चेतन रूपों में पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है, उसकी वास्तविकता को कोई जान नहीं सकता-

'क्रिया काल जू की किन्हूं न पछानी' *1 - 1/26*

राम, कृष्ण, मुहम्मद एवं पैगम्बर आदि भी काल के अधीन हैं, उस काल के अतिरिक्त मनुष्य को कोई और नहीं बचा सकता-

'बिना सरन तांकी नहीं ओर ओट' *1 - 1/61*

गुरू गोबिन्द सिंह जी तपस्या, कंठी धारण, मूर्ति-पूता, सिर मुंडाना आदि के पक्ष में नहीं थे। वे इसे मात्र पाखण्ड एवं ढकोसला मानते थे। उन्हीं के शब्दों में-

'कोट करी तपसा दिन कोटिक, काहूं न कौडी को काम कढायौ' *1 - 1/67*

उनके अनुसार ईश्वर को तो मात्र प्यार से ही प्राप्त किया जा सकता है-

'प्रीति करे प्रभ पायत है'

गुरू जी मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं कि जब इतना सिद्ध है कि मात्र वह अकाल पुरूष ही काल से रहित है-

'और सु काल सबै बस काल के, एक ही काल अकाल सदा है' *1 - 1/85*

तो हे मूढ़ तूं उसकी शरण में क्यों नहीं जाता-

'जाते न छूटीऐ मूढ़ कहूं, हंस तांकी क्यों न सरणागति जइऐ' *1 - 1/96*

ईश्वर की कृपा से तो गूंगा भी शास्त्रों का उच्चारण करने लगता है, पिंगला पर्वत पर चढ़ जाता है, अंधा देखने लगता है और बहरा सुनने लगता है-

'मूक उचरै शास्त्र खट, पिंगु गिरन चढिघ जाई।

अंध लखै बधरौ सुनै, जो काल कृपा कराई।।' *1 - 2/2*

ईश्वर की कृपा का गुणगान करने के उपरान्त स्वयं को उसके समक्ष तुच्छ स्वीकार करते हुए गुरू जी उस ईश्वर के वास्तविक स्वरूप के वर्णन में स्वयं को असमर्थ सिद्ध करते हैं। ईश्वर के सूक्ष्म रूप का वर्णन करने में प्रत्येक मानव असमर्थ है, इसलिए मात्र उसके स्थूल अथवा विराट रूप का कथन ही सम्भव है।

अपनी आत्मकथा 'विचित्र-नाटक' में गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अपनी वंशावली का उल्लेख करते हुए सृष्टि की उत्पत्ति के रहस्य को भी प्रकट किया है। गुरू जी अपनी आत्मकथा का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि किस प्रकार सोढ़ी वंश की उत्पत्ति हुई। इसके लिए वह सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर कथा प्रारम्भ करते हैं, जो कि पुराणों पर आधारित है। सर्वप्रथम काल ने 'ओंकार' से सृष्टि की रचना की। फिर कालसैण, कालकेतु, क्रूरबरस, कालधुज आदि राजा हुए। कालसैण आदि राजाओं से अनेक राजा हुए जिनमें दच्छ प्रजापति भी हुए। इनके घर दस हजार लड़कियाँ पैदा हुई जिनका अनेक राजाओं से विवाह कर दिया गया। इनमें बनिता, कदरू, दिति एवं अदिति का कश्यप ऋषि से विवाह हो गया। अदिति के गर्भ से सूर्य ने जन्म लिया, जिससे सूर्य वंश का प्रचार हुआ। सूर्य वंश में ही रघु राजा हुए फिर उनके पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुए। दशरथ के चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न हुए। राम के दो पुत्र लव और कुश हुए, जिन्होंने पंजाब में क्रमशः लवपुर (लाहौर) एवं कुशपुर (कसूर) दो नगर बसाए। फिर लव एवं कुश के अनेक पुत्र-पौत्र हुए जो अनेक वर्षों तक राज्य करते रहे। फिर इसी वंश परम्परा में कुश के वंश में कसूर का शासक कालकेतु और लव के वंश में लाहौर का शासक कालराय हुए। कालकेतु अपार बलवान था जिसने कालराय को नगर से निकाल

दिया। कालराय ने सनौढ़ देश में जाकर शरण ली और वहाँ के राजा की कन्या से विवाह कर लिया। उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम 'सोढ़ीराय' रखा गया। उसके वंशज सोढ़ी कहलाए और इस प्रकार गुरू गोबिन्द सिंह जी के सोढ़ी वंश की उत्पत्ति हुई।

इन सोढिघ्यों ने अनेक वर्ष तक राज्य किया, देश में धर्म का प्रचार किया, एवं अनेक राजसूय यज्ञ किए। किन्तु इस सोढ़ी वंश में फिर वैर-विवाद उत्पन्न हो गया, जिसका कारण वही पुरातन धन एवं भूमि का लोभ था। गुरू गोबिन्द सिंह जी ने लव एवं कुश के वंशजों के परस्पर युद्ध का अत्यन्त विशद एवं सजीव वर्णन किया है- 'लवी कुशी जुद्ध बरनन' के नाम से। विचित्र-नाटक में इस युद्ध का वर्णन इतना सजीव किया गया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सारा युद्ध हमारी आँखों के सामने हो रहा हो। विनाश-लीला का वर्णन, उसकी भयानकता को प्रकट करता है। कहीं टुकड़े-टुकड़े हुए मुर्दे पड़े हैं, कहीं शिवजी सिर लेकर रूंड-माला में पिरो रहे हैं, कहीं टोप, कहीं धनुष-बाण पड़े हुए हैं। कहीं चीलें बोल रही हैं तो कहीं डाकनी डकार मार रही है-

'चवी चावंडी डाकनी डाक मारे, कहूं भैरवी भूत भैरों बकारे।

कहूं बीर बैताल बंके बिहारं, कहूं भूत प्रेतं हसै मासहारं।।' *1 - 3/5*

अस्त्र-शस्त्रों की परस्पर टकराहट से उत्पन्न आवाज प्रलय-काल के मेघ के गर्जन के सदृश प्रतीत हो रही है। यह भयंकर युद्ध इन्द्र एवं वृत्रासुर के युद्ध का स्मरण करा देता है। युद्ध के अंत में लव के वंशज अर्थात् सोढ़ी विजयी हुए और कुश के वंशज हार गए। इन कुश के वंशजों ने फिर काशी में जाकर अनेक वर्षों तक निवास किया और चारों वेदों का अध्ययन किया, इसी कारण कालान्तर में वे वेदी कहलाने लगे। इधर पंजाब के लव वंशीय सोढिघ्यों ने परस्पर के वैर-भाव को भुलाकर कुश वंशीय वेदियों को अपने पास बुलाया। वेदियों ने आकर उन्हें चारों वेदों का पाठ सुनाया जिसका सोढिघ्यों पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनका राजा अपना समस्त राज्य वेदियों को सौंपकर स्वयं वन को चला गया। इससे प्रसन्न होकर वेदियों ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुमने तीन वेदों का पाठ ध्यान से सुना है और चौथे वेद का पाठ सुनते ही अपना सब धन-धाम त्याग दिया है। इसलिए जब कलियुग मे हम गरु नानक के रूप में अवतार लेंगे तो तीन जन्म धारण करने के बाद चौथे जन्म में तुम्हें गुरू-पद सौंप देंगे। इसी कारण सिक्खों के दस गुरूओं में से पहले तीन गुरू- नानक, गुरू अंगद एवं गुरू अमरदास तो वेदी वंश के थे और चौथे गुरू रामदास से लेकर दसवें गुरू गोविन्द सिंह जी तक सोढ़ी वंशीय थे।

वेदी वंश में आपसी वैर-वैमनस्य के कारण झगड़ा बढ़ जाने से उनका सारा राज्य नष्ट हो गया। उनके पास मात्र बीस गाँव शेष रह गए और स्थिति यहाँ तक आ गई कि एक जाति के लोग अपना काम छोड़कर दूसरों का काम करने लगे। यथा ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करने लग पड़े और क्षत्रियों ने वैश्यों की कार्यवृत्ति प्रारम्भ कर दी। स्वयं गुरू जी के शब्दों में-

'विप्र करत भए सूद्र वृति क्षत्री बैसन कर्म।

बैस करत भए क्षत्रि वृति, सूद्र सु दिज को धर्म।' *1 - 5/2*

इन्हीं वेदियों के कुल में कुछ समय उपरान्त गुरू नानक देव जी का जन्म हुआ, जिन्होंने कलियुग में धर्म के पथ का प्रचार किया। इनके उपरान्त गुरू अंगद देव जी से लेकर सिक्खों के दसवें गुरू गोविन्द सिंह जी तक सभी ने गुरू नानक देव का ही स्वरूप धारण किया मानो एक दीपक से दूसरा दीपक जलता चला जा रहा हो। मूढ़ व्यक्ति इन सारे गुरूओं को भिन्न-भिन्न अस्तित्व के रूप में स्वीकार करते हैं किन्तु वास्तव में वह सब एक ही ज्योति के स्फुलिंग हैं। इन सब में एक ही ईश्वर का रूप समाया हुआ है। जो इस रहस्य को समझ लेता है उसे ही सिद्धि प्राप्त होती है-

'भिन्न-भिन्न सबहूं कर जाना, एक रूप किन्हूं पहिचाना।

जिन जाना तिन ही सिधि पाई, बिन समझे सिधि हाथ न आई।' *1 - 5/10*

गुरू गोविन्द सिंह जी के पिता गुरू तेग बहादुर जी ने औरंगजेब के अत्याचारों से पीडिघ्त ब्राह्मणों के हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, अपना सिंर धड़ से जुदा करवा लिया किन्तु कोई अलौकिक कार्य करके अपनी गुरूता की धाक जमाने का प्रयत्न कदापि नहीं किया। उनका कहना था-

'नाटक चेटक किये कुकाजा। प्रभ लोगन कह आवत लाजा।।' *1 - 5/14*

अंत में गुरू तेग बहादुर जी अपना देह रूपी ठीकरा औरंगजेब के शीश पर फोड़कर स्वयं स्वर्गपुर सिधार गए। उनकी इस अन्यतम क्रिया को करने में और कोई भी समर्थ नहीं है। उनके स्वर्ग लोक प्रयाण करने से जगत् में तो हाहाकार मच गया किन्तु स्वर्ग लोक

में उनके आने से प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और उनका जय-जयकार होने लगा-

'तेग बहादुर के चलत, भयो जगत को सोक।
है है है सब जग भयो, जै जै जै सुर लोक।।' *1 - 5/16*

काल की स्तुति एवं अपने पूर्वजों का वर्णन करने के उपरान्त 'मम आज्ञा काल जग प्रवेश करन' नामक षष्ठ अध्याय में गुरू गोविन्द सिंह जी ने अपने इस भौतिक जगत् में जन्म लेने के उद्देश्यों को स्पष्ट किया है-

'अब मैं अपनी कथा बखानौं।'

उनका कथन है कि इस जन्म से पूर्व मैं हेमकुट पर्वत पर तपस्या में लीन था (जो अब सिक्खों के प्रमुख तीर्थ स्थलों में से एक है)। मेरे माता-पिता ने अकाल पुरूष की आराधना कर उनसे तेजस्वी सुन्दर स्वरूप पुत्र की याचना की, तब प्रभु की ओर से कलियुग में जन्म लेने की आज्ञा हुई, ताकि वहाँ जाकर चारों ओर व्याप्त घोर पाखण्ड एवं अधर्म को समाप्त कर पुनः धर्म का प्रचार हो सके। उन्होंने कहा-

'मै अपना सुत तोहि निवाजा, पंथ प्रचुर करबे को साजा।
जाह तहाँ तै धर्म चलाइ, कुबुधि करन तै लोक हटाई।।' *1 - 6/29*

और तब-

'ठाढ़ भयो मैं जोरि कर बचन कहा सिर निआइ।
पंथ चलै तब जगत पै जब तुम करहु सहाइ।।' *1 - 6/30*

'कवि जन्म कथनं' नामक अध्याय में गुरू गोविन्द सिंह जी ने मात्र तीन छन्दों में अपने जन्म स्थान एवं बाल्यावस्था का वर्णन किया है। जब उनके माता-पिता ने पूर्व की ओर प्रयाण किया तो अनेक तीर्थों पर दान-पुण्य करते हुए वे त्रिवेणी पहुँचे। वहीं प्रयाग में गुरू जी का माँ के गर्भ में प्रवेश हुआ और पटना में उनका जन्म हुआ-

'तही परकास हमारा भयो। पटना सहर बिखै भव लयो।'

कुछ समय पश्चात् पंजाब (मद्र देश) आने पर वहीं बचपन व्यतीत हुआ। 6 वर्ष की आयु में जब गुरू गोविन्द सिंह जी धर्म-कर्म के योग्य हो गए तब उनके पिता गुरू तेग बहादुर जी काश्मीरी ब्राह्मणों के धर्म की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर परलोक सिधार गए।

आठवें अध्याय में गुरू जी ने पहाड़ी राजाओं के साथ हुए युद्ध का 'भंगाणी जुद्ध वर्णन' नाम से वर्णन किया है। यह उनके जीवन का प्रथम युद्ध था। वास्तव में इसी अध्याय से ऐतिहासिक घटनाओं अथवा ऐतिहासिकता का प्रारम्भ होता है। प्रथम युद्ध होने के कारण यह उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण अंश है। इसमें उन्होंने निष्पक्ष रूप से पक्ष और विपक्ष के सभी वीर योद्धाओं की वीरता का वर्णन किया है। इसके उपरान्त गुरू गोविन्द सिंह जी को अपने जीवन-काल में अनेक युद्ध करने पड़े। जब पहाड़ी राजा मुगलों का कर चुका पाने में असमर्थ थे तो मुगलों ने उन पर धावा बोल दिया। तब पहाड़ी राजाओं ने गुरू जी से सहायता की याचना की और अन्ततः उनकी मदद से युद्ध में विजयी हुए। यह युद्ध नादौन युद्ध के नाम से 'विचित्र-नाटक' में वर्णित है। लाहौर का सूबेदार दिलावर खान अपने पुत्र को गुरू जी से युद्ध करने के लिए भेजता है किन्तु वह बिना युद्ध किए ही अपनी हार मानकर लौट जाता है। भयंकर काली रात्रि, शीत का प्रहार एवं गुरू जी की सेना की ओर से हो रहे जोर-जोर के नगाड़ों की आवाज से भयभीत हो जब वह वापिस लौट रहा होता है, तो अपनी खीज मिटाने के लिए रास्ते में 'बरवा ग्राम' को लूट लेते हैं। गुरू जी पर तो जोर चलता नहीं, विवश, निर्दोष ग्रामवासियों पर अत्याचार करते हैं।

'हुसैनी जुद्ध कथनं' नामक अध्याय कुछ लम्बा है, इसमे 69 छन्द हैं। हुसैन खान (हुसैनी) गर्व से सेना लेकर स्वयं गुरू जी से युद्ध करने को तत्पर हो निकल पड़ता है किन्तु अन्त में उसकी वहीं युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु हो जाती है। गुरू जी ने युद्ध का अत्यंत सजीव वर्णन किया है। युद्ध में जाने के पूर्व का जोश और युद्ध क्षेत्र में वीरता का अद्‌भुत दृश्य देखिए-

'कुपयो कृपालं सज्जि मरालं बाहु बिसालं घरि ढालं।
धाए सब सूरं रूप नरूरं चमकत नूरं मुख लालं।।' *1 - 11/25*

युद्धक्षेत्र में हुई विनाश लीला का वर्णन देखिए-

'उठै टोप टूकं गुरजै प्रहारे।
रूलै लुत्थ जुत्थं गिरे वीर मारे।।
परै क्षत्रीयं घात निर्घात वीरं।
फिरै रूण्ड मुण्डं तनं तच्छ तीरं।।' 1 - 11/28

गुरू गोविन्द सिंह जी एक वीर पुरूष थे। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में, ''गुरू गोविन्द सिंह जी का नाम लेते ही, आज का भारतीय एक अपूर्व गौरव और उल्लास का अनुभव करने लगता है। 'वीर' शब्द के अन्दर जितनी भी गरिमा, परम्परा-क्रम से, हमारे चित्त में संचित है वह सब साकार हो उठती है। पवित्र, चरित्र, अडिग उत्साह, अकुण्ठ साहस, अकृत्रिम औदार्य, अकुतोमय, मनोबल, दीन-दुखियों का निश्चित सहाय, अत्याचार का असन्दिग्ध प्रतिरोध, विद्या और तपस्या का नियत संरक्षण और मनोबल का अक्षय भण्डार ही 'वीर' है। गुरू गोविन्द सिंह इन सब गुणों से मूर्तिमान रूप थे।''

गुरू गोविन्द सिंह जी को अपने अल्पकालीन जीवनकाल में अनेक युद्धों का सामना करना पड़ा। औरंगजेब गुरू जी से अनेक बार पराजित होने के उपरान्त क्रोध में आकर अपने ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम को युद्धार्थ भेजता है। अनेक कायर व्यक्ति उसके भय से गुरू गोविन्द सिंह जी की शरण छोड़कर उसके पक्ष में हो जाते हैं किन्तु अन्त में उनकी बहुत दुर्दशा होती है। उनकी इस दुर्दशा का चित्रण करते हुए गुरू जी ने अपनी विचारधारा की ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार जो गुरू की शरण छोड़ता है वह नरक् कुण्ड में जाता है और जो अनेक विपदाओं के आने पर भी अपने गुरू पर विश्वास रखता है उसका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। उन्हीं के शब्दों में-

जे अपने गुरू ते मुख फिरिहैं।
ईहां ऊहां तिन के गुह गिरि हैं।।
इहां उपहास न सुर पर बासा।
सब बातन ते रहें निरासा।। 1 - 13/5

तथा

जे जे गुरू चरनन रत ह्वै हैं।
तिन को कष्ट न देखत दै हैं।।
रिद्धि सिद्धि तिन के गृह माहीं।
पाप ताप ह्वै सकै न छाहीं।। 1 - 13/14

'सर्वकाल की बेनती वर्णन' नामक अंतिम अध्याय में गुरू जी (नम्रता के पुंज) काल से विनती करते हैं कि तुम्हारी कृपा से ही मैं सब कुछ कर पाने में समर्थ हुआ हूं और अब मैं जिन तथ्यों का वर्णन लिखित रूप में करना चाहता हूं वह भी मात्र तुम्हारी कृपा से ही सम्भव है-

अब जो जो मैं लखे तमासा।
सो सो करों तुमै अरदासा।।
जो प्रभ कृपा कटाछ दिखै हैं।
सो तव दास उचारत जैहैं।। 1 - 14/3

गुरू जी ने सांसारिक सम्बन्धों को नकारते हुए सर्वकाल को अपना पिता और देवि कालिका को अपनी माता स्वीकार करते हुए कहा है-

'सर्व काल है पिता अपारा। देवि कालका मात हमारा।।
मनूआ गुरू मुरि मनसा माई। जिन मोको शुभ क्रिया पढ़ाई।।' 1 - 14/5

इसी अंतिम अध्याय में एक 'चण्डी चरित्र' के लिखे जाने की चर्चा है और दूसरे के लिखे जाने का संकेत-

'प्रथमें सतजुग जिह विधि लहा। प्रथमें देवि चरित्र को कहा।। 10 ।।
पहिले चण्डी चरित्र बनायो। नख सिख ते क्रम भाख सुनायो।।
छोर कथा तब प्रथम सुनाई। अब चाहत फिरि करों बड़ाई।।11।।

उपसंहार

गुरू गोविन्द सिंह जी ने 'विचित्र-नाटक' में अपने जीवन की 32 वर्ष तक की घटनाओं को अपने शब्दों में जीवनी के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके जीवन का पूर्ण विवरण नहीं है, उनकी यह जीवनी अधूरी है। लेकिन जितना भी वर्णन किया गया है वह अत्यंत सुन्दर, स्पष्ट एवं रोचक है। इसमें गुरू जी ने अपनी विचारधारा तो स्थान-स्थान पर प्रस्तुत की ही है, लेकिन साथ ही अपने जीवन में घटित हुए युद्धों के वर्णन में ऐतिहासिकता का पुट भी दे दिया है। इससे ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व भी स्वत: सिद्ध है। इसे हम वीरकाव्य मात्र स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि वीरकाव्य की रचना उस युग में भौतिक प्रसंगों को लेकर होती थी परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ पौराणिक एवं आध्यात्मिक सन्दर्भों से समन्वित है और इसका उद्देश्य युग-प्रबोध है। वास्तव में 'विचित्र-नाटक' एक जीवनात्मक खण्डकाव्य है जिसमें गुरू जी ने अपनी आत्मकथा प्रस्तुत की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विचित्र-नाटक - संपादक अमर सिंह 'चाकर', प्रकाशक - शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर।
   1 - 1/1 - अध्याय 1, छंद 1
   उपरिलिखित सभी सन्दर्भ इसी विधि से हैं।
2. सिक्ख गुरूओं का पुण्य स्मरण, हजारीप्रसाद द्विवेदी , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. गुरू गोविन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, डॉ. महीप सिंह, प्रकाशक- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
4. गुरू गोविन्द सिंह और उनका काव्य , डॉ. प्रसिन्नी सहगल, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ।
5. गुरू गोविन्द सिंह जीवन और दर्शन, सम्पादक- नारायण भक्त, प्रकाशक- सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
6. सिख इतिहास - करतार सिंह, प्रकाशक- शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर।

ग्रामीण महिला सशक्तिकरणः मुद्दे एवं चुनौतियां

आसीन खाँ

सह आचार्य- अर्थशास्त्र, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

डॉ० अनिल कुमार यादव

सह आचार्य- अर्थशास्त्र, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारः

भारतीय समाज में महिलाएं शोषण, अत्याचार व अपमान का शिकार रहीं हैं इसलिए देश में महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का मुद्दा हमेशा ही मुख्यधारा के विमर्श का हिस्सा रहा है। परंतु पिछले कुछ वर्षों से ग्रामीण महिलाओं की प्रस्थिति को लेकर गंभीर प्रयासों का एक सिलसिला शुरू हुआ है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद, गांवों में महिलाओं को शोषण, भेदभाव, असमानता और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो काम के अवसरों तक उनकी पहुँच और उनकी उत्पादकता में सुधार के प्रयासों में रुकावट बनती हैं। मौटे तौर पर महिला सशक्तिकरण को निर्धारित करने वाले कारक हैं- महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक पहचान और उनका महत्व। इसलिए हमने इस आलेख में ग्रामीण महिलाओं के समग्र सशक्तिकरण से संबद्ध और उनके जीवन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए इनको प्रभावी ढंग से अभिसरित करने की आवश्यकता को उजागर करने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्दः ग्रामीण महिला, समाजीकरण, परंपराएं, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक विकास, सहभागिता, सशक्तिकरण, अधिकार

प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप में महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति को ऐतिहासिक घटनाक्रमों ने व्यापक रूप से प्रभावित किया है, विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं को। महिलाओं को लेकर, पहले भारतीय समाज में कई कुप्रथाएं प्रचलित थी जिन्हें पुरुषवादी तंत्र ने अपने वर्चस्व और आधिपत्य को बनाए रखने के लिए बहुत ही चालाकी से महिलाओं के सुरक्षात्मक उपायों के रूप में प्रचारित-प्रसारित किया। हमारे सामाजिक ढांचे में मौजूद रही कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बहुपत्नी विवाह जैसी कुप्रथाओं ने महिलाओं की न केवल सामाजिक स्थिति को बल्कि उनके मानव होने के अहसास तक को निम्नतम स्तर पर पहुंचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इसके लिए समाज की रूढिग्वादी सोच और पुरुषवादी मानसिकता को प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना जाना चाहिये। प्रसिद्ध नारीवादी चिन्तक और लेखिका सिमोन द बोउवार का चर्चित कथन है कि 'नारी पैदा होती नहीं बल्कि उसे नारी बना दिया जाता है'। उनका यह कथन समस्त विश्व में महिलाओं के शोषण, उत्पीड़न, पुरुषवादी समाज द्वारा लैंगिक भेदभाव जनित थोप दी गई बंदिशों, उनको निर्भर बना देने वाले प्रक्रियात्मक तंत्र आदि को एक वाक्य में समेट लेने का प्रयास है जो सभी समाजों की सच्चाई बयां करता है।[1]

भारत की आजादी के आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी, उनके त्याग व बलिदानों और फिर आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ सामाज सुधार आंदोलनों तथा समाज सुधारकों के संवेदनशील प्रयासों से हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ। देश की आजादी के बाद संविधान में महिला-पुरुष समानता और महिलाओं के कल्याण के लिए विशेष संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत शिक्षा, राजनीति, आर्थिक क्षेत्र एवं सार्वजनिक जीवन में भागीदारी बढ़ने से भी उनकी स्थिति में सकारात्मक बदलाव आए है।[2] आज के भारत में महिलाएं गांवों से लेकर शहरों तक अपनी सार्थक उपस्थिति के साथ सफलता के नित्य नये उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं। यह सही है कि एक ओर जहां ऐतिहासिक घटनाओं ने देश में महिलाओं के सामर्थ्य, उनकी क्षमता व प्रतिभा को परंपराओं की बेड़ियों में जकड़ कर उन्हें पुरुष पर आश्रित बनाकर दोयम दर्जे पर धकेलने का काम किया वहीं दूसरी ओर आधुनिक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक घटनाओं ने उनकी स्थिति को मजबूत करके पुरुषवादी वर्चस्व को चुनौती देते हुए पुरुष प्रधान समाज के मिथक को तोड़ने में सक्षम बनाया, जिसमें आधुनिक शिक्षा प्रणाली का बड़ा योगदान रहा है।[3]

मूल आलेख

हमारे देश के कृषि क्षेत्र में काम करने वाली लगभग 68 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं अत्यधिक गरीबी में हैं। आम तौर से ग्रामीण महिलाओं की एक साथ एक से अधिक आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने की सहज प्रवृत्ति होती है तथा आय सृजन के वैकल्पिक साधनों के अभाव में अनौपचारिक व असुरक्षित कार्य करना उनकी बाध्यता है। भारत की जनसंख्या में 48 प्रतिशत से अधिक हिस्सेदारी वाली महिला आबादी का जीवन अभी भी काफी कठिनाइयों से भरा है,विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं का। जनगणना-2011 के आंकड़ों के अध्ययन से यह पाते हैं कि 58.64 करोड़ महिलाओं में से लगभग एक तिहाई अशिक्षित हैं, लिंगानुपात- प्रति एक हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 940 है, जो सामाजिक ढांचे के पुरुषवादी होने को प्रदर्शित करता है। बाल लिंगानुपात, (0-6 आयु वर्ग में प्रति एक हजार बालकों पर बालिकाओं की संख्या) किसी भी समाज में महिलाओं के प्रति सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रतिमानों को प्रदर्शित करता है। भारत में बाल-लिंगानुपात सूचकांक का चिंताजनक स्तर, प्रति हजार 914 तक गिर जाना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि बालिका भ्रूण को गर्भ में ही मारा जा रहा है।4 महिला जनसांख्यिकीय आंकड़ों के अध्ययन से यह भी उजागर होता है कि देश में खास तरह से महिलाओं को समाज की विभिन्न गतिविधियों (सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक) में पीछे धकेल कर हाशिये पर रखा जा रहा है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के द्वारा जारी 'भारत में अपराध' 2012 के आंकड़ों के अनुसार अखिल राष्ट्रीय स्तर पर हुए कुल अपराधों के 41.7 प्रतिशत महिलाओं के खिलाफ हुए हैं और ये 2011 की तुलना में 6.8 प्रतिशत अधिक हैं। देश में महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा, दहेज हत्या, मादा भ्रुण-हत्या, यौन हिंसा, सामूहिक दुष्कर्म की घटनाएं आदि अपराध बड़ी तादाद में हो रहे हैं।[5]

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली को पोषित करने वाली नव उदारवादी विकास नीतियों ने लैंगिक भेदभाव पर चोट की है और काफी हद तक इसको कम करने में कारगर भी रही हैं परंतु असंतुलित आर्थिक विकास के कारण महिलाओं के बीच क्षेत्रीय व सामुदायिक आधार पर अंतर और अंतराल पैदा हो गये हैं। महिलाओं में ग्रामीण-शहरी अंतराल बढ़ा है, विशेष रूप से से आर्थिक गतिविधियों में सक्रियता और सहभागिता को लेकर। भारतीय समाज के शहरी क्षेत्रों में उच्च्च-मध्यमवर्गीय कामकाजी महिलाओं के एक नये वर्ग का उदय हुआ है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जिस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है वह यह है कि सामान्य तौर से हम लोग शहरी महिलाओं के जीवन-स्तर, रहन-सहन, चाल-चरित्र, चिंतन, शिक्षा, रोजगार, व्यवसाय, उनकी सावर्जनिक गतिशीलता आदि को संपूर्ण देश का प्रतिदर्श मानकर करके महिलाओं के बारे में सामान्यीकरण करने की भूल करते हैं। परंतु ग्रामीण महिलाएं आज भी अपनी बुनियादी आवश्यकताओं जैसे- ईंधन, शुद्ध पेयजल, शौचालय आदि की व्यवस्था और घर के चूल्हा-चौकी, पशुधन की देख-रेख आदि कार्यों में ही अपना दिन गुजार देती है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं शहरों की तुलना में घरेलू हिंसा की अधिक शिकार होती हैं।[6] ग्रामीण क्षेत्रों में उनको स्वास्थ्य और पोषण संबंधी भेदभाव, रोजगार के अवसरों के अभाव, संपत्ति पर मालिकाना हक न होने जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा है। वहीं पुरुषों की तुलना में उन्हें घरेलू कार्यों और बच्चों की देखभाल की लगभग पूरी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। ग्रामीण महिलाओं की गरीबी व बेरोजगारी वास्तव में आर्थिक अवसरों की कमी और स्वतंत्रता के अभाव से जुड़ी घटना है। भारतीय समाज में गरीबी व बेरोजगारी का ग्रामीण महिलाओं पर कहीं अधिक नकारात्मक प्रभाव देखा गया है।[7]

यह सही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न सामाजिक कल्याणकारी योजनाओं और जागरुकता ने महिलाओं को समाज के स्वीकृति प्राप्त कामकाजी वर्ग में हिस्सेदार बनाने में कामयाबी पाई है। ग्राम पंचायतों में महिला आरक्षण, महानरेगा में उनकी भागीदारी, आंगनबाड़ी, आशा कार्यकर्ता जैसी नई भूमिकाओं ने वास्तव में ग्रामीण महिलाओं के उदास चेहरों पर आत्मनिर्भरता की चमक बिखेरने और आत्मविश्वास से लबरेज करने का काम किया है। किसी भी समाज में उसके सदस्यों की स्थिति का महत्वपूर्ण सूचक उनकी आर्थिक और सामाजिक भागीदारी होती है। अब ग्रामीण समाज में महिलाओं ने अपनी भागीदारी निभानी शुरू की और समाज में उनकी स्थिति में सकारात्मक रूपांतरण देखा जा सकता है। लेकिन इन बहुत सी सुखद बातों के अलावा कुछ ऐसे भी सामाजिक-आर्थिक पहलू हैं जो ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के मार्ग में अभी भी बाधक बने हुए है।[8]

ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के मार्ग की बाधाएं

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी तादाद में महिलाओं को अब भी परंपरागत कार्यों तक सीमित रखा हुआ है. बावजूद इसके की उन महिलाओं में प्रतिभा है, वे समर्थ हैं और उनमें बेहतर करने की क्षमता है। इस दोषपूर्ण रवैये की वजह से ग्रामीण महिलाओं के अधिकांश महत्वपूर्ण कार्य ओझल व उपेक्षित बन कर रह गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित परंपराओं व धारणाओं के अनुसार महिलाओं के आर्थिक क्रियाकलापों को घरेलू उद्यमों, हस्तशिल्प, कटाई, बुनाई जैसी गतिविधियों पर आधारित उद्यमों के रूप में वर्गीकृत किया हुआ है। देश के कई क्षेत्रों और कई समुदायों में तो महिलाओं की गतिशीलता को नियंत्रित करने के लिए उनकी बाहरी गतिविधियों पर भी अंकुश लगाया जाता है। गांवों में महिलाओं की सामाजिक व पारिवारिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत ही उनके उद्यम को निर्धारित किया जाता है। भेदभावपूर्ण और विकृत श्रम विभाजन के आधार पर महिलाओं को घर के अंदर के कार्य जिनमें खाना पकाने से लेकर खिलाने तक के समस्त दायित्व शामिल हैं, बच्चों की देखभाल, कपड़े धोना, बर्तन धोना, घर की साफ-सफाई आदि कार्य शामिल किए जा सकते है। इन रोजमर्रा के घरेलू कार्यों के अलावा ग्रामीण महिलाओं को पशुओं की देखभाल और खेती-बाड़ी के अधिकांश कार्यों को भी करना होता है, जिनमें रोपाई, निराई, गुड़ाई, कटाई जैसे श्रम साध्य काम महिलाओं द्वारा किये जाते हैं। ग्रामीण महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों का उपयोग मूल्य तो बहुत अधिक है परंतु वे विनिमय के दृष्टिकोण से परे के हैं इसलिए उनका विनिमय मूल्य नहीं है। यदि एक वाक्य में कहें तो भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में खरीद-बिक्री के कार्यों पर पुरुषों का एकाधिकार है तथा शेष कार्य महिलाओं के हिस्से में डाले हुए हैं। ग्रामीण भारत में घर-परिवार तथा खेती-किसानी के अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा किये जाने के बावजूद उन्हें अभी तक किसान के रूप में सामाजिक स्वीकार्यता नहीं मिली है जिसके कारण वे आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर मानी जाती हैं। आर्थिक संसाधनों पर महिलाओं का अधिकार नहीं है जिसकी परिणति उनके शोषण, उत्पीड़न, तिरस्कार, उपेक्षा व हिंसा के रूप में परिलक्षित होती है। महिलाओं के प्रति इस प्रकार की असमानता उन्हें सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक तौर पर उनको लेकर समाज में एक उपेक्षित सोच को जन्म देती है।[9]

वस्तुतः ग्रामीण महिला सशक्तिकरण लैंगिक समानता प्राप्त करने का गंभीर प्रयास है जिसमें पुरुषों व महिलाओं दोनों के पास शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, आर्थिक भागीदारी और व्यक्तिगत विकास के लिए समान शक्ति, स्वायत्ता, स्वतंत्रता और अवसरों की उपलब्धता सुनिश्चित करने का भाव है। भारत के ग्रामीण समाज में मौजूद परंपरागत मान्यताएं, प्रचलित प्रथाएं व रीति-रिवाज भी महिला सशक्तिकरण के मार्ग में बड़ी रुकावट बनी हुई हैं। गांवों में बालिकाओं के लालन-पालन से लेकर परवरिश के सभी चरणों में जैसे- खान-पान, उनके खेलकूद, शिक्षा, स्वास्थ्य और यहाँ तक कि उनके बाल क्रिया-कलापों तक में परंपरागत सोच के कारण लड़कियों का प्राथमिक समाजीकरण ही भेदभावपूर्ण होता है और आगे चलकर इस भेदभावपूर्ण व्यवहार का गहरा असर बालिकाओं के मनोवैज्ञानिक विकास पर पड़ता है। ग्रामीण समाजों में बालिकाओं के प्रति जो दृष्टिकोण है वह अब भी संकीर्ण है। इसी वजह से कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, दहेज समस्या, शोषण जैसी प्रवृतियां ग्रामीण भारत में कहीं अधिक सिद्दत से मौजूद है।[10]

ग्रामीण परिवेश के परिवारों और समाज में लड़कियों को लेकर जो दोहरी मानसिकता है वह उनके विकास को अवरुद्ध करती है, उनमें कुंठा को जन्म देकर मनोरोगी तक बना देती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के कैरियर को लेकर विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न धारणाएं पाई जाती हैं जो उनकी गतिशीलता, प्रगति एवं उनके विकास को अवरुद्ध करती हैं। सामान्य रूप से ग्रामीण समाजों ने अच्छी पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिए भी कैरियर के सुरक्षित क्षेत्र के तौर पर शिक्षा तथा चिकित्सा तक सीमित माना

हुआ है। स्वास्थ्य मंत्रालय के कार्यक्रमों और रिपोर्टों के अध्ययनों से पता चलता है कि आम तौर से सभी महिलाओं और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को स्वास्थ्य सेवाओं का फायदा उठाने के लिए अब भी कई बहुत सी अड़चनों का सामना करना पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए अब सरकार महिलाओं के स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारकों पर विशेष ध्यान दे रही है।[11]

महिलाओं के विरुद्ध अपराध व लैंगिक प्रताड़ना के कुछ विशिष्ट बिंदु[12]:

(1) भ्रुण-हत्या एवं गर्भपात: भारत में लिंगानुपात में कमी का कारण विकृत पुरुषवादी सामाजिक ढांचे को माना जाना चाहिए जो आज भी लैंगिक भेदभाव का पोषण करता हुआ दिखाई देता है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में लिंगानुपात 940 एवं बाल लिंगानुपात 914 है जो न केवल महिलाओं के विरुद्ध है बल्कि चिंताजनक भी है। बाल लिंगानुपात का इतने नीचे गिरने का स्पष्ट कारण बालिका भ्रूण की गर्भ में ही हत्या करवा देना है।

(2) दहेज प्रथा एवं दहेज हत्या: वैसे तो दहेज जैसी कुप्रथा संपूर्ण भारत में प्रचलित है जिसके दुष्परिणाम नारी जाति को भोगने पड़ रहे हैं परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित आर्थिक संसाधनों और कानूनी संरक्षण की असुगमता के कारण ग्रामीण महिलाओं का दहेज के नाम पर कहीं अधिक उत्पीड़न, शोषण होता है और वह हिंसा की शिकार होती है। दहेज की बढ़ती हुई प्रवृत्ति और मांग के कारण बहुत से ग्रामीण माता-पिता अपनी बेटियों को उच्च शिक्षा नहीं दिलाना चाहते हैं क्योंकि अधिक पढ़ी-लिखी लड़की की शादी के लिए दहेज भी अधिक मांगा जाता है। हर वर्ष दहेज के लिए बहुत सी महिलाओं की हत्या कर दी जाती है। ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के मार्ग में दहेज प्रथा एक बड़ी रुकावट है।

(3) बलात्कार: यह महिलाओं के साथ हिंसा का एक वीभत्स प्रकार है जिसमें पुरुष अपनी मनोविकृति, यौनतुष्टि अथवा मान मर्दन की भावना से प्रेरित होकर या कई अन्य कारणों से महिला की आबरू पर आक्रमण करता है। एक से अधिक पुरुष मिलकर भी महिला के साथ यौन हिंसा के कुकृत्यों को अंजाम देते हैं जो सामूहिक बलात्कार है। हमारे समाज में महिलाओं से बलात्कार की बढ़ती घटनाएं उसको सशक्त करने के मार्ग में बड़ी रुकावट है। आजकल तो मासूम बालिकाओं से दुष्कर्म की घटनाएं बड़ी संख्या में रिपोर्ट होने लगीं हैं। माता-पिता अपनी बेटियों की सुरक्षा की चिंता के कारण भयभीत रहते हैं।

(4) छींटाकसी व छेड़-छाड़ की घटनाए ं: शिक्षण संस्थाओं से बाहर, बाजारों में और यहां तक कि अपने गांव में भी पढ़ने जाने वाली बालिकाओं को हतोत्साहित करने वाली छींटाकसी, छेड़-छाड़ व भद्दी टिप्पणियां बालिकाओं के मनोविकास को अवरुद्ध करती हैं और उनके सक्षम व सशक्त बनने के प्रयासों को चोट पहुंचाती है।

(5) ऑनर किलिंग: सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान के नाम पर की जाने वाली हत्या को ऑनर किलिंग कहा जाताहै जिसमें परिवार, वंश अथवा समुदाय के किसी सदस्य को केवल इसलिए मार दिया जाता है कि उसके कारण परिवार या वंश की बदनामी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस तरह की जघन्य हत्याओं का शिकार सामान्य तौर पर नव युवक व युवतियां होती हैं। संविधान प्रदत्त एवं कानूनी तौर से स्वतंत्रता प्राप्त युवा वर्ग में शामिल लड़कियां जब अपनी मर्जी से साथी का चुनाव करने की कोशिश करती हैं तो फिर उसे परिवार, गांव व समाज के क्रोध का शिकार होना पड़ता है।

भारत में महिला सशक्तिकरण के नीतिगत प्रयास

संयुक्त राष्ट्र संघ ने चिंता प्रकट करते हुए वैश्विक स्तर पर महिलाओं के प्रति होने वाले भेदभाव के विरुद्ध एक कार्य योजना बनाई थी और सभी सदस्य राष्ट्रों से उनके देश में महिलाओं पर जानकारी मांगी। इसके बाद भारत में इस उद्देश्य से 'स्टेटस ऑफ वुमेन इन इंडिया, नाम से एक समिति की स्थापना की जिसने 1974 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस समिति की रिपोर्ट एवं संयुक्त राष्ट्र के 'कॉल फॉर एक्शन' की क्रियान्विति के तहत भारत सरकार ने 'नेशनल प्लान ऑफ एक्शन फॉर वुमेन' का ड्राफ्ट बनाया। संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 1975 को महिला वर्ष के रूप में मनाया। विश्व इतिहास में महिलाओं के सशक्तिकरण को लेकर इसे पहला वैश्विक प्रयास कहा जा सकता है। इसके बाद अकादमिक परिचर्चाओं में, वाद-विवाद, शोध, अध्ययन-अध्यापन, प्रबुद्ध जनों के कार्यक्रमों आदि में महिला की स्थिति, उसकी विभिन्न क्षेत्रों में सहभागिता और भूमिका की समीक्षा की जाने लगी और उनके सशक्तिकरण के प्रयास प्रारंभ किये गये। भारत ने अपने यहां महिलाओं को लेकर संवेदनशील रुख अपनाया और गंभीरता के साथ महिला आयोग के गठन का प्रावधान किया। वर्ष 1985 में नैरोबी में संपन्न हुए अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में महिला सशक्तिकरण

शब्द का पहली बार प्रयोग किया गया। 1993 में बीजिंग सम्मेलन में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए उनके लिए आरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस दिशा में कदम बढ़ाते हुए भारत ने महिलाओं के उत्थान एवं सशक्तिकरण के लिए कई दिशा-निर्देश और मानक निर्धारित किए, जिनमें महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा हेतु आधारभूत ढांचा तैयार करना एवं सभी प्रकार की गतिविधियों (आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक आदि) में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी शामिल है।[13] भारत में वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया गया जिसमें महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए यह वादा किया गया कि महिलाओं को राष्ट्र के सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक जीवन में उचित स्थान दिया जाएगा और देश के संसाधनों का सामान वितरण व सामाजिक न्याय के संविधान प्रदत्त अधिकारों की सुलभता को सुनिश्चित किया जाएगा। देश में महिलाओं को अवसरों की समानता, शोषण से मुक्ति, उनकी प्रतिभा को महत्व देते हुए और सशक्त बनाने के लिए कई प्रगतिशील कानून व योजनाएं बनी और समय-समय पर उन्हें संशोधित भी किया जाता रहा है।

ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रयासों के अंतर्गत गरीब महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के उद्देश्य से सूक्ष्म ऋण देने हेतु 1963 में राष्ट्रीय महिला कोष का गठन किया गया। गरीब महिलाओं के पारंपरिक कार्यों में कौशल विकास व नवीन जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से महिलाओं के प्रशिक्षण व रोजगार की व्यवस्था एवं सहयोग के लिए वर्ष 2009 से STEP स्कीम आरम्भ की गई है। 11-18 आयु वर्ग की बालिकाओं को पोषण सुरक्षा, गृह जीवन एवं उनमें व्यावसायिक कौशल को बढ़ावा देने के लिए राजीव गांधी किशोरवय युवती सशक्तिकरण योजना 2010 में शुरू की गई है। इन प्रयासों के अलावा महिला सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय मिशन वर्ष 2010 में आरम्भ हुआ। इसके अंतर्गत सरकार के सभी मंत्रालयों और सभी विभागों के समन्वय से महिलाओं के विकास को प्रोत्साहन देना है। महिलाओं में पोषण और बाल विकास की समस्या के निराकरण के लिए वर्ष 1993 से पोषण शिक्षा योजना शुरू की गई। इसके साथ ही 2003 से राष्ट्रीय पोषण मिशन भी चलाया जा रहा है। निर्धन परिवार की महिलाओं को स्वसहायता समूहों से जोड़कर आजीविका को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, ग्रामीण गरीब महिलाओं हेतु मातृत्व मृत्यु तथा शिशु मृत्यु दर में कमी लाने के उद्देश्य से जननी सुरक्षा योजना भी 2005 से चल रही है। बालिकाओं को शिक्षा देने तथा बाल विवाह की प्रथाओं पर अंकुश लगाने के लिए भी 2008 में धनलक्ष्मी योजना शुरू की गई। देश के दूरदराज क्षेत्रों में जच्चा-बच्चा की देखभाल की प्रभावी व्यवस्था हेतु इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना आरम्भ की गई। 2011 में गरीबी रेखा से नीचे की महिलाओं को प्रसव सुविधा, भोजन, रक्त आदि की मुफ्त व्यवस्था प्रदान करने के लिए जननी शिशु सुरक्षा योजना आरम्भ हुई है। महिलाओं के मुद्दों के प्रति संवेदनशील होकर, भारत सरकार ने महिला नीति बनाई है। राष्ट्रीय महिला नीति- 2016 में महिला जीवन के विभिन्न पहलुओं और उनके महत्व को स्वीकार करते हुए उनके विकास से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों को शामिल किया है। नीति दस्तावेज के अनुसार यह नीति ऐसे समाज की रचना करने की भावना से प्रेरित है, 'जिसमें महिलाएं जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी पूरी क्षमता प्राप्त कर सकें और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया पर प्रभाव डालने में समर्थ बन सकें'।[14]

भारत का संविधान अपने सभी नागरिकों को समानता का अधिकार देता है जिसके अंतर्गत लिंग, जाति, पंथ व मजहब, क्षेत्र आदि के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभावों का निषेध है। हमारा संविधान महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक रुख अपनाने के उपायों के लिए सरकारों को सशक्त बनाता है। भारत में 73 वें तथा 74 वें संविधान संशोधनों के जरिये पंचायतों एवं स्थानीय निकायों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के मकसद से एक सराहनीय प्रयास है परंतु राज्य विधान सभाओं व संसद में महिलाओं की भागीदारी को लेकर अभी तक कोई गंभीर पहल नहीं की गई है। पंचायती राज प्रणाली में महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण दिये जाने के सुखद परिणाम गांवों में दिखाई देने लगें हैं। इन प्रयासों के कारण राजस्थान के टोंक जिले की उच्च शिक्षित छवि राजावत जैसे नाम उभरकर सामने आ रहे हैं जिसने अपने सरपंच के रूप में काम और विश्व मंच पर अपनी प्रभावी उपस्थिति से देश की ग्रामीण महिलाओं के लिए एक मिशाल पेश की है।[15]

देश में महिलाओं के विकास और उनको सशक्त बनाने वाली इन सभी योजनाओं एवं प्रयासों के बावजूद आज भी हम ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्याशित इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं कर सके हैं। हमारे समाज में प्रचलित मूल्य, परंपराएं, प्रथा और सामाजिक प्रतिमान इनकी सफलता के मार्ग में बहुत बड़े अवरोधक बने हुए हैं। समाज में एक ओर परंपरागत प्रतिमानों और मूल्यों तथा महिला-पुरुष के बीच सामाजिक व आर्थिक भेदभावपूर्ण व्यवहार द्वारा महिलाओं के प्रति उपेक्षित रवैया अपनाया जाता है तो वहीं दूसरी तरफ कई

ग्रामीण महिलाएं संविधान प्रदत्त अपने सामान्य कानूनी अधिकारों के प्रति भी अनभिज्ञ हैं। उनकी अज्ञानता और अनभिज्ञता ही सारे शोषण की जड़ है जिसके मूल में शिक्षा की कमी को माना जाना चाहिए।

निष्कर्ष

ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण ऐसे आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक घटकों पर ध्यान देने की आवश्यकता का उल्लेख करता है जिनको समझने के लिए हमारे अपने पारिवारिक ढांचे, आर्थिक व सार्वजनिक जीवन के बहुआयामी प्रभावों पर चिंतन-मनन करना होगा। ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, कौशल विकास, ऋण सुविधाएं और निर्णय लेने के समान अवसरों के साथ-साथ कानूनी अधिकार भी प्रदान करने होंगे जिससे वे सही अर्थों में सशक्त बन सकें। इस परिवर्तन और सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण के लिए राष्ट्र व समाज के सभी वर्गों का सहयोग, संवेदना एवं इच्छा शक्ति अवशयक है। भारतीय ग्रामीण महिलाओं के विकास के लिए हमारे सामाजिक परिदृश्य में वास्तविक रूप में महिलाओं के सहअस्तित्व की सामान्य स्वीकार्यता और उनकी राजनीतिक व सामाजिक भागीदारी के साथ-साथ आर्थिक सहभागिता भी जरूरी है।[16]

ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं कृषि क्षेत्र में विकास कार्यों को आगे बढ़ाने में ग्रामीण महिलाओं की न केवल महत्वपूर्ण भूमिका है अपितु वे स्थायी विकास के लिए आवश्यक रूपांतरकारी आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक बदलावों को अंजाम देने में उत्प्रेरक की भूमिका में उभर कर आई हैं। संपूर्ण भारत में खेती-बाड़ी के कामों में महिलाओं की व्यापक भागीदारी को देखते हुए ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण न सिर्फ व्यक्तिगत, पारिवारिक और ग्रामीण समुदायों की खुशहाली के लिए बल्कि उससे कहीं अधिक व्यापक ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक उत्पादकता के लिए भी अनिवार्य है।

संदर्भ सूची:

1. रामचंद्र मुंजाजी भिसे, 'भारतीय समाज एवं महिला सशक्तिकरण', विकास प्रकाशन, जयपुर, 2013
2. ममता जैतली, 'आधी आबादी का संघर्ष', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2006
3. गौरव कुमार, 'ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के सामाजिक-आर्थिक आयाम', कुरुक्षेत्र, अगस्त 2013, पृ.15
4. भारत की जनगणना-2011 रिपोर्ट, भारत सरकार
5. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार
6. पूर्णिमा जैन, 'जेंडर जस्टिस एंड इंक्लुजन', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2018
7. राकेश कुमार आर्य, 'महिला सशक्तिकरण और भारत', डायमंड बुक्स, ओखला, नई दिल्ली, 2020
8. पश्यंती शुक्ला, भारत में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति', कुरुक्षेत्र, जनवरी 2016,पृ. 41
9. कणिका तिवारी. 'महिला सशक्तिकरण का आत्मावलोकन', कुरुक्षेत्र, अगस्त 2013 पृ. 5
10. मयंक श्रीवास्तव, 'महिला सशक्तिकरण सामाजिक बदलाव के लिए आवश्यक', कुरुक्षेत्र, अगस्त 2013, पृ.16
11. अमरनाथ शर्मा एवं सुचित्रा शर्मा, 'ग्रामीण महिला सशक्तिकरण और जेंडर आधारित भेदभाव', ग्रामीण विकास समीक्षा, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान, हैदराबाद, अंक 57, जनवरी-जून 2016, पृ.112- 17
12. मनीष कुमार चौबे, 'अपराध एवं कानूनी संरक्षण', योजना , जून 2012, पृ. 52
13. संजय श्रीवास्तव, 'महिला सशक्तिकरण की बदलती तस्वीर', योजना, जनवरी 2016, पृ. 22
14. गौरव कुमार, 'ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के सामाजिक-आर्थिक आयाम', कुरुक्षेत्र, अगस्त 2013, पृ.16
15. https%//economictimes-indiatimes-com/people/chhavi&rajawat&the&woman&sarpanch&who&transformed&her&village/woman&who&transformed&her&village/slideshow/19577611-cms
16. कृष्ण चन्द्र चौधरी, 'मनोसमाजिक सशक्तिकरण से ग्रामीण महिलाओं के जीवन-स्तर में सुधार', कुरुक्षेत्र, अक्तूबर 2013, पृ. 58

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना एवं महिला सशक्तिकरण

वीर कुमार

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सार

लकड़ी में खाना पकाने से जो धुआं उठता है वह महिलाओं को सांस और सिरदर्द जैसी कई तरह की बीमारियों से घेर लेता है। महिला प्रधान मंत्री उज्ज्वला योजना की इन समस्याओं को देखते हुए 1 मई 2016 को 'स्वच्छ ईंधन और बेहतर जीवन' के नारे के साथ शुरू किया गया था। उज्ज्वला योजना एक धुंआ रहित भारतीय ग्रामीण जीवन की परिकल्पना करती है। यह योजना एलपीजी के उपयोग को बढ़ाएगी और स्वास्थ्य संबंधी विकारों, वायु प्रदूषण और वनों की कटाई को कम करेगी क्योंकि भारत में लगभग 41 प्रतिशत परिवार अभी भी खाना पकाने के लिए जीवाश्म ईंधन का उपयोग कर रहे हैं। इस योजना की रूपरेखा 2015 में ही ष्ळप्टम् प्ज् न्च्ष् के रूप में तैयार की गई थी और आर्थिक रूप से समृद्ध एलपीजी कनेक्शन धारकों को प्रधानमंत्री द्वारा सब्सिडी छोड़ने का अनुरोध किया गया था। जिसके परिणामस्वरूप 1.13 करोड़ से अधिक लोगों ने अपनी सब्सिडी छोड़ दी, महाराष्ट्र सब्सिडी छोड़ने में सबसे आगे रहा। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पत्थर से निकलने वाला धुआं उतना ही नुकसान पहुंचाता है जितना एक घंटे में 400 सिगरेट जलाने से होता है। इस संगठन की दूसरी रिपोर्ट के अनुसार भारत में जीवाश्म ईंधन से खाना पकाने के कारण हर साल 5 लाख से अधिक महिलाओं को अपनी जान गंवानी पड़ती है। इस योजना से महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहन मिलेगा और स्वस्थ समाज का निर्माण होगा। इस पत्र के अंतर्गत प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना एवं महिला सशक्तिकरण पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः एलपीजी, महिला सशक्तिकरण, पीएमयूवाई, जीवाश्म ईंधन, ग्रामीण परिवार।

परिचय

लकड़ी में खाना पकाने से जो धुंआ उठता है वह महिलाओं को सांस और सिर दर्द जैसी कई तरह की बीमारियों से घेर लेता है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना की शुरुआत प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा 1 मई 2016 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में बीपीएल परिवार की महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए की गई थी। इस योजना का मुख्य लक्ष्य 2019 तक देश में गरीबी रेखा से नीचे आने वाले 5 करोड़ गरीब लोगों को मुफ्त एलपीजी कनेक्शन वितरित करना था। 3.5 करोड़ से अधिक मुफ्त कनेक्शन अप्रैल 2018 भर में वितरित किए गए हैं। उज्ज्वला योजना की सफलता को देखते हुए , केंद्र सरकार ने मार्च 2020 तक अपने लक्ष्य को 5 करोड़ से बढ़ाकर 8 करोड़ कर दिया । विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में हर साल 5 लाख से अधिक महिलाओं की मृत्यु जीवाश्म ईंधन के कारण होती है और लाखों महिलाओं को स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उज्ज्वला योजना न केवल सामाजिक-आर्थिक उत्थान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है बल्कि पर्यावरण की दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी है।[1]

यह ज्ञात है कि दुनिया की एक तिहाई से अधिक आबादी केवल घरेलू उपयोग के लिए जीवाश्म ईंधन का उपयोग करती है। उज्ज्वला योजना के विस्तार से जलाऊ लकड़ी के लिए पेड़ों की कटाई कम होगी और पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा और जलवायु

परिवर्तन से लड़ने की ताकत भी मिलेगी। वित्त मंत्री श्रीमती सीतारमन ने 2020-22 के बजट में इस योजना के तहत एक करोड़ और लोगों को कनेक्शन देने की घोषणा की है. जिससे इस योजना का और विस्तार किया जाएगा।

पारंपरिक पितृसत्तात्मक समाजों में, जैसे कि अधिकांश ग्रामीण भारत में, महिलाओं को घरेलू कर्तव्यों की जिम्मेदारी सौंपी जाती है, जिसमें भोजन तैयार करना, और ऐसा करने के लिए साधन खरीदना भी शामिल है। यह उन्हें इनडोर वायु प्रदूषण के स्वास्थ्य जोखिमों और इससे परे, ऐसे प्रदूषण को बढ़ावा देने वाले ऊर्जा स्रोतों की खरीद के जोखिमों और कठिन परिश्रम के लिए उजागर करता है। 2015 में, भारत में प्रदूषण के कारण सबसे अधिक मौतें हुईं, जिनमें से 1.24 लाख अकाल मृत्यु इनडोर वायु प्रदूषण के कारण हो सकती हैं। यह चिंताजनक आँकड़ा गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) के परिवारों के लिए अद्वितीय है, और विशेष रूप से खाना पकाने के लिए घरेलू जरूरतों के लिए पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के उपयोग के कारण देश के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से सच है।[2]

इस समस्या के आलोक में, भारत सरकार के पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय के तहत प्रधान मंत्री उज्ज्वला योजना (पीएमयूवाई) शुरू की गई थी, और मुख्य रूप से इसका उद्देश्य इनडोर वायु प्रदूषण के जोखिम के कारण नकारात्मक स्वास्थ्य प्रभावों को रोकना है। इसका उद्देश्य बीपीएल परिवारों को तीन वर्षों में पांच करोड़ एलपीजी कनेक्शन प्रदान करना है, जिसमें सब्सिडी भी है। आज तक इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए 8,000 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं, और इसने 4.5 करोड़ बीपीएल परिवारों को एलपीजी कनेक्शन प्रदान किया है। इस योजना का दिलचस्प पहलू यह है कि यह महिलाओं पर और अच्छे कारणों से निर्देशित है। जैसा कि पहले प्रकाश डाला गया है, महिलाएं प्रत्यक्ष हैं, और कभी-कभी, केवल इनडोर वायु प्रदूषण की शिकार होती हैं, और जलाऊ लकड़ी संग्रह की सुरक्षा के संबंध में कड़ी मेहनत और जोखिम होती है।[3] हालाँकि, इस समस्याग्रस्त निर्माण से पहला सवाल यह उठता है कि महिलाएं इन बोझों को क्यों उठाती हैं, और आखिरकार, क्या उज्ज्वला योजना इन समस्याओं का पर्याप्त समाधान करती है?

लिंग और नीति

आज तक, लिंग के संदर्भ में 'सशक्तिकरण' को मापने के लिए कोई सर्वसम्मत परिभाषा या तंत्र आधिकारिक तौर पर नहीं अपनाया गया है। फिर भी, हम इसे यहां अधिकारों, पहुंच और संसाधनों के नियंत्रण (आर्थिक सशक्तिकरण) और उनसे संबंधित मामलों को प्रभावित करने की शक्ति (राजनीतिक सशक्तिकरण) के संबंध में लिंग के बीच असमानता को पाटने के रूप में समझ सकते हैं। 2 यह असमानता वह है जो उसके प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करती है। भेदभावपूर्ण लिंग मानदंड, रोजगार और प्रजनन दर, समय का विभाजन (कार्यों, आय पैदा करने वाली गतिविधियों, शिक्षा के लिए), और सभी कारकों, ऊर्जा और ईंधन के उपयोग (जैसे खाना पकाने के लिए) से संबंधित। अंततः, ये वे पहलू हैं जो महिलाओं को स्वास्थ्य और सुरक्षा सहित जोखिमों के लिए उजागर करते हैं। इसके अलावा, संसाधनों पर नियंत्रण के माध्यम से आर्थिक रूप से सफल होने और आगे बढ़ने की क्षमता ऐसे आर्थिक निर्णय लेने या प्रभावित करने की क्षमता से प्राप्त होती है। यह अंतर-संबंध और उपरोक्त पहलू भी भागीदारी निर्णय लेने की आवश्यकता पर जोर देते हैं, और इस पर विचार किया जाना चाहिए जब महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए नीति बनाना हो।[4]

यहां तक कि जब हम लैंगिक समानता की नैतिकता को अलग रखते हैं, तब भी महिलाओं को सशक्त बनाना, विशेष रूप से राजनीतिक रूप से, संस्थागत और घरेलू दोनों स्तरों पर, घरों के स्वास्थ्य, दक्षता, और घर और उसकी ऊर्जा के साथ महिलाओं की प्रत्यक्ष भागीदारी के कारण सकारात्मक योगदान देता है। एक अच्छी तरह से बनाई गई नीति के कारण ऊर्जा पहुंच के ये प्रभाव महिलाओं के लिए उपलब्ध समय में वृद्धि करते हैं, जो तब आय पैदा करने वाली गतिविधियों में खुद को शामिल करने और अर्थव्यवस्था में योगदान करने की संभावना रखते हैं। ऐसे अनुकरणीय मामले हैं जो महिलाओं को सशक्त बनाने के लाभों की पुष्टि करते हैं। उदाहरण के लिए ऊर्जा क्षेत्र में, ऐसे कई मामले हैं जहां महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण ने बोत्सवाना पावर कॉरपोरेशन (बीपीसी) और पावर टू द पुअर के मामलों में अधिक प्रभावकारिता, दक्षता और सफलता का नेतृत्व किया। लाओस में योजना, माली में मल्टीफंक्शनल प्लेटफॉर्म (एमएफपी), और भारतीय संदर्भ में, महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड में महिला विद्युत सहायक और ऊर्जा वितरण में फ्रेंचाइजी के रूप में महिला स्वयं सहायता समूहों की भागीदारी। हालांकि इसकी सफलता के बावजूद, बताए गए उदाहरणों के अलावा महिलाओं की भागीदारी के बहुत कम मामले हैं।[5]

इसके अलावा, इस मुद्दे को संबोधित करते समय लिंग भूमिकाओं को पहचानना और समझना प्रासंगिक है; अलग-अलग परिस्थितियों में, अलग-अलग चिंताएं पुरुषों और महिलाओं को अलग तरह से प्रभावित करती हैं। जेंडर भूमिकाओं को समझने के लिए, हम ग्रामीण भारत में पलायन का एक उदाहरण लेते हैं। अपेक्षाकृत अधिक पुरुष आबादी वाले हिमालय में, अधिक आजीविका के अवसरों वाले शहरों और क्षेत्रों की ओर पुरुषों का एक बड़ा प्रवासन देखा जाता है, जिससे इस क्षेत्र में बचे हुए आबादी (अब बड़े पैमाने पर महिलाएं) के लिए उपलब्ध अवसरों और संसाधनों में वृद्धि होती है, और, अंततः शिक्षा, विकास के अवसरों, नेतृत्व, निर्णय लेने की शक्ति, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और बढ़ते बाजार तक पहुंच के माध्यम से महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है। यहां, स्थिति को एक बड़ी पुरुष आबादी के साथ एक निर्वाह अर्थव्यवस्था के रूप में रेखांकित किया जा सकता है, जहां पुरुष सदस्यों को आजीविका कमाने की भूमिका सौंपी जाती है, जिससे पुरुष पलायन करते हैं। अंततः, प्रभाव क्षेत्र में महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विकास को उपलब्ध अवसरों, जब्त किए गए और परिणामों में परिवर्तित किए गए अवसरों और उच्च कुशल नौकरियों तक पहुंच जैसे अवसरों के दीर्घकालिक प्रभाव द्वारा वर्गीकृत किया गया है।[6]

यह उदाहरण दर्शाता है कि लिंग भूमिकाओं की पहचान करने से हमें महिलाओं को सशक्त बनाने के प्रभावों की मात्रा निर्धारित करने और महिलाओं को प्रभावित करने वाले मुद्दों की पहचान करने में मदद मिलती है, जो उक्त मुद्दों को मिटाने और महिलाओं को अधिक सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, जब हम ऊर्जा और उसके जेंडर प्रभावों को देखते हैं, तो महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देने के लिए लिंग भूमिकाओं की पहचान करना प्रासंगिक हो जाता है, जैसे कि ऊर्जा तक पहुंच महिलाओं को कैसे लाभ पहुंचाती है।

जब हम उज्जवला और इसके महिला-केंद्रित दृष्टिकोण को देखते हैं, तो इन परिभाषाओं और विचारों को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है ताकि वास्तव में इसके प्रभाव और स्थिरता का आकलन किया जा सके। यदि हम योजना की बारीकियों, विशेष रूप से प्रदान की गई सहायता की समीक्षा करते हैं, तो हम देखते हैं कि प्रदान की गई वित्तीय सहायता रु. 1,600 प्रति एलपीजी कनेक्शन, यानी प्रति परिवार, जो प्रत्येक कनेक्शन की सुरक्षा और फिटिंग शुल्क को कवर करता है। इसके अतिरिक्त, यह घर को चूल्हे और मासिक किश्तों में पहली रीफिल के लिए भुगतान करने की अनुमति देता है। हालांकि, इसके बाद रिफिल का खर्च परिवारों को खुद वहन करना होगा। यदि पहली रिफिल की लागत को एक किस्त योजना में शामिल किया जा रहा है, तो यह विचार करना पूरी तरह से प्रतिकूल विचार नहीं हो सकता है कि बाद के रिफिल की लागत (सब्सिडी के बाद लगभग 500 रुपये प्रति सिलेंडर) अप्रभावी हो सकती है। 4.5 करोड़ कनेक्शन के साथ, यह योजना निश्चित रूप से एक बड़ी वंचित आबादी तक पहुंच गई है, लेकिन इन पहलुओं पर विचार करने के बाद इसकी स्थिरता पर संदेह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विभिन्न प्रकाशनों द्वारा यह बताया गया है कि आमतौर पर पहले रिफिल के बाद घर वापस नहीं आते हैं। ईंधन स्विचिंग का प्रत्यक्ष उद्देश्य तब अधूरा रहता है जब लक्षित आबादी उस स्वच्छ ईंधन का उपयोग करने का जोखिम नहीं उठा सकती जिसके लिए उसे निर्देशित किया गया था। हालांकि, प्रत्यक्ष नुकसान में आबादी महिलाओं की है। महिलाओं द्वारा बिताया गया समय अक्सर बेहिसाब चला जाता है, क्योंकि यह आमतौर पर आय पैदा करने वाली गतिविधियों में परिवर्तित नहीं होता है। ये 'भूमिकाएं' आमतौर पर सामाजिक कंडीशनिंग के माध्यम से घर के पुरुष सदस्यों को सौंपी जाती हैं। यहां, आर्थिक और राजनीतिक दोनों सशक्तिकरण की कमी ध्यान देने योग्य है और उनके महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा, भागीदारी निर्णय लेने की प्रासंगिकता, विशेष रूप से संस्थागत स्तर पर, अधिक स्पष्ट हो जाती है।[7]

संचालन के साथ उनकी रोजमर्रा की बातचीत के कारण, मौद्रिक और ऊर्जा दोनों खर्च की बेहतर समझ रखने वाली महिलाओं के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए मॉडल की स्थिरता को मजबूत करना संभव है। इसके चेहरे पर, पीएमयूवाई महिलाओं को इन एलपीजी कनेक्शनों का आधिकारिक मालिक बनाकर और महिला सशक्तिकरण को एक उद्देश्य के रूप में संबोधित करके सशक्तिकरण के विचार को इंगित करता है। हालांकि, इन महिलाओं के मुद्दों को संबोधित करने वाली कार्रवाइयों को एकीकृत करने के साथ-साथ महिला सशक्तिकरण के आर्थिक और विकासात्मक सह-लाभों को पहचानने की गहन आवश्यकता है जो व्यवहार को अत्यधिक प्रभावित कर सकते हैं। पीएमयूवाई कार्यक्रम के सभी पहलुओं को एक जेंडर लेंस के माध्यम से देखे जाने पर प्रभावित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, सामर्थ्य अंतर के मुद्दे को लें, जिसे दो व्यापक तरीकों से संबोधित किया जा सकता है - सिलेंडर की कीमत कम करना, जिसमें आमतौर पर सब्सिडी शामिल होती है या घरों की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है। हाशिए पर

रहने वाली महिलाओं को सशक्त बनाना बाद में मदद कर सकता है। महिलाएं जितनी अधिक सशक्त होती हैं, उनके समय का बोझ उतना ही कम होता है और उनके आय-सृजन गतिविधियों में संलग्न होने की संभावना अधिक होती है, और इसलिए, घर की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है। यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को 2025 में 0.7 ट्रिलियन डॉलर या व्यापार-सामान्य स्तर के 16 प्रतिशत तक लैंगिक समानता के माध्यम से बढ़ा सकता है। इसके अलावा, सशक्त महिलाएं स्वस्थ होती हैं और स्वस्थ परिवारों का नेतृत्व करती हैं, जिससे शिक्षित बच्चों की संभावना बढ़ जाती है, जो लंबे समय में घर की आय में और भी अधिक वृद्धि की ओर ले जाती है। ऐसे कई रास्ते हैं जिनका उपयोग महिलाओं की क्षमता को शामिल करके किया जा सकता है, जैसे कि ऐसी योजना के लापता निगरानी तंत्र को संबोधित करने के लिए महिलाओं को लाना या अधिक समग्र और दूरदर्शी नीति के लिए निर्णय लेने में महिलाओं को शामिल करना।[8]

भारत जैसे विविध देश में महिला सशक्तिकरण का मार्ग एक क्रमिक प्रक्रिया है, जिसमें असमानता की डिग्री एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होती है। ग्रामीण भारत इस पहलू में अधिक कठिन है और इससे होने वाली कई नकारात्मकताओं से ग्रस्त है। इसलिए, एक समग्र, सुविचारित और दूरदर्शी नीति पर ध्यान केंद्रित करना महत्वपूर्ण है जो न केवल महिलाओं के सशक्तिकरण के अर्जित लाभों पर, बल्कि पूरे घरों पर केंद्रित है। यहां तक कि पूरी तरह से समग्र विकास के लिए, लैंगिक समानता को ऐसे कार्यक्रमों में अधिक से अधिक बार एक वैचारिक जांच सूची से अधिक बनने की जरूरत है। इसकी मात्रा निर्धारित करने की जरूरत है, सभी मान्यता प्राप्त लोगों के लिए इसके आर्थिक और विकासात्मक लाभ, और इसे सभी स्तरों पर निर्णय लेने में एकीकृत किया जाना चाहिए। इन कारकों के बिना, हाशिए पर पड़े लोगों को सशक्त बनाने के लिए निर्देशित नीतियों को लागू करना इसकी आधी क्षमता का दोहन करने में सक्षम नहीं होगा।[9]

उज्ज्वला योजना और महिला सशक्तिकरण:

स्वतंत्र भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन और महिला सशक्तिकरण के लिए प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना एक महत्वपूर्ण कारक है। महिला सशक्तिकरण का देश की ऊर्जा अर्थव्यवस्था से गहरा संबंध है। यह योजना पेट्रोलियम प्राकृतिक गैस मंत्रालय से संबंधित है। इस योजना के तहत महिलाओं को खाना पकाने के लिए स्वच्छ ईंधन मिलेगा। इस योजना के और विस्तार के लिए प्रधानमंत्री एलपीजी पंचायतों की शुरुआत की गई। इसमें उज्ज्वला योजना के लाभार्थियों को एलपीजी के सुरक्षित और सतत् उपयोग के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, देश भर में 87,876 एलपीजी पंचायतों का आयोजन किया गया। फरवरी 2018 में, हमारे राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद जी ने भविष्य में महिला सशक्तिकरण के लिए बहुत उपयोगी होने के लिए राष्ट्रपति भवन में एलपीजी पंचायत का आयोजन किया।[10]

उज्ज्वला योजना सरकार द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर महिलाओं को गैस सिलेंडर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से शुरू की गई थी, इसलिए इस योजना के तहत लगभग 8.3 करोड़ गरीब परिवारों को लाभान्वित किया गया है। उज्जवला योजना पेट्रोलियम गैस मंत्रालय द्वारा चलाई जा रही है। इस योजना का लाभ उन परिवारों को दिया जा रहा है जिनका नाम 2011 की जनगणना में बीपीएल कार्ड में है।

निष्कर्ष

उज्ज्वला योजना केंद्र सरकार की एक महत्वाकांक्षी योजना है जो इस योजना की सफलता के लिए ग्रामीण गरीब महिलाओं के उत्थान के लिए समर्पित है। समय-समय पर मूल्यांकन करके अपने लक्ष्यों को संशोधित किया है। अध्ययन के दौरान यह निष्कर्ष निकला कि यह योजना ग्रामीण महिलाओं के लिए मील का पत्थर साबित हो रही है। इस योजना ने महिलाओं को सशक्त बनाया, उन्हें गंभीर बीमारियों से बचाया और स्वस्थ जीवन का मार्ग प्रशस्त किया और पेड़ों की कटाई में भी कमी आई है जिससे प्रकृति को भी बहुत लाभ हुआ है। मैंने पूर्व में कई योजनाओं का अध्ययन किया है लेकिन इस योजना के अध्ययन में इसके इतने सकारात्मक पहलू हैं कि नकारात्मक पहलुओं का स्थान नगण्य रह जाता है। वास्तव में, मुझे लगता है कि यह योजना "एक तीर से कई लक्ष्यों को मारना" कहावत को पूरी तरह से पूरा करती है। क्योंकि इस योजना से गरीब ग्रामीण महिलाओं को जितना फायदा हुआ है, उससे कम हमारी प्रकृति को फायदा नहीं हुआ है।

सुझाव

समय-समय पर केंद्र सरकार द्वारा इस योजना का मूल्यांकन किया गया है, सुधारों और लक्ष्यों को फिर से परिभाषित किया गया है, इसलिए इस योजना में अधिक सुझाव के लिए कोई जगह नहीं है, फिर भी इस योजना के कुछ निम्नलिखित सुझाव हो सकते हैं:-

- इस योजना के लाभों के बारे में ग्रामीण महिलाओं को और अधिक जागरूक करने के लिए, इसके लिए एक ही गांव से एक महिला का चयन किया जाना चाहिए। जो वहां के हालात से पूरी तरह वाकिफ हैं।
- इस योजना में छह सिलिंडरों की संख्या नि:शुल्क या कम से कम दो माह प्रति सिलेंडर की दर से तय की जाए।
- यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ग्रामीण महिलाएं जीवाश्म ईंधन का उपयोग बिल्कुल भी न करें।

संदर्भ

1. वत्स, निक एट अल, 2017, द लैंसेट काउंटडाउन: ट्रैकिंग प्रोग्रेस ऑन हेल्थ एंड क्लाइमेट चेंज। नश्तर।
2. तंजा सर्दी, 2016. 'सही लिंग संकेतक प्राप्त करना: अवलोकन, चुनौतियाँ और रणनीतियाँ'। एफईवीई
3. गोला, ऐनी मैरी एट अल, 2011, महिला आर्थिक सशक्तिकरण को समझना और मापना। आईसीआरडब्ल्यू।
4. बुचवे, हेले और अन्य, 2017, महिलाओं के लिए ऊर्जा की पहुंच को मापना क्यों स्मार्ट व्यवसाय बनाता है: लाओ पीडीआर का मामला। विश्व बैंक।
5. तिवारी, प्रकाश सी और जोशी, भगवती, 2015. हिमालय में ग्रामीण आउट-माइग्रेशन और सामाजिक-आर्थिक विकास में लिंग प्रक्रियाएं, प्रवासन और विकास।
6. वोएत्जेल, जोनाथन एट अल, 2015, समानता की शक्ति: भारत में महिलाओं की समानता को आगे बढ़ाना। मैकिन्से ग्लोबल इंस्टीट्यूट।
7. घोष, एस.के. (2020), एलपीजी की कीमतों में वृद्धि के बाद उज्ज्वला योजना को ग्रामीण भारत का लाइववायर बनाना (अंक संख्या 73)। इकोरैप, एसबीआई।
8. एम बंसल, आर.पी. सैनी, डी.के. खातोद, 2013, भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में खाना पकाने के क्षेत्र का विकास- एक समीक्षा अक्षय और सतत ऊर्जा समीक्षा, खंड 17, पृ. 44-53।
9. वही, पृ. 54
10. एस. अग्रवाल, एस. कुमार, एम. के. तिवारी, 2018, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना ऊर्जा नीति के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली, खंड 118, पृ. 455-461।

दलित विमर्श एक अवधारणात्मक प्रस्थापना

चरन सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, राज0स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बागेश्वर

दलित जन पर करो करुणा,
दीनता पर उतर आये प्रभु,
तुम्हारी शक्ति वरूणा। *(राष्ट्रकवि निराला)*

दलित विमर्श का सामान्य अर्थ है, शोषित पीडिघ्त व दबाए गए लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं जागृत होने से है। सामान्य शब्दो में दलितों के सम्बन्ध में किया गया विचार ही 'दलित विमर्श' कहलाता है। वर्षो से सामन्ती परम्परा व सामाजिक विंसगतियों की दिवारों को तोड़कर स्वाभिमान के महल का निर्माण करना दलित विमर्श का ही परिणाम है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले श्रेणी में रखे गए लोग जब शिक्षित संगठित व संघर्षशील बनकर अपने अस्तित्व की पहचान तथा सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, तो यह उन लोगों की चौतन्य प्रक्रिया है, क्योंकि विमर्श का सम्बन्ध मन से होने के कारण यह एक मननशील व चिंतनशील प्रक्रिया है। मनुष्य जब आन्तरिक व बाह्यरुप से चेतनशील बन जाता है, तो वह अपने अस्तित्व की पहचान को सफल बनाने में सक्षम बन जाता है। दलित विमर्श में जब दलित व्यक्ति शोषण, अत्याचार, भय व सामाजिक कुरीतियों से बाहर निकलकर एक सभ्य समाज की कल्पना करते हुए, मान सम्मान व स्वाभिमान से समाज में जीना चाहता है, तो यह उसके मन का विमर्श कहलाता है।[1]

दलित विमर्श को समझने से पूर्व भारतीय सामाजिक व्यवस्था को समझना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। विशेषत: वर्ण व्यवस्था के तहत भारतीय समाज को चार वर्णो में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजित किया गया है। कालांतर में शूद्र दो वर्गो में स्पर्श एवं अस्पर्श में विभाजित हो गये। इसमें अस्पर्श, अछूत अर्थात दलित जाति को समाज में सबसे निम्न स्थान मिला। दलित विमर्श जबरन थोपी गयी इस वर्ण व्यवस्था का कट्टर विरोधी होकर सामाजिक समानता का सर्मथक बन गया, अर्थात भारतीय वर्णव्यवस्था के तहत प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दमन, शोषण, भय एवं अत्याचाार के विरोध की चेतना ही दलित विमर्श कहलाता है।

आधुनिक युग में दलित विमर्श तीव्र गति से जोर पकड़ रहा है। आज हमें यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं है कि सवर्ण समाज की भॉति दलित समाज भी भारतीय राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में भविष्य की शक्तियां है। बिना दलित वर्ग को साथ लेकर हम सबका विकास सबका कल्याण जैसे उद्घोष की कल्पना भी नहीं कर सकते। अभी भी यह सवाल पूछा जा रहा है कि दलित विमर्श क्यों? हजारों वर्षो से कुलीन सभ्य समाज ने इनकी न कोई आवाज सुनी और न ही कोई पहचान दी। यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि कुलीन वर्ग ने इनके साथ केवल कामकाजी और दूर का रिश्ता बनाए रखा। यदि आज के दौर में हमें सामाजिक समानता की बात करनी है तो दलितों के साथ कंधे से कंधे मिलाकर चलाना होगा, तभी हम दलित विमर्श शब्द के साथ पूरी तरह से न्याय कर सकेंगे।

सन् 1920 के दशक से भारत में दलित शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, तब से यह शब्द अपने आप में गहराई लिए हुए समाज में सर्वाधिक चर्चा का विषय रहा है। सर्वप्रथम दलित शब्द की व्युत्पत्ति को समझना नितान्त आवश्यक है। दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दल धातु से हुई है, जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्सा करना एवं कुचलना अर्थात जिसका दलन और दमन किया गया हो। मानक हिन्दी शब्दकोष में दलितों को दलिद्वर, दरिद्र और बहुत ही निम्न श्रेणी का माना गया है, जिसका अर्थ है, दलन, मसला हुआ, रौंद्वा हुआ, दबाया हुआ, कुचला हुआ और विनिष्ट किया हुआ हो, अर्थात दलित वर्ग वह वर्ग है जिसे पनपने और आगे बढ़ने से

रोका गया हो और नष्ट किया गया हो।[2] इस प्रकार दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है दलन किया हुआ, दमन किया हुआ और विनिष्ट किया हुआ।

दलित वर्ग भारतीय समाज का वह निम्नतम वर्ग है, जो उच्चत्तम वर्ग के लोगों के उत्पीड़न का शिकार होकर कमजोर स्थिति में उपस्थित है, जैसे- दास प्रथा में दास, सामंती व्यवस्था में कृषक और पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर। अतः प्राचीन साहित्य के इतिहास में शूद्र, अतिशूद्र, चंडाल, अंत्यज, अछूत, अस्पृश्य शब्दों का प्रयोग दलित शब्द के सन्दर्भ में किया गया है।[3] यद्यपि पिछले पाँच-छः दशकों में दलित विमर्श के आयाम स्त्री विमर्श की भाँति अत्यधिक विस्तृत हुए है। मसलन इस वर्ग में उन स्त्रीयों को भी शामिल किया जाता है, जो दलन, दमन और शोषण के शिकार हुए हैं। इस प्रकार परम्परागत और रुढ़ अर्थ में दलित का अर्थ निम्न जातियों के सन्दर्भ से लिया गया है, जो परम्परागत समाज से सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक अधिकारों से सर्वथा भिन्न रहे हो। भारतीय संविधान में दलित वर्ग से सम्बन्धित तमाम जातियों के लिए अनुसूचित जाति के नाम से अभिहित किया गया है, तथापि वर्तमान दौर में अछूत व निम्न जन समाज के नेता दलित शब्द के पक्ष में मजबूती से खड़े होते हुए दिखाई पड़ते हैं। भारतीय इतिहास के सभी कालो में दलित वर्ग की स्थिति लगभग समान रही है, अन्तर था तो बस इनके लिए प्रयुक्त किए जाने वाला नाम, जैसे- प्राचीन वर्णव्यवस्था के अनुसार शूद्र, ज्योतिबा फूले के अनुसार दलित, बाबा अम्बेडकर के अनुसार अछूत, अंग्रेजो के अनुसार डिप्रैस्ड क्लास, महात्मा गांधी के अनुसार हरिजन, आर्य समाज द्वारा आर्य एवं पिछड़ा वर्ग आयोग द्वारा अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़ा वर्ग नाम दिया गया। भारतीय समाज के अन्तर्गत दलित जातियों में चमार, चण्डाल, महार, मोची, हरिजन, टम्टा, माली, भंगी, औड, औंजी, कोली, धौनी, ढोली, दास, मिरासी, हुड़की, बादी इत्यादि अछूत जातियॉ शामिल हैं।

भारतीय इतिहास में दलित वर्ग की स्थिति को ऊपर उठाने एवं उसमें सुधार के लिए अनेकोंनेक समाज सुधारकों व निम्न जन समाज के नेताओं ने समय-समय पर महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसी प्रकार विभिन्न विद्वानों, संगठनों और संस्थाओं ने अछूत दलित शब्द को विभिन्न नामों से परिभाषित किया।

डॉ0 सोहनपाल सुमनाक्षर ने दलित शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है- ''दलित वह है जिसका दलन किया गया हो। समाज में अपमानित, उपेक्षित, प्रताडिघ्त, बाधित और पीडिघ्त व्यक्ति दलित श्रेणी में आते हैं।'' अतः दलित शब्द के अर्न्तगत एक ओर जहाँ सदियों से सामाजिक वर्णव्यवस्था और जातिवाद से अभिशप्त दलित शोषित और उत्पीडिघ्त व्यक्ति आते है, वहीं दूसरी ओर सदियों से अपमानित उपेक्षित, प्रताडित, शोषित और सामाजिक बन्धनों में बाधित स्त्री और बच्चे भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। भूमिहीन अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम और पराश्रित-निराश्रित व्यक्ति भी दलित है। दलित शब्द जहाँ व्यक्ति को अपनी अस्मिता, पहचान और गौरवशाली इतिहास पर द्रष्टि डालने पर विवश करता है, वहीं अपनी निर्बल वर्तमान स्थिति और तिरस्कार जीवन के विषय में सोचने के लिए भी बाध्य करता है।

डा0 चन्द्रकांत वांदिवडेकर ने दलित शब्द के सम्बन्ध में वर्णन किया कि - ''दलित यानि अनुसूचित जातियाँ बौद्विक कष्ट उठाने वाले जन, भूमिहीन, मजदूर, निर्धन, किसान, खानाबदोश एवं आदिवासी जातियाँ हैं।'' जबकि लक्ष्मण शास्त्री जोशी दलित शब्द को परिभाषित करते हुए कहते हैं, ''दलित मानवीय प्रगति में सबसे पीछे पड़ा हुआ और पीछे धकेला हुआ सामाजिक वर्ग है। महाराष्ट्र के हिन्दू समाज में चमार, डोम एवं महार इत्यादि जातियों से भले ही शारीरिक सेवाए लेते रहे हो, परन्तु उनको गॉव से बाहर रखने व जीनपयोगी वस्तुओं से जानबूझकर वंचित किया गया। यहाँ तक कि उन्हें पशुओं के समान जीवन जीने के लिए मजबरू किया गया, इन्ही को अछूत या दलित कहा गया।''[4]

डा0 अम्बेडकर के अनुसार, ''दलित जातियाँ वे हैं, जो अपवित्र होते हैं, इनमें निम्न श्रेणी के मोची, भंगी, बसौर, कारीगर और सेवक जातियाँ, जैसे चमार, डंगारी जो मरे पशु उठाते हैं, सउरी, प्रसूती गृह का कार्य करने वाले, ढोला, डकली बजाने वाले व कुछ परम्परागत कार्य के बदले कृषि मजदूरी करने वाले आते हैं। अम्बेडकर ने दलितों के लिए बहिष्कृत, अस्पृश्य तथा अछूत शब्द का प्रयोग किया है।

मोदनदास करमचंद गांधी ने शूद्र, अंत्यज एवं अस्पृश्य जाति के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया है। 'हरिजन' का अर्थ है, ईश्वर की संतान। डा0 पुरुषोत्तम दास दलित शब्द और हरिजन शब्द की व्याख्या करते हुए कहते है कि ''दलित शब्द में करुणा या पश्चाताप का भाव ना होकर बेवजह दमन और अपमान का शिकार होने के प्राकृतिक क्रोध को व्यक्त करता है, जबकि हरिजन जाति व्यवस्था में ऐतिहासिक अन्याय की चेतना को सवर्ण दृष्टिकोण से व्यक्त करता है। इसमें एक प्रकार से पश्चाताप का स्पष्ट भाव दिखता है।''

सन् 1931 की जनगणना कमीश्नर द्वारा दलित जातियों के सन्दर्भ में कहा- ''दलित जाति वह जाति है, जिनके साथ शारीरिक स्पर्श होने के बावजूद उच्च जाति के हिन्दुओं को अपनी शुद्धि करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। दलित शब्द का सम्बन्ध सिर्फ पेशे से न करके बल्कि उन जातियों के लिए भी उपयुक्त होगा, जिन्हें हिन्दू समाज में अपनी परम्परागत स्थिति के कारण मन्दिर प्रवेश वर्जित हो या उनके तालाब, कुएँ अलग हो या जिन्हें पाठशालाओं में ना बैठने दिया जाए या जिनके साथ खानपान ना किया जाय या जो इसी प्रकार की अन्य सामाजिक रुढिग्वादी असमानताओं से शोषित एवं पीढिग्त हो।[5] अंग्रेज प्रशासकों की देन अनुसूचित जाति है। इसमें निहीत सोच के लिए जाति व्यवस्था की कष्टदायक स्थिति की समस्या या कुल मिलाकर विशेष अवसर पाने की समस्या है।[6]

सन् 1972 महाराष्ट्र में ''दलित पैन्थर्स'' मुम्बई नाम का एक सामाजिक राजनीतिक संगठन बनाया गया, यही से दलित शब्द को महाराष्ट्र में सामाजिक स्वीकृती मिली इस शब्द को उत्तर भारत में भले ही काशीराम ने प्रचलित किया, लेकिन दलित शब्द को लोकप्रिय बनाने में दलित पैन्थर्स की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इनके अनुसार राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक नाम पर शोषित सभी श्रमिक एवं महिला दलित हैं। राजनीतिक विश्लेषक और रीसर्चर मनीषा प्रियतम कहती हैं- ''दलित शब्द दरअसल लोकभाषा के शब्द दरिद्र से आया है। किसी जाति विशेष से ये शब्द नहीं जुडने के कारण इसे बड़े पैमाने पर स्वीकृती मिली।''

दलित वर्ग में अनुसूचित जाति के अलावा अनुसूचित जनजाति और विमुक्त जातियाँ भी शामिल की जाती हैं। अनुसूचित जनजातियॉ वे आदिम जातियाँ हैं, जो आधुनिक सभ्य समाज से दूर एकांत पर्वतीय क्षेत्रों और मैदानी भागों के ऐसे इलाके जहाँ दूर-दूर तक अन्य लोगों की बस्तियॉ ना हो, वहाँ रहना पसंद करते हैं। इनका अस्तित्व धरा पर प्राचीन है। ये ऐसी जातियाँ हैं, जो स्वयं अपने ढंग से अपनी चिकित्सा करते हैं। सन् 1931 की जनगणना से भी इन्हें आदिवासी जातियों के नाम से जाना गया है, कालांतर में इन्हें भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति के नाम से जाना जाता है। विमुक्त जातियाँ का संबंध उन कबीलों या समुदायों से है, जिन्हें 1952 से पूर्व अपराधशील जातियाँ कहा जाता था। आजादी के बाद 31 अगस्त 1952 को अपराधशील अधिनियम का अन्त कर दिया गया और इन जातियों को भी देश के अन्य लोगों के समान मान लिया गया। इस प्रकार दलित एक ऐसा शब्द है, जो परम्परागत रुप से निचले पायदान के अछूत और शूद्र माने जाने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ है, जोकि आधुनिक समय में विद्रोह और बदलाव के प्रतीक के रुप में उभरा है।

हिन्दू धर्म मूलत: वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित है। आरंभ में इसमें सिर्फ तीन वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे। कालांतर में इसमें शूद्र वर्ण के शामिल होने से चतुवर्ण्य व्यवस्था हो गई। चतुर्थ वर्ण शूद्र में अनार्य, दस्यु तथा दास थे।[7] ये समाज में एक प्रकार से दास थे, जो हकीकत में इन्सानियत के भी हकदार नहीं रहे। देवराज चानना ने दास व्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि- ''वैदिक काल में गौर और श्यामवर्ण के दो जातियों के बीच भेदभाव आसानी से देखा जा सकता है, जिसमें कुछ संस्कृतिगत भेद भी है।'' दास शब्द से विशेषत: काली चमडी वाले लोगों का अहसास होता है, जिसे दूसरी जाति ने विजित कर अपने अधीन कर लिया।[8] आर्यो ने अपनी स्थिति को आरक्षित करने के लिए सामाजिक और धार्मिक नियमों की स्थापना की, जिसके तहत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य समाज के संचालक बने रहे। हिन्दू धर्म के स्तंभ माने जाने वाले वेद और स्मृतियों में आर्यो के नियम प्रमुख रुप से वर्णित है। आर्यो ने स्वयं द्वारा संस्थागत वर्णाश्रम प्रणाली को दैवीय घोषित किया, फलत: हिन्दू जाति-व्यवस्था ने श्रेणीवद्ध सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक आधार देने का कार्य किया। जगजीवन राम ने आर्य अक्रान्ता और भारत मूल के लोगों के मध्य संघर्ष की पुष्टि करते हुए लिखा है- ''जब आर्य आक्रमणकारी और भारत के मूल निवासियों के बीच टकराव उत्पन्न हुआ, परिणामस्वरुप सांस्कृतिक भेदभाव तो प्रकट हुए साथ ही व्यवसायगत भेदभावों में भी वृद्वि हो गई, उसी समय चौथी जाति शूद्र का प्रार्दुभाव हुआ और हमारा समाज चतुर्वर्ण समाज बन गया।''[9] ऋषि मुनियों ने इस वर्णव्यवस्था को सनातन तथा शाश्वत की संज्ञा दी और धीरे-धीरे लोगों में यह विश्वास फैल गया कि जाति प्रथा ईश्वर द्वारा की गयी व्यवस्था है।

प्राचिन साहित्य ऋग्वेद, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत और अन्य शास्त्रों में शूद्रों का स्पष्ट उल्लेख अंकित है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुष सूक्त में वर्णव्यवस्था का पहली बार उल्लेख मिलता है-

ब्राहमणो अस्य मुखमासीत बाहूराजन्यकृत:।
उरु तदस्य यद् वेश्य पदभ्यां शूद्रो अजायत।।[10]

प्रजापति के मुहॅ से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पैरो से शूद्र का उद्‌भव हुआ। ब्राह्मण को विचारक दार्शनिक और आध्यात्मिक समाज का मार्गदर्शक माना गया। क्षत्रिय या योद्धा देश का शासक और बाहरी आक्रान्ताओं से देश की रक्षा का दायित्व मिला, जबकि वैश्य का काम वाणिज्य और कृषि सम्बन्धी कार्य करना था। शूद्र का कार्य इन सभी वर्गो की सेवा करना था। प्रारम्भ से ही दास या शूद्र वर्ग दो भागों में विभाजित हो गये, पहला अबहिष्कृत शूद्र या पिछड़ा वर्ग, दूसरा बहिष्कृत शूद्र या अश्पृश्य वर्ग। अबहिष्कृत शूद्र को जहाँ पशुपालन खेती और शिल्पकार कार्य करने पड़ते थे, वहीं बहिष्कृत शूद्र को साफ सफाई और चर्म संबंधित कार्य करने पड़ते थे। बहिष्कृत शूद्र आज के अछूतों के पूर्वज थे, जिन्हें अस्पृश्य या पंचम की संज्ञा दी जाती थी। इस प्रकार समाज के निचले वर्ग को घ्रणित व्यवसाय करने के लिए बाध्य किया गया। समाज के निम्न वर्ण और सहायक जातियों को पवित्र और अपवित्र भेदभाव से उत्पीडिघ्त किया गया। इस प्रसंग में मानवशास्त्री ड0एन0 मजूमदार का कहना है कि ''जातीय प्रस्थिति किसी व्यवसाय परिणाम ना होकर उस धार्मिक व्यवसाय के साथ जुड़ी रहती हैं।''

पौराणिक महाकाव्यों में भी शूद्रों को अपमानित होने के साथ-साथ समाज के बर्बर अत्याचारों का निशाना बनने के लिए भी मजबूर होना पड़ा। रामायण में शंबूक ऋषि की हत्या राम ने इस कारण की कि उन्होनें शूद्र कर्म को छोड़कर ब्राह्मण कर्म को अपनाया था। महाभारत में भी एकलव्य और गुरु द्रोणाचार्य का ऐसा ही प्रसंग देखने को मिलता है, जब गुरु द्रोणाचार्य के अस्त्रविद्या सिखाने से इनकार करने के बाद उन्होनें शूद्र होकर भी अर्स्त्रविद्या सीखी, तो उनका अॅगूठा कटवा लिया। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार शूद्रों को द्विजों की सेवा करना परम कर्तव्य है और उन्हीं के द्वारा अपनी जीविका का गुजारा भी,जैसे पुराने वस्त्र, झूठन आदि प्राप्त करना।[11] इस धर्मसूत्र में यह भी कहा गया है कि यदि शूद्र वेदों को सुन पाये तो उनके कानों में पिघलता हुआ शीशा डाल देना चाहिए। यदि वे वेदों का उच्चारण करे तो उनकी जीभ काट देनी चाहिए और यदि वेदों का स्मरण करे तो उसे मार देना चाहिए। इन परिस्थितियों में शूद्र पर अत्याचार होना मौलिक है। ब्राह्मण द्वारा रचित धर्मग्रन्थों का जब शूद्र या अछूत पालन ना करें तो उसे सामाजिक न्याय से वंचित होकर अवर्ण का जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है।

मनुस्मृति जो मानव जीवन और व्यवहार का ग्रन्थ है, ने शूद्रो का वर्णन करते हुए लिखा है कि शूद्र के लिए भगवान ने एक कर्म निश्चित किया है, वह तन मन से तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करें। यह एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसमें शूद्र सर्वाधिक शोषित हुए। भगवतगीता में भी कहा गया है कि ब्राह्मण को शूद्रो को दास कर्म में लगे रहने और उन्हें ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित कोई ज्ञान नहीं देना चाहिए। इन सभी धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष निकलता है कि ये ग्रन्थ किस प्रकार समाज को अंधेरे में धकेल रहे हैं। वेद से दुर्गा पाठ तक ब्राह्मणों को जहाँ उच्च सम्मान और प्रतिष्ठा दे रही है, वहीं दलितों को निकृष्ट पशु से बदतर जीवन जीने के लिए विवश किया गया है।

मौर्यकाल में शूद्रो की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुए। इस काल में कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में वर्णभेद और कठिन बना दिये, के अनुसार शूद्र का वह अंग, जिसे वह किसी ब्राह्मण को मारता है तो उसे काट देना चाहिए। यदि कोई क्षत्रिय असुरक्षित ब्राह्मणी को भ्रष्ट कर दे, तो उसे उच्चत्तम सजा मिले, वैश्य करे तो उसकी संपत्ति छीन लेनी चाहिए, अगर कोई शूद्र ऐसा काम करे तो उसे जीवित जलाकर मार देना चाहिए।12 इस प्रकार मौर्य-मौर्योत्तर काल तक शूद्रो की स्थिति में निरन्तर गिरावट देखने को मिली, हालाँकि अन्य कालों की तुलना में मौर्योत्तर कालों में शूद्रो की संख्या में अधिकतम वृद्धि हुई। यद्यपि भारतीय इतिहास के सभी कालों में दलित वर्ग की स्थिति हमेशा शोषित और उत्पीडिघ्त रही है। अठारहवीं सदी का भारतीय समाज अध:पतन के चरमात्कर्ष पर था। अछूत, दलितों की दशा दिन-प्रतिदिन दयनीय होती जा रही थी, सबसे बड़ी बात यह थी कि वे मन्दिरों में शूद्र और पवित्र होकर भी देवता के चरणों में पुष्प अर्पित नहीं कर सकते थे।

भारतीय इतिहास में वेदिक काल से ही दलित लोगों के मन में अपने उत्थान की आशाओं ने जन्म तो लिया, लेकिन तत्कालीन समय की वर्ण व्यवस्था ने इनके मन-मस्तिष्क में आशा का द्वीप प्रज्वलित नहीं होने दिया। धीरे-धीरे समय परिवर्तन के साथ विशेषत: अंग्रेजों के आगमन के बाद नवीन औपनिवेशिक व्यवस्था व पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने इनके मन में शूद्र, अछूत, अस्प्रश्य, हरिजन, शिल्पकार एवं दलित इत्यादि शब्दों से मुक्ति दिलाने एवं समानता के भाव जागृत करने का प्रयास किया।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में मुख्यत: राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रसार जोकि समाज का लोकतांत्रिक रुपान्तरण का आन्दोलन था, ने दलितों की सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक चेतना को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जैसे 20 शताब्दी के प्रथमार्द्ध में राष्ट्रीय

आन्दोलन के साथ ही सम्पूर्ण भारत में अछूतोद्वार आन्दोलन की लहर सी बह रही थी। अनेक अछूत नेता जोकि अधिकांशतः उच्च हिन्दू जाति से सम्बन्धित थे, ने भारतीय समाज से छूआछूत को सदैव के लिए समाप्त करने हेतु आवाज उठायी। आधुनिक भारत में दलित आन्दोलन को प्रारम्भ करने का श्रेय ज्योतिबा फूले को जाता है, जोकि स्वयं माली जाति से थे। फूले ने 1873 में पूना में सत्यशोधक समाज की स्थापना की थी, ने इस आन्दोलन के माध्यम से अस्पृश्यों के अधिकारों को वापस करने की आवाज जोर-शोर से उठायी। यह आन्दोलन ब्राह्मणों की सर्वोच्चता पर आधारित हिन्दू समाज व्यवस्था के झूठ, अन्याय और दोगलेपन का विरोध करने वाला था।[13] सत्यशोधक समाज आन्दोलन के बाद भारत में दलित जाति का उत्थान व जातीय भेदभाव को दूर करने के समय-समय पर अनेक आन्दोलन हुए, जैसे तमिलनाडु का आत्मसम्मान आन्दोलन, पंजाब का आदि धर्म आन्दोलन, बंगाल का नाम शूद्र आन्दोलन एवं छत्तीसगढ़ का सतनामी आन्दोलन। सन् 1919 ई0 में डा0 भीमराव अम्बेडकर दलित आन्दोलन के प्रवर्तक बने। ज्योतिबा फूले के बाद डा0 भीमराव अम्बेडकर को इस जाति का उत्थान व चेतना का सर्वाधिक श्रेय दिया जाता है। अम्बेडकर ने ही दलित समाज में चेतना एवं संगठन की भावना उत्पन्न करने के लिए सन् 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा, 1936 में महार परिषद, 1942 ई0 में इंडिया सिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन एवं दलितवर्ग कल्याण समिति, 1945 ई0 में पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी एवं 1956 ई0 में रिपब्लिक पार्टी जैसे राजनीतिक एवं सामाजिक संगठन की स्थापना की। अम्बेडकर के आन्दोलनों की विशेषता को व्यक्त करते हुए कंवल भारती कहते है कि - उनके आन्दोलनों ने हिन्दू-व्यवस्था के विरुद्ध सीधी कार्यवाही के रुप में खुला विद्रोह किया। उक्त संगठनों के निर्माण एवं आजादी के बाद निर्मित अनेक संगठन जैसे 1972 ई0 में महाराष्ट्र में दलित पैंथर्स आन्दोलन के फलस्वरुप शिल्पकार, दलितवर्ग में चेतना उत्पन्न हुई।[14]

20 वीं सदी के पूर्वाद्ध में जिस प्रकार से सम्पूर्ण भारत में अछूतोंद्धार आन्दोलन तीव्र गति से फैलने लगा, के प्रभाव से उत्तराखण्ड भी अछूता नहीं रहा। अब यहाँ के अछूत दलितों में भी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक सुधार की चेतना जागृत होने लगी। सर्वप्रथम सन् 1905 ई0 में टम्टा सुधार समिति की स्थापना की गई।[15] इस सभा के माध्यम से अछूत दलितों को एक और राजनीतिक पटल मिला। कालांतर में इस संगठन ने 1924 ई0 में 'विस्तृत शिल्पकार सभा' का स्थान ले लिया, इसी सभा ने सन् 1925 में अपनी स्थिति की समीक्षा हेतु कुमाऊँ के डयोलीडाडा में वृहद शिल्पकार सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें हरिप्रसाद टम्टा, खुशीराम आर्य तथा बचीराम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस सम्मेलन में हजारों दलित शिल्पकारों ने भाग लेकर नगर में जुलूस निकाला। इन्होनें सामाजिक कुरीतियों पर प्रतिबन्ध लगाने और शिल्पकारों को कुछ मामलों में राजनीतिक, आर्थिक सुधार जैसे- नगरपालिका परिषद में प्रतिनिधित्व देने तथा शिल्पकार बैंक स्थापित करने इत्यादि की प्रमुख माँग रखी।[16] सन 1932 मै गांधी जी ने हरिजन सेवक संघ की स्थापना की तब अछतोद्धार की लहर सम्पूर्ण भारत में थी। संघ का उद्देश्य हिन्दू समाज में सत्यमय व अहिंसक साधनों द्वारा छूआछूत को मिटाना और शेष हिन्दुओं के समान लाना था। इस संघ का प्रभाव उत्तराखण्ड में भी पड़ा। सन् 1933 में नैनीताल में इन्द्र सिंह नयाल ने जिला हरिजन सेवक संघ की स्थापना की, इन्हीं के प्रयास से नैनीताल के नैनादेवी मन्दिर में हरिजन प्रवेश करने में सफल रहे। गांधी जी की प्रेरणा से गढ़वाल में भी हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। इसी प्रकार सन् 1939 में दलितोद्धार सभा, गढ़वाल आर्य सभा, क्योटा गढवाल सभा मसूरी तथा आर्य समाज द्वारा उत्तराखण्ड में दलितों का उत्थान कल्याण करने का भरसक प्रयास किया।[17] यहाँ तक कि आर्यसमाज के सामाजिक सुधार आन्दोलन के तहत उत्तराखण्ड में भी दलितों को जनेऊ धारण करने एवं धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने का अवसर मिला।

इस प्रकार आजादी के पश्चात् 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने के बाद सामाजिक भेदभाव व छूआछूत को दूर कर स्वतंत्र भारत ने लोकतांत्रिक, समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व प्रयास शुरु किए, तो इसका दलितों के सामाजिक सांस्कृतिक व राजनीतिक परिवेश में सकारात्मक प्रभाव पड़ा, परिणामस्वरुप 20वीं सदी के उत्तराखण्ड में भी दलितों ने सामाजिक, सांस्कृतिक-धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्दर्भ सूची-

1. भारती, कंवल, 2014, दलित विमर्श की भूमिका, के0के0 पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 7-8
2. वर्मा, रामचन्द्र, 1964, मानक हिन्दीकोष, प्रयाग साहित्य सम्मेलन पृष्ठ संख्या-35
3. वास्कर, आनन्द, 2015, हिन्दी साहित्य में दलित चेतना पृष्ठ संख्या-18

4. सिंह, एन0, 2010, मेरा दलित चिंतन, कंचन प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 31-32
5. भारद्वाज, ए0एन0, 1987, अपृश्यता एवं मानवता, किताब घर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-45
6. सिंह, आर0पी0, भारतीय दलितों की समस्या एवं उनका समाधान, मध्य प्रदेश अकादमी ग्रन्थ भूपाल,
7. मंत्री, गणेश, 2017, गांधी और अम्बेडकर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-15
8. चानना, देवराज, 2012, प्राचीन भारत में दास प्रथा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-132
9. चांचरिक, के0एल0, आधुनिक भारत में दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 10
10. दयानन्द सरस्वती (व्याख्याता) ऋग्वेद, पृष्ठ संख्या-46
11. चन्द्र, उमेश, गौतम धर्म सूत्राणि, पृष्ठ संख्या-59-60
12. शास्त्री, उदयवीर, (व्याख्याता) कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृष्ठ संख्या-94, 170
13. रण्दिवे, बी0टी0, जाति क्यों नहीं जाती? पृष्ठ संख्या-97
14. विधानसभा की कार्यवाही, उत्तर प्रदेश सचिवालय लखनऊ, मार्च 1960, पृष्ठ संख्या-287
15. अल्मोड़ा 15 सित्मबर 1934
16. पाठक, शेखर, पहाड़ 4, याया रोहिला लॉज तल्लीताल, नैनीताल, पृष्ठ संख्या- 214-15
17. भक्त, दर्शन, 2016, गढ़वाल की दिवंगत विभूतियाँ, पृष्ठ संख्या- 43

भारतीय लोकतन्त्र और भ्रष्टाचार: स्थिति, कारण, चुनौतियाँ और समाधान

आशा नागर

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, देवली (टोंक), राजस्थान

शोध सारांश

भारत में भ्रष्टाचार की समस्या सबसे गंभीर सामाजिक समस्या है। आज भ्रष्टाचार ने कैंसर रोग की भांति सम्पूर्ण व्यवस्था को विकृत कर दिया है। भ्रष्टाचार की जड़ में मानव की बढ़ती हुई धन पिपासा है। हर व्यक्ति अधिकाधिक धन प्राप्त करना चाहता है जिसके लिए वह सभी प्रकार के नैतिक और अनैतिक साधनों को अपनाने का प्रयास करता है। इसी कारण भ्रष्टाचार राष्ट्रीय विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बन चुका है। कड़े कानूनों और नियमों के बावजूद भी भ्रष्टाचार पर लगाम लगाना संभव नहीं हो पाया है। राजनीति और प्रशासन के आपसी गठजोड़ के कारण भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत गहरी हो चुकीं है। राजनीतिक फायदे के लिए प्रशासनिक तंत्र का उपयोग भ्रष्टाचार को निरंतर बढ़ावा दे रहा है। दृढ़ राजनीतिक और प्रशासनिक इच्छाशक्ति के साथ सार्वजनिक जीवन में नैतिकता, सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता, निष्पक्षता और ईमानदारी के गुणों को अपनाए बिना इस बढ़ते हुए भ्रष्टाचार पर नियंत्रण लगाना संभव नहीं है।

मुख्य शब्द-भ्रष्टाचार, लोकतन्त्र, स्वार्थ, धन पिपासा, नैतिकता, सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता, निष्पक्षता, ईमानदारी।

शोध के उद्देश्य

1. भारत लोकतन्त्र के समक्ष मौजूद भ्रष्टाचार की समस्या का विश्लेषण करना।
2. भारत में भ्रष्टाचार की समस्या के कारणों की जांच करना।
3. भारत में भ्रष्टाचार पर अंकुश हेतु कानूनी एवं संस्थागत प्रयासों की चर्चा करना।
4. भ्रष्टाचार की समस्या के निदान के उपाय प्रस्तुत करना।

परिचय

भ्रष्टाचार, निष्ठा के सामान्य मानदंडों से विचलन का एक रूप है। भ्रष्टाचार अपने व्यक्तिगत हितसाधन हेतु अपनी स्थिति, पद या साधनों का जानबूझकर किया गया सोद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दुरूपयोग है, चाहे वह आर्थिक लाभ के लिए हो अथवा शक्ति, प्रतिष्ठा या प्रभाव की वृद्धि के लिए हो। यह दुरूपयोग न्यायसंगत तथा सामान्यतया स्वीकृत प्रतिमानों से अधिक और अन्य व्यक्तियों के अथवा पूरे समाज के हितों के लिए हानिकारक होता है। भ्रष्टाचार में केवल कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, कुनबापरस्ती, सत्ता अथवा प्रभाव का दुरूपयोग, मुनाफाखोरी और इसी प्रकार के अन्य काम केवल शामिल नहीं है, वरन सरकारी धन का अपव्यय भी निष्ठा का अभाव को दर्शाता है और जो प्रकारांतर से भ्रष्टाचार है।

मुख्य आलेख

सामान्यत: भ्रष्टाचार शब्द का अर्थ व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सरकारी पद का दुरुपयोग करना है। यह दुरुपयोग सिर्फ आर्थिक लाभ के लिए ही नहीं बल्कि नियमों-विनियमों का उल्लंघन करने से भी है। भ्रष्टाचार निवारक समिति के अध्यक्ष श्री संथानम के

अनुसार ष्सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने दायित्व के निष्पादन में लाभ के लिए कोई भी कार्यवाही करना या न करना हो भ्रष्टाचार हैष्। भारतीय दंड संहिता की धारा 161 में भ्रष्टाचार की कानूनी परिभाषा निम्न रूप में दी गई है;

"कोई भी व्यक्ति जो सरकारी नौकरी में रहते हुये या उसकी प्रत्याशा करते हुये कोई सरकारी काम करने या न करने, अथवा अपना सरकारी काम अंजाम देते हुये किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा प्रदर्शित करने, अथवा किसी व्यक्ति या केंद्रीय या राज्य शासन या संसद या राज्य की विधान सभा या किसी सरकारी नौकर का कोई उपकार या अपकार करने या करने का प्रयास करने के बदले ईनाम या प्रोत्साहन के रूप में अपने लिये या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी व्यक्ति से कानूनी पारिश्रमिक के अतिरिक्त अन्य कोई भी पारितोषित स्वीकार करेगा या प्राप्त करने का प्रयास करेगा तो उसे तीन वर्ष तक की (कठोर या साधारण) कारावास अथवा जुर्माना अथवा दोनों दंड दिये जाएंगे।"

भ्रष्टाचार का दूसरा प्रकार सरकारी धन का दुरूपयोग है, जिसे सामान्यतया भ्रष्टाचार नहीं माना जाता, सरकारी धन का अपव्यय है। सरकारी धन का अनावश्यक प्रयोजनों पर व्यय करना अथवा आवश्यक प्रयोजनों पर आवश्यकता से अधिक खर्च करना सरकारी धन का अपव्यय है जिसका सामान्य जनता पर अनुचित प्रभाव पड़ता है।

भारत में भ्रष्टाचार के कारण

भारत में भ्रष्टाचार निष्ठा का अभाव का प्रतिफल है और इसके विभिन्न कारण हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं:-

1. ऐतिहासिक कारण-भारत में भ्रष्टाचार की जड़ ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन में निहित है। ब्रिटिश शासन चहुंमुखी विकास का पक्षधर नहीं था। वह ऊंचे पदों पर ब्रिटिश लोगों को नियुक्त करता था तथा उन्हें उंची पगार देता था। वहीं निम्न पदों पर भारतीयों को नियुक्त करता था तथा कम वेतन दिये जाते थे जिसके कारण वे भ्रष्ट तरीके अपनाते थे। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अभावों के कारण कई प्रकार के नियंत्रण लागू किये गये जिससे निम्न स्तरीय कर्मचारियों को भ्रष्ट तरीके अपनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और फिर यह सुअवसर आदत का स्वरूप अख्तियार कर लिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भ्रष्टाचार अपने उच्चतम स्तर पर था। युद्धकालीन नियंत्रण और अभावों के कारण निष्ठा का वातावरण दुषित हो गया था और युद्धोत्तर काल में मुद्रा की प्रचुरता तथा अनुवर्ती मुद्रास्फीति ने इसे और बदतर बना दिया।
2. माहौल संबंधी अवधारणा- सरकारी सेवा में भ्रष्टाचार का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारण तेजी से हुआ नगरीकरण और औद्योगिकीकरण है। इस प्रक्रिया में मौलिक संपत्ति स्थिति और आर्थिक शक्ति ही समाज में प्रतिष्ठा और महत्व निर्धारित करती है। चूंकि वेतन कम है और मुद्रास्फीति यथावत या वर्द्धमान रही है, ऐसे में सरकारी कर्मचारी समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए आसानी से भ्रष्टाचार के शिकार हो जाते हैं।
3. आर्थिक कारण- वेतनमानों से अपर्याप्त पारिश्रमिक तथा जीवन निर्वाह का बढ़ता हुआ व्यय संभवत: भ्रष्टाचार के महत्वपूर्ण कारणों में एक है। विगत वर्षों में जीवन निर्वाह व्यय में तेजी से वृद्धि हुयी। है जिससे समाज के विभिन्न वर्गों विशेषकर वेतनभोगियों की वास्तविक आय कम हुयी है। संपत्ति प्राप्तकर प्रतिष्ठित दिखने की लालसा ने उन लोगों को प्रोत्साहित किया जिन्हें प्रलोभनों के वशीभूत होने के अवसर मिले।
4. भ्रष्टाचार विरुद्ध कठोर जनमत का अभाव-लोग भ्रष्ट कर्मचारियों के विरुद्ध सरकार की शिकायत नहीं करते हैं बल्कि वे अपनी गलत मांगों की पूर्ति के लिए रिश्वत देते हैं। हालांकि हाल के वर्षों में इस प्रवृत्ति में कुछ हद तक कमी आयी है।
5. सरकारी कार्यालयों का जटिल तथा बोझिल कामकाज और प्रक्रिया- ऐसा आरोप लगाया जाता है कि प्रशुल्क, केंद्रीय उत्पाद, आयात निर्यात, रेलवे, आपूर्ति और डिस्पोजल, आयकर, पुलिस आदि जैसे सरकारी विभागों का कामकाज जटिल, बोझिल, दीर्घसूत्री और विलंबकारी है। इसमें श्त्वरित निपटान हेतु धन जैसी बेईमानी की प्रथाओं को प्रोत्साहन मिला है।
6. भ्रष्टाचार से निपटने के लिए अपर्याप्त कानून-भ्रष्टाचार से संबंधित कानून और भारतीय दंड संहिता पुराने पड़ गये हैं और उनमें अपर्याप्त दंड का विधान है। भ्रष्ट कर्मचारियों को कानूनों के अंतर्गत दंड दिलाने में समय लगता है। भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए संक्षिप्त मुकदमा पद्धति तथा कठोर दंड दिया जाना चाहिये। इसी अनुरूप कानूनों में बदलाव की जरूरत है।

7. भारत में सरकारी कर्मचारियों को दिया गया अनुचित संरक्षण–भारतीय संविधान के अनुच्छेद 311 में सरकारी कर्मचारियों को संरक्षण देने का प्रावधान है। हमारे न्यायालयों द्वारा यथा प्रतिपादित इस अनुच्छेद 311 ने भ्रष्ट कर्मचारियों पर प्रभावी ढंग से कार्यवाही करना कठिन बना दिया है। भ्रष्ट कर्मचारियों से उच्च अधिकारियों की सांठगांठ होने के कारण भ्रष्ट कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करने की उच्चाधिकारियों की अनिच्छा से स्थिति और अधिक गंभीर बन गयी है। इस अनुच्छेद और संरक्षण के बारे में अलग से विस्तार से चर्चा की गई है।
8. निजी स्वार्थसिद्धि हेतु व्यापारिक और औद्योगिक धनी मानी व्यक्तियों और अन्य की मिलीभगत–बड़े व्यावसायी, बेईमान, दुकानदार, और ठेकेदार सरकारी कर्मचारियों से अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए उन्हें रिश्वत देते हैं। कभी–कभी वे अनर्जित लाभ का एक भाग सरकारी कर्मचारियों में बांट देते हैं।
9. दबाव समूह– ऐसा कहा जाता रहा है कि फिक्की, सीआईआई, एसोचौम जैसे औद्योगिक दबाव समूह अपने समुदाय के हितों की पूर्ति हेतु सहायता पाने के लिए अपनी गतिविधियों से भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं। वे रात्रिभोज, पार्टीज, स्वल्पाहार आदि के माध्यम से सत्ताधारी आभिजात्य वर्ग को प्रभावित करते हैं।

भ्रष्टाचार के तरीके

केन्द्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission) के अनुसार निम्न बारह प्रकार के भ्रष्टाचार हैं–

1. निकृष्ट प्रकृति के समान कार्यों की स्वीकृति।
2. सार्वजनिक धन एवं वस्तुओं का दुरुपयोग।
3. ठेकेदारों, कंपनियों से औपचारिक संपर्क के कारण पदधारकों द्वारा धन प्राप्त करना।
4. ठेकेदारों एवं कंपनियों के हित में काम करना।
5. सामर्थ्य से अधिक सम्पत्ति रखना।
6. पूर्व स्वीकृति लिए बिना अचल संपत्ति इत्यादि खरीदना।
7. लापरवाही या अन्य कारणों से सरकार को घाटा पहुँचाना।
8. सरकारी पद/ शक्तियों का दुरुपयोग करना।
9. उम्र, जन्म तिथि, जाति आदि का जाली प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करना।
10. रेल एवं वायुयान में स्थान के आरक्षण में अनियमितता।
11. उपहार स्वीकार करना।
12. नैतिक गिरावट

भ्रष्टाचार रोकने हेतु कानूनी ढ़ांचा

भारत में भ्रष्टाचार रोकने हेतु वर्ष 1947 में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम पारित किया गया था। सरकारी कर्मचारियों से संबंधित विभिन्न आचार संहिता भी हैं जिनकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। भ्रष्टाचार का सामना करने के लिए विद्यमान साधनों के पुनरीक्षण हेतु संथानम समिति भी गठित की गई तथा केंद्र एवं राज्य स्तर पर सतर्कता आयोग भी गठित किये गये। इसके अतिरिक्त केंद्रीय जांच ब्यूरो तथा लोकपाल एवं लोकायुक्त की संस्थाएं भी भ्रष्टाचार रोकने के लिए हैं।

भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1947: इस अधिनियम में भारतीय दंड संहिता में पहले से विद्यमान भ्रष्टाचार से संबंधित अपराधों को न तो पुनरू परिभाषित किया गया और न ही इस परिभाषा में कोई विस्तार किया गया। इसी प्रकार, इसने भारतीय दंड संहिता में दी गई 'लोक सेवक' की परिभाषा को ही अपनाया। फिर भी इस कानून ने एक नए अपराध की परिभाषा बनाई, 'पदीय कर्तव्य के निर्वहन में आपराधिक दुराचार' जिसके लिए सजा को बढ़ाने का (न्यूनतम एक वर्ष से अधिकतम 7 वर्ष तक) अनुबंध किया गया था। भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1947 में सरकारी कर्मचारियों से संबंधित भ्रष्टाचार के कार्य क्षेत्र की जो परिभाषा दी गयी है वह है– ष्सरकारी कर्मचारी को अपने कर्तव्य निष्पादन में आपराधिक कदाचार का अपराध करने वाला कहा जाता है: अ) यदि वह आदतन किसी भी व्यक्ति से अपने लिये या किसी अन्य व्यक्ति के लिए इनाम या प्रेरक के रूप में कोई पारितोषिक (कानूनी

पारिश्रमिक के अतिरिक्त अन्य), जैसा कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 में वर्णित है, स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है। ब) यदि वह आदतन ऐसे व्यक्ति से जिसके बारे में वह जानता है कि उससे उसका कार्य व्यवहार हुआ है या होना संभावित है या होने ही वाला है अथवा जिसके साथ उसके अथवा किसी अन्य सरकारी कर्मचारी जिसके वह अधीनस्थ है, के सरकारी काम का संबंध है; अथवा किसी ऐसे व्यक्ति से जिसका हितबद्ध होना वह जानता है अथवा जो संबंधित व्यक्ति का रिश्तेदार है अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए बिना प्रतिफल के अथवा उसकी जानकारी में अपर्याप्त प्रतिफल के बदले कोई मूल्यवान वस्तु स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने हेतु सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है। स) यदि वह बेईमानी से या धोखे से गबन करता है, या अन्यथा सरकारी कर्मचारी की अपनी स्थिति का दुरुपयोग करता है, अपने लिये या किसी अन्य व्यक्ति के लिये कोई मूल्यवान वस्तु अथवा आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।"

दंड विधि संशोधन अधिनियम 1952: दंड विधि संशोधन अधिनियम 1952 के आ जाने से भ्रष्टाचार से संबंधित कानूनों में कुछ परिवर्तन हुए। भारतीय दंड संहिता की धारा 165 के अधीन उल्लिखित सजा को विद्यमान दो वर्षों की बजाय तीन वर्षों तक कर दिया गया। इसके साथ ही भारतीय दंड संहिता में एक नई धारा 165 क लगा दी गई जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 165 में परिभाषित किए गए अपराधों को दुष्प्रेरित करना भी अपराध बना दिया गया। यह भी अनुबंध किया गया कि भ्रष्टाचार से संबंधित सभी अपराधों की सुनवाई विशेष न्यायाधीशों द्वारा ही की जाए।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988: इस अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति 9 सितंबर 1988 को मिली। इसमें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1947, दंड विधि संशोधन अधिनियम 1952 और भारतीय दंड सौहता के कुछ उपबंधों को समेकित किया गया है। इसके अलावा, इसमें कुछ परंतुक भी हैं जिन्हें लोक सेवकों में भ्रष्टाचार का प्रभावशाली ढंग से सामने करने की इच्छा से रखा गया है।

कपटसंधिकारी रिश्वत (Collusive Bribery): किसी भी भ्रष्टाचार लेन-देन में दो पक्ष होते हैं; एक रिश्वत देने वाला और दूसरा रिश्वत लेने वाला रिश्वतखोरी के अपराध को दो प्रकार की श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक श्रेणी में रिश्वत देने वाला जबरदस्ती उससे पैसे ऐंठे जाने का शिकार होता है, उसे एक मामूली सी सेवा के लिए पैसे देने पड़ते हैं क्योंकि यदि वह पैसे ऐंठने वाले लोक सेवक की मांग नहीं मानता है तो उसे उस रिश्वत की राशि से कहीं अधिक खो देना पड़ेगा। विलंब, उत्पीड़न अनिश्चितता, खोया हुआ अवसर और मजदूरी ये सभी परिणाम होते हैं रिश्वतखोरी की मांग को ठुकराने के, जो इतने भयानक हो गए हैं कि भ्रष्टाचार के कुचक्र ने प्रतिदिन के जीवन-यापन के लिए नागरिक को निचोड़ कर रख दिया है। इसके अलावा, ऐसे मामलों की एक और श्रेणी है जिसमें रिश्वत लेने वाला और रिश्वत देने वाला दोनों एक साथ मिल कर समाज को लूटते हैं और रिश्वत देने वाला उतना ही या उससे भी अधिक अपराधी होता है जितना कि रिश्वत लेने वाला। इनमें घटिया गुणवत्ता के कामों के निष्पादन के मामले, प्रतिस्पद्धों के विकार, राजकोष को लूटना, लोक अधिप्राप्तियों में कमीशन लेना, कपटसंधि से कर की चोरी और लोगों को घटिया किस्म की दवाएं देकर सीधे हानि पहुंचाना और सुरक्षा नियमों का अतिक्रमण भ्रष्टाचार की इन दो श्रेणियां को क्रमशः 'बलप्रयोग' और 'कपटकारीसंधि' के नामों से भी जाना जाता है। तेजी से बढ़ रही हमारी अर्थव्यवस्था के साथ-साथ बल प्रयोगपूर्ण भ्रष्टाचार के मामलों में वृद्धि हो रही है और कई बार, ये प्रायः कई गुना 'गंभीर आर्थिक अपराधों' का रूप ले लेते हैं।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अध्याय III में विविध अपराधों और जुर्मानों को अधिकधित किया गया है। धारा 7 में लोक सेवक द्वारा किसी सरकारी काम को करने के लिए असंवैधानिक रूप से परितोषण प्राप्त करना अपराध है। यद्यपि, रिश्वत देने की अलग से कोई परिभाषा नहीं दी गई है, फिर भी रिश्वत देने वाला 'दुष्प्रेरणा' का अपराधी है और जो सजा रिश्वत लेने वाले को मिलती है, उसी सजा का पात्र रिश्वत देने वाला भी है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 को धारा 12 के तहत रिश्वत देने को भी अपराध घोषित किया गया है फिर भी अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत, यदि रिश्वत देने वाला न्यायालय में यह वक्तव्य देता है कि उसने रिश्वत का प्रस्ताव रखा था तो रिश्वत देने वाले को अभियोजन से उन्मुक्त रखने का उपबंध है। फिर भी, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम बल-प्रयोग और कपटसंधि में कोई अन्तर नहीं बताता। बलप्रयोग के भ्रष्यचार का सामना करने में व्यवस्थापिक सुधार बहुत प्रभावी होते हैं। इसके अतिरिक्त, यद्यपि भ्रष्टाचार के मामले में सामान्य दोषियों की दर कम है, यह देखा गया है कि बलप्रयोग भ्रष्टाचार के दोषियों के मामलों की दर कपटसंधि भ्रष्टाचार की अपेक्षा अधिक है। इसका कारण यह है कि रिश्वत देने

वाला भी एक पीड़ित व्यक्ति होता है और क्योंकि उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत उन्मुक्ति का प्रावधान है, अत: वह रिश्वत लेने वाले के बचाव के लिए आगे आता है। इसके अतिरिक्त, सतर्कता तंत्र द्वारा जाल बनाकर पकड़ने के मामले ऐसे में बहुत प्रभावशाली होते हैं। कपटसंधि भ्रष्टाचार के लिए वैसा ही करना सत्य नहीं होता है। इन मामलों में दोषसिद्ध होना बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि रिश्वत देने वाले और रिश्वत लेने वाले दोनों की मिलीभगत से उन दोनों को लेनदेन का लाभ मिलता है। दोषसिद्ध भ्रष्टाचार का नकारात्मक प्रभाव बहुत हो विपरीत होता है तथा सरकार और प्रायरू समाज ही कुल मिलाकर इससे पीड़ित होते हैं।

अभियोजन के लिए स्वीकृति: भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 में यह उपबंध है कि न्यायालय को अधिनियम की धारा 7, 10, 11.13 और 15 के अंतर्गत परिभाषित अपराधों का संज्ञान लेने से पहले सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति लेनी आवश्यक होगी। इस उपबंध का उद्देश्य ईमानदार लोक सेवकों को विद्वेषपूर्ण और कष्टमय शिकायतों द्वारा उत्पीड़न से बचाव करना है। सक्षम प्राधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसके समक्ष रखे गए साक्ष्य पर अपने विवेक का प्रयोग करते हुए इस बात से अपने को संतुष्ट कर ले कि अभियुक्त लोक सेवक के विरूद्ध कोई प्रथमदृष्टया मामला बनता है या नहीं। यद्यपि इस प्रावधान की मंशा स्पष्ट है, फिर भी यह दलील दी जाती है कि इस खंड का प्रयोग कभी कभी स्वीकृति प्राधिकारी द्वारा बेईमान अधिकारियों को बचाने के लिए किया जाता है। ऐसे भी मामले सामने आए हैं जहां ऐसी स्वीकृति प्रदान करने में असाधारण विलंब हुए हैं। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जहां स्वीकृति प्रदान करने में त्रुटियों का प्रयोग अभियुक्त द्वारा स्वीकृति को चुनौती देने और इसे रद्द कराए जाने के लिए अज्ञानतावश किया जाता है। इससे संपूर्ण कार्यवाही अकृत हो जाती है।

भ्रष्ट लोक सेवकों द्वारा क्षतिपूर्ति करने का दायित्व: जहां एक और लोक सेवकों द्वारा किए जाने वाले भ्रष्ट कृत्य के कारण वे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत सजा के पात्र हैं, वहीं दूसरी ओर गलत काम करने वाले के लिए कोई सिविल दायित्व नहीं है और न ही किसी ऐसे व्यक्ति/संगठन को प्रतिपूर्ति के लिए प्रावधान है, जिसके प्रति गलत काम हुआ है या जो लोक सेवक के कदाचार के कारण पीड़ित हुआ है। संविधान संचालन समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग ने उन मामलों में दायित्व के नियतन के लिए बृहत् कानून को अधिनियमित करने की सिफारिश की थी, जहां लोक सेवकों ने अपने असद्भावपूर्ण कार्यों से सरकार को नुकसान पहुंचाया हो। उच्चतम न्यायालय ने पैट्रोल पंपों के अनुचित आवंटन के मामलों में अनुकरणीय क्षतिपूर्ति तो अवश्य लगाई परंतु एक समीक्षा याचना में इस आदेश को बाद में उलट दिया जिसमें न्यायालय मे निर्णय दिया कि यद्यपि लोक सेवकों के विरूद्ध अनुकरणीय प्रतिपूत्तियों के आदेश दिए जा सकते हैं परंतु ऐसा करना इन मामलों में न्यायपूर्ण नहीं था। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की कि उन मामलों में जहां लोक सेवक अपने भ्रष्ट कृत्यों से सरकार या नागरिकों को कोई हानि पहुंचाते हैं तो उन्हें इस पर हुई हानि को पूरा करने का पात्र बनाया जाना चाहिए और इसके अलावा, उसे क्षतिपूर्ति करने का पात्र भी बनाया जाना चाहिए। आयोग का मत था कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में एक अध्याय को जोड़कर इसका प्रावधान किया जा सकता है। जहां ऐसी क्षतिपूर्ति का भुगतान देय होगा, क्षतिपूर्ति को आंके जाने के सिद्धांत और उन लोगों को क्षतिपूर्ति देने के मानदंड, जिनके साथ गलत किया गया है, ऐसे मामलों के हालातों को स्पष्ट रूप से लेखबद्ध किया जाना चाहिए। यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पर्याप्त सुरक्षा उपाय किए गए हों ताकि सद्भावपूर्ण भूलों को ऐसी क्षतिपूर्तियों का आदेश देने में ही खत्म कर दिया जा सके। अन्यथा, लोक सेवक स्वच्छ और शीघ्र ढंग से निर्णय लेने में हतोत्साहित होंगे।

भ्रष्ट तरीकों से प्राप्त की गई गैर-कानूनी संपत्तियों को जब्त करना: भ्रष्ट लोक सेवकों का अभियोजन और बाद में उनकी दोषसिद्धि भ्रष्टाचार के परिमाण के अनुरूप नहीं होती। सबूत का अपेक्षित स्तर और कार्यप्रणाली की बाधाओं ने यह सुनिश्चित कर दिया है कि भ्रष्ट लोक सेवकों की बहुत बड़ी संख्या दोषसिद्ध नहीं हो पाती। इससे बदत्तर यह बात है कि प्राय: वे अपनी पाप की कमाई को दंडमुक्त होकर सबके सामने दिखाते हैं। यह आवश्यक है कि आपराधिक अभियोजन के अलावा, भ्रष्ट लोक सेवक को उसकी पाप की कमाई के स्वामित्व से भी बेदखल कर दिया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में लोक सेवक की आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक की संपत्तियों को जब्त करने का उपबंध है। फिर भो, यह उपबंध अपर्याप्त साबित हुआ है क्योंकि ऐसी जन्ती संगत अपराधों के लिए केवल दोषसिद्ध हो जाने पर ही संभव है। इस समय, लोक सेवकों को असंवैधानिक रूप से अधिग्रहित की गई संपत्ति को जब्त और कुर्क करने के लिए दंड विधि संशोधन अध्यादेश 1944 के प्रावधानों का सहारा लिया जाता है। इस अध्यादेश के अधीन, असंवैधानिक रूप से अधिग्रहित संपत्ति को अन्तरिम कुर्की के लिए प्रावधान हैं। विशेष न्यायाधीश किसी अधिकृत व्यक्ति द्वारा आवेदन दिए जाने के आधार पर ऐसा करने के लिए सशक्त हैं। अपराध मामले के नतीजे पर निर्भर करते हुए,

कुर्क की गई संपत्ति को या तो जब्त कर लिया जाता है या विमुक्त कर दिया जाता है। मौजूदा प्रावधानों में एक और त्रुटि यह है कि कुर्की के लिए प्रक्रिया तभी चालू होगी जब न्यायालय अपराध का संज्ञान ले लेगा। वास्तविक स्थितियों में, ऐसा करने से बहुत विलंब हो सकता है क्योंकि अभियुक्त को अपने पाप की कमाई को छिपा देने या समायोजित कर लेने के लिए समय मिल जाएगा। फिर भी, विद्यमान प्रावधानों के अधीन, कुर्की के अनुरोध को फाइल करने के लिए राज्य या संघ सरकार अधिकृत करती है। ऐसा करने में भी समय लग सकता है।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह सिफारिश की कि आय से अधिक सम्पत्ति रखने के लिए दोषसिद्ध लोक सेवक की संपत्तियों की जब्ती के लिए कानून को सबूत का भार उस लोक सेवक पर अंतरित कर देना चाहिए जो दोषसिद्ध है। ऐसे मामलों में उपधारणा यह होनी चाहिए कि लोक सेवक के कब्जे में पाई गई आय से अधिक संपत्तियों को उस के द्वारा भ्रष्ट साधनों से अधिग्रहित की गई थीं और सम्पत्तियों की जब्ती के लिए संभाव्यता की प्रबलता का सबूत पर्याप्त होगा। ये अनिवार्यताएं विधि आयोग द्वारा प्रस्तावित ड्राट बिल में था।

फरवरी 2012 में केंद्र सरकार ने इस संदर्भ में एक मार्गदशन भी जारी किया था जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि सेवानिवृत्ति के पश्चात भी लोक सेवकों की संपत्ति जब्त की जा सकती है।

इस संबंध में बिहार सरकार द्वारा वर्ष 2011 में बिहार विशेष न्यायालय अधिनियम 2009 लाया गया जिसके तहत यह प्रावधान किया गया कि जांच के दौरान भी संबंधित प्राधिकार की अनुमति से किसी भ्रष्ट अधिकारी की संपत्ति जब्त की जा सकती है और इस आधार पर देश में पहली बार एक आईएएस अधिकारी की संपत्ति जब्त की गयी थी। ओडिसा में भी ओडिसा विशेष न्यायालय अधिनियम 2006 बिहार के कानून से एक वर्ष पूर्व लाया गया पर कानूनी अड़चनों के कारण शीघ्र लागू नहीं हो पाया था। ओडिसा के कानून में भी ट्रायल के दौरान ही भ्रष्ट अधिकारियों की संपत्ति जब्ती का प्रावधान है।

व्हिसलब्लोअर अथवा प्रष्टाचार या घोटाले की सूचना देने वाले की सुरक्षा: सूचना देने वाले व्यक्ति भ्रष्टाचार के बारे में सूचना प्रदान करने में एक आवश्यक भूमिका अदा करते हैं। किसी विभाग/एजेंसी में काम करने वाले लोक सेवक अपने संगठन में अन्य लोगों के पूर्ववृत्तों और गतिविधियों से परिचित होते हैं। फिर भी, प्राय: वे बदले की भावना ष्के डर से इस सूचना को देने के इच्छुक नहीं होते। लोक सेवक द्वारा अपने संगठन में भ्रष्टाचार की सूचना देने की तत्परता और उसे तथा उसकी पहचान को संरक्षण दिए जाने में बहुत ही नजदीकी संबंध होता है। यदि पर्याप्त रूप से सांविधिक संरक्षण प्रदान कर दिया जाए तो इस बात की बहुत ही संभावना होती है कि सरकार को भ्रष्टाचार के बारे में पर्याप्त सूचना मिल सकती है। श्भ्रष्टाचार, घोटाले की सूचना देने वाला व्यक्ति ये शब्द हमारे शब्द कोश में अपेक्षाकृत हाल ही में जुड़े हैं। संयुक्त राज्यों में, डेनियल एल्सबर्ग नाम का व्यक्ति जो तथाकथित श्पैंटागोन पेपरोंश् पर श्सीटी बजाता थाश् के दुख और विपत्ति के बाद, वाटरगेट के बाद के युग में व्हिस्लब्लो न केवल विधान द्वारा सुरक्षित कर दिया गया है, बल्कि नागरिकों के नैतिक कर्तव्यों के रूप में प्रोत्साहित भी किया जाता है। इतना ही नहीं, एनरोन और वर्ल्डकॉम के आश्चर्यजनक पतन के बाद, संयुक्त राज्य अमेरिकी कांग्रेस ने सारन्स-ओक्सले अधिनियम 2002 पारित किया, जिसमें सीटी बजाकर (व्हिस्लब्ली) सूचना देने वाले को सार्वजनिक व्यापार कंपनियों में भारी सुरक्षा दी गई किसी भी निगमित सूचना देने वाले से बदला लेने वाले व्यक्ति को अब 10 सालों तक के लिए सजा हो सकती है। ऐसी सुरक्षा देने वाले कानून यूनाईटेड किंगडम, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में विद्यमान हैं। यूके पब्लिक इंटैस्ट डिस्क्लोयर अधिनियम, 1998, आस्ट्रेलिया का दि पब्लिक इंट्रैस्ट डिस्क्लोयर एक्ट 1994, न्यूजीलैंड का दि प्रोटेक्टिड डिस्क्लोयर एक्ट 2000 और अमेरिका का विसिल ब्लोअर प्रोटेक्शन एक्ट 1984 ये ऐसे विधान हैं, जो भ्रष्टाचार की सूचना देने वालों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये सभी कानून सामान्यत: सूचना देने वाले के गुमनामों का संरक्षण करने और उसे संगठन के भीतर उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

भारत में व्हिस्लब्लोअर विधेयक: व्हिसलब्लोअर यानी भंडाफोड़कर्ताओं से लिखित में शिकायत प्राप्त करने हेतु केन्द्रीय सतर्कता आयोग को शीर्ष अभिकरण के रूप में प्राधिकृत करने हुए 21 अप्रैल, 2004 को एक संकल्प जारी किया गया था। अन्य बातों के साथ-साथ इस संकल्प में भंडाफोड़कर्ताओं का उत्पीड़न से संरक्षण देने तथा उनकी पहचान को गुप्त रखने की दृष्टि से कुछ प्रावधान किए गए। चूंकि यह महसूस किया गया कि भ्रष्टाचार की सूचना देने वाले व्यक्तियों को संवैधानिक संरक्षण अपेक्षित है, इसलिए भंडाफोड़कर्ताओं का लोक हित प्रकटन और संरक्षणश् विधेयक, 2010 संसद में पेश किया गया। यह विधेयक विभाग से संबद्ध संसदीय स्थायी समिति को भेजा गया जिसने इस विधेयक में संशोधन का सुझाव देते हुए अपनी 46वीं रिपोर्ट में सिफारिश

की। इन सिफारिशों के आधार पर इस विधेयक को भंडाफोड़कर्ता संरक्षण विधेयक, 2011 (Whistleblower Protection Bill) के रूप में संशोधित किया गया। मंत्री परिषद के सदस्यों, उच्च न्यायपालिका सहित न्याय पालिका, नियामक प्राधिकारियों आदि को इस विधेयक के कार्य क्षेत्र में शामिल करने की सिफारिश स्वीकार कर ली गई थी। इसमें केवल उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को छोड़ दिया गया क्योंकि जहां तक उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का संबंध था। इस पहलू को न्यायपालिका मानक तथा दायित्व विधेयक, 2010 में पहले ही शामिल किया जा चुका है। इस विधेयक के कार्यक्षेत्र में, सुरक्षा बलों, सुरक्षा तथा इंटेलीजेंस एजेंसियों आदि को शामिल करने के बारे में स्थायी समिति की सिफारिश भी सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई। इस उद्देश्य हेतु अधिकारिक संशोधन लाए गए। अभी तक यह विधेयक संसद् में लंबित है।

सरकारी कर्मचारियों की आचरण नियमावली: सरकारी कर्मचारियों के विभिन्न वर्ग अलग-अलग पर सार रूप से समान आचरण नियमों द्वारा शासित है। निम्नांकित नियमावलियां लागू हैं-

अ) अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियमावली, 1954

ब) केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियमावली, 1955

स) रेलवे सेवा (आचरण) नियमावली, 1956

भ्रष्टाचार निरोध पर संथानम समिति: भ्रष्टाचार का सामना करने के विद्यमान साधनों का पुनरीक्षण करने तथा भ्रष्टाचार निवारक उपायों को अधिक प्रभावशाली बनाने के व्यवहारिक साधनों पर परामर्श देने के लिए जून 1962 में संथानम समिति नियुक्त की गयी थी जिसने मार्च 1964 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस समिति की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिश ये थी कि संविधान के अनुच्छेद 311 को इस तरह संशाधित किया जाये जिससे कि भ्रष्टाचार संबंधी न्यायिक प्रक्रिया सरल और शीघ्रता की हो सक कि केन्द्रीय और राज्य स्तरों पर भ्रष्टाचार का सामना करने के लिये स्वशासो अधिकारों सहित क्रमशारू केन्द्रीय तथा राज्य सतर्कता आयोग होने चाहिए।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग: संथानम समिति को सिफारिशों के आलोक में 1964 में केंद्रीय सतर्कता आयोग का गठन किया गया। इसका प्रधान केंन्द्रीय सतर्कता आयुक्त होता है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उनके हस्ताक्षर और मोहर के अधीन की जाती है। आयुक्त छरू वर्ष के लिए अथवा 65 वर्ष की आयु होने तक, जो पहले पड़े, अपना पद ग्रहण करते हैं। संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य अथवा अध्यक्ष के निलम्बन अथवा पदच्युति के लिये प्राविहित पद्धति के अतिरिक्त अन्यथा केंन्द्रीय सतर्कता आयुक्त को अपने पद से निलम्बित अथवा पदच्युत नहीं किया जा सकता। सेवा निवृति के उपरान्त वह केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन आगे कोई नौकरी स्वीकार नहीं कर सकता है। आयुक्त के अतिरिक्त आयोग में एक सचिव, एक विशेष कार्य अधिकारी, एक मुख्य तकनीकी आयुक्त, सात विभागीय जांच आयुक्त, दो अवर सचिव और नौ तकनीकी आयुक्त हैं। मुख्य तकनीकी आयुक्त का संगठन केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त को स्थानान्तरित कर दिया गया है।

केन्द्रीय सकर्तता आयोग का अधिकार: क्षेत्र और अधिकार उन सभी विषयों के संबंध में है जो केन्द्रीय सरकार के कार्यकारी अधिकार में है। इस प्रकार अधिकार क्षेत्र केन्द्रीय सरकार के सभी कर्मचारियों तथा सार्वजनिक उद्यमों, निगमित निकायों और केन्द्र सरकार के कार्यकारी अधिकारों के अंतर्गत आने वाले किसी भी विषय से संबंधित अन्य संगठनों के कर्मचारियों तक विस्तृत है। दिल्ली महानगरीय परिषद् तथा दिल्ली नगरपालिका भी इसके क्षेत्र के अंतर्गत आते है। शुरूआत में आयोग ने केवल राजपत्रित अधिकारियों तथा उनके समकक्ष अधिकारियों को ही अपने कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया है। इसके निम्नलिखित कार्य हैं;

1. यह ऐसे किसी भी मामले की जांच करता है जिसमें सरकारी कर्मचारी पर अनुचित प्रयोजन हेतु अथवा भ्रष्ट तरीके से कार्य करने का संदेह या आरोप हो।
2. यह किसी भी इस शिकायत पर कि सरकारी कर्मचारी ने अनुचित अथवा भ्रष्ट प्रयोजनों हेतु अपने अधिकारों का प्रयोग किया है या प्रयोग नहीं किया है; सरकारी कर्मचारी के भ्रष्टाचार, कदाचार, बेईमानी, अन्य प्रकार के दुराचार या उपापराध की किसी भी शिकायत पर जांच या छानबीन प्रेरित करता है।
3. यह एजेन्सियों से प्रतिवेदन मंगाता है जिससे कि यह इनमें भ्रष्टाचार निरोधी तथा सतर्कता कार्यों पर निरीक्षण और सामान्य रोकथाम कर सके।

4. यह आगे की कार्यवाही हेतु शिकायतों को अपने सीधे नियंत्रण में ले सकता है। आगे की कार्यवाही या ता (अ) केन्द्रीय जांच ब्यूरो अथवा संबंधित एजेन्सी को इसकी जांच सौंपना, हो सकती है।
5. जहां तक प्रशासन की प्रक्रियाएं और कार्य व्यवहार निष्ठा बनाए रखने से संबंधित है सी.बी.सी. इनका पुनरीक्षण प्रारंभ कर सकता है।

आयोग अपने कार्यकलापों के बारे में एक वार्षिक प्रतिवेदन गृह मंत्रालय को प्रेषित करता है जिसमें आयोग द्वारा की गयी उन सिफारिशों की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया जाता है जो स्वीकृत अथवा कार्यान्वित नहीं हुई हो। गृह मंत्रालय यह प्रतिवेदन संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष प्रस्तुत करता है।

आयोग अलग-अलग व्यक्तियों से शिकायतें प्राप्त करता है। यह विभिन्न स्रोतों, यथा, प्रेस रिपोर्ट्स, संसद में सांसदों के भाषणों में दी गयी जानकारी, आडिट आपत्तियों, संसदीय समितियों के प्रतिवेदनों में की गयी टिप्पणियों, आर्डर रिपोटों तथा केन्द्रीय जाँच ब्यूरो द्वारा आयोग की जानकारी में लाई गयी सूचनाओं से भ्रष्टाचार, कदाचार अथवा दुराचार संबंधी जानकारी भी एकत्रित करता है। यह सदाचार समिति जैसे ऐच्छिक संगठनों, जिम्मेवार नागरिकों तथा समाचार पत्रों की सहायता का भी स्वागत करता है। आयोग के अधिकांशत: उन विषयों पर शिकायतें प्राप्त होती हैं जो राज्य सरकारों के कार्य-क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। जहां उपयुक्त समझा जाता है. ऐसी शिकायतें आवश्यक कार्यवाही हेतु राज्य सतर्कता आयुक्तों के पास भेज दी जाती हैं। उसी प्रकार, राज्य सतर्कता आयोग द्वारा प्राप्त केन्द्र सरकार के कार्य-क्षेत्र के विषयों से संबंधित शिकायतें उपयुक्त कार्यवाही हेतु केंन्द्रीय सतर्कता को भेज दी जाती हैं। इन शिकायतों पर कार्यवाही करने के लिये केन्द्रीय सतर्कता आयोग के पास निम्नांकित विकल्प हैं:

अ. वह मामले को जांच हेतु संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय/विभाग को सौंप सकता है।
ब. यह केन्द्रीय जांच ब्यूरो (सी.बी.आई.) को जांच करने के लिये कह सकता है।
स. यह केन्द्रीय जांच ब्यूरो के निदेशक को मामला रजिस्टर करने और उसकी छानबीन करने के लिये कह सकता है।

राज्य सतर्कता आयोग: भ्रष्टाचार विरोध पर संथानम कमेटी ने 1964 में प्रत्येक मंत्रालय/विभाग में सतर्कता संगठन को अधिक प्रभावी चनाने हेतु इसे शक्तिशाली बनाने की विस्तृत सिफारिशें की थी। यद्यपि प्रत्येक संगठन में शुद्धता, निष्ठा और दक्षता बनाए रखने की बुनियादी जिम्मेदारी मंत्रालय के सचिव अथवा विभागाध्यक्ष को ही रहती है, प्रत्येक मंत्रालय में एक अधिकारी को मुख्य सतर्कता अधिकारी नामजद किया गया है, और उसे सतर्कता कार्य सौंपा गया है। सतर्कता से संबंधित सभी मामलों में विभागाध्यक्ष अथवा सचिव के विशेष सहायक के रूप में कार्य करते हुए वह केन्द्रीय सतर्कता आयोग और मंत्रालय/विभाग के बीच सम्पर्क बनाए रखता है। उसी प्रकार, प्रत्येक संलग्न तथा अधीनस्थ कार्यालय में, तथा सभी सार्वजनिक उद्यमों में एक अधिकारी को सतर्कता अधिकारी नामजद किया गया है। मुख्य सतर्कता अधिकारी अपने मंत्रालय/विभाग से संबंधित संलग्न और अधीनस्थ कार्यालयों तथा संगठनों के सतर्कता अधिकारियों की गतिविधियों का सहयोजन और निर्देशन करने के लिए जिम्मेवार है। संगठन में सतर्कता कार्य की मात्रा के अनुसार कुछ मुख्य सतर्कता अधिकारी / सतर्कता अधिकारी, विशेषकर बड़े मंत्रालयों और विभागों में पूर्ण कालिक अधिकारी हैं, जब कि अन्य अंशकालिक हैं।

प्रत्येक मुख्य सतर्कता अधिकारी को केन्द्रीय सतर्कता आयोग के परामर्श से नियुक्त किया जाता है तथा संलग्न और अधीनस्थ कार्यालयों में सतर्कता अधिकारी संबंधित मंत्रालय/विभाग के मुख्य सतर्कता अधिकारी को परामर्श से नियुक्त किए जाते हैं। सामान्यत: मुख्य सतर्कता अधिकारी उपसचिव की श्रेणी के तथा सतर्कता अधिकारी अवरसचिव को श्रेणी के होते हैं। सार्वजनिक उद्यमों में सतर्कता अधिकारी उस श्रेणी के होते हैं जो उद्यम के द्वारा केन्द्रीय सतर्कता आयोग के परामर्श से निश्चित की जाये। केन्द्रीय सतर्कता आयोग को मुख्य सतर्कता अधिकारियों के कार्य के मूल्यांकन करने का अधिकार दिया गया है और यह मूल्यांकन उन अधिकारियों की चरित्र पुस्तिका में अंकित किया जाता है।

मुख्य सतर्कता अधिकारी सार्वजनिक उद्यमों सहित अपने प्रभार के संगठन की विद्यमान व्यवस्था का पुनरीक्षण करते हैं जिससे कि वे उपयुक्त कदम उठा सकें अथवा जहां आवश्यक हो, मौजूदा ढांचे को सुदृढ़ बनाने अथवा इसे पुनर्गठित करने के सभी प्रस्ताव पहले केन्द्रीय सतर्कता आयोग को परीक्षण हेतु प्रेषित किया जाना आवश्यक है।

केन्द्रीय जांच ब्यूरो: प्रत्येक मंत्रालय और विभाग में सतर्कता संगठन होने के अलावा भ्रष्टाचार निरोधी कार्य के लिये केन्द्रित एजेन्सी केन्द्रीय जांच ब्यूरो है जो प्रशासनिक तौर पर कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार विभाग के अधीन कार्य करती है। कार्मिक तथा

प्रशासनिक सुधार विभाग सरकारी कर्मचारियों में अनुशासन तथा सतर्कता से संबंधित सभी नीति विशय प्रतिपादित करता है। यह विभिन्न विभागाध्यक्षों की गतिविधियों का सहयोजन भी करता है तथा प्रशासनिक सतर्कता के मामले में नोडल प्राधिकारी के रूप में कार्य करता है। यह निम्नांकित मामलों पर भी कार्यवाही करता है:- (1) भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा केन्द्रीय सचिवालयीन सेवा सेवा के ग्रेड-1 (और ऊपर) के अधिकारियों के विरुद्ध सतर्कता संबंधी मामले (2) केन्द्रीय जांच ब्यूरो और केन्द्रीय सतर्कता आयोग से संबंधित प्रशासनिक मामले तथा साथ में (3) आयोग के कार्य और शक्तियों (अधिकारों) से संबंधित नीतिगत मामले।

विशेष पुलिस स्थापना (स्पेशल पुलिस इस्टाब्लिशमेंट) कुछ विशिष्ट उल्लेखित अपराधों की छानबीन और जांच के लिए एक विशेषज्ञ एजेंसी है और यह केन्द्रीय जांच ब्यूरो का एक प्रभाग है। यह राज्य पुलिस बल का अनुपूरक है। यह दिल्ली पुलिस स्थापना अधिनियम 1946 के अधीन अपराधों के संबंध में छानबीन और अभियोजन के समवर्ती अधिकार संबंधित राज्य पुलिस बल के साथ लागू करता है। दोहरा परिश्रम बचाने के लिये विशेष पुलिस स्थापना द्वारा लिए जाने वाले प्रकरणों के प्रकार के बारे में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच प्रशासनिक व्यवस्था की गई है। केन्द्रीय जांच ब्यूरो की भूमिका संक्षेप में निम्नांकित है:

1. यह उच्च स्तरीय कर्मचारियों के विरुद्ध तथा जटिल प्रकरणों में छानबीन कर सकता है।
2. यह साधनसंपन्न है और विभिन्न स्रोतों से ऐसी सामग्री प्राप्त कर सकता है जो सामान्य विभागीय मशीनरी की उपलब्ध नहीं होती है।
3. प्रारम्भिक वर्ष में भले ही इसके मामले कमजोर सिद्ध हुए हो, अब यह जानना उत्साहजनक है कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो अभियोजन हेतु केवल वे ही मामले लेता है जो सच्चे, निर्दोष और सुदृढ़ होते हैं।

केन्द्रीय जांच ब्यूरो और केन्द्रीय सतर्कता आयोग के बीच उत्तरदायित्व के स्पष्ट क्षेत्र निर्धारित कर मामले के लिए समय तालिका निर्धारित करना दक्षता तथा प्रगति के हित में सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

लोकपाल तथा लोकायुक्त संस्थाएं: प्रशासनिक सुधार आयोग ने जनता की शिकायतें दूर करने के लिए इंगलैंड और न्यूजीलैंड के संसदीय आयुक्त के अनुरूप लोकपाल तथा लोकायुक्त संस्थाएं स्थापित करने की सिफारिश 1966 में केन्द्रीय सरकार को की थी।

सरकारी सेवाओं में निष्ठा सुधार हेतु सुझाव

सरकारी सेवाओं में निष्ठा बढ़ाने या सुधारने के लिये कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं:

1. विवेकशीलता को कम करना: जिस व्यवस्था में विवेकशीलता का आधिक्य हो वहां पर भ्रष्टाचार के अवसर सरकारी तंत्र के हाथों में अधिक हो जाते हैं, विशेषकर निचले स्तरों पर विवेकशीलता को घटा कर और व्यवस्था में अधिकतम पारदर्शिता लाकर और किए गए कृत्यों के लिए कड़ी जवाबदेही को बनाकर ऐसे अवसरों को न्यूनतम किया जा सकता है। सबसे अधिक रूल भ्रष्टाचार निरोध के सुधार वे हैं जो ऐसे विवेकशीलता के लाभों को कम कर देते हैं जो लोक अधिकारियों द्वारा निर्वाचित किए जाते हो। ऐसी बहुत बड़ी संख्या में सरकारी गतिविधियां हैं, जहां विवेक को बिल्कुल समाप्त किया जा सकता है। ऐसी सभी गतिविधियों को सूचना प्राद्योगिकी की सहायता से स्वचालित कर दिया जाता है। श्जन्म और मृत्युश् का पंजीकरण और अध्यापकों की योग्यता परीक्षाओं में प्राप्त किए गए अर्को पर आधारित भर्ती इसके उदाहरण हैं। जहाँ विवेक को समाप्त करना संभव नहीं होता है वहां विवेक को न्यूनतम करने के लिए शक्तियों के प्रयोग को सुपरिभाषित मार्गदर्शी सिद्धांतों द्वारा सीमित होना चाहिए। विवेक के प्रयोग पर प्रभावी निरीक्षण और संतुलन रखे जाने चाहिए।
2. लेनदेनों को सरलीकृत करना: भ्रष्टाचार के शुरू होने और उसमें बढ़ोतरी होने के बीच औचक संबंध और कार्य के तौर तरीकों की जटिलप्रकृति को विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है। आम नागरिक जिसने सरकार को किसी बिल का भुगतान करना हो तो उसे सरकारी कार्यालयों के कई चक्कर लगाते हुए देखा जा सकता है। ऐसे नागरिक को उत्पीड़न से बचने के लिए कर्मचारियों को पैसे देकर अपना काम करवाने की बड़ी संभावना हो जाती है। इसी प्रकार से अधिकारियों का उच्च धर्म-तंत्र काम के तौर तरीकों में न केवल जटिलता लाता है बल्कि जिम्मेदारी का भी हनन करता है। समयबद्ध वृत्तियां जैसे कि काम का 'क्षेत्रीय' वितरण भी भीड़-भाड़ को जन्म देता है और फलस्वरूप गति घन को अदा करके या दलाल और मध्यस्थों के जरिए श्पंक्तिबद्धता को तोड़कर काम शीघ्र करवाने को बल मिलता है। नियम पुस्तिकाओं

के माध्यम से कार्य-पद्धतियों का निर्धारण कुछ काम नहीं आया। ऐसे प्रलेखों का उचित तरीके से प्रयोग करके और नियमित रूप से उसका उन्नयन करके प्रशासनिक पद्धतियों के रहस्य खोलने और जवाबदेही का विकास करने का एक बड़ा साधन हो सकता है। सूचना तकनीक और सूचना अधिकार के युग में ऐसे प्रलेख 'लेनदेनों का सरलीकरण' करने के लिए एक सर्वश्रेष्ठ स्रोत हो। सकते हैं जहां तक वे शिक्षित प्रयोगकर्ता को स्पष्टता के दरजे का निवर्हन कर पाएंगे।

3. प्रतिस्पर्द्धा को विकसित करना: भारत में अधिकतर सार्वजनिक सेवाएं सरकार द्वारा एकाधिकारिक वातावरण में प्रदान की जाती है। ऐसी स्थिति अपनी प्रकृत्ति से ही भ्रष्टाचार के लिए विभागीय प्रधानताश् का लाभ उठाते हुए पदाधिकारी वर्ग को उच्च संभाव्यता के साथ मनमाना ढंग अपनाने और आत्मसंतोष से प्रेरित होती है। अत: भ्रष्टाचार की रोकने के लिए सार्वजनिक सेवाओं की व्यवस्था में प्रतिस्पद्धां के घटक का आरंभ कर देना एक बहुत ही लाभदायक हथियार है।
4. मीडिया की भूमिका: एक स्वतंत्र मीडिया की भ्रष्टाचार रोकने, अनुवीक्षण करने और नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसा मीडिया जनता को भ्रष्टाचार पर सूचना और शिक्षा दे सकता है, सरकार में, निजी क्षेत्र में और सिविल सोसाएटी संगठनों में भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करता है और भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपने को नीतिबद्ध करते हुए आचार सोहता पर निगरानी में सहायता करता है। मीडिया द्वारा जांच की रिपोर्ट देना और भ्रष्टाचार की घटनाओं की वैसी ही सूचना देना जैसी वे घटो हो तो वह भ्रष्टाचार पर सूचना का एक महत्वपूर्ण स्रोत हो सकती है। भ्रष्टाचार की घटनाओं की ठीक वैसी ही दैनिक सूचना देना दूसरा योगदान है। ऐसी रिपोर्टों का उत्तर देने के लिए प्राधिकारियों को समय पर कार्रवाई कर लेनी चाहिए, सही तथ्यों से अवगत करा देना चाहिए, दोषियों को पकड़ने के लिए कदम उठाने चाहिए और प्रेस तथा जनता को समय समय पर ऐसी कार्रवाई की प्रगति की सूचना देत रहना चाहिए। यह आम अनुभव रहा है कि अक्सर ऐसे आरोपों पर ध्यान देकर उनका अनुसरण करने के कोई व्यवस्थित प्रबंध नहीं किए जाते। मीडिया के विभिन्न क्षेत्रों में आने वाली रिपोटों का मिलान करना और उनका अनुसरण करना सभी सार्वजनिक कार्यालयों में शिकायतों के अनुवीक्षण करने वाली व्यवस्थाओं का एक अभिन्न हिस्सा होना चाहिए।

निष्कर्ष एवं सुझाव

संक्षेप में भ्रष्टाचार भारत के सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक कोने और दरार में घुस गया है और देश का लोक प्रशासन इससे अभिभूत है। भ्रष्टाचार हटाने की राजनैतिक संकल्पशक्ति न होने के कारण ही अधिकांश में ऐसा हुआ है। लेकिन कुछ उपायों को अपनाकर इस बढ़ते हुए दैत्य को अंकुश में रखने का प्रयास किया जा सकता है-

सेवा शर्तें आकर्षक बनाकर: सरकारी कर्मचारी, विशेषकर निचले स्तर के कर्मचारी निर्धनता से विवश होकर अपने पद को आय का स्रोत मानते हुए अधिकतम आय प्राप्त करना चाहते हैं। यदि रिश्वत नहीं दी जाती है तो सार्वजनिक सेवाएं सहज ही खराब और धीमी होती हैं और अतिरिक्त धन के बदले ही प्रस्तुत की जाती हैं। फलस्वरूप सरकारी नौकरियों में व्यापक रूप से फैली रिश्वतखोरी समाप्त करने के लिये एक बुनियादी साधन वेतन वृद्धि है। वैसे सरकार ने छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के मद्देनजर केंद्र सरकार के कर्मचारियों के वेतन में बड़े पैमाने पर वृद्धि की और हाल ही में सरकार ने सातवें वेतन आयोग के गठन को भी मंजूरी दे दी है।

सरकारी मशीनरी के कामकाज का सरलीकरण: प्रचुर मात्रा में भ्रष्टाचार का मूल कारण सरकारी कार्यालयों की जटिल कार्य प्रणाली प्रतीत होती है। इन जटिल प्रक्रियाओं के मूल्यांकन और सरलीकरण को आवश्यकता है। विलम्ब रोका जाना चाहिये तथा अधिकारियों को सभी लोगों की जरूरतों के प्रति संवेदनशील बनाया जाना चाहिये।

भ्रष्टाचार के प्रभावों के विरुद्ध स्वस्थ जनमत बनाना: जब तक सामान्य जनसमूह निश्चय और दृढ़ता से भ्रष्टाचार का प्रतिरोध नहीं करता है, भ्रष्टाचार फलता फूलता रहेगा। भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए व्यापक तथा दृढनिश्चयी विरोध तथा साथ में इसके विरुद्ध कार्य करने के साहस की सबसे अधिक आवश्यकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत के लोग भ्रष्टाचार से पिंड छुड़ा सकते हैं।

उच्च कार्मिकों में आचरण के उच्च मानदण्ड सुनिश्चित करना: उच्च अधिकारियों को काफी विवेकाधिकार होते हैं। उन्हें उपहार, आमंत्रण तथा अन्य अनुग्रह मना करने के लिए पूरी तरह अनुशासित होना चाहिये। इस संदर्भ में सरकार द्वारा संभागीय और जिला स्तरों पर निष्ठा की तलाश हेतु किए गए प्रयासों को अंकित करना प्रांसगिक होगा। संभागीय समितियां आयुक्त, पुलिस

उपमहानिरीक्षक तथा संभागीय सतर्कता आयुक्त सम्मिलित हैं। जिला स्तर पर, एक जिला सतर्कता अधिकारी है जिसे जिला कलेक्टर/डिप्टी कमिश्नर संभागीय सतर्कता मंडल के परामर्श से अपने राजपत्रित सहायकों में से नियुक्त करता है।

संदर्भ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोक प्रशासन, तेईसवाँ संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण प्रकाशन, आगरा, 2006
2. सुरोलिया, विनोद, भ्रष्टाचार कारण और निवारण, प्रतियोगिता दर्पण, अक्टूबर 2012
3. मीणा, सोन लाल, भ्रष्टाचार की अग्नि में जलता भारत, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका
4. अग्निहोत्री, सुधीर, भ्रष्टाचार कारण और निवारण, परीक्षा मंथन, निबंध भाग-6 ईयर बुक।
5. डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ0 अजय कुमार सिंह, भारत में लोकपाल रू स्वस्थ जनतांत्रिक मूल्यों की अहम तलाश (संपा०), अल्फा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2013
6. त्यागी, अशोक कुमार, भारत में लोकतंत्र क्रियाशील स्वरूप भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका
7. सुरोलिया, विनोद, भ्रष्टाचार कारण और निवारण, प्रतियोगिता दर्पण, अक्टूबर 2012
8. यादव, भावना, भ्रष्टाचार और भारत, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका जनवरी- दिसम्बर 2011
9. एस पुरी, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,जालन्धरः न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग 2003
10. प्रतियोगिता दपर्ण, राजनीति विज्ञान अतिरिक्तांक,आगरारू उपकार प्रकाशन 2006
11. हिमांशु राय व एम पी सिहं, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, दिल्लीरू पियर्सन एजुकेशन इन्डिया 2018

पंचायती राजव्यवस्था में महिला जनप्रतिनिधियों की भूमिका

प्रियंका शर्मा

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, राज ऋषि भर्तृहरि मत्सय विश्वविद्यालय

डॉ० खेमचंद महावर

शोध निर्देशक, एसोसियट प्रोफेसर, राजेश पायलेटराजकीय स्नात्तकोतर महाविद्यालय, लालसौट,दौसा

शोध सारांश

भारत देश में पंचायती राज व्यवस्था उतनी ही पुरानी है जितनी भारतीय संस्कृति हैं। हमारे वेदों व उपनिषदों में इस व्यवस्था का मूल्य रूप से उल्लेख मिलता हैं। पंचायत शब्द स्थानीय क्षेत्र के लोगों द्वारा चयनित पाँच व्यक्तियों के एक समूह की प्रणाली को बताता हैं, जिसके द्वारा असंख्य ग्रामीण जनता को शासित किया जाता था। पंचायत स्वशासन की मनोवृति को इंगित करता हैं। इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में शासकों के उत्थान पतन तथा सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन के उपरान्त थी इस संस्थाओं का प्रभाव अब तक किसी ना किसी रूप में बना हुआ हैं। प्राचीन भारत में राजशाही शासन प्रणाली के साथ-साथ गणतन्त्रीय व्यवस्था भी प्रवर्तित थी, जिसके अन्तर्गत राजा का चयन स्थानीय समुदाय के द्वारा किया जाता था। वैदिक काल में ग्राम पंचायत जिन्हें ग्राम सभा कहा जाता था, अस्तित्व में थी। "पंच परमेश्वर" की अवधारणा के अन्तर्गत पंचायत के निर्णय को ईश्वरीय आदेश मान कर पालन किया जाता था। हर ग्राम में उसी ग्राम के वासियों की पंचायत होती थी तथा वह सभी प्रकार के विवादों का निपटारा करती थी। भारतीय इतिहास का प्रारम्भिक साहित्य (बौद्ध व जैन ग्रन्थ) इस तथ्य को रेखांकित करता है कि उस समय छोटे-छोटे गणराज्य जैसे काशी, कौशल, अंग, कम्बोज, कुरू, लिच्छवी, मल्ल, वैशाली, मत्स्य विराट, शिवि एवं जांगल प्रदेश इत्यादि होते थे। वैदिक युग में स्थानीय स्वशासन प्रचलित था। वैदिक युग को स्थानीय स्वशासन का प्रारम्भिक युग कहा जाता है। जैसा हम जानते है ऋग्वेद चारो वेदों में प्राचीनतम 2 वेद माना जाता हैं। उस समय की सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं को वर्तमान समय तक माना जा रहा हैं।

पंचायती राज का ऐतिहासिक विष्लेषण

प्राचीन काल- वैदिक काल (5000 ई.पू. से 3500 ई.पू.) ऋग्वेद में 'सभा एवं समिति' नामक दो संस्थाओं का उल्लेख है जो राजा पर नियंत्रण रखती थी। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ ऋग्वेद से पता चलता है कि उस समय प्रशासनिक इकाइयों के नाम 'कुल', 'ग्राम', 'विष' जन थे। ऋग्वेद काल में राजनीतिक व्यवस्था की सबसे छोटी ईकाई कुटुम्ब थी। परिवार का सबसे वृद्ध पुरुष कुटम्ब का प्रधान होता था। अनेक कुटम्बों के समूह को 'ग्राम' कहा जाता था। ग्राम के अधिकारी को ग्रामीण कहा जाता था। ग्रामीण ग्राम का प्रशासनिक अधिकारी होता था। अनेक ग्रामों के समूह को विष कहते थे। उसका उत्तराधिकारी विषपति कहलाता था। अनेक

विष मिलकर जन की रचना करते थे। जन के प्रधान अधिकारी को 'गोप' कहा जाता था। मुख्यत: गोप राजा का ही नाम था। अत: तत्कालीन शासन का संगठित स्वरूप है-

कुल-ग्राम-विष-जन

वृद्धपुरुष-ग्रामीण-विषपति-गोप (राजा)

प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति-

"यत्र नार्मस्तु पूजयन्ते रमन्तेतन्त्र देवता" -मनुस्मृति।

"भारत में महिलाओं की स्थिति समय.समय पर परिवर्तित होती रही हैं। प्राचीन काल में नारियों को समाज में उच्च स्तर प्राप्त था। उन्हें सुख-समृद्धि, शान्ति, वैभव और ज्ञान का प्रतीक माना जाता था। इसीलिए दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में उनकी पूजा करने का विधान रहा है। मनुस्मृति के अनुसार यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता:। अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती वहाँ सभी कार्य निष्फल होते हैं। परन्तु धीरे-धीरे समाज में नारियों का सम्मान कम होता चला गया।

वैदिक काल- वैदिक काल में भारतीय समाज और परिवार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। नारी को अर्द्धांगिनी का जाता था। किसी भी धार्मिक कार्य में महिलाओं को साथ लेकर यज्ञ किये जाते थे। पति-पत्नी को समाज में समान स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद में दम्पति (दम्+पति) (अर्थात् पत्नी+पति) शब्द का वर्णन है। जिसमें पति से पूर्व पत्नी शब्द का प्रयोग किया गया है। वैदिक काल में कन्याओं को अपनी इच्छा से वर चुनने का भी अधिकार प्राप्त था। कन्यायें अपनी मर्जी से विवाह कर सकती थी। वैदिक काल में बाल-विवाह व पर्दा-प्रथा जैसे कुरीतियाँ भी नहीं थी। महिलाऐं अपनी मर्जी से यहाँ-वहाँ जा सकती थी। समाज में उनपर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। इसके साथ ही विधवा पुनर्विवाह अथर्ववेद में एक बहुत ही सुन्दर पंक्ति है- "नववधू तू जिस घर में जा रही है, वहाँ की तू साम्राज्ञी हैं। तेरे सास, ससुर, देवर व अन्य तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन से आनन्दित है।" यजुर्वेद के अनुसार नारियों को संख्या करने व उपनमण संस्कार का अधिकार प्राप्त था। पी.एन.प्रभु के शब्दों में "जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था, स्त्री-पुरुष में कोई विशेष भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्वपूर्ण थी।

उत्तरवैदिक काल (Post Vedic Period)-उत्तर वैदिक काल जो 600 ई.पूर्व से 300 ई. तक माना गया है। इस काल में नारियों की स्थिति में गिरावट आयी। नारियों का महत्व समाज में कम होना शुरू हो गया। इस काल में धर्म सूत्रों ने बाल-विवाह का निर्देश दिया, जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की शिक्षा में बाधा पहुँची। उनके लिए वेदों का अध्ययन बन्द कर दिया गया। इस काल में विधवा पुनर्विवाह निषेध कर दिया गया। इस समय पति को परमश्ष्वर मानने की भावना का बीजारोपण हुआ। बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन शुरू हुआ।

धर्मशास्त्र काल-इसे तीसरी शताब्दी से 11 वीं. शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक माना गया है। इस काल में नारियों की स्थिति में दिन-प्रतिदिन गिरावट आती गयी। इस काल में राजनीति में पुरुषों को उच्च दर्जा दिया गया। इससे महिलाऐ सामाजिक और धार्मिक संकीर्ण विचारधारा का षिकार बनीं। चन्द्रावती लखनपाल के शब्दों में "वैदिक काल की वह नारी जो अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा देश के साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी, अब परतन्त्र पराधीन, निस्सहाय और निर्बल बन चुकी थी।" पति स्त्री के लिए देवता है, और विवाह ही उसके जीवन का एकमात्र संस्कार है आदि विचारधाराओं ने जन्म लिया। स्त्री की सामाजिक दशा में बदलाव आ गया। पुरुषों ने स्त्री को घर तक ही सीमित कर दिया। मनुस्मृति में तो यहाँ तक लिख दिया गया कि "नारी कभी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है, बचपन में पिता के अधिकार में युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के नियन्त्रण में रहे।" इस युग में स्त्री से कहा गया कि पति की सेवा करना स्त्री का परम कर्त्तव्य माना जाए। पुरुषों ने स्त्रियों वंचित कर दिया।

ब्रिटिश काल में पंचायती राज व्यवस्था का स्वरूप

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत ग्राम पंचायतों की स्वायत्रता समाप्त हो गई और वे कमजोर हो गए थे। जब अंग्रेज भारत में आए तो उस समय ग्रामीण शासन पद्धति कायम थी परन्तु उनकी प्राशासनिक स्थिति अच्छी नहीं थी। चार्ल्स मेटकाक ने पंचायतों की व्यवस्था को लघु गणराज्य कहा। अंग्रेजो ने अपने शासन के विस्तार पर ज्यादा ध्यान दिया। पंचायती व्यवस्था का उन्होंने खूब उपयोग लिया।

पंचायतों की स्वायत्ता को लगभग खत्म ही कर दिया। पंचायते कार्यरत तो थी परन्तु अंग्रेजो की प्राथमिकता की सूची में उनका कोई स्थान न था। इस तरह ब्रिटिश हस्तक्षेप के फलस्वरूप पंचायतों के प्रति लोग अपनी आस्था खोने लगे थे।

राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994

राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1953 तथा पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम, 1959 को इकजाई कर तथा 73 वें संविधान संशोधन के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए राजस्थान विधानसभा ने नये पंचायती राज अधिनियम को दिनांक 09.04. 1994 को पारित किया जो राज्यपाल/महोदय के अनुमोदन के पश्चात् 23.04.1994 को सम्पूर्ण राज्य में लागू हो गया। राजस्थान पंचायती राज अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ जैसे- ग्राम सभा इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक पंचायत सर्किल के लिए एक ग्राम सभा होगी। जिसमें उस पंचायत क्षेत्र में समाविष्ट गाँव व गाँवों के समूह के निर्वाचित 7 सदस्य भाग लेगें। प्रत्येक वर्ष ग्राम सभा की कम से कम दो बैठकें होगीं। ग्राम सभा की गणपूर्ति (iQuorum) सदस्यों के कुल संख्या के दशांश में होगी। ग्राम सभा की बैठक पंचायत के सरपंच द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में ऐसी पंचायत के उपसरपंच के द्वारा बुलायी जाएगी। प्रत्येक वर्ष ग्राम सभा की कम से कम दो बैठके होगी। पहली वित्तीय वर्ष के प्रथम त्रिमास में और दूसरी अन्तिम त्रिमास में। त्रि-स्तरीय संरचना 1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद्।

1. ग्राम पंचायत-

प्रति 3000 जनसंख्या पर व सदस्य फिर 1000 जनसंख्या पर सदस्यों की वृद्धि होगी। निर्वाचन की प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप से व्यस्क मताधिकार के माध्यम से होगी।

2. पंचायत समिति-

विकास खण्ड स्तर पर मध्यम स्तर पर 1 लाख आबादी पर 15 सदस्य होगें। प्रति 15000 की आबादी पर दो अतिरिक्त सदस्य होगें। पदेन सदस्य सभी सरपंच उस क्षेत्र के MLA (MP नहीं) पदेन सदस्य प्रधान, उपप्रधान के पद से हटाने में मत नहीं दे सकते।

3. जिला परिषद्-

यह सर्वोच्च संस्था होती है, जिसमें दो प्रकार के सदस्य होते है। 1. निर्वाचत सदस्य- निर्धारित निर्वाचन क्षेत्र से 4 लाख की आबादी पर 17 सदस्य तथा प्रति एक लाख अधिक पर 2 और सदस्यों की वृद्धि होगी। 2. पदेन सदस्य- जिले के सभी प्रधान व MLA, MP, जिला निर्वाचन क्षेत्र पूर्ण या आंशिक रूप से जिला परिषद् क्षेत्र में पड़ता है। राज्यसभा सदस्य जिनका नाम सम्बन्धित जिला परिषद् क्षेत्र में हो।

योग्यता

जिस संस्था में चुनाव लड़ना चाहता है, उस क्षेत्र की मतदान सूची में नाम होना अनिवार्य है। जिनकी न्यूनतम आयु 21 वर्ष होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति के दो से अधिक बच्चे हो तो वह प्रत्याशी नहीं हो सकता है। दो से अधिक बच्चों वाले किसी व्यक्ति को तब तक नियोग्य नहीं समझा जायेगा। जब तक उसके बच्चों की उस संख्या में वृद्धि नहीं होती जो इस अधिनियम की प्रारम्भ की तारीख को है।

आरक्षण

राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 में व्यवस्था है कि प्रत्येक पंचायती राज संस्था में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थान 1. अनुसूचित जातियों 2. अनुसूचित जन जातियों 3. पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षित किये जाएगें ऐसे स्थान सम्बन्धित पंचायती राज संस्था में विभिन्न वार्डो या विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के लिए चक्रानुक्रम द्वारा विधि से आवंटित किये जाते है।राज्य में सरपंचों, प्रधानों और प्रमुखों के पदों की कुल संख्या का एक-तिहाई से अन्य महिलाओं के लिए आरक्षित है। इन पंचायती राज संस्था का कार्यकाल 5 वर्ष होगा। यदि कोई पंचायती राज संस्था पाँच वर्ष की निर्धारित अवधि से पूर्व विघटित हो जाती है वो ऐसी विघटित पंचायती राज संस्था का नया निर्वाचन ऐसे विघटन की तिथी से छ:माह के भीतर कराया जाना अनिवार्य होगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की दशावभूमिका - भारत देश एक विशाल जनसंख्या वाला देश है। वर्तमान समय में चीन के बाद जनसंख्या में भारत का स्थान आता है। भारत की यह जनसंख्या नगरों एवं गाँवों में निवास करती है। इनमें भी ज्यादा जनसंख्या का निवास गाँवों में होता है। हाल ही में जारी "आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS)- 2018-19" के अनुसार, कार्यक्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी में भारी गिरावट देखने को मिली है। वर्ष 2011-19 के बीच ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यस्थलों पर महिलाओं की भागीदारी 35.8 प्रतिशत से घटकर 26-40 प्रतिशत ही रह गयी है। "वर्ष 2019 में विश्व आर्थिक मंच" (World Economic Forum-WEF) की "वैश्विक लैगिंक अंतराल रिपोर्ट" में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी और इसके लिए उपलब्ध अवसरों के संदर्भ में भारत एकमात्र ऐसा देश था जिसमें आर्थिक भागीदारी में लैगिंक अंतराल राजनीतिक लैगिंक अंतराल से अधिक पाया गया। अक्टूबर 2020 में जारी आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS) रिपोर्ट के अनुसार 23 अक्टूबर-दिसम्बर 2019 में महिला बेरोजगारी की दर 9.8 प्रतिशत रही जो वर्ष 2019 में जुलाई-सितम्बर की तिमाही के आँकड़ों से अधिक है। गौरवलब है कि COVID-19 महामारी के बाद देशभर में बेरोजगारी के आँकड़ों में व्यापक वृद्धि देखी गई। इसके अलावा अंसगठित क्षेत्रों मे ं महिलाओं की भागीदारी की स्थिति देखे तो कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी लगभग 60 प्रतिशत है परन्तु इनमें से अधिकांश भूमिहीन श्रमिक है, जिन्हें स्वास्थ्य, सामाजिक या आर्थिक सुरक्षा से संबंधित कोई भी सुविधा नहीं प्राप्त होती है। वर्ष 2019 में मात्र 13 प्रतिषत महिला किसानों के पास अपनी जमीन थी और वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यह अनुपात मात्र 12.8 प्रतिशत था। सेवा क्षेत्र में भी अधिकांश कम आय वाली नौकरियों तक ही सीमित है।

निष्कर्ष

इन समितियों के माध्यम से अनेक नये प्रावधान अपनाये गये स्वतंत्रता के प्श्चात् पंचायती राज व्यवस्था के लिए प्रतिमान को स्वीकार किया गया इसमें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की भागीदारी के सम्बन्ध में नाममात्र के प्रावधान थें। परन्तु इन सभी के अधिकारों के बारे में बताने हेतु अशोक मेहता समिति व जी.वी.के.राव समितियों ने समाज के कमजोर वर्गों अर्थात् अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की राजनीतिक भागीदारी पर बल दिया।

इसी विचार को स्वीकार करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गाँधी ने पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता देने के लिए संविधान संशोधन (64वाँ) का प्रारूप तैयार करवाया लेकिन यह पारित न हो सका। 64 वें संविधान संशोधन अनिनियम के प्रारूप के आधार पर ही पुन: संविधान संशोधन विधेयक का प्रारूप तैयार किया गया। इस विधेयक को 73वें संविधान संशोधन अधिनियम (1993) के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस संशोधन के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था को सशक्त आधार प्रदान किया गया तथा इन संस्थाओं के विकास के लिए अनेक प्रावधान किए गयें।

इस अधिनियम के तहत सभी वर्गों को उनको अपनी भागदारी देने हेतु आरक्षण प्रदान किया गया। महिलाओं की भागीदारी को भी सुनिश्चित किया गया। महिलाओं को राजनैतिक भागीदारी हेतु प्रोत्साहित किया गया।

अनेक वर्षो से विचाराधीन विषय पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं और अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की भागीदारी की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए सम्पूर्ण देश की पंचायत राज संस्थाओं में महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया।

संसद द्वारा पारित 73वें संविधान संषोधन विधेयक (24 अप्रैल, 1993) के निर्देशों के अनुरूप ही राजस्थान में 23 अप्रैल, 1994 को एक नया पंचायत राज अधिनियम जो कि "राजस्थान पंचायत राज अधिनियम-1994 के नाम से जाना जाता है। विधानमंडल द्वारा पारित कर लागू करवाया और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को ओर आगे बढ़ाया गया।

राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था के संगठनात्मक संरचना में त्रिस्तरीय व्यवस्था अपनायी गयी जिनके तीन स्तरों को लागू किया गया। सर्वोच्च स्तर पर जिला परिषद्, मध्य स्तर पर पंचायत समितियाँ और निचले स्तर पर ग्राम पंचायतों की स्थापना की गई। सभी-सभी स्तरों पर महिलाओं की भागीदारी को भी सुनिश्चित किया गया। महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। सभी स्तरों पर उनकों अपनी कार्यशैली दिखाने की व्यवस्था की गयी। महिला पदाधिकारियों को अपनी पुरानी छवि से निकलकर आगे आने का अवसर प्रदान किया गया।

संदर्भ-

- अलीम, शकीन, विमैन पोलिसी एण्ड सोशल चेन्ज, नई दिल्ली, अग्ला पब्लिशिंग हाउस, 1991
- अम्बेडकर, एस. नगेन्द्रा, न्यू पंचायती राज एट वर्क, एवीडी पब्लिशर्स, जोधुपर, 2000
- अम्बेडकर, एस. नगेन्द्रा, शैलजा, नगेन्द्रा, वीमन एण्ड पंचायती राज, एवीडी पब्लिशर्स, जोधुपर, 2008
- अम्बेडकर, एस.एन. नगेन्द्रा, शैलजा, वीमन एम्पावरमेन्ट एण्ड पंचायती राज, एवीडी पब्लिशर्स, जयपुर, 2011
- असलम, एम., पंचायती राज इन इण्डिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, दिल्ली, 2007
- अनिता,''पंचायती राज एवं महिला सशक्तिकरण'' राजस्थान विकास, महिला सशक्तीकरण विशेषांक, मार्च, 2001
- आप्टे, प्रभा, भारतीय समाज में नारी, जयपुर, क्लासिक पब्लिशिंग हाऊस, 1996
- अनिरमन, कश्यप, गवर्नर्स रोल इन इण्डियन कन्स्टीटयूशन, न्यू देहली, लान्सर्स बुक, 1993
- भट्ट, जयश्री, समाज कल्याण: नारी दीक्षा संस्कृति, बीना (एम.पी.), आदित्य पब्लिशर्स, 1998
- भट्ट, जी.डी., इमर्जिंग लीडरशिप पैटर्न इन रूरल इण्डिया,नई दिल्ली एम.डी. पब्लिकेशंस
- भार्गव, वी. एस., पंचायत राज सिस्टम् एण्ड पोलिटिकल पार्टीज, नई दिल्ली, आशीष पब्लिशिंग हाऊस, 1979
- भट्टाचार्य, मोइत्री, पंचायती राज इन बेस्ट बंगाल: डेमोक्रेटिक डिसेन्ट्रलाइजेशन और डेमोक्रेटिक सेन्ट्रलिज्म न्यू देहली, मयंक पब्लिकेशन, 2002
- बीजू, एम.आर., डायनामिक्स ऑफ न्यू पंचायत राज सिस्टम, नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स, 1999
- विनोद कुमार गर्ग: 'राजनीति में महिला सहभागिता: एक विश्लेषण', जरनल ऑफ एडवांस एण्ड स्कोलर्ली रिसर्च इन एलाईड ऐजुकेशन (अंक-9), जून, 2019, पृ. 671-675
- संगीता मेश्राम: 'पंचायती राज व्यवस्था में महिला प्रतिनिधि: एक परिदृश्य', गोल्डन रिसर्च थॉट्स (अंक-9), 2014, पृ. 01-02
- सपना त्यागी: पंचायती राज व्यवस्था तथा महिला सशक्तिकरण (आगरा एवं ग्वालियर जनपदों का तुलनात्मक अध्ययन), (पी.एच.डी उपाधि के उपाधि के लिए प्रस्तुत अप्रकाशित शोध प्रबंधन), दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, आगरा, 2018-19, पृ. 01-25

स्वातंत्रयोत्तर भारत में नारीवाद आन्दोलन एवं स्त्री चेतनाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

बेबी कुमारी

शोध छात्रा, इतिहासए जय प्रकाश विश्व विद्यालय छपरा

सार

उन्नीसवीं सदी के सामाजिक सुधार आंदोलन पर भारतीय महिला आंदोलन का निर्माण राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता संग्राम की अवधि के माध्यम से लोकतंत्र के उस माहौल की ओर बढ़ा, जो भारत में स्वतंत्रता की उपलब्धि के साथ स्थापित हुआ था। महिलाओं के लिए समान अधिकारों की संवैधानिक गारंटी की उपलब्धि भारत में नारीवादी उद्देश्यों को पूरी तरह से महसूस नहीं कर सकी और भारतीय महिला आंदोलन को एक नई गति प्रदान की। नया महिला आंदोलन खुद को नए संगठनों और समूहों के रूप में व्यक्त कर रहा है जो उभर रहे हैं, नए आंदोलन और अभियान जो महिलाओं के मुक्ति के सपने को पूरा करने के लिए हो रहे हैं। इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत लेख में महिला आंदोलन के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास किया गया है और स्वतंत्रता के बाद के युग में इसके द्वारा देखे गए बदलावों को ट्रैक किया गया है। नारीवादी आंदोलन के विकास के क्रम में नए मुद्दे उभर रहे हैं। यह पत्र इस बात की तस्वीर पेश करने का प्रयास करता है कि कैसे ये मुद्दे भारत में महिलाओं के प्रश्न को आकार दे रहे हैं।

मुख्य-शब्दः स्वतंत्र भारत, भारत में नारीवादी आंदोलन, महिलाओं की स्थिति, महिलाओं की भागीदारी।

परिचय

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में समकालीन नारीवादी आंदोलन पर लोकतंत्र के प्रयोग का प्रभाव उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि औपनिवेशिक शासन का अनुभव जो बीसवीं शताब्दी की शुरुआत के नारीवादी आंदोलन पर सबसे महत्वपूर्ण रचनात्मक प्रभावों में से एक साबित हुआ। इस बात पर जोर देते हुए कि जेंडर आधारित संरचनाएं महिलाओं का दमन और अधीन करती हैं; स्वतंत्रता के बाद की अवधि में समकालीन नारीवादी आंदोलन समानता के सिद्धांतों पर खुद को मजबूती से स्थापित करके शुरू हुआ। स्वतंत्रता के बाद के वर्ष नारीवादियों के लिए एक गंभीर आघात स्थल साबित हुए। पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता के सिद्धांत को स्वीकार करने के बावजूद, इसके निहितार्थों पर पूरी तरह से काम नहीं किया गया था। स्वतंत्र भारत में महिलाएं घर के अंदर और बाहर कई तरह के भेदभाव का शिकार होती रहीं। मोहभंग हो रहा था लेकिन धीरे-धीरे। उन्नीस सौ सत्तर के दशक में समानता की संवैधानिक गारंटी की दिखावा के रूप में निंदा की गई थी और सत्तर और अस्सी के दशक में शुरू हुआ आंदोलन उस समय के कई कट्टरपंथी आंदोलनों से आगे बढ़कर एक बहुत अलग था। अस्सी के दशक में बड़ी संख्या में महिला संगठनों का जन्म हुआ और पुराने लोगों को पुनर्जीवित किया गया। नए आयामों की विशेषता वाली महिलाओं की सक्रियता की एक विशेष श्रेणी का जन्म हुआ। इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत लेख में इन्हीं विभिन्नताओं को समझने का प्रयास किया गया है।[1]

स्वतंत्रता के बाद नारीवादी आंदोलन पुनर्जागृति

महिलाओं से किए गए वादों की पुष्टि करने के लिए, स्वतंत्र भारत के संविधान ने "लिंगों के बीच समानता" की गारंटी दी और महिलाओं के लिए अवसरों के निर्माण के लिए विभिन्न प्रशासनिक निकायों की स्थापना की गई। पचास और साठ के दशक के दौरान नारीवादी आंदोलन में एक खामोशी देखी गई। राष्ट्रीय आंदोलन के समाप्त होने के साथ, महिलाओं को लामबंद करने के स्पष्ट कारण गायब हो गए। कई सामाजिक महिला संगठनों जैसे एआईडब्ल्यूसी ने खुद को प्राथमिक रूप से सामाजिक संगठनों के

रूप में फिर से स्थापित किया, जो स्कूल, छात्रावास चलाने जैसी सेवाएं प्रदान करते थे और किसी भी संघर्ष उन्मुख गतिविधि में शामिल नहीं थे। सापेक्षिक शांति की यह अवधि केवल पन्द्रह वर्षों तक चली, उसके बाद एक गहरी बेचैनी थी जब देश अनेक समस्याओं में जकड़ा हुआ था, जिनसे निपटने में लोकतांत्रिक सरकार विफल रही थी। राष्ट्रव्यापी अशांति की इस स्थिति से निपटने के लिए, देश में राजनीतिक कार्रवाई का एक नया उत्साह शुरू हुआ, जिसमें एक बार फिर महिलाएं इसके महत्वपूर्ण नायकों में से थीं। संघर्षों की शुरुआत पार्टी के मोर्चों से या पार्टियों के गठबंधन के संयुक्त मोर्चों से हुई थी। पार्टियों के बंटवारे और नई पार्टियों के अस्तित्व में आने का भी मामला था जैसा कि भाकपा के मामले में देखा गया था। इन सभी माध्यमों से महिलाओं ने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्हें संगठित करने के अलावा, महिलाओं के उत्पीड़न के विश्लेषण को उनकी राजनीतिक भागीदारी में जोड़ने की आवश्यकता भी महसूस की गई।[2]

स्थानीय जमींदारों की जबरन वसूली की प्रथाएँ जो आदिवासियों को उप-मानव के रूप में मानते थे। महिलाओं ने आंदोलन में सबसे जुझारू भूमिका निभाई और 'महिला चेतना' के विकास के साथ, उनके द्वारा पत्नी की पिटाई की समस्या जैसे लिंग आधारित मुद्दे उठाए जाने लगे। इस मुद्दे को उठाने से 1972 में एक महिला के शराब विरोधी आंदोलन का विकास हुआ और 1973 में कई पुरुषों के नशे में घर आने और अपनी पत्नियों को पीटने की समस्या के कारण जारी रहा।

यद्यपि यह महिलाओं के लिए काम की स्थितियों में सुधार की दिशा में एक प्रयास था, लेकिन सत्तर के दशक के उत्तरार्ध में उठे नारीवादी आंदोलन के कुछ वर्गों ने सेवा का दावा नहीं किया बल्कि शाहदा आंदोलन, बॉम्बे में मूल्य वृद्धि विरोधी आंदोलन और गुजरात में नव निर्माण आंदोलन का दावा किया। 1973 में कम्युनिस्ट पार्टियों और दो समाजवादी पार्टियों के गठबंधन द्वारा शुरू किए गए मूल्य वृद्धि विरोधी आंदोलन ने शहर की महिलाओं को आंदोलन के खिलाफ लामबंद किया। यह आंदोलन तेजी से बढ़ता हुआ उपभोक्ता संरक्षण के लिए एक जन आंदोलन बन गया। उसी तर्ज पर गुजरात में बढ़ती कीमतों के खिलाफ एक छात्र आंदोलन विकसित हुआ, जिसमें जल्द ही हजारों मध्यम वर्ग की महिलाएं शामिल हो गईं, जिन्हें 1974 के नव निर्माण आंदोलन के रूप में जाना जाने लगा। महिला-केंद्रित होने के बावजूद, राधा कुमार पितृसत्तात्मक प्रकृति के बारे में एक सवाल उठाती हैं। उनका मत है कि ऐसा लगता है कि किसी भी आंदोलन ने यह नहीं पूछा है, उदाहरण के लिए, घरेलू खर्च में वृद्धि मुख्य रूप से पुरुषों की बजाय महिलाओं की चिंता क्यों होनी चाहिए, और इस प्रकार, इस तरह के आंदोलनों के माध्यम से महिलाओं ने स्वीकार किया है कि परिवार महिलाओं का क्षेत्र था और उनके उपभोक्ताओं की भूमिका को चुनौती देने के बजाय सुदृढ़ किया गया है। लेकिन इन आंदोलनों में हजारों महिलाओं की ओर से सामूहिक सार्वजनिक कार्रवाई शामिल थी और महिलाओं द्वारा इस तरह की सामूहिक कार्रवाई को आमतौर पर पितृसत्ता के लिए एक अंतर्निहित खतरा माना जाता है। इसके अलावा इन विरोधों ने पितृसत्तात्मक विरोधी भावनाओं को परोक्ष रूप से अंकुरित होने दिया क्योंकि इन विरोधों में महिलाओं के कई कार्य सत्तर के दशक के अंत में नारीवादी आंदोलनों के रूप में उभरे। 70 के दशक की शुरुआत में जयप्रकाश नारायण के 'सम्पूर्ण क्रांति' के आह्वान में पितृसत्ता की एक शक्तिशाली आलोचना देखी गई, जिसमें सत्ता संरचनाओं के बारे में सवाल उठाए गए, जिसमें महिलाओं के बारे में कई सवाल शामिल थे। महिलाओं के अधिकारों के इस नए दावे को बोधगया मठ संघर्ष में भी देखा गया, जो छात्र युवा संघर्ष वाहिनी की भागीदारी के प्रमुख क्षेत्रों में से एक था, जो 'संपूर्ण क्रांति' का अगुआ था, जिसमें महिलाओं के भूमि अधिकारों ने एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया था। गरीब किसानों के भूमि अधिकारों की मांग। इस प्रकार, सत्तर के दशक ने भारत में महिला आंदोलन के इतिहास में एक वाटरशेड का गठन किया जब महिलाओं के उत्पीड़न के विश्लेषण ने बोधगया और कई अन्य आंदोलनों में मांग और/या कार्रवाई के नए रूपों को जन्म दिया। महिलाओं के उत्पीड़न और उनकी संभावित मुक्ति के लिए संघर्ष का यह गहन विश्लेषण अंततः 'स्वायत्त महिला आंदोलन' के रूप में जाना जाने लगा। 70 के दशक ने महिलाओं को बड़ी संख्या में जन आंदोलनों में शामिल किया, हालांकि महिलाओं के उत्पीड़न के विशिष्ट मुद्दे और विश्लेषण अलग-अलग थे।[3]

उस समय के जन आंदोलनों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि सरकारी नीति के विकल्प महिला संवर्गों से आ रहे थे जैसा कि चिपको आंदोलन और धूलिया के श्रमिक संगठन के मामले में देखा जा सकता है। चिपको आंदोलन में, जो 1973 में शुरू हुआ और 1974 में महिलाओं द्वारा शामिल किया गया था, पर्यावरण क्षरण का मुद्दा महिलाओं के ईंधन और चारे के लिए बढ़ते श्रम से जुड़ा था और इससे महिलाओं के प्रकृति के प्रति एक पोषण दृष्टिकोण रखने का विचार उत्पन्न हुआ था क्योंकि उनकी वजह से खुद की प्रकृति से संबंधित गतिविधियाँ थीं।

चिपको आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने उन्हें उत्पीड़न के खिलाफ अपने संघर्ष में मदद नहीं की है, हालांकि दावा किया गया है कि यह एक नारीवादी आंदोलन है। लेकिन व्यावसायिक वानिकी और पर्यावरण के आधार पर वन आधारित औद्योगीकरण को चुनौती देने वाले इस आंदोलन ने महिलाओं के दृष्टिकोण को ध्यान में रखा। मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्र में 1977 में गठित एक उग्रवादी ट्रेड यूनियन छत्तीसगढ़ माइंस श्रमिक संघ के कार्य के दौरान महिलाओं के अधिकारों की चिंता भी देखी गई। मूल

रूप से हाशिए पर खड़े हाथ से काम करने वालों के अधिकारों के लिए लड़ने वाले इस ट्रेड यूनियन ने भी मजदूरी के लिए महिलाओं के समान अधिकारों को बरकरार रखा। कई शिक्षित महिलाओं और छात्रों द्वारा शहरों और परिसरों में भी इस तरह का विश्लेषण किया जा रहा था। 70 के दशक के मध्य के दौरान, कई शिक्षित महिलाओं ने कट्टरपंथी, सक्रिय राजनीति की और साथ ही साथ महिलाओं के उत्पीड़न के विश्लेषण को बढ़ावा दिया।[4]

70 और 80 के दशक की हलचल ने राजनीतिक दलों को अछूता नहीं छोड़ा जिन्होंने अपने स्वयं के महिला मोर्चों के साथ आकर प्रतिक्रिया दी। कांग्रेस पार्टी ने अपने स्वयं के महिला मोर्चा (महिला कांग्रेस) को औपचारिक रूप दिया। बाद के 70 के दशक के दौरान, समाजवादियों ने, विभिन्न क्रमपरिवर्तन और संयोजनों के माध्यम से, जिसके कारण जनता पार्टी का गठन हुआ, ने महिला दक्ष समिति का शुभारंभ किया। एमडीएस ने दहेज, बलात्कार, मूल्य वृद्धि के खिलाफ कई आंदोलनों का नेतृत्व किया और भाग लिया और संकट में कई महिलाओं को कानूनी सहायता प्रदान की। साथ ही अस्सी के दशक के अधिकांश सामान्य आंदोलनों में महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जा रहा था जो कि श्रमिक आंदोलनों की तुलना में किसानों में अधिक ध्यान देने योग्य थी। अस्सी के दशक में महाराष्ट्र में किसान आंदोलनों में और बिहार में, महिलाओं को संगठित करने पर विशेष ध्यान दिया गया था। हालांकि ऐसे आंदोलन (किसान आंदोलन, आदिवासी आंदोलन, छात्र आंदोलन, आदि) जिसमें महिलाएं भाग लेती हैं, महिलाओं को प्रभावित करने वाले मुद्दों को नहीं उठाती हैं, लेकिन वे सामाजिक या वर्ग के मुद्दों को उठाती हैं, लेकिन गेल ओमवेट ऐसे आंदोलनों को पूर्व-आंदोलन कहते हैं जहां तक महिलाओं का संबंध है। . उनका विचार है कि इस तरह के आंदोलनों से समाज में महिलाओं की शक्ति का पता चलता है, जिससे अक्सर महिला आंदोलनों का विकास होता है और उन्हें अपनी जरूरतों को पूरा करने की अनुमति मिलती है।

अलगाव की भावना

1970 और 1980 के दशक में बॉम्बे में वामपंथी आंदोलनों में कुछ महिलाओं द्वारा अनुभव किया गया अलगाववादी नारीवादी सक्रियता के लिए एक प्रेरणा बन गया जिसके परिणामस्वरूप कई स्वायत्त नारीवादी समूहों का उदय हुआ। लेकिन इन समूहों ने गरीबी, भ्रष्टाचार, वर्ग और जाति के संबंध में सामाजिक आंदोलनों की वैधता को स्वीकार किया। महिलाओं की समानता को बढ़ावा देने के लिए समर्पित कई पत्रिकाएँ और पत्रिकाएँ भी अस्तित्व में आईं, जिनमें से कई क्षेत्रीय भाषाओं में थीं। इनमें फेमिनिस्ट नेटवर्क (अंग्रेजी: बॉम्बे); अहल्या, सबला सचेतन, और प्रतिभावादी चेतना (बंगाली: कलकत्ता); बैजा (मराठी: पुणे); महिलाओं की आवाज (अंग्रेजी: बैंगलोर) और स्त्री संघर्ष (हिंदी: पटना)। 1977 में दिल्ली में महिलाओं के एक समूह ने महिलाओं और समाज के बारे में मानुषी नामक एक पत्रिका शुरू की, जिसे इलिना सेन मानती हैं कि भारत में महिला आंदोलन के विभिन्न पहलुओं का एक जीवंत वृत्तचित्र बन गया है। राज्य इन घटनाओं से अंधी नहीं रहा। टुवर्ड्स इक्वलिटी के प्रकाशन के साथ, 1974 में महिलाओं की स्थिति पर समिति की रिपोर्ट, और 1975-85 के दशक को महिलाओं के लिए अंतरराष्ट्रीय दशक के रूप में घोषित करने के साथ, नारीवाद के खिलाफ बाधाओं को राजनीतिक क्षेत्र में तेजी से मिटा दिया गया था।[5]

80 के दशक की शुरुआत में, राज्य ने महिला आंदोलन की बहुत सी बयानबाजी को अपनाया, उदा. 'महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए'; 'महिलाओं को उनका उचित हिस्सा तब तक नहीं मिलेगा जब तक वे संगठित नहीं होंगी', आदि। राज्य के संरक्षण के तहत महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना तैयार की गई थी और महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य की स्थिति और राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए व्यवस्थित योजनाएँ बनाई गई थीं। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना पर 1988 में सत्तारूढ़ दल के बाहर के अधिकांश समूहों द्वारा इस आधार पर हमला किया गया था कि यह महिलाओं के उत्पीड़न के मूल कारणों को छुए बिना केवल सतही उपचार की पेशकश करती है।

अस्सी के दशक की शुरुआत से, नारीवाद साहित्य के उत्पादन से लेकर स्लम सुधार कार्य, रोजगार-सृजन योजनाओं, स्वास्थ्य शिक्षा और ट्रेड यूनियनों तक गतिविधियों की एक श्रृंखला में विभाजित हो गया था। सत्तर और अस्सी के दशक के उत्तरार्ध में नारीवादी लेखन में तेजी देखी गई क्योंकि नारीवादी साहित्यिक आलोचकों का मानना था कि महिलाओं को अपना खुद का साहित्य बनाने की जरूरत है जिसमें विशेष रूप से स्त्री मुद्दों और अनुभवों पर विचार किया जा सके और महिला संवेदनशीलता का सामना किया जा सके। इस तरह के कार्यों ने महिलाओं को उत्पीडिघ्त, शोषित, ठगी, प्रताडिघ्त, क्रोधित, विमुख और विद्रोही के रूप में प्रस्तुत किया। दक्षिण में महिला श्रमिक संघों को संगठित करने के नए प्रयास हुए। असंगठित क्षेत्र में, ये काम की स्थितियों के बजाय जीवन यापन की स्थितियों में सुधार के अभियानों से विकसित हुए। ऐसे प्रयास बिहार में भी ए.के. रॉय (दूर वामपंथी ट्रेड यूनियन नेता) और बॉम्बे में नारीवादियों द्वारा क्रमशः महिला खनिकों और महिला कपड़ा श्रमिकों की छंटनी के खिलाफ। इस तरह के प्रयास विफल रहे क्योंकि बेरोजगारी के खतरे ने महिलाओं को पुरुषों के साथ एकजुट कर दिया, प्रति परिवार एक मजदूरी की न्यूनतम मांग के आसपास, भले ही वह पुरुष मजदूरी थी, हालांकि नारीवादी इस तरह के काम में निहित पितृसत्तात्मकता को पहचान सकते

थे। कुशल श्रमिक वर्ग (बम्बई में) के भीतर महिलाओं को संगठित करने के प्रयास भी विफल रहे। इन अनुभवों के कारण, नारीवादी इस निष्कर्ष पर पहुंचीं कि जब काम या महिलाओं के रूप में उनके सामने आने वाली विशिष्ट समस्याओं की तुलना में परिवारों के रूप में रहने की उनकी स्थितियों से संबंधित मुद्दों की बात आती है तो गरीब महिलाएं अधिक उग्रवादी होती हैं।[6]

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में नारीवादी पहले से कहीं अधिक खंडित थे क्योंकि वे एक आम दुश्मन नहीं देख सकते थे और न ही सामान्य शब्दों में दुश्मन की पहचान करने का प्रयास भी कर सकते थे। आम दुश्मन की पहचान करने में असमर्थता आंशिक रूप से उपनिवेशवाद की अनिवार्यताओं के कारण थी और आंशिक रूप से भारतीय संस्कृति की जटिलताओं के कारण जहां लिंग संबंध पश्चिम की तरह स्पष्ट रूप से अलग नहीं थे। नारीवादियों के लिए राजनीतिक विभाजन अब पहले की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण थे।

सत्तर और अस्सी के दशक के अभियानों और आन्दोलनों के नारीवादियों के अनुभव ने उन्हें अपने द्वारा पहले इस्तेमाल की गई अपनी रणनीति और तरीकों पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया। इस तरह के आंदोलनों (बलात्कार, दहेज हत्या, सती आदि) के माध्यम से नारीवादियों ने महिलाओं के लिए कानूनों के रूप में कुछ रियायतें हासिल कीं, जो कुछ मायनों में फायदेमंद साबित हुईं, लेकिन अन्य तरीकों से नारीवादियों के लिए गंभीर निराशा हुई। यह पता लगाना कि पारित किए गए कानून मुख्य रूप से अप्रभावी हैं और नए कानूनों के अधिनियमन और उनके कार्यान्वयन के बीच बिल्कुल भी कोई संबंध नहीं था, ने कई लोगों को यह महसूस कराया कि सरकार ने सबसे बड़ी आसानी से उनकी मांगों को दरकिनार कर दिया था। इसने कानून में बदलाव की मांगों के इर्द-गिर्द आधारित अभियानों की प्रभावशीलता पर सवाल खड़े किए। दूसरी ओर, नारीवादियों की ओर से व्यक्तिगत मामलों को लेने और अदालतों की पेचीदगियों के माध्यम से उनका पालन करने के लिए अदालती प्रक्रियाओं का पालन करने में समय बर्बाद किए बिना निर्णय आया।

नारीवादियों की रणनीति और आंदोलन के तरीकों में भी एक बदलाव देखा गया, जिसके अनुसार उनके अनुसार पहले के तरीकों जैसे कि सार्वजनिक अभियान, प्रदर्शन, नुक्कड़ नाटक आदि का सीमित अर्थ था जब तक कि उनके साथ व्यक्तिगत महिलाओं की सहायता और समर्थन के लिए अपनी खुद की संरचना विकसित करने का प्रयास न किया गया हो। नारीवादियों ने पारंपरिक रूप से स्वीकृत महिलाओं के स्थान को फिर से उपयुक्त बनाने के लिए इतिहास की ओर रुख किया। मिथकों, महाकाव्यों और लोककथाओं की फिर से व्याख्या करने के प्रयासों के माध्यम से अस्सी के दशक में ऐसे स्थानों को फिर से उपयुक्त बनाने का प्रयास हुआ। मुख्यधारा के धार्मिक और सांस्कृतिक ग्रंथों या प्रथाओं की आलोचना की गई और वैकल्पिक प्रथाओं या ग्रंथों की खोज की गई और भारत में महिलाओं के प्रतिरोध के विशेष ऐतिहासिक या विशेष तरीकों की खोज की गई। परंपरा में इस तरह की रुचि भारतीय नारीवादी आंदोलन की शुरुआत से ही मौजूद थी जैसे नुक्कड़ नाटक ओम स्वाहा (1979 में दहेज हत्या के खिलाफ) और मुल्गी जली हो दोनों ने पारंपरिक गीतों का इस्तेमाल किया था।[7]

हालांकि, इस स्तर पर, मुख्य प्रयास जन्म से मृत्यु तक विभिन्न चरणों के माध्यम से भारत में महिलाओं की अधीनता के पारंपरिक रूपों का वर्णन करना था; साथ ही महिलाओं की पीड़ा पर पारंपरिक टिप्पणियों की तलाश करना, दोनों को एक रूढिघ्वादी समाजवादी नारीवादी ढांचे में रखना। इसके विपरीत, अस्सी के दशक में महिलाओं की शक्ति के पारंपरिक स्रोतों की तलाश करने पर जोर दिया गया। इसमें भारतीय महिलाओं की ताकत के लिए रूपकों के रूप में काली और शक्ति जैसे हिंदू देवी-देवताओं का उपयोग करना शामिल था। उन तरीकों को परिभाषित करने में भी रुचि थी जिसमें सामान्य महिलाएं अपने पति, पारिवारिक समुदायों आदि के साथ बातचीत करने के लिए पारंपरिक रूप से उन्हें दिए गए स्थानों का उपयोग करती थीं। इन पारंपरिक महिला उपकरणों (जैसे कि शराबी पतियों को सुधारने के लिए देवी (देवी) द्वारा कब्जे का अनुकरण करने वाली महिलाएं) की संभावित नारीवादी रणनीति के रूप में जांच की जा रही थी क्योंकि उन्हें कुछ हद तक शक्ति प्राप्त करने के साधन के रूप में अनुशंसित किया जाने लगा था। महिलाओं के प्रतिरोध के ऐतिहासिक उदाहरणों के लिए भारतीय नारीवादियों की ओर से इस खोज ने उन्हें दूर और तत्काल अतीत की छानबीन करने, सामाजिक परिवर्तन के लिए सामान्य आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका को देखने और समकालीन नारीवाद से पहले के कुछ आंदोलनों को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। तेलंगाना आंदोलन (भूमिहीन मजदूर आंदोलन) और चिपको आंदोलन (वन संरक्षण आंदोलन)। यद्यपि चिपको आंदोलन सत्तर के दशक के मध्य में शुरू हुआ था और मुख्य भूमिका महिलाओं द्वारा निभाई गई थी, उस समय महिला आंदोलन के रूप में इसकी बहुत कम या कोई चर्चा नहीं हुई थी। अस्सी के दशक की शुरुआत में, इस आंदोलन को नारीवादियों द्वारा एक सामूहिक महिला आंदोलन के रूप में मनाया जाने लगा और महिलाओं के अपने पर्यावरण से विशेष संबंध के सिद्धांतों को पेश किया जाने लगा। आंदोलन में महिलाओं की भूमिका के बारे में एक नई

जागरूकता विकसित हुई और कुमाऊं क्षेत्र में जहां चिपको विशेष रूप से मजबूत नहीं था, शाहदा के पैटर्न का पालन करते हुए एक महिला शराब विरोधी आंदोलन शुरू हुआ, जहां एक महिला चेतना के विकास ने भी एक विरोधी को जन्म दिया था। -शराब आंदोलन।

महिला आंदोलन केवल अभियानों और आंदोलनों तक ही सीमित नहीं है, नारीवादी पीडिघ्त पत्नियों और हिंसा की शिकार महिलाओं के लिए आश्रय चलाने में सक्रिय रूप से शामिल हैं और परामर्श और कानूनी सहायता भी प्रदान करती हैं। वे महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वयं सहायता समूह बनाने में मदद करते हैं। वे विभिन्न मुद्दों पर प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित करते हैं। महिला आंदोलन की सफलता पारित कानूनों या पद पर नियुक्त महिलाओं की संख्या के संदर्भ में नहीं है, बल्कि इस तथ्य में है कि इसने भारतीय समाज में महिलाओं के पूरे प्रश्न पर एक नई चेतना लाई है। इस तरह की उपलब्धियों का बयान किसी को इसके सकारात्मक प्रभाव को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने के लिए प्रभावित नहीं करना चाहिए। अभी भी भारतीय महिलाओं की एक बड़ी संख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है, जो दयनीय जीवन जी रही है। महिलाओं के संघर्ष के लंबे इतिहास के बावजूद, भारतीय महिलाएं आज साक्षरता, मातृ मृत्यु दर, दीर्घायु, रोजगार और लिंग अनुपात के मामले में सबसे पिछड़ी हुई हैं। पितृसत्ता में डूबी पुरानी मानसिकता के साथ महिला आंदोलन नई समस्याओं से जूझ रहा है।[8]

स्वतंत्रता के बाद महिला समूह और संगठन

स्वतंत्रता के बाद महिलाओं के लिए नए अवसरों के खुलने के कारण नारीवादी गतिविधियों में अपेक्षाकृत शांति थी। इस खामोशी के कारण एआईडब्ल्यूसी जैसे कई पूर्व-स्वतंत्र महिला संगठनों ने खुद को प्राथमिक रूप से सामाजिक संगठनों के रूप में फिर से स्थापित किया, जो स्कूल, छात्रावास आदि चलाने जैसी सेवाएं प्रदान करते थे। कम्युनिस्ट महिलाओं ने एआईडब्ल्यूसी से नाता तोड़ लिया और 1954 में नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन वुमेन (एनएफआईडब्ल्यू) का गठन किया। जो पार्टी के भीतर महिलाओं के लिए एक मंच बना रहा और पार्टी के नेतृत्व वाले ट्रेड यूनियनों में। कई राजनीतिक दलों ने सांकेतिक महिला मोर्चा बनाए रखा जैसे कि कांग्रेस द्वारा महिला कांग्रेस, जिसका संबंध मुख्य रूप से पार्टी रैलियों और वोट हासिल करने के लिए महिलाओं को जुटाने से है। हालाँकि ये सभी निकाय किसी भी संघर्ष उन्मुख गतिविधि में शामिल नहीं थे।

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में महिला आंदोलन की बहाली ने कई नए महिला संगठनों और समूहों का उदय देखा और पुराने लोगों को महिलाओं के हितों को बढ़ावा देने के लिए सक्रिय रूप से सक्रिय किया गया। यद्यपि महिला संगठन (एआईडब्ल्यूसी, डब्ल्यूआईए) उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी की शुरुआत में उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवादी आंदोलन का हिस्सा रहे हैं, यह केवल सत्तर के दशक में था कि महिलाओं के लिए अनिवार्य रूप से काम करने वाले महिला समूहों का गठन किया गया था। 70 और 80 के दशक के अंत के दौरान कलकत्ता, बैंगलोर, पुणे और अन्य जगहों पर कई शहरी समूह उभरे। वर्ष, नव निर्माण आंदोलन के विकास और कुचलने का साक्षी, हैदराबाद में समकालीन नारीवादी आंदोलन के पहले महिला समूह के गठन का भी गवाह बना, जिसे POW के रूप में जाना जाता है, जिसमें माओवादी आंदोलन की महिलाएं शामिल हैं।[9]

इस समूह ने महिलाओं के उत्पीड़न की दो प्राथमिक संरचनाओं के रूप में श्रम के यौन विभाजन (आधार) और इसे (अधिरचना) को तर्कसंगत बनाने वाली संस्कृति को मान्यता दी। महाराष्ट्र ने 1975 में कई नारीवादी गतिविधियों का अचानक विकास देखा, जिसके तहत, च्ॅ के प्रभाव में, पुणे में माओवादी महिलाओं ने पुरोगामी स्त्री संगठन (प्रगतिशील महिला संगठन) का गठन किया और बॉम्बे में माओवादी महिलाओं ने स्त्री मुक्ति संगठन (महिला मुक्ति संगठन) का गठन किया।

दलित आंदोलन की महिलाओं द्वारा महिला समता सैनिक दल (समानता के लिए महिला सैनिकों की लीग) नामक एक नया समूह भी बनाया गया था। इस दल के घोषणापत्र में महिलाओं के साथ-साथ दलितों के उत्पीड़न में धर्म को प्रमुख एजेंट और जाति व्यवस्था को भारत में असमानता के स्रोत के रूप में मानते हुए महिलाओं के यौन उत्पीड़न को मान्यता दी गई थी। जाति उत्पीड़न और महिलाओं के उत्पीड़न के बीच और समानताएं खींची गईं, बाद में पुरुषों और महिलाओं के बीच एक जाति विभाजन मौजूद था, जहां महिलाओं को दबाने के लिए शुद्धता और प्रदूषण की धारणाओं का इस्तेमाल किया जाता था। च्ॅ और डैक् दोनों के घोषणापत्रों ने सभी महिलाओं के यौन उत्पीड़न पर जोर दिया कि पहले के सामाजिक सुधार या नारीवादी समूहों ने अनदेखी की थी। नब्बे के दशक के दौरान दलित समुदाय की महिलाओं ने अखिल भारतीय दलित महिला मंच और राष्ट्रीय दलित महिला संघ और दलित एकजुटता जैसे संगठन भी बनाए। 1975 में आपातकाल की घोषणा से चल रहे नारीवादी आंदोलन में विराम लग गया और 1977 में इसे उठाने से नारीवादी आंदोलन, नारीवादी समूह पूरे देश में, लेकिन मुख्य रूप से प्रमुख शहरों में आ गए। नए महिला समूहों की विशिष्ट विशेषता यह थी कि उनमें से कई ने स्वायत्तता का विकल्प चुना, जिसमें अलग-अलग, महिला-केवल समूह शामिल थे, इस तथ्य के बावजूद कि उनके अधिकांश सदस्य अन्य राजनीतिक समूहों से संबंधित थे, किसी भी राजनीतिक-पार्टी

संबद्धता या पारंपरिक संगठनात्मक संरचना को खारिज कर दिया। सत्तर के दशक के अंत में आने वाली एकमात्र पार्टी-आधारित महिला संगठन महिला दक्ष समिति (एमएसडी) थी, जिसे 1977 में गठबंधन जनता पार्टी में समाजवादी महिलाओं द्वारा स्थापित किया गया था। हालांकि सत्तर के दशक के अंत और अस्सी के दशक की शुरुआत में नारीवादी अभियान हावी थे। नए शहर-आधारित समूहों द्वारा, नारीवादी चेतना के समान विकास कुछ ग्रामीण आंदोलनों में भी हुए थे। यह करीमनगर जिले के मामले में देखा जा सकता है जब आंध्र प्रदेश में तेलंगाना आंदोलन को फिर से आपातकाल हटा लिया गया था। इस जिले में जहां महिलाएं साठ के दशक से भूमिहीन मजदूर आंदोलन में विशेष रूप से सक्रिय थीं, आंदोलन की नई लहर देवम्मा नामक एक महिला के अपहरण और एक स्थानीय जमींदार द्वारा उसके पति की हत्या के खिलाफ एक अभियान के साथ शुरू हुई। इसके बाद, महिलाओं ने महिला संघ नामक स्वतंत्र महिला संगठनों के गठन की मांग की और इन संघों के माध्यम से पत्नी की पिटाई और जमींदार बलात्कार के मुद्दों को उठाया।[10]

नारीवादी विचारों का प्रभाव बढ़ने लगा था। दिलचस्प बात यह है कि 1980 के सम्मेलन के दौरान बहस के केंद्रीय मुद्दों में से एक नारीवादी समूहों की भूमिका और पार्टी और जन आधारित संगठनों के साथ उनके संबंधों पर था। यह मुद्दा था कि महिला आंदोलन कैसे विकसित होगा और कैसे विकसित होना चाहिए। नारीवादी आंदोलन के प्रसार और विखंडन के कारण, विभिन्न पेशे और मुद्दे-आधारित समूह भी अस्तित्व में आए। नारीवाद के प्रभाव को महसूस करने वाले पहले पेशे पत्रकारिता, शिक्षाविद और चिकित्सा थे। नारीवादी आंदोलन शुरू होने के तुरंत बाद, अधिकांश प्रमुख अंग्रेजी भाषा के दैनिक समाचार पत्रों ने एक या एक से अधिक महिला पत्रकारों को विशेष रूप से नारीवादी मुद्दों पर लिखने के लिए नियुक्त किया था, और महिला पत्रकारों का एक नेटवर्क विकसित हुआ, जिसे बॉम्बे में मध्य में एक महिला पत्रकार समूह में औपचारिक रूप दिया गया था। दहेज, या बलात्कार, या सती जैसे 'महिलाओं के मुद्दों' पर बेहतर रिपोर्टिंग के लिए पैरवी करने के उद्देश्य से अस्सी का दशक।

पहले समकालीन नारीवादी समूहों की स्थापना में शामिल अधिकांश महिलाएं स्वयं शिक्षाविद थीं जिन्होंने इस विचार के साथ महिलाओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना चुना कि यह नारीवादी आंदोलन के विकास के लिए उपयोगी होगा। हालांकि, 'महिला अध्ययन' वास्तव में अस्सी के दशक में शुरू हुआ, शुरुआत में दिल्ली में महिला विकास अध्ययन केंद्र (सीडब्ल्यूडीएस) जैसे स्वतंत्र शोध संस्थानों के समर्थन में; बॉम्बे में एसएनडीटी महिला विश्वविद्यालय द्वारा विश्वविद्यालय स्तर पर शोध खोजने का भी प्रयास किया गया, जिसने एक महिला अनुसंधान इकाई की स्थापना की। महिलाओं के अध्ययन के प्रसार के साथ, यह एक अलग क्षेत्र बन गया जिसके परिणामस्वरूप एक विरोधाभासी स्थिति पैदा हुई जिसमें इसके द्वारा उत्पादित ज्ञान गतिविधि से ही एक वियोग देखा गया और नारीवादी अभ्यास को सूचित करने के लिए नारीवादी सिद्धांत की पीढ़ी में सहायता के रूप में इसकी प्रारंभिक दृष्टि थी पृष्ठभूमि में चला गया। जबकि चिकित्सा में नारीवाद का प्रभाव पत्रकारिता या शिक्षाविदों की तुलना में कम प्रभावी रहा है, अन्य दो की तुलना में यहाँ संबंध अधिक निकट रहा है। हालाँकि अस्सी के दशक की शुरुआत में, कई शहरों में महिला केंद्र स्थापित हुए, जो स्वास्थ्य देखभाल, कानूनी सहायता और परामर्श जैसी सेवाओं का मिश्रण प्रदान करते थे और उनमें से कुछ ने रोजगार प्रदान करने का भी प्रयास किया, लेकिन उनके पास अपनी योजनाओं को बनाए रखने के लिए पर्याप्त संसाधनों की कमी थी, जिसके कारण उन्होंने स्थापना की। ऐसे केंद्रों का अस्तित्व बीसवीं शताब्दी से देखा गया था; ये नए केंद्र कई महत्वपूर्ण तरीकों से भिन्न थे। सामाजिक-कल्याण विचारधारा वाले पहले के केंद्र एक या दो मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते थे और महिलाओं की समस्याओं को पहले से ही परिभाषित, व्यापक तरीके से संबोधित करते थे। दूसरी ओर, नए केंद्र जो स्पष्ट रूप से नारीवादी थे, उन मुद्दों की एक पूरी श्रृंखला पर सहायता प्रदान करने का प्रयास करते थे, जिन्हें वे परस्पर जुड़े हुए मानते थे, और उनका दृष्टिकोण अधिक लचीला, व्यक्तिवादी था। नए केंद्रों के प्रयास ने महिलाओं के बीच दोस्ती की पारंपरिक रूप से स्वीकृत संरचनाओं के आधार पर इन अवधारणाओं को फिर से परिभाषित करने के साथ-साथ भाईचारे की नारीवादी अवधारणाओं को व्यवहार में लाने के साथ-साथ इन अवधारणाओं को फिर से परिभाषित किया। इस तरह के प्रयासों को केंद्रों के नाम (दिल्ली में सहेली और कानपुर में सखी केंद्र) द्वारा दर्शाया गया था। सहेली महिला संसाधन, प्रलेखन और कानूनी सहायता का केंद्र था। महिला संगठनों और समूहों ने महिलाओं के विभिन्न मुद्दों को उठाने और उनके संबंध में अभियान और आंदोलन चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिला संगठनों ने बलात्कार, शराब, और पत्नी-पिटाई, दहेज उत्पीड़न, परिवार में हिंसा, सामान्य नागरिक संहिता, कामकाजी महिलाओं की समस्याओं, सांप्रदायिकता, नौकरानी नौकरों की समस्याओं और कई अन्य मुद्दों के रूप में महिलाओं के खिलाफ अत्याचार जैसे मुद्दों पर लड़ाई लड़ी। . 80 के दशक के मध्य में देवराला घटना (रूप कंवर घटना बी) के बाद सती के खिलाफ आंदोलन के दौरान जनमत और प्रेस कवरेज जुटाने में शहर-आधारित समूहों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी तरह, स्वायत्त समूहों ने बलात्कार कानून में सुधार के लिए आंदोलन का नेतृत्व किया और एक संशोधन के पारित होने का मार्ग प्रशस्त करने में सफल रहे, जिसने आरोपी बलात्कारी पर बेगुनाही के सबूत का भार रखा।

कई दलों से संबंधित महिला समूहों और महिला मोर्चों ने भी सांप्रदायिक प्रवृत्तियों और सांप्रदायिक हिंसा के खिलाफ कड़ा रुख अपनाया, जैसा कि 1984 के दिल्ली दंगों के मामले में देखा गया था, जहां कई महिला समूह पीडिघ्तों को समर्थन प्रदान करने और सांप्रदायिक हिंसा के खिलाफ पैरवी करने के लिए दंगों के बाद आगे आए थे। कई महिलाओं के समूहों और कई दलों की महिलाओं के बीच मुद्दों पर आधारित सहयोग और संवाद फैला, जिसका सबसे पहला उदाहरण 1972 और 1975 के बीच बॉम्बे स्थित मूल्य वृद्धि विरोधी आंदोलन में देखा जा सकता है जिसमें दो प्रमुख कम्युनिस्ट पार्टियों की महिला नेताओं और बढ़ती कीमतों के विरोध में समाजवादी पार्टी एकजुट हो गई।[11]

विभिन्न विचारधाराओं के महिला समूहों ने संज्ञान लिया है, और बलात्कार, दहेज हत्या और व्यक्तिगत कानून के मुद्दों पर सक्रिय रूप से काम किया है। लेकिन अब तक महिला किसानों या ग्रामीण और शहरी मेहनतकश महिलाओं के लिए समान मजदूरी और काम जैसे मुद्दों के संबंध में कोई निरंतर आंदोलन या अभियान नहीं हुआ है, हालांकि ऐसे मुद्दे कई वाम संगठनों के लिए सैद्धांतिक प्राथमिकता हैं। साथ ही आंदोलन में समग्र "समन्वय" या "दिशा" का अभाव रहा है और आंदोलन दमित वर्गों को आगे आने और खुद को मुखर करने के लिए चल रहे तरीके प्रदान नहीं कर रहा है। समकालीन महिला आंदोलन में कई सैद्धान्तिक और सैद्धान्तिक प्रश्नों को सुलझाना अभी बाकी है। स्वायत्त महिला आंदोलन के सवाल, महिला आंदोलन और एक बड़े वर्ग-आधारित या अन्य आंदोलन के बीच संबंधों पर गहन बहस जारी है।

निष्कर्ष

आजादी के बाद भारत में एक जोरदार हालांकि असमान महिला आंदोलन ने आकार लिया है। विभिन्न जातियों, वर्गों और समुदायों की महिलाओं ने आंदोलन में भाग लिया है, साथ ही विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियों, पार्टियों और विभिन्न विचारधाराओं से जुड़े समूहों के कार्यकर्ताओं ने आंदोलन को अत्यधिक विषम बना दिया है। भारत में महिला आंदोलन को देखते हुए, विभिन्न प्रकार के पदों, विचारधाराओं, रणनीतियों और जन आधारों के बारे में पता चलता है। अनसुलझे मुद्दों और सवालों के इर्द-गिर्द कई बहसें चल रही हैं, जो महिला आंदोलन को एक तरह की जीवंतता प्रदान करती हैं। स्वतंत्रता के बाद से सकारात्मक उपलब्धि इस बहस और विवाद से आगे निकलने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। भारतीय महिला आंदोलन की विभिन्न शक्तियों का जश्न मनाने की आवश्यकता है, विशेष रूप से विभिन्न क्षेत्रों से चुनौतियों का सामना करने की क्षमता, यानी सांप्रदायिकता, जाति आंदोलनों आदि से चुनौतियों का सामना करने की क्षमता।

संदर्भ

1. लतीफ एस., व्हेयर द इंडियन विमेन मूवमेंट?, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 12(47), 1948-1951 (1977)
2. चौधरी एम., जेंडर इन द मेकिंग ऑफ द इंडियन नेशन- स्टेट, शर्मिला रेगे (एड.) में, लिंग का समाजशास्त्र: नारीवादी समाजशास्त्रीय ज्ञान की चुनौती, सेज पब्लिकेशंस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली (2003)
3. कुमार राधा, द हिस्ट्री ऑफ डूइंग: एन इलस्ट्रेटेड अकाउंट ऑफ मूवमेंट्स फॉर विमेन राइट्स एंड भारत में नारीवाद 1800-1990, महिलाओं के लिए काली, नई दिल्ली (1993)
4. कुमार आर., समकालीन भारतीय नारीवाद, नारीवादी समीक्षा, 33, 20-29 (1989)
5. शाह जी., सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया: ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली (1990)
6. गंगोली जी., भारतीय नारीवाद: कानून, पितृसत्ता और भारत में हिंसा, एशगेट पब्लिशिंग लिमिटेड, इंग्लैंड (2007)
7. सेन I., भारत में महिलाओं की राजनीति। मैत्रयी चौधरी (सं.) में, भारत में नारीवाद, महिलाओं और महिलाओं के लिए काली असीमित, नई दिल्ली (2004)
8. टंडन एन., फेमिनिज्म: ए पैराडाइम शिफ्ट, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (पी) लिमिटेड, नई दिल्ली (2008)
9. ओमवेट जी., महिला आंदोलन: कुछ वैचारिक बहस। मैत्रयी चौधरी (सं.) में, भारत में नारीवाद, महिलाओं और महिलाओं के लिए काली असीमित, नई दिल्ली (2004)
10. चौधरी एम., भारत में नारीवाद: समकालीन भारतीय नारीवाद में मुद्दे, काली महिलाओं और महिलाओं के लिए असीमित: नई दिल्ली (2004)
11. रे आर. और कोरटेवेग, ए.सी., तीसरी दुनिया में महिला आंदोलन: पहचान, एकजुटता, और स्वायत्तता, समाजशास्त्र की वार्षिक समीक्षा, 12, 47-71 (1999)

उपन्यास 'थकी हुई सुबह' का समीक्षात्मक अनुशीलन

डॉ० देविका जौहरी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मौलाना आजाद इंस्टीट्यूट ऑफ ह्यूमेनिटीज साइंस एंड टेक्नोलॉजी, महमूदाबाद, सीतापुर

सारांश

'थकी हुई सुबह' रामदरश मिश्र का 1993 ई0 में प्रकाशित उपन्यास है। 'थकी हुई सुबह' उपन्यास में नारी यथार्थ की गूँज और पति से बिछुड़ी हुई नारी के जीवन की संघर्ष यात्रा है। प्रस्तुत उपन्यास में पाठक स्थान-स्थान पर ग्रामीण जीवन के प्राकृतिक सौंदर्य और उसकी संस्कृति से साक्षात्कृत होता है, जिसका अपना ही निराला ठाठ है। वास्तव में 'थकी हुई सुबह' उस स्त्री (लक्ष्मी) के दर्द की महागाथा है, जो अंधेरे से लड़ती हुई प्रातः की तरह उठती तो है किंतु यात्रा में प्राप्त अनेक कटु और अमानवीय अनुभवों के कारण उसे प्रातः की ताजगी नहीं वरन् थकान ही प्राप्त होती है। 'थकी हुई सुबह' इसी परंपरा का उपन्यास है, जिसमें नारी-यातना के कई स्तर विश्वसनीयता के साथ खुलते हैं और नारी मुक्ति से सम्बद्ध कई सवालों को जन्म दे जाते हैं। उपन्यास का कथानक यथार्थ और कल्पना के ताने-बाने से बुना गया है। यह उपन्यास नारी 'लक्ष्मी' का अपने पति से अलग हुई जिंदगी की दुर्दम्य ग्राम्य कथा है। साहस और उत्साह से भरी उस औरत की कथा है जो अपनी अस्मिता दाँव पर रखकर झाड़-झंखाड़ भरे रास्तों से बचते हुए, छिलते हुए अपने जीवन को संभाल सकी है किंतु किसी पुरूष के साथ से उससे विलग रहकर नहीं।

प्रमुख शब्द- पारिवारिक विघटन, अमानवीय अनुभव, ग्रामीण जीवन, प्राकृतिक सौंदर्य, स्त्री संवेदनहीनता

रामदरश मिश्र कृत उपन्यास 'थकी हुई सुबह' में सामाजिक जीवन की कई समस्याएं दृष्टिगत होती हैं। पारिवारिक विघटन भी दिखाई पड़ता है। रामधन की मृत्यु के पश्चात् उमा जी उनके एक बेटे को पढ़ने के लिए पैसे देती हैं, किन्तु दूसरे को फिजूल कामों में खर्च करने के लिए पैसे नहीं देती है तो वह घर में उपद्रव मचाता है और माँ से कहता है, ''इस संपत्ति में मेरा आधा हिस्सा होता है जितना भाई को दोगी उतना मैं भी लूँगा।''[1] प्रस्तुत उपन्यास में माता-पिता के प्रति संतान की कर्तव्यहीनता को भी दर्शाया गया है। स्त्री का स्त्री के प्रति दुश्मन जैसा व्यवहार भी स्त्री संवेदनहीनता का परिचायक है। 'थकी हुई सुबह' में मैना दीदी पर उसकी सास का अत्याचार इतना बढ़ जाता है कि वह न केवल बीमार हो जाती है अपितु तंग आकर ससुराल छोड़ देती है। मरते हुए मैना लक्ष्मी से कहती है, ''लक्ष्मी, एक बात मानोगी?....बहना ससुराल मत जाना।''[2] मैना के इस कथन से यह प्रमाणित होता है कि ससुराल में बहुओं को कितना प्रताडिघ्त किया जाता है। अनमेल विवाह की समस्या को भी रेखांकित किया गया है। रघुनाथ बाबा दहेज न दे पाने के कारण अपनी सत्रह साल की लड़की शोभा का ब्याह पचास साल के एक खूँसट बूढ़े के साथ कर देते हैं। दूल्हे को देखकर लड़कियां दंग रह जाती हैं, ''हम लोग बहुत उत्साह में थे कि शोभा बुआ की शादी हो रही है। उनके दूल्हे को देखने की बड़ी ललक भर आयी थी।.....द्वार पूजा के समय हम लोग बहुत उमंग से दूल्हा देखने पहुँचे और देखकर दंग रह गए कि दूल्हे की जगह पचास साल का एक मरद बैठा हुआ है। ''सख्त तिकोने सा चेहरा, पतला सा ललाट, मिच मिची आँखें, आगे की ओर खूब फैली हुई नाक। शोभा बुआ का पति यही है। बार-बार मेरे मन में सवाल उठता।.....कुछ लड़कियाँ मुस्की मार-मारकर हँस रही थीं, कुछ बातें कर रही थीं लड़की को बेच दिया रघुनाथ बाबा ने।''[3]

उपन्यास में निम्न आर्थिक दशा का चित्रण भी मिलता है। उपन्यास में गरीबी के कारण ही पच्चीस साल की बहूजी का विवाह पचपन साल के वकील साहब के साथ होता है। इस अनमेल विवाह से उसके सारे सपने टूटकर बिखर जाते हैं। उसके निम्नलिखित कथन से इस बात की पुष्टि होती है, ''मेरी भी क्या जिंदगी है। गरीब माँ-बाप ने बूढ़े के साथ बांध दिया।.....क्या पैसा ही सब कुछ होता है? वकील साहब ने मुझे गहनों से लाद दिया; रूपया-पैसा भी खूब कमाते हैं और देते हैं, लेकिन उसके बाद? मेरे लिए उनके पास समय कहाँ है? और समय भी हो तो उस समय का क्या कर लूँगी?''[4] इस उपन्यास की नायिका लक्ष्मी है, जो गरीब घर में जन्मी है, किन्तु पढ़ने की ललक रखती है। उसकी शादी वकील साहब के बेटे बुद्धिसागर से होती है। बुद्धिसागर का अपनी हम उम्र की सौतेली माँ से अनैतिक सम्बन्ध हैं। लक्ष्मी को यह मालूम हो जाता है तो वह भाग जाती है। कई दिनों के बाद वह फिर लक्ष्मी से मिलता है किन्तु वह उसे अपनाती नहीं। इसके अतिरिक्त विधवा विवाह, बहु-विवाह, दहेज प्रथा, सामाजिक यौन-विकृतियाँ, यौन-विसंगतियाँ, नारी शिक्षा आदि की समस्याएँ भी दिखाई गई हैं।

उपन्यास की समस्त कथा की केन्द्र बिन्दु लक्ष्मी है। वही इस उपन्यास की प्रमुख पात्र और चरित्र है। लक्ष्मी, शम्भू, रामधन, उमा, बहुजी, वकील साहब, विनोद, मैना दीदी, रघुनाथ बाबा, शोभा, सागर, मास्टर जी, कलावती, सुंदर, दूबे इत्यादि पात्र हैं। लक्ष्मी का चरित्र उपन्यास में एक सजग, चेतनशील व संघर्षशील प्राणी के रूप में उभरता है। शिक्षा के प्रति उसकी ललक से यह आसानी से समझा जा सकता है तभी तो वह कहती है, ''उसे लगता था कि औरतों को भी पढ़ना चाहिए। उसका स्वयं का मन तो पढ़ने के लिए आतुर था ही.....वह अक्षर ज्ञान प्राप्त कर विद्या की प्यास लिए भटकती फिरती थी।''[5] माँ-बाप से वह बार-बार कहती है कि वह पढ़ना चाहती है लेकिन वे हँसकर उसकी बात टाल देते। उसके भाई ने तो पढ़ना छोड़ दिया था। लेकिन भाई की पुस्तकों का बस्ता बनाकर अपने पास रखती थी। कभी-कभी वह भाई की कोई किताब खोलकर पढ़ती थी। अक्षरों को जोड़कर धीरे-धीरे पढ़ना उसने सीख लिया था। एक दिन एक पृष्ठ उसके सामने खुल गया। उस पर गांधी जी, दयानंद सरस्वती और कई महापुरूषों के चित्र बने थे उसका शीर्षक था- ''नारी शिक्षा- उसमें लिखा था- ''हमारे देश की स्त्रियों को भी जागना चाहिए। उन्हें पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलने की जरूरत है। लेकिन यह तभी होगा जब उनकी शिक्षा-दीक्षा हो। शिक्षित होकर ही वे वीर माता, वीर पत्नी, वीर पुत्री और देश की सेविका बन सकती हैं। शिक्षा ज्ञान देती है, वह अपने पाँव पर खड़ा होने की ताकत देती है। जब तक हमारे देश की स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होती उनमें जागृति उत्पन्न नहीं होगी और वे दुर्दशा भोगती रहेगी। इसीलिए स्वामी दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहनराय और गांधी जी आदि महान नेता नारी-शिक्षा पर इतना बल दे रहे हैं।''[6] इस पाठ को बार-बार पढ़कर वह उत्साह से सराबोर हो गयी। बड़े हुलास (उत्साह) के साथ वह पिताजी के पास गयी और कहा, ''आप गांधी जी को मानते हैं न पिताजी।''

अरे बेटी, वे तो महात्मा हैं, उन्हें तो पूरा देश मानता है वे अपना सब कुछ छोड़-छाड़कर देश की आजादी की लड़ाई लड़ रहे हैं। ऐसे महापुरूष को पूरादेश मानता है, मैं तो उनकी पूजा करता हूँ। तब आप उनकी बात क्यों नहीं मानते?

''कौन सी बात बेटी?''

''देखिए इस किताब में क्या लिखा है, लिखा है कि देश की समाज की उन्नति चाहते हो तो स्त्रियों को शिक्षित करो। शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियों की उन्नति जब तक नहीं होगी तब तक देश और समाज की उन्नति नहीं होगी।''

''तो क्या तू पढ़ लेती है बेटी?''

''हाँ, भइया की किताब से मैंने पढ़ना सीख लिया।''[7]

'थकी हुई सुबह' उपन्यास में लक्ष्मी नारी के प्रबलतम रूप को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। वह अपनी भाभी से कहती है, ''क्या हम स्त्रियों की जान जान नहीं होती, हमारा निर्णय-निर्णय नहीं होता? हमने अपने को इतना तुच्छ और महत्त्वहीन मान लिया है इसीलिए तो पुरुषों को हमारे साथ ज्यादती करने का साहस होता है।''[8] इस प्रकार युगों से पुरूष नारी को अपनी दासी ही समझता आया है। यही कारण है कि स्त्री के हाथों छोटी भूल भी पुरूष द्वारा क्षम्य नहीं, जबकि स्वयं पुरूष कितनी ही भूलें करता रहता है बे रोक-टोक।

आधुनिक युग की नारी की भाँति लक्ष्मी इस रूढ़ मानसिकता के विरूद्ध स्पष्ट विद्रोह करती है कि बेटी की कमाई कोई माँ कैसे खा सकती है? वह समाज द्वारा निर्मित रूढ़ मान्यताओं को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। वह बेटा-बेटी के नाम पर होने वाले भेदभाव को सहन नहीं कर पाती।

''बेटा-बेटी का भेदभाव माँ-बाप के प्रति संतान के कर्तव्य को भी बाँट देता है। पता नहीं किसने यह नियम बना दिया कि बेटी की हर चीज माँ-बाप के लिए अछूत है। तो सुन लीजिए मैं भी कोई निर्जीव चीज नहीं हूँ कि जहाँ जैसे डाल दी जाऊँ पड़ी रहूँगी।''[9]

आज की नारी मालिक के आचार-विचार के बारे में निर्भीकता से जवाब देती है। दुलारी बहू जी के घर बर्तन मांजने का काम करती है, एक दिन बहूजी के भाई ने उससे कह दिया कि ''अब तुम कल से यहाँ पर काम करने मत आना।

तब दुलारी कहती है, ''आप कौन हैं?''

बहू जी के भाई कहते हैं, ''तुम मुझे नहीं जानती? जानकार शादी करनी है क्या?'' मामा जी के ऐसे वचन सुनकर वह आग बबूला हो जाती है और रोष भरी वाणी में कहती है, ''तू दहिजरा मुझसे शादी करेगा। मेरा मरद मेरे लिए काफी है। मरद के रहते हुए दूसरे मर्दों पर मुँह मारना तुम्हारे घरों की रीति होगी, हमारे यहाँ की नहीं। समझे।''[10]

शिल्प की दृष्टि से देखा जाए, तो इस उपन्यास को आम बोलचाल की शब्दावली में शब्द-विन्यास, वस्तु विन्यास, कथोपकथन को गढ़ा गया है जिससे उपन्यास पठनीय बन गया है। आधुनिक भारतीय समाज के ग्रामीण समाज को चित्रित करता यह उपन्यास प्रेमचंद की परंपरा का है। इसके संवादों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। शिव कुमार की शादी न हो तो गाँव वाले कहते हैं-

''क्या है इनके घर? लड़की आकर भूखों मरेगी।''11 लक्ष्मी अपने मायके में कहती है-

''पिताजी और माँ के तन पर के कपड़े उसे दर्द से भर देते। रूखा-सूखा भोजन भी ठीक से दोनों वक्त नहीं जुट पाता था।''[12]

X X X X

''अब बैल रखने की जरूरत नहीं रह गई है, ट्रैक्टर जो खड़ा है।''[13]

भाषा बेहद सामान्यजन की है, काव्यात्मक है, बिम्बात्मक प्रतीकों से युक्त, मुहावरों व लोकोक्तियों से भरी हुई है। उदाहरणों से यह तथ्य प्रमाणित हो जाएगा-

''रबी की फसल गाँव के चारों ओर उमड़ी हुई थी। दूर नदी बहती थी। नदी और गाँव के बीच में पड़ने वाली लम्बी तलहटी में फसलों का ज्वार उमड़ा हुआ था। पीली-पीली सरसों, नीली-नीली तीसी, सफेद-लाल मटर फूली हुई थी।''14

ताल एवं नदी की सुषमा का वर्णन इस प्रकार है:

''ताल पर बहुत से पंछी उड़ते होते। वे ताल पर उड़ते-उड़ते नदी की ओर निकल जाते, नदी से ताल की ओर लौट आते। इनकी परछाईयां नीचे आती और तैरती रहती।''[15]

X X X X

''इस ओर तो पाट समतल है लेकिन उस ओर बड़े ऊँचे- ऊँचे कगार हैं। तट की रेत में झाऊ के छोटे-छोटे पेड़ खड़े थे। पंछी उड़ रहे थे और उनके पंखों की परछाईयाँ पानी में झर रही थी।''[16]

दोनों परिच्छेदों में 'पीली-पीली सरसों' से काव्यात्मकता का बोध, 'पीली-पीली सरसों' से 'फाल्गुन' महीने में सरसों के पौधों से खिले हुए फूलों का बिम्ब उपस्थित हो जात है। इसी प्रकार 'नदी, तट, रेत, पंछी' से भी इसी प्रकार का बोध होता है।

काव्यात्मक शैली का उदाहरण हमें गीतों के माध्यम से भी मिलता है-

''फुलवन से वन दहके हो रामा,
चौत महिनवा
घर, आँगन, मन महके हो रामा
चौत महिनवा
अगिया लगावे ले, बैरिन कोइलिया
बोले कहीं रह -रहके हो रामा
चौत महिनवा.....''[17]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि रामदरश मिश्र का उपन्यास 'थकी हुई सुबह' उपन्यास की नायिका लक्ष्मी के दर्द की महागाथा है, जो अंधेरे से लड़ती हुई प्रात: की तरह उठती तो है किंतु यात्रा में प्राप्त अनेक कटु और अमानवीय अनुभवों के कारण उसे प्रात:

की ताजगी नहीं वरन् थकान ही प्राप्त होती है। यह उपन्यास नारी 'लक्ष्मी' का अपने पति से अलग हुई जिंदगी की दुर्दम्य ग्राम्य कथा है। साहस और उत्साह से भरी उस औरत की कथा है जो अपनी अस्मिता दाँव पर रखकर अनेक उतार-चढ़ाव भरे रास्तों से संघर्ष करते हुए अपने जीवन को संभाल सकी है, वह भी अपनी शर्तों पर।

संदर्भ सूची-

1. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 130
2. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 15
3. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 13
4. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 43
5. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 15-16
6. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 16
7. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 16
8. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 123
9. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 83
10. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 93
11. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 34
12. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 65
13. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 01
14. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 21
15. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 21
16. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 23
17. थकी हुई सुबहः रामदरश मिश्र, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृ0 39

कक्षा-कक्ष में सामाजिक अधिगमः आवश्यकता, महत्त्व एवं शैक्षिक उपयोग

डॉ० कल्पना जैन

प्राचार्य, तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद

प्रस्तावनाः-

यह सर्वविदित है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अपने वातावरण के द्वारा स्वयं कुछ-न-कुछ सीखता रहता है। वह सामाजिक परिवेश में रहते हुए, समाज से सीखता है। दूसरों को देखकर उनके अनुरूप व्यवहार करने के कारण अथवा समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहारों को धारण करने तथा व्यवहारों को त्यागने के कारण ही यह सामाजिक अधिगम कहलाता है। सामाजिक अधिगम के स्वरूप को समझने के लिए हमें समाज और अधिगम का अर्थ समझना अति आवश्यक है।

समाजः-

समाज वह स्थान है जो - सत्य व अहिंसा, सादा जीवन उच्च विचार, सामाजिक समानता, आर्थिक न्याय, राजनीतिक न्याय आदि मूल्यों पर खड़ा है। ये हमारे समाज की मूल्य प्रवृत्तियाँ है, जो समाज का निर्माण करती है। समाज में रहने वाला हर प्राणी इन मूल्यों को स्वीकार करता है। इन्ही सामाजिक मूल्य प्रवृत्तियों के आधार पर समाज में व्यक्ति अधिगम को सीखता है।

अधिगमः-

समाज की जिन मूल्य प्रवृत्तियों को हम स्वीकार करते हैं व जिनके द्वारा हम सीखते हैं और अपने व्यवहार में लाते है उसे अधिगम कहते हैं और इसे ही सामाजिक अधिगम कहते हैं।

उदाहरणार्थ - जब शिशु जन्म लेता है तो वह अपने माता-पिता के सम्पर्क में रहकर उसका पालन-पोषण होता है। जब वह बड़ा होकर विद्यालय जाता है तब वह अपने सहपाठियों और शिक्षक के सम्पर्क में रहता है। जब वह नौकरी करता है तब वह अपने सहकर्मियों से सीखता है। यह क्रिया आजीवन चलती रहती है। सामाजिक अधिगम की यह क्रिया सम्पर्क करने से स्थापित होती है।

सामाजिक अधिगम का अर्थः

सिकोर्ड एवं बैकमेन के अनुसार "सामाजिक अधिगम का एक अधिक सामान्य रूप भूमिका अधिगम है, जिसके अर्न्तगत एक व्यक्ति दूसरे उन व्यक्तियों, जिनकी समान भूमिका स्थित है, के समान व्यवहार करना और संसार को समान ढंग से देखना और सीखना है।"

लिण्डग्रेन ने कहा -"सामाजिक अधिगम की प्रक्रिया सम्पर्क के कारण आरम्भ होती है।"

कक्षा कक्ष में सामाजिक अधिगम का उपयोगः-

अधिगम का सम्बन्ध चेतन मन या मस्तिष्क से है परन्तु कक्षा कक्ष में विद्यार्थी, समूह में होते है और सभी एक दूसरे से भिन्न होते हैं कुछ शिक्षण कार्य में सहयोग देते हैं और शिक्षक की बातों को ध्यान से सुनते हैं। इसके विपरीत कुछ विद्यार्थी शिक्षण कार्य में सहयोग नही देते उसमें रूचि नहीं लेते है। समूह में होने के कारण सभी विद्यार्थी शिक्षक और उसके शिक्षण से कुछ न कुछ मात्रा में प्रभावित होते है साथ ही उनमें अन्तःक्रिया भी होती है। इस अंतःक्रिया के कारण वे एक दूसरे को अपने व्यवहार से प्रभावित करते रहते है तथा एक दूसरे के व्यवहार को प्रबल बनाते रहते हैं जिसके कारण वह कुछ-न-कुछ सीखते हैं और उनके सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है।

सामाजिक अधिगम की आवश्यकताः-

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना है। यह व्यवहारगत परिवर्तन अधिगम की प्रक्रिया का परिणाम है।

गेट्स के अनुसार - "अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार-परिवर्तन को अधिगम कहते हैं।"

वुडवर्थ - "नवीन ज्ञान एवं अनुक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया अधिगम की प्रक्रिया कहलाती है।

अधिगम एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जिसके अर्न्तगत मानव निरन्तर सीखता रहता है। मानव के सीखने का कोई निश्चित समय व स्थान भी नही होता, वह प्रत्येक पल, प्रत्येक जगह कुछ न कुछ सीख सकता है। व्यक्ति न केवल विद्यालय में बल्कि परिवार, समाज, संस्कृति, मित्रों, आस-पड़ौस, चलचित्र, अखबार यहां तक कि अपरिचित व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थानों सभी से कुछ-न-कुछ सीखता है यह सभी व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि एवं संशोधन करते है। इसलिए यह अनुभव व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि एवं संशोधन करते है। ये अनुभव एवं अपने जीवन में इन अनुभवों का उपयोग ही सीखना अथवा अधिगम कहलाता है।

अधिगम की विशेषताएँः-

1. अधिगम सप्रयास व्यवहार परिवर्तन एवं संशोधन है।
2. वैयक्तिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।
3. अधिगम हेतु अभ्यास परम आवश्यक है।
4. अधिगम की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है।
5. अधिगम पर प्रेरणा का प्रभाव पड़ता है।
6. अधिगम वातारण से प्राप्त होता है।
7. अधिगम का क्रिया एवं अनुभव से सम्बन्ध होता है।

समाज मे रहकर बालक का व्यवहार भी परम्पराओं और सांस्कृतिक वातारण से प्रभावित होता है। वह अपने व्यक्तित्व से दूसरों पर प्रभाव डालता है और दूसरों के व्यक्तित्व का प्रभाव स्वयं भी ग्रहण करता है।

अधिगम के शैक्षिक उपयोग -

बाण्दूरा द्वारा प्रतिपादित सामाजिक अधिगम सिद्धान्त शिक्षा प्रक्रिया में अधिक उपयोगी हो सकता है। इसके उपयोग में निम्नलिखित क्षेत्र हो सकते है -

1. व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक अधिगम अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थियों के निर्माण के लिए उनके सामने आदर्श व्यवहार वाले प्रतिमान प्रस्तुत करने चाहिए। प्रतिमान और मॉडल उपस्थित करने के उपयोगी माध्यम रेडियों, टेलीविजन, पुस्तक, कहानी नाटक आदि हो सकते है। अध्यापक स्वयं भी एक प्रतिमान होता है। प्रारंभ में विद्यार्थी अपने शिक्षक के गुणों का अनुकरण करते हैं। इसलिए अध्यापक का व्यक्तित्व अच्छा होना चाहिए।

2. अध्यापक को प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ऐसे अध्यापकों के साथ काम करने से विद्यार्थियों की तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। डांट प्रताड़ना व अत्याधिक नियंत्रण का सहारा नहीं लेना चाहिए क्योंकि इससे अध्यापक व विद्यार्थियों में संवाद नहीं होता और विद्यार्थी संकोची व दबे हुए रहते हैं।
3. यात्रा भ्रमण - समय समय पर यात्राओं का आयोजन किया जाना चाहिए क्योंकि अच्छे अर्न्तवैयक्तिक सम्बंधो का विकास होता है। यह कक्षा समूहों में अच्छे भावात्मक वातावरण को बनाने में सहयोग देते हैं।
4. निर्देशन - विद्यार्थियों द्वारा निर्देशन दिये जाने से उनमें हम की भावना विकसित होती है और विद्यार्थी अपने आप को समूह में जोड़ पाते हैं।
5. बालक अच्छे बुरे में विभेद करने में अपने को समर्थ पाता है यही कारण है कि यदि प्रतिमान बुरा व्यवहार करता है तो बालक अनुकरण द्वारा उसे सीख लेता है। अत: विद्यालय या कक्षा-कक्ष या स्थितियों में प्रतिमान अर्थात् बुरे व्यवहार को उपस्थित नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए विद्यालय में बालकों के सामने शिक्षक को धूम्रपान नहीं करना चाहिए। शिक्षक को अक्रामक व्यवहार से बचना चाहिए।
6. सम्प्रेषण - कक्षा समूह में विद्यार्थी व अध्यापक दोनों समूह शक्तियों के बीच प्रभावी सम्प्रेषण होना चाहिए।
7. अध्यापक विद्यार्थी सम्बंध- विद्यार्थियों की समस्याओं पर अध्यापक द्वारा विचार किया जाना चाहिए। यदि अध्यापक विद्यार्थियों की समस्याओं को सुलझाने में रूचि रखते हैं, विद्यार्थियों से लगाव रखते हैं, मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखते हैं, वे बिना कठोर हुए विद्यार्थी से अपने को अलग कर लेते हैं। तो ऐसे उच्च श्रेणी के अध्यापक कक्षा वातावरण को सौहार्दपूर्ण बना लेते हैं।
8. कक्षा शिक्षण विद्यार्थियों की समानताओं व विभिन्नताओं के अनुरूप किया जाए ताकि एकाकी बालकों पर विशेष ध्यान दिया जा सके और समूह द्वारा उन्हें स्वीकृति मिल सके। इसके लिए प्रोजेक्ट कार्य करवाये जाए।
9. निम्न बुद्धि वाले बालकों को कौशलों द्वारा सिखाया जाए और कौशलों को खाने का अवसर प्रदान किया जाए जिससे उन्हें अन्य बालक सामाजिक स्वीकृति या समूह का अभिन्न अंग माने।
10. वार्तालाप- वार्तालाप के द्वारा वांछित व अवांछित व्यहवार और व्यक्तित्व की विशेषताओं से अवगत करवाया जाए जिससे कि बालकों को अपनी भाषा और व्यवहार व व्यक्तित्व विशेषताओं के विश्लेषण का अवसर मिल सके।
11. विद्यालय स्टाफ के आपसी संबंध तनाव रहित व भौतिक सुविधाओं की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
12. उद्देश्यों को ध्यान में रखकर अनुदेशन किया जाए तथा कक्षा कार्य इस प्रकार का हो कि विद्यालयों को सफलता का एहसास हो।
13. प्रत्येक विद्यार्थी को कक्षा में व्यक्ति के रूप में माना जाए ना कि कक्षा ग्लोब के अंग के रूप में। विद्यार्थियों को सीखने के लिए तत्पर एवं निर्णय लेने में सक्षम बनाया जाए

सामाजिक अधिगम का महत्व:-

वर्तमान आधुनिक शैक्षिक परिदृश्य में चाहे वह विद्यार्थी हो या शिक्षक या अभिभावक सभी वर्गों के लिए सामाजिक अधिगम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विद्यार्थियों में प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक विभिन्न कौशलों, योग्यताओं एवं मूल्यों के विकास हेतु उनकी परस्परता, अंत:क्रिया, विचार-विनिमय को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। एक शिक्षक केवल पाठ्यपुस्तक, व्याख्यान एवं कहानी विधि के प्रयोग द्वारा शिक्षण को एकांगी एवं नीरस ना बनाये बल्कि समाज रूपी विद्वार्थी समूह की परस्पर अंत:क्रिया एवं समूह गत्यात्कता की महत्ता को समझकर अधिकाधिक कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी की सक्रियता को प्रमुखता दे। सामाजिक अधिगम की सफल उपलब्धि हेतु एक अध्यापक बहुआयामी गुणों का एक मॉडल के रूप में प्रस्तुतीकरण करने के साथ विद्यार्थियों की अवलोकन, अवधान एवं धारण क्षमता का विकास कर सामाजिक अधिगम का अनुप्रयोग कर सकता है। परिवार के अभिभावक एवं अन्य रिश्तेदार अत्याधिक पुर्नबलन, अभिप्रेरण प्रविधियों द्वारा एक भावी नागरिक के संतुलित विकास में सामाजिक अधिगम की भूमिका तय कर सकते हैं।

सामाजिक अधिगम प्रत्येक को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सक्रिय करते हुए व्यक्तित्व के बहुआयामी रंगो को परस्परता एवं अनुकरण के माध्यम से सीखने पर बल देता है। आवश्यकता केवल इतनी है कि शिक्षा के सभी निकाय विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास हेतु इस दिशा में प्रयासरत हो कि प्रत्येक विद्यार्थी को समानरूपेण सक्रिय गुणग्राही एवं ऊर्जावान बनाने में सामाजिक अधिगम के अनुप्रयोग को तय किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. गुप्ता एस.पी., गुप्ता अलका (2007), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, यूनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद।
2. बघेला हेतसिंह (2007), अधिगम एवं शिक्षण के मनोसामाजिक आधार, राजस्थान प्रकाशन, त्रिपोलिया बाजार जयपुर।
3. सिंह रामपाल (2007), अधिगम का मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, राघेय राघव मार्ग, आगरा।
4. पाठक, पी.डी.(2007-08), शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, निर्भय नगर, गैलाना रोड, आगरा।
5. मंगल, एस.के.(2010), शिक्षा मनोविज्ञान, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा.लि., नई दिल्ली।

लोकसाहित्य में लोक और संस्कृति

डॉ० अमिता रानी सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय राजेन्द्र नगर, लखनऊ

सारांश

किसी भी देश की संस्कृति उसकी अस्मिता की द्योतक होती है, परन्तु संस्कृति के स्वरूप को द्युतिमान करने का कार्य उस देश का साहित्य करता है। संस्कृति और साहित्य का वास्तविक स्वरूप लोक में विद्यमान रहता है। लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति उस देश को प्राणवन्त किये रहते हैं। लोकसाहित्य और लोक संस्कृति को सतत अक्षुण्ण बनाये रखना, उसका संरक्षण करना और संचरण आवश्यक है। आज जो तथ्य और तत्व विस्मृति की पर्तों में दब गये हैं, जो भाव-धारायें खो गई हैं, जिन परम्पराओं, विकास-क्रम और इतिहास को हम भूल गये हैं, उनको फिर से उभार कर ऊपर लाना ही आज हमारे लोकसाहित्य और लोकधर्म की सार्थकता है।

भारत विश्व की सभ्यता, साहित्य और संस्कृति का जनक है। विश्व का प्रथम साहित्यिक निदर्शन ऋग्वेद, मुख्यत: लोकसाहित्य ही है। यह भारतीय दार्शनिक घ्ऋषि-मुनियों की सर्वोत्तम देन है। लोक समूह द्वारा स्वीकृत, व्यक्ति को परम्परा से प्राप्त वह समस्त रचनात्मक वाणी लोकसाहित्य कहलाती है, जिसमें लोकमानस संगृहीत रहता है। लोकसाहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत विशाल और व्यापक है। जहॉ भी लोक है, उसकी अनुभूतियॉ और अभिव्यक्तियाँ हैं, वहीं पर लोकसाहित्य भी है। लोकसाहित्य जनसामान्य की वाणी से जन्मता है, जन साधारण की गोद में ही पोषण प्राप्त करता है। और जन-जन की स्मृति के सहारे ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक यात्रा करता चला जाता है, लोकसाहित्य के क्षेत्र में वे सम्पूर्ण रचनाएं समाहित हो जाती हैं जो जनभाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। पंडित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में -''सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान, साधारण जनता की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है उसी को लोकसाहित्य'' कहते हैं। लोक-साहित्य जनता का वह साहित्य है, जो जनता द्वारा जनता के लिये रचा गया हैं।''(1)

लोक-साहित्य का कार्य महज लोकगीत, लोककथा और लोक कहावतों के संकलन का कार्य नहीं है, अपितु यह जो प्रारम्भिक काल से अनन्त काल तक मानव की जीवन यात्रा प्रवहमान है, उसमें यह कहॉ उठा, कहॉ गिरा, और कहॉ आगे बढ़ा इन सभी के अध्ययन का कार्य किया जाता है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। शिष्ट साहित्य के सम्बन्ध में इस बात की सार्थकता में संदेह हो सकता है। लेकिन साहित्य के बारे में यह पूर्णतया सत्य है। लोकसाहित्य से बढ़कर लोकजीवन की अभिव्यक्ति का सच्चा, सशक्त और विश्वसनीय माध्यम कोई दूसरा नहीं हो सकता। लोक साहित्य में लोकमानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गुनगुनाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में-''भारतीय हृदय का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिये पुराने अपरिचित ग्राम-गीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परम्परा का अनुशीलन ही अह्म नहीं है। पंण्डितों की बाँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्य धारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भाव धारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है। जब पाडितों की काव्य भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परम्परा में नया जीवन डालता है। प्राकृत के पुराने रूपों म्रे लदी अपभ्रंश तुच्छ लगती है तब शिष्ट काव्य प्रचलित देशी भाषाओं से शक्ति प्राप्त करके ही

आगे बढ़ सका। जब-जब शिष्ट साहित्य पण्डितों द्वारा बंधकर संकुचित होगा तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भाव धारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।''(2)

लोक साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण, पालि जातकों, प्राकृत कथाओं तथा अपभ्रंश की विभिन्न काव्य रचनाओं में बीज रूप में लोकसाहित्य का अस्तित्व विद्यमान है। लोक साहित्य में लोक मानव का हृदय बोलता है, प्रकृति स्वयं गुनगुनाती है। लोक साहित्य में निहित सौंदर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूतिजन्य है।

लोक साहित्य में निहित लोक संस्कृति को जानने से पहले 'लोक' और 'संस्कृति' को जानना अति आवश्यक है। 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु में 'धञ' प्रत्यय लगाने पर बना है जिसका अर्थ है देखना, जिसका लट् लकार के अन्य पुरूष के एकवचन का रूप लोकते हैं। अत: लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाता है। साधारण शब्दों में लोक शब्द का तात्पर्य उस समस्त जन समूह से है जो किसी देश में निवास करता है जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। दीन-हीन, शोषित, दलित, जंगली जातियाँ, ढोल, भील, गौड़, संथाल, नाग, किराल, हूण, शाक, यवन आदि सभी लोक समुदाय का मिला-जुला रूप लोक कहलाता है। इन सबकी मिली-जुली संस्कृति लोक संस्कृति कहलाती है। वेशभूषा, खानपान, पहरावा, ओढ़ावा, चाल-'व्यवहार, नृत्य गीत कला कौशल भाषा आदि सभी अलग-अलग दिखाई देते हैं।

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग 'कृ' धातु से बना है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार सम् उपसर्ग के आगे कृति शब्द अथवा 'कार' शब्द को जोड़ने जैस-सम+कृति: - संस्कृति तथा सम् +कार = संस्कार आदि शब्दों की निष्पत्ति होती है। डा0 डी0 एन0 मजुमदार के शब्दों में - ''संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्यों की रीति-नीति, लोक-विश्वास, आदर्श कलायें तथा मानव द्वारा उपलब्ध समस्त कौशल एवं योग्यताओं को लिया जा सकता है।(3) संस्कृति ब्रह्म की भाँति अवर्णनीय है। वह व्यापक, अनेक तत्वों का बोध कराने वाली जीवन की विविध प्रवृत्तियों से सम्बन्धित है अत: विविध अर्थो व भावों में उनका प्रयोग होता है। मानव मन की वाहन प्रवृत्ति-मूलक प्रेरणनाओं से जो कुछ विकास हुआ है उसे हम सभ्यता कहेंगे, और उसकी अर्न्तमुखी प्रवृत्तियों से जो कुछ बना है उसे संस्कृति कहेंगे।

प्राचीन काल से ही देश में संस्कृति की दो पृथक काव्य धाराएं शिष्ट संस्कृति और लोक संस्कृति है। लोक संस्कृति से तात्पर्य जन साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी जिसकी उत्स भूमि जनता थी। डा0 बलदेव उपाध्याय ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया- ''लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है, किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया-कलापों के पूर्ण परिचय के लिये दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद, ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकायें हैं। यदि अर्थववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का दर्पण है, अर्थववेद के विचारों का धरातल सामान्य जन जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन जीवन है।''(4)

ऋग्वेद में यज्ञ-यागादिक विधान पाया जाता है तो अर्थव वेद में अंध विश्वास, टोना टोटका, जादू और मंत्र का वर्णन मिलता है। इस प्रकार ऋग्वेद में शिष्ट तथा संस्कृत जन के विचारों का विवरण मिलता है तो अर्थववेद में सामान्य जनता के जीवन का चित्रण हुआ है। इस प्रकार ये दोनों ही वेद दो विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीक हैं।

पालि जातको में लोक संस्कृति का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। पालि सुत निपात में धनिय गोप का जो कथन है, उसमें ग्रामीण जीवन की बड़ी सुन्दर झांकी देखने को मिलती है। धनिय गोप भगवान इन्द्र को चुनौति देते हुए कहता है कि मेरे घर में गाय है, बैल है, मेरा घर सुन्दर है, मेरी स्त्री सुन्दर तथा पतिव्रता है, मैं उसकी कोई बुराई नहीं जानता, नदी के तट पर मैं सुखपूर्वक निवास करता हूँ। मेरे घर में आग जलती रहती है। हे ईश्वर यदि आप वर्षा करना चाहते हो तो करो -

पक्कोदनों युद्ध खोरोऽहमस्मि,
अनुतीरे महिया समानवासो,
छन्न कुटि, आहितोगिनि,
अथ चे पत्थयसि पवस्य देव।
अत्थिवसा, अत्थि धेनु पा:

गोधरणियों पवेनियों पि अत्थि।
उसभो पि गवम्पति च अत्थि
अथ चे पत्थयसि पवस्स देव[5]

उपरोक्त पंक्ति से स्पष्ट है कि बौद्ध काल में ग्रामीण जीवन कितना सुखी समृद्ध था। ग्रामीण संस्कृति का इतना सुन्दर तथा सजीव चित्रण अन्यत्र मिलना कठिन है।

आदि कवि बाल्मीकि के काव्य में वर्णित सुग्रीव और जाम्बवान जो बन्दरों तथा भीलों के राजा थे उन आदिम जातियों के नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आज भी इस विशाल देश में लाखों की संख्या में विद्यमान है। उस समय शिष्ट जनता तथा साधारण जनता की भाषा में भी अन्तर था। जब हनुमान लंका में अशोक वाटिका में सीता से मिलने जाते हैं तो वे असमंजस में पड़ जाते हैं कि यदि मैने सीता से शिष्ट लोगों की भाषा-संस्कृतां वांच का प्रयोग करूँगा तो कहि सीता मुझे रावण समझकर डर ना जाय हनुमान कहते हैं -

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजाति रिव संस्कृताम्
रावणं मन्यमानामां, सीता भीता भविष्यति।[6]

गांव की संस्कृति ने और कृषक जीवन ने तथा अरण्य की तपोवनी संस्कृति ने और सरल सीधा जीवन यापन करने वाली वनवासी संस्कृति ने निरन्तर नागरिक जीवन की उपभोग परकता और उससे उत्पन्न जड़ता पर आघात किया है।

चाहे सांची, अमरावती, भरहुत, मथुरा की कला में निदर्शित अभिप्राय ले, चाहे राजपूत कलम के चित्रों के अभिप्राय ले और उनकी बराबरी साधारण से लगने वाले मिट्टी के खिलौने और आनुष्ठानिक भित्ति चित्रों से करें तो स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ने ही वन्य और कृषि संस्कृति से प्राण पाये हैं।

वर्तमान समय में महानगरीकरण के उपभोगकरक भाव ने मानव को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है वह प्रकृति के साथ संतुलन और साहचर्य भाव न रखने के कारण जीवन की मूल आवश्यकता- हवा और पानी से वंचित हो रहा है। हमारा लोक और उसके विश्वास उस संकट की घड़ी में प्रगति की अंधी रफ्तार के ऊपर लगाम लगा सकते हैं। एक गीत में नीम का पेड़ न काटने और चिडिघ्यों को दुख न देने की बात इसी एकात्म भाव की ओर संकेत करती है-

मिमिया कै पेड़ जिनि काटेउ ऐ बाबा
निमिया चिरैया बसेर।
बिटियन जिनि दुख दीह्वा ए बाबा,
बिटिया चिरैया की नायं।[7]

लोकसाहित्य में पशु पक्षी जीवन के सहचर हैं। सुख दु:ख के साथी हैं। तोता बेटी का वर खोजने जाता है और तय करके आता है, काला भँवरा विवाह का निमत्रण लेकर आता है। आकाश में उड़ती चील और कौवा कभी मायके संदेश ले जाते हैं तो कभी परदेशी प्रियतम के पास यह समस्त भाव जीवन की कटुता को भी सहज बना देते हैं।

पुरूष प्रधान समाज में स्त्री के तिरस्कार का निरन्तर स्मरण, लोक चेतना की ही प्रेरणा से हमारे साहित्य मं होता रहा है। उदाहरणार्थ राम द्वारा सीता-त्याग की कथा को लेकर लोकसाहित्य की सीता के पक्ष में आक्रोश की धारा है जो अनेक गीतों में प्रकट हुई है।

जब गुरू वशिष्ट अयोध्या से सीता को मनाकर लौटा लाने के लिये आते हैं। सीता गुरू की आज्ञा स्वीकार कर कहती हैं कि आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। अयोध्या की तरफ दस कदम चलूँगी पर ऐसे निर्मोही राम का मुख इस जीवन में नहीं देखूँगी-

तुहरा कहल गुरू जी करबै, परग दस चलबै हो।
गुरू जी राम निरमोहिया के मुहँवा जियत नाहीं देखवै हो[8]

लोक गीत की यह पंक्ति सीता के प्रति लोक की संवेदना और राम के प्रति अपने सहज आक्रोश को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम है।

हमारी संस्कृति में जो प्रकृति के साहचर्य का भाव है वह लोकसाहित्य में भी सर्वत्र है। प्रकृति मनुष्य की चिंता करती है। मानव प्रकृति से दूर होकर ही असहज होता जा रहा है। साहित्य में शकुन्तला की चिंता वृक्षों और हरिणों के प्रति होती है और वह कहती है कि जो हरिण गर्भवती है, उसके बच्चे हो तो मुझे संदेश देना। पर जब शकुन्तला के पुत्र उत्पन्न होता है तो उसका संदेश कहीं नहीं जा पाता। यह सादृश्य ही प्रकृति और मानव के बीच की अभेद स्थिति को व्यक्त करता है।

लोक संस्कृति का क्षेत्र विस्तार अत्यन्त विस्तृत है। लोक संस्कृति मानव जीवन के समस्त अंगों से सम्बन्धित होने के अतिरिक्त, उसके लोकसाहित्य को भी आत्मसात् किये हुए है। यदि लोकसंस्कृति की किसी विशाल वृक्ष से उपमा दी जाये तो लोकसाहित्य उसकी एक शाखा के समान है। यदि लोक संस्कृति एक विस्तृत नदी है तो लोक साहित्य की उपमा उसकी छोटी सी सहायक नदी से दी जा सकती है। शरीर और उसके अंगों में जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध लोक संस्कृति और लोक साहित्य में समझना चाहिये। लोकसंस्कृति और लोक साहित्य के पार्थक्य को इस प्रकार समझा जा सकता है–

लोक संस्कृतिः अंगीस्यात् साहित्यमगंमुच्यते।
इति ते संशयों या भूत् उभयोः अन्तरं महत्[9]

इस प्रकार लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। मानव जीवन का कोई भी क्रिया–कलाप ऐसा नहीं है जिसका समावेश लोक संस्कृति के अन्तर्गत न होता हो। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पनपती है, इसमें श्रद्धा–भक्ति की प्राथमिकता रहती है उसमें अविश्वास, तर्क के लिये कोई स्थान नहीं रहता। लोक संस्कृति कभी भी नष्ट नहीं होती।

आज की युवा पीढ़ी अपनी लोक संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण कर रही है। इसके लिये युवा पीढ़ी को नैतिक मूल्यों की शिक्षा देना अति आवश्यक है। अन्त में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की पंक्तियों से अपनी बात समाप्त करती हूँ।

अपनी संस्कृति का अभिमान करो सदा हिन्दू–संतान
सब आदर्शो की यह खान, नररतन तत्व करेगी दान,
अपनी चिर संस्कृति की मूर्ति है, मनुष्ता की परिपूर्ति
प्राणरूप उसका पुरूषार्थ साधन करता है परमार्थ
युग–युग के संचित संस्कार, ऋषि मुनियों के उच्च विचार
धीरो–वीरो के व्यवहार, हैं निज संस्कृति के श्रृंगार।

संदर्भ ग्रन्थः–

1. सेवा चेतना, लोकसाहित्य विशेषांक, पृष्ठ–52
2. सेवा चेतना, लोकसाहित्य विशेषांक, पृष्ठ–13
3. डा0 मजूमदार तथा टी0एन0 मदान–एन इन्ट्रोडेक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलाजी, पृष्ठ–14
4. समाज पत्रिका (काशी विद्यापीठ) वर्ष 4 अंक 3 (1958), पृ0 446
5. लोक संस्कृति की रूपरेखा–कृष्ण देव उपाध्याय, पृष्ठ–13
6. बाल्मीकीय रामायण – सुन्दर काण्ड
7. सेवा चेतना, लोक साहित्य विशेषांक, पृष्ठ–19
8. सेवा चेतना, लोक साहित्य विशेषांक, पृष्ठ–22
9. लोक संस्कृति की रूपरेखा – कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ–17

बोधिसत्व बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर : एक प्रकाश स्तंभ

डॉ० चन्द्रकांता के माथुर

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति का जन्म उसके वश में नहीं होता लेकिन उसका परिश्रम, कर्म, शैली, योग्यता आदि के बलबूते वह शिखर तक पहुंच सकता है। भारतीय बहुज्ञ, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाज सुधारक, सिंबल ऑफ नॉलेज, दलितों के मसीहा, भारतीय संविधान निर्माता, भारत रत्न डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जी का जन्म 14 अप्रैल 1891 को ब्रिटिश भारत के मध्य प्रांत (अब मध्यप्रदेश) में स्थित महू नगर सैन्य छावनी में हुआ था। उनके बचपन का नाम श्भीवाश था। उनके पिताजी की रामजी मालोजी सकपाल और माताजी भीमाबाई थी। वे हिंदू महार जाति से संबंध रखते थे, जो उस समय अछूत कही जाती थी और इसी कारण उन्हें भेदभाव का सामना करना पड़ता था। अंबेडकर जी का परिवार कबीरपंथ को मानने वाला था जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ा। भारत रत्न डॉक्टर बाबासाहेब अंबेडकर का कहना था शिक्षित बनो, संगठित करो, संघर्ष करो। बाबासाहेब अंबेडकर को बचपन से ही भेदभाव का सामना करना पड़ा था। इसलिए उन्होंने इस भेदभाव के खिलाफ संघर्ष की लड़ाई प्रारंभ की। उनके संघर्ष के मिशन में केंद्र में समाज का कमजोर वर्ग, महिलाएं, मजदूर थे। जिन्हें वे शिक्षा, संघर्ष के जरिए सशक्त बनाना चाहते थे। वे समाज में समानता लाना चाहते थे। इसी दिशा में उन्होंने संविधान के आरक्षण का प्रावधान किया। जिससे भारत के सभी लोग बिना किसी भेदभाव के अपना सर्वांगीण विकास कर सके और देश के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। आज हमें बाबा साहब अंबेडकर के विचारों से प्रेरणा लेने की जरूरत है ताकि हम अपना व देश का विकास कर सके और सच्ची आजादी प्राप्त कर सके। बाबा साहब अंबेडकर का मुख्य लक्ष्य समाज के शोषित वर्गों को न्याय दिलाना था और इसी दिशा में उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

डॉ. भीमराव अंबेडकर का जीवन - दर्शन (Life – Philosophy of Dr. Bhimrao Ambedkar)

डॉक्टर भीमराव अंबेडकर केवल भारतीय संविधान के निर्माता एवं करोड़ों शोषित पीड़ित भारतीयों के मसीहा ही नहीं थे बल्कि वे अग्रणी समाज सुधारक, श्रेष्ठ विचारक, तत्वाचिंतक, शिक्षाशास्त्री, पत्रकार, धर्म के ज्ञाता, कानून एवं नीति निर्माता और, महान राष्ट्रभक्त थे। बाबा साहेब का जीवन अन्य महापुरुषों की तरह कष्टमय रहा। जन्म से ही उन्हें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भेदभाव का सामना करना पड़ा। बचपन से ही उन्हें अस्पष्टता से जूझना पड़ा। जैसे - पाठशाला में प्रवेश पर रोक, पानी पीने के लिए अलग कुल्हड़ रखना, गांव में दलितों के लिए अलग घाट बाट का उपयोग करना, धार्मिक अपवित्रता की बात कर मंदिर में प्रवेश पर रोक आदि तरह के भेदभाव का उन्हें जन्म से ही सामना करना पड़ा। इन सभी बातों व भेदभाव का बालक अंबेडकर के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने सोचा कि क्या सच में इन सभी भेदभाव का जिम्मेदार भगवान या ईश्वर है? क्या व्यक्ति जन्म से ही छोटा-बड़ा, ऊंचा - नीचा या छूत - अछूत के साथ जब जन्म लेता है? क्या ऐसा भेदभाव अन्य जीवधारियों में भी होता है? क्या मनुष्य का सौभाग्य और दुर्भाग्य अन्य लोगों के हाथ में होता है ? डॉक्टर अंबेडकर के मन में इस तरह के असंख्य प्रश्न उत्पन्न हुए। डॉक्टर अंबेडकर ने इन सभी परिस्थितियों को अपनी आंखों से देखा और अनुभव किया तथा इन सभी समस्याओं या परिस्थितियों से निकलने का मार्ग खोजने लगे । इसी को आज के बुद्धिजीवियों ने अम्बेडकरवाद का नाम दिया। इन्हीं परिस्थितियों से निकलने के लिए डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने मुहिम चलाई ताकि व्यक्ति अपना विकास कर सके, सभी व्यक्ति समानता के रास्ते पर चल

सके और स्वेच्छा से अपना जीवनयापन कर सके तथा समान रूप से सभी को समान अवसर मिल सके। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन इन्हीं संघर्षों में बिताया। डॉक्टर अंबेडकर ने छुआछूत के विरुद्ध व्यापक एवं सक्रिय आंदोलन आरंभ किए ताकि समाज के सभी वर्गों को मंदिर में प्रवेश व पेयजल के सार्वजनिक संसाधन मिल सके। इन सभी के लिए सबसे पहले बाबा साहब अंबेडकर ने इतनी शिक्षा प्राप्त की ताकि वे सत्य के आधार पर तर्क कर सकें। डॉ अंबेडकर का लक्ष्य था - श्सामाजिक असमानता दूर करके दलितों के मानवाधिकार की प्रतिष्ठा करनाश। डॉक्टर अंबेडकर उन नियमों को चुनौती देते थे जिनके पीछे कमजोर वर्ग के अधिकारों का हनन हो रहा था। इस प्रकार डॉ. भीमराव अंबेडकर सम्पूर्ण जीवन समानता की लड़ाई लड़ते रहे।

अम्बेडकरवाद एक मिशन (Ambedkarism a Mission)

डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जी ने जिस समाज को देखा और जिया वह बहुत कष्टमय रहा। समाज विभिन्न धर्म, जातियों वर्ग, समुदायों में बँटा हुआ था तथा उच्च व निम्न जाति के कारण लोग एक दूसरे को हीन दृष्टि से देखते थे और समाज में अनेकों असमानताएं उत्पन्न थी जिसके कारण विकास नहीं हो पा रहा था न कोई आगे बढ़ पा रहा था। सरेआम शिक्षा, स्वास्थ्य, शील का पतन हो रहा था धर्म की जगह आडम्बरों ने ले ली थी। और इन सभी परिस्थितियों या कहे तो समस्याओं का एकमात्र कारण लोगों का अशिक्षित होना था। इन सभी समस्याओं को देखते व महसूस करते हुए डॉ भीमराव अंबेडकर जी ने दलित, शोषित लोगों के लिए समाज में उचित स्थान दिलाने हेतु एक मुहिम चलाई। जिसके लिए सर्वाधिक जोर शिक्षा पर दिया गया। क्योंकि डॉ. भीमराव अंबेडकर जी का मानना था कि शिक्षा के द्वारा ही समाज में व्याप्त भेदभाव, कुरीतियों को दूर किया जा सकता है। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर की मुहिम केवल जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय तक ही सीमित नहीं थी वरन् बहुजन हित और बहुजन सुख पर आधारित थी। लेकिन कुछ स्वार्थीयों ने इसे भारत के मूल निवासियों को गुमराह करने के लिए धर्म, जाति, वर्ग, समुदाय से जोड़कर उनका मानसिक व शारीरिक शोषण किया और इसी के कारण लोग उच्चवर्गीय ज्ञानियों के जाल में फस गए।यही विकास में बाधक सिद्ध हुए और देश गुलाम रहा। देश के दूषित परिवेश को ठीक करने के लिए डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने मुहिम चलाई। आज आजादी के 75 वर्षों के बाद भी इस मुहिम व अभियान के लिए इन वर्गों के बीच जन आंदोलन की आवश्यकता हैं। जिससे हजारों वर्षों से मुक्ति मिल सके और लोगों का समुचित व संपूर्ण विकास हो सके। इसके लिए निम्न प्रावधान हो -

1. संविधान में विशेष दर्जा हो।
2. पूर्वाग्रह से ग्रसित लोगों के साथ कठोरता से कार्यवाही ना की जाए।
3. संवैधानिक प्रावधानों तथा योजनाओं की जानकारी लाभार्थी तक समय पर पहुंचने की जिम्मेदारी संबंधित नेता, अधिकारी या कर्मचारी को दी जाए।
4. आरक्षितों को कर्तव्य से परे कार्य करने के लिए बाध्य न किया जाए।
5. सार्वजनिक स्थलों पर किसी भी तरह का अपमानजनक व्यवहार न किया जाए।
6. शासकीय सेवकों की नियुक्ति, पदोन्नति, पेंशन आदि समय पर मिले, इसका विशेष ध्यान रखा जाए।
7. कार्य में अनावश्यक गतिरोध न हो, जिससे आरक्षित वर्गों का भविष्य प्रभावित हो ।
8. शासकीय व सार्वजनिक स्थानों/ जगह आदि पर किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो।
9. संवैधानिक प्रावधानों का कड़ाई से पालन होना सुनिश्चित किया जाए।
10. शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो।
11. कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका में समान भागीदारी सुनिश्चित हो।

अम्बेडकरवाद मिशन का समसामयिक स्वरूप (Contemporary Form of Ambedkarite Mission)

आज 21वीं सदी में जिस प्रकार विज्ञान का विकास हो रहा है और उसे समझना आवश्यक होता जा रहा है, उसी प्रकार सही ज्ञान की जानकारी होना भी अति आवश्यक है। बिना पूर्व व सही जानकारी के सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता। सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अर्थात सुख और दुख को समझने के लिए सत्य का ज्ञान होना ही चाहिए। मंदिर- मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर आदि स्थानों को दूषित करने का श्रेय इनके नेताओं को ही जाता है। जिन्होंने समाज में असमानता, भेदभाव को बढ़ावा दिया है तथा जिनके स्वार्थ के कारण समाज का वर्गीकरण हुआ। इन सभी उच्च वर्गीय लोगों ने अपने आप को श्रेष्ठ बनाने के लिए धर्म, जाति, वर्ग, समुदाय का सहारा लिया। जो आज भी जारी है - जो एक विष की तरह संपूर्ण समाज में फैला हुआ है।

आज साहित्य, दर्शन, धार्मिक कृत्य, व्यवहार आदि में कल्पना व रूढ़िवादिता के कारण विकासात्मक बदलाव नहीं हो पा रहे हैं तथा पाखंड, आडंबर, दिखावे आदि के कारण हम ज्ञान विज्ञान के साधनों, आविष्कारों, भौतिक संसाधनों का पुरातन मोह वश नए वैज्ञानिक सोच के साथ अंत:संबंध नहीं बिठा पा रहे हैं। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक सद्भावना के लिए आज भी जो समाज में भेदभाव / कुरीतियां व्याप्त है उनके कार्य किया। उनका कहना था कि राज्य के समक्ष सभी समान है। राज्य के सामने किसी भी व्यक्ति में कोई अंतर नहीं है, परंतु आज भी समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि रूपों में भेदभाव व्याप्त है और जब तक सभी को समानता, समरसता, समन्वय में हो जाए, जब तक आरक्षण मिलता रहे। डॉ अंबेडकर का मिशन अपरिहार्य और प्रासंगिक है और जब तक उनकी नीति व शिक्षा को मुख्यधारा में नहीं लाया जाएगा जब तक समाज में समता, शांति, सौहार्द एवं संपन्नता नहीं आ पाएगी। इन सभी को समाज में लाने व बनाए रखने के लिए शिक्षा पहली व महत्वपूर्ण कड़ी है। जिसके जरिए इन सभी कुरीतियों को समाप्त किया जा सकता है और शिक्षा के बिना यह विकास कोरी कल्पना मात्र हैं।

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने जिस भारत का सपना देखा था, उस सपने को साकार करने के लिए उन्हीं के पदचिन्हों पर चलना होगा। डॉ बाबासाहेब अंबेडकर ने अपने जीवन में कभी हार नहीं मानी चाहे उनके सामने कितनी भी बड़ी कठिनाई हो, उन्होंने अपना संघर्ष हमेशा जारी रखा। वे निडर थे। उन्होंने स्वयं पर परिस्थितियों को कभी हावी नहीं होने दिया। इसी तरह उनके सपनों के भारत को बनाने के लिए हर इंसान को परिस्थितियों का सामना करना होगा, जिसकी पहली कड़ी शिक्षा है। डॉक्टर अंबेडकर मनुवाद को जड़ से समाप्त करना चाहते थे। उनका कहना था कि जो धर्म जन्म से एक को श्रेष्ठ और दूसरे को नीच बनाये, वह धर्म नहीं षडयंत्र हैं। वह ऐसे धर्म को मानते थे जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा सिखाये।

डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा लिखित पुस्तकें (Books written by Dr. Bhimrao Ambedkar)

बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर समाज सुधारक होने के साथ-साथ एक प्रभावशाली लेखक भी थे। लेखन में रूचि होने के कारण उन्होंने अनेकों पुस्तकें लिखी। उन्होंने अधिकांश लेखन अंग्रेजी में किया हैं। सामाजिक संघर्ष में हमेशा सक्रिय और व्यस्त होने के साथ ही, उनके द्वारा रचित अनेकों किताबें, निबंध, लेख एवं भाषणों का बड़ा संग्रह है। वे असामान्य प्रतिभा के धनीव्यक्ति थे। आम्बेडकर के ग्रंथ भारत सहित पुरे विश्व में बहुत पढे जाते है। बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर को ग्यारह भाषाओं का ज्ञान था, जिसमें मराठी (मातृभाषा), अंग्रेजी, हिन्दी, पालि, संस्कृत, गुजराती, जर्मन, फारसी, फ्रेंच, कन्नड और बंगाली ये भाषाएँ शामील है।

उनके द्वारा लिखित पुस्तकें निम्नलिखित है:

- अनहिलेशन ऑफ कास्ट
- द बुद्ध अँडहिजधम्म
- कास्ट इन इंडिया
- हूवेअर द शूद्राज?
- रिडल्स इन हिंदुइझम
- भारत का राष्ट्रीय अंश
- भारत में जातियां और उनका मशीनीकरण
- मूलनायक
- ब्रिटिश भारत में साम्राज्यवादी वित्त का विकेंद्रीकरण
- रुपए की समस्या: उद्भव और समाधान
- ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का अभ्युदय
- बहिष्कृत भारत
- जनता
- जाति विच्छेद
- संघ बनाम स्वतंत्रता
- पाकिस्तान पर विचार

- श्री गांधी एवं अछूतों की विमुक्ति
- रानाडे गांधी और जिन्ना
- शूद्र कौन और कैसे
- भगवान बुद्ध और बौद्ध धर्मआदि।

बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर का समाज के लिए योगदान (Contribution of Babasaheb Dr- Bhimrao Ambedkar to the society)

बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का एकमात्र लक्ष्य समाज में व्याप्त असमानता और अपराजिता का अंत करना तथा छुआ छूत को समाप्त करना और समाज में व्याप्त कुरीतियों की समाप्ति करना था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वो संघर्ष की राह पर अग्रसर हो गए। हिंदू धर्म में व्याप्त जाति प्रथा पर उन्होंने तीखे प्रहार किए। जल्द ही वे दलितों के मसीहा और लोकप्रिय नेता के रूप में उभर कर सामने आये। सन् 1913 में उन्होंने दूसरी गोलमेज सम्मेलन में दलितों का प्रतिनिधित्व किया। दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व की मांग को स्वीकार कर लिया गया। बाबासाहेब ने हिंदू धर्म में व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए जी-जान से संघर्ष किया लेकिन जब उन्हें सफलता ना मिली तो उन्होंने अपनी मृत्यु से 2 माह पूर्व अक्टूबर 1965 में लाखों दलित साथियों के साथ बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली।

क्रांतिकारी व्यक्तित्व के धनी बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर विधिशास्त्र के भी प्रकांड विद्वान थे। विधिशास्त्र के ज्ञानी होने के कारण ही उन्हें 1947 में भारतीय संविधान की 6 सदस्य संविधान समिति का अध्यक्ष चुना गया। उन्हें भारतीय संविधान का जनक कहा जाता है।

जीवनभर समाज में व्याप्त असमानता, अस्पृश्यता और सवर्णों के दुर्व्यवहार को सहन करते रहने वाले डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने 6 दिसंबर 1956 को इस संसार से विदा ले ली।भारत सरकार ने उन्हें भारत रत्न की उपाधि से अलंकृत किया।

भारत रत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर ने अपने जीवन के 65 सालों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, औद्योगिक, संवैधानिक आदि क्षेत्रों में अनगिनत कार्य करके राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।उनके इन सभी कार्यों की वजह से आज भी उन्हें याद किया जाता हैं।

सन्दर्भसूची (Reference list)

1. https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AD%E0%A5%80%E0%A4%AE%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B5_%E0%A4%86%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AC%E0%A5%87%E0%A4%A1%E0%A4%95%E0%A4%B0
2. Leverage Edu.https://leverageedu.com/blog/hi/dr-bhimrao-ambedkar-biography-in-hindi/
3. Dr.BhimraoAmbedkardilsedesi.Com https://www.dilsedeshi.com/hindi-lok/dr-bhimrao-ambedkar-essay-hindi/
4. https://www.aajtak.in/education/story/bhimrao-ambedkar-birth-anniversary-know-works-of-ambedkar-for-india-tedu-651432-2019-04-14 नई दिल्ली, 14 अप्रैल 2019, अपडेटेड 8:27 AM IST
5. Bhimrao Ramji Ambedkar | Biography, Books, & Facts. (n.d.). Encyclopedia Britannica.Retrieved June 10, 2022, from https://www.britannica.com/biography/Bhimrao-Ramji-Ambedkar
6. Dr. Babasaheb Ambedkar | Draft | Dr. Babasaheb Ambedkar Open University. (n.d.).Www.Drbrambedkarcollege.Ac.i. Retrieved June 10, 2022, fromhttps://baou.edu.in/dr-br-ambedkar
7. Bharat Ratna Dr. Bhim Rao Ambedkar | Dr.Bhim Rao Ambedkar College. (n.d.).Www.Drbrambedkarcollege.Ac.In. Retrieved June 10, 2022, fromhttps://www.drbrambedkarcollege.ac.in/bharat-ratna-dr-bhim-rao-ambedkar
8. India, T. O. (2022, February 17). Dr. Babasaheb Ambedkar. The Times of India.Retrieved June 10, 2022, from https://timesofindia.indiatimes.com/topic/dr. Babasaheb-ambedkar
9. The Indian Express. (n.d.). BR Ambedkar : News, Photos, Latest News Headlines aboutBR Ambedkar. Retrieved June 10, 2022, from https://indianexpress.com/about/br-Ambedkar/
10. Bhimrao Ramji Ambedkar | Columbia Global Centers. (n.d.).Https://Globalcenters.Columbia.Edu/. Retrieved June 10, 2022, from https://globalcenters.columbia.edu/content/mumbai-bhimrao-ramji-ambedkar
11. Babasaheb Bhimrao Ramji Ambedkar Biography – Childhood, Facts & Achievements.(n.d.). Www.Culturalindia.Net. Retrieved June 10, 2022, from https://www.culturalindia.net/reformers/br-ambedkar.html

समकालीन उपन्यास साहित्य में नारी विमर्श

प्रो० प्रदीप श्रीधर

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग तथा निदेशक, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

भारत में वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति काफी उच्च थी। उस काल में 'यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की कहावत चरितार्थ भी होती थी। भारतीयों के सभी आदर्श रूप नारी में ही पाए जाते थे। उस समय नारी को चौसठ कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। पत्नी के रूप में वे पतिपरायण थीं। युद्धक्षेत्र में पति के साथ शस्त्र संचालन की कला में भी उन्हें महारत हासिल थी। रथ की सारथी बनकर उनका मार्गदर्शन भी करती थी। सार्वजनिक क्षेत्रों में विदुषी स्त्रियाँ शास्त्रार्थ भी करती थीं उस काल में पुरूषों का वर्चस्व था, लेकिन नारी को भी सम्मान दिया जाता था। उत्तर वैदिक काल में कन्या का जन्म चिन्ता का विषय था और पुत्र प्राप्ति का गर्व का विषय हुआ करता था। पुत्र रत्न न पाने के कारण ही उसका त्याग भी कर दिया जाता था। पति पुनर्विवाह भी कर सकता था। इस काल में विधवा स्त्रियों का जीवन सबसे कठिन था, उनके लिए अत्यन्त कठिन नियम थे। जैसे एक ही समय भोजन करना, श्वेत वस्त्र धारण करना, सिर मुंडवाना इत्यादि। इस काल में नारियों की दशा दयनीय थी। समाज में अनेक कुप्रथाएँ फैल गई थीं जैसे- सती प्रथा, बालविवाह, परदा प्रथा, अनमेल विवाह आदि वैदिक काल में नारी के दिव्य गुण धीरे-धीरे इस काल में उसके अवगुण बनने लगे थे। वैदिक युग में स्त्रियाँ धर्म एवं समाज का प्राण समझी जाती थीं। इस काल में वे हर क्षेत्र में अयोग्य घोषित की गई। उनको विवाह संस्कार के अतिरिक्त सभी संस्कारों से वंचित कर दिया गया था।

मध्यकाल में नारियों की स्थिति उत्तरोत्तर गिरती गई। अरबों तथा मुसलमानों के आक्रमणों के कारण उन्हें सदैव सुरक्षित रखा गया। वे मात्र गृहिणी थीं और अपने गृहकार्य में ही लिप्त रहती थीं। इस काल के अन्त में नारियों की दयनीय स्थिति में बहुत परिवर्तन आया। उन्नीसवीं सदी के आस-पास अनेक समाज सुधारक जैसे राजाराम मोहन राय ने नारी पर होने वाले कई अत्याचारों को समाप्त कर उनकी शिक्षा की व्यवस्था की। सती प्रथा का विरोध किया। बंगाल के ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा के पुनर्विवाह के मार्ग खोल दिए। स्वतंत्रता आन्दोलन में गाँधी जी ने भी नारियों को अपनी योग्यता सिद्ध करने का निमंत्रण दिया था। वर्तमान समय में तो कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स नए आविष्कार करके अपनी योग्यता सिद्ध की है। किरण बेदी, बरखा दत्त जैसी नारियाँ भी सफलता की ज्वलंत उदाहरण हैं। प्रधानमंत्री के रूप में श्रीमती इंदिरा गांधी शक्तिशाली महिला के रूप में स्मरणीय हैं। राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर श्रीमती प्रतिभा पाटिल अपनी दक्षता का परिचय दे चुकी हैं। समाज प्रतिपल विकास की ओर निरन्तर ही गतिमान है। इस परिवर्तनशील समाज में उपन्यासकारों की भूमिका भी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में चारों ओर तनावपूर्ण वातावरण है। दुराचार, अनाचार भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर सुरक्षा के मुख के समान विकराल रूप धारण कर चुका है। समकालीन उपन्यासकारों ने बाधाओं एवं संकटों की परवाह किए बिना अपनी रचनाओं के द्वारा समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने मुक्त हस्त से निडर होकर अपनी अपनी कलम चलाई और नारी विमर्श को लेकर कुछ न कुछ अवश्य लिखा। मोहन राकेश ने अपने लोकप्रिय उपन्यास 'अंतराल' में सीमा के चरित्र के जरिए उसका नवीन रूप प्रस्तुत किए हैं। वह धर्म का बंधन नहीं मानती और नशे का प्रयोग करती है तथा आत्मनिर्भर होने के कारण वह अभिमानी भी है। बड़ों का आदर वह बिल्कुल नहीं करती हैं। अन्य स्त्री पात्र विधवा है और पुनर्विवाह करने में उसे कोई आपत्ति नहीं है। इसी उपन्यास में कुमार की पत्नी कॉंट्रैक्ट मैरिज करती हैं और न निभा पाने पर वापस भी लौट आती है। उपन्यासकार ने नारी के विविध रूपों को उजागर किया है इसमें नायक हरवंश आधुनिक पति हैं और वह चाहता है कि उसकी पत्नी नीलिमा भी मदिरा पिए, धूम्रपान करे तथा पराए पुरूषों से मुक्त व्यवहार रखे। वह बाद में विदेश चला जाता है और नीलिमा के बगैर अकेलापन भी महसूस करता है। क्षमा माँगने पर भी नीलिमा उसकी ओर

ध्यान नहीं देती है। वह भी एक नृत्य समूह के साथ विदेश चली जाती है। वहाँ एक विधुर पुरूष उतानु उसके संपर्क में आता है और उसके साथ विवाह का प्रस्ताव भी रखता है, जिसे नीलिमा अस्वीकार कर देती है। वह पत्रकार मधुसूदन से परिवर्तित जीवन मूल्यों की चर्चा करती है। वह सोचती है कि जीवन में ऐसा कोई मूल्य नहीं है जिस पर व्यक्ति अडिग रह सकता है।

अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' उपन्यास में पात्र रेखा द्वारा नारी के अहं का शालीन रूप प्रस्तुत किया है जिसने अहं के बल से भावुकता को जीत लिया है। उनके चरित्र में अहं का स्वरूप विद्यमान है। अन्य पात्र गौरा के चरित्र में अहं का संयत रूप परिलक्षित होता है। उपन्यासकार ने पुरूषप्रधान समाज में नारी के सबल व्यक्तित्व को प्रस्तुत कर सामाजिक परंपराओं को खोखला सिद्ध कर दिया है। राजकमल चौधरी ने अपने उपन्यास 'मछली मरी हुई' में नारियों के रुग्ण आसक्ति को उजागर किया है। जो नारियाँ पुरूषों के समान जीवन व्यतीत करती है और माता बनने से कतराती हैं, ये नारियाँ समलैंगिकता की ओर ही अधिक झुकाव रखती हैं। यह उपन्यास समलैंगिक यौनाचार में लिप्त स्त्रियों को आधार बना कर लिया है। यह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। उपन्यासकार की दृष्टि में यौन आवश्यकता कोई अमंगल बात नहीं, परन्तु विकृत काम भावना एक मानसिक रोग है। शारीरिक और मानसिक पतन इसका प्रतिफल है।

सूर्यकुमार जोशी ने अपने उपन्यास 'दिगम्बर' में एक ऐसी नारी की कहानी को वर्णित किया है, जो अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए विनय नामक पुरूष से विवाह कर लेती है और बेटी को जन्म देती है। इसमें अन्य नारी सदाशा अपरिपक्व अवस्था में अपनी सहेली मालिनी से यौन जीवन की समस्त बातें जान लेती है। उसमी माँ वेश्या और पिता वेश्यागामी व शराबी थे। वह विनय के संपर्क में आकर संबंध स्थापित करती है और विनय से संबंध तोड़कर अन्य पुरूषों से संबंध जोड़ती है। उसे माता-पिता से ऐसे संस्कार मिले जिससे वह स्वयं पीड़ित हुई और संपर्क में आने वाले सभी पुरूषों को पीड़ित किया। उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' में आधुनिक परिवेश से उदिता नारी को ही विषय बनाया है। प्रियंवदा जी का कहना है कि एक ऐसी स्त्री का जो कि अपने में उलझ गई है और अपने को पाने की खोज में उसे अपने ही अन्दर बैठकर खोज करनी है। राधिका का निपट अकेलापन नारी के अकेले होने की स्थिति है।

मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यास 'आपका बंटी' में आधुनिक नारी को घर की चारदीवारी से निकालकर कर्मक्षेत्र में ला खड़ा किया है। शिक्षित युवती के वैवाहिक जीवन की आंतरिक त्रासदी की सूक्ष्म पहचान अंकित की है। तलाकशुदा माँ-बाप की संतान बंटी न माता का है, न पिता का है। वह सिर्फ आपका बंटी है, समाज का बंटी है। उनकी दृष्टि में समाज की सबसे ज्वलंत समस्या तलाक है। लोकप्रिय लेखिका कृष्णा सोबती ने मित्रो मरजानी, द्वार से बिछुड़ी, सूरजमुखी अंधेरे के स्त्री, पुरूष संबंधों पर आधारित बलात्कार की विभीषिका दर्शाते उपन्यास लिखे हैं। इसमें वर्षो से अंधेरे की परतों के नीचे ढकी नारी को चित्रित किया गया है।

शशिप्रभा शास्त्री ने नारी मन की जटिल गुत्थियों को सुलझाने की प्रक्रिया अपने उपन्यासों में की है। उनके उपन्यास 'नावें' में विवाह पूर्व किसी नारी के माँ बनने और उससे उत्पन्न विसंगत परिस्थितियों में सही जीवन की तलाश की संघर्ष गाथा है। उनके अनुसार नारी को अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलंद करते देखती हूँ, तो संतोष होता है। ममता कालिया ने अपने उपन्यास बेघर और 'नरक दर नरक' में नारी के प्रति समाज का क्या दृष्टिकोण है, इसको अभिव्यक्ति दी है। पुरूष ने नारी को उपभोक्तावादी वस्तु समझ लिया है। इस प्रकार उपन्यास साहित्य में नारी विमर्श की चर्चा यत्र-तत्र की गई है।

पहले नारी अबला थी पर अब नहीं है। अब उसे निज शक्तियों को विकसित करने का सुअवसर प्राप्त है। आज नारी कहीं भी हो, गाँव हो या शहर, वह कर्तव्यनिष्ठ है, सहनशील है, संघर्षशील है, संवेदनशील है। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वे जीवन की अति व्यस्तता में भी निज कर्म को विस्मृत नहीं करती है। अब तो नारी विमर्श अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहा है। अब नारियाँ हर क्षेत्र में कर्मरत हैं, उसने समस्त सीमाओं को लाँघकर अपने बलबूते स्वयं की एक विश्वस्तरीय पहचान बना ली है। अब नारी विमर्श 'अबला जीवन द्वारा तुम्हारी यही कहानी' न होकर तुम शक्ति संग संसार रथ की सारथी बन रही है।

संदर्भ ग्रंथ

1. देह की राजनीति से देश की राजनीति तक - मृणाल पांडे
2. दुर्ग द्वार पर दस्तक - कात्यायनी
3. स्त्रीत्व का मानसिक - अनाभिक
4. खुली खिड़कियाँ - मैत्रेयी पुरूष

नासिरा शर्मा के साहित्य मे स्त्री विमर्श

नीलिमा शर्मा

शोधार्थी

प्रस्तावना

स्वतंत्रता पश्चात से भारत में पिछले 72 वर्षों में सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक व सामाजिक क्षेत्रों में निरंतर बदलाव होता रहा है किंतु यदि इसे महिलाओं के संदर्भ में विशेष देखा जाए तो यह बदलाव महत्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य की समकालीन लेखन धारा भी इन परिवर्तनों से अछूती नहीं रही है। हिंदी साहित्य में समकालीन महिला साहित्यकारों का साहित्य स्त्री चेतना से ओतप्रोत है। इस समकालीन साहित्य धारा का ही सशक्त हस्ताक्षर है नासिरा शर्मा। 'नासिरा शर्मा' ने अपने साहित्य में न केवल स्त्री समस्याएं चित्रित की वरन उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। कुमार पंकज के शब्दों में "नासिरा शर्मा उन रचनाकारों में है, जिन्होंने महिला मुद्दों को अपनी कलम से निशाना बनाया है"।

नासिरा शर्मा जीवन परिचयः

नासिरा शर्मा का जन्म 1948 प्रयागराज उत्तर प्रदेश इन्होंने भारतीय भाषा व साहित्य में एम.ए. की डिग्री 2008 में इनके उपन्यास कुइयांजान को यू्क्केङ्क कथा सम्मान से सम्मानित किया गया। वर्ष 2014 में नासिरा शर्मा को राही मासूम रजा साहित्य सम्मान से सम्मानित किया गया। पारिजात के लिए वर्ष 2016 में साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। वर्ष 2019 में व्यास सम्मान उनके उपन्यास कागज की नाव के लिए प्रदान किया गया है।

मूल शब्दः नासिरा शर्मा के साहित्य में स्त्री विमर्श

स्त्री विमर्श पर हिंदी साहित्य में अनेक महिला साहित्यकारों ने अपनी कहानी एवं उपन्यास के माध्यम से अपने विचार एवं समीक्षात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया है। नासिरा शर्मा भी हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध उपन्यास एवं कथा लेखिका है।

नासिरा शर्मा के प्रसिद्ध उपन्यासों 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'शब्द पखेरू', 'बहिस्ते जहरा', 'पारिजात' के माध्यम से नारी जीवन की वेदना, संत्रास तथा पुरुषवादी मानसिकता से उसकी मुक्ति की बात कही है। नासिरा शर्मा जी के स्त्री पात्र आत्मविश्वास से भरे हुए तथा विपरीत परिस्थितियों में संघर्षशील छवि वाले हैं। नासिरा शर्मा का कथा साहित्य भी बेहद समृद्ध है। इनकी कहानी संग्रह 'शामी कागज', 'इब्ने मरियम', 'संसागर' विभिन्न देशों तथा भाषाओं के रंग में रंगे होने के बावजूद इंसानी सरोकारों से अधिक जुड़े हैं। उनके कहानी संग्रह 'पत्थर की गली' की कहानियों में रिश्तों की पतली लेकिन मजबूत डोर को पाने की ललक है। इन कहानियों में लेखिका की चिंताएं एवं दायित्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। इनके लेखन में विषय विविधता, जीवन के अनेकानेक अनुभव, चिंतन के कई आयाम तथा बौद्धिकता का सहज स्पर्श दिखाई देता है।

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

वर्तमान समय में नासिरा शर्मा हिंदी की वे सशक्त साहित्यकार हैं जिन्होंने विभिन्न समाजों, परिवेशो, देश देशांतर की सोच व सामाजिक संरचना को ईमानदारी, सजीवता व सफलता के साथ कागज पर उतारा है। नासिरा जी के कुईयाजान उपन्यास में दो स्त्री पात्र महत्वपूर्ण हैं शकआरा 6 उपन्यास (2005) और खुर्शीद आरा। येः दोनों खास बहनें हैं तथा मुस्लिम परिवार से संबन्धित हैं।

शकआरा जहां एक सेवानिवृत आईएएस की महत्वाकांक्षी पत्नी है वहीं खुर्शीद आरा उदार एवं दृष्टीकोण परक स्त्री पात्र है।

(अ) शाल्मली सन 1987 में रचित नासिरा शर्मा का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका शाल्मली शिक्षित सर्वगुण संपन्न बड़ी अफसर तथा संपन्न परिवार की इकलौती संतान है, वही उसका पति नरेश रूढ़ीवादी मानसिकता वाला, औरत को अपने पैर की जूती समझने वाला, विकृत मानसिकता का पुरुष है। इस उपन्यास में जहां दांपत्य जीवन में स्त्रियों के शोषण व पीड़ा का चित्रण किया है वहीं अपनी पत्नी के अधिक योग्य व आर्थिक रूप से सशक्त होने पर पुरुष के हमको लगने वाली चोट व उसके आवेश में अपने बसे हुए घर तक को उजाड़ देने जैसी समस्याओं पर भी प्रहार किया है जहां पुरुष के लिए स्वयं काबिल स्त्री को स्वीकार कर पाना मुश्किल है।

(ब) ठीकरे की मंगनी: सन 1989 ईस्वी में प्रकाशित इस उपन्यास में मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति तथा रुढ़ीग्रस्त वातावरण से बाहर निकलने के लिए उनके संघर्ष की दास्तां है। इस उपन्यास की नायिका मेहरूख नारी की उस स्थिति को समझने में सहायक है जहां वह अपने अस्तित्व को खोकर कुछ भी प्राप्त नहीं करना चाहती है। सबसे पहले वह आत्म स्वीकृति चाहती है। मेहरुख के हवाले से लेखिका लिखती हैं "कुछ चीजें कितनी भी आवाज टूटती है मैं भी बेआवाज टूटी थी किरच किरच होकर बिखरी थी। बड़ी मुश्किल से अपने को चुना है, समेटा है, जोड़ा है तब जाकर जीने के काबिल हुई हूं"।

(स) जिंदा मुहावरे: भारत विभाजन पर लिखा गया नासिरा शर्मा का उपन्यास सन 1993 में प्रकाशित हुआ। यह भी मुस्लिम संस्कृति पर लिखा गया है, जिससे मुस्लिम समाज की स्त्रियों के जीवन तथा जीवन संघर्षों के बारे में पता चलता है।

(द) सात नदियां एक समंदर: यह उपन्यास सन 1995 में प्रकाशित हुआ जिसमें लेखिका ने वैश्विक स्तर के कई अनछुए पहलुओं का चित्रण किया है। इस उपन्यास में प्रमुख चरित्र औरतें हैं- तैयबा, सूसन, मलिहा, शहनाज, अख्तर और सनोबर। यह सभी विश्वविद्यालय की छात्राएं हैं, जो शासन की दमनकारी नीतियों के कारण शिक्षा छोड़कर विवाह कर व्यस्त हो जाती हैं। एक स्त्री पात्र तैयबा अपनी कलम से प्रशासन के खिलाफ आवाज उठाती है और बलिदान हो जाती है। यह नारी के अपने कर्तव्य के प्रति भावना तथा उसके विरांगना पक्ष का चित्रण है जिसमें वह अन्याय के खिलाफ खड़ी होती है तो फिर पीछे हटना उसे स्वीकार नहीं है। यह ईरानी क्रांति पर लिखा गया उपन्यास है ।

(य) कागज की नाव: वर्ष 2014 में प्रकाशित यह उपन्यास बिहार में रहने वाले परिवारों का वृतांत है जिनसे कोई न कोई पुरुष खाड़ी देश में गया हुआ है। इस उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र 'महलका' है यह वह स्त्री है जो पति के खाड़ी देश चले जाने पर अपने परिवार के साथ रहती है और पारिवारिक तनाव को जन्म देती है। इसमें स्त्री के उस पक्ष का चित्रण है जब वह अपने पीछे सब छोड़ देना चाहती है। यहां उसके पारिवारिक संघर्ष कारण महलका की माँ महजबी का उसे गलत माशविरा देना है । जिसका बाद में पश्चाताप करते हुये महजबी कहती है - "मैंने तुम्हें कई बातों में गलत मशविरे दिये वह मेरी ममता की खुदगर्जी थी। अब मेरी आंखें खुल चुकी है। अब जैसे मैंने अपनी गलती मान ली है तुम भी मान लो और तौबा करो"।

नायिकाओं के मामले में नासिरा जी शहरी, ग्रामीण, विवाहित, छात्रा सभी वर्ग की नारियों की मानसिक दशा, द्वन्द्व, संघर्ष को समझती हैं। वे इन सभी के मन को टटोलना और उसे कागज पर उतार देना बखूबी जानती हैं। तभी तो उनको शाल्मली जैसी नारी रचने में सफलता मिली जो नारी का एक नया रूप है और आधुनिक है परंपरागत नहीं। शाल्मली सेमल के वृक्ष की तरह है जिसका अंश अंश उसके संपर्क में आने वाले को जीवन प्रदान करता है।

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य मे नारी पात्र

इनकी कहानियां माध्यम वर्ग की उस नारी की कहानी है जो त्रासदी, विकृत मनोवृत्तियों व मनसिकताओं को झेलती व जीती है। इनकी कहानियों मे स्त्री भावना विषम वेदना इतनी मार्मिक बन पड़ी है कि पाठक को स्वयम कि झलक इन पत्रों मे दिखाई देती है। इनके प्रमुख कथा पात्र लेखिका के विचारों से अवगत करा देते हैं।

'पत्थर गली' नासिरा जी कि प्रमुख कहानी संग्रह है । इसके संबंध मे लेखिका ने लिखा है "यह कहानियाँ धरती पर बसे किसी इंसान कि हो सकती है क्योंकि दर्द सर्वव्यापी है, फिर भी इन कहानियों का स्त्रोत एक विशेष परिवेश है"।

'पत्थर गली' की नायिका फरीदा के बहाने लेखिका ने उन नारियों की कहानी उकेर दी है जिनके भाई कुछ नहीं करते हैं, जिनके बाप नहीं हैं। रुढियों से बन्धा समाज और नारी की बेबसी व घुटन है। नई पुरानी सोच की टकराहट है और अहम की लड़ाई है।

संगसार कहानी संग्रह की कई कहानियां स्त्री अस्मिता की ही कहानियां हैं। संगसार कहानी की नायिका 'आसिया' पति के साथ बेवफाई के बाद भी प्रेम की पवित्रता का जीवंत नमूना है। जिसे कोर्ट संगसार की सजा सुनता है जिस पर लेखिका ने लिखा है ख़"उस रात औरतों ने चूल्हे नहीं जलाए, मर्दों ने खाना नहीं खाया, यदि आसिया गुनाहगार है तो उसके संगसार होने पर यह दर्द यह कसक उनके दिलों को क्यों मथ रही है"।

गूंगा आसमान की 'मेहर अंगीज' अपने लम्पट पति के चंगुल से तीन स्त्रियॉं को आजाद कराने वाली मजबूत व बहादुर नारी है।

नमक का घर कहानी की 'सहरबाना' उन नारियों का प्रतीक है जो गुमशुदा परिवार की त्रासदी झेल रही है, खो गई है।

दरवाज-ए- कजविन की मरियम समाज की सढ़ी गली और त्रासद रस्मों की शिकार है । यह कहानी औरत जात की मजबूरी की कहानी है।

इसके अतिरिक्त भी 'मेरा घर कहाँ' की लाली धोबन की बेटी सोना, 'बचाव'की 'रेहाना' 'नई हुकूमत' की 'हजारा'ये सब स्त्रियों के उत्पीड़न, पीड़ा, संघर्ष, की साक्षी है ।

'चार बहने शीशमहल की' में भ्रूण परीक्षण, भ्रुण हत्या जैसी संगीन व समाज विरुद्ध सोच का चित्रण है किन्तु साथ ही इसकी नायिका की स्वायत्त सोच, आत्मनिर्भरता व वजूद के संघर्ष की कहानी है।

नासिरा शर्मा के स्त्री पात्र मजबूर, लाचार ही नहीं वरन आधुनिक सोच वाली संघर्ष रात व अपना वजूद बचाए रखने वाली नारियां हैं। इस संबंध मे यश मालवीय ने लिखा है "नासिरा शर्मा के कथा साहित्य मे औरत आंचल दूध व आँखों मे पानी वाली औरत नहीं है । वह पितृ सत्तात्मक समाज के सामने सीना तान कर खड़ी हो जाती है, प्रतिरोध के स्वर मुखरित करने लगतीं है"।

नासिरा जी ने अपने स्त्री पात्रों को आधुनिक बनाकर भी उनमे स्त्री की सहज भावनाओं तथा उसके मानवीय गुणों को जिंदा रखा है। इनकी नायिकाएँ आधुनिकता के नाम पर उच्श्रंखल नहीं होना चाहती और न ही स्वतंत्रता के नाम पर स्वछन्द हो जाना चाहती हैं । वे समाज में रहते हुये अपनी स्वीकार्यता चाहती हैं।

संदर्भ ग्रंथः

1 नासिरा शर्मा 'शाल्मली'
2 नासिरा शर्मा 'ठीकरे की मंगनी'
3 नासिरा शर्मा 'सात नदियां एक समंदर'
4 नासिरा शर्मा 'औरत के लिए औरत'
5 नासिरा शर्मा 'संगसार'
6 नासिरा शर्मा 'पत्थर गली'
7 नासिरा शर्मा 'किताब के बहाने'
8 नासिरा शर्मा 'मेरे जीवन पर किसी के हस्ताक्षर नहीं'
9 कुमार पंकज 'जिंदगी के असली चेहरे'
10 ललित शुक्ल 'नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि'

औपनिवेशिक भारत में सामाजिक न्याय और सती प्रथा

डॉ० अर्चना सिंह

असि0प्रो0 (इतिहास), काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोंही

सारांशः-

सामाजिक व्यवस्था के प्रत्येक युग में स्त्रियों के दमन व उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष सदैव विद्यमान रहा है। प्रत्येक युग में स्त्रियों को पुरूषों द्वारा दी गई एक तयशुदा भूमिका और मानदण्डों का निर्वहन करना होता है। लगातार बदलते सामाजिक समीकरण तथा लगातार उनकी बदलती भूमिका व बदलते मानदण्डों के बीच स्त्री की भूमिका सदैव एक अधीनस्थ की रही जिसने स्त्री और पुरूष के मध्य असमानता को जन्म दिया तथा इसी असमानता ने स्त्रियों की पराधीनता और सामाजिक अन्याय को जन्म भी दिया क्योंकि पुरूष प्रधान समाज में प्रत्येक प्रकार की सत्ता का उपभोग सदैव पुरूषों द्वारा किया गया जबकि स्त्री हमेशा उपेक्षित बनी रही। इस उपेक्षित स्थिति में समाज में उनकी भूमिका कमतर होती गयी जिससे बाल, विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध, अशिक्षा व प्रतिव्रत धर्म सर्वोच्च बनने से स्त्रियों का जीवन नरक बनने लगा जिसने सती प्रथा, जौहर प्रथा जैसी अनेक अमानवीय प्रथाओं को जन्म दिया। सती प्रथा प्रथम उल्लेख भानुगुप्त के 'एरण अभिलेख' में मिलता है जब भानुगुप्त के मित्र गोपराज की पत्नी सती हुई थी। प्रस्तुत शोध पत्र इसी सती प्रथा जैसी कुरीति पर आधारित है। सती प्रथा ने देश में कैसे अपने पैर पसारने प्रारम्भ किये तथा किन-किन क्षेत्रों में इसकी व्यापकता ज्यादा रही तथा इस कुप्रथा पर कैसे अंकुश लगाया गया? इन सभी प्रश्नों के उत्तरों को इस शोध पत्र में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्दः- औपनिवेशिक काल, पतिव्रता, उत्पीड़न, असामनता, अधीनता, अधिकार परीधीमनता।

प्रस्तावनाः-

इतिहास के प्रारम्भिक रूप को देखने से पता चलता है कि प्रारम्भ से ही नारी परिवार का केन्द्र बिन्दु रही है। आरम्भिक दौर में परिवार व समाज मातृसत्तात्मक थे। समय के परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक होती गयी। फिर भी आर्यो की सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भ में स्त्री की स्थिति सुदृढ़ बनी रही। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना सम्भवतः स्त्री व पुरूष के समान अधिकारों तथा संतुलित सम्बन्धों का परिचायक थी तभी स्त्री के विषय में कहा गया है।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तित्र फलाः क्रियाः।।

महाकाव्य के काल में स्त्री के अधिकार पूर्व अर्थात् की भाँति नहीं रहे। बहुपत्नी विवाह तथा अनुलोम विवाह के कारण स्त्री उपभोग की वस्तु मानी जाने लगी। पति के मनमाने अधिकार का ज्वलन्त उदाहरण द्रोपदी व सीता के रूप में देखा जा सकता है। लगातार विदेशी आक्रमणों एवं भिन्न-भिन्न सांस्कृति परिवेश ने भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन की जमीन तैयार कर दी। मुस्लिम वर्चस्व का जितना प्रभाव पुरूषों की स्थिति पर दिखायी देता है, उससे कहीं ज्यादा प्रभाव स्त्रियों की पतनशील दशा पर। इस युग में स्त्रियों के सभी दिव्य गुण धीरे-धीरे उनके अवगुण बन गये, वह साम्राज्ञी से आश्रिता बन कर रह गयी। उसके मानसिक तथा

आत्मिक द्वार जैसे ताले लगा कर बन्द कर दिये गये। ''स्त्री शूदां नाधीताम्' जैसे वाक्य की रचनाकर उसे शूद्र कोटि में रख दिया गया। स्त्रियों को विवाह संस्कार के अतिरिक्त अन्य सभी संस्कारों से वंचित कर दिया गया जो पुरूषों के लिए आवश्यक थे। वैदिक कालीन उच्च आर्दशों की इमारत अब ढ़हने लगी। धीरे-धीरे बालविवाह, पर्दाप्रथा, अशिक्षा स्त्री के पैरों की बेडिघ्याँ बनने लगी। स्वेच्छाचारिता, अमानुषिकता, व असमानता की तब पराकष्ठा हो गयी जब पुरूषों ने स्त्री को मोक्ष प्राप्त होने के मार्ग की मुख्य बाधा समझना प्रारम्भ कर दिया।

मध्यकाल तक आते-आते कन्या जन्म को अशुद्ध माने जाने लगा। कन्या शिशु हत्या की परम्परा का प्रारम्भ भी हमें इसी काल में दिखायी देता है। स्त्रियों की सुरक्षा व अप्रतिष्ठा के प्रश्न ने कन्या शिशु हत्या के आकड़ों में लगातार बढ़ोत्तरी की। इस काल में कुल की रक्त की शुद्धता, स्त्री के सतीत्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर स्त्री को ऐसे सामाजिक, धार्मिक बन्धनों में जकड़ दिया कि वह पुरूष की छाया मात्र बनकर रह गयी तथा उसका स्वतन्त्र अस्तित्व ही समाप्त होने लगा। यद्यपि इस काल में रजिया सुल्तान, चॉदबीबी, ताराबाई, अहिल्यावाई आदि जैसी कुछ वीरंगनाओं ने शासन संचालन में ख्याति प्राप्त की किन्तु इन चन्द स्त्रियों के उदाहरण से यह नहीं का जा सकता कि सामान्य स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक थी। मध्यकाल वर्चस्व स्थापित करने का काल था जहाँ युद्धों में स्त्रियों का अपहरण कर उनसे बलात् विवाह किया जाता था। इस स्थिति से बचने के लिए हिन्दू धर्म में स्त्रियों के लिए कठोर नियम बनाये गये। उनकी सामाजिक स्थिति में लगातार गिरावट आने लगी। इसी कारण यह काल भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति के सन्दर्भ में अन्धकार का युग कहा गया। हालांकि मध्यकाल में भी सती होने की थोड़ी-बहुत घटनाएँ होती रहती थी जिन्हें अकबर जहाँगीर, मराठा, पुर्तगाली आदि ने समय-समय पर रोकने के प्रयास किये।

औपनिवेशिक काल में स्त्री और सती प्रथाः-

प्राचीन व मध्य काल के धार्मिक विधि विधान तथा स्त्रियों से सम्बन्धित नियम कानून औपनिवेशिक काल में भी चलते रहे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत की सामाजिक-धार्मिक व्यवस्थाओं में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया किन्तु उनकी आर्थिक नीतियों के कारण भारत की सामाजिक व धार्मिक व्यवस्थायें गढ़बढ़ाने लगी। शीघ्र ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई कि कम्पनी को भारतीय सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया। वही दूसरी ओर उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था से उत्पन्न बदलाव से भारतीय मध्यम वर्ग को अपने समाज के अन्दर सुधार की आवश्यकता भी महसूस होने लगी। उन्होंने मूर्तिपूजा, बहुदेववाद कर्मकाण्ड, पर्दा प्रथा, बालविवाह, सतीप्रथा, जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध आन्दोलन के प्रयास किये। आधुनिक शिक्षा ने इस बुद्धिजीवी वर्ग को पाश्चात्य विचारों व रहन-सहन से परिचित कराया।

19वीं शताब्दी में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु कुछ मुददे् या प्रश्न प्रमुखता से उभरकर सामने आये जो तत्कालीन समाज सुधार आन्दोलन का आधार बने। महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के पहले प्रयास पुरूषों द्वारा ही प्रारम्भ किये गये। इस दौर में देश परिवर्तन के व्यापक दौर से गुजर रहा था जहाँ पुरानी मान्यताऐं टूटती जा रही थी तथा नयी परम्परायें जन्म ले रही थी। इसी सन्दर्भ में महिलाओं से सम्बन्धित प्रश्न जो इस काल में सार्वजनिक बहस का प्रमुख मुद्दा बने वे थे सती प्रथा, विधवा पुर्नविवाह, बाल विवाह व अशिक्षा। किन्तु इन मुद्दों की प्रभावशीलता में क्षेत्रीय विविधता पायी गयी। भिन्न-भिन्न स्थानों पर ये सुधार भिन्न-भिन्न समय में सामने आये। इस क्रम में सबसे पहले सुधार का उपेक्रम सम्भ्रान्त प्रान्त बंगाल में हुआ जहाँ सती प्रथा जोरों पर थी। जब स्त्रियों के आधुनिक शिक्षा सम्बन्धी अधिकार पर सबसे पहले राजा राममोहन राय ने सन् 1815 में आत्मीय सभा में खुलकर समर्थन दिया। इसके पश्चात् उन्होंने ही सर्वप्रथम सती प्रथा व विधवा पुर्नविवाह के लिए आन्दोलन चलाया और ब्रिटिश सरकार से इस ओर ध्यान देने की अपील की।

ब्रिटिश सरकार के इस पक्ष में दो मत थे एक पक्ष (टोरी दल) का मानना था कि सरकार का भारत की सामाजिक नीतियों में हस्तेक्षप न करना ठीक रहेगा वही दूसरी ओर (डेमोकोटिक दल) का मानना था कि सती प्रथा जैसी कुरीति को रोकने के लिए सरकार द्वारा कठोर कदम उठाये जाने चाहिए। इस दशा में ब्रिटिश सरकार ने समझौता कदम उठाते हुए सती प्रथा के विरूद्ध जो नियम बनाये उनमें स्वेच्छा से सती होने तथा जबरन सती होने में एकरूपता नहीं थी। 19वीं शताब्दी में सती की लोकप्रियता लगातार बढ़ती जा रही थी जिसका प्रमुख कारण था याज्ञवलस्य, नारद, कात्यायन, विष्णु, बृहस्पति आदि द्वारा महिलाओं के विरासत में मिलने वाली सम्पत्ति 'दायभाग' से सम्बन्धित था जिसके द्वारा विधवा स्त्री अपने पति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त कर सकती थी। यह व्यवस्था बंगाल में सर्वाधिक प्रचलित थी जबकि देश के बाकी हिस्सों में कम। ऐसी स्थिति में यह धारणा

पनपने लगी कि यदि ये विधवा स्त्री अन्य कहीं विवाह (विधवा पुर्नविवाह) कर लेगी तो उनकी सम्पत्ति का हिस्सा किसी अन्य व्यक्ति के पास चला जायेगा। इसलिए यह उचित ही होगा कि विधवा को सती ही होने दिया जाए। सती प्रथा की लोकप्रियता का दूसरा प्रमुख कारण था कम आयु में विवाह होना था। कम उम्र की लड़कियों का विवाह बहुत बड़ी उम्र के पुरूषों के साथ करने से ये लड़कियाँ कम उम्र में ही विधवा हो जाती थी इसलिए नैतिकता और सम्पत्ति को आधार बनाकर इस सती प्रथा को हमेशा बढ़ावा मिलता रहा।

समाज में ऐसा विश्वास था कि जो स्त्री खुशी से अपने मृत पति की चिता के साथ जलकर सती हो जाती है वह स्वयं व अपने पूरे परिवार को समस्त पापों से मुक्त कर देती है तथा अपने पति के साथ स्वर्ग की अधिकारिणी होती है और अगर वह ऐसा नहीं करती है तो वह अगले जन्म में विभिन्न जानवरों के रूप में जन्म लेकर इस पृथ्वी पर नरक की भागीदारी बनती हैं। उसे यह भी समझाया जाता था कि पति के साथ-साथ मरने (सती) वाली स्त्री को असीम पुण्य की प्राप्ति होगी। इतने पर भी स्वेच्छा से सती वाली स्त्रियों की संख्या से जबरन सती होने वाली स्त्रियों की संख्या ज्यादा थी।

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि विधवा स्त्री सती होने से डरती थी या सती नहीं होना चाहती थी तो उस परिवार द्वारा नशीली वस्तुओं का प्रयोग कर उस विधवा को सती करा दिया जाता था। इसके लिए उन्हें लकड़ी, पत्तों और पुआल आदि द्वारा ढ़क दिया जाता था और आग लगाने के बाद परिवार व अन्य लोगों द्वारा इतना जयनाद और कोलाहल किया जाता था कि सती हो रही स्त्री की चीख-पुकार उस कोलाहल में दब जाती थी। हालांकि धर्मशास्त्रों के अनुसार इस प्रथा पर कुछ बन्धन भी थे जैसे-16 वर्ष से कम आयु की विधवा को सती होने की अनुमति नहीं थी। वहीं अगर स्त्री अपवित्र हो या गर्भवती होया उसका छोटा शिशु हो तो उसे तुरन्त सती नहीं कराया जाता था। ऐसी स्त्रियाँ बाद में भी सती हो सकती थी जिन्हें 'अनुमरण' कहा जाता था। जबकि पति की चिता के साथ मरने वाली स्त्रियों का 'सहमरण' कहा जाता था।

यद्यपि सती प्रथा की भयावहता पूरे देश में थी किन्तु कुछ क्षेत्रों में यह प्रथा ज्यादा प्रचलित थी जैसे राजपूताना, उत्तर भारतीय राज्य। वहीं दक्षिण भारतीय राज्यों में यह परम्परा कम लोकप्रिय थी। बंगाल में सार्वधिक घटनाऐं देखने को मिलती थी इसके बाद बनारस प्रान्त का स्थान था। महाराष्ट्र महास और बम्बई प्रेसीडेन्सी में यह प्रथा जोरों पर थी। इस प्रथा को सबसे ज्यादा बढ़ावा महिलाओं की कमजोर आर्थिक व सामाजिक स्थिति से मिली।

18वीं शताब्दी में समाज सुधार आन्दोलन धीरे-धीरे पूरे देश में अपने पैर पसार रहा था। राजा राममोहन राय ने जब ब्रह्मसमाज की स्थापना की तब सती प्रथा के उन्मूलन को एक प्रमुख मुद्दे के रूप में आगे बढ़ाया। ईसाई मिशनरियों ने भी ब्रिटेन की सरकार पर सती प्रथा जैसी कुरीति की ओर ध्यान आकृष्ट काराया और इसे समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस प्रथा पर गर्वनर जनरल कार्नवलिस का मानना था कि हिन्दू धर्म की मान्यताओं और प्रथाओं के प्रति थोड़ी बहुत सहिस्णु दृष्टि अपनायी जा सकती ही पर एक अमानवीय प्रथा (सती प्रथा) पर कुछ-कुछ नियन्त्रण स्थापित करना जरूरी लगता है। इस कारण थोड़ी सी हिचकिचाहट के साथ 1813 ई0 में 16 वर्ष से कम आयु की कन्याओं के सती होने पर रोक लगा दी गयी। उन्हीं के प्रयासों से 1818 ई0 में बंगाल के गर्वनर लार्ड विलियम बैंटिक ने बंगाल प्रान्त में सती प्रथा पर रोक लगा दी। किन्तु पूरे भारत में इसे लागू करने में 10 वर्ष का समय लग गया क्योंकि एक तरफ सरकार इस मुद्दे पर कुछ थी फैसला लेने से डर रही थी। वहीं दूसरी ओर राजा राममोहन राय के नेतृत्व में बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग ने एक विशाल आन्दोलन खड़ा कर दिया। उन्होंने अखबारों में एक लेख लिखे पर्चे निकाले। संवाद कौमुदी, समाचार दपर्ण व यंगदूत जैसे समाचार पत्रों का समर्थन मिला। सरकार द्वारा सती प्रथा के उन्मूलन से जनता में कोई उल्लेखनीय प्रतिरोध या असन्तोष उत्पन्न नहीं हुआ।

जब विलियम बैंटिक भारत के गर्वनर जनरल बने तब 1829 ई0 में सती प्रथा निर्मूलन एक्ट पारित कर सती प्रथा को अवैधानिक घोषित कर दिया। सरकार द्वारा सती प्रथा के उन्मूलन से देश में अलग-अलग तरह की प्रतिक्रियाऐं आयी जहाँ पाश्चात्य विचारों से प्रभावित बुद्धिजीवी वर्ग ने इसे सहर्ष स्वीकार किया वही देश के प्रतिक्रियावादी रूढिघ्वादियों द्वारा इस कानून का पूरे देश में विरोध किया गया। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार को इस कानून में आशिंक परिवर्तन करना पड़ा जिसके द्वारा जबरन सती होने व स्वैच्छिक रूप से सती होने के अन्तर को कानूनी जामा पहनाते हुए स्वैच्छिक सती होने को वैधानिक करार दे दिया गया तथा जबरन सती होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस कानून के विरोध में बंगाल के रूढिघ्वादी ब्राह्मणों ने (जिनमें राधाकान्त देव व उनकी संस्था देवसमाज प्रमुख थी) आन्दोलन व अपील की लेकिन उनकी इस अपील को खारिज कर दिया गया और सती निर्मूलन एक्ट को सभी प्रान्तों में लागू कर दिया गया।

निष्कर्षः-

औपनिवेशिक शासनकाल में भारतीय समाज अपनी पहचान के संकट से गुजर रहा था। ब्रिटिश शासन, पाश्चात्य शिक्षा व विचारों से प्रभावित भारतीय जनमानस ने प्राचीन परम्पराओं, रीतिरिवाजों को तर्क की कसौटी पर परखना प्रारम्भ कर दिया और उन्हें यह अससास हुआ कि बहुत सी ऐसी परम्परायें है जो मनुष्य को मनुष्य ही नहीं समझ रहा हैं। अतः यह आवश्यक है कि उनमें यथासम्भव सुधार किये गये। ऐसी ही परम्परा सती प्रथा की थी। भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग ने ब्रिटिश प्रयासों से इन कुरीति को समाप्त करने में सफलता प्राप्त कर और भारतीय समाज को एक नई दिशा प्रदान की तथा स्त्री और पुरूष के मध्य होने वाली असमानता की खाई को एक हद तक पाटने का प्रयास किया।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. पार्थ चटर्जी - द नेशलिस्ट रिजोल्यूशन ऑफ द वूमेन क्वसचेन, सेन्ट्रल फॉर स्टडीज इन सोशल साइंस, कलकत्ता 1988
2. ए0एस0 अल्तेकर - पोजीसन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, द सेन्ट्रल पब्लिकेशन हाउस, बी0एच0यू0-1956
3. शेखर बन्धोपध्याय - प्लासी से विभाजन तक, ओरियेन्ट ब्लैकस्वान प्रा0 लि0, नई दिल्ली-2015
4. राधा कुमार - जेन्डर एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, (अनु0-नवनीत मेनन) ऑक्सफोर्ड यूनीवसिर्टी प्रेस, नई दिल्ली- 1999
5. कल्पना दास गुप्ता - वूमेन ऑन द इण्डियन सीन, अभिनव पब्लिकेशन, नई दिल्ली-1976
6. लीला कस्तूरी एण्ड - वूमेन एण्ड इण्डियन नेशनलिज्म, वीना मजूमदार विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली-1994

रसखान का काव्य

निरंजन सहाय

यदि हम हिंदी कविता के स्रोतों की शिनाख्त करें, तब उसमें शामिल अनेक अंतरवर्ती धाराओं से हमारा परिचय होता है। दरअसल यह धारा भारतीय लोकतंत्र के विकसने और विशिष्ट चेतना के निर्माण की भी कहानी है। अब्दुर्रहमान, अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी जैसे रचनाकारों का हिंदी कविता के इतिहास में प्रमुख स्वरों के रूप में शामिल होना इस बात का प्रमाण है कि हिंदी कविता अपने आरम्भिक दौर से ही स्वभावत: एक ऐसे वृहत वृत्त का निर्माण कर रही थी, जिसमें अनंत अभिव्यक्तियों के लिए स्थान होद्य यह केवल उदारता का संकल्प ही नहीं है, बल्कि अनेक तरह की हदबंदियों से असहमत होने का विवेक भी है।

भक्तिकाल के प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि सैयद इब्राहिम रसखान की लोकप्रियता के अनेक किस्से मशहूर रहे हैं। कुछ बातें बार-बार उद्धृत की जाती हैं। मसलन उनकी कविताएँ तुलसीदास और सूरदास की ही तरह लोगों की जुबान पर चढ़ गयी थीं।भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने लिखा, इन मुसलमान हरिजन नपरकोटिन हिन्दूवारिये! आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसखान की लोकप्रियता के बेहद रोचक पहलू की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित किया है, उन्होंने अपने हिंदी साहित्य का इतिहास' में दर्ज किया, 'प्रेम के ऐसे सुन्दर उद्‌गार इनके सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या शृंगार सम्बन्धी कवित्त सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे, जैसे कोई रसखान सुनाओ।' ऐसेप्रसिद्द कवि की लोकप्रियता का जितना विस्तार अपने जीवन काल में हुआ उतनी ही व्याप्ति हिंदी कविता की विरासत में भी हुई। कृष्ण भक्ति शाखा और मध्यकालीन प्रेम की कोई भी व्याख्या इनकी चर्चा के बिना जैसे अधूरी है। रसखान की कविता में केवल अनन्य प्रेम का मोहक रूप ही वर्णित नहीं हुआ, लोक के विविध रंग भी अपने विशिष्ट अंदाज में प्रकट हुए हैं। उनकी कविताएँ हमें प्रेम की अनंत गहराइयों के साथ ही वृन्दावन की कुञ्ज-गलियों, पहाड़ों-पठारों, वन-उपवन, पशु-पक्षी, व्रत-त्यौहार आदि का सहचर बनने का सुख भी देती हैं। रसखान की ब्रजभाषा लोकरंग में पगी है, जिसमें संवाद की अद्‌भुत ललक है। वे अपने समय में प्रचलित काव्यरूपों का सधा और सटीक प्रयोग करते हैं। उनकी कविता हमें बेखुदी के उस संसार में ले जाती है, जहाँ इश्क की खुमारी में फना होने का जुनून मुखर है। यह बेखुदी संक्रामकहै, यहाँ लुभाने वाले खुद लुभ जाते हैं, कान्हा को गाएँ भूलजातीं हैं और राधा को गागर उठाने की सुधि नहीं रहती-

आज हौं निहारयौ वीर निपट कालिंदी तीर,
दोउन को दोउन सों मुख मुसकायबो।
दोऊ परे पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयां,
उन्हे भूली गईं गैयाँ इन्हें गागर उठायबो।।

प्रेम का यह स्वरूप अपूर्व और उल्लेखनीय है। भाव-भंगिमा, काव्य तकनीक और भाषा के लिहाज से रसखान की कविताओं पर और विस्तार से विचार की जरूरत है।

रसखान का जीवनवृत्त

रसखान भक्ति काल के ऐसे कवि के रूप में ख्यात हैं, जिनके जीवन के बारे में परस्पर विरोधी धारणाएँ मौजूद हैं। उनके जीवन के बहिर्साक्ष्य और अंतर्साक्ष्य दोनों उपलब्ध हैं। बहिर्साक्ष्य यानी उनके दौर की रचनाओं में उनके बारे में जो प्रमाण उपलब्ध हैं। और अंतर्साक्ष्य यानी रसखानकी रचनाओं से क्या राय सामने आती है। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों तरह के साक्ष्यों को आधार मानकर तर्कपूर्ण निष्पत्तियों तक पहुँचने का प्रयास किया जाय।

वे दिल्ली के पठान सरदार थे। उनके जीवन की अनेक झलकियाँ उनकी रचनाओं में उपलब्ध है। जैसेप्रेमवाटिका में उनकी उक्ति है-

देखि गदर हित साहबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहींबादसा-वंश की, ठसक छोरि रसखान।।
प्रेमनिकेतन श्रीबनहिं, आइ गोबर्धन धारा।
लह्यो सरन चित चाहिके, जुगलरूप ललाम।।

उल्लिखित पंक्तियों में 'गदर' और 'दिल्ली के श्मशान बन जाने' के समय का विशेषज्ञों ने निर्धारण किया है। अनुमान के मुताबिक यह वर्ष 1555 ई. है। इसी वर्ष मुगल बादशाह हुमायूँ ने दिल्ली के सूरवंशीय पठान शासकों से अपना खोया हुआ शासनाधिकार फिर से प्राप्त किया थाद्य इस गदर के दौरान भारी रक्तपात हुआ था। इस गदर का असर रसखान पर हुआ और वे विरक्त हो गए। रसखान ने जिस बादशाह वंश की ठसक का जिक्र किया है, वह शेरशाह सूरीका है। सूरी का उदय 1528 ई. में हुआ था, और इस वंश का अंत इब्राहिम खान और अहमद खान के पारस्परिक कलह के चलते 1555 में हो गया। इस गदर के समय रसखान की उम्र यदि बीस-बाईस साल मान ली जाय तो उनके जन्म वर्ष 1533 ई. मानी जा सकती है। एक समय यह धारणा बलवती थी कि रसखान पिहानी के सैयद इब्राहिम का ही उपनाम है। बाद के शोधों ने इस पर पुनर्विचारके अवसर उपलब्ध कराया। प्रेमवाटिका के जिस उल्लिखित पद का उल्लेख किया गया है, उसके साक्ष्य पर यह कहना सही है कि जिस तरह वे दिल्ली छोड़कर गोवर्धन जाने का उल्लेख किया है उसके मुताबिक उनके जन्म स्थान को दिल्ली मानना चाहिए।

ऐसा मशहूर है कि वे दिल्ली निवासी एक साहूकार के बेटे पर आसक्त हो गए थे। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। आख्यान के अनुसार रसखान ने एक बार दो आदमियों को यह बतियाते हुएसुना कि ईश्वर में ऐसे ध्यान लगाना चाहिए जैसी रसखान की बनिए के बेटे से प्रीत है। एक दूसरी कहानी भी मशहूर है, जिसके मुताबिक उनकी प्रेमिका बड़ी मानिनी थी और अक्सर उनका तिरस्कार करती रहती थी। एक दिन जब वे श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे तब उसमें गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम देखकर उनके मन में आया क्यों न उन्हीं कृष्ण केपर लौ लगायी जाय जिनपर इतनी गोपियाँ उत्सर्ग हो रही हैं। फिर वे अपनी तलाश लिए वृन्दावन पहुँच गए। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के मुताबिक उनकी आसक्ति वैष्णव भक्तों के प्रोत्साहन से बनिए के बेटे से कृष्ण भक्ति में रूपांतरित हो गयी। वैष्णवों ने इन्हें कृष्ण चित्र दी थी, जिन्हें लेकर वे दिल्ली से ब्रज प्रदेश पहुँचे थे। कृष्ण को देखने की चाह लिए वे मन्दिर-मन्दिर भटकते रहे। अंततः गोविन्द-कुंड में श्रीनाथ जी के मन्दिर में भक्तवत्सल भगवान कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए। कथा के अनुसार, फिर स्वामी विट्ठलनाथ ने रसखान को मन्दिर के अन्दर बुलाया। रसखान के जीवन में भारी बदलाव आया और वे गोपी भाव की भक्ति में निष्णात हो गए। विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है, उक्त वार्ता में वर्णित घटना-चक्र सम्बन्धी कुछ संकेत रसखान की रचनाओं में भी मिलते हैं—यथा, 'प्रेम-वाटिका' में छवि दर्शन का उल्लेख तथा 'सुजान-रसखान का लीला वर्णन।' उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ का शिष्यत्त्व ग्रहण किया।'

'नव भक्तमाल' के रचनाकार श्री राधाचरण गोस्वामी और 'उत्तरार्ध भक्तमाल' के रचयिता भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने भी रसखान का उल्लेख किया है। प्रसंगवश भारतेंदु का यह कहना रसखान की प्रसिद्धि का बयान करता है कि इन मुसलमान भक्त कवियों के ऊपर करोड़ों हिन्दुओं को न्योछावर किया जा सकता है। शिवसिह सेंगर ने रसखान को सैयद वंश का माना और निवास स्थान पिहानी ठहरायाद्य मिश्रबंधुओं और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसखान को दिल्ली के शाही वंश का पठान सरदार माना और विट्ठलनाथ का पट्ट शिष्य स्वीकार किया। इसे सर्वाधिक तार्किक और विश्वसनीय कथन माना जा सकता है।

रसखान की विद्वता और लोकप्रियता का आलम इससे भी आंका जा सकता है कि बेनी माधव द्वारा17 55-56 ई.में रचित 'मूल गुसाई चरित' में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा स्वरचितृरामचरितमानस' की कथा सर्वप्रथम रसखान को सुनाने का जिक्र है-

'जमुनाटपै त्रयवत्सर लौं, रसखानहिं जाइ सुनावत भौ।'

रसखान काव्य के सभी अध्येता इस बात पर सहमति व्यक्त करते हैं कि उनकी अंतिम रचना प्रेम वाटिका' (1614) है। कुछ ही साल बाद 1618 में उनका देहावसान हो गया।

रसखान की रचनाएँ

रसखान रचित तीन रचनाओं को सभी प्रामाणिक मानते हैं-सुजान-रसखान, प्रेम-वाटिका और दानलीला। विद्यानिवास मिश्र के अनुसार, नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में उक्त रचनाओं के अतिरिक्त रसखान-दोहावली और रसखान-कविता वली नामक दो रचनाएं रसखान के नाम से मिलाती है। रसखान दोहावली में अरबी-फारसी की मुश्किल शब्दावली शामिल है।

असल में, रसखान की कविताओं की छानबीन लम्बे अरसे से होती रही है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय इस खोजबीन में तेजी आयी। रसखान की रचनाओं का प्रकाशन सबसे पहले किशोरीलाल गोस्वामी ने किया। तब से अबतक रसखान की अनेक रचनाओं का प्रकाशन हुआ, जिनका उल्लेख सम्भव है। किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा संकलित सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, रसखान-पदावली-संकलन:प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, रसखान रत्नावली-संकलन: दुर्गाशंकर मिश्र; रसखान और घनानन्द, संकलन: बाबू अमीर सिंह, रसखानि ग्रंथावली सम्पादन: आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का इस सन्दर्भ में उल्लेख किया जा सकता है। ज्यादातर विद्वानों ने अपने-अपने संकलनों में अपने पहले के संकलनों से एक-दो पदों को अधिक देने का प्रयास किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के संकलन को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। उनके संकलन को इसलिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है कि उन्होंने अपने पहले के प्रकाशित संग्रहों की अपेक्षा अपने संग्रह में कवित्त, सवैयों, दोहों आदि की संख्या में बढ़ोत्तरी की। नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट और विवरणों को ध्यान में रखकर उपलब्ध पांडुलिपियों का सहारा लेकर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सुजान-रसखान मेंदो सौ चौदह कवित्त-सवैये, प्रेम-वाटिका में तिरपन दोहे तथा दानलीला में ग्यारह पदों के साथ-ही-साथ प्रकीर्णक के अंतर्गत दो पद होली और सगुनौती के भी संकलित किए हैं। पं. विद्यानिवास मिश्र और सत्यदेव मिश्र के सम्पादन में भी 'रसखान रचनावली का प्रकाशन किया गया, जिसमें रसखान के सम्पूर्ण काव्य को समाहित करने का प्रयास किया गया। आवश्यकता इस बात की है कि रसखानकी रचनाओं पर थोड़ा और विस्तार से बात की जाय।

सुजान-रसखान

'सुजान रसखान' सम्बन्धी सर्वाधिक पद विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की 'रसखानि ग्रन्थावली' मंर शामिल है। इनके पहले के संकलनों में पदों की संख्या बीस से एक सौ चौतींस तक ही रही। मिश्र जी ने अपने अनथक प्रयास से दो सौ चौदह पदों का संकलन किया। इस ग्रन्थ में कृष्ण के लीला-विलास को शामिल किया गया है। विभिन्न लीलाओं की रचना अलग-अलग समयों में की गयी है, लिहाजा उनमें कोई निश्चित तारतम्य को ढूँढ़ना संभव नहीं। इसमें शामिल काव्य के कथ्यों का उल्लेख करें तो हम इन भावदशाओं से सम्बंधितपद पाते हैं-प्रेम, भक्ति, बाल-लीला, गोचारण, चीरहरण, कुंज-विलास, पनघट-प्रसंग, वन लीला, गोरस लीला, वय:संधि, सुकुमारता, राधा-रूप वर्णन, वंशीवादन, पूर्वराग, अभिलाषा, रूपमाधुरी। चेतावनी, उपदेश, प्रेमलीला, दधिदान, उपालंभ, सपत्नीभाव, मिलन, वियोग, चौपड़, रिझवार, मानवती प्रिया, विदग्धा, सूरत, सुरतांत, होली, भ्रमर, मीत, हरिशंकरी, भक्ति-भावना, अलौकिकत्व, कृष्ण सौन्दर्य, नटखट कृष्ण, कालिय-दमन, फाग-लीला, सखी-शिक्षा, उद्धव-उपदेश आदि। यह सूची इस तथ्य को प्रकट करती है कि रसखान लोक में प्रचलित विभिन्न कृष्ण प्रसंगों को अपनी कविता का उपजीव्य तो बना रहे थे, लेकिन सिलसिलेवार ढंग से प्रबंध योजना सुनिश्चित करना उनकी कविता का उद्देश्य नहीं था।

प्रेम-वाटिका

प्रेम-वाटिका तिरपन दोहों का संकलन है। इसमें कृष्ण चरित से सम्बद्ध विभिन्न प्रेम-प्रसंगों को आधार बनाया गया है।

दान-लीला

दान-लीला ग्यारह कवित्त-सवैयों का संकलन है। इस रचना का कलेवर लघु है। इसकी शैली सम्वादमूलक है। यह सम्वाद दो रूपों में मिलता है। विद्वानों का एक वर्ग इस रचना को अप्रामाणिक मानता है। अप्रामाणिक मानने के पीछे उनका तर्क है, 'रसखान की प्रवृत्ति सवैया-कवित्त की ओर अधिक रही है और इसमें कुल पाँच सवैया ही हैं। रसखान ने प्राय: अपने सभी पदों में अपने नाम की छाप दी है। दान-लीला के ग्यारह पदों में मात्र एक बार (पद संख्या 2 में) उनका नाम आया है।'

रचना की प्रामाणिकता के बारे में फिलहाल यह मानना सही है कि 'दानलीला का उल्लेख रसखान की रचना के रूप में काशी नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट में विद्यमान है। यही नहीं, हिंदी की मध्यकालीन स्वच्छन्द काव्य-धारा के अन्यतम अनुसंधायक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे रसखान की प्रामाणिक रचना मानकर अपने संग्रह 'रसखानि-ग्रन्थावली' में समाविष्ट किया है।

उल्लिखित तीन रचनाओं को आधार मानकर विभिन्न रसखान-ग्रंथावलियों की रचना की गयी है।

रसखान में कृष्ण प्रेम और भक्ति

रसखान की कविता का प्रधान उपजीव्य कृष्ण-प्रेम और भक्ति ही है। उनके बारे में एक किस्सा मशहूर है कि वे दिल्ली से ब्रजभूमि आए। दिल्ली के युद्ध और रक्तपात से उनका मन उचाट हो गया और उनके जीवन में एक ही सच बचा-कृष्ण प्रेम और भक्ति। जनश्रुति है इनकी कृष्ण भक्ति में अतिशय रमणीयता देख इन्हें किसी ने चेतावनी दी कि 'तुम्हारी रियासत छिन जाएगी।' इस पर जो उन्होंने जवाब दिया, वह कृष्णभक्ति का बेहतरीन उदाहरण है। उन्होंने कहा, 'कहाकरै रसखान को को ऊचगुलू लबार, जोपैराखनहार है माखन चाखनहार।' यानी राजसत्ता के ऊँच-नीच और झूठ फरेब से रसखान को क्या लेना-देना। उनके राखनहार तो माखन के चाखनहार हैं। उन्होंने सांसारिक या पारलौकिक प्रेम पर ऐसी कृष्ण भक्ति को तरजीह दी, जिसे पा लेने पर न बैकुंठ की चाह रह जाती है न बैकुंठनाथ की। रसखान कहते हैं-

'जेहि पाए बैकुंठ अरु हरिहुँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि।।'

रसखान की प्रेम और भक्ति के अनेक रंग हैं। उनके कृष्ण प्रेम की व्याप्ति जिस ब्रज में है, उस ब्रज का जैसा चित्रण रसखान ने किया है, वैसा वर्णन शायद ही किसी और कृष्णभक्त कवि ने किया हो। मनुष्य का जन्म हो तो गोकुल में, पशु जन्म हो तो नन्द की गाय के रूप में, पत्थरका जन्म हो तो गोवर्द्धन के पत्थर रूप में जिसे कृष्ण ने इंद्र के कारण अपनी उँगली पर धारण कर लिया था, यदि पक्षी जन्म मिले तो यमुना के किनारे कदम्ब की डाल पर मेरा बसेरा हो। इस अद्‌भुत सवैये में कृन्ष्ण के प्रति जिस असीम अनुराग का वर्णन है, उसकी रसखान यूँ अभिव्यक्ति करते हैं-

'मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।।
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदीकूल कदम्ब की डारन।।

उसी तरह रसखान अपने एक सवैये में तीनों लोक की सम्पदा को उस सम्पत्ति के सामने तुच्छ समझते हैं, जो ग्वाल-बाल के संग-साथ से बना है, बकौल रसखान,

'या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि, नवों निधि को सुख, नंद की धेनु चराय बिसारौं।।
रसखान कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हू कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं।।'

अर्थात्वालों की लाठी और कम्बल के लिए तीनों लोकों का राज भी त्यागना पड़े तो कवि उसके लिए तैयार हैं। नंद की गाय चराने का मौका मिल जाए तो आठों सिद्धि और नवों निधि के सुख वे भुला देंगे। अपनी आँखों से ब्रज के वन उपवन और तालाब को जीवन भर निहारते रहना चाहते हैं। यहाँ तक कि ब्रज की काँटेदार झाड़ियों के लिए भी वे सौ महलों को भी न्योछावर कर देंगे।

कृष्ण के लिए जिस बेखुदी का रसखान जिक्र करते हैं, उसके रंगरूप हजार हैं, जिनमें प्रभु की प्रभुता के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण व्याप्ति के आत्मीय आख्यान हैं। लेकिन उसकी अपनी विशिष्टता है। इस कृष्ण प्रेम की व्याप्ति पर विद्यानिवास मिश्र की नजर यूँ जाती है-'प्रेमश्रीकृष्ण का वह रूप है जो सबको छूता है। कभी छूकर तपाता है, कभी छूकर हर्षाता है। यह साक्षात कृष्ण

हैं। पर ऐसे अलग लगता है जैसे सूरज से धूप अलग लगती है। सूरज की सार्थकता है धूप होने में, श्रीकृष्ण की सार्थकता है प्यार होने में। ऐसे प्रेम को श्रीकृष्ण भी बड़प्पन देते हैं और क्या-क्या नहीं सुनते! कभी तो कोई कहता है-'सब बढ़त प्रानौ नन्द के छौनो'। 'कभी छछिया भर छाछ पै नाच नचाता है', कभी कोई कहता है कि यह बाँसुरी नहीं बजाता, विष बगराता है-

दूधदुह्यौ सीरो परयौ तातो न जमाओ करयौ
जामन दयौ सो धरयौ धरयौइ खटाइगो।
आन हाथ आन पाइ सबही के तबही ते
जबहीं ते रसखानि तानन सुनाइगो।।
ज्यों हीं नर त्यौं ही नारी तैसी ये तरुन बारी
कहिए कहा री सब ब्रज बिललाइगो
जानिए न आली यह छोहरा जसोमति को
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो।।

इसके मारे सारा ब्रज व्याकुल है। ऐसी बाँसुरी बजाता है कि प्राण खींच लेता है। कभी इन्हें उलाहना मिलता है कि चोर है, बटमार है, बरजोरी करता है। कभी कोई कहता है, 'अरे हरि चेरी के चेरो भयो है', कुबरी दासी के दास हो गए हैं श्री कृष्ण औरकभी उसपर इतना प्यार आता है कि 'मेरे बनमाली को न काली तें छुड़ावही' मेरे बनमाली को कालिय नाग से कोई नहीं छुड़ाताद्य' भारतीय कविता में जिन भारतीय तत्त्वोंकी बात की जाती है उसका केन्द्रीय तत्त्व है समग्र और विशिष्ट भारतीय सौन्दर्य दृष्टिद्य कहना न होगा रसखान की कविता इस भारतीय सौन्दर्य दृष्टि का खूबसूरत आख्यान पेश करती है।

कृष्ण प्रेम की बात तबतक अधूरी रहेगी, जबतक उसमें कृष्ण जीवन के कतिपय प्रसंग शामिल न हों। आइए इसे और बेहतरीन ढंग से देखने का प्रयास करें। सैय्यद इब्राहिम रसखान के काव्य के आधार भगवान श्रीकृष्ण हैं। उनके द्वारा अपनाए गए काव्य विषयों को तीन खण्डों में बाँटा गया है–

कृष्ण-लीलाएँ
बाल-लीलाएँ
गोचरण-लीलाएँ
कृष्ण-लीलाएँ :-

लीला का सामान्य अर्थ खेल है। कृष्ण-लीला से मुराद कृष्ण (प्रभु) का खेल है। इसी खेल को सृष्टि माना जाता है। सृजन एवं ध्वंस को व्यापकता के आधार पर सृष्टि कहा जाता है। कृष्ण-लीला और आनंदवाद एक-दूसरे से संबंधित है, जिसने लीला को पहचान लिया, उसने आनंद धाम तक अपनी पहुँच बनायी और हरि लीला के दर्शन कर लिए। रसखान चुँकि प्रेम के स्वच्छंद गायक थे इसीलिए इन लीलाओं में उन्होंने प्रेम की अभिव्यक्ति भगवान श्रीकृष्ण को आधार मानकर की है।

कृष्ण की अनेक लीलाओं के दर्शन रसखान ने अपने काव्य में कराये हैं। इन लीलाओं में कई स्थानों पर अध्यात्मिक झलक भी पायी जाती है। रसखान की काव्य रचना में बाललीला, गौरचरण-लीला, कुँजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, वनलीला, गौरस लीला इत्यादि लीलाओं के दर्शन होते हैं।

बाल-लीलाएँ :

रसखान ने कृष्ण के बाल-लीला संबंधी कुछ पदों की रचना की है, किंतु उनके पद कृष्ण के भक्त जनों के कंठहार बने हुए हैं। ज्यादातर कृष्ण भक्त इन पदों को प्रायः गाया करते हैं–

काग के भाग बड़े सजनी हरि
हाथ सौं ले गयो माखन रोटी।

कृष्ण के मानवीय स्वरुप ने रसखान को अधिक प्रभावित किया, लेकिन रसखान ने अपने पदों में उनके ब्रह्मत्व को खास स्थान दिया है।

इस बाल-लीलाओं में रसखान ने कृष्ण को एक शिशु के रुप में दिखाया है। उनके लिए छौने शब्द का प्रयोग किया गया है–

आगु गई हुति भोर ही हों रसखानि,
रई बहि नंद के भौनंहि।
बाको जियों जुगल लाख करोर जसोमति,
को सुख जात कहमों नहिं।
तेल लगाई लगाई के अजन भौहिं बनाई
बनाई डिठौनहिं।
डालि हमेलिन हार निहारत बारात ज्यों,
चुचकारत छोनहिं।

एक अन्य पद में रसखान ने श्रीकृष्ण को खेलते हुए सुंदर बालक के रुप में चित्रित किया है–

धूरि भरे अति शोभित श्यामजू तैसी,
बनी सिरसुंदर चोटी।
खलत खात फिरे अंगना पग पैजनी,
बाजति पीरी कछोटी।

वा छवि को रसखान विलोकत वरात,
काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौं,
ले गयो माखन रोटी।

रसखान के बाल-लीला के संबंध रखने वाले पद बहुत ही सुंदर एवं भावपूर्ण हैं। कृष्ण धूल भरे आँगन में खेलते-खाते हुए फिर रहे हैं। घुँघरू बज रहे हें। हाथ में माखन रोटी है। कौआ आकर कान्हाके हाथ से रोटी लेकर उड़ जाता है। काग की यह आम आदत है कि वह बच्चों के हाथों से कुछ छीन कर भाग जाता है। इस दृश्य को रसखान ने हृदयस्पर्शी बना दिया है।

गोचरण-लीलाएँ:

कृष्ण-जी जब बड़ें होते हैं, वह ग्वालों के साथ गायें चराने वन जाने लगते है। कृष्ण जी की गोचरण की तमाम अदाओं पर गोपियाँ दिवानी होने लगती है। कृष्ण जी धीर सभी कालिंदी के तीर खड़े हो गउएँ चरा रहे हैं। गाएँ घेरने के बहाने गोपियों से आकर अड़ जाते हैं–

गाई दहाई न या पे कहूँ, नकहूँ यह मेरी गरी,
निकस्यौ है।
धीर समीर कालिंदी के तीर टूखरयो रहे आजु,
ही डीठि परयो है।

जा रसखानि विलोकत ही सरसा ढरि रांग सो,
आग दरयो है।

गाइन घेरत हेरत सो पंट फेरत टेरत,

आनी अरयो है।

कृष्णा वंशी बजाते गाय चराते हुए कुंजों में डोलते हैं। गोपियाँ कृष्ण के गोचरण-रुप में प्राण देने को तैयार है। जिस दिन से कृष्ण ने गायें चराई हैं, उसी दिन से गोपियों पर टोना सा हो गया है। केवल गोपियाँ ही नहीं, संपूर्ण ब्रज कृष्ण के हाथ बिक गया है।रसखान ने कृष्ण की गोचरण लीला को मनोहर और चित्रात्मकढंग से प्रकट किया है।

रसखान का प्रेम दर्शन

कहते हैं जो लौकिक प्रेम के रास्ते प्रेम की व्याप्ति का अनंत रूप देखने में सफल होता है उसकी कविता का प्राणतत्त्व जिस प्रेम दर्शन की साधना करता है, वह लाजवाब होता है। रसखान इसी प्रेमदर्शन के कायल थे। यह अकारण नहीं है कि उनके प्रेम की अभिव्यक्ति में जड़-चेतन का समग्र रूप शामिल होता है। जिनकी कुछ बानगी आपने भली-भाँति समझाद्य अब यहीं थोड़ा ठहरकर उनके प्रेम दर्शन की कतिपय विशिष्टताओं के आकलन का प्रयास किया जाय। वे प्रेम के वियोग को जिस गहराई से देखते हैं, वह अद्‌भुत हैं। वे प्रेम को एक शिखा (बाती) के रूप में देखते हैं। एक ऐसी शिखा जो वियोग की ताप में सुलगती रहती है। खौलते हुए स्नेह में तपती रहती है, थोड़ी-थोड़ी देर पर भभकती भी रहती है। लेकिन जब प्रियतम के आने की खबर सुनती है तो जैसे कोई बाती उकसा दे वैसे ही उसमें अंतर्शक्ति आ जाती है, भीतर की आग रौशनी बन कर बाहर आती है–

'मोहन जू के वियोग की ताप मलीन महा द्युति देह तिया की।

पंकज सों मुख गो मुरझाय लगै लपटैं बिराहागि हिया की।।

ऐसे में आवतकान्ह सुने रसखान सु तनी तरकी आँगिया की।

यों जगि जोति उठी तन की उकसाय दई मनौं बाती दिया की।।'

रसखान के प्रेम वर्णन में अनन्यता की स्थिरता है। इस अनन्यता के कारण ही रसखान की प्रेमिका को वह बांसुरी बैरिन लगती है जिसे कृष्ण अपने होठों से लगाए रहते हैं।वह दिनरात कृष्ण को अपने बस में किए रहती है। गोपियाँ बांसुरी को सौत कहती हैं। उन्हें लगता है, सौत की साँसतके जुल्म से लगता है, ब्रज छोड़ना पड़ेगा–

'जगकान्ह भये बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहिहे।

यह राति दिना संग लागि रहै सौति कि साँसन को साहिहे।।

जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखान सु क्यों न हमें दहिहै।

मिलि आऔ सबै कहीं भागि चलैं अब तो ब्रज में बँसुरी रहिहै।।'

रसखान की प्रेयसी को लोक का भय नहीं, भय इस बात का है कि कान्हा कहीं बिसरा न दें। उनके लिए इश्क में फना हने के लिए हर कुर्बानी जायज है-

'डरै सदाचाहेन कछु सहै सबै जोहोय

रहै एकरस चाहि के प्रेम बखानौसोय।।'

लेकिन कान्हा प्रेम को बिसरा कर मथुरा चले गए। और इधर अहीरन प्रेयसी खुद को ही सजा देती है और मन को समझाती है कि गलती तो उससे हुई। रसखान की प्रेयसी सोचती है वह माखन सा मन लेकर माखन चोर की ओर ही गयी क्यों? उसे अहसास ही नहीं रहा कि उसका प्रेमी त्रिभंगी है, वह त्रिभंगी प्रेमी उसे बांका क्यों न बनाए-

'सुन्दर स्याम सजै तन मोहन जोहन में चित्त चोरत हैं।

बाँके बिलोकनकी अवलोकननोंकन के दृग जोरत है।।

रसखानि मनोहर रूप सलोने को मारग तैं मन मोरत हैं।

काज समाज सबै कुल सबै कुललाजलला ब्रजराजकेतोरतहैं।।'

रसखान का प्रेम दर्शन तथाकथित मर्यादाओं को अपनीवेगवती धारा में बहा ले जाता है। मर्यादा की शपथ दिलाए वे सारे वचन जिनमें प्रेयसी को बांधा गया था उस समय भोंथरा हो गया जब कान्हा ने मुस्कुराकर देखा, अब यह याद ही नहीं रहा कि किस राह पर चलना था और किसे छोड़ना! तन की सुधि नहीं रही, दही हांडी फूटी आँखों से लाज का पर्दा भी जाता रहा। अब होना क्या था, वही जिसकी चाहत थी, निर्दयीमनमोहन ने दही खा लिया, मटका फोड़ दिया, तन-मन का सारा गोरस छीन लिया, और वह कान्हा सबकुछ ले गया-

भौंह भरी बहनी सुधरी अति है अधरान रंगयौं रंगरातो।
कुंडललोल कपोल महाछवि कुंजनि ते निकस्यो मुसकातो।।
रसखानि लाखे मन खोय गयो मग भूलि गई तन की सुधि सातो।
फूटि गयो दधि को सिर भाजन टूटिगो नैनन लाज को नातो।।

रसखान की कविता में उपस्थित प्रेमदर्शन पर पुष्टिमार्ग की छाया है, जिसमें इस्लाम के एकेश्वरवादका मणिकांचन योग है। यह भारतीयता की वह विशाल नदी है जिसमें कई धाराएँ आकरसहज ही मिल जाती हैं, और भारत की बहुरंगी दार्शनिक परम्परा का निर्माण करती हैं। पुष्टि मार्ग में कृष्णलीला वर्णन का विशेष महत्त्व है, जिसकी सुन्दर बानगी रसखान की कविता में भी उपस्थित है। कृष्ण समर्पण की यह कविता उस दुनिया की बारम्बार कामना करती है जिसकी सांसों में कृष्ण बसे हैं-

'प्रान वही जु रहैं रिझ वा पर रूप वहीं जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिहिं वे परसे पग देह वही जिन ता परसायो।।
दूध वही जो दुहायो री वाही ने सोई दही जु वही ढरकायो।
और कहाँ लौं कहूँ रसखान सुभाव वही जु वही मन भायो।।'

रसखान की भाषा और काव्य सौन्दर्य

रसखान की भाषा में सम्वाद की अद्‌भुत सामर्थ्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में दर्ज किया-'इनकी भाषा बहुत चलती सरल और शब्दा डम्बर मुक्त होती थी। शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई इनकी और घनानंद की रचनाओं में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।' कृष्णभक्त कवियों की परम्परा 'गीतकाव्य' की थी, पर रसखान ने इससे अलग दोहों, सवैयों और कवित्त में कृष्ण काव्य को गूँथा जिसकी व्याप्ति और गहराई विशिष्ट है।रसखान का प्रिय छंद सवैया और घनाक्षरी है।

रसखान काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है-निरलंकृति। लेकिन यहीं यह समझ लेना चाहिए कि ऐसा नहीं है कि उन्हें अलंकारोंसे परहेज है। वे बहुधा अभिधा में अपनी बात कहते हैं, लेकिन वे आवश्यकतानुसार अलंकारों का प्रयोग भी करते हैं। उनके काव्य में यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि के उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए-

यमक
बैन वही उनको गुनऔरकान वही उन बैन सों सानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सों है रसखानि।।
यहाँ भिन्न अर्थों के साथ रसखानि शब्द की आवृत्ति है।

इसी तरह अर्थालंकार उपमा की बानगी देखि जा सकती है-

तिरछी बरछी सम मारत है दृग बाण कमान सुजान लग्यौ।
जाकोलसै मुख चंद समान सुकोमल अंगनि रूप लपेटी।।

उल्लिखित काव्य पंक्तियों में 'तिरछी बरछी सम मारत है' और 'जाको लसै मुख चंद सामान सुकोमल' में उपमा अलंकार की सुन्दरता अभिव्यक्त है।

रसखान की भाषा का लोक संस्कार उन्हें अपने ढंग का विशिष्ट रचनाकार बनाता है। भले ही उनकी कविता में घनानन्द की तरह प्रवीणता न दिखे या फिर बिहारी की तरह पांडित्य! उनका लोक संस्कार कविता में जिस जीवन राग को सम्भव करता है,

हिंदी कविता उसी की मुरीद हुई। विद्यानिवास मिश्रने लिखा है,ृशब्द-सम्पदा, अर्थ-गौरव, भाव-गरिमा, प्रांजलता, सम्प्रेषण-शक्ति और भावाभिव्यंजना की दृष्टि से रसखान-काव्य गुणात्मक एवं विशिष्ट है। यद्यपि रसखान घनानन्द की भाँति ब्रजभाषा परवीन और बिहारी की भाँति ब्रजभाषा-पंडित नहीं हैं तथापि उनकी ब्रजभाषा की अपनी विशेषता है और वह है उसका ग्राम्य संस्कार, उसकी निरलंकृति और सरलता। सहज और सरल भाषा अर्थात् चिर-परिचित शब्दावली का मार्दवयुक्त प्रयोग वे ही रचनाकार करव पाते हैं जिनका सम्बल निष्ठा है। निष्ठा शब्दाडम्बर में नहीं होती। कहना न होगा कि रसखान ऐसे ही निष्ठावान कवि हैं।' जिन्हें भारतीय काव्यशास्त्र प्रसाद गुण कहता है, उसकी उत्कृष्ट झलक रसखान के रचनात्मक संसार में नजर आता है।

11.7 रसखान के काव्य का वाचन और आस्वादन

रसखान और उनके काव्य से परिचित हो जाने के बाद, सवैये और कवित्त के उदाहरणों की यात्रा से उनकी कविता से और सघन रिश्ता कायम किया जायद्य पहले एक सवैया,

'मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो हरिछत्र पुरंदर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन।।'

यहाँ पर रसखान ने कन्हैया की लीलाभूमि ब्रज के प्रति अपने असीम लगाव का वर्णन किया है। वे कहते हैं, चाहे मनुष्य का शरीर हो या पशु का; हर हाल में ब्रज में ही निवास करने की उनकी चाहत है। यदि मनुष्य हों तो गोकुल के ग्वालों के रूप में बसना चाहिए। यदि पशु हों तो नंद की गायों के साथ चरना चाहिए। यदि पत्थर हों तो उस गोवर्धन पहाड़ पर होना चाहिए जिसे कृष्ण ने अपनी उंगली पर उठा लिया था। यदि पक्षी हों तो उन्हें यमुना नदी के किनार कदम्ब की डाल पर बसेरा करना पसंद हैं।

प्रसाद शैली में रचित इस सवैये की भाव भंगिमा जितनी लाजवाब है, उतनी ही शिल्प योजना भी।

यह सवैया छंद में रचित है। सवैया ब्रजभाषा में रचित काव्य का अत्यंत लोकप्रचलित छंद है।इसके प्राय: पचास भेदों का जिक्र मिलता है। किसी एक लक्षण का निर्धारण सवैये के लिए सम्भव नहींद्य यहाँ प्रत्येक पंक्ति चौबीस वर्णों से युक्त है। इसी तरह रसखान की कविता चित्रात्मकता के लिहाज से अनूठी है, जिसका परिचय यहाँ भी मौजूद है। गो प्रेमी ब्रज और उसके नायक कृष्ण केसे लागाव को प्रकट करने के लिए ऐसी दृश्य योजना बेहतरीन है। ऐसा लगता है, विभिन्न दृश्यों के माध्यम से रसखान आत्मीय सम्वादकर रहे हैं। दूसरी बात है, अनुप्रास अलंकार का साधा प्रयोग।

अब एक कवित्त का उदाहरण देखें-

'संभु धरै ध्यान जाकौ जपत जहान सब,
ताते न महान और दूसर अब देख्यौ मैं।
कहै रसखान वही बालक सरूप धरै,
जाको कछु रूप रंग अबलेख्यौ मैं।
कहा कहूँ आली कुछ कहती बनै न दसा,
नंद जी के अंगना में कौतुक एक देख्यौ मैं।
जगत को ठांटी महापुरुष विराटी जो,
निरंजन, निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं।'

रसखान भारतीय अध्यात्मिक और आनुष्ठानिक परम्परा से आत्मीयपरिचय रखते हैं, जिसका साक्ष्य इस कवित्त में उपस्थित है। इसी तरह उनका कृष्ण प्रेम जगजाहिर है। इस पद में वे कहते हैं, 'शिव स्वयं जिन्हें आराध्य मान उनका ध्यान करते हैं, सारा संसार जिनकी पूजा करता है, जिससे महान कोई दूसरा देव नहीं। वही कृष्ण साकार रूप धारण कर अवतरित हुए हैं और अपनी अद्‌भुत लीलाओं से सबको चौंका रहे हैं। वे विराट देव अपनी लीला के कौतुक मेंनंद बाबा के आंगन में मिट्टी खाता फिर रहे हैं।' यहाँ

भी दृश्यों का संयोजन लाजवाब है। उनके काव्य में फोटोग्राफी और जूम का सुन्दर संयोग मानो संयोजित है। रसखान की ब्रजभाषा इतनी सरल है जैसे कोई लोकचितेरा बेहतरीन अंदाज में अपने अहसास का बयान कर रहा होद्य काव्यशास्त्रीय परम्परा के लिहाज से यह कवित्त छंद में रचित है। कवित्त एक प्रकार का छन्द है। इसमें चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 16, 15 के विराम से 31 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण के अन्त में श्गुरुश वर्ण होना चाहिये। छन्द की गति को ठीक रखने के लिये 8, 8, 8 और 7 वर्णों पर श्यतिश रहना आवश्यक है। उल्लिखितविशेषताएँ इसउदाहरण में भी उपस्थित है।

सन्दर्भ :

- रसखान रचनावली : सम्पादक, विद्यानिवास मिश्र; संयुक्त सम्पादक, सत्यदेव मिश्र. वाणी प्रकाशन, 2004.
- हिंदी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल

अलवर जिले के बहरोड़ एवं नीमराणा तहसील के उच्च प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य दक्षता, व्यावसायिक संतुष्टि एवं आत्म सम्प्रत्यय का विश्लेषणात्मक अध्ययन

हंसराज यादव

शोधार्थी- शिक्षा शास्त्र, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

डॉ० समुन्द्र सिंह

(शोध निर्देशक) एसोसियट प्रोफेसर, आर. पी. एस. टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, अलवर, राजस्थान

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र राजस्थान राज्य के अलवर जिले के बहरोड़ एवं नीमराणा तहसील के उच्च प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य दक्षता, व्यावसायिक संतुष्टि एवं आत्म सम्प्रत्यय का विश्लेषणात्मक अध्ययन पर आधारित है। शिक्षा मानव के लिए एक आवश्यक तत्व बन गया है। हमारे देश में भी शिक्षा की अति आवश्यकता है। हमारी शिक्षा हमारे प्राचीन स्त्रोत एवं वर्तमान व भविष्य निर्माण का अनुपम साधन है। अत: शिक्षा के महत्व को प्राप्त करने हेतु जिन उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं, वे ही प्रथ प्रदर्शक और संकेत स्तम्भ बनकर शिक्षक के ज्ञान, रूचियों, आदर्शों, आदतों और विविध क्षमताओं के विकास हेतु क्षेत्र निर्माण करते है। अत: प्रस्तुत शोध में बताया गया है कि जब विद्यालय में पढ़ाने वाला शिक्षक अपने कार्य दक्षता एवं अपने व्यवसाय के प्रति संतुष्टि दिखाएगा। तभी बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा दे सकेगा। तथा एक योग्य शिक्षक में आत्म सम्प्रत्यय का भी गुण पाया जाता है। जब शिक्षक अपने आप में आत्म संतुष्ट होगा, तभी बच्चों को आत्म संतुष्टि की शिक्षा देगाा अर्थात् तभी वह परिपक्व या गुणवान एवं योग्य विद्यार्थी बन सकेगा।शोध क्षेत्र में अध्ययनरत शिक्षकों के शिक्षण अभिक्षमता का पड़ने वाले प्रभाव का सीधा विद्यार्थियों पर पड़ता है। उच्च प्राथमिक विद्यालयों के छात्र-छात्राओं में शिक्षकों की कार्यदक्षता, व्यावसायिक संतुष्टि एवं आत्म सम्प्रत्यय का शैक्षिक उपलब्धि में पड़ने वाले प्रभाव का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

मूल शब्द-शिक्षक, शिक्षकों की कार्य दक्षता, व्यावसायिक संतुष्टि, आत्म सम्प्रत्यय, शक्षण अभिक्षमता

प्रस्तावना- छात्रों में विकास की शक्तियों तो उसी प्रकार अंतनिर्हित है, जैसे एक बीज में वृक्ष के सभी गुणनिहित होते है। जिस तरह बिना माली के वृक्ष का विकास नहीं हो सकता। किन्तु चतुर माली रूपी शिक्षक उसे सिंचित कर, खाद देकर, उनकी प्राकृतिकप्रकोपों से रक्षा कर उसको वांछनीय दिशा में विकास प्रदान का सकेगा। अत: इस प्रकार स्पष्ट हैं कि बीज रूपी बालक के लिए अध्यापक की महत्वपूर्ण है। शिक्षण कार्य का प्रारम्भ ही इन तीनों को मिलाकर होता हैं- शिक्षक + छात्र + पाठ्यक्रम।

इनमें से किसी एक की अनुपस्थिति होने पर शिक्षण कार्य बाधित हो जाता है। उच्च प्राथमिक विद्यालयों में बालक के सर्वांगीण विकास के लिए यह उत्तम होता है, क्योंकि कक्षा 6-8 तक का बालक को मातृभाषा में शिक्षण कार्य करवाया जाता है।

एक बालक अपने शिक्षक में निहित गुणों का अनुसरण करने का अधिक से अधिक प्रयास करता है। उनके कार्य करने के तरीके को ध्यानपूर्वक समझने का समय होता है। जिसमें अध्यापक विद्यार्थी को सही दिशा-निर्देशन करते है और उन्हें प्रोत्साहित भी करते है।

इस उच्च प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा के कारण ही विद्यार्थियों की सोच ऊँची होती है और उसमें सहनशीलता, सद्भावना और सदाचार की भावना का विकास होता है।

उच्च प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक-शिक्षार्थी अन्तःक्रिया-शिक्षण, शिक्षक तथा विद्यार्थी के साथ होने वाली एक प्रक्रिया है। शिक्षक तथा शिक्षार्थियों द्वारा प्रत्यक्ष उपस्थिति में परस्पर अन्तःक्रिया से विचार विनिमय होता है। जिससे शिक्षक, विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं एवं मनोवृति से परिचित होता है। तथा छात्रों को तदनुरूप शिक्षण उपलब्ध करवाता है। इससे शिक्षण अवश्य ही प्रभावशाली बन जाता है। शिक्षक छात्र का आदर्श होता है। बालक/छात्र की अनुसरण की प्रवृत्ति जन्मजात होती है। छात्र अपने आदर्श शिक्षक का अनुसरण करके उस जैसा ही बनना चाहता है। छात्र उसके व्यवहार से प्रेरित होकर अधिगम करने में तत्पर होगा। अतः शिक्षक में यह गुण होना आवश्यक है।

शिक्षकों की कार्य दक्षता - शिक्षकों के कार्य करने की शैली, पढ़ाने का तरीका, कार्यकुशलता, काम करने की क्षमता आदि में शिक्षक इतना दक्ष है? वह किस प्रकार छात्रों में उत्पन्न होने वाली नूतन जिज्ञासा को कुशलता से समझता है? शिक्षक कार्य दक्षता का प्रमुख घटक शिक्षण प्रभावशीलता माना गया है।

दक्षता- दक्षता का सामान्य अर्थ यह है कि किसी कार्य या उद्देश्य को पूरा करने में लगाया गया समय या श्रम या ऊर्जा कितनी अच्छी तरह से काम आती है लेकिन शिक्षकों के लिए तो केवल बालक के सर्वांगीण विकास में प्रयोग किए गए कौशलों से ही उसकी कार्य दक्षता को आंका जा सकता है। जिससे उसके पढ़ाने का तरीका प्रभावशाली हो सकेा दक्षता का अभिप्राय व्यवसायिक योग्यता, जिसमें अर्जित ज्ञान एवं उच्च स्तर की अवधारणा प्रस्तुत करने की योग्यता शामिल है।

शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि- वर्तमान युग में अध्यापक शिक्षण को व्यवसाय के रूप में अपनाता है एवं व्यवसाय के आधार पर छात्रों को शिक्षा प्रदान करता है।

लेकिन जो वास्तविक शिक्षक होते हैं वह कभी भी अपने व्यवसाय के प्रति अरूचि नहीं रखतेा चाहे कोई भी परिस्थिति क्यों न हो। शिक्षण कराना एक पुण्य का कार्य माना जाता है। शिक्षक की योग्यता के अनुसार उसे व्यवसाय जब मिल जाता है। जैसे उसके जीवन में उसकी प्राप्त डिग्रियां, अनुभव, मानसिक योग्यता आदि के आधार पर उसे उचित अवसर एवं वेतनमान मिलने लगता है, तब वह उससे संतुष्ट हो जाता है और दुगने उत्साह के साथ कार्य करने लगता है।यह उसकी संतुष्टि का घोतक होता है।

शिक्षकों का आत्म संप्रत्यय- अध्यापकों की सभी क्रियाओं का लक्ष्य छात्र की सक्रिय अनुक्रिया है और वह सक्रिय अनुक्रिया तभी होती है, जब छात्र स्व अपनी स्वतः प्रेरणा में संलग्न हो जाता है और यह प्रेरणायें शिक्षक की आत्मा से जुड़ी होती हैं।तभी तो वास्तविक अधिगम द्वारा अभिवृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया आरंभ होती है। सभी शिक्षक अनुभव वैयक्तिक होते हैं और अनुभव व्यक्ति में निहित होते हैं। ज्ञान भावना एवं इच्छा शक्ति का मूल सिद्धांत है। शारीरिक मन प्रतिक्रिया करता है। तब शिक्षा निम्न प्रकार से विभाजित हो जाती है-

शिक्षा

क. शारीरिक कार्य- 1. शरीर की रक्षा 2. कला कौशल

ख. आत्मिक कार्य- 1. बौद्धिक 2. नैतिक 3. सौंदर्यपरक 4. धार्मिक

यही कारण है कि शिक्षक आत्म संप्रत्यय के द्वारा शिष्य को अपने से जोड़ता है। शिक्षक का आत्मिक मूल्य सत्यम, शिवम, सुंदरम होता है। शिक्षक अपनी अंतरात्मा में निहित भावों, विचारों, चिन्तनों को शिष्य में स्थापित करने का प्रयास करता है। आत्म संप्रत्यय शिक्षक के अपने स्वयं के प्रत्यक्षीकरण को बताता हैं। आत्म संप्रत्यय में निहित शिक्षक की भावनाएं, मनोवृति या मानसिकता को दर्शाता है।

बौद्धिक आत्मिक कार्य के बारे में कहा गया है कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' की पौराणिक कहावत के अनुसार मन का प्रसन्न एवं स्थिर रहना, बौद्धिक आत्मविश्वास को बढ़ावा देता है। बुद्धि और मन का आपस में गहरा संबंध है। जिससे विभिन्न प्रकार के संवेगों की उत्पत्ति होती है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन-

अबिद (2007) ने रियाद शहर के सरकारी स्कूलोंमें कार्यरत 472 पुरूष शिक्षकों के विषय जनसांख्यिकीयऔर कार्यचर तथा व्यावसायिक तनाव के बीच सम्बन्ध काआकलन किया। इन्होनें बहुत प्रतिगमन का प्रयोग कियाजिसमें प्रथम के अन्तर्गत यह निष्कर्ष निकाला किजनसांख्यिकीय चर और व्यावसायिक तनाव के मध्यनकारात्मक सम्बन्ध था। द्वितीय के अन्तर्गत कार्यचर औरव्यावसायिक संतुष्टि के मध्य धनात्मक सम्बन्ध था जबकिजन सांख्यिकीय चर की तुलना में अधिक तनाव कोप्रभावित करता था।

मौर्य प्रीति (2013) ने कर्मियों के आत्मसम्मान और नौकरी की संतुष्टि के बीच संबंधों पर शोध किया। उन्होंने कार्य संतुष्टि और आत्म-सम्मान के बीच सकारात्मक संबंध पाया। जो व्यक्ति अपने कार्य से संतुष्ट होते हैं उनमें निम्न कार्य संतुष्टि वाले व्यक्तियों की तुलना में उच्च आत्म-सम्मान होता है। क्रिस्टो एट अल। (2001) ने पूर्व-सेवा शिक्षकों के आत्म-सम्मान और गणित की उपलब्धि पर काम किया। उन्होंने पाया कि शिक्षक का आत्म-सम्मान शिक्षण में समग्र योग्यता, उच्च छात्र उपलब्धि और छात्रों के साथ मजबूत संबंधों पर सहसंबद्ध है।

मेहता (2012) ने शिक्षकों के बीच नौकरी की संतुष्टि पर यह जानने के लिए जांच की कि क्या शिक्षकों के बीच नौकरी की संतुष्टि की धारणा संगठन के प्रकार (निजी बनाम सरकार) और लिंग (पुरुष बनाम महिला) से प्रभावित थी। पुरुष बनाम महिला की कार्य संतुष्टि की धारणा का अध्ययन करने के लिए वर्णनात्मक विश्लेषण किया गया था और टी-परीक्षण का उपयोग किया गया था।

लिआंग और अकिबा (2017) ने बताया कि छात्रों के परिणामों के लिए शिक्षकों के काम की भूमिका को व्यापक रूप से माना जाता है, अब सवाल यह है कि क्या शिक्षक अपने काम के माहौल से संतुष्ट हैं। शिक्षक की नौकरी से संतुष्टि के कई महत्वपूर्ण और दूरगामी निहितार्थ हैं। सबसे पहले, यह शिक्षक की भलाई में योगदान देता है क्योंकि संतुष्ट शिक्षक तनाव और जलन के प्रति कम संवेदनशील होते हैं। इसके अलावा, इस बात के प्रमाण हैं कि शिक्षक जो अपनी नौकरी से संतुष्ट हैं, वे भी बेहतर महसूस करते हैं।

शोध अध्ययन विधि-

किसी भी कार्य या शोध को सफल बनाने के लिए उस कार्य को योजनापूर्ण ढंग, नियमों, निश्चित व्यवस्था तथा क्रियाविधि द्वारा करना ही सम्भव है, क्योंकि एक कार्य को नियमपूर्वक तथा विधिपूर्ण तरीके से करने से सत्य की खोज आसानी से होती है तथा मार्ग में आने वाली समस्याओं तथा परेशानियों को दूर किया जा सकता है अर्थात् हम कह सकते है कि विधि या तरीका शोध रूपी आशियाना की महत्त्वपूर्ण नींव की ईंट है जिसकी कमी में शोधकर्त्ता शोधरूपी आशियाना को ठीक से बनाना तो क्या खड़ा भी नहीं कर सकता। यदि शोधार्थी विधि का चुनाव तथा उसका ब्यौरा ठीक ढंग से करता है तो शोध समस्या से सम्बन्धित आकड़े विश्वसनीय तथा वैध प्राप्त होते है तथा साथ ही शोध के उद्देश्यों की प्राप्ति ठीक से होती है। उद्देश्य रूपी प्रश्नों के उत्तरों को जानने के लिए अलग-अलग प्रणाली या तरीके हो सकते है जो इस प्रकार हैं -

1. ऐतिहासिक अनुसंधान:- जो बीत चुका है, भूत बन चुका है। उसको इतिहास कहा जाता है। शिक्षा तथा समाजशास्त्र के क्षेत्र में अतीत की घटनाएं दूर-दूर तक फैली हुई है। ऐसे शोधकार्य जिनमें उन घटनाओं, प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं का अध्ययन किया जाता है जो अतीत में घटित होती है। ऐतिहासिक अनुसंधान में तथ्यों से प्राचीन घटनाओं का संबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। किसी समस्या, घटना अथवा व्यवहार के उचित मूल्यांकन के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित होना आवश्यक है। ऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान घटनाक्रमों का अध्ययन कर वर्तमान और भविष्य में इनकी सार्थकता को ज्ञात करना है। यह अनुसंधान शिक्षा मनोविज्ञान एवं अन्य

सामाजिक विज्ञानों में चिंतन को नई दिशा एवं नीति निर्धारण में सहायता करता है। इस शोध के अंतर्गत समाज की प्राचीन घटनाओं, अभिलेखों तथा जीवनी की सहायता से शोधकार्य किया जाता है। वैयक्तिक अध्ययन तथा निदानात्मक शोध इसके उदाहरण है।

2. दार्शनिक अनुसंधान:- दर्शन जैसा मूल तत्व अनुसंधान में असीमित सम्भावनाओं को जन्म देता है क्योंकि यह मानवीय सत्य तथा जीवन से जुड़ा है। इस विधि मे शोधकर्ता अपनी स्वयं की समझ से तथ्यों की खोज करता है। विश्लेषण करता है। तथा क्रमबद्ध करके विवेचना के लिए आधार का निर्माण करता है। दर्शन के अंतर्गत मस्तिष्क और सत्य के मध्य तार्किक वाद-विवाद हमेशा चलते रहते है। शोधकर्ता को इन्हीं से होकर दार्शनिक समस्या का समाधान खोजना होता है। दार्शनिक विधि में पुस्तकालय विधि तथा विषय-वस्तु विधि का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है। शिक्षा के अध्ययन के लिए दर्शन आवश्यक है क्योंकि शिक्षा का स्वरूप दर्शन से निर्धारित किया जाता है। जैसे- भारतीय दर्शन तथा शिक्षा।
3. घटनोत्तर अनुसंधान:- घटनोत्तर अनुसंधान को Ex-Post-Facto Research कहते है जिसका अर्थ किसी घटना के घटित हो जाने के बाद किया जाने वाला अध्ययन। इस शोध में कोई तथ्य, घटना या चर पहले से ही प्राकृतिक रूप से घटित होने के बाद इसका मापन किया जाता है। इसमें मापन के आधार पर मात्रात्मक सह-संबंध की गणना की जाती है। तथा साथ ही साथ कार्य-कारण संबंध का भी अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए कैंसर पर धूम्रपान के प्रभाव को देखते है। यह अनुभवजन्य, वैज्ञानिक एवं तार्किक सिद्धांतों पर आधारित है।
4. कारणवाची तुलनात्मक अनुसंधान:- इस प्रकार के अध्ययनों में घटनाओं के कारणों की खोज की जाती है। इसी कारण इसे कारणवाची कहा गया है। कारण-निर्धारण जिस विधि के आधार पर किया जाता है, वह तुलनात्मक होती है। इसलिए इसे कारणवाची तुलनात्मक अनुसंधान विधि कहते है। इस विधि में यह जानना होता है कि कुछ निर्धारित, चयनित, तत्वों, परिस्थितियों, कारकों, शोध समस्याओं, विषय अथवा घटना के बीच कोई कारण-प्रभाव संबंध है अथवा नहीं। इसके लिए बहुत सी समान घटनाओं को लेकर उनके बीच समानताओं एवं अंतरों की तुलना के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है।
5. जातिवृत्तात्मक अनुसंधान:- इसे अंग्रेजी में Ethmographic Research कहते है। इसका उद्देश्य घटनाओं की वर्तमान स्थिति एवं उनके ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण एवं वर्णन करना होता है। इन वर्णनों में गुणात्मक तथा दृश्यात्मक प्रस्तुति पर बल दिया जाता है। जातिवृत्त मानवशास्त्र की वह शाखा है जिसके अंतर्गत वंशों, जातियों-प्रजातियों के उद्भव व विकास का ऐतिहासिक रूप में विश्लेषण किया जाता है। इस विधि में मनुष्य के व्यवहारों का वर्णन किया जाता है। इसके अंतर्गत यह भी विश्लेषण किया जाता है कि व्यक्ति अपनी गतिशीलता एवं क्रियाओं का प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार करते है? तथा अन्य व्यक्तियों से संबंधों एवं क्रियाओं का कैसे उपयोग करते है? जैसे किशोरों में फैली अशांति, विद्यालयों की प्रगति, माहौल, परिवेश व परिवर्तन का अध्ययन, विभिन्न समुदायों में जीवन-मूल्यों का प्रचलन आदि।
6. मूलभूत अनुसंधान:-वे अनुसंधान जिसमें निष्कर्षों के आधार पर वैज्ञानिक नियमों को सामने लाया जाता है। उनका प्रतिपादन किया जाता है। इसमें शोधकर्ता का कार्य कारण के तथ्यों को एकत्रित करना होता है क्योंकि इन तथ्यों के सहायता से किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।
7. व्यवहृत अनुसंधान:- इन अनुसंधानों में किसी विशेष समस्या का समाधान निकालने पर कार्य किया जाता है। विज्ञान के विशिष्ट नियमों का किसी दूसरे विशिष्ट पर उसके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। एंड्रीआस ने कहा है, ''यदि शोध कर्ता अपने शोधकार्य में किसी क्रियात्मक समस्या का समाधान करता है तो वह शोध व्यवहृत अनुसंधान कहलाता है।''
8. प्रविधि अनुसंधान:- इस अनुसंधान का संबंध निरीक्षण की विधियों से संबंधित समस्याओं के शोध से है। जब किसी चर के निरीक्षण की अनेक विधियां उपलब्ध हो तो प्रविधि अनुसंधान इन विधियों का तुलनात्मक अध्ययन करके स्पष्टीकरण लाता है।
9. वर्णनात्मक अनुसंधान:- इस शोध अध्ययन में अध्ययन कार्य के समय जो परिस्थितियां हैं , उनका उसी रूप में शोधार्थी द्वारा प्रस्तुतीकरण किया जाता है। इसमें तथ्यों का संकलन महत्वपूर्ण होता है। इस शोध विधि का सबसे ज्यादा प्रयोग

वर्तमान स्थिति क्या है? इस विषय की वर्तमान स्थिति क्या है? जैसे प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने में किया जाता है। वर्णनात्मक अनुसंधान 'क्या है' का वर्णन एवं विश्लेषण करता है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य वर्तमान दशाओं, क्रियाओं, अभिवृत्तियों तथा स्थिति के विषय में ज्ञान देता है। शोधकर्ता समस्या से संबंधित तथ्यों को एकत्रित करता है। साथ ही में वह समस्या से संबंधित विभिन्न चरों में आपसी संबंध ढूंढ़ने का प्रयास करता है तथा पूर्वानुमान भी करता है। इस प्रकार के शोध में प्राय: क्षेत्र-अध्ययन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली, अंतर्वस्तु विश्लेषण आदि अध्ययन विधियां सम्मिलित रहती है। इस शोध में वर्तमान की घटनाओं, तथ्यों तथा संबंधों के अध्ययन को अधिक बल तथा महत्व दिया जाता है तथा उनके वर्णन स्वरूप का पता लगाया जाता है।

10. सर्वेक्षण अनुसंधान:- सर्वेक्षण को समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति के रूप में देखा जाता है। अंग्रेजी भाषा के SURVEY शब्द का हिन्दी शब्दार्थ सर्वेक्षण होता है। SURVEY शब्द की उत्पत्ति "SUR" अथवा "SOR" तथा "VEEIR"; "VEIOR" हुई मानी जाती है। कह सकते है कि सर्वे का अर्थ किसी घटना, परिस्थिति को ऊपर से देखने या उसका अवलोकन करने से है। सर्वेक्षण से अभिप्राय ऐसी शोध विधि से है जिसमें अध्ययनकर्ता घटना स्थल पर स्वयं जाकर किसी घटना का वैज्ञानिक तरीके से निरीक्षण करता है तथा उससे संबंधित सभी तथ्यों की खोज करता है। सर्वेक्षण के द्वारा हमें तीन प्रकार की सूचनाएं मिलती है:-

    क. वर्तमान स्थिति क्या है?

    ख. वर्तमान स्तर और मान्य स्तर में तुलना।

    ग. वर्तमान स्तर का विकास।

सांख्यिकी:- प्रस्तुत शोध में जिन सांख्यिकी पर विधियों की सहायता ली जाएगी वह निम्नलिखित है:-

- मध्यमान
- प्रमाणिक विचलन
- 'टी टेस्ट
- क्रांतिक अनुपात

शोध-अध्ययन का औचित्य:-शोध समस्या की आवश्यकता व महत्व को जानकर ही उसकी उपयोगिता को निश्चित कर सकते है। किसी भी शोध-अध्ययन की सफलता तब मानी जाती है जब उसकी आवश्यकता तथा महत्त्व को बारीकी से जान लिया जाता है। समाज और राष्ट्र के लिए उस समस्या पर कार्य करने का क्या लाभ है यह सब समस्या पर कार्य करने से पहले जानना आवश्यक है। बिना आवश्यकता तथा महत्त्व के किसी भी ली गई समस्या तथा उपस्थित समस्या की उपयोगिता निश्चित नही कर सकते।इससे शोधकर्ता उच्च प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य दक्षता, व्यावसायिक संतुष्टि एवं आत्म सम्प्रत्यय की उपलब्धियों को जान सकेगा।

शोध के उद्देश्य:-

- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों के लिंग के आधार पर उनकी कार्य दक्षता का अध्ययन करना।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों के लिंग के आधार पर उनकी व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन करना।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों के लिंग के आधार पर उनके आत्म सम्प्रत्यय का अध्ययन करना।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों की कार्य दक्षता का अध्ययन करना।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन करना।

- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों के आत्म सम्प्रत्यय का अध्ययन करना।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य दक्षता का अध्ययन करना।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन करना।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों के आत्म सम्प्रत्यय का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएं:-

- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों एवं महिला शिक्षकों की कार्य दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों एवं महिला शिक्षकों के आत्म संप्रत्ययमें कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों की कार्य दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों के आत्म संप्रत्ययमें कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों केशिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों के आत्म संप्रत्ययमें कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं।

सीमांकन

1. प्रस्तुत शोध राजस्थान राज्य के अलवर जिले के बहरोड़ एवं नीमराणा तहसील के शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों केउच्च प्राथमिक विद्यालयों तक सीमित है।
2. प्रस्तुत शोधकार्य में सिर्फ 600 शिक्षकों को न्यादर्श के लिए शामिल किया गया, जिसमें 15 सरकारी विद्यालयों के (150 पुरूष शिक्षक + 150 महिला शिक्षक) और 15 गैर सरकारी विद्यालयों के (150 पुरूष शिक्षक + 150 महिला शिक्षक) सम्मिलित किए गए।
3. प्रस्तुत शोध राजस्थान राज्य के अलवर जिले के बहरोड़ एवं नीमराणा तहसील के शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों केउच्च प्राथमिक विद्यालयों के सिर्फ 30 विद्यालयों (15 सरकारी विद्यालय + 15गैर सरकारी विद्यालय) को ही शामिल किया गया।
4. यह अध्ययन राजस्थान राज्य के अलवर जिले के बहरोड़ एवं नीमराणा तहसील के उच्च प्राथमिक विद्यालयों सीमित है।
5. प्रस्तुत शोध में सिर्फ तीन पहलुओं -शिक्षकों की कार्य दक्षता, व्यावसायिक संतुष्टि एवं आत्म सम्प्रत्यय को चर के रूप में सम्मिलित किया गया।

परिणाम व निष्कर्ष

- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों एवं महिला शिक्षकों की कार्य दक्षता में सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों एवं महिला शिक्षकों के आत्म संप्रत्ययमें सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों की कार्य दक्षता में सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण शिक्षकों के आत्म संप्रत्यय में सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य दक्षता में सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।
- अलवर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों के आत्म संप्रत्यय में सार्थक अन्तर पाया गया।

सुझाव

शिक्षण प्रभावशीलता तथा व्यावसायिक संतुष्टि उन शिक्षण संस्थाओं में अच्छा है, जहां अध्यापकों की सेवाशर्तें सुरक्षित हैं। अध्यापक पेशा व्यवसायिक कार्यक्रम के रूप में जाना पहचाना जाता है। एक व्यक्तिकेअध्यापक बनने के बाद उससे अपेक्षा की जाती है कि अध्यापक स्वयं को सतत अद्यतन बनाए रखे।किसी भी शिक्षण संस्था की प्रगति हेतु शिक्षकों की शैक्षिक व्यवसायिक विकास शिक्षण प्रभावशीलता, आत्म संप्रत्यय एवंव्यावसायिक संतुष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष होता है।

सामान्यत: शिक्षा व्यवस्था में सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षण संस्थाएं होती है। अर्थात् सरकारी श्रेणी के विद्यालयों के वेतन हेतु धन मुहैया सरकार कराती है ,साथ ही शिक्षकों कर्मचारियों की सेवा शर्तो में प्रतिबद्धता आदि निश्चित होती है। गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं में आधारभूत सुविधाएं शिक्षक एवं कर्मचारियों के वेतन भत्ते संस्था संचालित करने वाले समूह व्यक्ति द्वारा एवं सेवा शर्त सरकार द्वारानिर्धारित मापदंडानुसार व्यवस्थित होता है। अब प्रश्न यह है कि क्या सरकारी तथा गैर सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता तथा कार्य संतुष्टि में एकरूपता है या अलग-अलग है?

इस संदर्भ में अध्ययन करने की आवश्यकता है।अत: शिक्षक संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था का केंद्रक होता है, यदि वह चाहे तो अपने शिक्षण से महानव्यक्तित्व का विकास कर सकता है, जो केवल समाज के एक ही क्षेत्र के लिए नहीं बल्कि सभी क्षेत्रों केलिए आवश्यक है, इसके लिए उसे स्वयं को सकारात्मक भाव के साथ रहना होगा और यह जिम्मेदारीकेवल एक शिक्षक की ही नहीं बल्कि समाज की भी है कि वह एक शिक्षक को अपने सकारात्मकविचारों के अंबर के नीचे रहने दे।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

Vijaya Laxmi Ghali (2005); Teacher effectiveness and Job – Satisfaction of women teachers.Education track, Vol.4, No.7, pp.29-30

Tomar, S.K.(2015); A Study of Teacher effectiveness and job- Satisfaction and Secondary Schools,Indan Journal Of Resarch, Vol.4, Issue 6, ISSn – 1991 – PP95-96

Mathur, P& Khurana A. (1996); Teacher"s perception of school climate and self actualization,Journal of India Education, Vol. 22

Mutha, D. N.; An Attitudinal and personality study of of Effectiveness Teacher. Ph.D. Psychology.Jodhpur: Jodhpur University.

Singh, Jayprakash(2013);Relationship between teaching complete and job satisfaction: A studyamong teacher educations working in self-financing in Uttar Pradesh, Indian JournalAppliedResearch vol 3:5

कौल, लोकेश (2009), मेथडालाजी ऑफ एजूकेशनल रिसर्च. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस

सिंह, अरूण कुमार (2006), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ. वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन

भटनागर, सुरेश (2010),शिक्षा मनोविज्ञान. मेरठ: आर. लाल बुक डिपो।

पटनायक, एस.पी. और शर्मा, बी. के. (2007), प्राथमिक विद्यालयों के सांगठनिक स्वास्थ्य और शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन. जर्नल ऑफ टीचर एजुकेशन एंड रिसर्च, नोएडा. 2(2), दिसंबर 2007 पीपी.59-66।

राजेश कुमार सिंह व राजेन्द्र कुमार जायसवाल (2006), सरकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का अध्ययन. भारतीय आधुनिक शिक्षा. जुलाई 2006 http://www.ncert.nic.in/publication/journals/pdf_files/adhunik_shikshaoct-06/bhartiya_adhunik_july_oct06.pdf

शर्मा, कविता (2017), सेवारत् शिक्षकों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता तथा व्यावसायिक संतुष्टि के संदर्भ मेंउनके विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन। AInternational Journal of Education andScience Research Review. August- 2017, Volume-4, Issue-4.

सुनील कुमार व नितिन कुमार वर्मा (2015), कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध स्ववित्त एवम् अनुदान प्राप्त शिक्षक-शिक्षांस्थानों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य-सन्तुष्टि का विश्लेषणात्मक अध्ययन. IRJMST. Vol 6 Issue 12[Year 2015] ISSN 2250 – 1959 (0nline).

भारत में भू-अभिलेखों का आधुनिकीकरण

डॉ० जाकिर हुसैन

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राजस्थान)

सार-संक्षेप:

भू-प्रबंधन को भूमि के प्रति एक ऐसे समग्र दृष्टिकोण के रूप में लिया जा सकता है, जिसमें व्यक्तियों एवं समुदायों के भू-अधिकारों की मान्यता एवं उनके अंतर्निहित अधिकार शामिल हैं। भू-प्रबंधन के अंतर्गत भू-अभिलेखों का सृजन एवं रखरखाव व्यक्तिगत अधिकारों में कटौती एवं अतिरिक्त भूमि के वितरण संबंधी भूमि हदबंदी कानूनों को लागू करना, काश्तकारी कानूनों को लागू करना तथा काश्तकारों का संरक्षण, आवास भूमि अधिकारों को लागू करना आदि आते हैं। भू-अभिलेखों का प्रबंधन समग्र भू-प्रबंधन का एक प्रारंभिक पक्ष है। इस लेख का मकसद भारत में भू-अभिलेखों के प्रबंधन की चुनौतियों, समस्याओं तथा संभावित निदानात्मक उपायों का विश्लेषण करना है। मैंने इस आलेख में भारत में भूमि सुधारों के अंतर्गत भू-अभिलेखों के आधुनिकीकरण की आवश्यकता को उजागर कराते हुए इस हेतु किए गए प्रयासों की समीक्षा की है और उपयोगी सुझाव दिए हैं।

मुख्य शब्द: भू-अभिलेख, भू-प्रबंधन, भूमि सुधार, विभागीय समन्वय, विकास, भू-उपयोग, शहरीकरण

परिचय:

भूमि सभी आर्थिक गतिविधियों का आधार है। भारत में भूमि समस्याओं ने नीति-निर्माताओं और शिक्षाशास्त्रियों दोनों का ही ध्यान अपनी ओर खींचा है। भूमि में नये सिरे से यह दिलचस्पी उदारीकरण के प्रभाव और अर्थव्यवस्था के खुलेपन के कारण पैदा हुई है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक बदलाव के संदर्भ में भी भूमि संबंधी समस्याओं में लोगों की रुचि बढ़ी है। भारत में भूमि नीति से संबंधित प्रयास विभिन्न चरणों से होकर गुजरे हैं। उनमें सरकार के विभिन्न हस्तक्षेपों के कारण विकास के प्रति समग्र दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन आया है।

भारत में भूमि एक जटिल मुद्दा है जिसमें राज्य सरकार के विभिन्न विभाग संलिप्त हैं। औपनिवेशिक ब्रिटिश नौकरशाही को अनेक प्रशासनिक न्यायिक एवं राजनीतिक शक्तियां प्राप्त थी और उसने अपने औपनिवेशिक हितों को साधते हुए ही भारत पर शासन किया था। स्वतंत्र भारत ने इससे हटकर काम किया और राज्य के इन कार्यकलापों को विभिन्न संस्थाओं एवं विभागों के बीच विकेंद्रित किया। वर्तमान में भूमि से संबंधित मुद्दों को राजस्व, सर्वेक्षण और भूमि बंदोबस्त एवं पंजीयन विभाग सहित विभिन्न सरकारी विभाग निपटाते हैं। ये विभाग स्वतंत्र रूप से काम करते हैं और अंतर- विभागीय तालमेल की जरा भी गुंजाइश नहीं रहती है। भारत का भू प्रबंधन काफी हद तक नौकरशाही द्वारा नियंत्रित रहा है। सामान्य तर्क यह है कि भू-अभिलेख की पवित्रता अखंड है और यह सिर्फ राजस्व अधिकारियों के हाथ में ही सुरक्षित है। ऐसे प्रबंधनों के दायरे से जनता एवं जनसंस्थाएं बाहर ही रही हैं। हाल के वर्षों के दौरान नौकरशाही पर काम और जवाबदेही का भारी बोझ आ गया है इसलिए उनके यहां भू-प्रबंधन के मुद्दे गौण पड़ गए।

मुख्य आलेख

भूमि को प्राकृतिक संसाधन मानने से कहीं आगे बढ़कर आज उसे एक ऐसी वस्तु माना जाता है जिसकी खरीद-फरोख्त की जा सकती है। महानगरों के आसपास की जमीन की कीमतों में बेतहाशा उछाल तथा नवधनाढ्य बिल्डरों के एक विशाल वर्ग के

उदय ने साबित कर दिया है कि आज भूमि एक ऐसी चीज है जिसका बड़ी मात्रा में संचय करके अनेक लोगों के जीवन को प्रभावित किया जा सकता है। सोचने वाली बात है कि अगर भूमि के अधिकांश भाग का स्वामित्व कुछ ही हाथों में सिमट जाए तो कृषि उत्पादन, आवासीय परिसरों या समतामूलक समाज के निर्माण के स्वप्न का क्या होगा? खेतों पर जीतने वाले लोगों के स्वामित्व का ज्वलंत प्रश्न इतना अधिक बुनियादी होता जा रहा है कि आज नागरिक समाज और राज्य भूमि सुधार को आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी मानने लगे हैं।

ऐतिहासिक रूप से भारत में भू-अभिलेखों का प्रबंधन मुगल काल में शुरू हुआ था जो ब्रिटिश शासन को विरासत के रूप में मिला था। उसका काम राजस्व वसूली पर केंद्रित था। स्वतंत्र भारत में 1950 एवं 1960 के दशक में भूमि सुधार के प्रारंभिक अच्छे प्रयासों के बावजूद भू अभिलेखों का समुचित प्रबंधन एक उपेक्षित क्षेत्र बना रहा। अर्थव्यवस्था में वृद्धि के साथ भू-राजस्व मात्रा एवं महत्ता के हिसाब से गैर महत्वपूर्ण बन गया। इन दिनों अल्प भू-राजस्व की वसूली की लागत के कारण अनेक राज्य इसकी वसूली की परवाह तक नहीं करते। भू-राजस्व के महत्व के कम हो जाने के कारण राज्य के विषयों में भी भू-अभिलेख प्रबंधन हाशिये पर चला गया।

सर्वेक्षण के कुछ काम जैसे जो 1964 में दरभंगा एवं भागलपुर जिलों में शुरू हुए, अभी भी निष्कर्षात्मक समापन तक नहीं पहुंच पाए है। सर्वेक्षण एवं बंदोबस्त के सावधिक व्यवहार की कानूनी जरूरत 1947 के बाद की अवधि के अनुरूप पूरी नहीं की गई। सर्वेक्षण का काम इतना धीमा है कि पूरा होने से पहले ही वह प्राचीन हो गया। ऐसा मुख्य रूप से इसलिए हुआ, क्योंकि त्रिकोणीय व्यवस्था के साथ सपाट तालिका वाली परंपरागत पद्धति अपनाई गई थी। यह परंपरागत सर्वेक्षण संचालन की पद्धति पुरानी पड़ गई है, इसमें समय ज्यादा लगता है, श्रमशक्ति ज्यादा लगती है, खर्चीला है तथा उसमें लगे सरकारी कर्मचारियों में गलत मनोवृत्ति को बढ़ावा देने वाला है।

प्रशासन के ढीले-ढाले रवैये और उदासीन व्यवहार के कारण अभिलेख का एक बड़ा हिस्सा, जहां भी हो, जीर्ण-शीर्ण हो जाता है और परिणामत: अनुपलब्ध हो जाता है। गांवों के भू अभिलेखों को अद्यतन बनाने के लिए सर्वेक्षण के काम को अंजाम देने की कोई कोशिश नहीं की गई है, जिससे वे उपलब्ध नहीं हैं और पुनर्सर्वेक्षण का काम खर्चीला एवं ज्यादा समय लेने वाला हो गया है। यह देखा गया है कि पटवारी, ग्राम अधिकारी, मंडल अधिकारी, राजस्व इंस्पेक्टर आदि जैसे बुनियादी राजस्व अधिकारियों में यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि वे ग्रामीण इलाकों से हटकर जिले के शहरी तथा अर्द्ध-शहरी इलाकों में रहकर काम करना चाहते हैं। काम की जगह पर इन राजस्व अधिकारियों की अनुपलब्धता तथा ग्रामीण लोगों तक संपर्क घटने के कारण राजस्व प्रशासन के सुगम संचालन में अड़चनें पैदा हो रही हैं और बिना स्थल निरीक्षण के ही भारी संख्या में भूमि विवादों का निपटारा कर दिया जाता है। ग्रामीण लोगों की इस दुर्गति में तब और इजाफा हो जाता है जब अधिसंख्य राजस्व अदालतों का काम अंग्रेजी में किया जाता है। अंग्रेजी में काम करने की प्रवृत्ति अबाध रूप से जारी है जबकि विशाल भारतीय ग्रामीण इलाकों में लोगों को अंग्रेजी का ज्ञान बहुत कम है।

वर्तमान में राजस्व अदालतों में भूमि विवाद से संबंधित हजारों मुकदमे लंबित है जिससे उन पर भारी बोझ आ गया है। राजस्व अधिकारियों, खासकर शीर्षस्थ राजस्व अधिकारियों द्वारा विवाद निपटारे के काम के लिए अपर्याप्त समय दिया जाता है। ऐसा दो कारणों से होता है- अन्य कार्यों में उनकी भारी व्यस्तता तथा इस विषय को कम प्राथमिकता देना। राजस्व अधिकारियों को दिया गया प्रशिक्षण भी अपर्याप्त होता है। विवाद निपटारे के प्रशिक्षण से ज्यादा उन्हें अदालतों की प्रक्रिया का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। इसका परिणाम यह होता है कि विषय से ज्यादा फार्म पर जोर डाला जाता है। दस्तावेजों पर और शपथ की प्रक्रिया के दौरान मौखिक साक्ष्य पर ज्यादा निर्भरता होती है और स्थल निरीक्षण कर तथ्य जानने पर कम भरोसा किया जाता है। जिस मामले में स्थल निरीक्षण भी होता है, उसमें पाया गया है कि दस्तावेजों के अवलोकन के दौरान निरीक्षण संबंधी टिप्पणी का सही ढंग से उल्लेख नहीं किया जाता है. और साथ ही वास्तविक मुद्दों पर जानबूझकर भ्रमित करने की कोशिश की जाती है, जिससे खासकर गरीब लोगों को हानि होती है।

भू-राजस्व प्रशासन गैर-योजना मद में शामिल है, जिससे अक्सर उसके पास संसाधनों की कमी रहती है। प्राथमिकता वाले विषयों में भी उसका क्रम नीचे होता है। योजना मद वाले दूसरे विषयों को अपेक्षाकृत बेहतर प्राथमिकता मिलती हैं, क्योंकि उसे योजना आयोग से 4 संसाधन प्राप्त होता है जबकि राजस्व प्रशासन को केवल अपने ही संसाधनों का उपयोग करना पड़ता है जिससे उनसे

ठोस परिणाम नहीं मिल सकते। यह भी विडंबना है कि छोटा सवैधानिक जनादेश मिलने पर भी केंद्र सरकार ने भू-प्रबंधन के मामले में बड़ी-बड़ी पहले की है जबकि राज्य सरकारों ने उसका कोई अनुसरण नहीं किया है। इससे पता चलता है कि राज्यों के कार्यकलापों में इसे मामूली प्राथमिकता मिलती है। भारत सरकार ने राजस्व प्रशासन को सुदृढ़ करने की पहल की है और राज्य सरकारों को समान राशि (50:50 के अनुपात में) प्रदान कर भू-अभिलेखों को अद्यतन करने का कदम उठाया है। इसी तरह संबद्ध मंत्रालय ने 1988-89 में शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता देकर भू-अभिलेखों को कंप्यूटरीकृत और नक्शों का अकीकरण (डिजिटाईजेशन) करना शुरू किया है। इस योजना को 1992-93 में एक पूर्ण विकसित कार्यक्रम के रूप में हाथ में लिया गया है। तब से राज्यों ने भी अपने तरीक से भू-अभिलेखों की कंप्यूटरीकृत करना शुरू कर दिया है। यह गौर करने की बात है कि जहां कुछ राज्यों ने कंप्यूटरीकरण कार्यक्रम को आगे बढ़ाया है और इसमें उल्लेखनीय सफलता हासिल की है वहीं दूसरे राज्य अभी ऐसा शुरू ही नहीं कर पाए हैं। इस मामले में कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात, गोवा तथा आंध्र प्रदेश के नाम लिए जा सकते हैं जहां उल्लेखनीय प्रगति हुई है। दूसरे राज्यों में काम धीमा है। जबकि कुछ अन्य राज्य इस कार्यक्रम को शुरू करने में पिछड़ गए हैं। इस गति से देश के भू-अभिलेख को पूरी तरह कंप्यूटरीकृत करने में और 15-20 साल लगेंगे। अधिकतर राज्यों में इस कार्यक्रम को लाजवाब तरीके से हाथ में लिया है और दूसरे समर्थक कार्यक्रमों से उसका कोई संयोजन नहीं है। भारत सरकार एवं राज्य सरकार के ऐसे अनेक विभाग मंत्रालय हैं जिन्होंने खुद अपना ग्रामीण आंकड़ा आधार तैयार किया है और उनका एक-दूसरे से कोई संपर्क नहीं है जबकि जरूरत एक एकीकृत आंकड़ा आधार की है।

जहां कुछ राज्यों में कंप्यूटरीकरण का व्यापक इस्तेमाल हो रहा है, बाकी राज्यों में कंप्यूटरीकृत प्रणाली के लिए वांछित व्यापक प्रयोजनीयता ही उपलब्ध नहीं है। अपेक्षा की गई थी कि कंप्यूटरीकरण कार्यक्रम भू-प्रबंधन प्रणाली में बदलाव लाएगा लेकिन ऐसा हो न सका और कप्यूटरीकरण कार्यक्रम को वर्तमान प्रणाली में ही समायोजित कर लिया गया। पूर्व के दो कार्यक्रमों की खामियों को ध्यान में रखकर ग्रामीण विकास मंत्रालय के भू-संसाधन विभाग ने राष्ट्रीय भू-अभिलेख प्रबंधन कार्यक्रम के नाम से एक नया कार्ययोजना तैयार की है जो ई-प्रशासन संबंधी एक बड़ी पहल है। इसका मकसद सिर्फ कंप्यूटरीकरण करना नहीं है बल्कि भू-अभिलेखों को अद्यतन करना एवं रखरखाव, उप रजिस्ट्रार कार्यालय का कंप्यूटरीकरण तथा इसका राजस्व कार्यालयों से संयोजन, समय पर दाखिल-खारिज आदि भी करना है।

राष्ट्रीय भू अभिलेख प्रबंधन कार्यक्रम इस ढंग से तैयार किया गया है जिससे कि नागरिक उन्मुखी सेवा प्रदान की जा सके जिसमें नक्शे के साथ आरओआर आवास, जाति एवं आय आदि से संबंधित प्रमाणपत्र भारत में कही भी कभी भी प्राप्त हो सकें, भूमि संबंधित आंकड़ा उपलब्ध हो सके और तेजी कुशलतापूर्वक पंजीयन का काम हो सके। तथा परंतु राज्य सरकारों ने इन कार्यक्रमों के लिए मिली केंद्रीय सहायता का पूरा लाभ नहीं उठाया। इसके बड़े हिस्से का उपयोग हो नहीं हो पाया। ताजा आकलन के अनुसार राष्ट्रीय भू-अभिलेख आधुनिकीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत पिछले तीन साल के दौरान जारी 538 करोड़ रुपये में से 515 करोड़ रुपये खर्च ही नहीं हुए। अपने ही घर में दस्तावेजों को सही-सलामत रखने के लिए राज्य सरकारों के प्रयासों का स्तर प्रायः शून्य रहा।

सुझावः

भूमंडलीकरण और इंटरनेट के वर्तमान दौर में दुनिया के भूमि सुधारों को समझकर हमें भूमि सुधारों की एक ऐसी दुनिया निर्मित करनी पड़ेगी जिसमें विसंगतियों, व्यतिक्रमों और बाधाओं की मात्रा न्यूनतम हो अगर जमींदारी इस्तमरारी और रैयतवारी- महलवारी जैसी भूमि व्यवस्थाएं हमारे अतीत में व्याप्त रही हैं तो जापान का उदाहरण लेकर हम सीख सकते हैं कि किस प्रकार वहां पहले तो मेजी शासन के दौरान भूमि कर सुधार (जिसे जापान में शचिका जाता है। 1873 में लागू किया गया और बाद में 1947 में नये किस्म के भूमि सुधारों की प्रक्रिया प्रारंभ की गई।

भूमि संबंधी जरूरतों के मुद्दे को दशकों तक लटकाए जाने के बावजूद उसे प्रमुखता दी जानी चाहिए। राष्ट्रीय भू-परिषद को राष्ट्रीय विकास परिषद के तर्ज पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए ताकि वह एक संघीय ढांचा बन सके। भूमि संबंध एवं भूमि संबंधी आंदोलनों को राष्ट्रीय विकास परिषद एवं मुख्यमंत्रियों के साथ प्रधानमंत्री की सालाना बैठक के समीक्षा विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिए तथा भूमि संबंधों को बृहत्तर विकास परिप्रेक्ष्य के हिस्से के रूप में देखा जाना चाहिए न कि विधि व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में। यदि पुनसंशक्त भू-प्रबंधन के इन उपायों को आगे बढ़ाना है तो राज्य सरकारों को संसाधनों के आवंटन के बारे में फैसला करना होगा। उन्हें यह काम इस क्षेत्र के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता के रूप में करना होगा और इसे केंद्र सरकार के आवंटन का हिस्सा

नहीं समझना होगा और न ही राज्य सरकारों के संसाधनों एवं उपायों के पूरक के रूप में देखना होगा। यह भी पूरी तरह महसूस किया जा रहा है कि भू-राजस्व प्रशासन को वर्तमान दलदल से निकालने के लिए यह जरूरी है कि उसे योजना मद में शामिल किया जाए।

हाल के वर्षों में सरकार का जोर भूमि प्रबंधन को आधुनिक रूप देने पर रहा है। भू-अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण और डिजिटलीकरण के जरिये भूमि संबंधी लेखा-जोखा को अद्यतन बनाना, भूमि अधिकारों का सही-सही हिसाब रखना, बटाईदारी कृषि और ग्रामीण असंतोष के कारणों का विश्लेषण, जनजातीय भूमि का पृथक्करण और सट्टेबाजी तथा गैर-कृषि कार्यों के लिए कृषि भूमि के क्रय-विक्रय पर रोक के उपायों के जरिये बेहतर भूमि प्रबंधन के प्रयास किए जा रहे हैं।

प्रौद्योगिकी और तकनीकी एवं मानवीय कारकों के बीच संतुलन बनाए रखना एक नाजुक मुद्दा है। अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी देश में उपलब्ध है जिसने इसरो भारतीय सर्वेक्षण, नेशनल रिमोट सेंसिंग सेंटर राज्य एवं केंद्र सरकार के विशिष्टता प्राप्त संस्थान, भारतीय, वन सर्वेक्षण, करीब-करीब सभी राज्यों में स्थित अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्रों अखिल भारतीय भू-सर्वेक्षण संस्थान आदि के साथ मिलकर अपनी कुशलता बढ़ा ली है। क्षमता एवं प्रासंगिक प्रौद्योगिकी हमारे यहां मौजूद हैं, परंतु हम अपने देश में एक संतुलित भू अभिलेख की व्यवस्था के लिए इनका उपयोग करने में असमर्थ रहे हैं। हमें इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए व्यापक क्षमता पैदा करनी होगी। अधिसंख्य राज्य पुराने सिलसिले अथवा थियोडोलाइट का उपयोग कर सपाट तालिका वाली त्रिकोणीय पद्धति का इस्तेमाल जारी रखे हुए हैं। इन प्रौद्योगिकियों का स्थान जीपीएस अथवा उपग्रह आधारित चित्रांकण पद्धति ने ले लिया है। राज्यों को अपने-अपने सर्वेक्षण कार्यों की स्थिति की समीक्षा करनी चाहिए और यदि पहले से रखे गए दस्तावेजों (भू-अभिलेखों) की उपयोगिता खत्म हो गई है तो वहां सर्वेक्षण का काम समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि उससे बहुत ही कम लाभ होगा। स्थल की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखकर आधुनिक प्रौद्योगिकीय पद्धति का परीक्षण किया जाना चाहिए क्योंकि यह कम खर्चीला एवं कम समय लगने वाला है।

इस बात की सख्त जरूरत है कि ऐसे सर्वेक्षण संचालन की पद्धति विकसित की जाए जिसे दो साल की अवधि में पूरा कर लिया जा सके। यह काम तीन चरणों में पूरा किया गया। पूरे देश का सर्वेक्षण 5 वर्षों के भीतर पूरा कर लिया जाना चाहिए। सर्वेक्षण में आधुनिकतम प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि सटीक परिणाम निकल सके। मालगुजारी के निर्धारण का काम गांव के समाज पर छोड़ दिया जाना चाहिए ताकि उसका फैसला पंचायत स्तर पर हो सके और उसका उनके काम में विनियोग होना चाहिए। खतियान अंतिम प्रकाशन से पूर्व ग्राम सभा के माध्यम से ग्रामीण समुदाय द्वारा स्वीकृत होना चाहिए। सर्वेक्षण संचालन के काम को सामाजिक लेखापरीक्षा का विषय बनाया जाना चाहिए ताकि मालगुजारी कम कराने के प्रयासों में कमी आ सके।

निष्कर्ष:

राज्यों को ऐसी नियमित पद्धति विकसित करनी चाहिए जिसमें अधिकार संबंधी दस्तावेजों को अद्यतन बनाने का काम वर्तमान सर्वेक्षण के उपायों का इस्तेमाल किए बिना पूरा किया जा सके। एक पद्धति यह हो सकती है कि उप पंजीयक के कार्यालय को तहसीलदार के कार्यालय के साथ जोड़ दिया जाए ताकि भूमि के सारे हस्तांतरण पंजीकृत दस्तावेजों के आधार पर अविलंब दाखिल-खारिज के साथ संभव हो सकें और उसी के अनुरूप नक्शों को सुधारा जा सके।

राजस्थान के इतिहास पर गौर करें तो देसी रियासतों के विलय के बाद भूमि सुधार की प्रक्रिया अपनाया जाना एक बड़ी चुनौती थी। समूचा राज्य दो वर्ग में बंटा था। एक वर्ग वह था जिसके पास अकूत भूमि थी तो दूसरा वर्ग भूमिहीन था। भूमि सुधार के जरिये सभी को भूमि अधिकार दिलाने में तत्कालीन सरकार को कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ा। भूमि संबंधी कानून, भूमि व्यवस्थापन, भू-सर्वेक्षण, भू-प्रबंधन आदि तमाम ऐसी समस्याए थी, जो काफी मुश्किल लग रही थी लेकिन धीरे-धीरे सभी समस्याओं का निस्तारण हो गया।

भू-आधुनिकीकरण कार्यक्रम काफी हद तक उसे लागू करने वालों द्वारा प्रौद्योगिकी एवं क्षमता सृजन पर निर्भर करता है। भू-अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए संस्थाओं का एक नेटवर्क बिछाने की जरूरत है। इस नेटवर्क का प्रधान कुछ प्रमुख प्रशिक्षण संस्थानों को अपने काम में संलग्न करना चाहिए। इन संस्थाओं में एसआईआरडी, एटीआई कृषि विश्वविद्यालय राज्य सरकार की प्रतिष्ठित संस्थाएं, नागरिक समाज आधारित प्रतिष्ठित संगठन शामिल हैं। इन्हें एक मूल राष्ट्रीय प्रारूप तथा राज्यवार प्रारूप विकसित करने में लगाया जाना चाहिए और यह काम राज्य के माहौल को ध्यान में रखकर पूरा किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची:

1. D. S., Venkatesh, et al. "Land Records Data Integration Strategies: Certain Methodological Solutions." *Journal of Land and Rural Studies*, vol. 1, no. 2, July 2013, pp. 131–143
2. Shreevardhan Khemka and Ayush Jain, Digitalization of land records in India, Asian Law and Public Policy Review Vol. 4, 2019
3. M S Umesh Babu Sunil Nautiyal Historical Issues and Perspectives of Land Resource Management in India: A Review, The Institute for Social and Economic Change, Bangalore, 2013
4. S.N. Singh, Information technology for maintaining land records in india: An operations, The IUP Journal of Operations Management, Vol. XI, No. 1, pp. 50-57, February 2012
5. सुरेंद्र कुमार, भारत में भू-अभिलेखों का आधुनिकीकरण, योजना, अक्तूबर 2011, पृ. 19-21
6. प्रांजल धर, भूमि सुधारों की दुनिया और भारत, योजना, अक्तूबर 2011, पृ. 22-23
7. चंद्रभान यादव, राजस्थान में भूमि सुधार एवं सरकारी प्रयास, योजना, अक्तूबर 2011, पृ. 33-35
8. https://www.researchgate.net/publication/335313055_Examining_E-Governance_A_Study_of_Land_Records_Management_System_in_India
9. https://www.ncaer.org/publication_details.php?pID=284#:~:text=A%20Pilot%20Impact%20Assessment%20of%20the%20Digital%2DIndia%20Land%20Records%20Modernisation%20Programme

भारतीय पुलिस के समक्ष चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ० रजनी मीना

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर)

शोध सारांश

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 246 और सातवीं अनुसूचि में पुलिस राज्य सूची का विषय है। भारत में पुलिस प्रणाली का प्रमुख उद्देष्य संवैधानिक, विधिसम्मत एवं लोकसम्मत तरीके से सामाजिक समरसता, शांति व्यवस्था एवं भाईचारे को बढ़ावा देना है। इस उद्देष्य की पूर्ति के लिए भारतीय पुलिस द्वारा कठिन परिश्रम किए जाने एवं अपने कर्त्तव्यों का निवर्हन करने के पष्चात् भी भारतीय पुलिस की छवि सम्मानजनक नहीं बन पाई है। भारतीय पुलिस पर मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोप लगते रहे है जबकि सीमित उपलब्ध संसाधनों, विभिन्न दबावों, अमानवीय दषाओं में कार्य करने के पष्चात् भी भारतीय पुलिस की छवि में सुधार न हो पाना अनुसंधान का विषय है।

भारतीय पुलिस पर प्रशासन में सुधार हेतु बहुत से प्रयास किये गये जिनमें आयोगों की सिफारिशें एवं न्यायालयों द्वारा निर्देषित किया जाना सम्मिलित हैं। भारतीय पुलिस प्रशासन के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए कार्य की आवश्यक दशाएँ सुनिश्चित किये जाने की आवष्यकता एवं पुलिस प्रशासन के व्यवहार के मूल्यांकन से पूर्व उनसे जुड़ी हुई चुनौतियों का आलकंन किये जाने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्दः भारतीय पुलिस, व्यवस्था, चुनौतियाँ, मानवाधिकार, सुधार

मुख्य आलेख

भारत की आजादी के 73 वर्षो के पश्चात् भी पुलिस प्रशासन की छवि जनता की नजरों में नकारात्मक बनी हुई है। वर्तमान में भी भारतीय पुलिस बल औपनिवेशिक काल के भारतीय पुलिस अधिनियम 1861 (IPA) द्वारा निर्देशित होता है। पुलिस अधिनियम 1861 के अन्तर्गत पुलिस व्यवस्था ब्रिटिश प्रशासन के सहायक यंत्र के रूप में स्थापित की गई थी। पुलिस व्यवस्था ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत जनता के शोषण एवं दमन का यंत्र रही। पुलिस प्रशासन की औपनिवेषिक मानसिकता एवं छवि बने रहने के महत्वपूर्ण कारकों में से पुलिस अधिनियम 1861 (IPA) रहा है।

वर्तमान में भी सरकारों का पुलिस प्रशासन पर राजनीतिक नियंत्रण बना हुआ है। पुलिस प्रशासन आज भी सत्तारूढ़ी सरकार के दबाव में रहकर ही कार्य करने की स्थिति में है। लोकतांत्रिक देश में पुलिस प्रशासन की सफलता का मूल्यांकन जनता के प्रति उसकी जवाबदेही ही तय करती है। पुलिस प्रशासन पर बाह्य राजनीतिक नियंत्रण एवं दबाव उनकी कार्य की क्षमता, प्रेरणा और कार्यशैली को प्रभावित करती हैं। पुलिस प्रशासन की कार्यशैली संविधान के अनुकूल, मानवाधिकारों एवं जनता के विश्वास पर आधारित होनी चाहिए।

पुलिस प्रशासन के अन्तर्गत पुलिस बल की कमी कानून एवं व्यवस्था को लागू करने में एक चुनौती के रूप में प्रकट होती है। संयुक्त राष्ट्र के मानक के अनुसार एक लाख नागरिक पर 222 पुलिसकर्मी होने चाहिए जबकि भारत में ये आँकड़ा औसतन 156 ही है। भारत में एक पुलिसकर्मी पर 841 व्यक्तियों की सुरक्षा का भार है। भारत में पुलिस फोर्स में 21.4 प्रतिशत पद खाली

पड़े हैं। इंडिया जस्टिस रिपोर्ट के अनुसार जनवरी 2020 तक राष्ट्रीय स्तर पर 3 पुलिस अधिकारियों में से 1 पद खाली है जबकि 2019 में 20.3 प्रतिशत पद ही खाली थे। इंडिया जस्टिस रिपोर्ट 2020 के अनुसार महिला पुलिस कर्मियों की संख्या पुरुषों के मुकाबले बहुत कम हैं। आँकड़ों के अनुसार देश में 10.5 प्रतिशत ही महिला पुलिसकर्मी है। 2006 में यह आँकड़ा 3.3 प्रतिशत था। 15 वर्षों में 7 प्रतिशत ही महिला पुलिसकर्मियों की संख्या बढ़ी है। 10 पुलिस कर्मचारियों में मात्र एक महिला पुलिसकर्मी है। देश में महिलाओं की संख्या लगभग 50 प्रतिशत होने के बावजूद महिला पुलिसकर्मियों की संख्या बहुत कम है। महिला अपराधों के बढ़ते दौर में महिला पुलिस बल की कमी पुलिस प्रशासन की प्रमुख चुनौतियों में से एक है। देश के 41 प्रतिशत थानों में वुमन हेल्प डेस्क नहीं है। देश के 17233 थानों में से 10165 में ही वुमन हेल्प डेस्क हैं। गृह मंत्रालय के आँकड़ों के मुताबिक देश भर में पुलिस के 5.62 लाख पद खाली है।

राज्यों में पुलिस के खाली पदों की स्थिति

क्र.सं.	*राज्य*	*स्वीकृत पद*	*खाली पद*
1	उत्तर प्रदेश	414492	128952
2	बिहार	128286	50291
3	पष्चिमी बंगाल	140904	48981
4	तेलंगाना	76407	30345
5	महाराष्ट्र	240224	26195
6	मध्यप्रदेश	115731	22355
7	तमिलनाडू	124130	22420
8	कर्नाटक	100243	21943
9	गुजरात	109337	21070
10	आंध्रप्रदेश	72176	17933
11	झारखण्ड	79950	18931
12	राजस्थान	106232	18003
13	हरियाणा	61346	16844
14	छत्तीसगढ़	71606	11916
15	असम	65987	11452
16	जम्मू एवं कश्मीर	87882	10044

देश में पुलिसकर्मियों के 5.62 लाख पद खाली है जिनमें से 2019 में कांस्टेबल के 18 प्रतिशत अफसरों के 29 प्रतिशत पद रिक्त थे जबकि 2020 में कांस्टेबल के 20 प्रतिषत व अफसरों के 32 प्रतिशत पद रिक्त थे।

वर्तमान समय में अपराध के तौर तरीकों में परिवर्तन आया है। अपराधियों के पास अत्याधुनिक तकनीकी उपकरणों की उपलब्धता ने पुलिस के समक्ष अपराधों से निपटने की नई चुनौती उत्पन्न की है। अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद, नक्सलवाद, साइबर क्राइम के अन्तर्गत ठगी, महिलाओं और बच्चों के प्रति अपराध, हनी ट्रेप, अंडरवर्ल्ड से जुड़े हुए अपराध, मनी लाड्रिंग इत्यादि पुलिस के लिए चुनौती बने हुए है। 161 वर्षों के पश्चात् भी अपराधियों से निपटने हेतु पुराने कानून एवं पुराने उपकरणों का प्रयोग किया जा रहा है, जहाँ नये उपकरणों एवं तकनीक की प्रयोग उपलब्धता है वहाँ नई तकनीकों के प्रयोग के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था नहीं हो पायी है जबकि अंडरवर्ल्ड एवं साइबर क्राइम से जुड़े हुए अपराधों से निपटने हेतु पुलिस को अपराधियों से ज्यादा अग्रिम तैयारी करके चलने की आवश्यकता है। देश में आज की ऐसे कई थाने है जहाँ टेलिफोन और वायरलैस नहीं है एवं जहाँ वाहनों की पहुँच संभव नहीं है। देष के कई थानों में कम्प्यूटर भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है और न ही पुलिसकर्मियों को साइबर अपराध या फोरेंसिक तकनीक के मॉड्यूल का प्रशिक्षण दिया गया है। देश के 32 प्रतिशत थानों में सीसीटीवी कैमरा नहीं है।

आधारभूत संसाधनों की कमी को दर्षाते आँकड़ें

क्र.सं.		*संख्या*
1	देश के थाने जहाँ वायरलैस नहीं	70
2	देश के थाने जहाँ टेलिफोन नहीं	214
3	ऐसे थाने जहाँ टेलिफोन और वायरलैस दोनों नहीं	24
4	देश के ऐसे थाने जहाँ वाहनों की पहुँच तक नहीं	240
5	देश के थानों में कम्प्यूटर का औसत	60
6	पुलिस बल को गत पाँच वर्षो में दिये गये प्रशिक्षण का औसत	6.4 प्रतिशत
7	पुलिस प्रशिक्षण पर किया गया व्यय	1 प्रतिशत
8	एक पुलिस अधिकारी का एक दिन में कार्य करने का औसत समय	14 घंटे

स्त्रोत Status of Policing in India report- SPI 2019

भारत में स्टेटस ऑफ पुलिसिंग रिपोर्ट उन स्थितियों को स्पष्ट करती है जिनमें रहकर भारतीय पुलिस कार्य करती है। स्टेटस ऑफ पुलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट 2019 में 21 राज्यों के लगभग 12000 पुलिसवालों के अनुभवों के आधार पर तैयार की गई जिसके अन्तर्गत पुलिसकर्मियों को लम्बी अवधि तक अवकाष न मिल पाने की बात कही गयी। इस रिपोर्ट में हर दूसरे पुलिसकर्मी ने सप्ताह में एक भी अवकाश न मिलने की बात कही है। कार्य करने के औसत में पुलिस अधिकारी 14 घंटे कार्य करता है। कुछ पुलिस स्टेशनों में पीने का पानी स्वच्छ शौचालय, महिलाओं के लिए अलग से शौचालयों इत्यादि आधारभूत सुविधाओं का अभाव है। इस रिपोर्ट में पुलिस पर राजनेताओं के दबाव को अपराध की जाँच में बड़ी रूकावट के रूप में स्वीकारा गया है। पुलिस प्रशासन सुरक्षा से जुड़ी हुई प्रमुख इकाई है जिसमें संसाधनों की उपलब्धता प्राथमिक आवश्यकता है।

उपर्युक्त चुनौतियों के अन्तर्गत पुलिस प्रशासन अपने कार्य का निष्पादन करता है। इन चुनौतियों के कारण पुलिस प्रशासन की कार्यशैली, प्रेरणा एवं इच्छाशक्ति प्रभावित हुई है दूसरी पुलिस के प्रति जनता का विश्वास कायम नहीं हो पाया है और जनता की पुलिस के प्रति छवि प्रताड़ना, क्रूरता, अहंवादी एवं रिश्वतखोर इत्यादि की बनी हुई है। पुलिस पर राजनीतिक दबाव और राजनेताओं के अपराधियों से गठजोड़ ने भी पुलिस की छवि को धूमिल किया है। किसी भी लोकतांत्रिक देश में पुलिस प्रशासन की सफलता का आधार जनविश्वास ही तय करता है और यह तभी संभव है जब पुलिस देश के संविधान को, देश के कानूनों को एवं मानवाधिकारों को ध्यान में रखकर अपने कार्यों का निष्पादन करें। सीमित संसाधनों एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत पुलिस प्रशासन का कार्य करना जनता की सुरक्षा में बाधक है। वर्तमान में भारत में पुलिस सुधार, पुलिस प्रषासन की प्राथमिक आवश्यकता है। पुलिस सुधारों को लागू करने से पुलिस एवं जनता दोनों के मानवाधिकारों को भी सुनिश्चित किया जा सकेगा।

संगठित अपराधों से निपटने के लिए पुलिस बल आधारभूत आवश्यकता है, पुलिस प्रशासन में रिक्त पदों को त्वरित गति से भरा जाना चाहिए साथ ही महिलाओं पुलिसकर्मियों के पदों की संख्या भी बढ़ाई जानी चाहिए। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा बजट के अन्तर्गत पुलिस प्रशासन पर व्यय राशि को बढ़ाया जाना चाहिए क्योंकि जनता के विकास के साथ-साथ जनता की सुरक्षा भी प्राथमिक आवश्यकता है। पुलिस सत्तारूढ़ दल के उपकरण के स्थान पर जनता की सुरक्षा और विश्वास का उपकरण बननी चाहिए। पुलिस प्रशासन को कार्य करने की स्वायतता प्राप्त होनी चाहिए एवं एक स्थान पर निश्चित कार्यकाल के लिए पोस्टिंग मिलनी चाहिए जिससे वो बिना किसी दबाव के कार्य कर सके। पुलिस सुधारों के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय 2006 के निर्देशों की राज्य एवं केन्द्र सरकारों द्वारा क्रियान्वित किये जाने की आवश्यकता है। 1977 राष्ट्रीय पुलिस सुधार आयोग की सिफारिशों पर अमल किये जाने की जरूरत है। इस आयोग ने पुलिस को जवाबदेह बनाने एवं पुलिस को कार्यकारी शक्ति प्रदान करने की सिफारिश की। यदि इस सिफारिश को लागू किया जाये तो पुलिस राजनीतिक दबावों से मुक्त होने में कुछ हद तक सफल हो सकती है। इस आयोग ने भी पुलिस को राजनीतिक नियंत्रण से मुक्त रखने की बात कही। देश में पुलिस सुधार हेतु कई आयोग एवं समितियाँ बनी लेकिन इनकी सिफारिशों को लागू नहीं किया गया।

बदलते परिदृष्य में अपराधों की प्रवृति भी बदली है जिनसे निपटने के लिए प्रषिक्षण, गुणवत्ता एवं आधुनिक तकनीक की अनिवार्यता है। देष के थानों में वायरलैस, टेलिफोन, कम्प्यूटर, वाहन, अत्याधुनिक हथियार एवं एक राष्ट्रीय उपग्रह नेटवर्क होना आवष्यक है। पुलिसकर्मियों के लिए कार्यस्थल पर अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध करवाये जाने की आवष्यकता है। पीने का पानी, स्वच्छ शौचालय, महिलाओं के लिए अलग शौचालय, थाने में आने वाले लोगों के लिए बैठने की व्यवस्था, जैसी आधारभूत आवष्यकताओं को पूर्ण किया जाना चाहिए। पुलिसकर्मियों को हथियारों के प्रयोग एवं भीड़ नियंत्रण के लिए पर्याप्त रूप से प्रषिक्षित किया जाना चाहिए। साइबर अपराध से निपटने हेतु प्रषिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। पुलिसकर्मियों की पर्याप्त संख्या में भर्ती की जाये जिससे पुलिसकर्मियों के अवकाष पर जाने से पुलिस बल की कमी न हो। पुलिसकर्मियों को पर्याप्त अवकाष मिलना चाहिए जिससे वो सामाजिक जीवन एवं कार्य के मध्य सामंजस्य स्थापित कर सकें। केन्द्र एवं राज्यों के मध्य सामंजस्य होना चाहिए जिससे अन्तरराष्ट्रीय अपराधों से निपटने में आसानी हो सके।

पुलिस का आधुनिकीकरण के अन्तर्गत कम्यूनिटिंग पुलिस को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत पुलिस का जनता के प्रति मित्रवत व्यवहार होता है। स्मार्ट पुलिसिंग के अन्तर्गत जनता को विष्वास में लेकर जनभावना को जाना जा सकता है एवं जनता से सूचना भी प्राप्ति की जा सकती है।

पुलिस व्यवस्था को एक नई दिषा, नई सोच, नये आयाम की जरूरत है। वर्तमान में पुलिस को नागरिक स्वतन्त्रता और मानवाधिकारों के प्रति जागरूक किये जाने एवं वंचित वर्ग के प्रति संवेदनषील बनाये जाने की भी जरूरत है जिससे जनता एवं पुलिस का एक दूसरे पर भरोसा कायम हो सके। पुलिस की संस्थागत सुधारों के साथ स्वायतता प्रदान किये जाने की भी आवश्यकता है जिससे पुलिस बिना राजनीतिक दबाव के कार्य कर सके।

निष्कर्ष

भारत में पुलिस प्रशासन औपनिवेशिक काल के भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 (IPA) के द्वारा निर्देशित होता है। भारतीय पुलिस अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, जनता पुलिस प्रशासन की व्यवस्था एवं विवशता दोनों से अनभिज्ञ है। भारतीय पुलिस नागरिकों के अधिकारों की रक्षा, संसाधनों की कमी एवं बाह्य राजनीतिक दबाव के बीच में रहकर कार्य कर रही है। कार्य निष्पादन एवं आचरण के आधार पर जनता के प्रति पुलिस की जवाबदेही तय होती है। अतः पुलिस की कार्यशैली के मूल्याकंन करने से पूर्व जनता को ये ध्यान में रखना होगा कि वो किन परिस्थितियों में रहकर कार्य कर रही है। पुलिस सुधार की विभिन्न समितियों और आयोगों, उच्चतम न्यायालय के निर्देषों को लागू किया जाना चाहिए। पुलिस प्रशासन में आमजन का विश्वास ही पुलिस बल की वास्तविक शक्ति का आधार होना चाहिए अन्यथा ये लोकतांत्रिक राष्ट्र एवं समाज के लिए घातक सिद्ध होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजस्थान पत्रिका, दिनांक 3 दिसम्बर, 2019, पृष्ठ संख्या 4,
2. पुलिस और मानवाधिकार, बी.एल.बोहरा, के.के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 23, 37, 38, 39
3. पुलिस प्रशासन अन्वेशण एवं मानवाधिकार, डॉ. बसन्ती लाल बाबेल राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ संख्या 32-36, 130-135
4. भारत में मानवाधिकार, प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 136, 137
5. भारतीय पुलिस, व्यवस्था और विवशता, डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, आर.बी.एस.ए पब्लिशर्स, चौड़ा रास्ता जयपुर पृष्ठ संख्या 3, 6, 165-169
6. राज्य पुलिस सुधार आयोग उत्तराखण्ड, प्रारूप सुझाव संकलन, पृष्ठ संख्या 14, 83
7. भारतीय संविधान की 7वीं अनुसूची एवं अनुच्छेद 246
8. स्टेटस ऑफ पुलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट 2019

'पद्मावत' में लोकतत्व एवं भारतीय समाज

सरिता

व्याख्याता हिन्दी साहित्य, राजस्थान पीजी कॉलेज चिड़ावा, झुंझुनूं

लोकतत्व से आशय जन साधारण की मान्यताओं से है। यदि किसी देश की संस्कृति का वास्तविक रूप देखना हो तो वहाँ के लोक जीवन को देख लेना चाहिए क्योंकि लोक जीवन में व्याप्त विभिन्न मान्यताएँ, विभिन्न पर्वों एवं उत्सवों के रीति-रिवाज अतीत की किसी गौरवमयी वास्तविकता की ओर संकेत करते हैं। लोक जीवन में स्त्रियों द्वारा बनाई गयी चित्रकला तथा देवताओं की मूर्तियों से यह विदित होता है कि यथार्थ संस्कृति हमारे ग्रामीण जीवन में ही है। प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा में लोक कथाओं के माध्यम से ही अलौकिक प्रेम की व्यंजना का विधान किया गया है।

प्रेमाख्यानक कवियों ने भारतीय समाज और संस्कृति से संबद्ध कथाओं को अपने काव्यों में आधार रूप से प्रयुक्त किया है। जायसी का पद्मावत भी लोक जीवन से संबद्ध होकर ही हमारे सामने आया है। जायसी ने हिन्दू जीवन को निकट से जाना, समझा था। यही कारण है कि पद्मावत एक प्रेमाख्यान होते हुए भी सामाजिक और पारिवारिक जीवन के चित्रों से भरा पड़ा है। उसमें तत्कालीन समाज में प्रचलित जीवन शैली विभिन्न रीति-रिवाज, परम्पराएँ, लोकाचार, रूढ़ियाँ, व्रत त्यौहार आदि का वर्णन यंत्र तंत्र देखने को मिलता है।

पद्मावत में लोकतत्व कितना है किस रूप में है? इसे पद्मावत में आयी हुयी लोक कथाओं, भारतीय लोकाचार, भारतीय तीर्थ स्थानों और भारतीय देवी-देवताओं के चित्रण के माध्यम से समझा जा सकता है। जायसी भारतवर्ष के जन जीवन में व्याप्त विविध लोक कथाओं से भली-भाँति परिचित थे और वे इन लोक कथाओं के महत्व को भी जानते थे, इनके सांस्कृतिक महत्व को पहचानते थे। यही कारण है कि पद्मावत में स्थान-स्थान पर भारतीय लोक कथाओं के संदर्भ और उद्धरण देखने को मिलते हैं। स्पष्टत: पद्मावत में रामायण की कथा के विविध प्रसंग स्थान-स्थान पर आये हैं तो महाभारत की विविध कथाओं से भी कितने संदर्भ लिए गये हैं। उदाहरण के लिए

"दान करन दै दुई जग तरा।"

कहकर उन्होंने कर्ण के दान एवं त्याग की ओर संकेत किया है तो "राहु बेधि होई अरजुन जीति द्रौपदी ब्याहु" कहकर कवि ने अर्जुन द्वारा मत्स्य बेध कर द्रौपदी के साथ विवाह करने की कथा का उल्लेख किया है।

"धरती पाय सरग सिर, जानहुँ सहसराबाहु"

कहकर सहस्त्रबाहु अर्जुन की कथा की ओर संकेत किया है। इस प्रकार जायसी ने शकुन्तला और दुष्यन्त की कथा भी महाभारत से लेकर वर्णित किया है। इसी तरह लोक प्रचलित भागवत पुराण में वर्णित अनेक कथाएँ पद्मावत में देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक ऐसी भारतीय लोक कथाएँ भी पद्मावत में वर्णित है जो भारतीय जन जीवन से गहराई से जुड़ी हुई हैं जैसे राजा भोज की कथा, गोरख और मछन्दर की कथा आदि इसके प्रमाण हैं। पद्मावत में इन सभी का प्रंसगानुसार वर्णन हुआ है। जायसी ने हिन्दी समाज में प्रचलित अनेक रीति-रिवाज एवं लोकाचार को भी लोकजीवन से ग्रहण किया है।

भारतीय समाज में हिन्दी साहित्य ने प्राचीन कालखण्ड से ही भारतीय जन मानस की दिशा एवं दशा को अनेक विधाओं के माध्यम से बतलाया है। प्राचीनकालीन समाज की सामाजिकता एवं उसकी आर्थिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अपने समय की गाथा कहती हुई साहित्य एवं समाज को प्रभावित करती आ रही है। ऐसे में भारतीय वेद शास्त्र तथा कर्मकाण्ड, विधि नियम जिसमें श्रौत सूत्र, गह्य सूत्र एवं धर्मसूत्र से सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का मार्ग बतलाया गया है। देखा जाये तो स्मृतियाँ भी अपना

विशिष्ट स्थान रखती हैं। किन्तु कटु सत्य है कि इससे एक वर्ग हमेशा हाशिए पर ही रहा है। भारतीय समाज का वह वर्ग अशिक्षित, अज्ञानी एवं निराश्रित होने के कारण इन ग्रन्थों की उपयोगिता को नहीं समझ पाया। इस प्रकार सूत्र और स्मृति साहित्य में समाज को विभाजित करने में सहायक रही, कुछ तत्कालीन परिस्थितियों के कारण भी। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज में जटिलताएं बढ़ती गयी। रामायण एवं महाभारत के साथ-साथ अन्य रचनाओं ने जनता के हृदय में मनोरंजन एवं लोकचेतना के साथ उनकी भावनाओं को प्रेरित करने का कार्य किया। फलतः साधारण जनता अपने जीवन दर्शन को बनाने व समझने में इन ग्रन्थों का सहारा लेकर जीवन के महासमर का बेड़ा पार करने लगी। मध्यकालीन साहित्य में विविध ग्रन्थों के साथ-साथ भाषाओं में भी विकास करने लगे-ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली को संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश की अपेक्षा जनता सीधे व्यवहार में लाने लगी थी। आपसी वैमनस्य तथा लगातार बाह्य आक्रमणों के कारण वो ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जहाँ उनका सामाजिक जीवन आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्तर सभी कुछ अक्षुण्ण रहे। मध्यकालीन काव्य अपने समय की कई समस्याओं जैसे सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक उथल-पुथल के लिए जाना जाता है। भक्ति की विविध धाराएं बहने लगी थी जिससे जनता किस ओर जाए यह उसके लिए आसान नहीं था। क्योंकि एक ओर ज्ञान का सूना मार्ग दूसरी ओर प्रेम का सगुनी मार्ग। जनता ने दूसरे मार्ग को अधिक पसन्द किया या पहले रूप को यह अलग शोध का विषय होगा।

यहाँ इस शोधपत्र में हम भक्ति युगीन सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा के प्रमुख कवि मलिक मोहम्मद जायसी एवं उनकी कृति महाकाव्य पद्मावत में निहित लोक कथा सांस्कृतिक चेतना का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करेगें। पद्मावत के कथानक में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिहलगढ़ की राजकुमारी के मिलन, प्रेम तथा पूरे जीवन का वर्णन किया गया है। इसका विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि विवाह से पूर्व जिसमें पदमावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों के प्रति अटूट प्रेम, आध्यात्मिकता में भले ही कल्पनाशीलता है किन्तु कवि ने इन्हीं कल्पनाओं के सहारे सामाजिक विद्रुपताओं एवं जटिलताओं को गहराई से उभारा है। कवि ने पदमावती, नागमती, रत्नसेन तथा अन्य पात्रों के माध्यक से समाज की लोक चेतना एवं संस्कृति का बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रतीकात्मक रूप से विविध पात्रों के माध्यम से भारतीय आदर्श की अद्भुत छटा को उकेरने में कामयाब रहे है। वही वियोग पक्ष अपनी आध्यात्मिकता के गहरे रंग से जनता को सराबोर करने में सक्षम है। विविध ऋतुओं का प्रभाव विरह में अद्भुत है।

निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत प्रेमाश्रयी शाखा में मलिक मोहम्मद जायसी का नाम विशेष रूप से अपनी काव्यात्मक परिपक्वता एवं सूफी साहित्य की कड़ी में एक नई ऊँचाइयों को प्राप्त करने के लिए जाना जाता है। जायसी के समय का भक्ति आंदोलन एक ओर भक्ति की अलग-अलग धाराओं को एक दूसरे के समीप लाता है, दूसरी ओर एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप लेते हुए भारतीय जीवन के धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना को जागृत करता है। 'जायसी' सूफी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि है। उनका महाकाव्य 'पद्मावत' मसनवी शैली में लिखित अवधी भाषा का एक उच्च कोटि का साहित्यिक ग्रन्थ है, जिसमें उन्होंने अपने उर्वर कल्पना शक्ति एवं उत्कृष्ट प्रतिभा के बल पर रसात्मकता का अद्भुत समन्वय किया है।

'जायसी' का युग भारतीय इतिहास की सोहलवीं शताब्दी में उथल-पुथल का युग रहा है। राजनीतिक दृष्टि से मोहम्मद गौरी के बाद दिल्ली सुल्तानों की तीन शताब्दियों शेरशाह सूरी के रूप में अपनी अंतिम चंकाचौध दिखलाकर समाप्त हो रही थी। नये हमलावर बाबर के साथ मुगल शहंशाहों की नयी बुनियाद पड़ रही थी। इन तीन शताब्दियों में दिल्ली के चारों ओर नये सांमन्ती रिश्ते बने और बिगड़े। भारतीय मुसलमानों एवं नव मुसलमानों और हमलावर मुसलमानों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संघर्षों के कारण तरह-तरह की दृष्टियां टकरा रही थी। हिन्दी साहित्य का भक्ति काल इससे बहुत प्रभावित हुआ। एक प्रकार से देखा जाए तो भारतीय समाज एवं लोक चेतना के द्वन्दात्मक रूप समाज में एक नई युग परम्परा की शुरूआत करने लगा था।

समाज मानव जीवन के विचार, आचार का शुद्धिकरण या परिमार्जन है। यह है मानव जीवन की सजी-संवरी हुई अन्तः स्थिति। वह है मानव समाज की परिमार्जित मति, रूचि और प्रवृत्ति-पुंज का नाम ही हमारी संस्कृति है। किसी भी युग के समाज की पहचान के लिए उस युग के समाज को सभी दृष्टिकोणों से परख कर चित्रित किया जाता है। समाज मे धर्म की सदैव मान्यता रही है। वह समाज को सदैव प्रभावित करता रहा है, धर्म समाज और परिवार की इकाई है। व्यक्ति जहां समाज में रहते हुए उसके आदर्शों, मान्यताओं और आचरण का पालन करता है, वहाँ उसकी कुरीतियों और विकृतियों से भी प्रभावित होता है। मध्ययुग का लोकसमाज अनेक जाति और उपवर्गों में बंटा हुआ था। इनकी सांस्कृतिक चितनधारा अपने भावों को पृथक रूप में दर्शाती है। यह सत्य है कि

किसी भी युग की संस्कृति की पहचान उस युग के खानपान, वेशभूषा और प्रसाधन, मनोरंजन, पर्व, उत्सव, संगीत, गायन, वास्तु चित्रकलाओं और अनेक प्रकार के विज्ञान और अभिरूचियों से है। पद्मावत में प्राकृतिक चित्रण के माध्यम से जन मानस की सामान्य प्रवृतियों का जैसा समन्वय यहां दिखता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है। सखियों के संग पदमावती का मानसरोवर पर क्रीड़ा करना लोकचार की बाते सामाजिक जीवन में व्याप्त संस्कारों से हमें परिचित कराते हैं।

"ऐ रानी मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लहि अहै पिता कर राजू। खेखि लेहु जौं खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम कित एह सावर पाली
कित आवन पूनि अपने हाथा। कित मिलिकै खेलब एक साथॉ।"

भले ही पदमावती का प्रतीक रूप में ईश्वरीय सत्ता के रूप में दिखाया है। किन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार आज भी अविवाहित कन्याओं के मन में इसी तरह के भाव जागृत होते हैं। वैश्विक दौर में जो स्वच्छन्द हो रहा है उसका खामियाजा बलात्कार, तलाक, हत्या के रूप में छुपाना पड़ रहा है। परम्पराएं हमें सरल जीवन का संदेश देती है। जायसी ने विविध उदाहरणों के माध्यम से हिन्दू समाज की विरासत को बनाए रखने की मांग करते हैं।

जायसी भारतीय लोक जीवन में प्रचलित लोककथाओं से भी परिचित थे। भारतीय जन-जीवन से जुड़ी इन लोककथाओं में भारत की सांस्कृतिक परम्परा का रूप दिखायी पड़ता है। नागमती वियोग वर्णन में जिस प्रकार कवि ने वियोग की समस्त दशाओं का मार्मिक चित्रण किया है वह हमें दर्शाता है कि नारी जीवन की विवशता, उनकी कोमलता एवं गृहस्थ जीवन के प्रति लगाव ही था जो इतना बड़ा त्याग बड़ी सहजता के साथ कर देती थी। सात्विकता के साथ तीज त्यौहारों के वर्णन में नागमती के विरह को प्राकृतिक ढ़ंग से व्यक्त करते हुए कहा है कि

"मोहि भोग सों काज न बारी। सौंह दीठि की चाह न हारी
अबहु निठुर आउ एहि वारा। परब दिवारी होइ संसारा।"

'जायसी' भारतीय लोकाचारों से परिचित थे। जन्म के अवसर पर जिन लोकाचारों का विधान भारतीय संस्कृति में होता है, पदमावती के जन्म के अवसर पर उन्होंने उन लोकाचारों का विधान दिखाया है। बसंत पंचमी पर पदमावती का सखियों के साथ खेलना, श्रृंगार करना तथा शिव मण्डप में जाकर शंकर पार्वती की पूजा करना भी दिखाया गया है। वस्तु वर्णन के अन्तर्गत जल क्रीड़ा का वर्णन करना, पदमावती की सभी सखियों को खिली फुलवारी के जैसा प्रतीत कराना, भले ही वो आध्यात्मिकता की प्रतिकात्मक रंगों के बावजूद अलग-अलग गुणों का वर्णन करना, स्वाभाविक उल्लास और मायके की स्वच्छन्दता की व्यंजना तथा बीच-बीच में उसके अलौकिक रूप की ओर भी संकेत करते रहना सचमुच लौकिक एवं अलौकिक प्रेम का अद्‌भुत समन्वय दिखता है। साथ ही साथ हमारे समाज में व्याप्त रीति-रिवाजों को संजोने के पक्षधर यह महाकाव्य मानव धर्म के वास्तविक कर्त्तव्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराता है। सामाजिक कुरितियों के बढ़ते परिवेश में जिस प्रकार का संघर्ष समाज कर रहा है, जिस प्रकार वैश्विकीकरण के दौर में हम अपने सांस्कृतिक विरासत को भूलते जा रहे है उसे बचाने में यह महाकाव्य महती भूमिका निभा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि इसे पढ़ा जाये और ऐसे ग्रन्थों को सहेजा जाये।

'जायसी' ने पद्मावत में भारतीय समाज के संस्कारों का चित्रण किया है। कवि समाज के विभिन्न पहलुओं पर पैनी दृष्टि रखता है, 'जायसी' ने उपसंहार में तन, मन, हृदय, बुद्धि, गुरू, जगत् निर्गुण ब्रह्म आदि के आधार पर भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के साथ महाकाव्य की कथावस्तु को जोड़ने का विनम्र प्रयास किया है। लोक आस्थाओं और परम्पराओं को जायसी अपने मनोनुकूल विभिन्न प्रसंगों में स्थान देते है। धार्मिक-स्थानों की एक सुदीर्घ परम्परा भारतीय संस्कृति में रही है। उत्तरप्रदेश शासन भी भारतीय परम्परा एवं अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाए रखने के लिए तमाम ऐसी योजनाओं को चला रही है जैसे आजादी का अमृत महोत्सव, मिशन शक्ति, बेटी पढ़ाओं बेटी बचाओं इत्यादि जिसके माध्यम से हमारी विलुप्त होती सांस्कृतिक विरासत को बचाया जा सके। जायसी ने बहुत पहले ही इस स्थिति को भांप लिया था इसीलिए उन्होंने अपने काव्य में विविध प्रंसगों के माध्यम से जन मानस को सचेत करने का प्रयास किया है। आज आवश्यकता है कि जिस प्रकार ये योजनाएं चलायी जा रही है उसी प्रकार ऐसे कवियों की कथाओं एवं उनके द्वारा समाज को दिए अवदान की महत्ता को स्वीकार किया जाये तथा उनके व्यक्तित्व को भी प्रचारित,

प्रसारित किया जाये। प्रेमाख्यान के उपसंहार में जायसी ने यही सिद्ध करने की कोशिश की है कि वे एक कवि, भक्त के अतिरिक्त सामाजिक देशप्रेमी एवं सांस्कृतिक विरासत के प्रहरी भी थे। इसीलिए उन्होंने पदमावत के उपसंहार में अपने मनोभावों को आध्यात्मिकता के संग सामाजिकता के रंगों को जोड़ते हुए कहा है कि-

"तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पद्मिनी चीन्हा।।
गुरू सूवा जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरू जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बॉचा सोइ न येहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलादीन सुलतानू।।"

"जायसी पर अनेक विद्वानों ने अपनी अपनी दृष्टि से शोध कार्य किया है किन्तु पदमावत की रूपक सम्बन्धी उपर्युक्त लक्ष्मण रेखा के उल्लंघन का साहस उनमें से कोई भी नहीं कर पाया, जबकि कवि की पंक्तियाँ आज भी चुनौती दे रही हैं।

प्रेमकथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जो बुझै पारहु।।"

जिस समय भारत में चारों ओर इस्लामी हिंसा का तांडव हो रहा था, सदियों तक इतिहास को तलवार ने रक्तरजिंत कर और धर्म संप्रदाय के नाम पर मनुष्य का शत्रु मनुष्य बना हुआ था, उस समय सूफी दर्शन, साहित्य और उपासना पद्धति की आध्यात्मिक शक्ति को लेकर सूफी कवियों ने इतिहास को एक नया आयाम दिया था आज के बदलते परिवेश तथा जीवन पद्धति को देखते हुए कहा जा सकता है कि फिर से उसी मानव जीवन को बचाने के लिए पुनः उसी मानवतावादी सोच तथा उसी सूफीवाद की जरूरत है। हम आज जिस दौर एवं जिस मानसिक संत्रास से गुजर रहे हैं उसमें जायसी जैसे महान कवियों की मांग आज का प्रत्येक मानव चाह रहा है। जायसी ने जिस प्रकार अपनी मधुरता और कोमलता से मनुष्य मन को उद्वेलित किया है हिन्दी साहित्य में इस दृष्टि से यह महाकाव्य देश और काल की सीमा से परे एक कालजयी रचना कही जा सकती है।

सन्दर्भ -

1. प्रो0 विजय देवनारायण साही, जायसी, प्रकाशक-हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, इलाहाबाद पृष्ठ- 81,82
2. डॉ0 मोहनलाल तिवारी, मलिक मोहम्मद जायसी और पदमावत, प्रकाशक- विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी पृष्ठ-52
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, प्रकाशक- रवि प्रकाशन काशी पृष्ठ-32
4. शिव कुमार मिश्र, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, प्रकाशक- लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृष्ठ-130
5. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशक- मयूर पेपर बैक्स 2000, दिल्ली पृष्ठ- 167
6. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-2 पृष्ठ-131

प्राचीन भारतीय राज्य का सप्तांग सिद्धान्तः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० आलोक कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डा0 शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ

सार संक्षेप

प्राचीन भारतीय चिंतनधारा में राज्य को समग्र रूप में स्वीकार किया गया है। विभिन्न चिन्तकों ने राज्य के भिन्न-भिन्न अंगों या अवयवों का निरूपण किया है। इन अंगों को प्रकृतियां भी कहा गया। सामान्यतः कुछ भिन्न नामों के साथ अधिकांश चिंतको ने राज्य के सात अंग या सप्त प्रकृतियों का वर्णन किया है। इनमें कौटिल्य ने सप्त प्रकृतियों का बड़ा ही स्पष्ट एवं पूर्ण निरूपण किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में प्राचीन भारतीय चिन्तकों द्वारा वर्णित राज्य के सप्तांगों की आधुनिक राज्य के तत्वों के साथ तुलना करते हुए एक विश्लेषणपरक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि प्राचीन भारतीय चिंतकों न राज्य के अंगों का पृथक-पृथक निरूपण किया है, तथापि उनका पृथक एवं स्वतंत्र अस्तित्व नही माना, उनका अस्तित्व राज्य के अस्तित्व से था और उनमें पारस्परिक सहयोगी संबंध अनिवार्य रूप से आवश्यक था।

शब्दार्थ-प्रकृति = राज्य के अंग, स्वामी = राजा/मुखिया अमात्य = मंत्री, सचिव, कर्मचारियों की श्रेणी, दुर्ग = पुर या नगर

सप्तांग अर्थात सात अंग, राज्य के प्रमुख अंगों के रूप में प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा स्वीकारे गये थे। यहाँ राज्य के अंगों से अभिप्राय राज्य के संस्थागत संगठनों से भिन्न अंग हैं जिनके द्वारा राज्य की अवधारणा या स्वरूप स्पष्ट होता है। राज्य की संस्थायें राज्य क्रिया के लिए आवश्यक हैं परन्तु 'अंग' राज्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं।[1] राज्य की संस्थायें क्रमशः विकसित होती रहती हैं। इनका अंगों पर कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता। अंगों या अवयवों के अध्ययन से राज्य के आधारभूत आवयविक विकास का ज्ञान होता है। इससे राज्य को परिभाषित करने में सुविधा प्रातप्त होती है।

प्राचीन भारत में राज्य के अंगों या अवयवों की धारणा भारतीय चिंतकों के मन में रही होगी, जिसे उन्होंने' प्रकृतियाँ' कहकर संबोधित किया था। इनकी संख्या कुछ विद्वानों ने सात बताई गई है। पर राज्य के सात अंगों की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई यह स्पष्ट नहीं है। सेलेटोर के अनुसर शतपथ ब्राह्मणके तत्काल बाद इसका उल्लेख मिलता है।[2] वैदिक साहित्य ब्राह्मण ग्रंथों और प्रारंभिक धर्मसूत्रों में राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।[3] यद्यपि कुछ प्रारंभिक धर्मसूत्रों में राज्य के कुछ अंगों जैसे राजा 'अमात्य, विषय आदि का उल्लेख मिलता है किन्तु सर्वप्रथम कौटिज्य के अर्थशास्त्र में ही कोष, दण्ड और मित्र इन सात प्रकृतियों[4] का संयुक्त समूह ही राज्य है।

मनुस्मृति में स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड, तथा सुहृत-इन सात अंगों से युक्त व्यवस्था को राज्य कहा गया है।[5] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी राज्य की सप्तांग युक्त परिभाष की चर्चा की गई है किन्तु उसमें 'जनपद' के स्थान पर 'जन' शब्द का प्रयोग किया गया है।[6] महाभारत के शांतिपर्व में आत्मा, अमात्य, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद और पुर नामक सातों अंगों के योग को राज्य[7] बताया गया है। कामान्दकीय नीतिसार में स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष बल और सुहृत् नामक सात प्रवृतियों के योग को राज्य कहा गया है।[8] शुक्रनीति में भी स्वमी, अमात्य, सुहृत् कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल के संयुक्त समूह को राज्य[9] का नाम दिया गया है। इसके अलावा ऐसा ही उल्लेख 'मत्स्य'[10] एवं 'अग्नि पुराण'[11] आदि में भी मिलता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि चिंतको ने कौटिल्य कृत राज्य की परिभाषा में वर्णित सप्त-प्राकृतियों के नाम और क्रम में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर उसे स्वीकार किया है। किन्तु इनमें कौटिल्य अग्रणी हैं क्योकि सर्वप्रथम राज्य की पूर्ण एवं स्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत करने का श्रेय उन्हीं को है, जिसे उनके बाद सर्वमान्य सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया।

कौटिल्य कृत राज्य की परिभाषा के अनुसार राज्य के सात आवश्यक अंग हैं, जिसे सप्त-प्रकृतियों कहा है, उनके नाम- 1. स्वामी 2. अमात्य 3. जनपद 4. दुर्ग 5. कोष 6. दण्ड 7. मित्र[12] कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट सप्त प्रकृतियों का वर्णन इस प्रकार है-

1. स्वामी-प्राचीन भारतीय राज्य विषयक् सभी ग्रन्थों में 'स्वामी' का तात्पर्य प्रधान समझा गया है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि इन ग्रंथों में राज्य के प्रधान के जिए 'राजा' शब्द जिसका साहित्यिक अर्थ शासक है, की अपेक्षा 'स्वामी' शब्द जिसका अर्थ 'मालिक' है, का अधिक प्रयोग हुआ है। केवल महाभारत के शांतिपर्व में 'आत्मा' शब्द का उल्लेख मिलता है।[13]
2. अमात्य-प्राचील भारतीय राज्यव्यवस्था में अमात्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उसका महत्व तो इसी से स्पष्ट है कि प्राय: सभी हिन्दू ग्रंथों में वर्णित सप्त-प्रकृतियों में उसे दूसरे स्थान पर रखा गया है। साधारणत: अमात्य का प्रयोग मंत्रियों के लिए किया गया है किन्तु इससे अमात्य का पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं होता । वास्तव में अमात्य अरैर मंत्रियों में भेद है जैसा कि कौटिल्य के इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है- अमात्योचित गुण देश, काल और कार्य का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति की जाये किन्तु उन्हें मंत्री कदापि न बनाया जाये। महाभारत में भी अमात्यों और मंत्रियों की संख्या क्रमश: सैंतीस और आठ बताकर उनके भेद को स्पष्ट किया गया है। कामांदकीय नीतिसार और मनुस्मृति में भी सचिव और अमात्य में भेद बताया गया है। कौटिल्य का अमात्य से अभिप्राय कर्मचारियों की एक ऐसी श्रेणी से था। जिसमें से, पुरोहित,समाहर्ता,सन्निधाता दीवानी एवं फौजदारी न्यायालयों के न्यायाधीश अंत:पुर का कर्मचारी दूत और अन्य विभागाध्यक्षों की नियुक्ति होती थी।[14]
3. जनपद-कौटिल्य ने राज्य की प्रकृतियों में जनपद को तीसरा स्थान प्रदान किया है। 'जनपद में जनसंख्या और भूमि दोनों निहित है। मनुस्मृति,शुक्रनीति,कामान्दकीय नीतिसार में 'राष्ट्र' और महाभारत के शांति पर्व में 'जनपद' शब्द का क्रमश: प्रयोग किया गया है किन्तु उसमें दूसरे संदर्भ में 'राष्ट्र' शब्द का भी उल्लेख है। याज्ञवल्क्य ने केवल 'जन' शब्द का ही प्रयाग किया है। परन्तु सभी गंथों में भू-भाग एवं जनसंख्या के गुणों का वर्णन मिलता है।[15]
4. दुर्ग-कौटिल्य ने सप्त-प्रकृतियों में महत्व की दृष्टि से दुर्ग को चौथा स्थान दिया है। दुर्ग से उनका तात्पर्य था-सुरक्षित स्थान और व्यवस्थित नगर जिनसे संकटकाल में राज्य कमी रक्षा करने में सहायता प्राप्त होती हो। अर्थशास्त्र में दुग विधान और दुर्ग निवेश नामक दो अध्यायों में दुर्ग की चर्चा ककी है। प्रथम में सुरक्षित स्थानों (किला) और द्वितीय में नगरों की विस्तृत योजना का उल्लेख है।

   मनुस्मृति में दुर्ग के स्थान पर 'पुर' शब्द का प्रयोग किया गया है मनु का पुर से तात्पर्य नगर अथवा दुर्ग से था जिसमें राज्य की राजधानी भी होती थी। उनके अनुसार धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग,वृक्षदुर्ग और गिरिदुर्ग की व्यवस्था कर राजा को नगर (राजधानी) में निवास करना चाहिए।[16]

   शांतिपर्व में धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग मनुष्यदुर्ग एवं जलदुर्ग की सिापना का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उसमें नगर के रूप में भी दुर्ग का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि नगर के चारों ओर प्रकाश होना चाहिए जिसमें धन-धान्य, आयुध, हाथी घोड़ा, रथ, विद्वान, शिल्पी धार्मिक मनुष्य इादि काी प्रचुरता हो।[17]

   कामांदकीय नीतिसार के अनुसार दुर्गरहित राजा पवन द्वारा छिन्न-भिन्न किये गये मेघ के समान होता है अतएव उसे जल, धान्य एवं धन से युक्त तथा संयम का सामना करने वाले जल, पर्वत, वृक्ष तथा धान्वन आदि दुर्गों का निर्माण कराना चाहिए। कामांदक ने विस्तृत सीमा, गहरी खाई, उँची चारदीवारी जल वृक्ष खेत आदि से युक्त नगर के निर्माण की चर्चा की है।[18] शुक्रनीति में राजधानी के निर्माण के लिए उपर्युक्त स्थान, रक्षा के निमित्त स्थाई-परकोटा, उसके अंतर्गत भवन निर्माण आदि की योजना प्रस्तुत की है। नगर एवं भवन-निर्माण योजना का जो वर्णन शुक्र ने किया है, उसके अध्ययन से यही प्रकट होता है कि कौटिल्य के बाद शुक्र ही वह दूसरे चिन्तक हैं जिन्होंने इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[19]
5. कोष-कौटिल्य ने राज्य की प्रकृतियों में कोष को पाँचवा स्थान प्रदान किया है उनके अनुसार उत्तम कोष उसे कहते हैं जिसमें धर्मपूर्वक पूर्ववर्तियों या अपने द्वारा प्राप्त धन संचित हो, जो सुवर्ण, चाँदी नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न एवं सिक्कों से युक्त हो और जो चिकाल तक रहने वाली दुर्भिक्ष आदि आपत्ति तथाा आय के अभाव को सहने में समर्थ हो।[20] सभी

कार्य कोष पर ही निर्भर है अतएव राजा को सर्वप्रथम कोष पर ही ध्यान देना चाहिए।[21] कोष सेनाका मूल है। कोष और सेना दोनों का रक्षक भी कोष ही है।[22] कोष ही धर्म और काम का हेतू है। कौटिल्य की आय-व्यय की मदों का भी वर्णन किया है। वास्तव में कौटिल्य की आय-व्यय के समुचित प्रबंध एवं निरीक्षण की विस्तृत व्यवस्था आधुनिक युग की व्यवस्था से ीाी अधिक विस्तृत एवं व्यावहारिक प्रतीत होती है। मनु के अनुसार बलि, कर, शुल्क, प्रतिभाग और दण्ड नामक कर[23] आय के प्रमुख स्रोत है। असके अलावा कर की मदें, दरो, एवं कर वसूलने के उपायों पर भी प्रकाश डाला है। मनुस्मृति में कोष के बंधन एवं करमुक्ति के प्रावधानों का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत के अनुसार राजा को ध र्मानुसार समुचित कर ग्रहण करना चाहिए। राजा को प्रजा से कर उसी प्रकार लेना चाहिए जिस प्रकार भ्रमर मधु का और बछडाष् दुध का पान करता है।[24] कामान्दक नेकोष का वर्णन करते हुए कौटिल्य की तरह कहा है कि-मोती, सुवर्ण एवं रत्नों से पूर्ण पूर्वजो से प्राप्त, धर्मपूर्वक अर्जित और व्यय को सहने में समर्थ कोष उत्तम होता है।[25] कृषि, व्यापार, दुर्ग, सेतु, हस्ति व धन स्थान, खान, मणिरत्न और आबाद किए हुए शून्य स्थान कोश संचय के स्रोत हैं। व्यय के स्थलों का भी कामंदक ने कहा है कि धर्म, अर्थ, भृत्यों के भरण पोषण और आपत्तियों के निवारण में कोष का व्यय होना चाहिए। शुक्रनीति में आय के साधनों में भूमिकर, शुल्क, वस्तुओं का अंश और दण्ड कर को शमिल किया गया है।[26] शुक्र ने व्यय की मदों पर प्रकाश डालने के बजाय कर ग्रहण के उपायों तथा आय-व्यय के प्रबंधन हेतु कार्मिकों की व्यवस्था का उल्लेख किया है।

6. दण्ड- अर्थशास्त्र में राज्य की छठी प्रकृति के रूप में वर्णित दण्ड का तात्पर्य सेना से था। कौटिल्य के अनुसार जिसके पास अच्छी सेना होती है उसके 6. मित्र तो मित्र रहते ही हैं, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। राज्य के लिए सेना परम आवश्यक है क्योंकि उसी से आंतरिक और वाह्य शत्रुओं का दमन किया जाता है। अर्थशास्त्र में सेना के प्रकार, संगठन, लक्षण, अंग, विभाग एवं कार्यों का विस्तार से वर्णन मिलता है। मनुस्मृति में सेना के छः भागों का उल्लेख है किन्तु इस संदर्भ में उनके अंगों का वर्णन नहीं है। महाभारत में सेना के आठ अंगों का उल्लेख प्राप्त होता है जो इस प्रकार हैं- रथ, गज, अश्व, पैदल, विष्टि, नाव, चर और देशिका। उसमें सेना के वेतन आदि की समुचित व्यवस्था का भी उल्लेख है। कामांदक ने पैदल, अश्व रथ, गज सेना एवं निर्माण विभाग का वर्णन किया है।" शुक्रनीति में भी सेना का विस्तृत वर्णन किया गया है। पैदल, रथ, अश्व, और गज सेना का वर्णन करते हुये शुक्र ने बताया है कि सेना के बिना राज्य, धन एवं पराक्रम असंभव है।
7. मित्र- कौटिल्य ने राज्य की प्रकृतियों में मित्र को सातवाँ स्थाना प्रदान किया है। उन्होंने मित्र के गुणों की चर्चा करते हुये कहा है कि मित्र ऐसे होने चाहिए जो वंशपरंपरागत, नित्य वश में रहने वाले, विरोध न करने वाले तथा छोटे-बड़े सभी कार्यों के सम्पादन में सहायक हों। मण्डल सिद्धांत के प्रसंग में वह मित्र-भेद की चर्चा करते हैं उन्होंने मित्र राजा के छः प्रकार के गुण बताये हैं। मित्र के महत्व पर प्रकाश डालते हुये मनु ने लिखा है कि सुवर्ण और भूमि प्राप्त करके भी राजा उस प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता जिस प्रकार मित्र की प्राप्ति पर करता है। कामंदकीय नीतिसार के अनुसार उन्हें मित्र बनाना चाहिए जो त्याग, विज्ञान, शक्तिसम्पन्न सेनायुक्त, प्रियवादी कार्य करने में समर्थ, विरूद्ध न जाने वाले और कुलीन हो। उन्होंने कौटिल्य की भाँति मित्र के छः प्रकार बताये हैं तथा मित्र के गुणों एवं लक्षणों का भी वर्णन किया है। शुक्रनीति में समान आधारों पर मित्रता स्थापित करने का विचार प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय राज्य में सप्तांग विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान था। सप्तांग के विस्तृत वर्णन के साथ प्राचीन राज-चिन्तकों ने प्रकृतियों पर आने वाले व्यसन और उनके प्रतिकार के उपायों की भी चर्चा की है। कौटिल्य के अनुसार व्यसन उसे कहते है जो कल्याण मार्ग से भ्रष्ट कर दे।[35] यद्यपि व्यसन ग्रस्त प्रकृतियों में किसका व्यसन अधिक कष्टकर है इस पर कौटिल्य पूर्व के आचार्यों, कौटिल्य एवं कौटिल्य के बाद के आचार्यों में मतभेद दिखता है। भारद्वाज (कौटिल्यपूर्व) का कहना है कि स्वामी और अमात्य के व्यसनों में अमात्य-व्यसन ही गंभीर है। इसी प्रकार आचार्य विशालाक्ष के अनुसार अमात्य और जनपद के व्यसनग्रस्त होने पर जनपद के ऊपर आया हुआ व्यसन ही अधिक भयावह होता है, पराशर के अनुसार जनपद और दुर्ग के व्यसनग्रस्त होने पर दुर्ग का व्यसन अधिक गंभीर होता है। इसी प्रकार आचार्य पीषुन ने दुर्ग-व्यसन और कोष व्यसन में कोष व्यसन को ही अधिक कष्टकर माना है, आचार्य कौणपदत्त ने कोष और दण्ड व्यसन में दण्ड व्यसन को अधिक गंभीर कहा है। तथा आचार्य बातव्याधि के अनुसार दण्ड और मित्र के व्यसनग्रस्त होने पर मित्र व्यसन ही अधिक रू कष्टप्रद है, परन्तु कौटिल्य के विचार इन सभी के विपरीत है उन्होंने सप्त प्रकृतियों के क्रम में पूर्व के व्यसन को अधिक कष्टदायी व गंभीर माना है। तथापि

उन्होंने एक साथ दो या अधिक प्रकृतियों के व्यसनग्रस्त होने पर उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये प्रतिकार के उपाय करने पर जोर दिया है।

कौटिल्य के बाद के अन्य प्राचीन हिन्दू आचार्यों में भी राज्य की प्रकृतियों के व्यसन एवं उनके प्रतिकार के उपायों का उल्लेख किया है। कौटिल्य की भाँति मनु ने सप्तप्रकृतियों के व्यसनग्रस्त होने पर पूर्व प्रकृतियों के व्यसनों को ही बाद वाली की अपेक्षा अधिक गंभीर बताया है।

कामान्दक ने भी प्रकृतियों के व्यसन उनके प्रतिकार के उपायों आदि का वर्णन कौटिल्यकृत वर्णन के समान ही किया है। कौटिल्यकृत वर्णन का अग्निपुराण में भी संक्षिप्त रूप मिलता है।

आचार्य कौटिल्य के व्यसन एवं प्रतिकार के उपायों का यह वर्णन अरस्तू के क्रांति के कारण एवं प्रतिकार संबंधी विचारों की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं क्रमबद्ध है क्योंकि अरस्तू ने पूरे राज्य के क्राँति एवं उनके प्रतिकार संबंधी विचार प्रस्तुत किया था जबकि कौटिल्य ने राज्य की हर एक प्रकृतियों के व्यसन एवं उनके प्रतिकार के उपायों का पृथक-पृथक एवं विस्तृत वर्णन किया है।

सप्त प्रकृतियों के पारस्परिक संबंध-यद्यपि कौटिल्य ने सप्त प्रकृतियों का पृथक-पृथक वर्णन प्रस्तुत किया है तथापि उनका अपना कोई पृथक एवं स्वतंत्र अस्तित्व न था। अपने अस्तित्व तथा राज्य हेतु उनमें पारस्परिक सहयोग की भावना एवं सम्बन्ध का रहना आवश्यक था। कौटिल्य के अनुसार प्रकृतियाँ परस्पर सहायक अंग की भाँति कार्य करती थी फिर भी उनमें स्वामी का सर्वोपरि स्थान था।

अर्थशास्त्र में प्रकृतियों को अवयव नाम दिया गया है। यही नहीं एक प्रकृति के व्यसन के कारण शेष प्रकृतियाँ भी नष्ट हो सकती हैं। इससे यह प्रकट होता है कि आचार्य कौटिल्य ने सप्तप्रकृतियों को राज्य रूपी शरीर का अंग माना है परन्तु वे राज्य के सावयव स्वरूप के समर्थक नहीं थे क्योंकि अर्थशास्त्र में इस प्रसंग में उचित सामग्री का अभाव है। मनु ने भी पूर्व प्रकृतियों को बाद वाली की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। परन्तु उन्होंने यह बात भी स्पष्ट कर दी है कि सातों के सहयोग से ही राज्य स्थिर है। पारस्परिक गुण विशेषता के कारण कोई किसी से अधिक महत्व की नहीं होती। सभी के अपने अपने कार्य हैं। अतएव कार्यानुसार सबका अपना अपना महत्व है। कामान्दक ने भी प्रकृतियों की उपयोगिता स्वीकार करते हुये बताया है कि एक प्रकृति के दोष से पूरे राज्य के लिए भय उत्पन्न हो जाता है। शुक्र ने प्रकृतियों की चर्चा करते हुये राज्य की तुलना सावयव और वृक्ष से की है। उनके अनुसार राज्यरूपी शरीर में राजा सिर, अमात्य आँखे, सुहृद कान, कोष मुख, बल मन, दुर्ग हाथ और राष्ट्र पैर के समान है। इसी प्रकार वृक्ष से राज्य की तुलना करते हुये उन्होंने राजा को राज्य रूपी वृक्ष का मूल, अमात्य को स्कन्ध, सेनापति को शाखा, सेना को पल्लव एवं फूल, प्रजा को फल और भूमि को बीज माना है। इससे स्पष्ट होता है कि शुक्र को छोड़कर अन्य किसी ने भी राज्य सावयव स्वरूप की चर्चा नहीं की है।

सप्त प्रकृतियों की आधुनिक राज्य के तत्त्वों से तुलना

राज्य की आधुनिक युगीन परिभाषा के अनुसार उसके चार आवश्यक तत्व हैं- जनसंख्या, भूमि सरकार और संप्रभुता । प्राचीन भारतीय चिन्तको के अनुसार राज्य की सात प्रकृतियों या तत्व इस प्रकार है- स्वामी/आत्मा, आमात्या जनपद / राष्ट्र / दुर्ग / पुर कोष, दण्ड और मित्र। इन दोनों परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनमें कुछ समानतायें व असमानतायें दोनों हैं।

प्रो० अल्तेकर के अनुसार सप्त प्रकृतियों में जनता की गणना नहीं की गई है। किन्तु सप्तांग के जनपद के जन से आधुनिक जनसंख्या रूपी तत्व का बोध हो जाता है। कौटिल्य ने स्पष्टतया लिखा है कि बिना मनुष्य के जनपद का निर्माण नहीं हो सकता और बिना जनपद के राज्य का नहीं। अत: जनता को बुलाकर नये जनपद बसाना चाहिए।

प्रो० रंगास्वामी आयंगर के अनुसार कौटिल्य का जनपद से अभिप्राय केवल जनसमूह से था, भूमि के लिए इनके दर्शन में कोई स्थान नहीं था लेकिन कौटिल्य के जनपद में जनसंख्या एवं भूमि दोनों ही सम्मिलित थे पुनश्च प्राचीन भारतीय राज्यों की रक्षा एवं समृद्धि क्रमश: दुर्ग और कोष पर निर्भर थी अतएव भूमि नामक तत्व में उन्हें लाया जा सकता है।[41]

आधुनिक राज्य के सरकार नामक तत्व का पूरा-पूरा बोध स्वामी और अमात्य नामक प्रकृतियों से हो जाता है। अमात्य कमर्चारी थे जिनकी शासन में भागीदारी होती थी और राजा तो शासन का सर्वोच्च पदाधिकारी ही था। इस प्रकार सरकार के अर्थ में स्वामी और अमात्य को रखना अधिक समीचीन है।[42]

सम्प्रभुता नामक आधुनिक राज्य के तत्व की समता कौटिल्य के स्वामी और दण्ड से की जा सकती है, क्योंकि दण्ड के आधार पर ही राज्य को शक्तिमान कहा जाता था। आंतरिक और बाह्य दोनों दृष्टियों से दण्ड के माध्यम से राज्य की रक्षा संभव थी। आधुनिक राज्य की संप्रभुता का भी यही विशेषता है कि वह आंतरिक और बाह्य दोनों दृष्टि से स्वतंत्र हो। श्री रामशरण शर्मा के अनुसार स्वामी धर्म के सिद्धांतों से बँधकर शासन करता था। किन्तु श्री शर्मा का यह मत उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि आज भी राज्य के ऊपर भी अनेक प्रकार की सीमायें होती है। यदि उन सीमाओं के बावजूद इन राज्यों को संप्रभु माना जा सकता है तो प्राचीन राजा को संप्रभु क्यों नहीं कह सकते? जो धर्म के अधीन शासन कार्य करता था। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारत में धर्म का बड़ा ही व्यापक अर्थ था। उस समय मानवोचित कार्यों के पुंज को धर्म कहा जाता था।

आधुनिक राज्य के तत्वों में मित्र के लिए कोई स्थान नहीं है पर आज के इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि कोई भी राज्य बिना उपयुक्त मित्र राज्य के अपना अस्तित्व रखने में प्रायः समर्थ नहीं होता। अतः व्यावहारिक रूप से मित्र का आज भी महत्वपूर्ण स्थान है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है सप्तांग विचारधारा की दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र प्रकृतियों को आधुनिक राज्य के तत्वों में स्थान न देना राज्य को अगतिशील बनाता प्रतीत होता है और सप्तांग राज्य का वर्णन आधुनिक राज्य के तत्वों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक मालूम पड़ता है।

संदर्भ ग्रंथः

1. इण्ट्रोडक्शन टू पॉलिटीकल साइंस, भाग-1, 1951 पृष्ठ 19-20
2. सैलेटोर-ऐशिट इंडियन पालिटीकल थॉट एण्ड इंस्टीट्यूशंस
3. शतपथ ब्राह्मण-1/0/1/24
4. साम्यामात्यजनपद दुर्गकोशदण्डमत्राणि प्रकृतयः। अर्थशास्त्र-सं० वावस्पति गैरोला, चौखम्भाविद्या भवन वाराणसी, 2066/1पृष्ठ-441
5. सवाभ्यमात्योपुर राष्ट्र कोश दण्डौ सुहृत्तथा। सप्त प्रकृतयोळ्येताः सप्तांग राज्य मुच्यते।। मनुस्मृति-चौखंभा वाराणसी, 9/294
6. याज्ञवत्क्य स्मृति चौरंभा वाराणसी 1/353
7. महाभारत शांतिपर्व- गीताप्रेस गोरखपुर 60/64-65
8. स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रश्च दुर्ग कोषो बलं सुहृत् एतावदुच्यते राज्य सत्यबुद्धिव्ययपाश्रण ।।-कामंदक नीतिसार 1/16, वेंकटेश्वर प्रेस नंबई।
9. स्वाम्यमात्य सुहृत्कोश राष्ट्र दुर्गबलानि च सप्तांग मुच्यते राज्यं तंत्र मूर्घानृपः स्मृतः ।।- शुक्रनीति-1/61, हिन्दी टीका सहित बेंकटेश्वर प्रेस बंबई,
10. मत्स्य पुराण- चौखम्भा, वाराणसी 225/11
11. अग्नि पुरान- चौखंभा, वाराणसी 233/2
12. आत्मामात्यश्च कोशश्च दण्डौ मित्राणि चौव हि। तथा जनपदाश्चौव पुरं च कुरुनन्दन।। एतत् सप्तात्मकं राज्यं परिपाल्यं प्रत्यनतः। - शांतिपर्व 69/64-65
13. अर्थ0 6/1/441, मनु09/294, शुक्रनीति- 1/61 शां० प०-69/64, कामांदकं- 1/16, याज्ञ0-1/353
14. अर्थशास्त्र- 1/8
15. अर्थशास्त्र1/9/1-15, 1/10/20-25
16. धन्वदुर्ग मही दुर्गमष्दुर्ग वार्शमेव वा। नृदुर्गा गिरिदुर्ग वा समाश्रित्य वसेत्पुरं।।- मनु0 7 / 70
17. धन्वदुर्ग महीदुर्ग गिरिदुर्ग तथैव च। मनुष्य दुर्ग अष्दुर्ग बनदुर्ग च तानि षट्।। -शान्तिपर्व- 86/5
18. कामान्दक नीतिसार- 4/58-59
19. शुक्रनीति- 1/212-256
20. धर्माधिगतः पुत्रः स्वयं वा हेम्यरूप्य प्रायश्चित स्थूल रत्न हिरण्यो दीर्घामध्यापदमनायति सहेतेति कोशसंयत। - अर्थशास्त्र-6/1/10
21. कोशपूर्वः सर्वारम्भा। तस्मात्पूर्व कोशमवसेत।। अर्थशास्त्र- 2/8/1-2
22. कोशमूलो हि दण्डः कोशाभावे दण्डं परं गच्छति स्वामिनमवाहंति। कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति- अर्थशास्त्र- 8/1/47-57-54

23. मनुस्मृति- 8/307
24. शांतिपर्व -71/11
25. कामान्दक नीतिसार- 4/63
26. शुक्रनीति- 4/218
27. ..... षड्विधं च बलं स्वकम्। -मनुस्मृति -7/185
28. स्थाना गाहयाश्चौव पादाताश्चौव पांडव। विष्टिन विंश्चराश्चौव देशिका इति चाष्टकाम।। शांतिपर्व- 59/41
29. कामांदक नीतिसार - 1/16
30. पादातं स्वगमं वान्यद्रथाश्वगजगंत्रिथा। सैन्याद्विनानैव राज्यं न धनं न पराक्रमः।।- शुक्रनीति- 4/866
31. पितृ पैतामहम् नित्यं वश्यमद्वैध्यं महत्तघुसमुत्यमिति मिनासम्पत।।- अर्थशास्त्र 6/1/12
32. मनु0 7/208
33. कामान्दक नीतिसार-4/68-70
34. शुक्रनीति- 4/24
35. व्यस्पत्येनं श्रेयस इति व्यसनम्।- अर्थशास्त्र 8/1/4
36. अरिस्टोटल ने पॉलिटिक्स के पाँचवे भाग में क्रांति के कारण एवं उनके प्रतिकार के उपायों का विस्तृत विवरण प्रस्तृत किया है।
37. शेष प्रकृतिनाशस्तु यत्रैक व्यसनाद्भवेत।- अर्थशास्त्र- वही पृष्ठ 561
38. मनु0- 9/294, शा0 प0 69/65, शुक्र0 1/61
39. गार्नर- पॉलिटीकल साइंस एण्ड गवर्नमेन्ट, वर्ल्ड प्रेस प्रा0 लि0 कलकत्ता 1951, पृष्ठ-49
40. अल्तेकर अ0 स0- प्राचीन भारतीय शासन पद्धति भारती भंडार, प्रयाग 1959 पृष्ठ 37
41. आयंगर, रंगास्वामी के0 वी0 सम आस्पेक्ट्स ऑफ ऐंशियेंट इंडियन पॉलिटी- ईस्टर्न बुक हाउस 1988 पृष्ठ 79
42. श्री आल्तेकर (पूर्वोक्त पुस्तक पृष्ठ-36) ने सरकार के अर्थ में स्वामी और अमात्य दोनों का प्रयोग किया है जबकि श्री रामशरण शर्मा पूर्वोक्त पूस्तक में सरकार के लिए केवल अमात्य का ही उल्लेख किया है।

भारतीय दर्शन : एक गहन चिंतन

डॉ० सुगन्धा जैन

गैस्ट फैकल्टी, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

1. आस्तिक दर्शन : -

भारतीय चिन्तन के तरुवर की अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ पल्लवित हुयीं। सभी पर दिव्य-ज्ञान की महक से ओत-प्रोत नवीनतम रहस्यमयी सूत्रों से युक्त पुष्प विकसित हुए। अध्यात्म की ओर ले जाने वाली भारतीय चिन्तन प्रणाली में आस्तिक-दर्शन वह सुदृढ़ शाखा है जिसने अपरिमित सत्ता सच्चिदानन्द के गूढ़तर तत्त्वों को सरल रूप प्रदान कर सूत्रात्मक स्वरूप प्रदान किया है। विश्व विचित्रता को देखकर जब मनुष्य आश्चर्यचकित हो गया तब आस्तिक-दर्शन की शीतल चन्द्र किरणों ने उसके उद्वेलित हृदय-सागर में ज्ञान के ज्वार को उत्पन्न किया, जो मानव- मेधा को ईश्वरीय सत्य-ज्ञान की ओर ले जाने और ईश्वर के साथ तादात्म स्थापित करने का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करता है।

हिन्दी भाषा में 'आस्तिक' शब्द का अर्थ ईश्वर में विश्वास करना माना गया है जबकि संस्कृत वाङ्मय में 'आस्तिक' से तात्पर्य वेदों के प्रमाण में अथवा पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले से है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार 'आस्तिक' का अर्थ है है यानि मौजूदगी में विश्वास करने वाला। आचार्य पाणिनि ने 'आस्तिक' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है 'अस्ति इति मतिः यस्य सः[1] अर्थात् जिसका अस्तित्व है वह आस्तिक है। यहाँ यह स्पष्ट नहीं होता कि अस्तित्त्व किस वस्तु का है। बाद में आचार्यों ने 'परलोक' शब्द जोड़कर अभीष्ट अर्थ की पूर्ति की। इस व्यख्यानुसार परलोक की सत्ता में विश्वास करने वाले को आस्तिक 'अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य सः' कहा गया है। इस अर्थ द्वारा मात्र 'चार्वाक दर्शन' ही 'नास्तिक-दर्शन' कहलाएगा क्योंकि अन्य दर्शन तो किसी न किसी रूप में परलोक में विश्वास करते हैं। आस्तिक शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति न लेकर 'मनुस्मृति' के अनुसार 'आस्तिको वेद पूजकः' वेद को प्रमाण मानने वाला 'आस्तिक' है, यह व्युत्पत्ति ली गई। इस आधार पर वेदों को प्रमाण न मानने वाले 'चार्वाक' आदि नास्तिक तथा वेदों को प्रमाण मानने वाले सांख्य आदि षड्दर्शन आस्तिक-दर्शन की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

विक्रमादित्य सिंह ने 'भारतीय-दर्शन' नामक अपनी पुस्तक में 'आस्तिक' शब्द के निम्न तीन अर्थ किए हैं पहले अर्थ के अनुसार- 'आस्तिक' वह होते हैं जो समस्त वस्तुओं के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। ऐसे लोगों की दृष्टि में संसार की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी सभी वस्तुओं का अस्तित्व है।

दूसरे अर्थ के अनुसार 'आस्तिक दर्शन' वह हैं जो ईश्वर की सत्ता - को स्वीकार करते हैं। सामान्यतः दूसरा अर्थ ही प्रचलित है क्योंकि ईश्वर प्रेमी सच्चा 'आस्तिक' कहा जाता है।

तीसरे अर्थ के अनुसार 'आस्तिक दर्शन' वह हैं जो वेदों की - सत्ता में विश्वास करते हैं और वेदों को प्रमाण रूप में मानते हैं[2]।

आस्तिक दर्शन को 'आर्य-दर्शन' भी कहते हैं। आस्तिक-दर्शन को आगे चलकर 'षड्दर्शन' भी कहा गया आस्तिकता के आधार पर दर्शनों की संख्या- 'सांख्य', 'योग', 'न्याय', 'वैशेषिक', 'मीमांसा' और 'वेदान्त' के रूप में छः मानी गई। आत्मा के सत्य स्वरूप का साक्षात्कार करना, ब्रह्ममय हो जाना ही भारतीय आस्तिक दर्शन का ध्येय है। इन सब के लिए जिन वेदों का प्रमाण दिया जाता है, वे स्वयं ब्रह्ममय हैं। अतः मनु ने 'ब्रह्माभ्यासेन चाजसमनन्तं सुखमश्नुते[3] (अर्थात् वेदाभ्यास से परम सुख की प्राप्ति होती है) 'ब्रह्मदानं विशिष्यते[4] (वेददान अति विशिष्ट है) कहकर वेदों को 'ब्रह्म' की संज्ञा देते हुए वेदाभ्यास को परम तप कहा है[5]। स्पष्टतः

यह वेद भारतीय वाङ्मय के प्रशस्ततम् एवं प्राचीनतम रत्न हैं और मानव उनका दृष्टा मानव स्वभावतः एक मननशील एवं विवके प्रधान प्राणी है। प्रत्येक अनुष्ठान के अवसर पर वह अपनी विचार-शक्ति का उपयोग करता रहा है। तर्क-वितर्क, विचार-विमर्श के बिना वह किसी भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता।

समस्त मानवीय क्रियाकलापों के आधार विचार ही होते हैं। अपवर्गदायिनी, चिन्तनशील इस भारतभूमि पर विचार के मेघ सदैव ज्ञानामृत की वर्षा करते रहे और अनेकानेक ऋषि, मनीषी, विचारक यहाँ पर अवतीर्ण हुए। विचार प्रधान चिंतनशील इस भारतभूमि में आदिकाल से ही अनन्यनिष्ठा एवं अनवरत अध्यवसायपूर्वक अध्यात्मविद्या की आराधना हुई। जगत् के विविध विस्मयपरिपूर्ण आश्चर्यमय तत्त्वों के निरन्तर अनुशीलन- परिशीलन में मानव निरत रहा और गहन अध्ययन, अविरल अध्यास एवं सतत साधना द्वारा सत्य का सम्यक् साक्षात्कार किया तथा प्रत्यक्षीकृत ज्ञान को शब्दों में निबद्ध किया। इसी कारण उनकी 'ऋषि' संज्ञा है[6]। तपः पूत सत्यधर्मा मन्त्रदृष्टा ऋषियों की सतत साधना एवं अनवरत अध्यवसाय द्वारा प्रत्यक्षीकृत ज्ञान की विमल राशि ही 'वेद' हैं, जो सर्वथा अनवद्य, समस्तदोष विवर्जित, नित्य, शाश्वत् देशानवच्छिन्न एवं कालानवच्छिन्न हैं। तत्त्वों के सम्यक् साक्षात्कार के कारण वेदों को सनातन, निर्बाध तथा अप्रतिहत 'चक्षु' कहा गया है -

"पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः[7]।।

एकल ज्ञान-विज्ञान-दर्शन के मूल वेदों में 'ब्रह्म' 'माया', 'जीव', 'आत्मा', 'सत्य', 'ऋत', 'सृष्टि', 'प्रलय' आदि दार्शनिक विचार धाराओं का वर्णन है। सभी की चरम निवृत्ति एवं लक्ष्य 'परब्रह्म' की प्राप्ति है।

वेदों से लेकर उपनिषदोंतक का सम्पूर्ण ज्ञान आस्तिकता का प्रतीक हैं। हर ओर से ब्रह्म ज्ञान की शीतल जल धारा के स्रोत- 'वेद', ब्राह्मण', 'आरण्यक' तथा उपनिषद् की आस्तिकता को किसी भी तर्क द्वारा खण्डित नहीं किया जा सकता अतः उनको प्रमाण मानने वाले उन्हीं से जन्में भारतीय षड्दर्शन स्वतः ही आस्तिक सिद्ध होते हैं। उन्हें आस्तिक कहने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

संक्षिप्त रूप में 'सांख्य'- पुरुष और प्रकृति द्वारा 'योग' और 'वेदान्त' ईश्वर द्वारा सूक्ष्म तत्त्वों का दर्शन कराते हैं। प्रमाण तथा नय के द्वारा की पदार्थ की पूर्णतया प्रतीति होती है इसलिए 'न्यायदर्शन' प्रधान रूप से प्रमाणों की भीमांसा करता है। 'वैशेषिक' दर्शन द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव रूप सप्त पदार्थों की मीमांसा करता है। प्रकृति पुरुष रूप अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वों के स्वरूप का विवेचन सांख्यसिद्धान्त करता है। योग शास्त्रमुख्य रूप से साधना मार्ग को बतलाता है जिसके अनुसरण से सूक्ष्म तत्त्वों के स्वरूप का सम्यक् दर्शन हो सके। 'अद्वैत वेदान्त, तो समस्त जगत् की अद्वयसत्ता ब्रह्म रूप में अनेकत्व का एकत्व रूप में दर्शन कराता है, जो अध्यात्मचिन्तन की पराकाष्ठा है और यही गन्तव्य, मानव जीवन का परम प्रयोजन है और इसी की सिद्धि के लिए ही सभी दर्शनों की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

2. नास्तिक दर्शनः-

भारतीय दर्शन का वह भाग जो श्मोक्षश को मानता है, 'सत्य' को मानता है लेकिन ईश्वर को नहीं मानता 'नास्तिक दर्शन कहा गया है। वास्तव में नास्तिक दर्शन चिन्तन जगत् का वह रूप है जो ईश्वरीय अवलम्ब के अभाव में भी सत्य का आधार ग्रहण कर दर्शन की मौक्तिक आभा से द्योतित है वही 'नास्तिक दर्शन' है। नास्तिक दर्शन अपने अन्तस् में मानव जीवन के चरम लक्ष्य आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति की ओर उन्मुख होने के कारण सबल बना हुआ है। 'नास्तिक दर्शन' का अर्थ है। सत् को न स्वीकारना। पणिनि मतानुसार "अस्तिनास्ति दिष्टं मतिः"[8] अर्थात् जिसका अस्तित्व नहीं है वह 'नास्तिक' है परन्तु अस्पष्टता के कारण विद्वानों के द्वारा इसकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है "नास्ति परलोकं इति मतिर्यस्य सः" अर्थात् परलोक की सत्ता में विश्वास न करने वाले को 'नास्तिक' कहा गया है।

विक्रमादित्य सिंह ने 'भारतीय दर्शन' नामक अपनी पुस्तक में 'आस्तिक' की भाँति ही 'नास्तिक' के भी तीन अर्थ किए हैं पहला, जो किसी भी वस्तु की सत्ता या अस्तित्व को नहीं मानता और सभी को संदेह की दृष्टि से देखता है। दूसरा, जो निरीश्वर वादी है और तीसरा, जो वेदों की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है वह नास्तिक दर्शन है[9]। 'मनुस्मृति' में नास्तिक शब्द का विवेचन करते हुए कहा गया है। "नास्तिको वेदनिन्दकः"[10] अर्थात् जो वेद की निन्दा करता है वही 'नास्तिक' कहलाता है।

'नास्तिक' दर्शन मोक्ष को मानता है लेकिन उस ईश्वर तक पहुँचने के लिए अपौरुषेय वेदों को नहीं मानता वरन् उनकी भर्त्सना करता है अत: इस दर्शन का आविर्भाव वैदिक पाखण्डों के प्रति विरोध की भावना से हुआ है। नास्तिक दर्शनानुसार वेदों में झूठ-व्याघात और पुनरुक्तियाँ भरी पड़ी हैं "तदप्रामाण्यम् अनृतव्याघातपुनरुक्तिदोषेभ्य:"[11] वैदिक कर्म-कण्डों की निन्दा करने वालों में चार्वाक दर्शन पहले प्रकार का नास्तिक दर्शन है। चार्वाक सीधे-सीधे गाली गलौंच की भाषा अपनाता है। चार्वाक के अनुसार वेद उन धूर्त पुरोहितों ने बनाए हैं जिनका काम सीधे-सीधे अज्ञानी लोगों को फँसा कर अपना काम निकालना है। स्वर्ग सुख देने वाले तीनों वेद वास्तव में धूर्तो का प्रलाप ही हैं- "धूर्त प्रलापस्त्रयी स्वर्गोत्पादकत्वेद विशेषाभावात्"[12] वेदों को न स्वीकारने वाले नास्तिक दर्शन अपने-अपने स्थान एवं अपनी-अपनी दृष्टि से परम तत्त्व को ही देखते हैं। भारतीय दर्शनों में आस्तिक दर्शन विभाग को लक्ष्यकर, उनके पारस्परिक अविरोध को प्रकट करने के लिए उक्त पक्तियाँ है- "यदि इसी तुला पर तथाकथित 'नास्तिक' दर्शनों को तोला जाए और गम्भीरता से उनका परीक्षण किया जाए, तो इन दर्शनों में भी आस्तिक कहे जाने वाले दर्शनों से कोई उत्कट अथवा मूलभूत विरोध की भावना नहीं पाई जाती है।

आस्तिक दर्शनों के समान नास्तिक-दर्शनों द्वारा भी चेतन-अचेतनरूप में तत्त्वों का विवेचन किया गया है। चार्वाक दर्शन की मान्यता है कि, इस समस्त चर-अचर एवं जड़-चेतन जगत् का मूल आधार तत्त्व केवल जड़ है अर्थात् इस लोक में हमारी सुख-सुविधा और सब प्रकार के अभ्युदय के लिए सर्वप्रथम तथाकथित जड़तत्त्व की यथार्थता और उसकी प्राणि- कल्याणकारी उपयोगिता को जानना परम आवश्यक है, उसकी उपेक्षा कर संसार में हमारा सुखी रहना सम्भव न होगा। जड़तत्त्व से अतिरिक्त चेतनतत्त्व का नित्य अस्तित्व है या नहीं? इस पर चार्वाक का कहना है कि चेतन के अस्तित्व को कोई नकार नहीं सकता है पर क्या वह नित्य है? कैसा है? कहाँसे आता है? कहाँ जाता है? इत्यादि विचार-मन्थन उस समय तक अनपेक्षित है, जब तक उन तत्त्वों की यथार्थता व उपयोगिता को नहीं जान लिया जाता, जिन पर हमारा वर्तमान अस्तित्व निर्भर करता है।

चार्वाक दर्शन श्कर्मश को ही धर्म मानता है जिससे अपनी कामना की पूर्ति हो[13]। कृषि-कर्म, पशुपालन, व्यापार, राजनीति- ये सब जीवन सुख के लिए हैं[14] अतएव इन्ही में रत रहना चाहिए, क्योंकि जब तक जियो सुख से रहो -

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:[15]।।

चार्वाक दर्शन की अपेक्षा जैन और बौद्ध दोनों दर्शनों में यह विशेषता है कि ये जड़ तत्त्व से अतिरिक्त चेतन-तत्त्व के स्वतन्त्र अस्तित्व का उपदेश देते हैं। यह संभावना की जा सकती है कि इन दर्शनों के मूल प्रवक्ताओं ने विचार की दृष्टि से कुछ उन्नत जिज्ञासु जनों को तत्त्वज्ञान के इस स्तर का अधिकारी समझकर चेतन-अचेतन तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत किया जैन दर्शन चेतन (आत्म) तत्त्व को जहाँ संकोच विकासशील बताता है, दूसरा दर्शन उसे ज्ञानस्वरूप मानकर क्षणिक कहता है और उसके निर्विकार भाव को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहता है। बौद्धदर्शन में विभिन्न अधिकारी स्तर की भावना से ज्ञानरूप अथवा विज्ञानरूप चेतनतत्त्व का विवेचन उस स्थिति तक पहुँचा दिया गया है, जहाँ यह प्रतिपादन किया जाता है कि समस्त चराचर जड़-चेतन जगत् उस श्विज्ञानश का ही आभास है। बाह्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ नहीं, वस्तुभूत सत्ता एकमात्र विज्ञान है, भले वह क्षणिक हो। यह संभव है कदाचित् मूलरूप में उसका भी वस्तुभूत अस्तित्व न हो। इस प्रकार संसार के मूलतत्त्व की विवेचना व खोज करते हुए हम एक रहस्यमय स्थिति पर पहुँच जाते हैं। ये सब तत्त्व-विचार के विभिन्न स्तर हैं। संभवत: इनमें कोई एक ऐसा ठिकाना नहीं जिसे "अन्तिमेत्थम्" कहकर निश्चय रूप से वहाँ टिका जा सके। फलत: दर्शन-धाराओं का यह विवेचन अनेक प्रकारों में प्रस्तुत हुआ है। इसमें परस्पर विरोध की भावना न होकर जिज्ञासु अधिकारी के कल्याण की भावना अधिक है। अत: सत्यान्वेषी 'भारतीय-दर्शन' चिन्तन-जगत् के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ हैं।

3. दर्शन शास्त्र का स्वरूप : -

भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह हुआ, उसने दूर-दूर तक मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र, नित्य-शुद्ध-बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग श्दर्शनश के नाम से पुकारते हैं[16]। 'दर्शन' शब्द का वर्तमान अर्थ में प्रथम प्रयोग वैशेषिक दर्शन में हुआ ऐसा माना जाता है।

'दर्शन' शब्द पाणिनीय व्याकरणानुसार "दृशिर प्रेक्षणे" धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। यह ल्युट् (अन) प्रत्यय भाव, करण एवं अधिकरण इन तीन अर्थों में होता है[17]। अत: 'दर्शन' शब्द का अर्थ देखना, 'जिसके द्वारा देखा जाए या जिसमें देखा जाएश होगा। धात्वर्थ में 'प्रेक्षण' शब्द का प्रयोग करने से 'दर्शन' का सामान्य अर्थ देखना न होकर 'प्रकृष्टईक्षण' अन्त: चक्षुओं द्वारा देखना होगा। व्यापक अर्थ में 'दर्शन' शब्द- वह साधन, (विद्या, ज्ञान या उपकरण) जिसके द्वारा किसी वस्तु या विषय को देखा या समझा जाये तथा वह आधार भूत वस्तु, जिसमें किसी को देखा जाए, आदि अर्थों को व्यक्त करता है।

अनादिकाल से दु:ख के काले बादलों में घिरे मानव-जगत् को मुक्ति दिलाने हेतु बड़े-बड़े ऋषियों ने सत्य ज्ञान और तप के बल पर तपस्याएँ करते हुए जिस ज्योतिर्मय स्वरूप के दर्शन किए उसी से प्रादुर्भूत परम ज्ञान का लिखित स्वरूप 'शास्त्र' कहलाया। 'शास्त्र' शब्द 'शासु अनुशिष्टौ' अर्थ वाली शास् धातु से निष्पन्न होने के कारण 'दर्शन' का अनुशासन या उपदेश करने से दर्शन शास्त्र कहलाता है। डॉ० शास्त्री के शब्दों में- 'दर्शन' अर्थात् साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों के अन्तश्चक्षु या दिव्यचक्षुओं द्वारा देखे गए तत्त्वों के उपदेशक ग्रन्थों का नाम ही 'दर्शन शास्त्र' है[18]। कतिपय विद्वानों के अनुसार-व्यक्ति-विशेष की अन्तर्दृष्टि के अनुसार, अनुभूत परम तत्त्व का साक्षात् प्रतिपादन जिसमें किया गया हो तथा जिसमें अनुभूति के साधन-मार्ग का निर्देश किया गया हो उसी को 'दर्शन-शास्त्र' कहते हैं। इस प्रकार परमतत्त्व वाचक अनुशासन और उपदेश युक्त ग्रन्थ ही दर्शन-शास्त्र के रूप में अभिहित किए जाते हैं।

'दर्शन-शास्त्र' जगत् के सत्य और जीवन के सार की खोज का प्रमाण हैं। जगत् के रहस्य और जीवन की समस्याओं पर विचार करना मनुष्य का विशेषाधिकार है, मनुष्यता का मौलिक लक्षण है। अपनी इसी चिन्तन शक्ति के कारण मनुष्य सृष्टि का मुकुट है। मानव की यही उत्कृष्ट, अलौकिक, श्दिव्य-चिन्तन-शक्ति एवं वैचारिकता की चरम सीमा, स्वर्णिम अंकों द्वारा पृष्ठों पर अंकित हो भारतीय चिन्तन को सत्य व परमानन्द की ओर अग्रसर करने का सोपान बनती है तथा शास्त्रीय रूप में अभिहित होती है। इस दर्शन-शास्त्र के अनेक दिव्य तत्त्व हैं जिनका सम्मिश्रण दर्शन-शास्त्र के स्वरूप का निर्माण करता है।

(i) 'दर्शन-शास्त्र' के स्वरूप का प्रथम सोपान मानवीय मेधा है, जो पशु की भाँति भोजन, निद्रा, प्रेम, युद्ध सन्तानोत्पत्ति आदि के क्रम में मृत्यु की शरण लेने वाले मनुज को उसके विचारक दृष्टिकोण और मस्तिष्कीय ज्ञान- चिन्तन के प्रभाव से प्राकृतिक धर्मो के रूप में उसे पशु-जगत् से अत्यन्त भिन्न रूप देती है।

(ii) 'दर्शन-शस्त्र' जहाँ मानव को चिन्तन की गहराईयों में लेकर जाता है वहीं वह संस्कृति, संस्कारों व सभ्यता का प्रतिष्ठापक भी है। वह 'सत्य' शिवम् और सुन्दरम् का अनुपम संगम है। इन सभी तत्त्वों, मूल्यों का समन्वयक रूप दर्शन-शास्त्र है। प्रकृति से स्वतन्त्र होकर मनुष्य ही इन मूल्यों की साधना करता है। इस साधना के संस्कारों के समन्वय से ही मानव सभ्यता को अपना मानवीय रूप प्राप्त हुआ है। सभ्यता संस्कृति, धर्म आदि की साधना के आधारभूत तत्त्वों और सिद्धान्तों का निरूपण विचार का विषय है। यह विचार प्रणाली ही 'दर्शन-शास्त्र' का स्वरूप है। विश्व के रहस्यों की जिन वीथियों में और जीवन संस्कृति की समस्याओं की जिन सरणियों तथा धर्म की साधना के जिन पन्थों में मनुष्य के चिन्तन की प्रगति हुई है, उन्हीं का समीक्षण दर्शन-शास्त्र है। चिन्तन तथा विचार की यह शक्ति ही मनुष्य की सभ्यता, संस्कृति, ध र्म आदि के निरन्तर परिष्कार तथा विकास का आधार है। एक ओर दार्शनिक चिन्तन जीवन के रहस्यों और मूल्यों के स्वरूप का निर्धारण करता रहा है, दूसरी ओर वह हमारी भावना से समन्वित होकर हमारे सांस्कृतिक जीवन की गतिविधि की प्रेरणा का स्रोत रहा है।

(iii) दर्शन की जीवन और जगत् के प्रति अविभक्त समग्रता, चेतना के स्वरूप और चिन्तन के स्वभाव में निहित है। यह चेतना अनेकत्व में एकता का विधान करती है। दर्शन की ही नहीं विज्ञानों की भी गति सदा बहुरूप विश्व में एकता के अनुसन्ध ान की ओर रही है। सम्भवत: इसीलिए 'स्पेन्सर' ने दर्शन को - "समस्त विज्ञानों की समष्टि" कहा है। एकता में विज्ञानों की परिणति दर्शन की सीमाओं का स्पर्श करती है।

(iv) भारतीय चिन्तक वैदिक काल से ही अनेकरूप विश्व के पीछे एक तत्त्व की सत्ता की खोज में लगे रहे। जबकि भारतीय दर्शन-शास्त्र में उपनिषदों से एक तत्त्व के अनुसंधान का सूत्र मिलता है तथापि गुरु-शिष्य-परम्परा पर अवलम्बित होकर

परम सत्ता की खोज में अग्रसर होते रहे हैं। इस परम्परा के कारण पूर्वगामी- चिन्तन परगामी विचार की प्रेरणा ही नहीं वरन् उसकी रक्षणीय निधि हैं। जिस अद्‌भुत कौशल के साथ भारतीय विचारकों ने परम्परा की प्रतिष्ठा और मौलिकता के मूल्यों की रक्षा की है वह एक अपूर्व आश्चर्य है। प्राचीन सिद्धान्तों और सत्यों का सम्मान और संरक्षण करते हुए भी उन्होंने सम्प्रदायों की परम्परा के अन्तर्गत ही नवीन विचारों का उद्‌भावन किया है। आचार्य की प्रतिष्ठा शिष्य के स्वतन्त्र चिन्तन की घातक नहीं वरन् उसके सार्थक चिन्तन की प्रेरणा और निर्देश रही है। इस चिन्तन प्रणाली का वरुण के 'ऋत' से आरम्भ होकर वेदान्त के ब्रह्ममें पर्यवसन हुआ। प्राचीन से नवीन का यह समन्वय पिष्टपेषण मात्र नहीं वरन् संश्लिष्ट और सजीव विचार का स्वाभाविक विकास क्रम है। पूर्णत: स्वच्छन्द विचार की नितान्त नवीनता का अभाव होते हुए भी मौलिकता की मर्यादा अनाहत रही है।

(v) श्रुति की मर्यादा और सम्प्रदाय के सम्मान का पालन करते हुए भी मौलिक विचार तत्त्वों का विकास भारतीय चिन्तन प्रणाली की एक मौलिक विशेषता है। भारतीय दर्शन शास्त्र के स्वरूप में यह विशेषता स्पष्ट रूप से लक्षित है जिस प्रकार क्रान्ति युग के बाद किन्हीं नवीन दर्शन सम्प्रदायों का सृजन नहीं हुआ उसी प्रकार उस काल के बाद पूर्णत: मौलिक ग्रन्थों का प्रणयन भी बहुत कम हुआ है। वैदिक साहित्य के बाद आस्तिक विचार- परम्परा में 'दर्शन-सूत्र' ही प्रथम और अन्तिम मौलिक कृति है।

4 दर्शन में समन्वय :-

भारतीय दर्शन का मूल जीवन की प्रेरणाओं में हैं, बुद्धि के कुतूहल में नहीं। जीवन एक और अखण्ड है। अत: भारतीय चिन्तन में जीवन के क्षेत्रों और प्रयोजनों का कोई कठोर विभाजन नहीं हुआ। एक होते हुए भी जीवन के क्षेत्र अनेक, उसकी दिशाएँ विभिन्न तथा उसके मध्यवर्ती प्रयोजन विविध हैं। दर्शन, आचार- शास्त्र और धर्मशास्त्र, मनुष्य की जिज्ञासा और साधना के मुख्य क्षेत्र हैं। मानव चेतना के अंगभूत विचार, कर्म और भावना, इन तीनों की मूल प्रेरणाएँ हैं। ज्ञान, श्रेय और सौन्दर्य तीनों के मूल लक्ष्य और परम साध्य हैं। चिन्तन, साधना और अनुराग तीनों मुख्य दिशाएँ हैं किन्तु यह वैविध्य समान प्रवाह की तीन धाराओं के समान है। जीवन के अखण्ड हिमालय के अंचल से ही ज्ञान की गंगा, भावना की यमुना और कर्म की सरस्वती का उद्‌गम होता है। जीवन के कर्म-क्षेत्र में विचार, कर्म और भावना का निरंतर संगम होता रहता है। अन्त में एक ही जीवन-जलधि में सभी धाराओं का विलय हो जाता है। जीवन का परम साध्य एक ऐसा ही अनन्त और अखण्ड महासागर है। इस परम साध्य में जीवन के विविध रूप आकांक्षाओं का समन्वय हो जाता है। जीवन की अखण्डता और आत्मा की एकता इस समन्वय का आधार है। पश्चिमी दर्शन की भाँति भारतीय चिन्तन में दर्शन, आचार-शास्त्र, और धर्मशास्त्र स्वतन्त्र तथा पृथक् न होकर जीवन की अखण्डता और साध्य की एकता के कारण सदा से समन्वित रहे हैं। सत्य की जिज्ञासा, श्रेय की स्पृहा और परमात्मा की साधना तीनों का मूल, तीनों का उद्देश्य समरूप परम साध्य के प्राप्ति की चेतना में निहित है। यही जीवन की कृतार्थता है। सत्य की खोज जीवन की साधना नहीं वरन् परब्रह्म की साधना ही सत्य की खोज है। प्रत्येक दर्शन सम्प्रदाय का सत्य विषयक सिद्धान्त आचार के आदर्श और अध्यात्मिक आस्था से समन्वित है। सत्य के अनुसन्धान का बौद्धिक अध्यवसाय भारतीय चिन्तना का अन्त नहीं, आरम्भ है। सत्य से समन्वित श्रेय की साधना प्रत्येक दर्शन का आवश्यक अंग है।

दर्शनों का एकमात्र लक्ष्य है दु:ख की परम निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति[19]। इसके लिए एक ही मार्ग है, दूसरा नहीं इसीलिए समस्त दर्शन एक ही ज्ञान के पथ हैं। सभी दर्शन- सूत्रों का आरम्भ नि:श्रेयस की कल्पना से होता है। लोकायतिक या भौतिकवादी चार्वाक को छोड़कर शेष सभी भारतीय दर्शन एक ही प्रेरणा से अनुप्राणित हैं। चार्वाक दर्शन वस्तुत: दर्शन नहीं दर्शनों का पूर्वपक्ष मात्र है। शेष दर्शन धाराएँ एक ही उद्‌गम मनुष्य की दु:खाभिभूत मनोवृत्ति से प्रवाहित हुई इसमें सन्देह नहीं । यदि दु:ख न होता तो दर्शन का श्दर्शनश सम्भव नहीं था । महात्मा बुद्ध द्वारा श्जराजर्जरितश मानव का साक्षात्कार उनके हृदय में दर्शन बीजों का प्रारोहरण तथा शव-दर्शनश बीजों का पल्लवन था। यहीं से भिक्षु दर्शन की उत्पत्ति हुई।

प्रत्येक दर्शन का समन्वयक बीज दु:ख है। अत: सभी दर्शन एक मत हो संसार को दु:खमय कहते हैं। 'महात्मा बुद्ध ने इस तत्त्व को चार आर्यसत्यों में 'सर्वदुखम्' कहा है। 'न्याय-वैशेषिक' पद्धतियों में संसार को विषाक्त अन्न के समान त्याज्य माना गया है।

सांख्य ने विश्व को दु:ख का सागर कहा है अत: उसका आरम्भ ही तापत्रय से निवारण हेतु होता है। 'योग' पंचक्लेशों से मुक्ति तो 'भीमांसा' भी दु:ख से निवृत्ति के साधन बताता है। 'वेदान्त' अनित्य, क्षणिक भौतिक सुखों एवं शान्त पारलौकिक सुख को त्याज्य कहकर, अनन्त एवं नित्य सुख की ओर प्रवृत्त करता है। इस प्रकार सभी दर्शन संसार को दु:ख रूप स्वीकार करते हैं।

संसार की दु:खरूपता के समान ही समस्त दर्शन दु:ख के कारण का अन्वेषण एवं अविद्या का दमन भी एकमत होकर करते हैं। इसी अविद्या को 'न्याय' - मिथ्याज्ञान और 'वेदान्त' अविद्या अथवा 'माया' शब्द से पुकारता है। उसकी निवृत्ति के अनन्तर सभी दर्शन तत्त्व ज्ञान अथवा ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति एवं साक्षात्कार का वर्णन करके ऋते ज्ञानान्न मुक्ति:"[20] और "विद्ययाऽमृतमश्नुते"[21] का समर्थन करते हैं।

सभी दर्शन यम, नियम, समाधि आदि को समभाव से स्वीकार कर संसारिकता से निर्लिप्त होने का उपदेश देते हैं। जीवन का परिमार्जन ही सबका उद्देश्य है न कि अकर्मण्यता या पलायनवादी प्रवृत्ति राग द्वेषादि महाप्रबल शत्रुओं को पराजित करने के लिए इनमें अनास्था एवं अनासक्ति की भावना योगी के शौर्य की परिचायक है।

'दर्शन' एकसूत्र हो जगत् की नैतिक व्यवस्था अथवा 'ऋतु' का समर्थन करता है। ऋतु अर्थात् नियति, नियम सूर्य चन्द्र और नक्षत्र सभी इसी व्यवस्था से आदेशित हैं -

"ऋतं च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत्"[22]।

अर्थात् पहले ऋत् फिर सत्य का अविर्भाव हुआ। सभी दर्शन इस संस्था की नैतिक व्यवस्था को भिन्न रूपों में स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार 'ऋत्' विश्व की कर्म समष्टि को नियमित करने के लिए संसारिक कर्मों के संचालन में प्रवृत्त रहता है, ठीक उसी प्रकार उसका जीवगत व्यष्टि कर्म उसके जीवन का नियम पूर्वक संचालन करने वाला है। इसी आधार पर भारतीय दर्शन में सुख-दु:ख एवं जन्म मरण की व्यवस्था को कर्म पर आधारित किया गया है।

'ऋत' का उत्तराधिकारी 'कर्म' मीमांसा में 'अपूर्व' शब्द से पुकारा जाता है। उनके मत में कृत यज्ञानुष्ठान लुप्त नहीं होता। वह एक 'अपूर्व की सृष्टि करता है जो भविष्य में फलती है। इसी प्रकार न्याय और वैशेषिक में इसे 'अदृष्ट' की संज्ञा दी गई है। इस अदृष्ट एवं अपूर्व कर्म के तीन रूप क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध है। इन्हीं के आधार पर दर्शनकार, पुनर्जन्म, संसारिक जीवन में पारस्परिक विषमता एवं सुख-दु:खादि की विवेचना करते हैं। इस प्रकार सभी दर्शन कर्म के आधार पर पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं। उपमानों के आधार पर पुनर्जन्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है - ष्अन्न की तरह मानव का नाश होता है और अन्न की तरह उसका पुन: पुनर्जन्म भी होता है[23]। एक किंवदन्ती के अनुसार-किसी राजा ने 'शंकराचार्य' से पूछा था कि आप संसारिक उपस्थित सुखों की अवहेलना करके अनुपस्थित ब्रह्मानन्द की आशा किए बैठे हैं यह तो उचित नहीं। इसी तरह यह संसार और संसारिक पदार्थों का दु:खमय प्रतिपादन तथा किसी आगामी नित्य एवं अनन्तान्द के अभाव में, उपस्थित को त्यागकर अनुपस्थित की याचना करने वाला बाधित न्यायमात्र ही होगा। यह मोक्ष यदि मनुष्य को मरणोपरान्त प्राप्तव्य कहा जाता है तो हम इसे कोरी कल्पना कहकर उसकी प्राप्ति के उपायों का "उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचते' बताकर उपहास करते थे परन्तु जब ये तत्त्व ज्ञान से मुक्ति की बात बताने वाले लोग 'जीवन्मुक्त' का प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं तो फिर अविश्वास के लिए स्थान कहाँ रह जाता है? अत: सांख्य योग, न्याय और वेदान्त आदि सभी दार्शनिक मोक्ष की सत्ता में एकमत हैं।

अविद्या से उत्पन्न राग द्वेषादि बन्धनों को ज्ञान की तलवार से काटकर ही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी होता है। अत: निदिध्यासन ही मोक्ष का साधन है। यह सर्व-दर्शन सम्मत है। इसी से साधक के हृदय की गाँठ खुलती है और ज्ञानालोक में वह मोक्षप्राप्ति करता है -

ष्भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि"[24]।

अर्थात् "हृदय की गाँठ खुल जाती है, समस्त संशय मिट जाते हैं, कर्मों के नाश से फिर जन्म-मरण का प्रादुर्भाव कहाँ से हो सकता है?"

पुरुष के कामादि विकार नष्ट हो जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है। इस प्रकार विविध भारतीय दर्शन धाराओं के मूल प्रवाह समान ही हैं। संक्षेप में यही दर्शनों का समन्वयवाद है।

5. दर्शन के वर्गीकरण की आवश्यकता : -

प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् के मतानुसार "हमारे देश का अध्यात्म सबसे ऊपर है। क्योंकि यहाँ खान-पान की कोई कमी नहीं थी, दूध-दही की नदियाँ बहा करती थीं।"[25] यह कथन अक्षरशः सत्य है क्योंकि सबसे पहले मनुष्य पेट भरने की सोचता है। पेट भरा होने पर ही अपने खान-पान, संस्कृति तथा मर्यादानुसार चिन्तन की ओर अग्रसर होता है।

वेदों में बीजारोपित होकर ब्राह्मण व आरण्यकों में पल्लवित और पुष्पित होने वाले दर्शन के पुष्पों की सौरभ उपनिषद् काल में तीव्रता से चारों ओर प्रसृत होने लगी। उस काल में चिन्तन-मनन की गहन तपस्या में लीन ऋषि-मुनि अतुलित दार्शनिक ज्ञान की खोज में तत्पर रहते थे। अतः दर्शन उनके मस्तिष्क का आभूषण था। सत्य खोज में अनवरत रूप से प्रयास रत ऋषियों के हृदय अति स्वच्छ एवं निर्मल थे। उस काल में चारों ओर भारतीय संस्कृति, सभ्यता, 'सत-चित-आनन्द' प्रवृत्तियों का बोल बाला था, फलतः दर्शन, पुस्तकों या शास्त्रों में बद्ध न रह कर ऋषियों के अन्तःकरण का रत्न भी था। जिज्ञासुओं को तत्त्व के सभी स्वरूप सरलता से समझ में आ जाते थे उन्हें उनके समझने में कोई बाधा नहीं होती थी। यही कारण था कि उपनिषदों में सभी विचारधाराओं के रहने पर भी विचारों के क्रमबद्ध वर्गीकरण की अपेक्षा न हुई। उन्हें तत्त्व के सम्बन्ध में भिन्न- दृष्टि से किए गये आक्षेपों के समाधान करने का तथा प्रतिपक्षियों के साथ तर्क-वितर्क करने का कोई विशेष अवसर न मिला। इसलिए उपनिषदों में कहे गये तत्त्व के स्वरूपों का विश्लेषण कर भिन्न-भिन्न क्रम से पृथक्-पृथक् उनके वर्गीकरण का प्रयोजन पहले नहीं हुआ।

विषयों का वर्गीकरण तभी होता है जब उनके समझने में कठिनाई होती हो या फिर विभिन्न मतावलम्बियों के भिन्न-भिन्न विचारों के मतभेद सामने खड़े हो अथवा सभी का उक्त विषयों के प्रति अपना दृष्टिकोण ही बदला हुआ हो।

'दर्शन' को वर्गीकृत करने का प्रमुख कारण था प्रतिपक्षियों के बीच उठा विवाद। दूसरी ओर जिज्ञासुओं की बुद्धि भी क्रमशः मलिन होने लगी। बुद्धि की मलिनता व चिन्तन की प्रवृत्ति के कुछ कमजोर पड़ने पर विवाद और उग्रता आदि बढ़ने लगी और अनेक कट्टर तथा तर्क-प्रवीण प्रतिपक्षियों का उदय हुआ। यह तो स्पष्ट ही है कि विद्वान् एकमत नहीं होते, अतः वेद के ऊपर आक्षेप होने लगे, कर्मकाण्डीय- वैदिक-धर्म के विरुद्ध जनता में उपदेश दिये जाने लगे। प्रलोभनों के कारण समाज विचलित होने लगा। इन विघ्नों को देखकर समय के अनुकूल वेद तथा वैदिक धर्म की रक्षा के लिए हमारे बुद्धिजीवी चिन्तकों ने उपनिषदों में से ज्ञान-तत्त्वों को खोज कर आक्षेपों के समाधान के लिए भिन्न-भिन्न सामग्री एकत्र की, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से दार्शनिक तत्त्वों को श्रृंखलाबद्ध करने का प्रयत्न किया जाने लगा। तत्पश्चात् तत्त्वों के विचारों को समन्वय की दृष्टि से सोपान परम्परा के रूप में श्रृंखलाबद्ध बना कर, प्रतिपक्षियों के साथ तर्क-वितर्क करने के लिए भिन्न-भिन्न रूप से संयोजित किया गया। ये सभी तत्त्व तथा विचार एक बार पुनः उपनिषदों के बाद क्रमशः दृष्टि में आने लगे। अब जिज्ञासुओं को तत्त्वों को समझने में कोई विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं हुई। अतः परवर्ती दार्शनिक सूत्रों को उपनिषदों से पृथक् करते हुए उनको दर्शन-शास्त्र के रूप में वर्गीकृत किया गया।

उपनिषदों के भी दर्शन के वर्गीकरण की आवश्यकता हुई होगी वहाँ भी तत्त्वों के बिखराव का संयोजन किया गया होगा। श्छान्दोग्य उपनिषद् के सातवें अध्याय में नारद और सनत्कुमार के संवाद से यह स्पष्ट है कि उपनिषदों के पहले भी शास्त्रों का वर्गीकरण अवश्य हुआ होगा अन्यथा नारद मुनि शास्त्रों को पृथक् पृथक् किस प्रकार गिना सकते थे? लेकिन उन शास्त्रों का परिचय आज भी अज्ञात है। वर्तमान में जितने दार्शनिक ग्रन्थ हैं उनका वर्गीकरण तो उपनिषदों के बाद ही निश्चित होता है।

बौद्धों के साथ तर्क करने के लिए अक्षपाद गौतम ने श्न्यायसूत्रश की रचना की तथा वैदिक मन्त्रों के अभिप्राय को सुरक्षित रखने के लिए जैमिनि ने श्मीमांसा-सूत्रश की रचना की। इसी प्रकार अन्य दार्शनिक सूत्र-ग्रन्थों की भी रचना हुई होगी।

दर्शन की आवश्यकता स्पष्ट हो जाने पर दर्शन के वर्गीकरण की ओर जिज्ञासुओं की दृष्टि उठी। पुनः अनेक मतभेद सामने आये। बहुत दिनों तक दर्शनों में प्रसिद्ध 'षड्दर्शन' के अन्तर्गत (षट) छः की संख्या का भी कोई नियम निश्चित नहीं हो सका होगा, क्योंकि पुष्पदन्त ने 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' में सांख्य-योग- पाशुपत वैष्णव दर्शनों की ही चर्चा की और कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में सांख्य-योग तथा लोकायत इन तीन की। शंकराचार्य ने अपने 'सर्वसिद्धान्त संग्रह' में न्याय, वैशेषिक आदि आधुनिक समय में प्रचलित षड्दर्शनों के अतिरिक्त आर्हत बौद्ध एवं चार्वाक दर्शनों को भी स्थान दिया। जयन्त भट्ट ने आर्हत-बौद्ध और चार्वाकों के साथ कुल चार अर्थात् मीमांसा न्याय-वैशेषिक और सांख्य का ही उल्लेख किया। इस मतभेद पर इतना आश्चर्य नहीं, जितना की बाहरवीं सदी के लेखक जैनाचार्य हरिभद्र सूरि पर है, जिन्होंने अपनी रचना का 'षड्दर्शन समुच्चय' नाम देकर भी केवल बौद्ध,

नैयायिक कपिल, जैन, वैशेषिक तथा जैमिनि (मीमांसा) का ही उल्लेख किया और षड्दर्शनों में प्रसिद्धतम वेदान्त दर्शन को छोड़ दिया, । 13वीं सदी के प्रसिद्ध जैन लेखक जिनदत्त सूरि ने भी अपने 'षड्दर्शन समुच्चय' में केवल मीमांसा और सांख्य को ही लिया शेष चार में जैन, बौद्ध, शैव और नास्तिक को सम्मिलित किया[26]। इस प्रकार अन्यान्य 'सर्वमतसंग्रह' या सर्वदर्शन संग्रह के प्रणेताओं ने भिन्न-भिन्न संख्या और भिन्न-भिन्न नाम वाले दर्शनों को अपनी अपनी रचनाओं में स्थान दिया।

'सर्वदर्शन' हो या दर्शन नाम से प्रसिद्ध अन्य पद्धति इनके अन्तर्गत सभी ने अपने मतानुसार दर्शनों का उल्लेख किया। इनकी भिन्नताओं का कारण स्वयं का स्वाध्याय एवं रुचि के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न कालों की तर्क वितर्कीय परिस्थिति हो सकती हैं जिनके खण्डन-मण्डन हेतु जिज्ञासुओं ने आवश्यकतावश दर्शन के विवेचन हेतु कलम चलायी। समय परिवर्तनशील है। लोगों की कभी कैसी तो कभी कैसी रूचि होती है। यथा अपने उद्गम स्थान से निर्मला गंगा जब विस्तृत मैदानों में उतरती है तो सर्वत्र न स्वच्छ रहती है न शुद्ध। इसी प्रकार अपने उत्स उपनिषदों से आविर्भूत होकर यह दर्शन गंगा जब लोक में प्रवाहित होती है तो इसके उपजीवी अनेक मत-मतान्तर प्रेरणास्वरूप उसका अंश लेकर पनपने लगते है। ये मत-मतान्तर ही सम्प्रदाय कहलाते हैं। इन सबके प्राणों का अवलम्बन दर्शनों की ही उन्मुक्त धारा है इसमें कोई सन्देह नहीं। सम्प्रदाय समय की आवश्यकता से उत्पन्न होते हैं, इसलिए जनता के रुझान पर उनकी आशा चमकती है और उदासीनता पर फीकी पड़ती है। इसलिए समय की पुकार और जनता की रुचि एवं प्रोत्साहन देने पर कभी कोई और कभी कोई दर्शन महत्त्व को ग्रहण करते गए और अन्य उससे वंचित होते गए। परन्तु जब 'षड्दर्शन' का प्रकरण प्रारम्भ करके करके प्रचलित 'षड्दर्शन' न्याय-वैशेषिक सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त का वर्णन कोई छोड़ देता है तब वह दृष्टि को खटकने लगता है। इसका प्रमुख कारण 'षड्दर्शन' शब्द का अभिधेय निश्चित न होना था। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने और उनके अनुयायियों ने इन प्रसिद्ध छः दर्शनों को ही 'हिन्दू दर्शन' भी कहा है[27]।

डॉ० दास गुप्ता के इस मत से शेष पद्धतियाँ अहिन्दू सिद्ध हो गयीं परन्तु यह बात जैन, बौद्ध और शैवादि दर्शनों को अहिन्दू की कोटि में बरबस आक्षिप्त कर देगी जो उचित नहीं है, अतः विद्वानों ने कुछ दर्शन आत्मवादी एवं कुछ आत्मा के प्रत्याख्यान करने वाले मानकर दो वर्ग आत्मवादी एवं अनात्मवादी किए। इसमें भी अनेक समस्याएँ आयी, अतः इसे दोषपूर्ण मानकर विद्वानों ने भारतीय दर्शन की विचारधाराओं को जिन दो भागों में बाँटा वह थी 'आस्तिक-दर्शन' एवं श्नास्तिक दर्शन इनको भी अनेक प्रकार से व्याकरणीय तर्क-वितर्क से व्याख्यायित किया गया तथा असफल हो जाने के बाद अंत में 'मनुस्मृति' के अनुसार "नास्तिको वेदनिन्दकः"[28] कहकर वेद निन्दक को ही नास्तिक माना, अतः "त्रयो वेदस्य कर्तारो घूर्तभाण्ड-निशाचराः" की धारणा रखने वाले चार्वाक आदि नास्तिक दर्शन कहलाए।

"वेदो पूजकः आस्तिक" कहकर वेद पूजक को आस्तिक समझा गया। तथा न्याय-वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त आस्तिक दर्शन कहलाये।

संदर्भ

1 "तथास्तीते मतियेषां ते आस्तिकाः" ।। पाणिनीय सूत्र -4-4-60
2 भारतीय दर्शन - विक्रमादित्य सिंह (संस्करण 1970), पृष्ठ - 8
3 मनुस्मृति (मनुमहाराज) 4-40
4 मनुस्मृति (मनुमहाराज) 4-75
5 "वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते", "परर्म तत्यते तपः" मनुस्मुति -2-115, 2-116
6 'ऋषिदर्शनात्' साक्षात्कृतधर्माणः ऋषियो बभूवुः" -निरूक्त यास्कमुनि (प्रो० उमा शंकर शर्मा) प्रथम अध्याय- पृष्ठ 33
7 मनुस्मृति (मनुमहाराज) 12-94
8 "पाणिनीय सूत्र" -4-4-60
9 भारतीय दर्शन - श्री विक्रमादित्य सिंह, पृष्ठ - 8-9
10 मनुस्मृति (मनुमहाराज) 1-67
11 न्यायसूत्र ii. 2.56, Calcutta संस्करण 1619.
12 भारतीय दर्शन - उमेश मिश्र, पृष्ठ - 37
13 पदर्शन समुच्चय गुणरत्न की टीका, कारिका 88, पृष्ठ 308

14 सर्वसिद्धान्त संग्रह - लोकायतमत, कारिका 8-10-18
15 सर्वदर्शन संग्रह - प्रथम अध्याय
16 भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ-1
17 नपुंसके भावेक्तः 2-2-116 ल्युट् च 3-2-117 ; करणाधिकरणयोश्च 3-3-117 - पाणिनि अष्टाध्यायी
18 भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ - 2
19 "सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्राणि मोक्षमार्गः", - द्रव्य संग्रह- 1/1
20 सांख्यसूत्र -3-23
21 यजुर्वेद -40-14
22 ऋग्वेद-10-190-1
23 "Like com dacays the mortal, like corn is born again" Katha UP.
24 मुण्डकोपनिषद् 2-2-8
25 भारतीय दर्शन डॉ० राधाकृष्णन
26 भारतीय दर्शन उमेश मिश्र -पृष्ठ-17
27 A History of Indian Philosophy by S.N. Das Gupta - 1. Vol Page - 7
28 मनुस्मृति (मनु महाराज), 1-67

मुगल बुन्देला सम्बन्धः राजनीतिक समीक्षा

रविन्द्र प्रताप सिंह

शोधार्थी - इतिहास विभाग, पं0 जवाहार लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा (उ0 प्र0)

डॉ० श्रीमती आरती पाण्डेय

विभागाध्यक्ष - इतिहास विभाग, पं0 जवाहार लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा (उ0 प्र0)

वर्तमान उत्तर प्रदेश के दक्षिणी एवं मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में विस्तृत बुन्देलखण्ड का क्षेत्र विन्ध्याचल पहाडियों से से घिरा हुआ प्राकृतिक सौन्दर्य एंव शौर्य पराक्रम की स्थली के रूप में विख्यात रहा है। मध्यकाल में मुगलों के राजनीतिक क्षेत्र बिस्तार के क्रम में अनेक स्थानीय राज्यों के साथ उनका टकराव हुआ। ओरछा को केन्द्र बनाकर बुन्देलों के द्वारा मुगलों के प्रतिरोध की गाथा इतिहास की एक अमूल्य धरोहर है। मुगल काल के प्रशासनिक विभाजन के दौरान बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग इलाहाबाद सूबे के अन्तर्गत सम्मलित था। इसके अतिरिक्त कालपी आगरा तथा चन्देरी मालवा क्षेत्र सम्मलित था। बुन्देलों से पूर्व यह सम्पूर्ण क्षेत्र चंदेल वंश के अन्तर्गत आता था।

बुन्देलों एवं मुगलों के मध्य प्रथम टकराव मधुकरशाह (1554 - 92) के समय में हुआ। बुन्देले अपने क्षेत्र का बिस्तार करना चाहते थे, जिसके लिए अपने सीमावर्ती ग्वालियर एवं सिंरोज पर लगातार आक्रामक रूख अपनाए हुए थे। मुगल शासक अकबर एवं जहॉगीर बुन्देलों की इस नीति से अप्रसन्न हो गए तथा अनेक बार बुन्देल क्षेत्र पर चढ़ाई की तथा बुन्देलों को नियंत्रित करने का प्रयास किया। मधकर शाह के पश्चात ओरछा का शासक उसका ज्येष्ठ पुत्र रामशाह हुआ। रामशाह का छोटा भाई वीरसिंहदेव बुन्देला, जो कि बड़ौनी का जागीरदार था, अधिक महत्वाकांक्षी सिद्ध हुआ तथा सलीम के साथ मिलकर 1602 में अबुल फजल की हत्या कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि जब सलीम मुगल शासक बना तो उसने ओरछा का राजा वीरसिंहदेव बुन्देला को बनाया तथा रामशाह को चंदेरी की एक छोटी सी जागीर प्रदान किया।[1] वीरसिंह देव ने अपने आपकों एक मजबूत शासक सिद्ध किया, इसके साथ अपने संरक्षणकर्ता जहॉगीर के प्रति सदैव ईमानदार रहा। इस दौरान उसने बड़ी मात्रा में धन एवं शक्ति प्राप्त कर ओरछा को एक शक्ति सम्पन्न राज्य बनाने का कार्य किया। जहॉगीर के शासन काल में मुगल एवं बुन्देला सम्बन्ध बहुत ही सकारात्मक रहे।

वीरसिंहदेव की मृत्यु के पश्चात मुगलों एवं बुन्देलों के सम्बन्धों में एक बाहर पुनः टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। जहॉगीर के पश्चात जब शाहजहॉ मुगल शासक बना, उस दौरान ओरछा का शासन वीरसिंहदेव के पुत्र जुझारू सिंह के पास था। शाहजहाँ के राज्यारोहण के दौरान जुझारू सिह आगरा छोडकर ओरछा की तरफ चला गया। उसके इस व्यवहार से शाहजहॉ उससे नाराज हो गया तथा उसको दण्ड देने के लिए शाही सेना भेजी। अपनी कमजोर स्थिति को देखते हुए जुझारू ने माफी मांग ली। शाहजहॉ ने जुझारू सिंह को महावत खॉ के साथ दक्षिण भारत भेज दिया। परन्तु जुझारू सिंह अपनी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के कारण कुछ समय पश्चात वापस ओरछा आ गया। दक्कन से वापस आने के बाद जुझारू सिंह ने गोंड शासक भीमनारायण सिंह की हत्या कर चौरागढ़ के किले पर अपना अधिकार कर लिया तथा बड़ी मात्रा में धन एवं सम्पत्ति को लूट लिया। शाहजहॉ इस बात को लेकर बहुत क्रोधित हुआ। उसने जुझारू सिंह को आदेश जारी किया कि वह गोंड शासके के पुत्र को उसके जीते हुए भाग को वापस कर दे तथा क्षतिपूर्ति के रूप में एक हिस्सा मुगल राजकोष में जमा करे। शाहजहॉ का मूल उद्देश्य जुझारू सिंह पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के साथ

इस क्षेत्र में अपने प्रभुत्व को बनाए रखना भी था। जुझारू सिंह ने आदेश स्वीकार नही किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि 1635 में ओरछा राज्य को जीत लिया गया तथा चंदेरी के देवी सिंह बुंदेला को हस्तगत कर दिया गया।[2] जुझारू सिंह के विद्रोह को दबाने के लिए शाहजहॉ ने स्थानीय जमींदारों तथा जुझारू सिंह के शत्रुओं को अपने पक्ष में कर लिया। जुझारू सिंह की मृत्यु के पश्चात देवी सिंह ओरछा राज्य को सही तरीके से शासित नही कर पा रहा था। इस स्थिति में शाहजहॉ ने ओरछा राज्य को शाही शासन के अन्तर्गत सम्मलित कर प्रत्यक्ष रूप से उसे मुगलों के अधीन कर लिया। इस प्रकार ओरछा का राज्य मुगलों के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आ गया, जिससे राजस्व में वृद्धि के साथ साथ दक्कन तक का सम्पर्क मार्ग पूर्ण रूप से सुरक्षित हो गया।

इस प्रकार मुगल बुन्देलों के मध्य सघर्ष का प्रथम चरण मुगलों के पक्ष में रहा, परन्तु इसी के साथ बुन्देलखण्ड को स्वतंत्र कराने के लिए एक नवीन नेतृत्व उभर कर सामने आया, जिसका नाम चंपतराय था। चंपतराय ओरछा शासकों की प्रशाखा से सम्बन्धित था। चंपतराय ने अपनी बहादुरी से मुगल मनसबदारी व्यवस्था में अपना स्थान बनाया तथा उसे कौच के जागीरदार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। परन्तु अपनी विद्रोही मानसिकता के कारण समय समय पर उसका मुगलों के साथ संघर्ष चलता रहा। चंपतराय को बुन्देलखण्ड में स्थानीय स्तर पर किसी प्रकार का समर्थन प्राप्त नही हुआ। चंपतराय की विद्रोही गतिविधियों पर नियंत्रण के लिए शाहजहॉ ने ओरछा के क्षेत्र को जुझारू सिंह के छोटे भाई पहाडसिंह बुन्देला को सौप दिया, जो कि मुगलों के प्रति स्वामिभक्त था। वास्तव में शाहजहॉ बुन्देलखण्ड में पहाडसिंह तथा चंपतराय को एक दूसरे के विरुद्ध करना चाहते थे, जिससे कि दोनो पक्ष आपस में संघर्ष करते रहे तथा बुन्देलों की समस्या से निपटा जा सके। चंपतराय ने पहाडसिंह का विरोध करना उचित नही समझा तथा वह स्वयं पहाडसिंह की सेवा में चला गया। परन्तु पहाडसिंह के द्वारा उसकों अनेक बार मरवाने का प्रयास किया गया, जिसके कारण वह दाराशिकोह की सेवा में चला गया। दाराशिकोह के साथ रहते हुए उसे क्रोच की जागीर भी प्रदान की गई। परन्तु यह सम्बन्ध बहुत लम्बें समय तक नही चल पाया तथा कुछ समय बाद वह वापस अपनी पुश्तैनी जागीर महेवा वापस आ गया।[3] औरंगजेब ने जब अपने पिता के विरूद्ध विद्रोह किया तो उसने चंपतराय को अपने पक्ष में मिला लिया। इस दौरान चंपतराय को 5000 की मनसंबदारी, एक घर तथा सम्मानसूचक खिताब प्रदान किया गया। परन्तु अपनी स्वतंत्र प्रकृति के अनुरूप जब औरंगजेब के एक संदेशवाहक ने उसका अपमान किया, तो उसने मालवा जाने के रास्तें को असुरक्षित कर दिया। चूकि इस समय औरंगजेब उत्तराधिकार के युद्ध में व्यस्त था, इस कारण चंपतराय की तरफ ध्यान नही दे पाया। औरंगजेब ने सिंहासनरोहण के पश्चात चंदेरी के देवीसिंह बुन्देला को चंपतराय के दमन का आदेश दिया तथा उसकी सहायता के लिए बुन्देलखण्ड़ के अन्य जगीरदारों को आदेश दिया गया। इस कठिन परिस्थिति में चंपतराय के सगे सम्बन्धियों ने उसका साथ छोड दिया। चंपतराय अपनी सुरक्षा के लिए इंद्रावन धंदेरा के पास शरण लेने जा रहे थे, परन्तु वह भी शत्रुओं से मिल चुका था। ऐसी स्थिति में जब शत्रुओं ने उनकों घेर लिया तो चंपतराय ने स्वयं अपनी जीवनलीला को समाप्त कर दिया।[4]

चंपतराय की दुखद मृत्यु बुन्देलखण्ड के लिए एक अपूर्णनीय क्षति थी। यद्यपि यह प्रतिरोध का समापन नही था, वरन एक अध्याय मात्र था। चंपतराय के प्रतिरोध को आगे बढ़ाने का कार्य उसके पुत्र छत्रसाल के द्वारा किया गया। छत्रसाल तथा उसके भाईयों को बुन्देलखण्ड के किसी भी क्षेत्र से समर्थन प्राप्त नही हो पाया था। उसका कारण मुगलों का इस क्षेत्र में वर्चस्व तथा मुगल विरोधियों के पूर्वकाल में हुए हश्र को माना जाता है। इस परिस्थिति में छत्रसाल तथा उसका भाई अंगद शाही सेना में नौकरी करने लगे। जब जयसिंह ने पुरन्दर की घेराबन्दी की तो इन दोनों भाईयों ने मुगलों की सराहनीय सेवा की। परन्तु इसके लिए उनको जो पुरस्कार दिया गया वह बहुत ही तुच्छ था। इसे अपने लिए अपमानजनक मानते हुए वह शाही सेना छोडकर छत्रपति शिवा जी के पास चले गए। यद्यपि शिवा जी ने इनको अपनी मातृभूमि बुन्देलखण्ड जाने की सलाह दी। बुन्देलखण्ड वापस आकर इन्होने एक बार पुनः औरंगजेब के विरूद्ध लोगों को संगठित करने का प्रयास किया। ओरछा के शासक सुजान सिंह के अतिरिक्त बाकी खान एवं अन्य असन्तुष्टों ने छत्रसाल को अपना समर्थन दिया। इसके अतिरिक्त चंपतराय के पुराने सिपाही तथा सेनापति भी छत्रसाल की छाया में संगठित होने लगे। इस प्रकार छत्रसाल ने अपनी पुश्तैनी जागीर महेवा भूमि पर औरंगजेब को चुनौती देने लायक शक्ति जुटा ली। धीरे धीरे अनेक जमींदारों एवं जागीरदारो की भूमि पर कब्जा करते हुए 1675 ई0 में पन्ना पर अधिकार कर लिया तथा इसकों अपनी राजधानी के रूप में स्थापित किया।[5] इस दौरान छत्रसाल के पास बड़ी संख्या में योग्य व्यक्ति एकत्रित होने लगे, जिनमें उनका भाई अंगद, रतनशाह, अमर दीवान, पृथ्वीराज तथा ताज सिंह प्रमुख थे।

छत्रसाल की बढ़ती प्रतिष्ठा ने मुगलों को उनके विरूध्द कार्यवाही करने के लिए बाध्य कर दिया। मुगलों ने पाँच बार छत्रसाल को युद्ध में पराजित किया, परन्तु प्रत्येक बार वह आत्मसमर्पण कर देता। छत्रसाल इस बात को अच्छी तरह से जानता था कि मुगलों

के साथ दीर्घकालिक युद्ध संभव नही है। इसलिए वह मुगलों के साथ टुकड़ों में संघर्ष करना चाहता था। वह जानता था कि उसके अधिकार में पूर्ण रूप से बुन्देलखण्ड का क्षेत्र भी नही है क्योकि दतिया, ओरछा एवं चंदेरी के शासक उसके साथ शत्रुता पूर्ण व्यवहार रखते हुए मुगलों का सहयोग कर रहे थे। अपने अन्तिम आत्मसमर्पण के पश्चात छत्रसाल को 4000 के मनसंब के साथ राजा की उपाधि प्रदान की गई। इसके पश्चात उसके सम्बन्ध औरंगजेब से अच्छे बने रहे।[6]

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्रो के मध्य हुए उत्तराधिकार के युद्ध में छत्रसाल ने किसी का भी पक्ष नही लिया। छत्रासाल ने औरगजेब के उत्तराधिकारियों के साथ सहयोग की भावना को बनाए रखा। छत्रसाल की सीमा के समीप मालवा पर आजम का अधिपत्य था। छत्रसाल ने आजम को संदेश भेजा। आजम प्रसन्न होकर छत्रसाल को 5000 जात एवं 5000 हजार सवार का मनसबदार बना दिया तथा पनवारी एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्रों पर उसके अधिपत्य को स्वीकार कर लिया। आजम ने छत्रसाल से सैन्य सहायता मागी। दूसरी तरफ बहादुरशाह ने भी इसी प्रकार की सहायता छत्रसाल से मांगी। छत्रसाल ने दोनो राजकुमारों को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नही की। बहादुरशाह के बादशाह बनने के पश्चात छत्रसाल ने उससे क्षमा मांग ली। बहादुरशाह ने क्षमा करते हुए औरंगजेब के काल में मिली जागीरों एवं मनसब को यथावत रखा तथा उसे दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। परन्तु विभिन्न प्रकार की आंशकाओ के कारण वह आदेश का पालन तत्काल नही कर पाया।[7]

कुछ समय बाद जब बहादुरशाह दक्षिण की तरफ जा रहा था, तो हिरदेसाह तथा छत्रसाल के अन्य पुत्र दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने उनका सम्मान करते हुए उन्हे उचित मनसब प्रदान किया। इस प्रकार बहादुरशाह तथा छत्रसाल के मध्य का अविश्वास पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। 1708 ई0 में बहादुरशाह ने छत्रसाल को राजा की उपाधि तथा पाँच हजार जात एवं चार हजार सवार का मनसब प्रदान किया। बहादुरशाह जब दक्षिण से वापस आया तो छत्रसाल ने बहादुरशाह से भेंट की तथा बादशाह को 100 अशरफी, एक हजार रूपये, पाँच छोटी बन्दूकें तथा एक तलवार उपहार स्वरूप प्रदान किया। बहादुरशाह ने छत्रसाल को हाथी, खिलवत तथा तलवार देकर सम्मानित किया। पंजाब क्षेत्र में सिख उपद्रव के दौरान शाही सेना के साथ छत्रसाल भी गए तथा लोहागढ़ के किलें के विजय में अपना सहयोग दिया। इसके पश्चात छत्रसाल स्वदेश वापस आ गए। इस प्रकार बहादुरशाह के साथ छत्रसाल के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण रहे।[8]

जहॉदरशाह के अल्पकालीन शासन में छत्रसाल ने दिल्ली की राजनीति से उचित दूरी बनाए रखा। जब फर्रूखसियर शासक हुआ तो छत्रसाल ने अपनी सेवाएँ उनको अर्पित की। इस समय तक छत्रसाल मुगलों के प्रबल समर्थक हो चुके थे तथा मराठों को रोकने के लिए अनेक बार शाही सेना को अपनी सेवाएँ दे चुके थे। फर्रूखसियर के काल में मराठों तथा अफगानों ने मालवा के क्षेत्र पर अनेक बार आक्रमण किया। जयसिंह के नेतृत्व में इस क्षेत्र में फैली अव्यवस्था को समाप्त करने का कार्य छत्रसाल के द्वारा किया गया। छत्रसाल के कार्यो से प्रसन्न होकर बादशाह ने छत्रसाल को खिलवत प्रदान की।[9]

फर्रूखसियर के अपदस्थ होने तथा मुहम्मदशाह के बादशाह बनने से सवाई राजा जयसिंह, बुद्धसिंह हाडा, इलाहाबाद के सूबेदार छबीलेराम तथा छत्रसाल को कोई प्रसन्नता नही हुई। इन सभी का उत्थान फर्रूखसियर के शासन काल में ही हुआ था। इसके साथ छत्रसाल जयसिंह के प्रबल समर्थक हो चुके थे। इन कारणों से छत्रसाल एवं मुहम्मदशाह के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। जब इलाहाबाद के सूबेदार के विरुद्ध शाही सेनाओं को भेजा गया, तो उसे रोकने के लिए छत्रसाल ने मालवा की सीमा पर अव्यवस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया। उसके एक पुत्र जयचन्द्र ने रामगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया। उसका एक अन्य पुत्र भगवती सिंह ने दिलेर खाँ तथा अब्दुनवी की सेनाओं को रोकनें का प्रयास किया, परन्तु इस संघर्ष में मारा गया। यद्यपि यह सभी कृत्य छत्रसाल के संकेत पर ही किए गए थे, परन्तु छत्रसाल ने ऊपरी तौर पर मुहम्मदशाह से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयास किया। जब बादशाह ने आदेश दिया तो उसने अपने पुत्र पदम सिंह को शाही सेनाओं के साथ दक्षिण भारत में मराठों के दमन के लिए भेजा। पदम सिंह ने अपनी वीरता से मुगल बादशाह को प्रभावित किया तथा अनेक जागीरे प्राप्त की। छत्रसाल ने मुहम्मदशाह के सिंहासनारोहण पर बधाई संदेश भेजा तथा कुछ समय के लिए अपनी सेवाएँ भी अर्पित की। यद्यपि छत्रसाल एवं मुहम्मदशाह के सम्बन्ध बहुत समय तक स्थिर नही रह सके।[10]

मुहम्मदशाह ने छत्रसाल पर नियंत्रण करने के लिए मुहम्मद खाँ बंगश को उकसाने का कार्य किया। मुहम्मद खाँ बंगश को जागीरे प्रदान की गई थी, उनमें से अनेक पर छत्रसाल ने अपना अधिकार कर लिया था। इस दौरान जब कालपी पर बुंदेलों ने आक्रमण किया तो बंगश के सेनापति दिलेर खाँ उनका दमन करने के लिए आगे बढ़ा। छत्रसाल के नेतृत्व में ओरछा, दतिया एवं चंदेरी के

शासकों ने संगठित होकर दिलेर खाँ का सामना किया। वस्तुस्थिति को देखते हुए मुहम्मद खाँ बंगश ने दिलेर खाँ को वापस आने का आदेश दिया। परन्तु दिलेर खाँ ने इस पर कोई विशेष ध्यान नही दिया। बुन्देलों के साथ संघर्ष में दिलेर खाँ मारा गया तथा उसके अधिकांश सैनिक भी मारे गए।[11] इस संघर्ष के बाद मुहम्मदशाह छत्रसाल से और अधिक नाराज हो गया, परन्तु अपने आन्तरिक कारणों से तत्काल उसके विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही नही कर सका। इस दौरान छत्रसाल ने अपनी सीमाओं का बिस्तार करने का प्रयास किया। मुहम्मदशाह ने मुहम्मद खाँ बंगश को इलाहाबाद जाकर छत्रसाल की गतिविधियों पर अंकुश लगाने का आदेश जारी किया। छह महीने के संघर्ष के पश्चात मुहम्मद खाँ बंगश को कोई विशेष सफलता प्राप्त नही हो सकी।[12] इस दौरान मराठों के उत्तर भारत पर आक्रमण करने के स्थिति बन रही थी। इस कारण बंगश ने छत्रसाल से युद्ध स्थगित कर एक संधि कर ली, जिसके अनुसार छत्रसाल ने शाही प्रदेशों में उपद्रव न करने का वचन दिया।

1726 ई0 में छत्रसाल के पुत्र हिरदेसाह ने रीवां राज्य पर आक्रमण कर बघेलखण्ड क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। मुहम्मदशाह ने एक बार फिर मुहम्मद खाँ बंगश को छत्रसाल की गतिविधियों को रोकने के लिए इलाहाबाद भेजा। अनेक महीनें के भीषण संघर्ष तथा छिटपुट युद्धों के बाद बंगश को सफलता प्राप्त हुई। जैतपुर युद्ध के पश्चात छत्रसाल ने हिरदेसाह, जगतराज तथा लक्ष्मण सिंह के साथ आत्मसमर्पण कर दिया। मुहम्मद खाँ बंगश तथा छत्रसाल के मध्य संधिवार्ता प्रारम्भ हुई। छत्रसाल ने मुगल अधीनता स्वीकार कर लिया तथा जिन शाही प्रदेशों पर उसने अधिकार किया था, उन्हे वापस कर दिया तथा अपने राज्य में शाही सैनिक रखने के लिए सहमत हो गए।[13]

इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मुगलों की राजनीतिक स्थिति कभी भी बहुत मजबूत नही हो पाई थी। सहयोग एवं संघर्ष की यह नीति लगातार चलती रही। बुन्देलों ने अनेक अवसर पर एकजुटता का परिचय देते हुए मुगलों को इस क्षेत्र में स्थायी अधिकर से वंचित रखा। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में छत्रसाल हिन्दु प्रतिरोध का प्रतीक माने जाते है। जब फिदाई खान ने ओरछा के मंदिरों पर आक्रमण किया, तो सभी हिन्दु छत्रसाल के नेतृत्व में एकजुट होकर संघर्ष किया। छत्रसाल ने परिस्थितियों के अनुरूप संघर्ष एवं आत्मसमर्पण दोनो ही रणनीतियों का प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त सेना में भर्ती के लिए किसी विशेष नियम अथवा कुल को प्राथमिकता नही दी गई। छत्रसाल ने अपनी सेना में बुन्देलो के अतिरिक्त अन्य राजपूत जातियों, पिछड़ों तथा मुसलमानों को भी भर्ती किया। बुन्देलखण्ड का क्षेत्र कृषि एवं व्यापार दोनों के लिए उपयुक्त न होने के कारण सेना में भर्ती होने वालों की संख्या बहुत अधिक होती थी। यह सैनिक कम वेतन में केवल लूट का माल लेने के लिए सेना में भर्ती होते थे। लम्बे समय तक चलता रहा बुन्देला–मुगल संघर्ष बुन्देलखण्ड में मुगलसत्ता के अवसान के साथ समाप्त हो गया और अब बुन्देलखण्ड, मराठा प्रभुत्व के विस्तार का केन्द्र बना।

सन्दर्भ ग्रंथः

1. वर्मा, हरिश्चन्द्र (स0), मध्यकालीन भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ0 सं0 638
2. बाबू ब्रजरत्नदास, मासिरू उल उमरा अनु0 काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ0 सं0 27
3. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ झाँसी, खण्ड, 24, इलाहाबाद (प्रयागराज), 1929, पृ0 सं0 89
4. डॉ0 भगवानदास गुप्त, महाराजा छध्त्रसाल बुन्देला, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क0 प्रा0 लि0 आगरा, 1958, पृ0 सं0 38
5. गोरलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1909, पृ0 सं0 109
6. रमेशचन्द्र मजूमदार, द मराठा सुपरमेसी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1970, पृ0 सं0 109
7. महामहोपध्याय दत्तो वामन पोतदार, मराठाज् इन दी लैंड आफ ब्रेव बुन्देलाज, हिस्टोरिकल एंड इकनोमिक स्ट्डीज, पुणे, पृ0 सं0 48
8. प्रतिपाल सिंह बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग – 1, पृ0 सं0 67
9. सतीश चन्द्र, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, दिल्ली, पृ0 सं0 145
10. विलियम इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 1, 2, नई दिल्ली, 1971, पृ0 सं0 123
11. पं0 मुकुन्द शास्त्री, बुन्देलखण्ड प्रकाशिका, वाराणसी, 1955, पृ0 सं0 19
12. महामहोपध्याय दत्तो वामन पोतदार, मराठाज् इन दी लैंड आफ ब्रेव बुन्देलाज, हिस्टोरिकल एंड इकनोमिक स्ट्डीज, पुणे, पृ0 सं0 56
13. डॉ0 विद्याधर महाजन, आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, 1989, पृ0 सं0 78

कुशाण कालीन संस्कृति के प्रमुख तत्व

पल्लवी सक्सेना

शोधार्थी - इतिहास विभाग, पं0 जवाहार लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा, उत्तर प्रदेश

डॉ0 श्रीमती आरती पाण्डेय

विभागाध्यक्ष - इतिहास विभाग, पं0 जवाहर लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा, उत्तर प्रदेश

उत्तरी भारत के सांस्कृतिक इतिहास में कुषाण काल को महत्वपूर्ण माना जाता है। संस्कृति के विभिन्न तत्वों को इस काल में भरपूर प्रश्रय प्रदान किया गया। यद्यपि यह सत्य है कि कुषाणों की अपनी कोई विकसित संस्कृति नही थी। उन्होने भारतीय, ईरानी, चीनी एवं यूनानी संस्कृति के तत्वों को मिलाकर एक समन्वित संस्कृति को प्रोत्साहन दिया तथा उसको व्यापक स्तर पर विकसित करने का कार्य किया। राजनीतिक शांति के इस काल में धर्म, साहित्य, कला विज्ञान, व्यापार इत्यादि सभी दिशाओं में खूब प्रगति हुई। वास्तव में गुप्त राजाओं के पूर्व कुषाण युग भारत के सांस्कृतिक विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि कुषाण कालीन धार्मिक तत्वों का विश्लेषण किया जाए तो बौद्ध के अतिरिक्त विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय धर्म को स्वीकार करने वाले उसके राज्य में निवास करते थे। इस प्रकार कुषाण संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में समन्वयवादी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है।

कुषाण काल में संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं को विशेष प्रश्रय प्रदान किया गया। साहित्य के अतिरिक्त अभिलेखों एवं मुद्राओं पर इसी भाषा को ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपि में लिखा गया। इस काल मे विशुद्ध साहित्य के अतिरिक्त दर्शन एंव चिकित्सा विज्ञान पर भी अनेक ग्रंथों की रचना की गई। अश्वघोष, चरक, नागर्जुन, वसुमित्र, माठर इत्यादि इस संस्कृति की प्रमुख विभूतियाँ थी।[1] अश्वघोष ने बुद्धचरित्र नामक महाकाव्य, सौन्दानन्द नामक काव्य ग्रंथ तथा सारिपुत्रप्रकरण नामक नाटक की रचना की। नागार्जुन दार्शनिक एंव वैज्ञानिक थे, जिन्होने शून्यवाद का प्रवर्तन किया। सुहल्ललेखा तथा प्रज्ञापारमिता उनके प्रमुख वैज्ञानिक ग्रंथ है। प्रज्ञापारमिता में सापेक्षवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है। वसुगुप्त ने बौद्ध ग्रंथों पर अनेक टीकाएँ लिखी, जिनमें त्रिपिटक पर महाविभाषसूत्र सर्वप्रमुख है। चरक इसक काल का राजवैद्य एवं आयुर्वेद का प्रकांड विद्धान था, जिसके द्वारा चरक संहिता की रचना की गई।

कुषाण काल में मूर्तिकला को एक नवीन आयाम प्रदान किया गया। इससे पूर्व महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण नही होता था। बुद्ध मूर्तियों का निर्माण इस काल की प्रमुख विशेषता है। मूर्तिकला के क्षेत्र में कुषाण काल में दो कला शैलियों का विकास हुआ। गन्धार कला शैली में शिल्पकार यूनानी थे, जिन्होने अपने कला का आधार भारतीय विषयों, अभिप्रायों एवं प्रतीको को बनाया। गांधार कला वास्तव में विभिन्न कला शैलियों को समन्वित रूप माना जाता है। गांधार कला को इण्डोंग्रीक कला के नाम से जाना जाता है, क्योकि इस कला शैली की विषयवस्तु तो भारतीय है, परन्तु उसकी निर्माण शैली यूनानी है।[2] उनकी मुद्राएँ तो बौद्ध है, जैसे कमलासन इत्यादि, परन्तु मूर्तियों के मुखमंडल एवं वस्त्र यूनानी शैली के है। उनकी मूर्तियों को अलंकृत मूर्धजों से युक्त प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार बोधिसत्वों की मूर्तियाँ यूनानी राजाओ की भांति वस्त्राभूषणों से सजी हुई है। इनमें आध्यात्मिकता का अभाव पाया जाता है। स्लेटी पत्थरो पर निर्मित यह मूर्तियाँ मांसलता का प्रदर्शन करती है। मूर्तियों के होठ मोटे तथा आँखे भारी है तथा माथे पर उष्णीय धारण किए हुए है। इस प्रकार की मूर्तियाँ प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुरूप नही मानी जाती है। इन मूर्तियों के चारो ओर प्रभामंडल निर्मित है। इस प्रकार गांधार कला की मूर्तियों में भारतीय कला के मूल तत्वों का अभाव पाया जाता है।[3]

यूनानी कला में शरीरिक सौन्दर्य तथा बौद्धिकता पर अधिक बल दिया गया है, तो भारतीय कला में आध्यात्मिकता तथा भावुकता को अधिक प्रश्रय दिया जाता है। इन मूलभूत तत्वो के कारण गांधार कला को भारत में बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त नही हो सकी।

कुषाण मूर्तिकला का दूसरा प्रमुख केन्द्र मथुरा एवं उसके निकटवर्ती प्रदेशों में था। मथुरा शूरसेन जनपद के अन्तर्गत आता था, जो कि कुषाणो की पूर्वी राजधानी थी। इस कला के अन्तर्गत मूर्तियो का निर्माण लाल बलुएँ पत्थर पर की गई, जिस पर श्वेत चित्तियाँ पाई जाती थी। इस कला की मूर्तियों सामान्यत: खड़ी अवस्था में है। बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियों को प्राय: एक ही स्कंध से ढंका हुआ दिखाया गया है। वस्त्र शरीर से चिपके हुए है तथा उन पर धारीदार सिलवटें कलात्मक ढंग से प्रदर्शित की गई है। मथुरा कला को हृदय की कला कहा जाता है, क्योकि इसमें बुद्धिवादी दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है।[4] इस कला में वाह्य एवं आत्मिक तत्वों के मध्य समन्वय दिखाई देता है।

इन दोनो कलाओं में महात्मा बुद्ध की खड़ी तथा पद्मासन मुद्रा में बैठी बड़ी संख्या में मूर्तियाँ प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न शिलापट्टो पर जातक कथाओं, बुद्ध के जन्म, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन, महापरिनिर्वाण इत्यादि दृश्यों का अंकन किया गया है।

बौद्ध धर्म के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं जैन धर्म से सम्बन्धित अनेक प्रकार की मूर्तियाँ पाई जाती है। ब्राह्मण देवताओं ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कार्तिकेय, गणेश, इंद्र, अग्नि, सूर्य, कृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती, मातृका इत्यादि की मूर्तियाँ अनेक स्थानों से प्राप्त होती है। मथुरा के कंकाली टीला के उत्खनन से बड़ी संख्या में कलाकृतियाँ प्राप्त होती है, जिनकों लखनऊ के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। इनमें जैन धर्म से सम्बन्धित विशेष कलाकृतियाँ है। इन जैन मूर्तियों में तीर्थकरों की मूर्तियाँ, देवियों की मूर्तियाँ तथा आयागपट्ट प्रमुख है।[5] जैन एवं बौद्ध स्तूपों के बाहर घेरे के रूप में स्तम्भों सहित वेदिकाओं का निर्माण किया जाता था। इन स्तम्भों पर विभिन्न रूपों में नारियों की प्रतिमाओं का अंकन मिलता है। इसके अतिरिक्त यक्ष, गंधर्व, किन्नर इत्यादि की प्रतिमाएँ भी प्राप्त होती है।

धार्मिक मूर्तियों के अतिरिक्त मथुरा के पास एक टीले से कुषाण शासक विम कैडफिसेस की एक सिर रहित मूर्ति प्राप्त होती है, जो कि सिंहासन पर विराजमान है। यह वस्त्रों से सुसज्जित है, जो कि एक लंबें चोगे तथा पायजामे के रूप में दिखाई देता है। मूर्ति पर राजा के नाम को उत्कीर्ण किया गया है। वर्तमान समय में यह मूर्ति मथुरा के राजकीय संग्रहालय में रखी गई है। इसी वेशभूषा में कनिष्क की एक मूर्ति प्राप्त होती है, जो कि राजदंड एवं तलवार लिए हुए है। कनिष्क की मूर्ति को जूता पहने हुए उत्कीर्ण किया गया है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक कुषाण शासकों, राजकुमारों एवं सरदारों की मूर्तियाँ प्राप्त होती है। उत्खनन के दौरान कुछ नारियों की मूर्तियाँ प्राप्त होती है, जो कि घाघरा पहने हुए है।[6]

कनिष्क के साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों से अनेक मृणूर्तियाँ प्राप्त होती है, जो तत्कालीन लोक जीवन पर प्रकाश डालने का कार्य करती है। केश विन्यास, आभूषण एवं वेशभूषा के सम्बन्ध में इनको प्रमाणिक तत्व माना जाता है। इस दौरान अनेक ऐसे पट्ट प्राप्त होते है, जिन पर लोक कथाओं के दृश्यों का अंकन किया गया है। इस प्रकार की मृणमूर्तियाँ अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, सारनाथ, श्रावस्ती इत्यादि स्थानों से प्राप्त होती है। इन मृणमूर्तियों का निर्माण कलात्मक ढंग से किया गया है।

कुषाण काल में अनेक धर्मो का विकास एवं समन्वय दिखाई देता है। धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से इस काल को महत्वपूर्ण माना जाता है। धार्मिक दृष्टि से इस काल में अनेक स्मारको का निर्माण हुआ। कनिष्क ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अनेक स्तूप एवं विहारों का निर्माण करवाया। उसकी राजधानी पुरूषपुर से एक 13 मंजिले 400 फुट ऊँचे मीनार के अवशेष प्राप्त होते है। मीनार के ऊपर लोहे का एक छत्र है तथा इसके निकट शिक्षाकेन्द्र के रूप में एक संघाराम का का निर्माण करवाया गया था।[7] चीनी यात्रियों तथा अरबी लेखक अलबरूनी ने इसके ध्वंसावशेषों का वर्णन किया गया है। स्तूपों के अतिरिक्त मथुरा, तक्षशिला इत्यादि स्थानों से अनेक विहारो के प्रमाण प्राप्त होते है। कुषाण शासको के द्वारा अनेक ब्राह्मण मंदिरों का निर्माण करवाया था, जिसके सम्बन्ध में जानकारी मथुरा से प्राप्त एक अभिलेख से होती है। वर्तमान में स्थापत्य के नमूनें सुरक्षित अवस्था में प्राप्त नही होते है, परन्तु अवशेषों के रूप में जो सामग्री प्राप्त होती है, उससे कुषाणकालीन शैली का आभास मिलता है।

भारत में सिक्कों के सन्दर्भ में कुषाण काल में अनेक नवीन तत्वों का प्रारम्भ हुआ। भारत में स्वर्ण सिक्कों के प्रचलन का श्रेय यवन शासको को दिया जाता है, परन्तु इनका नियमित रूप से प्रचलन कुषाण शासकों के द्वारा किया गया। कुषाण शासकों के काल में भारत का व्यापारिक सम्पर्क अन्य देशों से बड़े पैमाने पर होने के कारण सिक्कों की अधिक आवश्यकता होती थी। कुषाण शासको के द्वारा विभिन्न प्रकार के स्वर्ण, रजत एवं ताम्र सिक्कों का प्रचलन करवाया गया।[8]

कुषाण वंश के प्रथम संस्थापक कुजुल कडफिसेस के काल में केवल ताम्र सिक्को का प्रचलन मिलता है। तक्षशिला की खुदाई के दौरान इस प्रकार के सिक्के प्राप्त होते है। पुरातात्तिक साक्ष्य के रूप में कुजुल कडफिसेस के दो प्रकार के ताम्र सिक्के प्राप्त होते है, जिनका वजन 30 ग्रेन के लगभग है। प्रथम प्रकार के सिक्कों पर यवन शासक हर्मियस तथा कुजुल कडफिसेस दोनों का उल्लेख मिलता है। द्वितीय प्रकार के सिक्कें पर केवल कुजुल कडफिसेसे का विवरण अंकित है।

विम कडफिसेस के शासन काल में सर्वप्रथम स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन हुआ। स्वर्ण के साथ रजत एवं ताम्र सिक्के भी बड़ी संख्या में प्राप्त होते है। विम कडफिसेस के स्वर्ण सिक्कों के मुख भाग पर टोप धारण किए हुए राजा की आकृति है, जो अपने दायें हाथ में वज्र धारण किए हुए है। उसके स्कन्ध से आग की लपटें निकल रही है। इस पर यूनानी भाषा में एक लेख अंकित है, जिस पर शासक का नाम लिखा गया है। इन सिक्कों के पृष्ठ भाग पर त्रिशूलधारी शिव की आकृति है, जो कि नन्दी के साथ है। इस पर खरोष्ठी लिपि में महरजंस रजदिरस सर्वलोग इश्वरस महिश्वरस विम कडफिशस त्रतरस उत्कीर्ण है। इस प्रकार के सिक्कें 242 ग्रेन वजन के है। विम कडफिसेस का एक स्वर्ण सिक्का 20 ग्रेन का है, जिसके मुख भाग पर चौखट पर राजा का सिर है तथा यूनानी लेख अंकित है, जबकि पृष्ठ भाग पर त्रिशूल की आकृति बनी हुई है। विम कडफिसेस के ताम्र सिक्कों का वजन लगभग 270 ग्रेन के लगभग है। इसके मुख भाग पर राजा को खडी मुद्रा में दिखाया गया है, जो कि वेदी पर आहुति दे रहा है, उसके बाई तरफ त्रिशूल की आकृति बनी हुई है तथा एक यूनानी लेख खुदा हुआ है। इस प्रकार के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर शिव की आकृति है, जिनके दाएँ हाथ में त्रिशूल तथा बायाँ हाथ नन्दी पर है।[9] खरोष्ठी लिपि में एक मुद्रालेख अंकित है। विम कडफिसेस का एकमात्र रजत सिक्का प्राप्त होता है। इस पर राजा की खड़ी मूर्ति है, जो कि पट्टीयुक्त टोपी, कुरता, कोट तथा पायजामा धारण किए हुए है। सामने की तरफ एक वेदी तथा त्रिशूल है तथा उसके दाएँ हाथ में एक गदा तथा बाएँ हाथ में एक पात्र है। इन विभिन्न प्रकार के सिक्कों से प्रमाणित होता है कि विम कडफिसेस एक शैव शासक था।

कनिष्क के काल से सम्बन्धित बड़ी संख्या में स्वर्ण, रजत एवं ताम्र सिक्कें साम्राज्य के विभिन्न भागो से प्राप्त होते है। कनिष्क के स्वर्ण सिक्कों का वजन 124 ग्रेन के लगभग है। इसके मुख भाग पर राजा की आकृति है, जो कि खडी मुद्रा में है। लम्बा कोट, पायजामा तथा नुकीली टोप धारण किए हुए चित्रित किया गया है। इसके बाएँ हाथ में एक माला तथा दाएँ हाथ से यज्ञकुण्ड में आहुति दे रहा है। ईरानी उपाधि के साथ यूनानी लिपि में एक लेख अंकित है। इसके पृष्ठ भाग पर यूनानी, ईरानी तथा भारतीय देवी देवताओं की आकृतियों का अंकन किया गया है। एक सिक्कें पर एक ही देवता तथा उसका नाम अंकित है। यह नाम यूनानी भाषा में है। उदाहरण के रूप में मिइरों अर्थात सूर्य, मेओ अर्थात चन्द्रमा, आरदोक्षों, आइसो अर्थात शिव का उल्लेख किया गया है। कुछ सिक्कों पर चतुर्भुजी शिव की आकृति है, जिनके हाथ में त्रिशूल, बकरा, डमरू तथा अंकुश है। कुछ सिक्कों पर महात्मा बुद्ध का अंकन मिलता है, जो कि प्रभामण्डल युक्त खड़ी मुद्रा में है। इस पर यूनानी लिपि में वोडो अर्थात बुद्ध लिखा हुआ है।[10]

कनिष्क के ताम्र सिक्के गोलाकार है। इसके मुखभाग पर कनिष्क की आकृति खुदी हुई है तथा यूनानी भाषा में राजाओं का राजा लिखा हुआ है। इसक पृष्ठ भाग पर हिन्दू, यूनानी तथा ईरानी देवी देवताओं की आकृति खुदी हुई है तथा यूनानी भाषा में उनके नाम को अंकित किया गया है। कनिष्क के सिक्के जहाँ एक तरफ उसके साम्राज्य बिस्तार को प्रमाणित करते है, वही दूसरी तरफ सिक्कों पर अंकित विभिन्न देवी देवताओं की खुदी आकृतियाँ उसकी धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है।[11] कनिष्क ने सभी वर्गो के देवी देवताओं को अपने सिक्को पर स्थान देकर अपने साम्राज्य के सभी नागरिको की धार्मिक भावनाओं को सम्मान देने का कार्य किया।

हुविष्क के शासन काल में जो सिक्के प्राप्त होते है, वह पूर्ववर्ती शासकों के समान ही है। हुविष्क के स्वर्ण सिक्कों के मुख भाग पर राजा का आवक्ष चित्र अंकित है, जो कि गोलाकार टोपी तथा अलंकृत कोट पहने हुए है। उसके दाए हाथ में दण्ड तथा बाए हाथ में अंकुश को चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त यूनानी भाषा में एक लेख अंकित है। इन सिक्कों के पृष्ठ भाग पर विभिन्न देवी देवताओं की आकृतियाँ तथा यूनानी भाषा में उनके नाम का अंकन मिलता है। हुविष्क के जो ताम्र सिक्कें प्राप्त होते है, उसमें मुख भाग पर शासक को प्रभामण्डल से युक्त दिखाया गया है। इसके साथ अंकुश अथवा भाला के साथ वह हाथी पर सवार है। कुछ सिक्कों पर राजा को पंलग पर वज्रासन मुद्रा में बैठे हुए उत्कीर्ण किया गया है। हुविष्क के सिक्कों पर कनिष्क की तुलना में अधिक हिन्दू देवी देवताओं के चित्रों का अंकन मिलता है।[12] महात्मा बुद्ध, शिव, विष्णु, महासेन, कुमार, विशाख, उमा इत्यादि का बहुतायत चित्रण इन सिक्कों पर किया गया है। हुविष्क के कुछ रजत सिक्कें भी प्राप्त होते है, जो कि ईरानी वेशभूषा में राजा का अंकन करते है।

वासुदेव के काल से सम्बन्धित स्वर्ण एवं ताम्र सिक्कें प्राप्त होते है। यह सभी सिक्कें गोलाकार तथा तौल में रोमन सिक्कों के समान है। इनके सिक्कों पर शिव तथा उनके प्रतीकों का अंकन बहुतायत में किया गया है। इस प्रकार के सिक्कों के मुख भाग पर राजा की आकृति है, जो कि प्रभामण्डल से युक्त है। वेशभूषा में लम्बी टोपी एवं पायजामा पहने हुए है। वह अपने दाए हाथ से अग्निकुण्ड में आहुति दे रहा है तथा बाए हाथ में त्रिशूल धारण किए हुए है। इसके साथ ही उसका नाम यूनानी भाषा में लिख गया है। इन सिक्कों के पृष्ठ भाग पर त्रिशूल तथा पाश धारण किए हुए शिव की आकृति है, जिनके पीछे एक नन्दी का अंकन है। यूनानी भाषा में इस पर शिव का नाम लिखा गया है।[13] कुछ सिक्कों के पृष्ठ भाग पर देवी अर्थात उमा को सिंहासन पर बैठे हुए दिखाया गया है। कुछ सिक्कों के मुख भाग पर ब्राह्मी लिपि में वासु का उत्कीर्णन किया गया है।

कुषाण वंश के सांस्कृतिक तत्वों का विवेचन करते हुए हम पाते है कि इस काल में राजनीतिक स्थिरता के कारण संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। कनिष्क के द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य का निर्माण किया गया, जिसमें भिन्न –भिन्न धर्मो को स्वीकार करने वाले सहिष्णुता के साथ निवास करते थे। कला के क्षेत्र में अनेक नवीन तत्वों का प्रारम्भ हुआ, जिसमें विभिन्न शैलियों के समिश्रण से एक नवीन शैली का जन्म हुआ। सांस्कृतिक प्रगति के इस चरण में भारतीयता के तत्वों को प्रमुख रूप से संरक्षण प्रदान किया गया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(1) एफ0 आर0 अल्चिन, दिलीप के0 चक्रवर्ती, भारतीय पुरातत्व के स्त्रोत, वाल्यूम 1, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1979, प्रथम संस्करण, पृं0 सं0 120

(2) ए0 के0 चतुर्वेदी, रिंकी अग्रवाल स0, भारत का सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास, ,एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिकेशन्स, 2021, पृ0 सं0 134

(3) बी0 बी0 लाल, एक्सकेवेशन एट हस्तिनापुर एंड अदर एक्सप्लोरेशंस इन द अपर गंगा एंड सतलज बेसिन्स, 1950 - 52, ऐसिएंट इंडिया, नं0 10, 11, पृ0 सं0 121

(4) डॉ0 सुष्मिता पाण्डेय, समाज आर्थिक व्यवस्था एवं धर्म, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1991, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0 67

(5) ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, 2001, पंचम संस्करण पृ0 सं0 220

(6) रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1992, पृ0 सं0 106

(7) द्विजेन्द्रनारायण झा, कृष्णमोहन श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, द्वितीय संस्करण, पृ0 सं0 185

(8) परमेश्वरी लाल गुप्त, कुषाण क्वाइनस एण्ड हिस्ट्री, डी0 के0 प्रिन्टवर्ड, 1994, पृ0 सं0 86

(9) डॉ0 राजेन्द्र पाण्डे़य, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ0 सं0 134

(10) रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन प्र0 लि0, 2018, पृ0 सं0 65

(11) वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एंव मंदिर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1972, पृ0 सं0 76

(12) ए0 एल0 बाशम, अद्भुत भारत, वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय (अनु0) शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 2003, पृ0 सं0 108

(13) डॉ0 राजेन्द्र पाण्डे़य, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ0 सं0 134

नवगीतकार उमाशंकर तिवारी के गीतों में लोक रंग

जयमाला दूबे

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, डी.सी.एस.के. पी.जी. कॉलेज, मऊ

सारांशः डॉ0 उमाशंकर तिवारी जी की रचनाओं में लोकरंग की स्पष्ट और अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है। आपकी रचनाओं की विषयवस्तु जो भारतीय मूल्यों, संस्कृतियों तथा लोक रंगों से हुई है। गंगा जमुनी तहजीब के पोषक श्री तिवारी जी ने अपनी रचनाओं से बचपन, बसन्त आगमन, मेघा पानी दे, फाल्गुन आदि रचनाओं के माध्यम से लोक के विभिन्न रंगों को उकेरा है। आपकी रचनाओं में नदियों के ममतामयी एवं जीवन दायिनी स्वरूप, स्वच्छ हवा, पनघटों की सुन्दरता, गॉव की लोरियॉ, बचपन की यादें और शरारतें, सुबह का दृश्य, अलमस्त कृषक जीवन, जिसमें केवल कर्म ही कर्म समाहित हो, आदि विषयों के द्वारा लोक जीवन को अमरत्व प्रदान किया है। आपकी रचनाओं में हर वह रंग घुला है जिससे लोक जुड़ा है। लोक संस्कृति और लोक सभ्यताऐं जुड़ी हैं।

सामान्य रूप में 'लोक' समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य होता है और जो एक परम्परा के प्रवाह के रूप में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं उसे 'लोकतत्व' कहते हैं। पहले के लोग जो गाँवों में रहते थे, उनमें शिक्षा का अभाव था, फिर भी उनका अपना एक अलिखित साहित्य था, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहता थी, उसे 'लोक साहित्य' का नाम दिया गया।

लोगों की अलिखित परम्परा की सामग्री, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में प्रवाहित होती रहती है, लोक साहित्य कहलाती है। 'लोक' शब्द में, संसार में जितने भी लोग हैं, वे सब व्याप्त हैं और 'लोक साहित्य' का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोकजीवन की सरलतम्, नैसर्गिक अनुभूतिजन्य अभिव्यंजना का चित्र 'लोककथा' और 'लोकगीत' के रूप में मिलता है। अपनी कालजयी कृति 'गोदान' में 'मुंशी प्रेमचन्द्र' ने लिखा है- ''देहातों में साल के छः महीने तो किसी न किसी उत्सव का ढोल मजीरा बजता रहता है। होली के एक महीने पहले से एक महीने बाद तक फाग उड़ती रहती है, अषाढ़ लगते ही आल्हा शुरु हो जाता हैं और सावन-भादों में कजलियाँ होती है। कजलियों के बाद रामायण-गान होने लगता है।''[1] लोक जीवन नवगीतकारों के नवगीतों में बहुतायत मात्रा में मिल जाते हैं और नवगीतकार इसे पूरी तन्मयता के साथ बना-संवारकर अपने नवगीतों का विषय बनाते हैं।

लोक संस्कृतिः लोक हमारे जीवन का महासागर है और उसमें सभी जनसमुदायों का उद्भव हुआ है। साधारण लोगों के मध्य जो रीति-रिवाज, मेले, पर्व, उत्सव, धार्मिक, मान्यतायें आदि जिन स्थानों पर चली आती हैं, वही वहाँ की लोक संस्कृति कही जाती हैं। भारतीय संस्कृति की नींव परम्पराओं पर टिकी होती है और ये परम्पराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चली आ रही हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' जी संस्कृति के विषय में कहते हैं- ''संस्कृति मानव जीवन में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इनका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग-युगान्तर से संस्कृति निर्मित होती है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र की उत्कृष्टतम् निधि होती है।''[2]

लोक साहित्यः लोक साहित्य से हमारा मतलब उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोक जीवन की जैसी सरलतम्, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोक गीतों व लोक कथाओं के रूप में हुआ है, वह हमारे भारतीय समाज में अपनी

पहचान बनाये हुए है। लोक साहित्य में लोकमानस का हृदय बसता है। लोक साहित्य का कोई लिखित प्रामाणिक उल्लेख नहीं है और इसके रचयिता कौन हैं, इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता, यह मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होती रहती हैं। लोक साहित्य में वे गीत आयेंगे जो समूह में गाये जाते थे, सामूहिक मन व्यक्तिगत मन से अलग होता है। लोक गीतों में अनेक ऐसे गीत हैं जिन्हें समूह में ही गाया जाता है, अकेले गाने पर वह अच्छा नहीं लगता। लोक साहित्य को अब हिन्दी साहित्य के एक अंग के रूप स्वीकार किया जा चुका है।

नवगीतों में लोकरंग: लोकगीतों में जो लोकरंग देखने को मिलते थे आगे चलकर समकालीन कविता में व्याप्त नवगीतों में व्यापक रूप में प्रसारित हो गये। भारतेन्दु में यह जन बोध भारतीय, भारतवासी, भारत भाई तथा प्रजा जैसे शब्दों के माध्यम से प्रकट हुआ था, जिसके पीछे मुख्यत: विदेशी दासता से उत्पन्न तत्कालीन विक्षोभ था। जैसे-

''सूनी कुटिया कोने में, रजनी भर जलते जाना।
लघु स्नेहभरे दीपक का, देखा है फिर बुझजाना।''[5]

नयी कविता के उन्नायकों के गीतों में भी नयी कविता के कुछ अंश देखने को मिलते हैं। 1957 में श्रीकान्त वर्मा के एक नवगीत का अंश है-

''महुआ डूबे वन की गलियाँ सुनसान,
अभी झूलकर सोयी साजा की शाख,
निंदियाए फूलों की सकुचायी आँख,
कहीं उठी लहर कहीं टूट गये गान,
भीगी है दो आँखे, भीगा आँचर, साँझ हुई।
दिनभर बज खेतों में चुप है अरहर साँझ हुई।''[4]

नवगीत वास्तव में भारतीय मन को बाँधकर अपने अस्तित्व को बचाये रखने का प्रयत्न करता है। लोक-आसक्ति, लोकराग, लोक-उत्सव, प्रकृति और लोकाचार के प्रति गहन रागात्मकता नवगीत को समष्टि का रूप देती है। पहले से चली आ रही परम्पराओं और मान्यताओं को नवगीतकार अपने नवगीतों का विषयवस्तु बनाते हैं। अपने परिवेश का वर्णन नवगीतकार डॉ0 सुरेश इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-

''तुलसी के दौरे पर
कागा के कौरे पर
अम्मा को आस बँधी
बापू के दौरे पर।''[5]

डॉ0 शम्भुनाथ सिंह ने नवगीत अर्द्धशती' की भूमिका में लिखी है- ''जब-जब काव्य आधुनिकता के दबाव के कारण सामान्य लोकजीवन से दूर पड़ता जाता है तब-तब क्रान्तिदर्शी कवि लोक काव्य के अनेक तत्वों को अपनाकर शिष्ट काव्य को लोकजीवन से जोड़ते है।''[6] नवगीतों में गाँव का बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया गया है। बहुत दूर रहने पर भी गाँव की याद हमें अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहती। एक स्थान पर 'नवगीत दशक' में 'अनूप अशेष' ने अपने गाँव का सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया है-

''फागुनी-निबन्ध मेरा गाँव।
मन का अनुबन्ध मेरा गाँव।
महुए की कच, गुलमोहर के फूल।
आँख भरी पगडंडी, गमछे में धूल
झउए की गंध मेरा गाँव।
मन का अनुबन्ध मेरा गाँव।''[7]

अपने गाँव के गुलमोहर, महुए, झउए का वर्णन कर अशेष जी ने माटी की सोंधी खुशबू की याद दिला दी। सभी नवगीतकारों में गाँव से गहरा लगाव होने के कारण वे शहरीकरण की आधुनिकता वादी सोच से परेशान रहते हैं। उन्हें लगता है कि कहीं गाँव में भी शहर का असर न हो जाय और शहर की ही तरह गाँव से भी ममता, स्नेह, भाईचारा, प्रेम आदि अच्छाईयाँ खत्म न हो जाय।

उमाशंकर तिवारी के गीतों में लोकरंग: अन्य नवगीतकारों की तरह ही डॉ0 उमाशंकर तिवारी जी के गीतों में भी गाँव की सोंधी महक हर कहीं मिल जाती है। नवगीत तो जीवन का एक लयात्मक विकास है। इसमें विचार संवेदना, रचनात्मकता सब कुछ मिल जाता है। तिवारी जी को अपने देश (भारत) से बहुत गहरा प्रेम था। यहाँ की नदियाँ, पर्वत, झील, गुफाएँ सभी उन्हें अनायास ही अपनी तरफ आकर्षित करती हैं। ग्रामीण जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अगर कोई चीज है तो वह वहाँ की नदियाँ हैं, क्योंकि गाँव में रहने वाले लोग नदी में नहाने जाते हैं, वहीं का पीनी पीते हैं और तो और थक-हार कर जब उन्हें कहीं शान्ति चाहिए होती है तो भी वे नदियों के किनारे उस शान्ति को खोजते फिरते हैं। नदी की पूजा वे माँ के समान करते है। नदी के किनारें ही सभ्यताओं का उदय और पल्लवन होता है। गाँव के लोगों का त्यौहार, जैसे- मेला, कजरी, जगरन, जिउतिया, छठ आदि विशेष त्यौहार इन्हीं नदियों के किनारे मनाये जाते हैं। नदियों के किनारे पर ही किसी न किसी देवता का मन्दिर बना होता है जिसके आधार पर घाटों का नाम, जैसे- महादेव घाट, बजरंगबली घाट, हनुमान घाट, धोबिया घाट आदि रख दिया जाता है। डॉ0 उमाशंकर तिवारी नदी को 'देश की धमनी' कहकर पुकारते हैं-

''जानने वाले हमारी अस्मिता को
जानते,
नदियाँ धमनियाँ देश की हैं,
तीर्थ, व्रत, व्यापार, मेलों की
कथायें भी,
इसी परिवेश की हैं
घाट के उत्सव हमारे थे,
हमारे हैं
हमारे पास होगे।''[8]

डॉ0 उमाशंकर ने गाजीपुर जनपद की जिस पावन धरती पर जन्म लिया था, वहाँ पर उन्हें गंगा-जमुनी तहजीब का ऐसा संस्कार मिला, जो मनुष्य मात्र को श्रेष्ठ बनाने में अपना सहयोग दे। ममता स्नेह, भाईचारा, विश्वबन्धुत्व की भावना के साथ ही साथ गाँव, घर, नदी (माँ गंगा) की अविरल धारा तिवारी जी को अद्‌भुत व्यक्तित्व प्रदान करने में अपनी पूर्ण भूमिका निभाती है। वे लिखते हैं-

''झूमती फसलें, झुकी पलकें बँधा यौवन,
देह पर हल्दी खुले आकाश जैसा मन,
रंभाती गायें हिलाती पूँछ रोपे कान,
पोखरे से द्वार तक निर्बाध पालागन,
स्वर्ग कोई दूसरा क्या गाँव-घर के बाद।''[9]

तिवारी जी को गाँवों की सुन्दर सादगी में देवभूमि (स्वर्ग) के दर्शन होते थे। गाँव का सादगी भरा जीवन, धान के लहलहाते खेत, खेतों पर तैरते हुए बादल बादलों से घिरती हवा, बसन्त ऋतु का वर्णन तो वे 'बसन्त-आगमन' नामक अपने नवगीत में मनोरम चित्र प्रस्तुत करते हैं-

''कैसी-कैसी हवा चली है
खुशबू-खुशबू गली-गली है।
आँख-आँख है दर्पण जैसी,

हर चेहरा मासूम कली है।
अमराई-फागुन-मंजरियाँ,
बिजली का घर भर बिजली है।''[10]

डॉ0 उमाशंकर तिवारी जी ग्रामीण समाज में रहने वाले लोगों के रहन-सहन रीति-रिवाज, लोकोन्मुखता, लोकराग, प्रकृति और लोकाचार को मानते हैं तथा समय-समय पर जो पहले से चली आ रही मान्यताएँ हैं उनका वे सम्मान करते हैं। तिवारी जी ने 'मेघा पानी दे' नामक गीत में बादलों द्वारा पानी माँगे जाने का वर्णन किया है-

''ओ साँवरे सलोने
मेघा, पानी दे।
लोट-पोट कीचड़ कोंदो में
पानी दे''''''''''''''''''
ओ प्यारे-प्यारे इन्दर राजा
पानी दे।''[11]

गाँव के इस निर्मल और सहज ही सुन्दर आम आदमी के साथ तिवारी जी बहुत आत्मीयता का अनुभव करते थे इसीलिए तिवारी जी को आम आदमी का कवि भी कहा जाता है। तिवारी जी ने अपने नवगीत संग्रह 'जलते शहर में' तो शहरीकरण की सच्चाई को दर्शाने का पूरा प्रयत्न किया है। आम आदमी की तरह ही गाँव की हरियाली भी तिवारी जी के गीतों की अहम कड़ी है। गाँव की हरियाली की सुषमा को वे इन बातों के माध्यम से अपने गीतों में रखते हैं-

''अब अँधेरा बिदा ले रहा
बज उठी है किरन-बाँसुरी
द्वार पर ज्योति की अल्पना
सूर्य मंगल कलश है बना।
मुक्त हो गीत गाने लगी,
बन्धनों में बँधी कल्पना,
रंगमय रागिनी धूल गयी
बज-उठी है किरन बाँसुरी।''[12]

उपरोक्त पंक्तियों में तिवारी जी ने सुबह के दृश्य को कितने सुन्दर तरीके से व्यक्त किया है। अपनी एक गीत 'बचपन' शीर्षक में तिवारी जी अपने बचपन के कुछ यादों को इस प्रकार संजोकर रखे हुए हैं-

''अमृत जैसा चना चबेना
डलिया-मौजी
झोरी काँधे
खड़े भीत पर बदरी-बल्लू
मैं रोता सा
गाती बाँधे
मियाँघाट की संकरी गलियाँ
हरे मटर की कच्ची कलियाँ
याद बहुत आते हैं।''[13]

बचपन की यादें तिवारी जी को शहर में गाँव की महकती हुयी माटी की सोंधी खुशबू की याद तो दिलाते ही हैं साथ ही माँ के स्नेह कीयाद भी दिला देते हैं-

''सगुन-मनौती, जादू-टोना
छोटे मुँह पर
बड़ा डिठौना,
मन की आँखों जगना-सोना
माँ का रोज
यशोदा होना,
थपकी लोरी, मीठी बातें,
अनायास रस की बरसातें
याद बहुत आती हैं।''[14]

डॉ0 उमाशंकर को माँ के द्वारा गायी हुई लोरियाँ, उनकी प्यार और दुलार से भरी डाँट, उनका ममत्व सब कुछ बहुत ही याद आता है।

अपने नवगीत संकलन 'तोहफे काँचघर के' गीत 'फाल्गुन' में उन्होंने गाँव के स्वच्छ वातावरण का बड़ा ही मनमोहक वर्णन किया है-

''बाँसुरी की गैल पोस्ताघाट की
रंग में डूबी हुयी परछाइयाँ,
श्वेत बकुले बत्तखें, मुर्गाबियाँ
सरपतों से खेलती पुरवाइयाँ,
ये दियारे ही हमारे स्वर्ग हैं,
दूर थे हम बेवतन गुमनाम से।''[15]

डॉ0 वशिष्ठ 'अनूप' जी के शब्दों में- ''उमाशंकर तिवारी अपने परिवेश, संस्कारों और अपनी संस्कृति से बड़े गहरे स्तर पर जुड़े हैं। वे परम्परा के श्रेष्ठ मूल्यों ग्राह्य संस्कारों और वरेण्य आदर्शों का सम्मान करते हैं और उन्हें साथ लेकर चलना चाहते हैं। उनका यह प्रेम कभी पर्वों-त्योहारों से जुड़ान के रूप में लक्षित होता है, कभी प्रकृति और परिवेश के प्रति लगाव में और कभी भारतीय संस्कृति में चले आ रहे प्रेम, बन्धुत्व परोपकार, करुणा, आस्था, सामूहिकता आदि के प्रति सम्मान के रूप में। सारे संस्कारों को समाहित किये हुए गाँव अपनी सम्पूर्णता के साथ कवि के मन प्राणों में बसे हुए हैं।''[16]

तिवारी जी लोक संस्कृति से जुड़े हुए कवि थे। वे जानते थे कि पाश्चात्य ढंग की यह जो आधुनिक सोच है, यह गाँव की गंवई गंध का, उसकी मिट्टी की सौंधी महक को विकृत करती जा रही है। गाँव हो या टोला, शहर हो या कस्बा, महानगर हो या उपमहानगर, सब जगहों पर आधुनिकता की विकृतियाँ बेहया के पौधों की तरह अनजाने ही फैलती जा रही हैं। इतना सब कुछ होने के बाद भी तिवारी जी का मानना है कि अभी भी हमारे भारतीय समाज में भारत में गाँव में रहने वाले लोगों में विकृतियाँ कम ही आ पायेंगी। उनका विश्वास है कि भारत हमेशा गाँवों का देश बना रहेगा। पाश्चात्य सभ्यता की आंधियाँ भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त परम्पराओं और उनके जीवन मूल्यों को नष्ट करने की जिस प्रकार से जोर आजमाइश कर रही हैं, उतनी तीव्रता के साथ वह गाँव को बदल नहीं सकतीं। तिवारी जी सियासत की इस दाँव-पेंच को भली-भाँति समझते हैं। वे देश को प्रबुद्ध और कुशल नागरिक वाला देश बनाने के विषय में सोच रहे हैं। ऐसा देश जिसके रहने वाले छोटे से बड़े आदमी साथ मिलकर रहे और एक दूसरे के दु:ख सुख को मिल बाँटकर आपस में सहानुभूति, सौहार्द्र और प्रेम के साथ रहें। सभ्यता और संस्कृति की जिस जड़ को हमारे पूर्वजों ने मेहनत और कठिन परिश्रम से संजोकर रखा उन्हें हम भी किसी न किसी रूप में जीवन की अनिवार्य कड़ी बनाकर रखें, क्योंकि किसी भी देश की पहचान वहाँ की संस्कृति से ही होती है। भीड़ में व्यक्ति की वैयक्तिकता समाप्त हो जाती है और

हर व्यक्ति का चेहरा दूसरे व्यक्तियों के चेहरों जैसा ही होता है, उसकी अलग पहचान उसकी संस्कृति की ही देन है। तिवारी जी लिखते हैं-

''भीड़ का बदला हुआ चेहरा
कोई चेहरा नहीं है,
पर रेत, पर बहती नदी का
नाम तक ठहरा नहीं है।
मौत अपने हाथ के छापे
घरों पर छापती है,
शहर के भूगोल को वह
हर सिरे से नापती है।''[17]

डॉ0 उमाशंकर तिवारी जी समाज में व्याप्त आपसी सौहार्द्र को बहुत अधिक महत्व देते थे। देश के प्रत्येक भाग में पाश्चात्य समाज का जो अन्धानुकरण हो रहा है, उसके लिए तिवारी जी के मन में बहुत अधिक पीड़ा है। गाँव के मन से पूरी तरह से वाकिफ तिवारी जी को गाँव के अन्दर पनप रही शहर की जहरीली हवा पसन्द ही नहीं आती। उनका मन बार-बार गाँव की नदियों, स्वच्छ हवाओं और पनघटों की वास्तविक सुन्दरता की ओर चला जाता है और वे कहते हैं-

''ये शहर होते हुए-से गाँव
पहचाने नहीं जाते।
अब न वे नदियाँ न वे नावें,
हवायें भी नहीं अनुकूल,
हर सुबह होती किनारे लाश
पानी पर उगे मस्तूल,
आँधियों के ये समर्पित भाव
पहचाने नहीं जाते।''[18]

कुल मिलाकर तिवारी जी का यही मानना है कि गाँव दिनोंदिन अपनी असली पहचान खोता जा रहा है। वह शहर बनता जा रहा है-आत्मीयता से रिक्त और फितरती। केवल अपने आप में खुश रहना, दूसरों के लिए समय न देना, अपने ही लिए जीना, कौन कहाँ आ रहा है, कौन कहाँ जा रहा है, इससे शहर के लोगों को क्या मतलब ? वे तो सिर्फ और सिर्फ अपनी ही तकलीफों को तकलीफ समझते हैं और अपनी ही खुशी को खुशी। थोडेघ ही शब्दों में डॉ0 उमाशंकर तिवारी गाँव के यथार्थ जीवन की वास्तविकता का जैसा मार्मिक चित्रण करते हैं, वैसा प्राय: साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता।

डॉ0 उमाशंकर तिवारी जी गाँव में रहने वाले ग्रामीण घ्जनता की स्वाभाविक सुन्दरता से, उनके भोलेपन से काफी हद तक प्रभावित थे। लोक रंग में रंगी विभिन्न गीतों को वे बड़ी ही चाव से सुनते थे। उनको सोहर, लचारी, देवी गीत बहुत ही अच्छा लगता था। तिवारी जी का मानना था कि जब तक गाँव में हमारी सभ्यता और संस्कृति का अस्तित्व है तभी तक हमारे देश का भी अस्तित्व बना हुआ है। इसीलिए वे भारतीय समाज में रहने वाले आम आदमी को पहचानने की बात करते हैं कि अपने आप में मस्त रहने के बाद भी हमें अपने गाँवों में रहने वाले मजदूरों व किसानों का भी सम्मान करना बेहद जरूरी है। तिवारी जी का कहना है-

''वो लोग जो काँधे हल ढोते
खेतों में आँसू बोते हैं,
उनका भी हक है फसलों पर
अब भी मानो तो बेहतर है।''[19]

निष्कर्ष: डॉ0 उमाशंकर तिवारी जी के गीतों में लोकरंग और लोकसंस्कृति का अत्यंत मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। स्पष्ट है कि तिवारी जी का लगाव ग्रामीण परिवेश से कुछ अधिक ही था। वे शहरीकरण को कभी भी अपने नवगीतों का अंश स्वीकार नहीं कर पाये। उन्हें शहर में व्याप्त कुण्ठा, तनाव, ऊबन और खौफ व दहशत के साये में जीने वाली जिन्दगी से बेहतर गाँव के सामान्य परिवेश में सदा खुश रहने वालों का जीवन लगता था। लोक में प्रचलित विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों और लोक परम्पराओं से तिवारी जी का मन बेहद खुशनुमा रहता था। लोकरंग में रंगे डॉ0 उमाशंकर तिवारी जी के गीतों में जगह-जगह पर व्रतों त्यौहारों, लोकरंग, मेला तथा भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त नदियों, झरनों नालों आदि का स्वाभाविक चित्रण हुआ है जो अनायास ही हमारा मन अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है। अत: हम कह सकते हैं कि तिवारी जी के गीतों का प्रमुख विषय लोकरंग और भारतीय संस्कृति और परम्पराएँ ही हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. मुंशी प्रेमचन्द, गोदान, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, मुम्बई 1936, पृ0-195.
2. उपाध्याय रामजी, भारतीय संस्कृति, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, पृ0-17.
3. सिंह, शंभुनाथ, नवगीत के प्रतिमान और आयाम, परख प्रकाशन, सहसराम 1988, पृ0-65.
4. सिंह, शंभुनाथ, नवगीत के प्रतिमान और आयाम, परख प्रकाशन, सहसराम 1988, पृ0-69.
5. सिंह, शंभुनाथ, नवगीत दशक, 03 पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, पृ0.-55.
6. सिंह, शंभुनाथ, नवगीत अर्द्धशती पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ0.-14.
7. सिंह, शंभुनाथ, नवगीत दशक, 02 पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983, पृ0.-43.
8. तिवारी, उमाशंकर, तोहफे काँचघर के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ0-84.
9. वशिष्ठ, अनूप, गीत का आकाश, डालीगंज, लखनऊ पृ0-194.
10. तिवारी, उमाशंकर, असहमत समय, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कलकत्ता, 2014, पृ0-65.
11. तिवारी, उमाशंकर, तोहफे काँचघर के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ0-84.
12. तिवारी, उमाशंकर, जलते शहर में, समकालीन प्रकाशन, 1968 पृ0-52.
13. तिवारी, उमाशंकर, तोहफे काँचघर के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ0-94.
14. तिवारी, उमाशंकर, तोहफे काँचघर के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ0-93.
15. तिवारी, उमाशंकर, तोहफे काँचघर के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ0-92.
16. वशिष्ठ, अनूप, गीत का आकाश, डालीगंज, लखनऊ पृ0-193.
17. तिवारी, उमाशंकर, धूप कड़ी है, परख प्रकाशन, सहसराम 1988, पृ0 28.
18. तिवारी, उमाशंकर, धूप कड़ी है, परख प्रकाशन, सहसराम 1988, पृ0 11.
19. तिवारी, उमाशंकर, असहमत समय, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कलकत्ता, 2014, पृ0-22.

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग-एक अध्ययन

डॉ० वीरेंद्र सिंह वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, हिंदू कॉलेज, मुरादाबाद

सारांश

आज का युग अनिश्चितता, अव्यवस्था एवं हिंसा का युग हैं ऐसे में यह महत्वपूर्ण हो जाता हैं की मानवीय मूल्यो, मानवीय सुरक्षा को कैसे बचाया जाये? हालाँकि मानवीय सुरक्षा के लिए पहले भी कई प्रयास किये जा चुके जिसमे से एक हैं मानवाधिकार के संरक्षण, स्वतंत्रता और समानता, मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र, भारतीय संविधान, महिलाओ के प्रजनन का अधिकार, कस्तोदिअल अहिंसा, कानूनी सुरक्षा, कस्तोदिअल मृत्यु मानव समाज की हमेशा से यही आकांक्षा रही है कि न केवल सभी को सुख एवं सौहार्द्रमय जीवन जीने की स्वतंत्रता हो अपितु इसके साथ व्यक्ति की विशिष्टता एवं प्रतिष्ठा भी कायम रहे। इस शोधपत्र मे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग कि भूमिका का मूल्यांकन का किया गया। अधिकार का भारत के संदर्भ मे उद्भभव और विकास तथा शक्ति और कार्यों का वर्णन किया गया है। संरक्षण तथा प्रोत्साहन हेतु शीर्ष संस्था के रूप में स्थापित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग लोगों के मानवाधिकारों को बनाए रखने हेतु बड़े पैमाने पर कार्य करती है। बाल वेश्यावृति, जेल सुधार, बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के कारण विस्थापित लोगों के पुनर्वास, बालश्रम, बंधुआ मजदूरी, गर्भवती महिलाओं में रक्ताल्पता और मानसिक रूप से अशक्त लोगों की समस्याओं ने आयोग का ध्यान आकृष्ट किया।[1] गैर सरकारी संगठनों के सक्रिय सहयोग के बिना आयोग के लिए इन समस्याओं का निदान संभव नहीं है। इस शोधपत्र में आयोग के कार्यो का मूल्यांकन किया गया है। भारत में मानव अधिकार की सुरक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवंम राज्य मानव अधिकार आयोग के अतिरिक्त भारतीय संविधान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके बाबजूद भी मानव अधिकरो का उल्लंघन देखनो को मिलता है, कारण सरकारी संस्थानों की उदासीनता या लापरवाही के साथ साथ समाज में रहनेवाले लोंगों की संकीर्ण मानसिकता भी उतनी ही जिम्मेदार है।

परिचय

मानव समाज की हमेशा से यही आकांक्षा रही है कि न केवल सभी को सुख एवं सौहार्द्रमय जीवन जीने की स्वतंत्रता हो अपितु इसके साथ व्यक्ति की विशिष्टता एवं प्रतिष्ठा भी कायम रहे। वैश्विक स्तर पर मानव को नैसर्गिक रूप से प्राप्त आकारों के विचार और उसकी महत्ता का अनुभव समाज ने तब किया, जब तेरहवीं शताब्दी में धार्मिक असहिष्णुता तथा सामाजिक एवं आर्थिक गुलामी के विरुद्ध स्वतंत्रता और समानता के सामूहिक स्वर तीव्र हुए, इन्हीं ने मानव अधिकारों के विचार की नींव रखी।

अधिकार का अर्थ

जिस प्रकार मानव उद्भभव का इतिहास पुराना है ठीक उसी प्रकार श्त्पहीजश अर्थात् अधिकार का इतिहास भी पुराना है वास्तव मे अधिकार क्या है? मनुष्य अपने जीवन को सुगम बनाने के लिए बहुत ही आवश्यकता का अनुभव करते है और इसकी पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते है। कुछ आवश्यकता स्वंय के लिए जरुरी होती है तो कुछ समाज के लिए। अधिकार का संबंध उन आधारभूत अधिकार और स्वतंत्रता से है जो ब्यक्ति विशेष के लिए अनिवार्य हैं।

मानव अधिकार की विचार की जड़े बहुत पुरानी हैं। ग्रीक विचारक। लेटो ने सबसे पहले (348-427 ठब) में चर्चा की थी। डंहदं ज्ञंतजं का पहला दस्तावेज था जिसे 1215 में संवैधानिक रूप दिया गया था जिसमें मानव के अधिकार की बात की गई (बरे

एंड हरिसन 2014)। नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारय जैसे कि जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, अभिव्यकित की स्वतंत्रता एवं विधि के समक्ष समानता तथा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अधिकारय जैसे कि सांस्कृतिक गतिविधियों में हिस्सा लेने का अधिकार, काम करने का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार इत्यादि। ये ऐसे अधिकार एवं स्वतंत्रताएं हैं जो मानवाधिकार के अन्तर्गत आते हैं। स्वतंत्रता के बाद नागरिकों के व्यकितत्व के पूर्ण विकास के लिए भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है। एक सुदृढ़ प्रजातांत्रिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था कायम करने के लिए संविधान की प्रस्तावना में न्याय, समानता, धर्मनिरपेक्षता एवं सांस्कृतिक बहुलता के महत्व का स्पष्ट उल्लेख है।

मानवाधिकार का अर्थः मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के धारा 4 के अनुसार मानव अधिकार का अर्थ उन अधिकारों से है जो जीवन, स्वतंत्रता, समानता और ब्यक्ति की गरिमा से सम्बन्धित है जो संविधान द्वारा प्रत्ययभुत है अथवा जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय में सम्मिलित किया गया है। तथा भारत मे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग 1993 के तहत न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है। (राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग 1993)। मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो कि एक व्यक्ति होने के कारण ही प्राप्त हैं। ये अधिकार विश्व्यापी हैं और कानून द्वारा संरक्षित हैं। सदियों से मानवाधिकार और स्वतंत्रता का विचार अस्तित्व में है। हालांकि समय के बदलने के साथ-साथ इनमें भी परिवर्तन हुआ है। यहां मानवाधिकारों की अवधारणा पर एक विस्तृत नजर डाली गई है।

सार्वभौमिक मानव अधिकारो की घोषणा, 1948

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1948 में घोषित सार्वभौमिक मानव अधिकारों में वे मूल अधिकार शामिल हैं जो हर जाति, पंथ, धर्म, लिंग या राष्ट्रीयता की परवाह किए बिना हर इंसान को प्राप्त हैं। सार्वभौमिक मानवाधिकारों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है:

- जिंदगी जीने, आजादी और निजी सुरक्षा का अधिकार
- समानता का अधिकार
- सक्षम न्यायाधिकरण द्वारा बचाव का अधिकार
- कानून के सामने व्यक्ति के रूप में मान्यता के अधिकार
- भेदभाव से स्वतंत्रता
- दासता से स्वतंत्रता
- अत्याचार से स्वतंत्रता
- मनमानी गिरफ्तारी और निर्वासन से स्वतंत्रता
- अपराध सिद्ध न होने तक निर्दोश्श माने जाने का अधिकार
- उचित सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार
- आंदोलन की स्वतंत्रता
- गोपनीयता, परिवार, गृह और पत्राचार में हस्तक्षेप से स्वतंत्रता
- अन्य देशों में शरण का अधिकार
- राष्ट्रीयता को बदलने की स्वतंत्रता का अधिकार
- विवाह और परिवार के अधिकार
- शिक्षा का अधिकार और स्वयं की संपत्ति रखने का अधिकार
- शांतिपूर्ण सभा और एसोसिएशन बनाने का अधिकार
- सरकार में और निः शुल्क चुनावों में भाग लेने का अधिकार
- विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता
- सही तरीके से रहने या जीने का अधिकार
- समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार
- सामाजिक सुरक्षा का अधिकार

- वांछनीय कार्य और ट्रेड यूनियनों में शामिल होने का अधिकार
- अवकाश और विश्राम का अधिकार
- ऊपर दिए अधिकारों में राज्य या व्यक्तिगत हस्तक्षेप से स्वतंत्रता

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

भारत के संविधान में मौलिक अधिकार एवं नीति निदेशक तत्व के माध्यम से मानव अधिकार की संकल्पना व्यक्त की गई है। मानवाधिकार की व्याख्य एवं सूरक्षा की दिशा में राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून (1993) और उनके द्वारा स्थापित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एक महत्त्वपूर्ण उठाया गया कदम है। इस अधिनियम के अंतर्गत देश में मानवाधिकार की सुरक्षा तथा उसको प्रोत्साहन देने का कार्य करता है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग देश की शीर्ष संस्था के रूप में कार्यरत है पश्चिमी देशों की विकासशील देशों में मानवाधिकार के संरक्षण की शर्त पर पश्चिमी राष्ट्रों, विशेषकर अमेरिका द्वारा आर्थिक एवं वित्तीय सहायता दिए जाने की सोच को ही भारत में मानवाधिकार के संरक्षण हेतु जुड़ी संस्थाओं के उदय को जोड़ा गया। हालांकि सामान्य समय में भारत द्वारा इसे सहन नहीं किया जाता लेकिन विकसित देशों से अनुदान और रियायती ऋण प्राप्त करने के उद्देश्य से मानवाधिकार के संरक्षण हेतु ऐसी संस्थाओं का गठन आवश्यक हो गया। लोगों में प्रजातांत्रिक और सामान्य अधिकारों के लिए जागरूकता बढ़ रही थी। भारत के मानवाधिकार संगठनों की ओर से भी इस बात के लिए दबाव बढ़ रहा था कि कानून और मानवाधिकार के संरक्षण के लिए कोई संस्थागत प्रणाली हो। इन सब बातों ने मिलकर भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन का मार्ग प्रस्तुत किया।

अन्य वैधानिक आयोगों के गठन की तरह राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन को भी कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। देश में मानवाधिकार को प्रोत्साहन देने वाले सभी वर्गों की कड़ी आलोचना की वजह से मई 1993 में संसद में प्रस्तुत मानवाधिकार आयोग विधेयक को वापस ले लिया गया। मानवाधिकार आयोग विधेयक पर उठे सवाल और उस पर प्रस्तुत की गई स्फिारिशों व सलाह को समाहित करके सरकार ने मानवाधिकार के संरक्षण हेतु मानवाधिकार संरक्षण संस्थान की स्थापना के लिए एक अध्यादेश जारी किया। इस तरह मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के शीर्षक के तहत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन हुआ।

आयोग सामान्यत: मानवाधिकार के उल्लंघन के मामले की प्राय: स्वयं जांच करती या नागरिक सामाजिक संगठन, मीडिया, संबद्ध व जागरूक नागरिक या सिद्धहस्त सलाहकार के द्वारा मामले को सामने लाने पर गंभीरता से लेती है। यह समाज के सभी वर्गों विशेषत: वंचित व हासिए पर रहने वाले वर्गों के मानवाधिकार की सुरक्षा से संबंधित मामले पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखती है। इस मामले में जनजागरूकता के बढ़ते प्रभाव को आयोग की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। यह जागरूकता पिछले कुछ वर्षों में आयोग के पास मानवाधिकार के हनन से संबंधित मामलों की वृद्धि के रूप में परिलक्षित होती है। आयोग इन मामलों को निम्न भागों में बांटती है (1) कारावास के दौरान मृत्यु (2) पुलिसिया बर्बरता, (यातना, गैरकानूनी गिरफ्तारी, झूठा आरोप आदि) (3) छद्म मुठभेड़ (4) महिला एवं बच्चों से संबंधित मामले (5) दलितअल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यअशक्त वर्ग के खिलाफ हिंसक कार्रवाई के मामले (6) बंधुआ मजदूर, (7) सशस्त्र बल व अर्ध सैनिक बल द्वारा दुर्व्यवहार औंर (8) अन्य महत्वपूर्ण मामले।

भारतीय संबिधान मे निहित मौलिक अधिकार देश के सभी नागरिकों को समानता व स्वतंत्रता से जीने का अधिकार तथा शिक्षा व रोजगार प्राप्त करने के समान अधिकार भी देश के सभी नागरिकों को प्राप्त है। भारतीय संबिधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 एवं 18 में देश के नागरिकों को प्रदत समानता के अधिकार का विस्तृत वर्णन है.वहीं अनुछेद 19 20 21 22 मे सतंत्रता के अधिकार की व्याख्या की गई है। अनुच्छेद 23 और 24 मे शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने के अधिकार की व्याख्या की गई है। अनुच्छेद 25, 26, 27 और 28 में अपनी इच्छा अनुसार किसी भी धर्म के पालन की स्वतंत्रता दी गई है। अनुच्छेद 29 और 30 मे। शिक्षा व सांस्कृतिक सम्बन्धी अधिकारों का वर्णन है। उपरोक्त अधिकरों में किसी भी अधिकारों के हनन की स्थिति में अनुच्छेद 32 के तहत संवैधानिक उपचारों का अधिकार भी देश के नागरिकों को दिया गया है। मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 8 में वर्णित है। "सभी व्यक्तियों को संविधान या कानून द्वारा प्राप्त बुनियादी अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले के विरु) समूचित राष्ट्रीय अदालतों की कारगर सहायता पाने का हक है" (भारतीय संविधान)।

भारतीय कानून के अंतर्गत मानव अधिकार

भारत में मानव अधिकर की अवधारणा मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र का प्रतिबिम्ब है। मानव अधिकार सुरक्षा की सार्वभौमिक घोषणा 1948 ईद्व संयुक्त राष्ट्रीय संघ द्वारा की गईप् भारत में न्यायालय ने इसकी सराहना करते हुए देश के सविधान में इसे स्थान देने के लिए अपनी तत्परता दिखाई। भारतीय संविधान ने मानव अधिकर को तीन तरीके से आत्मसात किया है (संयुक्त राष्ट्र संघ का सार्वभौमिक घोषणा 1948)।

क. विशेष गणना का अधिकाररू वैसे अधिकार जिसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है और मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र में अनुच्छेद के रूप में वर्णित किया है। जिसकी संख्या 30 है। भारतीय संविधान के तहत उसे मौलिक अधिकार और राज्य के नीति-निर्देशक तत्व के रूप में वर्णित किया गया है।

नागरिक और राजनीति अधिकार के संदर्भ में मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र में जीने का अधिकार और व्यक्ति की सुरक्षा अनुच्छेद (3) को भारतीय संविधान में अनुच्छेद 21 में वर्णित किया गया है। मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा में कानून के समक्ष समानता और बिना भेद भाव के अनुच्छेद (7) को भारतीय संविधान में अनुच्छेद14 और 15 मे वर्णित किया गया है। मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र अनुच्छेद 19 विचार और अभिवयक्ति की स्वतन्त्रता को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (a) में वर्णित किया गया है। मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र से जीने का अधिकार, स्वतंत्रता व सुरक्षा का अधिकार अनुच्छेद 6 (1) और 9 (1) को भारतीय संबिधान में अनुच्छेद 21 में वर्णित किया गया है (संयुक्त राष्ट्र संघ का सार्वभौमिक घोषणा पत्र)।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार के अंतर्गत शिक्षा के अधिकार को रखा गया है जिसमें नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार और मौलिक अधिकार को मानव अधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 26 (1) को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 और 45 में वर्णित किया गया है। मानव अधिकार का सर्वभोमिक घोषणा पत्र से अनुच्छेद 23(2) समान कार्य के लिए समान वेतन को भारतीय संविधान में अनुच्छेद (39) में वर्णित किया गया है।

ख. वैसे अधिकार जिसे संविधान में विशेष गणना प्राप्त नहीं है।

ग. वैसे अधिकार जिसकी पहचान नहीं की गई है।

आयोग की सदस्यता

देश के अन्य वैधानिक आयोगों से थोड़ी भिन्न पद्धति पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की संरचना खड़ी की गई है। पी.एच. आर.ए। 1993 के प्रावधानों के अंतर्गत इस आयोग में एक अध्यक्ष तथा चार अन्य सदस्य होते हैं जिनके लिए कुछ निशिचत अर्हताएं निर्धारित हैं। अध्यक्ष पद पर भारत के पूर्व न्यायाधीश ही नियुक्त हो सकते हैं। चार में दो सदस्यों की पृष्ठभूमि न्यायिक क्षेत्र से होनी चाहिए, इनमें से एक वर्तमान में या पूर्व में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने चाहिए। अधिनियम के अनुसार पूर्णकालिक अन्य दो सदस्यों को ऐसे होने चाहिए जिन्हें मानवाधिकार से संबंधित पूरी जानकारी या व्यावहारिक अनुभव हो। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अन्य सदस्यों में तीन आयोगों के अध्यक्ष क्रमशरू राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग एवं राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति आयोग भी शामिल होते हैं। ये लोग अल्पसंख्यकों, महिलाओं तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति से संबंधित मामले में आयोग के कार्यक्रम को सुनिश्चित करते हैं। इसके अलावा इस अधिनियम के तहत इससे संबंधित दो अन्य वैधानिक प्रशासनिकों का भी प्रावधान है - महासचिव एवं महानिदेशक (जांच) जो आयोग को निष्पक्ष एवं प्रभावपूर्ण व्यवस्था बनाए रखने में प्रशासनिक सहायता प्रदान करते हैं। इसलिए आयोग की संरचना एक तरफ स्वायत्तता की स्थापना का उद्देश्य दिखाती है तो दूसरी तरफ प्रशासनिक योग्यता की विश्वसनीयता भी दर्शाती है। देश के अन्य आयोगों की तुलना में इस आयोग की संरचना इसकी उल्लेखनीय एवं विलक्षण विशेषताओं को दर्शाता है। देश में मानवाधिकार के संरक्षण तथा प्रोत्साहन हेतु प्रमुख राष्ट्रीय एजेंसी के रूप में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के उपयुक्त प्रावधान पी.एच.आर.ए। 1993 के तहत बनाए गए हैं जिससे आयोग के स्वायत्ततापूर्ण कार्य सुनिशिचत हों (ज्ञंतजीपामलंद:2005, 170-171। यह पहले ही कहा जा चुका है कि आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति उस समिति की सिफारिश पर करते हैं जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है तथा लोकसभा अध्यक्ष राज्यसभा के सभापति, केंद्रीय गृहमंत्री तथा संसद के दोनों सदनों के विपक्ष के नेता आदि इसके सदस्य होते हैं। इस समिति

द्वारा किए जाने वाली सिफारिश के अंतर्गत यह सुनिश्चित किया जाता है कि आयोग की निष्पक्षता बनी रहे और उन लोगों को न्याय मिले जिनके मानवाधिकारों का हनन होता रहा है।

साथ ही, आयोग के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष के लिए निश्चित किया जाता है जिससे उनमें अपने कार्यकाल के दौरान हटाए जाने का भय न हो और उनके कार्यकाल की अवधि के दौरान कोई विपरीत स्थिति उत्पन्न न हो और वे निश्चिंत होकर अपने कार्य का संपादन कर सके। इसके बाद आयोग की स्वायत्तता को इस तरह भी देखा जा सकता है कि इसके सदस्यों को पद से हटाने की जटिल प्रक्रिया अपनायी गई है। सामान्यत: आयोग के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा आदेश निकाले जाने के बाद हटाए जा सकते हैं मगर राष्ट्रपति ऐसा आदेश उस सदस्य के असभ्य व्यवहार तथा अयोग्यता के आधार पर निकालेगा जिसकी जांच सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हो चुकी हो। ऐसे मामले में सर्वोच्च न्यायालय पूरी तरह स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रहता है, इसलिए आयोग के ईमानदार एवं निर्भीक सदस्यों को सरकारी दबाव के आगे झुकना नहीं चाहिए क्योंकि मामूली विवादों में उन्हें उनके पद से नहीं हटाया जा सकता है।

राज्यसभा और लोकसभा उपस्थित विपक्ष के नेता, उपसभापति, भारत सरकार का गृहमंत्री तथा लोकसभा के अध्यक्ष, आयोग का मुख्य कार्यकारणी अधिकारी महासचिव होता है।

आयोग के कार्य व शक्ति

शिकायत निवारण और जाँच-पड़ताल आयोग का मुख्य कार्य है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में हिन्दी अंग्रेजी या भारत का संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी भाषा में पीड़ित द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा किसी न्यायिक निर्देश या आदेश पर शिकायत की जा सकतीं है। मानव अधिकार सरंक्षण अधिनियम की धारा 13 (6) के अनुसार कुछ शिकायतों को निपटाने हेतु उनसे सम्बन्धित राज्य मानव अधिकार आयोग को हस्तांतरित करता है जहाँ से वे शिकायतें उत्पन्न हुई हों। मानव अधिकार के उल्लंघन होने पर सम्बधित प्राधिकरण को नोटिस भेजते हैं और उनसे विस्तृत रिपोर्ट माँगते हैं या राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अन्वेषण प्रभाग से अधिकारियों का दल घटना स्थल पर जाकर तथ्यों की जाँच करने का निर्देश देता है और उसके बाद उचित निर्देश या सिफारिश जारी करता है। अधिनियम के तहत शिकायत की जाँच करने में आयोग को सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के तहत किसी वाद की जाँच कर रहे दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त हैं। आयोग मानव अधिकारो के उल्लंघन की शिकायतों की जाँच करते समय अधिनियम की धारा 17 के तहत केंद्र या राज्य सरकार या उसके अधीन किसी प्राधिकरण या संगठन से आयोग अपने द्वारा निर्धारित समय के भीतर कार्य कर सकता है।

हिरासतीय न्याय प्रबन्ध इसका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है- उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को महिला संरक्षण गृह आगरा की कार्य प्रणाली का निरीक्षण का कार्य भी सौंपा गया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य सरकार के अधीन जेलों और अन्य संस्थानों का निरीक्षण करते है।

महत्वपूर्ण अध्यादेशों पर विचार करना और उनके प्रभाव को निरीक्षण करना तथा प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना स्वतन्त्र जीवन जीने का जन्मसिद्ध अधिकार है। हर इंसान को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं मारने का भी अधिकार है।

उचित परीक्षण का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को निष्पक्ष न्यायालय द्वारा निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार है। इसमें उचित समय के भीतर सुनवाई, जन सुनवाई और वकील के प्रबंध आदि के अधिकार शामिल हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संधियाँ और अन्य प्रपत्रों के कार्यान्वयन की समीक्षा करना अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत यातना देने पर प्रतिबंध है। हर व्यक्ति यातना न सहने के लिए स्वतंत्र है। अन्य सार्वभौमिक मानव अधिकारों में स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सुरक्षा, भाषण की स्वतंत्रता, सक्षम न्यायाधिकरण, भेदभाव से स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता का अधिकार और इसे बदलने के लिए स्वतंत्रता, विवाह और परिवार के अधिकार, आंदोलन की स्वतंत्रता का अधिकार, शांतिपूर्ण सभा और संगठन के अधिकार, गोपनीयता, परिवार, घर और पत्राचार से हस्तक्षेप की स्वतंत्रता, सरकार में और स्वतंत्र रूप से चुनाव में भाग लेने का अधिकार, राय और सूचना के अधिकार, पर्याप्त जीवन स्तर के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार और सामाजिक आदेश का अधिकार जो इस दस्तावेज को अभिव्यक्त करता हो, आदि शामिल हैं।

हालांकि कानून द्वारा संरक्षित इन अधिकारों में से कई लोगों द्वारा, यहां तक कि सरकारों के द्वारा भी, उल्लंघन किया जाता है। हालांकि मानवाधिकारों के उल्लंघन पर नजर रखने के लिए कई संगठन बनाए गए हैं। ये संगठन इन अधिकारों की सुरक्षा के लिए कदम उठाते हैं। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार मानवाधिकारों को सार्वभौमिक अधिकार कहा जाता है जिसका

प्रत्येक व्यक्ति अपना लिंग, जाति, पंथ, धर्म, संस्कृति, सामाजिक/आर्थिक स्थिति या स्थान की परवाह किए बिना हकदार है। ये वो मापदंड हैं जो मानव व्यवहार के कुछ मानकों का वर्णन करते हैं और कानून द्वारा संरक्षित हैं।मानव अधिकारों को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया गया है। ये नागरिक और राजनीतिक अधिकार हैं। इनमें सामाजिक अधिकार भी हैं जिनमें आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार शामिल हैं। मानव अधिकार सुरक्षा और जागरूकता प्रत्येक व्यक्ति को मानव अधिकार प्राप्त है वहीँ इन अधिकारों का अब भी अक्सर उल्लंघन किया जाता है। इन अधिकारों का उल्लंघन तब होता है जब राज्य द्वारा की गई कार्रवाईयों में इन अधिकारों की उपेक्षा, अस्वीकार या दुरुपयोग होता है।

मानव अधिकारों के दुरुपयोग की जांच करने के लिए संयुक्त राष्ट्र समिति की स्थापना की गई है। कई राष्ट्रीय संस्थान, गैर-सरकारी संगठन और सरकार भी यह सुनिश्चित करने के लिए इन पर नजर रखती हैं कि कहीं किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों का हनन तो नहीं हो रहा है। ये संगठन मानव अधिकारों के बारे में जागरूकता फैलाने की दिशा में काम करते हैं ताकि लोगों को उनके अधिकारों के बारे में अच्छी जानकारी मिल सके। उन्होंने अमानवीय प्रथाओं के खिलाफ भी विरोध किया है। इन विरोधों के कारण कई बार कार्रवाई देखने को मिली है जिससे स्थिति में सुधार हुआ है। मानव अधिकार हर व्यक्ति को दिए गए मूल अधिकार हैं। सार्वभौमिक होने के लिए इन अधिकारों को कानून द्वारा संरक्षित किया जाता है हालांकि, दुर्भाग्य से कई बार राज्यों, व्यक्तियों या समूहों द्वारा उल्लंघन किया जाता है। इन मूल अधिकारों से एक व्यक्ति को वंचित करना अमानवीय है। यही कारण है कि इन अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई संगठन स्थापित किए गए हैं।

आलोचना

भारत में मानव अधिकार की सुरक्षा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवंम राज्य मानव अधिकार आयोग के अतिरिक्त भारतीय संविधान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है इसके बाबजूद भी मानव अधिकरो का उल्लंघन देखने को मिलता है। जो कि सरकारी अधिकारियों की उदासीनता या लापरवाही के साथ साथ समाज में रहनेवाले लोंगों की संकीर्ण मानसिकता भी उतनी ही जिम्मेदार है। कानून तो सिर्फ कागज तक ही सिमट कर रह जाते हैं। लोगों के द्वारा चुने गए प्रतिनिधि जो सरकार के रूप में दिखाई देते हैं, उनमें भी दृढ़ इच्छाशक्ति दिखाई नहीं देती है। यही कारण है कि अभी तक भारत में मानव अधिकार को पूर्णरूप से लागु नहीं किया जा सका है। संसाधनों की कमी: मानव अधिकार को लागु करनेवाले संगठनों के साथ सबसे बड़ी समस्या आर्थिक समस्या है। आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण वे प्रभावकारी तरीके से कार्य नहीं कर पाते हैं। संसाधनों का दुरूपयोग रू धरातल पर कार्य करने के बजाय सिर्फ प्रचार-प्रसार में ही फिजूल खर्च कर दिया जाता है जिसे हम मानव अधिकार एजेंसियों के द्वारा संसाधनों के दुरूपयोग के रूप में देख सकते हैं। हर व्यक्ति को मूल मानवाधिकारों को प्रयोग करने का हक है। कभी-कभी इन अधिकारों में से कुछ का सरकार द्वारा दुरूपयोग किया जाता है। सरकार कुछ गैर-सरकारी संगठनों की सहायता से मानवाधिकारों के दुरुपयोगों पर नजर रखने के लिए उपाय कर रही है।

सूचना लोगो की पहुँच से बाहर : मानव अधिकार संबधी प्रावधानों की सूचना भी आम लोगों तक आसानी से उपलब्ध नहीं होने के कारण उनमें अधिकारों के प्रति जागरूकता नहीं हो पाती है जिसके कारण इन्हें प्रभावकारी तरीके से लागु करना संभव नहीं हो पाता है।

संरचना मे कमी : राष्ट्रीय मानव अधिकार विभिन्न कानूनों द्वारा संरक्षित हैं पर अभी भी लोगों, समूहों और कभी-कभी सरकार द्वारा इसका उल्लंघन किया जाता है। उदाहरण के लिए पूछताछ के दौरान पुलिस द्वारा यातना की आजादी का अक्सर उल्लंघन किया जाता है। इसी प्रकार गुलामी से स्वतंत्रता को मूल मानव अधिकार कहा जाता है लेकिन गुलामी और गुलाम प्रथा अभी भी अवैध रूप से चल रही है। मानव अधिकारों के दुरुपयोग की निगरानी के लिए कई संस्थान बनाए गए हैं। सरकारें और कुछ गैर-सरकारी संगठन भी इनकी जांच करते हैं। मानव शक्ति के रूप मे कमी रूमानव अधिकार को लागु करानेवाली एजेंसियों के पास अभी भी मानव शक्ति की कमी है जिसके कारण ठीक से मानव अधिकार नहीं लागु कराये जा सकते हैं, विशेषकर जिले एवं ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ मानव अधिकारों का सबसे अधिक उंल्लघन होता है।

गरीबी के कारण रू मानव अधिकारों को प्रभावकारी ढंग से लागु करने में गरीबी एक सबसे बड़ी बाधा है.यही कारण है कि भारत जैसे पिछड़े देशों में और खासकर इसके ग्रामीण इलाकों में मानव अधिकार का उल्लंघन एक बहुत बड़ी समस्या है। गरीब लोगों के अधिकारों का उल्लंघन तो प्रतिदिन होता ही रहता है।

निष्कर्ष : राष्ट्रीय मानव अधिकार, मानव को गरिमा और सुरक्षा प्रदान करता है। हालाकि मानव अधिकार अधिनियम 1996 मे बहुत सी कमिया है, इसके बाबजूद भारत में भी राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने बहुत हि सकरात्मक कदम उठाय है। भारत में मानवाधिकार की स्थिति को एक बहुआयामी परिप्रेक्ष्य में दर्शाता है। एक तरफ तो मानवाधिकार के संरक्षण हेतु कई प्रकार के संवैधानिक प्रावधान मौजूद हैं जबकि दूसरी तरफ वंचित वर्गों जैसे अल्पसंख, महिलाओं, दलितों, आदिवासियों, असंगठित मजदूरों आदि के मानवाधिकार का बड़े पैमाने पर हनन भी होता रहा है। भारतीय मानवाधिकार से आज भी समाज का एक बहुत तबका इसकी मुख्य धारा से अलग थलग है। मानव अधिकार के प्रति आदर और इनको साकार करने के लिए ठोस कदम उठाने की जरुरत है। मानव अधिकर का हनन रोकने की जरुरत हर स्तर पर है।

संदर्भ सूची

1. बक्शी, पी.एम (2002), भारत का संबिधान, 5 वा एडिशन, यूनिवर्सल लॉ पुब्लिसेर को। प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
2. बक्सी, उपेन्द्र, द स्टेट एंड ह्यूमन राईट मूवमेंट इन इंडिया, ६टी
3. द प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राईट एक्ट 193 सेक्शन 2, क्लौस। (द)
4. जुलाई 2008 मे 13 वीं वार्षिक एशिया पेसिफिक समेलन
5. नेशनल ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, निति आयोग
6. क्लेयर बरे एंड जुलियन हरिसन (2014) मेगना कार्टा अन इन्त्रोद्तिओन
7. कपूर, डॉ स.के । (2014) ह्यूमन राईट अंडर इन्तेर्नतिओनल् लॉ एंड इंडियन लॉ, पुब्लिसेर - सेन्टरल ला एजेंसी
8. कपूर, डॉ स.के । (2010), इन्तेर्नतिओल लॉ एंड ह्यूमन राईट, पुब्लिसेर दृ सेन्टरल ला एजेंसी
9. राय अरुण (2004), नेशनल ह्यूमन राईट कमीशन / इंडिया, वोलुम। 1, न्यू डेल्ही, खन्ना पुब्लिसेर, पेज: 83-84
10. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, 1993
11. संयुक्त राष्ट्र संघ का सार्वभौमिक घोषणा पत्र 1948
12. वार्षिक रिपोर्ट 2013-2014, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

डॉ० वीरेन डंगवाल के काव्य में शिल्प-विधान

डॉ० सविता उपाध्याय

एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कन्या महाविद्यालय, भूड़, बरेली,
सम्बद्ध-एम. जे. पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, 243005 उ0प्र0

वीरेन डंगवाल ऐसे कवि हैं जिनका शिल्प अलंकारिकता-चमत्कारिकता और अतिशय बनावटीपन के विपरीत अत्यंत सरल व सहज है। उनकी कविता में संवेदनाओं की अभिव्यक्ति इतनी स्वाभाविक होती है कि सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विषय के विविध आयामों तक कवि की पैठ अत्यंत गहरी है। निम्नलिखित पंक्ति में आम को देखकर उत्पन्न होने वाले मनोभावों की जितनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति कवि ने की है, वह सामान्य जन-जीवन के यर्थाथ से जुड़ा हुआ, विषय का गहरा अनुभव रखने वाला ही कोई कवि कर सकता है-

''बाहर कुछ झूरा कुछ पड़ा नीला
भीतर कुछ पीला
तबीयत में आ गयी चिरपिरी एक
मौसम ने मारा डंठल ने ढीला किया
ऊपर से उद्दंडी लड़कों ने लिया देख।
पत्तों में छिपना बेकार रहा
मंत्र फूँका
यों नकली पकना बेकार रहा जीवन भर रहा
कच्चे का कच्चा
तोते का फुसकारा सोंधा मीठा आम।''[1]

इन पंक्तियों में जो स्वाभाविकता है, जो प्रवाहमयता है और अभिव्यक्ति में जो निर्बाधता है, उसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की अभिव्यक्ति निरी काल्पनिक नहीं, बल्कि यथार्थ है। इन सबसे भी महत्वपूर्ण बात है भाषा व शब्दावली की स्वाभाविकता। इस कविता में वीरेन ने शब्दावली का चयन विषय के अनुरूप ही किया है। 'फुसकारा', 'चिरपिरी', 'सोंधा', 'मीठा' जैसे शब्दों का प्रयोग सही संदर्भों में वही कवि कर सकता है जो इनकी पूरी संस्कृति से परिचित हो। इसी तरह, 'ऊपर से उद्दंडी लड़कों ने लिया देख' में 'ऊपर से' तथा 'लिया देख' पदों का प्रयागे वही कवि कर सकता है जो इनसे पूरी तरह परिचित हो तथा जिसे इनके प्रयोग का अनुभव हो। 'लिया देख' की जगह 'देख लिया' पद प्रयुक्त होता तो वह उतना स्वाभाविक व प्रभावशाली न हाते। यहाँ कवि के निजी अनुभव ने अभिव्यक्ति को एकदम सजीव बना दिया है। कई बार कवि अनुभव के अभाव में भी चलन के नाम पर यथार्थ विषयों पर कविताएँ लिख देते हैं। ऐसी कविताओं में जितनी अधिक भावुकता होती है, अस्वाभाविकता और अविश्वसनीयता उससे कहीं अधिक मात्रा में आ जाती है। अत: यथार्थ से गहराई से परिचित हुए बिना कोई कवि यथार्थवादी नहीं बन सकता। इस संदर्भ में अजय तिवारी का यह कथन दृष्टव्य है-

''परिचय के बिना प्रेम नहीं होता। × × × परिचय और प्रेम जितना प्रगाढ़ होगा, कवि उतना ही यथार्थवादी होगा, उसे अभिव्यक्ति और विकास के अवरोधों से भी उतना ही कम उलझना पड़ेगा। × × × बाह्य जगत से कवि का परिचय जितना व्यापक और गम्भीर होगा, कविता की विषयवस्तु उतनी ही प्रभावशाली होगी, कवि की भाषा उसी अनुपात में सजीव होगी,उस पर कवि की व्यक्तिगत विशेषताओं की उतनी ही गहरी छाप होगी।''[2]

वीरेन डंगवाल अपने समकालीन यथार्थ से पूरी तरह परिचित हैं तथा उसके प्रति उनका गहरा प्रेम भी है। यही कारण है कि वे बिना किसी अवरोध के अत्यंत स्वाभाविक रूप से कविता के कथ्य को प्रवाहमय भाषा में अभिव्यक्त करते चले जाते हैं। पुदीने की आकर्षक खुशबू का बखान करने वाली कविता का एक अंश उदाहरणस्वरूप दृष्टव्य है–

''सब्जी ठेले की बगल से भी गुजरो
तो तर कर देगी वह खुशबू
जो इतनी अलौकिक है
कि आँखों के रास्ते ही दिमाग में जा पहुँचती है
और फिर फेफड़ों से होती हुई छा जाती है हस्ती पर
× × ×
जिसे तैयार किया अलस्सुबह के एकांत में
दस वर्षीय प्रशिक्षु कारीगर ने
महर्षि चरक की पसंदीदा
इस सुगंधित शीतल बूटी के साथ
हरी मिर्चें इमली का
गूदा और गुड़ पीसकर।''[3]

वीरेन डंगवाल भाषा को ही सजीव और स्वाभाविक नहीं बनाते, बल्कि कई अन्य जड़ वस्तुओं को भी सजीव या मानवीकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं। समकालीन जटिल परिवेश में हताशा, निराशा, कुंठा, ऊब, हीनताबोध आदि नकारात्मक मनः स्थितियों का प्रभाव कवि ने 'कमीज' पर भी दिखाया है। कमीज भी हताश–निराश हो सकती है, 'सारे जमाने की लात खाई हुई' हो सकती है–

''कमीज
जब तुम इस्त्री होकर लेटी हो तो लग जाता है
कि तुम्हारा कुछ हो ही नहीं सकता जब टंगी हो
खूंटी के हिसाब से
तो कभी–कभी लगती हो हताश
सारे जमाने की लात
खाई हुई बरबाद लोग
समूची जिन्दगी
तुम्हीं को घिसते, रगड़ते
और लोहा करते रहते हैं''[4]

इसी तरह वीरेन डंगवाल पपीते का भी मुँह लटका हुआ देरा लेते हैं–

''पेड़ पर रहता है तो भी मुँह लटकाये''[5]

वीरेन डंगवाल चीजों को नई–नई दृष्टियों और अलग–अलग कोणों से देखते हैं। प्रकृति का मानवीकरण पहले भी होता रहा है, लेकिन वीरेन ने उसका जो मानवीकृत रूप चित्रित किया है, वह एकदम अलग है। 'नदी' को वे कभी बेशर्म स्त्री के रूप में चित्रित

करते हैं, कभी काँइयां औरत, भेड़िया, पुलिस से भरी जीप या डाकुओं के रात्रि-अभियान के रूप में तो कभी निरंकुश शासन-तंत्र के रूप में। यही नहीं, उसके ये सारे रूप नकारात्मक हैं, अमानवीय हैं। एक अंश देखें-

''फिर वह बस्ती में धँसती है
नदी
डाकुओं के गिरोह की
तरह गोलियाँ दागती हुई
फिर वहीं लौट जाती है नदी
एक छिनार सकुचाहट के साथ
अपने सम्वैधानिक किनारों में
और मधुर-मधुर बहने लगती है
जैसे लाठी-चार्ज पर झूठ-मूठ
शर्मिन्दा और गोली-काण्ड को
एक सही मजबूरी साबित
करने की कोशिश करती हुई''[6]

यहाँ नदी को वीरेन कई नाकारात्मक रूपों में देखते हैं और अलग-अलग आयामों से। यानी कि समय के यथार्थ को जितनी तरह से व्यक्त किया जा सकता है, उतनी तरह से वह प्रयास करते हैं। यह भी कहना चाहिए कि मात्र एक वस्तु को उठाकर कवि ने समकालीन यथार्थ के कई अवांतर संदर्भों को एक साथ पिरोया है। एक ही वस्तु को इतने भिन्न-भिन्न आयामों से देखना और अंत में फिर उन सारे आयामों को एक दृष्टिकोण से जोड़ना, यह वीरेन के ही काव्य-कौशल के वश की बात है। बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदा को विषयवस्तु बनाकर परपंपरागत सौंदर्यपरक कविता लिखने के बजाय वीरेन नए ढंग की कविता लिख रहे हैं, जहाँ मनुष्य और प्राकृतिक परिवेश के अंतर्संबंध अत्यंत जटिल रूप में प्रस्तुत किये गए हैं। प्राकृतिक संकट और मानव-समाज द्वारा उत्पन्न हिंसा, अराजकता, अत्याचार आदि के संकट को कवि ने एक ही धरातल पर अभिव्यक्त किया है। यह एक प्रकार की फैंटेसी भी है जहाँ कवि नदी की बाढ़ को मानव द्वारा उत्पन्न संकटों के रूप में देखता है। वीरेन डंगवाल ने अपनी कविताओं में मिथकीय सामग्री का भी सफल प्रयोग किया है। मिथकों की शुभ संकल्पनाओं के सामने वे वर्तमान की समस्याओं का उल्लेख करते हैं:-

''इन्द्र के हाथ लम्बे हैं
उसकी उँगलियों में हैं
मोटी-मोटी पन्ने की अंगूठियाँ
और मिजराब बादलों-सा
हल्का उसका परिधान है
वह समुद्रों को उठाकर बजाता है
सितार की तरह मंद गर्जन से
भरा वह दिगन्त-व्यापी स्वर
उफ, वहाँ पानी है
सातों समुद्रों और निखिल नदियों का पानी है वहाँ
और यहाँ हमारे कण्ठ स्वरहीन और सूखे हैं''[7]

यहाँ पूरी कविता सपाट ढंग से मिथकीय कथ्य लेकर चल रही है। पूरी कविता में देवताओं के राजा 'इन्द्र' के वैभव का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम इन्द्र के स्तुति-गान का गद्य रूप पढ़ रहे हैं, लेकिन केवल अन्तिम एक पंक्ति 'और यहाँ हमारे

कण्ठ स्वरहीन और सूखे हैं' आकर कथ्य को एक नाटकीय मोड़ देकर कविता को निरर्थक होने से बचा लेती है। कविता में विवरण के महत्व का भी पता यहीं चलता है, जब अन्तिम पंक्ति लिखकर कवि पूरी कविता को सार्थक कर जाता है। अन्तिम पंक्ति के बिना पूरी कविता का विवरण व्यर्थ हो जाता और विवरणों के बिना अन्तिम पंक्ति अकेले कुछ न कर पाती। इस प्रकार यहाँ कविता के दोनों ही अंश परस्पर पूरक हैं। परस्पर विरोधी स्थितियों को एक साथ रखकर कवि ने समकालीन संदर्भ को अभिव्यक्ति दी है। एक तरफ सितार का मधुर स्वर है, बादलों से हल्के व कोमल वस्त्र हैं, जल का अथाह भण्डार है, तो दूसरी तरफ मनुष्य की दशा इतनी दीन-हीन है कि जीवन में न तो कोई माधुर्य है न ही तृप्ति। कण्ठ प्यासे और स्वरहीन हैं।

इसी तरह 'वरुण', 'द्यौस' आदि कई अन्य मिथकीय विषयों पर वीरेन डंगवाल ने कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने कविता में मिथकीय सामग्री का प्रयोग प्राय: व्यंग्य के लिए किया है। 'दुश्चक्र में स्रष्टा' शीर्षक कविता इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ कवि ने ईश्वर से सम्बंधित सभी मिथकीय विचारों पर व्यंग्य किया है तथा समकालीन यथार्थ से भी उसे जोड़कर देखा है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''कमाल है तुम्हारी कारीगरी का भगवान,
क्या-क्या बना दिया, बना दिया क्या से क्या?

× × ×

हाँ, एक अन्तहीन सूची है भगवान
तुम्हारे कारनामों की, जो बखानी न जाये जैसा कि कहा ही जाता है।
यह जरुर समझ में नहीं आता
कि फिर क्यों बन्द कर दिया तुमने
अपना इतना कामयाब कारखाना?''[8]

धर्मशास्त्रों में ईश्वर की लीला को 'अनिर्वचनीय' कहा गया है-'जो बखानी न जाये'। ऐसे कई अनिर्वचनीय कारनामों का विवरण देते हुए कवि समकालीन प्रश्न उठाने की भूमिका बनाता है। अंत में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता पर प्रश्न उठाते हुए कवि उसके अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा देता है तथा कविता में प्रयुक्त मिथकीय सामग्री को समकालीन संदर्भों से जोड़ता है-

''नहीं निकली नदी कोई पिछले चार-पाँच सौ साल से
जहाँ तक मैं जानता हूँ

× × ×

प्रार्थनागहह से जरूर उठाये गये एक से एक आलीशान
मगर भीतर चिने हुए रक्त के गारे से
वे खोखले आत्माहीन शिखर-गुम्बद-मीनार
उँगली से छूते ही जिन्हें रिस आता है खून!
आखिर यह किनके हाथों सौंप दिया है ईश्वर
तुमने अपना इतना बड़ा कारोबार? अपना कारखाना बन्द करके
किस घोंसले में जा छिपे हो भगवान?
कौन-सा है आखिर, वह सातवाँ आसमान?
हे, अरे, अबे, ओ करुणानिधान!!''[9]

जिन मिथकों का पोषक हजारों साल से सत्ता पर काबिज एक बड़ा व शक्तिशाली वर्ग हो, उन पर इतना असाधारण व्यंग्य करने का साहस वीरेन डंगवाल जैसे कवि ही कर सकते हैं, जिनका जुड़ाव यथार्थ जीवन से है तथा जो जीवन-जगत की वास्तविकता को तर्क और व्यवहार की कसौटी पर लगातार कसते रहते हैं। ऐसा करने के लिए जिस उत्कृष्ट शिल्प-कौशल की आवश्यकता

पड़ती है, वह वीरेन डंगवाल के पास है। यथार्थ अनुभवों से गहरे जुड़ाव के कारण वे ऐसे शिल्प का प्रयोग अत्यंत सहजता से कर लेते हैं।

उन्होंन लोक-जीवन में व्याप्त मान्यताओं को भी अपनी कविता की आधार सामग्री के रूप में ग्रहण किया है। 'तोते की फुसकारें', 'आम की निराशा', 'फरमाइशें' आदि कविताएँ इसी तरह की हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''तोते ने फुसकारा
इससे ही कुछ मीठा हो गया बिचारा
कच्चा आम!''[10]

किसी ने न तो देखा है और न ही प्रयोग किया है कि तोते की फुसकारों से आम पककर मीठा हो जाता है। लेकिन लोक-जीवन में ऐसी मान्यता है, तो जन-मानस के परिवेश का यथार्थ चित्र खींचने के लिए कवि ने इस सामग्री का उपयोग कविता के लिए कर लिया।

इसी तरह 'फरमाइशें' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

''कुत्ते मुझे थोड़ा सा अपना स्नेह दे गाय ममता भालू मुझे दे दे यार,
शहद के लिए थोड़ा अपना मर्दाना प्यार
भैंस दे थोड़ा बैरागीपन बन्दर फुर्ती
अपनी अक्ल से मुझे बख्शे रहना सियार।''[11]

लोक जीवन में कुत्ते का स्नेह, गाय की ममता, भालू का याराना, भैंस का बैरागीपन और सियार का बहरूपियापन बहुत प्रचलित है। अक्ष्सर लोक कथाओं में ऐसे पात्रों का समावेश मिल जाता है कवि ने भी इसी सामग्री का उपयोग अपनी कविता में किया है।

इस तरह वीरेन डंगवाल लोक-जीवन के यथार्थ तक पहुँचने में तथा लोक-मानस को समझ पाने में अधिक समर्थ हो पाते हैं। वीरेन डंगवाल अपनी कविता में ऐतिहासिक सामग्री का भी उपयोग समकालीन संदर्भो में करते हैं। 'ये अश्वारोही' शीर्षक कविता में आर्यों के भारत आक्रमण का उल्लेख करते हुए लिखते है:-

''यह भी पड़ाव है कैसा
मध्य-एशिया से चलकर आये अश्वारोहियों का।

× × ×

'हम नहीं जायेंगे आगे'
पैर पटक कर अड़ रहे हैं घोड़े।
'हम नहीं जायेंगे आगे'
कूँक रहे पड़ाव की जूठन जीमते कुत्ते।
मगर याद रहे,
घोड़ों और कुत्तों के लिए नहीं शुरू किया गया था
यह सफर।''[12]

विजय अभियान पर जाने वालों के लिए अपने सैनिकों और पशुओं की फिक्र नहीं होती। आज की इस तेज विकासशील दुनिया में श्रमिकों और निम्न वर्ग के लिए कोई जगह नहीं, वे प्रभु वर्ग की प्रगति का केवल माध्यम है।

वीरेन डंगवाल की कविताओं में चित्रात्मकता भी मिलती है। दृश्यों के वर्णन का अवसर जहाँ भी होता है, वे वहाँ चित्रात्मक शैली अपनाते हैं और वर्णन इतना स्वाभाविक करते हैं कि कविता पढ़ते समय दृश्य अपने आप आँखों के सामने सजीव होता जाता है। निम्नलिखित उदाहरण में बरसात के बाद का एक दृश्य अत्यंत स्वाभाविक रूप से उन्होंने ने प्रस्तुत किया है-

''चीनी मिल के आगे डीजल मिले हुए कीचड़ में
रपट गया है लिये-दिये इक्का गर्दन पर घोड़ा
लिथड़ा पड़ा चलाता टाँगें आँखों में भर आँसू
दौड़े लोग मदद को, मिस्त्री-रिक्शे-ताँगे वाले।

× × ×

पोलीथिन से ढाँप कटोरी लौट रही घर रज्जो
अम्मा के आने से पहले चूल्हा तो धैंका ले रखे छौंक तरकारी''[13]

वीरेन डंगवाल ने अपनी कविताओं में व्यंजना शब्द-शक्ति का बहुत सफल प्रयोग किया है। वास्तव में उनकी कविता वहाँ-वहाँ सर्वाधिक प्रभावशाली है जहाँ-जहाँ उन्होंने व्यंजना का प्रयोग किया है। 'हड्डी खोपड़ी खतरा निशान' कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

''डोमाजी उस्ताद सुधर चुके
और विधानसभा भी कभी की वातानुकूलित की जा चुकी
मान लिया भद्र लोगों, कोई खतरा नहीं बाकी बचा
हड्डी-खोपड़ीविहीन वह शुभ दिन
आ ही गया आखिर हमारे देश में।''[14]

राजनीति और पूरी राज व्यवस्था के अपराधीकरण की जो व्यंजना कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों में की है, उसे पढ़कर सहज ही मन में अपराधी राजनीतिज्ञों के प्रति क्षोभ उत्पन्न होता है। 'हड्डी-खोपड़ीविहीन' पद देश की बौद्धिक व शारीरिक दृष्टि से पराश्रित लुंज-पुंज जनता और सरकारों का व्यंजक है।

लक्षणा और अभिधा का भी प्रयोग करने में वीरेन डंगवाल कुशल हैं। बल्कि अभिधा तो विशेष रूप से समकालीन यथार्थ को व्यक्त करने में सक्षम है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में अभिधात्मक कथन काफ्फी पाये जाते हैं। उदाहरण देखें-

''वैसे इन मल्लाहों में है भुजबल इतना
एक डाँड़ में बीस हाथ गंगा की धारा
कर जाते हैं पार, चट्ट कर जाते पूरी
बोतल फिर भी पलक नहीं ये झपकाते हैं''[15]

अभिधा समकालीन यथार्थ की गहरी, सरल, स्वाभाविक व प्रभावशाली अभिव्यक्ति की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह जीवन-जगत से सबसे अधिक गम्भीरता से और सीधे-सीधे जुड़ी होती है। इसके माध्यम से लक्षणा व व्यंजना के स्तर पर पहुँचना अधिक सरल भी हो जाता है। इस संदर्भ में अजय तिवारी लिखते हैं-''अभिधा जीवन-स्थितियों से सीधे जुड़े होने का परिचय देती है। यह सम्बंध जितना गम्भीर होता है, अभिधा की सीमाओं से उठकर व्यंजकता और प्रातिनिधिकता के स्तर पर पहुँचना उतना ही सहज होता है।''[16]

उनकी कविताओं में लक्षणा के प्रयोग भी कम नहीं हैं। और वे भी अपनी पूरी स्वाभाविकता व प्रभावोत्पादकता के साथ। समकालीन कविता में आख्यान को एक बार फिर महत्व मिला और प्रयोग भी कर रहे हैं। अनेक कवि पूरी कुशलता के साथ इसका प्रयागे वीरेन डंगवाल चूँकि समकालीन जन-जीवन से संबद्ध कवि हैं, इसलिए स्वाभाविक रूप से वे भी इसका प्रयोग अपनी कविताओं में करते हैं। दरअसल कविता में आख्यान का होना यथार्थ जीवन के चित्रण को अधिकाधिक स्थान देता है, जिसके बिना उसकी पूर्णता संभव नहीं। उनकी एक कविता 'रामसिंह' की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

''तुम्हारी याद्दाश्त बढ़िया है रामसिंह
पहाड़ होते थे अच्छे मौके के मुताबिक

कत्थई-सफेद-हरे में बदले हुए
पानी की तरह साफ्फ
खुशी होती थी
तुम कण्टोप पहनकर चाय पीते थे पीतल के चमकदार
गिलास में घड़े में, गड़ी हुई दौलत की तहर रक्खा गुड़ होता था

× × ×

माँ सारी रात रोती घूमती थी
भोर में जाती चार मील पानी भरने
घरों के भीतर तक घुस आया करता था बाघ''[17]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि यदि इसमें रामसिंह के जीवन से संबंधित इतने विवरण न रखे जाते तो कविता में यथार्थ की अभिव्यक्ति अपूर्ण ही रह जाती। ये विवरण रामसिंह की जीवन-स्थितियों और संघर्षों का चित्र प्रस्तुत करते हैं जिससे कविता और भी सुग्राह्य और प्रभावोत्पादक बनती है। वीरेन डंगवाल यदि विवरणों का प्रयोग करते हैं तो भाव व अर्थ को और भी सघन तथा प्रभावशाली बनाने के लिए सांकेतिक शैली का भी प्रयोग करते हैं। कविता में सांकेतिकता के महत्व के सन्दर्भ में परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं-

''जरूरी नहीं कि कविता में हर जगह पूरा कथानक बताया जाए।

× × ×

समय जितना कहा जा रहा है उससे अधिक अनकहा छूट जाता है।''[18]

वीरेन डंगवाल की कविता 'वन्या' की कुछ पंक्तियाँ इसका उदाहरण हैं-

''ठेकेदार के आदमी गये
चली गयीं जंगलात के अफ्फसरों की गुर्राती हुई जीपें
अब कोई खतरा नहीं है दिदी
चलती हो घास लाने वण की तरफ?

× × ×

अकेली मैं कैसे जाऊँगी वहाँ
मुझे देखते ही विलापने लगते हैं चीड़ के पेड़
सुनायी देने लगती है किसी घायल लड़की की दबी-दबी कराह''[19]

'ठेकेदार', 'खतरा', जैसे शब्द और 'विलापने लगते हैं पेड़', 'घायल लड़की की दबी-दबी कराह' जैसे पद इस कविता के नेपथ्य में छिपे कथ्य को स्पष्ट कर देते हैं। कम शब्दों के माध्यम से अधिक-से-अधिक बात कहने के लिए वीरेन डंगवाल इस सांकेतिक शैली का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते हैं।

कवि ने इतिहास, पुराण, मिथक प्रकृति, राजनीति, लोकजीवन, संस्कृति, धर्म, आदि सभी क्षेत्रों से अपनी कविता के लिए बिंब ग्रहण किये हैं तथा इनका सफल प्रयोग भी किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने चाक्षुष, श्रव्य, स्पर्श्य आदि बिंबों का भी प्रयोग किया है। उनकी कविताएँ मुक्त छंद में हैं, किंतु वे लय और प्रवाह का विशेष ध्यान रखते हैं। तुक भी वे अनिवार्य रूप से नहीं रखते। लेकिन आवश्यकतानुसार वर्ण की पुनरावृत्ति भी करते हैं। पुनरावृत्ति और लय का एक उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है:-

''जहाँ नशा टूटता है ककड़ी की तरह
जहाँ रात अपना सबसे डरावना बैंड बजाती है
सबसे मद्धिम सुरों में

एक स्त्री जहाँ करती है प्रेम का सुदूर इशारा
जहाँ मछली का ताजा पंजर चबाता है
ऊद बिलाव जहाँ भ्रष्टाचार का सौंदर्यशास्त्र रचते हैं नीच शासक"[20]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'जहाँ' शब्द की आवृत्ति से कविता की लय में जो प्रवाह आ रहा है वह अत्यंत प्रभावशाली है। इसी प्रकार कई कविताओं में वीरेन डंगवाल ने आवश्यकतानुसार तुकों का भी प्रयोग किया है। संक्षेप में डंगवाल का काव्य शिल्प शिल्प के निर्वाह मात्र केलिए नहीं है, बल्कि इससे समकालीन जनजीवन के यथार्थ की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति में पूरी मदद मिलती है। यथार्थ की अभिव्यक्ति में सहायक पारंपरिक काव्य-तत्वों को यदि वे निः संकोच ग्रहण करते हैं तो अनावश्यक तत्वों को छोड़ भी हैं। समकालीन भारतीय जन-जीवन के यथार्थ के प्रति यह दृष्टि ही एक समकालीन कवि के काव्य-शिल्प की सार्थकता है।

संदर्भ-सूची

1. वीरेन डंगवाल, 'दुश्चक्र में स्रष्टा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002, पृष्ठ: 84
2. अजय तिवारी, 'समकालीन कविता और कुलीनतावाद', राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1994, पृष्ठ: 243
3. वीरेन डंगवाल, 'दुश्चक्र में स्रष्टा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002, पृष्ठ: 87-88
4. वीरेन डंगवाल, 'इसी दुनिया में', नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण:1991, पृष्ठ: 26
5. वही, पृष्ठ: 79
6. वही, पृष्ठ: 71-76
7. वही, पृष्ठ: 67
8. वीरेन डंगवाल, 'दुश्चक्र में स्रष्टा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002, पृष्ठ: 23-24
9. वही, पृष्ठ: 24-25
10. वही, पृष्ठ: 84
11. वही, पृष्ठ: 85
12. वही, पृष्ठ: 103
13. वही, पृष्ठ: 56
14. वही, पृष्ठ: 12-13
15. वीरेन डंगवाल, 'इसी दुनिया में', नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण:1991,पृष्ठ: 20
16. अजय तिवारी, 'समकालीन कविता और कुलीनतावाद', राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1994, पृष्ठ 262
17. वीरेन डंगवाल, 'इसी दुनिया में', नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण: 1991, पृष्ठ: 16
18. परमानंद श्रीवास्तव, 'कविता का अर्थात्', आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण: 1999, पृष्ठ: 239
19. वीरेन डंगवाल, 'इसी दुनिया में', नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण: 1991, पृष्ठ: 66
20. वीरेन डंगवाल, 'दुश्चक्र में स्रष्टा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002, पृष्ठ: 47

एक देश एक चुनाव: प्रासंगिकता

डॉ० विशाखा सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डीजीपीजी महाविद्यालय, कानपुर

"हर गरीब की थाली में खाना है, अरे हाँ लगता है चुनाव का आना है।"

भारत जैसे लोकतांन्त्रिक देशों में चुनाव वह अवसर है जो आम जनता को चयन करने और चुने जाने की स्वतंत्रता प्रदान करना है। भारत में चुनावों का आयोजन एक महापर्व है भांति होता है जिसमें लगभग संपूर्ण देश के नागरिक प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष हर रूप में सहभागिता करते हैं, अपने अधिकरों के प्रति सचेत होकर अपने हितों की पूर्ति का प्रयास करते है।

वस्तुतः भारत में चुनाव की व्यवस्था कोई नई या ब्रिटिश सत्ता द्वारा प्रदान की गई व्यवस्था नहीं है प्राचीन भारत में भी इसके कई प्रमाण प्राप्त होते हैं। बुद्ध कालीन समय में ही कई गणराज्यों के बारे में जानकारी मिलती है जो पूरी तरह से लोकतांन्त्रिक थ। प्राचीन इतिहासकारों ने कई राज्यों के प्रमाण दिए गए हैं जहां उनको अपने स्वामियों और गणपतियों को स्वंय चुनने का अधिकार प्राप्त था। हजारों वर्ष पहले वैशाली गणराज्य के भी चर्चे प्राप्त होते हैं जहां वर्तमान राष्ट्रों की भांति ही मंत्रिपरिषद होती थी। बुद्ध साहित्य में इस प्रकार के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। ग्रीक इतिहासकारों ने भारत में कई गणराज्यों का जिक्र किया जिन्हें 'अरिस्टोक्रैटिक रिपब्लिक' कहा गया। प्राचीन भारत में चुनाव के पर्याप्त प्रमाण तो प्राप्त नहीं है परन्तु कुछ ऐसे प्रमाण अवश्य प्राप्त हैं जहां प्रत्येक वयस्क को वोट डालने और आम सभा में उपस्थित होने का अधिकार प्राप्त था।

मुस्लिम सत्ता के आगमन के पश्चात् यद्यपि लोकतंत्र और चुनाव जैसी गतिविधियों पर आंशिक विराम लगा क्योंकि मुस्लिम साम्राज्य में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का ही बोलबाला था और प्रायः उत्तराधिकार के आधार पर शासकों, उच्च पदाधिकारियों आदि का चुनाव होता था।

चुनावों का आधुनिक स्वरूप जिसमें मत पत्रों के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाता है 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दौर में दृष्टिगोचर होता है। 1858 में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अपनी शक्तियों का हस्तान्तरण करने के साथ ही 1861 और 1862 के चार्टर ऐक्ट के अन्तर्गत निकायों को कानून निर्माण की शक्ति तो प्रदान की गई परन्तु अभी भी प्रतिनिधियों के मनोनयन की ही व्यवस्था प्रमुख थी उनके चुनाव की कोई स्पष्ट प्रणाली विद्यमान नहीं थी, 1909 में मार्ले मिंटो सुधारों के अन्तर्गत इस दिशा में कुछ कदम अवश्य उठाए गये परन्तु परिषदों में अभी भी चुनाव का अधिकार सामान्य जनता को न होकर समाज के कुछ विशेषीकृत व्यक्तियों के पास ही सीमित था। 1919 के चार्टर ऐक्ट के अन्तर्गत सुधारों का क्रम जारी रहा। 1909 के मार्ले मिंटो सुधारों ने मुस्लिम आरक्षण का सृजन कर समाज में फूट डालने का प्रयास किया तो 1919 के अधिनियम में सिखों को पृथक निर्वाचन का अधिकार प्रदान किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत ही देश में द्विसदनीय व्यवस्था और प्रत्यक्ष चुनाव की बात की गई। संपत्ति कर या शिक्षा के आधार पर लोगों को सीमित मताधिकार प्रदान किया गया। 1919 के 1935 का अधिनियम पास हुआ जो कि भारत के संविधान का प्रमुख स्त्रोत है। भारत में संधात्मक व्यवस्था की अवधारणा का जन्म 1935 के ही अधिनियम के फलस्वरूप हुआ। चुनावों के संदर्भ में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, निर्वाचन में साम्प्रदायिक प्रणाली का ही उपयोग किया गया परन्तु केन्द्र और प्रांत दोनों में ही मत देने की योग्यता में कमी कर दी गई जिसके फलस्वरूप मतदाताओं की संख्या बढ़कर 13% हो गई जबकि 1919 के कानून के अन्तर्गत यह 3% ही थी।

1947 का अधिनियम पास होने के पश्चात् ही देश में चुनावों के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये, 1947 के अधिनियम में देश की जनसंख्या और अन्य पक्षों को देखते हुए विधामिका के स्तर पर अप्रत्यक्ष निर्वाचन और साम्प्रदायिक वयस्क मताधिकार की व्यवस्था को सृजित किया गया। सम्प्रदाय आधारित आरक्षण की समाप्ति कर दी गई।

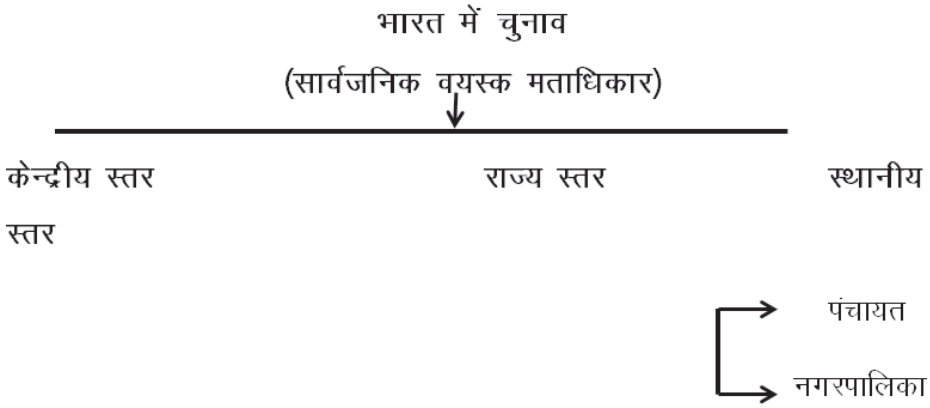

नि:सन्देह भारत जैसे देश में चुनाव जनता के कल्याण और हित को साधने का एक रास्ता हैं परन्तु आज जो ज्वलन्त प्रश्न सम्पूर्ण राष्ट्र के समक्ष खड़ा है वह यह है कि क्या चुनाव अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हो पा रहे है? क्या वास्तव में चुनावों के माध्यम से हम श्रेष्ठ प्रतिनिधियों का चयन कर पाते हैं? चुनाव देश के वातावरण को सकारात्मकता प्रदान कर पाता है? भ्रष्टाचार, हिंसा, जातिगत मुद्दे, धर्मान्धता आदि कई विकारों के साथ चुनाव सम्पन्न होते हैं इसीलिए समय-समय पर इन सुधारों के लिए विभिन्न प्रकार के आयोगों, समितियों आदि का गठन किया जाता। चुनावों में होने वाले इन्हीं दोषों के मद्देनजर संपूर्ण देश का वातावरण नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। भारत में लोक सभा, विधान सभा और स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में प्रतिनिधियों के चयन हेतु होने वाले चुनाव निरन्तर प्रक्रिया में रहते हैं चुनाव के समय उत्पन्न होने वाली सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक समस्याओं को सुधारने की ओर कदम उठाने के साथ ही 'एक देश एक चुनाव की अवधारणा' को बल दिया जा रहा है ताकि देश चुनावी माहौल से बाहर निकले और विकास और लोककल्याण की ओर सरकारों का ध्यान अधिक आकृष्ट हो।

लोकतंत्र को वास्तविक रूप में जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि जनता ने केवल अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करे वरन् अपने प्रतिनिधियों पर व्यवहार में नियंत्रण भी रखे। अन्तिम रूप में महत्वपूर्ण राजनीतिक नियमों का निर्णय जनता के द्वारा ही किया जाए।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में चुनावों की भूमिका अत्याधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि चुनाव ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से देश में सुशासन, कानून व्यवस्था आदि की स्थापना होती है। वस्तुत: चुनाव व्यक्ति और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का एक सशक्त माध्यम है। इस प्रक्रिया के द्वारा ही समाज के वंचित वर्गो को भी शासन प्रक्रिया का हिस्सा बनने का अवसर प्राप्त होता है।

भारत जैसे देशों में मतदाता चुनावों के माध्यम से ही अपने स्वप्नों को साकार करने के प्रति जागरूक होता है। देश और उसके नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी प्रकार के विकास में चुनाव की महती भूमिका रहती है। यह एक ऐसा शस्त्र है जो संविधान ने आम जनता को प्रदान किया है और आम नागरिक अपनी सूझ बूझ के द्वारा योग्यतम प्रतिनिधियों का चयन कर अपना और राष्ट्र का कल्याण कर सकते है।

एक राष्ट्र एक चुनाव का अर्थ:-हाल ही में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक राष्ट्र एक चुनाव की अवधारणा पर अत्यधिक बल दिया। वस्तुत: एक राष्ट्र एक चुनाव की अवधारणा का काई सुनिश्चित अर्थ है। प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तुत की गई एक राष्ट्र एक चुनाव की अवधारणा के दो पहलू हैं जिन पर विचार किया जाना अपेक्षित है:-

1. प्रधानमंत्री के अनुसार इलेक्टोरल रोल एक बनने चाहिए दो नहीं बनने चाहिए-भारत में मतदाता सूची बनाने और उसमें समयानुसार बदलाव की प्रक्रिया होती है। अनु-324 के अन्तर्गत संविधान इस बात के लिए चुनाव आयोग को अधिकृत करता हे कि वह मतदाता का सूची का निर्माण कर सके और उसका पुनर्नवीकरण करता है/रहे वहीं दूसरी ओर पंचायतों और नगरपालिकाओं के लिए इसी कार्य को सुनिश्चित करने का दायित्व राज्य विधानसभाओं को सौंपा गया है। वस्तुतः संधवाद की भावना को प्रोत्साहन देने के लिए हमारे देश के प्रतिनिधियों द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था की गई है। परंतु यहां इस व्यवस्था पर प्रश्न उठाए जा रहे हैं क्योंकि लोकसभा, विधानसभा और नगरपालिका के मतदाता में लोकसभा के ही मतदाता होते हैं इस स्थिति में लोकसभा के ही कार्य की पुनरावृत्ति विधानसभा द्वारा किया जाना समय, संसाधनों, धन और ऊर्जा का अनावश्यक व्यय ही प्रतीत होता है। देश हमेशा 'इलेक्शन मोड' में रहना-बार-बार चुनाव होते रहते से देश हमेशा चुनावी माहौल में डूबा रहता है
2. चुनावी प्रक्रिया के साथ नेताओं द्वारा लोगों को लुभाने, आकर्षित करने की प्रक्रिया भी शुरू हो जाती है, समस्त संसाधनों को चुनावों में झोंक दिया जाता है फलस्वरूप नीतिगत निर्णयों और विकासपरक कार्यो में बाधा पहुँचती है देश को सही गति नहीं मिल पाती। इसलिए एक देश एक चुनाव के अन्तर्गत इन समस्याओं को दूर करने के लिए दो प्रस्तावों पर विचार किया जा रहा है-
    a. लोकसभा, विधानसभा और स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का एक साथ चुनाव
    b. केवल लोकसभा और विधानसभा का एक साथ चुनाव।

पहले प्रस्ताव के अन्तर्गत ऐसी चुनावी प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिए जाने की बात की गई है जिसमें लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव बार बार और विभिन्न संस्थाओं द्वारा न किए जाकर केवल केन्द्रीय चुनाव आयोग के स्तर पर ही संपन्न कराए जाएं ताकि समय, संसाधन और धन का बचत हो सकें।

पहले प्रस्ताव को स्वीकार करने के साथ ही देश में केन्द्र और राज्य सरकारों में तनाव की स्थिति आ सकती है प्रायः राज्य सरकारों द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की संभावना कम ही है क्योंकि इससे राज्य निर्वाचन आयोग और फलस्वरूप राज्य सरकार के अधिकारों में कमी करनी पड़ेगी जो संधवाद के विपरीत भावना को प्रोत्साहन देगी इस स्थिति में प्रधानमंत्री ने इस बात पर जो दिया कि लोकसभा, विधानसभा और पंचायतों के चुनाव एक साथ न आयोजित कर केवल लोकसभा और विधानसभा के ही चुनाव साथ में संपन्न कराए जायं। इस सन्दर्भो में एक देश एक चुनाव की अवधारणा को स्पष्ट किया जा सकता है।

परन्तु अन्य सभी प्रस्तावों की भांति ही इस प्रस्ताव के भी समर्थक और विरोधी दोनों ही है। वर्तमान समय में सत्तारूढ़ सरकार इस प्रस्ताव की प्रबल समर्थक है। निःसन्देह एक साथ चुनावों का आयोजन हमारी सरकारों और हमारे देश को कई सारी समस्याओं से बचाता है इसीलिए एक देश एक चुनाव के पक्ष में कई सारे तर्क दिए जाते है।

एक देश एक चुनाव के पक्ष में दिए जाने वाले तर्क शासन और नीति निर्माण से संबंधित तर्कः-

देश में बार-बार होने वाले चुनाव देश के समुचित शासन प्रशासन के कार्य में बाधक सिद्ध होते हैं वस्तुतः चुनावों की बारम्बारता देश को हमेशा चुनावी मोड़ में रखती है जिसके फलस्वरूप नेताओं का संपूर्ण ध्यान चुनावों में सहभागिता और येन केन प्रकारेण उनको जीतने का होता है। चुनावी लहर को अपने पक्ष में करने के लिए नेतागण विभिन्न चुनावी वादे भी करते हैं जो देश के समुचित विकास से संबंधित न होकर अधिकांश जनता को आकर्षित करने वाले अधिक होते हैं। इन परिस्थितियों में चुनाव का वास्तविक उद्देश्य अर्थात् जन समुदाय का समग्र कल्याण और राष्ट्र का विकास कई प्रकार से प्रभावित होने लगता है। चुनाव आचार संहिता बार-बार लगने के फलस्वरूप नीतिगत निर्णय लेने में सरकारें अक्षम सिद्ध होती है और सरकारी योजनाओं को लागू करने में हो रहे विलम्ब के कारण देश के विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता हे। 2017 में नीति आयोग के द्वारा दिए गये रिपोर्ट में यह बात स्पष्ट की गई है कि प्रत्येक वर्ष देश में 3, 4 या पाँच बार चुनाव अवश्य होते हैं फलस्वरूप इसका खामियाजा देश को भुगतना पड़ता है। "Policy Paralysis" की समस्या।

Policy Paralysis की समस्या-किसी भी नीति में निरन्तर विलम्ब होने लगता है मसलन कोई भी कानून जो देश के लिए पास होता है व लागू नहीं किया जा सकता।

स्टाफ-बहुत बड़े स्टाफ की आवश्यकता है। पॉलिंग ऑफिसर्स, प्रर्यवेक्षक व सैन्य बलों पुलिस, टीचर की नियुक्ति की जाती हैं सरकार का बहुत बड़ा स्टाफ चुनावों में संलग्न हो जाता है। बार-बार होने वाले चुनाव से सरकारी कर्मियों की क्षमता प्रभावित होती है अन्य कार्य प्रभावित होते हैं।

सामाजिक संरचना को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए एक देश एक चुनाव की आवश्यकता है-यह बात पूर्णत: सत्य है कि सामान्य समय की तुलना में चुनावी समय में विभिन्न सामाजिक मुद्दे अधिक उभर कर सामने आते हैं। प्राय: नेता अपने स्वार्थ के हिसाब से जाति, धर्म, क्षेत्र, सम्प्रदाय को चुनावी हथकंड़े के रूप में अपनाते है और सामाजिक व्यवस्था, शांति को भंग कर वैमनस्य फैलाते हैं ताकि ये यथासंभव लोगों के एक बड़े समुदाय को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद जैसी भावनाएं लोगों को विभाजित करती हैं और देश की एकता और अखण्डता पर संकट उत्पन्न हो जाता है।

इस परिस्थिति में बार-बार होने वाले चुनाव इन मुद्दों को बार-बार उभारते हैं। इसीलिए यदि देश में चुनाव एक साथ आयोजित होंगे तो देश को इस प्रकार के सामाजिक संकटों से कम सेकम गुजरना पड़ेगा और देश में शांति और सामञ्जस्य बना रहेगा।

भ्रष्टाचार की समस्या:-

संपूर्ण देश में एक बार चुनाव करवाने से भ्रष्टाचार की समस्या पर बहुत अधिक सीमा तक अंकुश लगाया जा सकता है। वस्तुत: चुनाव लड़ने और उसमें विजयी होने के लिए उम्मीदवारों को तमाम साधनों का प्रयाग करना है पार्टियाँ प्राय: धनाट्य संवर्णो से पार्टी फंड के रूप में पैसे प्राप्त करती हैं।

इस प्रक्रिया में धन दाता वर्ग अपने हितों से संबंधित नीतियों के निर्माण हेतु सत्तारूढ़ दल पर दबाव डालता है इस प्रकार श्रृंखला बद्ध रूप से भ्रष्टाचार विकसित होता है और देश का विकास गतिहीन हो जाता है। क्रॉनी कैपटारिज्मघ का विकास होता है।

एक साथ चुनावों की मांग का इतिहास:-

भारत में एक साथ चुनाव करवाने की अवधारणा सर्वथा नवीन अवधारणा नहीं है, बल्कि वर्षो पहले से ही देश में एक साथ चुनाव करवाने की मांग कई स्तरों पर की गई है जिनका संक्षिप्त अवलोकन हम इस प्रकार कर सकते है:

भारत में 1967 तक तो एक साथ चुनाव होते रहे परंतु 1967 से 1999 का दौर चुनावों के लिए समस्यापरक रहा क्योंकि इस दौरान क्रमवार और एक साथ चुनावों का आयोजन विभिन्न प्रकार से बाधित रहा। अत: विभिन्न आयोगों, समितियों आदि के द्वारा एक साथ चुनाव करवाने की अवधारणा पर विशेष जोर दिया गया।

a. 1982-83 की चुनाव आयोग की रिपोर्ट-तत्कालीन चुनावों की बारम्बारता से उबरने के लिए 1982-83 में तत्कालीन चुनाव आयोग ने एक साथ चुनाव करवाने की मांग रखी।
b. 1999 की विधि आयोग की रिपोर्ट-विधि आयोग के अध्यक्ष जस्टिस बी.पी. जीवन रेड्डी की अध्यक्षता में रिपोर्ट तैयार की गई जिसमें एक साथ चुनाव करवाने की बात की गई हालांकि इस समिति का मानना था कि ये चुनाव प्रणाली क्रमवार तरीके से विकसित होनी चाहिए।
c. 2003 में लाल कृष्ण आडवाणी द्वारा एक देश एक चुनाव पर बल दिया गया 2003 में तत्कालीन गृह मंत्री लाल कृष्ण आड़वाणी ने भी देश में एक साथ चुनाव करवाने की बात कही परंतु विपक्ष द्वारा इसका समर्थन नहीं मिल पाया।

2015 में ससंद की स्थायी समिति की सिफारिश-2015 की इस सिफारिश में एक साथ चुनाव की सिफारिश की गई।

2017 में नीति आयोग-एक साथ चुनाव करवाने की बात की बात की गई और इसके विभिन्न तरीकों की चर्चा की गई।

2018 में विधि आयोग की रिपोर्ट-यही मांग पुनः रखी गई। वर्तमान समय में-प्रधानमंत्री मोदी और चुनाव आयोग ने एक साथ चुनाव करवाने के लिए स्वंय को तत्पर बताया है और इस हेतु आवश्यक संशोधनों के किए जाने की बात की है।

एक साथ चुनाव करवाने के समक्ष चुनौतियांः-

उत्तरदायित्व के बोध में कमीः-

पूर्व चुनाव आयुक्त एस.वाई कुरैशी के कथनानुसार एक साथ चुनाव होने पर नेताओं की जनता पर निर्भरता कम होगी इस पर वे अपने संवैधानिक दायित्वों से विमुख होने लगेगें। उनका कथन है कि बार-बार चुनाव होने से नेताओं को प्रायः जनता के सम्मुख जाना पड़ता है इसीलिए वे कार्यो और नीतियों को लोकोन्मुख बनाने के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। यद्यपि यह तर्क उपयोगी है परन्तु इसके कई विकल्प भी दिए जाते सकते हैं।

संघवाद पर संकटः-भारत एक संघात्मक देश है जहां प्रान्तों को भी केन्द्र के समान ही तमाम प्रकार के अधिकार दिए गये हैं। एक साथ चुनाव पर और केन्द्रीय सरकार के शक्तिशाली होने की स्थिति में चुनावों का संपूर्ण आकर्षण प्रधानमंत्री और उसे दल के पक्ष में हो जाता है इस स्थिति में छोटे और क्षेत्रीय दलों के प्रमुख में स्वाभाविक रूप से कमी आती है और संघवाद की व्यवस्था को क्षति पहुँचती है। वस्तुतः यह स्थिति संसदात्मक सरकार की अवधारणा को भी क्षति पहुँचाती है क्योंकि एक व्यक्ति में शक्ति का संकेन्द्रण अध्यक्षात्मक शासन की ओर ले जाने वाला होता है। साथ ही एक साथ चुनाव करवाने पर स्थानीय मुद्दे भी क्षीण होते जाएंगे और राष्ट्रीय मुद्दों पर ही चुनाव लड़े और जीते जायेंगे।

एक साथ चुनावों की व्यवहारिकता पर प्रश्नः-

देश एक चुनाव की अवधारणा की आलोचना इस स्तर पर भी की जाती है कि एक साथ इतने सारे चुनावों का आयोजन व्यवहारिक रूप से संभव नहीं है साथ ही इतने बड़े स्टाफ और मशीनों की व्यवस्था अव्यवहारिक प्रतीत होती है।

चुनावी खर्चा पर नियंत्रणः-

प्रायः चुनावों के समय राज्य और उम्मीदवार दोनों ही अपने अपने स्तर पर चुनाव जीतने हेतु तमाम खर्चो में संलग्न रहते हैं, इस स्थिति में धन का अपव्यय बढ़ जाता है जो भारत जैसे विकासशील देशों के लिए चिंता जनक है। 2014 में आई इलेक्शन कमीशन की रिपोर्ट और 2017 के एस.वाई. कुरैशी के एक विश्लेषण के फलस्वरूप यह बात उभर कर सामने आई कि लोकसभा, विधानसभा, के चुनाव यदि एक साथ कराए जाएं तो होने वाले चुनावी खर्चे आधे से भी कम हो जायेंगे और देश इतनी बड़ी धनहानि से बच जायेगा।

अध्ययन के उद्देश्यः-

1. राष्ट्र में चुनावों का आयोजन इस प्रकार से होना चाहिए कि वे राष्ट्र की एकता को खण्डित न करें वरन् समरसता का निर्माण करें।
2. सरकारें अपने निहित स्वाथों की तुलना में राष्ट्र हित के प्रति अधिक सचेत रहें।
3. चुनावों में निरन्तर सकारात्मक और परिस्थितिजन्य परिवर्तन हों ताकि विकास की अवधारणा को अधिक से अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हो सके।

शोध परिकल्पना (Hypothesis)

1. देश में एक साथ चुनावों का आयोजन-सरकारों को देश के समग्र विकास और सम्यक् नीतियों के निर्माण हेतु मार्ग प्रशस्त करता है।
2. चुनाव प्रणाली और चुनावों के स्वरूप में आवश्यक संशोधनों के फलस्वरूप देश का मतदाता चुनावों की ओर अधिक आकर्षित होगा और अपने मताधिकार का सम्यक् प्रयोग करेगा।

3. चुनावी गतिविधियों को सीमित और तकनीकी स्वरूप प्रदान करने से राजनीति और समाज की अनेक समस्याओं (जाति, धर्म, क्षेत्र) पर नियन्त्रण स्थापित कर देश में शान्तिपूर्ण वातावरण स्थापित किया जा सकता है।

साहित्य समीक्षा

Literature Review

1. द इलेक्शन दैट चेंन्ड इंडिया The election that changed India–राजदीप सरदेसाई प्रस्तुत पुस्तक में चुनावों की प्रक्रिया में आए आवश्यक परिवर्तना पर दृष्टि डाली गई है इससे साथ ही भारतीय राजनीतिक और सामाजिक परिवेश पर इसके प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।
2. अनरीयल इलेक्शन्स (Unreal Elections) – C.S. Krishna सी.एस. कृष्णा 'अनरीयल इलेक्शन्स' नामक अपनी पुस्तक में सी.एस. कृष्णा ने भारतीय चुनावों की सैद्धान्तिक स्थिति से इतर वास्तविक चुनावी राजनीति पर प्रकाश डाला है।
3. विनिंग द मैनडेट (Winning the mandate) विद्युत चक्रबोर्ती Bidyut Chakrbarty चुनावों के बदलते स्वरूप पर चिंतंन किया गया है। वर्तमान समय में चुनावी मुद्दों से ज्यादा महत्वपूर्ण मीडिया की गतिविधियां और बाजारीकरण हो गये हें जो चुनावों को महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करते हैं।
4. व्हाई इंडिया वोट्स Why India Votes मुकुलिका बनर्जी (Mukulica Banerjee) यह पुस्तक दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार पश्चिम बंगाल छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु आदि राज्यों की चुनावी गतिविधियों का विश्लेषण करती हैं देश के सामान्य मतदाता राजनीति और चुनावों को किस दृष्टि से देखते है उसका विश्लेषण किया गया है।
5. इवरी वोट काउन्ट: द स्टोरी ऑफ इंडियाज इलेक्शन–नवीन चावला भारत के पूर्व चुनाव आयुक्त ने इस पुस्तक में चुनावों के इतिहास पर प्रकाश डाला हैं। चुनावों में लोकतंत्र के क्षय, माओवाद का प्रहार, पेड न्यूज आदि मुद्दों पर अपने कार्यकाल से जुड़े अनुभवों को साझा किया है।
6. एन अनडाक्यूमेंटेड वन्डर: द ग्रेट इंडियन इलेक्शन।n Undocumented Wendor : The Great Indian Election–एस.वाई. कुरैशी पूर्व चुनाव आयुक्त एस.वाई. कुरैशी ने भारत में चुनावी प्रक्रिया, चुनाव की चुनौतियों आदि को अपने लेखन का केन्द्र बनाया है। इसके साथ ही चुनाव पूर्ण करवाने में चुनाव आयोग किस प्रकार से अपनी भूमिका निभाता है इसका भी वर्णन किया गया है।

दहेज से अभिशापित होता भारतीय समाज

ताहिरा परवीन

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है ''दहेज'' जो यहाँ पौराणिक काल से ही मौजूद है। आदिम काल में भी बेटियाँ बिदाई में कुछ उपहार देने की परंपरा रही है, तब माता-पिता अपनी पुत्री को उपहार स्वेच्छा से तथा स्नेहवश देते थे किन्तु अब यह स्वेच्छा विवशता में परिवर्तित हो गयी है। विवाह जैसे पवित्र बंधन ने अब व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है जिसमें विवाह पूर्व ही लेन-देन की सौदेबाजी होती है। यदि दोनों पक्ष की सहमति हुई तो विवाह सम्पन्न होता है अन्यथा संबंध समाप्त हो जाते हैं। इस परंपरा की पूर्ति के लिए माता-पिता अभावग्रस्त एवं ऋणग्रस्तता के साथ जीवन जीते हैं या भ्रष्टाचार में लिप्त होकर अनुचित साधन से परंपरा का पालन करते हैं। इसके रोकथाम हेतु सामाजिक एवं कानूनी स्तर से कई प्रयास किये गए हैं किन्तु वांछित परिणाम की प्राप्ति नहीं हो सकी है। दहेज के कारण भ्रूण हत्या, कन्या हत्या, दहेज हत्या तथा आत्महत्या जैसी वारदातें सामान्य बात हो गयी है। भारतीय समाज को एक दहेज मुक्त समाज बनाने के प्रत्येक व्यक्ति को आगे आना होगा, प्रत्येक युवा-युवतियों को इस संबंध में कमर कसना होगा तभी इस सामाजिक प्रदूषण से मुक्ति मिल सकेगी।

शब्द कुंजी: परंपरा, स्नेहवश, विवशता, भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, आत्म हत्या, दहेज मुक्त समाज।

परिचय

भारत में पुत्री के विवाह को कन्यादान कहा जाता है तथा यहाँ दान को सजा कर देने की परंपरा विद्यान है, अत: इसी आधार पर माता-पिता अपनी पुत्री को आभूषणों से सजाकर दान करते हैं। कभी जो मंगलमय परंपरा हुआ करती थी वह अब अभिशाप बन चुकी है जिसका नाम ''दहेज'' पड़ा है। दहेज प्रथा का अर्थ है कि लड़की के विवाह में वर पक्ष को गृहस्थी का सामान, आभूषण, इलेक्ट्रोनिक, फर्नीचर आदि उपहार स्वरूप देना। जो इसमें सक्षम नहीं होते उनकी पुत्री को शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है जो अंतत: हत्या या आत्महत्या के रूप में समाज के सामने आता है। दो परिवारों का दहेज के आधार पर बनाया गया संबंध सम्पत्ति का संबंध होता है। एक तरफ यह अमीरों के लिए शान-शौकत की चीज है तो दूसरी तरफ गरीबों के लिए एक बड़ी समस्या है, यह समस्या विवाह के साथ समाप्त नहीं होती बल्कि विवाहोपरांत भी संबंधित लोगों के लिए परेशानी का कारण विद्यमान रहता है। कानूनन अपराध घोषित होने के बाद भी यह लगातार फल-फूल रहा है। दहेज नहीं लेने की शपथ लेने वाले पढ़े-लिखे शिक्षित लोग अपनी लड़की की शिक्षा एवं उपलब्धियों पर गर्व करते हुए उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के बजाए ज्यादा से ज्यादा पैसा खर्च करके उच्च वर्ग का वर ढूंढने में विश्वास करते हैं।

परिभाषा

मैक्स रेडिन के अनुसार- ''दहेज वह सम्पत्ति है जो एक व्यक्ति विवाह के समय अपनी पत्नी या उसके परिवार वालों से प्राप्त करता है।''

दहेज निरोधक अधिनियम-1961 के अनुसार - ''विवाह के पहले या बाद में विवाह की एक शर्त के रूप में एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दी गयी कोई भी सम्पत्ति या मूल्यवान वस्तु 'दहेज' कहलाएगी।''

दहेज का इतिहास - प्राचीन ग्रंथों के अनुसार ब्रह्म विवाह में माता-पिता अपनी पुत्री को कीमती आभूषणों से सुशोभित कर वर को सौंपते थे। रामायण और महाभारत काल में भी यह प्रथा थी, सीता और द्रौपदी को भी आभूषण, हीरे-जवाहरात, उपहार स्वरूप दिया गया था। रामचरित मानस में शिव-पार्वती के विवाह के वर्णन में पार्वती के पिता हिमाचल ने अपनी पुत्री को सम्पत्ति, दास-दासियाँ आदि प्रदान किया था जो यह सिद्ध करता है कि दहेज का इतिहास प्रारंभ से ही अस्तित्व रहा है। अब तक उपहार देने में सौदा जैसी भावनाएँ नहीं थी। मध्यकाल एवं राजपूत काल में कुलीन परिवारों में अपनी स्थितिनुसार दहेज की माँग की जाने लगी, इसके बाद उपहार मांगने की प्रथा ही चल पड़ी जो कालांतर में दहेज रूपी एक विकराल सामाजिक समस्या बन चुका है।

दहेज माँगने के कारण - प्रत्येक क्रिया के पीछे कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होता है। दहेज की मांग के पीछे निम्नलिखित कारण महत्वपूर्ण हैं-

मंहगी शिक्षा प्रणाली - माता-पिता अपने पुत्र की लगभग 25 वर्ष की शिक्षा में खर्च किये हुए पैसे उसके विवाह अवसर पर वधु पक्ष से वसूल करना चाहते हैं। हमारे यहाँ शिक्षा प्रणाली भी मंहगी है। अत: दहेज की माँग भी ऊँचाई पर होती है।

सामाजिक व झूठी प्रतिष्ठा - लोग अपनी शान-शौकत बढ़ाने या समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति कहलाने के लिए भी दहेज का लेन-देन करते हैं ताकि दहेज के आधार पर उनकी आर्थिक स्थिति को आंका जाए।

जातीय विवाह - भारतीय समाज में अपनी ही जाति में विवाह करने की परंपरा रही है। अत: सीमित दायरे के अंदर उचित वर के लिए मुँह मांगा दहेज देना अनिवार्य हो जाता है।

विवाह की अनिवार्यता - भारत में विशेषत: हिन्दुओं में विवाह एक अनिवार्य संस्कार है, निर्धन माता-पिता को भी ये संस्कार पूर्ण करना होता है जिसके लिए वे चाहे सारी उम्र ऋणी क्यों न रहें।

मंहगाई - व्यक्ति को विवाह में प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिए धन की जरूरत होती है, विवाह इसके लिए अच्छा अवसर होता है जब मंहगाई में भी अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति वर पक्ष आसानी से कर लेता है।

पुत्री के सम्मान हेतु - समाज का मानना है कि जो लड़की अधिक दहेज लेकर जाती है उसे ससुराल में ज्यादा मान-सम्मान प्राप्त होता है। इसी भ्रम में लोग ज्यादा से ज्यादा दहेज देने का प्रयास करते हैं जो घातक सिद्ध होता है।

दुष्चक्र - जो माता-पिता अपनी पुत्री के विवाह में दहेज देते हैं वे अपने पुत्र के विवाह में उसे प्राप्त करना चाहते हैं या पुत्र के दहेज को पुत्री के लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। जो दहेज परंपरा को निरंतरता प्रदान करता है।

उपरोक्त कारणों से समाज में दहेज प्रथा यथास्थिति बनी हुई है कोई भी वर्ग इसका विरोध नहीं करता यदि करता भी है तो तब, जब किसी की लड़की दहेज के लिए उपेक्षा, हिंसा, प्रताड़ना या मृत्यु की भेंट चढ़ जाती है।

दहेज के परिणाम- किसी भी बुराई का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। दहेज के भी कुछ ऐसे ही परिणाम हुए -

ऋणग्रस्तता - इस प्रथा ने निम्नवर्ग एवं मध्यमवर्ग में ऋणग्रस्तता की समस्या को बहुत प्रोत्साहित किया है। दहेज के प्रबंध में उनका सम्पूर्ण जीवन आर्थिक अभाव में ही व्यतीत होता है तथा विवाह के उपरांत भी ऋणग्रस्तता में ही जीवन की समाप्ति हो जाती है।

भ्रूणहत्या एवं कन्या हत्या - दहेज के प्रबंध में जीवनभर अभावग्रस्त तथा ऋणग्रस्त होने से बेहतर विकल्प के रूप में लोगों द्वारा भ्रूणहत्या अथवा जन्म के साथ ही पुत्री को फेंक देना या मार देना ज्यादा उचित समझा जाता है।

अपराध को प्रोत्साहन - जो लोग उचित तरीके से दहेज का इंतजाम नहीं कर पाते उन्हें अनुचित तरीके अपनाने के लिए विवश होना पड़ता है। अत: ऐसे में रिश्वतखोरी, गबन, भ्रष्टाचार आदि की ओर प्रोत्साहित होते हैं।

बेमेल विवाह - दहेज की माँग पूरी ना कर पाने की स्थिति में माता-पिता अपने योग्य पुत्री का विवाह अयोग्य वर से करने को विवश होते हैं। इस बेमेल विवाह से दाम्पत्य जीवन भी दुख भरा ही प्राप्त होता है।

विवाह विच्छेद - कई बार दहेज की रकम विवाहोपरांत चुकाने की शर्त रखी जाती है। शर्त पुरी ना होने पर विवाह-विच्छेद की संभावना ज्यादा होती है। दहेज संबंधित अन्य कारण भी विवाह विच्छेद को बढ़ावा दे रहे हैं।

हत्या एवं आत्महत्या - दहेज संबंधित झगड़ों से निपटने के लिए तथा शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना से तंग आकर महिलाएं आत्महत्या कर लेती हैं या उनकी हत्या कर आत्महत्या का रूप दे दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त लड़कियों का अविवाहित रह जाना, रिश्ते का टूट जाना, बारात का लौट जाना, अनैतिकता को गले लगाना आदि कई तरह के नकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं।

दहेज प्रथा रोकने हेतु कानूनी प्रयासः भारत में दहेज प्रथा गरीब व मध्यम वर्ग पर अतिरिक्त आर्थिक भार डालता है। भारत सरकार ने इसे गंभीरता से लेते हुए सर्वप्रथम कानूनी रूप से प्रतिबंधित करने के लिए दहेज निरोधक अधिनियम 1961 पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार दहेज लेने व देने या इसमें मदद करने वाले व्यक्ति को जेल या जुर्माने का प्रावधान है। 21वें विधि आयोग की रिपोर्ट के आधार पर इस अधिनियम में कुछ दंडात्मक प्रावधान भी जोड़े गए हैं। जैसे-

धारा 304–B (दहेज मृत्यु) तथा धारा 498–A (घरेलू हिंसा) धारा 113–B को भारतीय कानुनों में दहेज संबंधित बुराईयों को समाप्त करने के लिए बनाया गया।

घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 के तहत यदि किसी महिला को दहेज के लिए शारीरिक या मानसिक रूप से प्रताडिघ्त किया जाता है तो ऐसे लोगों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराकर उन्हें जेल भेजने का प्रावधान है। आई.पी.सी. की धारा 304–B में यह प्रावधान है कि किसी महिला की हत्या दहेज के कारण होती है तो उसके पति तथा पति के परिवार को कम से कम सात साल की सजा से लेकर उम्र कैद तक का प्रावधान है। किसी महिला के साथ दहेज प्रताड़ना का आरोप साबित होने पर उसकी मृत्यु विवाह के 7वर्ष के अंदर किसी असामान्य परिस्थिति में होती है तो वर पक्ष के लिए सजा का प्रावधान है।

धारा 406 की बात करें तो इसके तहत महिला का पति या पति के रिश्तेदार दहेज का सामान या पैसा महिला को नहीं देते तो उसमें भी 3 वर्ष तक के कैद व जुर्माने का प्रावधान है। धारा 498दृ। भी विवाह के उपरांत दहेज की मांग करने वालों के लिए 3 वर्ष की सजा व जुर्माना संभव है।

1961 में पहला राष्ट्रीय दहेज विरोधी कानून पास किया गया जो वांछित सफलता प्राप्त न कर सका। अतः इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन भी किये गए जिसमें प्रमुख हैं- अपराधिक कानून संसोधन अधिनियम 1983 तथा 1986 में धारा 304दृठ तथा 498दृ। दहेज संबंधित दो नए अपराध को सम्मिलित किया गया। भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 113दृठ भी दहेज मृत्यु के लिए उत्पीड़न करने वाले के संबंध में कुछ प्रावधान रखता है।

दहेज के कारण होने वाले मृत्यु के आंकड़ेः इतने सामाजिक एवं कानूनी प्रयासों के बाद भी दहेज हत्या के मामले लगातार बढ़ते ही रहे हैं। नेशनल क्राइम रिकॉड ब्यूरों अनुसार 1995 में दहेज के कारण लगभग 4,668 महिलाओं की मौत हुई। दस वर्ष पश्चात् 2005 में यह आंकड़ा 6787 तक पहुंच गया, पुनः 2015 में लगभग 7634 महिलाएं दहेज की बलि चढ़ गयी। इसमें उत्तरप्रदेश सबसे आगे रहा, उसके बाद क्रमशः बिहार और मध्यप्रदेश में दहेज संबंधी मौतें हुई।

देश में दहेज विरोधी सशक्त कानून होने के बाद भी आँकड़े साल दर साल बढ़ते ही जा रहे हैं। इसके लिए कानूनी प्रक्रिया भी इतनी लम्बी होती है कि न्याय मिलने में पीडिघ्ता की आधी उम्र निकल जाती है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार भारत में हर पाँच में से एक विवाहित महिला को घरेलु शोषण का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के खिलाफ सबसे अधिक रिपोर्ट की जाने वाली हिंसा में 80 प्रतिशत कठोर भाषा, 63 प्रतिशत पिटाई, 52 प्रतिशत महिलाओं को उनके घर जाने को मजबूर करना तथा घर से बाहर निकाले जाने की धमकी देना शामिल है।

UNFPA की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 40 प्रतिशत महिलाओं को पुरुषों के दुव्यर्वहार तथा घरेलु हिंसा का सामना करना पड़ता है।

दहेज रूपी अभिशाप से बचने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा रहे हैं-

1. अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ताकि अपनी जाति में योग्य वर ना मिलने पर दूसरी जाति में विवाह किया जा सके।

2. लड़कियों को अपनी शिक्षा, योग्यता के अनुसार वर चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, इस प्रकार की स्वतंत्रता से दहेज प्रथा में कमी आएगी।
3. लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए तथा उन्हें शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाए, ऐसा होने पर स्वत: ही दहेज नामक दानव समाप्त हो जाएगा।
4. दहेज की मांग करने वाले व्यक्ति एवं परिवार का सामाजिक बहिश्कार किया जाना चाहिए, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज से पृथक होकर नहीं रह पाएगा।
5. 'दुल्हन ही दहेज है' का नारा तो काफी पुराना है लेकिन इसे अमल में लाया जाना चाहिए।
6. नैतिक चेतना को प्रभावी बनाकर भी नैतिकता व मानवता के आधार पर इसे खत्म करने का प्रयास सर्वाधिक सफल होगा।
7. माता-पिता द्वारा अपने पुत्री के विवाह में सबसे मूल्यवान उपहार के रूप में उसे शिक्षा दे जो अपने ज्ञान से अन्य बुराइयों का सामना स्वयं कर सके।
8. दहेज विरोधी जो वर्तमान में कानून है यदि उन्हीं कानूनों को सख्ती से लागू किया जाए तो दहेज प्रथा में गिरावट शुरू हो जाएगी।
9. युवा वर्ग में विशेष जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए तथा दहेज नहीं लेने का शपथ लेने वाले को नौकरी में प्राथमिकता दी जाए।
10. वधु पक्ष अपनी पुत्री को विवाह के अवसर पर बढ़-चढ़कर उपहार देने की प्रथा को समाप्त करें।
11. महिलाओं के खिलाफ होने वाली दहेज प्रताड़ना या दहेज हत्या की जाँच शीघ्रता एवं गहनता के साथ होना चाहिए ताकि ससमय न्याय प्राप्त हो तथा लोगों में दहेज लेने पर भय बना रहे।
12. विवाह का पंजीकरण एवं दहेज की एक लिस्ट को शासकीय कार्यालय में जमा करना अनिवार्य हो ताकि लेने व देने वालों पर लगाम लगायी जा सके।
13. पैतृक सम्पत्ति में लड़कियों को भी समान हिस्सा दिया जाए, ऐसा होने पर लड़कियों का हिस्सा उन्हें विवाह में उपहार स्वरूप नहीं दिया जाएगा।
14. लड़कियों में स्वयं को कमतर समझने की मानसिकता में बदलाव लाया जाए ताकि वे अनावश्यक शोषण व उत्पीड़न ना सहें।
15. विवाह समारोहों में खर्च की सीमा सरकार द्वारा तय होनी चाहिए और इसकी जाँच होनी चाहिए।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि दहेज एक ऐसी सामाजिक बुराई है जिसे अधिकांश शिक्षित भारतीय घृणा करते हैं, इस पर भाषण देते हैं लेकिन अपने जीवन में बहुत गर्व से दहेज का आदान-प्रदान करते हैं, यही वास्तविकता है कि इसी कारण इस अभिशाप से मुक्ति नहीं मिल पा रही है। ऐसे में सभी सरकारी प्रयास भी धरे के धरे रह जाते हैं। विवाह नामक पवित्र संस्कार मात्र एक व्यापार बन कर रह गया है जो लिंगीय समानता के अधिकार को चूर-चूर करता है। दुनिया भर के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के समान हिस्सेदारी के बाद भी दहेज उन्हें समाज में समान नहीं होने दे रहा है। इसे रोकने के लिए गाँधी जी के शब्द थे- ''कोई युवक जो दहेज लेता है वह अपनी शिक्षा तथा देश को बदनाम करता है और नारीत्व का अपमान करता है।''

दहेज रोकने के लिए सरकार को इसमें गंभीर परिवर्तन की ओर ध्यान देना चाहिए ताकि महिलाओं को इस त्रासदी से बचाया जा सके। इस अभिशाप को समाप्त करने के प्रथम चरण में सामाजिक चेतना लाना अति अनिवार्य है। इस समस्या से तभी निपटा जा सकता है जब लोगों की मानसिकता में बदलाव आए। इसके लिए विशेष रूप से युवाओं के नैतिक समर्थन की आवश्यकता है। महिला सशक्तिकरण का समाज में वह रूप होना चाहिए जिसमें लड़की एक लालची परिवार को नकार कर सही वर का चयन कर सके।

संदर्भ सूची:

1. एंडरसन एस.(2007) ''दहेज और दुल्हन की कीमत का अर्थशास्त्र'' जरनल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव 21(4)
2. द्रेज जे. और सेन ए.के.(1995) ''भारत का आर्थिक विकास और सामाजिक अवसर, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. एन.सी.आर.बी.(2012) ''भारत में अपराध'' राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो रिपोर्ट, नई दिल्ली।
4. शर्मा आर.(1997) ''घरेलू हिंसा और महिला'' जयपुर, मंगलदीप प्रकाशन।
5. वी. उदय (2004) ''महिलाओं के खिलाफ अपराध'' नई दिल्ली: अनमोल प्रकाशन प्रा0 लिमिटेड प्रिंट।
6. Akhtar Huma Malik & Ashraf Fizana Malik (2022) "Dowry system as Social Evil: A Study of India," American Journal of Multidisciplinary Research in Africa, vol.2(1) ISSN: 2769-0504.
7. Chandra, P. (1986) "Dowry and the position of women in India" New Delhi: Inter India Publication.
8. Paras, D. (1989) "Dowry and Protection to Married Women" New Delhi: Deep and Deep Publications Pvt. Ltd.
9. Tambiah S.J. (1973) "Dowry and Bride wealth and the Property Rights of Women in South Asia." Cambridge University Press.
10. www.google.com.

अभिराजराजेन्द्रविरचितम् जानकीजीवनम् में नारी-विमर्श के वर्तमान परिपेक्ष्य

रोहणी तिवारी

अनुसंधानकर्त्री, संस्कृत, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद), उत्तर प्रदेश

डॉ. सुकेश शर्मा

एसोसिऐट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद), उत्तर प्रदेश

सार

संस्कृत साहित्य में नारी-विमर्श सदैव से ही केन्द्रीय भूमिका में रहा है। निश्चित रूप से वेद-उपनिशदों में ऋषिकात्व से परिपूर्ण नारी का वर्णन और रामायण-महाभारत जैसे आर्ष महाकाव्यों में नारी के बहुआयामी चारित्रिक गुणों की विवेचना से प्राप्त सुदृढ़ आधार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में संस्कृत साहित्य को इतना समर्थवान् बनाया कि सीता रूपी नारी के पारम्परिक प्रतीक को यथार्थ प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जा सकें। सर्व अनुकरणीया सीता के आलम्बन से बाल्मीकि से लेकर अभिराजराजेन्द्र जैसे आधुनिक साहित्यकारों तक ने स्व-कालखण्ड में नारी की तात्कालिक सामाजिक दशा एवं दिशा का विश्लेषण किया जिसने विभिन्न परिस्थितियों में नारी-चरमोत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। जानकी जीवनम् भी लेखक की प्रयोग धर्मिता का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसके द्वारा लेखक ने धर्म और अध्यात्म को यथार्थ से संयोजित कर, सुनियोजित रूप से समाज रूपी महाकाव्य में सीता जैसी सर्वत्र सर्वदा अनुकरणीया नारी पात्र को उसी केन्द्रीय भूमिका में प्रस्तुत किया है जैसा कि वह आधुनिक समाज में नारी को स्थापित होते हुए देखना चाहता है।

प्रस्तुत शोधपत्र जानकी जीवनम् के आधार पर तत्कालीन समाज में नारी की वर्तमान दशा और दिशा की विवेचना करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ-साथ यह शोधपत्र महर्षि बाल्मीकि विरचितम् रामायण और अभिराज राजेन्द्र कृत जानकी जीवनम् का तुलनात्मक अध्ययन कर कालिक-परिवर्तन के फलस्वरुप उत्पन्न नारी की परिवर्तित दशा एवं दिशा का भी अध्ययन करता है।

प्रथमत:, लेखक अपने महाकाव्य के शीर्षक से ही स्पष्ट कर देना चाहता है कि सीता बीसवीं शताब्दी की उस यथार्थ नारी का प्रतीक है जो पुरुषों की भांति समाज में "नायकत्व" के गुणों को धारण करती है हांलाकि लेखक ने पारम्परिक शैली में मां लक्ष्मी के भूमिजा रूपी अवतरण द्वारा ही सीता के प्रादुर्भाव को दर्शाया है। महर्षि बाल्मीकि विरचित रामायण के उत्तरकाण्ड के गहन अध्ययन ने लेखक के मनोमष्तिष्क में यह प्रश्न प्रस्फुटित किया कि "निन्दित-लोक और निन्दित-वैदेही के मध्य वास्तविक अपराधी कौन है?" निश्चित रूप से जानकीजीवनम् इसी प्रश्न सम्बन्धी गवेशणा से प्राप्त प्रत्युत्तर है। लंका में हुई अग्नि परीक्षा के पश्चात् सीतानिर्वासन से आहत लेखक की लेखनी सीता निर्वासन-प्रकरण को बाल्मीकि द्वारा अरचित सिद्ध करके जानकी जीवनम् को भी उस प्रकरण से पृथक कर एक साम्य उपस्थित करने का प्रयास तो करती है परन्तु फिर भी दोनों कृतियों में दृष्टिकोण सम्बन्धी व्यापक अन्तर स्थान-स्थान पर प्रकट होता है। महर्षि बाल्मीकि ने सीता का वर्णन पुत्रीवत् किया है जबकि जानकी जीवनम् की

नायिका सीता वह यथार्थ नारी है जिसका अलौकिक व्यक्तित्व है, अनुपम कमनीय काया है, अतितीक्ष्ण अनुभूति है, मुखर अभिव्यक्ति के साथ-साथ अन्य स्त्रियोचित गुणों से सम्पन्न होकर वह एक आदर्श पुत्री, आदर्श पत्नी, आदर्श वधू के रूप में सर्वत्र सर्वदा अनुकरणीया है। लेखक द्वारा कल्पित सीता की चारित्रिक विशेषताओं में कालिक परिवर्तन स्पष्ट उद्घोष करता है कि परिवर्तित परिस्थितियों में अनुकूलन हेतु सामाजिक-सांस्कृतिक परिधि के अन्तर्गत, नारी द्वारा किए गए रूपान्तरण सदैव नारी-उत्थान, नारी-सशक्तीकरण एवं नारी-चरमोत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

उल्लेखनीय पारिभाषिक शब्दावलीरू निन्दित-लोक, निन्दित-वैदेही, सीतानिर्वासन-प्रकरण।

1. रूपरेखा: आर्ष महाकाव्य रामायण में चित्रित सीता के आदिकालीन परम्परागत स्वरूप को बीसवीं शताब्दी के कालानुसार चित्रण के मार्ग में लेखक के मनोमस्तिष्क में प्रश्न उपस्थित कर देता है कि निन्दित लोक और निन्दित वैदेही के मध्य वास्तविक अपराधी कौन है? इसी वैचारिक अन्तराल से शोध समस्या का नवांकुर प्रस्फुटित हो जानकीजीवनं जैसे विशाल विटप के रूप में सुविकसित हुआ। त्रिवेणी कवि मिश्र जी का सुकुमार हृदय वैदेही को अपराधी मान सीता निर्वासन का दण्ड नहीं देना चाहता था अत: रामकथा के अभिनव महाकाव्य जानकी जीवनं में महाकवि ने रामायण से आमूलचूल परिवर्तन करते हुए सीता निर्वासन प्रकरण को रामजीवन एवं राम कथा से पृथक कर दिया है। जानकी जीवन में वर्णित अश्वमेध यज्ञ में राम की अर्धांगिनी के रूप में सीता की स्वर्ण मूर्ति प्रतिष्ठित न होकर, स्वयं सीता सहधर्मचारिणी के रूप में समस्त धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करती हैं। जानकीजीवनं की भूमिजा स्व-अवमानना से पीडिघ्त एवं तिरस्कार से प्रताडिघ्त होकर भूमि में न तो समा जाती है वरन स्वपुत्रों के मुखारविंद से अपने प्रियतम का रामायण रुपी स्तुतिगान सुनकर उसी में रम जाती है। कवि की अद्वितीय कल्पना शक्ति का ही यह सुखद प्रतिफल हैं कि जानकी जीवनं में चित्रित लक्ष्मण और वशिष्ठ के अभिनव कल्पित चरित्र का समवेत प्रयास द्वारा सीता निर्वासन की अनर्थ भरी दुर्घटना को घटित होने से रोका गया। निश्चित रूप से इस नवसृजित घटनाक्रम में लक्ष्मण का विवेकपूर्ण एवं विलक्षण व्यक्तित्व वशिष्ठ की त्रिकालदर्शी सादृश्य गुरु महिमा एवं रजक का पश्चाताप युक्त व्यवहार विशेष रूप से प्रभावी है। कवि ने यह नूतन प्रसंग न सिर्फ जानकीजीवनं में सम्मिलित कर नारी सशक्तिकरण एवं उत्थान को यत्नपूर्वक संरक्षित किया है अपितु अपनी तर्कशक्ति के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि उत्तरकांड का सीता निर्वासन प्रसंग बाल्मीकि की कवि दृष्टि एवं प्रतिपादन शैली के सर्वथा विरुद्ध है (मिश्र,1988, पृ.17)।

1. शोध के उद्देश्य: प्रस्तुत शोध पत्र के अधोलिखित उद्देश्य हैं:

(अ) जानकी जीवनं के आलोक में तत्कालीन समाज में नारी की दशा एवं दिशा का वर्णन करना।

(ब) बाल्मीकि रामायण एवं जानकीजीवनं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा नारी की परिवर्तित अभिनव दशा एवं दिशा की विवेचना करना।

3. पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन: मूलभूत रूप से यह अध्ययन जानकीजीवनं पर केंद्रित है अत: इस शोध पत्र के लेखन हेतु सर्वप्रथम मिश्र, अभिराजराजेंद्र[1] (1988) कृत जानकीजीवनं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन किया गया चूँकि सीता निर्वासन का अभिनव परिवर्तन, बाल्मिकी रामायण से नितांत पृथक है अत: बाल्मीकि रामायण[2] का अध्ययन भी वांछनीय हो जाता है। उपर्युक्त मूलभूत अध्ययन के अतिरिक्त इस दिशा में किए गए नवीन शोध कार्यों को अध्ययन में सम्मिलित किया गया जिसके अंतर्गत आरा, अंजुम[3] (2021) द्वारा आधुनिक संस्कृत साहित्य में नारी चेतना का जानकी जीवन के संदर्भ में अध्ययन एवं मिश्रा, देवेश कुमार[4] (2015) द्वारा जानकीजीवनं में कवि की उदभावना का विवेचन किया गया। प्रकाशित शोधपत्रों के अतिरिक्त इस विषय पर अनेक अप्रकाशित शोध प्रबंधों ने भी अत्यंत महत्वपूर्ण रूप से मार्गदर्शन प्रदान किया जिसके अंतर्गत बैरवा, ओमप्रकाश[5] (2016) द्वारा जानकीजीवनं महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन तथा शर्मा, विनीता[6] (2016) द्वारा रामकथा को अभिराज राजेंद्र मिश्र के योगदान विषयक अध्ययन प्रमुख है।

4. शोध प्रविधि: प्रस्तुत शोधपत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाओं का एक संश्लेषण है जिसके अंतर्गत त्रिस्तरीय संरचना का निर्माण किया गया। सूचना संग्रहण के प्रथम स्तर में सर्वप्रथम विषय विशेषज्ञों के अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार को प्रश्नावली के माध्यम से सुनियोजित रूप से सम्पन्न कर, प्राथमिक सूचनाओं का संग्रहण किया गया। तदुपरान्त द्वितीय स्तर पर उपलब्ध मूल प्रकाशित

द्वितीयक स्रोतों से सूचनाओं का संग्रहण किया गया जिसके अंतर्गत जानकी जीवनं एवं बाल्मीकि रामायण को सम्मिलित किया गया। तृतीय स्तर पर सूचना स्रोतों के अंतर्गत नारी विमर्श एवं जानकी जीवनं सम्बन्धी विभिन्न प्रकाशित शोधपत्रों एवं अप्रकाशित शोधप्रबन्धों को सम्मिलित किया गया। इस प्रकार त्रिस्तरीय संरचना द्वारा प्राप्त सूचनाओं के संश्लेषण द्वारा इस विवेचन को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

5. विवेचना: सम्पूर्ण शोधपत्र को उद्देश्यानुसार दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र का प्रथम खण्ड जानकीजीवनं के आलोक में नारी की वर्तमान दशा और दिशा का वर्णन करता है तथा द्वितीय खण्ड बाल्मीकि रामायण से जानकीजीवनं की तुलना करते हुए परिवर्तित अभिनव दशा एवं दिशा की विवेचना करता है। निर्धारित उद्देश्यानुसार विवेचन निम्नवत है:

5.1 जानकीजीवनं के आलोक में नारी की वर्तमान दशा और दिशा: जानकीजीवनं अभिनव महाकाव्य में नारी चरित्रों में सीता, सुनायना, कौशल्या, कैकेयी एवं त्रिजटा आदि नारी पात्रों का चित्रण प्रमुख है परन्तु महाकाव्य में नायकत्व के गुणों को धारण करने वाली सीता की केन्द्रीय भूमिका वर्तमान देशकाल परिस्थितियों में समूची नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती हैं। नायिका प्रधान महाकाव्य जानकी जीवन में सीता का चरित्र नायकत्व का गुण धारण करते हुए एक बहुमुखी व्यक्तित्व एवं बहुआयामी चिंतन फलक का निर्माण करता है जिसके अंतर्गत सीता एक अलौकिक नारी रूप के साथ-साथ पतिव्रत धर्म को धारण करने वाली, दिव्यता और तेजस्विता के गुणों से ओतप्रोत वह मुग्धा नारी है जो स्वाभिमानी भी है और धर्मपरायण भी, मनमोहक पुत्री भी है और मनभावन प्रेयसी भी, पतिव्रता पत्नी भी हैं और सुलक्षणा कुलवधू भी और अन्ततः वात्सल्यमयी मां भी। अतः सीता के आलम्बन के माध्यम से चित्रित यथार्थ नारी गुणों के आधार पर दशा एवं दिशा की विवेचना अधोलिखित की गई:

5.1.1 समाज में नारी की अलौकिकता: जानकीजीवनं में चित्रित सीता अद्भुत, अनुपमेय, लावण्यमयी सौन्दर्य से सम्पन्न एक मनोहर व्यक्तित्व वाली नारी है जिसके मुखमण्डल में कमल, हाथों में पल्लव, कपोल मंडलों में बन्धूक पुष्प तथा अधरोष्ठ में बिम्बफल विन्यस्त करते हुए विधाता ने सीता को क्या वनदेवी बना दिया है (मिश्र, 1988, पृ.26)।

कुवेलमास्ये करयोश्च पल्लवं जपासुमञ्चापि कपोलमण्डले।
रदच्छदे बिम्बफलं दधद्विधिश्चकार सीतां किमरण्यदेवताम्[7]*।।*

5.1.2 समाज में नारी की दिव्यता एवं तेजस्विता से परिपूर्णता: महाकाव्य में वर्णित जानकी का व्यक्तित्व दिव्यता एवं तेजस्विता से परिपूर्ण है। लक्ष्मी सी प्रतीत हुई जानकी, देवालय में नीराजन दीपिका की तरह, आकर्षक छवि वाली पृथ्वी की वह देव प्रदत्त कन्या हैं जो अपनी धधकती अग्नि की मूर्तिवत छवि द्वारा संसार के दुख को नष्ट करने अवतरित हुई हैं।

व्यलोकि सर्वैरपि लाङ्गलाग्रप्रहारभिन्नोदरकुम्भतल्पे।
सुखं शयाना मदिरायताक्षी दिवौकसां श्रीरिव कापि बाला।।1/42।।
प्रफुल्लपद्मस्थमधुव्रताक्षी मनोज्ञचारुस्मितशोभिवक्त्रा।
सुरालयस्था बलिदीपिकेव प्रभोर्ध्वचक्रं परितः किरन्ती ।।1/43।।
कलेव चान्द्री स्फुटचारुशोभा ज्वलद्भुताशप्रतियातनेव।
लतेव मालेव धरासुतेव प्रमोहविद्धं विदधे जनं सा।।1/44।।
अथाधिरूढे नृपतौ द्विभावं ह्यकर्णि वाणी वियदङ्गणोत्था।
गृहाण सीरध्वज! देवदत्तां सुतामिमां भर्त्सितलोकशोकाम्[8] *।।1/45।।*

इसी महाकाव्य में अन्यत्र महाकवि ने तेजस्विनी सीता की इसी दिव्यता को स्पष्ट रूप से लक्ष्मी रूप में अलौकिक स्त्री के रूप में भी स्वीकारा है।

वदेहजां भूमिसुतामयोनिजामवेहि लक्ष्मीं कमलालयां ध्रुवम्।
न मानवी सा न च मानवो भवान् उभावपि स्वर्गविहारिणौ जनौ[9]*।।15/79।।*

5.1.3 समाज में नारी की पतिव्रतधर्मपरायणता का सर्वोच्च स्थान: सीता के माध्यम से महाकवि ने उन्हे पतिव्रता नारी की भांति चित्रित किया है जिसे पति के सुख वैभव से ही सुख मिलता है, पति की पीड़ा से ही पीड़ा की अनुभूति होती है जो कि अपने पति की नि:श्वास से ही जीवनधारण करती है, ऐसी भार्या सीता लंका में अपनी सखी त्रिजटा से अनुरोध करती है कि "ए मेरे दुखों की संगिनी! सखि त्रिजटा मुझ पर इतनी कृपा करे कि काष्ठ और अग्नि आदि का प्रबन्ध कर एक चिता का निर्माण कर दे, यह कलंक भाग मुझसे सहा नहीं जाता अत: क्षण मात्र में ही अपने जीवन को मैं भस्म रूप में परिणत कर दूंगी"।

विभवेन बभूव यत्सुखं ननु पीडा तव पीडया ध्रुवम्।

श्वसितैश्च तवैव जीविता तव सीताऽद्य कथं विपद्यते[10] !!12/20।।

मद्दु:खतङ्गनि! सखि त्रिजटे! दयस्व आनीय काष्ठदहनादि चितां विधेहि।

सद्यो न सम्प्रति मयाऽयमवद्यभारस्तज्जीवितं सपदि भस्मचयं करिश्ये[11] ।।80।।

5.1.4 समाज में नारी का नैसर्गिक लज्जाशील रूप: महाकाव्य में लेखक ने सीता का चित्रण मुग्धा नायिका की भांति किया है जो कि स्वभाव से संलग्न पक्षी युगल को देख लज्जा की अनुभूति करती है, सखियॉ प्रीतम विषयक संवाद सुनाकर छेड़ती है तथा अर्द्धनिद्रा अवस्था में सीता कभी-कभी कमलनयन प्रीतम की स्वप्न में कल्पना किया करती थी।

गतार्धसुप्तिं विनिमीलितेक्षणा घनान्धकारेश्वपि भूरिदर्शना।

व्यतर्कयद् वारिरुहेक्षणं प्रियं कदापि तन्वी कमपि स्वयंवृतम्[12] ।।3/33।।

5.1.5 समाज में नारी का स्वाभिमानी रूप: कोमल हृदय वाली सीता के व्यक्तित्व में स्वाभिमान भी कूट-कूट कर भरा हुआ है। अपने उद्दात चरित्र पर अमर्यादित लांछन सुन सीता और स्पष्ट रूप से कहती हैं कि "आप की अप्रिय बनकर, आपके धवल यश की कलंकिनी बनकर, मैं स्वयं एक क्षण जीना नहीं चाहती इसलिए आज ही आपकी आंखों के सामने इस सीता को आपके द्वेशाग्नि की ज्वाला में खत्म किए देते हैं (मिश्र, 1988, पृ. 245)"।

स्वलोककीर्तेरियती प्ररोचना ममार्यशीलस्य च घोरलाञ्छना?

कुतो न्विदं राघव! तत्त्वपारग! ध्रुवं पतित्वेन जुहोशि गेहिनीम् ।।15/61।।

त्वदप्रिया त्वद्यशसां कलङ्किनी जिजीविशामि स्वयमेव नो क्षणम।

तदद्य प्रत्यक्षमिमां विदेहजां जुहोमि ते द्वेशकृशानुसञ्चये[13] ।।15/62।।

5.1.6 समाज में नारी का सहधर्मचारिणी रूप: सीता की धर्म परायणता मैं भी लेशमात्र भी संदेह का स्थान शेष नहीं बचता। राम की सहधर्मचारिणी के रूप में सीता सुस्पष्ट रूप से अग्नि देव से प्रार्थना करते हुए कहती हैं कि "सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन में यदि मेरा मन राघव के चरण कमलों का त्याग कर कहीं और न गया हो तो उशीर (खस) के समान शीतल भगवान अग्निदेव और सब तरह से मेरी रक्षा करें (मिश्र, 1988, पृ. 246)"।

मनो न मे राघवपादपङ्कजं गतं यदि क्वापि विमुच्य जीवने।

तदद्य मां रक्षतु सर्वतोमुखं ह्युशीरशीतो भगवान् स पावक:[14] ।।15/69।।

5.1.7 समाज में कन्या जन्म आह्लाद का विषय: निश्चित रूप से सीता धर्मपरायण नारी होने के साथ-साथ गुणवती पुत्री भी थी इसीलिए राजा जनक ने सीता को गुणवती, धीर, गम्भीर और शुभ नक्षत्र वाली बताकर पुचकारते हुए गोद में उठा लिया जो कि समाज में कन्या जन्म सम्बन्धी आह्लाद को प्रकट करता हैं।

अहो सुता मे कियती गुणान्विता मितम्पचाऽसंकसुका स्तनन्धया।

अहो शुभंयु: कियतीति लालयन् चकार सीतां नृपति भुजान्तरे[15] ।।2/35।।

5.1.8 समाज में सुलक्षणा वधू की वांछनीयता: जनक की गुणवान शुभलक्षणा सुता जानकी एक सुलक्षणा वधू के रूप में नित्य तड़के उठकर पतिदेव, सास एवं ससुर की चरण वंदना कर जन-जन की मंगल कामना के साथ समस्त भक्त जनों हेतु कलेवा तैयार करके बड़े चाव से परोसा करती थी।

प्रातरेव समुत्थाय कृतपादाभिवन्दना।

प्राणेश्वरस्य श्वश्रूणां श्वसुरस्यापि धीमतः।।9/65।।

कल्यवर्तं विनिर्माय भोजयामास साग्रहम्।

सर्वान् कुटुम्बिनो बाला सर्वकल्याणशंसिनी[16]।।9/66।।

5.1.9 समाज में दाम्पत्य प्रेम की नवीन रूप में स्थापनाः वधू के विभिन्न उत्तरदायित्व की पूर्ति करते हुए सीता ने कभी प्रेममयी पत्नी को विस्मृत नहीं किया इसीलिए राम अपनी पत्नी सीता में प्रेयसी का प्रत्यक्षीकरण करते हुए,समाज में एक नवीन दाम्पत्य प्रेम को स्थापित करते हुए सम्बोधित करते हैं कि "अरी पुण्यवान! मैं ही हिरण बनकर रात दिन तुम्हारे द्वारा बिंधा जा रहा हूं। प्रिय तुम्हारे मुख चंद्रमा चकोरभूत मैं क्यों नहीं कृपान्वित किया जाता।

अहमेव मृगीभूय त्वया हन्येऽनिशं शुभे!

सम्माव्ये न कथं बाले! त्वदास्येन्दुचकोरकः[17]।।9/60।।

5.1.10 समाज में करूणामयी मां का स्थान सर्वोपरिः प्रेममयी पत्नी करुणामयी मां में इस प्रकार परिणत हो गई कि स्वयं राम सीता से कहते हैं कि हे शुभे! लव तथा कुश तुम्हें अधिक प्रिय लगने लगे हैं। मुझ जैसे दयनीय स्थविर की इस तरह उपेक्षा क्यों कर रहे हो? तुम बच्चों के बिन सुखी नहीं रह सकती और तुम्हारे बिछोह में यह राघव सुखी नहीं रह सकता"।

अयि शुभे! रघुनायकनायिके! अवनिजे विपदुत्सवसङ्गनि!

प्रियतरौ तनयौ न च राघवः स्थविरकं खलु मां किमुपेक्षसे।।19/50।।

सुमुखि! ते हृदयं सुतकेन्द्रितं मम पुनस्त्वयि लीनमनोरथम्।

त्वमसि नो सुखिनी तनुजौ विना न च सुखी विरहे तव राघवः[18]।।19/51।।

इस प्रकार सीता के चरित्र के माध्यम से महाकावि वर्तमान समय में एक ऐसी यथार्थ नारी के चरित्र को विकसित करते हैं जो परंपरा और आधुनिकता में सन्तुलन स्थापित कर सकें।

5.2 बाल्मीकि रामायण और जानकी जीवन के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा नारी की अभिनव दशा एवं दिशाः

बाल्मीकि रामायण एवं जानकीजीवनं में मूलभूत अंतर यह है कि रामायण राम के नायक नायकत्व को स्वीकार करती है और जानकीजीवनं नारी को समाज में नायक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहती है। बाल्मीकि रामायण सीता के बाल्यकाल का वर्णन नहीं करती परंतु जानकीजीवनं आधुनिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से वात्सल्य को मूल प्रवृत्ति मानकर सीता के बाल्यकाल के सौन्दर्य का वर्णन भी करता है और राजा जनक के द्वारा कन्या जन्म पर आह्लाद भी प्रकट करता हैं। उल्लेखनीय है कि जानकीजीवनं की नायिका का प्रकार मुग्धा है जो समाज में नारी की नैसर्गिक सुन्दरता की अपरिहार्यता को प्रकट करता है परंतु बाल्मीकि जी ने सीता का पुत्रीवत वर्णन किया था अतः सीता सौंदर्य वर्णन के प्रसंग यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत जानकीजीवनं में सीता के वयः सन्धि, यौवनावस्था और पूर्ण व्यस्क सौन्दर्य का चित्रांकन हुआ है। बाल्मीकि रामायण सीता को राम की भार्या के रूप में प्रस्तुत करता हैं अर्थात अनुराग परवर्ती है परन्तु जानकी जीवनं में अनुराग पूर्व अवस्था का द्योतक है अर्थात अभिराज राजेंद्र मिश्र जी पत्नी में प्रेयसी के प्रत्यक्षीकरण द्वारा नवीन दाम्पत्य प्रेम को समाज में स्थापित करने का प्रयास करता है। एक विवाहिता के रूप में बाल्मीकि रामायण ने सीता को एक विवाहिता, लक्ष्मी रुपी प्रतिमूर्ति में प्रस्तुत किया गया है परंतु महाकाव्य के माध्यम से सीता के सौन्दर्य में नैसर्गिकता एवं प्रकृति का दर्शन करते हुए, रूप स्वरुप की उस सुष्मा के सम्मुख प्रातः कालीन प्रकाश को अत्यन्त लघु मानकर वनदेवी की संज्ञा दी है।

6. उपसंहारः इस प्रकार काल के परिवर्तन के साथ-साथ पुरुष केन्द्रित समाज से नारी केन्द्रित समाज की ओर उन्मुख होने के क्रम में प्रत्येक नारी को यथार्थ रूप में, प्रेयसी एवं भार्या दोनों ही रूपों में अर्थात परंपरा, आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता में एक संतुलन अवश्य स्थापित करना होगा। जानकीजीवनं के रूप में यह अभिनव रामकथा इसी संतुलन के प्रयास का प्रतिफल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. मिश्र, अभिराजराजेन्द्र (1988). जानकीजीवनं, वैजन्तप्रकाशन, इलाहाबाद।
2. बाल्मीकिरामायणं।
3. आरा, अंजुम3 (2021). आधुनिक संस्कृत साहित्य में नारी चेतना: जानकीजीवनं के संदर्भ में, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ संस्कृत रिसर्चए अंक 7, संस्करण 5, पृ. 131-132।
4. मिश्रा, देवेश कुमार4 (2015). जानकीजीवनं में कवि की उद्भावना, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ संस्कृत रिसर्चए अंक 1, संस्करण 2, पृ. 44-46।
5. बैरवा, ओमप्रकाश5 (2016). जानकीजीवनं महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध,कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान।
6. शर्मा, विनीता (2016). रामकथा को अभिराज राजेंद्र मिश्र के योगदान, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध,कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान।
7. जानकीजीवनं, 3/13
8. जानकीजीवनं, 1/42 से 45
9. जानकीजीवनं, 15/79
10. जानकीजीवनं, 12/20
11. जानकीजीवनं, 12/80
12. जानकीजीवनं, 3/33
13. जानकीजीवनं, 15/61 से 62
14. जानकीजीवनं, 15/69
15. जानकीजीवनं, 2/35
16. जानकीजीवनं, 9/65 से 66
17. जानकीजीवनं, 9/60
18. जानकीजीवनं, 19/50 से 51

गर्भावस्था के दौरान पौष्टिक आहार का सेवन पर्याप्त मात्रा में जरूरी

श्रीमती किरण कुमारी

शोध छात्रा, गृहविज्ञान, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर)

गर्भ धारण के पश्चात् गर्भस्थ शिशु में वृद्वि तथा विकास प्रारम्भ होता है,इसके लिए गर्भावस्था के दौरान पौष्टिक आहार का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना बेहद जरूरी है। गर्भस्थ शिशु का विकास माता के आहार पर निर्भर होता है। गर्भवती महिला को ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जो उसके गर्भस्थ शिशु का भी पोषण करें। गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए हर माह की 09 तारीख को प्रधानमंत्री मातृत्व योजना के अंतर्गत उन्हें अपने स्वास्थ्य का परीक्षण कराते रहना चाहिए।

भोजन से ले संतुलित आहार:- गर्भवती महिलाओं को भोजन में 2400 कैलोरी व सामान्य महिला को स्वस्थ रहने के लिए प्रतिदिन 2100 कैलोरी का आहार लेना चाहिए, ताकि विटामिन, मिनिरल्स अधिक मात्रा में प्राप्त हो। गर्भावस्था में महिला को प्रतिदिन 60 से 70 ग्राम प्रोटीन मिलना चाहिए। गर्भवती के गर्भाशय और गर्भस्थ शिशु के विकास में प्रोटीन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रोटीनयुक्त आहार में दूध और दूध से बने व्यंजन, मूंगफली, पनीर, काजू, बादाम, दलहन, मांस मछली, अंडे आदि का समावेश होना चाहिए। इसके अलावा कैल्शियम, फोलिकएसिड युक्त भोजन करना चाहिए। साथ ही कम से कम 3 लीटर पानी दिन में पीना चाहिए।

स्वास्थ्य जॉच में न करें संकोच:-स्वास्थय को लेकर कभी भी किसी तरह का संकोच नहीं करना चाहिए। उन्हें समय-समय पर बी0पी0,वजन, हिमोग्लोबिन, यूरिन आदि का जॉच करानी चाहिए। यदि कोई समस्या महसूस हो रही हो तो तत्काल चिकित्सकों से संपर्क करना चाहिए। आयरन कैल्शियम का उचित मात्रा में सेवन जरूरी है। सभी गर्भवती महिलाओं को आयरन एवं कैल्शियम की गोली का उचित मात्रा में सेवन करना जरूरी है। तभी गर्भावस्था के दौरान महिलाओं व उनके गर्भ में पल रहे बच्चें का उचित शारीरिकि व मानसिक विकास हो पायेगा।

हर महिला की यह इच्छा होती है कि वह एक स्वस्थ बच्चें को जन्म दें। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए गर्भावस्था में पौष्टिक आहार का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना बेहद जरूरी है। गर्भस्थ शिशु का विकास माता के आहार पर निर्भर होता है। गर्भवती महिला को ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जो उसके गर्भस्थ शिशु के पोषण की आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

आवश्यक मार्गदर्शन:-गर्भवती महिलाओं को आहार संबंधी निम्नलिखित बातों का ख्याल रखना चाहिए।

- गर्भवती महिला को हर 4 घंटे में कुछ खाने की कोशिश करनी चाहिए। हो सकता है आपको भूख न लगी हो परन्तु हो सकता है कि आपका गर्भस्थ शिशु भूखा हो।
- वजन बढ़ने की चिंता करने के बजाय अच्छी तरह से खाने की ओर ध्यान देना चाहिए।
- कच्चा दूध न पिए।
- मदिरापान अथवा धूम्रपान न करें।
- कैफीन की मात्रा कम करे। प्रतिदिन 200 मिलीग्राम से अधिक कैफिन लेने पर गर्भपात और कम बजन वाले शिशु के जन्म लेने का खतरा बढ़ जाता है।
- गर्भवती महिलाओं को गर्म मसालेदार चीजे नहीं खाना चाहिए।

- एनेमिया से बचने के लिए अखण्ड अनाज से बने पदार्थ अंकुरित दलहन, हरे पत्तेवाली साग, भाजी,गुड़,तिल आदि लोहातत्व से भरपूर खाद्यपदार्थो का सेवन करना चाहिए।
- सम्पूर्ण गर्भावस्था के दौरान गर्भवती महिला का वजन 10 से 12 किलोग्राम बढ़ना चाहिए।
- गर्भवती महिला को उपवास नहीं करना चाहिए।
- गर्भवती महिला को मीठा खाने की इच्छा हो तो उन्हें अंजीर खाना चाहिए। इसमें प्रचर मात्रा में कैल्शियम है और कब्ज भी दूर होता है।
- सब्जियों का सूप और जूस लेना चाहिए। भोजन के दौरान इनका सेवन करें। बाजार में मिलने वाले रेडीमेड सूप व् जूस का उपयोग न करें।
- गर्भवती महिला को फास्टफूड ज्यादा तला हुआ खाना,ज्यादा तिखा और मसालेदार खाने से परहेज करना चाहिए।
- अपने डॉक्टर की सलाह अनुसार विटामिन और आयरन की गोलिया नियमित समय पर लेना चाहिए।

प्रोटीन:-भ्रुण के उचित विकास के लिए प्राटीन की अत्यंत आवश्यकता होती है। यह सेल वृद्वि को प्रोत्सहित करता है और स्वास्थ रक्त उत्पादन को प्रोत्साहित करता है। विटामिन-विटामिन ए, विटामिन बी-12, विटामिन सी और विटामिन डी गर्भावस्था के दौरान लिए जाने वाले कुछ आवश्यक विटामिन्स है। ये शिशु के विकास में मदद करतें है।

गर्भवती माता का आहार नियोजन

गर्भावस्था में आहार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। क्योंकि स्वस्थ शिशु को जन्म देने के लिए माता का स्वस्थ रहना आवश्यक है। सन्तुलित आहार के सेवन से स्वास्थ्य उत्तम रहता है। साथ ही गर्भस्थ शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास ठीक प्रकार से होता हैं। कुपोषित माता के गर्भ से उत्पन्न बच्चे कम वजन वाले होते है तथा उनका जन्म भी समय से पूर्व ही हो जाता है। अपरिपक्व शिशु में जीवन जीने की क्षमता कम होती है। इस कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। यदि वे जीवित भी रहते है तो अनेक बीमारियॉ उन्हें घेर लेती है जिससे वे अस्वस्थ हो जाते है। गर्भवती स्त्री को आहार सम्बन्धी आवश्यकता साधारण स्त्री की उपेक्षा अलग होती हैं,क्योंकि इस अवस्था में उसे अतिरिक्त भोज्य पदार्थो (कार्बोज, वसा, प्रोटीन, खनिज-लवण विटामिन एवं जल) की आवश्यकता होती है। इसलिए गर्भवती माता का आहार देते समय विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। गर्भावस्था में आहार देते समय निम्न बातों पर बल दिया जाना चाहिए:-

1. गर्भवती स्त्री गर्भावस्था के किस चरण (डिम्बावस्था, भ्रूणावस्था, गर्भस्था शिशु की अवस्था) में है, क्योंकि प्रथम तीन माह में गर्भिणी को अतिरिक्त पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु जैसे-जैसे गर्भ का समय बढ़ता जाता है, उसके शरीर में पौष्टिक तत्वों की मॉग भी बढ़ती जाती है। गर्भावस्था के अंतिम तीन माहों में सर्वाधिक पौष्टिक तत्वों की जरूरत होती है।
2. गर्भवती स्त्री का आहार इस तरह का होना चाहिए जिससे कि उसका स्वंय का तथा गर्भ में पल रहे शिशु का समुचित विकास हो सकें।
3. गर्भिणी के आहार में प्रोटीन खनिज लवण तथा विटामिन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। वसा एवं कार्बोज की मात्रा भी बढ़ायी जानी चाहिए,परन्तु बहुत अधिक नहीं। गर्भावस्था में इनके बहुत अधिक प्रयोग से मोटापा बढ़ता है और मोटापा स्वंय में एक बीमारी है, जिससे कई समस्याएँ उत्पन्न होती है।
4. आहार में रेशेदार भोजन पदार्थ,जैसे-छिलके सहित दाल, चोकर सहित आटा, फल, सलाद आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए। रेशा कब्ज को दूर करने में सहायक होता है। अधिकत्तर गर्भिणी को कब्ज की शिकायत रहती है,इसलिए रेशेदार भोज्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। कच्ची सब्जियों के सलाद को दोनों समय के भोजन के साथ अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए।
5. गर्भावस्था में जल अधिक पीना चाहिए। गर्भावस्था के अन्तिम तीन माहों में बड़ी ऑत द्वारा जल का अवशेषण बढ़ जाता है। इसलिए अधिक मात्रा में जल की आवश्यकता होती है।
6. गर्भिणी का आहार सन्तुलित एवं पौष्टिक होना चाहिए ताकि गर्भाशय, गर्भस्थ शिशु, स्तन तथा गर्भनाल के विकास में सहायक हो।

7. गर्भावस्था में लौह तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है। इनकी पूर्ति के लिए आहार में हरे पत्तेदार सब्जियॉ, अण्डा, यकृत, पालक, बथुआ आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
8. अंकुरित आनाजों एवं दालो को आहार तालिका में स्थान देना चाहिए।
9. रात को सोते समय दूध अवश्य देना चाहिए। दूध को मुनक्के या ईसबगोल की भूसी सहित भी दे सकते है, इससे कब्ज नहीं होता।
10. पॉलिस रहित चावल का उपयोग किया जाना चाहिए।
11. कैल्शियम की पूर्ति हेतु आहार में दूध, दूध से बने व्यंजन, छाछ, पनीर, शलजम, सेम आदि सम्मिलित किया जाना चाहिए।
12. पौष्टिक एवं सन्तुलित भोजन के लिए 7 आहार(भोज्य) समूह से भोज्य पदार्थो का चयन होना चाहिए, जैसेः-
    I. हरे पत्तेदार सब्जियॉ-पालक बथुआ,चना,साग,मेथी,चौलाई,सरसो का साग आदि।
    II. दूध एवं दूध से बने पदार्थ।
    III. उत्तम कोटि का प्रोटीनयुक्त भोज्य पदार्थ। प्राणिज स्त्रोतों से प्राप्त प्रोटीन उच्च कोटि के होते है, जैसे-दूध, मांस, अंडा, मछली, पनीर आदि।
    IV. मौसम के फल दिन में 1-2 बार
    V. पूरे दिनभर में एक या दो अनाज व दाले, दिन में 3-4 बार। परन्तु गर्भिणी को एक-दो बार भरपेट भोजन न ग्रहण करके दिन में थोड़ा-थोड़ा करके 5-6 बार खाना चाहिए। सम्पूर्ण दिन का भोजन हल्का और रूचिपूर्ण होना चाहिए।
    VI. चोकर सहित आंटे की रोटी,छिलके सहित दाल का उपयोग किया जाना चाहिए।
    VII. रेशेदार भोज्य पदार्थो, जैसे अंकुरित चना, मूँग, साबुत फल, गाजर, टमाटर, खीरा, ककड़ी, प्याज आदि का सलाद अवश्य ही आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

गर्भावस्था में सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार होने से गर्भकालीन कठिनाईयॉ कम हो जाती है। प्रसव सामान्य होता है और गर्भस्था शिशु को भी समुचित वृद्वि एवं विकास होता है। इसलिए गर्भस्थ शिशु के समुचित निर्माण एवं विकास के लिए आहार में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन,कार्बोज,विटामिन एवं खनिज लवण होने चाहिए।

निष्कर्ष-कहा जाता है कि ''एक स्वस्थ मॉ ही स्वस्थ शिशु को जन्म देने में सक्षम हो सकती है।'' यदि माता अस्वस्थ, निर्बल, बीमार, कमजोर, अथवा किसी गम्भीर बीमारी से ग्रस्त होगी तो वह स्वस्थ शिशु को जन्म नहीं दे सकेगी। ऐसा भी हो सकता है कि प्रसव के दौरान मॉ एवं शिशु दोनों की मृत्यु हो जाए अथवा मॉ एवं शिशु में से किसी एक भी जान चली जाए।

अतः गर्भवती मॉ का आहार ऐसा होना चाहिए जो उसे स्वंय के लिए तथा गर्भस्थ शिशु के लिए सभी पौष्टिक तत्वों से भरपूर हो। ऐसा देखा जाए तो स्पष्ट पता चलता है कि गर्भकालीन अवस्था कठिन अवस्था है। यह कोई बीमारी नहीं है, बल्कि इसे विशेष अवस्था कहते है। ईश्वर ने एक स्त्री को मॉ बनने का सौभाग्य प्रदान किया है। एक स्त्री तभी पूर्ण स्त्री होती है जब वह मॉ बनती है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

- I.C.M.R के भोज्य विशेषज्ञों ने गर्भावस्था में 300 K.Cal अतिरिक्त उर्जा की आवश्यकता बताई है। पृष्ठ सं0-592
- इस बात की पुष्टि FAO/WHO ने 1965 में की। I.C.M.R के भोज्य विशेषज्ञों ने प्रोटीन की पूर्ति के लिए गर्भवती स्त्री के आहार में साधारण स्थिति की अपेक्षा 15 ग्राम अतिरिक्त प्रोटीन देने की प्रस्तावना की है।
- N.R.C.U.S.A ने गर्भवती स्त्री के लिए 400 mg/day अतिरिक्त कैल्शियम प्रस्तावना की है।पृष्ठ सं0-593
- M.Saminathan ने अपने पुस्तक 'Essentials of food & Nucotinic acid and Co-enzymes Infants it is Desirable to give an extra Allowance to meet the need to Pregnancy' पृष्ठ सं0-596
- Hytten एवं Leitch ने 1964 में अपने-अपने शोधों एवं अनुसंधानों के आधार पर गणना की पुरे गर्भकाल में एक गर्भिणी को 80,000 K.Cal की आवश्यकता होती है। पृष्ठ सं0-592
- पोषण अभियान एक समग्र पोषण के लिए प्रधानमंत्री की व्यापक योजना।

युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता: महिलाओं के समक्ष जोखिम, चुनौतियाँ एवं प्रभाव

हरीश कुमार यादव

राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

युद्ध और संघर्ष के क्षेत्र में पत्रकारिता करना प्राय: हर पत्रकार का सपना होता है क्योंकि पत्रकारिता जगत में ''युद्ध क्षेत्र पत्रकारिता'' (War Reporting) को काफी सम्मान से देखा जाता है। किंतु यह कार्य सम्मान के साथ-साथ अत्यधिक जोखिम भरा होता है विशेषकर तब जब संघर्षरत कोई भी पक्ष नैतिकता एवं अंतर्राष्ट्रीय मानवीय कानूनों को न्यूनतम महत्व देता है। अपनी इसी निष्ठुरता के कारण इस क्षेत्र को समाज स्वत: ही पुरुषोचित क्षेत्र के रूप में परिभाषित करता है। जिस कारण से युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता करने वाली महिला पत्रकारों को युद्ध क्षेत्र के जोखिम यथा हत्या, बलात्कार, अपहरण, छेड़छाड़ मारपीट के साथ-साथ लैंगिकता आधारित अपराधों एवं भेद-भाव का भी सामना करना पड़ता है। लैंगिकता आधारित यह भेदभाव एवं शोषण युद्ध क्षेत्र में रिपोर्टिंग से लेकर न्यूज रूम तक की संस्कृति में परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ संघर्ष के क्षेत्र से लेकर न्यूज रूम में खबरों को पढ़ने वाली महिलाओं पर हर वक्त खूबसूरत दिखने का दबाव रहता है। अन्य क्षेत्रों की भांति यहाँ भी लैंगिक समानता के नाम पर पुरूषों द्वारा स्थापित मापदंडों को प्राप्त करना उनकी योग्यता का पैमाना माना जाता है। इन सबके अतिरिक्त युद्ध क्षेत्र में शारीरिक हिंसा का सामना करने वाली महिलाएं अपने साथ हुई हिंसा को सार्वजनिक तौर पर उजागर करने को स्वयं के प्रति आत्मघाती कदम के रूप में देखती हैं। युद्ध क्षेत्र की क्रूरता, रक्तपात, तनाव, भय के बीच कार्य करना व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करता है और महिला पत्रकार भी इसका अपवाद नहीं है तथा यह प्रभाव उनकी जीवनचर्या एवं व्यवहार को काफी प्रभावित करता है। इस आलेख का मूल उद्देश्य युद्ध एवं संघर्ष वाले क्षेत्रों में पत्रकारिता का कार्य करने वाली महिलाओं के समक्ष आने वाले खतरों एवं चुनौतियों का उल्लेख करने के साथ-साथ महिला पत्रकारों के प्रति लैंगिकता आधारित भेदभाव, न्यूज रूम संस्कृति तथा युद्ध एवं संघर्ष की हिंसा का महिला पत्रकारों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण करना है।

मुख्य बिंदु: महिलाएं, युद्ध, संघर्ष, बलात्कार, तनाव, भय, लैंगिकता, भेदभाव।

मेरा काम गवाही देना है उस घटना की जिसको मैने चुना है। मुझे इस बात में कतई दिलचस्पी नहीं है कि जहाजों द्वारा गाँवों पर बम गिराए जा रहे हैं अथवा सशस्त्र दस्तों द्वारा चलाई जा रही गोली 120mm की है या फिर 155mm की। मेरा काम घटना की निष्पक्ष गवाही देना है।

उपरोक्त कथन मशहूर युद्ध पत्रकार मैरी कोलविन के हैं। वही मैरी कोलविन जिनकी एक आँख पर बंधी पट्टी उनकी शख्सियत का एक हिस्सा बन गई थी, उन्हें यह जख्म उस वक्त मिला जब वह 2001 में श्रीलंका में जारी नागरिक युद्ध को कवर करने दौरान एलटीटीई के कब्जे वाले क्षेत्र से सरकारी कब्जे वाले क्षेत्र में प्रवेश कर रहीं थी। बार-बार यह दोहराने पर भी कि ''मै एक पत्रकार हूँ'' उनपर हमला हुआ जिसमें उनकी बाँयी आँख की रोशनी चली गई। किंतु इन सबके बावजूद उन्होंने अपना कार्य सफलतापूर्वक जारी रखा। मैरी कोलविन का अपने कार्य के प्रति यह जस्बा उनके अंतिम समय तक बना रहा जब वह सीरिया में जारी गृहयुद्ध को कवर करने के दौरान सरकारी सेना द्वारा जानबूझ कर किए गए हमले का शिकार बनी और उन्हें अपनी जान गँवानी पड़ी।

मैरी कोलविन के विषय में ऊपर लिखी चंद पंक्तियाँ एक झलक है उन हादसों और उन जोखिमों के विषय में जोकि किसी भी युद्ध क्षेत्र में एक युद्ध पत्रकार को प्रत्यक्ष तौर पर अनुभव करने ही होते हैं। पत्रकार चाहे महिला हो अथवा पुरुष युद्ध क्षेत्र के

जोखिमों का प्रत्यक्ष गवाह इन्हें बनना ही होता है ताकि यह संघर्ष का सच शेष दुनिया के समक्ष ला सकें। किंतु इस कवायद में कई बार महिला पत्रकारों को कई ऐसे हादसों का जोखिम उठाना पड़ता है जिसका सामना उनके पुरूष सहकर्मी को प्राय: नहीं करना पड़ता है। बलात्कार एक ऐसा ही अपराध है जिसका सामना न केवल युद्ध क्षेत्र में निवास करने वाली महिलाएं होती हैं अपितु पत्रकार के रूप में अपना कार्य कर रही महिलाएं भी यौन हमलों का शिकार होती हैं। 977 महिला पत्रकारों पर किए गए एक अध्ययन में, 21.9% ने यह बताया कि उन्होंने अपने कार्य के दौरान शारीरिक हिंसा का अनुभव किया था, वहीं 14.3% ने अपने कार्य के दौरान खुद के साथ यौन हिंसा की बात को स्वीकार किया।

इस बात के बहुसंख्य प्रमाण हैं जहाँ महिलाएं पुरूषों की तुलना में हिंसा का ज्यादा सामना करती हैं। ऐसा उनके साथ दो कारणों से होता है प्रथम उनके कार्य के वजह से (यह पुरूषों के साथ भी होता है) और दूसरा उनके महिला होने के कारण क्योंकि वह परंपरागत तौर पर स्थापित लैंगिकता आधारित भूमिकाओं को चुनौती देती हैं। जिस कारण युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता को अंजाम देते समय महिला पत्रकारों को युद्ध एवं संघर्ष के दौरान होने वाली हिंसा के साथ-साथ महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा का भी सामना करना पड़ता है। कई अवसरों पर यह भी देखा गया है कि भीड़ द्वारा समूह में महिला पत्रकारों के साथ दुर्व्यवहार किया गया। मिस्त्र में कायरो शहर के तहरीर स्क्वायर पर हुए प्रदर्शनों में एक ही दिन में 46 महिलाओं पर सामूहिक तौर पर भीड़ द्वारा हमला किया गया। तहरीर स्क्वायर पर हुए व्यापक जन प्रदर्शन को कवर करने गए मीडिया दलों को अपनी महिला पत्रकारों को सुरक्षित रखने की औपचारिक हिदायत तक दी गई। पत्रकारों द्वारा प्रदर्शन के दौरान महिलाओं के प्रति सामूहिक उत्पीड़न एवं यौन हिंसा का प्रत्यक्ष अनुभव किया गया। इन उत्पीडिघ्त महिलाओं में महिला पत्रकारों के साथ-साथ वे महिलाएं भी शामिल थीं जो महिला अधिकारों को प्रोत्साहित करते हुए प्रदर्शन कर रही थीं। इन्हीं प्रदर्शनों के दौरान प्रदर्शन को कवर कर रही अमरीकी महिला पत्रकार लाँरा लोगन को भीड़ द्वारा न केवल लाठी-डंडों से बुरी तरह मारा गया अपितु उनके साथ बलात्कार तक हुआ। इस घटना के सार्वजनिक होने पर लोगों द्वारा लोगन को ही दोषी ठहराया जाने लगा। यह एक प्रकार की त्रासदी ही है कि जहाँ पुरूष पत्रकार अपने कार्य के दौरान दुर्घटना का शिकार हो जाए तो उसका महिमामंडन किया जाता है वहीं अपने कार्य के दौरान भीड़ के द्वारा हिंसा का शिकार लोगन की आलोचना की गई।

युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता के दौरान महिला पत्रकारों पर सेना के जवानों, आतंकियों एवं सूत्रधारों द्वारा हमले किए जाते हैं। विडंबना यह है कि पत्रकारों की सुरक्षा हेतु बनी कमेटी द्वारा यह सुझाव दिया जाता है कि गार्ड, दुभाषिया और चालक जैसे लोग उनको सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होंगें किंतु अधिकांश मामलों में महिला पत्रकारों के साथ यौन हिंसा में इन्हीं की संलिप्तता पाई जाती है।

युद्ध क्षेत्र में बतौर महिला पत्रकार कार्य करते हुए गोलियों से ज्यादा खतरा इस बात का होता है कि आप एक महिला हैं। यौन हिंसा के अतिरिक्त कई बार जबरन शादी और यौन दासी जैसे अपराधों का सामना भी करना पड़ता है। कई अवसरों पर महिला पत्रकारों को अपने कार्य के दौरान अपने पुरूष सहकर्मी को अपने साथ इस कारण से रखना पड़ता है जिससे वह उन स्थानों पर अपने पुरूष सहकर्मी को अपने पति के रूप में पेश कर सकें जहाँ लोग किसी महिला के व्यक्तिगत अधिकारों को ना तो जानना चाहते हैं और ना ही उसके अधिकारों को मान्यता देते हैं।

युद्ध और संघर्ष के दौरान पितृसत्तात्मक संरचनाएं प्राय: ज्यादा उभर कर सामने आती हैं जिनके मूल में नियंत्रण की प्रवृत्ति होती है और ऐसे में यह महिला पत्रकारों की कार्यशैली को प्रभावित करती हैं। संघर्ष और युद्ध के दौरान महिला पत्रकारों के विरूद्ध बलात्कार एवं यौन हिंसा का प्रयोग एक रणनीति के तौर पर भी किया जाता है ताकि सूचना के प्रवाह पर नियंत्रण किया जा सके। इसके लिए राजनीतिक एवं सामाजिक नेतृत्व द्वारा ऐसे साधनों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ सीरियाई सेना के रॉकेट हमले में मैरी कोलविन के मारे जाने पर कई लोगों ने इस घटना के संदर्भ में स्पष्ट रूप से यह दावा किया कि ''चूंकि कोलविन सीरियाई सरकार एवं सेना द्वारा आम जनता पर किए जा रहे अत्याचारों को दुनिया के सामने ला रही थीं, जिस कारण से उन्हें जानबूझ कर निशाना बनाया गया जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु हुई। इंटरनेशनल न्यूज सेफ्टी इंस्टीट्यूट के एक अध्ययन में एक हजार महिला पत्रकारों ने इस बात में सहमति व्यक्त की कि यौन हिंसा का महिला पत्रकारों के विरूद्ध लगातार प्रयोग एक रणनीति के तौर पर महिला पत्रकारों को चुप एवं उन्हें भयभीत करने के लिए किया जाता है।

युद्ध क्षेत्र में महिला पत्रकार के साथ होने वाली यौन हिंसा की खबरें किंचित ही सामने आ पाती हैं क्योंकि युद्ध क्षेत्र में अपने साथ हुई यौन हिंसा की घटना महिला पत्रकार मुश्किल से ही किसी के साथ बाँटती हैं और ऐसा करने के पीछे कई वजहें होती हैं यथा कथित सांस्कृतिक-सामाजिक-कलंक, प्रबंधन समूह द्वारा संदेह से देखा जाना, युद्ध क्षेत्र के कथित पुरूषवादी संस्कृति क्लब का हिस्सा बने रहने की अनिवार्यता तथा प्रबंधन समूह द्वारा कार्य से हटा दिए जाने का भय होता है।

वास्तव में बतौर एक युद्ध पत्रकार के रूप में कार्य करना बेहद दुष्कर कार्य है विशेषकर महिलाओं के लिए। युद्ध क्षेत्र से पत्रकारिता के दायित्व के निर्वहन के लिए वह बलात्कार तक के जोखिम का सामना करती हैं तथा स्वास्थ्य सम्बंधी ऐसी कई समस्याओं से समझौता करती हैं जिसका सामना प्राय: किसी पुरूष को नहीं करना पड़ता है। अपने कार्य के दौरान कई महिला पत्रकार अपने बच्चों, घर एवं कार्य के मध्य सामंजस्य रखती हैं किंतु इस पेशे का एक पक्ष यह भी है कि इससे जुड़ी अधिकांश महिलाएं अकेली ही होती हैं पेशे से जुड़े कुछ जोखिम उनके पारिवारिक एवं वैवाहिक प्रस्थित को प्रभावित करते हैं। युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता एक हिंसक और भयावह अनुभव वाला क्षेत्र है। ऐसे में पत्रकारों के साथ होने वाली हिंसक घटनाएँ उनको शारीरिक तौर पर प्रभावित करने के साथ-साथ मानसिक तौर पर भी प्रभावित करती है। ऐसे में इस पेशे में कार्य करने वाले पत्रकारों में हिंसा उपरांत उपजे तनाव सम्बंधी मनावैज्ञानिक समस्याएं जन्म लेने लगती हैं। उनके व्यवहार में भय, उदासी, अवसाद, तनाव, व्याकुलता आदि जैसे लक्षण बढ़ने लगते हैं। युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता के दौरान किसी भी युद्ध पत्रकार को हिंसा, रक्तपात के प्रत्यक्ष अनुभव से बार-बार गुजरना पड़ता है। चूंकि पुलिस एवं सेना के जवानों की भांति इन्हें हिंसा के प्रति स्थिर एवं अप्रभावित रहने एवं उसके उपजे तनाव पर नियंत्रण का प्रशिक्षण नहीं मिला होता है। ऐसे में अधिकांशत: युद्ध पत्रकारों के व्यवहार में पी.एस.टी.डी. (पोस्ट-ट्रॉमाटिक स्ट्रैस डिआर्डर) जिसके लक्षण की संभावना अन्य क्षेत्रों में काम करने वालों की तुलना में चार से पाँच गुना ज्यादा होती है, दिखना सामान्य बात होती है। युद्ध क्षेत्र की हिंसा और कार्य सम्बंधी तनाव से बचने के लिए इनके द्वारा कि जाने वाली शराब के सेवन की मात्रा जहाँ पुरूषों में 14.7 यूनिट है वहीं महिलाओं में यह 10.8 यूनिट है जोकि सामान्य जन की तुलना में तीन गुना अधिक है। एक तरफ जहाँ पुरूषों में पी.टी.एस.डी. की वजह युद्ध क्षेत्र की हिंसा होती है वहीं महिलाओं में इसका कारण उनके साथ हुई क्रूर यौन हिंसा होती है। बलात्कार महिला युद्ध पत्रकारों में मानसिक अवसाद एवं ट्रामा की मुख्य वजह है

लैंगिकता आधारित भेदभाव एवं चुनौतियाँ

पत्रकारिता के अन्य क्षेत्रों की भांति युद्ध क्षेत्र की पत्रकारिता भी पुरूषवादी प्रभुत्व से अछूती नहीं है। यह देखना आश्चर्यजनक है कि एक तरफ जहाँ पत्रकारिता के प्रशिक्षण स्कूलों एवं संस्थानों में महिलाओं का दबदबा है वहीं समाचार कक्ष से लेकर न्यूज बोर्ड रूम एवं फील्ड तक में पुरूषों का प्रभुत्व है। जैसाकि अन्ना ग्रिफिन अपने लेख ''व्हेयर आर द वुमन'' में बताती है कि इसका एक कारण चक्रीय रूप में पुरूषों द्वारा पुरूषों को ही प्राथमिकता देना है। वह कहती हैं कि इतिहास में भी हम देखें तो संपादक और संचालक जैसे महत्वपूर्ण पदों पर पुरूष ही रहे हैं जोकि अपने पद के लिए पुरूषों को ही योग्य समझते एवं चुनते रहे हैं। लैंगिकता आधारित भेदभाव एवं व्यवहार ही इस क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती है और बतौर पत्रकार युद्ध क्षेत्र के कार्यों को करने वाली महिला पत्रकार भी इसका अपवाद नहीं हैं। महिला पत्रकारों को सेना, अपने संगठन, अपने सहकर्मियों एवं मालिकों यहाँ तक की अपनी प्रतिद्वंदी महिला पत्रकारों की लैंगिक भेदभाव एवं द्विअर्थी टिप्पणियों का सामना करना पड़ता है। यौन उत्पीड़न और लैंगिक भेदभाव आधारित व्यवहार इस पेशे में अघोषित रूप से आता है। विडंबना यह है कि यहाँ महिलाएं ही महिलाओं के विरूद्ध सेक्सिट भाषा का प्रयोग करती हैं।

महिला पत्रकारों को दी जाने वाली विशेष तवज्जो उनकी भूमिका एवं उनकी सीमाओं को धुंधला कर देती है। जिससे संघर्ष के मध्य एक अन्य संघर्ष का जन्म होता है जिसका आधार महिलाओं के प्रति संकीर्ण सोच होती है। युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता करने वाली महिला पत्रकारों पर प्राय: यह आक्षेप लगता है कि वह जानकारी पाने के लिए अपने शरीर व सौंदर्य का प्रयोग करती हैं। पत्रकारिता विशेषकर युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता करने वाली महिलाएँ यौन उत्पीड़न के विषय में कोई शिकायत नहीं करती हैं क्योंकि उन्हें पता होता है कि उन्हें उस कथित पुरूष क्लब से बाहर निकाल दिया जाएगा जिसमें वे अपनी योग्यता के दम पर आई है। अगर किसी महिला पत्रकार ने अपने साथ हुई यौन हिंसा के अनुभवों को सार्वजनिक किया तो अधिकांश मामलों में महिला को ही उस कार्य से हटा दिया जाता है। मीडिया घरानों के मालिकों को इस बात की चिंता अधिक होती है कि यौन-हिंसा की खबर सार्वजनिक होने पर उन्हें सरकार एवं जनता का कोपभाजन बनना पड़ेगा साथ ही वित्तीय सहायता एवं अन्य संसाधनों से हाथ ध ोना पड़ेगा। महिला पत्रकार के साथ होने वाली हिंसा एवं उनका अपहरण पूरे मीडिया दल को शीर्ष स्तर तक प्रभावित करता है।

यह भी एक कारण है कि इस क्षेत्र से जुड़े जोखिमों को देखते हुए महिलाओं का भेजने का औसत कम है। किंतु फिर भी युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता के लिए महिलाओं को बाजार की तरफ से प्रोत्साहन दिया जा रहा है तो इसका एक कारण बाजार की आर्थिक रणनीति भी है। ''खूबसूरत महिला संवाददाता होने से दर्शक वर्ग बढ़ेगा और महिला पत्रकार को अपनी खूबसूरती के दम पर खबरें बनाने लायक स्टोरी मिलेंगी'' जैसी मानसिकता न्यूज रूम में हावी है। जबसे टेलिविजन पर प्रसारण की शुरुआत हुई है तबसे महिलाओं पर हर वक्त खूबसूरत दिखने का दबाव रहता है। यहाँ तक की संघर्ष के क्षेत्र में भी महिला पत्रकारों को अपने साथ मेकअप सामग्री साथ में रखने को कहा जाता है।

महिला युद्ध पत्रकार से जुड़े जोखिमों से बचने के लिए अधिकांश न्यूज चौनलों द्वारा फ्रिलांसर महिला युद्ध पत्रकारों की सेवा को प्रोत्साहन दिया जा रहा है जोकि वित्तीय दृष्टि से उनके लिए फायदेमंद है। अगर फ्रिलांसर महिला पत्रकार पकड़ी भी जाती है तो उसकी रिहाई के बदले रकम देने की जिम्मेदारी चौनल की नहीं होती है। चूंकि अनुबंधित महिला पत्रकारों के कम वेतन की तुलना में फ्रिलांसर महिला पत्रकारों को पैसे और कम मिलते हैं ऐसे में यह कम सुरक्षा साधनों के साथ अपने कार्य को करती हैं जोकि इनके जीवन के विरूद्ध जोखिम की संभावना को और अधिक बढ़ा देता है।

निजी स्तर पर महिला युद्ध पत्रकार के जीवन की बात करें तो विवाह के स्तर पर विरोधाभास देखने को मिलता है जहाँ एक तरफ अधिकांश पुरूष पत्रकार विवाहित होते हैं वहीं दूसरी तरफ युद्ध पत्रकारिता को अपनाने वाली महिलाएँ अविवाहित होती हैं अथवा तलाकशुदा। लंबे समय तक युद्ध की पत्रकारिता करने वाली महिलाओं के पेशे की एक आवश्यक माँग यह भी होती है कि वह गर्भधारण करने से बचें क्योंकि ऐसा करने की सूरत में नकारात्मक असर उनके कार्य पर पड़ता है। यह लैंगिकता आध ारित दोहरे मापदंड ही हैं जब एक तरफ किसी पुरूष को अपने परिवार एवं बच्चों को छोड़ कर अपने पेशे पर संघर्ष क्षेत्र में जाने को सहज तौर पर लिया जाता है वहीं महिलाओं को ऐसी समान स्थिति में आलोचना का शिकार होना पड़ता है।

निष्कर्ष:-

वास्तव में युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता का कार्य करना एक अत्यंत जोखिम से भरा बेहद सम्मानित क्षेत्र है। ऐसे क्षेत्रों में महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा विशेषकर यौन हिंसा के मामले यदा-कदा ही सामने आते हैं। लैंगिकता के स्थापित कथित खोखले मापदंडों एवं परंपरागत भूमिकाओं को चुनौती देने के कारण उनके प्रति विशेष रूप रणनीतिक तौर पर बलात्कार जैसे अपराधों का प्रयोग किया जाता है। उनके प्रति की जाने वाली अधिकांश हिंसा को सामाजिक एवं राजनीतिक नियंत्रण द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। युद्ध एवं संघर्ष से ग्रस्त क्षेत्रों में पत्रकारिता के दौरान महिलाओं को मृत्यु से ज्यादा जोखिम उनके प्रति होने वाली यौन हिंसा का होता है। यौन हिंसा एक जोखिम है जिसे महिला पत्रकार उठाती हैं किंतु हमें इनकी प्रशंसा व प्रोत्साहन इस बात के लिए करना होगा कि वे हिंसा के इस स्वरूप के साथ जुड़े कथित सामाजिक-सांस्कृतिक दुष्परिणामों को जानते हुए भी यह जोखिम उठाती हैं। जहाँ तक सवाल है ऐसे हमलों से बचने का तो स्वयं के स्तर पर महिला पत्रकारों को ऐसे देशों में जहाँ की संस्कृति में महिलाओं को आजाद एवं आत्मनिर्भर होने तक का हक नहीं है, अपने आप को स्थानीय संस्कृति के अनुकूल रखना चाहिए, अपने साथ एक विश्वस्त पुरूष सहयोगी को रखना चाहिए ताकि एक पत्रकार के तौर पर वह सुरक्षित रहते हुए अपना कार्य कर सकें।

युद्ध जनित हिंसा के फलस्वरूप होने वाले पी.टी.एस.डी. से निपटने के लिए न्यूज चौनलों को कुछ आवश्यक उपाय करने चाहिए जैसे भावनाओं पर नियंत्रण का प्रशिक्षण, कठिन परिस्थितियों से जूझने की क्षमता विकसित करना, आपातकालीन परिस्थितियों के प्रबंधन की कला, पत्रकारिता की सशक्त समझ तथा सबसे महत्वपूर्ण रूप में संगठन एवं प्रबंधन दल द्वारा दिया गया सहयोग एवं सहायता ऐसी मानसिक तनावों से बाहर आने में पत्रकारों की मदद करेगा। क्योंकि एक अच्छी पत्रकारिता के लिए स्वस्थ पत्रकारों की जरूरत होती है, भावनात्मक समस्याओं के साथ इस क्षेत्र में कार्य करना असंभव है।

जहाँ तक सवाल पत्रकारिता जगत में लैंगिकता आधारित भेदभाव का है तो निश्चित तौर पर विकृत और संकीर्ण रूप में इसकी उपस्थिति है क्योंकि अन्य सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं की भांति इसका मूल आधार पितृसत्तात्मक अवधारणा है जहाँ हमेशा से पुरूषों को महिलाओं की तुलना में श्रेष्ठ माना जाता है। इसी मानसिकता के कारण व्यवसायिक तौर पर आज भी महिलाओं का नेतृत्व जहाँ कम है वहीं सामाजिक स्तर पर महिलाओं को युद्ध पत्रकार के रूप में अपरंपरागत भूमिका का निर्वहन एवं उसके कार्य के जोखिमों का असर उसके वैवाहिक प्रस्थित पर पड़ता है। यहाँ तक की उसके पेशे की आवश्यकता को देखते हुए भी उसी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह परिवार की जिम्मेदारियों का भी निर्वहन करे। उसपर हमेशा परिवार एवं उसके कार्य के बीच

एक प्राथमिकता तय करने का दबाव बना रहा है। युद्ध एवं संघर्ष के क्षेत्र में महिलाओं से जुड़े जोखिमों एवं इससे सम्बंधित अन्य स्याह पहलुओं के बावजूद आज आवश्यकता इसी बात की है कि इस पेशे को ज्यादा से ज्यादा महिलाएं अपनाएँ क्योंकि ऐसे संघर्षरत क्षेत्रों की संख्या बहुतायत है जहाँ महिलाएँ एवं बच्चों को अपने परिवार के पुरूषों के अतिरिक्त अन्य पुरूषों से बात करने की आज्ञा नहीं होती है ऐसे में किसी महिला पत्रकार से बात करने में पीडिघ्त महिलाएँ सहज रहती हैं जिस कारण प्राय: महिला पत्रकार संघर्ष क्षेत्र की त्रासदी एवं उससे जुड़े अन्य पक्षों की जानकारियाँ बेहतर रूप में प्राप्त कर पाती हैं। वास्तव में यह कहना गलत नहीं होगा कि युद्ध क्षेत्र में महिला पत्रकारों को महिला होने के कारण हिंसा का सामना करना पड़ता तो वहीं दूसरी तरफ उनका महिला होना इस पेशे में उनकी मदद के साथ-साथ उन अनुसनी आवाजों को दुनिया के सामने लाने में सहायता प्रदान करता है जो महज महिला होने के कारण गूंगी होती हैं।

References :

1. Amnesty International (2013) : EGYPT Gender-based violence against women around Tahrir square. London : Amnesty International publications.
2. Barker Kim (2011) : Why we need women in was zones, New Yark Times, 19 February.
3. Bartimus, Tad et al (2002) : war torn: Stories of war from the women reporters who covered vietnam. New Yark : Random House
4. Baston, Alana & Storm, Hanna (2014) : Violence and harassment against women in the news media: A global picture. Internationl News safety Institute (INSI)
5. Bourke, Joanna (2014) : Rape as a weapon of war, The Lancet, 383 (9934): e19-e20
6. Cohen, Nadia (2001, October) : Adie slams news culture, Daily mail available at http://www.dailymail.co.ok/vshowbiz/article80181/Adie-slams-new-news-culture.html
7. Colvin, Marie (2010) : Our mission is to report these harrors of war with accuracy ad without prejudice http://www.theguardian.com/commentisfree/2012/feb/22/marie-colvin-our-mission-is-to-speak truth?intcmp=239
8. Creelman, James (1901). On the Great Highway : The wonderings and adventure of a special correspondent.Boston Lothrop
9. Dart Center (2005).Women Reporting war. Feb.F. http://darcenter.org/content/women-reporting-war#,vil-isuhrqs
10. Edwards, Julia (1988) : Women of the world: the great foreign correspondents. Boston. Houghton Mifflin
11. Freinstein, Anthony (2003) : Dangerous lives : War and the men and women who report it. Toranto. ThomasAllen
12. Frinstein, Anthony & Sinyor, Mark (2009) : Women war correspondents : Different in so many ways, Neiman Reports, winter. http://www.nieman.harvard.edu/reports/article/101967/women-war-correspondents-They-Are-different-in-so-Many-ways.aspx
13. Harris, Christine R.; Jenkins, Michael & Glaser, Dale (2006) : Gender difference in risk assessment. Why do women take fewer risks than men? Judgment and Decision Making, 1(1). 48
14. Harris, Janet, Mosdell, Nick 4 Griffiths, James (2016) :Gender, risk and Journalism, Journalism Practice Taylor & Francis online. [Accessed on 1.3.2016]
15. Mardoiossian, Carine M. (2014) : Framing the rape victim: Gender and agency. New Brunswick, NJ and London : Retger University press
16. Mardorossian Carine M. (2002) : Toward a new feminist theory of rape. Journal of women in culture and Society, 27(3) : 743-775
17. Marroushi, Nadine (2014) : Breaking the taboo. "I reported from conflict zones and got post-traumatic stress disorder," The Telegraph. www.telegraph.co.uk/women/womens-life/11074792/Isil-beheading-fo-Steven-satloff-I-reported-from-conflict-zones-and-got-post-traumatic-stress-disorder.html
18. Matloff Judith (2007) : Unspoken foreign correspondents and sexual abuse, Columbia Journalism Review, May/June, http//www.cjr.org/on-the-job/unspoken.php
19. Mckercher, Catherine (2009) : Writing on the margins: Precasity and the freelance journalist, Feminist Media studies, 9(3): 370-374.

Important Links :-

https://cpj.org/2016/04/attacks-on-the press-males. prefessed.php.
https://journals.openedition.org/Miranda/1120.
https://www.academia.edo.9602219/women_in_newsrooms- journalists_talk_about_gender_discrimination-in-perth-daily-news-organisations.
https://www.npr.org/2016/07/24/487237208/sexising-in-newsroom-culture- not-unique-to-allegations-against-roges-ailes
https://www.poynter.org/business-work/2017/women-dominate-journalism-schools-but-newsrooms-arectill-a-different-story/

पर्यावरण संरक्षण में उच्चतम न्यायालय की भूमिका

हरिओम गुप्ता

एल एल. एम., महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय बरेली

शोध सारांशः- पर्यावरण का संरक्षण भूमंडलीय मुद्दा है और यह किसी क्षेत्र या राष्ट्र की अलग समस्या नहीं हैद्य विश्व का राष्ट्रीय इकाइयों में राजनीतिक विभाजन होते हुए भी समुद्री विश्व बीच अंतः संबंध संपूर्ण इकाई है, और हवाएं भी जो सभी देशों के ऊपर से बहती हैं एक हैं सामाजिक क्रियाओं की प्रकृति पर प्रभाव इतना विस्तृत पड़ा है कि पर्यावरण का प्रश्न इतना भयंकर रूप धारण कर लिए हैं कि सारी मानव जाति उससे भयभीत हैद्य विस्तार औद्योगिकरण, शहरीकरण, जनसंख्या विस्फोट, गरीबी, संसाधनों का अति दोहन ,ऊर्जा के पारंपरिक स्रोतों की कमी और कच्चे माल का निःशेषण कुछ ऐसे कारक हैं जिनका योगदान सारे विश्व में पर्यावरण अवनयन के लिए हैं पर्यावरण अध्ययन के द्वारा कारित परिवर्तनों ने पारिस्थितिक विधियों को उलट दिया मानव जीवन और पर्यावरण के बीच संतुलन को डगमगा दिया और और साथ ही पर्यावरण को प्रभावित करने वाली समस्याओं को जन्म दिया यद्यपि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति में मनुष्य को प्रकृति के ऊपर अपरीमित शक्ति से संपन्न कर दिया तथापि इसका परिणाम प्रकृति के ऊपर अनंत रूप से अतिक्रमण कारी शक्ति के औचित्य प्रयोग में हुआ किसी भी प्राकृतिक तंत्र में एक स्तर होता है जिसके बाद किए गए परिवर्तन अपरिवर्तनीय हो जाते हैं और इन्हें सहन करने के लिए एक नए प्रकार की संतुलन शक्ति की आवश्यकता पड़ती हैद्य

मुल शब्दः पर्यावरण संरक्षण, संविधान, मूल अधिकार, औद्योगिकरण

भूमिका :- पर्यावरण विधि वह विधि है जो पर्यावरण से संबंधित है यह पर्यावरण के संरक्षण से सरोकार रखती है और पर्यावरण प्रदूषण का नियंत्रण और निवारण करती है इस निमित्त यह पर्यावरण प्राधिकारीयों का गठन करती है उनको शक्तियां प्रदान करती है और उनके कृत्यों कर्तव्यों और दायित्वों को अधिकथित करती है पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत पर्यावरण की परिभाषा दी गई है जिसमें एक तरफ पानी वायु तथा भूमि और उनके बीच अंतर संबंध जो विद्यमान हैं और दूसरी तरफ माननीय प्राणी अन्य जीवित प्राणी पौधे सूक्ष्म जीवाणु एवं संपत्ति सम्मिलित है अपने व्यापक अर्थ में इस परिभाषा के अंतर्गत इस गिरे पर सभी प्रकार का जीवन आ जाता है इसी भाव में रोजर्स के अनुसार पर्यावरण विधि इस ग्रह और इसकी जनता को उस कार्यकलाप से जो पृथ्वी और इसके जीवन को बनाए रखने वाली क्षमता को उल्ट देता है से संरक्षण करने वाली ग्रहिए घरदारी की विधि है अतऐब पर्यावरण विधि पर्यावरण के प्रबंध और पर्यावरण को प्रभावित करने वाली समस्याओं का सामना करने वाली युक्तियों से संबंधित है लेकिन वास्तव में पर्यावरण विधि पर्यावरण की चुनौतियों से संबंधित विधि है जो कि पर्यावरण का संरक्षण करती है और निवारण करती है फिर भी पर्यावरण प्रदूषण के परीसंकट का सामना करने के लिए निवारक और उपचारी उपाय भी पर्यावरण विधि के मुख्य मामले हैं पर्यावरणीय विवादों के व्यापक स्पेक्ट्रम पर्यावरण विधि के अंतर्गत आ जाते हैं इसके अंतर्गत प्राकृतिक पर्यावरण अर्थात पृथ्वी की भौतिक दशाएं वायु और जल और मानवीय पर्यावरण और स्वास्थ्य सामाजिक और पृथ्वी पर मानवीय प्राणियों को प्रभावित करने वाली मानव निर्मित दशाएं आ सकती हैं इस परिवेश में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के अधीन दी गई अंतरबसी परिभाषा महत्वपूर्ण हो जाती है पर्यावरण विधि में वर्तमान युग के समाज और भावी पीढ़ियों द्वारा भौतिक संसाधनों का प्रयोग अंतरवलित है और यह भौतिक संसाधनों और मानवीय प्राणियों के बीच अंतर संबंध को भी नियंत्रित करती है इसके विस्तार में भौतिक संसाधनों और अन्य जीवित प्राणियों के बीच संबंध भी आ जाता है

पर्यावरण संरक्षण न्यायिक सक्रियता

पर्यावरण संरक्षण के संबंध में न्यायिक सक्रियता उल्लेखनीय है इस उद्देश्य के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक न्यायिक निर्णय दिए गए हैं प्रदूषण से मुक्त हवा पानी आदि प्राप्त करना अनुच्छेद 21 की प्रत्याभूति के अंतर्गत शामिल किया गया है भारत का संभवत विश्व के अनोखे संविधान में से एक है जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विशेष उपबंध शामिल है मूलता संविधान में पर्यावरण के संरक्षण और संवर्धन के लिए कोई विशेष उपबंध नहीं था परंतु 1976 में संविधान के 42 में संशोधन अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा संविधान और अव्यक्त रूप से मूल कर्तव्य और राज्य की नीति निदेशक तत्व को पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन के लिए विशेष उपबंध सम्मिलित किए गए संविधान का 42 वां संशोधन अधिनियम स्टॉकहोम घोषणा की प्रतिक्रिया में जिसको भारतीय जिसको मानवीय पर्यावरण के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा 1972 में स्वीकार किया गया था अंगीकृत किया गया।

मूल अधिकारों और पर्यावरण संरक्षण :-

किसी अधिकार को मूल अधिकार मानने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसका अव्यक्त रूप से संविधान के भाग 3 में वर्णन किया गया हो जो कि मूल अधिकार से सरोकार रखता हूं भाग 3 और भाग 4 मूल अधिकार और राज्य की नीति निदेशक तत्व से संबंध रखते हैं एक दूसरे के पूरक और अनुपूरक हैं मूल अधिकार भाग 4 में निर्दिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के साधन मात्र हैं और इसलिए उनका अर्थ निर्देशक तत्वों के दृष्टिकोण से किया जाना आवश्यक है[1] मूल अधिकारों की सूची जो भाग तीन में दी गई है वह निश्चित नहीं है किसी अधिकार को मूल अधिकार के रूप में मान्यता दी जा सकती है यदि इसका कोई वर्णन भाग 3 में नहीं किया गया है

प्राण का मूल अधिकार एवं स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार:- भारत के उच्चतम न्यायालय ने स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रत्याभूत प्राण के अधिकार का भाग माना है अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण और दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार छोड़कर अन्यथा वंचित नहीं किया जाएगा पर्यावरण प्रदूषण द्वारा वातावरण में धीरे-धीरे जहर दिया जाना संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण है यह स्थापित तथ्य है कि प्राण के अधिकार और पर्यावरण में संबंध है मूल अधिकारों और विशेषकर प्राण के अधिकारों की बात निरर्थक हो जाएगी यदि स्वस्थ वातावरण जीने के लिए नहीं रहता है ***मेनका गांधी बनाम भारत संघ***[2] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया कि मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मूल अधिकार है मानव गरिमा के साथ जीने के अधिकार किस स्वस्थ परिस्थितिकी तथा प्रदूषित वातावरण को सम्मिलित करने वाला भी निर्धारित किया जा सकता है तदुपरांत ***रूरल लिटिगेशन एंड एंटरटेनमेंट केंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य***[3] ***और एमसी मेहता बनाम भारत संघ***[4] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह संप्रेषण किया कि संविधान का अनुच्छेद 21 में प्राण और दक्षता का अधिकार स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार समाविष्ट करता है।

इंडियन काउंसिल फॉर इनबायरो ऐक्शन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया[5] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने औद्योगिक प्रदूषण की रोकथाम के लिए निर्देश दिया था उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश दिया था केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं आंध्र प्रदेश राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड उद्योग प्रदूषण एवं औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ के निस्तारण को अंतरित करते हुए संयुक्त रूप से एक कार्य योजना तैयार करेंगे साथ ही साथ औद्योगिक प्रदूषण के निवारण हेतु लंबे समय के आधार पर कदम उठाए जाएंगे।

एम सी मेहता बनाम यूनियन ऑफ इंडिया[6] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली में वाहनों के प्रदूषण रोकने के लिए निर्देश जारी किया था न्यायालय ने प्राधिकारी कोई निर्देश दिया था कि इस उद्देश्य के लिए जारी किए गए पहले के निर्देशों का कल्याण करने के लिए कदम उठाए।

इंडियन काउंसिल फॉर इनबायरो लीगल एक्शन बनाम भारत संघ[7] का मामला इस विषय पर महत्वपूर्ण है राजस्थान में छोटा सा गांव बिछड़ी यहां की अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर है खेत खलियान ही उनकी आजीविका के साधन है लेकिन हां कुछ कारखाने उद्योगों द्वारा इसकी से आजीविका को छीन लिया गया यहां कुछ कारखाने केमिकल फर्टिलाइजर फास्फेट आदि के स्थापित किए गए जिससे गांवों की भूमि जल हवा पर्यावरण आदि प्रदूषित हो गए तथा ग्राम वासियों के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा उच्चतम न्यायालय ने इस मामले को गंभीरता से लिया न्यायालय द्वारा आदेश दिया कि कारखानों को सील कर दिया जाए।

एम सी मेहता बनाम भारत संघ[8] (TAZ TRAPEZIUM CASE) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ताजमहल के सौंदर्य की रक्षा के लिए 292 कारखानों एवं उद्योगों को ताजमहल के आसपास से हटाने के आदेश दिए ताजमहल केवल एक सौंदर्य की वस्तु है अपितु हमारी एक अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर और अपने-आप उद्योग है प्रतिवर्ष लगभग 2000000 पर्यटक के सौंदर्य का आनंद लेते हैं देश के लिए राजस्व का स्रोत है इसका संरक्षण हमारा दायित्व है

वेल्लोर सिटीजन वेलफेयर फोरम बनाम यूनियन ऑफ इंडिया[9] प्रदूषक भुगतान सिद्धांत भारत में पर्यावरण न्यायशास्त्र का एक हिस्सा है तमिलनाडु चर्म शोधन शाला द्वारा प्रदूषण के मामले में चर्म शोधन शाला द्वारा खुले में अनौपचारिक वह श्राप से जल प्रदूषित हो गया था चर्म शोधन शाला में संशोधन प्रक्रिया में 170 रसायनों का उत्सर्जन कर रही थी जिसमें सोडियम क्लोराइड लाइन सोडियम सल्फेट सोडियम सल्फेट लिकर अमोनिया और सल्फूरिक एसिड सम्मिलित थे विषैले जलभराव से उप जल प्रदूषित हो गए थे उच्च न्यायालय ने अभिव्यक्त किया कि यद्यपि किचन निर्यात का 80% निर्यात करने वाली तमिलनाडु चर्म शोधन शालाओं का विदेशी विनिमय में बड़ा महत्व है फिर भी इन्हें परिस्थितिकी बर्बाद करने पर्यावरण राज करने और स्वास्थ्य पर संकट उत्पन्न करने का कोई अधिकार नहीं है उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि प्रदूषण प्रदूषण भुगतान करें सिद्धांत के अनुसार पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के परिपेक्ष में दायित्व केवल पीड़ितों को प्रदान करना नहीं है बल्कि पर्यावरण को ठीक करने हेतु खर्च भी सम्मिलित है

स्टरलाइट इंडस्ट्रीज इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ[10] उच्चतम न्यायालय ने के मामले में प्रदूषक भुगतान करें सिद्धांत को लागू करते हुए बिना नवीनीकरण अनुमति के उत्सर्जन एव गंदा निष्कासन मानदंड की अवहेलना करते शयंत्र चलाकर वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण का कार्य करने के लिए अपील प्रतिकार अपीलार्थी की संपन्नता को देखते हुए 100 करोड़ प्रतिकर देने का आदेश दिया।

सन्दर्भ सूची

1 उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993)1 एस सी सी 645, 730
2 ए आई आर 1978 एस सी 578
3 ए आई आर 1985 एस सी 652
4 ए आई आर 1987 एस सी 1086
5 ए आई आर 1998 एस सी 1502
6 ए आई आर 1998 एस सी 2963
7 ए आई आर 1996 एस सी 144
8 ए आई आर 1997 एस सी 734
9 ए आई आर 1996 एस सी 2715
10 एआईआर 2013 एस सी 575

कृषि आधारित उद्यमिता विकास से आत्मनिर्भरता

शिशु पाल राठौर

शोध छात्र (अर्थशास्त्र), एम जे पी आर यू बरेली

डॉ० विकास प्रधान

(**सारांश**–देश के कुल निर्यात में 13 प्रतिशत हिस्सा कृषि संबंधित उद्योगों से प्राप्त होता है। अन्य गैर–खाद्य कृषि उत्पादों की मांग आकर्षक मूल्यों पर तैयार करने में दूरगामी भूमिका निभाएंगे। कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को प्रमुख निर्यात उद्योग बनाने से कामगारों के लिए रोजगार के बहुत अवसर उत्पन्न हो सकते हैं क्योंकि यह श्रम की गहनता वाला उद्योग है।)

प्रस्तावना–"कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का आधारभूत स्तंभ है। आर्थिक सर्वे 2019 के आंकड़ों के अनुसार कृषि क्षेत्र न केवल भारत की जीडीपी में लगभग 15.96 प्रतिशत का योगदान करता है बल्कि भारत की लगभग 55 प्रतिशत जनसंख्या रोजगार के लिए कृषि क्षेत्र पर ही निर्भर है। यह क्षेत्र द्वितीय उद्योगों के लिए प्राथमिक उत्पाद भी उपलब्ध करवाता है। सरकार 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने के लिए प्रतिबद्ध है। वित्त मंत्रालय ने वित्तीय वर्ष 2020–21 बजट में कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय हेतु 1,42,762 करोड़ रुपये राशि का प्रावधान किया है। वर्ष 2019–20 का संशोधित बजट 1,09,750 करोड़ रुपये था।

सिंचाई की नई तकनीक से फसल का उत्पादन 20 से 30 प्रतिशत तक बढ़ा है। आगामी खरीफ ऋतु से सभी अधिसूचित फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य उत्पादन लागत से कम–से–कम डेढ़ गुना करने का फैसला लिया गया है। इससे किसानों की आय बढेगी और लोग खेती करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। कृषि से संबंधित बाजार की समस्या के समाधान के लिए 585 मंडियों को ई–नाम योजना के तहत एकीकृत करने की बात की गई है। इसके अलावा, 22,000 ग्रामीण मंडियों को ग्रामीण कृषि बाजारों के रूप में विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। कृषि क्षेत्र में उद्यमिता को बढ़ाने के लिए भी महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। मेगा फूड पार्कों के अलावा कृषि उत्पाद के लिए प्रसिद्ध जिलों को क्लस्टर के रूप में विकसित किए जाने की योजना है। कृषि क्षेत्र में छुपी बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कृषि संबंधित लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर बल दिया गया है। इसके तहत मत्स्यिकी, मधुमक्खी पालन, पशुपालन से जुड़े किसानों को क्रेडिट कार्ड की सुविधा प्रदान करने की बात की गई है। इसके अलावा, मात्स्यिकी तथा पशुपालन क्षेत्र में आधारभूत सुविधाओं के विकास हेतु श्मत्स्य क्रांति अवसंरचना विकास कोषश तथा श्पशुपालन हेतु आधारभूत सुविधा विकास कोष का निर्माण किया गया है। पुष्पों की खेती के साथ–साथ इत्र उत्पादन जैसे लघु उद्योगों पर भी बल दिया गया है। देश के कुल निर्यात में 16 प्रतिशत हिस्सा कृषि से प्राप्त होता है। आज भी देश की लगभग आधी श्रमशक्ति कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में ही लगी हुई है।

किसी समय में आयात पर निर्भर रहने वाला भारत आज 285 मिलियन टन खाद्यान्नों का उत्पादन कर रहा है। वर्ष 2017–18 के दौरान बागवानी फसलों का क्षेत्रफल 25.43 मिलियन हेक्टयर था एवं उत्पादन 311.71 मिलियन टन हुआ जो कुल टन खाद्यान्नों के उत्पादन से अधिक है। इस वर्ष 2020 मार्च–जून में महामारी के कारण व्यवधान के बावजूद कृषि निर्यात 23 प्रतिशत बढ़कर 25,553 करोड़ रुपये हो गया। हमने मूल्यवर्धित उत्पादों और हेल्थकेयर खाद्य उत्पादों के निर्यात में अपना ध्यान केंद्रित किया है।

कृषि क्षेत्र के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा कि हम खाड़ी देशों में भी अपनी पैठ और मजबूत करना चाहते हैं, जो पहले से ही भारत के लिए एक मजबूत बाजार है, हालांकि भारत अपने कुल आयात का केवल 10-12 प्रतिशत हिस्सा ही पूरा करता है। भारत फलों और सब्जियों के उत्पादन में दूसरा स्थान रखता है। यह सालाना 5,638 करोड़ रुपये के 8.23 लाख टन फल और 5,679 करोड़ रुपये की 31.92 लाख टन सब्जियों का निर्यात करता है। हालांकि, फलों और सब्जियों का विश्व व्यापार 208 बिलियन अमेरिकी डॉलर है और भारत का हिस्सा न्यूनतम है। हमें बागवानी उत्पादों के निर्यात पर ध्यान देने की जरूरत है। कृषि मंत्रालय ने उत्पाद विशिष्ट निर्यात संवर्धन फोरम बनाया है जिसमें आठ कृषि और संबद्ध उत्पाद जैसे अंगूर, आम, केला, प्याज, चावल, मोटे अनार और फूलों की खेती को बढ़ावा दिया गया है। कृषि क्षेत्र में स्वरोजगार के अवसरों में वृद्धि से लोगों के जीवन स्तर में सुध ार होगा एवं रोजगार के बेहतर अवसरों का सर्जन होगा।

1. मधुमक्खी पालन से शहद बनाने का बिजनेस शुरु करना
2. परंपरागत खेती की अपेक्षा फल, फूल, सब्जियों की खेतीसे अधिक आय
3. मशरूम की खेती से अधिक आय
4. डेयरी उद्योग लगाना
5. मत्स्य पालन या पोल्ट्री फॉर्म शुरु करना ।

महत्वपूर्ण स्टार्टअप मधुमक्खी पालनः

इस योजना को 'मीठी क्रांति योजना' का नाम दिया गया है। सरकार ने मधुमक्खी पालन संबंधी पहल हेतु 500 करोड़ रुपये का बजट में प्रावधान रखा है। जो निम्नलिखित के लिए योजना का कार्यान्वयन करेगी जैसे एकीकृत मधुमक्खी पालन विकास केंद्रों, संग्रह, विपणन और भंडारण केंद्रों, पोस्ट हार्वेस्ट और मूल्यवर्धन सुविधाओं आदि से संबंधित बुनियादी ढांचे का विकास; मानकों का कार्यान्वयन और ट्रेसबिलिटी सिस्टम का विकास करना, महिलाओं पर बल देने सहित क्षमता निर्माण, गुणवत्ता नूक्लीअस भंडार और मधुमक्खी पालकों का विकास होगा। इससे 2 लाख मधुमक्खी पालकों की आय में वृद्धि होगी और उपभोक्ताओं को गुणवत्तापूर्ण शहद की प्राप्ति होगी। किसानों का चयन मुख्यमंत्री लघु कुटीर उद्योग बोर्ड के माध्यम से किया जाएगा एवं प्रशिक्षण केंद्रों के माध्यम से किसानों को मधुमक्खी पालन और उत्पादन के लिए प्रशिक्षित किया जाएगा।

फल एवम सब्जियों की खेती से अधिक आय एवम् बेहतर रोजगार के अवसरः

सरकार ने फल एवं सब्जियों की खेती (टमाटर, प्याज और आलू) के लिए बजट 2020-21 में 500 करोड़ रुपये का प्रावध ान रखा है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय द्वारा संचालित ष्ऑपरेशन ग्रीस को टमाटर, प्याज और आलू से लेकर सभी फलों और सब्जियों तक बढ़ाया जाएगा। यह योजना कोल्ड स्टोरेज सहित सरप्लस से घाटे वाले बाजारों में परिवहन और भंडारण पर 50-50 प्रतिशत सब्सिडी प्रदान करेगी और इसे अगले 6 महीनों के लिए प्रायोगिक रूप से लांच किया जाएगा तथा इसे और विस्तारित किया जाएगा। इससे किसानों को बेहतर कीमत प्राप्त होगी, बर्बादी में कमी आएगी और उपभोक्ताओं को किफायती उत्पाद मिलेंगे। भारत में बागवानी उत्पादन में भी सार्थक वृद्धि देखी गई है। वर्ष 2017-18 के दौरान, 25.43 मिलियन हेक्टेयर के क्षेत्रफल से बागवानी फसलों का उत्पादन 311.71 मिलियन टन था। सब्जियों का उत्पादन 2001-02 में 88.6 मिलियन टन से बढ़कर 2018-19 तक 185.5 मिलियन टन हो गया एवं फलों का उत्पादन 43 मिलियन टन से बढ़कर 98.8 मिलियन टन हो गया है। बागवानी फसलों की खेती से रोजगार के अवसर बढ़े हैं। साथ ही, लघु और सीमांत किसानों की आय में वृद्धि हो रही है। सब्जियां अन्य फसलों की अपेक्षा प्रति इकाई क्षेत्र से कम समय में अधिक पैदावार देती हैं। साथ ही, ये कम समय में तैयार हो जाती हैं।

पत्तेदार सब्जियों की खेती तुड़ाई, कटाई, छंटाई के बाद सब्जियां :

सब्जियों की खेती से प्राप्त होने वाले उत्पादों की तुड़ाई, कटाई, छंटाई श्रेणीकरण, पैकिंग से लेकर विपणन तक के अधिकतर कार्यों में मानव श्रम की आवश्यकता अधिक होती है जो किसानों/ उद्यमियों को आय एवं रोजगार देने में सक्षम है। शहर के नजदीकी छोटे किसान भी कम समय में आने वाली एवं वर्ष में कई बार उगाई जा सकने वाली फसलों जैसे धनिया, मेथी, पालक, मूली,

गाजर, हरी मिर्च, बैंगन, टमाटर आदि उगाकर दैनिक मंडी में परिवार के 4-5 लोगों को अच्छा रोजगार और अच्छी आमदनी हो सकती है। धनिया, हरी मिर्च के दाम बरसात में 100 से 200 रुपये प्रति किलोग्राम होते है। मेथी, पालक से भी अच्छी आय होती है। एक बार बोआई पर तीन-चार बार कटिंग की जा सकती है। इनके दाम भी 40-60 रुपये प्रति किलोग्राम मंडी में प्राप्त हो जाते हैं। अनाज की फसलों से दुगुने-तीन गुने दाम और पेडापार दुगुनी-तीन गुनी एवं उनसे कम समय में फसलें तैयार हो जाती हैं। इसलिए इस क्षेत्र से ग्रामीणों को रोजगार मिलने की भी अधिक संभावना है। रोजगार मिलने के साथ-साथ फल-फूलों व सब्जियों की छंटाई, श्रेणीकरण, पैकिंग आदि से इन उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाकर अधिकतम लाभ भी कमाया जा सकता है। बागवानी फसलों के बारे में किसी भी प्रकार की तकनीकी जानकारी / मदद भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली: भारतीय बागवानी अनुसंध ान संस्थान, बंगलुरु: भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, गुरुग्राम, हरियाणा से प्राप्त की जा सकती है।

मशरूम की खेती : हमारे स्वास्थ्य के लिए संतुलित भोजन में प्रोटीन की विशेष महत्ता है। मशरूम इसका एक अच्छा स्रोत माना जाता है। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय बाजार में मशरूम की मांग तेजी से बढ़ी है, जिस हिसाब से बाजार में इसकी मांग है, उस हिसाब से अभी इसका उत्पादन नहीं हो रहा है। ऐसे में किसान मशरूम की खेती कर अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं। तीन तरह के मशरूम का उत्पादन होता है- सितंबर महीने से 15 नवंबर तक ढ़िगरी मशरूम का उत्पादन कर सकते हैं. इसके बाद आप बटन मशरूम का उत्पादन कर सकते हैं, फरवरी-मार्च तक ये फसल चलती है, इसके बाद मिल्की मशरूम का उत्पादन कर सकते हैं जो जून-जुलाई तक चलता है। इस तरह, आप साल भर मशरूम का उत्पादन कर सकते हैं।ष पौष्टिकता की दृष्टि से मशरूम की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस कारण मशरूम की खेती से रोजगार प्राप्त करके अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। हालांकि इस व्यवसाय के लिए तकनीकी ज्ञान होना अति आवश्यक है जिससे कि खाद्य मशरूमों की पहचान के साथ-साथ उन्हें अवांछनीय मशरूमों व अन्य सूक्ष्म जीवों के संक्रमण से बचाया जा सके। मशरूम की खेती के लिए स्पॉन बीज की जानकारी हेतु बागवानी भवन एन. एच. आर. डी. एफ 47 पंखा रोड, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058 फोन 011-28522211 से संपर्क करें या स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय तथा राष्ट्रीय मशरूम केंद्र चम्बाघाट, सोलन-173213 हिमाचल प्रदेश फोन 01792-230451 या वेबसाइट पर संपर्क किया जा सकता है। www.nremushroom.org

भारत में फलों की खेती:

फलों की खेती में आम, सेब, अनार, अमरूद, कटहल, जामुन, केला, नींबू व पपीता तथा फूलों सब्जियों एवं पान की खेती के लिए अपेक्षाकृत कम जमीन की आवश्यकता होती है। अपने क्षेत्र की जलवायु, जमीन एवं बाजार सुविधाओं फल फसलों का चुनाव कर सकते हैं। आम की इस समय 1500 से अधिक किस्में पाई जाती है। वर्ष 2018-19 के आंकड़ों के आधार पर कुल फलों के क्षेत्रफल 6.64 मिलियन हेक्टेयर आम की एक तिहाई की हिस्सेदारी 2.29 मिलियन हेक्टेयर जबकि उत्पादन 20.79 मिलियन टन है। सभी किस्म अपने आप में अच्छा-खासा महत्व रखती है। अपने क्षेत्र कृषि विज्ञान केंद्र की मदद से आम की किस्म एवं तकनीकी जानकारी ले सकते हैं। फिर कुछ महत्वपूर्ण किस्में जैसे हापुस (अलफांसो) महाराष्ट्र कर्नाटक में, वेगनपल्ली, नीलम एवं तोतपुरी आंध्र प्रदेश, कर्नाटक में हरी, लंगड़ा चौसा उत्तर भारत में, केसर गुजरात में हिमसागर मालदा आम मुख्यत: पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद क्षेत्र में होता है।

अनार:

भारत विश्व में अनार का सबसे बड़ा उत्पादक है। भारत में अनार की बेहतरीन किस्में पैदा होती है जिनमें नरम बीज, बहुत कम एसिड और फलों और अनाज का बहुत आकर्षक रंग होता है। विभिन्न प्रकार की नई किस्मों को अपनाने के साथ, भारत लगभग पूरे वर्ष अनार की आपूर्ति कर सकता है। व्यावसायिक किस्मों भर्गवा, फूले अरकट, गणेश गुणवत्ता में काफी बेहतर हैं और निर्यात बाजार के लिए उपयुक्त हैं। अग्रिम तकनीकी दृष्टिकोण के माध्यम से अनार उद्योग का विकास बेरोजगारी को कम करने और उद्यमिता के लिए कौशल प्रदान करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास के अवसर प्रदान करेगा।

अमरूद की खेती : अमरूद की खेती के उत्पादक श्री सुभाष जैन किसान मंदसौर (मध्य प्रदेश) बताते हैं, श्चार साल पहले बी एनआर किस्म के अमरूद के पौधे लगाए जिसे थाई ग्वावा भी कहते हैं। इसके एक एकड़ में 400 पौधे लगते हैं।ष वो बताते

हैं, ष्एक पेड़ से दूसरे पेड़ के बीच में 12 फुट सामने और आठ फुट की दूरी पर बगल में पौधे लगाने चाहिए। एक एकड़ पहली बार पौधे लगाने में कुल एक लाख रुपये का खर्च आता है।ष एक पेड़ से 25 से 30 किलो ग्राम फल निकलते हैं जो 80 से 150 रुपये किलो तक बिकता है। आपने कभी डेढ़ से दो किलो का एक बड़ा अमरूद देखा है ? बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्होंने देखा होगा, हालांकि सभी फल इतने बड़े नहीं होते हैं। मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले के किसान सुभाष जैन कई फसलों की खेती करते हैं लेकिन अमरूद की खेती उन्हें दूसरे किसानों से एक अलग पहचान दिलाती है। सुभाष 25 एकड़ जमीन पर खेती करते हैं, जिसमें से तीन एकड जमीन पर अमरूद की खेती करते हैं। इस तरह उनको 3-4 लाख प्रति हेक्टेयर की आय होती है।

डेयरी उद्योग लगाना : पशुपालन एवं डेयरी उद्योग भारतीय कृषि का अभिन्न अंग हैं। डेयरी प्रसंस्करण, मूल्यवर्धन और पशुचारा बुनियादी ढांचे में निजी निवेश का समर्थन करने के उद्देश्य से 15,000 करोड़ रुपये का पशुपालन बुनियादी ढांचा विकास कोष स्थापित किया जाएगा। विशिष्ट उत्पादों के निर्यात हेतु संयंत्र स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाएगा। भारत की अर्थव्यवस्था में पशुपालन और डेयरी उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ष 2017-18 में भारत ने 176.3 टन दूध उत्पादन के साथ विश्व दुग्ध उत्पादन में 20 प्रतिशत का योगदान देता है। वर्ष 2019 के आंकड़ों के आधार पर देश में कुल गाय और भैंसों की संख्या 302 मिलियन है। भूमिहीन श्रमिकों, छोटे किसानों व बेरोजगार ग्रामीण युवाओं के लिए पशुपालन एक अच्छा व्यवसाय है। भारतीय कृषि में खेती और पशु शक्ति के रिश्ते को अलग-अलग कर पाना अभी तक एक कल्पना मात्र ही थी। मगर आज के मशीनीकृत युग में इस कल्पना को भी एक जगह मिलने लगी है। अगर इसे रोजगार की दृष्टि से देखें तो खेती और पशुपालन एक-दूसरे के अनुपूरक व्यवसाय ही है जिसमें कृषि की लागत का एक हिस्सा तो पशुओं से प्राप्त हो जाता है तथा पशुओं का चारा आदि फसलों से मिल जाता है। इस प्रकार खेती की लागत बचने के साथ-साथ पशुओं से दूध भी प्राप्त हो जाता है जिस पर पूरा डेयरी उद्योग ही टिका हुआ है, जिसमें दूध के परिरक्षण व पैकिंग के अलावा इससे बनने वाले विभिन्न उत्पादों जैसे दूध का पाउडर, दही, छाछ, मक्खन, घी, पनीर आदि के निर्माण व विपणन में संलग्न छोटे स्तर की रियो से लेकर अनेक राज्यों के दुग्ध संघों एवं राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड जैसे संस्थानों द्वारा हजारों-लाखों लोगों को रोजगार प्राप्त हो रहा है। पशुपालन के विस्तार से रोजगार बढ़ने की प्रबल संभावनाएं हैं।

सुगीपालन : वर्ष 2019 के आंकड़ों के आधार पर देश में कुकुट की संख्या 851 मिलियन है, कुक्कुट पालन में भारत विश्व में सातवें स्थान पर है। अंडा उत्पादन में भारत का चीन और अमेरिका के बाद विश्व में तीसरा स्थान है। देश में लगभग 100 बिलियन अंडे का प्रति वर्ष उत्पादन हो रहा है। देश में 6 लाख टन मांस का कुकुट उद्योग उत्पादन करता है। मुर्गीपालन बेरोजगारी घटाने के साथ देश की पौष्टिकता बढ़ाने का भी बेहतर विकल्प है। कुमुट उद्योग में कम जगह और कम पैसों का निवेश कर अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है क्योंकि देश में अंडे एवं चिकन की मांग बहुत है और पूरे वर्ष रहती है।

चिकन, मांस व अंडों की उपलब्धता के लिए व्यावसायिक स्तर पर मुर्गी और बत्तख पालन को कुक्कुट पालन कहा जाता है। भारत में विश्व की सबसे बड़ी कुक्कुट आबादी है जिसमें अधिकांश कुक्कुट आबादी छोटे सीमांत और मध्यम वर्ग के किसानों के पास है। भूमिहीन किसानों के लिए मुर्गीपालन रोजी-रोटी का मुख्य आधार है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कुकुट पालन से अनेक फायदे हैं जैसे किसानों की आय में बढ़ोत्तरी, देश के निर्यात व जीडीपी में अधिक प्रगति तथा देश में पोषण व खाद्य सुरक्षा की सुनिश्चितता आदि। कुक्कुट पालन का उद्देश्य पौष्टिक सुरक्षा में मांस व अंडों का प्रबंधन करना है। मुर्गीपालन बेरोजगारी घटाने के साथ देश में पौष्टिकता बढ़ाने का भी बेहतर विकल्प है।

चूंकि वर्तमान बाजार परिदृश्य में कुकुट उत्पाद उच्च जैविकीय मूल्य के प्राणी प्रोटीन के सबसे सस्ते उत्पाद हैं। लेकिन देश में अभी इनका सर्वथा अभाव सामने आ रहा है क्योंकि मांग के अनुपात में इनकी उपलब्धता बहुत कम है। निरंतर बढ़ती आबादी, खाद्यान्न आदतों में परिवर्तन, औसत आय में वृद्धि, बढ़ती स्वास्थ्य सचेतता व तीव्र शहरीकरण कुक्कुट पालन के भविष्य को स्वर्णिम बना रहे हैं।

मछली पालन : प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना (पीएमएमएसवाई) के माध्यम से मछुआरों के लिए 20,000 करोड़ रुपये का बजट 2020-21 में प्रावधान रखा गया है। सरकार ने समुद्री और अंतर्देशीय (इनलैंड) मछली पालन के एकीकृत सतत और समावेशी विकास के लिए इस योजना की शुरुआत की है। समुद्री, अंतर्देशीय मछली पालन और एक्वाकल्चर से जुड़ी गतिविधियों के लिए 11,000 करोड रुपये तथा आधारभूत ढांचा - फिशिंग हार्बर्स, शीत भंडार, बाजार आदि के लिए 9000 करोड़ रुपये की धनराशि

उपलब्ध कराई जाएगी। इसके तहत केज कल्चर, समुद्री शैवाल की खेती सजावटी मछलियों के साथ नए मछली पकड़ने के जहाज, ट्रेसेलिबिलिटी (पता लगाने), प्रयोगशाला नेटवर्क आदि को बढ़ावा दिया जाएगा। मछुआरों को बैन पीरियड (जिस अवधि में मछली पकड़ने की अनुमति नहीं होती है) में सहायतार्थ, व्यक्तिगत और नौका बीमा के प्रावधान किए जाएंगे। इससे 5 साल में 70 लाख टन अतिरिक्त मछली उत्पादन होगा, 55 लाख से ज्यादा लोगों को रोजगार मिलेगा और निर्यात दोगुना होकर एक लाख करोड़ रुपये के स्तर पर पहुंच जाएगा। इसमें अंतर्देशीय, हिमालयी राज्यों, पूर्वोत्तर और आकांक्षी जिलों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। सरकार मछलीपालन को बढ़ावा देने के लिए 3427 सागर मित्र बनाएगी। भारत दुनिया का दूसरा बड़ा मछली उत्पादक देश है। वर्तमान स्थिति की बात करें तो मछली पालन की देश के सकल घरेलू उत्पादन में करीब एक प्रतिशत की हिस्सेदारी है। वर्ष 2015-16 में मछलियों का कुल उत्पादन 1.08 करोड टन था।

निष्कर्ष: खेती में बढ़ती उत्पादन लागत व घटते मुनाफे के कारण युवाओं का झुकाव भी खेती की तरफ कम होता जा रहा है। आज ग्रामीण क्षेत्रों से बड़े स्तर पर युवाओं का शहरों की ओर पलायन हो रहा है। साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि की कमी व कम आमदनी की वजह से रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। ऐसे में कृषि आधारित व्यवसायों को रोजगार के विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है। आज भी देश की लगभग आधी श्रमशक्ति कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में ही लगी हुई है। देश में बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि आधारित शहद, फल एवं सब्जियों, दूध एवं दूध के उत्पाद, मछली, चिकन एवं अंडों आदि कि दैनिक घरेलू मांग बहुत है। दूसरा, ये सभी निर्यात-उन्मुख वस्तुओं की श्रेणी में आती है इसलिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुत गुंजाईश है।

संदर्भग्रंथ:

1. सेलंकी, राकेश कुमार (2020) आत्मनिर्भर भारत रोजगार और भारतीय अर्थब्यवस्था पर इसके प्रभाव, Juni Khyat, Vol.-10, Issue-7 No.14, July 2020.
2. अर्चना सेठी, बी एल सोनेकर. भारतीय अर्थव्यवस्था और आत्मनिर्भर भारत. Int. J. Ad. Social Sciences. 2020; 8(4):191-195.
3. अनुसुइया बघेल, - गिरधर साहू. (2018). छत्तीसगढ़ में कृषि विकास के निर्धारक. *International Journal of Reviews and Research in Social Sciences*, *6*(3), 201-213.
4. रोहित चौरसिया, - महीप चौरसिया. (2021). कृषि विकास की समस्यायें एवं संभावनाएँ: जनपद जौनपुर (उ. प्र.) का एक भौगोलिक अध्ययन. *International Journal of Advances in Social Sciences*, *9*(1), 67-72.
5. बी. एल सोनेकर, - भूमिराज पटेल. (2013). कृषि एवं ग्रामीण विकास (भारत में पंचवर्शीय योजना के संदर्भ में). *Research Journal of Humanities and Social Sciences*, *4*(1), 98-100.
6. Gupta, J. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि-प्रसंस्करण आधारित उध्योगो की भूमिका Graamin arthvyavastha ke vikas mein krushi-prasanskaran aadharit udhyogo ki bhumika.
7. Rajora, C. (2021). भारतीय कृषि व्यवस्था और अंतरराष्ट्रीय सहयोग: एक अवलोकन. *Available at SSRN 3953990*.
8. Singh, K., & Shishodia, A. (2018). *Grameen Vikas: Siddhant, Neetiyan evam Prabandh*. SAGE Publishing India.
9. https://agricoop.nic.in
10. https://rural.nic.in

समलैंगिक उभयलिंगी और ट्रांसजेंडर लोगों के अधिकार

नईमउद्दीन

अतिथि प्रवक्ता, विधि विभाग, एमजेपी रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

एक न्यायपूर्ण समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छा अनुसार अपना जीवन व्यतीत करने का अवसर रहता है यद्यपि वे व्यक्ति किसी भी धर्म, जाति, विशेष लिंग से संबंध रखता हो। भारत में भी संविधान के लागू होने के पश्चात लगभग सभी प्रकार के विभेदों को उसके प्रावधानों के अनुसार खत्म करने का प्रयास किया गया लेकिन परिवर्तन प्रकृति का नियम है इसलिए समय समय पर विधियों में बदलाव महत्वपूर्ण हो जाता है इसी क्रम मे भारतीय दंड सहिंता की धारा 377 जो समाज के एक महत्वपूर्ण वर्ग LGBTQ के अधिकारों पर ना केवल रोक लगाती थी बल्कि उसे आपराधिक एवं दंडनीय भी बनाती है। LGBTQ समाज के संघर्ष को जानने से पहले इस समुदाय की जानकारी के उन शब्दों को भी जानना आवश्यक है जो विभिन्न लैंगिक पहचान के लोगो के लिए इस्तेमाल किये जाते है। L(लेस्बियन)-जब एक महिला प्यार, शादी या सेक्स के लिए किसी पुरुष की ओर आकर्षित न होकर किसी महिला के प्रति ही आकर्षित होती है तो उसे स्मेइपंद (लेस्बियन) कहा जाता है। G (गे)-जब एक पुरुष किसी महिला की ओर आकर्षित न होकर पुरुष की ओर ही आकर्षित होता है, उनको Gay (गे) कहा जाता है। B (बाईसेक्शुअल)-ये लोग किसी भी लिंग (स्त्री या पुरुष) के प्रति आकर्षित हो सकते हैं। इसे यूं समझें कि अगर एक पुरुष की दिलचस्पी महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों के साथ संबंध बनाने में भी हो सकती है। यही महिलाओं के साथ भी है। ऐसे संबंध को Bisexual (बाईसेक्शुअल) कहा जाएगा। T (ट्रांसजेंडर)-ये वे लोग होते हैं जिनका व्यवहार उनके जन्म के समय के लिंग के विपरित होता है। मान लीजिए कोई जन्म के समय पुरुष था लेकिन उसका व्यवहार महिलाओं वाला है या जन्म के समय लड़की थी लेकिन व्यवहार लड़कों वाला है तो उनको Transgender (ट्रांसजेंडर) कहा जाता है। Q (क्विअर)-यह दुविधा में फंसे लोगों की श्रेणी है। यह वे लोग होते हैं जो अपने बारे में तय नहीं कर पाते हैं कि उनका आकर्षण पुरुष की ओर है या फिर स्त्री, उनके अंदर स्त्री वाले गुण हैं या फिर पुरुष वाले। हमेशा उधेड़बुन में खोए रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए फनममत (क्विअर) का इस्तेमाल होता है।

इस प्रकार भारत मे विभिन्न कालखंडों मे एलजीबीटी समुदाय को हमने समाज मे चिन्हित तो किया अर्थात उनके अस्तित्व को तो स्वीकार किया लेकिन मूलभूत अधिकारों के बारे मे कोई चर्चा नही की यहाँ तक कि उनके आपसी संबंधों को अपराध भी घोषित किया। सही अर्थों भारत में एलजीबीटी समुदाय के अधिकारों के बारे सक्रिय रूप से 1990 के बाद से आंदोलन शुरू किए गए एवं जिसमे इस समुदाय के लोगो के अथक प्रयासों के फलस्वरूप उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गए विभिन्न निर्णयों से ना केवल इनके आपसी संबंधों को विधिक मान्यता दी गयी बल्कि कुछ महत्वपूर्ण अधिकार भी प्रदान किये गए।

एलजीबीटी समुदाय के अधिकारों का वैश्विक विकास एवं अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दस्तावेज - वैश्विक स्तर पर लगभग सभी राष्ट्रों मे एलजीबीटी व्यक्तियों के अस्तित्व को तो स्वीकार किया लेकिन चूंकि इनके आपसी संबंधों को राष्ट्रों द्वारा आपराधिक बनाया गया था इसलिए इस समुदाय को समाज मे हीन क्योकि सयुंक्त राष्ट्र मानवाधिकार संघ और विभिन्न संधियों का सार यही है कि ष्सभी व्यक्ति स्वतंत्र रूप से जन्म लेते है एवं व्यक्तिगत गरिमा और अधिकारों के संबंध मे सभी समान होते है।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948) अनुच्छेद 2 में कहा गया है कि हर व्यक्ति इस घोषणा में उल्लिखित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं को बिना किसी भेदभाव के प्रयोग का अधिकार है। इस प्रकार एलजीबीटी समुदाय पर किया गया किसी

भी प्रकार का भेदभाव अंतराष्ट्रीय मानवाधिकारों का सीधा उल्लंघन है इसलिए बदलते समय के साथ साथ अंतराष्ट्रीय स्तर पर किसी के व्यक्ति विशेष लैंगिक प्रस्तिथि के प्रति किये जाने वाले विभेद के विरुद्ध आवाजें मुखर होने लगी। 9 दिसंबर, 2010 को मानवाधिकार दिवस के अवसर पर संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की-मून ने न्यूयॉर्क शहर में फोर्ड फाउंडेशन के एक कार्यक्रम में एलजीबीटी समुदाय के संदर्भ में बात की।इस कार्यक्रम का शीर्षक था, स्टॉप डिस्क्रिमिनेशन। इस भाषण में, श्री बान ने सभी राष्ट्रों से, उनके समाज मे रहने वाले सभी व्यक्तियों के अधिकारों के लिए खड़े होने का आह्वान किया और विशेष रूप से उनके लिए जो किसी विशेष लैंगिक पसंद या प्रस्तिथि की वजह से जेल में शारीरिक, मानसिक शोषण का शिकार हुए है। इस कथन ने स्पष्ट रूप से मानवाधिकारों के संदर्भ में समलैंगिक अधिकारों के मुद्दे के लिए उनकी वकालत की पहचान की, और ऐसा करते हुए, उन्होंने इस मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र के एजेंडे पर रखा। इसी क्रम मे अगले वर्ष, 6 दिसंबर, 2011 को जिनेवा, स्विटजरलैंड में संयुक्त राष्ट्र को मानवाधिकार दिवस के संबोधन में, संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश मंत्री, हिलेरी क्लिंटन ने कहा कि आज दुनिया के समक्ष एक समुदाय के मानवाधिकार की कमी है अर्थात उन्होंने एलजीबीटी समुदाय के सदस्यों की समानता और सम्मान की गारंटी के संबंध मे कहा कि ये सभी राष्ट्रों की नैतिक जिम्मेदारी है कि वे इस समुदाय के उनके मूलभूत अधिकारी प्रदान करे जिनके वे हकदार भी है। उन्होंने एलजीबीटी समुदाय को अदृश्य अल्पसंख्यक कहा और कहा कि इस समुदाय के मानवाधिकार पूरी दुनिया में खतरे में थे, इसलिए उन्होंने एलजीबीटी व्यक्तियों की अधिक सुरक्षा का आह्वान किया। उन्होंने जोर देकर कहा कि समलैंगिक अधिकार और मानवाधिकार अलग नहीं हैं, जैसा कि कुछ व्यक्तियों ने यह तर्क दिया है कि इस समुदाय के अधिकार मानवाधिकारों से भिन्न है,और साथ ही उन्होंने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को एक मूलभूत संयुक्त राष्ट्र दस्तावेज के रूप में संदर्भित किया है जो समलैंगिक अधिकारों को मानवाधिकारों की गारंटी देता है। उन्होंने रेखांकित किया कि किसी भी रूप में एलजीबीटी समुदाय के खिलाफ की गई हिंसा मानव अधिकारों का उल्लंघन है, जिसमें जीवन संबंधित मूलभूत सुविधाओं से वंचित करना एवं समान न्याय तक पहुंच से वंचित करना शामिल है। अंत में, सुश्री क्लिंटन ने कहा कि समाज मे सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं के लिए उचित सम्मान होने के बावजूद, ये प्रथाएँ, मानवाधिकारों को पीछे नहीं छोड़ती हैं, इसलिए विशेष यौन अभिविन्यास या लिंग पहचान के आधार पर नागरिकों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करना एक घोर अन्याय है। 17 जून 2011 को, दक्षिण अफ्रीका ने UNHRC में एक प्रस्ताव का नेतृत्व करते हुए संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त (OHCHR) से अनुरोध किया कि वे व्यक्तियों के खिलाफ उनके यौन अभिविन्यास और लिंग पहचान के आधार पर हिंसा के कृत्यों का एवं विभेदकारी विधियों एवं प्रथायो के संबंध मे एक दस्तावेज का मसौदा तैयार करे, ये प्रस्ताव बहुमत से पारित हुआ इसलिए यह इस तरह का पहला प्रस्ताव था और इसे ऐतिहासिक कहा गया।

अगले क्रम में जुलाई 2014 में, संयुक्त राष्ट्र (एक नियोक्ता के रूप में) यह घोषणा कि यह समान-लिंग कर्मचारियों को यूनियनों में अन्य कर्मचारियों की भांति समान लाभ प्रदान करेगा, जहां तक वे कानूनी हैं।

इसी क्रम मे सितंबर 2014 में ब्राजील, चिली, उरगवे जैसे राष्ट्रों ने UNHRC में विशेष यौन अभिविन्यास एवं पहचान के अधिकारों एवं स्थिति के संबंध में एक और प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो सकारात्मक रूप से पारित भी हुआ।

भारत तथा विभिन्न राष्ट्रों में एलजीबीटी समुदाय के अधिकारों की स्थिति - जब अंतराष्ट्रीय स्तर पर एलजीबीटी समुदाय के अधिकारों के संबंध मे चर्चाओं ने जोर पकडा तो विभिन्न राष्ट्रों पर ये दवाब बनने लगा कि वे अपने समाज मे व्याप्त ऐसी प्रथायो, नियमों एवं विधियों को खत्म करे जो इस समुदाय के अधिकारों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबंधित करती है। सयुंक्त राष्ट्र के मानवाधिकार संघ के द्वारा इस समुदाय के अधिकारों के सबंध में जब विभिन्न प्रस्तावों को पारित किया गया तब लगभग ज्यादातर राष्ट्रों ने एलजीबीटी समुदाय के अधिकारों के लिए सकारात्मक कदम उठाए, जैसे बोत्सवाना, भारत, केन्या और त्रिनिदाद और टोबैगो में समलैंगिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने वाली विधियों को उलटने के प्रयास सामने आए हैं। अंतराष्ट्रीय लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल, ट्रांस और इंटरसेक्स एसोसिएशन के कार्यकारी निदेशक आंद्रे डु प्लेसिस के अनुसार, "हमने बहुत सारे रोमांचक बदलाव देखे हैं, प्रगति धीमी तो है, लेकिन स्थिर रही है।" उन्होंने आगे कहा कि एलजीबीटी अधिकार आंदोलन की वैश्विक प्रभाव यह है कि अफ्रीका, एशिया और यहां तक कि मध्य पूर्व में इस समुदाय के अधिकारों के प्रति सुधार हुआ है और इनके सम्बन्धो को अन्य देशों की भांति वैधानिक बनाया गया है।इन्ही राष्ट्रों में से कुछ प्रमुख राष्ट्र निम्न प्रकार है-

ब्राजील

ब्राजील पूरे विश्व में एलजीबीटी समुदाय के अधिकारों के प्रति सबसे सजग राष्ट्र रहा है इसलिए इसने अप्रैल 2003 मे विशेष यौन अभिविन्यास और लिंग के आधार पर हो रहे भेदभाव को रोकने हेतु सयुंक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। ब्राजील के प्रमुख शहर रियो डी जनेरियो के पूर्व मेयर एडुआर्डो पेस ने घोषणा कि,प्रियो पूर्वाग्रह के बिना एक शहर है, यह एक स्वतंत्र एवं खुला शहर है जो सभी समुदायों को खुले दिल से स्वीकार करता है। इसलिए ब्राजील का बड़ा एलजीबीटी समुदाय ब्राजील की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण कारक रहा है।

अमेरिका

अमेरिका विश्व का सबसे पुराना लोकतांत्रिक राष्ट्र रहा है इसलिए पिछले दशक से अमेरिका में भी एलजीबीटी समुदाय के प्रति विधयिका से लेकर कार्यपालिका ने काफी सकारत्मक कदम उठाए है। इसी को लेकर 2011 में, पूर्व विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन ने संयुक्त राष्ट्र के समक्ष घोषणा कि ष्समलैंगिक अधिकार मानव अधिकार हैं। यह ओबामा प्रशासन द्वारा घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एलजीबीटी अधिकारों की रक्षा के लिए एक मजबूत प्रतिबद्धता का संकेत था। इस घोषणा के फलस्वरूप ओबामा प्रशासन द्वारा सभी अमेरिकी एजेंसियों में एलजीबीटी अधिकारों को 'बढ़ावा देने और संरक्षित करने' के लिए एक व्यापक पहल की गई।

इस पहल के अंतर्गत राज्य विभाग ने समलैंगिकों, समलैंगिक पुरुषों, उभयलिंगियों और ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के मानवाधिकारों के लिए अमेरिकी विशेष दूत को नियुक्त किया, जो घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एलजीबीटी अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए कार्य करेगा। वहाँ के प्रशासन ने एलजीबीटी अधिकारों को एक कूटनीतिक माध्यम के तौर पर इस्तेमाल करते हुए, एक समान विवाह को वैधीकरण बनाया ताकि अन्य देशों से सहायता प्राप्त की जा सके।

नाज फाउंडेशन बनाम एन सी टी दिल्ली, 2009

पृष्ठभूमि - इस मामले में जुलाई 2001 में, आईपीसी की धारा 377 के तहत, लखनऊ पुलिस ने एक पार्क पर छापा मारा और कुछ पुरुषों को समलैंगिक होने के संदेह में हिरासत में लिया। साथ ही पुलिस ने "भरोसा ट्रस्ट" से जुड़े नौ और लोगों को भी गिरफ्तार किया, जो एक गैर सरकारी संगठन था, जो सुरक्षित यौन प्रथाओं और एसटीडी के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए काम कर रहा था। इस घटना के पश्चात कुछ एडवोकेट के संगठनों ने न्यायालय में कहा कि इन लोगों के प्रति झूठे आरोप लगाए गए है और जिसके बाद इन्हें रिहा किया गया। लखनऊ की घटना के बाद, एक एनजीओ नाज फाउंडेशन ने लॉयर्स कलेक्टिव के साथ आगे बढ़कर 2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष आईपीसी की धारा 377 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए एक याचिका दायर की।

दलीलें: याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि आईपीसी की धारा 377 अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार, निजता और गरिमा के अधिकार, स्वास्थ्य के अधिकार, समानता के अधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन करती है। उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि इस धारा ने सार्वजनिक स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी प्रयासों को भी कमजोर कर दिया है, जिसका उद्देश्य एचआईवी एड्स के संचरण के जोखिम को कम करना था, क्योंकि इस धारा के तहत अभियोजन एवं दंड के भय की वजह से लोगों में यौन संबंधों को लेकर खुलकर बात करना आसान नही है।

निर्णय: अंत में, नाज फाउंडेशन बनाम एन सी टी दिल्ली 2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने माना कि आईपीसी की धारा 377 दो वयस्कों पर निजी तौर पर सहमति से संभोग करने पर अनुचित प्रतिबंध लगाती है। इस प्रकार, यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14,15,19 और 21 के तहत निहित उनके मूल मौलिक अधिकारों का प्रत्यक्ष उल्लंघन करती है।

सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज फाउंडेशन, 2013

पृष्ठभूमि: विभिन्न व्यक्तियों और आस्था-आधारित समूहों ने नैतिकता और परंपरा से युक्त भारत के समृद्ध इतिहास के आलोक में समलैंगिक संबंधों को अपराध से मुक्त करने के विचार का जोरदार रूप से विरोध किया। उन्होंने भारत के सर्वोच्च न्यायालय से धारा 377 की संवैधानिकता पर पुनर्विचार करने की अपील की।

निर्णय: जब यह समुदाय आठ साल की लंबी लड़ाई के बाद राहत की सांस ले रहा था, सुप्रीम कोर्ट ने 11 दिसंबर 2013 को दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को पलट दिया और समलैंगिकता को फिर से अपराध घोषित कर दिया। न्यायमूर्ति जीएस सिंघवी और न्यायमूर्ति एसजे मुखोपाध्याय न्यायालय की एक पीठ ने कहा कि एलजीबीटी व्यक्तियों ने एक 'अल्प अल्पसंख्यक' समूह का गठन किया है और इसलिए यह संवैधानिक संरक्षण के लायक नहीं है और आगे कहा कि आईपीसी की धारा 377 असंवैधानिकता के दोष से ग्रस्त नहीं है।

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ, 2014

पृष्ठभूमि: भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय पूरे एलजीबीटी समुदाय के बीच उनकी निम्न सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक स्थिति के कारण शोषण का सबसे अधिक पीड़ित रहा है। इन लोगों को कभी भी समाज का हिस्सा नहीं माना गया है और हमेशा समाज के हाथों शोषण, बहिष्कार, अपमान और हिंसा का शिकार हुए हैं। निरंतर अस्वीकृति और संसाधनों तक पहुंच न होने के कारण, ये लोग अक्सर भिक्षावृत्ति या वेश्यावृत्ति का सहारा लेते रहे है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट का 2014 का फैसला इन ट्रांसजेंडर लोगों के लिए आशा और उत्साह की एक नई किरण लेकर आया, क्योंकि इतिहास में पहली बार उन्हें थर्ड जेंडर के रूप में मान्यता दी गई थी।

मुद्दा: राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ में, सुप्रीम कोर्ट को इस सवाल पर फैसला करना था कि क्या सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, आरक्षण के उद्देश्यों के लिए हिजड़ा और ट्रांसजेंडर समुदाय को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता देने की आवश्यकता है या नहीं?

विवाह के अधिकार का संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। लेकिन, लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 2006 एससी 2522 के ऐतिहासिक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का हिस्सा माना। विवाह के अधिकार को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार चार्टर में "एक परिवार रखने का अधिकार" शीर्षक के तहत और विभिन्न अन्य अभिसमयों के अंतर्गत मान्यता प्राप्त है, लेकिन क्या ये कानून समलैंगिक विवाह को शामिल करने के लिए पर्याप्त हैं, यह अभी भी एक बड़ा सवाल है। एक महत्वपूर्ण बात यह और है कि जब पूरी दुनिया के कोने-कोने का साम्यवादी सोच विस्तार हो रहा है, तब भी भारतीय समाज रूढीवादी है और लोग अभी भी अपने बच्चों द्वारा अंतरजातीय विवाह करना या तो पसंद नहीं करते हैं या उन्हें अनुमति प्रदान नही करते है। आज भी भारत में व्यक्ति अलग-अलग जाति और धर्म में विवाह करने के कारण मारे जाते हैं, तो यह कहना उचित लगता है कि समलैंगिक विवाह के विचार को भारतीय समाज द्वारा स्वीकार करना और भी मुश्किल है।

दत्तक

विवाह से संबंधित एक सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है बच्चों को दत्तक पर ग्रहण करना या दत्तक पर देना। समलैंगिक विवाह के जोडो में सबसे अधिक समस्या बच्चों से संबंधित ही है क्योंकि ऐसे जोडे प्राकृतिक तौर पर गृभ रखने में असमर्थ होते है इसलिए समलैंगिक जोडो को दत्तक संबंधित अधिकार दिए जाने अति आवश्यक हो जाता है। भारत में, गोद लेना धर्मनिरपेक्ष और व्यक्तिगत दोनों कानूनों द्वारा शासित होता है। हिंदुओं के मामले में, यह हिंदू दत्तक एवं भरण पोषण अधिनियम, 2005 द्वारा शासित होता है, जबकि मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों आदि के मामले में गोद लेने के संबंध में कोई व्यक्तिगत कानून नहीं हैं। हिंदू दत्तक एवं भरण पोषण अधिनियम, 2005 यह प्रावधानित करता है कि एक हिंदू विवाहित पुरुष या महिला अपने साथी की सहमति से बच्चे को गोद ले सकती है। साथ ही साथ इसी तरह, यह कानून एकल पुरुषों और महिलाओं को भी बच्चा गोद लेने की अनुमति देता है, बशर्ते कि वे वयस्कता की आयु प्राप्त कर चुके हों और विकृत दिमाग के न हों। हालाँकि प्च्ब् की धारा 377 को अपराध से मुक्त कर दिया गया है, फिर भी यह कानून एलजीबीटी समुदाय को पूरी तरह से बच्चों को गोद लेने से रोकता है। यह दर्शाता है कि समलैंगिक जोड़े कानून के समक्ष अभी भी समान नहीं हैं।

शैक्षणिक स्थलों पर भेदभाव

कहते है शिक्षा सबको समानता का पाठ पठाती है लेकिन दुर्भाग्यवश भारत में शिक्षा के मंदिरों में ही एलजीबीटी समुदाय के छात्रों के साथ असमानता का व्यहवार किया जाता है। यह एक गंभीर वास्तविकता है कि शिक्षक और प्रोफेसर एलजीबीटी छात्रों

का खुलकर समर्थन नहीं करते हैं और अक्सर उन्हें अपनी शारिरिक पसंद के बारे में चुप रहने के लिए प्रोत्साहित एवं मजबूर किया जाता है। इस वजह से, जो छात्र अपने शिक्षकों की इस प्रकार की विचारधारा के नेतृत्व में होते हैं, वे एलजीबीटी छात्रों से दूर हो जाते हैं। इसकी वजह से ही एलजीबीटी छात्रों को अक्सर अपने ही सहपाठियों या साथियों द्वारा स्कूलों और कॉलेजों में उत्पीड़न और भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

पारिवारिक अस्वीकृति

एलजीबीटी समुदाय के सामने अगर सबसे बडी कोई समस्या है तो वह पारिवारिक अस्वीकृति है। भारत मे ऐसा सामान्यत: देखा जाता है कि इस समुदाय के सदस्यों को उनके परिवार द्वारा ही सबसे पहले अस्वीकार एवं उनकी शारीरिक पसन्द को दरकिनार किया जाता है। आंकड़े बताते हैं कि एलजीबीटी व्यक्तियों के रूप में सामने आने वाले 50% से अधिक युवा अपने परिवार से ही नकारात्मक प्रतिक्रिया का सामना करते हैं। जबकि कुछ माता-पिता खुले तौर पर अपने बच्चों को डांटते हैं, एवं उनपर चुप रहने का दवाब बनाया जाता है। इसीलिए छोटे बच्चे एलजीबीटी के रूप में सामने आने से हिचकिचाते हैं क्योंकि उन्हें अपने माता-पिता और अपने ही परिवार से अस्वीकृति का डर होता है। पारिवारिक अस्वीकृति का सबसे कुरूप पक्ष एलजीबीटी बच्चों को बेघर कर देना होता है क्योंकि कुछ माता-पिता एलजीबीटी किशोरों को बिना किसी

पारिवारिक स्वीकृति - इस समुदाय के उत्थान के लिए सबसे प्रारंभिक आवश्यकता परिवार के स्तर पर स्वीकृति एवं उनका समर्थन करना है। क्योकि ज्यादातर मामलों में देखा गया है कि इस समुदाय के व्यक्ति अपनी विशेष पसंद को अपने घर वालो के सामने उजागर करने में संकोच करते है क्योंकि उन्हें डर होता है कि इस पसन्द की वजह से उन्हें घर से निकाला जा सकता है। इसलिए वे हमेशा डिप्रेशन एवं अन्य मानसिक बीमारियों से ग्रसित रहते है। इसलिए सबसे पहले हमें इस समुदाय को परिवार के स्तर पर स्वीकार एवं समर्थन करना होगा।

सामाजिक जागरूकता - चूँकि परिवार के संयोजन से ही समाज का निर्माण होता है इसलिए सामजिक स्तर पर हमें इस समुदाय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को फैलाने एवं अपनाने की आवश्यकता है।सरकार इस संबंध में जागरूकता अभियान, योजनाएं चलाये जिसके माध्यम से इस समुदाय के व्यक्ति सामजिक भेदभाव एवं हिंसा का शिकार बनने से रोका जा सके।

रोजगार सम्बंधित अधिकार - इस समुदाय को सबसे अधिक मार आर्थिक तौर पर झेलनी पड़ती है। इसलिए सरकार पर ये कर्तव्य बनता है कि वे इनके उत्थान के लिए अधिक से अधिक रोजगार सम्बंधित योजनाएं चलाये और आरक्षण की भी व्यवस्था की जाए।

विधिक सहायता - केवल भारतीय दंड सहिंता की धारा 377 के अवैधीकरण से ही इस समुदाय का विकास नही हो सकता है।भारत में विधयिका हमेशा से ही इस समुदाय के अधिकारों के प्रति उदासीन रही है।अर्थात संसद द्वारा ऐसे प्रभावी विधियों को पारित किए जाने की आवश्यकता है जो न केवल इस समुदाय के विकास को सुनिश्चित करे बल्कि इनके प्रति होने वाली हिंसा के विरुद्ध कठोर से कठोर दंड देने की भी व्यवस्था करे।

शैक्षणिक संस्थानों - शैक्षणिक संस्थान हमेशा से ही समाज की धुरी रहे है इसलिए हमें सबसे पहले शैक्षणिक स्तर पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को खत्म करना होगा।जैसा कि हम पहले ही समझ चुके है कि इस समुदाय को शैक्षणिक संस्थाओं में गम्भीर भेदभाव का शिकार होना पडता है। इसलिए शैक्षणिक संस्थानों मे भेदभाव को रोकने के लिए कडे दिशा निर्देश होने चाहिए एवं इनका उल्लंघन होने पर कठोर दंड की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

सन्दर्भ सूची

एम.पी. जैन, इन्डियन कॉंस्टीट्यूशनल लॉ
जे.एन. पान्डे, कॉंस्टीट्यूशन ऑफ इन्डिया
दुर्गादास बसु, कॉंस्टीट्यूशनल लॉ
ह्यूमन राईट्स, एच.ओ. अग्रवाल
यूएन, मानवाधिकार आयोग, वेबसाइट
विकिपीडिया वेबसाइट

नागरीय भूगोल
भारत में नगरीकरण का बढ़ता प्रभाव तथा उससे उत्पन्न मालिन बस्ती की समस्या

डॉ० रत्न प्रकाश द्विवेदी

भौगोलिक शोध पत्र, असि0 प्रो0 भूगोल, (खरडीहा महाविद्यालय, खरडीहा, गाजीपुर)

प्रस्तावना:-वर्तमान विश्व तेजी से नगरीकरण की ओर बढ़ रहा है। आर्थिक विकास का आधार अब नगर हो गया है। नगर रोजगार, तकनीकी प्रगति, नवाचार, वित्तीय लेन देन ज्ञान के संग्रह एवं सृजन के केन्द्र के रूप में आर्थिक विकास की धुरी बन गया है और इस केन्द्र की ओर ग्रामीण परिवेश से तेजी से प्रवास हो रहा है। पिछड़े क्षेत्रों एवं राज्यों से उन्नत शहरों और प्रगतिशील राज्यों के बड़े शाहरों में लोगों के प्रवास की स्थिति बन गयी है। नागरीय आबादी में वृद्धि का कारण आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व राजनीतिक विकास। ग्रामीण जनसंख्या अपने-अपने गाँवों से रोजगार की तलाश में या किन्हीं और वजहों से पलायन करके शहरों में आकर स्थायी रूप से बस जाते है। शहरों की ओर लगातार पलायन से यहाँ आवास की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जिससे मालिन बस्ती का जन्म होने लगता है। यह मालिन बस्तियाँ शहरों में अवस्थित ऐसे क्षेत्र होते हैं जिनमें निम्न स्तर की आवास व्यवस्था होती है। एक मलिन बस्ती सदैव एक ऐसा क्षेत्र होता है, जिसमें एक से आध्कि आवास होते है। इस प्रकार मलिन बस्ती शहर का सघन बसा क्षेत्र होता है, जहां निम्न आर्थिक स्तर पर उच्च अपराध दर पायी जाती है। यह मलिन बस्तियाँ ग्रामीण गरीब के लिए एक चुम्बक का कार्य करती है जो शहरी जीवन की और आकर्षित होती रहती है। भारत के सन्दर्भ में बात की जाय तो यहा मलिन बस्तियों की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक है। इन बस्तियों में रहने वाले लोगों की मूलभूत सुविधाओं का अभाव रहता है। यहाँ हमेशा पेयजल, स्वास्थय सुविधाओं, शिक्षा, रहन-सहन आदि की पूर्ति नहीं हो पाती है।

अध्ययन का उद्देश्य:-

भारत में बढ़ते नगरीकरण के साथ-साथ मलिन बस्तियों का भी विस्तार तीव्रगति से होता जा रहा है। इस संदर्भ में अध्ययन की कुछ मुख्य उदेश्यों पर चर्चा करेंगे।

1) अपने विषय के अध्ययन में भारत के वर्तमान नगरीय स्थिति की जानकारी उपलब्ध कराना।
2) नगर में होने वाले प्रवास तथा प्रवासियों के आने के कारणों का अध्ययन करना।
3) नगर क्षेत्र में स्थित मालिन बस्तियों की स्थिति का अध्ययन करना।
4) भारत में मलिन बस्ती के विकसित होने के कारणों का पता लगाना।
5) भारत में मलिन बस्तियों में व्याप्त समस्याओं की जानकारी उपलब्ध कराना।
6) भारत में मलिन बस्तियों के सुधार के लिए सरकारी क्रियान्वयन व हस्तक्षेप की जानकारी उपलब्ध करना।

भारत में बढ़ता नगर विस्तार व उससे उत्पन्न समस्यायें:-

नगरीकरण का सामान्य अर्थ नगरों की वृद्धि से है। ग्रामीण जनसंख्या का शहरी जनसंख्या में परिवर्तन की प्रक्रिया को नगरीकरण कहा जाता हैं।

नगर में जनसंख्या वृद्धि के कारण नगर का विस्तार बढ़ता जा रहा है। इस नगर विस्तार के कारण नगर के आस-पास के बाहरी इलाके जो कभी ग्रामीण क्षेत्र हुआ करते थे अब नगर में तब्दील होते जा रहे है। बढ़ते नगरीकरण के कारण कई समस्याएँ नए-नए रूप में सामने आते रहती है। कुछ मुख्य नगरीय समस्याएँ है:-

1) पर्यावरणीय समस्या, 2) आवास की समस्या, 3) रोजगार की समस्या, 4) अन्य सामाजिक समस्याएँ

1) **पर्यावरणीय समस्या:**-इसके अन्तर्गत बात की जाए तो महानगरों में प्रदूषण का मुख्य कारण वाहनों एवं औद्योगिक संस्थानों द्वारा निकले हुए विषैले रसायन है। औद्योगिक नगरों में जाड़े के मौसम में तापीय प्रतिलोमन के समय कारखानों की चिमनियों से निस्सृत धूम्र एवं सल्फर के स्थिर वायु के साथ मिश्रण के कारण जानलेवा नगरीय धूम्र कोहरे की उत्पत्ति होती है। बढ़ती नगरीकरण की प्रवृत्ति ने जल को भी काफी हद तक प्रभावित किया है। नगरों में पक्के आवासों की संख्या बढ़ती जा रही है जिससे वर्षा का जल रिसकर अंदर नहीं जा पाता है। जिसके कारण धरातलीय जल-स्तर में कमी आ रही है। महानगरों में कारखानों द्वारा निकले कचरे नदी-नालों में मिलकर उसे दूषित कर देते हैं। भारत के अधिकांश महानगरों में ध्वनि का स्तर 70-80 डेसीबल तक पहुंच गया है जिससे श्रवण-सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं।

2) **आवास की समस्या:**-यह समस्या महानगरों में एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। महानगरों व नगरों में रहने के लिए बाहरी लोग जाते है तो उन्हें मुश्किल से ही ठीक-ठाक मकानों में एक-दो कमरे उपलब्ध हो पाते हैं। ज्यादातर गरीब लोग मलिन बस्तियों के शरण में चले जाते हैं।

3) **रोजगार की समस्या:**-जिस तरह से नगरीय जनसंख्या में वृद्धि होती जा रही है, उसी तरह से रोजगार में वृद्धि नहीं हो पा रही है। कुछ वर्षों से सरकारी प्रयास से ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में रोजगार के लिए कार्यक्रम चलाये गये है। जिससे कुछ जनसंख्या स्थानांतरण में कमी आई है।

भारत में नगरीकरण पर प्रवास का प्रभाव:-

जब ग्रामीण जनसंख्या अपने बेहतर भविष्य एवं आय के साधन की तलाश में या किन्ही और उद्देश्यों से गाँवो से निकलकर शहरों में आकर स्थायी रूप से बस जाती है तो स्थिति शहरी या नगरीय प्रवास कहलाता है।

भारत का गॉव नगर की तुलना में आज भी संसाधन होते हुए भी मनुष्य के श्रोत उपलब्ध कराने में अक्षम है। ग्रामीण समाज प्राथमिक कार्यो में ज्यादा संलिप्त रहते हैं जो उन्हें लम्बे समय तक आय के साधन उपलब्ध नहीं करा पाती है। जिस कारण ग्रामीण जनसंख्या को मजबूरन शहर की ओर प्रस्थान करना पड़ता है जहाँ उन्हें विभिन्न प्रकार के रोजगार के अवसर दिखाई देते है। बड़े-2 महानगरों के प्रवासी सिर्फ गाँवो के ही नही होते है वरन् दूसरे अन्य छोटे-छोटे शहरों, कस्बों आदि से आये हुए होते है। नगरों एवं महानगरों में सिर्फ आय के उद्देश्य से ही प्रवास नहीं होता है बरन आधुनिक जीवन शैली व अच्छी व उच्च शिक्षा के लिए भी नागरिकों का जमावड़ा होता जाता है। बड़े-बड़े नगर व महानगर में सिर्फ छोटे-छोटे गाँव , कस्बें व अन्य शहरों के लोगों का ही आगमन नहीं होता है वल्कि यहाँ अन्य देशों से आये हुए शरणार्थी भी एक बेहतर व सुरक्षित माहौल में अपने अस्तित्व को बचा कर रखना चाहते हैं। उदा० के लिए कोलकाता जैसे महानगर में बांग्लादेशी तथा आस-पास के देशों के लोग बँटवारे के समय से ही आ-आ कर बसते रहे है। उसी प्रकार दिल्ली जैसे महान महानगर में भारत-पाक बँटवारे के समय से पाकिस्तान के लोग आकर बस गये थे। और यह स्थिति आज भी जारी है जो आये दिन समाचारों के माध्यम से जानकारी मिलती रहती है। मुम्बई जैसे महानगर में भी पूर्व काल से ही पाकिस्तान , आदि के प्रवासी पलायन कर के बसते चले गये थे। अत: नगरीय प्रवास सिर्फ देश के आन्तरिक भाग से ही नहीं होता है वरन् अन्य देश के लोग भी समय-समय पर आकर यहाँ बेतरतीब ढ़ग से जहाँ-तहाँ आवास बना कर रहने लगते है।

बढ़ते नगरीकरण के कारण उत्पन्न मलिन बस्तियों का विस्तारः-

भारत में मलिन बस्ती की समस्या हर छोटे से बड़े शहरों में व्याप्त है। छोटे, भीड़भाड़ वाले क्षेत्रों, हवाई अड्डों, रेलवे लाइनों, उद्योगों, नदियों और अन्य जल निकायो और बाजारों के आसपास बनाई जाती हैं। इन बस्तियों में पॉलीथीन, तिरपाल , स्टील के चादरों से बने सामाग्रीयों से बने घर होते हैं। इन बस्तियों में कही-कहीं ईट और बालू से बने मकान में भी लोग रहते हैं। भारत की 17. 5% शहरी आबादी झुग्गी-झोपड़ी में निवास करती है।

2012 में NSSO के एक सर्वे के अनुसार भारत के शहरी क्षेत्रों में कुल 33,510 झुग्गियाँ स्थित है। आवास का विकल्प ना होना मलिन बस्तियों की बसावट की बड़ी वजह है। बड़े शहरों में पलायन कर जाने वाले कमजोर तथ्य के लोग सस्ते आवास के तलाश में रहते है। लेकिन ऐसे आवासों की अपर्याप्त अपूर्ति के कारण वे ऐसी मलिन बस्तियों में रहने को मजबूर होते है। और यही से शहरों में झुग्गी-झोपडिघ्यों को प्रोत्साहन मिलता है। गाँवों से शहरों की ओर पलायन ही शहरों में झुग्गियों के बसावट का प्राथमिक कारण है। इन झुग्गियों में रहने वाले लोग वे लोग हैं जिनकी आर्थिक स्थिति बेहद खराब होती है। त्यादातर मजदूर वर्ग के लोग हैं जिनके पास रोजगार का कोई ठोस विकल्प नही होता है। रोजगार सुनिश्चित नहीं होने से इनके पास आर्थिक तंगी होती है। आर्थिक तंगी के कारण वित्तीय सुविधाओं तक इनकी सीमित पहुँच होती है। गरीबी के कारण इनकी क्रय शक्ति कमजोर हो जाती है। रोजमर्रा की चीजों को खरीदना इनके लिए आसान नही होता है। भोजन के अलावा आवास के लिए जरूरी चीजों तक सुनिश्चित पहुँच नहीं। सरकारों में इसके प्रति राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी भी एक वजह है।

अगर सरकारी प्रयास कुछ की भी जाती है तो यहाँ के रहने वाले लोग इसे सफल नहीं होने देते हैं। सरकार में कई बार पक्के मकान की व्यवस्था की परन्तु ये लोग इन मकानों को बेचकर फिर कहीं और जाकर झुग्गियों में शरण ले लेते है। बस कहीं से पैसे का बंदोबस्त हो जाए इसी तलाश में ये लोग लगे रहते है। नीचे सूची द्वारा भारत की कुल झुग्गीं आबादी में झुग्गी आबादी का राज्य हिस्सा दर्शाया गया है-

प्रतिशत में

राज्य/के0 शा0 प्र0	2001	2011
भासित आंध्र प्रदेश	12.0	
पर मलिन बस्ती बिहार	1.6	1.9
छत्तिसगढ में	2.1	2.9
गुजरात हैं	3.8	2.6
हरियाणा	3.2	2.5
कर्नाटक	4.5	5.0
मध्य प्रदेश	7.2	8.7
महाराष्ट्र	22.9	18.1
दिल्ली	3.9	2.7
उड़ीसा	2.1	2.4
अन्य राज्य/के0श0प्र0	3.1	3.8
पंजाब	2.8	2.2
राजस्थान	3.0	3.2
तामिलनाडु	8.1	8.9
उत्तर प्रदेश	11.0	9.5
पश्चिम बंगाल	8.9	9.8

यहाँ सूची द्वारा भारत के उन राज्यों तथा केन्द्र 15.6 शासित आंध्र प्रदेश प्रदेशों को दिखाया गया है जहाँ पर मलिन बस्ती की आबादी 1 प्रतिशत से अधिक है। जिन राज्यों का इसमें उल्लेख नहीं किया गया है। उन राज्यों/के0शा0प्र0 में मलिन बस्तियों का प्रतिशत 1 से कम अथवा शून्य है।

श्रोत:-हैण्डबुक ऑफ अर्बन स्टेटिस्कस 2019

(सेन्सस ऑफ इण्डिया 2001-2011)

भारत में मलिन बस्तियों की समस्याएं:-

1) आवास की समस्या-

- मलिन बस्तियों की सबसे गम्भीर समस्या
- कच्चे एवं असुरक्षित मकान
- मकानों में स्वच्छ हवा एवं उचित रास्तों का अभाव
- गन्दगी की समस्या
- छोटे मकानों में क्षमता से अधिक लोग निवासित
- NSSO के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर मलिन बस्तियों में 60% आवास ही पक्की संरचना वाले थे।
- गैर-अधिसूचित मलिन बस्तियों के 42% पक्के आवासों की तुलना में अधिसूचित मलिन क्षेत्र के 85% पक्के आवास है।

2) स्वच्छता एवं स्वास्थ्य की निम्न स्थिति-

- देश के मलिन क्षेत्रों में 31% में ड्रेनेज सुविधा नहीं है।
- 27% में कूड़ा निस्तारण प्रबन्ध की व्यवस्था नहीं है।
- 32% क्षेत्रों में बरसात में जलभराव की समस्या बनी रहती है।
- इन क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों में बाल मृत्युदर स्वच्छ आवास एवं पर्यावरण में रहने वाले शहरीपरिवारों की तुलना में तीन गुनी अधिक है।

3) उचित शिक्षा की समस्या-

- देश के नगरों में शिक्षा की दर 84.1% है जबकि मलिन बस्तियों में यह दर 77.7% है यह राष्ट्रीय स्तर (74. 04%) से अधिक है।

4) अन्य मूलभूत सुविधाओं का अभाव-

- देश के मलिन क्षत्रों में पेयजल के प्रमुख श्रोत के रूप में नल की सुविधा मात्र 71% है। इस सन्दर्भ में तामिलनाडु (97%) एवं कर्नाटक (95%) उच्च स्थान पर हैं, जबाकि बिहार (9%) एवं उड़ीसा (14%) निचले स्थान पर है।
- मलिन बस्तियों में 6.5% ऐसे भी हैं जहां अभी भी बिजली नहीं पहुँची है।
- केवल 66% मलिन बस्ती क्षेत्रों में पक्की सड़कें उपजब्ध है।
- अखिल भारतीय स्तर पर 31% मलिन क्षेत्रों में शौचालयों की सुविधा नही है।
- इसके साथ ही इन क्षेत्रो में विद्यालयों, व्यावसायिक प्रशिक्षणों, स्वास्थय सुविधाओं, आकस्मिक सेवाओं, सार्वजनिक यातायात एवं संचार सुविधाओं की उपलब्धता अपर्याप्त है।
- इन बस्तियों के लगभग आधे परिवारों के पास केवल एक कमरा है।

5) आय की निम्नता एवं ऋण ग्रस्तता-

मलिन बस्तियों में रहने वाले लगभग 40% लोग असंगठित क्षेत्रों में मजदूरी करते है जो इनकी आय निम्नता एवं ऋण ग्रस्तता का प्रमुख कारण है।

6) उचित सम्मान एवं असमानता-

मानवीय असुविधाओं के कारण मलिन क्षेत्रों के निवासियों से विभीन्न स्तरों पर सम्मानपूर्वक व्यवहार नहीं किया जाता है। उनके प्रति अकुशलता व निर्योग्यता के दृष्टिकोण के कारण इनमें अन्य क्षेत्र के लोगों की तुलना में असमानता उत्पन्न होती है।

7) अपराध उन्मुखीकरण-

इन क्षेत्रों में युवाओं को उचित विकास हेतु शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन जैसी पर्याप्त सुविधाओं की उपलब्धता नहीं हो पाती है, जिसके परिणाम स्वरूप अनेक युवा गलत संगत के कारण अपराध की और मुड़ जाते है।

8) पर्यावरण क्षरण-

प्रवास अथवा प्राकृतिक रूप से शाहरों में तेजी से बढ़ती जनसंख्या से मलिन बास्तीयों की संख्या भी बढ़ रही है। बिना नियोजन के इन बस्तियों के प्रसार से पर्यावरण को भी हानी हो रही है। इसमें उचित पर्यावरण नियमों का पालन भी नहीं किया जाता है।

मलिन बस्तीयों के सुधार के लिए सरकारी क्रियान्वमनः-

मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों को आवास मुहैया कराने के लिए सरकार हमेशा प्रयासरत रही है। लेकिन गांवों से शहरों की ओर हो रहे पलायन में वृद्धि के कारण मलिन बस्तियों का पूर्ण उन्मूलन नहीं हो सका है। 1956 में स्लम एरियास इम्प्रूवमेन्ट एण्ड क्लीयरेन्स एक्ट बनाया गया। इसका मकसद मालिन बस्तियों का पूर्ण उन्मूलन करना था। इसके तहत अधिकारियों को सुधार के सम्भावना तलाशने या मलिन बास्तीयों को हटाने का अधिकार है। 1996 में राष्ट्रीय मलिन बस्ती विकास कार्यक्रम (NSDP) की शुरुआत हुई। इस यौजना के अंतर्गत राज्यों को ऋण और सब्सिडी मुहैया करायी जाती है। इसके जरिये राज्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे शहरी झुग्गी आबादी के आधार पर झुग्गी पुर्नवास योजना लायेगें इसी प्रकार 2015 में प्रधानमंत्री शहरी आवास योजना की शुरूआत हुई इसका मकसद सभी लाभार्थियों को 2022 तक मकान उपलब्ध कराना है। इसके लिए अधिकृत एजेन्सियों के जरिये राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को केन्द्रीय सहायता उपलब्ध करायी जाये। स्लम पूर्नवास योजना के तहत झुग्गी निवासियों को 2022 तक आवास मुहैया कराने की योजना के साथ-साथ आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों को रियायती दरों पर ऋण उपलब्ध कराने की योजना है। इन सबके अलावा स्मार्ट सिटी मिशन और।MRUT जैसी परियोजनायें भी शहरों में आवास मुहैया कराने और बुनियादी ढांचे के विकास से सम्बन्धित है। इन तमाम कवायदों के बावजूद शहरों से मलिन बस्तियों का उन्मूलन सम्भव नही हो सका है।

सुझावः-

गौरतलब है कि मलिन बस्तियों के निर्माण के पीछे गरीबी सबसे महत्वपूर्ण कारक है। इसलिए सबसे पहले गरीबी के समस्या पर नीति निर्माताओं द्वारा विचार किया जाना चाहिए। शहरी गरीबी की आजीविका का समर्थन कर शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की गतिविधियों को फलने फूलने और विकसित करने के लिए भविष्य के नीतियों की आवश्यकता है। स्लम नीतियों को व्यापक बनाने और शहरी गरीबी को कम करने जैसी नीतियों को एकीकृत किया जाना चाहिये। ताकि गरीबी के विभिन्न आयामो की पहचान हो सके। दरअसल सरकार का लक्ष्य केवल झुग्गी वासियों के लिए घर बनाने पर न हो वरन लोगो के लिए आजीविका विकल्प और सामाजिक-आर्थिक बुनियादी ढांचे को बढ़ावा देने पर केन्द्रित होना चाहिए। ऐसी भौगोलिक पहुँच बनाने की जरूरत है कि एक गरीब व्यक्ति भी आसानी से नौकरियाँ तलाश कर सके। झुग्गी की समस्या के त्वरित समाधान के तौर पर किराए पर आवास के विकल्प के बारे में सोचा जा सकता है। इस समय समस्या के समाधान के लिए किराये पर आवास की व्यवस्था एक बेहतर एवं पूरक समाधान साबित हो सकती है। किराये के मकान की सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह अस्थायी प्रवासीयों की समस्या को अत्यधिक गम्भीर नहीं होने देता है। ऐसे लोगों के लिए यह बेहद कारगर है। जो न तो स्थायी सम्पत्ति में निवेश करना चाहते है और ना ही एक अचल सम्पत्ति का निर्माण करना चाहते हैं रेंटल हाउसिंग का एक पक्ष यह भी है कि यह आवासों के निर्माण के लिए जमीनों की जरूरत को भी कम करता हैं। साथ ही सोशल कैपिटल फॉरमेशन के मामले में भी कारगर साबित होता है। उल्लेखनीय

है कि महाराष्ट्र तथा उड़ीसा जैसे कुछ राज्यों में तो किराये के मकान लेने के सम्बन्ध में घरेलू नीतियाँ भी लागू की गई है। इसके तहत आन्तरिक प्रवासीयों के लिए कम लागत वाले शेयरिंग फ्लैट्स उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई।

इस बीच किसी भी नीति के निर्माण से पहले विभिन्न अध्ययनों के आधार पर पर्याप्त डेटा जुटा लेने की जरूरत है ताकि सभी पहलुओं पर विचार हो सके। सफल तथा सस्ती झुग्गी के लिए पूर्व शर्त के रूप में शहर के बुनियादी ढाँचे में निवेश की भी जरूरत है। यह झुग्गी निवासियों को सामाजिक, आर्थिक, बहिश्कार से बचाने के लिए एक मजबूत तन्त्र के रूप में भी कार्य कर सकता है। ऐसे कदम उठाये जाये कि बेहतर नौकरियों में अपने रोजगार के जरिये झुग्गी वासियों के लिए एक उच्च और अधिक स्थित आय सुनिश्चित हो सके। शहरों में रोजगार के अच्छे अवसर से मलिन बस्तियों में एक स्वस्थ और स्थायी जीवन शैली मुमकिन हो सकती है। समझने की जरूरत है कि विकासशील झुग्गीयों में भी स्थानीय आर्थिक विकास की गति मिलती है। शहरी गतिशीलता और कनेक्टीविटी में सुधार होता है तथा मलिन बस्तियाँ एकीकृत होती है और यह आर्थिक रूप से बेहद लाभदायक है।

References

1. The challenge of Slums: Global Report on Human settlements 2003, United Nations Human Settlements Programme.
2. Kumar Umesh (2019), " Impact of Urbanisation-An Indian Perspective", International Journal ofAdvanced Research in Management and Social Sciences, ISSN: 2278- 6236, Vol.8, No. 10.
3. KuddusA.M., Tynan E. &McBryde E. (2020), " Urbanization:A problem for the rich and the poor ?" Public Health Reviews.
4. Yadav Vidya, Rajak R. &YadavA.K. (2021), " Growing Slums in Indian towns: Insights from Census data 2001-2011", Demography India, Vol. 50, No.-2, pp. 113-130.
5. Venkatesham V.(2015), "The problems and issues in Urbanization in India", Department of PublicAdministration, Osmania University, Hyderabad, Telangana State, Vol. 4, Issue. 8.
6. Arimah, Ben C.(2010), "The face of Urban Poverty: Explaining the prevalence of Slums in developing countries".
7. Mahabir R., CrooksA., CroitoruA. &Agouris P.(2016), " The study of Slums as social and physical constructs: Challenges and emerging research opportunities", Regional studies, Regional science.
8. Singh B.N. (2014), "Slum Dwellers and their conditions in Indian States", Emerging Research, Research for all, Vol.I, Issue. II, ISSN: 2348-5590, pp.7-16.
9. Handbook of Urban Statistics 2019.
10. Chimankar D.A. (2016), " Urbanization and condition of urban slums in India", Indonesian Journal of Geography, vol.48, no.1.
11. "City- wide slum upgrading for sustainable urbanization", Participatory slum Upgrading Programme.

भारत-नेपाल संबंध एवं विवाद

संजय सिंह

शोध छात्र, रक्षा अध्ययन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

दक्षिण एशियाई क्षेत्र में भारत और नेपाल ऐसे प्रमुख देश हैं जिनके पास साझा सघन अतीत है जिसमें विश्वास और एकत्व की भावना का समावेश है और परस्पर एक दूसरे के प्रति सन्निहित है। दोनों देशों के बीच मजबूत भावनात्मक बंधन है और किसी भी काल या परिवेश में इनके बीच एकत्व की भावना सक्रिय होने के पीछे सर्वनिष्ठ प्रथाओं एवम् परम्पराओं का योगदान है जो एक दूसरे के प्रति मित्रता की भावनाओं का भी संचार करती है। भारत और नेपाल ऐसे देश हैं जिनके मध्य गहन सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और रक्षात्मक संबंध हैं और ये रिश्ते बुरे वक्त में भी अटूट एवम् अचल रहे हैं। भारत और नेपाल की भू-रणनीतिक स्थिति को देखकर ऐसा लगता है कि इसके ईर्द-गिर्द चीन की सीमा स्थित है। इसलिए भारत और नेपाल के रिश्ते और अधिक सांदर्भिक एवम् सामयिक हो जाते है। कभी-कभी भारत और नेपाल की सीमा पर तनातनी, असहमतियाँ और झड़प हो जाया करती है जिससे रिश्तों में ठंडापन दिख जाता है। वैसे ये दोनों देश आपसी रंजिशों और कड़वाहट को दूर करने की कोशिश करते रहते हैं और आपसी बातचीत से संबंधों में सामान्य एवम् सहज माहौल बनाने की कवायद किया करते हैं। अभी हाल ही में दोनों देशों के दरम्यान उच्च स्तरीय राजकीय यात्राएं होती रही है और इस तरह एक आम राय करने की कोशिश की गई है। नेपाल के विदेश मंत्री के द्वारा दिये गए बयान ''दोनों देश एक सर्वनिष्ठ प्रतिबद्धता के बिन्दु पर पहुंच गए हैं'' से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनके रिश्तों में वाकई वजन है।

भारत-नेपाल संबंधों को कुछ मुख्य बिन्दुओं को दिखाया जा सकता है जिसके ऊपर दोनों पड़ोसी देशों में घनिष्ट संबंध ों का आधार है-

हाइड्रोपावर- नेपाल की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार जल संसाधन है। भारत-नेपाल के संबंधों में यह प्रमुख कारक है। प्रत्येक वर्ष नेपाल में मानसून के समय बाढ़ आने पर जन-धन की हानि होती है। इस गंभीर समस्या का समाधान करने के लिए दोनों सरकारों ने मिलकर तीन स्तरीय मशीनरी शुरू की है। इसे जल संसाधन हेतु संयुक्त मंत्री आयोग (JMCWR), जल संसाधन हेतु संयुक्त आयेाग (JSWR) तथा संयुक्त स्टैंडिंग तकनीकी आयेाग (JSTC) कहा जाता है। इन सभी को समझौतों को लागू करने तथा जल से संबंधित समस्याओं को दूर करने हेतु बनाया गया है। इसका महत्व दोनों देशों को जल संसाधन की दृष्टि से संबंधों को मजबूत बनाने के लिए भी है।

व्यापार व वाणिज्य- व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्र में भारत नेपाला का सबसे बड़ा साझीदार है, विदेशी निवेश तथा पर्यटन की दृष्टि से भी विगत वर्षो से दोनों देशों में द्विपक्षीय संबंध आगे बढ़े है, जिसमें 1996 के व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर के बाद और तेजजी आयी हहै। इसी क्रम में 2009 में व्यापार पर संधि हेतु हस्ताक्षर किये गये हैं। इससे भारत के बाजार में नेपाल के व्यापार हेतु दरवाजे खुले हैं। इससे नेपाल की अर्थव्यवस्था को मजबूती तथा आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा मिलेगा। 5 जनवरी 2013 को सात वर्षों के लिए ट्रांजिट संधि की गयी। दोनों देशों ने रेल सेवा समझौता (RSA) तथा वायुसेवा-संधि (ASA) के पुनर्विलोकन करने की बात की गयी है।

भारत-नेपाल रक्षा संबंध- भौगोलिक रूप से भारत की सीमाएं नेपाल से जुड़ी हुई है। वे भारतीय राज्य जो नेपाल से जुड़े हुए है, उनमें खासतौर पर उत्तराखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल, सिक्किम और उत्तर प्रदेश की सीमाएं प्रमुख रूप से नेपाल की समीपवर्ती है। नेपाली सेना को भारत के द्वारा विशेष सहयोग दिया जाता रहा है। इसके अंतर्गत नेपाली सिपाहियों एवम् सैनिकों को यथा संभव

तकनीकी सहायता एवम् सहयोग उपलब्ध कराने की कोशिश की जाती रही है। लगभग 32,000 गोरखा सैनिकों ने भारतीय सेना में अहर्निश योगदान दिया है। ये मूलत: नेपाल के निवासी है। दोनों देश प्राय: एक दूसरे की थल सेनाओं के अध्यक्ष को पुरस्कृत करते रहे हैं और इन्हें एक दूसरे की सेनाओं में सेना प्रमुख पद पर नियुक्त किए जाते रहे हैं ताकि एक दूसरे देशों के पारस्परिक संबंधों में मधुरता बरकरार रहे।

राजनीतिक संबंध- दक्षिण एशिया में भारत और नेपाल ही ऐसे देश है जिनके पास साझा ऐतिहासिकता है और सदियों पुरानी परंपराओं में रचा बसा विश्वास एवं मैत्री का पुट भी स्पष्टत: परिलक्षित होता है। एक देश से दूसरे देश में लोगों का निर्बाध रूप से परिगमन ही दोनों देशों के बीच विश्वास और एकता का परिचायक है। इन दोनों देशों के बीच प्राय: रोटी-बेटी का रिश्ता दिखने को मिला जिसकी वजह से इनके मध्य सहयोग विशेष रूप से राजनीतिक क्षेत्रों में भी देखने को मिला।[1]

मई सन् 2019 में 'नेपाल-इंडिया पार्लियामेंट्री फ्रेंडशिप ग्रुप' की स्थापना की गई जिसके निम्न उद्देश्य रहे-

- राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक संबंधों की स्थापना करना एवम् इन्हें प्रोत्साहित करना।
- संसदीय गतिविधियों के बारे में विचार विनिमय करना।
- अंर्तसंसदीय संपर्कों के अंतर्गत सर्वोत्तम व्यवहारों को प्रोन्नत एवम् प्रोत्साहित करना।
- सहमत दलों के मध्य सहयोग को साझा करने के लिए संवाद आयोजित करना।
- भावी विकास के लिए श्रेष्ठ एवम् सर्वोत्तम संसदीय व्यवहारों को साझा एवम् समुन्नत करना।

आर्थिक संबंध- भारत सरकार के तरफ से हमेशा धनराशि को अवमुक्त किया जाता रहा है ताकि नेपाल की अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती रहे। 1.5 बिलियन यू0एस0 डालर की धनराशि भी भारत सरकार के द्वारा नेपाल सरकार को मुहैया कराया जाता रहा है। नेपाल की अर्थव्यवस्था को मजबूती और आधुनिकतम स्वरूप प्रदान करने में भारत की अहम भूमिका सर्वप्रमाणित एवम् सर्वसिद्ध रही है।

अभी हाल ही में दोनों देशों की तरफ उच्च स्तरीय राजनयिकों की यात्राएं संपन्न हुई। भारत और नेपाल ने मिलकर एक संयुक्त बिजिनेस फोरम गठित किया है जिससे दोनों देशों के निवेशकों को फायदा मिलेगा। सन् 1950 में भारत ने नेपाल के आर्थिक समुन्नति के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की थी, जो आज भी निर्बाध ढंग से जारी है और अतुलनीय है। इन आर्थिक संबंधों से नेपाल में न केवल अवसर पैदा हुए, बल्कि दोनों देशों के मध्य विश्वास एवम् समादर की भावना भी व्यक्त हुई है। दोनों तरफ तनाव एवम् रंजिशों के होने के बावजूद इनके मध्य आर्थिक व्यापार और लेन-देन में कोई फर्क नहीं पड़ा।

ऊर्जा संबंध- सन् 1971 से ही भारत और नेपाल के मध्य ऊर्जा सहयोग देखा जाता रहा है। इन दोनों देशों के मध्य 'ऊर्जा विनिमय समझौते' किए गए ताकि सीमावर्ती इलाकों में नि:संकोच ऊर्जा आवश्यकताओं की संपूर्ति की जा सकें। दक्षिण एशिया में यह एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम के रूप में याद रखा जाएगा कि भारत से नेपाल को लगभग 600 मेगावाट विद्युत की आपूर्ति की गई। प्राप्त अनुमानों के अनुसार 11 किलोवाट, 132 किलोवाट और 133 किलोवाट के बीस तरह के ऊर्जा संचरण की घटनाएं अस्तित्व में आई है जिससे सीमावर्ती इलाकों में ऊर्जा विनिमय एवम् ऊर्जा व्यापार की प्रक्रियाए संभव हो पाई है। सन् 2016 में दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने मुजफ्फरपुर (भारत) और ढालकेवार (नेपाल) के बीच ऊर्जा पारेषण लाईन का उद्घाटन किया। सन् 2017 में कटईया (भारत) से कुशहा (नेपाल) और रक्सौल (भारत) से परवानीपुर (नेपाल) तक 132 किलोवाट के सीमापार ऊर्जा पारेषण का कार्य भी भारत सरकार की सहायता से पूरा किया गया। इसके अतिरिक्त 'ज्वाइंट टेक्निकल टीम' का भी गठन किया गया ताकि 'पारेषण से जुड़ी परियोजनाओं की निगरानी एवम् निरीक्षण किए जा सकें क्योंकि सन् 2035 तक परियोजना को पूर्ण करने का लक्ष्य रखा गया था। उम्मीद की जाती है कि इस परियोजना के पूरे होने पर भारत से नेपाल को तेल आपूर्ति की जाएगी।

भारत-नेपाल के बीच सीमा-विवाद: भारत का कई पड़ोसियों के साथ जमीनी विवाद है। सत्तर वर्षों से ज्यादे समय से भारत केवल बांग्लादेश व श्रीलंका से सीमा विवाद हल की है। म्यांमार, भूटान के साथ निर्धारित सीमा नहीं है, चीन, पाकिस्तान और नेपाल को लेकर भी तनाव बना रहता है। भारत नेपाल के बीच कालापानी, लिम्पिया धुरा, लिपुलेक तिराहा है जहां नेपाल, भारत व चीन तथा सुस्ता क्षेत्र (बिहार का पश्चिमी चम्पारा जिला) जुड़ते हैं। नेपाल को भारत पूरब, पश्चिम तथा दक्षिण से घेरे हुए हैं। 4 मार्च

1816 को आधुनिक भारत-नेपाल की सीमा निर्धारण का काम शुरू हुआ जो सुगौली संधि, ब्रिटिश भारत तथा नेपाल राज्य के बीच हुआ।[2] इस समझौते में यह बताया गया कि नेपाल की महाकाली नदी दोनों देशों के बीच सीमा रेखा है। इस समझौते से माना गया कि सीमा विवाद खत्म हो गया लेकिन ऐसा नहीं हुआ। 200 वर्षों बाद सीमा विवाद पुनः शुरू हुआ और उसके चारों तरफ का जन विहिन जमीनी क्षेत्र अब भर गया है और भारत-नेपाल सीमा दूसरे राज्य में दिखाई दे रही है।

कालापानी सीमा विवादः कालापानी क्षेत्र उत्तरी भारत, पश्चिमी नेपाल तथा दक्षिणी चीन/तिब्बत के तिराहे पर स्थित है। इस क्षेत्र की सीमा भारत में उत्तराखण्ड के पूर्वी सीमा से शुरू होती है तथा नेपाल के सुदुर पश्चिमी प्रदेश के पश्चिम में है। भारत का कहना है कि यह क्षेत्र उत्तराखण्ड के पिथौरागढ़ जनपद का अंग है जबकि नेपाल का मानना है कि यह उसके धारचोला जनपदा का अंग है।[3] इस प्रदेश का नेपाल तथा भारत के लिए सामरिक महत्व है। ऐतिहासिक साक्ष्यों को देखने से और विवाद बढ़ता है क्योंकि दोनों पक्ष ठीकठाक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। यह विवाद 19सदीं के आरंभिक दौर तक जाता है जब भारत के ब्रिटिश शासन में तथा नेपाल के न्दर इस क्षेत्र के राजा पृथ्वी नारायण साह शासन कर रहे थे। 1998 में पहली बार नेपाल की सरकार द्वारा विवाद शुरू किया गया। भारतीय सेवा के 1962 के भारत-चीन युद्ध में इस पर आधिपत्य किया था। नेपाल उस समय कोई प्रतिरोध नहीं किया। 1961 से 1997 तक नेपाल कालापानी विवाद को अनदेखी करता रहा परंतु घरेलू राजनीतिक कारणों से 1998 में इसे भारत-नेपाल के बीच विवादास्पद बना दिया गया।''[4]

4 मार्च 1816 को नेपाल तथा ब्रिटिश भारत के बीच सुगौली समझौता सम्पन्न हुआ जिसमें नेपाल की पश्चिमी सीमा को भारत के साथ काली नदी को माना गया। राजदूतों ने स्वीकार कि दोनों देशों की सीमा रेखा काली नदी से निर्धारित होगी। उस समय से अभी तक काली नदी के उद्गम को नहीं ढूँढ़ा गया है। यह मुख्य कारण है जो विवाद को बनाए रखा है। अभी काली नदी के उद्गम को लेकर भी विवाद है। तीव्र स्थानों पर लिम्पिया धरा, लिपलेक तथा काली मंदिर जो काली नदी का उद्गम माना जाता है, उसे भी निर्धारित नहीं किया जा सका है।[5] इस नदी का स्रोत स्पष्ट न होने के कारण दोनों देश अपकेन्द्र नक्शे में अपना दावा मजबूत करने के लिए दिखाते हैं, जो दोनों में सीमा विवाद का मजबूत कारण है।

नवम्बर 2019 में भारत का गृह मंत्रालय भारत के राजनैतिक मानचित्र को जारी किया जिसमें जम्मू व काश्मीर के लद्दाख का नया केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया है। यह अगस्त 2019 की धरना है जब भारत सरकार ने भारतीय संविधान धारा 370 तथा 35 A जो जम्मू कश्मीर को विशेष स्थिति प्रदान करता था, सरकार ने खत्म किया और उसके तुरन्त बाद नया मानचित्र जारी किया। इसी मानचित्र में विवादित 'कालापानी' क्षेत्र हिमालय के जुड़ा हुआ भारत की सीमा में दर्शाया गया है। इस मानचित्र में उत्तराखण्ड के पिथौरगढ़ जिले में इसे दर्शाया गया है। नेपाल तुरन्त ही इस मानचित्र पर विरोध दर्ज किया। इसको वह अपने सुदुर पश्चिम प्रदेश का डारचुला जनपद का अंग मानता है जो अभी विभाजित क्षेत्र बना हुआ है।[6] मानचित्र पर विरोध जारी करते हुए नेपाल सरकार ने तुरन्त अपना कूटनीतिए भारत इस विषय पर वात्र के लिए भेजा लेकिन वार्ता में कोई सफलता नहीं मिली। सबसे ताजा सीमा विवाद जून 2020 का है, जब नेपाल ने अपने संविधान में संशोधित किया और एक नया राष्ट्रीय मानचित्र जारी किया जिसमें 300वर्ग कि0मी0 (115 वर्ग मील) की पर्वतीय जमीन जो लिपुलेख, लिम्पियाधुरा तथा कालापानी है, जो वर्तमान में भारत से जुड़ा है को अपने में दिखाया।[7]

भारत ने नेपाल द्वारा जारी नक्शे को यह कहकर अस्वीकार किया। यह कृत्रिम रूप से प्रदेशों को बढ़ा कर दिखाया गया है, जिसका ऐतिहासिक तथ्य व साक्ष्य से कोई लेना-देना नहीं है। नेपाल भी कार्यवाई एक पक्षीय है जिसे कूटनीतिक वार्ता के द्वारा द्विपक्षीय सीमा विवाद का हल निकाला जा सकता है। भारत ने नेपाल की सरकार से कहा है वह इस प्रकार की गलतियों में संशोध न करे और भारत की सम्प्रभुता व प्रादेशिक एकता का सम्मान करे।[8]

भारत, नेपाल को अपनी सीमाओं को औपचारिक तथा मित्रतापूर्ण ढंग से हल कर लेना चाहिए। दोनों सरकारों को तर्कवाद की दूरी को तत्काल दूर करना चाहिए। भारत, नेपाल दोनों को नये सीमा प्रबंधन समझौते की ओर आगे बढ़कर इस पर काम करना होगा। पारस्परिक लाभ तथा सतत साझीदार बने रहने के लिए दोनों देशों को अपनी पुरानी गलतियों को भुलाकर अपनी इतिहास की गहराई को देखना होगा।

संदर्भ सूची:

1. Rohatgi, Gargi (2020) "India And Nepal Hold Virtual Meeting To Review Progress On Multiple Bilateral Agenda Items" Republic World. 8 December Retrieved from https://www.republicworld.com/india-news/general-news/india-and-nepal-hold-virtual-meeting-to-review-progress-on-multiple-bilateral-agenda-items.html
2. Zehra, Ishaal, (January 04] 2020), "India and Nepal's Slow-Motion Border Dispurte", The Diplomat, Available online at :https://thediplomat.com/2020/01/india-and-nepals-slow-motion-border-dispute/,last accessed on February, 06, 2021.
3. Bhattacherjee, Kallol, (May 24, 2020), "Why are India and Nepal Fighting over Kalapani?', Available Online at:https://www.thehindu.com/news/national/why-are-india-and-nepal-fighting-over-kalapani-article31660401.ece, last accessed on February, 04.2021.
4. Roychowdhury, Adrija. (June 13, 2020), "Mapping the history of Kalapani dispute between India and Nepal", The Indian Express, Available Online at: https://indianexpress.com/article/research/mapping-the-history-of-kalapani-dispute-between-India-and-nepal-6423687/,last accessed on February, 08, 2021.
5. Paudyal, Gyanendra. (2013), "Border dispute between Nepal and India", Researcher, July-December, Available Online at: https://www.nepjol.info/index.php/RESEARCHER/article/download/9884/8061, last accessed on February, 08, 2021.
6. Nayak, Sohini. (2020), "India and Nepal's Kalapani Border Dispute: An Explainer," ORF Issue Brief No. 356, Observer Research Foundation, Available Online at:https://www.orfonline.org/wp-content/uploads/2020/04/ORF-IssueBrief-356-India-Nepal-Kalapani.pdf, last accessed on February, 08, 2021.
7. Gillani, Ifikhar, (2020), 'India's border dispute with neighbours,' Anadolu Agency, Available Online at : https://www.aa.com.tr/en/asia-pacific/indias-border-dispute-with-neighbors/185985#, Last accessed on January, 30.2021.
8. Ministry of External Affairs, Government of India, (May, 20, 2020), "Official Spokesperson's response to media queries on the revised map of Nepal released today by Government of Nepal", Available Online at: https://mea.gov.in/responese-to-queries-htm?dtl/32697/Official-Spokespersons-response-to-media-queries-on-therevised-map-of-Nepal-released-today-by-Government-of-Nepal-last accessed on February, 08.2021.

राजस्थान में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की प्रभावशीलता

करतार सिंह

शोधार्थी भूगोल विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के निर्माण का उद्देश्य देश की शहरी एवं ग्रामीण आबादी विशेषकर महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार करना रहा है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के एक भाग के रूप में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन देश के ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने से सम्बन्धित है। इस मिशन को अप्रैल 2005 में प्रारंभ करने के बाद देश के दूर-दराज ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ती एवं सुलभ स्वास्थ्य सेवाओं को प्रदान किया जा रहा है। इस मिशन में विशेषकर महिलाओं से संबंधित स्वास्थ्य सेवाओं में जननी सुरक्षा योजना, आर.सी.एच. कैम्प, रेफरल ट्रांसपोर्ट, 24 घंटे प्रसव सेवायें, आशा सहयोगिनी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इस मिशन के क्रियान्वयन के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य सुविधाओं और स्वास्थ्य दशाओं में अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिला है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की स्थापना 12 अप्रैल, 2005 को की गई। इसका उद्देष्य दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों तक सस्ती, सुगम और उच्च गुणवत्तायुक्त चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाना है। इस मिषन को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए इसके विस्तृत क्रियान्वयन ढांचें को केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् ने जुलाई, 2006 में मंजूरी दी। इस मिषन के तहत् प्रतिकूल स्वास्थ्य संकेतकों वाले राज्यों की पहचान की गई, जहाँ पर स्वास्थ्य सुविधाएं संतोषजनक नहीं थी उन पर ध्यान दिया जा रहा है। मिषन का उद्देष्य समुदाय के स्वामित्व के अधीन पूर्णतया कार्यषील विकेन्द्रित स्वास्थ्य प्रणाली की स्थापना करना है ताकि ग्रामीण सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं के उपयोग के वर्तमान अनुपात को 20 प्रतिषत से बढ़ाकर 75 प्रतिषत किया जा सके। इसमें स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए सहायक गतिविधियों पर भी ध्यान दिया गया है जैसे पानी, षिक्षा, पोषण, सामाजिक और लिंग समानता।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (2005-12) कमजोर नागरिक स्वास्थ्य सूचकों और या कमजोर संरचनात्मक ढ़ांचे वाले 18 राज्यों पर विशेष ध्यान देते हुए पूरे देश में ग्रामीण आबादी को प्रभावी चिकित्सा सुविधा प्रदान करता है। ये अठारह राज्य हैं, अरूणाचल प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, जम्मू एवं कश्मीर, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, मध्यप्रदेश, नागालैंड, उड़ीसा, राजस्थान, सिक्किम, त्रिपुरा, उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश। यह मिशन स्वास्थ्य पर सरकारी व्यय की सकल घरेलू उत्पाद के 0.9 प्रतिषत से बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद के 2-3 प्रतिषत तक करने सम्बन्धी सरकार की प्रतिबद्धता की परिणति है।[1]

इसका लक्ष्य स्वास्थ्य प्रणाली में संस्थागत सुधार करना है ताकि यह राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम में किए गए वायदों के अनुरूप आवंटन में बढ़ोतरी को प्रभावशाली तरीके से प्रयोग करने तथा देश में जन स्वास्थ्य प्रबंधन एवं उन्नत स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने वाली नीतियों को बढ़ावा दे सकें। इसके मुख्य घटकों में प्रत्येक गाँव में एक महिला स्वास्थ्यकर्मी का प्रावधान करना, पंचायत की स्वास्थ्य एवं सफाई समिति की अध्यक्षता में गठित एक स्थानीय बल के माध्यम से ग्राम स्वास्थ्य योजना तैयार करना, प्रभावी

निदानात्मक स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के लिए ग्रामीण अस्पताल को सशक्त बनाना है ताकि भारत के सार्वजनिक स्वास्थ्य मानकों के अनुरूप इन सेवाओं को मापा जा सके और समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके। साथ ही विभिन्न स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण करने वाला हो और बुनियादी ढ़ांचे और कोषों का आदर्श उपयोग किया जा सके।

इसका लक्ष्य स्थानीय स्वास्थ्य परम्पराओं तथा मुख्यधारा आयुष कार्यक्रम को जन स्वास्थ्य प्रणाली में मजबूती प्रदान करना है तथा स्वास्थ्य संबंधी सरोकारों तथा स्वच्छता एवं सफाई पोषण तथा स्वच्छ पेयजल जैसे स्वास्थ्य के अवकारकों का जिला स्वास्थ्य योजना के माध्यम से प्रभावशाली रूप से समन्वय करना है।

इसके द्वारा जिला स्तरीय स्वास्थ्य प्रबंधन कार्यक्रमों का विकेंद्रीकरण किया जाएगा एवं यह विशेष रूप से अधिक ध्यान वाले 18 राज्यों में अंतर्राज्यीय एवं अन्तर्जिला असमानताओं को दूर करेगा। इसमें जनस्वास्थ्य संरचना की आपूर्ति आवश्यकताऐं भी शामिल होंगी। यह समयबद्ध लक्ष्यों को परिभाषित करेगा तथा उनके संबंध में हुई प्रगति से लोगों को अवगत कराएगा। यह ग्रामीण लोगों तक स्वास्थ्य अधिगम बढ़ाएगा ताकि उन्हें समान वहनीय उत्तरदायी तथा प्रभावी प्रमाणिक स्वास्थ्य सेवाऐं मिल सके। इनमें विशेष रूप से निर्धन महिलाऐं तथा बच्चें शामिल होंगे।

उद्देश्य

- शिशु मृत्यु दर (आई.एम.आर.) और मातृ मृत्यु दर (एम.एम.आर.) में कमी लाना।
- महिला स्वास्थ्य, बाल स्वास्थ्य, पानी, सफाई एवं स्वास्थ्य प्रतिरक्षण तथा पोषण जैसी जन स्वास्थ्य सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुँच।
- स्थानीय देशज रोगों समेत संचरणीय और गैर-संचरणीय रोगों का निवारण और नियंत्रण।
- एकीकृत विस्तृत प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा तक पहुँच।
- जनसंख्या स्थिरता, लिंग व जनसांख्यिकीय संतुलन।
- स्थानीय स्वास्थ्य परपंराओं और मुख्यधारा आयुष को पुनजीर्वित करना।
- स्वास्थ्यप्रद जीवन शैलियों को प्रौन्नत करना।[2]

रणनीतियाँ

मुख्य रणनीतियाँ

- जन स्वास्थ्य सेवाओं के स्वामित्व, नियंत्रण और प्रबंध के लिए पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) की क्षमता बढ़ाना और प्रशिक्षित करना।
- महिला स्वास्थ्यकर्मी (आशा) के माध्यम से घरेलू स्तर पर उन्नत स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच का विकास।
- पंचायत के ग्राम स्वास्थ्य समिति के माध्यम से प्रत्येक गाँव हेतु स्वास्थ्य योजना।
- स्थानीय योजना एवं कार्यवाही में सक्षम होने हेतु खुले कोष और अधिक बहुउद्देशीय कार्यकर्ताओं (एमपीडब्ल्यूएस) के माध्यम से उपकेंद्र को मजबूत बनाना।
- नियामक स्तर (कार्मिक उपस्कर तथा प्रबंधन मानकों को परिभाषित करने वाले भारती जन स्वास्थ्य का स्तर) तक उन्नत रोगनाशक सेवा हेतु वर्तमान प्राथमित स्वास्थ्य केन्द्रों और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों को मजबूत करना तथा प्रतिलाख आबादी पर 30-50 बिस्तरों वाले स्वास्थ्य केन्द्र का प्रावधान।
- जिला स्वास्थ्य मिशन द्वारा पेयजल, स्वच्छता एवं सफाई तथा पोषण समेत तैयार किये गए एक अंतर्क्षेत्रीय जिला स्वास्थ्य योजना बनाना और लागू करना।

- वर्तमान 3222 समुदाय स्वास्थ्य केंद्रों (30-50 बिस्तरों वालों) को 24 घंटो वाली प्रथम रेफरल इकाइयों के रूप में एनेस्थेटिस्टों की पदस्थापना समेत, संचालित करना।
- सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों हेतु नए भारतीय जन स्वास्थ्य मानकों का कोड बनाना, संरचना स्टॉफ, उपस्कर, प्रबंधन आदि हेतु मानदंडों की स्थापना करना।
- अस्पताल प्रबंधन हेतु साझेदार समितियों (रोगी कल्याण समितियों) की प्रोन्नति।
- अस्पताल सेवा में सेवाओं एवं लागतों के मानकों का विकास करना।
- सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के स्तर पर सिटीजन चार्टर का विकास, प्रदर्शन और अनुपालन सुनिश्चित करना।[3]

जिला स्वास्थ्य योजना

- ग्राम स्वास्थ्य योजनाओं, स्वास्थ्य हेतु राज्य एवं राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, जल आपूर्ति, सफाई और पोषण द्वारा जिला स्वास्थ्य योजना क्षेत्रीय प्रत्युतरों का एक सम्मिश्रण होगा।
- जल आपूर्ति, सफाई, स्वच्छता एवं पोषण जैसे क्षेत्रों में स्वास्थ्य योजनाएं प्रस्तावित कार्यवाही कर इकाई का निर्माण करेगा। लागू करने वाले विभाग मॉनीटरिंग हेतु जिला स्वास्थ्य मिशन (डीएचएम) के साथ एकीकृत होंगे।
- योजना बनाने, बजट निर्माण और कार्यान्वित करने हेतु जिला कोर इकाई होता है।
- केन्द्रीय प्रायोजित योजनाओं को राज्यों के परामर्श के अनुसार सुसंगत बनाया/संशोधित किया जा सकता है।
- कार्यक्रमों के प्रभावी समाकंलन हेतु जिला को अनुदान देने की अवधारणा।
- जिला तथा राज्य स्तर के सभी शीर्ष स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों को जिला स्तर पर एक सामान्य ''जिला स्वास्थ्य मिशन'' में और राज्य स्तर पर ''राज्य स्वास्थ्य मिशन'' से मिलाना।
- उन्नत कार्यक्रम प्रबंधन हेतु एमबीए, इंटर वाईर्ड, इंटर लागत तथा डाटा एंट्री आपरेटर को अनुबंध आधार पर काम में लगाकर सभी जिलों हेतु परियोजना प्रबंधन इकाई का प्रावधान।[4]

स्वच्छता एवं सफाई को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत लाना

- वर्तमान में 350 जिलों में पूर्ण सफाई अभियान (टीएससी) लागू किया गया जो कि 10वीं योजना में सभी जिलों को शामिल करना रहा है।
- टीएससी में संघटकों में इन्फोमेषन, एज्युकेषन एण्ड कम्युनिकेषन (आईईसी) गतिविधियां, ग्रामीण सफाई, बाजारों, एवं व्यक्तिगत घरेलू शौचालयों, कॉम्पलेक्स तथा विद्यालय सफाई कार्यक्रम शामिल है।
- जिला स्वास्थ्य मिशन की तरह ही पूर्ण सफाई अभियान (टीएससी) भी पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से लागू किया जाता है।[5]

अतएव जिला स्वास्थ्य मिशन सफाई की कार्यवाहियों को जिला स्तर पर निर्देषित करेगा तथा जन-स्वास्थ्य, सफाई एवं स्वच्छता हेतु ग्राम स्वास्थ्य एवं सफाई समिति के माध्यम से संयुक्त आई.ई.सी. को उन्नत करेगा और घरेलू शौचालयों तथा विद्यालय सफाई कार्यक्रमों को विकसित करेगा। महिला शौचालयों के विकास हेतु मिशन द्वारा मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्यकर्मी को प्रोत्साहित किया जाएगा।

रोग नियंत्रण कार्यक्रमों को सशक्त बनाना

- मलेरिया, टी.बी, काला अजर, फाइलेरिया, अंधापन हेतु राष्ट्रीय रोग नियंत्रण कार्यक्रमों को उन्नत कार्यक्रम डिलीवरी हेतु मिशन के तहत् एकीकृत किया जाना प्रस्तावित है।
- गैर-संक्रामक रोगों के नियंत्रण हेतु पहल किए जाना तय है।
- ग्राम स्तर पर रोग निगरानी पद्धति को मजबूत बनाया जाना आवष्यक है।
- गाँव, उपकेंद्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों/सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों के स्तर पर सामान्य रोगों हेतु सामान्य दवाओं (आयुष एवं एलोपैथिक दोनों) की आपूर्ति।
- उन्नत पहुँच सेवाओं हेतु जिला स्तर पर एक चलत चिकित्सा इकाई का प्रावधान।[6]

निजी क्षेत्र के लिए विनियमन सहित जन-स्वास्थ्य लक्ष्यों के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी

चूंकि वर्तमान में लगभग 75 प्रतिषत स्वास्थ्य सेवाऐं निजी क्षेत्र द्वारा प्रदान की जा रही है अत: विनियमन के परिष्कार की आवश्यकता हैं

- विनियमन का पारदर्शी और जवाबदेह होना।
- जहाँ आवश्यक हो नियामक निकायों का सुधार व सृजन।
- मिशन हेतु जिला सांस्थानिक प्रणाली में निजी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व अवश्य हो।
- स्वास्थ्य क्षेत्र में सार्वजनिक- निजी साझेदारी (पी.पी.पी.) हेतु दिशा- निर्देश विकसित करने की जरूरत। आवश्यकता आधारित विषयगत और भौगोलिक साझेदारी के क्षेत्रों की पहचान करना।
- ढ़ांचे को परिभाषित करने और साझेदारी बनाए रखने में सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा मुख्य भूमिका का निर्वाह।
- सार्वजनिक-निजी भागीदारी पहलों हेतु प्रबंधन योजना जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर।[7]

नवीन स्वास्थ्य वित्त प्रणाली

- अस्पताल सेवा हेतु जोखिम, एकीकरण सहित नए स्वास्थ्य वित्त प्रणालियों का एक कार्य समूह द्वारा नियम अनुसार परीक्षण।
- ''मरीज के साथ-साथ धन'' के सिद्धांत पर प्रतिपूर्ति द्वारा अस्पताल की सेवाओं हेतु भुगतान की दिशा में जिला स्वास्थ्य मिशनों द्वारा उत्तरोतर कार्य।
- बहिरोगी, अंत:रोगी, प्रयोगशाला, शल्य क्रिया जैसी सेवाओं और आवाधिक आधार पर विशेषज्ञों कमी एक समिति द्वारा प्रत्येक राज्य में लागतों का मानकीकरण किया जाएगा।
- इन मानकों को मॉनिटर करने और संलेखों तथा लागत सादृश्य पर उचित सलाह और निर्देश देने के लिए एक राष्ट्रीय विशेषज्ञ समूह।[8]

सभी वर्तमान सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में मासिक आधार पर वेतन भुगतान किया जाना। मुहैया कराई गई सुविधाओं हेतु अन्य आवर्ती लागत की प्रतिपूर्ति जिला स्वास्थ्य कोष से की जा सकती है। मिशन की अवधि के दौरान सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र दी गई सेवाओं हेतु पारिश्रमिकों को प्रतिपूर्ति सहित सभी लागतों पर व्यय कर सकता है।

जिला स्वास्थ्य कोष प्रबंधन की देख-रेख हेतु एक जिला स्वास्थ्य लेखाकरण पद्धति और सुधारात्मक कार्यवाही हेतु प्रशासनिक शिकायतों की जाँच हेतु अधिकारी का सृजन किया जाना।

जिला स्वास्थ्य मिशन को जोखिम एकीकरण का प्रबंध करने और स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु पर्याप्त तकनीकी प्रबंधकीय और लेखा संबंधी समर्थन प्रदान किया जाना।

जहाँ विश्वसनीय समुदाय आधारित स्वास्थ्य बीमा योजनाऐं (सीबीएचवाई) शुरू किए गए हैं उन्हें मिशन के भाग के रूप में प्रोत्साहित किया जाएगा।

प्रीमियमों के एक अंश को पूरा करने हेतु निर्धन के लिए केंद्रीय सरकार अनुदान देगी और योजनाओं का मॉनीटरिंग करेगी।

ऐसे समुदाय आधारित स्वास्थ्य बीमा योजनाओं को उन्नत करने के लिए आईआरडीए से कहा जाता है, प्रभावकारी ढंग से कार्य करने हेतु जिसका आवधिक आधार पर आंकलन किया जाएगा।

स्वास्थ्य संबंधी ग्रामीण स्वास्थ्य मुद्दों को बल प्रदान करने हेतु स्वास्थ्य/ चिकित्सा शिक्षा का पुनर्निधारण

- जिला और टर्सियरी अस्पताल, जो कि अनिवार्यत: शहरी केंद्रों में स्थित हैं, वे ग्रामीण जनता की जरूरतों की सेवा करने वाले रेफरल सेवा श्रृंखला का एक अभिन्न भाग बनते हैं।
- जरूरत के आकंलन के आधार पर राज्यों में चिकित्सा और पैरा-चिकित्सा शिक्षा सुविधाओं के सृजन की आवश्यकता है।
- चिकित्सा सेवा में उत्कृष्टता हेतु आयोग (चिकित्सा सेवा आयोग) स्वास्थ्य प्रबन्धन आदि हेतु राष्ट्रीय संस्थान आदि के लिए सलाह।
- दिशा-निर्देशों/विवरणों में सुधार के लिए कार्य समूह।[9]

हमारे समाज का 50 प्रतिशत हिस्सा गंभीर बीमारियों से और 45 प्रतिशत दैनन्दिन, मौसमीय या अन्य बीमारियों से ग्रस्त हैं। यह आंकड़े चौंकाने वाले हैं लेकिन वास्तविकता यही है कि आज के भौतिकवादी युग में हर आदमी केवल एक-दूसरे से आगे निकलने और पैसा कमाने की होड़ में जुटा है और ऐसा वह अपने स्वास्थ्य की कीमत पर करने से भी नहीं चूक रहा। शहरों में भौतिकवाद लोगों के स्वास्थ्य को निगल रहा है तो गाँवों में निरक्षरता, गरीबी और अंधविश्वास के पसरे पावों की बदौलत आम ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पा रहा।

जब भारत आजाद हुआ, उस समय देश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति वर्ष लगभग 13 लाख लोग केवल संक्रामक रोगों के कारण काल-कलवित हो जाते थे। स्वतंत्रता के बाद गाँवों के स्वास्थ्य परिदृश्य में व्यापक सुधार हुआ है और विविध सरकारी योजनाओं के माध्यम से उन तक स्वास्थ्य सुविधाएं पहुँचायी जा रही हैं। गाँवों में सभी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने के लिए यूं तो बहुत सी योजनाएं चालू हैं लेकिन राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत् 'स्वस्थ ग्रामीण भारत' का सपना साकार होने की उम्मीद जगी है। 12 अप्रैल, 2005 को स्थापित इस मिशन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य गाँवों में स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार, निगरानी और मूल्यांकन करना है।[10]

मातृ-शिशु स्वास्थ्य मातृ एवं पोषण दिवस:

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग ने राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं के सुदृढ़ीकरण हेतु महिला एवं बाल विकास विभाग के सहयोग से प्रतिमाह एक निश्चित दिवस प्रत्येक गुरूवार व सोमवार को प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्रों/उप केन्द्रों/दूरदराज के गाँवों में मातृ-शिशु एवं पोषाहार दिवस का आयोजन किया जाता है। जिसके अन्तर्गत निम्न सेवायें है:-

- गर्भवती महिला का पंजीकरण और जाँच।
- गर्भवती महिला को लौह एवं फॉलिक एसिड (आई.एफ.ए.) गोलियाँ उपलब्ध कराना।

- सभी गर्भवती महिलाओं को टीकाकरण के लिये टिटेनस की दो मात्रा।
- गर्भकाल के दौरान असामान्य कमी के लिये उचित अस्पताल में रेफर।
- संस्थागत प्रसूति के लिये प्रोत्साहन।

राजस्थान में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिषन (एन.आर.एच.एम.)

इस कार्यक्रम का उद्देष्य आमजन, मुख्यत: ग्रामीण इलाकों में, निर्धन, महिला एवं बालकों हेतु गुणात्मक स्वास्थ्य सेवा की उपलब्धता तथा पहुँच बढ़ाना है। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य पर व्यय बढ़ाया जायेगा व स्वास्थ्य की ढ़ाँचागत सुविधाओं में एक समानता लायी जाएगी, संस्थागत एकीकरण होगा, उपलब्ध स्वास्थ्य मानव संसाधन का पूर्ण उपयोग होगा तथा जिला स्तर पर स्वास्थ्य कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण होगा व सामुदायिक भागीदारी बढ़ेगी।

राजस्थान में यह कार्यक्रम जून 2005 को आरम्भ हुआ। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य के मुद्दों में साफ-सफाई, पोषण व स्वच्छ पेयजल पर भी ध्यान दिया जा रहा है। पाँच वर्ष का जिला एक्षन प्लान बनेगा, जिसमें पंचायती राज सदस्यों को सम्मिलित किया गया है। ग्रामीण स्तर पर योजना बनेगी जिसमें स्वास्थ्य उपकेन्द्र को 10,000 रूपये प्रति उपकेन्द्र की सहायता द्वारा सषक्त करना, दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचने हेतु प्रत्येक जिले में मोबाइल स्वास्थ्य इकाई का प्रावधान है। प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य-प्प्ए इसका मुख्य भाग है जिसमें मातृ एवं बाल स्वास्थ्य व परिवार कल्याण पर विषेष ध्यान दिया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत महिला ग्रामीण प्रतिनिधि का चयन किया गया है जो 'आशा' नाम से जानी जाती है। वह स्वास्थ्य तंत्र को ग्रामीण समुदाय से सीधे तौर पर जोड़ने का कार्य करती है। इन्हें प्रषिक्षण व दवाइयाँ उपलब्ध करवायी जाती है व मानदेय दिया जाता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिषन (एन.आर.एच.एम.) के तहत् राज्य में महिलाओं हेतु कार्यक्रम

जननी सुरक्षा योजना

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत इस योजना का क्रियान्वयन हो रहा है। प्रारम्भ में इसके अन्तर्गत (बी.पी.एल.) गरीब रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले प्रत्येक परिवार की महिला को पहले दो बच्चों के प्रसव पर 500 रूपये प्रति जीवित जन्म पर दिया जाता था चाहे प्रसव का स्थान कोई भी हो। अब इस योजना में वें सभी महिलाऐं पात्र है जो कि अपने बच्चे के जन्म के लिए राजकीय संस्थानों में आती है। योजना की पात्र वे गर्भवती महिलाऐं जो:

- 19 वर्ष अथवा इससे अधिक आयु की हो।
- दो जीवित बच्चों के जन्म तक यह योजना लागू है।

तीसरे जीवित जन्म के बाद यदि माता उस स्वास्थ्य सुविधा में जहाँ शिशु का जन्म हुआ है, प्रसव के तत्काल बाद नसबंदी करवा लेती हैं तो वह भी जननी सुरक्षा योजना से लाभान्वित हो सकेगी। किन्तु चिकित्सा अधिकारी को गर्भवती महिला के जीवित बच्चों की संख्या के बारे में प्रमाण के साथ अपनी तसल्ली करना जरूरी होगा। इस सहायता को प्राप्त करने के लिए गर्भवती महिला का पंजीकरण प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर होना जरूरी है।

आर.सी.एच. (प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य) कैम्प

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत परिवार कल्याण की उच्चतम सेवाओं की पहुँच के लिये प्रत्येक जिले के दूर-दराज प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कैम्प आयोजित किये जाते हैं। इन षिविरों में महिला चिकित्सा और शिशु चिकित्सक की सेवायें भी इन कैम्प में उपलब्ध करवायी जाती है।

रेफरल ट्रांसपोर्ट

परियोजना के अन्तर्गत दूरस्थ एवं कठिन क्षेत्रों के 25 प्रतिषत उपकेन्द्रों के अन्तर्गत आर्थिक रूप से पिछड़ी महिलाओं को प्रसव सेवाऐं प्रदान की जाती है। इस योजना के अन्तर्गत राज्य के 19 जिलों के 1441 ग्राम पंचायतो को शामिल किया गया है। ग्राम पंचायतों द्वारा योजना की सफल क्रियान्विति नहीं करने पर विभाग द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसार उक्त योजना की पंचायतों के पास अवषेष राषि को जिला प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य सोसायटी के माध्यम से सम्बन्धित प्रसाविका (ए.एन.एम.) को दिया गया है जिससे कि योजना का उद्देष्य पूरा हो सके।

24 घंटे प्रसव सेवायें

संस्थागत प्रसव बढ़ाने, शिशु मृत्यु एवं मातृ मृत्यु दर को कम करने के उद्देश्य से प्रसव संबधी सुविधाओं वाले स्वास्थ्य केन्द्रों पर 24 घंटे प्रसव सेवायें प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत डाक्टर, नर्स तथा सफाई कर्मचारी कार्यालय समय के अतिरिक्त अन्य किसी समय पर भी प्रसव कराने के लिये उपलब्ध होगा।

विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बावजूद भी स्वास्थ्य की परिस्थिति उत्साहजनक नहीं है, देश के 90 समस्या प्रधान जिलों में से 27 जिले राजस्थान में है।

उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ने उच्च गुणवत्ता युक्त, सर्वसुलभ एवं जवाबदेह चिकित्सा व्यवस्था विश्व बैंक की सहायता से उपलब्ध कराने के लिये ''राजस्थान हेल्थ सिस्टम्स डवलपमेंट परियोजना'' लागू की है।

संदर्भ

1. कुरूक्षेत्र अक्टूबर 2005, पृ.सं. 55-56
2. उपरोक्त, पृ.सं. 58
3. उपरोक्त, पृ.सं. 59
4. उपरोक्त, पृ.सं. 65
5. उपरोक्त, पृ.सं. 68-70
6. उपरोक्त, पृ.सं. 77
7. उपरोक्त, पृ.सं. 72
8. उपरोक्त, पृ.सं. 75
9. उपरोक्त, पृ.सं. 80
10. उपरोक्त, पृ.सं. 81

भारतीय कृषि में महिलाओं की भागीदारी

प्रीति अग्रवाल

यूजीसी नेट 2014, भूगोल

सार:

कृषि क्षेत्र समग्र रूप से विकसित हुआ है और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समावेश के साथ उभरा है। लेकिन यह नवीनतम उद्भव इस उद्योग के एक अभिन्न अंग के रूप में महिला श्रम की अज्ञानता को कम करने में सक्षम नहीं है। भारत जैसे विकासशील देशों में, कृषि महिला कार्यबल को अवशोषित और नियोजित करना जारी रखती है लेकिन उन्हें नियोजित / किराए के श्रम की मान्यता देने में विफल रहती है। विकासशील देशों में कृषि श्रम शक्ति में महिलाओं की संख्या 38 प्रतिशत है। यह भी अनुमान है कि 45.3 प्रतिशत कृषि श्रम शक्ति में महिलाएं शामिल हैं। लेकिन बड़ी संख्या में महिलाएं "अदृश्य कार्यकर्ता" के रूप में बनी हुई हैं। चूंकि महिलाओं की वास्तविक आर्थिक भागीदारी और इसके बारे में सार्वजनिक धारणा के बीच अंतर के बारे में चिंता व्यक्त की गई है, इसलिए कई शोधकर्ताओं ने लिंग पर प्रयोग करने के लिए अनुभवजन्य अनुसंधान अध्ययनों के माध्यम से इस अदृश्यता को दूर करने का प्रयास किया है। अनुसंधान का यह अंश उत्तरप्रदेश के पीलीभीत में कृषि में महिला भागीदारी की प्रवृत्ति को उजागर कर रहा है।

मुख्य-शब्द: कार्य भागीदारी दर, आर्थिक रूप से सक्रिय महिला, चक्रवृद्धि विकास दर, पदानुक्रमित क्लस्टरिंग।

परिचय

व्यवस्थित जीवन का आगमन कृषि की शुरुआत के साथ हुआ जब लोगों ने अपनी आजीविका के लिए भोजन की खेती करना शुरू कर दिया। कृषि देश की ऊर्ध्वाधर रीढ़ है। देश की आबादी का बड़ा हिस्सा कृषि से अपनी आजीविका कमाता है। हमारे देश में लगभग 10 हजार वर्षों की कृषि की एक विस्तृत और बहुत पुरानी सेटिंग है। वर्तमान में कृषि उत्पादन के मामले में देश दुनिया भर में दूसरे स्थान पर है। भारत में कृषि उत्पादन में खेत की फसलें, फलों की फसल, वृक्षारोपण की फसल, पशुधन, वानिकी, मत्स्य पालन आदि शामिल हैं। इसलिए कुल मिलाकर यह एक बहुत बड़ा उद्योग है जो भारत की कुल जनशक्ति का 52 प्रतिशत संलग्न करता है। हमारे देश की ग्रामीण आबादी ज्यादातर कृषि गतिविधियों पर निर्भर है। इस तथ्य के बावजूद कि देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के योगदान में लगातार गिरावट आई है, भारतीय कृषि देश में अग्रणी उद्योग बना हुआ है जो भारत के सामाजिक आर्थिक विकास में बहुत बड़ा योगदान दे रहा है। पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, बिहार और पश्चिम बंगाल जैसे राज्य देश के कृषि योगदान के मामले में अग्रणी राज्य हैं, इसके बाद बाकी राज्य हैं। इस प्रकार भारत में कृषि प्रमुख उद्योग है और हाल के दिनों में विभिन्न सरकारी नीतियों के कार्यान्वयन और पहल के साथ, गैर सरकारी संगठनों और निजी एजेंसियों ने इस उद्योग में अत्यधिक वृद्धि दर्ज की है। समय के बदलाव के साथ कृषि का परिदृश्य पूरी तरह से बदल गया है लेकिन सदियों से एक चीज जो नहीं बदली, वह है इस उद्योग में प्रमुख श्रम के रूप में महिलाओं की कल्पना। कृषि क्षेत्र समग्र रूप से विकसित हुआ है और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समावेश के साथ उभरा है। लेकिन यह नवीनतम उद्भव इस उद्योग के एक अभिन्न अंग के रूप में महिला श्रम की अज्ञानता को कम करने में सक्षम नहीं है। भारत जैसे विकासशील देशों में, कृषि महिला कार्यबल के 2/3 भाग को अवशोषित और नियोजित करती है, लेकिन उन्हें नियोजित श्रम की मान्यता देने में विफल रहती है। विकासशील देशों में महिला श्रम शक्ति अभी भी परिवार और घरेलू रखरखाव के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार होने की दमनकारी स्थिति का सामना

करती है। इसके अलावा, एक कृषि श्रमिक होने के उनके योगदान को पारिवारिक श्रम की स्थिति के तहत दबा दिया जाता है जो अपने नियमित घरेलू कामों के अलावा खेत में काम करते हैं। ग्रामीण महिलाओं की ये समस्याएं अशिक्षा, अविकसितता, बेरोजगारी और गरीबी के क्लेशों से और अधिक बढ़ जाती हैं। कृषि में प्रमुख उत्पादक महिला श्रम शक्ति के बावजूद ग्रामीण विकास पहलों द्वारा उनकी जरूरतों और समस्याओं को कुछ हद तक नजरअंदाज कर दिया जाता है। महिला श्रम की बहु-कार्य क्षमता ने कृषि उत्पादकता, ग्रामीण उत्पादन, आर्थिक जीवन शक्ति, घरेलू खाद्य सुरक्षा, पारिवारिक स्वास्थ्य, पारिवारिक आर्थिक सुरक्षा और कल्याण के लिए महत्वपूर्ण प्रस्ताव खरीदे।[1]

कई व्यवस्थित अध्ययन कृषि में कामकाजी महिला श्रम के रुझानों की पहचान करते हैं। जेंडर भूमिकाओं और जेंडर विश्लेषण पर अनुभवजन्य अध्ययन किए गए और उन्हें समझाया गया। शोध का यह अंश विभिन्न भारतीय राज्यों में कृषि में महिलाओं की भागीदारी की प्रवृत्ति को उजागर करेगा। कृषि में आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाओं के श्रेणीबद्ध क्लस्टरिंग द्वारा भारतीय कृषि में समान व्यवहार वाले राज्यों को मिलाने और वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया।[2]

साहित्य की समीक्षा

सिंह और विनय (2012)[3] ने अपने वर्किंग पेपर में कृषि और संबद्ध गतिविधियों में महिला श्रम के महत्व के बारे में जानकारी दी। उन्होंने आगे कहा कि भारत में महिला श्रम के रूप में कृषि में महिलाओं की भूमिका को उजागर नहीं किया जाता है। बुवाई, रोपाई और कटाई के बाद के कार्यों में उनकी उपस्थिति के बावजूद उन्हें एक अदृश्य श्रमिक माना जाता है।

दामिसा एट अल (2007)[4] ने अपने अध्ययन में इस बात पर प्रकाश डाला कि विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और विभिन्न अन्य बाधाओं के बावजूद महिलाओं की कृषि में उच्च स्तर की भागीदारी है और वे अपनी कृषि गतिविधियों में बहुत प्रतिबद्ध हैं। कुल मिलाकर कृषि निर्णय लेने में महिलाओं की भागीदारी का स्तर बहुत मध्यम पाया गया। अंतरसांस्कृतिक क्रियाओं जैसे क्रियाकलापों में शामिल होने और निर्णय लेने की सीमा फसलों की कटाई में 48 प्रतिशत 45.33 प्रतिशत, कृषि उपज का भंडारण 42.67 प्रतिशत है; कृषि उपज की बिक्री में 42.00 प्रतिशत और पशुपालन और डेयरी व्यवसाय जैसे सहायक व्यवसाय में 38.67 प्रतिशत है और वित्तीय प्रबंधन केवल 36 प्रतिशत है (उनती एट अल, 2011)[5]।

बाला (2010)[6] ने अपने वर्किंग पेपर में कृषि की लगभग सभी गतिविधियों में महिला श्रमिकों की भागीदारी के बारे में उल्लेख किया है, लेकिन मजदूरी में भेदभाव है, भले ही वे पुरुष श्रम के समान काम करते हैं। इसके अलावा, भारत की कृषि में उनकी व्यापक और सक्रिय भागीदारी के बावजूद, उन्हें कृषि गतिविधियों में निर्णय लेने के लिए नहीं माना जाता है। कृषि में महिलाओं की भागीदारी को तब स्वीकार किया जाएगा जब महिला किसान अपने ज्ञान के निर्माण और सुधार के लिए सक्रिय रूप से भाग लेंगी और अपनी कृषि गतिविधियों में उनमें से अधिकांश का उपयोग करने के लिए नई और आवश्यक जानकारी तक पहुंच प्राप्त करेंगी। महिलाओं के बीच ज्ञान और सूचना प्रवाह को जोड़कर सामाजिक आर्थिक प्रगति हासिल की जा सकती है (ढाका एट अल, 2012)[7]।

फरीद एट अल (2019)[8] ने खेती और गैर-कृषि गतिविधियों में महिलाओं की प्रमुख भूमिका पर चर्चा की, विशेष रूप से कटाई के बाद के कार्यों, होमस्टेड गार्डनिंग, पशुधन और मुर्गी पालन, श्रम बेचने आदि में। विभिन्न कृषि में काम करने वाली या रोजगार पाने वाली महिलाओं की प्राथमिक आवश्यकता और गैर-कृषि गतिविधियों का उद्देश्य परिवार की जरूरतों को पूरा करना और परिवार की आय में वृद्धि करना है।

उद्देश्यों

कृषि में महिलाओं की उत्पादक और आशावादी भागीदारी को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अध्ययन "भारतीय कृषि में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण" निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों के साथ किया गया है।

क) उत्तरप्रदेश के पीलीभीत में कृषक और खेतिहर मजदूरों के रूप में कृषि में महिलाओं की भागीदारी की प्रवृत्ति का अध्ययन करना।

ख) उत्तरप्रदेश राज्य में कृषि में महिलाओं की भागीदारी की एकरूपता/समान व्यवहार का अध्ययन करना।

पूरा अध्ययन दो विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है। शोध कार्य की आवश्यकता को पूरा करने के लिए द्वितीयक आँकड़ों को दर्ज किया गया है। पहले चरण के लिए डेटा सेट भारत की जनगणना-2001 और महिला श्रम की प्रोफाइल पर सांख्यिकीय रिपोर्ट-2005-06 से एकत्र किया जाता है। संपूर्ण जनसंख्या को तीन मुख्य श्रेणियों अर्थात मुख्य, सीमांत और गैर-श्रमिक में वर्गीकृत किया गया है। वे फिर से अपने कार्यों की प्रकृति के आधार पर काश्तकारों, कृषि मजदूरों, घरेलू उद्योग और अन्य श्रमिकों में विभाजित हो गए हैं। एक व्यक्ति को किसान के रूप में माना जाता है यदि वह या तो नियोक्ता, एकल कार्यकर्ता या परिवार के कार्यकर्ता के रूप में भूमि की खेती में लगा हुआ था या सरकार के स्वामित्व में था या निजी व्यक्तियों या संस्थानों से पैसे, तरह या फसल के हिस्से के भुगतान के लिए आयोजित किया गया था। खेती में खेती का पर्यवेक्षण या निर्देशन शामिल था और एक व्यक्ति जो नकद, वस्तु या हिस्से में मजदूरी के लिए किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर काम करता था, उसे खेतिहर मजदूर माना जाता था। ऐसे व्यक्ति को खेती में कोई जोखिम नहीं था बल्कि मजदूरी के लिए केवल दूसरे व्यक्ति की भूमि में काम करता था। एक खेतिहर मजदूर को उस जमीन पर पट्टे या अनुबंध का कोई अधिकार नहीं था जिस पर वह काम करता था।

क) उत्तरप्रदेश के पीलीभीत में कृषक और खेतिहर मजदूरों के रूप में कृषि में महिलाओं की भागीदारी की प्रवृत्ति का अध्ययन करना

महिलाओं को ग्रामीण पैनोरमा की रीढ़ माना जाता है। भारतीय महिला आबादी का लगभग 75 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों से हैं, जो छोटे और सीमांत किसानों और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों से संबंधित हैं। कृषि में महिलाओं का जुड़ाव सदियों पुरानी प्रथा है। तब से महिलाओं की वास्तविक आर्थिक भागीदारी और इसके बारे में सार्वजनिक धारणा के बीच अंतर के बारे में चिंता व्यक्त की गई है। महिलाएं दुनिया की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं, उनका श्रम काम के 60 प्रतिशत घंटों में योगदान देता है, आधि कारिक घंटों में 30 प्रतिशत तक का योगदान देता है। फिर भी महिलाओं को विश्व की आय का केवल 10 प्रतिशत प्राप्त होता है और विश्व की एक प्रतिशत से भी कम संपत्ति के मालिक होते हैं (गुप्ता, 1987)[9]। इन वर्षों में, कृषि विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका और कृषि, खाद्य सुरक्षा, बागवानी, प्रसंस्करण, पोषण, रेशम उत्पादन, मत्स्य पालन और अन्य संबद्ध क्षेत्रों में उनके महत्वपूर्ण योगदान का धीरे-धीरे एहसास हो रहा है। महिलाएं कृषि की रीढ़ हैं, उत्तरप्रदेश के पीलीभीत में अधिकांश खेतिहर मजदूर शामिल हैं; महिलाएं न केवल शारीरिक उत्पादन के मामले में बल्कि गुणवत्ता और दक्षता के मामले में भी श्रम लगा रही हैं।

किसान परिवारों की भलाई के लिए महिलाएं महत्वपूर्ण हैं। शायद, विडंबना यह है कि महिलाओं पर इतनी अधिक जिम्मेदारियां हैं कि उन्हें कृषिविदों और नीति निर्माताओं द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया है - पुरुषों को किसान और महिलाओं को बाल पालक और रसोइया के रूप में लेबल करना अधिक सुविधाजनक हो गया है। वास्तव में, फसल चयन से लेकर भूमि तैयार करने, बीज चयन, रोपण, निराई, कीट नियंत्रण, कटाई, फसल भंडारण, हैंडलिंग, विपणन और प्रसंस्करण तक, कृषि के सभी पहलुओं में महिलाएं शामिल हैं। इस उपेक्षा का कारण जो भी हो, महिलाओं के लिए प्रासंगिक कृषि प्रौद्योगिकियों को विकसित करने के महत्व को हाल ही में पहचाना गया है। ग्रामीण महिलाएं भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण उत्पादक कार्यबल हैं। कृषि, भारत में सबसे बड़ा उत्पादन प्रयास है, जो सकल घरेलू उत्पाद का 25 प्रतिशत योगदान देता है, तेजी से महिला गतिविधि बन रहा है। कृषि क्षेत्र देश में सभी आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाओं में से 4/5 को रोजगार देता है। भारत के स्वरोजगार करने वाले किसानों में 48 प्रतिशत महिलाएं हैं। 1.5 मिलियन पुरुषों की तुलना में 1.5 मिलियन पुरुषों और 20 मिलियन पशुपालन की तुलना में 75 मिलियन महिलाएं डेयरी में लगी हुई हैं। केवल श्रम की आपूर्ति करने के अलावा, महिलाओं को कृषि का विस्तृत ज्ञान होता है और भोजन, दवा और पशु आहार के लिए पौधों और पौधों के उत्पाद का उपयोग होता है। महिलाएं आज खाद्य फसलों के चयन, प्रजनन, खेती, तैयारी और कटाई के लिए केंद्रीय हैं। मुख्य फसलों की खेती में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के अलावा, वे मुख्य रूप से दालों और सब्जियों जैसी माध्यमिक फसलों के उत्पादन के लिए जिम्मेदार होते हैं जो अक्सर उनके परिवारों के लिए उपलब्ध पोषण का एकमात्र स्रोत होते हैं। महिला किसान भी अक्सर मछली पालन के बारे में अद्वितीय ज्ञान रखती हैं और इससे जुड़े अधिकांश कार्यों को संभालती हैं। "उत्पादक श्रमिकों" की पारंपरिक बाजार-उन्मुख संकीर्ण परिभाषा से परे, आज ग्रामीण भारत में लगभग सभी महिलाओं को कुछ अर्थों में "किसान" माना जा सकता है, जो कृषि श्रमिक, पारिवारिक कृषि उद्यम में अवैतनिक श्रमिकों, या दोनों के संयोजन के रूप में काम कर रही हैं। . इस प्रकार, ग्रामीण भारत एक ऐसी प्रक्रिया देख रहा है जिसे कृषि के नारीकरण के रूप में वर्णित किया जा सकता है।यह स्पष्ट रूप से इंगित किया जा सकता है कि हमारे

अध्ययन के लिए उत्तरप्रदेश राज्य के सभी जिलों में महिलाओं को प्रमुख रूप से कृषि और कृषि गतिविधियों के माध्यम से अपनी आय अर्जित की जाती है। पंजाब, केरल और पश्चिम बंगाल जैसे अपवाद थे जहां महिलाएं तुलनात्मक रूप से गैर कृषि गतिविधि यों में शामिल थीं।

निष्कर्ष:

इस अध्ययन का उद्देश्य द्वितीयक डेटा स्रोत के आधार पर विभिन्न भारतीय राज्यों में कृषि में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण करना है। डेटा को व्यवस्थित रूप से एकत्रित करने और प्रत्येक राज्य में महिलाओं की भागीदारी की प्रवृत्ति का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया। अध्ययन में केरल, पंजाब और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर लगभग सभी राज्यों में कृषि क्षेत्र में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है, जहां महिलाएं गैर-कृषि गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं जिसमें घरेलू उद्योग, सेवा क्षेत्र आदि शामिल हैं। विकास दर की प्रवृत्ति दर्शाती है कि कई वर्षों की अवधि में जनसंख्या प्रति वर्ष औसतन कितनी बढ़ी है। यह सभी राज्यों के लिए लगभग एक समान है जो कुछ राज्यों में बहुत मामूली बदलाव दिखा रहा है जो बाकी की तुलना में थोड़ा अधिक विकास दर दर्शाता है। क्लस्टर विश्लेषण ने आगे विचार किए गए राज्यों को उनकी भागीदारी के समान व्यवहार के अनुसार समूहीकृत किया। इस प्रकार पूरे कार्य को इस तथ्य के साथ समाप्त किया जा सकता है कि समय के साथ कृषि में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है और महिलाओं को अब "कृषि कार्यकर्ता" की स्थिति के साथ स्वीकार किया जाता है। यद्यपि मजदूरी और कामकाजी स्थिति में भेदभाव अभी भी महिला श्रमिकों के लिए प्रचलित है, लेकिन सरकार द्वारा की गई विभिन्न नीतियों और पहलों के कार्यान्वयन के कारण कृषि कार्यकर्ता के रूप में महिलाओं की अदृश्यता कम हो रही है और भविष्य में और कम हो जाएगी।

सन्दर्भ:

1. जॉनसन, आर.ए. और डी.डब्ल्यू. विचर्न (2000) अनुप्रयुक्त बहुभिन्नरूपी सांख्यिकीय विश्लेषण, पियर्सन एजुकेशन एशिया
2. वही।
3. सिंह और विनय (2013), "भारतीय कृषि में लिंग भागीदारी: कृषि और संबद्ध गतिविधियों के व्यावसायिक खतरे का एक एर्गोनोमिक मूल्यांकन" कृषि, पर्यावरण और जैव प्रौद्योगिकी के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 6(1): 157-168.
4. दामिसा, आर. सम्डी और एम. योहाना (2007)। एप्लाइड साइंसेज के जर्नल "कृषि उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी- एक प्रोबिट विश्लेषण", 7(3): 412-416।
5. उन्नति, ए, जी एस अंकुश और ए वी मंडे (2012) "डिसीजन मेकिंग में कृषि महिलाओं की भागीदारी की सीमा" जर्नल ऑफ डेयरी फूड्स एंड होम साइंसेज, 31 (1): 72 - 74।
6. बाला एन .(2010), "भारतीय कृषि में महिलाओं के खिलाफ चयनात्मक भेदभाव - एक समीक्षा" कृषि समीक्षा, 31 (3): 224 - 228।
7. ढाका एट. अल (2012), "कृषि महिलाओं के बीच ज्ञान और सूचना प्रवाह में बाधाएं" कृषि, पर्यावरण और जैव प्रौद्योगिकी के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 5(2): 167-170.
8. फरीद एट अल (2019), "कृषि और गैर-कृषि गतिविधियों में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी की प्रकृति और सीमा" कृषि विज्ञान डाइजेस्ट, 29 (4): 254-259।
9. गुप्ता, आर. (1987), "आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका"। योजना 31(8): 28-32।

महिलाओं के संवैधानिक एवं विधिक अधिकार एवं उच्चतम न्यायालय की भूमिका

प्रीति वर्मा

बी.ए, एल एल. बी, एल एल. एम.

शोध सारांश:-भारत में प्राचीन काल से नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जैसा कि श्लोक में कहा भी गया है 'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत ने नारी को देवी मां सहचरी सखी और प्राण कहकर श्रद्धा के सुकोमल सुमन अर्पित किए हैं। किसी भी पुण्य कार्य को बिना नारी के कर पाना संभव नहीं होता है। नारी को नर से पहले स्थान दिया गया है।इसके बाद आया ब्रिटिश शासन और उसके साथ-साथ आधनिक काल और अंग्रेजी शिक्षा साहित्य के अध्ययन और पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति के साथ हुए संपर्कों ने नारी जाति को खुले व्यवहार के लिए बाध्य कर दिया। ब्रिटिशशासन काल में सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवाविवाह आदि कुरीतियों को खत्म किया गया तथा नारी को कुछ सम्मानजनक दर्जा प्रदान किया गया। उसे पिता-पति संपत्ति में हिस्सेदारी भी दी गई। साथ ही साथ, उसे नौकरी करने तथा अन्य व्यवसाय अपनाने की छूट दी गई।

मुख्य शब्द: मूल अधिकार राज्य के नीति के निदेशक तत्व संवैधानिक एवं विधिक अधिकार

स्वतंत्रता आंदोलन में नारी ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। नारी पर से पाबंदी स्वतंत्रता आंदोलन के समय हटा ली गई। स्वतंत्र भारत में इसी सब वजह से आज वह चपरासी से लेकर प्रधानमंत्री तक सब कुछ रही और आगे भी रह सकती है। आज कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ नारी ने अपनी प्रबल कर्मठता का परिचय न दिया हो। आज समाज का हर वर्ग और प्राय: व्यक्ति नारी स्वतंत्रता और समानता का समर्थन करता है। लेकिन प्रशन यह है कि संविधान में नारी को जो स्वतंत्रता या समानता प्राप्त है; क्या भारतीय समाज में वास्तव में उसे वही स्थिति प्राप्त हो गई है? इसका उत्तर दे पाना बहुत ही कठिन है; क्योंकि भारतीय समाज हमेशा से पुरुष प्रधान ही रहा है तथा नारी को भोग्या के रूप में ही देखा जाता रहा है। आज भी स्थिति पूरी तरह से बदली नहीं है।

मूल अधिकारों की आवश्यकता और महत्व:-व्यक्ति और राज्य के आपसी सम्बन्धों की समस्या सदैव से ही बहुत अधिक जटिल रही है और वर्तमान समय की प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में इस समस्या ने विशेष महत्व प्राप्त कर लिया है। यदि एक ओर शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए नागरिकों के जीवन पर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक है तो दूसरी ओर राज्य की शक्ति पर भी कुछ ऐसी सीमाएं लगा देना आवश्यक है जिससे राज्य मनमाने तरीके से आचरण करते हुए व्यक्तियों की स्वतन्त्रता और अधिकारों के विरूद्ध कार्य न कर सकें। मूल अधिकार व्यक्ति स्वातन्त्र और अधिकारों के हित में राज्य की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने के श्रेष्ठ उपाय हैं।

मूल अधिकार

कानून के समक्ष समानता (अनुच्छेद 14):- अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत के राजय क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून से समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। इसके द्वारा राज्य पर बन्धन लगाया गया है कि वह सभी व्यक्तियों के लिए एक-सा कानून बनाएगा तथा उन्हें एकसमान लागू करेगा।

कानून के समक्ष समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि औचित्यपूर्ण आधार पर और कानून द्वारा मान्य किसी भेदभाव की भी व्यवस्था नहीं की जा सकती है। यदि कानून कर लगाने के सम्बन्ध में धनी और गरीब में और सुविधाएं प्रदान करने में स्त्रियों और पुरुषों में, भेद करता है तो इसे कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता।

धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15):- अनुच्छेद 15 में कहा गया है कि ''राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान, आदि के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में भेदभाव नहीं किया जाएगा।'' कानून के द्वारा निश्चित किया गया है कि सब नागरिकों के साथ दुकानों, होटलों तथा सार्वजनिक स्थानों, जैसे कुओं, तालाबों, स्नानगृहों, सड़कों, आदि के प्रयोग के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा।

राज्य के अधीन नौकरियों का समान अवसर (अनुच्छेद 16):- अनुच्छेद 16 के अनुसार, ''सब नागरिकों को सरकारी पदों पर नियुक्ति के समान अवसर प्राप्त होंगे और इस सम्बन्ध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर सरकारी नौकरी या पद प्रदान करने में भेदभाव नहीं किया जाएगा।'' इसके अन्तर्गत राज्य को यह अधिकार है कि वह राजकीय सेवाओं के लिए आवश्यक योग्यताएं निर्धारित कर दे। संसद कानून द्वारा संघ में सम्मिलित राज्यों को अधिकार दे सकती है कि वे उस पद के उम्मीदवार के लिए राजय का निवासी होना आवश्यक ठहरा दें। इसी प्रकार सेवा में पिछड़े हुए वर्गों के लिए भी स्थान आरक्षित किये जा सकते हैं।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा जीवन की सुरक्षा (अनुच्छेद 21):- अनुच्छेद 21 में जीवन के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है। इसमें कहा गया है कि ''किसी व्यक्ति को उसके जीवन तथा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता।'' सर्वोच्च न्यायालय ने 1997 में अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में कहा है कि 'जीवन के अधिकार' में आवास का अधिकार सम्मिलित है।

44वें संवैधानिक संशोधन (1979) द्वारा जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार को और अधिक महत्व प्रदान किया गया है। अब आपातकाल में भी जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार को समाप्त या सीमित नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 23 के द्वारा बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य जबरदस्ती लिया हुआ श्रम निषिद्ध ठहराया गया है जिसका उल्लंघन विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध है। इस अधिकार का एक महत्वपूर्ण अपवाद है। राज्य सार्वजनिक उद्देश्य से अनिवार्य श्रम की योजना लागू कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय राज्य नागरिकों के बीच धर्म, मूलवंश, जाति, वर्ण या सामाजिक स्तर के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

'राज्य के नीति के निदेशक तत्व' (Directive Principles of State Policy)

संविधान के भाग 4 को 'राज्य के नीति के निदेशक तत्व' शीर्षक दिया गया है। इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 36-51 तक के अनुच्छेद शामिल हैं। संविधान का यह भाग आयरलैण्ड के संविधान से प्रभावित है। इसके माध्यम से संविधान राज्य को बताता है कि उसे सामाजिक तथा आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने के लिये नैतिक दृष्टि से किन पक्षों पर बल देना चाहिये।

नीति-निदेशक तत्वों का इतिहास[2] (History of Directive Principles)

भारतीय संविधान में नीति-निदेशक तत्वों का विकास मूल अधिकारों के विकास के साथ ही हो गया था। संविधान सभा के सदस्यों में इस बात पर सहमति बन गई थी कि स्वतंत्र भारत में प्रत्येक व्यक्ति को मूल अधिकार तो दिये ही जाने चाहिये साथ ही राज्य द्वारा ऐसे आदर्शों को साधने की कोशिश भी की जानी चाहिये जो सामाजिक न्याय के लिये वांछनीय हैं। इन सिद्धांतों को मूल अधिकारों के रूप में दिया जाना तत्कालीन परिस्थितियों में संभव नहीं था। ऐसे अधिकार जिन्हे तत्काल देना संभव नहीं था, उन अधिकारों को बी.एन.राव की सलाह पर नीति-निदेशक तत्वों की श्रेणी में रख दिया गया ताकि जब सरकारें सक्षम हो जाएंगी तब धीरे-धीरे इन उपबंधों को लागू करेंगी। इन्ही उपबंधों को संविधान के भाग-4 में रखा गया तथा 'राज्य के नीति के निदेशक सिद्धांत नाम दिया गया।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (क) के अनुसार राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा जिससे कि पुरुषों और महिलाओं दोनों को ही आजीविका के पर्याप्त साधन समान उसे प्राप्त हो सके भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (घ) के अनुसार राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा जिससे कि पुरुषों और महिलाओं दोनों को ही समान कार्य के लिए समान वेतन प्राप्त होता इस प्रकार यह प्रावधान पुरुषों और स्त्रियों दोनों को ही समान कार्य के लिए समान वेतन दिए जाने का उपबंध करता है इस अनुच्छेद के निर्देशों के अनुपालन में संसद ने समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 पारित किया है भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (ड) के अनुसार राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा जिससे कि पुरुषों और महिलाओं कर्मचारियों के स्वास्थ्य व शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग ना हो तथा आर्थिक आवश्यकताओं नागरिकों को रोजगार ना जाना पड़े उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल ना हो।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 –क के अनुसार राज्य इस बात को सुनिश्चित करेगा कि विधिक तन्त्र इस प्रकार काम करे जिससे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो तथा आर्थिक अन्य किसी कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए इसके साथ ही राज्य निशुल्क विधिक सहायता की भी व्यवस्था करेगा इस संबंध पुरुषों और महिलाओं में कोई अंतर नहीं रखा गया है

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 42 के अनुसार राज्य के काम की न्यायसंगत मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए प्रसूति सहायता के लिए उववंध करेगा महिलाओं के लिए सहायता की व्यवस्था है अनुच्छेद के निर्देश के अनुपालन में संशोधन अधिनियम 1961 पारित किया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य जनता के दुर्वल वर्गो विशेष रुप से अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा व अर्थ सम्ब्न्धी हितों की अभिवृद्धि करेगा साथ ही सामाजिक अन्याय व सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा निश्चित ही इसमें महिलाें भी सम्मिलित हैं

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 (क) (ड) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसी प्रथाओं को त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है अत: इस प्रकार इस प्रावधान के अंतर्गत नारी सम्मान को विशेष स्थान दिया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243 (घ) और 243 (न) अंतर्गत महिलाओं के लिए कुछ स्थान पंचायतों एवं नगर पालिका में आरक्षित कर दिए गए और इस प्रकार महिलाओं की भागीदारी सत्ता में भी सुनिश्चित कर दी गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 325 अनुसार कोई व्यक्ति के लिंग आदि के आधार पर निर्वाचक नामावली में शामिल किए जाने से अयोग्य नहीं होगा इस प्रकार यह प्रावधान महिला और पुरुषों दोनों को ही निर्वाचक नामावली में सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान करता है

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम 2013

कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करने वाले सबसे महत्वपूर्ण मामलों में से एक विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य का मामला था। राजस्थान में एक सामाजिक कार्यकर्ता (साथिन) भंवरी देवी बाल विवाह को रोकने के लिए राज्य सरकार के एक कार्यक्रम के साथ काम कर रही थी। ऐसे ही एक उदाहरण में उसने एक साल के शिशु के बाल विवाह का विरोध करने और उसे रोकने का असफल प्रयास किया। परिवार के मुखिया रमाकांत गुर्जर ने अपमान का बदला लेने के लिए अपने पति के सामने अपने पांच आदमियों के साथ भंवरी देवी का बलात्कार किया। निचली अदालतों ने सभी आरोपियों को बरी कर दिया।

नतीजतन विशाखा (महिला शिक्षा और अनुसंधान समूह) ने चार अन्य महिला संगठनों के साथ कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न और किसी भी सुरक्षा के अभाव के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट में एक रिट याचिका दायर की – के तहत कामकाजी महिलाओं के मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 19 और 21 1997 में अदालत ने नियोक्ताओं द्वारा कार्यस्थलों पर अभ्यास करने के लिए विशाखा दिशानिर्देश जैसे दिशानिर्देश तैयार करने का आदेश दिया। इन दिशानिर्देशों ने

अंतत: कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम निषेध और निवारण) अधिनियम 2013 का आधार बनाया - जो लाखों भारतीय महिलाओं की रक्षा के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण कानून है जो अपने परिवारों के लिए जीविकोपार्जन के लिए अपने घरों से बाहर कदम रखते हैं।

निर्णय में कहा गया है कि कार्यस्थल या अन्य संस्थानों में नियोक्ता या अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों का यह कर्तव्य है कि वे यौन उत्पीड़न को रोकें और ऐसी घटनाओं के प्रभावी समाधान के लिए कर्मचारियों को तंत्र प्रदान करें। सुप्रीम कोर्ट ने इस उद्देश्य के लिए श्यौन उत्पीड़न को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से असहनीय यौन निर्धारित व्यवहार के रूप में परिभाषित किया:

- शारीरिक संपर्क और अग्रिम
- यौन अनुग्रह की मांग या अनुरोध
- यौन-रंगीन टिप्पणी
- अश्लीलता दिखाना
- यौन प्रकृति का कोई अन्य अवांछित शारीरिक मौखिक या गैर-मौखिक आचरण

एसिड अटैक पर ऐतिहासिक फैसला

एक और ऐतिहासिक मामला

लक्ष्मी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2006 जहां एक एसिड अटैक पीड़िता लक्ष्मी ने सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका (पीआईएल) दायर की जिसमें एसिड अटैक सर्वाइवर्स की बेहतरी पीड़ित को पर्याप्त मुआवजा और उपायों के लिए प्रार्थना की गई। एसिड की बिक्री को विनियमित करने के लिए। नई दिल्ली में तीन लोगों द्वारा हमला किए जाने पर लक्ष्मी नाबालिग थी क्योंकि उसने नईम खान नाम के व्यक्ति से शादी करने से इनकार कर दिया था। उसे गंभीर शारीरिक और मानसिक आघात का सामना करना पड़ा।

जनहित याचिका में उठाए गए मुद्दे थे:

तेजाब और इसके विभिन्न रूपों की बिक्री पर पूर्ण प्रतिबंध और ऐसे एसिड काउंटर पर उपलब्ध नहीं होने चाहिए] क्योंकि आसान उपलब्धता ऐसे अपराधियों को प्रोत्साहित करती है।

तेजाब फेंकने वालों पर मुकदमा चलाने के साथ-साथ तेजाब हमले की पीड़िता का पुनर्वास जिसमें इलाज के साथ-साथ मुआवजा भी शामिल है, क्योंकि इलाज और सर्जरी बहुत महंगी हैं।

2013 में सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं पर एसिड हमलों के मामलों में वृद्धि का संज्ञान लेते हुए एसिड की बिक्री पर सख्त नियम लागू किए जिसमें काउंटर पर एसिड की बिक्री पर प्रतिबंध और 18 साल से कम उम्र के व्यक्ति को एसिड की बिक्री पर प्रतिबंध शामिल था। एक वैध पहचान प्रमाण प्रस्तुत करने और खरीद की आवश्यकता के बाद ही डीलर किसी व्यक्ति को एसिड बेच सकते हैं। साथ ही डीलर को बिक्री का ब्योरा तीन दिन के अंदर पुलिस को देना अनिवार्य है।

एसिड अटैक सर्वाइवर्स की बेहतरी के लिए दिशा-निर्देश देने और उन्हें न्याय दिलाने के लिए कोर्ट द्वारा कई अन्य आदेश भी पारित किए गए।

उपर्युक्त प्रावधानों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान द्वारा महिला मानव अधिकारों को पर्याप्त संरक्षण एवं प्रत्याभूति प्रदान की गई है लेकिन मात्र विधिक प्रावधानों के अस्तित्व के आधार पर यदि हम यह मानने की महिला संबंधी मानव अधिकारों के हनन का उत्पीड़न को पूर्ण रूप से निवास किया जा सकता है तो यह केवल एक दिवास्वप्न होगा कि भारतीय संविध ान द्वारा महिला विश्व मानव अधिकारों को पर्याप्त पर्याप्त संरक्षण एवं प्रदान की गई है लेकिन विधिक प्रावधानों के आधार पर यदि हम यह मान ले कि मानव अधिकारों के हनन किया जा सकता है लेकिन होगा हालांकि बाद में महिलाओं ने भी अपने अधि कारों के प्रति अवश्य लेकिन जब तक महिलाएं स्वयं अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने की प्रवृत्ति विकसित नहीं कर लेती तब तक हमारे देश में मानव अधिकारों का भूल नहीं पाएगा विधि-विधान ही रह जाएंगे।

सन्दर्भ सूची

1. Fundamental Rights: Importance 1 Right to equality (Articles. 14-18) 2 Right to Freedom (Articles. 19-22) 3 Right Against Exploitation (Articles. 23-24) 4 Right to Freedom of Religion (Articles. 25-28) 5 Cultural and Educational Rights (Articles. 29-30), and 6 Right to Constitutional Remedies (Articles. 32-35)
2. The Directive Principles of State Policy of India are the guidelines to be followed by the government of India for the governance of the country. They are not enforceable by any court, but the principles laid down there in are considered 'Fundamental' in the governance of the country, which makes it the duty of the State[1] to apply these principles in making laws to establish a just society in the country. The principles have been inspired by the Directive Principles given in the Constitution of Ireland which are related to social justice, economic welfare, foreign policy, and legal and administrative matters
3. Vishakha and others v/s State of Rajasthan case (1997) 6 SCC 241
4. Laxmi v/s Union Of India 2014 SCC 4 427

उत्तर प्रदेश की महिलाओं के सामाजिक उत्थान में आर्यसमाज का योगदान

मनीष कुमार मिश्र

शोधार्थी, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

स्त्री समाज पर जब हम विचार करना चाहते हैं तो अनेक कतिपय प्रश्न उठ खड़े होते है। स्त्री की किस स्थिति पर विचार करें? किस समाज की स्त्री पर विचार करें? किस व्यवस्था में स्त्री की क्या दशा, स्थिति और भूमिका रही इस पर विचार करें या क्या स्त्री कभी स्वतन्त्र रही है, उस पर विचार करें? ढेर सारे प्रश्न हमसे उत्तर मांगते है। संसार के सभी देशों में कमोबेश रूप में स्त्री पुरूष की दास ही रही है। पुरूष की वैयक्तिक सम्पति रही है। चाहे जिस रूप में जैसा चाहे वह उसका प्रयोग कर सकता है। स्त्री समाज की जड़चेतना ने उसे शताब्दियाँ तक गुलाम की तरह-जीवनयापन करने के लिए विवश किया। उसकी अपनी कोई इच्छा नही थी और थी भी तो उसे प्रकट नहीं कर सकती थी, क्योंकि वह मालिक के अधीन थी। यहाँ तक उसकी देह भी उसकी नहीं थी। वह भी मालिक के इशारे पर खरीदी और बेची जाती थी। हमारी पूरी सामाजिक व्यवस्था स्त्री को निरीह, दयनीय रूप में गढ़ती आई है। बचपन से ही लड़की के कान में यह मंत्र अथवा शब्द डाल दिये है कि लड़की परायी सम्पत्ति होती है, उसे तो दूसरे के घर जाना हैं यहाँ पर फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द वोउ आर के शब्द कितने महत्वपूर्ण है, ''औरत पैदा नहीं होती। बल्कि उसे बना दिया जाता है।'' यह कथन कल भी सत्य था और आज भी है। इस पुरूष प्रधान समाज ने ही उसे शताब्दियों से गढ़ा है।[1]

इस क्रम में उन्नीसवीं सदी में एक ऐसा समय भी आया जब महिलाओं की भलाई-बुराई के मुददे प्रमुखता से और भारतीय महिलाओं की जीवन स्थिति में सुधार के प्रारम्भिक प्रयास आरम्भ हुये। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इस काम को अंजाम दिया। उनकी पत्नियों, बहनों, पुत्रियों, और उनके संरक्षणाधीन लोगों ने। इस दौरान स्त्रियों के दशा में सुधार लाने के अभियान उदार-लोकतांत्रिक आधार पर चलाए गए जिनमें आर्यसमाज का महत्वपूर्ण स्थान है। आर्यसमाज ने अपनी स्थापना के साथ ही नारी जागरण व उसके कल्याण के निमित्त निरन्तर प्रयासरत था। भारतीय नवजागरण के इतिहास में नारी जाति के उत्थान के लिए आर्यसमाज द्वारा किया गया इस प्रकार का प्रयास सदैव अविस्मरणीय रहेगा। क्योंकि आर्यसमाज के अथक प्रयास के फलस्वरूप स्त्रियों के प्रति भारतीय जनमानस में व्यापक परिवर्तन हुआ। नारी स्वतन्त्रता, समानता व उनके अधिकारों के प्रति भारतीय समाज में जागरूकता आनी प्रारम्भ हुई।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों में नारी जाति के प्रति बहुत सम्मान का भाव था। वह नारी को मातृ शक्ति व मातृत्व के रूप में पुकारते थे। दूसरी ओर समाज में इस समय नारी की दशा कैदियों से भी अधिक बदतर थी। वे अपने घरों में एक कैदी की भांति चहारदीवारी में कैद थी, उनके साथ एक नौकर की भांति व्यवहार किया जाता था और बच्चा पैदा करने वाली मशीन समझा जाता था। उनका बौद्धिक स्तर अत्यन्त निम्नतम् था।[2] समाज में स्त्रियों की ऐसी दशा से आर्यसमाज सदैव सचेत था। इसके लिए उसने नारी शिक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया। क्योंकि शिक्षित नारी ही अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति मूलरूप से जागरूक रहकर समाज को नयी दिशा दे सकती है और गार्गी, मैत्रेयी, महारानी दुर्गावती, लक्ष्मीबाई जैसी विदुषी और वीरांगना नारियों का उदाहरण समाज में प्रस्तुत कर सकती है।

आर्यसमाज ही भारत में पहला संगठन था, जिसने स्त्री शिक्षा को प्रारम्भ किया और उनके लिए स्कूल स्थापित किया। स्त्रियों के पढ़ने का निषेध को आर्यसमाज ने सदैव मूर्खता, स्वार्थपरता और निबुद्धि का परिचायक माना और पुरूषों के समान स्त्रियों को भी व्याकरण धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, शिल्प आदि सभी शिक्षाओं के लिए योग्य ठहराया।[3]

नारी जाति के उत्थान के लिए आर्यसमाज के पूर्व ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज व अनेक सामाजिक सुधारकों द्वारा प्रयास किया गया था, जिसमें अभूतपूर्व सफलता भी मिली। उसमें राजा राममोहन राय के अथक प्रयास के फलस्वरूप सतीप्रथा निषेध अधि नियम' रेग्यूलेशन नं0, ग्टप्प् सन्, 1829।'[4] विधवा-विवाह के पक्ष में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (1820-1891) द्वारा चलाये गये बृद्ध आन्दोलन के फलस्वरूप हिन्दू विधवा पुर्नविवाह (1856)[5], केशवचन्द्र सेन की प्रयत्नों के परिणामस्वरूप सन् 1872 का मैरिज एक्ट आदि महत्वपूर्ण थी। मैरिज एक्ट में बहुविवाह को दण्डित माना गया और बाल-विवाह का भी अन्त किया गया था। इसके पूर्व सन् 1807 में बाल-विवाह निरोधक अधिनियम व इस मैरिज एक्ट के बाद सन् 1672, सन् 1891 ई0 में द्वितीय अधिनियम पारित किये गये।

आर्यसमाज ने उ0प्र0 में इन सामाजिक विधानों को दृढ़ता के साथ प्रस्तुत कर एक नयी चेतना जागृत की। इस समाज ने बाल-विवाह, बहुविवाह, वृद्ध विवाह, विधवा-विवाह निषेध, सती प्रथा, दहेज-प्रथा, स्त्रियों की शिक्षा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण आदि सामाजिक कुप्रथाओं के विरूद्ध प्रदेश में बृद्ध आन्दोलन चलाया। जनसामान्य में तत्सम्बन्धी टैक्टों (जिन्दा लाश, घर की देवी, विधवायें और देश का नाश, दहेज) को हजारों की संख्या में वितरित कर समाज को जागृत किया। इन ट्रेक्टों में समाज की कन्याओं के प्रति लिए जा रहे अत्याचारों के साथ ही उनके उत्थान के विचार प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ जैसे-जिन्दा लाश टैक्ट में उल्लेख है कि हमारे यहाँ लड़कियों को पैदा होते ही गला घोटकर मार डालते थे। भला हो अंग्रेजी सरकार का जिसने इस बुरी रिवाज को जबरदस्ती बन्द करा दिया। हमारे देश में आजकल लड़किया जिन्दा जला दी जाती है। इस समय ऐसी जिन्दा लाशों की संख्या लाखों और करोड़ों तक पहुँच गयी। पहले तो छोटे बच्चों या साठ वर्ष के बुढढों से आंखों पर पट्टी बांधकर अपनी प्यारी कन्याओं को ब्याह देते है और जब वे विधवा हो जाती है तो उनकों हजारों तरह के कष्ट देते है।

इस टैक्ट में नारी उद्धार व जागरण के प्रति समाज को सचेत भी किया गया है, जैसे-हमारे ऋषि मुनियों ने इन दु:खों पर विचार कर पुनर्विवाह की आज्ञा दी थी जिसका प्रभाव इसमें निहित है।[6] ''विधवायें और देश का नाश'' नामक ट्रैक्ट उत्तर प्रदेश में आठवीं बार सन् 1950 में प्रकाशित हुआ था। जिसमें उल्लेख है कि भारत में छब्बीस लाख इकतीस हजार सात सौ अट्ठासी विधवाओं का होना प्रकट करता है कि भारत महासंकट में है। आज सैकड़ों विधवायें रोज ईसाई और मुसलमान हो जाती है, आजकल विधवाओं के कारण हिन्दू जाति का बहुत बड़ा नुकसान हो रहा है। विधवा विवाह हमारे शास्त्र के विरूद्ध है तो क्या धर्म का सर्वनाश शास्त्र के अनुकूल है, याद रखों कि विधवाओं के विवाह में रूकावट डालना अपने देश ओर जाति के डूबने के लिए कुआँ खोदना है।[7]

इस प्रकार समाज में बाल-विवाह की प्रथा के कारण बहुत सी कन्याऐं छोटी आयु में विधवा हो जाती थी और उन्हे जन्मभर वैधव्य जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ता था। उच्च वर्ग की विधवाओं के लिए पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी और उनकी स्थिति अत्याधिक खराब थी।[8] स्वामी दयानन्द ने भारतीय समाज में व्याप्त इस पीड़ादायक परम्परा का दृढ़ विरोध किया तथा 16 वर्ष से कम आयु वाली स्त्री और 25 वर्ष से कम आयु के पुरूष के विवाह को अनुचित बताया। सत्यार्थ क्रमश: में उल्लेख है कि सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष तक कन्या और 25 वर्ष से लेकर 48वें वर्ष तक पुरूष के विवाह का समय उत्तम है।[9] सन् 1872 के मैरिज एक्ट में दूल्हा या वर की उम्र 18 वर्ष और दुल्हन की उम्र 14 वर्ष निश्चित किया गया था। बाद में विवाह सम्बन्ध ी अधिनियम 1891 के अनुसार विवाह के समय लड़की की आयु कम से कम 12 वर्ष का प्रावधान किया गया था।[10]

बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं के प्रचलन के कारण बाल विधवाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि से व्यग्र आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता दीवान बहादुर हर विलास शारदा (जो एक समय परोपकारिणी सभा के अध्यक्ष और विधान परिषद के सदस्य थे) ने एसेम्बली में एक बिल पेश किया था।[11] जिसे बाल-विवाह निरोधक अधिनियम या संक्षेप में ''शारद एक्ट'' कहते है। बाल-विवाहों के विरूद्ध यह शारदा एक्ट हर विलास की सिफारिशों के फलस्वरूप 23 सितम्बर सन् 1929 को सायं 7:45 पर पास हुआ। यह कानून के रूप में 1 अप्रैल, सन् 1930 ई0 से लागू किया गया। इसमें विवाह के समय वर की आयु 18 वर्ष और कन्या की आयु 15 का प्रावधान किया गया था। इसके नियमों का पालन न करने पर जेल जाने का प्रावधान था। ऑल इण्डिया वोमेन द्वारा इस कानून को समर्थन प्राप्त था।[13]

आर्य समाज उत्तर प्रदेश में बाल-विवाह निषेध व विधवाओं के रक्षार्थ सदैव प्रयत्नशील था। आर्यसमाज द्वारा इसके लिए आश्रमों की स्थापना करने का कार्य प्रारम्भ किया गया। जिसमें स्वामी मंगलदेव की प्रेरणा से आगरा आर्यसमाज द्वारा सन् 1909 में विध वा हितकारिणी सभा व विधवा आश्रम (सन् 1911) की स्थापना, लखनऊ आर्यसमाज द्वारा सन् 1914 ई0 में विधवा आश्रम की

स्थापना, देहरादून में सन् 1924 ई0 में श्रद्धानन्द बाल ''वनिताश्रम'' की स्थापना आदि महत्वपूर्ण थी। आगरा आर्यसमाज द्वारा सन् 1911 ई0 में जो विधवा आश्रम की स्थापना की गयी थी उसमें प्रारम्भ में केवल 3 विधवाओं ने आश्रय लिया था। बाद में उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी और प्रतिवर्ष एक सौ से लगभग विधवाएँ आश्रम में प्रवृष्टि होने लगी थी।[14]

आर्यसमाज द्वारा स्थापित विधवा आश्रमों में आश्रय के साथ-साथ उनकों दस्तकारी सिखाना, शिक्षा की व्यवस्था करना व उनके पुनर्विवाह की व्यवस्था का भी प्रबन्ध किया गया था। आगरा, लखनऊ व देहरादून के समान ही प्रयाग, शाहजहाँपुर, सहारनपुर और बरेली आदि अन्य नगरों में भी आर्यसमाज द्वारा विधवाओं, असहाय स्त्रियों व अनाथ बालिकाओं के लिए आश्रमों की स्थापना की गयी थी। आर्यसमाज इस प्रकार किए गए प्रयास के फलस्वरूप उस समय कुछ विधवा पुर्नर्विवाह भी हुये थे। संयुक्त प्रान्त में आर्य प्रतिनिधि सभा का सन् 1912 ई0 में वैदिक वैजयन्ती नाम से जो 25 साल का विवरण प्रकाशित हुआ था, उसमें कुछ विधवा विवाह की चर्चा है, जैसे-आगरा में डॉ0 मुकुन्दलाल जी की पुत्री विधवा हो गयी थी। उसके पुनर्विवाह की विद्वानों में चर्चा का विषय था। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में पं0 विश्वनाथ शर्मा के एक विधवा से विवाह का और श्री भगवानदीन जी की विधवा कन्या के विवाह का विवरण मिलता है। इसके साथ ही सौ से अधिक बाल-विधवाओं का विवाह आर्यसमाज के प्रयास से हुआ था। जून 1901 ई0 में मुजफ्फरनगर के लाला स्वरूप अग्रवाल ने अपनी कुवांरी विधवा पुत्री का पुनर्विवाह लाला गोविन्द प्रसाद से किया था। इस वैवाहित धर्मानुष्ठान में बहुत से आर्यसमाजी शामिल हुए थे।[15]

उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के सर्वमान्य नेता मदन मोहन सेठ के प्रेरणास्वरूप मथुरा में महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव (सन् 1925) मनाया गया था और इस अवसर पर सार्वदेशिक सभा, परोपकारणी सभा, सभी आर्य प्रतिनिधि सभाओं, प्रमुख आर्य संस्थाओं सन्यासियों तथा विद्वानों को आमन्त्रित किया गया था। महोत्सव की सफलता तथा संचालन के पूर्व में कमेठियाँ भी बनायी गयी थी। जिसमें आर्यसमाज के उनके सक्रिय कार्यकर्तागण-श्री स्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी (कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश) श्री महात्मा नारायण स्वामी(उत्तर प्रदेश जन्म अलीगढ़) श्री महात्मा हंसराज (लाहौर), डॉ0 कल्याणदास देसाई (बम्बई), श्री हरविलास शारदा-(अजमेर) श्री सेठ जयनारायण (कलकत्ता), बाबू सीताराम (लखीमपुर), श्री मदनमोहन सेठ (बुलन्दशहर), बाबू श्री राम (आगरा), आचार्य रामदेव, प्रिंसिपल दीवानचन्द्र और पं0 घासीराम (मेरठ) आदि शामिल थे। इस महोत्सव का प्रधान श्रेय श्री नारायण स्वामी को प्राप्त था, जबकि पूरे भारत, से इस महोत्सव में अनेक आर्यसमाज के सक्रिय वरिष्ठ कार्यकर्तागण, विद्वान व चिन्तक सम्मिलित हुए थे।[16] इसमें अनेक कार्य महिलाओं के भाषण भी हुए, इनमें श्री सत्यवती (जालन्धर), श्रीमती दमयन्ती देवी, श्रीमती इन्द्रावती (इन्द्रप्रस्थ) और श्रीमती सुमित्रा देवी (गुजरात) प्रमुख थी।[17]

गुरूकुल के स्नातक और ब्रह्मचारी कन्या महाविद्यालय की स्नातिकाएँ और छात्राएँ, भिन्न-भिन्न कालेजों, स्कूलों ओर पाठशालाओं के विद्यार्थी, अनाथालयों के बालक और बालिकाएँ, पंजाब की स्त्रियों का नगर-कीर्तन भजन मण्डलियाँ आदि मथुरा महोत्सव में सम्मिलित थे। इस अवसर पर इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की सम्मिलित होना, उनका भाषण होना, उनकी जागरूकता व उत्साह का द्योतक था। महोत्सव में जो सम्मेलन, अधिवेशन व सभाएं आयोजित हुयी थी और अनेक प्रस्ताव स्वीकृत किये गये, उनमें नारी स्वतन्त्रता समानता व उनके अधिकारों को भी सम्मिलित किया गया था। विधवाओं की स्थिति से उपस्थित लोगों को अवगत भी कराया गया और आर्य संस्कृति में उत्कृष्ट स्वयंवर विवाह को मान्यता की गयी।[18]

आर्य समाज ने नारी जाति को जागृत करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये। विवाह जन्म दोषों को दूर करने के लिए व्यापक आन्दोलन चलाए और सरकार से कानून पास कराया। साथ ही समाज में दहेज प्रथा के कारण उत्पन्न हुयी अनेक समस्याओं और कुरीतियों से जनसामान्य को अवगत कराते हुए इसे दूर करने का प्रयास किया। साथ भी भारतीय जनमानस में यह प्रचारित किया कि दहेज जैसी प्रथा का भी अन्त होना चाहिए।

इस दहेज रूपी संक्रामक बीमारी से हिन्दू जनमानस को दूर करने में आर्यसमाज ने सक्रिय भूमिका निभायी। इसने संयुक्त प्रान्त के विविध भागों में दहेज प्रथा के विरूद्ध व्यापक प्रचार किया। इसके अन्तर्गत आर्यसमाज चौक, प्रयाग से उन दिनों ट्रैक्टस समाज में वितरित किये जाते थे। इन ट्रैक्टों के अध्ययन से आर्यसमाज ने जनमानस को ऐसी सामाजिक कुप्रथा की प्रति जागृत किया। इन टैक्टों का कुछ मुख्य अंश जैसे-

''दहेज नामक ट्रैक्ट में इस सामाजिक प्रथा को कुप्रथा माना गया। इसमें यह भी कहा गया है कि यह बुरी रस्म पूर्व, पश्चिम दक्षिण, उत्तर समस्त भारत में फैली हुई और जितनी हिंसा इस प्रथा से होती है, उतनी शायद एक-दो प्राणियों के मरने से भी नही

होती। दहेज लेने वाले तो समस्त जाति की कन्याओं को और उनके परिवार को जन्म भर दु:ख देते है। उनको तड़पा-तड़पा कर मारते है। इस टैक्ट में दहेज प्रथा के दुष्प्रभाव का विधिवत् वर्णन किया गया है।[19]

इस प्रकार सन् 1947 ई0 तक आर्यसमाज विवाह जन्म दोषों के कारण समाज के उत्थान में उत्पन्न बाधाओं से प्रान्त में निरन्तर संघर्ष की आवाज उठायी। जिसके फलस्वरूप स्त्रियों में व्यापक चेतना जागृत हुई और बाल-विवाहों के प्रति जनमानस में एक नवीन विचारधारा का जन्म हुआ। आर्य समाज ने ही बाल-विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह एवं दहेज प्रथा के विरूद्ध जनमानस को तैयार करने का काम किया और विधवा-विवाह के विरूद्ध समाज में प्रचार-प्रसार किया जिसके फलस्वरूप विध वा-विवाह की प्रथा प्रारम्भ हुयी। इन प्रयत्नों में महिलाओं में अपनी स्वतन्त्रता और अधिकारों के प्रति जागरूकता और स्वाभिमान का उदय किया और एक नवीन चेतना जागृत हुई। इसके साथ ही समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का बोध भी हुआ। इस समय महिलाएँ शिक्षित ही नही हुयी बल्कि वेद विदुषी भी बनी।

सन्दर्भ सूची:

1. वी0एन0 सिंह, जनमेजय सिंह, भारत में सामाजिक आन्दोलन, रावत पब्लिकेशन जयपुर, पृ0 2016।
2. विश्व प्रकाश- लाईफ एण्ड टीचिंग ऑफ स्वामी दयानन्द, पृ0 154-55।
3. आर्यसेवक, आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश व विदर्भ का मासिक मुख्यपृष्ठ, अप्रैल, 1975, पृ0 15।
4. रविन्द्र मुखर्जी- भारत की सामाजिक संस्थाएं, विवेक प्रकाशन, पृ0 319।
5. डॉ0 श्रीमती सुधा कुमार- भारतीय संस्कृति की झलक, पृ0 272।
6. जिन्दा लाश ।।टैक्ट।। -सम्पादक एवं प्रकाशक - गंगा प्रसाद उपाध्याय आर्यसमाज, चौक प्रयाग, पृ0-3-4।
7. विधवायें और देश का नाश । टैक्ट।
8. गुलशन स्वरूप सक्सेना, आर्यसमाज मूवमेंट इन इण्डिया, पृ0 11-72।
9. महर्षि दयानन्द सरस्वती-सत्यार्थ प्रकाश, 39वाँ संस्करण, सितम्बर, 1992 पृ0 54।
10. रवीन्द्र मुखर्जी, भारत की सामाजिक संख्याएं, पृ0 187।
11. ''सार्वदेशिक'' आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख्यपत्र अगस्त 1932 अंक-5, वर्ष 6 पृ0 672।
12. रवीन्द्र नाथ मुखर्जी, भारत की सामाजिक संख्याएं पृ0 182।
13. चाँदकरण शारदा, शारदा एक्ट, परिशिष्ट-3 में एक्ट सम्बन्धी विवरण।
14. डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार, ''आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग पृ0 262।
15. गुलशन स्वरूप सक्सेना, आर्यसमाज मूवमेंन्ट इन इण्डिया, पृ0 127।
16. डॉ0 सत्यकेतु विधालंकार, 'आर्यसमाज का इतिहास' द्वितीय भाग पृ0 535।
17. इन्द्र विद्यावाचस्पति, ''आर्यसमाज का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ0 135।
18. डॉ0 सत्यकेतु विधालंकार, ''आर्यसमाज का इतिहास, द्वितीय भाग पृ0 539।
19. दहेज ।।ट्रैक्ट।। सम्पादक एवं प्रकाशक, गंगा प्रसाद उपाध्याय, आर्यसमाज चौक, प्रयाग, सन् 1939, पृ0 4।

पं0 दीनदयाल उपाध्यायः- एक विलक्षण व्यक्तित्व

मोहित सिंह रौतेला

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0एस0बी0 परिसर नैनीताल

शोध सारः- भारत राष्ट्र के निर्माता महान विभूतियों में पं0 दीनदयाल उपाध्याय का नाम एक अमर चिरस्मरणीय महापुरूष के रूप में लिया जाता है। दीनदयाल उपाध्याय को आधुनिक भारत के गंभीर चिंतक, प्रखर विचारक महान संगठनकर्ता के रूप में याद किया जाता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता व भारत के यश, गौरव एवं सम्मान के लिए अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया। इन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में व्यक्तिगत निष्ठा, ईमानदारी, सत्य निष्ठा के उच्चतम मानकों को बनाये रखा। वे भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य भी रहे व श्यामाप्रसाद मुखर्जी के बाद भारतीय जनसंघ के सन् 1967-1968 तक अध्यक्ष भी रहे।

दीनदयाल उपाध्याय में राष्ट्रवाद कूट-कूट कर भरा हुआ था। राष्ट्रवाद के संदर्भ में उनका मानना था कि स्वदेशी पर अधिक बल दिया जाना चाहिए व स्वदेश की बनी हुयी वस्तुओं का उपयोग एवं उपभोग किया जाना चाहिए उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में स्वदेशी वस्तुओं को ही आत्मसात् किये रहे एवं भारतीय जनता पार्टी के गठन से ही पार्टी के लिए वैचारिक मार्गदर्शन, नैतिक प्रेरणा के स्रोत रहे व भारतीय जनता पार्टी ने इनके हिन्दू राष्ट्रवाद, हिन्दुत्वाद, एकात्म मानववाद, आर्थिक संरक्षणवाद, भारतीय सभ्यता व संस्कृति के विचारों को अपनाया।

मुख्य शब्दः- संस्कृति, सभ्यता, एकात्म मानववाद, राष्ट्रवाद, जनसंघ, आर्थिक

प्रस्तावनाः- दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सिंतबर 1916 को (विक्रम संवत् 1973 शालीवाहन शाके 1838, भाद्रपद-आश्विन कृष्ण, 13 सोमवार) को ब्रज प्रांत के धार्मिक स्थल मथुरा जिले के नगला चंद्रभान गांव में हुआ था इनके पिता का नाम 'भगवती प्रसाद उपाध्याय' था जो कि भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का पालन करते थे एवं वे एक प्रसिद्ध ज्योतिषी भी थे। जिन्होंने अपने पुत्र दीनदयाल उपाध्याय की जन्म कुण्डली देखकर ही बचपन में यह भविष्यवाणी कर दी थी कि यह लड़का महान विचारक, शिक्षा शास्त्री व अग्रणी राजनेता बनेगा लेकिन अविवाहित रहेगा व इनकी माता का नाम 'रामप्यारी' था जो कि धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी[1]।

बच्चों को जिस उम्र में मां-बाप के लाड-प्यार की आवश्यक्ता होती है उस अवस्था में दीनदयाल उपाध्याय को लाड-प्यार व सुखद छाया से वंचित रहना पड़ा क्योंकि जब दीनदयाल उपाध्याय मात्र ढाई वर्ष के थे तो उनके सिर से पिता भगवती प्रसाद का सांया उठ गया था इनके पिता को श्राद के दिनों में श्राद के भोजन (खिचड़ी) में विष परोष दिया था जिस कारण वे परलोक सिधार गये। दीनदयाल उपाध्याय अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् माता रामप्यारी व अपने अनुज शिवदयाल के साथ अपने नाना 'चुन्नी लाल शुक्ल' के घर राजस्थान के फतेहपुर सिकरी के पास स्थित गांव 'गुड की मण्डी' में चले गये। और वहां अपने नाना व मामा के संरक्षण में रहने लगे। नाना के घर चार वर्ष बीते ही थे कि 1924 में उनकी माता रामप्यारी का भी बीमारी के चलते निधन हो गया इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी छोटी सी उम्र में ही अपने मां-बाप दोनों को खो दिया लेकिन इतना सब कुछ होने के बाद भी काल की छाया इनके आसपास मंडरा ही रही थी। 1834 में इनके अनुज शिवदयाल की भी निमोनिया के चलते मृत्यु हो गयी। बाल्यकाल की इन घटनाओं ने दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्तिव एवं कृतित्व को दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति, निडर व साहसी बना दिया[2]।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय की शिक्षा-दीक्षाः-

दीनदयाल उपाध्याय की प्रारंभिक शिक्षा अपने मामा राधारमण शुक्ल के घर राजस्थान से हुयी इनके मामा राजस्थान के गंगापुर में रेल सेवा में कार्यरत थे गंगापुर से ही बालक दीनदयाल उपाध्याय ने छठी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की और आगे की पढ़ाई की व्यवस्था राजस्थान के कोटा में की गयी परंतु दीनदयाल उपाध्याय के अस्वस्थता के कारण इन्हें कोटा छोड़ना पड़ा इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय की आठवीं तक की पढ़ाई राजस्थान के रायगड़ में हुयी व मैट्रिक की पढ़ाई सीकर के प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान 'कल्याण हाईस्कूल' से हुयी। 1934 में नवीं कक्षा उर्त्तीण करी व अगले वर्ष दसवीं की परीक्षा में दीनदयाल उपाध्याय ने पूरे राजस्थान में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इनकी योग्यता का यह प्रमाण था कि इनकी ज्यामिती की उत्तर पुस्तिका को राजस्थान बोर्ड ने कई वर्षों तक सुरक्षित रखा ताकि अन्य विद्यार्थी भी प्रोत्साहित हो सकें इनकी योग्यता का सम्मान करते हुए सीकर के महाराजा ने इन्हें दो स्वर्ण पदक प्रदान किये व 250 रूपये का नकद पुरूस्कार दिया तथा आगे की इंटरमीडिएट की शिक्षा के लिए 10 रूपये की मासिक छात्रवृत्ति भी स्वीकृत की[3]।

दीनदयाल उपाध्याय की उपलब्धि से उत्साहित होकर इनके मामा रामशरण शुक्ल ने इन्हें इंटरमीडिएट की परीक्षा में प्रवेश दिलाने के लिए राजस्थान की ख्याति प्राप्त शिक्षण संस्थान 'बिड़ला कॉलेज' को चुना। प्रतिभावान छात्र को देखकर कॉलेज के प्रिंसिपल ने दीनदयाल उपाध्याय को सहर्ष प्रवेश दे दिया व स्कूल में रहने के लिए हॉस्टल की व्यवस्था भी कर दी इस प्रकार 1937 में दीनदयाल उपाध्याय ने इंटर की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उर्त्तीण कर ली इस बार भी उन्हें 2 स्वर्ण पदक मिले जिनमें एक 'राजस्थान बोर्ड' व दूसरा 'बिड़ला कॉलेज' की ओर से था दीनदयाल की उपलब्धि पर हर्षित होकर प्रख्यात उद्योगपति 'घनश्याम दास बिड़ला' ने दीनदयाल उपाध्याय को दो स्वर्ण पदक व 250 रूपये की नगद पुरूस्कार राशि व आगे की शिक्षा दीक्षा के लिए दस रूपये की मासिक छात्रवृत्ति से भी पुरस्कृत किया।

स्नातक की पढ़ाई के दीनदयाल उपाध्याय ने 1937 में कानपुर के 'सनातन धर्म कॉलेज' प्रवेश लिया इन्होंने स्नातक में अंग्रेजी, गणित, संस्कृत, हिन्दी विषय को चुना व इन्होंने स्नातक की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उर्त्तीण कर कीर्तिमान स्थापित किया और दीनदयाल उपाध्याय की इस उपलब्धि पर 'सनातन धर्म कॉलेज' ने आगे की पढ़ाई के लिए 30 रूपये मासिक छात्रवृत्ति प्रदान की।

स्नातक के बाद दीनदयाल उपाध्याय स्नाकोत्तर करने के लिए 'सेंट जॉन्स कॉलेज' आगरा चले गये यहां इन्होंने स्नाकोत्तर अंग्रेजी साहित्य में प्रवेश लिया इन्होंने स्नाकोत्तर प्रथम वर्ष में अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया व उनका स्नाकोत्तर द्वितीय वर्ष में अध्ययन चल ही रहा था परंतु परिवार में हृदय विदारक घटना के कारण इनकी शिक्षा में विलंब आ गया इनकी ममेरी बहन रामा देवी काफी अस्वस्थ हो गयी थी जिसे उपचार के लिए आगरा लाया गया था संकट की इस घड़ी में दीनदयाल उपाध्याय को भी अपनी ममेरी बहन का ध्यान रखना था रामादेवी के स्वस्थता के लिए सभी उपलब्ध चिकित्सा पद्धतियों को अपनाया गया परंतु वह स्वस्थ नहीं हो पायी इस घटना ने दीनदयाल उपाध्याय को इतना आहत किया की वह स्नाकोत्तर द्वितीय वर्ष की परीक्षा न दे सके व उनकी शिक्षा के क्रम में व्यवधान उत्पन्न हो गया।

शिक्षा के क्रम में गतिरोध हो जाने के कारण दीनदयाल उपाध्याय को इनके मामा ने 'प्रशासनिक सेवा' की परीक्षा देने के लिए प्रेरित किया जहां इन्होंने लिखित परीक्षा में अप्रत्याशित प्रदर्शन किया और साक्षात्कार की परीक्षा का समय आ गया जहां इन्हें सूँट (कोट-पैंट) की आवश्यकता थी परंतु दीनदयाल उपाध्याय प्रायः धोती-कुर्ता परिधान में ही रहते थे कुछ पैसों की व्यवस्था कर इन्होंने सूँट का कपड़ा तो खरीद लिया परंतु दर्जी को सूँट की सिलाई के पैसे देने के लिए पैसों का प्रबंध नहीं हो पाया इस कारण इनका साक्षात्कार धोती-कुर्ता परिधान में ही हुआ जहां सफल विद्यार्थियों की सूची में दीनदयाल उपाध्याय का नाम गरिमापूर्ण स्थिति में था लेकिन जन-सेवा का व्रत धारण किये दीनदयाल उपाध्याय ने प्रशासनिक सेवा में रूचि नहीं होने के कारण अपनी सेवा नहीं दी।

कई विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी दीनदयाल उपाध्याय का छात्र जीवन मेधावी, संघर्षशील व चुनौती पूर्ण रहा उनके छात्र जीवन में कई पारिवारिक आपदाएं आयी परंतु इस वातावरण में भी उनकी पढ़ाई पर कोई भी दुष्परिणाम देखने को नहीं मिला वे अधिकतर कक्षाओं में न केवल प्रथम स्थान पर रहे बल्कि समस्त बोर्ड की परीक्षाओं में भी सर्वप्रथम स्थान पर रहे इसी कारण दसवीं में इन्हें तत्कालीन सीकर के महाराजा 'कल्याण सिंह' ने इन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की थी व प्रसिद्ध उद्योगपति 'घनश्याम बिड़ला' ने भी इन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की थी।

स्नाकोत्तर काल में आगरा में नानाजी देशमुख व दीनदयाल उपाध्याय साथ-साथ रहे व नानाजी देशमुख के व्यक्तित्व का भी इन पर असर पड़ा। विद्यार्थी काल में ही दीनदयाल उपाध्याय क्रांतिकारियों की भूमि कानपुर, प्रयागराज, ऐतिहासिक स्थल सीकर (राजस्थान), आगर व अनेक स्थलों के संपर्क में आये इस संपर्क ने युवा दीनदयाल उपाध्याय के जीवन को विलक्षण ऊर्जा प्रदान की व छात्र जीवन से ही जन-कल्याण व जन-सेवा को ही जीवन का लक्ष्य बनाया[4]।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ से संबंधः-

जिस दौरान दीनदयाल उपाध्याय का संपर्क राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ (RSS) से हुआ वह भारत की आजादी का महत्वपूर्ण काल था संघ की विचारधारा व कार्य पद्वति का चिंतन-मनन तथा इसे आत्मसात करने के बाद दीनदयाल उपाध्याय विधिवत रूप से मकर संक्राति के दिन 1937 में राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के स्वंय सेवक बने उस समय उत्तरप्रदेश में संघ का कार्य प्रारंभ हो ही रहा था इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय सेवक संघ की प्रारंभिक स्वंय सेवकों में से एक थे और वे शीघ्र ही राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ को संपूर्ण भारत में सामर्थ्यवान शक्ति बनाने के कार्य में जुट गये। पढ़ाई पूर्ण करने के पश्चात् दीनदयाल उपाध्याय ने नौकरी न करने का निर्णय लिया था उसके स्थान पर उन्होंने राष्ट्रीय जागृति एवं राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ में कार्य के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पण करने का निर्णय ले लिया। 1937 के चुनावों में उत्तरप्रदेश में कांग्रेस की सत्ता आयी। मुस्लिम लीग और कांग्रेस का समझौता भंग हुआ मुस्लिम लीग के नेता चौधरी खालीक अजूमा ने नाराज होकर कहा 'यदि हम साथ राज नहीं कर सकते तो साथ रह भी नहीं सकते' उस समय द्वि-राष्ट्रवाद का नारा तेजी से बुलंद हो रहा था इस पृथक राष्ट्रीयता के नारे ने मुसलमानों को आक्रामक बना दिया था तथा 1940 के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान निर्माण का प्रस्ताव मुस्लिम लीग ने पारित कर दिया था यह पृथकवाद के नारे से भारत का हर राष्ट्रवादी आहत था[5]। दीनदयाल उपाध्याय इस साम्प्रदायिक पृथकतावाद एवं द्वि-राष्ट्रवाद का विरोध करना चाहते थे इस कार्य के लिए उन्हें संघ का कार्य अपने मन में अनुकूल लगा। राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ अनुशासित युवकों का एक सुसंगठित क्रमबद्ध संगठन था वहां बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये कोई स्वंय सेवक नहीं बन सकता था उन दिनों ग्रीष्म अवकाश में 40 दिनों का यह प्रशिक्षण शिविर नागपुर में होता था जिसको संघ शिक्षा वर्ग कहा जाता था इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय ने 1939 में प्रथम शिक्षा संघ वर्ग तथा 1942 में द्वितीय संघ शिक्षा वर्ग का प्रशिक्षण प्राप्त किया उनकी बौद्धिक क्षमता को देखते हुए सन् 1942 में राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ ने उन्हें उत्तरप्रदेश के जिला लखीमपुर में जिला प्रचारक का दायित्व सौंपा। वे 1942 से 1945 तक लखीमपुर में ही जिला प्रचारक रहे पहले उन्हें जिले का फिर उन्हें बाद में विभाग का दायित्व मिला उनकी कार्यसिद्धता, शालीनता, संगठन क्षमता, विद्धवता, संस्कार क्षमता, निष्ठा एवं बौद्धिक ज्ञान को देखते हुए 1945 में ही उन्हें संपूर्ण उत्तरप्रदेश का सह प्रांत प्रचारक का दायित्व दे दिया गया उन दिनों उत्तरप्रदेश के प्रांत प्रचारक श्री भाऊराव देवरस थे। इस प्रकार श्री भाऊराव देवरस के बाद उनका ही स्थान था वे 1951 तक इसी दायित्व पर कार्य करते रहे उसके बाद 1951 में ही 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना हुयी तब उन्हें 'भारतीय जनसंघ' में सेवा देने के लिए कहा गया और वे 'भारतीय जनसंघ' को प्रभावशाली, शक्तिशाली बनाने के कार्य में जुट गये[6]।

जनसंघ के संस्थापक सदस्य, महामंत्री व अध्यक्ष के रूप में दीनदयाल उपाध्याय का योगदानः-

भारत में सन् 1946 में अंतरिम सरकार का गठन हुआ और जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री बने इसके कुछ ही समय पश्चात् 15 अगस्त 1947 को भारत अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुआ लेकिन भारत को अंग्रेजो की दासता की मुक्ति के साथ ही विभाजन की त्रासदी भी झेलनी पड़ी इस अंतरिम सरकार में 'श्यामा प्रसाद मुखर्जी' केन्द्रीय मंत्री थे लेकिन वे सरकार की कश्मीर-नीति व अव्यवहारिक नीति तथा लियाकत अली समझौते से संतुष्ट नहीं थे इन्होंने सरकार की इन नीतियों के विरोध में मंत्रिमंडल से त्याग पत्र दे दिया और एक ऐसे राजनीतिक दल की स्थापना का संकल्प लिया जिसकी विचारधारा, चिंतन व कार्यकलाप राष्ट्रीय हित में हो। उस समय दिल्ली के तत्कालीन प्रांतीय संघ प्रचारक 'श्री बसंत राव' के प्रयास से 'श्री गुरूजी' (माध वराव सदा शिवराव) और 'डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी' के मध्य नये राजनीतिक दल के गठन के संबंध में विचार-विमर्श हुआ। श्री गुरूजी ने डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के अनुरोध पर कुछ प्रमुख संघ कार्यकर्ताओं को प्रस्तावित नये राजनीतिक संगठन में दायित्व निभाने के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी[7]। उत्तरप्रदेश में इस राजनीतिक दल के दायित्व को निभाने के लिए दीनदयाल उपाध्याय व नानाजी देशमुख का चयन हुआ इसी के तहत 21 सितंबर 1951 को उत्तरप्रदेश के लखनऊ में एक सम्मेलन आयोजित हुआ और 'प्रादेशिक जनसंघ' की स्थापना हो गयी व इसी सम्मेलन में 'प्रादेशिक जनसंघ' को अखिल भारतीय स्वरूप देने का भी प्रस्ताव पारित

हुआ जिसके तहत 21 अक्टूबर 1951 को दिल्ली में 'अखिल भारतीय' सम्मेलन आयोजित किया गया और 'अखिल भारतीय जनसंघ' का गठन हुआ व इस संगठन के तीन संस्थापक सदस्य डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी, प्रो0 बलराज मधोक व दीनदयाल उपाध्याय बने और सर्व-सहमति से 'अखिल भारतीय जनसंघ' के प्रथम अध्यक्ष के रूप में 'डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी' को चुना गया व अगले वर्ष दिसंबर 1952 में 'अखिल भारतीय जनसंघ' का कानपुर में प्रथम अधिवेशन हुआ जिसमें पं0 दीनदयाल उपाध्याय को उनकी संगठन क्षमता तथा उनकी राजनीतिक सूझ-बूझ को देखते हुए उन्हें 'अखिल भारतीय जनसंघ' के महामंत्री का दायित्व सौंपा गया और इस दायित्व का इन्होंने सन् 1967 तक निर्वहन किया। एक बार डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने दीनदयाल उपाध्याय की कार्यकुशलता और क्षमता से प्रभावित होकर कहा था कि ''यदि मुझे दो दीनदयाल उपाध्याय मिल जाये तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूं''।

भारत-पाकिस्तान के विभाजन से ही भारतीय गणतंत्र के लिए कश्मीर एक विकट समस्या बनी रही 'महाराजा हरि सिंह' ने भारत के साथ विलय का प्रस्ताव तो पारित कर ही दिया था लेकिन फिर भी 'शेख अब्दुल्ला' के कश्मीर के सर्वेसर्वा बनने का स्वप्न तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू समझ नहीं पाये और धोखा खाते रहे और शेख अब्दुल्ला की मनमानी को मानते रहे व कश्मीर को धारा 370 व 35। के रूप में विशेष राज्य का दर्जा दे दिया जिसका अर्थ यह था ''कश्मीर के लिए अलग ध्वज, अलग विधान'' लेकिन इस स्थिति का डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने पुरजोर विरोध किया डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी चाहते थे कि एक देश में केवल एक निशान एक विधान एक प्रधान की ही परम्परा होनी चाहिए[8]।

जम्मू कश्मीर भारत का अंग होते हुए भी भारत के लोगों को वहां जाने के लिए परमिट लेना पड़ता था जनसंघ की 'कानपुर अधिवेशन' के दौरान सरकार की इस नीति के खिलाफ जनसंघ के कार्यकर्ताओं के द्वारा आवाजे उठायी गयी व इस नीति के विरूद्ध विरोध प्रदर्शन किया गया व डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने लोकसभा में भी इस मुद्दे पर सबका ध्यान आकर्षित किया परंतु स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ ऐसी स्थिति में जनसंघ के पास सत्याग्रह व आंदोलन के सिवाय और कोई विकल्प नहीं था संपूर्ण देश में एक विधान, एक निशान, एक प्रधान के लक्ष्य के आंदोलन शुरू हुआ इस आंदोलन का संचालन पं0 दीनदयाल उपाध्याय के हाथों में था और डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी इस आंदोलन को गति देने का कार्य करने लगे और इस आंदोलन के महासंग्राम में कूद पड़े इसी के चलते सरकारी आदेश के उल्लघंन के रूप में डॉ0 मुखर्जी को कश्मीर की सीमा पर गिरफ्तार कर लिया गया कुछ समय पश्चात् उनकी सहादत की खबर आ गयी डॉ0 मुखर्जी का वह बलिदान आज तक रहस्य ही बना हुआ है परंतु संपूर्ण भारत का जनमानस इसे एक षडयंत्र और जघन्य अपराध मानता है।

देश में ''एक विधान एक निशान एक प्रधान'' का नारा देने वाले डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के देहावसान के बाद कई व्यक्तियों ने अखिल भारतीय जनसंघ का नेतृत्व संभाला जिनमें प्रेमनाथ डोगरा, बलराज व्यास, प्रो0 बलराज मधोक, मौली चंद्र शर्मा आदि थे लेकिन अखिल भारतीय जनसंघ के संगठन को चलाने का दायित्व महामंत्री के रूप में दीनदयाल उपाध्याय का ही था और दीनदयाल उपाध्याय के अथक प्रयासों व परिश्रम एंव उनकी बुद्धिमत्ता से उन्होने कई कार्यकर्ताओं को जनसंघ में जोड़ा और कार्यकर्ताओं में विश्वास जगाया। दीनदयाल उपाध्याय के प्रयासों से ही जो जनसंघ का कार्यक्षेत्र केवल नगरों तक ही सीमित था परंतु अब यह कार्यक्षेत्र गांवो की ओर भी विस्तार करने लगा उन्होंने समय-समय पर कई आंदोलन चलाये व उन आंदोलनों में सफलता प्राप्त की और धीरे-धीरे विधान मंडल व अन्य संस्थानों में जनसंघ के प्रतिनिधि निर्वाचित होने लगे और वे जनता की समस्याओं को सदन में उठाने लगे[9]।

सन् 1963 में चार लोकसभा चुनाव हुए जिसमें विरोधी दलों के प्रत्याशियों का कांग्रेस के खिलाफ सर्वसहमति से चयन हुआ जिसमें फरूर्खाबाद से डॉ0 लोहिया (साम्यावादी दल), आचार्य कृपलानी (निर्दलीय) अमरोहा व मीनू मसानी (स्वतंत्र पार्टी) राजकोट तथा जनसंघ के नेता दीनदयाल उपाध्याय जौनपुर से सर्वसहमति से उम्मीदवार घोषित हुए लेकिन चुनावों के परिणामों में तीन प्रत्याशी विजयी रहे लेकिन जनसंघ के दीनदयाल उपाध्याय चुनाव हार गये इसी के चलते दीनदयाल उपाध्याय ने आजीवन चुनाव नहीं लड़ने का प्रण किया व राजनीति के दल-दल को छोड़कर संगठन को मजबूती प्रदान करने का फैसला लिया और इसके पश्चात् 'पूज्य गुरूजी' के आदेश पर दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ के कार्य को नव आयाम प्रदान किये। जनसंघ के इतिहास में सन् 1965 को 'विजयवाड़ा अधिवेशन' अपने आप में ऐतिहासिक था इसी अधिवेशन में दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद' की रूप रेखा प्रस्तुत की थी। दिसंबर 1951 के भारतीय जनसंघ के प्रथम कानपुर अधिवेशन से लेकर 1967 के 14 वें कालीकट अधिवेशन तक दीनदयाल उपाध्याय महामंत्री रहे इन दिनों भारतीय जनसंघ का राष्ट्रीय अध्यक्ष का पद भी रिक्त था। 'परम पूज्य गुरूजी' ने दीनदयाल

उपाध्याय को अध्यक्ष पद का दायित्व ग्रहण करने का आदेश दिया और जनसंघ के 14 वें कालीकट अधिवेशन में दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पद का दायित्व ग्रहण किया। इस समय दीनदयाल उपाध्याय व जनसंघ दोनों अपने प्रतिष्ठा एवं प्रभाव के शीर्ष पर थे उपाध्याय के भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष बनने के बाद संगठन में गतिशीलता व कार्यकर्ताओं में उत्साह व जोश का संचार होने लग गया और दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ की मजबूती के लिए देशभर में प्रवास करने लगे इसी के तहत 11 फरवरी 1968 को दीनदयाल उपाध्याय बिहार के पटना में आयोजित होने वाली जनसंघ की कार्यसमिति में भाग लेने हेतु उन्होंने 'पठानकोट-सियालदह एक्सप्रेस' से यात्रा प्रारंभ की लेकिन पटना पहुंचने से पूर्व ही उनका शरीर उत्तरप्रदेश के ''मुगलसराय रेलवे स्टेशन'' पर मृत पाया गया इस प्रकार एक ओजस्वी लेखक, देशभक्त, राजनीतिक विचारक, कुशल संगठनकर्ता के रूप में समूचे भारतीय समाज ने पं0 दीनदयाल उपाध्याय को खो दिया। उनका निधन न केवल जनसंघ बल्कि प्रत्येक देशभक्त व राष्ट्रवादी व्यक्ति के लिए एक अपूर्ण क्षति थी[10]।

संपूर्ण भारतीय जनमानस दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु को ''राजनीतिक हत्या के अतिरिक्त कुछ और मानने को तैयार नहीं था''। भारतीय जनमानस के दबाव में सरकार ने रामअवध और भरत नामक दो व्यक्तियों को दीनदयाल उपाध्याय के हत्यारे मानकर वाराणसी के जिला न्यायालय में मुकदमा चलाया परंतु 9 जून 1996 को जिला न्यायालय के जज श्री मुरलीधर की अदालत ने दोनों अभियुक्तों को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया अभियुक्त भरत के खिलाफ लूट-पाट का मामला दर्ज होने के कारण उसे 4 वर्ष की सजा सुनाई गयी जिला न्यायालय से आरोपियों को आरोप मुक्त करने के बाद भारतीय जनमानस में आक्रोश व असंतुष्टि उत्पन्न हो गयी जनता के दबाव को देखते हुए सरकार ने 'चंद्रचूड़ आयोग' का गठन किया ताकि दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु की सत्यता समाने आये लेकिन इस आयोग ने भी दीनदयाल उपाध्याय की हत्या के पीछे किसी भी राजनीतिक उद्देश्य को नकार दिया इस आयोग ने दीनदयाल उपाध्याय की हत्या का उद्देश्य निजी लाभ माना। दीनदयाल उपाध्याय भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष के रूप में केवल 44 दिन ही पद पर रहे इस प्रकार एक भोर का तारा, भारतीय संस्कृति का वाहक अपना शीतल स्पर्श देकर पलक झपकते ही छिप गया[11]।

भारतीय पत्रकारिता के पुरोधा के रूप में पं0 दीनदयाल उपाध्यायः-

पं0 दीनदयाल उपाध्याय का भारतीय दर्शन पत्रकारिता, एवं साहित्य से विशेष लगाव था। इसीलिए दीनदयाल उपाध्याय की जिंदगी के तमाम पड़ाव साहित्य पत्र-पत्रिकाओं व लेखन से जुड़े रहे। दीनदयाल उपाध्याय ने साहित्यिक क्षेत्र मे सम्पादन का कार्य एवं साहित्य लेखन के क्षेत्र में कई पुस्तकें लिखकार पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी प्रतिमा का परिचय दिया था।

दीनदयाल उपाध्याय एक विचारक, प्रचारक, राष्ट्रीवादी, समाजसेवी एक प्रखर-वक्ता, शिक्षाविद्, कुशल संगठन-कर्ता के साथ ही पत्रकार, संपादक एवं लेखक भी थे दीनदयाल उपाध्याय ने आधुनिक विश्वविद्यालयों में प्राप्त होने वाली पत्रकारिता शिक्षा प्राप्त नहीं की थी फिर भी उन्होंने लेखन एवं साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। जहां आज आधुनिक पत्रकारिता प्रोफेशन से हट कर कमीशन में बदल गयी है जहां हर तरफ पेड न्यूज की भरमार है एवं विज्ञापन व कमीशन का बोल-बाला है तथा ऐसे समय में दीनदयाल उपाध्याय की मूल्य परख पत्रकारिता एवं विचारों की प्रासंगिता और बड़ जाती है उन्होंने अपने लेखन में व्यक्ति के समग्र अथवा एकात्म सभी आयामों को देखने एवं समझने का प्रयास किया है इसी के साथ दीनदयाल उपाध्याय ने कई संपादकों एवं संवादाताओं को अपना सानिध्य एवं सहयोग प्रदान किया इसी कारण तब के संपादक एंव पत्रकार उन्हें अपना मित्र एवं मार्गदर्शक मानते थे व कई पत्रकार उनका अनुकरण करते थे दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता भविष्य तक उपयोगी रहने वाली पत्रकारित थी। दीनदयाल उपाध्याय उस युग की पत्रकारिता की प्रतिनिधित्व करते थे जब पत्रकारिता आदर्श रूप में कार्य करती थी न की व्यवसाय के रूप में। उन्होंने अपनी पत्रकारिता के प्रभाव का उपयोग देश को स्वतंत्रता दिलाकर राष्ट्र के पुर्ननिर्माण के लिए किया।

दीनदयाल उपाध्याय की हमेशा लेखन एवं पत्रकारिता के प्रति दूरदृष्टि रहती थी अपने एक लेख में दीनदयाल कहते हैं चुगलखोर एवं संवादाता में अंतर है चुगली जन रूचि का विषय हो सकती है किंतु सही मायने में वह संवाद नहीं है। संवाद को सत्यम्, शिवम् और सुदरम् आदर्श वाक्य को चरितार्थ करना चाहिए। सत्यम्, शिवम्, सुदरम् के अलावा पत्रकार को जन-कल्याण की भावना का ही ध्यान देना चाहिए।

यदि हम वर्तमान पत्रकारिता का अवलोकन करते हैं तो दीनदयाल उपाध्याय का उपरोक्त कथन ठीक मालूम पड़ता है कि पत्रकारिता व्यवसाय बन गयी है दीनदयाल उपाध्याय आजादी के बाद के पत्रकारों में से एक थे उनकी पत्रकारिता में व्यवसाय का

पता नहीं चलता है यहां तक कि कोई ऐसा लक्षण देखने को भी नहीं मिलता है जैसे की आज की पत्रकारिता ग्रसित हो चुकी है नि:संदेह दीनदयाल उपाध्याय भारतीय साहित्य के क्षेत्र में महान पत्रकार थे वे पेड पत्रकार, चाटुकार व लकीर के फकीर पत्रकार भी थे बल्कि आत्मसाक्षात्कारी पत्रकार थे एवं वे अपनी लेखनीय के द्वारा ही व्यक्ति के आत्मा की आवाज को व्यक्त कर देते थे इसीलिए उनके लेख पाठकों के हृदय को छू जाती थी वे हर छोटी-बड़ी घटना में मूल्य खोजते थे एवं जनकल्याण, देशहित एवं राष्ट्रवाद उनकी लेखनीय में हमेशा सर्वोपरि रहता था एवं उन्होंने अपने लेखन में कई नये सिद्धांत गडे एवं पत्रकारिता में सूचिता की नयी लकीर खींची उन्होंने अपने लेखन में व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को टुकडों में नहीं बल्कि समग्रता में देखा है[12]।

दीनदयाल उपाध्याय ने देश में उस समय राष्ट्रीय पत्रकारिता की पौंध रोपी थी जब पत्रकारिता पर अधिकांशत: कम्युनिस्टों का प्रभुत्व था। पत्रकारिता पर कम्युनिस्टों के प्रभाव के कारण ही भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति एवं विचारधारा को संचार माध्यमों में उचित स्थान नहीं मिलता था बल्कि राष्ट्रवादी विचारों, भारतीय दर्शन एंव संस्कृति के विरूद्ध नकारात्मक विचारों को अधिक प्रसारित किया जाता था। देश को उस समय ऐसी पत्रकारिता एवं संचार माध्यमों की आवश्यकता थी जो कम्युनिस्टों एवं कांग्रेस से इतर दूसरा पक्ष भी जनता को बता सके। अर्थात् पत्रकारिता का आधार भारतीयता हो ना कि पश्चिमी अवधारणा। उस समय दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी दूरदर्शी सोच से पत्रकारिता में एक नयी धारा का प्रवाह किया उपाध्याय जी संचार की शक्ति को समझते थे इसीलिए उन्होंने भारतीय दर्शन एवं संस्कृति और राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत मासिक पत्रिका ''राष्ट्र-धर्म'' साप्ताहिक समाचार पत्र ''पांचजन्य'' (हिंदी) एवं ''ऑर्गेनाइजर'' (अंग्रेजी) एवं कई समाचार पत्रों को प्रारंभ किया।

1947 में दीनदयाल उपाध्याय ने विधिवत पत्रकारिता ''राष्ट्र-धर्म'' के प्रकाशन से की थी तब पत्रकारिता मिशन मानी जाती थी उस समय के पत्रकार संपूर्ण देश में राष्ट्रबोध का जागरण करने के लिए पत्रकारिता का उपयोग करते थे दीनदयाल उपाध्याय ''राष्ट्र-धर्म'' पत्रिका का प्रकाशन लखनऊ से प्रारंभ किया था और अटल बिहारी बाजपेयी एवं राजीव लोचन अग्निहोत्री को ''राष्ट्र-धर्म'' पत्रिका का संपादक बनाया और ''राष्ट्र-धर्म'' पत्रिका को स्थापित करने के लिए अपना भी योगदान दिया।

''राष्ट्र-धर्म'' पत्रिका को सशक्त करने और इस पत्रिका को लोगों के बीच में लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने पत्रिका के हर अंक के प्रकाशन में महत्वपूर्ण लेख लिखे एवं भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने मकर संक्राति के पावन पर्व पर 14 जनवरी 1948 को ''पांचजन्य'' साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। ''पांचजन्य'' पत्रिका में भी उन्होंने संपादक का दायित्व नहीं संभाला व इसके संपादक का दायित्व भी अटल बिहारी बाजपेयी को सौंपा और ''पांचजन्य'' में भी उन्होंने कई महत्वपूर्ण लेख लिखे जबकि अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होने वाले ''ऑर्गेनाइजर'' में वे ''पॉलिटिकल डायरी'' के नाम से लेख लिखते थे ''पांचजन्य'' एवं ''ऑर्गेनाइजर'' में प्रकाशित होने वाले लेखों से ज्ञात होता है कि दीनदयाल उपाध्याय की तत्कालीन घटनाओं, परिस्थितियों पर कितनी गहरी रूचि एंव समझ थी उन्होंने अपने लेखन में तात्कालीन घटनाओं एवं परिस्थितियों पर न केवल बेबाक टिप्पणी की बल्कि राष्ट्र को सही दिशा दिखाने वाले विचार भी प्रकट किये उन्होंने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से देश को देश को साम्यवादी व पश्चिमी देशों के अनुकरण से बचने की सलाह देते हुए भारत को अपनी संस्कृति एवं दर्शन के अनुरूप अपना विकास करने का संदेश दिया। उन्होंने ''पांचजन्य'' में लिखा - 'आज देश में व्याप्त अभावों की पूर्ति के लिए हम सब व्यग्र हैं अधिकाधिक परिश्रम आदि करने के नारे भी सभी लगाते हैं परंतु नारों के अतिरिक्त वस्तुत: अपनी इच्छानुसार सुनहरे स्वप्नों, योजनाओं तथा महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल देश का चित्र निर्माण करने के लिए उचित परिश्रम एंव पुरूषार्थ करने के लिए हम में से पिच्चानवें प्रतिशत लोग तैंयार नहीं हैं जिसके अभाव में यह सुंदर-सुंदर चित्र शेक चिल्ली के स्वप्नों के अतिरिक्त कुछ और नहीं है'[13]।

दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता में सूचिता, उच्च आदर्श, नैतिकता बड़े हिमायती थे जिसका उदाहरण 1953 के 'पांचजन्य' के विशेषांक के संबंध में देखने को मिला जब संपादक ने शासन की सहयोग नीति की आलोचना करते हुए मूर्खतापूर्ण शब्द का प्रयोग किया था तब उन्होंने लिखा ''मूर्खतापूर्ण शब्द के स्थान पर यदि किसी सौम्य शब्द का प्रयोग होता तो 'पांचजन्य' की प्रतिष्ठा के अनुकूल होता''। इसी प्रकार वे चित्र एवं व्यंग्य चित्रों के उपयोग में भी शालीनता का ध्यान रखने के हिमायती थे।

1950 के दशक में दीनदयाल उपाध्याय ने लेखन कार्य में सक्रिय भूमिका निभाई 1940-1949 के बीच में एक बार दीनदयाल उपाध्याय ने एक ही बार में सोलह घंटे बैठ कर ''चंद्रगुप्त मौर्य'' नामक लघु उपन्यास लिख डाला एवं बाद में उन्होंने एक संक्षिप्त समय में ही ''शंकराचार्य'' का जीवन चरित्र भी लिख डाला। जिसके बाद में राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के संस्थापक ''डॉ0 हेडगेवार'' के जीवन चरित्र का भी मराठी से हिन्दी में अनुवाद कर दिया। दीनदयाल उपाध्याय के पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ दिन पर दिन ख्याति प्राप्त कर रहा था एंव राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ भारतीय जनमानस के बीच में लोकप्रिय होता जा

रहा था व भारतीय स्वंय सेवक संघ के भारतीय जनमानस के बीच में इस लोकप्रियता को देखते हुए आर0एस0एस0 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए मुसीबत बनता जा रहा था इस कारण कांग्रेस सरकार ने आर0एस0एस0 पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया और कांग्रेस सरकार ने इन समाचार पत्रों को ही प्रतिबंधित कर दिया ऐसी स्थिति में दीनदयाल उपाध्याय ने सूझ-बूझ का परिचय देते हुए ''पांचजन्य'' के स्थान पर ''हिमालय पत्रिका'' नाम से दूसरा समाचार पत्र प्रकाशित कर दिया यह समाचार पत्र भी भारतीय जनमानस के बीच में लोकप्रिय होने लग गया हिमालय पत्रिका की इस लोकप्रियता से कुंठित होकर कांग्रेस सरकार ने इस समाचार पत्र का भी प्रतिबंधित कर दिया। इस पत्रिका के भी प्रतिबंधित होने के बाद दीनदयाल उपाध्याय ने ''देशभक्त'' नाम से नयी पत्रिका प्रारंभ कर दिया। दीनदयाल उपाध्याय के नये-नये पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण सरकार निस्सहाय सी हो गयी। कांग्रेस सरकार कई प्रयासों के बाद भी दीनदयाल के प्रकाशन के कार्य को नहीं रोक पायी। अंत में सरकार ने उन्हें पकड़ने की योजना बनाई लेकिन वह दीनदयाल उपाध्याय को तब तक नहीं पकड़ पायी जब तक उन्होंने स्वंय को पकडवा नहीं दिया यह देख आर0एस0एस0 ने इसके विरोध में सत्याग्रह अभ्यान चलाया। इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता के क्षेत्र में कई नये आयामों का प्रतिपादन किया एवं कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया उन्होंने अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय जनमानस को भारतीय संस्कृति, दर्शन, विचारधार एवं राष्ट्रवाद के प्रति प्रेरित किया व अपने लेखन कार्य के माध्यम से भी उन्होंने आर0एस0एस0 को भी एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने समय-समय पर पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेकों महत्वपूर्ण लेख लिखे एवं उन लेखों को समाचार पत्रों में भी प्रकाशित किया[14]।

निष्कर्षः-

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी में भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं राष्ट्रीयता की भावना बाल्यकाल से ही कूट-कूट कर भरी थी। चाहे भारतीय संस्कृति व दर्शन का मुद्दा हो या स्वतंत्र भारत के लिए संविधान निर्माण की बात हो या केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित कोई समस्या हो दीनदयाल उपाध्याय ने इन सभी विषयों पर सहजता से अपने विचारों को प्रकट किया उनके विचार में भारतीय संविध ान में भारतीय संस्कृति एवं दर्शन, परंपराओं का उल्लेख विस्तृत रूप से नहीं है। दीनदयान उपाध्याय का मानना था कि भारतीय संविध ान में भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं परंपराओं का स्पष्ट रूप से झलक दिखाई देनी चाहिए। यदि हमारा संविधान भारतीय संस्कृति के अनुरूप होगा तो हमारी सोच स्वदेशी के प्रति सुदृढ़ होगी और हम पाश्चात्य की जीवन शैली का अनुकरण करने से बचे रहेंगे।

संदर्भ सूचीः-

1. शर्मा ह0 द0, ''राष्ट्रीय जीवनी माला'', फ्यूजन बुक्स, ओखला नई दिल्ली, (2017), पृ0सं0 11।
2. उपरोक्त, पृ0सं0 12।
3. लाल मनोहर, ''पं0 दीनदयाल उपाध्याय एक विलक्षण व्यक्तित्व'', हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला, एसोसिएटिड प्रिंटर्स चंडीगड़ (2017), पृ0सं0 6-7।
4. शर्मा ह0 द0, ''राष्ट्रीय जीवनी माला'', फ्यूजन बुक्स, ओखला नई दिल्ली, (2017), पृ0सं0 15-16।
5. सिंह अमरजीत, ''एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय'', प्रभात पेपर बैक्स, न्यू दिल्ली, (2019), पृ0सं0 35-39।
6. शर्मा ह0 द0, ''राष्ट्रीय जीवनी माला'', फ्यूजन बुक्स, ओखला नई दिल्ली, (2017), पृ0सं0 15-16।
7. शर्मा महेश चंद्र, ''दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय'', खण्ड- 8, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली (2017), पृ0सं0 17-20।
8. सिंह अमरजीत, ''एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय'', प्रभात पेपर बैक्स, न्यू दिल्ली, (2019), पृ0सं0 49।
9. लाल मनोहर, ''पं0 दीनदयाल उपाध्याय एक विलक्षण व्यक्तित्व'', हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला, एसोसिएटिड प्रिंटर्स चंडीगड़ (2017), पृ0सं0 12-13।
10. शर्मा ह0 द0, ''राष्ट्रीय जीवनी माला'', फ्यूजन बुक्स, ओखला नई दिल्ली, (2017), पृ0सं0 36-37।
11- URL:http://www-swadeshnews-in.cdn.amb, Accesd on dated 15-06-2022, time 11:22 AM.
12- URL:http://www-com.cdn.ampproject.org, Accesd on dated 15-06-2022, time 11:45 AM.
13. सिंह अमरजीत, ''एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय'', प्रभात पेपर बैक्स, न्यू दिल्ली, (2019), पृ0सं0 42-43।
14. शर्मा ह0 द0, ''राष्ट्रीय जीवनी माला'', फ्यूजन बुक्स, ओखला नई दिल्ली, (2017), पृ0सं0 19।

समाजवादी चेतना के प्रति सरदार बल्लभ भाई पटेल एवं गाँधी जी के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ० श्रवण कुमार यादव

प्रवक्ता-धर्मा देवी बद्री प्रसाद स्मारक महाविद्यालय कुड़वार, सुलतानपुर

भारत में समाजवादी विचारधारा का उदय राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से ही हो गया था। राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य स्वतन्त्रता प्रप्ति करना ही नही था वरन् स्वतन्त्रता समता युक्त और न्याय युक्त समाज की स्थापना करना था।

मुख्य शब्द- स्वतन्त्रता, समानता, ट्रस्टीशिप, औद्योगकरण, महिला सशक्तीकरण आदि

एम0एन0 राय जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया और आचार्य नरेन्द्र देव ने पाश्चात्य समाजवाद की भारतीय पृष्ठभूमि में व्यावस्था करने का प्रयास किया। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप के सिद्वान्त का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार किसी व्यक्ति के हाथ में अत्यधिक धन एकत्रित हो जाना एक समाजिक बुराई है। कांग्रेस के दो नेता जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस समाजवाद के प्रबल पक्षधर थे।

सरदार पटेल यह मानते थे कि सच्चा समाजवाद कुटीर उघोगों के विकास में निहित है। गाँधी जी ने भी इसी प्रकार की समाजवाद व्यवस्था की थी। कुटीर उद्योगों से रोजगार की सम्भावनायें बढेघंगी।[1]

1934 के शुरू में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई इसके पहले अधिवेशन की अध्यक्षता आचार्य नरेन्द्र देव ने की। पटेल का समाजवादियों के प्रति अनुकूल रुख नहीं था।[2]

सरदार पटेल की समाजिक विचारधारा को ग्रामोद्धार, आर्थिक नीति, छुआछूत का विरोध, समाजिक जीवन, आदि शीर्षक से ज्ञात किया जा सकता है। सरदार बल्लभ भाई पटेल सहकारी आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने विश्वप्रसिद्व आणन्द मिल्क डेयरी की स्थापना की। यह डेयरी उन्हीं की प्रेरणा और साथ ही उनके पथ-प्रर्दशन से उन किसानों द्वारा स्थापित की गयी जो विचौलियों के माध्याम से वर्षों से अपना शोषण करा रहे थे। आणन्द से सरदार पटेल द्वारा दिखाये मार्ग का स्वाधीनता के उपरान्त पूरे देश पर प्रभाव पड़ा।

सरदार बल्लभ भाई पटेल भले ही एक महान राजनीतिक के रूप में जाने जाते हो अथवा लोगों का परिचय एक जाने माने प्रशासक या आन्दोलनकारी के रूप में हो लेकिन वास्तविकता यह है कि वे आर्थिक विषयों की जानकारी में किसी से पीछे नहीं थे। यदि ऐसा नहीं होता तो हिन्दुस्तान मजदूर सेवा संघ, राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस, श्रमिक संघ जैसी संस्थाओं से जिनके वे संरक्षक की भाँति रहे थे, से सम्बन्धित लोगों के हितों, विशेषकर आर्थिक हितों के लिए स्वर नहीं उठाते। उनके हितों की प्रगति के लिए कार्य भी किया। वे आर्थिक समानता के पक्षधर थे और पटेल जी सहकारिता के प्रबल समर्थक थे। सहकारी आन्दोलन की आवश्यकता का पूरा-पूरा बल देकर बल्लभ भाई पटेल ने दीर्घकालीन ग्रामीण अर्थव्यवस्था को शक्ति प्रदान की।

सरदार पटेल गाँधी जी से प्रभावित थे और उन्होने लिखा है निजी सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए और मेरे विचार से इसे बेहतर और कोई समाजवाद हो ही नहीं सकता है।[3]

गाँधीवादी ट्रस्टीशिप सिद्वान्त के साथ-साथ वे राष्ट्र के औद्योगीकरण के पूर्णता पक्षधर थे। इस सन्दर्भ में गाँधीवाद से तनिक आगे बढ़कर भी भारी उद्योगों के विकास की बात करते थे।

चक्रवती राज गोपालाचारी के शब्दों में, ''जो सम्बन्ध राम और लक्ष्मण में है, वही महात्मा गाँधी और बल्लभ भाई पटेल में था राम और सीता के उपासक इस सम्बन्ध का सहज अनुमान लगा सकते हैं।''

समाजवाद से पहले देश के लिए औद्योगीकरण जरूरी मानते थे। सरदार पटेल ने अपने विचार में निम्न शब्द कहे हैं- ''हमे यह याद रखना चाहिए कि इंग्लैण्ड में समाजवाद तब आया था जब इंग्लैण्ड ने औद्योगीकरण की राह में बहुत प्रगति कर ली थी। मैं यह मानता हूँ कि इस समय मजदूर और पूँजी के बीच किसी भी तरह के मतभेदों को बढ़ना भारत के औद्योगिक भविष्य के लिए गहरा आघात होगा।''[4]

सहकारिता के साथ साथ सरदार पटेल ने ग्रामों के उत्थान के लिए अनेक कार्य किये हैं। ग्रामों में व्याप्त अशिक्षा को दूर करने के लिए विद्यालयों की स्थापना पर जोर दिया है। दूसरा स्वरूप जो ग्रामीणों में सबसे जटिल था वह था शराब जो ग्रामीणों को खोखला कर रही थी।

सरदार पटेल ने 1935 में अपने बडे भाई विट्ठल भाई पटेल की याद में खेड़ा जिले में लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला, यह पाचवीं तक था। अब इण्टर तक है। नाम मात्र की फीस पर 1200 छात्रायें यहाँ पढ़ती हैं।[5]

ग्रामों जिनकी उन्नति का आधार कृषि का विकास होता है, को बल्लभ भाई कैसे भूल सकते थे? उन्होने पूरे देश के किसानों का आह्वान किया आत्मनिर्भर बनिये उच्चोत्पादन कीजिए। किसानों एवं अन्ततः ग्रामों के उद्धार की उनमें तीव्र तड़प का ही परिणाम था कि गुजरात में काकारापाड़ा तथा उकाई बाँध के निर्माण में उन्होने निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया। इन निर्माणों से गुजरात में कृषि भूमि की सिंचाई हेतु बहुत सहायता मिली। आर्थिक विकास के लिए महत्मा गाँधी के चार सामान्य सिद्वान्तों, समान स्तर, पूँजी व श्रम के बीच सामन्जस्य आवश्यकतानुसार लेना और आर्थिक हितों की प्रप्ति मे नैतिकता व सदाचार को किनारे न करने के बल्लभ भाई पूर्ण समर्थक थे।

सरदार पटेल ने समाजवादी विचारधारा के आधार पर राष्ट्रीय विकाश की नीव रखी। पटेल जी ने राष्ट्रीय विकास मे श्रमिकों के उत्तरादायित्व को सर्वोच्च मानते हुए उनसे कहा था, उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि वे मात्र अपने लिए ही कार्य नहीं करते। वे ऐसे पशु नहीं है जो चाबुक के बल पर हाँके जाए। उनको देश के विकास में अपनी भूमिका समझना चाहिए तथा अपने आप से पूछना चाहिए। वे इस हेतु कुछ कर रहे हैं या नहीं उनकी कार्यक्षमता और कठिन परिश्रम पर ही देश की महानता निरर्भर करती है।

अस्पृश्यता और जाँत-पाँत ने हिन्दू समाज को सदियों से कमजोर बनाकर रखा है। छुआछूत निराभ्रम माना सरदार पटेल ने गाँध ी जी के छुआछूत के बारे में कहा कि यह समाज में कुष्ठ रोग के समान है।

सरदार पटेल शिक्षा को जीत की कुंजी मानते थे शिक्षा का वास्तिविक लक्ष्य है मनुष्य उसके कर्तव्य के प्रति जागृति करना सरदार पटेल ने गाँधी जी द्वारा प्रवर्तित वर्धा योजना का समर्थन किया है वे विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने के विरुद्व थे। सरदार पटेल के विचार से शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी के मन, शरीर और आत्मा तीनों का विकास हो।

पिछली सदी के शुरुआत में यूँ तो देश भर में अंग्रेजों का अभिजात्य कल्चर प्रभुत्वान वर्ग को तेजी से लुभा रहा था। लेकिन महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में आने देने के प्रति पाखन्डी था। तब ''माय कल्चर इज एग्रीकल्चर'' से गाहे-बगाहे अपना परिचय कराने वाले सरदार पटेल इस जड़ता और सोच के खिलाफ आगे आये और तमाम मुखालफत और अड़ंगे पार करते हुए महिलाओं की पालकी सदन में लाकर ही दम लिया। उन्होंने तब महिला सशक्तीकरण का जो शंखनाद किया, उसकी गूँज आज तलक महसूस की जा रही है। सरदार पटेल जब तीसरी बार 1926 में नगरपालिका अध्यक्ष बने तो महिलाओं की पहली बार म्यूनिसिपालिटी में लाए।[6]

सरदार पटेल नारी शक्ति के कायल थे और नारियों को शक्ति का पुंज मानते थे। सरदार पटेल के राजनीतिक विरोधियों ने उन्हे मुस्लिम वर्ग के विरोधी के रूप में वर्णित किया, लेकिन वास्तव में सरदार पटेल हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए संघर्षरत रहे। यहाँ तक कि गाँधी जी ने भी स्पष्ट किया था कि सरदार पटेल को मुस्लिम विरोधी बताना सत्य का झुठलाना है।

समाजवादी विचारधारा के लोग नेहरू को अपना अग्रणी नेता मानते थे। उन्होने पटेल की छवि पूँजीवाद के समर्थक के रूप में प्रस्तुत की। लेकिन सौभाग्यवश सबसे पहले समाजवादियों ने यह महसूस किया था कि उन्होने पटेल के बारे में गलत निर्णय लिया है।

निष्कर्ष रूप में पटेल द्वारा सुझाये मार्गों पर अमल करने की महती आवश्यकता है जिससे भारत को एकता के सूत्र मे बाँधा जा सकता है तथा लोकतन्त्र की नीव मजबूत की जा सकती है। इतिहास के प्रोफेसर डा0 रिजवान कादरी वताते है कि 1933 में महात्मा गाँधी ने कहा था कि-जहाँ तक मेरी नजर जाती है सरदार का काम दिखता है। वे अहमदाबाद के आधुनिक निर्माता हैं। एक बार छः दिन तक लगातार बारिस हुई, सारा शहर पानी में डूब गया, वे रोज भरे पानी में दौरा करते। नगरपालिका का चेयरमैन रहते हुए भी 11 नम्बर की सरकारी बस से चलते थे।

आज जाति की राजनीति चरम पर है। सरदार पटेल इसके सख्त विरोधी रहे। ऐसी सोच को विकास की राह में रोड़ा मानते थे इतिहासकार उर्विश कोठारी बताते कि सरदार पटेल जब लन्दन में वकालत पढ़ रहे थे तो वहाँ बसे पटेल जाति के व्यवसाइयों ने उनका सम्मान करना चाहा तो उन्होने जाति विशेष के इस निमन्त्रण को ठुकरा दिया।

अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि सरदार पटेल में समाजवादी चेतना के गुण निहित थे। बल्लभ भाई पटेल भारत के लिए लम्बे समय तक संघर्ष करते रहे, काश ! उनकी मृत्यु इतनी शीघ्र न हुई होती।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. आर्थिक एवं विदेश नीति, पी0एन0चोपड़ा, प्रभा चोपड़ा, पृष्ठ सं0-29।
2. सरदार बल्लभ भाई पटेलः जीवन और कार्य, डॉ0 रवीन्द्र कुमार, वेदान्त पब्लिकेशन, लखनऊ, 2013, पृष्ठ सं0-125।
3. आर्थिक एवं विदेश नीति, पी0एन0चोपड़ा, प्रभा चोपड़ा, पृष्ठ सं0-22।
4. आर्थिक एवं विदेश नीति, पी0एन0चोपड़ा, प्रभा चोपड़ा।
5. अमर उजाला, 26 सितम्बर, 2021, विशेषांक-सितारों की जमीन।
6. अमर उजाला, 26 सितम्बर, 2021, विशेषांक-सितारों की जमीन।

श्रीमद्भगवद् गीता एवं भक्ति संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध

डॉ० भावना

असिसटेंन्ट प्रोफेसर, संगीत एवं नृत्य विभाग, चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द

शोध आलेख सार:

संगीत एक मानवीय कला है जो मानव मन और मस्तिष्क के साथ-साथ जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों एवं सम्पूर्ण वातावरण को भी प्रभावित करती है। इस कला की आधारशिला अध्यात्मिक धार्मिक एवं दार्शनिक रही है। भौतिक हो या अध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से मानव की साधना का विषय तप ही रहा है। विशेषकर संगीत की साधना के द्वारा मानव आत्मिक आनन्द की अनुभूति कर अपना अध्यात्मिक एवं भौतिक उत्थान भी करता है। संगीत का नाद सम्पूर्ण प्रकृति को प्रभावित करता है। नाद ही संगीत का प्राण एवं आधार है जिससे संगीत में रसात्मकता की अनुभूति होती है।

मुख्य शब्द: संगीत, अध्यात्मिक, परमात्मा, भगवद् गीता, भक्ति

भूमिका:

अध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो भक्त भजन-कीर्तन के माध्यम से अपने हृदय के सूक्ष्म भावों को प्रेम भाव एवं भक्ति भावों को अपने अराध्य के चरणों में अर्पित कर देता है एवं अपनी आत्मा को उस पारब्रह्म परमात्मा को आत्मसात् करके परमानन्द की अनुभूति कर उसमें तन्मय हो जाता है। अत: नाद भी संगीत का ही पर्यायवाची है। नाद की उपासना ही ईश्वर की उपासना है। श्रीमद्भगवद् गीता का यदि संगीत के साथ समायोजन किया जाए तो नाद रूपी संगीत का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने भी नाद को नादब्रह्म का स्थान दिया है:- ''ओहम् नाद ब्रह्माणे इति।'' स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है - मद्भक्ता: ''यत्र गयन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद।।'' अर्थात हे नारद जहाँ मेरे भक्त गा रहे हैं मैं वही निवास करता हूँ।

वैदिक काल से लेकर आज तक जितने भी मंत्र, ऋचाएँ, स्तुतियाँ और प्रार्थनाओं की गायन प्रथा रही है उससे व्यक्ति को भौतिक के साथ-साथ आत्मिक कल्याण का लाभ भी हुआ है।

अत: संगीत का आन्तरिक सम्बंध पूर्ण रूप से आध्यात्मिक एवं धार्मिक है। अपनी आत्मा के निकट बैठना एवं अपने आप को जानना ही अध्यात्म है।

भारतीय संगीत एवं संस्कृति का उद्भव भी वैदिक ऋचाओं के साथ देव मन्दिर के प्रांगण में हुआ है जिसका मूल उद्देश्य ध र्म-अर्थ-काम-मोक्ष जैसे चतुष्ट की प्राप्ति करना था। यही कारण है कि हमारे यहाँ लौकिक आनन्द के साथ-साथ पारलौकिक कल्याण की सिद्धि करना अभीष्ट माना गया है। जप-तप-ध्यान और योग आदि भक्ति के समस्त साधनों में 'नाद रूपी संगीत' का सबसे अधिक महत्व है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भक्ति संगीत का स्थान:-

श्रीमद्भगवद् गीता हमारे धार्मिक ग्रन्थों का एक अत्यन्त तेजस्वी एवं निर्मल हीरा है। पिंड-ब्रह्माण्ड-ज्ञान सहित आत्मविद्या के गूढ़ एवं पवित्र तत्वों को थोड़े और स्पष्ट रीति से समझा देने वाला, उन्ही तत्वों के आधार पर मनुष्य मात्र के पुरूषार्थ की अर्थात्

अध्यात्मिक पूर्णवस्था की पहचान करा देने वाला, भक्ति एवं ज्ञान का मिलान करा के इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और इसके द्वारा संसार से त्रस्त मनुष्य को मानसिक शान्ति देकर उसे निष्कर्म कर्त्तव्य परायण होने की प्रेरणा देने वाला ऐसा ग्रन्थ है जो समस्त संसार के साहित्य में भी नही मिल सकता। इसमें ज्ञान यूक्त भक्ति रस की भी अनुभूति होती है। इस महान् ग्रन्थ में समस्त वैदिक धर्म का सार स्वयं श्री कृष्ण की वाणी से संगृहीत किया गया है।[1]

भक्ति हमारी जीवन शैली का एक विशेष अंग बन चुकी है जिससे जनसाधारण ईश्वर की उपासना का एक रूप मानते हैं। भक्ति के द्वारा हम अपने जीवन की तामसिक अवस्था से मुक्त होकर सात्विक अवस्था में स्थिर होकर परमात्मा की शक्ति को आत्मसात करते हैं। यही भक्ति की परिभाषा है। भक्ति के दो रूप माने गए हैं – परा भक्ति और अपरा भक्ति। ईश्वर के प्रति अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करना ही आध्यात्मिक भक्ति अथवा परा भक्ति कहलाती है। इसके अतिरिक्त जो कामनाओं और सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए की जाए उसे अपरा भक्ति का नाम दिया गया है।

भक्ति का अर्थ है – दिव्य प्रेम, ब्रह्म के साथ प्रेम, परमात्मा से प्रेम। भक्ति की परिभाषा है जीवन का व्यवहार जिससे हम अपने अन्तर मन में प्रेम का अनुभव करते हैं, जो हमें ही नही अपितु दुसरों को भी आनन्दित करता है। श्रीमद्भगवद् गीता में इसे मुक्ति अथवा अन्तिम सत्य के अनुभव करने का मार्ग बताया है। यदि हम भक्ति को संगीत से जोड़ते हैं तो इसका बहुत ही विस्तृत क्षेत्र है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भक्ति के नौ प्रकारों मे भजन-कीर्तन को प्रमुख माना है। एक भक्त हाथ में करताल लेकर अपने हृदय की भावनाओं को संगीत के माध्यम से भगवान के समक्ष अभिव्यक्त करता है। सूरदास, तुलसीदास, मीरा आदि जितने भी भक्त कवि हुए उन्होनें अनेक रचनाएँ रची परन्तु इन सभी का लक्ष्य संगीत के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति ही रहा है।

परमेश्वर के स्वरूप का प्रेम पूर्वक चिन्तन करके मन को तदाकार करना ही सुलभ उपाय है। यह मार्ग हमारे देश में बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है और इसी को उपासना अथवा भक्ति कहते हैं। भक्ति का लक्षण शांडिल्य सूत्र में इस प्रकार है कि 'सा (भक्तिः) पुनरक्तिरीश्वरे' – ईश्वर के प्रति 'परं' अर्थात निरतिशय जो प्रेम है, उसे भक्ति कहते है।[2]

गीता के छठे अध्याय के अंत में श्री कृष्ण जी ने कहा है कि कर्मयोगियों में भक्तिमान श्रेष्ठ है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम।

स्वकर्मणा तपभ्यचर्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

अर्थात् जिसने सारे संसार की उत्पत्ति की है, उसकी अपने स्वधर्मानुसार निष्काम र्माचरण से पूजा करके मनुष्य सिद्धि पाता हैं।

इस श्लोक का एवं समस्त गीता का भी यही भावार्थ है कि स्वधर्मानुसार निष्काम भाव से धर्म करने से सर्वभूतान्तगर्त विराटरूपी परमेश्वर की एक प्रकार की भक्ति, पूजा या उपासना ही हो जाती हैं।[3]

श्रीमद्भगवद् गीता के सम्पूर्ण श्लोक छंदबद्ध एवं संगीतमय होने के कारण भक्ति संगीत का विशेष एवं महत्वपूर्ण स्थान है।

यदि श्रीमद्भगवद् गीता में भक्ति संगीत पर यदि दृष्टिपात किया जाए हम देखेगें कि श्री कृष्ण भगवान को कर्मयोगी एवं सोलह कला सम्पन्न भी कहा गया है। उन्होनें गीता में भक्ति संगीत को विशेष महत्व दिया है। जब हम गीता के श्लोकों का उच्चारण स्वरों बद्धित कर उनका गान करते है तो उनका प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है।

भक्ति योग में संगीत का महत्वः-

भक्ति को योग का एक विशेष महत्वपूर्ण प्रकार माना गया है। भक्ति योग के सन्दर्भ में श्री कृष्ण, भगवद् गीता में कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने मन और आत्मा से मुझ में लीन हो जाता है, मैं ही उनके विचारों में रहता हूँ। जो मुझे प्रेम और समर्पण के साथ भजते है और मुझ पर पूर्ण विश्वास रखते है वो उत्तम श्रेणी के होते है। यही भक्ति योग का सार है। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो भक्ति योग को करने का सर्वोत्तम माध्यम भक्ति संगीत ही है।

अध्यात्म एवं ध्यान योग की पृष्ठभूमि नाद रूपी संगीतः-

आध्यात्मिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो ध्यान योग का क्रियात्मक रूप है। अध्यात्म में योग का विशेष महत्व है। आत्म व चितंन के उद्देश्य से सभी धर्मों ने संगीत को अपना माध्यम बनाया है। संगीत के माध्यम से ही मानव अपनी आत्मा की गहराई तक पहुंच

सकता है। हिन्दु, जैन, बौद्ध धर्मों में मंत्रोच्चारण है। सिक्ख धर्म में शब्द-कीर्तन, इस्लाम में कव्वाली, नातिया, मन्दिरों में भजन-कीर्तन तथा ईसाई धर्म में हिम्स आदि परम्पराएँ हैं। ये सभी मानव को आत्म चिन्तन की ओर प्रेरित करती हैं। मीराबाई, सूरदास गुरूनानक जैसे सभी महा सन्तों ने संगीत के माध्यम से ही अपना ध्यान ईश्वर भक्ति में संलग्न कर दिव्य शक्तियों को प्राप्त किया।

गीता के मंत्रोच्चारण एवं भजन-कीर्तन रूपी संगीत नाद के माध्यम से मनुष्य स्वयं के मन व बुद्धि को एकाग्र करने में सक्षम है। जब भक्तगण अपने स्वर रूपी नाद में डूब जाते हैं तो उनका अन्तर का तम पारदर्शी होकर भेदभाव से मुक्त होकर परमब्रह्म से एकाकार हो उठता है। यही परमानन्द उस परम शक्ति तक पहुंचने का सशक्त मार्ग बन जाता है। तत्पश्चात् वह सभी अवस्थाओं से मुक्त होकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। अतः भगवद् गीता के श्लोकों को स्वरों में गान करने या सुनने से मानव मन तनाव मुक्त हो शान्ति एवं एकाग्रता का अनुभव कर सन्मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

श्रीमद्भगवद् गीता के प्रचार-प्रसार में संगीत की भूमिकाः-

जैसा कि श्री कृष्ण भगवान को कर्म योगी कहा गया है, उन्होनें भी गीता में भक्ति संगीत को ही विशेष महत्व दिया है। जब हम गीता के श्लोकों का उच्चारण स्वरों में बधित कर उनका गान करते है तो उनका प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है। आज विश्व के विभिन्न देशों में श्रीमद्भगवद् गीता का प्रचार-प्रसार विभिन्न रूपों में संगीत के माध्यम से किया जा रहा है, जो इस प्रकार है -

1. मन्दिरों के माध्यम से - जिस प्रकार प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक मन्दिरों में भजन, कीर्तन, कृष्ण लीलाओं, राम लीलाओं को संगीत के माध्यम से धर्म का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है, उसी प्रकार श्रीमद्भगवद् गीता को भी गायन के द्वारा पठ्न-पाठन कर उसका गुणगान व प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। जो जन साधारण का धार्मिक उत्थान करने में अहम् भूमिका निभा रहा है एवं उन्हें गीता के उपदेशों का पालन कर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।
2. कथाओं के माध्यम से - मन्दिर के वातावरण से सुवासित होती संगीत की स्वर लहरी कथाओं के माध्यम से परिवारों के प्रांगण से लेकर विश्व के कोने-कोने में श्रीमद्भगवद् गीता को पूरे वाद्यवृन्द के साथ संगीतमय ढ़ग से समायोजित कर प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। धर्म के प्रचारकों के द्वारा संगीत को भक्ति का अनिवार्य अंग मानकर श्री कृष्ण के पवित्रनाम के स्मरण से इस स्वर्णिम निखार को प्रेरित कर जन साधारण में भक्ति भावना को प्रेरित करने का प्रयास किया जा रहा है। परम्परागत कीर्तनकारों के द्वारा कीर्तन शैली को भी संरक्षित कर भारतीय संस्कृति का भी संरक्षण हो रहा है।
3. गीता महोत्सव के माध्यम से - श्रीमद्भगवद् गीता के उपदेश अध्यात्मिक भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। इसे जन-जन तक पहुंचाने के लिए संगीत के माध्यम से पूरे देश में पहुंचाया जा रहा है। कुरूक्षेत्र जैसी पावन धरा पर श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया एवं धर्म का प्रचार किया। आज भी वहाँ गीता जयन्ती पर गीता महोत्सव एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। ज्योतिसर में जिस वट वृक्ष के नीचे श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था, वहाँ आज भी गोगा सिंह जो एक गायक कलाकार है के द्वारा शाम के समय तालाब के ऊपर बने पुल के नीचे बैठकर गीता के श्लोकों का स्वरों में गान किया जाता है। उनके गान के प्रभाव से सारा वातावरण गीतामय हो जाता है। गोगा सिंह जी का इस कला के द्वारा गीता के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान है। दूर-दूर से लोग इनके श्लोकों का गायन सुनने के लिए आते हैं।
4. दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के माध्यम से - आधुनिक काल में श्रीमद्भगवद् गीता को संरक्षित करने में दूरदर्शन एवं आकाशवाणी की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विभिन्न कलाकारों द्वारा गीता के अध्यायों, श्लोकों एवं कथाओं को संगीतबद्ध कर दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया जा रहा है, जो श्रीमद्भगवद् गीता और संगीत के पारस्परिक सम्बंध की महत्ता को दर्शाता है।

निष्कर्षः- सम्पूर्ण गीता का सार भक्ति परक एवं संगीतमय है। संगीत की दृष्टि से गीता एक गेयात्मक ग्रन्थ है, क्योंकि इसके सम्पूर्ण श्लोक सार छन्दबद्ध है।

दृष्टिकोण

वर्तमान काल में संगीत को माध्यम बनाकर विश्व स्तर पर श्रीमद्भगवद् गीता का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है जो हमारे ध र्म एवं संस्कृति के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह प्रयास निरन्तर जारी है। इससे जन मानस में भक्ति और धर्म की भावना को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है, जो हमारी संस्कृति को परिपक्व एवं संरक्षण में विशेष भूमिका निभा रहा है।

सन्दर्भ सूची -

1. गीता रहस्य, कर्मयोगशास्त्र, भाग-1, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पृष्ठ संख्या - 27
2. गीता रहस्य, कर्मयोगशास्त्र, भाग-1, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पृष्ठ संख्या - 380
3. गीता रहस्य, कर्मयोगशास्त्र, भाग-1, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पृष्ठ संख्या - 402

भारत की समुद्री कूटनीतिः चुनौतियाँ और जिम्मेंदारियां

राजीव कुमार सिंह

शोधार्थी एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ए.पी.एन. पी.जी.कॉलेज, बस्ती(यू0पी0)

प्रो० ब्रजेश कुमार त्रिपाठी

शोध निर्देशक एवं प्राचार्य, हीरालाल रामनिवास पी.जी.कॉलेज खलीलाबाद, संत कबीरनगर (यू0पी0)

एक राष्ट्र की आर्थिक और सामजिक कल्याण घनिष्ठ रूप से समुद्र से जुड़ी हुई होती है। यह न केवल व्यापार बल्कि वो कैसे अपनी सुरक्षा के खतरों का सामना करता है जो समुद्र के रास्ते सामने आता है। उच्च विकास दर तभी साकार हो सकता है अगर हमारी समुद्री सीमा और सम्पत्ति सुरक्षित, स्थिर और सक्षम हैं। भारतीय नौसेना भारत की समुद्री शाक्ति का प्राथमिक तत्व है, उसके पास देश की समुद्री हितों की रक्षा का चुनौती भरा कार्य है। -प्रणव मुखर्जी, पूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार

विश्व का तीसरा सबसे बड़ा महासागर होने और तीन महाद्वीपों एशिया, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका से घिरे होने के कारण हिन्द महासागर भू- राजनीतिक, आर्थिक और व्यापरिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व वाला क्षेत्र माना जाता है। बहुत से युद्धों और राजनयिक संकटो का साक्षी रहा यह क्षेत्र खनिज और कच्चे पदार्थों की व्यापक संभावनाओं और तीन ओर से स्थलीय आबद्ध होने से रणनीति रूप से विशेष स्थान रखता है। विश्व की सबसे शक्तिशाली नौसेनायें और विश्व राजनीति में अपनी शक्ति के ऊँचे दांव खेलने वाली महाशक्तियाँ यहां अपनी प्रभावशाली उपस्थिति को अनिवार्य मानती है। पिछले कुछ वर्षों में यह क्षेत्र शस्त्र व्यापार के साथ- साथ मादक पदार्थों के अवैध व्यापार की गतिविधियों का भी प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। इसके अलावा विश्व के अन्य जल क्षेत्रों की तुलना में यहां समुद्री डाकुओं की घटनाओं में भी वृद्धि दर्ज की गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनय में महत्व रखने वाले अनेक क्षेत्रीय संगठन इसी क्षेत्र में कार्यरत है जिससे इसका महत्व और बढ़ जाता है।

बहुत पहले अमेरिकी विद्वान अल्फ्रेड थेयर महान ने कहा था कि 21 वीं शताब्दी में दुनिया के भाग्य का फैसला समुद्र में ही होगा और एशिया पर वही शासन करेगा जिसका हिन्द महासागर पर अधिकार होगा। हिन्द महासागर में महाशक्तियों की बढ़ती भूमिका और महासागर का सैन्यीकरण कथन की गम्भीरता को प्रकट करता है। महाशक्तियों के हिन्द महासागर में सक्रियता से भारत ही नही अपितु इस महासागर के तट से लगने वाले छोट-बेड़े 47 देश भी सशंकित है।

शताब्दियों से यूरोपीय शक्तियां हिन्द महासागर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति एवं नियंत्रण बनाये हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व हिन्द महासागर के अधिकांश तटवर्ती क्षेत्रों पर ब्रिटेन का नियंत्रण था तथा ब्रिटिश रॉयल नेवी ने हिन्द महासागर को 'ब्रिटिश झील' में परिवर्तित कर रखा था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों से ब्रिटेन का प्रभुत्व समाप्त होने लगा और अब वह विश्व की प्रथम श्रेणी की शक्ति नही रहा। अतः उसने हिन्द महासागर से अपनी भूमिका सीमित करने लगा और उसका स्थान अमेरिका ने लेना शुरू कर दिया। वस्तुतः अमेरिकी नीति इस आधार पर प्रचलित रही है कि जहां से भी ब्रिटेन हटे, वहाँ उसे पहुंचना चाहिए।

ब्रिटेन ने चागोस द्वीप समूह मारिशस से लेकर अमेरिका को पट्टे पर दे दिया। अमेरिका ने डियागोगार्शिया पर जल्द ही एक बड़ा वायु सैनिक और नौ सैनिक अड्डे का निर्माण शुरू कर दिया। अमेरिका के इस कार्य ने हिन्द महासागर में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का शक्ति संघर्ष शुरू कर दिया।

अमेरिकी पनडुब्बियों पर कड़ी निगरानी एवं कूटनीतिक हरकतो को नियंत्रित करने के लिए 1967-71 के बीच विश्व की दूसरी महाशक्ति सोवियत संघ का भी हिन्द महासागर में हुआ। सोवियत संघ ने अमेरिकी नौ सैनिक गतिविधियों के प्रतिक्रिया स्वरूप 1968 ईस्वी में अपना पहला नौ सैनिक बेडा हिन्द महासागर में भेजा। 1971 का भारत पाक युद्ध तथा 1973 का अरब-इजरायल युद्ध का काल दोनो महाशक्तियों का हिन्द महासागर में प्रतिद्वन्दिता का काल रहा।

हिन्द महासागर में चीन का बढता प्रभाव भारत के लिए एक मुश्किल सवाल बन कर उभरा है। चीन वास्तव में दुनिया की महान समुद्री शक्ति बनने के लिए लालायित है। भारतीय नौसेना के सेवानिवृत कोमोडोर सी0उदय भास्कर का मानना है कि हिन्द महासागर के संदर्भ चीन एक खतरे से ज्यादा चुनौती के तौर पर उभरा है। चीनी नौसेना पहली बार 2008-09 में पायरेसी रोकने के अभियान के रूप में हिन्द महासागर में प्रवेश किया और तब से वहीं डट गया। बीते वर्षो में उसने यह सुनिश्चित किया कि हिन्द महासागर के उन क्षेत्रों में चीन की उपस्थिति बनी रहेगी, जो उसके लिए रणनीतिक रूप से प्रासंगिक है।

चीन अपनी चर्चित 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' की नीति के जरिये भारत के पड़ोसी देशो को अपना मित्र बनाकर भारत को घेरने की लगातार कोशिष कर रहा है। इस नीति के तहत चीन भारत के आस पास के देशो में अपने सैन्य अड्डे विकसित कर रहा है। चीन बांग्लादेश में चटगांव, श्रीलंका में हंबनटोटा, म्यामार में सिप्तवे बंदरगाह, पाकिस्तान में ग्वादर पत्तन और इसी तरह मालदीव, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, सेशेल्स, मारिशस तथा जीबूती में सैन्य अड्डे विकसित कर रहा है।

जहां तक हिन्द महासागर में भारत की रणनीति की बात है तो पिछले कुछ वर्षों मे भारत की नीति में हिन्द महासागरीय क्षेत्र के सम्बन्ध में बदलाव आया है। पहले भारत की नीति में इस क्षेत्र के लिए अलगाव की स्थिति थी। लेकिन अब हिन्द महासागर क्षेत्र के लिए भारत की नीति भारतीय समुद्रिक हितों से परिचालित हो रही है। हिन्द महासागर को लेकर भारत की नीति मुख्यत: चीन के साथ बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा पर केन्द्रित है। चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग समुद्री शक्ति बनने की दिषा में सबसे अधिक आक्रामक है। उनका कहना है कि चीन के समुद्री अधिकार और हित की रक्षा के लिए उनकी सरकार कुछ भी करेगी। चीन वन वेल्ट वन रोड के माध्यम से अपनी आक्रामकता लगातार बढने की नीति अपना रहा है। पश्चिमी हिन्द महासागर में चीन की समुद्री सैन्य गतिविधियां बढ गई है। अभी हाल ही में चीन का पोत जासूसी पोट युआन वाग-5 श्रीलंका के हंबनटोटा बंदरगाह तक पहुंच गया। यह जासूसी पोत भारतीय क्षेत्र में लगभग 700 कि.मी. अन्दर तक सैन्य ठीकानों की जासूसी कर सकता है। युवान वांग-5 की पहुंच दक्षिण भारत में स्थित कई सैन्य और परमाणु ठिकानो तक है। जैसे कि कलपक्कम, कणनकुलम जैसी साइट्स इसके निगरानी क्षेत्र में आ जाते है। विद्वानों का यहाँ तक मानना है कि चीन इस जहाज के माध्यम से भारत के नौसैन्य अड्डो पर न्यूक्लियर प्लांट की जासूसी कर रहा है। यह भारतीय सुरक्षा संस्थानों के लिए चिन्ता का विषय है। अब चीन की पिपल्स लिबरेशन आर्मी हिन्द महासागर क्षेत्र में स्थायी रूप से अपने सुरक्षा बलो की उपस्थिति पर जोर दे रहा है।

ऐसा नही है कि भारत के सुरक्षा विशेषज्ञों का ध्यान इस ओर नही है। 2008 से ही भारत सरकार लगातार समुद्री सुरक्षा को मजबूत करने की दृष्टि से हिन्द महासागरीय क्षेत्र पर विशेष ध्यान दे रही है। हिन्द महासागरीय क्षेत्र में विशेष राजनीति बढ़त को हासिल करने के लिए वर्ष 2015 में रणनीति विजन सागर (Sagar Security and Growth for all in the Region) की शुरूवात की। इस पहल के द्वारा भारत हिन्द महासागरीय क्षेत्र में स्थिरता और सुरक्षा पर जोर दे रहा है। साथ ही इस रणनीति को मूर्त रूप देने के लिए सागरमाला परियोजना पर कार्य कर रहा है, ताकि भारत अपनी तटीय अवसंरचना को सुदृढ़ करके अपनी क्षमता में वृद्धि कर सके। इस प्रकार भारत न सिर्फ हिन्द महासागर क्षेत्र में अपने हितों को साध सकेगा बल्कि ब्लू इकोनामी के लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकेगा। भारत क्वाड के माध्यम से हिन्द प्रशान्त क्षेत्र में एक रणनीतिक बढ़त बनाने के दिशा में काम कर रहा है।

प्रधानमंत्री मोदी ने श्रीलंका, सिसली और मारिसस की यात्रा कर यह बता दिया कि हिन्द महासागर के समुद्री तट भारत की उच्च प्राथमिकता में है। भारत कर्नाटक के कारबार में एशिया का सबसे बड़ा सैन्य अड्डा स्थपति कर रहा है। अभी हाल में स्वदेशी विमानवाहक वोट विक्रान्त प्रधानमंत्री मोदी द्वारा सेना में समर्पित किया गया। भारत ने 2016 में ईरान के साथ चाबहार बंदरगाह पर एक रणनीतिक समझौता किया। यह बंदरगाह भारत को ईरान तक सीधा रास्ता मुहैया कराता है। यह हिन्द महासागर में चीन के खिलाफ भारत को एक रणनीतिक बढ़त की स्थिति प्रदान करता है।

योगेन्द्र कुमार ने अपनी पुस्तक ''डिप्लोमेटिक डाइमेंशन आफ मैरीटाइम चौलेंजेस फार इण्डिया इन दि 21 सेंचुरी'' में भारतीय समुद्री कूटनीति को रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि भारत की राष्ट्रीय समुद्री नीति में अरब की खाड़ी देशो में फैले भारतीय नागरिको को सुरक्षित निकालने की ओर भी केन्द्रित करनी होगी, क्योंकि उन देशो में हमेशा अस्थिरता, असुरक्षा और हिंसा की स्थिति बनी रहती है। इसके अलावा अपने समुद्री मार्गो की सुरक्षा भी प्रमुख मुद्दा है। क्योंकि हमारी ऊर्जा की जरूरतें पूरी करने के लिए 70 प्रतिशत तेल और गैस की आपूर्ति इसी मार्ग से होती है।

अभिजीत सिंह ने अपने लेख 'लुक ईस्ट समुद्री कूटनीति' में भारत की समुद्री कूटनीति के बारे में लिखते हुए कहा है कि भारत की समुद्री कूटनीति अपनी नौ सेना की पूर्व एशिया तक पहुंच बनाने से भी जुड़ी हुई है। हाल के वर्षो में नौ सेना जहाजों की बढ़ी आवाजाही और मीडिया की अटकले नई दिल्ली की संभावित प्रशांत महासागर महत्वाकांक्षाओ के बारे में काफी कुछ कह रही हैं। धारणा तो यह बनी है कि भारत की नौसेना कूटनीति का अखिरी लक्ष्य पूर्व एशिया ही है।

नई दिल्ली के समुद्री कूटनीतिक प्रयास केवल राजनीतिक सम्बन्धों को भूनाने तक ही सीमित नही रह गया है। 'आपरेशन राहत' के तहत भारतीय नौसेना ने 2015 में उस समय एक बड़ी कूटनीति सफलता प्राप्त की, जब लगभग 4600 भारतीय और 1000 के आस पास विदेशियों को युद्ध प्रभावित यमन से सफलता पूर्वक बाहर निकाला। ' आपरेशन राहत ' के जरिए भारतीय नौसेना की एक अलग छवि दुनिया में कायम हुई। भारत की समुद्री कूटनीति शांतिरक्षक के रूप में सामने आयी। भारतीय नौसेना क्षेत्रीय समुद्री बलो के साथ मिलकर समुद्री डकैती के खिलाफ काम कर रही है। साथ ही खाड़ी सहयोग परिषद की नौसेनाओं के साथ मिलकर इन्हे समर्थन और प्रशिक्षण दे रही है।

निष्कर्षः-

भारत ने ब्रिटिश शासन से सत्ता हासिल की, लेकिन उस शासन की कुछ खास चीजों को ग्रहण करने में विफल रहा। भारत ने शुरूआत में हिन्द महासागर में मजबूत नौसेना बेस की जरूरत को समझने में भूल की। लुक ईस्ट नीति ने हिंद महासागर के महत्व को समझा, लेकिन आर्थिक व्यापार और वाणिज्य तक ही सीमित रहा। सामरिक दृष्टि से उसके बारे में विचार नही किया। लेकिन मौजूदा शासन ने भारतीय विदेशी नीति के तहत सुरक्षा और सामरिक मुद्दो पर खास ध्यान देना शुरू किया। ऐसे में तीन महत्वपूर्ण विचार उभरे-पहला, हिन्द महासागर में भारत की प्रबल दावेदारी है। इस मामले में इसे अब उचित भूमिका निभानी चाहिये। दूसरा, भारतीय उप महाद्वीप में चीन की विस्तारवादी भूमिका को चुनौती देना जरूरी है। तीसरा, भारत को समुद्र तटो पर अपना प्रभाव बढाने के लिए बहुपक्षीय दृष्टिकोण अपनाना होगा। मेक इन इण्डिया के तहत अब स्वदेशी ढ़ाँचे की अवधारणा पर जो दिया जाने लगा है। चूंकि भारत हिन्द महासागर में काफी देर से जगा है। इसलिए एक बड़ी सामुद्रिक शक्ति बनाने में थोड़ा समय लगेगा। भारत अमेरिका का संयुक्त उद्यम तेजी से आगे बढ़ रहा है। क्वाड संगठन के माध्यम से भी भारत अमेरिका जापान तथा आस्ट्रेलिया के साथ चीन को प्रतिसंतुलित करने का प्रयास कर रहा है। पूर्वी एशियाई देशों का भी भारत को पूर्ण समर्थन प्राप्त है जो कि बहुत महात्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. हर्ष वी, पन्त, इण्डिया इन द इण्डियन, ओशियन, 2009
2. पी0के0दास, मैरीटाइम, डाइमेंशन और इण्डियाज, सेक्यूरिटी, 2003
3. वर्ल्ड कोकस भारत की समुंद्री कूटनीति 2016
4. हरिशरण हिन्द महासागर, चुनौतियां एवं विकल्प
5. द हिन्दू
6. दैनिक जागरण राष्ट्रीय संस्करण

कुसुम अंसल के उपन्यासों में नारी विमर्श

अमनदीप कौर

एम.ए. (हिन्दी), एम.फिल. (हिन्दी), यू.जी.सी. नेट

वर्तमान शती में सबसे ज्यादा चर्चित विषय रहा है- स्त्री विमर्श। हिन्दी साहित्य के लिए पिछले 40-50 वर्षों से यह स्त्री विमर्श 'नारी मुक्ति आन्दोलन' के नाम पर एक नये रूप में सार्वजनिक रूप से एक ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है। सामान्य रूप से 'विमर्श' शब्द अंग्रेजी के 'डिस्कोर्स' का पर्याय है, जिसका अर्थ किसी विषय पर गहन चिंतन-मनन या विचार करना है। नारी विमर्श पश्चिम से आया संकल्पना है जो इंग्लैंड तथा अमेरिका में 19वीं सदी में आए फेमिनिस्ट मूवमेंट के प्रभाव स्वरूप हिन्दी साहित्य में आया। यह आन्दोलन लैंगिक समानता के साथ-साथ समाज में बराबरी के हक के लिए किया गया संघर्ष था जो राजनीति से होता हुआ साहित्य, कला एवं संस्कृति तक आ पहुंचा। 21वीं सदी के कथा-साहित्य में क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में इस विमर्श के पक्ष और विपक्ष में रह-रहकर स्वर मुखरित होते रहे हैं और लगातार पिछले एक-डेढ़ दशक से यह विमर्श 'नारी सशक्तिकरण' के नाम से लगातार चर्चा और लेखन का प्रमुख बिन्दु रहा है। जिसको हिन्दी की कथा लेखिकाओं ने सबल समर्थन अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रदान किया है।

इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से महिलाओं की दमित और शोषित सामाजिक और पारिवारिक छवि को सार्वजनिक किया है। स्त्रियों पर होते अत्याचार और उनकी मार्मिक दशा पर लोगों का ध्यान आकर्षित करने का एक महत्त्वपूर्ण अवसर प्रदान किया है। निश्चित तौर पर इस दौरान महिलाओं की दमित और शोषित परिस्थितियां उल्लेखनीय ढंग से परिमार्जित हुई। जहां एक ओर महिलाओं को पुरुषों के समान कुछ आवश्यक और मूलभूत अधिकार मिलने लगे हैं। वहीं शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण महिलाएं भी स्वयं अपनी महत्ता को, समझने लगी हैं उनमें भी अस्तित्त्व बोध हुआ है, लेकिन अभी भी स्त्री को समाज में परिवार में, कार्य स्थलों पर शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। इसलिए नारी की इस स्थिति में सुधार के लिए विमर्श की अति आवश्यकता है। औरत की आजादी को लेकर हमेशा ही वाद-विवाद और संवाद होता रहा है। पुरुष वर्चस्व के सामने स्त्री मुक्ति की चुनौतियां और स्त्री के आधारभूत सम्मान का प्रश्न खड़ा है। कुसुम अंसल ने सामाजिक, पारिवारिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री मुक्ति की दशा और दिशा की सही तस्वीर सामने रखी है।

आज की औरत कितनी आजाद है। इस पर विधिवत विमर्श कम ही हुआ है। समाज को नारी के प्रति एक नये दृष्टिकोण को अपनाना होगा और सच्चाई से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि नारी आज भी प्रताडिघ्त है। इसके विरुद्ध कुसुम अंसल ने अपने साहित्य में प्रश्न उठाये हैं। साहित्य में स्त्री द्वारा स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य ही स्त्री विमर्श का साहित्य माना जाता है। स्त्री विमर्श से जुड़ी लेखिकाएं स्वानुभूति पर आधारित प्रमाणिक व विश्वसनीय साहित्य की रचना कर पाई हैं। परिणामस्वरूप उनकी कृतियों में स्त्री-पीड़ा का यथार्थ चित्रण हो पाया है ऐसी ही यथार्थ अभिव्यक्ति कुसुम अंसल ने अपने उपन्यासों में दी है।

कुसुम अंसल के उपन्यासों में नारी विमर्श के परिचय का स्वर मुखरित हुआ है। उनके उपन्यासों में नारी शोषण का चित्रण यत्र-तत्र देखने को मिल जाता है। इनके उपन्यास 'एक और पंचवटी' की पात्र साध्वी एक कलाकार नारी है। वह अपनी कला के माध्यम से आर्थिक पक्ष से स्वयं निर्भर है, लेकिन फिर भी उसे अपने पति द्वारा मानसिक व भावात्मक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। वह अपने पति द्वारा पग-पग पर शोषण का शिकार है, ''मैनर्स तो आते ही नहीं..... खुद तो देहातिन हो तुम इन बच्चों को भी गंवार बनाकर दम लोगी।''[1] कलाकार के रूप में काम करने वाली को गंवार होने की गाली सुननी पड़ती है।

कुसुम अंसल ने अपने उपन्यासों में नारी को दोहरे शोषण का शिकार दिखाया है एक ओर तो वह पुरुषवादी विचारधारा से ग्रस्त पति के शोषण का शिकार होती है वहीं दूसरी ओर अपनी ही नारी जाति का शिकार होती है, अत: नारी ही नारी की दुश्मन है। कहीं सास के रूप में, तो कहीं ननद के रूप में उसे देखा जा सकता है। सास के रूप में भी नारी उसका शोषण करती है, ''नाक मुंह सिकोड़ती हर बात पर अपने को ऊंचा और सुरेखा के परिवार को नीचा गिराकर कुचलती हुई सी वह एक दम्भपूर्ण स्मित से लैस बैठी थी।[2] नारी के रूप में दूसरी नारी के उत्पीड़न को उन्होंने सौतेली माँ के रूप में 'अपनी-अपनी यात्रा' उपन्यास में व्यक्त किया है। उपन्यास की नायिका सुरेखा सौतेली माँ द्वारा दिये जाने वाले दु:ख को भोगती है, ''ये चुटकी-चुटकी दु:ख उसे देती थी और सुरेखा कांटों की चुभन की तरह उसे अपने शरीर पर देखती थी।''[3]

नारी घर-परिवार में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करती हुई भी आर्थिक और शारीरिक शोषण का शिकार होती है। ससुराल में उसकी स्थिति भी दयनीय है, ''मिन्ना अपने सारे खर्च उसी पैसे से करती थी। ससुराल में सिर्फ उसे खाना मिलता था और कुछ नहीं।''[4] जहां तक नारी उत्पीड़न की बात है उसकी शुरूआत जन्म लेते ही हो जाती है। बेटी को जन्म से ही माता-पिता एक बोझ मानने लग जाते हैं। यह हमारे भारतीय समाज की शुरू से ही समस्या रही है। इस समस्या को लेखिका ने अपने उपन्यास 'अपनी-अपनी यात्रा' में सुरेखा के माध्यम से चित्रित किया है, ''यह हमारा देश कितनी भी प्रगति करे, बेटी पैदा करने वाले माँ-बाप का सिर हमेशा झुका रहेगा, जब तक जीते रहे, बेटी की खुशी के लिए बिकते रहे।''[5]

कुसुम अंसल के उपन्यासों की 'नारी' चेतना नारी है वह अपना भला-बुरा, हित-अहित भली-भांति जानती है। परम्परागत प्रभाव के कारण वह कहीं-कहीं स्वयं को पुरुष के अधीन मानती है, परन्तु कहीं पर उसका अस्मिता बोध मुखर हो उठता है और उसमें उत्तरदायित्व तथा व्यक्तित्व बोध जाग उठता है, इसकी अभिव्यक्ति उन्होंने रेखांकित उपन्यास की मंदिरा के माध्यम से हुई है- ''समाज किसी का हुआ है क्या? समाज तब कहा था?''[6] अत: समाज की मान्यताओं के प्रति उदासीनता व्यक्त करती है। कहीं पर समाज की उन मान्यताओं जो नारी विरोधी के प्रति कुसुम अंसल का विद्रोह मुखर होता है।

'अपनी-अपनी यात्रा' उपन्यास की नारी मधुर समाज को निरर्थक समझती है। वह अस्तित्त्व बोध चेतना युक्त है। वह सामाजिक बन्धनों को नकार जितनी खुशी मिल सकती है, प्राप्त कर लेना चाहती है, ''समाज क्या है? एक चक्रव्यूह उलझने बढ़ाने के लिए बाधा कांटों का जाल है।''.....जितनी बन पड़े, उतनी खुशी बटोर लूं..... जीना है तो भरपूर जिओ।''[7] वह क्षणवादी हो जाती है। सारे मूल्यों, बन्धनों से मुक्त होकर जीना चाहती है। कुसुम अंसल के उपन्यासों की नारी पात्र सामाजिक बन्धनों, रूढिघ्यों का विरोध करती है, लेकिन कहीं-कहीं समझौतावादी रूप में सामने आती है, ये समझौता वह अपने घर-परिवार हेतु कर लेती है। दूसरों की खुशी के लिए स्वयं का त्याग करने वाली नारी के रूप में सामने आती है। 'रेखाकृति' उपन्यास की मालविका पति द्वारा अपमाति प्रताडिघ्त करके घर से बहिष्कृत कर दी जाती है, लेकिन जवान बेटी की खातिर लगभग 15-16 वर्षों बाद भी पति के गुनाह को माफ कर देती है और उसके पास पुन: चली जाती है, ''मैंने भी नरेश को माफ कर दिया है..... बच्चों के लिए ही तो उसे मुक्त कर दिया है।''[8] इस प्रकार वह अपने बच्चों की खातिर अपनी अस्मिता को दबा लेती है।

लेखिका के उपन्यासों की नारी अपनी अस्मिता के लिए छटपटा कर रह जाती है, परन्तु अन्त में फिर समाज की मान-मर्यादाओं का आश्रय लेती है। 'एक और पंचवटी' उपन्यास की नायिका कलाकार नारी साध्वी अपनी निजता को विस्मृत कर पति की हर अनुचित बात को स्वीकार कर लेती है, ''एकाएक अपमान पीकर समझौता करने की बात मन में जाग गई थी.... आगे से वही करुंगी जो तो कहोगे।''[9] उपन्यास में माँ द्वारा समझाये जाने पर वह उसकी बात मान जाती है। इस प्रकार कुसुम अंसल के उपन्यासों की नारी संस्कारवादी है जो पुराने संस्कारों से स्वयं को अलग नहीं कर पाती और माँ की बात को मानती है।

कुल मिलाकर कुसुम अंसल के उपन्यासों की नारी पात्र चेतना होने के साथ-साथ परम्परागत मान्यताओं, संस्कारों से स्वयं अलग नहीं हो पाती जहां शुरू में वह नारीवादी विचारधारा से अपना स्वर पुरुषवादी समाज के प्रति मुखर करती हैं वहीं आखिर में उसके सामने परम्परागत संस्कारों से ग्रस्त होने के कारण झुक जाती हैं। अत: कुसुम जी ने अपने उपन्यासों में नारी चेतना के स्वर को मुखरित करते हुए वर्तमान भारतीय नारी के सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन मूल्यों को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त किया है। वहीं सामाजिक और पारिवारिक जीवन की उसकी समस्याओं पर पाठक को सोचने तथा उसके उत्तर खोजने पर मजबूर किया है जो नारी विमर्श का मूल विषय है।

सन्दर्भः

1 कुसुम अंसल, एक और पंचवटी, पृ. 18
2 वही, अपनी-अपनी यात्रा, पृ. 112
3 वही, पृ. 32
4 वही, पृ. 113
5 वही, पृ. 116
6 वही, रेखाकृति, पृ. 89
7 वही, अपनी-अपनी यात्रा, पृ. 38-39
8 वही, रेखाकृति, पृ. 107
9 वही, एक और पंचवटी, पृ. 19

मृदुला सिन्हा के कथा साहित्य की विशेषताएँ

रीना अग्रवाल

शोधार्थिनी, भाषा एवं आधुनिक ज्ञान विज्ञान, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार, उत्तराखंड

प्रो० दिनेश चंद्र चमोला

शोध निर्देशक, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार, उत्तराखंड

साहित्य समाज का आइना होता है। साहित्यकार किसी भी देश-समाज में व्याप्त रीति-रिवाजों, मान्यताओं, परंपराओं, रहन-सहन आदि को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। साहित्य से ही किसी राष्ट्र का इतिहास, गरिमामयी संस्कृति और सभ्यता आदि की जानकारी प्राप्त होती है। व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में समाज से विलग नहीं रह सकता क्योंकि इसके बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं। समाज में रहकर ही उसका सर्वांगीण विकास संभव है। साहित्य द्वारा समाज को दिशा प्राप्त होती है। मृदुला सिन्हा का कथा साहित्य वर्तमान का प्रतिबिंब है। इनके कथा साहित्य में साधारण व्यक्ति के जीवन को विभिन्न परिस्थितियों में देखा जा सकता है। इनका कथा साहित्य अनुभूति एवं भावनात्मकता से ओतप्रोत होने के कारण समरसतापूर्ण है। वे सकारात्मक दृष्टिकोण और कार्य के प्रति निष्ठा-ईमानदारी से साहित्य साधना में सफल हुई हैं। लोगों के अपमान, अत्याचार, शोषण के विरुद्ध जागरुकता प्रदान करके उसके प्रति आवाज बुलंद करना उनके लेखन का मुख्य उद्देश्य रहा है। उन्होंने अनेक विधाओं में लेखन कार्य करके समय-समय पर समाज में प्रचलित वर्तमान समस्याओं का परिवेशगत अनुभूतियों और प्रचलित विकृतियों को गहनता से चित्रित करने के साथ-साथ नारी जीवन से जुड़े अनेक पहलुओं को प्रस्तुत किया है।

'टिफ़िन बॉक्स' कहानी में लेखिका ने नारी जीवन के अकेलेपन को दर्शाया है। कहानी में नायिका पार्वती को घर का अकेलापन अखरता है। बच्चों के छोटे होने पर वह सबको टिफिघ्न बॉक्स में खाना डालकर दिया करती थीं। अब सबके बड़े होकर शहरों में नौकरी करने के लिए घर छोड़कर चले जाने के बाद की स्त्री जीवन की मानसिक स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया है। इनके माध्यम से मृदुला सिन्हा ने समाज के घात, प्रतिघातों का चित्रण किया है। ''भारतीय ग्रामीण समाज का वह बुत जिसे छोड़ने और मूँदने में प्रयोग किया गया प्लास्तर का सीमेंट अभी गीला है। इस कच्चे बुत से सामग्रियाँ निकाली जा सकती है। जो आने वाली पीढीघ के लिए संजोई जा रही है।''[1] इन कहानियों में समाज का भूत, भविष्य और वर्तमान प्रस्तुत किया गया है। साहित्य तीनों जड़, बीज, फल को सहेजता है। इन कहानियों में समाज तथा मानव जीवन की इन्हीं तीनों स्थितियों को संवारने में मृदुला सिन्हा के अनुभव-अथक प्रयास संचित है।

मृदुला सिन्हा के प्रथम उपन्यास 'ज्यों मेहंदी को रंग' में मानवीय गुणों के ह्रास का सार्थक चित्रण है। उपन्यास की कथा नारी की विविध समस्याओं से जुड़ी हुई है। नायिका शालिनी के गंगा पार करते हुए स्टीमर के बीच पाँव आ जाने से उसके पैर कट जाते हैं। डॉ. दद्दाजी की संस्था से वह कृत्रिम पाँव पाती है। मंथन की स्थिति उपन्यास में दिखाई देती है। डॉ. दद्दाजी संस्था का संचालन समर्पण भाव से करते दिखाई देते हैं। यह उनके चिंतन को स्वर देता, मानवीय जीवन मूल्यों को सृजित करता संवेदनात्मक उपन्यास है। कथा पढ़ने के बाद लगता है कि जैसे उन्होंने जीवन अनुभवों में से कुछ प्रसंग, घटनाएँ और स्थितियाँ चुनकर उन्हें कहानी का रूप दे दिया है।

'अचार का घड़ा' भावना प्रधान कहानी है। इस कहानी के प्रति डॉ. विद्यानिवास मिश्र का कथन है, ''जीवन का इतना गहरा दर्शन कहाँ से उठा लाई।''[2] इसमें लेखिका मृदुला सिन्हा ने निर्जीव-सजीव वस्तुओं के साथ किए गए व्यवहार में समानताएँ बताई हैं कि जिस तरह का व्यवहार निर्जीव वस्तुओं के साथ होता है वैसा ही व्यवहार सजीव वस्तुओं के साथ भी किया गया है।

"नजरें चुराने वास्ते" अंतिम इच्छा में संकलित कहानी की मूल मौलिक संवेदना माँ की ममता है। इसमें गाँव में रहने वाली माँ के अपने पुत्र के प्रति हृदयगत मनोभावों को प्रस्तुत किया गया है। पुत्र के लिए माँ के सपने बड़े थे परंतु शहर आकर बेटे के तरक्की प्राप्त करने पर वह बेगानी होती गई। जितनी अपने पुत्र को सजाने संवारने के लिए कितनी मुसीबतें सही, परंतु उफ नहीं किया। उससे नाराज होकर भी उसकी ढाल बनकर ही रही वही माँ जो हर बात में "जुग जुग जियो मेरे लाल" अनगिनत दुआएँ देती है। पुत्र के पास उसी से मिलने, साथ रहने, हालचाल पूछने का समय नहीं होता। मृदुला सिन्हा ने माँ के मनोभावों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है, देवकी अपने दोनों पुत्रों से कहती है "बेटा सुना है, लालन आने वाला है अपनी दीदी से कहो ना कि उसे भी यही ठहरा ले ! एक रात की तो बात है, यहीं मेरे साथ सो जाएगा। बेटी ! लालन आ गया क्या, इसे उधर बुलाकर खाना तो खिला दो।"[3]

'उऋण' कहानी मैं लेखिका ने इन्हीं भावों को उभारा है। पुत्री सोनाली अपनी बीमार वृद्ध माँ को अपने साथ रखती है। उसके भाई वृद्धा माँ को अपने पास रखना भार स्वरूप मानते थे। बीमार माँ की नाजुक हालत होने पर पड़ोसन सोनाली से कहती हैं, "अपने भाइयों को खबर कर दो, इस पर सोनाली कहती है नहीं, नहीं ! ऐसा कुछ भी नहीं होगा कुछ ऐसा अगर हुआ भी तो मुखाग्नि मैं ही दूँगी मैं ही बेटा, बेटी दोनों हूँ। मैं ही माँ के ऋण से 'उऋण' हुई हूँ ना।"[4] भारतीय समाज की ज्वलंत समस्या है छुआछूत। कम नहीं होती दिखाई देती यह समस्या विकराल रूप लेती जा रही है।

लेखिका ने 'मनौती' नामक कहानी में इस समस्या को दर्शाने का प्रयास किया है। 'सांगली और सुभद्रा एक ही गाँव की रहने वाली है। सांगली गरीब-अछूत जाति से है, सुभद्रा जमींदार ब्राह्मण परिवार से है। दोनों में बचपन से गहरी दोस्ती है सुभद्रा को दादी की सीख है कि सांगली को छूना मत। सांगली सखी सुभद्रा को स्पर्श करना चाहती है, उसके साथ खेलना चाहती है। दोनों का विवाह एक ही गाँव में होता है। सुभद्रा कई वर्षों तक अपनी नि:संतान रहती है। सांगली अपने कुलदेवता से सुभद्रा के लिए ''मेरी सखी को माँ बना दो मिट्टी का घोड़ा चढ़ा आऊँगी' की 'मनौती' माँगती हैं।"[5] सुभद्रा के गर्भवती होने पर सांगली खुश होती है नो मास के बाद अचानक उसको प्रसव पीड़ा शुरू होती है, सांगली को बुलाया जाता है। मालकिन पोता हुआ है बारह दिनों का साथ रहा दोनों का। सांगली में जी भर कर अपनी सखी का 'स्पर्श' किया। जब सांगली ने सुभद्रा को 'मनौती' मांगने की बात कही तो उसका मुस्कराते हुए कहना था कि अच्छा, तो बच्चे के लिए ''मनौती' मांगी गई थी या फिर मुझे छूने के लिए माँगी थी।''[6] मृदुला सिन्हा के लेखन की यही विशेषता रही है कि उन्होंने समस्याओं का सौहार्दपूर्ण-उद्देश्यपूर्ण हल प्रस्तुत किया हैं।

इसी परिप्रेक्ष्य में 'पहली मृत्यु पर' कहानी राजनीतिक परिवार में ब्याही स्त्री कस्तूरी की है। जो पूरी कहानी का 'मेरुदंड' है। वह अपने मंत्री पति सौरभ को अपने कर्त्तव्यों से विमुख नहीं होने देती और अपने ससुर के आदर्शों को जीवित रखते हुए उसे सेवा-समर्पण के रास्ते पर बनाए रखती है। "क्या किया तुमने? स्वर्गीय बृजभूषण जी की पुण्यकर्मों को मिट्टी में मिला दिया, अब किस हाथ से पिता का तर्पण करोगे?"[7] लेखिका की कहानियों की ये स्त्री पात्र जितनी पारंपरिक है उतनी ही आधुनिक है, कर्तव्यपरायण मगर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं। वह अपने साथी के साथ पूरे आत्मविश्वास से खड़ी रहकर कदम मिलाकर चलती हैं।

मानव जीवन के अंतर्गत मृत्यु पर्यंत अनेक ऐसे पल आते हैं जब वह उल्लास से परिपूर्ण, प्रफुल्लित और आनंदित होकर हताशा और निराशा भरे पलों से भी गुजरता है। साहित्यकार मृदुला सिन्हा का जन्म भी इन्हीं परिस्थितियों से होकर संघर्षमयी काल से गुजरता है। कथाकार के रूप में ये इन पलों को सहेजकर उनसे प्राप्त अनुभवों को एक शृंखला के रूप में बनाकर संजोती हैं। रचनाकार का साहित्य, उसका जीवन, व्यक्तित्व, ज्ञान, अनुभवों और पारिवारिक दशा से प्रभावित होता है। साहित्यकार अपने जीवन को मन मस्तिष्क से स्पर्श कर कहानियों द्वारा अभिव्यक्त करने में सक्षम होता है जिससे वह एक विशिष्ट साहित्य का निर्माण व सृजन करता है। साहित्यकार द्वारा सचेत-सक्रिय अनुभव ही कहानियों के द्वारा मानव के जीवन को नई दिशा प्रदान करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

मृदुला सिन्हा ने 'बेटी का घर' कहानी में एक पिता के बेटी के घर आकर रहने के प्रति समाज की नकारात्मकता को प्रस्तुत

किया गया है। माता-पिता एवं भाई-बहन के संबंधों के बीच भावनात्मक संबंधों को दर्शाते हुए वे लिखती हैं, ''भैया ने बेटे-बेटी में कभी कोई अंतर नहीं किया। आखिर घर तो बेटी का ही है। आखिर लोग क्या कहेंगे?''[8] एक स्त्री को जन्म से ही एहसास करवाया जाता है कि वह लड़की है। आज भी ऐसे परिवार कम ही मिलेंगे जहाँ व्यक्तित्व विकास का उसे पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता हो। यही 'स्त्रीवाद' है। जो उसे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध बोलना सिखाता है साथ ही उसके जीवन का लक्ष्य पुरुष की छाया बनकर जीवन यापन करना नहीं अपितु कदम ताल कदम मिलाकर आगे बढ़ना सिखाता है। डॉ. रामविलास शर्मा के यह ओजस्वी वचन तब उसके लिए प्रेरक बन जाते है; ''निराशा तुम्हारे लिए नहीं बनी हारो पर हारने पर भी कदम पीछे नहीं आगे बढ़ो और साबित करो कि स्त्रियाँ जाल को समेटकर किनारे करना जानती हैं।''[9] मृदुला सिन्हा का नारी विषयक चिंतन भारतीय विचारों पर आधारित है। नारी समानता के लिए वे अर्द्धनारीश्वर में निहित स्त्री एवं पुरुष के पारस्परिक सरोकारों में समानता अपनाने पर बल देती हैं। वे स्त्री को पुरुष के समान बनाने के विषय में मातृत्व भावों को तथा उनकी अनुभूतियों को प्रकट करने वाला सच्चा प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है।

आज स्त्रियों को पुरुष के समान बनाने की तुलना में नारीत्व से पूर्ण बनने की आवश्यकता है। स्त्री, स्त्री ही है और पुरुष, पुरुष ही है। वह अन्य महिला लेखकों की तरह स्त्री एवं पुरुष समानता तक ही सीमित न रहकर तथा आधुनिकता के नाम पर भारतीय संस्कृति की उपेक्षा न करके आधुनिकता और संस्कृति की पक्षधर रही हैं। नारी को उन्होंने पुरुष से श्रेष्ठ माना है क्योंकि वह अधि कारों की मांग की आड़ में कर्त्तव्यों के बोध को नहीं भुलाती हैं बल्कि कर्त्तव्यों के द्वारा अधिकार प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करती हैं। आज के टूटते, बिगड़ते परिवार इनकी कहानियों के केंद्र में हैं। इनको बचाए रखने के लिए ये नारियों से ही आशान्वित दिखाई देती हैं। उनका स्त्री-पुरुष चिंतन भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। एक दूसरे के बिना उनका अस्तित्व अधूरा है। लेखिका ने स्त्री को उचित सम्मान, स्थान दिए बिना समाज का विकास असंभव माना है।

उनके अनुसार नारी कोई 'भोग की वस्तु नहीं है', 'मात्र देह भी नहीं है', 'न कठपुतली न उड़नपरी है' और 'न ही वह अविकसित पुरुष' ही है। नारी को वे पुरुष समानता का आधार मानती हैं। आज भ्रूण बालिका की हत्या का आयाम जुड़ गया है। लेखिका ने साहित्य में इसको किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया है, ''जननी को जन्मने दो, जननी को जीने का अधिकार दो' उसे भी जीने का अधिकार है।''[10] एक ओर ये स्त्री को घरेलू दायित्वों को निभाने का उत्तरदायित्व देती हैं तो वहीं दूसरी ओर उसके कार्यालय तक जाने के अनुकूल बात करती दिखाई देती हैं। समाज के मध्य आस्थावादी और मानवीय मूल्यों पर आधारित जीवन जीने की पक्षधर लेखिका ने अनुशासन, कर्त्तव्यपालन एवं संयम पर विशेष बल देती हैं।

'घरवास' समाज में हाशिए पर स्थित पात्रों की राष्ट्रीय समस्या पर विचार करता हुआ उपन्यास है। वर्तमान के सामाजिक बदलावों के अंर्तगत निसंकोच ग्रहण करते हुए स्त्रियों के जिघ्म्मेदारी से अपने पदों को दर्शाया है। मृदुला सिन्हा खेद प्रकट करतीं हैं कि महिला ही महिला की दुश्मन है तथा उनकी शिक्षा को लेकर बुजुर्ग महिलाओं की सोच अनुचित वे उन्हें केवल घर, परिवार तक ही सीमित रखना चाहती हैं। लेखिका ने उनकी अपमानजनक स्थिति, मजबूरी, उपेक्षा आदि का चित्रण गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। इसमे संदेह नहीं कि स्त्रियों को शिक्षा व गुणों का उन्नयन कर उळाम नागरिक बनाना उनके चिंतन का प्रमुख उद्देश्य रहा है। उपन्यासों की रचना वास्तविक धरातल पर हुई है।

"अतिशय" उपन्यास समस्या प्रधान उपन्यास है जिसमें आज के दोहरे चरित्र से ग्रस्त जीवन का विश्लेषण किया गया है। लेखिका ने धनलोलुपता, कामप्रवृत्ति, पारिवारिक बिखराव और दांपत्य जीवन के टूटते, बनते संबंध जैसे प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया हैं साथ ही उनके अलग तरह से समाधान प्रस्तुत भी किए हैं। यह मात्र एक उपन्यास न होकर उनके स्वयं के अनुभव एवं 'स्वानुभूति' का भी सम्मिश्रण हैं। इसलिए यह स्त्री-विमर्श को नया आधार-आयाम प्रदान करता है। ''यह बंद होते उद्योगों को सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यमों से पुनः विश्व में स्थापित करने की प्रेरणा देने वाली कृति है।''[11] इसमें स्त्री-पुरुष संबंध के विविध रूप वर्णित पारंपरिक नैतिक-धार्मिक मान्यताओं के कारण दांपत्य जीवन नरक बन जाता है। उसकी संवेदनशीलता सामने आ जाती है। मृदुला सिन्हा के विचार आदर्शवादी भावना को लेकर सामने आए हैं साथ ही वे पारिवारिक-सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए समाधान तक पहुँची हैं।

स्त्री विमर्श के पुरोधा के रूप में महादेवी वर्मा का साहित्य में गौरवशाली स्थान है उनके कथा साहित्य में महादेवी वर्मा जैसी करूणा और पीड़ा की अनुभूति देखने को मिलती है। मानवीय मूल्य उत्कृष्ट साहित्य को जन्म देते हैं इनके साहित्य में उत्कृष्टता भी है। उळाम शिक्षा व प्राप्त संस्कारों का उन्नयन कर उळाम नागरिक बनाना उनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य रहा। कहानी संग्रह 'एक दीये की दीवाली' में संकलित कहानियों के माध्यम से मृदुला सिन्हा ने कथा साहित्य के विभिन्न चित्रों को प्रस्तुत किया है। मानव-कल्याण के लिए उत्साह, लगन के द्वारा जीवन का संकल्प दिया है। एक सजग नारी होने के चलते उन्होंने मानव जीवन की पीड़ाओं, व्यथाओं को अनुभव करके उसका समाधान तार्किकता से प्रस्तुत किया है। अलग-अलग विषयों को लेकर बुनी गई कहानियाँ उनके उत्कृष्ट लेखन का परिचय देती हैं। इनके नारी चिंतन में पौराणिक और आधुनिक स्त्री चिंतन का समावेश विद्यमान है।

'अहल्या उवाच' उपन्यास माँ अहल्या का जीवन वर्णन है। मृदुला सिन्हा ने इस रचना के माध्यम से आध्यात्मिक और स्वर्गलोक के संदर्भ में चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने पौराणिकता को रचना-शिल्प में ढालने का कार्य किया है। उन्होंने उपन्यास लिखने से पूर्व गहन अध्ययन-शोध किया है। स्त्री को आत्मबल का निर्देश देती इनकी रचनाएँ भारतीय नारी चिंतन को व्यक्त करती हैं। सीता, सावित्री, मंदोदरी, शालिनी आदि भारतीय नारी के चरित्रों में आधुनिक नारी का जीवन संबल ढूँढ़ती उनकी लेखनी प्रशंसनीय है वह जब जीवन मूल्यों और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिकता को आवश्यक मानती हैं।

वर्तमान में नारी मनोदशा, महिलाओं की जीवन स्थिति तथा उनकी अनुभूतियों को प्रतिबिंबित किया गया है। आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास 'सीता पुनि बोली' में माता सीता के जन्म से लेकर विवाह और वन गमन एवं पुनः अयोध्या लौटने तक की यात्रा का वृतांत समाहित है। इसमें संदेह नहीं है कि मृदुला सिन्हा का साहित्य, हिंदी साहित्य जगत के लिए नई और मौलिक पूंजी है। उन्होंने नायक के संदर्भ में भी चित्रण प्रस्तुत किया है कि प्रत्येक पुरुष को लेकर स्त्री मन में एक कल्पना होती है कि उसका भावी पति नायक के गुणों से भरपूर हो। भगवान शिव की सती के प्रति दिखने वाली आत्मीयता से प्रेरित प्रत्येक नारी कामना करती है कि उसका पति भी शिव के इस 'शिवतत्व' से प्रेरणा ग्रहण करे। पुरुष धन उपार्जन करता है और स्त्री उस पर 'निर्भर' होती है। ऐसी स्थिति पुरुष को 'शासक' और स्त्री को 'शोषित' बना देती है। स्त्री की आर्थिक निर्भरता उसे बहुत कुछ पराधीन बना देती है। उनकी स्त्री-पुरुष समानता के लिए विश्व को अर्धनारीश्वर की संकल्पना उनके समान अधिकारों की पुष्टि करती है। उन्होंने स्त्री लेखन में आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए स्त्री मुक्ति का महळ्वपूर्ण यंत्र 'शिक्षा' को मानते हुए उनके आत्मनिर्भर बनने पर बल दिया है। 'सर्वे भवन्तु सुखिन' तथा 'वसुधैव कुटुंबकम' की अवधारणा को सर्वोपरि मानते हुए वे भारतीय चिंतन शैली में व्याप्त संस्कारों को लक्षित करने की भी पक्षधर हैं। मानवीयता का संचार करती उनकी अनूठी रचनाएँ हैं।

आज जहाँ एक ओर समकालीन लेखक-लेखिकाएँ सामाजिक, पारिवारिक, स्त्री, दलित, मूल्य विमर्श पर बल दे रहें हैं, वहीं कुछ साहित्यकार जीवन मूल्यों पर महत्त्व दर्शाते साहित्य का भी सृजन कर रहे हैं। ऐसे में मृदुला सिन्हा की लेखनी जीवन मूल्यों की आवश्यकता पर गतिमान रही है। उनके साहित्य में व्याप्त मानव के विविध रूपों से हमारी पहचान होती हैं। परिवर्तन समाज का ऐसा अटल नियम है। शैशव, यौवन और वार्धक्य का समावेश मानव जीवन के लिए स्वाभाविक है, ''एक ओर जहाँ जयशंकर प्रसाद ने भी 'पुरातनता का यह निर्भोक सहन करती न प्रकृति पल एक' कहकर परिवर्तन को केंचुली बदलने की संज्ञा दी है वहीं दूसरी ओर सुमित्रानंदन पंत ने 'द्रुत झरो हे जीर्ण पात' कहकर परिवर्तन की आवश्यकता बताई है। पुराने पत्तों के झड़ने के पश्चात ही वृक्ष नए पत्तों से आच्छादित होगा।''[12] जहाँ जीवन में परिवर्तन होते हैं वहाँ मूल्य परिवर्तित भी होते हैं भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च स्थान मूल्यों का ही है। उदात्त मूल्य ही संस्कृत भारतीय संस्कृति को विश्व मंच पर मजबूती से खड़ा करते हैं।

उपयुर्क्त विवेचना के उपरांत स्पष्ट हो जाता है कि मृदुला सिन्हा की लेखनी वर्तमान में जीवन मूल्यों की आवश्यकता पर चली है। उन्होंने अपने अंदर की घुमड़ती संवेदनाओं और चलते, फिरते पात्रों की स्मृति को सहेज कर प्राप्त प्रसंगों-पात्रों को लेकर कहानियों को बुना है। उनका कथा साहित्य भारतीय मनीषा के चिंतन व संस्कारों से भरपूर है। अतः कह सकते है कि महिला लेखन की जिस गौरवशाली यात्रा को उन्होंने विस्तार दिया वह आज भी पूर्ण आत्मविश्वास और पूर्ण हौसलों से लक्ष्य पर पहुँचने की आशा में समाज को निरंतर प्रेरित कर रही हैं।

संदर्भ सूची

1. अंतिम इच्छा, मृदुला सिन्हा; यश पब्लिकेशंस, संस्करण 2014, पृ0 सं0 28
2. लोकप्रिय कहानियाँ, मृदुला सिन्हा; प्रभात प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ0 सं0 7
3. 'नजरे चुराने वास्ते', अंतिम इच्छा, मृदुला सिन्हा; यश पब्लिकेशंस, संस्करण 2014, पृ0 सं0 62
4. 'उऋण', अंतिम इच्छा, मृदुला सिन्हा; यश पब्लिकेशंस, संस्करण 2014 पृ0 सं0 73
5. 'मनौति', अपना जीवन, मृदुला सिन्हा; यश पब्लिकेशंस, संस्करण 2014 पृ0 सं0 56
6. वही, पृ0 सं0 56
7. 'पहली मृत्यु पर', अपना जीवन, मृदुला सिन्हा; यश पब्लिकेशंस, संस्करण 2014 पृ0 सं0 126
8. 'एक दीये की दीवाली' मृदुला सिन्हा; प्रभात प्रकाशन, संस्करण 1985 पृ0 सं0 119
9. स्त्री लेखन विमर्श और महिला उपन्यास लेखन, उषा यादव, यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2020 पृ0 सं0 38
10. इसी बहाने, सामाजिक सरोकार,: प्रभात प्रकाशन, संस्करण-प्रथम 2016, पृ0 सं0 209
11. अतिशय, मृदुला सिन्हा का साहित्य विश्लेषण, डॉ. रविंद्रनाथ मिश्र, अनामिका पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 2017 पृ0 सं0 43
12. स्त्री लेखन विमर्श और महिला उपन्यास लेखन, उषा यादव, यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2020, पृ0 सं0 9

यहया कहानी के लेखक सादिक चूबक

डॉ० तसनीम कौसर चिश्ती

एसोसिऐट प्रोफेसर, फारसी विभाग, करामत हुसैन एम.जी. पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

सदिक चूबक का जन्म 5 अगस्त 1916ई0, को ईरान के बूशहर ईरान में हुआ था एवं उनकी मृत्यू 3 जुलाई 1998ई0, को बर्कले, कैलिफोर्नियां, अमेरिका में 61 वर्ष की आयु में हुआ था। वह 20वीं शताब्दी के प्रमुख ईरानी लेखकों में से एक हैं, सादिक़ चूबक की लघू कथाओं में उनकी गहनता, विस्तार की अर्थव्यवस्था और एक ही विषय पर एकाग्रता की विशेषता मिलती है।

सादिक़ चूबक ईरान के शीराज प्रान्त में पले बढ़े और 1937ई0 में तेहरान के अमेरिकी कॉलेज से स्थातक की उपाधी प्राप्त की। उनके साहित्यिक गुरु सादिक़ हिदायत थे। सादिक़ चूबक एक प्रसिद्ध ईरानी लेखक, और अमेरिकी लेखकों जेम्स विलियम, फॉल्कनर और अर्नेस्ट हेमिंग्वे के लेखन से भी प्रभावित थे। हालाँकि चूबक ने अपनी खुद की एक शैली विकसित की। बोल चाल की भाषा में लिखते हुए उन्हों ने मिजाज को सफलतापूर्वक क़ैद किया और अपनी कहानियों को अचूक यथार्थवाद के साथ बताया।

सादिक चूबक के सबसे प्रसिद्ध कार्यों में शामिल ख़ैम-ए-शब बाजी (1945ई0), ''कठपुतली शो'' लघु कथाओं का एक खंड जो 11 खंडों में विभाजित है, जिनमें प्रत्येक दैनिक जीवन के एक पहलू को चित्रित करती है। ''अंतरी केह लूतियश मरदे बूद'' (1949ई0), और नाटक ''तुप-ए लातीसकी'' (1962ई0), ''दा रबर बॉल'' और दो उपन्यास ''तांगसीर'' (1963ई0) और ''संग -ए- सबूर'' (1967 ई०), ''दा पेशेंट स्टोन'' आदि हैं। सादिक़ चूबक ने अंग्रेजी भाशा में अनुवाद भी किया जिसमें लुईस कैरोल के एलिस एडवेंचर्स इन वंडरलैंड और थ्रु द लुकिंग ग्लास आदि शामिल हैं।

ईरानी लेखक सादिक़ चूबक़ द्वारा रचित कहानी ''यहया'' का हिन्दी अनुवाद

यहया की आयु 11 वर्ष की है एंव सब से पहला दिन था कि वह चाहता था कि वह पत्रिका ''डेली न्यूज बेचे! पत्रिका के कार्यालय में पत्रिका को देने में व्यस्त और कुछ बच्चे जो कि वह भी पत्रिका बेचते थे! कई बार 'डेली न्यूज' पत्रिका के नाम को उसके लिए उच्चारण करते (मतलब यहया 11 वर्षीय बालक को जिस पत्रिका को यानी 'डेली न्यूज' को वह बेचता था उसका नाम ठीक रूप से लेना नहीं आता था इस लिए उसकी आयु वाले बच्चे जो खुद भी पत्रिका बेचते थे उसको 'डेली न्यूज' पत्रिका का नाम ठीक ढंग से लेना सिखाते थे) उस ने (यहया) ने भी उसे अच्छी तरह सीख लिया और उसकी दृष्टि में यह नाम एक पत्थर से बना हुआ खाना बनाने का बरतन समझ में आया (मतलब जब यहया ने उस पत्रिका के नाम बिलकुल एक पत्थर से बने खाना पकाने वाले बरतन के समान है? कईबार ठीक और बिना किसी कठिनाई के, अपनी पीठ के पीछे भी, अपने सामने भी, उसने कहा ''देली न्यूज, देली न्यूज, देली न्यूज'' और पत्रिका के कार्यालय से वह बाहर आ गया!

जैसे ही वह गली में पहुँचा उसने दौड़ना आरम्भ कर दिया और चिल्लाया: ''देली न्यूज''! और उसने किसी व्यक्ति पर धयान नहीं दिया! वह केवल अपने कार्य में व्यस्थ था! वह जितना अधिक इस नाम को (पत्रिका के नाम को) दोहराता था और लोग उस से पत्रिका खरीदते थे: उसको अपने आप से भी अच्छा लगता था और यहाँ तक कि कुछ या थोड़े पत्रिका के अंक बेचना अरम्भ किया था परन्तु (पत्रिका का नाम डेली न्यूज) उसे याद था परन्तु जैसे ही कि टूटे पैसे एक पाँच का सिक्का एक श्रीमान को दिया और एक दह षाही (दस का सिक्का) भूल गया! और उस श्रीमान ने भी वह दह षाही उसे (ग्यारह वर्षीय बालक यहया) को दे दी और वह चला गया जितना कि उसने (यहया ग्यारह वर्षीय बालक) ने सोचा उसे पत्रिका का नाम याद नहीं आया! वह उसे (पत्रिका के नाम को) पूर्ण रूप से भूल चुका था!

वह भयभीत हो गया था! थोड़ी देर के लिए वह खड़ा हुआ और सड़क को आशचर्य से फटी नजरों से देख रहा था! उसने पुनः दौड़ना प्रारम्भ किया! दोबारा फिर से भी बिना उस के (मतलब बिना डेली न्यूज पत्रिका के नाम के) आवाज लगाऐ! उसके कुछ पत्रिका के अंक लोगों ने खघ्रीद लिए! यहया ने उन लोगों के मुंह से जो कि पत्रिका खरीदते थे तो यहया उनको देखता था। ता कि वह उन लोगों से पत्रिका का नाम सुन सके परन्तु उन लोगों ने अंदाज़े से ही ले लिया और बजाऐ इस के कि वह यहया चेहरे मोहरे को देखें! उन लोगों ने पत्रिका को लिया और चले गए!

उसने (यहया) ने अपने सर को नीचे गिरा लिया वह धीरे-धीरे रास्ते पर चल पड़ा! बंधी हुई पत्रिकाओं को उसने अपनी बगल में पकड़ा हुआ था! (यानि बंधी हुई पत्रिकाऐं उसकी बगल में दबी हुई थीं) और उसके बराबर में वह उसे दबा रहा था! वह (यहया) डर रहा था क्यूँ कि उसने अख़बार के नाम को भुला दिया या हो सकता है यह सम्भव है कि पत्रिकाओं को उस से वापस ले लें! वह चाहता था कि रोये परन्तु उसके नैनों से आँसू नहीं टपक रहे थे! उसने चाहा कि वह चंद भरोसेमंद लोगों से पूछे कि पत्रिका का नाम क्या है ? परन्तु उसे लज्जा आई और वह भयभीत हो गया!

अचानक उसका अनुमान बदल गया और एक तेज मुसकान से उसका चेहरा खिल गया और उसके मुख पर मुसकान बिखर गई। दोनों पैर को छोड़ते हुऐ और वह चिल्लाने लगा: ''परीमूस!, परीमूस!'' इस ने पत्रिका के नाम को पा लिया था।

संदर्भ सूची

1. ''ऐन इन्ट्रोडकटरी ऐस्से: परशियन राईटर्स''
2. माडर्न परशियन शोर्ट स्टोरीज, वाशिंगटन 1980
3. फिफ्टी इयर्स आफ मोडरन परशियन लिटरेचर इन ईरान 1900 - 1950ई0
   लेखक: डॉ0 रज़िया अकबर
4. आ प्राईमरी ऐनालिसिस आफ मौडरन परशियन पुरोज
   इंडो ईरानिका, वोलयूम 13, 1971ई0
5. नक़्शहाए रंग रंग
   गिरोहे जबानो अदबियाते फारसी
   दानिशगाहे इस्लामी-ए-अलीगढ़
   जून - 2005ई0
   प्रेस: ए.एम.यू प्रेस अलीगढ़

कृष्णा सोबतीः स्त्रीत्व का परचम फहराती एक सशक्त कथाकार

डॉ0 अशोक कुमार शर्मा

प्रोफेसर एवं शोध् समन्वयक, निम्स विश्वविद्यालय, राजस्थान

शबनम भारतीय

शोधत्री, सोशल साइस, निम्स विश्वविद्यालय, राजस्थान

कृष्णा सोबती जिन्होंने अंग्रेजी सामंती शासन के जुल्मों सितम तले सिसकते कहराते भारत में उस समय जन्म लिया जब भारत में घोर दासता का साम्राज्य था। एक तरफ परदेशी गौरों का आर्थिक, प्रशासनिक, शारीरिक अत्याचार तो दूसरी तरफ गरीबी, बेरोजगारी, धर्मिक, निर्धानता का तामसिक अंधकार पूर्ण समाज जिसमें न पहनने को लोगों के पास वस्त्रा थे ना ठाने को अन्न। शिक्षा भी न चेतना। पुरुष और स्त्री दोनों ही इस चौतरफा शोषण व पीड़ा से अक्रांत, भयभीत, धयल थे। ऐसे में महिलाओं की स्थिति तो क्या रही होगी सोच कर भी का कॉप जाती है। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, विधवा समस्या, बहु विवाह, बेमेल विवाह जैसे अनगनित रुपी सर्पो सामाजिक बुराई रुपी सर्पो ने उनकी देह और आत्मा को मानो सदियों-सदियों से इस तरह जकर रहा था कि वह सिर्फ हाड-मास की कठपुतली मात्रा बनकर रह गई। शारीरिक-मानसिक शोषण उनकी नियति बन चुकी थी। अधिकारों के नाम पर उसे सिर्फ घर गृहस्थी कामकर दो जून की रोटी व पुरुषों की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। सबसे बड़ी बात ये कि शिक्षा प्राप्ति का अधिकार तो क्या सोचने तक का भी हक नहीं था अर्थात एक तरह से घोर निराशा, अचेतना में डूबा हुआ स्त्री दृष्टि से पूर्णतया सोया हुआ समाज। ऐसे ही पितृ सत्तात्मक, पुरुष प्रधान, स्त्री विरोधी, पाखंड पूर्ण और पुरुष अहम वादी समाज में कृष्णा सोबती का 18 फरवरी 1925 को जन्म हुआ। उनका लालन-पालन एक ऐसे परिवार में हुआ जो अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित होते हुए भी पूर्णतया भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के रंग में रंगा हुआ एक अनुशासित-धार्मिक परिवार था। कहने का मतलब यह कि उन्होनें अपना बचपन अपने भाई बहनों के साथ खेलते-कूदते, पढते अपनी नानी-दादी की धार्मिक छत्र-छाया और पिता के गर्वित, अनुशासित, प्रभावपूर्ण अंग्रेजी वातावरण में कहानियां सुनते किताबें पढ़ने परवान चढ़ा। यही कारण है कि इन दोनों युगल परिस्थितियों का प्रभाव उन पर तमाम उम्र पर दिखाई पड़ता है क्योंकि देखने में आया है कि एक तक कृष्णा सोबती अपने अधि कारों, विचारों, कार्यो के प्रति एक सषत्तफ शिक्षित महिला तो दूसरी तरफ हर समय सिर पल्लू से ढके एक सजग संयमित, मर्यादित भारतीय नारी की जीवंत तस्वीर भी। उनकी जीवन सरिता पर अगर हम दृष्टिपात करे तो हमें स्पष्ट दिखाई जान पड़ता है कि वे अपने युग से बहुत बहुत आगे थी। उन्होने जिन परिस्थितियों में जन्म लिया और उसके बाद भी जिस तरह उन्होने अपना जीवन जीया जो आज की सभी सदी की स्त्रियों के लिए एक मिसाल और प्रेरणा दायक पहलू है। जिस समाज में महिलाओं के लिए शिक्षा मन्दिर के पट बन्द थे। उस वत्तफ में वे न सिर्फ पढ़ी बल्कि अपनी उच्च शिक्षा उन्होने विभिन्न शहरों में पूर्ण की। दिल्ली जैसी स्थान पर छात्रावास में रहकर अध्ययन किया। पुस्तकों का सम्पादन किया अर्थात एक सशक्त महिला के गुण उनमें अपने शिक्षा काल में ही पल्लवित पुष्पित हो गए थे जो कि सम्पूर्ण जीवन महकते दहकते है और उनके जीवन को प्रकाशित करते रहे।

जीवन जीने का उनका तरीका हो लेखन या प्रकाशन का मसला हो या अपने लेखन के हटकर अमर पात्र होए लिखने की शैली हो, लीक से हटकर भाषा प्रयोग या लेखन के विषय वो हर लिहाज से से अपने जिगरा के जोर से जीती, आगे बढ़ती, महिला सशक्तीकरण की एक सशक्त महिला की ऐसी जीती जागती श्वास लेती प्रत्यक्ष मूर्ति दिखाई पड़ती है जो अपनी मिसाल आप थी। जन्होंने 1980 से स्वतंत्रा लेखक प्रारम्भ किया। अपनी पहली ही पुस्तक 'चन्ना' जिसको उन्होने प्रकाशक के पास छापने के लिए भेजा था सिर्फ यह देख वापस लिया कि प्रकाशक कुछ पंजाबी शब्दों का हिन्दीकरण कर दिया। कृष्णा सोबती जी ने स्वयं जाकर प्रकाशक को उसका मेहनताना दिया और पुस्तक वापस ले ली। लेखक के क्षेत्रा में प्रयासरत एक नवोदित लेखक के लिए इस तरह का, इतना बड़ा कदम उठाना उस समय में बहुत हिम्मत और दिलेरी भरा काम था। एक लेखक के अपने लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा की दृष्टि से उठाया गया ये एक ऐसा कदम था जिसका संदेश दूर-दूर तक गया। दूसरा वाक्य जिंदगीनामा उपन्यास के शीर्षक से जुड़ा है जो उन्होनें अपनी समकालीन लेऽक अमृता प्रीतम के साथ रहा। उन्होनें वर्षों कोर्ट में इस बात को लेकर मुकदमा लड़ा कि कोई और लेखक उनकी किताब के शीर्षक की कॉपी नहीं कर सकता। हालांकि इसके पीछे उन्हें बहुत से आर्थिक, शारीरिक नुकसान हुआ। अपने घर तक बेचने पड़े। उनका लेखन व जीवन भी प्रभावित हुआ लेकिन निर्णय होने तक उन्होनें कदम नहीं रोके। ये घटना प्रमाणित करती है कि उनको अधिकारों का हनन कतई मंजूर नहीं था। यही कारण है कि अपनी किताबों के कवर पेज का सवाल हो या कोई और मामला उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। चाहे उनको कितना ही आर्थिक नुकसान क्यों न उठाना पड़ा हो! ये उदाहरण उनकी जीवटता का, दृढ़ता का और एक लेखक के अधिकारों के प्रति सजगता का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जाति जिंदगी के बारे में बात करें तो वे ताउम्र अकेली रही, अविवाहीत रही। उनका ये निर्णय बिना किसी दबाब के व्यक्तिगत निर्णय था। जिसका मलाल उन्हें मरते दम तक भी कभी नहीं हुआ। 'ऐ लड़की कहानी में जब लड़की की मां लड़की से पूछती है कि सोच कर बताओ कि जिंदगी में जरूरत पड़ी तो आवाज किसे दोगी तो लड़की जवाब देती है कि- "मैं किसी को नहीं पुकारती जो मुझे आवाज देगा मैं उसे जबाब दूंगी।" यह स्वीकारोक्ति हमें उनके डोगरी लेखक और उनके 75 वर्ष की उम्र में विवाह में तो दिखाई देती ही है साथ ही उनके अपने जीवन निर्णय के प्रति मजबूती का अडिगता का भी उदाहरण पेश करती है। जीवन के 75 बसंत देखने के बाद बिना किसी लोक लाज के नि:संकोच भाव से अपने साथी लेखक के साथ दो व्यक्तियों की उपस्थिति में कोर्ट मैरिज कर लेना भी विशिष्ट महत्व तो रहता ही समाज को एक संदेश भी देता है क्योंकि यहां भी उन्होनें पारम्परिक विधि् विध ान को अपनाने के स्थान पर कोर्ट मैरिज जैसी एक नई राह चुनी और कहा कि विवाह सिर्फ दो शरीरों का नहीं दो विचारों का भी मेल होता है। अपना जीवन उन्होनें उसी तरह जिया जैसे उन्होनें चाहा। अपने व्यत्तिफगत जीवन में कभी किसी की दखल अंदाजी का अवसर नहीं दिया। उनके दोस्त बहुत कम संख्या में थे। जो थे उनको भी व्यक्तिगत मसलों में झांकने की इजाजत नहीं थी। अपने परिचितों, दोस्तों से वह निश्चित सीमा रेखा लक्ष्मण रेखा का पालन करना पसंद करती थी और अतिक्रमण करने वाले को वह बाहर का रास्ता दिखाना भी बखूबी जानती थी। उन्होनें हॉकी खेली। कनॉट प्लेस जैसे रेस्तरां में घूमी फीरी। खाया-पिया। विभिन्न शहरों की अकेले यात्रा की लोगों से, दोस्तों से मिली जुली, जिंदगी का बाहें फैलाकर आनन्द लिया लेकिन एक मजबूत स्त्राी की छवि हमेशा बरकरार रखी। 'डार से बिछुड़ी' की नानी के द्वारा कहलवाए गण शब्दों का जैसे उन्होनें स्वयं भी पूरी तरह से पालन किया. "संभल री! एक बार थिरका पांव जिंदगानी धूल में मिला देगा।[2] उन्होनें आजादी के पूर्व में भी और बाद में भी हमेशा गरारा पहना। हालांकि लोगों ने उनकी पोशाक पर मुस्लमानी ड्रेस होने का आरोप भी लगाया लेकिन उन्होनें कभी इस बात की परवाह नहीं की, कि कोई क्या कहता है क्या सोचता है उनका कहना था कि इंसान को वहीं पहनना चाहिए जिस में वह कम्फर्ट महसूस करें। उनके शब्दों में अगर कहे तो वे अपने जिगरा के जोर से जिंदा रही और जियी। अपनी 'फ्री स्टाइल लाइफ' के बाद भी उन्होनें अपना जीवन गरिमापूर्ण तरीके से जिया। उनके व्यक्तिगत जीवन के साथ ही अगर हम उनके साहित्यिक रचना संसार पर दृष्टि पात करे तो हम पाते है कि उनकी साहित्यिक कृतियों की महिला पात्र भी सशक्त और दबंग दिखाई देती है जो अकेले होते हुए भी परिस्थितियों से डरकर रोती नहीं बल्कि हर स्थिति का डटकर मुकाबला करती है। 'मित्रो मरजानी' 'डार से बिछडी, लड़की तीन पहाड़ जिन्दगी नामा, समय सरगम हो या यारों के यार। सभी कृतियां इस बात की बारम्बार गवाही देती नजर आती हैं। मित्रो मरजानी की मित्रो जैसे बीसवीं शताब्दी में स्त्री की देहिक स्वतंत्रता का जय घोष कर देती है। वह अपनी दैहिक जरूरत पूरा करने और कहने

में कोई झिझक नहीं है। मित्रो जैसे पात्र की उन्होंने उस समय कल्पना की जब स्त्री होना ही बेमानी होता था। "सच तो ये यूं है जेठ जी की दीन दुनिया बिसरा मैं मनुख की जात से हंस-खेल लेती हूं। झूठ यूं कि खसम का दिया राजपाट छोड़ मैं कोठे पर तो नहीं जा बैठी इसी तरह वो सच को स्वीकार करने या बोलने में भी डरती घबराती नहीं है-निशंक हो नजर फैकी और गला ऊंचा कर कहा-"जिसे जो पूछना हो बेधड़क पूछे। सो गुनाह मित्रो के पर झूठ की उसे सौंह।" यहां तक कि गलत का विरोध् करने और अपने हक की रक्षा करने में वह अपनी मां का भी लिहाज नहीं करती।" "सिद्धि भैरव की चेली" अब अपनी खाली कड़ाही में, मेरी और मेरे खसम की मछली तलेगी सो ना होगा, बिबो! कह देती हूं।"[5] श्डार से बिछुडी की पाशो के माध्यम से जैसे वे 'लिव इन रिलेशनशिप' जैसे रिश्ते की उस समय पैरवी करती नजर आती है जब विकसित देशों तक में इसकी कोई धमक नहीं थी। पाशो न सिर्फ बिना विवाह दीवान के साथ रहती है बल्कि उसके बच्चे की मां तक भी बनती है हालांकि परिस्थितियां उसे विभिन्न पुरूषों के साथ रहने को विवश करती है लेकिन फिर भी वह मन से हमेशा दीवान की ही रहती है। उसके जीवन में अनेक तरह के उतार चढ़ाव आते हैं लेकिन वो हर मुश्किल का सामना करती हुई आखिर में फिर से अपनी डार से जा मिलती है उसका सम्पूर्ण जीवन जीवटता का उत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। समय सरगम की 'आरण्या' भी विषम परिस्थितियों में ईशान के साथ उसके फ्लैट में रहती है फिर उसी के साथ सेट हो जाती है। वह अपना जीवन अपने तरीके से जीती है। वक्त पड़े दूसरों की भी मदद करती है। इसी प्रकार तीन पहाड़ की जया हालांकि देऽने में नाजुक, चुपचाप रहने वाली कोमलांगी लड़की है लेकिन अपना या अपनों का अपमान बर्दाश्त नहीं करती। श्री जब किसी और लड़की से विवाह कर लेते हैं तो वह उनका घर छोड़ देती है और श्री से स्पष्ट कह देती है ष्श्री दा! मां को लिऽ दे मेरा लौटना नहीं होगा। यही नहीं जब श्री दा उनके पुरूष मित्रा को अपमान की नजर से देखते हैं तो वह पूरी मजबूती के साथ, दृढ़ता के साथ बोल देती है. 'नहीं श्री दा, नहीं.... "जो आज दुर्दिन में मेरे अपने है अनादर करेंगे, श्री दा।" "नहीं श्री दा, कुछ भी सनूंगी नहीं, मन में आ जाने में जिस-तिस का अपमान पते पलंग यह अधिकार आपको किसने दिया, श्री दा उन्होनें अपने उपन्यास जिंदगीनामा में जहां विभाजन के दर्दीले दर्द को संजीदगी के साथ उकेरा है वहीं 'दिलों दानिश' उपन्यास में नैतिकता के आवरण में ढके मध्यम वर्गीय समाज की सामाजिकता के अंतरंग रिश्तों के कच्चे चिठे जैसे उघाड़ असलियत का आइना दिखा दिया है। "यारों के यार" में समकालीन समाज और व्यवस्था के सामाजिक राजनैतिक ढांचे में व्याप्त झूठ-बेईमानी और भ्रष्टाचार की जैसे पोल ही खोल कर रख दी है। एक और बड़ा साहस का उदाहरण है- अपने लेखन में गालियों का खुला प्रयोग। दफ्तरी वर्णन करते समय में उसी भाषा में लिखती है जैसे अममन दफ्तरों में पुरूष गालियों का प्रयोग करते हुए भाषा का प्रयोग करते हैं। कृष्णा जी इसके लिए बहुत कुछ विरोध् का सामना भी करना पड़ा लेकिन उनका कहना था कि समाज की सच्चाई और जो जैसा है वैसा समाज के सामने लाने के लिए ऐसा करना ही पड़ेगा वरन वह सिर्फ आध सच ही होगा।

आज आजादी के 70 वर्ष बाद जब हम जेंडर समानता की बात करते हैं, स्त्री पुरूष बराबरी का अभियान चलाते हैं लेकिन कृष्णा जी ने यह आवाज आज के 50 साल पहले ही उठा दी थी यही कारण है कि पहली महिला लेखिका होने और महिलाओं के अधि कारों और समस्याओं के प्रति सचेत होने पर भी उनके जब महिला लेखिका या 'फेमिनिस्ट' कहा जाता तो उसका विरोध् करती और कहती कि लेखक कभी 'ही- और शी' नहीं होता वह सिर्फ 'लेखक' ही होता है। इसके साथ ही इस मायने में खास रही कि उन्होनें अपनी जिंदगी में एक दूसरे नाम से लिखा भी और छपवाया भी। लिखा भी ऐसा किसी कि बिना किसी लाग लपेट के कच्चा चिठा खेल दिया। अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा। अच्छा बुरा जो जैसा था वैसा ही लिखा। एक रचनाकार के लिए अपने समकालीन रचनाओं के लिए इतनी शिद्त से, निष्पक्षता से इतने खुले मन से और पूरी निडरता से इतना सब लिख देना बहुत बड़ी बात है। उनकी पूरी जिंदगी सशक्तता की जिवंत तस्वीर पेश करती है। वे अंत समय तक सक्रीय रही, लिखती रही, और अपने सामाजिक सरोकारों को निभाती रही। जिस मुस्तैदी से उन्होंने जिंदगी जी उसी साहस के साथ पल-पल निकट आती मत्य का भी उन्होंने पूरे हौसले के साथ इंतजार किया और बचे हुए समय में वे मृत्यु के छः दिन पूर्व तक भी लिखती रही और अपनी लेखन पूंजी को व्यवस्थित करती रही। मरते-मरते भी उन्होंने अपने द्वारा अर्जित सम्पूर्ण आर्थिक बचत को भावी लेखकों के लिए भवन बनाने के लिए दान कर एक मिसाल पेश की जैसी आज तक कोई नहीं कर सका।

सन्दर्भ

1. लड़की राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृण्संण् 49
2. डार से बिछुडी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 91
3. मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 36
4. मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पृ036
5. मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 36
6. मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 98
7. तीन पहाड़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ78
8. तीन पहाड़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ78
9. कृष्णा सोबती, दूसरा जीवन-गिरधर राठी
10. मेरी कथा यात्रा.कृष्णा सोबती

समाज बदलाव के संदर्भ में राहुल का वैचारिक योगदान

संजय कुमार सिंह

शोधार्थी, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

''विशाल वृत्त की परिधि में केन्द्र बिन्दु की खोज करते हुए राहुल सम्पूर्ण विश्व में भारत, विश्व साहित्य में भारतीय वाड.मय, सम्पूर्ण धर्मो में बौद्ध धर्म एवं सम्पूर्ण राजनीति में साम्यवाद की महत्ता पर अधिक बल देते रहे।''[1] उपर्युक्त मात्र एक पंक्ति राहुल जी के सम्पूर्ण चिन्तन का एक ऐसा प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है, जिसमें उनकी मार्क्सवादी चिन्तन के प्रति प्रगाढ़ आस्था तथा भारतीय समाज के प्रति दृष्टिकोण का निरूपण भी है। एक विश्व-दर्शन के रूप में मार्क्सवाद जिस विश्व-दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है, वह अबतक के वर्तमान उन तमाम आध्यात्मिक अवधारणाओं पर, जो समस्त विश्व को एक दैवी शक्ति के इच्छानुसार उत्पन्न एवं संचालित होने का उपदेश देता है, अपनी टिप्पणी देते हुए उसे सिर के बल खड़ा रहने के वजाय पैर के बल खड़ा करता है। राहुल जी की मार्क्सवादी विचारधारा उनके उस चिन्तन का परिणाम है, जो शैव, वैष्णव, आर्य-समाजी और बौद्ध-दर्शन की उपत्यकाओं से विचरण करते हुए मार्क्सवाद की ठोस धरातल पर आकर जमी है।

इस कारण उसमें भारतीय चिन्तन परम्परा की विभिन्न विचारधाराओं में प्रदत्त साक्ष्यों के उत्तर वर्तमान हैं। उनके लेखन में मार्क्सवादी दर्शन के विविध खण्डों-ऐतिहासिक भौतिकवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा वैज्ञानिक समाजवाद-का परीक्षण भारतीय संदर्भ में जिन मुख्य कृतियों में आया है, उनमें **दर्शन-दिग्दर्शन, मानव समाज, बाईसवीं सदी,** भागों नहीं (दुनिया को) बदलो, साम्यवाद ही क्यों, वैज्ञानिक भौतिकवाद तथा राम राज्य और मार्क्सवाद प्रमुख हैं।[2]

राहुल जी की रचनाओं में मार्क्सवाद की स्थिति

मार्क्सवाद मानव समाज के विकासक्रम को अपनी प्रसिद्ध दार्शनिक मीमांसा ऐतिहासिक भौतिकवाद के द्वारा प्रस्तुत करता है, जो विकास के क्रम में श्रम की भूमिका को तो प्रतिपादित करता ही है, और यह भी मानता है कि एक समाज-व्यवस्था से दूसरी समाज-व्यवस्था में संक्रमण का कारण दो परस्पर-विरोधी शक्तियों के बीच संघर्ष के द्वारा ही होता रहा है। उत्पादन के साधनों में मानव-ज्ञान द्वारा प्राप्त वैज्ञानिकता के फलस्वरूप हुए परिष्क्रितिकरण के कारण ही वह स्थिति पैदा होती है, जब एक समाज-व्यवस्था संक्रमण कर दूसरी समाज-व्यवस्था में, जो अपने पूर्ववर्त्ती से ज्यादा विकसित होती है, पदार्पण कर जाती है। इस प्रकार यह अन्तर्विरोध जनित विकास का क्रम अबाध गति से लगातार चलता रहता है।[3]

अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या में राहुल जी मानव-समाज के विकास को मार्क्सवादी अवधारणा को फेडरिक एंगिल्स के बंटवारे-जंगली, बर्बर और सभ्य से ही शुरू करते हैं।

आदिम साम्यवाद

अपनी मार्क्सवादी अवधारणा के आधार पर राहुल जी स्थापित करते हैं कि भारतीय समाज भी अपने विकास के शुरूआती दौर में जिन सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों में जी रहा था, वह आदिम साम्यवाद का सम्बन्ध था, जिसमें व्यक्तिगत सम्पति ना के बराबर थी, हालाँकि सामूहिक स्वामित्व में थी। उत्पादन सामूहिक था, ऊंच-नीच, धनी- गरीब का विभाजन नहीं था और समाज का स्वरूप,

राहुल जी के शब्दों में, ''करतल भिक्षा, तरूतल वास:'' जैसा था। आदिम साम्यवादी समाज-व्यवस्था मातृ-सत्तात्मक थी, विवाह-प्रथा सामूहिक (यूथ विवाह) विवाह प्रथा थी यानी व्याह में व्यक्ति का नहीं यूथ की प्रधानता थी। मातृ-सत्ता के परिवार को नर-मादा दो अलग-अलग वर्गों में बांटते हुए गोया एक वर्ग-दूसरे वर्ग से पति-पत्नी का सम्बन्ध रखता था। इस घुमन्तू समाज में एक परिवार का वैवाहिक सम्बन्ध बाहर से किसी ग्रुप या परिवार से होना कठिन था। विवाह निकट सम्बन्धों में ही होता था। अपने तर्कों की पुष्टि में राहुल जी दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों का उदाहरण रखते हैं, जिनमें आज भी मामा की लड़की के साथ भांजे का ही नहीं, अपितु मामा के साथ भांजी की शादी आम बातें हैं। राहुल जी मिश्र और ईरान के फाऊन और शाहेशाहों, अमेरिका के 'इनूका' राजवंशों में भाई-बहन के बीच शादी का हवाला देते हैं तथा ईरान में प्रचलित एक समय के मातृ-विवाह का भी उल्लेख करते हुए स्थापित करते हैं कि प्राचीन भारत में भी भाई-बहन के बीच शादियों का प्रमाण है।[4] राहुल जी की यह स्थापना ऐतिहासिक भौतिकवाद की मार्क्सवादी अवधारणा पर की गयी समाज-विकास की व्याख्या है।

जन समाज

जंगली अवस्था के बाद भारतीय समाज अपने संक्रमण के जिस नये दौर में आया, उसे व्याख्यायित करते हुए राहुल जी जन-समाज कहते हैं। भारतीय समाज में जन का प्रयोग उस शास्त्रीय ढंग का नहीं था, जिसका वर्णन ऐंगिल्स ने किया है। वास्तव में हिन्दू-आर्य जिस वक्त अफगानिस्तान और सिन्धु तट पर पहुंचे, तो वह अलग-अलग जनों (कबीलों) में विभक्त थे और जिस प्रदेश में वह जाकर बस गये, वह उन्हीं जनों के नाम से प्रसिद्ध हो गया। शिवि जन (लौग) जहां जाकर बस गया, उसका नाम शिवि-जनपद (देश) पड़ गया, पवथ जहां बसा, उसका नाम पवथ (पठान) जनपद हुआ, मद्रों का वास मद्र-जनपद, मल्लों का मत्स-जनपद। यह सिलसिला पंजाब ही तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि में भी जनों के नाम पर जनपदों का नामाकरण हुआ। संस्कृत में जनपद और जन दोनों का प्रयोग अभिन्नता के साथ होता था। बहुसंख्यक व्यक्तियों के होने से जन के लिये शब्द का प्रयोग बहुवचन में (भुद्रा:, भल्ला:) होता था, और वही बहुवचनान्त शब्द जनपद के लिये भी लिया गया था-भुद्रा: भद्र लोग, भद्र जनपाद। इस प्रकार भारतीय जन शब्द हिन्दी-यूरोपीय जन के नजदीक जरूर है, किन्तु समाज के विकास में वैज्ञानिक उस अवस्था को जन कहते हैं, जबकि समाज में मातृसत्ता की प्रधानता है, वर्गभेद स्पष्ट नहीं हुआ है और आदिम कम्यून से समाज बहुत दूर नहीं हटा है। पंजाब या अफगानिस्तान में आने के समय हिन्दी-आर्यों के समाज में मातृसत्ता नहीं पितृसत्ता थी, आदिम कम्यून नहीं वैयक्तिक सम्पत्ति थी, यद्यपि जहां तक आर्यों का अपने भीतर का सम्बन्ध था, सप्त-सिन्धु (पंजाब) के निवास के वक्त उनमें उतनी विषमता न थी, जितनी कि गंगा की उपत्यका में। कुरू-पंचाल में बसने के साथ ही उनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के रूप में आर्थिक और जातीय वर्गभेद-वर्णभेद-आदि उपस्थित हुआ।

जन-अवस्था के भारतीय समाज तथा यूरोपीय समाज में फर्क है, क्योंकि जन-अवस्था में जहां यूरोपीय समाज पशुपालन आरम्भ करता है, भारतीय समाज में यह गोपालन की समृद्धि का समय था यानि पितृसत्ता का जमाना। वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज आदि जितने गोत्र प्रसिद्ध हैं, वह वस्तुत: गोत्र-काल और पितृसत्ता-काल के भी नहीं हैं। ये सारे गोत्र का ऋषि गंगा के आस-पास वाले प्रदेश में 1500 ई0 पू0 के आसपास दासता और सामन्तवादी युग में हुए थे। संभव है, कुमा (काबुल) और सुवास्तु (स्वात) की उपत्यका में रहते वक्त अभी गोत्रसत्ता उनमें मौजूद रही हो और जनसत्ता पितृसत्ता की मध्यवर्ती अवस्था को जतलाती हो।

इस भारतीय समाज के विकास के लिए जिम्मेवार अन्तर्विरोध का वर्णन करते हुए राहुल जी कहते हैं कि जनसत्ता का आरम्भ बर्बर युग के आरम्भ के साथ हुआ। अंत में जब वह समृद्धि के शिखर पर पहुंची, तो साथ ही पितृसत्ता के रूप में बदलकर अपने गर्भ से उसने अपने बैरी पितृसत्ता को पैदाकर नाश की और कदम बढ़ाया।

जनसत्ता काल में भारतीय समाज का जो स्वरूप था, उसमें उसके अधिक भाग में माता का ही राज था। हालांकि सम्पत्ति सांधीक होती थी, परन्तु जो थोड़ी पारिवारिक सम्पत्ति रहतीं, उसका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं, पुत्रियां होती थीं। अभी हाल के वर्षों तक कौल के नायरों में पारिवारिक सम्पत्ति पर पुत्रों नहीं, बल्कि पुत्रियों का ही अधिकार होता था।[5]

अन्य कई देशों की भांति भारतीय समाज में एक संक्रान्ति काल का आगमन हुआ और उसमें जन-समाज की स्थिति क्या रही, उस पर ऐंगिल्स ने जो अपना मंतव्य दिया है, उससे राहुल जी को भारतीय सामाजिक क्रान्ति की अवधारणा की पुष्टि हो जाती है। ऐंगिल्स लिखते हैं, जिस नये समाज ने उनका स्थान ग्रहण किया, वह उसकी बिना सहायता के भी मौजूद हुआ था और उस पर

जनसंख्या का बस न था। उसके लिए जरूरी था कि वह एक या अनेक जनों से कबीला बना हो और बिना दूसरे के दखल के एक ही प्रदेश में रहे तथा उस पर एकाधिपत्य रखे, लेकिन समय बीतने पर यह असंभव हो गया। सभी जगह उनकी भूमि के भीतर दूसरे जनों, कबीलों के लोग आकर मिलने लगे। अब तक युद्ध होने पर एक जन दूसरे जन को बिल्कुल नाश भले ही कर दे और नर-भक्षक होने पर मनुष्यों को चाहे खा भी जाये, किन्तु परतंत्र करना, बंदी बनाना जन-समाज का काम न था। आगे दासता-युग में दासता का सूत्रपात पितृसत्ताक समाज में हो गया था, जबकि मारने की अपेक्षा शत्रु को दास बनाकर काम लेने में ज्यादा लाभ समझा गया। लेकिन इससे जन की एक वंशिक्ता नष्ट होने लगी।

विकास-क्रम में उत्पादन के औजारों के और ज्यादा परिष्कृत हो जाने के बाद, स्वभावत: उत्पादन प्रक्रिया की जटिलता भी बढ़ गयी। अब उत्पादन में चूंकि पुरूष की प्रधानता क्रमश: स्थापित हो गयी, इस कारण परिवार में पुरूष की प्रधानता के मार्ग की सारी रूकावटें समाप्त हो गयीं। राहुल जी लिखते हैं, स्त्री की प्रधानता-मातृसत्ता-समाप्त हुई और पुरूष की प्रधानता-पितृसत्ता-का निष्कंटक राज्य कायम हुआ। जिस पशुधन ने उसके उत्पादक पुरूष को समाज का प्रधान बनाया, उसी ने समाज पर व्यक्ति के प्रभुत्व को बहुत बढ़ा दिया और साथ ही वैयक्तिक सम्पत्ति का रास्ता खोल दिया। इस प्रकार पितृसत्ता की स्थापना के साथ आदिम साम्यवाद का रहा-सहा प्रभाव भी जाता रहा।[6]

भारतीय समाज के विकास का मार्क्सवसदी विश्लेषण इस तथ्य को स्थापित करता है कि वैदिक आर्य यद्यपि पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था से काफी आगे बढ़ चुके थे, फिर भी पितरों की स्मृतियां उनके दिलों में वर्तमान थी, जिसका प्रमाण वेदमंत्रो में मिलता है। मध्य एशिया में रहते वक्त आर्यों का समाज संभवत: पितृसत्तात्मक रहा होगा। पंजाब में पराजित आर्य विभिन्न जातियों के समाज में जा दासता के युग में प्रविष्ट हुए। उनकी अपनी भीतरी व्यवस्था परिवार पितृसत्तात्मक था और जनपद प्रजातांत्रिक। पंजाब में सिकन्दर के हमले तक, 322 ई0 पू0 तक राजतंत्र का कोई महत्व नहीं देखा जाता। आम्भी, पुरू आदि कुछ राजाओं का वर्णन आता है, किन्तु उन्हें पक्के तौर पर राजा नहीं कहा जा सकता। मदृय, दंडपाणि जैसे कुछ व्यक्तियों को शाक्यों का राजा कहा गया, मगर शाक्यों का गण प्रजातंत्र था। गंगा तथा सदानीरा (गंडक) की उपत्यकाओं मे भी वैशाली का गणतंत्र था तथा उसके शासन-संस्था के सदस्यों को राजा ही कहा जाता था।

पितृसत्तात्मक तथा गणसत्तात्मक दोनों ही समाज पूर्वजों के खून के जबर्दस्ती पक्षपाती थे, गणों में जनसत्ता जरूर थी, किन्तु वह सिर्फ सफेद आर्यों के लिए, उसके उसी जन के लिये जिसने उस जनपद को बसाया। वहां आर्य जनों का अनार्य जनों से द्वन्द्व था और दोनों को दबाने के लिये सिवाय शासक और शासित बनने के दूसरा रास्ता न था। इसके विरूद्ध राजतंत्र इस द्वन्द्व को हटाने के लिये दो प्रतिद्वन्द्वी वर्गों के ऊपर अपने को दोनों को एक दृष्टि से देखने वाला-घोषित करता था। अनार्य जनों को उतना अधिकार न मिला, किन्तु गणतंत्र की अपेक्षा राजतंत्र से वह इसलिये संतुष्ट थे कि जनसत्ता चाहे उन्हें नहीं मिली, किन्तु आर्यजन भी तो उससे वंचित किये गये।

जन-समाज में एक ढीला-सा मिथुन-विवाह, जिसमें पति-पत्नी का भाव होने के बाद भी बहुत सरल नियम स्त्री पर लागू नहीं था, वह दूसरे मर्दों के साथ जा सकती थी। परन्तु पितृसत्तात्मक परिवार हो जाने तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के उद्‌गम के साथ स्त्री पर कड़े नियम लागू हो गये, मगर मर्दों पर नहीं। भारत में इसका प्रमाण है कि एक पुरूष एक से ज्यादा शादियां कर सकता है, मगर स्त्री ऐसा नहीं कर सकती। पशुपालन ने पितृसत्ता को स्थापित किया और पुरूष की प्रधानता के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति का रास्ता खोल दिया। कृषि ने आदमी को घुमन्तू से स्थिर बनाया, यथपि भूमि को अब भी वैयक्तिक नहीं सांथिक सम्पत्ति माना जाता था, किन्तु उपयोग और उपज वैयक्तिक बन गये थे।

लेकिन उस युग में जब एक बार वैयक्तिक सम्पत्ति का दौर शुरू हो गया और लोगों में उसका लालच फैल गया, तो कितनी ही जातियों में भूमि का वैयक्तिक होना जरूरी हो गया। भूमि पर वैयक्तिक स्वत्व स्थापित होने पर उसका विनियम-रेहन या बेची के रूप में-भी होने लगा। इस प्रकार वैयक्तिक सम्पत्ति ने, किसी परिवार को अधिक पशु-खेत वाला, किसी को कम या पशु-खेत से वंचित बना समाज में विषमता स्थापित की। नई व्यवस्था, इसमें शक नहीं, किसी उच्च भावना या आदर्श से प्रेरित होकर अस्तित्व में नहीं आयी। इसकी जड़ में जुगुप्सित लोभ, निर्दय मनस्विता, नीच प्रतियोगिता और सार्वजनिक सम्पत्ति की स्वार्थपूर्ण लूट काम कर रही थी।

भारतीय समाज में वर्ग भेद का उदय

मानव समाज के विकास की कहानी में राहुल जी भारत में उस विकास की उत्पति की खोज करते हैं, जिसमें समाज वर्गों-धनी और गरीब-में विभाजित हो गया तथा एक असमानता पर आधारित समाज का निर्माण हो गया। आदिम कम्यून में व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहने से धनी-गरीब का भेद नहीं था, लेकिन जनसत्ता से पितर का नेतृत्व के साथ ही कितनी ही सम्पत्तियों पर व्यक्तिगत स्वामित्व का स्वीकार कर लिया गया। उत्पादन के औजारों में हुए विकास के कारण, मानव श्रम की बढ़ी उत्पादकता क्षमता के कारण एक व्यक्ति अब अपने जीवन-निर्वाह के लिए जरूरी पदार्थों की तुलना में काफी ज्यादा पैदा कर सकता था। विनियम की चीजों की मांग बढ़ने से चीजों के पैदा करने तथा उसके लिये श्रम की भी अधिक मांग थी, तो भी इन चाकरों के साथ उतनी समानता का बर्त्ताव नहीं हो सकता था। उस काल में नये खेत के बनाने के लिये जंगल पड़ा हुआ था, शिकार और जंगली कंद-मूल का रास्ता भी बंद न था, इसलिये चाकर मिलना आसान न था।

अब पराजितों को बंदी बना उत्पादन के कार्यों में लगा उनके द्वारा उत्पादित अतिरिक्त मूल्य के शोषण से अमीरों का एक वर्ग कायम हो गया, जो अपने आर्थिक प्रभाव के बल पर राजनीतिक शक्ति को खानदानी रूप देने के लिए प्रयत्नशील होने लगा। अब एक जन में एक गोत्र के होने से वह पुरानी समानता, वह पुराना बंधुत्व नहीं रह सकता था। अब साफ एक ओर अमीर शासक वर्ग और दूसरा निर्धन शासित वर्ग बनता जा रहा था।

उत्पादन की प्रक्रिया में आये बदलाव के कारण तथा वैयक्तिक सम्पत्ति के कारण उत्पादन का सम्बन्ध व्यक्तियों के साथ रह गया, सारे समाज में उससे कोई वास्ता न था। शासन-यंत्र का काम सिर्फ शासन करना था। पहले जहां जीविका-साधनों के सांस्थिक होने से उसकी सुरक्षा के लिये जन को अपने भीतर दंड और शिक्षा द्वारा, बाहर के शत्रु से युद्ध या संधि के द्वारा, अपना-अपना काम पूरा कराना पड़ता था, अब जीविका के साधन वैयक्तिक थे, इसलिये उसे इस रूप में सुरक्षित रखने के लिये शासन-तंत्र को भीतर और पड़ोसी के साथ व्यवहार करना पड़ता था। इस प्रकार जनता से अलग और उससे ऊपर शासन-तंत्र कायम हुआ।

पाद टिप्पणी

1. डा0 इन्दु सिन्हा, ''असीम के समीम हस्ताक्षर राहुल जी,'' हिन्दुस्तान, (पटना, 20 मार्च, 1993), पृ0 11.
2. राहुल जी की रचनाओं में अनुक्रमणिका में देखें।
3. राहुल सांकृत्यायन, मानव समाज, पृ0 15.
4. एंगिल्स ने इसे ग्रुप मैरेज कहा है।
5. कुछ वर्षों पूर्व डा0 टी0 एम0 नायर ने प्रयत्न कर इस कानून को बदलवा कर सम्पत्ति में पुत्रों के भी अधिकार का स्थापित किया।
6. राहुल सांकृत्यायन, मानव समाज, पृ0 29.

'श्रीमाल पुराण' एक संक्षिप्त अध्ययन

प्रा० ब्रिजेश एस. पुरोहित

पी. एच. डी. शोधार्थी इतिहास विभाग, हे. ऊ. गुज.यूनिवर्सिटी, पाटन, गुजरात

राजस्थान राज्य के जालोर जिल्ले में बसा हुआ भिन्नमाल प्राचीन समय में गुर्जर देश की राजधानी और बहुत वैभवशाली नगरी हुआ करती थी। श्रीमाली ब्राह्मण, श्रीमाली जैन और श्रीमाली सोनी जैसी जातियों का मूल स्थान भी भिन्नमाल ही है। उस समय में वह शिक्षा और अध्ययन का उत्कृष्ट केंद्र था। १४ और १५ सदी के बीच में लिखा हुआ श्रीमाल पुराण इस प्राचीन राजधानी की भव्यता और सांस्कृतिक सिद्धिओ के बारेमे बहुत कुछ बयां करता है। आज हम इसी श्रीमाल पुराण के बारेमे संक्षेप में चर्चा करेंगे।

श्रीमाल पुराण 'श्रीमाल महात्मय ' नाम से भी जाना जाता है। स्कन्दपुराण में ब्रह्म विभाग में तृतिय खंड की इक्यासी हजारमी संहितामें 'श्रीमाल महात्मय ' दिया गया है। श्रीमाल पुराण में प्राचीन श्रीमाल नगर और उसकी वैभवता के बारे में विस्तारसे वर्णन दीया गया है साथो साथ श्रीमाली जातियों और उसकी उत्पति और श्रीमाल नगरमे आये हुए सभी धर्मो के तीर्थस्थानों के बारे में विस्तारसे वर्णन बताया गया है। जिस तरह मोढ़ ब्राह्मणो के लिए 'धर्मारण्य', नागर ब्राह्मणो के लिए 'नागरखंड', और वायडा ब्राह्मणो के लिए 'वायु पुराण' जाती पुराण माने जाते है उसी तरह कुछ इतिहासकार 'श्रीमाल पुराण' को भी श्रीमाली ब्राह्मणो के जाती पुराण की ही संज्ञा देते है। डॉ. भोगीलाल सांडेसरा और डॉ. आर. एन. महेता ने अपने 'मल्लपुराण ' की प्रस्तावना में 'श्रीमाल पुराण ' को जाती पुराण बताया है, पर श्रीमाल पुराण में जाती की विगतो से ज्यादा उस समयकी आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थिति की सविस्तार चर्चा की गई है। इसी कारण श्रीमाल पुराण जाती पुराण मानना उचित नहीं है।

आज का भीनमाल पुरातन में श्रीमाल नाम से जाना जाता था। वैसे तो भीनमाल के बहुत से नाम हमें जानने को मिलते हैं जिनमें 'रत्न माल', 'पुष्प माल', 'आलमाल' जैसे नामों का समावेश होता है। श्रीमाल पुराण में उस प्राचीन श्रीमाल नगर के पौराणिक इतिहास के साथ उस नगर के तीर्थ स्थान, वहां पर बसने वालेजातियों और उसके रीति रिवाज के बारे में अधिक से अधिक जानकारी दी गई है। श्रीमाल पुराण में चौप्टर नंबर 1 से 9 में श्रीमाल नगर के प्राचीनतम इतिहास के बारे में ज्ञान दिया गया है।

चैप्टर नंबर 10 से 13 में श्रीमाली ब्राह्मण श्रीमाली वाणिया और श्रीमाली सोनी जैसी जातियों की उत्पत्ति और उनके पौराणिक इतिहास के बारे में जानकारी दी गई है। श्रीमाल नगर में बसे हुए विविध तीर्थ स्थानों और उनके महत्व, उत्पत्ति के बारे में चैप्टर नंबर 14 से 64 में माहिती दी गई है। चौप्टर नंबर 65 से 17 में उस समय के रीति रिवाज, धार्मिक व्रत और धार्मिक समारंभ कीजानकारी दी गई है। इसके साथ विविध जातियों के गोत्र आवंटन और उनकी कुलदेवी यों की विगत भी इसमें दी गई है। चौप्टर नंबर 71 से 74 में ब्राम्हण और जैन धर्म के बीच जो धार्मिक संघर्ष हुआ था उसके बारे में जानकारी दी गई है। और अंत मैं श्रीमाल नगर की पड़ती और भीनमाल नाम कैसे मिला इसके इतिहास के बारे में जानकारी दी गई है।

वर्तमान में श्रीमाल पुराण का जो संग्रहित भाग उपलब्ध है वह 75 अध्यायमें विभाजित है। पहले अध्याय में मंगलाचरण के साथ शुरुआत होते हुए भगवान श्री विष्णु की प्रार्थना दी गई है। महादेव के पुत्र एक ऐसे क्षेत्र की तलाश कर रहे हैं जिसमें गंगा जैसी पवित्र नदी बहती हो जिसमें ब्रह्मा जैसे भगवान का वास हो प्रभाष जैसा तीर्थ हो और वशिष्ठ रूसी जैसे महान ऋषि गण वहां पर अपने काम में व्यस्त रहते हो। रुचि यक्ष गंधर्व अप्सरा जहां पर बहुत आनंद के साथ झूमती हो। इस तरह के क्षेत्र के बारे में ऋषि वशिष्ठ ने राजा मांधाता को बताया था जब वे अपनी पत्नी अरुंधति के साथ अयोध्या से वापस लौट आए थे ।

पांच कोष विस्तार में फैला हुआ श्रीमाल क्षेत्र जहां पर गौतम ऋषि का आश्रम था। दूसरे अध्याय से वशिष्ठ ऋषि ने श्रीमाल नाम कैसे पड़ा उसके बारे में बताया है। ऋषियों में श्रेष्ठ गौतम ने सौगंधित पर्वत से उत्तर में और अर्बुद पर्वतसे वायव्य दिशा में

सर्व पापों को दूर करने वाला, सिद्ध गंधर्व से भरपूर, आत्मा भाव वाला और सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला त्र्यंबक सरोवर जहां पर स्थित है ऐसे श्रीमाल क्षेत्र में अपना आश्रम स्थापित किया।

अध्याय 4 में गौतम आश्रम का संपूर्ण वर्णन दीया गया है। गौतम आश्रम 10 कोस विस्तार में फैला हुआ था। अध्याय 6 में राजा मांधाता प्रश्न पूछते हैं कि गौतम आश्रम श्रीमाल क्षेत्र में कैसे परिवर्तित हो गया । वशिष्ट ऋषि जवाब देते हुए कहते हैं कि भृगु ऋषि के यहां लक्ष्मी जी स्वयं पुत्री के रूप में जन्म लेती है। लक्ष्मी जी अति स्वरूप वान होती है। भृगु ऋषि उसके विवाह के बारे में बहुत चिंतित होते है। उन्हें लगता है कि भगवान विष्णु ही उनकी पुत्री लक्ष्मी के साथ विवाह करने के लिए योग्य है। भी अपनी चिंता का कारण नारद जी को बताते हैं और नारद जी भगवान विष्णु के पास जाकर उन्हें लक्ष्मी जी से विवाह करने की बात करते हैं। भगवान विष्णु और लक्ष्मी जी का धाम धूम से विवाह होता है।

श्रीमाल पुराण स्कंद पुराण के ब्रह्म विभाग के तृतीय परिच्छेद में है। स्कंद पुराण में श्रीमाल नगर का उल्लेख ब्राह्मणों के निवास स्थान बताया गया है। श्रीमाल पुराण में दर्शाए गए पात्र जैसे के मांधाता, ऋषि वशिष्ठ, गौतम ऋषि, कश्यप ऋषि जैसे सभी पात्रों को श्रीमाल में बसे हुए तीर्थ और श्रीमाल क्षेत्र के साथ उनके संबंध को जोड़ा गया है। एक उल्लेख में ऋषि वशिष्ठ के स्थान को श्रीमाल नगर के आसपास दर्शाया गया है, जो हमें अर्बुदाचल यानी आबू प्रदेश के साथ सीधे संबंध से जोड़ा जाता है, और हम सब जानते हैं कि वहां पर वशिष्ठ ऋषि का स्थान था। भारतीय इतिहास के दो बड़े महाकाव्य रामायण और महाभारत का अनुबंध भी श्रीमाल पुराण के साथ जोड़ा जाता है। इसके साथ हमारे प्राचीनतम पुराण भी श्रीमाल पुराण के साथ अनुबंधित है जिसमें विष्णु पुराण, भागवत पुराण, वायु पुराण, मत्स्य पुराण, देवी भागवत का समावेश होता है।

स्थान :-

श्रीमाल पुराण की मेनू स्क्रिप्ट राजस्थान ओरिएंटल इंस्टीट्यूट जोधपुर में संग्रहित है। उसकी भाषा संस्कृत और लिपि देवनागरी है उसका गुजराती भाषा में रूपांतर श्री जटाशंकर लीलाधर और केशव जी विश्वनाथ द्वारा किया गया है।

समयांकनः-

श्रीमाल पुराण में दिए गए अमुक परीक्षणों के आधार पर इस कृति का वस्तुतः चौकस समय जान सकते हैं। 1806 में लिखा हुआ गैजेटियर ऑफ मुंबई प्रेसीडेंसी में उस ेक400 वर्ष पूर्व लिखा लिखी हुई कृति दर्शाई गई है इसके आधार पर उसका समय 14 वीं सदी के आसपास का हम मान सकते हैं। श्रीमाल पुराण के लेखक को उस समय की राजकीय स्थिति के बारे में अच्छी खासी जानकारी थी इसीलिए उन्होंने चौप्टर नंबर 75 में दर्शाया है कि 'श्रीमाल की लक्ष्मी पाटन चली गई' यह दर्शाता है कि श्रीमाल पुराण का जो लेखन कार्य है वह 12 वीं सदी बाद ही हुआ है।राजस्थान ओरिएंटल इंस्टीट्यूट जोधपुर में श्रीमालपुराण की प्राचीन मनुस्क्रिप्ट संग्रहित है।

उसके बाह्य निदर्शनके आधार परउसका लेखन कार्य 16 वीं सदी के पहले का मालूम पड़ता है। श्रीमाल पुराण के चप्टर नंबर 69 और 70 में गोत्र और आवंटको का उल्लेख मिलता है। उसमें गुजराती और मारवाड़ी शब्दों का साथ में प्रयोग किया गया है। इस तरह की लेखन कार्य वाली पद्धति हमें जैन ग्रंथों में 15 वी शताब्दी के शुरुआत के समय में जानने को मिलती है। इसके आधार पर हम मान सकते हैं कि श्रीमाल पुराण भी 15 वीं सदी की शुरुआत के समय में रचा गया होगा। भीनमाल नगर में ही अति प्राचीन चंडीनाथ महादेव का मंदिर स्थापित है। इस मंदिर में एक अभिलेख हमको मिलता है जिसमें समयांकन 17 मी सदी का दिया गया है।श्रीमाल पुराण में चंडीनाथ महादेव के मंदिर और उनकी कोट का कोई उल्लेख मिलता नहीं है। इससे हम यह कह सकते हैं कि श्रीमाल पुराण 17 वी सदी के पहले रचा हुआ होना चाहिए। इस तरह श्रीमाल पुराण में दिए गए उल्लेख और उसके बाह्य निदर्शनके आधार पर हम निश्चित कह सकते हैं कि यह ग्रंथ 12 वीं सदी के बाद और 16 वीं सदी के पहले लिखा हुआ होगा।

श्रीमाल पुराण की संदर्भ वस्तुएं :-

श्रीमाल पुराण के लेखक द्वारा श्रीमाल पुराण में श्रीमाल नगर के पौराणिक इतिहास को उल्लेखित किया गया है साथ ही साथ वहां पर बसने वाली जातियों के बारे में भी विस्तार से माहिती दी गई। इसी कारण श्रीमान पुराण दो भागों में लिखा गया है पहले

में श्रीमान नगर के पौराणिक इतिहास के साथ उस में बसे हुए तीर्थ स्थानों के बारे में बताया गया है। दूसरे भाग में नगर में बसने वाली जातियों उनकी उत्पत्ति रीति रिवाज और उनकी सामाजिक व्यवस्था के बारे में विस्तार से माहिती दी गई है।

चैप्टर नंबर 1 से 9 में श्रीमाल नगर की उत्पत्ति से जुड़ी हुई बातें बताई गई है । चौप्टर नंबर 10 से 13 में श्रीमान नगर में बसी हुई श्रीमाली ब्राह्मण श्रीमाली सुनार और श्रीमाली बनिक जैसी जातियों की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है। चौप्टर नंबर 14 से चौप्टर नंबर 64 तक तीर्थ महात्मय दिया गया है। धार्मिक व्रत, उत्सव, जातियों के रीति रिवाज जैसी बाते चौप्टर नंबर 65 से 70 में दी गई है। अंत में गोत्र, आवंटक , कुलदेवी के बारे में चौप्टर नंबर 67 से 70 में माहिती दी गई है ।

स्कंद पुराण के भाग के रूप में श्रीमाल महात्मय :-

श्रीमाल महात्मय के लगभग सभी अध्याय का अंत श्लोक से होता है जो दिखाता है कि यह स्कंद पुराण के तृतीय भाग के ब्रह्म विभाग में से लिया गया है। श्रीमाल नगर को ब्राह्मणों के मुख्य निवास स्थान के रूप में बताया गया है। उसे कुमारीका खंड के भाग के रूप में दर्शाया गया है। ऋषि वशिष्ठ के निवास स्थान अर्बुदांचल पर्वत का जो भौगोलिक स्थान श्रीमाल पुराण में बताया गया है वह एकदम सही है। ऋषि गौतम और ऋषि वशिष्ठ के बीच का संवाद बहुत सुंदर तरीके से दर्शाया गया है। राजा मांधाता, ऋषि कश्यप, ऋषि गौतम, ऋषि देवल यह सभी पात्र पौराणिक है जिसे श्रीमाल क्षेत्र और उनके तीर्थों के साथ बहुत ही सुंदर तरीके से जोड़ा गया है। मुख्य देवता बहुत कम है और उनके अपने नाम से पुराण है। जिसमें विष्णु, विनायक, सूर्य, और चामुंडा, क्षेमंकरी और लक्ष्मी जैसी देवियां है। यक्ष और नाग भी अपने तीर्थस्थलों के साथ वहां पर दिखाई देते हैं। शिव, विष्णु, लक्ष्मी , गौरी, सप्तमातृका, विनायक जैसे सभी देवताओं को अलग स्थानों पर अलग नाम से पुकारा जाता है जैसा हमारे पौराणिक पुराणों में दिखाई देता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1- Parmar B.N. , Cultural And Critical Study Of ShrimalPuran , 1969 , Vol-1 , M.S.U. Baroda
2- Sehgal K.K. , Rajasthan District Gazetteer Jalore , Jaipur
3- Jain K.C. , I.H.C. , Vol-24 , 1969
4- Jackson A.M.T. , Gazetteer Of Bombay Presidency , Vol – 1 , 1896
5. शर्मा गोपीनाथ , राजस्थान का इतिहास , शिवलाल अग्रवाल एन्ड कंपनी , १९७१ , आग्रा
6. शर्मा दशरथ , राजस्थान थ्रु ध एजिस , राजस्थान स्टेट आर्काइव , २०१४
7. राव गणपतसिंह चीतलवाना , भीनमाल का सांस्कृतिक वैभव , २०११ , कनकगढ़ प्रकाशन, चितलवाना

स्वामी विवेकानंद के राष्ट्रवाद एवं लोकतंत्र संबंधि विचारों की प्रासंगिकता

डॉ० अजित

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, गवर्नमेंट कमला मोदी गर्ल्स कॉलेज, नीमकथाना (सीकर), राजस्थान

सारांश

भारतीय चिन्तन-परम्परा के सुदीर्घ इतिहास में एक दूसरी दृष्टि से देखें तो 19 वीं शताब्दी अभूतपूर्व परिवर्तनों के दौर की साक्षी रही है। एक ओर औपनिवेशिक शासन का भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक स्तरों तक बढ़ता विस्तार था, जिसकी वैधता यूरोपीय पुनर्जागरण और प्रबोधन काल से निसरत विज्ञान, तर्क और अन्वेषणा की दृष्टि प्रदान कर रही थी वहीं तो दूसरी ओर इसके सापेक्ष भारतीय दर्शन के नाम पर कतिपय रूढ़ियों और परम्पराओं का पिष्टपेषण हो रहा था। यह भारतीय मनीषा के समक्ष उत्पन्न एक गम्भीर चुनौती थी। स्वामी विवेकानंद का जब जन्म हुआ था, तब देश में सर्वत्र अनेकता और अराजकता व्याप्त थी। जब भारत वर्ष में धर्मिक एवं सामाजिक स्थिति गर्त की दशा में थी, ऐसी ही स्थितियों में स्वामी विवेकानंद जैसे प्रेरणादायी महान युग पुरूष का इस धरा पर आविर्भाव होता है। स्वामी विवेकानन्द जी भारतीय सभ्यता के पुजारी होने के साथ ही भारतीय संस्कृति के प्रणेता बन गये। विवेकानंद स्वामी जी ऐसे शिक्षक थे जिन्होंने कतिपय आधारभूत सिद्धांत प्रस्तुत किये, जिससे व्यक्ति अपने जीवन के चरम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कर सके। आप मनुष्य की प्रवृत्तियों एवं जनसमूह की भावनाओं को अच्छी तरह समझते थे यही कारण था कि स्वामी विवेकानन्द अपने भाषणों से जन-समुदायों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। आपकी राष्ट्रवादी देशभक्त तथा विश्व बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत है।प्रस्तुत शोध पत्र में स्वामी विवेकानंद के राष्ट्रवाद एवं लोकतंत्र संबंधि विचारों की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य-शब्दः स्वामी विवेकानंद, राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, धर्म और संस्कृति।

प्रस्तावना

स्वामी विवेकानन्द का सम्पूर्ण जीवन अनेक समस्याओं, अनुभूतियों, परिस्थितियों तथा विपरीत अवस्थाओं के मार्ग से होता हुआ गुजरा था। इसलिए उनको समस्याओं, रीति-रिवाजों तथा परिस्थितियों का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त होता चला गया। स्वामी विवेकानंद एक महान स्वप्नदृष्टा थे। आपने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें जाति या धर्म के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद न रहे। इसके क्रियान्वयन हेतु आपने वेदान्त के सिद्धान्तों की व्याख्याकर इसे जन सामान्य की समझ लायक बनाया। यही नहीं अध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद के विवाद में पड़े बिना भी यह कहा जा सकता है कि समता के सिद्धान्त का जो आधार स्वामी विवेकानंद ने दिया उससे सबल भौतिक आधार शायद ही कहीं ढूंढा जा सके। एक बार स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि मैं उस व्यक्ति को ही महात्मा मानता हूँ जो निर्धनों के लिए रो देता है, नहीं तो वह दुरात्मा है। जब तक लाखों लोग भूख तथा अज्ञानता का जीवन व्यतीत करते हैं, मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूँ। जिसने विद्या तथा ज्ञान तो उनके व्यय पर प्राप्त किया है और अब उनकी रत्ती भर भी परवाह नहीं करता। आपके अनुसार ईश्वर की पूजा मानवता की सेवा द्वारा ही की जा सकती है। तत्कालीन समय में धर्म की ऐसी मानवतावादी व्याख्या इससे पूर्व देखने को नहीं मिलती है।

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार ज्ञान की प्राप्ति का केवल एक ही मार्ग है और वह है 'एकाग्रता'। मन की एकाग्रता द्वारा ही शिक्षण हो सकता है, किसी अन्य विधिद्वारा नहीं। रसायन शास्त्री अपनी प्रयोगशाला में मन की सारी शक्तियों को एकाग्र करके ही सफलता प्राप्त करता है। ज्योतिषी एकाग्रता द्वारा ही दूरदर्शी यन्त्र के माध्यम से तारागणों का निरीक्षण करता है। 'चाहे विद्वान अध्यापक हों, चाहे मेघावी छात्र हों, चाहे अन्य कोई भी हो, यदि वह किसी विषय को जानने की चेष्टा कर रहा है जो उसे उपयुक्त प्रथा से ही काम लेना पड़ेगा।' शैक्षिक उपलब्धियाँ एकाग्रता की मात्रा पर निर्भर करती हैं । एकाग्रता जितनी अधिक होगी-ज्ञान भी उतना ही अधिक प्राप्त होगा। धर्म मनुष्य में निहित देवत्व का विकास है। धर्म न तो ग्रंथों में है ना धार्मिक सिद्धांतों में पर वह व्यक्ति की केवल अनुभूति में निवास करता है। धर्म व्यक्ति की आत्मा का भोजन है। प्रत्येक मनुष्य अपने में ईश्वर कर अनुभव कर सकता है। विवेकानंद ने ईश्वर के साकार और निराकार दोनों स्वरूपों का प्रतिपादन किया। उन्होंने प्राचीन हिंदू धर्म ग्रंथों और शास्त्रों की पवित्रता व श्रेष्ठा को माना है तथा वेदांत के सिद्धांतों का प्रचार किया। उन्होंने रूढ़िवादिता और अंधविश्वासों का घोर विरोध किया। विभिन्न धर्मों की विभिन्नता और आवश्यकता मानते हुए स्वामी विवेकानंद ने उसमें निहितार्थ मौलिक एकता और सत्यता पर बल दिया। उन्होंने मानव की सेवा को वास्तविक ईश्वर उपासना माना जनकल्याण और दीन दुखियों की सेवा पर उन्होंने अधिक बल दिया। उनके अनुसार एक सन्यासी को अपने आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ सेवा कार्य भी करना चाहिए।

विवेकानंद ने जाति प्रथा की जटिलता और बंधनों का विरोध किया। उनके अनुसार भारत के पतन का कारण समाज के अधिकांश वर्गों का दमन है। वे दीन-दुखियों, निर्धनों और अछूतों को ध्यान की अवस्था से ऊंचा उठाना चाहते थे। स्वामी विवेकानंद ने भारतीय धर्म और संस्कृति की महानता पर बल देते हुए इस तथ्य को उजागर किया कि भारतीयों को प्रथकता की भावना त्यागना होगा। उनके अनुसार, हमको पश्चिम को देने के साथ-साथ उससे कुछ लेना भी चाहिए। हम पश्चिम को अपने अध्यात्म वाद और संस्कृति के अच्छे तत्व दे सकते हैं। हमें पश्चिम से तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान-विज्ञान के साथ साथ सामूहिक प्रयत्न सहकारिता और व्यवसाय में सच्चाई व ईमानदारी की भावना को ग्रहण करना चाहिए। वह चाहते थे कि पश्चिमी देश भारत की आध्यात्मिकता को अपनाएं उनके अनुसार पाश्चात्य देशों में आध्यात्मिक और धार्मिक विचारों के अभाव में वैज्ञानिक अन्वेषण के कारण जो भौतिक प्रगति हो रही है, उन देशों के लिए अनिष्ट कारी है, इसलिए इन देशों ने भारत की धार्मिकता और आध्यात्मिकता को ग्रहण करना चाहिए। पर भारत की निर्धनता दरिद्रता और दास्तां के कारण ऐसा संभव नहीं है अतः भारत को स्वतंत्र और संपन्न होना चाहिए वह भारत की स्वाधीनता और भौतिक प्रगति को विश्व की उन्नति व विकास के लिए आवश्यक मानते थे।

स्वामी विवेकानंद और राष्ट्रवाद

स्वामी विवेकानन्द के राजनीतिक विचार उनके धार्मिक एवं सामाजिक विचारों के सहगामी है। वे राष्ट्रवाद का प्रध्यात्मीकरण करने के पक्षपाती ये हिन्दू धर्म की महत्ता ने उन्हें राष्ट्रवाद के समीप ला खड़ा किया। वे हिन्दू धर्म को सब धर्मों का प्रमुख स्रोत मानते थे। उनके अनुसार धर्म ही व्यक्ति और राष्ट्र को शक्ति प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में भारत की राजनीतिक दासता से मुक्ति प्राप्त करने का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा था, ''...आज हमारे देश को जिन चीजों की आवश्यकता है वे हैं लोहे की मांस पेशियाँ, इस्पात की तंत्रिकाएं, प्रखर संकल्प, जिसका कोई प्रतिरोध न कर सके, जो अपना काम हर प्रकार से पूरा कर सके, चाहे उसके लिये महासागर के तल में जाकर मृत्यु से साक्षात्कार ही क्यों न करना पड़े यह है जिसकी हमें प्रावश्यकता है और इसका हम तभी सर्जन कर सकते हैं तभी सामना कर सकते हैं भोर तभी शक्तिशाली बन सकते हैं जबकि हम अद्वैत के आदर्श का साक्षात्कार कर लें, सबकी एकता के आदर्श की अनुभूति कर लें अपने में विश्वास, विश्वास भोर विश्वास। यदि तुम्हें अपने तैतीस करोड़ पौराणिक देवताओं में तथा उन सब देवताओं में विश्वास हैं जिन्हें विदेशियों ने तुम्हारे बीच प्रतिष्ठित कर दिया है, किन्तु फिर अपने में विश्वास नहीं है, तो तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता, अपने में विश्वास रखो और उस विश्वास पर दृढ़तापूर्वक खड़े रहो। क्या कारण है कि हम तैतीस करोड़ लोगों पर पिछले एक हजार वर्ष से मुट्ठी भर विदेशी शासन करते आये हैं? क्योंकि उन्हें अपने में विश्वास था और हमें नहीं है।"

हेगेल की भांति विवेकानन्द का भी विश्वास था कि प्रत्येक राष्ट्र का जीवन किसी एक प्रमुख तत्व की अभिव्यक्ति है। उदाहरण के लिए धर्म भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण नियामक सिद्धान्त रहा है। विवेकानन्द लिखते हैं 'जिस प्रकार संगीत में एक प्रमुख स्वर होता है वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, अन्य सब तत्व उसी में केन्द्रित होते हैं। प्रत्येक राष्ट्र का अपना तत्व है, अन्य सब वस्तुएँ गौण होतो हैं। भारत का तत्व धर्म है। समाज सुधार तथा अन्य कुछ गौण हैं। इसलिए उन्होंने राष्ट्रवाद

के एक धार्मिक सिद्धान्त की नींव का निर्माण करने के लिए कार्य किया। आगे चलकर उसी सिद्धान्त का विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्द ने समर्थन और पक्षपोषण किया। विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद धार्मिक सिद्धान्त का प्रतिपादन इसलिए के को ही नींव किया कि वे समझते थे कि आगे चलकर धर्म ही भारत के राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड बनेगा। उनका कहना था कि 'राष्ट्र की भावी महानता का निर्माण उसके अतीत की महत्ता की नींव पर ही किया जा सकता है'। अतीत की उपेक्षा करना राष्ट्र के जीवन का ही निषेध करने के समान है। उसका अर्थ तो वास्तव में उसके अस्तित्व अस्वीकार करना है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का निर्माण अतीत की ऐतिहासिक बिरासत की सुदृढ ही करना होगा।

विवेकानन्द कहा करते थे कि अतीत में भारत की सृजनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति मुख्यत: धर्म के क्षेत्र से ही हुई थी। धर्म ने भारत में एकता तथा स्थिरता को बनाये रखने के लिए एक सृजनात्मक शक्ति का काम किया था, यहाँ तक कि जब कभी राजनीतिक सत्ता शिथिल और दुर्बल हो गया। तो धर्म ने उसकी भी पुन:स्थापना में योग दिया। इसलिए विवेकानन्द ने घोषणा की कि राष्ट्रीय जीवन का धार्मिक आदेशों के आधार पर संगठन किया जाना चाहिए। उनके विचार में आध्यात्मिकता अथवा धर्म का अर्थ शाश्वत तत्व का साक्षात्कार करना था सामाजिक मतवादों, धर्मसंघों द्वारा प्रतिपादित आचार संहिताओं और पुरानी रूढ़ियों को धर्म नहीं समझना चाहिए। वे कहा करते थे कि धर्म ही निरन्तर भारतीय जीवन का आधार रहा है, इसलिए सभी सुधार धर्म के माध्यम से ही किये जाने चाहिए। तभी देश की बहुसंख्यक जनता उन्हें अंगीकार कर सकेगी। अत: राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक अथवा धार्मिक सिद्धान्त राजनीतिक चिन्तन को विवेकानन्द की प्रथम महत्वपूर्ण देन माना जा सकता है। बंकिम की भाँति विवेकानन्द भी भारत को एक आराध्य देवी मानते थे, और उसकी देदीप्यमान प्रतिभा की कल्पना और स्मरण से उनकी आत्मा जगमगा उठतो रचनाओं तथा भाषणों में आधारभूत धारणा रही है।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के उपरान्त भारतीय राष्ट्रवाद के आधारभूत तत्वों के अध्ययन का महत्व बहुत बढ़ गया है। विवेकानन्द की रचनाओं तथा भाषणों ने बंगाल के राष्ट्रवाद की नैतिक नींव को सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों ही दृष्टि से सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण देश पर भी प्रभाव डाला है । जिस समय राष्ट्र उदासीनता, निष्क्रियता और निराशा में डूबा हुआ था, उस समय विवेकानन्द ने शक्ति तथा निर्भयता के सन्देश की गर्जना की। उन्होंने लोगों को शक्तिशाली बनने की प्रेरणा दी। शक्ति ही विवेकानन्द की भारतीय राष्ट्र को वसीयत है। जब भारत का बौद्धिक वर्ग पश्चिम का अनुकरण करने में व्यस्त था, उस समय उन्होंने निर्भीकतापूर्वक घोषणा की कि पश्चिम को भारत से बहुत कुछ सीखना है। विवेकानन्द की रचनाओं तथा उनके सन्देश को ध्यान में रखे बिना भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन के जन्म तथा विकास को और 1904 तथा 1907 के बीच राजनीतिक साहित्य के स्वर में जो परिवर्तन हुआ उसे समझना सम्भव नहीं है। विवेकानन्द का मत था कि भारत में दृढ़ और स्थायी राष्ट्रवाद का निर्माण धर्म के आधार पर ही किया जा सकता है। किन्तु उन पर पंथवादी संकीर्णता अथवा साम्प्रदायिकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। उनकी दृष्टि में नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति के शाश्वत नियम ही धर्म हैं। उन्होंने अपनी निर्भीक दृष्टि द्वारा पहले से ही देख लिया था कि लूट का बँटवारा करने में संलग्न यान्त्रिक राष्ट्रवाद स्थायी नहीं हो सकता। राष्ट्र के अवयवी विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में उदारता, ब्रह्मचर्य, प्रेम, त्याग तथा निग्रह के गुण विद्यमान हों।

स्वामी विवेकानंद और लोकतंत्र

स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि हमारा लोकतांत्रिक राज्य जो अपने नागरिकों की सामूहिक इच्छाओं के एक औजार या यंत्र के रूप में कार्य करता है और जिसमें प्रशासन राज्य के कार्यों का प्रमुख औजार या यंत्र है। इस औजार को कमजोर और कुन्द न होने दें। इसे हमेशा पैना और दुरुस्त रखना होगा। समस्त प्रशासनिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का यही प्रयोजन है, यही उनका मुख्य उद्देश्य और प्रयोजन होना ही चाहिए। एक लोकतन्त्रीय व्यवस्था में प्रशासनिक दक्षता चार तत्वों से उत्पन्न होती है-तकनीकी ज्ञान में पूर्ण निपुणता, राष्ट्रीय लालसाओं और आकांक्षाओं का गहरा ज्ञान तथा उनमें कल्पना प्रवण सहभागिता; एक तर्कसंगत समर्पण का भाव और समान भाव से कठिन परिश्रम करने की क्षमता उनका मानना था कि दक्षता प्रशासन को राष्ट्र के भौतिक संसाधनों का महज संचालन कर संतुष्ट हो जाने की अपेक्षा राष्ट्र के विशाल मानव संसाधनों को संघटित एवं गतिशील बनाने तथा सामान्य नागरिक को देश के विकासात्मक कार्यक्रमों में शामिल करने के योग्य बनाती है। भारत का मानव संसाधन जो केन्द्र और राज्यों में तथा गांव के निचले स्तर तक हमारे अव्यवस्थित प्रशासनिक तंत्र में फैला हुआ है, उसे देश के बाकी मानव संसाधन को क्रियाशील करने के लिए एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में विकसित करने की जरूरत है, ताकि राष्ट्र का सर्वांगीण विकास किया जा सके। यह

कार्य राष्ट्रीय समर्पण तथा सेवा भाव भरकर किया जा सकता है। जीवन निर्वाह और वेतन सुविधाओं और प्राधिकारों संक्षेप में, पैसा, प्रत्याशा और प्रोन्नति इन त्रिविध 'प' पर अनावश्यक रूप से जोर देने के कारण विभिन्न सेवाएं गतिहीन-स्थिर और निष्क्रिय हो जाती हैं तथा अपनी महान नियति की ओर कठिन अभियान में लगे हुए देश पर एक भारी बोझ बन जाती है। इन सेवाओं में मानव - आत्मा की शाश्वत और अनन्त महिमा अभिव्यक्त नहीं हो पाती है। किसी व्यक्ति द्वारा पाया जाने वाला वेतन तथा वह कुर्सी जिस पर वह बैठता और अधिकारों का प्रयोग करता है, वह वेतन और कुर्सी मनुष्य की वास्तविक महिमा को व्यक्त नहीं करते। ये सब परिवर्तनशील हैं। आते-जाते रहते हैं। परन्तु मनुष्य में एक पौरुष होता है, ओजस्विता तथा उदात्तता का एक गुण होता है, जो मनुष्य को स्वार्थ परायणता तथा धन-लोलुपता से ऊपर उठाता है तथा मनुष्य जो कार्य करता है एवं जो जीवन जीता है। उसे समृद्धि एवं गुणवत्ता प्रदान करता है। यही मनुष्य में उसके शरीर के द्वारा आत्मा की तथा नश्वरता के द्वारा अमरता की अभिव्यक्ति होती है।

स्वामी विवेकानन्द का मत था कि आज भारत में उसके प्रशासका, राजनीतिज्ञों बुद्धिजीवियों तथा नागरिकों में इस प्रकार के मानवीय विकास की आवश्यकता ह। हमारे देश में करोड़ों लोग दरिद्र तथा कंगाल हैं और उनमें से, उदाहरणार्थ, दक्षिण बिहार में करोड़ों लोग आज भी महुआ के फूल खाकर जीवनयापन करते हैं। हम लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन और कर्म को राष्ट्र की एक धराहर बनाना होगा ताकि ऐसी स्थिति शीघ्र समाप्त हो जाये। वे कहते हैं कि, 'मैं चाहता हूँ कि आज भारत में सभी लोग एक क्रांति की मांग तथा क्रांति के लिए कार्य करें.... निरन्तर विकास के द्वारा एक क्रांति का तरीका, यह सामाजिक शिक्षा तथा वैधानिक कार्य-क्रांति के लोकतान्त्रिक मार्ग द्वारा शान्तिपूर्वक क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन करने का तरीका है।'

1997 में मद्रास में दिये गये 'मेरी क्रांतिकारी योजना' विषयक अपने प्रसिद्ध व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द ने क्रांति के लिए लोगों का आहवान किया था ''मैं चाहता हूं आमूल सुधार ..... मैं सुधार में विश्वास नहीं करता..... इन अल्पसंख्यक व्यक्तियों के अत्याचार के समान दुनिया में और कोई अत्याचार नहीं। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कई बातें दोषपूर्ण हैं, राष्ट्र को गतिशील नहीं कर सकते। राष्ट्र में आज प्रगति क्यों नहीं है? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायी संस्थाएं बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जायेगा। जिस शक्ति के बल से, जिसके अनुमोदन से कानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। जिस नई शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नई व्यवस्था गठित होगी, वह लोकशक्ति कहाँ है? पहले उस लोकशक्ति को गठित करो। सुधार करने में हमें चीज के भीतर, उसकी जड़ तक पहुंचना होता है। इसी को मैं आमूल सुधार कहता हूं। आग जड़ में लगाओ और उसे क्रमश रू ऊपर उठने दो एवं एक अखण्ड भारतीय राष्ट्र संगठित करो। ''स्वामी जी मानते हैं कि यदि लोकतंत्र, अपने शांतिपूर्ण एवं व्यवस्थित परिवर्तन से, गत्यात्मकता (गतिपूण) लाने में विफल हो जाता है, तो क्रांतिकारी हिंसा इन सामाजिक-राजनैतिक लालसाओं को अपने नियंत्रण में ले लेगी। सभी हिंसक क्रांतियां सामाजिक निराशा की उपज है।"

निष्कर्ष

देश की राजनीतिक चेतना के साथ-साथ सांस्कृतिक तथा धार्मिक भावनाओं के विकास में अपना बलिष्ठ कन्धा लगाने वालों में महर्षि विवेकानन्द का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। महर्षि विवेकानन्द ने जनता को अनुद्योग, आलस्य, अकर्मण्यता के स्थान पर उद्योग परिश्रम और कर्मण्यता का पाठ पढाया। धार्मिक कृत्यों में प्राचीन विचारधारा के स्थान पर तथा आडम्बरपूर्ण अर्चना के स्थान पर नवीन, मानसिक पूजा को महत्त्व दिया। रूढिघ्वाद की पुरातन छिन-भिन्न श्रृंखलाओं को नष्ट करके जनता को धर्म के मूल तत्त्वों को समझाया। जाति वैषम्य, अस्पृश्यता और भेदभाव से दुःखी हिन्दू जनता धर्म का परिर्वतन करती जा रही थी। स्वामी विवेकानन्द ने जातिवाद और वैषम्यवाद की विचारधाराओं को समाज में से जड़ सहित उखाड़ फेंक देने का सबल प्रयत्न किया। सब बातों के अतिरिक्त देश की स्वतन्त्रता के महान् उद्घोषकों में भी विवेकानन्द का प्रमुख स्थान है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वामी विवेकानन्द ने आधुनिक आर्दश समाज के निर्माण में महान् भूमिका अदा की थी। स्वामी जी ने धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, जनता को ऊंचा उठाना और जन शक्ति, नारी-शक्ति, अस्पृश्यता-उन्मूलन, समाज-सेवा, हिन्दू-मुस्लिम एकता, विश्वव्यापी साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा-इन सब क्षेत्रों में व आधुनिक भारत के निर्माण में योगदान किया। स्वामी जी ने भारतवासियों के समक्ष आदर्श समाज की आध्यात्मिक रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें विभिन्न समस्याओं पर सभी का ध्यान आकर्षित किया और साथ-ही-साथ उनका समाधान भी बताया। विवेकानन्द का चिन्तन मूलतः धर्म और दर्शन से जुड़ा था। वे वास्तव में समाजशास्त्री नहीं थे लेकिन जैसा मैक्सवेबर ने "एसेज इन सोश्योलॉजी" में माना है कि उन्होंने भारतीय इतिहास व समाज की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का प्रयत्न किया तथा ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लम्बे समय तक चले संघर्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमिया पी सेन, (2003), स्वामी विवेकानंद, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
2. विवेकानंद साहित्य, (1989), खंड 5, आश्रम मायावती।
3. राजेंद्र प्रसाद गुप्त, (1997), स्वामी विवेकानंद व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. रोमॉ रोलॉ, (1965), दी लाइफ ऑफ रामकृष्ण, आदित्य आश्रम, कोलकाता।
5. शिकागो वक्तृत, (1975), स्वामी विवेकानंद, श्री राम कृष्ण आश्रम, नागपुर।
6. स्वामी विवेकानंद, (1966), मॉडर्न इंडिया, कंपलीट वर्क, भाग 4।
7. विश्व प्रकाश, (2005), मानवता के शिल्पी-गीता से गांधी तक, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
8. स्वामी विवेकानंद, संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, स्वामी अपूर्वानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
9. रामनाथ शर्मा, (1971), भारतीय शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
10. स्वामी विवेकानंद, (1993), मेरे भारत जागो, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूर मठ।
11. बी पी बर्मा, (1982), आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
12. विलियम रेडी, (1998), स्वामी विवेकानंद एंड मॉर्डनाइजेशन ऑफ हिंदी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

मिजोरम की प्रमुख जन-जातियाँः एक अवलोकन

कामना सिंह

कमरा नं0-266, गोदावरी हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

मिजोरम समाज विभिन्न जातियों, जन-जातियों का समुच्चय है, इसकी प्रमुख जनजातियाँ निम्न हैं -

लुसेई-सामान्यतः यह माना जाता है कि मिजौ जनजाति ही 'लुसेई' या 'लुसाई' जनजाति है, परन्तु यह एक कोरी अवधारणा प्रतीत होती है। हाँ, वर्तमान मिजोरम में जाति के आधार पर देखा जाये तो अन्य जनजातियों की अपेक्षा लुसेई जनजाति की संख्या अधिक पाई जाती है। यह जनजाति मिजौ कबीले की प्रमुख जनजातियों में से एक है। अंग्रेजों के सत्ता में आने के पूर्व इसी जनजाति की सत्ता यहाँ थी। काबों घाटी (Kabaw Vally) से चीन हिल्स तत्पश्चात मिजोरम पहुँचने तक लुसेई जाति के पीछे कई किन्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि काबों घाटी से यह जाति बर्मा (म्यांमार), रुन नदी की तराईयों (1250-1400ई.) तथा टियाऊ नदी के बीच की पहाड़ियों को पार करते हुई मिजोरम पहुँची। अन्य जनजातियों की तरह लुसेई जनजाति भी 'लल' (मुखियाश्राजा) के नेतृत्व में मिजोरम पहुंची थी। इस जाति में 'लल' का बड़ा महत्व था। लुसेई जाति के प्रथम चीफ (मुखिया) के बारे में Animesh Ray लिखते हैं-''A story of how chieftaiship camp up among the lushai speaks of one zahmuaka as their first chief- The lushai clans lived separately and they did not have any coordinating chief- Nobody aspired to become a chief either, as there was the apprehension that the chief either] as there was the apprehension that the chief would be the target of attack by the pawis, but the people wanted a chief- They presuaded a very unwilling and poor man, zahamuaka, to become their chief-He however proved a great success. His rule brought solidarity and prosperity among the lushai people."

इस तरह जाम्हुआ का मय परिवार म्हम्ते जाति के गाँव में मुखिया का पद सम्भाला। अपनी योग्यता और वीरता के बल पर गाँव का प्रशासन सुचारु रूप से चलाने के साथ ही युद्ध और शक्ति का संचालन करता रहा। इसी प्रकार सभी गाँव किसी न किसी मुखिया के नेतृत्व में आगे बढ़ने लगे। भारत की आजादी के कुछ वर्षों बाद अर्थात उत्तरी मिजोरम 1954 और दक्षिणी मिजोरम में 1956 तक मुखिया का वर्चस्व बना रहा। जाम्हुआका के छः पुत्र हुए- SailoZ, adang, Thangara, Palian, Riveng and Rohauma- जाम्हुआ का की मृत्यु के पश्चात उनका बड़ा बेटा जादेड़ात्लाड़खुआ नामक स्थान का मुखिया बना तथा छोटा बेटा रौखूमाखोरुआ का मुखिया बना। इसके अलावा जाम्हुआका के अन्य बेटे किसी न किसी गाँव के मुखिया का पद संभाले। आगे चलकर लुसेई जनजाति ने इन्हीं के नाम को उप-जाति (Sub & dan) के रूप में अपना लिया था। जैसे-जादेड़ा के वंशज आज अपने को जादेड़ा जाति का कहते हैं। जाम्हुआका के अन्य बेटों के वंशज भी अपनी जाति के रूप में अपने-अपने पूर्वजों के नाम ही लिखते हैं। इस तरह से लुसेई जनजाति जाम्हुआका के पश्चात कई उप-जातियों (Sub & Clan) में विभाजित हो गई। जैसे-पालियाना, जादेड़, रिवुड़ आदि। इस प्रकार से देखा जा सकता है कि मिजौ जनजातियों में से एक लुसेई जनजाति में साइलों लोग, जादेड़ लोग कैसे मुखिया बने और कैसे अपने प्रभुत्व को स्थापित किया। साथ ही यह भी देखा जाता है कि लुसेई जनजाति कई उप-जातियों में बँटकर मिजोरम पहुंची थी। इसीलिये संख्या की दृष्टि से लुसेई जनजाति के लोग अन्यों की अपेक्षा अधिक थे। लुसेई जनजाति की प्रमुख उपजातियाँ निम्न हैं-

पालियाना लुसेई- अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि सबसे पहले लुसेई जनजातियों में पालियान उपजाति के लोग मिजोरम पहुंचे थे। पालियान लुसेई के संदर्भ में C-Kanlova ने लिखा है कि "पालियान उपजाति के लोग भारत और म्यांमार की सीमा में बहने वाली टियाऊ नदी पार करके मिजोरम पहुंचेथे। मिजोरम पहुँच कर इन्होंने सबसे पहले खुआड़लेख पहाड़ी के 'लियानपुइ-म्हुन' को पालियान के पुत्र लियानपुइया की अगुवाई में अपना प्रथम डेरा बनाया था। कहते हैं कि उनके मुखिया लियानपुइया के नाम पर ही इन्होंने अपने प्रथम गाँव या डेरे का नाम भी 'लियानपुइम्हुन' रखा था।"[2]

लियानपुई-म्हुनश में अपना डेरा बनाने के बाद पालियान मुखिया ने कई छोटी-छोटी जातियों जैसे-पइहते जाति, पइहते की बुइते उपजाति को अपने शरण में लाये और धीरे-धीरे अपने साम्राज्य का विस्तार करने लगे थे। ऐसा माना जाता है इनकी संख्या 3000 तक पहुँच गई और इन्हें आगे चलकर 'दुङटलाङसाऽथुम' अर्थात तीन हजारी गाँव के नाम से जाना गया था। कुछ समय पश्चात ये जनजाति दक्षिणी मिजोरम की ओर बढ़ने लगे साथ ही पूकजीड़ तथा साइथाह की पहाड़ियों पर कई गाँव बसाये। इनकी कमजोर होती शक्ति को देखकर तत्कालीन साइलो, जादेड़ और चमका जनजातियाँ इन पर हमला करने लगे थे। शत्रु द्वारा बार-बार आक्रमण के कारण शीघ्र ही पालियान मुखियाओं का प्रभुत्व समाप्त हो गया। इतिहासकारों के अनुसार इनका समय 1830 ई. के आस-पास माना जाता है।

पालियान उपजातियों के पतन के उपरान्त दक्षिणी मिजोरम में जोदड़ मुखियाओं ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। पालियान मुखियाओं की तरह ये भी मिजोरम आने से पहले टियाऊ नदी के उस पार म्यांमार की पहाडिघ्यों में कई वर्षों तक रह चुके थे। म्यांमार की पहाडिघ्यों में रहने के दौरान इस जाति ने अपने समकालीन अन्य जातियों की अपेक्षा ज्यादा उन्नति किये। ये अपनी रक्षा के लिए एकजुट होकर शत्रुओं का सामना करना तथा अपनी शक्ति बढ़ाना आदि गुण भलि-भाँति सीख चुके थे। अत: मिजोरम प्रवेश के दौरान जादेड़ जातियों ने बड़ी आसानी से राल्ते जाति तथा पालियान मुखियाओं को हराया था। साथ ही दक्षिणी मिजोरम के कुछ क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा लिया। पालियान मुखियाओं की तरह जादेड़ जनजातियों ने भी करीब दो सौ वर्षों तक दक्षिणी मिजोरम पर शासन किया तथा दक्षिणी मिजोरम की पहाड़ियों पर अपने कई गाँव बसाये। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि जादेड़ जाति के साथ रौखूमा जाति के मुखिया भी मिजोरम आये और इन लोगों ने भी मिजोरम में वानलाइफाइ तथा चोङतुइ गाँव बसाया था। कालान्तर में पोइ (लाइ) जाति के बार-बार आक्रमण करने पर जादेड़ जाति के कुछ लोग त्रिपुरा की पहाड़ियों की ओर चले गये तथा अन्य लोगों ने किसी न किसी मुखिया की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार से जादेड़ जाति के लोग मिजोरम तथा त्रिपुरा की पहाड़ियों में फैल गये।

साइलो मुखियाओं का मिजोरम में प्रवेश-लुसेइ मूल के मुखियाओं में साइलो जाति के मुखियाओं से पहले पालियान जाति और जादेड़ जाति के मुखिया अपने दल बल के साथ मिजोरम आ चुके थे। अन्य लुसेई जनजातियों की तरह साइलों मुखिया सन् 1740-50 के आस-पास म्यांमार की पहाडिघ्यों से टियाउ नदी पार करते हुए मिजोरम पहुंचे थे। अधिकांश मिजौ इतिहासकारों का मानना है कि साइलों मुखियाओं से पहले जो भी लुसेई उपजातियाँ मिजोरम आई थीं, उसमें से किसी ने भी स्थाई रूप से रहने की हिम्मत नहीं किया था। इसका प्रमुख कारण म्यांमार के टलानटलाड़ तथा इसके आस-पास रहने वाली पोइ (लाइ) जाति के लोग थे। लाइ जाति के डर से ही ये उपजातियाँ मिजोरम से सुदूर दक्षिणी और पश्चिमी भाग को अपना स्थाई डेरा बनाते थे। अन्य मुखियाओं की अपेक्षा साइलों जाति के लोग एक बड़े दलबल तथा रुतबे के साथ मिजोरम पहुँचे। जो भी साइलों मुखिया मिजोरम आये थे वे सभी साइलों मुखिया थड्ड्रा के वंशज थे। साइलों जाति के जन्मदाता साइलौवा थे। इन्हीं के नाम पर इस वंश का नाम साइलों पड़ा था। मिजोरम आने के पश्चात साइलों मुखियाओं ने विभिन्न स्थानों पर अपना गाँव बसा कर रहने लगे। म्यांमार के ट्लानटलाड़ तथा इसके आस-पास के क्षेत्र में रहने वाली लाई जातियों द्वारा बार-बार आक्रमण किये जाने के कारण साइलों मुखियाओं ने एक साथ रहने का फैसला किया। इस प्रकार से मिजोरम में खोबुड और जोलसेइ गाँव के बीच लगभग 7000 लोगों का घर स्थापित किया गया, जिसे तत्कालीन समय में 'सेलेसिहसाङसारिह' अर्थात 7000 घरों वाला गाँव कहा गया। सेलेसिह के संदर्भ में B-LALTHANGLIANA ने लिखा है-"This is the most famous among the first large villages- It exited between the years 1740 to 1750 A-D- It was situated in and around the present villages of khawbung (s) and Zawlsei- To countreaed the continuous harassing raids upon then by their avowed enemies living in the east across the river Tiau, seven chief of the sailo clan- gathered and established this large village- the name of these, chiefs were as follows : Pu kawlth, Darpuilliana, Darliankuda Rohnaa, Haianchera- Leasailova-Among then- Pukawltha was regarded- as the leader-"[3]

सात साइलों मुखियाओं का एक साथ आना मिजोरम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इनके एक साथ आने से मिजोरम के जन-जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। जो निम्न है-

(i) सेलेसिहसाड़सरिह के निर्माण के उपरान्त इनकी शक्ति एवं क्षमता में आशातीत वृद्धि हुई। जिसके परिणामस्वरूप म्यांमार के टलानट्लाड तथा इसके आस-पास रहने वाली लाई (पोइ) जाति द्वारा समय-समय पर हमला करने या घात लगाकर लोगों को मारने आदि में कमी आने लगी, जिससे ये स्थाई निवास के बारे में सोचने लगे थे।

(ii) विभिन्न बोली बोलने वालों को एक ही बोली अथवा भाषा प्रयोग करने की सीख मिली, जिससे मिजौ समाज की अपनी भाषा अथवा बोली का बीजा रोपण होने लगा। इससे पहले अलग-अलग स्थान पर रहने के कारण ये जनजातियाँ भिन्न-भिन्न बोली अथवा भाषा का प्रयोग करते थी। जिस कारण इन जातियों के भीतर एकता नहीं दिखाई पड़ती थी। सेलेसिहसाडसरिह में एक ही भाषा प्रयोग होना मिजौ भाषा के लिए वरदान सिद्ध हुआ था।

(iii) साइलो मुखियाओं के एक साथ आने से मिजोरम के सामाजिक मूल्य एवं रीति-रिवाज में आमूल-चूल परिवर्तन देखने को मिलता है। अलग-अलग रहने के कारण इनके यहाँ कई प्रकार के रीति-रिवाज प्रचलित थे। सबकी अपनी अलग-अलग मान्यताएँ थी। इसके अलावा सेलेसिहसाङसरिह में धर्म को लेकर भिन्न-भिन्न अवधारणाएँ थीं जिसके कारण ज्यादा अंध विश्वास, जादू-टोना, कर्मकाण्ड प्रचलित था। लेकिन साइलों मुखियाओं के साथ रहने, एक ही भाषा का प्रयोग करने तथा धार्मिक अनुष्ठानों एवं रीति-रिवाज में साम्यता होने के कारण यहाँ व्याप्त अंधविश्वास, जादू-टोना, कर्मकांड आदि में कमी आई। इसके साथ ही सामाजिक रीति-रिवाज में शादी-विवाह के नियमों का निर्धारण भी जातीय प्रतिष्ठा के आधार पर किया गया। जातीय प्रतिष्ठा का निर्धारण वंश तथा समाज में व्यक्ति विशेष के रुतबा को आधार बनाया गया, न कि जातीय ऊँच-नीच को।

इसके अतिरिक्त सेलेसिहसाड़सरिह के महत्वपूर्ण योगदान को बताते हुए B-LALTHANLIANA ने लिखा है&"Selisih 7000 had- its many advantages-The most prominent of them the chiefs gained knowledge, and experience in ruling a village-The customs cultures, and the way of life led by the Mizo's today had- its origin in selesih"[4] इस प्रकार लाइ जातियों के भय से मुक्त सेलेसिहसाङसरिह का आवास काल मिजौ जनजाति विशेषकर लुसेई जाति तथा उसके साथ रहने वाली अन्य उपजातियों के लिए सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक व्यवस्था का निर्माण काल रहा है। इसके उपरान्त सन् 1750-80 के आस-पास साइलों मुखियाओं ने मिजोरम में अलग-अलग स्थान पर गाँव बसाने का फैसला किया। मिजौ इतिहासकार इसके कई कारण मानते हैं। C-Kamlov ने प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालते हैं जो निम्न हैं

"पहाड़ी खेती के लिए उन्हें विशाल भूमि की आवश्यकता पड़ती थी। क्योंकि हर साल खेती के लिए अलग-जगल जंगलों को काटकर जलाने की प्रथा के चलते सेलेसिह के आस-पास के जंगल इनके लिए छोटे पड़ गये थे। सभी साइलों मुखिया अपने दल-बल के साथ एक साथ मिजोरम नहीं आये थे। बारी-बारी से अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार ही मिजोरम आए थे तथा आरम्भ में अलग-अलग गाँव बसा कर रहने लगे थे। परन्तु लाई जातियों के बार-बार हमले से बचने के लिए उन्होंने एक साथ रहने का फैसला मजबूरी में और अस्थाई रूप में ही लिया था। अपनी जनता के बीच स्वतन्त्र रूप से हुकुमत करने व चलाने और किसी के अधीन न रहने की मुखियाओं की प्रवृत्ति को भी एक प्रमुख कारण माना जाता है।"5

संभवत: इन्हीं कारणों के चलते साइलों मुखियाओं ने दक्षिणी, पश्चिमी और पूर्वी मिजोरम में अपना गाँव बसाया। इसके चलते मिजोरम में अन्य जनजातियों की अपेक्षा लुसेई जनजाति के लोग अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते हैं।

मारा जनजाति का मिजोरम में प्रवेश- मारा जनजाति मिजोरम की प्रमुख जनजातियों में से एक है। इस जनजाति का मिजोरम आगमन काल सन् 1920-40 ई. के आस-पास माना जाता है। मारा जनजाति के लोग मूलरूप से मंगोलियन प्रजाति के हैं। अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि ये जनजाति 15वीं शताब्दी के आस-पास मंगोल देश से तिब्बत, चीन होते हुए म्यांमार आये थे। म्यांमार की पहाडिघ्यों में इस जनजाति के लोग दो सौ साल रहे। ऐसा कहा जाता है कि इस जनजाति के लोग बड़े ही लड़ाकू प्रवृत्ति के होते थे। ये आपस में ही लड़ते रहते थे। संभवत: यही कारण है कि मारा जनजाति के लोग अलग-अलग उपजातियों (जिनहों, चोपी, हीथाइयाहाउथेड़ आदि) में बँट गये और अपने बने बनाये घर को छोड़कर अन्य मिजौ जनजातियों की तरह ये भी 1720-40 के आस-पास कई दलों में मिजोरम आये।

अन्य जनजातियों की तरह मारा जाति भी अलग-अलग मुखियाओं के नेतृत्व में मिजोरम आयी। कहा जाता है कि मारा जाति की एक उपजाति ट्लो उसी म्यांमार के 'सारो' नामक स्थान पर सर्वप्रथम आई। कई वर्षों तक यहाँ रहने के पश्चात वे चाखड़ नामक स्थान पर आकर रहने लगे। चाखड़ और इसके आस-पास की दुर्गम पहाडिघ्यों में रहने के बाद ये म्यांमार और दक्षिणी मिजोरम में धीरे-धीरे फैल गये। इन्होंने हिमतुइमुई नदी तथा इसके आस-पास कई गाँव बसाये। वर्तमान समय में भी मारा जनजाति की कई उपजातियाँ म्यांमार के पश्चिमी क्षेत्र में पाई जाती हैं।

आजादी के पहले मारा जनजाति 'लाखेर' नाम से जानी जाती थी। विशेषकर लुसेई जाति के लोग इन्हें लाखेर नाम से पुकारते थे। लेकिन ये खुद को "मारा' ही कहते थे। इस जनजाति को लाखेर कहने के पीछे कई किन्वदन्ती प्रचलित हैं। Animesh Ray लिखते हैं-The Lakher calls them selves Mara, but the lushai all them lakhers- The Team appears to have originated from the pratice of Plucking cotton the lushai used to pluck cotton from the first with their hands whereas the lakhers did it with a stick- The hame Lakher come from this method of plucking cotton with stic, 'la' meaning 'cotton' and 'Kher' meaning 'to pluck or remove' with stick"[6]

लेकिन सन् 1978 ई. में सर्वसम्मति से लाखेर जाति का नया नामकरण 'मारा' जाति के रूप में स्वीकार किया गया। अत: वर्तमान समय में भी इस जनजाति को 'मारा' जनजाति के नाम से जाना जाता है।

मारा जनजाति अपने समकालीन जनजातियों में सबसे लड़ाकू प्रवृत्ति के थे। इस कारण इनका लुसेई, पोइ (लाइ), राल्ते, अंग्रेजों आदि से युद्ध हुआ करता था। मारा जनजाति के लोगों ने सन् 1847 ई. में चटगाँव के पहाड़ी क्षेत्रों पर आक्रमण कर वहाँ अपना अधिकार किया। इन्होंने सन् 1888 ई. में अंग्रेजों की एक सर्वे टीम पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला। उसके बाद अंग्रेज शासकों ने 1888-89 ई. के आस-पास मारा जाति पर आक्रमण कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप लाखेर तथा चिनलुसाई हिल्स क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया।

मारा जनजाति अन्य मिजौ जनजातियों से भिन्न भाषा अथवा बोली का प्रयोग करते हैं। ऐसा माना जाता है कि मिजौ में मुख्यत: म्हार, राल्ते, पाइहते, लाइ अपनी अलग-अलग बोली व भाषा बोलते हैं, लेकिन मारा बोली को छोड़कर अन्य बोलियों अथवा भाषा में कई ऐसे शब्द मिल जाते हैं। जिसका प्रयोग ये समान्तर रूप में करते हैं, परन्तु मारा जातियों की भाषा इनसे नितान्त भिन्न है। मिजौ भाषा में इनके शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। इसके कई कारण हो सकते हैं लेकिन विद्वानों का मानना है कि इनकी बोली व भाषा में स्वर-ध्वनियों की भरमार है। शब्द के अन्त में व्यंजन ध्वनि का प्रयोग नहीं के बराबर है। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि अपनी अलग बोली व भाषा के चलते ये मिजोरम की अन्य जनजातियों से घुल-मिलकर नहीं रह सके और अपने समकालीन जनजातियों से लड़ते रहे। यही कारण है कि इस जनजाति को 'स्वायत जिला परिषद' के अन्तर्गत रखा गया। वर्तमान समय में देखा जाये तो इस जनजाति के अधिकांश लोग शहरों में रहते हैं। शहरों में रहने वाले मारा लोगों ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया है, तथा गाँव व जंगलों में रहने वाले लोग आज भी अपने परम्परागत प्रकृति धर्म को मानते हैं। मारा जनजाति अन्य मिजौ जनजातियों की अपेक्षा शिक्षा, आर्थिक सांस्कृतिक मूल्यों एवं धरोहर के क्षेत्र में ज्यादा समृद्ध हैं।

चकमा जनजाति- मिजौ जनजातियों में से चकमा ही एक ऐसी जनजाति है जो पश्चिम से पूर्व दिशा में आकर बसे। इस संदर्भ में Animesh Ray लिखते हैं Unlike the trible which migrated from Burma in the east to Mizoram in the west- There was one tribe which migrated from the west to the east"[7] वर्तमान मिजोरम के दक्षिणी भाग में स्थित बांग्लादेश की सीमा के आस-पास रहने वाली चकमा जनजाति के संदर्भ में इतिहासकारों ने मिजौ जनजातियों के इतिहास में चर्चा नहीं की है। तथापि चकमा जनजाति को भारत सरकार ने ए.डी.सी. (ऑटोनोमस डिस्ट्रिक्स कौंसिल स्वायत जिला परिषद) बनाकर उनकी सुरक्षा व विकास का ध्यान रखा है। लाइ और मारा जनजातियों की तरह चकमा जनजाति को भी ए.डी.सी के अन्तर्गत रखा गया है।

चकमा जनजाति के उद्भव व विकास के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि चकमा लोगों के आदि निवास स्थान का नाम 'चम्पक नगर' था, लेकिन चम्पक नगर नामक कई जगह दृष्ट होने से इस जगह को लेकर भी मतभेद है। ज्यादातर विद्वानों का मानना है कि इनका संबंध प्राचीन मगध अथवा उत्तर बिहार के वर्तमान भागलपुर के निकट चम्पारण के राजकुमार विजयगिरि से था। विजयगिरि ने 10वीं शताब्दी के आस-पास आराकन एवं ब्रह्मदेश पर आक्रमण किया तथा वहाँ अपना

राज्य स्थापित कर लिया। आराकन के अक्सा देश यारेडांन में अपना राज्य स्थापित करने के उपरान्त विजयगिरि वापस चम्पारन नहीं गया। इस प्रकार से चम्पा के राजा विजय गिरि ने ब्रह्मदेश में पहला चकमा राज्य बनाया एवं निम्न आराकन के साप्राइकुल को प्रथम राजधानी बनाया। विजयगिरि ने उस देश की महिलाओं से शादी रचा कर स्थाई रूप से वहाँ रहने लगा। इस प्रकार से यह माना जाता है कि राजकुमार विजयगिरि से ही वर्तमान चकमा जाति का सूत्रपात हुआ था। अन्य जनजातियों की तरह चकमा जनजाति के लोग भी विविध दलों व उपजातियों (गजा), तुनया, डामें, शुलिमिया, बखासा, बोखा इत्यादि में विभाजित होकर अनेक स्थानों पर अपना अधिकार जमाने में कामयाब हो गये। ये लोग धीरे-धीरे चट्टग्राम, पार्वत्यचट्टग्राम, पार्वत्यत्रिपुरा आदि स्थानों में अपना पॉव पसारने लगे। एक समय में चकमा एक स्वतंत्र जाति थी। अंग्रेजों के आने से पहले पहाड़ी क्षेत्रों में मुगलों का प्रत्यक्ष शासन कायम नहीं था। कालान्तर में अंग्रेजों ने जब लुसाइयों पर आक्रमण किया तो वे अपनी सेना के साथ चकमा मजदूरों को पकड़ कर ले जाते थे। कैप्टन एवन ने भी जब लुसेइयों पर आक्रमण किया था तो वह भी लगभग 500 चकमा कुली पकड़ कर ले गये थे। इनकी नजर में चकमा जाति के लोग बलिष्ठ बुद्धिमान होते थे। इस कारण ये चकमाओं को अपना निशाना बनाया करते थे। ये चकमा लोगों को पकड़कर चौकियों की देखभाल और रास्ता बनाने के काम में लगा देते थे और वहीं जंगल की जमीन देकर बसा दिया करते थे। मिजोरम के अधिकांश चकमा अंग्रेजों के संरक्षण में ही रहे। कम्पनी का शासन स्थापित होने के पश्चात बहुत बड़ी संख्या में चकमा चटगाँव की पहाड़ियों से आकर मिजोरम के दक्षिणी भाग के लुंगलेई में बस गये। चकमा लोगों को भारत विभाजन के उपरान्त भारत व बांग्लादेश दोनों ही स्थानों पर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ी। भारत में चकमा जनजाति के प्रमुख मुद्दे हैं-स्थानीय जनजातियाँ इनको विदेशी मानती हैं जिस कारण जातीय संघर्ष होता रहता है। बांग्लादेश व भारत के स्थानीय लोगों द्वारा इनको न स्वीकारना। अरुणाचल प्रदेश में आज भी कुछ ही चकमाओं को नागरिकता दी गई है।

इन प्रमुख मुद्दों के लिए चकमाओं ने हमेशा संघर्ष किया है और आज भी कर रहे हैं। वर्तमान समय में चकमा लोग मूलत: बांग्लादेश के राडामाड़ी एवं खगडाद्दड़ी जिले में निवास करते हैं। मगर बहुतायत चकमा जाति आज भी भारत के मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, असम प्रदेश के कद्दार जिला तथा त्रिपुरा में निवास करते हैं। भारत हो या भारत के बाहर जहाँ भी चकमा लोग रहते हैं इनके खान-पान, धर्म-विश्वास, आर्य सामाजिक परिस्थिति में आज भी एकरूपता देखने को मिलती है। शारीरिक गठन में चकमा लोग तगड़े होते हैं। आँखें गोल और गहराई लिए होती हैं। पुरुष बालों में झुटिया, माथे पर खबड़ (पगड़ी) बाँधते हैं। औरतें पिनक (फूलों की माला), चाँदी के रुपये का हार पहनती हैं। चकमा लोग बौद्ध धर्मावलम्बी होते हैं। हनमें कालिन्दी रानी (चकमा राज्य 1855-73 में संभाला था) का विशेष महत्व है। बौद्ध संघों में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कालिन्दी रानी ने आराकन से 'संघ राजसार मितमहा स्थाविर' को आमंत्रित किया। कालिन्दी रानी, सारमित महास्थाविर के साथ मिलकर बौद्ध धर्म सुधार आन्दोलन चलाया, जिसका सकारात्मक प्रभाव दिखाई पड़ा। इससे जहाँ बौद्धों में धर्मनिष्ठा बढ़ी वहीं बांग्ला भाषी बौद्धों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। चकमाओं पर ईसाइयत का प्रभाव नहीं देखा जाता है। इस कारण आज भी लगभग सभी चकमा बौद्धमतानुयायी हैं।

तत्कालीन जनजातियों जैसे नागा, मिजौ, गारो, खासी, कद्दारी आदि जनजातियों के पास अपनी भाषा के वर्णमाला नहीं है उसके विपरती चकमाओं के पास प्राचीन काल से ही अमानत के रूप में सुनिर्दिष्ट लिपि थी। इस लिपि के माध्यम से धार्मिक पुस्तकें 'लार्या', 'पंचाली' (चालीसा),'गेखूलीगी' आदि की रचना करने में चकमा लोग समर्थ थे जो इन्हें आज भी गौरवान्वित करती है।

लुसेई, लाखेर, चकमा, लाई जनजातियों के अलावा मिजोरम मेंरियांग, हमार्स, पोबी, राल्ते, हमार, जौमीयापाइह्ते आदि प्रमुख जनजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से अधिकांश जनजातियाँ मिजोरम के जंगलों, पठारी क्षेत्रों में अपना जीवन-यापन करती हैं, जो आज भी सभ्यता से पर्याप्त दूरी पर हैं, वहीं कुछ जनजातियाँ कृषि कार्य और पशुपालन करती हैं तथा आधुनिक सुविधा से भी परिचित हैं। इसके बावजूद भी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इन सभी जनजातियों में पाई जाती हैं। प्राय: इनके समूहों का आकार सीमित होता है। इनका तकनीकी ज्ञान अपरिष्कृत होता है। इनकी अर्थव्यवस्था सादी, पिछड़ी एवं वस्तुओं के आदान-प्रदान पर निर्भर होती हैं। ये जल, जंगल, जमीन, को ही अपने जीवन का आधार मानते हैं। क्योंकि कृषि, पशुपालन, शिकार, कन्दमूलफल, मछली पकड़ना, ईंधन, चारा सभी इन्हें जल, जंगल, जमीन से ही प्राप्त होता है। वहीं दूसरी ओर मिजोरम के कुछ ऐसे लोग भी हैं जो शहरों में निवास करते हैं। जनजातियों की अपेक्षाकृत इनका जीवन सरल होता है। शहरों में रहने वाले अधिकांश लोग ईसाई धर्म में विश्वास करते हैं। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार मिजोरम में 86 प्रतिशत ईसाई, 6.38 प्रतिशत हिन्दू और 6.8 प्रतिशत लोग बौद्ध हैं। ये अंधविश्वास, जादू-टोना आदि से भी दूर हैं। ये आधुनिक सुख-सुविधाओं के ज्यादा करीब हैं और शिक्षित भी हैं। मिजोरम एक पिछड़ा राज्य होते हुए भी साक्षरता के क्षेत्र में मिजोरम केरल के बाद दूसरे स्थान पर आता है।

भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जनजातियों की बात की जाये तो ये हमेशा से उपेक्षित, तिरस्कृत एवं जरूरी सुविधाओं से वंचित रही हैं। सभ्यता के विकासक्रम में मुख्यधारा से ये जनजातियाँ विमुख रही हैं। स्वतंत्रता के बाद इन जनजातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए सरकार ने उनके सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी, शैक्षणिक उत्थान एवं विकास के लिए सक्रिय योगदान दिया है, इसके बावजूद भी ये जनजातियाँ भूमि समस्या, पुनर्वास, ऋणग्रस्तता, कामगारों के शोषण, स्वास्थ्य व शिक्षा संबंधी-पिछड़ेपन तथा लैंगिक शोषण जैसे ज्वलन्त समस्याओं से जूझ रही है। तत्कालीन समय में पूर्वोत्तर भारत की, जनजातियों के विकास, कल्याण एवं मुख्यधारा से जोड़ने के लिए सरकार से निम्नलिखित अपेक्षाएँ हैं-

1. वितरित न्याय का ध्यान रखा जाये।
2. समावेशी राजनीतिक, आर्थिक उन्नति हो।
3. गरीबी उन्मूलन के लिए जनजातीय क्षेत्रों में विकास की योजनाएं चलाई जायें।
4. सतत्विकास पर जोर दिया जाये।
5. परम्परागत पर्यावरण एवं परिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखें।
6. खाद्य एवं स्वास्थ्य की सुरक्षा सुनिश्चित की जाए।
7. प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया जाये।
8. महिला सशक्तिकरण पर बल दिया जाये।
9. रोटी, कपड़ा और मकान की समुचित सुविधाएँ दी जायें।
10. जनजातियों के मानवाधिकार को संरक्षित किया जाये।

सन्दर्भ सूची:

1. ''मिजौ जनजाति का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य' माधवेन्द्र प्रसाद, समन्वय पूर्वोत्तर, अंक-10, जनवरी-मार्च 2011, पृष्ठ 62
2. Mizoram & Animesh Ray, National Book Turst, India, page 23-
3. An Introductory Brief history of Mizo Tribes& C- Kanlova, Mualchin Publication & paper works, 2006, page 30-
4. Culture and folklore of Mizoram& B- LALTHANGLIANA, ___Publication Division, 2005, page- 6
5. Culture and folkore of Mizoram& B- LALTHANGLIANA, Publication Division, 2005, Page 8
6. An Introductory Brief history of Mizo Tribes & C-kanlova, Mualchin publication & papers works, 2006- page 39
7. Mizorma & Animesh Ray, National Book Trust, India, page 53

ग्रामोद्योग एवं ग्रामीण विकास का गाँधीय प्रतिमान

डॉ० तरूणा

असिस्टेंट प्रोफेसर, ग्रामीण प्रबन्धन विभाग, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), लखनऊ

डॉ० मनोज सिंह यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर-इतिहास, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर भदोही

प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार ग्रामीण अर्थव्यवस्था रही है। जब-जब देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था गड़बड़ा जाती है तो इसका प्रतिकूल प्रभाव पूरे देश की अर्थव्यवस्था एवं शासन सत्ता पर पड़ता है। ग्राम केवल देश के सामाजिक आर्थिक ताने-बाने का आधार ही नहीं, अपितु भारत की विकासोन्मुख एवं समन्वयकारी संस्कृति व उन सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षक हैं जो देशवासियों को अनेकता में एकता का पाठ पढ़ाते हैं तथा अति विशेष रूप में देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। भारत गाँवों का देश है तथा इसके गाँव सामुदायिक जीवन का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। संभवत: यही कारण था कि महात्मा गाँधी के समग्र चिंतन एवं दर्शन का केन्द्र गाँव ही रहें हैं। ग्रामोद्योगों के संबंध में गाँधी जी का मानना था कि ''ग्रामोद्योगों का यदि लोप हो गया हो तो भारत के 7 लाख गाँवों का सर्वनाश ही समझिए।"[1] गाँधी जी स्वदेशी को आर्थिक आधार का व्यापक रूप देते हुए कहते हैं कि शहरों द्वारा ग्रामीणों का शोषण बंद किया जाना चाहिए तथा जिस प्रकार से देशी उद्योगों को विदेशी निर्माताओं से संरक्षण दिया जाता है उसी प्रकार कुटीर उद्योगों को भी मशीन से बनी वस्तुओं के विरूद्ध संरक्षण दिया जाना चाहिए। गाँवों की स्थिति के संबंध में उन्होने 27-02-1937 के 'हरिजन' में लिखा था कि ''ग्राम बस्तियों का पुनरूत्थान होना चाहिए। भारतीय गाँव भारतीय शहरों की सारी जरूरतें पैदा करते थे और उन्हे देते हैं। भारत की गरीबी तब शुरू हुई जब हमारे शहर विदेशी माल के बाजार बन गये और विदेशों का सस्ता एवं भद्दा माल गाँवों में भरकर उन्हे चूसने लगे।"[2] गाँधी जी के हिन्द स्वराज की तरह स्वदेशी माडल टेक्नॉलाजी के खिलाफ नहीं था लेकिन इसमें आर्थिक विकास के पश्चिम उन्मुख माडल से जुड़े ताम-झाम के बे-लगाम आयात का तिरस्कार किया गया था। गाँधी जी का मानना था कि-''गाँवों और शहरों के बीच स्वास्थ्यपूर्ण और नीतियुक्त संबंध का निर्माण तब होगा जब कि शहरों को अपने इस कर्तव्य का ज्ञान होगा कि उन्हे गाँवों का अपने स्वार्थ के लिए शोषण करने के बजाय गाँवों से जो शक्ति और पोषण वे प्राप्त करते हैं उसका पर्याप्त बदला देना चाहिए। और यदि समाज के पुर्ननिर्माण के इस महान और उदात्त कार्य में शहर के बालकों को अपना हिस्सा अदा करना है, तो जिन उद्योगों के द्वारा उन्हे अपनी शिक्षा दी जाती है वे गाँवों की जरूरतों से सीधे सम्बन्धित होनी चाहिए।"[3]

गाँधी के हिन्द स्वराज में भारत के पूरे आर्थिक और राजनीतिक मॉडल को विस्तार से समझाया गया है। गाँधी के लिए स्वदेशी में भारत के उस औपनिवेशिक शोषण को खारिज किया गया था जिसमें ब्रिटिश खजाने भरते थे और नतीजे में भारत के गरीब और कुचले हुए लोग घाटे में रहते थे। गाँधी जी भारत को आत्म निर्भर देखना चाहते थे। उनका मानना था कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है, इसलिए भारत को विकास के पथ पर ले जाने के लिए 'ग्राम विकास' प्राथमिक आवश्यकता है। इसको ध्यान

में रखते हुए उन्होने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सर्वोपरि स्थान दिया था। उनकी दृष्टि में इस अर्थव्यवस्था का आधार था 'ग्रामीण जीवन का उत्थान'। इसीलिए गाँधी जी ने बड़े-बड़े उद्योगों को नहीं बल्कि कुटीर उद्योगों को महत्व प्रदान किया। उनका मानना था कि- ''यंत्रों से काम लेना उसी अवस्था में अच्छा होता है, जब कि किसी निर्धारित काम को पूरा करने के लिए आदमी बहुत ही कम हों या नपे तुले हों। पर यह बात हिन्दुस्तान मे ंतो है नहीं। यहाँ काम के लिए जितने आदमी चाहिए, उनसे कहीं अधिक बेकार पड़े हुए हैं। इसलिए उद्योगों के यंत्रीकरण से यहाँ की बेकारी घटेगी या बढ़ेगी? हमारे यहाँ सवाल यह नहीं है कि हमारे गाँवों में जो लाखों करोड़ों आदमी पड़े हुए हैं उन्हे परिश्रम की चक्की से निकालकर किस तरह छुट्टी दिलाई जाय, बल्कि यह है कि उन्हे साल में जो कुछ महीनों का समय यूँ ही बैठे-बैठे आलस में बिताना पड़ता है उसका उपयोग कैसे किया जाय।"[4] इस प्रकार से अपने विचारों में भारत की आवश्यकताओं और पश्चिमी जरूरतों का अंतर समझाते हुए तीव्र औद्योगीकरण के स्थान पर कुटीर उद्योगों के आवश्यकता के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयास किया है। गाँधी जी परम्परागत पुस्तैनी व्यावहारिक पद्धति पक्षधर थे तथा उसके पुनरूद्धार की बात करते हुए कहते हैं- ''उनके उद्धार का सच्चा मार्ग तो यही है कि जिन उद्योग-धंधों को वे अब तक किसी कदर करते चले आ रहे हैं, उन्ही को भली-भाँति जीवित किया जाय।"[5]

महात्मा गाँधी लघु उद्योग, कुटीर उद्योग से हटकर ग्राम स्वराज का विचार लाये। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में एक उद्योग बने। वह स्वावलम्बन की बात करते थे। बड़े-बड़े उद्योगों के बजाय प्रत्येक व्यक्ति को अपना काम करते हुए कुछ न कुछ उत्पादन करने की बात करते थे। उनका मानना था ऐसा करने से कोई भी बेरोजगार नहीं रहेगा। आज 21 वीं सदी में बेरोजगारी भारत की सबसे प्रमुख समस्या बनकर उभरी है ऐसे में आजादी से पूर्व गाँधी ने जो सपना देखा था यदि उसका अनुरक्षण किया गया होता तो न केवल सबकी जरूरतें पूरी होती बल्कि सभी लोग काम कर रहे होते। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ कौशल है और उसको अपने इस कौशल का उपयोग इस प्रकार से करना चाहिए कि वह अपने स्वयं के विकास के साथ ही साथ राष्ट्र और समाज के विकास में उसका सर्वोत्तम उपयोग हो सके। हिन्द स्वराज्य में गाँधी जी लिखते हैं कि -''मि0 रमेश चन्द्र दत्त की पुस्तक 'हिन्दुस्तान का आर्थिक इतिहास' जब मैने पढ़ी, तब भी मेरी ऐसी हालत हो गई थी। उसका फिर से विचार करता हूँ तो मेरा दिल भर आता है। मशीन की झपट लगने से ही हिन्दुस्तान पागल हो गया है। मैन्चेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुँचाया है, उसकी तो कोई हद ही नहीं है। हिन्दुस्तान से कारीगरी जो करीब-करीब खतम हो गई, वह मैन्चेस्टर का ही काम है।"[6]

गाँधी जी स्वदेशी में, ग्रामीण आत्मनिर्भरता में बडेध् उद्योगों के बजाय कुटीर और छोटे उद्योगों में और उत्पादन में मशीनों की अपेक्षा श्रम के इस्तेमाल में विश्वास रखते थे उनका कहना था कि- ''ग्रामोद्योगों की योजना के पीछे मेरी कल्पना तो यह है कि हमें अपनी रोजमर्रा की आवश्यकताएं गांवों की बनी चीजों से ही पूरी करनी चाहिए और जहाँ यह मालूम हो कि अमुक चीज गाँवों में मिलती ही नहीं, वहाँ हमें यह देखना चाहिए कि उन चीजों के थोड़े परिश्रम और संगठन से बनाकर गाँव वाले उनसे कुछ मुनाफा उठा सकते हैं या नहीं। मुनाफे का अंदाजा लगाने में हमें अपना नहीं किन्तु गाँव वालों का ख्याल रखना चाहिए। संभव है कि शुरू में हमें साधारण भाव से कुछ अधिक देना पड़े और चीज हल्की मिले। पर अगर हम उन चीजों के बनाने वालों के काम में रस लें और यह आग्रह रखें कि वे बढिघ्या से बढिघ्या से चीजें तैयार करें, और सिर्फ आग्रह ही नहीं रखें बल्कि उन लोगों को पूरी मद्द भी दें, तो यह हो नहीं सकता कि गाँवों की बनी चीजों में दिन-ब-दिन तरक्की न होती जाय।"[7]

गाँधी जी ने विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का पक्ष लिया। उनका विश्वास था कि भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले गरीब देश के लिए मशीनों का प्रयोग लाभप्रद नहीं होगा। अधिक जनसंख्या को काम पर लगाने के लिए ऐसी प्रणालियाँ अपनाना होगा जिनमें अधिकाधिक श्रमिकों की खपत हो। 29 अगस्त 1936 के हरिजन सेवक में अपने लेख में गाँधी जी लिखते हैं कि- ''गाँवों में फिर से जान तभी आ सकती है जब वहाँ की लूट-खसोट रूक जाय। बड़े पैमाने पर माल की पैदावार निश्चय ही व्यापारिक प्रतिस्पर्धा तथा माल निकालने की धुन के साथ-साथ गाँवों की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली लूट के लिए जिम्मेदार है। इसलिए हमें इस बात की सबसे ज्यादा कोशिश करनी चाहिए कि गाँव हर बात में स्वावलम्बी और स्वयंपूर्ण हो जायें। वे अपनी जरूरतें पूरी करने भर के लिए चीजें तैयार करें। ग्रामोद्योग के इस अंग की अगर अच्छी तरह रक्षा की जाये, तो फिर भले ही देहाती लोग आजकल के उन यन्त्रों और औजारों से भी काम ले सकते हैं जिन्हें वे बना और खरीद सकते हैं। शर्त सिर्फ यही है कि दूसरों को लूटने के

लिए उनका उपयोग नहीं होना चाहिए।"[8] इस प्रकार से औद्यौगीकरण के विरूद्ध होते हुए भी गाँधी जी उस सीमा तक मशीनों के प्रयोग को अनुमति देते थे जहाँ तक वे सारे समाज की प्रगति में बाधक न बने।

गाँधी जी का आर्थिक दर्शन देश की आर्थिक समस्याओं (बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी) तथा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास को प्रस्तुत करता है और यह बताने का प्रयास करना है कि अपने संशाधनों के बल पर इन समस्याओं को किस प्रकार से हल किया जाये। चाहे ग्रामीण क्षेत्र हो या नगरीय या राष्ट्र सभी में व्याप्त आर्थिक समस्याओं का समाधान उन्होने बड़े सटीक व उचित रूप से प्रस्तुत करके एक सच्चे देशभक्त एवं मानवतावादी होने का परिचय दिया था। गाँधी जी ने जहाँ एक तरफ देश के ग्रामीण क्षेत्रों को अहम बताते हुए ग्राम स्वराज का उल्लेख किया है जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु लघु व कुटीर उद्योगों पर दृष्टिपात किया है। तो वहीं दूसरी तरफ स्वदेशी शब्द का प्रयोग करके एक राष्ट्रवादी भावना को प्रस्तुत किया है। लघु व कुटीर उद्योग के साथ ही साथ गाँधी जी बहुत से घरेलू कार्यों के महत्व को भी रेखांकित करते हुए कहते हैं कि-''हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और पछोरना, साबुन बनाना, कागज बनाना, चमड़ा कमाना, तेल पेरना और इस तरह के सामाजिक जीवन के लिए जरूरी और महत्व के दूसरे धंधो के बिना गाँवों की आर्थिक रचना सम्पूर्ण नहीं हो सकती, यानि गाँव स्वयंपूर्ण घटक नहीं बन सकते।"[9] इतना ही नहीं रचनात्मक कार्यक्रम में गाँधी जी कहते हैं -''हर एक आदमी को हर हिन्दुस्तानी को इसे अपना धर्म समझना चाहिए कि जब-जब और जहाँ-जहाँ मिले, वहाँ वह हमेशा गाँवों की बनी चीजें ही बरतें। अगर ऐसी चीजों की माँग पैदा हो जाय तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हमारी ज्यादा तर जरूरतें गाँवों से पूरी हो सकती हैं। जब हम गाँवों के लिए सहानुभूति से सोचने लगेंगें और गाँवों की बनी चीजें हमें पसन्द आने लगेगीं तो पश्चिम की नकल के रूप में यंत्रों की बनी चीजें हमें नहीं जचेंगी, और हम ऐसी राष्ट्रीय अभिरूचि का विकास करेंगें, जो गरीबी, भुखमरी और आलस्य या बेकारी से मुक्त नये हिन्दुस्तान के आदर्श के साथ मेल खाती होगी।"[10]

गाँधी जी का दर्शन व चिंतन ग्रामीण विकास को लोकतात्रिक राष्ट्र की मूल आत्मा मानता है। गाँधी जी के विचारों में लोक सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। बिना लोक के राष्ट्र की कल्पना करना भी बेमानी होगी। गाँधी जी का सम्पूर्ण चिंतन और दर्शन लोक अर्थात ग्राम को केन्द्र में रखकर संचालित हुआ है। आज जबकि यह प्रतीत होता है कि वैश्विक धरातल पर जहाँ हम वैश्विकता और आधुनिकता के नाम पर गाँवों से दूर शहरीकरण, औद्योगीकरण व तकनीकी प्रधान समाज पर जोर दे रहे हैं वहाँ गाँधी के ग्राम स्वराज्य एवं ग्रामोद्योग की अवधारणा पर अमल करने की आवश्यकता है। गाँधी जी का मानना था कि भारत के विकास की अवधारणा और संरचना गाँवों को केन्द्र में रखकर ही विकसित की जाये तो हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। ग्राम आधारित उद्यम मुख्यत: कृषि तथा उसके सहायक लघु एवं कुटीर उद्योग भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में कुल मिलाकर देश के सम्पूर्ण विकास में गाँवों की महत्ता जिसे गाँधी जी ने अपने सर्वोदय एवं स्वराज्य संबंधी विचारों में प्रमुखता से उजागर करते हुए देशवासियों का आवाहन किया है जो आज भी ज्यों का त्यों है।

वस्तुत: गाँधी जी द्वारा ग्रामोद्योग एवं ग्राम स्वराज्य संबंधी अवधारणा के पीछे ग्रामों एवं कृषकों के देश हिन्दुस्तान के आम जन को राष्ट्र की मुख्य धारा में लाना था। लोगों में जागरूकता फैलाकर उनके श्रम के सम्पूर्ण सदुपयोग से उनकी आत्मनिर्भरता के बल पर अर्थव्यवस्था में उनका समुचित स्थान सुनिश्चित करना था। गाँधी जी ने गाँवों को भारत की आत्मा कहा और ग्रामीणों के उत्कर्षपूर्ण जीवन के लिए सदैव उत्कृष्ट, आत्मनिर्भर, आदर्शवादी, पंचायतीराज और ग्राम स्वराज्य की धारणा का प्रस्तुतीकरण किया जिसके व्यवहारिक क्रियान्वयन से ग्राम सम्पूर्ण विकास की दिशा में प्रवाहित हो सकते हैं।

वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आई तीव्र क्रान्ति के कारण 'वैश्विक ग्राम' की अवधारणा का सूत्रपात हुआ है। ऐसे में गाँधी जी के ग्राम स्वराज्य के बुनियादी सिद्धान्तों के द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम' के आदर्श को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ:-

1. मेरे सपनों का भारत; महात्मा गाँधी पृ0 88
2. 'हरिजन'; 27-2-1937

3. 'हरिजन'; 19 अक्टूबर 1937
4. मेरे सपनों का भारत; महात्मा गाँधी पृ0 89
5. हरिजन सेवक, 23 नवम्बर 1934
6. ग्राम स्वराज्य; गाँधी पृ0 84
7. हरिजन सेवक; 30 नवम्बर 1934
8. हरिजन सेवक; 29 अगस्त 1936
9. मेरे सपनों का भारत; महात्मा गाँधी पृ0 92
10. रचनात्मक कार्यक्रम पृ0 26 . 27

आश्रम पद्धति विद्यालयों के विद्यार्थियों में सांवेगिक बुद्धि, राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों से तुलना

अभिलाषा त्रिपाठी

शोध छात्रा (मनोवैज्ञानिक विभाग), का0सु0 साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या।

विद्यालय के अनेक स्वरूपों में आश्रम पद्धति विद्यालय औपचारिक शिक्षा का एक अनोखा माध्यम है, जिसके मूल में यह अवधारणा सन्निहित है कि जिस प्रकार प्राचीन काल में गुरुकुल परम्परा के आश्रम में रहकर बालक का सर्वांगीण विकास होता था, उसी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु इस प्रकार के विद्यालय की शुरूआत की गयी है। बालक का मात्र शैक्षिक उन्नयन ही उद्देश्य न होकर अपितु नैतिक, मानसिक, सांवेगिक आदि सभी प्रकार के विकास कर उसे एक सशक्त नागरिक के रूप में निर्मित करना इस आश्रम पद्धति विद्यालय का उद्देश्य है।

चूंकि समाज को प्रगति एवं विकासोन्मुखी बनाने में शिक्षा की अहम भूमिका होती है। इसी को ध्यान में रखते हुये विभाग ने एक योजना आश्रम पद्धति विद्यालय की स्थापना वर्ष 1975 में किया, जिसका मुख्य उद्देश्य समाज के ऐसे निर्धन परिवारों के छात्रों को शिक्षित एवं संस्कारित करना होता है, जो परिवार अपने बच्चों का भरण-पोषण एवं शिक्षा दिलाने में असमर्थ होते हैं। यह विद्यालय स्वयं में सरकार के शिक्षा नियमों को समाहित करते हुए शिक्षा के साथ-साथ आवासीय सुविधा को भी समाज के गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले लोगों के पाल्यों को उपलब्ध कराने में तत्पर है। समाज के वंचित वर्ग के बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा एवं आवासीय सुविधा देकर उन छात्र-छात्राओं को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने एवं एक सशक्त नागरिक के रूप में देश, समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में उनके भूमिका को दिलाने में राज्य सरकार का समाज कल्याण विभाग संकल्पित है।

कैलिगुरी (1966) में अपने एक अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर मत व्यक्त किया था कि निर्धन बच्चे जिस वन्चनायुक्त परिवेश में पलते हैं उसका उनके सांवेगिक बुद्धि जैसे व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसा ही मत पोर्टिलो (2008) ने भी अपने लिए प्रस्तुत किया था। आश्रम पद्धति विद्यालयों में गरीब घरों के बच्चे पढ़ते है इसलिए उनके माध्यमिक स्तर पर पहुँचने पर शिक्षा के प्रभाव से उनमें सांवेगिक बुद्धि की तुलना राजकीय और माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सांवेगिक बुद्धि से उपयोगी जानकारी दे सकता है।

आश्रम पद्धति विद्यालयों में कई ऐसी विशेषताएँ हैं, जो राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों में नहीं पायी जाती हैं। इन विशेषताओं के आधार पर ये विद्यालय राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों से पृथक हैं। ऐसी कुछ विशेषताऐं निम्नलिखित हैं:-

1. इस विद्यालय में ऐसे बच्चों का प्रवेश लिया जाता है जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करते हैं।
2. यह विद्यालय पूर्णत: आवासीय विद्यालय है, अर्थात छात्र/छात्रा अध्ययन के साथ-साथ यहाँ निर्मित छात्रावासों में निवास करते हैं। उन्हें शिक्षा के साथ-साथ आवासीय व्यवस्था भी नि:शुल्क प्रदान की जाती है।
3. इस विद्यालय में 60 प्रतिशत अनुसूचित जाति के बच्चे, 25 प्रतिशत पिछड़ी जाति के बच्चे तथा 15 प्रतिशत सामान्य जाति के बच्चे प्रवेश प्रक्रिया के माध्यम से चयनित होते हैं।

4. इस प्रकार के विद्यालय का शैक्षिक स्वरूप नवोदय विद्यालय की भाँति कक्षा-6 से 12 तक का होता है।
5. इस प्रकार के विद्यालय का शिक्षा, भोजन एवं आवासीय सुविधा आदि का खर्च उ0प्र0 सरकार का समाज कल्याण विभाग वहन करता है।

हमारे देश में सामाजिक तथा आर्थिक आधारों पर विभेद है। समाज में एक ऐसा वर्ग है जो गरीबी रेखा से नीचे हैं और सामाजिक रूप से पिछड़ा या दलित माना जाता है। इन परिवारों की ऐसी स्थिति नहीं होती है कि वे अपने बच्चों को उपयुक्त शिक्षा दिला सकें। वे अपने बच्चों को आवश्यक भोजन और वस्त्र दिलाने में भी प्रायः सक्षम नहीं होते हैं। अध्ययनों में पाया गया है कि ऐसी सामाजिक आर्थिक विपन्नता का बच्चों की शिक्षा पर प्रतिकूल असर पड़ता है।इसको ध्यान में रखते हुये सरकार ने ऐसे परिवारों के विद्यार्थियों की आवासीय शिक्षा जहाँ उन्हें निःशुल्क वस्त्र भोजन भी मिल सके, की व्यवस्था हेतु आश्रम पद्धति स्कूल बनाये हैं।

स्पष्ट है कि आश्रम पद्धति विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थीगण पूर्व माध्यमिक और माध्यमिक स्तर तक पहुँचते-पहुँचते अन्य माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (जो अपेक्षाकृत सक्षम एवं सम्पन्न परिवारों के हैं और जो अपने घर की हर प्रकार की सुविधाओं का लाभ पाते हैं।) के सांवेगिक बुद्धि की दृष्टि से कितने समान या भिन्न हैं।

सोलोवे और मेयर (1990) ने सर्वप्रथम सांवेगिक बुद्धि का सम्प्रत्यय दिया और बताया कि संवेग को देखने और समझने की क्षमता ही सांवेगिक बुद्धि है और आगे इन्होंने बताया कि यह एक सामाजिक बुद्धि है जो स्वयं के तथा दूसरों के संवेग को पर्यवेक्षण, विश्लेषण और प्रयोग करने की क्षमता प्रदान करती है।

गोलमैन के अनुसार- अपने तथा दूसरों की भावनाओं को पहचानने की क्षमता, स्वयं को प्रेरित करने की क्षमता, सामाजिक सम्बन्धों में भावनात्मक निरूपण ही सांवेगिक बुद्धि है।

स्किन (1998) ने अध्ययन के आधार पर बताया कि सांवेगिक बुद्धि का कार्य निष्पादन में धनात्मक सम्बन्ध है जबकि संज्ञानात्मक बुद्धि का कार्य स्थल पर कार्य निष्पादन नकारात्मक होता है।

आधुनिक समाज विज्ञानों में सांवेगिक बुद्धि को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता माना जा रहा है। अध्ययनों ने सिद्ध किया है कि किसी व्यक्ति के दिन प्रतिदिन सम्यक जीवन निर्वाह, कार्य कुशलता और सफलता को सांवेगिक बुद्धि बहुत महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। (गोलमैन-1995)

इस आधार पर वर्तमान अध्ययन प्रस्तावित किया गया जिसका मूल उद्देश्य था-

"आश्रम पद्धति विद्यालय राजकीय माध्यमिक विद्यालय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में परस्पर सांवेगिक बुद्धि के आधार पर तुलना करना।"

परिकल्पना- विभिन्न प्रकार के विद्यालयों (आश्रम पद्धति, राजकीय एवं अनुदानित) के स्वरूप में भिन्नता होने से इनमें अध्ययनरत छात्र/छात्राओं के सांवेगिक बुद्धि में अन्तर पाया जायेगा।

विधि

प्रतिदर्श- प्रस्तावित अध्ययन में तीनों विद्यालय के विद्यार्थियों के सांवेगिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन हेतु कुल 480 प्रयोज्य लिए गए, जिसमें से 160 विद्यार्थी आश्रम पद्धति के 160 विद्यार्थी राजकीय तथा 160 विद्यार्थी अनुदानित माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को लेकर प्रयोगिक अध्ययन किया गया।

मापनी- प्रस्तुत अध्ययन में एस0के0 मंगल की इमोश्नल इन्टेलीजेंस इन्वेन्ट्री का प्रयोग किया गया है। जिसमें कुल 100 पद हैं, जिन्हें हाँ अथवा नहीं पर प्रतिक्रिया देनी है। इसकी तुलना हेतु जिस मापनी से प्रदत्त संग्रहण किया गया उसमें सांवेगिक बुद्धि के चार आयामों का मापन किया जाता है। इन आयामों के नाम निम्नलिखित है-

1. आंतरिक वैयक्तिक सांवेगिक जागरूकता।
2. आन्तरवैयक्तिक सांवेगिक जागरूकता।
3. आन्तरिक वैयक्तिक सांवेगिक प्रबन्धन।
4. आन्तर वैयक्तिक सांवेगिक प्रबन्धन।

इनके अतिरिक्त मापनी से सम्पूर्ण सांवेगिक बुद्धि के लिए एक प्राप्तांक विकसित होता है।

परिणाम और व्याख्या

अध्ययन का उददे्श्य तीन प्रकार के विद्यालय के विद्यार्थियों की सांवेगिक बुद्धि और उसकी विमाओं पर प्राप्त मध्यमान प्राप्तांकों में तुलना करना था। इस प्रकार के उददे्श्य के लिए एक दिशीय प्रसरण विश्लेषण विधि ¶one way anova¼ उपयोगी मानी जाती है। अत: सांवेगिक बुद्धि मापनी की सहायता से प्रतिदर्श के सूचनादाताओं से जो प्रदत्त संग्रहीत हुआ उसका विश्लेषण इसी विधि से किया गया। इससे प्राप्त सांख्यकीय मूल्यों को तालिका संख्या एक में प्रस्तुत किया गया है।

ताालिका संख्या-1: सांवेगिक वुद्धि के आधार पर आश्रम पद्धति, राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में भिन्नता परीक्षण

क्रम संख्या	*सांवेगिक बुद्धि*	*आश्रम मध्यमान प्रा0वि*	*राजकीय मध्यमान प्रा0वि*	*अनुदानित मध्यमान प्रा0वि*	*F मूल्य*
1	आंतरिक वैयक्तिक	15.26	14.61	18.02	38.38***
	सांवेगिक जागरूकता	3.81	3.11	4.11	
2	आन्तर वैयक्तिक	14.78	14.38	15.68	5.33**
	सांवेगिक जागरूकता	3.39	3.82	3.67	
3	आन्तरिक वैयक्तिक	14.66	16.19	16.39	10.08***
	सांवेगिक प्रबन्धन	3.58	3.99	3.80	
4	आन्तर वैयक्तिक	17.27	16.02	17.18	10.09***
	सांवेगिक प्रबन्धन	2.70	3.10	2.45	
सम्पूर्ण	सम्पूर्ण सांवेगिक	61.95	61.21	67.26	19.60***
	बुद्धि	9.56	9.70	9.04	

**<.05

***<.001

तालिका में उपलब्ध सांख्यिकीय मूल्यों से ज्ञात होता है कि सांवेगिक बुद्धि और इसकी चारों विमाओं के लिए तीनों प्रकार के विद्यालयों के मध्यमान प्राप्तांकों में भिन्नता उच्च स्तर तक सार्थक थी, इससे अध्ययन की परिकल्पना पुष्ट होती है। तीनों प्रकार के विद्यालयों के छात्रों में सांवेगिक बुद्धि के विभिन्न आयामों सम्पूर्ण सांवेगिक बुद्धि के प्राप्तांकों के आधार पर परस्पर तुलना कराने पर यह पाया गया कि आन्तरिक व्यक्तिक सांवेगिक जागरूकता पद्धति विद्यालय के छात्रों में राजकीय विद्यालय के छात्रों की तुलना में अधिक थी, किन्तु अनुदानित विद्यालयों के छात्रों की तुलना में काफी कम थी। ये अन्तर सार्थक थे।

सांवेगिक बुद्धि के दूसरे आयाम (अन्तर व्यक्तिक सांवेगिक जागरूकता) की दृष्टि से भी लगभग ऐसा ही परिणाम मिला है। इनके विपरीत सांवेगिक बुद्धि के तीसरे आयाम आन्तरिक व्यक्तिक सांवेगिक प्रबन्धन के आधार पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि यह आश्रम पद्धति के विद्यालय के विद्यार्थियों में अन्य दोनों प्रकार के विद्यालयों के विद्यार्थियों से काफी कम है।

सांवेगिक बुद्धि के चौथे आयाम अन्तर व्यक्तिक सांवेगिक प्रबन्धन आश्रम पद्धति विद्यालयों और अनुदानित विद्यालयों के छात्रों मे लगभग समान पाया गया और राजकीय विद्यालय के छात्रों में अपेक्षाकृत कम पाया गया। सम्पूर्ण सांवेगिक बुद्धि के प्राप्तांक आश्रम पद्धति के विद्यालय के विद्यार्थियों और राजकीय विद्यालय के विद्यार्थियों में लगभग समान थे, किन्तु अनुदानित विद्यालयों में यह अन्य दोनो प्रकार के विद्यालयों में सार्थक रूप से अधिक था।

सांवेगिक बुद्धि के आयामों और सम्पूर्ण सांवेगिक बुद्धि के आधार पर तीनों प्रकार के विद्यालयों के छात्रों में भिन्नता सम्बन्धी परिणाम कुछ मिश्रित किस्म का है इसमें एक बिन्दु पर ध्यान दिया जा सकता है कि अनुदानित विद्यालय के विद्यार्थियों में सांवेगिक

बुद्धि और इसके चारों आयाम अपेक्षाकृत अन्य दो विद्यालयों की तुलना में अधिक पाये गये है। यह सामान्य रूप से इस बात का सूचक माना जा सकता है कि अनुदानित विद्यालय के बच्चों में सांवेगिक बुद्धि अपेक्षाकृत अधिक थी।

इन परिणामों से यह संकेत मिलता है कि आश्रम पद्धति विद्यालय के छात्रों में सांवेगिक बुद्धि अनुदानित विद्यालय के छात्रों की तुलना मे कम जरूर है, किन्तु राजकीय विद्यालय के छात्रों के लगभग समकक्ष है। इस आधार पर यह अनुमान व्यक्त किया जा सकता है कि शिक्षा से दलित, पिछड़े और निर्धन छात्रों के सांवेगिक बुद्धि में भी सुधार होता है।

निष्कर्ष– अध्ययन के परिणामों से ज्ञात हुआ कि आश्रम पद्धति विद्यालय के विद्यार्थियों के सांवेगिक बुद्धि राजकीय विद्यालय के विद्यार्थियों के लगभग समान थी। यह स्पष्ट है कि यह दोनों विद्यालयों के प्रकार राजकीय व्यवस्थाओं पर आधारित है इसीलिए इनमें समानता स्वाभाविक मानी जा सकती है। अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में अपेक्षाकृत अधिक सांवेगिक बुद्धि का पाया जाना एक विशेष परिणाम माना जा सकता है जिसकी जाँच किसी आगामी शोध अध्ययन में प्रस्तावित की जा सकती है। सन्तोष की बात यह है कि गरीब परिवारों के बच्चे जो आश्रम पद्धति विद्यालयों में पढ़ते हैं, उनकी सांवेगिक बुद्धि बहुत कम नहीं है, यह आश्रम पद्धति विद्यालयों की सार्थकता को समर्थन देता है।

सन्दर्भ सूची

1. Caliguri, J. (1966). The self concept of the poverty child . The journal of Negro Education, 35 (3), p.p. 280-282
2. Goleman D. (1995) Emotional intelligence, why it can matter move than IQ New York Bantam Books.
3. Goleman D. (1998) working with emotional intelligence New York Bantam Books.
4. Portillo, C.T. (2008), Poverty, self concept and health: Experience of Latinas Refrived from http://doi.org/101300, pp 229-242.
5. Salovey, P. Mayer J.D. & Lopes P. (2001) Measuring Emotional Intelligence as a set of abilities with MSCEIT. To be included in S.J. Lppez and C.R. Snyder (Eds) Handbook of Positive Psychology Assessment Washington D.C. American Psychological Association.

भारतीय कृषि पर व्यय की प्रकृति और संरचना

डॉ० रेनू सिंह राणा

एसोसिएट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र विभाग), एम एम एच कॉलेज, गाजियाबाद

भूमिका

कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। भारत में कृषि, सिंधु घाटी सभ्यता के समय से ही होती आ रही है। 1960 के बाद कृषि के क्षेत्र में हरित क्रांति के साथ एक नया युग आया। 2007 में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि और संबद्ध गतिविधियों (जैसे वानिकी) का हिस्सा, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 16.6% था। उस समय कुल कार्यरत श्रमिकों में से 51 प्रतिशत, कृषि में लगे हुए थे।

हाल ही में कृषि विशेषज्ञों ने कहा है कि, भारत के निम्न कृषि अभिविन्यास सूचकांक (एओआई) की स्थिति में सुधार और कृषि संकट को समाप्त करने के लिए, कृषि में अधिक व्यय की आवश्यकता है।

2020-21 में कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय का बजट 1.25 लाख करोड़ रुपये (16.20 अरब अमेरिकी डॉलर) था। सरकार ने मानसून पर कृषि की निर्भरता को कम करने और हर खेत में पानी पहुंचाने के लिए प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना लागू की है। भारत सरकार के बजट 2020 में कृषि, सिंचाई के लिए 1.2 लाख करोड़ की राशि शामिल है। योजना का लाभ लेने वाले किसान के पास अपनी जमीन और सिंचाई के पानी का स्रोत होना चाहिए।

भारत का सार्वजनिक व्यय और सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात दुनिया में सबसे कम है। कृषि में सार्वजनिक खर्च संयुक्त राज्य अमेरिका में 33 प्रतिशत और इटली में 43 प्रतिशत है, जबकि भारत में यह केवल 15 प्रतिशत है।

कृषि आदानों और समर्थन सेवाओं पर सार्वजनिक व्यय की तीव्रता ने, ग्यारह वर्षों की अवधि के भीतर तीन गुना से अधिक वृद्धि दिखाई है। इससे अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण आय बढ़ाने और ग्रामीण-शहरी असमानता को कम करने में मदद मिलेगी। विगत कुछ अध्ययनों में कृषि में सार्वजनिक व्यय के अंतर-राज्यीय आवंटन में असंतुलन देखा गया है, जिस पर भविष्य में भारतीय कृषि में समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विचार करने की आवश्यकता है।

मूल शब्द

भारतीय कृषि, अर्थव्यवस्था, सार्वजनिक व्यय, जीडीपी, सब्सिडी, प्रवृत्ति, संरचना, रोजगार

परिचय

प्रगति के स्वर्णिम अतीत पर खड़ा भारतीय कृषि क्षेत्र हमेशा देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। भारत के पास दुनिया का 10वां सबसे बड़ा कृषि योग्य, भूमि संसाधन है।

भारत में कुल 142 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर कृषि की जाती है। इसमें से 52 प्रतिशत भूमि, अनियमित सिंचाई और वर्षा पर निर्भर है।

2011 की कृषि जनगणना के अनुसार, देश की कुल जनसंख्या का 61.5 प्रतिशत, ग्रामीण भारत में निवास करता है और कृषि पर निर्भर है। उपरोक्त तथ्य स्पष्ट रूप से भारत में कृषि के महत्व की व्याख्या करते हैं।

क्षेत्र	वर्ष					
	2014–15	2015–16	2016–17	2017–18 @	2018–19 **	2019–20 ***
कृषि और संबद्ध क्षेत्रों का जीवीए	*20,93,612*	*22,27,533*	*24,96,358*	*26,70,147*	*27,75,852*	*3047187*
कुल जीवीए की प्रतिशतता	*18.2%*	*17.7%*	*17.9%*	*17.2%*	*16.1%*	*16.5%*

स्रोतः केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय, सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार

राज्य और केंद्र सरकारों द्वारा भारत में कृषि और संबद्ध सेवाओं पर राजस्व व्यय बजट अनुमान वित्तीय वर्ष 2018 में अनुमानित 4.1 ट्रिलियन भारतीय रुपये था ।

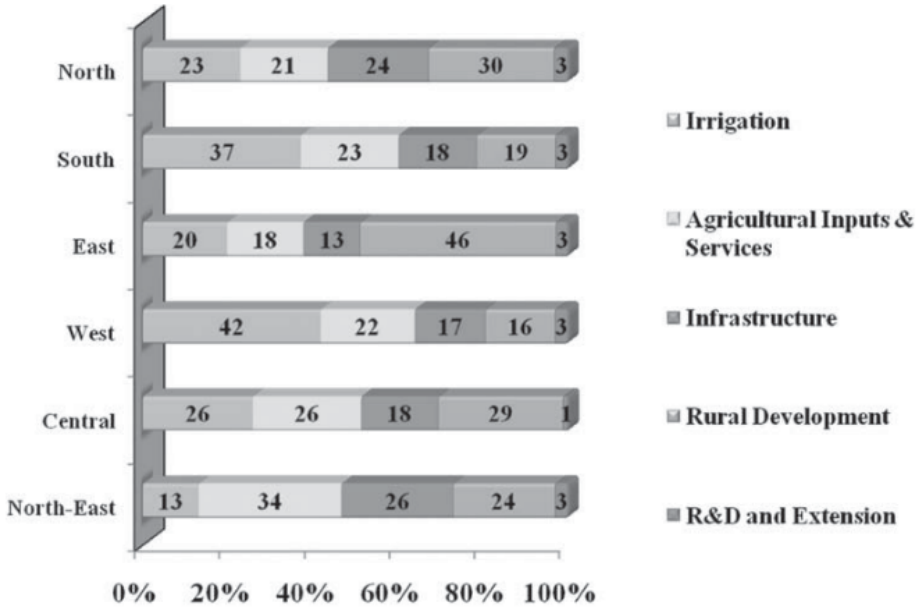

Fig. 1. Region-wise cumulative agricultural expenditure in India (percentage): 2006-07 to 2016-17

वर्ष 2019 में देश के कृषि क्षेत्र में कई हस्तक्षेप और व्यवधान देखे गए। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM&KISAN) योजना वर्ष 2019 का पहला भाग, 75000 करोड़ रुपये के रिकॉर्ड निवेश के साथ शुरू किया गया था। हालांकि, वर्ष 2019 का दूसरा भाग, इस क्षेत्र के लिए एक आपदा साबित हुआ और देश के कई हिस्सों में सूखे और बाढ़ की घटनाएं देखी गईं। इसके अलावा आर्थिक मंदी और सब्जियों; विशेष रूप से प्याज और दालों की कीमतों में वृद्धि ने, किसानों सहित उपभोक्ताओं पर बोझ को और बढ़ा दिया।

यह स्थिति मुख्य रूप से दो तथ्यों की व्याख्या करती है:

1. लोकलुभावन उपायों और प्रयासों का अर्थव्यवस्था पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ रहा है
2. जलवायु-प्रेरित आपदाओं की संवेदनशीलता को कम करने के कई उपायों के बावजूद, कृषि क्षेत्र और किसानों को नुकसान उठाना पड़ रहा है।

इस प्रकार कृषि क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए नीति बनाते समय पिछले अनुभवों को ध्यान में रखना और मौजूदा अवसरों का यथासंभव लाभ उठाना आवश्यक है।

भारत में कृषि की वर्तमान स्थिति

हाल ही में जारी आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 के अनुसार, भारतीय आबादी का एक बड़ा हिस्सा रोजगार के अवसरों के लिए अन्य क्षेत्रों की तुलना में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कृषि क्षेत्र पर अधिक निर्भर है।

आंकड़ों के अनुसार, देश में मौजूदा कीमतों पर सकल मूल्य वर्धित (जीवीए) जीडीपी में, कृषि और संबद्ध क्षेत्रों की हिस्सेदारी वर्ष 2014-15 के 18.2 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2019-20 में 16.5 प्रतिशत हो गई है, जो कि विकास प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम है।

कृषि में मशीनीकरण के निम्न स्तर के कारण कृषि उत्पादकता में कमी आ रही है। आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 के अनुसार भारत में कृषि का मशीनीकरण 40 प्रतिशत है, जो ब्राजील में 75 प्रतिशत और अमेरिका के 95 प्रतिशत से बहुत कम है। इसके अलावा, भारत में कृषि ऋण के क्षेत्रीय वितरण में भी असमानता मौजूद है।

पशुधन देश के लाखों ग्रामीण परिवारों की आय का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है। किसानों की आय दोगुनी करने के लक्ष्य को हासिल करने में इसकी भूमिका अहम है। पिछले 5 वर्षों के दौरान पशुधन क्षेत्र 7.9 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा है।

भारत कृषि उत्पादों के वैश्विक व्यापार में अग्रणी स्थान पर है, लेकिन विश्व कृषि व्यापार में भारत का योगदान केवल 2.15 प्रतिशत है। भारतीय कृषि निर्यात के मुख्य भागीदारों में अमेरिका, सऊदी अरब, ईरान, नेपाल और बांग्लादेश शामिल हैं। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों की शुरुआत के बाद से, भारत लगातार कृषि उत्पादों का निर्यात कर रहा है।

वर्तमान अशांत दुनिया में जब खाद्य संकट गंभीर रूप धारण किये हुए है, भारतीय कृषि के विकास के लिए तेजी से बढ़ती पूंजी निवेश की जरुरत और कम निवेश कृषि उप्तादन में बाधा बाधा और चिंता का एक प्रमुख कारण बनी हुई है।

यह समझना होगा कि विकास प्रक्रिया में, निवेश सबसे महत्वपूर्ण कारक है। कृषि में सार्वजनिक निवेश न केवल गरीबी में कमी लाता है, बल्कि उच्चतम आर्थिक रिटर्न और खाद्य सुरक्षा भी देता है।

कृषि निवेश में वृद्धि एक बहुत ही आवश्यक संरचनात्मक भूमिका निभा सकती है और भारतीय कृषि के विकास मार्ग में आने वाले गतिरोधों को दूर कर सकती है। इस तथ्य के बावजूद भी कृषि क्षेत्र में पर्याप्त निवेश नहीं आ रहा है।

संसाधनों को बढ़ाने और पूंजी निर्माण की गति में तेजी लाने के लिए कृषि योजनाओं में मूलभूत परिवर्तनों की आवश्यकता है। कृषि में निवेश की प्रकृति और महत्व बुनियादी ढांचे, प्राकृतिक संसाधनों में निवेश के रूप में पूंजी उत्पन्न करता है। पूंजी निवेश कृषि संसाधनों की गुणवत्ता में सुधार करता है और कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायता करता है। कई अध्ययनों ने विकास प्रक्रिया में निवेश को सबसे महत्वपूर्ण कारक के रूप में पाया है (लुईस, 1955; रोस्टो, 1960)। सरकार, निवेशक और कृषि शोधकर्ताओं की, आर्थिक विकास में निवेश के महत्व को देखते हुए विकास की विभिन्न अवधियों और चरणों के दौरान निवेश को प्रभावित करने वाले कारकों में काफी रुचि रही है। सार्वजनिक निवेश बड़े पैमाने पर नीति और धन की उपलब्धता के अनुरूप निर्धारित किया जाता है। निजी निवेश विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है, जो समय और स्थान के साथ भिन्न होते हैं।

कृषि में निवेश आमतौर पर (i) प्राकृतिक संसाधनों में वृद्धि, (ii) मौजूदा संसाधनों के उपयोग की दक्षता में वृद्धि और (iii) मूल्यवर्धन करके लंबी अवधि की क्षमता हासिल करने के लिए किया जाता है। कृषि में निवेश के माध्यम से पूंजी निर्माण, प्राकृतिक संसाधनों, औजारों और उत्पादकता के भंडार में सुधार करने में मदद करता है। इससे किसान अपने संसाधनों, विशेष रूप से भूमि और श्रम का अधिक उत्पादक रूप से उपयोग करने में सक्षम बनते हैं। इस प्रकार मौजूदा संसाधनों की उत्पादकता बढ़ाने और दीर्घकालिक विकास क्षमता को साकार करने के लिए पूंजीगत कृषि वस्तुओं का निर्माण आवश्यक है।

Table 1: Activity wise allocations of total agricultural inputs and services expenditure: all India

Activities	Public expenditure in agricultural inputs and services (Rs. Crores)		
	2006-07	2011-12	2016-17
Crop husbandry	694112	2174011	4324085
	(36.4)	(48.9)	(55.6)
Soil and water conservation	182574	305285	770834
	(9.6)	(6.9)	(9.9)
Animal husbandry	291109	659130	839220
	(15.3)	(14.8)	(10.8)
Dairy development	132214	190633	270623
	(6.9)	(4.3)	(3.5)
Fisheries	83662	163631	237359
	(4.4)	(3.7)	(3.1)
Forestry and wildlife	504522	889015	1209837
	(26.5)	(20.0)	(15.6)
Plantation	483	1163	1120
	(0.03)	(0.03)	(0.01)
Marketing and quality control	16138	59022	121954
	(0.8)	(1.3)	(1.6)
Total	1904814	4441890	7775033
	(100)	(100)	(100)

Note: Figures in parenthesis indicates percentages
Source: Computed by authors

साहित्य में पूंजी निर्माण, कृषि विकास और गरीबी उन्मूलन के बीच संबंध बहुत अच्छी तरह से व्यक्त किया गया है। गरीबी उन्मूलन पर कृषि विकास के सकारात्मक प्रभाव को देखते हुए, पूंजी निर्माण की भूमिका को विकास नीति के परिप्रेक्ष्य में अच्छी तरह से रखा गया है। पूंजी निर्माण पर अनुसंधान की कुछ प्रमुख नीतियाँ हैं, जिन्होंने विकास नीति ढांचे (एफएओ 2004) में इस भूमिका को तेज किया है।

सार्वजनिक निवेश कृषि उत्पादन, कृषि व्यवसाय, ग्रामीण गैर-कृषि रोजगार और कम खाद्य कीमतों में सुधार के माध्यम से ग्रामीण गरीबी को कम करता है। निवेश और प्रत्यक्ष प्रभाव के बीच अक्सर एक लंबा अंतराल होता है। कृषि अनुसंधान, शिक्षा और ग्रामीण बुनियादी ढांचे में निवेश अक्सर कृषि विकास और गरीबी में कमी को बढ़ावा देने में सबसे प्रभावी होते हैं।

कृषि उत्पादकता का तुलनात्मक विश्लेषण:-

1. पूर्वी एशियाई देशों द्वारा कृषि पर भारी खर्च, उनकी उच्च फसल पैदावार में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, एशिया में 4,225 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की तुलना में भारत में कुल अन्न उप्तादन केवल 3,282 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है।
2. एशियाई क्षेत्र के भीतर, पूर्वी एशिया अनाज का सबसे बड़ा उत्पादक है। यहाँ उपज 6,237 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है।
3. चीन (औसत भूमि जोत आकार 0.6 हेक्टेयर) में औसत जोत भारत की तुलना में कम है, फिर भी यहाँ फसल उत्पादन भारत की तुलना में बहुत अधिक है।
4. इस तरह प्रति हेक्टेयर उपज में, भारत पूर्वी एशिया से काफी पीछे है। भारत और चीन के तुलनात्मक आंकड़े निम्न तालिका में वर्णित हैं।

	चीन (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)	*भारत (किलोग्राम प्रतिहेक्टेयर)*
दाल	1815	704
अनाज	6296	3282
सब्जी	25546	15451

कृषि बजट

पिछले 10 वर्षों में देश के कृषि बजट में काफी वृद्धि हुई है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक पिछले दस साल में देश का कृषि बजट 11 गुना बढ़ा है। सरकार के मुताबिक वर्ष 2009-10 में कृषि बजट 12000 करोड़ रुपये था, जो आज 1.34 लाख करोड़ रुपये पर पहुंच गया है।

कृषि क्षेत्र के बजटीय आवंटन को देखते हुए कहा जा सकता है कि फसल बीमा और न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी महत्वपूर्ण योजनाओं के लिए आवंटित वित्त में काफी कमी आई है।

कृषि में सब्सिडी

सब्सिडी एक प्रकार का अनुदान है। कृषि क्षेत्र में दी जाने वाली सब्सिडी का मुख्य उद्देश्य उत्पादकता बढ़ाना, ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना है। सरकार द्वारा किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं, वे इस प्रकार हैं:-

- प्रत्यक्ष सब्सिडी
- अप्रत्यक्ष
- **प्रत्यक्ष सब्सिडी:**- प्रत्यक्ष सब्सिडी के तहत वे अनुदान होते हैं, जिनके माध्यम से कृषि क्षेत्र में उपयोगी चीजों को बढ़ावा दिया जाता है। इसके लिए इसकी कीमत कम की जाती है। इसके लिए बजट में प्रत्यक्ष सब्सिडी के तहत प्रावधान किया जाता है, यह खाद्य और उर्वरक सब्सिडी के रूप में दिया जाता है। प्रत्यक्ष सब्सिडी का उद्देश्य सीधे किसान को सब्सिडी का लाभ देना है।

उदाहरण

- प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (डीबीटी)
- एमएसपी का निर्धारण
- किसानों की कर्जमाफी
- **अप्रत्यक्ष सब्सिडी:**- अप्रत्यक्ष सब्सिडी उपभोक्ताओं या किसानों को अप्रत्यक्ष रूप से दी जाती है, इसके तहत उत्पाद बनाने वाली कंपनी को सब्सिडी दी जाती है ताकि उत्पाद कम कीमत पर बेचा जा सके और किसानों को भी इसका लाभ मिले।

उदाहरण:-

- सिंचाई उपकरणों में सब्सिडी
- बिजली के उपकरणों में सब्सिडी
- कीटनाशकों में सब्सिडी

सरकार की ओर से किसानों को कृषि मशीनरी पर 40-50 प्रतिशत सब्सिडी मिलती है।

भारत में कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सब्सिडी के माध्यम से कृषि में पूंजी और तकनीकी निवेश किया जाता है।

साल 2020 में अमेरिका अपने 20 लाख किसानों को 51.2 अरब डॉलर (3.58 लाख करोड़ रुपये) की सब्सिडी दे रहा है. एक अमेरिकी किसान को औसतन 17.88 लाख रुपये की सब्सिडी मिलेगी। इसे अब तक की सबसे बड़ी कृषि सब्सिडी माना जा रहा है।

भारत फिलहाल 14 करोड़ किसानों को करीब 2.35 लाख करोड़ रुपए (34 अरब डॉलर) की सब्सिडी दे रहा है। एक भारतीय किसान के लिए मात्र 16821 रुपये की सब्सिडी का प्रावधान है।

कृषि ऋण

कृषि ऋण प्रवाह वास्तव में सरकार द्वारा बैंकों को दिया गया लक्ष्य है। बैंक को ऐसे सभी जरूरतमंद किसानों को सस्ते दर पर अल्पकालीन ऋण देना होता है। आरबीआई की गाइडलाइंस के मुताबिक यह पूरी तरह से बैंक पर निर्भर है। लेकिन यह किताबी बात ज्यादा है। इस कृषि ऋण प्रवाह का लाभ जरूरतमंदों को ठीक से नहीं मिल पाता है। सच तो यह है कि 30 से 40 प्रतिशत छोटे और सीमांत किसानों को ही बैंकों से ऐसी मदद मिलती है और इस क्रेडिट सिस्टम में बैंक ज्यादातर सक्षम लोगों की मदद करते हैं।

वर्ष 2019-20 में कृषि ऋण प्रवाह का लक्ष्य 13.5 लाख करोड़ निर्धारित किया गया था। जबकि लक्ष्य के अलावा कुल 13,92,469.81 करोड़ रुपये का वितरण किया गया। वहीं वित्तीय वर्ष 2020-21 में इस लक्ष्य को बढ़ाकर 1,500,000 करोड़ रुपये कर दिया गया, जबकि नवंबर, 2020 तक कुल 9.75 लाख करोड़ रुपये का वितरण किया जा सका, जो लक्ष्य का लगभग 65 प्रतिशत था।

नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट (NABARD) के आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2016-17 में बैंकों के माध्यम से कुल 10, 65, 755.67 रुपये ऋण वितरित किए गए, जिनमें से केवल 50.14 प्रतिशत यानी 5, 34, 351.43 रुपये ही छोटे और सीमांत किसानों को प्राप्त हो सके। । जबकि 2017-18 में 11, 62, 616.98 का ऋण वितरित किया गया था और केवल 49.93 प्रतिशत यानी 5, 80, 457.42 रुपये छोटे और सीमांत किसानों को उपलब्ध थे। 2018-19 में, 12, 54, 762.20 रुपये (अनंतिम) के ऋण वितरित किए गए और केवल 49.90 प्रतिशत यानी 6, 26, 087.53 (अनंतिम) छोटे और सीमांत किसानों को उपलब्ध थे।

कृषि क्षेत्र की चुनौतियां और समस्याएं

- अतीत में, कृषि क्षेत्र से संबंधित भारत के नीति निर्माताओं ने मुख्य रूप से कृषि उत्पादन बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया है, जिसने कभी भी किसानों की आय बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित नहीं किया है।
- हरित क्रांति को अपनाने के बाद पिछले पचास वर्षों के दौरान भारत के खाद्य उत्पादन में 3.7 गुना वृद्धि हुई है, जबकि जनसंख्या में 2.55 गुना वृद्धि हुई है। लेकिन किसानों की आय वृद्धि के आंकड़े अभी भी निराशाजनक हैं।
- ज्ञात हो कि केंद्र सरकार ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य रखा है, जो इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन यह लक्ष्य काफी चुनौतीपूर्ण माना जा रहा है.
- बढ़ते जनसांख्यिकीय दबाव, कृषि में प्रच्छन्न रोजगार और वैकल्पिक उपयोग के लिए कृषि भूमि के रूपांतरण के कारण औसत भूमि जोत में तेज गिरावट आई है। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1970-71 में औसत जोत 2.28 हेक्टेयर थी जो वर्ष 1980-81 में घटकर 1.82 हेक्टेयर और वर्ष 1995-96 में 1.50 हेक्टेयर हो गई।
- उच्च फसल उपज प्राप्त करने और कृषि उत्पादन में निरंतर वृद्धि के लिए बीज एक महत्वपूर्ण और बुनियादी कारक है। अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का उत्पादन जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण उन बीजों को वितरित करना भी है, लेकिन दुर्भाग्य से देश के अधिकांश किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीज नहीं मिल पाते हैं।
- भारत का कृषि क्षेत्र काफी हद तक मानसून पर निर्भर है, जिसमें करोड़ों किसान परिवार हर साल बारिश के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रकृति पर अत्यधिक निर्भरता के कारण कभी-कभी किसानों को नुकसान भी उठाना पड़ता है, अधिक वर्षा होने पर फसलों को नुकसान होता है और कम वर्षा होने पर फसलों को भी नुकसान होता है। इसके अलावा जलवायु परिवर्तन भी कृषि के संदर्भ में एक बड़ी समस्या बनकर उभरा है और उनके मौसम के मिजाज को बदलने में भी भूमिका निभाई है।
- आजादी के 7 दशक बाद भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि विपणन व्यवस्था गंभीर स्थिति में है। उचित विपणन सुविधाओं के अभाव में किसानों को अपनी कृषि उपज बेचने के लिए स्थानीय व्यापारियों और बिचौलियों पर निर्भर रहना पड़ता है, ताकि उन्हें फसल का सही मूल्य मिल सके।

प्रभाव

- देश के कृषि क्षेत्र में मौजूद विभिन्न चुनौतियों और समस्याओं के परिणामस्वरूप किसान परिवारों की आय कम हो जाती है और वे कर्ज के बोझ तले दब जाते हैं। अंततः उसके पास आत्महत्या करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा।
- कम और उच्च जोखिम वाली कृषि आय का किसानों के हितों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है और वे खेती छोड़ने को मजबूर होते हैं।
- यह देश में खाद्य सुरक्षा और कृषि क्षेत्र के भविष्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

मापना

- समावेशी विकास के लिए कृषि क्षेत्र एक महत्वपूर्ण खंड है और अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करता है, खासकर जब अर्थव्यवस्था अच्छा प्रदर्शन नहीं कर रही हो।
- कृषि व्यय और विकास चालकों में असमानता के मुद्दे को संबोधित किया जाना चाहिए। पशुधन और मत्स्य पालन क्षेत्र में उच्च वृद्धि के बावजूद, इन क्षेत्रों पर व्यय अपेक्षाकृत कम है। अतः पशुधन एवं मत्स्य पालन क्षेत्र के योगदान को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है कि इन क्षेत्रों पर व्यय बढ़ाया जाए।
- कृषि में अनुसंधान और विकास पर होने वाले व्यय को सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 0.40 प्रतिशत से बढ़ाकर 1 प्रतिशत किया जाना चाहिए।
- कृषि और जलवायु प्रेरित आपदाओं पर भारत की निर्भरता को देखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की "क्लाइमेट स्मार्ट विलेज" की अवधारणा के कार्यान्वयन का पूरे देश में विस्तार किया जाना चाहिए।
- कृषि क्षेत्र में निजी निवेश को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कृषि क्षेत्र से संबंधित डेटा एकत्र करने के लिए एक एजेंसी की स्थापना की जानी चाहिए। यह संस्था लाभार्थियों की पहचान, सब्सिडी के बेहतर लक्ष्यीकरण और नीति निर्माण में सहायक हो सकती है।

निष्कर्ष

भारत की लगभग 58% आबादी के लिए कृषि आजीविका का प्राथमिक स्रोत है। वित्त वर्ष 2015 में कृषि, वानिकी और मछली पकड़ने का सकल मूल्य 19.48 लाख करोड़ रुपये (276.37 बिलियन अमेरिकी डॉलर) होने का अनुमान लगाया गया था। राष्ट्रीय आय FY22 के पहले अग्रिम अनुमानों के अनुसार, कृषि और संबद्ध क्षेत्रों के जीवीए का प्रतिशत हिस्सा (वर्तमान कीमतों पर) कुल जीवीए का 18.8% है। भारत में उपभोक्ता खर्च 2021 में वृद्धि की ओर लौटेगा, जो महामारी के कारण संकुचन के बाद 6.6% पर पहुंच जाएगा। वित्त वर्ष 2011 में कृषि और संबद्ध गतिविधियों ने स्थिर कीमतों पर 3.6% की वृद्धि दर दर्ज की। भारतीय खाद्य उद्योग भारी विकास के लिए तैयार है। हर साल विश्व खाद्य व्यापार में अपना योगदान बढ़ा रहा है क्योंकि मूल्यवर्धन की अपार संभावना है, खासकर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के भीतर। भारतीय खाद्य और किराना बाजार दुनिया का छठा सबसे बड़ा बाजार है, जिसकी खुदरा बिक्री 70% है।

भारतीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग देश के कुल खाद्य बाजार का 32% हिस्सा है और भारत के सबसे बड़े उद्योगों में से एक है और उत्पादन, खपत, निर्यात और अपेक्षित वृद्धि के मामले में पांचवें स्थान पर है। वित्त वर्ष 2011 में कुल कृषि और संबद्ध उत्पादों का निर्यात 41.25 अरब अमेरिकी डॉलर रहा।

वित्त वर्ष 2018 के बजट अनुमान में राज्य और केंद्र सरकारों द्वारा भारत में कृषि और संबद्ध सेवाओं पर राजस्व व्यय 4.1 ट्रिलियन भारतीय रुपये का अनुमान लगाया गया था।

2010 और 2020 के बीच, देशों द्वारा सरकारी खर्च में कृषि की वैश्विक हिस्सेदारी में 2010 में 1.73 प्रतिशत से 2020 में 2.18 प्रतिशत की लगातार वृद्धि देखी गई। विकास दशक की पहली छमाही में हुआ, जबकि स्टॉक स्थिर रहा, बस ऊपर पिछले पांच वर्षों में 2 प्रतिशत। राष्ट्रीय शेयर व्यापक रूप से भिन्न होते हैं, कुल मिलाकर 0.02 प्रतिशत और 25 प्रतिशत के बीच।

कुल मिलाकर, यह 423 बिलियन अमरीकी डॉलर के अनुमानित सरकारी खर्च का अनुवाद करता है, जो 2010, 2020 में बढ़कर 682 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया। यह मोटे तौर पर 17 प्रतिशत और 19 प्रतिशत के बराबर है। वैश्विक कृषि मूल्य क्रमशः 2010 और 2020 में जोड़ा गया।

सन्दर्भ

1. FAO. 2012. The State of Food and Agriculture (SOFA). Investing in Agriculture for a better future. Rome. http://www.fao.org/3/i3028e/i3028e.pdf
2- International Monetary Fund. 2014. Government Finance Statistics Methodology (GFSM) 2014. Annex to Chapter 6. https://www.imf.org/external/np/sta/gfsm/
3- Pingali, P. 2011. Agricultural Growth, Technology and Poverty Reduction in India. Golden Jubilee Lecture at the Division of Agricultural Economics, Indian Agricultural Research Institute, New Delhi.
4- Rajesh, T. and Singh, A. 2020. An Economic Analysis of Agricultural Interventions under Rashtriya Krishi Vikas Yojana: A Case Study of Maharashtra. Unpublished Ph.D. Thesis, Division of Agricultural Economics, Indian Agricultural Research Institute, New Delhi.
5- Rath, N. 1989. Agricultural Growth and Investment in India. Journal of Indian School of Political Economy, 1(1): 1-19.
6- Shetty, S.L. 1990. Investment in Agriculture: Brief Review of Recent Trends. Economic and Political Weekly, 25(7): 389-398.
7- Singh, A. 2011. The changing landscape of public expenditure and investments in agriculture: Implications for growth trajectory. Indian Journal of Agricultural Sciences, 66(3): 301-313.
8- Singh, A., Pal, S. and Jha, G.K. 2015. Transitioning India's Public Expenditure in Agriculture towards Higher Growth and Equity. Indian Journal of Agricultural Economics, 70(3): 246-258.

छिन्नमस्ता की भाषिक संवेदना और स्त्री अस्मिता का प्रश्न

उपासना

वरिष्ठ शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तावना:-

आज हमारे समाज में न जाने कितनी विसंगतियाँ, बुराइयाँ, कुरीतियाँ जन्म ले रही, जिसे आसानी से दूर नहीं किया जा सकता है। स्त्री लेखिकाओं ने समाज में विशेष रूप से स्त्रियों की समस्याओं को, उपेक्षित नारियों, अशिक्षित महिलाओं उनकी दीन-हीन दशा पर, अनैतिकता, व्यभिचार, बलात्कार, वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं को कहानी एवं उपन्यासों के माध्यम से स्त्रियों की भाषा यानी उनके विद्रोही स्वर मसाज तथा परिवार में उनके अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास किया और सफलता भी प्राप्त की।

स्त्री चेतना पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करती है। इसलिए उसकी (स्त्री) चेतना का प्रभाव उसकी भाषा पर भी दिखाई देता है। स्त्री भाषा भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करती है। उसी भाशा में प्रतिरोध का स्वर बुलंद होता है। स्त्री की भाषा एवं स्त्री संघर्ष का परस्पर संबंध है। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने कहा है कि ''स्त्री के हितों की लड़ाई का उसकी भाषा के निर्माण की प्रक्रिया से गहरा संबंध है। स्त्री हितों की रखा एवं विस्तार की कोशिश जितनी तेज होंगी, स्त्री भाषा के निर्माण की संभावनाएँ उतनी ही प्रबल होंगी। स्त्री संघर्ष के बगैर उसकी भाषा और उसकी अस्मिता का निर्माण संभव ही नहीं है।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री को अपनी भाषा की आवश्यकता है, जिससे वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था से संघर्ष एवं प्रतिरोध कर सकती है और अपनी मुक्ति एवं स्वतंत्रता को हासिल कर सके।

स्त्री अस्मिता की लड़ाई स्त्री की अपनी लड़ाई है स्त्री के स्वत्वाधिकार की बात तो भारतेन्दु-युग से ही शुरू हो जाती है परन्तु स्त्री अस्मिता उत्तर आधुनिक युग की देन है। स्त्री-अस्मिता के निर्माण में स्त्री की भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है।

आज की स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था के उन तमाम नियम, कायदे, कानून, परंपरा आदि का विरोध करती है जो स्त्री की अस्मिता, मानवाधिकार स्वतंत्रता आदि के लिए व्यवधान डालते हैं। यही कारण है कि आज की स्त्री की भाषा में व्यवस्था से प्रतिरोध विद्यमान है। प्रभा खेतान ने कहा है कि ''अतीत में स्त्री ने विरोध की भाषा नहीं सीखी थी। पर आज की स्त्री सही मायनों में प्रतिरोध की भाषा समझती है।''

भाषा केवल मानव की निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं होती अपितु वह परिवार, समाज, इतिहास, संस्कृति और भाषाई अस्मिता, उसके गौरव और उसके भावी विकास की पथप्रदर्शक भी होती है। अस्मिता का अर्थ पहचान है और भाषाई अस्मिता से तात्पर्य है विशिष्ट भाषा बोलने वालों की पहचान प्रत्येक व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत विशेषता है। उनमें से भाषा भी एक है।

व्यक्तित्व के निर्माण के दौरान स्वतंत्रता, आत्मविश्वास, सहयोग प्रतिद्वन्दवादिता, आक्रामकता और नेतृत्व की भावना आदि का निर्माण होता है। भाषा के द्वारा उसकी सोच व्यक्ति की मन: स्थिति का पता लगाया जा सकता है। व्यक्ति के पूरे जीवन काल में अस्मिता के निर्माण में भाषा का ही योगदान है।

प्रभा खेतान की भाषिक संवेदना:-

संवेदना से तात्पर्य उस प्रतिक्रिया से है जो मनुष्य या किसी भी जीव के बाहरी दुनिया के प्रभावों के प्रति व्यक्त होता है। इस दृष्टि से देखें तो मनुष्य के भावात्मक परिप्रेक्ष्य में घटित होने वाली सारी बातें भावना के दायरे में आती है। हमारा सुखी होना, दुखी होना, क्रोधित या कृपालु होना, ईर्ष्या-द्वेष की अभिव्यक्ति सभी इसी संवेदनाओं से परिचालित होते हैं। प्रभा खेतान के उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि उनकी भाषिक संवेदना ही है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि तथा गहरी सम्वेदना के कारण ही एक नयी स्त्री को भाषा के माध्यम से ही गढ़ती है।

छिन्नमस्ता की भाषिक सम्वेदना:-

छिन्नमस्ता की कथा के माध्यम से लेखिका सम्पूर्ण स्त्री की व्यथा को अपने गहरी सम्वेदना के माध्यम से वाणी देने का प्रयास किया है। अपनी विश्वव्यापी यात्राओं के क्रम में प्रिया को यह मालूम होती है कि यूरोप और अमेरिका जैसे सम्पन्न और विकसित समाजों में भी नारी की दशा शोचनीय ही बनी हुई है। जूड़ी जो नीदरलैण्ड रहने वाली मनोवैज्ञानिक प्रिया की मित्र है- प्रिया के पश्न पर वह है कि- ''जिंदगी जीने के लिए अपनी लड़ाई लड़नी पड़ती है। यदि व्यवस्था के बाहर कदम बढ़ाती है तो उसे ज्यादा बड़ी कीमत पड़ेगी... जानती हो इतिहास, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान सब तो पुरूश ने ही लिखा है, यह चाहे-पूरब हो या पश्चिम और सच कहूँ तो परिवर्तन किस को अच्छा लगेगा खास कर उसे जिसे सदियों से इतनी सुविधा गमिली हों।

सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण के परिदृश्य में प्रभा जी सामाजिक समस्याओं में नारी की भूमिका को बहुत ही गहरी सम्वेदना के साथ व्यक्त किया है- ''छिन्नप्रस्ता का मिथक प्रिया जैसी संवेदनशील आधुनिक नारी के लिए बहुत सार्थक हैं, जो इस मन: स्थिति में ही अपनी लहूलुहान जिंदगी को दोबारा जीती हैं। वह अपना कटा सिर हाथ में लेकर पुरूष समाज से संघर्ष कर रही है। छिन्नमस्ता की प्रिया एक स्थान पर कहती है- औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए खेतों में काम करते हुए या फिर सारे भोग ऐश्वर्य के बावजूद पलंग पर रात-रात भर अकेले करवटें बदलते हुए, हजारों सालों से ये आँसू बहते आ रहे हैं।

छिन्नमस्ता में मारवाड़ी उद्योगपतियों के आन्तरिक जीवन का यथार्थ भी विश्वसनीयता पूर्ण प्रस्तुत किया गया है। इस समाज में स्त्री की नियति चाहे वह पुरानी पीढ़ी की हो या नई पीढ़ी की मूक बनकर पीड़ा भोगने या पर पीड़न से जुड़ी है। इसी के साथ मारवाड़ी उद्योगपतियों के पारिवारिक जीवन घुटन, उनके मानसिक पिछड़ेपन, मूल्यगत अन्तर्विरोध आदि का विश्वसनीय और सजीव अंकन किया गया है। छिन्नमस्ता एक ऐसी स्त्री की व्यथा-कथा है जो एक रूढ़ बन्द समाज में अपने अस्तित्व को नये सिरे से परिभाषित करने की कोशिश कर रही है। इस उपन्यास में प्रिया का चरित्र एक सशक्त स्त्री का है जो स्वयं को सदियों से शोषित पीडिघ्त नारी की पंक्ति से अलग करने में समर्थ होती है। वह समान और परम्परा के जड़ मूल्यों को चुनौती देती हुई एक अलग पहचान बनाती है। प्रभा खतान का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास छिन्नमस्ता ही माना जाता है। उपन्यास की नायिका 'प्रिया' के प्रति उनकी गहरी सम्वेदना दिखाई देती। सम्वेदना इस स्तर पर है कि उपन्यास में कहीं जगह पर आत्म कथ्यात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है। प्रिया के पति नरेन्द्र का मित्र कहता है कि- नरेन्द्र तुम्हारे प्रति मालिकाना भाप रखता है, वासतव में विवाह की सारी व्यवस्था ही इस भाव पर आधारित है और जहाँ स्त्री की चेतना विकसित होने लगती है वहीं यह व्यवस्था चरमराने लगती है। फिर स्वयं प्रिया के द्वारा प्रभा जी कहती है कि- संवेदना, दोस्ती, प्यार, सब पारस्परिक होते हैं, मलिक गुलाम पर दया कर सकता है, मगर प्यार नहीं। और अन्त में यह भी कहती है कि उस करोड़पति घर में मुझे पैसे-पैसे का देना पड़ता था।

निष्कर्ष:-

प्रभा खेतान ने स्त्री की नियति के एक दूसरे पहलू को परिभाषित करने की कोशिश की है। स्त्री को लेकर उनके पास कुछ बोध प्रश्न और निष्कर्ष है जो इस उपन्यास में गहरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त हुआ है। प्रभा जी का मानना है कि विवाह, पति, बच्चे आदि से परे भी औरत का अस्तित्व है। स्त्री का जीवन सिर्फ और सिर्फ पुरूष की तलाश नहीं उसकी अपनी भी सार्थकता है।

प्रभा खेतान की कृतियों की विषय वस्तु स्त्री अस्मिता के विविध सन्दर्भो को अपनी सम्वेदना के द्वारा व्यक्तह करना या एक प्रकार से स्त्री भाषा का निर्माण करना है। इनकी भाषा भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों का मिला-जुला रूप है। भाषा पात्रा नुफूस

एवं प्रसंगानुकूल है। इनकी रचनाओं तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का प्रयोग मिलता है। आधुनिक एवं प्राचीन मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है। मैं शैली का प्रयोग किया गया है जिसमें स्वयं लेखक उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र देता है। जो अन्य पात्रों तथा पाठक के साथ एक सीधा संवाद स्थापित करता है।

प्रभा खेतान की सम्वेदना भी अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देती है। उनके सम्वेना का स्तर मानव जगत से लेकर पशु जगत तक फैला है। सम्वेदना और शिल्प के माध्यम से ही प्रभाखेतान एक अलग प्रकार की स्त्री भाषा निर्मित करती है।

संदर्भ सूची-

1. नगदीश्वर चतुर्वेदी- स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ0 278
2. प्रभा खेतान- उपनिवेश में स्त्री, पृ0 111
3. प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता, पृ0 13
4. प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता, पृ0 16
5. डॉ0 रेखा अग्रवाल- प्रभा जी के उपन्यास, पृ0 91
6. गोपाल राय- हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ0 384

नव-इतिहासवाद

पंकज कुमार गुप्ता

प्रवक्ता (इतिहास), पी.पी.एन. इन्टर कॉलेज कानपुर

नव इतिहासवाद एक ही साथ साहित्यिक आलोचना की एक मुख्य प्रवृत्ति, सांस्कृतिक अध्ययन की परिष्कृत पद्धति और सर्वोपरी ऐतिहासिक विश्लेषण का एक कारगर तरीका है। साहित्यिक आलोचना की नव इतिहासवादी प्रवृत्ति पूर्णत: ऐतिहासिक मान्यताओं पर आधारित होती है, जबकि सांस्कृतिक अध्ययन की पद्धति के रूप में यह क्रियाशील संस्कृति का ऐतिहासिक अध्ययन करता है। वस्तुत: नव इतिहासवाद एक अवधारणा की अपेक्षा पद्धति अधिक है, जो इतिहासकारों को इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, साहित्य और कला की परम्परागत अनुशासन की सीमाओं को अवक्रमति करने का अवसर प्रदान करता है। जाहिर है कि नव इतिहसावाद अध्ययन की अन्तरनुशासनात्मक पद्धति है, जिसमें भाषा और साहित्य का प्रयोग इतिहास संस्कृति, राजनीति, संस्थाओं, वर्गों और स्त्री-पुरुषों के सामाजिक संदर्भों तथा भौतिक आधारों के निरूपण के लिए किया जाता है। जाहिर है कि नव-इतिहासवाद परम्परागत इतिहास लेखन की लीक से पूरे तौर पर अलग हटकर हैं जिसने साहित्य लेखन के क्षेत्र में नए आयामों का उद्घाटन कर इतिहास में सर्वत्र नवीन विषय क्षेत्रों की खोज की है। गैर परम्परवादी इतिहास होने के कारण इसकी प्राय: आलोचना भी की जाती है, परन्तु अध्ययन पद्धति के नए रूपों और इतिहास के नए क्षेत्रों की खोज इतिहास लेखन की नव इतिहासवादी धारा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अत: इसकी मुख्य विशेषताओं का विवेचन और इतिहास लेखन में इसकी अवधारणाओं का मूल्यांकन समीचीन होगा।

साहित्यिक पाठ्यों से ऐतिहासिक सूचनाएँ संग्रहित करना अथवा ऐतिहासिक अध्ययन में साहित्यिक पाठ्यों का उपयोग कोई नवीन बात नहीं है। प्राचीन भारत का इतिहास मुख्य रूप से साहित्य पर ही आधारित है। नव इतिहासवाद की प्रमुख विशेषता साहित्यिक पाठयों के ऐतिहासिक अध्ययन की नवीन तकनीक का आविष्कार है। प्रमुख नव इतिहासवादी लेखक लुईस-ए-मन्त्रोज (Louis-A-Montrose) ने इस नवीन तकनीक के आविष्कार की व्याख्या करते हुए लिखा है कि इतिहास की उत्तर संरचनावादी प्रवृत्ति के रूप में साहित्यिक अध्ययन की दो परस्पर संबद्ध अवधारणाओं का विकास हुआ, जिसे पाठ्घ्यों की ऐतिहासिकता और इतिहास की पाठ्यता के रूप में जाना जाता है। पाठ्यों की ऐतिहासिकता का तात्पर्य सांस्कृतिक सरोकारों या संबद्धता का निरूपण किया जाना है। यहाँ महत्व उन पाठ्यों का नहीं है अपितु उन सरोकारों का है, जो पाठ्य के सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों का होता है अर्थात् किसी भी साहित्य अथवा पाठ्य के विवरण की क्या सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ है। उसकी खोज पाठ्यों की ऐतिहासिकता कहलाती है। इतिहास की पाठ्घ्यता का मतलब यह है कि हमारे पास अध्ययन किये जाने वाले समाज के पूर्ण एवं विश्वसनीय अतीत को जानने के लिए पाठ्य का अध्ययन अति महत्वपूर्ण हो जाता है। इतिहास की पाठ्यता का अर्थ विषयीकरण के विभिन्न रूपों की अन्त निर्भरता की खोज है। इसमें एक और व्यक्ति को चेतना और क्रिया के पहलकर्ता के रूप में रेखांकित किया जाता है तो दूसरी ओर सामाजिक अधिरचना के अन्तर्गत उस अव्यक्ति की अवस्थिति को चिन्हित किया जाता है। इस प्रकार व्यक्ति के विचार और व्यवहार का अध्ययन सामाजिक सांस्कृतिक सदनों में किया जाना ही इतिहास की पाठयता है, जिसमे अध्ययन किया जाने वाला पाठ्य इतिहासकार को व्यक्ति और इनकी सामाजिक सांस्कृतिक सत्ता के संबंधों को जानने का साधन जुटाता है।

नव-इतिहासवाद की मुख्य विशेषताओं के रूप में साहित्यिक पाठ्यों के प्रति इसका दृष्टिकोण, इतिहास से इसकी अवधारणा, इतिहास से वंचित तबको में उसकी गहरी अभिरुचि और पाठ्यों के उपयोग की इसकी अवधारणा है। साहित्य की स्वतंत्र सत्ता मानने की परम्परागत अवधारणा को चुनौती देते हुए नव इतिहासवाद दृढतापूर्वक यह घोषित करता है कि साहित्य की कोई अपनी निजी

स्वायत्तता नहीं होती। साहित्यिक पाठ्य भी समाज के अन्य सभी पाठ्घ्यों की तरह एक पाठ्य है अर्थात् वैदिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक अथवा राजनीतिक पाठ्घ्यो की भाँति साहित्य भी एक ऐसा पाठ्य है, जिसका अन्य पाठ्यों के साथ घनिष्ठ अर्न्तसम्बन्ध होता है। इन पाठ्यों के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। एक का उपयोग करते समय दूसरे की अनदेखी नहीं की जा सकती। नव इतिहासवाद के अनुसार इतिहास न तो साहित्य को समझने की पृष्ठभूमि है और न ही साहित्य इतिहास की अभिव्यक्ति है। इतिहास सही अर्थों में साहित्यिक पाठ्य का सांस्कृतिक संदर्भ है। यह अनेक प्रकार की सांस्कृतिक रचना के बीच जारी हर सवाद का या चल रहे परिसंवाद का एक अभिन्न हिस्सा है। इस तरह साहित्यिक पाठ्य और इतिहास इन दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। नव इतिहासवाद साहित्य में विद्यमान इतिहास अर्थात् क्रियाशील संस्कृति का अध्ययन है।

नव इतिहासवाद की गहरी दिलचस्पी उन तथा कथित निम्न वर्गों की क्रियाशील संस्कृति को जानने में है, जो भारतीय और परम्परागत इतिहास लेखन में स्थान पाने से वंचित रह गए। यह गौरतलब है कि इतिहास लेखन की एनल्स धारा अथवा सरचनावादी पद्धति भी भौतिक संस्कृति के आधार पर संस्कृतियों की संरचना के स्थिरीकृत अध्ययन माध्यम से समाज के निम्न तबकों के इतिहास को जानने की चेष्टा करता है। नव इतिहासवाद इस संरचनावादी चेष्टा का अगला पड़ाव है, जिसमे साहित्यिक पाठ्यों के ऐतिहासिक विश्लेषण के माध्यम से निम्न वर्गों की क्रियाशील संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार विशाल और शास्त्रीय इतिहास लेखन से नव इतिहासवाद तक की यात्रा इतिहासलेखन के क्षेत्र में वृहत इतिहास से लघु इतिहास से क्लफोर्ड ग्रीत्ज जैसे सांस्कृतिक और नृतत्वशास्त्रियों को अध्ययन करने में मदद मिलती है। सांस्कृतिक नृतत्वशास्त्रियों में मानव व्यवहार के विविध पक्षों और इसके प्रेरक इरादों के सूक्ष्म विवरणों के विश्लेषण के जरिये साहित्यिक पाठ्यों के पुर्नपठन का कार्य प्रारम्भ करता है और इसके आधार पर सूक्ष्म विवरणों को प्राप्त करने तथा उनका अन्तर अनुशानात्मक प्रविधि से ऐतिहासिक विश्लेषण करने में समर्थ होता है। स्टेफेन ग्रीनगलाट ने इस पद्धति का अध्ययन करते हुए 16वीं सदी में क्रियाशील अफ्रीकी संस्कृति का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है।

नव इतिहासवाद को इतिहास के ऐसे नए क्षेत्रों के अनावरण और सर्वेक्षण का श्रेय दिया जाता है जहाँ तक परम्परावादी इतिहासकार नहीं पहुँच पाते थे। सी0 फिन्ड ने मेकवेथ के ऐतिहासिक अध्ययन के जरिए हिंसा और अपराध की प्रवृत्ति का ऐतिहासिक अध्ययन किया। ऐतिहासिक आधार पर उसने यह बतलाने की कोशिश की कि एक नारी के शरीर तथा बेमेल से विवाह और यौन सम्बन्धों के ऐतिहासिक विश्लेषण के जरिए महिलाओं की अपराधी मनोवृत्ति का विद्वतापूर्ण अध्ययन किया जा सकता है। वस्तुत: पाठ्यों का पठन तथा पुर्नपठन और उससे प्राप्त सूक्ष्म विवरणों के विश्लेषण में नव इतिहासवादी अन्तर अनुशासनात्मक पद्धति का अनुसरण करते हैं और इसके माध्यम से साहित्यिक पाठ्यों के बिल्कुल ही नए और ताजे निष्कर्ष की प्राप्ति की जा सकती है, जो अब तक परम्परावादी इतिहासकार की पहुँच से बाहर रही है।

फोकाल लुई, अलथुसर और मिखाइल वरली ने सत्ता और साहित्यिक अन्त सम्बन्धों के विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति की अन्त चेतना और कार्यों के प्रेरक तत्वों को खोज निकालने की कोशिश की। उसका अनुसरण किसी युग विशेष में समाज के सत्ता सम्बन्धों के निर्धारण में है। ये सामाजिक सम्बन्धों को शक्ति समझते है। समाज मे व्याप्त अवधारणाएं, विधि, परम्परा, प्रतिरोध के तत्व और सामाजिक स्तरों के श्रेणीक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ज्ञान और शक्ति की अवधारणा मानव मूल्य और सहज सामान्य मानवीय व्यवहार इन्हीं सामाजिक सत्ता सम्बन्धों के आधार पर निर्धारित होती है। सत्ता सम्बन्ध के विधि रूप साहित्य के तत्कालीन या समकालीन साहित्य में अभिव्यक्ति होते है। नव इतिहासवादी साहित्य की ऐतिहासिक आलोचना के माध्यम से युद्ध विशेष में समाज की भौतिक संस्कृति का अनुसंधान समाज के विभिन्न तबको के खान-पान, जीवन स्तर व्यवहार और प्रथाओं का पता देती है और इस प्रकार साहित्य के ऐतिहासिक विश्लेषण के माध्यम से काल विशेष में अवस्थित समाज की समग्र क्रियाशील संस्कृति का पता लगाया जा सकता है। जिसक निर्माण में उन निम्न तबकों का भी भारी योगदान होता है, जिन्हें अब तक इतिहास में उचित स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। विशेष तौर पर महिलाए जो किसी भी समाज की प्राय: आधी आबादी होती है। पारम्परिक इतिहास लेखन में स्थान पाने से वंचित रही है। इतिहास लेखन की नव-इतिहासवादी पद्धति नि:संदेह भौतिक संस्कृति के निर्माण में नारियों की भूमिका को रेखांकित कर इतिहास काल को समर्थ बनाती है। यही कारण है कि 20वीं सदी के अन्तिम दो दशको के दौरान नारीवादी आन्दोलन ने नव इतिहासवाद से काफी शक्ति और प्रेरणा प्राप्त की है।

दरअसल नव-इतिहासवाद एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप में व्यवस्था विरोधी बनकर सामने आया। 20वीं सदी के 70 दशक में पुनर्जागरण कालीन साहित्य के विश्लेषकों या समालोचकों के बीच यह काफी लोकप्रिय हुआ। इंगलिश रोमान्टिक युग में साहित्यिक समालोचना में राजनीतिक अध्ययन को प्रोत्साहित किया गया। अंग्रेजी रोमासवाद और पुनर्जागरणकालीन साहित्य के

समालोचकों के संक्षिप्त प्रयास से सिद्धान्त तथा अवधारणाओं के आधार पर यह विश्लेषित किया जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित इस नव इतिहासवादी आन्दोलन का प्रभाव अमेरिकी समालोचकों पर भी पड़ा और इस तरह एक नये ऐसे एजेन्डे पर साहित्यकारों ने काम करना प्रारम्भ किया जिसका उद्देश्य साहित्यिक समालोचना के माध्यम से सांस्कृतिक भौतिकवाद की खोज को अपना अभीष्ट मानता है। यह मार्क्सवादी और संरचनावादी इतिहासलेखन से एक कदम आगे इस रूप में कि न केवल समाज के विभिन्न स्तरों की भौतिक संस्कृति बल्कि मानवीय चेतना और प्रवृतियों को जानने की इसमें एक नई समझ पैदा कर दी। परिणामत: हिंसा की प्रवृत्ति, अपराध, यौन संबंध, सत्ता के अधिकार और उसके अधीन मनुष्य का व्यवहार और उसकी सोच जैसी इतिहास अध्ययन के क्षेत्र में अब तक बिल्कुल ही अज्ञात और नए क्षेत्र का इतिहासलेखन सम्भव हो सका।

नव इतिहासवाद की कई आधारों पर आलोचना भी की जाती है। नव इतिहासवाद की यह मान्यता है कि इतिहास का सर्वाधिक प्रमुख निर्माण कार्य सत्ता और भौतिक संस्कृति की होती है। प्राय: आलोचना का विषय रहा है। यही मार्क्सवादी की भी शिकायत है कि नव इतिहासवाद भौतिक संस्कृति पर आधारित होते. हुए भी समाज के उत्पादक वर्गों के इतिहास की खोज निकालने के लिए उतना अधिक समर्थ नहीं हुआ जितना कि मानवीय प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने के लिए। दूसरी ओर गैर मार्क्सवादी और परम्परावादी इतिहासकारों की शिकायत यह है कि नव इतिहासवाद सही अर्थों में इतिहास लेखन है ही नहीं यह साहित्यिक समालोचना की पद्धति है न कि इतिहास लेखन की नव इतिहासवाद पर लगाए गए इन आरोपों के बावजूद यह स्वीकार करना होगा कि इसने इतिहास की एक नई समझ पैदा की है। यह गैर पारम्पारिक इतिहास लेखन होने के बावजूद अतीत के ऐसे क्षेत्रों में पहुँचने का कारगर तरीका है जहाँ तक पारम्परिक इतिहासकार कभी नहीं पहुँच पाये। यह इतिहासकार की समझ ऐतिहासिक पाठ्यों की अर्थात् साहित्य के पठन और पुर्नपठन का एक ऐसा तरीका सुझाता है जिसके जरिये भविष्य में भी इतिहास के नये नये क्षेत्रों के उद्घाटन करने की सम्भावना बनती है। जाहिर है कि नव-इतिहासवाद इतिहास के नए क्षितिजों का या आयामों का सफलतापूर्ण उद्घाटन करता है और विश्व के प्रति एक नई दृष्टि पैदा करती है।

संदर्भ :

1. इतिहास की पुनर्व्याख्या रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन एम0एन0 श्रीनिवास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
3. आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास- सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
4. इतिहासकार के मतान्तर- मुबारक अली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. आधुनिक विश्य- कालूराम शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
6. भारतीय इतिहास एक पुनर्विचार रामशरण शर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.
7. भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद डॉ० रामविलास शर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली.

रघुवीर सहाय के काव्य में ''नेता'' की अवधारणा

पंकज सिंह

हिन्दी साहित्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तावना:

रघुवीर सहाय का काव्य संकलन 'आत्महत्या के विरुद्ध' अपनी राजनीतिक टिप्पणियों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें लोकत्रांत्रिक विसंगतियों पर तीखा कटाक्ष किया गया है। स्वतंत्रता के बाद लोगों को अपने राजनेताओं से बहुत उम्मीदें थीं, लेकिन अभी ज्यादा समय नहीं बीता था कि जनता को कटु यथार्थ का सामना करना पड़ा। जिन लोगों से उम्मीद की गई थी कि वे देश को एक बेहतर नेतृत्व प्रदान करेंगे, वही संदिग्ध हो गए।

रघुवीर सहाय ने अपने समय में जनप्रतिनिधियों के चरित्र और आचरण को बहुत नजदीक से देखा था। पत्रकार होने के नाते उन्हें तमाम राजनीतिक-सामाजिक घटनाओं का कवरेज करना होता था। किन्तु उनका 'कवरेज' पूरी संवेदनशीलता के साथ होता था। सहाय उन घटनाओं से आत्मीय रूप से जुड़ जाते थे। अगर वे देखते थे कि राजनीतिक-सामाजिक स्तर पर अन्याय, अराजकता एवं शोषण के कारण कोई घटना घटी है, तो वे उसके पूरी तह में जाकर जानकारी इकट्ठा करते और समाचार पत्रों में उसके खिलाफ आवाज उठाते।

सहाय की यही संवेदनशीलता और घनीभूत होकर उनकी कविताओं में व्यक्त होती थी। वे अपने तीखे एवं धारदार व्यंग्यों के जरिए भ्रष्ट नेताओं, अराजक सरकारों एवं शासन की गलत नीतियों पर प्रहार करते थे। सफेदपोश नेताओं की असलियत से सहाय अच्छी तरह वाकिफ थे। वे जानते थे कि बहुत सारे जनप्रतिनिधि ऐसे हैं जिनके लिए देश और जनता सिर्फ और सिर्फ फायदे के साधन हैं। 70-80 के दशक तक आते-आते राजनीति में भाई-भतीजावाद, अपराधीकरण, भ्रष्टाचार एकदम बढ़ चुका था।

'आत्महत्या के विरुद्ध' नामक काव्य संकलन में रघुवीर सहाय ने अपनी कई कविताओं में नेताओं के दोहरे चरित्र और उनकी बेईमानी पर गहरा व्यंग्य किया है।

मंत्री बेईमानी और भ्रष्टाचार के बावजूद अपने पद पर बना रहता है। उसके रसूख और बल के आगे सारी न्यायिक-वैधानिक शक्तियाँ कमजोर हैं। 'देश' उनके लिए आस्था एवं श्रद्धा का विषय नहीं, बल्कि धन एवं शक्ति प्राप्त करने का स्रोत है। शासन-प्रशासन का दुरूपयोग एवं अपना हित साधना उनकी मूलप्रवृत्ति में है। सहाय की एक प्रसिद्ध कविता है- 'फिल्म के बाद चीख । इसमें नेताओं की अक्षमता एवं काहिली पर जबर्दस्त व्यंग्य किया गया है। एक उदाहरण इस संदर्भ में उल्लेखनीय है

''दस मंत्री बेईमान और
कोई अपराध सिद्ध नहीं
काल रोग का फल है अकाल अनावृष्टि का
यह भारत एक महागद्दा है प्रेम का
ओढ़ने-बिछाने को, धारण कर
धोती महीन सदानंद पसरा हुआ।''[1]

दरअसल स्वतंत्रता के पूर्व जिस तरह के नेता होते थे, अब वैसे नहीं रहे। पहले अपने हित की परवाह शायद ही किसी नेता और क्रांतिकारी को रही हो। परतंत्र भारत में नेतृत्व के इतने ऊँचे-ऊँचे आदर्श होते थे कि आज उसकी कल्पना करना भी कठिन लगता है। आज के जनप्रतिनिधियों से उस समय के नेताओं या स्वदेशप्रेमियों की तुलना करने पर बड़ी भयावह तस्वीर उभरती है। वर्तमान में धन और पूँजी के लिए राजनीति की जा रही है। गुंडे, माफिया, हत्यारे आदि विधानमंडलों में सुशोभित हैं। जहाँ पहले के नेता एवं क्रांतिकारी अपने देश के लोगों की भलाई के लिए ब्रिटिश हुकमत से टकराकर अपनी जान देते थे, वहीं आज के नेतागण अपने स्वार्थों की खातिर अपने ही लोगों की जान लेने से भी नहीं हिचकते।

अब 'नेतृत्व' की वह मिसाल नहीं दिखती । त्यागमय जीवन का आदर्श पृष्ठभूमि में चला गया है। राजनीतिक संस्थाओं में बैठे लोग एक-दूसरे से इस तरह तालमेल बैठाए हुए हैं कि सब कुछ एक संगठित गिरोह सा दिखता है।

जनता के कल्याण के लिए न तो समुचित नीतियाँ बन रही हैं और न ही उनके क्रियान्वयन की कोई योजना। जनप्रतिनिधियों को अपने क्षेत्र के बारे में ही कोई खास जानकारी नहीं है। जनता की समस्याओं से सम्बन्धित मुद्दे उनकी कार्यसूची से लगभग बाहर हैं। जो व्यक्ति अकूत धन खर्चकर, उचित-अनुचित साधनों का इस्तेमाल कर चुनाव जीता है, वह अपने धन का दोहन सत्ता के द्वारा जरूर करना चाहेगा।

वास्तव में एक प्रकार के नेतृत्वविहीन शासन तंत्र से लोगों का सामना हो रहा है। नेताओं, मंत्रियों एवं जनप्रतिनिधियों को देश की गरीबी, बेकारी एवं अशिक्षा से कुछ लेना-देना नहीं। उन्हें अपने हित से मतलब है। वे जनता की इस कमजोर नब्ज को भली-भांति जानते-पहचानते हैं कि जाति-उपजाति, धर्म, सम्प्रदाय के आधार पर बँटी जनता फिर पाँच साल बाद उन्हें चुन लेगी। 'चुनावी इंतजाम' कर देने के बाद जीत की संभावना बन ही जाएगी।

सहाय की एक कविता है- 'दो अर्थ का भय'। इसमें उन्होंने राजनेताओं की अकर्मण्यता और जनता के प्रति उनकी उदासीनता को बड़े सशक्त ढंग से दिखाया है -

''मैं अभी आया हूँ सारा देश घूमकर
पर उसका वर्णन दरबार में करूँगा नहीं
राजा ने जनता को बरसों से देखा नहीं
यह राजा जनता की कमजोरियाँ न जान सके इसलिए मैं
जनता के क्लेश का वर्णन करूँगा नहीं इस दरबार में।''[2]

वास्तव में सच तो यह है कि इन भ्रष्ट नेताओं के तंत्र के आगे अच्छे, ईमानदार एवं चरित्रवान लोगों, कार्यकर्ताओं एवं स्वयंसेवकों आदि की कुछ चल नहीं पाती। ऐसा नहीं है कि ईमानदार एवं कर्त्तव्यनिष्ठ नेतृत्व का एकदम से अभाव है या वे हैं ही नहीं। वे हैं जरूर, किन्तु उनकी संख्या इतनी अत्यल्प है कि उगँलियों पर गिनी जा सकती है। बहुमत में वे हैं जो भ्रष्ट, बेईमान एवं काहिल हैं। यही सत्ता पर काबिज हैं। सत्ता और शक्ति की बागडोर प्रायः इन्हीं हाथों में केन्द्रित रहती है। यदि कोई ईमानदार जननेता इनके काले कारनामों के खिलाफ आवाज उठाता है तो यह वैसे ही होता है जैसे नक्कारखाने में तूती।

सहाय ने अपनी एक कविता 'मेरा प्रतिनिधि' में बहुमत वाले भ्रष्ट नेताओं के सामने ईमानदार एवं कर्मठ नेतृत्व की 'अपराजित' मनोदशा को दिखाया है। हालाँकि बेईमान नेताओं की सभा के आगे इस ईमानदार नेतृत्व का कोई वजूद नहीं दिखता, लेकिन वह अपने चरित्र और व्यक्तित्व पर अडिग है और इस स्थिति में उसे पराजित करना इतना आसान भी नहीं है-

'हंसी है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सउस्य की यथा

पर फिरी मेरी मृत्यु से डराकर चिंचियाकर
कहती है
अशिव है अशोभन है मिथ्या है।'[3]

वस्तुत: यदि सहाय के समय की राजनीतिक दशाओं की आज की स्थिति से तुलना की जाए तो पता चलता है कि वर्तमान में समस्या कहीं और अधिक गमभीर हो गई है। न केवल आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं की संख्या बढ़ी है, बल्कि भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद आदि जैसी कुप्रवृत्तियाँ भी पहले के मुकाबले काफी बढ़ गई हैं।

2004 के मुकाबले 2009 में कहीं ज्यादा संख्या में दागी जनप्रतिनिधि संसद में पहुँचे हैं। अभी हाल में ही सुप्रीम कोर्ट ने दागी सांसदों के आपराधिक मामलों के संदर्भ में केंद्र और राज्य सरकारों को नोटिस भेजा है। इस संदर्भ में 'दैनिक जागरण' नामक समाचारपत्र की टिप्पणी उल्लेखनीय है- ''यह स्वागतयोग्य है कि सुप्रीमकोर्ट ने डेढ़ सौ से अधिक सांसदों के खिलाफ लम्बित आपराधिक मामलों पर न केवल चिन्ता जताई, बल्कि केन्द्र और सम्बन्धित राज्य सरकारों को नोटिस भी जारी किए। 2004 के आम चुनावों के मुकाबले 2009 में कहीं अधिक संख्या में दागी सांसदों का निर्वाचन यह बताता है कि राजनीतिक दल राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के मामले में तनिक भी गम्भीर नहीं हैं और इस संदर्भ में उनके दावे हाथी के दिखाने वाले दाँत की तरह हैं।[4]

सहाय तत्कालीन गंभीर परिस्थितियों में लोहिया को एक महत्त्वपूर्ण नेता मानते थे। लोहिया इस संदर्भ में उनके आदर्श थे। लोहिया के नेतृत्व-कौशल पर भरोसा किया जा सकता था। लोहिया पर उनका विश्वास विवेक सम्मत था। लोहिया ने सहाय को बौद्धिक और रागात्मक स्तर पर बहुत समृद्ध किया। सहाय लोहिया से खासे प्रभावित थे। उन्होंने लिखा भी है- ''समाज व्यवस्था और उसके अवयवों की पहचान करने में लोहिया जिस तरह एक खोजी की तरह लगे हुए थे, वही मेरे लिए बौद्धिक और रागात्मक चेतना का सहारा बनी, क्योंकि वह न तो बुद्धि को दास बनाती थी और न भाषा को पारिभाषिक शब्दावली।''[5]

सहाय को लोहिया का व्यक्तित्व त्यागमय लगता था। उनकी दृष्टि में लोहिया एक निर्भीक, कर्मठ एवं ईमानदार जननेता थे। वे अपनी बातों को सरकार के सामने कहने से कभी सकुचाते नहीं थे। सहाय ने लोहिया के नेतृत्व से काफी कुछ सीखा। यदि लोहिया सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से सक्रिय थे तो सहाय भी एक साहित्यिक कार्यकर्ता के रूप में अपना काम कर रहे थे। वे अपनी रचनाओं के जरिए पढ़े-लिखे लोगों की संवेदनाएँ गरीबों, मजलूमों एवं शोषितों के प्रति जगा रहे थे।

भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था एवं चरित्रहीन राजनेताओं के खिलाफ जनमत बनाने का कार्य सहाय की कविताएँ बखूबी करती हैं। जनता के दु:ख-दर्द और नेताओं की कुटिल गतिविधियों को देखकर इनके प्रति मन में प्रतिकार का भाव उठता है। प्रसिद्ध कथाकार और रघुवीर सहाय के मित्र रहे मनोहर श्याम जोशी का पर्यवेक्षण इस संदर्भ में एकदम सटीक एंव उचित है-

''हाँ आखिरी दम तक रघुवीर वही रघुवीर था जो कलाकार होने के
नाते मार-तमाम लोगों की भीड़ से नफरत कर सकता था लेकिन सो
भी इसलिए कि उसके मन में उस भीड़ की हर इकाई के लिए गहरी
चिन्ता, उसकी गरिमा के प्रति अतिरिक्त सजगता और अपना एक अलग
ही ढंग का अपनापा भी था।''[6]

वास्तव में लोहिया जैसे नेतृत्व की दरकार हर काल और परिस्थिति में रहती है। वर्तमान में राजनीतिक दशा तो और भी बदतर है। एक-दो नेता के ईमानदार प्रयास भी ढंग से शुरू हए तो एक कारवाँ बन जाने की उम्मीद की जा सकती है। किन्तु यदि ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ नेतृत्व पराजय-बोध से भर उठेगा तो मुश्किलें बढ़ेगी। आज देश में इस कदर भ्रष्टाचार व्याप्त है कि ऊपर से नीचे तक किसी पर भी भरोसा ही नहीं किया जा सकता। सरकार की कथनी-करनी में फर्क साफ नजर आता है। इसी संदर्भ में रघुवीर सहाय की कविताएँ प्रासंगिक हो उठती हैं। नेताओं, मंत्रियों, विधायकों एवं जनप्रतिनिधियों पर किए गए उनके धारदार व्यंग्य बड़े सार्थक लगते हैं। देश की लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में कहीं कोई बदलाव नहीं हुआ है। स्थितियाँ तब से आज तक लगातार बिगड़ी हैं। वर्तमान राजनीतिक स्थितियों को समझने एवं भ्रष्टाचार की गहराई मापने के लिए ''दैनिक जागरण' की सम्पादकीय टिप्पणी देखना ठीक होगा।

''प्रधानमंत्री ने राज्यपालों के सम्मेलन में जिस तरह देश को यह भरोसा दिलाने की कोशिश की कि भ्रष्टाचार के खिलाफ निर्णायक कार्रवाई का समय आ गया है, उससे कहीं न कहीं उसकी विवशता भी झलकती है, क्योंकि आम जनता इस मामले में कथनी-करनी का अंतर साफ तौर पर देख रही है।''[7]

सन्दर्भ सूची:

1. रघुवीर सहाय, रचनावली-1, 'फिल्म के बाद चीख', सं0-सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000, पृ0 117.
2. वही, 'दो अर्थ का भय', पृ0 156.
3. वही, 'मेरा प्रतिनिधि', पृ0 110.
4. दैनिक जागरण, सम्पादकीय, 06 नवम्बर 2011, लखनऊ संस्करण, पृ0 10.
5. रघुवीर सहाय, रचनावली-1, सं0- सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000, पृ0 145.
6. रघुवीर सहाय: रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003, पृ0 111.
7. दैनिक जागरण, सम्पादकीय, 01 नवम्बर 2011, लखनऊ संस्करण, पृ0 10.

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में आधुनिकता के महावृत्तांतों एवं विचारधाराओं का अंत

उमेश कुमार यादव

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित् विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0

मनोहर श्याम जोशी जी ने 'कुरू-कुरू स्वाहा' में आधुनिकता के महावृत्तांतों एवं विचारधाराओं के अंत को भी दर्शाते हुए उत्तर आधुनिकता की ओर अभिसरण किया है। इस उपन्यास में उन्होंने मार्क्सवादी खलीक के 'अंत' के माध्यम से आधुनिक महावृत्तांतो के अंत को प्रस्तुत किया है। मार्क्सवाद प्रमुख आधुनिक महावृत्तांत अथवा विचारधारा है एवं खलीक उसका प्रतिनिधि चरित्र है। खलीक के असाधारण वामपंथी प्रारम्भिक स्वरूप को चित्रित करते हुए उपन्यासकार लिखता है कि-"मैला फटा पायजामा और उल्टी पहनी हुई खादी की मैली गंजी। चेहरे पर दाढ़ी की कुछ हफ्तों से बढ़वार दाँ पता नहीं कब से साफ नहीं किए हुए।" मार्क्सवाद विचारधारा से संलिप्त यही खलीक आधुनिकता के अगले चरण उत्तर-आधुनिकता में आकर अपने अन्य मित्रों-सहयोगियों की तरह सुविधाभोगी बनकर बुर्जुआ गिरी के खेमे में आ जाता है। उपन्यासकार लिखता है कि-"खलीक मियाँ की आज यह हैसियत है कि प्रोजेक्ट इनके इर्द-गिर्द बनाये जाते हैं। तरक्की पसन्द है इसलिए इनका भाव बराबर तरक्की पर है। सुना है चार लाख लेते हैं इन दिनों एक फिल्म लिखने का।" इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वृद्ध पूँजीवाद संस्कृति की ओर अग्रसर होकर आज हर वृतांत एवं विचारधारा विलुप्त होती जा रही है। इसी विश्वव्यापी तर्क की ओर प्रवाहित होकर महावृत्तांतों का अंत हो रहा है।

मनोहर श्याम जोशी के 'कुरू-कुरू स्वाहा' उपन्यास में अभिजात्यवादी, सुरूचिपूर्ण एवं सुसंस्कृत आधुनिकतावादी सौंदर्यशास्त्र का होम हुआ है। उनके इस उपन्यास में आधुनिकतावाद की तरह स्तरीकरण नहीं है बल्कि उत्तर आधुनिकतावादी विचारधारा के अनुरूप यहाँ सब कुछ स्वीकार किया गया है और वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना की गई है। 'भदेस', 'अश्लील', प्रकृत और 'देशीय', के प्रति आधुनिकतावाद के उपेक्षा पूर्ण रवैये का त्यागकर के उन्हें प्रस्तुति योग्य माना गया है। आधुनिकतावादी नीतिशास्त्र जिन्हें हेय दृष्टि से देखता है, उन सभी योजनाओं के प्रति उपन्यासकार में कोई हीन भाव नहीं है। अप्रस्तुति योग्य की प्रस्तुति इस उपन्यास में उपन्यासकार ने अपने ऊपर लगने वाले अनेक आरोपों की परवाह न करते हुए की है। भदेसपन, घटियापन और अश्लीलता के आरोपों की परवाह न करते हुए उपन्यासकार एक जगह लिखता है कि-"हैंगिंग गार्डन की एक पगडंडी की रेलिंग पर झुकी हुई खड़ी थी वह। अभिसार भंगिमा, समझे ना! उल्टे हुए नगाड़ों से नितम्बों से लेकर सावन की घटाओं-से उसके खुले केशों तक एक सरपट निगाह डाली मैंने। पिछवारे से ही पहचान गया। अगनवाड़ा-पिछवाड़ा सब गोया उसका अपने ही ढंग का था, यूनिका।"

मनोहर श्याम जोशी 'कसप' उपन्यास में प्रेम की विफलता का चित्रण मिलता है, जो प्रेम की आधुनिकतावादी पाठ को व्यंजित करता है, परन्तु फिर भी उपन्यासकार उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण करते हुए बार-बार इस प्रेम कथा को विखण्डित करने की कोशिश पूरी कथा के दौरान करता रहता है। कभी वह नायिका के द्वारा स्वयं नायक के समक्ष संदेह प्रस्तुत करता है और कभी उपन्यास के अंत में नायक के हाहाकरी रूदन से विखण्डन करता है-"प्रेम कालजयी होने का एक दुस्साहसी पर कुल मिलाकर दयनीय यत्न है। कोई कितना भी कैसा भी यत्न कर ले, काल हमेशा से प्रेमजयी रहा है।" इस प्रेम कहानी में उपन्यासकार ने जिस

प्रेम का चित्रण किया है उसकी शुरूआत ही अभिजात्य रूमानी रमणीक प्रदेश के विपरीत टट्टी में शौच क्रिया के दौरान होती है। जो कि आधुनिक अभिरूचि के अनुसार यह भदेस ओर अप्रस्तुति योग्य का प्रस्तुतिकरण है। इस प्रस्तुतिकरण को उचित ठहराते हुए मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं कि-"अब नायक-नायिका के प्रथम साक्षात्कार का वर्णन करना है मुझे और किंचित संकोच में पड़ गया हूँ मैं। भदेस से सुधी समीक्षकों को बहुत विरक्ति है। मुझे भी है थोड़ी-बहुत। यद्यपि मैं ऐसा भी देखता हूँ कि भदेस तथ्य मृत्यु से आँखे चुराना चाहते हैं। जो हो, यहाँ सत्य का आग्रह दुर्निवार है। यदि प्रथम साक्षात्कार की बेला में कथा नायक अस्थाई टट्टी में बैठा है तो मैं किसी भी साहित्यिक चमत्कार से उसे ताल पर तैरती किसी नाव में नहीं बैठा सकता।" इससे स्पष्ट है कि-"सत्य के दुर्निवार आग्रह पर बल देने के कारण वह आधुनिकता के तत्व 'सत्य की एक वाचनात्मकता का तिरस्कार करते हुए अपने उत्तर आधुनिक वैचारिक दर्शन के अनुरूप इस कथा में प्रेमारम्भ एक टट्टी में शौच क्रिया हेतु बैठे नायक से करता है। और सत्य की एक वाचनात्मकता को भंग कर भदेस की सृष्टि करते हुए उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण करता है। इस प्रेम कथा में जोशी जी ने प्रेम की आधुनिकतावादी रूमानियत और मध्यकालीन रीति-भाव को जगह-जगह खंडित करते हुए एक उत्तर-आधुनिक प्रेम कथा को प्रस्तुत किया है। इस प्रेम कथा में जब नायक डी0डी0 अपनी नायिका बेबी को छोड़कर अमेरिका जाने लगता है तब नायिका बेबी पहले की प्रेमिकाओं की भाँति आँसू टपकाते हुए विनीत भाव से अपने प्रेमी को रोकने का प्रयास नहीं करती बल्कि अपने प्रेमी को यौन क्रीड़ा करने का आमंत्रण देती हुई नग्न होकर बिस्तर पर लेट कर उससे कहती है कि-"जो तू मेरा मरद है तो आ भोग लगा ले मेरा। जाकर कह दे मेरे इजा बाबू से शादी तो हो ही गई थी गणनाथ में चतुर्थी कर्म भी हो गया बल यहाँ। और अब मैं कही नहीं जा रहा अमेरिका। यहीं रहूँगा दिल्ली में।.....जो तूँ मेरा मरद न हो, खाली वैसे ही मरद हो तो भी आ और शकुन कर जा रे लाटे।" नारी के अस्मितावादी विमर्श में नारी की देह मुक्ति के रूप को प्रस्तुत करता हुआ, अप्रस्तुति की प्रस्तुति को संभव कर नायिका बेबी का यह कथन निश्चय ही आधुनिकता की पराकाष्ठा पर पहुँचकर उत्तर-आधुनिकता को स्पर्श करता है। प्रेम की किसी भी रूप, रंग-ढंग को अपनी खिलंदड़ी में खेल बनाते हुए जोशी जी इस प्रेम कहानी में आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण करते हुए प्रेम की पुरानी परिभाषा को बदल देते हैं। वे लिखते हैं कि-"बौद्धिक प्रेमी के लिए यह कल्पनातीत है कि कोई प्रेमिका किसी प्रीति-चिन्ह को दही में मसलकर भांगे का नमक मिलाकर चटखारे ले-लेकर चाट जाये, उदस्थ कर जाये। यह कैसा प्यार भला? नायक है लाटा। अरे यह शुरूआत है। जब पराकाष्ठा पर पहुँचेगा प्यार, तब नायिका तेरा चुराकर दिया नींबू क्या, स्वयं तुझे दही नमक से खा जाएगी। भक्षण प्रेम का अंतिम चरण है। कितना तो प्यारा लग रहा होता है-चूहा, बिल्ली को। जिस समय वह पंजा मार रहीं होती है.....उस पर।" स्पष्ट है कि जोशी जी ने स्त्री और प्रेम दोनों को ही इस प्रेम कहानी में स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है जो कि अपने आप में विशिष्ट है इसका वर्णन करते हुए वे भदेस से भदेसतम हो जाते हैं, जिसका पारंपरिक आधुनिकतावादी सौंदर्यशास्त्र से मूल्यांकन करना असम्भव है। जैसे-उनका यह प्रेम चित्रण अवलोकनीय है-"खैर कुछ तो विनोदी प्रकृति होगी ही उसकी कि नायक-नायिका तब पकड़े गए जब वे कुछ नहीं पेशाब कर रहे थे एक दूसरे को देखते हुए दिखाते हुए, उस सुरम्य पवित्र स्थल पर। वैसे विधाता के विनोदी स्वभाव का परिचय देने के लिए क्या यही पर्याप्त नहीं कि उसने मल निष्कासन और क्रीड़ा के लिए अलग-अलग अंग बनाना अनावश्यक समझा।"

मनोहर श्याम जोशी जी का 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' उपन्यास आधुनिकतावादी एक पाठीयता और तर्क की सार्वजनीयता की एक और उत्तर-आधुनिक कैथार्सिस है। जो मनोहर श्याम जोशी की सतत् जागरूकता, सर्जनशीलता के प्रमाण और परिणाम स्वरूप नये कलेवर में पाठकों के समक्ष 'कुरू-कुरू स्वाहा' और कसप के अनन्तर प्रस्तुत हुई है। मनोहर श्याम जोशी ने इस उपन्यास में हरिया की हैरानी के द्वारा आधुनिक पूँजीवाद सामाजिक संरचना में विकसित हो रही दमघोटूं तर्कसम्मत-विज्ञान सम्मत यांत्रिकता, संत्रास बोध और निर्जीवता का एक प्रत्याखान निर्मित किया है जो किसी भी कीमत पर आधुनिक समाज के 'लौह बंदीगृह' से हैरानी-कहानी और बिरादरी को मुक्त करना चाहता है। इस उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी जी आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर अभिसरण करते हुए उत्तर आधुनिकता के तत्व तर्क संगत, वस्तुगत ज्ञान-अज्ञान एवं साहित्य के कथित भेद को हरिया के जरिये मिटा दिया है। साहित्य को जिसे आधुनिकतावादियों ने समाज का दर्पण मान रखा है वे सब अंतत: उपन्यासों में व्यक्त गूमालिंग के मिथ को ढूंढते-खोजते 'दर्पण' में ही समा जाते हैं। हरिया की तरह ही वे गायब हो जाते हैं। जोशी जी द्वारा प्रस्तुत हरिया की यह कथा पोजटविस्ट सम्प्रदायों को ध्वस्त करती हुई उत्तर-आधुनिक एक बहुलवादी पाठ को निर्मित करती है। इस कथा में बिरादरी के लोगों द्वारा अपने-अपने स्तर पर देरिदाई 'विभेद' और 'स्थगन' के जरिये हरिया की हैरानी नई व्याख्यायें प्रस्तुत की जाती हैं।

इस प्रकार इसमें कथा के भोलेपन का अंत होता है और पाठों-उपपाठों की नई श्रृंखला के द्वारा लेखक का अंत प्रस्तावित होता है। इसकी कहानी में पूँजी (पिटार), काम (लिंग, गूमालिंग) और विभक्त-अविभक्त चित्र के भेद मिटा दिये गये है। इसमें 'गूमालिंग' के अर्थ और उसकी व्याख्या के कई संस्करण जैसे-रायसैप, हेमुली, कौमुदी त्रिपाठी आदि मिलते हैं। अतएव इस उपन्यास में हरिया की कहानी के अनेक पाठ मिलते हैं। इस उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर अभिसरण करते हुए हरिया के रूप में उपन्यास में क्लासिक धीरोदात्त चारित्रिक नायक के बिम्ब को विखण्डित किया है और एक उत्तर आधुनिक सीजोफ्रेनिक नायक की सृष्टि की है। उन्होंने इस उपन्यास में कफ, थूक, अटके हुए मल, मुर्दा-क्रिया-कर्म और इन सबके ऊपर 'गू' को कथानक के केन्द्र में स्थापित करते हुए अभिजात्य सौंदर्यशास्त्र को एक बार फिर से ध्वस्त किया है। इस उपन्यास में उनके द्वारा किया गया इन वीभत्स विषयों का चित्रण उत्तर आधुनिक खिलंदड़ी की वजह से और जो 'अप्रस्तुति की प्रस्तुति' को सम्पन्न करता है।

मनोहर श्याम जोशी जी ने अपने 'हमजाद' उपन्यास में आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की और अभिसरण करते हुए मानव भीतर छिपी हुई अच्छाइयों, शुभ एवं देवत्व की आधुनिकतावादी अवधारणा को खंडित किया है। इस उपन्यास में आदमी की इंसानियत मर गयी है और उसके अन्दर का निकृष्टतम कमीनापन प्रदर्शित किया गया है। इस उपन्यास में आधुनिक पूँजीवादी भोगवाद के द्वारा मानव को केन्द्रस्थ कर एक शोषण विहीन समतावादी समाज की आधुनिकतावादी स्वप्न को भंग किया गया है। जिससे आधुनिकता की मुक्ति-परियोजना एक 'छलना' प्रमाणित हो जाती है। उपन्यासकार मनोहर श्याम जोशी जी ने 'हमजाद' उपन्यास में आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण करते हुए आधुनिक 'अतिमानव' के विचार की एण्टी थीसिस प्रस्तुत की है, और एक ऐसे नायक की सृष्टि की है जो पारम्परिक धीरोदात्त वीरोचित नायक की तुलना में अपनी चेष्टाओं और कार्यो की वजह से परम अधम एवं तुलना में अपनी चेष्टाओं और कार्यों की वजह से परम अधम एवं निम्नतम कोटि का है और इस प्रकार इस उपन्यास में वे आधुनिकतावादी 'मर्देकामिल' को ध्वस्त करते हुए उपन्यास के पाठ और आस्वादन में ऐसी वीभत्स एवं जुगुप्सा के भाव पैदा करते हैं जो निश्चित रूप से उत्तर आधुनिकता की परिणतियाँ हैं। इस उपन्यास में जो अफसाना प्रस्तुत किया गया है वह कितना सच और कितना झूठ है, यह न तो लेखक जान पाता है और न पाठक को ही कुछ पता चल पाता है। इस उपन्यास की कथा में तखतराम अपने लिए एक सम्मानजनक अतीत की रचना करते हुए एवं अपनी निरीहता और कमजोरियों के लिए कारणों का पता लगाते हुए अपने सारे दुर्भाग्य और धिक्कार के लिए टी0के0 को जिम्मेदार मानता है। लेकिन टी0के0 का लड़का जयदेव तखतराम के इस स्वनिर्मित सम्मानजनक अतीत का रेशा-रेशा उखाड़ता हुआ उसे असत्यवादी सिद्ध करता है और उस पर एक मरे हुए आदमी को बदनाम करने और जीवित आदमी को ब्लैकमेल करने के लिए घिनौने झूठ गढ़ते जाने के कमीनेपन का आरोप लगाते हुए उसे अपनी इस निहायत बेशर्मी की हरकत के लिए 'डूब मरने' की सलाह देता है-वह तखतराम से कहता है कि-"तखतराम! अपने सबसे नजदीकी लोगों के बारे में इतना झूठ अफसाना लिखने से पहले ही तुम चुल्लू-भर स्याही में ही क्यों न डूब मरे? तुमने कोई सच्चाई बयान नहीं की है बल्कि मेरे पापाजी और अपनी माँ-बहनों के आगे तुम जो एहसासे कमतरी महसूस करते रहे उसी का एक घिनौना नमूना पेश किया हैं" इस प्रकार इस उपन्यास में कोई एक सच सामने न आते हैं। पूरे उपन्यास के पठन के दौरान पाठक यह निर्णय नहीं कर पाता कि वह टी0के0 के कमीनेपन को तखतराम की बर्बादी का कारण माने या तखतराम के लिजलिजेपन को उसके पतन का वास्तविक कारण माने। टी0के0 का कमीनापन, उसकी हैवानियत, तखतराम से उसके द्वारा किया गया ब्लैकमेल, इन सभी की सत्यता उपन्यास के अफसाने में संदिग्ध है। इसके फलस्वरूप उपन्यास में न तो सत्य या यथार्थ का कोई एकान्वित निरूपण सामने आ पाता है और न ही पाठ में कोई एकरैखिक आधुनिकतावादी कथा रच पाती है। इसमें मानवीय नैतिक गुणों से युक्त आधुनिक नायक की अवधारणा विखण्डित हुई है और पाठ में लेखक के लिए भी कोई स्थान शेष नहीं है। पाठ की अपनी इच्छानुसार व्याख्या करने के लिए स्वतंत्र पाठक ही इसमें अंतिम रूप से जीवित रह जाता है। बाकी लेखक, नायक अथवा सच की एकाश्मिक स्थितियाँ सब कुछ यहाँ ध्वस्त होकर उत्तर आधुनिक खंडहरनुमा सूरत में विद्यमान है। उत्तर आधुनिकतावादी प्रवृत्ति के अनुरूप लेखक ने इस सम्पूर्ण उपन्यास में उपर्युक्त सभी परस्पर विसंगतिपूर्ण और विडंम्बनात्मक घटनाओं, चरित्रों और यथार्थ में कोई आपसी संगति और सामंजस्य तलाश करने का प्रयत्न एकदम नहीं किया है वरन इन सभी को एक दूसरे को छुद्र और कमीना सिद्ध करने के लिए आजाद कर दिया है।

मनोहर श्याम जोशी जी ने अपने 'क्याप' उपन्यास में क्याप के बहाने फिर से एक उत्तर आधुनिक मेटाफिक्शन सृजित किया है जहाँ ज्ञानोदय के सर्वसत्तावादी तर्क को नंगा करते हुए, उससे जूझते हुए स्वप्न देखने को पुनः सहज बनाने की कोशिश की गई

है। इसमें आधुनिकता की प्रबोधन परियोजना और उसके सारे मुक्ति विमर्श अपने समस्त खोखलेपन और अंतर्विरोधों के सहसा सतह पर आ जाने के कारण जैसे क्याप ही हो जाते हैं। 'क्याप' में उपन्यासकार अपने आत्म अभिमान के द्वारा आज की आधुनिक और उत्तर औपनिवेशिक सामाजिक-स्मृति की जाँच-पड़ताल करता है परन्तु यह पड़ताल उसे अवांछित उद्देश्यों और दुर्योगों की तरफ ले जाती है जहाँ उपन्यासकार के सारे स्वप्न क्याप अर्थात् गड़बड़ हो चुकने की नियति की ओर अग्रसर हैं। उपन्यासकार एक समतामूलक, वर्णविहीन, समृद्ध समरस भारत का स्वप्न देखता है परन्तु उसके स्वप्न को सार्थक कर सकने वाले सारे प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से 'ढिणमिणण भैरव रहस्य कांड' नजर में प्रत्येक तरह का विचार और यंत्र निरर्थक है। चिरपरिचित आधुनिकतावादी औजार जैसे-प्रेम और क्रांति भी कथाकार की प्रयोगशाला में स्पष्ट रूप से रद्द कर दिये जाते हैं। जिससे उपन्यास की कथा 'सिनिकल' हो जाती है उत्तर आधुनिक तेवर का परिणाम है। 'क्याप' में मनोहर श्याम जोशी ने मार्क्स वादी विचारधारा के उपकरणों से वर्ग-दृष्टि, वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष के आधार पर समाज की प्रत्येक कठिनाई की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है परन्तु उनका समाधान न प्राप्त होने पर हताश हो जाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में पूरी दुनिया को आधुनिक बनाने की परियोजना के बहाने प्रकृति के दोहन और विश्व के उपनिवेशीकरण की कहानी के माध्यम से उद्घाटित किया गया है जो आधुनिकता की परियोजना की उपन्यास में स्थित एक महत्वपूर्ण उत्तर आधुनिक क्रिटिक है।

मनोहर श्याम जोशी के नवीनतम उपन्यास 'कौन हूँ मैं' में इतिहास को गल्प में घुला देने की साजिश करते हुए आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर अभिसरण किया गया है। यह भवाल सन्यासी की ऐतिहासिक कथा पर आधारित उपन्यास है जिससे आधुनिक दुनिया काफी हैरान-परेशान है क्योंकि इतिहास को भी एक अन्य पाठ मानने वाले उत्तर आधुनिक प्रवृत्ति से यह उपन्यास सचमुच गल्प हो गया है और इसमें वर्णित इतिहास को फिर से पहचानने के लिए न्यायालय तक की शरण में जाना पड़ा है। इसमें आधुनिक पाठकों से यह विनम्र आग्रह किया गया है इतिहास भी एक व्याख्या है, शक्ति-विमर्श है अतएव वे उसे पढ़ें नहीं स्थगित करें, जिसकी वजह से इस गल्पनुमा इतिहास और इतिहासनुमा गल्प ने 'आधुनिक' पाठकों' को सनसनी में डाल दिया है। 'कौन हूँ मैं' उपन्यास में कथाकार ने सत्य को अनेकार्थक बनाया है। इतिहास यहाँ स्यादवाद हो गया है। इस उपन्यास में ऐतिहासिक के दबाव ने कथाकार की किस्सागोई को क्षरित किया है लेकिन फिर भी प्राक्कथन 'के आमि' में उपन्यासकार की किस्सागोई अपने चरम सर्जनात्मक रूप में दर्शनीय है, आगे कथाकार उपन्यास में एक मिथकीय सृष्टि को रचते हुए 'पक्ष-प्रतिपक्ष' में एक मृत व्यक्ति को सहसा काफी समय बाद पुनः अवतरित कर स्वयं को राजकुमार रोमेन्द्र के रूप में स्थापित करने की कोशिश को दर्शाया है। मेजो राजकुमार पहचान को लेकर भुवाल सन्यासी और विभावती द्वारा की गई खींचतान इतिहास को मिथक बना देती है और इसके पश्चात् अपने-अपने हिसाब से इस मिथक को इस्तेमाल करने का इरादा इस उपन्यास में अस्मिताओं और विचारधाराओं के संघर्ष को जन्म देता है। इस संघर्ष से राष्ट्रवाद एवं उपनिवेशवाद के द्वैत रूप की व्याख्या होती है जिसके परिणाम स्वरूप 'कौन हूँ मैं' का प्रश्न नितांत वैयक्तिक न रहकर संख्या का तर्क बन जाता है जिसमें व्यक्ति की अस्मिता उसकी वैधता एवं सामाजिक स्वीकार्यता पर निर्भर हो जाती है। यह संख्या का तर्क आधुनिक पूँजीवाद सत्ता प्रतिष्ठान का तर्क है जो पूँजी की ताकत से इस तरह के तर्क खड़ा करती है। इसी संख्या के तर्क द्वारा इस उपन्यास में पाठक कभी विभावती द्वारा, कभी भुवाल द्वारा और कभी ज्योतिर्मयी द्वारा कन्विंश किया जाता है। प्रत्येक वक्ता पाठक को कन्विंश करते हुए अपनी निजी जिंदगी के बहाने एक विमर्श तैयार करता है। यथा विभावती द्वारा बनाया गया यह स्त्री-विमर्श-"होश सम्भालते ही मुझे यह बोध भी हो गया कि मैं अभिशप्त ही नहीं, अबला भी हूँ और अबला होना स्वयं अपने में एक बड़ा अभिशाप है और आकर्षक अबला न होना तो उससे भी बड़ा अभिशाप है।.....यही सुनती और मानती आई हूँ कि मानव कोई साधारण पशु नहीं वह तो स्वयं अपना भाग्य-विधाता बनने में सक्षम है किन्तु बचपन में ही यह स्पष्ट हो गया मुझ पर कि इस संदर्भ विशेष में पशुओं के साथ स्त्री की भी मानव प्रजाति में गणना नहीं की जाती। तभी तो संसार की किसी भाषा में स्त्रियार्थ जैसा कोई शब्द नहीं है। पुरूष की ही चर्चा होती रही है सर्वत्र और सर्वदा।"

इस उपन्यास में उत्तर आधुनिकता की बहुत सी स्थितियाँ, प्रस्ताव एवं विमर्श मिलते हैं-जैसे-आधुनिकता का अंत, विचारधारा एवं इतिहास का अंत, तर्कवाद का नकार, विज्ञान का नकार, देरिदा का विखंडन, फूको का शक्ति विमर्श, बहुमुखता, युगल विपरीतता आदि। प्रस्तुत उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी जी ने आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण करते हुए आधुकितावादी महावृतांतों को बार-बार विखंडित किया है एवं नकारा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. कुरू-कुरू स्वाहा-मनोहर श्याम जोशी-राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली प्र0 सं0-2001,
2. 'कसप' मनोहर श्याम जोशी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पेपर बैक्स
3. हरिया हरक्यूलिज की हैरानी-मनोहर श्याम जोशी, किताब घर नई दिल्ली 1994, .
4. 'हमजाद'-मनोहर श्याम जोशी-किताब घर दिल्ली-1996, .
5. 'क्याप'-मनोहर श्याम जोशी-वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली-2001, .
6. 'कौन हूँ मैं'-मनोहर श्याम जोशी-वाणी प्रकाशन-दिल्ली.
7. 'हमजाद'-मनोहर श्याम जोशी-किताब घर दिल्ली-1996
8. 'कसप' मनोहर श्याम जोशी-राजकमल-ेपर बैक्स-नई दिल्ली

फणीश्वरनाथ रेणू के उपन्यासों में आंचलिकता की प्रासंगिकता

मनीषा यादव

रिसर्च स्टूडेंट, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय आरा (बिहार)

सामाजिकता एवं धार्मिकता तो एक-सी होती हुई भी प्रत्येक अंचल में विभिन्न रूप धारण करती है। कहीं पुरुषों के साथ अभिनव करने में भी नारी नहीं हिचकती, तो कहीं पर्दे के पीछे खड़ी मिलेगी। कहीं कथा में पंचामृत से काम लेते हैं, तो कहीं (उत्तर बिहार में) शीतल प्रसाद के बिना कथा अधूरी समझी जाती है। उसी प्रकार धर्म के अनेक मत मतान्तर हैं, कोई शाक्त है तो कोई वैष्णव उनके आचार-विचार में पार्थक्य है। यही कारण है कि कथाकार चाहे जैसा हो, अपनी कृति में हमने अंचल की भाषा, विचार, रहन-सहन, जीवन-यापन, दोष गुण, रीति-रिवाज आदि का चित्र उपस्थित करता है। हिन्दी साहित्य में प्रथम मौलिक कथाकार एवं उपन्यासकार प्रेमचन्द से लेकर आज तक जितने कथासाहित्य उपलब्ध हैं, सर्वत्र किसी-न-किसी प्रकार की आंचलिकता अवश्य है। अंचल शब्द की अर्थ सीमा को लेकर बहुत विवाद है। अंचल से तात्पर्य है कोई गाँव, उपनगर, नगर, प्रान्त या विशेष भूखंड जिसे कथाकार अपनी कृति का प्रधान केन्द्र स्थल मान लेता है। अतः वह कथासाहित्य, जो किसी विशेष ग्राम, प्रान्त या भूखंड से सम्बन्धित होता है उसे आंचलिक साहित्य की संज्ञा मिलती है।

''आंचलिकता, रेणु और उनकी गाँव के प्रति रेणु का आकर्षण विवेकशून्य मोह मात्र नहीं है। गाँव के समाज में व्यक्ति का व्यक्तित्व नदारद हो जाता है। इसीलिए शहर में असामाजिकता की समस्या सबसे अधिक चिन्ता की बातबनती जा रही है। अर्थकेन्द्रित शहर के समाज में स्वार्थ उभर आता है। आधुनिक सभ्यता के प्रसार के साथ शहर के अर्थकेन्द्रित दृष्टिकोण का प्रभाव गाँवों पर पड़ता चला जा रहा है, परिणामतः मनुष्य की सामाजिकता को दृढमूल बनाने वाली लोकसंस्कृति की उपेक्षा गाँवों में भी होने लगी है। तीसरी कसम का हीरामन इसीलिए कहता है-जा रे जमाना! कहाँ चला गया वह जमाना! हीरामन की यही भावना रेणु की कृतियों में विद्यमान है। फणीश्वरनाथ रेणु को अधिकतर आलोचकों द्वारा आंचलिकता का जनक माना गया है। निर्मल वर्मा के अनुसार रेणु पहले कथाकार थे, जिन्होंने भारतीय उपन्यास की जातीय सम्भावनाओं को तलाश की थी। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. चन्द्रभानु सोनवर्ण के मतानुसार-हिन्दी कथा साहित्य में फणीष्वरनाथ रेणु का महत्त्व असाधारण है। उनके कथा साहित्य का सर्वांगीण विवेचन अनुपलब्ध है। इस विवेचन को तब तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि उनके व्यक्तित्व को संक्षेप में समझ न लिया जाये। रेणु का जन्म 4 मार्च, सन् 1921 को बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के अन्तर्गत औराही हिंगना नामक गाँव में हुआ था। यह गाँव मिथिला अंचल का गाँव है। इस अंचल का चित्रण उन्होंने अपने कथा साहित्य में विशेष रूप से किया है। दीर्घतपा को छोड़कर उनके सभी उपन्यासों का घटनास्थल मिथिला अंचल है। वस्तुत दीर्घतपा के अन्दर मिथिला अंचल का आकर्षण विद्यमान है। इस उपन्यास की नायिका बेला मिथिला अंचल की ही रहनेवाली है। बेला के यहाँ हॉस्टल पर रहनेवाली विभा और गौरी, दोनों बेला को विशेष रूप से प्रिय हैं। विभा को देखकर बेला की आँखों के आगे महानदी उमड़ने लगती है और चंचल गौरी के गीत बेला को लुभा लेते है। ये दोनों मैथिलअंचल की ही हैं। कहने का आशय यह है कि रेणु मिथिला अंचल में जनमे ही नहीं, अपितु पढ़-लिख लेने के बाद भी मन से इस अंचल के साथ जुड़े रहे। एक अकहानी का सुपात्र छोटेलाल भी ऐसा ही एक व्यक्ति है जो शहर में रहते गाँव उड़ जाने के लिए बेचौन बना रहता है। छोटेलाल तो खैर अशिक्षित या हुए अपने अल्पशिक्षित व्यक्ति है। मन का रंग कहानी का पढ़ा-लिखा प्राध्यापक भी सोचता है अपना गाँव घर छोड़कर पराये नगर में आकर रहने को मजबूर आदमी भी

कभी खुश रह सकता है क्या? इसी प्रकार विघटन के क्षण में आठ-दस साल की छोटी-सी चुरमुनियाँ भी गाँव के टूटने के दर्द से पीडिघ्त है। यह दर्द स्वयं रेणु के व्यक्तित्व में समाया हुआ दर्द है।''[1]

औराही हिंगना सिमराहा के निकट है। सिमराहा की बस्ती का रेणु के बचपन के साथ विशेष सम्बन्ध है। रेणु ने बचपन में इस सिमराहा स्टेशन का स्टेशन मास्टर बनने का सपना देखा था। उन्होंने अपनी 'परती परीकथा' भैया महेन्दर को समर्पित की है, जिसने सिमराहा की सपाट परती को हरी-भरी देखने का सपना देखा था। इसी सपने का सजातीय सपना इस उपन्यास के जितेन्द्र ने देखा है। वह भी सोचता है-'न जाने कोसी का काम कब शुरू हो वह मेरा इलाका है। कोसी कवलित अंचल। इसी सपने के कारण औराही हिंगना के समाजवादी लेखक रेणु को जितेन्द्र प्रिय लगता है। इस सपने के अतिरिक्त लोकसांस्कृतिक मूलक समाज के गठन का स्वप्न रेणु के समान जितेन्द्र ने देखा है। ''मैला आँचल इनको सर्वप्रथम कृति है, जिसमें बिहार अंचल के मेरो गंज गाँव का जनजीवन साकार हो उठा है। परती परीकथा में परानपुर अंचल सजीव हो उठा है। इसी प्रकार कितने चौराहे में भी मैथिली क्षेत्र अररियाकोट का जनजीवन साकार हो उठा है। जुलूस में नवीनगर कॉलोनी का वर्णन है। इसमें गोखियर गाँव का जनजीवन चित्रित हुआ है। दीर्घतपा में भी आंकीपुर गाँव समग्रत: साकार हो उठा है। साथ ही वहाँ के वर्किंग वीमेंस हॉस्टल को केन्द्रबिन्दु बनाकर वहाँ के रहन सहन एवं दूशित परिवेश को उभारा गया है। पलटू बाबू रोड में पूर्णिया जिले के बेरमाछी अंचल का जनजीवन उभारा गया है। रेणु कृत मैला आँचल को ग्रामीण जीवन का महाकाव्य कहा गया है। अन्तत: स्व रेणु जी आंचलिक उपन्यासकार के रूप में श्रेष्ठ कृतियों के सर्जक बने रहे।''[2]

मैला आँचल में उपन्यास के प्रारम्भ में ही यह सूचना दी गयी है कि पूरे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं-इनकी पढ़ाई दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी का कर (टैक्स) लेने तक की है। इनके अतिरिक्त नये पढ़नेवालों की संख्या पन्द्रह है। पढ़ाई के माध्यम से जगनेवाली चेतना का संकेत उपन्यास में कहीं-न-कहीं होता, तो उचित ही होता-ऐसा लगता है।

आंचलिक उपन्यास में देशकाल प्रमुख तत्त्व के रूप में उभरकर सामने आता है। मैला आँचल में मैथिल अंचल का स्वरूप अनेक रूपों में उभरकर सामने आया है। इस उपन्यास के घटनास्थल मैथिल अंचल के अन्तर्गत है और मेरीगंज लगभग सभी घटनाओं का आधार स्थल है। मेरीगंज पूर्णिया जिले के पूर्वी अंचल का गाँव है। पूर्णिया जिले का यह पूर्वी अंचल मलेरिया और कालाजार से पीड़ित भाग है। डॉक्टर प्रशान्त इसी दृष्टि से यहाँ आया है और एक परिच्छेद में उसके द्वारा परीक्षित रोगियों की अनेक केस-हिस्ट्री दी गयी हैं। इतना ही नहीं, मेरीगंज नाम में अन्तर्निहित 'मेरी' नाम की स्त्री मलेरिया से ही मरी थी, जिसका वर्णन पूर्व की कथा में किया गया है। यहाँ पहुँचने पर डॉक्टर ने मलेरिया और कालाजार के अतिरिक्त जिन सामाजिक खतरनाक रोगों को देखा, वे हैं-गरीबी और जहालत। इन रोगों का चित्र उपन्यास में आद्यान्त हुआ है।

''मैला आँचल का रूप उसकी सामाजिक, राजनीतिक चौतन्य, धार्मिक विश्वास आदि के द्वारा भी व्यक्त हुआ है। इनका कथ्य के प्रसंग में संविस्तार परिचय दिया जा चुका है। लेखक ने प्रकृति चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है, क्योंकि उसका उद्देश्य मेरीगंज के समाज का चित्रण करना है। यथाप्रसंग वातावरण-चित्रण की सूक्ष्मताएँ देखी जा सकती हैं।''[3] लाठियाँ लेकर यादवों द्वारा राजपूत टोली की ओर भागने पर खूँटे में बँधे हुए बैलों के कान खड़े हो जाते हैं और गाँव के बाहर चरनेवाली बकरियाँ मिमियाती हुई गाँव में भागी चली आती हैं। इसी प्रकार भंडारे की घोषणा के समय तुरही की आवाज सुनते ही गाँव के कुत्ते दल बाँधकर भौंकना शुरू कर देते हैं और छोटे-छोटे नवजात पिल्ले तो भौंकते-भौंकते परेशान ही हैं। हीरू द्वारा पार्वती की माँ को मार डालने के प्रसंग में तो कुत्तों के शोर के मारे कुछ पता ही नहीं चल पाता कि हुआ क्या है? कालीचरन की खोज में पुलिस के मेरीगंज में आने पर माघ में ठिठुरते हुए सन्नाटे में कालीचरन की माँ की दर्द भरी पुकार गाँव के कोने-कोने में फैल जाती है। हरगौरी के मरने पर उसके बैलों का घास-पानी छोड़ना और अँधेरे में विदियारथी जी को देखकर बालदेव की गाड़ी में जुते हुए बैलों का बिदकना भी लेखक ने चित्रित किया है। इसी प्रकार रात के एकान्त में बावनदास को सामने देखकर गाड़ी के बैल 'छिउँ..' करके भड़क उठते हैं। कहीं-कहीं प्रकृति के संक्षिप्त वर्णन हैं, जैसे 44 भुस्कुवा तारा जगमग कर रहा है। कमला नदी के गड्ढे में उसकी छाया झिलमिला रही है। लगता है, नीलकमल खिला है। मेरीगंज अंचल के चित्रण में परीकथाओं और गीतों ने भी रंग भरा हैं।

''लोरिक या बिज्जेभान की कथा और सारंगा-सदाब्रिज की कथा के प्रसंग इस दृष्टि से देखे जा सकते हैं। सारंगा-सदाब्रिज की कथा तो खलासी जी की कथा में उठावदार ढंग से रंग भरती है। चौती, बटगमनी, फगुवा आदि के गीतों का सविस्तार विवेचन शैली के प्रसंग में किया जाएगा। गीतों के अतिरिक्त विदापत नाच, सावित्री नाच आदि के प्रसंगों का उपन्यास में समावेश किया गया है।''[4]

जाट-जट्टिन का खेल भी एक स्थान पर चित्रित है। इस खेल को देखने का अधिकार केवल स्त्रियों के है। पुरुषों में से केवल वे ही लोग इस खेल को देख सकते हैं, जिनकी मूँछें अभी उगी नहीं हैं। यदि कोई मूँछवाला इस खेल को देख ले, तो उसकी बात पंचायत में पहुँच जाती है।

उपन्यास में प्रसंगत होली, सतुआनी, सिखा आदि पर्वों का उल्लेख किया गया है। होली के पर्व पर डॉक्टर और कमला के होली खेलने के प्रसंग में एक लोकविश्वास का उल्लेख किया गया है-कहते हैं, सिन्दूर लगाते समय जिस लड़की के नाक पर सिन्दूर झड़कर गिरता है, वह अपने पति की बड़ी दुलारीहोती है। इसी प्रकार डायन, जिन आदि से सम्बन्धित विश्वासों को विभिन्न प्रसंगों में पिरोया गया है। चौत संक्रान्ति के दिन सतुआनी पर्व होता है। इस दिन सत्तू खाने का रिवाज है। साल के प्रारम्भ में पहली वैशाख को सिखा पर्व होता है। इस दिन मछमरी होती है। गाँव के लोग इस दिन सामूहिक रूप से मछली का शिकार करते हैं। इस दिन घरों में चूल्हा नहीं जलाया जाता। वर्ष के प्रथम दिन भूमिदाह नहीं किया जाता। पिछली रात को पकाई हुई चीजें ही खाई जाती हैं। इसी दिन जमींदार लोग नया खाता खोलते हैं।

मेरीगंज गाँव के निकट जंगल में सन्थालों की बस्ती भी है। परन्तु उनके रीति-रिवाज थोड़े भिन्न हैं। यहाँ तक कि वे शराब भी अलग प्रकार की पीते हैं, जिसे पंचायत कहा जाता है। मेरीगंज के लोग तो तड़बन्ना में लबनी का आनन्द उठाते हैं। खट-मिट्ठी, शहर-चिनियाँ, बैरचिनियाँ आदि ताड़ी के प्रकार हैं। बसन्ती पीकर बिरले पियक्कड़ ही होश दुरुस्त रख पाते हैं। गर्मी की शिकायत होने पर लोग पहरतिया पीते हैं। कफ प्रकृति के लोगों के लिए संझा अधिक लाभदायक होती है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त छोटी जाति के लोगों द्वारा बड़ी जाति के लोगों को परनाम पाती किया जाना, धैलासुपारी की सजा आदि छोटी-छोटी बातें भी जहाँ-तहाँ उपन्यास में हैं। मठ में महन्ती की दीक्षा का प्रसंग सविस्तार वर्णित है। पन्द्रह अगस्त के दिन कमली इस अंचल में पहने जानेवाले सभी तरह गहनों से लदकर डॉक्टर के पास पहुँची है। उसके शरीर पर बाँक, हँसुली, बाजू, कंगना चूर, झंझना आदि गहने हैं। उसके चूर तो थोड़ी-सी भी शरीर कीसिहरन पर टुनटुन करके खनक उठते हैं। उपन्यास में आंचलिकता का ठाठ खड़ा करने में अंचल की भाषा का बड़ा भारी योगदान है। भाषा के स्वरूप का सविस्तार विवरण शैली के प्रसंग में किया गया है।

''आंचलिक उपन्यास समाज जीवन का व्यापक चित्रण करता है, इसलिए यह समाज का क्षैतिज छेद (क्रॉस सेक्शन) पेश करता है। इसलिए इस प्रकार के उपन्यासों में घटनाकाल छोटा होता है। प्रस्तुत उपन्यास का घटनाकाल केवल सवा वर्ष का है। डॉक्टर प्रशान्त ने विदेश जाने से इंकार करके देशवासियों की सेवा करने का व्रत अपनाया वह सन् 1947 ई. के प्रारम्भ में मेरीगंज पहुँचा। उसके पहुँचने के दिन सेवादास ने सारे गाँव को भंडारा दिया था। इस समय बाघ को भी ठंडा कर देनेवाला माघ का जाड़ा पड़ रहा था। माघ की एक ठंडी रात का वर्णन इस प्रकार किया गया है-सूई की तरह गड़नेवाली, माघ के भोर की ठंडी हवा का देह पर कोई असर नहीं होता। ओस और पाले से तो देह शून्य हो जाता है। जब हाथ से अपनी नाक भी नहीं छुई जाती है, तब घूर में फिर से सूखे पुआल डालकर नयी आग पैदा की जाती है।''[5]

माघ के बाद फागुन की बावरी हवा में होली के गीत मँडराने लगते हैं फगुवा के गीतों से जवानों ही नहीं बूढ़ों के शरीर भी सिहर-सिहर उठते हैं जोगीड़ा और भड़ौआ के गीतों के कारण फागुन की आवारा हवा मदहोश हो उठती है। इसी समय से डॉक्टर की जिन्दगी में कमला का नया अध्याय शुरू होता है। अब वह ऐसा नहीं कह सकेगा कि श्दिल नाम की कोई चीज आदमी के शरीर में है, हमें नहीं मालूम। पर अब वह महसूस करने लगा है कि कोईअगम-अगोचर चीज है, जिसमें दर्द होता है। अगर इस दर्द को मिटा दिया जाये तो आदमी जानवर हो जाएगा। "दिल वह मन्दिर है जिसमें आदमी के अन्दर का देवता वास करता है।

फागुन के बाद चौत संक्रान्ति और बैशाख का सिखा पर्व आता है। उसके बाद जेठ की तपन आती है और उसके बाद आषाढ़ के बादल मादल बजाना शुरू कर देते हैं। डॉक्टर इस काल में गुलमुहर के फूलों के जादू से मन्त्रमुग्ध हो उठता से है। उसे मिट्टी का मोह महसूस होने लगता है। वह सोचता है-गोल्ड मोहर-गुल मुहर-कृष्णाचूड़ा!....गुलमहर का कृष्णाचूड़ा नाम यहाँ कितना मौजूँ लगता है। काले कृष्ण के मुकुट में लाल फूल कितने सुन्दर लगते होंगे। बरसात के खंडित होने पर गाँव की स्त्रियाँ जाट-जट्टिन का खेल खेलती हैं।

बरसात के मौसम में ही 15 अगस्त, सन् 1947 ई. को स्वराज्य का उत्सव मनाया जाता है। बरसात के बाद शरद बीती और हेमन्त का आगमन हुआ। लोग जाड़े से काँप रहे थे और इन्हीं दिनों दिल को कँपानेवाला गाँधीवध का समाचार आया। माघ से प्रारम्भ किया गया उपन्यास फिर माघ तक पहुँच जाता है।

माघ में महात्मा गाँधी का श्राद्ध है और इसी श्राद्ध के दिन बावनदास सश्रद्ध बलिदान है। वस्तुत: इस बलिदान के साथ उपन्यास का अन्त किया जा सकता था, किन्तु रेणु की आशावादी दृष्टि ने उपन्यास में अन्तिम तीन परिच्छेद उपसंहारात्मक ढंग से जोड़े हैं। भोर का तारा कमला नदी में झिलमिला उठता है। उसे देखकर ऐसा लगता है, मानो नीलकमल खिला है। अप्रैल के दिन हैं। और कमला नीलोत्पल को जन्म देती है। कमला नदी के अंचल में नीलोत्पल के जन्म के बाद तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के मन में परिवर्तन होना शुरू होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्ष के मौसमों के साथ आंचलिक जीवन जुड़ा हुआ है और ये मौसम व्यक्ति जीवन की कहानियों को गति देते हैं। शैली की दृष्टि से मैला आँचल की कुछ विशेषताएँ हमारा ध्यान बरबस आकृष्ट कर लेती हैं। इनमें से एक विशेषता श्रुति संवेदनों को यथातथ्य रूप में व्यक्त करने का प्रयत्न है। मेरीगंज के वातावरण को विभिन्न समयों में मानर, डिग्गा, झाँझ, मृदंग आदि वाद्य लय की तरंगों से भर देते हैं। रेणु ने मेरीगंज के अंचल में बजनेवाले वाद्यों को सुना ही नहीं है, अपितु इन वाद्यों से निकलने वाले अर्थों को पहचाना भी है। उदाहरण के लिए डोल की ताल के अलग-अलग रूपों से वह पूरी तरह परिचित हैं।

सन्दर्भ सूची

1. पाण्डेय इन्दु प्रकाश, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य, नेशनल पब्लिशिंक हाउस-नई दिल्ली, संस्करण-1998, पृष्ठ-52
2. पाण्डेय इन्दु प्रकाश, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य, नेषनल पब्लिशिंक हाउस-नई दिल्ली, संस्करण-1998, पृष्ठ-90
3. सिंह विजयमोहन, आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, भारतीय ज्ञानपीठ-नयी दिल्ली, संस्करण-2014, पृष्ठ-120
4. सिंह विजयमोहन, आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, भारतीय ज्ञानपीठ-नयी दिल्ली, संस्करण-2014, पृष्ठ-135
5. सिंह विजयमोहन, आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, भारतीय ज्ञानपीठ-नयी दिल्ली, संस्करण-2014, पृष्ठ-250

स्त्री विमर्श: अवधारणा एवं वैचारिकी

प्रीति सिंह

सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी), गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद

स्त्री विमर्श स्त्री अस्मिता के विभिन्न मुद्दों पर चर्चा एवं बहस के माध्यम से स्त्री के सामाजिक जीवन उनके विचारों की अभिव्यक्ति एवं उनके शेषण तथा दमनकारी सामाजिक नीतियों के खिलाफ व्यापक स्तर पर स्त्री को सुदृढ़ आधार प्रदान कर रहे हैं।

प्राचीन काल से ही समाज में स्त्री को दोयम दर्जे का स्थान प्राप्त है। समाज में स्त्री को वह अधिकार प्राप्त नहीं है जो पुरूष को प्राप्त है। स्त्री और पुरूष के जीवन में व्यापक अन्तर दिखाई पड़ता है। स्त्री विमर्श के माध्यम से स्त्री को सशक्त एवं जागरूक किया जा रहा है। स्त्रीवादी विमर्श ने जिस प्रकार पितृसेत्तात्मक मूल्यों, अवधारणाओं को चुनौती दी है उसके विरूद्ध संवाद करते हुए उन मूल्यों को खारिज किया हैं। उससे स्त्री की समाज में बदलती हुई स्थिति दृष्टि और भूमिका का प्रश्न भी नये परिप्रेक्ष्य में उभरकर सामने आया है। स्त्री विमर्श के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के बाद यह बात सामने आती है कि स्त्री मुक्ति की अवधारणा क्या है? अवधारणा किसे कहते हैं? इसका अर्थ क्या होता है? अवधारणा यानी स्त्री मुक्ति या उसकी अस्मिता को समाज के सामने कैसे प्रस्तुत किया जाये। या यह कौन सी सुविचारित धारणा विचार, सोच या संकल्पना इच्छा है, जिसके माध्यम से स्त्री मुक्ति की अवधारणा को और मजबूती प्रदान हो सके, वह समाज में अपनी इच्छा को व्यक्त कर सके। 'स्त्री मुक्ति विमर्श' को कई दृष्टिकोण से परखा जा सकता है। काल की दृष्टि से, इतिहास, पौराणिक मिथक एवं वर्तमान परिदश्य के आधार पर परखा जा सकता हैं। तो अवधारणा की दृष्टि से इसे अलग तरह से परिभाषित किया जा सकता है।

स्त्री-पुरूष में लैंगिक असमानता भी अलगाव का एक कारण है। इस कारण भी स्त्री को सामाजिक ताने-बाने में अपमानित किया जाता है। लैंगिक असमानता के कारण ही स्त्री को हीन और कमजोर, पुरूष को बलवान, बलशाली दिखाया जाता है।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक लगातार स्त्री विमर्श से जुड़े हर मुद्दे चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक या राजनीतिक वर्तमान समय में चर्चा का विषय बना हुआ है। अगर वर्तमान स्त्री विमर्श पर चर्चा की जाये तो यह देखा जाता है कि इसकी कुछ जानकारी हमें इसके गर्त में छुपे हुए प्राचीन या मध्यकालीन सामाजिक राजनीतिक आर्थिक मसलों पर सोचना जरूरी हो जाता है कि क्या स्थिति थी जो स्त्री विमर्श की अवधारणा को समाज में चर्चा का विषय बनाया है। स्त्री सृष्टि की रचना से लेकर आधुनिक समय में भी अपनी पहचान खोजती नजर आ रही है। स्त्री पुरूष लिंग निर्धारण ही स्त्री को पुरूष से हीन बनाता है। पुरूष को उसके पौरूष से पुष्ट दिखाकर महिला को कमजोर घोषित किया गया, ताकि उसके साथ लैंगिक असमानता का आरोपण कर उनका शोषण किया जा सके। जैसे जैसे स्त्री और पुरूष के बीच लिंग निर्धारण का भेद बढ़ता गया वैस-वैसे दोनों के बीच शौषक व शोषित की स्थिति बनती गयी। जिस स्त्री को भारतीय समाज में देवी का रूप मानकर पूजा की जाती है। उसी देवी रूपी स्त्री का परदे के पीछे घिनौना हरकत करता पुरूष नजर आता है। महादेवी वर्मा अपनी पुस्तक "श्रृंखला की कड़ियॉ, में पुरूष की मानसिकता पर लिखती है कि'' भारतीय पुरूष जीवन में जितना ऋणी है उतना कृतज्ञ नहीं हो सका। अन्य क्षेत्रों के समान साहित्य में भी उसकी स्वभावगत संकीर्णता का परिचय मिलता रहा है। आज का यथार्थ यदि सनातन अकृतज्ञता का ब्यौरेवार इतिहास बनकर तथा पुराने अपकारों की नवीन आवृति, वर्तमान स्थिति ने आत्मघात सिद्ध होगी।

सामाजिक मान्यताओं और अन्धविश्वासों ने स्त्री जीवन को अंधेरे में रहने को बाध्य किया। अगर स्त्री कभी भी किसी बात को जोर से बोलने लगती है तो पुरूष समाज स्त्री को डाँटने लगता है और सामाजिक बन्धनों की याद दिलाने लगता है कि स्त्री को

ऊँची आवाज में बात नहीं करनी चाहिए। "स्त्री मुक्ति (स्त्री विमर्श की मुहिम के सामने सबसे बड़ी चुनौती है स्त्रियों में मुक्ति की इच्छा जगना और जगाना। स्त्री विमर्श की चर्चा का व्यापक स्तर पर चिन्तन और मनन करना तथा सही अर्थो में अमल में लाना ही मनुष्य की मुक्ति की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में स्त्री मुक्ति का अर्थ है। अपनी देह पर स्त्री का अधिकार, स्वास्थ्य सुविधा, आर्थिक स्वावलम्बन, वैचारिक विकास शिक्षा, आत्मनिर्णय, ईमानदारी, बहादुरी, साहस धैर्य से लैस एक व्यक्तित्व का विकास और स्त्री व्यक्तित्व का भौगोलिक, आर्थिक राजनैतिक तथा सामाजिक स्तर की समानता की हदों तक पहुँचना अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक तथा आत्मनिर्भर होना। स्त्री मुक्ति का अर्थ है। पुरानी परम्पराओं, मान्यताओं, प्रथाओं जो समाज पुरूष सत्ता या धर्म ने उस स्त्री पर थोप रखी है उनसे मुक्त होकर एक मनुष्य की तरह आचरण करने व निर्णय लेने की स्वतन्त्रता।'' सामाजिक रूढ़ियाँ तथा धार्मिक बन्धनों के द्वारा सदियों से स्त्री को दबाया गया है। घर की चहार दीवारी में कैद कर रखा गया। उनकी अभिव्यक्ति को धार्मिक कर्मकाण्ड द्वारा दबाया गया।

समाज में जो कुछ भी घटित होता है या हो रहा है, वह अनायास नहीं है। उसके कारणों में उसकी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं बहुत कुछ आर्थिक स्थितियों का भी योगदान होता है। जब किसी एक विचारधारा का हो जाता है तो उसकी छाप समाज पर पड़ती है। यह सर्वविदित है कि समाज मनुष्यों द्वारा बनाया गया एक उपक्रम है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य को अपनी अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता है। जब हमारी अभिव्यक्तियों में रूकावट या अर्न्तविरोध उत्पन्न होता है, तब हम उसका विकल्प खोजते हैं, यह विकल्प उसी विचारधारा से मिलता-जुलता होना चाहिए।

स्त्री विमर्श ने स्त्री के सम्मुख नये आयाम, नये वातावरण, नये विषय समावेशित करके व्यक्तिगत विकास पहचान निर्माण रोजगार वन बजाय और महत्वाकांक्षा के नये दरवाजे खोले है। इस विमर्श ने इस रूझान को प्रोत्साहित किया है कि जीवन की अनेक ज्वलन्त समस्याओं का समाधान करने के लिए स्त्री सक्षम है। स्त्री एक नागरिक है। इस नाते उसके अधिकार और दायित्व दोनों का अहसास स्त्री विमर्श ने दिया है।

नारीवादी विमर्श लेखन ने जिस प्रकार पितृसत्तात्मक मूल्यों अवधारणों को चुनौती दी है इसके विरूद्ध संवाद करते हुए उन मूल्यों को खारिज किया है। उससे स्त्री की समाज में बदलती स्थिति, दृष्टि और भूमिका का प्रश्न भी उभरकर सामने आया है। स्त्री विमर्श में उठने वाले सवाल महज स्त्रियों से जुड़े ही नहीं अपितु उनमें हम पितृसत्ता समाज के दोहरे मानदण्डों पितृक मूल्यों लिंग भेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के अर्न्तनिहित कारणों को समझने की भी गहरी दृष्टि प्राप्त होती है। सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि नारी विमर्श क्या है? क्यों है। नारीवाद की समर्थ लेखिकाओं ने ही लिंग केन्द्रित वर्चस्व प्रभुत्व को चुनौती दी है। नारीवाद की परिभाषा इस प्रकार है। "नारीवाद वह है जो महिलाओं का सशक्तिकरण चाहती है और जिसके लिए सशक्तिकरण के इस रास्ते पर चलना कठिन हो जाता।

पितृसत्ता के खिलाफ आवाज बुलन्द करने में नारी एकजुट दिखती है, लेकिन किसी भी अन्य संतुलित वैचारिक परम्परा की तरह उनके अन्दर भी जोर का अन्तर दिखता है। महिलाओं की दासता की स्थिति को समझने की प्रक्रिया में उन्होंने पाया कि काल्पनिक समाजवादियों ने पूँजीवाद की आलोचना में महिलाओं की दोयम दर्जे की स्थिति बना दी है। सामुदायिक जीवन के अपने प्रयोगों में इस बात पर बल दिया है कि महिलाओं और पुरूषों दोनों को घर के कार्यो में समान रूप से बल दिया गया है परन्तु व्यावहारिक जीवन जगत में ऐसा कम ही दिया गया। भागीदारी करने पर नारीवादी विमर्शो ने ही पितृसत्तात्मक समाज की तीखी आलोचना करते हुए उन मजबूत खांचों को प्रश्न चिन्हित किया है जो सदियों से उन्हें अनुशासित, निर्देशित, अनुकूलित करते आये हैं। यह एक क्रान्तिकारी बदलाव है। साहित्य आलोचना की दुनिया भी बहुत गहरे स्तर पर लिंग भेद की राजनीति की विकार रही हैं, पुरूष सत्ता की एकांगी पक्षपात पुल्लिंगी सोच पर भी प्रश्न खड़े किये है, यही नारीवादी विमर्श की प्रासंगिकता है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने समाज में दोहरे मापदण्डों को लागू किया है। वह हर तरह से सिर्फ स्त्री को ही प्रताड़ित करना चाहता है। स्त्री के लिए सतीत्व की परिभाषा दी जाती है। लेकिन पुरूष के लिए कोई परिभाषा नहीं है। वह चाहे जितनी गलतियां करें उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता। लेकिन यदि स्त्री कोई गलती करे तो उसे समाज में कई नामों से जाना जाता है, पुरूष स्त्री से दोहरी लाभ प्राप्त करना चाहता है। एक तो पत्नीत्व, दूसरा आर्थिक मजबूती मध्यवर्गीय समाज में नारी दोहरी समस्याओं से जूझ रही है प्रथम वह अपने परिश्रम से आत्मनिर्भर बनती है और बाद में जब वह विवाह के बन्धन में बंध जाती है तब वह दिन भर अपनी डयूटी पूरी करती है और साथ में अपने घरेलू कार्य भी करती है परन्तु पुरूष सिर्फ अपनी डयूटी करता है और साथ में यह

आशा और अधिकार के साथ जब थका-मादा घर आता है तब अपनी पत्नी से चाय की माँग करता है। याद रखिए पत्नी भी उतनी ही थकी हैं परन्तु वह ऊफ तक नहीं करती है, बल्कि सम्पूर्ण मनोवेग के साथ चाय नाष्ता कराती है। नासिरा शर्मा लिखती है-"बड़ी-बड़ी नौकरियों पर हम अपनी मेहनत और लगन से पहुँचे है, परन्तु जब बात घर में स्थित एवं अधिकार की आती है तब औरते पाती है कि उनके पास किसी भी बुनियादी फैसले का अधिकार नहीं है। जो स्वतन्त्रता उन्हें है वह केवल धन कमाने और परिवारजनों की सुख सुविधा के साधन जुटाने की है। उन परम्पराओं के बन्धन में जकड़ी स्त्री को समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने हमेशा से शोषित किया है।

समाज में फैली विभिन्न प्रकार के जाति-पाति के बन्धनों, अंधविश्वासों, बाह्याडम्बरों, रूढ़िवादिता, लैंगिक विभेद आदि जितनी भी रूढ़िया समाज में व्याप्त थी उन सबका ज्यादा प्रभाव स्त्री पर ही पड़ा, चाहे वह घर की चहारदीवारी के अन्दर हो या बाहर उन्हें ये सारी मर्यादाए निभानी पढ़ती थी। स्त्री को इतनी आजादी न ही थी। वह अपनी अभिव्यक्ति या आवाज को सबसे कह सके। सबसे ज्यादा प्रताड़ना उसे लिंग भेद के आधार पर झेलना पड़ता है लैंगिक विभेद के कारण उसे हीन और कमजोर दिखाया जाता है। जिससे वह समाज में लोगों के साथ कदम से कदम मिलाकर न चल सके जितनी स्वतंत्रता पुरूषवादी सत्ता ने पुरूषवादी सत्ता ने पुरूषों को प्रदान की है उतनी स्वतन्त्रता महिलाओं को नहीं प्राप्त है। स्त्री मुक्ति की अवधारणा के बारे में 'रमणिका गुप्ता लिखती है-"इसके तहत स्त्री मुक्ति या स्वतंत्रता के अन्तर्गत देह पर अपना अधिकार यौन वर्जनाओं से मुक्ति तथा सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक मुद्दों व सरोकारों सम्बन्धी सभी निर्णय खुद से लेने की छूट भी शामिल है। यह वर्ग जोखिम उठाता है। स्त्री मुक्ति की अवधारणा भिन्न-भिन्न समाजों में विकास के भिन्न भिन्न स्तर व भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भी अलग-अलग हुआ करती है। शहरी इलाकों में मानसिकता तथा बौद्धिकता के भिन्न-भिन्न स्तर होने के कारण स्त्री-मुक्ति के सपने भी भिन्न होते है। वही दूसरी तरफ गाँवों में सर्वहारा या निम्न जातीय समाज की स्त्रियाँ जो खुद कमाने वाली तो होती है पर आर्थिक रूप से कमजोर होती है। शहरी स्त्रियों से भिन्न सपने पालती है। मध्यवर्गीय परिवारों की तरह नौकरी अथवा मजदूरी करने से उनकी प्रतिष्ठा में बट्टा नहीं लगता। रोजगार ही उनकी मुक्ति का औजार है क्योंकि वह उन्हें स्वावलम्बी बनाता है।''

स्त्री मुक्ति का अर्थ है स्त्री का खुद निर्णय करना एवं स्त्री स्वतंत्रता को पाना, जिससे वह समाज में अपने जीवन को खुद संयोजित स्वावलम्बी बन सके। स्त्री और पुरूष के बीच लैंगिक विभेद को समाज द्वारा समाप्त किया जाय, जिससे कि उसे समाज में लिंग भेद का शिकार न होना पड़े। स्त्री को समाज में पुरूषवादी वर्चस्व व उनके द्वारा प्रताड़ना का विरोध करना स्त्री मुक्ति की अवधारणा को मजबूती प्रदान करेंगे।

संदर्भ सूची:

1. भूमण्डलीकरण और स्त्री प्रश्न-वाणी प्रकाशन-प्रभा खेतान
2. स्त्री-विमर्श के विविध पहलू, लोक भारती प्रकाशन, कल्पना वर्मा
3. स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष-अनामिका
4. हिन्दी का गद्य साहित्य-डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, विश्व विद्यालय प्रकाशन
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ0 नगेन्द्र
6. हिन्दू स्त्री का जीवन-पं0 रमाबाई संवाद प्रकाशन, मेरठ
7. श्रृंखला की कड़ियॉ-महादेवी वर्मा
8. औरत के लिए औरत-महादेवी वर्मा
9. स्त्रीत्व का मानचित्र-अनामिका
10. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी

सिक्ख धर्म की संगत व लंगर संस्थाओं का कोविड 2019 में महत्त्व

डॉ० रघु महेंद्र सिंह

एक्सटेंशन लेक्चरर, राजकीय महाविद्यालय, बरवाला, हिसार

श्री गुरुनानक देव जी द्वारा स्थापित सिक्ख धर्म का भारत के साथ साथ समूचे विश्व में अपना विशिष्ट स्थान है। भारत में सिक्ख धर्म उस समय अस्तित्व में आया जब इस्लामिक राज ने अपने कार्य-कलापों द्वारा जनता में त्राहि-त्राहि मचा रखी थी। जात-पात, बाह्याडंबर, खोखले रीति-रिवाज, स्त्रियों की दशा खराब होना आदि। पूरा समाज भिन्न-भिन्न विसंगतियों से ग्रस्त था। यद्यपि यह युग सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों का ही युग था। भारत में इस समय दक्षिण व उत्तरी भारत में भी महत्त्वपूर्ण आंदोलन हुए। कबीर, रैदास, नामदेव, चौतन्य, मीराबाई व नानक जैसे धार्मिक संत अस्तित्व में आए। पंजाब में भक्ति आंदोलन का नेतृत्व श्री गुरुनानक देव जी व उनके नौ अन्य उत्तराधिकारियों द्वारा किया गया। गुरुनानक देव जी ने जहाँ तक एक तरफ अपनी शिक्षाओं के माध्यम से समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। वहाँ दूसरी तरफ कुछ नवीन संस्थाओं की स्थापना भी की। जिसमें संगत व लंगर दो महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ थीं। उनको इन संस्थाओं को उनके उत्तराधिकारियों द्वारा आगे ले जाया गया और समाज में एक पहचान दिलवाई गई। वैसे इन दो संस्थाओं के अलावा उनके बाद आनेवाले गुरुओं ने अन्य संस्थाएँ भी चलाई जिनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण ये दो रही थीं जो कि वर्तमान समय तक अपना अस्तित्व बनाकर रखे हुए हैं व समाज को मानवतावादी दृष्टिकोण दे रही हैं। संगत लंगर के द्वारा ही वर्तमान समय में महामारी के दौर में लोगों को सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर राहत महसूस करवाई गई थी। यह समय ऐसा था जब अपने भी साथ छोड़ देते हैं परंतु इस संकट की घड़ी में सिक्ख धर्म के अनुयायियों ने अपने गुरु की शिक्षाओं पर चलते हुए मानवतावाद की नई मिसाल पेश की।

गुरुनानक देव जी एक छोटे से व्यापारी (खत्री) परिवार से थे। छोटी सी उम्र से ही उनका ध्यान सांसारिक कार्यों से हटकर आध्यात्मिक व मानवतावादी कार्यों में लग गया था। इसके लिए उन्होंने अपने जीवन में बहुत-सी यात्राएँ की थीं तथा समस्त जन को प्रभावित किया। उन्होंने जनता का आह्वान किया कि वह जाति-पाति के भेदभाव त्याग दें। उन्होंने सर्वत्र यह शिक्षा प्रसारित की कि ईश्वर के सम्मुख सब समान हैं। यही कारण है कि नानक की शिक्षाओं व सिक्खों के भाईचारे ने दलित उत्पीड़ित जनता को एकजुट किया। उन्होंने कहा कि अच्छे सामाजिक कार्य करना ही ईश्वर की सेवा है।

गुरुनानक ने कहा श्धर्म केवल शब्दों का जाल नहीं है। ष जो व्यक्ति सब मनुष्यों को समान मानता है वही धार्मिक है।

संसार की बुराइयों के बीच शुद्ध रहो। तुम्हें धर्म का सच्चा मार्ग मिल जाएगा।

गुरुनानक ने इस बात पर जोर दिया कि मनुष्य से विशेषकर दलित और नीच कहे जाने वाले मनुष्य से, प्रेम किए बिना ईश्वर से प्रेम नहीं हो सकता। नीचों में जो नीचतम मनुष्य है, नानक इनके पास हो जाएगा। उसे बड़े आदमियों से क्या लेना देना है। ईश्वर की कृपादृष्टि उन पर ही पड़ती है जो सबसे कुचले हुए लोगों की मदद करते है। जाति-पाति निरर्थक है ओहदे और उपाधियों निरर्थक हैं। जाति-पाति में ताकत ही कहाँ है।

कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं जिसमें कुछ योग्यता नहीं। गुरुनानक देव जी सिक्खों के पहले गुरु थे जिन्होंने सिक्ख बिरादरी को संगठित किया था। इनके दसवें गुरु गुरु गोबिंद सिंह जी ने श्आदि ग्रंथश का संशोधन व संपादन किया। बताया जाता है कि उन्होंने

घोषणा की कि श्मेरे सिक्ख हिंदू और मुसलमान, छूत और अछूत, ऊँच और नीच के बीच के भेदभाव को मिटाकर छोड़ेंगे और ईश्वर को पिता मानने वाले स्त्री और पुरुषों के भातृत्व की सृष्टि करेंगे।

सिक्ख धर्म की संस्थाएँ

संगत-संगत का शाब्दिक अर्थ है-सच्चे सुच्चे व साधु लोगों की एकाग्रता । सिक्ख धर्म के संदर्भ में श्संगतश का अर्थ है-गुरु के शिष्यों एवं उसकी शिक्षाओं में विश्वास व श्रद्धा रखने वाले लोगों की धार्मिक सभा। जिसमें गुरु के मार्गदर्शन में प्रभु की प्रशंसा व स्तुति के शब्दों का गायन किया जाता है। पूरी श्रद्धा व भक्ति से जाप किया जाता है। गुरुनानक देव जी ने अपने जीवनकाल में बहुत-सी यात्राएँ कीं। यात्राओं के दौरान वे बहुत सारी अलग-अलग जातियाँ व धर्मों के लोगों से मिले तथा उन सबको इकट्ठा करने के लिए संगत की स्थापना की। वास्तव में संगत का दूसरा नाम श्सिक्ख भाईचारा है। गुरुनानक देव जी के बाद सिक्ख धर्म में संगत को बहुत महत्त्व दिया गया। उनके उत्तराधिकारियों ने गुरु की इस संस्था को आगे विकसित किया। इस संस्था के माध्यम से सिक्ख धर्म का दूर-दूर तक प्रचार हो गया। संगत के लिए बाद में श्सतसंगतश व श्साध संगतश शब्दों का प्रयोग किया गया। संगत की मुख्य विशेषता यह थी कि ऊँच-नोच, गरीब-अमौर सभी जातियों के स्त्री पुरुष सभी प्रकार का भेद त्यागकर एक पवित्र भाईचारे के रूप में इकट्ठे होते थे। एक ही स्थान पर बैठकर ईश्वर का गुणगान करते थे तथा धार्मिक मामलों पर चर्चा करते थे। संगत में आनेवाले स्त्री पुरुष एक ही पंक्ति में बैठकर लंगर खाते थे जिससे उनमें आपसी भाईचारा, प्रेम व भक्तिभावना का संचार हुआ। उनके मन में मानवीय समानता तथा ईश्वर के प्रति श्रद्धा विश्वास की भावना मजबूत हुई। उनमें अंधविश्वासों का खात्मा हुआ। वे पवित्र सादा जीवन व्यतीत करने की तरफ प्रेरित हुए।

भाई गुरदास जी संगत के बारे में कहते हैं कि जैसे नदी का पानी अंत में जाकर समुद्र गिरता है उसी तरह संगत में आकर मनुष्य को अंत में गुरु के चरणों में स्थान मिलता है। अच्छे लोगों की संगत में मनुष्य के अंदर अच्छे गुण पैदा होते हैं। कहा जाता है कि मनुष्य जैसी संगत रखता है उसको शख्सियत वैसी ही बन जाती है।

संगत की स्थापना-1521 ई. में जब गुरुनानक देव जी अपनी यात्राओं (जिसे इतिहास में उदासियों का नाम दिया गया है।) से वापिस आकर करतारपुर में जीवन व्यतीत करने लगे। वहाँ उन्होंने अपने अनुयायियों को संगत स्थापित की। गुरुनानक देव जी करतारपुर में सुबह-शाम ईश्वर के नाम का जाप करते थे। ईश्वर के जाप करने के पश्चात एक ही पंगत में बैठकर लंगर खाते थे। गुरुनानक देव जी के द्वारा करतारपुर में संगत की स्थापना के अलावा दूसरे स्थानों पर भी संगत की स्थापना की गई थी। यहाँ पर उनके मुख्य अनुयाई बैठकर गुरु के उपदेशों की वाचना करते थे।

1. पंजाब के उत्तरी हिस्से में श्भाई लालोश जी ने गुरुजी के श्रद्धालुओं की संगत स्थापित: करके उसकी अगुवाई की थी।
2. पंजाब के दक्षिणी पश्चिमी हिस्सों में श्शेख सज्जनश संगत की अगुवाई करता था।
3. पंजाब से बाहर पटना व बिहार में संगतों का आयोजन होता था।

बनारस में गोपालदास संगत की अगुवाई करता था। नियम संगत के नियम निम्नलिखित थे -

1. संगत के नियम कठोर नहीं थे। हर एक धर्म, जाति, रंग व नस्ल का व्यक्ति संगत में शामिल हो सकता था।
2. संगत में स्त्री व पुरुष बिना किसी भेदभाव के बैठ सकते थे।
3. संगत में आध्यात्मिक विचार व ईश्वर का सिमरन होता था। 4. संगत में गुरु साहिब के उपदेशों को सुना जाता था।

संगत की बैठकें जिन भवनों में होती थीं उनको पहले धर्मशालाएँ कहा जाता था। परंतु बाद में उनको गुरुद्वारा कहा जाने लगा। संगत की स्थापना ने सिक्ख धर्म को एक स्वतंत्र व विशिष्ट रूप प्रदान किया था। यह सिक्ख समाज का दूसरा नाम है। लंगर-संगत के अलावा श्लंगरश दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्था है।

गुरुनानक देव जी ने यह महसूस कर लिया था कि आध्यात्मिक जीवन में उच्चता हासिल करने के लिए तथा समाज के लोगों को जोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि लोगों का पदार्थथिक तौर पर भी खुशहाल होना जरूरी है। वैसी भी प्राचीनकाल से भारत में यह धार्मिक परंपरा रही है कि हवन-यज्ञों तथा विशेष धार्मिक उत्सवों पर शामिल होनेवाले लोगों को भोजन कराया जाता था। गुरु साहिब ने इस परंपरा को सिक्ख पंथ का आधारभूत व आवश्यक अंग बनाकर इसकी गरिमा को बढ़ा दिया।

लंगर से भाव समूह संगत द्वारा इकट्ठे होकर बिना कोई पैसे दिए भोजन तैयार करके लोगों में वितरित करना यही इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। भोजन कराने के लिए सभी को बिना किसी जातिगत भेदभाव के एक कतार में बिठाया जाता है। लंगर की सारी सामग्री अन्न, दूध, चीनी, अनाज, फल-सब्जियाँ, दालों आदि की प्राप्ति गुरु भक्तों द्वारा अपनी इच्छा से दी जाने वाली भेंटों से की जाती थी। लंगर के लिए अपनी इच्छा से धन या अन्य सामग्री देना एक पवित्र व धार्मिक कार्य समझा जाता था। जो व्यक्ति या भक्त धन या अनाज देने में असमर्थ होते थे वे भोजन बनाने, भोजन बाँटने व बर्तन साफ करने, पंगत बिछाने आदि का कार्य करके धर्म लाभ प्राप्त करते थे। भोजन कराने के समय ऊँची-नीची जातियों, गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, राजा व रंक एक ही पंक्ति में बैठते थे यही लंगर प्रथा का मानवीय पक्ष था। जिससे व्यावहारिक रूप से जाति प्रथा को गहरी चोट लगी थी।

गुरुनानक देव जी द्वारा शुरू की गई लंगर व्यवस्था को उनके बाद उनके उत्तराधिकारियों द्वारा जारी रखा गया। गुरु अंगददेव जी के समय उनकी पत्नी माता खींवी जी खडूर साहिब में लंगर का प्रबंध करती थीं। गुरु अमरदास जी ने गोइडवाल साहिब में इस प्रथा को जारी रखा बल्कि इसे सिक्ख पंथ की एक स्थाई संस्था बना दिया। उन्होंने यह आदेश जारी किया था कि उनसे मिलने से पूर्व हर व्यक्ति को लंगर छकना जरूरी है ताकि उसका अहंकार समाप्त हो सके। वह अपने से कम हैसियत के लोगों के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन छककर मानवीय समानता एवं भाईचारे की भावना का प्रसार कर सके। मुगल सम्राट अकबर व हरीपुरा का राजा दोनों ने गुरु साहिब से मिलने से पहले लंगर छका था। गुरु अमरदास जी कहते थे, "भूखे को अन्न देना हजारों हवन व यज्ञों से उत्तम है।"

अकबर इस व्यवस्था से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने लंगर के लिए कई गाँव दान में देने की पेशकश की थी। परंतु गुरु अमरदास जी ने यह कहकर पेशकश ठुकरा दी थी कि लंगर लोगों की संस्था है। इसके खर्च को लोगों द्वारा इच्छा से दी गई भेंटों से चलाया जाएगा। इसमें सरकारी संरक्षण को गुरु साहिबान ने स्वीकार नहीं किया। गुरु रामदास जी ने भी गुरु रामदासपुरा में पूरे उत्साह के साथ संस्था चलाई और माया इकट्ठा करने के लिए संसद प्रथा गुरु की थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने सिक्खों को अपनी आमदनी में से दशवंत यानी आमदनी का दसवाँ हिस्सा देने को कहा। उनकी पत्नी माता गंगाजी लंगर की सेवा करती थी। गुरु हरगोविंद के समय में उनका सुपुत्र बाबा अटल जी लंगर के मुखिया थे। वे बड़ी श्रद्धा से लंगर बाँटते थे। उनके बारे में यह कहावत प्रसिद्ध थी 'बाबा अटल पक्कियां पकाइयां घल।'

गुरु हरराय जी ने भी यह घोषणा की थी कि कोई भी व्यक्ति जो भूखा है किसी भी समय आ सकता है। उसे उसी समय भोजन कराया जाएगा। वे एक नगाड़ा बजाते थे जिससे हर व्यक्ति को लंगर के बारे में पता लग जाता था।

गुरु हरकृष्ण, गुरु तेगबहादुर व गुरु गोबिंद सिंह के समय में बिना किसी भेदभाव के लंगर लगाए जाने की प्रथा जारी रही। गुरु गोबिंद सिंह ने पाठटा साहिब, आनंदपुर साहिब व दमदमा साहिब में लंगर का प्रसार किया। वर्तमान समय में लंगर व्यवस्था के कारण सिक्ख धर्म अपनी एक पहचान बना चुका है।

कोरोना काल में संगत व लंगर का स्वरूप

मनुष्य को समय समय पर महामारियों का सामना करना पड़ा है। देखा जाए तो जब समस्याएँ पनपती हैं तो उसके भी बहुत सारे कारण होते हैं और जब समस्याएँ पतन की तरफ जाती हैं तो उसमें भी बहुत से कारण देखे जाते हैं। महामारी सभ्यताओं के पतन का एक कारण रहा है। वर्तमान समय में भी भयंकर महामारी का सामना मनुष्य कर रहा है जिसे कोरोना वायरस का नाम दिया गया है। 2020 से कोरोना संकट ने देश में कहर मचा दिया यद्यपि यह बीमारी भारत देश में विदेशों से आई है तो संपूर्ण विश्व इस भयानक बीमारी की चपेट में आ गया।

30 जनवरी 2020 तक कोरोना वायरस की भारत में फैलने की पुष्टि हुई। इस प्रकोप को एक दर्जन से अधिक राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में महामारी घोषित किया गया है। सभी शैक्षणिक संस्थाओं को बंद कर दिया। भारत ने सभी उड़ानों को रद्द कर दिया। 24 मार्च को सरकार ने देशभर में लॉकडाउन घोषित कर दिया। लॉकडाउन घोषित होने से संपूर्ण भारत बंद हो गया। जो जहाँ था वहाँ रह गया। लोग अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने के लिए तरस गए। लोग अपने घरों के लिए पैदल भी चल पड़े थे। इस परेशानी के समय लोगों को राहत पहुँचाने के लिए सिक्ख धर्म की संस्थाएँ श्गुरुद्वारेश आगे आए। नई दिल्ली की गुरुद्वारा बंगला साहिब इस महामारी के समय में लोगों के लिए 24 घंटे खुला रहा। लॉकडाउन की वजह से धार्मिक आयोजन बंद कर दिए गए व आम लोगों

को सुविधा मुहैया कराने लग गए। बंगला साहिब में रोजाना 40000 लोगों के लिए खाना बनना शुरू हुआ था। लेकिन भोजन की माँग इससे भी ज्यादा थी। गुरुद्वारे के सेवादार भोजन की माँग को देखते हुए हर रोज 80000 लोगों को भोजन मुहैया कराने लगे और इसके बाद लाख और फिर 3 लाख तक पहुँच गई। लाखों भूखे लोगों को गुरुद्वारे में मुफ्त भोजन करवाया जाता था। सदियों से श्रद्धालु इस गुरुद्वारे में आकर सामुदायिक रसोई में बनने वाले लंगर की सेवा लेते थे और यह सभी के लिए खुला रहता था। गुरुद्वारे में चार दर्जन सेवादार 25 मार्च से ही गुरुद्वारे के गैस्ट हाउस में रुककर रसोई में अपनी सेवा देते रहे। वे घर जाने में लगने वाला समय तो बचा ही लेते थे साथ ही संक्रमण से अपने व अपने परिवार का भी बचाव कर लिया। गुरुद्वारे के प्रमुख रसोइए बलवीर सिंह का कहना है- सुबह 3 बजे रसोई में काम शुरू हो जाता था ताकि सुबह 7 बजे तक भोजन ले जाने के लिए तैयार हो जाए। उनका कहना है-'अगर हम इस समय में सेवा करेंगे तो ईश्वर हमारी मदद करेगा।' यह एक तरह की लेन-देन प्रणाली है। बंगला साहिब गुरुद्वारे से दिल्ली सरकार हर रोज ट्रक भेजकर भोजन बाँटने के लिए गुरुद्वारे से भोजन लेती थी फिर उस भोजन को शेल्टर होम व अन्य जगहों पर वितरित किया जाता था। इसके अलावा इन्य कई गुरुद्वारे हैं जहाँ पर खाने के साथ-साथ ऑक्सीजन लंगर का भी आयोजन किया गया। कोरोना के संकटकाल के दौरान ऑक्सीजन के लिए भटकते हुए लोगों की मदद के लिए आगे आए गुरुद्वारे।

'पापा को कोई अस्पताल लेने के लिए राजी नहीं था... ऑक्सीजन लंगर से मिली जिंदगी।' दमदमा साहिब, राजौरी गार्डन गुरुद्वारा, सुभाषनगर स्थित फतेह पार्क आदि ऐसी जगह है जहाँ पर ऑक्सीजन का लंगर लगाया गया था और बड़ी संख्या में लोगों को ऑक्सीजन मुहैया करवाई गई थी।

दमदमा साहिब में 'हम चाकर गोविंद' के सेवक जत्थे की तरफ से ऑक्सीजन का लंगर लगाया गया था। यह ऐसा समय था जब ऑक्सीजन सिलेंडर को लेकर कालाबाजारी हो रही थी। लोग मरीजों को लूट रहे थे। पैसा कमाया जा रहा था वहीं दूसरी तरफ सिक्ख लोगों की सेवा कर रहे थे।

राजौरी गार्डन गुरुद्वारे में जरूरतमंद लोगों को कुछ सिक्योरिटी के तौर पर पैसा जमा करवाकर सिलैंडर दिए जा रहे थे। सुभाषनगर, पैसिफिक मॉल के सामने पार्क में अकाल पुरख को फौजश सेवक जत्था और वासय ऑफ वायसलैस की तरफ से ऑक्सीजन का सिलेंडर लगाया जाता था।

गाजियाबाद गुरुद्वारा प्रबंध कमेटी की तरफ से 'मानवसेवा परम धर्म' का नारा देते हुए ऑक्सीजन सिलेंडर का लंगर लगाया गया। लोगों को ऑक्सीजन न ही मिल रही थी यहाँ पर लंगर शुरू किया गया। इसी गुरुद्वारे में एक एन०जी०ओ० 'खालसा हैल्प इंटरनेशनल फाउंडेशन' की स्थापना की गई। जिसके द्वारा रोजाना 1000-1500 लोगों को भोजन का लंगर दिया जाता था। दिल्ली सिक्ख गुरुद्वारा प्रबंध कमेटी व गुरुद्वारा सिंह सभा प्रबंध कमेटी, ग्रेटर कैलाश की तरफ से ऑक्सीजन के लिए लंगर का आयोजन किया गया।

इन गुरुद्वारों में खाने के लंगर के लिए भी नोएडा, गुड़गाँव, गाजीपुर व अलग-अलग जगहों से रोजाना रिक्वेस्ट आती थी। मजदूर व प्रवासी जो लॉकडाउन की वजह से जगह-जगह फँस गए थे उन सबको लंगर मुहैया करवाया जाता था। बड़े गुरुद्वारों में जहाँ पहले 20 से 50 लोगों का खाना बनता था अब 5 लाख लोगों के लिए खाना बनने लग गया था। कुछ ऐसे दानी सज्जन थे जो दाल, चावल, अनाज का दान इन गुरुद्वारों में करते थे तभी लंगर चलता था। इस प्रकार कॉविड-19 के समय लंगर व संगत संस्था ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

निष्कर्ष के रूप में देखा जाए तो भक्ति का सही रूप मानव की मानव के प्रति दया व मानवता की भावना है। सही मायने में भक्ति आंदोलन का उदय भी इसी कारण से हुआ था कि चारों तरफ फैली अराजकता व अमानवीयता से दूसरे मनुष्यों को राहत पहुंचाई जाए और इसी संदर्भ में अस्तित्व में आए सिक्ख धर्म ने अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। 600 वर्ष पुराने सिक्ख धर्म ने न केवल पंजाब बल्कि भारत के साथ-साथ विदेशों में भी अपनी एक खास जगह बनाई भरपूर है। उसका कारण इस धर्म का मानवीयता से भरपूर व्यावहारिक होना है। क्योंकि धर्म सिर्फ हमें धार्मिक ग्रंथ पढ़ने तक ही सीमित नहीं करता बल्कि अपनी सोच को गहरा व सूझबूझ से बनाकर मानव के प्रति हमारे नजरिए को बदलता है। यही सिक्ख धर्म का असली स्वरूप है।

कोरोना जैसे समय में जब इंसान की इंसान के प्रति असली पहचान सामने आई। जब सभी रिश्ते-नाते दूर हो गए। उस समय में इन सिक्ख संस्थाओं ने बड़ी संख्या में जरूरतमंद लोगों को उनकी जरूरतों का सामान उपलब्ध करवाया। उनकी संस्थाओं श्लंगर व संगतश ने लोगों को जीवनदान दिया। खाने के साथ-साथ चिकित्सकीय सेवाएँ उपलब्ध करवाई गई। वे लोग जिनकी आर्थिक

स्थिति ठीक नहीं थी उन लोगों को बुनियादी सेवाएँ उपलब्ध करवाकर एक सकारात्मक पहल की तरफ कदम बढ़ाया। यह कदम उन लोगों के लिए जिनकी उम्मीद टूट चुकी थी एक आशा की किरण बन सामने आया। ऑक्सीजन सिलेंडर के लंगर द्वारा तो बहुत सारे कोरोना पीड़ित लोगों को नई जिंदगी मिल गई थी। इस प्रकार सिक्ख धर्म की संस्थाएँ 'लंगर व संगत' जो कि गुरुओं के द्वारा अपने समय में शुरू की गई वर्तमान में 600-650 साल बाद भी अपना खास महत्त्व रखती है।

संदर्भ

1. गोपेश्वर सिंह, भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
2. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत को संत परंपरा, इलाहाबाद साहित्य भवन 2014
3. अरविंद गोडबोले, गुरुनानक से गुरुगोविंद सिंह, भोपाल, अर्चना प्रकाशन, 1995
4. सतीशचंद्र, मध्यकालीन भारत, दिल्ली ओरिएंट ब्लैक, 2011
5. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पटना, उदयाचल 1970
6. मनमोहन सहगल, गुरुनानक देव, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2009
7. हजारीप्रसाद द्विवेदी, गुरुनानक देव : व्यक्तित्व और संदेश, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1972
8. Covid-19 him.wikipedia.org
9. Amarujala.com
10. https://ww.indiatoday.in
11. https://ww.dw.com
12. https://ww.bhaar.com
13. https://ww.tribuneindia.com
14. https://ww.indiatoday.in
15. https://ww.kzagran.com/uttrkaand

वर्तमान राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में कालिदास एवं भवभूति की नाट्यसूक्तियों की प्रासंगिकता

बब्बू राम

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़

संस्कृत साहित्य में नाटक लेखन की परम्परा अति प्राचीन है, जिसका कारण है कि प्रारम्भ से ही जनसाधारण के मनोरंजन के लिए नाटक सर्वश्रेष्ठ साधन रहे हैं। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि व्यक्ति चाहे किसी भी रूचि का क्यों न हो, नाटक में उसे आत्मानुकूल विषय अवश्य ही मिल जाता है यथा:-

'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्'।[1]

नाटक में कवि विविध पात्रों के अभिनय द्वारा कथ्यविषय को हृदयगंम करवाता है। पात्रों के मुख से उच्चरित सूक्तियाँ इसमें विशेष प्रभाव उत्पन्न करती हैं। कहा भी गया है कि -

'एक: शब्द: सम्यग्ज्ञात: शास्त्रान्वित: सुप्रयुक्त: स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति'।[2]

अर्थात् यदि एक शब्द को भी सम्यक् विधिपूर्वक समझकर उसका उचित प्रयोग किया जाए, तो वह इस लोक में व स्वर्ग में सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर देता है, अत: इस कथन के अनुसार तो प्रसंगपूर्वक उच्चरित सूक्ति भी कथोपकथन में जहाँ तीव्रता एवं तीक्ष्णता लाती है, वहीं पाठक एवं दर्शक के मन-मस्तिष्क में अपनी अमिट छाप भी छोड़ देती है।

संस्कृत नाट्य साहित्य में महाकवि कालिदास एवं भवभूति का तुलनात्मक अध्ययन एक रोचक विषय रहा है। सूक्तियों के दृष्टिगत भी कहीं कालिदास आम्रमंजरी की तरह रसभरी सरसता-पगी सूक्तियों के द्वारा शृंगार का मजा चखा रहे हैं, तो कहीं भवभूति अपनी भावमयी भव्य-नव्य सूक्तियों के द्वारा पवित्र प्रेम की अभिव्यक्ति कर परम मंगलमय आदर्श की सृष्टि कर रहे हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में महाकवियों की नाट्यकृतियों से 'राजनीति-विषयक' सूक्तियों को चुनकर उनकी वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में प्रासंगिता को समझने का प्रयास किया गया है।

महाकवि कालिदास एवं भवभूति की नाट्यकृतियों में प्रयुक्त राजनीति विषयक सूक्तियों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता पर दृष्टिपात करने से पूर्व भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित राजनीति विषयक ज्ञान से परिचित होना परमावश्यक है।

व्यापक रूप से 'राजनीति' शब्द राज्य, राजा-प्रजा एवं शासकों से सम्बद्ध नियमों, एवं तात्कालिक आवश्यकताओं के प्रति वैयक्तिक दृष्टिकोण एवं प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता है। एक नागरिक में अपने देश और शासन के विषय में राजनीतिक चेतना विद्यमान रहती है। वह सामाजिक जीवन के निर्वहन के लिए राज्य संस्था का शासन स्वीकार करता है। राज्य-संस्था के अन्तर्गत उस देश के नागरिकों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह नानाविध प्रकार से समाज की अन्य संस्थाओं, व्यक्तियों तथा उनके कर्त्तव्य, अधिकार एवं पारस्परिक सम्बन्धों को प्रभावित करता है। राजनैतिक परिपेक्ष्य को जाने बिना किसी देश, काल या समाज की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का यथार्थ मूल्यांकन करना संभव नहीं है, क्योंकि कहा भी गया है कि 'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात् राज्यव्यवस्थाा के अनुरूप ही सामान्य जनमानस की भी जीवनशैली होगी। राजा एवं राजधर्म पर ही राज्य की सुव्यवस्था को निर्भर करती है तथा प्रजापालन, शासन, दण्ड, युद्ध इत्यादि उसके मुख्य धर्म माने जाते हैं।

भारतवर्ष में सुव्यवस्थित राज्यव्यवस्था विद्यमान होने के प्रमाण वैदिककाल से ही प्राप्त होते हैं, जहाँ प्रजा कल्याण एवं समृद्धि को राजा पर ही आश्रित स्वीकार किया जाता है।[3] रामायणकार ने भी साम, दान, क्षमा, धर्म, सत्य, धृति, पराक्रम एवं अपराधियों को

दण्ड देना इत्यादि पृथिपालकों के धर्म कहे हैं[4] और पुत्रवत् प्रजा का पालन करना, प्रजापालन में तत्पर रहना, प्रजाजन[5] तथा वर्णाश्रम धर्म[6] का पालन राजा के प्रमुख धर्म कहे हैं। महाभारतकार ने राजा की कार्यसिद्धि के साधन चार उपाय (साम, दाम, दण्ड, भेद) गुप्तचर, उत्तम बुद्धि, सुरक्षित मन्त्रणा, पराक्रम, नियम, अनुग्रह और चतुरता को बताया है।[7] स्मृतिकार ने सप्तम अध्याय के अन्तर्गत राजधर्म का विवेचन निम्न श्लोक से प्रारम्भ करके किया है –

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा।।[8]

भारतीय संस्कृति की इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए महाकवि कालिदास एवं भवभूति ने भी अपनी नाट्यकृतियों में राजा एवं राज्य विषयक सूक्तियों के माध्यम से राजाओं के धर्म एवं राजनीति के ऐसे सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, जोकि तत्कालीन समय के सदृश ही वर्तमानकालीन लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भी उतने ही प्रासंगिक प्रतीत होते हैं –

महाकवि कालिदास राजा की सर्वत्र सर्वगोचरता स्वीकार करते हैं[9], जोकि राज्यप्रशासन की दृष्टि से उचित प्रतीत होता है। चूकिं प्रायशः दृष्टिगोचर होता है कि राज्य अथवा देश में उपद्रवी और पड़ोसी देश षड्यंत्र करते रहते हैं, जिनसे सावधान रहना एक राजा की दृष्टि से आवश्यक है। उपर्युक्त सूक्ति की यदि हम वर्तमान भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रासंगिकता देखें तो भारत सरकार के पास ऐसी अनेक खुफिया एजेंसी (रॉ.,आई.बी., सीआईडी., एन,आई.ए. इत्यादि) हैं, जिनके माध्यम से वे देश और विदेशों में नजर रखती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक देश के पास भी अपनी-अपनी खुफिया एजेंसी हैं।

महाकवि कालिदास राज्य प्रशासन में एक राजा के महत्त्व को अभिव्यक्त करने के लिए राजा को काल का निर्माता तक कह देते हैं[10], क्योंकि तत्कालीन समय में सर्म्पूण राजव्यवस्था राजा पर आश्रित होती थी। यद्यपि वर्तमान भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में ऐसा नहीं, क्योंकि देश का संवैधानिक प्रमुख राष्ट्रपति को स्वीकार किया जाता है, किन्तु देश में प्रधानमन्त्री वास्तविक शासक होता है, वह संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। वह मन्त्रिपरिषद् की सहमति से कोई भी निर्णय लेता है, जिसे संसद के दोनों सदनों राज्यसभा तथा लोकसभा में पास करवाना आवश्यक होता है। जिसमें विपक्ष की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, जोकि बिल पर उपयुक्ता और अनुपयुक्ता पर चर्चा में भाग लेता है।

महाकवि कालिदास राजा की व्यस्त दिनचर्या एवं कर्त्तव्यनिष्ठा के दृष्टिगत कहते हैं कि राजाओं के समक्ष अवसर देखकर जाना चाहिए।[11] महाकवि की उक्त सूक्ति की प्रासंगिकता जितनी तत्कालीन समय में थी, उतनी आज भी है। किसी भी मन्त्री अथवा अधिकारी से भेंट करने के लिए पूर्व में अनुमति लेना राजनीतिक शिष्टाचार का एक अभिन्न अंग बन गया है।

महाकवि कालिदास एक राजा के लिए लोकतन्त्र के अधिकार को विश्रामरहित[12] व अनतिक्रमणीय[13] मानते हैं। चूकिं राज्य के सुचारु प्रशासन के लिए राजा को सदैव कर्त्तव्यरत रहना पड़ता है। महाकवि का उक्त विचार राज्य प्रशासन के दृष्टिगत उतना ही तर्कसंगत है। क्योंकि देश अथवा राज्य तभी प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकता है, यदि शासक सदैव सजग रहें।

महाकवि कालिदास एक सूक्ति के माध्यम से एक राजा की खिन्नता को व्यक्त करते हुए दण्ड वाले छत्र के समान राज्य को उसके लिए दुःखदायी मानते हैं।[14] अर्थात् जिस प्रकार एक छत्र धूप से बचाने की अपेक्षा पकड़ने वाले के लिए थकावट का कारण अधिक बनता है, उसी प्रकार एक राजा के लिए राज्य सुख की अपेक्षा दुःख का कारक अधिक होता है। चूकिं राजा का कार्य परहित के लिए होता है और परहित साधने के लिए व्यक्ति को स्वार्थ का त्याग करना पड़ता है और पराधीन व्यक्ति व्यक्तिगत प्रसन्नता के रस को अनुभव नहीं कर सकता है।

महाकवि कालिदास का मानना है कि एक राजा को इसलिए भी प्रजा के प्रति अविरत संलग्न रहना चाहिए, क्योंकि वह प्रजा से छठे अंश को कर के रूप में ग्रहण करता है।[15] उक्त सूक्ति तत्कालीन समय के सदृश ही वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है। वर्तमान में भी सरकारों के द्वारा प्रजा से अनेक प्रकार कर लिए जाते हैं, जिसके एवज में प्रजा की सेवा व सुरक्षा करना उनका धर्म है।

महाकवि कालिदास तत्कालीन समय में बहुपत्नी प्रथा की ओर संकेत करते हुए, विशेषकर राजाओं को अपनी नाट्यकृतियों में अनेक पत्नियों से युक्त चित्रित करते हैं।[16] यद्यपि वर्तमान में बहुपत्नी प्रथा को हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के तहत दंडनीय अपराध माना गया है।[17] हालांकि मुस्लिम समाज में यह प्रथा कदाचित् दृष्टिगोचर होती है।

महाकवि कालिदास तत्कालीन समय में राजा-प्रजा सम्बन्ध को चरितार्थ करते हुए एक राजा को हर प्रकार से प्रजा का बन्धु[18] व सभी प्रकार के दु:खों का अपकारक माना है।[19] राजा की प्रजा के प्रति बन्धु भावना पर दृष्टिपात करते हुए महाकवि भवभूति प्रजानुरञ्जन हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर करने का संदेश सूक्तियों में देते हैं।[20]

महाकवि भवभूति एक राजा का प्रजापालन में यथाविधि तथा सावधान चित्त से युक्त रहना आवश्यक मानते हैं।[21] इस विषय में महाकवि कालिदास एक राजा के लिए प्रजानुरञ्जन को इसलिए उपयुक्त मानते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में एक राजा के लिए प्रजासेवा से प्राप्त यश ही सब धनों में परमधन है।[22] किन्तु उपर्युक्त सूक्तियों को यदि वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के संदर्भ में देखें, तो प्रायश: अधिकर मन्त्रिगण व अधिकारीगण धनलोलुप होकर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी इत्यादि कुकृत्यों में संलिप्त हो कर्तव्यच्युत हो जाते हैं और वही कालान्तर में प्रजा असंतोष का कारण बनता है।

महाकवि कालिदास न्यायवस्था की ओर संकेत करते हुए असन्मार्गगामी को नियन्त्रित करना, पारस्परिक विवादों को शान्त करना और प्रजा की रक्षा करना[23] व अपराधी के लिए दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य मानते हैं।[24] महाकवि भवभूति राजदण्ड को इसलिए आवश्यक मानते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में ऐसा न करने पर प्रजाविप्लव हो सकता है तथा जिस प्रकार एक वैद्य शारीरियों में असाध्य और अन्य उपायों से न शान्त होने वाले रोग के दृष्टिगोचर होने पर उपचार करता है, उसी प्रकार एक राजा को प्रजा में दोष दृष्टिगोचर होने पर दण्ड देना चाहिए।[25] इसके साथ ही वे राजदण्ड को प्रायश्चित्त के समान पाप का निष्क्रय भी मानते हैं।[26] उक्त सूक्तियों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में अपराधियों को दण्ड देना आवश्यक माना जाता था व दण्ड देने का कार्य राजा स्वयं करता था। यदि उपर्युक्त सूक्तियों को वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था के परिदृश्य में देखें, तो न्यायपालिका पूर्णत: स्वतंत्र है और अपराधियो को दण्ड देने का कार्य करती है।

उक्त सूक्तियों के माध्यम से महाकवियों के द्वारा दिए गए संदेशों को यदि आज के राजनेता तदनुरूप ही अनुसरण कर लें, तो देश में पुन: रामराज्य स्थापित होने में कोई अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती है।

संदर्भग्रन्थ सूची:

1. मालविकाग्निमित्रम् 1.41
2. पाणिनीयसूत्र 6.1.84 पर व्याकरणमहाभाष्य
3. विशि राज्ञा प्रतिष्ठित:। यजुर्वेद 20.9
4. 'सामं दानं क्षमा धर्म: सत्यं धृतिपराक्रमो।
   पार्थिवानां गुणा राजदण्डश्चाप्यपराधिषु।। रामायण (किष्किन्धा काण्ड 17.27.28)
5. तथैव (उत्तरकाण्ड) 59.8.5
6. तर्थव (बालकाण्ड) 25.17
7. महाभारत (आरण्यकपर्व) 149.41.42
8. मनुस्मृति 7.1
9. किमीश्वराणां परोक्षम। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.25/26
10. राजा कालस्य कारणम्। विक्रमोर्वशीयम् 4.11/12
11. अवसरोपसर्पणीया राजान:। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.1/2
12. अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकार:। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.3/4
13. धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.3
14. नातिश्रमापनयनाय यथाश्रमाय।
    राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम।। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.5/6

15. भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एवं, रात्रिदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः, षष्ठांशवृत्तैरपि धर्म एषः।। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.3/4
16. बहुवल्लभाः राजानः श्रूयते। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.16/17
17. The Hindu Marriage Act, 1955
18. त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.8
19. आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्त्तिहरेण राज्ञा भवितव्य। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.16
20. स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।। उत्तररामचरितम् 1.12
21. युक्तः प्रजनामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशा यत्परमं धनं वः। उत्तररामचरितम् 1.11
22. विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.13
23. नियमसि कुमार्गस्थितानादण्डः।
प्रशयमसि विवादं कल्पसे रक्षणाय। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.8
24. अपराधी शासनीयः। विक्रमोर्वशीयम् 5.2/3
25. असाध्यमन्यथादोषं परिच्छिद्य शारीरिणः।
यथावैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति।। महावीरचरितम् 4.23
26. प्रायश्चित्तमिव राजदण्डेऽप्येनसो निष्क्रमामनन्ति धर्माचार्यः। महावीरचरितम् 4.26/27

वैदिक कालीन गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली तथा आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन

आकांक्षा सिन्हा

शोध-छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ० शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

प्रो० (डॉ०) रजनी रंजन सिंह

आचार्य एवं अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ० शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

सारांश:- शिक्षा अंधकार में प्रकाश की किरण है। यह निश्चित रूप से एक अच्छे जीवन की आशा है। यह व्यक्तियों की सोच को सकारात्मक विचारों में बदलती है और नकारात्मकता को दूर करती है। शिक्षा का कार्य बालक के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा भावनात्मक सभी स्तरों पर विकास या फिर कहा जा सकता है कि शिक्षा बालक का पूर्ण विकास करती है। शिक्षा अपना यह कार्य शैक्षिक और सहशैक्षिक पहलुओं के विकास के माध्यम से बखूबी निभाती है। जितना अधिक शैक्षिक पहलुओं का योगदान बालक के विकास में रहता है उतना ही अधिक सहशैक्षिक पहलुओं का भी योगदान बालक के विकास में रहता है। हमारे देश की सबसे प्राचीन शिक्षा प्रणाली वैदिक कालीन गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली थी। जहां गुरु को केंद्र बिंदु मानते हुए संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था चलाई जाती थी परंतु उस काल के शिक्षण व्यवस्था में सहशैक्षिक पहलुओं पर पूर्ण ध्यान दिया जाता था ताकि बालक का पूर्ण विकास हो सके। आधुनिक काल की विद्यालयीय प्रणाली में भी सहशैक्षिक पहलुओं पर पूर्ण ध्यान केंद्रित किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली तथा आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन करके इनके महत्व को जानने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द:- गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली, आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली, सहशैक्षिक पहलू।

प्रस्तावना:-

नास्ति विद्यासमो बन्धुर्नास्ति विद्यासमः सुहृत् ।
नास्ति विद्यासमं वित्तं नास्ति विद्यासमं सुखम् ।

अर्थातविद्या जैसा बंधु नहीं, विद्या जैसा मित्र नहीं और विद्या जैसा अन्य कोई धन या सुख नहीं। उपरोक्त पंक्तियां हमारे देश भारत में अति प्राचीन काल से विद्या के महत्व को स्पष्ट करती हैं।

शिक्षा/विद्या को पूर्ण रूप से समझने के लिए इसके शैक्षिक और सहशैक्षिक पहलुओं को समझना अति आवश्यक है। बालक के पूर्ण विकास के लिए प्राचीन काल से ही सहशैक्षिक पहलू पर पूर्ण ध्यान दिया जाता रहा है जो आधुनिक काल तक की शिक्षा प्रणाली में देखने को मिलता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में जितना अधिक तकनीकी पर ध्यान दिया जाता है उतना ही अधिक शिक्षा के सहशैक्षिक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाता है। शिक्षा के सभी आयामों अर्थात बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक, आदि में विकास कोएक बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यकमाना जाता है। यह आवश्यकता शैक्षिक और सहशैक्षिक पहलुओं के साथ ही पूर्ण होती है। सहशैक्षिक क्षेत्रों में जीवन कौशल, सह-पाठ्यक्रम क्षेत्रों में क्षमताएं, दृष्टिकोण और मूल्य, गुरु-शिष्य संबंध, भौतिक और मानवीय संसाधन, पाठ्य सहगामी क्रियाएं, अनुशासन आदि शामिल हैं। बालक को जीवन को जीने की कला का वास्तिक रूप से ज्ञान कराने में सहशैक्षिक पक्षों का बहुत अधिक योगदान रहता है। प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली के सहशैक्षिक पक्षों तथा आधुनिक काल की शिक्षा प्रणाली के सहशैक्षिक पक्षों के तुलनात्मक अध्ययन के साथ पूर्ण रूप से सहशैक्षिक पक्ष का महत्व जाना जा सकता हैं।

उद्देश्यः- प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य निम्नलिखित हैं

1. गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओंकी विशेषताओं का अध्ययन करना।
2. आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओंकी विशेषताओं का अध्ययन करना।
3. गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली और आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलूः- भारतीय वैदिक कालीन शिक्षा और जीवन वेद प्रतिपादित धर्म तथा आचार व्यवस्था का दर्पण हैं। सामान्यता वेद शब्द का अर्थ जानो होता है व्यक्ति को क्या जानना है और क्या नहीं यही मानवीय जीवन की शिक्षा है। वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली में परा और अपरा विद्या के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने का कार्य किया गया। प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली में केवल शाब्दिक ज्ञान को ही ज्ञान नहीं माना गया बल्कि उसके आधार पर उस ज्ञान को व्यवहारिक जीवन में प्रयोग करने को भी ज्ञान का मूल रूप माना गया। बालक के विकास के लिए केवल प्रवचन आदि को ही महत्त्व ना देते हुए बल्कि शिक्षा के अन्य पहलुओं जिसे सहशैक्षिक पहलू कहा जाता है,को भी बहुत अधिक महत्व दिया गया। इस काल में ज्ञानकांड के साथ-साथ कर्मकांड को भी सूक्ष्म और स्थूल रूप से अन्वेषण करने का प्रयास किया गया। ताकि ब्रह्मचारी व्यवहारिक जीवन में भी अपने ज्ञान का प्रयोग कर सकें। सहशैक्षिक पहलूओं के प्रमुख रूप से अंग थे- भिक्षाटन, होम की अग्नि प्रज्वलित रखना, पशु-सेवा, भूमि सेवा, व्यायाम, गुरु-सेवा, अनुशासित जीवन, गुरुकुल घर की सफाई, यज्ञ हवन करना, भ्रमण आदि।

प्राचीन भारतीय गुरु शिष्य संबंध में शिष्यों द्वारा भिक्षाटन विश्व में अनुपम प्रयोग था। माता पिता पर विद्यार्थी के अध्ययन काल में आर्थिक भार नहीं पड़ता था।भिक्षाटन का नियम विद्यार्थियों को सामाजिक उपेक्षा तथा यह अनुभव करने के लिए विधान किया गया था कि सामाजिक सहयोग और सहानुभूति से ही वह शिक्षा प्राप्त कर रहा है।

अग्नि के प्रति सम्मान व्यक्त करना और अग्नि का जीवन में महत्व समझने से संबंधित कर्तव्यों में अग्नि प्रज्वलित करने का कार्य था। ब्रह्मचारी प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित करने का कार्य करता था जिससे प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए आशीर्वादों का जीवन में महत्व स्पष्ट होता था। पशु सेवा या गौ सेवा भी ब्रह्मचारी के लिए एक ऐसा कार्य था जो सहशैक्षिक पहलू में गिना जाता है। मनुष्य और पशु पक्षी इन सबके माध्यम से ही जीवन यापन उचित रूप से हो पाता है। जीवन में पशुधन का महत्व समझाने के लिए ही गौ सेवा या पशु सेवा का कार्य ब्रह्मचारी से करवाया जाता था। गुरु सेवा का कार्य अपने गुरु के प्रति सम्मान को व्यक्त करने का एक तरीका था। गुरु को पिता के समान मानते हुए उसकी सेवा करना ब्रह्मचारी का कर्तव्य था। इसके माध्यम से ब्रह्मचारी अपने जीवन में अपने कर्तव्यों के पालन के महत्व को सीखता था। सहशैक्षिक पहलुओं में अनुशासन का पालन करने के अंतर्गत दैनिक नियमों का पालन करना ,प्रातः जागरण, साधारण वेश भूषाए सात्विक भोजनए ब्रह्मचर्य का पालन करनाए सत्य भाषी तथा सात्विक जीवन जीना था। शिक्षा के इन सभी पहलुओं के माध्यम से ब्रह्मचारी के पूर्ण जीवन का विकास किया जाता था।

आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलू:- अंग्रेजों के आने के साथ ही भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति में परिवर्तन होने लगा था। न केवल तब शिक्षा पद्धति में ही परिवर्तन हुआ, अपितु शिक्षा के लक्ष्य में भी परिवर्तन हुआ और उसे 'आधुनिक शिक्षा पद्धति' कहा जाने लगा। आधुनिक कही जाने वाली इस शिक्षा पद्धति का गुण यह है कि इसके द्वारा शिक्षा के द्वार किसी वर्ग के लिए बन्द नहीं हैं, अपितु सबके लिए खुलें हैं। इसके द्वारा केवल भाषा, व्याकरण, गणित और धर्मशास्त्र को ही नहीं, अपितु विज्ञान, व्यापार, शास्त्र, कला, शिल्प, प्रौद्योगिकी और अभियांत्रिकी आदि विविध विषयों की भी शिक्षा दी जाती है। आधुनिक विद्यालय प्रणाली में भी बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए विभिन्न सहशैक्षिक पहलुओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया।

सहशैक्षिक क्षेत्रों में जीवन कौशल, पाठ्यसहगामी क्रियाएं, दृष्टिकोण, मूल्य, अनुशासन, योग, भ्रमण, खेलकूद आदि को शामिल किया जाता है बालकों को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करने के लिए उनमें जीवन कौशल विकसित करना पड़ता है ताकि उनमें आत्मविश्वास और क्षमता के साथ अपनी आंतरिक क्षमता को प्रकट करने और जीवन की चुनौतियों का सामना करने में वे सक्षम बन सकें। विद्यार्थियों की अभिवृत्तियां और व्यवहार उनकी शैक्षणिक उपलब्धि को सुधारने के साथ-साथ शेष विश्व के प्रति उनके दृष्टिकोण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विद्यालय विन्यास में शिक्षकों, साथियों, विद्यार्थियों की गतिविधियों और कार्यक्रमों और पूरे विद्यालय के पर्यावरण के प्रति छात्रों के दृष्टिकोण का विकास और मूल्यांकन सुनिश्चित किया जाता है जिसके द्वारा उनका सामाजिक और शारीरिक विकास संभव हो पाता हैं। स्वस्थ रहने के लिए एक अच्छा, स्वस्थ और स्वच्छ पर्यावरण आवश्यक हैं। पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से पर्यावरण के प्रति बालक अपनी जिम्मेदारी को समझते हैं। खेल कूद और योग के माध्यम से शरीर को स्वस्थ रखने का कार्य किया जाता हैं। योग का महत्व इन दो पंक्तियों से स्पष्ट होता है।

योग को अपनाने का लो संकल्प,

स्वस्थ रहने का है यही विकल्प।

खेलकूद के माध्यम से जीवन मूल्यों जैसे सहनशीलता, सहयोग, एकता, प्रेम, मानवता जैसे विभिन्न मूल्यों को सीखने के अवसर प्राप्त होते हैं। साथ ही साथ शरीर भी स्वस्थ रहता है।खेल के महत्व को भी हम इन पंक्तियों से भलीभांति समझ सकते हैं

खेलकूद का करो विचार,

यह देता है स्वस्थ जीवन जीने का अधिकार।

अनुशासन में रहने के साथ-साथ विद्यार्थी जीवन की विभिन्न मूल्यों को भी सीखते हैं। कंप्यूटर शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा आदि के माध्यम से भी विद्यार्थी तकनीकी को समझते हुए प्रकृति के प्रति और विश्व के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने में सक्षम हो पाते हैं।

वैदिक कालीन गुरुकुल विद्यालयीय प्रणाली तथा आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली के सहशैक्षिक पहलूओं का तुलनात्मक अध्ययन:-वैदिक कालीन शिक्षा के सह शैक्षिक पहलुओं में योग, हवन, पशु-सेवा, भूमि-सेवा, गुरु-सेवा, अग्नि प्रज्वलित करना, अनुशासन, भिक्षाटन आदि के माध्यम से बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक, बौद्धिक सभी प्रकार के विकास का प्रयास किया जाता था। भिक्षाटन से ब्रह्मचारी को समाज का महत्व तथा सामाजिक कर्तव्यों का महत्व समझाया जाता था। योग से शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ मन व इंद्रियों पर नियंत्रण रखना भी सिखाया जाता था। पशु-सेवा भूमि-सेवा से मानवता के गुण जैसे सेवा, दया, प्रेम, कर्तव्य पालन को सिखाया जाता था। तथा गुरु-सेवा से अपने बड़ों का सम्मान करना सिखाया जाता था।

आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली में खेलकूद, अनुशासन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, कला,भ्रमण, योग, पर्यावरण ज्ञान, कंप्यूटर ज्ञान, जनसंख्या के प्रति जागरूकता, मध्यम से जीवन मूल्य और अभिवृति में सकारात्मक परिवर्तन किया जाता है। समाज के प्रति, प्रकृति

के प्रति, देश के प्रति, परिवार के प्रति, मानव के प्रति कर्तव्यों को इसी सहशैक्षिक पहलुओं के माध्यम से सिखाया जाता है। बालक का चहुंमुखीविकास किया जाता है। बौद्धिक विकास के साथ-साथ बालक के अन्य विकास को पूर्ण करने की जिम्मेदारी सहशैक्षिक पहलुओं की होती है। प्राचीन काल की शिक्षा के सहशैक्षिक पहलुओं का उद्देश्य भी बालक का पूर्ण विकास था और आधुनिक काल की शिक्षा प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओं का उद्देश्य भी बालक का पूर्ण विकास ही है। अंतर सिर्फ इतना ही है कि प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली के सहशैक्षिक पहलुओं में आध्यात्मिकता का भी पुट देखने को मिलता है। और सादा जीवन उच्च विचार के आधार पर एक उत्तम जीवन प्रणाली तथा जीने की कला सिखाई जाती थी। आधुनिक विद्यालयीय प्रणाली में भी विभिन्न सह शैक्षिक पक्षों के माध्यम से विभिन्न जीवन मूल्यो को तथा जीवन जीने की कला को सिखाया जाता है।

निष्कर्ष:- निष्कर्ष रूप से अगर कहा जाए जाए तो वैदिक काल की शिक्षा हो या आधुनिक काल की शिक्षा हो, सहशैक्षिक गतिविधियों का उद्देश्य विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास में सहायता करना है ताकि वह जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के लिए विद्यालय में समुचित प्रशिक्षण प्राप्त कर ले। विद्यार्थी के जिस पक्ष का विकास शैक्षणिक पक्ष से संभव नहीं होता, वह इन अतिरिक्त सहशैक्षिक गतिविधियों द्वारा संपन्न होता है। सहशैक्षणिक गतिविधियों की सफलता के लिए आवश्यक है कि वे अध्यापक की कमी को पूरा करते हुए, जीवन की शिक्षा प्रदान करे, विद्यालयों द्वारा आयोजित हो तथा विद्यार्थियों की विभिन्न रुचियों के अनुकूल हो तथा शिक्षा की पूर्णता के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो। सहगामी क्रियाओं से बालक बिना किसी तनाव अथवा दबाव के सीखता है और फिर यही कच्ची मिट्टी-सा कोमल मन वाला बालक अपने अनुभवों से सीखता हुआ कब एक बड़ा शिल्पकार, अध्यापक, इंजीनियर अथवा कलाकार बन जाता है, पता ही नहीं चलता। केवल सूचनाओं का संग्रह करके आज कोई बुद्धिमान नहीं बन सकता। इसके लिए सतर्कता, सजगता तथा संवेदनशीलता की आवश्यकता है, जिनका विकास ये शैक्षिक सहगामी क्रियायें करती हैं।

इसलिए हर शिक्षक को बच्चे की शिक्षा में इनका महत्व समझ कर प्रेरणा देनी चाहिए जिससे बच्चा व्यस्त रहे तथा एक स्वस्थ सोच लेकर उन सभी असामाजिक तत्वों से, प्रतिकूल वातावरण से अपने को दूर रखता हुआ एक सुंदर समाज के निर्माण में सहायक हो और स्वयं एक आदर्श नागरिक बने।

संदर्भ

1. सिंह, के. (2008-09).भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास. लखीमपुर-खीरी:गोविंद प्रकाशन
2. जौहरी, बी.पी. एवं पाठक, पी.डी. (2007). भारतीय शिक्षा का इतिहास .आगरारू विनोद पुस्तक मंदिर
3. चौबे, एस.पी. (1959). भारतीय शिक्षा का इतिहास (प्रथम संस्करण). ख्पी डी एफ फाइल,. राम नारायण लाल: इलाहाबाद. रिट्राइवड्ड फ्रॉम https://archive.org/download/in.ernet.dli.2015.441175/2015.441175.history-of.pdf
4. रावत, पी. एल. (1955). प्राचीन व आधुनिक भारतीय शिक्षा का इतिहास (द्वितीय संस्करण).ख् पी डी एफ, फाइल,. भारत पब्लिकेशनस: आगरा. रिट्राइवड्ड फ्रॉम https:èèarchive.orgèdownloadèin.ernet.dli.2015.262731è2015.262731.Bhasha-Shikshan.pdf
5 .https://m.dainiktribuneonli.com/news/archive/features/%E0%A4%B8%E0%A4%B9-%E0%A4%B6%E0%A5%88%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7%E0%A4%BF%E0%A4%95-%E0%A4%97%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0% A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A7%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%B8%E0%A5%87-%E0%A4%B9%E0%A5%8B%E0%A4%A4%E0%A4%BE-%E0%A4%B9%E0%A5%88-%E0%A4%9A%E0%A4%B9%E0%A5%81%E0%A4%82%E0%A4%AE%E0%A5%81%E0%A4%96%E0%A5%80-%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B8-397529

6. A5%8D%E0%A4%B7%E0%A4%BE-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%AE%E0%A4%B9%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0% A4%B5-%E0%A4%AA%E0%A4%B0-%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%AC%E0%A4%82%E0%A4%A7/

7 .https://testbook.com/question-answer/hn/what-are-the-fields-not-covered-in-co-scholastic-e—618a6e523673932c07ae9486

8 .https://unacademy-com.translate.goog/content/difference-between/scholastic-and-co-scholastic-areas-of-assessment/?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc,sc

9. https://sanskritslokas.com/vidya1.html

10. https://www.shiveshpratap.com/sanskrit-slokas-on-education-vidya-mahima-with-meaning/

विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का उनके अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व के सन्दर्भ में अध्ययन

आसुतोष कुमार तिवारी

शोध-छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ० शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

प्रो. (डॉ०) रजनी रंजन सिंह

आचार्य एवं अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ० शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

सारांश

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य सुसंगत उपलब्धि हासिल करना चाहता है। जिससे समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़े। विद्यार्थी जीवन में एक छात्र के मन में यह भाव आना कि अमुक विषय में वह अच्छे अंक हासिल करे, स्वाभाविक है। परन्तु उसके सोचने मात्र से ऐसा संभव नहीं हो पाता है। क्योंकि बालक की शैक्षिक उपलब्धि को विद्यालय का वातावरण, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक आर्थिक स्तर, आत्म प्रत्यय, शैक्षिक सुविधाएं, शैक्षिक आकांक्षा स्तर, संज्ञानात्मक शैली, अभिप्रेरणा आदि जैसे कई कारक प्रभावित करते हैं। प्रतिभाशाली बालक उच्च उपलब्धि वाले माने जाते हैं, परन्तु ये भी सभी विषयों में समान उपलब्धि का प्रदर्शन नहीं कर पाते है। इसीलिए प्रस्तुत अध्ययन में प्रतिभाशाली बालकों के अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व को पहचान कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में जानने का प्रयास किया गया है।

प्रमुख शब्दावली: शैक्षिक उपलब्धि, प्रतिभाशाली, अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व।

प्रस्तावना

विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले बालक (Special Educational Need Childrens)

वास्तव में इस संसार में कोई भी दो व्यक्ति पूर्णरूपेण एक समान नहीं होते हैं। यही कारण है कि किसी विद्यालय अथवा कक्षा में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो बालक आते हैं, उनमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा संवेगात्मक दृष्टि से अनेक अंतर दृष्टिगोचर होते हैं। इसी कारण प्रत्येक बालक की अपनी विशिष्ट आवश्यकतायें होती हैं और ऐसे बालकों के लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है। ये बालक विशिष्ट बालक कहलाते हैं। क्रुकशैंक महोदय के अनुसार. "एक विशिष्ट बालक वह है, जो शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक रूप से सामान्य बुद्धि एवं विकास से इतना स्पष्ट रूप से विचलित होता है कि नियमित कक्षा कार्यक्रमों से लाभान्वित नहीं हो सकता तथा जिसे विद्यालय में विशिष्ट देख-रेख की आवश्यकता होती है। विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले बालकों को बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि कई आधारों पर विभाजित किया गया है।

बौद्धिक आधार पर प्रतिभासंपन्न, पिछड़े बालक, मानसिक मंद, सर्जनात्मक बालक तथा निम्न उपलब्धि वाले बालकों में वर्गीकृत किया गया है। प्रतिभासंपन्न बालक, सामान्य बालकों से किसी न किसी प्रतिभा अथवा गुण में श्रेष्ठ होते हैं, यही राष्ट्र की प्रगति में योगदान देते हैं।

शैक्षिक उपलब्धि (Educational Achievement)

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में अन्तर्निहित संभावनाओं का पता लगाकर, उन्हें सही दिशा में विकसित करके, उपयोगी राष्ट्रीय जनशक्ति की रचना करना है। शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा छात्रों के व्यवहार में, इस प्रक्रिया में संलग्न व्यक्ति द्वारा शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण तथा उनकी प्राप्ति के लिए शिक्षण-अधिगम क्रियाओं का आयोजन करके, संशोधन करने का प्रयास करता है। इन शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति ही एक छात्र की शैक्षिक उपलब्धि को दर्शाता है। यह छात्र द्वारा अर्जित ज्ञान, बोध, अनुप्रयोग, कौशल आदि योग्यताओं की मात्रात्मक अभिव्यक्ति है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के द्वारा छात्र अपनी विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं का विकास करते हैं। छात्रों ने किस सीमा तक अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास किया, यही उसकी उपलब्धि का सूचक है। शैक्षिक उपलब्धि को विभिन्न कारक जैस- विद्यालय का वातावरण, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक आर्थिक स्तर, शैक्षिक सुविधाएं, संज्ञानात्मक शैली, शैक्षिक आकांक्षा स्तर, अभिप्रेरणा आदि प्रभावित करते हैं।

मस्तिष्क (Brain)

मनुष्य एक सामाजिक एवं चिंतनशील प्राणी है। इसमें सोचने, विचारने तथा निर्णय लेने के कारण ही यह अन्य प्राणियों से भिन्न है, और अपना तथा राष्ट्र का विकास कर सका है। मस्तिष्क के माध्यम से ही व्यक्ति शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यों का नियमन एवं नियंत्रण करता है। इसका मुख्य कार्य स्मरण, तर्क एवं विचार करना है। यह शरीर का एक आवश्यक अंग एवं प्रकृति की उत्कृष्ट रचना है, जो हमारी इच्छाओं, संवेगों, चेतना, ज्ञान, अनुभव इत्यादि का केंद्र भी होता है।

मस्तिष्कीय गोलार्द्ध (Cerebral Hemisphere)

मानव मस्तिष्क दो गोलार्द्धों (दांया,बांया) में बटा है। सामान्य मनुष्य में दोनों गोलार्द्ध एक साथ समन्वित होकर कार्य करते हैं। क्योंकि एक गोलार्द्ध से सूचनाएं तंत्रिका आवेग के रूप में दूसरे गोलार्द्ध में कॉरपस कैलोजम के सहारे आसानी से चली जाती हैं। परन्तु जब कॉरपस कैलोजम को काट कर अध्ययन किया गया तो पता चला कि दोनों ही गोलार्द्ध अलग-अलग क्षेत्र की समस्याओं से सरोकार रखते हैं। मनुष्य का बायाँ गोलार्द्ध तार्किक ढंग से समस्या का समाधान सोचता है, मूर्तता को महत्व प्रदान करता है, वास्तविक घटनाओं पर विचार करता है, तथ्यों पर अधिक फोकस करता है, कार्य को करने में व्यवस्थित क्रम को अपनाता है, स्पष्ट सूचना का उपयोग करता है, अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विषयों जैसे गणित, विज्ञान, भूगोल इत्यादि को अधिक पसंद करता है। मनुष्य का दायाँ मस्तिष्क निर्णयों में संवेगों को शामिल करता है, कलात्मक कौशल और रचनात्मक कार्यों को करना पसंद करता है, काल्पनिक कहानियां कहना सुनना पसंद करता है, समस्या समाधान में व्यवस्थित क्रम के बजाय अंतर्दृष्टि उपागम को महत्व प्रदान करता है, अध्ययन के लिए साहित्यिक विषयों जैसे हिंदी साहित्य, अंग्रेजी साहित्य, कार्टून, दर्शन, इत्यादि को अधिक पसंद करता है।

मस्तिष्कीय प्रभुत्व (Brain Dominance)

सामान्यत: एक स्वस्थ्य मनुष्य का सम्पूर्ण मस्तिष्क एक साथ कार्य करता हुआ दिखायी देता है, ऐसे व्यक्ति जिनके दोनों गोलार्द्ध लगभग एक समान कार्य करते हैं वो किसी कार्य अथवा समस्या का समाधान तुलनात्मक रूप से उन व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रभावी ढंग से कर लेते हैं, जिनका कोई एक गोलार्द्ध अधिक सक्रिय होता है। यह मस्तिष्क के विभिन्न पक्षों के उपयोग से सम्बंधित है। जब बालक विषयवस्तु को सीखने में लगातार मस्तिष्क के एक पक्ष का उपयोग दूसरे की तुलना में अधिक करता है तब माना जाता है कि बालक में कोई एक मस्तिष्क अधिक प्रभावशाली है। नैड हरमैन ने भी अध्ययन कर बताया कि हम किसी विषय को सीखने, समझने तथा व्यक्त करने में वरीयता प्रदान करते हैं इससे बालक के मस्तिष्कीय प्रभुत्व को समझा जा सकता है (हरमैन, नैड, 1995)।

Figure (i)Traits of Left Vs Right Brain

(https://www.quora.com/What-are-the-traits-of-left-brain-vs-right-brained-people)

सम्बंधित साहित्य की समीक्षा

Ammal, A.M. & Ramesh, C. (2018) ने "Brain Dominance and Emotional Intelligence of College Students." पर अध्ययन किया। जिसका मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि कॉलेज के विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) के प्रमस्तिष्कीय प्रभुत्व में कोई सार्थक अंतर है अथवा नहीं। आंकड़ों के विश्लेषण (प्रतिशत और टी-परीक्षण द्वारा) से पता चला कि कॉलेज के छात्र एवं छात्राओं के प्रमस्तिष्कीय प्रभुत्व में एक महत्वपूर्ण अंतर विद्यमान है।

Kurre, M. (2018) ने "Effect of Brain Hemisphere Domination upon Motor Skill Learning of Cast" पर अध्ययन किया। जिसका मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि प्रमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले सामान्य वर्ग के लड़के दूसरी जातियों की तुलना में क्रियात्मक निपुणता सीखने में बेहतर है अथवा नहीं। इस अध्यन के लिए 12 से 15 आयु वर्ग के 100 लड़कों का चयन छत्तीसगढ़ के विभिन्न स्कूलों से किया। परिणामों से पता चला कि एकीकृत प्रमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले सामान्य वर्ग के किशोर दूसरे वर्ग के दाएं व बाएं प्रमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले किशोरों से क्रियात्मक निपुणता में बहुत बेहतर नहीं थे।

अध्ययन के उद्देश्य

- विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का चयन करना।
- विशेष शैक्षिक आवश्यकता वे प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व की प्रकृति का अधययन करना।
- बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
- दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
- दाएं तथा बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना

- दाएं तथा बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रतिदर्श

अध्ययन में न्यादर्श का चयन कानपुर नगर में स्थित चार विद्यालयों, पं. दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, जय नारायण विद्या मंदिर इंटर कालेज, जुगल देवी सरस्वती विद्या मंदिर तथा नंदलाल खन्ना विद्या मंदिर इंटर कालेज में अध्ययनरत विज्ञान वर्ग के 100 विद्यार्थियों का चयन किया है।

उपकरण

अध्ययन में निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया गया है।

- S.K. Pal & K.S. Mishra का General Intelligence Test
- Dr. D. Venkatraman का SOLAT (Style Of Learning And Thining) Test

N	भौतिकी, रसायन, गणित का औसत प्रतिशत तथा उनके सापेक्ष विद्यार्थियों की संख्या		साहित्य (हिंदी, अंग्रेजी) का औसत प्रतिशत तथा उनके सापेक्ष विद्यार्थियों की संख्या	
	≥ 75 %	< 75 %	≥ 75 %	< 75 %
50	43	07	11	39

सारणी (1) बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि

N	भौतिकी, रसायन, गणित का औसत प्रतिशत तथा उनके सापेक्ष विद्यार्थियों की संख्या		साहित्य (हिंदी, अंग्रेजी) का औसत प्रतिशत तथा उनके सापेक्ष विद्यार्थियों की संख्या	
	≥ 75 %	< 75 %	≥ 75 %	< 75 %
50	04	46	36	14

सारणी (2) दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि

बाएं तथा दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की तुलना (भौतिकी, रसायन, गणित विषयों का औसत प्रतिशत)

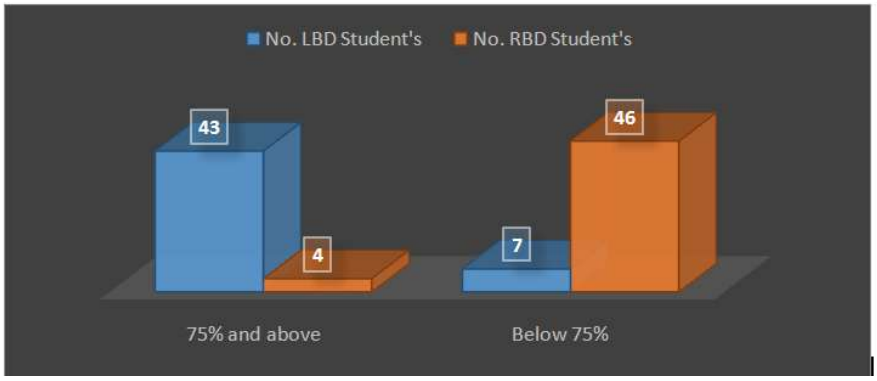

बाएं तथा दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की तुलना (हिंदी, अंग्रेजी विषयों का औसत प्रतिशत)

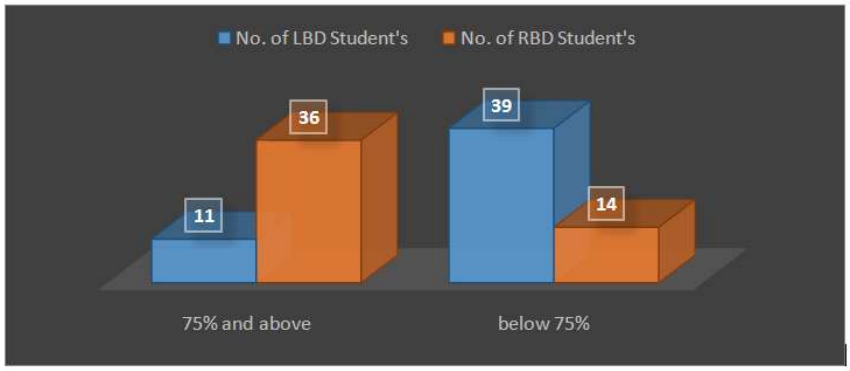

निष्कर्ष एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन विद्यार्थियों के विषय चयन एवं कार्यक्षेत्र की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण है। अध्ययन में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के एक प्रभावी कारक का पता लगाने के उद्देश्य से अर्द्धमस्तिष्कीय गोलार्द्ध को स्वतंत्र चर के रूप प्रयोग किया गया है। प्रतिदर्श में शामिल विद्यार्थियों द्वारा पढ़े जाने वाले विषयों को दो समूहों (वैज्ञानिक और साहित्यिक) में रखा गया है। वैज्ञानिक समूह में भौतिकी, रसायन और गणित को तथा साहित्यिक समूह में हिंदी और अंग्रेजी विषय को रखा गया है। अध्ययन में प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से जो परिणाम प्राप्त हुए हैं, वे इस प्रकार हैं–

- बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 86 प्रतिशत विद्यार्थियों ने भौतिकी, रसायन और गणित में औसतन 75 प्रतिशत या उससे अधिक अंक अर्जित किए।
- बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 14 प्रतिशत विद्यार्थियों ने भौतिकी, रसायन और गणित में औसतन 75 प्रतिशत से कम अंक अर्जित किए।
- बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 22 प्रतिशत विद्यार्थियों ने हिंदी और अंग्रेजी में औसतन 75 प्रतिशत या उससे अधिक अंक अर्जित किए।
- बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 78 प्रतिशत विद्यार्थियों ने हिंदी और अंग्रेजी में औसतन 75 प्रतिशत से कम अंक अर्जित किए।
- दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 8 प्रतिशत विद्यार्थियों ने भौतिकी, रसायन और गणित में औसतन 75 प्रतिशत या उससे अधिक अंक अर्जित किए।
- दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 92 प्रतिशत विद्यार्थियों ने भौतिकी, रसायन और गणित में औसतन 75 प्रतिशत से कम अंक अर्जित किए।
- दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 72 प्रतिशत विद्यार्थियों ने हिंदी और अंग्रेजी में औसतन 75 प्रतिशत या उससे अधिक अंक अर्जित किए।
- दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले समूह के 28 प्रतिशत विद्यार्थियों ने हिंदी और अंग्रेजी में औसतन 75 प्रतिशत से कम अंक अर्जित किए।

परिणामों के सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट होता है कि बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विषयों में सहजता होती है। जबकि दाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थी साहित्यिक विषयों में अधिक सहज होने का प्रदर्शन कर रहे हैं।

शैक्षिक निहितार्थ

अध्ययन के परिणामों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं –

- अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट है कि बाएं अर्द्धमस्तिष्कीय प्रभुत्व वाले विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विषय अधिक पसंद हैं। इसीलिए इन विषयों में उनकी उपलब्धि उच्च है।
- विद्यार्थियों को अपनी शैक्षिक उपलब्धि को उच्च रखने के लिए अपनी अर्द्धमस्तिष्कीय प्रकृति के अनुसार ही विषयों का चुनाव करना चाहिए।
- अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों के विषय चयन में किसी प्रकार का दबाव न बनाएं। क्योंकि यह बच्चों के भविष्य से जुड़ा मुद्दा है, जो उनके लिए घटक हो सकता है।
- एक विद्यार्थी के जीवन में शिक्षक की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह अपने विद्यार्थी की सीखने और समझने की क्षमताओं को देखते हुए उसका मार्गदर्शक बने।

सन्दर्भ

1. सिंह, ए.के. (2015).उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास
2. पाण्डेय, के.पी. (2013).नवीन शिक्षा मनोविज्ञान, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन
3. गुप्ता, एस.पी. और गुप्ता, अलका (2013). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहबाद: शारदा पुस्तक भवन
4. बाजपेयी, एल.बी. और बाजपेयी, अमिता (2009). विशिष्ट बालक, लखनऊ: भारत बुक सेंटर
5. (https://www.quora.com/What-are-the-traits-of-left-brain-vs-right-brained-people)

शिक्षार्थियों के शैक्षिक मूल्यांकन में समावेशन की स्थिति

अभिषेक कुमार

शोध-छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

प्रो० (डॉ.) रजनी रंजन सिंह

आचार्य एवं अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

सार

सभी शिक्षार्थियों को उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं या कठिनाइयों की परवाह किए बिना शिक्षा का अधिकार है। विकासशील देश होने के कारण भारत के पास सीमित संसाधन और विशाल जनसंख्या है। भारत में सीमित संसाधनों के साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए, व्यक्तिगत अंतर वाले सभी व्यक्तियों को एक छत के नीचे शामिल करना आवश्यक है क्योंकि समावेशी शिक्षा इस विश्वास पर आधारित है कि शिक्षा एक बुनियादी मानव अधिकार है। वर्तमान अध्ययन भारत में विकलांग शिक्षा की स्थिति, बुनियादी ढांचे और विकलांगों की शिक्षा के संबंध में विभिन्न नीतियों पर चर्चा करता है। पेपर एक कालानुक्रमिक दृष्टिकोण अपनाता है, इस अवधारणा के विकास का पता लगाता है और प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है जैसे कि कौन शामिल है, वे क्या शामिल हैं और वे शामिल होने के बाद कहां हैं, पूर्ण समावेश का लक्ष्य अभी तक क्यों हासिल नहीं हुआ है। परिणाम से पता चला कि 5-19 वर्ष की आयु के बीच केवल 61.2 प्रतिशत विकलांग आबादी शिक्षा प्राप्त कर रही है और पहली से पांचवीं कक्षा के छात्रों के कुल नामांकन में से कुल 1.18 प्रतिशत और स्कूलों में छठी से आठवीं कक्षा के 1.13 प्रतिशत छात्र विशेष आवश्यकता वाले बच्चे हैं। विकलांगों की अधिकतम जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है। सभी विकलांग छात्रों की स्कूल तक पहुंच नहीं है। साहित्य से प्राप्त प्रतिबिंबों के आधार पर, यह ध्यान दिया जाता है कि बुनियादी ढांचा, सामाजिक रवैया, अनम्य शिक्षा प्रणाली समावेशन के रास्ते में बाधक हैं।

मुख्य शब्द: विशेष आवश्यकता वाले बच्चे; समावेशी शिक्षा; शैक्षिक स्थिति; सरकारी पहल।

परिचय:

हर बच्चा अनोखा और अलग होता है। उनके पास अलग-अलग क्षमताएं हैं; अलग-अलग तरीकों से और अलग-अलग गति से सीखें। सभी शिक्षार्थियों को उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं या कठिनाइयों की परवाह किए बिना शिक्षा का अधिकार है। एक बच्चे की शैक्षणिक क्षमता को उसकी सामाजिक, भावनात्मक और शारीरिक क्षमता के साथ विकसित किया जा सकता है, क्योंकि वे बच्चे के विकास के अन्योन्याश्रित पहलू हैं। सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए, समावेशी; दुनिया भर में हर स्कूल और समुदाय में सीखने के अनुकूल और बाधा मुक्त वातावरण आवश्यक है। इसके अलावा, शोधों से पता चला है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को मुख्यधारा में लाने की प्रक्रिया का विशेष आवश्यकता वाले और बिना दोनों प्रकार के बच्चों के लिए सामाजिक और शैक्षणिक सीखने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।[1]

समावेशन में पारस्परिक रूप से लाभकारी और अभिन्न साबित होने वाले संबंधों को सुविधाजनक बनाने की क्षमता है, जो समानता और विविधता के बारे में जागरूकता के विकास की भी अनुमति देता है। भारत एक विकासशील देश है और संसाधन पर्याप्त नहीं हैं। समावेशी शिक्षा कम संसाधनों और अधिक लाभ के मामले में सबसे अच्छा तरीका है लेकिन समावेशी शिक्षा की प्रगति में सामाजिक बाधा है क्योंकि बोअर, पिज्ल और मिन्नर्ट (2010) ने समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों के दृष्टिकोण की जांच की और पाया कि अधिकांश शिक्षक तटस्थ हैं। या नियमित प्राथमिक शिक्षा और प्रशिक्षण में विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को शामिल करने के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, समावेशी शिक्षा के अनुभव और विद्यार्थियों की विकलांगता के प्रकार का शिक्षकों के दृष्टिकोण के साथ स्पष्ट संबंध है।[2]

स्ली (2019) विकलांग लोगों के गहन बहिष्कार को चुनौती देने के लिए समावेशी शिक्षा की अक्षमता पर चर्चा करते हुए हमारे समय को 'बहिष्करण का युग' कहते हैं। स्ली का बल्कि धूमिल निबंध उच्च शिक्षा पर प्रतिबिंब के लिए एक अवसर प्रदान करता है, क्योंकि उच्च शिक्षा के बड़े पैमाने पर और इसके बाद की छात्र आबादी के विविधीकरण के बावजूद, आधुनिक समाज वास्तव में विकलांग लोगों को शिक्षा में शामिल करने में असमर्थ रहे हैं। उच्च शिक्षा में, अक्षमताओं को बड़े पैमाने पर उन कमियों के रूप में देखा जाता है जिन्हें समायोजित करने की आवश्यकता होती है, बजाय इसके कि उन्हें एक ऐसी चीज के रूप में समझा जाए जो शिक्षा को समृद्ध करे और इस प्रकार मनाया जाना चाहिए। इस अध्ययन में, 'समावेशन' को उच्च शिक्षा में विकलांग लोगों को शामिल करने के लिए एक कट्टरपंथी, राजनीतिक खोज के रूप में माना जाता है: 'अन्य' के रूप में नहीं, बल्कि अकादमिक समुदायों के पूरी तरह से स्वीकृत, साधन संपन्न और एजेंट सदस्यों के रूप में।

ऐतिहासिक रूप से, मूल्यांकन ने उच्च शिक्षा में छात्र विविधता की जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष किया है, विशेष रूप से विकलांगों के दृष्टिकोण से। वास्तव में, विकलांग छात्रों के लिए मूल्यांकन इतना दुर्गम माना जाता है कि अतिरिक्त समय या अलग परीक्षण कक्ष जैसे आवास आमतौर पर दुनिया भर के उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रशासित होते हैं। अक्सर, विकलांग छात्रों के लिए सहायता केवल मूल्यांकन-संबंधी आवासों के लिए संक्षिप्त की जाती है। मूल्यांकन के पारंपरिक रूप जैसे परीक्षा उच्च शिक्षा में भारी ऐतिहासिक भार रखते हैं: 'इस भार के तहत, विकलांग छात्रों की जरूरतों के लिए अदृश्य होना आसान है'। दरअसल, जिसे हम 'मूल्यांकन' कहते हैं, उसके ताने-बाने में बहिष्करण गहराई से बुना हुआ है। मूल्यांकन के माध्यम से, विकलांग छात्र खुद को 'अलग', 'विशेष' और 'अन्य छात्रों से कम' के रूप में समझते हैं, अक्सर अन्य छात्रों के सामने जैसे कि परीक्षा का समय समाप्त होने पर। और हर कोई परीक्षा हॉल छोड़ देता है - अतिरिक्त समय वाले लोगों को छोड़कर, जो अभी भी बैठे रहते हैं। यह व्यवहार में सक्षमता है: मूल्यांकन एक सामान्य, सक्षम छात्र के एक निश्चित आदर्श के लिए बनाया गया है। जबकि आकलन ने विकलांग छात्रों के बहिष्करण में बड़े पैमाने पर योगदान दिया है, यह अध्ययन मौलिक समावेशन के लिए एक वाहन के रूप में मूल्यांकन को पुन: संकल्पित करता है। यह खोज स्वाभाविक रूप से 'बहिष्करण की उम्र' के भीतर सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन को समझती है।

बिंदल और शर्मा (2010) ने कहा कि वर्तमान में, भारतीय स्कूलों में समावेश की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का अभाव है जैसे कि स्वीकृत और मूल्यवान होने की भावना, ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक शिक्षक, लचीला स्कूल वातावरण और समावेशी शिक्षा के अनुसार शिक्षक प्रशिक्षण।[3]

सिंगल (2005) ने भारतीय संदर्भ में समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में साहित्य की समीक्षा की और पाया कि समावेशी शिक्षा का क्षेत्र एक संकीर्ण और सीमित परिप्रेक्ष्य पर केंद्रित है।[4] इसलिए यह तर्क दिया जाता है कि समावेशी शिक्षा को व्यापक शिक्षा प्रणाली को शामिल करने वाले दृष्टिकोण के रूप में माना जाना चाहिए।

यूनिसेफ (2003) के अनुसार, केंद्र और राज्य सरकारों ने विकलांग बच्चों के नामांकन, प्रतिधारण और उपलब्धि में सुधार के लिए कई पहल की हैं लेकिन विकलांग बच्चों के लिए अधिकांश सेवाएं बड़े शहरों में केंद्रित हैं। विकलांग बच्चों के परिमाण और शैक्षिक स्थिति पर सुसंगत आंकड़ों का अभाव है। समावेशी प्रथाओं का समर्थन करने के लिए कुशल और प्रशिक्षित कर्मियों की संख्या विभिन्न प्रकार की अक्षमताओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है।[5] समावेशी शिक्षा पर साहित्य और विकलांगों की वर्तमान शैक्षिक स्थिति के आधार पर, भारत में समावेशी शिक्षा को फिर से तैयार करना आवश्यक है। सार्वभौमिक गति के साथ भारत को समावेश के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने की जरूरत है। यह पत्र समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में सरकार द्वारा

की गई नीतियों और कार्यों, विकलांग शिक्षा के लिए प्रदान की जाने वाली सुविधाओं की वर्तमान स्थिति को दर्शाता है और संबंधित साहित्य की समीक्षा के दौरान महसूस किए गए अंतराल के अनुसार कुछ सिफारिशें देता है।

विकलांगता की अवधारणा:

सभी बच्चे किसी न किसी रूप में एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न डिग्री में भिन्न होते हैं। जो बच्चे अपने सीखने और व्यवहार में अलग तरह से सक्षम होते हैं, वे सामान्य वक्र से महत्वपूर्ण रूप से विचलित होते हैं। वे शारीरिक, बौद्धिक, संचारी, सामाजिक या भावनात्मक क्षेत्रों में या इनमें से विभिन्न संयोजनों में अंतर दिखा सकते हैं। समाज की स्थापना से, 'विकलांगता', 'अक्षमता' और 'विकलांग' शब्दों का प्रयोग अलग-अलग विकलांगों के लिए एक दूसरे के स्थान पर किया गया है, लेकिन इन शब्दों के अलग-अलग अर्थ हैं और विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन करते हैं।[6]

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) (2001) के अनुसार, विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थी को विकलांग बच्चे के रूप में परिभाषित किया जाता है, अर्थात्, दृश्य, श्रवण, गतिमान और बौद्धिक।[7] एसएसए फ्रेमवर्क विशेष फोकस समूहों पर अनुभाग के तहत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (एसएन) को कवर करता है और विकलांग बच्चों को लड़कियों, अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और शहरी वंचित बच्चों जैसे अन्य समूहों से अलग करता है। यदि किसी बच्चे में विकलांगता है, तो उसे और भी कई समस्याएं हो सकती हैं, जिन्हें सहरुग्णता कहते हैं। करांडे, साटम, कुलकर्णी, शोलापुरवाला, चित्रे और शाह ने विशिष्ट सीखने की अक्षमता वाले बच्चों के नैदानिक प्रोफाइल और अकादमिक इतिहास का दस्तावेजीकरण किया और पाया कि वे अकादमिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं जैसे कि लेखन में कठिनाइयों (96 प्रतिशत), असावधानी (96 प्रतिशत), और कठिनाइयाँ गणित में (74 प्रतिशत), अति सक्रियता (68 प्रतिशत) और पढ़ने में कठिनाई (60 प्रतिशत)। उन्होंने पाया कि उनके अध्ययन में सभी बच्चों का शैक्षणिक प्रदर्शन खराब था और लगभग 40 प्रतिशत नमूने ने आक्रामक या पीछे हटने का व्यवहार विकसित किया था।[8] करांडे और भोसरेकर ने हाल ही में निदान की गई विशिष्ट सीखने की अक्षमता वाले बच्चों के जीवन की स्वास्थ्य संबंधी गुणवत्ता पर सह-ध्यान घाटे की सक्रियता विकार (एडीएचडी) के प्रभाव का मूल्यांकन किया और पाया कि सह-होने वाला एडीएचडी बच्चों के स्वास्थ्य से संबंधित जीवन की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। नव निदान विशिष्ट सीखने की अक्षमता विशेष रूप से उनके मनोसामाजिक कामकाज से संबंधित डोमेन में विशेष रूप से आत्म-सम्मान और समग्र मनोसामाजिक कामकाज।[9] एक विकलांगता या विकार कई अन्य समस्या या बीमारी के साथ होता है। ऐसे छात्रों को संभालते समय, शिक्षक और नीति निर्माता इसे अनदेखा करते हैं जो लंबे समय में बच्चे पर हानिकारक प्रभाव डाल सकता है।

समावेशी शिक्षा का विकास:

18वीं शताब्दी से पहले, विकलांग व्यक्तियों को ध्यान में नहीं रखा जाता था और अक्सर उन्हें बुरी शक्तियों, शापित या केवल मूर्ख के रूप में गलत माना जाता था, जिसने विकलांग व्यक्तियों के अलगाव को बढ़ा दिया था। अज्ञानता, उपेक्षा, अंधविश्वास और सामाजिक कारकों जैसे भय ने विकलांग लोगों को आत्माओं को भगाने के साधन के रूप में मानसिक और / या शारीरिक पीड़ा के अधीन किया। विकलांगता को जादू टोना, जूजू, सेक्स से जुड़े कारकों और अलौकिक शक्तियों के परिणाम के रूप में लिया गया था। रूसो (1712-1778) द्वारा बच्चों की शिक्षा के बारे में एक किताब एमिल के बाद दृष्टिकोण में बदलाव आया। बच्चों को अपनी गति और क्षमताओं के अनुसार किताब में पढ़ाने का मुख्य विचार विकलांगों के लिए आधार तैयार करता है। कैथोलिक चर्च ने विकलांग लोगों को राज्य के सदस्यों के रूप में स्वीकार करना शुरू कर दिया। लेकिन शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। विशेष शिक्षा के लिए एक युग की शुरुआत कई विद्वानों के काम से हुई, जैसे वैलेन्टिन हौय, जिन्होंने 1784 में पेरिस में नेत्रहीनों के लिए एक स्कूल खोला और लुई ब्रेल, फ्रेडरिक मोरित्ज हिल (1805-74) के अविश्वसनीय काम, जिन्होंने शिक्षा की एक मौखिक पद्धति विकसित की, बधिरों को पढ़ाना। जीन-मार्क-गैस्पर्ड इटार्ड (1775-1838) ने एक बच्चे को प्रशिक्षित किया जिसे एवेरॉन के जंगली लड़के के नाम से जाना जाता है। एडौर्ड सेगुइन (1812-80) और मारिया मोंटेसरी (1870-1952), एडौर्ड ओ सेगुइन (1812-1880) जैसे सिद्धांतकारों के काम से विशेष शिक्षा के लिए कुछ बीज अंकुरित हुए। लेकिन कुल परिवर्तन "ब्राउन वर्सेज बोर्ड ऑफ एजुकेशन ऑफ टोपेका (1954)" के साथ आया, जहां संयुक्त राज्य के सुप्रीम कोर्ट ने घोषणा की कि काले और सफेद छात्रों के लिए अलग पब्लिक स्कूल स्थापित करने वाले राज्य कानून असंवैधानिक हैं। नस्लीय अलगाव को संदर्भित इस निर्णय ने

विकलांगों के बारे में लोगों की सोच को प्रभावित करना शुरू कर दिया। विकलांग व्यक्तियों के शिक्षा अधिनियम (आईडीईए) के 1997 के पुनः प्राधिकरण ने सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रम, मूल्यांकन प्रथाओं और कक्षाओं के साथ सामान्य कक्षा के कम से कम प्रतिबंधात्मक वातावरण में विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों के लिए शिक्षण सुनिश्चित किया जहां विशेष और सामान्य शिक्षा शिक्षक एक साथ प्रत्येक के लाभ के लिए काम करते हैं। और हर छात्र। 2002 में, "नो चाइल्ड लेफ्ट बिहाइंड एक्ट" कानून इस दर्शन को मजबूत करता है कि विशेष जरूरतों वाले अधिकांश छात्रों को अलग-अलग कक्षाओं से बाहर ले जाया जाना चाहिए और उनकी अनूठी सीखने की शैली से मेल खाने के लिए उपयुक्त रणनीति, आवास और शिक्षण शैली दी जानी चाहिए। इस तरह, शिक्षा प्रणाली अलगाव से समावेशन की ओर स्थानांतरित हो गई। समावेश में, विकलांग छात्रों को उनके गैर-विकलांग साथियों के साथ मुख्यधारा की शैक्षिक सेटिंग्स में पढ़ाया जाता है। अब, प्रत्येक छात्र की पूर्ण भागीदारी के लिए सभी बाधाओं को दूर करना स्कूल की ओर से एक दायित्व है। इस अभ्यास में, प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्टता को समान रूप से महत्व दिया जाता है। यह "सभी के लिए शिक्षा" की अवधारणा पर काम करता है। यूनेस्को (2003) के अनुसार, "समावेशी शिक्षा का अर्थ है कि स्कूलों को सभी छात्रों को उनकी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, भावनात्मक, भाषाई या अन्य स्थितियों की परवाह किए बिना समायोजित करना चाहिए। इसमें विकलांग और प्रतिभाशाली छात्र, सड़क पर काम करने वाले और कामकाजी छात्र, दूरस्थ या खानाबदोश आबादी के छात्र, भाषा विज्ञान के छात्र, जातीय या सांस्कृतिक अल्पसंख्यक और अन्य वंचित या हाशिए वाले क्षेत्रों या समूहों के छात्र शामिल होने चाहिए"।[10]

भारत में विकलांग जनसंख्याः

अनुपयुक्त नैदानिक उपकरणों के कारण असाधारण व्यक्तियों की संख्या पर सटीक आंकड़े प्राप्त करना अत्यंत कठिन है; उपकरणों की अनुपलब्धता; निश्चित समस्याएं; निदान बदलना; कई विकलांगों की उपस्थिति; सर्वेक्षण की समस्याएं और नमूना त्रुटियां। 2001 की जनगणना से पता चला है कि भारत में 21 मिलियन से अधिक लोग किसी न किसी प्रकार की विकलांगता से पीडिघ्त हैं। पुरुष विकलांग जनसंख्या महिला विकलांग जनसंख्या से अधिक है। 2011 की जनगणना के अनुसार, नौ वर्ष तक के नवजात शिशुओं की जनसंख्या 3246871 है और अधिकतम जनसंख्या दस से उन्नीस वर्ष की आयु के बीच है।

जनसंख्या का अधिकतम हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र में रहता है जो एक आधार देता है कि ग्रामीण क्षेत्रों को पहली प्राथमिकता के रूप में मानते हुए विकलांगों पर नीतियां बनाई जानी चाहिए लेकिन बड़े शहरों में अधिकतम विकलांग अनुकूल स्कूल और संगठन काम कर रहे हैं। यह समावेशी शिक्षा के संबंध में भारत में सबसे बड़ा दोष है और बेहतरी को अक्षम करता है।

भारत में विकलांग जनसंख्या की शैक्षिक स्थितिः

2011 की जनगणना के अनुसार, 6572999 विकलांग व्यक्तियों में से केवल 4021301 व्यक्ति शैक्षणिक संस्थानों में भाग ले रहे हैं और 1139184 महिलाएं और 5-19 आयु वर्ग के 1412514 पुरुष शिक्षण संस्थानों में जाने में असमर्थ हैं। 5-7 साल की उम्र के 52 प्रतिशत विकलांग बच्चे जो प्राथमिक शिक्षा शुरू करने की उम्र है, स्कूल से बाहर हैं। 20.5 प्रतिशत नेत्रहीन, 21 प्रतिशत श्रवण बाधित, 30 प्रतिशत भाषण विकलांगता के साथ, 22.7 प्रतिशत आंदोलन विकलांगता के साथ, 50 प्रतिशत मानसिक बीमारी के साथ, 54 प्रतिशत बहु विकलांगता वाले व्यक्ति कभी भी किसी भी स्कूल में नहीं गए थे (उम्र 5-19 वर्ष)

रिपोर्ट (2015-16) के अनुसार, कुल नामांकन में से 1.61 प्रतिशत छात्र विशेष आवश्यकता वाले छात्र हैं, जहां पहली कक्षा में कुल 27170010 छात्रों के नामांकन में से लगभग 248,016 छात्र विशेष आवश्यकता वाले बच्चे हैं। पहली से पांचवीं कक्षा के छात्रों के कुल नामांकन में कुल 1.18 प्रतिशत और छठी से आठवीं कक्षा के 1.13 प्रतिशत छात्र सीडब्ल्यूएसएन हैं। 38.9 प्रतिशत आबादी शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ है क्योंकि सीडब्ल्यूएसएन के लिए पर्याप्त विशेष स्कूल नहीं हैं। सभी छात्रों के शत-प्रतिशत नामांकन के लिए समावेशन को पूर्ण रूप से अपनाने की आवश्यकता है। लेकिन भारत में समावेश की अवधारणा आदिम अवस्था में है। जैसा कि कर्नाटक राज्य में, विकलांग बच्चों में से लगभग 2 प्रतिशत बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। इनमें से लगभग 1 प्रतिशत बच्चे विशेष स्कूलों में नामांकित हैं और शेष 1 प्रतिशत एकीकृत शिक्षा प्रणाली (समावेशी शिक्षा)[11] में हैं।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को स्कूलों में प्रदान की जाने वाली सुविधाओं की स्थितिः

जितेंद्र (2016) के अनुसार, तीन कारक हैं जो कक्षा में विकलांग छात्रों को शामिल करने में बाधा डालते हैं जो शिक्षकों के अपर्याप्त प्रशिक्षण, अपर्याप्त बुनियादी ढांचे और अपर्याप्त प्रशासन या प्रशासनिक सहायता हैं।[12] इन तीन कारकों के संदर्भ में, भारतीय

विद्यालयों में समावेशन को अपनाने की तस्वीर आठवें अखिल भारतीय स्कूल शिक्षा सर्वेक्षण (2009) द्वारा प्रस्तुत की गई है। रिपोर्ट कहती है कि देश के कुल 12,99,902 स्कूलों में से केवल 2,74,445 (21.11 प्रतिशत) स्कूल विकलांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा का पालन करते हैं। समावेशी शिक्षा में कम से कम दो सप्ताह का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले शिक्षकों की संख्या कुल 58,76,273 शिक्षकों में से 80,942 (1.32 प्रतिशत) है। ऐसे स्कूलों की संख्या जहां विशेष शिक्षक/संसाधन शिक्षक कभी नहीं गए, 42.6 9 प्रतिशत हैं। देश के कुल स्कूलों में से 10.47 प्रतिशत में हैंड्रिल हैं, 3.81 प्रतिशत ने प्रयोगशाला को अनुकूलित किया है और 7.64 प्रतिशत ने शौचालय को अनुकूलित किया है।[13]

9. भारत में समावेशन के लिए सरकारी पहल: भारतीय संविधान राज्य को यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि 14 वर्ष तक के सभी बच्चों और विकलांग बच्चों को बुनियादी शिक्षा का प्रावधान इस प्रावधान से स्पष्ट नहीं है। भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को हैसियत और अवसर की समानता का अधिकार है। अनुच्छेद 41 जो नि:शक्तता सहित कुछ मामलों में काम, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता के अधिकार का समर्थन करता है। अनुच्छेद 45 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है।[14] 2002 में, संविधान में संशोधन के आधार पर 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए शिक्षा एक मौलिक अधिकार बन गया। कोठारी आयोग (1964-66) ने विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए शैक्षिक अवसरों को समान करने और पड़ोस के स्कूलों की अवधारणा की सिफारिश की, जो पड़ोस के निचले प्राथमिक स्तर के सभी बच्चों को इलाके के स्कूल में भाग लेने में सक्षम बनाता है। सुझाई गई सिफारिश राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) द्वारा लागू की गई थी। इसने शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के लिए शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार किया, विकलांग बच्चों को नियमित स्कूलों में पढ़ने के लिए एकीकृत कार्यक्रम का विकास किया।[15]

1982 में, विकलांग बच्चों की एकीकृत शिक्षा केंद्र प्रायोजित योजना ने सामान्य स्कूलों में विकलांग बच्चों के लिए शैक्षिक अवसरों के लिए दिशानिर्देश प्रदान किए, ताकि स्कूल प्रणाली में उनके प्रतिधारण को सुविधाजनक बनाया जा सके और बच्चों को विशेष स्कूलों से आम स्कूलों में स्थानांतरित किया जा सके। कार्यात्मक स्तर पर संचार और दैनिक जीवन कौशल हासिल करने के बाद उन्हें सामान्य स्कूलों में रखा जाना था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग सामान्य समुदाय के साथ समान भागीदार के रूप में एकीकृत। इसने नौवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक उन लोगों के लिए सार्वभौमिक नामांकन के लिए एक महत्वाकांक्षी प्रतिबद्धता बनाई, जिन्हें सामान्य प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षित किया जा सकता था और जिन्हें विशेष विद्यालयों में शिक्षित होने की आवश्यकता थी। विकलांग व्यक्ति अधिनियम (पीडब्ल्यूडी 1995) कहता है, "अन्य बातों के अलावा: उपयुक्त सरकार और स्थानीय प्राधिकरण यह सुनिश्चित करेंगे कि प्रत्येक विकलांग बच्चे को 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक उचित वातावरण में मुफ्त शिक्षा प्राप्त हो। यह सामान्य स्कूलों में विकलांग छात्रों के एकीकरण को बढ़ावा देने का प्रयास करता है।" सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए): प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राज्य सरकारों के साथ साझेदारी में एसएसए 2000-01 से चालू है। यह एक शून्य अस्वीकृति नीति अपनाता है और विभिन्न मौजूदा योजनाओं और कार्यक्रमों को परिवर्तित करने के दृष्टिकोण का उपयोग करता है। विकलांग बच्चों और युवाओं की समावेशी शिक्षा अधिनियम (2005): इसका मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षित समावेशी शिक्षा शिक्षकों और अनुकूल उपयुक्त वातावरण के साथ सभी विकलांग बच्चों को मुख्यधारा की शिक्षा में प्रवेश सुनिश्चित करना है। विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति (2006): विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति एक ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास करती है जो बढ़ावा देता है: 1) शारीरिक पुनर्वास जिसमें शीघ्र पहचान और हस्तक्षेप, परामर्श और सहायता और उपकरणों का प्रावधान, पुनर्वास पेशेवरों का विकास शामिल है। शैक्षिक पुनर्वास में व्यावसायिक प्रशिक्षण शामिल है। 2) समाज में सम्मानजनक जीवन के लिए आर्थिक पुनर्वास।[16] आरटीई एक्ट (2009): शिक्षा को हर तरफ से मौलिक अधिकार बनाने की लगातार मांग के बाद सरकार ने भारत के संविधान का 86वां संशोधन (2002) किया। 86वें संशोधन ने 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाते हुए नया अनुच्छेद 21। पेश किया। संविधान के भाग IV-A में अनुच्छेद 51। (ज्ञ) को माता-पिता के मौलिक कर्तव्य के रूप में 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिए जोड़ा गया था।

बच्चों का मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009), जिसे आमतौर पर आरटीई अधिनियम (2009) में जाना जाता है, अंतत: 26 अगस्त, 2009 (1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ) को संसद द्वारा पारित किया गया था। यह अधिनियम सरकार पर नामांकन, उपस्थिति और पूर्णता सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी डालता है। आरटीई अधिनियम वंचित समूहों और कमजोर वर्गों

के बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने, उन्हें किसी भी तरह के भेदभाव से बचाने और उनकी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने को सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। यह अनिवार्य कर दिया गया है कि निजी गैर-सहायता प्राप्त और निर्दिष्ट श्रेणी के स्कूलों को कमजोर और वंचित समूहों के बच्चों से अपनी प्रवेश स्तर की कक्षा का कम से कम 25 प्रतिशत प्रवेश देना होगा। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (आरएमएसए) ने वर्ष 2009-10 में माध्यमिक स्तर (आईईडीएसएस) में विकलांगों के लिए समावेशी शिक्षा योजना शुरू की, जिसने विकलांग बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा (आईईडीसी) की पिछली योजना को बदल दिया और बच्चों की समावेशी शिक्षा के लिए सहायता प्रदान की। कक्षा IX एवं XII में विकलांग व्यक्ति अधिनियम (1995) के तहत परिभाषित एक या एक से अधिक विकलांग। आईईडीएसएस (2015-16) के तहत 2.37 लाख छात्रों को कवर करने की मंजूरी दी गई है, जहां सीडब्ल्यूएसएन लड़कियों की संख्या 107159 है और सीडब्ल्यूएसएन लड़कों की संख्या 130195 है और विशेष शिक्षकों के लिए 4960 नई सीटों को मंजूरी दी गई है। यद्यपि विकलांगों के अनुकूल शौचालय वाले माध्यमिक विद्यालयों की संख्या कुल विद्यालयों का केवल 17.09ग है (आरएमएसए, 2014)। 2015-2016 में निम्नलिखित बुनियादी ढांचे का प्रस्ताव किया गया है।

विकलांगता के मुद्दे को देश की सभी पंचवर्षीय योजनाओं में जगह मिली है। विकलांगता के विभिन्न पहलुओं में शिक्षा, प्रशिक्षण, व्यावसायिक मार्गदर्शन, परामर्श, पुनर्वास, अनुसंधान और प्रशिक्षण के लिए विभिन्न राष्ट्रीय स्तर के संस्थान स्थापित किए गए हैं। द्वितीय पंचवर्षीय वर्ष में विकलांगों की शिक्षा, प्रशिक्षण और रोजगार से संबंधित मुद्दों को निपटाया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में, ग्रामीण क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया, शारीरिक रूप से विकलांगों के लिए रोजगार विनिमय की योजना बनाना, शिक्षण और घर में ही काम की सुविधाओं का प्रावधान जो मोबाइल नहीं हैं। छठी पंचवर्षीय योजना[17] में आत्मनिर्भरता, आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने के लिए समुदाय-उन्मुख विकलांगता निवारण और पुनर्वास सेवाओं के प्रावधान के आसपास राष्ट्रीय नीतियां बनाई गईं। सरकार ने विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए भी खुली स्कूली शिक्षा के प्रावधान किए थे जैसे (1) विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए 50þ की सीमा तक शुल्क में छूट (2) एक दूरस्थ शिक्षार्थी को पांच साल की अवधि के लिए पंजीकृत किया जाता है जिसमें एक उम्मीदवार को मिलता है किसी दिए गए पाठ्यक्रम/कार्यक्रम में उपस्थित होने के नौ अवसर (3) विशेष आवश्यकता वाले बच्चे अपनी तैयारी के अनुसार एक समय में एक/दो विषयों में उपस्थित हो सकते हैं (4) क्रेडिट तब तक जमा होता है जब तक कोई उम्मीदवार सफलतापूर्वक पाठ्यक्रम की आवश्यकता को पूरा नहीं कर लेता (5) अध्ययन केंद्रों को परीक्षा केंद्र के रूप में लिया जाता है (6) परीक्षा के दौरान सामान्य और विशिष्ट छूट (विकलांगता के अनुसार) (7) परीक्षा तिथियों के चयन में लचीलापन (8) विषयों की पसंद में लचीलापन (9) एनओएस कार्यक्रमों में प्रवेश के लिए कोई आयु सीमा नहीं है।

10. समावेशी शिक्षा के लिए सिफारिशें: समावेशी शिक्षा के लिए स्कूली पाठ्यक्रम, शिक्षक प्रशिक्षण, संसाधनों और सामाजिक स्तर पर अनुकूलन और संशोधन आवश्यक है। नि:शक्तजनों को विद्यालयों में सफलतापूर्वक सम्मिलित करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में निम्नलिखित सिफारिशें सहायक हो सकती हैं।

निष्कर्ष:

एक समग्र, व्यापक और अंतर-सांप्रदायिक दृष्टिकोण होना महत्वपूर्ण है जहां सभी टुकड़ों को एक साथ रखा जाता है। इस प्रकार विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली समावेशी शिक्षा का सभी विद्यार्थियों के लिए सकारात्मक प्रतिफल होगा। दुनिया के सभी बच्चों और युवाओं को, अपनी व्यक्तिगत ताकत और कमजोरियों के साथ, अपनी आशाओं और अपेक्षाओं के साथ, शिक्षा का अधिकार है। यह हमारी शिक्षा प्रणाली नहीं है जो एक निश्चित प्रकार के बच्चों को अधिकार देती है। इसलिए, यह एक देश की स्कूल प्रणाली है जिसे अपने सभी बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए समायोजित किया जाना चाहिए। एक विशाल साहित्य है जो स्वास्थ्य, अच्छे जीवन और शिक्षा के लिए नस्ल, जातीयता, जाति और धर्म से परे समान अवसरों के महत्व के बारे में बात करता है। अगर सभी को इन सभी अधिकारों का समान रूप से आनंद लेना है तो शिक्षा सभी तक पहुंचनी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य राष्ट्र की संपत्ति है और मानव संसाधन उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि अन्य उत्पादक संसाधन जिनका कभी ह्रास नहीं होता। मानव संसाधन को किसी विकृति के कारण बर्बाद नहीं करना चाहिए क्योंकि यह अमूल्य है। भारत में विकलांगों के समुचित पोषण के लिए शिक्षकों की योग्यता, उचित आधारभूत संरचना, समर्थन प्रणाली की आवश्यकता है। विकलांग शिक्षा के संबंध में उचित प्रशिक्षण के साथ विकलांगों के प्रति शिक्षक के दृष्टिकोण को सकारात्मक रूप से बदला जा सकता है। भारतीय स्कूल शिक्षा की प्रक्रिया में सभी विकलांगों को समायोजित करने और उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं हैं। मूल्यांकन

प्रणाली विकलांगों के सामने आने वाली समस्याओं पर विचार किए बिना केवल कठोर तरीके से रटने की स्मृति का आकलन करती है। इसलिए, समावेशी शिक्षा को मजबूत करने के लिए भारत में स्कूलों में उचित वातावरण की आवश्यकता है। सामाजिक स्तर पर भी नजरिया बदलने की जरूरत है। इसके अलावा, इस क्षेत्र में किए गए शोधों को देखे बिना योजना बनाई जाती है; जनगणना को देखे बिना, जो बताता है कि अधिकांश विकलांग कहाँ रहते हैं। भारत में एक उचित योजना के साथ, समावेशी शिक्षा को सभी विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से प्रतिक्रिया देनी चाहिए, व्यक्तित्व को एक ऐसी चीज के रूप में पहचानना चाहिए जिसकी सराहना और सम्मान किया जाना चाहिए।

संदर्भः

1. फैरेल, पी। (2000)। समावेशी शिक्षा में विकास पर अनुसंधान का प्रभाव। समावेशी शिक्षा के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल। 4(2), 153-162।
2. बोअर, ए.डी., पिजल, एस.जे. , और मिन्नार्ट, ए। (2010)। समावेशी शिक्षा के प्रति नियमित प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों का दृष्टिकोणः साहित्य की समीक्षा। समावेशी शिक्षा के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 15(3), 331-353।
3. बिंदल, एस., और शर्मा, एस. (2010)। भारतीय संदर्भ में समावेशी शिक्षा। जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, 35(4), 34- 45.
4. सिंगल, एन। (2005)। समावेशी शिक्षा के क्षेत्र का मानचित्रणः भारतीय साहित्य की समीक्षा। समावेशी शिक्षा का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 9(4), 331-350।
5. संयुक्त राष्ट्र बाल कोष। (2003)। समावेशी शिक्षा के उदाहरणः भारत। यूनिसेफ।
6. डब्ल्यूएचओ (विश्व स्वास्थ्य संगठन)। (2018)। विकलांग।
7. डीपीईपी (2001)। कुमार, एस (2014) में। विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले बच्चेः जानने की जरूरत है। एजुकेशनिया कॉन्फैब.3, (5)। 81-84. आईएसएसएनः 2320-009ग
8. करंदे एस, सतम एन, कुलकर्णी एम, शोलापुरवाला आर, चित्रे ए, शाह एन (2007)। विशिष्ट सीखने की अक्षमता और सह-घटित ध्यान-घाटे अति सक्रियता विकार वाले बच्चों की नैदानिक और मनो-शैक्षिक प्रोफाइल। भारतीय जे मेड विज्ञान। 61,639-47।
9. करंदे, एस., भोसरेकर, के. (2009)। विशिष्ट सीखने की अक्षमता वाले बच्चों के स्वास्थ्य से संबंधित जीवन की गुणवत्ता पर ध्यान-घाटे / अति सक्रियता विकार का प्रभाव (सही)। इंडियन जे पीडियाट्र, 76(11):1119-24।
10. यूनेस्को। (2003)। शिक्षा में समावेशी दृष्टिकोण के माध्यम से अपवर्जन पर काबू पानाः एक चुनौती, एक विजन अवधारणात्मक पेपर, स्पेन, पेरिसः यूनेस्को
11. फोगट, बी. और मदन, एन. (2017)। समावेशी शिक्षाः हमारे सामने एक चुनौती। मानविकी, कला और साहित्य में अनुसंधान के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 5 (7), 23-32।
12. जितेंद्र, वी.एन. (2016)। समावेशी शिक्षा के प्रति सेवा पूर्व शिक्षकों का दृष्टिकोण, आत्म-प्रभावकारिता और कौशल (डॉक्टरेट शोध प्रबंध, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे)।
13. दास, ए.के., कुयनी ए.बी., और देसाई आई.पी. (2013)। भारत में समावेशी शिक्षाः क्या शिक्षक तैयार हैं? इंटरनेशनल जर्नल ऑफ स्पेशल एजुकेशन, 28(1).

जैन साहित्य और कला में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं आर्थिक जीवनः एक अवलोकन

राजू यादव

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि जैन साहित्य और कला में सामाजिक व आर्थिक जीवन सम्बन्धी सूचनाएँ कम ही हैं फिर भी जैन साहित्य और कला समकालीन व्यवसायों एवं उद्योगों पर प्रकाश डालती हैं। तथापि, यह जानकारी इतनी पर्याप्त नहीं है कि इसके आधार पर सामाजिक-आर्थिक संगठन एवं विभिन्न वर्गो के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या की जा सकें। वस्तुतः अधिकतर जानकारियाँ ऐसी हैं जो विभिन्न सामाजिक आर्थिक वर्गो के जैन धर्म के प्रति रूझान को प्रदर्शित करती है।

जैन ग्रन्थों में प्राप्त बंभण, खत्तिय, वइस्स और सुद्द[1] के उल्लेख स्पष्ट करते हैं कि जैनियों ने ब्राह्मण परम्परा की इस वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार किया था परन्तु उन्होंने इसे जन्म के आधार पर नहीं परन्तु कर्म के आधार पर माना था। जैन साहित्य और कला सामान्यतः सामाजिक वर्णो का उल्लेख न कर उनके राजनैतिक पद अथवा उनकी व्यावसायिक जातियों का उल्लेख करते हैं। जैन साहित्य और कला के ये उल्लेख पारम्परिक कदापि नहीं कहें जा सकते। ये सम्भवतः तत्कालीन सामाजिक संगठन के स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक सम्बन्धों में वर्ण-व्यवस्था का महत्व अपेक्षाकृत कम ही था और व्यक्तियों की जातियाँ, जो बहुधा उनके पारिवारिक व्यवसायों से सम्बद्ध थी, अधिक महत्वपूर्ण बन गई थी। सम्भवतः इसी कारण जैन साहित्य और कला में वर्णो के स्थान पर उनके पद अथवा जातियों के उल्लेख करते हैं।

जैन साहित्य न केवल चार वर्णो के अन्तर्गत ब्राह्मणों का उल्लेख करते हैं, बल्कि उन्हें श्रमण के साथ रखकर उनकी श्रेष्ठता भी स्वीकार करते प्रतीत होते हैं। सामान्यतया जैन धर्म में भ्रमण-माहन (माहण) का उल्लेख मिलता है। किन्तु हमें यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि जैन परम्परा में ब्राह्मणों को श्रमणों के समकक्ष रखने का यह प्रश्न उनकी जन्मना जातिगत श्रेष्ठता के आधार पर न होकर आवश्यक श्रेष्ठता पर आधारित था। उत्तराध्ययन सूत्र में ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी कौन है इसकी चर्चा विस्तार से की गई है।[2] इसी चर्चा से स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि सदाचारी ब्राह्मण के वहीं लक्षण थे जो श्रमण के थे। अतः सदाचारी ब्राह्मण और श्रमण को समकक्षता प्रदान की गई थी। जहाँ तक ब्राह्मण के जन्मना जातिगत श्रेष्ठता का प्रश्न है जैन ग्रन्थ स्पष्ट रूप से उसे स्वीकार नहीं करते। कल्पसूत्र में महावीर के गर्भ-परिवर्तन के प्रसंग को उपस्थित करते हुए ब्राह्मण जाति को क्षत्रिय जाति की अपेक्षा निम्नता प्रदर्शित की गई है।[3] कल्पसूत्र की इस घटना का अंकन मथुरा की पुरातात्विक सामग्री में है। वस्तुतः श्रमण परम्परायें ब्राह्मणों के आचारगत श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे किन्तु जन्मना श्रेष्ठता को नहीं स्वीकार करते थे। साहित्य और कला के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण तथ्य यह मिलता है कि साहित्य और कला में ब्राह्मण वर्ग का उल्लेख नगण्य सा ही हुआ है।

जैन साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जैन धर्म में उन जातियों के लोग अधिक थे जिन्हें सामाजिक व्यवस्था में निम्न कहा जाता था। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि जैन धर्म के प्रारम्भ से ही ब्राह्मणों की जातिगत श्रेष्ठता और शुद्र आदि की निम्नता का विरोध किया था। उत्तराध्ययन सूत्र में चाण्डाल कुल में उत्पन्न हरिकेशवल को महान साधक बताया गया है।[4] अतः स्पष्ट था कि जैन धर्म के लोग सामान्यतया उन वर्गों को, जिन्हें समाज में निम्न माना जाता था, प्रोत्साहित करते थे और अपने धर्म में उन्हें सम्मान पूर्वक स्थान देते थे।

जैन साहित्य से यह ज्ञात होता है कि जिन लोगों द्वारा जिन प्रतिमा, आयागवट्ट आदि प्रतिष्ठापित किये गये उनमें अधिकांश व्यक्ति विविध शिल्पों से सम्बद्ध थे, जो उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के द्योतक थे। जैन साहित्य और कला में लोहवणिक तथा लोहकार श्रमण के पुत्रगोट्रिक का उल्लेख है। जैन साहित्य में सीह के पुत्र गोव (गोप) लोहार के द्वारा एक सरस्वती प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराने का उल्लेख है।[5] जिससे प्रमाणित होता है कि लोहकार और लोहवणिक अलग-अलग वर्ग थे। उस समय लोहार जाति के लोग लोहे की वस्तुएँ बनाते थे और लोहवणिक उनका व्यवसाय करते थे। जैन साहित्य और कला में यह भी उल्लेख मिलता है कि लोहार लोग खेतीबारी के लिए हल और कुदाली आदि तथा लकड़ी काटने के लिए फरसा, वसुला आदि बनाकर बेचते थे। इन लोगों का व्यापार उन्नति पर था।[6]

जैन साहित्य में हैरण्युक (सोनार) के द्वारा भी अर्हत प्रतिमा स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[7] इस प्रकार स्पष्ट है कि लोहार के साथ-साथ सोनार (स्वर्णकार) भी जैन धर्म में रूचि लेते थे। जैन साहित्य और कला में यह उल्लिखित है कि स्त्रियाँ आभूषणों की शौकीन थीं। वे सोने तथा चाँदी के आभूषण धारण करती थीं एवं सोनारों का व्यापार खूब चलता था।[8] जैन साहित्य में गन्धिकों अर्थात् इत्र आदि सुगन्धित वस्तुओं का व्यापार करने वालों के द्वारा अर्हत-प्रतिमा के निर्माण का उल्लेख है।[9] अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि सुगन्धित द्रव्य बाजारों में बेचे जाते थे। इन द्रव्यों को बेचने वालों को गन्धी और उनकी दुकानों को गन्धशाला कहाँ जाता था।[10] जैन साहित्य से प्रकट होता है कि ईसा सन् की प्रारम्भिक कुछ शताब्दियों में, विविध शिल्पों से सम्बद्ध लोगों ने जैन धर्म को समर्थन प्रदान किया। अनुमानतः इनका व्यवसाय इनके सामाजिक स्थिति का द्योतक था। ब्राह्मण परम्परा लोहार, सोनार आदि व्यवसायियों को श्रेष्ठता क्रम में निम्न सामाजिक स्तर ही प्रदान करती है। जैन साहित्य और कला से सामाजिक श्रेष्ठता क्रम में इनके स्थान पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, परन्तु इतना अवश्य विदित होता है कि जैनियों की दृष्टि में न तो ये हीन थे ओर न ही इनके द्वारा समर्पित वस्तुओं की अवमानना की जाती थी।

निम्न वर्ग के लोगों के साथ ही जिन प्रतिमाओं तथा आयोग पट्टों के निर्माता एवं समर्पणकर्ता श्रेष्ठि वर्ग के लोग भी थे।[11] कुछ राजा एवं उसके विविध पदाधिकारी भी हैं।[12] साहित्य और कला का साक्ष्य स्पष्ट करता है कि जैन धर्म को श्रेष्ठियों, विविध शिल्पियों तथा निम्न वर्ग के लोगों से समर्थन प्राप्त हुआ था, साथ ही कुछ राजवंशों तथा उच्च पदाधिकारियों की भी इस धर्म के प्रति निष्ठा थी।

यह महत्वपूर्ण है कि अधिकांश वे साहित्य और कला जिनमें श्रेष्ठियों का जैन उपासकों के रूप में उल्लेख हुआ है, लगभग 1000 ई0 के बाद के हैं।[13] इस आधार पर क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जैन धर्म को श्रेष्ठियों का प्रबल समर्थन पूर्व मध्यकाल से ही मिलना प्रारम्भ हुआ।

जैन साहित्य में श्रेष्ठियों, राजाओं, सामन्तों, सेनानायकों आदि की पत्नियों का उल्लेख मिलता हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ जैन उपासिकाएँ भी थीं। ये सारे साक्ष्य न केवल स्त्रियों के प्रति जैन धर्म के दृष्टिकोण के परिचायक हैं, वरन् उनके सामाजिक स्तर पर भी कुछ प्रकाश डालते हैं। जैन साहित्य एवं कला में गणिका नादा, गणिका दन्दा की बेटी वासा, लेणशोभिका के द्वारा अपने माता-पिता, बहन, पुत्र और पुत्री के साथ मिलकर अर्हतों की पूजा के लिए आयागपट्ट, पूजागृह और जलकुण्ड बनवाये जाने का उल्लेख है।[14] गणिका नादा को श्रमणों की उपासिका कहा गया है।[15] इतना ही नहीं जैन साहित्य एवं कला में नर्तक फल्गु यश की भार्या शिवयशा के द्वारा अर्हत पूजा के लिए आयागपट्ट बनवाये जाने का उल्लेख है।[16] जैन साहित्य में एक गन्धिक की पत्नी के द्वारा जिन प्रतिमा को दान देने का उल्लेख है।[17] इनके अतिरिक्त विविध स्त्रियों द्वारा जैन प्रतिमा, मंदिर आदि के समर्पण का उल्लेख करते हैं बल्कि कुछ विशिष्ट वर्ग की स्त्रियों को ही दान में देने अथवा उनके निमित्त दान की चर्चा भी करते हैं। 1062 ई0 के हुम्मच अभिलेख से यह विदित होता है कि वीरशान्तर की पत्नी चागलदेवी ने वल्लिगावे में चागेश्वर नाम का मंदिर बनवाकर बहुत से ब्राह्मणों को कुमारियाँ भेंट की और महादान पूर्ण किया।[18]

जैन साहित्य धार्मिक क्रिया-कलापों में स्त्रियों के योगदान को स्वीकार करता था। इस दृष्टि से सम्भवतः पुरूष और स्त्री के मध्य किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। मथुरा के अभिलेख में एक गणिका द्वारा अर्हतों की पूजा के लिए आयागपट्ट, पूजागृह तथा जलकुण्ड बनवाये जाने का उल्लेख सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह सर्वविदित है कि गणिकाओं की

संस्था मूलत: नगरीय संस्कृत की एक अंग है। ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धों के समान ही जैनियों ने भी नगरीय संस्कृति को उसके अधिकांश गुण-दोषों के साथ स्वीकार ही नहीं किया था वरन् समर्थन भी प्रदान किया था। गणिकाओं को इसी दृष्टिकोण के अनुरूप दान देने के योग्य समझा गया, तथा उन्हें श्रमणों की उपासिका के रूप में स्वीकार किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में सामान्यत: गणिकाओं को हेय व तिरस्कृत नहीं समझा जाता था।

वात्सायन के अनुसार वे सुशिक्षित और सुसंस्कृत होती थी तथा विविध कलाओं में भी पारंगत थी।[19] जैन आगमों का भी उनके प्रति लगभग इसी प्रकार का दृष्टिकोण प्रकट होता है। कृष्ण वासुदेव ने जब काम्पिल्यपुर के लिए प्रस्थान किया तो उनके साथ अर्नंग सेना आदि गणिकाएँ भी थी।[20] हुम्मच अभिलेख में प्राप्त, ब्राह्मणों को कुमारियाँ भेंट करने का उल्लेख भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।[21] जैन उपासकों द्वारा ब्राह्मणों को भी सम्मानित करने के गिने-चुने साक्ष्यों में यह भी एक है, जबकि सामान्यत: जैन अभिलेखों में ब्राह्मणों को नकारा ही गया है। इस अभिलेख के ब्राह्मण निश्चय ही मंदिर से सम्बद्ध थे और सम्भवत: पुजारी थे। उन्हें कुमारियाँ भेंट करने का उल्लेख सम्भवत: देवदासी प्रथा के प्रचलन की ओर संकेत है।

आलहल्लि अभिलेख में एक शासन के पदाधिकारी द्वारा नर्तकियों को दान दिये जाने का उल्लेख आश्चर्यजनक प्रतीत होता है।[22] सम्भवत: ये सामान्य नर्तकियाँ नहीं थी। इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता कि ये देवालयों में नृत्य करने वाली नर्तकियाँ और देवदासियाँ थी। यदि इस सम्भावना को स्वीकार कर लिया जाय तो यह भी स्वीकार करना होगा कि 12वीं शताब्दी में देवालय की नर्तकियों को समाज आदर की दृष्टि से देखता था तथा राज्य के पदाधिकारियों द्वारा दिये गये दान को प्राप्त करने के योग्य समझता था।

कुछ जैन अभिलेख जिनकी संख्या सीमित ही प्रतीत होती है, तत्कालीन शिक्षा पद्धति पर भी प्रकाश डालते हैं। 875 ई0 के सौदत्ति अभिलेख के अनुसार राष्ट्रकूट राजा कृष्ण की अधीनता में अधिपति पृथ्वीराम, पहले पूज्य ऋषि मैलापतीर्थ का एक विद्यार्थी था।[23] इस उल्लेख से स्पष्ट होता है कि जैन गण न केवल धार्मिक व्यवस्था की एक इकाई थे बल्कि शिक्षा की व्यवस्था भी करते थे। दृष्टव्य है कि बौद्ध संघों में भी शिक्षा प्रदान की जाती थी तथा ब्राह्मण धर्मो से सम्बद्ध मंदिर भी कभी-कभी विद्यालय चलाते थे। राजघाट के उत्खनन से प्राप्त गुप्त कालीन अनेक चरण मुद्राएँ इस बात की द्योतक हैं कि वाराणसी में अनेक मंदिरों में वैदिक शिक्षा की व्यवस्था थी।[24] ऐसा प्रतीत होता है कि जैन गण भी इस परम्परा का निर्वाह करते थे। निश्चय ही गणों में दी जाने वाली शिक्षा मूलत: धार्मिक रही होगी। इसी प्रकार 1054 ई0 के होनवाड अभिलेख से ज्ञात होता है कि चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम की रानी केतल देवी होनवाड पर शासन कर रही थी।[25] यह सर्वविदित है कि अग्रहार ऐसी संस्था थे जो धार्मिक तथा शैक्षणिक दोनों ही थे। इनमें दी जाने वाली शिक्षा पर धर्म का प्रभाव था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व मध्यकाल में सामान्य लोगों की शिक्षा का कार्य इसी प्रकार की छोटी-छोटी धार्मिक संस्थाएँ ही सम्पन्न करती थी।

उत्खननों से प्राप्त दानात्मक एवं समर्पणात्मक अभिलेखों में बहुधा दानकर्ता अथवा समर्पणकर्ता के व्यवसाय के उल्लेख हैं, जो तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के द्योतक कहे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त दान में दी गई वस्तुएँ भी एक सीमा तक अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डालती हैं। इस प्रकार के अधिकांश अभिलेख या तो मथुरा या उसके आस-पास के क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं और या तो कर्नाटक से। इन दोनों वर्गों के अभिलेखों में काल का भी बहुत बड़ा अन्तराल है। मथुरा के अभिलेख प्राय: ईसा की प्रारम्भिक कुछ शताब्दियों के हैं, जबकि कर्नाटक से प्राप्त अभिलेख पूर्व माध्यमिक काल के। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों वर्गों के अभिलेख दो भिन्न-भिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं के द्योतक हैं।

सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि मथुरा से प्राप्त अभिलेख नगरीय अर्थव्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। समृद्ध गणिका व उसके परिवार के सदस्यों द्वारा आयागपट्ट आदि का समर्पण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।26 द्रष्टव्य है कि गणिका नगरीय व्यवस्था की एक विशेषता है। अनेक स्रोतों से स्पष्ट होता है कि कुषाण काल में विभिन्न उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओं का व्यापार अपने चरमोत्कर्ष पर था।[27] अभिलेखों में लोहार[28], सोनार[29], गन्धिक[30], लोहवणिक[31] आदि के उल्लेख इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। इसके विपरीत भूमिदान एवं करदान के उल्लेखों का अभाव किसी प्रकार की सामन्तवादी प्रथा विद्यमान न होने का प्रमाण माना जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व मध्यकाल तक अर्थव्यवस्था मूलत: ग्राम आधारित बन चुकी थी[32] और सामन्तवादी प्रथा पूर्णतया

प्रचलित हो चुकी थी।[33] कर्नाटक से प्राप्त अधिकांश जैन अभिलेख इसी अर्थव्यवस्था के द्योतक प्रतीत होते हैं। उल्लेखनीय है कि ये अभिलेख यदा-कदा ही नगर का उल्लेख करते हैं। 1178 ई0 के हट्टण अभिलेख में सोविसेट्टि को उसी के नाम के नगर से सम्बन्धित किया गया है।[34] सोवि नाम का नगर ऐतिहासिक महत्व का नहीं प्रतीत होता सम्भवत: यह एक कस्बा मात्र रहा होगा।

हाँलाकि बड़ी संख्या में दानकर्ताओं को श्रेष्ठी उल्लिखित किया गया है। इस सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि इनमें से अनेक श्रेष्ठी नगरों से नहीं बल्कि विभिन्न गाँवों से सम्बद्ध थे, उदाहरणार्थ 1062 ई0 के हुम्मच अभिलेख का नोवय्सेट्टि35, 1120 ई0 के सुकदरे अभिलेख का जविकसेठि[36], 1168 ई0 के बन्दूर अभिलेख का शंकरसेट्टि[37] आदि। यह भी महत्वपूर्ण है कि उपर्युक्त अभिलेखों में ये श्रेष्ठी बहुधा या तो ग्राम दान करते हैं अथवा भूमिदान।

किसी अभिलेख में तेल प्राप्ति के लिए कोल्हू के दान का भी उल्लेख है। ये प्रमाण इस बात के स्पष्ट द्योतक हैं कि इन अभिलेखों के श्रेष्ठी बौद्धकालीन श्रेष्ठियों[38] से नितान्त भिन्न थे। इनका आधार गाँव थे नगर नहीं और सम्भवत: पूर्वकालीन श्रेष्ठियों के समान ये बड़े व्यापारी भी नहीं थे। कुछ अभिलेख इस ओर भी संकेत करते हैं कि इनमें से अनेक श्रेष्ठ जमींदार थे।

संदर्भ सूची-

1. उत्तराध्ययनसूत्र, अ0-25, श्लोक-33, पृ0-263, विपाकसूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अ0-5, सू0-6, पृ0-66-67
2. आचारांगसूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, द्वितीय उद्देशक, सूत्र-136, पृ0-125
3. उत्तराध्ययनसूत्र, अ0-25, श्लोक-19-29, पृ0-262-63
4. कल्पसूत्र, सूत्र सं0-27, पृ0-48, 50, 52
5. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-198
6. उत्तराध्ययनसूत्र, अ0-12, श्लोक-1, 2, पृ0-106
7. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-31, 54
8. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-55
9. उत्तराध्ययनसूत्र, अ0-19, श्लोक-66, पृ0-195
10. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-67
11. धम्मपद अट्ठकथा 1, पृ0-384, जैन, जगदीशचन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ0- 142
12. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-41, 42, 62, 69
13. जैन, जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ0-154
14. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-194, 197, 218, भा0-4, अभि0-133, 142, 152, भा0-3, अभि0-305, 316, 327, 367 इत्यादि।
15. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-90-106, भा0-3, अभि0-333, 356, भा0-4, अभि0-136, 165, भा0-5, अभि0-41 इत्यादि।
16. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-197, 200, 218, भा-3, अभि0-305, 316, 367, सा0इ0इ0-11, पृ0-89, ए0रि0मै0-1932, पृ0-171, रि0सा0ए0-1933-34, क्र0ई0-77, पृ0-126 इत्यादि।
17. ए0इ0-30, पृ0-243
18. जै0शि0सं0, भा0-4, अभि0-142
19. वहीं, अभि0-163
20. वहीं, अभि0-164
21. वहीं, भा0-2, अभि0-274
22. वहीं, भा0-2, अभि0-299
23. वहीं, भा0-3, अभि0-305
24. वहीं, भा0-3, अभि0-367

25. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-8
26. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-8
27. वहीं, भा0-2, अभि0-15
28. वहीं, भा0-2, अभि0-62
29. वहीं, अभि0-198
30. वहीं, अभि0-253
31. घोसाल, यू0एन, ''सोशल कन्डीसन'', द क्लासिकल एज, (सं0 मजूमदार तथा पुसालकर), पृ0- 568
32. जैन, जगदीश चन्द्र जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ0-278
33. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-198
34. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-253
35. सिंह, वीरेन्द्र प्रताप, लाइफ इन एन्सियन्ट वाराणसी, पृ0-268
36. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-186
37. शर्मा, रामशरण, पर्सपेक्टिब्स इन सोशल एण्ड इकनामिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इन्डिया, 1983, पृ0-170-183
38. जै0शि0सं0, भा0-2, अभि0-54, 55

तर्पण उपन्यास में स्त्री जीवन का यथार्थः एक दृष्टि

डॉ० समर जीत सुमन

पूर्व शोध छात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

स्त्री जीवन के यथार्थ को लेकर हिन्दी साहित्य में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकायें अपने अनुभवों, भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए हिन्दी साहित्य में अपना योगदान दे रही है। इसी प्रकार शिवमूर्ति जी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से दलित स्त्री जीवन के यथार्थ से परिचय कराने में योगदान दिया। कथाकार शिवमूर्ति की कहानियाँ नायिका प्रधान है। तिरिया चरित्तर, कसाई बाड़ा, अकाल दण्ड, तर्पण आदि में स्त्री की वेदना, उसका संघर्ष, अपमान, प्रताड़ना, काम वासना, पारस्परिक रिश्तों की जकड़न, पारिवारिक विघटन सभी कुछ गहरी वेदना के साथ अभिव्यक्त होता है।

शिवमूर्ति जी ने 'तर्पण' उपन्यास के माध्यम से उस पुरुषवादी संकीर्ण मानसिकता पर करारा व्यंग्य किया है, जिसमें स्त्री को भोग की वस्तु समझा जाता है। चंदर भी रजपत्ती के यौन शोषण का प्रयास करता है। यह यौन शोषण सिर्फ रजपत्ती का ही नही है, वरन यह उन तमाम दलित महिलाओं के खिलाफ की जा रही यौन हिंसा का प्रतीक है। उपन्यासकार ने यह बताने का प्रयास किया कि समाज में कितनी ही रजपत्ती है, जिनका शारीरिक शोषण चन्दर सरीखे लोग कर रहे है। इस ओछी मानसिकता से समाज को बचाने की आवश्यकता है।

शिवमूर्ति की कहानियों में ''स्त्री सिर्फ देह नहीं है, सिर्फ उपभोग की वस्तु नहीं है, सिर्फ मनोरंजन नहीं है बल्कि वह एक इंसान है, जो अपने हक के लिए, अपनी अस्मिता के लिए, अपने अस्तित्व के लिए, विरोधी ताकतों से अंतिम समय तक लड़ने का माद्दा रखती है, भले ही उसमें उसकी जान चली जाये या जिन्दगी छिन्न-भिन्न हो जाये।''[1]

दलित स्त्री के यौन शोषण की समस्या नई नहीं है, यह सदियों पुरानी समस्या रही है। सामन्ती जमींदार, उच्च पदों तथा उच्च समाज से आने वाले लोगों ने दलित स्त्रियों की देह से खिलवाड़ किया। उनके लिए वह एक खेल का साधन रही है। शिवमूर्ति जी भी ऐसे समाज तथा परिवेश में पैदा हुए कि बचपन से ही ये चीजे उनके अनुभव में आयी जिसके प्रभावस्वरूप उन्होंने इन समस्याओं को लेकर अपना कथा लेखन का कार्य प्रारम्भ किया। बड़ा गाँव में सिर्फ रजपत्ती ही यौन शोषण का शिकार नहीं हुई थी वरन् उसकी बड़ी बहन के साथ भी इस तरह की घटना घट चुकी थी। सवर्णों के टोले के कुछ लड़कों ने उसके साथ बलात्कार किया, जिससे वह गर्भवती हो जाती है और लोकलाज के कारण कुँए में कूदकर जान देती है, किन्तु अब जब यही घटनाएँ रजपत्ती के साथ घटनेवाली होती है तो वह उसका विरोध करती है। लेखक इस विरोध के माध्यम से बताने का प्रयास करता है कि अब वह पुराना समय नहीं रहा कि सवर्ण जातियाँ खुद के मन से कोई भी अनुचित कार्य कर सकती है। यदि कुछ भी गलत होता है तो उसका विरोध अवश्य होगा, चाहे सामने कोई भी हो। उदाहरण द्रष्टव्य है- रजपतिया का कोछ खुलने से पहले चन्दर का हाथ बदमाशी के लिए चल गया। इस चले हुए हाथ को बीच में ही झटककर वह गरजी- ''हरामजादे और पीछे हटने लगी .... चन्दर ने लपककर उसे कन्धे से पकड़ा और पैर में लंगी मार दिया। वह सँभल न पाई गिर गई और ऊपर झुक आये चन्दर के बाल पकड़कर खीचती हुई चिल्लाई- अरे माई गोहार लगा। धरमुआ कै पुतवा उधिरान बा रे।''[2] इस प्रकार अचानक हुए हमले से रजपत्ती असहज हो जाती है किन्तु वह धैर्य नहीं छोड़ती और मदद के लिए आवाज देती है। परेमा की माँ चिल्लाते हुए दौड़ती आइ गए।

जाइ न पावै। पहुँच गए। परेमा की माँ के गरजने पर रजपत्ती को बल मिलता है, वह कपड़े ठीक करते हुए कहती है- ''इहै मेहरंडा धरमुआ के पुतना। कैलसिया (चन्दर की बहन) कै भतरा। अन्ना सै मारै लाग।''[3]

रजपत्ती के विरोध और परेमा की माँ के आ जाने से चन्दर भाग खड़ा होता है। लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक दलित महिला को हवस का शिकार बनाना अब सवर्णों को मंहगा पड़ने वाला है। इसके लिए दलित महिलाएँ आवाज उठाती है, जिस कारण चन्दर जैसे बलात्कारियों को भागना पड़ता है। रजपत्ती के सहयोग के लिए ''मिस्त्री बहू हाथ में खुरपा लिए दौड़ती हुई सबसे आगे पहुँची और चन्दर को देखकर बिना बताये सारा मजरा समझ गई। ललकारने लगी पकड़-पकड़। भागने न पावै। पोतवा पकडिघ्के ऐठ दे हमेशा-हमेशा का गरह कट जाय।''[4]

मिस्त्री बहू का हथियार उठाना यह दर्शाता है कि अब दलित महिलाएँ शोषण को बर्दाश्त नहीं करेंगी, उसके लिए चाहे किसी की हत्या भी करना पड़े तो फर्क नहीं। यह सब स्त्री चेतना का परिणाम है। चन्दर के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज होने के बाद सी. ओ. तफसीस में आते हैं तो परेमा की अम्मा और मिस्त्री बहू गवाही देने से नहीं घबराती। गाँव की दलित महिलाएँ तथा पुरुष इस घटना का विरोध करते हुए रिपोर्ट लिखवाने का निर्णय लेते हैं, जब रिपोर्ट लिखने के बाद तफ्सीस होती है तो उस तफसीस में अधिकारी द्वारा पूछे गये सवाल का तरीका पुलिस प्रशासन पर ही प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

''क्या किया
साहेब हमार कपड़ा फारि दिए।
कपड़ा? कौन कपड़ा
आँचर साहेब।
फिर?
फिर हमार दूध पकड़ लिए
ऐं दूध? अच्छा हाँ, दूध। फिर?''[5]

एक तरफ जहाँ रजपत्ती अपने साथ हुए अत्याचार से परेशान है, वही पुलिस भी ऐसे प्रश्न करती है जो उसे और भी परेशान करते हैं। यह प्रश्न मानसिक रूप से प्रताड़ित करने वाले हैं। ''यौन शोषण आदि के चित्रण की दृष्टि से शिवमूर्ति काफी बेबाक कथाकार है। वे कथा की आवश्यकतानुसार बेझिझक इन प्रवृत्तियों को चित्रित करते हैं और जहाँ जो कहना होता है, उसे खुल्लम खुल्ला कहते है।''[6]

शिवमूर्ति जी कितने सहज ढंग से दलित स्त्री के यथार्थ को अपनी भाषा के माध्यम से हूबहू व्यक्त कर देते है। तर्पण में जहाँ मिस्त्री बहू, परेमा की अम्मा जैसी दलित महिलाएँ है जो न्याय का साथ देती है, वही लवंगी जैसी पात्र भी है जो चन्दर जैसे लोगों का साथ देता है। खुद के टोले से विरोध का कारण उनकी दयनीय आर्थिक दशा है, जिस कारण वह सत्य का पक्ष न लें, असत्य का पक्ष लेती है। दलित स्त्री के जीवन में शिक्षित होने के लिए संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आने वाली कठिनाइयों से जूझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तिहरी मार झेलने के प्रसंगों, घटनाओं, संघर्षों का चित्रण लेखकों तथा लेखिकाओं ने प्रमुख रूप से किया है। लगभग सभी आत्मकथाओं में सबके महत्वपूर्ण पहलू है, पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का निरंतर शोषण, उसके अस्तित्व और अस्मिता को कुचला जाना और इनके विरोध में स्त्री का संघर्ष। दलित स्त्री मध्यवर्गीय हो अथवा निम्नवर्गीय मजदूर हो अथवा सामाजिक कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका, उसे दलित और स्त्री होने की पीड़ा साथ-साथ झेलनी पड़ी है। यह तथ्य लगभग सभी लेखकों तथा लेखिकाओं के यहाँ समान है। पूर्वजों के साथ हुए जातिगत शोषण और उत्पीड़न की वेदना की लकीरे सभी में एक समान है, अन्याय, गुलामी, दरिद्रता, वंचना ने स्त्री के जीवन को एक सी भयावहता, दीनता, लाचारी और कुचले जाने की पीड़ा से भर दिया।

स्त्रियाँ घर के बाहर तो खुद को असुरक्षित महसूस करती ही है, साथ ही घरेलू हिंसा ने उनके जीवन की समस्याओं से भर दिया, यदि कोई बाहरी किसी को चोट पहुँचाता है तो उसका दर्द शरीर तक ही हो सकता है किन्तु जब घर परिवार का ही व्यक्ति चोट पहुँचाए तो यह दोहरी चोट होती है उसके लिए। शरीर के साथ-साथ हृदय को भी महज आघात पहुँचता है। तर्पण उपन्यास

में भी रजपत्ती को घरेलू हिंसा का शिकार होते हुए दिखाया गया है। एक तरफ वह चंदर के द्वारा किये गये यौन शोषण के प्रयास की घटना से उबरी भी नही थी कि उसके पिता पियारे उसकी गलती निकालते हुए पीटने लगते है-

''तो क्यों घुसी यह उसके खेत में? किसने भेजा?

हरामजादी तेरी जीभ कब्जे में नहीं रहती, बहुत चटोरी हो गई है क्यों भेजा लड़की को?

पियारे उसका बाल पकड़कर धमाधम चार पाँच घूसे पीठ पर लगाता है। पत्नी चिल्लाने लगती है, एक दम्मै सनक गया हैई आपन तो कहाँ का गुस्सा कहाँ उतार रहा है। अगर लड़की ने एक कौर साग नोच ही लिया तो क्या वह कसाई जान ले लेगा? जवान जहान लड़की पर हाथ उठा देगा?''[7]

रजपत्ती के लिए यह स्थिति और भी कष्टप्रद हो जाती है। लिंगभेद समाज के लिए अभिश्राप है। लड़के और लड़की में सिर्फ लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। लिंगभेद की समस्या को लेखकों तथा लेखिकाओं ने अपने लेखन से समाज के सम्मुख रखा। तर्पण में पंडिताइन रजपत्ती के चरित्र पर प्रश्नचिन्ह उठाती है और अपने बेटे के किये पर उन्हें कोई पश्चाताप नहीं होता। पंडिताइन कहती है- ''जवान बेटी को विदा कर देगा तो उसकी कमाई कैसे खाएगा? उतान होकर गली-गली अठिलाती घूमती है। गाँव भरके लड़को को बरबाद कर रही है।''[8]

यह भी एक प्रकार का लिंग भेद ही है कि खुद के बेटे की गलती को न मानकर रजपत्ती के दलित स्त्री होने की वजह से उसके चरित्र पर ही लांक्षन लगा दिया जाता है।

शिवमूर्ति जी ने तर्पण उपन्यास में स्त्री जीवन के यथार्थ को दिखाने के लिए ऐसी कथा का चयन किया जो पूर्णत: सफल होती है। उनकी कहानियाँ किसी उथले यथार्थ के हवाई चित्र नहीं है। न ही वे भाषाई आडम्बर से बनाए गए ऐसे स्वादिष्ट साहित्यिक व्यंजन ही हैं जिनमें भाषा कि चिकनाई निकाल लेने पर उनमें बस छाँछ ही बची रह जाए। ''उनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्य में गाँव में बसे दलित और वंचित वर्ग को खोई हुई अस्मिता को वापस पाने का हथियार है।''[9]

हिन्दी कथा साहित्य में शिवमूर्ति को स्त्री की दशा-दिशा का परिचायक कहा जा सकता है। शिवमूर्ति अपनी कहानियों में स्त्री पात्रों को गढ़ते नहीं वरन् वे पात्र स्वयं उनकी कहानियों में अपनी जगह बना लेती है, मानों वे मुखर होकर स्वयं के बारे में बताना चाहती हैं, क्योंकि शिवमूर्ति का तादात्म्य ग्राम्य जीवन से रहा है। अत: उनकी कहानियों की स्त्री पात्र ग्रामीण परिवेश से ही आती है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पात्र लेखक की कलम से साकार होते है, किसी लेखिका के नहीं। अर्थात् कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति विषय चयन में जोखिम उठाते है। एक ऐसा जोखिम जो पुरुष की दोहरी मानसिकता के विरुद्ध खड़ा करता

देश विकास की अनेक सीढ़िया चढ़ चुका है लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता है कि कहीं किसी सीढ़ी पर कुछ काँटे रख दिए गए है, जिनके कारण प्रगतिशीलता के पांव लहूलुहान होते रहते हैं। इस इक्कीसवीं सदी में भी खाप पंचायतों का दुर्भाग्य भारतीय स्त्रियों का पीछा नहीं छोड़ रहा है। वैचारिक विकास के क्रम में कहीं तो कुछ ऐसा है जो अभी तक पूरी तरह बदला नहीं जा सका है। गहराई में जाकर पड़ताल करने पर यही तथ्य सामने आता है कि ग्रामीण अंचल में अभी वह पुरुष मानसिकता विद्यमान है जो स्त्रियों को अपने पाँव की जूती मानती है और तमाम सामाजिक निर्णय लेने में अपनी हेठी समझती है। यदि स्त्री कोई विरोध करे तो उसकी चेष्टा को तिरिया चरित्तर कहकर अपमान का विषय बना दिया जाता है। यदि वह विरोध न करे तो भी तिरिया चरित्तर का ही तमगा पहनाया जाता है। इसी तरह जब रजपत्ती का बलात्कार करने की कोशिश चन्दर करता है तो इस घटना के बाद चंदर की माँ सारा दोष रजपत्ती पर ही मढ़ देती है। धरमू पंडित रजपत्ती के पिता पियारे से कहते है 'लौंडिया जवान हो गई तो विदाई करके कंटक साफ करो, घर में बैठाने का क्या मतलब है?' एक दलित मजदूर जब अपने बेटी के साथ हुए दुर्व्यवहार की शिकायत करने आता है तो अपने बेटे को समझाने के बजाय उसी को दोषी ठहराते हैं। समाज की पुरुष मानसिकता से उत्पन्न व्यभिचार को समाप्त करने के स्थान पर उस महिला को जो दलित है उसे खदेड़ देना समस्या का हल नहीं हो सकता। समस्या गहरी और विकट है। यह तब और गहरी हो जाती है जब पुरुष तो पुरुष, एक स्त्री भी इस समस्या के प्रति वैसा ही कुत्सित व्यवहार प्रकट करती है, जैसा कि पुरुष। पंडितानी जैसी स्त्रियाँ सवर्ण और सामन्ती मानसिकता द्वारा कंडीशन्ड की जा चुकी होती है। वह आखिर तक कभी भी रजपत्ती के दु:ख से द्रवित नहीं होती। ये स्त्रियाँ स्त्री अस्मिता के प्रति सजग न होकर सामंती वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है और इसी कारण ''सवर्ण पुरुष सिर्फ दलित स्त्रियों के प्रति ही हिकारत भरी नजर नहीं रखता। वह अपनी पत्नी, अपने घर की स्त्रियों और जाति की स्त्रियों के लिए भी वैसी ही दृष्टि रखता है। धरमू पंडित का व्यवहार हो या पियारे का अपनी पत्नी, पुत्री

के प्रति व्यवहार हो- स्त्रियों की दुर्दशा में कही कोई फर्क नहीं है। घर बाहर अपनी परायी सभी स्त्रियों की दशा एक सी दिखाई पड़ती है।''[10]

शिवमूर्ति जी ने 'तर्पण' उपन्यास में स्त्री जीवन के जिस यथार्थ को चित्रित किया है वह उनके जीवन अनुभव में भी रहा। उन्होंने समाज में दलित स्त्री के जीवन की जिन समस्याओं को देखा उसे उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त भी किया। ''वैसे भी यथार्थ को समझने के लिए बाजार से किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्र को खरीदकर नहीं लाना पड़ता, बस अपनी संवेदना को ही व्यापक जीवन से जोड़ना पड़ता है और शिवमूर्ति की भाव संवेदना इस योग्य उन्हें बनाती है कि वे साहित्य को वृहत्तर जीवन से जोड़ सकें। शिवमूर्ति की कहानियों में अनुभव का सच भी इसलिए जटिल है और ऐसा अनुभूत सत्य जो जीवन जगत की कल्पना पर नहीं बल्कि उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित है।''[11]

निष्कर्षतः कथाकार शिवमूर्ति के प्रत्यक्ष अनुभूति की झलक 'तर्पण' उपन्यास में है। उन्होंने अपने आस-पास दलित स्त्री के प्रति हो रहे यौन शोषण, अत्याचार, लिंगभेग, घरेलू हिंसा जैसी समस्याओं के माध्यम से दलित स्त्री जीवन के यथार्थ को दिखाने का प्रयास किया। दलित स्त्री के जीवन में ये समस्याएँ पितृसत्तात्मक समाज तथा संकीर्ण धार्मिक मान्यताओं की वजह से भी बढ़ी है। स्त्री को अपने अधिकारों के लिए स्वयं संघर्षशील होने की आवश्यकता है, तभी उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो पायेगी।

संदर्भ सूची-

1. वास्तव की बहुआयामी छवियाँ, उर्मिला शिरीष, लमही अक्टूबर दिसम्बर 2012, पृ0 75
2. उपन्यास 'तर्पण', शिवमूर्ति, पृ0 9-10
3. वही, पृ0 10
4. वही, पृ0 11
5. वही, पृ0 70
6. यथार्थ का सत्यापन करती कहानियाँ, उमेश चौहान, लमही, अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ0 58
7. उपन्यास 'तर्पण', शिवमूर्ति, पृ0 13
8. वही, पृ0 14
9. वंचिता अस्मिता की अभिव्यक्ति, विवेक मिश्र, लमही अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ0 69
10. प्रतिपक्ष की भूमिका में उपन्यास, अमिताभ राय, लमही अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ0 116
11. गाँव की कहानियाँ और कहानियों में गाँव, वैभव सिंह, लमही अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ0 53

बाल अपचारियों से सम्बन्धित नीतियाँ

डॉ० अमृता श्रीवास्तव

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर

सारांश

बच्चे अत्यधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय परिसम्पत्ति एवं साधन होते हैं। अच्छा नागरिक बनने के लिये शारीरिक एवं नैतिक रूप से स्वस्थ तथा मानसिक रूप से सतर्क रहने के लिये बच्चों को अनुमति ही नहीं, वरन अवसर भी प्रदान करना चाहिए। इस सन्दर्भ में सामाजिक प्रतिनिधियों को सक्रिय प्रयास करना चाहिए। असमानता में प्रस लाकर तथा सामाजिक न्याय पर अधिक विश्वास करके विवृद्धि की अवस्था में बच्चों के विकास को समान अवसर प्रदान करना चाहिए जिससे बच्चों में अपराध प्रवृत्ति के प्रति उन्मुखता पर रोक लगाया जा सके और उन्हें एक नई दिशा प्रदान की जा सके। बच्चों में हम आज्ञाकारिता, आदरपूर्ण व्यवहार, आत्मसात् करने वाले गुण ही नहीं वरन् अच्छे गुण की प्रत्याशा करते हैं। परन्तु अनेक कारणों से बच्चे निर्धारित सामाजिक एवं विधिक कथन का अनुसरण नहीं कर पाते हैं।

मुख्य शब्द- किशोरावस्था, बाल-अपराधी, मलिन-बस्ती, दंड संहिता, किशोर न्याय अधिनियम, बाल न्यायालय, रिमांड होम।

किशोरावस्था में व्यक्तित्व के निर्माण तथा व्यवहार के निर्धारण में वातावरण का बहुत हाथ होता है, अतः अपने उचित या अनुचित व्यवहार के लिये किशोर बालक स्वयं नहीं वरन् उसका वातावरण उत्तरदायी होता है। हमारा कानून भी यह स्वीकार करता है कि किशोरों द्वारा दिए गए अनुचित व्यवहार के लिए किशोर बालक स्वयं नहीं बल्कि उसकी परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं, इसी वजह से भारत समेत अनेक देशों में किशोर अपराधों के लिए अलग कानून और न्यायालय और न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है। उनके न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधिकारी बालमनोविज्ञान के जानकार होते है। वहाँ बाल-अपराधियों को दंड नहीं दिया जाता, बल्कि उनके जीवनवृत्त (केस हिस्ट्री) के आधार पर उनका तथा उनके वातावरण का अध्ययन करके वातावरण में स्थित असंतोषजनक, फलतः अपराधों को जन्म देनेवाले, तत्वों में सुधार करके बच्चों के सुधार का प्रयत्न किया जाता है। अपराधी बच्चों के प्रति सहानुभूति, प्रेम, दया और संवेदना का व्यवहार किया जाता है। भारत में भी कुछ राज्यों में बाल न्यायालयों और बाल सुधारगृहों की स्थापना की गई है।

शर्मा एवं द्विवेदी (2014) ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में लिखा है कि पारिवारिक तनाव से भी अपराधों में वृद्धि होती है। बाल अपचार को अधिक प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि पारिवारिक तनाव से उत्तरदायित्वहीनता बढ़ती है, विश्वासों में कमी होती है, घृणा-द्वेष का जन्म होता है, जिससे व्यक्ति में आक्रामक प्रवृत्ति बढ़ती है।

पारीक (2015) ने राजकीय किशोर गृह, जयपुर में आवासित अनाथ व विधि से संघर्षरत किशोरों के मानवाधिकारों का अध्ययन किया है। राजकीय किशोर गृह की व्यवस्थाओं का अवलोकन कर निष्कर्ष निकाला है कि वहाँ रहने वाले किशोरों और अनाथ बालकों के लिए सुधार गृह का परिवेश व वातावरण अनुकूल नहीं है। वहाँ का अवासीय परिवेश एवं तत्कालीन परिस्थितियाँ किशोरों में मानवीय सुधार लाने के प्रतिकूल है। किशोर कानून के तहत किशोर गृह में रहने वाले किशोरों के प्रति वहाँ के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का मित्रवत व्यवहार होना चाहिए था, लेकिन ऐसा कम ही दृष्टिगोचर हुआ। शोधार्थिनी का मत है कि जब तक इन सुधार गृहों के लिए समुचित सुविधाएँ और वात्सल्य भावना सुलभ नहीं होगी तब तक रहने वाले किशोर और बाल अपचारी बालकों की अपराधिक प्रवृत्ति को बदले जाना कम ही सम्भव होता दिखाई देता है।

मिश्रा (2015) ने बाल अपराध के कारकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है। इसके लिए इन्दौर स्थित बाल सम्प्रेक्षण गृह में निवासरत बाल अपराधियों की पारिवारिक एवं सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के विभिन्न आयामों तथा संप्रेक्षण गृह की उपयोगिता से सम्बन्धित आँकड़ों का संकलन कर अपचार के कारणों एवं बाल सुधार के उपायों की प्रभाविकता के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में पाया गया कि संयुक्त परिवार में रहने वालों में अपराध करने की प्रवृत्ति एकल परिवार में रहने वाले बच्चों की तुलना में कम है। परिवार में निवासरत बालकों की अपेक्षा में घर से बाहर रहने वाले बच्चे जो परिवार के संपर्क में नहीं हैं, अपराध की ओर अधिक आकर्षित हुए हैं। मजदूरी करने वाले परिवार के बच्चे दूसरों की तुलना में अधिक अपराध करते हैं। अधिकतर बच्चे सिनेमा/फिल्में देखने के शौकिन थे, व बहुत से बच्चे प्रिंट व इलेक्ट्रानिक मीडिया को भी कुछ हद तक आपराधिक प्रवृत्ति के लिए जिम्मेदार मानते हैं।

सिंह (2015) ने लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ में अध्ययनरत् युवाओं में बढ़ती अपराधिक प्रवृत्ति का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है। इसके लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के कला संकाय में संचालित होने वाले विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत 386 विद्यार्थियों (202 छात्र एवं 184 छात्राएं) का उत्तरदाताओं के रूप में चयन कर साक्षात्कार अनुसूची/अपराधिक प्रवृत्ति मापनी की सहायता से उनके वैयक्तिक एवं पारिवारिक परिवेश के विभिन्न आयामों तथा अपराधिक प्रवृत्ति का स्तर और इसे प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों से सम्बन्धित सूचनाओं को संकलित कर उनका तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

मालवीय (2016) ने भोपाल शहर के गंगानगर मलिन बस्ती में रहने वाले बच्चों में आपराधिक प्रवृत्ति की स्थिति का अध्ययन किया है। इसके लिए चयनित बस्ती में 295 परिवारों का चयन कर उनकी पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक-वैधानिक मूल्यों से विचलन की प्रवृत्ति से सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन किया गया है। अध्ययन में पाया गया कि अधिकांश उत्तरदाताओं में चोरी करना, झूठ बोलना एवं नशा करना आदि विचलनकारी प्रवृत्तियाँ उपस्थित थीं, जिनका प्रभाव बच्चों पर पड़ रहा है क्योंकि उच्च आपराधिक प्रवृत्ति वाले वयस्कों के बच्चों में आपराधिक प्रवृत्ति का स्तर भी उच्च पाया गया।

शर्मा एवं तिवारी (2016) ने किशोरों की हिंसक प्रवृत्ति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है। शोधकर्ताओं का मत है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बाल अपराध के लिये आयु को अधिक महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि व्यक्ति की मानसिक एवं सामाजिक परिपक्वता सदा ही आयु से प्रभावित नहीं होती, कुछ विद्वान, बालक, बच्चे अत्यधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय परिसम्पत्ति एवं साधन होते हैं। अच्छा नागरिक बनने के लिये शारीरिक एवं नैतिक रूप से स्वस्थ तथा मानसिक रूप से सतर्क रहने के लिये बच्चों को अनुमति ही नहीं, वरन अवसर भी प्रदान करना चाहिए। इस सन्दर्भ में सामाजिक प्रतिनिधियों को सक्रिय प्रयास करना चाहिए। असमानता में प्रसास लाकर तथा सामाजिक न्याय पर अधिक विश्वास करके वृद्धि की अवस्था में बच्चों के विकास को समान अवसर प्रदान करना चाहिए जिससे बच्चों में अपराध प्रवृति के प्रति उन्मुखता पर रोक लगाया जा सके और उन्हें एक नई दिशा प्रदान की जा सके। बच्चों में हम आज्ञाकारिता, आदरपूर्ण व्यवहार, आत्मसात करने वाले गुण ही नहीं वरन् अच्छे गुण की प्रत्याशा करते हैं। परन्तु अनेक कारणों से बच्चे निर्धारित सामाजिक एवं विधिक कथन का अनुसरण नहीं कर पाते हैं।

भारत में किशोर अपराध अधिनियम 1850 में लागू हुआ था। इस कानून में बच्चों द्वारा अपराध हो जाने की दशा में उन्हें सुधरने और उनके पुर्नवास के लिए विशेष प्रावधान किए गए थे। 1960 इस कानून में संशोधन करके चिल्ड्रेन एक्ट 1960 लाया गया। इस अधिनिम के मुताबिक 10 से 18 साल के अपराध में लिप्त बच्चों को अदालत द्वारा व्यवसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाता था ताकि ऐसे बच्चों को पुर्नवास में सहायता मिल सके। इस कानून के अनुसार बालक अपराध में अपवाद स्वरूप 6 साल से कम उम्र के बच्चे के हाथों यदि कोई अपराध हुआ है तो उसके लिये उसे सजा, नहीं दी. जायेगी, बल्कि इसके लिये उसके माता-पिता या संबंधित को सजा या जुर्माने का प्रावधान है। कानून के मुताबिक 10 से 18 साल के बच्चे से यदि कोई अपराध होता है तो उसके विरूद्ध एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की जायेगी और न ही उसे अपराधी मान कर सामान्य अदालत में उस पर मुकदमा चलेगा। यह कानून इसी तरह लगभग 100 सालों तक लागू रहा। इसकी खामियों-खूबियों पर बहुत चर्चा नहीं हुई। परन्तु 1960 में यूएन कन्वेंशन में बाल संरक्षण और अधिकारों को लेकर चर्चा के बाद इस विषय में काफी जागृति आई। इसके बाद बाल अधिकारों और संरक्षण को लेकर विश्व भर में आंदोलन और कानून परिदृश्य में उभर कर आए।

चिल्ड्रन एक्ट 1960 के पास होने के बाद क्ट 1960 के पास होने के बाद भारत में किशोर अपराधियों की 7 तक्यता का अभाव था। बाम्बे चिल्ड्रन एक्ट 1948, से0-4 में 'बालक' शब्द को उस बच्चे के रूप में परिभाषित किया गया है जिसने 16 वर्ष से कम आयु के लोगों को बालक के रूप में परिभाषित किया गया है। इसी प्रकार यू0पी0 चिल्ड्रेन एक्ट 1950 धारा 2(4) में 16 वर्ष से

कम आयु के लोगों के बालक के रूप में बताया। दि सौराष्ट्र एवं वेस्ट बंगाल चिल्ड्रेन एक्ट में बालकों की आयु सीमा 16 वर्षों तथा बालिकाओं की 18 वर्ष निर्धारित की गयी है।

भारत में भी पुराने पड़ चुके बाल अपराध अधिनियम में सुधार की आवश्यकता महसूस की गई और 22 अगस्त 1986 में संसद में किशोर न्याय अधिनियम पारित किया गया। इसके बाद इस अधिनियम में वर्ष 2000, 2006 और 2014 में फिर से सुधार किया गया। संशोधन में बाल अपराधी की उम्र का निर्धारण किया गया। इसके मुताबिक किशोर के लिये 18 से घटाकर 16 कर दी गई परन्तु किशोरियों के लिए उम्र का निर्धारण 18 वर्ष ही रहा। इस संशोधन के बाद 18 वर्ष से कम की किशोरी और 16 वर्ष से कम किशोर पर किशोर न्याय के अन्तर्गत कार्रवाई का प्रावधान रखा गया। साथ ही ज्यूवेनाइल जस्टिस (केयर एण्ड प्रोटेक्शन ऑफ चाइल्ड) एक्ट 2000 की धारा 56 और संशोधित 2006 की धारा 21 में यह भी कहा गया कि अपराध में लिप्त किशोर अथवा किशोरी की पहचान पूरी तरह गुप्त रखी जायेगी। उसका किसी भी समाचार पत्र अथवा पत्रिका में चित्र, नाम, पता किसी भी प्रकार प्रकाशित नहीं किया जायेगा और न ही टीवी, समाचारों में इसका प्रसारण किया जायेगा।

सन् 2006 में बाल अपराधियों को सुधारने के उद्देश्य से बनाए गए अधिनियम में कुछ संशोधन किए गए जिसके अनुसार किसी भी बाल अपराधी का नाम, पहचान या उसके निजी जानकारी सार्वजनिक करना एक दण्डनीय अपराध माना जायेगा और ऐसा करने वाले को 25,000 रूपए तक का जुर्माना देना पड़ सकता है इसके अलावा खण्ड 29 के अनुसार बाल अपराधियों को सजा देने वाले पाँच सदस्य समिति में कम से कम एक महिला भी शामिल होनी चाहिए।

प्राचीन भारत में किसी भी अपराध के होने पर 5 वर्ष से कम आयु के बालकों को दण्डित न करने की व्यवस्था थी और कानून भी ऐसे कोमल आयु के बच्चों की देखभाल और शिक्षित करने के लिये प्रेम और वात्सल्यपूर्ण व्यवहार के माध्यम का प्रयोग करने का निर्देश देता था। 5 वर्ष के बाद बच्चों को दण्डित करने का प्रावधान था परन्तु उसके लिये उपयुक्त विधि का ही प्रयोग किया जाना था। जैसे शारीरिक दण्ड अथवा माता-पिता द्वारा डांट-फटकार तथा धीरे-धीरे इन दण्ड-प्रकारों को हटाकर सलाह देकर अपराध: की रोकथाम पर बल दिया गया था।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 82 के अन्तर्गत 9 वर्ष से कम आयु के बच्चे, के द्वारा किया गया कोई भी कार्य अपराध की श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आता है। इसी प्रकार धारा 83 के अनुसार 9 से अधिक और 12 से कम उस बच्चे के द्वारा कोई भी कार्य अपराध नहीं माना जायेगा जिसमें अपने कार्य एवं आचरण के प्रति पर्याप्त मात्रा में परिपक्वता और बोध का पर्याप्त विकास न हुआ हो। वैसे सामान्य रूप से 9 वर्ष से 12 वर्ष की अवस्था के मध्य बोध का विकास हो जाता है। परन्तु इस आयु प्रसार किसी बच्चे में इसका पर्याप्त विकास नहीं होता है। अपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 27 के अनुसार 16 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी अपराधिक कार्य के लिये मृत्य दण्ड अथवा आजीवन कारावास की व्यवस्था न करके उनके अपराधिक कार्य की सुनवाई मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अथवा बाल अधिनियम 1960 के अनुसार अधिकृत किसी अन्य अदालत द्वारा की जानी चाहिए। सुधार स्कूल अधिनियम ने 15 वर्षीय किशोर के द्वारा अपराधिक कार्य किये जाने पर उसे अपराधी की संज्ञा दी है।

किशोर न्याय (बाल देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 को 7 मई, 2015 को लोक सभा द्वारा और 22 दिसंबर, 2015 को राज्य सभा द्वारा पास किया गया था। इसके बाद 31 दिसंबर, 2015 को इसे राष्ट्रपति ने मंजूरी प्रदान कर दी। बच्चों के छोटे, गंभीर और जघन्य अपराध, किशोर न्याय बोर्ड (जे.जे.बी.) व बाल कल्याण समिति (सी.डब्ल्यू.सी.) के अधिकारों, कार्यों और जिम्मेदारियों में स्पष्टीकरण, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा जांच में स्पष्ट अवधि, 16 साल से ऊपर के बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराध की स्थिति में विशेष प्रावधान, अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों को गोद लेने संबंधी नियमों पर अलग नए अध्याय, बच्चों के विरूद्ध किये गये नए अपराधों को शामिल किया गया, बाल कल्याण व पंजीकरण को अनिवार्य बनाया जाना। धारा 15 के अंतर्गत 16-18 साल की उम्र के बाल अपराधियों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों को लेकर विशेष प्रावधान किए गए हैं। किशोर न्याय बोर्ड के पास बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के मामलों को प्रारंभिक आंकलन के बाद उन्हें बाल न्यायालय (कोर्ट ऑफ सेशन) को स्थानांतरित करने का विकल्प होगा।

बाल सुधार संस्थाओं में अभिरक्षा

बाल अधिनियम 1850 के केन्द्रीभूत होते हुए विभिन्न राज्यों में बाल अपचारियों हेतु उपचार संरक्षण अभियोग एवं दण्ड के लिए लागू किए गए थे। मद्रास (तमिलनाडु) में 1920 में बंगाल 1922 में, मुम्बई (महाराष्ट्र) 1924 में यह अधिनियम पारित हुआ जो बाल अपचारियों के अतिरिक्त तिरस्कृत लाचार निराश्रित शोषित बच्चों और अनियन्त्रित बच्चों से जुड़ा स्वतंत्रता पश्चात् काफी लम्बे समय पश्चात् वर्ष 1986 में बाल न्यायालय अधिव लाया गया जो उपरोक्त अधिनियमों पर पुनर्विचार को दर्शाता है। इससे पूर्व अधिनियम-1960 के बाल अधिनियम की समीक्षा करता है। 1986 का यह अधिनियम कुछ विशेषतायें धारित करता है जो बाल अपचारियों के साथ-साथ उपेक्षित बालकों को भी शामिल करता है।

बाल सुधार संस्थाओं में रिमाण्ड गृह (अवलोकन गृह/संप्रेक्षण गृह) प्रमाणित स्कूल सुधार व बोर्टल स्कूल, प्रोवेशन हास्टल आदि मुख्य संस्थायें भारत में बाल अपचारियों के संरक्षण व सुधार की संस्थायें हैं। यहाँ उपेक्षित बच्चों को अवलोकन व सुधार गृहों में रखने का प्रावधान है, तो वही बाल अपचारियों हेतु केन्द्रीय व राजकीय संप्रेक्षण गृहों में रखने का प्रावधान है जिनमें बालक व बालिकाएं पृथक-पृथक रखे जाते हैं। बाल अपचार को रोकने व सुधारने हेतु उपर्युक्त संस्थाओं की अहम भूमिका है। यह अपराध व रोकथाम दोनों अर्न्तसम्बन्धित प्रक्रियाएं हैं।

संविधान के अनुच्छेद 23, 24 के अन्तर्गत बच्चों के मानसिक व शारीरिक शोषण से संरक्षित किया गया हो वहीं अनुच्छेद 21(क) के द्वारा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार प्रदान किए गए जिसके उल्लंघन पर उनके अभिभावकों पर अनुच्छेद 327 द्वारा दण्ड का प्रावधान किया गया।

बाल अपराध मुख्यत: एक नगरीय जीवन शैली का तथ्य है यही कारण है कि इसे रोकने हेतु व नगरीय जीवन की जटिलताओं के कारण सरकारी व निजी संस्थायें संयुक्त होकर क्रियाशील है। बाल अपचार को रोकने हेतु तीन उपागम है।

1. ऐसी गतिविधियों का आयोजन करना जो बाल व्यक्तित्व के स्वास्थ्य विकास व समायोजन करने में सहयोग दे।
2. ऐसा नियन्त्रित वातावरण तैयार करना जो बाल अपराध का सृजन न करें।
3. बच्चों हेतु विशेष निवारक सेवायें आयोजित की जाए।

उपरोक्त उपागम बाल अपचारियों में नियन्त्रण लाने का प्रयास करते हैं। इस हेतु विशिष्ट संस्थायें अपनी अहम भूमिका निभाती हैं-

1. रिमाण्ड गृह/अवलोकन गृह यहाँ नियोजित देखरेख में ये रखे जाते हैं।
2. विशेष गृह- किशोर के पुनर्वास व सुधारात्मक स्थिति के लिए तैयार किया जाता है।
3. परिवर्ती देखरेख संस्था- सुधार के पश्चात् समाज में शामिल कर इन पर ऊपरी देखरेख करती है।
4. किशोर न्याय व्यवस्था- उपरोक्त तीनों संस्थाओं का निरीक्षण करती है।

संदर्भ सूची-

1. कुमार, राजेन्द्र, 2007, युवा वर्ग में बढ़ती इच्छृंखलता, नूतन प्रतिबिम्ब, नई दिल्ली।
2. शुक्ल, अखिलेश, 2013, बाल अपचार, गायत्री पब्लिकेशन, रीवां, म0प्र0।
3. हैंसिलन, जेम्स, 2013, इसेंशिलन ऑफ सोशियोलॉजी: ए डाउन टू अर्थ अप्रोच, बोस्टन।
4. कूले, सी0एच0, 1902, ह्यूमन नेचर एण्ड सोशल आर्डर।
5. महोबिया व वर्मा, 2013, भारत में अपराध के कारण व निवारण।
6. शुक्ल, अखिलेश, 2013, सामाजिक समस्या का अवधारणात्मक विश्लेषण, गायत्री प्रकाशन, रीवां, म0प्र0।
7. चौहान, ब्रजमोहन, 1976, भारत सामाजिक समस्या, मेहता प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. शर्मा, के0के0 व तिवारी, एम0के0, 2016, हिंसक होते किशोर रिसर्च जर्नल ऑफ आर्ट्स, सि0 2016
9. आहूजा, राम, 2005, अपराधशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
10. सिंह, संतोष कुमार, 2015, युवाओं में बढ़ती अपराधिक प्रवृत्ति शोध ग्रन्थ, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ का अभियान एवं रानी पद्मिनी

डॉ० शिवकुमार मिश्रा

सह आचार्य (इतिहास),राजकीय महाविद्यालय, शाहबाद, बारां, (राज.)

दिल्ली सल्तनत के खिलजी शासक अलाउद्दीन खिलजी का मेवाड के शासक रतनसिंह के विरूद्ध अभियान न केवल राजस्थान बल्कि भारत के इतिहास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण अभियान था। मेवाड़ के शासक रतनसिंह (1302-1303 ई.) के समय अलाउद्दीन खिलजी ने 1303 ई. में अजेय माना जाने वाले चिळौड़ के किले पर आक्रमण किया। इस आक्रमण से जुड़ी राजपूतों की वीरता की कहानी, रानी पद्मिनी की कहानी एवं पद्मिनी का जौहर इतिहास में एक रामांचकारी घटना है।

अलाउद्दीन खिलजी ने चिळौड़ पर अधिकार करने के उद्देश्य से 28 जनवरी 1303 ई. में दिल्ली से अपना अभियान प्रारंभ किया। 26 अगस्त 1303 तक सात महीने के कड़े संघर्ष के बाद वह किले पर अधिकार कर पाया। अलाउद्दीन खिलजी के चिळौड़ पर आक्रमण के क्या कारण थे? इस विषय पर इतिहासकार एकमत नहीं है। अलाउद्दीन एक महात्वाकांक्षी साम्राज्यविस्तारवादी शासक था। वह अपनी प्रारंभिक विजयों से इतना उत्साहित हो गया कि वह विश्व को जीतने की योजना बनाने लगा। उसने 'सिकन्दर-ए-सानी' की उपाधि ग्रहण की परन्तु उसके मित्र कोतवाल अलाउलमुल्क ने उसे पहले भारत को विजित करने की सलाह दी। उसने सलाह मानते हुए संपूर्ण भारत को अपने साम्राज्य में मिलने का प्रयास किया। वह किसी भी भारतीय राज्य को स्वतंत्र रहने देना नहीं चाहता था।

चिळौड़ का सामरिक दृष्टि से अधिक महत्व था। गुजरात एवं मालवा पर विजय करने एवं इन पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए चिळौड़ पर अधिकार होना आवश्यक था। व्यापारिक दृष्टि से चिळौड़ का महत्व था। मालवा-गुजरात से चिळौड़ होकर व्यापारिक मार्ग जाते थे।

कर्नल टॉड जैसे इतिहासकारों का मानना है कि अलाउद्दीन के चिळौड़ पर आक्रमण करने का मुख्य कारण चिळौड़ के शासक रतनसिंह की अत्यंत सुन्दर पत्नी पद्मिनी को प्राप्त करने की अलाउद्दीन की अभिलाषा थी।

1296 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा एवं ससुर जलालुद्दीन खिलजी की हत्या कर दिल्ली की सळाा पर अधिकार कर लिया था। अलाउद्दीन खिलजी साम्राज्यविस्तारवादी, क्रूर एवं कामुक शासक के रूप में जाना जाता है। अलाउद्दीन ने 1298 ई. में गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात में अलाउद्दीन की सेना के आक्रमण के समय वहाँ के बघेला शासक कर्ण ने अपनी पुत्री देवलदेवी के साथ दक्खन में देवगिरी के हिन्दू शासक रामचन्द्रदेव के यहाँ शरण ली थी। राजा कर्ण की पत्नि कमलादेवी को पकडकर दिल्ली लाया गया जिसका विवाह अलाउद्दीन के साथ किया गया। अलाउद्दीन ने 1301 ई. में राजस्थान के प्रमुख दुर्ग रणथम्भौर पर आक्रमण किया। रणथम्भौर के किले को धोखे से जुलाई 1301 ई. में रणमल की सहायता से जीत लिया। वहाँ का शासक हम्मीरदेव अलाउद्दीन से युद्ध करते हुए मारा गया एवं स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए जौहर किया। गुजरात एवं रणथम्भौर अभियान से प्रोत्साहित होकर अलाउद्दीन ने अपना ध्यान चिळौड़ विजय की ओर लगाया।

अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी विद्वान अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'खजाइन उल फुतुह' में अलाउद्दीन के चिळौड़ पर आक्रमण का वर्णन किया है। अमीर खुसरो स्वयं अलाउद्दीन के चिळौड़ आक्रमण के समय उसके साथ था। अन्य इतिहासकारों ने भी

अलाउद्दीन खिलजी के चिळौड़ आक्रमण का वर्णन किया है। सुल्तान अलाउद्दीन 26 जनवरी 1303 में दिल्ली से आगे बढ़ते हुए राजस्थान के बयाना होते हुए रणथम्भौर पहुँचा। इसके बाद चंबल नदी को पार कर बूँदी, मांडलगढ़ होता हुआ चिळौड़ पहुँचा।[1]

अलाउद्दीन ने चिळौड़ की तलहटी में गंभीरी एवं बेडच नदियों के मध्य अपने सैनिकों का शिविर लगाया। मेवाड़ के शासक रतनसिंह ने रक्षात्मक युद्ध प्रणाली को अपनाते हुए आलाउद्दीन खिलजी की सेना का सामना करने का निश्चय किया। रतनसिंह ने सुरक्षा की दृष्टि से तलहटी (मैदान) में रहने वाली जनता को दुर्ग में बुलाकर दुर्ग के द्वारों को बंद करवा दिया। दो महीनें तक सुल्तान की घेराबंदी के बाद भी दुर्ग से राजपूत सेना ने कोई कार्यवाही नहीं की। जब अलाउद्दीन ने मजनिकों से दुर्ग की दीवारों को तोडने का प्रयास किया तब राजपूतों ने दुर्ग से आग, पत्थर, तीर आदि से रक्षात्मक नीति अपनाते हुए युद्ध किया। वे दिन में युद्ध करते और रात को दुर्ग की क्षतिग्रस्त दीवारों की मरम्मत का कार्य करते थे।[2] अलाउद्दीन के सैनिकों ने किले के बाहर से आने वाले रसद सामग्री पर रोक लगा दी तब किलेबंदी के कारण दुर्ग में खाद्य सामग्री की कमी आने लगी थी। सात माह तके घेरे के पश्चात दोनों सेनाओं में आमने-सामने का युद्ध हुआ।

अमीर खुसरो ने वर्णन किया है कि सुल्तान अलाउद्दीन ने गम्भीरी एवं बेडच नदी के मध्य अपने शिविर की स्थापना के पश्चात् सेना के दायें और बायें पार्श्व से किले को दोनों ओर से घेर लिया। ऐसा करने से तलहटी की बस्ती भी घिर गई। स्वयं सुल्तान ने अपना ध्वज एक छोटी पहाड़ी पर गाढ़ दिया और वहीं वह अपना दरबार लगाता था और घेरे के संबंध में दैनिक निर्देश देता था। सात माह तक वह अजेय दुर्ग चिळौड़ पर अधिकार नहीं कर पाया।

राजपूतों ने केसरिया बाना पहनकर किले के फाटक खोल दिए एवं मुस्लिम सेना पर टूट पडे और लडते-लडते वीरगति को प्राप्त हुए। राजा रतनसिंह युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। नैणसी ने रतनसिंह के युद्ध लडते हुए वीरगति को प्राप्त होने का वर्णन किया है। अलाउद्दीन की सेना ने चिळौड़ में बहुत मार-काट मचायी। केवल एक दिन में ही 30,000 राजपूत मारे गए।[3] कुम्भलगढ़ शिलालेख से ज्ञात होता है कि सीसोदे का जागीरदार लक्षमणसिंह अपने सात पुत्रों सहित किले की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।[4] 26 अगस्त 1303 में चिळौड़ दुर्ग पर अलाउद्दीन ने अधिकार कर लिया। चितौड़ को कोई भी पूर्ववर्ती सुल्तान जीत नहीं पाया था।[5]

जब अलाउद्दीन दुर्ग में पहुँचा तब उसने पाया कि पद्मिनी 1600 स्त्रियों के साथ भस्म हो चुकी थी। उसके महल सूने पडेघ थे। किले के चारों ओर आग व राख के ढेघर दिखाई दे रहे थे। कोई भी राजपूत बच्चा या किले का निवासी नहीं बचा जो उस दानव की विजय का साक्षी हो क्योंकि सुल्तान ने 30,000 हिन्दुओं को कत्ल करने की आज्ञा दी थी।

स्त्रियों ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए पद्मिनी के नेतृत्व में हुए जौहर के संबंध में कर्नल टॉड ने वर्णन किया है कि सुन्दर पद्मिनी ने उस समूह का नेतृत्व किया जिसमें समस्त नारी सौन्दर्य एवं यौवन सम्मिलित था। जिसका तातरों की काम-पिपासा द्वारा लांछित होने का भय था। इनको तहखाने में ले जाया गया और भस्मीभूत करने वाले तत्व (अग्नि) में अपमान से त्राण पान के लिए भीतर छोडकर द्वार बंद कर दिया गया।

चिळौड़ पर अधिकार कर अलाउद्दीन ने चिळौड़ का नाम अपने पुत्र खिज्रखां के नाम पर 'खिज्राबाद' रखा और अपने पुत्र खिज्रखां को वहाँ का शासक नियुक्त कर दिल्ली लौट आया।

वीर राजपूत चिळौड़ के क्रूर दृश्य को भूल नहीं पाए। गोरा-बादल जैसे नायक एवं रानी पद्मिनी के आत्मबलिदान उन्हें दुश्मन से लड़ने की प्रेरणा देते रहे। राजपूतों ने यहाँ के नए शासक को निरन्तर कष्ट पहुँचाया। इसी कारण खिलजी लोग अधिक समय तक चिळौड़ पर अधिकार न कर सके।

1311 ई. में अलाउद्दीन ने खिज्रखाँ को चिळौड़ से वापस बुला लिया एवं एक राजपूत सरदार सोनगरा मालदेव को चिळौड़ का शासक नियुक्त किया। फरिश्ता लिखता है कि किले के सिपाहियों और रक्षकों को स्थानीय लोगों ने मार-भगाया। गुहिल वंश की एक शाखा का हम्मीरदेव चिळौड़ को विजित करने का प्रयत्न करता रहा और अन्त में अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद हम्मीरदेव ने चिळौड़ पर अधिकार कर लिया।

रानी पद्मिनी का नाम न केवल राजस्थान बल्कि संपूर्ण भारत में आक्रमणकारियों से अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने एवं शौर्य का प्रदर्शन करने के लिए जाना जाता है। रानी पद्मिनी ने बड़ी वीरता का प्रदर्शन करते हुए अपने पति मेवाड़ के राजा रतनसिंह का साथ दिया और अपने आत्मगौरव की रक्षा करते हुए अपने प्राणों का त्याग किया।

रानी पद्मिनी या पद्मावती सिंहलद्वीप (श्रीलंका) के राजा गन्धर्वसेन की पुत्री थी। इनकी माता का नाम चंपावती था। रानी पद्मिनी का विवाह चिळौड़ के गुहिलवंशीय शासक समरसिंह के पुत्र रतनसिंह (रत्नसेन) के साथ हुआ, जो समरसिंह के बाद 1302 ई. में चिळौड़ की गद्दी पर बैठा था। सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मिनी रूपवान एवं गुणवान थी।

रानी पद्मिनी एवं चिळौड़ के शासक रतनसिंह का प्रेम-प्रसंग, दिल्ली के साम्राज्यवादी सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चिळौड़ पर आक्रमण करना, अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी को प्राप्त करने की इच्छा, अलाउद्दीन द्वारा रानी पद्मिनी के पति चिळौड़ के शासक रतनसिंह को धोखे से कैद करना, रानी पद्मिनी द्वारा अलाउद्दीन की कैद से राजा रतनसिंह को वीर गोरा एवं बादल की सहायता से छुडवाना, रानी पद्मिनी द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहूति देना आदि का मार्मिक वर्णन विभिन्न ग्रंथों में मिलता है।

मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत', हेमरतन की रचना 'गोरा बादल पद्मिनी चउपई', जटमल की रचना 'गोरा बादल' (सं.1680), दलपत विजय की रचना 'खुमाण रासो', लब्धोदय की रचना 'पद्मिनी चरित' (सं.1707) आदि ग्रंथों में रानी पद्मिनी के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

हेमरतन, जटमल एवं लब्धोदय आदि ने मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' में दी गयी परंपरागत कथा के विषय को आधार बनाकर अपने ग्रंथों की रचना की। मलिक मुहम्मद जायसी ने अलाउद्दीन के चिळौड़ आक्रमण (सन् 1303 ई.) के 237 वर्ष बाद एवं अलाउद्दीन की मृत्यु के 224 वर्ष बाद दिल्ली के अफगान शासक शेरशाह सूरी के समय 1540 ई. में 'पद्मावत' की रचना की। 'पद्मावत' के पद्मिनी की कहानी को इतिहासकार फरिश्ता, हाजी उद्दबीर, अबुल फजल, मुणहोत नैणसी एवं कर्नल टॉड ने स्वीकार किया है। फरिश्ता ने पद्मावत के 70 वर्ष बाद 'तारीख ए फरिश्ता' लिखी जिसमें पद्मिनी की कहानी में थोड़ा बदलाव करते हुए अलाउद्दीन के चिळौड़ अभियान का वर्णन किया है। हाजी उद्दबीर ने पद्मिनी के नाम का उल्लेख न करते हुए एक गुणवती स्त्री कहा है।

'पद्मावत' से पद्मिनी के प्रारंभिक जीवन, रतनसिंह एवं पद्मिनी का प्रेम-प्रसंग एवं उनके विवाह की जानकारी प्राप्त होती है। चिळौड़ के राजा रतनसिंह को 'हीरामन' नामक तोते से पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य की जानकारी प्राप्त हुई। हीरामन तोता राजकुमारी पद्मिनी के पास था जो उडते हुए एक बहेलिए के हाथ पड़ गया था। उस बहेलिए ने तोते को एक बाह्मण को बेच दिया। इस बाह्मण से यह तोता राजा रतनसिंह के पास पहुँच गया। जब इस हीरामन तोते के माध्यम से रतनसिंह ने रानी पद्मिनी की सुन्दरता के बारे में सुना तब वह रानी पद्मिनी पर मोहित हो गया और रानी पद्मिनी से मिलने को आतुर हो गया। जटमल ने लिखा है कि सिंहलद्वीप से आए हुए किसी भाट ने रानी पद्मिनी की प्रशंसा रतनसिंह के समक्ष की थी।

रतनसिंह स्वयं योगी बनकर अपने विश्वसनीय व्यक्तियों एवं तोते के साथ पद्मिनी से मिलने के लिए कष्ट सहते हुए सिंहलद्वीप पहुँचा। लब्धोदय की रचना 'पद्मिनी चरित' से ज्ञात होता है कि समुद्रतट तक राजा रतनसिंह स्वयं पहुँच गया किन्तु उसे समुद्रपार कर सिंहलद्वीप तक पहुँचने में किसी औघड़नाथ सिद्ध ने सहातया की। सिंहलद्वीप का राजा गंदर्वसेन राजकुमारी पद्मिनी के लिए योग्य वर की तलाश में था। जिस समय चिळौड़ का राजा रतनसिंह सिंहलद्वीप पहुँचा वहाँ उस समय सिंहलद्वीप के राजा गंदर्वसेन द्वारा पद्मिनी के विवाह के लिए ढिण्ढोरा पिटवाया गया था। रतनसिंह ने अखाडे में उतरकर अपनी वीरता का प्रदर्शन कर अपनी प्रेयसी पद्मिनी से विवाह किया।

'पद्मावत' में लिखा है कि रतनसिंह एवं पद्मिनी एक दूसरे से बसंत पंचमी के दिन शिव के मंदिर में मिले। रतनसिंह के बारे में जानकारी प्राप्त होने पर पद्मिनी के पिता ने शिव की आज्ञा प्राप्त कर पद्मिनी का विवाह रतनसिंह के साथ किया। जटमल ने वर्णन किया है कि रतनसिंह के सहायक जोगेन्द्र ने रतनसिंह का परिचय सिंहलद्वीप के राजा से करवाया और पद्मिनी का विवाह रतनसिंह से हुआ। रतनसिंह कुछ दिन सिंहलद्वीप में रूककर वापस चिळौड़ आ गया।

चिळौड़ में राजा रतनसिंह के दरबार में राघव चेतन नामक एक तांत्रिक रहता था, जो जादू-टोने में निपुण था। राघव चेतन का भेद खुल जाने पर राजा रतनसिंह ने इसे अपने दरबार से निकाल दिया। यह तांत्रिक दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में चला गया जहाँ उसने अलाउद्दीन के समक्ष पद्मिनी के सौन्दर्य की प्रशंसा की।

अलाउद्दीन ने अपने दूत सरजा को एक पत्र देकर रतनसिंह के पास भेजा जिसमें लिखा था कि वह रानी पद्मिनी को उसे दे[6] और उसके बदले में चंदेरी का किला वह रतनसिंह को दे देगा। सरजा जब पत्र लेकर रतनसिंह के पास पहुँचा तब रतनसिंह

क्रोधित हुआ। उसने कहा यह चिळ्ौड़गढ़ वही पहाड है जो सूर्य के निकलते अंगारे की तरह दहकने लगता है। जब रतनसिंह को तुर्की सेना के द्वारा आक्रमण करने की बात ज्ञात हुई तब उसने हिन्दू नामधारी राजाओं के पास पत्र लेकर अपने दूत भेजे और लिखा चिळ्ौड़ हिन्दुओं का मुख्य स्थान है। तुर्क ने उस पर हठपूर्वक चढ़ाई की है। उसने लिखा कि सत्य और गौ की मर्यादा कर चले आओ। जब तक मेड रहती है तभी तक सुख की शाखा रहती है मेड के टूटने पर फिर द्वार की रक्षा नहीं हो पाती।[7]

बहुत प्रयास के बाद भी जब अलाउद्दीन चिळ्ौड़ के किले को जीतने में असमर्थ रहा तब उसे छल से किले पर अधिकार करना चाहा। अलाउद्दीन ने योजना बनाकर रतनसिंह से दिल्ली लौटने से पूर्व दुर्ग देखने की इच्छा प्रकट की। राणा रतनसिंह ने अलाउद्दीन की बात मान ली और दुर्ग में उसका बड़ा अथिति सत्कार किया। 'पद्मावत' में रतनसिंह एवं अलाउद्दीन खिलजी के मिलन एवं अलाउद्दीन के भोज करने का वर्णन है। रतनसिंह के सेनापति गोरा एवं बादल ने रतनसिंह को अलाउद्दीन के प्रति सचेत किया। उन्होंने राजा रतनसिंह से कहा- "हमने वाणी से परीक्षा करके तुर्क को जान लिया है। प्रकट में मेल और गुप्त रूप से वह सेना की बात सोचता है। तुम तुर्कों से मेल करो अन्त में दाँव में वे अवश्य छल करते हैं।[8]

जायसी लिखता है कि जब अलाउद्दीन रतनसिंह के महल में आया उस समय रानी पद्मावती जैसे ही झरोखे से आई कि शाह (अलाउद्दीन खिलजी) ने निरखकर उसे दर्पण में देख लिया।[9] अलाउद्दीन किसी भी तरह पद्मिनी को पाने की लालसा रखता था। रतनसिंह जब अलाउद्दीन के धोखे में आकर शिष्टाचारवश अलाउद्दीन को दुर्ग के बाहर छोडने के लिए नीचे उतरा तब अलाउद्दीन की सेना ने रतनसिंह को बंदी बना लिया।[10]

वीर रानी पद्मावती ने राजा रतनसिंह को अलाउद्दीन की कैद से छुडाने के लिए गोरा एवं बादल के साथ योजना बनाई। सोलह सौ पालकियाँ तैयार करवाई गयी। इन 1600 पालकियों में शस्त्र से सज्जित राजपूतों को बैठाया गया। पद्मिनी के लिए अलग से पालकी तैयार की गयी। इसके भीतर एक लोहार को बिठाया गया।[11] गोरा एवं बादल साथ थे। यह कहते हुए चले कि पद्मावती आ रही है और उसके साथ उसकी सोलह सौ सखियाँ चल रही है। यह कहा गया कि रानी अपने आपको बंधक रखकर राजा को छुडाने चली है।[12] वह साथ में बळीस सहस्र घोडे एवं सोलह सौ पालकियाँ ले जा रही है। बंदीगृह के रखवाले धन के लालच में आ गए और उन्होंने पालकियों की तलाशी नहीं ली। बंदीगृह के रखवालों ने अलाउद्दीन को जाकर बताया कि पद्मावती अपने साथ चिळ्ौड़ राज्य के खजाने की कुंजी लाई है। वह विनती कर रही है कि पहले मुझे राजा रतनसिंह के दर्शन करा दें तो वह आपके महल में आ जाएगी। अलाउद्दीन की आज्ञा के बाद रानी की पालकी को वहाँ ले जाया गया, जहाँ राजा रतनसिंह था।[13] पद्मावती के स्थान पर पालकी में लोहर बैठा था। उस लोहार ने बाहर निकलकर राजा की बेडियाँ काट दी। राजा रतनसिंह के बंदी से मुक्त होते ही गोरा-बादल सहित सरदार वहाँ से निकले। बादल राजा को लेकर आगे चला। गोरा ने एक सहस्र सरदारों के साथ अलाउद्दीन की सेना से संघर्ष किया बादल राजा रतनसिंह एवं रानी पद्मिनी को लेकर चिळ्ौड़ पहुँच गया।[14] जब सुल्तान अलाउद्दीन को इसकी जानकारी प्राप्त हुई तब उसने राजपूत सेनाओं से युद्ध किया। गोरा युद्ध क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार वीर रानी पद्मिनी की बुद्धिमता एवं गोरा-बादल की वीरता एवं त्याग की भावना ने राजा रतनसिंह को अलाउद्दीन की कैद से छुडा लिया।

हेमरतन ने अपनी रचना 'गोरा बादल पद्मिनी चउपई' में रतनसिंह एवं पद्मिनी के प्रेम प्रसंग के स्थान पर रतनसिंह के सेनापित गोरा-बादल की वीरता एवं उनके द्वारा किए गए वीरतापूर्वक युद्ध को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया। जटमल की रचना 'गोराबादल' की मुख्य विषयवस्तु गोरा-बादल ही है। लब्धोदय ने सं. 1707 में उदयपुर में चौमासा किया था। उस समय उदयपुर का महाराणा जगतसिंह था। लब्धोदय (मूल नाम लालचंद्र) ने अपनी रचना 'पद्मिनी चरित' में पद्मिनी द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा करने का उल्लेख किया। जायसी के 14 वर्षों पूर्व शासक सलहदी तंवर के एक दरबारी कवि ने 'सीता चरित्र' नामक ग्रंथ में पद्मिनी की कथा का उल्लेख किया है। 'छिताई चरित' जायसी के 'पद्मावत' से कई वर्ष पूर्व लिखा गया। इसमें अलाउद्दीन खिलजी के चिळ्ौड़ आक्रमण एवं पद्मिनी का वर्णन है।

'पद्मावत' की कहानी की ऐतिहासिकता पर प्रश्न उठाए जाते हैं। इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है कि अलाउद्दीन के समकालीन अमीर खुसरो ने इस कहानी का वर्णन नहीं किया है किन्तु यह पूर्णत: सत्य नहीं है। अमीर खुसरो पद्मिनी की घटना की ओर संकेत अवश्य करता है। वह अलाउद्दीन की तुलना राजा सुलेमान से करता है, सैबा की रानी को चिळ्ौड़ के किले के भीतर बताता है और अपनी उपमा हुद-हुद पक्षी से देता है जिसने यूथोपिया के राजा सुलेमान को सैबा की सुन्दर रानी विलाकिस का समाचार दिया था।[15]

अमीर खुसरो अलाउद्दीन का दरबारी कवि था। उससे यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह अपने आश्रयदाता के विरूद्ध ऐतिहासिक सत्य लिखे। अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के समय की बहुत सी घटनाओं का वर्णन नहीं किया है जैसे अलाउद्दीन द्वारा अपने चाचा जलालुद्दीन की हत्या करना, मंगोलों द्वारा अलाउद्दीन की पराजय आदि। स्पष्ट है कि जायसी ने अपना कथानक अमीर खुसरो की रचना 'खजाइन उल फतूह' से लिया है। यद्यपि जायसी का पद्मावत प्रेम काव्य है इसलिए इसकी अनेक घटनाएँ कल्पित है किन्तु काव्य का मुख्य पात्र कल्पित नहीं है। 'पद्मावत' में लिखी कुछ बातें अशुद्ध हैं जैसे राजा रतनसिंह का लंका में 12 वर्ष तक ठहरना, अलाउद्दीन द्वारा चिळौड़ का 8 वर्ष तक घेरा डालना आदि।

अलाउद्दीन रानी पद्मिनी को छलपूर्वक किसी भी प्रकार पाने की लालसा रखता था। अलाउद्दीन ने छलपूर्वक राजा रतनसिंह को बंदी बना लिया। अमीर खुसरो लिखता है कि चिळौड़ पर अधिकार हो जाने के बाद रतनसिंह ने अलाउद्दीन के शिविर में शरण ली और उसको जीवन दान दिया गया। इतिहासकार इसामी भी इसका समर्थन करता है।

इसमें वर्णित तथ्यों में ऐतिहासिकता होने से इनकार नहीं किया जा सकता जैसे राघव चेतन एक ऐतिहासिक व्यक्ति था, तिलक सूरी द्वारा वि.सं. 1412 में लिखी सम्यकत्वकौमुदी की निवृति में एवं बुद्धविलास नामक एक अन्य ग्रंथ में राघव चेतन का उल्लेख है। अमीर खुसरो ने चिळौड़ के घेरे एवं चिळौड़ में 26 अगस्त 1303 में हुए घमासान युद्ध का वर्णन किया है। अलाउद्दीन ने चिळौड़ में बहुत मार-काट मचाई। राजपूत वीरों ने खिलजी सेना के विरूद्ध अदम्य साहस दिखाया। इन घटनाओं में ऐतिहासिकता है।

संदर्भः-

1. डॉ. के. एस. गुप्ता, राजस्थान का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1986, पृ. 58
2. उपर्युक्त, पृ. 59
3. इरफान हबीब द्वारा अनुवादित अमीर खुसरो की खजाइन उल फतूह, पृ. 48
4. उदयपुर संग्रहालय का सं. 1460 का शिलालेख।
5. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ. 216
6. मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत, व्याख्याकार वासुदेवशरण अग्रवाल साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी वि. 2012, पृ. 508
7. उपर्युक्त पृ. 530
8. मलिक मुहम्मद जायसी, पूर्वोक्त, पृ. 602
9. उपर्युक्त, पृ. 617
10. उपर्युक्त, पृ. 625
11. उपर्युक्त, पृ. 677
12. उपर्युक्त, पृ. 680
13. उपर्युक्त, पृ. 698
14. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एवं कम्पनी, आगरा, पृ. 116
15. इरफान हबीब द्वारा अनुवादित अमीर खुसरो की खजाइन उल फतूह, पृ. 48

भारत में मानवाधिकार: न्यायपालिका और न्यायिक सक्रियता की भूमिका

तरुषी पांडेय

शोध छात्रा, राजनीति विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

सार

मानवाधिकारों को उन अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो हमारी प्रकृति में निहित हैं और जिनके बिना हम मनुष्य के रूप में नहीं रह सकते हैं। इस तथ्य के आधार पर दावे किए जाते हैं कि हम मनुष्य हैं। यह पत्र भारतीय संविधान में मानवाधिकारों से संबंधित है। यह पत्र भारत में अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायपालिका और न्यायिक सक्रियता की भूमिका का विश्लेषण करने का एक प्रयास है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने अधिकारों के संरक्षण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत ने अपने संविधान में अधिकारों के एक विस्तृत विधेयक को शामिल ही नहीं किया है, बल्कि इन वास्तविकताओं को समाहित करने के प्रयास किए गए हैं। भारत में न्यायपालिका ने इन अधिकारों को हकीकत में तब्दील करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मख्य-शब्द: मानवाधिकार, मौलिक अधिकार, न्यायिक सक्रियता, न्यायिक समीक्षा।

परिचय

जैसा कि नाम से पता चलता है, "मानवाधिकार" को आम तौर पर उन अधिकारों के रूप में समझा जाता है जो मनुष्यों की गरिमा, उनकी स्वतंत्रता और मनुष्यों के जीवन के लिए सामान्य सम्मान की रक्षा के लिए हैं।इस तरह के अधिकारों की शास्त्रीय समझ को प्राकृतिक अधिकारों के रूप में समझा गया था, क्योंकि यह माना जाता था कि उन्हें प्रकृति द्वारा मनुष्यों को प्रदान किया गया था और इन्हें दूर करना किसी अन्य मानव की क्षमता के अधीन नहीं था। हाल ही में, उन्हें मानवाधिकारों के रूप में समझा जाने लगा है। वे अधिकारों के उन कुछ समूहों में से एक हैं जिनके लिए विशेष रूप से अठारहवीं शताब्दी में हुई क्रांतियों के बाद काफी वैश्विक सहमति और एकमत मौजूद है। जबकि बहुत सारे न्यायालयों ने अपने कानूनों में मानवाधिकारों को संहिताबद्ध करने की आवश्यकता महसूस नहीं की क्योंकि यह माना जाता था कि वे बहुत पवित्र थे और इनका शायद ही कभी कोई उल्लंघन होगा, हालांकि, बाद में और विशेष रूप से अत्याचारों के बाद जो किविश्व युद्धों के दौरान किए गए थे, बहुत सारे न्यायालयों को सकारात्मक कानून के तहत उनकी सुरक्षा के महत्व का एहसास हुआ है। वास्तव में, संयुक्त राष्ट्र के गठन के कुछ साल बाद ही अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा स्वीकृत पहली संधियों में से एक, मानव अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, 1948 (यूडीएचआर) थी।

दुनिया भर में विविध विचारधाराओं के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के मानवाधिकारों पर मानवाधिकार संधियाँ हुई हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिमी पूंजीवादी समाजों ने नागरिक अधिकारों को महत्व दिया और इसलिए नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के निर्माण का समर्थन किया। दूसरी ओर, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय करार पूर्वी साम्यवादी समाजों द्वारा किए गए प्रयासों का परिणाम है।

संयुक्त राष्ट्र इन अधिकारों को इस प्रकार परिभाषित करता है, "मानवाधिकार जाति, लिंग, राष्ट्रीयता, जातीयता, भाषा, धर्म या किसी अन्य स्थिति की परवाह किए बिना सभी मनुष्यों के लिए निहित अधिकार हैं। मानवाधिकारों में जीवन और स्वतंत्रता का

अधिकार, गुलामी और यातना से मुक्ति, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, काम और शिक्षा का अधिकार, और बहुत कुछ शामिल हैं। हर कोई बिना किसी भेदभाव के इन अधिकारों का हकदार है"।[1]

मानव अधिकारों का आधारभूत मानदंड यह है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों के अस्तित्व को नुकसान पहुँचाए बिना एक सुरक्षित और सैद्धांतिक जीवन जीने का प्राथमिक विशेषाधिकार प्राप्त करने का अधिकार है। ये दांपत्य अधिकार एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं जो उन्हें 'परस्पर निर्भर' और 'परस्पर संबंधित' बनाता है, इस प्रकार भोजन के अधिकार को स्वीकार करने के लिए काम करने के अधिकार की आवश्यकता होती है, यह अधिकार स्वास्थ्य के अधिकार से संबंधित है। हालाँकि, अधिकारों का ढेर सर्वोपरि है जो समाज में संतुलन बनाने की नींव बनाता है जैसे कि समानता का अधिकार, भेदभाव के खिलाफ अधिकार, शिक्षा का अधिकार, शोषण के खिलाफ अधिकार, गुलामी से मुक्ति आदि। सभी मूलभूत सिद्धांतों का समामेलन जिसे "मानवाधिकार" कहा जाता है, जो उन्हें प्राप्त करने के लिए अभिन्न बनाता है।

एक राज्य के रूप में भारत ने हमेशा मानवाधिकारों को उचित महत्व दिया है, चाहे वह राष्ट्रीय और विभिन्न राज्य स्तरीय मानवाधिकार आयोगों के माध्यम से कार्यपालिका हो, या विधायिका जो मानव अधिकारों के संरक्षण अधिनियम, 1993 या न्यायपालिका को कानून बनाने में सक्रिय है, जिसने बार-बार उभरते हुए समय की जरूरतों के अनुकूल होने के लिए कानून की किताब की व्यापक व्याख्या की है।मानवाधिकार अधिनियम 1993 के संरक्षण की धारा 2(1) (डी), मानवाधिकारों को परिभाषित करती है, "संविधान द्वारा गारंटीकृत व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और सम्मान से संबंधित अधिकार या अंतर्राष्ट्रीय अनुबंधों में सन्निहित और न्यायालयों द्वारा लागू किए जाने योग्य "भारत।"

मानवाधिकार अधिनियम, 1993 के संरक्षण के अलावा, भारत में मानवाधिकार संरक्षण का प्रमुख स्रोत हमारे संविधान की भावना में निहित है, जो कि भाग III है, जो मौलिक अधिकारों का एक सेट प्रदान करता है और उनमें से अधिकांश बुनियादी अधिकारों का हिस्सा हैं। इसलिए इन्हें आसानी से नहीं हटाया जा सकता है। मानवाधिकार बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रता हैं जो दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति से संबंधित हैं। हम सभी बिना किसी भेदभाव के अपने मानवाधिकारों के प्रति समान रूप से समर्पित हैं। कहीं भी अन्याय हर जगह न्याय के लिए खतरा है। मानवाधिकार सभी मनुष्यों के लिए निहित अधिकार हैं। अधिकार लगभग जैविक जरूरतों के बारे में नहीं बल्कि जीवन की उन स्थितियों के बारे में भी बात कर रहे हैं जो स्वतंत्र रूप से विकास और उपयोग या बुद्धि और विवेक के मानवीय गुणों और हमारी आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा करने की अनुमति देती हैं।

भारत में मानवाधिकार: संवैधानिक प्रावधान

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। हमारे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान स्वतंत्रता आंदोलन के स्वतंत्रता नेताओं ने अधिकारों के महत्व को महसूस किया था। मोतीलाल नेहरू समिति ने 1928 में ही अधिकारों के बिल की मांग की थी। इसलिए यह स्वाभाविक था कि जब भारत स्वतंत्र हुआ और संविधान तैयार किया जा रहा था तो मानवाधिकारों की अवधारणा को स्वीकार किया गया। भारतीय संविधान की एक अनूठी विशेषता यह है कि मानवाधिकारों के एक बड़े हिस्से को मौलिक अधिकारों के रूप में नामित किया गया है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानव अधिकारों के मेग्ना कार्टा का गठन करते हैं।[2]

भारतीय संविधान हमें मौलिक अधिकारों की एक सूची प्रदान करता है:

1. समानता का अधिकार।
2. स्वतंत्रता का अधिकार।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार।
4. सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार।
5. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार।
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

न्यायपालिका की भूमिका:

हमारे देश में न्यायपालिका को सरकार के स्वतंत्र अंग के रूप में जाना जाता है। इस स्वतंत्र न्यायपालिका के दो नियम हैं:

1. पारंपरिक भूमिका यानी कानूनों की व्याख्या करना, और

2. न्यायिक सक्रियता, अर्थात कघनून से परे जाना और न्याय प्रदान करने के लिए विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करना। यह मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए बहुत अच्छी तरह से दोनों भूमिकाएँ निभाता है।

कोई भी व्यक्ति जिसके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है, वह इसके लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सरकार को रिट जारी कर सकते हैं।

बंदी प्रत्यक्षीकरण: बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का मतलब है कि अदालत आदेश देती है कि गिरफ्तार व्यक्ति को उसके सामने पेश किया जाए। किसी गिरफ्तार व्यक्ति को मुक्त करने का आदेश भी दिया जा सकता है यदि गिरफ्तारी का तरीका या आधार वैध या संतोषजनक नहीं है।[3]

परमादेश: परमादेश एक लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ है "हम आज्ञा देते हैं" यह रिट तब जारी की जाती है जब अदालत को पता चलता है कि कोई विशेष कार्यालय धारक कानूनी कर्तव्य नहीं निभा रहा है और इस तरह किसी व्यक्ति के अधिकार का उल्लंघन कर रहा है।

निषेध: यह रिट उच्च न्यायालय द्वारा तब जारी की जाती है जब निचली अदालत ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर के मामले पर विचार किया हो।

क्वा-वारंटो: क्वा-वारंटो शब्द का शाब्दिक अर्थ है "किस वारंट से?" या "आपका अधिकार क्या है"। अगर अदालत को पता चलता है कि कोई व्यक्ति पद धारण कर रहा है लेकिन उस कार्यालय को रखने का हकदार नहीं है, तो यह रिट जारी करता है और उस व्यक्ति को अधिकारी धारक के रूप में कार्य करने से प्रतिबंधित करता है।

सरटिओरैरी: इस रिट के तहत, अदालत निचली अदालत या किसी अन्य प्राधिकरण को उसके समक्ष लंबित मामले को उच्च प्राधिकरण या अदालत में स्थानांतरित करने का आदेश देती है।

इस प्रकार न्यायपालिका हमारे मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भारत में न्यायिक सक्रियता:

शब्द, "न्यायिक सक्रियता पहली बार आर्थर स्लेसिंगर जूनियर द्वारा अपने लेख," सर्वोच्च न्यायालय 1947, "में गढ़ा गया था, उसी वर्ष फॉर्च्यून पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। हालांकि न्यायिक सक्रियता का इतिहास 1803 से शुरू होता है जब मार्बरी बनाम मैडिसन के प्रसिद्ध मामले में मुख्य न्यायाधीश मार्शल द्वारा न्यायिक समीक्षा की अवधारणा विकसित की गई थी।

न्यायिक समीक्षा के उद्भव ने एक नए क्षण को जन्म दिया जिसे न्यायिक सक्रियता के रूप में जाना जाता है।ब्लैक लॉ डिक्शनरी ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एक के रूप में, "न्यायिक निर्णय लेने का दर्शन जिसमें न्यायाधीश अपने निर्णय को निर्देशित करने के लिए अन्य कारकों के बीच सार्वजनिक नीति के बारे में अपने व्यक्तिगत विचारों की अनुमति देते हैं"[4]

अपरंपरागत न्यायशास्त्र के प्रयोग या न्यायपालिका के रचनात्मक दृष्टिकोण को न्यायिक सक्रियता कहा जा सकता है, उदाहरण के लिए भारत में सुप्रीम कोर्ट ने एक पत्र को भी एक रिट याचिका के रूप में माना है और उचित आदेश पारित किया है। यह अवधारणा सामाजिक सुधार के लिए किसी विशेष कानून की प्रयोज्यता बढ़ाने और संबंधित राज्य तंत्र में सुधार लाने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन बन गई है।

जनहित याचिका और न्यायिक सक्रियता:

जनहित याचिका का अर्थ है "जनता के हित में मुकदमेबाजी" ने 1970 में न्यायिक प्रक्रिया में प्रवेश किया। इस प्रकार की मुकदमेबाजी को न्यायाधीशों द्वारा समाज के वंचित वर्ग को "समान पहुंच" प्रदान करने के लिए नवाचार किया गया था। जनहित याचिका का विचार एक्टियोपोपुलर से आया है जो रोम के न्यायशास्त्र का है जिसने सार्वजनिक गलत मामलों में प्रत्येक नागरिक तक न्यायालय की पहुंच की अनुमति दी थी। जनहित याचिका के विकास ने न्यायिक सक्रियता को सार्थक बनाने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की है। इस प्रकार के मुकदमेबाजी के कारण न्यायालय को जनहित में निर्देश देने और सार्वजनिक कर्तव्यों को लागू करने का अवसर मिला है।

न्यायिक सक्रियता की भूमिका

सर्वोच्च न्यायालय की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति है। विशेष रूप से समीक्षा शक्ति का अर्थ है कि न्यायपालिका संविधान और विधायिका द्वारा पारित कानूनों की व्याख्या कर सकती है। यदि अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि कानून संविधान के प्रावधानों के साथ असंगत है तो ऐसे कानून को असंवैधानिक और अनुपयुक्त घोषित किया जाता है।

न्यायिक सक्रियता को बदलते समाज में न्यायिक दृष्टिकोण की गतिशील प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। न्यायिक सक्रियता एक सुशासन प्रदान करने और समाज की सुरक्षा, सुरक्षा और कल्याण सुनिश्चित करने के बारे में है। गुललथनाथ बनाम पंजाब राज्य, केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ के फैसले सामने रखने लायक हैं। एसपी गुप्ता केयर मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के साथ न्यायपालिका की सक्रियता का रंग बदल गया, जहां यह स्पष्ट किया गया कि कोई भी व्यक्ति किसी अन्य प्रभावित व्यक्ति के लिए जनहित एकीकरण दायर कर सकता है जो वंचित था और अदालत का दरवाजा नहीं खटखटा सकता था।[5]

केस स्टडी: एयर इंडिया बनाम नर्गेश मिर्जा (एयर होस्टेस केस)

एयर इंडिया बनाम नरगेश मिर्जा में एयर इंडिया और इंडियन एयरलाइंस की एयर होस्टेस की सेवानिवृत्ति से संबंधित सेवा नियमों को भारतीय संविधान के तहत समानता के अधिकार के उल्लंघन के रूप में चुनौती दी गई थी।सर्वोच्च न्यायालय ने पहले चार वर्षों के भीतर उसकी शादी पर एक 'एयर होस्टेस' सेवाओं को समाप्त करने की अनुमति देने वाली शर्त को बरकरार रखा, लेकिन उसकी गर्भावस्था पर उसकी सेवाओं को समाप्त करने वाली शर्त को अमान्य कर दिया।[6]

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य

केशवानंद भारती निर्णय भारत के सर्वोच्च न्यायालय का एक ऐतिहासिक निर्णय है जिसने संविधान के 'मूल संरचना सिद्धांत' को रेखांकित किया। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यद्यपि संविधान का कोई भी हिस्सा 'मौलिक अधिकारों सहित' संसद की संशोधन शक्ति से परे नहीं था, संविधान की मूल संरचना को एक संवैधानिक संशोधन द्वारा भी नहीं बदला जा सकता था।[7]

शाह बानो केस

शाह बानो, एक 62 वर्षीय मुस्लिम महिला को उसके पति ने 1978 में तलाक दे दिया था। उसने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में एक आपराधिक मुकदमा दायर किया, वह अपने पति से गुजारा भत्ता चाहती थी। सुप्रीम कोर्ट ने पीड़ित तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं को भरण-पोषण के पक्ष में फैसला सुनाया।

श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ

श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ भारत में ऑनलाइन भाषण और मध्यस्थ दायित्व के मुद्दे पर भारत के सर्वोच्च न्यायालय का एक निर्णय है। सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत गारंटीकृत भाषण की स्वतंत्रता का उल्लंघन करने के आधार पर ऑनलाइन भाषण पर प्रतिबंध से संबंधित सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 66ए को असंवैधानिक करार दिया।[8]

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य

विशाखा और अन्य महिला समूहों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 21 के तहत कामकाजी महिलाओं के मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए राजस्थान राज्य और भारत संघ के खिलाफ जनहित याचिका दायर की।

कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न से निपटने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने विशाखा मामले में कुछ दिशानिर्देश निर्धारित किए, औपचारिक कानून लंबित होने के कारण, कुछ दिशानिर्देश इस प्रकार हैं:

- कार्यस्थल पर नियोक्ता या अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों का कर्तव्य और अन्य संस्था महिला कर्मचारी यौन उत्पीड़न के कृत्यों को रोकने के लिए।

- न्यायालयों ने सार्वजनिक या निजी सभी नियोक्ताओं को निवारक कदम उठाने के लिए दिशानिर्देश भी प्रदान किए।
- अपराधी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए। दिशानिर्देश प्रदान करने के बाद अदालतों ने कहा, तदनुसार, हम निर्देश देते हैं कि कामकाजी महिलाओं के लैंगिक समानता के अधिकारों के संरक्षण और प्रवर्तन के लिए सभी कार्यस्थलों पर दिशानिर्देशों और मानदंडों का सख्ती से पालन किया जाएगा। ये निर्देश कानून में बाध्यकारी और लागू करने योग्य होंगे जब तक कि क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए उपयुक्त कानून नहीं बनाया जाता है।

निष्कर्ष

मानवाधिकार एक बहुत पुरानी परिघटना है और इसके विकास के लिए प्रत्येक मनुष्य का अभिन्न अंग है। मानवाधिकारों को हमेशा हर लोकतांत्रिक व्यवस्था की रीढ़ माना गया है। भारत ने दुनिया भर में मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए सबसे गंभीर प्रयास किए हैं। सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय ने भारत में मानवाधिकारों की रक्षा और सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। न्यायपालिका कानूनों की व्याख्या के माध्यम से न्याय प्रदान करती है। कभी-कभी विभिन्न कानूनों के प्रावधान की व्यापक व्याख्या और संविधान के प्रावधानों के माध्यम से भी न्यायपालिका अधिकारों को सशक्त बनाने में सक्षम है। न्यायपालिका की एक अन्य भूमिका सक्रिय भूमिका है जिसे "न्यायिक सक्रियता" के नाम से जाना जाता है। जब किसी विशिष्ट अपराध के लिए कोई विशिष्ट कानून नहीं होता है तो उस मामले में न्यायपालिका हमारे अधिकारों की सुरक्षा के लिए अपनी सक्रिय शक्ति का प्रयोग करती है।

संदर्भ

1. संयुक्त राष्ट्र महासभा 1993 की घोषणा।
2. बिस्वाल तपन (2006), "मानवाधिकार लिंग और पर्यावरण," नई दिल्ली, वीवा बुक प्राइवेट यूनाइटेड, पृ. 127
3. काम पर भारतीय संविधान, पाठ्यपुस्तक, एनसीईआरटी पृ. 31
4. वही, पृ. 32
5. नारायण लक्ष्मी (2015), "महिलाओं के लिए मानवाधिकार," मुद्दे और दृष्टिकोण, "जयपुर, डीएनडी प्रकाशन, पृ. 203
6. "मानव अधिकारों का परिचय: लिंग न्याय, पर्यावरण और उपभोक्ता कानून के मुद्दों सहित एक सिंहावलोकन," दक्षिण एशिया मानवाधिकार प्रलेखन केंद्र, 2006, न्यूयॉर्क, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. मीना कुमार आलोक (2004), "ह्यूमन राइट्स इन इंडिया कॉन्सेप्ट्स एंड कंसर्न्स," जयपुर (राजस्थान) पॉइंटर पब्लिकेशन, पृ. 9
8. वही, पृ. 10

भारतीय समाज में जातीय व्यवस्थाः एक विवेचना

डॉ० शिखा सक्सेना

विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र, श्री चित्रगुप्त पीजी कॉलेज, मैनपुरी (उ.प्र.)

आदिकाल से ही समाज में वर्ण (वर्ग) एवं जाति को लेकर विभिन्न मतों का प्रचलन रहा है, किन्तु वास्तविकता यह है कि सृष्टि के प्रारम्भ के समय में न तो जाति थी और न ही वर्ण (वर्ग)। (महाभारत, भीष्मपर्व) ऐसी व्यवस्था काफी लम्बे समय तक रही। इसलिए महाभारतकार महाभारत में इस विषय को संजय और घृतराष्ट्र के मध्य स्थापित संवाद के माध्यम से कुछ इस प्रकार से समझाते हैं कि ''प्राचीन काल में राजा नहीं होता था और वहाँ पर दण्ड की भी व्यवस्था नहीं थी, तो फिर प्रश्न पैदा होता है कि समाज की रक्षा कौन करता था? क्योंकि रक्षा करने वाला कोई अलग से गुट नहीं था। यानि कि प्राचीन समाज में सभी जन आपस में मिलकर रहते थे और एक-दूसरे की धर्मानुसार रक्षा करते थे। (न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दण्डिनः। स्वधर्मेण धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्।।) यानि जब वर्ग/वर्ण नहीं थे और जातियाँ भी नहीं थी तो सभी लोग धर्मानुसार आचरण करते थे। तो, इससे यह सिद्ध होता है कि धर्माचरण ने अलग-अलग वर्गों का प्रगटीकरण नहीं होने दिया। दूसरा, समाज का स्वरूप छोटा था, अतः समस्त क्रिया कलाप आपस में मिल जुल कर सम्पादित कर लिए जाते थे। ऐसे समाज सही अर्थों में प्रशंसा के पात्र थे। इस सम्बन्ध में शान्ति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि "ज्ञान वृद्धाः प्रशंसन्ति श्रूयंतः परस्परम्।" यानि ज्ञानवृद्ध लोग इस प्रकार के समाजों की प्रशंसा करते हैं क्योंकि सभी आपस में मिल-जुल कर रहते थे। परिणामस्वरूप सभी समान थे और कोई भी सेवक नहीं था, किन्तु हमारे समाज में सदियों से यही समझाया जाता रहा है कि जाति प्रथा सनातनी व्यवस्था है, जबकि ऐसा है नहीं। ऋग्वेद से लेकर पुराण काल तक जातियों का जन्मना सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया गया था। महाभारत में व्यास भीष्म से कहते हैं कि जात्या च सदृशः सर्वे कुलेन सहस्रस्तथा। यानि ऐसे समाजों में जाति के विचार से सभी सदृश हैं। इसी प्रकार से विष्णु पुराण में भी जातियों का निर्धारण जन्मना नहीं था। (खण्ड 3 अध्याय 8)। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण जी अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (4/13) यानि यह चातुर्वणी सृष्टि मेरे द्वारा रची गई है और इसका विभाजन गुणों के आधार पर है। यानि यहाँ तक व्यवस्था में पर्याप्त लचीलापन परिलक्षित होता है। ऋग्वेद के अध्ययन से यह भी ध्यान में आता है कि इसमें वर्णों का विकास नहीं हुआ था और जातियाँ तो कदापि नहीं थी। क्योंकि पूरे ऋग्वेद स्थानों पर ब्राह्मण और क्षत्रिय शब्दों का प्रयोग किया गया है। (प्राचीन भारत, राधाकुमुद मुकर्जी, पृष्ठ 34) ऋग्वेद के अध्ययन से यह भी आभास होता है कि 'पुरुषसूक्त' (10/9) संभवतः बाद में जोड़ा गया है क्योंकि यह एकदम अन्त में है और वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन करता है।

जबकि जातियों की उच्चता और निम्नता का सिद्धान्त बौद्धिक आधार पर तय होता था। विश्वामित्र, जाबाल, रैक्व, आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब समाज की प्रारम्भिक अवस्था में जाति और कुल के विचार से भेदभाव नहीं था तो आगे भी इसी प्रकार की व्यवस्थाओं का निर्माण हो सकता है। यह समन्वयकारी व्यवस्था विखण्डित कैसे हुई, उन तत्त्वों पर विचार करते हैं। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है पंचनद के क्षेत्र में बसने वाले एक ही स्तर के लोग धीरे-धीरे पाँच विभिन्न जातियों में बँट गए, इनकी आजीविका खेती थी और इनको पाँच कृषि जीवियों के नाम से स्मरण किया गया। ये जातियाँ बहुत ही उद्यमशील थीं। इन्हीं ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक एक उन्नत सभ्यता विकसित की। इस विकसित सभ्यता का

मूल आधार कृषि/पशुपालन था। (ऋग्वेद-6/11/4, 6/51/11, 7/32/32, 9/65/32, 2/2/10, 4/38/10 एवं मैक्समूलर : इण्डिया : व्हाट कैन इट टीच अस, पृष्ठ 95-96-1899) बाद में ये पांचों जातियाँ अपने व्यावसायिक विभेदों के कारण पांच वर्णों में विभक्त हो गए जो कि इस प्रकार थे मंत्री, योद्धा, व्यापारी, दास और काले चमड़े वाले और इनके पुत्रों को का पुरुष, तुर्वस, वेदस, अनुस और द्रुहयस कहा जाता था। इन सभी में लम्बे समय तक आपसी सम्बन्ध स्थापित होते रहे किन्तु कालान्तर में परम्परा विछिन्न होने लगी। ऋग्वेद में यह भी उल्लेख मिलता है कि एक ही परिवार में विभिन्न पेशों से सम्बन्धित लोग एक साथ रहते थे "मैं कवि हूँ, मेरा पिता वैद्य है, मेरी माँ अन्न पीसती है, साधन भिन्न हैं किन्तु सभी को धन की इच्छा है और सभी समान रूप से पशुओं की आकांक्षा करते हैं।" (ऋ० 9/112) यानि यहाँ तक समाज का पेशों के आधार पर विभाजन होना शुरू नहीं हुआ था। विशेषीकरण का सिद्धान्त अभी तक प्रचलन में नहीं आया था। पैतृक पेशे की स्वीकारोक्ति अभी तक रूढ़ न हो पाई थी। व्यक्ति अपनी इच्छा से अपने पेशों को बदल सकता था। किन्तु कालान्तर में समाज के विस्तार के साथ नई व्यवस्था विकसित होने लगी। परिणाम स्वरूप मानव आपस में संगठित होने लगे। इन संगठित समुदायों को गण कहा जाने लगा। प्रारम्भ में यह गण समस्त कार्यों का संपादन मिलकर करते थे चाहे वह खेती हो, पशुपालन हो या अन्य कुछ गण में सम्पत्ति पर सभी का समान अधिकार होता था। छोटे गण मिलकर सब कार्य करते थे। जबकि बड़े गणों में खेती अलग-अलग होने लगी थी। ये अलग-अलग जो खेती गणों में की जाने लगी उन घटकों को गोत्र कहा जाने लगा। गोत्र का विस्तृत स्वरूप एक कुनबे के रूप में हुआ। इस कुनबे के समस्त सदस्य आपस में सम्बन्धी है। यह गोत्र अर्थोत्पादक है क्योंकि सभी मिलकर कृषि करते है। इस व्यवस्था का एक सामाजिक पहलू भी है। यानि ये आपस में मिलकर विवाह न करेंगे। अलग-अलग गोत्रों के लड़के-लड़की होगे। इस प्रकार रक्त सम्बन्धों का विशेषीकरण होता है। इस प्रकार जब गोत्र बढ़ता है तो फिर यह भी सामूहिक श्रम न करेगा क्योंकि इसमें भी अनेक कुटुम्ब होते हैं। इनमें से कुछ में निकट का सम्बन्ध होता है और कुछ में दूर का। इस प्रकार गण-गोत्र-कुल/कुटुम्ब। ये सब आपस में एक हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में इसे बहुत ही कुशलता से समझाया गया है। भीष्म कहते हैं - कुलेषु कलहाः जाताः कुल वृद्धैः अपेक्षिताः। गोत्रस्य नाशं कुर्वन्ति गणभेदस्य कारकम्।। यानि-कुलों में आपस में कलह होती है क्योंकि वे अलग-अलग खेती करते हैं, उत्पादन करते हैं, सम्पत्ति एकत्र करते हैं। गोत्र का अधिकार कम होता है, कुल का अधिकार बढ़ता जाता है। गोत्र संपत्ति का अधिकार कुल सम्पत्ति ले लेती है। इस प्रकार गण से गोत्र और गोत्र से कुल सम्पत्ति बन जाती है, यही झगड़े का कारण होता हैं। इस प्रकार कुलों के झगड़े की उपेक्षा करने से कालान्तर में गोत्र ही नष्ट हो जाएगा। परिणाम स्वरूप गण विभाजन हो जाएगा। यह एक पारस्परिक व्यवस्था हैं जो कि एक दूसरे को प्रभावित करती है।

प्राचीन भारत में कुल का प्रतिनिधि राजा कहलाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम के गण थे। इनके सभी सदस्य हथियार लेकर लड़ते थे। पाणिनि की अष्टाध्यायी के अध्ययन से यह ध्यान में आता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मणक, (5/2/71, 4/2/104) नाम का एक देश था। काशी प्रसाद जायसवाल ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू पॉलिसी' में लिखा है कि इस गण ने आयुधजीवी संघो की तरह बहुत ही बहादुरी से मुकाबला किया था। विशेष बात जो है वह यह थी कि इस ब्राह्मण जनपद से ही मिला हुआ जनपद शूद्रों का था (4/2/54)। यह गण भी सिकंदर से लड़ा था। इसी प्रकार खन्नोई गण भी था, यह गण क्षत्रियों का था। (हिन्दू पालिसी) भारतीय परम्परा में चौथा गण है विश यानि वैश्य।। वैश्य उसे कहते हैं जो कि बस्ती और कबीले से सम्बन्धित है। गण घुमन्तु हो सकता है किन्तु विश नहीं। इसी विश से वैश्य बना। जिसका अर्थ हुआ बसा हुआ। यानि अन्य गण घुमन्तु हो सकते थे। किन्तु वैश्य गण बस्ती के रूप में ही रहता था और खेती आदि करता था। प्रारम्भ में खेती ही आयोत्पादन के रूप में प्रयुक्त होती थी। बाद में इसका सम्बन्ध व्यापार से जोड़ दिया गया और यहीं से गणों का स्वरूप परिवर्तित होने लगा। परिणामस्वरूप वर्ण के साथ-साथ जातियों का भी अभ्युदय हो गया। यह वह काल है जब समाज का रूप विस्तृत होने लगा और समाज के कार्य भी उसके स्वरूप के अनुरूप बढ़ने लगे। अब तक एक ही परिवार में अनेक कार्यों को सम्पादित करने वाले लोग निवास करते थे, जैसा कि मैंने इस पत्र में पहले भी उल्लेख किया हैं। किन्तु कालान्तर में देश, काल, परिस्थितियों के कारण और समाज की आवश्यकतानुसार विभिन्न जातियों का उभार उनके पेशे के कारण होने लगा। इस व्यवस्था की अनेक अच्छाईयाँ थी। जैसे - (1) एक पेशे के सदस्य एक बिरादरी कहे जाते थे या एक ही विरादरी के सदस्य एक से ही पेशे का अनुपालन करते थे। (2) पेशा वंशानुगत होता था यह पीढ़ीदर पीढ़ी चलता रहता था। (3) इस पेशे के चलते ही बिरादरी के समस्त सदस्य आपस में एक दूसरे के सम्बन्धी होते थे और परस्पर दुख-सुख में काम आते थे। (नोबुल स्टॉप इन इण्डिया, मार्क टुली)। पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले पेशे ने जातियों को विशेषज्ञ बना दिया था। इसी कारण ये अन्य कार्य नहीं करते थे। यदि ऐसा करते तो कार्य विशेषज्ञता का सिद्धान्त क्रियाशील न रह

पाता। इस प्रकार भारत में एक ही उत्पादन से सम्बन्धित अनेक जातियों का अभ्युदय होने लगा और जाति की मजबूत अवस्था उभरकर सामने आने लगी। प्रारम्भ में वर्ण या जाति परिवर्तित करना सुगम था, किन्तु कालान्तर में पीढ़ी दर पीढ़ी विशेषज्ञता प्राप्त करने के बाद जाति परिवर्तित करना दुष्कर कृत्य हो गया, क्योंकि दूसरी जाति की विशेषज्ञता प्राप्त करने में वर्षों लग जाते थे और फिर भी उतना कौशल प्राप्त नहीं हो पाता था। विश्वामित्र का उदाहरण सब के सम्मुख है।

इस वंशानुगत पेशे ने सम्पूर्ण परिवार को उस पेशे में पारंगत कर दिया जो कि उस परिवार का था। इस प्रकार श्रम विभाजन और कार्य विशेषीकरण का सिद्धान्त व्यवहार में लागू होने लगा। अब ध्यान देने वाली बात यह है कि प्रारम्भ में जो व्यवस्था लचीली थी वह बाद में जटिल अथवा रूढ़ क्यों हो गई? ऐसा इसलिए हो गया क्योंकि उत्पादन की मूल इकाई परिवार था और सारा परिवार मिलकर उत्पादन कार्य में संलग्न रहता है। इस परिवार में ही सम्पूर्ण परिवार के सदस्य मिलकर कार्य सीखते हैं और विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं। इस तरह से यह परिवार ही इनके लिए प्रशिक्षण केन्द्र के रूप मे सक्रिय रहता था। कार्य के प्रशिक्षण का पृथक् से कोई अन्य केन्द्र सक्रिय नहीं था। भारत के मौसम ने भी इसमें सहयोग दिया। परिणामस्वरूप समाज आधारित अर्थव्यवस्था या संस्कृति विकसित होने लगी। यह विशेषता पश्चिम के किसी देश में विकसित नहीं हो पाई। परिणामस्वरूप वहाँ पर जब उद्योगों की व्यवस्था हुई तो उन्हें संचालन के लिए अनेक पाठ्यक्रमों और विद्यालयों का संचालन करना पड़ा। जिसके चलते प्रत्येक क्षेत्र में बाजारवाद का चलन बढ़ गया। पश्चिम में भारत जैसी जातिव्यवस्था निर्मित नहीं हो सकती थी, क्योंकि ऐसा करने की व्यवस्था वहाँ के वातावरण ने उन्हें प्रदान नहीं की थी। लेकिन जाति व्यवस्था वहाँ पर भी थी, यह व्यवस्था थी अभिजात्य और सामान्य जाति। भारत की कार्य कुशलता की सर्वत्र तारीफ की जाती थी। अंग्रेजों को यह व्यवस्था बहुत ही चौंकाने वाली प्रतीत होती थी। भारत के कार्यकुशलता की तारीफ करते हुए मार्क्स लिखता है वे माल अच्छा इसलिए बना लेते हैं कि जो विशेष योग्यता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचित की गई है वह बाप से बेटे तक पहुँचा दी जाती है, इस प्रकार वे अपने कार्य में विशेष योग्यता प्राप्त करते है (कैपीटल, मार्क्स, खण्ड 1 - पृष्ठ 322)

इस प्रकार से समाज मजबूती की अवस्था में रहता है और समाज में अर्थ का प्रवाह समान रहता है। इस व्यवस्था में सम्पूर्ण समाज न केवल समृद्धि का स्वाद चखता है बल्कि समरसता का भाव भी रहता है। इस विशेषीकरण के सिद्धान्त के चलते ही इन में आपस में सम्बन्धों की स्थापना होती है, क्योंकि पेशेगत विशेषता और स्वभाव के चलते इनमें एकरूपता हो जाती है। इसी परम्परा के चलते जातियों का ताना-बाना मजबूत होता जाता है।

ये जातियाँ देश-काल-परिस्थितियों के साथ-साथ न केवल बदलती रहीं बल्कि बढ़ोत्तरी को भी प्राप्त हुई। महाभारत, रामायण एवं पाणिनि के अष्टाध्यायी के अध्ययन से इसको आसानी से समझा जा सकता है। इन जातियों की सृजनशीलता मात्र प्राचीनकाल या मध्यकाल तक सीमित नहीं रही बल्कि यह आगे भी बढ़ोत्तरी को प्राप्त होती रही। आधुनिक काल में भी वैज्ञानिक विकास के अनुरूप अनेक नवीन जातियाँ अस्तित्व में आ रही है और कर्म सिद्धान्त के चलते अनेक जातियों का विलोप होना स्वाभाविक है। जातियाँ जो कि समाज-संस्कृति की प्रतिनिधि हुआ करती थीं या हैं, का स्थान पाश्चात्य सभ्यता कल्चर के संसर्ग में आकर बाजार या कम्पनियों ने लेना शुरू कर दिया। भारतीय परंपरा में उत्पादन की इकाई व्यक्ति या परिवार का स्थान लघु उद्योग से प्रारंभ होकर बड़े निगमों तक ने लेना शुरू कर दिया, परिणामस्वरूप परंपरागत प्रकार की जाति व्यवस्था चरमराने लगी और नए प्रकार की आधुनिक व्यवस्था ने जन्म लेना शुरू कर दिया। भारतीय जाति/वर्ण व्यवस्था की आलोचना के पीछे पाश्चात्य देशों विशेषकर यूरोप की ही बाजारवादी व्यवस्था है। क्योंकि यूरोप में उपनिवेशी पूंजी के आने के बाद जब औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई तो उनके लिए यह सबसे आवश्यक हो गया कि सर्वप्रथम वे अपने उपनिवेशों में स्थापित सामाजिक ताना-बाना तोड़ने का प्रयास करें, क्योंकि परंपरागत ताने-बाने को तोड़े बिना वे अपने औद्योगिकीकरण के प्रयासों में सफल नहीं हो सकते थे, इसीलिए जो जाति-व्यवस्था भारत जैसे समाजों का वैशिष्ट्य थी और उनकी प्राचीनता का द्योतक थी। सर्वप्रथम उन्होंने इस व्यवस्था की न केवल आलोचना प्रारंभ की बल्कि इसको समाप्त करने के प्रयास भी किए। क्योंकि ऐसे किये बिना उनका व्यापारिक उद्देश्य पूर्ण न होता। 18वीं सदी तक भारत जो संपूर्ण विश्व का आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से नेतृत्व करता था ऐसा अचानक क्या हो गया कि वह 1757-1857 के मध्य अचानक पिछलग्गू और विपन्न हो गया। यह एक विचारणीय प्रश्न है। भारतीय परंपरा में कहीं पर भी पेशे के आधार पर व्यक्ति को छोटा बड़ा नहीं माना गया है। छोटे-बड़े का मापदण्ड व्यक्ति का ज्ञान है। इसीलिए भारत के वेदों से इतर दो बड़े महाकाव्यों में सूत का कार्य करने वाले व्यक्तियों को मन्त्री का स्थान प्राप्त है। वाल्मीकि रामायण में सुमन्त्र मूलतः

रघुवंशियों का रथ हाँकने वाला (सूत) है किन्तु वह सद्विचारी, विवेकी एवं विचारवान् है इसलिए उसका नाम ही सुमन्त्र हो गया। सुमन्त्र यानि अच्छी मन्त्रणा करने वाला या सुविचारी। वाल्मीकि रामायण में राजा के साथ इसकी युति सर्वत्र परिलक्षित होती है। यहाँ पर उसका कार्य नहीं अपितु उसका गुण या ज्ञान ही श्रेष्ठ है। प्रभु श्रीकृष्ण ने यही श्रीमद्भगवदगीता में कहा भी है कि ..... . चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। इसी प्रकार से महाभारत में भी संजय घृतराष्ट्र का सहायक है वह न केवल घृतराष्ट्र को महाभारत का आखों देखा हाल सुनाता है वरन् युद्ध के अनेक पहलुओं पर अपनी टीका-टिप्पणी भी करता है। संपूर्ण महाभारत के अध्ययनोपरांत तो यह भी ध्यान में आता है कि वह न केवल टीकाकार है बल्कि वह इतिहास-भूगोल-साहित्य एवं अन्यान्य विषयों का भी जानकार है। क्योंकि अनेक स्थानों पर उसने घृतराष्ट्र को युद्ध से अलग हटकर भी जानकारियाँ उपलब्ध कराई है। इस प्रकार की जानकारियों के विषय में निष्णात हुए बिना उपलब्ध कराना असंभव प्रतीत होता है। यहाँ पर यह भी ध्यातव्य है कि संजय भी सूत ही है। महाभारत में तो सूत पूरी एक परंपरा है। यानि परंपरागत ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सूत लोगों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक और तो और धार्मिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने में सूत परंपरा अग्रणी रही है। संस्कृत वाङ्मय में अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ पर श्रेष्ठ कहा या माना जाने वाला ऋषि सूत के मुख से भगवद्कथा सुन रहा है। इन सब बातों को ध्यान में रखने से यह समझ में आता है कि जाति की दृढ़ता का सिद्धांत वेदों से लेकर 18वीं सदी तक स्पष्ट रूप से परिलक्षित नहीं होता है, क्योंकि भक्तिकाल में अनेक उदाहरण ऐसे हैं जहाँ पर जाति के स्थान पर गुणों का प्राधान्य स्वीकारा गया है। रामानन्द के प्रमुख 12 शिष्यों में से 1-2 को छोड़कर शेष ब्राह्मणेतर जातियाँ ही हैं। वैष्णव परंपरा तो इतनी श्रेष्ठ है कि वह भक्तों में जाति-बुद्धि भेद को वैष्णव ग्रन्थों में वर्णित 64 प्रकार के अपराधों में से एक अपराध मानती है। सम्पूर्ण भारत में सन्तों की जो परंपरा भक्तिकाल के अन्तराल में विकसित हुई या पौराणिककाल में थी, उनके अध्ययन के उपरांत यही ध्यान में आता है कि जाति भारत की कभी भी समस्या उस प्रकार की नहीं रही जिस प्रकार की आधुनिक समय में इसको उल्लिखित किया जाता है। भारत का सामाजिक ताना-बाना भी इस प्रकार के प्रसंगों को न तो कहीं पर उद्धृत ही करता है और न ही प्रश्रय देता है। यथा भारत में जितने भी उत्सव एवं पर्व प्रचलन में है इनकी सफलता के पीछे भेद-भाव के स्थान पर समरसता/समन्वय ही विद्यमान है। कुंभ जैसा विशाल मेला (विश्व का) और इसी प्रकार के अन्य मेले भी इसी बात का प्रमाण हैं कि भारत में जाति व्यवस्था समस्या नहीं अपितु समाधान ही रही है किन्तु ब्रिटिश सरकार ने भारत में इस प्रकार के विभेद पैदा करके भारत की युग-युगीन परंपरा को तोड़ने के प्रयास किए हैं।

भारतीय परंपरा सनातनी परंपरा है और नितनूतन-चिरपुरातन है, इसलिए इसमें जो भी अप्रासंगिक है वह स्वतः ही विलग हो जाता है और जो ग्राह्य है वह अपनी उपयोगिता के चलते इसका हिस्सा बन जाता है।

भारतीय समाज की अद्भुत मेधाशक्ति के चलते विकृति पूर्ण परंपराएं स्वयं ही अलग होती रही हैं और जो परंपराएं इसके लिए शक्तिवर्धक हैं वे स्वतः अंगीकार की जाती रहीं हैं। भारत का यही वैशिष्ट्य संपूर्ण विश्व को अपनी और आकर्षित करता रहा है। पश्चिमी परंपराओं के लिए यही सब चौकाने वाला है। इसीलिए वे इसको न समझ पाने की अवस्था में इसकी या तो आलोचना करते रहे या इसको अनुपयोगी बताकर इसको समाप्त करने के लिए न केवल स्वयं अपितु भारत के आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवकों को भी प्रेरित करते रहें। अपितु होना तो यह चाहिए था कि भारत के वैशिष्ट्य से पाश्चात्य जगत कुछ सीखता और भारतीय परंपराओं की प्रशंसा करता, किन्तु उसने ऐसा न करके इसकी आलोचना करना ही श्रेयस्कर समझा। यद्यपि कुछ विद्वान् जो कि पूर्वाग्रहों से मुक्त हैं, ने भारत की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और भारत से जो भी कुछ सीखा है उसकी सराहना की है। इनमें से प्रमुखतः मैं दो नामों का उल्लेख करना सभीचीन समझता हूँ। (1) सर विलियम जॉन्स (18वीं सदी) एवं (2) विल ड्यूरण्ट (20वीं सदी)। ये दोनों ऐसे विद्वान् है जिन्होंने भारत के सद्गुणों एवं परंपराओं को न केवल सराहा है अपितु संपूर्ण जगत् इनका अनुसरण भी करें ऐसा कहा भी है।

भारत की युवा पीढ़ी को आज इसी प्रकार के चिन्तन को विकसित करने की आवश्यकता है जो कि न केवल उनका मार्गदर्शन करे, अपितु भारत की भावी पीढ़ी को भी उनके गौरवशाली अतीत एवं परंपराओं से परिचित करावें। भारतीय परंपराएँ गरियाने की नहीं अपितु स्वीकारने और यदि कुछ विकृति आ भी गई है तो उसे सुधारने के लिए हैं। यही सनातन परंपरा है। इसीलिए यह नितनूतन-चिर पुरातन है क्योंकि यही एक मात्र ऐसी परंपरा है जो विकृतियों को दूर कर समय के साथ कदमताल करने को न केवल प्रेरित करती है बल्कि अनुमति भी देती है।

चयनित अध्ययन

1. ऋग्वेद
2. महाभारत : शान्तिपर्व
3. विष्णुपुराण
4. श्रीमद्भगवद्गीता
5. प्राचीन भारत, राधाकुमुद मुखर्जी
6. इण्डिया व्हाट कैन टीच अस, मैक्समूलर
7. अष्टाध्यायी, पाणिनी
8. हिन्दू राजतन्त्र, काशी प्रसाद जायसवाल
9. पूंजी, खण्ड-1 कार्ल मार्क्स
10. रामायण, वाल्मीकि
11. भारत की सन्त परंपरा और सामाजिक समरसता, डा. कृष्ण गोपाल
12. थिंकिग पालिटीकली, प्रो. संजीव कुमार शर्मा
13. नो फुलस्टॉप्स इन इण्डिया : मार्क टुली
14. रिइमेजिंग इण्डिया, एडिटिड - मकी-सी एण्ड कम्पनी
15. आज का भारत, रजनी पामदत्त
16. सर विलियम जॉन्स-कलेक्टेड बर्क्स
17. केस फॉर इण्डिया, विल ड्यूरेण्ट

दुग्ध उत्पादन में दुग्ध सहकारी संघ चम्पावत की भूमिका का अध्ययन

शंकर नाथ गोस्वामी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वाणिज्य, स्वा0 वि0 रा0 स्ना0 महाविद्यालय लोहाघाट, चम्पावत

डॉ० उमेश चन्द्र आर्या

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वाणिज्य, स्वा0 वि0 रा0 स्ना0 महाविद्यालय लोहाघाट, चम्पावत

प्रस्तावना

चम्पावत भारतीय राज्य उत्तराखण्ड का एक जिला है। इसका मुख्यालय चंपावत नगर मे है। उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक चंपावत जिला अपने आकर्षक मंदिरों और खूबसूरत वास्तुशिल्प के लिए दुनिया भर में प्रसिद्व है। चंपावत में पर्यटको को यहां सब कुछ मिलता है जो वह एक पर्वतीय स्थान से चाहते है। वन्यजीवों से लेकर हरे भरे मैदानों तक, सभी केन्द्र यहां पर स्थित है।

दूध, कृषि डेयरी, फार्मिंग या डेयरी उद्योग कृषि की एक श्रेणी है, यह पशुपनालन से जुड़ा लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण उद्यम है जिसके अर्न्तगत दुग्ध उत्पादन, उसका प्रसंस्करण और खुदरा बिक्री के लिए किये जाने वाले कार्य आते है। दुग्ध उत्पादन के सर्दभ में चम्पावत जनपद भी श्वेत क्रान्ति की लहर से अछूता नही हैं यही वजह है कि विगत वर्षो में दिन प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन की क्षमता लगातार बढ़ती जा रही है। दुग्ध उत्पादन के मामले में भी चम्पावत दुग्ध संघ प्रदेश में तीसरे स्थान पर है, जिससे चम्पावत के ग्रामीण कास्तकारों को इसका प्रत्यक्ष एंव परोक्ष लाभ मिल रहा है। वर्तमान में दुग्ध संघ में लगभग (4400) चार हजार चार सौ, दुग्ध उत्पादकों द्वारा 15,000 लीटर दुध का उत्पादन प्रतिदिन किया जा रहा है। जनपद में एनसीडीसी योजना के लागू होने के उपरान्त दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी हुई है। वर्तमान में उत्पादित लगभग 15,000 लीटर दुध में से लगभग 4,500 लीटर दुध स्थानीय स्तर पर विक्रय किया जाता है तथा दुध से घी, दही, मठ्ठा आदि उपोत्पाद बनाया जा रहा है, तथा शेष 10,000 लीटर दुध का ऊंधमसिहं नगर दुग्ध संघ अथवा नैनीताल दुग्ध संघ को भेज दिया जाता है।

तालिका संख्या 01

क्र0 स0	*स्थान*	*चम्पावत*
1	समुद्व तल से ऊॅचाई	1615 मीटर
2	दुग्ध डेयरी की स्थापना	09 जून 1998
3	संचालन क्षमता	10,000 लीटर/प्रतिदिन
4	दुग्ध शीतन केंद्र क्षमता	5000 लीटर/प्रतिदिन
5	दुग्ध शीतन केन्द्रों की संख्या	02

6	विषेष उत्पाद	दूध, घी, दही, छाछ, पनीर
7	संगठित सोसाईटी	229
8	कुल सदस्य	8736
9	औसतम उत्पाद	9587 लीटर/प्रतिदिन
10	औसतम बिक्री	2942 लीटर/प्रतिदिन

दुग्ध उत्पादन से स्थानीय स्तर पर लोगों को स्वरोजगार करने की प्रेरणा मिल रही है तथा ग्रामीण आर्थिक सशक्तिकरण विशेष रूप से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिल रहा है।

दुग्ध संघ प्रबन्धक चम्पावत द्वारा अवगत कराया गया है कि वर्तमान में चम्पावत से उत्पादित होने वाला दुग्ध तथा दुग्ध उत्पाद आंचल ब्रांड़ के बैनर तले बेचे जा रहे है। चूंकि चम्पावत में दुग्ध उत्पादन का सफल क्रियान्वयन एवं उत्पादन हो रहा है तथापि चम्पावत दुग्ध संघ का अपना पेटेन्ट तथा ब्रांड को विकसित करने की अति आवश्यकता है। चम्पावत के दुग्ध उत्पादन संघ के प्रबन्धक ने बताया कि कुछ समय पूर्व उनके द्वारा पहाड़ी घी के नाम से घी बेच रहे थे लेकिन देहरादून दुग्ध संघ ने उनके पेटेंट नाम पर घी की ब्रिक्री करने पर आपत्ति दर्ज करायी गयी थी। जिसके पश्चात् चम्पावत दुग्ध संघ ने चम्पावत घी के नाम पर पेटेंट कराने की कार्यवाही शुरू कर दी है जिससे इसके उत्पादन एंव बिक्री में तेजी से वृद्वि आ सकती है।

साहित्य का पुनरावलोकन

चम्पावत जनपद में दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ गत तीन वर्षो से लगातार लाभ में चल रहा है। वित्तीय वर्ष 2018-19 में संघ ने 36,000 रूपये से अधिक का लाभांश अर्जित करने में सफलता प्राप्त की है (दुग्ध उत्पादन सहकारी संघ चम्पावत)। विगत दो वर्षो के कोरोना काल की तुलना में वर्तमान वर्ष में संघ ने ढेघ्ड गुना अधिक लाभ अर्जित किया है।

दुग्ध संघ की ओर से वर्तमान में 189 दुग्ध समितियों के नाम से 12,500 लीटर से अधिक दुध का उत्पादन किया जा रहा है। मुख्यालय के समीप जूप पटवा स्थित दुग्ध शाला को पूर्ण कंम्प्यूटरीकृत करने के साथ साथ पैकिंग मशीन भी लगायी गई है। साथ ही विभिन्न स्थानों पर चिलिगं प्लान्ट तथा पनीर पैकिंग प्लान्ट भी लगाये गये है (दुग्ध उत्पादन सहकारी संघ चम्पावत)।

दुग्ध संघ चम्पावत द्वारा मिल्क प्रोड्यूसर कोआपरेटिव फैडरेशन दुग्ध उत्पादको को विभिन्न योजनाओं द्वारा लाभान्वित करने में सहायक सिद्व हो रहा है। जैसे कि दुर्घटना बीमा, पशुधन बीमा, गौसाला निर्माण योंजना आदि (दैनिक जागरण रिर्पोट चम्पावत)।

जनपद में दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ द्वारा 5 सितम्बर 2015 से गंगा गाय मोहल्ला डेयरी योजना के अन्तर्गत 2018 व 2019 तक दुग्ध समितियों के (65) पैसठ सदस्यों को अच्छी नस्ल की गायों को मैदानी क्षेत्रों से पहाड़ी क्षेत्रों में लाकर दुग्ध उत्पादन का बढ़ाने में सहायता की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत महिला सदस्यों, गरीब विधवा महिलाएं, तथा अन्य जरूरत मंदों महिलाओं को वरीयता दी गयी है (गंगा गाय योजना 2018-19 वार्षिक रिर्पोट) ।

उत्तराखण्ड सहकारिता विभाग की ओर से जारी नये दिशा निर्देशों के अनुसार दुग्ध उत्पादको को वर्तमान में दुग्ध समितियों के माध्यम से ही नही अपितु सीधे बैंक से भी ऋण मिल सकेगा। एनसीडीसी की ओर से दुग्ध समिति से जुड़े सदस्यों के लिए दुधारू पशुओं का खरीदने हेतु 25 प्रतिशत अनुदान के साथ ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी जा रही है (एनसीडीसी रिर्पोट जून 2019 के अनुसार)।

उत्तराखण्ड में ग्रामीण महिला सशक्तिकरण हेतु दुग्ध उत्पादन सहकारिता द्वारा ना केवल महिलाओं के सामाजिक बल्कि आर्थिक स्तर में सुधार किया गया है, अपितु ग्रामीण महिलाओं को अतिरिक्त आय का साधन भी उपलब्ध कराया है (एम डी यू सी डी एफ)।

शोध अध्ययन के उद्वेश्य

वर्तमान शोध पत्र के अध्ययन का उद्वेश्य दुग्ध उत्पादन द्वारा उत्तराखण्ड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था विषेषकर कृषि व दुग्ध उत्पादको के सामाजिक एवं आर्थिकी स्थिति का अध्ययन करना है। राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं का कास्तकारों की आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना है।

- जनपद चम्पावत में मुख्यमंत्री आंचल अमृत योजना का ग्रामीण रोजगार सृजन में भूमिका का अध्ययन करना।
- दुग्ध उत्पादन को प्रारम्भ करने में आने वाली प्रमुख चुनौतियों का अध्ययन करना।
- पशुपालन हेतु उपलब्ध आवश्यक बनियादि ढांचे के स्वरूप का अध्ययन करना।
- पशुओं की प्रजाति का मैदानी एंव पर्वतीय क्षेत्रों में अवास प्रवास पर पढ़नें वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
- विभिन्न बैंकों द्वारा दुग्ध उत्पादन हेतु दिये जाने वाले ऋणों का विश्लेषण करना।

आंकड़ों का संग्रहण

वर्तमान शोध पत्र हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको का संकलन किया गया है। प्राथमिक संमको हेतु दुग्ध उत्पादन समितियों के प्रबन्धकों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार तथा ग्रामीण कास्तकारों से मौखिक साक्षात्कार द्वारा विभिन्न सुचनाओं का संकलन किया गया।

भारतीय स्टैट बैंक

तालिका संख्या 02

क्रम0 स0	*विवरण*	*भारतीय स्टैट बैंक*
1	ऋण की राशि	2 लाख से 3 लाख रूपये
2	ब्याज दर	10.55 प्रतिशत से शुरू
3	भुगतान अवधि	6 महीने की अवधि के उपरान्त कभी भी
4	सिक्योरिटी मार्जिन	15 प्रतिशत
5	गारण्टी	भूमि के कागज गिरवी रखना या दुग्ध संघ की गारण्टी मार्जिन

स्त्रोत: बैंक अधिकारियों से साक्षात्कार के अनुसार

योग्यता:

- मिल्क यूनियन को प्रतिदिन कम से कम 100 लीटर दूध आपूर्ति।
- अन्तिम ऑडिट परिणाम ए ग्रेड होना चाहिए।
- पिछले 2 साल की बैलेंस सीट ऑडिट की गई है।
- पिछले 2 वर्ष लाभ में होना चाहिए।

लैडिंग कार्ड-डेयरी फार्म लोन

तालिका संख्या 03

क्रम0 स0	*विवरण*	*लैडिंग कार्ड-डेयरी फार्म लोन*
1	ऋण की राशि	85 प्रतिशत तक डेयरी प्रोजेक्ट की लागत
2	ब्याज दर	2 प्रतिशत से 6 प्रतिशत प्रतिमाह
3	प्रोसेसिंग फीस	लोन राशि का 2 प्रतिशत
4	भुगतान अवधि	3 वर्षो से अधिक 7 वर्ष
5	ई0 एम0 आई0 विकल्प	मासिक या साप्ताहिक
6	प्री-क्लोजर फीस	0 शून्य

स्त्रोत्र: बैंक अधिकारियों से साक्षात्कार के अनुसार

बैंक ऑफ बड़ौदा

तालिका संख्या 04

क्रम0 स0	*विवरण*	*बैंक ऑफ बड़ौदा*
1	लोन की राशि	60000 अधिकतम 6 लाख रूपये
2	ब्याज दर	लेन आवश्यकतानुसार
3	निम्नलिखित संस्थाओं के लिए पेशकश	किसान, व्यक्ति, गैर सरकारी संगठन, स्वंय सहायता समूह और संयुक्त देयता समूह
4	भुगतान अवधि	3 महीने की मोस्टथोरियम पीरियड के साथ
5	मार्जिन	10 प्रतिशत
6	बिजनेस का आकार	न्यूनतम 2 से 10 लीटर दूध वाले जानवर

स्त्रोत्र: बैंक अधिकारियों से साक्षात्कार के अनुसार

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया

तालिका संख्या 05

क्र0 स0	*विवरण*	*सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया*
1	ऋण की राशि	प्रोजेक्ट और भुगतान की क्षमता के आधार पर
2	ब्याज दर	8.05 प्रतिशत
3	भुगतान अवधि	3 वर्ष से 7 वर्ष
4	निरीक्षण फीस	0 रूपये से 1 लाख तक
5	सिक्योरिटी रूपये 100000 तक लोन के लिए	पशुधन और अन्य परि सपत्तियों को गिरवी रख सकते है
6	सिक्योरिटी गारंटी	शून्य

स्त्रोत्र: बैंक अधिकारियों से साक्षात्कार के अनुसार

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया द्वारा पेश की जाने वाली सेंट्रल डेयरी योजना का लाभ किसानों, व्यक्तियों, कंपनियों, समाजों, फर्म, गैर सरकारी संगठन आदि द्वारा लिया जाता है-

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया

तालिका संख्या 06

क्रम0 स0	*लोन राशि*	*ब्याज दर*
1	50,000 रूपये से अधिक 5 लाख तक	8.05 प्रतिशत से शुरू
2	5 लाख रूपये अधिक 5 लाख से अधिक	8.55 प्रतिशत से शुरू
3	25 लाख रूपये से अधिक	9.55 प्रतिशत से शुरू
4	50 लाख रूपये से अधिक	9.55 प्रतिशत से शुरू

स्त्रोत्र: बैंक अधिकारियों से साक्षात्कार के अनुसार

दुग्ध संघ की 201 समितियां से प्रतिदिन करीब 13,000 लीटर का उत्पादन किया जाता है। इसमें से 9,000 से अधिक महिला दुग्ध उत्पादन में शामिल है। कोरोना महामारी के दौरान जहां विभिन्न क्षेत्रों से दूध की आपूर्ति प्रभावित हो रही थी लेकिन उत्पादन में लगातार बढ़ोतरी जारी रही। मंहगाई को देखते हुए संस्था की ओर से दूध खरीद की दरों में 3 साल में 6 रूपया प्रति लीटर की बढोतरी की गई है। जनपद चम्पावत में औसतन लगभग 20,000 लीटर ग्रामीण क्षेत्रों से दुग्ध जाता है।

तालिका संख्या 07

वर्ष	सदस्य	उत्पादन
2015-2016	8736	9576
2016-2017	8766	10532
2017-2018	8926	12242
2018-2019	9296	12124
2019-2020	-	12350

स्त्रोत: दुग्ध सहकारी संघ चम्पावत के अनुसार

महिला डेयरी में बढ़ रही महिलाओं की सहभागिता तालिका संख्या 08

वर्ष	*समिति*	*सदस्य*	
उत्पादन			
2015-2016	65	2054	2671
2016-2017	67	2114	2830
2017-2018	69	2174	2967
2018-2019	71	2234	3236
2019-2020	73	2264	3410

स्त्रोत: दुग्ध सहकारी संघ चम्पावत के अनुसार

निष्कर्ष

सहकारिता ने दुग्ध उत्पादको में श्वेत क्रान्ति के प्रति निष्ठा व जागरूकता के अलावा रोजगार के सुलभ साधन भी उपलब्ध कराये है। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों से हो रहे पलायन पर भी रोक लगाई जा सकती है। भारत में कृषि के बाद सहकारिता पर आधारित दुग्ध व्यवसाय ही एक ऐसा व्यवसाय है जो देश की ग्रामीण जनसंख्या को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने में सक्षम है। यह व्यवसाय भूमिहीन मजदूरों, सीमान्त एवं छोटे कृषकों को अपनी अजीविका हेतु जो पूर्णतया कृषि पर निर्भर नही रह सकते है उनको आय के अन्य अतिरिक्त साधन जुटाने में सहायक होता है। अत: ग्रामीण क्षेत्रों मे जनसंख्या के आर्थिक विकास एवं सामाजिक उत्थान से इन व्यवसाय का प्रत्यक्ष संबंध है। दुग्ध सहकारितायें किसानो की सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति का साधन है। विषेषत: भूमिहीन, छोटी जोत के कृषकों हेतु यह पूर्ण व्यवसाय एवं अधिक रोजगार देने में सक्षम है। क्योकि भारत जैसे जनसंख्या बाहुल्य देशों में जहा भूमि उपखण्डों में विभाजित हो चुकी है जिससे कृषि के साथ-साथ व्यवसाय आवश्यक है। कृषि के साथ-साथ पशुपालक द्वारा डेरी उद्योग के कई अन्तनिर्हित लाभ भी है। डेरी उद्योग से कृषि के लिए पशु व खाद की पूर्ति होने के साथ-साथ नकद आय के स्त्रोत भी उपलब्ध होते है।

दूध क्रान्ति ऑपरेशन फ्लड भारत की योजना हैं जिसमें कि भारत में दूध की कमी को दूर किया जा सके। दूध कृषि डेयरी, फार्मिंग, डेयरी उद्योग या कृषि की एक श्रेणी है। यह पशुपालन से जुड़ा एक बहुत लोकप्रिय उद्यम है। जिसके अन्तर्गत दुग्ध उत्पाद,

उसकी प्रसंस्करण और खुदरा बिक्री के लिए किये जानें वाले कार्य आते है। कुछ दशकों से डेयरी क्षेत्र चम्पावत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा के रूप में उभरा है, हालांकि दूध और दुग्ध उत्पादकों की उच्च कीमत में अस्थिरता को देखते हुए डेयरी क्षेत्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सबसे कमजोर क्षेत्रों में से एक था इसलिए किसान और उपभोक्ता दोनों के लिए डेयरी क्षेत्रों के महत्व को देखते हुए इस संकट को दूर करने और क्षेत्र के संमग्र विकास हेतु संमग्र ढॉचा स्थापित करने के लिए विभिन्न स्तर पर कार्य करने की आवश्यकता है। भले ही डेयरी सहकारी समितियों द्वारा दूध के कुल विपणन योग्य अधिशेष में लगभग 40 प्रतिशत का योगदान किया जाता है, लेकिल वह भूमिहीन या छोटे किसानों की पसन्द का विकल्प नही है। ऐसा इसलिए क्योकि समितियों द्वारा खरीदा गया 75 प्रतिशत से अधिक दूध अपने न्यूनतम मूल्य पर है।

सरकार की ओर से मिनी डेयरी योजना चलाई जा रही है जिसके लिए दुग्ध उत्पादन करने वालों को अनुदान दिया जाता है। प्रगतिशील किसानों और शिक्षित बेरोजगारों को इस योजना के तहत 50 प्रतिशत अनुदान एवं 50 प्रतिशत बैंक लोन पर पांच दुधारू मवेशी के लिए लोन दिया जाता है। पहले चरण में 3 मवेशी और 6 माह बाद में 3 मवेशी की खरीद के लिए पैसा बैंक के माध्यम से दिया जाता है। योजना लागत में मवेशी की खरीद के लिए 1,75,000 रूपये शेड निर्माण के लिए 45,000 रूपये तथा तीन वर्षो के लिए मवेशी के बीमा प्रीमियम के लिए 20,000 रूपये लाभार्थी को दिये जाते है।

वर्तमान में दुग्ध उत्पादन के लिए केन्द्र सरकार की ओर से कई योजनाओं को संचालित किया जा रहा है। इसके लिए दुग्ध उत्पादकों को कई प्रकार के अनुदान दिये जाते है। डेयरी इन्टरप्रेन्यारिशिप डेवलपमेंट स्कीम के तहत उत्पादन करने वाले को वित्तीय सहयोग किया जाता है। यह वित्तीय सहयोग छोटे किसानों तथा भूमिहीन मजदूरों को प्रमुख रूप से दिया जाता है। डेयरी इन्टरप्रेन्यारिशिप डेवलपमेंट स्कीम भारत सरकार की योजना है जिसके तहत डेयरी से जुड़े दूसरे व्यवसायों को प्रोत्साहित करने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है, तथा छोटे डेयरी फार्म खोलने, उन्नत नस्ल की गाय अथवा भैस की खरीद के लिए रूपया 5,00,000 की सहायता की जाती है यह 10 दुधारू मवेशी की खरीद पर दिया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के लिए दुधारू मवेशी योजना के तहत लाभ देने का काम किया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत दुग्ध उत्पादन करने वाले कास्तगारों को 50 प्रतिशत अनुदान पर दो दुधारू मवेशी दिये जाते है। योजना लागत में जानवरों की खरीद के लिए 70,000 रूपये दिये जाते है। इसके अलावा मवेशियों को रखने के लिए गौशाला के निमार्ण के लिए 15,000 रूपये भी दिये जाते है व साथ में 3 वर्षो के लिए जानवरों का बीमा कराया जाता है इसके प्रिमियम के भुगतान लिए 8,000 रूपये की सहायता दी जाती है।

- दूध का व्यवसाय करने के लिए सर्वप्रथम आप दूध को किसी अन्य दूग्ध कम्पनी में भेज सकते है। भारत में ऐसी बहुत सारी कंपनियां है जो किसानों से दूध उत्पाद को खरीदती है। इसके अलावा दूध को शहर में बड़े बड़े होटलों, रेस्टारेंट, हलवाई की दुकानों में सप्लाई कर सकते है। इसके लिए आप अन्य किसी को रोजगार भी प्रदान कर सकते है जो दूध को शहर ले जाकर बेच सके और अपना रोजगार चला सकें। इसके लिए आवश्यक है कि आप अपने दूध की गुणवत्ता को बनाएं रखें क्योकि आपके प्रोडक्ट की गुणवत्ता पर ही आपके व्यवसाय की पहचान व व्यवसाय की वृद्वि निर्भर करती है।
- आप अपने नाम से कम्पनी खोलकर अपने ब्रांड से दूध को मार्केट में भेज सकते है। इस तरीके से आपको मेहनत ज्यादा करनी पडेग्गी। अपनी कंपनी खोलकर आपको विपणन में भी ध्यान देना होगा। अपनी कंपनी में दूध के अलावा छाछ, दही, घी, मख्खन, पनीर का भी व्यापार कर सकते है।

जो दुग्ध उत्पादन क्षेत्र समितियों के लिए आरक्षित है वर्तमान में उसमें निजी व्यवसायियों का प्रवेश हो रहा है। उसे रोकने के लिए संघों के साथ-साथ राज्य सरकार को भी कानून बनाकर निजी व्यवसायियों का समितियों के कार्यक्षेत्र में प्रवेश को पूर्णत: निषिद्व किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

- स्मारिका, डेरी विकास विभाग, उत्तराचंल, 2004.
- सहकारी समिति अधिनियम 2003 एवं 2004.
- वार्षिक प्रतिवेदन डेरी विभाग, हल्द्वानी, उत्तराचंल.
- खरे, अर्चना, जुलाई 1997, "डेरी उद्योग में महिलाओं का योगदान"-कुरूक्षेत्र प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.
- शाह, उमरावल रेवरी 1995, जनसंख्या नियंन्त्रण में ग्रामीण सहकारी समितियों की भूमिका.
- जलाल, आर0 एस0 1992, "कोआपरेटिव फिलोसोफी इन इण्डियन सिनोरियो, कोओपरेटिव पर्सपैक्टिव", ए जर्नल ऑफ कोआपरेटिव मैनजमैन्ट. वैकुण्ठ मेहता नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ कोओपरेटिव मैनजमैन्ट पूना.
- उत्तराचंल सहकारी समिति, अधिनियम (2003 एवं सहकारी समिति नियमावली 2004), उत्तरांचल राज्य सहकारी विपणन संघ लि0 देहरादून.
- डबराल, शिव प्रसाद (1969), "उत्तराखण्ड के पशुचारक", विरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल.
- तनेजा, आर0पी0 तथा वी0पी0एस0 पुरी (1977), "इंडिया डेरी", रिडिल अनरेविल्ड डेरी इंडिया.

छत्तीसगढ़ के मानव विकास सूचकांक का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० रश्मि पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, अरूण प्रताप सिंहदेव शासकीय महाविद्यालय, शंकरगढ़ जिला-बलरामपुर (छ0ग0)

मानव विकास सूचकांक की अवधारणा का प्रतिपादन वर्ष 1990 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) से सम्बद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक तथा अन्य सहयोगी अर्थशास्त्री ए.के.सेन तथा सिंगर हंस ने किया।मानव विकास सूचकांक (Human Development Index -HDI) का अंतर्निहित सिद्धांत बहुत ही सरल है: राष्ट्रीय विकास को केवल प्रति व्यक्ति आय से नहीं, बल्कि स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्धियों से भी मापा जाना चाहिये।[1] HDI तीन मूल आयामों में प्रत्येक देश की उपलब्धियों का समग्र पैमाना है-

- प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI) द्वारा मापा जाने वाला जीवन स्तर।
- जन्म के समय जीवन प्रत्याशा द्वारा मापा गया स्वास्थ्य।
- वयस्क आबादी के बीच शिक्षा के वर्षों के हिसाब से शिक्षा का स्तर तथा बच्चों के लिये स्कूली शिक्षा के अपेक्षित वर्ष।

यह सूचकांक समय के साथ विकास के स्तर में आए बदलावों का अनुसरण करने तथा विभिन्न देशों के विकास स्तरों की तुलना को संभव बनाता है। मानव प्रगति में पिछड़ने वाले समूहों की पहचान करने तथा मानव विकास के वितरण की निगरानी हेतु मानव विकास के अन्य आयामों की पहचान करने के लिये अतिरिक्त सूचकांक विकसित किये गए हैं-

- सभी क्षेत्रों तथा मानव विकास समूहों में HDI दर में वृद्धि हो रही है लेकिन इन दरों में काफी भिन्नता देखी गई है।
- दक्षिण एशिया 1990-2017 की दौरान 45.3 प्रतिशत की दर से सबसे तेजी से विकास करने वाला क्षेत्र था, इसके बाद पूर्वी एशिया एवं प्रशांत क्षेत्र तथा उप-सहारा अफ्रीका क्षेत्र का स्थान आता है जिनकी विकास दर इन्हीं वर्षो के दौरान क्रमश: 41.8 प्रतिशत एवं 34.9 प्रतिशत थी।
- लेकिन पिछले एक दशक में लगभग सभी क्षेत्रों में HDI विकास की दर भी धीमी हुई है, इसका कारण 2008-2009 के वैश्विक खाद्य, वित्तीय तथा आर्थिक संकट को माना जाता है।
- वैश्विक HDI रैंकिंग में शीर्ष पाँच देश नॉर्वे (0.953), स्विट्जरलैंड (0.944), ऑस्ट्रेलिया (0.939), आयरलैंड (0.938) और जर्मनी (0.936) हैं।
- रैंकिंग में निचले में स्थान हासिल करने वाले देश- बुरुंडी (0.417), चाड (0.404), दक्षिण सूडान (0.388), मध्य अफ्रीकी गणराज्य (0.367) और नाइजर (0.354) हैं।
- 2012 और 2017 के बीच सबसे अधिक वृद्धि आयरलैंड की रैंकिंग में हुई है, जो 13 स्थान ऊपर पहुँच गया है।

मानव विकास में असमानता -

मानव विकास में असमानता का होना लैंगिक अंतराल, समूह की पहचान, आय में असमानता एवं स्थान के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, साख और प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच में असमान अवसर को दर्शाता है-

- यह उग्रवाद को बढ़ावा दे सकता है तथा समावेशी एवं सतत् विकास के पक्ष को दुर्बल कर सकता है।
- यह सामाजिक सामंजस्य तथा संस्थानों एवं नीतियों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।
- आय में असमानता, शिक्षा एवं जीवन प्रत्याशा के बाद समग्र असमानता में सबसे अधिक योगदान देती है।
- असमानता का लेखा-जोखा तैयार करते समय जब वैश्विक HDI का मान 0.728 से गिरकर 0.582 हो जाता है, तो यह उच्च मानव विकास श्रेणी से मध्यम मानव विकास श्रेणी तक की गिरावट को दर्शाता है।
- महिलाओं (0.705) का औसत HDI मान पुरुषों (0.749) की तुलना में 5.9 प्रतिशत कम है।
- कई देशों में अधिकांशत: असमानता का कारण महिलाओं की कम आय तथा शिक्षा प्राप्ति है। उल्लेखनीय है कि यह असमानता निम्न मानव विकास वाले देशों में व्यापक है जहाँ पुरुषों की तुलना में महिलाओं का HDI मान पुरुषों की तुलना में 13.8 प्रतिशत कम है।
- उच्च मानव विकास वाले देशों में जीवन प्रत्याशा 79.5 वर्ष है जबकि निम्न मानव विकास वाले देशों में जीवन प्रत्याशा औसतन 60.8 वर्ष है।
- मानव विकास में उपलब्धियों को न केवल मात्रा के संदर्भ में बल्कि गुणवत्ता के संदर्भ में भी व्यक्त किया जाना चाहिये, क्योंकि किसी निरपेक्ष संख्या में वृद्धि निश्चित रूप से गुणवत्ता में वृद्धि को संदर्भित नहीं करती है।
- 1990 के दशक के बाद से स्कूल में औसत वर्षों की संख्या में भारी वृद्धि के बावजूद यह बेहतर क्षमताओं के रूप में बहुत कम मालूम पड़ता है। यह विषमता कम मानव विकास वाले देशों में तीक्ष्ण है।

बहु-आयामी गरीबी सूचकांक (MPI)

- भारत का MPI 0-121 है
- वर्ष 2015-16 में किये गए सर्वेक्षण के अनुसार, भारत की 27.5 आबादी बहु-आयामी गरीबी की गिरफ्त में थी।
- 20-33 प्रतिशत के अभाव स्कोर के साथ 19.1% भारतीय आबादी को कईप्रकार की अभावों से ग्रस्त होने का जोखिम था।
- 8.6% लोग गंभीर बहुआयामी गरीबी में जी रहे हैं।
- भारत में 21.9% लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं, जिसमें 21.2% लोग एक दिन में 1.90 डॉलर से भी कम कमाते हैं।[2]

जनसंख्या प्रवृत्ति

- वर्ष 2017 में भारत की अनुमानित जनसंख्या 1339.2 मिलियन थी तथा वर्ष 2030 तक इसके 1513 मिलियन तक पहुँचने का अनुमान है।
- 2005-10 के दौरान औसत वार्षिक विकास दर 1.5% थी तथा 2015-2020 के दौरान इसमें 1.1% की मामूली गिरावट दर्ज की गई।
- भारतीय आबादी का 33.6% हिस्सा शहरी क्षेत्रों में निवास करता है जिसमें अधिकांशत: हिस्सा युवा आबादी का है।
- इसमें से कार्यशील जनसंख्या (15-64 वर्ष) 886.9 मिलियन तथा 5 वर्ष से कम उम्र वालों की संख्या 119.8 मिलियन है।
- भारत की कुल आबादी में से केवल 80 मिलियन आबादी ही ऐसी है जिनकी उम्र 65 वर्ष से अधिक है।
- वर्ष 2015 में भारतीय आबादी की औसत उम्र 26.7% पर पहुँच गई, जिसके और अधिक घटने की उम्मीद है।
- वर्ष 2015-20 के दौरान भारत की कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate-TFR) 2.3% रहने की उम्मीद है।[3]

स्वास्थ्य परिणाम

- 0-5 महीने की आयु के केवल 54.9% शिशुओं को स्तनपान कराया जाता है जो कि कम-से-कम 6 महीने की उम्र तक बच्चे के सर्वोत्तम विकास, वृद्धि तथा स्वास्थ्य के लिये बहुत आवश्यक है।

- एक वर्ष की उम्र वाले 9% बच्चों में DPT (डिप्थीरिया, पोलियो और टेटनस) तथा 12þ बच्चों में खसरे का टीकाकरण नहीं हुआ है।
- 5 वर्ष से कम उम्र के 37.9% बच्चे ठिगनेपन (stunting) के या तो मध्यम या गंभीर स्वरुप से पीड़ित पाए गए।
- प्रति हजार जीवित बच्चों के जन्म पर शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate-IMR) 34.6 है, जिसे 2030 तक प्रति हजार 12 के स्तर पर लाया जाना है।
- 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में शिशु मृत्यु दर 43 प्रति हजार है तथा इसे 2030 तक 25 प्रति हजार पर लाया जाना है।
- भारत में महिला एवं पुरुष मृत्यु दर क्रमशः प्रति हजार 139 और 212 है।
- भारत एक उष्णकटिबंधीय देश है जिसमें जलवायु संबंधी महामारियों जैसे- डेंगू, मलेरिया आदि की संभावना लगातार बनी रहती है। 2016 में मलेरिया से पीड़ित होने वालों की संख्या 18.8 व्यक्ति प्रति हजार थी।
- WHO के अनुसार, भारत तपेदिक (TB) से सबसे अधिक ग्रस्त होने वाला देश बना हुआ है, जहाँ प्रति लाख जनसंख्या पर TB पीड़ितों की संख्या 211 है।
- भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद का 3.9% स्वास्थ्य पर खर्च करता है।

कार्य एवं रोजगार

- रोजगार प्राप्त जनसंख्या का अनुपात (15 या उससे अधिक आयु वर्ग की कुल आबादी में कार्यरत लोगों का कुल प्रतिशत) 51.9% है।
- श्रम बल भागीदारी दर (योग्य तथा काम करने के इच्छुक लोग) 53.8% है।
- कुल नियोजित जनसंख्या में से 42.7% लोग कृषि क्षेत्र में तथा 33.5% सेवा क्षेत्र में कार्यरत हैं।
- कुल श्रम शक्ति में से 3.5% लोग बेरोजगार हैं जिसमें युवाओं का अनुपात (15-24 वर्ष की आयु) 10.5% हैं।
- 27.5% युवा न तो नौकरी करते हैं और न ही स्कूल जाते हैं।
- कुल नियोजित लोगों में से 42.9% कार्यरत लोग गरीब हैं, अर्थात वे दिन में 3.10 डॉलर से भी कम पर काम कर रहे है।
- वैधानिक पेंशन योग्य आयु की आबादी वाले केवल 24.1% ही पेंशन प्राप्त कर रहे हैं, जिस कारण वृद्धावस्था में जी रहे लोगों का एक बड़ा हिस्सा दयनीय स्थिति में जीवन यापन कर रहा है।[4]

भारत एवं पडोसी राज्यों के साथ छत्तीसगढ़ के मानव विकास सूचकांक का तुलनात्मक अध्ययनः

जनगणना 2001 की तुलना में छत्तीसगढ़ के सभी राज्यों के आय सूचकांक में सुधार हुआ है। जनगणना 2001 में महाराष्ट्र राज्य का आय सूचकांक सबसे अधिक है उसके बाद क्रमशः आध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा झारखण्ड एवं सबसे कम उत्तरप्रदेश हैं। लेकिन 2011 की जनगणना में यह क्रम परिवर्तित होकर सबसे अधिक महाराष्ट्र आध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़ झारखण्ड, ओडिशा, मध्यप्रदेश, एवं सबसे कम उत्तरप्रदेश का हैं। यदि राष्ट्रीय औसत से तुलना करें तो छत्तीसगढ़ का आय सूचकांक जनगणना 2001 एवं 2011 दोंनों ही वर्षो में राष्ट्रीय औसत से कम हैं।[5]

स्वास्थ सूचकांक

जनगणना 2001 में छत्तीसगढ़ एवं पडोसी राज्यों में सबसे अधिक स्वास्थ्य सूचकांक महाराष्ट्र राज्य का है जबकि सबसे कम झारखण्ड, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ का है जबकि जनगणना वर्ष 2011 में सबसे अधिक स्वास्थ सूचकांक महाराष्ट्र राज्य का तथा सबसे कम मध्यप्रदेश राज्य का हैं। यदि राष्ट्रीय औसत से तुलना करें तो छत्तीसगढ़ का स्वास्थ्य सूचकांक जनगणना 2001 एवं 2011 दोनो ही वर्षो में राष्ट्रीय औसत से कम हैं।

शिक्षा सूचकांक

जनगणना वर्ष 2001 में छत्तीसगढ़ के पडोसी राज्यों में सबसे अधिक साक्षतरता सूचकांक महाराष्ट्र राज्य का हैं उसके बाद क्रमशः छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश आधप्रदेश, उड़ीसा उत्तरप्रदेश एवं सबसे कम झारखण्ड राज्य का हैं। जबकि 2011 में यह कम परिवर्तित होकर सबसे अधिक साक्षरता सूचकांक महाराष्ट्र राज्य का उसके बाद क्रमशः मध्यप्रदेश, उडीसा, छत्तीसगढ़ आध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा सबसे कम झारखण्ड राज्य की है। यदि राष्ट्रीय औसत से तुलना करें छत्तीसगढ़ का साक्षरता सूचकांक राष्ट्रीय औसत से कम हैं।

HDR 2018 का मूल्यांकन (मानव विकास रिपोर्ट)

- पूरे राष्ट्र में विकास संकेतकों में उल्लेखनीय वृद्धि देखी जा सकती है लेकिन मानव विकास की गुणवत्ता में ह्रास देखा गया है।
- प्रगति रैखिक या प्रत्याभूत (Guaranteed) नहीं है, तथा संकट एवं चुनौतियाँ इसक लाभ या वृद्धि को पलट सकती हैं।
- महिलाओं और पुरुषों के मध्य अपनी पूर्ण क्षमताओं के उपयोग को लेकर काफी असमानताएँ हैं।
- पर्यावरणीय ह्रास तथा जलवायु परिवर्तन को हल किये बिना मानव विकास की प्रगति को बनाए नहीं रखा जा सकता है।[6]

सुझाव

- छत्तीसगढ़ में नागरिकों के लिए रोजगार की व्यवस्था, करनी चाहिए क्योंकि जब उन्हें वेतन एवं रोजगार मिलता है, तो वह धीरेॐधीरे शिक्षा, स्वास्थ्य और अपनी सामाजिक स्थिति को सुधारने का प्रयास करते है। अतः सरकार को ऐसे योजनाएँ या रोजगार पुरूष करना चाहिए जिसमें अधिक से अधिक श्रम लगे।
- छत्तीसगढ़ में बहुत ही आय असमानता पाई जाती है। अतः सरकार को आय एवं रोजगार के वितरण में समानता लानी चाहिए ताकि पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों का भी तेजी से विकास हो सके।
- छत्तीसगढ़ सरकार को, रोजगार बढ़ाने के भौतिक आधारिक संसाधनों, वित्तीय संसाधन आदि प्रदान करना चाहिए ताकि आर्थिक अवसर अवरूद्ध न हो।
- सरकार को चाहिए कि वह नागरिकों के लिए शिक्षा, उनके प्रशिक्षण एवं स्वास्थ्य सुविधाओं पर भारी मात्रा में निवेश करे ताकि छत्तीसगढ़ उच्च मानव सूचकांक की श्रेणी में आ सके। केरल इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।
- पुरूषों और महिलाओं को विकास का बराबर अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। ऐसा माना जाता है यदि महिलाओं को पर्याप्त सुविधाएँ दी जाए तो वह परिवार के शिक्षा, जीवन स्तर सुधार एवं मानव विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है।

भविष्य की प्रगति की निगरानी के लिये मानव विकास की गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित करना महत्त्वपूर्ण है। संघर्ष के चक्र को तोड़ने, कमजोरियों को कम करने तथा प्रगति को बनाए रखने के लिये मानव सुरक्षा हेतु निवेश आवश्यक है। मानव विकास को वास्तव में टिकाऊ बनाने के लिये दुनिया को व्यापार के सामान्य दृष्टिकोण से हटकर सतत् उत्पादन एवं उपभोग के तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है। छत्तीसगढ़ सरकार की जनसंख्या नीति में सुधार कर ऐसी नीति बनानी चाहिए जिससे शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का तेजी से विकास हो और मृत्युदर में कमी, जीवन प्रत्याषा में वृद्धि एवं जन्मदर में कमी लाया जा सके। इस राह में कठिनाईयाँ बहुत है और काम चुनौतीपूर्ण है। इसी प्रकार जब हम मानव विकास सूचकों को शामिल करने की आरंभिक कठिनाईयों पर विजय पा लेंगे तब मानव विकास सूचकांक का निर्माण भी एक आम बात हो जाएगी।

संदर्भ

1. अमिताभ ''मानव विकास रिपोर्ट एक नजर'' योजना जुलाई ;2000.
2. प्रो. लाल एस.एन., डॉ. एस के. लाल-भारतीय अर्थव्यवस्थ सर्वेक्षण तथा विष्लेषण, पृष्ठ-13
3. राज कपिला, उमा कपिला-भारतीय अर्थनीति, पृष्ठ-56।
4. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2017.
5. वाजपेयी डॉ. शारदा, ''छत्तीसगढ़ में मानव संसाधन का मात्रात्मक एवं गुणात्मक विश्लेशण, शोध, उपक्रम, अंक 30 अक्टूबर 2017 छत्तीसगढ़ शोध संस्थान, 370 सुंदरनगर रायपुर (छत्तीसगढ़)
6. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2018 नई दिल्ली।

अफगान-शांति समझौता एवं चुनौतियाँ

सुबोध मणि त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग,
श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय बलिया (उ0प्र0)

प्रस्तावना-

अफगानिस्तान 'एशिया की हृदयस्थली के रूप में सर्वविदित है। क्योंकि यह दक्षिण से लेकर केंद्रीय एशिया तक विविध और अलग-अलग दिखने वाली सभ्यता को एकसूत्र में पिरोता रहा है। दुर्भाग्यवश, महत्वपूर्ण स्थिति में बसे होने के कारण यह लगातार विभिन्न साम्राज्यों का शिकार बनता रहा क्योंकि ये सारी ताकतें पूरे एशिया में अपना हुकूमत फैलाना चाहती थी। इन ताकतों की अपाधापी और परस्पर संघर्ष ने अफगानिस्तान को कहीं का न छोड़ा और इसे तहस नहस कर दिया। इसके बाद यह साम्राज्य गृह युद्ध की चपेट में आ गया और इससे अन्यान्य आतंकवादी समूहों ने अपने सिर उठाने शुरू कर दिए।

कुछेक क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ताकतों ने इस स्थिति का फायदा उठाना चाहा। व देश के भीतर उत्पन्न परिस्थितियों ने बाहरी प्रभाव दिखाने शुरू किए, तब दुनिया का ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ, और ठोस कदम उठाने की कवायद शुरू हो गई। सन् 2001 से न जाने कितने तरह के शांति प्रक्रियाओं की पहल शुरू हुई। विभिन्न महाशक्तियों ने अफगानिस्तान में शांति और अस्थिरता कायम करने के लिए पहल किया। लेकिन अफसोस की बात यह है कि नाम मात्र की शांति की पहल ही असरकारी रही। बहरहाल, इसके पहले कि हम इस बेअसर होने के कारणों की जॉच करें, यह समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि शांति के विभिन्न एवम् विविध निहितार्थ क्या है?

शांति समझौते की आवश्यकता-

सन् 2001 में अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा सहायता बल (ISAF) ने अफगानिस्तान में भ्रमण किया। लेकिन इन्होंने विरोधियों के शक्ति को गलत तरीके से और कम करके आंका। इन लोगों ने सोचा कि ये तालिबान को तहस-नहस कर सकते है क्योंकि इनके सैन्य शक्ति में दम है। सायोगिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने महसूस किया कि शांति केवल सैन्य शक्ति के बल पर नहीं हासिल की जा सकती। अगस्त सन् 2015 में अमेरिकी राष्ट्रपति श्री डोनाल्ड ट्रंप ने कहा कि सैन्य प्रयास करने के बाद शायद यह संभव हो सकें कि अफगानिस्तान राजनीतिक समाधान निकल आएं। लेकिन कोई नहीं जानता कि कब क्या हो जॉय।[1] और यह तो पूरी तरह स्पष्ट था कि नाटो की सेनाएँ अफगानिस्तान में अनिश्चित काल के लिए नहीं टिक सकती। इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय समुदाय भी अफगानिस्तान के आर्थिक बोझ और दुश्वारियों को झेल नहीं सकता है। अंतर्राष्ट्रीय सैन्य बल केवल एक निष्चित हद तक ही आतंकवादियों के ठिकानों का सफाया कर सकती है। लेकिन जब तक तालिबान और अन्य आतंकी संगठनों को पाकिस्तान के तरफ से समर्थन मिलता रहेगा, इन आतंकवादी घुसपैठियों को अफगानिस्तान से निर्मूल नहीं किया जा सकता है।[2] अफगान युद्ध पर व्यय करने के सिलसिले में कभी सन् 2008 से आनी शुरू हुई, जब वैश्विक स्तर पर आर्थक संकट गहराने लगा और इसने लगभग हर देश की अर्थव्यवस्था की चूलें हिला दी। इसके बाद यूरोप हो या फिर अमेरिका, हर तरफ युद्ध पर बेतहाशा खर्च करने के मसले पर सवालिया निशान उठने शुरू हो गए। यहाँ तक कि सन् 2012 के राष्ट्रपति चुनाव में अमेरिका ने समुद्र पार के युद्ध के विराम की इच्छा जाहिर कर दी।[3]

दो ऐसी समस्याएँ हैं जो अफगानिस्तान को तार-तार किए जा रही है। निश्चित रूप से ये आतंकवाद और नशीले दवाओं के अवैध व्यापार से जुड़े मुद्दे हैं। सन् 2007 में 1,952 मासूम लोगों ने आतंकवाद की वजह से अपनी जान से हाथ धो दिए। सन् 1997 की तुलना में आतंकवाद से शिकार लोगों की संख्या में मामूली वृद्धि हुई। सन् 2009 में अफगानिस्तान में आतंकवादी घटनाओं की वजह से 2,779 मौतें हुई। सन् 2010 में ये आतंकवादी घटनाओं की वजह से मौतों की संख्या 3,205 हो गई। सन् 2011 में यह संख्या बढ़कर 3,353 हो गई। सन् 2012 में इन आतंकी घटनाओं की वजह से मौतों की संख्या में कमी आई क्योंकि 2,632 लोग ही इसके शिकार हो पाए। सन् 2013 में फिर इन घटनाओं में इजाफा हो गया और मौतों की संख्या 3,111 तक पहुंच गई। सन् 2014 का वर्ष अफगानिस्तान के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इस साल रिकार्ड तौर पर सर्वाधिक मौतों के समाचार सामने आए। 4,505 लोगों ने अपनी जानें गंवा दी।[4] अफगानिस्तान में सर्वाधिक मात्रा में अफीम का उत्पादन होता है, जो विश्वस्तर पर कुल अफीम का 90 प्रतिशत है।

इन नशीली दवाओं के व्यापार में प्रशासन तंत्र और भू-स्वामियों का एक तंत्र शामिल है। इनके मिले जुले प्रयासों से अफीम का उत्पादन होता है। अफगान सरकार के सामने भी भ्रष्ट अधिकारियों और भू-स्वामियों से निपटने में मुश्किलें आ रही है। ये अफीम के व्यापारी अधिकारियों को रिश्वत देकर किसी भी मुश्किल से पार पा जाते है। इस अफीम उत्पादन से प्राप्त धन से तालिबानियों और अन्य उग्रवादी गुटों को शह मिलता है। बढ़ते हुए भ्रष्टाचार की वजह से सरकार लोगों का समर्थन खो बैठती है और इस तरह विधिक तंत्र से निर्मित सरकार का पूरा ढाँचा धराशायी हो जाता है।[5] संयुक्त राष्ट्र संघ के ड्रग और अपराध कार्यालय से सन् 2012 में जारी रिपोर्ट के अनुसार अफीम का उत्पादन अफगानिस्तान के उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों में विशेष रूप से हो रहा है। इसके व्यापार में अफगानी राजनीतिज्ञ और सैन्य अधिकारी लिप्त है। एक अनाधिकारिक आंकलन के अनुसार, सन् 2005 से सन् 2008 के मध्य तालिबानियों ने ड्रग व्यापार से 350 मिलियन यू0एस0 डालर से 650 मिलियन यू0एस0 डालर अर्जित किया।[6] अफगानिस्तान में मुख्य अफीम उत्पादक क्षेत्र हिलमंड, कांधार, उरूजगन, डे कुंडी, जाबुल, फराह और बड़घीस है। किसान अफीम उत्पादन से काफी धन कमा सकते हैं और इसीलिए यहां पर किसी अन्य फसल के अपेक्षा अफीम के फसल लगाने पर लोग ज्यादे जोर देते हैं। इससे जाहिरतौर पर सूती का उत्पादन गिरावट का शिकार हो गया है। इसका नकारात्मक प्रभाव अफगानिस्तान की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। अफीम के नशे के शिकार व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जा रही हैं जिससे कई तरह की सामाजिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई।

अफगान राष्ट्रीय सेना सशक्तीकरण

मुख्य कारण कि क्यों अफगान सरकार एक मजबूत सेना स्थापित करने में फेल हो चुकी है, व्याप्त भ्रष्टाचार सुरक्षा कर्मियों के लिए कम तनाख्वाह और अनुलाभ है। जो देश की सुरक्षा ढाँचा को कमजोर कर रहा है। इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान में सेना और पुलिस नस्ल और गुट के नाम पर बँट चुकी है। सुरक्षा को केवल पुलिस और सेना इकाईयों की निर्माण करने के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। लेकिन लोगों की समस्याओं को उचित तरीके से सुलझाने के द्वारा जनता के विश्वास को जीतने के साधन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस परिस्थिति में भारत और ई0यून के साथ अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय एक मजबूत अफगान राष्ट्रीय सेना (ANA) को स्थापित करने में सहयोग करने के लिए अपना हाथ बढ़ा चुकी है। स्थापना के साथ अफगानिस्तान अपनी खुद की जमीन पर शांति और स्थिरिता स्थापित करेगा। जैसा कि अफगानिस्तान 30 मिलियन की जनसंख्या रखता है, ईराक से बड़ा देश, ज्यादात्तर पहाड़ी क्षेत्र वाला और तीन दशाब्दियों से ज्यादा युद्ध से निकला हुआ, को आंतरिक स्थिरिता कायम करने के लिए बड़ी सेना और पुलिस की आवश्यकता है। लेकिन पुलिस और सेना के खर्च को चुकाने के उनके लिए बहुत कठिन है। टोकियों सम्मेलन में अफगान नेशनल सेना को 70,000 तक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा स्वीकृति दिया गया और उनको एक सम्मानजनक तनख्वाह प्रदान करने का निर्णय लिया गया। यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की सहायता का 50 प्रतिशत अफगान सेना की तनख्वाह पर खर्च किया जा रहा है। नई दिल्ली अफगान पुलिस अधिकारियों को प्रशिक्षण देने पर सहमत होने के अतिरिक्त पश्चिमी सेना के प्रस्थान के बाद अफगानिस्तान की आंतरिक सुरक्षा की सहायता करने के लिए ANA की क्षमता बढ़ावा की ओर एक मुख्य योजना शुरू कर चुकी है। एक सक्षम अफगान सेना और पुलिस स्थापित करने के लिए इसे कई बिलियन डालर और लम्बे समय तक अन्तर्राष्ट्रीय सहायता की आवश्यकता है। यही वह जगत है जहाँ ई0यू0 और भारत अफगान पुलिस के नागरिक सुरक्षा को कुशल बनाने पर सहमत हुए। नवम्बर 2018 में 61 राष्ट्रीय सरकार से अधिकारी और कई गैर-सरकारी और नागरिक समाज संगठनों के प्रतिनिधि स्विट्जर लैंड के जेनेवा में अफगानिस्तान पर एक मंत्रीय स्तरीय सम्मेलन के लिए एकत्रित हुए। यूनाइर्टड नेशंन्स एसिसटेन्स

मिशन - अफगानिस्तान (UNAMA) और अफगानिस्तान की सरकार के द्वारा सह-आयोजित, UNAM के शब्दों में "सम्मेलन शांति के लिए अवसरों और चुनावों के लिए गति बनाये रखने में और उन्नति और प्रतिबद्धता प्रदर्शित करने में सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए एक महत्वपूर्ण क्षण था।" इस उद्देश्य और लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए ई0यू0 और भारत दोनों युद्ध से विनाश हुआ अफगान के राजनीति और समाज में उन्नति लाने का प्रयास कर रहे है। साफ-सुथरा और स्वतंत्र चुनाव की उसी पृष्ठभूमि के साथ एक नागरिक सरकार की स्थापना अफगान राजनीति की मुख्य आवश्यकता है। करजई और गानी के द्वारा नेतृत्व की हुयी दोनों सरकार एक परिपक्व तरीके से अफगान राष्ट्र राज्य बनाने का प्रयास किये। लेकिन जड़ में विभाजित समाज के कारण असफल हो गये। इसलिए आधार में एक सहमति आधारित राष्ट्र-राज्य को स्थापित करने के द्वारा अफगान सरकार की सहायता करना समय की आवश्यकता है।

9/11 के उपरांत सन् 2014 तक की शांति प्रक्रियाएँ-

अफगानिस्तान में छः वर्षों तक लगातार गृहयुद्ध चला। परिणामतः देश तबाह हो गया। युद्ध में शामिल देशों में तालिबान और अलकायदा रहे जो काबुल में सरकार के खिलाफ संघर्ष करते रहे क्योंकि उनकी ख्वाहिश थी कि शरीयत कानून लागू किए जॉय। पहले तो यह लड़ाई इनके ही दायरे तक सिमटी रही। लेकिन बाद में भी आरोप लगे कि अलकायदा ने अफगानों की धरती से अमेरिका पर हमले किए।[7] बहरहाल, 11 सितम्बर, 2011 को घटी घटनाओं ने सकारात्मक एवम् नकारात्मक प्रभाव पैदा किया। नकारात्मक प्रभाव ये रहा कि कइयों की जानें गई। कई अमेरिकी ान से हाथ धो बैठे। लेकिन सकारात्मक प्रभाव यह रहा कि अमेरिका ने अफगानिस्तान में क्रूर तालिबान के शासन का अंत कर दिया। इसके बाद कई तरह की शांति पहल शुरू की गई जिसमें कई स्तर के राजनयिकों ने हिस्सा लिया।

अफगानिस्तान में शांति प्रक्रिया के समक्ष चुनौतियाँ-

अफगानिस्तान के भीतर सबसे बड़ी चुनौती एवम् समस्या तालिबान स्वयं ही है जो किसी भी शांति प्रक्रिया को बाधित करते रहते हैं। इसके पीछे कई कारण है। पहला कारण तो यह है कि तालिबान पिछले काफी समय से विदेशी लड़ाकों की भर्ती करता रहा है, जो समूचे क्षेत्र में कोलाहल पैदा करते रहे हैं क्योंकि इनको भाषा, संस्कृति और तालिबान के संघर्ष के सही मंतव्य का तो कोई पता ही नहीं है। दूसरे तालिबानियों को कई क्षेत्रीय एवम् अंतर्राष्ट्रीय स्तर के राजनयिकों एवम् राजनेताओं के द्वारा इस्तेमाल किया जा रहा है जो अफगानिस्तान में अपने कुत्सित उद्देश्य को पूरा करने में जुटे हुए है। ये क्षेत्रीय ताकतें रूस, ईरान और चीन है जिन्होंने इस क्षेत्र में अपने प्रभाव का इस्तेमाल करना शुरू किया है। इसी प्रतिस्पर्धा में रूस और ईरान जैसे देशों ने कभी कभार तालिबान को समर्थन भी किया है ताकि अमेरिका को इस क्षेत्र से खदेड़ा जा सकें या फिर इनके प्रभाव को कम किया जा सकें। इसके बदले में अमेरिका ने भी तालिबान को शह देना शुरू किया ताकि रूस को इस क्षेत्र से निष्कासित किया जा सकें। अतः इन सारी परिस्थितियों को देखकर यही लगता है कि अफगानिस्तान में दीर्घकालिक या चिरस्थाई शांति संभव नहीं है।

इसके अलावे और भी कारण है जो अफगानिस्तान की शांति प्रक्रिया में बाधक है। उदाहरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय नामकों के द्वारा शुरू की गई नीतियां भी अभी तक कारगर नहीं है। कुछेक शांति प्रक्रिया ही कुछ कदम आगे तक चल पाई है, वरना अधिकतर शांति प्रक्रिया जन्म लेते ही दम तोड़ गई। इसके लिए अनेक कारण जिम्मेदार है। इनमें अफगानिस्तान के विशेष संदर्भ में शांतिकी अवधारणा का स्पष्ट न होना भी प्रमुख कारण है। इसके अलावे परस्पर तालमेल का अभाव, पहल लेने की इच्छा शक्ति का कमजोर होना और इन सारी शांति प्रक्रिया में नागरिक समाज की अनुपस्थिति भी कई कारणों में एक है जो शांति प्रक्रिया को अंजाम तक नहीं पहुंचने दे रही है।

निष्कर्ष-

बहरहाल, अन्य देश भी अफगानिस्तान शांति वार्ता में किसी न किसी तरह व्यस्त रहे क्योंकि अफगानिस्तान की स्थिरता का दारोमदार उनके ऊपर रहा है। इनको किसी भी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। अफगानिस्तान के समाज की व्यवस्था इतनी जटिल है और फिर इसके इतने अधिक भागीदार देश हैं कि सबको शांति प्रक्रिया में शामिल करना अपरिहार्य हो गया है। अफगानिस्तान में जो भी आंतरिक राजनीतिक घटनाएं घट रही है, उसका निष्चित रूप से प्रभाव पड़ोसी देशों पर पड़ता है। विश्व

राजनीति भी इससे अछूती नहीं रह सकती है। इसलिए सारी पार्टियों को इस पर अपना मत प्रकट करना चाहिए। अफगानिस्तान की उलझने बहुपक्षीय है, इसमें अफगान भी शामिल है। इसकी जटिलता की वजह से कोई भी अकेले ही अपने दम पर समस्या का समाधान करने के लिए तैयार नहीं होता है। इसलिए सभी लोगों के विचारों पर ध्यान देना चाहिए। अन्यथा यदि कोई भी महत्वपूर्ण पक्ष या महत्वपूर्ण व्यक्ति छूट गया तो इस देश के साथ द्विपक्षीय संबंध भी बुरे ढंग से प्रभावित होंगे और अफगानिस्तान का भविष्य नष्ट हो जाएगा।

संदर्भ

1 Clayton, Thomas (2018), "Momentum Toward Peace Talks in Afghanistan?". http://fas.org/sgp/crs/row/IN10935.pdf
2 Dubbins, Names and Shinn, James (2011), "Afghanistan: Guidelines for a Peace Process", Survival, pp. 5-12 https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/00396338.2011.604194
3 Pickring, Thomas (2012), "Negotiating Afghanistan When? With Whome' About What?", https://cco.ndu.edu/Portals/96/Documents/prism/prism_3-1/prism_21-36_pickering.pdf
4 The Statistical Portal (2014), "Number of Deaths in Afghanistan Due to Terrorism between 2007 and 2014", http://www.stasta.com/statistics/251408/number-of=deaths-in-afghanistan-due-to-terrorism/
5 Sohail, Asadullah (2010), "The Consequences of Opium Cultivation on Social Life of People in Afghanistan", https://asadullahsohail.wordpress.com/2010/09/04/the-consequences-of-opium-cultivation-on-social-life-of-people-in-afghanistan-2/
6 Jonnes, Jennifer Quigley (2012), "The High Costs of Afghanistan's Opium Economy: Why the World Needs to Pay Attention to this Growing Crisis", https://www.americanprogress.org/issues/security/news/2012/06/08/1175/the-high-costs-of-afghanistans-opium-economy/
7 PBS News Hour (2011/2014), "A Historical Timeline of Afghanistan", [Online: Web] ccessed on 28 April 2019, URL: https://www.pbs.org/newshour/politics/asia-jan-june 11-timeline-afghanistan

स्थानीय प्रशासन के नवीन आयाम एवं चुनौतियाँ

डॉ० श्याम किशोर उपाध्याय

सह आचार्य (लोक प्रशासन), महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान

सारांश

लोकतंत्र का सही अर्थ होता है सार्थक भागीदारी और उद्देश्यपूर्ण जवाबदेही। जीवंत और मजबूत स्थानीय शासन भागीदारी और जवाबदेही दोनों को सुनिश्चित करता है। सरल शब्दों में गाँव और जिला स्तर के शासन को ही स्थानीय स्वशासन कहते हैं। स्थानीय स्वशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि यह देश के आम नागरिकों के सबसे करीब होती है और इसलिये यह लोकतंत्र में सबकी भागीदारी सुनिश्चित करने में सक्षम होती है।

स्थानीय सरकार का क्षेत्राधिकार एक विशेष क्षेत्र तक सीमित होता है और यह उन्हीं लोगों के लिये कार्य करती है जो उस क्षेत्र विशेष के निवासी हैं। स्थानीय सरकार राज्य सरकार के अधीन आती है और उसका नियंत्रण और पर्यवेक्षण भी राज्य सरकार द्वारा ही किया जाता है। सही मायनों में स्थानीय सरकार का अर्थ है, स्थानीय लोगों द्वारा स्थानीय मामलों का प्रबंधन। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि स्थानीय समस्याओं और जरूरतों की समझ केंद्रीय या राज्य सरकारों की अपेक्षा स्थानीय लोगों को अधिक होती है।

प्रस्तुत शोधलेख स्थानीय प्रशासन के नवीन आयाम एवं चुनौतियाँ का विश्लेषण करता है।

मूलशब्दः भारत, केन्द्र व राज्य सरकार, स्थानीय प्रशासन, पंचायतीराज, विकेन्द्रीकरण, नवीन आयाम, चुनौतियाँ

परिचय

आमतौर पर सभी संघीय ढाँचों में द्विस्तरीय शासन प्रणाली शामिल होती है, पहले स्तर पर केंद्र या संघ सरकार एवं दूसरे स्तर पर राज्य या प्रांतीय सरकार। परंतु इस नजरिये से भारतीय संघात्मक ढाँचे को कुछ अलग माना जाता है, क्योंकि भारतीय संविधान में त्रिस्तरीय शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है:

- शीर्ष पर केंद्र सरकार
- मध्य में राज्य सरकार, और
- अंत में स्थानीय सरकार (इसमें ग्रामीण पंचायतें और नगरपालिकाएँ शामिल हैं)

भारत में केन्द्र व राज्य सरकारों के अतिरिक्त, तीसरे स्तर पर एक ऐसी सरकार है। जिसके सम्पर्क में नगरों और ग्रामों के निवासी आते हैं। इस स्तर की सरकार को स्थानीय स्वशासन कहा जाता है, क्योंकि यह व्यवस्था स्थानीय निवासियों को अपना शासन-प्रबन्ध करने का अवसर प्रदान करती है। इसके अन्तर्गत मुख्यतया ग्रामवासियों के लिए पंचायत और नगरवासियों के लिए नगरपालिका उल्लेखनीय हैं। इन संस्थाओं द्वारा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा स्थानीय समस्याओं के समाधान के प्रयास किये जाते हैं। व्यावहारिक रूप में वे सभी कार्य जिनका सम्पादन वर्तमान समय में ग्राम पंचायतों, जिला पंचायतों, नगर पालिकाओं, नगर निगम आदि के द्वारा किया जाता है, वे स्थानीय स्वशासन के अन्तर्गत आते हैं।

स्थानीय सरकार की प्रणाली को अपनाने का सबसे प्रमुख उद्देश्य यही है कि इसके माध्यम से देश के सभी नागरिक अपने लोकतांत्रिक अधिकारों को प्राप्त कर सकते हैं। विदित है कि लोकतंत्र की सफलता सत्ता के विकेंद्रीकरण पर निर्भर करती है और स्थानीय स्वशासन के माध्यम से ही शक्तियों का सही विकेंद्रीकरण संभव हो पाता है।

पंचायती राज

लोकतांत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज वह माध्यम है, जो शासन को सामान्य जनता के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यर्थाथ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है। पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय जनता की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अत: इस अर्थ में भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है।

देश में ग्रामीण विकास की दिशा में सर्वप्रथम गरीबों एवं ग्रामीण विकास के शुभचिंतक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के जन्म दिवस के शुभ अवसर पर 2 अक्टूबर 1952 को भारतीय शासन ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारंभ किया। 2 अक्टूबर 1952 को राष्ट्रीय विस्तार सेवा का शुभारंभ किया गया। ग्रामीण भारत में निवास कर रहे गरीबों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जनवरी 1957 में स्व. बलवंतराय मेहता समिति का गठन किया गया। 24 नवंबर 1957 को इस समिति ने अपना प्रतिवेदन केन्द्र शासन को प्रस्तुत किया। समिति के शिफारिसों को स्वीकृति प्रदान करते हुए इस संस्थाओं का नाम पंचायती राज रखा गया।

स्वतंत्रता के पश्चात् पंचायती राज की स्थापना को भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को साकार करने लिए महत्वपूर्ण कदम था। राजस्थान को भरत का प्रथम राज्य होने का गौरव प्रदान किया गया है जहां सर्वप्रथम पंचायती राज की स्थापना की गई। 2 सितंबर 1959 को राजस्थान विधान मंडल ने सर्वप्रथम 'पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम 1959' पारित किया गया। गांधी जी के जन्म दिवस के शुभ अवसर पर 2 अक्टूबर 1959 को स्व. पं जवाहर लाल नेहरू के करकमलों के द्वारा पंचायती राज का उद्घाटन नागौर जिले में गया। वर्तमान में पंचायती राज प्रणाली लगभग सभी राज्यों में चल रही हैं। कहीं एक-स्तरीय, कहीं द्वि-स्तरीय, तो कहीं त्रि-स्तरीय, पंचायती राज प्रणली चल रही है। कुछ राज्य जैसे आंध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, इत्यादि राज्यों में त्रि-स्तरीय पंचायती राज प्रणाली चलायी जा रही है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमश: ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन किया गया है। वास्तव में त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज की संरचना में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों का गठन किया गया है, जिसे पंचायती राज के नाम से संबोधित किया गया है। पंचायती राज व नियोजन का उद्देश्य प्रारंभ से लेकर आज तक विकास योजनाओं से संबंधित करना एवं प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाना है। 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया गया। इस समिति ने जिला स्तर पर जिला परिषद खंड व ग्राम स्तर के बीच मंडल पंचायत गठित करने का सुझाव दिया।

ग्रामीण विकास के लिए स्थानीय संस्थाओं की संरचना, अधिकार व कार्यों को संविधान में स्थापना के लिए 1989, 1990 व 1991 में विधेयक प्रस्तुत किया गया, लेकिन कुछ कारणों से अधिनियम पारित नहीं हो सके। 22 दिसम्बर 1992 को लोक सभा व 23 दिसम्बर 1992 को राज्य सभा से पंचायती राज अधिनियम पारित होकर राज्यों में अनुसमर्थन हेतु भेजा गया। 20 अपैल 1993 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के पश्चात् 23 अपैल 1993 से संपूर्ण भारतवर्ष में 73 वां संविधान संशोधन लागू किया गया। संविधान के सातवें संशोधन 1956 की धारा 29 द्वारा मूल भाव 9 का लोप कर 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 की धारा द्वारा 24 जनवरी 1993 से संस्थापित किया गया। भारतीय संविधान के भाग 9 में अनुच्छेद 243 -243(16) तक पंचायती राज के विषय में उल्लेख किया गया है। 74 वां संविधान संशोधन अधिनियम के अनुच्छेद 243 य घ में जिला योजना के लिए समितियों के गठन का प्रावधान किया गया है।

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता एवं महत्त्व

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता एवं महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है

1. लोकतान्त्रिक परम्पराओं को स्थापित करने में सहायक- भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। उसके माध्यम से शासन-सत्ता वास्तविक रूप से जनता के हाथ में चली जाती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्वशासन-व्यवस्था, स्थानीय निवासियों में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न करती है।

2. भावी नेतृत्व का निर्माण- स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ भारत के भावी नेतृत्व को तैयार करती हैं। ये विधायकों और मन्त्रियों को प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण प्रदान करती हैं, जिससे वे भारत की ग्रामीण समस्याओं से अवगत होते हैं। इस प्रकार ग्रामों में उचित नेतृत्व का निर्माण करने एवं विकास कार्यों में जनता की रुचि बढ़ाने में स्थानीय स्वशासन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

3. जनता और सरकार के पारस्परिक सम्बन्ध- भारत की जनता स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के माध्यम से शासन के बहुत निकट पहुँच जाती है। इससे जनता और सरकार में एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त दोनों में सहयोग भी बढ़ता है, जो ग्रामीण उत्थान एवं विकास के लिए आवश्यक है।

4. **स्थानीय समाज और राजनीतिक व्यवस्था के बीच की कड़ी**- ग्राम पंचायतों के कार्यकर्ता और पदाधिकारी स्थानीय समाज और राजनीतिक व्यवस्था के बीच की कड़ी के रूप में कार्य करते हैं। इन स्थानीय पदाधिकारियों के सहयोग के अभाव में नतो राष्ट्र के निर्माण का कार्य सम्भव हो पाता है और नही सरकारी कर्मचारी अपने दायित्व का समुचित रूप से पालन कर पाते हैं।

5. प्रशासकीय शक्तियों का विकेन्द्रीकरण- स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ केन्द्रीय व राज्य सरकारों को स्थानीय समस्याओं के भार से मुक्त करती हैं। स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के माध्यम से ही शासकीय शक्तियों एवं कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में शासन-सत्ता कुछ निर्धारित संस्थाओं में निहित होने के स्थान पर, गाँव की पंचायत के कार्यकर्ताओं के हाथों में पहुँच जाती है। भारत में इस व्यवस्था से प्रशासन की कार्यकुशलता में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

6. नागरिकों को निरन्तर जागरूक बनाये रखने में सहायक- स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ लोकतन्त्र की प्रयोगशालाएँ हैं। ये भारतीय नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा तो देती ही हैं, साथ ही उनमें नागरिकता के गुणों का विकास करने में भी सहायक होती हैं।

7. लोकतान्त्रिक परम्पराओं के अनुरूप- लोकतन्त्र का आधारभूत तथा मौलिक सिद्धान्त यह है कि सत्ता का अधिक-से-अधिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ इस सिद्धान्त के अनुरूप हैं।

8. नौकरशाही की बुराइयों की समाप्ति- स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में नागरिकों की प्रत्यक्ष भागीदारी से प्रशासन में नौकरशाही, लालफीताशाही तथा भ्रष्टाचार जैसी बुराइयाँ उत्पन्न नहीं होती हैं।

9. प्रशासनिक अधिकारियों की जागरूकता- स्थानीय लोगों की शासन में भागीदारी के कारण प्रशासन उस क्षेत्र की आवश्यकताओं के प्रति अधिक सजग तथा संवेदनशील हो जाता है।

भारत में स्थानीय सरकार की समस्याएँ

- स्थानीय सरकारों को दिया गया धन उनकी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं होता। कई बार राज्यों द्वारा स्थानीय निकायों के कामकाज के प्रति रुचि की कमी के कारण उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- अक्सर देखा गया है कि चुनावों को स्थगित करने से लेकर राज्य वित्त आयोगों और जिला योजना समितियों के गठन में विफलता तक राज्य सरकारें भिन्न-भिन्न प्रावधानों का उल्लंघन करती रही हैं।
- कर्मचारियों की कमी और बुनियादी ढाँचे की कमी जैसे मुद्दे सदैव ही स्थानीय निकायों के कामकाज में बाधा डालते हैं।

- पंचायतों और नगर पालिकाओं की वित्तीय शक्तियों का कुशलतापूर्वक उपयोग अब तक संभव नहीं हो पाया है। बहुत कम ग्राम पंचायतें बाजार, मेलों, संपत्ति और व्यापार आदि पर कर लगाती हैं।
- अधिकांश राज्य सरकारों ने स्थानीय सरकार के समानांतर ही अन्य निकायों की स्थापना कर दी है, ताकि वे स्थानीय सरकार के क्षेत्राधिकार तक पहुँच प्राप्त कर सकें।
- उदाहरण के लिये हरियाणा ने पंचायतों के कार्यात्मक क्षेत्र में प्रवेश करने के लिये मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक ग्रामीण विकास एजेंसी की स्थापना की है।
- वर्तमान में स्थानीय सरकार हेतु भारत में कुल सार्वजनिक व्यय का केवल 7 प्रतिशत ही खर्च किया जाता है, जबकि यूरोप में यह 24 प्रतिशत, उत्तरी अमेरिका में 27 प्रतिशत और डेनमार्क में 55 प्रतिशत है।

कितनी सफल है स्थानीय सरकार की अवधारणा?

स्थानीय सरकार की व्यवस्था ने 25 से भी अधिक वर्ष पूरे कर लिये हैं और इस अवधि को इस बात की जाँच करने के लिये सही समय माना जा सकता है कि यह व्यवस्था अब तक कितनी सफल रही है और कितनी असफल। विश्लेषक मानते हैं कि एक ओर यह व्यवस्था सफल भी रही है और दूसरी ओर असफल भी। इसकी सफलता और असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हम इसे किन उद्देश्यों के आधार पर जाँच रहे हैं। यदि इस व्यवस्था का उद्देश्य जमीनी स्तर पर सरकार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की एक और प्रणाली का विकास करना था तो स्थानीय सरकार की अवधारणा इस उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्णत: सफल रही है, परंतु इसके विपरीत यदि हमारा लक्ष्य एक बेहतर शासन प्रदान करना था तो हम इसमें पूर्णत: विफल रहे हैं। कई जानकार मानते हैं कि आज स्थानीय सरकारें अशक्त और अप्रभावी हो गई हैं और उन्हें ऊपरी स्तर की सरकारों के पक्ष समर्थक एजेंट होने तक ही सीमित कर दिया गया है।

सुधार हेतु कुछ उपाय

- शहरी क्षेत्रों में ग्राम सभाओं और वार्ड समितियों को पुनर्जीवित किया जाना चाहिये, ताकि सही मायनों में भारतीय लोकतंत्र के अंतर्गत समाज के अंतिम व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।
- जुलाई 2018 में प्रस्तुत ग्रामीण विकास पर स्थायी समिति की रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि राज्य सरकारों को महिलाओं सहित पंचायत प्रतिनिधियों की भागीदारी के लिये ग्राम सभा की बैठकों में कोरम का प्रावधान करना चाहिये।
- पर्याप्त मानव पूंजी के माध्यम से स्थानीय सरकारों के संरचनात्मक ढाँचे को मजबूत करने की आवश्यकता है। पंचायतों के कामकाज की निरंतरता सुनिश्चित करने के लिये कुशल कर्मचारियों की भर्ती और नियुक्ति की दिशा में गंभीर प्रयास किये जाने चाहिये।
- केंद्र व राज्य सरकारों की तरह स्थानीय सरकारों के लिये भी बजट का प्रावधान होना चाहिये, जिससे वे अपने राजस्व और व्यय को प्रबंधित कर सकें एवं उनकी कार्य प्रणाली और अधिक संगठित हो सके।
- स्थानीय सरकारों में भाग लेने वाले लोगों को उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये और उन्हें जनहित की सेवा हेतु अभिप्रेरित किया जाना चाहिये।
- इनके कार्यों का सामाजिक ऑडिट (Social Audit) भी किया जाना चाहिये, जिससे उनका उत्तरदायित्व सुनिश्चित हो सकें।
- महिलाएँ मानसिक एवं सामाजिक रूप से अधिक-से-अधिक सशक्त बनें जिससे निर्णय लेने के मामलों में आत्मनिर्भर बन सके।
- पंचायतों का निर्वाचन नियत समय पर राज्य निर्वाचन आयोग के मानदंडों पर बिना क्षेत्रीय संगठनों के हस्तक्षेप के होना चाहिये।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्थानीय स्वशासन लोकतन्त्र का आधार है। यह लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) की प्रक्रिया पर आधारित है। यदि प्रशासन को जागरूक तथा अधिक कार्यकुशल बनाना है तो उसका प्रबन्ध

एवं संचालन स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप स्थानीय संस्थाओं के द्वारा ही सम्पन्न किया जाना चाहिए। संवैधानिक गारंटी की कोई भी राशि स्थानीय निकायों के सुचारू और सफल कामकाज को सुनिश्चित नहीं कर सकती है, जब तक कि उन्हें कार्य सौंपे नहीं जाते और उन्हें राज्यों के हस्तक्षेप के बिना स्वतंत्र रूप से कार्य करने की अनुमति नहीं दी जाती है। यह कहना आवश्यक हो गया है कि, शासन एवं जनता को अपनी जिम्मेदारियों एवं जबावदारियों के सक्रियता से निभाने का प्रयास करें। जब तक जनता व शासन अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन नहीं करेगी, तब तक गांधी जी के सपनों को साकार करने की कल्पना अधूरी रहेगी। अत: आवश्यक है कि जनता व शासन अपनी भूमिका को समझे।

सन्दर्भ

1. डी. डी. पंत, भारत में ग्रामीण विकास, कालेज बुक डिपो जयपुर 2000.
2. डॉ. नीलिमा देशमुख, लोकतांत्रिकरण शोध-पत्र दैनिक भारत में, नवभारत, नागपुर, 22 अगस्त 2001.
3. डॉ. नांदेकर, महाराष्ट्र में पंचायती राज, सागर प्रकाशन, पूणे. 2000.
4. अवस्थी महेश्वरी, भारत में पंचायती राज, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा. 2002.
5. बामेश्वर सिंह, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर. 2000
6. डी.डी. बसु, भारत का संविधान, बाधवा प्रकाशन दिल्ली, 2000
7. अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा. 2000.
8. ग्रामीण विकासाची दिशा अणि पंचायती राज प्रशासन, यशदा पुणे,

जिला भोजपुर में महिला साक्षरता दर के परिवर्तनशील स्थानिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण

अनिल कुमार शर्मा

शोध छात्र, पी.जी. भूगोल विभाग. वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा, बिहार

सारांश: भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ महिला साक्षरता में केरल जैसा उच्च साक्षरता वाला राज्य है तो वही दूसरी तरफ राजस्थान जैसे निम्नतम महिला साक्षरता वाला राज्य भी है। भारत में महिला साक्षरता के स्थानिक वितरण में प्रादेशिक असमानता पायी जाती है। यही असमानता भोजपुर जिला विभिन्न प्रखंडो में भी दृष्टिगोचर होती है। प्रस्तुत शोध पत्र भोजपुर जिला के महिला साक्षरता के अध्ययन से सम्बंधित है। भोजपुर जिला में भी एक तरफ आरा जैसा उच्च महिला साक्षरता दर वाला प्रखण्ड हैं तो वही दूसरी तरफ संदेश जैसा निम्नतम साक्षरता दर वाला प्रखण्ड हैं। प्रस्तुत शोधपत्र का मूल उद्देश्य भोजपुर जिला में महिला साक्षरता दर के परिवर्तनशील एवं असमान वितरण प्रतिरूप का अध्ययन करना हैं। इस अध्ययन हेतु द्वितीयक आंकड़ो का प्रयोग किया गया है तथा आंकड़ो का विश्लेषण माध्य एवं मानक विचलन जैसे सांख्यिकीय विधियों द्वारा किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र निम्न,मध्यम एवं उच्च महिला साक्षरता स्तर वाले प्रखंडो की पहचान करता है तथा महिला साक्षरता के निम्न स्तर वाले प्रखंडो में साक्षरता स्तर उच्च करने हेतु जनजागरूकता पर विशेष बल देता हैं।

उल्लेखनीय परिभाषिक पदावली:- महिला साक्षरता, सामाजिक विकास, प्रादेशिक असमानता

1. प्रस्तावना: साक्षरता का शाब्दिक अर्थ है, अक्षर का ज्ञान होना। भारत में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अनुसार अगर कोई व्यक्ति अपना नाम लिखने और पढने की योग्यता हासिल कर लेता है तो उसे साक्षर माना जाता है। साक्षरता एक ऐसा साधन है जो समाज को एक असभ्य समाज से सभ्य समाज की ओर ले जाता है। साक्षरता अन्य जनसांख्यिकीय लक्षणों जैसे प्रवास, जन्मदर ,मृत्युदर इत्यादि को भी प्रभावित करता है। महिलाएं जो की किसी भी समाज के सामाजिक विकास की सूचक है, इनके विकास के बिना किसी भी राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं है तथा महिलाओं का विकास शिक्षा के विना सम्भव नहीं है। इसी लिए आज महिला साक्षरता पर राष्ट्रीय सामाजिक स्तर पर बहुत सारे प्रयास किये जा रहे है। विश्व के किसी भी देश में जब भी महिलाओं के दशा सुधारने के लिए आन्दोलन किये गये तो उसमे शिक्षा एवं साक्षरता को एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। 19वीं शताब्दी के भारतीय समाज सुधारकों का भी ऐसा ही विचार था किन्तु प्राचीनकाल में महिला शिक्षा का उद्देश्य सीमित रखा गया। प्राचीनकाल में महिला शिक्षा का उद्देश्य महिला को एक गृहणी (पत्नी एवं माता) के परम्परागत कर्तव्यों के कुशलतापूर्वक निर्वाह करने योग्य बनाना था। किन्तु अब परिस्थितियां बदल रही है। आज महिलाओं की मानवीय अधिकारों के सन्दर्भ में महिला शिक्षा को अनिवार्य समझा जाने लगा है, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा को ही महिला सशक्तिकरण का प्रमुख साधन माना गया है। शिक्षा के द्वारा ही आर्थिक जीवन के सभी क्षेत्रों में सामान रूप से महिलाओं की सहभागिता हो सकती है। महिलाओं की साक्षरता बच्चे को एक आदर्श नागरिक बनाने में आपेक्षाकृत सशक्त भूमिका निभाता है क्योंकी बच्चे सर्वप्रथम माँ के रूप में महिला के संपर्क में ही आते है और वही उनकी प्रथम पाठशाला होती है। अत:महिला साक्षरता स्वस्थ सामाजिक विकास हेतु अतिआवश्यक है। निश्चित रूप से साक्षरता सामाजिक विकास के साथ साथ प्रादेशिक असमानता के न्यूनीकरण हेतु भी अत्यन्त आवश्यक है। अधिक साक्षर प्रदेश निश्चित रूप से सम्पोषनीय विकास के पथ पर अग्रसर होता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य: प्रस्तुत शोधपत्र के निम्नलिखित उद्देश्य है-

(1) भोजपुर जिला में प्रखण्ड स्तर पर विगत जनगणना वर्ष 2001 में महिला साक्षरता के स्थानिक वितरण का अध्ययन करना।

(2) भोजपुर जिला में प्रखण्ड स्तर पर महिला साक्षरता के वर्तमान जनगणना वर्ष 2011 का स्थानिक वितरण का अध्ययन करना।

(3) भोजपुर जिला में प्रखण्ड स्तर पर विगत जनगणना वर्ष 2001 एवं वर्तमान जनगणना 2011 में महिला साक्षरता दर का तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दशकीय परिवर्तन के स्थानिक वितरण को प्रस्तुत करना।

3. विधितंत्र: प्रस्तुत शोध अध्ययन क्षेत्र भोजपुर है जो भारतवर्ष के बिहार राज्य में 25० 10′ से 24० 40′ उत्तरी अक्षांश तथा 83० 45′ से 84० 45′ पूर्वी देशांतर के मध्य अवस्थित एक जिला है। जिसका क्षेत्रफल 233729.15 हेक्टेयर है। तथा यह पटना प्रमण्डल के अंतर्गत आता है। प्रस्तुत शोध द्वितीयक आंकड़ो पर आधारित है, जिनका संग्रहण जनगणना रिपोर्ट 2001 एवं 2011 से किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र महिला साक्षरता दर के स्थानिक एवं कालिक वितरण को माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर निम्न, मध्यम एवं उच्च स्तरों में विभाजित कर विश्लेषण किया गया है।

4. पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन: जनसँख्या भूगोल में साक्षरता सम्बन्धी अध्ययनों में डेविस (1955) का नाम प्रमुख है जिन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि साक्षरता संक्रमण दर निम्न होने पर आर्थिक विकास दर मन्द होती है और साक्षरता संक्रमण दर तीव्र होने पर आर्थिक विकास दर भी तीव्र होती है। गोसल (1967) के अनुसार साक्षरता में स्थानिक विभेदन का कारण है कि वर्ण व्यवस्था में यह भावना विकसित हुई की शिक्षा तभी देनी चाहिए जब उसकी कार्यकारी आवश्यकता हो। गोल्डन (1968) ने साक्षरता विभेदन का उदभव का कारण प्रत्येक साक्षरता स्तर पीछे समाज की पूर्ण संस्थागत संरचना को माना है। कृष्ण एवं श्याम (1973) के अनुसार महिला साक्षरता दर में कमी का कारण है "महिला घरेलु कार्यो में संलग्न रहती है इसीलिए महिलाओं के लिए साक्षरता का कार्यकारी महत्व कम है। फलतरू इनकी साक्षरता पर कम ध्यान दिया जाता है"। विप्लव (2012) के अनुसार महिला पुरुष साक्षरता दर में अंतर का कारण "लड़कियों के साथ जन्म से ही भेद भाव किया जाने लगता है उसे विधालय से वंचित कर घरेलु कार्यो में लगा दिया जाता है और व्यवस्था की आड़ में विभेदीकरण का दौर शुरू हो जाता है।" शोधार्थी सुशील कुमार (2018) ने अपने शोध पत्र "साक्षरता के विकास में जनसंचार माध्यमों का योगदान में यह पाया की जिन जिन क्षेत्रो में जैसे-जैसे जनसंचार माध्यमों का विकास होता गया वैसे - वैसे उन क्षेत्रो में शिक्षा एवं साक्षरता का विकास होता गया । महिला साक्षरता सदैव से ही एक महत्वपूर्ण पक्ष रहा है जिसने शोधकर्ताओं को विशेषरूप से आकृष्ट किया है। नवीनतम अध्ययनों में, अंसारी एवं नसरीन (2014) द्वारा किया गया उत्तरप्रदेश के विभिन्न जिलों में महिला साक्षरता का स्तर महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त शर्मा एवं राय (2019) ने उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जिला में महिला साक्षरता के दशकीय परिवर्तन एवं स्थानिक विभिन्नताओं का अध्ययन किया। कुमार एवं रानी (2016) द्वारा साक्षरता में लैंगिक असमानताओं का अध्ययन भारत के चयनित राज्यों के जिला स्तर पर अध्ययन किया गया है। सिंह रुपदमन (2016) द्वारा भारत में महिला साक्षरता एवं आर्थिक विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया गया। अन्य अध्ययनों में सिंह चन्दन कुमार (2015) द्वारा भारत में महिला साक्षरता के प्रमुख मुद्दे एवं चुनौतियों का अध्ययन किया गया है। बिहार में साक्षरता दर और लिंगानुपात के सहसम्बंधात्मक एवं स्थानिक कालिक विषमताओं से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण अध्ययन इमाम साहीद(2020) द्वारा किया गया।

5. विवेचना: प्रस्तुत शोध पत्र की विवेचना तीन बिन्दुओं के अन्तर्गत पूर्ण किया गया है। प्रथम विन्दु के अंतर्गत विगत जनगणना वर्ष 2001 में प्रखण्ड स्तर पर महिला साक्षरता के स्थानिक वितरण का अध्ययन किया गया है, द्वितीय बिन्दु के अंतर्गत वर्तमान जनगणना वर्ष 2011 में प्रखण्ड स्तर पर महिला साक्षरता के स्थानिक वितरण का अध्ययन किया गया है तथा तृतीय बिन्दु के अंतर्गत वर्ष 2001 एवं वर्ष 2011 में प्रखण्ड स्तर पर महिला साक्षरता के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दशकीय परिवर्तन के स्थानिक वितरण को प्रस्तुत किया गया है।

5.1 भोजपुर जिला में विगत जनगणना वर्ष 2001 में महिला साक्षरता के स्थानिक वितरण: वर्ष 2001 में यहाँ कुल महिलाओं की संख्या 1,063,533 थी जिसमे कुल साक्षर महिलाओं की संख्या 358,825 तथा कुल निरक्षर महिलाओं की संख्या 704708 थी, अर्थात कुल महिला साक्षरता दर उस समय 41.8 प्रतिशत था। वर्ष 2001 में सर्वाधिक साक्षर महिलाओं की संख्या वाला प्रखण्ड आरा था जहाँ कुल साक्षर महिलाओं की संख्या 79551 थी अर्थात आरा में कुल महिला साक्षरता दर 56.2 प्रतिशत था इसके बाद

क्रमशः पीरो (32726), बड़हरा (29097), जगदीशपुर (28698), कोईलवर (26277), शाहपुर (25818), तरारी (24582), बिहिया (21289), उदवंतनगर (20799), अगिआवं (17025), सहार (15158), गड़हनी (12805), संदेश (12667), एवं सबसे कम साक्षर महिलाओं की संख्या वाला प्रखण्ड चरपोखरी (12333) था। (सारणी 1.1)

सारणी 1.1: जिला भोजपुर में महिला साक्षरता का स्थानिक वितरण (2001)

प्रखण्ड का नाम	*महिला साक्षर जनसंख्या*	*महिला निरक्षर जनसंख्या*	*महिला साक्षरता दर*
अगिआंव	17025	41630	36
आरा	79551	92229	56.2
बड़हरा	29097	62229	39.4
बिहिया	21289	45023	39.9
चरपोखरी	12333	28311	38.2
गड़हनी	12805	28733	38.6
जगदीशपुर	28698	72998	35.3
कोईलवर	26277	51764	41.9
पीरो	32726	66916	40.9
सहार	15158	33188	39
संदेश	12667	30415	36.6
शाहपुर	25818	61906	36.6
तरारी	24582	47108	42.4
उदवंतनगर	20799	42258	40.8
कुल	358825	704708	41.8

Source: Census of India, 2001

वर्ष 2001 में भोजपुर जिले में कुल महिला साक्षरता दर को माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर अति निम्न, निम्न, मध्यम एवं उच्च चार श्रेणियों में विभाजित किया जाये तो, निम्न या अतिनिम्न में समाहित 64.29 प्रतिशत वितरण के अंतर्गत जगदीशपुर, अगिआंव, संदेश, शाहपुर, चरपोखरी, गड़हनी, सहार, बड़हरा एवं बिहिया जैसे 9 प्रखण्ड आते है, मध्यम साक्षरता दर में समाहित, 29 प्रतिशत वितरण तरारी, पीरों, कोईलवर एवं उदवंतनगर जैसे चार प्रखण्ड तथा उच्च साक्षरता दर में समाहित मात्र 7 प्रतिशत वितरण के अंतर्गत एक प्रखण्ड आरा था। (सारणी 1.2)

सारणी 1.2: जिला भोजपुर में महिला साक्षरता स्तर (2001)

साक्षरता स्तर	*प्रखण्ड की संख्या*	*प्रतिशत वितरण*	*प्रखण्ड का नाम*
निम्न	9	64.29	जगदीशपुर, अगिआंव, संदेश, शाहपुर, चरपोखरी, गड़हनी, सहार, बड़हरा, बिहिया
मध्यम	4	28.57	तरारी, पीरों, कोईलवर, उदवंतनगर
उच्च	1	7.14	आरा
कुल	14	100	सम्पूर्ण भोजपुर

Source: Calculated by Research Scholar

5.2 भोजपुर जिला में वर्तमान वर्तमान जनगणना वर्ष 2011 में महिला साक्षरता का स्थानिक वितरण:

अध्ययन क्षेत्र भोजपुर जिला में कुल महिलाओं की संख्या 1298027 है। जिसमे 625665 महिलाये साक्षर तथा 672362 महिलाये निरक्षर है। महिला साक्षरता में आरा प्रथम स्थान पर है यहाँ कुल साक्षर महिलाओं की संख्या 122707 है। इसके बाद क्रमश: पीरो (58935), जगदीशपुर (57587), बड़हरा (52330), शाहपुर (48641), कोईलवर (45532), तरारी (42211), बिहिया (41651), उदवंतनगर (34648), अगिआवं (31263), सहार (24054), संदेश (22380), चरपोखरी (22017), एवं सबसे कम साक्षर महिलाओं की संख्या वाला प्रखण्ड गड़हनी (21709) है। (सारणी1.3)

सारणी 1.3: जिला भोजपुर में महिला साक्षरता का स्थानिक वितरण (2011)

प्रखण्ड का नाम महिला साक्षरता दर	*कुल साक्षर महिलाओं की संख्या*	*कुल निरक्षर महिलाओं की संख्या*	*कु ल*
अगिआवं	31263	39832	53.4
आरा	122707	94669	66.87
बड़हरा	52330	60159	56.04
बिहिया	41651	43745	58.62
चरपोखरी	22017	26745	54.83
गड़हनी	21709	27733	53.3
जगदीशपुर	57587	68117	55.21
कोईलवर	45532	50069	58.04
पीरो	58935	63370	57.88
सहार	24054	30124	53.95
संदेश	22380	29945	51.75
शाहपुर	48641	51728	58.06
उदवंतनगर	34648	40535	55.93
तरारी	42211	45591	58.04
कुल	625665	672362	58.03

Source: Census of India, 2011

भोजपुर जिला में कुल महिला साक्षरता दर 58.53 प्रतिशत है। कुल महिला साक्षरता दर को माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर अति निम्न, निम्न, मध्यम एवं उच्च चार श्रेणियों में विभाजित कर के इसका प्रतिशत वितरण निकाला जाये तो यहाँ महिला साक्षरता दर का 57 प्रतिशत वितरण अति निम्न या निम्न है जिसमे संदेश, गडहनी, अगियांव, सहार, चरपोखरी, जगदीशपुर, उदवंतनगर एवं बडहरा है तथा 36 प्रतिशत वितरण मध्यम है जिनमें पीरों, कोईलवर, तरारी, शाहपुर, बिहिया आदि प्रखण्ड है और 7 प्रतिशत वितरण उच्च महिला साक्षरता दर से सम्बंधित है जिसमें एक मात्र प्रखण्ड आरा है। कुल महिला साक्षरता दर में आरा प्रखण्ड सर्वोच्य स्थान पर है जहाँ कुल महिला साक्षरता दर 66.87 प्रतिशत है। (सारणी1.4)

सारणी 1.4: जिला भोजपुर में महिला साक्षरता का स्तर (2011)

साक्षरता स्तर	*प्रखण्ड की संख्या*	*प्रतिशत वितरण*	*प्रखण्ड का नाम*
अति निम्न	1	7.14	संदेश
निम्न	7	50	गडहनी, अगिआंव, सहार, चरपोखरी, जगदीशपुर, उदवंतनगर, बड़हरा

मध्यम	5	35.71	पीरों, कोईलवर, तरारी, शाहपुर, बिहिया
उच्च	1	7.14	आरा
कुल	14	100	

Source: Calculated by Research Scholar

5.3 भोजपुर जिला में महिला साक्षरता दर में दशकीय परिवर्तन का स्थानिक वितरण: जनगणना वर्ष 2001 एवं 2011 को तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो, जहाँ वर्ष 2001 में निम्न या अति निम्न साक्षरता दर की श्रेणी में जगदीशपुर, अगिआंव, संदेश, शाहपुर, चरपोखरी, गड़हनी, सहार, बड़हरा, बिहिया नामक नौ प्रखण्ड सम्मिलित थे जो वर्ष 2011 में घटकर सात प्रखण्ड हो गए जिसमे वर्तमान में गड़हनी, अगिआंव, सहार, चरपोखरी, जगदीशपुर, उदवंतनगर, बड़हरा सम्मिलित है। मध्यम महिला साक्षरता दर की श्रेणी में वर्ष 2001 में तरारी, पीरों, कोईलवर एवं उदवंतनगर नामक चार प्रखण्ड सम्मिलित थें, जो वर्ष 2011 में बढ़ कर पांच हो गए जिसमें वर्तमान में पीरों, कोईलवर, तरारी, शाहपुर, बिहिया प्रखण्ड सम्मिलित हैं। उच्च महिला साक्षरता दर में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ है, वर्ष 2001 की तरह वर्ष 2011 में भी आरा उच्च महिला साक्षरता दर वाला मात्र एक प्रखण्ड है। भोजपुर जिला में महिला साक्षरता दर में वर्ष 2001 से वर्ष 2011 के मध्य कुल दशकीय परिवर्तन 16.23 प्रतिशत हुआ है। दशकीय परिवर्तन के स्थानिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण करने से ज्ञात होता हैं कि भोजपुर जिला में महिला साक्षरता दर में अतिनिम्न या निम्न दशकीय परिवर्तन वाले प्रखण्ड आरा, उदवंतनगर, गड़हनी, सहार, संदेश, कोईलवर है एवं मध्यम दशकीय परिवर्तन वाले प्रखण्ड चरपोखरी, बड़हरा , पीरो, तरारी, अगिआंव, बिहिया है। महिला साक्षरता दर में उच्च दशकीय परिवर्तन वाले प्रखण्ड जगदीशपुर, शाहपुर है। संदेश एक ऐसा प्रखण्ड है जहाँ महिला साक्षरता दर भी निम्नतम है एवं दशकीय परिवर्तन दर भी निम्नतम ही है। इसके साथ साथ गड़हनी, सहार एवं उदवंतनगर भी ऐसा प्रखण्ड है जहाँ महिला साक्षरता दर निम्न है एवं दशकीय परिवर्तन भी निम्न ही हुआ है।

सारणी 1.5: महिला साक्षरता दर में दशकीय परिवर्तन का स्थानिक वितरण (2001-2011)

प्रखण्ड (प्रतिशत में)	*दशकीय परिवर्तन (प्रतिशत में)*	*प्रखण्ड*	*दशकीय परिवर्तन*
अगियांव	17.4	कोईलवर	16.14
आरा	10.67	पीरो	16.98
बड़हरा	16.64	सहार	14.95
बिहिया	18.72	संदेश	15.15
चरपोखरी	16.63	शाहपुर	21.46
गड़हनी	14.7	उदवंतनगर	13.53
जगदीशपुर	19.91	तरारी	17.24

6. उपसंहार: भोजपुर जिला में 8 प्रखण्ड ऐसे है जहाँ साक्षारता का स्तर निम्न है। विशेष रूप से नियोजन की आवश्यकता संदेश नामक प्रखण्ड को है। वर्तमान में आधे से अधिक प्रखण्ड अर्थात 8 प्रखण्ड इसी श्रेणी में आते है। उच्च साक्षरता रखने वाला सिर्फ एक प्रखण्ड है जो की आरा है। स्पष्ट है की जैसे - जैसे नगरीय केन्द्र से प्रखण्ड की दूरी बढ़ती जाती है वैसे वैसे शैक्षिक सुविधाओं के आभाव में साक्षरता का स्तर गिरता जाता है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि जन जागरूकता द्वारा महिला साक्षरता की महता को जन - जन में पहुंचाया जाए साथ ही उनको महिला शिक्षा एवं साक्षरता हेतु कार्यशील सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों एवं नितियों से भी अवगत कराया जाए ताकि महिला साक्षरता का मार्ग प्रशस्त हो सके और संदेश, गड़हनी, अगिआंव, सहार, चरपोखरी, जगदीशपुर, उदवंतनगर, बड़हरा जैसे प्रखण्ड निम्न स्तर से मध्यम की ओर तथा पीरों, कोईलवर, तरारी, शाहपुर, बिहिया अपने मध्यम स्तर से उच्च साक्षरता स्तर की ओर अग्रसर हो सके।

Referenssces :

- Ansari, S. N. and Nasreen, N. (2014). Status of Female Literacy in Various Districts of Uttar Pradesh, *International Journal of Education &Literacy Studies*, 2(2), pp. 24-30.
- Davis, K. (1955). *Social and Demographic Aspects of Economic Development in India in Simoson Kuznets, et al.(ets), Economic, Growth : Brazil , India, Japan* , Duke University Press, Durham, pp. 263-315.
- Gosal, G. H. (1967). Regional Aspects of Rural Literacy in India, *Transactions of Indian Council of Geographers*, 4, pp. 3.
- Golden, H. (1968). Literacy, *International Encyclopaedia if the Social Sciences*, Macmillan Company and free press, 9, pp.416.
- Imam, S.(2020). A Study of Correlation and Spatio-Temporal Variation in Literacy Rate and Sex Ratio in Bihar, *International Journal of Science and Research(IJSR)*, 9(11),pp.803-816.
- Krishna, G. and Shyam, M. (1973). Spatial Perspective on Progress of Female Literacy in India: 1907-71, *Pacific Viewpoint,* 14, pp.204.
- Kumar, N.K. and Rani, R. (2016). Gender Disparity in Literacy: Districts Level Evidence from Selected States of India, *Educational Quest: An Int. J. of Education and Applied Social Sciences,* 7(3), pp. 243-254.
- Sharma ,V.K. and Rai, V.K. (2019). Decadal Changes and Spatial Variations in Female Literacy in Faizabad District, Uttar Pradesh, *NGJI, An International Peer-Reviewed Journal NGSI-BHU,* 65(4), pp.420-430.
- Singh, C.K, (2015). Women's Literacy in India: Issues and Challenges, *Global, Journal of Interdisciplinary Social Sciences*, 4, pp. 41-44.
- Singh, R.(2016). Female Literacy and Economic Development in India, *Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities,* 8(2), pp. 64-70.
- विप्लव (2012). भारत में महिला मानवाधिकार ,राहुल पब्लिशिंग हॉउस, मेरठ, पृ०1।
- कुमार, सुशील (2018). साक्षरता के विकास में जनसंचार माध्यमों का योगदान, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और उसका स्थानीय स्वरः गोरखपुर के विशेष सन्दर्भ में

दिलीप कुमार राय

शोध छात्र, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रो० संतोष कुमार

शोध निर्देशक, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड

संयुक्त प्रान्त के पूर्वी क्षेत्र में स्थित गोरखपुर अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में उभर रहा था। भारत के उत्तरी सीमा पर तराई क्षेत्र में स्थित यह क्षेत्र क्रान्तिकारियों के लिए एक शरणस्थली के रूप में प्रसिद् था। नेपाल की सीमा को स्पर्श करने के कारण औपनिवेशिक शासन के दौरान बड़ी संख्या में भारतीय अंग्रेजों से दूर इस स्थान पर अपना समय व्यतीत करते थे। यद्यपि गोरखपुर में महात्मा गॉधी का प्रथम आगमन 8 फरवरी 1921 को हुआ, परन्तु उसके पूर्व ही गॉधी जी के सम्बन्ध में किवदन्तियों एवं अफवाहों के माध्यम से गोरखपुर महात्मा गॉधी जी से परिचित हो चुका था। उनकी इस प्रथम यात्रा ने जन मानस को न केवल आम जनता को राजनीतिक रुप से उत्प्रेरित करने का कार्य किया, बल्कि राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका को भी रेखाकिंत करने का कार्य किया। अपनी यात्राओं के दौरान महात्मा गॉधी जनता से संवाद स्थापित करते हुए उनकों राष्ट्रीय आन्दोलन के बिस्तार का एक प्रमुख अंग स्वीकार करते थे। जब महात्मा गॉधी के द्वारा एक विराट असहयोग आन्दोलन चलाने का निश्चय किया गया तब दूर दराज में स्थित क्षेत्रो के लोगों, ने महात्मा गॉधी के नाम पर उसमें अपनी भागीदारी निभाई।

1 अगस्त 1920 को जब असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया गया, तो औपनिवेशिक सरकार एवं राजनीतिक विश्लेषक दोनो ही जनसहयोग को लेकर इसका सही विश्लेषण नही कर पाए थे। संयुक्त प्रांतीय कांगेस कमेटी ने 22 अगस्त को असहयोग आन्दोलन से सम्बन्धित सिद्वान्तों को अपनी स्वीकृति प्रदान की। 4 सितम्बर 1920 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में अहसयोग आन्दोलन की पुष्टि की गई। महात्मा गॉधी का यह कार्यक्रम मनोवैज्ञानिक तथा राजनीतिक आधारों पर अवलम्बित था। इस आन्दोलन में प्रतीकों का चुनाव महत्वपूर्ण माना जाता है। उदाहरण के लिए उपाधियों का त्याग निर्भयता का सूचक माना गया तो कॉलेजों का बहिष्कार बिट्रिश सरकार को वैधानिक चुनौती थी। असहयोग का बहिष्कार पक्ष इस विचार पर आधारित था कि जन सहयोग न मिलने पर सरकारी प्रशासन चलना असंभव हो जाएगा। असहयोग आन्दोलन का उद्देश्य सरकार से सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सहयोग वापस लेना था।[1]

जिस दिन असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ, उसी दिन से गोरखपुर का राजनीतिक वातावरण राष्ट्रवादी भावनाओं से ओत प्रोत हो गया था। 1 अगस्त 1920 को गोरखपुर के बरहज बाजार में बाबा राघवदास ने एक विशाल जनसभा की अध्यक्षता की तथा इसमें गॉधी जी के असहयोग से सम्बन्धित कार्यक्रम को समर्थन देने का आहवान किया गया। 2 अगस्त को जब बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु का शोक समाचार प्राप्त हुआ तो गोरखपुर में बाजार बन्द रखा गया तथा देशी प्रेस के द्वारा शोक सभाओं का आयोजन किया गया। 8, फरवरी, 1921 को डॉ0 अबुल कलाम आजाद गोरखपुर के बालेमियां के मैदान में एक बड़ी जनसभा को सम्बोधित

करते हुए विद्यालयों, अदालतों, तथा सरकारी सेवाओं का बहिष्कार करने की अपील की।[2] 13 अप्रैल, 1921 को जलियॉवाला बाग हत्याकाण्ड की स्मृति में गोरखपुर में एक विशाल जुलूस निकाला गया, जिसमें बड़ी संख्या में लोग नंगे पैर सम्मिलित हुए। इस जुलूस का नेतृत्व बाबा राघवदास के द्वारा किया गया। उनके इस कृत्य को अपराध की श्रेणी में रखा गया तथा उन्हें एक वर्ष के कठिन कारावास की सजा दी गई। इसी प्रकार तप्पीलाल पटवारी को असहयोग का प्रचार करने के कारण 9 मास के कारागार की सजा दी गई। असहयोग आन्दोलन के दौरान मौलाना सुभानउल्लाह तथा पुरुषोत्तम दास टंडन गोरखपुर आए, तो उनको जिले में प्रवेश नही करने दिया गया और उनको वापस कर दिया गया। इस समय सरकार का प्रयास यह था कि आन्दोलन के प्रसार को स्थानीय स्तर पर रोका जाए तथा राष्ट्रीय नेताओं को इस क्षेत्र में प्रतिबन्धित किया जाए।[3]

उत्तर प्रदेश सरकार ने गोरखपुर में राजनीतिक सक्रियता को नियंत्रित करने के लिए धारा 144 लागू कर दिया। सितम्बर में जब प0 जवाहर लाल नेहरू गोरखपुर आए तो, उनको जनसभा करने से रोक दिया गया। यद्यपि इस दौरान सरकार की अवहेलना करते हुए गोरखपुर में अनेक छोटी छोटी सभाओं को सम्बोधित किया। बाद में उनके द्वारा गोरखपुर में एक विशाल जनसभा को सम्बोधित किया गया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता मौलान सुभानउल्लाह के द्वारा किया गया। इसके पश्चात जवाहर लाले नेहरू को जब गोरखपुर में सभा करने की अनुमति नही दी गई तो वह गोरखपुर से सटे मगहर में एक विशाल जनसभा को सम्बोधित किये, जिसकी अध्यक्षता रघुपतिसहाय फिराक गोरखपुरी के द्वारा की गई।4 इस दौरान जनता ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। नेहरु जी के निर्देशन में जिला कांग्रेस कमेटी का गठन किया गया, जिसका अध्यक्ष रघुपति सहाय को बनाया गया।

गोरखपुर में युवा दिग्विजयनाथ महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हुए तथा महात्मा गॉधी के आगमन के दौरान एक वालेंटियर कोर का गठन किया। असहयोग आन्दोलन के समय दिग्विजयनाथ ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में आन्दोलन को एक नवीन दिशा देने का कार्य किया। इन्होने इस दौरान अपना कालेज छोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन के दौरान चौरी चौरा की घटना को एक युगान्तकारी अध्याय माना जाता है। जिसके सर्जकों में दिग्विजयनाथ जी का भी नाम था।[5] इस घटना के बाद नौकरशाही आतंकित हो गई। चौरी चौरा काण्ड़ के अभियुक्तों में इनका नाम भी जुड़ा हुआ था। इस घटना के अभियुक्त के रुप में इनको कारावास में डाल दिया गया, जहॉ पर उनकों बहुत सी यातनाएँ दी गई। यद्यपि गवाहों द्वारा शिनाख्त न किए जाने के कारण उनकों मुक्त कर दिया गया। बाद में दिग्विजयनाथ गोरखनाथ आश्रम के पीठाधीश्वर बने।

असहयोग आन्दोलन के दौरान गोरखपुर में सहजनवा एवं चौरी चौरा नामक स्थानों पर विदेशी वस्त्रों तथा मादक द्रव्यों की दुकानों पर धरना देने का कार्यक्रम व्यापक स्तर पर चलाया जा रहा था। प्रारम्भ में यह धरना शान्तिपूर्ण तरीके से चलाया गया, परन्तु बाद में पुलिस प्रशासन के द्वारा जब दमन कार्य प्रारम्भ किया गया तो यह जनता में आक्रोश बढ़ने लगा। सरकार के दमनचक्र एवं यातानाओं के कारण चौरी चौरा का वातावरण अधिक तनावपूर्ण हो चला था, जिसका परिणाम चौरीचौरा काण्ड के रूप में आया। 4 फरवरी, 1922 को स्वयंसेवकों ने पुलिस के बर्बरता पूर्ण दमनात्मक कार्यवाही के विरोध में थाने को चारो तरफ से घेर कर केरोसिन ऑयल डालकर थाने में आग लगा दी। इस दौरान 23 पुलिस वाले थाने के अन्दर ही जलकर मर गए।[6]

चौरी चौरा थाने की इस घटना के बाद पुलिस का दमनचक्र और तेज हो गया। पुलिस ने देवगॉव तथा उमावगॉव पर विशेष रुप से अपने आतंक का ताड़व मचाया। बाबा राघवदास ने चौरी चौरा के सम्बन्ध में कहा कि यह दुखद कांड अवश्य हुआ है, परन्तु स्वतंत्रता की भावना के वशीभूत जनता की सरकार के दमनकारी नीति के विरुद्ध यह एक प्रतिक्रया मात्र थी। चौरी चौरा कांड के अन्तर्गत 232 व्यक्तियों का चालान किया गया, जिसमें से 228 व्यक्ति सेशन कोर्ट को सुपुर्द किए गए। इसमें से 172 लोगों को फॉसी की सजा दी गई। इस मुकदमें के दौरान 5 व्यक्तियों की जेल में मृत्यु हो गई।[7]

चौरी चौरा की घटना ने असहयोग आन्दोलन को गहरी क्षति पहुँचाई। महात्मा गॉधी ने इस घटना के आधार पर 11 फरवरी, को असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया। इस घटना की स्वतंत्र जांच श्री हृदयनाथ कुंजरू, मोहम्मद सुभान उल्लाह तथा चन्द्रकांत मालवीय के द्वारा किया गया।[8] उन्होने अपने विवरण में लिखा है कि मुंडेरा बाजार में थानाध्यक्ष के द्वारा स्वयंसेवकों से किए गए दुर्व्यहार के विरोध में थाने के समक्ष तीन से चार हजार व्यक्ति प्रदर्शन के लिए जमा हुए थे। गोली चलाने से पूर्व पुलिस के द्वारा लाठीचार्ज किया गया था, इस दौरान अनेक व्यक्यिं की मृत्यु हो गई थी। सरकारी विवरण में मृतको की संख्या जितनी बताई गई है, उससे अधिक है।

महात्मा गाँधी ने इस आन्दोलन में देश के उन पिछड़े क्षेत्रों को भी सम्मलित किया, जहा पर हमें विरोध की परम्परा बहुत ही कम प्राप्त होती है। उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग इसी का एक उदाहरण माना जा सकता है। गाँधी जी की अपनी रणनीति भी इसमें

सहायक होती थी। उनकी अहिंसा की नीति का परिणाम यह हुआ कि बड़ी संख्या में लोग बिना किसी भय के आन्दोलन में सम्मलित हुए। जब गॉधी जी ने आन्दोलन को स्थगित किया, तो इस निर्णय को गोरखपुर की जनता ने सहर्ष स्वीकार किया। यद्यपि चौरी चौरा की घटना पुलिस की दमन नीति की प्रतिक्रिया मात्र थी, परन्तु उसके पश्चात जो आन्दोलन गॉधी जी के नेतृत्व में चलाए गए, उसमें गोरखपुर की जनता ने दमन नीति को सहन करते हुए किसी प्रकार की हिंसा का प्रयोग नही किया।

असहयोग आन्दोलन के स्थगन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रारम्भ से पूर्व गोरखपुर की आम जनता को बाबा राघवदास ने राजनीतिक रूप से जागरूक करने का कार्य किया। महात्मा गॉधी के द्वारा जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया गया, उसके पूर्व ही गोरखपुर के जनमानस में भावी आन्दोलन के सम्बन्ध में प्रचार प्रसार किया जा रहा था। 10 मई, 1929 को गोरखपुर में रमाकान्त, रामधारी तथा शिवमंगल गॉधी ने अनेक जनसभाओं को सम्बोधित किया तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आह्वान किया। बाबा राघवदास के नेतृत्व में गोरखपुर में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन चलाया गया। इस दौरान बाबा राघवदास तथा अनमोल सिंह ने पिपराइच, सलेमपुर, बरहज, अहरौली, करिया इत्यादि गॉवों का दौरा किया। इस दौरान जनता को बताया गया कि बहुत ही जल्द महात्मा गॉधी गोरखपुर आने वाले है।[9]

अक्टूबर, 1929 को महात्मा गॉधी गोरखपुर आए। इस दौरान उन्होने बडहलगंज, कौड़ीराम, घुघली, पड़रौना में अनेक जनसभाओं को सम्बोधित किया। गोरखपुर के परेड मैदान में एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होने कहा कि प्रत्येक अवस्था में अहिंसा की नीति का पालन किया जाना चाहिए, जिससे कि चौराचौरा जैसी घटना की पुनरावृत्ति न हो। इसके साथ ही उन्होने जनता को आगामी आन्दोलन के लिए तैयार रहने को कहा। इस दौरान उनके साथ बाबा राघवदास तथा जे0 बी0 कृपलानी उपस्थित रहे। इस दौरान बसन्तपुर तथा देवरिया में अनेक जनसभाओं को उनके द्वारा सम्बोधित किया गया। इस प्रकार आन्दोलन प्रारम्भ होने से पूर्व गोरखपुर आगामी आन्दोलन के लिए तैयार हो गया था।[10] कांग्रेस कार्यसमिति के निर्णय के अनुसार जब 26 जनवरी को प्रतिवर्ष स्वतंत्रता दिवस मनाने की घोषणा की गई, तो गोरखपुर में उत्साह पूर्ण वातावरण में पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाया गया।

12 मार्च, 1930 को जब महात्मा गॉधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ किया, तो गोरखपुर में उसी दिन बाबा राघवदास के नेतृत्व में बरहज आश्रम से पडरौना तक पदयात्रा निकाली गई तथ बसन्तपुर में हजारों व्यक्तियों के मध्य प्रतीकात्मक रूप से नमक बनाया गया। इसी के साथ औपचारिक रूप से आन्दोलन का प्रारम्भ हो गया। गोरखपुर में कसया, पड़रौना, विष्णुपुरा, रामकोला, तथा बरहज में बाबा राघवदास ने अनेक विशाल जनसभाओं को सम्बोधित किया तथा जनता को अधिक से अधिक संख्या में नमक कानून तोड़ने की अपील की गई। इस दौरान बंगुरा बाजार में अनेक मन नमक बनाया गया।[11] सितम्बर, 1930 में श्रीमती कमला नेहरू गोरखपुर आई तथा एक विशाल सभा को सम्बोधित किया। उन्होने कांग्रेस के आन्दोलन को सफल बनाने के लिए पुरूषों के साथ स्त्रियों को भी इस आन्दोलन में भागीदार बनने का आह्वान किया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अगले चरण में जब लगानबन्दी का आहवान किया गया, तो गोरखपुर के किसानों ने अपना भरपूर सहयोग दिया। 4 नवम्बर, 1930 को गोरखपुर के महाराजगंज के किसानों ने अधिक लगान मांगने के कारण जमींदार के कर्मचारियों की पिटाई कर दी। बाबा राघवदास तथा रामधारी पाण्डेय ने इस क्षेत्र के किसानो को सम्बोधित करते हुए कहा कि वे जमींदार को केवल 50 प्रतिशत लगान दे। इस दौरान रामकोला, देवरिया, खामपुर, बरहज, पीपीगंज में किसानो को सम्बोधित करते हुए लगानबन्दी आन्दोलन को अहिंसात्मक रूप में जारी रखने की अपील की गई। इस दौरान लोकगीतो के माध्यम से कांग्रेस के आन्दोलन को आगे बढ़ाने का कार्य किया गया, जिन्हे लोक भाषा में सुरजिया कहा जाता था। सुरजिया, आल्हा तथा सुदेशिया नाटकों की बड़ी मात्रा में रचना की गई, जिन्हे अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसकी कुछ पक्तियॉ निम्न प्रकार थी –

गोरखपुर में है सुना, चौरी चौरा ग्राम।
बिगड़ी पब्लिक एकदम रोकि न सकै संग्राम।।
भडकें लोग गॉव के सारे दई थाने में आग लगाय।
काट गिरावा थानेदार को गई खबर हिन्द में छाय।।
उनमान लगाया कुछ लोगों ने अग्नि कही भड़क न जाए।
खबर सुनी जब गॉधी जी ने, दहशत गई बदन में छाय।।[12]

1937 के चुनावों के दौरान गोरखपुर की जनता ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। चुनाव प्रचार के दौरान प0 जवाहरलाल नेहरू ने इस क्षेत्र का दौरा किया। बाबा राघवदास के सहयोग से जवाहर लाल नेहरू ने अनेक विशाल जनसभाओं को सम्बोधित किया। इन चुनावों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त हुआ। संयुक्त प्रांत में कांग्रेस को विजय प्राप्त हुई तथा गोबिन्द बल्लभ पंत के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया। अपने सीमित कार्यकाल में सरकार के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए गए। सितम्बर, 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर औपनिवेशिक सरकार के द्वारा इसमें भारत को भागीदार बनाया गया तो कांग्रेस की सरकारो के द्वारा त्यागपत्र दे दिया गया। गॉधी जी ने इस दौरान व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। नवम्बर, 1940 में रामलाल चतुर्वेदी को नौतनवा बाजार में युद्ध विरोधी भाषण देने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया।[13]

1942 में जब महात्मा गॉधी के द्वारा भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारम्भ किया गया, तो गोरखपुर में भी मुम्बई के समान ही कांग्रेसी नेताओ को बन्दी बनाया गया। बन्दी बनाए गए नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में गोरखपुर में हड़ताल का आयोजन किया गया। इस दौरान अनेक स्थानों पर जुलूस निकाले गए। 9 अगस्त को गोपालपुरा के राजपरिवार के कृष्णनारायण चन्द्र को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया तथा उनकी सम्पत्ति को लूट लिया। गोला कस्बें में एक विशाल जुलूस निकाला गया, आक्रोशित भीड़ ने थाने एवं डाकघर में आग लगा दी तथ उगही गॉव के पास एक पुल को नष्ट कर दिया। 15 अगस्त को बरहज बाजार में चन्द्रिका सिंह के नेतृत्व में एक जुलूस निकला। पुलिस ने इसे रोकने का प्रयास किया, जब भीड़ उनसे नियंत्रित नही हुई, तो उन्होने गोली चला दिया, जिसमें विश्वनाथ तिवारी तथा जगन्नाथ मल की मृत्यु हो गई। इस दौरान दोनो पक्षों के द्वारा हिंसात्मक घटनाएँ की गई। पुलिस ने अनेक दुकानों को लूट लिया तथा गॉधी आश्रम को ध्वस्त कर दिया।[14]

16 अगस्त, 1942 को शिब्बनलाल सक्सेना गुप्त रूप से गोरखपुर पहुँचे। उनकी योजना युवाओं को एक संगठन तैयार कर रेलवे पुल तोड़ने, रेल की पटरियॉ उखाड़ने तथा थाना जलाने की थी। उनकी योजना को इलाहाबाद, वाराणसी तथा बिहार से आए हुए छात्रों द्वारा सहयोग प्रदान किया गया। इस प्रकार की ध्वंसात्मक कार्यवाही के लिए भाटपाररानी, तुर्तीपार, सलेमपुर, बरहज बाजार, गौरी बाजार, नूनखार, हाटा, हेतमपुर, दुदही, सेवरही तथा छितौनी जैसे क्षेत्रों को चुना गया था। 21 अगस्त को कसया रोड पर बने खजुआं पुल को तोड़ दिया गया। 22 अगस्त को गोरखपुर के जिला न्यायाधीश ने शिब्बनलाल सक्सेना की गिरफ्तारी के लिए 5000 रूपए के इनाम की घोषणा की।[15] 22 अगस्त को घूसी बसन्तपुर के पास अयोध्या प्रसाद तथा रामवृक्ष के नेतृत्व में चौकीदारो तथा पटवारियों को बन्धक बना लिया गया। यह जनसमूह जिस गांव में पहुँचता, वहॉ पर नई पंचायत व्यवस्था का स्थापित करता।

23 अगस्त, 1942 को दोहरिया में जयराजसिंह तथा कमलासिंह ने 25000 हजार की विशाल जनसभा को सम्बोधित किया। पुलिस ने इस सभा को भंग करने का आदेश दिया, परन्तु जब सभा भंग नही हुई, तो पुलिस ने गोली चला दी। इस गोलीबारी में 11 व्यक्ति मारे गए तथा सैकड़ों की संख्या में लोग घायल हुए। इस दौरान पुलिस ने अनेक गॉवों को लूट कर उसमें आग लगा दिया। बनहरी गोलीकाण्ड़ में रामलगन तथा रामचन्द्र शहीद हो चुके थे।[16]

इस आन्दोलन के दौरान पुलिस तथा सेना के द्वारा भयकंर दमनचक्र का प्रदर्शन किया गया। लोगों के घरो में आग लगाना, उनकी सम्पत्ति को नष्ट करना, लोगों के साथ असम्मानपूर्ण व्यवहार करना तथा लाठीचार्ज एवं गोलबारी उनके लिए सामान्य घटनाएँ हो गई थी। 29 अगस्त को कैप्टन मूर के नेतृत्व में सैनिकों ने गोलीबारी की जिनमें तीन लोगो की मृत्यु हो गई। इसी प्रकार की घटनाएँ भाटपारा तथा मालवारी गॉवों में की गई। इस क्षेत्र के प्रमुख नेतृत्वकर्ता बाबा राघवदास गिरफ्तारी से बचते हुए आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करने का कार्य किया। इस बीच बाबा राघवदास की मृत्यु की झूठी अफवाह फैलाई गई। बाद में सरकार ने बाबा राघवदास को गोली मारने का आदेश जारी किया। इन सभी स्थितियों में उन्होने स्वयं को सुरक्षित रखा तथा महात्मा गॉधी के आदेश पर 7 अगस्त 1944 को लखनऊ के चारबाग स्टेशन पर स्वयं को गिरफ्तार करा लिया।[17]

स्वतंत्रता आन्दोलन के गॉधी युग में गोरखपुर एक महत्वूपर्ण केन्द्र के रूप में उभरता हुआ दिखाई देता है। महात्मा गॉधी द्वारा चलाए गए विभिन्न आन्दोलनों में इसकी भूमिका को एक विस्तृत आयाम प्रदान किया गया। इस दौरान जो भी आन्दोलन चलाए गए, वह नगरीय एवं कस्बाई क्षेत्रों के आगे ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक रूप से विकसित एवं पल्लवित हुए। चौरी चौरा की घटना को छोड़कर सम्पूर्ण राष्टीय आन्दोलन के दौरान इस प्रकार की हिंसात्मक घटना की पुनरावृत्ति देखने को नही मिलती है। यह इस बात का प्रमाण था कि महात्मा गॉधी के अहिंसा के सिद्धान्त को इस क्षेत्र की जनता ने किस स्तर पर स्वीकार किया था।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(1) गुप्त, मन्मथनाथ, कांग्रेस के सौ वर्ष, संघर्ष एवं सफलता का इतिहास, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली 1985, पृ0 सं0 79
(2) स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक, गोरखपुर, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, 2010, पृ0 सं0 28
(3) पी0 सी0 बमफोर्ड, हिस्ट्री आफ द नान क्वापरेशन एंड खिलाफत मूवमेंटस, पृ0 सं0 150
(4) द पायनियर, 5, जनवरी 1921, पृ0 सं0 11
(5) देव, संदीप, राज-योगी, गोरखनाथ से आदित्यनाथ तक, ब्लूमसव्यूरी पब्लिशिंग इडिघ्या लिमिटेड्, 2017, 181
(6) शाहिद अमीन, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, (स0) निम्नवर्गीय प्रसंग, स्मृति एवं इतिहास: चौरी चौरा, 1922-1992, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 सं0 178
(7) कुमार, अक्षय स0, बाबा राघवदास स्मृति ग्रंथ, 1963, पृ0 सं0 232
(8) प्रसाद, राजेन्द्र, असहयोग आन्दोलन का एक संक्षिप्त खाका, 31 अगस्त, 1922, यंग इंडिया, पृ0 सं0 11
(9) शाहिद अमीन, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, (स0) निम्नवर्गीय प्रसंग, स्मृति एवं इतिहास रू चौरी चौरा, 1922-1992, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 सं0 180
(10) स्वतंत्रता संग्राम में गोरखपुर देवरिया का योगदान, जिल्द 35, सूचना विभाग लखनऊ, 1972, पृ0 सं0 18
(11) सीतारमैया, पट्टाभि, हिस्ट्री आफ दि कांग्रेस, कांग्रेस कार्यसमिति, नई दिल्ली, 1935, पृ0 सं0 370
(12) वर्मा0 पी0 एस0, गॉधी की लड़ाई उर्फ सत्याग्रह इतिहास, रासरिछपाल अवधूत, दिल्ली, 1931, पृ0 सं0 8
(13) कुमार, अक्षय, स0, बाबा राघवदास स्मृति ग्रंथ, 1963, पृ0 सं0 236
(14) स्वदेश, 27 फरवरी 1942, गोरखपुर, पृ0 सं0 7
(15) आज, दैनिक 16 अगस्त 1942, वाराणसी
(16) स्वतंत्रता संग्राम में गोरखपुर देवरिया का योगदान, जिल्द 35, सूचना विभाग लखनऊ, 1972, पृ0 सं0 28
(17) कुमार, अक्षय, स0, बाबा राघवदास स्मृति ग्रंथ, 1963, पृ0 सं0 243

भारत के प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में गुरूकुल का महत्व

प्रभु दयाल जयंत

कार्य वाहक प्रधानाचार्य, श्री शांति स्वरूप कृषि इंटर कॉलेज हापुड़, उत्तर प्रदेश

प्राचीन काल में भारतीय समाज में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत ज्ञानप्रद, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के लौकिक एवं परलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। भौतिक एवं आध्यात्मिक निर्माण तथा विभिन्न उळारदायित्वों का निष्पादन करने के लिए शिक्षा की नितांत आवश्यकता थी। मनुष्य एवं समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के ही माध्यम से संभव माना जाता रहा है। सही बात तो यह है कि शास्त्र एवं विवेक से शिक्षा सम्पन्न होती है और शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है इसलिए ज्ञान उद्‌भव का आधार तंत्र शास्त्र एवं विवेक माना गया है। "ज्ञान से विद्या, विद्या से मुक्ति प्राप्ति होती है तथा मनुष्य शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है।"[1] इस तरह ज्ञान के आलोक से मनुष्य का जीवन आलोकित होता है, क्योंकि किसी भी कार्य को करने वाले दो प्रकार के लोग होते हैं, एक तो वे जो समझ अथवा ज्ञान से करते हैं, दूसरे वे जो बिना समझे या अज्ञान से करते हैं, किन्तु ज्ञान और अज्ञान दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। "विद्या और सच्ची लगन के साथ जो व्यक्ति कर्म करता है, वही आर्थिक शक्तिशाली होता है।"[2] वस्तुतः ज्ञान अथवा विद्या से व्यक्ति का कर्म और आचरण परिष्कृत और दिव्य हो जाता है और अज्ञान समाप्त होता है, देव तुल्य हो जाता है। वैदिक युग में ऐसे ज्ञानी व्यक्ति को सर्वोच्य प्रतिष्ठा प्राप्त थी और जब व्यक्ति विद्या और ज्ञान से सम्पन्न हो जाता था, तब वह ऋषि से ऋण मुक्त हो जाता था। ऋग्वेदकालीन समाज में भी भौतिक की अपेक्षा बौद्धिक ज्ञान का महत्व था। इस युग में उनके विचार, ज्ञान की महिमा, त्यागमय जीवन, आध्यात्मिक चिंतन और भौतिक आर्कषण के प्रति विरक्त मनुष्य के जीवन के मूल थे। गायत्री जैसे मंत्र ज्ञान के उच्चतम आधार से परिपूर्ण है। सतपत ब्राहम्ण में कहा गया है कि "स्वाध्याय और प्रवर्ळान का अनुगमन करने से व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है फलस्वरूप वह स्वतंत्र हो जाता है। इससे उसे नित्य धन की प्राप्ति होती है। सुखद निद्रा आती हैं वह अपना चिकित्सक बन जाता है। उसकी इन्द्रियाँ संयमित हो जाती है, वह प्रज्ञवान हो जाता है और संसार के अभ्युदय में लग जाता है। समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को ब्रहम ज्ञान के माध्यम से पूर्ण करता है, जो लोग अनेक प्रकार की विधाओं का अध्ययन करते हैं वे देवताओं को प्रसन्न करते हैं तथा अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं।"[3] अतः विद्या अथवा ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता स्वंय सिद्ध है। भारतीय विचारकों के द्वारा तीन प्रकार के लोकों की कल्पना की गई है।

1. मनुष्य लोक
2. पितृ लोक और
3. देव लोक

इनमें से मनुष्य लोक पुत्र द्वारा ही जीता जा सकता है। "तीनों लोकों मे देव लोक ही श्रेष्ठ। इसलिए विद्या प्रशंसनीय है।"[4] स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन में अनुपम योग रहा है।

शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्धि परिष्कृत प्रज्ञा सम्पन्न और समुन्नत ही नहीं होता। बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सनमार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा एवं ज्ञान से ही धर्म प्रबंध, नैतिक मूल्यों से युक्त उच्च आदर्शों से भरा हुआ और बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त होता है। विद्या अर्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भरता तो प्राप्त

करता ही है, साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योगदान प्रदान करता है। मनुष्य के धार्मिक वृळियों का उत्थान, उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तित्व का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के प्रधान उद्देश्य है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। "अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा के उद्देश्यों और उसके परिणाम का उल्लेख किया गया है, जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन आयु और अमरत्व को सन्निहित किया गया है।''[5]

मनुष्य की सुव्यस्थित और सुनियोजित शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार के पश्चात् गृह त्याग कर गुरू के सानिध्य में जाता था तथा यहीं गुरूकुल में रहता। विभिन्न विषयों का शिक्षा ग्रहण करता था। इस संबंध में छंदोग्य उपनिषद् से विदित होता है कि अरूण उद्धालक आरूणि ने अपने पुत्र श्वेत केतु से गुरूकुल में जाकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए कहा था-"हे श्वेत केतु तू गुरूकुल में जाकर ब्रहम्चर्यपूर्वक विद्या ग्रहण कर, हे शौम्य हमारे कुल में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ जो अध्ययन ना करे और वह भी स्वयं ब्राह्मण होकर। यही नहीं इस संबंध में जो केवल ब्राहमणों को अपना बंधु बतलाता है।''[6] यह बारह वर्ष की अवस्था में गुरू के पास गया वहाँ गुरूकुल में सभी वेदों को पढ़कर 24 वर्षो का होकर अपने को विद्वान और अभिमानी समक्षते हुए उदंत भाव से घर वापस आया। उसके लौटने पर उसके पिता ने कहा "हे शौम्य श्वेतकेतु तू जो ऐसा अभिमानी, अपने को विद्वान समझने वाला और उदंग हो रहा है सो क्या, तुमने गुरू से उस आदेशतत् ज्ञानोपदेश को भी पूछा है, जिससे अश्रुत-श्रुत हो जाता है, अमत्व मत्व हो जाता है और अविज्ञान भी ज्ञान हो जाता है।'' चूँकि श्वेत केतु उस ज्ञान तत्व को नहीं जानता था, इसलिए उसने जिज्ञासा की "भगवान वह तत्व ज्ञानोत्पोदेश कैसा है?''[7] इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गुरूकुल में निवास करके ज्ञान और विद्या प्राप्त की जाती थी, साथ ही सदाचरण और सद्वृत्ति की भी शिक्षा ग्रहण की जाती थी।

गृह सूत्रों में ब्रह्मचारी के शिक्षा ग्रहण करने पर विस्तार से विचार किया गया है। पारस्कर गृह सूत्र में यह उल्लेखित है कि "आचार्य के सम्मुख जब विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण के निमिळव उपस्थित होता था, तब आचार्य उससे पूछता था कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो।''[8] इस पर विद्यार्थी स्वभावत: उत्तर देता है कि आपका ही ब्रह्मचर्य! तत्पश्चात् आचार्य कहते थे- "नहीं तू इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, पहले अग्नि तुम्हारा आचार्य है। बाद में हम।'' फिर विद्यार्थी का दायां हाथ ग्रहण कर आचार्य उसे शिष्य के रूप में स्वीकार करते हुए कहता था "मैं सविता की आज्ञा से तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर रहा हूँ'', तदन्तर विद्यार्थी के हृदय पर अपना हाथ रखकर आचार्य यह कहता था, तुम्हारे और हमारे बीच श्रद्धा, प्रेम और विश्वास रहे।''[9]

उपनिष्दों में गुरूकुल के स्थान पर "आचार्यकुल'' का प्रयोग किया गया है "कुल'' शब्द अत्यंत सार्थक और सारगर्भित था, जिससे एक परम्परा का बोध होता था। गुरूकुल के दो प्रकार विकसित हो गए, एक गृहस्थ गुरू आश्रम और दूसरा बनस्थ प्रायोजित गुरूआश्रम। शिष्य अपने माता-पिता के कुल से आचार्यकुल में जाता, पितृ और आचार्य पत्नी, मातृ वृद्धि की भावना करते तथा पारिवारिक वातावरण अनुभव करता था। उपनिषद् में "आचार्य कुलवाशी'', "अन्तोवाशी'' जैसे शब्दों के साथ "ब्रह्मचर्य वास'' (अर्थात् गुरूकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या ग्रहण करना) का भी उल्लेख हुआ है।''[10]

कृष्ण और बलराम ने संदीपन मुनि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी।'' महाकाव्यों में गुरूकुलों का संदर्भ मिलता है जो शिक्षा और विद्या के विख्यात अधिष्ठान थे। भारद्धाज और बाल्मिकी के आश्रम उच्य कोटि के गुरूकुल थे। महाभारत में उल्लेखित है मार्कण्डेय और कन्य ऋषि के आश्रम शिक्षा के प्रधान विद्या स्थल थे। जहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी, इन अचार्यो के शिक्षा मंडलों में बहुसंख्यक छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। दुर्वाशा ऋषि कुरूनरेश से मिलने गए तब उनके साथ दस हजार शिष्य थे। यह ऋषि की विद्धता और लोकप्रियता का परिचालक था। इसके अतिरिक्त इस उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि गुरूकुल की महत्ता समाज में पूर्णत: स्थापित हो चुकी थी और द्विजों के अधिकांश बालक इन आश्रमों में शिक्षा प्राप्ति के लिए जाते थे। स्मृतियों के अनुसार भी छात्र गुरूकुल में रहकर विद्या ग्रहण करता था।'' विद्यार्थी का गुरूकुल में प्रवेश करना उसके नवीन जीवन की गौरवमयी घटना माना जाता था।

"महान विद्वान आचार्य सत्यकाम जावाल के कुछ शिक्षाश्रम्य उपकौशल कमलायन ने शिक्षार्थी के रूप में 12 वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक व्यतीत किया था एवं इस अवधि में उसने निरंतर अपने आचार्यों की अग्नियों की परिचर्या सम्पन्न की थी।''[11] तत्कालीन समाज में आचार्य कुल की अग्नि परिचर्या धार्मिक कृत के रूप में स्वीकृत की जिसे शिष्यगण परिपूर्ण किया करते थे।

सत्यकाम जावाल स्वयं आचार्य हरिद्रुमत गौतम के कुल में अंतेवाशी बनकर ज्ञान प्राप्ति के निमिळा गया था। उपनिषद् में वर्णित है कि उसका उपनयन संस्कार करके 400 कृश और दुर्बल गायों को पृथक निकालकर आचार्य ने उससे कहा था कि "इन गौओं का अनुशरण करें अर्थात् जहाँ-तहाँ एक गौवें चरती हुई जाए वह उनके पीछे-पीछे रहकर उनकी रक्षा करें। गुरू ने इस गौवों को ले जाते हुए सत्यकाम से कहा था। जब तक ये गौवों एक सहस्त्रन हो जाए तब तकवह न लौटे। तदन्तर सत्काम कई वर्षों तक इन गौवों को चराते एवं सेवा करते हुए प्रवास में ही रहा जबकि ये गौवें एक सहस्त्र नहीं हो गई।''[12] आचार्य की आज्ञा का नतम तक होकर अक्षरश: पालन करने का यह अद्वितीय उदाहरण है।

गुरूकुल अथवा आचार्य कुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करने की प्रथा प्राचीन काल में बराबर चलती रही। चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला में चाणक्य के सानिध्य रहकर शिक्षा ग्रहण की थी। बौद्ध ग्रंथों से भी ब्राह्मण आचार्यों के कुलों का विवरण मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि उस युग में भी लोग गुरूकुलों में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। "चम्पा निवासी दिशा प्रमुख आचार्य के आश्रम में 500 छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। कोशल के सुनेत और शैल उस युग के अत्यंत विख्यात आचार्य थे।''[13] मिथिला का ब्राहम्यु वैदुष्य आचार्य अनेकानेक शिष्यों का आचार्य था, जिसके अन्त:वासी भी उसी कोटि के विद्वान थे।

गुप्त काल में भी गुरूकुल की शिक्षा निर्वाद से चलती रही ब्राहम्ण आचार्यो के निवास विद्या अर्जन के प्रधान केन्द्र थे। "गुप्त अभिलेखों से विदित होता है कि आचार्य ब्राह्मणों को ग्राम्य दान में दिए जाते थे। आचार्य देवशर्मा को ब्रहम्पूर्वक ग्राम दान में प्रदान किया गया था।''[14] कालिदास के ग्रथों में अनेक ऐसे आश्रमों का उल्लेख मिलता है, जहाँ बौद्धिक उत्कर्ष के निमित्त लोग जाते थे और विभिन्न विषयों मे पारंगत होते थे। वान् ने हर्ष चरित् में स्वंय लिखा है कि वह विद्या-प्राप्ति के निमित्त अनेक वर्षों तक गुरू के आश्रम में रहा था।

"11वीं सदी का लेखन अलबरूनी भी गुरूकुल का उल्लेख करता है उसके अनुसार शिष्य दिन रात गुरू की सेवा में तल्लिन रहा करता था।''[15] प्राचीन काल में अनेकानेक विषयों की शिक्षा छात्रों को दी जाती थी, द्विजों के लिए वेद का अध्ययन आवश्यक था ही साथ ही वैदिक संहिताओं और वेदों का अध्ययन भी अपेक्षित था। ब्राहम्णकाल में यज्ञ विद्या का अध्यापन अधिक होता था। इसमें ज्ञान विज्ञान की सहायता ली जाती थी, "उपनिषद् युग में वैदिक संहिताओं, वेदांगों, याज्ञिक्य विधाओं आदि के अतिरिक्त ब्रह्म विद्या का भी अध्ययन किया जाता था। इतिहास, पुराण, व्याकरण, भूतविद्या, छत्रविद्या, वाकोवाक्यम, तर्कशास्त्र निरूक्त, छंद, नक्षत्रविद्या, ज्योतिष, राशि, एकायन आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। सत्यज्ञान का अन्वेषण तथा उसका अनुपालन उपनिषद् युग में किया जाता था।''[16] आत्मा से संबंधित विद्या आत्मविद्या कही जाती थी, जो उपनिषद् काल के छात्रों का प्रधान विषय होती थी।

भाषा और साहित्य के अध्ययन अध्यापन में व्याकरण का बड़ा महत्व था, प्राचीन काल से इसके अध्ययन के प्रतिबुद्धि-जीवियों की अपार रूचि थी। वस्तुत: भाषा और साहित्य का संयोजन और संग्रथन तथा उसकी गरिमा और प्रतिष्ठा व्याकरण से ही थी। भारत में बहुत पहले से शब्द और वाक्य पर विचार करने वाले व्याकरण के विद्वान रहे हैं, जिन्होंने इस गुरू विषय पर बड़े ही विस्तार से लिखा है। "शाकाह, पाणिनी, सर्ववर्म्मन, शशिदेव आदि अनेक व्याकरणों ने बहुचर्चित ग्रंथों का प्रणयण किया था। इत्सिंग से विदित होता है कि शिकावृति और पतंजली के महाभाष्य का चार अथवा छ: साल में अध्ययनपूर्ण होता था। व्याकरण उग्रभुति का उल्लेख अलबरूनी ने किया है, जिसने शिष्य हितावृति की रचना की थी।''[17]

जहाँ तक नारियों की शिक्षा का प्रश्न है, वैदिक युग में नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। ज्ञान और शिक्षा में वे किसी भी प्रकार पुरूषों से कम नहीं थी। ऋगवेद से अनेक ऋषिओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है,जिन्होंने अनेकानेक मंत्रों और ऋचाओं की रचना की थी। पोपामुद्रा, विश्ववार, आत्रेयी अपाला, काजीवती, घोपा, आदि विदुषी नारियाँ इनके अधिक प्रसिद्ध हैं। उपनिषदों में भी अनेक विदुषी स्त्रियों के संदर्भ मिलतीहै, जिनमें गार्जी परम् विदुषी महिला थी। उस युग में दो प्रकार की स्त्रियाँ थीं।

एक सधोबधु

दूसरी ब्रह्मवादनी

"सधोवधु विवाह होने के पहले तक ब्रह्मचर्य व्रत का अनुसरण करती थी तथा ब्रह्मवादिनी जीवन पर्यान्त ज्ञान अर्जन में लगी हुई ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपालन करती थी।''[18] अध्यापन कार्य करने वाली स्त्रियाँ आचार्य और उपाध्याय कही जाती थीं।

पुस्तकीय तथा शैक्षणिक ज्ञान के साथ-साथ ज्ञान के विविध क्षेत्रो मे स्त्रियों को प्रशिक्षण दिया जाता था। "डॉ अलतेकर ने वाकाटक, रानी प्रयावती गुप्ता, सातवाहन, रानी नैनिका के उदाहरण से स्पष्ट किया है किवे अपने लड़कों की अल्प व्यस्कता में कुशल शासक कभी नही हो पाती यदि उनको प्रशासन तथा संचालन की समुचित शिक्षा नहीं दी गई होती।"[19]

समय के अंतराल के साथ-साथ हमारी वर्तमान शिक्षा की प्रगति द्रुत गति से यदि किसी भी प्रत्यक्ष कारण से संभव हो सकी है तो अन्य-बातों की अपेक्षा वर्तमान में संचार माध्यम को ही श्रेय दे सकते हैं। क्योंकि विचारों का प्रचार एवं प्रसार इसी माध्यम से बड़ी सरलता एवं शीघ्रता से हो सका है। इसके साथ ही भारत में अंग्रेजी राज्य के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अंग्रेज गवर्नर जरनलों ने विभिन्न कारणों से समय-समय पर शिक्षा के लिए प्रयत्न किए जिससे अंग्रेजी शिक्षा का क्रमिक एवं व्यवस्थित विकास संभव हो सका। किन्तु ठीक इसके पहले मुगलकालीन भारत में न कोई शिक्षा की क्रमिक एवं उचित व्यवस्था ही थी न जनता ने इसकी प्रगति के लिए कोई क्रियात्मक कदम ही उठाया। फिर भी मस्जिद और मंदिरों में मुल्ला, काजी और पंडित धार्मिक भावना से प्रेरित होकर शिक्षा का उद्देश्य अपने अर्जित किए हुए ज्ञान को कर्म में निहित करना है, जिससे मनुष्य में स्वाभिमान तथा नैतिकता बनी रही और यह बात हमें प्राचीन भारत के शिक्षा व्यवस्था में देखने को मिलती है, लेकिन आधुनिक युग में शिक्षा का महत्त्व तो बढ़ा, शिक्षा का प्रसार भी हुआ लेकिन मनुष्य में मानवता, स्वाभिमान, चारित्रिक हनन तथा नैतिक मूल्यों का हास भी हुआ जो समस्त विश्व के लिए प्रश्नवाचक चिह्न नजर आती है।

संदर्भ-सूची

1 विष्णु पुराण, 6.5.61
2 विष्णु पुराण, 1.19.41.
3 ऋग्वेद, 1.164.66
4 वृहद उपनिषद् 1.5.16
5 अत्रिय स्मृति, 1.140.41
6 डॉ जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक. इतिहास पृ. 497
7 छान्दोग्य उपनिषद्, 6.1.1.3
8 पारस्कर गृह सूत्र, 2.3.
9 हरण्यक गृह सूत्र, 1.5.11.
10 छन्दोग्य उपनिषद्, 2.23.11.
11 छन्दोग्य उपनिषद्, 4.10.15.
12 छन्दोग्य उपनिषद्, 4.4.5
13 अनुळार निकाय-पृ. 171
14 फिलिट, कार्पस इरिक र सन्स इंडिकोरम, भाग-3,अभिलेख-56
15 अलबरूनी, 11वीं सदी का भारत, पृ. 168
16 छन्दोग्य उपनिषद्, 4.2
17 अलबरूनी, 11 वीं सदी का भारत, पृ. 174
18 डॉ जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास पृ. 536
19 ए. एस अल्तेकर, चवेपजपवद वि िनउंद पद ीपदकन बपअपसप्रंजपवद पृ.24

जातक कथाओं में वर्णित व्यापारिक केन्द्र एवं व्यापार व्यवस्था

रेशमा खातून

शोधार्थी, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

जातक कथाओं में बार-बार ऐसे व्यापारियों का वर्णन मिलता है। जो अपने साथ बनारस में उत्पादित कीमती वस्तुओं को लेकर पाँच सौ गाडिघ्यों के काफिले के साथ व्यापार करने जाया करते थे। तुन्डिल जातक में वर्णन मिलता है कि बनारस बेशकीमती कपड़ों के उत्पादन के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। उनमें रेशम, मलमल तथा अन्य उत्कृष्ट श्रेणी के कपड़े उन्हें भड़कदार तथा आकर्षक बनाने के लिए कशीदाकारी के साजों सामान, हाथी के दात और उनसे निर्मित वस्तुए सोना-चांदी के आभूषण, बर्तन, कवच, वगैराशामिल थे।यह रोचक एक उल्लेखनीय है कि जातक कथाओं में भारत के विभिन्न स्थानों का उल्लेख अलग अलग किस्म की वस्तुओं के व्यापार के केन्द्र के रूप में किया गया हैं।इस प्रकार बनारस के संदर्भ में सूती कपड़े, रेशमी कपड़े, मलमल के कपड़े और चंदन के वर्णन मिलते हैं। गांधार प्रदेश अपने लाल कम्बलों के उत्पादन तथा व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। शीरी के संदर्भ में बेश कीमती ओढ़ने वाले चादरों का वर्णन किया गया है।असम प्रदेश हाथी दात के उपकरणों घोड़ो और जेड नामक कीमती पत्थर के लिए प्रसिद्ध था। मगध का क्षेत्र लकड़ी के लिए प्रसिद्ध था। यहा की फर्नीचर रथ अन्य प्रकार के बाहन तीर के नोक आदि काफी प्रसिद्ध थे।प्रतिष्ठान अथवा पठानकोट में उत्पादित ऊनी कपड़े व्यापार के प्रमुख सामग्री थे। इन्हें कोटुम्बर कहा जाता था।सिंधु और कामरूप के पहाड़ी क्षेत्र सोना के लिए जाने जाते थे। मालाबार का तरीय क्षेत्र चादी के लिए प्रसिद्ध था।

बलूचिस्तान से अच्छी नस्ल की बकरिया, घोड़े, खच्चर अच्छी किस्म के शराब तथा ओढने वाली चादर उत्पादित होते थे और उनकी काफी माग थी। कपिसा जो काबूल का प्रदेश था। वहा का बढ़िया शराब व्यापार का महत्वपूर्ण सामग्री था। सिंध घोड़ो के व्यापार का केन्द्र था।

कम्बोज अथवा ताजिकिस्तान तेज दौड़ने वाले घोड़े ऊट, सोने की कशीदाकारी वाले कपडे, पश्मीना, फर और सिंगों के वस्तुओं का स्रोत था।

निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की लंबी फेहरिस्त जातक कथाओं में मिलती है। इनमें गेंहू, शक्कर, मसाले, नील, लकड़िया, तिल का तेल, कपास, कपड़े, रेशम, तोते, जीवित पशु और विभिन्न पशु उत्पाद जैसे पशुओं की हड्डिया, चमड़ी रोए, ऊन, सींग, हाथी दात, मोती, चंदन की लकड़ी, और कीमती जवाहरात जैसे आगेट, कार्नेलियन, सफायर, क्वॉज, क्रिस्टल, बेराइल, लैपिस लैज्यूली, गार्नेट टरक्वॉज ताबा आदि थे। दूसरी ओर निर्यात के माध्यम से व्यापार में मंगवाई जाने वाली वस्तुओं में घोड़े, पशु उत्पाद, चीनी, रेशम फलैक्स और लेनिन, सुगंधित द्रव्य शराब सोना, चादी, टिन, ताँबा, शीशा, रूबी, कोरल और अम्बर उल्लेखनीय रूप से वर्णन किये गए है।

गांधार प्रदेश की राजधानी तक्षशिला भी एक बड़ा एवं महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र के रूप में वर्णित है। यह भारत और मध्य एशिया को जोड़ने वाले महामार्ग पर अवस्थित था। इस नगर से होकर प्राचीन विश्व के तीन प्रसिद्ध व्यापारिक पूर्ण मार्ग गुजरते थे। अपनी इस भौगोलिक अवस्थिति के कारण यह व्यापार वाणिज्य से संबंधित सहुलियतों का प्रत्यक्षदर्शी था।

निर्यात के लिए प्रसिद्ध एक अन्य व्यापारिक केन्द्र पेशावर था। यह ऊन और घोड़ों के लिए मशहूर था। इन सभों के अतिरिक्त कोशल राज्य की राजधानी साकेत, मिथिला, उज्जैन, मदुरा, काँची, श्रावस्ती, चम्पा कौशाम्बी राजगृह आदि भी महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रों के रूप में उल्लेखित है।

इस स्थान के उल्लेखो के संदर्भ में व्यापार की विभिन्न वस्तुओं का भी जिक्र आया है। इनमें सुगंधित पदार्थ, ईत्र, रेशम, ऊन सूत, मूंगा, मोती, सोना, कीमती पत्थर आदि के अतिरिक्त जहाज निर्माण का भी महत्वपूर्ण केन्द्र था। ये व्यापारिक केन्द्र देश के अंदर आर्थिक क्रिया-कलापों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।

जातकों में करों और उन्हें वसूलने वाले लोगों का भी उल्लेख मिलता है। पंचबुद्ध जातक के अनुसार व्यापारियों से के अनुसार कर वसूलने की परंपरा का समय के साथ विकास हुआ था इसी प्रकार गग्ग जातक में भी राजा द्वारा कर-बसूलने वाले पदाधिकारी को नियुक्ति का उल्लेख आया है। इन वर्णानों से प्रमाणित होता है कि व्यापार कार्य व्यवस्थित और राजकीय प्रशासन द्वारा नियंत्रित होता था। कुरु धम्म जातक में वस्तुओं के रूप में टैक्स दिये जाने का वर्णन किया गया है।

टैक्स वसूलने का काम न सिर्फ शहरों और राज्यों की सीमाओं पर होता था बल्कि ग्रामीण प्रधानो द्वारा भी गाव के निवासियों से भी कर और दंड वसूले जाते थे। कुलावक जातक में एक गाव का मुखिया ग्रामिणों से बकाया और आर्थिक दंड वसूलना हुआ दिखलाया गया है। जातक के अनुसार वह कहता है कि मैंने इन लोगो से नशिले पेय पदार्थों की कीमत के रूप में बल्कि उनके द्वारा दिये गए बकाए और दंड की रकम वसूलकर काफी धन अर्जित किया है।

जातक कथाओं में शासकों द्वारा निर्ममतापूर्वक भारी कर आरोपित करने और वसूलने का भी उदाहरण मिलता है कि उसके अत्याचारों और उत्पीरक करों से परेशान होकर उसके राज्य के लोग अपने परिवार के साथ भाग कर जंगली जानवरो की तरह जंगल में जीवन बिताने के लिए मजबूर हो जाते थे।

इन अन्याय पूर्ण प्रसंगों से अलग व्यापार में इमानदारी और तत्परता सुनिश्चित करने के लिए भी कई प्रकार के कानून बनाये जाते थे। और शिल्पी उद्योग एवं व्यापार-के महत्वपूर्ण के कानून बनाए जाते थे। कारीगर और अंग थे।लेकिन यदि वे ग्राहको के अग्रिम राशि के भुगतान के बाद भी निंधारित समय पर मांगी गई वस्तुए नही पहुॅचा पाते थें। तब उन्हें दंड का भागी बन्ना पड़ता था।

व्यापारियों को बेची जाने वाली सभी वस्तुओं कि कीमत का आकलन राज्य द्वारा निर्धारित पदाधिकारियों से करवाना अनिवार्य होता था और उसी कीमत के आधार पर उनपर टैक्स लगाया जाता था। टैक्स देने के बाद वे उन सामग्रियों को देश के अंदर या बाहर बेचने के लिए योग माने जाते थें।

व्यापार के विकास के साथ समाज में एक महत्वपूर्ण वर्ग का उदय हुआ। जो मुख्यत: नगरों में हुआ करते थे। य` बड़े व्यापारी सेठ्ठी कहलाते थे। व्यापार के साथ - साथ ये लोग बैंकिंग का भी काम करते थे।जरूरत मंद लोगों को ब्याज पर धन भी दिया करते थे। इस प्रकार जातकों में अनेक उदाहरण मिलते हैं। जो साबित करते है कि उस काल में सूदखोरी की प्रथा व्यापक थी। खदिरंग्गर जातक में उल्लेख मिलता है कि एक सेठ्ठी से अनेक व्यापारियों ने बौन्ड भरकर उधार धन लिया था।

जातकों में वस्तु विनिमय के भी उदाहरण मिलते हैं। सुनख जातक में इस प्रसंग में एक उदाहरण मिलता है। इसके अनुसार एक व्यक्ति ने उत्तम श्रेणी कें कपड़े और धातु देकर बदले में एक कुत्ता लिया। इसी प्रकार वेस्सन्तर जातक में एक भटकते हुए व्यक्ति की चर्चा है। जिसने जंगल में भूख लगने पर एक बनवासी को अपना एक सोने का हेयर पीन दिया और बदले में खाना लिया।

जातकों में विनिमय के साधन के रूप में सिक्कों का उल्लेख मिलता है। ये अर्थव्यवस्था की विकसित अवस्था को रेखांकित करते हैं। इसमें सोने के सिक्कों को निष्क, और सुवर्ण कहा गया है। चांदी के सिक्कों के लिए कार्षपण अथवा कहापण शब्द का उल्लेख मिलता है। तांबे के सिक्कों के लिए भी कहापण के साथ-साथ कलकहापण शब्द का प्रयोग किया गया है। कई अन्य सिक्के भी प्रचलित थे। इनमें ककनिक, धन, पाद, मसक अथवा मस का उल्लेख है। विणिमय की सहुलियत के लिए छोटे-छोटे मूल्य के सिक्कों के प्रचलन की चर्चा मिलती है। इनमें अर्धकार्षापण और पदकार्षापण शामिल थे।

जातक कथाओं में व्यपार की कुछ वस्तुओं की कीमत के बारे में उल्लेख मिलता है। महा-उम्मग्ग जातक से प्राप्त एक वर्णन के अनुसार एक गधे की कीमत आठ कार्षापण बताई गई है। इसी प्रकार कान्हा जातक और गमरिचरंद जातक एक जोड़ी बैल की कीमत चौबीस कर्षापण बतलाई गई है। वेस्सन्तर जातक में एक दास की कीमत एक सौ निष्क बताई गई है। नन्द जातक में एक दास की कीमत एक सौ कार्षापण बताया गया है। इसी प्रकार जातकों में घोड़ों की कीमत में भी प्रसंग के अनुसार काफी अंतर दिखते हैं। जो एक हजार से लेकर छ: हजार कार्षापण तक बतलाए गए है। बकरी के बच्चे की कीमत एक सौ कार्षापण थी।

संदर्भ ग्रंथः

1. दि जातक, खण्ड .1, न0 1, पृ0 4.
2. आर. फिक, दि सोशल ऑर्गेनाईजेशन इन नार्थ-ईस्ट इंडिया इन बुद्धाटाइम (अनु0), इंडोलॉजिकल बुक्स हाउस, वाराणसी, 1972 पृ0 274-3
3. टी०. डब्लू०. राइस डेविड्स, उपरोक्त, पृ0 98-100.
4. मोती चन्द्र, उपरोक्त, पृ0 66-7.
5. वहीं,
6. वही,
7. वही, पृ०67
8. वही पृ0 68
9. वही, पृ0 66
10. मोतीचन्द्र, उपरोक्त, पृ0 67.

शिक्षा के विकास महात्मा का गाँधी योगदान

डॉ० कमल प्रसाद बौद्ध

प्राचार्य, रघुनन्दन टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, पटना, पूर्व संकायध्यक्ष, शिक्षा, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना,

महात्मा गाँधी ने जीवन जीने का मार्ग बतलाया, जीने का एक दृष्टिकोण दिया है। गाँधी के इस जीवन को ही गाँधीवाद की संज्ञा दी जाती हैं। 'गाँधी जी ने स्वयं कहा था 'गाँधी मर सकता है, परन्तु गाँधीवाद सदा जीवित रहेगा।' गाँधी जी का जीवन दर्शन नया दर्शन नहीं है वरन् नया मार्ग अवश्य है। रस्किन की पुस्तक 'अनटू द लास्ट' से गाँधी जी ने शारीरिक श्रम की शिक्षा ली तथा टॉलस्टाय की पुस्तक 'ईश्वर का साम्राज्य अपने भीतर है' को पढ़कर गाँधी जी आस्तिक बने। इन्होंने कानून की शिक्षा के साथ-साथ बाइबिल और लाइट ऑफ एशिया का अध्ययन कर डाला। महात्मा गाँधी का शैक्षिक दर्शन उनके जीवन-दर्शन पर आधारित है। उनके जीवन-दर्शन के आधार सत्य एवं अहिंसा थे। उनका ईश्वर में पूर्ण विश्वास था, जिसको उन्होंने सत्य का ही दूसरा रूप माना है। उनका विश्वास था कि समस्त मानवों में परमात्मा का अंश व्याप्त है, अतः वे मानवता की सेवा करना ही परमात्मा की सेवा समझते थे। उनके अनुसार शिक्षा एक प्रक्रिया है, जो सामाजिक प्रगति के लिए ही नहीं बल्कि चारित्रिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। बुनियादी शिक्षा 7 से 14 वर्ष के बालकों के लिए होने के कारण गाँधीजी का शिक्षा-दर्शन पूर्ण रूप से समाहित नहीं हो पाता है, परन्तु वे शिक्षा के माध्यम से सत्य, अहिंसा एवं न्याय के आधार पर आध्यात्मिक समाज का निर्माण चाहते थे। महादेव देसाई के शब्दों में- 'गाँधी जी ऐसी शिक्षा चाहते थे जो बालक एवं बालिकाओं को सम्पूर्ण विकास करे और जो शिक्षा समाज के लिए उपयोगी नागरिकों का निर्माण नहीं कर सकती तथा बालक-बालिकाओं को सम्पूर्ण मानव नहीं बना सकती, वह सच्ची शिक्षा नहीं हो सकती।' इस प्रकार गाँधीजी बालक के चारों पक्षों में शरीर, हृदय, दिमाग एवं आत्मा का संतुलित विकास करने वाली शिक्षा को ही वास्तविक शिक्षा मानते थे। गाँधीजी कहते थे कि, 'सच्ची शिक्षा वही है जो बालक की बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमताओं को जागृत कर, उनका सर्वांगीण विकास कर सके।'

शिक्षा के सिद्धान्तः 1. स्वावलम्बन की भावना 2. सामाजिक वातावरण के अनुरूप शिक्षा 3. अनुभवपूर्ण ज्ञान 4. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास 5. जीवन-दर्शन का गतिशील पक्ष शिक्षा-दर्शन

बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त :

इस योजना के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1. सभी प्रकार की शिक्षा किसी उद्योग के माध्यम से दी जानी चाहिए तथा इस उद्योग से सह-सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।
2. शिक्षा किसी लाभकारी हस्तकारी से प्रारम्भ होनी चाहिए, जिससे बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सकें।
3. शिक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा होनी चाहिए।
4. अंग्रेजी का बालक की शिक्षा में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।
5. शिक्षा में श्रम को विशेष महत्त्व दिया जाये।
6. उद्योग ऐसा हो, जिससे बालक को क्रिया द्वारा अनुभव प्राप्त हो सके।
7. सात से चौदह वर्ष के बालक/बालिकाओं की शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य होनी चाहिए।
8. शिक्षा से बालक में मानवीय गुणों का विकास होना चाहिए।

गाँधीजी का पाठ्यक्रमः बुनियादी शिक्षाः

गाँधीजी का ऐसे पाठ्यक्रम में विश्वास था, जो भौतिक तथा समाजिक वातावरण का सृजन कर बालकों को समुचित ज्ञान दे। बालकों को क्रियाशीलता से जोड़ने के लिए उन्होंने अपने पाठ्यक्रम में 'हस्तकला' के विषय जोड़े। गाँधीजी की 'बुनियादी शिक्षा' इसी पर आधारित है। उन्होंने तकली द्वारा सूत कातना, उससे कपड़ा बुनना बालकों को सिखाया जाता है। बेसिक शिक्षा योजना के पाठ्यक्रम में गाँधीजी ने निम्नलिखित हस्त-कौशल के कार्यों का निर्धारण किया-

1. क्राफ्ट के लिए : (क) कताई-बुनाई (ख) धातु का काम (ग) लकड़ी का काम (ध) गत्ते का काम (ड.) मिट्टी का काम।

2. शिक्षण का माध्यमः मातृभाषा ही रखा।

3. व्यावहारिक समस्याओं के लिएः दैनिक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के हल के लिए व्यावहारिक गणित, रेखा-गणित एवं वाणिज्य विषय रखे।

4. समाजीकरण के लिएः समाज विज्ञान के विषय–इतिहास, भूगोल तथा नागरिकशास्त्र रखे।

5. स्वास्थ्य विज्ञानः बालकों को शिक्षा के साथ-साथ प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्साा सम्बन्धी जानकारी मिलती रहे, इसके लिए स्वास्थ्य विज्ञान को भी पाठ्यक्रम में जोड़ा।

6. सामान्य विज्ञानः इसके अन्तर्गत जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, शरीर विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, नक्षत्र, विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान के विषय भी जोड़े। साथ में कौशल एवं मनोरंजन के लिए संगीत तथा ड्राइंग के विषय भी पाठ्यक्रम में जोड़े। बालिकाओं के लिए हस्तकला विषयों के स्थान पर गृह-विज्ञान को शिक्षण हेतु उपयुक्त समझा।

अध्यापक-शिष्य सम्बन्धः गाँधीजी बाल-केन्द्रित शिक्षा में विश्वास करते थे। अतः उनका कथन था कि शिक्षक को बालक का मित्र, परामर्शदाता और पथ-प्रदर्शक होना चाहिए। मैत्रीपूर्ण ढंग से बालक के मनोभावों की प्रतिक्रिया जाननी चाहिए। उसे बालक की चिन्ताओं के प्रति उदासीन न होकर, उसे उनसे मुक्त होने का परामर्श देना चाहिए। उसे बालक की समस्याओं को सुलझाने में पथ-प्रदर्शक का कार्य करना चाहिए। गाँधीजी शिक्षक को बालक का मित्र, पथ-प्रदर्शक एवं परामर्शदाता मानते थे। शिक्षक को मैत्रीपूर्ण ढंग से बालक के मनोभावों का अध्ययन करना चाहिए और बालक की समस्याओं के हल करने हेतु पथ-प्रदर्शक के रूप में परामर्श देना चाहिए।

महात्मा गाँधी का दार्शनिक चिन्तनः

गाँधीजी को अपने परिवार में वैष्णव धर्म की शिक्षा मिली थी। अपने बचपन में ही इन्होंने मनुस्मृति का एक अनुवाद पढ़ डाला था। गीता तो वे नित्य पढ़ते थे। इंग्लैण्ड में इन्होंने बाईबिल और लाइट ऑफ एशिया पढ़ी थी और श्रीमती एनी बेसेन्ट का सत्संग किया था। इन सबके आधार पर इनके धार्मिक एवं दार्शनिक विचार बने। पर मूल रूप में इनका जीवन-दर्शन गीता पर आधारित है। गाँधीजी ने किसी नये दर्शन का निर्माण नहीं किया। इन्होंने भारतीय दर्शन की मूलभूत बातों को ही व्यावहारिक रूप दिया है। पर यह व्यावहारिक रूप इनकी अपनी सूझ-बूझ का परिचायक है, इसलिए उसे आज गाँधी-दर्शन, गाँधीवाद अथवा सर्वोदय दर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

महात्मा गाँधी के सर्वोदय दर्शनः

गाँधीजी गीता को तत्त्व ज्ञान का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते थे। गीता के अनुसार मूल तत्त्व दो हैं- पुरुष (ईश्वर) और प्रकृति (पदार्थ), और इनमें ईश्वर श्रेष्ठ है। गाँधीजी गीता की इस बात को मानते थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि ईश्वर की श्रेष्ठता दो बातों से स्पष्ट होती है। पहली यह कि यह प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है परन्तु प्रकृति ईश्वर में व्याप्त नहीं है। दूसरी यह कि ईश्वर इस जगत का निर्माणकर्त्ता और पालनकर्त्ता है और वही इसका संहारकर्त्ता है। गाँधीजी ने गीता के इस तथ्य को उजागर किया कि ईश्वर इस जगत का कर्त्ता है और प्रकृति इसकी उपादान कारण है। ईश्वर को ये सत्य के रूप में मानते थे। सत्य शब्द सत् से बना है और सत् का अर्थ होता है- अस्तित्व, इसलिए सत्य का अर्थ हुआ जिसका- अस्तित्व है, जो नित्य है। गाँधीजी का विश्वास था कि ईश्वर

अपरिवर्तनशील है, नित्य है इसलिए सत्य है और प्रकृति परिवर्तनशील है, अनित्य है, इसलिए असत्य है। आत्मा को ये परमात्मा का अंश मानते थे। इनका विश्वास था कि जब परमात्मा नित्य एवं सत्य है तो आत्मा भी नित्य एवं सत्य है। गाँधीजी आत्मा, परमात्मा और सत्य, इन सभी को उस अनादि एवं अनन्त शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे। मनुष्य को गाँधीजी शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष है। इन्होंने मनुष्य जीवन को दो पक्षों में विभाजित किया- एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। इनकी दृष्टि से ये दोनों पक्ष एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं और एक के विकास के बिना दूसरे का विकास नहीं किया जा सकता । मनुष्य के इन दोनों पक्षों का विकास एक साथ करना चाहिए।

महात्मा गाँधी का शिक्षा में योगदानः

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी केवल राजनैतिक नेता ही नहीं थे अपितु एक बहुत बड़े धर्म मर्मज्ञ एवं समाज सुधारक भी थे। इन्होंने अपने समय की पुस्तकीय, सैद्धान्तिक, संकुचित और परीक्षा प्रधान शिक्षा में सुधार के लिए भी अनेक सुझाव दिये थे। शिक्षा जगत में ये शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हुए। गाँधी जी शिक्षा को व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे और मनुष्य की किसी भी प्रकार की, भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति के लिए इसे इतना ही आवश्यक मानते थे जितना बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध। यही कारण है कि इन्होंने एक निश्चित आयु तक के बच्चों के लिए सामान्य शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रूप से करने पर बल दिया और उसे निःशुल्क करने की बात कही। इनका स्पष्ट मत था कि यह शिक्षा विदेशी भाषा अंग्रेजी के माध्यम से नहीं दी जा सकती, यह शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही दी जा सकती है। ये शिक्षा द्वारा मनुष्य को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे, उसे अपनी रोजी-रोटी कमाने योग्य बनाना चाहते थे, इसलिए इन्होंने हस्तकौशलों की शिक्षा पर विशेष बल दिया। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव और विनम्रता पालन की ओर प्रवृत्त करने पर बल दिया। गाँधीजी ने अपने इस शिक्षा दर्शन के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप निश्चित किया और उसे बेसिक शिक्षा का नाम दिया।

शिक्षा के उद्देश्यः

गाँधीजी के विचार से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है। शिक्षा और उसके उद्देश्यों के सम्बन्ध में गाँधी जी ने जो विचार व्यक्त किए हैं उनको हम निम्नलिखित क्रम में अभिव्यक्त कर सकते हैं-

1. शारीरिक विकास2. मानसिक एवं बौद्धिक विकास 3. सामाजिक विकास 4. नैतिक एवं चारित्रिक विकास 5. सांस्कृतिक विकास 6. व्यावसायिक विकास 7. आध्यात्मिक विकास

इस प्रकार गाँधीजी ने अपने शैक्षिक विचारों का प्रसार कर बुनियादी शिक्षा के माध्यम से भारत को एक सशक्त तथा आदर्श शिक्षा की देन दी।

गाँधीवाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. सत्य– पूर्वाग्रह से दूषित न होना, सत्य को सदा मानना, असत्य से दूर हटना, असत्य से वापस लौटने में भय या लज्जा न होना और सत्य के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर देना।

2. अहिंसा– प्रत्येक प्रकार के अधर्म का पशुबल से नहीं वरन् आत्मबल से विरोध करना। अहिंसा एक क्रियात्मक और भावना-प्रधान प्रवृत्ति है।

3. सेवा– जनता की सीधी और प्रत्यक्ष सेवा के कार्यक्रम पर अमल करना। जनसाधारण को शोषण से मुक्त करना।

4. अस्पृश्यता का प्रभाव– छुआछूत का विचार समाप्त होना चाहिए। सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं और सभी को प्रगति का अवसर मिलना चाहिए।

5. आध्यात्मिकता– गाँधीवाद आध्यात्मिकता का दर्शन है। यह कोरा आर्थिक या सामाजिक दर्शन नहीं है। इसमें ईश्वर पर विश्वास, आत्मबल की जागृति, आत्मा का उन्नयन और परमात्मा के साक्षात्कार के तत्व निहित हैं।

6. देश-सेवा– देश की सेवा के लिए तन, मन और धन से जीवन को अर्पित करना और तदर्थ स्वार्थ का परित्याग करना।

7. चारित्रिक दृढ़ता– गाँधीवाद में चारित्रिक दृढ़ता पर बल है। गाँधीजी के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति अपने चरित्र को उत्तरोत्तर उन्नत करते जाते थे।

8. साधन की पवित्रता– गाँधीवाद में साधन की पवित्रता पर ध्यान दिया जाता है। अपवित्र साधनों से प्राप्त होने वाली अच्छी से अच्छी वस्तु का भी गाँधीवाद परित्याग कर देता है।

9. सत्याग्रह– गाँधीवाद में सत्य पर अटल रहने की नीति पर बल देता है। गाँधीवादी में इतना नैतिक साहस होना चाहिए कि वह विरोधों के बावजूद सत्य का आग्रह कर सके।

वस्तुतः गाँधीवाद शब्द गाँधीजी के समय में भी कुछ लोगों ने प्रयुक्त किया था। गाँधीवाद के सम्बन्ध में गाँधीजी के क्या विचार हैं इसे जानना लाभप्रद हो सकता है। सन् 1936 में गाँधीजी ने गाँधीवाद के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है–

गाँधीवाद' जैसी कोई वस्तु है ही नहीं, और मुझे अपने पीछे कोई सम्प्रदाय नहीं छोड़ जाना है। मैंने कोई नया तत्त्व या नया सिद्धान्त खोज निकाला है, ऐसा मेरा दावा नहीं। मैंने तो मात्र जो शाश्वत सत्य है, उन्हें अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों से सम्बन्धित करने का अपने ढंग से प्रयास किया है। मैंने जो रायें निश्चित की हैं और जिन निर्णयों पर मैं पहुँचा हूँ, वे अन्तिम नहीं हैं। मैं तो कल उन्हें बदल दूँ। मुझे संसार को कोई नई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आ रहे हैं। मैंने तो केवल मुझसे जितना हो सका, उतनी मात्रा में इन दोनों के प्रयोग किये हैं। ऐसा करते हुए मैंने कितनी ही बार भूलें की हैं और उन भूलों से मैंने बहुत कुछ सीखा है। इसलिए जीवन और उसके प्रश्नों से मुझे तो सत्य और अहिंसा के आचरण के प्रयोग करने का अवसर मिल गया है।

निष्कर्षः

गाँधीजी केवल साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। इनके अपने शब्दों में- 'साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न प्रारम्भ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है।' गाँधीजी मनुष्य को शरीर, मन, हृदय और आत्मा का योग मानते थे। इनका स्पष्ट मत था कि शिक्षा को मनुष्य के शरीर, मन, हृदय और आत्मा का विकास करना चाहिए। वही सच्ची शिक्षा है जो स्वतन्त्रता का मार्ग-दर्शन कराती है। केवल वही उच्च शिक्षा है जो हमें अपने धर्म का संरक्षण करने के लिए समर्थ बनाती है। गाँधीजी के अनुसार शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का काम छोटा नहीं है, क्षणिक नहीं है, वह तो समग्र जीवनव्यापी है। यह कोई शास्त्र की बात नहीं है, जीवन की बात है, आचार-व्यवहार की बात है, भावना और श्रद्धा की बात है। इसके लिए जीवन-सर्वस्व अर्पण करना होगा। अखंड कर्मयोग साधना पड़ेगा। ज्ञानयोग और ध्यानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग सबका समन्वय करके इसमें से जीवनयोग प्रकट करना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ ही राष्ट्र निर्माण है।

स्वभाव से मैं सत्यवादी था, पर अहिंसक नहीं था। सत्य की उपासना करते-करते ही मुझे अहिंसा हाथ लगी है।

गाँधी के राय और शिक्षा के प्रति नीति का एक नाम है ''नई तलीमा''। इसका मतलब है, सब के लिए बेहतर शिक्षा। गाँधी जी ने समझा कि लोगों की अपनी मातृभाषा में पढ़ाई (अध्यापन) होना चाहिए। इससे बच्चे पढ़कर अपने परिवार के सदस्यों को भी पढ़ा सकते है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। आदमी में सम्पूर्णता की उन्नति। हर विद्यार्थी को बुद्धि में विकास के साथ साथ नीति संहिता, नैतिक अभिवृत्ति, शारीरिक विकास जरूरी है। सिर्फ पाठ्य पुस्तक में मूल-पाठ काफी नहीं। बच्चे स्वतंत्र हो कर, किसी दबाव में न होकर सीखना चाहिए उनके सोच विचार में स्वतंत्रता होना चाहिए। शिक्षा में एक एकीकृत उपागम का जरूरत है। जिससे बच्चे पढ़ाई के बाद समाज का काम आ सकता है। इनके मन में विकास और चीजों की पहचान अच्छा होता है। चित्र खींचना, रेखा चित्र बनाना सीखना चाहिए, छोटे उम्र में बचत गाँधीजी के विचार में शिक्षा सिर्फ आदमी को एक पेशा पाने के लिए नहीं, उस से भी आगे और ऊँचे विचारों से देना है। स्वतंत्र रचनात्मक ख्याल और सोच लाना है और आदर्श नागरिक बनना हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. एस. के. अग्रवाल : शिक्षा के तात्विक सिद्वांत पृ0-265.
2. पी. डी. पाठक एवं जी. एस. त्यागी, शिक्षा के दार्शनिक सिद्वांत, पृ0-8.

3. एन. आर. स्वरूप सक्सेना, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्वांत, पृ0-219.
4. बारबरा साउथर्ड फेमिनिज्म ऑफ महात्मा गाँधी', गाँधी मार्ग वॉल्यूम 13 ए नं.71, अक्टूबर 1981, पृ0 403
5. इंडियन ओपिनियन, 16-12-1905 (शिक्षण और संस्कृति) पृ0 115
6. यंग इंडिया, हिन्दी नवजीवन, 8-9-1926 (नवजीवन, 12-9-1926 (शिक्षण और संस्कृति, पृ0 51
7. हिन्द-स्वराज्य, अध्याय 18, शिक्षण, इंडियन ओपिनियन, 18-12-1909 (सम्पूर्ण गांधी वांगम्य, खण्ड 10, अप्रैल 1964, संस्करण।
8. हिन्दी, महादेव भाई की डायरी, खण्ड 5, पृ0 53 शिक्षण और संस्कृति, पृ0 484
9. अल्फ्रेड रसेल वालेस (1823-1913) डार्विन का समकालीन प्रसिद्ध प्रकृति तत्त्ववेत्ता और जीवशास्त्री।
10. आईडियल रिसर्च रिव्यू, पटना, मार्च 13, वाल्यू 37 अंक-1, पृ. 59

सामाजिक एवं राजनैतिक विकास में डॉ० बी. आर. अम्बेडकर का योगदान

उपेन्द्र कुमार दास

एसोसियट प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, एस. क. आर. कॉलेज बरबीधा, शेखपुरा

सार

डॉ0 अम्बेडकर की यह मान्यता थी कि स्वतंत्र भारत में ही दलितों की संपूर्ण मुक्ति, स्वतंत्रता संभव है। हर राजनीतिक दल अपने-अपने स्वार्थ के लिए अछूतों का इस्तेमाल करता था, इस बात से वे अच्छी तरह परिचित थे। डॉ० अम्बेडकर के राजनीतिक दर्शन का प्रश्न है कि यह साम्यवाद नहीं समाजवाद से जुड़ा हुआ है। आर्थिक शोषण हटाना उनका मुख्य उद्देश्य था और अछूतों को बराबरी का दर्जा दिलाना उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति का भाग था। वे सम्पूर्ण भारतीय समाज व्यवस्था को नई पद्धति से बांधने के लिए प्रयत्न करते रहे। वे जनतांत्रिक व्यवस्था के जबर्दस्त समर्थक थे। डॉ० अम्बेडकर की पूर्ण आस्था मनुष्य और मानव समाज में थी। मनुष्य तथा उसकी शक्तियाँ ही उनके दर्शन के केन्द्र बिन्दू हैं। इसलिए उन्होंने ईश्वर से अधिक महत्व मनुष्य को दिया है। डॉ० अम्बेडकर मानवतावादी- विचारक माने गये हैं। उन्होंने करोड़ों मानवता के दर्द, भावना, उत्पीड़न को पहचाना। बाबा साहेब का मनुष्य के प्रति अमूल्य देन यह है कि उन्होंने मानवतावाद को सामाजिक जीवन में उतारा और उसे अत्याचार एवं अन्याय के विरूद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने मानव प्रगति में विश्वास किया और मानव जीवन के कल्याण के लिए परिश्रम करने जैसा शुभ कर्म करने को कहा। उन्होंने कहा कि शास्त्रों के प्रति भक्ति-भावना दिखाने से मनुष्य को दासता तथा गरीबी से छुटकारा मिलेगी। डॉ० अम्बेडकर ने मानव के प्रति सद्भावना, प्रेम तथा सम्मान को प्रदर्शित करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा। वे चाहते थे प्रत्येक मनुष्य सम्मानपूर्वक अपना जीवन-यापन करे। उन्होंने कहा "आत्म-सम्मान खोकर जीवित रहना बहुत ही अपमानजनक है, जीवन में आत्म-सम्मान एक महत्वपूर्ण तत्व है। निरंतर कठिन प्रयासों के बाद व्यक्ति में शक्ति, आत्मविश्वास आता है।" इस तरह डॉ० अम्बेडकर का धर्म मानवधर्म था, उनका सिद्धान्त मानव-सेवा था, उनकी रणनीति दलितोद्धार थी और उनका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक एवं राजनैतिक उत्थान के लिए उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समर्पित था।

शब्द कुँजी: मानवतावाद, समाजवाद, संवैधानिक, नैतिकता, अस्पृश्य, समानता

भूमिका:

डॉ० अम्बेडकर को लोकतंत्र पर गहरा विश्वास था, साथ ही संसदात्मक सरकार के पक्षधर थे। लोकतंत्र में सरकार तानाशाह और निरंकुश नहीं हो सकती है। लोकतंत्र में देश की एकता, अखण्डता और राष्ट्र की सुरक्षा होती है। बाबा साहब डॉ० अम्बेडकर ने सम्पूर्ण देशवासियों को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए संसदात्मक लोकतंत्र को ही सर्वथा उचित बताया है। डॉ० अम्बेडकर सरकार की संसदीय प्रणाली के साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक और रीति-रिवाजों को भी पूर्ण सुरक्षित करना चाहते थे, इसलिए वे जानते थे कि शासन इस प्रकार का होना चाहिए, जिससे कि जनता को किसी भी प्रकार की परेशानियाँ न हों और हर व्यक्ति अपना महत्व समझे। डॉ० अम्बेडकर सबसे अच्छी सरकार उस को मानते थे जो जनता की रूचि का हमेशा ध्यान रखती हो। इसी कारण संसदीय सरकार को लाना आवश्यक समझते थे। डॉ० आम्बेडकर के राजनीतिक दर्शन का मुख्य आधार "कट्टरवादी मार्क्सवाद नहीं था" यथा सामाजिक बराबरी। वे देश के बंटवारे के खिलाफ थे। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार आज के प्रगतिशील समाज का मुख्य

काम आर्थिक शोषण को रोकना है। वे मनुष्य को विशेष तरीके से उत्थान करना चाहते थे। मनुष्य को बुद्धिवादी मार्ग की तरफ ले जाया जाय। मनुष्य को सत्य की खोज की तरफ प्रेरित किया जाय। मनुष्य में से अंधविश्वास तथा धर्मान्धता का अन्त किया जाय।

समाज और समाजवाद

मनुष्य का सर्वांगीण विकास समाज से ही प्रारंभ होता है। मनुष्य का समाज से जन्म होता है और जीवन के प्रथम एवं अंतिम क्षण तक समाज में व्यतीत करता है, इसलिए वह समाज से अलग नहीं रह सकता है, इसी कारण अरस्तू ने मानव को सामाजिक प्राणी माना है। समाज के बिना, मनुष्य की कल्पना ही बेकार है। डॉ० अम्बेडकर का दर्शन है कि मानव-समाज में दु:ख है जिसे दूर किया जाना चाहिए ताकि लोग सुख से रह सकें। डॉ० आम्बेडकर साहेब निर्धनता-निवारण को अपनी सामाजिक तथा राजनैतिक विचारों का केन्द्र मानते थे। आज के प्रगतिशील समाज का काम है सदियों से हो रहे। आर्थिक शोषण, असमानता आदि को रोकना। सामान्यतया समाजवाद में, राज्य द्वारा उत्पादन के साधनों के स्वामित्व पर विश्वास किया जाता है। समाजवाद की मुख्य रूचि श्रमिक तथा शोषित वर्गों की आर्थिक हालत सुधारने में होती है। समाजवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विरोधी है।

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार- "सामाजिक सुधारों के बिना भारत में समाजवादी क्रांति नहीं आ सकती है। यदि यह भाग्यवश संभव भी हो जाए तो बाद में उन समस्याओं के समाधान तो करना ही पड़ेगा, तत्पश्चात् ही सच्चे अर्थ में समाजवाद का आदर्श व्यावहारिक बन सकता है।" इसलिए बाबा साहेब ने प्रगतिशील समाजवादी क्रांति के लिए समाजिक और आर्थिक सुधारों के संतुलन पर बल दिया है। एक समाजवादी होने के नाते उन्होंने सामाजिक बुराइयों का अन्त करने में भारी योगदान दिया है और उन सभी विषमताओं को दूर किया है। समाजवाद लाने के लिए आवश्यक है कि आर्थिक सुधारों के अतिरिक्त समाज के अन्दर व्याप्त जातिवाद एवं अस्पृश्यता को खत्म करना पड़ेगा। वे मानते थे कि समाजवाद के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा जातिवाद एवं छुआछूत है। इसका अन्त किये बिना भारत में समाजवाद लाना संभव नहीं होगा। उन्होंने समाज में सभी के लिए शिक्षा के महत्व पर जोर दिया, जिससे समाजवाद लाने में मदद मिलेगी।

प्राकृतिक अधिकार एवं कानून

प्राकृतिक अधिकार और कानून दोनों ही चीजें हैं। प्राकृतिक अधिकार प्रकृति द्वारा प्रदत्त शाश्वत अधिकार है। कानून प्राकृतिक अधिकार का परिवर्तित रूप है। प्राकृतिक अधिकार की रक्षा करने का दायित्व राज्य पर छोड़ दिया जाता है। किसी भी राज्य को मनुष्य के अधिकारों का हनन नहीं करना चाहिए, क्योंकि कुछ अधिकार इतने आवश्यक होते हैं कि समाज उनके बिना प्रगतिशील नहीं बन सकता है। व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का संबंध संवैधानिक अधिकार से है, इसलिए संविधान में अधिकार को देते समय संवैधानिक नैतिकता और परम्पराओं पर बल दिया गया जो संसदीय सरकार तथा अन्य जनतांत्रिक प्रणाली की सफलता के लिए आवश्यक है। उन्होंने बताया कि जनता और सरकार दोनों के ऊपर प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व है। डॉ० अम्बेडकर ने अपने राज्य और प्राकृतिक अधिकार के सिद्धान्त को जॉन लॉक की भाषा में इस प्रकार व्यक्त किया है:- "सरकार का मुख्य कार्य व्यक्ति के जीवन की स्वतंत्रता के अधिकारों की रक्षा करना है जो सरकार ऐसा करने में समर्थ नहीं, वह नैतिक दृष्टि से कुर्सी का अधिकारी नहीं है।" भारतीय संविधान का मौलिक अधिकार इसका जीता-जागता प्रमाण है। कानून के संबंध में उनकी धारणा स्पष्ट थी कि "कानून व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के लिए बनाया गया है। कानून के लिए मनुष्य नहीं है और न मनुष्य को कानून बनाया है, अपितु मनुष्य के सुख के लिए कानून बनाये गये हैं।"

राष्ट्र और राष्ट्रवाद

मानव इतिहास में राष्ट्रवाद एक बल के रूप मे विद्यमान रहा है। संसार में अनेक छोटे-छोटे दासता में पलनेवाले देश, अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को पहचानने में लगे हैं। आज राष्ट्रीय सम्मान, प्रतिष्ठा और एकता को वहाँ के लोग सर्वोच्च मानते हैं। राष्ट्रवाद यह विचारधारा है जो देश के प्रति, श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेम की भावना पर आधारित है। यह भावना जन्म अथवा किसी की इच्छा से जागृत होती है। संसार में जितने राष्ट्र हैं, उतनी ही राष्ट्रवाद की भावनाएँ प्राय: देखने को मिलती हैं। राष्ट्रवाद का वास्तविक आधार लोगों की सांस्कृतिक एवं एकात्मीयता की भावनाएँ होती हैं। स्पष्टत: राष्ट्रवाद मनुष्य के दिमाग की उपज है और इसलिए इसका सीधा संबंध मानव जीवन एवं उसकी क्रियाओं से है। डॉ० अम्बेडकर में, राष्ट्रवाद की भावना का उदय उनलोगों की आस्था के

साथ हुआ जो निर्धन, शोषित एवं अछूत थे। "जब राष्ट्रवाद की भावना जागृत हो उठती है और एक आन्दोलन का रूप धारण कर लेती है तो उसके समक्ष न तो क्षेत्रीय मित्रता टिकती है और न धार्मिक एकता ही काम करती है।" डॉ० अम्बेडकर भारतीय राष्ट्रवाद में अटूट आस्था रखते थे, जिसको दृढ़ बनाने के लिए उन्होंने सदैव सामाजिक एकता पर बल दिया। उन्होंने राजनीतिक उदारता को राष्ट्रवाद में कदापि स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था कि राष्ट्रवाद एवं देशभक्ति दोनों का संबंध निःसन्देह मानव समाज है। मानवीय समाज के साथ न्याय किए बिना मनुष्य में राष्ट्रवाद की भावना नहीं आ सकती है। डॉ० अम्बेडकर के राष्ट्रवादी और देशभक्ति विचार, सामाजिक एकता और भाईचारा की भावना पर बल देते हैं। जो लोग शोषित हैं तथा जिनके साथ अन्याय होता आया है उनको ऊँचा उठाना, उनकी आर्थिक प्रगति में सहायता करना, सच्चे देशभक्तों और राष्ट्रवादियों का कार्य है। देश-भक्ति का संबंध देश के निर्धनों तथा शोषितों की सेवा से होना चाहिए।

राज्य संविधान और सरकार

भारत एक संघीय राज्य है, जहाँ की केन्द्रीय सरकार संसदीय है। संघीय गणराज्य भारत की एक संवैधानिक विशेषता है। कई संघीय प्रांतों के समूहीकरण के फलस्वरूप केन्द्र में जनता की आवाज का प्रतीक संसद है। संसद भारतीय जनता की आत्मा है, जहाँ पर जनता अपने प्रतिनिधियों को आशाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं के अनुरूप भेजती है। जिस दल को सर्वाधिक बहुमत प्राप्त होता है, वही दल सरकार बनाती है। यहाँ सरकार के तीन अंग-कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका अपने-अपने कार्य क्षेत्र में नैतिक आदर्श को लेकर आगे बढ़ती है। न्यायपालिका निष्पक्ष है। भारतीय संविधान का यह अनूठा उदाहरण है कि उसने स्वतंत्र न्यायपालिका कबूल किया है। यह भारतीय संविधान की मर्यादा के अनुकूल कार्य करती है। राज्य की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि लोग उसके कानूनों का पालन करें। वे सम्पूर्ण भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधना चाहते थे। भारतीय संविधान के माध्यम से समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व की भावना को ध्यान में रखकर करोड़ों अस्पृश्य तथा शोषित लोगों को राष्ट्र की मुख्य धारा में जोड़ा। मौलिक अधिकार और राज्य के नीति-निर्देशक तत्व आदि को संविधान में जोड़कर सबको एक पंक्ति में खड़ा किया। भारतीय संविधान" इस देश के लिए बाबा साहेब की बहुत बड़ी देन है।

जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों का मुख्य ध्येय समाज की भलाई करना होता है। अतः डॉ० अम्बेडकर साहेब ने सरकार की कार्यविधियों का निरीक्षण करने के लिए प्रतिनिधियों के हाथों राजनीतिक सत्ता जाने पर एतराज नहीं किया। अच्छी सरकार की सबसे अच्छी विशेषता यह है कि वर्ग-विशेष में रूचि न लेकर जन-कल्याण में संलग्न रहे। सरकार की कार्य-शक्तियों को विभाजित तीन तरह से किये हैं:- (1) कार्यपालिका (2) विधानपालिका और (3) न्यायपालिका। वे सरकार के शक्ति-विभाजन के पक्षधर थे। सरकार के कार्यों को निम्नांकित रूप से बाँटने का काम किया है- "(1) कानून बनाना, (2) कानून को कार्यान्वित करना (3) जो कानून का उल्लंघन करे उसे दण्ड दें। विधानपालिका कानून बनाती है। कार्यपालिका कानून को कार्यान्वित कराती है। न्यायपालिका कानून की रक्षा करती है। जो भंग करता है उसको दण्ड देती है।"

जनता, जनतंत्र और सरकार

डॉ० अम्बेडकर प्रजातंत्र के पक्के हिमायती थे। उन्होंने कहा कि- "सभी प्रजातांत्रिक देशों के साथ मित्रता एवं प्रेम का हाथ बढ़ाने के लिए, हमें अन्य प्रजातांत्रिक देशों के साथ-साथ मिलकर चलना चाहिए।" उन्होंने कहा कि प्रजातंत्र की वास्तविक समस्याओं का समाधान होना आदि समाज और राज्य में जनतंत्र का क्या वास्तविक कर्त्तव्य है इसकी चिन्ता उन्होंने ही की जिससे कि जनता के हित में, अनुभव और बुद्धि के आधार पर अधिक कार्य हो सके। उन्होंने कहा- "जनतंत्र केवल सरकार का ही रूप नहीं है, बल्कि मौलिक रूप से यह संगठित ढंग से रहने की विधि है। परस्पर आदान-प्रदान किया हुआ अनुभव है। यह आवश्यक तौर पर अपने साथियों के प्रति आदर तथा सत्कार की भावना है।" उन्होंने कहा कि जनतंत्र को एक सम्प्रदाय विशेष का यंत्र या जाति-विशेष की धरोहर नहीं कहा जा सकता। यह एक सामान्य ढंग एवं विचार है और सामान्य लोगों की रक्षा करना जनतंत्र का महान् कार्य है। जनतंत्र एक ऐसा जीवन-मार्ग है जिसमें सहनशीलता एवं सहयोग, शांति एवं सहिष्णुता जैसे गुणों पर बल दिया जाता है। इसके अभाव में जनतंत्र का कोई मूल्य नहीं हो सकता और न कोई रचनात्मक कार्य ही संभव हो पाएगा। संसदात्मक जनतंत्र का मुख्य ध्येय ऐसे मौलिक परिवर्तन लाना है जो शांतिप्रिय ढंग से हो सके। डॉ० अम्बेडकर ने कहा है कि -"कुछ लोग सोचते हैं कि धर्म समाज के लिए अनिवार्य नहीं है। मैं इस दृष्टिकोण को नहीं मानता हूँ। मैं धर्म की नींव को समाज के जीवन तथा व्यवहारों के लिए अनिवार्य मानता हूँ।"

डॉ० अम्बेडकर का मानना है कि धर्म मनुष्य को न केवल एक अच्छा चरित्र विकसित करने में सहायता करता है अपितु, मानव समाज के संरचनात्मक पक्षों को भी निर्धारित करता है। डॉ० आम्बेडकर ने बुद्ध धर्म को करुणा का धर्म, दया का धर्म, समता का धर्म, मैत्री एवं मनुष्यता का धर्म के रूप में स्वीकार किया है। डॉ० अम्बेडकर ने धर्म के लौकिक पक्षों की आवश्यकता पर अधिक बल दिया, ताकि वह सामाजिक न्याय, सामाजिक समता और सामाजिक दायित्वों को निभाने में अपनी भूमिका अदा कर सके। डॉ० आम्बेडकर ने दुनिया के प्राय: सभी धर्मों का गहन अध्ययनोपरान्त बौद्ध धर्म को अंगीकार किया। डॉ० अम्बेडकर के मतानुसार "किसी धर्म की प्रासंगिकता एवं सत्यता का मूल्यांकन करने के लिए न्याय एवं उपयोगिता के मापदण्डों को लागू करना चाहिए और ये मापदण्ड स्वतंत्रता, समता और मैत्रीभाव के त्रयी-आदर्श में अर्न्तनिहित है। धर्म में मनुष्य को सर्वोपरि रखा है।

न्याय और शान्ति

डॉ० अम्बेडकर न्याय और शान्ति के बड़े पक्षधर थे। हर कार्य को शान्ति ढंग से करने के लिए प्रेरित किया। उनके दर्शन में अन्याय और अशान्ति का आचरण करने पर सख्त निषेध है। वे स्वयं एक अस्पृश्य, निर्धन परिवार में जन्मे थे। करोड़ों आत्माओं की पीड़ा, दुख-दर्द को बड़ा ही नजदीक से देखा था और संकट की घड़ी में कभी भी हिंसात्मक रास्ता अख्तियार नहीं किया। वे उपेक्षित-शोषित एवं दलित-अस्पृश्य समाज के साथ न्याय दिलाने के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। उन्होंने "मनुष्य" को प्रथम माना। धर्म, राज्य और समाज को बाद में स्वीकार किया। उन्होंने धर्म का केन्द्र-बिन्दू 'मानव' को ही माना। भाग्य और भगवान में कदापि विश्वास नहीं किया। उन्होंने बौद्ध धर्म के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए संविधान में समानता, स्वतंत्रता और बंधुभाव को सर्वोच्च स्थान दिया। उनका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल रहा। नैतिक चरित्र के अनुसार व्यावहारिक आचरण को हमेशा अपनाये रखा। उन्होंने सामाजिक नैतिकता को न्याय की आत्मा माना। सामाजिक चिन्तक लॉक के अनुसार- "समाज व्यक्तियों के समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, व्यक्ति ही महत्वपूर्ण होता है और समाज में उन्हीं के हित सर्वोपरि होते हैं।" हम बौद्ध धर्म की भाषा में कह सकते हैं कि न्याय, शान्ति, सद्गुण, नैतिकता, सद्भावना तथा प्रेम आदि सब बातें सदाचारी व्यवस्था के आधार हैं। सदाचारी व्यवस्था का अर्थ होता है- "मनुष्य-मनुष्य के बीच जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अच्छे एवं शुभ सम्बन्ध।" सामाजिक नैतिकता ही सामाजिक संकटों से छुटकारा दे सकता है। मनुष्य सदाचार या शुभ विचार एवं कर्म के द्वारा शान्ति एवं न्याय, सहयोग एवं समानता की संभावनाएँ बढ़ा सकता है। जब उस मार्ग की ओर बढ़ सकता है जो उसे मानवता, जनतंत्र तथा भाईचारा की तरफ ले जाता है। नैतिकता ही प्रेम और मित्रता के बंधन में बाँध सकता है।

राज्य एवं समाज:

डॉ० अम्बेडकर ने राज्य की कल्पना मनुष्यों के एक राजनीतिक संगठन के रूप में की है, जिनके पास विधायिका एवं कार्यपालिका जैसा प्रशासन तंत्र रहता है। राज्य चूँकि मनुष्यों का संगठन है, इसी नाते राज्य व्यक्ति और समाज के हितों की रक्षा के प्रति बचनबद्ध होता है। प्रत्येक नागरिक को अभाव और भय से मुक्ति दिलाना। प्रत्येक नागरिक के जीवन में स्वतंत्रता तथा प्रसन्नता की प्राप्ति करना। राज्य के निम्नतर एवं कमजोर वर्ग को बेहतर सुविधाएँ एवं अवसर प्रदान करना तथा सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करना। आन्तरिक अव्यवस्था तथा अशांति को दूर करना एवं बाहरी शक्ति लोकतंत्र को वह सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानते थे।

राजनैतिक प्रजातंत्र:

राजनैतिक प्रजातंत्र में स्वतंत्रता का विशेष महत्व दिया जाता है। राजनैतिक प्रजातंत्र राज्य में स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के सिद्धान्तों के आधार पर चलता है। डॉ० अम्बेडकर ने सरकार के प्रजातांत्रिक प्रारूप के हिमायती थे। उनकी दृष्टि में प्रजातंत्र मुख्यत: श्रेयस्कर इसलिए है कि वह व्यक्ति को विकास के पूर्ण अवसर प्रदान करता है। साथ ही यह व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक स्वतंत्रता एवं अधिकार भी प्रदान करता है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार राजनैतिक प्रजातंत्र व्यक्ति अपने आप में साध्य है। व्यक्ति अपना पृथक अधिकार संविधान द्वारा प्राप्त करे। व्यक्ति अपना संवैधानिक अधिकार न छोड़े और न उसे छोड़ने का अधिकार मिले। डॉ० अम्बेडकर सच्चे लोकतंत्रवादी थे। उन्होंने लोकतंत्र को सैद्धांतिक ही नहीं, व्यावहारिक जीवन में उतारने के लिए प्रेरित किया। उनका लोकतंत्र की व्यवहारिकता में पक्का विश्वास था। उन्होंने कहा था कि- लोकतंत्रीय सभ्यता के आधार को बनाये रखने के

लिए हमें लोकतंत्रीय देशों के साथ सहयोग करना चाहिए। डॉ० अम्बेडकर के लिए लोकतंत्र का मतलब जाति, दासता और प्रताड़ना तथा भय की समाप्ति से था। वे स्वतंत्र विचारों के पक्षधर थे। उनका विश्वास था कि "जियो और जीने दो।"

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार लोकतंत्र संगठित जीवन का ढ़ंग है इसकी जड़ें सामाजिक सम्बन्धों में ढूँढ़नी चाहिए। सामाजिक संबंधों के प्रबंध के लिए आवश्यक लोकतंत्रीय यंत्रीकरण में दृढ़ विश्वास था। भारतीय समाज में उन्होंने लोकतंत्र के स्वीकारात्मक संकट के रूप में गरीबी, अज्ञानता तथा जाति-भेद भाव पाया, इसलिए उन्होंने गरीबों के लिए शैक्षिक सुविधाएँ और आर्थिक सहायता प्रदान करने को कहा। डॉ० अम्बेडकर ने गरीब लोगों को शिक्षित होने और राजनैतिक चेतना तथा संवैधानिक गतिविधियों के प्रति सचेत रहने को कहा।

समाजवादी संबंधी विचार:

डॉ० आम्बेडकर के राजनीतिक विचार में समाजवाद का चिन्तन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। समाजवाद का उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियंत्रण करना आवश्यक है तथा बुनियादी उद्योगों के उत्पादित धन का समाज में समान वितरण करना है। राज्य समाजवाद केवल आर्थिक सिद्धान्त पर आधारित नहीं है बल्कि इसका आधार सामाजिक और राजनैतिक भी है। समाजवाद का उद्देश्य समाज में समानता को बनाये रखना है। समानता बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि समाज में गरीबी और गैर-बराबरी हटाई जाए। इसलिए तो डॉ० आम्बेडकर समानता को प्यार तथा असमानता को घृणा से देखते थे।

कानून और प्रशासन की दृष्टि से सभी को समान माना गया है, भेदभाव बिल्कुल निषेध है। लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि संवैधानिक नैतिकता का पालन हो सके। संविधान के प्रति जो आदर की भावना नहीं रखता, वह असंवैधानिक एवं जनतंत्र-विरोधी है, उसे हिरासत में भी लिया जा सकता है। भारत का संविधान सभी भारतवासियों के धर्म-ग्रंथों से भी अधिक पवित्र और सम्मानित माना जाता है। लास्की ने लोकतंत्र में नैतिकता का बहुत महत्व दिया है। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि गलत करने वाले के विरूद्ध आवाज उठाये और अन्याय को रोके।

राष्ट्रीय एकता-अखण्डता संबंधी विचार

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय डॉ० अम्बेडकर के जीवन का महानतम लक्ष्य देश की एकता और अखंडता थी, जिसके लिए उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रयास किया। उन्होंने नई दिल्ली में संविधान मसविदा समिति के समक्ष अपने भाषण में कहा था- "मुझे इस देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक बनावट के संबंध में कोई सन्देह नहीं है। आज मैं जानता हूँ, हम राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक तौर पर भले ही बंट गये हैं। इन सबके बावजूद मैं विश्वास दिलाता हूँ कि समय और परिस्थितियाँ और इस विश्व की अन्य शक्तियाँ भी इस देश को एक होने से नहीं रोक सकती हैं। यहाँ तक कि हमारी जातियाँ तथा धर्म भी विभिन्न होने पर भी हम सब एक होने से रूक नहीं सकते हैं। हम सभी तरह से एक हैं यह कहने में मुझे कोई झिझक नहीं है।" डॉ० अम्बेडकर जानते थे कि देश की एकता व अखंडता कोई साधारण चीज नहीं है, यह व्यावहारिक और सांसारिक निरपेक्ष है। इसलिए डॉ० अम्बेडकर चाहते थे कि हमारे देश की जनता आपसी धर्म जाति आदि के भेदभाव को छोड़कर एक रहें और देश की एकता एवं अखंडता बनाये रखें। लोकतंत्र को सुरक्षित करने के लिए डॉ० आम्बेडकर ने कहा कि- यदि हम लोकतंत्र को यथार्थ में बनाये रखना चाहते हैं तो हमें अपने सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संवैधानिक मार्ग को अपनाना चाहिए।

निष्कर्ष:

डॉ० अम्बेडकर की आस्था मानव मूल्य एवं आदर्श में है। उनका दार्शनिक चिन्तन सामाजिक एवं प्रजातांत्रिक मानवतावाद है। उनके दर्शन, व्यावहारिक एवं उपयोगितावादी है। सामाजिक एवं नैतिकता, निश्चितता एवं गतिशीलता भी पाये गये हैं। उनके दर्शन में व्यक्तिवादी एवं समाजवादी दृष्टिकोण स्पष्ट दिखता है। लोकतंत्र को सुरक्षित करने के लिए डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि-"यदि हम लोकतंत्र को यथार्थ में बनाये रखना चाहते हैं तो हमें अपने सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संवैधानिक मार्ग को अपनाना चाहिए। डॉ० अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन एक विचारधारा थी जिसका मुख्य उद्देश्य था-सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय। इस प्रकार किसी भी समाज में स्वतंत्रता और समानता की स्थापना संविधान और कानून के द्धारा ही की जा सकती है। इसलिए वे नए भारत के नए संविधान निर्माता कहलाये। हम कह सकते हैं कि भारतवासियों का सामाजिक एवं राजनैतिक विकास में डॉ० बी. आर. अम्बेडकर का अमूल्य योगदान है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. डॉ० राज गोपाल सिंह, डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचार, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, वर्ष 1991, पृ.-73,75
2. डॉ० भीमराव अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धम्म, अनुवादक कौशल्यायन, बम्बई, सिद्धार्थ प्रकाशन, 1979
3. डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीसेज, खण्ड-4, बम्बई गर्वमेन्ट ऑफ महाराष्ट्र पब्लिकेशन, पृ०-437
4. बी० आर० अम्बेडकर, बुद्ध एण्ड द फ्यूचर ऑफ हिज रिलीजन (195व), पृ०-18
5. जीनेट रॉविन- डॉ० अम्बेडकर एण्ड हिज मूवमेंट - डॉ० अम्बेडकर पब्लिकेशंस सोसाइटी, हैदराबाद, 1964
6. डॉ० डब्ल्यू० एन० कुबेर - डॉ० अम्बेडकर - ए क्रीटिकल स्टडी पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1973
7. एम० एन० दास- द पॉलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ जवाहरलाल नेहरू, 1961
8. डब्ल्यू० एन० कुबेर, आधुनिक भारत का निर्माता: डॉ० भीमराव आम्बेडकर, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1990
9. डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-4, महाराष्ट्र सरकार प्रकाश, बम्बई
10. डॉ० आर० जी० सिंह, "डॉ० भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक विचार" वर्ष 1991, मध्य प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी
11. डॉ० अम्बेडकर, "बुद्ध एण्ड हिन्दू धर्म", बम्बई, 1957
12. सोर्स मैटेरियल ऑफ बाबा साहेब अम्बेडकर एण्ड द मूवमेंट ऑफ अनटचेबल्स, 1982
13. डी० आर० जाटव, "राष्ट्रीय आन्दोलन में डॉ० अम्बेडकर की भूमिका", 1989

जातक कथाओं में व्यपार की कुछ वस्तुओं की कीमत के बारे में उल्लेख मिलता है। महा-उम्मग्ग जातक से प्राप्त एक वर्णन के अनुसार एक गधे की कीमत आठ कार्षापण बताई गई है।इसी प्रकार कान्हा जातक और गमरिचरंद जातक एक जोड़ी बैल की कीमत चौबीस कर्षापण बतलाई गई है। वेस्सन्तर जातक में एक दास की कीमत एक सौ निष्क बताई गई है।नन्द जातक में एक दास की कीमत एक सौ कार्षापण बताया गया है। इसी प्रकार जातकों में घोड़ों की कीमत में भी प्रसंग के अनुसार काफी अंतर दिखते हैं। जो एक हजार से लेकर छः हजार कार्षापण तक बतलाए गए है।बकरी के बच्चे की कीमत एक सौ कार्षापण थी।

संदर्भ ग्रंथः

1. दि जातक , खण्ड .1 , न0 1, पृ0 4.
2. आर. फिक, दि सोशल ऑर्गेनाईजेशन इन नार्थ-ईस्ट इंडिया इन बुद्धाटाइम (अनु0), इंडोलॉजिकल बुक्स हाउस, वाराणसी, 1972 पृ0 274-3
3. टी०. डब्लू०. राइस डेविड्स, उपरोक्त, पृ0 98-100.
4. मोती चन्द्र, उपरोक्त, पृ0 66-7.
5. वहीं,
6. वही,
7. वही, पृ०67
8. वहीपृ0 68
9. वही, पृ0 66
10. मोतीचन्द्र, उपरोक्त, पृ0 67.

राजनीति विज्ञान में तथ्य-मूल्य विवाद

डॉ० धीरेन्द्र त्रिपाठी

सहायक प्रोफसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड - 834001

21 वीं शताब्दी में जहाँ चारों ओर प्रगति एवं विकास के कीर्तिमान स्थापित किये गये हैं, वहाँ लगभग सभी विकसित एवं विकाषसील देशों में राजनीति विज्ञान चौराहे पर खड़ा है। उसके विकास की गति मंद व अवरुद्ध है। राजनीति विज्ञान के पास न तो कोई एक सर्वमान्य वैज्ञानिक सिद्वान्त है, न अपने अध्ययन के उपकरण है और नहीं अपनी विकसित पद्वतियाँ हैं और न हीं इनका सुनिष्चित मंतव्य है। राजनीति के अध्ययन की अवहेलना का दुष्परिणाम मानव जाति ने सैकड़ों वर्ष की गुलामी के रुप में देखा। कभी राजनीति को चर्च के हाथों सौप दिया गया तो कभी राज-तंत्र के चरणों में समर्पित कर दिया गया। अल्प विकसित समाजों में राजनीति लम्बे समय तक किसी न किसी शासक या अल्पतंत्र का खिलौना बनकर रही। परिण्यमत: राजनीति के यथार्थ ज्ञान से वांचित समाज को अधिकाशत: दास या पशुवत जीवन बिताना पड़ा।

किसी भी विषय को विज्ञान बनाने और मानने का वर्तमान मापदण्ड है "वैज्ञानिक पद्वतियों का प्रयोग"। समाज में रहने वाले मानव से संम्बंधित सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञनिक पद्वति के द्वारा विभिन्न सामाजिक तथ्यों, धटनाओं, प्रक्रियाओं, अन्तर्सम्बधों, संगठनों, विचारों आदि का अध्ययन किया जाता है। इसी आधार पर भविष्य कथन किया जाता है किन्तु केवल वैज्ञानिक पद्वति के प्रयोग, तथ्यों का वर्णन विष्लेषण तथा भविष्य कथन से ही कोई विषय शैक्षिक अनुशासन नहीं बन जाता है। किसी विषय को एक वर्द्वनशील अनशासन बनाने के लिये उसमें स्वंय को दिशा निर्देश देने तथा विकसित करने की क्षमता होनी चाहिये। उसका अपना विषय क्षेत्र स्पष्ट एवं सुनिश्चित हो तथा उसकी अध्ययन संबंधी स्वविकसित पद्वतियों तथा प्रविधियाँ हो। उसके पास अनुभर्वामक, विकसित तथा रचनात्मक सिद्वान्त हो क्योंकि सिद्वान्त ही विषय को अनुशासन कहलाने की प्रस्थिति प्रदान करता है। सिद्वान्त के माध्यम से अवधारणाओं, पद्वातियों व निष्कर्षो को संगठित किया जाता है और यह विषयवस्तु की व्याख्या, एकीकरण और स्पष्टीकरण में सहायता देता है।

प्राचीन राजनीतिक चिंतकों ने अपना सारा ध्यान आदर्श राज्य की समस्या पर केन्द्रित किया था। मध्ययुगीन चिंतकों ने एक ऐसी व्यवस्था का विकास करने के सबंध में सोचा जिसके अन्तर्गत पृथ्वी पर ईश्वर के राज्य की स्थापना की जा सके। पिछली कुछ शताब्दियों में राजनीतिक दर्शनिंकों का ध्यान शक्ति, सत्ता, प्रभाव आदि की समस्याओं पर केन्द्रित रहा है। सरकार के अध्ययन के रुप में राजनीति विज्ञान का प्रारंभ अमेरिका में हुआ। अपना प्रमुख आधार संस्थाओं के ऐतिहासिक अध्ययन पर रखते हुए भी इस पीढ़ी के राजनीति वैज्ञानिकों ने समय-समयपर राज्य, कानून, प्रभुसता, अधिकार, न्याय आदि संकल्पनाओं के विष्लेषण करने काप्रयत्न किया और सरकारों की कार्यविधियों को परखने की चेष्टा की। विद्वानों द्वारा अब राजनीतिक संगठनों और प्रक्रियाओं के प्रकाार्यात्मक पक्षों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाने लगा।

20 वीं शताब्दी के प्राथमिक चतुर्याश में इस ऐतहासिक विश्लेशनात्मक उपागम के साथ एक आदर्शात्मक-उपदेशात्मक उपागम भी जुड़ गया। राजनीतिक चिंतकों के मन में यह धारणा आरभ्भ होने लगी थी कि आदर्श और वांछिनीय की अपनी खोज में उन्होने शायद यह समझने की पर्याप्त चिंता नहीं की कि सरकारें और राजनीतिक संस्थायें वास्तव में काम कैसे करती है? जेम्स ब्राइस ने अपनी पुस्तक अमेरिकन कामनवेल्थ (1888) में लिखा कि उसका उदेश्य अमेरिका की संस्थाओं और उसकी जनता को बिल्कुल वैसा ही चित्रित करना जैसे वे हैं 1924 में प्रकाशित अपनी पुस्तक माडर्न डमोक्रेसी में इसने कहा कि सबसे अधिक आवश्यक हैं तथ्य-तथ्य, तथ्य, तथ्य। उसके अनुसार मानव स्वभाव की प्रवृतियों में एक निरन्तरता और समानता होती है। ये प्रवृतियाँ इतनी समान और स्थायी है कि हम मानव स्वभाव के सम्बध में सामान्य नियमों की खोज कर सकते हैं और उन्हें ज्ञान की एक सामान्य व्यवस्था का आधार मान सकतें है।

1903 में अमेरिकन पोलिटिकल साइंस एसोसिएशन की स्थापना के साथ और उसके द्वारा राजनीतिक संस्थाओं के सम्बंध में तथ्यों के संग्रह, संयोजन और वर्गीकरण को दी जाने वाली प्रेरणा के परिणामस्वरुप राजनीति विज्ञान नये युग की शुरुआत होती है। राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के सम्बंध में तथ्यों के संग्रह और वर्ग्रीकरण के प्रति अत्याधिक आग्रहशील होना, इसकी प्रमुख विशेषता है। इससे राजनीति विज्ञान का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया कि उसमें संस्थात्मक संगठन, निर्णय, निर्माण एवं क्रियाशीलता की प्रक्रियाओं, नियंत्रण की राजनीति, नीतियाँ एवं कार्यो के मानवी वातावरण को भी सम्मिलित किया जाने लगा। इस नये दृष्टिकोण के विकास के कारण नयी आधार सामग्री और नये सामान्यीकरण की आवश्यकता बढ़ी। शासन की प्रक्रियाओं को समझने की तीव्र इच्छा से वर्तमान संकल्पनाओं व प्रविधियों के प्रति असंतोश की भावना बढ़ी परिमाणत: नई वैचारिक संस्थाओं और तकनीकी उपकरणों का विकास किया गया।

1850 से पहले जो प्रागनुभविक व निगमनात्मक पद्वतियों प्रचलित थी, 19 वीं शताब्दी के उतरार्द्व में ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्वतियों प्रचलित थी, की तुलना में आधुनिक पद्वतियों में प्रेक्षण, सर्वेक्षणऔर मापन के प्रति एक स्पष्ट प्रवृति का विकास हो रहा था। राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक शोध प्रविधियों और उपकरणों का वास्तविक प्रस्फोट व्यवहार वादियों के आगमन के साथ माना जा सकता है। व्यवहारवाद में तथ्यों के संकलन, प्रसंस्करण और विश्लेषण के लिये जिन प्रविधियों को प्रयोग किया गया, नि:संदेह नवीन थे। किर्क पैट्रिक के अनुसार वर्तमान स्थिति के प्रति अंसतोष ने क्षोभ को जन्म दिया और क्षोभ के परिणामस्वरुपक्षेत्र में परिर्वतन आया। विशेषण की नई इकाईयों, नई प्रविविधयों, नई तकनीकों, नये तथ्यों और एक व्यवस्थित सिद्वान्त के विकास की मांग तेजी के साथ की जाने लगी थी।

1903 में अमेरिकन पोलिटिकल साइंस एसोसिएषन की स्थापना एक महत्वपूर्ण युग के आरम्भ का संकेत है। इसके अध्यक्षों फ्रैंक गुडनाड, जेम्स ब्राइस, लारेंस लावेल, बुडरो विल्सन चार्ल्सबियर्ड, आर्थर बेटले के भाषण एवं लेखों में उनका दृढ़ विष्वास झलकता था कि राजनीतिक अध्ययन का व्यवाहारिक राजनीति से सीधा सम्बंध होना चाहिये। 1989 में ए0 एल0 लावेल की रचना एसेज आन गवर्नमेण्ट में इस बात पर जोर दिया कि शासन की संस्थाओं की तुलनाओं में उनके कार्यो का अध्ययन करना अधिक आवश्यक है। यांत्रिकी के यंत्रों को समझने के लिये इन्हें गतिशील अवस्था में देखना आवश्यक है ठीक इसी प्रकार शासन के वास्तविक यंत्र को तभी समझा जा सकता है जब इस क्रिया अवस्था में देखा जाय। अपने अध्यक्षीय भाषण में लावेल ने षिकायत की कि राजनीति विज्ञान शासन की वास्तविक संचालन प्रक्रियाओं का यथेष्ठ अध्ययन नहीं करते। मनुष्यों अथवा संस्थाओं के विरुद्व कड़ी आलोचना करना तो बहुत आसान है किन्तु यह समझना कि वे कल कहाँ तक उन राष्ट्रीय परिस्थितियों का परिणाम हैं जिनमें उनका विकास हुआ, अत्यंत कठिन है। राजनीतिक धटनायें अपने वास्तविक रुप में समाज में धटित होती हैं। उनके मूल उद्गम को हमें वहीं तलाश करना चाहिये।

पब्लिक ओपीनियन एवं पापलुर गवर्नमेण्ट पुस्तक में लावेल ने स्पष्ट किया कि मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिये आधुनिक मनोविज्ञान की जानकारी आवश्यक है। राजनीतिक संस्थाओं के धोषित उदेश्य चाहे कुछ भी क्यों न हो, उनके पीछे एक अदृश्य राजनीतिक प्रक्रिया काम करती है और यही राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिरता के अनुरक्षण में योग देती है। किन्तु 1908 में ग्राह्म वेलास की पुस्तक हयूमन नेचर इन पालिटिक्स प्रकाशित हुई। ग्राहम वेलस ने राजनीति में अविवेक के भूमिका की विस्तार से चर्चा की और राजनीतिक घटनाओं की व्याख्या में मनोवैज्ञनिक शक्तियों के अध्ययन पर अधिक जोर दिया। उसने राजनीति विज्ञान में असंतोश की स्थिति का कारण संस्थाओं का अत्याधिक विश्लेषण और व्यक्ति के विश्लेषण को टाला जाना बताया। उसके अनुसार आधुनिक मनोविज्ञान मानव प्रकृति के सम्बंध में सही चित्रण देने में सक्षम है। साथ राजनीति विज्ञान केवल गुणात्मक पद्वतियों पर निर्भर न रहते हुये परिणात्मक प्रविधियों के प्रयोग से अपनी समस्याओं को अधिक स्पष्ट रुप से प्रस्तुत करने और उसका अधिक से अधिक सही समाधान निकालने की स्थिति में हैं। जार्ज कैटलिन ने अन्त: शास्त्रीय उपागम पर जोर दिया। साथ ही उसने स्पष्ट किया कि राजनीति का संचालन शक्ति सम्बंधों के द्वारा ही किया जाता है।

व्यवहारवादी राजनीति विज्ञान में आर्थर बेंटले और चार्ल्स मेरियम का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। बेंटले की राजनीति विज्ञान को दो प्रमुख देन है:-(i) राजनीति सुझबुझ और अन्वेषण में यथार्थता के स्तर तक पहुँचने की दृष्टि से समूह की संकल्पना का विकास (ii) इस यथार्थता को ठीक से समझने के लिए एक मात्र सहीं उपागम के रुप में प्रक्रिया की संकल्पना का प्रतिपादन। बेंटले ने अपनी पुस्तक 'दि प्रोसेस आफ गवर्नमेंट' में परम्परागत राजनीति विज्ञान को बंजर, औपचारिकतापूर्ण, प्राणहीन, बंध्या और स्थैतिक बताया। उसका परिमाणीकरण और मापन में स्पष्ट विश्वास था। उसका स्पष्ट विश्वास था कि जिस सामग्री की किसी न

किसी रुप में माप-तौल नहीं की जा सकती, उसे वैज्ञानिक रुप देना सर्वथा असंभव है। मापने के द्वारा ही अव्यवस्था पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

चार्ल्स ई0 मेरियम को व्यवहारवादी राजनीतिविज्ञान का जनक माना जात है। 1921 में पोलिटिकल साईंस रिव्यू में मोरियम ने इस बात पर जोर दिया कि राजनीति विज्ञान को समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भूगोल, नृविज्ञान, जीवविज्ञान और सांख्यकीय के द्वारा आविष्कृत प्रविधियों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। मेरियम चाहता था कि राजनीतिक अध्ययनों में मानव ज्ञान की उन सभी प्रगतियों से, जिनका विकास पिछली कुछ पीढ़ियों से सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञानों में हुआ उसका लाभ उठाया जाय। वह अन्य विज्ञानों के समान राजनीति में वैज्ञनिक दृष्टिकोण का विकास करना चाहता था ताकि राजनीतिक व्यवहार को खोज का मूल उदेष्य बनाया जा सके। 1925 में न्यू आस्पेक्टस आफ पालिटिक्स में उन विशेष उदेश्यों, प्रविधियों, प्रणालियों और आग्रहों की व्याख्या की जो बाद में व्यवहारवाद से सम्बद्व माने गये।

किर्क पैट्रिक के अनुसार 1945-55 तक व्यवहारवादी राजनीति विज्ञान का अर्थ एक दृष्टिकोण, एक चुनौती, एक अभिवृति और एक सुधार आन्दोलन के रुप में लिया जा रहा था। द्वितीय विश्वयुद्व के बाद व्यवहारवादी शोध संरक्षण और प्रोत्साहन देने के उदेश्य से अनेक उदारवादी संस्थाओं का इसे समर्थन मिला। कार्नेगी राक, फेलर एवं फोर्ड जैसी संस्थायें काफी मददगार सिद्व हुई। इनकी सहायकता के बिना व्ययसाघा व्यवहारवाद का ठीक ढंग से विकास नहीं हो सकता था। सरकारी संस्थाओं और उदार संस्थाओं की सहायता से व्यववहारवादी राजनीति विज्ञान को एक सम्मानजनक गतिविधि के रुप में स्वीकृत किया जा सका। अब स्पष्ट हो चुका था कि अधिक समय तक शोध को पुस्तकालयों की चाहारदीवारी मे सीमित नहीं किया जा सकेगा।

द्वितीय विश्वयुद्व के बाद नये विष्व में तेजी से बदलती तकनीकी प्रवृतियाँ और तेजी से बदलने वाली अन्तर्रष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्थाओं के कारण राज्यों की प्रकृति और उनके लक्ष्यों में परिर्वतन आ रहा था। परिमाणत: यह आवश्यक हो गया था कि राजनीतिक प्रक्रियाओं के प्रकाश में उनकी गत्मात्मकता का अध्ययन किया जाय। स्पष्टत: राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन व्यक्तिगत व्यवहार के अध्ययन के संदर्भ में ही किया जा सकता है और उसे तब ही ठीक से समझा जा सकता है जब व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य पक्षों को ठीक से समझ लिया जाय।

राजनीति विज्ञान के सम्बंध में समय-समय पर अनेक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्व में प्रचलित दृष्टिकोणों को व्यापक रुप से दो वर्गो में बॉटा जा सकता है:-

(I.) विधिवादी ऐतिहासिक आदर्शात्मक दार्शनिक दृष्टिकोण

(ii.) आनुभविक विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक व्यवहारवादी दृष्टिकोण

प्रथम दृष्टिकोण तथ्यों की तुलना में मूल्यों पर अधिक जोर देता है और दूसरा दुष्टिकोण मूल्यों की तुलना में तथ्यों पर। आनुभविक सिद्वान्त वृतियों का विश्वास है कि केवल तथ्यों पर आधरित राजनीति का ही एक आनुभविक विज्ञान के रुप में विकसित किया जाना संभव है जबकि आदर्शवादी सिद्वान्तवादियों का विचार है कि राजनीति के अध्ययन को न तो शुद्व विज्ञान का रुप दिया जा सकता है और न ही दिया जाना चाहिये। यह वाद-विवाद दो प्रष्नों पर आधरित है-

(i.) क्या मूल निरपेक्ष राजनीतिक विश्लेषण संभव है?

(ii.) क्या राजनीतिक विश्लेषण मूल्य निरपेक्ष होना वांछनीय है?

आनुभविक दृष्टि से सत्य क्या है? इसके सम्बंध में निर्णय लेना एक बात है, और सत्य क्या होना चाहिए उसके सम्बंध में सही निर्णय लेना दूसरी बात है। मूल्यों के सम्बंध में बहुत से मत हो सकते हैं किन्तु तथ्य सभी के सामने होते है, वे सभी को दिखाई देते हैं। इसीकारण उन्हें आनुभविक परीक्षणों की कसौटी पर कसा जा सकता है जबकि मूल्यों के सम्बंध में इस प्रकार का कोई परीक्षण संभव नहीं है। आदर्शवादियों का दृढ़ विश्वास है कि प्राकृतिक विज्ञानों में स्थिति चाहे कुछ भी क्यों न हो किन्तु सामाजिक विज्ञानों में तथ्य और मूल्य इस प्रकार गुंथे है कि उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। दिखाने के लिये चाहे कुछ भी किया जाय, हम सदैव मूल्यात्मक निर्णय लेने की प्रक्रिया में लगे रहते हैं। राजनीति में कोई ऐसा व्यापक सिद्वान्त हो ही नहीं सकता जिसमें केवल तथ्यात्मक क्तव्यों की आनुभविक प्रमाणिकता का मूल्यांकन किया गया हो किन्तु उसका नैतिकता के आधार पर मूल्यांकन न किया गया हो। इसलिए राजनीति के सम्बंध में कोई सम्पूर्णत: वस्तुनिष्ठ सिद्वान्त हो ही नहीं सकता है।

किन्तु दोनों दृष्टिकोणों के बीच सहमति का व्यापक क्षेत्र है। आनुभविक अध्ययनों में से मूल्यों को पूर्णत: बहिष्कृत नहीं किया जा सकता, के आधार पर दोनों दृष्टिकोण के मध्य सहमति के निम्नलिखित बिंदु दिखाई देते हैं -

(I.) शोधकर्ता के मूल्यों तथा उसके विशेष रुचि और उत्सुकता का शोध के लिये चुने गये विषय पर अनिवार्य रुप से प्रभाव पडता है।

(II.) शोध विषय की महत्ता का निर्धारण मात्र आनुभविक ज्ञान के आधार या नहीं हो सकता है। शोधकर्ता के पास कुछ अधि मान्यताओं का होना आवश्यक है।

(iii.) सत्य के प्रति आग्रह भी अपने आप में मूल्य ही है।

(iv.) शोध के पूर्व प्राक् वैज्ञानिक ज्ञान प्रमाण की मांग नहीं करते हैं।

(v.) शोध को शोधकर्ता के राग-देश से मुक्त रख पाना अत्यंत कठिन है। यह बात सुक्ष्म शोध की तुलना में व्यापक अथवा मध्य स्तरीय सामान्यीकरणों के सम्बंध में अधिक सही है।

इसी प्रकार राबर्ट डाल के अनुसार है और होना चाहिये तार्किक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि-कोण से इन्हे अलग करना संभव नहीं है।

जहाँ तक तथ्य मूल द्विभाजन की वांछनीयता का प्रश्न है, आदर्शवादियों के अनुसार राजनीति के अध्ययन के पीछे सदा ही कोई उदेश्य होता है। वह हमें अच्छे ढंग से काम करने, अच्छे साधनों को अपनाने और अपने सहयोगियों के साथ सद्भावना के सम्बंध रखने की क्षमता प्रदान करता है। यह तभी संभव है जब वस्तुस्थिति का हम सही अंदाजा लगा सके। राबर्ट डाल के अनुसार इस प्रक्रिया में तथ्यों की खोज और उनका मूल्यांकन इतने धुले-मिले हैं कि अपने तथ्यात्मक ज्ञान को तथा मूल्यों को अलग-अलग रखना एक निरर्थक प्रयास है और यह प्रयास अवास्तविक भी होगा। परा अनुभववादियों ने अनुभव वादियों पर निम्नलिखित आरोप लगाये-

(I.) अनुभववादियों के पास सम्बद्वता की जांच के लिये कोई कसौटी नहीं है इसी लिये उनका अधिकांश समय महत्वहीन खोजों में चला जाता है जिनका राजनीति विज्ञान के मूल सैद्वान्तिक प्रश्नों से कोई सम्बंध नही है।

(ii.) मूल्य निरपेक्षता और वस्तुनिष्ठता की अपनी खोज में वे ऐसे आडम्बरपूर्ण शब्दजाल का प्रयोग करने लगे है जो कृत्रिम और क्लिष्ट तो है ही कभी-कभी हास्यास्पद भी हो जाता है।

(iii) अनुभववादियों ने मूल्यांकन के सभी आधारों को अस्वीकार कर सभी मूल्यों को बराबर कर दिया।

(iv.) मूल्य निरपेक्षता को स्वीकार करने के बाबजूद लोकतंत्र के कट्टर समर्थक है।

लियो स्ट्रास के अनुसार नया राजनीति विज्ञान ऐसे प्रेक्षणों को सबसे अधिक महत्व देता है जो अधिका से अधिक बार दोहराये जा सकें। इनका सम्बंध जनता के निम्नतम भागों से होता है क्योंकि राजनीतिक व्यवहार में नियामितता समाज के बौद्विक दृष्टि से पिछड़ों निम्न वर्गो में हीं पाई जाती है। किन्तु अनुभव वादियों के अनुसार वास्तव में वे उन्हीं प्रश्नों के समाधान में लगे हुये हैं जो सदियों से परम्परागत राजनीतिक सिद्वान्त में जाँच -पड़ताल का केन्द्र रहे हैं। नई संकल्पनाओं और परिभाषाओं पर अनुभववादियों का स्पष्ट मानना है कि उन्होंने राजनीतिक व्यवहार और प्रक्रियाओं को बहुत गहराई में जाकर समझने का प्रयत्न किया है। इसलिये नई संकल्पनाओं का विकास करना उनके लिये आवश्यक हो गया। अन्तर अनुशासनात्मक दृष्टिकोण से भी कई नये शब्द मिले। विशेषकर लासवेल ने ऐसे शब्दों को विकसित करने का प्रयत्न किया जो विचारों की गूढता को सुनिश्चित शब्दों में व्यक्त कर सके।

मूल्य निरपेक्षता पर अनुभववादियों का स्पष्ट मानना है कि मूल्यों के प्रति उदासीन होना आवश्यक नहीं है। मूल्य विज्ञान से परे हैं किन्तु बुद्विमतापूर्ण नैतिक निर्णय लेने के लिये किसी न किसी प्रकार के आनुभविक ज्ञान का होना जो वैज्ञनिक पद्वति के द्वारा हीं प्राप्त किया जा सकता है, एक आवश्यक शर्त है। ये बातें अर्नाल्डब्रेख्त के वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षतावाद के काफी करीब हैं। किन्तु लिये स्ट्रास के अनुसार सभी इच्छाओं को बिना किसी भेदभाव बराबर मान लेने की उनकी शिक्षा का प्रभाव यही हुआ कि कोई भी ईच्छा अब ऐसी नहीं रही जिसके सम्बंध में मनुष्य को लज्जा का अनुभव हो। आत्म ग्लानि की भावना के नष्ट होने से आत्म सम्मान की संभावना भी नष्ट हो जाती है। सभी मूल्यों को बराबर मान लेने की षिक्षा देकर यह सिद्वान्त अनजाने में ही सही, पाषविक वृतियों की श्रेष्टता को स्थापित करता है।

मूल्य निरपेक्षता की इस भावना के प्रसार लिये लियो स्ट्रास और वोगोलिन दोनो मैक्स वेवर को मूल रुप से दोषी मानते है। मैक्स वेवर के मूल्यों के श्रेणीक्रम को नहीं माना और सभी मूल्यों को एक ही श्रेणी मे रक्खा। वेवर मूल्यों को विज्ञान से परे की वस्तु

मानता था जबकि वेवर के अपने निष्कर्षो पर उसके मूल्यों की स्पष्ट छाप है। वेबर की मान्यता थी कि वस्तुनिष्ट ऐतिहासिक शोध के आधार पर इतिहास की मार्क्सवादी भौतिकवादी व्याख्या गलत सिद्व होती है। किन्तु यहाँ बेवर का यह अपना मूल्य है। अपने सिद्वान्त के आधार पर उसे मार्क्सवादियों के मूल्य संबंधी विचारों को चुनौती देने का उसे अधिकार नही था।

अर्नाल्ड बेख्त ने वेबर के विचारों के विश्लेषण में स्पष्ट किया कि उसने मूल्यों को कभी समान नहीं माना था। वेबर के अनुसार प्रमाणिकता स्थापित करने की दृष्टि से मूल्य समान रुप से असमर्थ हैं, और यह बात भी उसने केवल अन्तिम मूल्यों के सम्बंध में कही थी, न की सभी मूल्यों के सम्बंध में। वेबर की मान्यता थी कि मूल्य सम्बंधी निर्णयों की उपस्थिति में यह आवष्यक नही हम अपनी आलोचना वृति को निलम्वित कर दे। इसी प्रकार आदर्षवादियों का यह आरोप कि वे सत्य में विश्वास रखते हैं, और सत्य अपने आप में मूल्य है किन्तु कोई वस्तु सत्य है अथवा असत्य, किसी प्रकार भी, एक मूल्यबद्व निर्णय नहीं माना जा सकता है।

आदर्शवादियों का यह भी आरोप है कि अनुभववादी राजनीतिक धटनाओं के मूल्य निरपेक्ष विश्लेषण की आड़ में अपने सिद्वान्तों में स्वयं अपने मूल्यों का समावेश कर देते है। लियो स्ट्रास ने इसे लोकतंत्रशाही का नाम दिया। किन्तु यह वास्तविकता है कि आनुभावकि शोध, किसी भी अन्य व्यवस्था की तुलना में, उदार लोकतंत्र में असानी से किया जा सकता है। किन्तु केवल इस आधार पर किसी सिद्वान्त को गलत नहीं ठहराया जा सकता कि उसने अपने अध्ययन का केन्द्र किसी एक विशेष प्रकार की व्यवस्था को बनाया है। यदि किसी शोधकर्ता ने अपने मूल्यों से आनुभविक खोजों से विकृत रुप दिया है तो मूल्य निरप्रेक्ष शोध के मापदण्डों को प्राप्त करने में असफल रहा है।

आदर्शवादियों के अनुसार वैज्ञानिक पद्वति के लिये तथ्यों और मूल्यों दोनों से संतोषजनक ढंग से निपट सकना संभव होना चाहिये। कोई मूल्य अन्तिम नहीं होता है। मूल्यों के सम्बंध में निर्णय एक विशेष परिस्थिति में लिया जाता है और यह परिस्थिति सदा ही अन्य परिस्थितियों से भिन्न होती है। प्रत्येक क्रिया सदा ही विशिष्ट, स्थूल, व्यक्तिगत और अनन्य होती है, इसके परिणामस्वरुप निर्णय भी इसी प्रकार विषिष्ट होते हैं। विशिष्ट परिस्थितियों ही किसी व्यापक परिस्थिति को निर्धारित करती हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक निर्णय अन्ततः नैतिक निर्णय होता है। किन्तु वास्तव में व्यक्तिगत कार्यो का सम्बंध व्यक्ति के अपने मूल्यों से होता है और उसका निर्णय विज्ञान के आधार पर नहीं किया जा सकता है।

आदर्शवादियों के अनुसार विज्ञान की संकल्पना को इतना व्यापक बना देना चाहिये कि उसमें मूल्यात्मक निर्णय भी समाहित किये जा सके। विज्ञान को उसके आनुभाविक तार्किक एवं भौतिक गणितीय रुप तक न सीमित किया जाय। विज्ञान का एक ऐसा भी रुप होना चाहिये जिसका आधार आनुभाविकता पर न हो। वोगोलिन के अनुसार तत्व मीमांसा अथवा कम से कम सत्ता मीमांसा की गिनती विज्ञान में की जानी चाहिये। वास्तव में मूल्यों और तथ्यों के पारस्परिक सम्बंधों का सारा विवाद वैज्ञतिक स्तर से उँचा उठकर दार्शनिक स्तर को स्पर्ष करना दिखाई पड़ता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

(1) वोगोलिन, एरिक. (1952). द न्यू साइंस आफ पालिटिक्स शिकागो: शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस

(2) ब्रेख्त अर्नाल्ड. (1970). पोलिटीकल थ्योरी: द फाउण्डेशन ऑफ ट्वेटिंएथ सेंचुरी पोलिटिकल थाट. बम्बई: टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस

(3) डाल, राबर्ट ए0. (1963). माडर्न पोलिटीकल एनालिसिस. एग्लवुड फिलिक्स: प्रेंटिक्स हाल प्रेस

(4) स्ट्रास लियो. (1953). नेचुरल राइट एण्ड हिस्ट्री. शिकागो: शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस

(5) कैटलीन ई0 जी0. (1927).साइंस एण्ड मेथड ऑफ पालिटिक्स. न्यूयार्क: मैक्सिमिलर प्रेस

(6) पॉपर, कार्ल. (1945).ओपेन सोसायटी एण्ड इट्स इनिमीज. लंदन: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

(7) सेबाइन. जार्ज एच0. (1937). हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल थ्योरी न्यूयार्क: हेनरी होल्ट

(8) बेंटले. आर्थर. (1908). प्रासेस ऑफ गवर्नमेण्ट, इलीनाथ: ईवान्सटन प्रेस, वालेस, ग्राहम. (1942). हयूमन नेचर इन पालिटिक्स. लन्दन: कास्टेबल प्रेस

(9) वर्मा, एस0 पी0. (1996). आधुनिक राजनीतिक सिद्वान्त. जयपुर: विकास पब्लिसिंग हाउस

(10) वर्मा, एस0 एल0. (2002). उच्चतर आधुनिक राजनीतिक सिद्वान्त. जयपुर: नेषनल पब्लिशिंग हाउस

बालिका शिक्षाः अनुसूचित जनजातीय के संदर्भ में

एमलिन केरकेट्टा

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, साईनाथ विश्वविद्यालय, रांची

भारत वर्ष सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं भाषा की विभिन्न लिये हुए सभी धर्मो को मानने वाला एक प्रतिभा सम्पन्न राष्ट्र है, जिसमें समाजवाद एक ऐसी विधा है, जिसके द्वारा भारत की एकता एवं अखण्डता बनाये रखने का प्रयास किया जा रहा है। एक लोकतांत्रिक देश में स्वतंत्रता एवं समानता पर आधारित समाज के सभी वर्गो का विकास करना आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से समाज के उन कमजोर एवं शोषित वर्ग (अनुसूचित जनजाति) के उत्थान एवं सर्वांगीण विकास हेतु प्रयास किया जाना आवश्यक है। हमारे संविधान में इन वर्गो के विकास एवं कल्याण के लिए अनेक प्रकार की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया गया है लेकिन आज भी सभी लोगों तक या सभी शोषित वर्ग तक यह योजनायें पहुंच नहीं पायी है या कहिए कि उनका सम्पूर्ण विकास नहीं कर पायी है। देश के समग्र विकास के लिए आवश्यक है कि इन वंचित लोगों को भी मुख्य धारा से जोड़ा जा।य।[1]

इन्हें मुख्य धारा से जोड़ने या इन्हें विकसित करने के लिए आवश्यक है कि इन्हें आज की विकसित व्यवस्था एवं विकसित समाज से जोड़ा जाय। बिना इन्हें मुख्य धारा से जोड़े इनका विकास सम्भव नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि इनको एवं इनके दुर्गम निवस स्थानों को आज के विकसित संसाधनों के द्वारा जोड़ दिया जाय, उनके क्षेत्रों का विकास किया जाय, एवं उनके समाज में व्याप्त रूढ़ियों को धीरे-धीरे समाप्त किया जाय। रूढ़ियों को समाप्त करके इन्हें देश एवं समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जाय।

जनजातियों की परम्पराओं एवं सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे में परिवर्तन करना एक दुरूह कार्य है। लेकिन उनके विकास के लिए इनमें परिवर्तन लाना आवश्यक है। परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि इनका धीरे-धीरे हर क्षेत्र में विकास किया जाय। लेकिन दुर्भाग्यवश आज आजादी के इतने वर्षो बाद भी हम संविधान में अनेक नियमों, अनुच्छेदों में वर्णित उनके लिए सुविधाओं को न उन तक पहुँचा पाये हैं और न ही उनका समुचित विकास कर पाये हैं। इसलिए सबसे पहले आवश्यक है कि उनका सर्वांगीण विकास किया जाय। इसके लिए उनका सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक सभी प्रकार का विकास हो।

बिना शैक्षिक विकास के समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं है। किसी भी राष्ट्र को विश्वपटल पर अपने को स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि राष्ट्र का तेज गति से बदलती हुई परिस्थितियों में सर्वोत्तम विकास हो। राष्ट्र का विकास तभी सम्भव जब राष्ट्र की सम्पूर्ण जनसंख्या का उपयोग एक विकसित राष्ट्र बनाने के लिये किया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि हम समाज के उन वर्गो को भी साथ लेकर चलें जो लोग समाज की मुख्यधारा से कटे हुए है या शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए है। बिना उनके विकास के राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं है।

प्राचीन भारत के मनीषी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि, ''शिक्षा व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास, समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सभ्यता की बहुमुँखी आधारशिला है।'' अतः उन्होनें शिक्षा की ऐसी प्रशंसनीय प्रणाली का विकास किया, जिसने न केवल भारतीय शिक्षा को सुरक्षित रखा वरन् ज्ञान के विविध क्षेत्रों में भौतिक विचारकों को भी जन्म दिया। इस दृष्टि से भारत की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए ''एफ. डब्ल्यू. यमस'' ने लिखा है कि -

''भारत में शिक्षा विदेशी पौधा नहीं है। संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो या जिसने इतना चिरस्थायी और शक्तिशाली प्रभाव डाला हो।''

राष्ट्र एवं समाज का सर्वांगीण विकास समाज के सभी वर्गों की साक्षरता एवं शैक्षिक उपादेयता, उपलब्धियों के आधार पर ही सम्भव हो सकता है। राष्ट्र को विकासशील से विकसित राष्ट्र के रूप में सम्मिलित करने के लिए आवश्यक है कि राष्ट्र का सर्वांगीण, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक एवं वैज्ञानिक विकास किया जाय।

इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर शोधकर्ता द्वारा झारखण्ड राज्य में रहने वाली अनुसूचित जनजाति के लोगों का सर्वेक्षण करने का निश्चय कर अपने शोध-प्रबन्ध का विषय झारखण्ड राज्य के परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जनजाति में माध्यमिक स्तर पर बालिका शिक्षा की स्थिति का चयन किया गया है।

प्रस्तुत शोध "अनुसूचित जनजाति के संदर्भ में माध्यमिक स्तर पर बालिका शिक्षा की स्थिति: एक अध्ययन" (झारखण्ड राज्य के परिप्रेक्ष्य में) है।

बालिका शिक्षा का महत्व:-

प्रत्येक समाज में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। शिक्षित बालिका के बिना किसी भी राष्ट्र के निर्माण व विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। लोकतंत्र में बालक एवं बालिका दोनों को समान रूप से शिक्षा देते है। वैसे भी वर्तमान समय में बालिका (स्त्री) के कर्तव्य और उत्तरदायित्व अधिक हो गये है। क्योंकि संयुक्त परिवार अधिकांशत: नहीं है। अकेले उसे परिवार के समस्त सदस्यों की देखरेख करनी पड़ती हैं। घर की उचित देखरेख तभी कर सकती है, जब वह शिक्षित होगी, शिक्षित होने पर वह परिवार के समस्त लोगों की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को समझकर उनका निवारण कर सकेगी।[2]

महात्मा गाँधी ने बालिका शिक्षा को बालक की शिक्षा से किन्ही भी अर्थों में हेय दृष्टि से नहीं देखा, स्त्री के त्याग के बिना पुरूष के सुख पाने का सपना कभी पूरा नहीं हो सकता।

स्वामी विवेकानन्द ने बालिका शिक्षा को महत्व देते हुए कहा है कि ''एक पंख से पक्षी कभी नहीं उड़ सकता है। उसे उड़ने के लिए दोनों पंख आवश्यक हैं। सामाजिक व्यवस्था केवल पुरुष शिक्षा से ही नहीं चल सकती है। दोनों (बालक-बालिका) को शिक्षित होना आवश्यक है।''

स्त्री शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा है। ''एक बालक को शिक्षित करना केवल एक व्यक्ति को शिक्षित करना है। जबकि एक बालिका को शिक्षित करना सम्पूर्ण परिवार को शिक्षित करना है।''

शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) ने स्त्री (बालिका) - शिक्षा के महत्व को बताते हुए कहा हैं। ''हमारे मानव साधनों के पूर्ण विकास, परिणामों की उन्नति और बाल्यकाल में अत्याधिक सरलता से प्रभावित होने वाले वर्षों में बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए स्त्रियों की शिक्षा का महान पुरूषों की शिक्षा से कही अधिक है।''

स्त्रियों ने स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक राजनैतिक, चिकित्सा, व्यवसाय, शिक्षा देश की सुरक्षा आदि विभिनन क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की है। इनमें डॉ0 नजमा हेपतुल्ला (राज्यसभा - उपसभापति), कु0 जयललिता तमिलनाडु की मुख्यमंत्री, उमा भारती, किरण वेदी, संतोष यादव और मदर टेरेसा के नाम उल्लेखनीय है। आधुनिक काल में नारी अनेक रूपों को ग्रहण किये हुए है। इस काल में नारियों को जहाँ एक तरफ भोग विलास की वस्तु, सन्तानोत्पत्ति का साधन, पूजी-पतियों, जमीदारों को अपनी झोली भरने का निमित्त तथा विज्ञापन, फिल्मो आदि के द्वारा जनता जनार्दन के मनोरंजन के साधन के लिए मजबूरन नंगे रूप में प्रदर्शित की जाती है। वही दूसरो ओर प्राचीन काल की महिलाओं ने विविध क्षेत्रों में मार्गदर्शन और नेतृत्व किया है। इनमें मुख्यत, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, सरोजनी नायडू, एनीवेसेन्ट, कमला नेहरू, कस्तूरबा गाँधी तथा इन्दिरा गाँधी जैसी विदुषियों ने युद्ध कौशल सामाजिक सुधार और आर्थिक नियोजन में भारी योगदान दिया है। आज भी भारत को ऐसे नेताओं की आवश्यकता है।

अत: आधुनिक काल में स्त्रियों को पुरूषों के समान विकास की सुविधाएं और अवसर देकर प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व का शिक्षण देना चाहिए। वह कुशल इंजीनियर शिक्षक चिकित्सक प्रचारक एवं अधिवक्ता बनकर राष्ट्र की समृद्धि में भारी योगदान दे सकती हैं। स्त्री शिक्षा को इतना महत्व देते हुए भी वह आज बहुत पिछड़ी हुई है। और उसके लिए विशेष प्रयास करने को कहा जा रहा है।

अनुसुचित जनजाति के संदर्भ में बालिका शिक्षाः-

शिक्षा- शिक्षा, संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु से बनी है जिसका अर्थ है सीखना, सीखाना अर्थात शिक्षा जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा का अंग्रेजी शब्द Education है Education शब्द Educatum से बना है जो म्ब्कनबव अर्थात अन्दर से बाहर की ओर अर्थात अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा है। शिक्षा को परिभाषित करते हुए गांधी जी ने कहा है- ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बालिका के मन, शरीर एवं आत्मा के सर्वांगीण विकास से है जो बालिका का मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास कर सके।'' अर्थात बालिका में अन्तर्निहित शक्तियों का सम्पूर्ण विकास ही शिक्षा है।

अनुसूचित जनजातीय के संदर्भ मे बालिका शिक्षा- अनुसूचित जनजाति में शिक्षा का अभाव है, जनजातियों के शोषण व इनकी दयनीय दुर्दशा के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी इनमें शिक्षा की कमी है। मानव-संसाधनों के विकास का प्रमुख उत्प्रेरण शिक्षा है। जनजातियों के लिए शिक्षा एक केन्द्र-बिन्दु हैं, जिस पर उनका विकास निर्भर करता है। शिक्षा से ज्ञान का प्रसार होता है। ज्ञान आन्तरिक बल देता है, जो कि आदिवासियों को शोषण व गरीबी से मुक्ति पाने के लिए बहुत ही आवश्यक है। निरक्षरता से उत्पन्न अज्ञानता के कारण आदिवासी लोग नए आर्थिक सुअवसरों का लाभ नहीं उठा पाए। आदिवासी क्षेत्रों में विकासात्मक प्रक्रिया आरम्भ होने से दो विभिन्न प्रणालियां, एक परम्परा व अज्ञानता पर आधारित और दूसरी प्रौद्योगिकी व प्रवर्तनों पर आधारित, जनजातीय लोगों के विकास के लिए इन दोनों प्रणालियों का सुसंगत होना आवश्यक है। इस परिवर्तन प्रक्रिया काल में शिक्षा को मुख्य भूमिका निभानी पड़ती है। आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसके अन्तर्गत आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में विकास के साथ ही विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में नये प्रवर्तनों के बारे में समुदाय को सूचित करना है। इन सब कारणों से शिक्षा आदिवासियों के लिए अत्यंत लाभकारी है।

अधिकांश जनजातीय जनसंख्या अशिक्षित है जिससे देश के सर्वांगीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है।[3] झारखण्ड राज्य के जिलों में अनुसूचित जनजाति के लोग काफी पिछड़े हुए है, इसी से शोधकर्ता इस वर्ग में व्याप्त अशिक्षा एवं निरक्षरता का व्यापक अध्ययन हेतु अपने शोध प्रबन्ध का विषय "अनुसूचित जनजाति के संदर्भ में माध्यमिक स्तर पर बालिका शिक्षा की स्थितिः एक अध्ययन" (झारखण्ड राज्य के परिप्रेक्ष्य में) ही चुना जिससे इस शोध प्रबन्ध द्वारा अनुसूचित जनजाति के लोगों का शैक्षिक एवं सर्वांगीण विकास हो, तथा अपने देश की सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति में सहायता मिल सके।

अनुसूचित जनजाति के शैक्षिक सर्वेक्षण में माध्यमिक स्तर पर अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों का विभिन्न विद्यालयों में सर्वेक्षण पद्धति द्वारा अध्ययन किया गया। इस वर्ग के विद्यार्थियों को किस प्रकार राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित किया जाय, जिससे इस वर्ग में शैक्षिक अभिरूचि एवं सामाजिक न्याय की परिकल्पना सम्भव हो सके। झारखण्ड राज्य के जिले, जिनमें प्रदेश के काफी संख्या में अनुसूचित जनजाति के लोग निवास करते हैं। अतः इन जनपदों के विभिन्न विद्यालयों में अनूसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की अभिरूचि एवं शैक्षिक उन्नयन हेतु न्यादर्शो का चयन किया गया तथा इन न्यादर्शो के आंकड़े के आधार पर इनका मध्यमान, मानक विचलन एवं ज् मान की गणना करके शोध की सार्थकता प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ

1 गुप्ता, एस0पी0 (1997) आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0सं0 54।

2 दास गुप्ता ज्योति प्रोवर (1987) गर्ल्स ऐजूकेशन इन इंडिया, पृ0सं0 89।

3 नालिनी, श्रीनिवास (2004), जनजातीय शिक्षा, पृ0सं0 34।

वर्ण व्यवस्था के विघटन का आर्थिक कारण

डॉ० त्रयम्बकेश्वर कुमार

पी-एच० डी० (इतिहास) ग्राम - रघेपुरा, पो० - लेहरियासराय, थाना - बहादुरपुर, जिला - दरभंगा, बिहार

शोध आलेख सार:- वर्ण शब्द का प्रयोग रंग के अर्थ में होता था और प्रतीत होता है कि आर्य लोग गौर वर्ण के थे और मूलवासी लोग काले रंग के थे। सामाजिक वर्ग - विन्यास में रंग से परिचायक चिह्न का काम लिया गया, लेकिन रंगभेद दर्शी पश्चिमी लेखकों ने रंग की धारणा को बढ़ाचढ़ा कर प्रस्तुत किया है। वास्तव में समाज में वर्गों के सृजन का सबसे बड़ा कारण हुआ आर्यों की मूलवासियों पर विजय। आर्यों द्वारा जीते गए दास और दस्यु जनों के लोग दास और शूद्र हो गए। जीती गयी वस्तुओं में कबीले के सरदारों और पुरोहितों को अधिक हिस्सा मिलता था और वे सामान्य लोगों को वंचित करते हुए अधिकाधिक सम्पन्न होते गए, इससे कबीले में सामाजिक असमानता का सृजन हुआ। धीरे - धीरे कबायली समाज तीन वर्गों में बंट गया - योद्धा, पुरोहित और सामान्य लोग (प्रजा)। चौथा वर्ग, जो शूद्र कहलाता था, ऋग्वेद काल के अन्त में दिखाई पड़ता है, क्योंकि इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के दशम् मंडल में है, जो सबसे बाद में जोड़ा गया है। वर्ण शब्द का प्रयोग आजकल हम अपने दैनिक जीवन मे कर सकते है। उत्तर वैदिक काल में वर्ण की स्थापना के पीछे भी कृषि और शिल्प जैसी आर्थिक व्यवस्था के विकाश के काश का कारण रहा था। चुकी ऋग्वैदिक समाज से उत्तर वैदिक समाज अधिक आर्थिक संजटिलता वाला हो गया पशु चारि जीवन से कृषि और भिन्न-भिन्न शिल्प वाला समाज फैला था। इसलिए एक ही परिवार के लोगों को तरह का पेशा करने की आवश्यकता समाप्त हो गयी थी। कृषि और शिल्प के विकास से समाज में अतिरिक्त पैदा होने लगा था पहले भी ब्राह्मण यज्ञ कार्य पढ़ने-पढ़ाने का काम के अतिरिक्त अन्य कर्म में अधिक रूचि लेते थे फिर भी कुछ ब्राह्मण परिवार जिन्हें यज्ञ आदि में विशिष्टता प्राप्त नहीं था ऐसे लोग ही पशुचारण या तरह के शिल्प से जीविकोपार्जन करते थे। योद्धा लोग तो लूट के माल से अपनी आर्थिक व्यवस्था का संचालन लें थे सिर्फ वैश्य और शुद्र अपने श्रम और पेशे से जीविका ग्रहण करते थे किन्तु उत्तर वैदिक काल में कृषि और पालन और शिल्प के प्रचलन से समाज में जनसंख्या के हिसाब से अतिरिक्त उत्पादन होने के चलते ब्राह्मण और यों को अपना वर्ण पेशा छोड़कर अन्य जीविका के उपाय करने की जरूरत नहीं रही। फलत: ये दो शासक वर्ग व्यवस्था की संरचना कर वैश्य और शुद्रों पर अपना आर्थिक भार लाद दिए थे। अत: जिस आर्थिक विकास के स्वरूप चतुर्थ वर्ण व्यवस्था बना था फिर उसी आर्थिक विकास के चलते उसका विघटन भी होना शुरू हुआ इसी व्याख्या यहाँ करनी है।

मुख्य शब्द:- वर्ण व्यवस्था, कृषि, शासक वर्ग, आर्थिक तंगी, दास, वैश्य, शुद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय ऋग्वेद आदि।

प्रस्तावना:- ऋग्वेद के प्रारम्भिक चरणों में वर्ण - व्यवस्था जैसी कोई संस्था नहीं थी। उस समय दो वर्ण थे - आर्य और आर्येत्तर (दास - दस्यु) प्रथम मण्डल में अगस्त ऋषि द्वारा दो वर्णों की कामना किये जाने का उल्लेख है। आगे चलकर यह भी कहा गया है कि इन्द्र ने दस्युओं का वध करके आर्य वर्ण की रक्षा की, और दास वर्ण को अन्धकार में रखा। 3. यही आर्य वर्ण आगे चलकर तीन भागों में विभाजित हुआ - ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। साथ ही दस्युओं - दासों अर्थात अनार्यों को शूद्र वर्ण के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि इन्द्र ने दासों को आर्य वर्ण में परिवर्तित किया।ऋग्वेद के दशम मण्डल के 'पुरुषसूक्त''5 में एक मात्र ऐसा सूक्त है जहाँ चतुर्वर्णो का उल्लेख होता है। उसमें कहा गया है ब्राह्मण परम पुरुष के मुख से, क्षत्रिय उसकी भुजाओं से, वैश्य उसकी जाँघों से तथा शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए। इस प्रकार इसमें चारों वर्णों के क्रम, उनकी दैवी उत्पत्ति तथा उनकी उच्चता - निम्नता भी प्रकट हैं।

वर्ण व्यवस्था

वैदिक काल के पूर्व युग में ही वर्णों का समाज एकत्रित होने लगा। आर्य और अनार्य (दास) के रूप में प्रधान प्रतिस्पर्धी वर्ग सामने आ चुके थे। दोनों वर्ग परस्पर विरोधी रूप में आगे बढ़े। उत्तर वैदिक काल तक आते - आते आर्य और अनार्य का विरोध और द्विवर्ण की समानता समाप्त सी हो गयी। इनके स्थान पर चातुर्वर्ण का उल्लेख प्रारम्भ हो गया। यद्यपि ऋग्वेद के दशम् मण्डल के पुरुषसूक्त में चारों वर्णों का उल्लेख अवश्य हुआ है, किन्तु उस मण्डल की प्राचीनता उतनी नहीं है जितनी ऋग्वेद के अन्य मण्डलों की है।

पूर्व वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और विश् इन तीनों के उल्लेख मिलते हैं, यद्यपि इनके साथ भी वर्ण शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ है, जो यह सांकेतिक करता है, कि अभी ये वर्ग भी निश्चित आधारों पर एक - दूसरे से अलग नहीं हो पाये थे, केवल अलग होने की प्रक्रिया में थे। चारों वर्णों का सर्वप्रथम एकत्र उल्लेख ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में मिलता है किन्तु यहाँ भी उनके साथ वर्ण शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। यहाँ सम्पूर्ण मानव समाज की, कल्पना एक विराट पुरुषके रूप में की गयी है और यह कहा गया है कि ब्राह्मण उस विराट पुरुष का मुख है, भुजाएं क्षत्रिय हैं, उरु वैश्य है तथा उसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ। आर्यों ने समाज के जिन विभिन्न समूहों अथवा वर्गों का निर्माण किया उनमें उनके गुण के साथ - साथ उनके प्रधान कर्म को भी महत्व दिया गया। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्णों अथवा समूहों को उनके प्रधान गुण और कर्म के आधार पर विभाजित किया गया तथा उनके कर्मों को प्रबल रूप से व्यवस्थित किया गया। प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत एवं दैवी मानी गई।

इसे परम्परागत सिद्धान्त भी कहा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत है।। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के पुरुषसूक्त में वर्ण सम्बन्धी वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई। यह भारतीय साहित्य में चार वर्णों का प्रथम उल्लेख है और यहाँ भी शूद्र वर्ण का स्थान अन्य वर्णों की तुलना में निम्नतम है। इससे स्पष्ट होता है कि इस मंत्र में तीन उच्च वर्णों ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य को जो विराट पुरुष के अभिन्न अंग बताये गये हैं, किन्तु शूद्र की उसके पैरों से उद्भूत माना गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पुरुषसूक्त के संकलन कार्य के पहले ही शूद्र वर्ण आस्तित्व ग्रहण कर चुका था और समाज में उनकी निम्नतम स्थिति मान्य हो चुकी थी। पुरुषसूक्त का संकलन - समय अथर्ववेद के संकलन काल में निर्धारित किया गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पूर्व वैदिक काल में चातुर्वर्ण्य - व्यवस्था के स्थान पर मात्र त्रैवर्णिक व्यवस्था थी। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का उल्लेख अवेस्ता में भी हुआ है। प्राचीन ईरानी समाज अथर्व (पुरोहित), रथेष्ठ (योद्धा), वास्त्रीय फ्शोयन्त (परिवार के मुखिया) तथा हुइती (श्रमिक) में विभाजित था। किन्तु अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि ईरानी समाज का वर्ग - विभाजन उत्तरकालीन है, और उसका आधार भारतीय आर्यों की वर्णव्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था के उद्भव में गुणों की भी अभिव्यक्ति मानी गयी है। मनुष्य अपने गुणों से महान होता है। प्रकृति में तीन प्रकार के गुण सत्व, रज और तम बताए गए हैं।यह कहा जा सकता है स्वयं ईश्वर ने ही वर्णों का उद्भव किया और उनकी स्थिति निर्धारित की। चातुर्वर्ण व्यवस्था का प्राचीनतम उल्लेख है। यहाँ सम्पूर्ण सामाजिक संगठन एक शरीर के रूप में कल्पित किया गया है, जिसके विभिन्न अंग समाज के विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। मनुष्य कर्म का त्याग नहीं कर पाता। त्यागी वही होता है जो कर्म फल का त्याग करता है। इस तरह गुणातीत कर्म का त्याग करने वाला त्यागी है। त्याग का भी लक्षण सात्विक, राजस और तामस होता है। 43 नियत कर्म के तीन प्रेरक तत्त्व माने गए हैं, ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता, जिनके संयोग से इसका निर्माण होता है। ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि और सुख इन्हीं त्रिगुण भावों से उद्भूत है। आर्य और अनार्य (दास) के रूप में प्रधान प्रतिस्पर्धी वर्ग सामने आ चुके थे। तथादोनों वर्ग परस्पर विरोधी रूप में आगे बढ़े। यहाँ सम्पूर्ण मानव समाज की, कल्पना एक विराट पुरुष के रूप में की गयी है और यह कहा गया है कि ब्राह्मण उस विराट पुरुष का मुख है, भुजाएं क्षत्रिय, उरु वैश्य तथा उसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ। आर्यों ने समाज के जिन विभिन्न समूहों अथवा वर्गों का निर्माण किया उनमें उनके गुण के साथ - साथ उनके प्रधान कर्म को भी महत्व दिया गया। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्णों अथवा समूहों को उनके प्रधान गुण और कर्म के आधार पर विभाजित किया गया

उत्तर वैदिक काल में ही कृषि का बड़े व्यापक क्षेत्र में प्रसार होने लगा, खास कर गंगा जमुना दोआब से गंगा के मैदान के साथ-साथ अन्य नदी घाटी में आयों के द्वारा कृषि कर्म और उससे संबंधित शिल्प होने लगा लत: कृषि और शिल्प ऐसी स्थाई आर्थिक व्यवस्था के रूप में स्थापित होने लगा कि ब्राह्मण और क्षत्रियों को स्थाई व्यवस्था की ओर बढ़ने लगे थे। इसके चलते पुराने वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त का उल्लंघन होना शुरू बैंक शासक वर्ग ही कानून और व्यवस्था के निर्माता रहे थे इसलिए उन

लोगों ने अपने पक्ष में यह सिद्धान्त शुरू किया कि ऊपर वर्ण के लोग आर्थिक तंगी की हालत में अपने से नीचे वर्ण को पेश कर सकते हैं और आपात धर्म की संज्ञा दिया गया। लेकिन कृषि और शिल्प स्थाई आर्थिक व्यवस्था रही थी कि एक बार उसका चखने के बाद उसे आप्त धर्म के रूप में ही नहीं स्थाई आजीविका का रूप देने लगे इससे जो ब्राह्मण और प्रिय अपना पेशा छोड़ वैश्य के पेशे में आये थे उनके लिए वर्ण आश्रम धर्म का पालन करना संभव नहीं रह गया द्य किन्तु सामाजिक ओहदा का दावा करने के लिए ये पेशा को वर्ण का आधार मानने से इनकार जाने लगे तथा अपना ना वर्ण ही डटे रहने का दावा करने लगे। दावा किया गया कि जन्म उच्च वर्ण में हुआ है इसलिए 'जन्मना जाति' मूल सामाजिक व्यवस्था रहती है। फलतः आर्थिक विकास के चलते वर्ण व्यवस्था से जाती व्यवस्था पैदा लेने लगा यह रहा था वर्ण व्यवस्था के पुराने रूप और उसके वर्णाश्रम धर्म का विघटन।

वर्ण व्यवस्था की स्थापना से तथा वर्ण पेशा के परिवर्तन से और खासकर कृषि कर्म अपनाने से कृषि श्रम विभाजन हुआ। कृषि का विस्तार के चलते कृषि कर्म कठिन होता चला गया इसीलिए ऊपर जाती की महिलाएँ घर से बाहर कृषि कर्म करने में समर्थ नहीं हुई किन्तु उपजाए गए अनाज का भण्डारण और भोजन निर्माण का दायित्व उसके ऊपर आने से उसको आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया और जो पहले महिला भोजन बनाने बच्चा पैदा करने और पालने के दायित्व तक सीमित थी उसे अनाज के भण्डारण से लेकर सुरक्षा और खूंटे पर बंधे पशुओं के पालन की जिम्मेदारी आने लगी। फलतः पशुचारी और शिकारी जीवन में महिलाएं बच्चे बूढ़े उत्पादन को पद्धति से विलग कर दिए गए थे, कृषि ने पुनः उनको उपयोगिता को स्थापित कर दिया। फलतः खासकर स्त्रियों को आर्थिक महत्ता स्थापित होने से पहले से उसको स्थिति मजबूत बनती चली गयी इसलिए नारी की संबोधक शब्द अर्धांगिनी का अर्थ सेविका नहीं था और पत्नी का अर्थ पार्टनर रहा था। अतः वर्ण व्यवस्था के विघटन का आर्थिक कारण से पैदा लिया जादी वाला समाज में खासकर स्त्रियां परिवार समाज के आर्थिक अंग के रूप में उथले लगी इसलिए परिवार समाज में उसका आर्थिक महत्व नहीं कोई पेशे शिल्प कर्म करने में नारियां भी पुरुष की तरह सिद्धहस्त होने लगी किन्तु यह सारी प्रक्रिया वैश्य और शुद्र समाज में हो रहा था ब्राह्मण एवं क्षेत्रीय परिवार की महिलाएं इससे अछूती रही थी इसलिए उसका आर्थिक महत्व स्थापित नहीं हुआ था सिर्फ वह अपने रूप यौवन को ही अपनी थाती बनाकर सामाजिक जीवन जीने के लिए बाध्य थी। इस तरह आर्थिक विकास के प्रक्रिया ने भारतीय समाज को खंड खंड में बाटना शुरू किया था बल्कि भारतीय नारी समाज को भी दो मूल खण्डों में बाँट दिया था - ऊपर के वर्णों की महिलाएं और नीचे वर्ण या जाती को महिलाएं इस तरह ऊपर वर्ण की महिलाएं पुरूष पर जितनी आश्रित रहने लगी उतना नीचले वर्ण की महिलाएं आश्रित रहने को बाध्य नहीं थी। इसलिए जहाँ ऊपर वर्ण के महिलाएं विधवा होने पर लाचार थी पति द्वारा त्यागने पर लाचार थी इसीलिए ऊपर के वर्ण में विधवा विवाह, पुनर्विवाह या तलाक की प्रथा विकसित नहीं हुई। ऊपर वर्ण की महिला कोई स्वतंत्र पेशा भी नहीं कर सकती थी इसलिए उसकी आर्थिक निर्भरता पुरुषों पर बढ़ती चली गयी किन्तु ऐसी स्थिति नीचले समाज की नारियों की नहीं रही।

वर्ण व्यवस्था के विघटन का लाभ जहाँ नारी समाज को मिला वहीं इसका घटा भी उसी को सबसे अधि क उठाना पड़ा था। वर्ण व्यवस्था के विघटन से एक नीचले वर्ण की पेशा करने की छूट के साथ ऊपर का शासक वर्ग ब्राह्मण और क्षत्रिय अपने लिए अपने से नीचे वर्ण की कन्या से दूसरी पत्नी के रूप में विवाह करने का अधि कार भी प्राप्त कर लिया था फलतः ऊपर वर्ण में बहुपत्नी प्रथा नारियों की स्थिति के हास का एक कारण बना था। द्वितीय पत्नी और उससे उत्पन्न संतान को पति की सम्पति में मात्र भरण पोषण का अधिकार रहा था, इसलिए वह पुरुष आधारित जीवन जीने के लिए बाध्य होती चली गयी। इस तरह वर्ण व्यवस्था के विघटन के आर्थिक कारण संभ्रांत समाज की महिलाओं के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ, तो नीचले वर्ण को महिलाओं के लिए यह वरदान सिद्ध हुआ था।

वर्ण व्यवस्था के विघटन से ऊपर के दो वर्ण को आर्थिक लाभ अधिक मिला। ढेर सारे ब्राह्मण और क्षत्रिय बड़े कृषक और व्यापारी तक बन कर धन्ना सेठ बन गए, फलतः अपनी कन्याओं के विवाह में धन देना शुरू किये और यही धन दहेज ना कहलाकर स्त्री धन कहलाता था। जिसका उपयोग करने का अधिकार सिर्फ पत्नी को होता था, पति बिना अनुमति के उसे खर्च नहीं कर सकता था, आवश्यकता पड़ने पर कर्ज लेकर पुनः उसका भुगतान करना पड़ता था। यह तभी सम्भव हुआ, जब वर्ण व्यवस्था के विघटन से खासकर ऊपर के तीन वर्णों में सम्पति होने लगी और बहिर्गमन विवाह के चलते दूसरे कुल में जाने वाली कन्या को स्त्री धन के रूप में पिता के पक्ष से धन दिया जाने लगा। अतः जहाँ नीचले वर्ण की महिलाएं आर्थिक क्रिया से जुड़ी रहने के चलते आर्थिक तौर पर सबल रही भी, वहीं ऊपर वर्ण को कन्या पिता के पास धन रहने से स्त्री धन के रूप में उपहार पाकर आर्थिक तौर मजबूत रहने लगी, अतरू वर्ण व्यवस्था के विघटन का आर्थिक कारण समाज की सम्पन्नता के साथ-साथ पुरूष प्रधान समाज के विकास

होने के बावजूद भारतीय महिलाएं आर्थिक तौर से कमजोर नहीं रहने लगी। निचले वर्ण महिलाएं जहाँ पति सङ्घ भारती वर्ष 36, अंक- 142, संघ भारती श्के साथ कृषि कर्म, पशुपालन, शिल्प आदि में सहयोग कर परिवार की आर्थिक वृद्धि में हिस्सेदार होने लगी थी वहीं। ऊपर वर्ण की महिलाएं स्त्री धन पाकर आर्थिक तौर से सबल होने लगी थी। फलतरू पुरुष सतात्मकता उसके आर्थिक आधार को कमजोर नहीं कर पाया था।

निष्कर्षः- इस तरह उत्तर वैदिक काल से लेकर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच वर्ण व्यवस्था के विघटन का आर्थिक कारण भारतीय नारियों के आर्थिक अधिकार में खलल नहीं पहुंचाने के बदले उसे आर्थिक तौर से सबल बनाने का काम किया था। यही वजह रही थी कि इस कालावधि में पुरुष सतात्मकता और बहुपत्नी प्रथा के विकास के बावजूद नारियों की आर्थिक स्थिति कमजोर या परजीवी नहीं बना था।

संदर्भ ग्रंथ-

1. राम शरण शर्मा-प्रारंभिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली-1992, पृ. 48-49
2. विद्यानन्द मिश्र-प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली- 1988, पृ. 32-34 जी.एस. घुरै कास्ट सिस्टम इन इण्डिया - दिल्ली -1950, पृ. 42-43
3. डी. एन. एवं के. एम. श्रीमाली प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली 1990, पृ. 92-93
4. रोमिला थापर प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास-नई दिल्ली-1998, पृ. 22-23 पी. एन. प्रभु - हिन्दू सोसल ओर्गेनाइजेशन बम्बई 1950, पू. 28-30
5. राजवली पाण्डे हिन्दू संस्कार-वाराणसी-1958, पृ. 68-70
6. राणाकृष्ण चौधरी- इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ एशिएण्ट इण्डिया-पटना, 1972, 38-40 आर.सी. मजुमदार एवं ए.डी. पुस्तकर (सं) दि हिस्ट्री एण्ड कलचन ऑफ द इण्डियन पिपुल- प्रथम खण्ड, दि वैदिक ऐज-मुम्बई-1955, 215-17
7. अथर्ववेद 3,5,7रू शतपथ ब्राह्मण 55.49
8. ऋग्वेद 10.9.12
9. वही , 18.30,32
10. त्सिमर ने इस मत का प्रतिवाद किया है कि ऋग्वेद का सृजन ऐसे समाज में हुआ था जो वर्ण-व्यवस्था से परिचित था। वैदिक इण्डेक्स, पृ.275 (अनु.)
11. उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष। ऋग्वेद 1/17/96

अरुण प्रकाश की संघष-यात्रा

कोमल कुमारी

शोध-छात्रा विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, ल.ना.मि.वि, दरभंगा (बिहार)

अरुण प्रकाश बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के महान कथाकार और पत्रकार हैं। विद्यार्थी जीवन से ही इनका साहित्य के प्रति गहरा रूझान रहा है तथा लिखने का शौक भी। इनकी रचनाएँ जीवन में घटित सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं। अरुण प्रकाश ने लीक से हटकर अपनी रचनाओं को रचा है। इसलिए हिन्दी कथा साहित्य में उनकी अपनी विशिष्ट पहचान है। इन्होंने अपने साहित्य में निम्न मध्यवर्गीय जीवन, नवधनाढ्य वर्गीय जीवन के साथ-साथ शोषित, उपेक्षित, असहाय नारी-जीवन की कथा को केवल विषय-वस्तु के रूप में चित्रित नहीं किया है, अपितु उससे संबंधित समस्याओं को भी यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं अरुण प्रकाश ने सामान्य जन-जीवन की विभिन्न स्थितियों को भी उकेरा है, जिससे इस प्रकार के वर्ग को भी समाप्त में अधिकार एवं सम्मान प्राप्त, हो सके। अरुण प्रकाश का जीवन यों तो कठिनाइयों से भरा-पड़ा था ही और समाज के लोगों को न्याय दिलाने के क्रम में और भी जोखिमों से भर गया।

अरुण प्रकाश का जन्म 22 फरवरी 1948 ई. में बिहार के बेगूसराय जिले के निपनियाँ गाँव में हुआ था। 'निपनियाँ' बरौनी जंक्शन रेलवे स्टेशन से सटे दक्षिण में अवस्थित है। वैसे अरुण प्रकाश का पैतृक गाँव बेगूसराय जनपद के ही बछवाड़ा अंचल स्थित रानी गॉव था। निपनियाँ उनका ननिहाल था, जहाँ के अधिवासी उनके पिता हुए। अरुण प्रकाश जी के पिता श्री रुद्रनारायण झा अपने जमाने के प्रसिद्ध समाजवादी नेता थे। राममनोहर लोहिया, कर्पूरी ठाकुर जैसे समाजवादी नेताओं की पंक्ति के नेता थे। अरुण प्रकाश के परिवार में परंपरागत तौर से पुश्तैनी पंडिताई पुरोहिती का पेशा चलता था। लेकिन पिता श्री रूद्रनारायण झा राजनीति में चले आये। वे 1967 ई. में मुंगेर जिला संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव और प्रदेश चुनाव प्रभारी बने। 1968 ई० में रूदनारायण झा राज्यसभा से सांसद हुए। महत्त्व की बात यह है कि अरुण प्रकाश की इस शानदार पैतृक विरासत का कोई गहरा प्रभाव उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर उस प्रकार गोचर नहीं होता, जिस प्रकार आम संतानों के प्रसंग में होता है। पिता रूद्र नारायण झा समझौतावादी थे, किन्तु पुत्र अरुण प्रकाश घुर वामपंथी विचारधारा के लेखक थे।

अरुण प्रकाश के पिता समाजवादी दल के पूर्णकालिक कार्यकर्ता थे। राजनीति में बने रहने के लिए उनके पास जो पैतृक उपजाऊ खेत थी, उसे भी बेच डाला। घर-परिवार चलाने के लिए अरुण प्रकाश की माँ को स्कूल की नौकरी करनी पड़ी थी और साथ ही तीनों बच्चों को भी संभालना पड़ता था। अरुण प्रकाश अपने तीन भाइयों में सबसे बड़े थे। माँ-पिता के बीच अक्सर झगड़े होते रहते थे। माँ-पिता के पीठ पीछे अपना सारा गुस्सा नन्हें अरुण प्रकाश पर निकालती थी। अरुण प्रकाश के लिए माँ समता की छाँव नहीं, अपितु आतंक की स्मृति थी। इसलिए माँ की मृत्यु पर भी इन्होंने आँसू बहाने के बदले सुकून महसूस किया। अरुण प्रकाश अपने आत्मकथ्य में स्वयं स्वीकार करते हैं- "आम धारणा है कि बच्चे माँ को प्यार करते हैं। सच यही है कि होश आते ही मैं माँ से घृणा करने लगा था। वह मेरे लिए ममता की छाँव नहीं आतंक की स्मृति थी। तभी तो भरी नींद से मुझे जगाकर मेरे चाचा ने बताया कि मेरी माँ अस्पताल में मर गई, तो मैं रोया नहीं और मेरे मुँह से एकबारगी निकला-भले मर गई।"[1]

माँ के निधन के पश्च्चात घर दान-अनुदान पर चलता रहा। परिवार पर कर्ज चढ़ता रहा। पिता संसद से मिले पैसों से कर्ज चुका रहे थे। परिवार को एक बहू की आवश्यकता थी। इसलिए पिता ने नौजवान अरुण प्रकाश की शादी कर दी। अरुण- प्रकाश बचपन से ही जिद्दी व नकचढ़े स्वभाव के थे। वैसे तो पिता से बहुत प्रेम करते थे, लेकिन उनके पद-चिह्नों पर आँखें मूँदकर चलना उन्हें पसंद नहीं था। अरुण प्रकाश का आरंभिक जीवन और मँझोल में व्यतीत हुआ। मँझोल बेगूसराय जनपद का ऐसा बड़ा गाँव है, जहाँ

एक ओर सामन्ती प्रवृत्तियाँ हैं तो दूसरी ओर प्रगतिशीलता भी। पुरातनता और आधुनिकता का द्वन्द्व मँझौल गॉव की मिट्टी में बखूबी दिखाई पड़ती है। अरुण प्रकाश के मानस पर इसका जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। मँझोल की संगति में ही उन्हें वामपंथ की प्रेरणा मिली है।

अरुण प्रकाश ने हायर सेकेण्ड्री की पढ़ाई मँझौल से की और ग्रेजुएशन करने शाहपुर-पटोरी आ गये। ये विज्ञान के छात्र थे और टाइफाइड से लंबे समय से पीड़ित रहने के कारण दो पेपर में फेल हो गये। कॉलेज में फेल होने पर भी इनका हौसला फेल नहीं हुआ। शाहपुर-पटोरी से बी. एस. सी. फेल की उपलब्धि के साथ ये अपने गाँव निपनियाँ वापस लौट गये। सातवीं तक के बच्चों को विज्ञान-हिन्दी का ट्यूशन पढ़ाकर ये स्वयं को संभालने की कोशिश करते रहे। उस दौरान भुवनेश्वर से बिना बी.ए किए बी. एड. करना संभव था। इसलिए जब इन्होंने प्रवेश परीक्षा दिया तो भुवनेश्वर में बी.एड. और पूसा एग्रीकल्चर में बी. एस.सी. 'ए.जी' में एक साथ सफलता मिली। बी. एड. और बी.एससी. 'ए.जी' दोनों में कंपीट होना उस समय बहुत सहज नहीं था, परन्तु पिता के पास इतने पैसे नहीं थे कि उन्हें पूसा या भुवनेश्वर पढ़ने के लिए भेज सके। कहीं से जानकारी मिली कि पूसा इंस्टीच्युट ऑफ होटल मैनेजमेंट, दिल्ली में हायर सेकेण्ड्री की डिग्री के आधार पर प्रवेश संभव है। इसी बीच पिताजी सांसद होकर दिल्ली गये तो दिल्ली में पढ़ाई अब संभव हो गयी। 1968 में दिल्ली में होटल मैनेजमेंट में अरुण प्रकाश का दाखिला हो गया। सुकून के चार दिन बीते नहीं कि संघर्षों का सिलसिला प्रारंभ हो गया। मैनेजमेंट की पढ़ाई के बीच ही इनके पिता की हत्या हो गयी। पिता की छत्रछाया से वंचित होकर पढ़ाई पूरी करना उनके लिए बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य था। अपने जीवन-संघर्ष की कहानी अरुण प्रकाश स्वयं अपने मुख से पुष्पराज को दिये साक्षात्कार में कहते हैं- 'मृत्यु से पूर्व पिताजी मेरी शादी करा दी थी। शादी की जिम्मेदारी और पढ़ाई को पूरा कर नौकरी ढूँढ़ने की बेचौनी थी। मैंने किन मुश्किलों और किन-किन के सहयोग से पढ़ाई पूरी की, यह वाकया एक अलग दास्तान है। पढ़ाई पूरी कर 1971 में हाथ में रिजल्ट लिये बिना मैं नौकरी ढूँढ़ने लगा था। 2-3 माह होटल क्लेरिजेज में वेटर की नौकरी की फिर लोदी होटल में वेटर की नौकरी मिल गई।"[2]

हिन्दी के एक महान् साहित्यकार को अपनी गृहस्थी चलाने के लिए वेटर का काम करना पड़ा। भारतीय समाज में तब होटल में वेटर का काम सम्मानजनक पेशा नहीं था, परन्तु अरुण प्रकाश मेहनती, इमानदार, कर्तव्यनिष्ट व स्वाभिमानी पुरुष थे। वे आर्थिक तंगी व पारिवारिक समस्याओं से जूझते रहे, लेकिन अपने स्वर्गीय पिता के मित्रों का एहसान नहीं लिया। वे विकलांगता से जूझते हुए नौकरी प्राप्त करने हेतु दर-दर की ठोकरें खाते रहे। जब कोई रास्ता नजर नहीं आया। तब वे राष्ट्रपति से मिलने का मन बनाया। अरुण प्रकाश एक आम नागरिक होते हुए भी किस प्रकार राष्ट्रपति से प्रभावशाली ढंग से मिलकर अपना काम सफल बनाया इसका जिक्र करते हुए वे अपने आत्मकथ्य में लिखते हैं- "यंगमैन, टेल मी इन वन सेंटेंस, व्हाई द प्रेसिडेंट शुड सी यू?" तत्कालीन राष्ट्रपति वी. वी. गिरी के सचिव डॉ. नागेंद्र सिंह ने मुझसे तल्खी में पूछा।.....

सूखे गले से मैंने कहा, "बिकॉज ही इज प्रेसिडेंट ऑफ इंडिया एंड आई एम सिटीजन ऑफ इंडिया।"[3]

डॉ. सिंह खुश हो गये। राष्ट्रपति महोदय से मिलने के बाद विकलांगता के बावजूद भी इन्हें नियुक्ति पत्र दे दिया गया। उस समय विकलांगों के लिए कोई आरक्षण की व्यवस्था नहीं थी। अरुण प्रकाश बहुत ही महत्त्वाकांक्षी पुरुष थे। उन्हें कार-बंगले की नहीं, लिखकर प्रसिद्ध होने की महत्त्वाकांक्षा रही। कारखाने-कारखाने घूमकर मजदूरों के यूनियन का काम किया। तीन-तीन बार हत्यारों के साथ वार से बच निकले फिर भी यूनियन में लगे रहने की महत्त्वाकांक्षा कम नहीं हुई। इन्होंने कभी अपने जीवन की परवाह नहीं की। अरुण प्रकाश की इन कठिन महात्त्वकांक्षाओं के पूरा करने में उनकी पत्न्नी वीणा प्रकाश ने सदैव उनका साथ दिया। पति के संघर्ष की सहयात्री वीणा प्रकाश के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अरुण प्रकाश अपने आत्मकथ्य में लिखते हैं- "तरक्की सुविधाओं से यह मरहूम रहकर मामूली तनख्वाह से संयुक्त परिवार चलाते रहना कौन-सी महत्त्वाकांक्षा थी?.. वे बड़े कठिन दिन थे। वीणा ही सारा बोझ उठाती थी और मुझे मनमर्जी चलने की छूट देती थी।"[4]

अरुण प्रकाश बचपन से लेकर अपनी आखिरी साँस तक अपनी जिन्दगी से संघर्ष करते रहे। यह संघर्ष कभी शारीरिक रहा, तो कभी पारिवारिक और जब भी इन दोनों से उबरते तो समाज के लिए संघर्ष करते। इनका संघर्ष कलम तक सीमित नहीं था, अपितु ये जमीन पर उतर कर संघर्ष करते थे। किशोरावस्था में ही ये लंबी बीमारी के शिकार हो गये और फिर जब उठे तो विकलांगता ने उन्हें घेर लिया। किसी ने कह दिया कि तैरने से तुम ठीक हो जाओगे। बस बूढ़ी गंडक में धारा के विरुद्ध तैर-तैरकर इन्होंने अपना शरीर सीधा कर लिया। बैसाखी छूटी और कामचलाऊ शरीर ही सही फिर से प्राप्त हो गया।

राजनीतिक ईर्ष्या के कारण 1970 ई. में जब पिता श्री रुद्रनारायण झा की कार से कुचल कर हत्या कर दी गई, तब पूरा परिवार अनाथ हो गया। अचानक आमदनी के सारे स्रोत बंद हो गये। बड़े भाई होने के नाते बाईस वर्ष के नौजवान अरुण प्रकाश अपने परिवार के अभिभावक बन जाते हैं। यह समय भी वाकई अरुण प्रकाश के लिए कठिन संघर्ष का समय था। एम.पी. फ्लैट खाली करके सर्वेट क्वाटर में आना पड़ा। पिता की हत्या की सी.बी. आई. जाँच हुई, पर दोषी कौन, यह रहस्य सार्वजनिक नहीं हुआ। किसी को सजा नहीं मिली।

अरुण प्रकाश 1971 ई. में दिल्ली में बेयरे के रूप में पहली नौकरी होटल 'क्लेरिजेज' में की और फिर लोदी होटल में लगभग दो वर्षों तक बेयरे का कार्य किया। 1972 ई. में पटना के 'नटराज होटल' में असिस्टेंट मैनेजर के रूप में कार्य किया और फिर 1973 में बरौनी फर्टिलाइजर के गेस्ट हाउस में असिस्टेंट मैनेजर की नौकरी की। सन् 1986 ई. में हिन्दुस्तान फर्टिलाइजर लिमिटेड में हिन्दी अधिकारी के रूप में अरुण प्रकाश फिर दिल्ली आए। दिल्ली प्रवास ने उन्हें कई अवसर प्रदान किये। अरुण प्रकाश 1990 में हिन्दुस्तान फर्टिलाइजर से निकल कर दैनिक जागरण में पत्रकारित की शुरूआत की। वे 1991 में राष्ट्रीय सहारा में कुछ महीने रहे। 1992-93 में समय-सूत्रधार पाक्षिक में वरिष्ठ सहायक संपादक रहे। इतना ही नहीं 1993 ई० से 2004 ई० फिर 2008 ई० से अंतिम समय तक, लगभग पन्द्रह वर्षों तक, फ्रीलांसिंग करते रहे। अरुण प्रकाश 2004 से 2008 के बीच समकालीन भारतीय साहित्य के संपादक रहे। कुछ टी.वी. चौनलों और मीडिया संस्थानों के लिए भी समय-समय पर स्वतंत्र रूप से काम करते रहे। ये कई धारावाहिकों, वृत्तचित्रों तथा टेलीफिल्मों से सम्बद्ध रहे। सात स्तम्भों का लेखन 'अपलम-चपलम' के अन्तर्गत किया तथा दो टिप्पणी 'पर्दा है पर्दाश स्तम्भ से किया। अरुण प्रकाश की आठ अनुदित पुस्तकें हैं तथा 'पूर्व-राग' नामक एक अपूर्ण उपन्यास भी है।

अरुण प्रकाश जब बरौनी खाद कारखाना के अतिथि गृह के प्रबन्धक हुए तभी साथ-साथ लेखन में भी गंभीरता से जुट गये। यहाँ रहते हुए ही अरुण प्रकाश ने 1998 ई. में 'रक्त के बारे में' कविता-संकलन का प्रकाशन करवाया। 'कोंपल कथा' यहीं लिखी गयी।' 'भैया एक्सप्रेस' और 'जलप्रान्तर' की अधिकांश कहानियाँ इसी अतिथिशाला (विश्रान्ति) में लिखी गई। अपने जीवन के अंतिम दौर में गंभीर कथा-समीक्षाएँ और आलोचना का लेखन किया। आत्मोचनात्मक पुस्तकें 'गद्य की पहचान', 'उपन्यास के रंग' तथा 'कहानी के फलक' अरुण प्रकाश की मृत्यु के पश्चात ही क्रमशः प्रकाशित हुए। दिल्ली प्रवास के आरंभिक दौर में से दिलशाद गार्डेन में रहते थे। बाद में मयूर बिहार फेज-एक के आई. एफ. एस. अपार्टमेंट में रहने लगे। लेखन की दृष्टि से उनका बरौनी का कार्यकाल उर्वर रहा है, जबकि प्रकाशन और सम्मान की दृष्टियों से उनका दिल्ली प्रवास फलदायी रहा है। प्रसिद्ध कथाकार व संपादक कमलेश्वर का संरक्षण उन्हें प्राप्त था। इन्होंने दूरदर्शन की बहुचर्चित सांस्कृतिक पत्रिका 'परख' के करीब साढ़े चार सौ एपिसोड लिखे थे।

आज भी अरुण प्रकाश का एक छोटा-सा परिवार है, जिसमें उनकी पत्न्नी श्रीमती वीणा प्रकाश के अलावा एक पुत्र तथा एक पुत्री हैं। उनकी पत्न्नी वीणा प्रकाश एक गृहणी हैं और वर्तमान में अपने पुत्र मनु प्रकाश के साथ दिल्ली में रहती हैं। वीणा प्रकाश का मायके निपनियाँ से सटे गढ़हरा गाँव में है। अरुण प्रकाश की पुत्री अमृता प्रकाश कॉमर्शियल आर्ट में स्नातक हैं और पुत्र मनु जी एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में सेवारत है। अरुण प्रकाश जी किशोरावस्था से ही अस्वस्थ रहते थे। विकलांग तो थे ही, उम्र बढ़ने के साथ श्वास की बीमारी से बुरी तरह ग्रस्त हो गये। अरुण प्रकाश चार वर्षों से ज्यादा समय तक फेफड़े की बीमारी एम्फीसीमिया से ग्रस्ष्त होकर कृत्रिम आक्सीजन के सहारे जीवित रहे। उनका घर ही अस्पताल हो गया था। पत्नी वीणा प्रकाश अस्पताल की परिचारिका 'नर्स' की भूमिका में ऑक्सीजन की नली से उन्हें हर वक्त जुड़े रखने और उनकी पल-पल बढ़ती परेशानियों में निकट सहयोगिनी थी। उन्हें रोजाना 16-18 घंटे ऑक्सीजन की दरकार होती थी। अरुण का भरा-पूरा परिवार था। समर्पित पत्नी थीं और लेखक पिता पर गर्व करने वाले बेटा-बेटी थे। दादा पर जान छिड़काने वाली एक बड़ी प्यारी-सी पोती थी।

बीमारी ने अरुण प्रकाश के शरीर को कमजोर अवश्य कर दिया था, पर जीवन के उल्लास को नहीं। स्वभाव में चिड़चिड़ापन उस तरह कभी हावी नहीं हुआ जैसे अक्सर ऐसी बीमारी में होता है। उलाहने नहीं देते थे वे, कोसते भी नहीं थे किसी को। जानते थे संसार और सांसारिकता क्या है। बाहर आ जा सकने की असमर्थता की अब जरूर आने लगी थी। कुछ कर न सकने की बेबसी भी कभी किंचित झलक जाती थी, पर दूसरे ही पल ठीक होने के बाद के कार्यक्रम तय करने लगते थे उन सारी चीजों के बारे में जो अधूरी रह गई थी। इस दरम्यान भी पूर्व की भाँति ही अरुण प्रकाश अपने घर आये मित्रों व अतिथियों से बड़े ही उत्साह

उनका व जिंदादिली के साथ मिलते थे। स्वयं स्वागत करते थे और डॉक्टर द्वारा न बोलने की सलाह के बावजूद भी नहीं रह चुप पाते। वे खाँसते- खाँसते बेदम हो जाते, बातचीत के दरम्यान बातें भूल जाते। ऐसा शरीर में ऑक्सीजन की कमी से होता था। अपनी दयनीय-अवस्था में भी अतिथियों के साथ घंटों बातचीत करने की आदत से परिवार के लोग बेहद परेशान रहते थे। मिलने आये मित्रगण भी धर्मसंकट में पड़ जाते थे। आज उनकी जिंदादिली ही उनके लिए परेशानी का सबब बन गया था। उनकी पत्नी उन्हें बार-बार कम बोलने की हिदायत देती रहती थी, परन्तु मेहमान के आते ही अरुण प्रकाश अपना सारा दुख तकलीफ भुलाकर उत्प्साह से भर उठते। जैसे ही बोलना शुरू करते, जोर की ऐसी खाँसी उठती कि फिर रुकने का नाम न लेती और फिर उन्हें मास्क लगाना पड़ता।

वरिष्ट कथाकार देवेन्द्र सिंह 02 मार्च 2011 ई० को बीमार अरुण प्रकाश से मिलने पहुँचे। देवेन्द्र जी स्वाभाविक रूप में बीमारी के बारे में पूछा, परन्तु अरुण प्रकाश विस्तारपूर्वक समझाना शुरू करते हैं- "फेफड़े के दो काम हैं। उन्होंने समझाया एक ऑक्सीजन सोखना। दूसरा, कार्बन डाईऑक्साइड को बाहर फेंकना। वह काम मेरा फेफड़ा नहीं कर पाता है। इसके लिए मशीनों की मदद लेनी पड़ती है। एक मशीन की मदद से ऑक्सीजन लेते हैं, दूसरी से कार्बन डाईऑक्साइड बाहर करते हैं। पहली का दाम पैंसठ हजार, दूसरी का अस्सी हजार। एक मशीन मिलती है जो हवा से ही ऑक्सीजन खींचती और कार्बन भी फेंकती है। मगर वह बहुत महँगी है। ढ़ाई लाख की।... बहुत महँगा है इस रोग का इलाज। मगर मैं बेटे पर बोझ नहीं बना। दिलशाद गार्डन में अपना घर था, उसको बेच दिया।"[5]

इतने बड़े कथाकार को अपना इलाज करवाने के लिए, स्वयं को जीवित रखने के लिए, लाचारी में अपना घर बेचना पड़ा। अपने घर के निर्माण हेतु व्यक्ति जीवन भर की कमाई लगा देता है, ताकि वृद्धावस्था में दर-दर की ठोकरें न खानी पड़े। इतना ही नहीं अपने घर के साथ अनगिनत स्मृतियाँ व भावनाएँ भी जुड़ी होती हैं। किस प्रकार इन सब को कुचलते हुए अरुण प्रकाश ने अपना घर बेचा होगा। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है। हिन्दी में कई बड़ी राशि वाले पुरस्कार व सम्मान हैं। क्या अरुण प्रकाश उनको डिजर्व नहीं करते? क्यों नहीं उनको वैसा कोई सम्मान मिला, ताकि वे इलाज करवा सकते, घर बेचने की नौबत नहीं आती? अरुण प्रकाश ने अपने जीवन के अंतिम चार वर्षों में इतनी पीड़ा झेली कि उनके करीबी मित्र और उनका परिवार भी दिल पर पत्थर रखकर ईश्वर से उन्हें इस काया से मुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करने लगे।

पटेल चेस्ट इंस्टीच्युट दिल्ली में अरुण प्रकाश की श्वास की बीमारी का लम्बा इलाज चला। 18 जून 2012 को 64 वर्ष की आयु में अरुण प्रकाश की संघर्ष-यात्रा का अंत हो गया। एक महामानव हमेशा-हमेशा के लिए इस दुनिया से विदा हो गये। ईश्वर ने अरुण प्रकाश को उनकी जर्जर काया से मुक्ति प्रदान की परंतु हिन्दी साहित्य ने अपना एक अमूल्य हीरा खो दिया।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:

1) 'बाया' गौरीनाथ, त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल-जून, 2012 पृ. 07
2) वही, पृ. 75
3) वही, पृ. 08
4) वही, पृ. 09
5) वही, पृ. 58

भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति और डॉ० बाबासाहेब अम्बेडकर

डॉ० अनिल विठ्ठल बाविस्कर

सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग प्रमुख, कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, अक्कलकुवा, महाराष्ट्र

सारांश:

आज भारत में लोकतंत्र के साथ-साथ राजनीतिक लोकतंत्र की शुरुआत के कारण, हालांकि कुछ जाति समूहों को इससे लाभ हुआ है, हम उसी लोकतंत्र के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र लाने में पूरी तरह से विफल रहे हैं। इससे देश में सामाजिक वातावरण काफी हद तक प्रदूषित हो रहा है और भारतीय लोकतंत्र में हर जाति समूह की आशाओं, अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में मुश्किलें पैदा हो रही हैं। डॉ। अम्बेडका के लोकतांत्रिक विचार के अनुसार लोकतंत्र की सफलता के लिए निम्नलिखित बातों को प्राथमिकता देनी चाहिए। उस कारण से समाज में असमानता न हो, ऊँच-नीच न हो, समाज में उत्पीड़ित और उत्पीड़क वर्ग न हो, अर्थात् कोई वर्ग न हो, यदि यह वर्ग है तो ऐसे वर्ग में रक्तरंजित क्रान्ति के बीज होते हैं, अत: समाज की खाई लोकतंत्र की सफलता में एक बड़ा पत्थर है। इसे अवश्य ही पार करना चाहिए। आज भारत के लोकतंत्र, भारतीय लोकतंत्र और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में पूंजीपतियों की एक नई जमात के उदय के कारण जनप्रतिनिधियों पर पूंजीपतियों का वर्चस्व बढ़ने से राजनीतिक संस्थाओं और न्याय व्यवस्था में बड़े बदलाव हो रहे हैं। प्रणाली। इसलिए, आज नए भारत के निर्माण के लिए बाबासाहेब के वैचारिक योगदान को कोई भी कम नहीं कर सकता है, इसलिए आज देश के विकास के लिए अम्बेडकर के विचारों की व्यावहारिक नींव को मजबूत करना आपके लिए आवश्यक है, तभी डॉ. इसमें कोई संदेह नहीं है कि अम्बेडकर की कल्पना के अनुसार भारतीय लोकतंत्र गहराएगा।

परिचय:

स्वयं डॉ बाबासाहेब अम्बेडकर के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और शैक्षिक चिंतन का केंद्र बिंदु है। इसीलिए डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर की लोकतंत्र में गहरी आस्था थी जिसने रक्त के माध्यम से लोगों के सामाजिक और आर्थिक विकास में क्रांतिकारी बदलाव लाए। यद्यपि जनता का शासन सरकार के सभी रूपों में सरकार का सबसे अच्छा रूप है, उन्हें भारत में लोगों की सफलता के बारे में संदेह था, जो अंधविश्वासों, रीति-रिवाजों और परंपराओं की गहराई में जकड़ा हुआ था। क्योंकि स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुत्व के सिद्धांतों पर बनी विचारधारा को स्वीकार करते हुए भारत के इतिहास, प्रचलित आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, एक सफल लोकतंत्र, सामाजिक एकता, एक प्रभावी विपक्ष के लिए आवश्यक शर्तों को ध्यान में रखते हुए सत्तारूढ़ पार्टी और विपक्ष में लोकप्रियता, राजनीति में नैतिकता, कानून के समक्ष समानता के मुद्दे पर सद्भाव का माहौल, और बहुसंख्यक अल्पसंख्यक की सुरक्षा की गारंटी देने वाली भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को उन्होंने नहीं देखा। फिर भी, लोकतंत्र समाज और दलितों, मजदूरों, महिलाओं, समाज के मेहनती सदस्यों के विकास के लिए उपयोगी है। इसलिए साथ ही लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए समाज में जागरूकता का व्यापक स्तर पर होना आवश्यक है, अत: सामाजिक सुधार के साथ-साथ सामाजिक प्रबोधन आवश्यक था, इसीलिए जाति व्यवस्था को हिला देने वाले वे पहले व्यक्ति थे। भारत में आज लोकतंत्र के साथ-साथ राजनीतिक लोकतंत्र भी आ गया है, हालांकि कुछ जाति समूहों को इसका लाभ मिला है। इस लोकतंत्र

के साथ-साथ हम सामाजिक और गैर-लोकतंत्र लाने में पूरी तरह विफल रहे हैं। इस वजह से आज देश में सामाजिक वातावरण प्रत्येक जाति समूह के सदस्यों की आशाओं, अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कठिन होता जा रहा है। इसलिए आज सामाजिक और जातिगत ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज होगई है।

आज देश में सबके मन में असुरक्षा की भावना है। इसलिए आज भारतीय लोकतंत्र एक नए मोड़ पर पहुंच गया है। तो डॉ. अम्बेडकर जिस लोकतंत्र की आशा करते थे, उसके लिए वे कहते हैं, जब तक ब्रिटिश सरकार थी, हम अपने देश में अच्छे और बुरे की जिम्मेदारी उन पर डाल रहे थे, लेकिन अब जब हम स्वतंत्र हो गए हैं, तो अच्छे और बुरे की जिम्मेदारी हमारा होगा, इसलिए अब हमें और जिम्मेदारी से काम लेना होगा। लेकिन देश की मौजूदा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को देखते हुए यह देखा जा सकता है कि भारतीय लोकतंत्र की परीक्षा का दौर शुरू हो रहा है, लेकिन भारतीय लोकतंत्र आज भी दफन है। श्रेय डॉ. डॉ. अम्बेडकर जाता है। लोकतंत्र पर अम्बेडकर के विचार और आज उस विचार की प्रासंगिकता क्रमिक हो जाता है।

शोध निबंध के उद्देश्य:

1) डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के लोकतांत्रिक विचारों का अध्ययन करना।
2) भारतीय लोकतंत्र के संबंध में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।
3) भारतीय लोकतंत्र के परिवर्तन का अध्ययन करना।

शोध निबंध परिकल्पना :

1) भारतीय लोकतंत्र आज बड़े पैमाने पर बदलाव के दौर से गुजर रहा है।
2) आज भारतीय लोकतंत्र का चेहरा काफी हद तक बदलता नजर आ रहा है।
3) भारतीय लोकतंत्र में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के विचारों को बल मिलता नहीं दिख रहा है।

अनुसंधान क्रियाविधि:

यह शोध प्रबंध वर्णनात्मक ढंग से किया गया है। इस शोध निबंध में प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का प्रयोग किया गया है तथा उपलब्ध तथ्यों के आधार पर भारतीय लोकतंत्र, लोकतंत्र की स्थिति में परिवर्तन पर डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के विचार कैसे उपयोगी हैं, इसका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया गया है।

लोकतंत्र और डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर:

डॉ। जैसा कि अम्बेडकर लोकतंत्र के समर्थक हैं, लोकतंत्र की उनकी अवधारणा राजनीतिक स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व की अवधारणा से अधिक व्यापक है। क्योंकि राजनीतिक लोकतंत्र का भविष्य लोकतंत्र के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं के सशक्तिकरण पर निर्भर करेगा। इसलिए, उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र नहीं होगा तो राजनीतिक लोकतंत्र सफल नहीं होगा। इसलिए लोकतंत्र के बारे में उनका कहना है कि यह शासन की ऐसी व्यवस्था है जो रक्तपात का सहारा लिए बिना लोगों के आर्थिक और सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाती है, लेकिन उसका भविष्य उसके कार्यों पर निर्भर करेगा। मई 1956 में डॉ. वॉयस ऑफ अमेरिका द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में भारतीय लोकतंत्र के भविष्य पर व्याख्यान देते हुए अंबेडकर ने कहा कि लोकतंत्र का मतलब गणतंत्र या संसदीय सरकार नहीं दिया जाता है। कहा जाता है भारत के इतिहास और संस्कृति को देखते हुए भारत में लोकतंत्र विकसित नहीं हुआ है, लेकिन लोकशाही यूरोपीय देशों के विकास के माध्यम से भारत में आई है। तो हमारे देश में लोकतंत्र कैसे सफल होगा? उनका दर्शन लौकिक लोकतंत्र के विकास और विचार का केंद्र बिंदु बना हुआ है।

डॉ। अम्बेडकर के लोकतांत्रिक विचार के अनुसार लोकतंत्र की सफलता के लिए निम्नलिखित बातों को प्राथमिकता देनी चाहिए। उसके लिए वे कहते हैं कि समाज में असमानता नहीं होनी चाहिए, ऊंच-नीच नहीं होनी चाहिए, समाज में उत्पीड़ित और उत्पीड़ित वर्ग यानी गरीब और गरीब नहीं होना चाहिए। अत: समाज में व्याप्त खाई लोकतंत्र की सफलता में सबसे बड़ा पत्थर है। इसे पारित करने की जरूरत है। क्योंकि विश्व में लोकतंत्र के इतिहास पर नजर डालें तो सामाजिक एकता के अभाव में लोकतंत्र नष्ट हुआ

है। इसलिए भारत में जाति आधारित समाज में सर्वप्रथम ज्ञात और अस्पृश्यता के कारण सामाजिक विषमता को मिटाना आवश्यक है।

राजनीतिक दलों के रूप में सत्तारूढ़ पार्टी के बजाय विपक्ष का अस्तित्व लोकतंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दृढ़ता महत्वपूर्ण है। क्योंकि विपक्षी दल ही सत्ताधारी दल को सत्ता में ला सकते हैं। इसलिए विरोधी दल को सदैव विवेक की भूमिका स्वीकार करनी चाहिए। अम्बेडकर की राय। साथ ही, एक और बात जो एक मजबूत लोकतंत्र के लिए आवश्यक है, वह यह है कि नैतिकता पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है, इसलिए राजनीतिक और सामाजिक जीवन में आगे बढ़ते हुए सभी को नैतिकता का उच्च स्तर रखना चाहिए। साथ ही, उच्च स्तर की नैतिकता विवेक के साथ होनी चाहिए। तभी सभी को अच्छे और बुरे के बीच का अंतर पता चलेगा, इसलिए वे हमेशा न्याय के पक्ष में रहेंगे, इसलिए लोकतंत्र में कानून के सामने सभी समान होंगे। इसलिए लोकतंत्र में कोई भी अपने को असुरक्षित महसूस नहीं करेगा, इसलिए बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों की भावनाओं को कुचला नहीं जा सकता, इसलिए न्याय की भूमिका तभी विकसित होगी, जब बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच समझ का माहौल बनेगा.

भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थितिः

लोकतांत्रिक और सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण भारत के संघर्ष में अंबेडकर की भूमिका को देखते हुए आज भारतीय लोकतंत्र में अंबेडकर के विचारों की विरासत को हड़पने की प्रवृत्ति काफी मजबूत हो गई है। यद्यपि नए भारत के निर्माण में बाबासाहेब का वैचारिक योगदान असामान्य है, क्योंकि बाबासाहेब के बाद आज उनके विचारों की व्यापक रूप से आलोचना हो रही है, दक्षिणपंथी हिंदुत्व विचारधारा ने प्रगति के देश में राजनीतिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया है।. इसलिए भारतीय लोकतंत्र में साम्प्रदायिकता का जोर आज वैचारिक और राजनीतिक क्षेत्रों में बड़ी अस्थिरता पैदा होने के कारण काफी हद तक बढ़ गया है, अज्ञानता काफी हद तक बढ़ गई है। इसलिए देखा जा रहा है कि आज सामाजिक समरसता, एकता खतरे में है। इसलिए आज बहुसंख्यकों के बड़े-बड़े हमले अल्पसंख्यकों को उदासीन बना देने के रूप में देखे जाते हैं, क्योंकि बहुसंख्यकों के बारे में सच्ची और दृढ़ राय व्यक्त करने वालों को देशद्रोही माना जाता है और बहुसंख्यकों के विचारों से समानता दिखाने वालों को देशभक्त माना जाता है। इसलिए आज भारतीय लोकतंत्र में विचारधारा, नैतिकता और विवेक खतरे में है। साथ ही, शक्ति केंद्र के बाहर एक नया शक्ति केंद्र बनने के कारण, शक्ति केंद्र बाहरी शक्ति केंद्र द्वारा शक्ति केंद्र के रिमोट कंट्रोल के अधीन है, और भारतीय लोकतंत्र के लिए यह अच्छी बात नहीं है कि वह इसके माध्यम से सत्ता चलाए रिमोट कंट्रोल। यद्यपि शिक्षा और रोजगार के माध्यम से आज भारतीय लोकतंत्र में नया नेतृत्व उभर रहा है, लेकिन उस नेतृत्व की सीमाएं आज उजागर हो रही हैं। आज भारतीय लोकतंत्र में पूंजीपतियों के एक नए वर्ग के उदय के कारण भारतीय लोकतंत्र और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में पूंजीपतियों के उदय के कारण राजनीतिक संस्थाओं और न्याय व्यवस्था में बड़े बदलाव देखने को मिल रहे हैं। साथ ही राजनीति और धर्म के एकीकरण को देखते हुए आज भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक ध्रुवीकरण की गति बढ़ने से लोकतंत्र पर धर्म की जीत देखी जा सकती है। भारतीय लोकतंत्र में सत्ता पर हावी होने के लिए समझौते और प्रतिस्पर्धा की राजनीति में वृद्धि के कारण आज अम्बेडकर को भारतीय लोकतंत्र के बारे में जो शंकाएँ थीं, वे बड़े पैमाने पर सामने आ रही हैं। आरक्षण की शंका आज एक बड़ी बाधा बनती जा रही है, इससे वंचितों की उम्मीदों और उम्मीदों पर पानी फिरने लगा है।

आज भारतीय लोकतंत्र में वंशानुक्रम और परंपरा पर आधारित पारिवारिक शासन भी लोकतंत्र की सफलता में एक बड़ी समस्या बनता जा रहा है। इसलिए भारतीय लोकतंत्र में वोट देने का अधिकार कुछ हद तक सीमित नजर आता है, इसलिए हालांकि लोकतंत्र में वंशवाद थोपना गलत है, लेकिन वंशवाद आज भारतीय लोकतंत्र की आत्मा है। आज किसानों, दलितों, आदिवासियों, महिलाओं, पिछड़ी जातियों, लैंगिक भेदभाव के मुद्दों को दबाया जा रहा है और भारतीय लोकतंत्र को पूंजीवाद के हितों में उलझा दिया गया है। फासीवादी विचारधारा विपक्ष को दबाने के लिए जोर पकड़ रही है। साथ ही सरकार लोकतंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया का भी गला घोंटने की कोशिश कर रही है। इसलिए भारतीय लोकतंत्र आज खतरे में नजर आ रहा है, लेकिन लोकतंत्र की इस परीक्षा की घड़ी में भारतीय लोग गहरे विचारक हैं क्योंकि भारतीय लोकतंत्र का ऐसे कठिन समय में परीक्षण किया गया है, यह शांतिपूर्ण तरीके से, रक्तहीन क्रांति के माध्यम से दुनिया को शून्य से बना सकता है, और यह दुनिया से शून्य भी ला सकता है। इसलिए भारत दूसरे देशों के लिए लोकतंत्र का मार्गदर्शक बन रहा है, इसका श्रेय डॉ. अम्बेडकर के पास जाता है। इसलिए वर्तमान स्थिति में भारतीय लोकतंत्र को पुनर्गठित करने के लिए और डॉ. अम्बेडकर के लोकतांत्रिक विचारों के आकाश में उड़ने के लिए आज भारतीय लोकतंत्र फिर से डॉ. यह निश्चित है कि हमें अम्बेडकर की सोच की ओर मुड़ना होगा।

मूल्यांकनः

डॉ। अम्बेडकर के लोकतांत्रिक चिंतन और भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति को देखते हुए भारतीय लोकतंत्र का मूल्यांकन करना समय की मांग है। यद्यपि भारतीय लोकतंत्र में स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण स्थान है, हम डॉ. अम्बेडकर ने जिस समानता की अपेक्षा की थी, हम उस समानता को लाने में पूरी तरह विफल रहे हैं। स्वतंत्रता और समानता में सामंजस्य स्थापित करने में विफलता के कारण स्वतंत्रता ने समानता को हड़प लिया है। आज सामाजिक समरसता की कमी, जातिवाद, जातिवाद, असुरक्षा, असहिष्णुता बढ़ रही है। आज भारतीय लोकतंत्र में बड़े पैमाने पर हिंदू धर्म होने के कारण आज भारतीय लोकतंत्र में वास्तविकता और व्यवहार के बीच बड़े अंतर के कारण सामान्य ज्ञान का उपयोग नहीं किया जा रहा है। इसलिए, भारतीय लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए, सामाजिक और आर्थिक मामलों में समानता को बढ़ावा देने के लिए और डॉ. हमें डॉ. अम्बेडकर की आवश्यकता है कि वे अम्बेडकर द्वारा निर्धारित लोकतंत्र के स्वरूप को वापस लाएँ और लोगों द्वारा, लोगों के लिए, लोगों द्वारा चलाई जाने वाली सरकार का निर्माण करें। हमें अम्बेडकर की सोच की ओर मुड़ना होगा। क्योंकि आपको चाहिए डॉ. अम्बेडकर की सोच का समर्थन करना होगा, क्योंकि भारत के संविधान, इस संविधान के कारण देश को एक लोकतांत्रिक व्यवस्था मिली थी, हालांकि संविधान में विभिन्न प्रावधानों के कारण यह व्यवस्था मजबूत और सशक्त हुई है, लेकिन आज यह व्यवस्था ध्वस्त हो चुकी है। इसलिए नए भारत के निर्माण के लिए डॉ. बाबासाहेब के वैचारिक योगदान से कोई असहमत नहीं हो सकता इसलिए आज आपके पास डॉ. अम्बेडकर के चिंतन की व्यावहारिक नींव को मजबूत करना आवश्यक है, तभी डॉ. इसमें कोई संदेह नहीं है कि अम्बेडकर द्वारा परिकल्पित भारतीय लोकतंत्र गहराएगा।

संदर्भः

1) गरुड़ सचिन, (2016), समकालीन संकट के संदर्भ में अम्बेडकरवाद की विकास संभावनाएँ, वत्सरू द यूनिक एकेडमी पुणे।
2) घोडेश्वर प्रवीण, (2016), डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर और समकालीन प्रश्न, यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नासिक,
3) जाधव नरेंद्र, (2016), अतुलनीय अद्‌भुत सार्वजनिक मामले, सूचना और जनसंपर्क महानिदेशालय, मुंबई।
4) फडणवीस देवेंद्र (2016), रचनात्मक सामाजिक न्याय, सार्वजनिक मामलों के महानिदेशालय, सूचना और जनसंपर्क, मुंबई

स्वरोजगार के माध्यम से देश के विकास में योगदान

डॉ० परीक्षित लायेक

उपप्राचार्य, श्री रामकृष्ण शारदा आश्रम टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज हजारीबाग

प्रस्ताबना :

किसी भी देश व समाज के विकास में युवा वर्ग का बहुत योगदान होता है। शिक्षित युवा वर्ग ही देश के भविष्य की नींव है। क्योंकि वह आने वाले समय में का नेतृत्व भी करता है। देश विकास में इनकी अहम भूमिका भी होती है। देश के विकास का लक्ष्य युवाओं के बिना सम्भव नहीं है।

इन युवाओं में निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने की असीम शक्ति होती और यह तभी लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है जब इनकी शिक्षा स्तर इतना हो की वह स्वरोजगार माध्यम से विकास में योगदान सकें। लेकिन शिक्षा पद्धति रोजगारोन्मुख होने की वजह से आज का युवक में पड़ गया है, जिसकी वजह से उसका भविष्य सुरक्षित नहीं बेरोजगारी नामक अभिशाप की उत्पति हुई जिसमें मुख्य बेरोजगारों की शिक्षित युवाओं की है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शैक्षिक सुविधाओं पर पर्याप्त जोर देने के कारण शिक्षित व्यक्तियों की संख्या तो देश में तेजी से बढ़ीं, परन्तु उस अनुपात में अपेक्षित रोजगार का सृजन नहीं हो सका है जिसके कारण शिक्षित बेरोजगारों की समस्या उत्पन्न हुई। बेरोजगारी की समस्या चाहे किसी भी कारण से हो तथा किसी भी रूप में हो, प्रत्येक स्थिति में वह राष्ट्रीय अभिशाप है। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में इस समस्या के निराकरण हेतु विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं।

बेरोजगारी को नियंत्रण में करने के लिए भारत सरकार तथा प्रदेश सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार कार्यक्रम चलाये जाते रहे हैं। इन योजनाओं में शिक्षित बेरोजगार युवाओं को कम ब्याज दर पर करवाकर उनका स्वरोजगार स्थापित किया जाता है, ताकि ऋण उपलब्ध बेरोजगारी तथा गरीबी को खत्म किया जा सके।

बेरोजगारी:

बेरोजगारी का अर्थ होता है एक ऐसी स्थिति जब योग्य एवं कुशल लोगों को उनकी क्षमता के अनुसार नौकरी नहीं मिल पाती है। अर्थात वह कोई ऐसी गतिविधि नहीं करता जिसके बदले उसे पैस अथवा वस्तु के रूप में आमदनी हो और वह ऐसी गतिविधि की तलाश में होता है। भारत में बेरोजगारी की प्रकृति संरचनात्मक है।

शिक्षित बेरोजगारी का अर्थ भी उस स्थिति से लगाया जाता है जब शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार कार्य नहीं मिलता है। इनकी कार्यकुशलता भी अन्य श्रमिकों से अधिक होती है। यह उल्लेखनीय है कि शिक्षित बेरोजगारों की समस्या देश की एक जटिल समस्या बनी हुई है। इनमें शहरी बेरोजगारी तथा ग्रामीण बेरोजगारी शामिल है। शहरी क्षेत्रों में प्राय: खुले किस्म की बेरोजगारी पायी जाती है। इसमें औद्योगिक बेरोजगारी तथा शिक्षित बेरोजगारी भी कहा जाता है। भारत में ग्रामीण बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। इस प्रकार की बेरोजगारी के सही आंकड़े भी उपलब्ध नहीं है

ग्रामीण औद्योगीकरण:

ग्रामीण औद्योगिकरण का अर्थ है ऐसा कोई भी उद्योग जो ग्रामीण क्षेत्र में स्थित हो तथा जो विद्युत उपयोग या बिना उपयोग के कोई भी माल तैयार करता हो या कोई सेवा प्रदान करता हो तथा जिसमें स्थायी पूंजी निवेश प्रति कारीगर या कर्मी मैदानी क्षेत्रों के लिए 1.00 लाख रूपये एवं पहाड़ी क्षेत्रों के लिए 1.50 लाख रूपये से अधिक न हो, अथवा केन्द्र सरकार समय समय पर राजपत्र के अधिसूचना में निर्दिष्ट ऐसी ही कोई अन्य राशि।

ग्रामीण औद्योगीकरण: क्षेत्र

ग्रामीण औद्योगिकरण के तहत ग्रामीण क्षेत्र "का अर्थ है कि कोई भी ऐसा वर्गीकृत जो राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश के राजस्व अभिलेखों के अनुसार गाँव की परिभाषा के अन्तर्गत आता हो तथा ऐसा कोई भी क्षेत्र जो कस्बे के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया हो लेकिन जिसकी जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 20 हजार से अधिक न हो।

ग्रामीण औद्योगीकरण महत्व:

कोई भी अध्ययन तभी परिपूर्ण माना जाता है जब वह किसी न किसी के लिए महत्व रखता है। इस अध्ययन में हमने यह जानने की कोशिश की है कि लोग ग्रामीण औद्योगिकरण के बारे में जानते हैं या नहीं और कितने लोग इसका फायदा उठाते है और इसके बारे में जानकारी रखते है। भारत की जनसंख्या 100 करोड़ से ऊपर हो चुकी है। वर्तमान में 30 प्रतिशत आबाद गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करती है और वितीय अर्थव्यवस्था सम्बन्धी समस्या का सामना करती है

ग्रामीण औद्योगिकरण के महत्व को इंगित करते हुए सभी सवय योजनाओं में अलग-अलग सिफारिशों की गई जिसके तहत ग्रामीण औद्योगिकरण को बढ़ावा मिला जिससे गांव के लोग जागरूक हुए और औद्योगिकरण बढ़ावा मिला जिससे गांव के लोग जागरूक हुए और औद्योगिकरण को गांव के और वापिस ले गए। ग्रामीण औद्योगिकरण का यह लाभ होगा कि ग्रामीण लोग शहरों की और पलायन नहीं करेंगे और गांव में ही लोगों को रोजगार के साधन उपलब्ध हो जाएंगे। इसके अतिरिक्त इसका एक और लाभ यह होगा कि गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों को इस अधिक लाभ देकर उन्हें सशक्त बनाया जा सकता है।

प्रधानमंत्री रोजगार कार्यक्रम:

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय, भारत सरकारों ने 15 अगस्त, 2008 को ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में सूख्म उद्यमों की स्थापना द्वारा रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिये नये ऋण सहबद्ध सब्सिडी कार्यक्रम के रूप में प्रधानमन्त्री रोजगार सृजन कार्यक्रम की उद्घोषणा की। भारत ने 31 मार्च 2008 तक परिचालन में रही दो योजनाओं "प्रधानमन्त्री रोजगार योजना और ष्ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम "को एक में मिलाकर, ग्रामीण और शी क्षेत्रों में सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना के माध्यम से रोजगार के अवसर सृजन करने उद्देश्य से प्रधानमन्त्री रोजगार सृजन कार्यक्रम" नामक एक नई ऋण सहबद्ध सब्सिडी कार्यक्रम अनुमोदित किया है। प्रधानमन्त्री रोजगार सृजन कार्यक्रम केन्द्रीय क्षेत्र की योजना है, जिसे सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा संचालित किया जा रहा है। योजना का कार्यान्वयन राष्ट्रीय स्तर पर एकमात्र नोडल अभिकरण के रूप में खादी और ग्रामोद्योग आयोग कर रहा है। राज्य स्तर पर योजना का कार्यान्वयन राज्य खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड, जिला उद्योग केन्द्र और बैंक कर रहे हैं। योजना के अन्तर्गत सरकारी सब्सिडी, खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड द्वारा चुने हुए बैंकों के माध्यम से लाभार्थियों/उद्यमियों को उनके बैंक खाते में वितरित करने के लिए दी जा रही है। कार्यान्वयो अभिकरण अर्थात खादी ग्रामोद्योग आयोग, खादी ग्रामोद्योग बोर्ड और जिला "उद्योग केन्द्र योजना के कार्यान्वयन में, विशेष रूप से लाभार्थियों के चयन, क्षेत्र विशिष्ट लाभप्रद परियोजनाओं की पहचान और उद्यमिता विकास प्रशिक्षण के क्षेत्र में प्रतिष्ठित गैर-सरकारी संगठनों/प्रतिष्ठित स्वायत संस्थाओं/स्वय सहायता समूहों/राष्ट्रीय लघु उद्योग निगमों/ राजीव गांधी उद्यमी मित्र योजना के अंतर्गत सूचीबद्ध उद्यमी मित्रों, पंचायती राज संस्थाओं और अन्य संबंधित निकायों को अपने साथ संबद्ध करके योजना को विस्तार दे रहे है।

प्रधानमन्त्री रोजगार कार्यक्रम: उद्देश्य

प्रधानमन्त्री रोजगार सृजन कार्यक्रम के ग्रामीण औद्योगिकरण के परिप्रेक्ष्य में उद्देश्य निम्न प्रकार से है:

- नए स्वरोजगार उद्यमों/परियोजनाओं/ सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना माध्यम से देश के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का सृजन करना।
- व्यापक रूप से दूर दूर अवस्थित परंपरागत कारीगरों ग्रामीण शहरी बेरोजगार युवाओं को एक साथ लाना और जहां तक संभव हो, स्थानीय स्तर पर ही उन्हें स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध करवाना।
- देश के परम्परागत और संभावित अधिकतर कारीगरों, ग्रामीण तथा शहरी बेरोजगार युवाओं को निरंतर और दीर्घकालिक रोजगार उपलब्ध कराना, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर उनका पलायन रोका जा सके।
- कारीगरों की पारिश्रमिक अर्जन क्षमता बढ़ाना और ग्रामीण तथा शहरी रोजगार की विकास दर बढ़ाने में योगदान करना। 1.7 प्रधानमन्त्री रोजगार सृजन कार्यक्रम क्षेत्र परंपरागत उद्योगों की अधिक उत्पादनशील प्रतिस्पद्री तथा विकासशील बनाने के लिए केन्द्र सरकार ने ग्रामोद्योगों को निम्न सात समूहों में वर्गीकृत किया है। इस सूची के अतिरिक्त भी उद्योग लिए जा सकते है।"

खनिज आधारित उद्योग:

खनिज अधारित उद्योगों में मुख्य तौर पर निम्न दो प्रकार के उद्योग शामिल किये जाते हैं।

मिट्टी के बर्तन:-

मिट्टी के बर्तनों के अन्तर्गत कुम्हारी के कार्य से सम्बन्धित विभिन्न गतिविधियों को शामिल किया जाता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्राचीन व अधुनिक तरह के मिट्टी के बर्तन बनाए जाते हैं।

चूना:-

खनिज आधारित उद्योगों के दुसरी श्रेणी में चूने से सम्बन्धित विभिन्न लघु व कुटीर उद्योगों को शामिल किया जाता है। इस श्रेणी में चुने से सम्बन्धित विभिन्न उत्पादों को शामिल किया गया है।

वन आधारित उद्योग:

वन अधारित उद्योगों में निम्न प्रकार के उद्योगों को शामिल किया जाता है

औषधीय वनस्पति उद्योग:

ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत औषधीय चिकित्सा सदैव प्रसिद्ध रहा है। संबद्ध वनस्पति का बहुआयामी उपचारों से बराबर उपयोग किया जाता है। सभी जरूरमंदों के विकास एवं सुरक्षित औषधीय चिकित्सा उपलब्ध कराना इसमें सम्मलित है।

मधुमक्खी पालन उद्योग:

भारत में शहद एवं मधुमक्खी पालन का पुराना इतिहास रहा है। सभ्यता के विकास के साथ शहद ने प्राचीन भारतीयों के जीवन में अद्वितीय स्थान प्राप्त किया। वे शहद को जादूई पदार्थ मानते थे। भारत में मधुमक्खी पालन मुख्यत: वन आधारित होता है। अनेकों प्राकृतिक वनस्पति प्रजातियां शहद हेतु आधार प्रदान करती है। अत: शहद उत्पादन हेतु कच्चा माल प्रकृति में मुफ्त में उपलब्ध हो जाता है। मधुमक्खी के छते के लिए न तो अतिरिक्त भूमि लगती है और न ही किसी उपकरण हेतु कृषि अथवा पशुपालन से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। मधुमक्खी पालकों को निगरानी हेतु केवल कुछ घंटे बिताना पड़ता है। इसलिए मधुमक्खी पालन आंशिक व्यवसाय है। मधुमक्खी पालन ग्रामीण तथा जनजाति किसानों के लिए धारणीय आय सृजन का साधन बनाता है। इससे उन्हें शहद, प्रोटीनयुक्त पॉलेन एवं ब्रूड जैसे मूल्यवान पोषण मिलते हैं।

परम्परागत ग्रामोद्योग के पुनरुद्धार हेतु खादी और ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना से ही मधुमक्खी पालन के विकास की देखभाल हुई है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग की विविध योजनाओं के अंतर्गत लगभग एक मिलियन मधुमक्खी छता पालन का कार्य किया गया। देश में एपियरी शहद का उत्पादन 10,000 टन होता है जिसका मूल्य लगभग 300 मिलियन है। देश में मधुमक्खी एपिस सेरेना

यूरोपिय मधुमक्खी एपिस मेलिफेरा मधुमक्खी पालन ने जम्मू व कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं पश्चिमी बंगाल में प्रसिद्धि प्राप्त की है। भारत के अनेक भागों में जनजाति जनसंख्या तथा वन निवासी जंगली शहद मधुमक्खी से शहद संग्रह करते हैं क्योंकि यह उनका पारंपरिक व्यवसाय है। घोषलों से शहद एवं मोम संग्रह की विधि धीरे-धीरे बदल चुकी है। शहद का मुख्य उत्पादन क्षेत्र उप हिमाचल तथा समीप के पहाड़ी क्षेत्र, उष्ण कटिबन्धीय वन सहित वन एवं फार्म है तथा इसकी खेती राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं उडीसा और आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी घाट में की जाती है।

लघु वन आधारित उद्योग:

भारत में इमारती लकड़ी उद्योग शुरू करने के लिए इमारत कृषि के औजार सामग्री बैलगाड़ी और लवे स्लीपरों का उत्पादन ही सीमित था। वन आधारित उद्योगों को ग्रामीण पहचान और इसके लिए बेरोजगारी और गरीबी की समस्या को हल करने की क्षमता की वजह से प्रोत्साहित किया गया। इसके अलावा नीति निर्माताओं ने भी माना कि प्राकृतिक संसाधन आधारित औद्योगिक विकास एवं पूर्व भारत जैसे व विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए अपेक्षित है इसलिए सरकार केन्द्र और राज्य में दोनों क्षेत्र में छोटे मध्यम और बड़े पैमाने पर वन आधारित उद्योगों की स्थापना प्रोत्साहित किया। इस नीति के कारण देश में कच्चे माल के उद्देश्य के लिए वनों पर उद्योगों के भारी दबाव देखा गया।"

कृषि आधारित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग:

कृषि आधारित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को निम्न प्रकार के उद्योगों को शामिल किया जाता है।

गुड़ उद्योग:

पूरे भारत में गन्ना की खेती होती है इसलिए गुड एवं खंडसारी अंतर्गत गुड एवं खांडसारी उद्योग गन्ना के पूरे उपयोग को सुनिश्चित करने में मदद करता है। आयोग की योजनाएं बाजार में उपलब्ध तकनीकी रूप से के ग्रामीण क्षेत्रों में चीनी के बदले मीठा के रूप में किया जाता है। इसमें उद्योग के विकास हेतु विशाल क्षेत्र है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग के परीक्षित तथा सर्वोच्च कोटि के गन्ना क्रशर के लिए ही केवल आर्थिक सहायता करती है। गुड एक ऐसा उत्पाद है जिसका अधिकांश उपयोग भारत सहायता करती है। गुड एक ऐसा उत्पाद है जिसका अधिकांश उपयोग भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में चीनी के बदले मीठा के रूप में किया जाता है। इसमें उद्यमी उत्पादन का 10-15 प्रतिशत लाभ कर सकता है। इसमें उद्यमी को अन्य अप्रत्यक्ष लाभ भी होता है। जैसे कि निम्न लागत पर उच्चतम खाद्य मूल्य आवश्यक उपकरण आसानी से प्राप्त हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में गुड़ एवं खांडसारी की अधिक मांग होने के कारण इसे स्थानीय हॉट एवं दुकानों में बेचा जा सकता है। पूरे वर्ष बीज खरीदने तथा गन्ना स्टोर करने के लिए पर्याप्त कार्यशील पूँजी को आवश्यकता पड़ती है।

फल और सब्जी प्रसंस्करण उद्योग:

फल और सब्जी प्रसंस्करण उद्योग अल्पजीवन को बढ़ाता है। इस उद्योग में जैसे रस, मुरब्बा, जेली बनाना इससे सम्बन्धित कच्चा माल बनाने वाले प्रसंस्करण कार्य किये जाते है। इस उद्योग की आय सृजन की सम्भावना के अलावा फल व सब्जी प्रसंस्करण में बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन की अत्यधिक सम्भावना होती है।

बहुलक और रसायन आधारित उद्योग:

बहुलक और रसायन आधारित उद्योग को निम्न प्रकार के उद्योगों को शामिल किया जाता है:

कुटीर माचिस उद्योग:

व्यापक श्रम लगने के कारण माचिस उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को विशेषकर महिलाओं के लिए ठोस पैमाने पर रोजगार सृजन करता है। यह गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को उनके घर पर पूरक रोजगार भी प्रदान करता है। चूँकि, विनिर्माण प्रक्रिया हल्की एवं साधारण होती है, विकलांग एवं बूढे व्यक्ति भी इसमें नियुक्त किये जा सकते है। अत: माचिस उद्योग लोगों का जीवनयापन लाने में महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक महत्व है। इससे गांव से शहरी क्षेत्रों में पलायन पर रोक लग रही है।

प्लास्टिक उद्योग:

प्लास्टिक उद्योग के अंतर्गत बहुलक माल प्राकृतिक एवं सिंथेटिक कंपाउण्ड के विनिर्माण की गतिविधियां क्रियान्वित की जाती है। प्लास्टिक उद्योग एक विशाल उद्योग है तथा प्लास्टिक की बिक्री के विनिर्माण से संबंधित क्षेत्र में बहुत से व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए है। नये रोजगार के अवसर अतिरिक्त समय का सृजन कर रहे है। भारत प्लास्टिक उद्योग की व्यापक बाजार की संभावना है तथा धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। प्लास्टिक की गेंद, प्लास्टिक बैग, पोलिप्रोलाईन बैग, पॉलिथिन बैग, प्लास्टिक बैरल, प्लास्टिक की टोपी, प्लास्टिक का बॉटल, प्लास्टिक की टोकरी, प्लास्टिक की बेसिन, प्लास्टिक का कटोरा आदि कुछ अंतिम प्लास्टिक उत्पाद है।

तेल एवं साबुन उद्योग:

इसके अंतर्गत मिठाई, खाना, चूना, अनाज, वस्त्र, टैनिंग पेल्ट चीज तथा कपड़े की रंगाई आदि जैसे ग्रामोद्योगों के साथ विस्तृत विनिर्माण कौ गतिविधियों क्रियान्वित की जाती है। इनमें सभी साबुन उद्योग तथा साबुन एवं अन्य सब्जी से तेल निकालने की प्रक्रिया अत्यधिक प्रसिद्ध है।

साबुन उद्योग का वर्गीकरण नीम ब्यूटी साबुन, सैंडल साबुन तथा लेमन बाथिंग बार के रूप में किया जा सकता है।"

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

- रामाचन्द्रन तथा कविथा, एन. ग्रामीण भारत में गरीबी उन्मूलन", कुरुक्षेत्र प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, दिसम्बर, 2007,
- अग्रवाल, अनुपम एवं गर्ग, अन्जू, "कृषि एवं ग्रामीण उद्योग," प्रतियोगिता: दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, दिसम्बर, 2003
- राजदूत. ओ.पी., "कृषि एवं ग्रामीण उद्योगों में प्रगति प्रतियोगिता दर्पण,
- उपकार प्रकाशन, आगरा, जनवरी, 2006 पृष्ठ स. 1141
- गुंसाई, संतोष सिंह, बरोजगारी भारतीय सुरक्षा को एक संभावित खतरा", प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, मार्च, 2007,
- मिश्र, श्री निवास, "पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास", अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2004
- आर.पी. तीसरी दुनिया के देशों में ग्रामीण औद्योगीकरण", स्टलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985

जाति व्यवस्था में अनुसूचित जातियां-इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं वर्तमान परिस्थितियों का एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० जोगेन्द्र सिंह खोखर

असोसियेट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, ए.आई.जाट एच.एम. महाविद्यालय रोहतक

सारांश-

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा वर्तमान परिस्थितियां किसी व्यक्ति अथवा समूह की समाज में न केवल स्थिति निर्धारित करती हैं बल्कि ये उनकी समाज में प्रतिष्ठा, दृष्टिकोण, व्यवहार, आकांक्षा, चेतना तथा अपेक्षा आदि को समझने में सहायता भी करती हैं। इतना ही नही किसी व्यक्ति अथवा समूह की जीवन शैली, व्यवहार, प्रतिष्ठा तथा भूस्वामित्व के आधार पर उसकी जाति को भी निर्धारित किया जा सकता है। जो जातियां ऐतिहासिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से प्राचीनकाल में सुदृढ थी वो न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ आज भी सुदृढ हैं। आरम्भ से ही भारतीय समाज उच्च तथा निम्न जातियों में बंटा हुआ है। निम्न जातियां वे जातियां हैं जो प्राचीनकाल से ही सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से पिछड़ी हुई थी और जिन्हें समाज अछूत मानता था तथा वे निम्न से निम्नतम स्तर के कार्यों में संलग्न रही हैं। भारत में ऐसी ही जातियों को अनुसूचित जातियों की श्रेणी में रखा गया है।

परिचय -

जाति शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के कास्ट्स, फ्रांसीसी के कैस्टा तथा आंगल भाषा के कास्ट शब्द से मानी जाती है। विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त इन सभी शब्दों का अर्थ जन्म, वंश, नस्ल, वर्ग, विशुद्धता अथवा अनुवांशिकता है। इस शब्द की खोज का श्रेय ग्रेसिया डी ओरेटा नामक विद्धान को जाता है क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम सन् 1665 में इस शब्द की उत्पत्ति का पता लगाया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी विद्धान अब्बे डुब्बाय ने किया(सुनील कुमार, 2010)।[1]

भारतीय समाज आरम्भ से ही जातिग्रस्त रहा है। जाति से अत्याधिक प्रभावित होने के कारण यहाँ के समाज को चारदीवारी में बन्द समाज की संज्ञा दी गई है। भारत में जाति की व्यापकता को समझते हुए मजूमदार ने कहा है कि जाति व्यवस्था भारत में अनुपम है। यह जातियों एवं सम्प्रदायों की पारम्परिक स्थली है। ऐसा माना जाता है कि यहां की हवा में भी जाति घुली हुई है और यहां तक कि मुसलमान और ईसाई भी इससे अछूते नहीं हैं (सुनील कुमार, 2010)।[2] इरफान हबीब ने भी भारत में जाति के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि हमारे इतिहास की ऐसी कोई भी व्याख्या विचार योग्य नहीं हो सकती जिसमें जाति की व्याख्या को शामिल न किया गया हो[3] (कन्हैयालाल चंचरीक, 2010) ।3 यही कारण है कि विश्व स्तर पर जाति से सम्बन्धित अध्ययनों में भारत की जाति व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसका कारण यह नहीं है कि जाति व्यवस्था केवल भारत में ही पाई जाती है बल्कि वास्तविकता तो यह है कि जाति व्यवस्था की व्यापकता का जो रूप भारत में देखने को मिलता है वह अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। डेविस के अनुसार, ''जाति व्यवस्था संसार के सभी स्थानों पर विद्यमान है और यह सभी धर्मों के लगभग सभी व्यक्तियों को प्रभावित भी करती है किन्तु भारत में इसकी गहनता अतुलनीय है" (कुन्दरा एण्ड बावा,1982)।[4] अंग्रेजों के जाति वर्गीकरण का अनुकरण करते हुए भारत सरकार ने भी समाज के अभिजात वर्ग को उच्च जातियों में तथा शेष को निम्न जातियों

में वर्गीकृत किया। निम्न जातियों में उन जातियों को शामिल किया गया जो प्राचीनकाल से ही सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से पिछड़ी हुई थी और जिन्हें समाज अछूत मानता था तथा वे निम्न से निम्नतम स्तर के कार्यों में संलग्न थी। भारत सरकार ने वस्तुत: ऐसी ही जातियों को अनुसूचित जातियों की श्रेणी में रखा (कास्ट पॉलिटिक्स इन इण्डिया,) ।12 वैसे भारतीय संविधान में कहीं भी अनुसूचित जाति शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। संविधान में तो इस शब्द की केवल अभिव्यक्ति की गई है। संविधान की अभिव्यंजनानुसार अनुसूचित जाति कोई एक विशेष जाति नहीं है अपितु सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़ी अनेक जातियों का यह एक ऐसा समूह है जिसका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक रूप से लम्बे समय तक उच्च वर्गों द्वारा शोषण किया गया है। इन जातियों की संख्या भी सुनिश्चित नहीं है। भारतीय संविधानानुसार देश का राष्ट्रपति व संसद किसी संघ शासित प्रदेश या प्रदेश के राज्यपाल की अनुशंसा पर उस राज्य की किसी जाति, कबीले, उप-जाति अथवा वर्ग को अनुसूचित जाति में शामिल भी कर सकता है और उसे निष्कासित भी कर सकता है (डैनियल,अहरोन, 2005)

भारत में जातिगत पहचान अब सामाजिक, राजनीतिक और कानूनी व्याख्या का विषय बन गयी है। यही कारण है कि अब यदि कोई भी वर्ग, जाति व समुदाय एक बार सकारात्मक भेदभाव वाली सूची (अनुसूचित जाति व जनजाति सूची) में नामित हो जाता है तो उसकी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ होने पर भी उसे इस सूची से निष्कासित कर पाना सम्भव नहीं है। यह भी सत्य है कि सरकार की इस नीति से अनुसूचित जाति के कुछ वर्गों को अवश्य लाभ हुआ है किन्तु अधिकांश व्यक्ति जो पूर्व में जाति पदानुक्रम में सबसे नीचे थे वे आज भी सामाजिक व्यवस्था में निम्नतम स्तर पर ही हैं(ऑप.सिट.राव)

इसी के दृष्टिगत इस शोध कार्य में अनुसूचित जातियों की ऐतिहासिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति जैसे-जाति वर्गीकरण में अनुसूचित जातियों का स्थान, उत्पत्ति, सामाजिक स्थिति, गृह स्थिति, पारिवारिक संरचना एवं प्रकृति तथा मूलभूत सुविधाओं आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

शोध क्षेत्र -

हरियाणा राज्य का रोहतक जिला प्रस्तुत अध्ययन का वास्तविक कार्य क्षेत्र है। राज्य की राजनीतिक गतिविधियों में यहां के लोगों की प्रभावशाली भूमिका के कारण इस जिले को हरियाणा की राजनीतिक राजधानी भी कहा जाता है। शैक्षणिक गतिविधियों एवं संस्थानों की प्रचूरता के कारण इसे शैक्षणिक नगरी भी कहते हैं। रोहतक जिला हरियाणा के दक्षिण-पश्चिम में 28Þ38'54" उत्तर से 29Þ0336" उत्तरी अंक्षाश तथा 76Þ09'12" पूर्व से 76ह52श30ष् पूर्वी रेखांश के मध्य स्थित है। इसके पूर्व में झज्जर तथा सोनीपत, पश्चिम में भिवानी तथा हिसार, उत्तर में जीन्द तथा सोनीपत और दक्षिण में झज्जर जिला स्थित है। भारत की राजधानी दिल्ली इसके दक्षिण-पश्चिम में मात्र 70 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। रोहतक जिले में अनेक जातियां रहती हैं। जिले की जाति संरचना में अनुसूचित जातियों की महत्त्वपूर्ण भागीदारी है। वर्ष 2011 की जनगणनानुसार जिले की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों की संख्या 20.4 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों में चमार, धानक तथा बाल्मीकि प्रमुख जातियां हैं। संयुक्तरूप से ये तीनों जातियां जिले की अनुसूचित जातियों की कुल संख्या का 94 प्रतिशत हैं। इनमें चमार जाति की जनसंख्या 43 प्रतिशत, धानक की लगभग 29 प्रतिशत तथा बाल्मीकि जाति की जनसंख्या लगभग 22 प्रतिशत है। जिले की 70 प्रतिशत अनुसूचित जातियां ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शेष 30 प्रतिशत शहरों में रहती हैं।

शोध पद्धति-

यह शोध कार्य हरियाणा राज्य के रोहतक जिले की अनुसूचित जातियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा वर्तमान परिस्थितियों की वास्तविकता की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया है। इस शोध कार्य में प्राथमिक तथा द्वितीयक आंकडों का प्रयोग किया गया है। ऐतिहासिक सूचनाओं के संकलन के लिए विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित लेख, पुस्तकों तथा इन्टरनेट पर उपलब्ध सामग्री का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकडों की प्राप्ति के लिए बहुस्तरीय उद्देश्यीय निदर्शन प्रणाली का प्रयोग करते हुए रोहतक जिले के सभी खण्डों रोहतक, कलानौर महम, लाखनमाजरा तथा सांपला से अनुसूचित जातियों की अधिकतम् संख्या के आधार पर एक-एक गांव का चयन करते हुए कुल पांच गांव का चयन किया गया है। रोहतक खण्ड से कटवाड़ा, कलानौर खण्ड से कटेसरा, महम खण्ड से सीसरखास, लाखनमाजरा से टिटोली तथा सांपला खण्ड से कसरैंटी गांव का चयन किया गया है। प्रत्येक गांव से उपलब्धत्ता के आधार पर उत्तरदाताओं से पूर्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से आवश्यक सूचनाएं संकलित की

गयी हैं। संकलित सूचनाओं को उद्देश्यों के आधार पर तालिकाबद्व किया गया है और आवश्यक सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग से यथेष्ट निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है।

अनुसूचित जातियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि -

भारतीय समाज में जाति का उद्भव आर्यो के आगमनकाल से माना जाता है। लगभग 4000 वर्ष पूर्व आर्यो ने आक्रमण करके भारत के अधिकांश भाग पर आधिपत्य कर लिया था। आर्य अपनी जाति और रंग के प्रति इतने अधिक सजग थे कि वे संसार में स्वयं को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे। अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध एवं सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने मूल भारतीयों के महान सांस्कृतिक सौंदर्य को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए अपनी इच्छानुसार भारतीय समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और पंचमास अथवा अछूत चार वर्णो में विभाजित किया (सुनील कुमार, 2010)। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण, वैश्य तथा क्षत्रिय की उत्त्पति आर्यो से हुई थी। अत: उन्हें उच्च वर्ण तथा शूद्र जो कि भारत के मूल निवासी थे को निम्न वर्ण माना गया (शास्त्री सोहनलाल, 1993)। मिथकीय कथन, पुराण कथा तथा हिन्दू परम्परा के अनुसार ये चार वर्ण ही चार जातियां हैं और ये चारों जातियां ब्रह्मा (भगवान) के शरीर के चार अंगों से उत्पन्न हुई हैं। ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जांघों से तथा शूद्र भगवान के पैरों से उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण को देवता मानते हुए पठन-पाठन, यज्ञ-याज्ञन, दान, धर्म व वैदों की रक्षा का, क्षत्रिय को बलशाली मानते हुए प्रजा और शासन की रक्षा का तथा वैश्य को कृषि, पशुपालन और व्यापार का कार्य सौंपा गया। शूद्र जो कि भगवान के निम्न भाग अर्थात् पैरों से उत्पन्न हुए थे इसलिए उन्हें निम्न स्तर के कार्य अर्थात् उपर्युक्त तीनों की सेवा का कार्य दिया गया (अलावी,सीमा,1998)। अनेक शताब्दियों तक हिन्दू भगवान का आदेश मानकर वर्ण प्रणाली का अनुकरण करते रहे। वर्ण प्रणाली का अनुकरण करते हुए उच्च वर्णो ने शूद्रों पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लागू किए। प्रतिबन्धानुसार उस समय शूद्र न तो सार्वजनिक स्थलों पर सम्पन्न समारोह में शामिल हो सकते थे और न ही सार्वजनिक तालाब व कुओं के पानी का प्रयोग कर सकते थे। इनका एक मात्र कर्त्तव्य अमानवीय व्यवहार को अपना भाग्य मानते हुए, उच्च वर्णो की सेवा करते हुए निम्नतम स्तर के समस्त कार्यो को सम्पन्न करते रहना था (डैनियल,अहरोन; 2005)।

आर्यो के पश्चात् हूण, शक, मंगोल, रोमन तथा मुसलमान समय-समय पर भारत पर आक्रमण करके अपने-अपने शासन स्थापित करते रहे। भारत में शासक एवं शासन तो लगातार परिवर्तित होते रहे किन्तु शूद्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। सोलहवीं शताब्दी के बाद अंग्रेजों ने भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित किया। अंग्रेजों नें भारत में प्रशासनिक कार्यकुशलता को बढानें के लिए कुछ सरकारी पद सर्जित किए और उन पदों पर केवल भारतीयों की ही नियुक्ति का प्रावधान किया। किन्तु अधिक कुषाग्र, शिक्षित एवं कुशल होने के कारण इन पदों की प्राप्ति मुख्यत: आर्य मूल के भारतीयों को ही हुई। शूद्र इस समय भी सम्मानजनक पद पाने में असफल रहे और वे केवल निकृष्ट कार्यो तक ही सीमित रहे (रीटररोन;2002)। अंग्रेजों के अनुसार उस समय भारत में दो प्रकार की जनसंख्या थी। एक तो सामान्य जनसंख्या थी जो प्रतिदिन के कार्यो में तल्लीन रहती थी। दूसरी एक जनसंख्या ऐसी भी थी जो सघन वनों, पर्वतों तथा दुर्गम क्षेत्रों में रहती थी और सदैव चोरी, डकैती तथा शिकार जैसे कार्यो में संलग्न रहती थी और उनकी संख्या को निश्चित कर पाना भी कठिन था। अंग्रेजों ने ऐसी जनसंख्या को जनजाति तथा सामान्य जनसंख्या को जाति कहा (एचटीटीपी:/लामिन.निक.इन)। इस प्रकार अंग्रेजों ने भारतीय समाज को जाति और जनजाति दो वर्गो में विभाजित किया। उन्होंने एक कदम और अग्रसर होते हुए जनजातियों के अतिरिक्त सभी जातियों को उच्च व निम्न दो प्रकार की जातियों में विभाजित किया। पूर्व के तथाकथित आर्यो को उच्च जातियों में तथा अछूत एवं शूद्रों को निम्न जातियों में शामिल किया। उस समय की ये निम्न जातियां ही आज की अनुसूचित जातियां हैं।

अंग्रेजों के जाति वर्गीकरण का अनुकरण करते हुए भारत सरकार ने भी समाज के अभिजात वर्ग को उच्च जातियों में तथा शेष को निम्न जातियों में वर्गीकृत किया। निम्न जातियों में उन जातियों को शामिल किया गया जो प्राचीनकाल से ही सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से पिछड़ी हुई थी और जिन्हें समाज अछूत मानता था तथा वे निम्न से निम्नतम स्तर के कार्यो में संलग्न थी। भारत सरकार ने वस्तुत: ऐसी ही जातियों को अनुसूचित जातियों की श्रेणी में रखा (कास्ट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, डैनियल,अहरोन ,2005)। वैसे भारतीय संविधान में कहीं भी अनुसूचित जाति शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। संविधान में तो इस शब्द की केवल अभिव्यक्ति की गई है। संविधान की अभिव्यंजनानुसार अनुसूचित जाति कोई एक विशेष जाति नहीं है अपितु सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़ी अनेक जातियों का यह एक ऐसा समूह है जिसका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक रूप से लम्बे समय तक उच्च वर्गो द्वारा शोषण किया गया है। इन जातियों की संख्या भी सुनिश्चित नहीं है। भारतीय संविधानानुसार देश का राष्ट्रपति

व संसद किसी संघ शासित प्रदेश या प्रदेश के राज्यपाल की अनुशंसा पर उस राज्य की किसी जाति, कबीले, उप-जाति अथवा वर्ग को अनुसूचित जाति में शामिल भी कर सकता है और उसे निष्कासित भी कर सकता है (डैनियल,अहरोन,2005)।

भारत में जातिगत पहचान अब सामाजिक, राजनीतिक और कानूनी व्याख्या का विषय बन गयी है। यही कारण है कि अब यदि कोई भी वर्ग, जाति व समुदाय एक बार सकारात्मक भेदभाव वाली सूची (अनुसूचित जाति व जनजाति सूची) में नामित हो जाता है तो उसकी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ होने पर भी उसे इस सूची से निष्कासित कर पाना सम्भव नहीं है। यह भी सत्य है कि सरकार की इस नीति से अनुसूचित जाति के कुछ वर्गों को अवश्य लाभ हुआ है किन्तु अधिकांश व्यक्ति जो पूर्व में जाति पदानुक्रम में सबसे नीचे थे वे आज भी सामाजिक व्यवस्था में निम्नतम् स्तर पर ही हैं (ऑप.सिट.राव,हयादानाए)।

जाति वर्गीकरण के पश्चात् इन्हें अछूत, अस्पृश्य, अवर्ण, नीच अथवा शूद्र आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया जाने लगा (गांधी,एम.के.,1990)। किन्तु तत्कालीन अंग्रेजी शासन इन सम्बोधनों को उचित नहीं मानता था और इनके लिए किसी उपयुक्त नामकरण की इच्छा रखता था। फलस्वरूप अंग्रेजी शासन काल के शिक्षा के इंस्पेक्टर जनरल ने वर्ष 1914-15 में अपने प्रतिवेदन में इन जातियों के लिए सर्वप्रथम डिप्रेस्ड क्लास नामक शब्द का प्रयोग किया (सोहनपाल सुमनाक्षर, 2009),। तत्पश्चात् वर्ष 1931 में भारतीय जनगणना प्रतिवेदन में इन जातियों को बाह्य वर्ग कहा गया। वर्ष 1936 में अंग्रेजी सरकार ने इन जातियों से सम्बन्धित एक अनुदश में इन जातियों को अनुसूचित जातियां कहा। इसी अनुदेश के आधार पर भारत के तत्कालीन जनगणना आयुक्त डॉ. हट्टन ने इन जातियों का व्यवस्थित वर्गीकरण करके इनकी एक सूची जारी की। इन जातियों के प्रति लोगों के अमानवीय व्यवहार को देखते हुए डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने इन जातियों को अछूत, प्रोस्टेंट हिन्दू या नॉनकन्फ्रमिट हिन्दू कहे जाने पर बल दिया। इन जातियों पर अछूत नामक सामाजिक कलंक को समाप्त करने के लिए महात्मा गांधी ने इन्हें हरिजन कहा। गांधी जी अन्य जातियों की भान्ति इनको भी भगवान द्वारा ही बनाए गए आदमी मानते थे और उनकी दृढ़ इच्छा थी कि अन्य जातियां इन अछूतों को स्वसमान मानते हुए इन्हें भी समाज के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार करें। विवेकानन्द के कथन का आष्य भी गांधी जी के समान ही था। उनके अनुसार,'' तुम्हें निम्न वर्गों को नहीं भूलना चाहिए क्योंकि वे जो अज्ञानी, दरिद्र और अनपढ़ हैं, मोची और मेहतर हैं, वे भी तुम्हारे ही रक्त और मांस हैं तुम्हारे ही बन्धु हैं''। 18 किन्तु इन जातियों को आरम्भ से ही हरिजन पदनाम पर आपत्ति रही है और ये हरिजन की अपेक्षा स्वयं को दलित कहलाना ज्यादा पसन्द करते हैं। इनके अनुसार दलित शब्द अनुसूचित जातियों की प्राचीन एवं वर्तमान स्थिति की वास्तविक अभिव्यक्ति करता है। यह शब्द जहां व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने इतिहास पर दृष्टिपात करने के लिए बाध्य करता है वहीं अवगति, वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के विषय में सोचने के लिए भी विवश करता है। दलित शब्द आक्रोश, चीख, वेदना, पीड़ा, चुभन, घुटन तथा छटपटाहट का प्रतीक होने के साथ-साथ यह प्रेरणा एवं विद्रोह का पर्यायवाची भी है। अत: अब ये जातियां जिन्हें समाज के निम्नतम पायदान पर रखा गया, दबा कर रखा गया, जिन्हें शूद्र ही नहीं अति शूद्र, पंचम, अछूत, अस्पृष्य तथा निर्योग्य माना गया, स्वयं को दलित जातियाँ कहलाना ज्यादा पसन्द करती हैं (दर्शन सिंह, 2009)।

अनुसूचित जातियों की वर्तमान परिस्थिति -

प्राचीन काल से ही चमार जूते बनाने का, चूहड़ा साफ-सफाई का तथा धानक एवं जुलाहा कपड़े (सूत) बुनने का कार्य करते थे। अन्य अधिकांश जातियां कृषि कार्यों में खेतीहर मजदूर का कार्य करती थी। परन्तु अब ये जातियां अपनी पारम्परिक भूमिका में नहीं रही हैं। सरकार द्वारा संचालित की जा रही विभिन्न योजनाओं के फलस्वरूप अब इन जातियों की स्थिति में काफी परिवर्तन हो रहा है। उपर्ययुक्त की वास्तविकता एवं सत्यता की जांच के लिए हरियाणा राज्य के रोहतक जिले के पांच गांव से कुल 160 उत्तरदाताओं से साक्षात्कार द्वारा आवास तथा आवास में उपलब्ध सभी आवश्यक सुविधाओं से सम्बन्धित सूचनाएं संकलित की गई हैं। आवास तथा आवास में उपलब्ध सुविधाएं न केवल व्यक्ति अथवा जाति के सामाजिक-आर्थिक स्तर को दर्शाती हैं बल्कि ये उनके आचार-विचार, रहन-सहन तथा दृष्टिकोण को भी प्रकट करती हैं। अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप संकलित सूचनाओं के विश्लेषण से प्राप्त उत्कृष्ट परिणामों की विवेचना निम्नवत है।

आवास की स्थिति -

हरियाणा देश का एक विकसित एवं अग्रणी राज्य है। यहाँ की सरकारें अपने निवासियों के जीवन स्तर को उच्च बनाने के लिए अनेक सुविधाएं एवं योजनाएं समय समय पर संचालित करती हैं। इन्हीं योजनाओं के अन्तर्गत विभिन्न सरकारी तथा गैरसरकारी बैंक भवन निर्माण के लिए आर्थिक सहायता देते हैं। अनुसूचित जाति के लोगों के लिए तो केन्द्र व राज्य सरकारें समय-समय पर भवन

निर्माण के लिए निशुल्क भूमि भी उपलब्ध कराती हैं। इसी को ध्यान में रखकर शोध क्षेत्र के उत्तरदाताओं से उनकी आवासीय स्थिति जैसे कि घर पर स्वामित्व, निर्माणकारी व्यक्ति, कक्ष संख्या, घर की प्रकृति एवं प्रकार आदि पर सूचनाएं संकलित की गयी हैं।

तालिका 1.0 के विश्लेषणानुसार अध्ययन क्षेत्र के लगभग 92 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास अपने घर थे। क्षेत्र में किराए के घर में कोई भी उत्तरदाता नहीं रहता था। लगभग 8 प्रतिशत किसी और के घर में रहते थे। ऐसे अधिकांश घर परिवार वालों के ही थे। विभिन्न कारणों से अन्यत्र स्थानान्त्रण के कारण ये मकान खाली थे और अब इनमें ये उत्तरदाता रहते थे। कसरैंटी तथा कटेसरा गांव में ऐसे उत्तरदाताओं की संख्या अन्य की तुलना में थोडी ज्यादा थी। क्षेत्र के मात्र 23.81 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने घर का निर्माण स्वयं तथा 76.19 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर का निर्माण उनके माता-पिता द्वारा किया गया था। घर का स्वयं निर्माण करने वाले उत्तरदाता सबसे ज्यादा 36 प्रतिशत गांव कटेसरा तथा सबसे कम 14 प्रतिशत गांव कसरैंटी में थे। घर की प्रकृति पर संकलित सूचनाओं के विश्लेषणार्थ क्षेत्र के लगभग 81 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर पक्के, 2 प्रतिशत के घर कच्चे तथा लगभग 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर अर्धपक्के थे। कटेसरा गांव के अतिरिक्त अन्य किसी भी गांव के उत्तरदाता कच्चे घरों नहीं रहते थे। अर्धपक्के घरों में अधिकांशत: घर के फर्श अथवा छतें कच्ची थी। पूर्णत: कच्चे अथवा अर्धपक्के घरों का प्रयोग बैठक के रूप में या पशुओं के लिए किया जा रहा था।

घर में कक्ष संख्या से घर के स्वामी की आर्थिक स्थिति का आभास प्रथम दृष्टि में ही हो जाता है। समाज में एकल कक्ष के घर वाले व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को कमजोर, दो से तीन कक्ष के घर वाले व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को सामान्य तथा तीन से अधिक कक्ष वाले व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ माना जाता है। संकलित समंको के विश्लेषणनुसार सर्वाधिक 61 प्रतिशत ग्रामीण उत्तरदाताओं के घर दो कक्ष वाले तथा 24 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर तीन कक्ष वाले थे। ग्रामीण क्षेत्र में एक व तीन से अधिक कक्ष वाले घरों वाले उत्तरदाता काफी कम थे। एक कक्ष के घरों वाले सर्वाधिक उत्तरदाता गांव कसरैंटी में तथा सबसे कम उत्तरदाता गांव टिटोली व कटेसरा में थे। गांव टिटोली व कटेसरा में बडे घर वाले उत्तरदाताओं की एक सार्थक संख्या थी। दो व तीन कक्ष वाले अधिकांश उत्तरदाताओं के घर दो मंजिले थे।

तालिका - 1.0 अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाताओं की आवासीय स्थिति का विवरण

आवासीय स्थिति	चयनित गांव के उत्तरदाता					कुल उत्तरदाता
	कटवाडा	सीसर खास	कसरैंटी	टिटोली	कटेसरा	
घर पर स्वामित्व						
अपना घर	33 (94.29)	29(100)	29(87.88)	23(95.83)	33(84.62)	147(91.88)
किराए का घर	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)
किसी और का घर	02(5.71)	00(00)	04(12.12)	01(4.17)	06(15.38)	13(8.12)
योग	35(100)	29(100)	33(100)	24(100)	39(100)	160(100)
घर का निर्माणकर्ता						
स्वयं	7(21.21)	8 (27.59)	4(13.79)	4(17.39)	12(36.36)	35(23.81)
माता पिता	26(78.79)	21(72.41)	25(86.21)	19(82.61)	21(63.64)	112(76.19)
योग	33 (100)	29(100)	29(100)	23(100)	33(100)	147(100)
घर की प्रकृति						
पक्का	31(88.57)	21(72.41)	25(75.76)	24(100)	29(74.36)	130(81.25)
अर्द्ध पक्का	4(11.43)	8(27.59)	8(24.24)	00(00)	6(15.38)	26(16.25)
कच्चा	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	4(10.26)	4(2.50)
योग	35(100)	29(100)	33(100)	24(100)	39(100)	160(100)
घर में कक्ष संख्या						
एक	1(2.86)	5(17.24)	7(21.21)	0(00)	0(00)	13(8.13)
दो	26(74.29)	18(62.07)	16(48.49)	18(75.0)	20(51.28)	98(61.24)
तीन	6(17.14)	6(20.69)	9(27.27)	3(12.5)	15(38.46)	39(24.38)
चार व अधिक	2(5.71)	00(00)	1(3.03)	3(12.5)	4(10.26)	10(6.25)
योग	35(100)	29(100)	33(100)	24(100)	39(100)	160(100)

स्रोत- समंक संग्रह एवं गणना शोधकर्ता द्वारा कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है

आवासीय सुविधाएं - आवासीय सुविधाएं परिवार की आर्थिक स्थिति और उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाने का एक प्रमुख साधन होता है। आवासीय सुविधाएं लोगों की सामाजिक स्थिति को भी

तालिका - 2.0 अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाताओं की आवासीय सुविधाओं का विवरण

घर में सुविधाओं की स्थिति	चयनित गांव के उतरदाता					कुल उतरदाता
	कटवाडा	सीसर खास	कसरैंटी	टिटोली	कटेसरा	
घर में वायु प्रवाह						
ळां	23(65.971)	16 (55.17)	19 (57.58)	15(62.50)	26 (66.67)	99 (61.88)
नहीं	12(34.29)	13(44.83)	14 (42.42)	9(37.50)	13 (33.33)	61 (38.12)
योग	**35(100)**	**29(100)**	**33(100)**	**24(100)**	**39(100)**	**160(100)**
घर में स्नानगृह						
अन्दर	11(32.25)	7(23.61)	11(34.03)	7(31.94)	9 (21.53)	45(28.12)
बाहर	21(60.0)	15(45.14)	16(49.30)	13(52.78)	29(74.30)	94(58.75)
नहीं	03(13.89)	7(31.25)	6(16.67)	4(15.28)	01(4.17)	21(13.13)
योग	**35(100)**	**29(100)**	**33(100)**	**24(100)**	**39(100)**	**160(100)**
घर में पाकगृह						
ळां	22(62.86)	16(55.17)	22(66.67)	16(66.67)	25(64.10)	101(63.13)
नहीं	13(37.14)	13(44.83)	11(33.33)	8(33.33)	14(35.90)	59(36.87)
योग	**35(100)**	**29(100)**	**33(100)**	**24(100)**	**39(100)**	**160(100)**
पीने के पानी का प्राप्ति स्त्रोत						
सरकारी नल	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00
निजी नल	24(68.57)	15(51.72)	24(72.73)	17(70.83)	37(94.87)	117(73.12)
हाथ का नलका	9(25.71)	8(27.59)	7(21.21)	6(25.0)	02(5.13)	32(20.00)
कुआं व ट्यूववैल	2(5.71)	6(20.69)	2(6.06)	1(4.17)	00(0.00)	11(6.88)
योग	**35(100)**	**29(100)**	**33(100)**	**24(100)**	**39(100)**	**160(100)**
घर में विद्युतीकरण						
ळां	35(100)	29(00)	33(36.81)	24(100)	39(36.81)	**160(100)**
न्हीं	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	**00(00)**
योग	**35(100)**	**29(100)**	**33(100)**	**24(100)**	**39(100)**	**160(100)**
खाना बनाने के लिए प्रयुक्त साधन						
पैट्रोलियम गैस	20(57.14)	17(58.62)	19(57.58)	13(54.17)	29(74.36)	98(61.25)
बायो गैस	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)
मिट्टी का तेल	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)	00(00)
परम्परागत ईंधन	15(42.86)	12(41.38)	14(42.42)	11(45.83)	10(25.64)	62(38.75)
योग	**35(100)**	**29(100)**	**33(100)**	**24(100)**	**39(100)**	**160(100)**

स्रोत- समंक संग्रह एवं गणना शोधकर्ता द्वारा कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

प्रतिबिंबित करती हैं। अध्ययनों द्वारा अनेक विद्वान यह सिद्ध करने में सफल भी रहे हैं कि आश्रय स्थल और परिवार की खुशहाली के मध्य गहन सम्बन्ध पाया जाता है। अपर्याप्त, अनुचित तथा सुविधारहित आश्रय परिवार के स्वास्थ्य और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। शोध क्षेत्र की अनुसूचित जातियों के घरों में उपलब्ध सुविधाओं पर एकत्रित समंकों का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है।

घर में वायु प्रवाह एवं सूर्य प्रकाश का प्रत्यक्ष प्रवेश उतना ही आवश्यक है जितना मानव शरीर के लिए भोजन। इनकी अनुपस्थिति में घर में विभिन्न संक्रामक जीवाणु उत्पन्न होकर अनेक रोगों को आमंत्रित करते हैं। तालिका विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र में निवसित अनुसूचित जाति के लगभग 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर में सीधे वायु प्रवाह तथा सूर्य किरणों का प्रवेश होता था और लगभग 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर में सीधे वायु प्रवाह तथा सूर्य किरणों का प्रवेश की उचित व्यवस्था नहीं थी। वायु प्रवाह तथा सूर्य किरणों के प्रवेश से वंचित अधिकांश घर काफी पुराने थे। ऐसे घर सबसे अधिक सीसर खास में तथा सबसे कम कटेसरा गांव में थे। शोध क्षेत्र के 58.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घरों के अन्दर, 28.12 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर के बाहर स्नानघर थे। क्षेत्र के 13 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घरों में स्नानघर की व्यवस्था नहीं थी। घर के अन्दर सबसे अधिक स्नानघर गांव कसरेंटी में तथा सबसे अधिक बाहर स्नानघर गांव कटेसरा में थे। घर से बाहर स्नानघर बनाने के पीछे उत्तरदाताओं की मान्यता थी कि स्नानघर व संडास के घर से बाहर होने पर घर में सफाई अधिक रहती है तथा रोगाक्रांत की संभावना कम रहती है। स्नानघर न होने की स्थिति में उत्तरदाताओं ने स्नान के लिए अस्थायी व्यवस्था की हुई थी। घर की स्त्रियां कमरे में या फिर चारपाई आदि लगाकर तथा पुरुष घर के बाहर खुले में ही स्नान करते थे।

उत्तरदाताओं के घरों में पाकगृह की स्थिति भी लगभग स्नानघर जैसी ही थी। अध्ययन क्षेत्र के लगभग 63 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घरों में अलग से रसोई की व्यवस्था थी तथा शेष उत्तरदाताओं ने या तो किसी कक्ष में या फिर घर के आंगन में ही भोजन पकाने की व्यवस्था की हुई थी। जिन उत्तरदाताओं के पास गैस चूल्हा नहीं था उन्होंने लकड़ी के चूल्हे को आंगन अथवा गली में स्थापित किया हुआ था और उसी पर भोजन तैयार करते थे। क्षेत्र के अधिकाश उत्तरदाताओं के पास गैस चूल्हे अवश्य थे किन्तु खाना पकाने के लिए इनका उपयोग केवल 61 प्रतिशत उत्तरदाता ही कर रहे थे। सभी चयनित गांव में एक सार्थक संख्या में उत्तरदाता परम्परागत ईंधन का प्रयोग कर रहे थे। क्षेत्र में एक भी उत्तरदाता बायोगैस तथा मिट्टी के तेल का प्रयोगकर्त्ता नहीं था। क्षेत्र के लगभग 73 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पीने के पानी के लिए व्यक्तिगत स्तर पर व्यवस्था की हुई थी। इसके लिए ये प्रतिमास 100 से 200 रु. तक भुगतान करते थे तथा शेष उत्तरदाता हाथ के नलके, कुएं अथवा ट्यूबवैल के पानी का पीने के लिए प्रयोग करते थे। क्षेत्र के अधिकांश गांवं में सरकारी जल व्यवस्था अवश्य थी। किन्तु इसके जल की गुणवत्ता निम्न होने तथा जल की उपलब्धता में अनिश्चितता के कारण वे इसका प्रयोग पीने के लिए नहीं कर रहे थे। अध्ययन क्षेत्र के शत प्रतिशत घरों में विद्युत की सुविधा थी।

निष्कर्ष -

भारतीय सरकार के अनुसार निम्न जातियां वे जातियां हैं जो ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं और जिन्हें समाज अछूत मानता रहा है तथा वे आरम्भ से ही निम्न से निम्नतम् स्तर के कार्यों में संलग्न रही हैं। भारत में इन जातियों को अनुसूचित जाति कहा जाता है। वर्तमान के साथ साथ इन जातियों का इतिहास अत्यन्त घुटन भरा रहा है। अनेक शताब्दियों तक उच्च वर्गों द्वारा इन पर तरह तरह के प्रतिबंध लगाए गए। प्रतिबन्धानुसार उस समय ये जातियां न तो सार्वजनिक स्थलों पर सम्पन्न समारोह में शामिल हो सकती थी और न ही सार्वजनिक तालाब व कुओं के पानी का प्रयोग कर सकती थी। इनका एक मात्र कर्त्तव्य अमानवीय व्यवहार को अपना भाग्य मानते हुए, उच्च वर्णों की सेवा करते हुए निम्नतम स्तर के समस्त कार्यों को सम्पन्न करते रहना था। परन्तु अब ये जातियां अपनी पारम्परिक भूमिका में नहीं रही हैं। सरकार द्वारा दी जा रही अनेक सुविधाओं, वित्तिय सहायता तथा विशेषाधिकार के फलस्वरूप अब इन जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन हो चुका है। अब इन जातियों के व्यक्ति सन्त्री से मन्त्री तक के सभी पदों पर विराजमान होने के साथ-साथ वाणिज्य, व्यापार तथा औद्योगिक कार्यों में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हरियाणा सरकार समाज कल्याण विभाग की सहायता से आवास योग्य भूमि, विद्यार्थियों के लिए नि:शुल्क शिक्षा के साथ-साथ सभी प्रकार की शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति तथा स्वरोजगार हेतु सस्ते एवं सुलभ ऋण की व्यवस्था करके इन जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए सतत् प्रयास कर रही है। सरकार द्वारा किए जा रहे विभिन्न प्रयासों से नि:संदेह इन जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार अवश्य हुए हैं किंतु इनका काफी बड़ा भाग

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में माता पिता द्वारा बनाए गए एक या दो कक्ष वाले ऐसे घरों में रहने को विवश है जहां न तो प्रत्यक्षत: वायु एवं प्रकाश की सुविधा है और न ही समुचित पीने योग्य पानी, संडास, स्नानघर व रसोई की व्यवस्था है। इन जातियों के अधिकांश व्यक्ति आज भी मूलभूत सुविधाओं से वंचित, बेरोजगार, साहूकारों के कर्ज में लिप्त दयनीय एवं तंगहालीपूर्ण जीवनयापन के लिए विवश है। अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि विकसित राज्य हरियाणा का रोहतक एक अग्रणी जिला होने के उपरान्त भी यहां की ग्रामीण अनुसूचित जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति कोई विशेष अच्छी नहीं कही जा सकती है। ग्रामीण अनुसूचित जातियों के सम्पूर्ण विकास के लिए अभी और अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

शोध ग्रन्थ

- वेबर, मैक्स, ए.एम.एन्डरसन एण्ड तालकोट पर्सन(1947) द थ्योरी ऑफ ईकनॉमिक एण्ड सोशल ऑर्गेनाइजेशन, द फ्री प्रेस,न्यूयोर्क
- कुन्दरा एण्ड बावा(1982)सवान हिस्टरी ऑफ इण्डिया अपटू 1526, नीलम पब्लिषर्स,जलन्धर,पृ. 86
- गांधी,एम.के.(1990)ए कोटेबल कोटस, पब्लिस्ड बॉय मिनिस्ट्री ऑफ इनफॉरमेशन एण्ड ब्रॉडकॉस्टिंग,गवर्नमैंट ऑफ इण्डिया,न्यू देहली, पृ.6
- शास्त्री सोहनलाल (1993), हिन्दू धर्माचार्य के द्वारा प्रस्तावित हिन्दू राष्ट्र के संविधान के कुछ लक्षण, बुनियादी संघर्ष, जून,
- अलावी,सीमा(1998),सेपोयस एण्ड द कम्पनी टरेडिसन एण्ड टरांजिसन इन नार्थ इण्डिया 1770-1830, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, इण्डिया प्रेस,
- रीटररोन(2002) ए ऑक्सफोर्ड स्टाईल मैन्नूवल, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,पृ.1
- डैनियल,अहरोन(2005)कास्ट सिस्टम इन मॉर्डन इण्डिया, अडानियल.टीआरआइपीओडी.कॉम/ मॉर्डन इण्डिया. एचटीएम
- सोहनपाल सुमनाक्षर (2009), विश्व धरातल पर दलित साहित्य, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 2,
- सुनील कुमार(2010), जाति व्यवस्था-निरन्तरता एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 5
- कन्हैयालाल चंचरीक (2010), आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ.3
- एचटीटीपी://लामिन.निक.इन/आईडी/सूबोरड/रुल 39. एचटीएम
- कास्ट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, एचटीटीपी://इन.वीकिपीडिया.ओरग/वीकि/इण्डिया कास्ट सिस्टमरु नोट. कास्ट आदित्या निगम-61
- ऑप.सिट.राव,हयादानाए मैसूर गजेटीयर, वाल्यूम-IV

'ऐ लड़की' उपन्यास में स्त्री विमर्श

नदीम अहमद

शोधार्थी हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ, उत्तर प्रदेश 202002

शोध-सार

किसी भी समाज के उत्थान और पतन में पुरुषों के समान स्त्रियों की भी भूमिका होती है। भारत में यह श्लोक प्रसिद्ध है 'यत नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है, वहीं पर ईश्वर का वास होता है, किन्तु सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्थिति ठीक उलटा दिखाई पड़ती है। यद्यपि स्त्री-विमर्श का आरम्भ पश्चिम एवं पूरब देशों से हुआ है। लेकिन भारतीय साहित्य में सदैव स्त्री को केन्द्र में रखकर विचार-विमर्श किया जाता रहा है। हिन्दी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्शों के अन्तर्गत स्त्री-विमर्श मुख्य धारा का विमर्श रहा है। इसमें लिंग को मुख्य आधार बनाया गया है। अंग्रेजी भाषा में इसे फेमिनिज्म कहा जाता है। स्त्री विमर्श ने ही समाज के हाशिए पर पड़ी नारी के लिए केन्द्र में जगह बनाने की मांग की है। हिन्दी साहित्य में स्त्रियों की स्थिति पर केन्द्रित उपन्यास तो शुरुआत से ही महिला एवं पुरुष उपन्यासकारों द्वारा लिखे जा रहे थे, किन्तु शती के पिछले दशकों में यह लेखन तीव्र गति से हुआ है। इनमें कृष्णा सोबती का नाम अग्रणी है। कृष्णा सोबती ने 'ऐ लड़की' के माध्यम से स्त्री के यथार्थ जीवन को उजागर किया है।

बीज शब्द- स्त्री विमर्श, नारी की आत्मवेदना, स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व

प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी महिला उपन्यासकारों में जिन नामों का अपना अलग साहित्यिक रुतबा है, उनमें कृष्णा सोबती का नाम शीर्षस्थ मानना होगा। स्वतंत्र चेती, स्वच्छंदी और गजब की निडर नारी होने के बावजूद भी कृष्णा के यहाँ जो सादगी और सरलता मिलती है, वह निश्चय ही अविश्वसनीय प्रतीत होती है। यह एक ऐसी लेखिका हैं, जिनके लेखन में सुभद्रा कुमारी चौहान की राष्ट्रीय भावना, महादेवी वर्मा की आत्मवेदना और मन्नू भंडारी की नारी भावना का त्रिवेणी संगम देखने को मिलता है। सोबती जी के उपन्यासों का मूलाधार है नारी-जीवन का चित्रण। उनके अधिकतर उपन्यास नारी को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं। भारतीय नारी-जीवन के विविध रूपों को, विविध अंगों को और तत्संबंधी विविध समस्याओं को उजागर करना उनकी औपन्यासिक कृतियों का केन्द्र बिन्दु रहा है। कृष्णा सोबती जी के 'ऐ लड़की' उपन्यास का मुख्य विषय स्त्री जीवन का चित्रण है। उनकी नारी खुद के दायित्व के साथ-साथ सामाजिक दायित्व का ख्याल रखने वाली हैं।

इस उपन्यास की मुख्य पात्र अम्मू है। उसकी पुत्री चित्रा और नर्स सूसन उसके साथ रहती है। अम्मू की बेटी चित्रा अविवाहित काम-काजी स्त्री है। वह जीवन भर अकेले रहने का निश्चय करती है। वृद्धा अम्मू अपने अनुभवों के उम्र की आँच पर तप कर वह जीवन-मृत्यु, घर-परिवार और स्त्री पुरूष सभी निष्कर्ष पर पहुँचती है। पुत्री, पत्नी और माँ के रूप में अम्मू ने जीवन भर जो भी कड़वा या मीठा पाया है, उसकी तुलना में उसे अपनी बेटी का जीवन सूना-सूना और असुरक्षित लगता है। वह बेटी से कहती है-"हाँ सोचकर बताओ की जरूरत पड़ने पर किसे आवाज दोगी"[1] वह अपनी बेटी के अकेलेपा को समाप्त करने और जीवन साथी चुन लेने के लिए बार-बार कहती है। अम्मू ने अपने जीवन में मर्यादा का पालन किया है, इसीलिए वह अपनी पुत्री को महत्वपूर्ण सम्मान का जीवन जीने की शिक्षा देती है। वह स्त्री के जीवन में पुरुष की महत्वता को बताते हुए कहती है कि-"नारी के ऊपर सदैव पुरुष की शक्ति बनी रहती है। नारी कितनी भी ऊपर उठ जाए, स्वतन्त्र हो जाए पर पुरुष का प्रभाव उसे अधिक हो जाता है। पुरुष की महत्ता को घटाना नही चाहती मर्द का दबदबा रहना नही चाहिए। उसका स्थान नीचे नहीं ऊपर है।"[2]

पितृसत्तात्मक समाज में लड़की होना एक अभिशाप है। जहाँ लड़की के पैदा होते ही पूरे परिवार में उदासी छा जाती है। यही वजह है कि लड़की के मन में पुरूष प्रधान समाज के दोहरी नीतियों के प्रति गहरा आक्रोश है। अम्मू इससे बेखबर नहीं है बल्कि इससे उसका साबका बचपन में ही हो गया है। यह कितना दयनीय है कि उसने अपने उपर उन पुराने मूल्यों को लादा जिन्होंने उसे अपने बारे में, स्वतंत्र अस्तित्व के बारे में सोचने से रोका। अम्मू कहती है-"जरा सोचो मैं अपने भाई की तरह पढ़ती तो क्या बनती! क्या होती मैं और क्या होते मेरे बच्चे। सच तो यह है कि लड़कियों को तैयार ही जानमारी के लिए किया जाता है- भाई पढ़ रहा है, जाओ दूध दे आओ। भाई सो रहा है जाओ कंबल ओढा दो। जल्दी से भाई का थाली परस दो। उसे भूख लगी है। भाई खा चूका है। लो, अब तुम भी खा लो।"[3] इस संदर्भ के माध्यम से सोबती जी कहना चाहती है कि पितृसत्ता के विरुद्ध संघर्ष पुरानी रूढ़ियों और जकड़नों को तोड़े बिना, घर की चहदीवारी की कैद को ध्वस्त किए बगैर संभव नहीं है।

भारतीय समाज में विवाह को जन्म-जन्म का आध्यात्मिक बंधन माना जाता है। स्त्री को अपने अस्तित्व को पति के अस्तित्व से अलग देखने-समझने की परम्परा पहले नही थी। स्त्री, पिता, पति और पुत्र के अस्तित्व से ही पहचानी जाती थी। परन्तु आज पितृसत्ताक समाज में स्त्रियां अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगी हैं। अब वह विवाह के पश्चात भी समाज में अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाने का प्रयास कर रही है। इसी संदर्भ में अम्मू सूसन से कहती है -"मेरी बात सुनो। न पूरा खर्च तुम किया करो और न उसे ही करने दिया करो। आधा-आधा, समझी। नहीं तो यूं ही हजम कर ली जाओगी। सूसन शादी के बाद किसी के हाथों का झुनझुना नहीं बनना। अपनी ताकत बनने की कोशिश करना"[4] इस संदर्भ के माध्यम से कृष्णा सोबती ने एक सहज स्त्री की चिन्ता को दिखाया है, कि जो जीवन उसने जिया है, वही जीवन भविष्य की पीढ़ियों को न जीना पड़े, वह ऐसे समाज का हिस्सा हों जहाँ उनकी भी इच्छाओं, विचारों को समझा जा सके और वह अपने फैसले खुद ले सकें और स्त्रियों को भी पुरुषों के समान समाज में बराबर का अधिकार प्राप्त हो।

कृष्णा सोबती जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी में परिवर्तन लाया। उन्होंने अपने स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री को अपना अस्तित्व दिखाया। यह अबला न होकर एक सबला है। अपनी जिंदगी वह खुद संवार सकती है। जब तक वह अपने आप को नहीं पहचानेंगी तब तक उनकी उन्नति नहीं हो पायेगी। परंपरागत रूढ़ियों के बहिष्कार के साथ नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को उन्होंने श्ऐ लड़कीश के माध्यम से स्थापित किया है। "सोचने की बात है- मर्द काम करता है, तो उसे इवज में अर्थ-धन प्राप्त होता है। औरत दिन-रात जो खटती है वह बेगार के खाते में ही न! भूली रहती है अपने को मोह-ममता में अंजान बेध्यान।"[5] इस संदर्भ के माध्यम से सोबती जी ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आर्थिक परावलंबन के कारण ही नारी अपने अधिकारों से वंचित रही और पुरुष द्वारा शोषित होती रही। आर्थिक स्वतंत्रता ने उसे समानता और सजगता की नई दृष्टि दी। जो हमें चित्रा में दिखाई देती है। नारी के लिए भी नौकरी उतनी ही आवश्यक है जितनी पुरुष के लिए।

अपनी सम्पूर्ण स्वतंत्रता के विषय में आज की स्त्री की सोच क्या है तथा प्राचीन कालीन स्त्री की सोच क्या थी? इन दोनों की सोच में, आत्म-ज्ञान में क्या अन्तर है? पितृसत्तात्मक समाज के वर्चस्व ने स्त्री के ऊपर अपनी पकड़ पहले से ही इतनी मजबूत बनायी हुई है कि वह उससे पीछा छुड़ाने की हिम्मत तो कर रही है, किन्तु छुड़ा नहीं पा रही है, क्योंकि उस पर इतना दबाव बना हुआ है कि वह उन जकड़ी हुई जंजीरों में पड़ी-पड़ी छटपटा रही है, उससे निकल पाना पुरुष सत्तात्मक समाज में मुश्किल है क्योंकि इसके द्वारा स्त्री पर और भी दबाव के लिए शिकंजा लगातार कसा ही जाता रहा है। पुरुष के अहं और स्त्री की विवशता पर व्यंग्य करते हुए सोबती ने 'ऐ लड़की' में बूंढ़ी अम्मू से कहलवाती हैं- "घर का खेल बराबरी का नहीं, ऊपर-नीचे का है। घर का स्वामी कमाई से परिवार के लिए सुविधाएं जुटाता है। साथ ही अपनी ताकत कमाता बनाता है। इसी कमाई के आगे गिरवी पड़ी रहती है-माँ।"[6] इस संदर्भ के माध्यम से कृष्णा सोबती जी ने पुरुषवादी समाज और इस समाज के रीति-रिवाज को दिखाया है। यदि स्त्री निःसंतान हो तो उसके दामन पर श्बाँझश का दाग लगा दिया जाता है और यदि संतान पैदा करती है तो उसी के द्वारा एक दिन गिरवी बना ली जाती है। यही है स्त्री की क्रूर नियति, क्योंकि गृहस्थी में पांव रखकर स्त्री का जो मंथन मर्दन होता है वह भूचाल के झटकों से कम नहीं होता। औरत सहन कर लेती है, क्योंकि उसे सहन करना पड़ता है। कृष्णा सोबती ने खुली चेतना के स्तर पर स्त्री की स्थिति की जिस प्रकार व्याख्या की है उससे स्त्री जीवन का कटु सत्य उभर कर सामने आता है- "शादी के बाद औरत पूरे परिवार के लिए शिकारे की मांझी बन जाती है। झील में तिरती नाव और शिकारे तो देखें है न तुमने। उन पर सवार परिवार मजे-मजे झूमते है और चप्पू चलाती है औरत। उम्र भर चलाती जाती है।"[7] इस संदर्भ के द्वारा सोबती जी ने यह दिखाया है कि स्त्री जीवन के प्रारम्भिक कुछ वर्षो को छोड़ दिया जाय तो आज तक वह केवल खोते आ रही है और इसका कारण यही है कि इस देश में सबसे अधिक वही लोग हैं जो आज भी मध्यकाल की मानसिकता, रीति-रिवाजों, रुढ़ियों, विचार-प्रणालियों और जीवन पद्धतियों से जुड़े है। समूचा इतिहास आम आदमी और स्त्री की मूक पीड़ा, उसके शोषण और दमन का इतिहास है। मजदूर की देह पूँजीपति की

मिल्कियत है और स्त्री की देह, मन, मस्तिष्क और आत्मा पुरुष के रूप में पति,पिता और पुत्र की मिल्कियत है। इसी सन्दर्भ में समरेन्द्र सिंह ने हंस पत्रिका में लिखा है- "मर्दों की दुनिया में स्त्री का होना स्त्री देह के पर्याय से छूटा नहीं है। स्त्री ने देह की स्वतंत्रता के साथ ही देह से स्वतंत्रता भी चाही है, स्वीकार के साथ इन्कार की स्वतंत्रता भी चाही है। देह पर अधिकार और नियन्त्रण के लिए विवेकी मस्तिष्क पर नियन्त्रण और अधिकार की स्वतंत्रता भी चाही है, क्योंकि देह का मालिक वही हो सकता है जिसका अपने मस्तिष्क पर नियन्त्रण हो।"[8] किन्तु सत्य इससे बहुत दूर है। भारतीय स्त्रियों पुरुषों जैसा कोई भी कार्य नहीं कर सकतीं, क्योंकि पुरुषवादी संरचना में स्त्रियों के कर्तव्यों के लिए जो स्वार्थी कानून बनाये गये हैं वो इन कार्यों को करने की अनुमति नहीं देते हैं।

पुरूष प्रधान समाज के पास स्त्री को वश में करने के या अपने अधीन रखने के दो तरीके हैं। एक तो उसकी भावनाओं का दमन करो या फिर उसको इतना ऊँचा उठा दो कि उसे माता, देवी जैसी असाधारण मानव की संज्ञा दे दी जाय। सीमोन द बोउवार ने इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- "पुरुष ने सभ्यता के आदि काल से ही अपनी शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता स्थापित की। उसने जो धर्म बनाये, जिन मूल्यों को गढ़ा, जिन आचरणों को मान्यता दी वे सब उसकी अपनी सुविधा के लिए थे। उसके इस एकछत्र राज्य को औरत ने पहले कभी चुनौती नहीं दी। कहीं-कहीं कुछ महिलाओं ने व्यक्तिगत रूप में आवाज उठायी, कुछ आन्दोलन भी हुए, किन्तु पुरुष ने औरत का सब कुछ अपने हाथों में ही रखा। उसने स्त्री के स्वार्थ में उसकी नियति नहीं गढ़ी, बल्कि वह अपनी परियोजनाओं और जरूरतों से नियोजित हुआ।"[9] इस संदर्भ के माध्यम से हम देख सकते हैं कि पुरुषों ने ऐसा प्रयत्न किया कि स्त्री हमेशा उसकी आश्रित रहे और इसमें वो सफल भी हुए। वृद्धा अम्मू अपने जीवन के उन खट्टे मीठे अनुभवों को अपनी बेटी से बाँटते हुए इस पुरूष समाज या पुरूष के प्रभुत्व सम्पन्न अस्तित्व के विषय में अपने कड़वे मगर सत्य विचार व्यक्त करती है। वह स्त्री, जो इस पुरूष समाज की बर्बरता को झेल चुकी है, उसके मन में एक दिन ऐसा विचार जरूर आता है जब वह वृद्धा अम्मू की तरह सोचती है- "अगर पुनरागमन की बात में कुछ तत्व है तो अगले जन्म में पुरूष बनकर देखना चाहती हूँ। पता तो लगे कि चलवंत सैनिक कैसे स्त्री और परिवार पर छाया रहता है।"[10] स्त्री जीवन से लगा हुआ कोई भी पहलू हो, पक्ष हो पुरूष की मौजूदगी और वर्चस्व हमेशा उनपर बना रहता है। पुरूष को वह श्रेष्ठ भी मानती है किन्तु उसकी आत्मा कही न कही चित्कार कर रही होती है कि एक देश ऐसा क्यों नही जो सिर्फ स्त्रियों का हो, जहाँ पुरूष की सत्ता का नामोनिशान न हो। वर्तमान समय में 'ऐ लड़की' की अम्मू, चित्रा और सूसन की तरह प्रत्येक स्त्री अपनी स्वतंत्रता, अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए व्याकुल है।

निष्कर्ष

कृष्णा सोबती ने नारी के उस विद्रोही व्यक्तित्व को उजागर किया है जो घर परिवार की चौखट में बंधी होने के बावजूद अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति सचेत है। आत्मतुष्टि के लिए प्रयत्नशील है। ऐसा नहीं कि वह परिवार के सुख-दुख की भागी नहीं, बल्कि उसे तो वह अपनाती है। 'ऐ लड़की' आधुनिक काल का स्त्री विमर्श हमारे सामने प्रस्तुत करता है। यह पुरूष प्रधान समाज के मूल्यों मान्यताओं वर्णनाओं पर संदेह करता है। स्त्रियों ने पिछली सदी के अंत में सदियों से चली आ रही स्वत्वहीनता के मौन को तोड़ा तथा अपनी चुप्पी को गहरे मानवीय अर्थ दिये।'ऐ लड़की' सदी के अंतिम दशक के इसी दौर की प्रतिनिधि रचना है।

संदर्भ

1. ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,छठा संस्करण-2018, पृ०56
2. वही, पृ०22
3. वही, पृ०68
4. वही, पृ०53
5. वही, पृ०56
6. वही, पृ०63
7. वही, पृ०63
8. हंस, जनवरी-फरवरी, 2004, समरेन्द्र सिंह, पृ०170
9. स्त्री उपेक्षिता, अनुवादक-डॉ प्रभा खेतान, सरस्वती विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1990, पृ०51
10. ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,छठा संस्करण-2018, पृ०18

आचार्य कुन्दकुनद की रचनाओं में आत्म विरूपण

डॉ० दुधनाथ चौधरी

अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

आचार्य कुन्दकुन्द की गणना वैसे उत्कृष्ट विद्वानों एवं जैनाचार्यो में की जाती है, जिन्होंने आत्मा को केन्द्रित करते हुए अपनी समस्त कृतियों का सृजन किया। कुन्दकुन्दाचार्य ने विभिन्न दृष्टिकोणों से आत्मा के स्वरूप पर विचार किया और उन्हीं के अनुरूप आत्मा के स्वरूप का निरूपण भी किया। एक ओर कुन्दकुन्दाचार्य की रचनाओं में संसारी आत्मा के स्वरूप का वर्णन मिलता है, दूसरी ओर शुद्ध आत्मा के स्वरूप का वर्णन मिलता है। कुन्दकुन्दाचार्य ने अनादिकाल से कर्मो से संयुक्त आत्मा को संसारी आत्मा की संज्ञा प्रदान की और मोक्ष का मार्ग प्रदर्शित किया, जिसके द्वारा संसारी आत्मा समस्त कर्म-फल से रहित हो शुद्धात्मा की निर्मल स्थिति को प्राप्त कर सकता है। कुन्दकन्दाचार्य द्वारा वर्णित आत्मशुद्धि की इस प्रक्रिया को एक सरल लौकिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:- दीर्घकाल से मल से संयुक्त होने के कारण कृष्ण वर्ण को प्राप्त हुआ श्वेत वस्त्र जिस प्रकार बार-बार धोया जाने पर अपने पूर्वकालीन स्वच्छस्वरूप को प्राप्त होता है, उसी प्रकार अनादिकाल से कर्मा से संयुक्त हुआ संसारी आत्मा अनेकानेक भवों में कर्मरूपी मल को आत्मा से दूर करने के प्रयत्न करता हुआ अन्ततः शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। जिस प्रकार मलिन वस्त्र में स्वच्छता बाहर से आरोपित नहीं की गई अपितु मल रहित हो जाने पर स्वतः ही व्यक्त हो गई उसी प्रकार अनन्तानंत गुणों में संयुक्त आत्मा की शुद्धावस्था किसी बाह्य साधन द्वारा आत्मा पर अरोपित नही की गई, अपितु समस्त कर्मों की निर्जरा होन पर स्वतः ही प्रकट हुई। कुन्दकुन्दाचार्य संसारी आत्माओं का वर्गीकरण मोक्ष प्राप्ति की संभावना की दृष्टि से दो वर्गों में करते है- भव्य आत्मा एवं अभव्य आत्मा। भव्य आत्माएं वे हैं जिनमें ये क्षमता है कि वे समस्त कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष को प्राप्त कर सकें। इसके विपरीत अभव्य आत्माएँ वे हैं जो किसी भी देशकाल में सिद्धावस्था को प्राप्त नहीं कर सकें। अभव्य जीव जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रणीत व्रत, समिति, गुप्ति, शील तथा तप को करता हुआ भी अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि ही रहता है। मोक्ष तत्व पर श्रद्धान न रखने वाला अभव्य जो अध्ययन करता है उससे उसे कुछ भी गुण लाभ नहीं होता क्योंकि उसके ज्ञान का आधारभूत सम्यग्श्रद्धान नहीं है। अभव्य जीव शुभोपयोग रूप ऐसे धर्म का ही श्रद्धान कर सकता है जो कि सांसारिक भोगों का कारण है कि उसका संसार में आवागमन चक्र बना ही रहता है। अभव्य जीव जिन तथा उससे संबंधित उपदेशों का श्रवण करके भी मिथ्यात्व प्रधान अपने स्वभाव को नहीं त्यागता है और उसका यह व्यवहार ठीक वैसा ही है जैसा कि गुड़ मिश्रित दूध का सेवन करने वाले सर्प का विष रहित नहीं होना है। अभव्य आत्मा के व्यवहार से पूर्णतः विपरित भव्य आत्मा भली-भाँति जिन भावना से युक्त होकर दर्शनावरण, ज्ञानावरण, मोहनीय ओर अंतराय कर्म को क्षीण करता है। इन चार घात्तिया कर्मों के नष्ट होन पर आत्मा के स्वाभविक गुण अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त सुख प्रकट होते है और यह आत्मा ही परमात्मा हो जाता है और ज्ञानी, शिव, परमेष्ठी, सर्वज्ञ, विष्णु चतुर्मुख तथा बुद्ध आदि संज्ञाओं से सम्बोधित किया जाता है। केवल ज्ञान से युक्त होने के कारण आत्मा ज्ञानी कहलाता है, शुद्धात्मा का स्वरूप कल्याणरूप है। अतः उसे शिव कहते हैं, शुद्धात्मा परमपद को प्राप्त होने के कारण परमेष्ठी कहलाता है, समस्त पदार्थो का ज्ञाता है अतः उसे सर्वज्ञ कहते हैं, अनन्त ज्ञान के माध्यम से वह समस्त लोकालोक में व्यप्त हैं। इस विशेषता के कारण उसे विष्णु कहते है, चारों ओर स्थित समस्त पदार्थों का द्रष्टा होने कारण वह चतुर्मुख कहलाता है तथा लोकालोक त्रिकाल

में स्थित पदार्थों का ज्ञाता होने के कारण बुद्ध कहलाता है। भव्य अभव्य रूप से जीव का यह द्विविध विभाजन कुछ ही जीवों को मोक्ष के योग्य सिद्ध करता है। सभी जीव को नहीं। इस तरह के प्रतिपादन से संसार कभी जीवों से शून्य नहीं होगा ऐसा इससे संकेत प्राप्त होता है।

सामान्यत: जीव का लक्षण इसके द्वारा सम्पन्न विभिन्न क्रियाएँ उनके कारणभूत प्राण है। व्यवहारनय से जीव इन्द्रिय-प्राण, बलप्राण, आयुप्राण और श्वासोच्छ्वास प्राण द्वारा अपनी समस्त क्रियाओं को सम्पन्न करता है। परन्तु निश्चय से आत्मा या जीव द्रव्य का लक्षण चेतना व उपयोग है। उपर्युक्त चारो प्राण व्यवहार की अपेक्षा से ही जीव के बताए गए है क्योंकि निश्चय से शुद्धावस्था में जीव इन प्राणों द्वारा जीवित नहीं रहता किन्तु फिर भी उसमें जीव द्रव्य का असद्भाव नहीं रहता। जीव शब्द की निर्युकित कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत की गई है- बल, इन्द्रिय आयु और उच्छ्वास इन चारों प्राणों से वर्तमान में जीवित है। भविष्य में जीवित होगा, और पहले जीवित था वह जीव हैं इस लक्षण से स्पष्ट है- कि जीव अथवा आत्मा आत्मद्रव्य अनादि तथा अंत रहित है।

कुन्दकुन्दाचार्य ने पहले जीवित था ऐसा कथन मुक्तावस्था को दृष्टि में रखते हुए किया है। मुक्तावस्था से पूर्व जीव इन चारों प्राणों द्वारा जीवित था। इस दृष्टि से उसे जीव कहा जात है, मुक्तावस्था में जीव के आयु आदि नहीं होते। कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथों में जीव तथा आत्मा का प्रयोग प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होता हैं विभिन्न स्थलों पर जीव तथा आत्मा के लक्षण स्वरूप एवं भेदों पर प्रकाश डाला गया हैं- इस विवेचन के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि जीव तथा आत्मापर्यायवाची व्यंजक है और इसके द्वारा एक ही द्रव्य की अभिव्यंजना की गयी है। पर्यायवाची होने पर भी पदों का प्रयोग कुछ स्थलों पर निश्चित संदर्भों में रूढ़ हो गया प्रतीत होता है। जैसे जीवों को इन्द्रियों की संख्या के आधार पर भेद करते कुन्दकुन्दाचार्य समस्त ग्रन्थों में एकेन्द्रिय-जीव जैसे पदो का उल्लेख करते है। एक भी स्थल पर एकेन्द्रिय-आत्मा, द्वीन्द्रिय-आत्मा त्रीन्द्रिय-आत्मा आदि रूप में कथन नहीं मिलता है। इसी प्रकार जैनागम में इस बात का उल्लेख मिलता है कि अपना उपयोग आत्मा में केन्द्रित करों किन्तु ऐसा निर्देश कहीं नहीं मिलता कि उपयोग आत्मा में केन्द्रिय करो। उसी प्रकार आत्मा साधना और आत्मचिन्तन के तुल्य जीवसाधना और जीव-चिन्तन जैसे व्यंजन का प्रयोग भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

कुन्दकुन्दाचार्य ने आत्मा को लक्ष्य (साध्य) के रूप में प्रस्तुत किया है तथा मुमुक्षु जीव की समस्त शुभ और शुद्ध चेष्टाएँ इस लक्ष्य की प्राप्ति में साधनभूत है। जीव को बार-बार सम्बोधा जाता है कि अपना उपयोग आत्मा में केन्द्रित करों पर समय का त्यागकर स्वसमय का चिन्तन करों। निश्चयनय से आत्मा और जीव में कोई अन्तर नहीं है किन्तु व्यवहार ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मा उस सर्वोच्च स्थिति का परिचायक है, जिस तक पहुँचना जीव को अभीष्ट है।

आचार्य कुन्दकुन्द की कृत्तियाँ आत्म निरूपण प्रधान:-

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी कृत्तियाँ में जैन-दार्शनिक दृष्टि से जिन तत्व अर्थ पदार्थों का निरूपण किया है इन सभी का ज्ञान आत्मा को शेष द्रव्यों से भिन्न एक विलक्षण चेतन द्रव्य के रूप में जानने में सहायक है। इस प्रकार आत्मा के वास्तविक स्वरूप के प्रति सम्यक्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञान उत्पन्न होता हैं। आचार्य कुन्दकुन्द की कृत्तियों में चरित्र निरूपण में प्रधानता प्रदान की गयी हैं। क्योंकि समयक्चरित्र के अभाव में मोक्ष प्राप्ति अथवा आत्मा लाभ असंभव है। आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा अपनी रचनाओं में किया गया प्रत्येक वर्णन आत्मा के वास्तविक स्वरूप की ओर उन्मुख कराने की दृष्टि से किया गया हैं। उनकी समस्त रचनाओं का एक मात्र उद्देश्य आत्मा लाभ है। इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य की कृत्तियों को आत्मा निरूपण प्रधान कहा जा सकता है। आत्मा निरूपण आत्मा निरूपण:- षट्द्रव्यों में जीव पुद्गल प्रमुख इसका स्वचतुष्टय में परिणाम जीव को निज स्वभाव में परिणमन द्वारा आत्मा लाभी करने की प्रेरणा देता है। जीवादि पंचास्तिकाय के वर्णन में भेद दृष्टि द्वारा आत्मलाभ।

सप्त तत्वों में प्रमुख जीव और अजीव के आसव के कारण बन्ध होता हैं संवर द्वार कर्मास्रव रोक कर निर्जरा के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति रूपी आत्म लाभ। नव पदार्थों में पुण्य और पाप क्रमश: स्वर्ण और लोहे की बेड़ीवत् कर्म बन्धन के कारण दोनों को हेय मानकर वीतराग भावपूर्वक कर्मक्षय द्वारा निजानन्द स्परूप आत्मा लाभ कर्म सिद्धांत के ज्ञान द्वारा कर्मो की आवरणीय प्रकृति क्षयोपरामादि जीव के भावों प्रकृति बन्धादि कर्म बन्ध के भेदों का सम्यक् स्वरूप ज्ञात होता है। कर्मबन्ध में कर्म निर्जरा द्वारा शुद्धात्म

लाभ। आत्मश्रय बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा प्रथम हेय, द्वितीय की सहायता से परमात्मा की प्राप्ति। उपयोगत्रय- अशुभोपयोग शुभोपयोग तथा शुद्धदोपयोग में प्रथम दो हेय और अन्तिम से श्रात्मलाभ। पांच महाव्रत, पंच समिति, त्रिगुप्ति, षडावश्यक आदि, निश्चयोन्मुखी व्यवहारचारित्र द्वारा आत्मलाभ।

रत्नत्रय- सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्र से आत्मलाभ। किसी भी ज्ञेय का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व उसकी सत्ता के प्रति वास्तविक श्रद्धान आवश्यक है, तब तक ज्ञेय की सत्ता के प्रति संदेह की स्थिति बनी रहेगी उसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना संभव नही है। जब तक एक ज्ञेय को दूसरे ज्ञेय के रूप से स्पष्टत: भिन्न नहीं माना जाएगा तब तक उसे दूसरे ज्ञेय से भिन्न नहीं जाना जा सकता। सम्यग्दर्शन के द्वारा ही सम्यग्ज्ञान की जिज्ञासा होती हैं। संसारी जीव को सम्यग्ज्ञान प्रदान के लिए कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी रचनाओं में निम्नलिखित का निरूपण किया है:-

(क) षट् द्रव्यनिरूपण:- आचार्य कुन्दकुन्द ने लोक में स्थित समस्त पदार्थे को द्रव्यनुसार छ: वर्गो में विभाजित किया हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन षट्द्रव्यों में सें प्रत्येक द्रव्य शेषष् पूर्णत: भिन्न है और उसकी स्वतंत्र सत्ता है, द्रव्य की सत्ता का परिचायक उसका चातुष्टयं है और यह चातुष्टय ही उसकी सत्ता की सीमा निर्धारित करता हैं। स्वक्षेत्र से हटकर यदि किसी द्रव्य की सत्ता है तो वह परद्रव्य है जो स्वद्रव्य से बिल्कुल भिन्न है। इसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द द्रव्य काल और भाव की अपेक्षा से भी एक द्रव्य की सत्ता को दूसरे द्रव्य की सत्ता से भिन्न निर्दिष्ट करते हैं उनका यह निर्देश ही भेद विज्ञान का जनक हैं जो स्व नहीं है वह निश्चय से पर है तथा पर नहीं है वह निश्चय से स्व है।

(ख) पंचास्तिकाय निरूपण - कुन्दकुन्दाचार्य ने समस्त द्रव्यों को बहुप्रदेशी अस्तित्व वाले अथ्वा एक प्रदेशी अस्तित्व वाले द्रव्यों में वर्गीकृत किया हैं बहुप्रदेश द्रव्यों पदेशप्रचय होने के कारण ही कायवत् काय कहा जाता हैं। जीव, पुद्गल धर्म, अर्धम और आकाश द्रव्य कायवत् अस्तिव के कारण पंचास्तिकाय कहलाते हैं। इन पाँच द्रव्यों से भिन्न कालद्रव्य एक प्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय नही है। समस्त लोक का निर्माण पंचास्तिकायों द्वारा होने के कारण कुन्दकुन्दाचार्य ने इन्हें 'समय' कहा है और पंचास्त्किाय की समापन गाथा में पंचास्तिकाय संग्रह को 'प्रवचनसार' कहा गया है। पंचास्तिका के लिए कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा समय तथा प्रवचनसार का प्रयोग इस बात का परिचायक है कि पंचास्तिकाय के प्रति सम्यक् श्रद्धान से विशुद्ध आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तथा विशुद्ध आत्मा अथवा समयसार ही लोक में सारभूत हैं। धर्मास्तिकाय जीव तथा पुद्गल के गति रूप परिणमन का निमित कारण हैं तथा अधर्मास्तिकाय उनके स्थित रूप परिणमन द्रव्यों को अवगाहना प्रदान करता हैं। परिणमन की अपेक्षा से जीव और पुद्गल पंचास्तिकायों में विशिष्ट स्थान रखते है। चेतना से रहित होने के कारण पुद्गल में अनभूति का अभाव है अत: वह विभाव परिणमन की स्थिति में किसी प्रकार के दु:ख का अनुभव नहीं करता तथा स्वभाव परिणमन से उसे किसी प्रकार सुखानुभूति नहीं होती। इसके विपरित जीवास्तिकाय की चेतना उसे सुख अथवा दु:ख का अनुभव कराती हुई नानाविध सुख अथवा दु:ख की अनुभूति कराती है। विभाव परिणमन में आत्मा कर्मबन्धन से युक्त होता है और उसके समस्त गुण कर्मावरण के कारण पूर्णत: व्यक्त नही हो पाते। निर्बाध सुख की प्राप्ति स्वभाव परिणमन द्वारा ही सम्भव है सम्भव है इसके लिए समस्त परद्रव्यों से पूर्णत: भिन्न स्वस्वरूप में स्थित होना होगा। यही अवस्था मोक्ष कहलाती है।

(ग) सप्ततत्व निरूपण- आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी रचनाओं में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों का निरूपण किया हैं। संसारी जीव अनन्त काल से पुद्गल कर्मों के निमित से आत्माराग द्वेष रूप विभाव परिणमन करता है तथा इस परिणमन के कारण आत्मा में विक्षोभ उत्पन्न होता है। विक्षोभ जनित परिस्पन्द नवीन पुद्गल कर्म वर्गणाओं को आकर्षित करते है तथा ये कर्म वर्गणाएँ आस्रव द्वारा आत्मा के निकट पहुँचकर पूर्व बद्ध कर्मों से बन्ध जाती है। इस प्रकार बन्ध कीर्ि स्थत तक ये कर्म आत्मा पर आवरणत् आच्छादित रहते है एवं आत्मा के सहज गुणों के पूर्णत: व्यक्त होने में बाधा पहुँचाते है। बन्ध की अवधि समाप्त होने पर इन कर्मो का विपाक होता है और ये कर्म सुख अथवा दु:ख रूप फल देकर निर्जरा को प्राप्त होता है। कर्मो की यह निर्जरा सविपाक निर्जरा कहलाती है। संसार चक्र से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आचार्य कुन्दकुन्द ने निर्देश दिया है कि नवीन कर्मो का आगमन रोका जाए अर्थात उनका संवर किया जाए एवं पूर्वबद्ध कर्मो की निर्जरा की जाए जब समस्त घातिया कर्मो की निर्जरा हो जाएगी तो आत्मा मोक्ष प्रापत कर लेगा।

सप्ततत्व निरूपण का उद्देश्य यह है कि संसारी जीव में यह श्रद्धान उत्पन्न हो कि कर्म बन्ध ही उसके संसार भ्रमण का कारण हैं संवर द्वारा कर्मबन्ध रोक कर एवं निर्जरा द्वारा पूर्व बद्ध कर्मों का क्षय कर के वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

(घ) नव पदार्थ निरूपण- सात तत्वों के साथ पुण्य एवं पाप को लेकर आचार्य कुन्दकुन्द ने नव पदार्थों का निरूपण किया है। इस निरूपण में उनकी दार्शनिक दृष्टि इस तथ्य पर केन्द्रित रही है कि पुण्य का बन्ध शुभ कर्मों से एवं पाप का बन्ध अशुभ कर्मो के द्वारा होता है। पुण्य एवं पाप दोनों ही कर्मबन्ध से सम्बंधित है। अत: सुख एवं दु:ख प्रदान करते हैं। ये दोनों ही आत्मा को बन्धन में रखने वाले है। पुण्य यदि स्वर्ण की बेड़ी के समान है तो पाप लौह के बेड़ी के सदृश। बन्धन स्वतंत्रता में बाधक है अत: मोक्ष प्राप्ति होने में बाधक होता है। मुमुक्षुओं के लिए पुण्य एवं पाप दोनों ही हेय है, क्योंकि ये दोनों संसार भ्रमण का कारण है।

नव पदार्थ निरूपण का प्रयोजन यह है कि मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला जीव पुण्य द्वारा प्राप्त होने वाले सांसारिक वैभव एवं सुख की ओर आकृष्ट नहीं हो तथा उसे पाप के समान ही हेय माने। वस्तुत: पुण्य द्वारा प्राप्त चक्रवर्ती की सम्पदा अथवा स्वर्ग सुख आत्मा के उस अनन्त वैभव एवं अनन्त सुख के सम्मुख तुच्छ एवं हेय है। भव्य जीव पाप से निवृत होने के साथ ही पुण्य से भी निवृति प्राप्त करने हेतु पुरूषार्थ करते हैं। पाप एवं पुण्यरूपी बन्धनों को काटकर ही कर्मो का क्षय किया जा सकता है, और सांसारिक सुख दु:ख से स्थायी रूप् से मुक्ति पायी जा सकती हैं। इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द सांसारिक जीव में सम्यक्दर्शन उत्पन्न करते है जिससे उसे सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति हो सकें।

आत्मा के त्रिविध भेद करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का उल्लेख किया है। जीव को अपना उपयोग बहिरात्मा रूपी इन्द्रियादि हटाकर स्व पर केन्द्रित करना चाहिए। इस प्रक्रिया में उसे अन्तरात्मा के माध्यम से परामात्मा की प्राप्ति के लिए चेष्टा करनी चाहिए। यही चरित्र पालन का सार है। सम्यक् चारित्र के अन्तर्गत आचार्य कुन्दकुन्द ने त्रिविध उपयोग का वर्णन किया हैं। जीव के द्वारा सम्पन्न सभी क्रियाओं को शुभ, अशुभ और शुद्ध इन तीन उपयोगों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता हैं। चेतना के शुभ और अशुभ उपयोग कर्म बन्धन का कारण है। इसलिए यह हेय है। चेतना का शुद्ध उपयोग ही जीव के लिए उपादेय हैं। शुद्धउपयोग की स्थिति में पूर्व बद्ध कर्म उदय में आने पर भी सुख अथवा अशुभ उपयोग की स्थिति में ही प्रापत होता है। कर्मों के आतंक से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जीव का चारित्र शुद्धोपयोगी होना चाहिए। यही चारित्र निश्चय चारित्र हैं। व्रत, समिति गुप्ति, षडावश्यक कर्म आदि निश्चय उन्मुखी व्यवहार चारित्र हैं ऐसे सम्यक् चारित्र द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

रत्नत्रय की मोक्ष मार्ग हैं आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मा के जिस विशुद्ध स्वरूप को मुक्तात्मा कहा उसे प्राप्त करने के लिए सम्यक् दर्शन, समयक्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की युगपत सिद्धि अनिवार्य हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित आत्म निरूपण में निश्चय दृष्टि:-

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने ग्रंथों में शुद्धात्मा के स्वरूप के ही एक मात्र जानने योग्य बताया है तब जब आत्मा अपने द्वारा अपने लिए अपने को जानता है उस स्थिति में वह पर से पूर्णतया प्रथम अपने चतुष्टय में परिणमन करता है तथा मुक्त आत्मा है और जो एक को नही जानता वह किसी को नही जानता। आचार्य कुन्दकुन्द ने ज्ञाता और ज्ञेय में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध दर्शाया हैं। ज्ञाता और ज्ञेय का सत्ता से परिचित हुए बिना ज्ञाता की ज्ञेय को जानने की चेष्टा अधूरी है। तार्किक दृष्टि से कोई यह कह सकता है कि ज्ञेय की सत्ता इसलिए है क्योंकि उसे ज्ञाता जानता है लेकिन तात्त्विक दृष्टि से यह बात उपर्युक्त प्रतीत नहीं होती अपितु यह कहना उचित प्रतीत होता है कि ज्ञेय की सत्ता होने के कारण ही ज्ञाता उसे जान पाता हैं यदि ज्ञेय की सत्ता की ही असद्भाव हो जाए तो ज्ञाता जानेगा किसे? इसके अतिरिक्त यदि ज्ञाता ज्ञानावरणीय कर्मों के प्रभाव से ज्ञेय को नहीं जान पाता तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि ज्ञेय की सत्ता ही सन्दिग्ध हो जाए। इस संदर्भ में यह तथ्य सम्मुख आता है कि जहाँ कहीं ज्ञान विद्यमान होगा वहाँ आवश्यक रूप से ज्ञाता और ज्ञेय की सत्ता का सद्भाव होगा। 'मैं जानता हूँ' 'मैं विचार करता हूँ' आदि वाक्य स्पष्टत: इंगित करते है कि विचारने और जानने की प्रक्रिया ज्ञान प्राप्ति हेतु है और कोई न कोई सत्ता अवश्य विद्यमान है जो ज्ञान प्राप्त कर रही है तथा साथ ही दूसरी एक या एकाधिक सत्ताएँ विद्यामान है जिनका ज्ञान प्राप्त किया जा रहा हैं इस प्रकार ज्ञान वह कड़ी है जो ज्ञेय और ज्ञाता को जोड़ती है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने बड़ी कुशलता से व्यवहार और निश्चय नयों का निरूपण करते हुए आत्मा तत्व का निरूपण किया हैं। उनके समस्त ऐसे संसारी जीव हैं, जो मोह से भ्रमित एवं स्वपर के वंचित है। मेरा शरीर, मेरा घर, मेरा परिवार आदि पर वस्तुओं के प्रति

प्रबल राग के वशीभूत में वे और मेरा के मध्य भी अंतर नहीं कर पाते। उन्हें यह भी निश्चय नही हो पाता कि मैं घर नहीं हूँ, यदि मेरा घर है तो अवश्य ही मुझसे भिन्न हैं ऐसे सांसारी जीवों के प्रतिबोधनार्थ वे समस्त द्रव्यों, तत्वों एवं पदार्थों के स्वरूप का वर्णन करते है। उनके लक्षण बताते है जिससे यह जाना जा सके कि आत्मा तत्व से भिन्न लक्षण वाले समस्त तत्व पर है एवं वे आत्मा के लिए उपादेय नहीं हैं।

आत्मा की सर्वाता-

आत्मा के केवल ज्ञान रूप परिणमन करते ही समस्त द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायें प्रत्यक्ष हो जाती है, वह उनके अवग्रह, द्वद्य, अवाभ धारणा के क्रम से नहीं जानता है। स्वयं सदा के लिए द्वन्द्रियातीत ज्ञानरूप हो जाने के कारण और इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, आदि जानने की विशेषता से भी अनन्तगुणी स्वानुभाव रूप विशेषता का साक्षात्कार करने के कारण लेशमात्र भी वस्तु उसके परोक्ष नहीं रहती है।

विशुद्ध आत्मा का सर्वज्ञता के विषय में आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार आत्मा ज्ञान रूप और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है तथा लोकालोक हैं। अत: निजज्ञान रूप से आत्मा लोकालोक व्यापी है अर्थात् ज्ञान आत्मा है तथा जितना आत्मा है उतना ही ज्ञान है। ठीक उसी प्रकार जितना ज्ञान का विस्तार है उतना ही आत्मा का विस्तार है, क्योंकि ज्ञान आत्मा के बिना नही रह सकता और आत्मा ज्ञान के बिना नही रह सकता है।

ज्ञेय निज स्थान पर रखते हुए ज्ञेयरूप परिणमन करता है और ज्ञान ज्ञानरूप परिणमन करता है इस प्रकार ज्ञान अशेष जगत् को अतीन्द्रिय रूप से जानता है जिस प्रकार दूध में रखा हुआ नीलम अपनी किरणों से दूध को नीला बना देता है उसी प्रकार ज्ञान ज्ञेय पदार्थों में रहता है। यथार्थत: दूध स्व-स्वरूप में परिणमन करता तथा नीलम स्व-स्वरूप में, किन्तु उपाधिवश ही दूध में नील रूप की प्रतीति होती है।

जो ज्ञान अप्रदेशी को, मूर्त-अमूर्त को जानता है वह अतीन्द्रिय केवल ज्ञान कहलाता है। वर्तमान अतीत अनागत, विचित्र, विषम समस्त पदार्थों को एक साथ जानने वाला ज्ञान क्षायिक कहलाता है। जो ज्ञान तीनों लोको में स्थित त्रिकालवर्ती पदार्थों को युगपता नहीं जानता वह समस्त पर्याय सहित एक द्रव्य को भी नहीं जान सकता। इसी प्रकार जो अनन्तपर्याय सहित एक द्रव्य की नहीं जानता वह समस्त अन्य द्रव्यों को भी नहीं जनता। सत्य का विनाश नहीं होता और असत्य का उत्पाद नही होता यह वस्तुनियम है। द्रव्य दृष्टि से अतीत व अनागत पर्यायें भी सत्य हैं। अत: वे सब ज्ञेय है तथा पूर्णदर्शी सर्वज्ञ के ज्ञान के विषय हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने नियम सार में निर्देश दिया है कि निश्चयमय से केवली निजात्मा का ज्ञाता द्रष्टा है तथा व्यवहारनय से अन्य पर पदार्थों का ज्ञाता दृष्टा। अत: आत्मज्ञ ही सर्वज्ञ है।

संदर्भरू-

1.	पंचास्तिकाय-	गाथा संख्या- 120	पृष्ठ- 183
2.	समयसार-	गाथा संख्या- 273, 75	पृष्ठ-365,67
3.	प्रवचनसार-	गाथा संख्या- 255	पृष्ठ- 189
4.	सुत्तपाहुड़-	गाथा संख्या- 15, 16,	पृष्ठ- 51,52
5.	प्रवचनसार-	गाथा संख्या- 108	पृष्ठ- 242
6.	न्यायसिद्धांत मुक्तावली-	का0 47,	
7.	द्रव्य संगह-	गाथा संख्या- 2,	
8.	नियमसार-	गाथा संख्या- 158,	पृष्ठ- 136
9.	पंचास्तिकाये-	गाथा संख्या- 122,	पृष्ठ- 162

रघुवीर सिंह 'अरविन्द' रचित बुद्ध-चरित महासागर के आधार पर गौतम बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण

लक्ष्मण शर्मा

शोधार्थी: असम विश्वविद्यालय, सिलचर

प्रस्तावना:

गौतम बुद्ध जब सोलह बर्ष के हुए तब उनके पिता ने तीनों ऋतुओं के लायक तीन महल बनवा दिए। गर्मी में रहने का महल ठंडा था, वर्षा में रहने का महल न ठंडा था न ही गरम तथा शीतकाल में रहने का महल गरम था। चालीस हजार नाटक करने वाली स्त्रियों को नियुक्त किया गया। उन्होंने महल में ही नृत्य करने वाली तथा साजख्रसंगीत में दक्ष स्त्रियों की व्यवस्था की। महल के अंदर ही अत्यंत सुंदर अप्सराओं की उपलब्धता थी। राजा ने महल में ही कामगुणों की सामग्री इकट्ठा कर दी थी। इस प्रकार महासम्पत्ति को उपभोग करते हुए ऋतुओं के अनुकूल विहरते थे। उसी समय एक दिन बिरादरी में एसी बात चली-"सिद्धार्थ क्रीड़ा में ही मगन रहता है। किसी कला को नहीं सीखता, युद्ध आने पर क्या करेगा?"[1] राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा कि तेरे सगे संबंधी कहते है कि सिद्धार्थ किसी कला को नहीं सीखता। तब बोधिसत्व ने कहा कि नगर में मेरा शिल्प देखने के लिए ढिंढोरा पिटवा दो कि आज से सात दीन बाद मैं अपना शिल्प दिखलाऊँगा। राजा ने वैसा ही किया। बोधिसत्व ने अक्षण वेध, वाल वेध जानने वाले धनुर्धारियों को एकत्रित करके लोगों के मध्य में अन्य धनुर्धारियों से भी विशेष बारह प्रकार के शिल्प कला जाती विरादरी वालों को दिखलाया। तब बोधिसत्व के सगे संबंधियों की शंका दुर हुई।

देवताओं ने सोचा कि सिद्धार्थ का बुद्धत्व प्राप्ति का समय समीप है, अत: उसे महाभिनिष्क्रमण हेतु प्रेरित करने तथा उनमें संवेग उत्पन्न करने के लिए शुभ लक्षण दिखाने चाहिए। देवताओं द्वारा प्रकट इन शकुनों को केवल सिद्धार्थ तथा उनका सारथी ही देखता था। इनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

जरा, व्याधी मृत्यु और सन्यास दर्शन:

एक दिन बोधिसत्व ने बगीचे देखने की इच्छा से सारथी को बुलाकर रथ जोतने को कहा। बोधिसत्व देव विमान सदृश रथ पर चड़कर बगीचे की ओर चले। देवताओं ने देवपुत्र को टूटे दांत, पक्के केश, कुबड़े, काठ के मेहराब जैसा टेढ़ा शरीर वाले, व्याकुल, बीती जवानी के वृद्ध पुरूष के रूप में प्रकट किया। उसे केवल सिद्धार्थ तथा उनका सारथी ही देखता था, अन्य- कोई नहीं। उसे देखकर सिद्धार्थ ने सारथी से कहा कि यह पुरुष कौन है, सारथी ने उत्तर दिया कि

"तब सारथि सौं पूछई गौतम। कौन पुरूष तेहि दशा कहौ तुम।
सारथिहू सब बात बताई। समय पाइ तन गयेउ बुढ़ाई।।"[2]

राजकुमार यह आदमी बहुत बुढ़ापे से हार खाया हुआ, अत्यंत दुखी, बल एवं पौरूष से हीन, कुछ भी करने मे असमर्थ है। उह देखकर सिद्धार्थ गौतम को ग्लानि हुई और सारथी से बोले की लौताओं। वहा से लौटकर महल में चले गए। राजा ने देखा और सारथी से पूछा की जल्दी क्यों लौट आया। सारथी ने कहा कि बूढ़े आदमी को देखकर। भविष्यख्रवक्ताओं के द्वारा की गई भविष्यवाणी

कि बूढ़े आदमी को देखकर सिद्धार्थ प्रव्रजित होगा सोचकर राजा ने मंत्री को आदेश दिया कि पुत्र के लिए शीघ्र ही नृत्य की तैयारी करो। भोग विलास भोगते हुए प्रव्रज्या का ख्याल न आए। राजभवन के चारों ओर आधा योजन (एक मील) तक दंडधरों को नियुक्त कर दिया ताकि किसी भिखारी, जराग्रस्त तथा वृद्ध की छाया तक राजकुमार को दिखलाई न दे।

फिर एक दिन बोधिसत्व इसी प्रकार बगीचे जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित रोगी पुरुष को देखकर, पहले की भांति पूछा और सारथी ने उत्तर दिया कि

"हे देव ! यहि मनुष दुखारी। रोग अनल सब तनहि उजारी।
व्याधी बनी तन मनहिं खजाना। जेहि कारन यहि नर घबराना"[3]

यह देखकर गौतम शोकाकुल हृदय से महल में लौट आये। राजा ने भी पूछकर, पहले की भाँति खिन्न चित्त हो गया। पहरे को फिर बढ़ाकर चारों ओर पौन योजन(डेढ़ मील) तक का कर दिया।

फिर एक दिन वोधिसत्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित मृत-पुरुष को देखकर पहले की भाँति पूछा

"अनजाने से बन तहाँ, गौतम करे बखान।
क्या है? यह सब माजरा, सारथी करो निदान।"[4]

गौतम यह सब देखकर तथा उदास होकर महल में लोट आये। राजा ने भी पूछकर पहले की भांति खिन्न चित्त हो गया। पहरे को फिर बढ़ाकर चारों ओर एक योजन (दो मील) तक का कर दिया।

फिर एक दिन उद्यान जाते हुए, बोधिसत्त्व ने देवताओं द्वारा निर्मित एक दृश्य देखा जिसमें उत्तम चीवार पहने एक सन्यासी था। यह देखकर सारथी से पूछा कि यह कौन है। अभी बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे इसलिए सारथी को प्रव्रजित या प्रव्रज्या के गुणों के बारे में कुछ मालूम न था। लेकिन देवताओं की प्रेरणा से सारथी ने कहा कि देव! यह प्रव्रजित है कहकर प्रवर्जितों के गुण वर्णन किये। बोधिसत्व प्रव्रज्या में रूचि उत्पन्न करके उस दिन उद्यान को गए। दिन भर विनोद कर सुंदर पुष्करिणी में स्नान कर अपने को आभूषित कराया।

पुत्र जन्मः

बोधिसत्व ने उद्यान में दिन भर विनोद कर सुन्दर पुष्पकरिणी में स्नान किया तथा सूर्यास्त के समय सुन्दर शिला पर अपने को आभूषित कराया। उसी समय राहुल-माता ने पुत्र प्रसव किया सुनकर महाराज शुद्धोदन ने आज्ञा की कि मेरे पुत्र को यह शुभ-समाचार सुनाओं। बोधिसत्व ने उसे सुनकर कहा कि -"राहु पैदा हुआ, बंधन पैदा हुआ।"[5] बोधिसत्व द्वारा पुत्र के लिए राहू शब्द का प्रयोग सुनकर राजा ने कहा कि अब से मेरे पोते का नाम राहुल कुमार होगा। वोधिसत्व भी श्रेष्ठ रथ पर चढ़कर वड़े भारी यश, अति मनोरम शोभा तथा सौभाग्य के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। उस समय प्रासाद के ऊपर बैठी कृशा गौतमी नामक क्षत्रिय-कन्या ने नगर की परिक्रमा करते हुए बोविसत्त्व की रूप शोभा को देखकर, बहुत ही प्रसन्न तथा मुग्ध हो गई। वह बोल उठी

"सुखी धन्य नारी ओ कोई।
गौतम सा पति जिन्हहू होई।।"[6]

परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता, और परम शान्त है वह नारी, जिसका इस प्रकार का पति हो। बोधिसत्व ने यह सुना तो सोचा-यह कह रही है कि इस प्रकार के रूप के देखने वाली माता का हृदय परम शान्त होता है, पिता का हृदय परम शान्त होता है, पत्नी का हृदय परम शान्त होता है। किसके शान्त होने पर हृदय परम शान्त होता है? उत्तर मिला, "राग-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। द्वेष अग्नि तया मोह-अग्नि के शान्त होने पर परम -शान्ति होती है। अभिमान-मिथ्या विचार आदि सभी मलों के उपशमन होने पर परम-शान्ति होती है।"[7] यह मुझे प्रिय-वचन सुना रही है और मैं निर्वाण को ढूंढ रहा हूँ। आज ही मुझे गृहवास छोड़कर तथा प्रव्रजित होकर निर्वाण की खोज में लगना चाहिए। यह इसकी गुरु दक्षिणा हो कहकर अपने गले से एक लाख का मोती का हार उतारकर कृशा गौतमी के पास भेज दिया। सिद्धार्थ -कुमार ने मेरे प्रेम में फंसकर भेट भेजी है। यह सोचकर वह वड़ी प्रसन्न हई।

गृहत्याग

बोधिसत्व बड़े ही सौभाग्य के साथ अपने महल में जाकर सुन्दर पलंग पर लेट रहे। उसी समय सभी अलकांरो से विभूपित, नृत्य गीत आदि में दक्ष देवकन्या समान परम सुन्दरी स्त्रियों ने अनेक प्रकार के वाद्यो को लेकर कुमार को खुश करने के लिए नृत्य, गीत और वाद्य आरंभ किया। बोधिसत्त्व रागादि मलों से विरक्त-चित्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न होकर, थोड़ी ही देर में सो गये। उन स्त्रियो ने भी सोचा कि जिसके लिए हम नृत्य आदि करती है, वह ही सो गया। अव हम तकलीफ क्यों करे। इसलिए वह भी अपने अपने वाणो को साथ लिये ही सो गई। उस समय सुगन्धित-तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। बोधिसत्व जागकर, पलंग पर आसन मार वैठ गये। उन्होंने वाद्य भाण्डों को साथ ही लिये सोई उन स्त्रियो को देखा। उनमें किसी के मुंह से कफ निकल रहा था। किसी का शरीर लार से भीग गया था। किन्ही के मुंह खुले हुए थे, किन्ही के वस्त्र हटे होने के कारण अति घृणोत्पादक गुह्य स्थान दिखाई दे रहे थे। उन स्त्रियों के इन विकारों को देखकर वे काम-भोगों से विरक्त हो गये। उस समय उनका चित्त प्रव्रज्या के लिए अत्यन्त आतुर हो गया। आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (गृह-त्याग) करना चाहिए। बोधिसत्व पलंग से उतरकर, रात्रि में ही द्वार के पास जाकर छंदक अमात्य से इच्छा जाहिर की

"हे छंदक सुनि बात हमारी। करहु अश्व की अब तैयारी।
लाइ हमहिं कंथक तुम दीजै। पल भर देर तात नहिं कीजै।।"[8]

मैं आज ही इसी समय महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूं। मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो। छंदक ने घुड़साला में जाकर अश्वराज कंठक को तैयार किया। साज सजाये जाते समय कंथक ने सोचा कि आज की तैयारी बहुत कसी हुई है। अन्य दिनो में उद्यान-कीड़ा आदि की तैयारी जैसी तैयारी नहीं है। आज मेरे आर्य पुत्र महाभिनिष्क्रमण के इच्छुक होंगे। इसलिए प्रसन्न-चित्त होकर जोर से हिनहिनाया। वह शब्द सारे नगर में फैल जाता लेकिन देवताओ ने उस शब्द को रोककर किसी को न सुनने दिया।

बोधिसत्व पुत्र को देखने की इच्छा से राहुल-माता के वास स्थान की ओर गये।। वहाँ शयनागार का द्वार खोला। उस समय राहुलमाता फूलों से सजी शय्या पर पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर सों रही थी। बोधिसत्व ने देहली में पैर रखकर खड़ेख़खड़े सोचा कि यदि मैं देवी का हाथ हटाकर अपने पुत्र को ग्रहण करूंगा तो देवी जाग उठेगी, इस प्रकार मेरे गमन में विघ्न होगा। बुद्ध होने के पश्चात ही आकर पुत्र को देखूँगा। तब वह महल से उतर आये।

बाधिसत्व ने कंथक के पास जाकर कहा, "तात! आज तू मुझे एक रात तार दे,मैं तरी सहायता बुद्ध होकर देवताओं सहित सारे लोक को तारूँगा।"[9] फिर कूदकर कंथक की पीठ पर सवार हुए। यदि वह हिनहिनाता या पैर खटखटांता तो उसकी आवाज सारे नगर में फैल जाता। इसलिए देवताओं ने हिनहिनाने या खटखटाने की आवाज रोक ली। छंदक ने कंथक की पूंछ पकड़ी। बोधिसत्व आधी रात महाद्वार के समीप पहुंचे। उस समय राजा ने दरवाजों पर शख्त पहरा लगा रखा था तथा महल के दरवाजों के कपाट भी ऐसे लगा रखे थे कि एक एक कपाट एक हजार मनुष्यों द्वारा ही खोला जा सकता था। उन्होंने सोचा यदि द्वार न खुला तो आज मैं कंथक की पीठ पर बैठे, उसकी पूछ पकड़कर लटके छन्दक के साथ ही घोड़े को जांघ से दवा कर अठारह हाथ ऊँचे महल को कूद कर पार करूंगा। लेकिन द्वार में रहने वाले देवताओं ने द्वार खोल दिया। उस समय बोधिसत्व को वापिस लौटाने की इच्छा से आकश में खड़े होकर मार ने कहा कि

"तबहिं मार सम्मुख बुध आवा। वसन खोलि निज रूप दिखावा।
बोला मार्ष! न जावहु बनहू। सुनहु भविष्यत का तुम फलहू।।"[10]

मार्ष(मित्र)! गृह त्याग मत करो। आज से सातवे दिन तुम्हारे लिए चक्र-रत्न प्रकट होगा। दो हजार छोटे द्वीपों सहित चारों महाहीपो पर राज्य करोगे। लौट जाओ। बोधिसत्व ने कहा कि मार में भी जानता हूँ कि मेरे लिए चक्र ख़ रत्न प्रकट होगा। लेकिन मुझे राज्य से काम नहीं। मैं तो बुद्ध बनूँगा। बोधिसत्व हाथ आये चकवर्ती-राज्य के प्रति अपेक्षा रहित हो, उसे थूक की भांति छोड़कर, आषाढ की पूर्णिमा के दिन नगर से निकले। लेकिन नगर से निकाल कर उन्हें फिर नगर देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। चित में ऐसा विचार होते ही महापृथ्वी कुम्हार के चक्के की भांति कापी, मानो कह रही थी कि 'महापुरुष! तूने लौट कर देखने का काम कभी नहीं किया। बोधिसत्व ने सोचा कि जब तक मैं कपिल के इस नगर मैं बिना जन्म मरण के अंत करने वाली बोधी को प्राप्त किए प्रवेश

नहीं करूंगा तथा तब तक कपिलवस्तु की ओर मूँह करकर न खड़ा हाऊँगा, न बैठूँगा, न सोऊँगा ओर न टहलूँगा। वोधिसत्त्व एक ही रात में तीन राज्यों को पारकर तीस योजन की दूरी पर अनोमा नामक नदी के तट पर पहुंचे।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सांसारिक भोग विलास अनित्य है, क्षणभंगुर है। प्रत्येक व्यक्ति को जन्म, व्याधि, वृद्धावस्था तथा मृत्यु से गुजरना पड़ता है। ये सभी दुख है। उनके लिए निवारण एवं निवारण का मार्ग खोजना गृहस्थ अवस्था में कठिन था। भिक्षु के लिए दुख से मुक्ति प्राप्त करना अपेक्षाकृत सरल होता है। बोधिसत्व संसार के कलह से आहत थे तथा शांति की खोज में थे। व्यक्ति एक दूसरे से कलह करते है। अपने भी एक दूसरे के प्रति शस्त्र धारण कर एक - दूसरे का खून बहाते है। बोधिसत्व ने लोगों को दुष्कर्म करते देखा। जैसे थोड़े जल में मछलिया तड़पती है वैसे ही लोगों को तड़पते देखकर उन्हें भय लगा। अंत में उन्होंने गृह त्याग का निर्णय किया।

संदर्भ ग्रंथ :

1) भदंत आनंद कौसल्यायन, जातक, प्रथम खंड, पृ. 127
2) रघुवीर सिंह अरविन्द, बुद्धचरित महासागर, पहला खंड, पृ . 149
3) रघुवीर सिंह अरविन्द, बुद्धचरित महासागर, पहला खंड, पृ . 150
4) रघुवीर सिंह अरविन्द, बुद्धचरित महासागर, पहला खंड, पृ . 154
5) मामराज सिंह, गौतम बुद्ध : जीवन और धर्म दर्शन, भाग-1, पृ . 130
6) रघुवीर सिंह अरविन्द, बुद्धचरित महासागर, पहला खंड, पृ . 168
7) मामराज सिंह, गौतम बुद्ध : जीवन और धर्म दर्शन, भाग-1, पृ . 130
8) रघुवीर सिंह अरविन्द, बुद्धचरित महासागर, पहला खंड, पृ . 180
9) मामराज सिंह, गौतम बुद्ध : जीवन और धर्म दर्शन, भाग-1, पृ . 140
10) रघुवीर सिंह अरविन्द, बुद्धचरित महासागर, पहला खंड, पृ . 186

रामायण-महाभारतीय आख्यानों का संस्कृत साहित्य में अनुशीलन

डॉ० सन्तोष देवी

संस्कृत सहायक प्राध्यापिका, चौ० ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय, फतेहपुर-पूण्डरी, कैथल (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

रामायण तथा महाभारत से सम्बन्धित सभी आख्यान गुह्य तत्त्वों तथा तथ्यों के प्रतीक हैं, उनके गर्भ में छिपे रहस्यों की खोज आवश्यक है। वस्तुतः आख्यान साहित्य समाज की सभ्यता, संस्कृति तथा इतिहास का दर्पण है। आख्यानों से धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, भूगोल आदि विषयों पर प्रकाश पड़ता है। आख्यानों के अध्ययन से तत्कालिक जीवनचर्या, आध्यात्मिक उन्नति तथा साहित्यिक सृष्टि के विषय में हमें अमूल्य सूचना प्राप्त होती है। अतः ये आख्यान किसी न किसी दृष्टि से मानव-जीवन के उपकारक रहे हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

मुख्य-शब्दः ब्रह्महत्या, कृतयुग, आध्यात्मिक उन्नति, साहित्यिक सृष्टि।

'रामायण' तथा 'महाभारत' में वर्णित आख्यानों का संस्कृत साहित्य में संस्कृत महाकवियों द्वारा अपनी रचनाओं में स्थल-स्थल पर किया गया अनुशीलन प्राप्त होता है। इनमें प्राप्त आख्यान देवताओं, ऋषियों, राजाओं, असुरों तथा अन्य घटनाओं से सम्बन्धित हैं। इनमें कुछ आख्यान संकेतात्मक हैं तथा कुछ बहुत विस्तृत रूप में प्राप्त होते हैं। संस्कृत साहित्य में प्राप्त इन आख्यानों से ये अनुभव होता है कि सम्भवतः महाकवि अपनी रचनाओं में विद्यमान नायक-नायिका तथा अन्य पात्रों के गुणों और चारित्रिक विशेषताओं को विभिन्न आख्यानों के संकेतों के माध्यम से प्रकट करना चाहता है। कहीं-कहीं पात्रों के शारीरिक अथवा मानसिक अवस्थाओं के वर्णन में अथवा अपने कथन की पुष्टि-हेतु भी कवि अपनी रचनाओं में इन आख्यानों का प्रयोग करते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में ऐसे ही कतिपय आख्यानों का संकेत करने का प्रयास किया गया है।

'रामायण' तथा 'महाभारत' में प्राप्त आख्यानों का मूल रूप अधिकांशतः वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। प्राचीनकाल से ही आख्यानविदों का एक सम्प्रदाय 'आख्यान-समय' रहा है जो वेदों में आख्यानों की सत्ता स्वीकार करता रहा है। यास्कीय 'निरूक्त' में इसका उल्लेख चार बार किया गया है।[1]

'रामायण'[2] में वर्णित इन्द्र द्वारा गौतम मुनि की पत्नी अहल्या की कामना से सम्बद्ध आख्यान का संस्कृत साहित्य में अनेक महाकवियों द्वारा अपने महाकाव्यों[3] में वर्णन किया गया है। इससे पूर्व यह आख्यान 'ऋग्वेद'[4] अथर्ववेद[5] शतपथ-ब्राह्मण[6], षड्विंश-ब्राह्मण[7] तैत्तिरीय-ब्राह्मण[8] लाट्यायन-श्रौतसूत्र[9] तथा रामायण के पश्चात् पुराणों[10] में प्राप्त होता है।

रामायण[11] में दिति के 'इन्द्रहन्ता पुत्र-मरुतों' का इन्द्र के सहायक बनने तथा भाई होने से सम्बद्ध आख्यान का उल्लेख प्राप्त होता है जिसका वर्णन अथवा अनुशीलन संस्कृत साहित्य में अनेक महाकाव्यों[12] में उपलब्ध होता है। इससे पूर्व यह आख्यान 'ऋग्वेद'[13] यजुर्वेद[14] ऐतरेय-ब्राह्मण[15], शतपथ-ब्राह्मण[16] तथा रामायण के बाद महाभारत[17] तथा पुराणों[18] में उपलब्ध होता है।

'रामायण' तथा 'महाभारत' में अश्वमेध-यज्ञ द्वारा इन्द्र के स्वर्गगमन विषयक आख्यान प्राप्त होता है। रामायण के अनुसार इन्द्र को वृत्रवधजन्या ब्रह्महत्या से मुक्ति दिलवाने के उद्देश्य से देवता अश्वमेधयज्ञ करते हैं जिसके प्रभाव से वह मुक्त होकर पुनः अपने

पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है।[19] एक अन्य स्थल पर मेघनाद द्वारा पराजित व अपदस्थ इन्द्र का ब्रह्मा के निर्देश पर यज्ञ करके पुनः स्वर्ग का शासन प्राप्त करने का[20] उल्लेख है।

'महाभारत' में इस आख्यान का संवर्धित रूप प्राप्त होता है। 'महाभारत' के 'उद्योग पर्व'[21] में इन्द्र का ब्रह्महत्या के भय से धारण किये गए गुप्तवास के पश्चात् इन्द्र का ऐरावत हाथी पर आरूढ होकर स्वर्ग जाना तथा वहाँ पर देवताओं, गन्धर्वों एवं अप्सराओं द्वारा उनके स्वागत तथा अर्चना किये जाने का उल्लेख है। पुनः 'शल्यपर्व'[22]ा में नमुचि के वध के पश्चात् ब्रह्महत्या के भय से लुप्त इन्द्र का ब्रह्मा के आदेशानुसार तथा 'शान्ति पर्व'[23] में त्रिशिरा व वृत्र के वध के पश्चात् बृहस्पति के आदेशानुसार अश्वमेध यज्ञ करके पुनः देवराज पद पर प्रतिष्ठित होने का उल्लेख है।

तदनन्तर 'ब्रह्मवैवर्त'[24], 'भागवत',[25] 'विष्णुधर्मोत्तरादि'[26] पुराणों तथा संस्कृत साहित्य के अंतर्गत महाकाव्यों में भी यह आख्यान प्राप्त होता है। महाकवि अश्वघोषकृत 'बुद्धचरित'[27] महाकाव्य में प्राप्त वर्णन के अनुसार 'राजा शुद्धोदन पुरवासियों द्वारा सम्मानित होकर नगर में गया, जैसे देवताओं द्वारा सम्मानित होते हुए इन्द्र, देवलोक में प्रवेश करता है।' इसी महाकाव्य में कवि अश्वघोष द्वारा यज्ञ का महत्त्व बताते हुए बिम्बसार के माध्यम से बुध को इन्द्र सम्बन्धी उपर्युक्त आख्यान की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि यदि आपको धर्म ही करना है तो यज्ञ कीजिए। यज्ञ करना आपका कुल धर्म हैं। यज्ञ करके इन्द्र, हाथी की पीठ पर बैठकर स्वर्ग को गया था।

अश्वघोषकृत 'सौन्दरनन्द'[28] महाकाव्य में स्वर्ग में आदित्यों द्वारा इन्द्र का अभिषेक किए जाने का उल्लेख है। श्रीहर्ष महाकवि द्वारा रचित 'नैषधीयचरित'[29] महाकाव्य में इन्द्र के द्वारा किए गए सौ यज्ञों के परिणामस्वरूप स्वर्गगमन का वर्णन प्राप्त होता है। इससे पूर्व वैदिक साहित्य के अंतर्गत उक्त आख्यान 'ऋग्वेद'[30] में बीज रूप में प्राप्त होता है। 'ऋग्वेद' के अनुसार इन्द्र को ब्रह्महत्याजन्य पाप से शुद्ध करके पुनः राज्याभिषक्त किया गया।

'वाल्मीकि-रामायण'[31] में महर्षि मनु से सम्बद्ध वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ मनु को विवस्वान् का पुत्र तथा प्रजापति कहा गया है। 'महाभारत'[32] में मनु के वेन, धृष्लु आदि दश पुत्रों का उल्लेख है जो दश क्षत्रियवंशों के प्रवर्तक माने गए हैं। इसी प्रकार का वर्णन हरिवंश[33] तथा 'भागवत पुराण'[34] में मिलता है। तदनन्तर इसी का अनुशीलन संस्कृत साहित्य के अंतर्गत संस्कृत महाकाव्यों में प्राप्त होता है। यहाँ 'बुद्धचरित' महाकाव्य में मनु को सूर्य पुत्र तथा मनु के राज्य को सुदृढ़, पापरहित तथा धर्मपरक राज्य के रूप में स्मरण किया गया है।[35] एक अन्य स्थल पर मनु को व्यापक तथा दस राष्ट्रों का निर्माता तथा अतीत अनागत के ज्ञाता विवस्वान् का पुत्र प्रजापति मनु कहा गया है।[36]

'सौन्दरनन्द' महाकाव्य में राजा मनु के कृतयुग में प्रजा बहुत प्रसन्न थी[37] - ऐसा वर्णन प्राप्त होता है जहाँ मनु का स्मरण किया गया है। कालिदासकृत 'रघुवंश' महाकाव्य में प्राप्त वर्णन के अनुसार, वैवस्वत् मनु वेदों में ऊँकार के समान राजाओं में प्रथम हुए[38], उनके पवित्र वंश में अतिपवित्र दिलीप नामक श्रेष्ठ राजा उत्पन्न हुए,[39] मनु की सन्तान अपने पराक्रम से रक्षित होती है[40] - इत्यादि अनेक स्थलों पर मनु का स्मरण किया गया है।

इससे पूर्व वैदिक साहित्य में 'ऋग्वेद'[41] में महर्षि मनु का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। 'शतपथ-ब्राह्मण'[42] में मनु-मत्स्य वृत्तान्त के अंतर्गत प्रलय के समय जब बाढ़ सभी प्राणियों को बहा ले गई थी उस समय एक मत्स्य ने कैसे मनु की रक्षा की थी तथा उसके पश्चात् इडा नाम्नी पुत्री के माध्यम से ही मनु मानवजाति के प्रथम जनक हुए-ऐसा वर्णन प्राप्त होता है।

'निरुक्त'[43] में यास्क ने सूर्य के रूप में विवस्वान् की और सूर्यपत्नी छाया सवर्णा के पुत्र के रूप में मनु की व्याख्या की है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में यह आख्यान बीजरूप में प्राप्त होता है।

'रामायण'[44] तथा 'महाभारत'[45] में महर्षि अगस्त्य तथा लोपामुद्रा, अगस्त्य द्वारा सेवित दक्षिण दिशा, अगस्त्य द्वारा विध्याचल को ऊपर बढ़ने से रोक देना तथा समुद्र को पीकर पुनः उगलना-इत्यादि आख्यान प्राप्त होता है जिसका परवर्ती संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों[46] में उल्लेख मिलता है तथा मूल रूप वैदिक साहित्य में 'ऋग्वेद'[47] में प्राप्त होता है।

'रामायण'[48] तथा 'महाभारत'[49] में विश्वामित्र द्वारा द्विजत्व (श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व) प्राप्ति से सम्बद्ध आख्यान प्राप्त होता है जिसका उल्लेख बाद में संस्कृत महाकाव्यों में[50] भी उपलब्ध होता है। इस आख्यान का मूल रूप 'ऋग्वेद'[51] में मिलता है तथा तत्पश्चात् 'निरुक्त',[52] 'ऐतरेय ब्राह्मण'[53], 'जैमिनीय', 'शांखायन', 'आपस्तम्ब' इत्यादि श्रौतसूत्रों[54] तथा पुराणों[55] में भी संकेतित है।

'रामायण'[56] तथा 'महाभारत'[57] में राजा नहुष द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति एवं सर्प रूप में स्वर्ग से पतन से सम्बद्ध आख्यान मिलता है जिसका वर्णन संस्कृत साहित्य के अंतर्गत महाकाव्यों[58] तथा कथाकाव्य 'पञ्चतन्त्र'[59] में भी उपलब्ध होता है।

इस आख्यान का मूल रूप वैदिक साहित्य में 'ऋग्वेद'[60] में प्राप्त होता है। तत्पश्चात् 'तैत्तिरीय-संहिता',[61] 'तैत्तिरीय-ब्राह्मण',[62] 'ऐतरेय-ब्राह्मण'[63] तथा पौराणिक साहित्य[64] में मिलता है।

'रामायण'[65] तथा 'महाभारत'[66] में राजा त्रिशङ्कु का विश्वामित्र द्वारा शरीर सहित स्वर्ग-गमन तथा नूतन सृष्टि रचना से सम्बद्ध आख्यान प्राप्त होता है जो बाद में संस्कृत साहित्य के अंतर्गत श्रीहर्षकृत 'नैषधीयचरित'[67] महाकाव्य में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है। इससे पूर्व यह आख्यान वैदिक साहित्य में 'तैत्तिरीयोपनिषद्'[68] में तथा बाद में 'पुराणों'[69] में संकेतित है।

'रामायण'[70] तथा 'महाभारत'[71] में वैदेह जनक का राज्योपभोग तथा मोक्ष से सम्बद्ध आख्यान प्राप्त होता है जो बाद में संस्कृत साहित्य में 'बुद्धचरित' तथा 'रघुवंश' आदि महाकाव्यों[72] में उपलब्ध होता है। इससे पूर्व यह आख्यान वैदिक साहित्य के अंतर्गत 'शतपथ',[73] 'जैमिनीय', 'तैत्तिरीय', तथा 'कौषीतकि' आदि ब्राह्मण-ग्रंथों[74], 'ऐतरेयारण्यक'[75] 'बृहदारण्यकोपनिषद्'[76] तथा अन्त में पुराणों[77] में प्राप्त होता है।

'रामायण'[78] तथा 'महाभारत'[79] में इन्द्र द्वारा वृत्र-वध तथा इन्द्र द्वारा जलों को प्रवाहित करने से सम्बन्ध आख्यान उपलब्ध होता है जो बाद संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों[80] में प्राप्त होता है तथा इससे पूर्व यह आख्यान वैदिक साहित्य में 'ऋग्वेद',[81] 'ऐतरेय-ब्राह्मण',[82] 'शतपथ-ब्राह्मण',[83] 'ताण्ड्य-ब्राह्मण',[84] 'ऐतरेय-आरण्यक',[85] 'निरुक्त'[86] तथा तदनन्तर पुराणसाहित्य[87] में भी मिलता है।

'रामायण'[88] तथा 'महाभारत'[89] में भगवान् विष्णु की सहायता से मन्दराचल को मथानी बनाकर तथा वासुकी नाग को रस्सी बनाकर जब देवों और दानवों ने मिलकर क्षीरसागर का मन्थन किया, उस समय सागर से जो रत्न निकले, उनकी संख्या तथा नामों के विषय में विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है जिसका अनुशीलन संस्कृत महाकवियों ने अपने महाकाव्यों[90] में किया है। इससे पूर्व उक्त आख्यान 'ताण्ड्य-महाब्राह्मण'[91] तथा रामायण-महाभारत के पश्चात् 'हरिवंश'[92] तथा पुराणों[93] के अंतर्गत उपलब्ध होता है।

इस प्रकार रामायण तथा महाभारत में प्राप्त सभी आख्यानों का अनुशीलन परवर्ती संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। इन सभी के आख्यानों का सम्बन्ध मूल रूप से वैदिक साहित्य के साथ रहा है क्योंकि वैदिक संहिताओं के अध्ययन से हमें वैदिक युग के इतिहास तथा आख्यानों की सत्ता का प्रमाण उपलब्ध हो जाता है। वेदों में प्राप्त आख्यानों के विषय में आचार्य यास्क का यह कथन ध्यातव्य है "ऋषि की स्वदृष्ट अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उसे आख्यान से संयुक्त करने में प्रीति होती है।"[94]

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि रामायण तथा महाभारत से सम्बन्धित सभी आख्यान गुह्य तत्त्वों तथा तथ्यों के प्रतीक हैं, उनके गर्भ में छिपे रहस्यों की खोज आवश्यक है। वस्तुतः आख्यान साहित्य समाज की सभ्यता, संस्कृति तथा इतिहास का दर्पण है। आख्यानों से धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, भूगोल आदि विषयों पर प्रकाश पड़ता है। आख्यानों के अध्ययन से तत्कालिक जीवनचर्या, आध्यात्मिक उन्नति तथा साहित्यिक सृष्टि के विषय में हमें अमूल्य सूचना प्राप्त होती है। अतः ये आख्यान किसी न किसी दृष्टि से मानव-जीवन के उपकारक रहे हैं और भविष्य में भी रहेंगे।[95]

संदर्भ

1. निरुक्त, 7.7; 11.19; 34; 12.41
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, अध्याय 49
3. बुद्धचरित, 4.72; सौन्दरनन्द, 7.25; रघुवंश, 11.33, 34; नैषधीयचरित, 17.43; 18.21; 20.70
4. ऋग्वेद, 6.47.18
5. अथर्ववेद, 11.2.17
6. शतपथ ब्राह्मण, 3.3.4.18
7. षडविंश-ब्राह्मण, 1.1
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1.12.4
9. लाट्यायन श्रौतसूत्र, 1.3.1

10. ब्रह्मपुराण, अ॰ 8.7; ब्रह्मवैवर्त पु॰, 61.12-57
11. वा॰ रा॰, बाल॰ 46.1-23; 47.1-10
12. बु॰ च॰, 5.27; सौ॰ 1.62; 2.54; कुमार॰, 2.25; नैषध॰ 9.23
13. ऋ॰, 1.23.7; 1.100.7; 1.171.3-6; 1.23.8; 5.55.3; 1.64.3; 1.170.2; 8.96.7-9; 1.133.6; 2.34.2; 5.52.16
14. यजु॰, 17.40,41।
15. ऐ॰ ब्रा॰, 3.16, 20; 3.2.9
16. श॰ ब्रा॰ 2.5.1.13; 4.3.3.7; 2.5.3.2, 3
17. महाभारत, हरिवंश, 3.97-109
18. वायु॰ (उत्तर), 6.86-134; मत्स्य॰, 7.2-65; अग्नि॰, 19.19-21; विष्णु॰, 1.21.30-40; देवी भा॰, 4.3.22-45; ब्रह्म॰, 124.3-106।
19. वा॰ रा॰, उत्तर॰, 86.3-19
20. तदेव, 30.1-52
21. महा॰ उद्योग॰, 18.1-19
22. महा॰ शल्य॰, 42.29-36
23. तदेव, शान्ति, 329.28-41
24. ब्रह्मवै॰, द्वितीय खण्ड, 59.50, 51
25. भाग॰, 6.13.18-21
26. विष्णु ध॰, 24.22-30
27. बु॰ च॰, 1.87; 5.27; 10.39
28. सौ॰, 1.61
29. नैषध॰, 6.82
30. ऋ॰, 8.95.7-9
31. वा॰ रा॰, बाल॰, 70.21; अयोध्या॰ 110.6
32. महा॰, आदि॰, 70.11.14
33. हरिवंश॰, 7.33
34. भाग॰, 9.1.11.12
35. बु॰ च॰, 2.16
36. तदेव, 8.78
37. सौ॰ 3.41
38. रघु॰ 1.11
39. तदेव, 1.12
40. तदेव, 2.4 : स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूति।
41. ऋ॰, बालखिल्य, 3.4.1.68
42. श॰ ब्रा॰, 18.1
43. नि॰, 12.34
44. वा॰ रा॰, अरण्य॰, 11.79-85
45. महा॰, वन॰, 97.99; 99.100; 161.60; 101.105; 103.10-11।
46. बु॰ च॰, 4.73; 9.26; रघु॰, 6.61; 12.31; 15.54-55; 16.72; नैषध॰, 8.45; 6.2; 4.51, 58।
47. ऋ॰, 1.179; 1.165-171
48. वा॰ रा॰,बाल॰, 34.5, 6; 51.18,19; 57.5; 63.5; 65.31।

49. महा॰ अनुशासन॰, 4.6-20
50. बु॰ च॰, 1.44, 4.20; सौ॰ 7.35; रघु॰, 11.1, 2, 5, 6,7,21,23,24
51. ऋ॰, 3.33.5
52. नि॰, 2.25
53. ऐ॰ ब्रा॰, 7.18
54. जै॰ श्रौ॰ सू॰, 22; शां॰ श्रौ॰ सू॰, 15.27; आप॰ श्रौ॰ सू॰, 5.10.11।
55. भाग॰, 9.15.6,7; पद्म॰ स्वर्ग॰, 1.35।
56. वा॰ रा॰, उत्तर॰, 56.28,29।
57. महा॰ आदि॰, 70.26-29; उद्योग॰, 10.41-17.16; शान्ति॰, 329.28-38; अनुशासन॰, 102.4-103.23; 103.23-29।
58. बु॰ च॰, 2.1, 11.4; सौ॰, 11.44।
59. पंच॰, 3.269।
60. ऋ॰, 1.32.14; 7.6.5; 10.63.1; 10.80.6; 7.95.2
61. तै॰ सं॰, 2.5.3.6
62. तै॰ ब्रा॰, 2.4.7.9
63. ऐ॰ ब्रा॰, 3.15
64. मत्स्य॰, 24.34; वायु॰ 92.2, 93.12-13; अग्नि॰, 274.16; कूर्म॰, 22.4; विष्णु॰ 4.11.5
65. वा॰ रा॰, बाल॰ 59, 60; 7, 60.32
66. महा॰ आदि॰, 71.34; सभा॰, 12.10 के बाद (दाक्षिणात्य पाठ); तदेव, अनुशासन॰, 3.9
67. नैषध॰, 2.102; 11.3; 17.111
68. तै॰ उ॰, 1.10.1
69. ब्रह्म॰, 7-8; विष्णु॰, 4.3.21-24; शिव महा॰, 37.46-59; 38.13-20; देवी॰ भाग॰, 7.10.7-58; 7.11, 12, 13, 14.1-23
70. वा॰ रा॰, बाल॰, 44-45
71. महा॰, शान्ति॰, 12.100; आश्वमेधिक, 32-33
72. बु॰ च॰, 1.45; 9.19; 20,21; 12.67; रधु॰, 11.47, 48, 49।
73. श॰ ब्रा॰, 11.3.1.2-4; 11.6.2.1-10; 11.6.3.1-11।
74. जै॰ ब्रा॰, 1.19; तै॰ ब्रा॰, 3.10.9.9; कौ॰ ब्रा॰, 8.1
75. ऐ॰ आ॰, 25.29
76. बृ॰ आ॰ उ॰, 3.1.1-2; 3.4.1-4; 5.14.8।
77. विष्णु॰, 4.5.1-22; भाग॰, 9.13.1-13; वायु॰, 89.2, 60.32, 89.5
78. वा॰ रा॰, उत्तर, 84-86
79. महा॰ उद्योग॰, 9.45-59; 10.1-140; शान्ति॰, 279.13.34; 280-282
80. बु॰ च॰, 8.13; रघु॰, 9.22; कुमार॰, 2.22; किरात॰, 12.26; शिशु॰, 11.56
81. ऋ॰, 1.22.19; 1.6.17; 1.145.6; 1.155.1-2;, 1.156.4; 4.2.4; 4.8.11; 1.132.4-15; 1.52.6-10; 8.100.12
82. ऐ॰ ब्रा॰, 3.20-21
83. श॰ ब्रा॰, 1.1.3.4-5
84. तां॰ ब्रा॰, 3.1.2
85. ऐ॰ आ॰ (सायण भाष्य), पृ॰ 3
86. निरुक्त, 2.16-17।
87. देवी भाग॰, अ॰ 6.9-13; अग्नि॰, 276.12-21, पद्म॰, 19.62-100

88. वा॰ रा॰, बाल॰, 45.15-45
89. महा॰, आदि॰, 17,18,19
90. कुमार॰ 8.23, रघु, 1.12; 13.4, 6.49; 10.6, 7, 10; 12.70
91. शिशु॰, 11.8; 2.107; 3.9; 3.82; 14.78; नैषध॰, 1.64; 4.48, 50,60,61; 6.80; 16.30; 22.43; 22.133।
92. तां॰ महाब्रा॰, 18.1.1.1-5
93. हरिवंश, भविष्य॰, 30.5.32; सृष्टि॰ 4.78
94. पद्म॰ सृष्टि॰ 4.1-78; विष्णु॰, 1.9.75-149;
मतस्य॰, 249-51, स्कन्द॰, माहेश्वर॰ 9-13; शिव महा॰, 16.1-22, ब्रह्माण्ड॰, 25.45-87; ब्रह्म॰, 106.3-34; भाग॰, 8.6-14; नरसिंह॰, 38.1-44।
95. नि॰, 10.10; 46; ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता।

स्त्री अंत:करण की भीतरी यात्रा- थेरीगाथा

ज्योति

शोधार्थी, जे.एन.यू., दिल्ली

देह के भीतर और उससे बाहर एक प्रक्रिया चलती रहती है। प्रक्रिया की खासियत यह होती है कि वह आपको शुरुआत और अंत तक न सिर्फ पहुंचाती है बल्कि वह उन बिंदुओं का भी उद्घाटन करती है जो प्रक्रिया-यात्रा में शामिल होते रहे. यदि हम अपने अंतर्मन में झांके तब एक विराट जगत जीवंत और गतिमान रहता है. वहाँ अंतर्मन के विविध पहलुओं के सिरे उलझने या सुलझने की बेताबी लिए रहते हैं. और जब बाह्य जगत में निकल कर देखते हैं तब भी एक विराट जगत जीवंत और गतिमान रहता है. किसी व्यक्ति का जीवन इन दोनों के बीच मौजूद है. लेकिन क्या स्त्री का जीवन भी इन्हीं दो बिन्दुओं से होकर गुजरता है, यही प्रश्न है जो स्त्री को एक अलग जगह ले जाकर स्थापित करता है. स्त्री की यही स्थापना यह मांग करती है कि उसके द्वारा दिए गए उसके निजी, सामाजिक, आध्यात्मिक, दैहिक, कलात्मक आदि बयानों को बार-बार देखा और समझा जाए.

अंतर्मन का पर्व एकांत अवश्य होता है पर स्त्री के अंतर्मन में एकांत की नसीबी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और उसके संबंधों के बीच से होकर समझने की गुजारिश करती है. वास्तव में स्त्री और निर्वाण को एक साथ देखना बहुत महत्व की बात है. थेरियों की गाथाएं हमें इसी बात का अवलोकन करने के लिए बेहतर पृष्ठभूमि देती हैं. थेरियाँ अपने अंत:करण में उन सब संरचनाओं के बीच से होकर गुजर रही हैं जो सामाजिक, शारीरिक, भावात्मक, आर्थिक और आध्यात्मिक इत्यादि पक्ष लिए हुए हैं. जिन थेरियों के आत्मकथात्मक गीतों की यहाँ चर्चा होगी, उनकी संख्या सीमित ही रखने का प्रयास होगा. थेरीगाथा में तिहत्तर थेरियाँ अपने गान के साथ उपस्थित हैं. उनके इन आत्म-गान में विविध रंग खिले हुए दिखाई देते हैं.

स्त्री लेखन की यात्रा में थेरीगाथा अपनी तरह का एक अनूठा ग्रंथ है. यह आज भी स्त्री जाति के लिए धरोहर है. इसमें थेरीगाथा की भिक्षुणियाँ और उनके निर्वाण की दास्तान में एक बांध दिखाई देता है जो उनके अंतर्मन से जुड़ा हुआ है. अंतर्मन की छवियाँ क्या हैं, इस पर पर्याप्त संवाद हो सकता है. किसी भी व्यक्ति के जीवन में उसके अंतर्मन के निर्माण में दु:ख और दर्द महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. "कोई भी आदमी इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि समस्त चेतन जीवन दु:ख से सना हुआ है. हम ऐसे संसार में जी रहे हैं जो बुराइयों और दु:ख से भरा हुआ है. यदि दु:ख न होता, तो जो जीवन संघर्ष सदा से चला आ रहा है उस जीवन संघर्ष की कहीं आवश्यकता न होती."[1] स्त्रियों के हिस्से भी यही संघर्ष, दु:ख और पीड़ा आती रही है. शास्त्रों में उन्हें हर तरह के इल्जाम से नवाजा गया है. उन्हें और उनके शरीर को पाप माना गया है. लेकिन कभी स्त्री-मानुष अंतर्मन के भीतर की यात्रा करने की चेष्टा पर सोचा तक नहीं गया.

थेरियों का गान, एक ओर जहाँ उसी दु:ख-दर्द को प्रकट करता है जिससे स्त्रियाँ भी परे नहीं तो वहीं दूसरी ओर उनकी विभिन्न बेड़ियों को भी बताता है जहाँ वे कैद हैं. वास्तव में स्त्री को मनुष्य न मानने की जिद्द बहुत गहरी है. और इसी बिंदु पर रुकते हुए थेरियाँ अपने जीवन से गुजर जाने की इजाजत अपने गान से देती हैं. यह एक भीतरी यात्रा भी है. जीवन से जूझने की या फिर स्व मन और इच्छाओं के आगे परास्त न होने की. स्त्रियों के लिए स्वयं बुद्ध के कथन मनुष्यता को प्रकट करने वाले हैं. वे कहते हैं, "आनंद! मुझे गलत तौर पर मत लो. मेरा मत है कि पुरुषों की तरह ही स्त्रियाँ भी निर्वाण प्राप्त कर सकती हैं. मैं पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा किसी भी तरह विशेष नहीं मानता."[2] थेरी स्त्रियाँ अपने गीतों में बेहद परिपक्व व्यक्तित्व के साथ उपस्थित होती हैं. इसलिए उनके गीत उन अंतर्मन के चित्रों समृद्ध प्रमाण हैं. प्रत्येक थेरी बहुत ही महत्वपूर्ण आध्यत्मिक अभिव्यक्ति दे रही है.

जिन थेरियों का यहाँ विवरण दिया गया उनकी भीतरी मनोवैज्ञानिक और भिक्षुणी रूप की यात्रा में कुछ महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट दिखाई देती हैं. पहली देह की पीड़ा, दूसरी चित्त की अशांति अथवा उसकी मलिनता, तीसरी स्वजन की मृत्यु का दु:ख और वर्तमान में मौजूद मनुष्य शरीर का क्षरण. इन कारकों का उनके मन और जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव उन्हें संघ और बुद्ध के धम्म की तरफ ले जाता है. वहां वे साधना कर जन्म लेने की रीति से मुक्त हो, निब्बान की प्राप्ति करती हैं.

इन थेरियों के जीवन गीत में चार बिंदु स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं. आरंभ में उनका जीवन अर्थात उनकी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति, फिर जीवन बदलकर रख देने वाली होनी/अनहोनी घटना और उनका भटकना. फिर बुद्ध द्वारा उन्हें मानव जीवन के सच्चे अर्थों का ज्ञान करवाना. अंत में बुद्ध और संघ की शरण में जाना. निर्वाण उनकी कथा का अंतिम बिंदु है. निर्वाण प्राप्ति की उनकी गीत रूपी कहानियाँ उनके जीवन के विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरती हैं जो जन्म-जीवन के यर्थाथ से जुड़े हैं. एक अन्य बात पर भी ध्यान देना बेहतर होगा कि इन थेरियों के जीवन प्रवाह में चमत्कार नहीं मिलता. इसके अलावा थेरियों की गान अभिव्यक्ति में एक खास तरह की शब्दावली की महक आती है. इस शब्दावली के चलते इन गानों में मानवीय स्त्री-जीवन अपने नैसर्गिक रंग के साथ उपस्थित होता है.

इन बिंदुओं के साथ ही कुछ थेरियों की जीवन-घटना में अंतर्मन के विविध रूपों को देखने की कोशिश की जा सकती है. पहले भाग में उन स्त्रियों को लिया जा सकता है जो देह की पीड़ा से पीड़ित थीं. स्त्री के देह को सेक्सुअलिटी के दायरे में रखकर ढेरों बहसें होती रहती हैं पर स्त्री ने खुद के शरीर को किन अर्थों में लिया है इसे जानने की इच्छा देखने में ज्यादा नहीं आती. स्त्री-देह-दु:ख के प्राचीनतम अनुभवों के लिए हम कुछ थेरियों का रुख कर सकते हैं. इसके बाद स्त्रियों ने जब संघ में प्रवेश किया तब उनके अशांत चित्त के रूप का वर्णन वे करती हैं. ये चित्र बेहद सहज हैं. अंत में स्वजन मृत्यु से अस्थिर जीवन की शिकार भिक्षुणियों के उदाहरणों पर चर्चा करेंगे. इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चिंतन से इन थेरियों के अंतर्मन के रूप समझ पाएंगे.

देह की पीड़ा

एक स्त्री के शरीर और मन के भीतरी उथल-पुथल का प्रवाह होता है. थेरी सुमंगला माता ने खुद के शरीर की कमजोरी की चिंता को कैसे जाहिर किया है यह उनके उद्गार से समझा जा सकता है. वे कहती हैं- "मेरे स्वामी के पास उसके बनाए हुए रक्खे छातों की डंडियों से भी अधिक क्षीण मेरी देह थी. अब उस जीवन की आसक्तियों और मलों को मैंने छोड़ दिया! मैं आज वृक्ष-मूलों में ध्यान करती हुई जीवनयापन करती हूँ. अहो! मैं कितनी सुखी हूँ. मैं कितने सुख से ध्यान करती हूँ!"[3] ऐसी ही एक अन्य थेरी, चित्रा का भी उद्गार है. वे कहती हैं, "मैं दु:ख मग्न, बलहीन और कड़ी बीमारी में ग्रस्त थी, फिर भी लकुटी की सहायता से मैं पर्वत की चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगी."[4] सोणा का गीत देखिए, "रूप वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के मिलन-क्षेत्र इस शरीर में, मैंने दस पुत्रों को पैदा किया! फिर दुर्बल और जीर्ण होकर मैं एक भिक्षुणी के पास गई."[5]

इनके ये बयान स्त्री शरीर और उसकी कमजोरी की बात करते हैं. स्त्रियों के शरीर को भोग की तरह लिया जाता है. जहाँ सुंदरता का पान अथवा भोग मुख्य है. स्त्री या तो अप्सरा है या फिर माता. स्त्री का देह वास्तव में कितना महत्वपूर्ण होता है, यह वह बताती है. मन के भीतर की आसक्तियों और देह के बीच का रिश्ता जुड़ा हुआ है. वह अलग-अलग नहीं है. स्त्री स्वास्थ्य पर मौजूदा दौर में भले ही थोड़ी बहुत चर्चा होने लगी है पर ये चर्चा इसलिए अधिक होती है कि स्त्रियाँ स्वस्थ नहीं हुई तो परिवार जैसी संस्था का क्या होगा? हल्दी चंदन का लेप लगाओ वाले समाज में स्त्रियाँ शरीर से भी कमजोर होती हैं, इस बात की समझ नहीं हैं. टीवी पर अथवा सिनेमा के सहारे स्त्रियों के चेहरे के रंग और चमक आज भी बहुत मायने रखती हैं. 'क्षीण देह', 'कड़ी बीमारी से ग्रस्त देह' और 'शिशु जन्म के बाद का दुर्बल देह', ये उद्गार स्त्री मन की उस दशा को गंभीरता से प्रकट करते हैं जो आज भी चर्चा का ठीक से विषय नहीं बन पाते. स्त्री देह की थकान जैसा शब्द आज भी शब्दकोशों में अपनी जगह ठीक से नहीं बना पाया है. वास्तव में मानव शरीर के अस्तित्व से ही आध्यत्मिकता जुड़ी है. हम अपनी इंद्रियों से ही समस्त जगत का भोग अथवा अनुभव करते हैं. समाज में स्त्री को उसके शरीर से अलग कर देखने का अभ्यास नहीं है. स्त्री का यदि कहीं वर्णन भी होता है तो उसके अंगों को सौंदर्य के खांचें में पहले डाला जाता है. पर जब बात स्त्री की आती है तो वह अम्बपाली की तरह अपने स्व सौंदर्य से विरक्त हो जाती है.

चित्त की अशांति

मन की चंचलता को लेकर इन स्त्रियों ने अपने गान में ढेरों बातें की हैं. स्त्री ने अपने मन के घर में बहुत समय तक खिड़की और दरवाजों को लगाने के लिए संघर्ष किया है. उसे प्रदर्शन ने करने की हिदायत दी जाती रही है. दु:ख, पीड़ा, उबाल, गुबार, आंसू, ठठा, आदि की अभिव्यक्ति की कितनी ही मनाही होती रही हैं. मर्यादा और लोकलाज के फ्रेम में घर के भीतर जहाँ अजनबी जा नहीं सकते, उस दीवार पर जबरन टांग दी गई स्त्री ही रही है. लेकिन थेरियाँ कुछ मायनों में काफी अलग हैं. बहुत सी थेरियों के गीतों में वे भीतर से बाहर की तरफ उन्मुख हैं. वह जंगल में जा कर तपस्या कर रही हैं. प्रेमी के साथ स्वतंत्र संबंध में बंध रही हैं. इतना ही नहीं जो थेरियाँ मुक्त हैं वे अपनी शिष्याएँ के साथ दृष्टिगत होती हैं. यह अपने आप में आकर्षित करने वाला बिंदु है. रोक-टोक या रुकावट-अवरुद्ध जैसे शब्द नहीं मिलते. अधिक से अधिक ध्यान बौद्ध धर्म के केंद्रीय दर्शनों से जुड़ी बातों पर ही दिया गया है. मन की तीव्र चंचलता या मार की दी जा रही लालच से भरी हुई बातों को वे न सिर्फ नियंत्रित कर रही हैं बल्कि सिरे से खारिज कर नकार रही हैं.

मित्रा नाम की थेरी का गीत है, "मैंने ह्रदय को जलाने वाली आशाओं को ही दूर फेंक दिया है."[6] इस बात पर यहाँ ध्यान देना होगा कि बौद्ध धर्म का दर्शन निर्वाण प्राप्ति की बात करता है. यहाँ जीवन के सभी दुखों और सुखों, आशा, निराशा, जैसे आदि मानवीय भावों के प्रति एक ऐसा रुख अपनाने पर जोर था जिससे व्यक्ति मन की शांति के साथ इस जीवन और मरण के आवागमन से मुक्त हो जाए. मानव चित्त अस्थिर रहा है. उसमें हर क्षण तरह-तरह के विचार, ईर्ष्या, द्वेष, लालच, इच्छाएँ दस्तक देकर इस अस्थिरता को बनाए रखती हैं. थेरियाँ इस बात को बड़ी ही परिपक्वता से समझती हैं और उस स्तर पर खुद के ह्रदय को ले जाती हैं जहाँ यह अस्थिरता, स्थिरता के मूल्य से भी आगे पहुँच जाती है. जैसे अभयमाता का कथन है, "मेरी जलन मिट गई. निर्वाण को प्राप्त कर आज मैं परम शांत हूँ."[7] यह जलन एक प्रतीक है मानवीय तृष्णाओं का. निर्वाण वह स्थिति है जहाँ थेरियाँ इन सब से ऊपर उठ चुकी हैं.

सवाल यहाँ यह किया जाता है अथवा उठाया जाता है कि क्या मानव जीवन में इच्छा रखना या मन मुताबिक जीना गलत है? अथवा दुनिया में मौजूद आनंद अथवा रंगों का भोग ठीक नहीं है? ये सभी सवाल मन द्वारा संसार के भोग से ही जुड़े हैं. इस तरह के सवाल महामना बुद्ध के समय भी होते थे. वे भली प्रकार इन सवालों और इल्जामों से परिचित थे. एक जगह वे कहते हैं, "तथागत सत्य के उपदेश के माध्यम से लोगों का मार्ग दर्शन करते हैं. वे लोगों को आत्मसंयम, धर्माचरण और शुद्ध ह्रदय रखने का उपदेश देते हैं."8 कमजोर इच्छा शक्ति वाले मानव के लिए यह आसान नहीं था. थेरियों के लिए भी. मन पर वश करना सबसे कठिन कामों में से एक है. थेरियाँ इसे साधना अभ्यास से हासिल कर रही हैं. उदाहरण के लिए श्यामा का कथन बहुत सुन्दर है. वह कहती है, "चार पांच बार, अप्राप्त चित्त शांति को प्राप्त करने के लिए और विद्रोही मन को वश में करने के अभिप्राय से, मैं विहार से बाहर निकल कर इधर-उधर टहलने लगी."[9] ऐसे ही अन्य थेरियों के गीति वाक्य पढ़ने को मिलते हैं. कई खयाल संवाद रूप में थेरीगाथा में आए हैं. मार के साथ किये जा रहे संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण हैं. कुछ देर के लिए मार को यदि इस चित्त का प्रतीक मान लिया जाए तो बहुत से संवाद स्पष्ट हो जाते हैं.

स्वजन मृत्यु के दु:ख

अगला बिंदु बौद्ध धर्म के आधारभूत सत्यों में से एक सत्य से जुड़ा हुआ है. "जन्म लेना दु:ख है, बुढ़ापा दु:ख है, रोग दु:ख है, मृत्यु दु:ख है. जो कुछ हम इच्छा हैं उसकी अप्राप्ति दु:ख है, जो कुछ हम इच्छा नहीं करते उसकी प्राप्ति दु:ख है और जो कुछ हमें प्रिय है, उस का वियोग सब से बड़ा दु:ख है."[10] कुछ थेरियों के अंतर्मन में स्वजन की मृत्यु से उपजा दु:ख दिखाई देता है. इस दु:ख का मानवीय संताप का माप बहुत ही गहरा है. लोक में प्रचलित चित्रों में यदि इस दु:ख को दो नजरियों से देखें तो पाते हैं कि पुरुष जब अपने बच्चे को खोता है तो उसकी प्रतिक्रिया अलग दिखती है और स्त्री की बिलकुल अलग. थेरी स्त्रियाँ संघ में शामिल होने पूर्व बेहद प्रतिक्रियाशील हैं. दु:ख के तीव्रतम ताप को सहती हुई वे अपने शिशु के मरने पर विक्षिप्त हो जा रही हैं.

थेरीगाथा में पटाचारा की कथा ध्यान खींचने वाली है. कथा में वह प्रियजनों की अकस्मात मृत्यु से दर-दर भटक कर विक्षिप्त हो जाती है. वह इतनी अधिक मानसिक रूप से असंतुलित हो जाती है कि शास्ता से कहती है, "देव! मेरी रक्षा करो! मेरे एक पुत्र को बाज मार गया, दूसरा पुत्र नदी में डूब कर मर गया. पति रास्ते में मर गया. मेरे पिता, माता, भाई एक ही चिता में जलाए गए. देव! मेरी रक्षा करो!"[11] कृशा गौतमी शारीरिक रूप से अत्यंत कमजोर स्त्री थी. विवाह के बाद पुत्र हुआ तब उसका आदर होने लगा पर पुत्र की मृत्यु होने से उसका दिमागी संतुलन बिगड़ गया. वह अपने एक उद्‌गार में कहती है, "स्त्री जन्म दु:ख है, ऐसा मनुष्यों के चित्त संयमी बनाने वाले उन सारथी स्वरुप भगवान बुद्ध ने कहा है!"[12] ठीक इसी प्रकार चंद्रा कहती है, "विधवा और नि:संतान, मैं पहले बड़ी मुसीबत में पड़ी थी. मित्र मेरे कोई नहीं थे, जाति वाले मेरे कोई नहीं थे. भोजन और वस्त्र भी मैं नहीं पाती थी. लकड़ी और भिक्षा-पात्र लेकर मैं घर से घर भिक्षा माँगती फिरती थी."[13] इसी प्रकार एक अन्य थेरी का दु:ख गीत है, "वाशिष्ठी पेज 45- पुत्र शोक से दुखी, विक्षिप्त चित्त वाली, संज्ञा विहीन, नंगी, बालों को बिखेरे हुए, मैं इधर उधर घूमती थी."[14]

ये थेरियाँ ऐसे ही नाम मात्र के लिए अर्हत नहीं बन जा रही थीं. बल्कि अर्हत बनने से पहले वे दु:ख, संताप, दर्द, आंसू, की बेहद कठिन प्रक्रिया से होकर निकल रही थीं. इसके उपरांत वे बुद्ध द्वारा दिए जा रहे प्रकाशयुक्त ज्ञान के बाद निष्ठा से साधना में लीन हो बुद्ध का शासन पूरा करती हैं. इसी बिंदु पर तीसरा सत्य उद्‌घाटित भी होता है. "दुखों का निवारण संभव है. दु:ख के निवारण से अपार आनंद की अनुभूति होती है. यह अनुभूति तब होती है जब प्राणी अपनी समस्त तृष्णाओं, अनुराग और आसक्ति पर विजय पा लेता है, मन से वासना रूपी विष वृक्ष को समूल उखाड़ फेंकता है तथा अपने अंतस में चल रहे कलह को धैर्यपूर्वक शांत कर लेता है."[15] यह शांत मन थेरियों के गान गीतों में भी झलकता है. उदहारण के लिए उत्तमा का स्वगान देखिए, "उस महाभागिनी के उपदेश को सुनकर, उसके अनुशासन के अनुसार ही, मैं एक सप्ताह भर एक आसन पर बैठकर ध्यान के आनंद का अनुभव करती रही. प्रीति और सुख से मेरा चित्त शांत था, मेरा अज्ञानान्धकार छिन्न हो गया था.[16]

आज का समय जीवन और व्यक्ति पर अधिक यकीन करता है. आध्यत्मिकता के लिए जगह-जगह शिविर लगाए जाते हैं. ये शिविर 'स्प्रिचुअल सेंटर' के नाम से पुकारे जाते हैं. जीवन बीमा निगम जैसे संस्थान मरने के बाद की योजना लेकर यह याद दिलाते रहते हैं कि आप के मर जाने के बाद भी जीवन रहता है. उनका नारा भी है, "जीवन के साथ भी और जीवन के बाद भी!" इसलिए आज की थेरियों को मौजूदा वक्त के अनुसार अपने जीवन को सुरक्षित और विकसित बनाने के लिए उसी तरह का तीखा सामना करना होगा जैसे थेरियों ने मार का किया है. क्योंकि यदि मार को किसी तरह परास्त कर दिया जाए तब थेरियों को बेहतर जगह और वक्त मिलेगा, निब्बान के लिए. इसके अतिरिक्त बुद्ध के शब्दों को करीब से पढ़कर समझना होगा. उनके कहे कथन आज भी अमूल्य हैं. महानिर्वाण के समय बुद्ध ने सुभद्र को उपदेश दिया था. वह परिनिर्वाण सूत्त में संगृहीत है. उसी सूत्त का अंतिम वाक्य है, "व्ययधम्मा संखारा अप्पमादेन सम्यादेथ!" इसका अभिप्राय है, "संसार नाशमान है, अपने लक्ष्य का संधान निरालस भाव से करो."[17] आधुनिक स्त्री के भीतर एक यात्रा चल रही है. हजारों चित्र खुद से उभर रहे हैं. यह भी सच है कि आज की स्त्री थेरियों की तरह अपने गीतों की रचना कर रही हैं. इन गीतों में स्त्री मन के चित्र मौजूद हैं.

संदर्भ ग्रंथ:-

1. http://www.tpsgnews.com
2. डॉ. भीमराव आंबेडकर, बुद्ध और उनका धर्म, इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर एजुकेशन, जापान, डिजिटल पब्लिकेशन, पृ. 93.
3. भरतसिंह उपाध्याय, थेरीगाथा, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1950, पृ. 10-11
4. वही, पृ. 12
5. वही, पृ. 32-33
6. वही, पृ. 13
7. वही, पृ. 34

8. पी. नरसु लक्ष्मी, बौद्ध धर्म का सार, (भूमिका) डॉ. भीमराव आंबेडकर, अनु. भदंत आनंद कौसल्यायन, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति, नागपुर, पृ. 151
9. भरतसिंह उपाध्याय, थेरीगाथा, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1950, पृ.14-15
10. पी. नरसु लक्ष्मी, बौद्ध धर्म का सार, भु. डॉ. भीमराव आंबेडकर, (अनु.) भदंत आनंद कौसल्यायन, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति, नागपुर, पृ.153
11. भरतसिंह उपाध्याय, थेरीगाथा, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1950, पृ.38
12. वही, पृ. 63
13. वही, पृ. 41
14. वही, पृ. 45
15. सर एडविन आर्नाल्ड, एशिया की ज्योति, अनु. हृषीकेश शरण, हृषीकेश शरण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 159
16. भरतसिंह उपाध्याय, थेरीगाथा, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1950, पृ.17
17. डॉ. रणजीत (संपादक), भारत के प्रख्यात नास्तिक, आलेख, आचार्य राम लाल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृ. 32

वुस्त एवं सेवा करः एक परिचय एवं सुधार

राजेश कुमार वर्मा

(शोध छात्र) वाणिज्य विभाग,नेहरू ग्राम भारती (मानित् विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

प्रो० राजेश केसरी

शोध निर्देशक, वाणिज्य विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित् विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

सारांश–

1 जुलाई, 2017 वह दिन है जब भारत ने आजादी के बाद अपने सबसे बड़े अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था यानी जीएसटी– वस्तु एवं सेवा कर को लागू किया। इसने भारत में अप्रत्यक्ष करों को लगाने एवं एकत्र करने के तरीकों में अतीत से वर्तमान में पूरी तरह बदल कर रख दिया है। विभिन्न केन्द्रीय व राज्य स्तरों पर लगाए गए अप्रत्यक्ष करों की भीड़ से व्यापार में आसानी के उद्देश्य से इसे एक साथ मिलाकर एक कर यानी जीएसटी कर दिया गया है।

इस लेख में हमने चर्चा की है कि जीएसटी क्या है? इसके लागू होने की प्रक्रिया क्या थी? तथा पिछले वर्षों में जीएसटी व्यापार करने में आसानी के अपने एजेंडों को पूरा करने में कहाँ तक सक्षम रहा है।

हमने जीएसटी कार्यान्वयन के बाद हुए विभिन्न परिवर्तनों पर भी विचार किया है। अंत में हमने जीएसटी प्रणाली को अैर मजबूत बनाने के लिए कुछ ठोस सुझाव दिये हैं।

की-वर्ड्स-: जीएसटी, संशोधन, अनुपालन, अप्रत्यक्ष कर

परिचय–

वर्ष 2000 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने जीएसटी की अवधारणा को प्रस्तुत किया और देश के लिए माल और सेवा कर (जीएसटी) मॉडल तैयार करने के लिए एक समिति की स्थापना की। वर्ष 2003 में केन्द्र सरकार ने राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्धन पर एक टास्क फोर्स का गठन किया, जिसने 2004 में राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत जीएसटी की सिफारिश की। इसके बाद तत्कालीन विळामंत्री श्री पी0 चिदम्बरम ने केन्द्रिय बजट 2006–07 पेश करते हुए घोषणा किया कि जीएसटी 1 अप्रैल 2010 से लागू किया जायेगा। तब से जीएसटी बहुत से कारणों से लागू नहीं हो पायी थी। तथापि जीएसटी को लागू करने की वार्ता को 2014 में गति मिली। जब एनडीए सरकार ने संसद में जीएसटी पर 122वां संविधान संशोधन विधेयक 19 दिसम्बर 2014 को पेश किया। लोक सभा में 6 मई 2015 को और राज्य सभा 3 अगस्त 2016 में विधेयक को पारित कर दिया। 50 प्रतिशत से अधिक राज्यों ने भी विधेयक द्वारा समर्थन प्रदान किया। उसके पश्चात् राष्ट्रपति की सहमति 8 सितम्बर 2016 को प्राप्त हुई और 101वां संविधान संशोधन अधिनियम 2016 बन गया जिसने जीएसटी की शुरुआत का मार्ग प्रशस्त किया।

27 मार्च 2017 को केन्द्रीय जीएसटी विधान, केन्द्रीय वस्तु एवं सेवा कर विधेयक 2017, एकीकृत वस्तु एवं संवा कर विधेयक 2017, केन्द्र शासित प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर विधेयक 2017 और वस्तु एवं सेवा कर (राज्यों को मुआवजा) विधेयक 2017 में पेश किये गये। 12 अप्रैल 2017 को राष्ट्रपति की सहमति के बाद इन विधेयकों को लागू किया गया।

जीएसटी की अवधारणा-

- जीएसटी एक मूल्यवर्धित कर है जो आपूर्ति अर्थात् वस्तुओं के निर्माण या विक्री और सेवाओं के प्रावधान पर लगाया जाता है।
- जीएसटी कर क्रेडिट की व्यापक और निरन्तर शृंखला प्रदान करता है। निर्माता के बिन्दु /सेवा प्रदाता के बिन्दु खुदरा विक्रेता के स्तर/उपभोक्ता के स्तर तक आपूर्ति शृंखला के प्रत्येक चरण पर केवल मूल्यवर्धित कर लगाया जाता है।
- प्रत्येक चरण में आपूर्तिकर्ता को वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद पर भुगतान किये गये जीएसटी के क्रेडिट का लाभ उठाने की अनुमति है और इस क्रेडिट को उसके द्वारा की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति पर देय जीएसटी के विरुद्ध समायोजित कर सकता है।

इस प्रकार केवल अन्तिम उपभोक्ता ही आपूर्ति शृंखला में अन्तिम आपूर्तिकर्ता द्वारा लगाये गये जीएसटी को वहन करता है। पिछले सभी चरणों में भुगतान किये गये कर का सेट-ऑफ लाभ मिल जाता है।

भारत में जीएसटी की आवश्यकता-

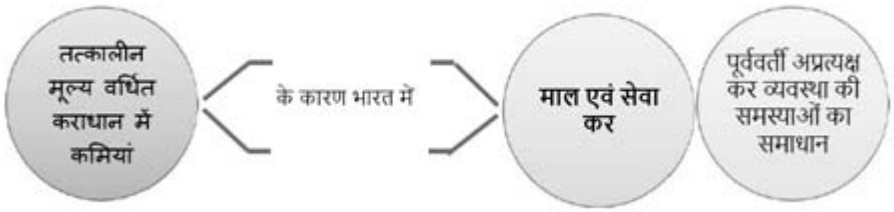

मूल्य वर्धित कराधान प्रणाली में कमियाँ-

भारत में वर्धित कराधान सिद्धान्त के बावजूद पहले अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था के तहत केन्द्र स्तर पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के रूप में और राज्य स्तर पर राज्य वैट के रूप में इसका कार्यान्वयन निम्नलिखित कारणों से विवादित रहा-

1. कुछ लेन-देन दोहरे कराधान के अधीन थे और उन पर वस्तु एवं सेवाओं दोनों के रूप में कर लगाया गया था।
2. सेनवैट ने उत्पादन के चरण के बाद वितरण व्यापार में मूल्यवर्धन की शृंखला शामिल नहीं थी। इसी प्रकार राज्य स्तरीय वैट में भी माल पर सेनवैट का भार नहीं हटाया गया। इससे करों का कैस्केडिंग होता था।
3. हालांकि सेनवैट और राज्य स्तरीय वैट में मूल्यवर्धित कर थे परन्तु एक दूसरे के क्रेडिट का एक दूसरे के विरुद्ध समायोजित नहीं हो सकता था। क्योंकि सेनवैट केन्द्रीय सरकार लगाती थी और वैट राज्य सरकार।
4. राज्य में कई कर थे जैसे- विलासिता कर, मनोरंजन कर आदि जो वैट में शामिल नहीं थे इसलिए एक ही लेन-देन के लिए कई रूपों में कई करों का भुगतान आवश्यक था।
5. सेवा कर के व्यापक प्रभाव को दूर करने के लिए राज्य स्तर पर वस्तुओं पर वैट को सेवा कर के साथ एकीकृत नहीं किया गया था। सेवा क्षेत्र अर्थव्यस्था में तेजी से बढ़ने वाला क्षेत्र होने के कारण राज्यों के कर आधार से सेवाओं के बहिष्करण के कारण उनका कर संग्रहण कम हो गया था।
6. सीएसटी अपने व्यापक प्रकृति के संदर्भ में विकृत का अन्य स्रोत था क्योंकि इसके ऊपर वैट नहीं लगता था। मूल्य आधारित कर होने के नाते सीएसटी उपभोग करों के मूल्य सिद्धान्तों से अलग था।

जीएसटी- मौजूदा अप्रत्यक्ष कर व्यस्था की समस्याओं का समाधान-

जीएसटी वस्तुओं एवं सेवाओं दोनों को शामिल करने की व्यापक संरचना है। वस्तु एवं सेवा कर उपर्युक्त अधिकांश मुद्दों का समाधान करता है। केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर जीएसटी की एक साथ शुरुआत ने सेट-ऑफ राहत के उद्देश्य से वस्तुओं एवं

सेवाओं को एकीकृत किया है और यह सुनिश्चित करता है कि सेन वैट एवं सेवा कर दोनों के व्यापक प्रभावों को हटा दिया गया है और मूल उत्पादक के बिन्दु /सेवा प्रदाता के बिन्दु से खुदरा विक्रेता के स्तर/ उपभोक्ता के स्तर तक सेट-ऑफ की एक सतत् शृंखला स्थापित की गयी है। जीएसटी शासन में प्रमुख अप्रत्यक्ष करों को जीएसटी के दायरे में शामिल किया गया है।

भारत में पेश किये गये जीएसटी की रूपरेखा-

I. दोहरा जीएसटी-

भारत में अपने देश के संघीय ढाँचे को नजर रखते हुए दोहरे जीएसटी मॉडल को अपनाया है। नतीजतन केन्द्र और राज्य एक साथ वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति पर जीएसटी लगाते हैं जो एक राज्य या केन्द्र शासित प्रदेश के भीतर होता है। केन्द्र के पास अतर्राज्यीय विक्री पर कर लगाने की शक्ति भी है और राज्यों को भी सेवाओं पर कर लगाने का अधिकार है।

II. सीजीएसटी/एसजीएसटी/यूटीजीएसटी/आईजीएसटी-

जीएसटी एक गन्तव्य आधारित कर है। भारत में जीएसटी में केन्द्रीय माल और सेवा कर शामिल है जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाया जाता है और एकत्रित किया जाता है। राज्य माल और सेवा कर (एसजीएसटी) राज्य सरकारों/केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा लगाया जाता है और एकत्रित किया जाता है। इसके अलावा जहाँ आपूर्तिकर्ता का स्थान वस्तु एवं सेवाओं की आपूर्ति का स्थान (1) दो अलग-अलग राज्यों में है या (2) दो अलग-अलग केन्द्र शासित प्रदेशों में है या (3) एक राज्य और एक केन्द्र शासित प्रदेश में है। इसे क्रमशः वस्तुओं एवं सेवाओं की अंतर्राज्यीय आपूर्ति के रूप में माना जाता है। अन्तर्राज्यीय आपूर्ति कर एकीकृत माल एवं सेवा कर आईजीएसटी के अधीन है। आईजीएसटी सीजीएसटी और एसजीएसटी/यूटीजीएसटी का कुल योग है और केन्द्र सरकार द्वारा अन्तर्राज्यीय आपूर्ति पर लगाया जाता है।

III. कम्पोजिशन योजना-

छोटे व्यवसायों, निर्माताओं, सेवा प्रदाताओं, खाद्य वस्तुओं के आपूर्तिकर्ताओं, व्यापारियों आदि को राहत प्रदान करने के लिए एक सरल तरीका निर्धारित किया गया है। इससे करों का भुगतान और रिटर्न फाइलिंग आसानी से हो सके। इसी को कम्पोजिशन योजना के रूप में जाना जाता है।

पंजीकरण-

माल और सेवाओं की प्रत्येक आपूर्तिकर्ता को उस राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में पंजीकरण प्राप्त करना अनिवार्य है यदि वह कर योग्य आपूर्ति करता है यदि उसका कुल कारोबार एक वित्तीय वर्ष के दौरान निर्धारित सीमा से अधिक है।

IV. छूट-

छोटे पैमाने के व्यवसाय को राहत देने के लिए कानून में आवश्यक वस्तुओं या सेवाओं पर कर के भुगतान से छूट देने का भी प्रावधान शामिल है।

V. जीएसटी कॉमन पोर्टल-

जीएसटी एक गन्तव्य आधारित कर है। वस्तुओं एवं सेवाओं के अन्तर्राज्यीय व्यापार को राज्यों और केन्द्र के बीच मजबूत निपटान प्रबन्ध की आवश्यकता थी। ऐसे एक सामान्य पोर्टल की आवश्यकता थी जो समाशोधन गृह के रूप में कार्य कर सके। सरकारों को धन हस्तान्तरित करने के लिए सूचित कर सके तथा दावों को सत्यादित कर सके। यह सब एक मजबूत आईटी बुनियाद के ढाँचे से सम्भव हो सकता था। इसी के फलस्वरूप कॉमन जीएसटी इलेक्ट्रानिक पोर्टल www.gst.gov.in माल और सेवा नेटवर्क द्वारा संचालित एक वेबसाइट (कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 8 के अन्तर्गत रजिस्टर्ड एक कम्पनी है।)

जीएसटी पोर्टल इंटरनेट द्वारा करदाताओं और कर अधिकारियों के बीच एक सामान्य पोर्टल का कार्य कर रहा है।

VI. मुआवजा उपकर-

माल और सेवा कर (राज्यों को मुआवजा) उपकर अधिनियम 2017 के अन्तर्गत एक जीएसटी मुआवजा उपकर लगाया गया है। पान मसाला, तम्बाकू, वातित पानी, मोटरकार आदि जैसी विशिष्ट मनोरंजन की वस्तुओं या अवगुण वस्तुओं पर कर योग्य आपूर्ति पर लगाया जाता है। जीएसटी के लागू होने से उत्पादक राज्यों को कर नुकसान होने के कारण उनको मुआवजा प्रदान करने की दृष्टि से अन्तर्राज्य आपूर्ति पर मुआवजा उपकर लगाया जाता है।

जीएसटी में समाहित कर-

विभिन्न केन्द्रीय राज्य और स्थानीय कर की जांच की गयी ताकि उनकी जीएसटी के तहत शामिल होने की सम्भावना की पहचान की जा सके। निम्नलिखित करों को जीएसटी में शामिल किया गया है-

केन्द्रीय कर	राज्य कर
• केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और अतिरिक्त उत्पाद शुल्क। • सेवा कर • औषधीय और शौचालय निर्माण अधिनियम के तहत उत्पाद शुल्क। • सीवीडी और विशेष सीवीडी • केन्द्रीय विक्री कर • केन्द्रीय अधिभार और उपकर जहां तक वे वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति से सम्बन्धित है।	• राज्य के अधिभार और उपकर जहां तक वे वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति से सम्बन्धित है। • मनोरंजन कर (स्थानीय निकायों द्वारा लगाए गए को छोड़कर) • लॉटरी, सट्टे और जुए पर कर • प्रवेश कर और खरीद कर • वैट/विक्रीकर • लक्जरी कर • विज्ञापनों पर कर

जीएसटी लागू होने के बाद उसमें सुधार-

जुलाई 2017 में जीएसटी लागू होने के बाद बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जैसे- रिटर्न फाइलिंग, डाक्यूमेन्टेशन, एक से अधिक जीएसटी संख्या, जीएसटी कॉमन पोर्टल की समस्या।

समय और समझ के साथ सरकार ने विभिन्न कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करने के लिए जीएसटी के नियमों और विनियमों में सुधार किये। हालांकि यह परिवर्तन चीजों को सरल बनाने के लिए किये गये परन्तु इन परिवर्तनों की संख्या इतनी ज्यादता थी कि परिवर्तन अब एक कठिनाई है। विभिन्न नियमों और विनियमों में सुधार की चर्चा जीएसटी परिषद् द्वारा आयोजित बैठकों में की गयी।

प्रमुख जीएसटी बैठक निम्नलिखित हैं जिनमें स्वीकृत प्रमुख निर्णय निम्नानुसार हैं-

- 22वीं जीएसटी बैठक 6 अक्टूबर 2017 को हुई उसके प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं- (1) कम्पोजिशन डीलर का कुल टर्नओवर 75 लाख से बढ़ाकर 1 करोड़ किया गया। (2) पिछले वर्ष में 1.5 करोड़ का करोबार करने वाले कर दाताओं के लिए तिमाही रिटर्न।
- 23वीं जीएसटी बैठक 10 अक्टूबर 2017 को हुई उसके प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं- (1) निर्माताओं और व्यापारियों के लिए संरचना योजना के तहत एक समान दर 1 प्रतिशत। (2) कम्पोजिशन डीलर द्वारा सेवाओं की आपूर्ति 5 लाख

प्रतिवर्ष। कम्पोजिशन स्कीम के लिए वार्षिक टर्नओवर पात्रता को बढ़ाकर 1 करोड़ से 2 करोड़ कर दिया गया। (3) वातानुकूलित या अन्यथा होने के बावजूद सभी स्टैण्ड एलोन रेस्तरां बिना आईटीसी के पांच प्रतिशत की दर से कर का भुगतान करेंगे।

- 24वीं जीएसटी बैठक- अखिल भारतीय आधार ई-वे के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में निर्णय।
- 25वीं जीएसटी बैठक- (1) उत्पादों की संख्या में दरों के बदलाव में सिफारिश की गयी। दोहरे कराधान की कठिनाई को दूर करने के लिए सीजीएसटी अधिनियम 2017 की अनुसूची 3 के तहत कस्टम बाउण्डेड वेयर हाउस और हाई सी-सेल के भीतर माल की विक्री को बिना आपूर्ति के माना जायेगा। (2) ई-वे की सुविधा ट्रायल पर मिलेगी।
- 36वीं जीएसटी बैठक- 27 जुलाई 2019 को हुई बैठक में निम्नलिखित निर्णय लिये गये- (1) इलेक्ट्रिक व्हेकल पर जीएसटी रेट घटाकर 1 अगस्त 2019 से 12 प्रतिशत से 5 प्रतिशत लागू। (2) इलेक्ट्रिक वाहन चार्जर भी 18 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया।
- 37वीं जीएसटी बैठक- परिषद् की बैठक में निम्नलिखित प्रस्तावों को स्वीकार किया गया- (1) वित्तीय वर्ष 2017-18 और 2018-19 के लिए 2 करोड़ से कम टर्नओवर के संस्थाओं के लिए GSTR-9। और GSTR-9 दाखिल करना है। (2) GSTR-2। में जो क्रेडिट दिखाई पड़ रहा है आईटीसी उसका 120 प्रतिशत तक ही मिलेगा।
- 38वीं जीएसटी बैठक- (1) जिन करदाताओं ने 2 महीने तक ळैज्.1 फाइल नहीं किया उनका ई-वे बिल ब्लॉक कर दिया जायेगा। (2) इनपुट टैक्स क्रेडित को 110 प्रतिशत तक सीमित कर दिया गया। (3) सभी प्रकार की लॉटरी के लिए एकल दर 28 प्रतिशत कर।
- 39वीं जीएसटी बैठक- (1) उन व्यसायों के लिए एक बार की सुविधा शुरु की गयी थी जिनका पंजीकरण रिटर्न दाखिल न करने के कारण रद्द कर दिया गया था। ऐसे निरस्तीकरण को रद्द करने के लिए आवेदन करने नियमों का पालन करने के लिए किया गया था। (2) ई-चालान और क्यूआर कोड को 1 अक्टूबर 2020 तक और ई-बैलेट योजना को 31 मार्च 2021 तक टालना।
- 40वीं जीएसटी बैठक- कोविड-19 के बाद परिषद की 40वीं बैठक दिनांक 12 जून 2020 को वीडियो कॉन्फ्रेसिंग के माध्यम से उसमें जनता को राहत प्रदान करने हेतु निम्न निर्णय लिये गये-(1) विलम्ब शुल्क जहां 500 रूपये देयता थी उसे शून्य कर दी गयी। जुलाई 2017 से 2020 तक के लिए कोई भी विलम्ब शुल्क व्यापारियों को नहीं देना पड़ेगा। (2) छोटे कर दाताओं के लिए ब्याज दर में कमी।

सुझाव-

जीएसटी नि:संदेह सरकार द्वारा किये गये सबसे बहादुर और सराहनीय कार्यों में से एक है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि व्यापारिक पर्यावरण और परिदृश्यों में बदलाव के साथ त्रुटियां और संशोधन आते रहेंगे। यहां कुछ सुझाव दिये गये हैं जो जीएसटी को और उपयोगी तथा उपयोगकर्ता के स्वीकार्य बना सकते हैं। (1) जीएसटी के दायरे को बढ़ाकर- व्यावसायिक गतिविधियाँ जो जीएसटी के अन्तर्गत नहीं आती हैं उदाहरण के लिए स्वास्थ्य सेवायें, कानूनी सेवायें, दान और शैक्षिक सेवाएं। वर्तमान में हजारों डॉक्टर, वकील, निजी स्कूल और कॉलेज, गैर लाभकारी संगठन जो सालाना करोड़ों रूपये कमा रहे हैं उन्हें जीएसटी के दायरे में शामिल करके जीएसटी की एक छोटी दर 1 प्रतिशत या 0.5 प्रतिशत चार्ज करके इन गतिविधियों को सरकारी जाँच में लाया जा सकता है। (2) अनुपालन के लिए प्रोत्साहन लाभ व्यवसाय के लिए प्रत्यक्ष प्रोत्साहन है। कर अनुपालन के लिए लोग प्रेरित महसूस नहीं करते क्योंकि कोई प्रत्यक्ष प्रोत्साहन नहीं दिखता है। सरकार को शुल्क में छूट, ब्याज में कमी करना चाहिए जिससे अधिकतम व्यवसायी कर भुगतान करें। सरकार को कानून पालन करने वाली संस्थाओं के लिए अनूपालन, नगद में कर भुगतान आदि के आधार पर प्रोत्साहन देना चाहिए जैसे- ऋण की आसान उपलब्धता, मुफ्त स्वास्थ्य बीमा, व्यवसाय बीमा जिससे वे भविष्य में करों का अनुपालन करने के लिए प्रेरित होंगे।

(3) मजबूत आईटी इन्फ्रास्ट्रक्चर-

हालांकि सरकार रिटर्न और अनुपालन को आसान बनाकर जहां आवश्यक हो देय तिथियों को बढ़ाकर कर दाताओं की मदद करने की कोशिश कर रही है। परन्तु यह मजबूत आईटी इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकल्प नहीं हो सकता, जिसकी आवश्यकता बहुत ज्यादा है। सभी हितधारक शुरू से ही एक मजबूत आईटी इन्फ्रास्ट्रक्चर की मांग कर रहे हैं जो अभी तक सरकार पूरा नहीं कर पायी है। क्षमता को बढ़ाने के लिए कड़े कदम उठाने की जरूरत है।

समापन टिप्पणी-

वस्तु एवं सेवा कर अब हमारी अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा बन गया है। हालांकि अभी यह थोड़ा अव्यवस्थित है लेकिन समय और हितधारकों के समर्थन के साथ इसे व्यवस्थित करना होगा और समय के साथ इसमें सुधार होगा। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, सभी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं ने इस पद्धति को बहुत पहले ही स्वीकार कर लिया है। भारत के लिए यह थोड़ी देर से आया लेकिन जैसा कि कहा जाता है कि कभी न होने से देर होना बेहतर है। जीएसटी एक नए प्रकार के कर के रूप में आया है जिसने अप्रत्यक्ष करों में व्यवहार करने के तरीके में संरचनात्मक रूप से सुधार किया है। सभी संरचनात्मक परिवर्तनों को व्यवस्थित होने में समय लगता है। लगभग आवश्यक दर परिवर्तन पूरे हो चुके थे और अब भी केवल एक ही कदम की आवश्यकता है कि प्रणाली को अधिक पारदर्शी और करदाताओं के लिए आसान बनाया जाए। हमें उम्मीद है कि जल्द ही अर्थव्यवस्था में हमें जीएसटी का फायदा देखने को मिलेगा।

सन्दर्भ-

- A Research Paper on Economic Consequences of GST in India by Dr. Amutha St. Mary's College (Autonomous) - Economics Department.
- Government of India. (2019, 05 16). CBIC GST PORTAL. Retrieved 05 16, 2019, from https://www.cbic-gst.gov.in/
- INDIA, G. O. (n.d.). CENTRAL BOARD OF INDIRECT TAXES AND CUSTOMS. Retrieved 12 15, 2019, from http://cbic.gov.in/htdocs-cbec/gst/index
- https://www.cbic.gov.in/resources//htdocs-cbec/gst/consti-amend-act.pdf
- https://www.cbic.gov.in/resources//htdocs-cbec/gst/cgst-act.pdf
- .https://www.cbic.gov.in/resources//htdocs-cbec/gst/igst-act.pdf
- .https://www.cbic.gov.in/resources//htdocs-cbec/gst/gst-compensation-to-states-act.pdf
- टैक्समैन (2018)- जीएसटी कानून गाइड और जीएसटी प्रैक्टिस रेफरेन्सर के साथ जीएसटी मैनुअल।
- माल और सेवा कर के लिए उदाहरणात्मक मार्गदर्शिका, भारत लॉ हाऊस प्रा0लि0।

आपस्तम्ब स्मृति एक अध्ययन

हृषिकेश पधान

डिपार्टमेंट ऑफ संस्कृत, जामिया मिलिया इस्लामिया, न्यू दिल्ली

Key Words- स्मृतिग्रन्थ, प्रायश्चित, व्रत, अनुष्ठान

स्मृति-

स्मृति सनातन धर्म के उन धर्मग्रन्थों का समूह है जिनकी मान्यता श्रुति से नीची श्रेणी की है और जिन्हे मनुष्य ने स्वयं रचा है। इनमें वेद अलौकिक हैं। स्मृति का शाब्दिक अर्थ है याद किया हुआ। यह वेदों के समान कठिन नहीं है, यह लौकिक जन साधारण की भाषा है अतः इसे समझना बहुत सरल है। कालक्रम में स्मृतिग्रन्थों में विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में गीता, महाभारत, विष्णुसहस्रनाम आदि की भी गणना की जाने लगी।

आदिसम्राट मनु ने धर्म के लक्षण बतलाते हुये श्रुति तथा स्मृति महत्ता को समान माना है-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्[1]।।

वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा को प्रिय लगने वाला यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण कहा गया है। गौतम ऋषि ने भी यही कहा है कि 'वेदो धर्ममूल तद्विदां च स्मृतिशीले'। स्मृति अर्थात् मनुस्मृति से है ऐसा हरदत्त ने गौतम की व्याख्या में लिखा है। हरदत्त के यह व्याख्या तार्किक रूप से ठीक नहीं है क्योंकि वहां स्रोत के रूप में लिया गय है स्मृति और श्रुति शब्द को। किसी विशिष्ट स्मृति ग्रन्थ या शील के लिए नहीं। स्मृति अर्थात् विद्वानों की मानस पटल पर पडी वह परम्परा है जिसे वैदिक साहित्य में वर्णन नहीं की गई है और शील का मतलब उन विद्वानों की आचार व्यवहार से है। फिर भी आपस्तम्ब ने अपने धर्म सूत्र के प्रारम्भ में कहा है- धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च[2]।

स्मृतिओं की संख्या-

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः[3] ।

वेद ही एकमात्र हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ है। वेदों का सार उपनिषद और उपनिषदों का सार गीता है। महाभारत को पञ्चमवेद माना गया है। वाल्मिकी रामायण, वेदव्यास कृत महाभारत और १८ पुराणों को इतिहास ग्रन्थों की श्रेणी में रखा गया है। सूत्र, आगम, तन्त्र और स्मृतियां वेदों के तत्व ज्ञान और नियमों की परम्परा से व्याख्या करते हैं। ये सभी स्मृति ग्रन्थों के अन्तर्गत हैं। वेद को श्रुति और अन्य ग्रन्थों को स्मृति की संज्ञा दी गई है। स्मृतियों को धर्मशास्त्र भी कहा जाता है। प्रमुख रूप से १८ स्मृतियां मानी गई है, परन्तु मनु, अत्रि, वैखानस, हारित, गौतम आदि स्मृतिकारों के मत में विभिन्न संख्या है। स्मृतिओं का नाम क्रमशः इस प्रकार है-

१	मनुस्मृति	८	अत्रिस्मृति	१५	वृद्धशातातपस्मृति
२	व्यासस्मृति	९	लघुशंखस्मृति	१६	शातातपस्मृति
३	लघुविष्णुस्मृति	१०	विश्वामित्र स्मृति	१७	वृद्धगौतमस्मृति
४	आपस्तम्बस्मृति	११	यमस्मृति	१८	बृहस्पतिस्मृति

५	वसिष्ठस्मृति	१२	लघुस्मृति	१९	याज्ञवलक्यस्मृति
६	पाराशरस्मृति	१३	बृहद्यमस्मृति	२०	बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति
७	बृहत्पाराशरस्मृति	१४	लघुशातातपस्मृति		

आपस्तम्ब स्मृति-

निम्न स्मृतिओं में यह आपस्तम्ब स्मृति भी एक स्मृति है, आपस्तम्ब प्रणीत स्मृति है। यह १० अध्यायों में एवं २०० श्लोकों में निबद्ध है। इसमें प्रमुखतया विविध प्रायश्चितों का विधान है।

प्रमुख विषय, प्रथम अध्याय-

आपस्तम्ब ऋषि से सब मुनिओं ने गृहस्थाश्रम में कृषिकर्म, गौ पालन में अनुचित व्यवहार से जो दोष हो जाये उसका प्रायश्चित कैसे हो उसे पूछा। आपस्तम्ब ने उन्हें सत्कार पूर्वक बतलाया कि औषधि देने में, बालक को दूध पिलाने में सावधानी करने पर भी विपत्ति आजाये तो उसका दोष नहीं होता है।

बालानां स्तन्यपानादिकार्ये दोषो न विद्यते।
विपतावपि विप्राणामामन्त्रणचिकित्सने[4]*।।*

गौ आदि का उपचार करते जैसे घी, तेल, नमक इत्यादि से उपचार करते समय यदि उनके ऊपर कोई भी कष्ट आजाये तो उसमें कोई दोष नहीं होता है क्योंकि

औषधं लवणञ्चौव स्नेहपुष्ट्यन्नभोजनम।
प्राणिनां प्राणवृत्यर्थं प्रायश्चितं न विद्यते[5]*।।*

किन्तु औषधि और भोजन भी मात्रा से अधिक देना भी पाप होता है। उस प्रकार से यदि कोई पाप हो जाये तो उसका प्रायश्चित करने का विधान है।

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पन्तु दापयेत।
अतिरिक्तं विपन्नानां कृछ्रमेव विधीयते[6]*।।*

प्रायश्चितों का वर्णन-

त्र्यहं निरशनात् पादः पादश्चायचितं त्र्यहम।
पादः सायं त्र्यहं प्रादः प्रातर्भोज्यं तथा त्र्यहम।
प्रातः सायं दिनार्थच पादोनं साध्यं वर्जितम्[7]*।।*

तीन दिन तक भोजन न करना, उपवास रहना एक प्रकार का (पादकृछ्र) अर्थात प्रायश्चित होता है। तीन दिन तक बिना याचना किया हुआ भोजन करना, तीन दिन तक केवल सायंकाल ही भोजन करना, तीन दिन तक केवल प्रातः काल ही भोजन करना इत्यादि प्रायश्चित का विधान किया गया है। आभूषण आदि का प्रयोग करते समय कोई पशु मर जाये तो अर्ध कृछ्र का प्रायश्चित करना चहिये क्योंकि कहा भी-

घण्टाभरण दोषेण गोस्तु यत्र विपद्यते।
चरेदधव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत्[8]*।।*

दमन करते समय, जोतते समय अथवा एकत्रित करते समय यदि कोई विपति आये तो पादोन कृछ्र का प्रयश्चित करना चाहिये[9]। पत्थरों, लाठियों आदि से कोई प्रहार करते समय गौ का मृत्यु हो जाये तो सम्पूर्ण कृछ्र का विधान किया गया है[10] ।

गौ का दोहने का विधान-

प्रारम्भ में दो माह तक नव प्रसूता गाय का समस्त दूध बछडे को पिलाना चहिये। उसके बाद दो माह तक केवल प्रातः या सायं एक ही समय में दोहन करने का विधान है, तदनन्तर स्वेच्छापूर्वक दोहन कर सकते हैं।

गौ बन्धन का विधान-

नारीयल की जटाओं से निर्मित रस्सी बालों से निर्मित रसी, मूञ्ज की रस्सी और चमड़े से बनी रस्सी से गो-वंशज को नहीं बान्धना चहिये । बैल को दक्षिण की और मुख करके कुशों एवं काश से निर्मित रस्सी से बान्धना चहिये, रस्सी आदि में पैर फंस जाने पर अथवा अग्नि आदि से जल जाने पर गाय की मृत्यु होने से कोई प्रायश्चित का विधान नहीं है[12] । इस प्रकार से यह प्रथम अध्याय प्रायश्चितों का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय-

इस अध्याय में शुद्धि और अशुद्धि के वर्णन है जैसे काम करने वाले मनुष्यों को जल पानी की छूतपात नहीं होती है। कारिगर के हाथों में गयी वस्तु, गांव से बाहर ले गयी वस्तु तथा स्त्री, बच्चा, वृद्ध के संसर्ग के द्वारा किया गया आचरण, कार्य, व्यवहारादि पवित्र होता है[13]। वापी, कूप, तडाग जहां खारिया जल निकलता हो वह अशुद्ध नहीं होता। पेशाब, मल तथा थूकने से जल अशुद्ध हो जाता है। दूसरे के द्वार खोदे गये कुएं तलाब, आदि के जल स्नान और पान करने से अशुद्ध हुआ व्यक्ति पञ्चगव्य के पान करके शुद्ध हो जाता है। प्रक्षालन आदि से अपवित्र जल सूर्य की किरणों के संसर्ग में आकर शुद्ध हो जाता है।

सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च।
गवां मूत्रपुरीषेण ततोयं तेन शुध्यति[14]।।

दूषित हुई वापि, तडाग, कुओं का जल को शोधन करने के लिये उससे सौ घड़ा पानी क निकास कर उसमें पञ्चगव्य का सिञ्चन करने से वहां का सम्पूर्ण जल शुद्ध हो जाता है। यदि कोई ब्राह्मण शव से दूषित जल का पान कर लेत है तो वह मरुद्देश का भागी होता है। उसे चान्द्रायण अथवा तत्पकृछ्र व्रत का अनुष्ठान से वह शुद्ध हो पाता है।

तृतीय अध्याय-

अन्त्यजातिरविज्ञातो निवेसद्यस्य वेश्मनि।
सम्यग् ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम्[15] ।।

अन्य जाति के परिचय न होने से अज्ञात दशा में घर में रह जाये तो उस द्विजाति को चान्द्रायण या पराक प्राजापत्य व्रत करने का विधान है। इसी प्रकार चाण्डाल कूप से जल आपत् दशा के बिना लेने से प्रायश्चित का विधान है, उसमें शोधन के लिये एक दिन का उपवास रहकर पञ्चगव्य क सेवन का विधान किया गया है[16]। जिसकी अवस्था अस्सी वर्ष के हो या जो बालक हो बोलह वर्ष से कम उम्र के हो उसे तथा स्त्रियों को और रोगग्रस्त व्यक्ति को आधा प्रायश्चित का विधान है।

समाप्तमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित्।
विप्रसम्पादनं कर्म उत्पन्ने प्राण संशये[17]।।

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीन वर्णो के लोगों मे प्राणसंशय की विषम स्थिति में भी प्रायश्चित के उपदेष्टा ब्राह्मण के द्वारा समयानुरूप यथाशक्ति प्रायश्चितोपसंहार के कथन के बिना कोई यह नहीं कह सकता है कि कर्म समाप्त हो गया। अतः प्राण संकट की स्थिति में वह प्रायश्चित कर्म ब्राह्मण के द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

चतुर्थ अध्याय-

चाण्डाल कूपभाण्डेषु योऽज्ञानात पिबते जलम्।
प्रायश्चितं कथं तस्य वर्णे-वर्णे विधियते[18]।।

प्रस्तुत अध्याय में चाण्डाल के कूप से जल पान करने पर जो दोष होता है उसे किस प्रकार प्रायश्चित किया जाये उसका विधान इस अध्याय में किया गया है। अज्ञानवश किसी ने यदि चाण्डाल के यहां से अथवा उनके कूप का पानी पी लिया हो तो उसे प्रायश्चित करना चाहिये। ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति को प्रायश्चित के रूप में सन्तापन व्रत का अनुष्ठान का विधान है, क्षत्रिय को प्राजापत्य व्रत का वैश्य को प्राजापत्य के अर्धाश तथा शूद्र को पादांश का पालन करने का विधान है[19]। उच्छिष्टावस्था में यदि चाण्डाल

का स्पर्श होजाये तो उसे आठ हजार बार गायत्री का जाप का विधान है अथवा दुपदादिव मुमुचान: रूप में प्रोक्त सौ दुपद मन्त्रों का जप करना चाहिये। इस प्रकार से उपवास पूर्वक तीन रातों तक उपर्युक्त मन्त्र का जाप करके पञ्चगव्य के सेवन से व्यक्ति का विशोधन होता है। जब कभी मल मूत्र के उत्सर्जन करने पर कोई द्विज किसी चाण्डाल को छू लेने पर भी तीन रात्रि तक प्रायश्चित करना चहिये यदि भोजन करके उच्छिष्ट दशा में चाण्डाल द्वारा ब्राह्मण क स्पर्श कर लिया जाये तो उसे समान्य लोगों को त्रिदिवसीय प्रायश्चित को छ: रात्रि पर्यन्त करना चहिये[20] । रजस्वला स्त्री को अथवा शूद्रा के साथ मैथुन के सम्पर्क में पाद कृछ्र का विधान है और उतना ही प्रयश्चित मल मूत्रोत्सर्ग के समय रजस्वला स्पर्श तथा अन्त्यज संस्पर्श कि स्थिति में करन चाहिये। दूसरे मत में मूत्र के सम्पर्क में एक दिन का तथा पूरीष अर्थात मल के सम्बन्ध में तीन दिन का उपवास के रूप में प्रायश्चित करना चाहिये। चाण्डाल के किसी भी प्रकार के उच्छिष्ट के छू लेने पर एक दिन के उपवास का विधान है।

पञ्चम अध्याय-

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्ण: कदाचन।
अनभ्युक्ष पिबेतोयं प्रायश्चितं कथं भवेत्।।

द्विज वर्ण के कोई भी व्यक्ति जब किसी चाण्डाल के द्वारा छू लिया जाता और बिना स्नान किये जल पान करले तो उसका प्रायश्चित है कि-

ब्राह्मणस्तु त्रिरात्रेण पञ्चगव्येन शुद्धयति।
क्षत्रियस्तु द्विरात्रेण पञ्चगव्येन शुध्यति।
अहोरात्रं तु वैश्यस्य पञ्चगव्येन शुद्धयति[21]।।

चाण्डाल के स्पर्श कर लेने पर ब्राह्मण को तीन रात्रि पर्यन्त, क्षत्रिय को दो रात्रि, वैश्य को एक दिन प्रायश्चित करके पञ्चगव्य से शुद्ध होने का विधान है और शूद्र के लिये कोई प्रायश्चित अथवा होमादि का विधान नहीं है। जब कोई द्विज अज्ञान वश ब्राह्मण का झूठा भोजन कर लेता है तो उसे एक अहोरात्र का गायत्री के जप करके शुद्ध हो सकता है। द्विज यदि करले तो उसे शंखपुष्पी का रस का सेवन करके ही तीन रत्रियों तक शुद्ध होजाता है। यदि कोई द्विज किसी ब्रह्मणी का झूठा सेवन करले तो उसे कोई दोष नहीं होता है[22]। प्रमाद वश किसी भीषण विषमता की स्थिति में मल मूत्र क भक्षण कर लेने पर ब्राह्मण को अपनी शुद्धि हेतु तप्त कृछ्र व्रत का पालन करना चहिये तथा कुत्ते और कौवे क झूठा भोजन करने पर शुद्धि हेतु प्रजापत्य व्रत का पालन बताया गया है और छूलेने पर तीन प्रहर तक स्नान और जप का विधान है। यदि किसी उच्छिष्ट ब्राह्मण का स्पर्श ब्राह्मण कर लेने पर वह मात्र आचमन और स्नान से ही शुद्धिकरण हो जाता है[23]।

षष्ठ अध्याय-

इस अध्याय में नीले वर्ण के वस्त्र का धारण करने की विहित परम्परा है उसके विषय मे वर्णन है क्रीडा सम्भोग और शयन में स्त्रीओं का नील वस्त्र धारण करने से कोई दोष नहीं है। नीली आदि का पालन तथा खेती करने से जो ब्राह्मण पतित होता है उस पतित ब्राह्मण को तीन कृछ्र का पालन करना चाहिये। जो ब्राह्मण नीली वस्त्र धारण कर नित्य होम, सन्ध्या वन्दना, स्नान, दान, तपादि का अनुष्ठान करता है उसका वस्त्र नीली होने से उसका कर्म भी नीली हो जाता है और नीली कर्म निष्फल होता है। जब कोई ब्राह्मण नीली वस्त्र धारण कर अपवित्र हो जये तो उसे एक दिन और एक रात का उपवास रहके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होता है[24]।

नेलीमध्ये यद गच्छेत् प्रमादात् ब्राह्मण: क्वचित।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगवेन शुद्धयति[25] ।।

जब कोई ब्राह्मण अज्ञान के कारण नीली खेत्र के अन्दर प्रवेश कर जाए तो उसे एक दिन और रात का व्रत करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होता है। नीले रंग के वस्त्र से लाया हुआ अन्न किसी भी द्विजों के लिये योग्य नहीं है अत: यदि कोई सेवन करले तो उसकी शुद्धि हेतु चान्द्रायण व्रत का पालन करना चहिये जो कोई प्रमाद वश नील का ही सेवन करले तो उसे भी चान्द्रायण व्रत का पालन क्रना चाहिये। जिस भूमि में नील की बुवाई होती है उस भूमि बारह वर्ष तक अपवित्र माना जाता है[26] ।

सप्तम अध्याय-

रजस्वला अर्थात ऋतुमती स्त्री के चौथे दिन उत्तम बतया गया है। अत: स्त्री रजोदर्शन के चौथे दिन ही स्नान करके शुद्ध होता है, रज से निवृत्ति न होने तक वह स्पर्श के योग्य नहीं होती है।

सध्वाचारा न सा तावद्रजो यावत् प्रवर्तते।

वृत्ते रजसि सध्वी स्याद् गृहकर्मणि चौन्द्रिये।।

ऋतुमती स्त्री जब तक रज प्रवृत्ति रहती है तब तक पवित्र या उत्तम कार्य करने के योग्य नहीं होती है। निवृत्ति होने पर ही वह उत्तम कार्यों का सम्पादन के लिये योग्य मानी गयी है। यदि कोई ब्राह्मण मदिरा अथवा रजस्वला स्त्री को छू लिया हो तो वह भी अशुद्ध हो जाता है, उसे अर्धकृछ्र व्रत का पालन करना चाहिये। रजस्वला ब्रह्मणी किसी रजस्वला शूद्रा को छू ले तो उसे अहोरात्र उपवास और पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध हो सकता है[27]।

अष्टम अध्याय-

बर्तनों के शुद्ध करने के वर्णन है कि कांसे या जस्ते से निर्मित पात्र मदिरा से लिप्त होने पर अस्म से शुद्धि हो जाता है, जबकि मलमूत्र से संलिप्त पात्र तपाने पर ही शुद्ध होता है। गाय, कुत्ते, शूद्रों के द्वारा उच्छिष्ट पात्रों को राख आदि क्षारीय पदार्थ से पवित्र होता है।

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्क: शूद्रणैव सहासनम्।

शूद्रात्ज्ञानागम: कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत[28]।।

शूद्रों का अन्न, शूद्रों का सम्पर्क इत्यादि से तथा शूद्र से किसी भी प्रकार के ज्ञानोपार्जन किसी भी प्रतापशाली व्यक्ति को पतित कर देता है। ब्राह्मण को सदा ब्राह्मण का ही अन्न का सेवन का विधान है। क्षत्रिय का अन्न किसी विशेष पर्व के दिन तथा वैश्य का अन्न उपभोग यज्ञ एवं दिक्षा के लिये और शूद्र का अन्न कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पय: स्मृतम।

वैश्यस्याप्यनामेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम्[29]।।

ब्राह्मण का अन्न अमृत क्षत्रिय का दूध, वैश्य का अन्न, अन्न ही होता है और शूद्र का अन्न रुधिर होता है। शाक, मांस, मृणाल, तुम्बरु, सत्तु, तिल, और फल आदि वस्तुएं सभी वर्णों से ग्रहण कर लेना चाहिये। यदि किसी आपतिकाल में किसी ब्राह्मण के द्वाराकिसी शूद्र के घर में भोजन कर लिया जाता है तो मनस्ताप करना ही शुद्धि होती है। अत: उसे मन में ही पश्चताप करना चाहिये अथवा सौ बार माला का जप करने का विधान है।

नवम अध्याय-

यदि कभी किसी ब्राह्मण भोजन कर रहे हो और गुदा-स्राव हो जाए तो उच्छिष्ट स्थिति मे हुई अशुचिता से शुद्धि होने का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में है। इस प्रकार की स्थिति में पुन: शौचादि से निवृत्त होकर आचमनादि से पवित्र होकर एक अहोरात्र का उपवास और पञ्चगव्य के सेवन से शुद्धि होती है। बिना शौच के भोजन करते समय ब्राह्मण को तीन दिन का व्रत रहना और जौ के आटे को पीकर प्रायश्चित होता है।

यद्वेष्टितं काकबलाकचिल्लैरमेध्यलिप्तञ्च भवेच्छरीरम।

श्रोते मुखे च प्रविशोच्च सम्यक् स्नानेन लेपोपहतस्य शुद्धि[30]:।।

कौवा, बगुला और चील जिसके शरीर स्पर्श करले अथवा कोई अमेध्य अर्थात् अननुमत अपवित्र पदार्थ आदि से शरीर लिप्त हो जाए और मलादि पदार्थ से कान, नाक और मुहांदि से प्रवेश कर जाये तो इसमें वेष्टन आदि लेप जन्य अशुचि से अपवित्र हुये व्यक्ति की भली प्रकार से स्नान से होती है। किसी प्रकार के अशुचि जैसे ऊपर बतलाये हुए हो तो उसे स्नान और प्रक्षालनादि क्रिया से पवित्र हो जाता है।

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु।

षड्भिस्त्रिभिरयेकैन क्षत्रविट् शूद्रयोनिषु[31]।।

अपने कुल की किसी व्यक्ति के मृत्यु हो जाने वाले अशौच से ब्राह्मण दश दिन मे शुद्ध होता है, क्षत्रिय छः दिन में, वैश्य तीन दिन में और शूद्र एक दिन में ही शुद्ध हो जाता है। जो किसी के द्वारा उपभोग किया हुआ शेषांश भोजन को ग्रहण करता है उसे एक दिन का उपवास रहकर पञ्चगव्य के सेवन का विधान है।

दशम अध्याय-

मोक्षाधिकारि का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। क्रोध मनुष्य का परम शत्रु है-

न तथोसिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः।

यथा क्रोधो हि जन्तुनां शरीरस्यो विनाशकः[32]।।

कोई भी तलवार इतनी तीक्ष्ण नहीं होती और विनाशकारी नहीं है तथा बामी मे स्थित क्रियान्वित किया गया विषधर सांप भी इतना भयंकर नहीं होता है जितना तीक्ष्ण मनुष्य का क्रोध होता है। क्षमा मनुष्यों का ऐसा गुण जो इस लोक में और परलोक में भी सौख प्रदाना करता है। जो अपने क्रोध को ही वश में नहीं रख पाता है वह व्यक्ति स्वयमेव ही अपना शत्रु बन जाता है।

क्रोधोयुक्तो यद् यजते यज्जुहोति यदर्च्चति।

सर्व हरति दत्तस्य आमकुम्भ इवोदकम्[33]।।

क्रोधयुक्त मनुष्य जो यजनादि कार्य करता है, जो आहुति देता है, देवर्धनादि भी करता है सभी प्रकार से प्राप्त होने वाले फल को क्रोध उसी प्रकार हर लेता है जिस प्रकार कच्चे मिट्टि को जल हर लेता है। जो व्यक्ति पर स्त्री को मातृवत् सर्वदा सम्मान देता है, दूसरों की वस्तुओं को मिट्टि की ढेले की तरह समझता है, समस्त प्राणियों को अपने समान देखता है वही वस्तुतः ठीक से देखता है उसे देखना सम्यक रूपेण आता है।

अग्निहोत्रं त्यजेत् यस्तु स नरो वीरहा भवेत्।

तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चन्द्रायणादृते[34]।।

जो व्यक्ति अग्निहोत्र कर्म को त्याग देता है, जो अग्निहोत्र प्रतिदिन नहीं करता है वह अपने पुत्रों को हत्या करने वाले होते हैं। ऐसे सन्तति हत्या वाले व्यक्ति को चन्द्रायण व्रत करना चाहिये।

विवाहोत्सवेयज्ञेषु अन्तरा मृत सूतके।

सद्यः शुद्धिं विजानीयात् पूर्वं सङ्कल्पितं चरेत्[35]।।

विवाह, उत्सव और यज्ञ के मध्य में यदि वृद्धि-सूतक अथवा क्षय सूतक हो जाये, किसी का जन्म या मरण हो जाये तो सदयः शुद्धि का विधान है।

निष्कर्ष-

मनुष्य चाहे कितने भी सतर्कता और सावधानी से अपना कार्य करे उससे गलतियां हो ही जाती है। अब मनुष्य समाज या फिर कोई स्मृति और धर्मग्रन्थ चाहे कितना भी मजबुती रहे उसे परिस्थितियों के अनुसार बदलना ही पडता है। लचीलापन ही सभी समस्याओं का समाधान बन सकता है। पुरूषार्थ चतुष्टय को सम्यक रूप से चलाने के लिए भी लचीलापन की आवश्यकता है। आपस्तम्ब स्मृति भी इसका एक उदाहरण है, इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से जाने अनजाने में कोई गलतियां हो जाए या फिर ऐसा परिस्थिति बन जाए तो आपद्धर्म (आपतकालीन धर्म, विशिष्टधर्म) को अपनाना चहिए। इस स्मृतिग्रन्थ में इसी विशिष्ट धर्म का वर्णन है। कोइ दोष हो जाने पर कैसे प्रायश्चित किया जाए, किस प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न किया जाए, कब तक प्रयश्चित किया जाए इन सभी का वर्णन इस आपस्तम्ब स्मृति में किया गया है।

संदर्भ

1. मनुस्मृति २.१२
2. आपस्तम्ब धर्मसूत्र १.३

3. मनुस्मृति २.१०
4. आपस्तम्ब स्मृति १.९
5. आपस्तम्ब स्मृति १.११
6. आपस्तम्ब स्मृति १.१२
7. आपस्तम्ब स्मृति १.१३,१४
8. आपस्तम्ब स्मृति १.१७
9. आपस्तम्ब स्मृति १.१८
10. आपस्तम्ब स्मृति १.१९
11. आपस्तम्ब स्मृति १.२५
12. आपस्तम्ब स्मृति १.२६
13. आपस्तम्ब स्मृति २.१
14. आपस्तम्ब स्मृति २.६
15. आपस्तम्ब स्मृति ३.१
16. आपस्तम्ब स्मृति ३.४
17. आपस्तम्ब स्मृति ३.११
18. आपस्तम्ब स्मृति ४.१
19. आपस्तम्ब स्मृति ४.२
20. आपस्तम्ब स्मृति ४.५
21. आपस्तम्ब स्मृति ५.२
22. आपस्तम्ब स्मृति ५.३-७
23. आपस्तम्ब स्मृति ५.९-१४
24. आपस्तम्ब स्मृति ६.२-४
25. आपस्तम्ब स्मृति ६.७
26. आपस्तम्ब स्मृति ६.८-१०
27. आपस्तम्ब स्मृति ७.१७-२२
28. आपस्तम्ब स्मृति ८.८
29. आपस्तम्ब स्मृति ८.१३
30. आपस्तम्ब स्मृति ९.९
31. आपस्तम्ब स्मृति ९.१२
32. आपस्तम्ब स्मृति १०.४
33. आपस्तम्ब स्मृति १०.९
34. आपस्तम्ब स्मृति १०.११
35. आपस्तम्ब स्मृति १०.१६

सन् 1857 का विप्लव और राजस्थान का योगदान: एक ऐतिहासिक विवेचन

सुरेश कुमार मीणा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सार

भारत में अंग्रेजी शासनकाल के दौरान घटित 1857 का विद्रोह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध पहला संघर्ष था जिसमें अनेक शासकों के साथ-साथ स्थानीय जनता ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। हालांकि ब्रिटिश सरकार द्वारा इस विद्रोह को दबा दिया गया परंतु यह विद्रोह उस राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का प्रेरणास्रोत बन गया जिससे अंततः देश को स्वतंत्रता प्राप्त हो सकी। प्रस्तुत शोध आलेख में 1857 के विद्रोह के दौरान घटित विभिन्न घटनाओं, कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालते हुए राजस्थान का इस स्वतंत्रता संघर्ष में योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

शब्द-कुंजी: 1857, विद्रोह, राजस्थान, स्थानीय सामंत, सामाजिक-धार्मिक पृष्ठभूमि, छावनियां, क्रांतिकारी, ब्रिटिश शासन, सैनिक, स्वतंत्रता संघर्ष।

भारत में अंग्रेजी शासन की शोषण और अत्याचारपूर्ण नीतियों के खिलाफ पहला जन-विद्रोह 1857 की क्रांति के रूप में सामने आया जिसने अनेक देशी रियासतों को प्रभावित किया और इन देशी रियासतों के शासन ने अंग्रेजी प्रभुत्व से मुक्ति के लिए विद्रोह किया। जिसने पूरे उळारी भारत को प्रभावित किया। इस विद्रोह को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नाम से भी जाना जाता है और इसकी शुरुआत 10 मई 1857 को मेरठ छावनी से हुई थी। चर्बी लगे कारतूस के प्रयोग को 1857 के विद्रोह का तात्कालिक कारण माना जाता है। तत्कालीन लॉर्ड कैनिंग सरकार ने 1857 में सैनिकों के प्रयोग के लिए ब्राउन बैस के स्थान पर एनफील्ड राइफल का प्रयोग शुरू करवाया जिसमें कारतूस लगाने से पूर्व दांत से चर्बी का खोल उतारना पड़ता था। ऐसा कहा जाता है कि कारतूस में गाय और सुअर दोनों की चर्बी लगी थी इसलिए हिंदू और मुसलमान दोनों भड़क उठे, परिणामस्वरूप 1857 के विद्रोह की शुरुआत हुई। चर्बी वाले कारतूसों की पहली घटना 29 मार्च 1857 को बैरकपुर की छावनी में घटी, जहां 34 वीं रेजीमेंट के मंगल पांडे नामक एक सिपाही ने चर्बी लगे कारतूस के प्रयोग से इनकार करते हुए अपने अधिकारी लेफ्टिनेंट बाग और लेफ्टिनेंट जनरल हयूमन की हत्या कर दी। 8 अप्रैल 1857 को मंगल पांडे को फांसी दे दी गई। मंगल पांडे द्वारा बैरकपुर की अंग्रेज छावनी में किए गए विद्रोह को एक महत्वपूर्ण घटना माना गया है जो बाद में एक बडेध् सैनिक विद्रोह के रूप में परिवर्तित हो गयी।

भारतीय स्वतंत्रता हेतु प्रथम सशस्त्र विद्रोह 10 मई 1857 को मेरठ स्थित छावनी की 20 एन.आई.एस. तथा तीन एल.सी. की पैदल टुकड़ी ने चर्बी वाले कारतूस के प्रयोग से इनकार कर विद्रोह की शुरुआत की। इस सैनिक विद्रोह का नेता बख्तखान था। 11 मई 1857 को मेरठ के विद्रोहियों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह द्वितीय को पुनः भारत का सम्राट और विद्रोह का नेता घोषित कर दिया। तत्पश्चात विद्रोह देश के विभिन्न भागों में तेजी से फैला। अन्य भागों की तरह राजस्थान में भी विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। क्रांति के प्रतीक के रूप में कमल और रोटी को चुना गया। कमल के फूल को उन सभी सैन्य टुकड़ियों को भेजा गया जो विद्रोह में शामिल थी तथा रोटी को एक गांव का चौकीदार दूसरे गांव तक पहुंचाता था। 1857 के विद्रोह को लेकर विभिन्न इतिहासकारों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह केवल किसान विद्रोह था। जबकि

कुछ विद्वान इस घटना को महान सैन्य विद्रोह मानते हैं। वी.डी. सावरकर ने अपनी पुस्तक ''द इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस 1857'' में इसे भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में वर्णित किया है। इसी प्रकार रामविलास शर्मा ने इसे जन-क्रांति बताया है। बेंजामिन डिजरैली के अनुसार यह एक राष्ट्रीय विद्रोह था। सर जॉन लॉरेंस, मैलेसन, ट्रेविलियन एवं सीले ने 1857 की क्रांति को सिपाही विद्रोह कहा है।

1857 के विद्रोह के कारण

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के नेतृत्व में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन की स्थापना हुई। जिसने धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत में अपनी सत्ता को मजबूत की जिसमें सेना की भूमिका महत्वपूर्ण रही। गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी के शासनकाल के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा विभिन्न भारतीय रियासतों का अधिग्रहण किया गया और उन्हें बलपूर्वक ब्रिटिश शासन में मिला दिया गया, जिससे व्यापक जन-असंतोष उत्पन्न हुआ। इसके साथ ही सेना का भी लगातार विस्तार किया गया। ब्रिटिश सेना में 80 प्रतिशत से अधिक सैनिक भारतीय थे जबकि उच्च पदों पर अंग्रेज अफसर तैनात थे। अंग्रेजी सैनिकों के विपरीत उन्हें सिपाही का दर्ज मिला हुआ था। इन सिपाहियों ने प्लासी और बक्सर के युद्ध में अभूतपूर्व वीरता का प्रदर्शन करते हुए विजयी दिलाई थी।

1857 का विद्रोह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी अपितु यह अनेक ऐतिहासिक और तात्कालिक कारणों का परिणाम थी। इस विद्रोह के तात्कालिक कारणों में यह भ्रांति फैल गयी थी कि सैनिकों की राइफल के कारतूस में सूअर और गाय की चर्बी इस्तेमाल की गई जो हिन्दू और मुस्लिम दोनों सिपाहियों की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचा रही थी।

लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी और विस्तारवादी नीति: ब्रिटिश गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी ने अपने शासनकाल के दौरान ब्रिटिश हुकूमत को मजबूत करने और इसके विस्तार के लिए अनेक अन्यायपूर्ण और अवैधानिक तरीके अपनाएं जिससे स्थानीय शासकों में असंतोष व्याप्त हुआ। लार्ड डलहौजी ने इसके लिए ''लैप्स का सिद्धान्त'' अपनाया। इसका तात्पर्य यह था, ''जो देशी रियासतें कंपनी शासन के अधीन हैं, उनको अपने उळाराधिकारियों के चयन के बारे में ब्रिटिश शासन से मान्यता और स्वीकृति लेनी होगी। यदि देशी रियासतें ऐसा नहीं करेगी तो ब्रिटिश सरकार उन उळाराधिकारियों को अपनी रियासत का वैध शासक नहीं मानेगी।'' इस नीति को आधार बनाकर डलहौजी ने नि:संतान राजाओं को गोद लेने पर प्रतिबंध लगा दिया और इसी आधार पर सतारा, जैतपुर, सम्भलपुर, बघाट, उदयपुर, झांसी, नागपुर आदि देशी रियासतों को ब्रिटिश शासन में मिला दिया। डलहौजी ने सन् 1856 में अवध के नवाब पर कुशासन का आरोप लगाकर उसे भी ब्रिटिश शासन में मिला दिया। डलहौजी की इस साम्राज्यावादी नीति ने भारतीय राजाओं और नवाबों में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष और अविश्वास की भावना को जन्म दिया। इन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन के विरुद्ध इन देशी रियासतों का विद्रोह एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया। इसी तरह झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के दळाक पुत्र को उसका वैध उळाराधिकारी मानने से अंग्रेजों ने इनकार कर दिया।

नाना साहब की पेंषन बंद करना: नाना साहब मराठा साम्राज्य के पेशवा बाजीराव द्वितीय के दळाक पुत्र थे। लॉर्ड डलहौजी ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया और उनको मिलने वाली सालाना पेंशन भी बंद कर दी। इससे नाना साहब और उनके मराठा सरदार ब्रिटिश शासन के शत्रु बन गये और उन्होंने 1857 के विद्रोह का नेतृत्व किया।

मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के साथ दुर्व्यवहार: भारत में मुगल शासन के उळाराधिकारी और तत्कालीन मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के साथ अंग्रेजों ने उपेक्षापूर्ण नीति अपनायी। उनको दिया जाने वाला नजराना भी बन्द कर दिया। भारतीय मुद्रा पर से भी सम्राट का नाम हटा दिया गया। इससे देशी राजा और भारतीय जनता नाराज हो गयी क्योंकि वे इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

समकालीन परिस्थितियां: विश्व में बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियां भी 1857 के विद्रोह के लिए जिम्मेदार थी। पहले भारतीय जनता ब्रिटिश सैनिकों को अपराजित मानती थी परन्तु क्रीमिया और अफगान युद्धों में ब्रिटिश हार से यह भ्रम टूट गया। इसी समय रूस द्वारा क्रीमिया की हार का बदला लेने और भारतीयों का साथ देने की अफवाह फैली, जिसके फलस्वरूप भारतीयों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध की भावना को बल मिला।

आर्थिक कारण: ब्रिटिश शासन ने भूमि सुधार और कृषकों की स्थिति में सुधार के नाम पर अनेक प्रकार की भूमि बंदोबस्त व्यवस्था लागू की, परन्तु इन व्यवस्थाओं से किसानों का शोषण और अधिक बढ़ गया। उनसे अधिक लगान वसूलना शुरू किया

जो उनकी आमदनी से ज्यादा था। इससे किसान वर्ग में भी असंतोष की भावना उत्पन्न हुई और वे ब्रिटिश शासन के विरोध में खड़े हो गये। इसी प्रकार लॉर्ड बैंटिक ने कुलीन वर्ग को इनामों में मिली जागीरों को जब्त कर लिया और वे धीरे-धीरे निर्धन हो गए। इसी के साथ ब्रिटिश सरकार ने भारत का कच्चा माल लंकाशायर उद्योगों को भेजा जाने लगा और तैयार माल भारत में आने लगा। इससे स्थानीय उद्योग धंधे नष्ट हो गए और अनेक लोग बेरोजगार हो गए। इससे भारतीय मध्यम वर्ग में व्यापक असंतोष फैला और वे ब्रिटिश शासन को उखाड़ फैंकने की सोचने लगे।

सामाजिक कारण: भारत में ब्रिटिश शासन ने यहां की पुरातन सामाजिक व्यवस्था को भी भंग करने का प्रयास किया। इससे परंपरावादी और रूढ़िवादी जनता उनसे नाराज हो गयी। लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। इसी तरह लार्ड कैनिंग ने विधवा विवाह को मान्यता प्रदान की। इसके फलस्वरूप जनता में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध रोष उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त 1856 में पैतृक संपत्ति कानून में संशोधन किया और हिन्दुओं के उत्तराधिकार नियम में भी परिवर्तन किया गया। इसमें यह भी निश्चित किया गया कि ईसाई धर्म अपनाने पर व्यक्ति की पैतृक संपत्ति में हिस्सा बना रहेगा। इस प्रकार पैतृक संपत्ति कानून भेदभावपूर्ण था। रूढिवादी भारतीय समाज ने ब्रिटिश शासन के भारतीय समाज में अनावश्यक हस्तक्षेप को पसन्द नहीं किया और वे विद्रोही हो गये। इसी तरह ब्रिटिशों ने पाश्चात्य संस्कृति को प्रोत्साहन दिया और भारत में इसका प्रचार आरंभ किया। उन्होंने यूरोपीय चिकित्सा व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। स्कूल, अस्पताल, दफ्तर एवं सेना ईसाई धर्म प्रचार के केन्द्र बन गए। इससे भारतीयों को यह लगने लगा कि ब्रिटिश सरकार उनकी संस्कृति और धर्म को नष्ट करना चाहते हैं। अत: उनमें गहरा असंतोष उत्पन्न हुआ और वे विद्रोही बन गए।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव ने भारतीय समाज की मूल विशेषताओं को समाप्त कर दिया। इसने भारतीयों के रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, शिष्टाचार एवं व्यवहार में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया जिससे सामाजिक जीवन की मौलिकता समाप्त होने लगी और भारतीयों में यह आशंका उत्पन्न हो गयी कि ब्रिटिश पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का प्रसार करके भारतीयों की सभ्यता नष्ट करना चाहते हैं। इसी का भयानक रूप भारतीयों के प्रति भेदभावपूर्ण नीति के रूप में सामने आया। ब्रिटिश भारतीयों को निम्न कोटि का मानते थे और उन्हें रेलों में प्रथम श्रेणी में सफर करने का अधिकार भी नहीं था। ब्रिटिश द्वारा संचालित क्लबों और होटलों मे भी भारतीयों का प्रवेश वर्जित था।

धार्मिक कारण: ब्रिटिश सरकार ने भारत में भी ईसाई धर्म के प्रचार का बीड़ा उठाया और सन् 1831 में चार्टर एक्ट पारित किया जिसमें ईसाई मिशनरियों को भारत में स्वतंत्रतापूर्वक धर्म प्रचार की इजाजत दी गई। इन धर्म-प्रचारकों ने हिन्दू धर्म और ईस्लाम धर्म की खुलकर निन्दा की तथा अपने धर्म को अन्य धर्मों से सर्वश्रेष्ठ बताया। इससे भारत के कट्टपंथी नाराज हो गए और विद्रोह मे विद्रोहियों का साथ दिया।

ब्रिटिश शासन की इन त्रुटिपूर्ण और अन्यायपूर्ण नीतियों के कारण भारतीय जनता उनसे द्धेष रखने लगी और उसे भारत से उखाड़ फेंकने के लिए दृढ़-संकल्पित हो गई। जिसके परिणामस्वरूप 1857 की क्रांति का जन्म हुआ जिसने भारत से ब्रिटिश सळाा को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। परंतु अनेक देशी शासकों ने ब्रिटिश सरकार को समर्थन प्रदान किया जिससे यह क्रांति असफल हो गयी।

1857 की क्रांति में राजस्थान की भूमिका

1857 की क्रांति के पूर्व राजपूताना के अनेक शासन ब्रिटिश समर्थक थे और इन्होंने क्रांति के दौरान अंग्रेजो को अनेक सैनिक तथा धन-बल से सहायता प्रदान की। परंतु राजपूती सामंतों का एक वर्ग ब्रिटिश शासन से नाराज था और उन्होंने क्रांति के दौरान विद्रोहियों का साथ दिया और उन्हें आम जनता का भी समर्थन प्राप्त हुआ। राजस्थान में 1857 की क्रांति के समय छ: रियासतों कोटा, झालावाड, टोंक, बांसवाड़ा, धोलपुर, भरतपुर पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया। राजपूताना के सभी शासकों ने इस विद्रोह के दमन में अंग्रेजी शासन को सहयोग दिया। बीकानेर के सरदार सिंह राजस्थान के एकमात्र शासक थे जो विद्रोह दबाने के लिए पंजाब तक अपनी सेना लेकर गए थे। राजस्थानी कवि सूर्यमल मिश्रण ने 1857 की क्रांति को एक स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा दी। राजस्थान में 1857 की क्रांति की शुरुआत नसीराबाद छावनी से हुई जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे:

ऽ एजीजी जॉर्ज पैट्रिक लॉरेंस ने अजमेर में स्थित 15 वीं बंगाल नेटिव इन्फेंट्री को अविश्वास के कारण नसीराबाद भेज दिया था जिससे स्थानीय सैनिकों में असंतोष उत्पन्न हो गया।

ऽ अंग्रेजी सरकार ने फर्स्ट बंबई लांसर्स के सैनिकों से नसीराबाद में गश्त लगवाना आरंभ किया एवं बारूद भरी तोपें तैयार करवायी जिससे सैनिक भड़क गये।

राजस्थान में विद्रोह के केन्द्र व पॉलिटिकल एजेंट: राजस्थान में 1857 की क्रांति के समय अंग्रेजी शासन की 6 सैनिक छावनियाँ थी जिनमें खेरवाड़ा और ब्यावर की सैनिक छावनियों ने विद्रोह में भाग नहीं लिया था। राजस्थान की इन सैनिक छावनियों में सभी सैनिक भारतीय थे। विद्रोह की शुरुआत में डीसा से यूरोपियन रेजीमेंट को बुलाया गया। इन छावनियों में नसीराबाद छावनी सबसे बड़ी छावनी थी जो अजमेर के निकट स्थित थी और यहीं पर अंग्रेजों का शास्त्रागार और गोला-बारूद जमा था।

सैनिक छावनियाँ व पॉलिटिकल एजेंट

क्रम संख्या	*छावनी का नाम*	*रियासत का नाम*	*पॉलिटिकल एजेंट*
1.	नसीराबाद (अजमेर)	कोटा रियासत	मेजर बर्टन
2.	नीमच (मध्यप्रदेश)	जोधपुर रियासत	मैक मैसन
3.	एरिनपुरा (पाली)	भरतपुर रियासत	मोरिसन
4.	देवली (टोंक)	जयपुर रियासत	ईडन
5.	ब्यावर (अजमेर)	उदयपुर रियासत	शावर्स
6.	खेरवाड़ा (उदयपुर)	सिरोही रियासत	जे.डी.हॉल

1. नसीराबाद में विद्रोह: राजस्थान में 1857 की क्रांति की शुरुआत 28 मई 1857 को अजमेर स्थित नसीराबाद छावनी से हुई। यहां पर तैनात 15 वीं नेटिव इन्फेंट्री बटालियन के सैनिकों ने अंग्रेजी अफसरों द्वारा अविश्वास किए जाने के कारण विद्रोह कर दिया और इन विद्रोहियों ने कर्नल न्यबरी और मेजर स्पोटिसवुड नामक अंग्रेज अफसरों की हत्या कर दी। क्रांतिकारी सैनिकों ने छावनी को तहस-नहस करने के बाद दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गए। इन सैनिकों ने 18 जून को दिल्ली पहुंचकर वहां पर अंग्रेजी सेना पर हमला कर उसे पराजित किया।
2. नीमच में विद्रोह: नसीराबाद के बाद क्रांति की अग्नि नीमच में भी प्रज्वलित हुई। 2 जून को कर्नल अबोट ने हिंदू और मुसलमान सिपाहियों को गंगा और कुरान की शपथ दिलाई थी कि वे ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रहेंगे। परंतु 3 जून 1857 को रात्रि 11 बजे नीमच छावनी में तैनात भारतीय सैनिकों ने हीरा सिंह और मोहम्मद अली बेग के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। उन्होंने तोपखाने पर अधिकार करके छावनी को घेर लिया तथा उसमें आग लगा दी। इसी समय खबर आयी कि मेवाड़ पोलिटिकल एजेंट कैप्टन शावर्स बेदला के राव बख्तसिंह के नेतृत्व में सेना लेकर नीमच आ रहा है। इस पर विद्रोही सिपाहियों ने लूट का माल लेकर बैंड बजाते हुए छावनी से कूच किया। इन सिपाहियों ने देवली पहुंचकर वहां भी छावनी को लूटा। यहां से विद्रोही सिपाही टोंक तथा कोटा होते हुए दिल्ली पहुंचे और दिल्ली के क्रांतिकारियों से मिलकर अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया। शावर्स की सहायता के लिए मेवाड़ का एजीजी चार्ज लॉरेंस भी आ गया किंतु तब तक क्रांतिकारी दिल्ली के लिए कूच कर चुके थे। नीमच के लगभग 40 अंग्रेज जिनमें औरतें व बच्चे भी सम्मिलित थे, इधर-उधर जंगल में भटकते, भूखे-प्यासे और भयभीत एवं आतंकित हुए डूंगला गांव में पहुंचे, जहां रूगाराम नामक किसान ने उन्हें शरण दी थी। क्रांतिकारी भी उनका पीछा करते हुए वहां पहुंचे, परंतु इस बीच पॉलिटिकल एजेंट शावर्स मेवाड़ी सेना के साथ डूंगला पहुंच गया। उसने इन अंग्रेज औरतों व बच्चों को सुरक्षित उदयपुर पहुंचा दिया। महाराणा ने उन्हें पिछोला झील में बने जगमंदिर में ठहराया और राज्य की ओर से उनकी सुरक्षा का कड़ा प्रतिबंध किया गया।
3. टोंक में विद्रोह: टोंक का नवाब नजीर खां अंग्रेज भक्त था। सेना का एक बड़ा भाग नीमच व देवली छावनी के क्रांतिकारियों से मिल गया तथा इन सैनिकों ने नीमच के सैनिकों के साथ नवाब के किले को घेर लिया। नवाब के मामा मीर आलम खां ने विद्रोहियों का साथ दिया। मीर आलम खां ने सैनिकों के सहयोग से टोंक पर कब्जा कर लिया। 1858 ईस्वी के प्रारंभ में तांत्या टोपे के टोंक पहुंचने पर टोंक की जनता ने तांत्या को सहयोग दिया एवं टोंक के जागीरदार नासिर मोहम्मद खां ने भी तांत्या का साथ दिया। जबकि नवाब ने अपने आपको किले में बंद कर लिया।
4. एरिनपुरा और आउवा में विद्रोह: 1835 ईस्वी में अंग्रेजों ने जोधपुर की सेना के सवारों पर अकुशल होने का आरोप लगाकर जोधपुर लीजियन का गठन किया गया। इसका केंद्र एरिनपुरा रखा गया। एरिनपुरा स्थित अंग्रेज छावनी में जोध

पुर लीजन का सदर मुकाम था। लीजन में 600 घुड़सवार और 1400 पैदल सैनिक थे। इस लीजन के 90 सैनिक अभ्यास हेतु माउंट आबू गए हुए थे। माउंट आबू ए.जी.जी. का ग्रीष्मकालीन मुकाम था। 21 अगस्त, 1857 को जोधपुर लीजियन के सैनिकों ने विद्रोह कर आबू में अंग्रेज सैनिकों पर हमला कर दिया। 23 अगस्त, 1857 को जोधपुर लीजन ने दफेदार मोती खां और सूबेदार शीतल प्रसाद एवं तिलकराम के नेतृत्व में विद्रोह का बिगुल बजा दिया। वे क्रांति के नेताओं के आदेशानुसार 'दिल्ली चलो मारो फिरंगी' के नारे लगाते हुए दिल्ली की ओर कूच कर गये। ये क्रांतिकारी सैनिक रास्ते में आउवा पहुंचे। एरिनपुरा के विद्रोही सैनिकों की भेंट खरवा नामक स्थान पर आउवा के ठाकुर कुशाल सिंह से हुई। वहां के ठाकुर कुशाल सिंह चांपावत ने क्रांतिकारी सेना का नेतृत्व करना स्वीकार कर लिया। आसोप, आलनियावास, गूलर, लांबिया, बंतावास और रूदावास के जागीरदार भी अपनी अपनी सेना के साथ क्रांतिकारियों से आ मिले। ठाकुर कुशाल सिंह ने मेवाड़ के सलूंबर और कोठारिया आदि जागीरदारों को भी क्रांति में शामिल होने का आह्वान किया। इन जागीरदारों की क्रांतिकारियों के साथ सहानुभूति थी, पर यह सहानुभूति सक्रिय सहयोग में नहीं बदल सकी। वहां मेवाड़ के सलूंबर, रूपनगर तथा लसाणी के सामंतों ने अपनी सेनाएं भेजकर सहायता प्रदान की। इस विद्रोह के दौरान हो प्रमुख लडाइयां लड़ी गई।

(अ) बिथौड़ा की लडाई: 8 सितम्बर 1857 को आउवा के निकट बिथौड़ा में क्रांतिकारियों और जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह की सेना जिसमें अंग्रेज कैप्टन हीथकोट भी सम्मिलित था के बीच लड़ाई हुई जिसमें क्रांतिकारी विजयी हुए।

(ब) चेलावास का युद्ध: 18 सितम्बर 1857 में चेलावास में ठाकुर कुशाल सिंह और ए. जी. जी. पैट्रिक लॉरेंस की सेना के बीच युद्ध हुआ जिसमें ठाकुर कुशाल सिंह विजयी हुए। इस लड़ाई में जोधपुर के पॉलिटिकल एजेंट मेंकमेसन का सिर काटकर आउवा के किले के मुख्य दरवाजे पर लटका दिया। हालांकि बाद में 29 जनवरी 1858 को ब्रिगेडियर होम्स के नेतृत्व में अंग्रेज सेना ने आउवा पर आक्रमण कर दिया। इस परिस्थिति में कुशाल सिंह किले की जिम्मेदारी अपने छोटे भाई पृथ्वी सिंह को सौंपकर मेवाड़ में शरण ली। इस युद्ध में अंग्रेजों की विजय होती है।

ठाकुर कुशाल सिंह की कुलदेवी सुगाली माता थी। जो पूरे राजस्थान में 1857 की क्रांति की प्रतीक मानी गई थी। ब्रिगेडियर होम्स इस मूर्ति को उठाकर अजमेर ले गया जो वर्तमान में अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है। ठाकुर कुशाल सिंह ने 8 अगस्त 1860 में आत्मसमर्पण कर दिया और इस विद्रोह की जांच के लिए मेयर टेलर आयोग का गठन किया गया परन्तु साक्ष्यों के अभाव में कुशाल सिंह को रिहा कर दिया।

5. कोटा में विद्रोह: राजस्थान में सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में कोटा का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। कोटा में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष राजकीय सेना तथा आमजन ने किया। कोटा के पॉलिटिकल एजेंट मेजर बर्टन थे। कोटा में जयदयाल एवं मेहराब खान क्रांति के मुख्य संगठनकर्ता थे। अक्टूबर, 1857 में जयदयाल ने रिसालदार मेहराब खान के साथ मिलकर एक परिपत्र जारी किया, जिसमें कहा गया था कि अंग्रेज आटे व अन्य खाद्य पदार्थों में मानव हड्डियों का चूरा मिलाकर तथा कारतूसों पर गाय और सुअर की चर्बी लगाकर भारतीयों के धर्म को नष्ट करना चाहते हैं। अत: जनसाधारण एवं सैनिकों से अपील की गई कि वे ईसाइयों को नष्ट कर दें। 14 अक्टूबर, 1857 को कोटा के पॉलिटिकल एजेंट मेजर बर्टन ने कोटा महाराव से भेंट कर अंग्रेजी विरोधी अधिकारियों को दंडित करने का सुझाव दिया। मगर महाराव ने अधिकारियों के अपने नियंत्रण में न होने की बात कहते हुए बर्टन के सुझाव को मानने से इनकार कर दिया। 15 अक्टूबर, 1857 को क्रांति का बिगुल बजा दिया एवं रेजिडेंसी को घेर लिया। मेहराब खान के मूक समर्थन से ही विद्रोहियों ने पॉलिटिकल एजेंट बर्टन, उसके दो पुत्रों व एक डॉक्टर सैडलर काटम की हत्या कर दी गई। क्रांतिकारियों ने बर्टन का सिर धड़ से अलग कर दिया व इसका सारे शहर में खुला प्रदर्शन किया।

कोटा के महाराव रामसिंह को उनके महल में नजरबंद कर दिया एवं कोटा राज्य की तोपों को अपने कब्जे में ले लिया। मेहराब खान ने जयदयाल भटनागर के साथ कोटा राज्य का शासन अपने हाथ में लिया। मेहराब खान और जयदयाल ने महाराव को एक परवाने पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया, जिसमें मेजर बर्टन व उसके पुत्रों की हत्या महाराव के आदेश से करने एवं जयदयाल को मुख्य प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त करने की बातों का उल्लेख था। जनवरी, 1858 में करौली से सैनिक सहायता मिलने पर महाराव के सैनिकों ने क्रांतिकारियों को गढ़ से खदेड़ दिया। मार्च, 1858 में जनरल रॉबर्ट्स के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने कोटा की सेना पर आक्रमण किया। 1857 की क्रांति के समय हरदयाल भटनागर ने सक्रिय भूमिका अदा की। उस समय कोटा का मुख्य प्रशासक जयदयाल भटनागर इसका बड़ा भाई था। मार्च,

1858 में जनरल रॉबर्ट्स की सेना से युद्ध करते हुए हरदयाल भटनागर शहीद हुआ। 30 मार्च, 1858 को कोटा पर अंग्रेजी सेना का अधिकार हो गया। करौली के महारावल मदनपाल की सेना भी मेजर जनरल रॉबर्ट्स के साथ थी। 6 महीने तक क्रांतिकारियों के अधीन रहने के बाद कोटा दुबारा महाराव को प्राप्त हुआ। इस प्रकार कोटा में सर्वाधिक भीषण और व्यापक विप्लव हुआ।

6. अन्य रियासतों में विद्रोह: 1857 के विद्रोह के दौरान राजस्थान की अनेक रियासतें इससे प्रभावित रही। विद्रोह के दौरान भरतपुर की सेना ने भी विद्रोह किया और पूरा भरतपुर अशांत बना रहा। मेवात की जनता ने भी विद्रोह में खुलकर भाग लिया। अलवर राज्य में भी इसी प्रकार विद्रोह की शुरुआत हुई। धौलपुर रियासत पर भी विद्रोहियों का काफी दबाव रहा और ग्वालियर व इन्दौर के विद्रोही सैनिक धौलपुर पहुंचे। वहां अनेक स्थानीय पदाधिकारी और सैनिक इनसे आकर मिल गए। विद्रोही सैनिकों ने धौलपुर के शासक पर दबाव डालकर वहां से तोपें प्राप्त की और आगरा पर आक्रमण कर दिया परन्तु पटियाला के शासक द्वारा अपनी सेना भेजने पर धौलपुर में व्यवस्था स्थापित हो सकी। जयपुर रियासत में उस्मान खां और सादुल्ला खां ने विद्रोह का नेतृत्व संभाला।

इस प्रकार 1857 के विद्रोह के दौरान राजस्थान के अधिकांश शासक अंग्रेजी शासन के प्रति वफादार बने रहे।

राजस्थान में 1857 के विद्रोह की असफलता के कारण: राजस्थान में 1857 के विद्रोह के दौरान अनेक रियासतों और छावनियों में सैनिक विद्रोह हुआ और उन्हें व्यापक जन समर्थन भी प्राप्त था परन्तु वह असफल रहा जिसके निम्न कारण थे –

1. देशी रियासतों के शासक अदूरदर्शी थे और अंग्रेज समर्थक थे इसलिए उन्होंने विद्रोही सैनिकों का समर्थन नहीं किया।
2. विद्रोहियों का कोई एक नेता नहीं था। इसके अतिरिक्त उनमें एकता और संगठन का भी अभाव था जिससे अंग्रेज इनका आसानी से दमन कर सके।
3. विद्रोही सैनिकों में अंग्रेजी सेना के समान रण-कौशल का अभाव था। इसके साथ ही उनके पास पर्याप्त मात्रा में गोला-बारूद और हथियारों का अभाव था जो संसाधनयुक्त अंग्रेजी सेना का सामना नहीं कर सके।

विद्रोह के परिणाम: 1857 के विद्रोह के दौरान देशी रियासतों के शासकों द्वारा अंग्रेजों की सहायता की गई। अत: विद्रोह के दमन के पश्चात् अंग्रेजों ने उन्हें उपाधियां देकर पुरस्कृत किया। चूंकि विप्लव में प्रमुख रूप से सामंतों ने भाग लिया था अत: अंग्रेजों ने विप्लव की समाप्ति के पश्चात् विभिन्न उपायों द्वारा इनकी शक्ति को नष्ट करने का प्रयास किया। विद्रोह के दौरान अंग्रेजी सरकार को अपनी सेना एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा अत: उन्होंने विप्लव के बाद जयपुर-अजमेर-डीसा सड़क का निर्माण करवाया। साथ ही नसीराबाद से चित्तौड़ होकर नीमच तक की सड़क का भी निर्माण उन्होंने किया ताकि सेना तुरंत वहां भी भेजी जा सके। नाथूराम खडगावत के मत में, ''1857 के विप्लव में साधारण जनता ने भी प्रत्यक्ष से रूप भाग लिया था।''

निष्कर्ष: 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष भारत ही नहीं राजस्थान के इतिहास की भी महत्वपूर्ण घटना है। इसका प्रमुख कारण सैनिकों के बीच असंतोष था। परंतु वास्तविकता में यह अंग्रेजी सरकार को खत्म करने का सामूहिक संघर्ष था। राजस्थान में क्रांति अंग्रेजों के विरुद्ध सभी वर्गों में व्याप्त रोष का परिणाम थी और साधारण जनता ने भी इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया था। अत: इस संघर्ष में राजस्थान में स्थानीय शासकों को छोडकर सभी वर्गों ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में सक्रिय भागीदारी निभाई। नि:सन्देह 1857 ई. का संघर्ष राजस्थान में भी अंग्रेजी दासता से मुक्ति का प्रथम संग्राम था।

संदर्भ ग्रंथ:

1. चंद्रा, विपिन एवं अन्य. (1998). भारत का स्वतंत्रता संघर्ष. दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय.
2. दिवाकर, बी.एम. (1987). राजस्थान का इतिहास. जयपुर: साहित्यागार.
3. जोशी, बसंत. (1997). उन्नीसवीं सदी का राजस्थान. जयपुर: पब्लिशिंग हाउस.
4. पनगडिया, बी.एल. राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
5. शर्मा, बृजकिशोर. (2019). राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आंदोलन. जयपुर:राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
6. ..... (संपा, 1994). भारत का इतिहास (1750-1950). जयपुर: राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी.

7. व्यास, रामप्रसाद. (1994). आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
8. Khadgawat, Nathuram- (1957)- *Rajasthan's Role in are Struggle of 1857.* General Adiministion Department, Govt. of Rajasthan.
9. Machawe] P. (1957)- *1857 and Indian Literature. Indian Literature. Vol. 1*, Oct., PP. 53-59.
10. Majumdar] R.C. (1957)- *The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857.* Calcutta: Calcutta Oriental Press Pvt. Ltd.
11. Mukherjee] Rudrangshu. (2001). *Awadh in Renolt 1857-1858: A sutdy of popular Resistance.* Delhi: Permanent Black.
12. Mallesson] G.B. (2005). *The India Matiny of 1857.* New Delhi: Rupa Publications.
13. Saxena] K.S. (1971). *The Political Movement and Awakening in Rajasthan.* Delhi: S. Chand.
14. Vyas] Indira. (2004)- *Feedom movement in Rajasthan: With special reference to Ajmer – Marwara.* Jaipur: Universal Book House-

अरुण कमल की काव्य में मजदूर चेतना

प्रो० संजय एल० मादार

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पी0 जी0 काम्पलेक्स, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, खैरताबाद, तेलंगााना राज्य।

नेहा कुमारी

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, पी0 जी0 काम्पलेक्स, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, खैरताबाद, तेलंगााना राज्य।

महात्मा गाँधी ने काफी समय पहले 'हिंद स्वराज' में लिखा था, "पहले लोग खुली हवा में अपने को ठीक लगे उतना काम स्वतंत्रता से करते थे। अब हजारों आदमी अपने गुजारे के लिए इकट्ठा होकर बड़े कारखानों में या खानों में काम करते हैं। उनकी हालत जानवरों से भी बदतर हो गई है। उन्हें सीसे वगैरा के कारखानों में जान को जोखिम में डालकर काम करना पड़ता है। इसका लाभ पैसेदार लोगों को मिलता है। पहले लोगों को मार-पीट कर गुलाम बनाया जाता था; आज लोगों को पैसे का और भोग का लालच देकर गुलाम बनाया जाता है।"[1] वर्तमान में भी गाँधी जी का यह कथन बिल्कुल सार्थक प्रतीत होता है। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप शोषक और शोषित वर्ग के बीच की खाई और गहराती ही गई है। आज खेत, कारखानों, खानों आदि में काम करने वाला श्रमिक-मजदूर सबसे उपेक्षित, लाचार एवं शोषित प्राणी है। उसका जीवन मानो गरीबी का दस्तावेज बन गया हो। वह कर्ज में पैदा होता है, कर्ज में जीता है और मरते वक्त विरासत रूप में कर्ज ही छोड़ जाता है। भारत में ऐसे शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों की कमी नहीं है किंतु इनकी स्थिति चिंताजनक एवं दयनीय अवश्य है। आधुनिक हिंदी के कवि अरूण कमल की कविताओं में मजदूरों की स्थितियों पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ है।

बच्चे, जवान, स्त्रियाँ सभी शामिल हैं। कोई जूट या लोहे के मिलों में काम करता है तो कोई होटल का नौकर है, पुल बनाने वाले मजदूर, नक्सली समझकर मौत के घाट उतार दिए जाने वाले मजदूर, दरजिन, स्कूल मास्टर, अगरबत्ती बनाने वाले मजदूर आदि सभी उनकी कविताओं के विषय-वस्तु रहे हैं। 'यात्रा' कविता में कलकत्ते के कारखाने में काम करने वाला जलंधर का मजदूर निहाल सिंह है जिसका अपना मुल्क बहुत दूर छूट गया है किंतु उसके तलवों में पंजाब की थोड़ी-सी धूल अभी भी बाकी है। अपना घर छोड़कर रोजी-रोटी के लिए दूसरी जगह जाने की बेबसी मजदूर निहालसिंह के ही शब्दों में, "कौन नहीं चाहता जहाँ जिस जमीन उगे/ मिट्टी बन जाय वहीं,/ पर दोमट नहीं, तपता हुआ रेत ही है घर/ तरबूज का,/ जहाँ निभे जिंदगी वही घर वही गाँव।

अरुण कमल की कविताओं की खास विशेषता यह है कि उनका मजदूर चित्रण किसी विशेष वर्ग के मजदूरों तक ही सीमित नहीं है बल्कि उनमें बूढ़े जिनके लिए अपना घर न होकर तपता हुआ रेत हो जाए उनके लिए घर छोड़कर जाना आवश्यक है। पंजाबी मर्द, पंजाबी लड़कियाँ, औरतें, बच्चे सभी काम पर वापस लौट रहे हैं। यह सभी मजदूर अपने मिल मालिकों की कृपा-दृष्टि पर टिके हुए हैं जिनमें कोई जूट के कारखाने में काम करता है तो कोई लोहे के कारखाने में किंतु,कोई नहीं जानता कब बंद हो जाएँगी कौन-सी मिलें/किनकी होगी छँटनी, किनकी कटेंगी तनखाहें,/सब रह गए थे घर पर दो-एक दिन फाजिल।

मुंशी प्रेमचंद ने अपने एक निबंध 'महाजनी सभ्यता' में लिखा है, "इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज महज पैसा होती है। किसी देश पर राज्य किया जाता है, तो इसीलिए कि महाजनों, पूँजीपतियों को ज्यादा से ज्यादा नफा हो। इस दृष्टि से मानों आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है, और

बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किए हुए हैं। इन्हें इस बड़ भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रू-रिआयत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाये, खून गिराये और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से बिदा हो जाय। अधिक दु:ख की बात यह है कि शासक वर्ग के विचार और सिद्धांत शासित वर्ग के भीतर भी समा गये हैं, जिसका फल यह हुआ है कि हर आदमी अपने को शिकारी समझता है और शिकार है समाज। वह खुद समाज से बिल्कुल अलग है, अगर कोई संबंध है, तो यह कि किसी चाल या युक्ति से वह समाज को उल्लू बनावे और उससे जितना लाभ उठाया जा सकता हो, उठा ले।

"धन-लोभ ने मानस-भावों को पूर्ण रूप अपने अधीन कर लिया है। कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा, और केवल पैसा है। जिनके पास पैसा है, देवता-स्वरूप है, उसका अंत:करण कितना ही काला क्यों न हो।"[2] प्रेमचंद द्वारा लिखित यह अत्यंत संवेदनशील पंक्तियाँ हैं। इसमें पूँजीवादी समाज की असलियत स्पष्ट दिखाई दी है। आज चहुँओर धन संचय का लोभ ही सर्वोपरि हो गया है। मानव-जीवन की, उसकी इच्छाओं की मानों कोई कीमत ही नहीं रह गयी है। इस संवेदनहीन जगत में 'होटल' में काम करने वाले लड़के को देखकर कवि का हृदय व्यथित हो उठता है और खाने के लिए उठा हाथ वहीं जड़ हो जाता है। कवि लिखता है, जैसे ही कौर उठाया/ हाथ रूक गया।/ सामने किवाड़ से लगकर/ रो रहा था वह लड़का/ जिसने मेरे सामने/ रक्खी थी थाली।[3]

'मुक्ति' में एक रिटायर्ड स्कूल मास्टर की विवशता का चित्रण हुआ है जो जीवन संघर्षों से जूझता हुआ समयाभाव के कारण अपने ही बेटे को पढ़ाने के लिए समय नहीं निकाल पाता है। उसने दूसरों के बच्चों का जीवन सँवारा किंतु स्वयं अपने परिवार के लिए कुछ न कर पाने का गम उसे सालता है,३.आज मैं सेवा-मुक्त हूँ, आजाद;/ क्या किया मैंने इस जीवन में/ सयानी लड़कियाँ, बच्चे, कच्ची गृहस्थी।

'दरजिन' में शौकिया तौर पर शुरू किए गए काम से अपनी रोजी-रोटी की समस्या को हल करने वाली दो बच्चों की माँ है जो दर-दर भटककर अपने लिए काम माँगती है, फिर भी उसे काम नहीं मिलता है। दरजिन की विवशता को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, तो बीबी जी बोलिए कब आवें/ जिस वक्त हुक्म कीजिए/ सिलाई? बाहर से आधे पर तो/ सीती हूँ बीबी जी, छुपाना क्या है/ यह नहीं कि उनसे कम आपसे जादे/ जी? इससे कम? गुजारा नहीं होगा बीबी जी/ सोचिए केतना काम है/ टाँकते-टाँकते उँगली फट जाएगी/ क्या बेबी जी, क्या कहती हैं?/ नहीं!/ नया फैशन का?/ दरजी से? ठीक है बीबी जी।[4]

'स्नान-पर्व' में मजदूर स्नान का स्वाभाविक चित्र खींचा गया है। कवि तनिक वाक-पटुता का सहारा लेकर मजदूर के अभाव और विवशता को नदी की धार की लटाई पर धागे-सा ढील देकर बांधने का प्रयास किया है, धो लेने दो/ मल-मल कर साफ कर लेने दो/ नदी की काली मिट्टी से/ देह की मैल/ नदी, तुम अपनी धार को/ लटाई पर धागे-सा ढील दो/ पटा दो उस मजदूर का शरीर/ उस खेत को पटा दो।

'खुशबू रचते हैं हाथ' में अगरबत्तियाँ बनाने वाले मजदूरों का चित्रण है जिनमें बूढ़े, बच्चे, जवान, स्त्रियाँ, बीमार आदि सभी तरह के मजदूर हैं। ये मजदूर स्वयं गंदगी में रहते हैं किंतु अपनी मेहनत से खुशबूदार अगरबत्तियाँ बनाते हैं ताकि इन गंदगी के बीच दुनिया में उसकी खुशबू फैला सके, यहीं इस गली में बनती हैं/ मुल्क की मशहूर अगरबत्तियाँ/ इन्हीं गन्दे मुहल्लों के गंदे लोग/ बनाते हैं केवड़ा गुलाब कहास और रातरानी/ अगरबत्तियाँ/ दुनिया की सारी गंदगी के बीच/ दुनिया की सारी खुशबू/ रचते रहते हैं हाथ।

कैसी विडम्बना है कि एक ओर तो दुनिया के सभ्य लोग इन गंदे मुहल्लों में रहने वाले लोगों से घृणा करते हैं तो दूसरी ओर इन्हीं के द्वारा बनायी गयी अगरबत्तियों को ईश्वर के सम्मुख जलाकर अपनी इच्छापूर्ति हेतु प्रार्थना करते हैं। 'डेली पैसेंजर' में एक कामगार औरत है जो हर रोज घर से काम पर निकलती है और फिर श्रमरत थका हुआ शरीर लेकर शाम को वापस घर ताकि फिर अगले दिन काम पर लौट सके। वह औरत ट्रेन की भीड़ में सीकड़ पकड़े खड़ी है। कवि को उससे सहानुभूति होती है और वह उस औरत को बैठने की जगह दे देता है। वह कवि के बगल में आकर बैठ जाती है। उसकी थकान का उल्लेख करते हुए कवि लिखता है,सहसा मेरे कन्धे से/ लग गया/ उस युवती का माथा/ लगता है बहुत थकी थी/ वह कामगार औरत/ काम से वापस घर लौट रही थी/ एक डेली पैसेंजर।

'फिर वही आवाज' में मजदूरों के रोने की आवाज से कवि-हृदय उद्विग्न हो उठा है। कवि को लगता है कि ये रोने वाले उसके अपने ही हैं। कृषक-मजदूरों को आवश्यकतानुसार ही रोजगार मिलता है, धान रोपाई एवं धान कटाई के समय। समयपरस्त राजनीतिज्ञ अपने लाभ के लिए इन पर राजनीति करने से भी नहीं चूकते हैं। कवि को बोकारो पथड्डा पर मारे गये मजदूरों एवं बच्चों से अपना कोई विशेष संबंध प्रतीत होता है। इसी प्रकार, 'उत्सव' कविता में संग्रामी मजदूरों को नक्सली कहकर उन पर गोली चलाकर उनकी हत्या करने की दर्दनाक घटना का वर्णन हुआ है। ऐसी ही एक सच्ची घटना संथाल परगना के अंतर्गत दुमका के काठीकुंड में घट चुकी है। संथाल परगना में राज्य सरकार ने दस से अधिक करार पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को किसानों से सीधे जमीन लेकर उद्योग खोलने की छूट दे दी किंतु जब संथाल किसानों ने अपने हक के लिए इसका विरोध किया तो पुलिस ने इन्हें नक्सली बताकर तथा बहुराष्ट्रीय कंपनी के पक्ष में खड़े होकर संथाल किसानों पर गोली चलाई जिससे कई संथाली कृषक-मजदूर बेवजह मारे गए तथा तत्कालीन सत्ता ने भी पुलिस कार्रवाई का ही बचाव किया। बहरहाल जो हो, राजनीति के इस घिनौने दाव-पेंच में बलि तो इन बेकसूर कृषक-मजदूरों की ही चढ़ी।'महात्मा गाँधी सेतु और मजदूर' में कवि लिखता है, उन मजदूरों का कहीं कोई जिक्र नहीं आज/ जो दुनिया के सबसे बड़े पुल को बनाते हुए/ गंगा का ग्रास बने/ पृथ्वी के एक खंड को दूसरे खंड से जोड़ते/ विलीन हुए-/ कितने ही घरों के पुल टूटे/ इस पुल को बनाते हुए/ पता नहीं कहाँ से आये थे वे/ एक रोज लुप्त हो गये अचानक/ उनके माँ बाप पत्नी बच्चे किसी को शायद/ पता भी नहीं-/ पत्थर डूबे तो आवाज होती है/ आदमी इस दुनिया में बेआवाज डूब जाता है/ इस बार भी होली में घर पर उनका इन्तजार होगा।

मानव जीवन ईश्वर की अतुलनीय एवं अनुपम भेंट है। जीवन चाहे अमीर का हो या गरीब का, इसे कमतर नहीं आँकना चाहिए। अगर पूँजीपति वर्ग मजदूरों से काम लेता है तो उनकी पूर्ण सुरक्षा का दायित्व भी उसका अपना कर्तव्य होना चाहिए। कवि कहता है कि आज जब यह पुल राष्ट्र को समर्पित हो रहा है तो उस पुल पर सबसे पहला कदम उन्हीं मजदूरों का पड़ना चाहिए जिनके श्रम की बदौलत पुल का निर्माण संभव हो पाया है किंतु उन हजारों मजदूरों का कहीं कुछ पता नहीं है; वे तो गए होंगे, फिर किसी काम की तलाश में/ फिर किसी ठेकेदार के बँगले पर!

'ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया' में एक बुढ़िया मजदूरिन है जो कोयला तोड़ती है, दूसरे के घरों में जूठे बर्तन माँजती है और बदले में लोगों की उपेक्षा सहती है। अंत में इसी उपेक्षा को सहते हुए एक दिन मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। वर्तमान में मानवीय संवेदना जड़ हो चुकी है, मानो एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से कोई सरोकार ही नहीं है। अगर कोई किसी से संबंध रखता भी है तो उसके पीछे कोई-न-कोई स्वार्थ अवश्य होता है। प्रेमचंद ने सम्पूर्ण मानव-जाति को सावधान करते हुए कहा है कि, "धन-लिप्सा को इतना न बढ़ने दिया जाए कि वह मनुष्यता, मित्रता, स्नेह-महानुभूति सबको निकाल बाहर करे।"१३ इसी तरह की चेतावनी कवि ने वर्तमान व्यवस्था के पालक पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि 'शहंशाह मैकबेथ' को देते हुए लिखा है,शहंशाह मैकबेथ, अब तुम बचोगे नहीं/ आदमी बढ़ा आ रहा है/ आदमी/ आदमी जैसे बर्नम का जंगल।[5]

अब शोषित वर्ग अपनी ताकत पहचान रहा है। अन्याय के विरूद्ध लड़ने की जो क्षमता उनमें विद्यमान है, अरूण कमल की इस तरह की कविताएँ उन्हें विषम परिस्थितियों से जूझने की प्रेरणा देती हैं। 'जेल का गिलास' में कवि को संथाल परगना के सफाई मजदूर का अल्मुनियम का पिचका हुआ गंदा गिलास मिलता है जिस पर नाम लिखा होता है-रामरतन। कवि सहित चौकीदार, बिजली मजदूर, शिक्षक, छात्र, नौजवान सभी उस गिलास में पानी पीते हैं। यह समानता की दृष्टि है, जहाँ ऊँच-नीच, जात-पाँत, शोषक-शोषित आदि किसी में भेदभाव नहीं है, सभी एक समान है। इसी भाव को धारण करके मानव जीवन सफल एवं सुखी बन सकता है। कवि लिखता है,एक ही नदी से पिया है जल सब ने/ एक ही रास्ते चले सारे पाँव/ जिसने भी रक्खा इस रास्ते पर पाँव/ सागर से जा मिला।

'एक यात्रा' में मजदूरों के दल द्वारा फाग के गीत गाकर यात्रा पूरी करने का अत्यंत सुंदर तरीके से चित्रात्मक वर्णन कवि द्वारा प्रस्तुत हुआ है।इस प्रकार, अरूण कमल ने अपनी कविताओं के माध्यम से मजदूरों के सुख, दु:ख आदि सभी पक्षों को अभिव्यक्ति दी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज के विकास में जो मजदूर-श्रमिक नींव निर्माण का कार्य करते हैं बदले में हम मानव का भी कर्तव्य होना चाहिए कि उनकी समस्याओं को समझें, उनसे संवाद स्थापित करें, उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करें, उन्हें सुशिक्षित बनाएँ क्योंकि ये मजदूर ही मानवीय समाज के विकास के आधार हैं तथा उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी से एक स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है। इस दृष्टि से अरूण कमल की कविताएँ इस कसौटी पर बिल्कुल खरी उतरती हैं।

संदर्भ

1. महात्मा गाँधी, हिंद स्वराज, शिक्षा भारती, दिल्ली, संस्करण-२०१२, पृ.२६
2. मुंशी प्रेमचंद, महाजनी सभ्यता, हिंदी पाठ-संचयन, दीप प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण- जुलाई २०१३, पृ.१९
3. अरूण कमल, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण-१९९९, पृ.१६
4. अरूण कमल, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण-१९९९, पृ.१६
5. अरूण कमल, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण-१९९९, पृ.८७

महिलाओं की जीवन शैली में सामाजिक परिवर्तन

किरन सिंह

शोधार्थी - समाजशास्त्र विभाग, डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ0प्र0।

पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं की जीवन शैली में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिलते हैं। जिनसे उनके व्यवहार मूल्य, संवेदनाओं तथा प्रेरणा शक्ति ही प्रभावित नहीं हुई है बल्कि आज वे जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के साथ भागीदारी कर रही है। सामाजिक परिवर्तन के घूसते चक्र के कारण महिलाओं को परम्परागत रूढ़िवादी भूमिका से काफी हद तक मुक्ति मिल रही है, हालांकि इस प्रक्रिया में विभिन्न कानूनी प्रावधानों ने सकारात्मक भूमिका निभाई है। अब महिलायें मात्र गृहिणी तक ही सीमित नहीं है बल्कि आधिपत्य जवाबी और परिपक्व महिला के रूप में सहज देखी जा सकती है। भारत में इन सामाजिक परिवर्तनों का असर शहरी शिक्षित महिलाओं में और उसमें भी विशेष रूप से मध्यम वर्ग की महिलाओं पर अधिक पड़ा है। शहरीकरण शिक्षा और रोजगार जो कि इस सामाजिक बदलाव की देन है ने उन्हें अपने व्यक्तित्व को निखारने तथा अधिकारों के प्रयोग करने में सहायता की है।

घर और नौकरी की अलग-अलग मांगों से जो अक्सर एक दूसरे से सर्वथा विपरीत होती है, के कारण कामकाजी महिलाओं को बार-बार दोनों भूमिकाओं को निभाने में द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है। महिला होने के नाते भी कर्तव्य के साथ-साथ उसे सुसंस्कृत गृहिणी की भूमिका का भी निर्वाह सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए करना पड़ता है।

शहरों में कामकाजी महिलाओं की स्थिति और संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है लेकिन छोटे कस्बों और गाँवों में स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अभी कुछ समय पूर्व कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में एक अध्ययन किया गया जिसके नतीजों का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा। इस अध्ययन के मुताबिक अधिकतर कामकाजी महिलाएं 20 से 45 वर्ष के आयु वर्ग की होती हैं अर्थात् आजादी के बाद जन्मी महिलाएं ही आज घर से निकलकर बाहर का काम संभाल रही है। इनमें भी 20-25 वर्ष आयु वर्ग की महिलाओं की संख्या अधिक है जिसका अर्थ है कि आजकल सभी शिक्षित महिलायें किसी न किसी रोजगार में लग रही हैं। लगभग 60 प्रतिशत कामकाजी महिलायें ऐसी होती हैं जिनका जन्म शहरी क्षेत्र में होता है। चूँकि ग्रामीण महिलाओं की परम्परायें उन्हें नौकरी करने की इजाजत नहीं देती और उनके पास अवसर भी बेहद सीमित होते हैं। इसलिए कामकाजी महिलाओं में ग्रामीण महिलाओं का प्रतिशत कम होता है जो ग्रामीण महिलायें कामकाज करती हैं वे साधारणत: अपने पारिवारिक धंधों से जुड़ी होती हैं। शहरों में वही ग्रामीण महिलायें नौकरी आदि करती हैं जो उच्च शिक्षा के लिए पहले ही शहर आ चुकी होती हैं। कुल कामकाजी महिलाओं में लगभग 21 प्रतिशत महिलायें ऐसी होती हैं जिनका जन्म तो ग्रामीण क्षेत्र में होता है लेकिन उनके परिवार 15-20 वर्ष पहले ही शहर में आकर बस गये थे।

अधिकतर कामकाजी महिलायें एकल परिवार से होती हैं। संयुक्त परिवारों की बहुत कम महिलाएं कामकाज के सिलसिले में घर से बाहर जाती हैं। भारत में कोई भी अध्ययन बिना जातिगत संदर्भ के अपूर्ण माना जाता है। एक अध्ययन के मुताबिक सबसे अधिक कामकाजी महिलायें ब्राह्मण जाति से संबंध रखती हैं। इस मामले में दलित जाति की महिलाओं का प्रतिशत बेहद कम है। धर्म के आधार पर देखें तो भारत के 85 फीसदी से भी अधिक कामकाजी महिलायें हिन्दू धर्म को मानने वाली होती है।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि अधिकतर कामकाजी महिलायें शिक्षित और उच्च शिक्षित होती हैं लेकिन फिर भी लक्ष्य यह है कि 18 प्रतिशत कामकाजी महिलायें निरक्षर होती हैं जबकि 12 फीसदी महिलायें बस साक्षर ही होती हैं।

भारत में कुल कार्यशील जनसंख्या का मात्र 39.1 प्रतिशत ही है। अर्थात् सौ में से केवल 39 लोग ही विभिन्न रोजगारों में लगे हुए हैं। इसमें भी पुरूषों का प्रतिशत बेहद अधिक है और कार्यशील महिलाओं का अनुपात बहुत कम कुल कार्यशील महिलाओं में से भी अधिकांश कृषि, खनन, जैसे प्राथमिक क्षेत्रों में श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं।

भारत सरकार के एक अध्ययन के अनुसार भारत में सबसे अधिक महिलायें, कृषि और खनन जैसे प्राथमिक क्षेत्रों में काम करती हैं। ईंट के भट्ठों, जैसे असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं का अनुपात भी कुछ कम नहीं है महिलाओं की हैसियत का आलम यह है कि एक तरफ तो महानगरों की कुछ प्रतिशत (लगभग नगण्य) गर्भवती महिलाओं को पंचसितारा सुविधायें प्राप्त होती हैं। प्रत्येक सप्ताह उनकी और गर्भस्थ शिशु की बारीकी स्वास्थ्य जांच होती है और उनकी प्रसव पीड़ा को न्यूनतम करने के लिए अत्यधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है तो दूसरी ओर ईंट भट्ठों और खेतों में काम करने वाली ऐसी गर्भवती महिलायें भी हैं जो प्रसव के दिन तक आधे अधूरे भरे पेट से ईट पाथी रहती हैं और जब प्रसव पीड़ा होती है तो साथ की श्रमिक महिलायें ही धोती की छाँव में प्रसव क्रिया सम्पन्न करा देती है और एक जीवन को जन्म देने के एक दो घंटे बाद ही ये महिलायें फिर से काम पर जुट जाती हैं क्योंकि रात की रोटी का इन्तजाम करना उनका सबसे बड़ा लक्ष्य होता है। ये श्रमिक महिलाओं की वास्तविकता है, जमीनी हकीकत है।

कृषि के साथ-साथ भारतीय समाज के अन्य आर्थिक क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है जिसने श्रम बाजार की आंतरिक संरचना को आन्दोलन किया है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में श्रम मूल्य और श्रमिकों की उपादेयता सिद्ध हो चुकी है। महिला श्रम मानवीय समाज का महत्वपूर्ण अंग है जिसके माध्यम से समाज के सांस्कृतिक मूल्यों का निर्वहन होता है और आंतरिक संरचना की निर्माण प्रक्रिया प्रस्फुटित होती है।

महिलाओं का प्रत्येक समाज में एक सुनिश्चित स्थान होता है पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर महिलाओं की प्रस्थिति का मूल्यांकन और मूलरूप से उनके अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की यथास्थिति पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है।

आधुनिक विकासशील राष्ट्रों में मूलत: एशिया के कुछ अविकसित राष्ट्रों में महिला श्रम शक्ति धीरे-धीरे औद्योगिक विकास के संवाहकों के रूप में देखी जाने लगी है फिर भी पुरुषों की अपेक्षा महिला श्रम की सहभागिता इन राष्ट्र में काफी कम है। भारत में 1991 की जनगणना के आंकड़ें स्पष्ट बताते हैं कि जहाँ एक ओर पुरुषों की श्रम शक्ति में सहभागिता दर 52.7 प्रतिशत थी वहीं महिलाओं की सहभागिता मात्र 19.8 प्रतिशत थी।

नौकरी एवं सामाजिक स्वतंत्रता के प्रति महिलाओं के दृष्टिकोण

मध्यम वर्गीय महिलाओं द्वारा हर प्रकार की नौकरियाँ करने तथा आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की वजह से आज उनमें पहले से कहीं अधिक आत्मविश्वास आ गया है। घर से बाहर के कामकाज को निपटाने में उन्होंने प्रवीणता प्राप्त कर ली है। नौकरी की वजह से वे अपनी आर्थिक स्वतंत्रता से अधिक संतुष्ट हैं तथा अपने अधिकारों, विशेषाधिकारों तथा आत्म-सम्मान के प्रति सजग हैं। परिवार के लिए अपनी महत्ता परिवार में अपने अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों तथा स्वयं अपने तथा अपने पति और परिवार के दूसरे सदस्यों के उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों के प्रति उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गये हैं।[1]

परन्तु दूसरी ओर अधिकांश पति अपनी पत्नी द्वारा नौकरी करने की वजह से पारिवारिक जीवन में आई हुई तब्दीली को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। अध्ययन के दौरान वुड्स ने अपने एक अध्ययन में पाया कि अधिकांश पति तो यह चाहते हैं कि पारिवारिक आय में वृद्धि के लिए उनकी पत्नियां नौकरी करें, परन्तु साथ ही साथ वे (पति) घर बार के काम में हाथ बंटाने तथा बच्चों की देखभाल करने के लिए कतई तैयार नहीं थे। यह माना जाता है कि यह काम तो पत्नी का ही है, भले ही वह पति के ही जैसी नौकरी क्यों न करती हो।[2]

जो कामकाजी महिलायें पुरुषों के साथ काम करती हैं उनकी समस्यायें कुछ दूसरी हैं और जो महिलाओं के साथ ही काम करती हैं, उनको कुछ और इस तरह कामकाजी महिलाओं की समस्यायें बहुमुखी हैं।

कामकाजी महिलाओं को आम तौर पर पुरुषों के साथ काम करना पड़ता है। परन्तु इस साधारण स्थिति में भी तनाव उत्पन्न होते हैं। यदि ज्यादा बोलती-चालती नही तो कहा जाता है कि उसे अपने परिवार पद आदि का घमण्ड है। दूसरी तरफ यदि वह उनके साथ खुलकर मिलती-जुलती है तो उसे गलत नजरों से देखा जाता है। उसका नाजायज फायदा उठाने की कोशिश की जाती है।

एक दूसरी समस्या है पुरुषों के साथ काम करते-करते वह किसी पुरुष विशेष के साथ नजदीकी सम्बन्ध बना लेती है। इसकी वजह से उसके वैवाहिक जीवन में अनेक प्रकार की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्यायें पैदा हो जाती हैं।

जो महिलायें आर्थिक मजबूरी की वजह से नौकरी करती हैं उन्हें अपने अधिकारियों के बुरे बर्तावों को सहना पड़ता है। वे इस डार से उनकी शिकायत भी नहीं कर पाती कि कहीं उनकी नौकरी ही न चली जाये अथवा उन्हें पदोन्नति ही न मिले। इन परिस्थितियों की वजह से कामकाजी महिलाओं में आन्तरिक अशान्ति तनाव और अपराध भावना पैदा होती है। उनके सामने दुविधा रहती है, यदि उन्होंने अपने अधिकारी को संतुष्ट नहीं रखा तो उन्हें पदोन्नति नहीं मिलेगी, यहाँ तक कि उनकी नौकरी भी जा सकती है। दूसरी तरफ उनको संतुष्ट रखने के लिए यदि उन्होंने उनकी हर इच्छाओं के सामने झुकना पसन्द किया तो उन्हें अपराध भावना का शिकार होना पड़ता है।

एक दूसरी बड़ी समस्या है आवागमन की। जहाँ घर से कार्य स्थल तक बसों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। वहाँ बसों की धक्का-मुक्की में कामकाजी महिलाओं का सफर करना मुसीबत बन जाता है। नौकरी पर जाने के लिए बस पकड़ने हेतु धक्का-मुक्की करनी पड़ती है। बसों की प्रतीक्षा में घण्टों लग जाते हैं। लम्बे कार्यकाल के बाद दो तीन घण्टों तक बसों की प्रतीक्षा करना तथा उनमें सफर करना बहुत कष्टदायक होता है। उस महिला के लिए जिसे घर के भी सारे कार्य करने पड़ते हैं। बसों द्वारा सफल करना बहुत ही क्लेशकर और थका देने वाला है।

विवाह के प्रति महिलाओं के दृष्टिकोण

ग्रामीण स्तर पर महिला श्रमिक परिवारों में जाति के बाहर शादी करने की अनुमति बिल्कुल नहीं दी जाती है। यदि कोई किसी परिवार का कोई सदस्य कर भी लेता है तो उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। और उस परिवार वालों को जाति और समाज में शर्मिन्दा होना पड़ता है। ऐसे महिला श्रमिक परिवारों में इनकी संख्या भी नगण्य थी। विवाह से सम्बन्धित युवक युवतियों की राय:-

विवाह में माता-पिता की इच्छा सर्वोपरि नहीं रही हैं। युवक युवतियों की इच्छा व सहमति पर ही वैवाहिक सम्बन्ध तय किये जाते है।[3] समय के तीव्र गति से बदलते हुए परिवेश में युवकों की एवं युवतियों की राय लेना भी आवश्यक सा हो गया है, जिससे वर-वधू और परिवार जनों के सामने कोई कोई परेशानी खड़ी न हो। आधुनिक समय में युवक-युवतियों की राय के बाद ही विचार प्रक्रिया का पहला चरण प्रारम्भ होता है, नगरीय सम्पर्क के कारण ग्रामों के पूर्व जमीदारों या धनाढ्यों के यहाँ भी विवाह के प्रतिमान परिवर्तित हो रहे हैं। समथर क्षेत्रांतर्गत कृषि पर आधारित महिला श्रमिक परिवारों में शादी के बारे में युवक युवतियों की सलाह नहीं ली जाती है, सलाह लेने में परिवार, बुजुर्गों की अवहेलना समझता है। दलित एवं मजदूर वर्ग भी इसे स्वीकार नहीं करता इन परिवारों के लिये मुखिया का निर्णय ही मान्य होता है। आधुनिकता से दूर रहकर युवक-युवतियों की राय लिये बिना शादी तो तय हो जाती है। परन्तु इन परिवारों में यह अच्छाई पायी जाती है कि युगलों के जीवन में बहुत कम विसंगति आती है। आयोजित विवाहों का स्थान अब प्रेम विवाह ले रहे है। विवाह की विधियों एवं प्रविधियों में परिवर्तन हो रहे हैं। शहरीकरण की प्रक्रिया के कारण कोर्ट मैरिज भी अधिक होने लगी है।

भारतीय महिलाओं के संदर्भ में किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति और जीवन शैली में अंशात्मक सुधार हुआ है। भारतीय समाज में महिलाओं की आर्थिक परिस्थितियों का निरूपण अथवा सामान्यीकरण करने के लिए आवश्यक है कि संपूर्ण उत्पादन संरचना में महिला श्रम और उसकी सहभागिता को विवेचित किया जाए।

संदर्भ

1. Lewis, A.: (1953) "social concept, British Journal Of Sociology" Vol.4, P. 86-88
2. Devis, N.J. and Robinson, R.V.: "Do Winer Matter:Class Indenties Of Wives And Husband In The United States, (1974-1994) So cial forces, 1998,76,3, Marelo, P. 1063-1086
3. डा0 पोथन के0पी0 एवं टोग्या वी0सी0 – परिवार और समाज, कमल प्रकाशन इन्दौर, 1989 पेज 279

वैश्विक समाज पर महामारी का महासंकट और कोरोना वायरस

डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बहरागोड़ा महाविद्यालय, बहरागोड़ा, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा

सारांश: वर्त्तमान वैश्विक 'समाज महासंकट की दौड़ और कोरोना वायरस से गुजर रहा है, जो 21वीं सदी का महासंकट और सबसे बड़ा महामारी है। यह कोरोना वायरस मानव से मानव में संक्रमित करके गंभीर श्वसन नली को प्रभावित करके काल के गाल में समा देता है। कोरोना वायरस का संक्रमण मानव से मानव में संचारण कम से कम 2 से 10 दिनों के बीच उष्मायन समय में होता है। यह बूंदों एवं दूषित हाथों या सतहों के माध्यम से फैलता है। यह विभिन्न वस्तुओं पर आश्रित होता है, जैसे-स्टील, एलुमिनियम मेटल (धातु) लकड़ी, कागज, कांच, प्लास्टिक, सिलिकॉन, रबड़, सर्जिकल ग्लास, डिस्पोजल गाऊण, सेरामिट, टेफलोन इत्यादि। यह करोना वायरस विभिन्न रूपों में पाया जाता है। जैसे, मिडिल ईस्ट रिस्पाइरेटरी, सिंड्रोम (Middle East Respiratory Syndrom - MERS) मर्स, (Server Acute Respiratory Syndrome - SARS) सार्स, ह्यूमन कोरोनावायरस (Human Corona Virus H. COV)ए ट्रांसमिसिबल गैन्ट्रेन्टरिटीज वायरस (TGEV)ए माउस हेपेटाइटिस वायरस (Mouse hepatitis virus - MHV)ए केनिन कोरोनावायरस (Canine Corna Virus - CCV) आदि। इसके साथ ही नया वायरस सार्स ब्व्टप्क.2 आया, जिसे दुनिया में इन वायरस को कौविड-19 के रूप में जाना जाता है। कोरोना वायरस मनुष्य के लिए खतरनाक है, लेकिन सबसे खतरनाक SARS-COV-2 है। जिसका ईलाज अभी तक पास नहीं हुआ है। इससे केवल छुआछूत से बचना ही एक मात्र इलाज है। यह वायरस विभिन्न वस्तुओं में अलग-अलग घंटों या 9 दिनों तक रहता है। इसके प्रभाव को खत्म करने हेतु इथेनॉल, हाइड्रोजन परऑक्साइड, सोडियम हाइपोक्लोराइट, बैन्जल्कोनियम क्लोराइड, क्लोरहेक्सिडिन, डिगलुकोनेट आदि रासायनिक कीटाणुशोधन (जैव रासायनिक) तत्वों का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में सार्स कोरोनावायरस-2 के लिए विशिष्ट चिकित्सा उपलब्ध नहीं है। इसे जल्द निरंतर फैलने से रोकने के लिए और आगे प्रसार की रोकथाम के लिए मानव को मानव के संपर्क से दूर रखना अर्थात् सामाजिक दूरी बढ़ाना, माक्स लगाना (मुँह पट्टियाँ) और समय-समय पर साबुन से 20 सेकेण्ड तक हाथ धोना, जिससे संक्रमित मानव से अन्य मानव में संक्रामक आगे पहुँच नहीं पावें और इसे नियंत्रित किया जा सके।

भूमिका

चीन में नोबेल कोराना वायरस (SARS-COV-2) 1 दिसंबर 2019 को पहला मामला उभरा, फिर 17 दिसंबर को दूसरा, 31 दिसंबर 2019 को तीसरा मामला सामने आया। परन्तु वैश्विक समाज इन मामलों पर गंभीर नहीं था, जब चीन के वुहान शहर में 12 फरवरी 2020 को तेजी से कोरोनावायरस फैला तो उस समय 45,171 मामले 'अज्ञात कारणों के निमोनिया' बीमारी के रूप में सामने आया।[1] चीन के लोगों में पाया कि एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम (SARS) कोरोनावायरस और मध्य ईस्ट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम कोरोनावायरस।[2] तथा दो दशकों में उभरा अत्यधिक रोगजनक मानव कोरोना वायरस जो व्यक्ति से व्यक्ति में संचरण है,जिसका अस्पताल व परिवारिक सेटिंग में वर्जित किया गया है।[3] यह कोरोनावायरस दूषित शुष्क सतहों से संचरित और स्व-संचय सहित पारित होकर सार्वजनिक तथा स्वास्थ्य देखभाल सैटिंग्स विशेषकर नाक, आँख, मुँह में फैल गया।[4,5] इसके साथ ही कोरोनावायरस की दृढ़ता के साथ समझ हेतु निर्जीव वस्तुओं या सतहों पर कुछ मिनट, घंटों और दिनों तक मौजूद रहता है। इसके निष्क्रिय शोधन हेतु जैव रासायनिक एजेंटों जैसे: हाइड्रोजन पेराक्साइड, एल्कोहल, सोडियम हाइपोक्लोराइट या बैजोजोनियम, क्लोराइड आदि का स्वास्थ्य देखभाल हेतु दुनिया भर में उपयोग किया जाता है।

यह वायरस समूहों में सबसे खतरनाक है। जो चीन के हुवही प्रांत के शहर वुहान के फुट मार्केट से निकला है। लेकिन वैज्ञानिकों और अमेरिकी खुफिया एजेंसी सीआईए का कहना है कि वुहान में स्थित संस्थान वुहान इंस्टीट्यूट ऑफ वायरोलॉजी (1956) से बाहर निकले कोरोना वायरस को चीनी वैज्ञानिकों ने एक नयी नस्ल कोरोना वायरस की पहचान की, जिसे 2019.द ब्वअ प्रारंभिक पद नाम दिया गया। इस नये वायरस में कम से कम 70 प्रतिशत वहीं जिनोम अनुक्रम पाये गये, जो सार्स कोरोना वायरस में पाये जाते है। चीन में इसs SARS-Cov-2 के रूप में भी जाना गया। तत्पश्चात विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने छठी बार अंतर्राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा करते हुए, इस 'अज्ञात कारण के निमोनिया' को 'कोविड-19 संज्ञा दी। अर्थात् विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना वायरस का अधिकारिक नाम कोविड-19 (Corona Virus Disease 2019 - COVID - 19) रखा।

यह कोरोना वायरस दुनिया में विभिन्न देशों में फेल चुका है। इसका सरल या सामान्य संचरण मनुष्य है। यह चीन से निकलकर अमेरिका, इटली, ईरान, स्पेन, ब्राजील, ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, रूस, उत्तरी कोरिया, सऊदी अरब, भारत, पाकिस्तान, फ्रांस, जापान, अफगानिस्तान आदि लगभग 196 देशों में फल कर 52,10,817 लोगों को संक्रमित किया है तथा 3,38,160 लोगों की मृत्यु हो गई है (23.05.2020 तक में)। यह खतरनाक उभरते हुए वायरस SARS-COV-2ए गैस्ट्रोएरेराइट्स वायरस, माउस हेपेटाइटिस वायरस (MHV)ए कैनाइन कोरोना वायरस (CCV) आदि काफी तेजी से मानव में मानव से होता है। यह वायरस पर्यावरण ह्रास के कारण जनित हुआ है। वर्तमान विश्व में विशेषकर अंटार्टिका द्वीप में ग्लेशियर पिघलने से एक और खतरनाक वायरस जयंत वायरस (Gaint टपतने) आने की संभावना है। वैश्विक समाज को इन विषाणु (टपतने) से दीर्घ काल तक सजग व सतर्क रहने की जरूरत है तथा बचाव हेतु शोध की नई दिशा इस ओर तय करने की अनिवार्यता है।

तरीका (डमजीवक) रू वैश्विक समाज में कोरोना वायरस मानव से मानव में फैलने वाला महामारी है। जिससे विश्व में कितनी हानियां उठानी पड़ेगी, इसकी गणना करना फिलहाल उचित नहीं होगा। इससे मानवता की रक्षा करना ही श्रेष्ठकर होगा। इस कोरोना वायरस से बचने हेतु सामाजिक विज्ञान और विज्ञान की तत्परता से अध्ययन करना होगा। जहाँ विज्ञान में वैज्ञानिक तरीकों को अपनाकर उत्तरजीविता सतह, दृढ़ता सतह, उत्तरजीविता हाथ, दृढ़ता, उत्तरजीविता त्वचा, दृढ़ता, त्वचा, रासायनिक निष्क्रियता, निलंबन परीक्षण, वाहन परीक्षण इत्यादि जॉच का सहारा लिया जाता है, वहीं सामाजिक विज्ञान में मानव मानव के बीच सावधानियाँ आँख, नाक, कान, त्वचा आदि को बचाना, सामाजिक जागरूकता फैलाना, साबुन से हाथ धोना, सैनेटाईजर करना, साफ-सफाई पर ध्यान देना, सामाजिक दूरी बनाए रखना, घर के अंदर रहना, आइसोलेशन वार्ड में संदिग्ध मरीजों को रखना, चूँकि मानवता की रक्षा और सुरक्षा अनिवार्य है। इस हेतु सामाजिक विज्ञान संकाय के अंतर्गत समाजशास्त्रीय पद्धति, पर्यवेक्षणात्मक पद्धति, दर्शनात्मक पद्धति, परिमाणात्मक पद्धति, अनुमानित पद्धति, मनोवैज्ञानिक पद्धति तथा व्यवहारिक तरीके अपनाकर इसे अन्य मानव में भारित होने से बचाना है। सामाजिक विज्ञान संकाय में अन्तः अनुशासनात्मक पद्धति को अपनाकर इस खतरनाक महामारी से लोगों को बचाया जा सकता है। विश्व के विभिन्न देशों की नीतियाँ को कड़ाई से अपने-अपने देशों में लागू करना अनिवार्य होगा। जैसा कि ''भारत ने किसी कि बिना परवाह किए जनता कर्फ्यू तथा लॉकडाउन का सहारा लेकर इस महामारी से बचने के उपाय को ढूंढा।''[6] यदि विज्ञान में ऐसी बीमारी से बचने के उपाय तत्काल नहीं हो तो सामाजिक विज्ञान संकाय के विषयों का सहारा लेकर मानवता को बचाने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिए।

परिणाम (Results)

विश्व के विभिन्न देश कोरोना महामारी की चपेट में आ चुकी है। चीन के बुहान शहर में वायरस पर शोध करने वाली संस्था की स्थापना 1956 में हुई। प्रो. वोयले के अनुसार ''यह संस्थान लेवल 4 लैब का है, जो जैविक हथियार बनाने के काम आता है। यह लेब 2400 मीटर गहराई में सीक्रेट प्रयोगशाला है।''[7] चीन के बुहान स्थित प्रयोगशाला से पहले भी वायरस H5NI, SARS आदि बाहर निकलकर संक्रमित बीमारी को जन्म दे चुका है। लेकिन वर्तमान में जो मानव से मानव में भारित कोरोना वायरस सार्स कोनोरा वायरस-2 प्रयोगशाला से बाहर निकला वह बहुत ही भयावह रूप धारण कर वैश्विक महामारी का रूप धारण कर लिया है। इसके सामने मनुष्य बेबस है। चीन के एक डॉक्टर जाओ जिगांग झोग नाशन (एपिडेमियोलॉजिस्ट) ने कहा है। ''यह कोरोना वायरस इंसान से इंसान में फैलता है।''[8] यह चीनी कोरोना वायरस निर्जीव सतहों पर दृढ़ता के साथ विभिन्न प्रकार के सामग्रियों पर 2 घंटे से लेकर 9 दिनों तक संक्रामक की अवस्था में रह सकता है। योग कोरोना वायरस जो अत्यधिक रोगजनक है जैसे : MERS-COV, TGEV और MHV एक निश्चित उच्च तापमान 30 डिग्री सेल्सियस या 40 डिग्री सेल्सियस की अवधि पर कम

हो जाती है और 4ºC पर TGEV और MHV की दृढ़ता में वृद्धि हो जाती है, जो 28 दिनों तक संक्रामक करने की अवस्था में बना रहता है। लेकिन मानव के लिए सबसे घातक कोरोना वायरस SARS-COV काफी दृढ़ता के साथ विभिन्न प्रकार के निर्जीव सतहों पर संक्रामक की अवस्था में बना रहता है। इस वायरस को मारने हेतु उच्च तापमान की अनिवार्यता है तथा इस पर सही शोध ज्ञात नहीं है। परंतु जैव रासायनिक ऐजेंटो द्वारा निष्क्रियकरण किया जाता है। इन जैव रासायनिक ऐजेंटों में प्रमुख है, जैसे: इथेनॉल (78]म95:)ए 2-प्रोपेनॉल (70]म100:) संयोजन (30%), 1-प्रोपेनोल, ग्लूटाडियिल्डहाइट के साथ 45%, 2-प्रोपेनोल (0ण्5] म 2ण्5:)ए फॉर्मलाडेहाईट (0ण्7]म 1:) और पोविडोन आयोडिन आदि। यह वायरस विभिन्न वस्तुओं में संक्रमित रहता है, जिसकी गणना इस प्रकार की जा सकती है-

संक्रमक वस्तुएँ	वायरस	तापमान	Persistence
1. स्टील	MARS-COV	20ºC	48 घंटे
	TGEV	4ºC	28 दिनों तक
		20ºC	3–28 दिनों तक
		40ºC	4-96 घंटे तक
	MHV	4ºC	28 दिनों तक
		20ºC	4–28 दिनों तक
		40ºC	4–96 घंटे तक
	H COV	21ºC	5 दिनों तक
2 एलुमिनियम	H COV	21ºC	2 – 8 घंटे
3 धातु	SARS-COV	RT (Room Temperature)	5 दिनों तक
4 लकड़ी	SARC-COV	RT	4 दिनों तक
5 कागज	SARC – COV	RT	4 दिनों तक
6 काँच	SARS-COV	RT	4 दिनों तक
	H COV	21ºC	5 दिनों तक
7 प्लास्टिक	SARS-COV	22ºC – 25ºC	≤ 5 दिनों तक
	MARS-COV	20ºC	48 घंटे
	SARS-COV	RT	4 दिनों तक
	MARS-COV	RT	6–9 दिनों तक
	H COV	RT	2 – 6 दिनों तक
8 पी भी सी (PVC)	H COV	21ºC	5 दिनों तक
9 सिलिकन रबड़	H COV	21ºC	5 दिनों तक
10 सर्जिकल ग्लॉब्स	H COV	21ºC	≤ 8 दिनों तक
11 डिस्पोजल गाउन	SARS-COV	RT	2 दिनों तक
12 सिरामिक	H COV	21º C	5 दिनों तक
13 टेफलॉन	H COV	21ºC	5 दिनों तक

(स्रोत -Persistence of coronaviruses on inanimate surfaces and their inactivation with biocidal agents, G. Kampf, D.Todt, S Pfaender, E.Steinmann - Journal of Hospital Infection - 104 (2020) 246-251)

नोट : उपर्युक्त संक्रामक वस्तुओं के अलावे अन्य संक्रामक वस्तुएँ किसी ना किसी रूप में हो सकता है। चूँकि संक्रमित मानव से मानव के द्वारा छुआछूत करने पर, परंतु इसकी जानकारी किसी व्यक्ति को ज्ञात नहीं है। वहाँ सावधानी अनिवार्य है।

उपर्युक्त विवरण के पश्चताप मानव को मानव से रक्षा और सुरक्षा हेतु वैज्ञानिक समाज को महत्वपूर्ण कदम उठाने की जल्द आवश्यकता है। तत्काल इसके लिए विभिन्न प्रकार के जैव रासायनिक अभिकरणों द्वारा कोरोनावायरस का निष्क्रियकरण अति आवश्यक है, जिसका विवरण इस प्रकार है-

1. इथेनॉल: इसके द्वारा 95% से 70% के बीच 30 सेकंड से 10 मिनट के अंदर सभी वायरस को निष्क्रिय कर देता है।
2. प्रोपेनॉल: यह 100% से 50% के बीच उपयोग करने पर 30 सेकेण्ड से 10 मिनट के अंदर सभी वायरस को निष्क्रिय कर देता है।
3. 2-प्रौपेनॉल और 1-प्रौपेनॉल - जैव रासायनिक अभिकरणों द्वारा 45% और 30% के बीच उपयोग करने पर सार्स कोरोनावायरस 30 सेकेण्ड में निष्क्रिय हो जाता है।
4. बैजालकोनीयम क्लोंराइड (Benzalkonium Chloride): इस जैव रासायनिक अभिकरणों के द्वारा विभिन्न वायरस विभिनन मात्रा के द्वारा निष्क्रिय कर देता है जैसे 0.2: (H.COV) को 10 मिनट में 0.05: MHV को 10 मिनट में 0.05: से CCV को 10 मिनट में तथा 0.00175: से CC को 3 दिन में आदि।
5. डाइडेसिलडाइमिथाइल (Didecyl Dimethyl): इसके द्वारा CCV कोरोनावायरस को 0.0025% जैविक रसायन का उपयोग करने पर 3 दिनों तक में निष्क्रिय किया जा सकता है।

उपर्युक्त जैव रासायनिक अभिकरणों के अलावे भी कोरोनावायरस को निष्क्रियकरण करने वाला जैव रासायनिक अभिकरण है, जैसे, अमोनियम क्लोराइड, क्लोरहेक्सिडिन, डाइग्लूकोनेट, सोडियम हाइड्रोक्साइड आदि। इन जैव रासायनिक तत्वों से विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार उपयोग करके वायरस को निष्क्रिय करने में सहायता मिल सकती है। इसके साथ ही काफी उपयोगी जैव रासायनिक अभिकरणों में हाइड्रोजन पराक्साइड, फार्मालडिहाइड, ग्लूटाडियलडिहाइड, पोविडोन आयोडीन है।

विवरण: संक्रमित मानव से मानव को प्रभावित करने वाला मानव कोरोना वायरस निर्जीव वस्तुओं पर संक्रमित की अवस्था में रह सकता है। यह वायरस 30°C तापमान पर कमरे के सतहों पर 9 दिन तक संक्रमण की अवस्था में रह सकता है। लेकिन पशु चिकित्सा कोरोनावियूज (TGEV) 28 दिनों तक इसी अवधि में संक्रामक वस्तुओं के संक्रमण की अवस्था में रह सकता है। जो भी हो निर्जीव वस्तुओं पर संक्रामक की अवस्था में मानव में मानव से फैलता है। ''एक अवलोकन अध्ययन में पाया कि छात्र अपने चेहरे को अपने हाथों से औसतन 23 बार प्रति घंटे स्पर्श करता है।''[10] जबकि कोरोना वायरस भारित का 31.6 प्रतिशत हाथों द्वारा संक्रमित होता है। यह वायरस हाथों द्वारा शरीर के संपर्क में आ जाता है। यह ज्यादातर हाथ 56%, उसके बाद मुँह 36%, नाक 31% तथा आँखे 31%[11] आदि को भारित कर संक्रमित कर देता है। जिन वायरस भारित वस्तुओं को हाथों से छुआ जाता है, उस व्यक्ति में उच्चतम वायरस भारित होना अपेक्षित है। इससे तत्कालिक बचाव हेतु विश्व स्वास्थ्य संगठन की महत्वपूर्ण सिफारिश है कि ''पर्यावरणीय साफ-सफाई, कीटाणुशोधन प्रक्रियाओं का पालन, साफ पानी, डिटर्जैन्ट आदि का सही ढंग से लगातार पालन किया जाना चाहिए तथा आम तौर पर संक्रामक वस्तुओं, अस्पताल में इस्तेमाल होने वाला कीटाणु नाशक जैसे सोडियम हाइपोक्लोराइड का प्रभावी और पर्याप्त प्रक्रियाओं का अमल में लाना होगा।''[12] कोरोनावायरस को निष्क्रिय करने के लिए ब्लीच-1 100%, सोडियम हाइपोक्लोराइड 5% आदि के सांद्रण करके तथा इथेनॉल 70% का उपयोग व छिड़काव किया जाना अनिवार्य है। ''विश्व स्वास्थ्य संगठन ने छोटी सतहों को कीटाणु रोहित करने के लिए 62% से 70% इथेनॉल की एकाग्रता की भी सिफारिश की है।''[13]

इसके साथ ही साथ सेनेटरी, हैंड सैनीटाइजर, क्लोरीन, पैरासिटिक एसिड, क्लोरोफॉर्म, एल्कोहल आधारित हैंड सेनीटाइजर आदि का उपयोग विशेषज्ञों की सलाह से आवश्यक बचाव हेतु करना चाहिए। व्यक्ति को हमेशा डिसइनफेक्टेड हाथ, बार-बार हाथ धोना, कपड़ों को साफ रखना, सर्जिकल मास्क तथा ग्लोंटस को ध्यान में रखना चाहिए और लगभग 3 फीट से 6 फीट (1.8 मीटर) की सीमा के भीतर छींक से बचना चाहिए तथा दो गज की दूरी बनाएँ रखना चाहिए।

हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संस्थान (WHO) ने अनुशंसा किया है कि ''अल्कोहल आधारित जैव रासायनिक निष्क्रियकारण का उपयोग कर दस्ताने को पहले तथा मार्स कोरोनावायरस और सार्स कोरोनावायरस को जल्द निष्क्रियकरण हेतु 80% इथेनॉल व 75% 2-प्रोपेनॉल का उपयोग किया जाना चाहिए।''[14] वैसे कोरोनावायरस से बचने के लिए स्वास्थ्य देखभाल, चिकित्सकों की सलाह, विशेषज्ञों की राय, अपनी सजग, सतर्क और सुरक्षित बुद्धि सबसे अच्छा बचाव का कारण है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मानव कोरोना वायरस संक्रमित वस्तुओं पर 9 दिनों तक संक्रमण की अवस्था में रहता है। इसे जैव रासायनिक निष्क्रियकरण 0.1% सोडियम हाइपोक्लोराइड और 62% से 71% तक इथेनॉल मात्र 1 मिनट में ही निष्क्रिय कर देता है। लेकिन सबसे खतरनाक कोरोना वायरस सार्स कोविड-2 (SARS-COV-2) जो दुनिया में कहर बरपा रहा है। इस पर शोध करने की आवश्यकता है तथा मानव को स्वयं में अपने आप को अन्य त्वरित विधियों द्वारा बचने की अनिवार्यता है। वर्तमान विश्व में संक्रमित व्यक्तियों की संख्या और मृतकों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिसे वैश्विक समाज को तेजी से नियंत्रित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ-सूची

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) कोरोनावायरस रोग 2019 (COVID-19)ए WHO, 2020 स्थिति रिपोर्ट 23.
2. डी.विट.ई. वैन डोरेमलेन रान, फल्जरानों डी; मुंस्टर, वीजे-सार्स और मार्स: हाल ही में उभरते कोरोनावायरस में अंतर्दृष्टि, नेट रेव माइक्रोवायोल 2016; 14:523-341
3. चान, जे. एफ, युआन एस, कोक के, टू के.के.चू एच. यांग जे, एट अल, एक पारिवारिक 2019 उपन्यास कोरोनावायरस से जुड़ा निमोनिया का क्लस्टर व्यक्ति से व्यक्ति संचरण का संकेत: एक परिवार का अध्ययन कलस्टर, लैंसेट-2020।
4. ओटर, जे.ए.डोस्की, सी,चेजली, रस, डॉयवेर, एस, गोल्डन बार्ग एस.डी.वेबर डी.जे.सार्स ट्रॉन्समिशन ऑफ सार्स और मार्स कोरोनावायरस एण्ड इन्फ्लुएंजा वायरस इन हेल्थकेअर; शुष्क की संभावित भूमिका सहत संदुषण। जे. हॉस इंफेक्शन 2016, 92: 235-50।
5. डॉवेल, एस. एफ; सिम्मरेमैन, जे.एम.एर्डमैन, डी.डी.वू.जे.एस.चेनवान्विच, ए. जावदी, एम.0 एट, अल, गंभीर तीव्र श्वसन सिंड्रोम कोरोनावायरस पर अस्पताल की सतहों। क्लिन इंफेक्शन डिस-2004; 39: 652-7 ।
6. हिन्दुस्तान अखवार, मुख्य पृ. 23 मार्च 2020, नई दिल्ली, भारत।
7. प्रभात खबर, कोरोना कहीं जैविक हथियार तो नहीं-राँची दिनांक 13.02.2020, पेज-15
8. प्रभात-खबर, ''रूस, अमेरिका समेत कई देशों ने कोरोना को जताया, चीन के जैविक युद्ध की तैयारी का हिस्सा'' राँची संस्करण (झारखण्ड) दिनांक 13.02.2020, पेज-15
9. वैन डोरमेलेन, एन, बशमेकर, दी, मुंस्टर वीजे-मध्य की स्थिरता विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में पूर्व श्वसन सिंड्रोमा कोरानावायरस (MERS-COV), युरो सर्वे 2013, 1.

   (a) कैसानोवा, एल. एम. जियोन, एस. रूतला, डब्ल्यू.ए. वेबर, डी.जे. सोबसी, एम.डी., इसका प्रभाव कोरोनावायरस सर्वाइवल पर हवा का तापमान और सापेक्ष आर्द्रता सतहों। एप्ल ईनवाइरांन माईक्रोवायोल, 2010; 76: 2712-7

   (b) तथैव।

   (c) वार्न, एस. एल. लिटिस, जेड. आर. कीविल, सी. डब्ल्यू. मानव कोरोनावायरस 229 ई. कॉमन टच सरफेस मेटेरियल पर संक्रामक रहता है। एम बार्यो- 2015, 6:01697-15
10. अंसारी एस. ए. स्प्रिंगथोर्प, वी. एस. सत्तर, एस. ए. रिवार्ड एस., रहमान, एम. श्वसन वायरल संक्रमण के प्रसार में हाथों की संभावित भूमिका मानव पैरेफ्लूएंजा वायरस 3 और रायनोवायरस 14 के साथ अध्ययन, जे क्लिन माइक्रोबॉयल-1991; 29: 2115-9
11. क्बोक, वाई. एल. ग्रेल्टन, जे. मैक्लाव्य, एम. एल.-चेहरा छूना: लगातार आदत की हाथ स्वच्छता के लिए निहितार्थ है। एम.जे. इंफेक्ट कॉन्ट्र-2015; 43: 112-4
12. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) जब स्वास्थ्य देखभाल के दौरान संक्रमण की रोकथाम और नियंत्रण नोवेल कोरोनावायरस (nCOV) संक्रमण का संदेह है। WHO, 2020 अंतरिम गाईडेन्स, 25 जनवरी, 2020
13. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO). एनेक्स जी. कीटाणुनाशकों का उपयोग, शराब और ब्लीज। महामारी और महामारी प्रवण की संक्रमण की रोकथाम और नियंत्रण स्वास्थ्य देखभाल में तीव श्वसन संक्रमण जिनेवा: विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)ए 2014 पृ. 65-6 ।
14. सिद्धार्थ. ए. पर्फेडर, एस, विल्ले, एन. जे.डीजमैन, आर: फ्राइजलैण्ड, एम. बेकर, बी.एट, अल विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की विषाणुनाशक की गतिविधि, उल्टे विषाणुओं के विरूद्ध निरस्तीकरण जीका, इबोला और उभरता हुआ कोरोना वायरस सहित। जम्मू संक्रमण रोग-2017; 215: 902-6 ।

स्कूल में हिंसा और एक सुरक्षित वातावरण कैसे विकसित करें

सुहास डफल

सहायक प्रोफेसर, श्रीमती काशीबाई नवले कॉलेज ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग, लोनावला, पुणे

सारांश

स्कूल हिंसा कई रूपों में आती है, जिसमें यौन, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक हमले, साथ ही साइबरबुलिंग शामिल हैं, और यह दुनिया भर में व्यापक है। आय में असमानता, अभाव, हाशिए और युद्ध मुख्य कारणों में से हैं, जिनमें लिंग और सामाजिक मानक और व्यापक संरचनात्मक और पर्यावरणीय मुद्दे भी शामिल हैं। हाल ही में खबरों की बाढ़ के कारण, क्या प्रथागत क्षण जब माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल छोड़ देते हैं, किसी भी तरह से बदल दिया गया है? अलविदा लहराते समय आप अपने चेहरे पर मुस्कान से बता सकते हैं कि भले ही आप अब मेरी उपस्थिति में नहीं हैं, आप उत्कृष्ट हाथों में हैं। चूंकि मेरे प्रीटीन बेटे और मेरी बेटी, जो उस समय सिर्फ तेरह साल के हुए थे, ने आत्म-आश्वासन के समान स्तर के साथ प्रीस्कूल शुरू किया, इसलिए मैं हर दिन उन दोनों को अलविदा कह रहा हूं। जैसे ही हम खुशी से उस स्थान पर अपना रास्ता बनाते हैं जहां बस हमें ले जाएगी, यह बच्चों और उनके माता-पिता के लिए एक साथ बिताने का गुणवत्तापूर्ण समय है। हम किसी भी चीज और हर चीज के बारे में बातचीत में संलग्न होते हैं, एक अच्छी हंसी करते हैं, और आगे आने वाले दिन की प्रत्याशा के साथ आगे देखते हैं। यह कुछ ऐसा है जो हर माता-पिता करते हैं। किसी भी प्रकार की हिंसा से संबंधित मुद्दों को एक नीति के अनुसार उचित अधिकारियों को सूचित किया जाना चाहिए जो स्कूलों में खुला और पारदर्शी होना चाहिए। अधिकांश घटनाओं में यह देखा गया है कि स्कूल का प्रशासन शुरुआती चरण में तथ्यों को छिपाने का प्रयास करता है, जो स्थिति को और भी अनिश्चित बनाता है। स्कूल का मानना है कि उनकी प्रतिष्ठा खतरे में है; लेकिन, क्या यह केवल स्कूल की प्रतिष्ठा है जो जोखिम में है, या क्या व्यापक नतीजे हैं जिनके साथ पूरे समाज को आना है? एक स्कूल की प्रतिष्ठा से अधिक महत्वपूर्ण वह भूमिका है जो वह अपने समुदाय में हिंसा को रोकने और इलाज करने में निभाता है। शैक्षिक संस्थानों के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि वे इनकार की अपनी स्थिति से तुरंत बाहर निकलें और निवारक तंत्र की दिशा में काम करना शुरू करें। आज दुनिया में महत्वपूर्ण समस्याएं हैं, और यदि उन्हें समग्र रूप से संबोधित नहीं किया जाता है, तो वे हमारे समाज के लिए बहुत अधिक समस्याग्रस्त हो जाएंगे। स्कूलों में हिंसा के मुद्दे के कई पहलू हैं और कभी-कभी इसे समझना मुश्किल होता है क्योंकि इसके मूल कारण एक दूसरे पर स्तरित होते हैं। शिक्षकों और अन्य स्कूल कर्मियों का विशाल बहुमत इस बात से सहमत होगा कि एक भी कारक नहीं है जो स्कूलों में हिंसा की समस्या में योगदान देता है। यह विभिन्न जोखिम कारकों का एक समूह है जो अक्सर सामाजिक आर्थिक मुद्दों, समुदाय के वातावरण, छात्र के घर के जीवन और स्कूल के बाहरी वातावरण के कारण पर्यावरण और समुदाय में व्यापक होते हैं - जैसे कि साइबर दुरुपयोग, व्यक्तिगत अलगाव और अन्य कारण। परिस्थितियों में से कोई भी, हिंसा शारीरिक और मानसिक दोनों आकार ले सकती है। यह भेदभाव नहीं करता है।

स्कूल में हिंसा के रूप

स्कूलों में हिंसा की अभिव्यक्ति परिस्थितियों की एक विस्तृत श्रृंखला के कारण हो सकती है, जिसमें हिंसक व्यवहार, सामाजिक आर्थिक स्थितियों, एक छात्र के घरेलू जीवन और स्कूल के बाहरी वातावरण का गठन करने वाली संस्कृति का दृष्टिकोण

शामिल है। कई शोध परियोजनाओं के निष्कर्षों के अनुसार, हिंसक कृत्य या पर्यावरण का गठन करने की परिभाषा एक संस्कृति या समाज से दूसरे में बहुत भिन्न हो सकती है। स्कूल हिंसा एक शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों आकार ले सकती है, और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि स्कूल का सांस्कृतिक या सामाजिक वातावरण क्या हो सकता है। बच्चों के खिलाफ हिंसा पर विश्व रिपोर्ट बच्चों के खिलाफ हिंसा के निम्नलिखित प्राथमिक प्रकारों की पहचान करती है, जो नीचे दिए गए हैं।

1. गिरोहों के प्रभाव, संघर्ष परिदृश्य, हथियार और लड़ाई हिंसा के बाहरी रूपों के सभी उदाहरण हैं।
2. हिट, किक, स्मैक और शारीरिक शोषण के अन्य रूप शारीरिक हिंसा के रूपों के उदाहरण हैं।
3. मनोवैज्ञानिक हिंसा में ऐसे बयान देना शामिल है जो अपमानजनक और अपमानजनक हैं, विद्यार्थियों का मजाक उड़ा रहे हैं, उन्हें धमकी दे रहे हैं, और इसी तरह।
4. चिढ़ाना, नाम पुकारना, क्रूर टिप्पणियां, सामाजिक अलगाव, शारीरिक हिंसा, और बदमाशी के अन्य रूप बदमाशी के सभी उदाहरण हैं।
5. ऐसे कार्य जो लैंगिक असमानता को मजबूत करते हैं, जिनमें यौन और लिंग-आधारित हिंसा शामिल है, लेकिन सीमित नहीं है।

स्कूल हिंसा के विभिन्न रूपों के परिणाम

एक छात्र के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को काफी नुकसान हो सकता है यदि वे शारीरिक या शारीरिक दंड के अन्य रूपों के अधीन हैं। शोधकर्ताओं ने स्कूलों में शारीरिक हिंसा की उपस्थिति और सामाजिक कौशल के विलंबित विकास के साथ-साथ उदासी, चिंता, आक्रामक व्यवहार और दूसरों के लिए सहानुभूति या देखभाल की कमी के बीच एक सहसंबंध दिखाया है। अनुशासन के एक रूप के रूप में शारीरिक बल का उपयोग असंतोष और दुश्मनी की भावनाओं को बढ़ावा देता है, और यह शिक्षकों और छात्रों के साथ-साथ छात्रों के बीच बातचीत की समग्र गुणवत्ता को कम करता है। यह एक शिक्षक के कार्य को कहीं अधिक कठिन, कम संतुष्टिदायक और अधिक परेशान बनाता है। इसके अलावा, यह बच्चों को यह सीखने से रोकता है कि गंभीर रूप से विश्लेषण कैसे करें, नैतिक रूप से स्वीकार्य निर्णय कैसे लें, आंतरिक नियंत्रण का निर्माण कैसे करें, और जीवन में उत्पन्न होने वाली कई अलग-अलग स्थितियों और कुंठाओं पर कैसे प्रतिक्रिया करें जिसमें हिंसा का उपयोग शामिल नहीं है। शारीरिक दंड पाने वाले छात्र सीखते हैं कि किसी भी प्रकार के बल को नियोजित करना उचित है, चाहे वह मौखिक, शारीरिक या भावनात्मक हो, और यह विशेष रूप से स्वीकार्य है जब बल युवा और कमजोर व्यक्तियों के खिलाफ लक्षित होता है। यह पाठ बदमाशी के उदाहरणों की संख्या के साथ-साथ स्कूलों में सामान्य हिंसा की संस्कृति में वृद्धि में योगदान देता है।

बदमाशी में संलग्न छात्र और बदमाशी का लक्ष्य बनने वाले छात्र दोनों हिंसा और धमकी के दुष्चक्र के परिणामस्वरूप पारस्परिक मुद्दों के साथ-साथ कम शैक्षणिक उपलब्धि से पीड़ित होंगे। जो छात्र बदमाशी के शिकार होते हैं, वे अपने सहपाठियों की तुलना में अवसाद, अकेलापन, चिंता और खराब आत्मसम्मान जैसे मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों से पीड़ित होने के लिए अधिक प्रवण होते हैं। बदमाश अक्सर निराशा, शर्मिंदगी, क्रोध और प्राप्त सामाजिक अवमानना की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हिंसक व्यवहार में संलग्न होते हैं।

यौन उत्पीड़न की उच्च दर और स्कूलों में होने वाली अन्य प्रकार की लिंग-आधारित हिंसा और महिला छात्रों के लिए खराब नामांकन और ड्रॉपआउट दर के बीच एक स्पष्ट संबंध है। लिंग आधारित हिंसा न केवल लड़कियों को स्कूल जाने से हतोत्साहित करने का प्रभाव डाल सकती है, बल्कि यह माता-पिता को भी चिंता में अपनी बेटियों को स्कूल जाने से रोक सकती है कि उनकी बेटियां भी दुर्व्यवहार का शिकार होंगी। इस विषय को घेरने वाले व्यापक कलंक के कारण, स्कूल में यौन हमले का अनुभव करने वाले पुरुष छात्र अक्सर विशेष रूप से शर्मिंदा महसूस करते हैं। जो छात्र यौन और लिंग-आधारित हिंसा के शिकार हैं, वे मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों, यौन संचारित संक्रमण, अनपेक्षित गर्भधारण, कम आत्मसम्मान और खराब शैक्षणिक उपलब्धि से पीड़ित होने की अधिक संभावना रखते हैं। यह न केवल व्यक्ति को प्रभावित करता है, बल्कि परिवार और समुदाय को भी प्रभावित करता है।

जब छात्र गिरोहों के साथ शामिल होते हैं या उन समुदायों में रहते हैं जहां गिरोह और ड्रग्स संस्कृति का हिस्सा हैं, तो यह सीधे स्कूल के भीतर लड़ाई, हथियार और नशीली दवाओं से संबंधित हिंसा का कारण बन सकता है। यह तब भी हो सकता है जब छात्र

उन समुदायों में रहते हैं जहां गिरोह और ड्रग्स संस्कृति का हिस्सा हैं। एक व्यक्ति की अध्ययन करने और स्कूल जाने की क्षमता में बाधा आ सकती है जब वे शत्रुतापूर्ण वातावरण में होते हैं। इसके अतिरिक्त, संघर्षों का स्कूलों के बुनियादी ढांचे, कुशल प्रशिक्षकों की उपलब्धता, साथ ही शैक्षिक संसाधनों के वितरण और ऐसी चीजों तक पहुंच पर प्रभाव पड़ सकता है। ऐसे देशों से आ रही रिपोर्टों के अनुसार, वर्तमान में सशस्त्र संघर्ष का सामना कर रहे देशों के छात्रों को कक्षा के अंदर और बाहर दोनों जगह पीड़ित होने का खतरा बढ़ गया है।

हिंसा मुक्त स्कूलों और परिसरों के निर्माण के तरीके

निम्नलिखित कुछ तरीकों की एक सूची है जिनका उपयोग हिंसा को समाप्त करने और स्कूलों में एक सुरक्षित वातावरण प्रदान करने के लिए किया जा सकता है:

अतिरिक्त सावधानी बरतनी चाहिए

लॉकर और बैग की यादृच्छिक तलाशी आयोजित करके, पहुंच और प्रस्थान बिंदुओं की संख्या को सीमित करके और यह सुनिश्चित करके कि शिक्षक प्रवेश मार्गों की निगरानी के लिए मौजूद हैं, छात्रों को स्कूल में हथियार लाने से रोकना।

मानव रक्षक

हर समय, टॉयलेट के आसपास के क्षेत्रों सहित सभी अंधेरे स्थानों में अच्छी तरह से प्रशिक्षित सहायक कर्मी और सहायक कर्मचारी मौजूद होने चाहिए। परिवहन वाहनों का संचालन करने वाले स्टाफ सदस्यों के लिए मानव रक्षक भी आवश्यक है ताकि वे सड़क के कानूनों को न तोड़ें और युवाओं के जीवन को खतरे में न डालें। तकनीकी उपकरणों और गैजेट्स के अलावा जो कुछ भी हो रहा है उसका ट्रैक रखने के लिए उपयोग किया जाता है, निरंतर मानव निगरानी और ध्यान देना होगा।

संघर्ष समाधान सबक

शांतिपूर्वक संघर्षों को हल करने के तरीके पर सबक को समस्याग्रस्त विद्यार्थियों को हिंसा की ओर मुड़ने से रोकने के लिए पाठ्यक्रम का हिस्सा होना चाहिए। पाठ जिसमें इंटरैक्टिव चर्चा और गतिविधियां शामिल हैं, कक्षा के सदस्यों के बीच सकारात्मक संबंधों को बढ़ावा देने में प्रभावी हैं। छात्रों को अपने साथियों के साथ इंटरैक्टिव कार्यक्रमों के माध्यम से सिखाया जाता है कि चेतावनी संकेतों को कैसे पहचाना जाए कि एक सहपाठी अधिक परेशान या आक्रामक हो सकता है।

मुद्दों की बढ़ी हुई चेतना

कम उम्र में बच्चों को मुद्दों से अवगत कराना शैक्षिक सेटिंग में एक सुरक्षित वातावरण बनाने के लिए एक रणनीति है। एक कुशल जागरूकता अभियान में स्कूलों में हिंसा की समस्या का समाधान होने की क्षमता है। बच्चों की गलत धारणा है कि पारस्परिक संघर्ष को हल करने के साधन के रूप में आक्रामक व्यवहार का सहारा लेना उचित है जब कोई हस्तक्षेप प्रक्रिया नहीं होती है और वे मौजूद कठिनाइयों से अनजान होते हैं।

एक शैक्षिक वातावरण बनाएं जो हिंसा से मुक्त है

स्कूल जो सक्रिय रूप से एक ऐसी संस्कृति बनाने में मदद करना चाहते हैं जो हिंसा से मुक्त है और पूरे स्कूल के माहौल में व्याप्त है, उनके समुदायों के लिए अनुकूल परिणाम लाने की अधिक संभावना है। इस रणनीति का शैक्षिक परिणामों, आत्मसम्मान के स्तर और पूरे छात्र शरीर में संघर्ष समाधान के तरीकों पर एक डोमिनो प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों की क्षमताओं में वृद्धि शिक्षकों का अपने छात्रों के साथ जो संबंध है, वह विद्यार्थियों को जिम्मेदार लोगों में विकसित करने में भूमिका निभाने की क्षमता रखता है। स्कूल संस्कृति और लोकाचार के कई पहलुओं की प्रभावकारिता पर शोध करने में उनकी भागीदारी, जो एक खुश और सुरक्षित स्कूल के माहौल में योगदान देती है, काफी महत्वपूर्ण है।

हिंसा के खिलाफ लड़ाई में सक्रिय प्रतिभागियों के रूप में छात्रों को संलग्न करें

स्कूलऔर कक्षा के लिए आचार संहिता के विकास में योगदान देने वाली इंटरैक्टिव कक्षा गतिविधियों में भाग लेने से छात्र अधिक जिम्मेदार हो सकते हैं। छात्र उन व्यवहारों पर चर्चा करके भागीदार बन सकते हैं जो उनके सहपाठियों के लिए हानिकारक हो सकते हैं, व्यवहार जो स्वीकार्य हैं, और व्यवहार जो कक्षा में सीखने के माहौल को परेशान करते हैं। बच्चों को व्यवहार में संलग्न होने की अधिक संभावना है जो सूचित किया जाता है जब वे एक साथ आचार संहिता लिखने में सहयोग करते हैं क्योंकि यह उनके अधिकारों और कर्तव्यों को स्पष्ट करता है।

निरंतर संवाद

प्रत्येक स्कूल को शिक्षण कर्मचारियों और विद्यार्थियों के साथ-साथ प्रशासक, मार्गदर्शन परामर्शदाताओं, सामुदायिक नेताओं और माता-पिता-शिक्षक संगठनों के बीच बातचीत को लागू करने की आवश्यकता होती है। इस तरह की बहस में भागीदारी की कमी इस बात की गारंटी नहीं देगी कि सभी के अधिकार समान हैं। एक बच्चे को पालने के लिए एक गांव की आवश्यकता होती है, और एक साथ काम करके, हम अपने समुदाय में गैर-दंडात्मक सुरक्षा की संस्कृति बना सकते हैं। केवल अपराधी और पीड़ित पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, इससे अंतर्निहित मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करना और इसके स्रोत को ढूंढना आसान हो जाएगा।

बदमाशी को समाप्त करने के तरीके

बदमाशी के लिए एक उपयोगी दिशानिर्देश तैयार करने के प्रयास किए जाने चाहिए। शिक्षकों, छात्र प्रतिनिधियों, स्कूल के कर्मचारियों और स्कूल के आसपास के समुदाय के बीच बदमाशी की सटीक परिभाषा होना महत्वपूर्ण है ताकि व्यक्तियों को लगातार समान मानकों को लागू करने में सक्षम हो सके। दर्शकों को शिक्षित किया जाना चाहिए और वयस्कों को बदमाशी की रिपोर्ट करने, समस्याओं को मध्यस्थता करने, कार्रवाई करने और बदमाशी को रोकने के लिए आवश्यक अधिकार दिया जाना चाहिए।

इसके अलावा, नैतिक और नागरिक शिक्षा के लिए एक पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम सामग्री में शांति और मानवाधिकारों पर निर्देश शामिल करें। आज के स्कूलों को अपने मिशन को पूरा करने के लिए नैतिकता और नैतिकता पर पाठ्यक्रम शामिल करना चाहिए। एक अच्छी नैतिक शिक्षा सही और गलत व्यवहार के बीच अंतर की एक आवश्यक समझ के लिए आधार प्रदान करती है, साथ ही साथ क्या स्वीकार्य है और क्या स्वीकार्य नहीं है।छात्रों को उनके जीवन में बाधाओं का रचनात्मक रूप से जवाब देने में सहायता करें विद्यार्थियों की लचीलापन विकसित करें ताकि वे बाधाओं, तनाव और दैनिक जीवन के अन्य पहलुओं से प्रभावी ढंग से निपट सकें। जिन छात्रों के पास लचीलापन की अधिक क्षमता है, वे हिंसक प्रतिक्रिया देने या शिकारियों के शिकार होने की संभावना कम हैं।

सहायक स्टाफ को शिक्षित और सशक्त बनाना सहायक कर्मचारी हर स्कूल की रीढ़ हैं, इस प्रकार उन्हें शिक्षित और सशक्त बनाना महत्वपूर्ण है। आज के विशाल स्कूल आकार केवल सहायक श्रमिकों और परिवहन कर्मचारियों की सहायता से कार्य कर सकते हैं, जिन्होंने जमीनी स्तर पर अथक प्रयास किया है। मानव संसाधन विकसित करने की प्रक्रिया के हिस्से के रूप में, युवाओं के साथ जुड़ने के लिए इन स्टाफ सदस्यों के प्रशिक्षण और शिक्षा को शामिल किया जाना चाहिए। किसी भी स्कूल को अच्छी तरह से काम करने के लिए, यह जरूरी है कि छात्रों के मानसिक और वित्तीय स्वास्थ्य को अन्य सभी चिंताओं से ऊपर प्राथमिकता दी जाए।

कुशल हस्तक्षेपों का मार्गदर्शन करने के लिए सिद्धांतस्थापित करना

विशिष्ट स्थितियों के लिए तैयारी एक सफल तकनीक है, और इसमें शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के सदस्यों के लिए प्रशिक्षण शामिल है ताकि वे आपातकालीन परिदृश्य के दौरान प्रभावी तरीके से प्रतिक्रिया दे सकें, साथ ही बदमाशी और हिंसा जैसी समस्याओं से निपट सकें। सामान्य नियमों से सूचित उत्तर मिलेंगे, जो संघर्ष की स्थितियों के समाधान के लिए इस तरह से अनुमति देंगे जिसमें हिंसा शामिल नहीं है। स्कूल में छात्रों और कर्मचारियों के बीच इस तरह के आचरण की व्यापकता में कमी के परिणामस्वरूप जागरूकता और समझ में वृद्धि होगी।

स्कूल विभिन्न प्रकार के सुझाव और विचार प्रदान करने के लिए एक अनूठी स्थिति में हैं जिनका उपयोग स्कूल जलवायु और सुरक्षा से संबंधित भविष्य की नीति और अभ्यास के निर्माण में किया जा सकता है। स्कूलों को सिर्फ दबंगों और स्कूल हिंसा के पीड़ितों पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, स्कूलों के माहौल को बदलकर स्कूल हिंसा की समस्या का प्रभावी समाधान खोजने की कोशिश करनी चाहिए। एक पूरी स्कूल रणनीति को सफल होने के लिए, छात्र निकाय और संकाय निकाय में एक मजबूत संस्कृति और लोकाचार की स्थापना के लिए पर्याप्त समय और संसाधन आवंटित किए जाने चाहिए। एक स्कूल जिसने संस्कृति को बदलने और एक स्वस्थ स्कूल वातावरण के निर्माण के लिए जिम्मेदारी साझा की है जो धमकाने वालों को हतोत्साहित करता है और छात्रों को एक-दूसरे की देखभाल करने के लिए प्रोत्साहित करता है, उसमें समाज में सकारात्मक और रचनात्मक परिवर्तन लाने की क्षमता होगी।

निष्कर्ष

स्कूलों में हिंसा होने पर छात्रों पर लगभग हमेशा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। छात्र को निष्कर्षों के परिणामस्वरूप भय, चिंता और प्रत्याशा का अनुभव हो सकता है, जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव हो सकता है। विद्यार्थियों की एक महत्वपूर्ण संख्या भी मानसिक आघात का अनुभव कर सकती है, अवसाद का शिकार हो सकती है, और असामाजिक प्रवृत्तियों को विकसित कर सकती है। हिंसक व्यवहार में संलग्न छात्र खुद को या दूसरों को घायल कर सकते हैं, साथ ही स्कूल की संपत्ति को नष्ट या गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त कर सकते हैं। स्कूल का उद्देश्य एक सुरक्षित सेटिंग प्रदान करना है जिसमें छात्र रचनात्मक और रचनात्मक रूप से सकारात्मक वातावरण में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। नतीजतन, स्कूलों की जिम्मेदारी है कि वे हिंसक और आक्रामक व्यवहार की उपस्थिति पर नियमित जांच करें। षहिंसाष शब्द बोलने के बाद लोगों के विचार तुरंत सबसे खराब स्थिति में चले जाते हैं। यह किसी अन्य व्यक्ति को दर्द, चोट या क्षति पहुंचाने के लिए शारीरिक बल या अन्य गंभीर तरीकों को नियोजित करने का कार्य है। अन्य लोगों के लिए घृणा और उनके जीवन की गुणवत्ता में सामान्य गिरावट दोनों हिंसा के कृत्यों से जुड़े हैं। किसी भी प्रकार का हिंसक व्यवहार, इसकी प्रेरणा की परवाह किए बिना, हमारे समाज में बर्दाश्त नहीं किया जाएगा और कड़ी सजा दी जाएगी।

संदर्भ

1. कैस्टेल, सी।; पीक-आसा, सी।; लिम्बोस, एमए (2007)। "लॉस एंजिल्स सिटी में पब्लिक स्कूल के शिक्षकों के लिए गैर-घातक हमले की चोट के भविष्यवक्ता". औद्योगिक चिकित्सा के अमेरिकी जर्नल. 50 (12): 932ख939। दोई: 10.1002/ पीएमआईडी 17979131।
2. कॉर्नेल, डेवी; एलन, कोरी (2011)। "वर्जीनिया छात्र खतरा मूल्यांकन दिशानिर्देशों के विकास, मूल्यांकन और भविष्य के निर्देश"। स्कूल हिंसा के जर्नल. 10: 88-106।
3. ह्यूसमैन, एल। एरोन, एल। यार्मेल, पी डब्ल्यू (1987)। "बौद्धिक कामकाज और आक्रामकता" (पीडीएफ)। व्यक्तित्व और सामाजिक मनोविज्ञान के जर्नल. 52 (1): 232-240। दोई: 10.1037/0022-3514.52.1.232. hdl: 2027.42/83384. पीएमआईडी 3820075।
4. हॉवर्ड, के। फ्लोरा, जे।; ग्रिफिन, एम (1999)। "स्कूलों में हिंसा-रोकथाम कार्यक्रम: भविष्य के अनुसंधान के लिए विज्ञान और निहितार्थ की स्थिति"। एप्लाइड एंड प्रिवेंटिव साइकोलॉजी। 8 (3): 197-215। दोई: 10.1016/S0962-1849(05)80077-0.
5. एम्ब्री, डी डी (2002)। ष्अच्छा व्यवहार खेल: एक सार्वभौमिक व्यवहार वैक्सीन के रूप में एक सर्वोत्तम अभ्यास उम्मीदवार". नैदानिक बाल और परिवार मनोविज्ञान की समीक्षा। 5 (4): 273-296। दोई: 10.1023/ा: 10209771070861 पीएमआईडी 12495270। S2CID 4504251.
6. उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए नवाचार शासन पर अनुसंधान पुस्तिका: बेहतर मॉडल की ओर। कुहलमैन, स्टीफन। चेल्तेहनहैम, यूके। २७ जनवरी २०१७ । आईएसबीएन 978-1-78347-191-1। ओसीएलसी 971520924।
7. वाटकिंस हैना, मार्क (2009)। "द वेस्ट अफ्रीकन "बुश" स्कूल". अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी। 48 (6): 666-675। दोई: 10.1086 219263/ S2CID 1442088521

भारतीय बौद्ध कला में लोक प्रतीक

रक्षी पासवान

शोध छात्रा, विभाग ललित कला संकाय, डा० शकुन्तला मिश्रा,राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविघालय लखनऊ

सारांश

भारतीय कला में लोक प्रतीक का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है,लोक प्रतीक हमारी परम्पराओ से जुड़कर हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। लोक प्रतीक अष्टमांगलिक प्रतीक स्वास्तिक, श्रीवत्स, चक्र, कलश, वक्ष, पदम, मीन मिथुन त्रिरत्न, शालभंज्जिका आदि है लेकिन वर्तमान में अष्टमांगलिक चिन्हो की संख्या को बढ़ाकर नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह एंव आठरह हो गई है। भारतीय कला में प्राचीन काल से लोक प्रतीको को पूजा के माध्यम बना कर पूजा करते थे जो हमारी आस्था एंव कल्याण की भावना माध्यम से हमारे जीवन का अहम हिस्सा बनी है। लोक प्रतीको की लोकप्रियता ब्राह्मण, बौद्ध, जैन सभी धर्मो के इन प्रतीको को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है भारतीय बौद्ध धर्म में प्रारम्भ में बौद्ध अनुयायी द्वारा महायान सम्प्रदायो को मानने वाले बौद्ध के प्रतीक की संरचना बनाकर मूर्ति पूजा आरम्भ कि जैसे बोधिवृक्ष तथागत की सबोधि का धर्मचक्र के प्रवचन के प्रथम स्तूप महापरिनिर्माण, त्रिरत्न बौद्ध धर्म का एंव संघ का परिचायक बनी है। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित स्थापत्यो में लोक प्रतीक के अंकन मिलते है। जैसे सांची, भरतूत, बोघगया, अमरावती, नागार्जुनकोंड़ा, मथुरा आदि है।

शब्दकुजीः भारतीय कला, बौद्ध धर्म, लोक प्रतीक, अष्टमांगलिक

लोक प्रतीक का सम्बन्ध समाज की उस कला से है जो हमारी परम्पराओ से जुड़कर हमारे जीवन के अनेक पारम्परारिक कलाओ को परिभाषित करती है, जो हमारे जीवन में लोक प्रतीक अपने स्वरूप का मांगलिक प्रभाव भी डालते है। भारतीय कला में प्रतीको का उदय प्राचीन काल से ही होता आ रहा है, जैसे आस्था एंव कल्याण की भावना के हेतू अनेक मांगलिक प्रतीको की रचना हुई है। जिसमें स्वास्तिक, पूर्णकलश, श्रीवत्स, चक्र, वृक्ष, मीन मिथुन एंव शालभंज्जिका आदि है इन प्रतीको का एक सामूहिक रूप अष्टमांगलिक प्रतीक भी कहा जाता है अष्टमांगलिक प्रतीको कि लोकप्रियता ब्राह्मण,जैन एंव बौद्ध सभी धर्मो सम्प्रदायो में इन प्रतीको को समान रूप से उचित स्थान प्राप्त हुआ है।

इसी प्रकार प्रतीक पूजा का ऐसा ही आरम्भिक रूप बौद्ध कला में भी देखने को मिलता है महायान सम्प्रदाय से भगवान बुद्ध की मूर्ति पूजा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ बौद्ध अनुयायी ने भगवान बौद्ध के प्रतीको की भी संरचना कि जैसे बोधिवृक्ष तथागत की सबोधि का धर्मचक्र उनके प्रथम प्रवचन का स्तूप, महापरिनिर्माण का त्रिरत्न, बुद्ध धर्म तथा संघ के स्वरूप का परिचायक बनी, जैसे भरहूत, बोधगया, सांची, मथुरा, अमरावती स्तूप नागार्जुनकोंडा आदि अनेक बौद्ध स्तूपो में लोक प्रतीको के विविध अंकन पाए गये है। डाख० आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार "स्वास्तिक विश्व व्यापी अथवा सभी देशो में मिलने वाला प्राचीन प्रतीक है।" इस प्रकार से भारतीय बौद्ध प्रतीको के प्रारम्भ से हमारे समाज और कला का अभिन्न भाग रहा है। जिसका वर्णन निम्न प्रकार से है।

स्वास्तिक

स्वास्तिक भारतीय परम्पराओ में स्वास्तिक चिन्ह को सर्वश्रेष्ठ माना गया है स्वास्तिक प्रतीक को मंगल चिन्ह माना गया है ,हमारे भारतीय संस्कृति में स्वास्तिक प्रतीक को सभी शुभ मांगलिक कार्यो में प्रयोग होता है, स्वास्तिक के सु का अर्थ है 'शुभ' और अस्ति से तात्पर्य है 'होना' अर्थात स्वास्तिक के चिन्ह चार दिशाओ पूर्व, पश्चिम उत्तर एंव दक्षिण की ओर इशारा करती है स्वास्तिक प्रतीक हिन्दू, बौद्ध,जैन सभी धर्मो में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। स्वास्ति प्रतीक को सूर्य पूजा से सम्बन्ध, अग्नि, उर्वरकप्रतीक,

सौभाग्यशाली, जल, वज्र एंव चारो दिशाओ का प्रतीक माना गया है। बौद्ध धर्म में भी स्वास्तिक को अच्छे भाग्य का प्रतीक माना गया है, यह प्रतीक भगवान गौतम बुद्ध के पग चिन्ह में देखने को मिलता है इसलिए इसे पवित्र माना गया है और स्वास्तिक प्रतीक को गौतम बुद्ध के हृदय, हथेली एंव पैरो में भी अंकन के प्रमाण मिले है स्वास्तिक प्रतीक बौद्ध धर्म सम्बन्धि से भी मिले है जिसके उदाहरण है जैसे पिपरहवा से प्राप्त गौतम बुद्ध के अस्थि कलश के ऊपर स्वास्तिक प्रतीक बना है ,कुषाणकालीन से प्राप्त मूर्ति पर भी बुद्ध के पदो पर स्वास्तिक के चिन्ह उत्कीर्ण पाए गए है, मथुरा से भी प्रस्तर अभिलेखो में स्वास्तिक के अंकन मिले है, अमरावती स्तूप के अभिलेखो में भी स्वास्तिक प्रतीको के प्रमाण मिले है।

श्रीवत्स

भारतीय संस्कृति और कला में एक प्रतीक के रूप में श्रीवत्स चिन्ह महत्वपूर्ण है श्रीवत्स प्रतीक पहले भारतीय संस्कृति में मांगलिक चिन्ह के स्वरूप प्रयोग होता था लेकिन बाद में ऐतिहासिक, महापुरूषो के लांक्षन के स्वरूप में यह चिन्ह बौद्ध धर्मो व जैन तीर्थकरो से सम्बन्धित मूर्ति पर अंकन पर होता था ,भगवान बुद्ध के पदो व हिन्दू देवता विष्णु व अन्य देवी देवताओ के वक्षस्थल पर अंकन देखने को मिलता है बौद्धग्रन्थो में श्रीवत्स के चिन्ह के साथ ही चक्र, वर्द्धमान, स्वास्तिक, पदम, नदयावर्त एंव त्रिरत्न चिन्हो को मांगलिक स्वरूपो में अंकन मिलता है, राजकुमार सिद्धार्थ के सिर पर सज्जित बालो को 'ललित विस्तार' में श्रीवत्स कहा गया है।

बौद्ध धर्म से स्म्बन्धित स्तूपो में श्रीवत्स प्रतीक को साज - सज्जा के लिए प्रयोग किया जाता था जैसे सांची स्तूप के संख्या 2 में वेदिका व स्तम्भो पर श्रीवत्स के अंकन मिलते है भरहूत स्तूप के चक्रो व अर्द्धचक्रो के फलको में श्रीवत्स के अंकन देखने को मिलता है, सारनाथ व शुंगकाल से प्राप्त वेदिका व स्तम्भो पर भी श्रीवत्स त्रिरत्न व भद्रकशल के उत्कीर्ण के अंकन मिलते है।

भरहूत, सांची, सारनथ, कौशाम्बी तथा मथुरा के शिल्प उत्कीर्ण में श्रीवत्स को मानवकार स्वरूप में दिखाया है मथुरा से मिली मूर्ति में बुद्ध व जैन के मूर्ति में श्रीवत्स लांछन के रूप में मिला है।

चक्र

चक्र लोक प्रतीक मानव के विकास का प्रतीक माना जाता है चक्र हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है भारतीय परम्पराओ में चक्र को सूर्य का प्रतीक माना जाता है चक्र के स्वरूप में सूर्य की पूजा कि जाती है, सूर्य गति व काल का प्रतीक माना गया है। चक्र एक मांगलिक प्रतीक भी है, चक्र को हिन्दू देवी देवताओ के प्रभामण्डल में दिखाया गया है। इसलिए चक्र को भारतीय संस्कृति में इसे उच्च स्थान प्राप्त है, बौद्ध कला में भी चक्र महत्वपूर्ण है बौद्ध धर्म में भगवान गौतम बुद्ध के द्वारा दिया गया पहला प्रवचन धर्मचक्र प्रवर्तन के नाम से प्रसिद्ध है चक्र के प्रथम प्रवचन का प्रतीक बना, बौद्ध स्थापत्य कला में चक्र का अंकन देखने को मिलते है जैसे सांची, भरहूत, सारनाथ, अमरावती,नागार्जुन आदि बौद्ध स्तूपो मे चक्र के प्रमाण मिलते है।

कलश

भारतीय संस्कृति के लोक कला में कलश को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, पूर्ण कलश से भरा जल को जीवन का सार माना गया है। रूपयो से भरा कलश को देवी लक्ष्मी का प्रतीक माना गया है एंव लोक प्रतीक में कलश को मांगलिक प्रतीक माना गया है हिन्दू धर्म में कलश को पवित्र मानकार शादी विवाह में स्थापित किया जाता है एंव मन्दिरो व पूजा में पूर्णकलश की स्थापित किया जाता है। इसी प्रकार से भारतीय बौद्ध कला में भी कलश के अंकन के प्रमाण मिले है जैसे सांची, भरहूत, अमरावती, मथुरा, कपिशा नागार्जुन बोधगया आदि विभिन्न स्थानो से कलश के प्रमाण मिलते है।

वृक्ष

प्राचीन काल से ही वृक्ष भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है, प्रगैतिहासिक काल से वृक्ष की पूजा के प्रमाण मिलते है ऐसा माना जाता है, कि भारतीय परम्पराओ के आधार पर कि वृक्ष में देवी देवताओ का वास स्थान है वृक्ष पूजा को कई नामो से जाना जाता है जैसे बोधिवक्ष, श्रीवृक्ष, कल्पवृक्ष आदि। 'फार्ग्यूसन' ने इसे वृक्ष पूजा का आकलन माना था। इसी प्रकार बौद्ध कला मे वृक्ष

पूजा के भी उल्लेख मिलते है बौद्ध साहित्य के जातक कथाआ में विविध उल्लेख मिलते है, बोधीवृक्ष के अनेक अंकन भरहूत सांची, अमरावती, बोधगया नागार्जुनकोण्डा आदि स्थानो स्तूपो के शिल्पो पर उत्कीर्ण के प्रमाण मिलते है।

पद्म

भारतीय हिन्दू संस्कृति में पद्म को देवी लक्ष्मी का आसन माना जाता है इसलिए लक्ष्मी को पदिमनी, पद्मवर्ण, पद्मस्थिता आदि नामो से जाना जाता है। भारतीय बौद्ध कला में पद्रम को सांची स्तूप के कई फलको में उत्कीर्ण किया गया है,सांची स्तूप के वेदिका स्तम्भ पर भी पद्म के अंकन किये गये है चित्र में देख सकते है। पद्म गुच्छ को पूर्णकलश के अंकन भरहूत, मथुरा, अमरावती आदि स्थापत्यो में देखे जा सकते है। भारतीय बौद्ध से सम्ब्न्धित गुफाओ में पद्म (कमल) के पुष्प के चित्राकन देखने को मिलता है जैसे अजन्ता, एलोरा सितनवासल गुफाओ में पद्म (कमल) के मनोहर रूप में चित्रों के अंकन किया गया है।

मीन मिथुन

मीन मिथुन लोक प्रतीक भारतीय परम्परओ में अष्टमांगलिक प्रतीको में से एक है मीन मिथुन चिन्ह शुभ व अशुभ दोनो का प्रतीक माना जाता है। इस प्रतीक को प्रेम का एंव नव दम्पति नारी और पुरूष के सुखमय जीवन का प्रतीक माना जाता है। भारतीय बौद्ध कला में भी मीन मिथुन के प्रतीक मिलते है।

प्रारम्भिक बौद्ध व जैन स्तूपो के चौत्यो आयपटटो, छत्रो अथवा पदो पर मीन मिथुन के अंकन मिलते है। सांची व नागार्जुनकोण्डा स्तूपो पर मीन मिथुन के चिन्ह के अंकन मिलते है तथा सारनाथ से प्राप्त बुद्ध प्रतिमा के ऊपर गोल छत्र पर आठ मांगलिक चिन्ह के अंकन देखने को मिलते है।

त्रिरत्न

त्रिरत्न लोक प्रतीक बौद्ध जैन, ब्राह्मण आदि धर्मो में वर्णन मिलता है इस चिन्ह को बुद्ध धर्म और संघ का संगठित स्वरूप समझा गया है। भारतीय परम्पराओ में त्रिरत्न लोक प्रतीक शोभा एंव आस्था में प्रयोग किया गया है। "कनिंघम के अनुसार चक्र बुद्ध का तथा त्रिरत्न धर्म का प्रतीक था इन दोनो के साथ - साथ अंकन का सम्मिलित स्वरूप को वे संघ का प्रतीक बताते है।" शुंग काल में बौद्ध शिल्प में त्रिरत्न के प्रतीक को मूर्ति के समान अंकन किया गया है भारतीय बौद्ध कला में भरहूत, सांची, सारनाथ, बोधगया, मथुरा अमरावती एंव नागार्जुनकोण्ड आदि विभिन्न स्थानो के उत्कीर्ण शिल्पो में त्रिरत्न लोक प्रतीक के अंकन देखने को मिलते है। उदयगिरि खण्डगिरि की गुफाओ के प्रवेश द्वार पर भी विभिन्न मांगलिक प्रतीक के अंकन मिलते है।

शालभंज्जिका

भारतीय परम्पराओ में अष्टमांगलिक लोक प्रतीक में से शालभंज्जिका एक है। शालभंज्जिका उस मूर्ति को कहते है जिसमें एक नारी वृक्ष के नीचे त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हो उसे शालभंज्जिका कहते है, शालभंज्जिका को एक हाथ से वृक्ष की शाखा को पकड़कर झूलती सी दिखायी देती है, शालभंज्जिका को भारतीय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित स्तूपो, तोरणो, फलको में उत्कीर्ण मिले है।

शालभंज्जिका को बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान गौतम बुद्ध के जन्म के ऐतिहासिकता के साथ जोड़ा जाता है। बुद्ध भगवान के दृश्य फलक को लुम्बिनी, सारनाथ, अमरावती, नागार्जुन तथा गंधार कला से प्राप्त हुए है। सांची स्तूप के बड़ेरियो से बाहर तरफ निकले समकोणो भाग पर शालभंज्जिका की सुन्दरता के साथ मूर्तियो के विभिन्न भाव भंगिमाओ मे स्वरूपो में अंकन मिलते है। शालभंज्जिका को भारतीय कला में सौन्दर्यबोध, यौवन व भाव भंगिमाओ का बोध कराती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र में लोक प्रतीक भारतीय बौद्ध कला में महत्वपूर्ण भूमिका रही है, प्राचीन काल से लोक चिन्ह हमारे सामाजिक जीवन के हर पहलू में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, चाहे कोई मांगलिक कार्य हो, या फिर आस्था व कल्याण हो, लोक चिन्ह हर रूप में हमारे जीवन से जुड़े हुए है, लोक प्रतीक भारतीय बौद्ध कला में ही नही बल्कि जैन तथा ब्राह्मण धर्म में भी लोक प्रतीको का महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 उपाध्याय वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, 1970

2 श्रीवास्तव डा. ए. एल. भारतीय कला,किताब पब्लिकेशन संस्करण, 2018

3 कांत मीनाक्षी, भारतीय कला, संस्कृति एंव विरासत

4 वर्मा डा. सुरेन्द्र भारतीय कला एंव संस्कृति के प्रतीक, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, संस्करण, 2011

5 श्रीवास्तव, डा. ए. एल., प्रतीमा श्री, बी आर, ISBN 978-93-622 संस्करण 2018,

6 श्रीवास्तव, डा. विमल मोहिनी, मांगलिक प्रतीक

7 प्रताप, डा. रीता, भारतीय चित्रकला एंव मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, 36 वॉ संशोधित संस्करण, ISBN 978-93-90571-42--0, 2021,

8 सिंह कु. ख्याति,आलेख भारतीय कला और प्रतीक, ISSN 2395 .7247ए2014

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता एवं विकास

डॉ० रत्न प्रकाश द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, खरडीहा महाविधालय, खरडीहा गाजीपुर

वर्तमान समय में मनुष्य प्रगति की ओर उन्मुख है। वह प्रतिदिन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षेत्र में उन्नति कर विकास की ओर बढ़ता जा रहा है वहीं दूसरी ओर विकास की गति हमारे लिए कष्टकारी सिद्ध होती जा रही है और इसी विकास के कारण हमारा पर्यावरण प्रभावित होकर प्रदूषित होता जा रहा है। वनों के कटाई, वनस्पतियों और जीवों के संबंधों में कमी, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण में वृद्धि, विज्ञापन तथा तकनीकी का अप्रत्याशित प्रसार और जनसंख्या विस्फोट तथा परमाणु भट्टियों में पैदा होने वाली रेडियाधर्मी ईधन की राख, रासायनिक प्रदूषक और इलेक्ट्रानिक उपकरण जनित प्रदूषक सामग्री के विस्तार से जो पारिस्थितिकी परिवर्तन प्रदूषण के रूप में सामने आ रहे हैं उससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है। प्रकृति दोहन के कारण जो स्थितियां पैदा हो रही हैं उसमें प्रकृति कब तक मनुष्य का साथ दे पाएगी यह अनुमान लगाना कठिन नहीं हैं। विकसित देश जिस आर्थिक विकास का लाभ आज उठा रहे हैं वह भूतकाल में मानवीय पर्यावरण के संरक्षण को ध्यान में रखे बिना प्रापत किया गया था।''[1] आज से पचास वर्ष पहले से ही पर्यावरणविद मानव और प्रकृति के बिगड़ते संबंधों के बारे में सचेत किए जा रहे है, लेकिन उपभोग के नाम पर औद्योगीकरण दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

किसी भी देश में प्रदूषण की रोकथाम तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए सबसे बेहतर उपाय है कि पर्यावरण संबंधी पारंपरिक कानूनों तथा आधुनिक कानूनों को सम्मिलित कर एक बेहतर कानून का निर्माण करके वहां के सीमित संसाधनों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरणीय सुरक्षा के बेहतर उपाय किए जाएं तथा इसके लिए सभी सकारात्मक एवं प्रासंगिक उपायों को अपनाया जाए। अत: पर्याावरण संरक्षण के लिए वैश्विक तथा राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। वैश्विक स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संस्था द्वारा तथा राष्ट्रीय स्तर पर संविधान द्वारा तथा सरकारी प्रावधानों द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

पर्यावरणीय समस्याएँ

जलवायु परिवर्तन

यह तब होता है जब दीर्घकालिक मौसम पैटर्न बदल जाते है- उदाहरण के लिए, सभी मानव गतिविधियों के माध्यम से ग्लोबल वार्मिंग जलवायु में एक बड़ा बदलाव है जिससे कि औसत वैश्विक तापमान में वृद्धि हुई है। ऐसा होता है, साधारणत: हमें सूरज से प्रकाश और ऊर्जा प्राप्त होती है और इस आने वाली सौर विकिरण में से कुछ वापस अंतरिक्ष में वापस लौट जाता है लेकिन कार्बन डाइऑक्साइड (सीओ.) और अन्य वायु प्रदूषण, ग्रीन हाउस गैस (सी., एन.ओ, सीएफसी, एसओ. आदि) वातावरण में इकट्ठा हो जाती हैं और लौटने वाली धूप और सौर विकिरण को अवशोषित करती हैं। आम तौर पर यह विकिरण अंतरिक्ष में चला जाएगा, लेकिन ये गैसें उन्हें रोकती हैं और गहराई से अवशोषित करती है। इस वजह से यह ग्रह अधिक गर्म हो जाता है। यह ग्रीन हाउस प्रभाव के रूप में भी जानाजाता है। सीओ, ग्रीन हाउस गैसों में सबसे बड़ी प्रदूषण गैस है। कोयला, जलाने वाले जल विद्युत संयंत्र सीओ. उत्सर्जन के सबसे बड़े स्रोत है। शहरों, सड़कों आदि के विकास के लिए पेड़ों का काटना, ग्लोबल वार्मिंग का दूसरा बड़ा कारण है, क्योंकि पेड़ ओ, (ऑक्सीजन) को छोड़ते समय सीओ. को अवशोषित करते हैं। यह ग्लोबल वार्मिंग अन्य गंभीर चुनौतियों जैसे ग्लेशियरों से पिघलने, महासागरों को गर्म करने, बर्फ की शीट को कम करने, आर्कटिक सागर के बर्फ में गिरावट, हिमनदों की वापसी, समुद्र में अम्लीकरण, बर्फ की कमी और बाढ़ की समस्या को लेकर समुद्र के स्तर में वृद्धि जैसी गंभीर चुनौतियों को

सामने लायी हैं। पृथ्वी की वर्तमान वार्मिंग, मध्य 20वीं शताब्दी के बादसे मानव गतिविधियों का नतीजा है और दशकों से सदियों में अप्रत्याशित दर से बढ़ रही है। यह अनुमान लगाया गया है कि औसत तापमान 0.7 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ गया है और उत्तरी गोलार्ध पिछले 11000 वर्षों के दौरान किसी भी समय से काफी अधिक गर्म है। आईपीसीसी, जिसे 1988 में विश्व मौसम विज्ञान संगठन और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) द्वारा स्थापित किया गया था, ने जलवायु परिवर्तन से संबंधित वैज्ञानिक, तकनीकी और सामाजिक-आर्थिक जानकारी का आकलन करने के लिए 2014 में अपनी पांचवी आकलन रिपोर्ट (एआर.) जारी की है। रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु पर मानव का स्पष्ट प्रभाव है और यह बताया गया है कि हम उत्सर्जन को कम करने के लिए जितना इंतजार करेंगे, वह उतना ही और अधिक महंगा हो जाएगा। पूरा विश्वास है कि 19वीं शताब्दी के मध्य के बाद से समुद्र के स्तर में वृद्धि पिछली दो सदियों की औसत समुद्र के स्तर में वृद्धि से अधिक है।[2]

घटते प्राकृतिक संसाधन

प्राकृतिक संसाधन जैसे भूमि, वायु, जल, मिट्टी, खनिज और जैव विविधताएं जीवन की नींव हैं। वे न केवल जीवन की गुणवत्ता सुनिश्चित करते हैं बल्कि सुरक्षा और विकास भी प्रदान करते हैं, अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए एक संगठित तरीके से, संसाधनों के विकास और शोषण की आवश्यकता है। लंबे समय में विकास को बनाए रखने के लिए, उचित तरीके से संसाधनों का फायदा उठाना आवश्यक है। संसाधनों के शोषण से गंभीर पर्यावरणीय असंतुलन हो सकता है। लिविंग-प्लैनेट की रिपोर्ट में यह आंकड़ा दिया गया है कि धरती जितना हर साल प्रतिपूर्ति कर सकती है मानव हर साल उससे 30 प्रतिशत अधिक संसाधनों का उपयोग कर रहा है, जो कि वनों की कटाई, कमतर मिट्टी, प्रदूषित हवा और पानी और मछली और अन्य प्रजातियों की संख्या में गिरावट का कारण है।

यह समस्या भी बदतर हो रही है क्योंकि प्राकृतिक दुनिया से जो उत्पादित किया जा सकता है तकनीक ने उसके विस्तार करने के जितने नए तरीके खोजे हैं आबादी और खपत उससे तेजी से बढ़ती जा रही है। आज के विकास पर सवाल उठाया गया है क्योंकि यह जरूरतों को पूरा करने के लिए नहीं है, बल्कि यह लालच के लिए है। संसाधनों के अधिक शोषण के लिए प्रौद्योगिकी और विचारधारा भी जिम्मेदार है। पूंजीवाद ने उपभोक्तावाद को बढ़ा दिया है इसलिए यह जीवन शैली की समस्या बन गई है। ब्रिटिश सरकार के पूर्व मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार सर डेविड किंग ने कहा, 'हमें सभी को यह मानने की जरूरत है कि समझदारी का संकट है, कि हम पेड़ों के जैव विविध संसाधनों को उस दर से हटा रहे हैं जो कि तेज है यदि दुनिया की आखिरी महान विलुप्तता से तेज नहीं है।

रिपोर्ट में प्रत्येक देश के 'जल पदचि नं पर विस्तृत जानकारी शामिल है और दावा किया जाता है कि 50 देशों को पहले से ही एक वार्षिक दौर के आधार पर 'मध्यम से गंभीर जल तनाव' का अनुभव हो रहा है। यह दर्शाता है कि 27 देशों में से, जो वे उपभोग करते हैं उसके आधे से ज्यादा पानी का वे आयात करते हैं। अब हमें यह सोचना होगा कि क्या जो उपलब्ध है उससे ज्यादा उपयोग कर रहे हैं? पृथ्वी के वर्तमान संसाधन केवल 2 अरब लोगों की मांग पूरी करने में सक्षम हैं, लेकिन लगभग 7.2 अरब लोग पृथ्वी पर रह रहे है। यह सरल नकारात्मक है। हम पहले से ही पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का 2 से 3 गुना अधिक उपयोग कर रहे हैं। दुनिया के कुल पानी की मात्रा का केवल 2.5 प्रतिशत ही ताजा पानी है जिसका 70 प्रतिशत बर्फ है। इसलिए हमें एहसास होना चाहिए कि स्थिति खतरनाक हो गई है। हमारे प्राकृतिक संसाधनों का बड़ी तेज गति से समाप्त हो रहे है।

पर्यावरण संरक्षण: मानवीय दृष्टिकोण

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में प्रकृति से अनुराग केवल उपयोगितावादी दृष्टि से नहीं वरन् पूजा श्रद्धा और आदर की भावना से किया जाता है। वेदों में भी कहा गया है 'रक्षाये प्रकृति पातुं लोका' अर्थात् प्राणी मात्र के लिए प्रकृति की रक्षा कीजिए। यही पर्यावरणीय संरक्षण का भाव वर्तमान समय में स्टाक होम सम्मेलन में दिखाई देता है। सन् 1972 में स्टाकहोम में पर्यावरण पर आयोजित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनमें एक मत से सभी ने पर्यावरण संरक्षण को मानवता की आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया। सौभाग्य से तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने इसका प्रतिनिधित्व किया और इसे एक व्यवहारिक रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने जहां एक ओर पर्यावरण के संरक्षण को प्राथमिकता देना बेहिचक स्वीकार किया वहीं उन्होंने इस बात को जोरदार ढंग से सामने रखा कि इस मुद्दे का समाधान विकास की समस्या से साथ जोड़कर ढूंढा जाना चाहिए। इसके साथ ही उन्होंने

रेखांकित किया कि ''पर्यावरण के लिए संकट वर्तमान में उत्पन्न हुआ है उसके लिए खुद औपनिवेशिक शक्तियां कम जिम्मेदार नहीं है। तेल हो या खनिज अपनी जरूरत के लिए इन संसाधनों का दोहन करते वक्त प्रकृति के स्वास्थ्य की कोई चिन्ता सम्पन्न पश्चिमी देशों ने कभी नहीं की थी।[3]

इस सम्मेलन में विकसित देशों के सामने यह विकल्प रखा गया कि पर्यावरण के संरक्षण के लिए दोहन का त्याग करना चाहिए तथा न्यायोचित मुआवजा देने के लिए उन्हें व्यवस्था करनी चाहिए। इस सम्मेलन में जीवन को बचाने के लिए प्रगति की परिभाषा के पुनर्विलोकन तथा जनसंख्या नियंत्रण अधिनियम पारित किए गए तथा राज्यों द्वारा भी पर्यावरण विभाग स्थापित किए गए। वास्तव में यह सम्मेलन मानवता की स्पष्ट घोषणा थी कि पर्यावरण विनाश अंतर्राष्ट्रीय समस्या है। अतः पर्यावरण को बचाने की संपूर्ण मानवता की नैतिक जिम्मेदारी बनती है। इस सम्मेलन में इस मन्तव्य को स्वीकार किया गया कि मानवीय पर्यावरण का संरक्षण और सुधार एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिससे लोगों की खुशहाली और पूरे विश्व का आर्थिक विकास जुड़ा है। सभी सरकारों और सम्पूर्ण मानव जाति का यह दायित्व है कि वह मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए मिल-जुल कर काम करे, ताकि संपूर्ण मानव जाति और उसकी भावी पीढ़ियों का हित हो सकें। यह घोषणा कारगर साबित हुई और इसको ध्यान में रखकर अनेक देशों ने पर्यावरण संरक्षण हेतु नियम-कायदों व कानूनों का निर्धारण किया और इन कानूनों के उल्लंघन की स्थिति में दंड की भी व्यवस्था की।

भारतीय संविधान व पर्यावरा संरक्षण-

भारत प्राचीन समय से ही पर्यावरण संरक्षण को लेकर सदैव सजग रहा, इसी कारण उसने संवैधानिक स्तर पर भी पर्यावरण संरक्षण की तरफ ध्यान दिया। हमारे देश में पर्यावरण के अनुकूल एक समृद्ध संस्कृति भी रही है यही कारण है कि देश में हर स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के प्रति ध्यान दिया गया और हमारे संविधान निर्माताओं ने इसका ध्यान रखते हुए संविधान में पर्यावरण की जगह सुनिश्चित की। पर्यावरण को संवैधानिक स्तर पर मान्यता देते हुए इसे सरकार और नागरिकों के संवैधानिक दायित्व को जोड़ा गया।

हमारे संविधान में पर्यावरण संरक्षण के लिए कुछ प्रावधान किए गए है। संविधान देश का सर्वोच्च तथा मौलिक कानून है तो समस्त व्यक्तियों, राज्यों पर बाध्यकारी रूप से लागू होता है। प्रारंभ में पर्यावरण संरक्षण के संबंध में प्रावधान नहीं था लेकिन अनुच्छेद 47 द्वारा स्वास्थ्य की उन्नति हेतु राज्य का कर्तव्य अधिरोपित कर पर्यावरण सुधार किया गया। संसद द्वारा 42 संवैधानिक संशोधन द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए अधिनियमों को पारित करके संविधान के भाग 4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों एवं मूल कर्तव्यों में सम्मिलित किया गया है इसके अंतर्गत कहा गया है-

- राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 48 में कहा गया कि राज्य पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण की व्यवस्था करेगा तथा वन्य जीवन के सुरक्षा प्रदान करेगा।[4]
- संविधान के भाग 4 क के अनु0 51 में मूल कर्तव्यों में प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी, अन्य जीव भी हैं इनकी रक्षा करे और उनका संवर्धन करें ताकि प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे।[5]
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को उन गतिविधियों से बचाया जाना चाहिए, जो उसके जीवन स्वास्थ्य और शरीर को हानि पहुंचाता हो।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेदों 252 व 253 को काफी महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि ये पर्यावरण को ध्यान में रखकर कानून बनाने के लिए अधिकृत करते हैं।

भारतीय संविधान में प्रदूषण मुक्त पर्यावरण हेतु अनेक प्रावधान व्यापक रूप से विद्यमान है। किसी भी कानून की वैधता के लिए यह अति आवश्यक हो जाता है कि केवल अधिनियम द्वारा संरक्षण न प्राप्त हो बल्कि संविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों के अधीन बनाया गया है।[6] भारतीय संविधान में न सिर्फ पर्यावरण को बचाने की अवधारणा निहित है, बल्कि पर्यावरण असंतुलन से होने वाले दुष्प्रभावों से भी रक्षा की तरफ ध्यान दिया है।

वर्तमान सदी को शहरी सदी के रूप में जाना जाता है। अकेले पिछली सदी में, दुनिया की शहरी आबादी 22 करोड़ से बढ़कर लगभग 3 अरब हो गई। आधी मानव जाति, यानि कि 3.5 अरब लोग, वर्तमान में शहरों में रहते हैं और अनुमान है कि 2025 तक

दुनिया की 75 फीसदी आबादी शहरी क्षेत्रों में रहेगी। शहरों ने पृथ्वी की भूमि की केवल 2 फसदी जगह ही ले रखी है, लेकिन ऊर्जा की खपत और कार्बन के उत्सर्जन दोनों के ही मामलों में ये 70 फीसदी से अधिक के लिए जिम्मेदार हैं। आज के समय में, हर दो मनुष्यों में से एक पहले से ही शहरी वातावरण में रह रहा है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ शहरों की संख्या और आकार में इजाफा हो रहा है जिसने 1 करोड़ या उससे अधिक आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में मेगासिटी की प्रक्रिया को जन्म दे दिया है।

संदर्भ

1 http://zeenews.india.com/hindi/science/2014-was-the-warmest-year-so-far/264335
2 Sustainable Development Goals (content/India/en/home/post-2015, html) www.undp.org/content/india/en/home 2015
3 http://www.who.int/mediacentre/commentaries/climate-change-conference/en/
4 http://zeenews.india.com/hindi/science/biggest-threat-to-peoples-health-from-climate-change/261527
5 http://www.scienctificamerican.com/article/twelve-diseases-climate-change-may-make-worse/
6 http://www.searo.who.int/EN/Section10/Section2537_14458.htm

घरेलू हिंसा के विभिन्न कारण

पूनम यादव

शोधार्थी, समाजशास्त्र, डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, (उ0प्र0)।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का भयावह रूप है घरेलू हिंसा। यह एक ऐसी हिंसा हैं जो प्राय: समाज और जनता के सामने जल्दी से प्रकट नहीं हो पाता जबकि सच्चाई यह है कि इससे पूरे विश्व में महिलाएँ बहुत बड़ी संख्या में प्रताड़ित हो रही हैं। घरेलू हिंसा का एक बहुत बड़ा जाल घरों के अन्दर बिछा हुआ हैं, जो घर के बाहर नहीं आ पाता। उत्पीड़ित महिला पति के भय लोक, लाज के भय और समाज में प्रतिष्ठा कम होने के भय से अपना मूँह नहीं खोलती है। महिलाओं के विरुद्ध हो रही हिंसा के सभी रूपों का बुनियादी कारण विभिन्न समुदायों और संस्कृतियों में परंपरा से चली आ रही लिंग भेद की विचारधारा हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट 2002 में हिंसा (जिसमें घरेलू या दापंतिक हिंसा भी सम्मिलित है) को व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार अपने प्रति या अन्य व्यक्ति के विरुद्ध या किसी समूह या समुदाय के विरुद्धशारीरिक बल या शक्ति या जानबूझकर किया गया प्रयोग चाहे वह धमकी के रूप में हो या वास्तविक रूप में हो और जिसका परिणाम या जिसका अधिक संभावित परिणाम चोट, मृत्यु, मानसिक क्षति या मंद विकास या निराशा के रूप में हो वह 'हिंसा' कहलाती है।

घरेलू हिंसा के कारण

घरेलू हिंसा केवल आज की समस्या नहीं है, बल्कि इसका आधार सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रहा है। उत्तरवैदिक युग के बाद मध्यकाल की तमाम कुरीतियाँ, रीति-रिवाजों, मूल्यों, विश्वासों ने जिस पुरुष प्रधान व्यवस्था को जन्म दिया उसी में लिंगत भेदभाव, असमानता, दहेज, बाल-विवाह, वैधव्य, सती प्रथा जैसी अनेक अमर्यादित विसंगतिपूर्ण अन्यायकारी दशाओं को बढ़ावा दिया गया था। इन्हें ऐसा सुदृढ़ बनाया गया जैसे कि यह दैवीय विधान हो। कालांतर में युग परिवर्तन का भी इन पर बहुत प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि कुछ एक नए कारणो ने इनकी नींव और अधिक मजबूत बना दी है।

स्ट्रास (1983) के अनुसार समाज में उच्च स्तर का पारिवारिक संघर्ष, तनाव एवं हिंसा तब होता है परिवार का समाजीकरण हिंसा, सांस्कृतिक मानदण्ड एवं लैंगिक असमानता के वातावरण में होता है जो पत्नी के मारपीट का कारण बनता है। मूरे (1979) सामाजिक, कानूनी, मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिगत स्तर से पत्नी के मारपीट का कारण देखते है।[1]

पारिवारिक हिंसा के जो कारण बताये गये है उनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नवत हैं-

सामाजिक कारण

पारिवारिक हिंसा परिवार में घटित होने वाली घटना है जो एक सामाजिक समस्या भी है, क्योंकि परिवार समाज का ही अंग है, जिसके उद्भव एवं विकास में समाज की भूमिका महत्वपूर्ण है। अत: सर्वप्रथम पारिवारिक हिंसा के सामाजिक कारणों को ज्ञात करना आवश्यक है।

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक परिस्थिति:- भारतीय समाज पुरूष प्रधानवादी समाज के रूप में जाना जाता है, यहाँ की सभ्यता, परम्परा, धर्म, कानून, रीति-रिवाज इत्यादि सभी पुरूषों का वर्चस्व बनाये रखने और महिलाओं का शोषण करने के लिए बनाया गया है। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था एवं पुरूष प्रधानतावाद की परम्परा महिलाओ के विरूद्ध पारिवारिक हिंसा को बढ़ावा देने का महत्वपूर्ण कारण है जो बालकों एवं पुरूषों को सिखाता है कि महिलायें निम्न व्यवहार की काबिल है और

उनसे तुच्छ एवं अभद्र व्यवहार ही करना चाहिए। सामाजिक परिस्थिति के रूप में बाल विवाह भी संस्कार के रूप में स्त्री की हत्या ही है। नीना कपूर ने ऐसे उदाहरण दिये हैं जहाँ पति द्वारा यौन क्रिया के कारण स्त्री की मृत्यु हो जाती है।[2] इस प्रकार कई प्रथायें जैसे- दहेज, सती, धार्मिक कर्मकाण्ड एवं रीति-रिवाज है जिसके कारण समाज में घरेलू हिंसा की घटनाओं में वृद्धि होती जा रही है। बढ़ती दहेज की मांग के कारण लोग पुत्री को बोझ समझने लगे हैं इस कारण उन्हें जन्म लेने से पूर्व ही मार दिया जाता है इसके साथ ही पुरूष प्रधान समाज में पुत्री का जन्म महिलाओं की स्थिति को ऊँचा उठाने के एक अवसर के रूप में माना जाता है। नीरज सिन्हा ने महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के मुख्य जड़ को समझाने हेतु पटना में आयोजित एक कार्यशाला में लेख प्रस्तुत किया उन्होंने बताया कि पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था ही महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव एवं हिंसा के लिए जिम्मेदार है जो महिलाओं को कोई अधिकार नहीं देता, उन्हें एक अमानवीय एवं यौन वस्तु के रूप में देखता है, दहेज प्रथा नारीत्व का पतन करता है।

संस्कृति का दुरूपयोगः- पारिवारिक हिंसा को भारतीय संस्कृति से लम्बे समय से प्रोत्साहन मिलता आया है। कुछ प्रचलित कहावतों जैसे- ''औरते अखरोट के पेड़ की तरह होती है जिसे रोज पीटना चाहिए'', तुलसीदास ने भी कहा है ''ढ़ोल, गवार, शूद्र एवं नारी ये सब ताड़न के अधिकारी'' ने महिलाओं की स्थिति को निम्न बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह स्थिति भारत में ही नहीं अपितु उत्तरी अफ्रीका में भी कहावत प्रचलित है कि ''औरत एवं ऊँट को पीटते रहना चाहिए'', यूरोप में तो कहा जाता है कि पति को अपनी पत्नी को छड़ी से जो की अंगूठ के बराबर मोटी हो से पीटने का अधिकार है। इतना ही नहीं मनु ने कहा हैं कि महिलाओं को स्वतंत्र नहीं छोड़ना चाहिये उसे बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति एवं वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। यह धारणा महिलाओं को कमजोर एवं पुरूषों पर निर्भरता की भावना को बढ़ाता है जिसके कारण पुरूष महिलाओं पर अपनी शक्ति का प्रदर्शनकरता रहता है।

व्यक्तिगत एवं मोवैज्ञानिक कारण

पारिवारिक हिंसा के घटित होने में व्यक्तिगत एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसके अन्तर्गत समाजीकरण, पुरूष में महिलाओं के प्रति विद्वेष एवं हीनता की भावना का उदय, गरीबी एवं बेरोजगारी, मद्यपान इत्यादि प्रमुख है।

समाजीकरणः - व्यक्ति के समाजीकरण में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जो एक व्यक्ति को समाज में रहने के योग्य बनाता है, जो व्यक्ति को उसकी पहचान दिलाता है, उसे समाज की मान्यताओं, रीतिरिवाजों, परम्पराओं इत्यादि से परिचित कराता है इस कारण समाज में परिवार की अपनी महत्ता है। अतः किसी के प्रति उत्तेजक व्यवहार परिवार की उपलब्धियों को कम करता हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया में माता एवं परिवार की मुख्य भूमिका होता है अतः एक बच्चा जैसे देखता है औीर उसे जो सिखाया जाता है वह वही सीखता है। लड़कियों एवं लड़को के समाजीकरण में भेदभाव, स्तियीं की गिरती स्थिति पारिवारिक हिंसा के घटित होने के बढ़ावा देने का मुख्य कारण है।

महिलाओं के प्रति द्वेष एवं पुरूष में हीनता की भावना का उदयः- जब पुरूष साथी शिक्षा, आय, पेशेवर प्रतिष्ठा, नौकरी इत्यादि स्तोंतों द्वारा अपनी श्रेष्ठता या प्रधानता को प्रमाणित नहीं कर पाता तब उसे अपनी प्रभुत्वशाली स्थिति को बनाये रखने हेतु ''अंतिम स्तोंत'' यानी शारीरिक बल को अपनाने लगता है। कार्लसन ने एक अवलोकन से अपने अध्ययन के नमूने को सम्बंधित करते हुए बताया कि वह महिलाएँ जो नौकरी करने की इच्छुक होती है, मुख्य रूप से वे जो कि शिक्षित है, वो भी प्रताड़ित होती है।[3] ऐसा माना जाता हैं कि कार्योजित महिलायें घरेलू हिंसा की शिकार नहीं होती परन्तु वास्तविकता तो यह हैं कि प्रायः पारिवारिक सदस्य या पति उनके पुरूष मित्र को लेकर शक करते रहते हैं या फिर पत्नी से ऊँचे पद पर है तो पति में हीन भावना का विकास हो जाता है जिस कारण वह हिंसा द्वारा वह पत्नी पर अपना वर्चस्व दिखाने का प्रयास करता है। यदि पत्नी पति की तुलना में अधिक सुन्दर या कम उम्र की है तो स्थिति और गम्भीर हो जाती है ऐसी परिस्थिति में चाहे पत्नी गृहणी हो या कामकाजी वह हमेशा उसके पल-पल की खबर रखता है, पुरूष मितों एवं रिश्तेदारों से दूर रहने की हिदायत देता रहता है कभी-कभी तो पीछा भी करता है। वह हिंसा द्वारा उस पर नियंतर्ण बनाये रखने की कोशिश करता है। महिला की उच्च स्थिति एवं यदि कोई पुरूष बार-बार महिला द्वारा कष्ट का सामना करता है तो उनके मन में महिलाओं के प्रति द्वेष की भावना का आ जाना महिला के प्रति हिंसक होने की प्रेरित करती है।

गरीबी एवं बेरोजगारी: – गरीबी का महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का गहरा सम्बंध है। गरीबी का तात्पर्य अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं के समायोजन, इसी प्रकार अन्य व्यवस्थाओं को प्रभावित करना है क्योंकि इसके साथ नकारात्मक प्रभाव डालने वाले, सामान्यत: उत्पीड़न एवं तीव्रता की आड़ एवं कभी न खत्म होने वाली तंगहाली जुड़ी हैं जो दिन प्रतिदिन महिला को गरीबी का अनुभव कराती है। गरीबी ही दहेज, बालिका शिशु हत्या एवं भ्रूण हत्या का मुख्य कारण है। यहां तक गरीब मां-बाप के दहेज न जुटा पाने के कारण उनकी बेटी आत्महत्या कर लेती है। गरीब परिवारों में लड़कियों को ही शिक्षा, चिकित्सा एवं भोजन में समझौता करना पड़ता हैं। गरीब परिवारों में प्राय: पैसे को लेकर पति-पत्नी के मध्य झगड़े होते रहते है। जब पुरूष पैसे के अभाव में अपनी जिम्मेदारियों को भली भांति निभा नहीं पाता है तो वह पत्नी को मारता-पीटता है जिससे उसे मानसिक संतोष मिलता हैं। गोयल ने इस ओर संकेत करते हुय यह व्यक्त किया कि गरीबी महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का मुख्य कारण है।[4]

महिलागत कारण

प्राय: ऐसा कहा जाता है कि महिला ही महिला की दुश्मन होती है। एक प्रकार यह सत्य भी है क्योंकि महिलाएँ अपना स्वभाव-आत्म समर्पण एवं निर्भरता की भावना, अशिक्षा एवं उच्च शिक्षा के कारण भी घरेलू हिंसा की शिकार होती है। जिसका वर्णन निम्नलिखित है:-

महिलाओं में आत्म समर्पण एवं निर्भरता की भावना:- घरेलू स्तर पर महिलाओं को ही अधिकतर प्रताड़ित किया जाता है। उन्हें प्रताड़ित करने का मुख्य कारण पुरूषों पर उनकी निर्भरता हैं। यह निर्भरता केवल आर्थिक स्तर की होती है अपितु आश्रय, आत्म सुरक्षा, भोजन, वस्त्र स्वास्थ्य, सुरक्षा अन्य कार्यो इत्यादि हेतु महिलाएँ पुरूष पर निर्भर रहती है। 15 अगस्त 1988 को महिलाओं के पारिवारिक अत्याचार के विरूद्ध एक गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें मानवीय विकास व भारतीय सेवाओं की प्रतिष्ठित निर्देशिका श्रीमती प्रमिला कपूर, सुशीला रोहतांगी, मारग्रेट अल्वा, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश डी0एम0देसाई इत्यादि विभूतियों ने भाग लिया। इन सभी के अनुसार- ''महिला उत्पीड़न का एक प्रमुख कारण महिलाओं की पुरूषों पर आर्थिक निर्भरता है।''11 निर्भरता के साथ-साथ महिलाओं में आत्म समर्पण की भावना का विकास उनके शोषण का आधार बन जाता है। प्राय: महिलाएँ ऐसा सोचती है कि वह शारीरिक स्तर पर पुरूषों से दुर्बल है इस कारण अधिकतर महिलाएँ हिंसा का विरोध करने के स्थानपर पुरूषों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देती है।

अशिक्षा एवं उच्च शिक्षा:- शिक्षा महिलाओं के प्रति पारिवारिक हिंसा से सम्बंधित एक ऐसा पहलू है जो यदि महिला के लिये हिंसा का बचाव का साधन है तो वही कारण भी है। प्राय: अशिक्षा महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा का कारण बनता आया है। अशिक्षित महिलायें हिंसा का विरोध करने में असमर्थ इसलिये होती है क्योंकि वह पूर्ण रूप से अपने परिवार पर आश्रित होती हैं और दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह हैं कि स्वयं के साथ होने वाले अत्याचार को वह हिंसा के रूप में स्वीकार ही नहीं करती अपितु इसे अपना भाग्य समझती हैं और इन सबके लिए स्वयं को दोषी मानती है। हिंसा करना पति का अधिकार मानती है। परन्तु शिक्षित एवं कार्योजित महिलायें जब हिंसा को चुपचाप सहन करती है तो इसके पीछे कारण होता है- उनका आत्म सम्मान। प्राय: शिक्षित एवं कार्योजित महिलायें आत्म सम्मान को खोने के डर से हिंसा का विरोध नहीं करती, जो घरेलू हिंसा को बढ़ावा दे रहा है। कई अध्ययन यह दर्शाते हैं कि महिलाओं का अधिक या उच्च स्तर का शिक्षित होना भी घरेलू हिंसा का कारण बन गया है। ऐसे मामलों में जिसमें किसी स्त्री का उससे कम पढ़े लिखे पुरूष से हो जाता है तो पुरूष अपनी श्रेष्ठता को दर्शाने के लिए समय-समय पर किन्हीं कारणों को आधार बनाकर अकारण ही पत्नी पर हिंसा करता है ऐसी परिस्थिति में महिला की उच्च शिक्षा ही उसके प्रताड़ना का आधार बन जाता है।

वैधानिक कारण

महिलाओं को हिंसा से सुरक्षा प्रदान करने हेतु भारत सरकार द्वारा कई महिला हित सम्बंधी कानूनों का निर्माण किया गया है। महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने वाले कानूनों की कमी नहीं है। फिर भी वह हिंसा की शिकार हो रही है उन्हें कानूनों से भी राहत नहीं मिल पाया है क्योंकि वह पुरूष ही है जो कानून बनाते हैं और लागू करते हैं। जिनका झुकाव अक्सर पुरूषों के बचाव एवं रक्षा करने में होता है। प्राय: जब कानून बनते हैं तो उसमें दोषी के बचाव या दोष मुक्त होने के उपाय भी दिये होते हैं जिसका उपयोग आरोपी अपने रक्षा में करता हैं। समाज की शीर्ष शक्ति संरचना, कानूनी एवं प्रशासनिक पक्ष, कानूनों की कमी एवं त्रुटि,

कुशल संचालन व्यवस्था में कमी, पुलिस की असहयोगी एवं भद्र व्यवहार के साथ ही कष्टदायी कानूनी प्रक्रिया एवं न्याय मिलने में देर या न मिलने की सम्भावना के कारण महिलाएँ कानून का प्रयोग नहीं करना चाहती। प्रायः महिलाएँ विवाद को बीच में ही छोड़ देती है और पति के घर चली जाती है या समझौता कर लेती है जिससे अपराध को बढ़ावा मिल रहा है।

पारिवारिक हिंसा एक सामाजिक बुराई हैं जिसके दुष्परिणाम भयावह होते हैं। ये व्यक्तियों के स्वास्थ्य और खुशियों की सीमा में जाकर पूरे समाज के कल्याणकारी तत्वों को प्रभावित करते हैं। एक हिंसात्मक रिश्तें के बीच रहने से एक महिला के आत्म सम्मान और उसके अंदर के आत्म विश्वास की भावना खत्म हो जाती है और दुनिया में कुछ करने की योग्यता नष्ट हो जाती हैं।

संदर्भ

1 Kdchedkar; Shrin and Sabiha Al-Issa, "Violence against women :Women against violence," Pencraft International Publication Delhi, 1998

2 डॉ0 महाजन; धर्मवीर एवं डा0 कमलेश महाजन, ''भारतीय समाजः मुद्दे एवं समस्यायें'', विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ0 137

3 Carlson ; B.E., "Battered Women and their Assailants", Social work, Vol-22, 1977, pp. 455-60.

4 Goel; Aruna, "Violence and Protective Measures for women

5 Development and Empowerment" Deep and Deep Publication Pvt. Ltd. New Delhi, 2004.

हिंद महासागर में सोवियत उपस्थिति एवं गैर परम्परागत जोखिम

राकेश कुमार

शोधार्थी, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, पी0जी0 कॉलेज, गाजीपुर (उ0 प्र0)।

हिंद महासागर में सोवियत उपस्थिति का विश्लेषण दो प्रकरणों-पाश्चात्य दृष्टिकोण और सोवियत दृष्टिकोण-में किया जा सकता है। डोनाल्डसन के मतानुसार पाश्चात्य साहित्य इस विषय में संकल्पनाओं से भरपूर है जिसे उसने तीन प्रमुख उपागमों के रूप में करने का प्रयत्न किया है। परंपरागत निर्धारक प्रथम उपागम है जिसके अनुसार हिंद महासागर में सोवियत नौसैनिक उपस्थिति का कारण है सोवियत संघ द्वारा उष्ण-जल बंदरगाहों के लिए ऐतिहासिक खोज की लगन। एक अन्य संबंधित उपागम के अनुसार हिंद महासागर में सोवियत नौसैनिक उपस्थिति का कारण था ब्रिटेन द्वारा पूर्वी स्वेज से सैनिक हटाने के उपरान्त हुई रिक्तता को भरने की सोवियत संघ की उत्सुकता और इस क्षेत्र में घटनाक्रम को 'बंदूक की राजनयिकता' द्वारा प्रभावित करने की उत्कंठा।[1] इस प्ररकण के तीसरे उपागम के अनुसार हिंद महासागर क्षेत्र में सोवियत नौसैनिक उपस्थिति का कारण सोवियत-अमेरिकी प्रतिस्पर्धा-आक्रामक अथवा सुरक्षात्मक रूप में थीं ज्यूक्स के अनुसार हिंद महासागर में सोवियत रुख 'सुरक्षात्मक' था।[2] अमेरिकी पेंटागॉन के वक्तव्यों और विचारों में सोवियत संघ के आक्रामक रुख को दर्शाया गया।

डोनाल्डसन के अनुसार हिंद महासागर क्षेत्र, विशेषकर फारस की खाड़ी के तेल-स्रोतों के प्रकरण में सोवियत संघ की विस्तृत आर्थिक आवश्यकताओं और सामरिक उद्देश्यों के संबंधों में एक अन्य तर्क समुच्चय प्रस्तुत किया गया है। एक तर्क समुच्चय ने जापान सहित पश्चिमी देशों के लिए खाड़ी देशों से तेल की आपूर्ति को सोवियत संघ द्वारा रोकने अथवा बाधित करने की सैन्य क्षमताओं को प्राप्त करने का उद्देश्य कारण के रूप में बताया जबकि ने इस तर्क की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह लगाया। सोवियत संघ द्वारा फारस की खाड़ी की घेराबंदी करने की क्षमता पर शंका व्यक्त करते हुए जेम्स मैकॉलन ने मत प्रकट किया कि घेराबंदी अथवा प्रतिबंधन केवल पनडुब्बियें तथा गैर-सतह के जलयानों द्वारा ही संभव था तथा सोवियत संघ द्वारा हिंद महासागर में तैनात नौसेना में इनकी भरमार थी। बाद में मैकॉनल ने स्वीकार किया कि पश्चिमी देशों के साथ युद्ध की स्थिति में सोवियत संघ घेराबंदी अथवा प्रतिबंधन के लिए अपनी नौसेना का प्रयोग कर सकने की स्थिति में था।[3] संप्रत्ययों के एक अन्य समुच्चय ने सोवियत नौसेना द्वारा 'पताका प्रदर्शन' और सद्भावना यात्राओं, जो सोवियत नौसेना की सामरिक नीति का ही एक भाग थी, पर ध्यान केंद्रित किया। इन सभी एक कारक व्याख्याओं का संश्लेषण करते हुए डोनाल्डसन ने निष्कर्ष निकाला कि 1968 में हिंद महासागर में सोवियत नौसेना की तैनाती, आंतरिक अधिकारी-तंत्र कारकों और अमेरिकी पनडुब्बियों से संभावित खतरों के अंतर्द्वंद्व का परिमाण था। तदुपरांत सोवियत संघ ने हिंद महासागर में अपनी उपस्थिति को कायम रखना अपने वाणिज्यिक हितों की रक्षा, तटीय देशों में अपने राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाने तथा संकट की स्थिति में उन देशों की सुरक्षा के लिए उपयोगी समझा।[4]

वर्ष 1972 तक सोवियत संघ के लगभग सभी आधिकारिक लेखों में इस तथ्य से इनकार किया गया कि हिंद महासागर में कोई सोवियत अड्डा था। हिंद महासागर में सोवियत संघ की उपस्थिति की व्याख्या सोवियत संघ के पूर्वी तथा पश्चिमी भागों को जोड़ने तथा महत्वपूर्ण समुद्री मार्ग के रूप में की गई। सोवियत नौसैनिक पोतों द्वारा तटीय देशों की सद्भावना यात्राओं की व्याख्या भी सोवियत उपस्थिति के रूप में की गई।[5] 1972 के उत्तरोत्तर काल के सोवियत लेखों में हिंद महासागर में अमेरिकी नौसैनिक अड्डे के प्रसार और सामरिक परिनियोजन से सोवियत संघ की सुरक्षा को खतरे का उल्लेख था।

1976 से 1980 के दशक के अंत तक के कालांतर में सोवियत संघ में हिंद महासागर में अमेरिका द्वारा परिनियोजित परमाणु पनडुब्बियों से विशेष खतरों का जिक्र किया जाने लगा था। अलेक्सई सरगईविव ने अमेरिकी पनडुब्बियों द्वारा दागी जाने वाली परमाणु मिसाइलों का उल्लेख किया जो "सोवियत संघ के प्रमुख औद्योगिक केंद्रों'' तक मार कर सकती थी।[6] 1981 में लदोजिस्की ने लिखते हुए अमेरिकी विमानवाहक पोतों से उत्पन्न खतरों का उल्लेख किया: "सर्वप्रथम सोवियत संघ का हित इस बात में निहित है कि दक्षिण दिशा के सामरिक खतरे की संभावना को रोका जाए। यह सर्व विदित तथ्य है कि फारस की खाड़ी स्थित अमेरिकी विमानवाहक पोतों में काफी विमान हैं। जो लंबी दूरी तय करने के साथ ही साथ परमाणु शस्त्र भी जा ले सकते हैं।''[7] अमेरिका द्वारा पोलारिस पनडुब्बी परियोजना कार्यक्रम के प्रारम्भिक वर्षों में ही सोवियत सुमेद्यता बोध अधिक बढ़ गया था क्योंकि एक मतानुसार सोवियत पनडुब्बी-विरोधी युद्ध कौशल क्षमताएं (ए.एस.डब्ल्यू.) "परमाणु पनडुब्बी की क्रांतिकारी विशेषताओं का सामना करने में बिल्कुल असमर्थ थी।"

सेवियत क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति, अमेरिकी अड्डों तथा हिंद महासागर में अमेरिकी परमाणु पनडुब्बियों से संभावित खतरों की आशंका ने मिलकर पहले ही अपेक्षा सोवियत क्षेत्रों को अमेरिकी सामरिक पहुंच के काफी समीप ला दिया था। अमेरिका से उत्पन्न सामरिक खतरों के प्रत्यक्षण के प्रत्युत्तर में हिंद महासागर क्षेत्र में सोवियत रक्षा उद्देश्यों का वर्णन एक अमेरिकी रक्ष्ज्ञा अधिकारी ने अमेरिकी कांग्रेस को दिए गए ब्यान में इस प्रकार किया:

सैनिक दृष्टिकोण से रूस का दक्षिण भाग सामरिक व्यवस्थाओं की मारक दूरी के केंद्र में होने के कारण, जिन्हें हिंद महासागर क्षेत्र से प्रेषित किया जा सकता था, सोवियत संघ चिंतित है। वे हिंद महासागर क्षेत्र में प्रतिबंध लगाने के इच्छुक होंगे अमेरिका द्वारा नौसेना उपस्थिति और वृद्धिधात अधोसंरचना में वृद्धि पर रोक निस्संदेह सोवियत यह विश्वास करते हैं कि अमेरिका द्वारा नौसेना में बढ़ोतरी का उत्तर उन्हें अपनी नौसेना उपस्थिति में वृद्धि करके देना चाहिए।

वर्ष 1968 की वसंत ऋतु में हिंद महासागर में सोवियत युद्धपोत प्रथम बार दृष्टिगोचर हुए। सोवियत प्रशांत समुद्री बेड़े के कुछ एकक-स्वेर्दलोव श्रेणी का एक क्रूजर, दो गाइडिड-मिसाइलो से युक्त डिस्ट्रॉर्यज ने भारत के बंदरगाहों पर डेरा डाला तथा एक डेस्ट्रॉयर और एक क्रूजर सोमालिया, फारस की खाड़ी तथा पाकिस्तान होते हुए सोवियत अड्डे व्लादिवोस्तोक वापस लौटे।

आगामी दो वर्षों के भीतर सोवियत संघ ने नियमित रूप से हिंद महासागर में अपने नौसेना पोतों का परिनियोजन, औसतन तौर पर एक क्रूजर, दो डेस्ट्रॉजर्यन और कई आपूर्ति जलवाहनों के साथ क्रम जाी रखा। बांग्लादेश युद्ध के समय तथा 1972 के आरंभिक काल में सोवियत लड़ाकू युद्ध पोतों की संख्या 15 तक पहुंच गई थी। 1974 की बसंत ऋतु में सोवियत संघ के एक क्रूजर, तीन डेस्ट्रॉयर्स तथा दो माईनस्वीपर्स ने हिंद महासागर की यात्रा की। 1974 के मध्याह्न में ब्लैक सी अथवा काला सागर स्थित सोवियत हेलीकाप्टर वाहक लेनिनग्राद ने आशांतरीप के मार्ग से हिंद महासागर में प्रवेश किया।[8]

बिना किसी ठोस साक्ष्य के 1970 और 1980 के दशकों में हिंद महासागर में सोवियत संघ द्वारा स्थापित अड्डों के विषय मे कई बार प्रश्न उठाए गए। जिन पत्तनों पर सोवियत संघ के युद्धपोतों ने प्रवेश किया था उनमें सम्मिलित थे विशाखापत्तनम (भारत), होदेदा (उत्तर यमन), अदन (दक्षिण यमन), बरबेरा और मगादिशु (सोमालिया), उम्म कसर (इराक), तथा चटगांव (बांग्लादेश)। आम तौर पर इन पत्तनों को सोवियत संघ के अड्डों की सूची में रखा जाता था। सोवियत युद्धपोत सिंगापुर और मारिशस के पत्तनों पर मरम्मत अथवा लंगर डालने के उद्देश्य से आते थे। ऐसा समझा जाने लगा कि सोवियत संघ ने कुछ 'मित्र राष्ट्रों' ने बंदरगाहों की सुविधाएं उपयोग में लाने के लिए कुछ ठोस प्रबंध कर लिए थे। बरबेरा (सोमालिया) में सोवियत संघ ने कथित रूप से भंडारण, जहाजों की मरम्मत आदि की सुविधाएं जुटा रखी थीं।

सोवियत संघ कथित रूप से इराकी पत्तन उम्म कसर की विस्तृत सुविधाओं का भी उपयोग कर रहा था। इस पत्तन का विकास सोवियत सहायता से किया गया तथा इसे आंशिक रूप से वाणिज्यिक उद्देश्यों तथा आंशिक रूप से सोवियत नौसेना द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा था। वास्तव में इस पत्तन की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि वहां तक केवल खोर अब्दुला चौनल के संकीर्ण मार्ग द्वारा ही पहुंचा जा सकता था जो इराकी क्षेत्र और कुवैत के बुबयान तथा वरहा क्षेत्रों के मध्य स्थित है। विशाल सोवियत नौसैनिक जलपोतों द्वारा उद्भासित होने तथा सुभेद्यता के कारण इस पत्तन की नौसैनिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की संभावनाएं कम थीं।

गैर परम्परागत जोखिम

भारतीय हिन्द क्षेत्र में न जाने कितने नये तरह के एवं गैर परम्परागत जोखिम जैसे-सामुद्रिक आतंकवाद, वातावरण परिवर्तन, अवैध, बिना किसी अनुमति के अनियमित एवम् अनियंत्रित ढंग से मछलियों का शिकार, अवैध उत्प्रवासन एवम् हथियारों तथा

नशीली दवाओं की तस्करी जैसे अपराध सामने आते रहते है। ये खतरे हमारी सुरक्षा व्यवस्था पर सवालिया निशान लगाते है। कभी-कभी ये खतरे इतने जटिल होते हैं कि इन्हें अनदेखा करने पर भारी विपत्ति का भी सामना करना पड़ता है। इससे खासतौर पर हिन्द महासागर के इर्द-गिर्द द्वीपीय देशों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था खतरे में पड़ जाती है। इस तरह से वैश्विक अर्थव्यवस्था भी अवसाद का शिकार होने लगती है। हिन्द महासागर में संकटग्रस्त दो मुख्य क्षेत्र हैं- (1) एडेन की खाड़ी एवम् मलक्का के जलडमरूमध्य मलक्का के जलडमरूमध्य में सामुद्रिक अपराध भी कम हो चले हैं क्योंकि प्राय: संयुक्त रूप से गश्ती चल रही है और इस क्षेत्र में तत्संबंधित देशों की नौसेनाएं भी तैनात है। लेकिन एडेन की खाड़ी क्षेत्रों में जिस तरह से खतरें मौजूद है, वो भारत और अन्य देशों के लिए चिंता का विषय है। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि क्षेत्रीय सागर के जलराशि की सुरक्षा करना उस सागरीय तटों पर बसे देशों की जिम्मेदारी है। फिर भी सोमालिया में राजनीतिक अस्थिरता का दौर चल रहा था। इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्य दूसरे देशों की नौसेनाओं को अनुमति दी कि वो सोमालिया में जाकर चोरी, लूटपाट एवम् सामुद्रिक डकैती की रोकथाम एवम् निरीक्षण करें। वर्तमान में चीन, अमेरिका, जापान और भारत के नौसेना के जहाज इस क्षेत्र में नियंत्रण के लिए लगे हुए है। अक्टूबर, सन् 2008 से लगातार भारत का एक युद्धक जलपोत सोमालिया में संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्देशों के अनुपालन में लगी हुई है। सन् 2008 से सन् 2012 के दौरान विविध देशों के 1800 व्यापारिक जहाजों को भारत की नौसेना संरक्षण एवम् सुरक्षा देती आई है। (रक्षा मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2011-2012)। सामुद्रिक आतंकवाद भी एक नई चुनौती के रूप में उभर कर सामने आ रहा है।

विगत सन् 1988 के दौरान सशस्त्र भाड़े के सैनिकों ने मालदीव पर हमले किए जिसका बीच बचाव भारतीय नौसेना के द्वारा किया गया। श्रीलंका में भी लिट्टे नामक आतंकवादी संगठन सामुद्रिक संसाधनों का उपयोग करता आ रहा था ताकि घुसपैठ एवम् लूटपाट को अंजाम दिया जा सकें। सन् 2008 में पाकिस्तान मूल के आतंकवादियों ने अरब सागर से आकर ताज होटल, मुंबई में हमले करने शुरू किए। इसलिए यदि सुरक्षा के पर्याप्त इतंजामात नहीं किए गए, तो फिर हम भविष्य में आतंकी घटनाओं की पुनरावृत्ति होने से इंकार नहीं कर सकते है।

सामुद्रिक रणनीति खासतौर पर 'भारतीय हिंद क्षेत्र' में रणनीतिक एवम् आर्थिक हितों को हासिल करने में है। अभी हाल ही में भारत के रक्षा मंत्रालय के समेकित मुख्यालय के नौसेना विभाग के द्वारा 'इंडियन मेरीटाईम डॉक्ट्राइन-2009 और अद्यतनत:

सामुद्रिक रणनीतिक अभिलेख के रूप में'' इन्श्यूरिंग सिक्योर सीज-इंडियन मेरीटाईम सिक्यूरिटी स्ट्रैटजी'' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया गया जिसमें भारतीय नौसेना के द्वारा भारत के सामुद्रिक सुरक्षा की आवश्यकता पर नये सिरे से हिन्द महासागर के परिप्रेक्ष्य में मंथन प्रस्तुत किया गया है जो नई रक्षात्मक योग्यताएं विकसित करें और परस्पर द्विपक्षीय एवम् बहुपक्षीय संबंध को विकसित करें। इसके साथ ही साथ द्वीपीय देशों के साथ भी बहुपक्षीय सहयोग विकसित करें ताकि' भारतीय हिंद क्षेत्र' में शांति एवम् स्थिरता कयम हो।

संदर्भ

1. ए. जे. कोट्रेल तथा आर..एम, बैरेल, "सोवियत-यू.एस. नेवल कंपीटिशिन इन दी इंडियन ओशियन,'' आर्बिस, अंक 18, विन्टर 1975, पृ. 1109-1128.
2. ज्योफरे ज्यूकस, "दी इंडियन ओशियन इन सोवियत नेवल पालिसी,'' एडेल्फी पेपर्ज, अंक 87, (लंदन: आई.आई.एस.एस.; मई 1972).
3. जेम्स मैकॉनल के उद्धरण के लिए देखें बी. डिसम्यूकस तथा जेम्स मैकॉनल (सं.) सोवियत नेवल पालिसी (न्यूयार्क: 1979), पृ. 391.
4. डोनाल्डसन, क्रमांक, 94, पृ. 172.
5. निशा सहाय-अचुतन, "सोवियत प्रेजेन्स इन दी इंडियन ओशियन: सिग्नीफिकेन्स ऑफ दी साउथ एशियन लिटोरल स्टेट्स,'' जरनल आफ साउथ एशियन एंड मिडल ईस्टर्न स्टडीज खंड X, अंक 3, स्प्रिंग 1987, पृ. 7.
6. अलेक्सर्ड सरगईविव, "इंडियन ओशियन: टेंशन एरिया और जोन आफ पी,'' न्यू टाइम्स (मास्को), अंक 51, दिसंबर 1976, पृ. 23.
7. ए. लदोजिस्की, "दी यू.एस.एस.आर. एफर्टस टू टर्न इंडियन ओशियन इन टू ए जोन आफ पीस,'' इंटरनेशनल अफेयर्ज, (मास्को), अगस्त 198, पृ. 44.
8. आर. एम. पाओने, "दी बिग थ्री एंड दी इंडियन ओशियन,'' सी पावर, अगस्त 1975, पृ. 28.

वायुमंडल परिवर्तन के कारण और गतिविधिया

डॉ० सन्तोष कुमार गुप्ता

भूगोल विभाग

वायुमंडल परिवर्तन इस दुनियाँ में कई कारणों और गतिविधियों से समस्या का रूप धारण किए हुए है। जब वायुमंडल परिवर्तन होता है तो तापमान में नाटकीय तरीके से परिवर्तन होता है। जब तापमान में वृद्धि होती है, तो धरती पर अनेकों तरह के विविध परिवर्तन परिलक्षित होते है। उदाहरण स्वरूप- ये परिवर्तन बाढ़ के स्वरूप में दिखाई पड़ते हैं।[1] इसके अतिरिक्त सूखा, अतिवृष्टि एवम् यदा कदा अत्यंत गर्म हवाएं भी वायुमंडल परिवर्तन के परिणामों के रूप में प्रकट होती रहती है। सागरों और ग्लैशियर में भी कुछ परिवर्तन अनुभव किए गए हैं। सागरों के तरफ गर्मी महसूस की जा रही है। ग्लेशियर में गलन बढ़ती जा रही है। समुद्र स्तर के स्तर में भी बढ़ाव नजर आ रहा है। ये परिवर्तन भावी दशकों में भी संभावित हैं और इनसे हमारे समाज और पर्यावरण को चुनौतियाँ भी मिलने के आसार है। पिछले शताब्दी से ही ग्लोबल वार्मिंग का पूरी दुनियां पर असर पड़ा है। धरती के तापमान में असामान्य रूप से औसतन वृद्धि हुई है क्योंकि जीवाश्म से प्राप्त ईंधन का प्रयोग करते आ रहे है।[2] इन गैसों का वातावरण पर भी पड़ा है। ये गेस वाष्प, कार्बन डाई ऑक्साइड, डाई नाईट्रोजन ऑक्साईड और मीथेन के रूप में वायुमंडल पर प्रभाव डालती है। सूर्य की किरणों का 30 प्रतिशत हिस्सा पुनः बादलों और बर्फ के वजह से पुनः अंतरिक्ष पर प्रभाव डालता है। शेष 70 प्रतिशत सूर्य की किरणें धरती और सागरों और वायुमंडल के द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है।

न जाने कितने भौगोलिक घटनाओं और उपनिवेशवाद की वजह से आस्ट्रेलिया वायुमंडल परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए ऑस्ट्रेलिया एक सबसे बड़ा उदाहरण है क्योंकि ग्लोबल वार्मिंग और भौगोलिक असमानता की क्रूरता का यहाँ पर तनिक प्रभाव नहीं पड़ा है। सबसे गरीब देश ही हमारे इस गर्म दुनियां में सबसे ज्यादा झेल रहे है। ऑस्ट्रेलिया इस परिप्रेक्ष्य में सबसे ताजा उदाहरण है कि वो किस तरीके से तापमान परिवर्तन की समस्या से जूझ रहा है।[3] सारे धनी देश कमोबेश खतरे की गर्मी का अहसास कर रहे है। आस्ट्रेलिया इस मायने में एक अच्छा उदाहरण है कि दुनियाँ किस तरह से खतरे के प्रति आगाह होती है। आज आस्ट्रेलिया एक विस्तीर्ण समाज के रूप में जहाँ क्रूर और दुःसाध्य पर्यावरणीय भूमि है।

वायुमंडल परिवर्तन के मुद्दे-

इस पूरे वैश्विक समुदाय में वायुमंडल परिवर्तन सर्वाधिक गहराते हुए मुद्दों में से एक है। वायुमंडल के प्रति सबसे पहले 'वायुमंडल परिवर्तन पर अंर्तसरकारी पैनल के प्रथम मूल्यांकन रिपोर्ट (फर्स्ट एसेसमेंट रिपोर्ट ऑफ दी इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाईमेंट चेंज) (IPCC) ने पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित किया जिसमें कहा गया कि वायुमंडल में ग्रीन हाऊस गैसो की साद्रता लगातार बढ़ते जाने से धरती के वायुमंडल में लगातार गरमी बढ़ती जा रही है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि आई. पी. सी. (IPCC) के पाँचवें रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि वायुमंडल परिवर्तन के प्रभाव एक समान नहीं हो पायेंगे। इसके अतिरिक्त जो लोग उपेक्षित वंचित या संसाधन विहीन हैं, वे प्रायः विकासशील देशों में ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त वायुमंडल परिवर्तन के प्रभाव भी तरह की चिंताएँ पैदा करते है जिससे सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ पैदा होती है। वायुमंडल परिवर्तन के वजह से अच्छी खासी संख्या में प्रवासन की घटना बंगलादेश जैसे देशों में आसानी से देखी जा सकती है।

अभी तक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने वायुमंडल परिवर्तन के प्रति दुधारी प्रतिक्रिया व्यक्त की है- प्रवासन और अनुकूलन। प्रवासन से वायुमंडल में ग्रीन हाऊस के गैसों का सांद्रण यातीव्रता कम हो जाता है। जहाँ तक अनुकूलन का प्रश्न है, यह विविध समुदायों

को वायुमंडल परिवर्तन प्रति सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है। इसी संदर्भ में दीर्घकालीन विकास का लक्ष्य वायुमंडल क्रिया के प्रति ही केन्द्रित है। इसमें विशेष रूप से जोर दिया गया है कि प्रवासन को अपनाया जायँ।

विधिक दृष्टिकोण-

वैश्विक प्रत्युत्तर के रूप में सर्वनिष्ठ लेकिन विविध दायित्वों को शामिल किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के ढाँचे के अंतर्गत वायुमंडल परिवर्तन पर सन् 1992 के अनुच्छेद 3 (1) के अनुसार-

> *"विभिन्न दलों, समूहों या पार्टियों को वर्तमन एवं भावी पीढ़ी के लाभ के लिए वायुमंडल प्रणाली को सुरक्षित रखनी चहिए। इसके लिए समानता एवं सर्वनिष्ठ तथा विविध दायित्वों के आधार पर और क्रमागत क्षमता तथा योग्यता के आधार पर ही वायुमंडल व्यवस्था का अनुपालन करना चाहिए। इसी के अनुरूप विकसित देशों को भी वायुमंडल परिवर्तन की समस्या से निपटना चाहिए।''*

इस नयी व्यवस्था से दो तरह के परिणाम निकल कर सामने आए-पहला तो विकासशील देशों के लिए विविध एवं विभिन्न दायित्व सामने आए और दूसरा विकसित देशों से विकासशील देशों में धन का अंतरण। दोनों ही संतोषप्रद नहीं रहे। उदाहरण के लिए, सन् 1997 का क्योटो प्रोटोकाल विभिन्न दायित्वों से युक्त था जो विकसित एवं विकासशील देशों के लिए था। लेकिन इस प्रोटोकाल को गहरा धक्का लगा। अमेरिका ने इस पर अमल करने से इन्कार कर दिया जबकि इसने प्रपत्र पर हस्ताक्षर किए थे। जहाँ तक दूसरे देशों का सवाल है, 'गार्जियन' नामक समाचार पत्र ने इस तरह के अधिकतर देशों को 'असफल' करार दिया। (क्लार्क-2012) 'क्योटो प्रोटोकाल' की असफलता के पीछे मुख्य कारण यही है कि इसे केवल वैधानिक औजार के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि यह राजनीतिक एवम् आर्थिक कारणों से गहरे हद तक प्रभावित रहा। (देसाई, 1999)। राजमनि (2008) भी कई OECD देशों के व्यवहारों के गहरे आलोचक रहे।

जहाँ तक संसाधनों के अंतरण का प्रश्न है, इसके लिए 'ग्रीन क्लाईमेट फंड' को निर्मित किए जाने की आवश्यकता है। इसके अलावे अन्यान्य कोषयथा- ग्लोबल इंवायरोमेंटल फेसिलिटी (GEF), स्पेशल क्लाईमेट चेंज फंड, दी लिस्ट डेवलप्ड कंट्रीज फंड, और एडाप्टेशन फंड। बहरहाल, व्यवहारिक अनुभवों ने यह स्पष्ट कि विकसित देश इन निधियों के प्रति थोड़े भी जागरूक नहीं है। यही कारण है कि 'इंटरनेशनल पब्लिक क्लाईमेट फंड' सबसे बड़ी निधि होते हुए भी सार्थक भूमिका का निर्वहन नहीं कर पाती है। जहाँ तक 'क्लाईमेट फाईनेंस' (वातावरण-वित्त-पोषण का प्रश्न है, (कुमार 2015;BBC2017), आंकड़े प्रदर्शित करते है कि 'ग्रीन क्लाईमेंट फंड) ने तकरीबन 10 बिलियन की धनराशि प्राप्त करने का निवेदन किया लेकिन असलियत में। बिलियन से कम की धनराशि ही प्राप्त की है। (upton 2015)। भारत जैसे देशों ने क्लाईमेट फंड हासिल करने के लिए अपनाए जा रहे, तौर तरीकों पर गंभीर चिंता व्यक्त की है। (दी इकोनॉमिक टाईम्स, 2017)

राष्ट्र की तरफ से संकल्पित योगदान-

12 दिसंबर, सन् 2015 को 'पेरिस समझौता' स्वीकार किया गया। वायुमंडल परिवर्तन की समस्या को हल करेन की दिशा में इस तरह का प्रारूप वाकई में एक अनोखी घटना रही, जिसने इस दिशा में परिवर्तन का सूत्रपात किया। इसका तात्पर्य यह है कि हर एक देश को राष्ट्रीय रूप से योगदान करने के लिए तैयारी करनी होती है, संवाद कायम करने होते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हर देश अपने योगदान की एक सीमा निर्धारित करता है ताकि 'वायुमंडल परिवर्तन' की समस्या से निपटा जा सकें। इससे एक नये अध्याय का सूत्रपात होता है। जहाँ नये परिवेश में केवल विकसित देशों की यह जिम्मेदारी होती है कि वो ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को रोकें। लेकिन विकासशील देशों को इस जिम्मेदारी से पूरी तरह मुक्त रखा गया है। इस प्रकार विकसित और विकासशील देशों की भूमिका में फर्क है। हर एक देश को इसमें महती भूमिका का निर्वहन करना होगा।

मैड्रिड वायुमंडल परिवर्तन सम्मेलन क्यों?

संयुक्त राष्ट्र संघ में वायुमंडल परिवर्तन के लिए सम्मेलन सन् 2019 में आयोजित किए गए जिसे COP25 का नाम दिया गया। इस सम्मेलन का आयोजन मैड्रिड, स्पेन में 2 दिसंबर, सन् 2019 से 13 दिसंबर, सन् 2019 के मध्य किया गया था। इस कार्यक्रम

की अध्यक्षता चिली सरकार के द्वारा की गई। इससे विभिन्न दलों ने क्योटो प्रोटोकाल के अंतर्गत सहभागिता की थी और सारे कार्यक्रम पेरिस समझौते के आधार पर किए गए थे।[4]

मैड्रिड की अवस्थित-

मैड्रिड स्पेन का एक शहर है जो 40.42 .....और -3.70 की.....पर टिका हुआ है। इस शहर की ऊँचाई समुद्र तल से 665 मीटर है। इस शहर की जनसंख्या 3,255,944 है। यह शहर न्यू कैसेल के ऐतिहासिक प्रक्षेत्र में बसा हुआ है। न्यू कैसेल इबरेरियन पेनिनसुला के भौगोलिक केंद्र में स्थित है। मैड्रिड स्पेन के प्रशासनिक, वित्तीय और परिवहनीय केंद्र के रूप में जाना जाता है। सामान्य अर्थों में देखा जॉय तो यह एक आधुनिक शहर है जहाँ पर मुख्यता के साथ फैशन प्रसाधन की ढेर सारी दुकानें है।[5]

मैड्रिड सम्मेलन की असफलता-

मैड्रिड में वायुमंडल परिवर्तन के विषय पर आयोजित सम्मेलन पूरी तरह असफल हो गया। दो हफ्ते से लगातार चल रहे सम्मेलन में किसी प्रकार की सहमति नहीं बन पाई। वैश्विक स्तर पर कार्बन मार्केट के लिए पेरिस समझौते के तद्नुरूप किसी प्रकार की वैचारिक सहमति नहीं बन पाई।[6] 'एक बार फिर से देशों को मंच' पर लाने के लिए किसी भी तरह की प्रगति संभव नहीं हो पाई।[6] ये विचार यूरोपीय संसद के उच्च सदस्य बास इखाऊट ने व्यक्त किए। इन्होंने आगे कहा कि 'काफी सख्त नियमों की अत्यधिक आवश्यकता है और इसके पहले सारे पुराने और अविश्वसनीय Co2 साख को खत्म कर दिया गया है। लेकिन मैड्रिड में कुछ भी खास नहीं हुआ और सम्मेलन बिना किसी ठोस नतीजे के खत्म हो गया।'' एखाउट ने आगे आशा व्यक्त की कि 'यह पूरी तरह साफ है कि अगलले साल ग्लासगो में सिखर वार्ता होगी। इस शिखर वार्ता में राष्ट्रीय लक्ष्य को बढ़ाया जाएगा।'' उन्होंने यह भी कहा अगले साल के सितंबर महीने में यूरोपिय यूनियन और चीन के बीच वृहद्स्तर पर शिखर वार्ता होगी। ग्लांसगो शिखर वार्ता के तुरंत बाद इस संभावित शिखरवार्ता में समयबद्ध तरीके से नियमों पर आम सहमति कायम की जाएगी।''[7]

कठिनतम समस्याओं के समाधान के बगैर मैड्रिड में संयुक्त राष्ट्र संघ की वायुमंडल परिवर्तन के विषय पर संवाद समाप्त हो गए-

इस सम्मेलन के नतीजे से सभी को निराशा मिली। कार्बन उत्सर्जन के बारे में लिए गए फैसले के तामील में लेटलतीफी हुई। अमेरिका, रूस, भारत, चीन, ब्राजील और सऊदी अरब इसके सख्त खिलाफ रहे। दूसरी तरफ यूरोपियन संघ भी 'यूरोपियन ग्रीन न्यूडील (यूरोपीय हरित नये सौदे) के समझौते पर सहमति के नतीजे पर पहुंचा और आम राय व्यक्त की गई कि सन् 2050 तक कार्बन उत्सर्जन सिफर पर आ जायेंगे। इसके अतिरिक्त कई देशों में प्रतिबद्धता व्यक्त की कि अब किसी भी तरह के कार्बन उत्सर्जन नहीं किए जायेंगे। इसके बाद तकरीबन 1214 नायक भी सामने आये जिन्होंने इस लक्ष्य के लिए पुरजोर अपील की। इन नायको में कई शहर, व्यापारी और निवेशक शामिल थे।'' इस संबंधित में सारी सूचनाएं 'ग्लोबल क्लाइमेट एक्शन पोर्टल पर एकत्र है। अमेरिका ऐसा दूसरा देश है जहाँ सबसे ज्यादा ग्रीन हाऊस के गैसों का उत्सर्जन होता है। अनेक देशों ने इस बात पर गंभीर चिंता व्यक्त की और चेतावनी भी दिया। अमेरिका सरीखे विकसित देशों ने विकासशील देशों के लिए लचर वित्तपोषणीय व्यवस्था का प्रबंधन किया था। अफ्रीकन ग्रुप ऑफ नेगोशियेटर्स के चेयरमैन मोहम्मद नसीर ने कहा, ''यह वाकई कुछ देशों के लिए चिंताजनक है।[8]'

विकासशील देशों में वायुमंडल परिवर्तन में कमी लाने के लिए वित्तपोषण की व्यवस्था, प्रकृति को सुरक्षित एवं संरक्षित करने के लिए विपणन आधारित व्यवस्था का सृजन और समुद्र तल में वृद्धि के वजह से और असमान्य ताप वृद्धि की वजह से नाश की दशा में क्षतिपूर्ति आदि ऐसे उपाय है जिससे इन प्रकृतिगत असमानताओं को रोका जा सकता है। लेकिन अमेरिका, ब्राजील और आस्ट्रेलिया आदि देश इस प्राकृतिक नुकसान के लिए जिम्मेदार रहे।

संदर्भ

1 *London, Ernesto; Friedman, Lisa (2018-11-28).* "Brazil Backs Out of Hosting 2019 Climate Change Meeting". New York Times. Archived *from the original on 2019-08-15*. Retrieved 2019-08-16.

2 *London, Ernesto; Sengupta, Somini (2019-10-30).* "Chile, Rocked by Unrest, Withdraws From Hosting Climate and

Trade Summits". The New York Times. Archived *from the original on 2019-10-31*. Retrieved 2019-11-01.

3 *Sengupta, Somini (2019-10-31).* "Spain Agrees to Host Key Climate Talks After Chile Pulls Out". The New York Times. Archived *from the original on 2019-10-31*.

4 *Watts, Jonathan (2019-11-15).* "Activists hold climate conference deep in the Amazon rainforest". The Guardian. Retrieved 2019-11-18.

5 *Watts, Jonathan (2019-11-17).* "The Amazon: on the frontline of a global battle to tackle the climate crisis". The Guardian. Retrieved 2019-11-18.

6 *Brum, Eliane (2019-11-15).* "Amazônia Centro do Mundo". El País. Retrieved 2019-11-18.

7 "Teresa Ribera desvelaque IFEMA es el lugar elegido para la Cumbre del Clima". *cadenaser.com.* Cadena SER. *2019-11-01*.

8 "25ª Conferencia de lasPartes de la Convención Marco de Naciones Unidas sobre el CambioClimático (COP25)". Ministeriopara la TransiciónEcológica.

भारत एवं जापान का पारस्परिक संबंध

डॉ० रामकृष्ण सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय पी0जी0 कॉलेज, डोभी, जौनपुर (उ0 प्र0)

सुशील कुमार रावत

शोधार्थी, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय पी0जी0 कॉलेज, डोभी, जौनपुर (उ0 प्र0)

भारत और जापान के बीच राजनयिक संबंध 1952 में जापान कीशांति संधि पर हस्ताक्षर करने के साथ शुरू हुआ। भारत अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के साथ-साथ क्षेत्रीय राजनीति की मुख्यधारा में जापान के प्रवेश को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था और यह 1951 में भारत के पहले एशियाई खेलों में जापान को आमंत्रित करके किया गया था और 1955 में बांडुंग में अफ्रीका-एशियाई सम्मेलन में भाग लेने के लिए जापान को प्रोत्साहित करके इसको जारी रखा गया था। भारत विनाश के बाद उसकी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए जापान में लौह अयस्क जैसे महत्वपूर्ण खनिजों की आपूर्ति करके भी बहुत मददगार बना था। इसके बाद प्रधान मंत्री नोबूक किशी और प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के बीच सफल यात्राओं के बाद यह और मजबूत हुआ था। 1986 तक, भारत सबसे बड़ा सहायता दाता के रूप में उभरा और भारत भी येन ऋण सहायता का पहला प्राप्तकर्ता था।[1]

भारत जापान संबंधों की उत्पत्ति-

भारत-जापान संबंधों की उत्पत्ति काफी पहले से आधुनिक राष्ट्र राज्यों के रूप में उनके उभरने की भविष्यवाणी करती है। कुछ ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि 6वीं शताब्दी में कि मेई (वर्ष 539-571) के शासनकाल से ही इस संबंध की शुरुआत हो गई थी। इसके प्रारंभिक चरण में, भारत-जापान संबंध बौद्ध धर्म के साझा आध्यात्मिक और सांस्कृतिक बंधन द्वारा प्रेरित हुआ था। लेकिन जब प्रिंस उमायदो (593-622 ईस्वी) के शासनकाल में बौद्धधर्म को जापान का राज्यधर्म के रूप में अपना लिया गया तो यह संबंध और मजबूत हो गया। इसने जापानियों को अपनी आध्यात्मिक इच्छाओं को आगे बढ़ाने के लिए भारत यात्रा करने का मार्ग प्रशस्त किया, और भारत में बौद्ध प्रचारकों को अपने धर्म के प्रचार के लिए जापान यात्रा पर जाने के लिए उत्प्रेरक के रूप में भी कार्य किया। यह आध्यात्मिक बंधन धीरे धीरे आगे बढ़ा और दोनों देशों के बीच मजबूत आर्थिक संबंध बने। वास्तव में, जापान में तेजी से बढ़ते कताई उद्योग के कारण, भारत कच्चे कपास के आयात का मुख्य स्रोत बन गया। इसके अलावा, भारत जापानी सामानों के लिए एक लाभदायक बाजार भी बन गया।

सदियों पुराने रेशम मार्ग के माध्यम से भारत से जापान तक बौद्ध धर्म के प्रसार की उल्लेखनीय घटना के बावजूद, 19वीं शताब्दी के अंत तक भारत के साथ जापान के संबंध असमान रहे हैं। ये तभी ठीक हुये थे जब 1858 में अंतर्राष्ट्रीय दबाव के तहत जापान जब आत्म आरोपित पृथक्करण नीति से उभरा था और बाद में 1895 और 1905 में क्रमशः चीन और रूस पर अपनी शानदार जीत के माध्यम से दुनिया की राजनीति के पांच बड़ो के साथ समानता हासिल की थी। क्रांतिकारियों ने भारत में अंग्रेजों के खिलाफ संतुलन बल के रूप में दुनिया की राजनीति में जापानियों को गंभीरता से संज्ञान में लिया और शरण और समर्थन दोनों की तलाश शुरू कर दी। लेकिन 1902 के ऐतिहासिक एंग्लो-जापानी गठबंधन के माध्यम से अंग्रेजों के प्रति जापान की प्रतिबद्धताओं के कारण, जिसे 1905 में नवीनीकृत किया गया, जापानी जनता तथा मीडिया में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ भारत के प्रति

सहानुभूति और समर्थन के बावजूद जापानी सरकार गैर-प्रतिबद्ध रही जबतक कि जापान की अपनी समझ इस मामले में विकसित नहीं हो गयी कि, सिंगापुर में स्थित भारतीय राष्ट्रीय सेना को समर्थन को इकट्ठा करने के लिए की सहयोग की जरूरत है, जिसका नेतृत्व पहले मोहन सिंह द्वारा, फिर रास बिहारी बोस और अंत में सुभाष चंद्र बोस द्वारा किया गया। ग्रेटर ईस्ट एशिया सह- समृद्धि क्षेत्र के अपने घोषित आदर्श को प्राप्त करने के लिए दक्षिण पूर्व एशिया में अंग्रेजों के खिलाफ इसके अभियान ने 1942 से ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भारतीय क्रांतिकारियों के साथ सहयोग के लिए गठबंधन किया।[2]

गैर-राजनीतिक मोर्चे पर, 19वीं शताब्दी के अंत तक, अपने सामंती अतीत से जापान की उभरती हुई शक्ति ने, औद्योगिक ताकत और सैन्य क्षमताा दोनों के संदर्भ में, पश्चिमी देशों के साथ समानता प्राप्त करने के लिए ध्यान आकर्षित किया भारत ने न केवल व्यापारिक समुदाय, बल्कि छात्रों, बुद्धिजीवियों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं का, जो जापान में एक भारतीय समुदाय के उभरने के लिए अग्रणी हैं।

1936 में, उन्होंने भारतीयों और जापानियों के बीच दोस्ती को बढ़ावा देने के लिए एक भारतीय मित्रता संघ का आयोजन किया, और जिसमें प्रसिद्ध साहित्यिक व्यक्तित्व नोगुची योनजेरो समेत कई प्रसिद्ध साहित्यिक व्यक्तियों ने भी भाग लिया। अक्टूबर में, भारत स्वतंत्रता आंदोलन की जापान शाखा को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और जापानी सरकार के साथ घनिष्ठ सहयोग के बारे में प्रचार के उद्देश्य से रास बिहारी बोस को राष्ट्रपति के रूप में आयोजित किया गया था। जापानी सैन्य सहायता के महत्व को समझते हुए, बोस ने जापान की सैन्य सहायता की बारीकी से मांग की और 1942 में संगठन के प्रमुख के रूप में बोस के साथ भारत स्वतंत्रता लीग को जापान द्वारा मान्यता के रूप में इसे प्राप्त भी किया और बाद में भारतीय राष्ट्रीय सेना के प्रमुख के रूप में मान्यता प्राप्त की। जब जापानियों ने सिंगापुर में इसका उद्घाटन करने में मदद की।

देवनाथ दास, जो 1932 में एक राजनीतिक निर्वासन के रूप में जापान गए थे, और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जापान शाखा के सचिव और जापान की भारतीय राष्ट्रीय समिति के सचिव बने, रास बिहारी बोस और एएम सहाय के साथ करीब से काम किया। तथ्य यह है कि 1942 तक, जापानी सैन्य अधिकारी आईएनए को सैन्य, नौसेना और वायु सहयोग प्रदान करने पर सहमत हुए, जो अकेले ही भारत में अंग्रेजों के खिलाफ सैन्य अभियान चलाएगा, जो कि निर्वासन में क्रांतिकारियों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

भारतीय स्वतंत्रता में जापान की भूमिका

1912 में दिल्ली में लॉर्ड हार्डिंग पर बम हमले में अंग्रेजों द्वारा आरोग लगाए जाने के बाद, जापान में ब्रिट्रिश दूतावास के अनुरोध के बावजूद जापानी सरकार द्वारा गिरफ्तारी और प्रत्यर्पण से बचने में सफल होने के बाद, रास बिहारी बोस जापान से, एक चरमपंथी राष्ट्रवादी संगठन, ब्लैक ड्रैगन सोसाइटी के नेता टोयामा मिसूरु और क्रांतिकारियों के मित्र के साथ-साथ ओकावा शुमेई के नेता, जो एक अतिसंवेदनशील और भारतीय दर्शन के छात्र थे की मदद से बच निकले। जबकि जापानी सरकार के शीर्ष हलकों में टोयमा के कनेक्शन और प्रभाव नै जापानी पुलिस से बोस को बचाया, 1919 में एक जापानी लड़की के साथ उनकी शादी ने 1923 तक जापानी नागरिक के रूप में अपनी प्राकृतिकता के कारण जापान में अपना सुरक्षित स्थायी प्रवास सुनिश्चित किए। ओकावा शुमेई जैसे दोस्तों की मदद से, उन्होंने 1926 में नागासाकी में अखिल एशिया की बैठक के साथ एशियाई, विशेष रूप से भारतीय, क्रांतिकारियों का आयोजन किया, जहां उन्होंने पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ एशियाई परंपराओं के साथ-साथ एशियाई लोगों के शोषण के बारे में बात की।

उन्होंने ब्लैक ड्रैगन सोसायटी द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के लिए अपने लेखन से ही केवल योगदान नहीं दिया, बल्कि एक पत्रिका जिसे उन्होंने स्वयं शुरू किया, वॉयस ऑफ एशियां, जो अंग्रेजी और जापानी, दोनों के प्रकाशित हुआ, से भी सहयोग किया।

1920 के दशक तक, लगभग 350 भारतीय, मुख्य रूप से व्यापारी और छात्र जापान में रहते थे, जिन्होंने कोबे शहर में इंडिया क्लब, इंडियन सोशल एसोसिएशन, भारत मादर, आर योकोहामा शहर में इंडिया क्लब जैसे कई भारतीय संगठनों की भी स्थापना की थी, तथा भारतीय चौंबर ऑफ कॉमर्स भी जिक्र के योग्य है। इन भारतीयों में से कई ब्रिटिश विरोधी क्रांतिकारी भी थे जो ब्रिटिश भारत में व्यक्तिगत रूप से अवान्छित थे और इसलिए जापान में शरण मिली थी। उनमें एएम सहाय, राजा महेंद्र प्रताप, रास बिहारी बोस, देवनाथ दास और एएम नायर शामिल थे।

ए.एम. सहाय, हालांकि दवा के क्षेत्र में उच्च अध्ययन के लिए अमेरिका जाने का इरादा रखते थे, पासपोर्ट कठिनाइयों के कारण जापान में फंसे हुए थे और जापान में रहने का फैसला किया और जापानी प्रेस में भारत पर लेख लिखकर क्रांतिकारी गतिविधियों में खुद को शामिल किया। उन्होंने 1929 में कोबे शहर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जापानी शाखा की स्थापना (1931 में भारतीय राष्ट्रीय कमेटी के रूप में नामित) की, तथा 1930 से एक पत्रिका वॉयस ऑफ इंडिया का प्रकाशन, मुख्य अंग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जापान शाखा के रुप में शुरु किया। उन्होंने एक इंडिया लॉज भी आयोजित किया, जो भारतीय छात्रों के लिए घर से दूर घर बन गया। एएम सहाय, जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ नियमित संपर्क में थे और अक्सर भारत की स्वतंत्रता संग्राम के कारणों को बढ़ावा देने वाले पर्चे जारी करते थे, ईमानदारी से भारत की आजादी के अपने लक्ष्य की प्राप्ति में जापानी सरकार की सहायता, विशेष रूप से सैन्य सहायता की उम्मीद करते थे, लेकिन वह निराशा थे और 1941 तक भ्रमित होकर, वह जापानी सैन्य प्राधिकरण के खिलाफ हो गये और उनसे सहयोग करने से इंकार कर दिया।

भारतीय छात्रों ने 19वां शताब्दी के अंत में महान अकाल के दौरान टोक्यो इंपीरियल विश्वविद्यालय द्वारा भेजे गए राहत निधि द्वारा प्रमाणित, अपने स्पष्ट विचारों को व्यक्त करके ब्रिटिशों के खिलाफ भारत के संघर्ष के मुद्दे पर जापानी को सफलतापूर्वक संगठित किया। हालांकि, इसने ब्रिटिश सरकार की नाराजगी अर्जित की, जिसने भारतीयों द्वारा जापान की यात्रा को नियंत्रित करने के लिए सख्त दिशानिर्देश जारी किए, जैसे कि भारतीय सरकार द्वारा ब्रिटिश सरकार में एक जिम्मेदार अधिकारी द्वारा पहचान प्रमाण पत्र तैयार करने की अनिवार्य आवश्यकता। भारत के गवर्नर जनरल, लॉर्ड कर्जन ने भारत में जापानी कंसुल से मिलने से इनकार करने की सीमा तक जाकर नापसंदगी व्यक्त की, जिन्होंने विशेष रूप से भारत में भूकंप में पीड़ाओं पर सहानुभूति व्यक्त करने के लिए उनसे मुलाकात की थी। दूसरी तरफ, गैर राजनीतिक मोर्चे पर, वस्त्रों के क्षेत्र में जापान की औद्योगिक और वाणिज्यिक आवश्यकताओं ने इसे भारतीय कपास के करीब लाया, और व्यापार और तकनीकी विनिमय कार्यक्रमों की एक श्रृंखला के बाद, भारत-जापान व्यापार पर हस्ताक्षर करने का नेतृत्व किया 1894 में सम्मेलन, जापान में कपास के निर्यात के रास्ते खोलने और जापान से भारत तक तैयार कपास उत्पादों के आयात को खोलने, जिसने अपनी ट्रेन में, दोनों देशों के बीच नियमित समुद्री परिवहन को बढ़ावा दिया।[8]

भारत-जापानी बातचीत की जांच करने के ब्रिटिश प्रयासों के बावजूद, न केवल 1903 में दोनों देशों के बीच दोस्ती को बढ़ावा देने के लिए एक भारतीय-जापानी संघ का गठन किया गया था, बल्कि उस अवसर पर, पूर्व प्रधान मंत्री, ओकुमा शिगेनोबू ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि 'तीन यूरोपियन लोगों द्वारा उत्पीड़ित किए गए सौ मिलियन भारतीय, जापान की सुरक्षा की तलाश में थे और जापान को भारतीयों और भारतीयों को सामाजिक सुधारों को गंभीरता से आगे बढ़ाने, हिंसा को छोड़ने और आजादी के योग्य बनने के लिए इस अवसर का उपयोग करना चाहिए। इस तरह के एक इशारे ने ब्रिटिश सरकार के विरोध को आमंत्रित किया और जापानी विदेश मंत्रालय से स्पष्टीकरण मांगा गया, लेकिन नए एंग्लो-जापानी गठबंधन को देखते हुए, ये मामला गौड़ हो गया, क्योंकि ब्रिटेन के प्रति जापानी निष्ठा अब निश्चित मानी जा सकती थी। 1922 में एंग्लो-जापानी गठबंधन को समाप्त करने तक, तथ्य यह है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा जापान पर भारी दबाव डाला गया ताकि उन्हें भारतीय राष्ट्रवादियों के साथ एकजुटता दिखाने से रोका जा सके जो कि दिल्ली, लंदन और टोक्यो के बीच किए गए विशाल पत्राचार से साबित हुआ है।

संक्षेप में, दक्षिण पूर्व एशिया में औपनिवेशिक शक्तियों के खिलाफ अपने तीव्र युद्ध संचालन के 1941-45 के दौरान भारत में जापान की रूचि को समुद्री संचार लाइनों की रक्षा और संरक्षण के लिए एक सरल चिंता से शासित किया गया था ताकि टिन, रबर और तेल, महत्वपूर्ण संसाधनों तक पहुंच बनी रह सके। जो कि इंडीज में ब्रिटिश-डच-अमेरिकी समझौतों द्वारा बनायी गयी नाकाबंदी के कारण, इस क्षेत्र में ब्रिटिश सर्वोच्चता से बदतर हो गयी थी, और गंभीर खतरे में थी। और यह एकमात्र उद्देश्य था जिसने जापान को दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र में भारतीय क्रांतिकारियों के साथ सहयोग करने के लिए प्रेरित किया। आर्थिक रूप से और सैन्य रूप से, भारत में एक जापानी शासन, इस क्षेत्र के आकार और जटिलता के साथ-साथ 1940 के दशक में जापानी संसाधनों और मानव शक्ति में कमी के मद्देनजर मांचुरिया की तरह आईएनए नेताओं के कठपुतली शासन के तहत, न तो व्यवहार्य और न ही व्यावहारिक था।

जापान द्वारा भारतीय क्रांतिकारियों की इस स्वीकार्य स्वीकृति ने 20 वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में जापान में भारत-जापानी संघों के गठन की शुरुआत की, लेकिन 1922 में एंग्लो-जापानी गठबंधन को समाप्त करने के बाद ही हुआ था और विशेष रूप से 1936 में जापान और जर्मनी के बीच कोमिन्टन-विरोधी-सम्मेलन समझौते, में हस्ताक्षर करने के बाद ही हुआ था, जो कि जाहिरा

तौर पर एशिया में ब्रिटिश और अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ने के लिए किया गया था, जापान ने केवल दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र पर कब्जा करने और प्रभुत्व रखने के अपने सीमित उद्देश्यों के बावजूद ब्रिटिशों के खिलाफ उनके संघर्ष में दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीयों से मित्रता करने के लिए पहल की।

संदर्भ

1. Asima Sahu. The Trajectories of India-Japan Relations: A Growing convergence of Interests. The paper was presented at ISA Asia-Pacific Conference, Hong Kong. SuC14: Regionalism in the Asia-Pacific: Stretegic Revalry of Multilateral Co-opereation? Sunday, 26th June, 2:00pm-345pm. P4704, City University of Hong Kong. URL://web.isanet.org/Web/Conferences/AP%20Kong%202016/Archive/c23e7d86-1829-4ef0-b242-c0a8cef6169.pdf (Accessed on 9th August, 2017)
2. Joyce Chapman Lebra, The Indian National Army and Japan, Institute of South East Studies, Singapore, 1971, p. 46
3. Rohan Mukherjee and Anthony Yazaki. (2016). Japan-India Security Cooperation: In Pursuit of a Sound and Pragmatic Partnership in the book Poised for Partnership: Deepening India-Japan Relations in the Asian Century, Published by Oxford University Press, pp-156.

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं हिन्दी साहित्य जगत

डॉ० शालिनी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय निनौआ, फर्रुखाबाद

सार

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हिंदी साहित्य में छायावाद आंदोलन के एक प्रसिद्ध कवि, निबंधकार और अग्रणी थे। कलम के नाम की तरह उन्होंने "निराला" (अद्वितीय) अपनाया था, इसने उनके काम को भी परिभाषित किया जो "अद्वितीय" और उनके समय के लिए अनुकरणीय था। सामान्य उपन्यास निरुपमा से लेकर उनके हृदयविदारक उपन्यास कुल्ली भट तक, उन्होंने विभिन्न शैलियों और विषयों के साथ प्रयोग किया। उनके द्वारा चुनी गई काव्यात्मक भाषा को कभी परिभाषित नहीं किया जा सकता था। यह निराला के लिए है कि जब हम छायावाद आंदोलन की बात करते हैं, तो हिंदी साहित्य ऋणी है, जो 1918 से 1938 तक चला। शाब्दिक रूप से "छायावाद" के रूप में अनुवादित, इस साहित्यिक आंदोलन की तुलना यूरोपीय साहित्य में स्वच्छंदतावाद से की जा सकती है, जिसका उदाहरण विलियम वड्र्सवर्थ के रूप में लेखकों द्वारा दिया गया था। छायावाद लेखन की विशेषता स्वयं की एक जांच थी और प्रेम और प्रकृति के विषयों के साथ स्तरित थी, इसी तरह स्वच्छंदतावाद के साथ इसमें रहस्यवाद का एक अतिरिक्त स्पर्श था। बेशक निराला इस साहित्यिक प्रयास में अकेले नहीं थे। छायावाद आंदोलन में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे प्रमुख हिंदी लेखक भी प्रमुख व्यक्ति थे। इस पत्र के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की छवि को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः साहित्यिक कैरियर; साहित्य प्रेम; छायावाद।

परिचय

निर्मला का जन्म 21 फरवरी, 1896 को बंगाल के मिदनापुर जिले में सूरज कुमार तिवारी के रूप में हुआ था। उनकी प्राथमिक शिक्षा बांग्ला में हुई। निराला ने अपने पूरे जीवन में कई त्रासदियों, तबाही और व्यक्तिगत नुकसान का सामना किया और यह सब तब शुरू हुआ जब एक बच्चे के रूप में उनकी मेट्रिक परीक्षा में असफल होने के कारण उन्हें उनके पिता द्वारा घर से निकाल दिया गया था। तीन साल के भीतर, उन्होंने इन्फ्लूएंजा महामारी में अपने पिता, पत्नी, भाई और भाभी को खो दिया। उन्होंने खुद को पूरी तरह से नुकसान में पाया और इसलिए उन्होंने जीवन यापन करने के लिए कई तरह के छोटे-मोटे काम करने का फैसला किया। उन्होंने कुछ पैसे कमाने के लिए प्रूफ रीडिंग और कॉपी एडिटिंग का काम शुरू किया लेकिन जीवन की इन कठिनाइयों ने उन्हें लेखन के प्रति अपने प्यार को जारी रखने से नहीं रोका। उनका पहला कविता संग्रह, अनामिका, 1923 में प्रकाशित हुआ था।

निराला ने अपने प्रारम्भिक दिनों में लिखा था कि मनुष्यों की तरह स्वतंत्रता के लिए लालायित कविता भी मुक्त होना चाहती है। मनुष्य जिस प्रकार कर्म के बंधन से मुक्त होना चाहता है, कविता छंद के शासन से अलग होना चाहती है। उनकी रचनाओं और जीवन के प्रति कट्टरपंथी दृष्टिकोण ने उन्हें हिंदी कविता की एक ऐसी शख्सियत के रूप में जाना, जिन्होंने शैली को मुक्त किया और हिंदी में "मुक्त-छंद" का युग स्थापित किया।

निराला के करुणामय और संवेदनशील हृदय को तोड़ने वाली कई घटनाओं में से एक उनकी किशोरी बेटी की मृत्यु थी। उनकी मृत्यु के बाद, जिसने उन्हें पूरी तरह से तोड़ दिया, उन्होंने सरोज स्मृति लिखी, जो कई साहित्यिक विद्वानों के अनुसार एक कवि के रूप में उनकी परिपक्वता को चिह्नित करती है। निर्मला को जितना उनकी संवेदनशीलता और काव्य प्रतिभा के लिए जाना जाता था, उतना ही उन्हें एक भयानक अहंकार के लिए भी जाना जाता था और उन्हें अक्सर असभ्य नहीं माना जाता था। 1936 की एक दिलचस्प घटना में, महात्मा गांधी ने निराला से पूछताछ की और पूछा "हिंदी साहित्य का टैगोर कहाँ है?"

निराला ने गांधी के शब्दों पर अपराध किया और सभा को उस स्थान तक पहुँचाने के लिए धक्का दिया जहाँ महात्मा गांधी खड़े थे। फिर उन्होंने गांधी से पूछा कि क्या उन्होंने पर्याप्त हिंदी साहित्य पढ़ा है, जिसका गांधी ने नकारात्मक उत्तर दिया। तब निराला ने गांधी से कहा, कि वह अपनी और टैगोर की दोनों रचनाओं को उनके पास भेजेंगे, ताकि वे दोनों के बीच अंतर देख सकें।

उनके अहंकार ने उन्हें जीवन में काफी कठिनाई और दर्द भी दिया और जीवन भर वे एक उच्च आर्थिक संकट से भी जूझते रहे। अंत में, जब सरकार ने उन्हें सबसे महान कवियों में से एक के रूप में मान्यता दी और उन्हें खुद को बनाए रखने के लिए धन की पेशकश की, तो उन्होंने इनकार कर दिया। इसलिए, पैसे की पेशकश उनकी दोस्त और महान कवयित्री महादेवी वर्मा को की गई थी जिन्होंने उनकी देखभाल की जिम्मेदारी संभाली थी।

1961 में घोर आर्थिक तंगी के बीच निराला का निधन हो गया, वे अकेले और व्यथित थे। अपने आखिरी दिनों में वे सिजोफ्रेनिया से भी पीड़ित थे। निराला को हिंदी साहित्य के सबसे प्रतिष्ठित कवियों में से एक के रूप में याद किया जाएगा और उनकी रचनाएँ पाठकों और साहित्य के प्रति उत्साही लोगों की पीढ़ियों को प्रेरित करती रहेंगी। उन्हें सामाजिक ताने-बाने में निहित पाखंड और करुणा को उजागर करके समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों को आवाज देने के लिए जाना जाता है। उनकी सबसे प्रतिष्ठित कविताओं में से एक का शीर्षक है, "वाह तोड़ती पत्थर"। यह कविता एक मजदूर वर्ग की महिला के जीवन यापन के लिए पत्थर तोड़ती हुई कठिनाई, दर्द और पीड़ा को दर्शाती है।

"सड़क के किनारे जो इलाहाबाद जाता है
सूरज के ऊपर चढ़ते ही मैंने उसे पत्थर तोड़ते देखा।

यह वह समय था जब गर्मी सभी को अंधा कर रही थी और गर्म हवाएं चल रही थीं, उनके रास्ते में आने वाली हर चीज को झुलसा रही थीं। पांवों के नीचे की धरती, जलती रूई की तरह, धूल और चिंगारी से भरी हवा। दोपहर हो चुकी थी और वह अभी भी पत्थर तोड़ रही थी।" निराला की काव्य कल्पना, वंचितों के दर्द के प्रति उनकी संवेदनशीलता और उनकी साहित्यिक कल्पना ने दुनिया भर के अनगिनत साहित्य प्रेमियों के मन में उनकी रचनाएँ उकेरीं। हम संजोते हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए ऐसा करना जारी रखेंगे।

हम सभी के लिए जो हिंदी हृदय क्षेत्र में पैदा हुए हैं, जो हिंदी साहित्य पढ़ते हुए बड़े हुए हैं, हिंदी साहित्य के लिए एक ठोस प्रेम और गर्व की भावना के साथ इसकी समृद्ध गाथा में डुबकी लगाते हुए, सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" का नाम ऊंचा है। वह अभी भी एक प्रसिद्ध हिंदी कवि, लेखक और निबंधकार बने हुए हैं, जिन्होंने अपनी अंतहीन रचनाओं से लाखों लोगों के दिलों को छू लिया। दिलचस्प बात यह है कि हिंदी साहित्य में उनकी सभी रचनाएँ आज तक उल्लेखनीय हैं। हालाँकि बांग्ला उनकी मातृभाषा थी, फिर भी उन्होंने हिंदी भाषा को अपने लेखन का माध्यम बनाया। सूर्यकांत तिरपाठी निराला ने न केवल हिंदी में महारत हासिल की, बल्कि हिंदी साहित्य के नव-रोमांटिक स्कूल के शीर्षक बन गए।

साहित्य के प्रति प्रेम स्वाभाविक रूप से उनके अंदर आ गया और उन्होंने बांग्ला में लिखना शुरू कर दिया। लेकिन मनोहरा देवी के साथ उनकी शादी ने उन्हें एक अलग मोड़ लेने के लिए प्रेरित किया। उस समय उन्हें नहीं पता था कि वे हिंदी साहित्य की दुनिया में अनंत काल के लिए एक किंवदंती बन जाएंगे। उन्होंने बहुत कम उम्र में मनोहरा देवी से शादी की। वह एक बहुत ही पवित्र महिला थीं, जो सनातनी जीवन पद्धति से गहराई से जुड़ी हुई थीं। निराला के लेखन पर उनका गहरा प्रभाव था। वास्तव में, यह कहना गलत नहीं होगा कि भगवान राम के प्रति उनकी प्रभु भक्ति ही थी जिसने उन्हें संस्कृत और हिंदी साहित्य के बारे में अधिक जानने के लिए प्रेरित किया। जाहिर है, अपनी पत्नी की भक्ति और सनातनी जीवन शैली से प्रभावित होकर, उन्होंने संस्कृत और हिंदी साहित्य में गहरी रुचि लेनी शुरू कर दी। दंपति को एक बेटी, सरोज का आशीर्वाद मिला था। लेकिन दुर्भाग्य से, उनकी पत्नी को उनके विवाहित जीवन में बहुत पहले ही एक दुखद मौत का सामना करना पड़ा। त्रासदी यहीं खत्म नहीं हुई और उन्हें

एक और बड़ा नुकसान उठाना पड़ा। उनकी बेटी का भी निधन हो गया। उनकी सबसे उल्लेखनीय कृति 'सरोज स्मृति' उनकी बेटी की यादों में लिखी गई थी जिसे वे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। सरोज स्मृति के एक-एक शब्द और एक-एक पंक्ति में अपनी पुत्री की असामयिक मृत्यु पर शोक की अभिव्यक्ति झलकती है।[2]

साहित्यिक कैरियर

धीरे-धीरे, हालांकि उन्होंने हिंदी, बंगाली और साथ ही संस्कृत में एक प्रभावशाली स्तर की दक्षता हासिल की, उन्होंने फैसला किया कि वह अपना जीवन गंभीर साहित्यिक खोज के लिए समर्पित करेंगे,। उन्होंने सामाजिक अन्याय और शोषण के खिलाफ प्रभावी ढंग से कलम चलाने के लिए प्रेरित महसूस किया। उन्होंने आलोचना के सामने भी झुकने से इनकार कर दिया। उनके प्रयासों के बिना अधिकांश हिंदी दर्शक रवींद्रनाथ टैगोर और स्वामी विवेकानंद के महान कार्यों से वंचित रह जाते। उन्होंने ही उनकी कई रचनाओं का हिंदी भाषा में अनुवाद किया।

उनकी कविताओं ने बेजुबानों को आवाज दी, पाठक के साथ गुंजायमान होते हुए समाज के पाखंड को उजागर किया। उनकी कविता 'वाह तोड़ती पत्थर' एक छोटी सी बच्ची की दिल दहला देने वाली तस्वीर बनाती है जिसे अपनी रोटी कमाने के लिए स्टोन क्रशर का काम करना पड़ता है। एक भिखारी का जीवन उसके लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है, लेकिन निराला अपनी संवेदनशीलता में इतने अनूठे थे कि उन्होंने एक भिखारी के जीवन में भी 'कवि रस' पाया। उनकी कविता भिक्षुक इस तथ्य की गवाही देती है।[3]

हालाँकि निराला का प्रत्येक कार्य अपने दम पर अकेला खड़ा हो सकता है और महानों में सबसे महान के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता है, लेकिन उनकी तीन रचनाएँ सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा और सरस्वती वंदना उनकी विरासत को एक अलग लीग में धकेलती हैं। यह ध्यान रखना उचित है कि भारत में सभी सांस्कृतिक कार्यक्रम 'सरस्वती वंदना' के साथ होते हैं, जो महाकवि निराला द्वारा लिखी गई एक उत्कृष्ट कृति है।

अनोखा निराला: एक ईमानदार चरित्र का व्यक्ति

1936 में इंदौर में आयोजित एक साहित्य समारोह में, महात्मा गांधी ने हिंदी लेखकों के प्रभाव और योगदान को कम करके पूरे समुदाय को खारिज कर दिया। उन्होंने पूछा, "हिंदी के टैगोर कहां हैं?

निराला ने अपराध किया और सभा में सभी को एक तरफ धकेल दिया। उन्होंने आगे बढ़कर गांधी को हिंदी लेखन समुदाय की इस तरह की एकमुश्त बदनामी के लिए सामना किया। इस कथन से बहुत आहत होकर निराला ने गांधी से पूछा कि क्या उन्होंने पर्याप्त हिंदी साहित्य पढ़ा है या नहीं? उन्होंने गांधी से पूछा कि क्या उन्होंने हरि शंकर प्रसाद या हिंदी साहित्य के किसी भी प्रमुख नाम के बारे में सुना है। जब गांधी ने स्वीकार किया कि उन्होंने हिंदी साहित्य का अधिक अध्ययन नहीं किया है, तो निराला ने कहा, "आपको मेरी मातृभाषा हिंदी के बारे में बात करने का अधिकार किसने दिया?" निराला ने आगे कहा, "मैं आपको अपनी और रवींद्रनाथ टैगोर की कुछ अनूदित रचनाएँ भेजूंगा ताकि आपको हिंदी साहित्य के बारे में बेहतर जानकारी मिल सके"।[4]

1930 के दशक में गांधीवाद अपने चरम पर था और उस समय गांधी से सवाल करना भगवान से सवाल करने जैसा था। लेकिन निराला को हिंदी विरासत पर परम गौरव था और वह इसके लिए भगवान को चुनौती देने के लिए तैयार थे, महात्मा गांधी तो दूर की बात है। इस घटना ने निराला के ईमानदार चरित्र को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया। यह बड़े पैमाने पर हिंदी के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और प्रेम के बारे में भी बताता है।

अपने पूरे जीवन में, उन्होंने कमाने के लिए संघर्ष किया, फिर भी वे अपने सिद्धांतों से समझौता करने या अपने लेखन को कमजोर करने के लिए तैयार नहीं थे। इस मामले में, जब उन्हें सबसे महान कवियों में से एक के रूप में पहचाना गया और सरकार ने उन्हें खुद को बनाए रखने के लिए धन की पेशकश की, तो उन्होंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वह कवि सम्मेलनों और साहित्य सभाओं से पैसे कमाते थे। लेकिन अपने परोपकार के कारण वह अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा जरूरतमंदों और गरीबों को दान कर देते थे। निराला के दयालु व्यवहार को जानकर, महाकवित्री महादेवी वर्मा उनके नियमित वित्त का ध्यान रखती थीं और उनका प्रबंधन करती थीं। संयोग से, निराला अपने आवश्यक वित्त के लिए इस धन को गरीब लोगों या जरूरतमंद लोगों को दान कर देते थे।

ए लाइफ मिस्पेंट

अपने महान समकालीनों की तरह, निराला एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे। उन्होंने प्रसिद्ध पत्रिकाओं और रामकृष्ण मिशन प्रकाशन समन्वय, और बाद में 1920 के दशक में शुरू की गई मतवाला जैसी पत्रिकाओं में एक संपादक के रूप में अपने कार्यकाल से छोटी रकम अर्जित की। कॉपी-एडिटिंग, प्रूफरीडिंग और प्रकाशन के लिए अपनी खुद की कविताओं और निबंधों को जमा करने से उन्होंने जो पैसा कमाया, वह जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त नहीं था। मान्यता उन्हें बाद में मिली, और जब यह हुई, तो सरकार उन्हें खुद को बनाए रखने के लिए पैसे देने को तैयार थी - लेकिन उन्होंने अपने अहंकार के कारण इसे अस्वीकार कर दिया। उनकी मित्र और प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा को तब उनकी देखभाल के लिए हर महीने एक निश्चित राशि दी जाती थी। उनकी परिस्थितियों और उनकी मां, पत्नी और बेटी के शुरुआती दुखद नुकसान के कारण मानसिक रूप से टूट गया - ऐसा माना जाता है कि वह स्किजोफ्रेनिक हो गए थे। अपनी 18 साल की बेटी सरोज के लिए निराला का सबसे बड़ा शोकगीत सरोज स्मृति दिल दहला देने वाला है।

हिंदी की उम्र आ रही है

जिस तरह ए लाइफ मिस्पेंट में निराला के आने की उम्र का पता चलता है, उसी तरह छायावाद आंदोलन को 'हिंदी' के आने वाले युग के रूप में देखा जा सकता है, जैसा कि हम आज जानते हैं। हिंदी को साहित्यिक भाषा बनाने के लिए छायावाद सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन है। दिल्ली और उत्तर भारत में आज जो हिंदी बोली जाती है, वह एक सदी से भी पुरानी है। उससे पहले, हिंदुस्तानी की दो साहित्यिक बोलियाँ ब्रजभाषा, सूरदास या अमीर खुसरो की भाषा और अवधी, तुलसीदास की रामचरितमानस की भाषा थीं। आधुनिक हिंदी 1900 के दशक की शुरुआत में दिल्ली-मेरठ में बोली जाने वाली खड़ी बोली बोली के सबसे करीब है - जिसे ब्रज या अवधी के रूप में परिष्कृत नहीं माना जाता है जब तक कि महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे लेखकों ने इसका प्रचार नहीं किया। निराला, द्विवेदी से बहुत प्रभावित थे, वे पहले लेखकों में से एक थे जिन्होंने इस आधुनिक हिंदी को अपने काव्य - कविता और मुक्त छंद - निबंधों और संस्मरणों में भाषा के प्रयोगात्मक और स्पष्ट उपयोग के माध्यम से अपना होने का दावा किया। इसलिए निराला जैसे लेखकों के लिए हम आधुनिक हिंदी के निर्माण के ऋणी हैं।[5]

यह विडंबना है कि निराला ने अपनी पत्नी मनोहरा देवी के आग्रह पर बाद की उम्र में ही हिंदी सीखी - सीखने की एक प्रक्रिया जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक में "ईश्वर को जानने के आनंद के समान" बताया। हिंदी कवि के रूप में उनका विकास उनके कार्यों के स्पेक्ट्रम के माध्यम से स्पष्ट है। उनकी यात्रा की तुलना येट्स के नाटकीय काव्य विकास से की गई है।

स्नेह-निर्झर बह गया है...
मैं अलक्षित हूं; यही कवि कह गया है।
प्रेम की धारा अविरल बह जाती है...
मैं विस्मृति हूँ; कवि ने घोषणा की।
- स्नेह-निर्झर बह गया है।

निष्कर्ष

कहा जाता है कि 'किंवदंतियां कभी नहीं मरती'। उन्होंने इस दुनिया पर एक अमिट छाप छोड़ी है और उन्हें हमेशा उनके प्रतिष्ठित कालातीत कार्यों के माध्यम से याद किया जाएगा। हिंदी साहित्य पर उनके प्रभाव को इस तथ्य से देखा जा सकता है कि एक बार अमेरिकी उपन्यासकार और अनुवादक डेविड रुबिन ने कहा था कि उनकी रचनाएँ 20वीं सदी के किसी भी अन्य हिंदी कवियों की तुलना में अधिक हैं। निराला केवल हिंदी दर्शकों के लिए शब्द नहीं लिख रहे थे, बल्कि उनका मतलब था, महसूस किया और अपने सिद्धांतों से जीते थे जो निराला की विरासत को जोड़ते थे।

संदर्भ

1. घोष, अविजीत (27 मार्च 2020), "कैसे साहित्य ने हमें महामारियों को समझने में मदद की है", द टाइम्स ऑफ इण्डिया..
2. चिश्ती, सीमा (12 अप्रैल 2020), "हिंदी साहित्य में मृत्यु और रोग के संदर्भ", द इंडियन एक्सप्रेस।
3. "निराला: आत्ममंता आस्था", राजकमल प्रकाशन. 14 जनवरी 2018 को पुन:प्राप्त।
4. "सूर्यकांत त्रिपाठी निराला: फिल्म डिवीजन", 12 जून 2021 को पुन:प्राप्त।
5. वनिना, यूजेनिया (14 सितंबर 2020) "काला चेहरा': भावनात्मक समुदाय और इतिहास की हिंदू राष्ट्रवादी व्याख्या"। भावनाएँ: इतिहास, संस्कृति, समाज, 4 (1): 66-90

विवेकानन्द, गाँधी एवं सुभाष का समाजवादी चिंतन

निखिल कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

भूमिका

भारत में समाजवादी चिंतन के विकास के क्रम में प्राचीन उक्ति को एक मिशाल के तौर पर माना जा सकता है कि 'प्रजा सुखे सुखं राज्ञ; प्रजानां च हिते रतम्'। अर्थात् समाजवाद का चिन्तन प्राचीन भारत के दार्शनिक एवं मनीषी के विचारों में व्याप्त है। आधुनिक समय में यह श्रेय कार्ल मार्क्स को जाता है। परन्तु विवेकानन्द, गाँधी एवं सुभाष मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद की जकड़ से मुक्त होकर भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप समाजवाद का चिन्तन कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। इन्हीं तीनों चिन्तकों अर्थात् विवेकानन्द, गाँधी एवं सुभाष के समाजवादी विचारों को प्रस्तुत आलेख में विश्लेषण करनें की कोशिश की गई है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति एवं प्रबल प्रज्ञा के बल पद भारतीय समाज की सूक्ष्मतम विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सामाजिक उत्थान एवं क्रांति का सूत्रपात किया। उन्होंने भारतीयों के हृदय में स्वतंत्रता का बीज प्रस्फुटित किया साथ ही सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने के लिये जनता को जाग्रत किया। विवेकानन्द के समाजवादी एवं राजनीतिक विचार उनके धार्मिक एवं सामाजिक विचारों के सहगामी हैं। वे राष्ट्रवाद के प्रतिपादक हैं एवं प्रत्येक भारतीयों के उत्थान हेतु चिंतन करते रहे हैं। विवेकानन्द आधुनिक सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन के ऐसे विचारक हैं जिन्होंने सक्रिय प्रतिरोध का मार्ग भारतीयों के लिए प्रशस्त किया। राजनीतिक दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द जहाँ एक ओर राष्ट्रीय उत्थान के लिए सम्यक उपदेश तथा उपायों का चिंतन कर रहे थे तो दूसरी ओर उनका ध्यान भारत की गुलामी तथा आर्थिक दुर्दशा को दूर करने पर भी केन्द्रित था। उनका विश्वास था कि आर्थिक समृद्धि से भारत स्वयं राजनीतिक स्वतंत्रता का उद्देश्य पूरा कर सकेगा। यही कारण था कि उन्होंने समाजवादी व्यवस्था का आधिपत्य दर्शाता है। समाजवादील देशों में सर्वहारावर्ग के उत्कर्ष को स्वामी विवेकानन्द ने समय से पूर्व इंगित कर दिया था। उनकी यह भविष्य-वाणी, ''शूद्रों का यह उत्थान पहले रूस और फिर चीन में होगा। उसके उपरान्त भारत में उत्कर्ष होगा और वह भावी विश्व के निर्माण में सशक्त भूमिका अदा करेगा'' सत्य हो रही है।

विवेकानन्द ने सामाजिक सुधार का भरपूर प्रयत्न किया था। वे वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत दलितों एवं हरिजनों पर होने वाले अत्याचार के प्रबल विरोधी रहे। उन्होंने दलितों को 'दरिद्रनारायण' के रूप में देखा और उनकी सेवा को प्रत्येक भारतीय का प्रथम कर्त्तव्य घोषित किया। उन्हीं के शब्दों में, 'मुझे इस बात की चिंता नहीं है कि वे हिन्दू हैं या मुसलमान अथवा ईसाई, किन्तु जिन्हें ईश्वर से प्रेम है उनकी सेवा के लिए मैं सदैव तत्पर रहूँगा। मेरे वत्स अग्नि में कूद जाओ। यदि तुम्हें विश्वास है तो तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा। हममें से प्रत्येक को दिन-रात भारत के उन करोड़ों दलितों के लिये प्रार्थना करनी चाहिए, जो दरिद्रता, पुरोहितों के जंजाल तथा अत्याचार में जकड़े हुए हैं- दिन-रात उनके लिये प्रार्थना करो। ..... मैं न तत्त्वशास्त्री हूँ, न दार्शनिक हूँ और मैं सन्त भी नहीं हूँ। मैं दरिद्र हूँ। मुझे दरिद्रों से प्रेम है। ..... भारत में कौन ऐसा है जिसके मन में उन बीस करोड़ स्त्री-पुरूषों के लिये सहानुभूति हो जो गहरी दरिद्रता और अज्ञान में डूबे हुए हैं? उपाय क्या है? उनके जीवन में प्रकाश कौन ला सकता है? इन्हीं लोगों

को अपना देवता समझो। मैं उसी को महात्मा कहता हूँ जिसका हृदय दरिद्रों के लिये द्रवित होता है। जब तक करोड़ों लोग भुखमरी और अज्ञान के शिकार हैं तब तब उस प्रत्येक व्यक्ति को विश्वासघाती समझता हूँ जो उनके धन से शिक्षा प्राप्त कर उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।

विवेकानन्द आधुनिक सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन के (स्वामी दयानन्द के पश्चात्) ऐसे विचारक हैं जिन्होंने सक्रिय प्रतिरोध का मार्ग भारतीयों के लिये प्रशस्त किया। स्वामी दयानन्द ने इस प्रतिरोध को जहाँ सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में अधिक प्रचारित किया वहाँ स्वामी विवेकानन्द ने यह चेतना राजनीतिक क्षेत्र में अधिक व्यापक बनाया। उनकी चेष्टा एवं विश्वास ने एक नवीन शक्ति तथा अभय का सन्देश संचारित किया। वे भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता के सन्देश-वाहक बने। उनके अभय के सन्देश से भारत के पददलित, सामाजिक दृष्टि से बहिष्कृत एवं पौरूषहीन जनता को जीवनदान मिला तथा आत्मचेतना प्राप्त हुई। इसी आत्मचेतना के परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी के पूर्वाध में भारत ने करवट बदली और विदेशी दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ठोस कदम उठाया। आत्मा के अमरत्व तथा मानव-गरिमा के महत्त्व को आधार मान कर विवेकानन्द ने बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने का आह्वान किया। गीता, वेदान्त तथा उपनिषदों के आधार पर उन्होंने अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि प्रत्येक भारतीय को समस्त प्रकार के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करने के प्रयास में जूट जाना चाहिए। उन्होंने आर्थिक एवं सामाजिक अन्यायों का सेवा एवं सामाजिक दायित्व की भावना से सामना करने का विचार प्रस्तुत किया। भारत की कोटि-कोटि जनता को सम्बोधित कर विवेकानन्द ने कहा- ''हे वीर! निर्भीक बनो, साहस धारण करो, इस बात पर गर्व करो कि तुम भारतीय हो और गर्व के साथ घोषणा करो, ''मैं भारतीय हूँ और प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है। तुम भी अपनी कमर में लंगोटी बांध कर गर्व के साथ उच्च स्वर में घोषणा करो कि भारतीय मेरा जीवन है, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारतीय समाज मेरा वाल्यकाल का पालन है, मेरे यौवन का आनन्द उद्यान है, पवित्र स्वर्ग और मेरी वृद्धावस्था की वाराणसी है। मेरे बन्धु बोलो भारत की भूमि मेरा परम स्वर्ग है, भारत का कल्याण मेरा कल्याण है।''

राजनीतिक दृष्टि से विवेकानन्द जहाँ एक ओर राष्ट्रीय उत्थान के लिये सम्यक् धर्म का उपदेश दे रहे थे तो दूसरी ओर उनका ध्यान भारत की आर्थिक दुर्दशा को दूर करने पर भी केन्द्रित था। उनका विश्वास था कि भारत की आर्थिक समृद्धि से भारत स्वयं राजनीतिक स्वतन्त्रता का उद्देश्य पूरा कर सकेगा। यही कारण था कि उन्होंने समाजवादी विचारधारा का अवलम्बन किया और कहा-

''मैं एक समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मैं इसे एक परिपूर्ण व्यवस्था मानता हूँ किन्तु इसलिए कि भूखे रहने से तो आधी रोटी ही अच्छी है। अन्य व्यवस्थाओं को परीक्षित किया गया, किन्तु वे अपर्याप्त पायी गयीं। अब इसका परीक्षण किया जाय यदि और किसी प्रयोजन के लिए नही तो केवल इसकी नवीनता के लिए ही सही''।

विवेकानन्द की भाँति गाँधी ने समाजवाद की सुन्दर व्याख्या की है। उनके अनुसार समाजवाद विलक्षण शब्द है। समाजवाद में समाज के सभी सदस्य समान हैं- न कोई नीचा न कोई ऊँचा। व्यक्ति के शरीर में सिर इसलिए ऊँचा नहीं है कि वह शरीर के ऊपर है; न पैर के तलबे इस कारण नीचे हैं कि वे जमीन को छूते हैं। जैसे शरीर अंग समान हैं वैसे ही समाज के सदस्य भी। यही समाजवाद है। उसमें राजा तथा रंक, अमीर तथा गरीब, मालिक तथा शुद्ध मनवाले समाजवादी ही भारत तथा विश्व में समाजवादी समाज की स्थापना कर सकेंगे। इस प्रकार, गाँधी को अनूठे समाजवादी के रूप में जाना जाता है। उन्होंने औद्योगिकवाद का विरोध किया। वे आधुनिक अथवा पाश्चात्य सभ्यता के भी विरोधी थे। उन्हें शारीरिक श्रम के प्राचीन एवं सरल तरीके प्रिये थे। जीवन की सादगी, आवश्यकताओं को सीमित करने का विचार तथा स्वेच्छिक त्याग की भावना पर उन्हें जबर्दस्त विश्वास था। गांधीजी ने अपरिग्रह का जीवन-पर्यन्त पालन किया और अत्यन्त सादगीपूर्ण जीवन जीय। वे वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार करते हैं किन्तु जाति-व्यवस्था के वे कट्टर विरोधी थे। ये भी उनकी स्वदेशी विचारधारा के अंग हैं। गाँधीजी ने देश तथा ग्रामों को स्वावलम्बी बनाने पर विशेष जोर दिया है। उनके अनुसार हमें देश में निर्मित वस्तुओं का उपयोग करता है और विदेशी का बहिष्कार। खादी को वे स्वदेशी का पर्यायवाची इस कारण मानते हैं कि स्वदेश में हस्तनिर्मित वस्त्र उद्योग का, जिसका अंग्रेजों ने भारत आगमन के साथ समूल नाश कर हमारी आर्थिक स्थिति को पंगु बना दिया, पुनरूद्धार भारत के लिए दासता से मुक्ति का प्रतीक बन गया है। गाँधी ने कहा कि मैं तो एक ऐसे भारत के निर्माण के लिये कार्यरत रहूँगा, जिसके निर्माण में उनकी प्रभावशाली आवाज है- एक ऐसा भारत जिसमें जनता का कोई उच्च वर्ग और कोई नीच वर्ग नहीं होगा, ऐसा भारत जिसमें सब जातियाँ पारस्परिक एकता और

सद्भावना के स्नेह-सूत्र में बंधी हुई मिलजुलकर रहेंगी। ऐसे सुन्दर भारत में अस्पृश्यता, मद्यपान और नशीली वस्तुओं के सेवन के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। महिलाओं को भी वही अधिकार प्राप्त होंगे, जो पुरूषों को। मेरे सपनों के भारत का यही रूप है।''

गाँधी भारतीय समाज में व्याप्त असमानता को जड़-मूल से विनष्ट करना चाहते थे। समानता के आदर्श की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने व्यक्त किया है कि वर्ग-भेद किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये। अमीर तथा गरीब की खाई इतनी बढ़ी हुई कि सारा दृश्य हृदय-विदारक लगता है। निर्धन ग्रामीण को दुतरफा शोषण के शिकार हैं। एक ओर विदेशी सरकार तो दूसरी ओर शहर के निवासी दोनों ही उसका शोषण करते हैं। वे अन्न उपजाते हैं, फिर उनके बच्चों को दूध पीने को नहीं मिलता हैं यह शर्मनाक बात हैं प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित आहार मिलना चाहिये, साफ सुथरा मकान चाहिये, बच्चों की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये। यही आर्थिक समानता का चित्र है। गाँधीजी आवश्यक वस्तुओं के अलावा उत्पादन को प्रतिबंधित नहीं करना चाहते किन्तु इतना अवश्य चाहते हैं कि अन्य सभी उत्पादन निर्धन व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के पश्चात् किया जाय।

गाँधी जी की दृष्टि में साम्यवादियों का वर्गविहीन समाज का आदर्श अनुकरणीय है, किन्तु हिंसा द्वारा इसे प्राप्त करने का उद्देश्य त्रुटिपूर्ण हैं हमस ब समान उत्पन्न हुए हैं। फिर भी हमने सदियों से ईश्वर की इच्छा का विरोध किया है। असमानता का विचार पाप है किन्तु मनुष्य के हृदय से पाप को संगीन की नोक से नहीं निकाला जा सकता है। मानव-हृदय उस साधन को स्वीकार नहीं करता। गाँधीजी ने समाज-सुधार के क्षेत्र में जो कार्य किया है, वह राष्ट्र के जीवन के पुनर्निर्माण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। उनका समस्त रचनात्मक कार्यक्रम एक प्रकार से समाज-सुधार कार्यों पर केन्द्रित रहा है। स्त्रियों के स्तर को गरिमापूर्ण बनाने के लिए गाँधीजी ने रचनात्मक सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। उन्होंने स्त्रियों को पुरूषों के समान स्तर पर रखते हुये उन्हें सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक क्षेत्र में देश-सेवा के लिए आगे बढ़ने को आमंत्रित किया। गाँधीजी की यह मान्यता थी कि जिस प्रकार से वैदिक समय में स्त्रियों को प्रत्येक कार्य में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे उसी प्रकार आज भी उनके अधिकार मिलने चाहिए। उन्होंने मनुस्मृति के इस नियम को हि स्त्रियों को पुरूषों के अधीन मानकर सीमित स्वतंत्रता दी जाय, मान्य नहीं ठहराया। उनके अनुसार भारत के प्राचीन साहित्य में स्त्रियों के लिए जिन सम्मसनीय शबदों- अर्द्धांगिनी, सहधर्मिणी आदि- का प्रयोग मिलता है, वह इस बात का सूचक है कि मनु के नियमों के विरीत भारत में स्त्रियों को सम्मानप्रद स्थान प्राप्त था किन्तु बाद में स्त्रियों को पुरूषों से हेय समझाा जाने लगा और उन्हें सभी प्रकार की सुविधाओं तथा अधिकारों से वंचित कर दिया गया। गाँधीजी ने स्त्रियों को पुन: उनकी प्राचीन सम्मानीय स्थिति दिलाने का भरसक प्रयास किया और अपने आन्दोलनों के माध्यम से इस सम्बन्ध में जनमत जागृत किया। गाँधीजी विधवा-विवाह का समर्थन किया- विशेषकर बाल विधवाओं के लिए। वे कहा करते थे कि हम गोरक्षा की बात करते हैं और इसके लिए धर्म की दुहाई देते हैं किन्तु बाल-विधवा के रूप में साक्षात् मानवीय गौ को रिस्कृत करने से नहीं सकुचाते।

गाँधी के समाजवाद की एक विशेषता यह भी है कि वे स्त्रियों को पुरूषों के समान मानते थे। गाँधीजी ने स्त्रियों के साथ किये गये घृणित भेदभाव को बहुत बड़ी बुराई माना। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में जिस नई शिक्षा पद्धति का प्रचार किया, वह अपने आप में अत्यन्त वैज्ञानिक प्रयोग था। उनकी शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी 'सीखो कमाओ' के आधार पर शिक्षा प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार गाँधीजी के समस्त विचार चाहे वे रानीतिक हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो, शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक हो, एक-दूसरे से पूर्णतया गुंथे हुये हैं। गाँधी की दृष्टि में इन सभी कार्यक्रमों में महिलाएँ पुरूषों की सहगामिनी हैं।

विवेकानन्द एवं गाँधी की भांति सुभाष समाजवाद के प्रबल समर्थक हैं और इसके माध्यम से भारतीयों के मध्य असमानताओं का परित्राण चाहते हैं। विवेकानन्द से वे बहुत प्रभावित थे साथ हीं गाँधी के लिये भी उनके मन में सम्मान की भावना थी। सुभाष का यह मानना था कि भारत को दूसरे राष्ट्रों के अनुभवों से भी शिक्षा ग्रहण कर उसे अपनी आवश्यकताओं और अपनी परिस्थितियों के अनुसार कार्यपद्धति विकसित करनी होगी। सुभाष को यह उम्मीद थी कि समाजवाद के उस प्रकार को जो भारत विकसित करेगा एवं इसमें जो कुछ नवीन एवं मौलिक होगा जो न सिर्फ भारत हेतु अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिये लाभदायक होगा। सुभाष ने भारत की आर्थिक समस्याओं का हल करने के लिए योजना-बद्ध विकास और उद्योगीकरण पर जोर दिया था। सुभाष का उद्यौगीकरण के साथ-साथ कृषि समस्याओं के निवारण की तरफ भी उनका ध्यान था। सुभाष चाहते थे कि कृषि में उन्नति के लिये विज्ञान

का सहयोग लिया जाए और इसके लिये उन्होंने कई देशों में जाकर वहां की कृषि पद्धति का अवलोकन किया और वे इन देशों की कुछ बातें अपने देश में लागू करना चाहते थे। सुभाष जमीन्दारी प्रथा का अंत करना चाहते थे।

सुभाष के समाजवादी चिंतन का एक पहलू था देश का उद्योगीकरण। उनके विचार से उद्योगीकरण का यह अर्थ नहीं है कि हम अपने कुटीर उद्योगों से विमुख हो जाएँ। इसका अर्थ केवल यह है कि हमको यह निर्णय करना होगा कि कौन से उद्योग कुटीर आधार पर विकसित किए जाने चाहिए और कौन से बड़े पैमाने पर। भारत की तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था और सीमित साधनों को ध्यान में रखते हुए सुभाष बड़े उद्योगों के साथ-साथ कुटीर उद्योगों के विकास पर भी भरसक जोर देना चाहते थे।

समाजवाद के संदर्भ में गाँधी की भाँति सुभाष का यह भाव प्रशंसनीय है कि जब समाज में स्त्रियाँ पुरूषों के साथ कंधे-से-कंधे मिलाकर लक्ष्य की पूर्ति के लिए कृत्तसंकल्पित होंगे तभी लोग भी उन्नति करेंगे और राष्ट्र की भी उन्नति होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि सुभाष स्त्रियों की समानता में विश्वास रखते हैं। इसका एक उदाहरण यह है कि सुभाष आजाद हिन्द फौज में स्त्रियों की पलटन तैयार की थी। सुभाष मानते थे कि जब तक भारतीय नारियाँ नहीं जागेंगी भारत नहीं जाग सकता।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत में समाजवादी चिन्तन के विकास में विवेकानन्द, गाँधी एवं सुभाष चन्द्र बोस का अविस्मरणीय योगदान हैं यह कहना समीचीन है कि इन तीन चिन्तकों ने अपने समाजवादी विचारों के माध्यम से मानवता की सेवा में अनवरत तल्लीन रहे। इन तीनों का लक्ष्य भारत की आजादी के साथ-साथ कमजोरों को सभी दृष्टिकोण से उन्नयण कर समानता के स्तर पर लाना था। अतः कहा जा सकता है कि इन तीनों विचारकों के लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में भले ही भिन्नता हो परन्तु वे समाजवाद के प्रबल पक्षधर कहे जा सकते हैं।

संदर्भ सूची:

1. भूपेन्द्रनाथ दत्त, विवेकानन्दः पेट्रियल-प्रोफेट, पृ0 365
2. दी लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृ0 690
3. दी लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खण्ड 2, पृ0 796
4. वही, पृ0 306
5. दी मेसेज ऑफ विवकान्नद, (अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, 1996), पृ0 13-14
6. दी मेसेज ऑफ विवकान्नद, (अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, 1996), पृ0 13-14
7. रोनेल्ड डंकन, सेलेक्टेड राटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी, पृ0 28
8. पट्टाभी सीतारमैया, गाँधी और गाँधीवाद, पृ0 113
9. हरिजन, 12-4-19942
10. 19 फरवरी, 1938 को कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते समय सुभाष बोस ने समाजवाद तथा योजनाबद्ध आार्थिक विकास के संबंध में अपने विचार प्रकट किए थे। उन्होंने कहा था- "I have no doubt in my mind that our chief national problems relating to the eradication of poverty, illiteracy and disease and to scientific production and distribution can be effectively tackled only along socialistic lines. The very first thing which our future national government will have to do, would be to set up a commission for drawing up a comprehensive plan of reconstruction. Subhash Chandra Bose, Quoted by Verinder Grover(Ed.), Subhash Chandra Bose, p. 287.
11. विश्वप्रकाश गुप्ता तथा मोहिनी गुप्त, महात्मा गांधी- व्यक्ति और विचार, दिल्ली, 1996, पृ0 170-171

मानव जीवन और योग

डॉ० हरेंद्रसिंह पी सोलंकी

एन.एस.पटेल. आर्ट्स ऑटोनोमस कालेज आनंद, जिल्ला आनंद राज्य गुजरात (भारत)

मानव जीवन बड़ा मूल्यवान होता है। इसे समझना और सहेजकर रखना हमारा परम कर्तव्य है। शास्त्र कहते हैंद्य जब अनेक जन्मोके पुण्य उदय होते है तब कही जाकर मनुष्य योनि प्राप्त होती हैद्य यह जीवन दुर्लभ है। ईश्वर ने हमें अन्य सभी जीवों से श्रेष्ठ बनाया है। बुद्धि और विवेक दिया है। इसका हमें सदुपयोग करते हुए मानव जीवन के मूल्यों की रक्षा करनी चाहिए। "नैतिकता, प्रेम, सद्भावना, सहिष्णुता, त्याग और परोपकार तथा सेवा भाव आदि मनुष्य के आभूषण हैं। इन्हें कोई चुरा न ले इसका सदैव ध्यान रखना हमारा परम कर्तव्य है।"[१] सांसारिक वस्तुओं की रक्षा तो हम बड़े यत्ध्न से करते हैं, पर क्या हम अपने नैतिक, सामाजिक और धार्मिक मूल्यों की रक्षा भी उतने ही यत्ध्न से करते हैं? सोचना होगा। आज के समय में और जीवनशेली में मनुष्य का जीवन अशांत, तनावपूर्ण है, शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो सुखद और आनंद का अनुभव करता हो। इसका एक ही कारण है कि हम भौतिकता में इतना जकड़ गए हैं कि कुछ अच्छा सोचने का मौका ही नहीं मिलता। आज नहीं कल कर लेंगे, यह सोच अच्छी नहीं है। कल किसने देखा है? समय तीव्रता से बीत रहा है, हम एकएक दिन जीवन का खो रहे है. "वास्तविक सुख आध्यात्मिकता में है न की भौतिकता में. सद्कर्मो को करते हुए ईश्वर के विषय में मनन, चिंतन और उनका भजन करना ही आध्यात्मिकता है।"[२] आध्यात्मिक व्यक्ति कभी कुमार्ग पर नहीं चल सकता। उसके जीवन में कभी अशांति नहीं होगी। हमें अपने सत्कर्मो के द्वारा जीवन मूल्यों की रक्षा करनी चाहिए। मानव जीवन पाकर अगर हम इसे ठीक से नहीं जी सके तो सारा जीवन व्यर्थ गया, ऐसा समझना चाहिए। यह प्रकृति का नियम है कि जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है। जिस दिन संसार छूट जाएगा, लोग हमें भूल जाएंगे। तो हमें कुछ ऐसा कार्य करना चाहिए की मृत्यु के बाद लोग यद् करे सत्कर्म करने वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद भी जीवित रहता है।

ऐसा माना जाता है कि, योग का जन्म प्राचीन भारत में हुआ था। उस वक्त हिमालय के एक झील पर आदियोगी ने अपने योग विज्ञान को सात ऋषियों को दिया था। इन ऋषियों ने ही योग विज्ञान को विश्व के विभिन्न भागो में फैलाया है। इसके अलावा सरस्वती और सिंधु सभ्यता के प्राचीन अवशेषो में भी योग की मौजूदगी का प्रमाण है। इन सभ्यताओ के अध्ययन करने से पता चला कि, वहा एक गुरु के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन के तहत लोगो को योग का अभ्यास दिया जाता था। इसी तरह योग का जन्म हुआ था।उसके बाद महर्षि पतंजलि ने योग का आत्मसात किया और इसके सभी पहलुओं को एक निश्चित रूप में शामिल किया, जिसे आज हम योग सूत्र कहते है। इसी समय दुनिया के ज्यादातर लोगो तक योग का ज्ञान पहुंचा था। इसलिए महर्षि पतंजलि को आधुनिक योग का पिता कहा जाता है।

कुछ सालो पहले सिर्फ आयुर्वेदिक रूप से ही योग को महत्त्व दिया जाता था। लेकिन वर्तमान में वैज्ञानिक रूप से भी योग को महत्त्व दिया जाता है। आज तो डाक्टर भी अपने मरीजो को योग करने के लिए प्रोत्साहित करते है। क्योकि इससे हमारे शरीर की रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है और शरीर रोगमुक्त बनता है। इसलिए योग को मनुष्य का शारारिक और मानसिक उपचार कहा जाता है। अगर हम नियमित रूप से योग का अभ्यास करे तो जीवन में नकारात्मक विचारों से छुटकारा पा सकते है। इसके अलावा योग करने से मनुष्य की रीढ़ की हड्डी में लचीलापन आता है, जिससे हमारी शारीरिक स्थिति हमेशा स्वस्थ रहती है। योग हमारे अंदर ध्यान और एकाग्रता को बढाता है। योग मनुष्य के शरीर को अनुशासन में लाकर तनाव और चिंता को दूर करने में मदद करता है।

योग क्या है योग का अर्थ योग का महत्व क्या है एवं मानव जीवन में योग की उपयोगिता क्या है यह जानने से पूर्व यह जानना अत्यंत जरूरी है कि आखिर योग क्या है? और योग का इतिहास क्या है? जैसे कि अन्य ग्रंथों एवं अन्य योगियों ने योग की अन्य परिभाषा दी है, जैसे कि आत्मा का परमात्मा से मिलन, चित्त की वृत्तियों का निरोध आदि। आत्मा का परमात्मा से मिलन एवं चित्त वृत्तियों का निरोध क्या यह सब इसी विधा द्वारा संभव है? यदि इस दिशा में खोज की जाए तो हमारे सामने यह तथ्य प्रगट होता है कि योगविद्या ही एक ऐसा मार्ग है जिसे जीवन में उतारकर मानव उपलब्धियों को प्राप्त कर सकता है। अत: अपने इन विशिष्ट गुणों के कारण आध्यात्मिक क्षेत्र, वैज्ञानिक एवं अन्य क्षेत्रों में योग विद्या का अपना विशिष्ट महत्व है।

योग के मुख्य चार प्रकार है, राज योग, कर्म योग, भक्ति योग और ज्ञान योग । हम इन सभी को बारी-बारी जानेंगे।

राज योग

योग के इन चार प्रकारो में राज योग सबसे लोकप्रिय है। इस योग का मुख्य उद्देश्य मन को नियंत्रित करना है। इसमें सूर्य नमस्कार और पदमासन जैसे आसन शामिल है। इन आसनो को करने से शरीर में फूर्ती रहती है। इस योग का वर्णन महर्षि पतंजलि द्वारा रचित अष्टांग योग में मिलता है। इसीलिए राज योग को अष्टांग योग भी कहते है। ईसी लिए श्रीमद भगवतगीता में कहा है.

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त्स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा"।[3]

कर्म योग

कर्म का अर्थ है काम। जब कोई मनुष्य काम करता है, तब उसका दिमाग और मांशपेशियां दोनों ही कार्यरत होते है। जिसके कारण उसे मोटापे जैसी बिमारीया होने का खतरा नही रहता।

इसके अलावा कर्म योग हमें बिना फल की इच्छा रखे निस्वार्थ भाव और ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का पालन करना सिखाता है। दुनिया के सभी व्यक्तियो का जीवन उसके कर्म चक्र द्वारा ही नियंत्रित होता है। जैसे की अगर किसी मनुष्य के विचार और कार्य अच्छे है, तो ऐसा मनुष्य दुनिया में एक खुशहाल जीवन जीएगा। लेकिन अगर किसी मनुष्य के विचार और कार्य बुरे है, तो एसा मनुष्य दुनिया में बहुत दुखी जीवन जीएगा। इसीलिए कर्म योग को हमें अपने जीवन में अपनाना जरूरी है।

"वसुदेवसुतं देवं कन्सचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्"।[4]

भक्ति योग

योग का तीसरा मुख्य प्रकार है, भक्ति योग। यह सबसे आसान योग है, क्योकि इस योग में हमें सिर्फ शांति से बैठकर ध्यान लगाना होता है। भगवान के नाम का जाप करना, उनकी प्रशंसा में भजन गाना और उन्हे पूजना यह सब भक्ति योग में शामिल है। इसी वजह से इसे आध्यात्मिक योग भी कहा जाता है। इस योग से हमारे जीवन का सारा तनाव खत्म हो जाता है। इसके साथ-साथ मनुष्य के मन और हृदय का शुद्धिकरण भी होता है।

"लोके सज्जनषट्पदैरहरह: पेपीयमानं मुदा।
भूयाद्भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसिन: श्रेयसे" ।। [5]

कुंडलिनी योग

जब कोई व्यक्ति उठते, बैठते, चलते, सोते हर वख्त सिर्फ ब्रह्म का ही ध्यान करे, उसे कुंडलिनी योग कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति सिर्फ ब्रह्मा के ध्यान में ही लिन होता है।

अगर हम इन चारों योग को अपने जीवन में अपना लें तो शायद हम इस दुनिया में कभी भी शारीरिक और मानसिक रूप से दुखी नहीं होंगे। तो क्या अब आप योग को अपने जीवन में अपनाएँगे?

भारत के योग गुरु यानि बाबा रामदेव के अनुसार योग के कुल 84 आसन है। जिसमें मुख्य तौर पर मयूरासन, शीर्षासन, भुजंगासन, ताड़ासन, बज्रासन, धनुरासन, सिंहासन, गरूड़ासन, पद्मासन, गोमुखासन, हलासन, मत्स्यासन आदि सबसे ज्यादा आसन किए जाते है। इन सभी आसनो का अपना अलग-अलग महत्व है। परंतु इन सभी आसनो का लक्ष्य हमेशा एक ही होता है, मनुष्य को लाभ पहोचाना। हमारे प्रत्येक अंग को स्वस्थ रखने के लिए इन आसनों का उपयोग करना बहुत जरूरी है।

मानव जीवन में योग का महत्व

योग का का महत्व यदि अध्यात्म विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो विज्ञान के अंतर्गत मस्तिष्क के दोनों भागों के बीच समन्वय स्थापित करने वाली नाना प्रकार की योग साधनए हैं। इनमें मंत्र, जप, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, नाड़ी शोधन प्रक्रिया आदि वैज्ञानिकों द्वारा मान्यता प्राप्त एवं विशिष्ट लाभकारी सिद्ध हुए हैं। योगाभ्यास के अंतर्गत इसे क्रियायोग की संज्ञा दी जाती है। वैज्ञानिकों ने क्रिया योग के प्रयोग से यह सिद्ध कर दिया है कि इसके सतत अभ्यास से दोनों मस्तिष्क का समान विकास होता है। जिससे मानसिक संतुलन बढ़ता है, एवं असामान्य मन:स्थिति नियंत्रित होती है। धारणा, ध्यान एवं क्रियायोग के सतत अभ्यास से एक समय ऐसा भी आता है जबकि मनुष्य की अंत: प्रज्ञा जागृत होती है और बिना किसी प्रकार के अध्ययन के ही नाना प्रकार के गुण रहस्य का विवेचन संभव होता है तथा प्रकृति की अनेक रहस्यमई जानकारियां उसके करतलगत हो जाती है। वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान में पाया कि दाएं मस्तिष्क का संबंध ईडा नाडी से एवं बाएं का संबंध पिंगला नाड़ी से है। मस्तिष्क विकास एवं कौशल अभ्यास के लिए योग प्रशिक्षण की अनेक व्यवस्थाएं मौजूद है। कुसंस्कारिता से छुटकारा पाने और सुसंस्कारी व्यक्तित्व निर्मित करने के लिए योग साधना का जितना महत्व है उतना और किसी का नहीं। उदाहरण के तौर पर यदि प्रक्रिया शारीरिक, मनोशारीरिक, मानसिक दुर्बलता के निवारण में अत्यधिक सहायक सिद्ध होती है? इसके अतिरिक्त उस माध्यम से वातावरण का परिशोधन एवं प्राण प्रजन्यो का अभिवर्षण भी संभव होता है। योग के माध्यम से विभिन्न शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक पीड़ा पर काफी हद तक नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। शारीरिक, मानसिक तनाव को साधारण योगाभ्यास से दूर किया जा सकता है। आंतरिक वेदनाओं को कम करने में प्राणायाम, शिथिलीकरण ध्यान आदि की प्रक्रियाएं बहुत कारगर सीद्ध होती है। योग की प्रक्रिया नर्वस सिस्टम पर नियंत्रण पाने की मस्तिष्क की शिराओं एवं तंतुओं को सुव्यवस्थित करने का ही रहस्य रखती है। योग का ध्यान प्रक्रिया आंतरिक ऊर्जा की अभिवृद्धि करने एवं चेतना के विकास के लिए बहुत उपयोगी है। योग के अभ्यास से ज्यादा विश्वास उत्पन्न होकर जीवनी शक्ति का विकास होता जाता है। जिसके फलस्वरूप निराशा, दु:ख और अंतर वेदना पर नियंत्रण पाना आसान हो जाता है।

योग साधना बालक, वृद्ध, नर नारी सभी के लिए सरल और संभव है। हर स्थिति के व्यक्ति के लिए उसके स्तर के अनुरूप साधनाओं का विधान विद्यमान है। शरीर और मस्तिष्क को जागरूक करने की सामर्थ्य योग साधना में है। योग साधना में प्रवृत्त हुआ मनुष्य अपनी आत्मा की असीमता को जो परमात्मा के असीमता के साथ मिला देता है तो अनेक दृष्टियों से असामान्य बन जाता है। वह अपने शरीर में कायाकल्प जैसा परिवर्तन कर सकता है। दीर्घजीवी हो सकता है। अदृश्य जगत का ज्ञान प्राप्त करके उसमें चल रही हलचल को मंद, शिथिल एवं परिवर्तित कर सकता है। इन सबसे ऊपर योग मार्ग द्वारा समाधि को प्राप्त हुआ व्यक्ति त्रिकालदर्शी और विश्व की जड़चेतना सत्ता को प्रभावित करने में समर्थ बन जाता है।

योग का महत्व जितना व्यक्तिगत रूप से पड़ता है उतना ही सामाजिक स्तर पर दृष्टिगत होता है। समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है। समाज में रहने वाले जब यम, नियमों का पालन करते हैं तो उनके अनुरूप सुंदर संयमी समाज का निर्माण प्रारंभ हो जाता है, जैसा कि आगे भी कहा जा चुका है कि योग साधना से प्रवृत्त हुआ व्यक्ति अनेक उपलब्धियों को प्राप्त करता है। वह चरित्रवान, सम्माननीय, दुस्साहस पूर्वक चलने वाला, लोकमंगल की भावना रखने वाला आत्मसमर्पण करता हुआ दिखाई देता है। जब ऐसा व्यक्ति एक समाज का नेतृत्व करता है या उसके अंतर्गत रहता है तो वह अपने गुणों के द्वारा अन्य लोगों को प्रभावित करता है और वह व्यक्तियों का समूह जब एक समाज के रूप में परिवर्तित होता है तो वह संपूर्ण जगत को एक नई दिशा प्रदान करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग के द्वारा व्यक्ति का समग्र विकास होता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में योग का महत्वपूर्ण स्थान है व्यक्तिगत जीवन में नहीं योग का महत्व अलौकिक उपलब्धियों के रूप में देखे सकते हैं।

संदर्भग्रंथ

(1) हेमपुष्पा. डॉ.हेमा सोलंकी पृष्ठ -४४
(2) 'बयान' हिंदी मासिक पत्रिका पृष्ठ -२४
(3) व्यास पुष्पांज्जलि- स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन बेंगलूरू -२०
(4) व्यास पुष्पांज्जलि- स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन बेंगलूरू -३५
(5) व्यास पुष्पांज्जलि -स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन बेंगलूरू -२७

वर्तमान शिक्षा समस्याओं के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन का प्रभाव

डॉ० शशिकान्त यादव

प्राचार्य, एस0बी0एम0 शिक्षक प्रषिक्षण महाविद्यालय, बभनबै, हजारीबाग

भारतीय संस्कृति में शिक्षा को एक ऐसे तरीके के रूप में देखा जाता है जो व्यक्तियों को पढ़ने और सीखने में मदद करता है जो उनके लिए सार्थक है। सदियों से आध्यात्मिक मूल्य और आदर्श भारत में शिक्षा के केंद्र में रहे हैं और वर्तमान में शिक्षा प्रदान करने के तरीके में ये झुकाव अभी भी मौजूद हैं। स्वामी विवेकानंद का मानना है कि आध्यात्मिक मूल्यों और आदर्शों को शामिल कर के आधुनिक शिक्षा में सुधार किया जा सकता है। जो छात्रों को उनकी क्षमताओं और ज्ञान को सार्थक तरीके से विकसित करने में मदद करेगा। यह प्रणाली वर्तमान में भारतीय समाज के सामने आने वाली कुछ समस्याओं जैसे बेरोजगारी और अकेलापन को हल करने में मदद कर सकती है, क्योंकि छात्रों को सीखने में रुचि है और उनके पास अच्छा अनुशासन है। स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन इन मुद्दों को व्यावहारिक और स्थायी तरीके से संबोधित करने का एक तरीका प्रदान करता है।

कुट शब्द - शिक्षा दर्शन, शिक्षा मूल्य, शिक्षा समस्याएँ एवं स्वामी विवेकानंद

प्रस्तावना-

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो लोगों को बाहरी और आंतरिक दोनों तरीकों से बढ़ने और विकसित करने में मदद करती है। यह जीवन में उच्चतम स्तर की सुंदरता और उत्कृष्टता दिखाने का एक तरीका है, और यह भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण है। शिक्षा भी नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जैसे मूल्यों को आगे बढ़ाने का एक तरीका है। यह लोगों के मनोवैज्ञानिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है और यह उन्हें संपूर्ण व्यक्ति बनने में मदद कर सकता है। भारतीय चिंतन में व्यक्ति का मूल स्वभाव आध्यात्मिक है और इसलिए शिक्षा का अर्थ केवल उस अंतर्निहित गुण को व्यक्त करना है। पाण्डेय के शब्दों में, 'जीवन की उदात्तता, उच्चता, सौन्दर्य एवं उत्कृष्टता शिक्षा द्वारा सम्भव है (पाण्डे, 2008, पृ. 11)। अतीत में शिक्षा के आध्यात्मिक पहलू की उपेक्षा करने की प्रवृत्ति रही है, और इससे समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। परिणामस्वरूप आज शिक्षा अनेक समस्याओं से घिरी हुई है जो इसके विकास में बाधक हैं। ऐसे में शिक्षा और शिक्षण पद्धति पटरी से उतरती दिख रही है और उसे शैक्षिक मूल्यों और आदर्शों पर आधारित मार्गदर्शन की आवश्यकता है। शिक्षा के बारे में स्वामी विवेकानंद के विचार इतने व्यापक और गहरे हैं कि शिक्षा के साथ वर्तमान समस्याओं का उचित समाधान खोजा जा सकता है और शिक्षा क्षेत्र को सही दिशा और उद्देश्य की ओर उन्मुख किया जा सकता है। शिक्षा का मूल उद्देश्य लोगों को उनकी बाहरी और आंतरिक आवश्यकताओं के बारे में ज्ञान प्रदान करना और उन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करना है। लोगों को भोजन, आश्रय और नौकरी जैसी जीवन की आवश्यकताएं प्रदान करने के साथ-साथ शिक्षा लोगों को बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को पहचानने और बढ़ावा देने के बारे में भी सिखाती है और उन्हें अपने संपूर्ण व्यक्ति के विकास का मार्ग दिखाती है। वस्तुतः भारत में शिक्षा अन्तर्विवेक और शक्ति का स्रोत मानी जाती है जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के सन्तुलित विकास से हमारे कर्म, आचरण में परिवर्तन कर श्रेष्ठ बनाती है (अल्तेकर, 2014, पृ.6) आधुनिक शिक्षा प्रणाली को स्वामी विवेकानंद की सोच की बहुत आवश्यकता है क्योंकि आज की शिक्षा एकतरफा हो गई है और उसमें नैतिकता और मूल्यों का अभाव है। स्वामी विवेकानंद के विचार हैं कि इन समस्याओं को कैसे हल किया जाए, और उनके विचार आधुनिक शिक्षा को पटरी पर लाने के लिए एक प्रारंभिक बिंदु हो सकते हैं। सबसे पहले, उनका

मानना है कि छात्रों में अनुशासन और कर्तव्य की भावना आवश्यक है और इन गुणों की कमी ही शिक्षा में कई अन्य समस्याओं की ओर ले जाती है। उनका यह भी मानना है कि शिक्षा को केवल जानकारी देने या पेशेवर कौशल प्रदान करने के बजाय संपूर्ण व्यक्ति के विकास पर केंद्रित होना चाहिए। ये विचार आज शिक्षा में समस्याओं को हल करने में मदद कर सकते हैं, और एक ऐसी संस्कृति और जीवन के मूल्यों को विकसित करने में मदद कर सकते हैं जो गर्व और खुद के लिए खड़े होने को तैयार हैं। वर्तमान समय में शिक्षा में जीविकोपार्जन और व्यवसाय करने पर ध्यान देने के कारण शिक्षा में उच्च आदर्शों और मूल्यों की रक्षा और प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया लगभग समाप्त हो गई है। शिक्षा की इस व्याकुलता का संस्कृति और जीवन मूल्यों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है और समय की मांग है कि इन समस्याओं को हल करने के नए तरीके खोजे जाएं। शिक्षा से संबंधित कुछ प्रमुख समस्याओं में छात्रों में अनुशासन और कर्तव्य की भावना की कमी और शिक्षा का निम्न स्तर शामिल है जो केवल जानकारी प्रदान करने या पेशेवर कौशल प्रदान करने तक सीमित है। स्वामी विवेकानंद का मानना था कि शिक्षा प्राकृतिक दुनिया और वैदिक शास्त्रों की समझ पर आधारित होनी चाहिए। उन्होंने सोचा कि वर्तमान शिक्षा पद्धति इस उद्देश्य को पूरा नही कर रही थी और वे इसके बजाय समस्याएं पैदा कर रहे थे। कोठारी कमीशन ने लिखा है- ''भारत में सामान्य भावना यह है कि उच्च शिक्षा की स्थिति असतोषजनक दे एवं भयप्रद भी है (पण्ड्या, 2004, पृ. 15)।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा-

दर्शन-स्वामी विवेकानंद का मानना था कि शिक्षा सभी लोगों की क्षमता को अनलॉक करने की कुंजी है। उनका मानना था कि शिक्षा तक पहुंच प्रदान करके हम लोगों को उनकी पूरी क्षमता हासिल करने में मदद कर सकते हैं। उनका मानना था कि शिक्षा एक अधिक सहिष्णु और समझदार समाज बनाने में मदद कर सकती है। सीखने की शक्ति हम सबके अंदर है। शिक्षा हमें अपने आसपास की दुनिया के बारे में अधिक जानने के लिए उस शक्ति का उपयोग करने में मदद करती है। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने इसकी खोज करने से पहले ही जान लिया था। उसे बस इसका अध्ययन करने के लिए सही समय खोजने की जरूरत थी। ब्रह्मांड का विशाल ज्ञान मानव मन में संग्रहित है। बाहरी दुनिया हमें अपने बारे में और अधिक जानने में मदद करने के लिए केवल एक उपकरण है। गुरुत्वाकर्षण का नियम एक प्राकृतिक घटना है जो यह नियंत्रित करती है कि वस्तुएँ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में कैसे चलती हैं। मनुष्य के मन में सारा ज्ञान संचित है। यह सुरक्षा की एक परत से ढका हुआ है, लेकिन जैसे-जैसे वह परत धीरे-धीरे हटती जाती है, मनुष्य कह सकता है कि वह ज्ञान प्राप्त कर रहा है। जैसे-जैसे सुरक्षा या आविष्कार की परत को हटाने की प्रक्रिया बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जाता है। यदि किसी के मन पर सुरक्षा की यह परत पूरी तरह से आच्छादित है, तो उसे मूर्ख या अज्ञानी कहा जाता है, जबकि यदि सुरक्षा की परत को पूरी तरह से हटा दिया जाता है, तो उसे एक सर्वज्ञ व्यक्ति माना जाता है। जैसे चकमक पत्थर के टुकड़े में आग समा सकती है, वैसे ही मनुष्य के मन में संचित ज्ञान को भी समाहित किया जा सकता है। इस आग को प्रज्वलित करने के लिए जिन चिंगारी की आवश्यकता होती है, वे रोजमर्रा की जिंदगी के घर्षण से उत्पन्न होती हैं। स्वामी विवेकानंद इस विचार के समर्थक थे कि शिक्षा मानव-निर्माण होनी चाहिए, और उनका मानना था कि इस तरह की शिक्षा सभी को उदार और संतुलित तरीके से उपलब्ध होनी चाहिए। उन्होंने सोचा कि अगर इस तरह की शिक्षा देश के युवाओं के लिए उपलब्ध होती है, तो उनके लिए नौकरी की तलाश करने की संभावना कम होगी और इसके बजाय वे अपने परिवार और गरीबों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए अपने समय का उपयोग कर पाएंगे। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि दूसरों की मदद करने का सबसे अच्छा तरीका ज्ञान का दान करना है। उनका मानना था कि मानवता के विकास के लिए धार्मिक प्रचार और धर्मनिरपेक्ष शिक्षा दोनों महत्वपूर्ण हैं, लेकिन उनका दृढ़ मत था कि ''धार्मिक शिक्षा तभी अधिक सफल होगी जब इसे धर्मनिरपेक्ष शिक्षा से जोड़ा जाए।" इसका मतलब यह है कि अगर कोई धार्मिक शिक्षा प्राप्त किए बिना धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, तो उसे सफल होने में कठिनाई होगी। भारतीय दार्शनिक विवेकानंद का मानना था कि भारतीयों को अपने बारे में आश्वस्त महसूस करने में मदद करने के लिए उन्हें अपनी आत्मा के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि, भले ही कोई निम्न वर्ग से हो, उनकी आत्मा अभी भी जीवित है, और शुद्ध और शक्तिशाली हो सकती है। यही कारण है कि उन्होंने लोगों को उनकी वास्तविक क्षमता का एहसास कराने में मदद करने के तरीके के रूप में शिक्षा पर बहुत जोर दिया। स्वामीजी के मत में शिक्षा एक ऐसी आधारशिला थी जिसकी नींव पर भारतीय गरिमापूर्ण आभा का भवन पुनर्स्थापित हो सके। शिक्षा को लेकर उनकी सोच सर्वआयामी एवं सूक्ष्म थी। उच्च शिक्षा में निहित समस्याओं के समाधान में स्वामी विवेकानंद के विचार इस प्रकार है-

दोषपूर्ण पाठ्यक्रम एवं परीक्षा प्रणाली

विश्वविद्यालयों का मुख्य लक्ष्य लोगों को अपने ज्ञान को गहरा करने में मदद करना है और यह सीखना है कि उनके दैनिक जीवन में समस्याओं को कैसे हल किया जाए। विश्वविद्यालय ऐसे स्थान हैं जहां लोग अपने विचारों और विचारों का पता लगा सकते हैं और पता लगा सकते हैं कि क्या सत्य और मूल्यवान है। लोकतंत्र के लिए उच्च शिक्षा महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह लोगों को उनके आसपास की दुनिया के बारे में उनकी सोच में अधिक आलोचनात्मक और निष्पक्ष होने में मदद करती है। अधिकांश बुद्धिजीवी (चीजों के बारे में बहुत कुछ जानने वाले) विश्वविद्यालयों में पाए जाते हैं, और ये लोग वहीं से प्रशिक्षण भी प्राप्त करते हैं। शिक्षा को लोगों को उनकी पूरी क्षमता तक पहुंचने में मदद करनी चाहिए और विश्वविद्यालयों से यही अपेक्षा की जाती है। हालाँकि, विश्वविद्यालयों की स्थापना के बाद से चीजें बहुत बदल गई हैं, और शिक्षा की गुणवत्ता हमेशा लोगों की अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरी है। इसके अलावा, उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है, और इससे छात्रों को केवल उन चीजों के बारे में सीखने की इच्छा हो रही है जो उन्हें एक अच्छी नौकरी पाने में मदद करेंगी, और विश्वविद्यालय छात्रों की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम नहीं हैं। स्वामी विवेकानंद का दर्शन है कि शिक्षा को लोगों को बेहतर इंसान बनने में मदद करनी चाहिए। वर्तमान शिक्षा प्रणालियाँ यह अच्छा नहीं कर रही हैं, और हमें लोगों को सीखने में मदद करने के लिए नए तरीके खोजने की आवश्यकता है। उनका मानना है कि शिक्षा जीवन में महत्वपूर्ण चीजों के बारे में सीखने के बारे में होनी चाहिए, न कि केवल अच्छे ग्रेड प्राप्त करने के बारे में।

अनुशासनहीनता एवं मूल्यहीनता की प्रवृत्ति

आज शिक्षा की मुख्य समस्या छात्रों द्वारा नियमों का पालन करने और ठीक से व्यवहार करने से इंकार करना है। इसे हड़तालों, प्रदर्शनों, हिंसक व्यवहार और अन्य व्यवधानों के रूप में देखा जा सकता है। स्वामी विवेकानंद का भी कहना है कि शिक्षा पूर्णता का विकास है जो पहले से ही लोगों के अंदर है। जब तक लोग अधूरे हैं, उनका जीवन खाली और अव्यवस्थित रहेगा। यही कारण है कि छात्र हमेशा ऐसे लक्ष्यों की तलाश में रहते हैं जो सतही हों और बहुत महत्वपूर्ण न हों। शिक्षा का लक्ष्य छात्रों को पूर्ण और सफल बनने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्रदान करना है। जब छात्र अपने आंतरिक प्रकाश के प्रति जागेंगे तभी वे अच्छे निर्णय लेने और एक सार्थक जीवन जीने में सक्षम होंगे। इस समस्या का समाधान स्वामी विवेकानंद की शिक्षा की व्यापक अवधारणा में निहित है। उनका मानना है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य छात्रों को आत्मनिर्भर बनने और अपने अंदर एक अपरिवर्तनीय लक्ष्य प्राप्त करने में मदद करना है। यह लक्ष्य बुद्धिमान बनना और जानना है कि जीवन में क्या महत्वपूर्ण है।

शिक्षा के निम्न स्तर

इस गिरावट का मुख्य कारण शिक्षा का स्तर और शिक्षा का स्तर है। और हृदयहीन होने का अर्थ है कि शिक्षा का स्तर बौद्धिक रूप से शुष्क और हृदयहीन हो जाता है। आज की शिक्षा व्यवस्था उस विदेशी आधार पर खड़ी है जहाँ विचारों की मौलिकता और हृदय की संवेदनशीलता का सर्वथा अभाव है। स्वामी विवेकानंद ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ''विदेशी व्यवस्था के ये शिक्षण संस्थान इन कारखानों से केवल लेखक, डाकिया, तरबाबू आदि पैदा करते हैं" (विवेकानंद साहित्य, खंड 1, पृ. 310-11)। भारत की विकासात्मक बाधा का मुख्य कारण यह है कि देश की समस्त शिक्षा पर बुद्धि, शासन और अहंकार के बल पर मुट्ठी भर लोगों का एकाधिकार कर दिया गया है। एक बड़े क्षेत्र में शिक्षा का स्तर, वर्तमान जरूरतों और देनदारियों के मामले में, विकसित देशों की तुलना में कम है। डॉ. मुखर्जी ने लिखा है कि ''हमारे ज्ञान और शिक्षा का स्तर तेजी से नीचे जा रहा है" (मुखर्जी, 1962, प्रश्न 23)। वास्तव में, एक बार स्तर गिरने के बाद, यह अपने पुराने स्तर पर पहुंच जाता है।

दोषपूर्ण पाठ्यक्रम एवं परीक्षा प्रणाली

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार यदि अध्ययन सामग्री का विषय भारतीय शास्त्रों एवं उपनिषदों पर आधारित हो तो शिक्षा का स्तर उत्कृष्ट हो सकता है। स्वामीजी के अनुसार हमें कमजोर करने वाले हजारों विषय हैं और आज हमें ताकत की जरूरत है। वे कहते हैं कि उपनिषद शक्ति की विशाल खान हैं, उनमें इतनी शक्ति विद्यमान है कि वे सारे संसार को चमका सकते हैं। वे सभी जातियों, पंथों और संप्रदायों के कमजोर, दुखी और दलित लोगों को अपने पैरों पर खड़े होने और विनम्र बनने के लिए ऊँची आवाज में पुकारते

हैं। अधिकांश शैक्षणिक संस्थान बहुत समय पहले से एक पाठ्यक्रम पढ़ाते हैं। इस पाठ्यक्रम के आधार पर छात्र के काम का मूल्यांकन एक बाहरी परीक्षा द्वारा किया जाता है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी बिना सोचे-समझे विषय सामग्री को कंठस्थ कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है। इस प्रकार की पाठ्यचर्या और परीक्षा प्रणाली विद्यार्थी के व्यक्तित्व विकास या वैचारिक स्वतंत्रता का समर्थन नहीं करती, जिसके फलस्वरूप विद्यार्थी कुंठित, संकीर्ण और बौद्धिक प्रकृति के व्यक्ति के रूप में उभर कर सामने आता है।

निर्देशन - परामर्श तथा शिक्षक-शिक्षण का अभाव

स्वामी विवेकानंद का मानना है कि समस्याओं से निपटने का सबसे अच्छा तरीका है कि आप अपने भीतर देखें और स्वयं उत्तर खोजें। उनका सुझाव है कि मार्गदर्शन की तलाश करने वाले किसी भी व्यक्ति को एक शिक्षक या परामर्शदाता को ढूंढना चाहिए जो आंतरिक दुनिया से परिचित हो और खुद को तलाशने और समझने में आपकी मदद कर सके। केवल इस प्रकार के व्यक्तिगत संबंध के माध्यम से ही आप सच्ची शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। अधिकांश शैक्षणिक संस्थानों में मार्गदर्शन और परामर्श सेवाओं की कमी है, जो अक्सर छात्रों के लिए समस्या का कारण बनती है। शिक्षक और परामर्शदाता अक्सर छात्रों को उनकी रुचियों या क्षमताओं से संबंधित मुद्दों में मदद करने में विशेषज्ञ नहीं होते हैं, और अक्सर कोई भी ऐसा नहीं होता है जो इस कठिन समय में उनका मार्गदर्शन कर सके।

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानंद लोगों को शिक्षित करने में विश्वास करते थे ताकि वे सुखी और पूर्ण जीवन जी सकें। वह गहरे आध्यात्मिक थे और सभी लोगों से प्यार करते थे, भले ही उन्हें शिक्षा के महत्व के बारे में विशेष जानकारी थी।

स्वामी विवेकानंद भारतीय दर्शन के विद्वान और अद्वैत वेदांत के समर्थक थे। उन्हें वेदांत को व्यावहारिक रूप देने के लिए जाना जाता है, जो एक दार्शनिक दृष्टिकोण है जो कहता है कि केवल एक ही सत्य है और सब कुछ जुड़ा हुआ है। उनके सैद्धांतिक विचारों को किताबों में पढ़ा जा सकता है, लेकिन उनके व्यावहारिक कार्यों को रामकृष्ण मिशन के कार्यों में देखा जा सकता है, जो उनके द्वारा स्थापित एक धर्मार्थ संगठन है। स्वामी विवेकानंद अपने देशवासियों की अज्ञानता और गरीबी के बारे में बहुत चिंतित थे और उन्होंने सोचा कि शिक्षा इसे बदलने में मदद करेगी। वह न केवल एक दार्शनिक थे, बल्कि उन्होंने सार्वजनिक शिक्षा के प्रचार और प्रसार में भी बहुत योगदान दिया। उन्हें इस क्षेत्र में उनके कार्यों के लिए हमेशा याद किया जाएगा।शिक्षा को लेकर आज कई समस्याएं हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि दिशाहीन और दिशाहीन शिक्षा प्रणाली अच्छी है, जबकि अन्य सोचते हैं कि इसे बदलने की जरूरत है। यह अध्ययन स्वामी विवेकानंद की शिक्षा को देखने के बारे में है, और यह देखने के लिए कि शिक्षा के बारे में उनके विचार शिक्षा के साथ कुछ मौजूदा समस्याओं को हल करने में कैसे मदद कर सकते हैं। विवेकानंद का शिक्षा दर्शन क्या है, इसे समझकर हम शिक्षा की समस्याओं को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और उन्हें हल करने के तरीके खोज सकते हैं। यह सभी के लिए बेहतर शिक्षा प्रदान करने में मदद करेगा, और यह सुनिश्चित करने में मदद करेगा कि जीवन में महत्वपूर्ण मूल्यों को सीखा और याद रखा जाए।

संदर्भ सूची

1. अल्लेकर, अनन्त सदाशिव (2014). प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति । नई दिल्ली- हिन्दीबुक सेंटर।
2. अद्वैत आश्रम (1989). विवेकानंद साहित्य (खण्ड-1)। कलकत्ता- अद्वैत आश्रमप्रकाशन।
3. अद्वैत आश्रम (1989), विवेकानंद साहित्य (खण्ड-3)। कलकत्ता- अद्वैत आश्रम प्रकाशन।
4. अद्वैत आश्रम (1989). विवेकानंद साहित्य (खण्ड-4)। कलकत्ता- अद्वैत आश्रमप्रकाशन।
5. अद्वैत आश्रम (1989), विवेकानंद शाहित्य (खण्ड-5)। कलकत्ता- अद्वैत आश्रमप्रकाशन।
6. तोमर, लज्जाराम (2013). प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति। नई दिल्ली- सुरुचिप्रकाशन।
7. पण्ड्या, प्रणव (1995). जीवन पथ के प्रदीप हरिद्वार- श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट पण्ड्या, प्रणव (2004). हिंदा मे मूल्यहीनता एक यक्ष ज्योति 68-3-15.
8. अद्वैत आश्रम (1989). विवेकानंद साहित्य (खण्ड-5)। कलकत्ता- अद्वैत आश्रमप्रकाशन।

9. तोमर, लज्जाराम (2013). प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति। नई दिल्ली- सुरूचिप्रकाशन।
10. पण्ड्या, प्रणव (1995). जीवन पथ के प्रदीप। हरिद्वार - श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट।
11. पण्ड्या, प्रणव (2004). शिक्षा में मूल्यहीनता- एक यक्ष प्रश्न। अखण्ड ज्योति, 68, 3, 15.
12. पाण्डे, रामशकल (2008). शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि। आगरा-अग्रवाल पब्लिकेशनस।
13. मुखर्जी, एस. एन. (1962). एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ एजुकेशन इन इंडिया (प्रथमसंस्करण)। गुजरात- आचार्य बुक डिपो ब्रह्मवर्चस (2002). आत्मा वा अरे ज्ञातव्य (प्रथम संस्करण)। हरिद्वार- श्री वदमातागायत्री ट्रस्ट।
14. कारिमन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवनीति (मुण्डकोपनिशद 1/1/3)
15. ltekar, Anant Sadasiva (2014). प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति (Ancient Indian Teaching Method) - New Delhi & Hindi Book Center.
16- Advaita Ashram (1989) - Vivekananda Literature (Volume&1) - Calcutta & Advaita Ashram Prakashan -
17. Advaita Ashram (1989) - Vivekananda Literature (Volume & 3) - Calcutta & Advaita Ashram Prakashan -
18. Advaita Ashram (1989) - Vivekananda Literature (Volume 4) - Calcutta & Advaita Ashram Prakashan-
19. Advaita Ashram (1989) - Vivekananda Literature (Volume 5) - Calcutta & Advaita Ashram Prakashan-
20. Tomar, Lajjaram (2013). प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति (Ancient Indian Education System) - New Delhi & SuruchiPrakashan.
21. Pandya, Pranav (1995). जीवन पथ के प्रदीप (Light For Life Path) - Haridwar & Sri Vedamata Gayatri Trust.
22. Pandya, Pranav (2004). शिक्षा में मूल्यहीनता-एक यक्ष प्रश्न (Valuelessness In Education & A Compulsive iQuestion)- AkhandJyoti, 68, 3, 15.

प्रगतिशील आन्दोलन में उर्दू कवियों का योगदान

डॉ० विजय कुमार

प्रो० हिन्दी विभाग, ल0ना0मि0 विश्वविद्यालय, दरभंगा

हिन्दी का 'प्रगतिशील आन्दोलन' एवं उर्दू का 'तरक्ष्कीपसंद तहरीक' केवल साहित्यिक-सांस्कृतिक आन्दोलन नहीं था अपितु दुनिया भर में फासिज्म के विरूद्ध चल रहे राजनीतिक आन्दोलन का भारतीय संस्करण था, जिसकी भारतीय स्वाधीनता संग्राम में गौरवपूर्ण भूमिका रही। वैचारिक दृष्टिकोण से यह आन्दोलन मार्क्सवाद से प्रभावित था और सर्वहारा-किसान-मजदूर का पक्षधर तथा साम्राज्यवादी ताकतों का विरोधी था। इस प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव संपूर्ण देश में, सभी भाषा-क्षेत्रों में था और इस विचारधारा के साहित्यकार कार्यकर्त्ता की हैसियत से अपने क्रान्तिकारी विचारों को फैला रहे थे।

जब हम हिन्दी के प्रगतिशील आन्दोलन के इतिहास और उसकी पृष्ठभूमि पर गौर करते हैं तो पता चलता है कि इसकी वैचारिकता ने किस प्रकार हिन्दू-मुसलमान तथा हिन्दी-उर्दू को एक मंच पर लाने का काम किया। वस्तुतः यह प्रगतिशील साहित्यिक-सांस्कृतिक आन्दोलन हिन्दी-उर्दू के साहित्यकारों का साझा प्रयास था, जिसकी धारा आज तक जीवन्त है। हिन्दी का प्रगतिशील आन्दोलन तथा उर्दू का 'तरक्ष्कीपसंद तहरीक' एक ही है, क्योंकि दोनों के सूत्रधार - सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद की जोड़ी है। लंदन में पढ़ने वाले छात्र सज्जाद जहीर तथा मुल्कराज आनंद ने सन् 1935 ई0 में फ्रांस में आयोजित 'प्रोगेसिव राइटर्स एसोसिएशन' की प्रथम बैठक में शामिल होकर जो योजना बनायी उसी का परिणाम अगले ही वर्ष सन् 1936 में भारत में देखने को मिला। सशंकित साम्राज्यवादी व्यवस्था में यह काम जोखिम भरा था। सज्जाद जहीर के भारत आगमन से पूर्व ही ब्रिटिश भारत की पुलिस चौकस हो चुकी थी। इसी का परिणाम था कि बुम्बई बन्दरगाह पर उनकी सारी किताबें जब्त कर ली गयी। परन्तु वे अपने दृढ़ इरादे से पीछे नहीं हटे और सन् 1936 में लखनऊ में प्रगतिशील संघ का पहला अधिवेशन आयोजित किया। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में उर्दू के साहित्कारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, यही रेखांकित करना इस लेख का उद्देश्य है। इस संबंध में उर्दू साहित्य के इतिहासकार सैयद एहतेशाम हुसैन कहते हैं - ''साहित्य में प्रगतिशीलता और सामाजिक चेतना के चिह्न तो प्रत्येक युग में ही मिल जाते हैं, परन्तु चेतना पूर्वक प्रगतिशील आन्दोलन की औपचारिक रूप से नींव उत्तरप्रदेश में पड़ी, परन्तु जंगल की आग की तरह इसका प्रकाश सारे देश में फैल गया। जहाँ तक उर्दू साहित्य का संबंध है, लाहौर, बम्बई, पटना, हैदराबाद और यू. पी. के अन्य नगर इसके केन्द्र बन गये।''[1]

भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की जो पहली बैठक (अधिवेशन) सन् 1936 में लखनऊ में हुई उसके महासचिव और संयोजक सज्जाद जहीर थे, जबकि सदारत प्रेमचंद जो उन दिनों उर्दू के ही लेखक माने जाते थे। उस सम्मेलन में हिन्दी के कुछ ही साहित्यकार शामिल थे। आलोचक खगेन्द्र ठाकुर सज्जाद जहीर के संस्मरण के माध्यम से लिखते हैं कि, ''लखनऊ का ऐतिहासिक सम्मेलन कुछ लेखकों की मेहनत से आयोजित किया गया उसके पीछे न तो कम्युनिस्ट पार्टी का फैसला था और न उसकी कोशिश। सज्जाद जहीर, डॉ0 महमूद जफ्फर, डॉ0 रसीद जहाँ मुख्य कार्यकर्त्ता थे ..... हिन्दी के लेखक बहुत कम थे। प्रेमचन्द तो हिन्दी-उर्दू दोनों में थे। शिवदान सिंह चौहान इलाहाबाद प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य थे और वहाँ से आये थे। लखनऊ में रहने वाले अमृतलाल नागर जरूर सम्मेलन में शामिल थे, लेकिन इतने नये थे कि शायद सज्जाद जहीर से उनकी मुलाकात नहीं हो पाई, इसलिए उनके संस्मरण में नागर जी का जिक्र नहीं है।''[2]

यह यथार्थ है कि भारत में प्रगतिशील विचारों को फैलाने में उर्दू के साहित्यकार की ऐतिहासिक भूमिका रही। वैचारिकता और जादुई अभिव्यक्ति कौशल का ऐसा संगम कहीं नहीं देखने को मिलता है, जैसा उर्दू साहित्य में मिलता है। अपने शेरों, नज्मों तथा गजलों के माध्यम से देश में जो प्रगतिशील सामाजिक चेतना जगायी उससे स्वाधीनता संग्राम को भी बल मिला। उर्दू कविता को लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचाने में इन प्रगतिशील कवियों का बड़ा योगदान है। जोश मलीहाबादी, फैज अहमद फैघ्ज, असरारूल हक मजाज, मखदुम मुहीउद्दीन, जॉ निशा अख्तर, अली सरदार जाफरी, साहिर लुधयानवी, कैफी आजमी, मजरूह सुल्तानपुरी, जिगर मुरादाबादी आदि की रचनाएँ हमारी आनेवाली पीढ़ी के लिए पथ-प्रदर्शन करती है।

रघुपति सहाय 'फिराक' (1896-फिराक गोरखपुरी) प्रगतिशील विचारधारा के उर्दू कवियों में ऊँचा स्थान रखते हैं। नग्मए-साज, गजलिस्ताँ, शेरिस्ताँ, शबन मिस्ताँ, रूहे कायनात, गुले-नगमा, धरती की करवट, गुलबॉग उनके काव्य संग्रह हैं। वे पेशे से डिप्टी-कलेक्टर थे, परन्तु स्वाधीनता संग्राम में शामिल होने के लिए नौकरी छोड़ दी। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक हुए और वहीं से अवकाश ग्रहण किया। उनकी प्रगतिशील चिंतन की झलक 'धरती की करवट' जैसी कविताओं में देखी जा सकती है जिसमें उन्होंने मेहनत करने वालों की वकालत की है -

हिन्दू-राज से बढ़कर होगा,
बौद्ध-राज से बढ़कर होगा,
मुसलिम-राज से बढ़कर होगा,
मेहनत करने वालों का राज।[3]

लखनऊ के जोश मलीहबादी (1898-1982) ने क्रांति के कवि के रूप में पहचान बनाई। शायरे-फितरत (प्रकृति का कवि) और शायरे शबाब (यौवन के कवि) से शायरे इन्किलाब (क्रान्तिकारी कवि) तक का सफर उनकी वैचारिक विकास क्रम को दर्शाता है। इतिहासकार प्रोफेसर सैयद एहतेशाम हुसैन लिखते हैं - 1930 ई0 के लगभग जब उनके यहाँ क्रांति की भावनाएँ बढ़ी तो सबसे पहले उन्होंने धर्म और संप्रदायिक संकीर्णता पर चोटें की और विचार स्वतंत्रता का प्रचार किया। परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने राजनीतिक क्रान्ति को महत्त्व देना शुरू किया।[4] नकशोनिगार, शोला-ओ-शबनम, फिक्रो-निशात, हर्फो-हिकायत, रानिशो-रंग, सुँबुलो-सलासिल, सरोदो-खघ्रोश और सुमूमोसबा इत्यादि उनके काव्य संग्रह हैं। राष्ट्रीयता, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा स्वतंत्रता के पक्षधर इस शायर को कुछ लोग इकबाल से भी बड़ा शायर मानते हैं। आनंद और मनोरंजन के लिए कविता लिखनेवाले इस शायर ने समय की माँग पर इंकलाब की घोषणा कर दी -

काम है मेरा तगय्युर नाम है मेरा शबाब
मेरा नारा इंकिलाब ओ इंकिलाब ओ इंकिलाब।

उन्होंने 'हुस्न और मजदूरी' (नज्म) में सर्वहारा वर्ग की मजदूरनी की मजबूरी का चित्रण किया। वह समकालीन हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों का प्रेरणा स्रोत बन गया -

एक दोशीजा सड़क पर धूप में है बेकरार,
चूड़ियाँ बजती है, कंकर कूटने में बार-बार,
चूड़ियों के साज में ये सोज है कैसा भरा,
आँख में आँसू बनी जाती है जिसकी हर सदा।

X X X

दस्त-ए-नाजुक को टसन से अब छुड़ाना चाहिए,
इस कलाइ में तो कंगण जगमगाना चाहिए।

लखनऊ में 'हुस्न और मजदूरी' लिखी जा रही थी तो इलाहाबाद में निराला 'तोड़ती पत्थर' की रचना कर रहे थे। संवेदना का स्रोत एक ही था- आर्थिक विषमता और चेतना थी प्रगतिशीलता की।

फैज अहमद 'फैज' ऐसे साहित्यकार थे जो प्रगतिशतिशील लेखक संघ की स्थापना के पूर्व ही प्रगतिशील चेतना की कविता लिख रहे थे। कविता के क्षेत्र में राज कर रहे 'इश्क फरमानी' की कविता के प्रचलन को एक शेर द्वारा एक झटके में उड़ा दिया -

और भी गम है जमाने में मुहब्बत के सिवा।
राहते और भी है वस्ल की राहत के सिवा।।

फैज के चार काव्य संग्रह है – 'नक्शे-फरियादी' 'दस्ते-सबा' 'जिन्दाँनामा' और 'दस्त-तहे-संग'। सज्जाद जहीर के संस्मरण के माध्यम से खगेन्द्र ठाकुर ने लिखा है – ''पहले तो अमृतसर में उन दिन डॉ0 महमूद के घर पर सज्जाद जहीर की मुलाकात फैज से हुई और पहली बार डॉ0 महमूद और डॉ0 रसीद जहां को पता चला फैज शायरी भी करते हैं। इतना ही नहीं उस दिन की बातचचीत में जब सज्जाद जहीर ने स्टीफेन स्पेंडर और ऑडेन के कविता-संग्रहों का जिक्र किया तो उन्हें आश्चर्य हुआ यह जानकर कि फैज इन कवियों को पढ़ चुके थे और उनकी खुबियों से भी परिचित थे। फैज इलियट को भी पढ़ चुके थे और इलियट के काव्य की कुण्ठा और स्पेंडर और ऑडेन की कविताओं के मानवतावादी मूल्य के फर्क को भी समझ रहे थे। इस तरह फैज प्रगतिशील साहित्य और रजअत पसंद साहित्य में टकराव और फर्क को समझते हुए प्रगतिशील आन्दोलन की जरूरत और समस्याओं को समझ रहें थे।''[5] सज्जाद जहीर को जब पता चला कि उनके आने के पूर्व ही फैज लाहौर में प्रगतिशील लेखक संघ बनाने के लिए प्रयत्नशील थे तथा पंजाब में भी सक्रिय थे तो उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ कि देश के हर भाग में प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन एक अपरिहार्य घटना के रूप में उभर रहा था। फैज की कविता 'तराना' (नज्म) को बहुत प्रसिद्धि मिली।

दरबार-ए-वतन में जब इक दिन सब जाने वाले जायेंगे
कुछ अपनी सजा को पहुँचेंगे, कुछ अपनी जजा ले जायेंगे।

XXX

कटते भी चलो, बढ़ते भी चलो, बाजू भी बहुत है सर भी बहुत
चलते भी चलो के, अब डेरे मंजिल ही पे डाले जायेंगे।
ऐ जुल्म के मातो, लब खोलो, चुप रहने वाले चुप कब तक
कुछ हश्र तो इनसे उट्ठेगा कुछ दूर तो नाले जायेंगे।[6]

इस तराने की बड़ी धूम मची थी प्रगतिशील आन्दोलन के उस दौर में। कैप्टन जफर उल्लाह पोश्तनी ने अपने लेख 'जेल में सज्जाद जहीर' में लिखते हैं कि ''फैज का वह तराना जिसे उन्होंने हमारे सामने ही हैदराबाद जेल में लिखा था ..... इस कदर पसंद था कि हम हर महफिल में एक बार जरूर गाते और कई बार तो आध-पौन घंटे तक मुसलसल गाते चले जाते। मुझे यकीन है यह तराना किसी रोज एक बड़ी अवामी तहरीक बन कर हमारे वतन की सरजमीं के चप्पे-चप्पे पर फैल जायेगा। यह तराना जुल्मो जब्र और फरेब का, धोखेबाज, कूव्वतों के खिघ्लाफ एक हस्सास इंसान का पुरजोर प्रतिरोध है। एक ऐसा प्रतिरोध जो संकल्प और हौसले से भरपूर होने के इलावा हक और इंसाफ की आखिघ्री फतह की पेशनगोई भी करता है।[7] आजादी के बाद फैज पाकिस्तान के नागरिक हो गये, परन्तु अपने मिशन में लगे रहे, परिणाम स्वरूप सन् 1951-1958 तक जेल में बंद रहे। वे केवल पाकिस्तान के नहीं भारतीय उपमहाद्वीप के कवि थे। उनकी प्रतिरोध धर्मी कविता समय-समय पर दोनों देशों में सुनने को मिलती है।

बाराबंकी (यू0पी0) के असरारूल हक मजाज (1911-1955) भी प्रगतिशील कवियों में बहुत लोकप्रिय थे। मजाज आल-इंडिया रेडियो में काम कर रहे थे, फिर प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़कर पत्रिकाओं के लिए लिखने लगे। उन्हें उर्दू का कीट्स (झमंजे) कहा जाता है। 'आहंग' उनका काव्य संग्रह है। रूढ़िवाद, अंध विश्वास, रूढ़ परम्परा के वे विरोधी थे और स्त्रियों को भी राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे –

हिजाब-ए-फितना-परवर अब उठा लेती जो अच्छा था
खुद अपने हुश्न को परदा बना लेती तो अच्छा था।

XXX

तिरे माथे पे ये आँचल बहुत ही खूब है लेकिन
तू इस आँचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था।

उर्दू के प्रगतिशील कवि वास्तव में कार्यकर्त्ता कवि हुआ करते थे और अपनी विचारधारा एवं लक्ष्य में आनेवाली बाधाओं को, चाहे उनकी जीविका का साधन नौकरी ही क्यों न हो, त्याग देते थे। ऐसे ही एक क्रान्तिकारी कवि हैदराबाद के मखदमू मुहीमुद्दीन

(1907-1961) थे। वे कॉलेज में प्राध्यापक थे तथा उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के काम से नौकरी छोड़ दी। वे कई बार जेल भी गये। 'सुर्ख सवेरा', 'गुलेत्तर' और 'बिसाते-रकस' उनकी काव्य रचनाओं का संग्रह है। उनका कैसा मिजाज और जोश कितना था, उनकी इस कविता से पता चलता है –

वो जंग ही क्या, वो अमन ही क्या
दुश्मन जिसमें ताराज न हो
वो दुनिया दुनिया क्या होगी
जिस दुनिया में स्वराज न हो
वो आजादी आजादी क्या
मजदूर का जिसमें राज न हो।

गीतकार जावेद अख्तर के पिता जॉनिसार अख्तर (1914-1976) का तरक्की पसंद कवियों में बहुत ऊँचा स्थान है। 'सलासिल' और 'जाविदाँ' उनके कावय संग्रह हैं। 'आवाज दो हम एक हैं' गीत देश भक्ति की भावना से पूर्ण है। वे केवल एक यही गीत लिखे होते तो भी उनकी उतनी ही प्रसिद्धि होती। फिल्मों में उनके गीत बहुत लोकप्रिय हुए।

अली सरदार जाफरी (1912-2000) भी अपनी वर्गीय चेतना एवं क्रान्ति भावना के लिए जाने जाते हैं। प्रगतिशील आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। 'खून की लकीर' 'एशिया जाग उठा' 'अन्न का सितारा' 'पत्थर की दीवार' 'एक खाब और' 'नयी दुनिया को सलाम' - ये उनके काव्य संग्रह हैं। 'नयी दुनिया को सलाम' साम्राज्य विरोधी भावना के लिए जाना जाता है। उनकी 'तरक्की पसंद अदब' नामक पुस्तक प्रगतिशील आन्दोलन को जानने के लिए बहुत उपयोगी है। अली सरदार जाफरी को भारतीय ज्ञानपीठ भी प्राप्त हुआ है। सर्वहारा को संबोधित उनका यह नज्म बहुत लोकप्रिय हुआ –

उठो हिन्द के बागबानों उठो
उठो इंकिलाबी जवानो उठो,
किसानों उठो, कामगारों उठो,
नई जिन्दगी के शरारों उठो
X X X
अवध के चमन से चहकते उठो
गुलों की तरह से महकते उठो।

'साहिर' लुधियानवी (1922-1950) का फिल्म जगत् में बड़ा नाम हुआ परन्तु वे मूल रूप से प्रगतिशील विचारधारा के कवि थे। 'तलखियाँ' तथा 'परछाइयाँ' उनके दो काव्य संग्रह हैं। 'गाता जाए बनजारा' उनके फिल्मी गीतों का संग्रह है। साहिर लुधियानवी की सौदर्य दृष्टि भी प्रगतिवादी विचारधारा के अनुरूप दिखती है। सुमित्रा नंदन पंत ने 'ताज' कविता में जो भावनाएँ और विचार व्यक्त किया है, वही विचार साहिर 'ताजमहल' कविता में व्यक्त करते हैं –

ये चमनजार ये जमुना का किनारा ये महल
ये मुनक्कश दर-ओ-दीवार, ये महराब ये ताक
इक शहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक
मेरी महबूब कहीं और मिला कर मुझसे।

(Hindi-kavita.com 24.02.23)

आजादी के उपरान्त जो देश की तस्वीर उभरी उसमें सर्वहारा और आमजन की क्या स्थिति थी, यह उनकी इस कविता से प्रकट होती है –

हुजूमे-तशना-लबाँ की निगाह से ओझल।
छलक रहे हैं शराबे-नफस के पैमाने।।
ये जश्न, जश्ने-मुसर्रत नहीं तमाशा है।
ये लिबास में निकला है रहजनों का जुलूस।।

'कैफी' आजमी (1917-2002) भी प्रगतिशील विचारधारा के क्रान्तिकारी कवि हैं। 'अंकार' 'आखिरे-शब' 'आवारा सिज्दे' इब्लोस की मज्लिस-ए-शूरा' उनके काव्य संग्रह हैं। आरंभिक कविताएँ उनकी श्रृंगार रस की है। बाद में वे स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय चेतना के गीत गाने लगे। वे स्वाधीनता संग्राम में भी शामिल होते थे। उन्होंने लिखा है - ''जब लखनऊ आया तो वहाँ स्वराज का आन्दोलन बहुत जोरों पर चल रहा था। मैं प्रभात फेरियों में शामिल हो गया। मुँह अँधेरे कि प्रभात फेरी में शामिल होता और नज्में पढ़ता। 'झंकार' की जो नज्में है जैसे ''उठो, देखो, वह आँधी आ रही है'' यह प्रभात फेरी के लिए मैंने कही और उसी में पढ़ी थी। शहरों में सत्याग्रह भी हो रहे थे। विदेशी कपड़े, दुकानों से निकाल-निकाल कर जलाए जा रहे थे।..... मैं भी इस दिलचस्प काम में शरीक हो गया। थोड़ी देर में पुलिस आ गई और हम सब पकड़े गए, मैं भी। ..... उस वक्त मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि मैं गाँधीजी और जवाहरलाल जी की पंक्ति में शामिल हो गया।'[8] कम्युनिस्ट होने के नाते उनका मानना था कि जमीन उसी की है जो उस पर हल चलाता है। मजदूर मकान तो बनाता है, परन्तु उसके रहने के लिए मकान नहीं होता। एक मजदूर की संवेदना को ''कैफी'' आजमी ने 'मकान' कविता में सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है -

आज की रात बहुत गर्म हवा चलती है,
आज की रात न फुटपाथ पे नींद आएगी,
सब उठो, मैं भी उठूँ, तुम भी उठो, तुम भी उठो,
कोई खिड़की इसी दीवार पर खुल जायेगी।[9]

इसी पीढ़ी के क्रान्तिकारी तरक्कीपसंद शायर 'मजरूह' सुल्तानपुरी भी लोकप्रिय हैं। इनका काव्य संग्रह 'गजल' है। इस कविता संग्रह की प्रस्तावना में काजी अब्दुल गफ्फार लिखते हैं-''हिन्दोस्तान की नौजवान नस्ल के आतिश खाने से जो चिनगारियाँ निकल रही है, उनमें एक बहुत रौशन चिंगारी, मजरूह सुल्तानपुरी हैं, जिसने तगज्जुल के वजदान (अंत:प्रेरणा) में अपनी बेताब रूह को उरियां (नग्न) है। गजल के मैदान में उसने वह सब कुछ कहा है, जिसके लिए बाज तरक्कीपसंद शायर सिर्फ नज्म का ही पैराया जरूरी और नागुजीर (अनिवार्य) समझते हैं।..... और क्रान्ति का स्वागत करते हुए वह जमीन, हल, जौ के दाने और कारखाने ऐसे शब्दों को, जो, नज्म में तो किसी तरह खप सकते हैं लेकिन गजल की नाजुक कमर इनका बोझ मुश्किल से ही उठा सकती है, बड़ी शान से यों प्रयोग में लाता है-

अब जमीन गायेगी हल के साज पर नग्मे
वादियों में नाचेंगे हर तरफ तराने से
अहले दिल उगायेंगी खाक से महोअंजुम
अब गुहर सुबक होगा जौ के एक दाने से
मनचले बुनेंगे अब रंगों-बू के पैराहन
अब संवर के निकलेगा हुस्न कारखाने से।[10]

उर्दू में तरक्कीपसंद कवियों की एक लम्बी सूची है। उपर्युक्त कवियों के अलावा और भी नामी शायर हैं। सागर निजामी, मुईन 'tTc?h', अहमद नदीम कासिमी, शमीम करहानी, जगन्नाथ 'आजाद', अखतर अन्सारी, गुलाम रब्बानी 'ताबाँ' की प्रगतिशील चेतना और साहित्य को भूला नहीं जा सकता है। हिन्दी के प्रगतिशील साहित्यकारों की तरह उर्दू कवियों ने भी देश की राजनीतिक-सामाजिक चेतना को दूर-दूर तक प्रभावित किया है। आज भी वे साहित्य की विचारधारा को गति दे रहे हैं।

संदर्भ सूची:-

1. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक- सैयद एहतेशाम हुसैन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, चौथा संस्करण-2020, पृष्ठ सं0- 232
2. प्रगतिशील 'वसुधा' अक्टू-दिस0 2005, संपादक- कमला प्रसाद, प्रगतिशील लेखक संघ प्रकाशन, पृ0 सं0- 224
3. गुले-नगमा, 'फिराक' गोरखपुरी, रूपान्तर- डॉ0 जाफर रजा, लोक भारती पेपर बैक्स, संस्करण- 2008, पृ0- 180
4. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0- 224
5. प्रगतिशील वसुधा - पृ0- 147
6. प्रतिनिधि कविताएँ, फैज अहमद 'फैज', राजकमल प्रकाशन, संस्करण- 2022, पृ0- 27
7. प्रगतिशील वसुधा - पृ0- 87
8. कैफी आजमी, प्रकाशक- राजपाल, संस्करण 2018, पृ0- 29
9. वही - पृ0 सं0- 122
10. मजरूह सुल्तानपुरी, संपादक- प्रकाश पंडित, प्रकाश पंडित, प्रकाशक- राजपाल, 2018, पृ0 सं0- 9-11

पर्यटन के पर्यावरणीय प्रभावः भारत के संदर्भ में

डॉ० शिव कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल, राजेन्द्र प्रसाद पी 0जी0 कॉलेज, मीरगंज (बरेली)

सार

पर्यटन आधुनिक समय में मनुष्य के स्थानिक व्यवहार के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक बन गया है। विभिन्न प्रकार की पर्यटन गतिविधियाँ प्राकृतिक और निर्मित पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। पर्यटन और पर्यावरण के बीच एक जटिल संबंध है। तथ्य यह है कि पर्यटन का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति पर निर्भर करता है जिसमें पहाड़, समुद्र तट, रेगिस्तान, जंगल, वन्य जीवन, जल-निकाय और द्वीप आदि शामिल हैं। पर्यटन का विकास निस्संदेह हमारे सहित कई विकासशील देशों की एक प्रमुख चिंता है। पर्यटन सबसे तेजी से बढ़ते सेवा क्षेत्र के रूप में उभर रहा है। पारिस्थितिक तंत्र और संस्कृतियों के संरक्षण के लिए पर्यटन का उपयोग। यह प्रकृति पर निर्भर पर्यटन है। पारिस्थितिक संतुलन और पृथ्वी की जीवित प्रणालियों के संरक्षण के लिए, जीव, वनस्पति और प्राणि विज्ञान महत्व और वन्य जीवन संरक्षण आवश्यक है। अध्ययन का उद्देश्य भारत में पर्यटन के पर्यावरणीय प्रभावों का पता लगाना है, जिसमें जलवायु, स्थलाकृति, वनस्पति और जीव, क्षेत्र के आर्थिक विकास का स्तर, आय के प्रमुख स्रोत, रोजगार, सतत विकास, जैविक विविधता और पर्यावरण संरक्षण हैं।

मुख्य-शब्दः वनस्पति, जीव, स्थलाकृति, भारत, विविधता

परिचय

पर्यटन के पर्यावरणीय प्रभावों में जल, वातावरण, वनस्पति, मानव बस्ती और स्मारक शामिल हैं। पर्यटन दुनिया के सबसे तेजी से बढ़ते उद्योगों में से एक है और साथ ही कई विकासशील देशों के लिए विदेशी मुद्रा की कमाई और रोजगार का प्रमुख स्रोत है और यह तेजी से प्राकृतिक पर्यावरण पर ध्यान केंद्रित कर रहा है। .विरासत और पर्यावरण का संरक्षण सतत् विकास का एक हिस्सा है। प्राकृतिक क्षेत्रों की जिम्मेदार यात्रा के रूप में ईको पर्यटन जो स्थानीय लोगों द्वारा निर्धारित किया जाता है, उनकी भलाई को बनाए रखता है और पर्यावरण का संरक्षण करता है। सर्वेक्षण, सम्मेलन परियोजना, कानून, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, शिक्षा और जागरूकता सभी सरकार की वन्यजीव रणनीति के अभिन्न अंग से साइट विशिष्ट और मुद्दे निजी और सार्वजनिक इंटरफेस के साथ-साथ मूल्यांकन और प्रलेखन निर्दिष्ट करते हैं और नियामक उपाय हमारे वन्य जीवन और प्राकृतिक आवासों के लिए मूल्य पैदा करेंगे। पर्यटन को आम तौर पर पैसा बनाने वाले उद्योग के रूप में देखा जाता है। वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 वन्य जीवन संरक्षण और लुप्तप्राय प्रजातियों के संरक्षण के सभी पहलुओं को नियंत्रित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। भारत में पर्वतीय पर्यटन के विकास की अच्छी संभावनाएं हैं। पहाड़ी पर्यावरण पर पर्यटन के हानिकारक प्रभावों को कम करने के प्रयास किए जाने चाहिए। पर्वतीय पर्यटन को सावधानीपूर्वक व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। महत्वपूर्ण अवसंरचनात्मक क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करने वाली एक उचित योजना इसकी क्षमता का उपयोग करने में एक लंबा रास्ता तय करेगी।[1]

पर्यटन विशेष रूप से, समुद्री और तटीय पर्यटन दुनिया के सबसे बड़े उद्योग के भीतर सबसे तेजी से बढ़ने वाला क्षेत्र है। फिर भी पर्यटन के आर्थिक और पर्यावरणीय महत्व के बारे में बढ़ती जागरूकता के बावजूद, यह हाल के वर्षों में ही हुआ है, यह वैज्ञानिक शोध में सामने आए हैं।[2]

पर्यटन से नकारात्मक प्रभाव तब होते हैं जब आगंतुक उपयोग का स्तर परिवर्तन की स्वीकार्य सीमाओं के भीतर इस उपयोग से निपटने के लिए पर्यावरण की क्षमता से अधिक होता है। अनियंत्रित पारंपरिक पर्यटन दुनिया भर के कई प्राकृतिक क्षेत्रों के लिए संभावित खतरे पैदा करता है। यह एक क्षेत्र पर भारी दबाव डाल सकता है और मिट्टी के कटाव, प्रदूषण में वृद्धि, समुद्र में निर्वहन, प्राकृतिक आवास की हानि, लुप्तप्राय प्रजातियों पर दबाव में वृद्धि और जंगल की आग की चपेट में आने जैसे प्रभाव पैदा कर सकता है। यह अक्सर जल संसाधनों पर दबाव डालता है, और यह स्थानीय आबादी को महत्वपूर्ण संसाधनों के उपयोग के लिए प्रतिस्पर्धा करने के लिए मजबूर कर सकता है।

प्राकृतिक संसाधनों की कमी

पर्यटन विकास प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव डाल सकता है जब यह उन क्षेत्रों में खपत बढ़ाता है जहां संसाधन पहले से ही दुर्लभ हैं।

जल संसाधन

पानी, और विशेष रूप से ताजा पानी, सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों में से एक है। पर्यटन उद्योग आमतौर पर होटल, स्विमिंग पूल, गोल्फ कोर्स और पर्यटकों द्वारा पानी के व्यक्तिगत उपयोग के लिए जल संसाधनों का अत्यधिक उपयोग करता है। इसके परिणामस्वरूप पानी की कमी और पानी की आपूर्ति में गिरावट हो सकती है, साथ ही अपशिष्ट जल की अधिक मात्रा उत्पन्न हो सकती है।

भूमध्यसागर जैसे शुष्क और गर्म क्षेत्रों में पानी की कमी का मुद्दा विशेष रूप से चिंता का विषय है।

गर्म जलवायु और छुट्टियों के दौरान पर्यटकों द्वारा घर की तुलना में अधिक पानी का उपभोग करने की प्रवृत्ति के कारण, उपयोग की जाने वाली राशि एक दिन में 440 लीटर तक हो सकती है। यह औसत स्पेनिश शहर के निवासियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले से लगभग दोगुना है।[3]

गोल्फ कोर्स का रखरखाव भी ताजे जल संसाधनों को कम कर सकता है। हाल के वर्षों में गोल्फ पर्यटन की लोकप्रियता में वृद्धि हुई है और गोल्फ कोर्स की संख्या तेजी से बढ़ी है। गोल्फ कोर्स को हर दिन भारी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है और पानी की अत्यधिक निकासी के अन्य कारणों के साथ, इसके परिणामस्वरूप पानी की कमी हो सकती है। यदि पानी कुओं से आता है, तो अत्यधिक पम्पिंग से भूजल में खारा प्रवेश हो सकता है। गोल्फ रिसॉर्ट्स अधिक से अधिक अक्सर संरक्षित क्षेत्रों या उन क्षेत्रों में स्थित होते हैं जहां संसाधन सीमित होते हैं।

स्थानीय संसाधन

पर्यटन ऊर्जा, भोजन और अन्य कच्चे माल जैसे स्थानीय संसाधनों पर भारी दबाव पैदा कर सकता है जो पहले से ही कम आपूर्ति में हो सकते हैं। इन संसाधनों का अधिक से अधिक निष्कर्षण और परिवहन उनके शोषण से जुड़े भौतिक प्रभावों को बढ़ा देता है। उद्योग के मौसमी चरित्र के कारण, कई गंतव्यों में कम मौसम की तुलना में उच्च मौसम में दस गुना अधिक निवासी होते हैं। पर्यटकों की अक्सर उच्च अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए इन संसाधनों पर रखा जाता है (उचित ताप, गर्म पानी, आदि)।[4]

भूमि अवक्रमण

महत्वपूर्ण भूमि संसाधनों में खनिज, जीवाश्म ईंधन, उपजाऊ मिट्टी, वन, आर्द्रभूमि और वन्य जीवन शामिल हैं। पर्यटन और मनोरंजन सुविधाओं के बढ़ते निर्माण ने इन संसाधनों और प्राकृतिक परिदृश्यों पर दबाव बढ़ा दिया है। पर्यटक सुविधाओं के प्रावधान में प्राकृतिक संसाधनों, नवीकरणीय और गैर-नवीकरणीय दोनों पर प्रत्यक्ष प्रभाव आवास और अन्य बुनियादी ढांचे के प्रावधान के लिए भूमि के उपयोग और निर्माण सामग्री के उपयोग के कारण हो सकता है।

वन अक्सर ईंधन की लकड़ी के संग्रह और भूमि की सफाई के कारण वनों की कटाई के रूप में पर्यटन के नकारात्मक प्रभावों को झेलते हैं। उदाहरण के लिए, नेपाल और पहले से ही वनों की कटाई के प्रभाव से पीड़ित क्षेत्र में एक ट्रेकिंग पर्यटक एक दिन में चार से पांच किलोग्राम लकड़ी का उपयोग कर सकता है।[5]

प्रदूषण

पर्यटन किसी भी अन्य उद्योग के समान ही प्रदूषण का कारण बन सकता है: वायु उत्सर्जन, शोर, ठोस अपशिष्ट और कचरा, सीवेज, तेल और रसायनों की रिहाई, यहां तक कि वास्तु/दृश्य प्रदूषण भी।

वायु प्रदूषण और शोर

पर्यटकों की बढ़ती संख्या और उनकी अधिक गतिशीलता के जवाब में हवाई, सड़क और रेल द्वारा परिवहन लगातार बढ़ रहा है। इंटरनेशनल सिविल एविएशन ऑर्गनाइजेशन ने बताया कि दुनिया भर में अंतरराष्ट्रीय हवाई यात्रियों की संख्या 1972 में 88 मिलियन से बढ़कर 1994 में 344 मिलियन हो गई। हवाई परिवहन में इस वृद्धि का एक परिणाम यह है कि पर्यटन अब हवाई यात्रा का 60 प्रतिशत से अधिक हिस्सा है और इसलिए वायु उत्सर्जन के एक महत्वपूर्ण हिस्से के लिए जिम्मेदार है। एक अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि एक एकल ट्रान्साटलांटिक वापसी उड़ान अन्य सभी स्रोतों (प्रकाश, 2 हीटिंग, कार का उपयोग, आदि) द्वारा उत्पादित सीओ उत्सर्जन का लगभग आधा उत्सर्जन करती है, जो प्रति वर्ष एक औसत व्यक्ति द्वारा खपत होती है।[6]

ऊर्जा उत्पादन और उपयोग से परिवहन उत्सर्जन और उत्सर्जन अम्लीय वर्षा, ग्लोबल वार्मिंग और फोटोकैमिकल प्रदूषण से जुड़े हैं। पर्यटक परिवहन से वायु प्रदूषण का वैश्विक स्तर पर प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से परिवहन ऊर्जा उपयोग से संबंधित कार्बन डाइऑक्साइ उत्सर्जन से। और यह 2 गंभीर स्थानीय वायु प्रदूषण में योगदान कर सकता है। इनमें से कुछ प्रभाव पर्यटन गतिविधियों के लिए काफी विशिष्ट हैं। उदाहरण के लिए, विशेष रूप से बहुत गर्म या ठंडे देशों में, टूर बसें अक्सर घंटों के लिए अपनी मोटरों को चालू छोड़ देती हैं जबकि पर्यटक भ्रमण के लिए बाहर जाते हैं क्योंकि वे आराम से वातानुकूलित बस में वापस जाना चाहते हैं।[7]

हवाई जहाज, कारों और बसों के साथ-साथ मनोरंजक वाहनों जैसे स्नोमोबाइल और जेट स्की से ध्वनि प्रदूषण आधुनिक जीवन की एक समस्या है। मनुष्यों के लिए झुंझलाहट, तनाव और यहां तक कि श्रवण हानि पैदा करने के अलावा, यह वन्यजीवों के लिए संकट का कारण बनता है, विशेष रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में।

ठोस अपशिष्ट और कचरा

पर्यटक गतिविधियों की उच्च सांद्रता और आकर्षक प्राकृतिक आकर्षण वाले क्षेत्रों में, अपशिष्ट निपटान एक गंभीर समस्या है और अनुचित निपटान प्राकृतिक पर्यावरण, नदियों, प्राकृतिक क्षेत्रों और सड़कों के किनारे का एक प्रमुख विध्वंसक हो सकता है। उदाहरण के लिए, कैरेबियन में क्रूज जहाजों से हर साल 70,000 टन से अधिक कचरे का उत्पादन होने का अनुमान है। ठोस अपशिष्ट और कूड़ा करकट पानी और तटरेखा के भौतिक स्वरूप को खघ्राब कर सकते हैं और समुद्री जानवरों की मृत्यु का कारण बन सकते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में ट्रेकिंग करने वाले पर्यटक भारी मात्रा में कचरा उत्पन्न करते हैं। अभियान के दौरान पर्यटक अपने पीछे अपना कचरा, ऑक्सीजन सिलेंडर और यहां तक कि शिविर लगाने के उपकरण भी छोड़ जाते हैं। इस तरह की प्रथाएं विकसित दुनिया के सभी विशिष्ट कचरे के साथ पर्यावरण को खराब करती हैं, उन दूरदराज के क्षेत्रों में जहां कुछ कचरा संग्रह या निपटान सुविधाएं हैं।[8]

मल

होटल, मनोरंजन और अन्य सुविधाओं के निर्माण से अक्सर सीवेज प्रदूषण में वृद्धि होती है।

अपशिष्ट जल पर्यटकों के आकर्षण के आसपास के समुद्रों और झीलों को प्रदूषित करता है, वनस्पतियों और जीवों को नुकसान पहुँचाता है। सीवेज अपवाह प्रवाल भित्तियों को गंभीर नुकसान पहुंचाता है क्योंकि इसमें बहुत सारे पोषक तत्व होते हैं और यह शैवाल के विकास को उत्तेजित करता है, जो फिल्टर-फीडिंग कोरल को कवर करते हैं, जीवित रहने की उनकी क्षमता में बाधा डालते हैं। लवणता और पारदर्शिता में परिवर्तन के तटीय वातावरण पर व्यापक प्रभाव पड़ सकते हैं। और सीवेज प्रदूषण से इंसानों और जानवरों के स्वास्थ्य को खतरा हो सकता है।[9]

सौंदर्यबोधक प्रदूषण

अक्सर पर्यटन अपनी संरचनाओं को गंतव्य की प्राकृतिक विशेषताओं और स्वदेशी वास्तुकला के साथ एकीकृत करने में विफल रहता है। असमान डिजाइन के बड़े रिसॉर्ट प्राकृतिक वातावरण में जगह से बाहर दिख सकते हैं और हो सकता है

भारत में पर्यटन का पर्यावरण प्रभाव

(क) वन्य जीवः- वन्य जीवों के प्रबंधन घटक

(1) सर्वेक्षण और प्रलेखन।
(2) संरक्षण परियोजनाएँ।
(3) विधान और अधिनियमन।
(4) अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन।
(5) वन्यजीव पर्यटन
(6) शिक्षा और जागरूकता पैदा करना।
(7) एनजीओ और लोगों की भागीदारी।
(8) राष्ट्रीय वन्यजीव कार्य योजना (एनडब्ल्यूएपी):- इसका गठन अक्टूबर 1982 को हुआ था

कार्य योजना का उद्देश्य हमारी समृद्ध विरासत को संरक्षित करना है।

- संरक्षित क्षेत्रों के प्रतिनिधि नेटवर्क की स्थापना।
- संरक्षित क्षेत्रों का प्रबंधन और आवास बहाली।
- बहुउपयोगी क्षेत्रों में वन्यजीव संरक्षण।
- लुप्तप्राय और संकटग्रस्त प्रजातियों का पुनर्वास।
- बंदी प्रजनन प्रोग्रामर।
- वन्यजीव शिक्षा और व्याख्या।
- अनुसंधान और निगरानी।
- घरेलू विधान और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन।
- स्वैच्छिक संगठनों/निकायों के साथ सहयोग

(ख) द्वीप और समुद्र तटः-

पर्यटन स्थलों के रूप में द्वीपों और समुद्र तटों का चयन इस प्रकार है:-

(1) सामान्य विश्राम
(2) तीर्थयात्रा
(3) पानी और रेत से प्यार
(4) प्रकृतिवादी वनस्पतिशास्त्री और प्राणी विज्ञानी
(5) पानी के खेल

(ग) पहाड़ियाँः-

क) समर रिट्रीट - अपनी जलवायु और भू-आकृतिक स्थिति के साथ वे मैदानी इलाकों की चिलचिलाती गर्मी से आदर्श समर रिट्रीट प्रदान करते हैं।

ख) प्राकृतिक परिवेश- विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों का संगम; पहाड़ियाँ, जंगल, बर्फ, चट्टानें और राहत और पारिस्थितिक विशेषताएं प्रकृतिवादियों, जैव-वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, कवियों, दूरदर्शी, फोटोग्राफरों को आकर्षित करती हैं।

ग) तीर्थाटन केंद्र- कुछ हिल स्टेशन प्रमुख तीर्थस्थल भी होते हैं और इस प्रकार भारी पर्यटक यातायात को आकर्षित करते हैं। जैसे, वैष्णो देवी, अमरनाथ, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री।

घ) पर्वतीय खेल- जैसे लेह में पर्वतारोहण ट्रेकिंग, स्कीइंग, आइस स्केटिंग (कुफरी पटनीटॉप की तरह), हेलीकॉप्टर स्कीइंग, रिवर राफ्टिंग (मनाली की तरह), ग्लाइडिंग आदि, खेल के प्रति उत्साही लोगों को आकर्षित करते हैं।

ङ) वनस्पति और जीव विविधता- वन्य जीवन और पौधों की प्रजातियों की विविधता उन्हें वन्यजीव प्रेमियों के लिए आदर्श स्थान बनाती है। बायोप्रोस्पेक्टर देर से एक महत्वपूर्ण पर्यटक घटक बन गए हैं। नंदा देवी अभयारण्य होगा और उदाहरण।

च) साहसी और विविधता- पहाड़ी इलाके अक्सर कई साहसी या खोजकर्ता को आकर्षित करते हैं। सफर का अनुराग पर्यटक यातायात का एक छोटा सा हिस्सा है।

छ) विविध- कारकों में काम के बाद मनोरंजन अवकाश, दोस्तों, रिश्तेदारों, हनीमून आदि से मिलने की इच्छा शामिल होगी।

पर्यावरणीय प्रभाव:-

विभिन्न प्रकार की पर्यटन गतिविधियाँ प्राकृतिक और निर्मित पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। पर्यटन और पर्यावरण के बीच एक जटिल संबंध है। तथ्य यह है कि पर्यटन का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति पर निर्भर करता है: पहाड़, समुद्र तट, रेगिस्तान, जंगल, वन्य जीवन, जल-निकाय।

अध्ययन का निष्कर्ष

भारत भारत के प्राकृतिक और सांस्कृतिक पर्यावरण की विविधता को बनाए रखने और बनाए रखने में मदद करता है। भारत में पर्यटन उद्योग बढ़ रहा है और यदि इसमें रोजगार पैदा करने और बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित करने की विशाल क्षमता है। पर्यटन के पर्यावरण प्रभावों में वन्य जीवन, समुद्र तट और द्वीप, पहाड़ियां और पर्वत शामिल हैं। गंतव्य की यात्रा में जहां वनस्पति, जीव और सांस्कृतिक विरासत हैं वहीं पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए आयुर्वेद, योग, प्राकृतिक स्वास्थ्य रिसॉर्ट और हिल स्टेशन हैं।

संदर्भ

1. कुमार कपिल और नीना राव (2001) मास्टर्स इन टूरिज्म मैनेजमेंट IGNCU नई दिल्ली पृ. 108 - 115।
2. वही, पृ. 116
3. माउफर्थ मार्टिन और लैन मंट (1998) "पर्यटन और स्थिरता, तीसरी दुनिया में नया पर्यटन", लंदन।
4. विक्टर टीसी मिडिल टन, (0223), "सस्टेनेबल टूरिज्म", ऑक्सफोर्ड।
5. जे क्रिस्टोफर होलोवे (0232), "पर्यटन का व्यवसाय" लंदन।
6. जौहर रजनी चटवाल (2009) "पर्यावरण विज्ञान एक दृष्टिकोण" नई दिल्ली।
7. जोसेफ बेनी (0202) "पर्यावरण अध्ययन" टाटा एमसी क्रू हिल्स, नई दिल्ली।
8. हॉल एम.सी. (2001), "ट्रेंड्स इन ओशन एंड कोस्टल टूरिज्म: द एंड ऑफ द लास्ट फ्रंटियर?", ओशन एंड तटीय प्रबंधन, 44, पृ. 601-618।
9. वही, पृ. 619

माइक्रोचिप्सः औद्योगिक क्रांति 4.0 का नींव एवं हृदय

डॉ० फूल चंद

प्रोफेसर, पीजीडीएवी कॉलेज, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली

समय के साथ जो देश आधुनिक तकनीक को नहीं अपनाता समय उसे पीछे छोड़कर आगे निकल जाता है। तीसरी औद्योगिक क्रांति के समय भारत इसका भुक्तभोगी रहा है। लेकिन आज हम गर्व से कह सकते हैं कि भारत चौथी औद्योगिक क्रांति (इंडस्ट्री फोर जीरो) में दुनिया को दिशा देने वाला है। रोजमर्रा के जिन कार्यों के लिए आमजन को पहले महीनों मेहनत करनी पड़ती थी, लाइने लगानी पड़ती थी, इस तरह की सभी लाइनों का समाधान भारत ने ऑनलाइन होकर कर दिया है। करोना महामारी के दौरान जब दुनिया की गतिविधियां लगभग ठप हो गई थी, भारत की डिजिटल इंडिया ने देश में एक अलग सामर्थ्य पैदा की तथा एक क्लिक पर देश के करोड़ों महिलाओं, किसानों, मजदूरों के बैंक खातों में हजारों करोड़ रुपए भेजे। एक देश एक राशन कार्ड के जरिए 80 करोड़ लोगों को मुफ्त राशन दिया गया। कोविन प्लेटफार्म से 200 करोड़ को कोवीड टिका की खुराक मुहैया कराई गई। आज आलम यह है कि दुनिया के डिजिटल लेनदेन का 40% हिस्सा अकेले भारत का होता है। सरकार ने अगले चार-पांच वर्षो में 15 से 20 लाख युवाओं के स्किलिंग, स्किलअप, रिस्किलिंग पर फोकस का निर्णय किया है। अंतरिक्ष, मैपिंग, ग एमिंग ,एनिमेशन आ दि जैसे सैकड़ों सेक्टरों में डिजिटल तकनीक से विस्तार की योजना है। इनस्पेस और नई ड्रोन नीति भारत की तकनीकी क्षमता को ऊंचाई देंगे। लगभग 300 अरब डॉलर के इलेक्ट्रॉनिक मैन्युफैक्चरिंग का लक्ष्य लिए भारत कार्य नीति पर कार्य कर रहा है। तभी तो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हाल ही में ललकार कर कहा है कि "भारत की मंशा अब चिप लेने वाले की नहीं बल्कि दुनिया को चीप देने वाला बनने की है।"

ज्ञात हो कि जिस तरह पहली औद्योगिक क्रांति में जीवाश्म ईंधन ने एक बड़ी भूमिका निभाई थी इसी तरह इंडस्ट्रियल क्रांति 4.0 में माइक्रोचिप्स का बहुत बड़ा योगदान होने वाला है। डाटा और कृत्रिम मेधा के जिस दौर में हम प्रवेश कर रहे हैं उसमें माइक्रोचिप्स महत्वपूर्ण होने वाला है। दुनिया ने जिस तेजी से तकनीकी विकास की राह पकड़ी है उसमें माइक्रोचिप्स की भूमिका अहम है। ऐसे में भविष्य को जीतने के लिए भारत को माइक्रोचिप्स के क्षेत्र में महारत हासिल करनी होगी। हालांकि भारत अभी भी आयात पर निर्भर है, लेकिन आने वाले दिनों में माइक्रोचिप के क्षेत्र में बढ़त बना लेता है तो दुनिया की कोई भी शक्ति भारत को आगे बढ़ने से नहीं रोक सकती।

माइक्रोचिप क्या है?

माइक्रोचिप एक खास तरह का पदार्थ है जिसमें विद्युत के सुचालक और कुचालक गुण होते हैं। इनका निर्माण सिलिकॉन से होता है। इसमें कुछ विशेष तरह की डंपिंग मिलाकर इसके गुणों में बदलाव लाया जाता है। चिप के जरिए ही डाटा की प्रोसेसिंग होती है। आज जो भी डिजिटल उपकरण हम देख रहे हैं उन सब में इसका इस्तेमाल होता है। कार से लेकर बेहतरीन इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस, स्मार्टफोन ,औद्योगिक रोबोट, डाटा सेंटर इसे संचालित हैं। हमारे दिन प्रतिदिन के जीवन में शामिल होता जा रहा यह चीप 24* 7 हमारा मनोरंजन भी करता है। निरंतर नवाचार के जरिए चिप्स में हो रही प्रगति से नए नए उत्पाद सामने आ रहे हैं। यहां तक कि एक परिवर्तित उद्योग खड़ा हो रहा है।

माइक्रोचिप नाखून के आकार का होता है, जिसमें अरबो ट्रांजिस्टर होते हैं, जिन्हें नैनोमीटर में मापा जाता है। एक नैनोमीटर 1 मीटर का अरब वा भाग या 1 मिली मीटर का 1000000 वां भाग होता है।

माइक्रोचिप मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं।

एक - लॉजिक चिप्स

लॉजिक चिप्स इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का मस्तिष्क हैं जो किसी कार्य को पूरा करने के लिए सूचना संसाधित करते हैं ।लॉजिक चिप्स में सीपीयू मूल चिप्स होते हैं लेकिन इसमें जीपीयू (ग्राफिकल प्रोसेसिंग यूनिट) एनपीयू (न्यूरल प्रोसेसिंग यूनिट) जैसे अन्य चिप्स भी होते हैं।

दूसरा- मेमोरी चिप्स

यह जानकारी स्टोर करते हैं जिसके दो संस्करण होते हैं पहला ड्राम (डायनेमिक रेंडम एक्सेस मेमोरी) जो डिवाइस के चालू होने पर डाटा को बचाते हैं और दूसरा नंद फ्लैश जो डिवाइस के बंद होने पर भी डाटा को बचाता है। चिप्स वर्चुअल रियलिटी और ऑनडिवाइस कृत्रिम मेधा (एआई) के साथ डाटा ट्रांसफर, 5G कनेक्टिविटी को सक्षम करते हैं। डीप लर्निंग में उपयोग की जाने वाली एल्गोरिदम से भी इसकी गति तेज होती है।

अनुमान है कि 2025 तक दुनिया प्रतिवर्ष 175 जेटा बाइट्स डाटा उत्पन्न करेगी जो कि मोटे तौर पर एक अरब टेराबाइट के बराबर होगी। तुलना के लिए यदि कोई डीवीडी पर 175 जेटा बाइट्स संग्रहित करता है तो डीवीडी का ढेर इतना अधिक होगा कि वह 222 बार पृथ्वी का चक्कर लगा सकेगा। रोबोटिक्स डाटा, कनेक्टिविटी, डीप लर्निंग, स्मार्ट उपकरणों की बढ़ती मांग माइक्रो चिप्स के महत्व को रेखांकित कर रही है। जो देश इसके उत्पादन और आपूर्ति पर शासन करेगा वह दुनिया में शक्तिशाली बनेगा। गत वर्ष माइक्रोचिप्स की बिक्री में 20% से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई है। एआई की नई औद्योगिक क्रांति 40 के तहत अगले एक दशक के अंत तक माइक्रोचिप्स का कारोबार 1 ट्रिलियन डॉलर से अधिक का होगा। आने वाले दिनों में विकास का 70% काम ऑटोमोटिव, कम्युनिकेशन डाटा स्टोरेज और वायरलेस तीन मुख्य उद्योगों द्वारा संचालित होने वाला है।

वर्तमान में एक देश के रूप में ताइवान के पास माइक्रोचिप्स की वैश्विक आपूर्ति का बड़ा हिस्सा है टीएसएमसी 54%, 7% पीएसएमसी 1%, बीआईएस एक प्रतिशत। दक्षिण कोरिया के सैमसंग के पास 17% जबकि चीन के पास 7% की बाजार हिस्सेदारी है। इजराइल की एक छोटी कंपनी टावर सेमीकंडक्टर की हिस्सेदारी भी 1% है।

भारत डिजिटल अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दे रहा है लेकिन चिप्स उद्योग में भारत का अभी कोई योगदान नहीं है। चीन और ताइवान के बीच बढ़ते तनाव से माइक्रोचिप की वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला को खतरा है। कोरोना महामारी के कारण माइक्रोचिप्स की आपूर्ति और मांग में आए अंतर से दुनिया भर के व्यवसायों को भारी नुकसान हुआ है। ऐसे में यही वह सही समय है जब भारत माइक्रोचिप के उद्योग में प्रवेश कर सकता है और कम से कम लागत में उच्च गुणवत्ता वाले चिप्स दुनिया को उपलब्ध करा सकता है। वर्तमान में भारत के पास इंजीनियरिंग प्रतिभाओं का एक बड़ा कार्य बल है। भारत के इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने आत्म निर्भरता के लिए 10 बिलियन अमेरिकी डॉलर का इंडिया सेमीकंडक्टर मिशन लॉन्च किया है। फिर भी माइक्रोचिप्स निर्माण में विश्व नेता के रूप में स्थापित होने के लिए कुछ और बड़ा सोचने की जरूरत है।भारत के पास लागत प्रभावी श्रम, समुद्री बंदरगाह, भू राजनीतिक रणनीतिक स्थान, इंजीनियरिंग प्रतिभा, जनशक्ति, टाटा जैसी बड़ी कंपनियों सहित शोध करने वाली छोटी मोटी कई अन्य कंपनियां यानि जरूरत की चीजें मौजूद हैं। ताइवान और इजरायल के साथ साझेदारी भी अच्छे मोड़ पर है। ऐसे में औद्योगिक क्रांति 4.0 के दौर में वैश्विक नेता बनने के लिए साहसिक लक्ष्य निर्धारित करने की आवश्यकता है। दुनिया आज चीन का एक स्थाई विकल्प तलाश रही है। ऐसे में भारत अपनी जोशीली युवा आबादी और अपने चरित्र मूल्य के दम पर नई इबारत लिखते हुए माइक्रोचिप्स उद्योग के जरिए विश्व नेता बन सकता है।

भारत की मूक आपात स्थिति - 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण

दीपशिखा नागवंशी

रिसर्च स्कॉलर, आर.जी.पी.जी. कॉलेज, मेरठ

सारांशः कुपोषण एक मूक संकट है जो भारत में बच्चों में बीमारी और मृत्यु दर के मुख्य कारणों में से एक है। भारत में, कम वजन वाले बच्चे हैं, भारत के ग्रामीण और शहरी समुदायों में 0 से 5 वर्ष की आयु के बच्चों में कम वजन से जुड़ी सामाजिक-जनसांख्यिकीय विशेषताओं की पहचान करने के लिए, वर्तमान अध्ययन शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों को देखता है। एक अनदेखी आपात स्थिति कुपोषण है, अल्पपोषण और अतिपोषण दोनों, गंभीर आहार की कमी से लेकर अत्यधिक मोटापे तक, कुपोषण माना जाता है। दुनिया भर में होने वाली सभी बच्चों की मौतों में से एक तिहाई से अधिक कुपोषण के कारण होती हैं। बढ़ती आबादी को उत्कृष्ट पोषण देना, विशेष रूप से जीवन के प्रारंभिक वर्षों के दौरान, बहुत अधिक ध्यान दिया गया है क्योंकि पोषण बच्चों के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। इच्छित स्वास्थ्य के लिए एक मूलभूत शर्त अच्छा पोषण है। अतिपोषण का मुख्य कारण जंक फूड है। जंक फूड को ऐसे भोजन के रूप में परिभाषित किया जाता है जो ऊर्जा में उच्च होता है और इसमें चीनी, वसा या नमक की मात्रा अधिक होती है लेकिन इसमें प्रोटीन, फाइबर, विटामिन या खनिजों की कमी होती है। कुपोषण एक ऐसा मुद्दा है जिस पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि राष्ट्र अपने आर्थिक और सामाजिक विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। भारत में कुपोषण की यह समीक्षा मौजूदा रुझानों और इस मुद्दे से निपटने के लिए किए जा रहे प्रयासों का विवरण देती है। यह महत्वपूर्ण कुपोषण मेट्रिक्स पर भारत के प्रदर्शन के साथ-साथ पिछले कुछ दशकों में शुरू की गई कई सरकारी पहलों और कार्यक्रमों की प्रभावशीलता या कमी का विश्लेषण करती है। संक्षेप में मामला यह है कि भारत की कुपोषण समस्या को कम करने के लिए राज्य सरकारों को एक समग्र और समन्वित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, अधिक शासन का प्रदर्शन करना चाहिए और नागरिक समाज को शामिल करना चाहिए।

मुख्य शब्दः छोटे बच्चे, जंक फूड, कुपोषण, कम वजन, पोषण शिक्षा, सरकारी योजना आदि।

प्रस्तावनाः बच्चे की वृद्धि और विकास भोजन पर निर्भर करता है। एक युवा को जीवित रहने के लिए पोषण की आवश्यकता होती है। उत्कृष्ट भोजन पौष्टिक होता है और अच्छे स्वास्थ्य के लिए उचित प्रकार का भोजन। इसमें कार्बनिक अवयव शामिल हैं जिन्हें शरीर को सामान्य रूप से विकसित करने और अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने की आवश्यकता होती है। अपने बच्चे के स्वास्थ्य के लिए, हमें अपने नियमित आहार में शामिल करने के लिए सही खाद्य पदार्थों का चयन करना चाहिए। हमारे समुदाय की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ और सांस्कृतिक मानक विकसित हो रहे हैं। इन विकासों के कारण हमारे बच्चों की खाने की आदतें भी बदल रही हैं। कई बच्चे बाहर से तैयार खाना खाने का आनंद लेते हैं। कुछ माता-पिता अपने बच्चों की खाने की आदतों को बदलने में भी हिचकिचाते हैं। वे स्वेच्छा से अपने शिशुओं को तैयार बाहरी भोजन प्रदान करने का खुलासा भी करते हैं।

आधुनिक दुनिया में छोटे बच्चों को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक स्वास्थ्य मुद्दों में से एक कुपोषण है। कुपोषण के रूप में जानी जाने वाली स्थिति को ऐसे भोजन के सेवन से लाया जाता है जो कैलोरी, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, प्रोटीन या खनिजों में या तो बहुत कम या बहुत अधिक होता है। यह अल्पपोषण या अतिपोषण की स्थिति है, जैसा कि महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की कमी या बहुतायत से दिखाया गया है। चाहे औद्योगिक दुनिया हो या अविकसित देश, बच्चों के बीच पोषण एक अत्यंत आवश्यक

मुद्दा बन गया है। भुखमरी के कारण आजकल बच्चे गंभीर शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, आध्यात्मिक और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से पीड़ित हैं। हालाँकि, एक गलत धारणा है कि बच्चों में कुपोषण मुख्य रूप से अविकसित देशों में बच्चों को प्रभावित करता है जहाँ भूख व्यापक है। खराब रहने की स्थिति, मॉल अवशोषण, अस्वास्थ्यकर जंक फूड की बहुतायत, और पोषण संबंधी शिक्षा तक पहुंच की कमी और स्वस्थ भोजन के बारे में जानकारी कुछ ऐसे चर हैं जो माता-पिता को खराब निर्णय लेने के लिए प्रेरित करते हैं। पोषण संबंधी कमियों और संबंधित स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों जैसे मोटापा, खराब वृद्धि और विकास, और बीमारी वाले बच्चों का अनुपात बहुत बढ़ गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि आम जनता को स्वस्थ खाने की आदतों के लाभों और कुपोषण के प्रभावों, विशेष रूप से छोटे बच्चों में, दोनों के बारे में अच्छी तरह से सूचित किया जाता है, यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह संबंधित एजेंसियों के माध्यम से एक राष्ट्रीय शिक्षा रणनीति के माध्यम से पोषण शिक्षा को लागू करे। और विभाग। वृद्धि और विकास पर प्रभाव को देखते हुए, कुपोषण बच्चों में एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है। यह एक स्वस्थ शरीर के रखरखाव के लिए आवश्यक विटामिन, प्रोटीन, खनिज लवण, और अन्य सहित महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न स्थिति है। एक निश्चित पोषक तत्व वाले बच्चे का अल्पपोषण या अधिक पोषण दोनों ही कुपोषण का कारण बन सकते हैं। इसलिए, विटामिन की कमी के बजाय, जो अविकसित देशों में आम हैं, आज अमीर देशों में अधिकांश बच्चे खाद्य असंतुलन के कारण कुपोषण से ग्रस्त हैं।

प्रत्येक बच्चे के पास पर्याप्त भोजन की पहुंच होनी चाहिए, और माता-पिता और बच्चे यह तय कर सकते हैं कि यह अधिकार मिला है या नहीं। कुपोषण अक्सर इन बच्चों के सपनों को छीन लेता है और उनके भविष्य को अनिश्चित बना देता है। कई निम्न और मध्यम आय वाले देशों में बाल मृत्यु दर के सबसे बड़े अंतर्निहित कारण के रूप में, यह पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य चिंता बनी हुई है। बच्चे अपने विकास के वर्षों के दौरान उच्च कैलोरी आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप मैक्रो- और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लिए विशेष रूप से अतिसंवेदनशील होते हैं। कम वजन, स्टंटिंग, एडिमा के साथ या बिना वेस्टिंग (पहले क्रमशः मरास्मस और क्वाशियोरकोर के रूप में जाना जाता था), और यहां तक कि मृत्यु दर भी पांच साल से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण के परिणाम हैं। गरीबी, पारिवारिक अस्थिरता, खराब पर्यावरणीय स्वच्छता, दोषपूर्ण दूध पिलाने की प्रथाएं, निरक्षरता, अज्ञानता, परिवार का बड़ा आकार और रोकथाम योग्य संक्रमण कुपोषण के लिए जिम्मेदार मुख्य कारक हैं। इसके आधार पर, कुपोषण एक आहार की कमी है जिसका किसी के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कुपोषण अक्सर उन युवाओं से जुड़ा होता है जो उचित खाद्य पदार्थों का पर्याप्त सेवन नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह तब हो सकता है जब बच्चे गलत खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में खाते हैं। निम्नलिखित बाल कुपोषण के चार मुख्य कारणों को सूचीबद्ध करता है:

- अपर्याप्त आहार गुणवत्ता।
- मातृ स्वास्थ्य मुद्दे।
- स्थिति सामाजिक आर्थिक।
- संघर्ष और युद्ध।
- जंक फूड की लोकप्रियता।
- स्वस्थ आहार की अज्ञानता।
- पोषक तत्वों और पोषण के बारे में जानकारी का अभाव।

एक खराब आहार बचपन के कुपोषण में योगदान दे सकता है, सभी उम्र के बच्चे कुपोषण से पीड़ित हो सकते हैं, लेकिन छोटे बच्चे अतिसंवेदनशील होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कुपोषण को वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए सबसे गंभीर खतरे के रूप में पहचाना गया है। 2019 में पांच साल से कम उम्र के 5.2 मिलियन बच्चों की मृत्यु का अनुमान लगाया गया था, जिनमें से अधिकांश रोकथाम योग्य और उपचार योग्य कारणों से थे। इन मौतों में से 1.5 मिलियन एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों में और 1.3 मिलियन एक से चार वर्ष की आयु के बच्चों में हुईं। शेष 2.4 मिलियन मौतें सभी नवजात शिशुओं (28 दिनों से कम उम्र) की थीं। पांच साल से कम उम्र के बच्चों में समय से पहले जन्म की समस्याएं, जन्म के समय श्वासावरोध/आघात, निमोनिया, जन्मजात विकृतियां, दस्त और मलेरिया मृत्यु के प्रमुख कारण हैं। टीकाकरण, उचित पोषण, सुरक्षित पानी और भोजन, और आवश्यक होने पर एक योग्य स्वास्थ्य पेशेवर द्वारा गुणवत्ता देखभाल जैसे सरल, किफायती उपायों तक पहुंच के साथ इन सभी स्थितियों से बचा जा सकता है या प्रबंधित किया जा सकता है। कुपोषित बच्चे जानलेवा बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

चिरकालिक कुपोषण या स्टंटिंग, जो तब होता है जब अपर्याप्त पोषण, देखभाल, या रहने की स्थिति के कारण बच्चों का वजन उनकी उम्र के हिसाब से कम होता है, बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास पर गहरा और लंबे समय तक प्रभाव डाल सकता है।

साभार: अमर उजाला हिंदी न्यूज लाइव

बच्चों में कुपोषण मातृ स्वास्थ्य के खराब होने का भी परिणाम हो सकता है, बच्चे के जीवन के पहले 1,000 दिन – एक महिला की गर्भावस्था की शुरुआत से लेकर बच्चे के दूसरे जन्मदिन तक – उस बच्चे के स्वास्थ्य के लिए अवसर की सबसे बड़ी खिड़की का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिन गर्भवती महिलाओं को कम पोषण मिलता है उन्हें जन्म देने में परेशानी हो सकती है। क्योंकि उनकी माताएँ कुपोषित होती हैं, बहुत से बच्चे छोटे आकार के पैदा होते हैं। गंभीर रूप से कुपोषित माताओं को अपने बच्चों को पालने में कठिनाई हो सकती है। हम जानते हैं कि बच्चे के जीवन के पहले छह महीनों तक स्तनपान कराने से दीर्घकालिक स्वास्थ्य लाभ मिलते हैं। हालाँकि, ये स्वास्थ्य लाभ किसी बच्चे को नहीं दिए जा सकते हैं यदि कोई महिला स्तनपान कराने के लिए बहुत कम है, जिससे बच्चे को कुपोषण का खतरा होता है। विकासशील दुनिया वह जगह है जहाँ यह विशेष रूप से सच है।

सामाजिक आर्थिक स्थिति और बाल कुपोषण के बीच संबंध, डब्ल्यूसीडी मंत्रालय की एक आरटीआई जांच के जवाब के अनुसार, भारत में 33 लाख से अधिक बच्चे कुपोषित हैं, और उनमें से आधे से अधिक महाराष्ट्र, बिहार और गुजरात के साथ गंभीर रूप से कुपोषित श्रेणी में आते हैं। सूची में सबसे ऊपर। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का अनुमान है कि 14 अक्टूबर, 2021 तक 15,46,420 (15.46 लाख/1.5 मिलियन) बच्चे होंगे जो मध्यम रूप से तीव्र कुपोषित (एमएएम) और 17,76,902 (17.76 लाख/1.7 मिलियन) गंभीर रूप से गंभीर रूप से कुपोषित हैं। कुपोषित (एसएएम), चिंता जताते हुए कहा कि कोविड महामारी गरीबों में सबसे गरीब लोगों के बीच स्वास्थ्य और पोषण संकट को और खराब कर सकती है। सरकार के अनुसार, कुल 33,23,322 (33.23 लाख/33 लाख) 34 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के आंकड़ों का संकलन है। आंकड़े पोशन ट्रैकर ऐप में दर्ज किए गए थे, जिसे पिछले साल वास्तविक समय में पोषण संबंधी परिणामों को ट्रैक करने के लिए एक शासन उपकरण के रूप में बनाया गया था। यहां तक कि अगर संख्याएं अपने आप में संबंधित हैं, तो पिछले नवंबर के आंकड़ों की तुलना में वे और भी अधिक हो जाते हैं। नवंबर 2020 और 14 अक्टूबर, 2021 के बीच एसएएम बच्चों की संख्या 9,27,606 (9.27 लाख) से बढ़कर 17,76 लाख हो गई, जो 91% की वृद्धि है।

युद्ध और संघर्ष बच्चों के कुपोषण को कैसे प्रभावित कर सकते हैं, हर पांच में से चार बच्चे जिनका विकास भूख के कारण रुका हुआ है, अब संघर्षग्रस्त देशों में रहते हैं, जहां शांतिपूर्ण वातावरण में रहने वाले बच्चों की तुलना में उनके कुपोषण का अनुभव होने की संभावना दोगुनी है।. सशस्त्र संघर्ष से स्कूल, चिकित्सा सुविधाएं, उपयुक्त आवास, स्वच्छ पानी और भोजन सभी नष्ट हो जाते हैं। इससे समुदायों के लिए युवाओं को एक ऐसी सेटिंग प्रदान करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है जो ध्वनि संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास को प्रोत्साहित करती है। माता-पिता आम तौर पर एक संघर्ष के दौरान अपने स्वयं के अस्तित्व पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं, क्योंकि वे अपने बच्चों पर होते हैं, जो अपने दम पर होने वाली दर्दनाक घटनाओं को समझने के लिए छोड़ दिए जाते हैं।

यह आरेख उन कारकों को दर्शाता है जो भारत की 5 वर्ष से कम आयु की आबादी में कुपोषण से महत्वपूर्ण रूप से जुड़े हुए हैं।

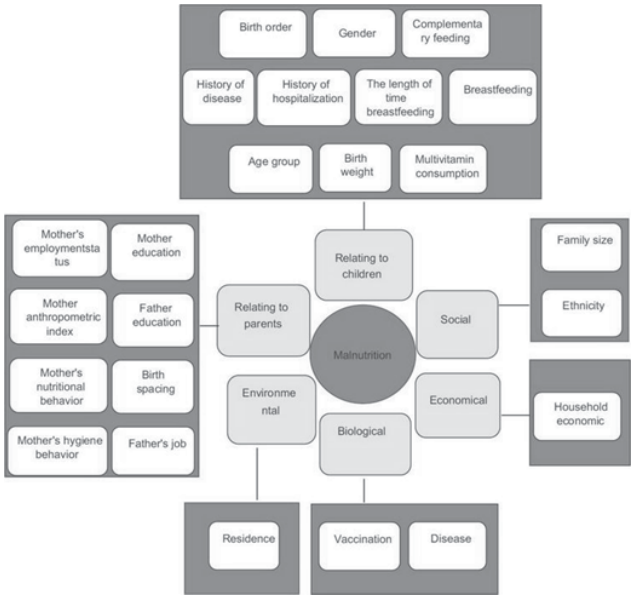

5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण से महत्वपूर्ण रूप से जुड़े कारक साभार: intechopen-com

भारत में कुपोषण से लड़ने के लिए महत्वपूर्ण पहलग और सरकार ने समस्या से निपटने के लिए योजना शुरू की

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना (आईसीडीएस) की छत्रछाया में, सरकार देश में कुपोषण के मुद्दे को दूर करने के लिए केंद्रित हस्तक्षेप के रूप में आंगनवाड़ी सेवाएं, प्रधान मंत्री मातृ वंदना योजना और किशोर लड़कियों के लिए योजना लागू करती है। राष्ट्रीय पोषण मिशन 8 मार्च, 2018 को, अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस, भारतीय प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने पोषण अभियान का अनावरण किया, जिसे राष्ट्रीय पोषण मिशन (एनएनएम) के रूप में भी जाना जाता है। एनएनएम बच्चों, गर्भवती माताओं और स्तनपान कराने वाली माताओं पर ध्यान केंद्रित करता है ताकि एनीमिया, स्टंटिंग, कुपोषण और जन्म के समय कम वजन वाले शिशुओं को कम किया जा सके। यह लाइव्स सेव्ड टूल, जिसे स्पैन्ज के नाम से जाना जाता है, का उपयोग करके मातृ, नवजात और बाल स्वास्थ्य के साथ-साथ पोषण के लिए बढ़ते हस्तक्षेपों पर डेटा एकत्र करता है। भारत में, शून्य भूख कार्यक्रम को 2017 में कृषि, पोषण और स्वास्थ्य को बढ़ाने के लक्ष्य के साथ शुरू किया गया था। यह जैव प्रौद्योगिकी उद्योग अनुसंधान सहायता परिषद (बीआईआरएसी), एमएस द्वारा स्थापित किया गया था। स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद। यह कार्यक्रम कृषि पद्धतियों में सुधार, बायोफोर्टिफाइड पौधों के लिए आनुवंशिक उद्यान बनाने, जीरो हंगर के लिए प्रशिक्षण और कृषि उपकरण बनाने पर केंद्रित है। भारत में अधिकांश किसानों के पास अपने परिवारों और बढ़ती आबादी को बनाए रखने के लिए पर्याप्त भूमि नहीं है। अधिकांश भोजन बर्बाद हो जाता है क्योंकि पर्याप्त भंडारण, परिवहन और विपणन बुनियादी ढांचा नहीं है। जीरो हंगर प्रोग्राम के लक्ष्यों में शामिल हैं, दो साल और उससे कम उम्र के बच्चों में स्टंटिंग को कम करना, साल भर भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करना और विश्वसनीय खाद्य प्रणाली स्थापित करना। ईट राइट इंडिया मूवमेंट भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया था कि भारतीय आबादी के पास पौष्टिक और सुरक्षित भोजन की पहुंच हो। कार्यक्रम एक सहयोगी, सशक्तिकरण-केंद्रित रणनीति और बढ़ती नियामक क्षमता पर आधारित है। ईट राइट इंडिया मूवमेंट समुदायों को स्वच्छ, सुरक्षित और स्थायी रूप से खाने के लिए प्रेरित करना चाहता है। चूँकि आहार संबंधी बीमारियाँ किसी को भी प्रभावित कर सकती हैं यदि उनकी खाने की आदतें खराब हैं, यह सभी आयु समूहों की सहायता करने का प्रयास करता है। परिवर्तन सुनिश्चित करने के लिए, आंदोलन रेस्तरां, खेतों, खाद्य उत्पादकों, मंत्रालयों और पेशेवर रसोइयों के

साथ मिलकर काम कर रहा है। मद्रास नगर निगम ने 1925 में मध्याह्न भोजन योजना की स्थापना की, जो पब्लिक स्कूलों में नामांकित विद्यार्थियों को गर्म दोपहर का भोजन परोसती है। बच्चों के बीच पोषण की स्थिति को बढ़ावा देने के साथ-साथ छात्र नामांकन, प्रतिधारण और उपस्थिति बढ़ाने के प्रयास में 1995 में इसे राष्ट्रीय स्तर पर शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम से 1.14 मिलियन स्कूलों में फैले लगभग 91.2 मिलियन बच्चों को लाभ होता है।

अध्ययन का उद्देश्य:

अध्ययन का लक्ष्य 0 से 5 वर्ष की आयु के बच्चों में कुपोषण का मूल्यांकन करना और माता-पिता में अज्ञानता और जागरूकता की कमी की पहचान करना है।

बाल विकास का माता-पिता की पोषण शिक्षा से गहरा संबंध है। यह दावा किया जाता है कि चूँकि माता-पिता बच्चे की देखभाल के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार होते हैं, विशेष रूप से खिलाना, घर पर भोजन उपलब्ध कराना और बीमारी से सुरक्षा के लिए पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना, शिक्षित माता-पिता अपने बच्चों को स्वस्थ तरीके से पाल सकते हैं। पोषण की समझ रखने वाले माता-पिता अपने बच्चों को संतुलित आहार खिलाकर स्वस्थ तरीके से उनका पालन-पोषण कर सकते हैं। कुपोषण से जुड़ी कई बीमारियाँ मुख्य रूप से माता-पिता द्वारा पोषण के मूल सिद्धांतों की अनदेखी के कारण होती हैं। कुपोषण भोजन की आवश्यकताओं के बारे में ज्ञान और जानकारी की कमी के कारण होता है, न कि वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण। क्योंकि एक व्यक्ति की पोषण स्थिति सीधे तौर पर पूरे समाज को प्रभावित करती है, जिस समाज में कुपोषण प्रचलित है, उसकी श्रम उत्पादकता और दक्षता कम है, और यह किसी भी तरह से आगे बढ़ने में असमर्थ है। किसी के शरीर के लिए खनिजों में पर्याप्त भोजन करने को उचित पोषण कहा जाता है। कुपोषण, जो किसी व्यक्ति के दैनिक आहार में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता के साथ-साथ पोषक तत्वों का उपयोग करने में लगातार अक्षमता की विशेषता है, शरीर में शारीरिक समस्याओं का कारण बनता है।

कुपोषण को रोकने और पोषण बढ़ाने की तकनीक-

कुपोषण से बचाव

- फल और सब्जियां प्रचुर मात्रा में।
- ढेर सारा कार्बोहाइड्रेट, जिसमें पास्ता, ब्रेड, चावल और आलू शामिल हैं।
- दूध जैसे डेयरी उत्पादों के लिए कुछ गैर-डेयरी विकल्प।
- कई प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों में मांस, मछली, अंडे और बीन्स शामिल हैं।
- आहार परिवर्तन और पूरक
- पौष्टिक, संतुलित आहार लेना।
- ऐसे खाद्य पदार्थों का सेवन करना जिन्हें अतिरिक्त पोषक तत्वों के साथ ष्फोर्टिफाइडष किया गया हो।
- भोजन के बीच में अल्पाहार।
- अत्यधिक कैलोरी वाले मादक पेय पदार्थों का सेवन करना।
- घर पर किराने की डिलीवरी प्राप्त करना।

पोषण के बारे में शिक्षा

- प्रतिदिन के भोजन में पोषक तत्वों की मात्रा।
- संस्कृति द्वारा स्वीकार किए जाने वाले कई सस्ते, स्थानीय रूप से उपलब्ध खाद्य पदार्थों का महत्व और पोषण मूल्य।
- विशेष रूप से छह महीने तक नर्सिंग का महत्व और कम से कम अगले दो वर्षों तक जारी रखना।
- सांस्कृतिक खिला रीति-रिवाजों और गुमराह मान्यताओं के कारण होने वाली हानि।
- सस्ती, आसानी से उपलब्ध स्थानीय सामग्री से स्वस्थ अतिरिक्त भोजन और उपयुक्त वीनिंग खाद्य पदार्थ बनाने की रेसिपी।

- शुद्ध आहार प्रोटीन मूल्य बढ़ाने के लिए आहार में पर्याप्त मात्रा में दूध, अंडे, मांस, या दालों को शामिल करने का महत्व।
- बीमार बच्चों और वयस्कों को खिलाने का महत्व।
- किचन गार्डन होने का मूल्य और लाभ।
- अपने बच्चों को प्रतिरक्षित करने और दैनिक जीवन में अच्छी स्वच्छता का अभ्यास करने का महत्व।

निष्कर्ष

ऐसे खाद्य पदार्थ जो कैलोरी में उच्च हैं लेकिन पोषक तत्वों में कम हैं, जिन्हें जंक फूड भी कहा जाता है, वे पहले से कहीं अधिक आसानी से उपलब्ध हैं। युवा लोगों को लगातार हानिकारक फास्ट फूड विकल्पों के साथ प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वे आजीवन खाने के पैटर्न विकसित कर सकते हैं जो कि बदलने के लिए चुनौतीपूर्ण हैं। इस निबंध में, हम मानव स्वास्थ्य पर फास्ट फूड खाने के तत्काल और दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभावों का समर्थन करने वाले वैज्ञानिक आंकड़ों की जांच करते हैं। जो बच्चे चीनी, संतृप्त वसा, नमक और कैलोरी से भरपूर आहार का सेवन करते हैं, उन्हें जीवन के शुरुआती दिनों में ही स्वास्थ्य संबंधी जोखिम हो सकते हैं। बच्चों के इस तरह के व्यंजन खाने के कई कारण हैं। अधिकांश फास्ट फूड उपभोक्ता इस प्रकार के व्यंजन खाने की कमियों से अवगत हैं। हालांकि, लोग अपने स्वास्थ्य के मुद्दों को ध्यान में रखे बिना फास्ट फूड का सेवन करते हैं। युवा पीढ़ी में फास्ट फूड की लत एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या का संकेत है। इस स्वास्थ्य समस्या के समाधान के लिए जल्द से जल्द आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। फास्ट फूड के विपणन को नियंत्रित करने के लिए कानून लागू करना बच्चों के फास्ट फूड की खपत को कम करने में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। इस क्षेत्र में बच्चों को फास्ट फूड के नकारात्मक प्रभावों से बचाया जा सकता है यदि लोग स्वस्थ खाने की आदतों के बारे में अधिक जागरूक हों। स्वस्थ खाद्य पदार्थों की उपलब्धता, उनके प्रचार, रोगों की निगरानी और आहार संबंधी आदतों से उनके जुड़ाव के साथ, स्वस्थ खाद्य पदार्थों की खपत को बढ़ाती है। स्वास्थ्य शिक्षा और स्कूल-आधारित पहलों से बच्चों की खाने की आदतों में भी सुधार किया जा सकता है। पौष्टिक भोजन प्राप्त करने के सर्वोत्तम तरीकों में से एक मूल्य में कमी है। कम वसा वाले स्नैक्स के लिए कम कीमतों और कम वसा वाले लेबल को जोड़ने से किशोर आबादी के सेवन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। मीडिया में फास्ट फूड और जंक फूड के विज्ञापन को सख्ती से नियंत्रित करने का समय आ गया है। मीडिया जैसे टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्रों और स्कूल के दोपहर के भोजन के कार्यक्रमों के माध्यम से स्वस्थ भोजन को बढ़ावा देने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। बच्चों को व्यापक रूप से उपलब्ध, उचित मूल्य और पोषक तत्वों से भरपूर घर का बना खाना खाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तैयार खाद्य पदार्थों पर शुल्क लगाने का स्वागत किया जाएगा। इस संबंध में, उत्पाद लेबल जो कैलोरी, अतिरिक्त चीनी, वसा, खनिज और प्रोटीन के संदर्भ में पोषण संबंधी जानकारी प्रदान करते हैं, एक सकारात्मक विकास हो सकता है। फास्ट फूड के प्रचार और बिक्री को सीमित करने के लिए कानून बनाना हमारे बच्चों की खपत को कम करने की दिशा में एक और कदम हो सकता है। हाल ही में कई स्कूली उम्र के बच्चों की पाठ्य पुस्तकों में प्यारे भोजन और पोषण अध्यायों को जोड़ना निश्चित रूप से इस दिशा में सकारात्मक कदम है। खतरनाक फास्ट फूड को सीमित करना। यह क्रिया हमारे बच्चों के माता-पिता को अपने बच्चों को संतुलित, स्वस्थ आहार खिलाने के लिए भी प्रोत्साहित करती है। जब जंक फूड के अपने उपभोग को सीमित करने की बात आती है, तो हम इसे व्यक्तिगत रूप से यह देखकर कर सकते हैं कि हम क्या खाते हैं या सरकारी नियमों और स्वास्थ्य संवर्धन पहलों के माध्यम से। सरकारें फास्ट फूड चेन को युवा लोगों के लिए विपणन से रोकने और फास्ट फूड व्यवसायों को स्वस्थ विकल्पों के साथ बदलने में हमारी सहायता करने के लिए आवश्यक हैं। शोधकर्ता स्वस्थ भोजन को बढ़ावा देने और इसके बारे में जनता को शिक्षित करने पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं, और वे युवा लोगों के साथ मिलकर समाधान तैयार कर सकते हैं। हम सभी दुनिया भर के युवाओं को ऐसे खाद्य पदार्थों को चुनने में मार्गदर्शन करने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं जो उनके वर्तमान और भविष्य के स्वास्थ्य को बढ़ाएंगे। अगर हम कई हफ्तों, महीनों या वर्षों तक मुख्य रूप से जंक फूड का सेवन करते हैं, तो हमारे स्वास्थ्य पर कई दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं। उच्च संतृप्त वसा, एक उदाहरण के रूप में एक प्रकार का वसा जो पशु स्रोतों से अक्सर खाया जाता है, जैसे कि गोमांस, पोल्ट्री और सूअर का मांस, जो आम तौर पर शरीर को "खराब" कोलेस्ट्रॉल का उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित करता है। रक्त में खराब कोलेस्ट्रॉल का उच्च स्तर, जो हृदय रोग का लक्षण हो सकता है, सेवन से निकटता से संबंधित है। प्रतिष्ठित अध्ययनों से पता चला है कि जो युवा लोग कम संतृप्त वसा का सेवन करते हैं, उनमें समग्र कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम होता है। इसके अतिरिक्त, जंक फूड खाने

से "हैप्पी हार्मोन," डोपामाइन का उत्पादन हो सकता है, जो हमें अच्छा महसूस कराता है। डोपामाइन एक हार्मोन है जो तब उत्पन्न होता है जब मस्तिष्क इनाम की आशा करता है और खाने और खरीदारी जैसे सुखद व्यवहार से जुड़ा होता है। यह हमें फिर से उसी तरह महसूस करने के लिए और अधिक जंक फूड खाने के लिए लालसा कर सकता है। बहुत अधिक जंक फूड के सेवन से लंबे समय में कब्ज और दांतों की बीमारी भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, शीतल पेय की उच्च चीनी और एसिड सामग्री इनेमल की सुरक्षात्मक परत को नष्ट कर सकती है, जिससे दाँत की बीमारी हो सकती है। जंक फूड में अक्सर फाइबर की कमी होती है, जिसका आंत के स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

भारतीय माता-पिता को बच्चे को खिलाने के बारे में उचित और पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता होती है। केवल बच्चे की थाली में पर्याप्त मात्रा में भोजन डालने से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है। बच्चे को सही अनुपात और सही भोजन दिया जाना चाहिए और इसे शिक्षा के प्रारंभिक स्तर पर लागू किया जाना चाहिए। कामकाजी माता-पिता अधिक तनावग्रस्त होते हैं और अपने बच्चे को खिलाने के आसान तरीकों की तलाश करते हैं। यहां तक कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी अस्वास्थ्यकर विचारों और भोजन को बढ़ावा देती हैं जिससे आम जनता को चपाती के बजाय कॉर्नफ्लेक्स खाने जैसे तर्कहीन विचार मिलते हैं। बच्चे चमकदार पैक और आकर्षक विज्ञापनों से आसानी से प्रभावित हो जाते हैं। सरकार को पोषण संबंधी जानकारी के बारे में लोगों को शिक्षित करने के लिए अभियान शुरू करना चाहिए ताकि वे स्वास्थ्य सहनशीलता के अनुसार उत्पाद का चयन कर सकें। निर्माताओं के लिए सख्त कानून, विनियम और सख्त निगरानी लागू की जानी चाहिए। खाद्य उद्योग में शामिल निर्माताओं और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अधिक जिम्मेदार होना चाहिए और स्पष्ट रूप से खाद्य उत्पादों के बारे में पूरी जानकारी प्रदान करनी चाहिए और उन उत्पादों के बारे में जानकारी के बारे में पारदर्शी होना चाहिए जो नमक और चीनी में उच्च हैं और बच्चों के उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

संदर्भ-

1. पार्टिसिपेंट मैनुअल फॉर फैसिलिटी बेस्ड केयर ऑफ सिवियर एक्यूट कुपोषण, मिनिस्ट्री ऑफ हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर, भारत सरकार, 2013।
2. वाई.एस.सचिन वगैरह। ग्रामीण और शहरी हरियाणा के पांच से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण का एक महामारी विज्ञान अध्ययन, पबमेड सेंट्रल 2016। डीओआई: 10.7860/जेसीडीआर/2016/16755.7193।
3. वाघ.एस.वी.एट.ऑल। महाराष्ट्र भारत, 2019 में 0-5 वर्ष के बच्चों की पोषण स्थिति और इसके निर्धारक। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन एंड पब्लिक हेल्थ। डीओआई:http://dx..doi.org/10.18203/2394-6040.ijcmph20195086
4. दास.सी.जे. बच्चों में फास्ट फूड की खपत: एक समीक्षा। (2015)। चिकित्सा और नैदानिक समीक्षा। डीओआई: 10.21767/2471-299X.1000001।
5. जिया.एस.एस. जंक फूड का स्वास्थ्य पर प्रभाव, 2022। युवा मन के मोर्चे।
6. सूरी.एस. पोषण अभियान: महामारी के समय में कुपोषण से लड़ना, 2020। ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन (https://www.orfonline.org/research/poshan-abhiyaan-fighting-malnutrition-in-the-time-of-a-pandemic/)
7. https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/children-reducing-mortality, 8 September 2020
8. https://economictimes.indiatimes.com/news/india/over-33-lakh-children-in-india- malnourished-17-7l-of-them-severely-malnourished-says-data/articleshow/87568902.cms.7 Nov 2021

सारण जिला के कृषकों तथा श्रमिकों में राजनैतिक चेतना का उद्‌भव एवं विकास (सन् 1917 से 1947 ई॰ तक)

डॉ॰ दिलीप कुमार साह

इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

अंग्रेजो द्वारा किए जाने वाले आर्थिक शोषण के स्वयप एवं विस्तार ने भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास को प्रभावित किया। एक तरफ आर्थिक शोषण से पीड़ित भारतीय जनता जागरूक होती जा रही थी, तत्कालीन राजनैतिक संबंधों में आमूल परिवर्तन लोकर अपने जीवन की परिस्थितियों में सुधार करना चाह रही थी तो दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद और इसके भारतीय पिट्ठू लगातार इन प्रयासों को दवाने और राजनैतिक एवं आर्थिक यथोस्थिति बनाए रखने का प्रयत्न कर रहे थे। बिहार प्रान्त के सारण जिला (वर्तमान छपरा, सिवान एवं गोपालगंज जिला) के कृषक एवं श्रमिक भी अखिल भारतीय राजनैतिक गतिविधियों के आलोक में अनवरत अपने राजनैतिक सजगता एवं गतिशीलता को प्रमाणित किए, परिणामत: भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सारण जिला के श्रमिकों एवं कृषकों की भूमिका सर्वोच्च कोटि की साबित हुई।

यद्यपि भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रारंभिक काल में सारण जिला के श्रमिकों एवं कृषकों की राजनैतिक सूझबुझ थोड़ा कम था परन्तु गतिशीलत स्वाधीनता संग्राम के साथ-साथ कृषकों एवं श्रमिकों का नवोदित राष्ट्रवाद विकसित होते गया। जिसने स्वतंत्रता संग्राम के लिए सारण जिला के श्रमिकों एवं कृषकों के बहुत ही बड़े जनसैलाब को ख़ा कर दिया तब स्वाधीनता संग्राम अधिकाधिक सशक्त एवं प्रभावी बना। आखिरकार इस विशाल जन-उभार के पीछे कौन-सी शक्तियां कार्यरत थी। किस बात ने इसे इतना विराट बना दिया। नि:संदेह यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनसामान्य के बीच एक ऐसा संघर्ष था जिसमें समझौते की गुंजाइश बहुत कह थी।[1]

सारण जिला के श्रमिकों को एवं कृषकों की एक सबसे बड़ी समस्या राजनैतिक चेतना और राष्ट्रवाद के प्रसार को लेकर था कि आखिर इस आम जनता के मानस पटल पर राजनैतिक चेतना का विकास किस प्रकार सभव हो। शहरों के साथ-साथ ग्रामीण परिवेश के भी पिछड़े एवं निरक्षर महिला एवं पुरुष समाज में भी राजनैतिक जागरूकता किस प्रकार पैदा किया जाए? इस प्रकार के अनेक अनुतरित प्रश्नों के लिए सन् 1917 ई॰ उपर्युक्त समय था जिसने सारण जिला के कृषकों एवं श्रमिकों के राष्ट्रवादी एवं राजनैथ्तक विचारधारा के विकास हेतु समस्त अनुकूल अवसर प्रदान किए। वस्तुत: 1917 ई॰ के चम्पारण सत्याग्रह से सारण जिला के श्रमिक एवं कृषक अत्यन्त उत्साहित थे, जिससे राष्ट्रवादी चेतना भी उनमें अग्रसर हुई।

विश्व-इतिहास में भी 1917 ई॰ का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि 1917 ई॰ के रूसी-क्रांति के बाद विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक गतिविधियां बदलनी शुरू हो गई थी। इसने भारत के राष्ट्रवादियों को अपना मुक्ति संघर्ष तेज करने के लिए प्रेरित किया।[2] इलाहाबाद के एक दैनिक पत्र 'अभ्युदय' ने स्पष्ट शब्दों में लिखा कि ''रूसी-क्रांति हमें इतना विश्वास दिलाती है कि दुनियां में कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है, जिसे स्फूर्तिदायी और जीवनदायी राष्ट्रवाद पराजित न कर सके।''[3]

वस्तुस्थिति पर यदि हम विहंगम दृष्टि डालें तो सन् 1917 ई॰ सारण जिला के श्रमिकों एवं कृषकों के राजनैतिक उत्थान के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि एक तरफ महात्मा गांधी के सफल नेतृत्व में चम्पारण सत्याग्रह शुभारंभ हुआ तो दूसरी ओर रूस

की क्रांति ने श्रमिकों एवं कृषकों का मनोबल बढ़ा दिया। यद्यपि चम्पारण-सत्याग्रह का मुख्य स्थल चम्पारण (वर्तमान मोतिहारी, बेतिया एवं बगहा) था परन्तु चम्पारण से सटे सारण जिला के श्रमिकों एवं कृषकों के उपर भी विशेष प्रभाव पड़ा। इस आन्दोलन के तीन महान सपूत मौलाना मजहरूल हक, डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद एवं व्रजकिशोर प्रसाद का अतुलनीय योगदान था। जब महात्मा गांधी बिहार के प्रथमतः प्रवेश किए तो डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद के अनुपस्थिति में मौलाना मजहरूल हक साहब ने अतिथ्य सत्यकार किया।[4] चम्पारण सत्याग्रह के समय जो राष्ट्रावादी विचार-धारा सारण जिला के आमजन में विकसित हुआ उसने जनांदोलनों को मजबूती प्रदान करने का काम किया। असहयोग आन्दोलन में सारण जिला के श्रमिकों एवं कृषकों ने सरकार को असहयोग करते हुए विदेशी वस्तुएं एवं विदेशी संस्थाओं का वहिष्कार किया। 30 सितम्बर 1921 ई॰ से मौलाना मजहरूल हक ने सदाकत आश्रम पटना से ही 'मदरलैण्ड' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किए[5], जिसमें छपे लेखों के खास प्रभाव आमजन पर पड़ा और राजनैतिक जागरूकता विकसित हुई।

विकास एक शाश्वत नियम है, जिसके समक्ष भले ही अवरोध उत्पन्न किया जा सकता है, परन्तु उसे अवरूद्ध कर पाना मुश्किल होता है। चम्पारण सत्याग्रह में सारण जिला के सपूतों के अहम योगदान से श्रमिक एवं कृषक वर्ग उत्साहित था। जिसका प्रमाण असहयोग आन्दोलन में स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ।[6] न केवल पुरुष वर्ग बल्कि महिलाओं में भी राजनैतिक चेतना का विकास इस कालावधि में हुआ। कनीज सैयदा बेगम (छपरा), मुनीरा बेगम (मजहरूल हक साहब की धर्मपत्नी)[7], राजवंशी देवी (डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद की धर्मपत्नी) आदि महिला आंदोलनकारियों ने श्रमिक एवं कृषक समुदाय के नारियों में राजनैतिक चेतना को जागृत करने का कार्य किया। सारण जिला के महानायक डॉ॰ सैयद महमुद ने समकालीन परिपेक्ष्य में 'दि खिलाफत एण्ड इंग्लैण्ड' नामक पुस्तक की रचना करके ब्रिटिश हुकुमत के कुटिल नीतियों पोल खोल दिए।[8] इससे श्रमिक एवं कृषक वर्ग का राजनैतिक उत्साहबर्द्धन हुआ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 44वां अधिवेशन 29-31 दिसम्बर 1929 ई॰ को संपन्न हुई जिसकी अध्यक्षता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया। इस अधिवेशन में पूर्व-स्वराज का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ तथा 26 जनवरी 1930 ई॰ को स्वाधीन दिवस मनाने की घोषणा की गई। उसी समय महात्मा गांधी का सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हुआ जिसमें सारण जिला के कृषकों एवं श्रमिकों ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिये और अपने राजनैतिक जागरूकता की पहचान दिलायी।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दो आयाम थे एक चौकदारी टैक्स का विरोध तथा दूसरा नमक सत्याग्रह। सारण जिला के गांव-गांव, मुहल्ले-मुहल्ले में यह अपना असली पैठ बना लिया था। सत्याग्रहियों की अधिकाधिक संख्या छपरा में थी। समकालीन परिस्थिति में छपरा में कुल 6252 सत्याग्रही थे तथा स्वयंसेवकों की संख्या 147 थी।[9] सारण जिला के विभिन्न क्षेत्र के लोग नमक सत्याग्रह के प्रति अति उत्साहित थे जो उनके राजनैतिक परिपक्वता की परिचायक थी। उदाहरण स्वरूप बरेजा, गोरेया कोठी तथा वैशाली का पश्चिमी क्षेत्र (वर्तमान हाजीपुर), इन स्थानों पर क्रमशः 6,7 और 8 अप्रैल को नमक सत्याग्रह प्रारंभ हुआ।[10] जो शीघ्र ही जिलान्तर्गत समस्त क्षेत्रों में फैल गया। इसमें गोरेयाकोठी के नारायण बाबु की भूमिका अतुलनीय थी। बड़हहया, बरौली, हथुआ, कुचायकोट, मैरवा, बनियापुर, गोरेयाकोठी, सोनपुर इत्यादि स्थानों पर अवैध नमक बनाने का काम चलता रहा तथा श्रमिक एवं कृषक सत्याग्रह के मुख्यधारा से जुड़ते गए।[11] सत्याग्रह का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य चौकीदारी टैक्स का प्रबल विरोध किए बल्कि सुदूर ग्रामीण क्षेत्र के मानस पटल पर राजनैतिक चेतना का प्रसार कराया।[12] जिसके बदौलत सरण जिला में स्वाधीनता संघर्ष अपना अभूतपूर्व स्वरूप को प्राप्त किया।

विश्व के इतिहास में 1947 ई॰ का 'अगस्त-क्रान्ति ही इकलौता ऐसा आन्दोलन है जो नेतृत्वविहीन होने के बावजूद भी अपने व्यापकता को लेकर महत्वपूर्ण है। सर्वविदित है कि 1942 ई॰ के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय आरम्भ में ही महात्मा गांधी सहित भारत वर्ष के लगभग सभी वरीय नेताओं को गिरफ्तार करके जेल भेद दिया गया था। अतः समकालीन परिस्थिति में भारत में कुशल नेतृत्व का आभाव हो गया परन्तु सारण जिलान्तर्गत सफल नेतृत्वकर्ताओं के अभाव में भी इस आन्दोलन ने जो अपना रूख अख्तयार किया वह इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि इस जिला में आमजन, श्रमिक तथा कृषकों में राजनैतिक चेतना का प्रसार संतोषप्रद था। रिविलगंज, गुठनी, अमनौर, भोरे, गड़खा, आंदर, दिघवारा, हथुआ, महाराजगंज,लहलादपुर (जनता बाजार), दरौली, दाउदपुर सहित जिला के समस्त क्षेत्रों में आन्दोलन चरमोत्कर्ष पर थी। इस क्रम में शिवजी सिंह (भेल्दी, अमनौर), सरयू प्रसाद गुप्ता (श्रद्धानंद बाजार, सिवान) उमाशंकर प्रसाद (महाराजगंज), छठु गिरी (दाउदपुर), अमीर हसन (अमवाँ नकछेद, कुचायकोट), नगीना शर्मा (रिसौरा, महाराजगंज खान बहादूर खान उर्फ गांधीजी (कोपा बाजार), हाजी मोहम्मद गौसी (करीमचक, छपरा) इत्यादि सैकड़ों आन्दोलनकारियों की भूमिका अविस्मरणीय है।[13] आंदोलनकारियों द्वारा जिस प्रकार के आंदोलनात्मक गतिविधियों को अंजाम दिया गया परिणामतः सरकार ने सारण जिला को 'अपराधी जिला' घोषित कर दिया।

1942 ई॰ के अगस्त-क्रान्ति को ब्रिटिश हुकुमत ने अपने दमन का शिकार बनाया, परन्तु यह कहना है कि आन्दोलनपूर्ण रूप से ठहर गया था, यह न्यायासंगत नहीं होगा। सारण जिला के सिताबदियारा नामक ग्राम निवासी जयप्रकार नारायण के नेतृत्व में 'गोरिल्ला रणपद्धति के तहत यदाकदा आन्दोलनात्मक गतिविधियां जारी थी।[14] इसी क्रम में जयप्रकाश नारायण 'आजाद दस्ता' का गठन किए जिसका उद्देश्य तोड़फोड़ के जरिये ब्रिटिश हुकुमत को ध्वस्त करना था।[15] इस आजाद-दस्ते को मुजफ्फरपुर, दरभंगा, पूर्णिया, चम्पारण के साथ-साथ सारण में भी लोकप्रियता प्राप्त हुई।

अगस्त क्रांति के बाद भारत में साम्प्रदायिक समस्या की जड़े मजबूत लेने लगी जिसका विसतार भारतीय स्वतंत्रा प्राप्ति तक हुआ। 20 अप्रैल 1946 ई॰ को बिहार सरकार के एक रिपोर्ट में लिखित हैं कि -''साम्प्रदायिक तनाव बढ़ रहा है मुस्लिम लीग कांग्रेस मंत्रिमण्डल को बदनाम करने में कुछ भी उठा नहीं रख रही हे।[16] परन्तु इस प्रकार की साम्प्रदायिक समस्या सारण में दीघार्यु नहीं हो सकी। सारण जिलान्तर्गत प्रत्येक सम्प्रदायिक के लोग के महान राजनैतिक बुद्धिमता का भी यह परिणाम था कि साम्प्रदायिक समस्याओं का पूर्णत: पटाक्षेप हो गया।[17] यह सारण जिला के सर्वोच्च कोटि के राजनैतिक तथा राष्ट्रवादी गतिविधियों की परिचायक है।

अंतत: स्पष्ट है कि सारण जिला के श्रमिकों एवं कृषकों में राजनैतिक चेतना का उद्‌भव एवं विकास अत्यंत सुनियोजित तरीके से हुआ। यद्यपि 1917 ई॰ के चम्पारण सत्याग्रह के पूर्व में भी सारण के श्रमिक एवं कृषक वर्ग के कुछेक लोगों में राष्ट्रवादी मनोभाव प्रभावी थे, तथापि 1917 ई॰ 1947 ई॰ के दौर में जितने भी जनांदोलन हुए उसमें कृषकों एवं श्रमिकों की महान राजनैतिक चेतना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है जिसने औपनिवेशिक शासकों की राजनैतिक शिकंजा कमजोर करने में अपनी निर्णायक भूमिका अदा की।

संदर्भ:

1. रामलखन शुक्ल (सं॰)-आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1990, पृ॰ 829
2. वही, पृ॰ 553
3. 'अभयुदाय' दैनिक समाचार पत्र, इलाहाबाद, 24 1917 ई॰ पृ॰ 56
4. संत कुमार वर्मा- मौलाना मजहरूल हक, साहित्य परिषद्, सिवान (सारण), न्यू करीमचक गया, 1961, पृ॰ 73
5. डॉ॰ सैयद अहमद कादरी, उर्दू शहाफत बिहार में, मकतबा गौसिया, न्यू करीमचक गया, 2003, पृ॰ 229
6. संत कमार वर्मा-मौलाना मजहरूल हक, साहित्य परिषद्, सिवान (सारण), 1961 ई॰ पृ॰ 51
7. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वोल्यूम-ग्प्ए 1920-1921, पृ॰ 70
8. रेहान गनी, उर्दू दुनियां (पाक्षिक पत्रिका) दिलली, 2008, पृ॰ 16
9. के॰ के॰ दत्त- बिहार में स्वतंत्र आनन्दोलन का इतिहास (खण्ड-2) बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974, पृ॰ 65
10. वही, पृ॰ 70
11. वही
12. विजयलक्ष्मी शुक्ला-गंगा प्रसाद राय (सोनालिका से साभार) किशोर प्रकाशन, सिवान (सारण), 1997, पृ॰ 47
13. डॉ॰ अदनान खाँ (स्वतंत्रता सेनानी) डाक्टर्स कॉलोनी, थाना रोड, सिवान के साक्षात्कार से लिपिबद्ध, दिनांक 26 दिसम्बर, 2016
14. अशोक कुमार सिन्हा-लोकनायक जयप्रकाश नारायण, विशाल पब्लिकेशन, पटना, 2004, पृ॰ 43
15. वही
16. बिहार सरकार की रिपोर्ट, 20 अप्रैल, 1946 ई॰
17. खैरूद्दीन अहमद (भगवान बाजार, छपरा) से साक्षात्कार पर आद्धृत, दिनांक 31 दिसम्बर, 2016

21वीं सदी में भारत नेपाल सम्बन्ध

रूचिर जोशी

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहाघाट (चम्पावत) उत्तराखण्ड

भूमिका- हिमालयी क्षेत्र में अवस्थित नेपाल राज्य भारत का एक हमत्वपूर्ण पङोसी है, इसकी भौगोलिक अवस्थिति सांस्कृतिक आर्थिक सम्बन्धों के कारण भारतीय विदेशनीति में नेपाल एक महत्वपूर्ण कारक बन कर उभरा है दोनों राष्ट्र न केवल एक खुली सीमा रेखा को साझा करते हैं बल्कि दोनों देशो के बीच धार्मिक व सांस्कृतिक एक रूपता है। यह सम्बन्ध इतना सहज और इतना स्वाभाविक है कि इसे लोकप्रिय जन भाषा में रोटी बेटी का सम्बन्ध के रूप में जाना जाता है। दक्षिण एशिया की राजनीति में नेपाल की भूमिका दो शक्तिशाली पङोसियों के बीच बफर स्टेट की है।

दक्षिण एशिया में शांति एवं विकास के लिये आवश्यक है कि, भारत, चीन और नेपाल के इस रणनीतिक लिकोण की जटिलता को समय समय पर पुनर्परिभाषित किया जाय। 21वीं सदी में बढते चीनी साम्राज्यवाद से निपटने के लिए आवश्यक है कि दोनों देशों के बीच विश्वास आधारित कूटनीतिक सम्बन्धों का निर्माण हो, ताकि हिमालयी क्षेत्र में चीनी हस्तक्षेप का प्रभावी समाधान प्रस्तुत किया जा सके।

भारत नेपाल सम्बन्धों की एतिहासिक पृष्ठभूमिः

मध्ययुगीन साम्राज्यो की दशकों से व्याप्त आपसी प्रतिद्वदिंता को समाप्त करते हुये 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पृथ्वी नारायण शाह के नेतृत्व में नेपाल का पुर्नगठन एवं एकीकरण किया गया। पृथ्वी नारायण शाह के शुरूवाती दौर में काठमॉडू घाटी को जीत के एकीकृत नेपाल राज्य के गठन का कार्य 1768 में पूरा हुआ इस राज्य को समान्यतः गोरखा राज्य के नाम से भी जाना जाता है। पृथ्वी नारायण शाह की मृत्यु के बाद उनके अत्राधिकारियों द्वारा दक्षिण एशिया की ओर साम्राज्य विस्तार किया गया, नेपाल और ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच 1814 - 1816 के बीच एक लम्बा सघर्ष चला इस सघर्ष में नेपाल को काफी नुकसान हुआ युद्धोपरांत हस्ताक्षरित संगौली की संधि के फलस्वरूप तराई क्षेत्र का एक बङा हिस्सा ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में आ गया। बीसवी शताब्दि (1923) में मैत्री व शांति की शास्वत संधि को ब्रिटेन और नेपाल ने स्वीकार किया।

स्वतंत्र भारत और नेपाल के बीच 1950 में शांति और मैत्री की संधि ने उन विशेष सम्बन्धों को जन्म दिया जिसने वर्तमान वर्तमान और भविष्य के सम्बन्धो को विशेष दशा दिशा प्रदान की इस संधि के मुख्य बिंदु निम्नवत हैं

1. भारत और नेपाल दोनों ही देशों के नागरिकों को आवास, सम्पत्ति, व्यापार, आवागमन के सम्बन्ध में पारस्परिक उपचार आधारित अधिकार प्रदान किये गये हैं।
2. भारत और नेपाल के बीच स्थाई शांति एवं मित्रता होगी एवं दोनों देश एक दूसरे की सम्प्रभुता क्षेत्रीय अखण्डता का परस्पर सम्मान करेंगे
3. दोनों सरकारें किसी भी पङोसी राज्य के साथ किसी भी गंभीर घर्षण या गलतफहमी के बारे में एक दूसरे को सूचित करने क वचन देती हैं जिससे दोनों सरकारो के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में कोई भी कमी आ सकती है।
4. दोनों सरकारें महा वाणिज्य दूत कौंसल उप कौंसल और अन्य कांसुलर एजेंट नियुक्त करने के लिये सहमत है। जो एक दूसरे के क्षेत्र में कस्बों बन्दरगाहों एवं अन्य स्थानों पर निवास करेंगें।

5. नेपाल की सरकार नेपाल की सुरक्षा के लिए आवश्यक हथियार गोलाबारूद युद्धसामाग्री एवं उपकरणों को भारत के क्षेत्र से या उसके माध्यम से आयात करने के लिए स्वतन्त्र होगी इस व्यवस्था को प्रभावी करने की प्रक्रिया दोनों सरकारों के परामर्श से कार्य करेगी।
6. प्रत्येक सरकार भारत और नेपाल के बीच पडोसी मित्रता के प्रतीक रूप में, अपने क्षेत्र में दूसरे देशों के नागरिकों को, ऐसे क्षेत्र के औधोगिक एवं आर्थिक विकास से सन्दर्भित राष्ट्रीय व्यवहार (National treatment) के सिद्धान्त पर कार्य करेगी।
7. यह संधि तब तक प्रभाव में रहेगी जब तक कि इसे किसी एक प्रश्न द्वारा एक वर्ष के पूर्व नोटिस के बाद समाप्त घोषित न किया जाए।

इस प्रकार यह संधि भारत और नेपाल के बीच संबंधो की गत्यात्मकता को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका एवं आधार प्रदान करती है।

भारत नेपाल सम्बन्धों में सहयोग के बिन्दु

भारत जो कि एक उभरती हुई अन्तराष्ट्रीय शक्ति है साथ ही भारत के पास तेजी से बडती हुई अर्थव्यवस्था बडा भूभाग विश्वस्तरीय रणनीतिक शक्ति है, ऐसे संदर्भ में नेपाल के साथ शांतिपूर्ण सम्बन्ध क्षेत्रीय स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण हो जाते है।

भारत और नेपाल हिन्दू और बौद्ध संस्कृतियों को साझा करते हैं नेपाल में कई ऐसे स्थल स्थित हैं जो बौद्धों की सांस्कृतिक विरासत से सम्बन्धित हैं इन स्थलों में बडी संख्या में भारती प्रतिवर्ष यात्रा करते है। भारत नेपाल सम्बन्धों का मूल आधार शांतिपूर्ण सह अस्तित्व एवं समवेत विकास हैं।

आर्थिक सम्बन्ध

भारत नेपाल का सबसे बडा व्यापारिक सहयोगी और विदेशी निवेश का श्रोत्र है इसके अतिरिक्त किसी भी तीसरे देश के साथ व्यापार को ट्रांजिट आधार प्रदान करता हैं।

नेपाल जो कि चारों ओर भूमि से घिरा है आर्थिक प्रगति के लिए भारत पर निर्भर करता है 1951 के बाद विशेष रूप से भारत और नेपाल का आर्थिक सहयोग बडा है। 1950 की मैत्री संधि ने इसे विशेष आधार प्रदान किया है। 1950 के प्रारम्भिक वर्षो से भारत ने नेपाल के सामाजिक व आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण सहयोग किया है। नेपाल की अवस्थापनीय सुविधाओं और प्रगति यथा कृषि सिंचाई सडक निर्माण ऊर्जा आवश्यकताए औद्दोगि की करण संचार अवस्थापना निर्माण के क्षेत्र में भारत नें महत्वपूर्ण सहयोग किया है। रकसौल-वीरगंज ब्राड ग्रेज प्रोजेक्ट ने दोनों देशों के बीच व्यापार को सहज बनाया है। भारत द्वारा नेपाल में कई भौतिक अवस्थापना सम्बन्धी सुविधाओं को विस्तार किया जा रहा है। साथ ही ग्रामीण एवं सामुदायिक विकास सम्बन्धी पायलट प्रोजेक्ट चलाये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त महेन्द्रनगर टनकपुर लिंक रोड प्रोजेक्ट नेपाल के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। भारत और नेपाल ने रेल सर्विस समझौता 2004 के द्वारा इस क्षेत्र में सहयोग के लिए महत्वपूर्ण कदम अठाये है। भारत की नेबरहुड फर्स्ट नीति के अर्न्तगत उठाये गये यह कदम क्षेत्रीय विकास जन सम्पर्को की दृष्टि से निश्चित रूप से महत्वपूर्ण साबित होंगे।

नेपाल का किसी भी तीसरे देश के साथ व्यापार भारत से गुजरने वाले 22 व्यापार मार्गो से संचालित किया जाता है। इस दिशा में भारत में अवस्थित कोलकाता, अल्दिया एवं विशाखापट्टनम के बन्दरगाह विशेष भूमिका निर्वहन करते हैं।

निवेश

भारत और नेपाल के बीच एक द्विपक्षीय निवेश संरक्षण समझौता (Bilateral Investment Protection Agreement BIPPA) वर्ष 2011 में हस्ताक्षित हुआ है इसके अतिरिक्त करों में सहजता लाने के लिए क्ज। का प्रावधान भी किया गया हैं।

वर्ष 2017-18 के आंकडो के अनुसार भारत का नेपाल में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 87912.01 मिलियन (नेपाली मुद्रा) में था, जो कि नेपाल की कुल FDI का 30: लगभग है।

व्यापार

वर्ष 2018-19 में दो देशों का द्विपक्षीय व्यापार 57858 करोङ रूपये पर पहुच चुका है। इसमें नेपाल द्वारा भारत को किया गया निर्यात 3558 करोङ प्छत् हैं। जबकि भारत द्वारा किया गया निर्यात 54300 करोङ INR हैं। भारत द्वारा नेपाल को मुख्य रूप से पेट्रोलियम उत्पाद, मोटर गाडियां, चावल, दवायें, कृषि एवं ऊर्जा सम्बन्धी उपकरणों का निर्यात किया जाता हैं।

शिक्षा क्षेत्र

बीते वर्षों में नेपाल के मानव संसाधन के विकास में भारत की भूमिका अग्रणी रही हैं। दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय सहयोग की दिशा में शिक्षा एक महत्वपूर्ण क्षेत्र साबित हुआ हैं। भारत की सरकार लगभग 3000 से अधिक छात्रवृति/सीटें नेपाली नागरिकों का भारत में शैक्षणिक कार्यक्रमों के लिए प्रदान करती हैं। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से स्नातक स्नातकोत्तर/पीएचडी. आदि से सम्बन्धित हैं।

ऊर्जा क्षेत्र

भारत और नेपाल के बीच ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग का मूल आधार वर्ष 1971 का PEA - 1971 समझौता हैं। इस समझौते के द्वारा दोनों ही देशों की सीमा क्षेत्र में अवस्थित ट्रान्समिशन सुविधाओं का उपयोग करने में सहजता सम्बन्धी प्रावधान किए गए हैं। इसके अतिरिक्त 2014 में हस्ताक्षरित ऊर्जा समझौता (Electric Power trade, cross border Transmission Interconnection and grid connectivity Agreement - 2014)

सीमा पार ऊर्जा पारगमन को सहज बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता हैं। इस समझौते के अन्तर्गत साझा कार्य दल का गठन भी किया गया हैं। इसके अतिरिक्त भारत और नेपाल के बीच महाकाली संधि 1996 के परिणाम स्वरूप पंचेश्वर बहुउद्देशीय ऊर्जा परियोजना पर भी कार्य किया जा रहा हैं।

संस्कृति

भारत और नेपाल दोनों ही देश एक समरूप संस्कृति को साझा करते हैं। यह संस्कृति पूर्वकाल से ही घनिष्ठ भौगोलिक और संस्कृति सम्मिलन का परिणाम हैं। इसी साझा संस्कृति को ओर अधिक मजबूत करने की दिशा में दोनों ही देश प्रयासरत हैं। भारत सरकार के प्रयासों से भारत की साहित्य कला अकादमी एवं नेपाली अकादमी दूरदर्शन तथा नेपाली टेलीविजन ललित कला अकादमी तथा नेपाली अकादमी के बीच सांस्कृतिक सहयोग हेतु कई समझौते किये गये हैं।

वर्ष 2007 में काठमान्डू में भारतीय संस्कृति को प्रदर्शित करने के उद्देश्यय से स्वामी विवेकानन्दा केन्द्र की स्थापना की गयी है। इस केन्द्र ने भारतीय संस्कृति के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया हैं।

इसके अतिरिक्त 1951 में ही काठमान्डू में नेपाल भारत लाइब्रेरी की स्थापना की गयी हैं। इस लाइब्रेरी का उद्देश्यय साझा संस्कृति को मजबूत करना एवं सूचना एवं सांस्कृतिक आदान प्रदान को सहज बनाना हैं। इसे नेपाल की प्रथम विदेशी पुस्तकालय होने का भी गौरव प्राप्त है।

वर्ष 1991 में भारत और नेपाल के बीच एक डव्न् हस्ताक्षरित हुआ इसके द्वारा "बी.पी कोइराला भारत नेपाल फाउन्डेशन" स्थापित किया गया। इस फाउन्डेशन का उद्देश्य शैक्षणिक सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहयोग का दोनों ही देशों में विस्तार करना है।

रक्षा सहयोग

भारत और नेपाल दीर्घकाल से ही एक दूसरे के घनिष्ठ रक्षा सहयोग रहे हैं। नेपाल संविधान सभा को सम्बोधित करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री ने 2014 में इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित किया साथ ही भारतीय रक्षा क्षेत्र में विशेष भूमिका निभाने वाले गोरखा सैनिकों के अदम्य साहस की सराहना की। भारत नेपाली सेना के पुनर्गठन एवं आधुनिकीकरण में विशेष भूमिका निभा रहा हैं। समय समय पर रक्षा सम्बन्धी उपकरणों की नेपाल को उपलब्धता सुनिश्चित कराने में भारत की अहम भूमिका हैं।

वर्तमान में भारत एवं नेपाल द्वारा सूर्य किरण नाम से संयुक्त युद्धाभ्यास किया जाता है। इस संयुक्त युद्धाभ्यास का उद्देश्य न केवल रक्षा कुशलता को उत्पन्न करना है। वरन पारस्परिक सामंजस्य एवं समझ विकसित करना हैं। इसे सूर्य किरण वार्षिक युद्धाभ्यास को वर्ष 2011 से नियमित रूप से संचालित किया जा रहा है। जिससे हिमालयी क्षेत्र की रक्षा से सम्बन्धित दोनों देशों की सेनाओं की आपसी समझ एवं तालमेल में इजाफ हुआ है। इसके अतिरिक्त भारतीय सेना में वर्तमान में 39 गोरखा बटालियन्स सेवा दे रहे हैं।

परंपरागत रूप से नेपाली थल सेना प्रमुख कार्यभार ग्रहण करने के बाद भारत का दौरा करता हैं। एवं उसे भारतीय सेना के "ऑनरारी जनरल" की रेंक प्रदान की जाती हैं। वर्ष 2016 में नेपाली आर्मी प्रमुख राजेन्द्र छेत्री की भारत यात्रा के दौरान उन्हें यह रेंक प्रदान की गयी वही 2017 में भारतीय सेना प्रमुख जनरल विपिन रावत को नेपाली सेना की यह उपाधि प्रदान की गयी।

इसके अतिरिक्त दोनों देशों की सेनायें अशांत एवं आपदाग्रस्त क्षेत्रों में मानवीय सहायता उपलब्ध कराने की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहीं हैं। नेपाल में वर्ष 2015 में आये भयावह भूकंप में बचाव और राहत उपलब्ध करानें में भारतीय सेना ने अग्रणी भूमिका का निर्वहन किया। सेना के राहत एवं बचाव कार्यक्रम की नेपाल ने मुक्त कण्ठ से सराहना की।

भारत-नेपाल सम्बन्धों में विवाद एवं मतभेद के बिन्दु -

1. सीमा विवाद- भारत नेपाल सम्बन्धों में प्रमुख विवादित मुद्दा कालापानी सीमा विवाद है। कालापानी क्षेत्र की सीमायें 1816 में ब्रिटेन से हुई संधि के बाद निर्धारित की गयी थी। जहां भारत नेपाल सीमा का अधिकांश हिस्सा परिभाषित किया गया हैं, सुस्ता एवं कालापानी क्षेत्र में विवाद की स्थिति अभी भी बनी हुई हैं। नेपाल द्वारा कालापानी, लिम्पियाधुरा, लिपुलेख तथा सुस्ता (पश्चिमी चम्पारण जनपद) के हिस्सों पर दावा किए जाने से विवाद की स्थिति बनी रहती है।
2. शांति एवं मैत्री संधि- 1950 से जुड़े मुद्दे- शांति एवं मैत्री संधि 1950 ने भारत नेपाल सम्बन्धों को एक आधार प्रदान किया है। जिसके माध्यम से दोनों देश एक खुली सीमा साझा करते हैं। परंतु वर्तमान में इस संधि को नेपाल में शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा हैं। नेपाल इसे भारत की दबावकारी ताकत के रूप में अल्लिखित करता हैं। नेपाल में समय समय पर इस संधि में परिवर्तन एवं पुनरावलोकन की मांग जोर पकङ रही हैं।
3. चीन का रूख- ऐसा प्रतीत होता है कि हाल के वर्षों में नंपाल भारतीय प्रभाव क्षेत्र से दूर हो गया है। जिसका सीधा लाभ चीन ने अपना निवेश एवं प्रभाव बढा कर उठाया हैं। चीन नेपाल को अपने "बैल्ट एन्ड रोड इनीशिएटिव" का महत्वपूर्ण अंग मानता हैं। नेपाल एवं चीन के बीच बढती कूटनीतिक घनिष्ठता भारत की सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा हैं।
4. नेपाल में व्याप्त संवैधानिक अशांति- नेपाल का संवैधानिक संकट न केवल नेपाल अपितु भारत के लिए भी चिन्ता का मुद्दा हैं क्योंकि नेपाल की भौगोलिक राजनीतिक स्थिति पूरे हिमालयी क्षेत्र की स्थिरता को प्रभावित करती हैं। ऐसी किसी भी परिस्थिति में चीन के सीधे हस्तक्षेप की संभावनाओं को खारिज नहीं किया जा सकता हैं। नेपाल में चीन की उपस्थिति एवं हस्तक्षेप भारतीय कूटनीति की विफलता के रूप में देखा जाता हैं।

भारत नेपाल सम्बन्धों में भविष्य की राहें -

भारत की क्षेत्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण से आवश्यक है कि नेपाल के साथ उसके सम्बन्ध मैत्री पूर्ण बने रहें और उनमें संवेदनशीलता बढे। भारत की बढती अन्तराष्ट्रीय शक्ति से नेपाल का कूटनीतिक भय स्वाभाविक हैं। इस दृष्टिकोण से आवश्यक है कि भारत नेपाल की प्रगति एवं विकास के बुनियादी मुद्दों में सहयोग कर एक उदार सहयोगी की छवि प्रस्तुत कर सके। भारत और नेपाल अपने सीमा विवाद का समाधान वार्ता एवं अन्तराष्ट्रीय कानून के दायरे के अन्तर्गत करें। भारत के लिए आवश्यक हैं कि वह नेपाल के आन्तरिक मसलों से उचित दूरी बनाये रखे और आवश्यकता पङने पर नेपाली नीति नियंताओ को समाधान के लिए प्रेरित करता हुआ प्रतीत हैं।

भारत के लिए आवश्यक है कि वह नेपाल के प्रति संवेदनशीलता का रूख रखे नेपाली एवं भारतीय जनता के बीच वर्षों के व्याप्त अन्तनिर्भरता एवं जनभागीदारी को कूटनीतिक मधुरता के माध्यम से और पुष्पित पल्लवित किया जाए। भारत अपने तकनीकी नवाचार का उपयोग कर नेपाल की तरक्की एवं विकास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं। भारत के लिए आवश्यक है कि वह नेपाल को मात्र सुरक्षा एवं रक्षा के एक माध्यम एवं कारक के रूप में न देखे बल्कि यह महसूस करे कि नेपाल भी एक उभरती अर्थव्यवस्था है। और नेपाल युआ भारत की सीमाओं को विकास की उम्मीद से देख रहा हैं। इस दृष्टिकोण से आवश्यक

है कि दोनों देश बहु आयामी विकासात्मक बिन्दुओं आधारित विदेश नीति का निर्माण करें। अतः भारत के लिए आवश्यक हैं कि वह नेपाल के सन्दर्भ में दीर्घकालिक एवं समग्र नीति का निर्माण एवं क्रियान्वयन करें।

सन्दर्भ सूची -

1. Bhattarai, Keshav and Madhukar pandey "Disputed territories between Nepal and India The case of kalapani, Limpiyadhura, Lipulekh and susta The mega journal
2. Malone, David M, C Raja Mohan, and Srinath Raghwa eds. The Oxford handbook of Indian foreign policy (2015)
3. Shukla Deeptima "India Nepal relations Problems and prospects" The Indian Journal of Political Science (2006)
4. Rakesh Sood (23 July 2014) "A new beginning with Nepal" The Hindu
5. Modi to address Nepal parliament, pray at Pashupatinath temple news.biharprabha.com
6. "Economic relations" Embassy of Nepal.

लिंग असमानता- एक राष्ट्रीयकृत समस्या

अमरनाथ वर्मा

सहायक आचार्य, (राज. वि.) एस एन के पी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीम का थाना, (सीकर)

सारांशः- भारत एक विकासशील देश हैं। भारत के विकसित होने के लिए तीव्र आर्थिक विकास होना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब स्त्री व पुरुष का भारत के विकास में समान भागीदारी हो। महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण समावेशी आर्थिक विकास के केंद्र में है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण हेतु निवेश करने से लैंगिक समानता गरीबी उन्मूलन समावेशी विकास मार्ग प्रशस्त होगा। भारतीय संस्कृति में नारी को बहुत ही महत्व प्रदान किया गया है। संस्कृत श्लोक यस्य पूज्यंते नार्यास्तु तत्त रमन्ते देवताः। यानि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। किसी देश की अर्थव्यवस्था का विकास वहाँ की लोगों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है, जिसमें स्त्री व पुरूष दोनों की समान भागीदारी होनी जरूरी है, परंतु जो हालत दिख रहे हैं उसमें नारी के साथ भेद-भाव होता दिख रहा है। भारत में लोग 21वीं सदी में भी पुत्र होने पर उत्सव व पुत्री होने पर शोक मनाते हैं। स्त्रियों के प्रति हीनता की भावना होना शर्म की बात है। यहाँ लैंगिक साक्षरता का अंतर, लैंगिक अनुपात में काफी असमानता है। भारत के जिस हिस्से में लैंगिक साक्षरता का अंतर अधिक है वहाँ गरीबी भी अधिक है। भारत में लैंगिक असमानता के लिए सरकारी तंत्र के साथ-साथ हमारा समाज भी इसके बराबर के भागीदार हैं। विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की कम भागीदारी व महिलाओं के प्रति भेद-भाव होना आम बात हो गयी हैं। शिक्षा लैंगिक असमानता व गरीबी का आपस में गहरा संबंध है। अतः बिना लैंगिक भेद-भाव को दूर किये विकसित भारत का सपना साकार नहीं होगा। अतः इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत को विकसित बनाने हेतु लैंगिक भागीदारी का महत्व व इसके अड़चनों पर ध्यान आकृष्ट कराना है।

कुँजीः- राष्ट्रीय, सामाजिक, श्रमिक, जिम्मेदारी, क्षेत्र।

प्रस्तावनाः- भारत विकासशील देश होने के साथ-साथ एक कृषि प्रधान देश भी है। यहाँ की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। भारत विश्व गुरू भी रह चुका है। भारत में वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति अच्छी थी। सारे कार्यों में महिलाओं की भागीदारी होती थी, परंतु समय बीतने के साथ-साथ महिलाओं की स्थितियों में बदलाव आया। भारत में महिलाओं की मुस्लिम शासनकाल में सबसे अधिक स्थिति खराब हुई। फलस्वरूप महिलाओं की समाजिक कार्यों व अन्य आर्थिक व गैर आर्थिक गतिविधियाँ समाप्त होती गई। महिलाओं के परदा प्रथा व बुर्का का प्रचलन बढ़ने लगा। अब महिलाएँ घर के कामों तक ही सीमित हो गयी। यों कहें तो महिलाएँ घर की शोभा मात्र बनकर रह गयी। महिलाओं को उपभोग की वस्तुएँ समझी जाने लगी। महिलाएँ अब नीतिगत कार्यों में भाग नहीं ले सकती थी। सती प्रथा का भी प्रचलन बढ़ा, बाल-विवाह का प्रचलन काफी तेजी से बढ़ा। बाद में भारत अंग्रेजों के अधीन हुआ भारत का संपर्क पश्चिमी देशों से हुआ। पश्चिमी सभ्यता भी भारत में पनपने लगी। अंग्रेजों के शासन के समय ही सती प्रथा प्रतिबंधित घोषित हुआ। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि महापुरूषों ने विधवा विवाह स्त्री शिक्षा व सती प्रथा का विरोध किया। समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार की नींव पड़ी। कस्तूरबा गांधी, बेगम हजरत महल आदि महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में सफलतापूर्वक सहयोग की। महात्मा गांधी के आंदोलनों में भी महिलाएँ भाग लेती रही परंतु आजादी के 73 सालों के बाद भी आज भारतीय समाज में स्त्री व पुरूषों के बीच काफी असमानता है। शिक्षा का क्षेत्र हो, चिकित्सा का क्षेत्र हो, विज्ञान का क्षेत्र हो या खेल का क्षेत्र हो, महिलाओं ने दिखा दिया कि अगर उन्हें अवसर मिले तो वह प्रत्येक क्षेत्र में बेहतर कर सकती है। भारत में आज के 21वीं सदी में भी आज भी पुत्र के जन्म पर धुमधाम से अनेक प्रकार के उत्सव मनाये जाते हैं वहीं लड़कियों के जन्म पर घर में उदासी का या मातम का महौल छा जाता है। पुत्र चाह में उनके माता

– पिता द्वारा पुत्री को जन्म से पहले ही उसे गर्भ में ही मरवा दिया जाता है। इस कार्य ने सारी मानवता को शर्मसार कर दिया है। धर्मशास्त्रों में स्त्री को देवी जननी माना फिर भी उसे अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जीवन के हर कदम पर भीषण संघर्ष करना पड़ता है। जो महिलाएँ अपने पति, बच्चे, भाई के लम्बी उम्र के लिए, सुखी रहने के लिए अनेक प्रकार के व्रतों को करती है। घर को संतान रूपी फूल से घर–परिवार को सुखी बनाती है, उसी देवी को लड़की जन्म होने पर कई यातनाएँ उसके परिवार वालों द्वारा दी जाती हैं। इस सब कारणों से लैंगिक असमानता बढ़ी है। आजादी के 73 सालों के बाद भी आज हम कहाँ खड़े हैं, यह सोचने का विषय हैं। आज भी यह सत्य है कि ऐसी परंपराओं, संरचनाओं व प्रणालियों को संरक्षण प्रदान कर रहे हैं जो स्त्री विरोधी हैं।

उद्देश्यः–

- लैंगिक असमानता का विश्लेषण करना।
- अर्थिक विकास और समानता के बीच संबंध का अध्ययन करना।
- नारी शिक्षा का गरीबी उन्मूलन से संबंध का विश्लेषण करना और समानता व राष्ट्रीय शिक्षा स्तर के बीच संबंधों का विश्लेषण करना।

आज भारत भी एक विकासशील राष्ट्र है जो विकसित राष्ट्र की आगे बढ़ने की तरफ पैर पसार रहा है उसमें महिलाओं की भी जिम्मेदारी बढ़ रही है और महिलायें भी पुरूष से कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए तैयार हैं क्योंकि किसी भी क्षेत्र की बात कीजियेगा तो वो कहीं से पीछे नहीं है चाहे वो शिक्षा का क्षेत्र हो, समाज का क्षेत्र हो या देश के प्रहरी का क्षेत्र हो या टेकनिकल क्षेत्र हो वो कहीं भी पुरूषों से कम नहीं हैं। क्योंकि वह अब अपने आपको कर्म के बदौलत काफी आगे निकल गई है वह हवाई जहाज उड़ाती हैं, तो सेना का फाइटर विमान उड़ाती है, वह डॉक्टर हैं, वह इंजिनियर हैं, वह शिक्षक हैं, तो वह सामाजिक सेवक भी हैं वह देश का प्रधानमंत्री, रक्षा मंत्री हैं, वित्त मंत्री है, विदेश मंत्री है पुरूषों से कम नहीं है। आज भारत में संतुलित विकास के लिए जरूरी है कि समाजिक शब्दकोश से महिला की घरेलू जिम्मेदारी जैसे शब्द हटा दिया जाए। भारत के प्रधान मंत्री से यह भी गुहार लगाई गई है कि अगली जनगणना में गृहणियों की गिनती गैर काम काजी या गैर श्रमिक की श्रेणी में न की जाए यह समस्त दायित्व साझा करने का दौर है। ऐसा नहीं हुआ तो महिलायें विवाह संस्था से कतराने लगेंगी।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता भी आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। महात्मा मनु ने अपने इस उद्घोष के द्वारा समाज में नारी को सर्वोच्च स्थान दिये, जो कि वास्तव में हमारे समाज का सौंचा होती है। महात्मा गाँधी ने भी कहा है–"किसी समाज की सांस्कृति उपलब्धि का प्रमाण समाज के नारियों की स्थिति में ढुंढा जाना चाहिए।'' स्त्री और पुरुष दोनों सृष्टि, समाज और राष्ट्र के आधार स्तम्भ हैं। दोनों के सहयोग से ही सृष्टि संम्पन्न होती है और परिवार, समाज एवं राष्ट्र का ढाँचा तैयार होता है। परिवार और समाज की मजबूती एवं विकास हेतु दोनों के परस्पर सहयोग कि अनिवार्यता है। इस संक्षिप्त लेख के माध्यम से लिंग असमानता से सम्बद्ध कुछ यथार्थवादी एवं नैतिक प्रश्नों का विश्लेषण एवं समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाएगा। इस लेख का प्रमुख लक्ष्य लिंग भेद की उस समस्या को उजागर करना है जिसका सम्बन्ध भारतीय नारियों के जीवन से है। प्रस्तुत लेख में सर्वप्रथम हम लिंग भेद के अर्थ का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे तत्पश्चात लिंग असमानता से जुड़े कुछ व्यावहारिक एवं नैतिक प्रश्नों के समाधान हेतु कुछ सुझाव देने का प्रयास करेंगे। वास्तव में लिगभेद और लिंग असमानता ये एक नहीं बल्कि अलग–अलग विषय हैं परन्तु अक्सर हम दखते हैं। कि इन्हें एक दूसरे का पर्यायवाची मान लिया जाता है।

लिंग भेद तथा लिंग असमानता का विश्लेषण प्राचीन काल से ही होता रहा है। व्याकरणीय दृष्टिकोण से संसार के सभी वर्गों को सुविधापूर्वक समझने के लिए सभी भाषाओं में लिंग–भेद का वर्णन हमें देखने को मिलता है। लिंग शब्द संस्कृत भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ हैं 'चिन्ह' अथवा 'निशान' एवं भेद का अर्थ होता है 'प्रकार' अथवा 'श्रेणी'। इस प्रकार लिंग–भेद का शाब्दिक अर्थ 'चिन्ह' अथवा 'निशान' हुआ। हिन्दी व्याकरण में इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है 'संज्ञा के जिस रूप से व्यक्ति या वस्तु की जाति का बोध हो सके उसे 'लिंग' कहते हैं। "स्पष्ट है कि लिंग किसी भी संज्ञा का ही हो सकता है और वह संज्ञा काई वस्तु, व्यक्ति, जाति, स्थान, स्त्री, पुरुष, जड़ किसी का भी हो सकता है चाहे वह प्राणिवाचक हो या अप्राणिवाचक। स्पष्ट है कि लिंग–भेद का प्रयोग भाषा को सरल और स्पष्ट बनाने तथा विश्व के सभी वस्तुओं को अच्छी प्रकार से समझने में सुविधा

के दृष्टिकोण से किया गया है। परन्तु लिंग असमानता किसी जाति या वर्ग के बीच शारीरिक आधार पर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं विभिन्न व्यावहारिक स्तरों पर अनुचित अंतर करना है।" 'पुरुष' और 'स्त्री' के बीच भेदभाव करना लिंग असमानता है। उपर्युक्त विवेचन से लिंग-भेद और लिंग असमानता में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है।

अगर हम शास्त्रों में वर्णित तथ्यों को देखें तो वहाँ 'परुष' और 'नारी' के बीच कोई विभेदक रेखा नहीं खींची गई है। 'पुरुष' की चर्चा सर्वप्रथम हमें ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में देखने को मिलता है जहाँ उसे मूल सत्ता एवं सृष्टि के प्रारंभ बिन्दु के रूप में वर्णित किया गया है। उस पुरुष का विराट स्वरूप है एवं अपार जीवन शक्ति है - "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमि विश्वतो वृत्वाविष्ठ द्दषाङ्गुलम्।।" सांख्य दर्शन में भी 'पुरुष' का अर्थ जीवात्मा या परमात्मा से ही लिया गया है। इस तरह हमारे शास्त्रों में 'नर' एवं 'नारी' दोनों को ही पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है।

प्राचीन काल में स्त्री को काफी सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। समाज में नारी को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। इसका प्रमाण हमें वेद में भी देखने है हुआ को मिलता है। ऋग्वेद मे नारी अर्थ-वाचक 'मेना' शब्द का प्रयोग "मानयन्ति एनाः पुरुषा" "'मेना' शब्द संस्कृत के 'मान्य' शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। मान्य को ही मान या मर्यादा कहा गया है। अर्थात् नारी पुरुष का मान या मर्यादा है। मनु भी नारी को मान या मर्यादा स्वीकार करते हुए कहते हैं कि जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है उस कुल में ईश्वर का निवास होता है। पुराणों में भी पुरुष के मध्य कोई 'अर्द्धनारीश्वर' की कल्पना इस बात का प्रमाण है कि स्त्री और विभेदक रेखा नहीं खींची जा सकती। दोनों का सहअस्तित्व है। प्राकृतिक नियम को भी देखें तो विभिन्न जीवों में अपने वंश को चलाने के लिए नर और मादा का सृजन होता है। हम जिस जगत् में निवास करते हैं उसे 'ब्रह्माण्ड कहा गया है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'ब्रह्म का अंडा'। अगर जगत् को ब्रह्म का अंडा माना जाए तो उसका विकास होना स्वाभाविक है। 'ब्रह्म' को परिभाषित भी करते हुए कहा गया है - 'वृहत्वात् ब्रह्म' अर्थात् जिसका विकास हो वही ब्रह्म है। इस विकास क्रम को आगे बढ़ाने के लिए 'नर' और 'मादा' दोनों का सहयोग समान रूप से अपेक्षित है।

परन्तु ये सारी बातें सिर्फ शास्त्रों तक सीमित रह गई। व्यवहार में ठीक इसके विपरीत देखने को मिलता है। प्राचीन काल में समाज में नारी को उचित सम्मान देने हेतु विवाह प्रथा का आरम्भ हुआ। प्रत्येक स्त्री और पुरुष का यह परम कर्त्तव्य माना गया कि वह इस संस्कार को संम्पन्न करे। महर्षि याज्ञवल्क्य ने ठीक ही कहा है कि 'नारी माता बनने के लिए और पुरुष पिता बनने के लिए ही उत्पन्न किये गए हैं। वेदों में भी कहा गया है कि धर्म का आचरण पुरुष पत्नी के साथ करे। "वही व्यक्ति पूर्ण पुरुष है जो पत्नी और संतान से युक्त है।" विवाह के बाद पति और पत्नी के बीच अविछिन्न संबंध उत्पन्न हो जाता है जो किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं किया जा सकता। हमारी हिन्दू विधि में भी विवाह को पवित्र संस्कार मानते हुए कहा गया है कि हिन्दू विवाह संविदा नहीं बल्कि एक पवित्र संस्कार है जो धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करके पूर्ण किया जाता है एवं जन्मजन्मान्तर कायम रहता है। परन्तु आज के आधुनिक समाज ने पुराने आदशों एवं परम्पराओं को असमानता में बदलकर तलाक प्रथा को जन्म दे दिया।

देश या दुनिया के संतुलित विकास के लिए महिलाओं को घरेलू जिम्मेदारी जैसे शब्द से अलग करना होगा। क्योंकि आज की महिलाएँ सभी क्षेत्र में कार्य करने के लिए तत्पर हैं। ऐसा कहीं नहीं लिखा होता है कि महिलाएँ ही केवल घर का काम कर सकती हैं। जैसे घरकी सफाई हो या कपड़ा धुलाई का काम हो या खाना बनाने का काम हो।

यह कष्ट सिर्फ भारतीय महिलाओं का ही नहीं है। विश्व भर की महिलाएँ इस समस्या से जूझ रही है, परन्तु उनकी इस कष्ट को कोई समझने वाला नहीं है। क्योंकि इस विचार धारा ने अपनी जड़े इतनी गहरी कर रखी है कि महिलाएँ बनी ही है केवल घरेलू कार्यों के लिए। जबकि ऐसा कोई भी वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है, जो इस मिथक को स्वीकार करता हो कि स्त्री और पुरूष जैविकीय विभेद के कारण घर और बाहर के काम के बँटवारें करते हों।

निष्कर्षः- दरअसल इस समस्या की सोच उस समाजीकरण के इर्द-गिर्द घूमती है जो निरंतर इस तथ्य को स्थापित करती हैं कि लड़के परिवार के मुखिया हैं और इसलिए उनके पास प्रभुत्व के वे समस्त साधन होने चाहिए, जो उनकी सत्ता को बनाए रख सके। चूँकि घरेलू कार्यों को दोयम माना जाता है, इसलिए वे पुरूषों के लिए नहीं हैं। वेरोनिका, वेन्होल्ट थॉमसन ने एक लेख "व्हाई डु हाउस वाइफ कंटीन्यू टू बी, क्रिएटेड इन द थर्ड वल्ड, टू?" में लिखा था कि घरेलू स्त्री दुनिया के सभी देशों में घर बाहर तरह तरह के काम करती है, परन्तु उनके द्वारा किए गए कार्यो का मूल्यांकन आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से करने की बजाय इस सोच के इर्द-गिर्द घूमता है कि स्त्रियाँ जो करती हैं वो घरेलू काम है और वे प्राकृतिक या स्वभाविक रूप से इसी काम के लिए बनी हैं। यह एक सोंच भर नहीं है, अपितु सदियों से दोहराया गया ढर्रा है, जिसके तहत् लड़कियों को गढ़ा जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारत हो या दुनिया का कोई भी देश अगर महिला को बराबर का दर्जा नहीं दिया जाएगा तो कभी भी दुनिया का विकास सम्भव नहीं है। इसलिए महिला को बराबर का दर्जा दिया जाए तथा उसमें सहयोग का हर क्षेत्र में उससे काम लिया जाए जिससे देश तथा समाज का विकास सम्भव हो सके तथा महिलाऐं भी यह समझें की हम भी ईश्वर के संतान हैं जिसे ईश्वर ने हम दोनों को बराबर रूप में बनाए हैं तथा हम एक दूसरे के लिए है जिससे देश और समाज का निर्माण तथा विकास होगा।

संदर्भ सूचीः-

1. आर0 के0 रस्तोगी - राजनीतिक समाजशास्त्र।
2. त्यागी एवं रस्तोगी - आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं समाजिक एवं सामाजिक विचार।
3. जी० के० अग्रवाल - प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक।
4. यंग इण्डिया, 1918
5. आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना, वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिकेशन, पृ0-119
6. ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी, एडिशन 2001, पृ0-663
7. पुरुषार्थ चतुष्टय, प्रेमवल्लभ त्रिपाठी, पृ0-05
8. वही, प्रेमवल्लभ त्रिपाठी, पृ-05
9. श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय 5, श्लोक - 10
10. बीजक, रमैनी, 7/2

अकहानी की उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ

पंकज कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग-825319 (झारखण्ड)

जिसे हम अकहानी का दौर कहते हैं, वह वास्तव में बुनियादी तौर पर नई कहानी की प्रतिक्रिया नहीं था, जैसा कि बहुत सारे लोगों की मान्यता है, यह वास्तव में नई कहानी का ही विस्तार था। रामदरश मिश्र उचित कहते हैं- "साठोत्तरी कहानी को नई कहानी से सर्वथा अलगाने का प्रयास किया गया है। किंतु मुझे लगता है कि सर्वथा अलगाव संगत नहीं है। अलगाव की कुछ रेखाओं के बावजूद ऐसा प्रतीत होता है कि साठोत्तरी कहानी नई कहानी का ही नए संदर्भों में विस्तार या विकास है। साठोत्तरी कहानी कहानी में उस तरह कोई बदलाव उपस्थित नहीं करती जिस तरह नई कहानी ने अपनी पूर्ववर्ती कहानी के संदर्भ में किया था।"[1]

नई कहानी की सबसे बड़ी समस्या थी सामाजिक और पारिवारिक संबंध चेतना का विखंडन। नई कहानी के कहानीकारों ने एकदम गहरे उतरकर टूटते-बिखरते पारिवारिक-सामाजिक संबंधों को किसी न किसी रूप में विचारधारात्मक दबाव में देखा और इसके कारण कहानी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण कमजोर हो गया। नई कहानी के कहानीकारों ने इस समस्या को बहुत जमीनी स्तर पर उतरकर देखा और बड़ी सादगी से अपनी कहानियों में इसको कथा का रूप दिया। यानी इनलोगों ने वास्तव में मध्य वर्ग की न सिर्फ समस्याओं और जीवन संघर्षों का चित्रण किया बल्कि उसके दोहरे, स्वार्थी और पाखंडी चरित्र का भी चित्र प्रस्तुत किया। काशीनाथ सिंह की सुधीर घोषाल, अपना रास्ता लो बाबा जैसी कहानियां इस प्रसंग में खासतौर से उल्लेखनीय हैं। परिवार में हो रही टूटन को साठ के बाद की पीढ़ी के कथाकारों ने बहुत गंभीरता से लिया है। नई कहानी की तुलना में साठोत्तरी पीढ़ी के कथाकारों ने आपसी संबंधों के बीच की संवेदना को उभारने पर बल दिया क्योंकि यही संवेदना परिवार और समाज के बीच के रिश्ते को जोड़कर रख सकती है।

साठोत्तरी कहानी के कहानीकारों में प्रमुख रूप से रवींद्र कालिया, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, गंगा प्रसाद विमल, ज्ञानरंजन, से० रा० यात्री आदि हैं। लेकिन इसके अलावे नई कहानी के दौर के मोहन राकेश, भीष्म साहनी, अमरकांत, रेणु आदि इस दौर में भी लिख रहे थे और इन सब ने नई कहानी की संवेदनात्मक जड़ता से खुद को मुक्त करने का प्रयास किया। लेकिन साठोत्तरी कहानी के जो विभिन्न चरण हैं, जिन्हें हम अलग-अलग आंदोलनों के नाम से अभिहित करते हैं, उनमें पहला अकहानी आंदोलन है जिसमें रवींद्र कालिया, काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। जैसा कि नाम से ही प्रकट होता है, अकहानी में कहानी के निषेध का भाव है यानी ये लेखक यह मानकर चल रहे थे कि कहानी के नाम पर जो ये लिख रहे हैं वह कहानी नहीं, कुछ और है। यहां यह उल्लेखनीय होगा कि पश्चिम में एंटी स्टोरी नाम से एक आंदोलन चला था जो बहुत प्रचार नहीं पा सका। फिर अकहानी कहने के पीछे क्या मंशा हो सकती है? इस प्रसंग में गोपाल राय बतलाते हैं कि विजयमोहन सिंह और गोविंद मिश्र के द्वारा 1965 में बिहार के आरा में साठोत्तरी कथा सम्मेलन हुआ। कुछ समय बाद शिमला में और फिर कोलकाता में एक कथा समारोह हुआ जिसका विषय भी वही था जो पिछले दो सम्मेलनों में था, यानी अकहानी के नाम से एक नए कहानी आंदोलन की शुरुआत। गोपाल राय का यह कथन यहां उल्लेखनीय है-

> *"यह साठोत्तरी कहानी आंदोलन अकहानी नाम से जानी गई। अकहानी आंदोलन के मुख्य प्रवक्ता गंगा प्रसाद विमल माने जाते हैं। वैसे जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार, उन्होंने ही 1964 में केंद्र पत्रिका में प्रकाशित अपनी टिप्पणी में अकहानी शब्द का जिक्र करते हुए सातवें दशक के समर्थ कथाकारों के द्वारा लिखी गई कहानियों के अलगाव को रेखांकित किया था।"*[2]

इस प्रकार अकहानी के मूलभूत चरित्र को समझा जा सकता है। इस प्रसंग में यह उद्धरण उल्लेखनीय है-

"अकहानी का 'अ' शब्द निषेध का सूचक है, इससे यह ज्ञात होता है कि ये लेखक जो लिख रहे हैं वह कहानी नहीं है, कुछ और है, किंतु शब्दार्थ के स्तर पर अकहानी का तात्पर्य नहीं खुल सकता। वास्तव में है तो यह भी कहानी ही, किंतु यह कहानी के स्वीकृत स्वरूप के प्रति निषेधात्मक रुख अख्तियार करती हुई सहज जीवन-संदर्भों में अधिक खुलापन, अधिक अनौपचारिकता देने की समर्थक जान पड़ती है।"[3] यानी पहले की कथा पीढ़ी से यह नई कथा पीढ़ी इस अर्थ में भिन्न है कि "पूर्ववर्ती पीढ़ी से अलगाव का मोटा विंदु समकालीन जीवनदृष्टि है, जो कदाचित पहली बार सन् 60 के बाद की रचनाओं में दृष्टिगत होती है। पूर्ववर्ती पीढ़ी के लिए जीवनदृष्टि एक विशिष्ट विचार का आग्रह रही है।..... जबकि समकालीन रचनाकार के लिए वह केवल एक निरंतर परिवर्तित बोध के अन्वेषण और प्रश्नों की प्रक्रिया के रूप में ही सामने रही है।.... कथा रचना की पद्धति, आग्रह, भाषा की अभिव्यक्ति, या इससे भी अधिक क्रूर और झूठे शिल्प या कथ्य जैसे शब्द इस नई रचना पीढ़ी ने अस्वीकार किये हैं तथा अपना यह विरोध और अस्वीकृति अपनी उन प्रयोगधर्मी रचनाओं के माध्यम से दी है, जो पूर्व पीढ़ी की तमाम कथा रचना संबंधी धारणाओं को तोड़ती है।"[4] जिन स्वीकृत स्वरूपों की ओर रामदरश मिश्र ने यहां संकेत किया है उनका संबंध कहानी के वस्तु विधान से भी है और शिल्प संरचना से भी। प्रेमचंद के दौर में कहानी में एक सुगठित कथा-विन्यास होता था जिसे नई कहानी के दौर में ही तोड़ दिया गया। कथा के बजाय चरित्र को ज्यादा महत्व मिला। अकहानी के कथाकारों ने कथावस्तु के प्रचलित ढांचे को तो तोड़ा ही, चरित्र को लेकर प्रचलित मान्यताओं को भी तोड़ दिया। रामदरश मिश्र कहते हैं-

> *"कहानी का सर्वाधिक स्वीकृत तत्व है, उसका कथा तत्व। पहले कहानी एक सुगठित कथा कहती थी और उसी के माध्यम से चारित्रिक विशेषताएं, नैतिक उद्देश्य आदि व्यंजित करती थी। उतार-चढाव, नाटकीय आकस्मिकता से संयुक्त कथा तत्व का एक निश्चित आदि और निश्चित अंत होता था। कहानी एक निश्चित उद्देश्य की सिद्धि के लिए और मनोरंजन बनाए रखने के लिए घटनाओं और प्रसंगों के संग्रह और त्याग का पूरा ध्यान रखती थी।"*[5]

यानी अकहानी की जड़ें कहानी की पिछली परंपरा में ही हैं, लेकिन उसके पूरे ढांचे को अकहानी के कथाकारों ने तोड़ दिया और फलसफों से हटकर जीवन के दैनिक संघर्षों, छोटे-छोटे संवेदनात्मक क्षणों को कहानी में कथा के विन्यास में बदल दिया है। लेकिन इसके बावजूद उसे पश्चिम में चले एंटी स्टोरी की तर्ज पर इसे अकहानी नहीं कहा जा सकता। एंटी स्टोरी वाली कहानियों में कथा होती है लेकिन उसमें विश्रृंखलता होती है, आगे की घटनाएं पीछे, पीछे की घटनाएं आगे या बीच में, यानी ऐसी कथा को कहीं से भी पढ़ा जा सकता है, आदि, अंत, मध्य अथवा मध्य, उसके बाद आदि और फिर अंत। कहने की जरूरत नहीं कि अकहानी में कथा के साथ इस प्रकार का ट्रीटमेंट नहीं किया जाता। वास्तव में जिस रूप में अकहानी आंदोलन को नई कहानी के पूर्ण विरोधी रूप में खड़ा किया जाता है, वैसा है नहीं। कथा, चरित्र आदि को लेकर नई कहानी में आई जड़ता के खिलाफ अकहानी आंदोलन के कथाकारों ने जो बेरुखी दिखलाई, वह उसके अतिवाद के खिलाफ थी, रूप के खिलाफ थी जिसके बारे में रवींद्र कालिया ने कहा था कि कहानी का वह रूप जिसे कहानी कहा जाता है उसके नाम से ही वे घृणा करते हैं। अन्यथा अकहानी के कथाकारों की कहानियों में भी कथा है, चरित्र और कहानी के नैतिक उद्देश्य हैं, भले ही ट्रीटमेंट में एक प्रकार की स्वच्छंदता नजर आती है। रवींद्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', 'एक डरी हुई पत्नी', गंगाप्रसाद विमल की 'विध्वंस', दूधनाथ सिंह की 'रीछ', ज्ञानरंजन की 'पिता', 'अमरूद का पेड़' आदि कहानियों के मूल्यांकन से इसकी पुष्टि होती है। ट्रीटमेंट को लेकर यही दृष्टिकोण श्रीकांत वर्मा, महेंद्र भल्ला, अवध नारायण सिंह, सुधा अरोड़ा तथा प्रबोध कुमार आदि में दिखलाई देता है।

अकहानी का शिल्प बदला हुआ है। उसमें पात्रों के नाम-ग्राम का परिचय न देकर वह, मैं, तुम जैसे प्रयोगों की अधिकता है। अकहानी के पात्र बेनाम इसलिए हैं कि ये भीड़ से धिरे होकर भी स्वयं को अकेला महसूस करते हैं और कुंठा, घुटन, निराशा तथा अवसाद से ग्रस्त होकर अनास्थावादी बन गये हैं। यहाँ व्यक्ति अकेला है, न वह किसी के साथ है और न कोई उसके साथ है। उसके लिए अतीत और भविष्य का कोई मतलब नहीं है। वर्तमान भी नाममात्र के लिए है, वह केवल क्षण या मूड के रूप में शेष होकर रह गया है और पूर्णरुपेण आत्मकेंद्रित है। यहाँ कहानी को इस अर्थ में लिया गया है कि अब कहानी की संभावना समाप्त हो गयी है और कहानी पूर्व से अलग रास्ते पर ही चल सकती है। अकहानी में कथा की पृष्ठभूमि या प्लाट नहीं होती। कहानी के सभी तत्वों का होना भी जरूरी नहीं माना जाता। ऐसा माना जाता है कि सेक्स केंद्रित होने के कारण 'अकहानी' आंदोलन दीर्घजीवी नहीं हुआ। क्योंकि नैतिक वर्जनाओं और निषेधों के प्रति कहानीकारों ने आक्रामक रुख अख्तियार किया है।

दूधनाथ सिंह की कहानियाँ अनायास ही इस विचार को जन्म देती हैं कि जहाँ एक समय ऐसा था जब कहानियों में आदर्श चरित्र निर्मित होते थे, दूसरा समय ऐसा आया जब प्रामाणिक चरित्र निर्मित किये जाने लगे, वहीं एक समय यह भी है कि अभिशप्त चरित्रों की सृष्टि की जाने लगी। गंगा प्रसाद विमल की कहानी 'एक ओर विदाई' में गुमशुदा पहचान की तलाश है पर यह कहानी सिद्धांत के जाल में उलझकर कहानीपन खो देती है। इनकी कहानियों में केले के पत्ते की तरह तह की हुई जिस भाषा का प्रयोग मिलता है उसे अब भाषा का दुरुपयोग माना जाने लगा है।

दरअसल नई कहानी में विसंगति बोध, अजनबियत, मृत्यु बोध आदि को कथाकारों द्वारा एक प्रकार से वैचारिक रूप में आरोपित कर लिया गया था और इसी को अकहानी के कथाकारों ने जीवन यथार्थ के रूप में अपना लिया। रामदरश मिश्र कहते हैं कि ". ....अकहानी का स्वर जेन्युइन भी है और फेक भी।

फेक कहानियों में संन्यासी और विद्रोही पात्र तो अविश्वसनीय होते ही हैं लेखक की प्रक्रिया भी उन्हें अविश्वसनीय बना देती है। अकहानी या अकविता का दौर एक तरह से राष्ट्रीय जीवन में मोह भंग का या मूल्य टूटन का दौर कहा जा सकता है। इसलिए अकहानी में व्याप्त मूल्यहीनता और विसंगति बोध को मूलत: यौन संदर्भों में खोजा, वृहत्तर सामाजिक जीवन के बीच नहीं, दूसरे इन्होंने पश्चिमी फार्मूलों का सहारा लेकर अपने संदर्भों में प्राप्त सत्य को असत्य सीमा तक खींचकर अंतर्राष्ट्रीय बनाने का प्रयास किया, या केवल फार्मूलों से ही एक असत्य लोक की रचना कर ली। इस प्रकार अकहानी की दुनिया न तो व्यापक बन सकी और न प्रामाणिक। यही कारण है कि अकहानीकारों की रचनात्मक जिंदगी थोड़ी अवधि के लिए दिखाई पड़ी।"[6]

अकहानी और उसके पहले की नई कहानी के विविध तत्वों का मिला-जुला रूप उन कहानियों में दिखलाई देता है और इसी को 'सचेतन कहानी' आंदोलन कहा गया। वास्तविकता यह है कि इस आंदोलन में कहानी को साहित्यिक राजनीति का माध्यम बना दिया गया और जो नए कथाकार उभर रहे थे और उन्हें उनकी इच्छा के अनुरूप महत्व पूरा-पूरा नहीं मिल रहा था। ये वे कथाकार थे जो अपनी कहानियों को लेकर आत्ममुग्ध थे और तुरंत प्रसिद्धि की उत्कट महत्वाकांक्षा रखते थे। जहां तक इनके लिए सचेतन होने की बात है, इस समूह के कहानीकारों ने साठोत्तरी कहानी में यौन चित्रणों में काफी अश्लीलता का जो प्रयोग किया और जो फूहड़ मालूम पड़ने लगा था, उसके विरोध में सचेतन कहानी का आंदोलन चला। यह प्रयोग इन लेखकों ने यथार्थ चित्रण के नाम पर किया। इसके लिए कुछ तो सहायता उन्हें नई कहानी के लेखकों की गुटबाजी से मिली, कुछ नए उभर रहे कहानी के आलोचकों से मिली। दूसरी महत्वपूर्ण बात है कि यथार्थवादी दृष्टि को किसी एक विंदु पर केंद्रित करने के बजाय इन्होंने जीवन के यथार्थ से जुड़े विभिन्न बिंदुओं को उठाया। यथार्थवाद के साथ-साथ सहजता को भी इस दौर के कहानीकारों ने मुख्य रूप से उठाया। महीप सिंह इस आंदोलन के प्रवर्तक थे और रामकुमार भ्रमर, आनंद प्रकाश जैन आदि विशेष रूप से चर्चा के योग्य कथाकार हैं। महीप सिंह की 'कील', रामकुमार भ्रमर की 'लौ पर रखी हथेली' तथा आनंद प्रकाश जैन की 'लिपिस्टिक' इस दौर की उल्लेखनीय कहानियां हैं। इनके अलावे कुछ और कहानीकार इस दौर में उभरकर आए जिनमें वेद राही, नरेंद्र कोहली, योगेश गुप्त, मनहर चौहान के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन नवीनता अथवा सचेतनता की दृष्टि से यह आंदोलन कुछ खास हस्तक्षेप नहीं कर सका। वास्तव में नई कहानी में जो आत्मपरकता और वैयक्तिकता थी उसी के विरोध में सचेतन कहानी नामक आंदोलन महीप सिंह ने शुरू किया था। सचेतन को व्याख्यायित करने का प्रयास करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि आस्थाहीनता कहानी के लिए मूल प्रश्न बल्कि आस्था में जड़ता आ जाना समस्या है। मधुरेश इस पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-

> *"आस्था की इस जड़ता को वे दो रूपों में देखते हैं। एक ओर यदि यह मनुष्य को अतीत के सुनहले स्वप्नों में डुबाती है तो दूसरी ओर कुंठा, निराशा, अवसाद और विश्रृंखलता की भावना उत्पन्न करती है। उनके अनुसार इन दोनों ही स्थितियों का परिणाम निष्क्रियता के रूप में सामने आता है। उनके अनुसार सचेतन कहानी इसी निष्क्रियता के प्रतिरोध की कहानी है।"*[7]

वास्तव में नई कहानी के बाद हिंदी कहानी में बुनियादी परिवर्तन नक्सल आंदोलन के बाद की कहानियों में दिखलाई देता है। इस दौर के कहानीकारों की मान्यता थी कि नई कहानी से अबतक जो कहानियां रची गई हैं, वर्गीय दृष्टि का उनमें सर्वथा अभाव है जो समाज के हाशिए पर पड़े निम्न वर्ग के लोग हैं उनकी उपेक्षा की गई है। जिसे आम जन कहते हैं, वह कहानी के परिदृश्य से गायब हो गया था। दरअसल आजादी के आंदोलन के दौर में जीवन की जिन मूलभूत समस्याओं के निदान की उम्मीद रखी गई थी, खास तौर से यह माना जा रहा था कि मजदूरों, छोटे किसानों, दलितों आदि समाज के निम्न वर्ग के लोगों के जीवन में बदलाव

होगा, वैसा हुआ नहीं। सत्ता के द्वारा घोषणाएं बहुत हुई लेकिन जमीनी स्तर पर कोई परिवर्तन नहीं घटित हुआ। यह जो स्वप्न भंग हुआ, इसकी प्रतिक्रिया तो नई कहानी में हुई, किंतु बिलकुल अमूर्त और मनोवैज्ञानिक स्तर पर, उसमें भी ज्यादातर कहानियों में मध्य वर्ग के प्रेम, काम-कुंठा, छद्म विसंगति बोध और व्यक्ति के स्तर पर संत्रास बोध आदि के रूप में हुई। समाज में आम आदमी के साथ होने वाले भेदभाव, अत्याचार आदि के विरुद्ध जो गुस्सा लोगों में पनप रहा था, उसकी परिणति नक्सलबाड़ी आंदोलन के रूप में हुई। यह आंदोलन वामपंथ का अतिवादी रूप था। इसका प्रभाव उस दौर में उभर रहे कथाकारों पर पड़ा उन्होंने जो कहानियां लिखीं उनमें आम आदमी को तरजीह मिली।

संदर्भ संकेतः

1. मिश्र, रामदरश. हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2007, पृ० 106.
2. राय, गोपाल. हिंदी कहानी का इतिहास. भाग-2, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2014, पृ० 548.
3. मिश्र, रामदरश. हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान. पृ० 110.
4. राय, गोपाल. हिंदी कहानी का इतिहास. भाग-2, पृ० 548.
5. मिश्र, रामदरश. हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान. पृ० 110.
6 मिश्र, रामदरश. हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान. पृ० 114.
7. मधुरेश. हिंदी कहानी का विकास. इलाहाबाद: सुमित प्रकाशन, नवम संस्करण-2018, पृ० 112.

बिहार में भूमि सुधार: एक अवलोकन

रमेश कुमार

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा

मनुष्य को अपने अस्तित्व के लिए सुरक्षित आश्रय और भोजन की आवश्यकता होती है। आज भी हमारे देश में ऐसी स्थिति है जहां बड़ी संख्या में लोगों की उचित भोजन और आश्रय तक पहुंच नहीं है। भूमि पर अधिकार इन मूलभूत आवश्यकताओं का स्रोत है। भूमि न केवल आजीविका, निर्वाह और अस्तित्व का स्रोत है बल्कि यह न्यायपूर्ण, लोकतांत्रिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से समावेशी समाज के लिए एक आवश्यक शर्त भी है। प्रत्येक मनुष्य को इसे प्राप्त करने की स्वतंत्रता और क्षमता होनी चाहिए। यह नागरिकता के अधिकारों से बहुत अधिक जुड़ा हुआ है जो अपनेपन, समानता और स्वतंत्रता की भावना देता है। भूमि पर अधिकार को कानूनी और मानवाधिकार के रूप में व्यक्त करने की आवश्यकता है ताकि समाज में एक न्यायपूर्ण, लोकतांत्रिक और गरिमापूर्ण मानव अस्तित्व के लिए बुनियादी जरूरतों की पहचान किया जा सके।

भारत के भौगोलिक क्षेत्र के 3% और इसकी आबादी के लगभग 8% के साथ देश का तीसरा सबसे अधिक आबादी वाला राज्य बिहार, अक्सर श्भारत के सबसे पिछड़े राज्यश के रूप में जाना जाता है। वर्तमान में यह भारत का सबसे कम शहरीकृत राज्य है। गैर-कृषि क्षेत्र में उत्पादक रोजगार उतना नहीं बढ़ा है जितना अन्य राज्यों में। ग्रामीण उद्योग जो राज्य में हैं जैसे चीनी, जूट आदि हाल के वर्षों में चरमरा गए हैं। बिहार के पिछड़े राज्य के रूप में वर्णित होने का ऐतिहासिक संदर्भ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1757 के वर्ष में बिहार में भूमि शासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का पता लगाया जा सकता है। 1757 में प्लासी की लड़ाई और 1764 में बक्सर की लड़ाई में जीत के ठीक बाद, अंग्रेजों ने बंगाल और बिहार के आधुनिक राज्यों पर राजनीतिक नियंत्रण प्राप्त किया जो कि पूर्व में बंगाल प्रेसीडेंसी था। 1765 में अंग्रेजों को औपचारिक रूप से इन क्षेत्रों में राजस्व-संग्रह अधिकार प्रदान किए गए थे। औपचारिक अधिकार प्राप्ति के कुछ ही वर्षों बाद बिहार में भी 1793 में स्थायी बंदोबस्त की शुरुआत की गई थी, जिसमें जमींदारों को किसानों से भू-राजस्व की वसूली के लिए मध्यस्थ बनाया गया था और बदले में उन्हें राज्य को भू-राजस्व की निश्चित राशि का भुगतान करना पड़ता था। भूमि का अधिकार जमींदारों में निहित था, लेकिन वास्तविक काश्तकारों (जोतदारों) को कोई सुरक्षा नहीं दी गई थी। 1859 के अधिनियम और स्पष्ट रूप से 1885 के अधिनियम (बिहार काश्तकारी अधिनियम) के माध्यम से ही किरायेदारों के अधिकार को कुछ कानूनी मान्यता मिली। स्थायी बंदोबस्त स्पष्ट रूप से कृषि संरचना और कृषि विकास के लिए हानिकारक दिखता है।

स्वतंत्रता पूर्व काल

भू-राजस्व पारंपरिक रूप से मुगलों के साथ-साथ अंग्रेजों के लिए भी राजस्व का मुख्य स्रोत था। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में मुगल शासन की अवधि के दौरान, भूमि राजस्व गैर-वंशानुगत, हस्तांतरणीय राज्य अधिकारियों (सम्राट अकबर द्वारा शुरू की गई मनसबदारी प्रणाली) द्वारा एकत्र किया गया था। भूमि राजस्व, या भूमि कर, ब्रिटिश काल में भी सरकारी राजस्व का प्रमुख स्रोत था। इस अवधि के दौरान नीतिगत बहस में भू-राजस्व और उसका संग्रह सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे थे। भू-राजस्व के संग्रह की सुविधा के लिए अंग्रेजों द्वारा वैकल्पिक भू-राजस्व प्रणाली की विभिन्न व्यवस्थाएँ की गईं। सभी खेती योग्य भूमि तीन वैकल्पिक प्रणालियों

में से किसी एक के अंतर्गत आती थी: (i) एक जमींदार-आधारित प्रणाली (जिसे जमींदारी या मालगुजारी के रूप में भी जाना जाता है), (ii) एक व्यक्तिगत कृषक-आधारित प्रणाली (रैयतवारी), और (iii) एक गांव आधारित प्रणाली (महालवारी)। विभिन्न प्रकार के कारकों के आधार पर, मुख्य रूप से मिट्टी पर आधारित और गौण रूप से काश्तकार की जाति, सिंचाई की क्षमता, खाद की कमान आदि के आधार पर राजस्व दरों का निर्धारण किया जाता था। इन प्रणालियों ने परिभाषित किया कि अंग्रेजों को भूमि कर का भुगतान करने का दायित्व किसके पास था। कानूनी तौर पर जमींदारों को जमीन का मालिक माना जाता था। लेकिन वास्तव में उनकी भूमिका सरकार द्वारा नियुक्त बिचौलियों की थी जो शीर्षक धारकों से राजस्व एकत्र करते थे। राजस्व का भुगतान सरकार को नकद में किया जाता था और यह शीर्षक-धारकों द्वारा जमींदारों को भुगतान किए गए राजस्व का प्रमुख हिस्सा हुआ करता था। लेकिन जमींदारों को अधिकार था कि वे शीर्षक-धारकों से अपनी इच्छानुसार कितना भी राजस्व वसूल कर सकते थे। और फिर दूसरे स्तर पर शीर्षक-धारक थे जिन्होंने राजस्व एकत्र करने के लिए भूमि के मालिकों या अन्य शीर्षक-धारकों से अधिकार प्राप्त किया था। तीसरे स्तर पर अधिभोगी रैयत थे जो अपने कब्जे वाली भूमि के लिए राजस्व का भुगतान करते थे और स्वयं या अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से या भाड़े के मजदूरों द्वारा या अपने सहयोगियों की सहायता से भूमि पर खेती करते थे। वे अपने अधिकार किसी और को हस्तांतरित कर सकते थे। उनके नीचे गैर-अधिभोगी रैयत थे जिन्हें अस्थायी आधार पर भूमि पर कब्जा करने के लिए राजस्व का भुगतान करना पड़ता था। इसके बाद उप-काश्तकार थे जिन्हें रैयतों से अस्थायी आधार पर भूमि प्राप्त करने के लिए राजस्व का भुगतान करना पड़ता था।

30 और 40 के दशक में बिहार में किसान आंदोलन की बाढ़ आ गई थी। ब्रिटिश राज के दौरान जमींदारी उन्मूलन के इन आंदोलनों में मुख्य भूमिका अधिभोगी और गैर-अधिभोगी रैयतों की थी। और साथ-साथ किरायेदारों और मजदूरों ने भी भाग लिया। यही कारण है कि जमींदारी उन्मूलन का सबसे बड़ा लाभ अधिभोगी और गैर अधिभोगी रैयतों को मिला।। 1938 के अंत में, सरकार ने स्थायी बंदोबस्त के संदर्भ में मौजूदा भू-राजस्व प्रणाली की जांच के लिए एक भू-राजस्व आयोग नियुक्त किया। आयोग ने 1940 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। जमींदारी व्यवस्था के कुछ गंभीर दोषों की ओर इशारा किया गया। आयोग द्वारा यह सिफारिश की गई थी कि जमीन के काश्तकारों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया जाना चाहिए और सरकार को वास्तविक काश्तकारों के साथ सीधे संबंध में लाया जाना चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद भूमि नीति में विकास

1946 में कांग्रेस मंत्रालय द्वारा कार्यभार संभालने के साथ ही बिहार राज्य की जमींदारी प्रथा को समाप्त करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इस संदर्भ में, बिहार राज्य जमींदारी अधिग्रहण विधेयक 1947 का मसौदा तैयार किया गया और देश में पहला जमींदारी-उन्मूलन कानून 1947 में बिहार में पेश किया गया था। देश के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के खिलाफ होने के बाद भी बिहार सरकार ने 1948 में कानून पारित किया। औपचारिक रूप से जमींदारों, सरकार और कृषक के बीच अन्य मध्यस्थों को समाप्त कर दिया। स्वतंत्रता के बाद, बिहार पहला राज्य था जहां भूमि सुधार कानून लाया गया था। बिहार भूमि सुधार अधिनियम 1950 में संशोधन किया गया और बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम 1953 के रूप में पारित किया गया, जिससे राज्य में निहित सभी बिचौलियों के हित अधिसूचना के प्रकाशन के साथ सभी बाधाओं से बिल्कुल मुक्त हो गए। जमींदारी के उन्मूलन की प्रक्रिया 1956 में पूरी हुई।

भूमि सुधार और संघर्ष

बिहार में किसान संघर्ष का गौरवशाली इतिहास रहा है। 1930 का दशक स्वामी-सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में जुझारू किसान संघर्ष का दशक रहा है। स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व वाली किसान-सभा ने पहली बार जमींदारी उन्मूलन का नारा बुलंद किया। 1947 के बाद कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में कुछ आंदोलनों ने आकार लिया। 1960 के दशक तक यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया था कि कांग्रेस का नारा श्जोतने वालों को जमीनश और अन्य सरकारी कानून और कुछ नहीं बल्कि भूमिहीन जनता के साथ मजाक था। 1960 के दशक के अंत तक पूरे विश्व में श्केनेसियन अर्थशास्त्रश का प्रभाव समाप्त हो चुका था। विश्व अर्थव्यवस्था एक नए प्रकार के संकट के मुहाने पर खड़ी थी जिसने भूमिहीन श्रमिकों की स्थिति को और खराब कर दिया था। इस दौरान कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच हुई बहस ने देश में चल रहे आंदोलन में एक नया अध्याय जोड़ दिया। चारु मजूमदार के नेतृत्व में

सीपीआई (एम) के भीतर एक नई बहस शुरू हुई जिसमें कहा गया कि भारतीय कृषि संबंध अर्ध-सामंती है। इसने श्जोतने वालों को जमीनश के नारे को पूरी ताकत से लागू करने का नया रास्ता दिखाया। बंगाल में नक्सलबाड़ी के भूमिहीन किसानों ने जमींदारों की जमीन पर कब्जा कर लिया। यह संघर्ष देश के विभिन्न भागों में फैल गया। बिहार में भी भूमिहीनों ने जमींदारों की फसल पर कब्जा करना शुरू कर दिया। इस काल में जमींदारों का सामाजिक बहिष्कार संघर्ष का एक महत्वपूर्ण पहलू था। इसके अलावा दलितों और भूमिहीनों ने सीलिंग लिमिट से अधिक की जोत और गैरमजरुआ जमीन पर कब्जा करना शुरू कर दिया। एकबारी में सामंती उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष शुरू हुआ। व्यापक रूप से लोकप्रिय होने वाले इस आंदोलन को नक्सली आंदोलन के रूप में जाना जाता था, जिसने समाज के अर्ध-सामंती आधार और उसके अधिरचना दोनों पर पूरी ताकत से प्रहार करना शुरू कर दिया। भूमिहीन दलितों ने जहां सामंती दमन से राहत महसूस की, वहीं उन्होंने एक नई तरह की आजादी महसूस की। अर्ध-सामंती ताकतों ने इस आंदोलन को कुचलने की कोशिश की लेकिन भूमिहीन मजदूरों ने सशस्त्र प्रतिरोध के साथ इसे चुनौती दी। तत्पश्चात सामंत एकजुट हो गए और प्रशासन के मिलीभगत के साथ इस चुनौती को स्वीकार किया। संघर्ष का नेतृत्व करने वालों को फर्जी मुठभेड़ों में मार डाला गया। 70 के दशक के मध्य तक चले भारी दमन के कारण इस आंदोलन ने कुछ हद तक अपनी ताकत खो दी। हालाँकि, आंदोलन ने भूमिहीन जनता के बीच लोकतांत्रिक चेतना के एक नए रूप को फैलाने में मदद की।

इस नई तरह की लोकतांत्रिक चेतना ने प्रतिरोध को फिर से संगठित करने में मदद की। 80 के दशक की शुरुआत से बिहार के कई इलाकों में सामंतवाद विरोधी संघर्ष ने फिर से आकार लिया। संघर्ष ने ग्रामीण क्षेत्रों में सामंती वर्चस्व पर पूरी ताकत से प्रहार किया। सामंती ताकतों ने कई निजी लड़ाकों के गठन के साथ जवाब दिया। प्रशासन के सीधे समर्थन से उन्होंने दलितों पर अपना हमला जारी रखा। जब प्रशासन भूमिहीन दलितों को दबाने में सफल नहीं हुआ तो उन्होंने सामंती निजी सेनाओं की मदद से भूमिहीन दलितों का नरसंहार किया। इसके बाद शासक वर्ग ने इसे महज श्जाति संघर्षश बताकर प्रचारित किया। वास्तव में यह एक श्वर्ग संघर्षश था क्योंकि बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में श्जातिश और श्वर्गश को विभाजित करने वाली एक महीन रेखा पाई जाती है।

उच्च और मध्य जाति के ऊपरी तबके शोषक थे जबकि दलित या तो भूमिहीन मजदूर थे या बंटाईदार थे। यह सामंती उत्पीड़न के खिलाफ दलितों की लामबंदी का कारण बताता है। इस आन्दोलन ने एक नई तरह की राजनीति को सामने रखा और इसने भूमि और राज्य सत्ता के प्रश्न के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप बिहार के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों के कई हिस्सों में सामंती प्रभुत्व कमजोर हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक पैमाने पर मजदूरी संघर्ष छेड़े गए। कुल मिलाकर भूमिहीन मजदूरों में एक नई तरह की राजनीतिक चेतना ने आकार लिया। इसके बाद इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सुधार अभियान चलाया गया। इन सुधार अभियानों ने आंदोलन को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हालांकि, 21वीं सदी के पहले दशक में मैदानी इलाकों में संघर्ष कुछ हद तक कमजोर पड़ गया। सरकारी सुधार और दमन दोनों ही इसके कारण थे। लेकिन बुनियादी मुद्दे जस के तस बने रहे। बहरहाल, ग्रामीण क्षेत्रों में सामंती प्रभुत्व कुछ हद तक कमजोर हुआ है। जब ग्रामीण क्षेत्रों में संघर्ष कमजोर पड़ने लगा तो सामंतों ने अपने संघर्ष के दौरान पूर्व में जमीन के वास्तविक हकदारों से प्रशासन के सहयोग से जमीन छीनना शुरू कर दिया। कई क्षेत्रों में पाया गया कि जमींदारों ने उन जमीनों को मध्यम जाति के लोगों और दबंगों को बेच दिया, जिन पर पहले संघर्ष के दौर में भूमिहीन जनता का कब्जा था। कहानी यहीं खत्म नहीं होती। जमींदारों ने वह जमीन भी बेच दी जो सरकार ने भूमिहीनों को दी थी। इसप्रकार जमींदारों ने भूमि संघर्ष की दिशा को भूमिहीन जनता और मध्यम जातियों के नए दबंगों के बीच अंतर्विरोध के रूप में मोड़ दिया था। विवादित जमीन को मध्य जाति के लोगों ने खरीद कर कब्जा कर लिया। यह सब एक नए प्रकार के विकास को दर्शाया जहां मध्यम जाति के बाहुबली उन जमीनों को खरीद कर एक नए प्रकार के जमींदार बन गये। इस प्रक्रिया में एक पुराने जमींदार के स्थान पर एक नए प्रकार का जमींदारवाद आ गया जो गरीब किसानों के शोषण और दमन के मामले में समान रूप से कार्य करता रहा। यह बीते कुछ वर्षों से एक सामान्य प्रवृत्ति बन गई है।

भूमि सुधार और राज्यः

बिहार में भूमि सुधार अधिनियमों की एक लंबी श्रृंखला है। बिहार सरकार ने 1947 में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम पारित किया। 1948 में, इसे संशोधित किया गया और बिहार जमींदारी उन्मूलन अधिनियम (1948) के रूप में प्रकाशित किया गया। बिहार भूमि सुधार अधिनियम 1950 में पारित किया गया था। इस अधिनियम को भी चुनौती दी गई थी और पटना उच्च न्यायालय ने इस अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला घोषित किया था। तब संविधान संसोधन विधेयक, 1951 (पहला

संशोधन) नामक एक विधेयक संसद में पेश किया गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ संविधान के अनुच्छेद 31 (बिहार सरकार, 1956) में कुछ संशोधन के लिए प्रावधान किया गया था। 1955 में कुछ लोगों के हाथों में भूमि जोत की एकाग्रता को तोड़ने के लिए सीलिंग बिल जिसे बिहार कृषि भूमि (सीलिंग और प्रबंधन) विधेयक कहा जाता है, तैयार किया गया था, लेकिन समृद्ध भूस्वामियों के मजबूत प्रतिरोध के कारण इसे प्रस्तुत नहीं किया जा सका। 1961 में पहले के विधेयक-बिहार भूमि सुधार (सीलिंग, भूमि आवंटन और अधिशेष भूमि अधिग्रहण) अधिनियम का एक संशोधित संस्करण लाया गया था। इस अधिनियम में कोई भी श्व्यक्तिश (परिवार नहीं) भूमि की श्रेणी के आधार पर एक निश्चित निर्दिष्ट भूमि से अधिक भूमि नहीं रख सकता है।

बिहार में सीलिंग संबंधी कानून 19 अप्रैल, 1962 को अस्तित्व में आया। कुछ संशोधनों के बाद इसे 1963 में प्रकाशित किया गया। इसमें भूमि के वर्गीकरण के आधार पर अधिकतम 20 से 60 एकड़ तक भूमि रखने का प्रावधान था। इसमें भी प्रावधान था कि सीलिंग एक्ट भी जमींदारों को अपने पास जमीन रखने का पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। यह एक त्रासदी है कि जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के लागू होने के 12 वर्षों के बाद ही भूमि सीलिंग अधिनियम तैयार किया जा सका जो जमींदारों के लिए अपने हित में इसका उपयोग करने के लिए पर्याप्त उदार था। जमींदारी-उन्मूलन अधिनियम के लागू होने के बाद से जमींदारों को पता था कि भूमि सीलिंग अधिनियम जल्द ही चार्टर्ड किया जाएगा। इस अवधि के दौरान जमींदारों ने अपनी भूमि को सीलिंग से बचाने के लिए प्रत्येक संवैधानिक खामियों का इस्तेमाल किया। सीलिंग अधिनियम के तहत जमींदारों को कृषि भूमि, घर, चारागाह और वृक्षारोपण की विभिन्न श्रेणियों में भूमि रखने की अनुमति दी गई थी। 26 जून, 1964 को केंद्र सरकार की भूमि-सुधार समिति की बैठक में, बिहार के मुख्यमंत्री ने आश्वासन दिया कि वे कानून की फिर से जांच करेंगे और पुनर्वितरण के लिए पर्याप्त भूमि प्राप्त करने की दिशा में उपाय किए जाएंगे। हालाँकि, 1966 में समिति की रिपोर्ट तक, इस संबंध में कोई कदम नहीं उठाया गया था और न ही इस आशय का कोई कानून बनाया गया था। श्री के बी सहाय 1955 में इस अधिनियम के पक्ष में थे, जब वे राज्य के राजस्व मंत्री थे। हालाँकि, श्री के.बी. सहाय जब मुख्यमंत्री बने तो उन्होने इस पूरी प्रक्रिया से खुद ही किनारा कर लिया। इसप्रकार भूमि सीलिंग अधिनियम केवल 'कागजी प्रस्ताव' बन गया था।

1960 के दशक के मध्य में तीन वर्षों के अकाल ने किसानों की पहले से ही दयनीय स्थिति में और गिरावट ला दी। अधिक से अधिक गरीब किसान खेतिहर मजदूरों में परिवर्तित हो गए। इस दशक का अंतिम चरण काफी उथल-पुथल से भरा था। बिहार के साथ-साथ देश के अन्य भागों में भी संघर्ष उभरने लगे। इन संघर्षों ने सरकार को कानून में संशोधन करने के लिए मजबूर किया। 1971 और 1973 में सीलिंग लिमिट घटा दी गई थी। अब यह मान लिया गया था कि एक घर में पाँच सदस्य होते हैं और भूमि की सीमा को घटाकर 45 एकड़ कर दिया गया था। हालांकि यह अमल में नहीं आया।

भूमि सुधार से संबंधित काश्तकारी बंटवारा भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा था। इसे बिहार में बिहार काश्तकारी अधिनियम 1885 के तहत नियंत्रित किया गया था। इसके अलावा बिहार काश्तकारी अधिनियम 1885 के तहत इस संबंध में सीलिंग अधिनियम, 1961 में कुछ प्रावधान किए गए थे। एक रैयत से जमीन रखने वाले काश्तकार 12 साल के लगातार कब्जे पर अधिकार प्राप्त करते हैं। लिखित पट्टों पर भूमि धारण करने वाले रैयतों के अधीन कोई भी अधिभोग किराए का भुगतान न करने या भूमि के अनुचित उपयोग के आधार पर बेदखली के लिए उत्तरदायी नहीं है। व्यावहारिक रूप से क्षेत्र में सभी पट्टे मौखिक हैं और कानून के अनुसार, इसलिए किरायेदार को केवल तभी हटाया जा सकता है जब उसने किराए का भुगतान नहीं किया हो या भूमि का उचित उपयोग नहीं किया हो। भूमि सुधार रिपोर्ट-1966 में कहा गया था कि सभी पट्टे मौखिक और कानूनी रूप से जायज थे। फिर भी, किरायेदारी अधिनियम असफल साबित हुआ।

1996 में बिहार में संयुक्त मोर्चे की सरकार सत्ता में आई। सीपीआई के श्री इंद्रदीप सिन्हा राजस्व मंत्री बने। उन्होंने बिहार काश्तकारी अधिनियम और होम स्टीड काश्तकारी अधिनियम के तहत परिपत्र जारी किए, जिसके तहत उन्होंने 1964 के पहले के परिपत्र को अधिकारों के रिकॉर्ड में बंटाईदारों के नाम दर्ज करने पर प्रतिबंध लगाने को रद्द कर दिया, और उन्होंने बटाईदारों की सुरक्षा और रिकॉर्डिंग के लिए कार्रवाई की एक श्रृंखला शुरू की। इसने तुरंत एक राजनीतिक संकट पैदा कर दिया, क्योंकि संयुक्त मोर्चे के घटकों में से एक, जनसंघ ने खुले तौर पर विरोध प्रदर्शन किया तो यह सरकार भी इस कार्य को पूरा करने में सक्षम नहीं थी। भूमि सुधार के लिए किए गए सभी कानूनी उपाय केवल कागजी कार्रवाई साबित हुए। इस अवधि के बाद बिहार में लालू यादव सरकार ने भी भूमि सुधार करने का दावा किया लेकिन बाद में यह सरकार भी पीछे हट गई। जब नीतीश कुमार की सरकार बनी तो उसने भूमि सुधार आयोग का गठन किया लेकिन उसने रिपोर्ट तक को नहीं माना. अब तक के अनुभव स्पष्ट रूप से बताते हैं कि भूमि सुधार का प्रश्न सीधे राज्य से संबंधित प्रश्न है। कानून बार-बार बनाए गए लेकिन जनता की दयनीय स्थिति में कोई बदलाव

नहीं आया। अभी तक जो कानून बनाने में सहायक थे, या तो उन्होंने उसे लागू करने में कोई दिलचस्पी नहीं ली, या वे ही इसमें बाधा बने।

भूमि सुधार आयोग (2006-2008)

भूमि सुधार आयोग ने बिहार में भूमि प्रश्न का विस्तार से अध्ययन किया, और जमींदारों ने अपने हित में जिन खामियों का इस्तेमाल किया, उन्हें दूर करने की पूरी कोशिश की। इसने ग्राम पंचायतों की पूर्ण-प्रमाण प्रणाली की आवश्यकता को नगण्य और भूमि सुधार आयोगों की आवश्यकता को शीर्ष पर निर्धारित किया। बंटाईदारों का रिकॉर्ड जमा करने और उन्हें बचाव के लिए रसीद देने की बात करते हुए कहा कि जमींदार बटाईदार को तभी बर्खास्त कर सकता है जब जमीन का मालिक खुद खेती करता हो या मृत बटाईदार के बच्चे खेती नहीं करना चाहते हों। यह सुझाव दिया गया था कि बटाईदार स्वयं उत्पादन लागत वहन करने की स्थिति में, वह उपज का 70-75 प्रतिशत प्राप्त करने का हकदार होगा और यदि भूस्वामी आंशिक रूप से लागत वहन करता है तो बटाईदार को कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत प्राप्त करना चाहिए।

सीलिंग अधिनियम में सुधार के पक्ष में यह वकालत की गई थी कि कृषि और गैर-कृषि भूमि के बीच के अंतर को दूर करने की आवश्यकता है। इसने पांच सदस्यों वाले परिवार के लिए 15 एकड़ की सीमा तय करने और 1950 से पहले और 1950 में स्थापित किए गए मठों, मंदिरों और चर्चों सहित सभी धार्मिक संस्थानों के लिए सुझाव दिया। आयोग ने बटाईदारों को रसीद के आधार पर ऋण देने की वकालत की। आयोग का कहना है कि एक ऐसे कानून की आवश्यकता है जिसमें अनुबंध खेती के सभी पहलुओं को शामिल किया जाए ताकि किसानों, विशेष रूप से मध्यम, छोटे और परिधीय किसानों को कॉर्पोरेट संगठन द्वारा उनके शोषण और दमन के खिलाफ सुरक्षा प्रदान की जा सके। फिर भी सरकार ने इस रिपोर्ट को भी नहीं माना।

भूमि सुधार और अभिलेख

बिहार में पंजीकरण का इतिहास 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का है। भूमि से राजस्व मुगल और ब्रिटिश दोनों के संसाधन का मुख्य स्रोत था। अंग्रेजों ने संग्रह की सुविधा के लिए भूमि शासन के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ कीं। उनमें से अधिकांश आजादी तक जारी रहे। प्रभावी भूमि सुधार के संबंध में बिहार में बुनियादी समस्याओं में से एक पुराना भूमि रिकॉर्ड है। उपलब्ध भूमि अभिलेख 100 वर्ष से अधिक पुराना है। पुनरीक्षण सर्वेक्षण और विशेष सर्वेक्षण के माध्यम से भू-अभिलेखों को संशोधित करने के कई प्रयास किए गए हैं, लेकिन उनकी प्रगति भी संतोषजनक नहीं पाई गई है। भूमि सुधार से संबंधित बुनियादी ढाँचे और जनशक्ति में भी लगातार चौड़ी खाई बढ़ती गई। बिहार में, कुल भूमि का लगभग 15% महिलाओं के पास है। हालांकि महिलाओं को अपनी पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकारी होने का अधिकार है, लेकिन भूमि पर महिलाओं के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए ऐसा कोई विशेष प्रावधान नहीं है। अधिकार के अद्यतन रिकॉर्ड की कमी और उचित बुनियादी ढाँचे में अंतर ने राज्य में कई भूमि विवादों में योगदान दिया हो सकता है। अधिकार का एक अद्यतन रिकॉर्ड, जो व्यक्तिगत कार्यकाल के अधिकार को सुनिश्चित करेगा और मान्यता देगा, आज के समय की मांग है। अद्यतन मानचित्र और अधिकार के रिकॉर्ड के साथ भूमि सर्वेक्षण पूरा होने से भूमि संबंधी विवादों को कम किया जा सकेगा।

भूमि सुधार और कुछ कमियाँ

पिछले सात दशकों में भूमि सुधारों के क्रियान्वयन के कदम चाहे कितने भी उठाये गये हो, सभी कदम बेहद सुस्त, आंशिक और अपूर्ण रहे है। भूमि सुधार नियमों, कानूनों और मुकदमों के जाल में उलझकर रह गया। वास्तव में इन कानूनों ने भूमि पर जमींदारों के अधिकारों को वैधता प्रदान की। वास्तविक जोतदारों के बजाय जमींदार वर्ग के प्रतिनिधियों के हितों की सेवा करने के लिए संबंधित कानूनों के निर्माण के साथ-साथ कार्यान्वयन को तरजीह दिया गया। भूमि सुधार को कुशलतापूर्वक लागू करने में राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव दिखा। इन सुधारों को लागू करने की जिम्मेदारी राज्य की सरकारों पर थी। और इन सरकारों पर बड़े जमींदारों का काफी दबाव था। राज्य की सरकारें भूमि सुधार का ऐसा कोई भी कदम नहीं उठाना चाहती थी, जो बड़े जमींदारों के विरुद्ध जाता हो। इसलिये ये सरकारें भूमि सुधार को लागू करने के प्रभावपूर्ण उपाय नहीं अपना सकीं। इसलिये भूमि सुधार कार्यक्रम सिर्फ एक सरकारी कार्यक्रम बनकर रह गया है। काश्तकारों, निर्धन किसानों, भूमिहीन कृषि मजदूरों द्वारा इसे लागू करने के लिये कोई जोर नहीं डाला जाता। वे अपनी अज्ञानता तथा निर्धनता के कारण इस कार्यक्रम को लागू करवाने में असमर्थ रहे। उनके द्वारा मांग के अभाव में यह कार्यक्रम सरकार द्वारा धीरे-धीरे लागू किया जा रहा। बेहद सुस्त भूमि सुधार क्रियान्वयन ने बिहार

की ग्रामीण संरचना को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया। इसलिए आज भी भूमि सुधार की समस्या एक कड़ी चुनौती बनी हुई है।

भूमि सुधार और कुछ सुझाव

भूमि आर्थिक विकास, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और खाद्य मांग के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण संसाधन बन गई है। ग्रामीण और साथ ही शहरी क्षेत्र में भूमि आय और आजीविका का प्रमुख स्रोत है। बिहार में भूमि की अत्यधिक आर्थिक, सामाजिक और प्रतीकात्मक प्रासंगिकता है। भूमि सुधार को सतत विकास और गरीबी कम करने की कुंजी माना जाता है। भूमि सुधार कार्यक्रमों की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि इनका कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन किया जाये। इसके लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार किया जाये। भूमि संबंधी नवीनतम रिकार्ड तैयार किये जायें, जिससे भूमि के स्वामित्व के विषय में शीघ्र फैसला किया जा सके। भूमि संबंधी आंकड़ों को निरन्तर रखने की दिशा में भी उचित प्रयत्न किये जाने चाहिए। भूमि का कमजोर प्रबंधन गरीबों के लिए अहितकर होता है। अत: भूमि सुधार हेतु विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करने के लिए राज्य, जिला व तहसील स्तर पर प्रशासनिक मशीनरी कुशल बनाया जाना चाहिए। प्रशासनिक मशीनरी के कार्यों में राजनैतिक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। भूमि सुधार संबंधी कानूनी विधियों को सरल बनाया जाये। इनसे सम्बन्धित मुकदमों का फैसला करने के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किये जायें। इन न्यायालयों द्वारा भूमि सुधार संबंधी झगड़ों का निर्णय कम खर्च पर व शीघ्रतापूर्ण किया जाना चाहिए। गांवों के लोगों में भूमि सुधार संबंधी कानूनों का विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित तथा प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए। इनके प्रचार के द्वारा निर्धन किसानों को अपने अधिकारों के विषय में पता लगेगा और उन्हें लागू करने के लिए वे संबद्ध अधिकारियों पर जोर दे सकेंगे। भूमि सुधारों को कुशलतापूर्ण लागू करने के लिए ग्राम समितियां स्थापित की जानी चाहिए। इन समितियों में उन लोगों को भी सदस्य बनाया जाये जिन्हें भूमि सुधार के लाभ प्राप्त होने हैं। यह समितियां भूमि सुधारों को लागू करने के विषय में उचित कदम उठाएगी। पंचायतें भी इस कार्य में सहयोग दे सकती हैं।

निष्कर्ष

आजादी के तुरंत बाद, बिहार जमींदारी प्रथा को खत्म करने वाला देश का पहला राज्य था, जिसने वास्तविक काश्तकारों और राज्य के बीच बिचौलियों की नफरत वाली व्यवस्था को समाप्त कर दिया। काश्तकार राज्य के सीधे संपर्क में आ गए। जमींदारी प्रथा समाप्त होने बावजूद भी जमींदारों को उनके घर और निजी भूमि से वंचित नहीं किया गया था, जो काफी बड़ी थी। कृषि क्षेत्र के संबंध में सरकार द्वारा कई विधायी उपाय किए गए, लेकिन विभिन्न कानूनों का कार्यान्वयन संतोषजनक नहीं रहा। सरकार ने विद्रोह के दबाव में भूमि सुधार कानून तो बनाया लेकिन उसे कभी लागू नहीं किया। पुराने शोषक ढांचे को यहां और वहां नाममात्र के परिवर्तनों के साथ बनाए रखा गया। इन बदलावों के बावजूद भी, कृषि मजदूरों और गरीब किसानों का भाग्य नहीं बदला, जो ग्रामीण परिवारों का लगभग आधा से अधिक हिस्सा था। अधिनियमित सभी कानूनों के बावजूद पूर्व के जमींदार शोषणकारी और विकास के लिए हानिकारक बने रहे। इसलिए, भूमि सुधार एक अधूरा कार्य है, जिसे समता और सामाजिक न्याय के साथ विकास लाने के लिए बिना किसी देरी के पूरा किया जाना चाहिए। अत: भारत के साथ साथ बिहार में कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए तथा निर्धन किसानों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए भूमि सुधारों को कुशलतापूर्वक लागू किया जाना अतिआवश्यक है।

संदर्भ:

[1] शर्मा, ए० एन०, (ईपीडब्ल्यू 5 मार्च, 2005), एग्रेरियन रिलेशंस एंड सोशियो-इकोनॉमिक चेंज इन बिहार

[2] चक्रवर्ती, आनंद, (ईपीडब्ल्यू 28 अप्रैल, 2001), कास्ट एंड एग्रेरियन क्लास: ए व्यू फ्रॉम बिहार

[3] बिहार सरकार, भूमि सुधार आयोग की रिपोर्ट (2006-2008)

[4] योजना आयोग, भारत सरकार (1966), भूमि सुधारों का कार्यान्वयन

[5] झा, प्रदीप, (1997), भूमि सुधार बिहार में: दूरगामी दृष्टिकोण की आवश्यकता

[6] डाइनिंगर, के. (विश्व बैंक, 2003), लैंड पॉलिसीज फॉर ग्रोथ एंड पॉवर्टी रिडक्शन

[7] सामंत, देवव्रत; झा, जितेंद्र कुमार; डिंडा, सौम्यानंद, (2013), एसेसमेंट ऑफ लैंड गवर्नेंस इन बिहार, (एमपीआरए पेपर संख्या 64095)

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विविध आयाम

सोनी कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

शोध-सार

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विविध धाराओं में एक महत्वपूर्ण धारा क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलन की थी। 1920 एवं 30 के दशक में भारत के विभिन्न भागों में संगठित रूप से ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह किया गया। इसमें बड़े पैमाने पर नव युवकों ने शामिल होकर हिंसात्मक तरीके से राष्ट्रीय आक्रोश की अभिव्यक्ति अभिव्यक्ति दी। यह आंदोलन यद्यपि व्यापक जनाधार एवं संगठन तथा कुशल एवं सक्षम नेतृत्व के अभाव में अपने घोषित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सका किंतु इस आंदोलन में शामिल युवकों ने अपने विचारों तथा कृतियों से भारत के लोगों को वैचारिक रूप से काफी उद्वेलित किया। वस्तुत: यह क्रांतिकारी राष्ट्रवादी एक स्पष्ट राजनीतिक सामाजिक उद्देश्यों से प्रेरित थे।

शब्द कुंजी: क्रांतिकारी, राष्ट्रवादी, चौरी-चौरा, धर्मनिरपेक्ष, सविनय अवज्ञा, असहयोग आंदोलन, काकोरी कांड।

महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन का स्थगन तथा तत्पश्चात देश के विभिन्न हिस्सों में उत्पन्न संप्रदायिक दंगों ने भारत के नव युवकों को आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया। एक तरफ उनमें आंदोलन की गांधीवादी रणनीति तथा रचनात्मक कार्यक्रमों से मोहभंग हुआ तो दूसरी तरफ वे देश में व्याप्त संप्रदायिक हिंसा से व्यथित थे। यह युवा आधुनिक शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी थे। पुन: इनमें अनेक लोगों का रुझान समाजवाद के प्रति था। अत: इन्होंने देश से औपनिवेशिक शासन को समाप्त कर राजनीतिक क्षेत्र में व्यापक बदलाव लाकर समाजवादी आदर्शों से प्रभावित गणतंत्र आत्मक सरकार की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया। इसी प्रकार सामाजिक जीवन में अन्याय पूर्ण व्यवस्था को समाप्त कर समानता व सहिष्णुता आधारित सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया। वस्तुत: स्वतंत्रता के आदर्श ने क्रांतिकारी राष्ट्रवादीयों को उत्तेजना और शोषण से मुक्त नए समाज के निर्माण की भावना के लिए प्रोत्साहित किया।

फरवरी, 1922 ई० को चौरी-चौरा की घटना के बाद असहयोग आंदोलन के अचानक स्थगित हो जाने से युवा कार्यकर्ताओं के बीच निराशा और असंतोष की लहर फैल गई। उनमें से कई गांधीवादी रणनीति पर अविश्वास करने लगे। इसी संदर्भ में उन्होंने रूस, आयरलैंड, तुर्की, मिश्र और चीन के क्रांतिकारी आंदोलनों से प्रेरणा ली। 1922 के बाद क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का विकास दो धाराओं में हुआ। एक धारा पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश (पुराना केंद्रीय प्रांत) और दूसरा बंगाल में। दोनों धाराएं नए सामाजिक और वैचारिक शक्तियों के प्रभाव में आ गई। इनमें एक प्रमुख प्रभाव पूरे भारत में समाजवादी विचारों और संगठनों का विकास था। दूसरा जुझारू ट्रेड यूनियन आंदोलन का शुरू होना था और तीसरा 1917 की रूसी क्रांति और सोवियत रिपब्लिकन की स्थापना था। उपरोक्त प्रभावों में लगभग सभी क्रांतिकारी दल नए समाजवादी राज्य के नेतृत्व से संपर्क विकसित करना और विचारों और संगठनों तथा साधनों की सहायता लेना चाहते थे।

उत्तर भारत के क्रांतिकारियों ने सचिंद्र नाथ सान्याल, योगेश चटर्जी और और राम प्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में पुनर्गठन आरंभ किया। अक्टूबर 1924 ई० में कानपुर में हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन की स्थापना की गई। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य सशस्त्र क्रांति के द्वारा औपनिवेशिक शासन को समाप्त करके इसकी जगह व्यस्त मताधिकार के आधार पर "भारत के संयुक्त राज्यों का संघ गणतंत्र" स्थापित करना था। इस संगठन के नेताओं ने अपने नीतियों तथा कार्यक्रमों के प्रसार हेतु धन इकट्ठा करने के उद्देश्य से सरकार के खिलाफ डकैतियाँ डालने का निश्चय किया। इसी क्रम में 9 अगस्त 1925 को 10 क्रांतिकारियों ने लखनऊ से

सहारनपुर जा रही 8 डाउन ट्रेन को काकोरी नामक जगह पर लूट लिया, जिसमें सरकारी खजाना जा रहा था। प्रतिक्रिया स्वरूप हुकूमत ने क्रांतिकारियों की धरपकड़ प्रारम्भ किया। राम प्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, अशफाक उल्ला खान तथा राजेंद्र लाहिरी को फांसी दी गई, जबकि 17 व्यक्तियों को लंबी कारावास की सजा दी गई। इस तरह से कुछ दिनों के लिए उत्तर भारत में क्रांतिकारी गतिविधियां थम गई।

यद्यपि काकोरी कांड के बाद सरकारी दमन से क्रांतिकारियों को धक्का लगा किंतु राष्ट्रप्रेम की जज्बे ने कई क्रांतिकारियों को पुनः आगे आने के लिए प्रेरित किया। 9-10 सितंबर, 1928 को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान में क्रांतिकारी राष्ट्रवादीयों की बैठक हुई। इसमें शिव वर्मा, जयदेव कपूर, भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा और सुखदेव इत्यादि ने चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन को पुनर्गठित कर नया संगठन "हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन" की स्थापना किया। इस संगठन का नेतृत्व व्यक्तिगत वीरता के कार्यकलापों से हटकर तेजी से जन-आधारित शस्त्र-संघर्ष के विचारों की ओर बढ़ने लगा। किंतु इन क्रुद्ध एवं भावुक युवाओं ने लाला लाजपत राय पर लाठीचार्ज करने के लिए उत्तरदाई पुलिस अफसर सांडर्स की हत्या कर दी, क्योंकि वह इसे राष्ट्र अपमान समझते थे। एच०एस०आर०ए० के नेताओं ने अपने राजनीतिक विचारधारा का प्रचार करने के लिए नया तरीका निकाला। इसके सदस्यों भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने केंद्रीय असेंबली में बम फेंका। जहां जनसुरक्षा कानून व श्रम विवाद कानून पर बहस होने वाला था। बस्तुतः ये अपनी गिरफ्तारी देकर अपने राजनीतिक-सामाजिक विचारों के प्रसार के लिए अदालत को एक मंच के रूप में प्रयोग करना चाहते थे।

हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन ने अपने कार्यकलापों और क्रांतिकारी संघर्ष के लिए एक अग्रगामी सामाजिक विचारधारा विकसित की। इसके अतिरिक्त क्रांतिकारी गतिविधियों के लक्ष्यों को तथा क्रांतिकारी संघर्षों के रूप को बेहतर ढंग से परिभाषित किया गया। एच०एस०आर०ए० ने पूर्ण धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक और समाजवादी ढांचे के अंतर्गत अपना कार्यक्रम निर्धारित किया। 1925 ई० में इसके घोषणा-पत्र में इसका प्रमुख उद्देश्य संगठित और सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत में "संयुक्त राज्य के संघीय गणतंत्र" की स्थापना करना घोषित किया गया था। गणतंत्र का मूल सिद्धांत "सार्वजनिक मताधिकार की स्थापना और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण करने वाली सभी रीति-रिवाजों का अंत" करना था। अक्टूबर, 1924 में हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन की पहली बैठक में "सामाजिक क्रांतिकारी और साम्यवादी" सिद्धांतों की शिक्षा देने का निश्चय किया गया। मजदूर-किसान संगठन आरंभ करने का भी निश्चित किया गया। रेलवे, बड़े उद्योगों जैसे इस्पात, जहाज निर्माण और खानों के राष्ट्रीयकरण की भी वकालत की गई।

हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के सदस्यों - विजय सिन्हा, शिव वर्मा, भगवती चरण वोहरा और और भगत सिंह जैसे युवा नेता उनके समाजवाद और मार्क्सवाद की ओर झुकाव से क्रांतिकारी राष्ट्रवादी विचारधारा के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। एच०एस०आर०ए० के सदस्य भगत सिंह ने क्रांति के कार्य क्षेत्र को परिभाषित करते हुए बताया कि क्रांति का पहला उद्देश्य राष्ट्र की मुक्ति था और उसके बाद एक नए समाजवादी समाज का निर्माण करना था। उन्होंने बताया कि आमूल-चूल परिवर्तन के लिए जरूरी है कि समाज को समाजवादी आधार पर पुनर्गठित किया जाए। इसकी जगह ऐसी व्यवस्था स्थापित हो जिसमें समाज के अंतिम व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित हो।

सन 1929 ई० में एच०एस०आर०ए० के घोषणा-पत्र में घोषणा की गई कि ख्र "सर्वहारा की आशाएं अब इसलिए समाजवाद पर केंद्रित है, क्योंकि एकमात्र वही पूर्ण स्वतंत्रता की ओर ले जा सकता है और सभी सामाजिक मतभेदों और विशेष अधिकारों को समाप्त कर सकता है" भगवती चरण वोहरा, चंद्रशेखर आजाद और यशपाल ने अपनी पुस्तक "फिलासफी ऑफ द बम" में क्रांति का अर्थ "सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता" बतलाया और इसका उद्देश्य 'एक ऐसे नए समाज का निर्माण करना है जिसमें राजनीतिक व आर्थिक शोषण होना असंभव होगा।'

भगत सिंह ने समाजवाद को वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित किया। इसका अर्थ पूंजीवाद और वर्ग प्रभुत्व को समाप्त करना है। उन्होंने पूरी तरह मार्क्सवाद और समाजवाद के वर्गीय दृष्टिकोण को स्वीकार किया। उनकी राय में क्रांति से हमारा तात्पर्य वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना है। इसके लिए राज्य सत्ता को अपने हाथ में लेना आवश्यक है क्योंकि सत्ता भी विशेषाधिकार वर्क के पास है। जनता के हितों की रक्षा करने अपने विचारों को वास्तविकता में बदलने और कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों के अनुसार समाज की नींव रखने के लिए राज्य सत्ता पर कब्जा करना जरूरी है।

हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन के सदस्य भारतीय समाज और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सामने मौजूद संप्रदायिकता के खतरे के प्रति पूरी तरह जागरूक थे। इसके प्रमुख सदस्य भगत सिंह अक्सर अपने श्रोताओं से कहा करते थे कि सांप्रदायिकता भी उपनिवेशवाद की तरह बहुत बड़ा खतरा है। 1924 के बाद भगत सिंह ने लाला लाजपत राय के सांप्रदायिक राजनीति की ओर उन्मुख होने पर उनकी कड़ी निंदा की थी। भगत सिंह द्वारा बनाए गए "नौजवान भारत सभा" के 6 नियमों में से 2 नियम इस प्रकार थे - "सांप्रदायिक विचारों को फैलाने वाले सांप्रदायिक संगठनों या दलों के साथ कोई संबंध नहीं रखना चाहिए तथा जनता के बीच सहिष्णुता की भावना जागृत करना चाहिए और उन्हें यह बतलाना चाहिए कि धर्म व्यक्तिगत विश्वास की चीज है और उसी भावना के अनुसार काम करना चाहिए।" वस्तुत: भगत सिंह को यह विश्वास था कि व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं को मानसिक दासता और अंधविश्वास से मुक्त कर ले। इस प्रकार से स्पष्ट है कि एच०एस०आर०ए० के अधिकांश सदस्य समाजवादी तथा मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित थे तथा उन्होंने धर्म को व्यक्तिगत चीज मानकर एक सहिष्णुता तथा समानता पर आधारित समाज की परिकल्पना की। इसी प्रकार जाति ऊंच-नीच, छुआछूत इत्यादि का भी विरोध किया तथा एक समरस, प्रगतिशील तथा सौहार्दपूर्ण समाज के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया। दूसरे शब्दों में एच०एस०आर०ए० ने एक उदारवादी तथा प्रगतिशील समाज की स्थापना को अपना मुख्य उद्देश्य बताया।

1922 ई० के बाद बंगाल में भी क्रांतिकारी राष्ट्रवादीयों के पुनर्गठन का कार्य आरंभ हो गया। उन्होंने प्रेस के माध्यम से बड़े पैमाने पर क्रांतिकारी प्रचार और भूमिगत गतिविधियां विकसित की। 1924 तक प्रमुख क्रांतिकारी राष्ट्रवादी व्यक्तिगत साहसिक गतिविधियों की अपर्याप्तता को समझ चुके थे। उन्होंने सिद्धांत: और योजनाबद्ध रूप में जनजागृति तथा सशस्त्र विद्रोह में सत्ता प्राप्त करके राष्ट्रीय स्वतंत्रता की नीति स्वीकार की। परंतु व्यवहारिक रूप में वे अब भी छोटे पैमाने की कार्यवाहियों, विशेषकर डकैती और अधिकारियों की हत्या में विश्वास करते थे। इसी क्रम में उन्होंने कई घटनाओं को अंजाम दिया। 1926 में जेल से छूटने के बाद पुराने नेताओं ने नए युवा क्रांतिकारियों के साथ मिलकर स्वयं को विशाल समूह में संगठित करना आरंभ कर दिया। यह नए समूह विद्रोह समूह के नाम से विख्यात हुए। इन समूहों ने रूसी और आयरिश क्रांतिकारियों के अनुभव के आधार पर स्वयं को संगठित करने का प्रयास किया। रिवॉल्ट ग्रुप के नेता तथा चटगांव जिला कांग्रेस कमेटी के सचिव सूर्यसेन ने 1929 में सशस्त्र विद्रोहियों को संगठित करने की योजना बनाई तथा "इंडियन रिपब्लिकन आर्मी" नामक क्रांतिकारी संगठन स्थापित की। इसी क्रम में 18 अप्रैल, 1930 ई० को रात में गणेश घोष के नेतृत्व में चटगांव शस्त्रागार पर हमला किया गया। सरकार द्वारा रिपोर्ट ग्रुप के सदस्यों का दमन किया गया।

बंगाल के क्रांतिकारी राष्ट्रवादी पहले की तरह धार्मिक रहस्यवाद से प्रेरित नहीं थे। उनका प्रेरणा स्रोत रूस की साम्यवादी व्यवस्था थी तथा ब्रिटिश हुकूमत को समाप्त कर साम्यवादी आदर्शों से प्रभावित सरकार की स्थापना करना चाहते थे। इसी प्रकार में सामाजिक स्तर पर भी अपेक्षाकृत पहले से अधिक प्रगतिशील थे।

बंगाल में क्रांतिकारी राष्ट्रवादीयों में कई मुसलमान भी थे। जैसे चटगांव दल में अमीर अहमद, फकीर अहमद मियां और टुनु मियां प्रमुख थे। इसी प्रकार सूर्यसेन तथा उनके सहयोगियों को मुसलमान गांव वाले ने सक्रिय सहयोग दिया। सूर्यसेन के संगठन में महिलाओं की उल्लेखनीय भागीदारी रही। इन महिलाओं में प्रीति लता वाडेकर, शांति एवं सुनीति चौधरी तथा कल्पना दत्त प्रमुख थे। इससे स्पष्ट होता है कि वह पहले की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील विचारों से प्रभावित थे।

निष्कर्ष:

स्पष्ट है कि 1920 एवं 30 के दशक के क्रांतिकारी राष्ट्रवादीयों ने देश व समाज के बदलाव के लिए सुस्पष्ट विचार तथा कार्यक्रम निर्धारित किया था। वह समाजवादी तथा मार्क्सवादी विचारों पर आधारित भारत की राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का सामाजिक आधार भी प्रगतिशील वर्गों पर आधारित था। इसमें आधुनिक शिक्षा प्राप्त ग्रामीण व शहरी मध्यम वर्ग के नवयुवक शामिल थे।

जहां तक क्रांतिकारी राष्ट्रवादीयों की उपलब्धि का सवाल है, यकीनन इन्हें अपने घोषित उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। किंतु इनकी भूमिका पर टिप्पणी करते वक्त इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि आखिर सफलता से आशय क्या है? अगर तात्कालिक तौर पर अपने उद्देश्यों को न पाने के कारण इन्हें असफल कहा जाए तो गौरतलब है कि अनेक राष्ट्रीय आंदोलन, जैसे-1920-21 ई० का असहयोग आंदोलन, 1930-34 ई० का सविनय अवज्ञा आंदोलन, 1942 ई० का भारत छोड़ो आंदोलन भी अपने उद्देश्य प्राप्त

करने में असफल रहे थे। ध्यातव्य है कि किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के क्रियाकलापों का मूल्यांकन उनके चरित्र एवं उद्देश्य के आधार पर किया जाना चाहिए। यकीनन क्रांतिकारी आंदोलन का उद्देश्य जनता में जागृति पैदा करना, स्वतंत्रता के प्रति कर्तव्य भावना की अभिव्यक्ति, साम्राज्यवाद पर दबाव डालना एवं राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की भावना पैदा करना था और इस आधार पर देखा जाए तो उनकी भूमिका किसी से कम नहीं थी।

बेशक उनके आंदोलन में कई कमियां थी जैसे कि वे आवाम को सक्रिय बनाने में नाकामयाब रहे, नेतृत्व एवं संगठन विकसित करने में वह पूरी तरह कामयाब नहीं हुए। अक्सर उनमें व्यक्तिवाद, दंभ एवं अक्खरपन देखने को मिलता है फिर भी उन्होंने अपने कृत्यों, अपने त्याग एवं बलिदान से राष्ट्रीय चेतना का प्रसार कर उपनिवेशवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय संघर्ष में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विशेष रूप से युवाओं में स्वाभिमान और आत्मविश्वास जगाया। इसीप्रकार क्रांतिकारी राष्ट्रवादीयों ने राष्ट्रीय आंदोलन में धर्मनिरपेक्षता एवं समाजवादी विचारधारा को मजबूती से शामिल करने में भी योगदान दिया। उत्तर भारत में भगत सिंह और उनके सहयोगियों ने समाजवादी विचारों और आंदोलन के बीज बोये। इसीप्रकार बंगाल व भारत के कई क्रांतिकारी राष्ट्रवादी देश के महत्वपूर्ण समाजवादी एवं साम्यवादी कार्यकर्ता बन कर उभरे।

संदर्भः

1. ताराचंद्र, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, 4वां, पब्लिकेशन डिविजन, नई दिल्ली, रिप्रिंट 2005 पृ० 2-4
2. सचिन सन्यास, ओ पी सी आई टी, पृष्ठ 277-78
3. पूर्वोक्त, पृष्ठ 277-78
4. डॉक्टर एन एम पी श्रीवास्तव, स्ट्रगल फॉर फ्रीडम सम ग्रेट इंडियन रिवॉल्यूशनरीज, पृष्ठ 84
5. सचिन सन्यास, बंदी जीवन, पृष्ठ 332
6. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 307
7. जवाहरलाल नेहरू, ऑटो बायोग्राफी, पृष्ठ 193
8. बिपिन चंद्र, द ऑडियोलॉजिकल डेवलपमेंट ऑफ द रिवॉल्यूशनरी टेररिस्ट इन नॉर्थ इंडिया इन द 1920 इन हिज नेशनलिज्म एंड कॉलोनियलिज्म इन मॉडर्न इंडिया, पृष्ठ 22-25
9. पूर्वोक्त, पृष्ठ 140-42
10. शिव वर्मा, सिलेक्टेड राइटिंग ऑफ शहीद भगत सिंह, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 112-114
11. डॉक्टर एन एम पी श्रीवास्तव, पृष्ठ 87-89
12. द सर्च लाइट, 3 अप्रैल 1931
13. मन्मनाथ गुप्ता, दे लिव्ड डेंजरसली, पृष्ठ 320-325
14. बुद्धदेव भट्टाचार्य, एडिट फ्रीडम स्ट्रगल एंड अनुशीलन समिति, 1986, पृष्ठ 47-48
15. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 289-290
16. एडवांस 4 जनवरी 1933, कल्पना दत्त, चटगांव आर्मरी रोड रेमिनीसेन्सेज, मुंबई, 1945, पृष्ठ 5-13
17. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 290

श्रीमद्भगवद्गीता में अन्तर्निहित प्रकृति का स्वरूप तथा कार्यावधायकत्व (महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा रामानुजाचार्य के विशेष सन्दर्भ में)

प्रो० रूप किशोर शास्त्री[1]

प्रोफेसर, गुरुकुल काङ्गडी (सम-विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड

अंकुर कुमार आर्य[2]

अनुसन्धित्सु, वेद-विभाग, गुरुकुल काङ्गडी (सम-विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड

भारतीय सांख्य-दर्शन परम्परा में मुख्यत: दो मूल तत्त्वों को स्वीकार किया गया है, चेतनतत्त्व अर्थात् 'पुरुष' तथा अचेतनतत्त्व जो 'प्रकृति' के नाम से अभिहित है। मानवीय जीवन के चहुँओर वैविध्यपूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् का मूलकारण 'प्रकृति' ही है। मूल प्रकृति को ही 'प्रधान' कहा जाता है।

'प्रकृति' शब्द 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु के साथ क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है।[3] 'प्रकर्षेण क्रियते सर्व जगत् अनयो' इस व्युत्पत्तिलभ्य-अर्थ के अनुरूप 'प्रकृति' नामक अचेतन-तत्त्व समस्त चराचर जगत् का 'मूल-उपादान' प्रतीत होता है, अर्थात् प्रकृति इसकी अन्वर्थ 'संज्ञा' कही जा सकती है। प्राय: सभी आचार्यों ने प्रकृति शब्द के शाब्दिक अर्थ को स्वकृत ग्रन्थों में वर्णित किया है। आर्चार माठर ने माठरवृत्ति में प्रकृति शब्द के अर्थ को बताते हुए कहा है 'प्रकरणात् प्रकृति: प्रसवधर्मकत्वात् सा प्रकृति:' अर्थात् प्रकृष्ट-करण एवं प्रसव-धर्मी होने के कारण इसको प्रकृति कहते हैं।[4] भावागणेश के मतानुसार 'प्रकर्षेण कुर्वन्तीति प्रकृतय:'। 'तत्त्वातराम्भकत्वं प्रकृतित्त्वम् इति सामान्य लक्षणम्' ऐसा लक्षण प्राप्त होता है।[5] गौडपादाचार्य कहते है कि - "अन्य किसी भी तत्त्व से उत्पन्न न होने के कारण इसका नाम प्रकृति है।"[6] आचार्य विज्ञानभिक्षु प्रकृति विषयक मत को प्रस्तुत करते हुए कहते है कि- 'प्रकृष्टाकृति: परिणाम रूपा इति'।[7] आचार्य वाचस्पति मिश्र सांख्य-तत्त्व-कौमुदी में लिखते है कि - "जो पदार्थों को उत्पन्न करती है तथा सत्त्व, रजस् और तम की साम्यावस्था है, वह प्रकृति या प्रधान है।"[8] नारायणतीर्थ ने प्रकृति को 'सार्वजनिका अजन्या' अर्थात् प्रकृति सबको उत्पन्न करने वाली है।[9]

औपनिषद् साहित्य में प्रकृति को 'अजा'[10] 'अक्षर'[11] 'अविनाशी' 'नित्य'[12] 'माया' आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। भगवद्गीता में प्रकृति को 'महद्ब्रह्म' कहा गया है।[13] दामोदर सातवलेकर के अनुसार "सब विश्व का पालक एक ईश्वर है, उस ईश्वर की एक प्रकृति है, उसको 'महब्रह्म' कहते हैं। यह शक्ति अनन्त है। अपरंपार अथाह शक्ति होने से इसको 'महत्-ब्रह्म' कहते है"।[14] महत् का अर्थ होता है - विशाल, विस्तृत। अत: 'महत्-ब्रह्म' का अर्थ हुआ 'विशाल-विस्तृतशक्ति'। यह ईश्वर की ही शक्ति है। जिस प्रकार ईश्वर महान् है, उसी प्रकार उसकी शक्ति भी महान है। यही ईश्वरीय महती प्रकृति ही सब स्थिर-चर का उत्पत्तिस्थान है। इसी से समस्त भूत उत्पन्न होते हैं और अन्त में इसी में विलीन हो जाते हैं। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो इस प्रकृति से उत्पन्न न हुई हो अर्थात् स्थिर, चर, मूर्त, अमूर्त तथा सृष्टि के अन्तर्गत सब पदार्थ इसी ईश्वरीय प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। ईश्वर बीजप्रद: पिता अर्थात् गर्भाधान करने वाला है तथा यह प्रकृति गर्भ का धारण-पोषण करके प्रसव करनेवाली- ब्रह्म महत-योनि अर्थात् माता

है। इस प्रकृति की योनि में ईश्वर का वीर्य जाता है, वहां उससे गर्भधारणा होती है और सृष्टि के सब चल-अचल, सजीव-निर्जीव पदार्थ बनते हैं। संपूर्ण भूतों की उत्पत्ति इसी तरह होती है।

श्रीमद्‌बगवद्‌गीता में दो प्रकार की प्रकृति का वर्णन है अष्टधा अपरा प्रकृति तथा जीवभूत परा प्रकृति। पञ्चमहाभूत, बुद्धि, अहंकाररूप जो अष्टधा प्रकृति का वर्णन है, वह अपरा प्रकृति है। यह कनिष्ठ, गौण, क्षर अथवा स्थूल प्रकृति है। यहां कनिष्ठ शब्द का प्रयोग प्रकृति के होनत्व का दर्शक नहीं है, प्रत्युत दूसरे की अपेक्षा इसकी गौणता बताई है। अब इस गौण अर्थात् गुण-मयी किंवा त्रिगुणमयी प्रकृति के उपरान्त परा प्रकृति पर विचार करते हैं।

परमतत्त्व की द्वितीय प्रकृति परा-प्रकृति है। जिसको 'जीव' भी कहते हैं।[15] इस जगत् का जीवरूप विभाग परमात्मा की परा प्रकृति है। मनुष्य, पशु-पक्षी, जल-जन्तु, उद्‌भिज-स्वेदज-अण्डजादि प्रत्यक्ष जीव-जगत् है। इनमें इच्छा-देश, सुख-दु:ख तथा प्रयत्न का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से होता है। वृक्षादि में भी जीव है[16], परन्तु वह स्वप्नस्थितिमें रहने के समान अर्ध-निद्रित अवस्थामें है। पशु-सृष्टि में वह किंचित् जाग्रत है और मानव-सृष्टि में वह अत्यंत जाग्रत है। यही स्थावर-सृष्टि में पूर्ण सुप्तावस्था में है। यह जो जीवसृष्टि है वह परमेश्वरकी श्रेष्ठ प्रकृति है, मनुष्य-शरीर की जीवन-कला भी इसी का अंश है। परमेश्वरकी इस जीव-रूपा पराप्रकृति को विशाल सागर मान लेने से मनुष्य की जीवन-कला उसकी एक बूंद मात्र ही है। इस दृष्टि से भी मानवीय जीवन-कला परमात्मा का प्रचंड जीव-रूप प्रकृति का एक विभाग मात्र है। इस जीवन-शक्ति से इस जगत् की धारणा होती है।[17] जगत् के अन्दर जो अनंत पदार्थ विद्यमान हैं वे इसी जीवन-शक्ति से अपने अपने स्थान में धारण किये गये हैं। अर्थात् जीव-सृष्टि तथा निर्जीव सृष्टि दोनों इस जीवन शक्ति का आधार है। इस जीवन-शक्ति के आधार पर ही यह सब जगत् चल रहा है। यह अपरा और परा प्रकृति मिलकर परमेश्वर की प्रकृति बनती है। ईश्वर तथा प्रकृति अर्थात् जीवशक्ति + स्थूलभूत के मेल से संपूर्ण जगत् का निर्माण होता है, इसलिये गीता कहती है कि - अहं कृत्स्नस्य जगत: प्रभव: प्रलयस्तथा[18]

मानवीय शरीर स्थूल, जीवन-कला तथा आत्मा से युक्त है। आत्मा स्वसामर्थ्य से शरीर के अन्दर का समस्त कार्य करती है अथवा चलाती है। इसी तरह ईश्वर अपनी शक्ति के द्वारा जीवतत्त्व-शक्ति तथा क्षर-प्रकृति में कार्य करता है, जिसके कारण इस समस्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होते रहते हैं।

अष्टधा अपरा प्रकृति, जीवभूत परा प्रकृति तथा ईश्वर इन तीनों तत्त्वों में ईश्वरीय शक्ति ही श्रेष्ठ है। गीता कहती है कि - इससे और परे अथवा इससे और अधिक श्रेष्ठ उच्च, कुछ भी नहीं है।[19]

दामोदर सातवलेकर के अनुसार "जो कुछ सबसे श्रेष्ठ है, जो कुछ भी परात्पर है, वही पुरुषोत्तम है। वही अन्तिम प्राप्तव्य है। वहां पहुंचने पर आगे चलने की कोई आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि इसके आगे और कुछ भी नहीं है। इसलिये बारबार कहा जाता है कि यहां पहुंचने पर गति कुंठित हो जाती है। गति कुंठित होने का अर्थ यही है कि यहां प्रगति की समाप्ति हो जाती है।"[20]

अपरा तथा परा प्रकृति परमपिता परमेश्वर की प्रकृति अर्थात् ईश्वरीय शरीर बनता है। जैसे अपने शरीर में स्थूल शरीर और जीवनतत्त्व ये दो विभाग हैं वैसे ही परमेश्वर के इस विराट् शरी रमें अपरा और परा प्रकृति ये दो विभाग हैं। मानवीय शरीर उक्त दोनों विभाग परमेश्वर के विराट् शरीर के अंश हैं अर्थात् हम सब प्राणी परमेश्वर के शरीर के सूक्ष्म अंश हैं। जैसे हमारे शरीर में सूक्ष्म कीटाणु होते हैं, वे हमारे शरीर के अंश होते हुए भी स्वतन्त्रतया जीते मरते रहते हैं, उनके जीने और मरने से हमारे अखंड जीवन में कोई न्यूनाधिकता नहीं होती, उसी प्रकार हम सब जीव-सब प्राणियों के शरीर परमेश्वर के विराट् देह में कीटाणुओं के समान हैं और हमारे मरने और जन्म लेने से उनके अखण्डानन्द जीवन में कोई न्यूनाधिकता नहीं होती। अत: हम अपने क्षुद्र जीवन का अभिमान न करते हुए, किंवा क्षुद्र जीवन के अभिमान से अपने आपको क्षुद्र न बनाते हुए, यदि अपने आपको परमात्मा के अखंडानन्द जीवन का अंश अनुभव करने लगेंगे, तो हम यावत्जीवनअखंण्डानन्द के भागी हो सकते हैं।[21] इस सृष्टि में मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जल-चर, स्थल-चर, खे-चर, वृक्ष-वनस्पति आदि अनन्त योनियां है। प्रत्येक जाति में अनन्त उपजातियां हैं। जिनकी गणना नहीं की जा सकती। प्रत्येक योनि में उत्पन्न पदार्थों का स्वभाविक-धर्म भी भिन्न-भिन्न होता है। ऐसे ही अनन्त योनियों में उत्पन्न अनन्त मूर्तियों की महायोनि यह परमात्मतत्त्व की प्रकृति ही है और परमात्मतत्त्व ही इस प्रकृति में उन सबका बीज डालता है। जिससे सब सृष्टिमें दीखनेवाली मणियां उत्पन्न होती हैं। समस्त दर्शानिकों के समान सातवलेकर भी सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था को प्रकृति तथा वैषम्यावस्था को विकृति मानते है।[22] प्रकृति तथा विकृति में मात्र साम्य तथा वैषम्य का भेद ही है।

जगत् के स्वरूप तथा कारण विषयक अवस्था पर भारतीय दर्शन शास्त्रों में बहुशः विचार प्राप्त होते हैं। कुछ दार्शनिकों के मतानुसार यह जगत् स्वरूप सत्य है तथा इसका मूल कारण प्रकृति है। आचार्य शंकर तथा उनकी अद्वैत् परम्परा में जगत् मिथ्यारूप है तथा अविद्या इसका कारण है। आचार्य रामानुजाचार्य मतानुसार यह जगत् सत्य है।

आचार्य रामानुज द्वारा वर्णित ब्रह्मतत्त्व जिन चिदचिद् विशेषणों से विशिष्ट रहता है उन अचिद् द्रव्यों में प्रकृति प्रधान है। विशिष्टाद्वैत मतानुसार प्रकृति सत्त्व, रज और तम का आश्रयरूप है।[23] जब प्रलयावस्था होती है तो प्रकृति में उक्त गुणों का साम्य रहता है। इस साम्यावस्था में विद्यमान प्रकृति को मूल-प्रकृति कहते हैं। प्रलयावस्था के समाप्त हो जाने पर ईश्वर के "एकोऽहं बहु स्याम" इत्यादि रूप से होने वाले सत्य संकल्प से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है जिस के कारण स्वरूप उसके गुणों में विषमता उत्पन्न होती है। विषमावस्था में जगत् रूप कार्य की उत्पत्ति मानी गयी है। अचित् प्रकृति चाहे कारण हो अथवा कार्य दोनों ही अवस्थाओं में गुणत्रय की आश्रय-रूप ही होती है।

रामानुज ने अचित् प्रकृति की नित्यता को स्वीकार किया है। प्रकृति को अक्षर भी कहा जाता है।[24] उस प्रकृति के लिए अविद्या एवं माया शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।[25] आचार्य रामानुज के द्वारा अनुप्रयुक्त आविद्या तथा माया शब्द का तात्पर्य शंकर के द्वारा अनुप्रयुक्त आविद्या तथा माया शब्द के तात्पर्य से भिन्न है। विशिष्टाद्वैत मत में प्रकृति के निमित्त अविद्या शब्द का प्रयोग इसलिये किया जाता है क्योंकि प्रकृति अचेतन होने के कारण अध्यात्म ज्ञान विरोधिनी है।[26] चित्र-विचित्र विषयों की सृष्टि के कारण प्रकृति माया कहलाती है।[27]

ईश्वरीय संकल्प के कारण जब प्रकृति कार्योन्मुख होती है तब प्रकृति महत्तत्त्वादि के क्रम से सृष्टि उत्पन्न करती है।[28] यद्यपि प्रकृति संसार का उपादान कारण है तथापि विशिष्टाद्वैत मत में प्रकृति को ब्रह्म का अंश माना जाता है। जिसके कारण ब्रह्म को ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कहा जाता है। रामानुज सूक्ष्म अचित् प्रकृति तथा स्थूल जगत् को यथार्थ स्वीकार करते हैं। रामानुजाचार्य जगत् मिथ्या के सिद्धान्त के प्रबल विरोधी थे। उन्होने इसका प्रबल खण्डन भी किया है।

यद्यपि आचार्य रामानुज कार्य कारण को अर्थात् जगत-रूप कार्य को कारण-रूप ब्रह्मतत्त्व से अभिन्न ही मानते हैं परन्तु अद्वैत मत के अनुरूप कदापि नहीं मानते है। इनके मतानुसार कार्य कारण का गुण अथवा विशेषता होती है। अतः दोनों परस्पर अभिन्न, क्योंकि गुण गुणी से पृथक् नहीं हो सकता। जब कारण सत्य है तो कार्य भी सत्य ही होगा कारण-रूप ब्रह्मतत्त्व सत्य है तो जगत् रूप कार्य मिथ्या कैसे हो सकता? अर्थात् जगत् भी स्वकारणवत् सर्वथा सत्य है। कारण के आधार पर अद्वैत मत-सम्मत जगन्मिथ्यात्व का खण्डन करते हुए रामानुजाचार्य कहते हैं कि- "जो एक ओर तो कार्यकारण को परस्पर अभिन्न बताते हैं, और दूसरी ओर कार्य को मिथ्या सिद्ध करते हैं, उनके मत में तो कारण-कार्य की अभिन्नता सिद्ध ही नहीं होती"[29] अर्थात् कारण सत्य और कार्य मिथ्या हो जाये ये असम्भव है क्योंकि परस्पर विपरीतार्थी सत्यत्व और मिथ्यात्व-योग एकत्रैव येन-केन-प्रकारेण सम्भव नहीं हो सकता है और यदि ऐसा मान भी लिया जाये तो, या तो ब्रह्म मिथ्या हो जायेगा अन्यथा जगत् सत्य हो जायेगा,[30] क्योंकि सत्य तथा सत्य, मिथ्या तथा मिथ्या का योग ही एकत्र संभव है।

रामानुजाचार्य अद्वैतवाद मत पुरस्सर विवर्तवाद को नहीं स्वीकारते हैं। वे सत्कार्यवाद तथा परिमाणवाद का समर्थन करते हैं। रामानुजाचार्य मतानुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त न हो कर के ब्रह्म का परिणाम है। सर्वथा विशुद्ध ब्रह्मतत्त्व के स्वस्वरूप में किसी भी प्रकार की विक्रिया का संक्रमण नहीं होता प्रत्युत ब्रह्मतत्त्व की स्वगतभेद-रूप प्रकृति ही ब्रह्मतत्त्व की शक्ति के द्वारा जगत् रूप में रूपान्तरित होती है। जिस प्रकार दहि के निर्माणार्थ दूध की आवश्यकता होती है अर्थात् दूध से ही दहि का निर्माण होता है ठीक उसी प्रकार परमात्मतत्त्व से जगत् की सृष्टि होती है। अर्थात् ब्रह्मतत्त्व प्रकृति के द्वारा जगद्रूप कार्य में परिणत होता है। विवर्तवाद में सत्य तथा मिथ्या का काल्पनिक सम्बन्ध को परस्पर जोडा जाता है, क्योंकि विवर्तवादियों के अनुसार सत्य तथा मिथ्या का परस्पर सम्बन्ध सत्य नहीं हो सकता परन्तु रामानुज के अनुसार जिस प्रकार कारण स्वयं में सत्य है, उसी प्रकार कारणभूत कार्य भी स्वयं में सत्य है। उदाहरण-स्वरूप जैसे कारणरूप मिट्टी सत्य है, उसी प्रकार कार्यरूप घट भी सत्य है। इसी को कारण और कार्य की अभिन्नता भी कहते है।

अद्वैतवादी कुछ चिन्तकों का मानना है कि जगत् को मिथ्या इस लिये कहा जाता है क्योंकि जगद्रूप कार्य दृष्ट-नष्ट-स्वरूप है।[31] परन्तु आचार्यरामानुज उक्त धारणा को स्वीकार नही करते तथा यह मानते है कि कोई वस्तु इसलिये मिथ्या नहीं होती कि वह दृश्य या विनाशवान् है, विनाशवान् होने से वस्तु को अनित्य तो माना जा सकता है परन्तु मिथ्या नहीं माना जा सकता।[32] अद्वैतवाद में

अनित्य का अर्थ मिथ्या किया जाता हे परन्तु रामानुज अनित्य का तात्पर्य मिथ्या नहीं मानते। वेदान्ती के अनुसार देश, काल तथा वस्तुगत परिच्छिन्नताएँ एकल रूप से भी मिथ्यात्व साधक हैं परन्तु रामानुजाचार्य परिच्छिन्नता को मिथ्यात्व साधक स्वीकार नहीं करते क्योंकि एक वस्तु यदि वर्तमान स्थान पर न होकर अन्य स्थान अथवा देश, काल में उपलब्ध है तो उसको मिथ्या नहीं कहा जा सकता। अन्यत्रोपलब्धि मिथ्यात्व की द्योतक सत्यत्व की द्योतक है।

अद्वैत में व्यावृत्ति को भी पदार्थों के मिथ्यात्व की द्योतक बताया है परन्तु रामानुजाचार्य व्यावृत्ति को भी परिच्छिन्नतावत् नहीं स्वीकारते क्योंकि "घट से पट की व्यावृत्ति होने से पट घटदेश में अनुपलब्ध होने से मिथ्या नहीं है, क्योंकि वह अन्यत्र उपलब्ध हो सकता है, अत: सत्य है।"[33]

रामानुजाचार्य के मतानुसार जीव तथा जगत् ब्रह्म के प्रकार अथवा विशेषण हैं और यह नियम है कि विशेषण विशेष्य से व्यतिरिक्त नहीं होते। अत: सृष्टि स्वांशभूत प्रकृति का परिणाम होने से उसी का परिणाम है, जिसे उसकी शक्ति भी कहा जाता है। अत: जगत् मिथ्यात्व उचित नहीं है। जबकि अद्वैत मत पुरस्सर सृष्टि अविद्या अथवा अज्ञानोपहित ब्रह्म का विवर्त है, अत: अज्ञान प्रसूत के कारण वह मिथ्या है।

उक्त सन्दर्भ में रामानुज कहते हैं कि यदि एकमात्र ब्रह्म को ही सत्य मान अन्य ककको मिथ्या मान लिया जाये तो कैवल्य प्राप्ति निमित्त कृत प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे क्योंकि क्योंकि वे सब भी तो अज्ञान अथवा अविद्यापूरित जगत् में ही हैं।

अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी दयानन्द ने सांख्यसूत्र का प्रमाण देते हुए प्रकृति का लक्षण उद्धृत किया है -"सत्त्व-शुद्ध, रज:-मध्य, तम:-जाड्य अर्थात् जड़ता। तीन वस्तु मिलाकर जो एक संघात है, उसका नाम प्रकृति है।"[35] प्रकृति के उक्त तीन तत्त्वों को सांख्य में गुण नाम से अभिहित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद्[36] का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए स्वामी जी लिखते है कि - "तेजो रूप कार्य सद्-रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है।"[37] महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदत्त उक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि महर्षि दयानन्द प्रकृति को नित्य तथा अनादि है।[38]

सांख्यसूत्र[39] को उद्धृत करते हुए स्वामी जी लिखते है कि -"मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता। इससे अकारण सब कार्यों का कारण होता है।"[40] परन्तु इसका कोई कारण नहीं है। प्रकृति केवल कारण रूप है और जो केवल कारण रूप ही होते है, वह किसी का कार्य नहीं होते।[41]

स्वामी दयानन्द के अनुसार प्रकृति अविकारिणी है।[42] परन्तु इसका यह कदापि तात्पर्य नही है कि इसमे कोई विकार या परिणाम नहीं होता प्रत्युत परिणाम अथवा विकार होता है। महत्तत्व आदि प्रकृति की विकृतियां हैं, किन्तु प्रकृति किसी का विकार न होने के कारण महर्षि दयानन्द के द्वारा अविकारिणी कही गई है। प्रकृति अज होते हुए अन्य तत्त्वों की उत्पत्ति निमित्त परिणमित अथवा अवस्थान्तर हो जाती है।[43]

सूक्ष्म होने के कारण ब्रह्म, जीव और जगत् में व्यापक है। प्रकृति अपने कार्य (महत्तत्वादि) से सूक्ष्म है, किन्तु परमात्मतत्त्व की अपेक्षा स्थूल है। स्वामी जी लिखते हैं कि -"जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़कर जगदाकार कर देता है।[44]

भारतीय दार्शनिक परम्परा में जगत् के उपादान कारण विषयक विचारधारा में पर्याप्त वैषम्य है। दर्शन में ब्रह्मवाद विषयक अभिन्ननिमित्तोपादान ब्रह्म तथा परमाणुवाद के नाम ये दो मत प्रसिद्ध हैं। नवीन वेदान्ती ब्रह्म को जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण मानते हैं परन्तु महर्षि दयानन्द वेद प्रमाण पुरस्सर तथा तर्क के आधार पर प्रकृति को जगत् का उपादान कारण सिद्ध करते हैं। नवीन वेदान्ती स्वमत की पुष्टि निमित्त औपनिषद् प्रमाण[45] देते हुए कहते है कि - " जैसे मकडी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती, अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बनाकर आप ही उसमें खेलती है, वेसे ब्रह्म अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है।"[46] इस मत का निराधार महर्षि दयानन्द लिखते है कि "जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे और उपादान कारण के गुण, कर्म, स्वभाव कार्य में भी आते हैं।"[47] "उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं।"[48] तात्पर्य यह है कि ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है और चित, आनन्द स्वरूप है, यह जगत् तो जड़ एवं आनन्द से रहित है। यह जगत् भी वैसा होना चाहिये। आगे ऋषिवर दयानन्द वेदान्तियों द्वारा प्रदत्त लूतातन्तुकार्यवत् को बाधक मानते हुए लिखते है कि -"ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है, ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है, जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवें तो पृथिव्यादि कार्य के जड़ आदि गुण ब्रह्म में भी होवें।"[49] "जो मकरी

का दृष्टान्त दिया, वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है क्योंकि वह जड़रूप-शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है।"[50] अतः ब्रह्मतत्त्व जगत् का उपादान कारण कदापि नहीं हो सकता।

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदत्त उक्त उपादान कारण विषयक वर्णन में परमाणुवाद और प्रकृतिवाद इन दोनों का समन्वय दिग्दर्शित होता है। स्वामी जी ने विभिन्न स्थलों पर प्रसंगानुरूप प्रकृति तथा परमाणु को जगत् का उपादान कारण कहा है- "उपादान कारण प्रकृति परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं।"[51] "वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है।"[52]

परमाणुवाद के अनुसार परमाणु के खण्ड नहीं होते एवं स्थूल जगत् का छोटा भाग परमाणु है। परमाणु सबसे छोटा खण्ड होता है। परमाणु से द्वयणुकादि क्रम पूर्वक् सृष्टि का निर्माण होता है। अब परमाणुओं से सृष्टी का निर्माण कहा जाये अथवा प्रकृति से तो महर्षि दयानन्द करे अनुसार इसमें कोई भेद नहीं है, मात्र वैचारिक भिन्नता है। प्रकृति से महत्तत्वादि विकारों की उत्पत्ति होकर एक निश्चित क्रम-अनुसार परमाणुओं की उत्पत्ति होती हैं तथा परमाणुओं के संघात से द्वयणुकादि के क्रमानुसार स्थूल जगत् की उत्पत्ति होती है। अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी लिखते हैं कि -

"नित्यायाः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगाविशेषदवस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते।"

अर्थात् "अनादि नित्यस्वरूप सत्व, रजस् और तमोगुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म पृथक-पृथक् तत्त्वावयव विद्यमान हैं, उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है, और संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी-दूसरी अवस्था को स्थूल-स्थूल बनते-बनाते विचित्ररूप बनी है, इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है।"[53] इस प्रकार स्वामी जी परमाणुवाद एवं तथा प्रकृतिवाद का सुन्दर समन्वय करते हैं तथा परमाणु की भी चरम-अवस्था प्रकृति को ही मानते हैं।

स्वामी दयानन्द के लिये जगत्मिथ्या का सिद्धान्त पूर्णरूपेण अवैदिक सिद्धान्त है। स्वामी जी लिखते हैं-"जो यथावत् उपलब्ध होता है, उसका वर्तमान में अनित्यत्व और परम सूक्ष्म कारण को अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता।"[54] विज्ञानवादी बौद्ध परम्परा एकमात्र विज्ञान को ही सत् वस्तु स्वीकारता है तथा बाह्य जगत् को विज्ञान का अविद्याकल्पिताकार कहता है। अतः विज्ञानवादी बौद्ध परम्परा को बाह्य शून्यवादी कहा जाता है। विज्ञानवादी बौद्ध परम्परा का खण्डन करते हुए स्वामी जी लिखते है कि- "जो ज्ञान से युक्त अर्थ द्रव्य हो तो जड़ द्रव्य में भी ज्ञान होना चाहिये और वह चलना आदि क्रिया किस पर करता है? भला जो बाहर दीखता है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है? जो आकार से सहित बुद्धि होवे तो दृश्य होना चाहिये जो केवल ज्ञान ही हृदय में आत्मस्थ होवे, बाह्य ज्ञेय पदार्थों को केवल ज्ञान ही माना जाये तो ज्ञेय के बिना ज्ञान ही नहीं हो सकता।"[55]

वेदान्तियों द्वारा स्वप्नादि के आधार पर जगत् की मिथ्यात्व विषयक सिद्धि को अनुचित बताते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं - "जो स्वप्न, रज्जु-सर्पादिवत् कल्पित कहें तो भी ठीक नहीं बन सकता। क्योंकि कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य और द्रव्य से गुण पृथक् नहीं रह सकता।"[56] पुनः उक्त विषय को स्पष्ट करते हैं लिखते है कि ख्र "जैसे स्वप्न बिना देखे-सुने कभी नहीं आता। जो जागृत अर्थात् वर्तमान समय में सत्य पदार्थ हैं उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उनका वासना रूप ज्ञान आत्मा में स्थित होता है, स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है"[57] तथा "स्वप्न एवं सुषुप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञान मात्र होता है, अभाव नहीं होता जैसे किसी के पीछे की ओर बहुत से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं, परन्तु उनका अभाव नहीं होता।"[58]

अतः स्वामी दयानन्द की विद्वत्दृष्टि में यह सिद्ध होता है कि प्रकृति मिथ्या न होकर के यथार्थ सत्ता है। क्षणिकवाद की बौद्ध परम्परा के अनुसार जगत् क्षणभंगुर हैं परन्तु स्वामी जी के अनुसार क्षणिकवादियों द्वारा प्रदत्त सिद्धान्त भी अप्रमाणिक है क्योंकि जो क्षणिक पदार्थ तथा उसका पदार्थ ज्ञान क्षणिक हो तो प्रत्यभिज्ञा अर्थात् मैंने यह कहा था, अथवा उस चीज को देखा था स्मरण न होना चाहिये, परन्तु पूर्व दृष्ट-श्रुत पदार्थों का का स्मरण रहता है। इसलिये क्षणिकवादी सिद्धान्त भी ठीक नहीं है। स्वामी जी के मतानुसार कारणरूप ब्रह्म का कार्यरूप जगत् सत्य तो है परन्तु नित्य नहीं है। जगत् की नित्यता विषयक पूर्व पक्ष को प्रस्तुत करते हुये स्वामी जी लिखते हैं- "छटा नास्तिक कहता है पाँच भूतों के नित्य होने से सब जगत् नित्य है।"[60]

महर्षि दयानन्द पुनः उक्त मत का खण्डन करते हुए लिखते हैं - "यह बात सत्य नहीं[61] क्योंकि जिन पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश का कारण देखने में आता है कि वे सब नित्य हों तो सब स्थूल जगत् तथा शरीर घट पटादि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते देखते हैं, इस से कार्य को नित्य नहीं मान सकते।"[62]

स्वामी दयानन्द वैशेषिक-सूत्र[63] का प्रमाण देते हुए लिखते हैं- यदि किसी विद्यमान पदार्थ अथवा तत्त्व का कारण नही है तो वह नित्य है।"[64] नाश विषयक मत के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका[65] में लिखते हैं "किसी भी पदार्थ का विनाश नहीं होता, प्रत्युत वियोग मात्र होता है।" विनाश विषयक मत को प्रस्तुत करते हुए कहते है कि "जो स्थूल होकर पहले दिखाई दे तथा बाद में दिखाई न दे उसको विनाश कहते हैं।"[66] पुनः स्वामी जी इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -"नाश को समझने के लिये यह दृष्टान्त है कि कोई मनुष्य मिट्टी के देले को पीस के वायु के बीच में बल से फेंक दे। फिर जैसे वे छोटे-छोटे कण आँख से नहीं दीखते। क्योंकि (णश्) धातु का अदर्शन ही अर्थ है। जब परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं तब वे देखने में नहीं आते, इसी का नाम नाश है।"[67]

निष्कर्षतः स्वामी दयानन्द के मतानुसार जगत् की सत्ता पूर्णतया सत्य है। यह जगत् न तो क्षणिक है और न ही नित्य है इसकी उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय भी होता है। यह जगत् एक निश्चित अवधि पर्यन्त रहता है तथा पुनः प्रलयावस्था को प्राप्त हो जाता है। इसका उपादान कारण प्रकृति नित्य है।

1. प्रोफेसर, गुरुकुल काङ्गडी (सम-विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड
2. अनुसन्धित्सु, वेद-विभाग, गुरुकुल काङ्गडी (सम-विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड

3. महाभारत शान्ति पर्व 03/13/15, नीलकण्ठ कृत टीका।
4. माठर वृति कारिका - 03
5. तत्त्वयाथार्थ्यदीपन टीका - सूत्र - 01
6. गौडपादभाष्य कारिका - 03
7. सांख्यसार, परिशिष्ट - 03
8. सांख्य तत्त्व कौमुदी - 03
9. सांख्यचन्द्रिका कारिका - 03
10. श्वेताश्वेतरोपनिषद् - 04/05
11. श्वेताश्वेतरोपनिषद् - 01/07
12. श्वेताश्वेतरोपनिषद् - 04/10
13. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका - 14/03
14. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका, पृष्ठ - 772
15. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका - 07/05
16. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका, पृष्ठ - 468
17. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका - 07/05
18. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका - 07/06
19. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका - 07/07
20. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका, पृष्ठ - 469
21. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका, पृष्ठ - 469
22. श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टिका, पृष्ठ - 468
23. यतीन्द्रमत दीपिका, चतुर्थ अवतार, पृष्ठ - 72
24. यतीन्द्रमत दीपिका, चतुर्थ अवतार, पृष्ठ - 72
25. यतीन्द्रमत दीपिका, चतुर्थ अवतार, पृष्ठ - 72
26. यतीन्द्रमत दीपिका, चतुर्थ अवतार, पृष्ठ - 73
27. यतीन्द्रमत दीपिका, चतुर्थ अवतार, पृष्ठ - 73
28. यतीन्द्रमत दीपिका, चतुर्थ अवतार, पृष्ठ - 72
29. श्रीभाष्य - 02/01/15

30. श्रीभाष्य - 02/01/15
31. शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्वनिरुपण, डा0 अभेदानन्द, पृष्ठ - 61
32. श्रीभाष्य - 02/01/19
33. श्रीभाष्य - 02/01/19
34. श्रीभाष्य - 02/01/15
35. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
36. छान्दोग्योपनिषद् - 06/84
37. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
38. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
39. सांख्यसूत्र - 01/67
40. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
41. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
42. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
43. सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास
44. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
45. मुण्डकोपनिषद् - 01/01/07
46. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
47. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
48. वैशेषिकसूत्र - 02/01/24
49. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
50. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
51. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
52. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
53. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
54. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
55. सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास
56. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
57. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
58. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
59. सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास
60. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
61. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
62. सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास
63. वैशेषिकसूत्र - 04/01/01
64. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास
65. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति विषय, पृष्ठ - 59
66. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति विषय, पृष्ठ - 59
67. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति विषय, पृष्ठ - 62

आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' पर रामचरितमानस का प्रभाव

जितेन्द्र कुमार उपाध्याय

शोधार्थी- हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी।

डॉ० अचला पाण्डेय

शोध निर्देशक- सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी।

तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें भारतीय संस्कृति, आदर्श, मर्यादा, त्याग, सहनशीलता, कर्त्तव्यपालन जैसे अनेक मूल्यों का संगम है। इस ग्रन्थ से लोग अपने जीवन को सजाने, सँवारने और संयमित करने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। आधुनिक काल में भी रामकथा साहित्य पर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना हुई है जिस पर हमें 'रामचरितमानस' का प्रभाव देखने को मिलता है।

'रामचरितमानस' में सीता के माध्यम से आदर्श भारतीय नारी के चरित्र को स्थापित किया गया है। जिसमें त्याग की भावना, साहसी होना, सेवाभाव तथा आदर्श पत्नी के गुणों का वर्णन हमें मिलता है। यद्यपि आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' उपन्यास में सीता के चरित्र को एक नए कलेवर में दर्शाया गया है तथापि रामचरितमानस का प्रभाव हमें 'मैं जनक नंदिनी' उपन्यास पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में राम वनगमन का प्रसंग है। जहाँ पर सीता, राम के साथ वन को जाने के लिए तैयार है। यह सब देखकर कौशल्या का हृदय द्रवित हो उठता है और वे कहती हैं के सीता किस प्रकार वन में रहेगी। अयोध्या के इतने सुख और ऐश्वर्य में रहीं सीता किस प्रकार वन में रह पाएगी।

पलँग पीठ तजि गोंद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।।[1]

सीता ने कभी पलंग के ऊपर गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर पैर नहीं रखा। मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान इनकी देखभाल करती रही। कभी दीपक की बत्ती तक हटाने को नहीं कहती।

इस प्रकार के सुख में रही सीता ने राम के साथ वन जाने का प्रण कर लिया। ठीक इसी प्रकार आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' में यह वर्णन मिलता है कि सीता का पालन पोषण जनकपुरी में अमरावती के समान ऐश्वर्ययुक्त राजमहल में हुआ उसके बावजूद सीता ने राम के साथ वन जाने का निर्णय लिया।

''महाराज जनक द्वारा पुत्री स्वरूप मेरा अंगीकरण किया जाना। मिथिला पाटमहिषी सुनैना की गोद में आश्रय प्राप्त होना। अमरावती के समान ऐश्वर्ययुक्त जनकपुर राजप्रासाद में लालन पालन।''[2]

सीता का पालन-पोषण तथा विवाह के पश्चात् भी ऐश्वर्य और सुख में रहने के बावजूद राम के साथ वन जाने का निर्णय उनकी त्यागशीलता का परिचायक है।

'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में यह प्रसंग है जहाँ पर राम सीता से कहते हैं कि वन जाने की आज्ञा हमें मिली है इसलिए तुम अयोध्या में रहो और यहाँ सभी का ध्यान देना। इसका उत्तर देते हुए सीता ने विविध तर्कों के माध्यम से यह बताया कि एक स्त्री की पूर्णता पति के साथ ही होती है।

''मैं पुनि समुझि दीखि मन माही। पिय बियोग सम दुखु जग नाही।।[3]

सीता कहती हैं कि मैंने मन में समझकर देख लिया कि पति के वियोग के समान संसार में कोई और दुख नहीं है। इसी क्रम में सीता कहती हैं कि-

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।[4]

जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी होती है वैसे ही हे नाथ पुरुष के बिना स्त्री की दशा होती है।

इसी प्रकार 'मैं जनक नंदिनी' में भी राम के बार-बार समझाने पर कि तुम मेरे साथ वन मत चलो। इस पर सीता उनसे कहती हैं-

''किन्तु आपका वियोग अवश्य मेरा अहित कर देगा।''[5]

उक्त दोनों प्रसंगों में सीता के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि एक स्त्री की पूर्णता पति के संग ही होती है।

'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में यह प्रसंग है कि जब सीता वन में साथ जाने की बात कहती है तो राम ने विविध प्रकार से सीता को समझाया कि वन्य जीवन की कठिनता क्या होती हैं। इसी क्रम में राम कहते हैं कि-

कानन कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी।।
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पदत्राना।।[6]

हे सीता वन का जीवन बहुत ही कठिन और भयानक होता है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बहुत भयानक होता है। इसी क्रम में राम कहते हैं-

कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहि निहारे।।
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा।।[7]

राम कहते हैं कि पर्वत, गुफाएँ, दर्रे, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िए, सिंह और हाथी ऐसी आवाजें निकालते हैं कि उन्हें सुनकर बड़े-बड़ों का धैर्य भाग जाता है।

इसी प्रकार 'मैं जनक नंदिनी' उपन्यास में भी राम द्वारा सीता को वन की कठिनता भरे जीवन के बारे में बतलाया गया है-

''किन्तु राम नहीं माने मेरी बात। वन्य जीवन की कठिनाइयाँ गिनाने लगे- हिंसक जीव जन्तुओं का भय दिखाने लगे। अन्न-जल का अभाव बतलाने लगे। कुस कंटक युक्त मार्ग की कठिनाइयों का बखान करने लगे। आँधी तूफान के जोर। पेड़ों के घर्षण से होने वाले दावानल की स्थिति.... पर्णकुटी की अपर्याप्त सुरक्षा। शय्याविहीन शयन। भवन के प्रकाश के विपरीत असह्य घोर अंधकार रात्रि का भय दिखाकर डिगाने लगे मेरा संकल्प।''[8]

वन्य जीवन की कठिनता को जानकर भी सीता ने राम के साथ वन में चलने के लिए कहना सीता के साहसी होने का ही परिचायक है।

सीता में सेवाभाव का गुण भी विद्यमान हैं 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में यह प्रसंग है कि जब राम, लक्ष्मण और सीता वन के लिए प्रस्थान कर रहे थे उस समय सीता ने सास के पैर छुए और बहुत ही विनम्रता से कहने लगी कि शायद हमारे भाग्य में ये है ही नहीं कि आप सब की सेवा करने का अवसर मिले।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी।।
सेवा समय दैअ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा।।[9]

सीता कहती हैं कि हे माता। सुनिए- मैं बड़ी ही अभागन हूँ। आप सब की सेवा करने के समय दैव ने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ यह था कि मैं सब की सेवा करूँ जो कि सफल न हो सका।

इस तरह सीता के सेवाभाव का हमें पता चलता है। आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' में भी सीता के सेवाभाव का वर्णन हमें इस प्रकार मिलता हैं-

''माँ कौशल्या ने सभी के ललाट पर रोरी का तिलक लगाया। आशीषती हुई बोली- पुत्र, तुम्हारा मनोरथ सफल हो। हर्षपूर्वक प्रस्थान करो। पुनः बारी-बारी हमें हृदय से लगाकर विदा दी। उनकी पद वन्दना कर हम कक्ष के बाहर आए।''[10]

इसी तरह पति परायण स्त्री के धर्म को 'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड में सती अनुसुइया के द्वारा सीता को बताया जाता है जिसका पालन सीता ने जीवन पर्यन्त किया। सती अनुसुइया सीता से कहती हैं कि-

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।[11]

शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए बस एकमात्र धर्म है, एक ही व्रत है और यही एक नियम है। इसी प्रकार का वर्णन हमें 'मैं जनक नंदिनी' में प्राप्त होता है जहाँ पर वन में प्रस्थान करने के समय सीता की सास ने सीता को पत्नी का धर्म इस प्रकार समझाया-

''सीता, पति द्वारा सम्मानित होते हुए भी संकट काल में जो स्त्री पति का अनादर और अपमान करती है वह असती कहलाती है।''[12]

दोनों ही प्रसंगों में स्त्री के क्या कर्त्तव्य होते हैं उसका वर्णन हमें प्राप्त होता है।

इसी प्रकार 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में यह उल्लेख मिलता है कि राम द्वारा जब धनुष को तोड़ दिया गया तब उसी समय परशुराम अत्यन्त क्रोधित मुद्रा में आते हैं और जनक से प्रश्न करते हैं कि- हे मूर्ख! बताओ इस शिव धनुष को किसने तोड़ने का दुःसाहस किया है। अतिशीघ्र उससे हमारा परिचय कराओ। इसी क्रम में लक्ष्मण और परशुराम के बीच बहुत वाद-विवाद होता है। इसके बाद राम ने इस वाद-विवाद पर विराम लगाते हुए परशुराम को अपना परिचय दिया। परशुराम को जब यह आभास हो गया कि यह राम कोई साधारण मानव नहीं है अपितु अवश्य कोई असाधारण पुरुष हैं। परशुराम ने राम से विनती किया कि जो मेरे पास धनुष है यह भगवान विष्णु का ही धनुष है। इस धनुष को खींचकर बाण संधान कीजिए जिससे मेरा सन्देह मिट जाए।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर सन्देहू।।[13]

आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' उपन्यास में भी धनुष भंग के पश्चात् परशुराम आते हैं और राम से प्रश्न करते हैं कि क्या तुम जानते हो कि तुमने किसका धनुष तोड़ा है। मेरे कंधे पर जो यह धनुष देख रहे हो और वह धनुष जिसको तुमने तोड़ा है यह कोई साधारण धनुष नहीं है। यह दोनों धनुष भगवान विष्णु का ही धनुष है जिसे स्वयं विश्वकर्मा ने निर्मित किया है।

इसी क्रम में परशुराम, राम से कहते हें कि मेरे कंधे पर रखे धनुष पर बाण का संधान करो जिससे मुझे यह विश्वास हो जाए कि आप विष्णु के अवतार हैं। यदि ऐसा न कर पाओगे तो मुझसे युद्ध के लिए तैयार रहना। परशुराम कहते हैं कि- ''अतः तुम इस पर बाण का संधन करो, नहीं तो मुझसे द्वन्द्व युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।''[14]

इसके पश्चात् राम ने उस धनुष पर बाण का संधान कर दिया और परशुराम को विश्वास हो गया कि ये कोई साधारण मानव नहीं है बल्कि ये तो साक्षात् ईश्वर ही हैं।

'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में यह वर्णन मिलता है कि जब बरात जनकपुरी में आ गयी तब जनक की खुशी का ठिकाना नहीं था। उन्होंने बड़े विधि विधान और आदरपूर्वक बरातियों का स्वागत सत्कार किया। विविध प्रकार के मेवे, पकवान, भोजन की सामग्रियाँ आदि को बैलों और कहारों पर लादकर अयोध्यापुरी के लिए भेजा।

भरि-भरि बसहँ अपार कहारा। पठई जनक अनेक सुसारा।।
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सवारे नख अरू सीसा।।
मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे।।
कनक बसन मनि भरि-भरि जाना। महिषी धेनु वस्तु विधि नाना।।[15]

जनक ने बरातियों के साथ अयोध्या के लिए विविध प्रकार के मेवे, पकवान, अनगिनत बैलों और कहारों पर लादकर भेजा। इसके साथ ही अनेक सुन्दर सेज भेजी। एक लाख घोड़े और पच्चीस हजार रथ जो कि नख से लेकर शिख तक अत्यन्त सजाए

गए थे, साथ में भेजा। दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं। विविध वाहनों के द्वारा सोना, वस्त्र, रत्न, गाय और भी विविध प्रकार की चीजें दी।

राजा जनक ने इस प्रकार विविध प्रकार के रत्न, स्वर्ण, खाद्य व्यंजन, गाय, बैल, घोड़े और भी अन्य विविध प्रकार की चीजें पुत्री सीता के हर्षमय नव गृहस्थ जीवन के लिए दिया। ठीक इसी प्रकार का वर्णन हमें 'मैं जनक नंदिनी' में भी देखने को मिलता है जब बरात अयोध्या के लिए वापस आने लगी तब जनक ने विविध प्रकार की चीजें साथ में भेजी।

''कन्यादान संग यथाशक्ति सुवर्ण, रत्न, वस्त्रादि तथा गौए दान का भी विधान था। नृपति पिताजी ने पुत्रियों की नव गृहस्थी हर्षमय रहे.... हृदय खोल कर दान दहेज दिए। सुवर्ण हौदों युक्त हाथी। हजारों उत्तम श्रेणी के अश्व। स्वर्णाभूषण, रत्नाभूषण, रथ, गौए.... तथा अस्त्र-शस्त्र सज्जित सेनाएँ।''[16]

इस प्रकार जनक ने बहुत प्रकार से अनेक वस्तुओं, रत्नों, खाद्य पदार्थों आदि को अयोध्या के लिए भेजी।

'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में यह उल्लेख मिलता है कि जब जनक की प्रतिज्ञा को ध्यान में रखकर सारे उपस्थित राजागण बारी-बारी से धनुष तोड़ने के लिए उद्यत होते हैं तो वे सारे असफल हो जाते हैं। उपस्थित सारे राजा धनुष को तोड़ने की क्या, हिला तक नहीं पाए। यह सब देखकर जनक अत्यन्त व्याकुल और अधीर हो जाते हैं और साथ ही क्रोध में सने हुए बातों को कहते हैं-

अब जनि कोउ माखै भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।।

तजहु आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।।[17]

राजा जनक कहते हैं कि- वीरता का अभिमान रखने वाला कोई भी राजा अब नाराज न हो। अब मैंने यह बात जान लिया है कि यह धरती वीरों से खाली हो गयी है। इसलिए अब प्रतीक्षा करना छोड़कर अपने-अपने घर जाओ। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ब्रह्मा ने शायद सीता का विवाह होना लिखा ही नहीं।

इसी प्रकार का वर्णन हमें आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' उपन्यास में भी देखने को मिलता है। जब उपस्थित सारे राजागण धनुष तोड़ने का प्रयास करके थक जाते हैं तो महाराज जनक ने इस तरह राजाओं द्वारा निराश कर देने वाले दृश्य से विह्वल होकर सभा समाप्ति की घोषणा करते हुए कहा कि-

''आप लोग प्रत्यंचा चढ़ाने की आस छोड़कर अपने राज्य को लौट जाएँ। आज अनुभव हुआ, यह पृथ्वी वीरों से हीन हो गयी है।''[18]

'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में यह वर्णन मिलता है कि जब सारे उपस्थित राजा धनुष को तोड़ने में विफल रहे तत्पश्चात राम ने गुरूओं की आज्ञा प्राप्त कर धनुष को तोड़ने का कार्य इतनी चपलता से किया कि किसी को ठीक से पता भी नहीं चल पाया। जिस समय राम ने धनुष को तोड़ा उस समय भयंकर ध्वनि से सारा संसार भर गया जिसका वर्णन तुलसीदास ने इस प्रकार किया है।

''भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारग चले।

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले।''[19]

अत्यन्त घोर कठोर ध्वनि से सारा संसार भर गया। सूर्य के घोड़े अपने मार्ग से भटक गए। हाथियों के झुंड की आवाजें सुनाई देने लगी। शेषनाग, वाराह और कच्छप तिलमिला उठे।

इसी तरह का वर्णन हमें आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' में भी देखने को मिलता है। जिस समय राम ने धनुष को तोड़ा उस समय माँ सुनयना को भय सा काँप गया। वे ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि हे ईश्वर सब कुशल करना।

''कुमार राम ने उसे अपने सुदृढ़ हाथों में पकड़कर अधर में उठाया और ज्यौं ही प्रत्यंचा चढ़ाने लगे, वज्रपात सा घोर शब्द करता वह दो खण्ड हो गया।''[20]

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि सीता के गुण, स्वभाव, कर्त्तव्यपराणता, साहसी, त्यागशीलता, आदर्श पत्नी और सेवाभाव आदि का जैसा वर्णन हमें 'रामचरितमानस' में मिलता है ठीक उसी प्रकार का वर्णन हमें आशा प्रभात कृत 'मैं जनक नंदिनी' में भी देखने को मिलता है। अत: 'रामचरितमानस' का 'मैं जनक नंदिनी' पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ0 323
2. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 24
3. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ0 326
4. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ0 327
5. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 85
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ0 325
7. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ0 325
8. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 85
9. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ0 329
10. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 89
11. तुलसीदास, रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, पृ0 510
12. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 95
13. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ0 225
14. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 73
15. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ0 263
16. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 71
17. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ0 204
18. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 55
19. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ0 210
20. आशा प्रभात, मैं जनक नंदिनी, पृ0 65

समकालीन हिन्दी काव्य में प्रतिरोध का स्वरूप और उसकी सार्थकता

डॉ० चंदन कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वाणिज्य महाविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, पटना

समकालीन हिन्दी काव्य में प्रतिरोध का स्वरूप समझने के लिए प्रतिरोध के अर्थों को समझना होगा। विभिन्न शब्दकोशों में प्रतिरोध के अर्थ का निर्धारण निम्न प्रकार से हुआ है –

हिन्दी शब्द सागर के अनुसार–''प्रतिरोध का शाब्दिक अर्थ विरोध, बाधा, रूकावट आदि दिया गया है।''[1] इसी प्रकार से मानक हिन्दी कोष में ''प्रतिरोध का शाब्दिक अर्थ अड़चन, बाधा, रूकावट, आवेग, आक्रमण आदि को रोकने के लिए किया जाना वाला कार्य दिया गया है।''[2] संस्कृत हिन्दी कोश में ''प्रतिरोध का शाब्दिक अर्थ अटकाव, रूकावट, विघ्न दिया गया है।''[3] वृहद् हिन्दी कोश में ''प्रतिरोध का शाब्दिक अर्थ विरोध, वाधा, रूकावट, प्रतिबंध आदि दिया गया है।''[4]

उपर्युक्त शब्दकोशों में प्रतिरोध के जो अर्थ विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि इन शब्दों का प्रचलन हमारे समाज में मानव सभ्यता या स्वस्थ मानवीय समतामूलक समाज के विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाली शक्तियों के बरक्स हुआ है। एक ओर संस्कृतिकरण की प्रक्रिया जहां मानवता के प्रसार में सहायक होती है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य को पशुता के आचरण से मुक्त कराने का प्रयत्न करती है तथा समस्त समाज को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है। 'प्रतिरोध के माध्यम से मनुष्य के विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाली दमनकारी, शोषणकारी, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक ताकतों का विरोध किया जा सकता है और उसे समूल नष्ट भी किया जा सकता है। इसके तहत जड़ व्यवस्था, रूढि, अंधविश्वास, अन्याय, उत्पीड़न, शोषण आदि के प्रति शख्त विरोध भी व्यक्त किया जाता है।

जाहिर सी बात है कला या साहित्य चेतना के धरातल पर संवेदनाओं का संघनित एवं परिष्कृत रूप है। ये संवेदनाएं लोक या प्रकृति से जुड़ाव के कारण ही किसी संवेदनशील साहित्यकार के भीतर जागृत होती है। यही संवेदनाएं साहित्यकार को सामान्य जन–जीवन, जगत–प्रकृति से जोड़े रहती है जो उन्हें विशुद्ध मानवीय, जनपक्षीय, प्रकृतिप्रेमी बनाती है। यही संवेदनाएं जब शब्दों के कलात्मक ढांचे में व्यक्त होती है, तो साहित्य का रूप ग्रहण करती है। शायद इस लिए डॉ० जगदीश गुप्त ने कहा है, ''जो कथन सृजनात्मक (Creativity) तथा संवेदनशीलता (Emotivity) से रहित हो उसे किसी भी स्तर पर कविता नहीं कहा जा सकता है।''[5] स्पष्ट है सृजनात्मकता का संबंध जहां कलात्मकता से है वहीं संवेदनीयता का संबंध गहरी मानवीय संवेदना से है। यही लोक सापेक्ष संवेदना जब आहत होती है, तो प्रतिरोधी चेतना से सम्पन्न काव्य का सृजन होता है।

प्रतिरोध का स्वर दग्ध आत्मा का प्रचंड स्वर होता है। वह किसी प्रकार के व्यवस्था की प्रार्थना में नहीं बल्कि उन्मूलन में विश्वास करता है। प्रतिरोधी चेतना से सम्पन्न दृष्टि हमारे समय के यथार्थ से साक्षात्कार कराती है। अपने समय मे व्याप्त तमाम की तरह की विषमताओं को देखने की दृष्टि प्रदान करती है। यानि अपने समाज और समय के प्रति समग्रतावादी एवं यथार्थवादी दृष्टि की मांग करती है, जो अपने समय के समस्त नीतियों और कार्यों को सूक्ष्मता से देखने में सक्षम होती है। साथ ही व्यापक समाज को प्रभावित करती है। प्रतिरोधी चेतना से सम्पन्न काव्य दृष्टि साहित्य के अस्तित्व को अक्षुण्ण भी रखती है। उसमें भटकाव नहीं आने देती है, चूंकि वह तमाम प्रकार के भेद–भाव से रहित मानवीय मूल्यों में विश्वास करती है। कदाचित ऐसी ही दृष्टि से सम्पन्न साहित्य के बारे में प्रेमचंद ने कहा है, ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़,

परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाईयां और अनुभूतियां व्यक्त की गई हों .....साहित्य की बहुत सी परिभाषाएं की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन आलोचना है।''[6] सच्चाई प्रकट करने का मतलब है यथार्थ की अभिव्यक्ति और जब अभिव्यक्ति यथार्थपरक होती है तो वह पाठकों के दिल और दिमाग पर गहराई से असर डालती है और सच्चाई अर्थात् यथार्थ के प्रकटीकरण के मूल में प्रतिरोध का भाव किसी न किसी रूप में अवश्य सन्निहित होता है। ये प्रतिरोध के तत्व ही पाठकों पर असर डालते हैं। इसका असर तात्कालीक और दूरगामी दोनों होता है, जो शोषित, पीड़ित, दमित, उपेक्षित वर्ग के लोगों को उनके शारीरिक, मानसिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक शोषण से मुक्ति का रास्ता बतलाता है और जनजीवन या व्यवस्था में एक व्यापक बदलाव का मार्ग प्रशस्त करता है। काव्य में सन्निहत प्रतिरोध का भाव ही उसे जनजीवन, संघर्ष एवं यथार्थ से जोड़ता है एवं स्वप्निल जीवन से मोह भंग कराता है। कोई भी रचनाकार जब मनुष्य मात्र की फिक्र करता है एवं उसे बचाने का संदेश अभिव्यक्त करता है; समाज में व्याप्त सड़ी-गली परम्पराओं की आलोचना एवं विरोध करता है; शोषण, दमन, अत्याचार, गैरबराबरी, भूख, गरीबी आदि के बारे में संवेदनशील रचना करता है तो स्वभावत: उनके काव्य में प्रतिरोध के तत्व शामिल हो जाते हैं।

इस प्रकार कविता में प्रतिरोध का संश्लेषण ही उसे अपने समय, समाज, परिवेश, परिस्थिति एवं जीवन यथार्थ से जोड़कर जन-पक्षधर बनाता है और जनवादी मूल्यों से लेस करता है, जिससे कविता अपने रचनात्मक उद्देश्य में सफल होती है और प्रासंगिक भी। इतना ही नहीं बल्कि दुनिया के तमाम हिस्से में यदि कोई व्यवस्थागत विडम्बना हो तो वह कविता काल और सीमा को लांघते हुए वहां भी अपनी उपयोगिता एवं प्रासंगिकता को सिद्ध करती है। समाज में व्याप्त कुरीति, शोषण, उत्पीड़न, गैर-बराबरी, यथास्थितिवाद से मुक्ति का प्रयास जब कोई रचनाकार करता है। और अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करता है तो उसमें विद्यमान प्रतिरोध का तत्व ही है जो जनता अथवा पाठकों को शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार प्रतिरोध कविता को जनता की आवाज, आकांक्षा, उम्मीद एवं स्वप्नों से जोड़ता है। जहां स्वप्न है, वहीं विकास की नई किरण है, और जनजीवन में नया उमंग भी।

प्रतिरोध के इस स्वरूप को कई स्तरों पर और कई-कई रूपों में देखा-समझा जा सकता है। भाषा, कथ्य, शिल्प, चेतना, विचार, प्रवृत्ति आदि कई स्तरों और रूपों में प्रतिरोध के भिन्न-भिन्न स्वरूप को चिन्हित किया जा सकता है। प्रतिरोध और प्रतिरोध चेतना ही काव्य अथवा साहित्य को जीवनीशक्ति से लैसे करती है। यही वजह है कि कई शताब्दी पूर्व रचे काव्य भी काल और भौगोलिक सीमा को लांघते हुए समसामायिक संदर्भ में अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करती चलती है। और यह संभव हो पाता है काव्य अथवा साहित्य में मौजूद प्रतिरोध और उसकी चेतना से। यही वजह है कि निराला, मुक्तिबोध, शमशेर, नागार्जुन, रघुवीर सहाय, धूमिल, सर्वेश्वर, ओमप्रकाश बाल्मीकि आदि कवियों की कविताएं प्रासंगिक हैं। क्योंकि समाज में यदि वैसे परिस्थिति जब कभी भी पैदा होती है, तो प्रतिरोधी कविताएं खुद को नए अर्थों के साथ पुनर्परिभाषित करती हैं और समकालीन समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करती हैं। यह काव्य में प्रतिरोध की सार्थकता से ही संभव हो पाता है।

यहां गौरतलब बात यह है कि समाकलीन हिन्दी काव्य में प्रतिरोधी चेतना की प्रखरता, प्रवलता और नग्न रूप में दिखता है इसका मुख्य कारण समकालीनता है। यहां पर समकालीनता किसी काल में स्थित रहना मात्र नहीं है, बल्कि यह चेतना प्रधान दृष्टि है, जो हमें अपने समाज के प्रति सचेतन बनाती है। यह हमें अपने समाज में व्याप्त विषमताओं को देखने की दृष्टि प्रदान करती है। हमारे समाज के यथार्थ से साक्षात्कार कराती है। इस दृष्टि से सम्पन्न रचनाकार या व्यक्ति जो हो रहा है, उसका पक्षधर नहीं होता बल्कि ऐसा क्यों हो रहा है? इसकी खोज करता है। इस संबंध में विजय देव नारायण शाही का कथन है, ''समसामयिकता एक असुविधाजनक चुनौति है जो हमें ठीक सार्थक शब्दों में सोचने को बाध्य करती है। आदर्श और यथार्त के बीच उग्र सार्थकता का संबंध रखने की मांग करती है और हमारी निर्लिप्त आत्मतुष्टि के भाव को हिला देती है। नैतिकता और मानव मूल्य निर्जीव, सुभाषित वाक्य मात्र नहीं रह जाते बल्कि जीवंत प्रश्न बन जाते हैं।''[7] सामयिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति भविष्य की उज्जवलता के छलावे में नहीं जीता। बल्कि किसी मूल्य या किसी सामयिक नीति का वर्तमान में क्या प्रभाव हो रहा है इसपर विचार करता है। इस दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति भविष्य के सुख की कामना के लिए आज के मानवीय दुख को नजरअंदाज नहीं करता। वह अन्याय को चुप-चाप सह लेने का पक्षधर नहीं है। वह विकास के नाम पर क्रुरता, हिंसा और बर्बरता को भी सहने का पक्षधर नहीं है। सामयिक दृष्टि से सम्पन्न रचनाकार सभी प्रकार की नीतियों एवं मूल्यों के उपर मनुष्य को श्रेष्ठ मानता है। जो नीतियों या मूल्य मनुष्य की विरोधी प्रतित होती है, वह उसका प्रतिरोध करता है, इसे हीं वह अनुभूति की सार्थकता कहता है। इस संबंध में विजय देव नारायण शाही

कहते हैं, ''अनुभूति की सार्थकता का उद्देश्य है कि जो वास्तविक यथार्थ है, उसे हम कम से कम वहिष्कृत और अधिक से अधिक आत्मसात करें। हम आप जितना शुभ हैं उसके भागीदार हैं, जितना अशुभ है उसके भी भागीदार हैं। हमारे प्रतिमान वर्तमान में सार्थक होनी चाहिए, न सुदूर अतीत में, न सुदूर भविष्य में।''[8]

स्पष्ट है, कि समकालीनता तत्कालिकता की मांग करती है, वह स्वर्णिम भविष्य के छलावे को स्वीकार नहीं करती है। इतना हीं नहीं समकालीनता अपने समय एवं समाज के प्रति एक समग्रतावादी दृष्टि की मांग करती है एवं अपने समय की समस्त नीतियों और कार्यों को शूक्ष्मता से देखने में सक्षम होती है, जो व्यापक समाज को प्रभावित करती है। यही कारण है कि हिन्दी के समकालीन कवियों में सरकारी नीतियों एवं कार्यों का, तथा इन नीतियों का समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का, अपने काव्य में बड़ी सूक्ष्मता के साथ विश्लेषण प्रस्तुत किया है। सरकारी नीतियों का ही प्रभाव था कि समाज में गैर-बराबरी बढ़ती गई जो अमीर थे वे और अमीर होते गये, और जो गरीब थे और गरीब होते गये, इससे समाजिक विषमता बढ़ी। दूसरी तरफ पूंजीवाद ने मनुष्य को एक यंत्र के रूप में परिभाषित किया इससे भी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ। इस प्रकार समकालीनता के कई कारक तत्व हैं, जिससे प्रतिरोधी चेतना सम्पन्न काव्य दृष्टि से पल्लवित हुई।

समकालीन कविता की अभी तक कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है, क्योंकि समकालीन कविता में किसी एक विचारधारा समाज के किसी एक समस्या पर एकांगी दृष्टि से विचार नहीं हुआ है। इसमें बहुत से छोटे-बड़े काव्य आन्दोलन को समेटा गया है। अकविता, भुखी पीढ़ी की कविता, प्रतिबद्ध कविता, समकालीन कविता, नवगीत, सहज कविता आदि प्रमुख काव्य आन्दोलन हैं। इन सभी काव्य आन्दोलनों में एक बात समान है, वह यह कि इसमें युगीन समाजिक, राजनीतिक विडम्बनाओं की अभिव्यक्ति प्रमुखता से हुई है। समकालीन कवियों में मुद्राराक्षस, गंगा प्रसाद विमल, राजकमल चौधरी, रमेश कुंतल मेघ, श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयी, चन्द्रकांत देवताले, धुमिल, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, मंगलेश डवराल आदि प्रमुख माने जाते हैं।

प्रगतिवादी काव्य आंदोलन के दौरान के अधिकांश कवियों ने कविता में विचार और जनवाद के महत्व को समझते हुए तत्कालीन समय, समाज के यथार्थ को अपनी संवेदनाओं में अभिव्यक्त किया है। इनमें से अधिकांश कवि बाद में भी प्रयोगवाद, नई कविता, जनवादी कविता आदि प्रवृतियों तक लिखते रहे। ऐसे कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, शमशेर, नागार्जुन आदि हैं। प्रगतिवादी काव्य आंदोलन के मूल में सर्वत्र प्रतिरोध और उसकी चेतना विद्यमान है। कविता में विचार और जनवादी मूल्यों की महत्ता को रेखांकित किया गया। कविता के लिए सिर्फ कल्पना, रहस्य और कोरी भावुकता को खारिज करते हुए, उसे जीवन और उसकी यथार्थ, उसकी जटिलता, भयावहता, विद्रूपता से जोड़ा गया; और कविता में उसे विचारों से लैसे कर प्रतिरोध चेतना के साथ अभिव्यक्त किया गया। कविता के लिए साहित्यिक जवाबदेही के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, जनवादी जवाबदेही तय की गई। जो कविता में मौजूद प्रतिरोध के बगैर संभव नहीं हो सकता है। केदारनाथ अग्रवाल ''हथौड़े की गीत'' कविता में तमाम तरह के बंधन अर्थात शोषण, दमन, अत्याचार, अपमान, गुलामी आदि के बंधनों को तोड़ने की बात करते हैं। इस कविता में प्रतिरोध की अनुगूंज सर्वत्र व्याप्त है। वे लिखते हैं -

''मार हथौड़ा,
कर कर चोट
लोहू और मसीने से ही
बंधन की दीवारें तोड़।''[9]

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में मौजूद जो प्रतिरोध है, वह श्रम, संघर्ष से उपजा और विचारों की शान पर तपकर ढला हुआ है।

नागार्जुन की कविताओं में अभिव्यक्त प्रतिरोध समाज, व्यवस्था और सत्ता के शोशण एवं तानाशाही चरित्र के विरुद्ध है। ''शासन की बंदूक'' कविता में उन्होंने इसी शोषक एवं तानाशाही चरित्र को दिखाया है। जहां सत्य और अहिंसा जैसे गांधीवादी मूल्य चूक जाते हैं और निर्दोष लोगों के ऊपर जहां-तहां दगने लगती है शासन की बंदूक। शोषण, दमन, अत्याचार, हत्या, नरसंहार (सामूहिक हत्याकांड) के विरुद्ध प्रतिरोध की आखिरी आवाज को भी सत्ता-संरचना के द्वारा कुचलने एवं खामोश करने का अंतहीन प्रयास होता है, लेकिन प्रतिरोध की क्रांति चेतना की आवाज का बाल की बांका नहीं कर पाती है। इस कविता के अंत में वे लिखते हैं -

''जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बांका कर सकी शासन की बंदूक।''[10]

यहां कोाकिला की कूक, प्रतिरोध और क्रांति चेतना की कूक है। इस प्रतिरोध और क्रांति की आवाज का यह शासन की बंदूक कुछ नहीं बिगाड़ पाती है। इसलिए प्रतिरोध का जिंदा रहना और उसका अभिव्यक्त होना जरूरी है।

शमशेर जहां विचार और प्रतिरोध की महत्ता को रेखोंकित करते हुए कहते हैं- बात बोलेगी/हम नहीं/भेद खोलेगी/बात ही। ''य' शाम है'' कविता में शमशेर ने ग्वालियर के सामंती रियासती सरकार के शोषण, दमन के विरुद्ध ग्वालियर के मजदूरों के हृदय में सुलगते प्रतिरोध को दिखाया है। सामंती रियासती सरकार के द्वारा लाल झंडा लिए मजदूरों के जुलूस पर रोटियों के बदले गोलियां चलाई गई। मजदूरों के हृदय में सुगल रहा यह प्रतिरोध, उसी शोषण, दमन, अत्याचार के खिलाफ है। वे लिखते हैं -

''य' शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का।
लपक उठीं लहू-भरी दरांतियां,
- कि आग है:
धुंआ-धुआं
सुगल रहा
गवालियर के मजदूर का हृदय।''[11]

शोषण, दमन के विरुद्ध उठ खड़ा मजदूरों का यह जनांदोलन विचार और प्रतिरोध की चेतना से लैस है, और प्रतिरोध हर मजदूर के सीने में सुलग रहा है।

मुक्तिबोध सच्चे और पक्के मार्क्सवादी रचनाकार हैं। उनकी कविताओं में विचार और सर्वहारा वर्ग के उनकी प्रति सच्ची संवेदना और प्रतिबद्धता दिखाई पड़ती है। वे पूरे समाज का अन्वेषण करते हैं और पाते हैं कि यहां सर्वहारा की जो भयावह स्थिति है, वह पूंजीवाद और सत्ता-संरचना के पूंजीवादी चरित्र की वजह से ही है। विचार और पैनी दृष्टि से वे समाज के भयावह और विद्रूप यथार्थ को अंधेरे में भी साफ-साफ देख पाते हैं। इसीलिए वे सत्ता, व्यवस्था, पूंजीपति, नेता, पत्रकार, संपादक, साहित्यकार, कर्नल, ब्रिगेडियर आदि के छ९ चरित्र और चेहरे की पहचान करते हैं। छ९ वेश धारी सभी चरित्र को वे कटघरे में खड़ा करते हैं। सामंती-पूंजीवादी व्यवस्था के खात्मे के लिए वे स्पष्ट कहते हैं कि अभिव्यक्ति के तमाम तरह के खतरे लोगों को उठाने होंगे। तमाम तरह के मठ और गढ़ ध्वस्त करने होंगे। तभी जाकर सर्वहारा वर्ग की सत्ता स्थापित हो सकती है।

मुक्तिबोध ''अंधेरे में'' कविता में लिखते हैं -

''अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।
पहुंचन होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको
नीली झील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल कांपता रहता
अरुण कमल एक,''[12]

यहां मुक्तिबोध अभिव्यक्ति के तमाम तरह के खतरे को उठाकर प्रतिरोध के हर स्तर और स्वरूप को अपनाने की बात करते हैं। मनुष्य की आजादी और सर्वहारा वर्ग की सत्ता तभी हासिल होगी, जब सर्वहारा वर्ग के लोग और उसके हिमायती अभिव्यक्ति के तमाम तरह के खतरे को उठाकर प्रतिरोध के मार्ग पर चलेंगे। प्रतिरोध और अभिव्यक्ति से ही मनुष्य के मुक्ति का मार्ग निकलेगा।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना शोषकों और शोषितों के बीच के फर्क को अपनी कविता ''भेड़िया-2'' में स्पष्ट करते हैं कि शोषक संघर्ष नहीं कर सकता, वह मशाल नहीं जला सकता। और जो संघर्ष और प्रतिरोध करने की क्षमता रखता हो, जो मशाल जला और उठा सकता हो, उसके सामने भेड़ियों अर्थात शोषकों का कुछ नहीं चलेगा, अंततः उसे भागना पड़ेगा। सर्वेश्वर इस कविता में लिखते हैं-

''भेड़िया गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ।
उसमें और तुममें
यहीं बुनयादी फर्क है
भेड़िया मशाल नहीं जला सकता।''[13]

सर्वेश्वर का स्पष्ट मानना है कि शोषितों को शोषकों के शोषण, दमन, अत्याचार से मुक्ति के लिए संघर्ष और प्रतिरोध के रास्ते पर चलना होगा। शोषित ही संघर्ष और प्रतिरोध कर सकते हैं अर्थात मशाल जला सकते हैं। इस मशाल अर्थात् प्रतिरोध से भेड़िये अर्थात् शोषित भाग खड़े होंगे, उन्हें पराजित होना होगा।

अपने काव्य-प्रयोजन के रूप में प्रतिरोध की ताकत को स्वीकार करने का महान जनवादी उद्देश्य ही रघुवीर सहाय को निराशा और हताशा के दौर में भी जीवन की आस्था और संघर्ष की कविता लिखने को प्रेरित करता है। यही भाव रघुवीर सहाय की प्रसिद्ध कविता 'आत्म-हत्या के विरुद्ध' में अभिव्यक्त हुई है-

''कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अंदर का एक कायर टूटेगा टूट
मेरे मन एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ
मत डूब सिर्फ टूट .....''[14]

प्रतिरोध के हथियार को केवल विरोध तक सीमित न करके उसे आम आदमी की उम्मीदों, आशाओं और आकांक्षाओं से जोड़कर उसमें धार और विस्तार देने का ऐतिहासिक काम पहली बार रघुवीर सहाय जैसे चंद गिने-चुने कवियों की कविताओं में ही संभव हो सका। आजादी के बीस बरस बाद भी जब समानता, बंधुत्व और आजादी जैसे जनवादी मूल्यों से साधारण जन वंचित रहते हैं। एक पूरी की पूरी पीढ़ी आजादी के बाद जन्म लेती है, गरीबी और अभाव में उसका पालन-पोषण होता है और युवावस्था पहुंचकर अपने ही देश में बेगानेपन की जिंदगी जीने को मजबूर होता है। आजादी के दो दशक बाद भी युवाओं के बेगानेपन में बेरोजगारी और जहालत भरी जिंदगी को घुट-घुट कर जीते हुए देखकर कवि चीत्कार उठे और अपने बचपन की आजादी छीनकर लाने की बात करते हैं-

''बीस वर्ष खो गए भरमे उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गयी अपने ही देश में
वह
अपने बचपन की
आजादी
छीनकर लाऊँगा''[15]

समकालीन कवि कविता में मात्र नारेबाजी नहीं करते, बल्कि गंभीर तर्कों के साथ तत्कालीन विसंगति का चित्रण करते हैं। आजादी के बाद देश में जिस 'प्रजातंत्र' की स्थापना हुई, उसे कटघरे में खड़ा करते हैं। क्योंकि जिस तंत्र की स्थापना प्रजा के लिए

हुई है, जिसका नियामक राष्ट्र की जनता है, वह इस लूट तंत्र में एक शोषक के रूप में मुकद्रष्टा बना हुआ है। देश का संपन्न वर्ग, नेता, पूंजीपति देश के संसाधनों पर कुंडली मारकर बैठे हुए हैं। इसलिए धूमिल कहते हैं कि-

''न कोई प्रजा है,
न कोई तंत्र है,
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला षड्यंत्र है।''[16]

स्पष्ट है कवि इस षड्यंत्र एवं राजनीतिक प्रक्रिया को समझने के कारण ही जान पाता है। इसलिए दिविक रमेश कहते हैं, ''दरअसल समकालिक कविता को मात्र बौद्धिक प्रतिक्रिया से अधिक सार्थक प्रतिक्रिया बना देने में राजनीतिकरण का हाथ है। किन्तु इस राजनीतिकरण का अर्थ कविता को विचारधारा से संयुक्त होने की है।''[17] बिना विचार धारा की कविता विद्रुप समाजिक यथार्थ का अजायब घर बन जाती है। लेकिन जब विचारधारा से सम्पन्न कवि देखता है कि आम आदमी दिन भर मेहनत मजदूरी करने के बाद भी दो वक्त की रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाता है तो चन्द्रकांत देवताले जैसे विचार सम्पन्न कवि अपनी कविता में उस आदमी की विडंम्बना को काव्य स्वर देते हुए लिखते हैं,

''वे भी जो अपने पसीने से,
घुमाते हैं समय का पहिया
नहीं जानते अपनी ताकत
क्योंकि उनके द्वारा
नमक ओ प्याज के टुकड़े को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते
एक दिन काठ के हो जाते हैं।''[18]

इस प्रकार समालीन कविता राजनीति को केवल घेरती हीं नहीं है, बल्कि उससे मुठभेड़ भी करती है। जैसा कि डॉ॰ प्रेमशंकर लिखते हैं, ''समकालीन कविता राजनीति के सामने खड़ी हुई उनसे सीधे मुठभेड़ करती है। यहां केवल स्थिति का वर्णन नहीं है, वरन् कवि की तीखी प्रतिक्रिया भी शामिल है।''[19] यह प्रतिक्रिया मात्र शोषकों के प्रति नहीं, बल्कि शोषितों के प्रति भी है। चूंकि कवि यह अपेक्षा करता है कि आम आदमी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो जाये। इसी कारण से समकालीन कवि बार-बार सामाजिक विद्रुप्ताओं, विडम्बनाओं का चित्रण करता है। वह चाहता है कि शोषित लोग भी शोषकों के विरूद्ध एकजुट हो जाय। लेकिन जब वे ऐसा नहीं करते तो उनके प्रति भी व्यंग करने से नहीं चुकता। इस संबंध में मंगलेश डबराल इसे काव्य स्वर देते हुए लिखते हैं-

''तानाशाह चाहता है,
तुम सिर्फ उसके दुख के बारे में सोचो,
और कुछ करना ही है,
तो इतना करो, जब वह मरने लगे
तो खोज लाओ एक नया तानाशाह।''[20]

ऐसा लगता है जैसे कवि ने वर्तमान समय के समाज, राजनीति, उन्माद, सत्ता-व्यवस्था के मनुष्यविरोधी और आदमखोर चित्र को हूबहू कविता में अभिव्यक्त किया है। कविता में प्रतिरोध, प्रतिरोध की चेतना और सार्थकता ने ही इस कविता को आज के समय और संदर्भ में प्रासंगिक बनाया। ऐसा लगता है कि यह कविता आज के समय और संदर्भ में ही लिखी गई हो।

कविता में प्रतिरोध का होना जरूरती है। चूंकि प्रतिरोध हमेशा जड़ता, यथास्थितिवाद, अवसरवाद, आभिजात्यवाद, अधिनायकवाद, शोषण एवं मनुष्य विरोधी संस्कृति के विरुद्ध संघर्ष करने वाली चेतना है; जिसका होना काव्य अथवा साहित्य को अपने समय, सन्दर्भ, यथार्थ से तो जोड़ता ही है, साथ ही काव्य अथवा साहित्य के सामाजिक, राजनीकि, जनवादी उद्देश्यों को भी समृद्ध एवं पुष्ट करता है और रचनात्मक हस्तक्षेप भी करता है। कविता में प्रतिरोध का सृजन ही कविता को वह ऊर्जा और तेवर प्रदान करता

है, जिससे एक कवि अपने समय, समाज, राजनीति की तमाम तरह की विद्रूपताओं से मुठभेड़ करता है। आधुनिक हिन्दी काव्य परम्परा में प्रतिरोध की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि हर कालखण्ड में प्रतिरोध का अलग-अलग स्वरूप रहा है, लेकिन समकालीन काव्य में प्रतिरोध एक नये तेवर, ऊर्जा और आकांक्षा से सम्पन्न है। कविता में प्रतिरोध के स्वरूप, उसके औचित्य और प्रतिरोध के तमाम तरह के संदर्भों से गुजरने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि कविता में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चीज प्रतिरोध, प्रतिरोध की चेतना का होना है, जो उसकी महत्ता, प्रासंगिकता एवं सार्थकता को सिद्ध करती है, और उसे अक्षुण्ण भी रखती है।

संदर्भ सूची:

1. हिन्दी शब्द सागर, भाग- 6 सम्पादक-श्याम सुन्दर दास, पृ० 3157
2. मानक हिन्दी कोश-रामचन्द्र वर्मा, तीसरा खण्ड, पृ० 69
3. संस्कृत हिन्दी कोश-बाबा शिवराम आप्टे, पृ० 655
4. वृहद हिन्दी कोश-सम्पादक-कालिका प्रसाद, पृ० 878
5. डॉङ्क जगदीश गुप्त की रचनाएँ- नई कविता की स्वरूप और समस्याएँ, पृ० 195
6. साहित्य का उद्देश्य, कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ० 6-7
7. छठवां दशक- विजय देव नारायण शाही, पृ० 140
8. वही, पृ० 149
9. हथौड़े का गीत कविता-केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, सम्पादक-अशोक त्रिपाठी, पृ० 69-70
10. शासन की बंदूक-नागार्जून
11. प्रतिनिधि कविता-शमशेर बहादुर सिंह, सम्पादक-डॉ० नामवर सिंह, पृ० 41
12. अंधेरे में-गजानन माधव मुक्तिबोध, खंड-7
13. प्रतिनिधि कविता-सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सम्पादक-प्रयाग शुक्ल, पृ० 89
14. प्रतिनिधि कविता -रघुवीर सहाय, सम्पादक-सुरेश शर्मा, पृ० 59
15. वही, पृ० 66
16. सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, धूमिल, पृ० 19
17. निषेध के बाद, सम्पादक-दिविक रमेश, पृ० 163
18. लकड़बग्घा हँस रहा है, चन्द्रकांत देवताले, पृ० 13
19. नई कविता की भूमिका, डॉ० प्रेमशंकर, पृ० 55
20. पहाड़ पर लालटेन, मंगलेश डवराल, पृ० 68

भोपाल शहर के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उसके ऊपर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन

सुनील कुमार पाटीदार

सहायक प्राध्यापक, श्री जैन श्वेताम्बर प्रोफेशनल एकेडेमी, इंदौर

शोध सारांश:

''शिक्षा प्रकाश का वह स्त्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति का सच्चा पथ प्रदर्शन करती है।''

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, समाज की चतुमुर्खी उन्नति और सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधारशिला है। शिक्षा को मनुष्य का तीसरा नेत्र माना जाता है; शिक्षा का प्रकाश व्यक्ति के सब संशयो का उन्मूलन और उनकी सब बाधाओं का निवारण करता है। शिक्षा से प्राप्त अंर्तदृष्टि व्यक्ति की बुद्धि विवेक और कुशलता में वृद्धि करती है। शिक्षा व्यक्ति का वास्तविक शक्ति से संपन्न करती है। उनके सुयश, सुख और समृद्धि में योग देती है, और उसे भवसागर को पार करके मोक्ष प्राप्ति में सहायता देती हैं।

प्रस्तावना:

''शिक्षा अतीत का चित्र प्रस्तुत करने का उत्तम कार्य करती है और इस चित्र को प्रस्तुत करके अतीत को सुरक्षित रखती है। यह वर्तमान समय में भूतकाल की उपलब्धियों की रक्षा करने का उत्तम कार्य करती है। यह ज्ञान और शिक्त के वर्तमान संग्रह में वृद्धि करके भविष्य को भूत से अच्छा बनाने की संभावना का उत्तम कार्य करती है।''

प्राचीन भारतीय मनीषियों के अनुसार -''सा विद्या या विमुक्तये'' अर्थात विद्या वह जो मनुष्य को अज्ञान से मुक्त करती है।

महात्मा गांधी के अनुसार -''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है, बालक और मनुष्य में शरीर आत्मा और मस्तिष्क के सर्वोत्तम अंश की अभिव्यक्ति है।''

''शिक्षा अतीत का चित्र प्रस्तुत करने का उत्तम कार्य करती है और इस चित्र को प्रस्तुत करके अतीत को सुरक्षित रखती है। यह वर्तमान समय में भूतकाल की उपलब्धियों की रक्षा करने का उत्तम कार्य करती हैं यह ज्ञान और शक्ति के वर्तमान संग्रह में वृद्धि करके भविष्य को भूत से अच्छा बनाने की संभावना का सर्वोत्तम कार्य करती है।''

अध्ययन का औचित्य:

''आवश्यकता अविष्कार की जननी है।''

इस कथन की सहायता मनुष्य समाज के लिए सौ फीसदी सच है, क्योंकि बिना अविष्कार के जीवन गुत्थियों को सुलझाना शायद संभव नहीं है, चाहे वह कला हो या विज्ञान हो अथवा शिक्षा जगत का क्षेत्र हो, और शिक्षा जगत में इसकी श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है।

जैसा कि हम जानते है, कि इस विशाल पृथ्वी के विभिन्न भागों में रहने या निवास करने वालों की संस्कृति मानव जीवन की एक अनोखी घटना है।

संस्कृति के आधार पर ही हम एक व्यक्ति को दूसरे से, एक समूह को दूसरे समूह से और एक समाज को हम दूसरे समाज से भिन्न कर सकते है।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार के द्वारा हम एक समूह की संस्कृति की तुलना दूसरे संस्कृति से करते है। तथा शिक्षा के द्वारा अपनी संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं एवं दोषों को आसानी से समझ सकते है। शिक्षा का निर्धारण या प्रचार-प्रसार में इन संस्कृतियों का विशेष महत्व होता है। तथा एक क्षेत्र की संस्कृति का उस क्षेत्र की शिक्षा के निर्धारण में बहुत बड़ा हाथ होता है।

विद्यालयों में छात्रों की शैक्षिक अभिवृत्ति में संस्कृति का प्रभाव क्या वास्तव में पड़ता है अगर पड़ता है तो कितना पड़ता है इसके अध्ययन की आवश्यकता अत्यंत: आवश्यक है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन :

रथ आर. (1955): ने विश्वविद्यालय के छात्रों की कुछ राजनैतिक आर्थिक क्षेत्रों के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया एवं पाया कि:-

1. राजनैतिक एवं मामलों में छात्रों की संख्या की अभिवृत्ति उनकी पसंद की है।
2. अभिवृत्ति का स्थिर एवं महत्वपूर्ण सीधा संबंध छात्रों के पारिवारिक आर्थिक स्थिति से है।

ओझा आर. एस. (1968): ने महाविद्यालयीन छात्रों की कुछ समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति पर अध्ययन किया और पाया कि-

1. महाविद्यालयीन छात्रों के विचारों में महाविद्यालयीन शिक्षा, विवाह, युद्ध के प्रति सार्थक अंतर दिखाई देता है।
2. पालकों की आर्थिक स्थिति का छात्रों के विषयों पर सार्थक प्रभाव दिखाई देता है।
3. पालकों के शैक्षिक स्तर का छात्रों के विषय चयन पर सार्थक प्रभाव है।

महता पी. (1974): इन्होंने राजस्थान की महाविद्यालयीन छात्राओं की अभिवृत्ति एवं रूचियों का अध्ययन किया। इसके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य महाविद्यालयीन छात्राओं की अभिवृत्तियों एवं रूचियों का मापन करना था।

मेहरोत्रा आर.एन. (1973): ने ''शिक्षण-प्रशिक्षण'' कार्यक्रमों के शिक्षकों के शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया तथा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले:-

1. वे विद्यार्थी जिन्होंने पाठ्यक्रम पूर्ण कर लिया है उनकी अभिवृत्ति उन विद्यार्थियों की अपेक्षा धनात्मक पाई गयी जिन्होंने पाठ्यक्रम समाप्त नहीं किया था।
2. पूर्ण कालिक विद्यार्थियों के मध्यमान अभिवृत्ति अंक पाठ्यक्रम के प्रारंभिक क्रम तथा पाठ्यक्रम के अंत में पत्राचार पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाये गये।
3. दोनों समूहों में महिला प्रशिक्षार्थियों के अंक पुरूषों की अपेक्षा अधिक पाये गये।

समस्या कथन:

''भोपाल शहर के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उसके ऊपर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन।''

अध्ययन का उद्देश्य:

1. माध्यमिक स्तर के अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक अभिवृत्ति के स्तर को ज्ञात करना।
2. छात्रों की शैक्षिक अभिवृत्ति पर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना:

1. माध्यमिक स्तर में छात्र-छात्राओं की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया जायेगा।
2. माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में धार्मिक संस्कृति का प्रभाव पड़ता है।
3. माध्यमिक स्तर में अध्ययरत छात्र-छात्राओं की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति एवं उसके ऊपर संस्कृति का प्रभाव पाया जायेगा।
4. माध्यमिक स्तर में अध्ययरत छात्र-छात्राओं की शिक्षा में संस्कृति का प्रभाव पाया जायेगा।

न्यादर्श:

प्रस्तुत शोध कार्य प्रबंध में प्रतिदर्श का चुनाव उद्देशीय प्रतिदर्श एवं यादृच्छिक प्रतिदर्श के आधार पर किया गया है। उद्देशीय प्रतिदर्श के अंतर्गत अपने विशिष्ट उद्देश्य के लिए एक विशिष्ट प्रतिदर्श का चयन करते हैं। जैसे-प्रस्तुत शोध कार्य प्रबंध में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों की विज्ञान अभिवृत्ति और उपलब्धि के मध्य संबंध ज्ञात करना है। इस विशिष्ट उद्देश्य के लिए एक विशिष्ट समूह की आवश्यकता होगी। इसलिए उद्देशीय प्रतिदर्श के आधार पर कक्षा 9वीं के छात्र-छात्राओं का चयन किया गया है।

उद्देशीय प्रतिदर्श के आधार पर कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का चयन किया गया है। अब इन विद्यार्थियों में से शोधकार्य में परीक्षण हेतु चयनित छात्रों का आधार प्रतिदर्श, यादृच्छिक प्रतिदर्श है। इस प्रतिदर्श विधि में शोधकर्ता अपना ध्यान समग्र में व्यर्थ न लगाकर कुछ पर ही केन्द्रित करता है। जिससे विषय का गहन अध्ययन होता है और समय की बचत होती है। यह मानवीय पक्षपात एवं अभिरूची से रहित है तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण है। प्रतिनिधित्वपूर्ण होने के कारण कम इकाईयों के चयन में ही विश्वसनीय एवं वैध्द निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते है। इसमें मानक त्रृटि भी कम हो जाती है।

अत: इन शोधकार्य की आवश्यकतानुरूप प्रतिदर्श विधि के आधार पर किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य में समस्या के समाधान हेतु शोधकर्ता ने शहरी क्षेत्र भोपाल के विद्यालयों का चयन किया है। इस हेतु उसने भोपाल शहर में स्थित कुल 15 विद्यालय का चयन अपने उद्देश्यानुसार किया।

चूंकि प्रत्येक विद्यालय में तीनों धर्मों के विद्यार्थियों का पर्याप्त मात्रा में मिलना संभव नहीं था। अतएव अधिक विद्यालय में जाकर तीनों धर्मों के विद्यालयों का पर्याप्त मात्रा में मिलना संभव नहीं था। अतएव अधिक विद्यालय में जाकरतीनों धर्मों के विद्यार्थियों से मापन परिक्षण किया। परंतु शोधकर्ता के लिए परीक्षण के लिए सभी धर्म के विद्यार्थियों का चयन करना कठिन है।

अत: शोधकर्ता ने समय व धन का ध्यान रखते हुए विद्यालयों से सभी धर्म के विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि से किया।

अत: इस समस्या के समाधान हेतु शोधकर्ता ने 150 प्रतिदर्श का चयन किया जिसमें सभी तीनों धर्मों के छात्र-छात्राएं सम्मिलित है।

150 प्रतिदर्श (छात्र-छात्राएँ)

fgUn| /ke|	efLye /ke|	b|kb| /ke|
छात्र–छात्राएं	छात्र–छात्राएं	छात्र–छात्राएं
25 – 25	25 – 25	25 – 25
50	50	50

उपकरण:

प्रस्तुत अध्ययन को सफल बनाने तथा उद्देश्यों की सफलतापूर्वक प्राप्ती के लिए शोधकर्ता ने डॉ. एस. एल. चोपड़ा/1982/द्वारा निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

शोध विधि:

इस अध्ययन में शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उसके ऊपर संस्कृति के प्रभाव ज्ञात करने के लिए डी.एल. चोपड़ा द्वारा निर्मित मापनी का प्रयोग किया गया। इसके लिए माध्यमिक स्तर के विद्याार्थियों का चयन किया गया।

प्रदत्तों का संकलन:

प्रस्तुत समस्या माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति उसके ऊपर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन करने के लिये भोपाल के कुल 15 शिक्षा संस्कृति के छात्र-छात्राओं का चयन किया गया। इन शिक्षा केन्द्रों में 150 प्रतिदर्श यदृच्छिक विधि के द्वारा चयन किया गया।

मापन के लिए डॉ. एस. एल. चोपड़ा द्वारा निर्मित प्रमापीकृत विश्वसनीय उपकरण का प्रयोग किया गया। जिसकी सत्यता की जांच की गई तथा निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

प्रदत्तों का विश्लेषण:

परिकल्पना-1

माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया जायेगा।

उपरोक्त परिकल्पना के आधार पर कुल 150 प्रतिदर्श जिसमें 75 छात्र एवं 76 छात्राएं हैं इसका अध्ययन डॉ. एस. एल. चोपड़ा द्वारा निर्मित ''अभिवृत्ति मापनी द्वारा मूल प्राप्तांकों के आधार पर मध्यमान प्रमाणिक विचलन एवं प्रमाणिक त्रुटि ज्ञात कर टी का मान ज्ञात किया गया जिसका स्पष्टीकरण निम्न सारणी में दिया गया है।

माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता

तालिका क्रमांक - 1

dy Nk= ,oa Nk=k,a	izfrnRrk dh l[;k	e/;eku	izekf.kd fopyu	Vh dk eku
छात्र	86	98.82	10.38	19.21
छात्राएं	75	60.46	5.20	
डी.एफ.	150	P<0.01(सार्थक अंतर)		

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के मध्य टी का मान 19.4 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर डी. एफ. - 150 पी. एल. 0.01 सार्थक है। क्योंकि 0.01 स्तर पर आवश्यकताओं के अनुसार टी का मान 2.03 से अधिक है। अत: यह परिकल्पना इस तथ्य की पुष्टि करता है, में माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है, इसलिए ये परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिकल्पना-2

शैक्षिक माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति में धार्मिक संस्कृति का प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त परिकल्पना की जांच हेतु चयनित छात्र एवं छात्राओं में से प्राप्त मापन टेस्ट (परीक्षण) का सहारा लिया गया। प्राप्त प्राप्तांकों का मध्यमान प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर अभिवृत्ति में संस्कृति का मापन किया गया। इन सबका विवरण निम्न तालिका में किया गया है:

तालिका क्रमांक-2

Øekd	izfrnRrk dh l[;k	e/;eku	izekf.kd fopyu	Vh dk eku
1	75	100	5.04	8.829
2	75	63.46	9.94	

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की शैक्षिक एवं उस पर संस्कृति के प्रभाव के मध्य टी का मान 8.829 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 आवश्यकताओं के अनुसार टी का मान 2.79 से अधिक हैं अत: यह परिकल्पना इस तथ्य की पुष्टि करता है। माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उस पर संस्कृति के प्रभाव का सार्थक प्रभाव पड़ता है। इसलिये यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिकल्पना-3

माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति में धार्मिक संस्कृति का प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त की जांच हेतु कक्षा 9वीं की चयनित छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं धार्मिक संस्कृति की जांच हेतु अभिवृत्ति मापनी परिक्षण का प्रयोग किया गया। अभिवृत्ति एवं संस्कृति से प्राप्त अंकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर दोनों के मध्य टी की गणना द्वारा परिकल्पना की सार्थकता ज्ञात की गई। इसका विवरण निम्न तालिका में किया गया है।

तालिका क्रमांक-3

Øekd	Nk=k,a	inRrk dh l[;k	e/;eku	izekf.kd fopyu	Vh dk eku
1	शैक्षिक अभिवृत्ति	75	51.6	4.78	17.64
2	संस्कृति (धार्मिक)	75	58.5	8.29	

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं धार्मिक संस्कृति के मध्य टी का मान 17.64 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर डी. एफ.-75 पी.एल. 0.01 सार्थक है। क्योंकि 0.01 स्तर पर आवश्यकताओं के अनुसार टी का मान 2.68 से अधिक है। अत: यह परिकल्पना इस तथ्य की पुष्टि करता है। माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं धार्मिक संस्कृति के प्रभाव का सार्थक प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिकल्पना-4

माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उस पर धार्मिक संस्कृति का प्रभाव छात्राओं के प्रभाव से उच्च होंगे।

उपर्युक्त परिकल्पना की जांच करने हेतु छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं संस्कृति के प्रभाव मापने हेतु मापनी परिक्षण से प्राप्त अंकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन पुल्ड प्रमाणिक विचलन त्रुटि ज्ञात कर टी मान ज्ञात किया गया। इस ज्ञात टी. मूल्य द्वारा परिकल्पना की सार्थकता की जांच की गई। इसका विवरण निम्न तालिका में किया गया है।

तालिका क्रमांक - 4

Øekd	r;qukRed	inRrk dh l[;k	e/;eku	izekf.kd fopyu	Vh dk eku
1	छात्र	72	49.6	8.77	1.369
2	छात्राएं	75	51.6	650	

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि छात्रों का मध्यमान 49.6 और प्रमाणिक विचलन 8.77 एवं छात्राओं का मध्यमान 51.6 और प्रमाणिक चिलन 6.50 है। दोनों के मध्य टी का मान 1.369 प्राप्त हुआ। अत: यह परिकल्पना इस तथ्य की पुष्टि करता है। माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उस पर धार्मिक संस्कृति का प्रभाव छात्राओं के प्रभाव से उच्च नहीं है।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोधकार्य के अंतर्गत ली गयी समस्या के अध्ययन में ''भोपाल के शिक्षा केन्द्रों में अध्ययनरत छात्रों के प्रति शैक्षिक अभिवृत्ति उस पर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन का विवरण दिया गया है। इसके लिए भोपाल में स्थित कुल शिक्षा केन्द्रों के कुल 150 छात्र-छात्राओं को प्रतिदर्श हेतु लिया गया है।

समस्या समाधान हेतु 9वीं कक्षा के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं उस पर संस्कृति का प्रभाव मापने के लिए डॉ. एस. एल. चोपड़ा 1982 द्वारा निर्मित प्रमाणीकृत, विश्वशनीय, वैद्यमापली का प्रयोग किया गया। इस मापनी में कुल 22 प्रश्न है।

संदर्भित ग्रंथ सूची

पी. एन. राय एवं (1981)भटनागर : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

लाभसिंह महेश भार्गव (1981)एवं द्वारका प्रसाद : मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी के मूल तत्व हर प्रसाद भार्गव, आगरा।

मल्होत्रा आर. एन. : शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

के. एम. बोस (1932) : शिक्षकों की अभिवृत्ति एवं उनके व्यवसायिक जीवन में अध्ययन।

मेहरोत्रा आर. एन. (1973) : शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम का शिक्षकों का शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च एन एजुकेशन।

रेजीनस (1955) : शिक्षण सफलता, प्ररणा व अभिवृत्ति पर अध्ययन सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च एन एजुकेशन।

एन. सी. ई. आर. टी. : शिक्षण व्यवसाय के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन।

पाठक डी. पी. : भारतीय शिक्षा और उसकी समस्या।

प्रेमचंद साहित्य में किसान जीवन और उभरता किसान विमर्श

पूजा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

भारतीय साहित्य का स्वरूप अत्यंक व्यापक एवं विस्तृत है। भारत एक विशाल देश है जिसकी संस्कृति अत्यधिक समृद्ध है और इसकी सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। भारतीय साहित्य का स्वरूप निर्धारित किया जाए तो वह हिन्दू महासागर से भी अधिक गहरा है और भारत के भौगोलिक क्षेत्र, अधिक विस्तृत और हिमालय के शिखर से भी अधिक ऊँचा होगा।

साहित्य का जन्म समाज में ही होता है। समाज से अलग साहित्य का कोई अस्तित्व नहीं है। क्योंकि साहित्य में संवेदनाओं, समस्याओं, मानवीय चिंताओं की अभिव्यक्ति होती है। हमारे साहित्य में दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, सांप्रदायिक विमर्श, मीडिया विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श आदि विमर्शों पर लेखनी चलती रही है। इनके साथ-साथ किसान विमर्श ने भी ध्यान खींचा है।

भारतीय साहित्य में किसानों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में किसानों का जीवन बहुत संघर्षशील रहता है, वे आजीवन संघर्ष करते हुए दु:ख दर्द को झेलते रहे हैं। किसानों का जीवन और उनके संघर्षो को भारतीय साहित्य में व्यापक रूप से उद्घाटित किया गया है।

भारतीय साहित्य में कुछ ऐसी कृतियाँ है जो किसानों का जीवन और संघर्षो को बेहतर ढंग से समझाती हैं। महाभारत, रामायण, पंचतंत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, कबीर और नानक जैसी कृतियों में किसानों के जीवन का विस्तार से वर्णन किया गया है। आधुनिक भारतीय साहित्य में भी किसानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका मिलती है। भारतीय साहित्य में किसान और उनके जीवन का वर्णन करने वाली कई रचनाएं है। भारतीय साहित्य में हमेशा से किसानों को अपने कथाओं, कविताओं, नाटकों और उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण रूप से शामिल किया है। किसानों की जीवनशैली उनकी चुनौतियों और उनमें संघर्षो को साहित्य के माध्यम से बताना भारतीय साहित्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा है।

भारत के अधिकांश क्षेत्रों में किसान समुदाय एक महत्वपूर्ण धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तत्त्व है। जबसे इस धरती पर जीवन की उत्पत्ति हुई है तब से किसान खेती, किसानी करके खाद्य-सामग्री उत्पादित कर रहे हैं यानि किसान ही सारी दुनिया के लिए भोजन हेतु खाद्यान फल, सब्जियाँ और चारे का उत्पादन करते आ रहे हैं। इन धरतीपुत्रों किसानों को अन्नदाता भी कहा जाता है। यदि किसान खेती, किसानी नहीं करेंगे तो खाद्यान्न का उत्पादन नहीं होगा और जब खाद्यान्नों उत्पादन नहीं होगा तो हमारे भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी। भोजन के बिना हमारा जीवित रहना नामुमकिन है। यदि भोजन नहीं करेंगे तो भूखे मर जाएँगे और कुछ भी नहीं कर पायेगें।

हिन्दी साहित्य में किसानों से जुड़े विषय को अनेक विद्वानों ने अपने साहित्य में उठाया है, प्रेमचंद ऐसे सजग एवं जन हितैषी कलाकार थे जो आजीवन जन-मानस के अनुकूल एवं प्रतिकूल संवेदनों को आत्मसात करते हुए निर्द्वद्ध भाव से निरंतर अभिव्यक्त करते रहे। प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में किसान वर्ग की नानाविधा समस्याओं को उभारकर प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद का उद्देश्य समग्र रूप से भारत के कृषक वर्ग की समस्याओं को मुखरित करना था। इसमें भिन्न स्वार्थो जैसे, शासक, शोषित, किसान-जमींदार आदि के संघर्ष का बड़ा ही जीवन चित्र खींचा गया है। लेखक के ध्यान में हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन का असंतुलन खोकर बैठ

गया है। जिसके कारण हमारा समाज दो हिस्सों में बँट कर निष्प्राण हो गया है। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का यह असंतुलन जिस वर्ग को सबसे अधिक असहाय बनाये हुए है वह है- किसान वर्ग।

'प्रेमाश्रम' हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें किसानों के संघर्ष व समस्याओं की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है।

प्रेमाश्रम में भारतीय किसानों की समस्याओं की सबसे उनकी आर्थिक विपन्नता की। इस विपन्नता के कारण वे कृषि-कार्य को भी उचित ढ़ंग से संपन्न नहीं कर पाते। अपनी इस गरीबी के कारण वे महाजनों से कर्ज लेने के लिए विवश हैं। जमीन से अच्छी फसल उपजाने के लिए नयी किस्म के बीज चाहिए। पुराने काठ के हलों की जगह लोहे के हल चाहिए। सिंचाई का प्रबंध निश्चित रूप से होना चाहिए और फिर जमीन की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने लिए खाद चाहिए। इन सबके लिए एक ही चीज की जरूरत है वह है रूपया। जिसका भारत के किसानों के पास नितांत अभाव है।

प्रेमाश्रम के किसानों की समस्या इस प्रकार की है कि किसानों का शोषण जमींदारों के हाथों हो रहा है। ज्ञानशंकर के पिता का वार्षिक श्राद्ध है। इस अवसर पर उसके असमियों को बाजार भाव पर उसे घी देना है। जिस किसान के घर भैंस नहीं है उस पर यह तकाजा है। जमींदार को घी चाहिये उसे इस बात की चिंता करने की जरूरत नहीं है। आसामी के पास के दूध देने वाली भैंस है या नहीं।

जमींदार की प्रथा के अनुसार किसानों से हर तरह हली हुकूमत पर बेगार लेने की परिपाटी बहुत दिनों से प्रचलित थी। लेकिन उस पुराने जमाने में जमींदार भी अपने असामी को अपनी पूत प्रजा समझता था। उनकी मुसीबतों के प्रति सहानुभूति रखता था।

प्रेमचंद की मुख्य चिन्ता "किसान का शोषण है। उन्होंने किसान के शोषकों की एक कड़ी के रूप में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की देखा। उन्होंने यह भी दिखाया है कि किसान के शोषण का कारण ब्रिटिश साम्राज्यवादी ही है। उन्हीं के कारण जमींदार, सूदखोर तथा इनकी नौकरशाही शोषण कर रही हैं।"[1]

प्रेमचंद ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने भारतीय किसान की दयनीय स्थिति के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति ही नहीं अपनी बैचेनी व चिंता भी व्यक्त की है। उसका स्पष्ट मत था की किसान की आर्थिक मुक्ति के बिना पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे किसानों की दयनीय स्थिति के संबंध में लिखते हैं, "भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वह है जो अपनी जीविका के लिए किसानों के महत्वपूर्ण है, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्हीं किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका है। हमारे स्कूल, विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतों और कचहरिया सब उन्हीं की कमाची के बल पर चलती है, लेकिन वहीं जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, भरपेट अन्न को तरसते हैं, जाड़े-थूले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं।"[2]

भारतीय किसान सदैव कठिन परिश्रम करके जीवन बीताता रहा है। वह अपने परंपरावादी विचारों के कारण शोषक वर्ग की नीतियों का विरोध नहीं कर पाता। किसान पक्का भाग्यशाली होता है, क्योंकि उसकी खेती या परिश्रम का फल ईश्वर के अधीन है। जिसका फायदा शोषक वर्ग उठाता है।

प्रेमाश्रम के किसान बेगार करने को विवश हैं, विरोध का कोई भी भाव उनमें नहीं है, सब के सब सिर झुकाये चुपचाप घास छीलते रहे, यहाँ तक कि तीसरा पहर हो गया, सारा मैदान साफ हो गया। सबने खुरपियाँ रख दी और कमर सीधी करने के लिए जरा लेट गये। बेचारे समझते थे कि गला छूट गया लेकिन इतने में तहसीलदार साहब ने आकर हुक्म दिया। गोबर लाकर लीप दो, कोई कंकड, पत्थर न रहने पाचे, कहाँ हैं नाजिर जी, इन सबको डोल रस्सी दिलवा दीजिए।"[3]

कहा जाता है कि भारतीय किसान ऋण युक्त पैदा होता है। जीवन भर ऋणी रहता है। ऋणी रहकर ही मरता है। गोदान उपन्यास में होरी कर्जे से दिन-रात लगा रहता है। वह नहीं चाहता कि किसी से एक भी पैसा कर्जे मे लेना पड़े और यदि कर्ज ले तो एक-एक पाई चुका दे, परन्तु उसे कोई भी रास्ता दिखाई नहीं देता। यह दशा केवल होरी की ही बनी थी। गाँव में प्रायः सभी किसान ऋणग्रस्त थे। किसी पर कम तो किसी पर अधिक। हीरो जैसा किसान यह जानता था कि कुछ भी कर ले, वह ऋणमुक्त नहीं हो सकेगा।

> *"अनाज तो सब-का-सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों रात ढ़ोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता। जमींदार तो एक ही है, मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग और मंगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग।*

किसान का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गए। सहुआइन से फिर रूपए उधार लिये तो काम चला।'[4]

धर्म भारतीय जन-जीवन से गहरे रूप से जुड़ा हुआ हैं। भारतीय प्राचीन जातीय व्यवस्था के ब्राह्मण सर्वोपरि व सम्मान का पात्र माना जाता रहा है। विवाह, पुत्रोत्पत्ति, मकान या जायदाद का शुभ मुहूर्त आदि कोई भी प्रसन्नता का अवसर हो या मृत्यु आदि अशुभ स्थिति हो। ब्राहमणों का सत्कार व उन्हें दान देना सबसे बड़ा पुण्य समझा जाता है। इस प्रकार के पुण्य को प्राप्त करना प्रत्येक भारतीय का मानो परम कर्तव्य है। 'गोदान' उपन्यास के नायक होरी की मृत्यु होने वाली है।

उसके पास संपत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं है जिससे उसका उपचार कराया जा सकें। किसान मूलतः धर्मभीरू होता है, धर्म के ठेकेदारो द्वारा बार-बार छला जाता है। भाई हीरा रोते हुए कहता है "भाभी दिल बड़ा करों, गोदान करा दो, दादा चले और कई आवाजें आती हैं 'गोदान' करा दो, अभी समय है।"[5] धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली' "महाराज घर में न गाय है न बछिया, न पैसे। यही पैसे है, यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।"[6] मृत्यु के समय गो का दान करना और वह दान भी ब्राह्मणों को होना चाहिए। यह भारतीय परंपरा या रीति-रिवाज है। ब्राहमणों के इसी ब्राह्मणत्व के कारण गाँव के किसान उन्हें दान देते हैं। रोजाना उन्हें बर्तन, कपड़े बछिया, गाय आदि दक्षिणा में कुछ न कुछ अवश्य दिया जाता है। इस तरह धर्म की आड़ में भी किसानों का शोषण होता रहा है।

'गोदान' कृषक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। होरी व्यक्ति नहीं, पूरा वर्ग है। वह भारतीय किसान का जीता-जागता चित्र है। 'होरी' के रूप में प्रेमचंद ने भारतीय किसान .को मूर्तिमान किया है। जीवन भर परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ किसान अंत में अपनी करुण कहानी का व्यापक प्रभाव छोड़कर समाप्त हो जाता है। भारतीय किसान की समय विषमताएँ 'होरी' में साकार हो उठी।

प्रेमचंद ने 'पूस की रात' में किसान की वास्तविक हालत की नाटकीय अभिव्यक्ति की है। किसान, विशेष रूप से छोटे किसानों की तबाही की दास्तान इसमें है। किसान (हल्कू) कर्जदार है। उसने मजदूरी करके तीन रुपए कमाए हैं ताकि कंबल खरीदा जा सके, जिसने पूस की रात में खेत की रखवाली कर सकें। उन रूपयों को महाजन को देना पड़ता है ताकि उसकी गाली-गलौच से बचा जा सकें।

"हल्कू ने आकर स्त्री से कहा सहना आया है, लाओ, जो रूपए रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।" [7]

हल्कू के ऊपर अपने मालिक सहना का उधार है। हल्कू और उसकी पत्नी मुन्नी जो भी काम करते हैं उसका अधिकांश हिस्सा मालिक के पास जाता हैं। क्योंकि उधार की ब्याज दर इतनी अधिक है कि हल्कू को लगता है कि वह पूरा कर्ज नहीं चुका पाएगा।

किसान मजबूर होकर महाजन ऋण लेता है, किंतु उसके बाद वह उससे मुक्त नहीं हो पाता। ब्याज-दर के काल में वह ऐसा उलझ जाता है कि उसकी सारी मेहनत-मजदूरी उसे चुकाने में ही चुक जाती है। हल्कू की पत्नी किसानों के जीवन की इस व्यव्स्था को और उजागर करते हुए कहती है, "मर मर काम करों, उपाज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है।"[8]

गरीब किसान के लिए खेती कितनी मुश्किल होती जा रही थी। यहां तक कि वे यह भी सोचने लगते हैं कि क्यों न किसानी छोड़ कर मजदूरी की जाए। किसान की इस मनोदशा का भी मार्मिक चित्रण हुआ है।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में किसानों के जीवन का विस्तृत और संवेदनशील वर्णन किया है। उन्होंने किसानों की भूमिका, उनकी जीवन शैली, संघर्षो और संघर्षो से उनके जीवन में होने वाले परिवर्तनों को बखूबी व्यक्त किया है।

प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' में किसानों की जीवन-शैली का वर्णन किया है। इस कहानी में किसानों की कड़ी मेहनत, दुख, उनके जीवन की असुविधाओं और परिवार के साथ बड़े प्रयासों को दिखाया गया है। इस कहानी में एक किसान ने अपनी अधिकतम मेहनत करते हुए भी दो बैलों से जुड़ी कुछ गलतियों की वजह से आधी जमीन गंवा दी होती हैं। इस कहानी से प्रेमचंद ने किसानों की जीवन में होने वाली समस्याओं का विस्तृत वर्णन किया है।

कहानी 'नमक का दारोगा' में प्रेमचंद ने दिखाया है कि किसानों को किस तरह से अन्य लोगों से अलग रूप से कानून से लड़ना पड़ता है।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में किसानो के दुख-दर्द और जीवन की कठिनाईयों का बहुत सरल और सुलभ ढंग से वर्णन किया है। प्रेमचंद की कहानियों में किसान अपने खेतों में भले ही काम करते हों, लेकिन उन्हें अपने हक के लिए लड़ना भी पड़ता है। वे किसी न किसी तरीके से अपनी जिंदगी के साथ लड़ते हुए दिखाई देते हैं।

प्रेमचंद एक लोकप्रिय हिंदी लेखक थे जो अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से समाज की समस्याओं को उजागर करने के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के शोषण के मुद्दे को उजागर और किसानों को शोषण से मुक्ति पाने का संदेश दिया। उन्होंने लोगों को यह बताया कि किसानों को समाज का आधार माना जाना चाहिए और उन्हें समान अधिकार मिलने चाहिए। उन्होंने अपनी लेखनी से समाज में जागरूकता लाने का भरसक प्रयास किया। प्रेमचंद की रचनाओं ने लोगों को जागरूक किया है और उन्हें किसानों की समस्यओं के बारे में सोचने पर मजबूर किया है। प्रेमचंद के प्रयासों के फलस्वरूप किसानों के विमर्श ने एक बड़ा बदलाया लाया। उन्होंने किसानों के अधिकारों को समझाया और उन्हें अधिकारों के लिए लड़ने का साहस दिया। इससे किसानों के स्वाभिमान और स्थानों में एक महत्वपूर्ण बदलाव आया।

उनके रचनाकारी दृष्टिकोण ने भारत के किसानों को संबोधित किया और उन्हें अपने अधिकारों के बारे में जागरुक करने में मदद की। उन्होंने इस प्रकार लोगों की सोच बदली जिससे किसानों के हितों को लेकर नई सोच उत्पन्न हुई।

प्रेमचंद की रचनाओं ने किसानों की समस्याओं को सामाजिक एवं राजनीतिक मुद्दों में उठाने में मदद की। उन्होंने भारत के किसानों के लिए नए कानूनों और नीतियों को संशोधित करने का भी प्रयास किया।

आधुनिक भारत में किसानों ने अपने शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना शुरू कर दिया है। देश के किसानों के बहुत से समस्याओं में से एक है उनकी शोषण या उत्पीड़न की समस्या कुछ व्यापारियों द्वारा उनके उत्पादों को खरीदने से इनकार कर दिया जाता है या फिर उन्हें अनुचित मूल्य दिया जाता है। अधिकांश किसान अपनी जमीन के लिए अधिक भुगतान नहीं प्राप्त करते हैं और वे भुगतान नहीं कर पाते हैं जो उन्हें उनकी मेहनत के मुताबिक मिलना चाहिए।

इस समस्या से निपटने के लिए किसान आंदोलन की शुरुआत की है, जो आधुनिक भारत में एक अभियान बन गया है। किसानों ने अपने हक के लिए सड़को पर उतरने के साथ-साथ सरकार द्वारा लागू की जाने वाले कुछ कृषि विवेचकों के खिलाफ भी विरोध प्रदर्शन किया है। हमारी सरकार को किसानों की स्थिति पर ध्यान देना चाहिए क्योंकि किसान ही देश की शान है। किसान ही खाद्यान्न, फल, सब्जियों आदि खाद्य-पदार्थों का उत्पादन करता है। किसान ही देश की जनाता की भूख मिटाते है, इसलिए सरकार को किसानों के विकास की अनेक कल्याणकारी योजनाएं बनानी चाहिए।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि किसानों का शोषण एक बहुत बड़ा मुद्दा है और इसे हल करना हम सब की जिम्मेदारी है। किसानों को अब से समाज, साहित्य, राजनीति और सिनेमा में अलग से सम्मानीय दर्जा दिया जाए। किसानों के बिना यह दुनिया नहीं चल सकती।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेमचंद और भारतीय किसान, डॉ० रामवक्ष, पृ० 178
2. प्रेमाश्रम, प्रेमचंद, न्यू साधना पाकेट बुक्स, दिल्ली, सं० 2008, पृ० 167
3. प्रेमचंद के विचार (भाग-1) पेमचंद, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज दिल्ली, सं० 2003, पृ० 47
4. गोदान, प्रेमचंद, अनीता प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2015
5. वही, पृ० 300
6. वहीं, पृ० 300
7. पूस की रात, प्रेमचंद की प्रतिनिधि कहानियाँ, प्रेम-निधि, प्रकाशक, कला मन्दिर, दिल्ली - 110006, पृ० 72
8. वही, पृ० 72

फुटनोट

1 प्रेमचंद और भारतीय किसान - रामवृक्ष, पृ० 178
2 प्रेमचंद - विचार (भाग-1) प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज दिल्ली, सं० 2003, पृ० 474
3 प्रेमाश्रम - प्रेमचंद, न्यू साधना पाकेट बुक्स, दिल्ली, सं० 2008, पृ० 167
4 गोदान, प्रेमचंद अनीता प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2015, पृ० 22
5 गोदान, प्रेमचंद, अनीता प्रकाशन, पृ० 300
6 वहीं, पृ० 300
7 पूस की रात (कहानी), प्रेमचंद, पृ० 72
8 वहीं, पृ० 72

भारत-चीन सम्बन्ध सीमा विवाद एवं प्रबन्धन की आवश्यकता

डॉ० राजीव कुमार

एसो0 प्रोफेसर-भूगोल विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

किसी भी राज्य अथवा देश के लिए सीमाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण विषय है ये सीमाऐं विकास की परिपक्वावस्था से अस्तित्व में आती है। जो देश की संम्प्रभुता सम्पन्न कार्यात्मक इकाई के स्वरूप में होता है। सीमा का शाब्दिक अर्थ भी किसी क्षेत्र को आवद्ध करना अथवा घेरकर परिसीमित करना है। वर्तमान समय में विश्व के सभी राज्य देश स्वतंत्र होते हैं तथा पारस्परिक समझौतों के माध्यम से विभिन्न राज्यों/देशों के मध्य की सीमाएं निर्धारित की जाती है। ये सीमाऐं प्राकृतिक न होकर कृत्रिम तथा मानव निर्मित होता है। विभिन्न विद्वानों के द्वारा सीमाओं को विभिन्न ढंग से परिभाषित किया है पॉउण्डस के अनुसार सीमाऐं "राज्य की सार्वभौमिकता को पडौसी राज्य से विलग करती है।[1] ए0ई0मूडी मानते हैं कि" सीमा उस क्षेत्र को निर्धारित करती है जिससे राज्य का आन्तरिक संगठन विकसित होता है तथा जिसके सहारे राज्य अन्य राज्यों के संगठनों का विकास होता है[2]।

सीमाऐं राज्यों/देशों के मध्य अलगाव वादी तथ्य के रूप में अपना अस्तित्व रखती है कालान्तर में यह क्षेत्रों में पृथक-पृथक विचारधारा, कार्यात्मक संगठन के विकास के परिणाम स्वरूप अलगाव का एक तत्व बन जाती है। स्पष्ट है कि सीमाऐं एक राज्य/देश की वाहरी सीमा को निर्धारित करती है ये एक सम्प्रभुता सम्पन्न सरकार के अधीन रहने वाले जन समुदाय एवं क्षेत्र की आवद्ध किये रहती है ये क्षेत्र एवं जन समुदाय प्रशासनिक और आर्थिक दृष्ट से ही नहीं अपितु एक राज्य विचारधारा से एकीकृत रूप में रहते हैं।

भारत और चीन लगभग 3500 किमी0 सीमा साझा करते हैं। दुर्भाग्य से पूरी सीमा विवादित है। दोनों देशों के बीच सीमा निर्धारण करने वाली रेखा को मैक मोहन रेखा को अवैधानिक मानने के कारण वर्तमान में अनौपचारिक सीजफायर रेखा को ही सीमा रेखा माना जा रहा है जो 1962 के युद्ध के बाद की स्थिति है जबकि इसे 1993 में द्विपक्षीय समझौते के तहत "लाइन ऑफ एक्चुएल कंट्रोल (एलएसी)" घोषित किया गया।

वर्तमान समय में भारत के पश्चिमी क्षेत्र में सीमा विवाद सबसे गंभीर समस्या है। पश्चिमी क्षेत्र में भारत चीन के साथ लगभग 2152 किमी दूरी साझा करता है। यह भारत के वर्तमान लद्दाख एवं चीन के जिनजिंयाग (सिंकियांग) प्रांत के बीच स्थित है। मूलरूप से यह अक्साई चिन भाग जम्मू कश्मीर का भाग था जिसे चीन अपने पश्चिमी राज्य जिंजियांग का हिस्सा मानता है। 1962 के युद्ध के बाद यह अक्साई चिन अभी भी चीन द्वारा नियंत्रित है और प्रशासित है। जबकि भारत पूरे अक्साई चिन अभी भी चीन द्वारा नियंत्रित है और प्रशासित है। जबकि भारत पूरे अक्साई चिन क्षेत्र एवं आक्सगम घाटी (जो कि पाकिस्तान द्वारा चीन को गिफ्ट में दी गयी) पर अधिकार की बात करता है लेकिन चीन इस भारतीय अधिकार को नकारते हुए अपना नियंत्रण स्थापित किये हुए है।

पश्चिमी क्षेत्र के बाद मध्य क्षेत्र भी विवादित है। हालांकि यह क्षेत्र अन्य की तुलना में सबसे कम विवादित हैं। यहॉ केवल बराहोती मैदान के संदर्भ में विवाद है। बाकी जगह के लिए दोनों देशों ने राजनीतिक मानचित्रों का आदान प्रदान किया है और काफी हद तक एक दूसरे के नियंत्रण क्षेत्र से सहमत हैं। मध्य क्षेत्र की सीमा लगभग 625 किमी है जो लद्दाग क दक्षिण से नेपाल तक जाती है। भारत के हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड यहां पर दिब्बत (चीन) से सीमा साझा करते हैं।

पूर्वी क्षेत्र में भारत चीन के साथ 1140 किमी की सीमा साझा करता है। जो कि भूटान के पूर्व से लेकर भारत, म्यामांर, चीन के मिलन बिन्दु तालू दर्रा तक है। यह रेखा मैकमोहन रेखा कही जाती है, इसका निर्धारण शिमला समझौते (1914) के तहत हेनरी मैकमोहन ने किया था।

चीन पूर्व क्षेत्र में भारत (अरूणांचल प्रदेश) की लगभग 90000 वर्ग किमी0 भूभाग को अपना बताता है। चीन के अनुसार मैकमोहन रेखा अवैधानिक है क्योंकि उस समय तिब्बत को किसी का अधिकार नहीं था इसलिए उसे यह अस्वीकार है तथा वह 1914 का शिमला समझौता पर हस्ताक्षर को तैयार नहीं है यहां तक कि चीन ने अरूणाचल प्रदेश के 11 स्थानों वर्ष 2021 में चीनी नामकरण करने का काम भी किया है।

हालांकि 1959 तक चीन ने इस मैकमोहन रेखा की वैधता पर कभी औपचारिक तरीके से सवाल नहीं उठाया। लेकिन 1962 में उसने अरूणाचल में एक आक्रमण कर यहां की 90000 वर्गमीटर क्षेत्रफल पर नियंत्रण कर लिया। हालाँकि वाद में चीन ने यह कब्जा बाद में छोड दिया लेकिन पश्चिमी क्षेत्र में अक्साई चीन पर नियंत्रण बरकरार रखा।

1962 के इस चीन युद्ध के बाद यह तो साबित हो गया कि हिमालय अब एक अर्द्ध सुरक्षा अवरोध साबित नहीं हो सकता। साथ ही भारत को यह भी अहसास हुआ कि 'गुटनिरपेक्षता' रक्षा तैयारी का विकल्प नहीं हो सकता। गुटनिरपेक्षता के भरोसे ही देश की सुरक्षा नहीं छोडा जा सकता। इसी के बाद से भारत का झुकाव सोवियत संघ की ओर होने लगा था तथा 1965 में पाकिस्तान के युद्ध के बाद तथा 1971 में बंगला देश की स्वतंत्रता के समय भारत रूस के एकदम करीब चला गया एवं शांति तथा मित्रता की संधि हो गयी।

उपरोक्त तीनों क्षेत्रों में सीमा विवाद के साथ-साथ कुछ और मुद्दे भी हैं जो सीमाविवाद के कारण ही उभरे हैं। जैसे पश्चिमी क्षेत्र में चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) जो कि पाकिस्तान के खादर बंदरगाह को चीन के काश्गर (जिनजियांग प्रांत) से जोडता है, भारत के वर्तमान लद्दाख क्षेत्र (गिलगित - बालिटिस्तान) से गुजर रहा है। चूंकि यह वर्तमान में पाकिस्तान के नियंत्रण में है इसलिए पाकिस्तान इस गलियारे के निर्माण के समर्थन में है जबकि भारत की संप्रभुता में चीन का यह दखल है। अतः इस गलियारे के कारण भी भारत-चीन के बीच सीमा विवाद और गहराता जा रहा है।

भारत-चीन संबंधों में जल विवादों के कारण भी नकारात्मक प्रगति हुई है। चीन ब्रह्मपुत्र एवं इसकी सहायक नदियों पर बाँध बनाकर उनका पानी अपनी ओर मोड रहा है जिससे भारत के पूर्वात्तर राज्यों को समस्या हो रही हैं इसे अलावा चीन भारत को ब्रह्मपुत्र नदी के जल संबंधी आँकेड़े भी समय पर प्रस्तुत नहीं कर रहा है। संघर्ष एवं युद्ध के समय-चीन इन बांधों का हथियार के रूप में प्रयोग कर सकता है और पूर्वोत्तर राज्यों में बांधों से अत्यधिक जल छोडकर बाढ़ जैसी समस्या पैदा कर सकता है।

उपरोक्त सीमा विवादों के अलावा पिछले 5-6 सालों से भारत-चीन सीमा पर विवाद फिर से गहरा गया। 2017 में डोलाम विवाद हो या चाहे 2020 में लद्दाख में गलवान घाटी में संघर्ष हो। दोनों का कारण कुछ भी रहा हो लेकिन स्पष्ट सीमा निर्धारण का अभाव का एक कारण जरूर रहा है।

दरअसल 2017 में सिक्किम, भूटान और चीन के मिलन बिन्दु के निकट चीनी सैनिक और भारतीय सैनिकों के बीच टकराव हुआ जिसका भारतीय सैनिकों ने डटकर सामना किया। इसके बाद 2020 में मई जून में लद्दाख में एक बार फिर से दोनों देशों की सेनाओं के बीच टकराव हुआ। यहाँ टकराव कुल 4-5 जगहों पर हुआ। टकराव का त्वरित कारण भारतीय सेना द्वारा बनायी जा रही सड़क का चीनी सैनिकों द्वारा विरोध था। वस्तुतः भारतीय सैनिक एल0ए0सी0 के किनारे सडक का निर्माण कर रहे थे। इसके साथ पैगांग झील में भी टकराव देखने को मिला। इस गलवान वैली टकराव में दोनों ओर से काफी सैनिकों की जान चली गयी। अब तक कई वार्ताओं के बाद भी कुछ चौक पोस्टों पर सेनाऐं अभी भी आमने सामने खड़ी हैं।

2020 में हुये इस टकराव का एक कारण भारत एवं अमेरिका के बीच बदली सामरिक भागीदारी भी बताई जा रही है जो 'क्वॉड' के रूप में सामने आ रही थी। क्योंकि 2014 के बाद भारत अमेरिका के काफी नजदीक आया है। इसके अलावा जम्मू कश्मीर राज्य का पुनर्गठन जिसके तहत जम्मू कश्मीर को राज्य से 2 केन्द्र शासित प्रदेशों में बाँट दिया गया।

भारत चीन सीमा विवाद को सुलझाने हेतु उठाये गये कदम -

सीमा विवादों एवं उनसे उत्पन्न समस्याओं से निपटने में भारत कई सारी रणनीति बनाने की आवश्यकता है।[3] सबसे पहले तो भारतीय सेना को हमेशा युद्ध के लिए तैयार रखने की जरूरत है[4] सीमा पर अवसंरचना निर्माण में और तेजी लाने की जरूरत है।

जिससे वास्तविक युद्ध के दौरान आसानी से सैनिकों का आवागमन हो सके एवं आवश्यक रसद पहुंचायी जायी सके। जिससे चीनी सैनिकों को आगे बढने से रोका जा सकेगा।[5] भारत को जरूरत है कि वह विश्व स्तर पर कूटनीतिक वार्ता जारी रखें तथा विश्व मंच पर इस समस्या के समाधान को उठाता रहे। इसी कडी में अमेरिका ने अरूणांचल प्रदेश के क्षेत्र को भारत के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया है।[6] भारत को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को चीन पर निर्भरता कम करें ताकि चीन पर आर्थिक दबाब बनाया जा सके। इस प्रकार के कदम उठाये जाने से ही भारत चीन सीमा विवाद का समाधान हो सकेगा।

संदर्भ सूची

1. Pounds: N.J.G. Political Geography 1963
2. Modie : A.E. Geography Behind Politics- 1963
3. खुल्लर डी.आर.: भारत एक समग्र भूगोल, 2005
4. लैम्ब, ए: द इंडिया चाइना बॉर्डर:- द ऑरिजिन ऑफ डिस्प्यूटेड बाउंड्रीज 1964
5. मैक्सवेल, एन इंडिया चाइना वार, 1971
6. दीक्षित, आर0डी0 राजनीतिक भूगोल: समसामयिक परिदृष्टि, 2018

पांचवी अनुसूची और पेसा की अधूरी कहानी!

डॉ० अभय सागर मिंज

मानवशास्त्र विभाग, डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय राँची

ब्रिटिश काल के दौरान बड़ी संख्या में आदिवासियों के निवास वाले क्षेत्रों को अपवर्जित और आंशिक रूप से अपवर्जित क्षेत्र घोषित किया गया था। ये क्षेत्र सन् 1874 के अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम और भारत सरकार के 1936 के आदेश 1936 के संदर्भ में स्वतंत्रता के बाद, इन क्षेत्रों को क्रमशः पांचवीं और छठी अनुसूचियों के तहत लाया गया। कुछ अन्य प्रमुख आदिवासी क्षेत्रों को स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया। अनुसूचित क्षेत्रों का उद्देश्य, मूल रूप से जनजातीय स्वायत्तता, उनकी संस्कृति और आर्थिक सशक्तिकरण का संरक्षण के साथ साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करना था (कात्यायन, 2015)।

स्वतंत्रता के पश्चात भी, जनजातीय समुदाय को सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ा माना गया। जनजाति समाज इस काल में भी कृषि के प्रारंभिक चरण में थे और सामाजिक सांस्कृतिक जीवनशैली के अनुरूप सरल जीवन जी रहे थे। सरकार और नीति निर्माताओं ने आदिवासियों को विकास के नए आयामों को अपने जीवन में अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। यह विकास का मॉडल जनजाति समाज के ऊपर थोपा जाने लगा और आदिवासी समाज इस प्रकार के विकास को मूक बन प्राप्त करने लगे। आदिवासियों के लिए इस प्रकार के विकास का मॉडल सामाजिक सांस्कृतिक रूप से असहज था और वे इस प्रकार के बाहरी एजेन्सी के प्रयासों को लेकर आशंकित थे। जनजाति समाज इस काल में अपने पारंपरिक जीवन शैली को त्यागने को बिलकुल भी मानसिक रूप से तैयार नहीं थे और वो यह भी नहीं समझ पा रहे थे कि उनकी समृद्ध संस्कृति और जीवनशैली को बदलने की आवश्यकता ही क्यों है (गुहा, 2014)।

इनके विकास को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर एक द्वन्द छिड़ गई। वेरियर एल्विन, हटन, एस सी रॉय, डी एन मजूमदार जैसे प्रख्यात विद्वान इस बात की वकालत कर रहे थे कि जनजातीय समुदाय का यदि विकास करना है तो उन्हें मुख्य धारा से अलग रख कर के प्रयास होने चाहिए। उन्होंने दशकों से आदिवासी समाज के शोषण का प्रमुख कारण, बाहरियों के अतिक्रमण को माना था। इस पृथक्करण की अवधारणा का जोरदार विरोध ठक्कर बप्पा ने की थी। उन्होंने बाहरियों द्वारा आदिवासी बहुल क्षेत्रों में कल्याणकारी कार्यों के विषय में वकालत की। उनका कहना था कि आदिवासियों की समग्र विकास के लिये उन्हें मुख्य धारा में शामिल करना अनिवार्य है। तब भूतपूर्व प्रधानमंत्री पंडित नेहरू और वेरियर एल्विन ने इस पृथक्करण और आत्म-साथ करने की अवधारणा के बीच के रास्ते को अपनाया और इन दोनों के मिश्रण से एकीकरण की अवधारणा दी। यह नेहरू के जनजातीय पंचशील में हमें देखने को मिलता है। भारत के पहले प्रधान मंत्री, जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि लोगों का विकास उनके आवश्यकता के अनुसार करना चाहिए और हमें उन पर कुछ भी थोपने से बचना चाहिए। हमें उनकी अपनी पारंपरिक और सांस्कृतिक धरोहर को हर तरह से प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए। भूमि और वन पर आदिवासियों के अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए। प्रशासन और विकास कार्यों के लिए उन्हीं के लोगों की एक दल को प्रशिक्षित और तैयार किया जाना चाहिए। विशेष रूप से आरंभ में, निःसंदेह बाहर से कुछ तकनीकी कार्मिकों की आवश्यकता होगी, लेकिन हमें बहुत से बाहरी लोगों को आदिवासी क्षेत्र में लाने से बचना चाहिए। आदिवासी समाज ऐतिहासिक रूप से बाहरी अतिक्रमण और 'मुख्यधारा' के लोगों के हाथों पीड़ित हुए हैं, और इसलिए उनके लिए संवैधानिक स्तर पर विशेष सुरक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ये ऐतिहासिक गलतियाँ दोहराई न जाएँ। नेहरू का कहना था कि यदि हम आदिवासियों को मुख्य धारा समाज में जबरन धकेलेंगे तो

यह उनके लिये किसी और के जीवनशैली का दूसरे दर्जे की नकल करने जैसा होगा। इस सभी द्वन्द के बीच आदिवासी समाज मूक बैठा था। एक यह बिलकुल अंग्रेजों के अवधारणा 'वाइट मैंस बर्डन', के जैसा था।

इस द्वन्द के बीच पांचवीं अनुसूची एक आदर्श अवधारणा के रूप में विकसित की गयी। ढेबर आयोग (1960-61) ने किसी भी क्षेत्र को पाँचवीं अनुसूची के तहत 'अनुसूचित क्षेत्र' घोषित करने के लिए विशेष मानदंड निर्धारित किए थे। उनके अनुसार, किसी भी अनुसूचित क्षेत्र में जनजातीय जनसंख्या की प्रधानता होनी चाहिए और यह 50 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए। यह क्षेत्र विभिन्न विकासात्मक मानदंडों में अविकसित हो और अपने क्षेत्र के गैर जनजातियों की तुलना में आर्थिक रूप से कमजोर हो। जनजातीय मामलों के मंत्रालय के अनुसार, इन मानदंडों का भारत के संविधान में स्पष्ट वर्णन नहीं है लेकिन ये मानदंड वांछित हैं और अघोषित स्थापित हो गए हैं। आयोग ने भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत अपवर्जित और आंशिक रूप से अपवर्जित की घोषणा करने में अपनाए गए प्रावधानों का अनुसरण किया। हालाँकि, यह बताना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान में अनुसूचित क्षेत्रों में जनजातीय आबादी औसतन 30% है।

पाँचवीं अनुसूची में जहाँ 10 राज्य आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, गुजरात, झारखंड, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा और राजस्थान आते हैं वहीं छठी अनुसूची के अंतर्गत उत्तर पूर्वी राज्य असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम आते हैं। भारतीय संविधान में ये प्रावधान अनुसूचित जनजातियों के रक्षात्मक एवं उनके समग्र विकास को ध्यान में रख कर बनाए गए थे। 5 वीं अनुसूची का निर्माण मुख्य रूप से 3 कारणों से की गई थी। जनजाति क्षेत्रों में सुशासन, अनुसूचित क्षेत्रों का सुदृढ़ शासन प्रबंध व्यवस्था एवं जनजाति समुदाय के भूमि के हस्तांतरण को रोकना इसका मुख्य उद्देश्य बना। विडंबना यह है कि हमें इन तीनों महत्वपूर्ण पहलुओं की स्पष्ट परिभाषा कहीं नहीं मिलती है। यथार्थ में देखें को पाते हैं कि पाँचवीं और छठी अनुसूची के विषय में भी हमें स्पष्ट जानकारी सुलभता से कहीं देखने पढ़ने को नहीं मिलती है। इसलिए उपरोक्त तीन कारकों के विषय में यह आशा करना मृगतृष्णा ही है। 5 वीं अनुसूची में अनुच्छेद 164 (1), 224, 275, 338, 339 के तहत व्यक्त किए गए अनुच्छेदों में कई विशेष प्रावधान हैं जो 5 वीं अनुसूची को सशक्त और सबलता प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15,16 और 19 में निहित मौलिक अधिकारों के तहत और राज्य नीति निर्देश के सिद्धांतों के तहत आदिवासियों को रक्षात्मक एवं विकासात्मक प्रावधान निहित हैं।

1970 के दशक में जनजाति क्षेत्रों में वृहद् अशांति अनुभव किया गया और इसी दशक की शुरुआत में सरकार ने अपने नीति में एक बड़ा परिवर्तन किया। आदिवासियों की सुरक्षा, सुशासन और सुरक्षा के साथ साथ अब उनके आर्थिक विकास को गति देना आवश्यक समझा गया। नए प्रबंध में जनजातीय उप योजना को आर्थिक विकास को महत्व दिया गया। इस दौरान जनजाति जीवन के पारंपरिक तरीके को अधिक बल दिया जाने लगा। किंतु जनजातीय उप योजना के आने से एक नया बंदरबाँट शुरू हो गया। सरकार द्वारा भारी मात्रा में आदिवासियों के विकास के लिए धन आवंटित होने लगा। जनजातीय उप-योजना को ठीक से निष्पादित करने के लिए कई संस्थानों और कर्मियों को इसमें लगाया गया। सरकार के उद्देश्य को पूरा करने में ये भी असफल रहें। सरकार के लिए यह बहुत बड़ा आघात था। ठीक विपरीत, सुरक्षा, प्रशासन और सुशासन की उच्च प्राथमिकता और अधिक गर्त में जाने लगा।

तब वर्ष 1976 में, एक संशोधन किया गया जिसमें आर्थिक उत्थान और सामाजिक-प्रशासनिक प्रक्रिया को संलग्न किया गया। सरकार ने स्पष्ट किया कि 5 वीं अनुसूचित क्षेत्र और जनजाति उप योजना को सख्ती से एक साथ देखा जाए। इसके बावजूद, जनजातीय उप योजना के तहत जो धनराशि उपलब्ध होती थी, वह आदिवासियों के प्रशासनिक, सुरक्षात्मक और सुरक्षा उपायों के लिए कम और अन्य योजनाओं पर धड़ल्ले से बिना भय के खर्च की गई (शर्मा, 1996)। जनजाति क्षेत्रों में आज भी अशांति देखी जा सकती है। झारखंड में पत्थलगढ़ी के रूप में सरकार से टकराव और विद्रोह हाल के दिनों में बढ़ गया था।

जनजातियों ने हमेशा स्वतंत्रता, स्वराज्य, रूढ़ि वादी परंपराओं और रीति-रिवाजों से समाज को सुचारु रूप से संचालित किया। बिरसा मुंडा के उलगुलान में, 'अबुआ दिसोम, अबुआ राज', नारा का अर्थ हमारा देश, हमारा शासन था। 1980 के दशक में, बस्तर में भी ऐसे ही नारे लगे थे, 'मावे नाते, मावे राज', जिसका अर्थ था हमारी भूमि हमारा शासन। इस प्रकार के आंदोलन और उलगुलान आदिवासियों के दशकों से लंबे दमन और शोषण की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति हैं। आदिवासियों ने अपने अधिकारों के दावे के लिए आवाज उठाना शुरू कर दिया था। वे अपनी परंपरा और रीति-रिवाजों के अनुसार अपने सामुदायिक मामलों का प्रबंधन चाहते थे।

केंद्र में राष्ट्रपति और राज्य में राज्यपाल पाँचवीं और छठी अनुसूची क्षेत्रों में कार्यकारी प्रमुख हैं। यदि पाँचवीं और छठी अनुसूची क्षेत्रों को देखा जाए तो किसी भी राज्य के राज्यपाल वहाँ के लिए एकमात्र विधायिका होते हैं। राज्यपाल आवश्यकता के अनुसार किसी भी राज्य के कानून या केंद्र के कानूनों को पूर्ण रूप से खघरिज कर सकते हैं या उनको संशोधित कर के लागू करवा सकते हैं। अनुच्छेद 5 (1), पांचवीं अनुसूची का केंद्रक है। अनुच्छेद 5 (1) के तहत राज्यपाल को सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा यह निर्देश देने का अधिकार दिया गया है कि संसद या राज्य विधानमंडल का कोई विशेष अधिनियम उस राज्य के अनुसूचित क्षेत्र पर लागू नहीं होगा, या अपवादों और संशोधनों के अधीन लागू होगा। राज्यपाल को अनुसूचित जनजातियों के द्वारा या उनके बीच भूमि के हस्तांतरण को प्रतिबंधित करने या भूमि के आवंटन के लिए नियम बनाने का अधिकार देता है। यह विशेष अधिकार राज्यपाल को पाँचवीं और छठी अनुसूची के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान में निहित है। बहुत से मामलों में राज्यपाल मौजूदा कानून को भी संशोधित कर सकते हैं या इसमें विशेष परिवर्तन के लिए निर्देश जारी कर सकते हैं। संविधान का अनुच्छेद 163 के अनुसार राज्यपाल मंत्रिपरिषद, यानी निर्वाचित राज्य सरकार के मंत्रिमंडल की 'सहायता और सलाह' के साथ अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए बाध्य हैं। राज्यपाल, पाँचवीं अनुसूची के तहत अपनी अपार शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं। मंत्रिपरिषद की सलाह उनके लिए बाध्य नहीं है और वे स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकते हैं।

राज्यपाल को पांचवीं अनुसूची के तहत अत्यधिक शक्तियां दी गई हैं। पांचवीं अनुसूची के अनुच्छेद 4 के अनुसार, प्रत्येक अनुसूचित क्षेत्र वाले राज्य और जनजातीय आबादी वाले राज्यों में जनजातीय सलाहकार परिषद (या टीएसी) की स्थापना के लिए प्रावधान है। यह परिषद उपरोक्त संबंधित मामलों पर राज्यपाल को सलाह देती है। राज्यपाल इसके तहत, सदस्यों की संख्या, नियुक्ति के तरीके और जनजाति सलाहकार परिषद (टीएसी) के कामकाज के संबंध में नियम बना सकते हैं। टीएसी राज्यपाल के द्वारा आमंत्रण पर ही उन्हें सलाह देता है। टीएसी यह स्वत: नहीं कर सकता है।

टीएसी का मुख्य कार्य, राज्य में ''अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और उन्नति" से संबंधित मामलों पर राज्यपाल को सलाह देना है। किंतु टीएसी राज्यपाल को स्वत: संज्ञान लेकर सलाह नहीं दे सकती है। यह केवल राज्यपाल के आमंत्रण पर ही हो सकता है। हालांकि, राज्यपाल के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में शासन से संबंधित कोई भी नियम बनाने से पहले टीएसी से परामर्श करना अनिवार्य है किंतु कोई भी सलाह राज्यपाल के लिए बाध्यकारी नहीं है। दुर्भाग्य से, अधिकांश राज्यों की जनजातीय सलाहकार परिषदें काफी कमजोर रही हैं।

राष्ट्रपति आमतौर पर 5 वें अनुसूचित क्षेत्रों के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के तहत इन क्षेत्रों की वित्तीय आवश्यकता को भारत के समेकित कोष से पूरा करते हैं। अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विशेष योजनाएँ और बजट आवंटन, जनजातीय उप योजना (या 'टीएसपी') के माध्यम से किया जाता है। यह पांचवीं पंचवर्षीय योजना में शुरू किया गया था। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1979) में शुरू की गई आदिवासी उप योजना (या 'टीएसपी') की कल्पना उन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों के लिए परियोजनाओं पर धन के समन्वित व्यय को सुनिश्चित करने के लिए की गई थी जहां वे बहुसंख्यक हैं। हालाँकि, बजट आवंटन कभी भी इस लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाया है, और फिर भी अपर्याप्त आवंटन, कम उपयोग, आवंटन का विचलन इत्यादि टीएसपी को अप्रभावी बना देते हैं। इसका उद्देश्य इन अनुसूचित क्षेत्रों के सामाजिक और आर्थिक स्तर को देश के अन्य मुख्य धारा के समुदायों के समकक्ष पहुंचाना था। इस प्रक्रिया के तहत, अनुसूचित जनजाति आयोग और अनुसूचित जाति आयोग का एक स्वतंत्र इकाई स्थापित किया गया। वर्ष 2004 में अनुसूचित जनजाति आयोग को, अनुसूचित जाति आयोग से अलग कर, स्वतंत्र रूप से स्थापित किया गया। यह भारतीय संविधान के 89 वाँ संशोधन के द्वारा किया गाया।

इन अनुसूचित क्षेत्रों में राज्यपाल को बहुत बड़ा दायित्व दिया गया है और संवैधानिक रूप से उन्हें अपार शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। किंतु यथार्थ में हम देखते हैं कि राज्यपाल भी संबंधित राज्यों के मंत्रियों की परिषद पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अनेक निर्णयों के लिए उनपर निर्भर करते हैं। राज्य स्तर पर एक मौजूदा कानून को संशोधित करने या उसे रद्द करने के लिए राज्यपाल के पास शक्ति उपलब्ध है, किंतु इसका इस्तेमाल शायद ही कभी किया जाता है। और यह आश्चर्य की बात नहीं है कि प्रत्येक वर्ष राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को जो प्रतिवेदन भेजा जाता है वह एक उदासीन और पूर्वता घिसी पिटी रिपोर्ट होती है। सही अर्थों में रिपोर्ट में अनिवार्य रूप से राज्य की यथार्थ स्थिति शामिल होनी चाहिए। उपयोग के साथ बजट और खर्चों का उचित विवरण रिपोर्ट में होना चाहिए। राज्य की वर्तमान गंभीर समस्याओं के साथ इसमें वर्तमान चुनौतियों के संभावित समाधान एवं उपायों का उल्लेख भी शामिल होना चाहिए था।

अभी भी अनेक अनुसूचित क्षेत्रों में जनजाति समाज विकास के सूचकांकों में काफी नीचे हैं और इसके कारणों की एक लम्बी फेहरिस्त है। अनेक पाँचवीं अनुसूची राज्यों में यह सामान्य अवलोकन है कि राज्यपाल एवं राजनैतिक पार्टियों में सामंजस्य की घोर कमी देखने को मिलती है, और यदि दोनों विपरीत राजनैतिक पार्टियों से हों तो यह घमासान और बढ़ जाता है। स्वतंत्रता के बाद, कुछ दशकों तक अनेक उतार चढ़ाव तथा जनजाति समुदाय पर विकासात्मक प्रयोग के पश्चात पांचवीं अनुसूची की सार्थकता खोखली लगने लगी। पंचवर्षीय योजनाओं के आक्रामक आर्थिक विकास और ढांचागत विकास के कारण आदिवासियों के लिए यह महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान अपना महत्व कहीं खोने लगी। यह उदासीनता एक पंचवर्षीय योजना से दूसरे तक पंचवर्षीय योजना तक चलती रही।

पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 (पेसा)

पंचायती राज व्यवस्था केंद्र के शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के द्वारा स्थानीय स्तर पर शासन के रूप में स्थापित हुआ था। इसके अंतर्गत सत्ता तथा प्रशासनिक शक्तियों को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया जिसके द्वारा विभिन्न विकास योजनाओं को राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में क्रियान्वित किया जा सके। पंचायती राज व्यवस्था 73वें संविधान संशोधन 1992 के द्वारा बनाई गई थी। किंतु विभिन्न राज्यों में मौजूदा पंचायत विधानों को अनुसूचित क्षेत्रों पर तब तक लागू नहीं किया जा सकता था जब तक संसद द्वारा विशेष कानून नहीं लाया जाता। 1996 में संसद ने पंचायती राज प्रणाली को पांचवीं अनुसूची के क्षेत्रों तक विस्तारित करने के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायत विस्तार अधिनियम ('पेसा') को अधिनियमित किया। संविधान की सातवीं अनुसूची, स्थानीय स्वशासन और ग्राम प्रशासन राज्य का विषय है, और इसलिए पंचायती राज संस्थाओं पर कानून बनाने की शक्ति पूरी तरह से राज्य के विधानसभा में है। इस प्रकार, पेसा के कार्यान्वयन के लिए, राज्य स्तरीय पंचायती राज विधान जिम्मेदार होती है।

1996 में भूरिया समिति की सिफारिश पर पेसा अस्तित्व में आया। भूरिया समिति की रिपोर्ट में अनुसूचित जनजातियों की समस्याओं को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया था। यह ऐतिहासिक था क्योंकि स्वतंत्र भारत में यह पहला कानून था जिसे अनुसूचित क्षेत्र में कानूनी प्रावधान के तहत लागू किया गया था और इसे अपनाना बाध्य हो गया था। पेसा ने अब ग्राम सभा को एक मजबूत इकाई बना दिया था। अपने पारंपरिक रीति-रिवाजों और परंपराओं को अपनी अंतर्निहित आत्मा मानकर अपने मामलों का प्रबंधन करने में जनजाति समाज अब स्वयं सक्षम हो गये थे। वर्ष 1996 में जब अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज के विस्तार का प्रावधान (पेसा कानून) अस्तित्व में आया, तब कहीं जा कर 5 वीं अनुसूची में निर्धारित प्रावधान को दृढ़ता प्राप्त हुई। एक तरह से पेसा कानून के आने से 5 वीं अनुसूची को एक नया जीवन प्राप्त हुआ। किंतु दुर्दशा की कहानी अभी भी बाकघि थी। हाल में झारखंड में पत्थलगढ़ी की प्रथा अत्यंत संवेदनशील विषय बन गई थी। किंतु 20 वीं शताब्दी के अंत के लोगों को स्मृति होगी कि यह पत्थलगढ़ी की शुरूआत पेसा कघनून के प्रचार प्रसार के लिए उस समय गाँव गाँव में किया जाने लगा था। गाँव के अखड़ा के बीच स्थित विशाल शिला पर पेसा प्रावधान के विषय में लिखा जाने लगा। यह उस काल में प्रचार का एक सस्ता माध्यम था।

अनुसूचित क्षेत्रों वाले दस राज्यों में से नौ राज्यों, अर्थात् आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, ओडिशा और राजस्थान ने पेसा प्रावधानों को शामिल करने के लिए पहले से मौजूद पंचायत अधिनियमों में संशोधन किया था। झारखंड राज्य ने अपने गठन के तुरंत बाद 2001 में एक नया पंचायत अधिनियम बनाया था।

पेसा की धारा 4 (ए) और 4 (डी)

इसके अंतर्गत पारंपरिक कानून की सर्वोच्चता, सामुदायिक संसाधनों के लिए पारंपरिक प्रबंधन प्रथाओं और अनुसूचित क्षेत्रों में विवाद समाधान के पारंपरिक तरीकों को शक्ति प्राप्त होती है। 4 (ए) के अनुसार पेसा आधारित जब एक राज्य कानून बनाएगा तो यह स्थानीय पारंपरिक कानून, सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं और सामुदायिक संसाधनों के पारंपरिक प्रबंधन प्रथाओं के अनुरूप होना चाहिए। वहीं 4 (डी) प्रत्येक ग्राम सभा लोगों की परंपराओं और रीति-रिवाजों, उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक संसाधनों और विवाद समाधान के प्रथागत तरीके की रक्षा और संरक्षण के लिए सक्षम बनती है।अधिकांश राज्यों ने अपने पंचायती राज विधानों में संशोधन किया, लेकिन इसे लागू करने के लिए आगे कोई नियम, दिशानिर्देश या तंत्र नहीं हैं। मौजूदा कानून विशेष रूप से परंपरा और प्रथागत कानूनों के क्रियान्वयन पर रोक लगाते हैं।

पेसा की धारा 4(सी) में प्रावधान है कि प्रत्येक गांव में एक ग्राम सभा होगी, जिसमें वे सभी व्यक्ति शामिल होंगे जिनके नाम ग्राम स्तर की मतदाता सूची में शामिल हैं। पेसा के अंतर्गत ग्राम सभा प्रमुख निर्णय लेने वाली संस्था होती है और इसलिए यह आवश्यक है कि यह एक सामूहिक और पारंपरिक इकाई होनी चाहिए। शायद पेसा का प्रमुख प्रावधान धारा 4(बी) है जो ''गांव'' की विशेष परिभाषा देता है। यह पाया गया है कि गैर-अनुसूचित क्षेत्रों में, अक्सर एक से अधिक गाँव, ग्राम पंचायत में शामिल होते हैं। इस तथ्य के अलावा राजस्व गाँव, पारंपरिक प्रथागत संबंधों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। ऐसी ग्राम पंचायत का जनसांख्यिकीय दायरा जितना बड़ा होगा, उनमें उतनी ही कम समरूपता होगी। ऐसे में इतने बड़े सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक रूप से विभाजित समूहों में निर्णय लेना कठिन हो जाता है।

पेसा के आने के साथ शासन निकाय की भूमिका ही पूरी तरह से बदल गई। जो राज्य अब तक असफल अभिभावक बना बैठा था, अब उसके शासन का केंद्र परिवर्तित कर ग्राम सभा शासन का मुख्य केंद्र बन गया था। ग्राम सभा यह सुनिश्चित कर सकता था कि अब राज्य द्वारा भी जनजाति समुदाय की जमीन नहीं हड़पी जा सकती है। निजी कंपनी के लिए भी किसी प्रकार के दोहन या उत्खनन के लिए ग्राम सभा की सहमति जरूरी बन गयी थी। पांचवीं अनुसूची को वास्तव में पेसा के आने के बाद ही वास्तविक शक्तियां मिलीं थी। अब अनुसूचित क्षेत्रों के लोग अन्य सरकारी संस्थानों से सीधे तौर से जुड़ सकते थे।

सबसे बड़ा बदलाव यह आया कि पेसा के अनुसार अब केवल ग्राम सभा को ही किसी निकाय उद्योग को उत्खनन या अन्य प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल के लिए अनुमति देने की शक्ति प्रदत्त थी। राज्य की इस विशेष शक्ति को पेसा ने छीन लिया और अब यह शक्ति ग्राम सभा को प्राप्त हुई थी। यह प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रावधान था। यदि 5 वीं अनुसूची को सही तरीकेे से लागू किया जाता, तो यह अनुसूची क्षेत्रों के लिए अद्भुत कार्य कर सकता था। लेकिन हम सभी जानते हैं कि ये सभी कागजी कहानी है।इसके अनेक कारण हैं। दुर्भाग्य से, अधिनियमित करते समय, संसद ने खंड में एक बड़ी खामी के लिए जगह छोड़ दी। भूमि अधिग्रहण के लिए आवश्यक परामर्श ''ग्राम सभा या पंचायतों के उचित स्तर'' का होना बतलाया गया। इस अस्पष्ट बयान के परिणामस्वरूप, राज्य सरकारें अब सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए ग्राम सभा या पंचायतों के उचित स्तर में से किसी एक का चुनाव कर सकती है और मात्र ग्राम सभा से नहीं। यदि यह ग्राम सभा तक ही सीमित होती तो भूमि अधिग्रहण कठिन होता। परिणामस्वरूप, कई राज्य सरकारों ने इस प्रावधान की व्याख्या पंचायत, ब्लॉक या जिला स्तर पर पंचायती राज संस्था से परामर्श करने के लिए की है, लेकिन ग्राम सभा से नहीं। महाराष्ट्र में पंचायती राज कानूनों के लिए आवश्यक है कि ग्राम सभा से परामर्श किया जाए। बड़े अनुसूचित क्षेत्र वाले राज्य, ओडिशा और गुजरात ने जिला परिषद के स्तर पर होने वाले परामर्श को अपनाया है। वहीं, आंध्र प्रदेश में, मंडल (ब्लॉक) परिषद के साथ परामर्श किया जाता है। झारखंड के कानून में इस संबंध में कोई प्रावधान नहीं है। जिस अधिकारी को 5 वीं अनुसूची क्षेत्र में जनजातीय मामलों के प्रबंधन का काम सौंपा जाता है, अनेक बार वह वहाँ के आदिवासियों के सामाजिक सांस्कृतिक एवं जीवनशैली के प्रति संवेदनशील नहीं होता है। एक प्रशिक्षु भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी झारखंड के जनजाति बहुल क्षेत्र चाईबासा में पदस्थापित थे और उन्हें अपने प्रशिक्षण के क्रम में एक प्रतिवेदन, क्षेत्र अध्ययन आधारित, मसूरी केंद्र को सौंपना था। उन्हें यह किसी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक के दिशा निर्देश में करना था। ऐसे ही एक अधिकारी सम्पर्क में आए और उन्होंने आदिवासियों में नशा पान से क्षुब्ध होकर उसी पर अनुसंधान और प्रतिवेदन तैयार करने की सोची। लम्बी चर्चा हुई जिसमें उन्होंने एकतरफा नकारात्मक पक्षों की ही चर्चा की। निकट भविष्य में किसी जिले का वे नेतृत्व करेंगे, इसलिए यह आवश्यक है कि नकारात्मक तथ्यों को अंकित करना अच्छी बात है किंतु उतना ही महत्वपूर्ण उसके कारकों का पता लगा कर उसके निदान को ढूँढना है। ऐसे में यह आवश्यक है कि जिस अधिकारी की नियुक्ति हो, वह आदिवासियों के जीवन शैली एवं उनके चुनौतियों और संघर्ष की समझ रखता हो। जमीनी वास्तविकताओं में प्रशासनिक अधिकारी को गंभीरता से कार्य करना होगा।

पेसा के प्रावधानों में आवश्यक परामर्श के कुछ प्रमुख तत्व हैं। परामर्श पहले होना चाहिए, अर्थात सरकार के निर्णय लेने और उस पर कार्रवाई करने से पहले। भूमि अधिग्रहण के उद्देश्य से संबंधित जानकारी, प्रस्तावित विकास की परियोजना, पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन रिपोर्ट, संभावित पुनर्वास योजना इत्यादि की ग्राम सभा को अग्रिम रूप से और स्थानीय भाषा में सूचित किया जाना चाहिए। ऐसे में यदि सूचना को दबाने का प्रयास होगा या खंडित सूचना साझा की जाएगी तो यह परामर्श प्रक्रिया को अर्थहीन बना सकता है। असल में परामर्श अनिवार्य है, जबकि सरकारें इसे अनेक बार वैकल्पिक मानतीं हैं। मध्य प्रदेश राज्य (जिसमें तब छत्तीसगढ़

शामिल था) ने 2000 में संबंधित ग्राम सभाओं से परामर्श के बारे में विस्तृत नियम बनाए, जो भूमि अधिग्रहण से पहले छत्तीसगढ़ में भी लागू हैं, लेकिन इनका भी पालन नहीं किया जाता है। ग्राम सभाओं के परामर्श से संबंधित प्रावधानों को प्रभावी करने में अनेक राज्य विफल हुए हैं। ऐसे में पेसा के अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार और इसके कार्यान्वयन में यह शायद सबसे गंभीर समस्या और दोष है। अदालतों ने लगातार यह माना है कि कानून में जहाँ भी परामर्श शब्द का इस्तेमाल किया गया है, वहाँ एक आवश्यकता है कि इस तरह के परामर्श अर्थपूर्ण एवं सार्थक होना चाहिए।

खनिज शक्तियाँ

भारत में आदिवासी समुदायों के जीवन, आजीविका और मातृभूमि के लिए सबसे गंभीर खतरों में से एक है खनन। 1991 में देश में 4,175 खानों में से, 3,500 आदिवासी क्षेत्रों में थीं, जबकि आदिवासी क्षेत्रों में पाए जाने वाले खनिजों ने कथित तौर पर राष्ट्रीय खनन उत्पादन में आधे से अधिक का योगदान दिया। एक अन्य अनुमान में कहा गया है कि, 1950 और 1991 के बीच, कम से कम 2,600,000 लोग खनन परियोजनाओं से विस्थापित हुए थे, जिनमें से केवल 25% का ही पुनर्वास हुआ। विस्थापित होने वालों में अनुमानित 52% आदिवासी थे। जनजातीय क्षेत्रों और खनिज भंडार के बीच एक भौगोलिक सह-संबंध है।

खनन से संबंधित मौजूदा कानून, वन कानून की तरह ही अंग्रेजों के समय के नियम से संचालित होता है। आदिवासी समुदायों के अस्तित्व और उनकी भूमि और संसाधनों पर इन समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक ढांचे पूरी तरह से उपेक्षित हैं। आधारभूत धारणा जिस पर खनन कानून आधारित है, वह यह है कि भूमिगत पाए जाने वाले सभी खनिज राज्य की संपत्ति हैं, और भूमि का निजी स्वामित्व, या भूमि पर अधिकार, ऐसे में अप्रासंगिक हैं।

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 खनिज रियायत नियम, 1960, और कई अधीनस्थ नियम और दिशानिर्देश, मुख्य रूप से पूर्वेक्षण, और खनन के लिए अनुमति प्रदान करने की प्रक्रियाओं पर केंद्रित हैं। प्रमुख खनिजों की अनुमति देने की शक्ति केंद्र सरकार के पास है (जो राज्य सरकारों के माध्यम से हो कर जाती है) और लघु खनिजों के लिए यह शक्ति राज्य सरकारों के पास है। खनन कानून की पूरी संरचना में यह कहीं आवश्यक नहीं है कि परमिट दिए जाने से पहले प्रभावित समुदाय को सूचित किया जाए, परामर्श करना तो दूर की बात है। राष्ट्रीय खनिज नीति मात्र विस्थापितों के पुनर्वास को सुनिश्चित करने की आवश्यकता के संदर्भ में बात करती है। संसाधनों के अधिकारों का कोई उल्लेख नहीं है सिवाय एक अस्पष्ट सिफारिश के कि अनुसूचित जनजातियों को खनिजों के छोटे बिखरे हुए भंडारों के लिए खनन पट्टे देने में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

पेसा में धारा 4 (के) और (एल) अनुसूचित क्षेत्रों में लघु खनिजों से संबंधित लाइसेंस और पट्टों के अनुदान से संबंधित महत्वपूर्ण प्रावधान हैं। इन प्रावधानों में कहा गया है कि उचित स्तर पर ग्राम सभा या पंचायत से संबंधित अनुमोदन अनिवार्य रूप से प्राप्त किया जाना चाहिए। यहाँ कानून की भाषा सशक्त है। ''परामर्श" के बजाय ''अनुमोदन" की आवश्यकता यहाँ अनिवार्य है।

पेसा स्पष्ट करता है कि राज्य सरकारें इस शक्ति को ग्राम सभा में निहित करें, लेकिन दुर्भाग्य से यह निर्णय राज्य सरकार करती है कि वह किस पंचायती राज संस्थान को यह शक्ति प्रदान करेगी। इसलिए, राज्य विधानों का विश्लेषण करते समय हम पाते हैं कि केवल तीन राज्य, गुजरात, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश ने ही ग्राम सभा को स्पष्ट रूप से यह शक्ति प्रदान की है। लघु खनिजों के लिए पूर्वेक्षण एवं खनन पट्टों की स्वीकृति के संबंध में छत्तीसगढ़ में कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन लघु खनिजों की नीलामी के लिए ग्राम सभा की पूर्व संस्तुति आवश्यक है। आंध्र प्रदेश और ओडिशा क्रमशः ग्राम पंचायत और जिला परिषद में शक्ति निहित करते हैं, जबकि झारखंड में इस संबंध में कोई प्रावधान नहीं है।

स्वतंत्रता के बाद, खनिजों पर नियंत्रण के क्षेत्र में केंद्र और राज्यों के बीच, और वर्तमान में बड़े बहुराष्ट्रीय खनन निगमों के बीच जमकर संघर्ष हुआ है। धारा 4(के) और (एल) प्रावधान राज्य के विधानों में कमजोर राजनीतिक इच्छाशक्ति के कारण इसे अप्रभावी बनाता है। पेसा के दायरे में प्रमुख खनिजों को शामिल नहीं किया गया है। मूल अधिनियम में ही एक महत्वपूर्ण दोष है। यह गंभीर चिंता का विषय है क्योंकि आदिवासी आबादी के अस्तित्व और पांचवीं अनुसूची के संवैधानिक अधिकार को सबसे बड़ा खतरा खनन से ही है।

लघु वनोपज धारा 4 (एम)

स्वतंत्र भारत में जनजातीय संसाधनों का सबसे बड़ा हनन वन क्षेत्रों और ''वन भूमि" के रूप में वर्गीकृत क्षेत्रों में हुआ है। भारत के वन, केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर कानूनों, नियमों और कार्यकारी निर्देशों की एक जटिल प्रक्रिया के द्वारा शासित होते हैं जो मूलत: भारतीय वन अधिनियम, 1927 द्वारा संचालित होते हैं।वन संरक्षण अधिनियम, 1980 और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972, वनों के संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण के आधुनिक प्रतिमानों एवं लक्ष्यों को आधार बनाकर अभी भी 1927 के मूल वन कानून का उपयोग करते हैं।

धारा 4 (एम) में भी गलत व्याख्या और विधायी हेरफेर हुआ है। उदाहरण के लिए, ''लघु वन उपज" में बहुमूल्य लकड़ी को इस परिभाषा से अलग गया है। कुछ राज्यों में तेंदूपत्ता, साल बीज आदि जैसे वनोपजों जिनसे अधिक लाभ प्राप्त होगा उन्हें या तो विशेष कानून के माध्यम से राष्ट्रीयकृत किया गया है, या उन्हें इस दायरे से बाहर करने के लिए ''गैर-लकड़ी वन उपज" के रूप में पुनर्वर्गीकृत कर दिया गया है।

पेसा के अनुपालन में ओडिशा ने 2002 में उड़ीसा ग्राम पंचायत (लघु वन उत्पाद प्रशासन) नियम बनाए, जो ग्राम पंचायत में शक्ति निहित करता है। इन नियमों की मुख्य विशेषताएँ हैं। ग्राम पंचायत लघु वन उत्पाद की खरीद और व्यापार को नियंत्रित करती है, चाहे वह ग्राम की सीमा के भीतर सरकारी भूमि और वन क्षेत्रों में उत्पादित हो या आरक्षित वनों से एकत्र की गई हो और ग्राम में लाई गई हो। लघु वन उत्पाद के संग्रह और व्यापार के लिए संयुक्त वन प्रबंधन समितियों और उसके सदस्यों को प्राथमिकता दी जाती है। लघु वन उत्पाद की खरीद के लिए व्यापारियों को ग्राम पंचायत के साथ पंजीकरण कराना होता है। मूल्य निर्धारण पंचायत समिति (प्रखंड स्तर) द्वारा किया जाता है। ग्राम सभा सभी निर्धारित कीमतों की पुष्टि करती है और स्थानीय जरूरतों के आधार पर आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं। मध्य प्रदेश, झारखंड और आंध्र प्रदेश जैसे अन्य राज्यों में इस प्रकार की कोई ठोस नीति नहीं है।

छोटे जल निकायों की योजना और प्रबंधन: पेसा की धारा 4 (जे)

पेसा की धारा 4 (जे) कहती है कि ''अनुसूचित क्षेत्रों में छोटे जल निकायों की योजना और प्रबंधन पंचायतों को उचित स्तर पर सौंपा जाना चाहिए। इस संदर्भ में 'लघ' जल निकायों शब्द का उपयोग किया जाता है, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि 'प्रमुख' जल निकायों को इसके परिधि के अन्तर्गत नहीं रखा गया। कई राज्यों में 'लघु जल निकाय' शब्द को कानून या प्रशासनिक व्यवहार में परिभाषित ही नहीं किया गया है और इसलिए स्तिथि और अधिक अस्पष्ट और अप्रवर्तनीय बन गया है। एक और समस्या यह है कि राज्य के संशोधनों ने शायद ही कभी ग्राम पंचायतों में यह शक्ति निहित की है। इसके बजाय, ''उचित स्तर पर पंचायतों" खंड का एक बार फिर लाभ उठाया गया है। झारखंड और गुजरात, ग्राम पंचायत में इन शक्तियों को निहित करते हैं।

भूमि अधिग्रहण

भारत भर में आदिवासियों की पारंपरिक आजीविका और मातृभूमि से वंचित होने का एकमात्र सबसे बड़ा कारण भूमि हस्तांतरण है। भूमि संसाधन विभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार की जुलाई 2013 की एक रिपोर्ट के अनुसार, 8.55 लाख एकड़ जनजातीय भूमि हस्तांतरण के 3.75 लाख मामले दर्ज किए गए थे। उपरोक्त में से, 1.62 लाख मामले (43.2%) आदिवासियों के पक्ष में निपटाए गए, जिसमें कुल 4.47 लाख एकड़ (58.28%) भूमि वापसी पर कार्यवाही हुई। 3.63 लाख एकड़ के क्षेत्र जिसमें 1.55 लाख मामले थे (41.1%) उन्हें विभिन्न आधार पर अदालतों द्वारा खारिज कर दिया गया।

उपरोक्त आंकड़ों से पता चलता है कि आदिवासियों द्वारा हस्तांतरित भूमि की बहाली के लिए दायर किए गए 41.1% मामलों को न्यायालयों द्वारा खारिज कर दिया गया था। यह एक चिन्तनीय आंकड़ा है क्योंकि यह दिखाता है कि आदिवासियों की न्यायिक प्रणाली तक कम पहुंच है। जिन मामलों में सकारात्मक निर्णय आएँ भी, तब भी भूमि पर आदिवासियों का पुन: कब्जा आसान नहीं होता है। जनजातीय पक्ष में न्यायिक निर्णय के बावजूद भूमि की वास्तविक बहाली नहीं हो पायी।अदालत के खर्चे सबके बस की बात नहीं। सकारात्मक फैसला प्राप्त करने में देरी का सामना करने में सभी सक्षम नहीं होते हैं और इसलिए कब्जे की वास्तविक बहाली एक सतत समस्या बनी रहती है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना दस्तावेज इस तथ्य को स्वीकार करता है। ''आदिवासियों के

विस्थापन का बड़ा प्रभाव इस तथ्य से स्पष्ट है कि विस्थापित लोगों में से कम से कम 55 प्रतिशत आदिवासी हैं और गुजरात जैसे राज्यों में यह अनुपात 76 प्रतिशत है (सक्सेना, 1999)। यह वास्तव में बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि भूमि हस्तांतरण के शिकार आदिवासियों का एक छोटा सा हिस्सा ही अपनी भूमि की बहाली के लिए कानूनी व्यवस्था का रुख करता है। मुकदमे के कई वर्षों के बाद भी, वे पाते हैं कि अदालती जीत के बावजूद कब्जा करने वाले व्यक्ति की बेहतर सामाजिक-आर्थिक स्थिति के कारण वे कब्जा हासिल करने में असमर्थ हैं। इस संदर्भ में पेसा की धारा 4 (एम) (iii) का प्रावधान महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि इसमें राज्य सरकार को ऐसे कानून बनाने का निर्देश है जो ग्राम सभाओं को आदिवासी को हस्तांतरित भूमि को बहाल करने का अधिकार देगा।

संविधान में उल्लिखित सभी प्रावधानों के बावजूद आदिवासियों की दुर्दशा आज तक जारी है। पूरा तंत्र, चाहे वह सरकार हो या कार्यपालिका, सभी उस पर चुप्पी साधे हुए हैं। कहते हैं कि हर विकास की प्रक्रिया बलिदान माँगती है और दुर्भाग्यवश राष्ट्र निर्माण के नाम पर प्राय: जनजाति समाज को ही त्याग करना पड़ता है। आदिवासी समाज, जो पूरी तरह से कमजोर हैं उन्हें ही विकास के नाम पर प्राय: हमेशा शोषित होना पड़ाता है। अंधाधुंध आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण, बड़े पैमाने पर जल विद्युत परियोजनाएँ, औद्योगिक खनन, बड़े बांध का निर्माण, बड़ी बड़ी सिंचाई परियोजनाएँ, फाइरिंग रेंज आदिवासी क्षेत्रों में बनाये गये। इन सभी योजनाओं में भ्रष्टाचार हर कदम पर साथ रहा। परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर अव्यवस्थित पलायन और जबरन विस्थापन हुआ। पुनर्वास तो बहुत ही दयनीय था। आदिवासी समाज के लिए जल जंगल और जमीन उसके जीवित होने के पर्यायवाची हैं। इसे कभी भी बाहरी समाज ने समझने का प्रयास नहीं किया। विडंबना यह है कि जिस केंद्र और राज्य को आदिवासियों का संरक्षक होना चाहिए वही अब स्वयं इन अत्याचारों को राष्ट्र निर्माण के नाम पर मूकदर्शक बना देख रहा है। इसके परिणामस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों से भारी आक्रोश हुआ था और राज्य सरकार के द्वारा प्रतिक्रिया में जोरदार दमन की गई थी। ऐसे में यह कोई आश्चर्य नहीं कि अनेक सशस्त्र विद्रोह होने लगे थे।

सारांश

पेसा स्थानीय स्वशासन की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रावधान थी, लेकिन वास्तव में राज्य स्तर पर कानून में प्रभावी रूप से इसे लागू नहीं किया गया। यहाँ तक कि पेसा के जिन सीमित प्रावधानों को लागू किया भी गया तो उनमें भारी इच्छाशक्ति की कमी दिखाई पड़ती है। पंचायती राज मंत्रालय की ही एक समिति के अनुसार, कुल मिलाकर संबंधित राज्यों में पेसा के गैर-कार्यान्वयन के कुछ मुख्य कारण हैं। आदिवासी मामलों में पेसा के साथ पांचवीं अनुसूची के सामंजस्य की कमी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। अनेक स्थानों में इसकी कानूनी स्थिति के विषय में भ्रम और अस्पष्टता है। सामान्य रूप से जनजातीय मामलों के लिए केंद्र सरकार में दो अलग-अलग मंत्रालय हैं। पंचायती राज मंत्रालय (पहले ग्रामीण विकास मंत्रालय) और जनजातीय मामलों के मंत्रालय और सामान्यत: इनमें भी सामंजस्य की कमी है। पेसा के बारे में सामान्य जानकारी और समझ की कमी है जो राजनीतिक कार्यपालिका और यहां तक कि संबंधित प्रशासकों के बीच देखने को मिलती है।संबंधित लोगों के बीच पेसा के संदेश को संप्रेषित करने और प्रसारित करने का वस्तुत: कोई ठोस प्रयास नहीं होता है। हालाँकि, अभी तक केवल 5 राज्यों, अर्थात् आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान ने पेसा नियम लागू किए हैं। अनेक स्थानों में यह भी देखा गया है कि ग्राम सभा के कामकाज में राज्य के पदाधिकारी भी हस्तक्षेप करते हैं।आज हम जो देख रहे हैं वह अनुसूचित क्षेत्रों को विशेष दर्जा देने वाले संवैधानिक जनादेश का एक दुर्भाग्यपूर्ण क्षरण है। जहां पांचवीं अनुसूची को आदिवासियों की मातृभूमि की रक्षा के लिए बनायी गई थी, कानूनी दावँ पेंच ने इस शक्तिशाली प्रावधान को ही गौण कर दिया है।

संदर्भ सूची

कात्यायन, आर (2015) झारखंड लैंड मैन्युअल, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची

गुहा, आर (2014) सैविजिंग दा सिविलाएजड: वेरीअर एल्विन, हिस ट्राइबलस एंड इंडिया, पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली

घोष, जी एवं मुंडा, आर (2012) दा अदर साइड ओफ डिवेलप्मेंट, कोणार्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली

दत्त, ब (2005) कहानी झारखंड आंदोलन की, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची

फॉरेस्ट पीपल्ज प्रोग्राम, (2003), इक्स्ट्रैक्टिंग प्रॉमिसेज: इंडिजेनस पीपल्ज इक्स्ट्रैक्ट इंडुस्ट्रीज एंड वर्ल्ड बैंक, बगीयो सिटी, फिलिपींज, टेबटेबा फाउंडेशन

फूक्स, स (1992) दा अबोरिजनल ट्राइब्ज ओफ इंडिया, इंटर ऐलीअ पब्लिकेशन, नई दिल्ली
फुरेर हमेंडोरफ, सी वी (1982) ट्राइब्ज ओफ इंडिया: दा स्ट्रगल फोर सर्वाइवल, नई दिल्ली
मनीष, बी के (2016). संविधान सबके लिए . इण्डियन सोशल इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली
मुंडा, आर, मल्लिक स (सं) (2004) दा झारखंड मूव्मेंट: इंडिजेनस पीपल्ज स्ट्रगल फोर ऑटानमी इन इंडिया, इवगिया
सक्सेना, ह स एवं सेन सी (1999) पुटिंग पीपल लास्ट: ट्राइबल डिस्प्लेस्मेंट एंड रीहैबलीटेशन, इंटर ऐलीअ पब्लिकेशन, नई दिल्ली
सिंह, सु (2001). बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
शर्मा, बी डी (1996) दा फिफ्थ शिडयूल, सहयोग कुटीर ट्रस्ट, नई दिल्ली

वेब लिंक

https://tribal-nic-in/actRules/PESA-pdf
https://dolr-gov-in/

हिंदी कविता का बौद्धिक मोर्चा और जातीय अत्याचारों का संहार

डॉ० ललित कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी) राजकीय स्नोतकोत्तर महाविद्यालय जालौर, राजस्थान

भारतवर्ष में सदियों से जातीय आधार पर समाजों में परस्पर व्यवहार होता आया है और मानव समूह के एक बड़े भाग को अपमान, तिरस्कार और उलाहनों के साथ-साथ प्राय: घोर अत्याचार भी झेलने पड़े हैं। आज संविधान में जिन्हें एस.सी., एस.टी. और ओ.बी.सी. कहा जाता है युगों पूर्व से उनके साथ अमानुषिक अत्याचार होता आया है और नितान्त लम्पटता और कपट से इस घोर अत्याचारी व्यवहार को धर्म, संस्कृति और परम्परा का लिबास ओढ़ा दिया गया है। यदि डॉ. भीमराव अंबेडकर ने मनुस्मृति का दहन किया तो इसका स्पष्ट कारण था कि ये ग्रंथ जातीय हेयताओं और मानव की गैर बराबरी पर आधारित था जिससे पीढ़ियों को अस्तित्व और अस्मिता का खतरा पैदा हो गया था।....अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को दलितों के लिए उचित और प्रभावी बताते हुए इस धर्म को अपनाने पर जोर दिया। सामाजिक समानता पर आधारित यह धर्म ओ.बी.सी. की बजाय दलित जातियों के लिए अधिक आकर्षक था क्योंकि सर्वाधिक उपेक्षा, अपमान और अमानुषिक अत्याचार दलितों को ही झेलना पड़ा था। अंबेडकर के बौद्धिक उत्थान ने एक सामाजिक क्रांति को जन्म दिया जिसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी एक सटीक और व्यापक विमर्श के रूप में दिखाई पड़ता है। ''वास्तव में अंबेडकरवाद दलित वर्ग के जीवन का उत्थान करने वाला मौलिक विचार माना जाता है।''[1]

हीराडोम से लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि तक दलितों के जीवन का उदासी और अत्याचारों से भरा वृत्तांत सामने रखते रहे हैं लेकिन हिन्दी के अनेक गैर दलित साहित्यकार-विशेषकर कवि इस वृतांत को और भी विशिष्ट तथा यथार्थपरक-पूर्वाग्रहहीन स्थितियों के आधार पर अभिव्यक्त करते दिखाई देते हैं। लीलाधर मंडलोई जैसा प्रभावी कवि अपनी कविता 'जात बाहर' में जातिगत हेयताओं और दुर्दशा को अभिव्यक्त करता दिखाई देता है-

''इसलिए पंचायत का हुकुम है कि जात बाहर होगा पानी पीने वाला
इस तरह एक कुएँ की मृत्यु का फरमान जारी हुआ मंदिर से
मैंने कुएँ की जगत पर बैठकर स्नान किया
पिया रोज-रोज पानी निर्मल-स्वादिष्ट।''[2]

मंडलोई ने इस आत्मकथात्मक कविता के जरिये इंसानियत का शब्दकोश लिख डाला है और समाज में जाति को लेकर घृणित सोच रखने वाले जिंदा भूतों का समुचित इलाज करने की ओर कदम बढ़ाया है। मंडलोई की कविता बौद्धिकता के हवाले से सामाजिक समानता के कस्बाई पुनर्स्थापना की नजीर मानी जा सकती है।

भारतीय राजनीति में राममनोहर लोहिया जैसे समानतावादी विचारकों ने भी जाति व्यवस्था के खात्मे को अनिवार्य बताते हुए अपना समूचा संघर्ष शिद्दत से जारी रखा था और उनके इसी प्रकार के प्रयासों को याद करते हुए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी कविता 'लोहिया के न रहने पर' में लिखते हैं-

''उसने थूका था इस
सड़ी-गली व्यवस्था पर
उलटकर दिखा दिया था

कालीनों के नीचे छिपा टूटा हुआ फर्श
एक चिनगारी और
जो खाक कर दे
दुर्नीत को ढ़ोंगी व्यवस्था को।''[3]

राम मनोहर लोहिया जैसे राजनैतिक चिंतकों ने दलितों के उत्थान के जो बौद्धिक यथार्थवादी प्रयास किये हैं उसी तरह हिन्दी कवियों ने भी सामाजिक समानता के लिए यथेष्ठ प्रयास जारी रखे हैं। जातिगत अस्पृश्यता और आर्थिक स्तर पर कमजोरी की हालत ने दलित जातियों को उचित उभार और अवसर के आधार पर विकास के लिए होने वाली स्थितियों से दूर कर दिया था....लेकिन 70 के दशक के बाद दलित जातियों में स्वाभिमान और आत्मगौरव का भाव प्रबल ढ़ंग से पैदा होने लगा और ज्योतिबा फूले, डॉ. अंबेडकर, पेरियार, लोहिया और कांशीराम जैसे विचारकों के प्रभाव और साहित्यगत समर्थन से दलितों के उत्थान और विकास का मार्ग प्रशस्त होता गया। हालांकि आजादी के बाद से लेकर वर्तमान तक में दलितों को अथक मेहनत और प्रयासों के बाद भी वो मुकाम हासिल नहीं हो सका है जिसके वो हकदार थे।....सुदामा पांडेय धूमिल की कविता 'मोचीराम' इस बात की पुष्टि करती है-

''सच कहता हूँ उस समय
रॉपी की मूठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाए हुए बच्चे-सा
काम पर आने से बार-बार इनकार करता है।''[4]

धूमिल ने दलित वर्ग के आदमी की उस व्यथा को मार्मिक यथार्थ के साथ सामने रखा है जिसमें अपने काम की प्रकृति को लेकर भी दलित आदमी को अपमानित और लांछित होना पड़ता है। ये घृणास्पद आश्चर्य है कि मेहनतकश होने पर भी दलितों को उनकी कार्य प्रणाली और कार्य की प्रकृति के वर्गीकरण के आधार पर अपमान और उपहास झेलने पड़ते हैं और केवल वाग्जाल बुनकर मौज करने वालों को श्रेष्ठी, अभिजात्य और सर्वोपरि समाजविद माना जाता है।

सामाजिक अपमान का अतिरेक भयावहताओं को जन्म देता गया है और यथार्थ जीवन के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी दलितों को इतना हीन एहसास करवाया जाता रहा है कि उन्हें स्वयं के इंसान होने पर भी कभी-कभी संशय होने लगता है। ऐसे में उन कवियों और बुद्धिजीवियों की प्रस्तुतियाँ इस वर्ग को संबल देती हैं जिससे ये अपने जीवन को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण समझकर बेहतर भविष्य की ओर उन्मुख हो सकते हैं।....प्रसिद्ध आलोचक बच्चन सिंह इस संदर्भ में लिखते हैं कि ''दलितों के वर्ण-संघर्ष से वर्ण-व्यवस्था नष्ट हो या न हो लेकिन उनका आत्मगौरव समता, बेहतर आर्थिक स्थिति लौटेगी।''[5]

दलित वर्ग सामाजिक आतंकवाद जैसी दशाओं से व्यथित, अपमानित और पीड़ित होकर कहीं-कहीं हथियारबंद और आक्रामक संघर्ष की ओर भी उन्मुख हुआ है। माओवाद और नक्सलवाद जैसी विचारधाराओं के शरीर में आदिवासियों और दलितों का गुस्सा खून बनकर दौड़ने लगता है।...यद्यपि हिंसा का मार्ग अनुचित है लेकिन दलितों और वंचित आदिवासियों के साथ तथाकथित सभ्य समाज का जो सलूक है उसे ही मूलत: इस आक्रामक व्यवहार और हिंसा का जिम्मेदार माना जा सकता है। सुदामा पांडेय धूमिल की कविता 'नक्सलबाड़ी' इन स्थितियों की रेशा-रेशा पड़ताल करती है-

''जंगल से जिरह करने के बाद
उसके साथियों ने उसे समझाया कि भूख
का इलाज नींद के पास है।''[6]

भारतवर्ष में ऊँच-नीच का जहर इतना अधिक फैला हुआ है कि आपस के व्यवहार में स्पर्श मात्र हो जाने से तथाकथित ऊँचे लोगों को तकलीफ हो जाती है.....ऐसे में यदि कोई आदमी उस ऊँचे वर्ण के लोगों में संबंध का सोचे.....या प्रेम विवाह की कल्पना. .....या कहें कि हिमाकत करे तो जैसे सामाजिक हाहाकार मच जाएगा। पवन करण की कविता 'तुम जिसे प्रेम कर रही हो इन

दिनों में इसी प्रकार की स्थितियों का चित्रण करते हुए सामाजिक विमर्श का ठेठ यथार्थ रूप सामने रखा गया है। कविता में दलित युवक का सवर्ण युवती से प्रेम और उससे उपजी सामाजिक दुविधा और अस्वीकारोक्ति का भाव इस कविता में अभिव्यक्त किया गया है-

''तुम्हें पता है, इन दिनों तुम जिसे प्रेम कर रही हो
उसकी जाति क्या है....
जब तुम छोटी जातियों को लेकर घृणा उगलती हो
वह तुमसे अपनी आँखें चुराने लगता है
क्यों वह अपनी जाति को लेकर तुम्हें
तपाक से कोई उत्तर नहीं देता
तुम्हारे आगे क्यों टाल जाता है वह
अपनी पहचान का उल्लेख।''[7]

दलितों को जातिगत आधार पर इतने मनोविकारों से भर दिया गया है कि वे हमेशा अपनी सहज पहचान और सामान्य जिंदगी जीने तक के लिए अनमने भाव से जूझते दिखाई देते हैं।....महानताओं का पुस्तकालय सा बना हमारा देश अपनी ही राष्ट्रीय-मानवीय संपदा को कमतर और अस्पृश्य समझकर भी, उसके साथ पशुवत व्यवहार करते हुए भी सांस्कृतिक रूप से विश्व गुरु होने की घोषणाएँ करता रहता है तो ये नितान्त विडम्बनापूर्ण और आयरनी दशा ही मानी जाएगी।

जयन्त परमार की कविता 'सुबह की हवाओं' में दलितों पर होने पर घोर अमानुषिक अत्याचारों का चीत्कार उभरता दिखाई देता है-

''मैंने माँगी थी रोटी
और उन्होंने
जीभ पे जलता कोयला रखा
मैंने माँगी सिर्फ किताब
और उन्होंने
मेरे कानों में गर्म गर्म सीसा डाला।''[8]

इस तरह के आततायी घटनाक्रमों के बाद भी दलित वर्ग का बड़ा हिस्सा अगर अभी भी लोकतंत्र में आस्था रखता है तो ये आश्चर्य के साथ-साथ दलितों की फौलादी उम्मीदों का भी चरित्रांकन है। दलित वर्ग के अपने प्रभावी नायक रहे हैं और कठोर-कटु यथार्थ जीवन ने उन्हें जिजीविषा तथा अनथक संघर्ष की प्रवृत्तियों से भरकर मेहनतकश व्यक्तित्व का वर्ग बना दिया है। शिक्षा तो दलितों को एक वरदान की तरह मिली है जिसके लिए ना जाने कितने युगों से उन्हें भारी कीमतें चुकानी पड़ी हैं। शंबुक, एकलव्य और अंबेडकर तक की परम्परा दलितों के साथ किये गये असमानतापरक व्यवहार का जैसे खाका बुनकर पेश करती है। प्रसिद्ध पत्रकार और बुद्धिजीवी अभय कुमार दुबे का कथन है कि, ''दलितों को ज्ञान के क्षेत्र में भी तरह-तरह की सांस्कृतिक दीवारों का सामना करना पड़ रहा है।''[9]

बमुश्किल शिक्षा लेकर बौद्धिक संसाधनों से लैस दलितों का एक सीमित वर्ग उस सांस्कृतिक मान्यताओं वाली समाजगत-धर्मगत व्यवस्था को चुनौती देता है जिसके अनुसार दलित अस्पृश्य और त्याज्य है।

हमारे राष्ट्र के तमाम परंपरावादियों और संस्कृति पुरोधाओं को पहले इस बात का तार्किक और न्यायसंगत जवाब देना होगा कि दलितों और आदिवासियों पर सदियों तक हुए जुल्म का हिसाब कौन देगा?....वौ कौन सी व्यवस्था थी जिसके आधार पर इन वर्गों को भयंकर अत्याचारों के साथ दबाया-कुचला गया और मौके-बे-मौके अपमान किया जाता रहा।....इन सब बातों का जवाब अत्याचार और अपमान करने वालों के पास कदाचित है ही लेकिन वे उस जवाब पर संस्कृति, धर्म, राष्ट्रीयता और स्थितियों का खोल चढ़ाने के अवसर ढूंढ़कर अपनी सुविधा के हिसाब से जवाब देना चाहते हैं और प्राय: ऐसा करते भी हैं.....लेकिन उनके ये प्रयास वैसे ही हैं जैसे शतुरमुर्ग अपना सिर जमीन में गाड़कर खुद को सुरक्षित समझता है।

हिन्दी कवियों ने उपेक्षित और शोषित वर्ग के कल्याण के लिए जो सार्थक सृजनकर्म किया है उससे उनके साहित्यकार होने से अधिक एक उम्दा और भावनाओं से भरा इंसान होने का प्रमाण मिलता है।

मानव समाज के इतने बड़े वर्ग की उपेक्षा और अनदेखी कर अगर कोई साहित्यकार प्रकृति और सांस्कृतिक मूल्यों की 'उत्कृष्टताओं' का ज्ञान बघारता है तो उसे आधुनिक काल में भी रीतिबद्ध शैली का दरबारी साहित्यकार ही माना जाना चाहिए क्योंकि वो सत्य और यथार्थ की अनदेखी कर संपन्न वर्गों और संपन्नता की संस्कृति का ही पोषण कर रहा होता है।.....अतिरेकी सामाजिक व्यवहार से पीड़ित दलित-शोषित वर्ग के समर्थन में कविता करने वाले हिन्दी के कवि साधुवाद के पात्र हैं।

संदर्भ

1. भारतीय और पाश्चात्य साहित्य- डॉ. ललित कुमार, पृष्ठ 9, वान्या पब्लिकेशन कानपुर, प्रथम संस्करण, 2022
2. भीजै दास कबीर- लीलाधर मंडलोई, पृष्ठ 49, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016
3. प्रतिनिधि कविताएँ- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ 84, राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, 16वाँ संस्करण, 2021
4. संसद से सड़क तक- धूमिल, पृष्ठ 43, राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, छठा संस्करण, 2021
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- बच्चन सिंह, पृष्ठ 516, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, सातवीं आवृत्ति 2014
6. संसद से सड़क तक- धूमिल, पृष्ठ 68, राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, छठा संस्करण, 2021
7. वसुधा-58, जुलाई-सितम्बर 2003, पृष्ठ 147, संपादक- प्रो. कमला प्रसाद
8. वसुधा- 58, जुलाई-सितम्बर, 2003, पृष्ठ 371, संपादक- प्रो. कमला प्रसाद
9. आधुनिकता के आइने में दलित- अभय कुमार दुबे (संपादक), पृष्ठ 47, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति, 2007

कश्मीर आधारित हिन्दी उपन्यासों में बलात्कार और भ्रूण हत्या का वीभत्स चित्रण

सत्यवान आर्य

सह आचार्य, हिन्दी, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

हमारे समाज में अतीत से लेकर आज तक नारी कुछ अपवादों को छोड़कर पुरुष की दृष्टि में उपेक्षणीया रही हैपुरुष ने उसके सौंदर्य को भोग की वस्तु एवं उसके अस्तित्व को माया का रूप समझा है। प्राचीन समय में भी नारी को पुरुष से निम्न माना जाता था और आज भी समाज में कुछ पुरानी परम्परा के लोग नारी के साथ भेदभाव करते हैं। पुरुष प्रधान समाज में नारी को जीवन जीने के लिए बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अपने को पाक साफ रखने के लिए अग्नि परीक्षाएं देनी पड़ती है। कश्मीर-आधारित उपन्यासकारों ने अपने प्रमुख उपन्यासों में कश्मीरी समाज में नारियों के अधिकारी की समस्याओं और उन पर होने वाले अत्याचारों को भी अपनी लेखनी द्वारा उजागर किया है कि चाहे देश की आजादी का समय रहा हो या कश्मीर का भारत में विलय का या कश्मीर में आतंकवाद का दौर चल रहा हो या फिर अलगाववाद का बोलबाला। इन सभी समस्याओं से सबसे ज्यादा प्रभावित वहाँ की नारी ही हुई है। आज भी आतंकवादियों के द्वारा स्त्रियों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता है। रोज बलात्कार, हत्या, लूटमार की घटनाएं कश्मीर में क्या पूरे देश में सुनने को मिलती है। इसमें सबसे अधिक नुकसान वहाँ की नारी को होता है।

कश्मीर में नारी के साथ सामाजिक तौर पर भी भेद-भाव किया गया है उसका चित्रण हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है। कश्मीर की नब्ज पहचानने वाली उपन्यासकार पद्मा सचदेव ने अपने उपन्यास जम्मू जो कभी शहर था, में लाजो की अपने ही अहाते में इज्जत लुट जाने की घटना का चित्रण कर नारी की स्थिति को जाहिर किया है। इस पर उपन्यास की मुख्य पात्र सुग्गी लाजो की माँ को ढाढस बँधाती हुई कहती है- रो मत सैन्ती, हम औरतों की यही बदनसीबी है मर्द तो पल्ला झाड़कर चल देता है पर भुगतना लड़की को पड़ता है। दागी भी लड़की होती है, लड़के को कुछ नहीं होता, ये है औरतों की जिन्दगी।' उपन्यास में समाज में नारी के साथ हो रहे अत्याचार के विरोध में एक नारी द्वारा किये गये सहयोग का चित्रण किया गया है और बताया गया है। कि इस पुरुष प्रधान समाज में अपराध करने के बाद भी अपराधी (पुरुष) की बजाय जिसके साथ अपराध होता है (नारी) को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। यह है समाज की सोच। दर्दपुर उपन्यास में कथाकारा ने भी कश्मीरी जीवन के संदर्भ में नारी की असहायता का चित्रण किया है, आतंकवाद की क्रूरता का सबसे अधिक शिकार वहाँ की स्त्रियों ही हुई है। वह लिखती हैं कि वहाँ के आतंकवाद एवं अलगाववाद ही भावना के कारण स्त्रियों के साथ जुल्मो-सितम होता है क्योंकि नारी मानो देह है। फलतः अपहरण, बलात्कार और भ्रूण हत्या का दौर मानो कश्मीरी जीवन का सच बन गया है। क्षमा कौल लिखती हैं-ईरा ताई का सिसकता स्वर नदी में एक से लेकर तीन तक गाँव से नवजात शिशु बहकर गुजरते हैं क्योंकि कुछ स्त्रियों का गर्भपात असम्भव की स्थिति तक पहुंच चुका होता है।

अतः जन्म देकर शिशु को नदी में बहा देते हैं। गर्भपात तो सैकड़ों होते रहते हैं। आतंकवादियों का झुण्ड आकर घरों मैं ठहरा था उनकी मांगों को ठुकराना तो मौत को दावत देना है। लेखिका ने स्त्री जीवन की सच्चाई और उसकी त्रासदी का चित्रण किया है इस तरह बेतहाशा भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं बहुत सारे जन्म लेकर जारज समाज बना रहे हैं। आतंकवाद इस्लाम की आड़ में और प्राण ले रहा है। इसी तरह कथाकार कमलेश्वर भी कश्मीर में आतंकवाद, सम्प्रदायवाद की समस्या के कारण नारी जाति को सबसे अधिक पीड़ित बताते हैं। साम्प्रदायिक दंगे लोगों को सिर्फ और सिर्फ मौत देते हैं क्योंकि जिन्दगी देना उनके संस्कारों में नहीं होता

है तभी तो कमलेश्वर लिखते हैं कि इन साम्प्रदायिक दंगों से समाज में आर्थिक हानि होती है और वह पीड़ित लोगों के घाव पर नमक छिड़कने जैसा काम करता है। लेखक के मतानुसार समाज के विषाक्त वातावरण के मद्देनजर लेखक ने मनु की संतान को मानव बनने की सलाह दी है जिससे काम्य समाज रखा जा सके। ..... हाहाकार, चीत्कार, आगजनी, सामूहिक हत्याएं, बलात्कार, देख-पुकार अपहरणअजन्मे बच्चों के लोथड़े, कीड़े पड़ी बजबजाती फूली हुई लाशे, अध जीवित मृत देह का मांस खा-खाकर थके हुए लकड़बग्घे, कुते, गिद्ध और रक्त पलावन का दृश्य।"[1] सचमुच आज कश्मीरी समाज का परिवेश बड़ा ही डरावना और विषाक्त बनता जा रहा है। साम्प्रदायिकता के इन दंगों से पूरे समाज के साथ-साथ नारी जाति सबसे ज्यादा प्रताड़ित नजर आती है। यूं तो सदर गली-कूचे माल असबाव छोड़कर आतंक के साये तले कश्मीरियों का कश्मीर से गमन आजादी के बाद से ही शुरू हो गया था परन्तु 1990 तक स्थितियों बहुत खराब हो गई आतंकवादियों ने लूट, आगजनी, हत्या और बलात्कार का तांडव नृत्य कर दिया। लाशें चीर-चीर कर पेड़ों पर लटकाई वार्निंग देने पर भी जो हिन्दू अल्पसंख्यक नहीं गये, उन्हें जिन्दा भून डाला और शेष को खदेड़ दिया। ट्रकों, बसों में ठूस-ठूस कर भरे कश्मीरी पण्डित मातृ- भूमि को छोड़कर शरणार्थी कैंपों में गये। वहाँ भी नारियों के साथ बलात्कार जैसी घटनाएं हुई। इनकी इस नारकीय स्थिति का जीवन्त चित्रण लेखिका चन्द्रकान्ता ने अपने उपन्यास कथा सतीसर में किया है। मुस्लिम आतंकवादियों द्वारा कश्मीरी स्त्रियों पर किये गये जुल्मों का वर्णन करती हुई उपन्यासकार चन्द्रकांता लिखती है- उन लोगों ने ननों की हत्या की। सती साध्वियों का बलात्कार किया। प्रिंसीपल ने आखिरी वक्त तक स्टाफ को गोदाम में छिपाये रखा। पर खबरें किसने उन्हें सुराग दिया। वहीं आकर प्रलय मचा दी। उनकी सफेद फ्राके खून से लाल हो गई थीं।"[4] लेखिका वर्णन करती हुई चन्द्रकांता लिखती हैं- ''औरत के भीतर पहली बार नफरत एक अन्य घटना का मनका-सा उठा, सब ढकोसला है। गुंडागर्दी और कुछ नहीं। मेरी लड़की. पागल हो गईइन शिकसलदों ने उसे खराब कर डाला।" ''क्या हुआ?" पेट रह गया, सिर्फ चौदह साल की है मेरी नूरा पागल हो गई है।" ''मेरे पास ले आओ।मुझे सचमुच हमदर्दी हुई। लड़की बेहद डरी हुई थी। माँ हाथ पकड़कर कमरे के अन्दर ले आईमेरे हर सवाल के जवाब में उसने दो-तीन वाक्य बार-बार दुहराए" व तुम्हारा भी हशर कर देंगेवे तुम्हें भी कपड़े की तरह फाड़ देंगे। तुम्हारे कपड़े खून से रंग जायेंगे। ''.....तीन दिन बाद उसने मुझे हाथ लगाने दिया। वहशी दरिन्दों ने सचमुच उसे चीर दिया था। उसे सर्जरी की जरूरत थी। उसकी योनि बुरी तरह चिर गई थी। मल और मूत्र द्वार एक हो गये थे।"[5]

निष्कर्षतः सभी कथाकारों ने नारी पीड़ा को अपने उपन्यासों में जगह दी है। साथ ही नारी समस्याओं के विरुद्ध आवाज भी उठाई है। बताया है कि जब तक नारी इनके विरुद्ध स्वयं नहीं लड़ेगी तब तक इन पीड़ाओं से निजात पाना मुश्किल है।

संदर्भ-

1. सचदेव पद्मा: जम्मू जो कभी शहर था, पृ. 86
2. कॉलम दर्दपुर पृ. 337
3. कमलेश्वर: कितने पाकिस्तान, पृ. 47
4. चन्द्रकान्ता: कथा सतीसर, पृ. 208
5. चन्द्रकान्ता कथा सतीसर, पृ. 551

महात्मा गाँधी के नैतिक चिंतनः एक अध्ययन

डॉ० गायत्री कुमारी

व्याख्याता, राजनीतिक विभाग, एम.एन.डी. कॉलेज, चंदौली, उजियारपुर (समस्तीपुर)
ल.ना.मि.वि.वि. कामेश्वर नगर, दरभंगा

समसत विश्व महात्मा गाँधी के विचारों की मौलिकता, नवीनता तथा ताजगी को महसुस करता है, भारत की आजादी में सत्य और अहिंसा की भूमिका अग्रणी रही, इन्ही मानव मूल्यों के कारण आज हम सब स्वतंत्र भारत में श्वास ले रहे हैं।

महात्मा गाँधी की जीवनी पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका परिवार रूढ़िवादी विचारों का परिवार था, किन्तु उनके माता-पिता कट्टरपंथी नहीं थे, उन्होंने अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था अच्छी तरह की थी, उन्हें आधुनिक शिक्षा उपलब्ध करवायी गई थी, उनका बाल्यकाल एक ऐसे परिवेश में व्यतीत हुआ था जिसमें हिन्दू धर्म एवं परम्परा के प्रति प्रबल श्रद्धा थी। बहुत ही छोटी उम्र में गाँधी ने गीता तथा रामायण का अध्ययन कर लिया था, और इसके साथ वैष्णव तथा जैन साहित्य का भी अध्ययन किया था। महात्मा गाँधी को जब इंगलैण्ड जाने का मौका मिला तो वे वहाँ ईसा मसीह की शिक्षा और विचारों से भी प्रभावित हुए। गाँधी के मन में ईसा के जीवन तथा व्यक्तित्व के प्रति अपार श्रद्धा थी। इनके अतिरिक्त गाँधी इस्लाम तथा जोराष्ट्रीयन धर्मों की भी ज्ञान रखते थे। रसकीन तथा समकालिन कुछ प्रसिद्ध 'थियोफिस्ट' विचारकों की भी जानकारी प्राप्त करने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ। इन सभी प्रभावों को अपनी मानसिकता में सहेज कर गाँधी ने अपने विचारों को उन्नत बनाया। उन्होंने नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सामान्य अस्तित्व मूलक समस्याओं पर अपने बहुमुखी विचारों का प्रयोग किया, उन्होंने यह प्रयोग अपने आन्तरिक अनुशासन के लिए भी किया तथा बाह्य जीवन की समस्याओं पर भी किया। ''गाँधी ने अपने जीवन की कहानी को 'सत्य पर हमारे प्रयोग' (My Experiements with Truth) कहा है।'' इस प्रकार देखते हैं कि उनका जीवन एक मिश्रित वातावरण में विकसित हुआ। वे धार्मिक एवं नैतिक परम्परा से भी पूर्णतः अवगत हो गये, आधुनिक तथा आधुनिक समय की मांगो की ओर भी जागरूक हुए।

गाँधी ने मानव जीवन सम्बन्धित हर सम्भव पक्ष पर विचार किया है, उनके इस विशद विचार की विशिष्टता यह है कि उनके विचार का केंद्रीय पक्ष, जो किसी न किसी रूप से हर विचार में मूल रूप में व्यक्त है, उनका ''ईश्वर-विचार'' है जो उनका सत्य के मूल रूप का विचार भी है। वे कहते हैं ईश्वर को अनेक नाम दिए जा सकते हैं, उसे अनाम कहा जा सकता है, उसके असंख्य रूप हो सकते हैं, अतः ईश्वर को 'सत्य' कहा जा सकता है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यापिहितं मुखम।
तत् त्वं पूषन्न पावृणु सत्य धर्माया दृष्टये।।

अर्थात सत्य का मुख स्वर्णिम चमकीले पात्र से आवृत है। हे चिढ़ा-नन्द ज्योतिष्पुंज्ज इस आवरण को हटा दो और सत्य की ओर उन्मुख मुझे दिव्य-दृष्टि दो जिससे मैं उसके दर्शन कर सकूँ।

सत्य के बगैर जीवन दर्शन और ईश्वर प्राप्ति असंभव है। दैनिक जीवन में सत्य के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। एक चोर को डकैती करने के बाद आपस में धन के बॅटवारे के समय सत्य की आवश्यकता होती है अन्यथा वे आपस में कट मर जाऐंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भौतिक जीवन में सत्य के बगैर सुख, शांति, सहिष्णुता, सदगुण आदि मानवीय गुण विकसित नहीं हो सकता है।

गाँधी दर्शन के क्षेत्र में किसी नये विचार के प्रणेता नहीं हैं, न ही उनके तर्कों और युक्तियों में वैसी तक र्बद्धता है जो शंकर या रामानुज, कांट या हेगेल प्रभृत दार्शनिकों में पाया जाता है, गाँधी ने स्वयं लिखा है, मैं किसी नये विचार के प्रणयन का दावा नहीं करता। मैंने अपने तरीके से सनातन सत्यों को दैनिक जीवन तथा समस्याओं को सुलझाने में लगाया है। आप इसे गाँधीवाद नहीं कहें, इसमें कोई बाद नहीं है। गाँधी ने युग की आश्यकताओं को देखा और बुद्ध तथा सुकरात की भांति सत्यों को जीवन में उतारने की बात की। उनके अनुसार वास्तविक ज्ञान यथार्थ जीवन से कटा नहीं रह सकता। सैधान्तिक ज्ञान और व्यवहार विचार और कर्म दोनों सत्य के ही दो पहलू हैं। गाँधी ने नीतिशास्त्र को सर्वोच्च शास्त्र माना है। नीतिशास्त्र से कर्मों में क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए का ज्ञान होता है, इसका सम्बन्ध सत्य आचरण से है।

गाँधी जी 'ईश्वर सत्य है' के साथ-साथ 'सत्य ही ईश्वर है' कहते हैं- अर्थात् ईश्वर ही परम सत्ता है। सत्य और ईश्वर में तादात्म्य है। इसलिए सिद्धि का अर्थ है सत्य-सिधि।

उन्होंने कहा प्रेम और अहिंसा ही साधन है ईश्वर की प्रति के लिए, प्रेम और अहिंसा विशुद्धता पर निर्भर है।

अहिंसा का उल्लेख भारत के प्राचीनतम ग्रन्थों में मिलता है। उपनिषदों में जैन तीर्थकरों के लेखों में तथा बुद्ध के दर्शन में अहिंसा का विचार पाया गया है। पर गाँधी जी ने सत्य, अहिंसा के व्यवहारिक रूप पर प्रकाश डाला और उसे राजनीति के क्षेत्र में भी उतारा, अहिंसा का सम्बन्ध द्वेष, क्रोध, हत्या, ईर्ष्या, असूया, द्रोह, अभद्र क्रूरता, चोरी आदि से है। दूसरे शब्दों में दयाभाव, सहानुभूति तथा न्याय-प्रदर्शन अहिंसा है। उन्होंने कहा जीवन में अहिंसा पालन करने के लिए आत्मबल और आत्मबलिदान का होना आवश्यक है। आत्मसंलोभन, स्वार्थ आदि के लिए ही मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाता है। अहिंसा प्रेम और आत्मबल का सूचक है, इसमें विरोधी के भौतिक बल के सामने आत्मा की शक्ति लगाई जाती है। इस शक्ति का क्रियात्मक रूप माँ और बच्चे के प्रेम में सरलता से देखने को मिलता है।

अहिंसा का भावनात्मक रूप प्रेम है। प्रेम की शक्ति समाज में उतने ही स्पष्ट और ठोस परिणाम उत्पन्न कर सकती है जितना भाप और बिजली कर सकता है। यह हमारे आत्मसम्मान और स्वाभिमान का संरक्षण करता है। गाँधी के भाव-स्त्रोतों में से एक भाव सत्य तथा दूसरा भाव अहिंसा है। सत्य पर किये गये अपने प्रयोगों से वे आप से आप 'अहिंसा' पर आ गये। गाँधी सत्य एवं अहिंसा के आपसी सम्बन्ध के बारे में कहते हैं कि उन्हें वो एक ही सिक्के के दो पहलु मानते हैं। वो सत्य, अहिंसा को एक उपमा देकर इस प्रकार समझाते हैं कि एक दोनों ओर से चिकने तथा एक जैसे दिखाई देने वाले धातु-डिस्क जिसमें यह कहना कठिन हो कि किस ओर सीधा है और किस ओर उलटा। पुनः वे अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य कहते हैं।

सत्य अहिंसा पर गाँधी जी का विचार बड़ा ही स्पष्ट है, वे कहते हैं कि यदि मेरे बच्चे को ''रैबी'' हो जाय तथा उपचार के सभी विकल्प समाप्त हो जाय तथा उस बच्चे को उसके भयानक कष्ट से मुक्त होने के लिए भाग्य के सहारे छोड़ देना ठीक नहीं है, बल्कि उस समय हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उसका प्राणान्त कर दें, उनका कहना है कि हर बात भाग्य पर छोड़ देना उचित नहीं है, अगर हम उसे कष्ट से मुक्ति दिला सकते हैं तो अवश्य दिलाना चाहिए, ऐसा करना अहिंसा की श्रेणी का व्यवहार नहीं कहलाएगा। सत्य और अहिंसा पर गाँधी के विचारों के माध्यम से हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि इन्हीं बातों को अपने जीवन में साध कर उन्होंने भारत को आजादी दिलाने में आत्म- बलिदान कर विश्व पटल के महानायक बन गए।

संदर्भ सूची:

1. समकालीन भारतीय दर्शन- बसन्त कुमार लाल
2. नीति शास्त्र की रूपरेखा- अशोक कुमार वर्मा
3. स्वामी विवेकानन्द एक जीवनी- आशा प्रसाद
4. तुलनात्मक धर्म दर्शन- या० मसीह
5. भारतीय दर्शन की रूप रेखा- प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, एवं मेरे अपने विचार

गुरुगौरवीयम् महाकाव्य में रस तत्त्व विवेचन

डॉ० ललित कुमार गौड

निर्देशक, प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

लक्ष्मी कुमारी

शोधार्थी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

भारतीय मनीषियों ने जीवन के प्रत्येक पक्ष पर सूक्ष्म चिन्तन किया और अपने अनुभवों और विचारों को प्राचीन काल में संस्कृत भाषा में निबद्ध किया है। हजारों वर्षों की इस साधना के फलस्वरूप विविध विषयों पर शास्त्रों की रचना हुई। इस प्रकार एक विशाल संस्कृत वाङ्मय बना। इसमें दर्शन, धर्म, अर्थ, राजनीति, ज्योतिष, आयुर्वेद, कर्मकाण्ड और ललित-कलायें जैसे नाट्य, संगीत, शिल्प आदि प्रत्येक विषय का समुचित प्रतिपादन हुआ है। चिन्तन की यह प्रक्रिया किसी काल या स्थान विशेष पर आकर रूकी नहीं और इस साहित्य में समयानुकूल निरन्तर सामग्री बढ़ायी जाती रही।

रस का अर्थ एवं परिभाषा:

रस भारतीय संस्कृत वाङ्मय का अत्यन्त प्राचीन शब्द है। प्राचीनकाल से ही यह शब्द जल, सार, निचोड़, दूध, द्रव, स्वाद, विष, धातु, मधुर आदि षड्स, पारद, परमात्मा, शृङ्गारादि काव्यरस, सुरा, शोणित, आत्मा आदि अर्थों में प्रयुक्त होता आ रहा है। ऋग्वेद के आरंभिक मण्डलों में यह जल, दुग्ध, मधु, आस्वाद्य आदि का बोधक है –

"रसेन समगंस्महि" [1]

"जम्भेरस्य बावृधे" [2]

जिस प्रकार उपनिषदों में आत्मा को श्रेष्ठ मानकर उस पर प्रधान तप से विचार किया गया है। इसी प्रकार काव्य-सिद्धान्त में रस को काव्य-शरीर में प्रधान होने के कारण आत्मरूप माना गया है। जैसे केवल आत्मा का ज्ञान होने पर अन्य सब ज्ञात हो जाने के कारण आत्मविचार ही प्रमुख होता है, उसी प्रकार काव्य-शास्त्र में काव्यात्मा अर्थात् रस का ज्ञान ही प्रधान है।

"एष ह्येवानन्दयाति" [3]

काव्यात्मा के अनुकूल होने के कारण गुण, अलंकार, रीति आदि सहृदयों के लिए प्रिय होते हैं। इसलिये काव्य-शास्त्र के प्रधान आत्मा तत्त्व अर्थात् "रस" को मूल मानकर उसका सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

नाट्यशास्त्र में रस को पाठ्य, गीत और अभिनय के साथ नाट्य का मूल माना है। जैसा कि इसके श्लोक से होता है –

"पाठयं जग्राह ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।।" [4]

ऋग्वेद से पाठ्य-अंश, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर प्रजापति ने पंचम नाट्यवेद का निर्माण किया। रस ललित-कलाओं के संदर्भ में मूलतत्त्व है। भरतमुनि ने इस विषय में कहा है–

"न हि रसादृतें कश्चिदर्थ: प्रवर्तते:" [5]

(रस के बिना किसी भी अर्थ की प्रवृत्ति नहीं होती) अर्थात् रस के बिना कोई भी कला-चेष्टा निरर्थक हैं। उन्होंने ऐसा कहकर स्पष्ट शब्दों में 'रस' का प्राधान्य व्यक्त किया है, जिसका "काव्य-शास्त्र" में आजतक समर्थन होता आ रहा है। जिस प्रकार आत्म-ज्ञानी रस-स्वरूप परमात्मा के साक्षात्कार से कृतकृत्य हो आनन्द विभोर हो जाते हैं, वैसे ही काव्यमर्मज्ञ सहृदय रसिक ब्रह्मानन्द सहोदर आलौकिक काव्य-रस का आस्वाद करके आनन्द विभोर होते हैं।

नाट्यशास्त्र ने इस विषय पर और अधिक गहन विचार किया है। ऐसी स्थिति की सर्जना करना, जिससे रस की उत्पत्ति हो ललित-कलाओं का मूल उद्देश्य है। रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव आदि भावों के संयोग से होती है, जिसके सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र का सूत्र विख्यात है -

"विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"[6]

"निष्पत्ति" का बड़ा गूढ़ अर्थ हैं जो आद्रति और उद्रेक से कहीं अधिक हों। इससे किसी नवीन वस्तु का सृजन नहीं होता। केवल जेसे वृक्ष में फूल खिलते हैं ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाती है, जो आनंद और सौन्दर्यानुभूति का मूल है। इस सौन्दर्यानुभूति से ही आनन्द प्राप्त होता हे और इस प्रक्रिया का शास्त्रीय नाम "रस" है।

रस पद की व्युत्पत्तिः

"रस" पद की व्युत्पत्ति व्याकरण के अनुसार चार प्रकार से होती है-[7]

1. रस्यते आस्वाद्यन्ते इति रसः अर्थात् जिन पदार्थों का आस्वादन किया जाए, वे पदार्थ रस हैं। जैसे - मधु, सोम, गन्धादि।
2. रस्यते अनेन इति रसः अर्थात् जिन पदार्थों के द्वारा आस्वादन किया जाए, वे पदार्थ रस कहलाते हैं। जैसे - शरीर, राग इत्यादि।
3. रसति रसयति वा रसः अर्थात् जो व्याप्त हो जाता है या व्याप्त कर लेता है, उसको रस कहते हैं। जैसे पारद, जलादि।
4. रसनं रसः आस्वादः अर्थात् जो आस्वाद है, उसे रस कहते हैं। काव्यगत श्रृंगारादि रस।

रस विषयक सूत्रः

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र नामक ग्रंथ में रस सूत्र का विवेचन किया है -

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"

अर्थात् विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारि भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

आचार्य मम्मट ने रस विषयक अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है -"जगत् में जो कारण कार्य और सहकारी के रूप में होते हैं, उन्हीं को काव्य और नाटक में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के नाम से अभिहित किया जाता है। इन्हीं विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यक्त हुआा रति आदि स्थायीभाव रस कहलाता है।"[8]

रस के विषय में 'अग्निपुराण' में वर्णन मिलता है- "अक्षरपरम ब्रह्म" है। वह सनातन अज और विभु है। वेदान्तों में इसे चौतन्य ज्योति और एक ईश्वर कहा गया है। उसका वह सहज आनन्द किसी समय व्यंजित किया जा सकता है। उसकी वह अभिव्यक्ति चौतन्य के समान होती है। उसका जो आद्य विकार होता है उसमें वह भुवनत्रय समाप्त होता है। अभिमान से परिपोष को प्राप्त होने वाली वह द्रुति व्यभिचारी आदि के सामान्य होने से श्रृंगार नाम से गई जाती है।[9]

रसों की संख्याः

विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त सहृदयों के हृदयों में स्थित रति इत्यादि स्थायीभाव रस कहलाता है। अतः स्थयीभावों की जितनी संख्या होगी रसों की भी उतनी ही संख्या मानी जाएगी। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने इनकी संख्या आठ (8) मानी है।[10] नाट्यशास्त्र प्रथम संस्करण में आठ तथा द्वितीय संस्करण में नौ माने गए हैं।[11] द्वितीय संस्करण में नौवां रस शांत रस माना गया है। रसगंगाधर में पण्डितराज जगन्नाथ ने प्रथम आनन के रस प्रकरण में नौ रसों को ही स्वीकार किया है।[12]

आचार्य धनंजय और धनिक ने भी काव्य में शांत रस को माना है।[13] जिसका स्थायीभाव शम हैं।[14] आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत और शान्त इन नौ रसों को माना है।[15] अतः काव्यशास्त्र में मुख्यरूप से रसों की संख्या नौ ही मानी गई है।

'निर्वेद शान्तोऽपि नवमो रसः'। आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में शान्त रस को नौवां रस माना है। इन्होंने इसका स्थायीभाव निर्वेद बताया है। अतः काव्यशास्त्र में रसों की संख्या 9 ही स्वीकार की गई।

गुरुगौरवीयम् महाकाव्य में रस-योजनाः

भारतीय संस्कृत साहित्य विश्व के अन्य साहित्यों से प्राचीनतम है। इस साहित्य की काव्य नाट्यकला अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। नाट्यकला में भिन्न-भिन्न समयानुसार मुख्यतया अलंकार, ध्वनि, औचित्य, रसादि तत्त्व स्वीकार किये गये हैं; परंतु इस साहित्य में रस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। अलग-अलग आचार्यों ने रस विषयक मत प्रस्तुत किये हैं। ध्वन्यालोक में आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है कि काव्य की रचना करने वाले प्रसिद्ध रसों में से एक रस को अंगी रस तथा इसे भिन्न रसों को अंग (गौण) रसों के रूप में चित्रित करना चाहिए।[16]

महाकाव्य का लक्षण करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने शृंगार, वीर एवं शांत रसों में से किसी एक रस को अंगी रस तथा अनय सभी रसों को अंगरस के रूप में स्वीकार किया है।[17]

पंडित हरिसिंहशास्त्री जी ने इ महाकावय में करुण, अद्‌भुत आदि गौण रसों का प्रयोग किया है। महाकाव्य के मुख्य रस के रूप में शान्त रस का निरूपण किया है। लेखक के अनुसार रस इस प्रकार है -

करुण रसः

जहां इष्ट वस्तु का नाश और अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है वहां पर करुण रस होता है। 'शोक' करुण रस का स्थायीभाव है। प्रिय वस्तु या व्यक्ति के नष्ट हो जाने से हमारे हृदय की जो व्याकुलता होती है, उसे ही शोक कहते हैं।[18] इस रस का वर्ण कपोत-सदृश (मलिन) तथा इसका देवता यमराज है।[19] इसमें चित्त की वृत्ति क्षुब्ध या आन्दोलित होती है। इस रस की उत्पत्ति बन्धुनाश, निराशा एवं प्रिय-वियोग के अनिष्ट से होती है। शोचनीय वस्तु और विनिष्ट बन्धु आदि करुण रस के आलम्बन विभाव हैं। क्रन्दन, रुदन, देवनिन्दा, निःश्वास, प्रलाप एवं उच्छवास आदि इसके अनुभाव हैं। निर्वेद, विषाद, चिन्ता, मोह, ग्लानि, श्रम, जड़ता आदि इसके व्यभिचारी भाव माने गए हैं।[20] इन सब के संयोग से शोक नामक स्थायी भाव की करुण रस के रूप में प्रतीति होती है। लेखक ने इस महाकाव्य में करुण रस का निरूपण इस प्रकार किया है -

दुखस्य वार्ता घटिया तदैका,
अल्पायु काले किल शीतलायाः।
कोपाच्च नेत्रे विगते तु तस्य,
हा ! हा! इदं दुःखद कारकं वै।।[21]

उस समय एक बड़ी दुखद घटना घटी कि छोटी आयु में ही शीतला माता के प्रकोप से विरजानन्द जी के नेत्र चले गए।हाय् यह बहुत दुःखदायक हुआ।

प्रस्तुत पद्य में 'गुरु विरजानन्द जी' आश्रय तथा उनकी 'आंखें' आलम्बन विभाव हैं। इसमें नेत्रहीनता अनुभाव है। शीतला माता का प्रकोप उद्दीपन विभाव है। विषाद एवं चिन्ता इसमें व्यभिचारी भाव हैं। इन सभी से परिपुष्ट हुआ 'नेत्रहीनता' शोक स्थायीभाव करुण रस की अभिव्यक्ति कराता है।

कथापि च -

तस्मिन्नसमये योगी, स तु शाहवाज पुरे सुनगरे चासीत्।
शिष्यास्तु काशगञ्जात्, प्रेषितवान्सूचना दयानन्दं वै।।
तस्य हि तस्मिन्काले, ख्यातेः सर्वत्र विजय महापताका।
भूमावस्यामतनोत्, स्वामिनश्च नित्यशः सु विदुषां मध्ये।।
मुनिर्दयानन्दोऽयं विरजानन्दस्य समाचारं श्रुत्वा।
महद् विषादं गतवान्, विरक्तः सन्नपि मनसि रुरोदबहुलम्।।

उस समय योगी दयानन्द शाहवाजपुर नगर में थे। उनके शिष्यों ने काशगंज से उनको सूचना भेजी थी। उस स्वामी की उस समय ख्याति की विजय महा पताका सभी स्थानों पर यहां नित्य प्रति अच्छे विद्वानों के बीच फहरा चुकी थी। दयानन्द विरजानन्द की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत शोक में पड़ गये और विरक्त होते हुए भी मन में बहुत रोए।

उपर्युक्त पद्यों में दयानन्द आश्रय तथा विरजानन्द आलम्बन विभाव है। इमें शाहवाजपुर नगर उद्दीपन विभाव है। शोक में पड़ जाना यहां अनुभाव है। विषाद आदि इसमें व्यभिचारी भाव है। इन सब से अभिव्यक्त होकर 'शोक' नामक स्थायी भाव 'करुण' रस की प्रतीति कराता है।

अद्‌भुत रसः

'विस्मय' जिसका स्थयीभाव है, वह अद्‌भुत रस है। अलौकिक वस्तुओं के श्रवण या दर्शन आदि से चित्त का जो एक विकास होता है, उसे ही विस्मय कहते हैं।[22] 'गन्धर्व' इसका देवता है यह 'पीत' वर्ण वाला होता है। अलौकिक वस्तु को इसका आलम्बन विभाव तथा अलौकिक वस्तु के गुणों का कीर्तन इसका उद्दीपन विभाव होता है।[23] इसके अनुभाव स्वेद, रोमांच, अस्पष्ट स्वर, स्तम्भ, नेत्र-विकास तथा घबराहट आदि माने गए हैं।[24] हर्ष, आवेग, वितर्क, सम्भ्रान्त आदि इके व्यभिचारी भाव हैं। इन सभी लक्षणों से परिपुष्ट अद्‌भुत रस होता है। इस महाकाव्य में लेखक ने अद्‌भुत रस का समावेश इस प्रकार किया है-

प्रज्ञाचक्षुः सन्ध्यां, गहनां निद्रां यदा गतवानसौ।
रात्रौ तस्यां कुटयां सहसा तत्राश्रृणोद्वाणीम्।।
भो स्वामिन् गच्छत्वं, ह्यस्मात् स्थानात् क्वचिदन्यत्र पुरे।
सदुपदेशं च कर्तुं लब्धा सिद्धिस्त्वयानूनम्।।
निद्रां त्यक्त्वा शीघ्रं विरजानन्दश्च यदा जागृतवान्।
स कुटीं परितोऽपश्यन्नासीत् कोऽपि हि मनुजो बहिः।।
तां वाणीं सश्रुत्वा, विरजानन्दश्चकितोऽभूत्सद्यः।
अचिन्त्यत् तदा स्थित्वा प्रभो हि लीला तव विचित्रा।।[25]

वे स्वामी सन्ध्या समय जब गहरी नींद में सोये थे। तब उस कुटी में उन्होंने एकदम वहां आवाज सुनी। हे! स्वामी तुम इस स्थान से अन्यत्र कहीं उपदेश करने हेतु चले जाओ। निश्चित रूप से तुम्हारे द्वारा सिद्धि प्राप्त की जायेगी। विरजानन्द जब नींद त्यागकर जागे और उन्होंने कुटिया के पास देखा वहां कोई मनुष्य नहीं था। वे विरजानन्द उस वाणी को सुनकर चकित हो गए और मन में विचार करने लगे कि प्रभो तेरी लीला विचित्र है।

निम्न पद्यों में 'गुरु विरजानन्द जी' आश्रय हैं। विचित्र वाणी यहां आलम्बन विभाव है। विचित्र वाणी का उपदेश देना उद्दीपन विभाव है। उनका आश्चर्य चकित होना अनुभाव है। वाणी को सुनकर उत्पन्न होने वाला हर्ष ही व्यभिचारी भाव है। वाणी को सुनकर जो विचित्र भाव हैं, वही विस्मय स्थायीभाव है। इन सबसे परिपुष्ट हो करके विस्मय स्थायीभाव नामक अद्‌भुत रस अभिलक्षित होता है।

शान्त रसः

'शम' रूपी स्थायी भाव वाला शान्त रस माना गया है। शम को निर्वेद भी कहा जाता है। वैराग्य की दशा में आत्मतृप्ति से मिलने वाला आनन्द शम या निर्वेद कहलाता है।[26] उत्तम प्रकृति के व्यक्ति इसके आश्रय होते हैं। 'कुन्द पुष्प' इसका वर्ण और 'श्री नारायण भगवान्' इसके देवता हैं।[27] सांसारिक विषयों की निःसारता तथा अनित्यता का ज्ञान होना अथवा परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होना ही इसका आलम्बन विभाव है। तीर्थ स्थान, महापुरुषों की संगति, पवित्र आश्रम आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। रोमांचादि इसके अनुभाव हैं। इसी प्रकार निर्वेद, स्मरण, मति, जीवों पर दया हर्षादि इसके व्यभिचारी माने गए हैं। इन सबके माध्यम से परिपुष्ट होने वाला शांत रस कहलाता है। इस महाकाव्य में लेखक के द्वारा उदाहराणार्थ शान्त रस का विवेचन इस प्रकार दिया गया है -

सत्संग कथां श्रौतुं स्वामी लोकैः सह धर्मस्थानम्।
गतवान्सुष्ठु स्वाद्यं तत्रैव च भोजनं कृतवान्।।[28]

स्वामी जी सत्संग एवं कथा सुनने के लिए लोगों के साथ धर्म स्थलों पर जाने लगे और वहां जाकर उका आस्वादन करते तथा वहीं भोजन भी कर लेते।

उपर्युक्त पद्य में उत्तम प्रकृति के व्यक्ति विरजानन्द आश्रय तथा उनका सत्संग व कथा सुनना आलम्बन विभाव है। इसमें धार्मिक स्थान उद्दीपन विभाव है। आनन्द की अनुभूति होना अनुभाव है। हर्ष इसमें व्यभिचारी भाव है। इन सबके संयोग से यहां पर शान्त की प्रतीति होती है।

अतः निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत महाकाव्य में 'हरिसिंह शास्त्री' के द्वारा 'गुरुगौरवीयम् महाकाव्य' में रस-योजना का सम्यक् विश्लेषण किया गया है।

सदर्भ

1. ऋग्वेद, 1.23.13
2. ऋग्वेद, 1.37.5
3. तै० उ०, 2.7
4. नाट्यशास्त्र, 1.17
5. नाट्यशास्त्र, 6.32
6. वही
7. डा० कृष्ण कुमार, लेखक, अलंकारशास्त्र का इतिहास, पृ० 234
8. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।
   रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।
   विभावानुभावास्तत कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
   व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।। काव्यप्रकाश 4/27-28
9. अक्षरं परमं ब्रह्म ..... श्रृंगार इति गीयते। अग्निपुराण, पृ० 373-74
10. शृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।
    बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।। ना० शा०, 6.15
11. एवमेते रसा ज्ञेया नव लक्षण लक्षिताः।
    अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भावानामपि लक्षणम्।। वही, 6.32
12. शृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः
    बीभत्साद्भुत-शान्तश्च काव्ये नव रसाः स्मृताः।।
13. शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य। दशरुपक 4.35
14. शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
    वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तया मतः।। सा० द० 3/182
15. प्रसिद्धोऽपि प्रबन्धानां नानारस-निबन्धने।
    एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता।। ध्वन्यालोक अ०-3.2
16. शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यतें
    आङ्गनि सर्वेऽपि रसाः, सर्वे नाटकसन्धयः।। सा० द० 6.317
17. इष्टनाशादिभिश्चेतोवैकलवयं शोकशब्दभाक्। वही, 3.111
18. इष्टनाशादिविष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
    धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः।। वही, 3.222
19. अनुभावा दैवनिन्दाभूपातक्रन्दितादयः।
    वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वासस्तम्भप्रलपनानि च।।

निर्वेदमोहापस्मारव्यधिम्लानिस्मृतिश्रमाः।
विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः।। वही, 3.224, 225

20. गुरुगौरवीयम् महाकाव्यम्, 2.21 पृ० 33
21. गुरुगौरवीयम महा०-14-23, 24, 25, पृ० 149
22. विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः। सा० द० 3.180
23. पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम्।
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः।। सा० द०-3.243
24. स्तम्भः रोमाञ्चगद्गदस्वरसम्भ्रमाः।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।। वही, 3.244
25. गुरुगौरवीयम् महाकाव्यम्, सर्ग-6- 19, 20, 21, 22, पृ० 74
26. शमो निरीहावस्थायामात्मविश्रामजं सुखमस्। सा० द०, 3.180
27. कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः।
अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिःसारता तु या।। वही, 3.246
28. गुरुगौरवीयम्, महा०, सर्ग-6-13, पृ० 73

भारत का विभाजन और शरणार्थी समस्या

डॉ० सुखबीर सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय भेरियां (पिहोवा) कुरुक्षेत्र

भारत को 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली, उसके साथ ही देश का बंटवारा भी हो गया। भारत और पाकिस्तान नाम से 2 देशों का उदय हुआ। बंटवारे से 1 करोड लोग इधर से उधर हुए। यह बंटवारा धर्म पर आधारित तथा दुनिया का सबसे बड़ा बंटवारा माना जाता है। जिसमें लोग कहीं बैलगाड़ी से, कही ट्रेन से तो कही पैदल ही अपना घर बार छोड़कर दूसरी जगह जा रहे थे, कभी सेना की सुरक्षा में सफर करते तो कभी अपनी तकदीर पर यकीन करते थे। शरणार्थियों के लिए चलाई गई विशेष रेलगाड़ी जो बिल्कुल ही खाली थी, फिरोजपुर स्टेशन पर दोपहर में प्रवेश कर रही थी। ट्रेन का ड्राइवर डर से पीला पड़ा हुआ था और गार्ड कि उसके कंपार्टमेंट में ही हत्या कर दी गई थी। इंजन में कोयला झोंकने वाले ड्राइवर का सहायक गायब था, ट्रेन के दो डिब्बों को छोड़कर सभी रक्त रंजित थे। तीसरे दर्जे के डिब्बे में खून से सने हुए 300 व्यक्ति फर्श पर पड़े थे। लाहौर और फिरोजपुर के बीच मुसलमानों की हथियारबंद भीड़ ने ट्रेन को रोक कर उन सभी लोगों को दिन दहाड़े मार डाला था।[1]

पाकिस्तान से हिंदू और हिंदुस्तान से मुसलमान अपने अपने गंतव्य की ओर जा रहे थे। पश्चिमी पंजाब को छोड़ कर भाग रहे बहुत सारे हिंदुओं और सिखों को भारत सरकार ने कुरुक्षेत्र के पास एक अस्थाई शरणार्थी शिविर में रखा था। विस्थापितों के इंतजाम के लिए मैदान में तंबुओं का एक विशाल शहर खड़ा हो गया। ऐसे शरणार्थियों की संख्या कई बार प्रतिदिन बीस हजार या उससे ज्यादा भी हो जाती थी। शुरू शुरू में यह शिविर शरणार्थियों के लिए केवल एक लाख व्यक्तियों के रुकने तक के लिए बनाए गए थे, लेकिन 3 गुना ज्यादा लोग इनमें रह रहे थे। इन नए बाशिंदों को खिलाने के लिए प्रतिदिन 100 टन आटे और बड़ी मात्रा में नमक, चावल, दाल, चीनी और केरोसिन की जरूरत पड़ती थी। सरकार की तरफ से मुफ्त में इन चीजों की व्यवस्था भी की गई थी और इस कार्य के अंदर देसी और विदेशी समाजसेवियों का एक समूह यूनाइटेड काउंसिल फॉर रिलीफ एंड वेलफेयर सरकार की मदद भी कर रहा था।

हिंदू शरणार्थियों के भोजन और रहने की व्यवस्था तो सरकार को करनी ही थी, इसके साथ ही उनको कपड़े और मनोरंजन का ख्याल भी रखना था। सर्दी का मौसम नजदीक आ रहा था और सरकार को यह एहसास हो गया था कि इन शरणार्थियों के लिए मुश्किल भरा समय आने वाला है। इसीलिए यूनाइटेड काउंसिल फॉर रिलीफ एंड वेलफेयर ने दिल्ली से कई फिल्म प्रोजेक्टरों को मंगवाने का इंतजाम भी किया और उनको जगह-जगह शरणार्थियों के शिविरों के अंदर लगाया गया। उनके ऊपर फिल्मों को दर्शाया गया, जो कपड़े के बड़े-बड़े पर्दो के ऊपर इंतजाम किया गया था। जहां पर पंद्रह हजार तक की भीड़ एक साथ फिल्म को देख सकती थी और वह अपना कुछ समय तमाम तकलीफ और दर्द भूल जाते थे उन पर क्या-क्या जुल्म हुए हैं और क्या-क्या यातनाएं दी गई। उनके घर और बार छुट गए और वे घायल भी हुए थे, लेकिन फिर भी वे कुछ समय के लिए हंस लेते थे और उनका थोडा सा मन बहल जाता था और उनका मनोरंजन हो जाता था।[2]

शरणार्थियों के लिए स्थाई आवास और उनके लिए रोजगार की व्यवस्था करना सरकार के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द था। उन खेतिहर शरणार्थियों के मन में एक ही विचार आ रहा था कि हमें केवल जमीन का कोई छोटा सा टुकड़ा मिल जाए। जिसके ऊपर हम खेती कर लें, क्योंकि जमीन के लिए उनकी भूख बड़ी ही स्वभाविक थी। शुरू में हर एक शरणार्थी को 44 हेक्टेयर जमीन दी गई। भले ही पाकिस्तान में उनके पास कितनी ही जमीन क्यों ना रही हो। खेती के लिए बीज और उपकरण खरीदने के लिए सरकार ने उन शरणार्थियों को कर्ज देने का इंतजाम किया। इधर जमीन के इन टुकड़ों पर खेती का काम शुरू हुआ, उधर सरकार

ने जमीन के लिए आवेदन मांगने शुरू कर दिए और पाकिस्तान में उनके पास कितनी जमीन थी इसका सबूत देने को कहा। ज्यादातर लोगों ने गांव के अंदर उनकी कितनी जमीन थी इससे बढ़-चढ़कर के अपनी जमीनें बताई। अभी उनको आवंटित जमीन में कटौती कर दी जाती और कुछ लोगों को समय के अनुसार जेल में भी भेज दिया गया। इससे लोगों के मन में थोड़ा सा डर पैदा हुआ और अब उन्होंने कार्यवाही के डर से जमीन को सही रूप में बताना शुरू कर दिया।

उस अभियान का नेतृत्व इंडियन सिविल सर्विस के अफसर सरदार तरलोक सिंह के हाथों में था, जो उस समय पुनर्वास कार्यक्रम के महानिदेशक था। तरलोक सिंह लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से पढ़ कर के आए थे और उन्होंने उसके लिए एक प्रयोग भी किया। यह प्रयोग था स्टैंडर्ड एकड़ या जमीन का विशेष टुकड़ा या ग्रेडेड कट जमीन की वर्गीकृत कटौती स्टैंडर्ड एकड़ जमीन का वो टुकड़ा था, जिस पर 10 या 11 मांउड़ यानी लगभग 40 किलोग्राम चावल पैदा हो सकता था।3

नवंबर 1949 तक तरलोक सिंह और उनके कर्मचारियों ने मिलकर दो लाख पचास हजार लोगों को जमीन आवंटित कर दी थी। अपनी उपजाऊ और अच्छी तरह से सिंचित जमीनों के बदले इन शरणार्थियों को पूर्वी पंजाब में बंजर जमीन मिली। इसके अलावा ग्रेडेड कट नियम के हिसाब से उन्हें कम जमीन मिली लेकिन उन शरणार्थियों में कुछ कर गुजरने का जुनून था और अपनी जिंदगी को फिर से बसाने का और खुशहाल करने की इच्छा थी। वह दिन-रात अपने काम में जुट गए उन्होंने नए कुएं खोदे, नए मकान बनाए और अपने जीवन में फिर से मुस्कुराहट वापिस लेकर आए।

दूसरा शरणार्थी शिविर फरीदाबाद था। फरीदाबाद के निवासी ज्यादातर उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत के हिंदू शरणार्थी थे। सुधीर घोष नाम के एक सामाजिक कार्यकर्ता ने उन शरणार्थियों को इस बात के लिए राजी किया कि वह खुद ही अपना घर बनाए, हालांकि सरकार अपने लोक निर्माण विभाग के माध्यम से उनके लिए घर बनाना चाहती थी, लेकिन लोक निर्माण विभाग को उस समय लूट का विभाग कहकर पुकारा जाता था। फरीदाबाद देश की राजधानी दिल्ली से 30 मील दक्षिण में बसाया गया। इस काम में जो समूह सक्रिय था उनमें इंडियन कोऑपरेटिव यूनियन नाम का संगठन प्रमुख था, जिसका नेतृत्व कमलादेवी चट्टोपाध्याय कर रही थी। कमलादेवी चट्टोपाध्याय एक समाजवादी और नारीवादी आंदोलनकारी थी, जो महात्मा गांधी की नजदीकी मानी जाती थी।[4]

फरीदाबाद में आईसीयू ने सहकारी समितियों और श्रम सेवा समूह का गठन किया इन संस्थाओं ने दुकानें और छोटे-छोटे कारखाने लगाए। इन कारखानों को और लोगों के घरों को बिजली मुहैया कराने के लिए बहुत कम समय में ही एक डीजल चलित बिजलीघर खड़ा कर लिया। इस बिजलीघर की मशीन कोलकाता में पड़ी हुई थी। यह युद्ध हर्जाने के रूप में जर्मनी से आई थी। कोलकाता में इसे कोई इस्तेमाल करने को तैयार नहीं था। फिर इसे फरीदाबाद भेज दिया गया। एक जर्मन इंजीनियर की सहायता से इसको ठीक कराया गया और अप्रैल 1951 में खुद जवाहरलाल नेहरू इसके लोकार्पण में आए और जैसे ही इसका बटन दबाया चारों तरफ प्रकाश फैल गया और लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई।

इसी बीच दिल्ली में भी हजारों शरणार्थियों ने अपना डेरा डाल दिया था। 1911 तक दिल्ली की संस्कृति पर इस्लाम की छाप थी। सन् 1947 के बाद दिल्ली आजाद भारत की सरकार का मुख्यालय बन गई थी। शहर के बीचो बीच कनाट सर्कस नाम का एक भव्य बाजार था, जिसे रसल ने बनाया था। अब वह जगह भी शोर-शराबे और अव्यवस्था में तब्दील हो चुकी थी। मुल्क के बंटवारे के बाद दिल्ली में करीब पांच लाख शरणार्थी बसने आ गए थे, जिनको जहां भी जगह मिली वे वहीं बेरोकटोक रहने लगे। उन्होंने प्लेटफार्म, शहर की गलियों, फुटपाथ पर और हर एक रह सकने लायक जगह पर अपना कब्जा जमा लिया। उन्होंने अनेक कॉलोनियां बसा ली और उन कॉलोनियों के नाम के आखिर में नगर लगे हुए हैं। जैसे पटेल नगर, राजेंद्र नगर और लाजपत नगर जैसे हिंदू, कांग्रेसी नेताओं के नाम पर हैं। ये शरणार्थी इन जगहों को बहुत ज्यादा पसंद करते थे, वास्तव में दिल्ली जो कभी मुगलों का शहर था। बाद में अंग्रेजों का शहर बना अब यह पंजाबियों का शहर बन चुका था।[5]

एक और शहर मुंबई जिसमें 1948 तक 5 लाख के करीब शरणार्थी आ चुके थे, यह शरणार्थी सिंध पंजाब और सीमा प्रांत से आए हुए थे। इन शरणार्थियों ने मुंबई की आवास की विकट समस्या को और गंभीर बना दिया और अनुमान के अनुसार दस लाख लोग फुटपाथ ऊपर सो रहे थे तथा झोपड़ियों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। खचाखच भरे कमरों में 15 से 20 लोग रहने को मजबूर थे।

मुंबई में 5 शरणार्थी शिविर थे, उनमें रहने वालों की हालत बहुत खराब थी। कॉल वाड़ा शिविर में दस हजार चार सौ शरणार्थी बैरकों में रह रहे थे। प्रत्येक परिवार को 36 वर्ग फीट जगह मुहैया कराई गई थी। पूरे शिविर में महज 12 पानी के नल थे, कोई

डॉक्टर नहीं था, बिजली नहीं थी, स्कूल नहीं था। जगह-जगह से आए हुए शरणार्थी पूरे मुंबई शहर और पश्चिमी भारत के अन्य शहरों में भी फैल गए। मुंबई के अलावा इन शरणार्थियों की खासी आबादी पुणे और अहमदाबाद में बस गई। अहमदाबाद में एक शरणार्थी ने तो यहां तक कहा कि हम पाकिस्तान में जानवर और चिड़ियों को जो खाना खिलाते थे, उससे भी बेकार खाना खाने के लिए हम मजबूर हैं।[6]

शरणार्थियों की बाढ़ ने एक और महानगर कलकत्ता को भी बदल दिया। बंटवारे से पहले ही पूर्वी बंगाल के समृद्ध हिंदू परिवार अपनी संपत्ति बेचकर कलकत्ता की तरफ आ गए। ये लोग या तो श्रमिक थे या किसान। पूर्वी बंगाल में कई सांप्रदायिक दंगे भी हुए, जिसने बहुत सारे हिंदुओं को सरहद पार कर हिंदुस्तान आने को मजबूर कर दिया। इतिहासकारों के अनुसार इनकी संख्या 17 लाख के करीब बताई गई है। अब मुश्किल यह आई कि इतने सारे लोगों को कहां बसाए। इसलिए कई लोगों ने शहर के रेलवे स्टेशनों पर अपना आवास बना लिया। यहां इनके बिस्तर और दूसरा सामान प्लेटफार्म पर इधर-उधर बिखरे रहते थे। ये वहीं पर रहते खाते, सोते और नित्य क्रिया आदि करते। भिन-भिनाती मक्खियां प्लेटफार्म पर घूमती रहती, वही छोटे-छोटे बच्चे पड़े रहते और लोग डायरिया जैसी बीमारियों के शिकार बने। कुछ शरणार्थियों ने खाली मकानों पर कब्जा कर लिया, तो कईयों ने सड़कों और रेलवे लाइन के किनारे खाली पड़ी जमीन पर घर बना लिया। यह शरणार्थी रात को तेजी से इन जगहों पर जाते और अपना अस्थाई घर खड़ा कर देते थे। पश्चिमी बंगाल की सरकार ने जाने-अनजाने में इन शरणार्थियों को कानून अपने हाथ में लेने को मजबूर कर दिया। 16 अगस्त 1948 को जदुनाथ सरकार ने पूर्वी बंगाल की हिंदू शरणार्थियों की तुलना लुई चौदवें के शासनकाल से कर डाली थी। सितंबर 1948 में एक ऑल बंगाल रिफ्यूजी काउंसिल ऑफ एक्शन का गठन किया गया। उचित मुआवजे और नागरिकता के हक की मांग में जुलूस और प्रदर्शन निकाले गए। इस आंदोलन के नेता चाहते थे कि कलकत्ता की सड़कों पर शरणार्थियों का आक्रामक प्रदर्शन किया जाए और सरकार पर दबाव डाला जाए। पुलिस ने लोगों को हटाने के लिए लाठी का इस्तेमाल किया और पानी की बौछारें उन पर डाली और यह घटनाएं अक्सर होती रहती थी।[7]

बंटवारे की सबसे अधिक पीड़ा महिलाओं को झेलनी पड़ी। इसमें सभी धर्म हिंदू, सिक्ख और मुस्लिम महिलाएं शामिल थी। किसी भी लड़ाई में महिलाओं को इतना नहीं झेलना पड़ा, जितना इस लड़ाई के अंदर उनको मारा गया। उनके अंग भंग किए गए, उनके परिवारजनों द्वारा उनका परित्याग कर दिया गया। आजादी के बाद दिल्ली और मुंबई के वैश्यालो में शरणार्थी महिलाओं की बाढ़ सी आ गई, क्योंकि उनके परिवार वालों ने उनका परित्याग कर दिया था। वे उन दुर्घटनाओं का शिकार हुई और जिम्मेदार ठहरा दी गई जो किसी और ने उनके साथ उनकी मर्जी के बगैर किया था।[8]

1947 की गर्मियों में जैसे ही पंजाब के गांव में हिंसा की आग फैली हिंदुओं और सिक्खों ने मुस्लिम महिलाओं का जबरन अपहरन करना शुरू कर दिया। वे महिलाओं को अपने साथ उठा ले जाते थे। सुबे के दूसरे हिस्सों में भी ऐसा ही कुछ हुआ। नौजवान हिंदू और सिख लड़कियों को मुसलमानों ने उठा लिया और उनको अपने कब्जे में ले लिया।

भारतीय पक्ष से अपहरण की गई महिलाओं को वापस लाने का अभियान मृदुला साराभाई और रामेश्वरी नेहरू के नेतृत्व में शुरू हुआ। यह दोनों ही महिलाएं अमीर परिवारों से आती थीं। उन्होंने महिलाओं को यह आश्वस्त किया कि उनके चरित्र के बारे में हमें कोई संदेह नहीं है। हम उन्हें प्यार के साथ वापस लाना चाहते हैं, क्योंकि इसमें उनकी कोई गलती नहीं है। उनका जबरन अपहरण कर लिया गया तथा हम पूरे सम्मान के साथ उन्हें वापस लाना चाहते हैं और बड़े प्यार के साथ उनको घरों में रखना चाहते हैं।[9]

देश में खाद्यान्नों की कमी शरणार्थी समस्या में और भी बढ़ावा दे रही थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के खत्म होने पर खाद्यान्नों में कमी आई और लोग इमली का बीज, ताड़ के फल के पानी को उबालकर भोजन के रूप में इस्तेमाल करने को मजबूर थे। इसके खाने से लोगों के पेट फूल रहे थे, डायरिया हो जाता था और कभी-कभी मौत भी हो जाती थी।

आजादी के बाद जो शरणार्थी भारत आए थे उनकी संख्या लगभग 80 लाख के करीब थी, यह आबादी आस्ट्रिया और नार्वे जैसे छोटे यूरोपीय देशों की आबादी से ज्यादा बड़ी थी। यह संख्या इतनी बड़ी थी जितने लोग विशाल ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में रहते थे, इतने बड़े पैमाने पर लोगों को फिर से बसाना एक बहुत ही मुश्किल भरा कार्य था। इसमें कई कमियां और गलतियां भी हुई। शरणार्थियों के पुनर्वास में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, हालांकि यह कार्य संपन्न भी हो गया, लेकिन लोगों को अनेक कष्टों को सहन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। हिंदुस्तान को इस प्रक्रिया में बहुत कुछ सहन करना पड़ा।10

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 ऐल सी जैन, द सिटी ऑफ द फरीदाबाद स्टोरी, नई दिल्ली, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग, कंपनी, 1998।

2 वी एन दत्ता, रिफ्यूजीस एंड द अर्बन डेवलपमेंट ऑफ ग्रेटर दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस,1993।

3 आर एम लाला, कॉल वोडा लैंड मार्क ऑफ स्वराज, द करंट, 3 मई 1950,।

4 प्रफुल्ल कुमार चक्रवर्ती, द रिफ्यूजीस एंड द लेफ्ट पॉलीटिकल सिंड्रोम इन वेस्ट बंगाल, कोलकाता, 1999 पृष्ठ संख्या 33।

5 सर जदुनाथ सरकार, दा रिफ्यूजी प्रॉब्लम इन इंडिया, द मॉडर्न रिव्यू, सितंबर 1948।

6 वही।

7 अर्पणा बसु मृदुला साराभाई, रिबेल विद ए कॉज दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस 1990, 6 अध्याय, 8।

8 रितु मेहता, कमला भसीन, इन इंडिया पार्टीशन, नई दिल्ली, वाइकिंग 1998, अध्याय 4।

9 आर एम लाला रिफ्यूजी, इज द करंट, 29 मार्च 1950।

10 वही।

गायन एवं वादन में अलंकार योजना

डॉ० सरिता कुमार

(एसोसिएट प्रोफेसर) बी० ए० (ऑनर्स), एम० ए० संगीत-वादन, एम० फिल०, पी०एच०डी०, राजकीय महिला महाविद्यालय, सैक्टर-14, करनाल (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

संगीत की सम्पूर्ण सामग्री चाहे वह अलंकार हों, गत-बन्दिश हो, तान-तोड़े हों या फिर विभिन्न प्रकार की लयकारियाँ हो, सभी गायन-वादन के सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं। अलंकार संगीत का आभूषण है। जिस प्रकार आभूषण द्वारा शारीरिक शोभा बढ़ती हैं। उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन एवं वादन की शोभा बढ़ती हैं। अलंकारों का प्रयोग साहित्य और संगीत एवं दोनों में किया जाता है। गायन एवं वादन में स्वरों की वह विशिष्ट रचना, चाहे वह रागानुसार हो या वर्ण समुदाय (अलंकार) के रूप में हो, उसके बिना शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत में सौन्दर्यवर्धन, परिपक्वता, कल्पना व सृजनशीलता असम्भव है।

मुख्य-शब्दः गायन एवं वादन, शास्त्रीय संगीत।

किसी भी कला को आत्मसात् करने के लिए अभ्यास सर्वोच्च साधन है। शिक्षा यदि बीज हैं, तो अभ्यास खाद और पानी हैं। अर्थात् भूमि रूपी हृदय में सद्गुरु से प्राप्त शिक्षा-रूपी शोधित बीज को बो देने और उसमे अभ्यास रूपी खाद व पानी देने से समय पर वही बीज वृक्ष के रूप में फलदायक हो जाता है। ठीक इसी प्रकार संगीत में स्वर ज्ञान, रागविस्तार, आलाप विस्तार, तान विस्तार के लिए अलंकारों का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक हैं। संगीत साधना का विषय है। इसमें धैर्य और एकाग्रता का होना अत्यन्त आवश्यक है। संगीत एक क्रियात्मक विषय हैं और कोई भी क्रियात्मक विषय शाब्दिक रूप में सिखाना व सीखना कठिन है। इसलिए संगीत की शिक्षा प्रत्यक्ष में जितनी अच्छी हो सकती हैं, उतनी शाब्दिक वर्णन से सम्भव नहीं हैं। अतः संगीत विद्या सीखने के लिए योग्य गुरु, समुचित शिक्षा तथा लग्न के साथ अभ्यास ये तीनों बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। तभी विद्यार्थी संगीत के क्रियात्मक पक्ष में स्वर-भेद, राग-भेद, पल्टे, तान, लय-ताल इत्यादि को पूर्णतया आत्मसात् करने में सफल होंगे।

सर्वप्रथम प्रार्रभिक विद्यार्थियों को स्वर ज्ञान के लिए एक ही स्वर पर 'स, स, स, स चार मात्राओं का छंद पूरे सात स्वरों पर आरोह-अवरोह का अभ्यास किया जाना चाहिए। गायन-वादन में अलंकारों का अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए। शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी के बैठने का तरीका, वाद्य को पकड़ने का तरीका व अंगुलियों का रखाव, मिज़राब व जवे के बोलों एवं प्रहार का ढंग, मुखाकृति, स्वर के लिए तानपूरे का प्रयोग उचित रूप से हो। संगीत विद्यार्थियों को शिक्षा के प्रारंभिक चरण में स्वर ज्ञान के पश्चात् अलंकार सिखाए जाते हैं, क्योंकि प्रस्तुतिकरण में आलाप, तान-तोड़ों के विस्तार एवं अन्य क्रियाओं में अलंकार अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। गायन-वादन में सरगम व अलंकार राग को सजाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पं० शारंगदेव ने अलंकार का प्रयोजन-ह्गायन-वादन में रंजकता बढ़ाने के लिए, स्वरों की स्थिति के ज्ञान के लिए एवं वर्णों के विभिन्न अंगों को समझाने के लिए बताया है।ह

अलंकार की परिभाषाः

वर्ण की नियमित रचना को अलंकार कहते हैं। घरानेदार कलाकार इसको 'पलटा' भी कहते हैं। स्वर का शीघ्र ज्ञान होना व राग का विस्तार समझ में आना ही अलंकार का मुख्य उद्देश्य है। प्रत्येक अलंकार में आरोही और अवरोह यह दो वर्ण होते हैं। आरोही

अलंकार मध्य सप्तक के स से तार सप्तक के सं तक जाता है और अवरोही में तार सप्तक के सं से मध्य सप्तक के स तक आता है। अत: स्वरों के निश्चित क्रम को अपना कर उसका आरोह, अवरोह करने को अलंकार कहते हैं।

संगीत रत्नाकर के अनुसार अलंकार की परिभाषा :

ह्यविशिष्ट वर्ण संदर्भलंकारं प्रचक्षत्ते[1]

अर्थात् विशिष्ट वर्ण सन्दर्भ को या किसी नियत क्रम स्वरों के सन्दर्भ को अलंकार कहते हैं।

शशिना रहितेव निशा, विजलेव नदी लता विपुष्पेव।

अविभूषिते कांता गीतिरलंकारहीना स्यात्।।[2] *– अभिनव रागमंजरी*

अर्थात् जैसे चाँद बिना रात, जल बिना नदी, फूल बिना लता, आभूषण बिना स्त्री शोभा नहीं देती उसी प्रकार अलंकार बिना गीत शोभा को प्राप्त नहीं होते।

अलंकार की कई कड़ियां होती हैं, जो एक-दूसरे से गुथी हुई चलती हैं। स्थूल रूप से अलंकारों को निम्न प्रकार से बांटा जा सकता है।

1. शब्दालंकार – यह ध्वनि व शब्द प्रधान होता है।
2. वर्णालंकार – यह स्वर व वर्ण प्रधान होता है।

जैसा कि उक्त विवरण में बताया जा चुका हैं कि पं॰ शारंगदेव जी ने नियमित वर्ण समुदायों को अलंकार की परिभाषा दी है। अत: वर्णालंकार में स्वर की प्रधानता के कारण इसका संबंध वर्ण-समुदाय से है। संगीत में वर्णालंकार प्राण समान माना गया है क्योंकि रागाभ्यास में अलंकारों का प्रयोग रागानुसार आरोह-अवरोह में स्वरों के क्रम द्वारा प्रयोग किया जाता है। उदाहरण स्वरूप राग शुद्ध कल्याण का आरोह-अवरोह निम्न प्रकार से है।

आरोह – स रे ग प ध सं।

अवरोह – सं नी ध प मं ग रे स।

राग शुद्ध कल्याण के आरोह में पांच स्वर लगते हैं और अवरोह में सात स्वरों का प्रयोग किया जाता है। अत: इस राग में अलंकार योजना भी इसी नियम के अनुसार की जायेगी। लेकिन जब केवल अलंकारों का अभ्यास करना है तो उसका एक विशेष नियम हैं कि जो क्रम आरोह में होगा उसका विपरीत क्रम उसके अवरोह में होगा।

जैसे –

आरोह – स रे, रेग, गम, मप, पध, धनी, नीसं।

अवरोह – संनी, नीध, धप, पम, मग, गरे, रेस।

आरोह –	स्वर – स	रे	ग	म	प	ध	नी	सं	
	बोल – दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	
अवरोह –	स्वर – सं	नी	ध	प	म	ग	रे	स	
	बोल – दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	

2.	आरोह –	सस	रेरे	गग	मम	पप	धध	नीनी	संसं
		दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा
	अवरोह –	संसं	नीनी	धध	पप	मम	गग	रेरे	सस
		दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा
1	आरोह –	सग	रेम	गप	मध	पनी	धस		
		दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा		
	अवरोह –	संध	नीप	धम	पग	मरे	गस		
		दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा		

1. आरोह – सरेग^{म} रेगम^{म} गमप^{म} मपध^{म} पधनी^{म} धनीस^{म}
   दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा
   अवरोह – ^{म}संनीध ^{म}नीधप ^{म}धपम ^{म}पमग ^{म}मगरे ^{म}गरेस
   दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा

2. आरोह – सरे^{म}स रेग^{म}रे गम^{म}ग मप^{म}म पध^{म}प धनी^{म}ध नीस^{म}नी
   अवरोह ^{म}संनीस^{म} नीधनी^{म} धपध^{म} पमप^{म} मगम^{म} गरेग^{म} रेसरे^{म}

(मींड अलंकार)

3. अरोह सरे^{म}स^{म}गरेस, रेग^{म}रे^{म}मगरे, गम^{म}गप^{म}मग, मप^{म}म^{म}धपम,
   दारादादारादा दारादादारादा दारादादारादा दारादादारादा
   पध^{म}प नी^{म}धप, धनी^{म}ध^{म}संनीध
   दारादादारादा दारादादारादा
   अवरोह ^{म}संनीस^{म}धनीस^{म} नीधनी^{म}पधनी^{म} धपध^{म}मपध^{म} पमप^{म}गमप^{म}
   दारादादारादा दारादादारादा दारादादारादा दारादादारादा
   मगम^{म}रेगम^{म} गरेग^{म}सरेग^{म}
   दारादादारादा दारादादारादा (छन्द अलंकार)

4. आरोह – ^{म}गरेस ^{म}मगरे ^{म}पमग ^{म}धपम ^{म}नीधप ^{म}संनीध
   दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा
   अवरोह – धनीस^{म} पधनी^{म} मपध^{म} गमप^{म} रेगम^{म} सरेग^{म}
   दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा दारादा

1. सरेगम, रेगमप, गमपध, मपधनी, पधनीसं
   दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा
   संनीधप, नीधपम, धपमग, पमगरे, मगरेस
   दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा

1. आरोह– सरेगम^{म} ^{म}मगरेस रेगमप^{म} ^{म}पमगरे गमपध^{म} ^{म}धपमग
   मपधनी^{म} ^{म}नीधपम
   दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा
   दारादारा दारादारा
   पधनीस^{म}संनीधप
   दारादारादारादारा
   अवरोह– ^{म}संनीधप पधनीस^{म} नीधपम मपधनी^{म} धपमग गमपध^{म} पमगरे
   रेगमप^{म}
   दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा दारादारा
   दारादारा दारादारा
   मगरेस सरेगम^{म}
   दारादारा दारादारा (चौगुन की लयकारी)

2.	आरोह–	सरेग^{म}मगरे	रेगम^{म}पमग	गमप^{म}धपम	मपध^{म}नीधप	
		दारादारादारा	दारादारादारा	दारादारादारा	दारादारादारा	
		पधनी^{म}संनीध				
					दारादारादारा	
	अवरोह–	^{म}संनीधपधनी^{म}	^{म}नीधपमपध^{मम}धपमगमप^{म}		^{म}पमगरेगम^{म}	
		दारादारादारा	दारादारादारा	दारादारादारा	दारादारादारा	
		म^{म}गरेसरेग^{म}				
		दारादारादारा			(छःगुन की लयकारी)	
3.	आरोह–	सरेग–गगरेस	रेगम–ममगरे	गमप–पपमग		
		दारादा–दारादा	दारादा–दारादा	दारादा–दारादा		
		मपध–धधपम	पधनी–नीनीधप	धनीसं–संसंनीध		
		दारादा–दारादा	दारादा–दारादा	दारादा–दारादा		
	अवरोह–	धनींस–संसंनीध	पधनी–नीनीधप	मपध–धधपम		
		दारादा–दारादारा	दारादा–दारादारा	दारादा–दारादारा		
		गमप–पपमग	रेगम–ममगरे	सरेग–गगरेस		
		दारादा–दारादारा	दारादा–दारादारा	दारादा–दारादारा		
1.	आरोह–गमपध	सरेसग	सरेगम	रेगरेम	रेगमप	गमगप
		मपमध	मपधनी	पधपनी	पधनीसं	
	अवरोह–धपमग	संनीसंध	संनीधप	नीधनीप	नीधपम	धपधम
		पमपग	पमगरे	मगमरे	मगरेस	
2.	आरोह–धनीसंसं	सरेगग	रेगमम	गमपप	मपधध	पधनीनी
	अवरोह–गरेसस	संनीधध	नीधपप	धपमम	पमगम	मगरेरे
3.	आरोह–	सरेगम	रेगमप	गमपध	मपधनी	
		दारादारा	दारादारा	दारादारा	दारादारा	
	अवरोह–	संनीधप	मगरेस	सरेगम	पधनीसं	
		दारादारा	दारादारा	दारादारा	दारादारा	
4.	आरोह–धनीसंस^{म}	सरेग^{म}ग	रेगम^{म}म	गमप^{म}प	मपध^{म}ध	पधनी^{म}नी
		दारादारा	दारादारा	दारादारा	दारादारा	दारादारा
	दारादारा					
	अवरोह–^{म}गरेसस	^{म}संनीधध	^{म}नीधपप	^{म}धपमम	^{म}पमगग	^{म}मगरेरे
		दारादारा	दारादारा	दारादारा	दारादारा	दारादारा
	दारादारा					
					(सरल अलंकार)	

5.	आरोह– ऩपपपप	सरेऩसरेऩ	ऩगगगग	रेगऩरेगऩ	ऩममम	गमऩगमऩ
	ऩसंसंसंसं	मपऩमपऩ	ऩधधधध	पधऩपधऩ	ऩनीनीनी	धनीऩधनीऩ
	अवरोह– ममम	ऩसंनीऩसंनी	धधधध	ऩनीधऩनीध	पपपप	ऩधपऩधप
	ससस	ऩपमऩपम	गगगग	ऩमगऩमग	रेरेरेरे	ऩगरेऩगरे
					(छन्द अलंकार मींड)	
6.	आरोह– धनीऩसंनी	सरेऩगरे	रेगऩमग	गमऩपम	मपऩधप	पधऩनीध
	अवरोह– ऩगरेसरेऩ	ऩसंनीधनीऩ	ऩनीधपधऩ	ऩधपमपऩ	ऩपमगमऩ	ऩमगरेगऩ

(सरल अलंकार)

उपरोक्त अलंकार गायन एवं वादन में प्रारम्भिक तैयारी के लिए बहुत उपयोगी है। उक्त सभी अलंकार गायन–वादन दोनों में गाए–बजाए जाते हैं। संगीत की सम्पूर्ण सामग्री चाहे वह अलंकार हों, गत–बन्दिश हो, तान–तोड़े हों या फिर विभिन्न प्रकार की लयकारियाँ हो, सभी गायन–वादन के सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं। अलंकार संगीत का आभूषण है। जिस प्रकार आभूषण द्वारा शारीरिक शोभा बढ़ती हैं। उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन एवं वादन की शोभा बढ़ती हैं। अलंकारों का प्रयोग साहित्य और संगीत एवं दोनों में किया जाता है। गायन एवं वादन में स्वरों की वह विशिष्ट रचना, चाहे वह रागानुसार हो या वर्ण समुदाय (अलंकार) के रूप में हो, उसके बिना शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत में सौन्दर्यवर्धन, परिपक्वता, कल्पना व सृजनशीलता असम्भव है।

संदर्भ

1. प्रकाशनारायण, शास्त्र राग परिचय, भाग–2, पृ॰ 34
2. डॉ॰ लालमणि मिश्र, तंत्री नाद, पृ॰ 27

हाड़ौती अंचल में बौद्ध धर्म की परम्परा- पुरातात्विक अध्ययन (6-8 शताब्दी)

महेश कुमार दायमा

सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

शोध-सारांश

राजस्थान का दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र एक सुनियोजित भौगोलिक इकाई है जिसे हाड़ौती पठार के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत चार जिले कोटा, बून्दी, झालावाड़ व बारां सम्मिलित है। पर्वतों और घने जंगलों से चारों ओर से घिरा हाड़ौती भूमि को चम्बल, काली सिन्ध, पार्वती आदि नदियों ने सींचा है। अपने विशिष्ट, शांत व प्राकृतिक रूप से सुरक्षित इस भूमि को तीसरी शताब्दी से ही बौद्ध भिक्षुओं ने अपना कर्मभूमि व तपोभूमि बनाया।

हाड़ौती के प्राकृतिक गुफाओं को बौद्ध भिक्षुओं ने अपनी कुशल कारीगरी से चौत्य, विहार, स्तूप, सभागार, शयनकक्ष में परिवर्तित कर, लंबे समय तक बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार करते रहे। बौद्ध भिक्षुओं ने पर्वतों को कुशलतापूर्वक तराशा एवं उनकी सपाट व ढोलाकार छतों, दीवारों, उनके तोरण-द्वारों, आयताकार विशाल मंडपों आदि के निर्माण में कला-चातुर्यता का प्रदर्शन कर इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म को जनमानस में स्थापित कर दिया। यहाँ की बौद्ध गुफाऐं वास्तु रचना प्रकार में स्वयं की विशिष्टता लिए हुए हैं। वर्तमान में ये बौद्ध गुफाऐं उपेक्षा का शिकार है लेकिन इतिहास की कड़ियों को जोड़ने में इनका योगदान हमेशा रहेगा।

मुख्य शब्दः कोलवी, बिनायका, हाथियागोड, गुनई

प्रस्तावना

अपने सौन्दर्यशास्त्र और महत्ता की वजन से बौद्ध गुफाओं का नाम हमेशा लिया जाता है। बडे-बडे पहाड़ और चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाएं भारतीय कारीगरी और वास्तुकला का बेहतरीन नमूना पेश करती है। राजस्थान के हाड़ौती अंचल में मौजूद बौद्ध दर्शन तथा कला के उत्कृष्ट शिल्प राज्य के गौरवशाली अतीत की अनमोल धरोहर है। राजस्थान के झालावाड़ जिले में स्थित कोलवी, हाथियागोड, गुनई, बिनायका नामक स्थान पर स्थित पहाडी पर निर्मित गुफाएं बौध धर्म की कला व संस्कृति की बेहतरीन सौन्दर्य का प्रतीक है।

भगवान बुद्ध कभी राजस्थन नहीं आये किन्तु उनके निर्वाण के 1000 वर्ष बाद में राजस्थान बौद्ध धर्म के बहुत बडे केन्द्र के रूप में उभरा। यह एक विस्मयकारी बात थी कि जब गुप्त शासक चौथी शताब्दी ईस्वी के मध्य से लेकर छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य तक पूरे भारत में वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार बडे उत्साह के साथ कर रहे थे, तब हाड़ौती अंचल में बौद्ध धर्म अपनी चरम सीमा पर था। राजस्थान में वैष्णव, बौद्ध व जैन धर्मों की उपस्थिति से यहाँ का वातावरण कला, साहित्य, अध्यात्म एवं ज्ञान-विज्ञान से युक्त हो गया था।

राजस्थान में अनेक स्थानों से बौद्ध धर्म से संबंधित अवशेष अथवा उनके लिखित प्रमाण मिले हैं जिनमें बैराठ की बीजक की पहाडी, लालसोट, रैढ, भीनमाल, चित्तौड, कोटा, झालावाड़ प्रमुख है।[1] शेरगढ में बौद्ध मंदिर और बौद्ध विहार का उल्लेख करने वाले संस्कृत भाषा का छठी-सातवीं शताब्दी ईस्वी का एक शिलालेख मिला है, जिसे एक बौद्ध भिक्षु ने उत्कीर्ण किया था।

राजस्थान के झालावाड़ जिले के चौमहला रेलवे स्टेशन से लगभग 75 किलोमीटर दूर और भवानीमंडी कस्बे से मंदसौर की ओर जाने वाली सड़क मार्ग से लगभग 55 किलोमीटर की दूरी पर भवानीमंडी-डग मार्ग पर सुनसान एवं वीरान क्षेत्र में स्थित छोटी-छोटी पहाडियों में स्थित 70 बौद्ध गुफाएं विद्यमान है। जो इस बात की ओर स्पष्ट प्रमाण है कि भगवान बुद्ध के अनुयायियों ने अपने

तपोबल व उपदेशों से यहाँ के जनजीवन को प्रभावित कर बौद्ध स्थापत्य कला को स्थापित किया। 70 बौद्ध गुफाएं मुख्य रूप से कोलवी, हाथियागोड बिनायगा तथा गुनई गाँव में स्थित है जिनकी लंबी श्रृंखला मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले में धर्मराजेश्वर नामक स्थान तक पहुंचती है। ये बौद्ध गुफाएं छठी से आठवीं शताब्दी के मध्य की है। ऐसा प्रतीत होता है कि सैकडों बौद्ध भिक्षुओं ने घने जंगलों में छिपी हुई इन पहाडियों में गुफाएं बनाकर इनमें ध्यान लगाया होगा। इन गुफाओं के आकार तथा वहाँ निर्मित विभिन्न कक्षों की उपस्थिति से अनुमान होता है कि बौद्ध भिक्षुओं ने यहाँ लंबे समय तक निवास किया होगा। जहाँ उन्होंने गुफाओं के साथ-साथ कलात्मक स्तूप तथा भगवान बुद्ध की प्रतिमा भी उत्कीर्ण की है।

ये गुफाएं अजन्ता-एलोरा के बाद की निर्मित है परंतु संख्या और शिल्प सौन्दर्य में अजन्ता-एलोरा गुफाओं से कम नहीं है।

हाड़ौती अंचल में बौद्ध गुफाएं

कोलवी की बौद्ध गुफाएं भवानीमण्डी (झालावाड जिला) से मंदसौर को जाने वाले सडक मार्ग पर स्थित कोलवी एक छोटा से खामोश गाँव है। यहाँ इस गाँव से लगभग 3 किलोमीटर दूर पश्चिम की ओर मैदान में सर्पाकार बहती हुई एक नदी है। इस नदी के तट पर हरे-भरे मैदानों के मध्य में एक पहाड़ी स्थित है। इन घने वृक्षों को आच्छादित पहाडी की चोटी के चारों और विशाल भूरे लैटराइट पत्थर से निर्मित बौद्ध गुफाएं है। गुफाएं अश्वनाल प्रकार की हैं जिन्हें चट्टानों को तराशकर बनाया गया है। ब्रिटिश अधिकारी इम्पे ने 1854 ईस्वी में कोलवी गुफाओं की खोज की थी। जनरल कनिंघम ने भी इन गुफाओं का अवलोकन किया था। कोलवी के बौद्ध समूह की गुफाएं राजस्थान का सबसे बडा गुफा जाल है। यहाँ बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान के स्थापत्य है। पहाडी के उत्तर पूर्व की चट्टानों को काटकर बनाई गई अधिकतम गुफाएं समय के काल और प्राकृतिक आघातों से जीर्ण-क्षीर्ण हो चुकी है। दक्षिण की ओर अधिकतर गुफाओं की स्थिति ठीक अवस्था में है। इन गुफाओं में से दो गुफाएं, दो मंजिल की है तथा तीन स्तूप और दो मंदिर है। स्तूपों और मंदिरों की सजावट घंटियों और चक्रों के माध्यम से चट्टानों को तराशकर किया गया है। चन्द्र एवं लताएं भी स्तूपों की दीवारों पर उत्कीर्ण है। गुफाओं के गोलाकार सिलसिले में भूल-भूलैया सी गुफा श्रृंखलाओं में बडा सा सभागृह और मंदिर प्रमुख है। भगवान बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं में 2 बडी मूर्तियाँ गुफाओं में उत्कीर्ण है।[2] इसके अतिरिक्त गुफाओं के बाहर एक विशालकाय चट्टान पर भगवान बुद्ध की एक स्थानक मुद्रा में एक विशाल प्रतिमा है। यह प्रतिमा 12 फीट ऊँची है। इसमें भगवान बुद्ध का बायां हाथ शिक्षा देने की मुद्रा में है। एक मंदिर में भगवान बुद्ध की अद्‌भुत प्रतिमा सिंहासन पर विराजमान उत्कीर्ण की गई है। इसके अतिरिक्त इन गुफाओं में कक्ष, शैयाएं, साधना कक्ष, बौद्ध मंदिर, अग्निकुण्ड, पत्थर निर्मित तकिये, बारामदों से इनकी भव्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। कोलवी गुफा को राजस्थान की अजंता-एलोरा कहा जाता है।[3]

बिनायका

कोलवी के गुफा समुहों से 13 किलोमीटर दूर डग तहसील (झालवाड) में जावर के पास बिनायका गाँव के पूर्व में पहाडी पर 16 बौद्धकालीन गुफाएं है।[4] पहाडी के दक्षिण भाग में गुफाओं की एक लंबी श्रृंखला है जो "निरंजन गुफाएं" कहलाती है। एक ही चट्टान को काटकर बनायी गई पद्मासन आसीन बौद्ध प्रतिमाएं यहाँ की विशेषताएं है।

ये सभी गुफाएँ विभिन्न आकार की है, जिनमें अधिकतर गुफाएं दो खण्ड़ों में विभाजित है, जो एक के पीछे एक निर्मित है। एक गुफा बहुत बड़ी हैं जिसमें स्तम्भ हैं जो सभागार की तरह बनाया गया है। सभी गुफाओं की छत सीधी-सपाट है। एक गुफा दो मंजिल की है। पूर्व छोर पर एक मन्दिर है, जो दो स्तंभों पर अवस्थित है, जिसका गर्भगृह 56 फीट का चौकोर आकृति में एक मजबूत गुम्बज से ढका हुआ है। बाहरी दीवारें इस प्रकार की बनी हुई है मानों बरामदा हो। यह गर्भगृह चक्रों एवं गोलों से सुसज्जित है। सातवीं व आठवीं गुफा के सामने एक स्तूप है। ये गुफाएँ कोलवी से केवल 13 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है जिससे लगता है कि कोलवी के आस-पास की इन पहाड़ियों को मिलाकर गुफाओं का एक बड़ा जाल तैयार किया गया था।

हाथियागोड़ की बौद्ध गुफाएं

भवानीमंडी से डग सड़क मार्ग पर कोलवी से लगभग 5 किलोमीटर पहले ही पगारिया ग्राम के पास वहाँ से 3 कलोमीटर दूर हाथियागोड़ की पहाड़ी पर 5 बौद्ध गुफाएँ हैं जो 15 फीट लंबी और 13 फीट चौड़ी है। ये 27 फीट ऊंची है जिसके पास ही चबूतरे पर स्तूप बना हुआ है।[5] गुफाओं पर गुम्बज वाला शिखर है। गुफाएँ की दीवारें साधारण हैं, अलंकरण बहुत कम है। वर्तमान में संरक्षण व रख रखाव के अभाव में गुफाएं निरंतर जर्जर होती जा रही हैं।

गुनई की बौद्ध गुफाएँ

डग और पंच पहाड़ सड़क मार्ग पर गुनई गाँव है। गाँव के पास ही दक्षिण की ओर 4 गुफाएं है। ये गुफाएं भी कोलवी, हाथियागोड़ व बिनायका की बौद्ध गुफाओं की तरह है और उन्हीं की समकालीन है। गुफाऐं साधारण है बिना अलंकरण व साज-सज्जा की ये गुफाऐं भी जीर्ण-क्षीर्ण अवस्था में पहुँच चुकी हैं।[6]

हाड़ौती क्षेत्र के विभिन्न स्थानों की ये गुफाएं बौद्ध धर्म के अवशेषों की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। 70 बौद्ध गुफाऐं, कई बहुमंजिल के स्तूप और अनेक बुद्ध प्रतिमाएं, बौद्ध धर्म का एक गौरवशाली दृश्य उपस्थित करती है परंतु यह गौरवमय अतीत और भगवान बुद्ध की प्रतिमाएं बियावान, सुनसान और उपेक्षित अंधकार की एक लंबी चादर ओढ़कर अपने अस्तित्व के प्रति उदासीन हो उठे हैं।

शिलालेख

हाड़ौती क्षेत्र में बौद्ध धर्म को शासक वर्ग ने भी अपनाया और इसके प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया। यह तथ्य यहाँ से प्राप्त शिलालेखों से स्पष्ट होता है। हाड़ौती क्षेत्र के कोषवर्धन (शेरगढ) नामक स्थान से बौद्ध मतावलंबी नागवंशीय राजा देवदत्त का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। जो संवत 870 विक्रमी (813 ईस्वी) का है। इस लेख के अक्षर पुरानी लिपि (ब्राही) के होने के कारण, कोई आश्चर्य नही कि संवत् का अंक पढने में शायद कोई गलती हुई हों। इण्डियन एण्टेक्वेरी की चौदहवीं जिल्द के 351 पृष्ठ में फ्लीट महोदय मे इसके बारे में एक नोट लिखा है और इस संवत् के अंक को 879 संवत् पढ़ा है। इस शिलालेख से यह बात स्पष्ट होती है कि राजा देवदत्त बौद्ध मतावलम्बी था अर्थात् बौद्ध धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा थी और वह उसका प्रसार भी करना चाहता था। इसमें उसके द्वारा बौद्ध विहार की स्थापना का भी उल्लेख है। इससे यह तथ्य भी सामने आता है कि बौद्ध धर्म इस समय राजधर्म के रूप में भी मान्य था।

निष्कर्ष

राजपूताना के इतिहास में 6 से 8 वीं शताब्दी का काल ऐसा काल था जो राजनीतिक दृष्टि, सांस्कृतिक व स्थापत्य कला की दृष्टिकोण से ऐतिहासिक युग की झाँकी प्रस्तुत करने में सक्षम है।

बौद्ध स्मारक एवं बौद्ध स्थल पूरे भारत में बडी संख्या में मिले हैं और इनका मिलना इतिहास की दृष्टि से एक स्वाभाविक बात है किन्तु हाड़ौती अंचल की बौद्ध गुफाएं अपने आज में विशिष्ट है। ये राजस्थान के इतिहास को एक नया मोड की गवाह है तथा आततायी हूणों के मालवा क्षेत्र पर आक्रमण करने तथा बौद्ध धर्म के राजस्थान एवं मालवा से विलुप्त हो जाने की कहानी कहती हुई प्रतीत होती है।

हाड़ौती अंचल की बौद्ध गुफाएं

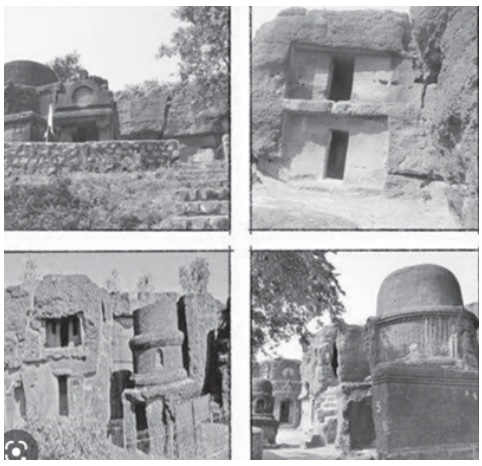

संदर्भ

1. सिंह राजबहादूर, मंदिर संस्कृति, राज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1996, पृ. 249
2. गुप्ता, मोहनलाल, झालावाड़ जिले की बौद्ध गुफाएं, सूचना एवं जनसम्पर्क कार्यालय, झालावाड, 2010 पृ. 20
3. वर्मा, महेन्द्र प्राचीन भारत की वास्तुकला, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1996 पृ. 63
4. गुप्ता, मोहनलाल, उपरोक्त, पृ. 25
5. गुप्ता, पुष्पा, हाड़ौती अंचल की धार्मिक परंपरा, 1985 पृ. 95-98
6. गुप्ता, पुष्पा, उपरोक्त पृ. 95-98

कॉर्पोरेट का सामाजिक-पर्यावरणीय प्रभाव एवं उत्तरदायित्व

सुरभि कच्छप

शोधार्थी, वाणिज्य और व्यवसाय प्रबंधन विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

पृष्ठभूमि: कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी (सीएसआर) में नैतिक तरीके से व्यवसाय करना, कर्मचारियों, ग्राहकों और व्यवसाय में हितधारकों के प्रति जिम्मेदार होना और समाज और सामाजिक कारणों में योगदान करना शामिल है। अपने व्यवसाय में सीएसआर को लागू करने वाले संगठनों में बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी बनने और सार्वजनिक रूप से अपनी बेहतर छवि बनाने की क्षमता होती है। एक संगठन को अपने व्यवसाय से प्रभावित हित समूहों के प्रति सामाजिक रूप से स्वीकार्य तरीके से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि उन हित समूहों के व्यवहार का संगठन के संचालन पर भी प्रभाव पड़ता है।

उद्देश्य: सीएसआर के आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरण और नैतिक आयामों को कवर करता है, और पर्यावरण की देखभाल और संगठन की सफलता पर सीएसआर के आवेदन के प्रभाव पर केंद्रित है। तरीके अनुसंधान का उद्देश्य यह जांचना है कि संगठन में सीएसआर का अनुप्रयोग उसके प्रदर्शन कारकों को कैसे प्रभावित करता है, बल्कि उसके पर्यावरण को भी प्रभावित करता है और क्या संगठन अपने प्राथमिक उद्देश्य-लाभ को प्राप्त करने के अलावा बेहतर और स्वस्थ वातावरण में भी योगदान दे सकता है। भावी पीढ़ियां। खोज और मूल्य वर्धित, शोध के परिणामों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोग ऐसे संगठन में काम करना पसंद करते हैं जो सामाजिक रूप से जिम्मेदार है और अगर उन्नति, स्वास्थ्य और काम पर सुरक्षा आदि के अवसर मिलते हैं तो कम वेतन स्वीकार करेंगे।

शब्द-कुंजी: कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर), पर्यावरण, व्यापार प्रदर्शन, प्रदर्शन कारक।

परिचय

व्यवसाय मानव पूंजी और संसाधनों का उपयोग करते हैं, जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में सीमित होते हैं। उनकी गतिविधियां कणों, पदार्थों और गैसों को हवा, पानी और मिट्टी में छोड़ती हैं, जिनमें से कई का पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, संगठनों को आज उस समुदाय और पर्यावरण पर विचार करने की आवश्यकता है जिसमें वे काम करते हैं। कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) की अवधारणा का तात्पर्य गतिविधियों से है जैसे समुदाय को सहायता प्रदान करना और व्यवसाय में नैतिक व्यवहार। पेपर इस बात की जांच करता है कि क्या कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व का अभ्यास करने से कंपनी के व्यवसाय और प्राकृतिक वातावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। कंपनी की स्थापना का उद्देश्य लाभ कमाना है। हालाँकि, पर्यावरणीय कारक को वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए सबसे महत्वपूर्ण जोखिम कारकों में से एक के रूप में तेजी से पहचाना जाता है। वायु प्रदूषण, पानी की कमी और प्राकृतिक पूंजी का क्षरण व्यवसायों के लिए ऋण, बाजार और कानूनी जोखिम बन गए हैं। यह पत्र सीएसआर और व्यावसायिक प्रदर्शन के अभ्यास के साथ-साथ पर्यावरण पर सीएसआर के प्रभाव के बीच संबंधों की जांच करता है।

कोटलर और ली कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी या सामाजिक रूप से जिम्मेदार व्यवसाय को विवेकाधीन व्यावसायिक प्रथाओं और कॉर्पोरेट संसाधनों के योगदान के माध्यम से समुदाय की भलाई में सुधार करने की प्रतिबद्धता के रूप में परिभाषित करते हैं।[1]

सामाजिक उत्तरदायित्व का अर्थ है मानव पूंजी और पर्यावरण में निवेश करना, हितधारकों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखना, और संगठन के लिए अतिरिक्त मूल्य और सामान्य रूप से अधिक सुखद और स्वस्थ वातावरण बनाने के उद्देश्य से व्यापार में नैतिक व्यवहार, व्यवसाय के संबंध में सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा धीरे-धीरे विकसित हुई है, इसलिए यह निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि यह पहली बार कब उभरा। उद्योगों के विकास के साथ जो मानव पूंजी और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अपने लक्ष्यों, यानी लाभ को प्राप्त करने के लिए करते हैं, लोगों को पर्यावरण की रक्षा के साथ-साथ उन कर्मचारियों के बारे में जागरूक होना शुरू हो गया है जो किसी विशेष उद्योग की सफलता में योगदान करते हैं।

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व उस संगठन के लिए कई लाभ प्रदान करता है जिसने इस व्यवसाय अभ्यास को अपनाया है। "हालांकि, प्रबंधकों को मौलिक निर्णय बिंदुओं में से प्रत्येक पर चुनौती दी जाती है- सामाजिक मुद्दे को चुनने से संबंधित निर्णय, इस मुद्दे का समर्थन करने के लिए एक पहल का चयन करना, कार्यक्रम योजनाओं को विकसित करना और कार्यान्वित करना, और परिणामों का मूल्यांकन करना।

कुछ सामाजिक मुद्दों का समर्थन करना दूसरों की तुलना में आसान होता है, इसलिए यह तय करना कि कोई संगठन किस सामाजिक मुद्दे को चुनेगा शायद सबसे बड़ी चुनौती है क्योंकि यह बाद के कार्यक्रमों और परिणामों को प्रभावित करता है। सामाजिक मुद्दे का चयन करने वाले प्रबंधकों के सामने आने वाले कुछ प्रश्नों में शामिल हैं, निर्णय संगठन के व्यावसायिक लक्ष्यों में कैसे योगदान देता है? यह कितना बड़ा सामाजिक मुद्दा है? क्या सरकार या कोई और इस मुद्दे को संबोधित कर रहा है? हमारे शेयरधारक निर्णय के बारे में क्या सोचेंगे, क्या सामाजिक मुद्दे पर फैसला एक घोटाला पैदा करेगा?

एक बार जब प्रबंधकों ने एक सामाजिक मुद्दे पर निर्णय लिया, तो उन्हें किस पहल की सिफारिश करनी चाहिए-उदाहरण के लिए, सामुदायिक सेवा, कॉर्पोरेट परोपकार, कॉर्पोरेट सामाजिक विपणन, और इसी तरह, निर्धारित सामाजिक लक्ष्य को प्राप्त करने में उपयोगी होगा। यह सवाल उठाता है कि कैसे एक संगठन जोखिम में डाले बिना या अपने मुख्य व्यवसाय की उपेक्षा किए बिना एक निर्धारित सामाजिक लक्ष्य का पीछा कर सकता है, क्या ये प्रचार वास्तव में काम करते हैं, और कौन उन पर ध्यान देता है।[2]

लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, प्रबंधकों को उन पहलों को अपनाना चाहिए जो चुने गए सामाजिक मुद्दे का समर्थन करते हैं। अपने काम "कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी" में, कोटलर और ली ने छह तरीकों का उल्लेख किया है जिसमें एक कंपनी अच्छा करती है-

1. कॉर्पोरेट कारण पदोन्नति-सामाजिक के लिए बढ़ती चिंता और जागरूकता के लिए समर्थन कारण
2. कॉर्पोरेट सामाजिक विपणन-विपणन अभियान समाज में व्यवहार परिवर्तन के उद्देश्य से
3. कारण से संबंधित विपणन-उत्पाद की बिक्री पर आधारित योगदान
4. कॉर्पोरेट परोपकार-समुदाय में दूसरों के प्रति योगदान
5. सामुदायिक सेवा-कर्मचारी स्वयंसेवक
6. सामाजिक रूप से जिम्मेदार व्यावसायिक प्रथाएं-बढ़ी हुई सामाजिक जिम्मेदारी के आधार पर दिन-प्रतिदिन का व्यवसाय

आर्ची बी कैरोल ने अपने लेख "कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व का पिरामिड" में चार क्षेत्रों की पहचान की है जो कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के पिरामिड का निर्माण करते हैं। लेखक के अनुसार, यह पिरामिड व्यवसाय में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व को समझने और लागू करने के लिए एक मूलभूत ढांचा है। आर्थिक आयाम को पिरामिड के आधार के रूप में रखा गया है जिसका अर्थ है कि आर्थिक जिम्मेदारी एक निगम की मौलिक जिम्मेदारी है, दूसरे शब्दों में, लाभप्रदता किसी भी कंपनी के लिए अनिवार्य है। अगला स्तर कानूनी आयाम है। कानून एक सामाजिक मानदंड है जो स्वीकार्य और अस्वीकार्य व्यवहार को परिभाषित करता है, और एक संगठन को उन कानूनों और विनियमों का पालन करना चाहिए जो उसके व्यवसाय संचालन और बाजार प्रथाओं पर लागू होते हैं। नैतिक या नैतिक आयाम के लिए आवश्यक है कि कंपनी वह करे जो उचित और सही हो। संगठन से अपेक्षा की जाती है कि वह न केवल कानूनी ढांचे (कानूनों) का सम्मान करे, बल्कि मानवाधिकारों का भी सम्मान करे और व्यक्ति, समाज और प्राकृतिक पर्यावरण के साथ अच्छे संबंध बनाए रखे। परोपकारी आयाम कंपनी पर यह दायित्व थोपता है कि वह अपने व्यवसाय के माध्यम से लोगों और समुदाय के समग्र कल्याण में योगदान करे, जिसमें यह काम करता है।[3]

साहित्य में, सामाजिक रूप से जिम्मेदार व्यवसाय के दो आयाम प्रतिष्ठित हैं-आंतरिक और बाहरी आयाम। सीएसआर के आंतरिक आयाम में मानव संसाधन, स्वास्थ्य और सुरक्षा, परिवर्तन के अनुकूल होने की क्षमता और पर्यावरण शामिल हैं। बाहरी आयाम में संगठन के संचालन में स्थानीय समुदाय, आपूर्तिकर्ता, ग्राहक और हितधारक शामिल हैं।

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व का आंतरिक आयाम कंपनी के अपने पर्यावरण के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व को संदर्भित करता है। इसमें शामिल हैं: मानव संसाधन प्रबंधन, कार्यस्थल स्वास्थ्य और सुरक्षा, परिवर्तन के लिए अनुकूलन, और पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभावों का प्रबंधन। मानव संसाधन शब्द कंपनी के भीतर कार्यबल को संदर्भित करता है। वे कंपनी के भीतर अपनी क्षमताओं या किसी संगठन के हिस्से के साथ व्यक्ति हो सकते हैं जो कर्मचारियों की भर्ती, बर्खास्तगी, प्रशिक्षण और प्रेरित करने, एक सकारात्मक कार्य वातावरण बनाने, कर्मचारियों के ज्ञान और कौशल और नौकरी के अनुसार जिम्मेदारियों, गतिविधियों और कार्यों को असाइन करने से संबंधित है। आवश्यकताएं। गुणवत्तापूर्ण मानव संसाधन बाजार में किसी संगठन के लिए प्रतिस्पर्धात्मक लाभ का एक अच्छा स्रोत हो सकता है। मानवाधिकारों का सम्मान और किसी भी तरह के भेदभाव को हतोत्साहित करने से बेरोजगारी कम होगी, सामाजिक मुद्दों के प्रति प्रतिबद्धता प्रदर्शित होगी और श्रम बाजार की स्थिति में सुधार होगा, जबकि अच्छा मानव संसाधन प्रबंधन, सामान्य रूप से, व्यावसायिक लागत को कम करेगा और व्यवसाय की सफलता सुनिश्चित करेगा। कार्यस्थल स्वास्थ्य और सुरक्षा मुख्य रूप से श्रम अधिनियम और व्यावसायिक सुरक्षा और स्वास्थ्य अधिनियम जैसे विनियमों और कानूनों के अनुपालन द्वारा सुनिश्चित की जाती है। इसके अलावा, संगठन काम की परिस्थितियों और काम पर सुरक्षा में सुधार करके निवारक उपायों को लागू करते हैं। विपणन सामग्री में इन गुणों को मापने, दस्तावेजीकरण और संप्रेषित करने की मांग बढ़ रही है। ये तत्व प्रमाणन और लेबलिंग में भी शामिल हैं।[4]

मौजूदा गतिशील बाजार स्थितियों के लिए संगठनों को सामाजिक रूप से जिम्मेदार तरीके से नई परिस्थितियों के अनुकूल होने की आवश्यकता होती है ताकि बाजार में प्रतिस्पर्धी बना रहे। ऐसा करने में, उन्हें अपने लक्ष्यों, कर्मचारियों के हितों और व्यापार में सभी हितधारकों पर विचार करना चाहिए।[5]

प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं, उनका कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए। संगठन को ऊर्जा की बचत, पुनर्चक्रण, हवा, पानी और मिट्टी में हानिकारक पदार्थों, कणों और गैसों के उत्सर्जन को कम करके, जब भी संभव हो नवीकरणीय विकल्पों का उपयोग करके (पैकेजिंग के लिए - पुनर्नवीनीकरण पैकेजिंग का उपयोग या) पर्यावरण पर अपने व्यवसाय के नकारात्मक प्रभाव को कम करना चाहिए। ऊर्जा के मामले में-व्यापार संचालन में नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग)। इस तरह की व्यावसायिक प्रथाएँ न केवल नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों को कम करेंगी बल्कि परिचालन लागत (ऊर्जा बचत) को भी कम करेंगी।[6]

सीएसआर का बाहरी आयाम कंपनी के बाहर कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व प्रथाओं को संदर्भित करता है, और इसमें स्थानीय समुदाय, आपूर्तिकर्ताओं, ग्राहकों और हितधारकों के साथ संबंध शामिल हैं। यह रिश्ता इस मायने में पारस्परिक है कि बाहरी आयाम में संगठन और अभिनेता एक दूसरे को कुछ हद तक प्रभावित करते हैं।

संगठन स्थानीय समुदाय को रोजगार के अवसर प्रदान करके प्रभावित करता है जिससे शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाता है, स्थानीय आबादी के लिए आय प्रदान की जाती है, और अन्य क्षेत्रों से लोगों को आकर्षित किया जाता है यदि पर्याप्त दक्षता वाले मानव संसाधनों को स्थानीय रूप से काम पर नहीं रखा जा सकता है। यह मानवीय कार्यों को प्रायोजित करता है, बुनियादी ढाँचे का निर्माण करता है और इस प्रकार उस समुदाय के आर्थिक और सामाजिक विकास को सुगम बनाता है जिसमें यह काम करता है।[7]

व्यापार भागीदारों और आपूर्तिकर्ताओं के साथ अच्छे संबंध आपसी विश्वास, सम्मान और अनुबंधों के अनुपालन पर बने होते हैं। ऐसे संबंधों के आधार पर, संगठन ग्राहकों को एक गुणवत्तापूर्ण उत्पाद प्रदान कर सकता है, जिसका अर्थ है सही उत्पाद को सही समय पर सही जगह पर सही कीमत पर पहुंचाना और ऐसा करने में, बाजार में सफलता प्राप्त करना।

उपरोक्त के अलावा, बाहरी आयाम में मानव अधिकारों के लिए सम्मान शामिल है, अर्थात सामान्य रूप से गैर-भेदभाव और समानता को बढ़ावा देने के साथ-साथ पर्यावरण की वैश्विक देखभाल जब संगठन विश्व स्तर पर संचालित होते हैं।[8]

सामाजिक रूप से जिम्मेदार व्यवसाय में, अन्य बातों के अलावा, पर्यावरण और उसके शासन की देखभाल शामिल है। पर्यावरणीय कारक तेजी से वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए सबसे महत्वपूर्ण जोखिम कारकों में से एक के रूप में उभर रहा है। वायु प्रदूषण, पानी की कमी और प्राकृतिक पूंजी के क्षरण को अर्थव्यवस्था के लिए ऋण, बाजार और कानूनी जोखिम पैदा करने के लिए दिखाया

गया है। प्राकृतिक पूंजी एक अच्छा उदाहरण है। प्राकृतिक पूंजी प्राकृतिक संसाधनों (जल, मिट्टी, तेल, वायु, जंगल और सभी जीवित जीवों) की दुनिया की आपूर्ति है। यदि किसी देश के पास दुनिया के खनिज की आपूर्ति का 75% हिस्सा है, तो उसे अन्य देशों की तुलना में बहुत फायदा होता है जो शेष 25% का उत्पादन करते हैं, खासकर जब से प्राकृतिक पूंजी अक्सर सीमित होती है। हालांकि, वित्तीय पूंजी की तुलना में प्राकृतिक पूंजी को अद्वितीय रखरखाव की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक पूंजी अक्सर पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा होती है, इसलिए कटाई, पुनर्वितरण और प्राकृतिक पूंजी में परिवर्तन एक तरंग प्रभाव पैदा कर सकता है जो कंपनी के पर्यावरण और प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचा सकता है। उदाहरण के लिए, भूमि की सफाई से भूस्खलन और जल प्रदूषण हो सकता है, या जानवरों के आवास का विनाश हो सकता है। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्राकृतिक पूंजी का पूर्ण उत्थान संभव नहीं है।[9]

हरित वित्त स्थायी वित्त का हिस्सा है और उन निवेशों को संदर्भित करता है जो सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान करते हैं। प्रभावी पर्यावरणीय जोखिम मूल्यांकन हरित वित्त के रणनीतिक दृष्टिकोण का एक अभिन्न अंग है, जिसका उद्देश्य जोखिमों को कम करना है। कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व को प्रक्रिया चरणों में विभाजित किया जा सकता है, जोखिम की पहचान-जिसमें भविष्य कहनेवाला जोखिम मॉडलिंग के माध्यम से रणनीतिक मूल्यांकन शामिल है, जोखिम मूल्यांकन-एक बुनियादी जोखिम जोखिम मूल्यांकन से लेकर संपत्ति और पोर्टफोलियो जोखिमों के विस्तृत विश्लेषण तक, और जोखिम प्रबंधन-जोखिम को कम करने और कम करने के लिए गतिविधियां या जोखिम को स्थानांतरित करें और एक निवेश को पुनर्निर्देशित करें।

सीएसआर इंडेक्स क्रोएशिया में कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी का आकलन करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक उपकरण है। यह एक रैंकिंग प्रणाली पर आधारित है जो कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व प्रथाओं और अन्य कंपनियों के साथ तुलना के उद्देश्य मूल्यांकन की अनुमति देता है।[10]

अनुसंधान पद्धति और परिणाम

इस पत्र के प्रयोजन के लिए, 13-31 दिसंबर 2019 की अवधि में एक सर्वेक्षण किया गया था। Google फॉर्म टूल का उपयोग करके बनाई गई एक प्रश्नावली को ऑनलाइन प्रशासित किया गया था। इसे ई-मेल, सामाजिक नेटवर्क और निजी संपर्कों के माध्यम से वितरित किया गया था। भागीदारी गुमनाम थी। 105 व्यक्तियों ने सर्वेक्षण पूरा किया। प्रतिभागी मुख्य रूप से क्रोएशिया के उत्तरी भाग से थे। सर्वेक्षण के बाद, एकत्र किए गए डेटा का विश्लेषण किया गया और रेखांकन प्रस्तुत किया गया जैसा कि नीचे दिखाया गया है।

उत्तरदाताओं की सामाजिक आर्थिक विशेषताओं से संकेत मिलता है कि 73.3% महिलाएं हैं और 26.7% पुरुष हैं। अधिकांश उत्तरदाता (उनमें से 50.5%) 26-35 आयु वर्ग में हैं, इसके बाद 25 आयु वर्ग (22.9%) का स्थान है। 18.1% 36-45 आयु वर्ग के हैं, जबकि 4.8%, 46-55 आयु वर्ग में हैं। उनके बाद 56-65 आयु वर्ग के उत्तरदाता (2.9%) और 65 वर्ष से अधिक आयु के उत्तरदाता (1%) हैं।

अधिकांश उत्तरदाताओं के पास माध्यमिक शिक्षा (41%) है, इसके बाद पूर्ण स्नातक अध्ययन (26.7%), स्नातक अध्ययन (24.8:), स्नातकोत्तर विशेषज्ञ अध्ययन (3.8%), और डॉक्टरेट अध्ययन (2.9%) हैं। 1.9% उत्तरदाता ऐसे हैं जिनकी औपचारिक शिक्षा प्राथमिक विद्यालय से समाप्त हुई।

उत्तरदाताओं के रोजगार की स्थिति के संदर्भ में, 81.9% कार्यरत हैं, 11.4% छात्र हैं, 3.8% बेरोजगार हैं, 1.9% सेवानिवृत्त हुए हैं, 1% का अपना व्यवसाय है और दो (2%) मातृत्व अवकाश पर हैं।

उनकी मासिक आय के बारे में पूछे जाने पर, उत्तरदाताओं की सबसे बड़ी संख्या (41%) ने संकेत दिया कि उन्होंने HRK 3,001-5,000 के बीच अर्जित किया। उनके बाद 22.9% मासिक आय HRK 5,001 से HRK 7,000 तक है। उत्तरदाताओं का थोड़ा कम प्रतिशत (21%) की आय प्रति माह HRK 7,000 से अधिक है। उत्तरदाताओं की सबसे छोटी संख्या (15.2%) की मासिक आय HRK 3,000 से कम है।[11]

निष्कर्ष

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व दुनिया भर के संगठनों में व्यापक रूप से अपनाया और कार्यान्वित अवधारणा है। वर्तमान शोध के परिणाम बताते हैं कि क्रोएशिया में संगठन इस संबंध में पीछे नहीं हैं। पेपर से पता चलता है कि, अन्य बातों के अलावा, समाज के प्रति जिम्मेदार व्यवहार का संगठन के प्रदर्शन पर प्रभाव पड़ता है, और सफलता को समुदाय के साथ साझा किया जाना चाहिए। एक संगठन समुदाय का हिस्सा है और इस तरह यह इसके साथ परस्पर लाभकारी संबंध बनाए रखता है। उदाहरण के लिए, कर्मचारियों को स्थानीय रूप से काम पर रखा जाता है और वे अपने ज्ञान, कौशल और क्षमताओं को संगठन में लाते हैं। बदले में, संगठन उनकी देखभाल करता है ताकि उन्हें प्रेरित किया जा सके, उनकी उत्पादकता को फलते-फूलते रखा जा सके और कर्मचारियों के टर्नओवर को कम किया जा सके। सीएसआर को अपनाने से समुदाय और संगठन दोनों के लिए हानिकारक प्रभाव हो सकते हैं क्योंकि इससे बेरोजगारी बढ़ सकती है और कंपनियों को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधा आ सकती है। इसके अलावा, ग्राहक उन संगठनों को अच्छी प्रतिक्रिया नहीं देते हैं जो सामाजिक रूप से जिम्मेदार नहीं हैं, जिससे संगठन के उत्पादों और सेवाओं की बिक्री में गिरावट आती है। पर्यावरण की उपेक्षा और यह स्वीकार करने में विफलता कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और तदनुसार कार्य करना संगठन और पर्यावरण दोनों को जोखिम में डालता है। अपने व्यवसाय में सामाजिक रूप से जिम्मेदार प्रथाओं को लागू करने वाले संगठन भी निवेशकों और अन्य हितधारकों के लिए अधिक आकर्षक होते हैं।

सामाजिक कारणों में योगदान देकर, संगठन अपने स्वयं के व्यवसाय में भी मदद करता है। इस प्रकार, सामाजिक रूप से जिम्मेदार व्यवहार के कार्यान्वयन को व्यय के बजाय निवेश के रूप में देखा जाना चाहिए।

संदर्भ-सूची

1. कोटलर, एफ.आई., ली, एन. (2009), सबसे अच्छा विकल्प, सुवरेमेना टेओरिजा इनजबोलजा प्रक्ष, जगरेब एमईपी परामर्श
2. बोबेरा, डी., हुनजेट, ए., कोजिना, जी. (2015), पोडुजेटनिस्तवो, वरजदीनरू स्व्यूसिलिस्ट सेवर
3. तमवाड़ा, एम. (2020), कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी और जवाबदेही, सीएसआर को विनियमित करने के लिए एक नया सैद्धांतिक आधार, कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 5, नंबर 2
4. लिकेंड्रो, (2017), कॉर्पोरेट स्वेच्छा और कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी के बीच संबंधः एक अनुभवजन्य अध्ययन के परिणाम, एकोनोम्स्की वेजेसनिक, समसामयिक उद्यमिता, व्यापार और आर्थिक मुद्दों की समीक्षा, 30(1), 67-83।
5. कैरोल, ए.बी. (2016), सीएसआर का कैरल का पिरामिडः एक और नजर डालते हुए, कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 1(1), 1-8।
6. सेरवेरा-फ्रांसिस, डी., पिकेरास-टॉमस, एल. (2019), उपभोक्ता कथित मूल्य के माध्यम से उपभोक्ता वफादारी पर कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी का प्रभाव, आर्थिक अनुसंधान-एकोनोम्स्का इस्तराजिवांजा, 32(1), 66-84।
7. वुकमिलोविक, वी. (2019), कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व अवधारणा के आंतरिक तत्वों के बीच सहसंबंध, एकोनोम्स्की वेजेसनिक, 2, 449-459।
8. मोहम्मदी, एम.ए.डी., मर्दानी, ए., खान, एम.एन.ए., स्ट्रेइमिकीन, डी. (2018), मध्य पूर्वी राष्ट्र में कॉर्पोरेट स्थिरता प्रकटीकरण और बाजार मूल्यांकनरू तेहरान स्टॉक एक्सचेंज पर सूचीबद्ध फर्मों से साक्ष्यः संवेदनशील उद्योग बनाम गैर-संवेदनशील उद्योग। आर्थिक अनुसंधान - एकोनोम्स्का इस्तराजिवांजा, 31(1), 1488-1511।
9. रोड्रिग्ज, जी.पी., वेलीनो, सी.पी., वाजक्वेज बर्गुएट, जे.एल. (2017), ग्राहक-आधारित ब्रांड इक्विटी पर कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रभावरू स्पैनिश हाइपरमार्केट केस। आर्थिक अनुसंधान-एकोनोम्स्का इस्तराजिवांजा, 30(1), 290-301।
10. गैलेंट, ए., कैडेज, एस., (2017), कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी और वित्तीय प्रदर्शन संबंधः माप दृष्टिकोण की समीक्षा, आर्थिक अनुसंधान-एकोनोम्स्का इस्तराजिवांजा, 30(1), 676-693।
11. कोलिक स्टैनिक, एम., बारिसिक, ए.एफ. (2019), जनसंपर्क संहिताओं में सामाजिक उत्तरदायित्व और वफादारी, बिजनेस सिस्टम्स रिसर्चरू सोसाइटी फॉर एडवांसिंग इनोवेशन एंड रिसर्च इन इकोनॉमी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, 10 (2), 151-162।

ब्रिटिश कालीन द्वैध शासन व्यवस्था: एक अध्ययन

अरविन्द कुमार

शोधार्थी, स्नातकात्तर इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० राधा गोविन्द सिंह

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकात्तर इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

एक ही समय में दो शासक एक साथ उस देश अथवा राष्ट्र के सत्ता में भागीदार बनकर सत्ता एवं शासन प्रणाली का संचालन करते हैं। इस शासन प्रणाली को द्वैध शासन प्रणाली कही जाती है। 1765 में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में भू-राजस्व वसूलने का अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों में था, जबकि प्रशासनिक शक्ति बंगाल के नवाब द्वारा संचालित होता था। इस प्रकार सत्ता दो भोगों में विकेन्द्रित थे, जिसे एक ओर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा और दूसरा नवाब के द्वारा एक साथ दो भागों में विभक्त कर संचालित किया जाता था। द्वैध शासन प्रणाली के सिद्धांत का प्रतिपादन सबसे पहले लियोनेल कर्टिस नामक एक अंग्रेज द्वारा दी गयी थी।[1] इस संबंध में इन्होंने 'डायर्की' नामक पुस्तक में प्रतिपादित किया था। 'डायर्की' के सिद्धांतों का पालन करते हुए 1919 ई० भारतीय शासन अधिनियम लागू किया गया, इसी के अनुसार भारतीय प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली अपनी दिशा में प्रगति करनी शुरू कर दी।

मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत सम्राट अपने विश्वसणीय व्यक्ति को प्रांत के प्रशासन का भर सौंपता था, जो नवाब अथवा सूबेदार कहलाता था। प्रत्येक क्षेत्रीय शासक सम्राट द्वारा प्रदत्त दो प्रकार के प्राधिकारों को प्रयोग करता था। दिवानी, जिसके अंतर्गत सिविल न्याय तथा राजस्व प्रशासन था तथा निजातम, जिसमें आपराधिक न्याय एवं सैन्य व्यवस्था शामिल थी। बंगाल का नवाब भी इन दोनों प्राधिकारों से युक्त था। नवाब के शासकीय कार्यों में सहयोग हेतु दीवान के पद का प्रावधान था। जब तक मुगल सम्राटों की स्थिति सुदृढ़ रही, उसके द्वारा प्रतयेक सूबे में दो उच्चाधिकारियों की नियुक्ति होती थी, जो अभिकर्ता के रूप में सम्राट के हितों का संरक्षण करते थे। किंतु मुगल शासकों के कमजोर होते ही बंगाल का नवाब स्वतंत्र हो गया तथा अपनी सीमा का अतिक्रमण करते हुए उसने स्वेच्छानुसार दीवान मनोनीत करना प्रारंभ कर दिया।[2]

दीवानी का अधिकार मिलने के बाद भी बंगाल के नवाब के पास सिद्धांतत: सैन्य शक्ति तथा दांडिक न्याय प्रशासन अक्षुण्ण था किंतु 1757 से 1766 के बीच बार-बार परिवर्तन कर कम्पनी ने नवाब की पदीय गरिमा तथा शक्ति को पूरी तरह झकझोर दिया। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य नवाब को इतना शक्तिहीन बना देना था कि वह भविष्य में कभी भी कम्पनी के विरूद्ध सिर न उठा सकें। नवाब की सैन्य व्यवस्था का भी अंग्रेजों ने अधिग्रहण कर लिया था और 50 लाख रूपये वार्षिक भत्ता के बदले संपूर्ण सैन्य व्यवस्था अपने अधीन कर ली थी। जहाँ तक दांडिक न्याय व्यवस्था का प्रश्न है, मीरजाफर के बाद बंगाल के नवाब पद पर बैठे पराश्रित अवयरक नवाब की प्रशासकीय अक्षमता का लाभ उठाकर कंपनी ने इस व्यवस्था पर भी वास्तविक नियंत्रण स्थापित कर लिया।

फरवरी, 1765 में नवाब से निजामत तथा अगस्त, 1765 में मुगल सम्राट से दीवानी प्राप्त करने के बाद, कंपनी द्वारा बंगाल में स्थापित की जाने वाली द्वैध शासन प्रणाली मूलत: क्लाइव की सूझबूझ तथा साम्राज्यवादी प्रवृत्ति की देन थी। इस व्यवस्था से कंपनी

को दोहरा लाभ मिला। प्रथमतः, द्वैध शासन ने कंपनी और नवाब के बीच चलने वाली श्रेष्ठता की लड़ाई का सदा के लिए अंत कर दिया। नवाब की शक्तियों में निरंतर कटौती तथा कंपनी को प्राप्त अतिरिक्त शक्तियों ने, दोनों के बीच इतनी बड़ी खाई पैदा कर दी, जिसे पार करने की कल्पना करना भी हास्यास्पद था। द्वैध शासन के द्वारा क्लाइव ने सतर्कता पूर्वक नवाब की सत्ता कंपनी में अतिरिक्त कर दी। द्वितीयतः, द्वैध शासन की ओट में यूरोपीय देशों को कंपनी की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ रखा गया। क्लाइव को आशंका थी कि प्रत्यक्षतः बंगाल की राजसत्ता को हस्तागत करने पर कंपनी सरकार को न सिर्फ अन्य यूरोपीय देश वरन् स्वयं इग्लैंड में भी अलोचना का पात्र बनना पड़ सकता है। कलकत्ता कौंसिल के सदस्य इस तथ्य से भी अवगत थे कि इंग्लैंड में बैठे निदेशक मंडल के सदस्य कंपनी के कर्मचारियों द्वारा उठाए जाने वाले किसी भी ऐसे कदम का विरोध करेगें जिसमें कंपनी के स्थायी आर्थिक हितों पर कुप्रभाव पड़ने की संभावना होगी। क्लाइव ने बड़ी चतुराई से एक ऐसा मार्ग अपनाया जिससे उसका लक्ष्य भी प्राप्त हो जाता साथ ही कंपनी की कार्यप्रणाली पर भी कोई सवालिया निशान नहीं उठाता।[3]

वस्तुतः कंपनी अभी तक भारतीयों को धोखे में रख कर अपनी राजनीतिक सत्ता का विस्तारीकरण कर रही थी। वह नहीं चाहती थी कि आम लोग अपने आप को गुलाम बनता देखें। इसके लिए आवश्यक था कि बंगाल में नवाब की पुरानी व्यवस्था को कायम रखते हुए प्रांत की अर्थव्यवस्था पर स्वामित्व स्थापित किया जाए।

क्लाइव द्वारा स्थापित द्वैध शासन 1765 से 1772 तक चला। इस व्यवस्था से कंपनी को अपेक्षित राजनीतिक लाभ मिला और वह भारत की भाग्यनिर्माता बन गई, पर जनस्प्रधारण के लिए द्वैध शासन विनाश का कारण बना। द्वैध शासन के अंतर्गत कंपनी के कर्मचारियों को लूट की खुली छूट मिली और वे यथाशीघ्र अधिकाधिक धन संचयन हेतु बंगाल, बिहार और उड़ीसा की जनता का आर्थिक शोषण करने लगे। के० एम० पण्णिकर के शब्दों में-"मुहम्मद तुगलक के शासन काल सहित आज तक के इतिहास में कभी ऐसी दुखद स्थिति नहीं रही, जैसी दयनीय स्थिति 1762 से 1772 की अवधि में बंगाल वासियों की दिखाई पड़ती है।"[4] सूबे की जनता के शोषण का एक महत्वपूर्ण कारण अंग्रेज कर्मचारियों में उत्तरदायित्व का पूर्ण अभाव तथा जनता के कल्याण के प्रति उनका नकारात्मक दृष्टिकोण था। जहाँ तक भारतीय प्रशासकीय वर्ग का प्रश्न है वे अपने आप को कंपनी के कर्मचारियों के समक्ष नितांत असहाय पाते थे। अन्याय, शोषण, रिश्वतखोरी अथवा शांति व्यवस्था भंग करने संबंधी गंभीर आरोपों के बावजूद न्याय व्यवस्था से जुड़े भारतीय कर्मचारी, अंग्रेजों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाई करने से डरते थे। सन् 1741 से बंगाल में रहने वाले मिस्टर वेचर ने कहा था- "एक विचारशील अंग्रेज के लिए अवश्य ही दुख पहुचाने वाली बात है कि कंपनी के दीवानी प्राप्त करने के समय से, इस देश के लोगों की हालत पहले से बहुत खराब हो गयी है।"[5] रैम्जे म्योर ने लिखा है कि "बंगाल, बिहार और उड़ीसा में चल रहे लूटपाट से गर्वनर तथा उसकी परिषद् के सदस्यों को कलंक से मुक्त नहीं किया जा सकता।" क्लाइव को स्वयं भी कंपनी के कर्मचारियों के अमानवीय कृत्यों की जानकारी थी। उसे ज्ञात था कि कंपनी के कर्मचारी अपर्याप्त वेतन प्राप्ति के कारण ही निजी व्यापार के नाम पर जनता का शोषण तथा जमींदारों का भयादोहरण कर रहे हैं, फिर भी उसने समस्या के मूल कारणों को समाप्त करने में कोई अभिरूचि नहीं दिखाई और भ्रष्टाचार को फलने-फूलने का समुचित अवसर प्रदान किया।

दीवानी की प्राप्ति से आह्लादित होकर कंपनी के अंशधारियों ने भी छः प्रतिशत की जगह दस प्रतिशत लाभांश की मांग प्रारंभ कर दी थी। 1767 में यह प्रतिशत 12.5 प्रतिशत तक बढ़ गया। अपने स्वार्थ की पूर्त्ति के प्रति आतुर अंशधारियों ने कभी समझने का प्रयास नहीं किया कि उनकी मांगों के कारण कंपनी के कर्मचारी किसी स्तर तक गिरकर भारत में लूट-खसोट मचा रहे है। ब्रिटिश संसद भी कलंकमुक्त नहीं था। संसद के निम्न सदन ने 1767 में कंपनी को चार लाख पौंड वार्षिक भुगतान के बदले दो वर्षों के लिए भारत के अधिकृत प्रदेशों पर प्राधिकार बनाये रखने की स्वीकृति प्रदान कर दी। इससे बंगाल में आर्थिक कुशासन को प्रोत्साहन मिला। किंतु यह व्यवस्था लंबे समय तक नहीं चल सकी। निदेशक मंडल तथा प्रवर समिति ने यह महसूस किया कि स्थिति में अविलम्ब सुधार की आवश्यकता है। हेनरी टेरेलस्ट ने प्रचलित 'शोषण प्रवृत्ति' की कटु आलोचना की तथा दीवानी के जिलों में राजस्व की दर को निश्चित करने की आवश्यकता पर बल दिया। मुर्शिदाबाद दरबार के रेजिडेंट आरङ्ग्ह बेचर ने दिवानी क्षेत्रों में, कंपनी के स्वामित्व वाले जिलों की भांति ही, करारोपण का प्रास्ताव रखा, किंतु इस प्रस्ताव को कार्यरूप देना सरल न था। कंपनी के सामने सबसे बड़ी समस्या तात्कालीन राजस्व की दर, भूमि का वर्गीकरण, करारोपण का माप-दण्ड तथा वसूली की पद्धति का पता लगाना तथा उसे सुनिश्चित करना था।[6]

कंपनी के निदेशक मंडल की सुधारवादी भावना को देखते हुए हेनरी वेरेलस्ट ने 11 नवंबर 1768 को प्रवर समिति के समक्ष कुछ प्रस्ताव पेश किये। प्रस्ताव में इच्छा व्यक्त की गई थी कि दीवानी के प्रत्येक जिले में एक-एक सुयोग्य तथा संचरित्र व्यक्ति

की नियुक्ति हो, जो मुर्शिदाबाद दरबार के रेजिडेंट के प्रति उत्तरदायी रहते हुए अपने क्षेत्र में दीवानी संबंधी कार्यों की निगरानी करें। वेरेलस्ट की योजना को प्रवर समिति ने अनुमोदित कर दिया। इसके अनुसार दीवानी संबंधी कार्य की देखभाल का दायित्व निरीक्षकों को सौंपा गया तथा उनसे यह अपेक्षा की गई कि वे राजस्व संबंधी व्यवस्था को देखने के साथ-साथ किसानों तथा रैय्यतों के कल्याण हेतु ठोस सुझाव देगें। प्रवर समिति ने इस योजना की सार्थकता के लिये ब्रिटिश न्यायवदिता, सत्य, आस्था तथा मानवता जैसे सैद्धान्तिक आदर्शों की दुहाई दी। वस्तुतः निरीक्षकों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे अपने क्षेत्र में प्रचलित कर प्रणाली, करों के निर्धारण के आधार, वसूली की प्रक्रिया, भूमि का वर्गीकरण, तथा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से जुड़े महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन करेंगे तथा कंपनी सरकार को सूचित करेंगे। कंपनी उक्त आकड़ों तथा सूचनाओं के आधार पर बाद में जिला प्रशासन का मूलभूत ढाँचा तैयार करना चाहती थी। चार्ल्स ग्रान्ट मानते है कि निरीक्षकों से मांगी गई सूचना, अंग्रेजों के द्वारा भारत में रखे जाने वाले प्रांतीय प्रशासन के नींव की पहली ईट थी। यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि दोहरी शासन व्यवस्था में आ गई बुराइयों को समाप्त करने के बहाने कंपनी ने निरीक्षकों के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रशासन की जिम्मेवारी अपने उपर ले ली। दुर्भाग्यवश यह योजना असफल रही।

वस्तुतः निरीक्षकों को सौंपे गये शोध संबंधी दायत्वि अत्याधिक विस्तृत उबाऊ तथा विविध प्रकृति वाले थे। कंपनी ने निरीक्षकों से गलत आशा की थी कि वे योग्य राजस्व पदाधिकारी होने के साथ-साथ कुशल अर्थशास्त्री, इतिहासकार, वित्त परामर्शदाता, ग्रामीण अंकेक्षक, अमीन, वाणिज्य व्यापार विकास पदाधिकारी, विधि नियंत्रक, न्याय वेत्ता तथा गरीबों के मसीहा होंगे। कुछ निरीक्षकों ने इस दिशा में सार्थक प्रयास भी कियें किंतु उन्हें स्थानीय जमींदारों, कानूनगों तथा भारतीय अफसरों का वांछित सहयोग नहीं मिला। प्रवर समिति की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय अफसरों तथा जमींदारों ने निरीक्षकों के द्वारा किये जा रहे इस कार्य को प्रांतीय स्तर पर अंग्रेजी प्रशासन की स्थापना की दिशा में पहला कदम माना तथा प्रतिक्रियास्वरूप असहयोगात्मक रूख अपनाया। वेरेलस्ट ने यह भी स्वीकार किया था कि प्रशासनिक भ्रष्टाचार की समाप्ति के लिए कंपनी ने जिस निरीक्षक व्यवस्था को लागू किया, उसकी असफलता का मूल कारण निरीक्षकों में बढ़ती निजी व्यापार की प्रवृत्ति थी।[7]

द्वैध शासन प्रणाली का सर्वाधिक बुरा प्रभाव कृषि तथा कृषक वर्ग पर पड़ा। कलकत्ता कौंसिल के गवर्नर से लेकर जमींदारों के कारिदों तक फैली, अर्थलिप्सा का शिकार किसानों को बनना पड़ा। स्थानीय जमींदारों को अपनी प्रजा की तनिक भी चिंता नहीं थी। परिणामस्वरूप कृषि को जीविका का एकमात्र साधन बनाने वाले छोटे किसानों की हालत खराब होने लगी। उद्योग से जुड़े लोग भी कंपनी के ठेकेदारों की नाजायज मांग से परेशान होकर अपने परंपरागत कार्यों को छोड़ने के लिए बाध्य थे। आम जनता की स्थिति तब और खराब हो गई जब बंगाल में 1769-70 का भयंकर अकाल पड़ा। चारो ओर हाहाकार मच गया। कीथ के अनुसार "इस अकाल में बंगाल की एक-चौथाई जनसंख्या नष्ट हो गई।"8 दैवी विपत्ति के समय भी कंपनी के कर्मचारी पूर्ववत् अवांछित ढंग से धन संकलन के कार्य में लिप्त थे। आकाल मृत्यु तथा चौपट कृषि अर्थ व्यवस्था के कारण होने वाले नुकसान की भरपाई अंग्रेजों ने आवश्यक वस्तुओं की कीमत में अप्रत्याशित वृद्धि करके की। सर लुईस की धारणा ठीक ही है कि "विश्व की सम्य सरकारों में इतने दूषित एवं भ्रष्ट प्रशासन का दूसरा उदाहरण नहीं मिलता, जितना कि कंपनी के शासन के सात वर्षों में बंगाल में रहा।" आकाल के समय बिहार के नायब-नाजिम राजा सिताब राय ने कंपनी से राहत कार्यों के लिए दो लाख रूपये की माँग की। कंपनी के उच्चाधिकारियों को यह माँग अनुचित लगी। नायब-नाजिम को मदद देने की जगह कंपनी सरकार ने विचार-विमर्श कर यह निर्णय लिया कि अब प्रांतों में दीवानी का काम नायब-नाजिम की मदद लिए बिना कंपनी के कर्मचारी स्वयं करेगें। सन् 1771 में कंपनी ने बंगाल के "दीवान नाजिम" के रूप में कार्य करने का निर्णय लिया, और स्वयं दीवान बन बैठी। सन् 1772 में वारेन हेस्टिग्स गर्वनर बनकर भारत आया। हेस्टिग्स के विचार अपने पूर्ववर्ती शासकों से सर्वथा विपरीत थे। उसका विश्वास था कि भारत में कंपनी की सत्ता, उसकी अपनी शक्ति तथा क्षमता पर आधारित थी न कि शाहआलम के फरमान पर। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण उसने सर्वप्रथम नवाबशाही के मिथ्या आचरण को उतार फेंका तथा प्रत्यक्ष रूप से बंगाल की अस्त-व्यस्त प्रशासनिक व्यवस्था को व्यवस्थित करने में जुट गया।

इस समय बिहार, जहाँ राजा शिताब राय अपने निजी प्रशासनिक तंत्र की मदद से दीवानी की देखभाल कर रहा था, भ्रष्टाचार में आकंठ डूबा हुआ था। शोषित तथा त्रस्त जनता के द्वारा प्रतिमाह सैकड़ों शिकायत पत्र गवर्नर को प्रेषित किये जाते थे, जिनमें बिहार के नायब-नाजिम द्वारा की जाने वाली अतिरिक्त उगाही तथा अत्याचार का वर्णन होता था। न्यायालय मंदिर की जगह शोषण का अड्डा बन चुका था। वारेन हेंस्टिग्स ने इन आरोपों के आलोक में एक जाँच कमिटी नियुक्त की। यद्यपि जाँच के क्रम में राजा

शिताब राय पर कोई विशेष अभियोग न लग सका, फिर भी कंपनी ने उस नायब-नाजिम के पद से पदमुक्त कर दिया। 1772 में वारेन हेंस्टिग्स ने द्वैध शासन का अंत कर, दिवानी का मुखौटा भी उतार दिया तथा प्रशासन की पूरी जिम्मेवारी अपने उपर ले ली।

संदर्भः

1. नियोनेल कर्टिस 'डायर्की' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंन्दन, 1919, आमुख पृष्ठ से साभार
2. कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स द्वारा बंगाल के गवर्नर जनरल के नाम लिख गए पत्र, पृ. 30
3. एम. रत्नस्वामी, 'सम इनफ्लुएंसेज दैट मेड द ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम इन इंडिया' (1939), पृ. 70-72।
4. आनंद मठ, (कई भाषाओं में प्रकाशित), बंकिम चंद्र चटर्जी, रामानुजन विश्वविद्यालय प्रेस, दिल्ली, 1882, पृ० 86
5. आर० सी० दत्त, इकोनॉमिक हिस्ट्र ऑफ ब्रिटिश इंडिया, पेंग्वीन, नई दिल्ली, 1893, पृ० 168-69
6. वही, पृ० 56
7. राबर्ट्स पी.ई., ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास, पृ. 138.
8. मोरलैण्ड, ए शार्ट हिस्ट्री आव इण्डिया, पृ. 306.

रविन्द्रनाथ टैगोर के चिन्तन में दार्शनिक पक्ष

डॉ० सुमित्रा कुमारी

अतिथि सहायक प्रोफेसर, एम.एस.के.बी. कॉलेज, मुजफ्फरपुर,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

भूमिका

रविन्द्रनाथ टैगोर एक धार्मिक कवि थे। उनकी कविताओं से हीं हमें उनके दर्शन का ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि टैगोर ने अपने दर्शन को परम्परागत विधि से प्रस्तुत नहीं किया है। उनका दाशर्निक विचार उनके साहित्य में यंत्र-तंत्र पाया जाता है। इसलिए उनके दाशर्निक विचार को प्राप्त करने के लिए हमें उनके काव्यों में विखरे विचारों को सुव्यवस्थित करना पड़ता है और उसी के आधार पर एक निश्चित धारणा विकसित करनी होती है।

" Edward J. Thomson कहते हैं- There goes a certain mental laziness about him. We often feel that there is a slackness somewhere probably at the very spring of thought and conception he has been embroidering the margins of trunth."[1]

मानव जाति के उद्‌भव के विवरण में दो तथ्य प्रकाश में आते हैं। पहला मानव स्वरूप का एक अंश उसका भौतिक एवं जैविक अंश है जो उसे विकास प्रक्रिया से प्राप्त होता है। मानव स्वरूप का दूसरा अंश आध्यात्मिक है जो उसे विशिष्टता प्रदान करता है तथा जिसके कारण उसमें मोक्ष प्राप्ति का भाव उत्पन्न होता है। मानव स्वरूप के भौतिक अंश को ससीम तथा उसके आध्यात्मिक अंश को असीम आत्मा कहा जाता है। इसी कारण टैगोर मनुष्य को ससीम-असीम कहते हैं। मानव जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर के साथ एकात्मकता की प्राप्ति करना है। अपने असीम पक्ष के कारण मनुष्य इस लक्ष्य की प्राप्ति करता है। ईश्वर के साथ मनुष्य की एकात्मकता को ही टैगोर के दर्शन में मोक्ष कहा जाता है। लेकिन मोक्ष के संबंध में टैगोर का विचार अद्वैत वेदान्त के विचार से भिन्न है। अद्वैत वेदान्त में आत्मा को ब्रहम में विलीन होने की अवस्था को मोक्ष कहते हैं। इससे भिन्न टैगोर कहते हैं कि मोक्ष की अवस्था में मनुष्य और ईश्वर के बीच द्वैत बना रहता है। मनुष्य और ईश्वर कभी एक नहीं हो सकता है। मोक्ष प्राप्ति के मार्ग के संबंध में टैगोर कहते हैं कि मनुष्य प्रेम भक्ति, समर्पण तथा संगीत के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

मोक्ष का दार्शनिक विवरण

मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है जिसे कुछ भारतीय दार्शनिकों ने सांसारिक अनस्तित्व की अवस्था बतलाया है। उनके अनुसार आत्मा ईश्वर के साथ एकता की प्राप्ति करती है, जिसके फलस्वरूप उसका संसारिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है। मुक्त आत्मा इस जगत का त्याग नहीं करता है तथा निष्क्रय रूप से अनिवर्चनीय निराकार, निर्गुण, विश्वातीत एवं शाश्वत ब्रह्म साथ एकाकार हो जाती है। अद्वैत वेदान्त में आत्मा के ब्रहम में विलीन होने की अवस्था को मोक्ष माना गया है, जिसके फलस्वरूप शरीर, जीवन तथा मन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। मुक्त आत्मायें सदैव के लिए इस संसार के परे चले जाते हैं और ब्रह्म में शाश्वत विश्रांति को प्राप्त करते हैं।

इसके विपरीत टैगोर किसी ऐसे आध्यात्मिक जगत की कल्पना नहीं करते हैं जहाँ आत्मायें ईश्वर के साथ तादात्मय की प्राप्ति करती है। उनके अनुसार मोक्ष इस पृथ्वी पर ही दिव्य जीवन की एक स्थिति है। आत्म-ज्ञान का तात्पर्य ईश्वर के साथ प्रेम में अवैधय व्यक्ति का अध्यात्मिक जीवन है।

अध्यात्मिक अस्तित्व के सर्वोच्च अवस्था में भी आत्मायें अपनी स्वतंत्रता एवं व्यैक्तिकता को बनाये रखती है। आत्माऐं इस पृथ्वी पर दिव्य जीवन की प्राप्ति करते हैं तथा ईश्वर के साथ एक हो जाते हैं। इस जगत से भिन्न किसी दूसरे लोक में ईश्वर के साथ-सामीत्य की प्राप्ति की संभावना को टैगोर स्वीकार नहीं करते हैं। टैगोर के अनुसार मोक्ष के फलस्वरूप न तो आत्मा पुनर्जन्म से मुक्त हो जाती है और न ही इस जगत से स्वतंत्र होती है टैगोर के अनुसार सांसारिक बंधन की सृष्टि ईश्वर के द्वारा की गयी है। अतः हमें इसी जगत में मोक्ष को प्राप्त करना पड़ता है। टैगोर कहते हैं-

" Deliverance? Where is this deliverance to be found? Our master himself has joyfully taken upon himself the bonds of creation, he is bound with us all forever." [2]

ईश्वर ने इस जगत की सृष्टि मनुष्य के साथ प्रेमपूर्ण संबंध बनाये रखने के लिए किया है। अतः मनुष्य के लिए यह उचित नहीं हैं कि वह इससे दूर भागे। सत्य, आनन्द एवं ईश्वर की उपस्थिति को इस जगत में ही प्राप्त करना है। इन्द्रियाँ के द्वारा हम जिस आनन्द को प्राप्त करते है, वह प्रकृति में ईश्वर की अभिव्यक्ति के कारण है। टैगोर कहते हैं कि

"Deliverance is not for me in renunciation. I feel the embrace of freedom in a thousand bonds of delight. Thou ever pourest for me the fresh draught of they wine of various colours and fragrance filling this earthen vessel to the brim." [3]

प्रकृति ईश्वर की मूर्त्त एवं भावात्मक अभिव्यक्ति है। ईश्वर इन्द्रियों के माध्यम से हमारे अन्दर व्याप्त होता है। अतः हमें अपनी इन्द्रियों का द्वार बन्द नहीं करना चाहिए तथा ईश्वर के द्वारा प्रदत्त सुखों से अपने को वंचित नहीं करना चाहिए। इन्द्रियों के द्वारा हम ईश्वर के आनन्द और सौन्दर्य को प्राप्त करते हैं। टैगोर कहते हैं कि-

" No, I shall never shut the door of my senses. The delight of right and hearing and touch will bear. Thy delight. Yes, all my illusions will burn into illumination of joy and all my desires ripen into fruits of love." [4]

यदि ईश्वर हमारे लिए बंधन की सृष्टि करता है, तो प्रश्न उठता है कि हम स्वतंत्रता के लिए प्रयास क्यों करें? टैगोर के अनुसार ईश्वर के साथ एकता की प्राप्ति करना और उससे आबद्ध रहना, उस पर निर्भर रहना स्वतंत्र होने के अपेक्षा अधिक आनन्ददायी है। ईश्वर के ऊपर निर्भरता, उसके प्रति प्रेम एवं उसके साथ बँधकर ही व्यक्ति मोक्ष की प्राप्ति करता है। वस्तुतः मनुष्य स्वतंत्रता नहीं चाहता है। वह ईश्वर के साथ प्रेम एवं आसक्तिपूर्ण बधंन में बंधा रहना चाहता है। टैगोर कहते है,

"In freedom he wants bondage. He is trying to be in bondage to that which will cause him endless bondage." [5]

टैगोर के अनुसार इस पृथ्वी पर ईश्वर के साथ समागम की प्राप्ति की अवस्था ही मोक्ष है। यह उस सार्वभौम सत्ता को अपने अन्दर अनुभव करना है। प्रश्न उठता है कि मोक्ष की प्राप्ति के पश्चात क्या मनुष्य पहले से पूर्णतया भिन्न बन जाता हैं? क्या वह सार्वभौम सत्ता में पूर्णतः विलिन हो जाता है? टैगोर के अनुसार मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। उसे जीवन का निषेध भी नहीं कहा जा सकता है। यह जीवन का भावात्मक पक्ष है। जीवनों को महत्व प्रदान करता है। मनुष्य मृत्यु से भयभीत रहता है क्योंकि वह उसके वास्तविक अर्थो को समझ पाने में असमर्थ रहता है। किंतु यदि मृत्यु को सही दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह एक ऐसी अवस्था प्रतीत होती है जो जीवन को अग्रगामी दिशा प्रदान करती है।

टैगोर के अनुसार मृत्यु चेतना के विस्तार की आध्यात्मिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आत्मा मृत्यु के बाद भी अस्तित्वान रहती है और इस तरह टैगोर पुनर्जन्म की प्रक्रिया में विश्वास करते हैं। यद्यपि वे स्पष्ट रूप से इस पर प्रकाश नहीं डालते हैं। मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य अमरता की प्राप्ति है। इस अवस्था की प्राप्ति के बाद हमारे सामान्य जीवन के सभी संघर्ष समाप्त हो जाते हैं तथा एक सामंजसपूर्ण अस्तित्व का आर्विभाव होता है। मानव जीवन में ज्ञान, प्रेम तथा क्रिया परस्पर विरोधी नहीं रहते हैं उनके बीच एक पूर्ण आन्तरिक संगति पायी जाती है। इस अवस्था में मनुष्य अपने आध्यात्मिक जीवन से उपर उठ जाता है और सभी वस्तुओं के साथ तात्विक एकता की प्राप्ति करता है, जिसके फलस्वरूप सुख-दुख, शुभ-अशुभ मैं तथा तुम, मेरा तथा तुम्हारा का भेद समाप्त हो जाता है। वह सर्वत्र उस परम सत्ता की उपस्थिति को अनुभव करता है। इसे ही देवत्व की प्राप्ति कहते हैं। यही मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य है। इस सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति से मनुष्य अपने को एक पूर्णतया भिन्न जगत में नहीं पाता है। जब वह ईश्वर को अपने अन्दर देखता है तो उसमें होने वाले परिवर्तन मुख्यतः आन्तरिक होते हैं। मानव प्रकृति एवं अन्य प्राणियों को देखने का दृष्टिकोण बदल जाता है। उसके आत्म-केन्द्रित विचारों का स्थान प्रेम एवं उल्लास ले लेता है। वह आनन्द के समुद्र में प्रवेश करता है जो सीमारहित है। टैगोर कहते है,

"Where is the further shore? It is it something else than what we have? Is it somewhere are than where we are? Is it to take rest from all our works to be relieved, of all the responsibilities of life. No, in the very heart of our activities we are seeking for our end. We are crying for across, even where we stand." [6]

टैगोर के अनुसार मनुष्य कितना भी आध्यात्मिक एवं दिव्य क्यों न हो जाय, फिर भी आध्यात्मिकता की परम अवस्था में भी मनुष्य अपूर्ण, ससीम एवं सीमित रहता है। निरपेक्ष पूर्णता सिर्फ ईश्वर के लिए ही संभव है। मनुष्य के लिए मोक्ष एक शाश्वत प्रक्रिया है। मनुष्य ईश्वर की निकटता को प्राप्त कर सकता है, किन्तु वह कभी भी ईश्वर नहीं बन सकता। वैयक्तिक आत्मा कभी भी ईश्वर में विलीन नहीं होता है। टैगोर कहते है:-

"The finite is not dissolved in the Absolute. Man remains ever imperfect. Man ever approaches but never merges into God." [7]

टैगोर के अनुसार आत्मा तथा ब्रहम के बीच पूर्ण तादात्म संभव नही है। वे कहते हैं कि कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो एक गुण एवं परिभाषारहित अव्यैक्ति सत्ता में अपने व्यैक्तिक आत्मा को पूर्णरूपेण विलिन कर देने का प्रयत्न करते हैं। उसका प्रयास एक ऐसी अवस्था को प्राप्त करना है जहाँ मन पूर्णत: रिक्त हो जाता है। जो सिर्फ आनन्दमय है तथा सभी प्रकार के विषय-वस्तु से रहित है। इसे योग का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है। जिसके अनुसार सभी प्रकार के विचार तथा शब्दों के परे अनन्त सत्ता के साथ अपने को एकाकार कर देना ही सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता है। टैगोर कहते हैं कि इसकी सत्यता में अविश्वास नहीं करते हुए मेरा विचार है कि एक महान मनोवैज्ञानिक अनुभव के रूप में यह मूल्यवान हो सकता है, किन्तु यह धर्म नहीं हो सकता है। मौलिक या आरम्भिक अनिश्चितता में अपने को विलीन करने की अपेक्षा मनुष्य एक रूप में अधिक पूर्ण है।

टैगोर इस बात को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं अनुभव करते हैं कि मोक्ष के फलस्वरूप आत्मा-जन्म या पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है। सामान्यत: भारतीय दार्शनिको का विचार है कि मोक्ष पुनर्जन्म से मुक्ति की अवस्था है। टैगोर के अनुसार इस प्रकार का विचार मानव व्यक्तित्व की पृथकता या भिन्नता को प्रभावित कर सकता है अतएव उनके अनुसार मोक्ष की अवस्था में ईश्वर तथा मनुष्य के बीच क्रीड़ा की अनवरतता के लिए पुनर्जन्म लेना आवश्यक हो जाय तो वह पुनर्जन्म धारण करेगा। अत: इसे पहले से निश्चित नहीं किया जा सकता है कि ईश्वर के सामीप्य की प्राप्ति की अवस्था में दोनों के बीच यह आनन्दपूर्ण खेल किस प्रकार खेला जायगा। किन्तु इतना स्पष्ट है कि आत्मा और ईश्वर के बीच द्वैत समाप्त नहीं होता। ईश्वर से आत्मा की पृथकता एवं इसकी विलक्षणता सदैव बनी रहती है। टैगोर कहते है:-

Salvation is "the eternal bond of union between the Infinite and finite soul from which there can be no mukti, because love is ultimate, be cause it is an interrelation which make truth complete, because absolute independence is the blankness of utter servility." [8]

धार्मिक-चेतना में ईश्वर तथा वैयक्तिक-आत्मा के बीच प्रेम के संबंध की अनुभूति के अतिरिक्त एक ओर पृथकता तथा दूसरी ओर एकता, एक ओर बंधन तथा दूसरी ओर मुक्ति पायी जाती है। प्रेम में हम सीमित तथा सीमारहित, शक्ति तथा सौंदर्य, रूप तथा रस के बीच एक संश्लेषण पाते हैं। जब हमारा अहम हमें अपने अधिकार में कर लेता है तब हम स्वार्थी, अज्ञानी तथा संकीर्ण मन बाले बन जाते हैं। हम अपनी सच्ची आत्मा को भूल जाते हैं। अहम् एक छाया की तरह हमारा अनुसरण करता है। हमें इस अहम से मुक्त होना पड़ता है जिससे की सच्ची आत्मा को प्रकाशित कर सके। टैगोर कहते हैं,

"Wherever I go, I find that this lower self follows me like I blank shadow. I wish to tample it under to foat. I can realise the Infinite only when I have got rid off the lower self." [9]

व्यक्ति का अहम् ही अज्ञान एवं बंधन का कारण है। यह उसका वास्तविक व्यक्तित्व नहीं है। उसके अन्दर विद्यमान वास्वविक आत्मा ही उसका वास्तविक व्यक्तित्व है। यह आत्मा अन्तर्व्याप्त होते हुए भी अनुभवातित है। वास्तविक आत्मा की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को अपने अहं के परे जाना पड़ता है। जब मन, शरीर और जीवन पर वास्तविक आत्मा का नियत्रंण हो जाता है तभी व्यक्ति अपने अस्तित्व की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करता है और वह दिव्य आत्मा मनुष्य के तर्क, बुद्धि, संकल्प तथा संवेग को निर्देशित करती है और इसे शरीर में ही मोक्ष की प्राप्ति करता है। अतएव मोक्ष का तात्पर्य दिव्य व्यक्तित्व की प्राप्ति है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन में दिव्य-आत्मा को अभिव्यक्त कर सकता है। हम ऐसी परिस्थितियों का निर्माण कर सकते हैं जिसमें ईश्वर के सामीप्य की प्राप्ति हो सके।

प्रश्न उठता है कि मनुष्य किस प्रकार अपनी चेतना का विस्तार कर आत्मा-चेतना तक पहुँच सकता है। टैगोर के अनुसार बुद्धि के प्रयोग के द्वारा आत्मा-चेतना की प्राप्ति संभव नहीं है। क्योंकि यह यथार्थ सत्ता का ज्ञान खण्डों में बंटा हुआ ज्ञान प्रदान करती है। वस्तु का सर्वग्राही ज्ञान या एक समष्टि के रूप में ज्ञान अन्तर्दृष्टि द्वारा होता है। जिसे टैगोर टपेपवद कहते है। इसे उन्होने मनुष्य के अन्दर से एक आकस्मिक, आध्यात्मिक प्रेम द्वारा परस्फुटन (A Sudden spiritual outbrust from within) के रूप में परिभाषित किया है। यह वस्तु का एक समिष्ट के रूप में ज्ञान प्रदान करता है। प्रश्न उठता है अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति किस प्रकार होती है? टैगोर ने इस अन्तर्दृष्टि का आधार प्रेम को माना है। प्रेम के द्वारा ही हमारी चेतना का विस्तार होता है। प्रेम आदर्शपूर्ण आनन्द की अवस्था है। इसके लिए अहं वादी प्रवृतियों के परे जाना आवश्यक है। जबतक मनुष्य में ''मैं और मेरा की भावना रहती है वह प्रेम नही कर सकता है, प्रेम और आसक्ति में अन्तर है। आसक्ति अहम् के चारों और केन्द्रित रहती है। इसके पीछे सदैव एक उद्देश्य रहता है। किन्तु प्रेम के पीछे उद्देश्य किसी अहंवादी इच्छा को संतुष्ट करना नहीं होता है। प्रेम के लिए त्याग आवश्यक है। अपनी आध्यात्मिक यात्रा के आरम्भ में मनुष्य का पहला सोपान प्रेम है, जो सभी प्रकार के वैयक्तिक इच्छाओं के त्याग की अपेक्षा करती है। यह प्रेम का सैद्धान्तिक पक्ष है। टैगोर ने इसके व्यावहारिक पक्ष का उल्लेख किया है।

प्रेम अपने निकटतम सम्बन्धियों से आरम्भ हो सकता है। किन्तु इसका विस्तार अन्य लोगों तक भी किया जाना चाहिए। प्रेम के विस्तार के साथ ही आत्म-त्याग की प्रवृतियाँ भी तीव्रतर हो जाती है। आरम्भ में आत्मत्याग की प्रक्रिया कष्टदायक प्रतीत हो सकती है किन्तु बाद में यह मनुष्य के लिए आदत बन जाता है और उसके लिए आनन्द का स्रोत बन जाती है। टैगोर के अनुसार हमें प्रेम और त्याग का सदैव विस्तार करते रहना चाहिए। टैगोर प्रेम और त्याग को तात्विक आधार प्रदान करते हैं तथा उपयोगितावादी दृष्टिकोण से उसे भिन्न करते हैं दूसरों के लिए उपयोगितावादी का प्रेम व्यक्तिगत विचार पर आधारित होता है जब कि टैगोर के अनुसार इसके पीछे सभी व्यक्तियों की तात्विक एकता का विचार विद्यमान रहता है और तब व्यक्ति का जीवन ससीम नहीं रह जाता अपितु असीम बन जाता है। टैगोर अनुभव करते हैं कि प्रत्येक क्रिया जो व्यक्ति को अपनी चेतना का विस्तार कर अपने अहं के परे जाने में सक्षम बनाती है, मोक्ष का मार्ग है। दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करने को टैगोर ने कर्म के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति कहा है। कर्म के ऊपर जोर देने का कारण यह है कि टैगोर ने कर्म को आनन्द का स्रोत माना है। यह तभी संभव है जब व्यक्ति दूसरों के लिए त्याग करता है।

टैगोर ने इस बात को अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वीकार किया है कि साहित्यिक रचना का एकान्तिक आनन्द जब उन्हें संतुष्ट नहीं कर सका तब उन्होने मानव जाति की सेवा में अपने को नियोजित कर दिया। क्योंकि उन्होने अनुभव किया है कि सिर्फ मानव जाति की सेवा द्वारा ही आत्म-ज्ञान की प्राप्ति संभव है। टैगोर कहते है,

"The solitary enjoyment of the Infinite in meditation no longer satisfied me and the texts which I used in my silent worship lost their inspiration without my knowing it. I am sure I vaguely feft that my need was spiritual self realisation in the life of man through some disinterested service."[10]

टैगोर ने प्रेम तथा नि:स्वार्थ कर्म के द्वारा आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के अतिरिक्त सौंदर्य को भी असीम सत्ता की प्राप्ति का एक मार्ग माना है। सौंदर्य सर्वत्र विद्यमान है। करूपता हमारे जीवन में तथा हमारी कला में सौन्दर्य की विकृत अभिव्यक्ति है। जिसका कारण सत्य का अपूर्ण ज्ञान है। अतएव सौन्दर्य की चेतना सत्य की चेतना पर आधारित है। इसी कारण टैगोर सौंदर्य बोध का उल्लेख करते हैं और कलात्मक संवेदन-शीलता को विकसित करने की बात करते हैं।

उनके अनुसार संगीत, कला का शुद्धतम रूप है तथा सौंदर्य की सर्वाधिक प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। टैगोर अनुभव करते हैं कि सृष्टि के ससीम रूपों में असीम सत्ता की अभिव्यक्ति अपने आप में एक मूक संगीत है। यह जगत संगीतमय है जो कभी संगीतज्ञ से पृथक नहीं हो सकता है। इसका कारण है कि विश्व का प्रत्येक पहलू उस असीम सत्ता को प्रतिबिम्बित करता है। कला, संगीत तथा सौंदर्य बोध के विकास द्वारा मनुष्य उस असीम सत्ता तक पहुँच सकता है।

टैगोर आध्यात्मिक योग की भी चर्चा करते हैं। उनके अनुसार योग का तात्पर्य एक ऐसा अनुशासन है जिसके लिए त्याग की आवश्यकता है। त्याग का तात्पर्य अपनी अधिकृत वस्तुओं तथा अहम्वादी प्रवृत्तियों का त्याग करना है। इसका तात्पर्य मनुष्य की निम्नतर आत्मा को नष्ट कर देना नहीं है अपितु इसे अधिक पूर्ण एवं उच्चतर स्थिति में लाना है। टैगोर कहते है कि:-

"The renunciation is not in the negation of the self, but in the dedication of it."[11]

पुन: टैगोर कहते हैं कि [Yoga] is the daily process of surrendering ourselves, removing all obstacles to Union and extending our consciousness of him in devotion and service, in goodness and in love." [12]

रविन्द्रनाथ टैगोर के मोक्ष की अवधारणा का समीक्षा

मोक्ष के संबंध में टैगोर का विचार प्रेरणारहित है। यदि मनुष्य शाश्वत रूप से मनुष्य ही रहता है तो उसके लिए मोक्ष की क्या उपादेयता है? यदि मनुष्य मोक्ष के फलस्वरूप अतिमानव या दिव्य प्राणी नहीं बन पाता है तो उसके लिए मोक्ष में कोई आकर्षण नहीं रहता है। टैगोर के दर्शन में न तो अपूर्ण प्रकृति, दिव्य या अतिप्रकृति में रूपान्तरित होती है और न जागतिक मोक्ष की कोई संभावना है। टैगोर के दर्शन में एक दिव्य-कृत मानवता का विचार नहीं है। मोक्ष का तात्पर्य सिर्फ ईश्वर के सामीप्य की प्राप्ति है। आत्मा मोक्ष की स्थिति में निरपेक्ष, पूर्णता आनन्द एवं सत्य को प्राप्त नहीं करता। इस तरह टैगोर का मोक्ष सम्बन्धी विचार संतोषजनक नहीं है।

निष्कर्ष

टैगोर के दर्शन में मानव स्वरूप का दो अंश का वर्णन है ससीम तथा असीम। ससीम अंश उसका भौतिक एवं जैविक अंश है जो उसे विकास की प्रक्रिया से प्राप्त होता है मानव स्वरूप का दूसरा (असीम) अंश अध्यात्मिक है जो उसे विशिष्टता प्रदान करता है तथा जिसके कारण उसमें मोक्ष प्राप्ति का भाव उत्पन्न होता है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर के साथ एकात्मक्ता की प्राप्ति करना है। टैगोर के अनुसार मोक्ष इस पृथ्वी पर ही दिव्य जीवन की एक स्थिति है। मोक्ष के फलस्वरूप न तो आत्मा पुनर्जन्म से मुक्त होती है और न ही इस जगत से स्वतंत्र होती है। इस पृथ्वी पर ईश्वर के साथ समागम की प्राप्ति की अवस्था ही मोक्ष है। मृत्यु जीवन का अन्त नहीं हैं। आत्मा मृत्यु के बाद भी अस्तित्ववान रहता है और टैगोर पुनर्जन्म की प्रक्रिया में विश्वास करते हैं। मनुष्य कितना भी आध्यात्मिक एवं दिव्य क्यों न हो जाय, फिर भी आध्यात्मिकता की परम अवस्था में भी मनुष्य अपूर्ण तथा सीमित रहता है। मनुष्य प्रेम भक्ति, समर्पण तथा संगीत के माध्यम से ईश्वर की निकटता को प्राप्त कर सकता है किन्तु वह कभी भी ईश्वर नहीं बन सकता है। टैगोर का मोक्ष सम्बन्धी विचार प्रेरणारहित है। क्योकि उनके दर्शन में दिव्यकृत मानवता का विचार नहीं है। टैगोर के अनुसार ईश्वर के समीप्य की चेतना मन की एकाग्रचितता की एक क्रिया मात्र नहीं है। इसे हमारे सम्पूर्ण जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। हमें अपने समस्त विचारों एवं कार्यों में असीम सत्ता की चेतना रहनी चाहिए। अपने प्रत्येक कार्य में हमे असीम शक्ति की प्रेरणा का अनुभव करना चाहिए। इसे ही उन्होंने Realisation of infinite कहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

	Name of Author		*Name of Book & Publication*
1.	Rabindranath Tagore	-	His life and works, introduction.
2.	—	-	Gitanjali Verse XI
3.	—	-	Gitanjali Verse LXVIII
4.	—	-	Gitanjali Verse LXXIII
5.	—	-	Santiniketan Fourth series
6.	—	-	Sadhana. Page-162
7.	—	-	Sadhana 8th series
8.	—	-	Atma Paricaya. Page- 78.
9.	—	-	Gitanjali No. 141
10.	—	-	The Calcutta Review, Oct 1941, Page-8
11.	—	-	The Religion of Man. 3rd impression. George Allen and Lenwin London, 1949. Page-182.
12.	—	-	Sadhana, Page-149.

ममता कालिया कृत उपन्यास 'बेघर' में स्त्री शोषण का विरोध

डॉ० विद्या कुमारी चन्द्रा

एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष आधुनिक भाषा एवं भाषा विज्ञान विभाग, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में नारी की शोषित पीडित परिस्थितियाँ एवं समस्याओं से हमें अवगत कराते हुए, उन समस्याओं से जूझते संघर्षशील नारी के बड़े रूप को भी दर्शाते है। जहाँ स्त्रियों के सम्मुख समस्याएँ जन्म लेने पर उन्हेंसामना करके समाधान ढूँढने की कुशलता नारी शक्ति में है। उपन्यासकारों ने स्त्रियों के चरित्रों व्दारा समाज में व्याप्त उन बुराईयों को बड़ी चतुराई के साथ बेनकाब करने का सफल प्रयास किया है। जैसे नारी सदियों से विधवा समस्या, विधवा पुनर्विवाह, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, बालविवाह, नारी शिक्षा, पुरूष व्दारा नारी शोषण, परित्यक्त नारी समस्या, नारी स्वातंत्र्य पारिवारिक समस्याएँ, जातिवाद, आर्थिक समस्या, धार्मिक समस्या, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, तथा अज्ञान अन्य आदि समस्याओं का डटकर सामना करते हुए अपनी प्रतिभा का अदम्य एवं अनुपम पहचान दिया है।

ममता कालिया के 'बेघर' उपन्यास में हमारे समाज में यौनशुचिता को जो महत्व दिया जाता है। परमजीत के माध्यम से पुरूष की संस्कारबध्दता एवं संदेह की प्रवृत्ति को प्रसेतुत किया गया है। संजीवनी असफल बलात्कार की शिकार बनी युवती है, पर परमजीत को जब यह अहसाय हो जाता है कि वह संजीवनी के जीवन में आनेवाला पहला पुरूष नहीं है, तो वह उसे छोड़ देता है और दूसरी ऐसी लड़की से विवाह करता है, जो परम्परागत मान्यताओं पर कुँवारी है लेकिन विचारों के धारातल पर उससे कोसों दूर है। उपन्यास में केकी नामक पात्र भी माता-पिता की उपेक्षा एवं मानसिक शोषण की शिकार है।

आजकल का वातावरण क्रमशः परिवर्तनशील होता जा रहा है। नारी जीवन की समस्याओं में अन्तर्विरोधों के दोनों पक्षों को समझ लेती है, तब उनके मन में ठहराव आता है। इस दृष्टि से ममता कालिया ने अपने उपन्यास बेघर में वैयक्तिक शोषण के परिवेश में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के अन्तर्विरोधों को विशेष स्थान दिया है। 'बेघर' की संजीवनी अपने प्रेम की वैयक्तिक पीड़ाओं को जहाँ परतदर परत खोलती चलती है, वहाँ मानों सामाजिक विसंगतियों को भी पा लेती है। वैयक्तिक धारातल पर परमजीत के प्रति उसका प्रेम गहरा क्यों न हो, परमजीत और विपिन व्दारा भोगी यातनाओं का सामाजिक अर्थ में उतना ही महत्व है। आग्रह, गुस्सा और कभी न बोलने का डर या छोड़ देने की धमकी के सामने स्त्री स्वयं नर्वस या निढाल हो जाती है या प्रेम में अटूट विश्वास के हाथों चली जाती है। 'प्लेब्वाय' के पन्ने पलटने वाला परमजीत 'पर्त दर पर्त कपड़े उतरने पर चमकृत होता है।' ऐसे में संजीवनी का संघर्ष क्या अर्थ रखता है? संजीवनी व्दारा, समर्पण के ऐसे विवश क्षणों में परमजीत को लगा जैसे उसके गर्भ मोम में अपने को डाल दिया है।

वह उसमें फँसता गया, और अगले ही क्षण पहला न होने की निराशा के सन्नाटे के साथ-साथ उसे अपनी जिन्दगी का सारा नक्शा मूचड़ा हुआ दिखाई दे रहा था, अच्छा हुआ पहला न होने की निराशा का बहाना मिल गया वरना घर, प्रतिष्ठा, समाज और व्यक्तिगत विवशताओं के चोर दरवाजों से भागना पड़ता। समाजिक परिवेश के अंतर्गत कई विचारोंवाले व्यक्तित्व का विवास होने के कारण आपसी कलह, मनमुटाव होते है। ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में सामाजिक चेतना के परिवेश में स्त्री-पुरूण सम्बन्धों के अन्तरविरोधों को विशेष स्थान दिया। नारी-जीवन के अनुभूतिपरक चित्र न केवल उसके मानसिक संघर्ष को अभिव्यक्ति देते है,

बल्कि सामाजिक बेघर की संजीवनी बहुत उग्र मनः स्थिति में थी। उसका मन हुआ शरीर पर पड़ा कम्बल दाँतों से काट चिन्दी-चिन्दी कर दे और सड़क पर ट्याँऊ-ट्याँऊ करते पिल्ले की गर्दन दबा डाले। कुछ दिन पहले विपिन जबरदस्ती उस पर हावी हो गया था। उसे बहुत तकलीफ हुई थी जैसे बिना एनेस्थिया दिये उसका आपरेशन किया जा रहा हो। जंगली कहीं के कहकर जिन निगाहों से उसने विपिन को देखा, विपिन अपने आप अलग हो गया था। कई बार उसे दुर्घटना याद आती और वह पीली पड़ जाती, उसके बदन में झुरझुरी दौड़ जाती पर उसने नहीं सोचा था कि इसका असर आनेवाले दिनों पर इतना घातक होगा। उस दिन रूमाल पर खून का एक छोटा धब्बा भर पड़ा था पर उसे महसूस हुआ था कि चोट कहीं बाहर ही लगी है। उसे डर था पर वह निश्चित नहीं थी, पर उसे यह भी आश्वासन था कि उसने विपिन को पहले ही रोक दिया था। उसने तय किया कि वह यह सब परमजीत से कल कहेगी। उसे समझना ही होगा कि संजी के लिए यह पहला ही अनुभव था।वह बता देगी की उसके ऊपर आकस्मित आक्रमण हुआ था। वह विपिन के साथ एकान्त कमरे तक में नहीं थी, उसने रेस्तराँ के केबिन में ही उसे जबरन दबोच लिया था और खड़े-खड़े ही दुर्व्यवहार किया था। वस्तुतः स्त्री के कुँआरेपन को लेकर पुरूष समाज में जो रूढ़ धाराणाएँ हैं, वे न सिर्फ अवैज्ञानिक है बल्कि अमानवीय भी है। मध्यवर्गीय समाज के मानसिक संस्कारों में शिक्षित-दीक्षित पुरूषों की परम्परागत सोच-समझ और स्त्री के प्रति भोगवादी, सामन्ती तथा अमानवीय व्यवहार के कारण सामाजिक पृष्ठभूमि में घर से श्बेघरश् की जाती रही संजीवनी, परमजीत के अश्लील यौन आकांक्षाओं की तृप्ति करती इच्छावस्तु मात्र बनकर रहती है। लेकिन परमजीत रमा नामक लडकी से शादी करता है।

रमा सामान्य शिक्षित होने के कारण अंधविश्वास और रूढ़ियों को ज्यादा मानती है। वह अत्यंत फूहड़ और कंजूस है। अपने सास के प्रति व्देष करती है। परमजीत के जीवन को एक पूर्जा बना दिया। अतः घुट-घुटकर परमजीत की मौत हो जाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पाश्यात्य नारी के विवाहपूर्व-जिनमें कुण्ठा, तनाव, व्दंव्द, भटकाव और शोषण की स्थितियाँ सामने आये थे। प्रेम की असफलता में नारी अपना घर बसाने के पहले ही लगभग आधी मर चुकी होती है। पुरूष तो इस सम्बन्धों को अपना पौरूषत्व समझ भूल जाता किन्तु कोमलता का प्रतिक मानी जानेवाली संवेदनशील नारियाँ अपने जीवन में हताश हो जाती है।

'बेघर' यह एक ऐसा उपन्यास है कि जिसमें परमजीत की पत्नी रमा अपने घर-परिवार के गणित को सही करने के चक्कर में स्वयं अपने आप को श्बेघरश् कर लेती है और परमजीत संजीवनी पर शक कर स्वयं भी श्बेघरश् होता है और संजीवनी को भी 'बेघर' कर देता है।

आधुनिक युग में नारी की स्थिति पर विशेष बल दिया जा रहा है। नारी की कर्म, चेतना, व्यवहारिक कुशलता, उपादेयता आदि को भी विशेष महत्व दिया जा रहा है। तत्कालीन अनुभवों से आज की नारी ने शिक्षा ली है। हीन भावना से उभरने के लिए वह प्रयत्नशील है। पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए कृत संपल्प हुई। उसमें नये उत्साह का संचार हुआ, और आत्मविश्वास का उदय हुआ। आज नारी के अपना स्वतंत्र अस्तत्व हर जगह स्थापित किया है। यही स्त्री की सफलता है।

'बेघर' उपन्यास में ममता कालिया जी ने नारी समस्या के साथ-साथ उससे उभरने की प्रेरणा भी देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ममता कालिया कृत बेघर उपन्यास, वाणी प्रकाशन
2. ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी चेतना, विकास प्रकाशन,
3. ममता कालिया के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. फौमिदा बीजापुरे, विनय प्रकाशन
4. महिला उपन्यासकारों की नारीः प्रगति एवं पीड़ा के आयाम, आचार्य डॉ. हरिशंकर दुबे अमन प्रकाशन

आधुनिक छत्तीसगढ़ में श्रमिक (मजदूर) आंदोलन का विकास-एक अध्ययन

डॉ० सीमा पाल

अतिथि शिक्षक, इतिहास अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि. रायपुर (छ.ग.)

सारांश:- औद्योगिक विकास तथा श्रमिक (मजदूर) समस्याएँ- सिक्के के दो पहलू हैं। विश्व स्तर पर श्रम आंदोलन का आरंभ औद्योगिक क्रांति के दौरान हुआ, जब कृषि क्षेत्र में रोजगार कम हो गया और औद्योगिक क्षेत्र में काम मिलने लगे।

भारत में 19वीं सदी के उत्तरार्ध में आधुनिक उद्योग धंधो का विकास हुआ तथा ग्रामीणो को रोजगार मिला, साथ ही साथ श्रमिक समस्याएं भी पैदा हुई- जैसे कम मजदूरी, कार्य के अधिक घंटे, आधारभूत सुविधाओं का अभाव आदि। भारतीय श्रमिकों को न केवल औपनिवेशिक राजनीतिक शासन बल्कि भारतीय पूंजीपतियों दोनों के दोहरे शोषण का सामना करना पड़ा। ऐसे में श्रमिक आंदोलन एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उभर कर सामने आए- उत्तर भारत, दक्षिण भारत, पंजाब, महाराष्ट्र, मध्यप्रांत आदि सभी स्थानों के मजदूरों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलंद की, मजदूर संगठन बनाए। छत्तीसगढ़ इससे अछूता न रहा।

कुंजी शब्द:- श्रमिक, मजदूर, शोषण, विरोध, आंदोलन।

उद्देश्य:- मेरे शोध का उद्देश्य आधुनिक छत्तीसगढ़ में श्रमिक (मजदूर) आंदोलन हेतु उत्पन्न परिस्थितियों एवं कारणों का अध्ययन करना है।

शोध प्रविधि:- अपने इस शोध पत्र हेतु मैनें विषय से संबंधित प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्त्रोतों से मदद ली है। विषय से संबंधित पुस्तकों, शोध पत्रों, शोध प्रबंधों का अध्ययन एवं अवलोकन भी किया है।

विषय प्रवेश:- मध्यप्रांत में श्रमिक आंदोलन ठीक उसी तरह आरंभ हुआ जिस प्रकार भारत में अन्यत्र आंरभ हुआ था। ''मजदूर संघवाद" जो मुख्य रूप से कारखाना प्रणाली और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का परिणाम है यहां पर देर से विकसित हुआ। इसके कई कारण थे- औद्योगीकरण का धीमा होना, श्रमिकों में अशिक्षा तथा मजदूर केन्द्रों में मजदूर संरचना की विभिन्नता तथा उनकी प्रवासी प्रवृत्ति। श्रमिक आंदोलन का अर्थ है- श्रमिकों द्वारा अपने अधिकारों तथा हितों की रक्षा और संवर्धन के लिए किया गया संघर्ष। दूसरे शब्दों में, मजदूर आंदोलन, वह सामूहिक एवं सतत प्रयत्न है जो श्रमिकों द्वारा संगठित होकर अपने जीवन स्तर एवं कार्य करने की दशाओं एवं सेवादाताओं की शोषणवादी प्रवृत्तियों के विरोध में किया जाता है।

छत्तीसगढ़ में श्रमिक/मजदूर आंदोलन की चर्चा होते ही मानस पटल पर एक तो ठाकुर प्यारेलाल सिंह का नाम और दूसरा राजनांदगांव रियासत का दृश्य घूम जाता है-यें दोनो नाम सिक्के के दो पहलू है या फिर वे कुंजियां हैं जिनसे छ.ग. के श्रमिक आंदोलन के इतिहास की कहानी का खजाना खुलता है। राजनांदगाव संपूर्ण छत्तीसगढ मे प्रथम तथा प्राचीनतम औद्योगिक नगर कहलाने का गौरव रखता है। यहां की सूती मिल सन् 1888 में सी.पी. मिल्स लिमिटेड के नाम से तत्कालिन राजा महंत बलरामदास द्वारा स्थापित की गयी थी। इस मिल में काम करने के लिए बरार तथा नागपुर के आसपास से कुशल कारीगर बुलाए गए।[1]

भविष्य में ये कारीगर यहीं बस गए। इस मिल ने राजनांदगांव गांव के आसपास के किसानो तथा मजदूरों को तो जीविका का साधन दिया लेकिन दूसरी ओर कपड़ा बुनकरों का काम ठप्प हो गया।

राजनांदगांव की सी.पी. मिल्स, 23 जून सन् 1890 को इंग्लैंड के मैकवेथ ब्रदर्स ने राजा बलराम दास के सहयोग से लगभग 05 एकड क्षेत्र में 08 वर्षों में खड़ी कर ली थी। मिल कपड़े के उत्पादन के लिए थी। नंवबर, 1894 ई में यहां उत्पादन प्रारंभ हो गया। बलराम दास मिल संचालक मंडल के अध्यक्ष थे। संचालक के रूप में केदारनाथ बागची ने कार्य प्रारंभ किया। कई स्थानों से मिल धाटे में चलने लगी। अंततः 1897 ई में मिल को बेच दिया गया, उसका नाम सी.पी. मिल्स से बदलकर -बंगाल नागपुर कॉटन मिल्स (बी.एन.सी.मिल्स) रख दिया गया।[2] नागपुर-कलकत्ता के बीच छ.ग. का ये एकमात्र उद्योग था। मिल के नए मालिक मेसर्स शा वालिस कंपनी, कलकत्ता थे। इस मिल द्वारा उत्पादित कपड़ों मे राजा छाप का ट्रेडमार्क अंकित किया जाता था।[3]

ब्रिटिश कंपनी द्वारा मिल के संचालन से एक ओर मिल की प्रगति हुई तो दूसरी ओर मजदूरों की दुर्गति। काम अधिक मजदूरी कम। मजदूरों का कोई संगठन नहीं था, जो उनकी तरफ से बोल सके।

छत्तीसगढ़ का प्रथम श्रमिक/मजदूर आंदोलन- छ.ग. का प्रथम मजदूर आंदोलन राजनादगांव रियासत मे हुआ। ''अपने सौंदर्य के कारण राजनांदगांव कभी छ.ग. का पेरिस कहलाता था।''[4] इस रियासत के राजा बलराम दास अपने लोक कल्याणकारी शासन के लिए प्रसिध्द थे। इसी रियासत में 21 दिसंबर 1891 ई को दैहान नामक ग्राम में जन्म हुआ छ.ग. मजदूर /श्रमिक आंदोलन के प्रणेता ठाकुर प्यारेलाल सिंह का। पिता का नाम दीनदयाल, माता का नाम नर्मदा देवी था। सन् 1915 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण कर सन् 1920 तक वकालत के क्षेत्र में नाम कमाया। इसी बीच ठाकुर प्यारेलाल सिंह को ज्ञात हुआ कि मजदूरों से प्रातः 5 बजे से शाम 6 बजें तक काम लिया जाता है, श्रमिकों की शोषण गाथा नें द्रवित कर दिया। अब उन्होनें मिल के विभिन्न विभागों के कर्मचारियों, मजदूरों से मिलना, उनकी समस्याएं सुनना, कार्यक्रम की रूपरेखा बनाना आरंभ कर दिया। हरि ठाकुर के शब्दों में- ''उस दिन सूर्यास्त के समय राजनांदगांव के मिल मजदूरों का भाग्योदेय हो रहा था।''[5] कुछ दिनों पश्चात् एक श्रमिक संगठन की अध्यक्षता में मजदूर यूनियन बना जिसक माध्यम से तीन मांगे रखी गई:-

1. मजदूरों के कार्य की अवधि 8 घंटे निर्धारित की जाए।
2. काम करने की स्थिति में सुधार किया जाए।
3. मजदूरों के वेतन बढाएं जाएं।[6]

छत्तीसगढ़ में श्रमिक आंदोलन का बीजारोपण बी.एन.सी. मिल के मजदूरों ने किया जिनसे 12 से 13 घंटे काम लेकर कम मजदूरी दी जाती थी। महिलाओं से भी 9 से 12 घंटे काम लिया जाता था, इनमें से कुछ गर्भवती होती थी तो कई दुधमुहे बच्चे की मांऐ होती थीं।[7]

छत्तीसगढ़ के इतिहास में पहली श्रमिक हड़ताल अप्रैल, 1920 ई को, ठाकुर प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में आरंभ हुई। ठाकुर साहब उस समय मिल मजदूर यूनियन के अध्यक्ष थे, शिवलाल जी उपाध्यक्ष एवं राजूलाल जी शर्मा मंत्री थे। हड़ताल खत्म करने के लिए पुलिस मजदूरों को डरा धमका रही थी। पॉलिटिकल एजेंट मजदूरों पर काम में वापस जाने के लिए दबाव डाल रहे थे। यह हडताल 37 दिनो तक ठाकुर प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में सफलता पूर्वक चली। मजदूरों का नारा था ''हमारा शोषण बंद करो, काम के घंटे कम करो, हमारा वेतन पूरा दो" आदि। 38 वे दिन मिल अधिकारियों ने मजदूरों की सभी मांगे स्वीकार कर ली। मजदूरों के काम करने की अवधि निर्धारित हो गयी।[8] काम के घंटे कम किए गए, उनके वेतन में वृद्वि की गई, अनेक सुविधाएं श्रमिको को दी गई। राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों ने इस हड़ताल के समाचार छापे तथा वी.वी.गिरी जैसे राष्ट्रीय मजदूर नेता ने स्वयं राजनांदगांव आकर हड़ताल को संचालित करने में ठाकुर प्यारेलाल सिंह को सहयोग प्रदान किया। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र ने लिखा भी है:- ''भारत वर्ष में प्रथम कहे जाने वाले राजनांदगांव मिल मजदूरो के आंदोलन का श्री गणेश ठाकुर साहब ने किया था।''[9] ''ठाकुर साहब ने तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद न केवल एक सुदृढ श्रम संगठन का निर्माण किया बल्कि उसका साहस के साथ संचालन भी किया। भारत के श्रम संगठन के इतिहास निर्माण में राजनांदगांव मिल मजदूरों के इस संगठन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तत्कालिन भारत की किसी भी देशी रिसायत मे इस प्रकार के श्रमिक आंदोलन की सूचना इतिहास हमे नहीं देता।''[10] छत्तीसगढ़ के इस प्रथम श्रमिक आंदोलन का दोहरा प्रभाव पड़ा- प्रथम, इस मजदूर आंदोलन की गणना छ.ग. के प्रथम सफल मजदूर आंदालेन के रूप में इतिहास में दर्ज हो गयी, द्वितीय- यह राष्ट्रीय आंदोलन के लिए संगठन शक्ति के महत्व को भी प्रतिपादित करता है। राजनांदगांव के इस श्रमिक आंदोलन में ठाकुर प्यारेलाल सिंह के अतिरिक्त शंकरराव खरे एवं शिव लाल मास्टर का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मजदूरों की मांगे तो पूरी हो गईं, मगर प्रशासन ने ठाकुर साहब को राजनादगांव से निष्कासित कर दिया। इस आदेश के खिलाफ ठाकुर साहब ने सी.पी. (सेंट्रल प्रोविन्स) के गवर्नर को याचिका प्रस्तुत की।[11] परिणामस्वरूप गवर्नर ने निष्कासन आदेश को निरस्त कर दिया।

छत्तीसगढ़ का दूसरा श्रमिक आंदोलन (सन् 1924)- छत्तीसगढ़ में दूसरा श्रमिक आंदोलन राजनांदगांव रियासत मे सन् 1924 में आरंभ हुआ। यद्यपि प्रथम मजदूर आंदोलन के बाद श्रमिकों की मांगों को स्वीकार कर लिया गया था तथापि कालांतर में धीरे-धीरे उन सुविधाओं से उन्हें वंचित किया जाने लगा। फिर अधिक कार्य, कम वेतन का सिद्वांत चालू हो गया था, मजदूरों को पहले के समान छुट्टी नहीं दी जाती थी, मिल मैनेजर की तानाशाही दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, मजदूरों के हिसाब किताब में फिर गडबड़ियां की जाने लगीं, न जाने कितने निर्दोष मजदूरों को नौकरी से निकाल दिया गया था, जो मजदूर मिल में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरोध में आवाज उठाता था, अपनी पूरी मजदूरी मांगता था, उन्हें गुण्डों से पिटवाया जाता था। इन सभी कारणों से मजदूरों में भारी असंतोष व्याप्त था। अतः सन् 1924 में मिल प्रशासन के विरूद्व ठाकुर प्यारे लाल सिंह के नेतृत्व मे पुनः आंदोलन किया गया, उन्हें चुन्नीलाल, राधेलाल जी, डॉ. बंशीलाल जी का पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। द्वितीय श्रमिक आंदोलन से पूर्व ठाकुर साहब ने रायपुर की महाकौशल प्रेस से एक विज्ञप्ति ''राजनांदगांव के लोगो का कर्त्तव्य'' नाम से छपवाई। ब्रिटिश शासन का दमन चक्र आरंभ हो गया। बाहर से मजदूरों को बुलवाया गया था। मजदूरों को नौकरी इसी शर्त पर दी जा रही थी- कि वे किसी तरह की हड़ताल या प्रदर्शन मे शामिल न हो। पुराने मजदूरों को धमकियां दी जा रही थी यदि काम पर पांच मिनट भी देरी से आए तो उन्हे नौकरी से निकाल दिया जाएगा। परिणामस्वरूप ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने आंदोलन शुरू करने का निर्णय लिया।[12] सन् 1924 में हड़ताल प्रारंभ हुई। यह आंदोलन लगभग 7 महिने तक चला। इस समय न तो मजदूर अपनी हड़ताल वापस लेने के पक्ष में थे और न ही मिल के अधिकारी झुकने के पक्ष में थे। शासन ने मजदूरों को कुचलने के लिए बाहर से पुलिस बल बुलाया था। जैसे ही मजदूरों का शांत जुलूस मिल के गेट पर अपनी मांगो को लेकर पहुंचा, समूचा वातावरण गगनभेदी नारो से गूंज उठा। इस समय रियासत कोर्ट ऑफ वार्ड के अधीन था क्योंकि राजा, नाबालिग था जिसके कारण राज्य का संचालन दीवान के हाथों होता था।[13]

पॉलिटिकल एजेंट मि. डब्ल्यू ई.ले. ने ठाकुर प्यारेलाल सिंह को रायपुर बुलाया तथा उन्हे हड़ताल वापस लेने को कहा। ठाकुर साहब ने कहा- ''मजदूरों की शिकायत दूर कर दी जाए तो हड़ताल वापस ले ली जाएगी।''[14] पॉलिटिकल एजेंट ने धमकी दी कि मजदूरों को पकड़कर काम लिया जाएगा, लेकिन ठाकुर साहब समझौते की गुंजाइश न देखकर अपने साथियो (शिवलाल, राजू शर्मा) सहित राजनांदगांव लौट आए। हड़ताली मजदूरों की धर पकड़ जारी थी। इसी बीच एक घटना घटित हो गई। जातीय भोज में एक सिपाही जूता पहनें हुए चला आया और खाना बनाने के बर्तनों को पैरों से ठोकर मारी, एक बाबू गंगाधर राव को एक मजदूर ने थप्पड़ मार दिया, इससे पुलिस को हस्तक्षेप का बहाना मिल गया जिसकी तलाश में वह बैठी थी। तेरह मजदूर नेता हिरासत में ले लिए गए।[15] इससे मजदूर समूह शांत नहीं हुआ। रियासत के प्रशासन ने धारा 144 लगाकर मजदूरो को एक स्थान पर एकत्रित होने से रोका तथा सभा करने की मनाही की गई।[16]

बंदी बनाए गए मजदूरों पर मुकदमा चलाया गया। मजदूरों ने विरोध प्रदर्शन हेतु सुनवाई कर रहे न्यायालय को चारो ओर से घेर लिया। ठाकुर साहब, गांधी जी की अहिंसावादी आदर्शो के समर्थक थे, अतः उन्होनें मुश्किल से मजदूरों की उत्तेजना को शांत करने का प्रयास किया। इस समय रियासत के दीवान मैकगाविन तथा सुपरिटेंडेंट थे- उमराव सिंह। उन्होंनें ठाकुर साहब से भीड़ को शांत कराने का आग्रह किया। गिरफ्तार मजदूरों को पुलिस जब जेल ले जा रही थी, तब मजदूरों के रिश्तेदारों ने आक्रमण कर उन्हें छुड़ा लिया, किंतु पुलिस ने उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया। दूसरे मजदूर/श्रमिक आंदोलन के दौरान पुलिस की गोलीबारी से एक मजदूर जरहू गोंड़ घटना स्थल पर शहीद हो गया तथा बारह मजदूर घायल हो गए।[17] ठाकुर साहब ने सभी घायलों को अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था की। साथ ही, उन्होंनें इस गोली चालन की न केवल भर्त्सना की बल्कि सेंट्रल प्रोविन्स के गवर्नर से इसकी शिकायत भी की। रियासत प्रशासन ने ठाकुर प्यारेलाल सिंह को रियासत की शांति व्यवस्था के लिए खतरा मानते हुए उन्हें रियासत से निष्कासित कर दिया।[18] ठाकुर साहब के मार्गदर्शन मे छत्तीसगढ़ का राजनांदगांव का दूसरो श्रमिक आंदोलन सफलतापूर्वक संपन्न हो गया।

छत्तीसगढ़ का तीसरा श्रमिक/मजदूर आंदोलन (सन् 1937)- ठाकुर साहब निष्कासन काल में राजनांदगांव छोड़कर रायपुर में रहने लगे थे। हालांकि, मजदूरों की समस्याओं, हालातों, समाचारों से वह लगातार अवगत होते रहते थे। मिल प्रशासन ने ठाकुर साहब की राजनांदगांव रियासत में अनुपस्थिति का लाभ उठाकर मजदूरों/श्रमिकों पर अत्याचार करना आरंभ कर दिया। सन् 1936

में मजदूरों के वेतन से 10 प्रतिशत कटौती कर दी गई। ठाकुर साहब ने फौरन एक अपील निकालकर मजदूरों को 10 प्रतिशत मजदूरी कटौती का विरोध करने का आह्वान किया।

अंततः फरवरी, 1937 ई. को 3000 मजदूरों ने हड़ताल प्रारंभ कर दी। इस श्रमिक आंदोलन में राजनादगांव की जनता, व्यापारी, विद्यार्थी सभी ने सहयोग प्रदान किया। बी.एन.सी. मिल गेट पर मजदूर दिन व रात धरने पर बैठते थे। राजनांदगांव रियासत की बी. एन.सी. मिल की चर्चा पूरे देश में होने लगी। गांधी जी ने ठाकुर प्यारेलाल सिंह से बी.एन.सी. मिल के विषय में पूरी जानकारी मांगी और उन्होनें पूरा हाल चाल लिखकर भेज दिया।[19] इस टिप्पणी को पढ़कर दीवान और मिल मैनेजर ने अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि पिकेटिंग करने वाली महिला मजदूरों को रौंदते हुए मिल में प्रवेश करें। इस कार्यवाही का महिला मजदूरों ने हाथ में लाल झंडा लेकर प्रतिरोध किया तो पुलिस ने उनकी साड़ियां छीनकर भयंकर लाठी चार्ज प्रारंभ कर दिया। हड़ताल लंबी चली। अंततः निराश मिल अधिकारियों ने ठाकुर साहब से अनुरोध किया कि समझौते के लिए किसी मिल मजदूर नेता का नाम सुझाए। ठाकुर साहब ने श्री कलप्पा तथा श्री रामचंद्र सखाराम रूईकर के नाम प्रस्तावित किए। श्री रूईकर ने मजदूरों की समस्याओं का अध्ययन कर मैनेजमेंट के साथ समझौता किया और उनके प्रयासो से मई 1937 को हड़ताल समाप्त हो गयी। कामरेड रूईकर (मजदूर नेता), इस समय तक मजदूर संघ (लाल झंडा) का संगठन भी कर चुके थे। इस संघ का लिखित विधान और नियम बन चुका था। सन् 1937 के द्वितीय मजदूर आंदोलन की समाप्ति पर मई 1937 में हुए समझौते मे यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई थी कि सन् 1937 का मजदूरी रेट पहली सितंबर से देय होगा। लेकिन मिल प्रबंधकों ने इन शर्तों को पूरा करने की पहल नहीं की।

सन् 1938 का मजदूर आंदोलन– 1938 ई. मे राजनांदगांव की बी.एन.सी. मिल के लिए जेम्सन रिपोर्ट घोषित की गई। यह मजदूरों के लिए कानूनी तरीकों से अधिकारों तथा मांगों के लिए लिखित विधान था, लेकिन इस रिपोर्ट पर मिल प्रबंधन ने ध्यान नहीं दिया। मैनेजमेंट कलकत्ता ऑफिस ने मजदूरों के लिए एक वेल फेयर आफिसर की नियुक्ति की। इस पद पर श्री किशोरी लाल शुक्ला को नियुक्त किया गया। मिल मैनेजर एच.जी..विंडर साहब थे।[20] पॉलिटिकल एजेण्ट को नजराना देने के तौर पर श्री किशोरी लाल शुक्ला जी ने लगभग 400 मजदूरों की छंटनी कर दी। श्री रूइकर ने मजदूरों की मांगों की निम्न सूची मिल प्रबंधकों को सौंपी–

- 400 मजदूरों को वापस काम पर लिया जाए।
- नागपुर के वस्त्र उद्योग के मजदूरों को मिलने वाली समस्त सुविधाएं उन्हें भी प्रदान की जाएं।
- बी.एन.सी.मिल के मजदूरों को सन् 1934 का मजदूरी रेट पहली सिंतबर तक दिया जाए।
- वेतन में वृद्वि की जाए।
- काम की अवधि 8 घंटे निश्चित की जाए।[21]

मिल प्रबंधकों ने इन मांगो की ओर ध्यान नहीं दिया। अतः मिल में हड़ताल आरंभ हो गयी। इसी समय ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने एक पर्चा ''आगे आपकी मर्जी'' छपवाया, जिसका एकमात्र उद्देश्य बार बार हड़ताल करने से कोई फायदा नहीं है। इस पर्चे के अध्यन से ज्ञात होता है कि मिल में बार बार आंदोलन इसीलिए होते रहे क्योंकि समझौतों का अनुपालन प्रबंधन द्वारा सहीं तरीके से अक्षरशः नहीं किया गया। यह भी कि ठाकुर साहब, अब मिल बैठकर आपस में समस्या सुलझाना चाहते थे। श्रीमान रूईकर एवं श्रीमान विंडर की भेंट कराने की अनेक कोशिशें ठाकुर साहब द्वारा की गई, लेकिन विंडर साहब तैयार न हुए। आखिरकार, 1938 ई में श्रमिक हड़ताल आरंभ हुई। 11 माह तक मिल में उत्पादन बंद रहा, श्रमिकों को चार लाख रूपये का नुकसान हुआ।

समस्या को समझौता बोर्ड के सामने रखा गया जिसके अध्यक्ष टी.बी. जेम्सन, बी.एन.सी. मिल की तरफ से जी.एच.विंडर व मजदूरों की तरफ से श्री रूईकर थे। यह बैठक 24 मई से 14 जून, सन् 1938 तक चली। श्री रूईकर ने बोर्ड के अध्यक्ष से मतभेद होने पर सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और मजदूर संघ, बोर्ड से अलग हो गया। संघ की मुख्य शिकायत थी कि ब्रिटिश सरकार ने 26 सिंतबर, सन् 1937 के वेतन संबंधी निर्णयों का पालन नहीं किया है। 01 सितंबर, सन् 1939 को द्वितीय विश्वयुद्व आरंभ हो जोन पर यह श्रमिक आंदोलन धूमिल सा पड़ गया।

निष्कर्षः–

छत्तीसगढ़ के श्रमिक/मजदूर आंदोलनों का इतिहास वास्तव में राजनांदगांव की बंगाल नागपुर कॉटन मिल के मजदूरों द्वारा किए गए आंदोलनो का ही इतिहास है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि जहां कहीं भी कारखानें स्थापित होते है, वहां श्रम से संबंधित परेशानियां

स्वत: उत्पन्न हो जाती है। राजनांदगांव रिसायत के बी.एन.सी. में मिल मालिको ने शोषणवादी प्रवृत्ति (कारण) अपनाई, जिसका मुहं तोड़ जवाब/प्रतिरोध श्रमिकों (मजदूरों) ने आंदोलन (परिणाम/प्रतिक्रिया) करके दिया। इस संपूर्ण घटनाचक्र में मुख्य भूमिका निभाने वाले संघटक थे- ठाकुर प्यारेलाल सिंह उन्होंनें अपने नाम के साथ-साथ छत्तीसगढ़, राजनांदगांव रियासत तथा बंगाल-नागपुर कॉटन मिल का नाम मजदूर आंदोलन के इतिहास में अमर कर दिया।

संदर्भ सूची

1. वर्ल्यानी, जे.आर. एवं साहसी, वी.डी., छत्तीसगढ़ का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (प्रारंभ से 1947 ई तक), दिव्या प्रकाशन, कांकेर (बस्तर), 1997, पृष्ठ-193
2. बेहार, रामकुमार, छत्तीसगढ़ का इतिहास, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2009, पृष्ठ-248
3. साहसी एवं वर्ल्यानी, पूर्वोक्त
4. ठाकुर, हरि, त्यागमूर्ति ठाकुर प्योलाल सिंह, आशीष प्रेस, रायपुर, सन् 1955, पृष्ठ-39
5. पूर्वोक्त
6. कर्मवीर, शनिवार, द्वितीय श्रावण शुक्ल, सं. 32, तारीख 20 अगस्त, सन् 1920
7. सायल, राजेन्द्र कुमार, ''राजनांदगांव में श्वेत आतंक" (मजदूर संघर्ष के कुचलने) के लिए राज्यतंत्र द्वारा संगठित हिंसा पर एक अधूरी रिपोर्ट) भाग-2, क्षेत्रीय सचिव लोक स्वतंत्रता संगठन, म.प्र., रायपुर, 2-10-1984
8. वर्मा, राजेन्द्र, मध्यप्रदेश, दुर्ग जिला गजेटियर, पृष्ठ - 52
9. बेहार, रामकुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 249
10. ठाकुर, हरि, त्यागमूर्ति ठाकुर प्यारेलाल सिंह, आशीष प्रेस, रायपुर, सन् 1955, पृष्ठ 41-42
11. बेहार, रामकुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ-250
12. ठाकुर प्यारेलाल सिंह, ''राजनांदगांव के लोगों का कर्त्तव्य", महाकौशल (रायपुर) से प्रकाशित, सरस्वती पुस्तकालय से प्राप्त
13. सायल, राजेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त
14. कन्नौजे, अर्चना, छत्तीसगढ़ के अंतर्गत राजनांदगांव रियासत का प्रशासनिक इतिहास, पृष्ठ-215
15. वर्मा, भगवान सिंह, छत्तीसगढ़ का इतिहास, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2007, (प्रारंभ से 2000 तक), पृष्ठ-242
16. बेहार, रामकुमार, पूर्वोक्त
17. सिंह, खड़गबहादुर, राजनांदगांव का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ-73
18. बेहार, रामकुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ-251
19. जेम्सन रिपोर्ट, सन् 1937, पृष्ठ-2 (मजदूरों से संबंधित)
20. टी.बी. जेम्सन रिपोर्ट 1939 को प्रकाशित, इण्डिपेन्डेन्ट प्रेस, नागपुर, पृष्ठ-13
21. ठाकुर प्यारेलाल सिंह द्वारा छपवाया गया पर्चा, ''आप लोगों की मर्जी" तारीख 23.09.1938

सामाजिक बुद्धि का सामाजिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और झारखंड के आदिवासी और गैर-आदिवासी की व्यक्तिपरक भलाई

डॉ० रीता कुमारी

सहायक प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, मारवाड़ी महाविद्यालय, रांची विश्वविद्यालय, रांची

सारांश

इस अध्ययन का उद्देश्य जांच करना था झारखंड के आदिवासी और गैर आदिवासी की सामाजिक बुद्धि और व्यक्तिपरक कल्याण का सामाजिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। गुमला और लोहरदगा (झारखंड) जिलों से जानबूझकर 220 प्रतिभागियों का चयन किया गया था। चड्ढा और गणेशन द्वारा विकसित सोशल इंटेलिजेंस स्केल और सेल और नागपाल द्वारा विकसित सब्जेक्टिव वेलबीइंग इन्वेंट्री का उपयोग क्रमशः सामाजिक इंटेलिजेंस और सब्जेक्टिव वेलबीइंग का विश्लेषण करने के लिए किया गया था। निष्कर्षों से पता चलता है कि जनजातीय लोगों की तुलना में गैर-आदिवासी लोगों में स्मृति को छोड़कर सभी आयामों में बेहतर सामाजिक बुद्धि होती है। इसी तरह, गैर-आदिवासी लोगों के पास जीवन संतुष्टि को छोड़कर आदिवासी की तुलना में इसके सभी आयामों में बेहतर व्यक्तिपरक कल्याण है, जिसमें दोनों अपने जीवन से समान रूप से संतुष्ट थे।

विशिष्ट शब्द- सोशल इंटेलिजेंस, सब्जेक्टिव वेलबीइंग, सरकार द्वारा आदिवासियों को दी जाने वाली सुविधाएं

परिचय

भारत आदिवासियों का उपजाऊ स्थान है। जनजातीय समूह या 'आदिवासी' भारतीय समाज के सबसे वंचित वर्गों में से एक हैं। जनजातियों में आम तौर पर एक साथ रहने वाले परिवारों का एक समूह होता है। इन समूहों में कई अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों के साथ पूर्व-ऐतिहासिक अर्थव्यवस्था है। भारत लगभग 10.4 मिलियन जनजातियों का देश है और दुनिया में जनजातीय सघनता के मामले में अफ्रीका के बाद दूसरे स्थान पर है। भारत आदिवासी समुदायों की सघनता में अद्वितीय स्थान रखता है। भारत में लगभग 532 आदिवासी समूह हैं। वे लगभग 100 भाषाएँ और 255 सहायक भाषाएँ बोलते हैं। कुछ जनजातीय भाषाओं की वाणी के अतिरिक्त कोई लिपि नहीं होती। विभिन्न जनजातीय समूहों की सामाजिक संरचना एक-दूसरे से मिलती-जुलती है, साथ ही सामाजिक प्रथाएं, रीति-रिवाज, विश्वास और आचार संहिता एक-दूसरे के बहुत करीब हैं। उनका एक समान धर्म, सामान्य रीति-रिवाज हैं और एक समुदाय के रूप में रहते हैं। प्रारंभ में, वे सभ्य दुनिया से दूर आंतरिक वन क्षेत्रों में रहते थे। कृषि आदिवासियों का प्रमुख और प्रमुख व्यवसाय था। बेरोजगारी और अल्प बेरोजगारी की व्यापकता के कारण, अकेले कृषि उन्हें वर्ष भर जीवित नहीं रख सकती थी। इसलिए आदिवासी श्रम कार्यों और वन उपज पर निर्भर थे जो उनके दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इसलिए जनजातीय अर्थव्यवस्था को ''कृषि वन आधारित अर्थव्यवस्था" कहा जा सकता है। लेकिन जनजातीय

लोगों की कृषि और वन उपज उचित बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण अच्छे बाजार पर कब्जा नहीं कर सके और उन्हें मौजूदा कीमत की जानकारी नहीं थी, इसलिए आदिवासी लोगों को मजबूर होना पड़ा। अपनी तात्कालिक जरूरतों के लिए अपनी कृषि उपज बेचने के लिए। आदिवासी और समृद्ध वन उपज के बीच अशिक्षा ने साहूकारों और छोटे व्यापारियों को आदिवासियों का शोषण करने के लिए लुभाया। मौद्रिक प्रणाली की अनुपस्थिति और संचार सुविधाओं की कमी ने आदिवासियों का शोषण करना उनके काम को आसान बना दिया.

किसी समाज में आदिवासियों की स्थिति उस समाज में सामाजिक न्याय के स्तर का एक महत्वपूर्ण प्रतिबिंब है। आदिवासियों की स्थिति को अक्सर उनकी आय के स्तर, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य के साथ-साथ समुदाय और समाज के भीतर उनकी भूमिकाओं के संदर्भ में वर्णित किया जाता है। भारत में कई ऐतिहासिक, धार्मिक और अन्य कारणों से आदिवासियों के साथ भेदभाव किया जाता है। उपरोक्त निष्कर्षों के आलोक में, भारत सरकार द्वारा जनजातियों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए लगभग सभी पाँच वर्षों की योजना रणनीति के माध्यम से जनजाति की समस्या का समग्र और व्यापक दृष्टिकोण लिया गया, जो विकासात्मक और सुरक्षात्मक दोनों थी। वंचित समूहों को समाज के विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के बराबर लाने की दृष्टि से उन्हें कई सुविधाएं प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर हर संभव प्रयास किए जाते हैं। भारत का संविधान आदिवासियों के साथ-साथ अन्य वंचित समूहों के लिए कुछ सुरक्षा उपायों को निर्धारित करता है। ऐसे सुरक्षा उपायों का उद्देश्य देश के वंचित वर्ग के शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और सेवा हितों की रक्षा करना और उन्हें बढ़ावा देना है। जनजातीय विकास के लिए अपनाई गई रणनीति एकीकृत तरीके से कार्यक्रमों को लेकर कृषि, बागवानी और रेशम उत्पादन के तहत संपत्ति के निर्माण के लिए उन्मुख थी। इसके अलावा शिक्षा के सार्वभौमीकरण और पूर्ण विकसित आवासीय विद्यालयों और पब्लिक स्कूलों को खोलकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के प्रावधान पर ध्यान दिया गया। आठवीं योजना में जनजातीय विकास की रणनीतियों पर बल दिया गया। नौवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातीय विकास के सर्वांगीण एकीकृत प्रयास पर जोर दिया गया है और जनजातीय लोगों के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए बड़े पैमाने पर प्रयास किए गए हैं और कोर के विकास की रणनीति के माध्यम से आदिवासियों के जीवन स्तर को बढ़ाने पर जोर दिया गया है। बुनियादी ढांचे में निवेश के माध्यम से क्षेत्रों और क्षेत्र का विकास। दसवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातियों के अभाव और शोषण जैसे अनसुलझे मुद्दों का समाधान खोजने को अपनी पहली प्राथमिकता दी गई है। ग्यारहवीं योजना ने जनजातियों के समग्र सशक्तिकरण के संबंध में एक प्रतिमान बदलाव का अनुभव किया है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण जनजातीय समूहों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में समग्र सुधार प्राप्त करना था। जनजातीय मामलों के मंत्रालयध्विभाग द्वारा शुरू की गई योजनाएं मांग आधारित हैं और रोजगार-सह-आय सृजन सहित विभिन्न क्षेत्रों में वित्त पोषण किया जाता है और प्रशिक्षण के माध्यम से कृषिध्वनध्प्राकृतिक संसाधन आधारित सूक्ष्मध्ग्राम उद्योगों की स्थापना जैसी गतिविधियों को शामिल किया जाता है। जनजातीय सहकारिता, एसएचजी और व्यक्तिगत उद्यमी, आदिवासी आभूषण, पेंटिंग, नृत्य रूप, संगीत और पाक कला, ग्राम पर्यटन, इको-टूरिज्म आदि जैसे पारंपरिक जनजातीय संस्कृति क्षेत्रों में प्रचार और कौशल विकास। जनजातीय मामलों का मंत्रालय योजनाओं कार्यक्रमों को लागू कर रहा है। जनजातीय लोगों के समग्र विकासध्कल्याण के लिए जैसेय प्री मैट्रिक स्कॉलरशिप स्कीम, पोस्ट मैट्रिक स्कॉलरशिप स्कीम, विदेश में पढ़ाई के लिए नेशनल ओवरसीज स्कॉलरशिप, नेशनल फेलोशिप और हायर एजुकेशन के लिए स्कॉलरशिप, एसटी के कल्याण के लिए काम करने वाले स्वैच्छिक संगठनों को अनुदान, कम साक्षरता वाले जिलों में एसटी लड़कियों के बीच शिक्षा को मजबूत करना, विकास विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी), जनजातीय उप-योजना (टीएसएस) के लिए विशेष केंद्रीय सहायता (एससीए), जनजातीय अनुसंधान संस्थानों को सहायता अनुदान, जनजातीय उत्पादों-उत्पादों के विकास और विपणन के लिए सहायता, अनुसंधान सूचना और जन शिक्षा, जनजातीय महोत्सव और अन्य और बहुत कुछ।

भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आदिवासियों के लिए विभिन्न कार्यक्रमों को लागू किया है और आदिवासी विकास क्षेत्र के लिए धन आवंटन नीचे दिया गया है:

योजना अवधि कुल निधि आवंटन

योजना अवधि	कुल निधि आवंटन
पहली योजना (1951-56)	2069.00
दूसरी योजना (1956-57)	4800.00
तीसरी योजना (1961-66)	7500.00
वार्षिक योजना (1966-67)	2081.54
वार्षिक योजना (1967-68)	2246.00
वार्षिक योजना (1968-69)	2359.00
चौथी योजना (1969-74)	15901.47
पांचवीं योजना (1974-79)	38853.24
वार्षिक योजना (1979-80)	12176.00
छठी योजना (1980-85)	97500.00
सातवीं योजना (1985-90)	180000.00
वार्षिक योजना (1990-91)	65714.50
वार्षिक योजना (1991-92)	73482.15
आठवीं योजना (1992-97)	434100.00
9**वीं** (1997-2002)	859200.00
11**वीं योजना** (2007-2012)	3644718.00
12**वीं योजना** (2013-17)	35,68,626.00

यहां तक कि केंद्र और राज्य सरकारें भी भारत में जनजातियों के लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों को लागू कर रही हैं लेकिन आदिवासी और गैर-आदिवासी के बीच की खाई चौड़ी हो रही है और विकास योजनाओं के कार्यान्वयन के बाद आदिवासी शोषण अधिक प्रभावी और बढ़ा है। संघ और राज्य सरकार द्वारा इस तरह के तमाम प्रयासों के बावजूद आदिवासी समूह उन्हें दी जाने वाली सुविधाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाए हैं। जनजातियाँ न केवल शैक्षिक और आर्थिक पहलुओं में बल्कि सामाजिक पहलू में भी पिछड़ी हैं और इससे उनमें हीनता की भावना विकसित होती है और इसका सीधा प्रभाव उनके स्कूल और कॉलेज जाने वाले बच्चों पर पड़ता है। ये कारक आदिवासी समूहों के बच्चों और युवाओं में आत्मविश्वास की कमी का कारण बनते हैं और यह उनके सामाजिक संबंधों में भी बाधा डालता है। गैर आदिवासी की तुलना में आदिवासी बच्चे और युवा सामाजिक रूप से पर्याप्त परिपक्व नहीं हैं। आदिवासी विकास कार्यक्रमों की अक्षमता के कई कारण थे। कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में विलंब हुआ। विभिन्न स्तरों पर समन्वय अनुपस्थित था। राज्य सरकारों ने सामान्य विकास कार्यक्रमों से होने वाले लाभों का उचित हिस्सा सुनिश्चित नहीं किया। सरकारी नीतियों के निरंतर प्रयासों का जवाब देने में उनकी असमर्थता का सबसे महत्वपूर्ण कारण सामाजिक-सांस्कृतिक विषमता, साक्षरता और जागरूकता का निम्न स्तर, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा और इनपुट आपूर्ति और सामान्य रूप से जनजातीय लोगों का उदासीन रवैया हो सकता है। आदिवासियों द्वारा सामना की जाने वाली तीव्र कठिनाइयाँ कम आय और बेरोजगारी की उच्च घटना, बेरोजगारी और गरीबी की उच्च घटना के कारण हैं। लेकिन परिवहन, सड़कों और बस सेवाओं के आधुनिक साधनों के विकास ने हाल के दशकों में आदिवासी क्षेत्रों को खोल दिया है और कई गैर-आदिवासी आदिवासियों के संपर्क में आए, और जनजातीय अर्थव्यवस्था के चुंबकीयकरण में योगदान दिया।

सामाजिक बुद्धिमत्ता

सामाजिक मनोविज्ञान एक अंत: विषय डोमेन है जो बीच की खाई को पाटता है मनोविज्ञान और समाजशास्त्र। सामाजिक बुद्धि सामाजिक दुनिया के बारे में व्यक्ति का ज्ञान है। यह स्वयं और सामाजिक जागरूकता को जानने के लिए व्यक्ति की क्षमता को मापता है और यह स्वयं, व्यक्तित्व और व्यक्तिगत व्यवहार से संबंधित है। सामाजिक बुद्धिमत्ता वह बुद्धि है जिसका उपयोग मौखिक

और गैर-मौखिक रूप से हमारे इशारों, हमारी व्यक्तिगत उपस्थिति और शरीर की भाषा के माध्यम से संवाद करने और बातचीत करने के लिए किया जाता है। गैर-आदिवासी बच्चे और युवा माता-पिता, भाई-बहन, विस्तारित परिवार और शिक्षकों के साथ-साथ अपने साथियों के साथ दैनिक बातचीत के वास्तविक जीवन के मॉडल को देखकर सामाजिक बुद्धि विकसित करते हैं, जबकि आदिवासी बच्चे और युवा अपनी सामाजिक बुद्धि विकसित करने में विफल रहते हैं। सामाजिक बुद्धि विकसित करने में जनजातीय बच्चों और युवाओं के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनके परस्पर संपर्क के अवसर भौगोलिक कारकों से बाधित होते हैं और उनके माता-पिता प्रारंभिक अवस्था में उनके सामाजिक विकास के बारे में चिंतित नहीं होते हैं। यह भी देखा गया है कि ऐसे बच्चे या युवा अनुचित मार्गदर्शन के कारण आक्रामक और असामाजिक व्यवहार दिखाते हैं।

व्यक्तिपरक भलाई

व्यक्तिपरक भलाई एक व्यक्ति के जीवन का संज्ञानात्मक और भावात्मक मूल्यांकन है। सकारात्मक प्रभाव का अर्थ है खुशी, आनंद, उत्साह और उत्साह की भावनाएँ लेकिन नकारात्मक प्रभाव का अर्थ है भावनाओं, मनोदशाओं और अनुभव की जाने वाली भावनाएँ अप्रिय हैं जैसे अवसाद, चिंता, शत्रुता, अपराधबोध, क्रोध, शर्म आदि। जीवन, और अधिक सकारात्मक प्रभाव का अनुभव करता है, लेकिन कम या कम नकारात्मक प्रभाव, एक उच्च व्यक्तिपरक भलाई या दूसरे शब्दों में, बहुत खुश होना माना जाएगा।

क्रियाविधि

उद्देश्य

1. गैर-आदिवासी की तुलना में आदिवासी की सामाजिक बुद्धि और गैर-आदिवासी की तुलना में आदिवासी की समग्र सामाजिक बुद्धि का अध्ययन करना।
2. सकारात्मक प्रभाव, नकारात्मक प्रभाव और जीवन संतुष्टि या दोनों प्रकार के जनजातीय और गैर-आदिवासी लोगों के लिए व्यक्तिपरक कल्याण पर उनके संघों (स्वायत्तता, क्षमता और संबंधितता) का पता लगाने के लिए

परिकल्पना

झारखंड एक आदिवासी राज्य है जहां अधिकांश आदिवासी गणमान्य व्यक्तियों का शासन है और इसके अलावा केंद्र और राज्य सरकार आदिवासियों को विकसित करने के लिए बहुत सारी सुविधाएं प्रदान करती है इसलिए

1. सामाजिक बुद्धि पर आदिवासी और गैर-आदिवासी लोगों के बीच महत्वपूर्ण अंतर होगा।
2. व्यक्तिपरक कल्याण पर दोनों प्रकार के आदिवासी और गैर-आदिवासी लोगों के लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता (स्वायत्तता, क्षमता और संबंधित), नकारात्मक और सकारात्मक प्रभावों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं होगा।

नमूना

क्रॉस सेक्शनल सर्वे डिजाइन के बाद झारखंड के गुमला और लोहरदगा जिलों के विभिन्न क्षेत्रों से सोद्देश्य नमूना तकनीक के माध्यम से कुल 220 लोगों का चयन किया गया था।

यंत्र एवं उपकरण

एनके चड्ढा और उषा गणेशन (2009) द्वारा सोशल इंटेलिजेंस स्केल (एसआईएस)। इसमें आठ आयाम होते हैं 1. धैर्य, 2. सहकारिता, 3. आत्मविश्वास का स्तर, 4. संवेदनशीलता, 5. सामाजिक परिवेश की पहचान, 6. चातुर्य, 7. हास्य की भावना, और 8. स्मृति।

सामाजिक कौशल सूची वर्ष 1989 में रोनाल्ड ई. रिगियो द्वारा तैयार और मानकीकृत की गई थी और जनपति, आईआर (2013) द्वारा अपनाई गई थी। इसमें 6 आयामों के साथ 90 आइटम शामिल हैं, अर्थात् भावनात्मक अभिव्यक्तिय भावनात्मक संवेदनशीलताय भावनात्मक नियंत्रणय सामाजिक अभिव्यक्तिय सामाजिक संवेदनशीलता और सामाजिक नियंत्रण क्रमशः, प्रत्येक पैमाने में 15 आइटम हैं। सभी वस्तुओं को पांच-बिंदु लिकर्ट प्रतिक्रिया पैमाने पर मापा जाता है।

सेल और नागपाल द्वारा सब्जेक्टिव वेलबीइंग इन्वेंटरी विकसित की गई थी। इसमें प्रत्येक में 3 विकल्पों के साथ 40 कथन हैं।

विश्लेषण

डेटा की प्रकृति को समझने के लिए विभिन्न उपसमूहों के माध्य और मानक विचलन की गणना की गई।

तालिका नंबर एक: सोशल इंटेलिजेंस के विभिन्न आयामों पर आदिवासी और गैर आदिवासी का मतलब, एसडी और 'टी' मूल्य

क्र.सं.	सामाजिक बुद्धि का आयाम	उपसमूह	सामाजिक बुद्धिमत्ता				
			एन	अर्थ	एसडी	टी	महत्व
1	धैर्य	जनजातीय	110	16.95	2.97	2.69	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	18.03	2.99		
2	सहकारिता	जनजातीय	110	21.96	2.54	7.67	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	24.63	2.62		
3	आत्मविश्वास स्तर	जनजातीय	110	16.87	2.89	4.4	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	18.54	2.74		
4	संवेदनशीलता	जनजातीय	110	18.03	2.97	2.69	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	16.95	2.99		
5	सामाजिक पर्यावरण की मान्यता	जनजातीय	110	0.83	0.54	3.32	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	1.09	0.62		
6	चातुर्य	जनजातीय	110	1.09	0.89	3.54	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	1.46	0.64		
7	हास्यवृत्ति	जनजातीय	110	2.42	0.87	4.84	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	3.06	1.08		
8	याद	जनजातीय	110	4.88	1.34	0.77	एन एस
		गैर आदिवासी	110	5.01	1.97		

0.05 = 1.97 स्तर, 0.01 = 2.59 स्तर

ग्राफ 1: के औसत स्कोर का चित्रमय प्रतिनिधित्व सोशल इंटेलिजेंस के विभिन्न आयामों पर आदिवासी और गैर आदिवासी

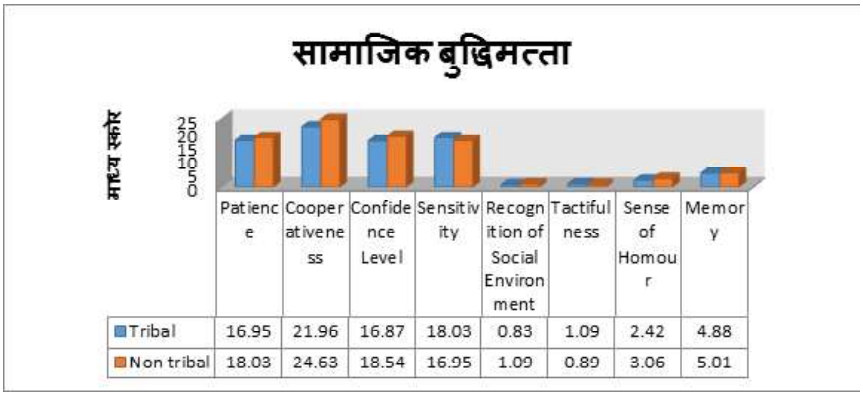

परिणाम तालिका 1 से पता चलता है कि

1. उपरोक्त तालिका के निष्कर्ष आदिवासी और गैर-आदिवासी व्यक्तियों के संबंध में सामाजिक बुद्धि के डोमेन पर अंतर दिखाते हैं। गैर जनजातीय (एम = 18.03) के संबंध में सोशल इंटेलिजेंस स्केल (एम = 16.95) के धैर्य आयाम पर जनजातीय का औसत स्कोर कम है और वे 0.01 स्तरों से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर आदिवासी व्यक्ति की तुलना में अधिक धैर्य है आदिवासी लोग।

गैर-आदिवासी विपरीत परिस्थितियों में संकोच नहीं करते। वे कठिन परिस्थितियों में अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने में सक्षम होते हैं। दूसरी ओर आदिवासी लोग विकट परिस्थितियों में घबरा जाते हैं। वे अधीर हो जाते हैं और दूसरों से जल्दी परेशान हो जाते हैं।

2. गैर जनजातीय (एम = 24.63) के संबंध में सोशल इंटेलिजेंस स्केल (एम = 21.96) के सहकारिता आयाम पर जनजातीय का औसत स्कोर कम है और वे 0.01 स्तरों से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर जनजातीय व्यक्ति के पास अधिक है आदिवासी लोगों की तुलना में सहकारिता प्रकृति।

जनजातियाँ आमतौर पर ऐसे समाज में रहती हैं जहाँ उनका दूसरों के साथ बहुत कम संपर्क होता है, इसलिए वे अंतर्मुखी हो जाते हैं। वे दूसरों से जुड़ने से डरते हैं इसलिए वे कम सहायक होते हैं। लेकिन गैर-आदिवासी लोग किसी भी व्यक्ति से जुड़ने में संकोच महसूस करते हैं। यह व्यवहार आदिवासी लोगों की तुलना में अधिक सामंजस्यपूर्ण बनाता है।

3. गैर जनजातीय (एम = 18.54) के संबंध में सोशल इंटेलिजेंस स्केल (एम = 16.87) के आत्मविश्वास स्तर आयाम पर जनजातीय का औसत स्कोर कम है और वे 0.01 स्तर से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर आदिवासी व्यक्ति अधिक आत्मविश्वास दिखाते हैं आदिवासी लोगों की तुलना में स्तर प्रकृति।

जनजातियों को अपने लिए करने या सही या गलत का फैसला करने की ताकत पर विश्वास नहीं है, जबकि गैर-आदिवासी लोग निर्णय लेने में सक्षम हैं और चुनौतियों को स्वीकार कर आत्मविश्वास रखते हैं। गैर-आदिवासी लोगों का उन पर भरोसा है और वे उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में अधिक सफल बनाते हैं।

4. गैर जनजातीय (एम = 16.95) के संबंध में सोशल इंटेलिजेंस स्केल (एम = 18.03) के संवेदनशीलता आयाम पर जनजातीय का औसत स्कोर कम है और वे 0.01 स्तर से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि जनजातीय व्यक्ति में गैर की तुलना में अधिक संवेदनशीलता है। आदिवासी लोग।

गैर-आदिवासी लोग जनजातीय लोगों की तुलना में असंवेदनशील होते हैं, लेकिन जनजातीय लोग दूसरों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखते हैं क्योंकि वे इन आदतों को अपने सामाजिक वातावरण से सीखते हैं।

5. गैर जनजातीय (एम = 1.09) के संबंध में सामाजिक पर्यावरण आयाम की मान्यता पर जनजातीय का औसत स्कोर (एम = 0.83) कम है और वे 0.01 स्तर से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर जनजातीय व्यक्तियों के पास गैर आदिवासी लोगों की तुलना में सामाजिक वातावरण का अधिक पुनर्गठन।

गैर आदिवासी लोग प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पर्यावरण के साथ अधिक समायोजित होते हैं। इसके अलावा, आदिवासी लोग सामाजिक परिवेश को जल्दी समझते हैं और स्थिति को समझते हैं। लेकिन आदिवासी लोग सामाजिक परिवेश के साथ तालमेल बिठाने में विफल रहते हैं।

6. सोशल इंटेलिजेंस स्केल (ड=1.09) के टैकफुलनेस आयाम पर जनजातीय का औसत स्कोर गैर-आदिवासी (ड=1.46) के संबंध में कम है और वे 0.01 स्तर से काफी भिन्न हैं, इसलिए, यह स्पष्ट है कि गैर-आदिवासी व्यक्तियों में अधिक चातुर्य है आदिवासी लोगों की तुलना में।

गैर-आदिवासी लोगों में विपरीत परिस्थितियों का प्रबंधन करने का कौशल होता है, और आदिवासियों की तुलना में उनके अनुसार करने की क्षमता होती है। इसलिए, गैर आदिवासी लोग स्थिति को संभालने के लिए चतुर हैं। दूसरी ओर आदिवासी लोग बहुत सरल होते हैं और वे विपरीत परिस्थितियों को संभालने में सक्षम नहीं होते हैं।

7. सोशल इंटेलिजेंस स्केल (एम = 2.42) के सेंस ऑफ ह्यूमर डायमेंशन पर जनजातीय का औसत स्कोर गैर आदिवासी (एम = 3.06) के संबंध में कम है और वे 0.01 स्तर से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर आदिवासी व्यक्तियों के पास अधिक है आदिवासी लोगों की तुलना में हास्य की भावना।

गैर आदिवासी में भी सेंस ऑफ ह्यूमर को समझने की क्षमता होती है। लेकिन आदिवासी लोग उस स्तर का सेंस ऑफ ह्यूमर नहीं समझ पाते। क्योंकि अधिकांश मौकों पर अपनी आवश्यकताओं के लिए व्यस्त होने के कारण उनके पास हास्य की भावना विकसित करने के अवसर नहीं होते हैं।

8. सोशल इंटेलिजेंस स्केल (एम = 4.88) के स्मृति आयाम पर जनजातीय का औसत स्कोर गैर जनजातीय (एम = 5.01) के संबंध में कम है और इस प्रकार वे नगण्य रूप से भिन्न हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि आदिवासी और गैर-आदिवासी दोनों लोगों की स्मृति शक्ति समान है।

इसलिए परिकल्पना 1: "सामाजिक बुद्धि पर आदिवासी और गैर.आदिवासी लोगों के बीच महत्वपूर्ण अंतर होगा" स्मृति के आयाम को छोड़कर सामाजिक बुद्धि के सभी आयामों के लिए स्वीकार किया जाता है।

तालिका 2: सब्जेक्टिव वेलबीइंग के विभिन्न आयामों पर जनजातीय और गैर-आदिवासी का माध्यए एसडी और 'टी' मूल्य

क्र.सं.	आयाम सब्जेक्टिव वेलबीइंग	उपसमूह	व्यक्तिपरक भलाई				
			एन	अर्थ	एसडी	टी	महत्व
1	स्वायत्तता	जनजातीय	110	32.68	3.12	6.01	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	30.21	2.97		
2	क्षमता	जनजातीय	110	25.98	2.84	5.12	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	24.06	2.67		
3	संबद्धता	जनजातीय	110	41.69	3.97	1.34	एन एस
		गैर आदिवासी	110	40.97	4.01		
4	नकारात्मक व्यवहार करना	जनजातीय	110	17.99	1.87	4.05	0.01 स्तर
		गैर आदिवासी	110	19.05	2.01		
5	सकारात्मक असर	जनजातीय	110	31.56	3.05	1.35	एन एस
		गैर आदिवासी	110	32.13	3.23		
6	जीवन की संतुष्टि	जनजातीय	110	22.69	2.08	1.31	एन एस
		गैर आदिवासी	110	22.32	2.10		

ग्राफ 2: माध्य (औसत) स्कोर का चित्रमय प्रतिनिधित्व व्यक्तिपरक कल्याण के विभिन्न आयामों पर जनजातीय और गैर जनजातीय

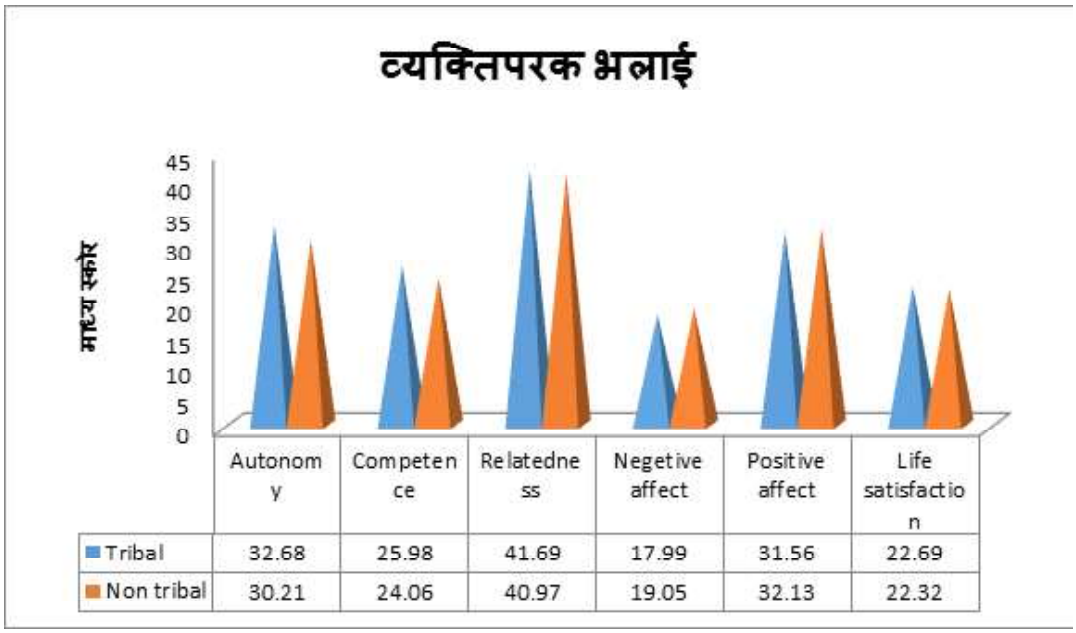

परिणाम तालिका 2 से पता चलता है कि

1. उपरोक्त तालिका के परिणाम आदिवासी और गैर-आदिवासी व्यक्तियों के संबंध में व्यक्तिपरक कल्याण के डोमेन पर अंतर दिखाते हैं। जनजातीय (एम = 32.68) के व्यक्तिपरक कल्याण पैमाने पर स्वायत्तता आयाम का औसत स्कोर गैर जनजातीय (एम = 30.21) के संबंध में उच्च है और वे 0.01 स्तरों से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि जनजातीय व्यक्ति के पास अधिक स्वायत्तता है गैर आदिवासी लोगों की तुलना में।

भारतीय संविधान की छठी अनुसूची में आदिवासी क्षेत्रों के शासन के प्रावधान हैं और झारखंड इनमें से एक है। ये प्रावधान आदिवासियों को शक्ति के हस्तांतरण को सक्षम करते हैं और स्वायत्त संरचनाओं का निर्माण करते हैं जो उनकी परंपराओं और प्रथाओं की रक्षा करते हैं। इसलिए जनजातीय संस्कृति विकसित हुई और गैर जनजातीय लोगों के संबंध में अधिक स्वायत्तता प्राप्त हुई।

2. गैर जनजातीय (एम = 30.21) के संबंध में जनजातीय (एम = 32.68) के व्यक्तिपरक कल्याण पैमाने पर स्वायत्तता आयाम का औसत (औसत) स्कोर उच्च है और वे 0.01 स्तरों से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि जनजातीय व्यक्ति गैर आदिवासी लोगों की तुलना में अधिक स्वायत्तता है।

गैर जनजातीय लोगों की तुलना में जनजातीय लोगों ने समाज से अपनी सुरक्षा और बाहरी वातावरण के कम संपर्क के कारण क्षमता की भावना अधिक विकसित की है।

3. गैर जनजातीय (एम = 40.97) के संबंध में जनजातीय (एम = 41.69) के व्यक्तिपरक कल्याण पैमाने पर संबंधितता आयाम का औसत स्कोर उच्च है और वे 0.01 स्तरों से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि जनजातीय व्यक्ति में अधिक संबंधितता है गैर आदिवासी लोगों की तुलना में।

झारखंड की जनजाति शांतिपूर्ण और निर्दोष हैं और वे उपनिवेश के समय से बहुत पहले भौगोलिक क्षेत्र के इस क्षेत्र में रहते थे लेकिन इस आधुनिक युग में वे प्यार महसूस करना चाहते हैं, दूसरों से जुड़े हुए हैं, और व्यापक सामाजिक दुनिया के साथ अर्थपूर्ण रूप से जुड़े हुए हैं इसलिए वे अधिक संबंधित हैं गैर-आदिवासी के संबंध में क्योंकि गैर-जनजाति स्वभाव से पहले से ही दूसरों से बहुत अच्छी तरह से जुड़े हुए हैं।

4. गैर-आदिवासी (एम=19.05) के संबंध में जनजातीय (एम=17.99) के व्यक्तिपरक कल्याण पैमाने पर नकारात्मक प्रभाव आयाम का माध्य (औसत) स्कोर कम है और वे 0.01 स्तरों से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर आदिवासी लोगों पर आदिवासी लोगों की तुलना में अधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
5. गैर जनजातीय (एम = 32.13) के संबंध में जनजातीय (एम = 31.56) के व्यक्तिपरक कल्याण पैमाने पर सकारात्मक प्रभाव आयाम का औसत (औसत) स्कोर कम है और वे 0.01 स्तरों से काफी भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर जनजातीय लोगों की तुलना में जनजातीय व्यक्ति का अधिक सकारात्मक प्रभाव है।

जनजातीय आबादी एक हाशिए पर रहने वाला समुदाय है और समान गैर-आदिवासी आबादी की तुलना में खराब स्वास्थ्य सूचकांकों और खराब स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के साथ अपेक्षाकृत सामाजिक अलगाव में रहती है। वे आधुनिक समाज के संपर्क में नहीं हैं इसलिए गैर आदिवासी के संबंध में व्यक्तिपरक कल्याण से संबंधित नकारात्मक या सकारात्मक भावना कम है।

6. गैर जनजातीय (एम = 22.32) के संबंध में जनजातीय (एम = 22.69) के व्यक्तिपरक कल्याण पैमाने पर जीवन संतुष्टि आयाम का औसत (औसत) स्कोर कम है और वे नगण्य रूप से भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि गैर जनजातीय व्यक्ति और आदिवासी लोगों को समान जीवन संतुष्टि मिलती है।

इसलिए परिकल्पना 2: ''व्यक्तिपरक भलाई पर मनोवैज्ञानिक आवश्यकता (स्वायत्तता, क्षमता और संबंधितता) के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं होगा, दोनों प्रकार के आदिवासी और गैर-आदिवासी लोगों के लिए सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव'' खारिज कर दिया गया है हालांकि व्यक्तिपरक पर जीवन संतुष्टि कल्याण आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों के लिए समान है इसलिए उनके बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

संदर्भ सूची

1. डार, टीए, भारतीराजा, डी., पंडित (2017)। अनंतनाग जिले, जम्मू और कश्मीर में जनजातीय और गैर-आदिवासी प्रजनन महिलाओं के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति पर एक तुलनात्मक अध्ययन। मल्टीडिसिप्लिनरी फील्ड में इनोवेटिव रिसर्च के लिए इंटरनेशनल जर्नल, 3(2), 127-1321
2. दास, जे. और देब. एके (2013), आदिवासी और गैर-आदिवासी छात्रों के बीच सामाजिक समायोजन पर एक तुलनात्मक अध्ययन, मानविकी और सामाजिक विज्ञान जर्नल, 12(3), 29-32,
3. दीवान, आर। (2012)। झारखंड, भारत में आदिवासी और गैर-आदिवासी महिला स्कूल शिक्षकों का तनाव और मानसिक स्वास्थ्य, वैज्ञानिक और अनुसंधान प्रकाशनों का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 2, (10), 154-63
4. खान, एमए और भट, एनए (2013), किशोर लड़कों और लड़कियों की भावनात्मक खुफिया, शैक्षिक अनुसंधान और विकास के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 2 (3), 067-071
5. पटेल, डी. (2013), उड़ीसा के सामाजिक रूप से वंचित और लाभ प्राप्त माध्यमिक विद्यालय के बच्चों के संज्ञानात्मक और व्यक्तित्व विभेदों के संबंध में अकादमिक उपलब्धि। शिक्षा पानीपत विश्वविद्यालय में डॉक्टरेट शोध प्रबंध। भारत।
6. सुवेरा पीएस (2013), मनोवैज्ञानिक समायोजन: जनजातीय और गैर-आदिवासी महाविद्यालय छात्रों का एक तुलनात्मक अध्ययन, सामाजिक विज्ञान में शोध के एशियाई जर्नल, 3(5), 147-56
7. सुवेरा पीएस (2013), मनोवैज्ञानिक समायोजन: आदिवासी और गैर-आदिवासी महाविद्यालय छात्रों का तुलनात्मक अध्ययन। एशियन जर्नल ऑफ रिसर्च इन सोशल साइंस, 3(5), 117-25
8. अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय। तथ्य पत्रक: राष्ट्रीय धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट, (2009)। http%èèwww-minorityffaairs-gov-in पर उपलब्ध है।
9. भारत के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त का कार्यालय, जनगणना सूचना गृह मंत्रालय, भारत सरकार, 2011, http%èèwww-censusindia-gov-inè2011censusèHLOèHH14-html पर उपलब्ध है।
10. यादव यूएन, पारसेकर, एस., प्रभु, वी. (2013), उडुपी तालुक, कर्नाटक, भारत में आदिवासी और गैर-आदिवासी छात्रों के बीच आत्म-सम्मान पर एक तुलनात्मक अध्ययन, ग्लोबल जर्नल मेडिकल पब्लिक हेल्थ। 2, 12-23
11. कुमार, पी., जॉन, बी. (2018), बिहार की आदिवासी किशोरियों की स्वास्थ्य स्थिति का मूल्यांकन: बथुडी, बिंझिया, बिरजिया और चिक बरैक जनजातियों के विशेष संदर्भ में। इंडियन जर्नल फिजिकल एजुकेशनल स्पोर्ट्स एप्लाइड साइंस, 8(4):34-47।

12. राशिद, एस., सिंह, डी (2020), कश्मीर के आदिवासी और गैर-आदिवासी किशोर छात्रों का आत्मसम्मान। स्टड भारतीय स्थान का नाम। 40, 4236-52
13. घोष, डी. (2013), आदिवासी और गैर-आदिवासी छात्रों का आत्म-सम्मान और अवसाद: शैक्षणिक उपलब्धि की आवश्यकता पर इसकी भूमिका। इंडियन जर्नल हेल्थ एंड वेलबीइंग, 4(5):1042-50।
14. लोन, एमएम, खान, एमएए (2018), कश्मीर के आदिवासी और गैर-आदिवासी छात्रों की सामाजिक बुद्धिमत्ता का तुलनात्मक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल क्रिएटिव रिसर्च थॉट, 6, 1522-53।
15. परिहार, एन., झा, एम. (2014), आदिवासी और गैर-आदिवासी किशोरों की आत्म-धारणा का अध्ययन, इंडियन जर्नल हेल्थ वेलबीइंग, 5(7):105-11
16. गर्ग, वी. (2017), आदिवासी और गैर-आदिवासी किशोरों के बीच भावनात्मक बुद्धिमत्ता का एक अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल रिसर्च सोशल साइंस, 2017य6(4):727-35।
17. डे, ए. (2015), ए कम्पेरेटिव स्टडी अबाउट शेड्यूल्ड ट्राइब्स इन वेस्ट बंगाल, इंडिया, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसमेंट्स इन रिसर्च एंड टेक्नोलॉजी: 4(7), 11-18
18. महापात्रा, टी. (2011), ट्राइब्स ऑफ ओडिशा: इश्यूज ऑफ सोशल एक्सक्लूजन, एक्सक्लूजन एंड कल्चरल असिमिलेशन। एक अंत: विषय पत्रिका , .5,15-16
19. पांडा, एस. (2015), द डेवलपमेंट ऑफ प्रिमिटिव ट्राइबल ग्रुप्स: ए केस ऑफ लोढ़ा एंड बिरहोर ऑफ वेस्ट बंगाल। वर्ल्ड वाइड जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट: 1 (6), 28-35
20. पटनायक, आई., मोहंती, ए. (2004), सोशल एक्सक्लूजन: ए चौलेंज फॉर द स्टेटस ऑफ थर्ड जेंडर पीपुल ऑफ ओडिशा। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च, 3.477-83
21. आचार्य, ए., पाल. डी., और सेनगुप्ता, एस. (2015), एजुकेशनल अचीवमेंट एंड सेल्फ-एस्टीम ऑफ कॉलेज स्टूडेंट्स: ए कम्पेरेटिव स्टडी बिटवीन द ट्राइबल एंड नॉन-ट्राइबिल गर्ल स्टूडेंट्स ऑफ अगरथला, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव रिसर्च एंड स्टडीज, 7, 140-148.

"ग्रामीण अपराध को रोकने में प्रौद्योगिकी की भूमिका: अवसर और चुनौतियाँ"

"The role of technology in preventing rural crime: Opportunities and challenges"

तानिया सिंह

भूगोल विभाग, आईआईएस (डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी), जयपुर (राज.), भारत

डॉ० हर्षिता उपाध्याय

भूगोल विभाग, आईआईएस (डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी), जयपुर (राज.), भारत

सारांश: (Abstract)

प्रौद्योगिकी की प्रगति ने अपराध रोकथाम को क्रांतिकारी बना दिया है, और ग्रामीण क्षेत्रों में भी यही हाल है। ग्रामीण अपराध रोकथाम में प्रौद्योगिकी का एकीकरण सत्राकार सुरक्षा, सूचना तक पहुंच, संचार और प्रतिक्रिया के समय में सुधार करने के अवसर खोल रहा है। हालांकि, ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी के अपनाने में विशेष चुनौतियाँ आती हैं, जैसे कि इंटरनेट कनेक्टिविटी की सीमित पहुंच, वित्तीय निधि, और तकनीकी माहिरत की कमी। यह पेपर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी पर आधारित समाधानों के प्रवर्तक की भूमिका का पता लगाने के द्वारा ग्रामीण अपराध को रोकने में प्रौद्योगिकी की भूमिका की जांच करता है। हम मामला अध्ययन और साहित्य समीक्षा का आधार लेकर ग्रामीण समुदायों में अपराध को रोकने में विभिन्न प्रौद्योगिकी समाधानों और उनकी प्रभावशीलता के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। ग्रामीण अपराध को रोकने के लिए, पेपर संचालनकर्ताओं, कानून प्रवर्तन संगठनों और समुदाय संगठनों को प्रौद्योगिकी की भूमिका सुधारने में सलाह दी जाती है।

"मूलशब्द" (Keywords)

ग्रामीण अपराध रोकथाम, प्रौद्योगिकी पर आधारित समाधान, सत्राकार प्रणाली, समुदाय संलग्नता, हितधारक सहयोग

प्रस्तावना (Introduction)

ग्रामीण अपराध विश्व के कई हिस्सों में एक बढ़ती हुई महत्वपूर्ण समस्या बन गया है और यहां उठने वाली चुनौतियाँ भी अद्वितीय हैं। संसाधनों की सीमितता, विशाल भूगोलीय क्षेत्र और कम जनसंख्या के कारण कानूनी एजेंसियों के लिए अपराधों को रोकना और उसपर नियंत्रण करना कठिन हो सकता है। इसलिए, ग्रामीण अपराध का समाधान करने और ग्रामीण समुदायों की सुरक्षा और सुरक्षा को सुधारने के लिए नवाचारी समाधानों का अन्वेषण करना महत्वपूर्ण है। प्रौद्योगिकी ने अपराध रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और ग्रामीण क्षेत्रों में नए अवसर प्रदान करने की क्षमता रखती है। ग्रामीण अपराध निवारण में प्रौद्योगिकी के एकीकरण से सत्राकारता, संचार और प्रतिक्रिया के समय में सुधार हो सकता है। प्रौद्योगिकी पर आधारित समाधान जैसे उन्नत सतर्कता प्रणालियों, मोबाइल एप्लिकेशनों और डिजिटल संचार साधनों ने ग्रामीण समुदायों में अपराध निवारण में प्रभावी साबित हुए हैं। इसके

अलावा, बड़े डेटा और विश्लेषण का उपयोग अपराध हॉटस्पॉट्स, पैटर्न और रुझानों की पहचान करने में मदद कर सकता है, जिसे प्रभावी अपराध निवारण रणनीतियों के विकास में उपयोग किया जा सकता है। इस पेपर का उद्देश्य ग्रामीण अपराध को रोकने में प्रौद्योगिकी की भूमिका का पता लगाना है, ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी पर आधारित समाधानों के अवसरों और चुनौतियों का जांच करके। यह पेपर मामला अध्ययन और साहित्य समीक्षाएँ पर आधारित होगा ताकि ग्रामीण समुदायों में अपराध निवारण में विभिन्न प्रौद्योगिकी समाधानों और उनकी प्रभावीता के बारे में साझा कर सकें। यह इसके साथ ही ग्रामीण समुदायों में प्रौद्योगिकी के अपनाने के संबंधित चुनौतियों की पहचान करेगा और नीति-निर्माताओं, कानूनी एजेंसियों और समुदाय संगठनों को सलाह देगा ग्रामीण अपराध को रोकने में प्रौद्योगिकी की भूमिका को सुधारने के लिए। इस पेपर की दायित्व सीमा ग्रामीण अपराध निवारण में प्रौद्योगिकी की भूमिका से संबंधित विभिन्न विषयों को कवर करेगी। इन विषयों में शामिल होंगे ग्रामीण अपराध निवारण में प्रौद्योगिकी के अवसर, जैसे उन्नत सतर्कता प्रणालियाँ, मोबाइल एप्लिकेशन, डिजिटल संचार साधन और बड़े डेटा और विश्लेषण। पेपर में प्रौद्योगिकी के अपनाने के ग्रामीण समुदायों में चुनौतियों का भी विचार किया जाएगा, जिनमें इंटरनेट कनेक्टिविटी की सीमा, वित्तीय चुनौतियाँ, तकनीकी दक्षता की कमी और प्रौद्योगिकी पर आधारित समाधानों के प्रति सांस्कृतिक प्रतिरोध शामिल है। साथ ही, पेपर में ग्रामीण अपराध निवारण में प्रौद्योगिकी पर आधारित समाधानों की प्रभावीता का भी जांच होगी, जिसे मामला अध्ययन और ग्रामीण अपराध निवारण में प्रौद्योगिकी पर आधारित समाधानों के उदाहरणों की समीक्षा करके किया जाएगा। अंत में, पेपर में नीति निर्माताओं, कानूनी एजेंसियों और समुदाय संगठनों की भूमिका की पहचान करके ग्रामीण अपराध निवारण में प्रौद्योगिकी को सुधारने के लिए सिफारिशें प्रदान की जाएंगी।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

ग्रामीण क्षेत्रों को अक्सर रमणीय स्थानों के रूप में देखा जाता है जहाँ लोग सौहार्दपूर्वक रहते हैं और अपराध दुर्लभ हैं। हालाँकि, यह धारणा वास्तविकता से बहुत दूर है। चोरी, बर्बरता और अवैध शिकार जैसे अपराधों के साथ ग्रामीण क्षेत्र तेजी से आपराधिक गतिविधियों का निशाना बनते जा रहे हैं। ग्रामीण समुदायों को अक्सर अलग-थलग कर दिया जाता है और उनके पास शहरी क्षेत्रों के संसाधनों और बुनियादी ढांचे की कमी होती है, जिससे वे विशेष रूप से अपराध के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए, प्रौद्योगिकी को तेजी से ग्रामीण अपराध रोकथाम के संभावित समाधान के रूप में देखा जा रहा है। कुछ अध्ययनों पर नीचे चर्चा की गई है:

कचिया और मर्सिएका (2016) ने अपराध की रोकथाम में सामुदायिक पुलिसिंग की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने के लिए एक मिश्रित-पद्धति का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि सामुदायिक पुलिस पहल का अपराध की रोकथाम पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से सामुदायिक विश्वास बढ़ाने और अपराध के डर को कम करने के मामले में। हालाँकि, लेखकों ने यह भी नोट किया कि सामुदायिक पुलिसिंग की सफलता सामुदायिक जुड़ाव और सहयोग के स्तर पर बहुत अधिक निर्भर करती है। डेविस (2019) द्वारा किए गए एक अन्य अध्ययन ने किशोर अपराध में योगदान देने वाले कारकों के साथ-साथ रोकथाम और हस्तक्षेप रणनीतियों की समीक्षा की। लेखक ने अपचार से जुड़े कई जोखिम कारकों की पहचान की, जिसमें परिवार की शिथिलता, मादक द्रव्यों का सेवन और शैक्षणिक विफलता शामिल है। डेविस ने किशोर अपराधियों के बीच अपराध दर को कम करने के लिए शुरुआती हस्तक्षेप और प्रभावी उपचार के महत्व पर भी चर्चा की।

मैथ्यूज (2018) ने अपराध और शहरी डिजाइन के बीच संबंधों का पता लगाने के लिए एक केस स्टडी दृष्टिकोण का उपयोग किया। लेखक ने पाया कि कुछ डिजाइन सुविधाएँ, जैसे प्रकाश और भूनिर्माण, अपराधी व्यवहार और सुरक्षा की सामुदायिक धारणाओं को प्रभावित करके अपराध दर को प्रभावित कर सकती हैं। मैथ्यूज ने सुझाव दिया कि शहरी डिजाइन को अपराध रोकथाम रणनीतियों के प्रमुख घटक के रूप में माना जाना चाहिए।

ब्रेथवेट (2019) द्वारा पुनर्स्थापनात्मक न्याय कार्यक्रमों और किशोर अपराध दरों पर उनके प्रभाव की एक व्यवस्थित समीक्षा की गई। लेखक ने पाया कि पुनर्स्थापनात्मक न्याय कार्यक्रमों का किशोर अपराधियों के बीच पुनः अपराध दर को कम करने पर महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ब्रेथवेट ने सुझाव दिया कि पुनर्स्थापनात्मक न्याय कार्यक्रमों को पारंपरिक दंडात्मक उपायों के प्रभावी विकल्प के रूप में माना जाना चाहिए।

वेइसबर्ड और एक (2004) ने अपराध, अव्यवस्था और भय को कम करने के लिए पुलिस रणनीतियों का अवलोकन प्रदान किया। लेखकों ने समस्या-उन्मुख पुलिसिंग, हॉट-स्पॉट पुलिसिंग और सामुदायिक पुलिसिंग सहित कई प्रभावी रणनीतियों की पहचान की। उन्होंने पुलिसिंग रणनीतियों को सूचित करने के लिए डेटा-संचालित दृष्टिकोण का उपयोग करने के महत्व पर भी ध्यान दिया। लिप्टन और वेलमैन (2018) ने समुदाय आधारित कार्यक्रमों और अपराध की रोकथाम पर उनके प्रभाव का केस स्टडी विश्लेषण किया। लेखकों ने पाया कि सामुदायिक जुड़ाव बढ़ाने और सकारात्मक सामाजिक मानदंडों को बढ़ावा देकर समुदाय आधारित कार्यक्रमों का अपराध दर को कम करने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने सुझाव दिया कि समुदाय आधारित कार्यक्रमों को अपराध रोकथाम रणनीतियों के प्रमुख घटक के रूप में माना जाना चाहिए।

क्रिवो और पीटरसन (2019) द्वारा की गई एक साहित्य समीक्षा ने अपराध में सामाजिक असमानता की भूमिका पर चर्चा की। लेखकों ने पाया कि सामाजिक असमानता अपराध के लिए एक महत्वपूर्ण जोखिम कारक है, विशेष रूप से आर्थिक और शैक्षिक अवसरों तक पहुंच के संदर्भ में। उन्होंने सुझाव दिया कि अपराध रोकथाम रणनीतियों में सामाजिक असमानता को संबोधित करना प्राथमिकता होनी चाहिए।

स्मिथ और क्लार्क (2017) ने स्थितिजन्य अपराध निवारण सिद्धांत और व्यवहार का अवलोकन प्रदान किया। लेखकों ने कई प्रभावी स्थितिजन्य अपराध निवारण रणनीतियों की पहचान की, जिसमें लक्ष्य सख्त करना, अभिगम नियंत्रण और निगरानी शामिल है। उन्होंने उस व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ पर विचार करने के महत्व पर भी ध्यान दिया जिसमें अपराध होता है।

लुम और कैनेडी (2018) ने अपराध की रोकथाम में साक्ष्य-आधारित पुलिसिंग और प्रौद्योगिकी की भूमिका पर चर्चा की। लेखकों ने भविष्यवाणिय पुलिसिंग और अपराध मानचित्रण सहित कई तकनीकी उपकरणों की पहचान की, जो अपराध दर को कम करने में प्रभावी साबित हुए हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि साक्ष्य-आधारित पुलिसिंग और प्रौद्योगिकी को अपराध रोकथाम रणनीतियों में शामिल करने से अधिक कुशल और प्रभावी परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

स्कोगन (2018) द्वारा सामुदायिक पुलिसिंग और अपराध के डर पर इसके प्रभाव का विश्लेषण करते हुए एक केस स्टडी विश्लेषण किया गया था। लेखक ने पाया कि सामुदायिक पुलिसिंग पहल का सामुदायिक विश्वास बढ़ाने और सकारात्मक सामाजिक मानदंडों को बढ़ावा देने से अपराध के डर को कम करने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। हालांकि, स्कोगन ने यह भी कहा कि सामुदायिक जुड़ाव और संसाधन आवंटन के संदर्भ में सामुदायिक पुलिस पहल को चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

साहित्य की इस समीक्षा से पता चलता है कि प्रौद्योगिकी आधारित समाधान ग्रामीण अपराध की रोकथाम के लिए कई अवसर प्रदान करते हैं। उन्नत निगरानी प्रणाली जैसे ड्रोन और कैमरे दूरस्थ क्षेत्रों की निगरानी कर सकते हैं और संदिग्ध गतिविधियों का पता लगा सकते हैं। पैनिक बटन और संचार उपकरणों से लैस मोबाइल एप्लिकेशन निवासियों को वास्तविक समय में कानून प्रवर्तन एजेंसियों को सचेत करने और तत्काल सहायता प्राप्त करने में सक्षम बना सकते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म संचार और सूचना प्रसार का एक साधन प्रदान करते हैं, जिससे ग्रामीण समुदायों को संभावित खतरों के बारे में जानकारी साझा करने की अनुमति मिलती है। अपराध पैटर्न की पहचान करने और भविष्य की घटनाओं की भविष्यवाणी करने के लिए बिग डेटा और एनालिटिक्स का उपयोग किया जा सकता है, जिससे कानून प्रवर्तन एजेंसियों को ग्रामीण अपराध की रोकथाम के लिए सक्रिय दृष्टिकोण अपनाने में मदद मिलती है।

हालाँकि, ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों को अपनाने के लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और मोबाइल नेटवर्क तक सीमित पहुंच प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के कार्यान्वयन में बाधा डालती है। फंडिंग चुनौतियां भी एक महत्वपूर्ण बाधा उत्पन्न करती हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अक्सर सीमित वित्तीय संसाधन होते हैं। प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के लिए तकनीकी विशेषज्ञता और सांस्कृतिक प्रतिरोध की कमी ऐसे समाधानों को अपनाने में और बाधा डालती है।

इन चुनौतियों के बावजूद, साहित्य बताता है कि प्रौद्योगिकी आधारित समाधान ग्रामीण अपराध चुनौतियों का समाधान करने में प्रभावी रहे हैं। मामले के अध्ययन और ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के उदाहरण प्रदर्शित करते हैं कि ये समाधान कानून प्रवर्तन एजेंसियों की प्रभावशीलता को बढ़ा सकते हैं, आपराधिक गतिविधियों को रोक सकते हैं और घटनाओं के लिए प्रतिक्रिया समय कम कर सकते हैं। इसके अलावा, प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के उपयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव सकारात्मक रहा है, जिसके परिणामस्वरूप कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर में कमी आई है।

चर्चा (Discussion)

ग्रामीण अपराध निवारण में तकनीक की संभावनाएं

ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी का एकीकरण कई अवसर प्रदान करता है जो निगरानी, संचार और प्रतिक्रिया समय को बेहतर बनाने में मदद कर सकता है। निम्नलिखित कुछ तकनीकी समाधान हैं जिनमें ग्रामीण अपराध की रोकथाम को बढ़ाने की क्षमता है:

उन्नत निगरानी प्रणालियाँ: उन्नत निगरानी प्रणालियाँ जैसे ड्रोन और कैमरे ग्रामीण अपराध की रोकथाम के लिए एक प्रभावी उपकरण हो सकते हैं। कैमरों से लैस ड्रोन विशाल क्षेत्रों को कवर कर सकते हैं और संभावित अपराध दृश्यों की वास्तविक समय की छवियां प्रदान कर सकते हैं। इससे कानून प्रवर्तन एजेंसियों को अपराधों पर अधिक तेजी से प्रतिक्रिया करने और अपराधियों को पकड़ने में मदद मिल सकती है। इसी तरह, सार्वजनिक क्षेत्रों जैसे पार्कों और सड़कों पर कैमरे लगाने से आपराधिक गतिविधियों को रोकने और अपराधियों की पहचान करने में मदद मिल सकती है।

मोबाइल एप्लिकेशन: ग्रामीण अपराध की रोकथाम के लिए मोबाइल एप्लिकेशन तेजी से लोकप्रिय उपकरण बन गए हैं। ये एप्लिकेशन पैनिक बटन, संचार उपकरण और अपराध रिपोर्टिंग तंत्र जैसी कई सुविधाएँ प्रदान करते हैं जो निवासियों को अपराधों की रिपोर्ट करने और जल्दी और कुशलता से सहायता प्राप्त करने में सक्षम बनाती हैं। इन एप्लिकेशन का उपयोग निवासियों को संभावित खतरों के बारे में अलर्ट भेजने और सुरक्षा सुझाव प्रदान करने के लिए भी किया जा सकता है।

डिजिटल संचार उपकरण: डिजिटल संचार उपकरण जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म में निवासियों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों के बीच संचार बढ़ाने की क्षमता है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग संभावित खतरों के बारे में जानकारी साझा करने, सुरक्षा युक्तियाँ प्रदान करने और अपराधों की रिपोर्ट करने के लिए किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया का उपयोग सामुदायिक जुड़ाव को बढ़ावा देने और निवासियों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों के बीच संचार की सुविधा के लिए किया जा सकता है।

बिग डेटा और एनालिटिक्स: बिग डेटा और एनालिटिक्स का उपयोग अपराध हॉटस्पॉट, पैटर्न और प्रवृत्तियों की पहचान करने में मदद कर सकता है। विशिष्ट क्षेत्रों या प्रकार के अपराधों को लक्षित करने वाली प्रभावी अपराध रोकथाम रणनीतियों को विकसित करने के लिए इस जानकारी का लाभ उठाया जा सकता है। इसके अलावा, डेटा का विश्लेषण कानून प्रवर्तन एजेंसियों को संसाधनों को अधिक कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से आवंटित करने में मदद कर सकता है।

कुल मिलाकर, ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी का एकीकरण निगरानी, संचार और प्रतिक्रिया समय में सुधार करने में मदद कर सकता है। उन्नत निगरानी प्रणाली, मोबाइल एप्लिकेशन, डिजिटल संचार उपकरण, और बड़े डेटा और एनालिटिक्स ऐसे कुछ तकनीकी समाधान हैं जिनका ग्रामीण अपराध रोकथाम प्रयासों को बढ़ाने के लिए लाभ उठाया जा सकता है।

अंत में, ग्रामीण अपराध रोकथाम में प्रौद्योगिकी के एकीकरण द्वारा प्रस्तुत अवसर विशाल हैं। उन्नत निगरानी प्रणाली, मोबाइल एप्लिकेशन, डिजिटल संचार उपकरण और बड़े डेटा और एनालिटिक्स के कार्यान्वयन से निगरानी, संचार और प्रतिक्रिया समय को बढ़ाकर ग्रामीण अपराध की रोकथाम में सुधार करने में मदद मिल सकती है। इन तकनीकी समाधानों का लाभ उठाकर, कानून प्रवर्तन एजेंसियां और निवासी ग्रामीण अपराध को रोकने और अधिक प्रभावी ढंग से प्रतिक्रिया करने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं।

ग्रामीण अपराध निवारण में प्रौद्योगिकी की चुनौतियाँ

जबकि प्रौद्योगिकी में ग्रामीण अपराध की रोकथाम में सुधार करने की क्षमता है, इसके प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए कई चुनौतियाँ भी हैं जिन्हें संबोधित करने की आवश्यकता है। निम्नलिखित कुछ चुनौतियाँ हैं जिन पर विचार करने की आवश्यकता है:

इंटरनेट कनेक्टिविटी तक सीमित पहुंच: ग्रामीण क्षेत्रों में अक्सर इंटरनेट कनेक्टिविटी तक सीमित पहुंच होती है, जो प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के कार्यान्वयन के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बन सकती है। यह सीमा निगरानी प्रणाली, मोबाइल एप्लिकेशन और अन्य डिजिटल उपकरणों की तैनाती में बाधा डाल सकती है, जिनके लिए विश्वसनीय इंटरनेट कनेक्टिविटी की

आवश्यकता होती है। इंटरनेट तक पहुंच के बिना, ग्रामीण निवासी प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों की प्रभावशीलता को सीमित करते हुए, अपराधों की रिपोर्ट करने या सुरक्षा जानकारी तक पहुंचने में असमर्थ हो सकते हैं।

फंडिंग चुनौतियां: ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के कार्यान्वयन के लिए फंडिंग एक महत्वपूर्ण चुनौती हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में अक्सर सीमित वित्तीय संसाधन होते हैं, जो निगरानी प्रणाली और बड़े डेटा विश्लेषण जैसी महंगी तकनीकों की तैनाती को बाधित कर सकते हैं। इसके अलावा, प्रौद्योगिकी को बनाए रखने और उन्नयन की लागत ग्रामीण समुदायों के लिए निषेधात्मक रूप से अधिक हो सकती है, विशेष रूप से सीमित वित्तीय संसाधनों वाले लोगों के लिए।

तकनीकी विशेषज्ञता का अभाव: प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के कार्यान्वयन के लिए तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है, जिसकी ग्रामीण क्षेत्रों में कमी हो सकती है। कई ग्रामीण समुदायों के पास परिष्कृत तकनीकों को तैनात करने और बनाए रखने के लिए आवश्यक तकनीकी विशेषज्ञता नहीं हो सकती है। इसके अलावा, कई ग्रामीण समुदायों के लिए तकनीकी विशेषज्ञों को काम पर रखने की लागत निषेधात्मक रूप से अधिक हो सकती है।

प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के लिए सांस्कृतिक प्रतिरोध: ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के लिए सांस्कृतिक प्रतिरोध हो सकता है। कुछ निवासी अपराध को रोकने में प्रौद्योगिकी की प्रभावशीलता के बारे में संदेह कर सकते हैं और अधिक पारंपरिक समाधान पसंद कर सकते हैं। यह सांस्कृतिक प्रतिरोध प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों को अपनाने में बाधा डाल सकता है और उनकी प्रभावशीलता को सीमित कर सकता है।

अंत में, जब अपराध की रोकथाम के लिए प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों को लागू करने की बात आती है तो ग्रामीण समुदायों को अनूठी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सीमित इंटरनेट कनेक्टिविटी, फंडिंग, तकनीकी विशेषज्ञता और सांस्कृतिक प्रतिरोध की चुनौतियों का समाधान करना महत्वपूर्ण है। इन चुनौतियों को समझकर और उन पर काबू पाने के लिए रणनीति विकसित करके, ग्रामीण समुदाय अपने अपराध निवारण प्रयासों में सुधार करने और सार्वजनिक सुरक्षा बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठा सकते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव

प्रौद्योगिकी का ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के उपयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर में कमी आई है और सार्वजनिक सुरक्षा में सुधार हुआ है। उदाहरण के लिए, उन्नत निगरानी प्रणालियाँ अवैध गतिविधियों जैसे अवैध शिकार, अवैध ऑफ-रोडिंग और ग्रामीण क्षेत्रों में अतिक्रमण को रोकने में सफल रही हैं। ड्रोन और कैमरों के उपयोग ने कानून प्रवर्तन एजेंसियों को आपराधिक गतिविधियों की निगरानी और ट्रैक करने की अनुमति दी है, जिसके परिणामस्वरूप गिरफ्तारियां बढ़ी हैं और अपराध दर में कमी आई है।

ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर पर मोबाइल एप्लिकेशन का भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इन अनुप्रयोगों ने ग्रामीण निवासियों को अपराधों की रिपोर्ट करने और सुरक्षा जानकारी तक पहुंचने के लिए एक मंच प्रदान किया है। परिणामस्वरूप, अपराध रिपोर्टिंग में वृद्धि हुई है, जिससे कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा तेजी से प्रतिक्रिया समय और सार्वजनिक सुरक्षा में सुधार हुआ है।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे डिजिटल संचार साधनों का भी ग्रामीण अपराध रोकथाम पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इन प्लेटफार्मों का उपयोग अपराध की रोकथाम की जानकारी का प्रसार करने और सामुदायिक पुलिस प्रयासों में ग्रामीण निवासियों को शामिल करने के लिए किया गया है। सुरक्षा युक्तियों और अपराध की रोकथाम की जानकारी साझा करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करके, कानून प्रवर्तन एजेंसियां ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध की रोकथाम के प्रयासों के बारे में जागरूकता बढ़ाने में सक्षम हुई हैं, जिसके परिणामस्वरूप अपराध दर में कमी आई है।

बिग डेटा और एनालिटिक्स का उपयोग भी ग्रामीण अपराध चुनौतियों का समाधान करने में सफल रहा है। अपराध डेटा का विश्लेषण और पैटर्न की पहचान करके, कानून प्रवर्तन एजेंसियां आपराधिक गतिविधियों की उच्च दर वाले क्षेत्रों में संसाधनों को तैनात करने में सक्षम रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप अपराध दर में कमी आई है।

कुल मिलाकर, प्रौद्योगिकी ग्रामीण अपराध चुनौतियों का समाधान करने में प्रभावी रही है। उन्नत निगरानी प्रणाली, मोबाइल एप्लिकेशन, डिजिटल संचार उपकरण और बड़े डेटा एनालिटिक्स के उपयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर में कमी आई है और सार्वजनिक सुरक्षा में सुधार हुआ है। जबकि सीमित इंटरनेट कनेक्टिविटी और सांस्कृतिक प्रतिरोध जैसी चुनौतियों को संबोधित करने की आवश्यकता है, प्रौद्योगिकी आधारित समाधान ग्रामीण अपराध रोकथाम प्रयासों में सुधार के लिए वादा करते हैं।

ग्रामीण अपराध रोकथाम में प्रौद्योगिकी को बढ़ाने की सिफारिशें

प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों को लागू करने और बनाए रखने में नीति निर्माताओं और कानून प्रवर्तन एजेंसियों की भूमिका

ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी को बढ़ाने के लिए, नीति निर्माता और कानून प्रवर्तन एजेंसियां निम्नलिखित कदम उठा सकती हैं:

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी तक पहुंच में सुधार: नीति निर्माता इंटरनेट बुनियादी ढांचे में निवेश करके, प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के लिए धन उपलब्ध कराकर और तकनीकी विशेषज्ञता में सुधार के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पेशकश करके ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी तक पहुंच में सुधार कर सकते हैं। प्रौद्योगिकी तक पहुंच में सुधार करके, कानून प्रवर्तन एजेंसियां और ग्रामीण निवासी प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के कई लाभों से लाभान्वित हो सकते हैं।

प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों को लागू करना और बनाए रखना: कानून प्रवर्तन एजेंसियां ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों को लागू करने और बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। एजेंसियों को अपनी मौजूदा तकनीकी क्षमताओं का मूल्यांकन करना चाहिए और उन क्षेत्रों की पहचान करनी चाहिए जहां सुधार किए जा सकते हैं। एक बार पहचान हो जाने के बाद, एजेंसियां प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों को लागू करने के लिए काम कर सकती हैं और यह सुनिश्चित कर सकती हैं कि अधिकतम प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए उनका उचित रखरखाव किया जाए।

शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करना: ग्रामीण निवासियों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों को प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के लाभों को बेहतर ढंग से समझने और उन्हें प्रभावी ढंग से उपयोग करने में मदद करने के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित किए जा सकते हैं। शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करके, ग्रामीण निवासी अपराधों की रिपोर्ट करने और सुरक्षा जानकारी तक पहुंचने के लिए मोबाइल एप्लिकेशन और अन्य उपकरणों का उपयोग करना सीख सकते हैं, जबकि कानून प्रवर्तन एजेंसियां अपराधों को रोकने और हल करने के लिए उन्नत निगरानी प्रणाली और बड़े डेटा एनालिटिक्स का उपयोग करना सीख सकती हैं।

प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के लिए सांस्कृतिक प्रतिरोध को संबोधित करना: प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के सांस्कृतिक प्रतिरोध को प्रौद्योगिकी के लाभों को उजागर करके और किसी भी प्रतिरोध को दूर करने के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करके संबोधित किया जा सकता है। ग्रामीण निवासियों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों को प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के लाभ दिखाकर, वे इन समाधानों को अपनाने और अपने समुदायों में अपराध की रोकथाम के प्रयासों में सुधार करने के लिए अधिक इच्छुक हो सकते हैं।

अंत में, नीति निर्माता और कानून प्रवर्तन एजेंसियां प्रौद्योगिकी तक पहुंच में सुधार, प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों को लागू करने और बनाए रखने, शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करने और प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के लिए सांस्कृतिक प्रतिरोध को संबोधित करके ग्रामीण अपराध रोकथाम में प्रौद्योगिकी को बढ़ाने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं। इन कदमों को उठाकर, ग्रामीण अपराध की रोकथाम के प्रयासों में काफी सुधार किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण समुदाय अधिक सुरक्षित और सुरक्षित हो सकते हैं।

सामुदायिक जुड़ाव को सुविधाजनक बनाने और सांस्कृतिक प्रतिरोध को कम करने में सामुदायिक संगठनों की भूमिका

नीति निर्माताओं और कानून प्रवर्तन एजेंसियों की भूमिकाओं के अलावा, सामुदायिक संगठन भी ग्रामीण अपराध रोकथाम में प्रौद्योगिकी को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ये संगठन सामुदायिक जुड़ाव को सुविधाजनक बनाने और प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के लिए सांस्कृतिक प्रतिरोध को कम करने में मदद कर सकते हैं:

शिक्षा और जागरूकता प्रदान करना: अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के लाभों को उजागर करने के लिए सामुदायिक संगठन ग्रामीण निवासियों को शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रम प्रदान कर सकते हैं। प्रौद्योगिकी के संभावित लाभों के बारे में समुदाय को शिक्षित करके, प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के प्रति सांस्कृतिक प्रतिरोध को कम किया जा सकता है।

सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना: सामुदायिक संगठन मोबाइल एप्लिकेशन, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म और अन्य प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों के उपयोग को बढ़ावा देकर अपराध की रोकथाम के प्रयासों में सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित कर सकते हैं। समुदाय की भागीदारी बढ़ाकर , अपराधों को रोकने और हल करने के लिए प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है।

हितधारकों के बीच सहयोग को सुगम बनाना: ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों की सफलता के लिए कानून प्रवर्तन एजेंसियों, नीति निर्माताओं और सामुदायिक संगठनों जैसे हितधारकों के बीच सहयोग महत्वपूर्ण है। सामुदायिक संगठन यह सुनिश्चित करने के लिए इन सहयोगों को सुविधाजनक बनाने में भूमिका निभा सकते हैं कि सभी हितधारक एक समान लक्ष्य की दिशा में एक साथ काम कर रहे हैं।

प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों को बढ़ाने के लिए हितधारकों के बीच सहयोग का महत्व

ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों को बढ़ाने में इसे अतिरंजित नहीं किया जा सकता है। एक साथ काम करके, हितधारक प्रभावी अपराध रोकथाम रणनीतियों को विकसित करने और लागू करने के लिए अपने संसाधनों, विशेषज्ञता और प्रयासों को जोड़ सकते हैं। कार्यान्वयन प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होने वाली किसी भी चुनौती या बाधाओं को पहचानने और उनका समाधान करने में सहयोग भी मदद कर सकता है।

अंत में, सामुदायिक संगठन ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के लिए सामुदायिक जुड़ाव को सुविधाजनक बनाने और सांस्कृतिक प्रतिरोध को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षा और जागरूकता प्रदान करके, सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करके, और हितधारकों के बीच सहयोग को सुगम बनाकर, सामुदायिक संगठन प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों की प्रभावशीलता को बढ़ाने और सुरक्षित और अधिक सुरक्षित ग्रामीण समुदायों को बढ़ावा देने में मदद कर सकते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)

अंत में, प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों में ग्रामीण अपराध रोकथाम के प्रयासों में उल्लेखनीय वृद्धि करने की क्षमता है। उन्नत निगरानी प्रणाली, मोबाइल एप्लिकेशन, डिजिटल संचार उपकरण और बड़े डेटा एनालिटिक्स द्वारा प्रस्तुत अवसर ग्रामीण क्षेत्रों में अपराधों को रोकने और हल करने के लिए नए रास्ते प्रदान करते हैं। हालाँकि, सीमित इंटरनेट कनेक्टिविटी, फंडिंग, तकनीकी विशेषज्ञता की कमी और सांस्कृतिक प्रतिरोध की चुनौतियों को भी स्वीकार किया जाना चाहिए और प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों की प्रभावशीलता को अधिकतम करने के लिए संबोधित किया जाना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध दर पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव सकारात्मक रहा है, प्रौद्योगिकी आधारित समाधान अपराध दर को कम करने और सार्वजनिक सुरक्षा में सुधार करने में आशाजनक परिणाम प्रदर्शित करते हैं। हालांकि, ग्रामीण अपराध चुनौतियों से निपटने में प्रौद्योगिकी की प्रभावशीलता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है, जिसमें सामुदायिक जुड़ाव, हितधारक सहयोग और आवश्यक संसाधनों और तकनीकी विशेषज्ञता की उपलब्धता शामिल है।

ग्रामीण अपराध की रोकथाम में प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों को बढ़ाने के लिए, नीति निर्माताओं को ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी तक पहुंच में सुधार को प्राथमिकता देनी चाहिए, जबकि कानून प्रवर्तन एजेंसियों को प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के सफल कार्यान्वयन और रखरखाव को सुनिश्चित करना चाहिए। सामुदायिक संगठन सामुदायिक जुड़ाव की सुविधा प्रदान कर सकते हैं और सुरक्षित और अधिक सुरक्षित ग्रामीण समुदायों को बढ़ावा देने के लिए प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के लिए सांस्कृतिक प्रतिरोध को कम कर सकते हैं।

भविष्य के अनुसंधान को ग्रामीण क्षेत्रों में अपराधों को रोकने और हल करने में प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों की प्रभावशीलता के मूल्यांकन पर ध्यान देना चाहिए, विशेष रूप से उभरती प्रौद्योगिकियों और अपराध निवारण प्रयासों को बढ़ाने के लिए उनकी क्षमता के संबंध में। इसके अलावा, अनुसंधान को कानून प्रवर्तन एजेंसियों और ग्रामीण समुदायों के बीच संबंधों पर प्रौद्योगिकी आधारित समाधानों के संभावित प्रभाव का भी पता लगाना चाहिए।

संक्षेप में, प्रौद्योगिकी आधारित समाधान ग्रामीण अपराध की रोकथाम के लिए आशाजनक अवसर प्रदान करते हैं, लेकिन उनकी प्रभावशीलता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। चुनौतियों को स्वीकार और संबोधित करके, सामुदायिक जुड़ाव को बढ़ावा देकर, और हितधारकों के बीच सहयोग को सुगम बनाकर, ग्रामीण अपराध रोकथाम के प्रयासों को बढ़ाने और सुरक्षित और अधिक सुरक्षित ग्रामीण समुदायों को बढ़ावा देने के लिए प्रौद्योगिकी-आधारित समाधानों को अधिकतम किया जा सकता है।

संदर्भ (References)

- Allen, J., Scott, J., - Wyllie, D. (2018). अपराध निवारण में तकनीक की भूमिका। Policing; A Journal of Policy and Practice, 12(3), 311-322. doi: 10.1093/police/pay033
- Braithwaite, J. (2019). पुनर्स्थापना न्याय और किशोरों की पुनराधिति: एक संवैधानिक समीक्षा। Journal of Eñperimental Criminology, 15(2), 163-182.
- Brown, B., & Irwin, K. (2016). ग्रामीण अपराध और प्रौद्योगिकी। Policingp; A Journal of Policy and Practice, 10(2), 108-116. doi: 10.1093/police/pav035
- Cachia, J., & Mercieca,S. (2016). अपराध निवारण में समुदाय पुलिसिंग की प्रभावशीलता: एक मिश्रित विधि विश्लेषण। Policing; An International Journal, 39(3), 575-589.
- Cao, L-, hZang, J., & hZao, L. (2019). मशीन लर्निंग और इंटरनेट ऑफ थिंग्स का उपयोग करके ग्रामीण अपराध का पता लगाना और निवारण। Computers, Materials & Continua, 60(2), 455-466. doi: 10.32604/cmc.2019.06391
- Davis, R. J. (2019). किशोर अपराध: कारक, निवारण और हस्तक्षेप। Journal of Social Issues, 75(4), 926-946.
- Deakin, J., & Khan, H. (2018). ग्रामीण अपराध रोकथाम: सोशल मीडिया की संभावनाएं। Policing; A Journal of Policy and Practice, 12(3), 238-247. doi: 10.1093/police/pay022
- Kettles, G., Barker, M., - Snook, B. (2017). ग्रामीण पुलिसिंग में प्रौद्योगिकी: अवसर और चुनौतियाँ। Police Practice and Research, 18(5), 461-475. doi: 10.1080/15614263.2016.1265365
- Krivo, L. J., & Peterson, R- D. (2019). अपराध में सामाजिक असमानता की भूमिका: साहित्यिक समीक्षा। Annual Review of Criminology, 2, 327-349.
- Lipton, R., & Wellman, D. (2018). समुदाय-आधारित कार्यक्रम और अपराध रोकथाम: एक मामला अध्ययन विश्लेषण। Justice Quarterly, 35(2), 339-362.
- Lum, C., & Kennedy, L.W. (2018). प्रमाण-आधारित पुलिसिंग और प्रौद्योगिकी। J- C- Coleman & S- G- Bowers (संपादकों), अक्सफोर्ड क्राइमिनल जस्टिस एण्ड टेक्नोलजी हैंडबुक (पृ. 155-172)। अक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- Matthews, R- A. (2018). अपराध और शहरी डिजाइन: एक मामला अध्ययन विधि। Journal of Research in Crime and Delinquency, 55(4), 515-541.
- Skogan, W. G. (2018). समुदाय पुलिसिंग और अपराध के भय: एक मामला अध्ययन विश्लेषण। Justice Quarterly, 35(5), 793-815.
- Smith, D.A., & Clarke, R- V. (2017). स्थितिगत अपराध रोकथाम: सिद्धांत और अभ्यास। Crime Science, 6(1), 1-11.
- Stoll, L., & Fielding, N. (2019). ग्रामीण अपराध निवारण और खोज में ड्रोन का उपयोग: पुलिस केधारणाओं का एक अन्वेषणात्मक अध्ययन। International Journal of Police Science & Management, 21(1), 23-31. doi: 10. 1177/1461355718808467
- Tan, Z., Wu, Z., Chen, H., & Li, B. (2019). ग्रामीण अपराध रोकथाम के लिए बड़े आकार का डेटा समर्थित निर्णय सहायता प्रणाली। Journal of Big Dat, 6(1), 50. doi: 10.1186/40537-019-0216-9
- Weisburd, D., & Eck, J. E. (2004). पुलिस द्वारा अपराध, अव्यवस्था और भय को कम करने के लिए क्या कर सकते हैं? Annals of the American Academy of Political and Social Science, 593(1), 42-65.

वर्तमान भारतीय परिपेक्ष्य में संविधान के अन्तर्गत जातिगत आरक्षण व्यवस्था : एक चुनौती

अरविन्द कुमार गुप्ता[1]

सारांश

स्वतंत्र भारत में जातिगत आरक्षण की व्यवस्था को प्रवृत्त हुए लगभग 70 वर्ष हो गए है लेकिन यह व्यवस्था संविधान में निहित उद्देश्यों को प्राप्त करने में आज भी सफल नहीं हुई है अपितु इसने समाज में घृणा की भावनाओं को और अधिक प्रबल किया है। वर्तमान भारतीय परिपेक्ष्य में संविधान के अन्तर्गत जातिगत आरक्षण व्यवस्था एक चुनौती बन गई है, जिसका पूर्ण रूप से राजनीतिकरण हो चुका है। इस आलेख का उद्देश्य संविधान के अन्तर्गत स्थापित जातिगत आरक्षण व्यवस्था पर चर्चा करके कुछ सुझाव प्रस्तुत करना है।

परिचय

भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय स्थापित करने के लिए संविधान में जातिगत आरक्षण की व्यवस्था की गई ताकि एक समतावादी समाज की स्थापना की जा सके लेकिन दुर्भाग्यवश इस जातिगत आरक्षण व्यवस्था का पूर्ण रूप से राजनीतिकरण हो चुका है और यह आरक्षण व्यवस्था राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता प्राप्ति का साधन बन गई है। भारतीय संविधान की उद्देशिका भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करती है। संविधान का अनुच्छेद 14 विधि के समता, अनुच्छेद 15 (1) धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध, अनुच्छेद 16(1) लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता तथा अनुच्छेद 16(2) लोक नियोजन या पद के संबंध में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म स्थान, निवास के आधार पर अपात्रता तथा विभेद का प्रतिषेध, अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा संस्थाओं में धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा के आधार पर विभेद का प्रतिषेध करने की व्यवस्था करता है। संविधान सभा में स्वयं डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा है कि स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के सिद्धान्त एक संयुक्त संघ बनाते है और एक को दूसरे से पृथक नहीं माना जाना चाहिए और यदि एक को दूसरे से पृथक किया जाता है तो यह लोकतंत्र के मूल उद्देश्य को विफल करेगा।[2] भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15(4)[3] जातिगत आरक्षण के संबंध में व्यवस्था करता है, जिसमें सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों की उन्नति के लिए विशेष उपबंध करने की व्यवस्था की गई है। शैक्षिक पिछड़ेपन की समस्या का निवारण सरलता से किया जा सकता है लेकिन सामाजिक पिछड़ेपन की समस्या का समाधान करना तब तक संभव ही नहीं है जब तक कि इसको परिभाषित नहीं कर दिया जाता है और यह स्पष्ट नहीं किया जाता है कि एक व्यक्ति किन अभावों से ग्रस्त होने पर सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ माना जाएगा तथा सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर उसकी कितनी पीढ़ियाँ लाभ प्राप्त करने की अधिकारी होंगी।

न्यायिक दृष्टिकोण

एम. आर. बालाजी तथा अन्य बनाम मैसूर राज्य[4] के मामले में उच्चतम् न्यायालय ने कहा है कि आरक्षण समाज के निर्बल वर्गों की संभावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए अपनाया जाना चाहिए।[5] अनुच्छेद 15(4) के अन्तर्गत पिछड़ापन सामाजिक या शैक्षिक नहीं है बल्कि सामाजिक और शैक्षिक दोनों है। दुर्भाग्य से हिन्दू सामाजिक संरचना में जाति नागरिक की स्थिति को निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यद्यपि समाजशास्त्रियों और वैदिक विद्वानों के अनुसार जाति व्यवस्था मूल रूप से व्यवसायिक या कार्यात्मक आधार पर प्रारम्भ हुई और यह समय के साथ दृढ और कठोर हो गई। यह कृत्रिम विकास अनिवार्य रूप से श्रेष्ठता और हीनता की भावना उत्पन्न करने तथा संकीर्ण जाति निष्ठा को बढ़ावा देने के लिए प्रवृत्त हुआ।[6] हम सोचते है कि यद्यपि हिन्दूओं के संबंध में जातियाँ नागरिकों के समूहों या वर्गों के सामाजिक पिछड़ेपन को निर्धारित करने के लिए एक प्रासंगिक कारक हो सकती है लेकिन इस संबंध में इसे एक मात्र या प्रमुख परीक्षण नहीं बनाया जा सकता है। सामाजिक पिछड़ापन निर्धनता का परिणाम है। नागरिकों के वे वर्ग जो अत्यन्त निर्धन है वे स्वत: ही सामाजिक रूप से पिछड़े हो जाते है। यह सत्य है कि निर्धनता से उत्पन्न होने वाला सामाजिक पिछड़ापन जाति के विचारों से बढ़ सकता है जिससे निर्धन नागरिक संबंधित हो सकते है, लेकिन यह केवल नागरिकों के पिछड़ेपन को निर्धारित करने में जाति और निर्धनता दोनों की प्रासंगिकता को दर्शाता है। नागरिकों के व्यवसाय भी नागरिकों के वर्गों को सामाजिक रूप से पिछड़ा बनाने में योगदान दे सकते है। निवास स्थान भी व्यक्तियों के समुदाय के पिछड़ेपन को निर्धारित करने में कोई गौण भूमिका नहीं निभाते है। इस अर्थ में सामाजिक पिछड़ापन ग्रामीण भारत की समस्या है। सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के निर्धारण की समस्या नि:संदेह बहुत जटिल है।[7] कुमारी के. एस. जयश्री तथा अन्य बनाम केरल राज्य तथा अन्य[8] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों का निर्धारण करने के लिए समुचित मानदंड विकसित करने में सामाजिक और आर्थिक विचार महत्वपूर्ण है तथा यह निर्धारित करना राज्य का कार्य है।[9]

भारत में जाति व्यवस्था

भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित्यात्मक रूप से कुछ भी कहना अत्यन्त कठिन है।[10] प्रारम्भ से लेकर अब तक जाति व्यवस्था ने हिन्दू समाज को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है।[11] जाति व्यवस्था समय के साथ परिवर्तनशील रही है। वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था कालान्तर में परिवर्तित होकर जाति व्यवस्था बन गई।[12] यह सत्य है कि जाति व्यवस्था ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए है लेकिन इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि यह अनेक व्यक्तियों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार का कारण बनी है।[13]

आरक्षण की वास्तविकता

आरक्षण किसी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर प्रदान न करके उसको वंचित समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में प्रदान किया जाता है[14], जबकि वास्तविकता यह है कि आरक्षण की व्यवस्था से किसी भी जाति को कोई वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं होता है अपितु इससे कुछ व्यक्ति या परिवार ही लाभान्वित होते है।[15]

निष्कर्ष

भारत में जातिगत आरक्षण की व्यवस्था लगभग 70 वर्षों से प्रवृत्त है लेकिन यह अपने उददेश्यों को प्राप्त करने में असफल रही है। जातिगत आरक्षण की व्यवस्था ने घृणा की भावनाओं को निरन्तर प्रबल किया है। अत: जातिगत आरक्षण की व्यवस्था के क्रियान्वयन पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है।

सुझाव

जातिगत आरक्षण की व्यवस्था में सुधार के लिए जातिगत आरक्षण से संबंधित सभी विशेष प्रावधानों के लिए एक काल सीमा निश्चित कर देनी चाहिए और यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि एक निश्चित काल के उपरान्त इन सभी विशेष प्रावधानों का स्थायी रूप से लोप हो जाएगा और उनका आगे विस्तार नहीं किया जाएगा। "सामाजिक पिछड़ापन" शब्दावली को संविधान में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है।[16] "सामाजिक पिछड़ापन" शब्दावली को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए तथा यह स्पष्ट

किया जाना चाहिए कि एक व्यक्ति किन अभावों से ग्रस्त होने पर सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ माना जाएगा। सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर किसी परिवार की मात्र एक पीढ़ी को लाभ प्राप्त करने का अधिकारी माना जाना चाहिए।

पुस्तकें

1. मोती लाल गुप्ता, भारत में समाज (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, 08वाँ संस्करण, 1997)
2. डॉ. जय नारायण पाण्डेय, भारत का संविधान (सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, 40वाँ संस्करण, 2007)
3. डॉ. एच. पी. गुप्ता, भारत का संविधान (लेक्सिस नेक्सिस, गुरगाँव, हरियाणा, 03वाँ संस्करण, 2016)
4. Dr. M. P. Jain, Indian Constitutional Law (Lexis Nexis, Gurgaon, Haryana, 08th Edition, 2020).
5. Dr.V. N.Shukla, Constitution of India (Eastern Book Company, Lucknow, Uttar Pradesh, 10th Edition, 2006).
6. H.M. Seervai, constitutional Law of India (Universal Book Traders, New Delhi, 04th Edition, 2020).

आलेख

1. Dr. Arvind Chakraborty and Debaditya Das, " Reservation quota must be for all who deserve, should not be based upon Caste & Religion Critical Analysis"

विधान

1. भारत का संविधान, 1950

पत्रिकाएं

1. Nyaya Deep
2. Judgments and Law Today
3. All India Reporter
4. Supreme Court Cases

वेबसाइट

1. https://www.constitutionofindia.net/
2. https://legislative.gov.in/
3. https://main.sci.gov.in/
4. https://epustakalay.com/
5. https://indiankanoon.org/
6. https://hindi.livelaw.in/

प्रतिवेदन

1. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद का सरकारी प्रतिवेदन, 1949

समाचार पत्र

1. दैनिक जागरण
2. अमर उजाला

3. हिन्दुस्तान
4. पंजाब केसरी
5. नवभारत टाइम्स

संदर्भ

1 शोधार्थी (विधि), सोबन सिंह जीना परिसर (विधि संकाय), अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

2 देखें: भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद का सरकारी प्रतिवेदन (हिन्दी संस्करण) अंक 11, 25 नवम्बर 1949, पृ. 4226, available at : https://drive.google.com/file/d/1uEspV6sR_rxfZfK5VX6F5R1PE1OKtOPn/view , visited on 31 December 2019, Time 09:00.

3 देखें: भारत का संविधान, 1950, पृ. 07, aavailable at: https://legislative.gov.in/sites/default/files/Constitution%20%20of%20India_Hindi.pdf , visted on 31 December 2019, Time 10:00.

4 See : AIR 1963 SC 649. Date of Judgment 28/09/1962, available at : https://main.sci.gov.in/jonew/judis/3749.pdf , visited on 26 December 2019, Time 17:00.

5 देखें : पूर्वोक्त पृ. 02, अंग्रेजी से अनुवादित।

6 देखें : पूर्वोक्त पृ. 13, अंग्रेजी से अनुवादित।

7 देखें : पूर्वोक्त पृ. 14, अंग्रेजी से अनुवादित।

8 See : AIR 1976 SC 2381. Date of Judgment 20/08/1976, available at : https://main.sci.gov.in/judgment/judis/5568.pdf, visited on 27 December 2019, Time 15:00.

9 देखें : पूर्वोक्त पृ. 07, अंग्रेजी से अनुवादित।

10 देखें : मोती लाल गुप्ता, भारत में समाज, पृ.144 (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, 08 वाँ संस्करण, available at : https://epustakalay.com/book/3684-bharat-me-samaj-by-motilal-gupta/, visited on 27 December 2019, Time: 05:00.

11 देखें : पूर्वोक्त पृ. 166

12 देखें : पूर्वोक्त पृ. 194

13 देखें : पूर्वोक्त पृ. 159-160

14 See : Dr. Arvind chakraborty and Debaditya Das, " Reservation Quota must be for all who deserve, Should not be based upon caste & Religion Critical Analysis", Vol 17 Issue 03&04 Nyaya Deep P. 15, (July & October 2016).

15 देखें : भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद का सरकारी प्रतिवेदन (हिन्दी संस्करण) अंक 08, 26 मई 1949, पृ. 532, available at : https://drive.google.com/file/d/12pb140j31_BiChKjV2hMUDyorMnopM02/view , visited on 31 December 2019, Time 08:00.

16 देखें : डॉ. जय नारायण पाण्डेय, भारत का संविधान, पृ. 142 (सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, 40 वाँ संस्करण, 2007)

सनातन धर्म में ध्यान का उद्‌भव का इतिहास

डॉ० लाल बहादुर स्वर्णकार

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) नई दिल्ली

वैदिक धर्म के अनुसार आत्मा का सांसारिक बंधनों से मुक्ति अर्थात मोल, मन की एकाग्रता एवं ज्ञान की प्राप्ति के लिए ध्यान को मुख्य कारक माना गया है। मनुष्यों को इसका अनुसरणकती होना चाहिए, जिससे उसका पुरुषार्थ सिदध होता है इस मार्ग पर चलकर लोक-कल्याण का प्रयोजन भी सिद्ध होता है। इस आशय को निम्न उद्धरणों से स्पष्ट किया जा सकता है-

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्व कामनाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीसिकी मता।।[1]

अर्थात आन्वीक्षिकी सभी विद्याओं का सतत प्रदीप है, सभी कर्मों का साधन है एवं सभी धर्मो का आश्रय है।

आत्मेत्येवोपासीत अब येते सर्वमेकं भवन्ति।
तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य यदयमत्मानेन हयेतत्सर्व वेद।।[2]

अर्थात 'आत्मा है इस प्रकार ही उसकी उपासना करें, क्योंकि इस आत्मा में ही सब एक हो जाते है। यह जो आत्मा है वही इन सब का प्राप्तव्य है, इस आत्मा के जात होने से ही सभी इस जगत को जानते हैं।

ऐसा माना जाता है कि सन् 400-100 ई. (ईसा पूर्व) के काल में महर्षि पतंजलि का योग सूत्र प्रतिपादित हुआ। पतंजलि के योग सूत्र के आठ महत्वपूर्ण चरण या सीढ़िया हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इसी कालखंड में श्रीमदभगवद्‌गीता लिखा गया जिसमें योग, दर्शन, ध्यान और आध्यात्मिकता का वर्णन है। पश्चिम के देशों में योग का प्रसार प्राचीन भारतीय व्यापारियों के माध्यम में हुआ। जैसे- यहूदी धर्म में तीसरी शताब्दी में प्लोटिनम (Plotinus) ने ध्यान की विधि को विकसित किया, किंतु ईसाई धर्म में आसानी से यह समाहित नहीं हो सका। सन् 653 ई. में एक जापानी सन्यासी डोसो (Dosho) ने चीन का भ्रमण किया और उन्होंने वहाँ से लौटकर जापान में सर्वप्रथम ध्यान का आश्रम खोलकर ध्यान को जनमानस में प्रसारित किया। आठवीं शताब्दी के आने तक जापानी समाज में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान हो गया था। 12 वीं शताब्दी में Monk Guigo ने सर्वप्रथम ध्यान के लिए मेडिटेशन (meditation) शब्द का प्रयोग किया जिसकी उत्पति लेटिन भाषा के शब्द उमकपजंजनउ से है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- "To ponder" अर्थात ध्यान करना, विवेचन करना इत्यादि। मध्यकाल के आते-आते विश्व के प्रायः सभी धर्मों में ध्यान का सूत्रपात उसके भिन्न-भिन्न रूपों में हो चुका था। 18 वीं शताब्दी में प्रायः सभी पश्चिम के देशों में ध्यान की परंपरा लोकप्रिय हो चुका था। सन् 1927 ईस्वी में एक पुस्तक "Tibetan Book of the Dead" का प्रकाशन होने के बाद पश्चिम के देशों में ध्यान के प्रति काफी रुचि देखने को मिला। सन् 1950 ईस्वी में "विपासना आंदोलन' की शुरुआत से इसे और प्रोत्साहन मिला। सन् 1979 ईस्वी में संयुक्त राज्य अमेरिका में Mindfulness Based Stress Reduction (MBSR) नामक संस्था की स्थापना हुई जिसमें ध्यान के विधि से कई पुरानी बीमारियों का इलाज किया जाता है। जिसके कारण आम लोगों में 'ध्यान' काफी लोकप्रिय हो गया है।

धर्म

'धर्म' संस्कृत भाषा का एक शब्द है, जो धारण करने वाले 'धृ धातु से बना है। धार्यते इति धर्मः' अर्थात जो धारण करते हैं, वही धर्म कहलाता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य के जीवन को उच्च और पवित्र बनाने वाली जो ज्ञानानुकूल शुद्ध सार्वजनिक मर्यादा पद्धति

है, उसे ही धर्म कहा जाता है। भारत के प्राचीन साहित्य में 'धर्म' शब्द का प्रयोग विस्तृत एवं विभिन्न रूपों में हुआ है। "धर्म की अवधारणा एवं समय-समय पर इसके अर्थ और लक्षण में संदर्भानुकूल परिवर्तन के कारण इसे समग्रता से समझना अति कठिन है।"[3] ऋग्वेद के अनुसार सृष्टि की प्रक्रिया में उत्पन्न अराजकता को समाप्त करने के लिए और उसे एक व्यवस्थित एवं मूल्यपरक रूप देने के लिए धर्म की आवश्यकता पड़ी, जो लोक एवं परलोक को नियंत्रित एवं संचालित कर सके। वैदिक दृष्टि के अनुसार प्रारंभ में मूल तत्व तो एक ही था, परंतु सृष्टि की प्रक्रिया में बहुलता की अभिव्यक्ति के कारण उसने अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इसलिए अनेकता में एकता स्थापित करना आवश्यक हो गया। धर्म-शक्ति उसकी पूर्ति करती है। दूसरे शब्दों में सृष्टि के प्रत्येक अभिव्यक्ति में चाहे कण हो या ब्रहमांड, सभी में यह शक्ति समान रूप से विद्यमान रहती है। परंतु इस प्रक्रिया में प्रत्येक अभिव्यक्ति अपना अपना विशेष धर्म ग्रहण कर लेती है। कालांतर में यह धर्मिन् धर्म भाव से अनेक लक्षणों से भी युक्त हो जाती है जैसे द्रव्य (Substancess) गुण (iQuality), स्थिरता (Stability), व्यवस्था (Order), कर्तव्यनिष्ठा (Felicity, Duty) प्रथा (Ritual, Custom). सामाजिक एवं संवैधानिक न्याय प्रक्रिया Social and constitutional legal system), एवं नैतिक नियम (Moral codes and standard)

धर्म की उत्पत्ति स्वरूप एवं प्रभाव के बारे में कहा गया है कि- स नैव व्यभवतच्छ्रेयोरूपमत्य सृजत धर्म तदेतत्सवस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नासत्यथो अवलीयान्बलीयासमास धर्मेण यथा राजैव यो वै स धर्मः सत्यं वै ततस्मात्सत्यं वदन्त्माहुर्धर्म वदतीति धर्म वा वदन्ते सत्य वदतीत्येतद्धयेवैतदुभयं भवति।"[4]

अर्थात तब भी वह विभूतियुक्त कर्म करने में समर्थ नहीं हुआ। उसने अतिशयता से श्रेयोरुप कल्याण स्वरूप धर्म की अतिसृष्टि की। यह जो धर्म है, क्षत्रियों का भी नियंता है। अतः धर्म से उत्कृष्ट कुछ नहीं है। जिस प्रकार राजा की सहायता से प्रबल शत्रु को भी जीतने की शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार धर्म के द्वारा निर्बल पुरुष भी बलवान को जीतने की इच्छा करने लगता है। वह जो धर्म है निश्चय सत्य ही है। इसी से सत्य बोलने वालों को कहते हैं कि 'यह धर्ममय वचन बोलता है तथा धर्ममय वचन बोलने वाले से कहते हैं। कि यह सत्य बोलता है क्योंकि यह दोनों धर्म हीं है।

धर्म प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी रूप में अनुशासन (discipline), अभिशासन (governance) तथा नैतिक एवं वैधानिक दायित्व (moral and legal responsibilty) की बाध्यता (obligation) की भूमिका में पिंड से ब्रह्मांड तक सक्रिय रहता है।

यह वैश्विक मूल्य एवं स्थानीय मूल्य में तारतम्य में भी स्थापित करता है। देश, काल, परिस्थिति एवं संदर्भ के कारण एक धर्मशास्त्र का दूसरे धर्मशास्त्रों के साथ मतभेद हो सकता है। धर्म प्राकृतिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक परंपरा और व्यवस्था को आपस में जोड़ता है और उसके साथ-साथ इस विभिन्नता में उभयनिष्ठता स्थापित करने का काम भी करता है। भारतीय संस्कृति की यह विलक्षण विशेषता है कि वह मत भिन्नता को केवल आदर हीं नहीं करता बल्कि उसे अपनी समृद्धि का कारण भी मानता है। वैदिक काल के ग्रंथों में इन्हीं विचारों का समर्थन है-

'एकं "सद् बहुधा वदंति"[5]

अर्थात सत् एक है. परंतु विद्वान उसके बारे में अलग-अलग तरीके से कहते हैं।

"मुण्डे मुण्डे मतिभिन्ना कुण्डे कुण्डे नवं पयः।
जाता जाता नवाचाराः नवा वाणी मुखे मुखे।।[6]

अर्थात भिन्न-भिन्न मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न विचार होते हैं, उसी तरह जैसे भिन्न-भिन्न तालाब में भिन्न-भिन्न स्वाद के पानी होते है। भिन्न-भिन्न आति के मनुष्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जीवन दृष्टि और पद्धति होती है. और विभिन्न प्रकार के लोगों के मुख से भिन्न-भिन्न प्रकार की वाणी (भाषा, अर्थ) अभिव्यक्ति होती है।

पुरुषे पुरुष बुद्धियां सा भवति शोभना।
तुष्यन्ति च पृथक सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया।।
(महाभारत, सौप्तिकपर्व, 3.3)

अर्थात प्रत्येक मनुष्य में जो पृथक-पृथक बुद्धि होती है, वही उसे सुन्दर जान पड़ता है। अपनी-अपनी उसी बुद्धि से वे सब लोग अलग-अलग संतुष्ट रहते हैं।

तर्को अप्रतिष्ठः श्रुतयो: विभिन्ना नैको रुषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।।[7]

अर्थात 'तर्क की कहीं स्थिति नहीं है, श्रुतियों भी भिन्न-भिन्न है, एक ही ऋषि नहीं है कि जिसका मत प्रमाण माना जाए तथा धर्म का तत्व गुहा में निहित है अर्थात अत्यंत गूढ़ है, अतः जिससे महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग है।'

मानव एक ऐसा प्राणी है जिसके संबंध में धर्म की बातें की जा सकती है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद ने तो अभ्युदय एवं निःश्रेयस के शब्दों में धर्म की परिभाषा दी है-

"यतो अभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।[8]

अर्थात 'धर्म वह है जिससे मनुष्य का लौकिक एवं पारलौकिक (भौतिक एवं आध्यात्मिक) दोनों प्रकार की उन्नति संभव है।'

इसी से मानवीय मूल्यों जैसे समन्वय, शांति, सुख, समृद्धि एवं पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। इस उन्नति में सर्वप्रथम मनुष्य की चेतना का गुणात्मक अर्ध्य विकास (qualitativevertical development of human consciousne) होता है। वास्तविक रूप में धर्म का प्रतिपादन मनुष्य की दुर्गम यात्रा को जिसमें लोक कल्याण निहित है, सफल बनाने के लिए हुआ है।

मनुष्य के अभ्युदय की यात्रा का अति सुंदर ढंग से बृहदारण्यकोपनिषद के इस प्रचलित मंत्र में किया गया है-

'असतो मा सद्गम तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृत गमयेति।

अर्थात 'मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ, अंधकार से प्रकाश यानी अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाओ, मुझे मृत्यु से अमृत यानी अमरता की ओर ले जाओ।"

अतः व्यक्तिगत कल्याण हो या पारिवारिक, सामाजिक, लोककल्याण और पारमार्थिक, सभी धर्म के ढाँचे (framework) में ही संभव है। धर्म सभी काल आदि, मध्य और अंत में कल्याणकारी है। धर्म शब्द से विश्व के सभी धर्मों का बोध होता है। सनातन-धर्म (हिंदू-धर्म), बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म आदि विश्व के प्रमुख धर्म है। धर्म के संबंध में दार्शनिक चिंतन धर्म-दर्शन कहलाता है।

सनातन-धर्म (हिंदू-धर्म)

ब्रहमांड या विश्व (universe, cosmos) में प्राकृतिक रूप से विद्यमान सूर्य चद्रमा, यह, आकाश, वायु, पृथ्वी (जल, अग्नि, पर्वत, वन, पौधे मनुष्य एवं अन्य प्राणी आदि) एक दूसरे से होते हुए भी एक विस्था में गतिशील है। अर्थात इनमें एक सनातन परस्पर संबंध है जो सूक्ष्मतम पिंड से लेकर विशाल ब्रहमांड तक व्याप्त है। यह दैनिक सनातन (Permanent) व्यवस्था है जिसे मूल अर्थ में सनातन-धर्म भी कहा जा सकता है। इस व्यवस्था में मनुष्य का एक विशेष स्थान है, जो इस व्यवस्था को समझने और स्थायित्व देने में सक्षम है। क्योंकि इसी में उनके अपेक्षित वैश्विक समन्वय से शांति, सुख और समृद्धि जैसे मानवीय मूल्यों की प्राप्ति है। सनातन-धर्म (हिंदू-धर्म) इसी सिद्धान्त पर आधारित है जिसका पाश्चात्य अर्थ में कोई मजहब नहीं है।

वैदिक ऋषि इसी वैश्विक अंतर्दृष्टि को आधार बनाकर मनुष्य के जीवन और व्यवहार यानी संपूर्ण मानवता की संस्कृति की सृष्टि करता है। इसमें संपूर्ण लोक व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि की सनातन व्यवस्था निहित है। इसी दृष्टि के अंतर्गत इसके अनुभव, ज्ञान, मूल्य, कर्म, सुख, मोह आदि के स्वरूप एवं दिशा का निर्धारण होता है। वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था तथा जीवन के सभी संस्कार इसी से संचालित होते हैं। मनुष्य सनातन वैश्विक व्यवस्था का एक तात्विक (essential) अंश है, उसमें मनुष्यत्व से पूरे देवत्व को प्राप्त करने की क्षमता है। सांसारिक एवं परमार्थिक दोनों ही दृष्टिकोण से उसके वैश्विक स्वरुप को सामान्य दृष्टि से भी समझा जा सकता है जैसे कि उसके जीवन में सूर्य का प्रकाश, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, पेड़-पौधे आदि तत्व अनिवार्य है, और वह उन्हीं से निर्मित है, उन्हीं से उसका जीवन है। उनके बिना वह कुछ क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। अतः उसका स्वरूप वैश्विक है। पारमार्थिक (transcendental) दृष्टि से इस रूप में प्रत्येक मनुष्य वैश्विक पुरुष (cosmic man) कहलाता है। परंतु इस स्तर को वह केवल अपनी साधना या ध्यान (meditation) से प्राप्त कर सकता है जब वह इसके अनुसार अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है और आचरण करता है। वेद और उसकी परंपरा उसके इस पुरुषार्थ प्राप्ति में केवल मार्गदर्शक का काम करती है। किंतु इन्हीं दोनों श्रोतों में भारतीय दर्शन एवं धर्म की अवधारणाओं (concepts) के सिद्धांत निहित है। इन्हीं दोनों के वैश्विक स्वरूप में प्राचीन भारत की संस्कृति एवं सभ्यता की जड़ें हैं, जो अनेक भारतीय विधाओं (Academic discipline) को जन्म देती

है एवं तदनुसार आचरण के लिए प्रेरित करती है। इनके अनुसार विश्व की सभी प्राकृतिक शक्तियाँ लाक्षणिक अर्थ (metaphorically) में दैविक है, जिसका मनुष्य से गहरा पारस्परिक संबंध होता हैं। वे दोनों यानी देवता और मनुष्य एक दूसरे को जीवित रहने के लिए तरह-तरह के आहार प्रदान करते हैं, ताकि दोनों का अस्तित्व बना रहे।

जहाँ देवता प्रवृत्तिमार्गी वैदिक मनुष्य को सारी सांसारिक सुख, जैसे दीर्घायु एवं स्वस्थ शरीर, प्रखर बुद्धि, सुंदर पत्नी, योग्य संतान, अच्छी फसल, जलवायु, वर्षा, पशु एवं अन्य क्षमता प्रदान करता है, वहीं मनुष्य यज्ञ के माध्यम से अपने इष्ट देवता से अपनी सुखी जीवन के लिए प्रार्थना करता है। एवं उन्हें उपयुक्त भोजन प्रदान कर अपना ऋण चुकाता है। वैदिक संहितायै मनुष्य के जीवन से संबंधित प्रत्येक पहलू में वैश्विक दृष्टि से एक अद्वितीय अर्थ देखती है। इस प्रकार सृष्टि एवं उसकी व्यवस्था की प्रक्रिया में जो शक्ति संरचनात्मक (Constitutive) एवं विनयात्मक (Regulative) की भूमिका का काम करती है, वह मूल अर्थ में धर्म के नाम से जानी जाती है जिसके अर्थ की विविध अति एवं जटिल है। वैसे तो जगत की सृष्टि दैविक देन है और मनुष्य का शरीर माता-पिता की जैविक देन है। इसके अतिरिक्त विश्व के सभी जीव-अजीव चाहे सूक्ष्म हो या विशाल, एक वैश्विक गतिशील व्यवस्था में अंतर्सम्बधित होकर विविधता में समन्वय की स्थिति बनाए रखते हैं और सतत सक्रिय भी रहते हैं। इस प्रकार यह विविधता एकत्व को बनाए रहती है। इस विविधता से युक्त एकत्व में सूर्य, चंद्र, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि, पशु, वनस्पति, पर्वत आदि सभी विद्यमान है। जैसा कि हम लोग जानते हैं कि यह सभी तत्व प्रत्येक जीवों में सक्रिय रूप से विद्यमान रहते हैं और उनका पोषण करते हैं जिससे उसके अस्तित्व की निरंतरता एवं सक्रियता बनी रहती है। इस तरह वह एक वैश्विक रूप ग्रहण करता है। इसके बदले मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उनके प्रति ऋणी रहे, उनकी पूजा करें, सम्मान करें एवं उन्हें हानि न पहुँचाये, बल्कि उनका संरक्षण करें। इस प्रकार इसे परस्पर योगदान की प्रक्रिया समझना चाहिए। इस अर्थ में मनुष्य अपनी एवं जगत की एक नई सृष्टि करता है। इस वैश्विक व्यवस्था में ऋषि वैश्विक मूल्य देखता है जिसे समन्वय (Harmony) कहते हैं, जो परम मूल्य है। यही परम मूल्य अन्य मूल्यों को जन्म देता है, जैसे शांति (Peace) और सुख (Happiness)। यह व्यवस्था सूक्ष्म कण या पिंड से ब्रह्मांड तक व्याप्त है (यत् पिण्डे तत् ब्रहमाण्डे)। इसका ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना चाहिए और तदनुसार आचरण भी करना चाहिए। इसी से उसकी संस्कृति बनती है, वही संपूर्ण मानवता के अवसर पर एक सनातन संस्कृति एवं सभ्यता का रूप ले लेती है। यही सनातन-धर्म का आधार है जो प्रत्येक विद्या, ज्ञान, कला, दर्शन आदि में अभिव्यक्ति होती हैं वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण, काव्य, रामायण, महाभारत, कामशास्त्र, दर्शनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोलशास्त्र आदि सभी जगहों पर ऋषि की, दिव्य दृष्टि द्रष्टव्य एवं अभिव्यक्त है। इसके अतिरिक्त इस विश्व में मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो बौदधिक चेतना, तर्क, चिंतन, पुरुषार्थ आदि से युक्त है। अतः सर्वप्रथम मनुष्य के स्वरूप, सामर्थ्य एवं भूमिका को समझना चाहिए। साथ ही हर व्यक्ति अपने आप को समझे और मनसा वाचा कर्मणा विकसित करे। यही प्रारंभिक दर्शन और धर्म है। इस तरह वैश्विक सक्रिय व्यवस्था में अंतर्निहित तात्विक सिद्धांत (Metaphysical Principle) को जानना हीं ऋषि के दृष्टा होने के स्वरूप को जानना है। यह वैश्विक तात्विक सिद्धांत ही सनातन-धर्म है, जो सक्रिय रूप से सर्वव्यापी है। इसी विषय को विधिवत एवं तार्किक रूप से विस्तार करना दर्शन का कार्य है।

सनातन-धर्म (हिंदू-धर्म) में ध्यान (meditation) का उद्भव का इतिहास

मनुष्य के सर्वांगीण अभ्युदय सेना के मुधिकरण और विकास के साथ-साथ दमन एवं इंदिरा सहित शरीर की भी सहभागिता होनी चाहिए, जिससे लोकयात्रा, लोककल्याण एवं मोक्ष के लक्ष्य प्राप्त हो सके। यह संस्कृति सांसारिक (empirical) एवं पारमार्थिक (transcendental), तथा प्रवृति (this worldly action) एवं निवृति (other& worldly action) का समन्वय हैं। इस तरह की यात्रा में ज्ञान, उपाय और ध्यान (meditation) सभी अनिवार्य है। ध्यान या साधना (meditation) से स्वतः को खोजने की बात अर्थात आत्म साक्षात्कार का मार्ग सनातन धर्म के प्राचीन साहित्य, जैसे वेद, उपनिषद्, श्रुति, पुराण, श्रीमद्भगवद्गीता आदि में की गई है।

"उपहरे गिरीणा संगधे च नदीनाम। धिया विप्रो अजायत।"[9]

अर्थात पहाड़ों की गुफाओं में और नदियों के संगम पर ध्यान (meditation) करने से विप्र बनते हैं।

"योगे योगे तवस्तर बाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये।"[10]

अर्थात बार-बार योगाभ्यास या ध्यान (meditation) करते और मानसिक एवं शारीरिक बल बढ़ाते समय हम सब परस्पर मित्रभाव से युक्त होकर अपनी रक्षा के लिए अनन्त बलवान ऐश्वर्यशाली ईश्वर का ध्यान करते हैं सनातन धर्म में ध्यान (meditation) की परंपरा का आदि प्रवर्तक महर्षि ब्रहमा और महर्षि हिरण्यगर्भ माने जाते हैं। उन्होंने वेदों से योग या ध्यान (meditation) का प्रचार किया था।

महाभारत का एक प्रसंग है-

"सांख्यस्य वक्ता कपिल: परमऋषि स उच्यते।

हिरण्यगर्भो योग्यस्य वक्ता नान्य: पुरातन:।।[11]

अर्थात सांख्य के वक्ता परम ऋषि कपिल और योग के वक्ता हिरण्यगर्भ है। इन विषयों में इनसे प्राचीन व पुरातन वक्ता कोई नहीं है। इसी तरह वृहयोगियाज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है हिरण्यगर्भो योग्यस्य वक्ता नान्य: पुरातन:' अर्थात् हिरण्यगर्भ ही योग या ध्यान (meditation) के आदि प्रवक्ता है. अन्य कोई नहीं।

श्रीमद्भागवद् में कहा गया है-

"इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद यत"[12] अर्थात् हे योगेश्वर वैदिक-योग का आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ परमात्मा ही है।'

"अष्टचक्रा नव द्वारा देशना पुरयोध्या"[13] अर्थात् शरीर में स्थित चक्र, प्राण आदि विषय पर अथर्ववेद में प्रकाश डाला गया है। इसमें मानव शरीर को आठ चक्र एवं नव द्वारों वाली देवताओं की अयोध्यापुरी कहा गया है। "यदा प चावतिष्ठन्ते जानानि मनसा सह, बुद्धिश्चन विचेष्टति तामाहु: परमा गतिम्। ता योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्, अप्रमतस्तदा भवति योगो ही प्रभवाप्ययौ ।[14]

अर्थात् जब पाँचों इन्द्रियों विषय से हटकर मन के साथ स्थिर हो जाती है एवं बुद्धि भी सभी प्रकार की चिंताओं से निवृत हो जाती है, उसी परम गति की स्थिति को योग (meditation) कहते हैं।

इसी प्रकार जाबालदर्शनोपनिषद् में धारणा (meditation) के बारे में कहा गया है "सर्वकारणंव्यक्तं निरुप्यचेतनम्, साक्षादात्मनि सम्पूर्ण धारयेत्प्राणनेन तु।[15] अर्थात ज्ञान प्रसाद के द्वारा विशुद्ध सत्व होकर योग या ध्यान (meditation) करता हुआ आत्मा को देखो।

उपनिषदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें किसी न किसी रूप में योग या ध्यान (meditation) का समर्थन किया गया है और समाधि को इसका अंतिम अंग माना गया है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र योग का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। 'अथयोगानुशासनम।'[16] इसका प्रमाण है। इस 2 काल के प्राय: सभी मनीषियों ने मुक्ति के सर्वोत्तम साधन के रूप में योग (meditation) की अंतरंग साधना को स्वीकार किया है। पतंजलि ने उच्च कोटि के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य, मध्यम कोटि के लिए क्रियायोग तथा अधम कोटि के साधकों के लिए अष्टांग योग की चर्चा की है। चौथी शताब्दी से दसवीं शताब्दी के काल में योगसूत्र पर भी कई टीकाएं या भाष्य लिखी गई। इन टीकाओं या भाष्यों में योग के सिद्धांतो एवं इनकी मूलभूत मान्यताओं की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। 10 वीं शताब्दी

से उन्नीसवीं शताब्दी के काल में नाथ संप्रदाय का प्रसार हुआ। इस काल मैं हठयोग प्रदीपिका, घेरंड संहिता जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई, जिनका मूल केंद्रबिंदु योग है। आधुनिक काल में सर्वप्रथम महर्षि दयानंद सरस्वती ने योग की भांत धारणाओं को खंडन करते हुए. अपने ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' तथा 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के माध्यम से स्पष्ट दिशा- निर्देश दिये। इसके बाद स्वामी लक्ष्मणानंद ने 'ध्यानयोग प्रकाश की रचना कर उनकी शिक्षा को प्रस्तुत किया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने योग की परंपरा को आगे बढ़ाया। स्वामी शिवानंद ने के दिव्य जीवन संघ तथा स्वामी कुवलयानंद जी ने कैवल्यधाम नामक संस्थाओं का निर्माण कर अनेक शिष्यों को योग प्रशिक्षण प्रदान किया एवं देश-विदेशों में वैज्ञानिक कसौटियों पर अनुसंधान करते हुए इसे एक नई दिशा दी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1.2.12
2. बृहदारण्यकोपनिषद 14.7.
3. हरि शंकर प्रसाद दर्शन धर्म एवं आवरण एक वैश्विक जीवन दृष्टि एवं जीवन शैली पू.स. 28. इतिहास दर्पण, अंक 24(2), वर्ष 2019, अखिल भारतीय इतिहास सकलन योजना, नई दिल्ली,
4. बृदारण्यकोपनिषद (1.4.14)
5. ऋग्वेद (1.164.46)
6. वायु पुराण 23/30
7. महाभारत, वनपर्व, 313.117
8. कणाद वैशेषिकसूत्र 1.1.2
9. ऋगवेद 8.6.28
10. यजुर्वेद, 11/14
11. महाभारत, शांतिपर्व, 12.349.65
12. श्रीमद्भागवद 5.19.13
13. अथर्ववेद, 10.2.31
14. कठोपनिषद् 2.3 10-11
15. जाबालदर्शनोपनिषद 8/9
16. पतंजलि योगसूत्रम, 1/1

बालश्रमिकों की समस्याएँ एवं उनके सर्वांगीण विकास हेतु शैक्षिकप्रयास

डॉ० प्रतिष्ठा

शोधछात्रा पी.डी.एफ, समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर.

सम्प्रत्ययात्मक पृष्ठभूमि:

किसी भी राष्ट्र की उन्नति का आंकलन उस राष्ट्र में रहने वाले बालकों में अन्तर्निहित होता है। निश्चय ही बाल-समाज राष्ट्र के भविष्य को निर्धारित करता है। इतना ही नहीं बाल-सम्पदा भविष्य में समाज व राष्ट्र की उन चुनौतियों. कानिराकरण करने में सहयोग देती है जिनका सामना करने के लिए राष्ट्र या समाज समय-समय पर बाध्य होते हैं। अत: बाल-समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया का कोई भी राष्ट्र या समाज नजरन्दाज नहीं कर सकता है।

एक गणतंत्र देश के स्वरूप को निखारने के लिए आवश्यक है कि देश काविकास प्रत्येक क्षेत्र में किया जाये। स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व एवं मानव व्यक्तित्वकी सर्वोच्चता के आदर्शों पर आधारित प्रजातंत्र का लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति का उत्थानकरना है। प्रजातंत्र का आदर्श 'सर्वे भवन्तु सुखिन:" के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कोसमान अवसर, सुविधाएँ व परिस्थितियाँ देना है, जिससे व्यक्ति प्रेम, सेवा, भ्रातृत्व वएकता की भावना के साथ विवेकात्मक निर्णय लेने वाला, जागरूक, क्रियाशील एवं समाजोपयोगी व्यक्ति बन सके। ऐसे समाज का निर्माण हो जिसमें प्रत्येक जाति काउत्थान हो, प्रत्येक वर्ग का सम्मान हो, प्रत्येक धर्म को समान अवसर मिले तथा प्रत्येक व्यक्ति को समान सुविधाएँ एवं वातावरण मिले। व्यक्ति के लिए वातावरण एक प्रेरक तत्व है। यह उसकी उनन्नति अथवा अधोगति की दिशा निर्धारित करता है।

इस संदर्भ में एक प्रमुख तथ्य यह भी है कि कुछ विशेष व्यवसायों जिनमें कौशल की आवश्यकता होती है, बालश्रम को. अच्छा माना जाता है। संगीतज्ञ एवं नृत्यकार 5-6 वर्ष की उम्र से ही बालक को यह कौशल सिखाना चाहते हैं। चित्रकार भी ऐसी ही धारणा रखते हैं। पैतृक व्यवसायों एवं शिल्पों में बालक का कम उम्र में नियोजन इसी विचार का परिणाम है। बर्तन उद्योग, बढ़ईगिरी, कृषक, लौहार आदिव्यवसायों में बालश्रम प्रथा आज भी प्रचलन में हैं।

बालश्रम का सम्प्रत्यय: बहुधा 'बालश्रम' शब्द किसी काम में ''नियोजित बालक' या 'कार्यरत बालक' के लिए प्रयुक्त होता है। व्यापक अर्थ में इसका अभिप्राय बालक द्वारा आर्थिक उपलब्धि के लिए किसी काम में संलग्न होना है। इसे कुछ घृणित और शोषित संदर्भ में माना जाता है।

बालश्रम का बालकों पर प्रभाव:

स्वास्थ्य पर प्रभाव:

अ तपेदिक एवं श्वसन रोग।

ब नाड़ी रोग।

स छडियों की कमजोरी व उनका दोषपूर्ण विकास।

द नेत्र रोग।

य वृद्धि अवरोध।

र जोड़ों में टेढ़ापन एवं गठिया।

ल आलस्य, कुपोषण तथा विभिन्न ग्रंथियों की त्रुटिपूर्ण क्रिया प्रणाली।

आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव:

अ बालश्रमिक प्रौढ़ों से स्पर्धा करता है जिससे प्रौढ़ों को अपने श्रम का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

ब सामाजिक संबंधों में विकृति एवं टूटन का विकास। आर्थिक सक्षमता जल्दी यौन जीवन को प्रेरित करती है, जिससे अनेक शारीरिक रोगों, नशे की वृत्ति तथा जल्दी संतानोत्पत्ति की सम्भावना बढ़ जाती है।

स बालश्रम शिक्षा के सभी मार्गों को अवरुद्ध कर देता है, जिससे अग्रगामी दृष्टि, सूझ एवं सर्जनशीलता में कमी आ जाती है।

द अल्पायु के कारण दुर्घटनाओं की संभावना अधिक रहती है।

इस प्रकार बालश्रम एक ऐसी समस्या है जिस पर गम्भीरता से विचार कियाजाना अपेक्षित है। सरकार के अनेकानेक प्रयासों के बावजूद बालश्रम की समस्या तेजी से पनप रही है। सरकार के बाल-स्वास्थ्य, शिक्षा, कल्याण एवं विकास केकार्यक्रम पूर्णत: सफल नहीं हुये हैं, जिसके कतिपय निम्नलिखित कारण हैं-

1) शासन-प्रशासन की इच्छा शक्ति में कमी।

2) सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों के मध्य तालमेल का अभाव।

3) आमजनता में जागरूकता की कमी।

4) व्यावहारिक व प्रभावी वैकल्पिक शिक्षा का अभाव।

5) शिक्षा की बुनियादी सुविधाओं का अभाव।

6) लिंगभेद की भावना।

बाल उत्पीड़न के दुष्प्रभाव:

बाल उत्पीड़न के अनेक दुष्प्रभाव परिलक्षित होते हैं। आत्म-अवमूल्यन, पराधीनता या निर्भरता, अलगाव, अविश्वास, अंत वैयक्तिक समस्याएँ, विचलित व्यवहार, मानसिक आघात आदि। उत्पीड़ित बालक स्वयं के विषय में नकारात्मक विचार विकसित कर लेता है। पराश्रयता के कारण उसके पास अपने अभिभावकों, संरक्षकों तथा रोजगार प्रदान करने वाले के उत्पीड़न को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं होता।

बालश्रमिक बालकों के लिए शिक्षा की आवश्यकता:

आधुनिक विश्व के संदर्भ में किसी भी देश की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रगति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। आज का सार्वभौमिक निष्कर्ष यह हैकि शिक्षा के बिना कोई उन्नति सम्भव नहीं है। इस बुनियादी आवश्यकता की पूर्तिके बिना किसी के जीवन में कोई सुधार नहीं हो सकता है।

शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य अवसरों की समानता प्रदान करना है। अवसरों की समानता से तात्पर्य जाति, लिंग, समुदाय और अमीरी-गरीबी से परे सभी को उनकी योग्यता एवं रूचि के अनुरूप शिक्षा के समान अवसर देने से है। विश्व स्तर पर 1990 में शिक्षा सबके लिए विषय पर एक कान्फ्रेन्स आयोजित की गई जिसमें निर्णय लिया गया कि यदि विकास का लाभ सभी व्यक्तियों को दिलाता है तो सभी को साक्षर करना आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जबकि सभी बालकों को प्रारम्भिक अवस्था से ही अच्छी शिक्षा प्रदान की जाए। प्रारम्भिक शिक्षा ही वह आधार है, जिसकी नींव पर शिक्षा रूपी भव्यव सुदृढ़ भवन का निर्माण सुगमता से किया जा सकता है। अत: यह आवश्यक है कि 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों के लिए प्रारम्भिक विद्यालयों में औपचारिक शिक्षा की सुविधाएँ विकसित की जाए और यह भी महत्वपूर्ण है कि विद्यालय छोड़

गये बच्चों के लिए तथा जो बच्चे स्कूल गये ही नहीं (इस आयु के) उनके लिए गैर-औपचारिक शिक्षा की योजनाएँ बनायी जाएँ। निर्धन छात्रों को मध्याक्ष का भोजन, नि: शुल्कपाठय-सामग्री व गणवेश जैसे प्रोत्साहन प्रदान दिए जाने चाहिए। इसके लिए उपयोगी पाठ्यक्रम, कक्षाओं के लचीले कार्यक्रम एवं उत्तम किस्म की शिक्षा की व्यवस्था करना भी आवश्यक है। राष्ट्रीय बाल नीति (1994) के अनुसार "राज्य यह मानता है कि प्रत्येक बच्चे को जीवन का सहज अधिकार है, राज्य को जहाँ तक संभव हो सके, बच्चे की उत्तरजीविता एवं विकास सुनिश्चित करना चाहिए।

इन कामकाजी बच्चों से सम्बन्धित शैक्षिक कार्यक्रम चलाने में आम समस्यायह है कि उन गरीब बच्चों को स्कूल में कैसे रखा जाए क्योंकि इनकी आमदनी उनके परिवार के लिए जीवन मरण का प्रश्न है।

शोधकर्त्री को ज्ञात हुआ है कि सन् 1999 में श्रम मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा राजस्थान के बालश्रमिक बाहुल्य 44 जिलों में 20-20 विशेष बालश्रमिक विद्यालय खोले जाने की स्वीकृत हुयी थी। राजस्थान के टोंक जिले में बालश्रमिकों के पुनर्वास एवं शिक्षा हेतु वर्ष 1999 में 18 विशेष बालश्रमिक विद्यालय खोले गये। तीन वर्ष बादमा सन् 2002 में राष्ट्रीय स्तर पर चल रही इन बालश्रमिक परियोजनाओं की समीक्षा की गयी, जिनमें पांच जिलों की परियोजनाओं को विशेष महत्व मान्य किया गया। इनमे से एक राजस्थान के टोंक जिले की परियोजना थी। शोधकर्त्री शोध अध्ययन द्वारा परियोजना की शैक्षिक उपादेयता की जाँच करना चाहती है। अत: राजस्थान राज्य के बालश्रमिक विद्यालयों के बालकों की समस्याओं तथा उनके विकास हेतु किए जा रहे शैक्षिक प्रयासों का अध्ययन शोधकर्त्री का शोध अध्ययन विषय बना है।

समस्या अध्ययन का औचित्य:

भारत में भी संविधान के 46 वें अनुच्छेद में दिशानिर्देश करते हुए लिखा गया है कि राज्य विशिष्ट रूप से कमजोर वर्ग के शैक्षिक व आर्थिक लाभ को ध्यान में रखेगा तथा उन्हें सभी प्रकार का सामाजिक लाभ दिलाएगा एवं सभी प्रकार के शोषणों सेउनकी रक्षा करेगा। संविधान के इस अनुच्छेद के अनुसार कमजोर व शोषित वर्ग मे बालश्रमिक भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अत: संविधान के द्वारा विविध राजनैतिक दलों, स्वैच्छिक संगठनों, ट्रेड यूनियनों एवं रोजगार संगठनों के माध्यम सेबालश्रम उन्मूलन की व्यवस्था की गई हैं।

शोधकर्त्री ने भी यह जानना चाहा है कि प्रस्तुत शोध विषय या इस विषय की परिधि के क्षेत्रों से सम्बन्धित क्या कोई शोधकार्य पहले हुए हैं? शोधकर्त्री को ज्ञात हुआ कि भारत में बालश्रम के विषय यद्यपि शोध की दृष्टि से कोई नवीन विषय नहीं है तथापि जितने भी शोध अध्ययन अभी तक इस विषय पर किए गये हैं वे एक पक्षीय ही रहे हैं।

समाज शास्त्रीय दृष्टि से बालश्रम पर अनेक शोध अध्ययन सम्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार शिक्षा शास्त्र से सम्बन्धित शोध अध्ययनों की समीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि भारत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, कच्ची बस्ती, विकलांग, मंददबुद्धि, खानाबदोस आदि बालकों की समस्याओं और उनकी शिक्षा व्यवस्था के क्रम में अनेक अध्ययन सम्पन्न हुए हैं, किन्तु बालश्रमिकों की विविध समस्याओं एवं उनके विकास पर शोधकर्त्री को बहुत कम शोध अध्ययन मिले हैं।

तब यह अध्ययन करना समीचीन प्रतीत होता है कि बालश्रमिक जो समाज के अभिन्न अंग है उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से कैसे जोड़ा जाए? उनकी प्रमुख समस्याएँ क्या हैं? उनकी शिक्षा की सुव्यवस्था कैसे हो? जो व्यवस्थाएँ हैं वे कितनी सार्थक हैं? इन व्यवस्थाओं द्वारा उनका सर्वांगीण विकास कैसे हो सकता है? जैसेअनेक प्रश्न शोधकर्त्री के मन में उत्पन्न हुए जिनसे प्रस्तुत शोध अध्ययन को दिशामिली। शोधकर्त्री अपने शोध अध्ययन से जिन प्रश्नों का उत्तर चाहती है, वे निम्नप्रकार हैं-

बालश्रमिकों की क्या-क्या समस्याएँ हैं?

1) बालश्रमिकों के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा किस प्रकार दी जाती है?
2) क्या बालश्रमिक विद्यालयों से प्राप्त सुविधाओं का विद्यार्थी उपयोग करपाते हैं?
3) क्या बालकों (बाल श्रमिकों) की शिक्षा में समुचित भागीदारी है?
4) बालश्रमिक विद्यालय बालकों के सर्वांगीण विकास में कहाँ तक सक्षम हैं?

5) क्या इन बालकों को पढ़ाई (सैद्धान्तिक ज्ञान) के साथ कुछ व्यावसायिक कौशल भी सिखाये जाते हैं जो भविष्य में उनकी आमदनी का माध्यमबन सकें।

6) बालश्रमिक परियोजनाओं के प्रयत्न कहाँ तक सार्थक है?

7) स्थान विशेष पर बालश्रमिक विद्यालयों की असफलता के क्या कारण है?

8) इस प्रकार का शोध कार्य न केवल अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति में व्यावहारिक समझ विकसित करेगा, अपितु बालश्रमिकों की शिक्षा के मार्ग की बाधाओं को समझ कर उन्हें दूर करने की व्यावहारिक दृष्टि भी विकसित करेगा साथ ही इससे बालश्रम जैसी सामाजिक समस्या को हल करने के दिशा-निर्देश मिलस केंगे तथा शिक्षक एवं अभिभावक इन बालकों के लिए अधिक प्रभावी तरीके से सहायता कर सकेंगे।

समस्या कथन:

"बालश्रमिकों की समस्याएँ एवं उनके सर्वांगीण विकास हेतु शैक्षिकप्रयास।"

अध्ययन उद्देश्य:

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य का निर्धारण किया गया है-

बालश्रमिक परियोजनाओं के द्वारा बालश्रमिकों हेतु किए जा रहे शैक्षिक प्रयासों का निम्न संदर्भ में अध्ययन करना-

1. व्यवस्थाएँ-

- मानवीय व्यवस्थाएँ।
- भौतिक व्यवस्थाएँ।
- अनुदेषनात्मक व्यवस्थाएँ।

2. सम्प्राप्तियाँ-

- नामांकन एवं ठहराव।
- बालश्रमिक विद्यालयों की प्रासंगिकता।
- बालश्रमिक विद्यालयों को स्थायित्व देने हेतु आगामी प्रयास।

अध्ययन की सम्प्रत्ययात्मक (कॉन्सेप्चुअल) परिकल्पनाएँ-

. बालश्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु किए जा रहे शैक्षिक प्रयास सार्थक हैं।

संक्रियात्मक (ऑपरेशनल) परिकल्पनाएँ-

विशेष बालश्रमिक विद्यालय बालकों के शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, शैक्षिक विकास एवं व्यावसायिक विकास में सहायक हैं।

अनुसंधान विधि- सर्वेक्षणात्मक विधि।

जनसंख्या- राजस्थान के सभी जिलों के बालश्रमिक विद्यालय एवं उनमें अध्ययन रतविद्याथी

न्यादर्श- सोद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि द्वारा राजस्थान के तीन जिलों का चयन किया जायेगा, जिनमें राजस्थान सरकार के बालश्रमिक विद्यालय संचालित हैं।

अलवर, बाँसवाड़ा और कोटा।

शोध उपकरण-

- स्वनिर्मित प्रश्नावली
- साक्षात्कार

प्रदत्त विश्लेषण एवं व्याख्या

बालश्रमिक विद्यार्थियों का शारीरिक विकास

प्राक्कल्पना सं.1: विशेष बालश्रमिक विद्यालय बालकों के शारीरिक विकास में सहायक है।

इस प्राक्कल्पना के सम्बन्ध में प्रश्नावली, अवलोकन एवं प्राप्त विद्यालयी अभिलेख इस बात की पुष्टि करते है कि इन विद्यालयों में अध्ययनरत बालकों के शारीरिक विकास पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

इन विद्यालयों में शारीरिक विकास हेतु निम्न कार्य मुख्य रूप से करवाये जाते हैं:-

(1) प्रतिदिन जल्दी उठने को दिनचर्या का अंग बनाने के लिए शिक्षकों द्वारा जानकारी देना तथा समय-समय पर अवलोकन करना। अभिभावकों को विद्यालय में बुलवाकर बालकों को जल्दी जगने के लिए निर्देश व सलाह दी जाती है।

(2) महीने में एक बार सरकारी डॉक्टर से विद्यालय में अध्ययन रत बालकों की स्वास्थ्य जाँच करवाना तथा आवश्यकता होने पर दवाई दिलवाना।

(3) प्रतिदिन प्रार्थना के बाद एक शिक्षक द्वारा शारीरिक सफाई देखना यथा-गणवेश, नाखून, बाल, नहा कर आया है या नहीं।

(4) सप्ताह के प्रत्येक दिन के हिसाब से हर दिन अलग-अलग पोषहार की व्यवस्था करना।

(5) प्रार्थना के बाद व्यायाम करवाना।

इस प्रकार ये सभी क्रियाएँ ग्रामीण व शहरी सभी विशेष बालश्रमिक विद्यालयों में करवायी जाती है जो कि प्रत्यक्ष रूप से बालकों के शारीरिक विकास में सहायक है।

इस प्रकार विशेष बालश्रमिक विद्यालयों द्वारा किये गये कार्य बालकों के शारीरिक विकास में स्वत: सहायक है अत: पूर्व निर्मित प्राक्कल्पना स्वीकृत की जाती है।

बालश्रमिक विद्यार्थियों का शैक्षिक विकास

प्राक्कल्पना सं.2: विशेष बालश्रमिक विद्यालय अध्ययनरत बालकों के शैक्षिक विकास में सहायक हैं।

इस प्राक्कल्पना की जाँच साक्षात्कार, अवलोकन एवं प्राप्त विद्यालयी अभिलेखों से निष्कर्षों की वर्णनात्मक व्याख्या की गई है।

इस प्राक्कल्पना के सम्बन्ध में प्रश्नावली, अवलोकन एवं प्राप्त विद्यालयी अभिलेख इस बात की पुष्टि करते हैं कि इन विद्यालयों में अध्ययनरत बालकों के शैक्षिक विकास पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

इन विद्यालयों में शैक्षिक विकास हेतु निम्न कार्य करवाये जाते हैं:-

(1) शिक्षक द्वारा पाठ्यवस्तु प्रस्तुतीकरण से पूर्व पाठ्यवस्तु विश्लेषण, सरल से कठिन के क्रम में विभाजन, उद्देश्य निर्धारण एवं विद्यार्थियों के पूर्वज्ञान की जाँच।

(2) पूर्व नियोजित पाठ्यक्रम को उदाहरण कहानी, द्वारा स्पष्ट करते हुए सहायक सामग्री द्वारा तथा मध्य में प्रश्न पूछ कर रूचिकर तरीके से पाठ प्रस्तुतीकरण किया जाता है।

(3) विद्यार्थियों को शिक्षा के प्रति अधिक उन्मुख करने के लिए शिक्षा प्राप्त करने के परिणामों से अवगत करवाया जाता है।

(4) शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों के अधिगम हेतु अतिरिक्त समय दिया जाता है।

(5) अंतत: मूल्यांकन कार्य किया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी क्रियाएँ सभी विशेष बालश्रमिक विद्यालयों में समान रूप से करवायी की जाती है जो कि प्रत्यक्ष रूप से बालश्रमिक विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास में सक्षम है। अत: पूर्व निर्मित प्राक्कल्पना स्वीकृत होती है।

बालश्रमिक विद्यार्थियों का सामाजिक विकास

प्राक्कल्पना सं.3: विशेष बालश्रमिक विद्यालय बालकों के सामाजिक विकास में सहायक है।

विशेष बालश्रमिक विद्यालय में करवायी गयी शैक्षिक व अशैक्षिक क्रियाएँ उनके सामाजिक विकास में सहायक है।

शोधकर्त्री ने स्वयं विविध उत्सवों पर जैसे 15 अगस्त, 2 अक्टूबर, 14 नम्बर पर जाकर विद्यालय में निरीक्षण किया तो पाया कि इन विद्यालयों में उत्सव व पर्व धूमधाम से मनाये जाते है जिससे उन पर्व/उत्सव तथा महापुरुषों के जीवन की बातों से विद्यार्थी परिचित हो सके तथा उन्हें अपने व्यवहार का अंग बनाने का प्रयास करें। इसके लिए शोधकर्त्री द्वारा कुछ महापुरुषों से संबंधित प्रश्न पूछने पर विद्यार्थियों ने उनके सही उत्तर दिये

किन्तु यह प्रयास शोधकर्त्री द्वारा शहरी क्षेत्र में अधिक देखे गए। ग्रामीण क्षेत्र के 4 विद्यालयों में से 1 विद्यालय ही इन कार्यो में अधिक क्रियाशील देखा गया। यदि सभी विषेष बालश्रमिक विद्यालयों में सामाजिकता का विकास करने वाली शैक्षिक व अशैक्षिक क्रियाओं को अधिक करवाया जाए तो निसन्देह यह एक अच्छा प्रयास होगा।

अशैक्षिक क्रियाओं के साथ सामाजिकता के विकास के लिए शैक्षिक क्रियाओं का आयोजन भी किया जाता है जैसे विविध महापुरुषों की जीवनी, उत्सवों, पर्वों को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर विद्यार्थियों को समझाया जाता है तथा विविध उत्सवों पर बाहर से किसी विशेष मेहमान को जो उस उत्सव की विशेष जानकारी विद्यार्थियों को दे सकें बुलाकर भाषण करवाया जाता है। इससे विद्यार्थियों में उस पर्व/उत्सव/महापुरुष के जीवन से सम्बन्धित जानकारी का विस्तार होता है।

बालश्रमिक विद्यार्थियों का व्यावसायिक विकासग

प्राक्कल्पना सं.4: विशेष बालश्रमिक विद्यालय बालकों के व्यावसायिक विकास में सहायक है।

विशेष बालश्रमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास के साथ व्यावसायिक विकास पर भी जोर दिया जाता है। प्रतिदिन व्यावसायिक शिक्षा हेतु 20: समय इन विद्यालयों में निश्चित किया गया।

सारणी संख्या 4.20: विशेष बालश्रमिक विद्यालयों में सिखाये जाने वाले व्यवसायों

सम्बन्धी सारणी

व्यवसाय का नाम	ग्रामीण क्षेत्र में विद्यालय	शहरी क्षेत्र विद्यालय
झाड़ू बनाना	√	
√√आरी तारी का कार्य	√	√
मोमबत्ती बनाना	√	√
चाक बनाना	√	√
डिब्बे बनाना	√	√
शो पीस बनाना	√	√
पंचर सही करना	√	√
कागज की थैली बनाना	√	√
वैसलीन बनाना	√	√

उल्लिखित सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि शहरी क्षेत्र में अधिक व्यवसायों के बारे में जानकारी दी जाती है। समय- समय पर विविध व्यवसायों के विषेषज्ञों को बुलाकर व्यवसाय क्या है? भविष्य में व्यवसाय की समस्याएँ क्या है? योग्यता क्या होनी चाहिए, आदि के बारे में ज्ञान कराया जाता है।

व्यवसायिक शिक्षा से सम्बन्धित कच्चा माल विद्यालय का गैर संगठन उपलब्ध करवाता है तथा व्यवसायिक शिक्षा शिक्षक द्वारा दी जाती है।

बालश्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु किए जा रहे शैक्षिक प्रयास सार्थक हैं।

परिसीमाएँ:

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन राजस्थान राज्य विशेष बालश्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लेकर सम्पन्न किया गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में इन बालकों के सर्वांगीण विकास के अन्तर्गत केवल शारीरिक मानसिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक विकास को लिया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- अग्निहोत्री, रवीन्द्र (2007): ''आधुनिक भारतीय शिक्षा'' समस्या और समाधान, जयपुर, राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी अस्थाना, विपिन (1994): ''मनोविज्ञान और शिक्षा मे
- मापन और मूल्यांकन'', आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
- भार्गव, उषा (1993): ''किशोर मनोविज्ञान'', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
- भटनागर, ए.बी. भटनागर, मीनाक्षी (2004): ''शिक्षण व अधिगम का मनोविज्ञान'', मेरठ, आर. लाल बुक डिपो
- भटनागर, आर.पी. (2003): ''शिक्षा अनुसंधान'', मेरठ, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस
- Giri v.v. Child Labor, An over view, National labour institude,Child labour legel studies cell, Noida
- jay pal , B. L. 1987 Child labour and exploitation in the corporate,A mirjapur case study
- jorg vig 1960 child labour and child work, aashish publication, New Delhi

महामना पं. मदन मोहन मालवीय की शैक्षिक दृष्टि

ऊषा शर्मा

शोध छात्रा, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान विश्वविद्यालय, लाडनूँ (राज.)

प्रो० बी० एल० जैन

विभागाध्यक्ष शिक्षाशास्त्र, जैन विश्वभारती संस्थान, विश्वविद्यालय, लाडनूँ (राज.)

शोध पत्र सारांश:

समाज के निर्माण एवं विकास के लिए शिक्षा सर्वोत्तम साधन है। शिक्षा व्यक्ति को केवल ज्ञान ही नहीं देती है, बल्कि उसके उज्ज्वल भविष्य निर्माण में योगदान करती है। भारतीय शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में प्राचीन साहित्य व संस्कृति की भूमिका रही है। आंग्लकाल में शिक्षा में आई गिरावट को दूर करने में उस समय के महापुरुषों ने महत्त्वपूर्ण दिशानिर्देश किए। इस शृंखला में महामना मदन मोहन मालवीय का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर कर शिक्षा के स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय, अनुशासन, स्त्री शिक्षा, रोजगारपकर शिक्षा तथा मूल्य शिक्षा पर अपने महत्त्वपूर्ण विचार रखे। उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी अपने विचारों को मूर्त रूप देने के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की।

प्रमुख शब्दावली- संस्कृति, शिक्षा स्वरूप, रोजगारपरक शिक्षा, मूल्य शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, वसुधैव कुटुम्बकम्, आत्म साक्षात्कार, आत्म शुद्धि तथा बौद्धिक।

प्रस्तावना:

'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी सांस्कृतिक भावना वाला भारत देश सदैव से शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। इसीलिए इसे विश्वगुरु कहा गया। भारतीय संस्कृति, विशाल साहित्य और महापुरुषों ने भारतीय शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। वर्तमान काल में महात्मा गांधी, टैगोर, विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, सर सैय्यद अहमद खाँ तथा डॉ. जाकिर हुसैन ने भारतीय शिक्षा विकास में महान योगदान किया है। इनकी शैक्षिक विचारधारा के आधार पर शिक्षा संस्थानों की भी स्थापना हुई है। इन महापुरुषों में महामना पं. मदन मोहन मालवीय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी शिक्षा दृष्टि को संस्कृत के इस श्लोक से स्पष्ट किया है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदाभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

विद्या और अविद्या को जो मनुष्य साथ जान लेता है वह अविद्या से मृत्यु को प्राप्त करके विद्या के द्वारा अमरत्व को प्राप्त करता है।

दृष्टिकोण

मालवीय जी की शिक्षा दृष्टि सुस्पष्ट थी। वे शिक्षा द्वारा भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–

'भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशालता और उसकी महत्ता तो सम्पूर्ण मानवों के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करने अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पवित्र भावना में निहित है।'

इनकी शैक्षिक विचारधारा का मूर्त रूप इनके द्वारा स्थापित 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' में देखा जा सकता है।

जन्म एवं परिवार:

'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के संस्थापक मालवीय जी का जन्म इलाहाबाद (वर्तमान में प्रयागराज) में 25 दिसम्बर, 1861 को हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित ब्रजनाथ व्यास तथा माता का नाम मूना देवी था। मूलरूप में यह परिवार मालवा से था इसलिए इनके परिवार की मल्लई नाम से प्रसिद्धि थी, जो संशोधित होकर मालवीय नाम से जाना गया।

शिक्षा का स्वरूप:

भारतीय दृष्टिकोण से शिक्षा का वास्तविक अर्थ आत्म साक्षात्कार, आत्मशुद्धि, आत्म अन्वेषण, बन्धनों से मुक्ति, सद्गुणों का विकास तथा अच्छे मनुष्य का निर्माण करना है। मालवीय जी की भी यही शिक्षा दृष्टि है। इन्होंने शिक्षा के उद्बोधन हेतु निम्नलिखित उपनिषद् मंत्र को प्रार्थना मंत्र माना–

'असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मामृतं गमय।'

अर्थात् मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

मालवीय जी ने तात्कालिक शिक्षा पद्धति की आलोचना करते हुए कहा है कि "Our education has not freed us from the intellectual bandage. It stimulates the mind without satisfying".

शिक्षा के उद्देश्य:

मालवीय जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है- बालक के व्यक्तित्व का बहुमुखी अर्थात् शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का समन्वित उन्नयन। मालवीय जी के शैक्षिक उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं–

1. शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान का विकास होना चाहिए, जिससे व्यक्ति विद्वान बन सके।
2. शिक्षा वह है जो व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाये।
3. शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का पुरातन व नवीन, भारतीय तथा पाश्चात्य विचारों के अनुसार व्यक्तित्व निर्माण करना है।
4. शिक्षा का उद्देश्य आत्म साक्षात्कार करना है, यह पुस्तकीय ज्ञान से सम्भव नहीं है। मालवीय जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "पुस्तकों से शिक्षा ग्रहण की जा सकती है, परन्तु वह मानव की प्रकृति का अंग नहीं बनती हैं।"
5. मालवीय जी के अनुसार भारतीय शिक्षा का उद्देश्य भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखना होना चाहिए।
6. शिक्षा का उद्देश्य अन्तर्दृष्टि का विकास करना होना चाहिए, जिससे व्यक्ति सत्य और असत्य, उचित और अनुचित में अन्तर कर सके।

शिक्षा के स्तर:

मालवीय जी ने शिक्षा के विभिन्न स्तर व रूप को निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है–

1. प्राथमिक शिक्षा – इसमें अपने देश में प्रारम्भिक अवस्था में प्रारम्भिक विज्ञान तथा साधारण रोचक शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा - मालवीय जी के अनुसार 14-17 वर्ष या 18 वर्ष तक के विद्यार्थियों के लिए यह शिक्षा देनी चाहिए।
3. उच्च शिक्षा - उच्च शिक्षा के अन्तर्गत इन्होंने शिक्षा के प्राचीन व अर्वाचीन तथा वैज्ञानिक व नवीन अनुसंधान के विषयों को सम्मिलित किया गया है।

शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धः

मालवीय जी ने शिक्षक-शिक्षार्थी को विद्यालय की नींव माना है। उनके अनुसार शिक्षक अपने व्यक्तित्व से शिक्षार्थियों के मस्तिष्क से शिक्षा रूपी गंगा की अविरल धारा प्रवाहित करता है। शिक्षक के लिए उनकी भावना इस प्रकार है-

"गुरूर्ब्रह्मा, गुरूर्विष्णु, गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।"

मालवीय जी के अनुसार शिक्षक वह है, जो हमारी शिक्षा की सफलता की नींव रखता है। उनके शब्दों में - "The type of education which we may give to our youth depends on this fact that what type of teachers we got".

शिक्षार्थीः

महामना के अनुसार शिक्षा वह है जिससे विद्यार्थी का चरित्र विकास हो। शिक्षा से विद्यार्थियों का शारीरिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक व कलापूर्ण विकास सम्भव हो सके। मालवीय जी का विद्यार्थियों का उपदेश था-

"सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देश भक्तयात्मत्यागेन सम्मानर्हः सदाभव।।"

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के योग्य बनो।

पाठ्यक्रमः

मालवीय जी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम एक ऐसा साधन है जो जिससे व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की समस्त वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित् करता है। केवल कला एवं विज्ञान ना हो, बल्कि व्यायाम को भी स्थान दिया जाये। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मालवीय जी ने शिक्षा, विज्ञान, संस्कृत, आयुर्वेद, कृषि, हिन्दी आदि विभागों की स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त इस विश्वविद्यालय में धर्म, दर्शन, गणित, भूगोल, इतिहास, राजनीति शास्त्र, भौतिकी, रसायनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, अर्थशास्त्र, वाणिज्य और टेक्नोलॉजी के शिक्षण की भी व्यवस्था की गयी है।

शिक्षण विधिः

मालवीय जी के अनुसार शिक्षण विधि ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों का व्यक्तित्व निर्माण किया जा सके। अर्थात् शिक्षण विधि में वैज्ञानिक, औद्योगिक और मानविकी पक्षों को रखा जाये। इनके अनुसार विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। विज्ञान शिक्षण हेतु तर्क पद्धति आवश्यक मानी गई है। शिक्षा में निरीक्षण पद्धति भी होनी चाहिये। मालवीय जी के अनुसार शिक्षण में तर्क विधि के साथ-साथ अध्ययन मनन का महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया। मालवीय जी ने शिक्षा में निम्न विधियों पर बल दिया है-

1. स्वाध्याय विधि
2. क्रिया एवं अभ्यास विधि
3. निरीक्षण विधि
4. चिन्तन व मनन विधि
5. प्रयोगात्मक विधि
6. उपदेश एवं भाषण विधि

विद्यालय:

मालवीय जी के अनुसार विद्यालय वह पवित्र स्थान है जहाँ विद्यार्थी-शिक्षक एक साथ रहकर एक-दूसरे के यश एवं कीर्ति का विकास करते हैं। उनके अनुसार विद्यालय वह स्थान है जहाँ पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षा के विविध क्रियाकलाप आयोजित किये जाते हैं। मालवीय जी के शब्दों में -

"मधुर मनोहर अतीव सुन्दर
यह सर्व विद्या की राजधानी"

उनके अनुसार "इमारतें विद्यालय नहीं है।" अर्थात् जहाँ शिक्षक, विद्यार्थी और ज्ञान हो वह विद्यालय है।

मालवीय जी के विद्यालय हेतु विचारों को हम प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के रूप में देख सकते हैं

स्त्री शिक्षा:

मालवीय जी ने लिखा है कि "भारतीय जीवन के पुनरूत्थान के लिए स्त्री-शिक्षा के पवित्र कार्य को उत्साह और साहस के साथ अब आरम्भ कर देना चाहिए।" अर्थात् मालवीय जी का मानना था कि भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों, अंध विश्वासों को स्त्री शिक्षा के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है। उन्होंने स्त्री-शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए निम्न उपाय बताये हैं-

1. महिलाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।
2. भारतीय समाज में स्त्री-शिक्षा के प्रति जागरूकता विकसित की जाए।
3. बालिकाओं के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
4. स्त्रियों की शारीरिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक और सामाजिक समस्याओं पर अत्यधिक ध्यान दिया जाये।

व्यावसायिक शिक्षा:

26 जनवरी, 1920 को हिन्दू विश्वविद्यालय के अपने दीक्षांत भाषण में मालवीय जी ने अपने कुछ भाव व्यक्त करते हुए कहा- "शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को इस योग्य बना दिया जाना चाहिए कि वे किसी न किसी उपाय से जीविकोपार्जन कर सकें।"

अर्थात् व्यावसायिक शिक्षा वह शिक्षा है जो विद्यार्थियों को व्यावसायिक भावना से परिपूर्ण और उत्तरदायी कार्य करने के लिए तैयार कर सके।

मालवीय जी के शिक्षा संबंधी विचार - एक समग्र दृष्टि में:

मालवीय जी के शैक्षिक विचार प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन के प्राचीन मूल्यों, धर्म एवं "सर्वे भवन्तु सुखिन:" से प्रभावित हैं। इनकी प्राप्ति ही शिक्षा का उद्देश्य और कार्य है। पाठ्यक्रम में समाज की संस्कृति एवं भौतिक और आध्यात्मिक विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए। शिक्षण विधियों में मालवीय जी ने प्राचीन और आधुनिक दोनों प्रकार की शिक्षण विधियों पर बल दिया। मालवीय जी के अनुसार शिक्षक का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि शिक्षार्थी उसके समस्त गुणों को सीख सके।

मालवीय जी के अनुसार विद्यालय को समाज और संस्कृति के संरक्षण एवं विकास का केन्द्र होना चाहिए। इनके अनुसार हिन्दी भाषा सर्वोपरि है। साथ ही पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करने के लिए वे अंग्रेजी भाषा के भी पक्षधर थे। इन्होंने संस्कृति शिक्षा को भी पाठ्यक्रम में रखा जिससे नवीन पीढ़ी को वेदों, उपनिषदों तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों का ज्ञान हो सके। मालवीय जी ने व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल दिया।

उपसंहार:

पं. मदन मोहन मालवीय जी के शैक्षिक विचार वर्तमान शिक्षा के लिए वरदान साबित हो रहे हैं। क्योंकि इनका मानना था कि शिक्षा में नवीन एवं प्राचीन ज्ञान के दोनों स्रोतों को सम्मिलित करना चाहिए। पं. मदन मोहन मालवीय जी ने अपने शैक्षिक विचारों के अन्तर्गत राष्ट्र विकास एवं राष्ट्र निर्माण को सर्वोपरि रखा। मालवीय जी शिक्षा द्वारा संस्कृति विकास तथा उत्तम चरित्र वाले मानव का निर्माण करना चाहते थे। शिक्षा ऐसी हो जो बालक को आत्मनिर्भर बनाये।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

हिन्दी सन्दर्भ –

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण: महामना मालवीय, लेख और भाषण (धार्मिक-1) बनारस, प्रकाशन- काशी हिन्दी विश्वविद्यालय।
2. तिवारी, उमेश दत्त (1988): महामन पं. मदनमोहन मालवीय जी जीवनी, वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
3. पाण्डेय, रामशकल (2008): विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
4. पाण्डेय, रामशकल: शिक्षा का दार्शनिक एवं सामाज शास्त्रीय आधार, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
5. लाल, मुकुट बिहारी (1978): महामना मदन मोहन मालवीय: जीवन और नेतृत्व वाराणसी, मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दी विश्वविद्यालय।
6. लाल एवं तोमर (2008): विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक, मेरठ, आर. आल बुक डिपो।
7. वर्मा, वैद्यनाथ प्रसाद (1972): विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।

English Reference-

1. Singh, Ram Pratap and Shukla, R.P. (2013) : 150 years of Mahamana's : Service to Humanity, Delhi, Bharti Publications.

पत्रिकाएँ–

1. प्रज्ञा (बी.एच.यू. जर्नल), 1976-77, महामना हीरक जयंती अंक।
2. शिविरा पत्रिका: दिसम्बर, 2009, बीकानेर, शि.वि.रा.

Website-

1. https://www.wikipedia.org/

गद्दी जनजाति के लोकगीतों का संचार मूल्य

रविंद्र सिंह

शोधार्थी, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, राजस्थान

सारांश

लोक गीतों में उस समाज की लोक परम्पराओं, मूल्यों एवं संस्कारों, संवेदनाओं और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का एक जबरदस्त सामर्थ्य होता है। इस दृष्टि से लोकगीत भारत में संचार प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली विधा रही है। हिमाचल प्रदेश के सन्दर्भ में यदि लोकगीतों और संचार का अध्ययन किया जाए तो इन दोनों के बीच में एक गहरा अन्तः सम्बन्ध देखने को मिलता है। हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति लोकगीतों के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इसके मूल्यों एवं परम्पराओं को बढ़ाने का कार्य करती रही है। लोकगीतों की विभिन्न सामाजिक आयोजनों के समय में प्रभावशाली झलक देखने को मिलती है। इस शोध पत्र के माध्यम से गद्दी जनजाति के मुख्य लोकगीतों और उनके संचार मूल्यों का अध्ययन किया जाएगा।

शब्द संकेत– लोकगीत, संचार, मूल्य, परम्परा, गद्दी जनजाति, सरलता, सरसता, मधुरता, लयबद्धता, शिक्षा इत्यादि।

प्रस्तावना

हिमाचल प्रदेश में मुख्य रूप से जिला चम्बा और कांगड़ा में रहने वाली गद्दी जनजाति का जीवन भी पहाड़ की तरह ही कठिन और चुनौतीपूर्ण रहा है। इन तमाम चुनौतियों और कठिनाइयों के बावजूद यह साहसिक जनजाति स्व-अस्तित्व के साथ-साथ हिमाचल प्रदेश के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास में बहुमूल्य योगदान देती रही है। गद्दी जनजाति की महानता की व्याख्या करते हुए प्रोफेसर मोहन मैत्रेय लिखते हैं, हिमाचल के दुर्गम पहाड़ों के मध्य निवास करने वाले लोगों का एक समुदाय ऐसा भी है, जो अपनी श्रम जीविता के साथ-साथ घुमक्कड़ी के लिए भी विख्यात है। प्रकृति से एकाकार होने वाले इस मस्तमौला गद्दी समुदाय का मूल मन्त्र है-जीवन है चलने का नाम। भौतिक सुविधाओं के मोहजाल में न फंसकर, ये लोग विपरीत परिस्थितियों में भी जिन्दगी के कारवां को रुकने नहीं देते।[1] वह आगे लिखते हैं कि हिमाचल प्रदेश में गद्दी अधिकतर कुल्लू, कांगड़ा तथा चम्बा जिलों में बसे हैं। चम्बा जिला की भरमौर तहसील को इनका स्थायी निवास भी स्वीकारा जाता है। पाणिनी के अनुसार इस क्षेत्र के लोग 'गब्दिक' थे। भरमौर घाटी के लिए पाणिनी ने 'गब्दिका' शब्द का व्यवहार किया है। गब्दिक का भाव है गद्दी और इस प्रकार 'गब्दिका' गद्दियों की बस्ती हुई। भरमौर की गद्दियों का देश भी कहा जाता है। इसके लिए 'गहेरन' शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[2]

जीवन की कठिनाइयों को सरलता प्रदान करने के लिए गद्दी जनजाति लोकगीत और लोकनृत्य का प्रारम्भिक दौर से ही सहारा लेती रही है। गद्दी जनजाति के विभिन्न सामाजिक एवं पारिवारिक आयोजनों के दौरान लोकनृत्य और लोकगीत का विशेष महत्व रहा है। इस सन्दर्भ में प्रोफेसर मोहन मैत्रेय लिखते हैं कि इन लोगों की सभी देवी-देवताओं के प्रति आस्था है, परन्तु ये भगवान् शिव के अनन्य भक्त हैं। शिव ही इन्हें स्वास्थ्य और समृद्धि का वरदान देते हैं। इनके चोगे के ऊपर कमर पर लम्बा काला ऊनी धागा लिपटा रहता है, जिसे 'शिव सैली' कहते हैं। यह इनकी शिवभक्ति का प्रतीक है। गद्दी संगीत तथा नृत्य में भी रुचि रखते हैं। घर में निवास के समय संगीत-नृत्य का भरपूर आनन्द लेते हैं।[3]

लोकगीतों का संचारीय पक्ष

लोकगीत किसी भी समाज को उसके पूर्वजों द्वारा अनुभवजनित ज्ञान का एक भंडार होते हैं। इन्हीं लोकगीतों के माध्यम से उस समाज की पीढ़ियां हमेशा-हमेशा के लिए अपने मूल के साथ जुड़ पाती हैं। गद्दी जनजाति ने भी परम्परा से प्राप्त हुए इन्हीं लोकगीतों के माध्यम से अपने पूर्वजों की समृद्ध विरासत को संजोए रखने का कार्य किया है। डॉ. बलबीर कुंद्रा ने लिखा है, लोकगीत वस्तुतः लोक की धरोहर है, किसी व्यक्ति की नहीं। उनमें लोक के कल्याण की इच्छा निहित होती है। ये अपने मूल में समूह के साथ जुड़े होते हैं। इनमें शब्द, स्वर, ताल, लय छन्द सभी सामूहिक रूप लिए होते हैं। ये किसी भी समाज व संस्कृति के दर्पण, रक्षक व पोषक होते हैं। लोकगीतों की मूलतः चार कोटियाँ बनाई जा सकती हैं-1. संस्कार सम्बन्धी लोकगीत 2. सामाजिक लोकगीत 3. धार्मिक लोकगीत 4. मनोविनोद के लोकगीत। भारत में यह मान्यता चली आ रही है कि बिना गीत के कोई रीत नहीं होती है। भारत में जन्म से लेकर मृत्यु तक लोकगीतों की परम्परा को देखा जा सकता है। सरलता, सरसता, मधुरता और लयबद्धता लोकगीतों के वे प्राण तत्त्व हैं जिनके कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये शीघ्र कंठस्थ हो जाते हैं। तन्मयता गेयता संक्षिप्तता, भावात्मकता और कोमलता के कारण लोकगीतों ने लोकमानस में अपनी जगह बनाई है।[4]

हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति मुख्य रूप से पहाड़ी ग्रामीण इलाकों में निवास करती है। ग्रामीण संचार व्यवस्था के मूल में परम्परागत संचार माध्यमों की हमेशा से एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी भूमिका को रेखांकित करते हुए अमरेंद्र कुमार आर्य लिखते हैं कि परम्परागत संचार माध्यम वे माध्यम होते हैं जो ग्राम्य समाज की परम्परा से प्राप्त हुए है। यह माध्यम सूचना एवं संदेश के साथ ही मनोरंजन के साधन भी है। ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनता, निरक्षरता बुनियादी सुविधाओं की कमी और विभिन्न आधुनिक जनसंचार के साधनों के पहुँच नहीं होने के कारण वे लोक माध्यम यानी परम्परागत लोक कलाएं- भजन, कीर्तन, रामलीला, रासलीला, नौटंकी, कठपुतली आदि सदियों से हमारी संस्कृति में रचे-बसे हैं। परम्परागत संचार भारत में ग्रामीण संचार व्यवस्था के मूल में है। लोक भावनाओं की यदि सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति संभव है तो वह परम्परागत संचार के विभिन्न माध्यमों द्वारा ही हो सकती है।[5]

प्रत्यक्ष संवाद के बजाय किसी तकनीकी या यान्त्रिक माध्यम यथा अखबार, रेडियो, टीवी, इंटरनेट, सिनेमा के द्वारा समाज के एक विशाल वर्ग से संवाद कायम करना जनसंचार कहलाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से जब से मानव की उत्पत्ति हुई तब से उसने अपनी इच्छाओं, संवेगों-भावनाओं एवं आवश्यकताओं को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु हाव-भावों का प्रयोग किया जो कालान्तर में भाषा के रूप में विकसित हुई। भाषा ने ही मानव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को संभव बनाया। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए बिना किसी संचार के जीवित रहना असंभव है। हम परिवार, समाज एवं समूह में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें ही स्थिति और आवश्यकतानुसार परस्पर संचार करते रहते हैं।[6]

लोकगीतों में मानवीय अनुभूतियों और संवेदना का गहरा स्पर्श रहता है। लोकगीतों की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें एक व्यक्ति नहीं, बल्कि सामूहिक अनुभवों का संचय रहता है। इसी विशेषता के कारण लोकगीत सार्थकता बेहद वृहद होती है। इसे विस्तारपूर्वक समझाते हुए प्रोफेसर मोहन मैत्रेय लिखते हैं, लोकगीत मानवीय अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। लोकगीत से अभिप्राय क्या है?-लोक में प्रचलित गीत, लोक निर्मित गीत या लोक विषयक गीत-निश्चित ही तीसरा अर्थ अभिप्रेत नहीं। लोक गीत का सम्बन्ध मानस की स्वाभाविक मेधा से है। इसी संदर्भ में उल्लेख है- 'लोक गीत वास्तव में वही कहे जा सकते हैं, जिनमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। लोक गीत का लेखक लोकमानस से तादात्म्य स्थापित कर व्यक्तित्वहीन रचना करता है। लोक का व्यक्तित्व उसमें आ ही जाता है। वास्तव में लोक गीत गीतों का वह प्रकार है, जिसको ऐसे किसी व्यक्तित्व से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता, जिसकी मेधा लोक-मानस की स्वभाविक मेधा नहीं।'[7]

आधुनिक जनसंचार माध्यमों के पूर्व हमारे समाज में परम्परागत संचार माध्यम जैसे लोकनृत्यों, लोककथाओं, लोकगीतों का लम्बे समय तक प्रयोग होता रहा है। तेजी से बदलते परिवेश के बावजूद परम्परागत लोक माध्यमों की अपनी एक अलग छवि व पहचान है। आज भी समाज में खासकर गाँवों में जागरूकता के लिए बड़े स्तर पर इसका उपयोग हो रहा है। गाँवों में जन माध्यमों के संपर्क में आने से उससे प्रभावित होने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थिति में जनमाध्यमों की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। जनमाध्यम मनोरंजन करने के साथ ही गाँवों की मूलभूत आवश्यकताओं एवं समस्याओं को उजागर कर ग्रामीण उत्थान और ग्रामवासियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में योगदान दे रहे हैं। परामपरागत लोकमाध्यम परिवर्तन के दौर में हममें कई बदलाव

हुए हमने कई नई वस्तुओं, रीति रिवाजों और संस्कारों को ग्रहण भी किया है।[8] इस प्रकार से लोकगीत अपने अस्तित्व की जड़ों से जुड़े होने के बावजूद हर युग में अपनी प्रासंगिकता को अक्षुण्ण बनाए रखते हैं। इनकी सरलता, सहजता और सरसता के कारण इनका प्रभाव विलक्षण होता है। समाज को शिक्षित और सजग बनाने में लोकगीतों का महत्व समीचीन है।

गद्दी जनजाति में लोकगीत और संचार

हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आधुनिकता के प्रभाव के बावजूद यह हमेशा से ही अपनी जड़ों के साथ जुड़ा रहा है। अपनी पूर्वजों की धरोहर के प्रति इसी समर्पण और प्रतिबद्धता के कारण किसी भी कालखंड में लोकगीतों के प्रति झुकाव और रुझान कम नहीं हुआ है। सम्भवत: इसी कारण इस समाज के भटकाव की सम्भावनाएं बेहद न्यून रही हैं। दूसरा यह कि गद्दी जनजाति ने अपनी लोकगीतों में अपनी संस्कृति और परम्परा को इतना अधिक विस्तार किया है कि जीवन का हर पहलू इसके सांचे में फिट बैठ जाता है। हर्ष के अलावा क्षोभ के क्षणों में भी लोकगीत इस समाज की अनुभूतियों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए सहज रूप से सुलभ रहता है। इस सन्दर्भ में प्रो. मैत्रेय लिखते हैं, भारतीय परम्परा में सोलह संस्कार स्वीकार किए जाते हैं, जिनमें शिशु जन्म तथा विवाह संस्कार प्रमुख हैं। बच्चे के जन्म पर घर में खुशियों का माहोल बन जाना ही है। कृष्ण जन्म के रूप में पुत्र रत्न की खुशी इस प्रकार हुई है–

गीगा साडा खेलदा आया
मोड़ पतासा गुलसट दिंदी
सुन्ने दी है कटोरी
कि गीगा साडा खेलदा आया।
चन्नण कट्टी पलंघूड़ा घड़ांदी
अलपटे दियां डोरां
कि गीगा साडा खेल्दा आया
खेलदा आया[9]

गद्दी जनजाति में उपलब्ध लोकगीतों की एक विशेषता यह भी है कि एक ही गीत में विशाल गाथा को समेटने तक का भी सामर्थ्य होता है। एक लोकगीत किसी लोकगाथा का इतना प्रभावी और सटीक ढंग से व्याख्या कर जाता है कि बहुधा एक उपन्यास के लिए भी उतना प्रभाव पैदा कर पाना सम्भव नहीं हो पाता। एक कूहल को जीवन्त करने के लिए राज परिवार और रानी के बलिदान का वर्णन करते लोकप्रिय लोकगीत का वर्णन करते हुए डॉ. गौतम व्यथित लिखते हैं,

सेजा सुतयो राणे जो सुपणा होया,
सुपणे कुल्ह बला आई नां।
कुल्हा ना नढला जी राणे जो,
कुल्ह सुपणे आई नां।
सदी बुलायो-राणेया कालु ये कोंकै ना।
कालु आ कोंका! मिजो कुल्ह सुपणे आई ना
सदी बुलायां कालुआ कोंका-लखीये लुहारे नां।
हक्कां जे कालु यें, लक्खीये लुहारे नां।
कालुआ कोंका मेरेआ। राणे किआं मैं बुलाया नाँ।
हाजरी होई भाईयो लखिये लुहारे नाँ।

लक्खीअ लुहारा, भाईया, कुल्हा फिरादया ओणा नां।
कहियाँ, कुदालियां लखिया! मिजो बणाई देआं नां।
सौ मण लोहा लक्खिये किट्ठा कराई लिआ नाँ।
अद्धे दियां घढ़ियाँ कहियाँ कुदालियाँ,
अद्धे दे घड़े घण, झबेला नां।
थप्पी चंडी के सौमण लोहा दित्ता राणे संभाली नाँ।
सद्दी बुलानयो ये कुले दे परोहते नाँ।
गुगमल राणे कुल्ह लई ओणी, कुल्हा लग्न जुड़ाणा नाँ।
कुले दे परोहतें लग्न जोड़या, कुल्हाँ इज्जा नी ओणा नां।
कुल्हा तां राणेया बड़ी बल लेणी,
कुल्हा फिरदिया औणा।[10]

लोकगीतों की एक खूबी यह भी रही है कि इसने मुख्यधारा के धर्म ग्रन्थों एवं साहित्य को भी लोक के अनुरूप बनाने के लिए लोकगीतों के रूप में ढाल दिया है। चम्बा क्षेत्र में लोकप्रिय पहाड़ी रामायण इसी का एक सटीक उदाहरण माना जाएगा। हेमराज ठाकुर ने अपनी किताब में लोकगीतों के रूप में पहाड़ी रामायण का चित्रण करते हुए लिखा है, पहाड़ी में गाई जाने वाली पहाड़ी रामायण इन लोकगीतों की शैली में आज भी हिमाचल के विभिन्न जिलों में भिन्न-भिन्न तहजीबों में गेय शैली में विद्यमान है। इन्हीं लोकगीतों में से कुछ लोकगीत इस प्रकार से हैं-

राम कृपा से संबंधित लोक गीत-
राज होंदे हुए भी हुआ वनवास,
ओ रामा मेरे जोगणुआ।
सुणे भी ता लया यारो गंगा रे ओ तारूओ,
रामा लया लखणा जो तारे ओ जी...!
पैरा भी ता लया धोणे दैए ओ मेरे मालको,
इन्हा री धुड़ा के बणदे पात्थरा री नारी ओ जी....!
एओ आसा काठा री बणी री ओ नावा,
एओ बणी गई ता दुई दुई, आसा केथी पाणी ओ जी?
एक ता पहले ही थोकड़ा जे टबर नी ओ पाल्दा,
तूसे देख्या बगाड़दे आसा री कहाणी ओ जी...![11]

निष्कर्ष: संचार प्रक्रिया को तभी सफल माना जाता है, जब यह किसी सन्देश को उसकी मूल भावना के अनुरूप सम्प्रेषित करने में सफल हो। हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति अपने पूर्वजों के अनुभवजनित ज्ञान को संरक्षित करने के साथ-साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बढ़ाने के लिए लोकगीतों का सार्थक उपयोग करती रही है। इसकी सरलता, सहजता और सरसता के कारण संचार की यह विधा अपने महत्व को आधुनिकता के इस दौर में भी अपने मूल रूप अनुसार अक्षुण्ण बनाए हुए है। इसी से संचार प्रक्रिया में लोकगीतों की महत्ता चरितार्थ होती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1 मैत्रेय, प्रो. मोहन, हिमाचलः प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन, केके पब्लिकेशंज, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-63
2 मैत्रेय, प्रो. मोहन, हिमाचलः प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन, केके पब्लिकेशंज, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-64
3 मैत्रेय, प्रो. मोहन, हिमाचलः प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन, केके पब्लिकेशंज, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-64
4 कुंद्रा, डॉ. बलबीर, संचार से जनसंचार और जनसंपर्क तक, केके पब्लिकेशंज, ई-बुक, पृष्ठ-82
5 आर्य, अमरेंद्र कुमार, स्पंदन की कलात्मक अभिव्यक्ति, मीडिया नवचिंतन, अप्रैल-जून, 2016, पृष्ठ-44
6 आर्य, अमरेंद्र कुमार, स्पंदन की कलात्मक अभिव्यक्ति, मीडिया नवचिंतन, अप्रैल-जून, 2016, पृष्ठ-43
7 मैत्रेय, प्रो. मोहन, हिमाचलः प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन, केके पब्लिकेशंज, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-70
8 आर्य, अमरेंद्र कुमार, स्पंदन की कलात्मक अभिव्यक्ति, मीडिया नवचिंतन, अप्रैल-जून, 2016, पृष्ठ-43
9 मैत्रेय, प्रो. मोहन, हिमाचलः प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन, केके पब्लिकेशंज, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-71
10 व्यथित, डॉ. गौतम, हिमाचल की ढोलरू लोक गाथायें, शीला प्रकाशन - राजमंदिर नेरटी, कांगड़ा, प्रथम संस्करण,1980, पृष्ठ-38
11 ठाकुर, हेमराज, दिल की बातें कलम के साथ, बीएफसी पब्लिकेंशंज, लखनऊ, ई-बुक, 2021, पृष्ठ-60

छत्तीसगढ़ी कविता के विविध आयाम

डॉ० अनिल कुमार भतपहरी

सरांश – छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी भाषा जनमानस में व्यवहृत हैं। हालांकि हिन्दी यहां राजभाषा और अध्ययन आध्यापन की भाषा हैं। छत्तीसगढ़ी में लेखन अठ्ठारहवीं सदी से आरंभ हुआ पर वह लेखन व पाठ्यक्रम में नहीं होने से अपेक्षाकृत जनमानस के बीच नही आ सका परन्तु छत्तीसगढ़ी के लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है आकाशवाणी दूरदर्शन एंव विभिन्न लोक कला मंचों के द्वारा छत्तीसगढ़ी गीत कविता कहानी नाटक प्रहसन लोक मे अतिशय प्रचलित रहा और साहित्यिक रुप मे वृहत्तर लेखन होते रहा ।

प्रस्तावना – अलग छत्तीसगढ राज गठित होने के बाद लेखन और प्रकाशनों का दौर चल पड़ा। छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग के गठन के बाद छत्तीसगढ़ी भाषा और साहित्य के सम्मेलन व्याकरण और साहित्यक पुस्तकों का प्रकाशन से छत्तीसगढ़ी कविता या साहित्य के विविध स्वरुप हमारे समक्ष आने लगे। छत्तीसगढ़ी कविता के विविध आयाम का संक्षिप्त रेखांकन इसमें समादृत हैं।

मुख्य शब्द – नंगारा, झन्नाय, दास्तान, मनुवा, अमृतवाणी, पंथी, मंझधारा, मुरदा, चेथी, कसैया, जंगल सत्याग्रह, पखारय, ममियारों, कन्दराओं, विरासत, शिलालेख, लोकाचरण कोसलदेसा, अभ्युदय इत्यादि।

किसी भाषा की साहित्य या काव्य के अनुशीलन से यह पता चलता हैं कि तात्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एंव धार्मिक परिस्थितियों के चित्रण मिलते हैं साथ- साथ प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों का समावेश मिलती हैं। यदि कोई पुरावशेष न मिल रहे हो लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक गाथाएँ में ऐतिहासिक तथ्य शब्दों के द्वारा उस काल खंड का निर्धारण किये जाते हैं-

बाजय नंगारा राजा पुरसोतन के जस कांस पीतल झन्नाय।
चिहुर परगे चारों मुड़ा मं, नव कोस धकाड़ा जाय ।।[1]

उक्त गीत छत्तीसगढ़ के राजा परसोतन का जय गान है ।इनके द्वारा यह पता किया जा सकता है कि तत्कालीन समय में यहां के सामंत या राजा का वैभव कैसा था और उनका क्या प्रभाव जनमानस में रहे हैं।

जो लोग कहते - समझते है कि यह परिक्षेत्र वीरत्व भाव या सैनिक संस्कृति से रहित या अपरिचित थे, उक्त पंक्ति से खारिज होते हैं। शुरवीरता और युद्ध कलाएं यहां थी यह अलग बात है कि उनके वास्तविक मूल्यांकन अन्यान्न कारणों से हो नही पाया हैं। गांवों में जो जातिय संघर्ष और एक दुराव -भाव दिखता है ऐसा लगता है कि कभी बेहद संघर्षों से गुजरा हुआ समय उनमें समादृत हैं। इसलिए यहां लाठी, टंगिया , तब्बल, गुप्ती भाले, बरछी, तलवार ढ़ाल आदि अस्त्र जन जीवन मे देखने मिलते है और लोक गीत आदि में उनका उल्लेख भी हैं। भले सत्ता आदि के युद्ध या संग्राम न रहे हो पर प्रभाव व आत्म रक्षा हेतु शस्त्र चलन व प्रदर्शन की प्रथाएं रही हैं।

छत्तीसगढ़ी साहित्य या काव्य के संदर्भ में विचार करे तो हम पाते है कि यहाँ की लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध हैं। ऐसा कोई गाँव, शहर ,कस्बा के घर नहीं जहाँ कथा- कहानी, गीत- भजन के जानकार न हो। दादा -दादी, नाना- नानी एक ऐसा रिश्ते हैं। जिनके गोद में या सानिध्य में बैठकर नई पीढ़ी उन प्राचीनतम कथा -कहानियों, गीतों -भजनों को श्रवण करते हैं ।इस स्वाभाविक क्रिया जिसे छत्तीसगढ़ी में ''लइका भुलवई" बच्चे खेलाने की क्रिया कहते है , इस के द्वारा सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाया जाते है। एक तरह से यह मनोरंजक दास्तान दो पीढ़ी को जोड़ने की कड़ी के रुप में महत्वपूर्ण होते है ।साथ ही विभिषिकाओं और विषम परिस्थियों के बावजूद जो जीने की संघर्ष और प्राकृतिक आपदाएं या संकट के पल होते है उन्हे कैसे अनुकूल कर मानवीय जीवन को सुखमय कर सकते हैं का प्रेरक दास्तान होते हैं। हालांकि चारों ओर वन, गिरि, कन्दराओं से घीरे होने के कारण यहाँ शिक्षा बहुत बाद में आया पर यहाँ के जन-जीवन में संतों -गुरुओं की सीख का व्यापक प्रभाव पड़ा। इनके ही अध्ययन से पता चलता कि यहां की लोक साहित्य के विविधतापूर्ण वृतांत हैं। क्रमिक विकास के विभिन्न आयामों को सहजतापूर्वक देखे जा सकते हैं। जो प्रेरक व उदात्य भाव से युक्त हैं-

कोनो दिन डेरा बंबरी बन म
कोनो दिन कदली कछार ।
कोनो दिन खावै गुड़ चींवरा
कोनो दिन परै उपास ।।[1]

छत्तीसगढ़ी में लेखन अन्य प्रान्त के ब्रज अवधि मैथिली मराठी हिन्दी भाषियों ने जो साक्षर थे और यहाँ जीविकोपार्जन हेतु मराठा और ब्रिटिश कालखंड में शा सेवक या व्यापार आदि के निमित्त आये हुए थे। यहाँ की लोक जीवन से प्रभावित होकर पहले -पहल सृजन आरंभ किए पर वे छत्तीसगढी नहीं है। छत्तीसगढ वनाच्छादित अंचल रहा है। जहां कोई शिक्षण संस्थान नहीं थे। रायपुर और रतनपुर में केवल पूजा पाठ आदि के लिए संस्कृत पाठशालाओं का निजी संचालन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों द्वारा मौखिक रुप से संचालित थे जहां सीमित मात्रा में केवल ब्राह्मण युवकों को शिक्षा दी जाती थी। वे लोग भी कही संस्कृत में काव्य या कोई ग्रंथादि रचे यह ज्ञात नहीं है।

दंतेश्वरी मंदिर में जो शिलालेख है और जिसकी लिपि श्री व देवनागरी ध् है वह पाली या प्राकृत है जो जन भासा छत्तीसगढ़ी जैसी लगती हैं पर वह छत्तीसगढ़ी नहीं है। क्योंकि बस्तर में गोंडी- भतरी- हल्बी आदि बोलियाँ हैं। जिसमें कुछ- कुछ शब्द छत्तीसगढ़ी के मिलते हैं। इसलिए ऐसा आभास होते हैं।

अमुमन सभी राजा और राजघराने जो आदिवासी थे ।वे और उनके परिवार प्राय: निरक्षर रहे । फलत: राज दरबार या नगर में छिट-पुट लेखन करते जिनकी मातृ भाषा या बोली ब्रज ,अवधि मैथिली बघेलखंडी या मराठी थे। जो जीविकोपार्जन हेतु यहां आकर आश्रय लिये थे। वही लोग देवनागरी लिपि में अपनी -अपनी मातृ भाषा में लेखन किया। यह वह दौर रहा जब हिन्दी भाषा के रुप में आकार ले रही थी। यह समय साहित्य के काल क्रम में रीतिकाल का था। जब श्रृंगार और भक्ति का अप्रतिम सृजन चल रहा था। राम- कृष्ण नायक के रुप में महिमामय हो चूके थे। उनके मानवीय करण कर उनके लौकिक लोकाचारण से जन-मन को अनुरंजित किए जा रहे थे। अधिकाशत: सामंत, राजा, जमीन्दार आदि के चरित्र को राम- कृष्ण के वैभव से जोड़कर उनके मनोहारी वर्णन तक किए जाने लगे । प्रतिभाशाली आसु कवियों को पनाह मिलने लगे ये लोग राग- रंग -मनोरंजन के गीत गाकर जीविकोपार्जन करने लगे । कवियों -कलाकारों को राजदरबार में आश्रय मिलने से। लेखन में गुणवत्ता आये और उन्हे यत्नपूर्वक सहेजे जाने लगे इन्ही राज्याश्रित कवियों में दलपत राव खैरागढ, बाबू रेखाराव रतनपुर, और सिमगावासी खाण्डेराव का नाम उल्लेखनीय है। इनकी रचनाओं में वे अपने आश्रय दाता राजाओं के प्रशंसा के साथ- साथ समकालीन छत्तीसगढ़ की जन- मन की छवि परिलक्षित होते हैं-

तिन में दक्षिण कोसल देसा
जहां हरि ओतु केसरी बेसा
तासु मध्य छत्तीसगढ़ अति पावन
पुण्य भूमि सूर-मुनि मन भावन[2]

इसी समय बांधवगढ़ वासी धनी धरमदास जी का वृद्धावस्था में कबीर पंथ के प्रचारार्थ आगमन हुआ। वे कोमलकांत पदावलि प्रेम भक्ति के पद कवित्त रचे जिन पर कबीर की वाणियों के अनुगूंज हैं। उनकी भाषा बघेलखंडी और ब्रज है-

जमुनिया के डारा टोर दीजौ हो
सार सबद रस घोर दीजौ हो।

इसमें छत्तीसगढ़ी शब्दों का दिग्दर्शन तो होते है पर है यह बघेलखंडी क्योकि धरमदास साहेब का आगमन बांधवगढ़ से छत्तीसगढ़ वृद्धावस्था में हुआ और वे अपनी मातृ भाषा बघेलखंडी में कोमल कांत भक्ति परक पद रचना करते थे। उनकी पद यहां भी लोकप्रिय हुआ -

गुरु पंइया लागव नाम लखा दीजौ हो
जनम -जनम का से सोया मनुवा शब्दन मार जगा दिजौ हो ...[3]

छत्तीसगढ़ में शिक्षा का द्वार लार्ड मैकाले के शिक्षा नीति के चलते १८५० के आसपास स्कूल खुलना आरंभ हुआ। और १९०० तक शहरों कस्बों में पाठ शालाएं धीरे- धीरे खुलने लगी। इस दरम्यान प्रथम पीढी के लोग साक्षर हुए वही लोग छिट-पुट छत्तीसगढ़ी में गीत- भजन और धार्मिक कथा- कहिनी लेखन आरंभ किए। ब्रिटिश काल खंड में फादर लोर ईसाई मिशनरी गतिविधि संचालित करने रायपुर बिलासपुर के मध्य विश्राम पुर में चर्च और अस्पताल बनवाए तथा सेवा और शिक्षा के कार्य के साथ -साथ बाईबिल की कहानियाँ और उनके सिद्धान्त आदि का सरल- सुबोध छत्तीसगढ़ी भाषा में अनुवाद कर जनमानस में वितरण कराये गये । इन में छत्तीसगढ़ी गद्य का लालित्य देखते ही बनता है।

इस तरह से शिक्षा के आरम्भिक काल खंड में भी यदा- कदा छत्तीसगढ़ी में लेखन आरंभ हो रहे थें।

साथ ही जनमानस में कबीर धर्मदास व गुरु बाबा के वाणियों का अनुगूंज गूंजने लगा वही आगे सतनाम साहित्य जिसे छत्तीसगढ़ी का शिष्ट साहित्य कह सकते हैं, का क्रमशः सृजन आरंभ हुआ।इस तरह हम पाते हैं कि विशुद्ध छत्तीसगढ़ी में नवीन विचार -धारा और दर्शन को जनमानस में प्रसारित करने सर्व प्रथम सूक्तों अमृतवाणियों, उपदेशों, पंथी मंगल भजनों दृष्टान्त या बोधकथाओं के माध्यम से गुरु घासीदास और उनके पुत्र गुरु अम्मरदास जी ने १७९० के आसपास सतनाम पंथ की स्थापना की। और उनके प्रचारार्थ रामत -रावटी किए। इन्हीं आयोजनों में सत्संग- प्रवचन और पंथी -मंगल भजनों द्वारा सतनाम के गूढ़तम सिद्धान्तों को सरलतम ढंग से जनभासा छत्तीसगढ़ी में व्यक्त किए जो शिष्ट साहित्य की कोटि में पणिगणित होते हैं।

सतनाम -पंथ के अभ्युदय के पूर्व छत्तीसगढ़ी में लेखन और सृजन इसलिये भी संभाव्य नहीं हुआ क्योंकि यहाँ शिक्षा और अक्षर ज्ञान जनमानस में थे ही नहीं। इसलिए अधिकतर लोकगीतों का मौखिक स्वरुप रहा है। और लोग अपनी यादृच्छिक क्षमता के अनुरुप उन्हें कंठ दर कंठ प्रवाहित करते लाए। इनमें प्रमुखतः करमा ददरिया रीलो बार डंडा नृत्य गीत बांसगीत बसदेवा सुआ इत्यादि। इनके साथ- साथ बिहाव गीत गौरा गीत जस गीत जैसे आनुष्ठानिक गीत जो लोकगीतों के रुप में रहा। तो अहिमन कैना केवला कथा दसमत कैना लोरिक चंदा सीत बंसत लछ्मनजति भरथरी गोपीचंद आल्हा जैसे पात्रों चरित गायन भी वाचिक परंपरा में रहा। पंडवानी इसी तरह कलान्तर में विकसित हुई। स्त्री - पुरुष का द्वंद्व व उनकी बातें भी यहा की लोक साहित्य मे मुखरित हुआ है । पुरुष स्वच्छंद होते है और घर बाहर खेतो वनों मे कठोर परिश्रम कर परिवार का पालन पोषण करते है , जबकि स्त्रियां भी उनके सहचरी होकर भी एक कोमल भाव व असुरक्षित प्रसवजन्य वेदनाओं से जुझती है फलस्वरुप उनकी कारुणिक प्रतिकार द्रष्ट्वय है-

पंइया लागत हव चंदा सुरुज के
न रे सुवा न कि तिरिया जनम झन दे!

सतनाम -पंथ का प्रवर्तन गुरु घासीदास ने धर्म-कर्म में व्याप्त अराजकता, अंध विश्वास, ढोंग- पाखंड के विरुद्ध उनमें अपेक्षित सुधार हेतु किया गया। फलस्वरुप अनेक सकारात्मक लोग उनसे जुड़ते गये। पुरातन प्रेमी और रुढिवादियों ने इनका प्रतिकार किया साथ ही अनेक तरह के अवरोध पैदा किए गये। ताकि इससे नवीन सतनाम विचार-धारा का प्रवाह अवरुद्ध हो जाए। परन्तु जो सत्य और लोककल्याणकारी तत्व है वह सारे अवरोध अपनी सर्व ग्राह्यता से हटा लेता है। और ऐसा ही हुआ। सारे अवरुद्ध उनके प्रवाह से उखड़ गये और भारतीय संस्कृति में जातिविहीन नये धर्म का संस्थापना हुआ -

बीच गंगा बहत हे मंझधारा हो मिले बर होही संतो मिल जाहूं न

समकालीन समय में उनकी अनुगूंज से जो सृजित हुआ वह वाकिये में चमत्कृत करने वाला रहा। फलस्वरुप यह बडी तेजी से लोक जीवन में प्रचारित-प्रसारित हुआ।

यह कालखंड अंग्रेजी सत्ता के बढते प्रभाव और धर्मांतरण के साथ- साथ औपनिवेषिक दखलंदाजी से उत्पन्न परिस्थितियों से जनाक्रोश वीनारायण सिंह , राजा गुरुबालकदास , गुंडाधुर , जैसे नायकों के अभ्युदय का रहा जो स्वाभिमान के साथ व्यक्ति स्वतंत्रता के मुखर स्वर था -

पांव लहुट गे अंगरेजियन के स्मिथ मन गे घबराय
बनवासी ब इहागे रन म
दस मारय बीस देय गिराय!

अंग्रेजी गुलामी से मुक्ति का आन्दोलन का सूत्रपात किया

उक्त जननायकों के शहादत आगे चलकर स्वतंत्रता आन्दोलन के पाथेय बने और साहित्यकार जन जागृति के गीत रचने लगे -इनमें प्रमुखत: पं. सुन्दरलाल शर्मा, लोचनप्रसाद पांडे, शुकलाल पांडे, प्यारेलाल गुप्ता, गिरवरदास वैष्णव, कपिलनाथ मिश्र, पद्मश्री मुकुटधर पांडे गया प्रसाद बसेढिया ,पं सुखीदास , सतनाम दास इत्यादि जो ब्रिटिश काल में पौराणिक आख्यानों, वृतांतों के माध्यम से युगीन चेतना और राष्ट्र प्रेम जनजागरण के साहित्य रचें-

दानदीला का अंश देखिए जो राजतंत्र के दमन के प्रतिकार के विरुद्ध शंखनाद करती हैं -

मोहन कहिन सुनै रौताइन ,राजा कंस ला कौन डेराइन
काम महीप नाव ओखर हे राज तीन लोखन के भर हे।[7]

इसी तरह मुगलों के पतन और अंग्रेजी सत्ता के बढते प्रभाव गिरवरदास वैष्णव के रचना द्रष्टव्य हैं -

अपन नीचता ले पठान मन अपन राज ल खोवत रहिस।
इन सबो किसम से नालायक समझ लेईन।
मुसलमान हिन्दू के मुरदा से धरती ल पटा देइन
बड़े -बड़े ल दे जमीदारी , अपन डहन झट मिला लेइन।[8]

छत्तीसगढ़ में स्वस्फूर्त तीन जनान्दोलन हुआ जिसे सत्याग्रह के नाम से जाने जाते हैं। 1915 मे गोवध रोकने महंत नयन महिलांग और गुरुअगमदास गोसाई का तीव्र आन्दोलन हुआ। भाटापारा निपनिया रेल्वे स्टेशन से गोमांस का निर्यात बांबे- कलकत्ता जैसे शहरों के लिए होते थे। सतत आन्दोलन से ब्रिटीश सत्ता झुकी अंतत: करमनडीह, ढाबाडीह दो बुचड़ खाना को बंद करना पड़ा । जिनकी चर्चा देश भर में हुई - उस समय पंथी गीतों में गाये जाने लगे -

मै गैया हव जी झन मारो कसैया

दूसरा जंगल सत्याग्रह एंव तीसरा कंडेल नहर सत्याग्रह इन तीनों आंदोलन और के कारण गांधी जी आगमन हुआ। उनके आने बाद यहाँ की राजनैतिक और सामाजिक जीवन में गांधी का प्रभाव द्रष्टव्य हैं-

खुरसी पाय के लालच में गरुवा बैला कटवाएन
मंदिर घलो के भेद बता के ओहू म टिक्कस लगवाएन।[9]

इस दौर रचनाकारों में द्वारिका प्रसाद तिवारी , कोदूराम दलित ,हृदय चौहान, मनोहरदास नृसिंह, पं साखाराम बघेल, भगवतीलाल सेन इत्यादि।

आगे चलकर अंग्रेजी सत्ता के मुखर विरोध कुंज बिहारी चौबे जैसों की काव्य में परिलक्षित होने लगे -

चीथ चीथ हमर चेथी के मांस ल
अपन बर टेकाये तैंहर बंगला
अंग्रेज तै हमला बनाये कंगला ..[10]

आजादी के बाद देश के नव निर्माण हेतु नव दृष्टिकोण लिए समाज सुधार , शिक्षा एंव छत्तीसगढ़ी अस्मिता के अभिनंदनीय काव्य रचे गये जिसमे खूब चंद बघेल ,हरि ठाकुर , कपिलनाथ कश्यप , श्यामलाल चतुर्वेदी ,केयूर भूषण, नरेन्द्र देव वर्मा , दानेश्वर शर्मा , साधु बुलनदास , सुकालदास भतपहरी गुरुजी , लक्ष्मण मस्तुरिहा , पवन दीवान , मुकुंद कौशल , रामेश्वर वैष्णव जीवन यदु गेंदराम सागर , शंकरलाल टोडर जैसे रचनाकार सामने आये और सामाजिक जनजागरण के गीत कविताए रचे । यह दौर चंदैनी गोंदा के अभ्युदय के साथ सांस्कृतिक आन्दोलन का था और सभी तरफ उनके मधुर गीत आकाशवाणी ग्रामोफोन से गूंजने लगे थे।अनेक लोक मंच का गठन और उनके माध्यम से मनोरंजन के साथ साथ कर्तव्य और अपने अस्मिता की तलाश के स्वर मुखरित होने लगे थे ।क्योकि आजादी के बाद राजधानी नागपुर से हस्तांतरण होकर सूदूर भोपाल हो गये एंव म प्र से जुड़कर एक विलगाव और औपनिवेशिक भाव का पुनश्च प्रभाव से यहाँ से रचनाकार विछुब्ध हो गये थे ।फलस्वरुप उनके अंदर पृथक छत्तीसगढ़ और छत्तीसगढ़ी स्वाभिमान और अस्मिता का उद्घोष होने लगे -

मै छत्तीसगढ़िया अव ग भारत मा के रतन बेटा बढिया अंव गा

जैसे गीत राष्ट्रीय भावना के साथ साथ छत्तीसगढ़ राज्य के स्वर को भी मुखरित किया।

मोर संग चलव रे जन गीत से सभी उन अभावों को पाने सम्मलित होने लगे ,जो कही न कही आजादी के बाद एक खाली पन या रिक्तता या ठगे गये सा भाव था । लक्ष्मण मस्तुरिया का यह गीत जनगीत के रुप में प्रतिष्ठित हैं।

अंतत: 2000 के छत्तीसगढ़ी भाषा एंव संस्कृति के आधार पर पृथक छत्तीसगढ़ अस्तित्त्व मान हुआ - यहाँ के कला व रचनाधर्मी सभी आनंदित हो गा उठे -

अरपा पैरी के धार महानदी हे आपार

इंद्रावती ह पखारय तोर पैइया जय हो जय हो छत्तीसगढ़ मंइया[11]

डॉ० नरेन्द्र देव वर्मा जी का यह गीत वर्तमान में छत्तीसगढ़ के राजगीत के रुप में प्रतिष्ठित हैं।

वर्तमान मे अनेक नये -पुराने रचनाकार आत्मतुष्ट भाव से अभाव में सभाव भरते विविधतापूर्ण काव्य सृजन में रत है। -यशस्वी रचनाकार मुकुंद कौशल की पंक्ति दर्शनीय है -

दतगिंजरा मिठलबरा मन के चरन छुए ले का पाहू,

गार पछीना खुद भुइयां मा सरग उतारौ तब बनही।

ठलहा ब इठे मनखे मन ला काम तियारौ तब बनही।[12]

छत्तीसगढ़ी भाषा के कारण ही अलग छत्तीसगढ़ राज्य 2000 में गठित हुई। पं. र. शु. वि. वि. विश्वविद्यालय मे स्नातक स्तर के बी. ए. अंतिम में जनपदीप भाषा छत्तीसगढ़ी पाठ्यक्रम से सम्मलित हुई।

छत्तीसगढ़ राजभाषा के रुप में विधान सभा में 28 नवंबर 2007 प्रस्ताव पारित हुआ।

तब से स्थानीय और अन्य छत्तीसगढ़ी साहित्यकारों द्वारा विविधतापूर्ण वृहत्तर लेखन आरंभ हुआ। इसमे समकालीन हिन्दी व विश्व के अन्य भाषाओं व देश मे प्रचलित शिल्पों के आधार पर लेखन होने लगा ।

इस तरह से हम देखते है कि छत्तीसगढ़ी साहित्य अठ्ठारहवीं सदी से लेकर वर्तमान तक लगभग 300 वर्षो की कालखंड में विविध आयाम से होकर समृद्धशाली हुई हैं। अनगिनत रचनाकार विविध विषयों पर अनवरत लेखन कर रहे हैं। छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग एंव हिन्दी ग्रंथ अकादमी सहित अनेक प्रकाशन संस्थान साहित्यकारों की गुणवत्ता युक्त पुस्तकें प्रकाशित करते आ रहे हैं। जो छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्य व संस्कृति को समुन्नत कर रहें हैं।

संदर्भ

1 भतपहरी डॉ. अनिल कुमार - सतनाम साहित्य और उनकी महत्ता - सत्यध्वज पत्रिका भिलाई साहित्यकार सम्मेलन अंक 1993

2 लोकगाथा का अंश

3 डॉ. बल्देव - छत्तीसगढ़ी कविता के सौ साल संपादकीय बाबू रेवाराम विक्रम विलास

4 आडिल डॉ. सत्यभामा जनपदीप भाषा - साहित्य (छत्तीसगढी) पृ 15 विकल्प प्रकाशन रायपुर 2004

5 पारंपरिक पंथी गीत

6 मस्तुरिहा लक्ष्मण सोनाखान के आगी पृ. 17 शुभा प्रकाशन रायपुर 1983

7 बल्देव डॉ. छत्तीसगढ़ी कविता के सौ साल दानलीला -प. सुन्दरलाल शर्मा पृ क्र 42 वैभव प्रकाशन रायपुर 2011

8 डॉ. बल्देव -छत्तीसगढ़ी कविता के सौ साल गिरवरदास वैष्णव की कविता ,वैभव प्रकाशन रायपुर पृ. 68 सन 2011

9 यदु सुशील गिरवरदास वैष्णव, बगरे मोती पृ. 13 प्रकाशन 1991-92

10 यदु सुशील, कुंज बिहारी चौबे, बगरे मोती पृ 11

11 वर्मा डॉ. नरेन्द्र छत्तीसगढ़ का राजगीत

12 कौशल मुकुन्द घाम हमर संगवारी पृ 72 वैभव प्रकाशन 2017

आचार्य चाणक्य का शिक्षा दर्शन

कुसुम सरोज

शोध छात्रा (संस्कृत), ज्वाला देवी विद्या मन्दिर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर

डॉ० नीलिमा चौधरी

शोध निर्देशिका (संस्कृत), ज्वाला देवी विद्या मन्दिर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर

आचार्य चाणक्य मूलतः तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य थें। उन्हे मौर्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरू होने का गौरव प्राप्त था। उनकी अभूतपूर्व मेघा और दिशा-निर्देशन के परिणामस्वरूप ही चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के विशाल साम्राज्य का एक सुयोग्य शासक हो सका था। उसने भारतीय राजनीति के इतिहास में एक अभिनव अध्याय जोड़ा था। चाणक्य के जीवन का विवेचन करते समय लोग उनको राजनीतिज्ञ एवं आचार्य दोनों मानते है। लेकिन वास्तविकता यह है कि राजनीतिज्ञ बनने की उनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी, जैसे ही चन्द्रगुप्त का साम्राज्य सुसंगठित हो गया, वह सम्राट के सलाहकार का पद त्याग करके तक्षशिला आकर शिक्षण का कार्य करने लगे थे। वास्तव में, जितने दिनों वे चन्द्रगुप्त के साथ रहे, उस अवधि में भी वह चन्द्रगुप्त को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करते रहे। इतना ही नहीं, उन्होने अर्थशास्त्र जैसा महान ग्रन्थ लिखकर युगों-युगों तक शासन और सत्ता के मार्गदर्शन का अभूतपूर्व कार्य करके एक अप्रतिम शिक्षक का भी कर्तव्य पूरा किया। वह केवल सम्राटों के ही शिक्षक नहीं रहे, बल्कि ''चाणक्य सूत्राणि'' जैसे ग्रन्थों में ऐसे महान विचार दिये गये है जिनसे युगों-युगों तक जनसाधारण भी शिक्षा ग्रहण करेगा। चाणक्य विद्या और ज्ञान के अनन्य उपासक थें। उनकी दृष्टि में संसार में सबसे बड़ा अभिशाप विद्याविहीन या मूर्ख होना था। वह कहते है कि मूर्ख व्यक्ति को बंधु मिलना असंभव है। जैसे लोहे से लोहे को कांटा जाता है, उसी प्रकार मूर्ख, हठी को हितोपदेश न देकर मूर्खो की भाषा में अर्थात् कठोर, दण्ड देकर समझाना चाहिए। दुःसाहस ही मूर्खो का स्वभाव होता है। इससे प्रतीत होता है कि आचार्य को मूर्खता असह्य थी। इसमें कोई विवाद की बात नहीं है, कुछ जन्मजात मूर्ख होते है, लेकिन अधिकांश शिक्षा के अभाव में मूर्ख होते है। इसीलिए आचार्य चाणक्य अपने ग्रन्थों में सर्वत्र विद्या की महत्ता, शिक्षा की आवश्यकता का सदा समर्थन करते है। वह विद्या को निर्धनों का धन कहते हैं, और ऐसा धन जिसका कोई हरण नहीं कर सकता है। विद्या मनुष्य को यश प्रदान करती है तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में सहायक होती है। उनका मत है कि धनी और उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति धन नष्ट होने या पदच्युत होने पर समाज में विस्मृत कर दिए जाते है लेकिन जो विद्याबल से सम्पन्न होता है, वह अमर रहता है। जैसी शिक्षा होगी वैसी बुद्धि होगी। आचार्य चाणक्य के अनुसार विद्या प्राप्त करने से मनोनिग्रह होता है। मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का परिष्कार होता है और कुकर्म के करने पर अंकुश लगता है, चाणक्य कहते है कि व्यक्ति के लौकिक-अलौकिक वस्तुओं के रहस्य का परिचय विद्या के द्वारा होता है। इसीलिए शास्त्रों के माध्यम से विद्या प्राप्त करना चाहिए। आचार्य केवल पुस्तकीय ज्ञान को ही ज्ञान नहीं मानते है। उनके अनुसार सत्संग से भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वह कहते है कि ''सत्संग ही स्वर्ग निवासी है।'' जिस व्यक्ति को शास्त्र का ज्ञान न हो, जहाँ शास्त्र का निर्देश उपलब्ध न हो वहाँ शिष्टाचार मान्य है। शास्त्र का महत्व शिष्टाचार से अधिक नहीं है। शास्त्र के साथ लोकाचार को भी समझना आवश्यक है। जो केवल शास्त्र जानता है और लोक प्रचलित परम्पराओं से अपरिचित है उसे भी चाणक्य मूर्ख कहते है। इस प्रकार से चाणक्य की शिक्षा में लोक शिक्षा और शास्त्र-शिक्षा दोनो का समन्वय

किया गया है। जहाँ तक शास्त्र शिक्षा का प्रश्न है, आचार्य का मत पूर्ण स्पष्ट है। वह चार शास्त्रों को महत्व देते है आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति। लेकिन यह राजा की शिक्षा के सम्बन्ध में नहीं किसी भी शिक्षार्थी के लिए उपयुक्त है। इन चार प्रकार के शास्त्रों में केवल बौद्धिक शिक्षा ही नहीं है। बल्कि व्यवहारिक जीवन से सम्बन्धित शिक्षाएँ भी है। वैसे वार्ता के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, व्यापार आते है। आन्वीक्षिकी और त्रयी केवल बुद्धि विकास के लिए नहीं है, अपितु उनका व्यावहारिक जीवन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा के सम्बन्ध में चाणक्य के विचार वर्णाश्रम व्यवस्था से सम्बद्ध है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में ब्राह्मण का कर्तव्य केवल अध्ययन-अध्यापन है। क्षत्रिय और वैश्य ज्ञानार्जन कर सकते है, लेकिन वे अध्यापन के द्वारा जीविका अर्जित नहीं कर सकते है। उनकी व्यवस्था में शूद्र शास्त्रज्ञान भले न प्राप्त करें, लेकिन वार्ता के अन्तर्गत आने वाली कलाओं को सीख सकता है। आचार्य चाणक्य की शिक्षा पद्धति में प्रजा का शिक्षित करने का दायित्व राजा का है। राजा अपनी प्रजा को विभिन्न विद्याओं को प्रदान करने के लिए समुचित व्यवस्था करें। अर्थशास्त्र एवं चाणक्य सूत्राणि दोनों में अपने स्थलों पर ब्राह्मणों और विद्वानों को सम्मानित करने के लिए निर्देश दिये है। आचार्य चाणक्य की शिक्षा व्यवस्था में गुरू का विशेष महत्व है। वह गुरू को देवतुल्य सम्मान देते हैं। वह कहते है कि गुरू का छिद्रान्वेषण नहीं करना चाहिए। गुरूदेव व ब्राह्मणों की भक्ति ही मनुष्य को सुशोभित करने वाला भूषण है। शिष्य को गुरू की इच्छानुसार चला चाहिए। गुरूओं में सर्वप्रथम स्थान माँ को देते है। आचार्य चाणक्य केवल लौकिक विद्याओं को महत्व नहीं देते है, बल्कि वह परमज्ञान की महत्ता को भी प्रतिपादित करते है, जिसको प्राप्त करके व्यक्ति सुख-दुख से मुक्त हो जाए और स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त भी प्रतिपादित करते है। जिसको प्राप्त करके व्यक्ति सुख-दुख से मुक्त हो जाए और स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त कर लें। सम्भवतः समस्त विद्याएँ इस परम ज्ञान या तत्व दर्शन को प्राप्त करने की माध्यम मात्र है। वह अनेक स्थलों पर कहते है कि शरीर नाशवान है। संसार के समस्त सुख और भोग अस्थायी है। संसार के समस्त सम्बन्ध स्वार्थपूर्ण है। अतः व्यक्ति को सदैव इस विचार को ध्यान में रखते हुए परम तत्व-ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। जिससे वह अखण्ड आनन्द की स्थिति को प्राप्त कर सकें। यह ज्ञान विद्वानों, महात्माओं, सन्यासियों आदि के सत्संग से प्राप्त किया जा सकता है किन्तु व्यक्ति को स्वयं तप और साधना करनी होगी। चाणक्य ने तप के महत्व का उल्लेख कई स्थानों पर किया है, तपस्वी को ज्ञानियों में श्रेष्ठ माना है। जितेन्द्रियता ही तपस्या का सार है। समाज के मार्गदर्शक जितेन्द्रिय लोग समस्त समाज के पूजनीय है। ऐसे लोग अपने संयत चरित्र से समाज का कल्याण तथा शान्ति का मार्ग दिखाने वाले होते हैं।

संक्षेप में कहे तो आचार्य चाणक्य का दर्शन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थ पर केन्द्रित है। आचार्य के अनुसार विद्या मनुष्य को सुसंस्कृत और परिष्कृत बनाती है तथा उसके जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है। शिक्षा का लक्ष्य लोकजीवन को समुन्नत करना है। लेकिन साथ-साथ इनका अन्तिम लक्ष्य व्यक्ति को ऐसे ज्ञान से सम्पन्न भी बना देना है, जिससे वह अपने महान कर्तव्य आत्मसाक्षात्कार व ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के सम्बन्ध में भी सफल हो सके।

सन्दर्भः

1. नापत्यधीमतः सखा। - चाणक्य सूत्र 233
2. आयसैरायसं छेद्यम। - चाणक्य सूत्र- 232
3. मूर्खः साहसं नियतं। - चाणक्य सूत्र 229
4. विद्या धनमधनानाम। - चा0सू0 295
5. विद्या चौरैरैपि न ग्राह्या। - चा0सू0 296
6. विद्यया ख्या पिता ख्यातिः। - चा0सू0 297
7. यज्ञ शरीरं न विनश्यति। - चा0सू0 298
8. यथा शिक्षा तथा बुद्ध। - चा0सू0 459
9. इन्द्रियानां प्रथमं शास्त्रम। - चा0सू0 300
10. अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्रांकुशं निवारयति। - चा0सू0 301
11. शास्त्रप्रयोजन तत्वदर्शनम। - चा0सू0 544

12. सत्संग स्वर्ग वासः। - चा0सू0 519
13. शास्त्राभावे शिष्टाचारमनुगच्छेत। - चा0सू0 470
14. नाचरिताच्छास्त्र गरीय। - चा0सू0 471
15. सर्वज्ञता लोकज्ञता। - चा0सू0 542
16. शास्त्रोऽप्यलोकज्ञो मूर्खतुल्य। - चा0सू0 543
17. गुरुं च दैवं च। - चा0सू0 375
18. ना मीमांस्याः गुरवः
19. गुरुदेव ब्राह्मणेः भक्तिर्भूषणम। - चा0सू0 427
20. गुरुवज्ञानुवर्ती शिष्य। - चाणक्यसूत्र 337
21. गुरुणा माता गरीयसी। - चा0सू0 362
22. तपः सार इन्द्रियनिग्रह। - चा0सू0 475
23. तपस्विनः पूजनीया। - चा0सू0 411

मेरठ जनपद में भूमि उपयोग का परिपवर्तनशील अध्ययन, 2000-2001 से 2015-16

डॉ० नवनीत शर्मा

अस्थायी प्रवक्ता, एन.आर.ई.सी. कॉलेज, खुर्जा (बुलन्दशहर)

डॉ० रामदास सिंह

स० अ०, पूर्व माध्यमिक विद्यालय, मुहब्बतपुर लभौआ बरनाहल, मैनपुरी

प्रस्तावना- भूमि एक आधारभूत प्राकृतिक संसाधन है जिस पर सभी आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य सम्पन्न होते है। भूमि आदिकाल से लेकर अद्यतन निरंतर मानवीय इतिहास को प्रोत्साहित करती रही है देश के किसी भू-भाग में रहने वाला प्रत्येक मानव अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति भूमि के विभिन्न उपयोगो द्वारा प्राप्त करता है। वास्तव में भूमि उपयोग मानव पर्यावरण एवं प्रकृति के अन्त: सम्बन्ध का वर्णन है, जो कि भौतिक जलवायुविक और मिट्टी सम्बन्धी परिस्थियों के साथ मानव क्रिया-कलापों जो भूमि को प्रभावित करते हैं से सीधा सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में ''भूमि उपयोग वह उध्ययन है जिसमें मानव द्वारा उत्पादित वस्तु के साथ-2 मानवीय क्रियाकलापों का अध्ययन होता है।'' मानवीय सभ्यता और उसकी आवश्यकताओं में परिवर्तन के अनुसार भूमि उपयोग के स्वरूप में भी परिवर्तन होते रहते हैं जिसमें परोक्ष रूप से कृषि विकास की अवस्थाऐं अंकित होती रहती हैं।

भूमि उपयोग का स्वरूप मानव सभ्यता के विकास और मानव की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित एवं परिमार्जित होता रहा है। मानव द्वारा भूमि संसाधन के सामंजस्यपूर्ण उपयोग पर ही मानव एवं उसके सामाज की खुशहाली निर्भर है इसलिए संसाधनों के उचित दोहन के लिए भूमि की वर्तमान क्षमता का आंकलन करना आवश्यक हो जाता है।

भूमि उपयोग और भूमि प्रयोग प्राय: एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग किये जाते हैं, परन्तु इनके बीच सूक्ष्म अन्तर है। भूमि प्रयोग का अभिप्राय भूमि की प्रकृति प्रदत विशेषताओं के अनुरूप उपयोग है, अर्थात ''भूमि प्रयोग'' शब्द के स्वभाविक अभिलक्षणों के अनुसार पृथ्वी के धरातल का यथार्थ तथा विशिष्ट उपयोग है। धरातल अपनी प्रारम्भिक अवस्था में वनस्पतियों से अच्छादित या विहीन हो सकता है इस प्रकार जिस भू-भाग का उपयोग प्राकृतिक ढंग से हो रहा हो उस भू-भाग के लिए भूमि प्रयोग शब्द का प्रयोग करना श्रेयकर होगा अर्थात वह भू-भाग जो मानवीय प्रभावों से सदा वंचित हो वह भूमि प्रयोग होगा, जबकि भूमि का उपयोग मानव अपनी आवश्यता के अनुसार करता है तो उस भू-भाग के लिए ''भूमि उपयोग'' शब्द का प्रयोग ही उचित होगा। अर्थात भूमि उपयोग में भू-भाग का प्राकृतिक स्वरूप क्षीर्ण हो जाता है, तथा मानवीय क्रियाओ का योगदान महत्वपूर्ण हो जाता है, तभी इसे भूमि उपयोग की संज्ञा देते हैं।

उपर्युक्त विशलेषणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भूमि के प्रयोग एवं उपयोग में अन्तर है, दोनों ही शब्द भूमि की दो अवस्थाओं के लिए प्रयुक्त होते हैं। कालक्रम के अनुसार इन्हें कृषि विकास की दो विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित कहा जा सकता है, इसके अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है- कृषि प्रयोग का अभिप्राय उस भू-भाग से है जो प्रकृति प्रदत

विशेषताओं के अनुरूप हो तथा भूमि उपयोग से तात्पर्य भूमि प्रयोग की शोषण प्रक्रिया से है, जिसमें भूमि का व्यवहारिक उपयोग निश्चित उद्देश्य या योजना से सम्बन्धित होता है।

कृषि भूमि उपयोग पर भारत एवं विश्व के विभिन्न देशों में अनेक विद्वानों ने समय-समय पर अध्ययन कर अपने शोध प्रबन्ध एवं शोध प्रपत्र प्रस्तुत किये है। इनमें वान थ्यूनेन (1783-1850), जॉनसन (1926), कैण्डाल (1939), लॉश (1954), स्टाम्प (1960), किलिंग वेल एवं मान्टगूमरी (1961), मेलर (1967), एफ० ए० आ० (1994), यू० एस० सोइल सर्वे डिविजन (1997) और भारतीय विद्धानों में प्रो० एम० शफी (1961-64), हनुमत राव (1970), नूर मोहम्मद (1978), सिंह, जसवीर (1984) सहगल (1990), मोहन्ती (1994) आदि के कार्य उल्लेखनीय हैं।

अध्ययन क्षेत्र- मेरठ जनपद भारत के पश्चिमी उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित है। मेरठ एक महानगर है जिसमें नगर निगम कार्यरत है। यह प्राचीन नगर दिल्ली से 72 किमी० उत्तर-पूर्व में स्थित है। मेरठ राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का हिस्सा है यहाँ भारतीय सेना की छावनी भी है। यह उत्तर प्रदेश के सबसे तेजी से विकसित और शिक्षित होते जिलों में से एक है। मेरठ जनपद में 12 विकास खण्ड, 34 नगर पंचायत तथा 80 नगर निगम परिषद हैं। मेरठ जिले में 4 लोक सभा क्षेत्र सम्मलित हैं। मेरठ जनपद का अक्षांशीय विस्तार $28^{0}59'$ उत्तर से $28^{0}98'$ उत्तरीय अक्षांश तथा देशांतरीय विस्तार $77^{0}42'$ पूर्वी देशांतर से $77^{0}7'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य 2,522 वर्ग किलो मी० क्षेत्रफल में विस्तृत है।

मेरठ जनपद के पूर्व में अमरोहा, मुरादाबाद जनपद गंगा नदी द्वारा प्रथक होता है तथा पश्चिम में हरियाणा राज्य, यमुना नदी द्वारा प्रथक होता है। उत्तर में मुजफ्फरनगर, व सहारनपुर जनपद तथा दक्षिण में हापुड़ जनपद है। जनपद में कुल 604 आबाद ग्राम तथा 63 गैर आबाद ग्राम घोषित हैं, कुल 667 ग्राम हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मेरठ जनपद में कुल जनसंख्या 34,43,689 व्यक्ति निवास करते है जिनमें 16,84,507 (48.91 प्रतिशत) व्यक्ति ग्रामीण तथा 17,59,182 (51.08 प्रतिशत) व्यक्ति नगरीय क्षेत्रों में निवास करते है। वर्तमान शोध अध्ययन मेरठ जनपद के विभिन्न भौगोलिक एवं विषयगत पक्षों के विश्लेषण एवं विवेचन हेतु विकास खण्ड एवं तहसील को आधारभूत ईकाइयों को आवश्यकता अनुसार माना गया है। जनपद में 12 विकास खण्ड हैं जो तीन तहसीलों के अन्तर्गत हैं।

आँकड़े एवं विधितन्त्र- प्रस्तुत शोध प्रपत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है, भूमि उपयोग व कृषि भूमि उपयोग के विकासखण्डवार सभी आंकड़े कृषि वर्ष 2000-01 से 2015-16 पर आधारित हैं। विधितन्त्र विशलेषणात्मक तुलनात्मक, अवलोकनात्कम एवं पूर्ववर्ती विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये शोध कार्यो के समीक्षोपरान्त इसको प्रस्तुत किया गया है।

किसी भी क्षेत्र के भूमि उपयोग को धरातलीय स्वरूप, बनावट, ढाल, मृदा प्रकार, उर्वरता, भूमि का मूल्य, जल की आवश्यकता एवं उपलब्धता, शस्य प्रणाली, शस्यन परम्परा, कृषक की रूची एवं शस्य चयन, शस्यन सुरक्षा आवागमन की सुविधा तथा जागरूकता आदि कारक महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। जहाँ नगरीय क्षेत्र में भूमि उपयोग सकेंद्रीय वलयानुसार, मेखलाबद्ध अथवा सेक्टर के रूप में परिवर्तनीय होते है। वहीं प्राय: ग्रमीण क्षेत्रों में भूमि का उपयोग सकेंद्रिय वलयानुसार अधिवास से दूरी के साथ ही गुणवत्ता समान मिलती है।

भूमि उपयोग वर्गीकरण- विभिन्न राज्य अभिलेखों में भूमि उपयोग के भिन्न-भिन्न वर्गीकरण दर्शाये गये हैं किन्तु जिला स्तर पर सर्वमान्य वर्गीकरण निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. कुल प्रतिवेदित क्षेत्र
2. वन क्षेत्र
3. चरागाह क्षेत्र
4. कृषियोग्य बंजर भूमि
5. परती भूमि
6. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि
7. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि
8. शुद्ध कृषित क्षेत्र
9. उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र

1. कुल प्रतिवेदित क्षेत्र- मेरठ जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 2,73,005 हेक्टेयर है, जिसका 4.1 प्रतिशत (15,629 हेक्टेयर) क्षेत्रफल नगरीय क्षेत्र के विभिन्न उपयोग में आता है। 94.27 प्रतिशत (2,57,376 हेक्टेयर) क्षेत्र ग्रामीण भूमि उपयोग के अन्तर्गत आता है, जिसका 71.28 प्रतिशत (1,94,622 हेक्टेयर) क्षेत्रफल शुद्ध कृषित क्षेत्र भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत है तथा अन्य भूमि उपयोग वर्गो के आधार पर विकास खण्डवार विवरण तालिका-01 व मानचित्र-01 और तलिका-02 द्वारा दर्शाया गया है।

2. वन क्षेत्र- मेरठ जनपद में वन क्षेत्र अल्प मात्रा में हैं, ये केवल सड़कों, तालाबों, नदियों तथा नहरों के किनारे-किनारे पट्टीनुमा आकार में पाये जाते हैं। तालिका-01 व मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015-16 में मेरठ जनपद में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 7.80 प्रतिशत (21314 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर वन भूमि उपयोग के अन्तर्गत है। क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में परिक्षितगढ़ विकास खण्ड में कुल प्रतिवेदित के सार्वाधिक क्षेत्रफल 26.72 प्रतिशत (10,072 हेक्टेयर) भू-भाग पर वन है, वहीं सबसे कम 279 (1.39 प्रतिशत) खरखौंदा विकास खण्ड के अन्तर्गत पाया गया है।

3. चरागाह क्षेत्र- मेरठ जनपद में चरागाह क्षेत्र भी बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। तथा चरागाह के अन्तर्गत अलग से भू-क्षेत्र आवृत्त नहीं हैं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अन्य जनपदों की भांति यहाँ भी सड़कों, तालाबों, नदियों व नहरों के किनारे- किनारे पाये जाते हैं। 2015-16 की तालिका -01 व माचचित्र-01 से स्पष्ट है कि, मेरठ जनपद में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.13 (376 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर चरागाह भुमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत है। क्षेत्रीय परिपेक्ष्य में सुरूसपुर खुर्द विकास खण्ड में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 0.71 प्रतिशत (140 हेक्टेयर) भू-भाग है, वहीं सबसे कम 0.02 प्रतिशत (4 हेक्टेयर) रजपुरा विकास खण्ड का भू-भाग इस वर्ग के अन्तर्गत आता है।

4. कृषि योग्य बंजर भूमि- भूमि उपयोग के इस वर्ग के अन्तर्गत उस भूमि को समाहित किया जाता है, जो वस्तुतः कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत अधिग्रहित हो सकती है, किन्तु विशेष कारणों के परिणामस्वरूप कृषि हेतु उपयोग नहीं हो पा रही है। अतः वह क्षेत्र जो घास, वृक्ष इत्यादि के अन्तर्गत है तथा अल्प भू-अधिग्रहण प्रयासों से कृषि योग्य बनायी जा सकती है।

मेरठ जनपद में वर्ष 2015-16 कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 0.89 प्रतिशत क्षेत्रफल पर भूमि उपयोग के इस वर्ग का विस्तार है। तालिका-01 द्वारा क्षेत्रीय अवलोकन से स्पष्ट है कि, परिक्षितगढ़ विकास खण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 1.87 प्रतिशत (705 हेक्टेयर) भाग पर सर्वाधिक मिलता है। वही सबसे कम (50 हेक्टेयर) माछरा विकासखण्ड के अन्तर्गत मिलता है, जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.26 प्रतिशत क्षेत्रफल पर विस्तृत है।

तालिका-01 मेरठ जनपद में विकास खण्डवार भूमि उपयोग (हेक्टेयर में) - 2015-16

वर्ष /विकासखण्ड	कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल	वन	कृष्य बेकार भूमि	वर्तमान परती	अन्य परती	ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि	कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि	चरा गाह	उद्यानों वृक्षों एवम् झाडिया का क्षेत्रफल
1	2	3	4	5		6	7 8	9	10
2013-14	273005	21314	2514	4808	2719	2231	43423	414	222
2014-15	273005	21314	2432	4747	2427	3387	43503	376	197
2015-16	273005	21314	2432	4747	2427	3387	43503	376	197
विकास खण्डवार 2015-16									
1. सरूसपुर खुर्द	19462	520	240	406	195	191	2707	414	10
2. सरधना	18321	460	74	630	140	126	2949	66	9
3. दौराला	18863	330	74	399	108	299	2682	32	21
4. मवाना कठ्ठा	20581	951	74	196	40	115	2716	5	21
5. हस्तिनापुर	34039	3762	348	963	370	132	6980	13	40
6. परिक्षितगढ़	37686	10072	705	468	295	1013	4152	8	57
7. माढरा	18597	633	50	68	50	64	2656	5	6
8. रोहटा	18033	533	103	268	139	213	2717	10	5
9. जानी खुर्द	18151	799	103	143	123	147	2677	21	6
10. मेरठ	14740	938	251	388	299	310	3062	52	5
11. रजपुरा	18904	680	99	221	122	188	2486	4	6
12. खरखोदा	19999	279	98	222	121	214	2663	7	7
योग ग्रामीण	257376	19957	2219	4372	2002	3012	38447	363	193
योग नगरीय	15629	1357	213	375	425	375	5056	13	4
योग जनपद	273005	21314	2432	4747	2427	3387	43503	376	197

5. परती भूमि- इस भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत उस भू-क्षेत्र को रखा जाता है जिसकी उर्वरता प्रतिवर्ष शस्य उगाने योग्य नहीं है तथा कृषकों द्वारा एक या एक से अधिक वर्षो के लिए शस्य विहीन छोड़ दिया जाता है, जिससे कि प्राकृतिक रूप से इसकी उर्वरता में वृद्धि हो सके। इस आधार पर इस भूमि उपयोग वर्ग को दो भागों विभाजित में किया जाता है-

(i) वर्तमान परती भूमि- इस भूमि के अन्तर्गत वह भूमि क्षेत्र आता है, जो एक वर्ष तक छोड़ी गई है। मेरठ जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 1.73 (4,747 हेक्टेयर) भू-भाग पर इसका विस्तार मिलता है। तालिका-01 व मानचित्र-01 से स्पष्ट है कि, सर्वाधिक हस्तिनापुर विकासखण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 2.82 (963 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर परती भूमि का विस्तार है, वहीं सबसे कम 0.36 (68 हेक्टेयर) क्षेत्रफल माछरा विकास खण्ड में पाया जाता है।

(ii) पुरानी परती भूमि- इस भूमि के अन्तर्गत वह भूमि क्षेत्र आता है जो एक से अधिक वर्षों के लिए परती छोड़ी गई है। मेरठ जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.88 प्रतिशत (2,427) भू-भाग पर इसका विस्तार मिलता है। तालिका-01 व मानचित्र-01 से स्पष्ट है कि, सर्वाधिक हस्तिनापुर विकासखण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 1.08 (370 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर अन्य परती भूमि का विस्तार है। सबसे कम 0.19 प्रतिशत (40 हेक्टेयर) मवाना कठ्ठा विकासखण्ड के क्षेत्रफल पर पाया जाता है।

6. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि- जिन क्षेत्रों में भूमि उच्च भूमि जल स्तर के कारण लवण प्रभावित अर्थात ऊसर है तथा किसी भी प्रकार की वनस्पति को उगाने की क्षमता नहीं रखती है, उन क्षेंत्रों को ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के अन्तर्गत रखा जाता है। जनपद मेरठ के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 1.24 प्रतिशत (3,387 हेक्टेयर) भू-भाग पर इसका विस्तार है। वर्ष 2015-16 में तालिका-01 व मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के विस्तार में पर्याप्त क्षेत्रीय विशेषताऐं पायी जाती हैं जहाँ सर्वाधिक परिक्षितगढ़ तथा मेरठ विकासखण्डों में इसका विस्तार क्रमशः 2.68 प्रतिशत (1,013 हेक्टेयर) तथा मेरठ विकासखण्ड के 2.10 प्रतिशत (310 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर है। वहीं सबसे कम 0.34 प्रतिशत (64 हेक्टेयर) क्षेत्रफल माछरा विकासखण्ड में पाया जाता है।

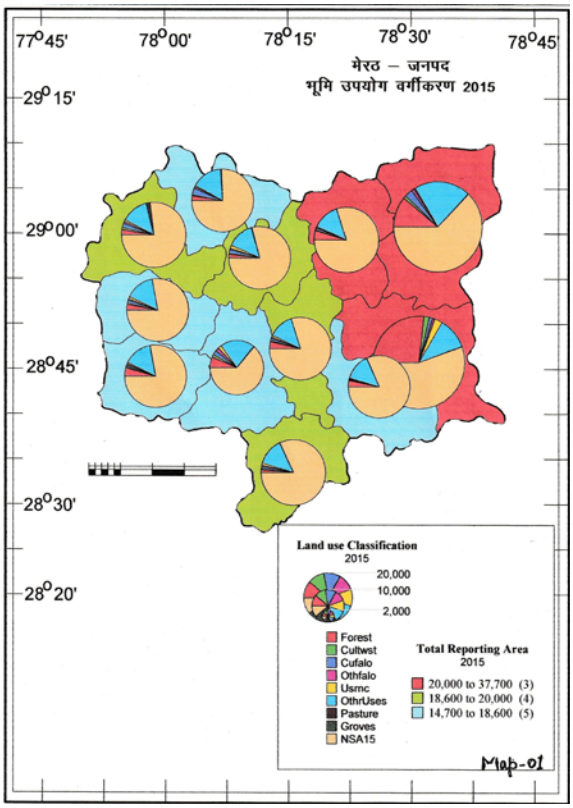

7. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि- इस भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत विशेषत: अधिवास एवं सांस्कृतिक कार्यों में प्रयुक्त भूमि, धरातलीय विषमता के कारण उपयोग में न लाये जाने योग्य भूमि, जलमग्न भूमि व राजस्व विभाग के द्वारा छोड़ी गई भूमि आदि सम्मलित है इस दृष्टि से वर्तमान समय में यह भूमि उपयोग वर्ग अधिवासीय क्षेत्र के आस-पास की कृषित भूमि को निगलता हुआ प्रतीत होता है। अत: भूमि उपयोग के इस वर्ग का विस्तार बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2015-16 में मेरट जनपद के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 15.93 प्रतिशत (43,503 हेक्टेयर) भू-भाग पर कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि है। तालिका-01 व मानचित्र-01 के अवलोकन से जनपद की क्षेत्रीय विषमता स्पष्ट होती है कि, सर्वाधिक परिक्षितगढ़ विकास खण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 11.01 प्रतिशत (4,152 हेक्टेयर) भू-भाग पर इस भूमि उपयोग वर्ग का विस्तार है। वहीं सबसे कम 0.13 (18,904 हेक्टेयर) क्षेत्रफल रजपुरा विकास खण्ड में पाया जाता है।

8. शद्ध कृषि क्षेत्र- कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले क्षेत्र के भूमि उपयोग में शुद्ध कृषित क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण कारक है। इससे अधिक दूसरा कोई तत्व नहीं है। विभिन्न ग्राम एवं तहसीलों में दीर्घकालिक कृषिगत आवरण भूमि की उर्वरा शक्ति, जनसंख्या का भूमि संसाधन पर दबाब अर्थव्यवस्था में विविधिकरण के आभाव तथा सिंचाई का वृहद एवं गहन प्रयोग शुद्ध कृषि के उच्च अनुपात में परिणत हुआ है। भूमि उपयोग के इस महत्वपूर्ण कारक के उपयोग के आधार पर ही किसी भी क्षेत्र की कृषि प्रकारिकीय निर्धारित की जा सकती है, यथा- धान्य प्रधान वाणिज्यिक, निर्वाहक एवं पशुपालन कृषि व्यवस्था आदि।

तालिका-2

वर्ष /विकासखण्ड	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	एक बार से से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	सकल बोया गया क्षेत्रफल				गन्ने के लिए तैयार की गयी भूमि	शुद्ध सिचिंत क्षेत्रफल	सकल सिचिंत क्षेत्रफल
			कुल	रबी	खरीफ	जायद			
1	11	12	13	14	15	16	17	18	19
2013-14	195360	97924	293284	96187	176881	20213	3	195357	293281
2014-15	194622	103789	298411	97344	180772	20295	0	194622	298411
2015-16	194622	103789	298411	97344	180772	20295	0	194622	298411
विकास खण्डवार 2015-16									
1. सरूसपुर खुर्द	15653	6712	21765	8007	12714	1044	0	15053	21765
2. सरघना	13867	5156	19023	6399	11542	1082	0	13867	19023
3. दौराला	14918	5090	20008	6720	12228	1060	0	14918	20008
4. मवाना	16463	6388	22851	6618	14849	1384	0	16463	22851
5. हस्तिनापुर	21431	7502	28933	10079	17132	1722	0	21431	28933
6. परिक्षित गढ़	20916	7906	28822	9442	18126	1254	0	20916	28822
7. माछरा	15668	7294	22359	7488	12458	2413	0	15065	22359
8. रोहटा	14045	5880	19925	7090	11675	1160	0	14045	19925
9. जात्री खर्द	14132	6824	20956	7231	11458	2267	0	14132	20956
10. मेरठ	9435	6526	15961	6633	7356	1972	0	9435	15961
11. रजपुरा	15098	6392	21490	8199	11933	1358	0	15098	21490
12. खरखौदा	16388	8480	24868	9527	13519	1822		16388	24868
योग ग्रामीण	186811	80150	266961	93433	154990	18538	0	186011	266961
योग नगरीय	7811	23639	31450	3911	25782	1757	0	7811	31450
योग जनपद	194622	103787	298411	97344	180772	20295	0	194622	298411

मेरठ जनपद में वर्ष 2000-01 में 2,02,420 हेक्टेयर क्षेत्रफल (कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 73.34 प्रतिशत) शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत आता था जो वर्ष 2015-16 तक कमी के साथ 1,94,622 हेक्टेयर हो गया, जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 71.28 प्रतिशत है। इस प्रकार विगत 15 वर्षों में 7798 हेक्टेयर क्षेत्रफल की कमी अंकित की गयी है।

9. उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र- मेरठ जनपद में उद्यान, वृक्ष व झाड़ियों का क्षेत्रफल बहुत अल्प मात्रा में मिलता है। इनके लिए अलग से भू-क्षेत्र आवृत्त नहीं है। ये केवल सड़कों, तालाबों, नदियों तथा नहरों के किनारे-किनारे पट्टीनुमा आकार में पाये जाते हैं। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015-16 में मेरठ जनपद में कुल प्रतिवेतिद क्षेत्रफल के 0.07 प्रतिशत (.197 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर उद्यानों वृक्ष एवं झाड़ियों का क्षेत्र इस भू-भाग के अन्तर्गत है। तालिका-01 व मानचित्र-01 के क्षेत्रीय अवलोकन से स्पष्ट है कि, परिक्षितगढ़ विकास खण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 0.15 प्रतिशत (57 हेक्टेयर) भू-भाग पर इस भूमि वर्ग का विस्तार है। वहीं सबसे कम मेरठ विकास में 0.03 प्रतिशत (5 हेक्टेयर) क्षेत्रफल इस वर्ग के अन्तर्गत है।

शुद्ध व सकल बोये गये और सकल सिंचित क्षेत्र का अवलोकन

तालिका-02 तथा मानचित्र-02 से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015-16 में मेरठ जनपद में शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल 1,94,622 हेक्टेयर है, जिसमें विकासखण्डवार देखा जाये तो सर्वाधिक शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल परिक्षितगढ़ विकास खण्ड में 20,916 हेक्टेयर तथा सबसे कम मेरठ विकास खण्ड में 9,435 हेक्टेयर है। इसी प्रकार जनपद में सकल सिंचित तथा सकल बोया गया क्षेत्रफल 2,98,411 हेक्टेयर है, इसमें विकासखण्डवार देखा जाये तो सर्वाधिक सकल बोया गया क्षेत्रफल हस्तनापुर विकासखण्ड में 28,933 हेक्टेयर (9.69 प्रतिशत) है, क्रमशः परिक्षितगढ़ 28,822 हेक्टेयर (9.65 प्रतिशत) तथा रजपुरा विकासखण्ड 24,868 हेक्टेयर (8.33 प्रतिशत) का स्थान है।

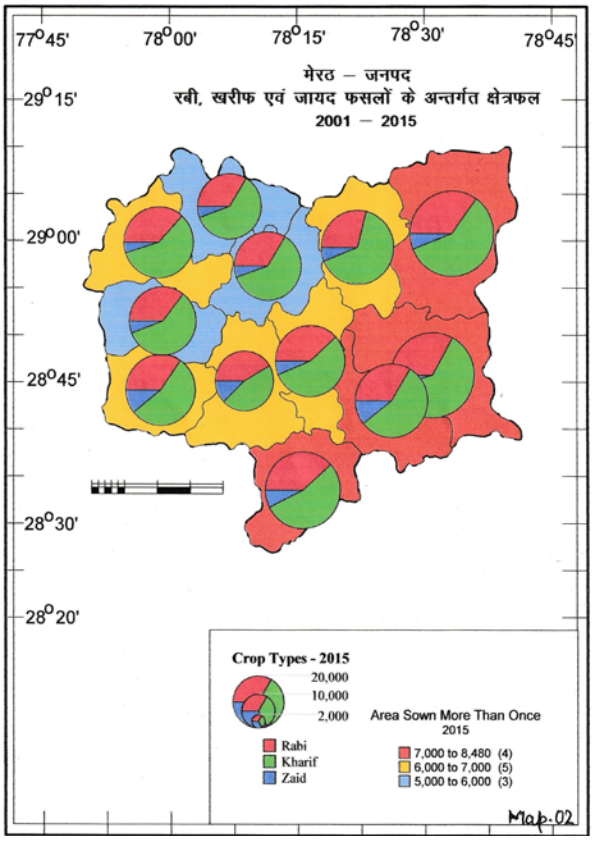

वर्ष 2015-16 में शुद्ध कृषित क्षेत्र के क्षेत्रीय प्रतिरूप को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जाता सकता है-

1. उच्च अनुपात के कृषित क्षेत्र- शुद्ध कृषित क्षेत्र के इस वर्ग के अन्तर्गत जनपद के 82 प्रतिशत से अधिक अनुपात वाले विकास खण्ड सम्मलित हैं। इस वर्ग में केवल एक विकासखण्ड माछरा सम्मिलत है, जिसका शुद्ध कृषित क्षेत्र 84.23 प्रतिशत है।

2. मध्य अनुपात के कृषित क्षेत्र- 77-82 प्रतिशत शुद्ध कृषित वाले सात विकास खण्ड इस वर्ग में सम्मिलत हैं इसमें जनपद के पश्चिमी भाग में जानी खुर्द (77.85 प्रतिशत), दक्षिण में खरखौंदा (81.94 प्रतिशत), पश्चिमी भाग में रौहटा (77.88 प्रतिशत) तथा सरूरपुर खुर्द (77.34 प्रतिशत), उत्तर में दौराला (79.68 प्रतिशत), उत्तरी-पूर्वी भाग में मवाना कठ्ठा (79.99 प्रतिशत) तथा दक्षिण-पूर्व में रजपुरा (79.86 प्रतिशत) विकासखण्ड सम्मिलित हैं, जो 60 प्रतिशत क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

3. निम्न अनुपात के कृषित क्षेत्र- 72-77 प्रतिशत शुद्ध कृषित वाला एक विकास खण्ड इस वर्ग में सम्मिलित है, जिसमें जनपद के उत्तरी-पश्चिमी भाग में स्थित सरधना (75.68 प्रतिशत), विकासखण्ड इस वर्ग का एकमात्र प्रतिनिधित्वकर्ता है।

4. अति निम्न अनुपात के कृषित क्षेत्र- 72 प्रतिशत से कम शुद्ध कृषित वाले तीन विकासखण्ड इस वर्ग में सम्मिलित हैं, जो 25 प्रतिशत क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसमें जनपद के उत्तरी-पूर्वी भाग में हस्तिनापुर (62.96 प्रतिशत), मध्य भाग में मेरठ (64.00 प्रतिशत) तथा पूर्वी भाग में परिक्षितगढ़ (55.50 प्रतिशत) विकासखण्ड सम्मिलित हैं।

विकासखण्ड	शुद्ध कृषित क्षेत्र (प्रतिशत में)				
	2000-01	2005-06	2010-11	2015-16	वर्ष 2000-01 एवं 2015-16 के मध्य परिवर्त
1. सरूरपुर खुर्द	80.52	79.34	78.94	77.34	-3.18
2. सरधना	80.19	78.66	77.58	75.68	-4.51
3. दौराला	82.89	81.17	80.79	79.68	-3.21
4. मवाना कठ्ठा	82.74	81.46	81.10	79.99	-2.75
5. हस्तिनापुर	65.11	64.63	64.26	62.96	-2.15
6. परिक्षित गढ़	53.39	55.49	55.78	55.50	2.11
7. माछरा	83.95	82.89	81.94	84.23	0.28
8. रोहटा	81.03	79.91	79.38	77.88	-3.15
9. जानी खुर्द	80.39	79.72	79.10	77.85	-2.54
10. मेरठ	67.12	66.76	66.31	64.00	-3.12
11. रजपुरा	80.85	79.93	80.81	79.86	-0.99
12. खरखौदा	84.46	83.22	82.83	81.94	-2.52
योग ग्रामीण	74.43	74.07	73.81	72.58	-1.85
योग नगरीय	56.05	55.19	50.50	49.97	-6.08
योग जनपद	73.34	72.94	72.46	71.28	-2.66

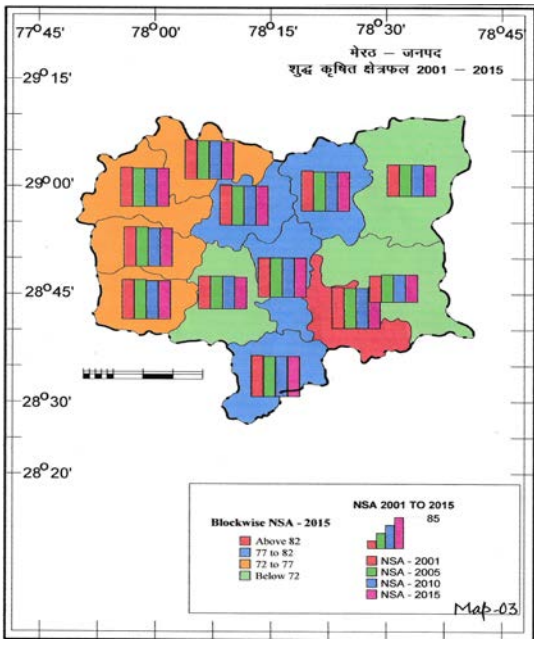

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि, जनपद के अन्तर्गत भूमि उपयोग संरचना वर्ष 2000-01 से 2015-16 के मध्य परिवर्तनशील रही है स्पष्ट जिनमें वन, चरागाह, एवं उद्यान, परती भूमि, कृषि योग्य बंजर भूमि व ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के क्षेत्रफल में कमी दर्ज की गई है, वहीं शुद्ध कृषित क्षेत्र में निरंतर कमी पायी गई है। जो कि जनपद में हो रहे कृषि के निरंतर विकास की द्योतक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सिंह जयदेव (2005):- मैनपुरी जनपद में कृषि स्वरूप एवम् भूमि वहन क्षमता का भौगोलिक विश्लेषण अप्रकाशित शोध ग्रन्थ डा० बी० आर० वि० वि० आगरा, पृष्ठ-75
2. Chauhan D.S. (1961) :- "Studies in Utilization of Agricultural Land " Agrawal & Co. Agra. PP-22-24
3. Buck J.N. (1972) :- " Land Utilization Theory and Practice New Delhi, P-3.
4. Mandal R.B. (1972) " Land Utilization Theory & Practice " New Delhi, P-3.
5. Nanavali M.B. (For World) (1957):- " Reading in Land Utilization " The Indian Society of Agricultural Economics Bombey P-32.
6. Stamp L.D. (1960) : "Land of Britain its use & misuse London".
7. Shafi M. (1961) Field work in land use, Research under Indian Conditions,Geographical Magazine, Bombay, Volume 8 & 9. Shafi M. (1961), Land Utilization in Eastern.
8. Shafi M. (1961), Land Utilization in Eastern in Uttar Pradesh
9. Hanumant Rao, CH. (1970): Farm Size and Credite Policy: Economic & Political Weekly, Review of Agricultural P-26.
10. Mohammad, Noor (1970) : Agricultural Land use in India, Delhi Inter India Publication.
11. Singh, Jasbir and Dillon, S.S. (1984): " Agricultural Geography" New Delhi.

उत्तराखंड में ग्रामीण होमस्टे: शांति और सांस्कृतिक समागम का प्रवेश द्वार

राजीव सेमवाल

पीएचडी स्कॉलर, पर्यटन विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हलद्वानी, उत्तराखंड, भारत

डॉ० अखिलेश सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, पर्यटन विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हलद्वानी, उत्तराखंड, भारत

अमूर्त

उत्तर भारत में स्थित उत्तराखंड अपने खूबसूरत पहाड़ों, हरे-भरे जंगलों और समृद्ध संस्कृति के लिए जाना जाता है। ग्रामीण होमस्टे सांस्कृतिक तल्लीनता और पर्यटकों के आकर्षण से दूर शांति प्रदान करते हैं। होमस्टे आगंतुकों को शहर से बाहर निकलने और जीवंत स्थानीय संस्कृति का अनुभव करने की अनुमति देते हैं। उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे आगंतुकों को स्थानीय स्वदेशी संस्कृति का अनुभव करने की अनुमति देते हैं। यह अध्ययन सांस्कृतिक संवर्धन और शांति के लिए ग्रामीण होमस्टे के महत्व की जांच करता है। आगंतुक पीढ़ियों पुराने स्वदेशी रीति-रिवाजों, परंपराओं और कला रूपों का अनुभव कर सकते हैं। यह प्रामाणिक अनुभव स्थानीय समुदाय की समझ और प्रशंसा को बढ़ाता है। बर्फ से ढकी चोटियाँ, टेढ़ी-मेढ़ी नहरें और अछूते जंगल उत्तराखंड के ग्रामीण इलाकों को आधुनिक जीवन से दूर कर देते हैं। विश्राम, नवीनीकरण और प्रकृति के साथ पुनः जुड़ाव ग्रामीण होमस्टे में पाया जा सकता है। इससे यात्रियों को शांति मिलती है। ग्रामीण होमस्टे पारिस्थितिक पर्यटन और सांस्कृतिक विसर्जन को सक्षम बनाते हैं। ये आवास मेहमानों को स्वदेशी संरक्षण प्रयासों में सहायता करने और उनके पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने की अनुमति देते हैं। मेजबान परिवारों का गर्मजोशी भरा आतिथ्य और व्यक्तिगत देखभाल एक स्वागत योग्य माहौल बनाते हैं जो मेहमानों को घर जैसा महसूस कराता है। उत्तराखंड में ग्रामीण होमस्टे के दौरान, आगंतुक खूबसूरत गांवों का पता लगा सकते हैं, स्थानीय त्योहारों में भाग ले सकते हैं, पारंपरिक व्यंजनों का आनंद ले सकते हैं और खेती, शिल्प और कला सीख सकते हैं। उत्तराखंड का ग्रामीण क्षेत्र ट्रैकिंग, योग, ध्यान और प्रकृति की सराहना के लिए बहुत अच्छा है क्योंकि इसकी शांति, विश्राम, कायाकल्प और आत्म-प्रतिबिंब को बढ़ावा देती है। बुनियादी ढांचे के विकास, विपणन और सामुदायिक भागीदारी की आवश्यकता के बावजूद, उत्तराखंड में ग्रामीण होमस्टे यात्रियों को शांतिपूर्ण पलायन, प्रामाणिक सांस्कृतिक अनुभव और टिकाऊ पर्यटन प्रदान करते हैं। आगंतुक होमस्टे के माध्यम से स्थायी अनुभव बना सकते हैं और क्षेत्र की समृद्ध विरासत की सराहना कर सकते हैं।

1. परिचय

भारत के उत्तर में स्थित हिमालयी राज्य उत्तराखंड जो की भारत ही नहीं बल्कि पुरे विश्व में अपने दूर-दूर तक फैले हुए खूबसूरत पहाड़ों, हरे-भरे जंगलों और सांस्कृतिक व धार्मिक संसाधनों व धरोहरों के लिए प्रसिद्ध है। प्राकृतिक, सांस्कृतिक व धार्मिक आकर्षणों के अलावा यह खूबसूरत राज्य शांति प्रिय और सांस्कृतिक विसर्जन की चाह रखने वाले यात्रियों को भी अपनी ओर काफी आकर्षित

करता रहा है और इस प्रकार के पर्यटक अमूमन यहाँ होमस्टे में रहना पसंद करते हैं। क्यूंकि होमस्टे ना केवल उन्हें घर की तरह भोजन और रहने की सुविधा प्रदान करते है बल्कि इसके साथ-साथ उत्तराखंड की संस्कृति को भीतर तक समझने में भी सहयता करते है। उत्तराखंड के सुरम्य गांवों में स्थित होमस्टे आगंतुकों को भागदौड़ भरी महानगरीय जीवन शैली से बचने, तनावमुक्त रहने और क्षेत्र की समृद्ध और आलोलिक संस्कृति का अनुभव करने का भी अवसर प्रदान करते हैं।

ग्रामीण होमस्टे यात्रियों को स्वदेशी लोगों के दैनिक जीवन का अनुभव करने का अवसर प्रदान करते हैं। यह अध्ययन शांति और संस्कृति की ही नहीं बल्कि उत्तराखंड में ग्रामीण होमस्टे के मूल्य और उसके आकर्षण की भी जांच करता है।

उत्तर भारत में स्थित उत्तराखंड को "देवभूमि" या "देवताओं की भूमि" भी कहा जाता है। प्राचीन मंदिर, आश्रम और तीर्थ स्थल पर्यटकों को क्षेत्र की आध्यात्मिकता की ओर हमेशा से ही आकर्षित करते रहे हैं। धार्मिक उत्साह के अलावा उत्तराखंड के ग्रामीण लोग अपनी अनूठी संस्कृति को काफी जीते हैं। पर्यटक ग्रामीण होमस्टे में ग्रामीणों के साथ रहकर स्थानीय संस्कृति, रीति-रिवाजों और परंपराओं का पता लगा सकते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से पीढ़ियों पुराने कला रूपों, अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

उत्तराखंड के ग्रामीण इलाके आधुनिक जीवन शैली से काफी अछूते हैं। थका हुआ यात्री बर्फ से ढके हुए पहाड़ों, घुमावदार नदियों और प्राचीन जंगलों से भरे शांत इलाके में आराम कर सकता है। इन प्राकृतिक आश्चर्यों और आकर्षणों से घिरे ग्रामीण होमस्टे में पर्यटक आराम करके फिर से तरोताजा हो सकते है। इस प्रकार के होमस्टे प्रकृति के साथ फिर से जुड़ने, मन को शांत करने और ध्यान को बढ़ने में सहायता करते है।

यह अध्ययन उत्तराखंड के ग्रामीण इलाको में फैले होमस्टे और उसके संचालको को जानने और समझने के लिए किया गया है। इसमें सांस्कृतिक विसर्जन, प्रामाणिक मुठभेड़ों और सस्टेनेबल पर्यटन के फायदों की भी जांच की जायेगी। आगे यह अध्ययन मेहमानों की होमस्टे में रहने के समय की जाने वाली गतिविधियों की जांच के साथ-साथ स्थानीय बाजारों, पारंपरिक भोजन व्यवस्था, खेती और ग्रामीण उत्सवों को जानने और समझने में भी काफी सहायता करेगा।

2. उत्तराखंड राज्य का संछिप्त परिचय

उत्तर भारत में हिमालय की गोद में स्थित उत्तराखंड राज्य में सुंदर दृश्य और जीवंत संस्कृति को देखा जा सकता है। इस राज्य की सीमा तिब्बत, नेपाल, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश से लगती है। पश्चिम में गढ़वाल और पूर्व में कुमाऊँ क्षेत्र मिलकर उत्तराखंड राज्य बनाते हैं।

उत्तराखंड में बर्फ से ढके पहाड़, खूबसूरत घाटियाँ, बहती धाराएँ, शांतिपूर्ण झीलें और घने जंगल हैं। भारत की सबसे ऊंची पर्वत छोटी नंदा देवी, त्रिशूल और कामेट, दुनिया भर से पर्वतारोहियों और रोमांच की चाह रखने वाले लोगो को अपनी और आकर्षित करते हैं।

उत्तराखंड राज्य चार धाम तीर्थ स्थलों यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ का मुख्य प्रवेश द्वार भी है। हिंदू पवित्र स्थान आध्यात्मिक जिज्ञासुओं और श्रद्धालुओ को अपनी और अनंतकाल से ही अपनी और आकर्षित करते हैं।

उत्तराखंड की अनूठी सांस्कृतिक समृद्धि सभी को मंत्रमुग्ध कर देती है। प्रत्येक जातीय समूह के अपने अलग-अलग रीति-रिवाज, परंपराएँ, संगीत, नृत्य और पहनावे होते हैं। गढ़वाली और कुमाऊँनी संस्कृतियाँ, जो अपने जीवंत अतीत के लिए प्रसिद्ध हैं, इस क्षेत्र पर हावी हैं।

ग्रामीण होमस्टे में रहकर पर्यटक उत्तराखंड की संस्कृति को जानने और समझने की कोशिश करते हैं। पर्यटक गांवों में उत्तराखंडियों की गर्मजोशी, सरलता और मित्रता का अनुभव कर सकते हैं। इनमे रहकर यात्रियों को स्थानीय लोगों से नजदीक से मिलने का मौका मिलता हैं, वे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग ले सकते हैं, पारंपरिक शिल्प सीख सकते हैं और ग्रामीण होमस्टे में स्थानीय व्यंजनों का भी लुत्फ उठा सकते हैं।

अपने शांतिपूर्ण और प्राकृतिक वातावरण के कारण उत्तराखंड ग्रामीण होमस्टे के लिए आदर्श है। यात्रियों को पूरी तरह से प्रकृति में डूबने का मौका मिलता है, वे साफ पहाड़ी हवा में सांस ले सकते हैं और हिमालय के अदभुत दृश्यों का भी आनंद उठा सकते हैं। ग्रामीण जीवन लोगों को आधुनिक जीवन से बचने और एक सरल, संतुलित जीवन शैली का आनंद उठाने का मौका देता है।

सस्टेनेबल पर्यटन के प्रति उत्तराखंड की प्रतिबद्धता इसे जागरूक यात्रियों के लिए आकर्षक का केंद्र बनाती है। उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे प्राकृतिक और सांस्कृतिक संरक्षण, पर्यावरण के प्रति लोगो में प्रेम और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देते हैं और इसके साथ-साथ ये क्षेत्र की प्राकृतिक और सांस्कृतिक संपदा की रक्षा भी करते है।

3. ग्रामीण होमस्टे का अर्थ और उसके लाभ

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित होमस्टे पर्यटकों को दूरदराज के स्थानों में स्वदेशी परिवारों के साथ रहने और स्थानीय संस्कृति का पूरी तरह से समझने और अनुभव करने का अवसर प्रदान करते हैं (झांग एट अल 2006)। ग्रामीण होमस्टे होटल और रिसॉर्ट की तुलना में अधिक प्रामाणिक और व्यक्तिगत अनुभव प्रदान करते हैं। इस प्रकार के आवास पर्यटकों को पर्यटक क्षेत्र से गहराई से जुड़ने में सहयता प्रदान करते है।

सांस्कृतिक विसर्जन की चाह रखने वाले पर्यटकों के लिए ग्रामीण होमस्टे ठहरने के अन्य विकल्पों की तुलना में काफी अच्छा अवसर प्रदान करता है। होमस्टे आगंतुकों को स्थानीय संस्कृति को प्रत्यक्ष रूप से देखने और अनुभव करने की अनुमति प्रदान करता है। होमस्टे के माध्यम से वे मेजबानों से जुड़ सकते हैं, सामुदायिक गतिविधियों में भाग ले सकते हैं और स्थानीय संस्कृति के बारे में जान सकते हैं (लिंच, 1999)। सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर्यटकों और स्थानीय लोगो में आपसी सम्बन्ध को काफी मजबूत कर देता है और कई बार तो पिछले कढ़वे अनुभवों को भुलाने में सहायता प्रदान करता है।

ग्रामीण होमस्टे होटल और रिसॉर्ट की तुलना में अधिक वास्तविक अनुभव प्रदान करते हैं। पर्यटक स्थानीय व्यंजनों का आनंद ले सकते हैं अपने मेजबानों से स्वदेशी हस्तशिल्प व कला के बारे में जान और समझ सकते हैं और इसके साथ-साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल भी हो सकते हैं (सु, 2018)। स्थानीय संस्कृति और परिवेश में घुल मिलकर यात्रा करने से यात्रा का अनुभव काफी सकारात्मक और यादगार बन जाता है।

ट्रेवल एजेंट्स के द्वारा ग्रामीण होमस्टे को उनकी पर्यावरणीय स्थिरता के लिए तेजी से महत्व दिया जा रहा है। उत्तराखंड के बहुत से ग्रामीण लोग अपने पर्यावरण को काफी महत्व देते हैं और इसे संरक्षित करने के लिए भी काफी काम करते हैं (आनंद एट अल., 2012)। ग्रामीण होमस्टे आमतौर पर नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग करते हैं, उचित कचरा निपटान को बढ़ावा देते हैं और स्थानीय संरक्षण के लिए किये गए प्रयासों का समर्थन भी करते हैं। यात्री होमस्टे में ठहर कर अपने द्वारा प्रकृति पर पड़ने वाले नाकारात्मक प्रभाव को काफी हद तक कम और स्थानीय समुदाय की मदद भी कर सकते हैं।

ग्रामीण होमस्टे सांस्कृतिक तल्लीनता, पर्यावरणीय स्थिरता और इसके अलावा भी बहुत कुछ प्रदान करते हैं (यूलियाना सैम्सुद्दीन और जरीफा मलिकी, 2015)। उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्र अछूते प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद उठाने का एक सुनहरा अवसर प्रदान करते हैं। होमस्टे में मेजबान परिवारों के द्वारा गर्मजोशी से किया गया स्वागत और व्यवहार यात्रियों को घर जैसा एहसास करता है। ग्रामीण होमस्टे अक्सर आगंतुकों को विशिष्ट अतिथि का अहसास कराने के लिए उनका व्यक्तिगत ध्यान और अनुभव प्रदान करते हैं

4. ग्रामीण उत्तराखंड में सांस्कृतिक समागम

उत्तराखंड की संस्कृति अनमोल है। ग्रामीण क्षेत्रों में परंपराएं, कला और अनुष्ठान राज्य की संस्कृति को संरक्षित करते हैं। होमस्टे के माध्यम से ग्रामीण उत्तराखंड और इसकी समृद्ध संस्कृति की खोज करें।

उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे अपने स्थानीय उत्सवों के लिए जाने जाते हैं (जयारा, 2017)। ग्रामीण निवासी त्योहारों के आयोजन और प्रस्तुतिकरण में गर्व महसूस करते हैं। ग्रामीण होमस्टे के मेहमान होली, दिवाली, नवरात्रि और उत्तरायणी मना सकते हैं। ग्रामीण उत्तराखंड समारोहों में जीवंत अनुष्ठान, नृत्य, संगीत और धार्मिक समारोह शामिल होते हैं। ये आयोजन क्षेत्रीय सांस्कृतिक उत्साह को प्रदर्शित करते हैं।

ग्रामीण होमस्टे में पारंपरिक गतिविधियाँ सांस्कृतिक तल्लीनता प्रदान करती हैं। उत्तराखंड के गांवों में स्थानीय रीति-रिवाज बचे हुए हैं। आगंतुकों के लिए जैविक खेती, पशुधन देखभाल, चीनी मिट्टी की चीजें, बुनाई और लकड़ी पर नक्काशी उपलब्ध है। लोक नृत्यों और पारंपरिक खाना पकाने में भाग लें। गहन गतिविधियाँ क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को उजागर करती हैं और पीढ़ियों पुराने कौशल सिखाती हैं।

ग्रामीण होमस्टे संस्कृति विसर्जन के लिए स्थानीय लोगों की आवश्यकता होती है। मैत्रीपूर्ण मेजबान परिवार गहरी बातचीत को बढ़ावा देते हैं। अतिथि-मेजबान संवाद मेहमानों को उनके जीवन और संस्कृतियों के बारे में बात करने देते हैं। रीति-रिवाज, मान्यताएँ और लोककथाएँ समुदाय की जीवनशैली को प्रकट करती हैं। ग्रामीण-अतिथि की बातचीत होमस्टे से अधिक हो सकती है। इससे आगंतुकों को ग्रामीण उत्तराखंड संस्कृति को बेहतर ढंग से समझने के लिए स्थानीय किसानों, शिल्पकारों और समुदाय के नेताओं से मिलने का मौका मिलता है।

ग्रामीण होमस्टे अक्सर सांस्कृतिक प्रदर्शन या कला कक्षाएं आयोजित करते हैं। गढ़वाली और कुमाऊंनी जातीय नृत्य, क्षेत्रीय संगीत और पारंपरिक वाद्ययंत्र की शिक्षा आगंतुकों का इंतजार करती है। ये संभावनाएं उत्तराखंड की संस्कृति को और गहरा करती हैं।

5. ग्रामीण उत्तराखंड क्षेत्र का सौंदर्य

उत्तराखंड के ग्रामीण स्थान शहरी जीवन से शांति प्रदान करते हैं। क्षेत्र की शांति और प्राकृतिक सुंदरता ध्यान और विश्राम के लिए आदर्श है। उत्तराखंड के देहाती होमस्टे आश्चर्यजनक हैं।

हैरान कर देते हैं उत्तराखंड के पहाड़. बर्फ से ढकी नंदा देवी, त्रिशूल और पंचाचूली क्षितिज पर हावी हैं। साहसी लोगों को हिमालय की खड़ी ढलानें और गहरी खाइयाँ बहुत पसंद आती हैं। घुमावदार नदियों वाली घाटियाँ ग्रामीण उत्तराखंड को शांत बनाती हैं। क्षेत्र की गंगा, यमुना, अलकनंदा और सहायक नदियाँ एक सुखद ध्वनि परिदृश्य बनाती हैं। इन नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में ध्यान, विश्राम और पर्यावरण की सराहना उत्तम है।

उत्तराखंड में घने जंगल हैं। ठंडे, सुगंधित देवदार, ओक, और रोडोडेंड्रोन वुडलैंड्स। वुडलैंड्स का समृद्ध पौधा और पशु जीवन पर्यावरण को संतुलित और आरामदायक बनाता है। जंगल के रास्ते और पहाड़ी हवा आराम देने के लिए जाने जाते हैं।ग्रामीण उत्तराखंड में विशाल, अपरिवर्तित घास के मैदान और अल्पाइन चरागाह हैं। सेटिंग में जंगली फूलों से ढकी ढलानें और गायें हैं। नीला आसमान शांतिपूर्ण. खुली जगहें इत्मीनान से टहलने, खुले में भोजन और वन्य जीवन की सराहना प्रदान करती हैं।

ग्रामीण उत्तराखंड विश्राम, पुनर्जनन और चिंतन के लिए बहुत अच्छा है। प्रकृति यात्रियों को शांत करती है। ग्रामीण उत्तराखंड शांति को बढ़ावा देता है। यह वातावरण मन, शरीर और आत्मा को तरोताजा कर देता है। ग्रामीण जीवन ध्यान को बढ़ावा देता है। प्रकृति से दोबारा जुड़ने के लिए, मेहमान ग्रामीण जीवन का अनुभव करते हैं और प्रौद्योगिकी से अलग हो जाते हैं। प्रकृति की सुंदरता धीरे-धीरे जीवन की छोटी-छोटी खुशियों के प्रति सावधानी और कृतज्ञता को बढ़ावा देती है।

उत्तराखंड के ग्रामीण इलाके ट्रैकिंग, योग, ध्यान और नदियों या पेड़ों के किनारे शांत क्षण प्रदान करते हैं। उपरोक्त गतिविधियाँ लोगों को आराम करने, संतुलन बनाने और खुद से दोबारा जुड़ने में मदद करती हैं।

6. गतिविधियों और अनुभव

ग्रामीण उत्तराखंड होमस्टे संस्कृति, प्रकृति और समुदाय का अनुभव करने के कई तरीके प्रदान करते हैं। ग्रामीण होमस्टे का आनंद लें। पैदल यात्रियों को उत्तराखंड बहुत पसंद है। खड़ी ढलानों, गहरे जंगलों और सुंदर चरागाहों को पार करें। बाहरी गतिविधियाँ आश्चर्यजनक दृश्य, छिपे हुए झरने, वन्य जीवन और पहाड़ी हवा प्रदान करती हैं। उत्तराखंड ग्राम भ्रमण ग्रामीण जीवन को प्रदर्शित करता है। खूबसूरत जगहों पर जाएँ और स्थानीय लोगों से मिलें। गाँव के मंदिर, सामुदायिक भवन और खेत ग्रामीण उत्तराखंड का प्रतिनिधित्व करते हैं।

- उत्तराखंड कृषि:उगाओ, फसल काटो। यह अभ्यास लोगों को ग्रह और पारंपरिक खेती से जोड़ता है।
- खाद्य पर्यटन: होमस्टे मेजबान पर्यटकों को देशी खाना सिखाते हैं। इस पाक अनुभव में क्षेत्रीय व्यंजन सिखाये जाते हैं।
- उत्तराखंड शिल्प: स्वदेशी कारीगर चीनी मिट्टी की चीजें, कपड़ा, लकड़ी का काम और पेंटिंग सिखाते हैं। अनुभवात्मक शिक्षा संस्कृति को संरक्षित करती है और कौशल में सुधार करती है।

ग्रामीण होमस्टे सांस्कृतिक कार्यक्रमों और कार्यशालाओं की मेजबानी करते हैं। उत्तराखंड का संगीत, नृत्य और लोकगीत। लोक नृत्य, संगीत और कला कार्यशालाओं में प्रतिभागियों को शामिल किया जा सकता है। फोटोग्राफरों को उत्तराखंड बेहद पसंद है। पहाड़, नदियाँ, जंगल और वन्य जीवन फोटोजेनिक हैं। हिमालयी पक्षी प्रेमी देखते हैं। योग ग्रामीण उत्तराखंड के लिए उपयुक्त है। योग शिक्षक शांति से सिखाते हैं. ध्यान मनुष्य को प्रकृति से जोड़ता है।

7. उदाहरण मामले का अध्ययन

1. पहाड़ी हाउस: होमस्टे एक शांत वातावरण में स्थित है, जो तेज-तर्रार शहरी जीवनशैली से राहत प्रदान करता है। आगंतुकों को पहाड़ियों के सुरम्य दृश्यों की सराहना करने और आरामदायक और आकर्षक आवास में आराम करने का अवसर मिलता है। मेजबान उच्च स्तर के आतिथ्य का प्रदर्शन करते हैं, और व्यंजन स्वादिष्ट होते हैं और स्थानीय रूप से प्राप्त ताजा उपज का उपयोग करके तैयार किए जाते हैं।
2. इत्मीनान एस्टेट: विचाराधीन होमस्टे समृद्धि और प्राकृतिक परिवेश का सामंजस्यपूर्ण संयोजन प्रदान करता प्रतीत होता है। हिमालय और आसपास के जंगल मेहमानों को उनकी आश्चर्यजनक प्राकृतिक सुंदरता की सराहना करने का अवसर प्रदान करते हैं। आवास पर्याप्त जगह प्रदान करते हैं और सुरूचिपूर्ण ढंग से बनाए गए हैं, जबकि भोजन स्वादिष्ट है और जैविक सामग्री का उपयोग करके तैयार किया गया है।
3. डालर विलेज होमस्टे: होमस्टे सेब के बगीचों और देवदार के जंगलों से घिरे एक सुंदर गांव में स्थित है। आगंतुकों को कृषि प्रथाओं और पाक अनुभवों जैसी विभिन्न गतिविधियों में शामिल होकर स्वदेशी संस्कृति और जीवन शैली में डूबने का अवसर मिलता है। अध्ययन के निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि मेजबान मेहमानों के प्रति उच्च स्तर की मित्रता और आतिथ्य का प्रदर्शन करते हैं, जबकि परोसा गया भोजन प्रामाणिक और अत्यधिक स्वादिष्ट माना जाता है।
4. कानाताल होमस्टे: होमस्टे पर्यटकों की भीड़ से दूर एक शांत और एकांत स्थान पर स्थित है। आगंतुकों को पहाड़ियों और निकटवर्ती जंगलों के सुरम्य दृश्यों की सराहना करने का अवसर मिलता है। आवास की विशेषता उनकी सफाई और आराम है, जबकि व्यंजन स्थानीय रूप से प्राप्त, ताजी सामग्री से प्राप्त अपने स्वादिष्ट स्वाद के लिए उल्लेखनीय है।
5. बिनसर फॉरेस्ट होमस्टे: होमस्टे घने जंगली इलाके में स्थित है, जो मेहमानों को एक अद्वितीय और वास्तविक अनुभव प्रदान करता है। मेहमानों को हिमालय पर्वत श्रृंखला और निकटवर्ती वनों के आश्चर्यजनक दृश्यों की सराहना करने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त, वे मनोरंजक गतिविधियों में संलग्न हो सकते हैं जैसे कि पक्षी प्रजातियों का अवलोकन करना और पैदल प्राकृतिक वातावरण की खोज करना। आवासों की विशेषता गर्मजोशी भरा और लुभावना माहौल है, जबकि पाक व्यंजन केवल जैविक सामग्री का उपयोग करके तैयार किए जाते हैं और अत्यधिक स्वादिष्ट होते हैं।
6. गीता वाटिका: होमस्टे ग्वालदम के सुंदर गांव में स्थित है, जो देवदार के जंगलों और बर्फ से ढके पहाड़ों से घिरा हुआ है। आगंतुकों को कृषि प्रथाओं और पाक अनुभवों जैसी गतिविधियों में शामिल होकर स्वदेशी संस्कृति और जीवन शैली में डूबने का अवसर मिलता है। मेजबान मेहमानों के प्रति उच्च स्तर की गर्मजोशी और आतिथ्य का प्रदर्शन करते हैं, जबकि परोसे जाने वाले व्यंजनों की विशेषता इसकी प्रामाणिकता और स्वादिष्ट स्वाद है।
7. वैली ऑफ लिली: होमस्टे हरे-भरे जंगलों और घाटियों से घिरा एक सुरम्य शहर, अल्मोडा में स्थित है। आगंतुकों को लंबी पैदल यात्रा और पक्षी प्रजातियों को देखने जैसी मनोरंजक गतिविधियों में शामिल होने के दौरान एक शांत और सामंजस्यपूर्ण वातावरण में डूबने का अवसर मिलता है। आवास की विशेषता सफाई और आराम है, जबकि पाक व्यंजन स्वादिष्ट हैं और स्थानीय रूप से प्राप्त, ताजी सामग्री का उपयोग करके तैयार किए जाते हैं।
8. लैंगडेल लॉज: होमस्टे एक सुरम्य शहर नैनीताल में स्थित है, और झील से 10 मिनट की पैदल दूरी पर सुविधाजनक रूप से स्थित है। पर्यटकों को पहाड़ियों और आस-पास के जंगलों के सुरम्य परिदृश्यों को निहारने के साथ-साथ लंबी पैदल यात्रा और नौकायन सहित बाहरी मनोरंजक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर मिलता है। आवास की विशेषता पर्याप्त जगह और सुस्वादु साज-सज्जा है, जबकि व्यंजन अपने मनोरम स्वाद प्रोफाइल और स्थानीय रूप से प्राप्त, ताजी सामग्री के उपयोग से अलग है।

उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे में जरूरी चीजों का अभाव है। दूरदराज के समुदायों में सड़कों, बिजली और स्वच्छता की कमी हो सकती है, जिससे मेहमानों की सुविधा कम हो सकती है। ग्रामीण होमस्टे को बेहतर सड़क, पानी और बिजली की जरूरत है।

ग्रामीण होमस्टे विज्ञापन देने के लिए संघर्ष करते हैं। इन आवासों का विज्ञापन या ऑनलाइन नहीं किया जा सकता है। होमस्टे मालिकों को यात्रियों को आकर्षित करने के लिए मार्केटिंग, डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करने और ट्रैवल एजेंसियों, टूर ऑपरेटरों और ऑनलाइन बुकिंग सिस्टम के साथ काम करने में सहायता की आवश्यकता है। सामुदायिक समर्थन से ग्रामीण होमस्टे को बढ़ावा

मिलता है। सामुदायिक विरोध समस्याएँ पैदा कर सकता है। ज्ञान, क्षमता निर्माण और आर्थिक प्रोत्साहन सामुदायिक गौरव और होमस्टे समर्थन को बढ़ावा दे सकते हैं।

सस्टेनेबिलिटी और जिम्मेदार पर्यटनरू ग्रामीण होमस्टे को सफल होने के लिए राजस्व और स्थिरता को जोड़ना होगा। जिम्मेदार पर्यटन मायने रखता है। सतत विकास के लिए अपशिष्ट नियंत्रण, पर्यावरण-मित्रता और स्थानीय संरक्षण की आवश्यकता होती है।होमस्टे मालिकों और समुदायों को प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण की आवश्यकता है। भाषा, स्वच्छता, आतिथ्य और संस्कृति सिखाने योग्य हैं। आगंतुक होमस्टे मालिकों की विशेषज्ञता का आनंद लेते हैं।

नेटवर्किंग से गेस्टहाउस मालिकों, पर्यटन अधिकारियों और अन्य लोगों को मदद मिलती है। सर्वोत्तम प्रथाओं को साझा करना, सफलताओं से सीखना और होमस्टे सहयोग को प्रोत्साहित करने से व्यवसाय को लगातार बढ़ने में मदद मिल सकती है। ग्रामीण होमस्टे नगरपालिका और राज्य के नियमों के साथ फलते-फूलते हैं। लाइसेंसिंग को सुव्यवस्थित करने, वित्तीय प्रोत्साहन देने और एक गुणवत्ता और सुरक्षा-केंद्रित नियामक संरचना बनाने से होमस्टे मालिक और अतिथि का विश्वास बढ़ेगा।

9. निष्कर्ष-

इस सर्वेक्षण में उत्तराखंड के ग्रामीण घरों में शांति और संस्कृति पाई गई। उत्तराखंड के विविध परिदृश्य और संस्कृति ग्रामीण होमस्टे को खास बनाते हैं। पहाड़, नदियाँ, जंगल और घास के मैदान विश्राम, स्वास्थ्य लाभ और सचेतनता के लिए शांति प्रदान करते हैं। ग्रामीण होमस्टे उत्सव, शिल्प और मैत्रीपूर्ण निवासियों की पेशकश करते हैं। ये बातचीत सांस्कृतिक ज्ञान, वास्तविक मित्रता और उत्तराखंड के स्थायी प्रभाव को बढ़ावा देती है। उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे मेहमानों को स्थानीय संस्कृति का अनुभव, पारंपरिक भोजन का आनंद और इतिहास को संरक्षित करने की पेशकश करते हैं। इकोटूरिज्म जिम्मेदार यात्रा और स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देता है। ग्रामीण होमस्टे को बुनियादी ढांचे, विपणन और सामुदायिक मुद्दों का सामना करना पड़ता है। बुनियादी ढांचा, विपणन, सामुदायिक जुड़ाव और टिकाऊ पर्यटन उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे को बचा सकते हैं। ग्रामीण होमस्टे को कानून, प्रशिक्षण और हितधारकों की आवश्यकता है। अंततः, उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे आगंतुकों को क्षेत्र की संस्कृति और प्रकृति का अकेले अनुभव करने की अनुमति देते हैं। वे प्रामाणिक यात्रा देते हैं। सरकारों, पर्यटन एजेंसियों, स्थानीय समुदायों और पर्यटकों को अर्थव्यवस्था और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए उत्तराखंड के ग्रामीण होमस्टे को बढ़ावा देना चाहिए। शांति और संस्कृति चाहने वाले ग्रामीण उत्तराखंड की सुंदरता और विशिष्टता को याद कर सकते हैं।

संदर्भ

1. आनंद, ए., चंदन, पी., और सिंह, आर.बी. (2012)। कोरजोक में होमस्टेरू ग्रामीण आजीविका का पूरक और भारतीय हिमालय में हरित पर्यटन का समर्थन करना।
2. जयारा, जे. (2017)। उत्तराखंड में होम-स्टे पर्यटन अवसर और चुनौतियाँ। रिसर्चगेट.नेट.
3. लिंच, पी. ए. (1999)। होमस्टे क्षेत्र में मेहमानों के प्रति मेजबान का रवैया। पर्यटन और आतिथ्य अनुसंधान, 1(2), 119-144।
4. 4.सु, जे. (2018)। अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की व्यक्तिपरक प्रामाणिकता की संकल्पना। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हेरिटेज स्टडीज, 24(9), 919-937।
5. यूलियाना सैम्सुद्दीन, पी., और जरीफा मलिकी, एन. (2015)। सतत पर्यटन की दिशा में होमस्टे कार्यक्रम में सांस्कृतिक परिदृश्य का संरक्षणरू संक्षिप्त आलोचनात्मक समीक्षा अवधारणा। प्रोसीडिया-सामाजिक और व्यवहार विज्ञान, 170, 433-441।
6. झांग, जे., इनबाकरन, आर.जे., और जैक्सन, एम.एस. (2006)। शहरी-ग्रामीण सीमा क्षेत्र में पर्यटन और मेजबान-अतिथि बातचीत के प्रति सामुदायिक दृष्टिकोण को समझना। पर्यटन भूगोल, 8(2), 182-204।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ पत्रकारिता का उदय

चन्दन आनन्द

शोधार्थी, अम्बेडकर अध्ययन केन्द्र, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

सारांश

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ भारत के अभियान को निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचाने में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन में पत्रकारिता की भूमिका को समझते हुए भारत के लगभग हर स्वतंत्रता सेनानी ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से लेखनी के माध्यम से ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आवाज को बुलंद किया। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्याय और क्रूरता के खिलाफ जेम्स अगस्टस हिक्की ने 1780 में बंगाल गजट के माध्यम से भारतीय पत्रकारिता की नींव रखी। अगले कुछ ही दशकों में अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के बड़ी संख्या में समाचारपत्र प्रकाशित होने लगे। अब तक अलग-थलग बड़े स्वतंत्रता संग्राम को पत्रकारिता की तेजधार लेखनी ने महाआंदोलन का रूप देकर अंग्रेजी शासन को भारत से हटाने का मार्ग प्रशस्त किया।

शब्द-संकेतः भारत, पत्रकारिता, सूचनाएं, सम्प्रेषण, पत्रकारिता, समाचारपत्र इत्यादि

प्रस्तावना

प्रस्तावनाः भारत में मौखिक सम्प्रेषण जनसूचना का सशक्त माध्यम प्रारम्भ से था और आज भी है। भारत में अति पुरातन काल से सूचना सम्प्रेषण के लिए मौखिक माध्यम पर अधिक बल दिया गया है। यहां पर जनसंचार एवं इतिहास के लिए भी मुख्यतः मौखिक सम्प्रेषण पर ही निर्भरता रही है। लेखन यहां प्रमुखता उसी ज्ञान का हुआ है, जो शाश्वत है, जैसे कि वेद, उपनिषद्, आदि। उसके अतिरिक्त अन्य सभी सूचनाओं के लिए मौखिक सम्प्रेषण का ही उपयोग किया जाता था। इतिहास में यदि दृष्टि डालें तो पत्रकार या सूचना सम्प्रेषण के रूप देवर्षि नारद का नाम सबसे पहले ध्यान में आता है। इस दृष्टि से देवर्षि नारद को आदि पत्रकार माना जा सकता है, जो एक संदेश को दूसरी जगह में पहुंचाने की कला में माहिर थे। (भानावत, 2004, पृष्ठ-42)। देवर्षि नारद की स्वीकार्यता सब जगह होने के कारण उन्हें सफल पत्रकार कहा जा सकता है। वे सुर-असुर दोनों पक्षों में समान रूप से मान्य थे और दोनों पक्ष उनका सम्मान करते थे। यही कारण था कि देवर्षि नारद जो भी सूचना दे देते दोनों पक्ष उसे सत्य और गम्भीरतापूर्वक लेते थे। कोई भी पक्ष उनके अपमान की बात सोच भी नहीं सकता था। (शर्मा, 2000, पृष्ठ-15)

बंगाल गजेट से पत्रकारिता यात्रा का आरम्भ

यदि निकट इतिहास की बात करें तो भारत में पत्रकारिता या कहें समाचार-पत्र का प्रारम्भ अंग्रेजी साम्राज्यवाद के समय से मिलता है। वास्तव में पत्रकारिता वो है, जिसके माध्यम से सर्वाधिक लोगों से संबंधित सूचनाओं को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाया जाए। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के समय भारत में सर्वप्रथम समाचार-पत्र निकालने का प्रयास करने वाले विलियम बोल्ट्स ने भी ऐसा ही विज्ञापन दिया था , ''मेरे पास ऐसी बहुत सारी बातें हैं जो मुझे कहनी हैं और जिनका संबंध हर व्यक्ति से है।'' (श्रीधर, 2011, पृष्ठ-11) लेकिन उसके समाचार-पत्र निकालने से पूर्व ही आशंकित ईस्ट इंडिया कंपनी ने बोल्ट्स को वापिस ब्रिटेन भेज दिया।

तत्पश्चात् 19 जनवरी, 1780 में जेम्स ऑगस्टस हिकी ने भारत का पहला समाचार-पत्र 'द बेंगाल गजट ऑर केलकटा जनरल एड्वरटाइजर' प्रकाशित किया। भारतीय प्रेस के इतिहास में यह समाचार-पत्र 'हिक्की गजेट' के नाम से विख्यात हुआ।

हिक्की गजेट के प्रकाशन के पश्चात् बंगाल में कतिपय दूसरे पत्र भी प्रकाशित होने लगे। सन् 1780 ईसवी में ही नवम्बर महीने से कलकत्ते में ली. मेलिन और पीटररीड नामक दो अंग्रेजों ने 'इडियन गजेट' के नाम से एक और पत्र प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया। उसके चार वर्ष पश्चात् सरकार की ओर से 'कलकत्ता गजेट' प्रकाशित होने लगा। सन् 1784 ईसवी में टामस जोन्स के प्रयत्न से 'बंगाल जर्नल' प्रकाशित होने लगा। विलियम डुआनी नामक एक अमेरिकी पत्रकार 1791 ईसवी में उक्त पत्र के संपादक नियुक्त हुए साथ-साथ डुआनी ने 'इंडियन वर्ल्ड' नामक एक समाचार-पत्र की स्थापना भी की। सन् 1785 ईसवी में कोलकत्ता से 'ओरियेण्टल मेग्जीन' नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित होने लगा था।

इस प्रकार हिक्की गजेट के पश्चात् तत्काल ही कलकत्ते से ही कतिपय पत्र प्रकाशित होने लगे। समाचार-पत्रों का जन्म बंगाल तक ही सीमित न था। भारत के अन्य प्रान्तों में भी हम समकालीन समाचार-पत्रों का अस्तित्व पाते हैं। सम्भवत: भारत में इस युग का आगमन हो गया था जब जनता क्रमश: प्रेस की आवश्यकता का अनुभव करने लगी थी। सन् 1785 ईसवी के 12 अक्तूबर को मद्रास में रिचर्ड जॉन्स्टन नामक अंग्रेज सज्जन ने 'मद्रास कूरियर' नाम से एक साप्ताहिक पत्र की स्थापना कीए मद्रास का प्रथम समाचार-पत्र कदाचित मद्रास कूरियर ही था और रिचर्ड जॉन्स्टन सरकारी मुद्रक थे। (डल्लू, 2005, पृष्ठ-74, 75)

इसके दस वर्ष पश्चात् सन् 1795 ईसवी में मद्रास में 'मद्रास गजेट' भी प्रकाशित होने लगा। इसी समय तीसरा समाचार-पत्र मद्रास में 'इंडियन हेराल्ड' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उधर, बम्बई में भी पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। सन् 1789 ईसवी में 'बॉम्बे हेराल्ड' नामक एक साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। उसके एक वर्ष पश्चात् एक अंग्रेज ने 'बॉम्बे कूरियर' की स्थापना की, आगे चलकर यह बॉम्बे कूरियर ही 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के रूप में अवतीर्ण हुआ जो आज तक प्रकाशित हो रहा है। इसके दो वर्ष पश्चात् बम्बई से 'बॉम्बे गजेट' नामक एक और समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगा। (डल्लू, 2005, पृष्ठ-75)

इस प्रकार यदि हम अंग्रेजी साम्राज्यवाद के समय भारतीय प्रेस के विकास के इतिहास पर दृष्टि डालें तों 18वीं सदी के अन्तिम चरण में भारत में बंगाल, मद्रास और बम्बई प्रांत से अंग्रेजी भाषा में साप्ताहिक और मासिक पत्र निकलने लगे थे। तब तक दैनिक समाचार-पत्रों का प्रारम्भ नहीं हुआ था और केवल अंग्रेजी भाषा में ही कुछ साप्ताहिक और मासिक पत्र आने लगे थे। इन समाचाार पत्रों का प्रकाशन और संपादन भी अंग्रेजों द्वारा ही किया जा रहा था। भारतीय समाज या भारतीयों का अभी प्रत्यक्ष रूप से पत्रकारिता जगत में आगमन नहीं हुआ था। चूंकि अंग्रेजी शासन के मुख्य उद्देश्यों में एक ईसाइयत का प्रसार भी था, इस हेतु भी पत्रकारिता का उन्होंने पूर्ण उपयोग किया। सन् 1818 ईसवी में ईसाई मिशनरियों ने ईसाई मत के प्रचार-प्रसार हेतु 'दिव्यदर्शन' एवं 'समाचार दर्पण' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया।

हालांकि भारत में मुद्रित पत्रकारिता का इतिहास अंग्रेजों के आने के बाद ही प्रारंभ होता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के ही एक कर्मचारी जेम्स ऑगस्टस हिक्की कम्पनी की कार्यप्रणाली से परेशान होकर 1780 में भारत का पहला समाचार-पत्र 'बेंगाल गजट या जर्नल ऐड्वरटाइजर' निकालते हैं। इस समाचार-पत्र का भी कार्यक्षेत्र सामाजिक या भारतीय मुद्दे न होकर केवल कंपनी की नीतियों, उसके अधिकारियों से सम्बन्धित समाचार और इंग्लैंड में घटित कुछ प्रमुख खबरों तक ही सीमित था। प्रारम्भिक दौर में संसाधनों के अभाव और अन्य कई कारणों की वजह से भारतीयों द्वारा समाचार-पत्र या पत्रिकाओं को प्रकाशित करने के अधिक प्रयास नहीं किए गए।

भारतीयों द्वारा निकाले गए भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्र

'हिक्की गजेट' के बाद कोलकाता से बंगला पत्रकारिता का प्रारंभ हुआ। 13 मई, 1818 को संपादक ह्मरूचन्द्र राय और प्रकाशक गंगाकिशोर भट्टाचार्य ने 'बंगाल गजट' निकाला। 27 मार्च, 1822 को कोलकाता से ही उर्दू का पहला समाचार-पत्र 'जाम-ए-जहांनुमा' मुंशी सदासुख मिर्जापुरी के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ। यह समाचार-पत्र आठवें अंक से फारसी में निकलने लगा। स्पष्ट है कि सन् 1857 में जब भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध का सूत्रपात हुआ था। इस देश में कतिपय प्रान्तों में हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, बंगाली आदि भाषाओं के कतिपय पत्र प्रकाशित होने लगे। श्री हरीश्चन्द्र मुखर्जी और ईश्वरचन्द्र विधासागर के दो पत्र 'हिन्दू पेट्रियट' और 'सोमप्रकाश' इसी समय प्रकाशित हुए थे, जो जनपक्ष के प्रबल समर्थक थे।

भारत में हिन्दी पत्रकारिता का उद्‌भव 30 मई, 1826 को कोलकाता से ही 'उदन्त मार्त्तण्ड' के रूप में हुआ। युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्त्तण्ड' के संपादन-प्रकाशन के साथ हिंदी पत्रकारिता का युगारंभ किया। हिन्दी के आद्य संपादक को पत्रकारिता के सिद्धांतों का पूर्णत: ध्यान था। इसलिए 'उदन्त मार्त्तण्ड' के ध्येय वाक्य के रूप में उन्होंने जिस श्लोक को चुना था, उसका अर्थ है - ''सूर्य के प्रकाश के बिना जिस तरह अन्धेरा नहीं मिटता उसी तरह समाचार-सेवा के बिना अज्ञ जन जानकार नहीं बन सकते।'' (श्रीधर, 2011, पृष्ठ-13)

10 मई, 1829 को नीलरत्न हालदार के संपादकत्व में 'बंगदूत' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह त्रिभाषी पत्र हर सप्ताह बांग्ला, हिंदी और फारसी में प्रकाशित होता था। 17 मई, 1878 को 'भारत मित्र' का प्रकाशन आरंभ हुआ। दुर्गाप्रसाद मिश्र और छोटूप्रसाद मिश्र ने कोलकाता से पाक्षिक पत्र के रूप में इसका प्रारंभ किया था। दस अंकों के बाद भारत मित्र साप्ताहिक हो गया। अमृतलाल चक्रवर्ती, रुद्रदत्त शर्मा प्रभृति संपादकों के बाद बालमुकुन्द गुप्त भारत मित्र के संपादक बने। उनके कार्यकाल में भारत मित्र दैनिक हुआ। बालमुकुन्द गुप्त द्वारा व्यंग्य स्तंभ 'शिवशंभु के चिट्ठे' ने बहुत प्रसिद्धि पाई। यह समाचार-पत्र भाषा और शैली का मानक बना। इसकी हिन्दी को लेकर सरस्वती-संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने टिप्पणी की थी-'अच्छी हिन्दी तो एक ही आदमी लिखता था बालमुकुन्द गुप्त।' (श्रीधर, 2011, पृष्ठ-34)

'अमृत बाजार पत्रिका' का उदय सन् 1868 ईसवी में बंगाल के जैसोर जिले के एक छोटे से गांव में हुआ। पत्रिका की जीवन कथा भारतीय पत्रकारिता इतिहास का उज्ज्वल अध्याय है। जैसोर के एक साधारण से गांव के छोटे परिवार में बसंतकुमार, घोषकुमार, शिशिरकुमार नामक तीन भाई थे जो पत्रिका के जनक रहे हैं। घोष बन्धु ब्रह्मसमाजी थे। ब्रह्मसमाज की स्थापना से देश के राष्ट्रीय जीवन में चेतना की नई लहर उत्पन्न होने लगी थी।

बंगाल में पहले पहल 1870 ईसवी में एक पैसे वाले पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। श्री केशवचन्द्र सेन का 'सुलभ समाचार' एक पैसे का पत्र था, जिसने करीब भारतीय जनवर्ग तक पहुंचने की चेष्टा की। उस युग में भी इन पत्रों की बिक्री असाधारण ढंग से बढ़ी और उसकी ग्राहक संख्या चार-पांच हजार तक पहुंच गई। 'भारत श्रमजीवी' इसी प्रकार का दूसरा पत्र प्रकाशित हुआ जो एक पैसे में बिका करता था। कहते हैं कि यह पत्र इतना लोकप्रिय था कि कुछ ही दिनों में उसकी ग्राहक संख्या बढ़कर 1500 तक पहुंच गई। बांग्ला भाषा के इस साप्ताहिक पत्र की स्थापना शशिपद बन्दोपाध्याय ने की थी, जो केशवचन्द्र सेन के मित्र तथा अनुयायी थे। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का 'वंगदर्शन' सन् 1872 ईसवी में प्रकाशित होने लगा। इसके कुछ ही समय पश्चात् हिमेन्द्रनाथ ठाकुर भी 'भारती' तथा 'आर्यदर्शन' जोगेन्द्रनाथ विभूषण का 'बान्धव' रविबाबू की 'साधना' आदि पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं।

भारत मित्र और सार सुधानिधि के संपादक दुर्गाप्रसाद मिश्र ने ही 7 अगस्त, 1880 को कोलकाता से साप्ताहिक 'उचित वक्ता' का प्रकाशन किया। विजयदत्त श्रीधर (2011) अपनी पुस्तक पहला संपादकीय में उचित वक्ता के बारे में वर्णन करते हुए बताते हैं- ''राजनीतिक और सामाजिक चेतना के इस मुखर पत्र की संपादकीय टिप्पणियां अपनी बेबाकी के कारण मर्म पर चोट करती थीं।'' (पृष्ठ-39) साप्ताहिक 'आर्य गजट' 15 जुलाई, 1885 ईसवी को फिरोजपुर से निकला। सोलह पृष्ठों का साप्ताहिक प्रति रविवार प्रकाशित किया जाता था। वार्षिक शुल्क तीन रुपये छह आना था। संपादक मुंशी गोविन्दलाल सहारनपुरी थे। (श्रीधर, 2008, पृष्ठ-328)

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम युग में बंगाल के कतिपय नए पत्रों का उदय हुआ। 'बंगला बंगवासी' और 'संजीवनी' नामक दो साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुए जो सस्ते मूल्य वाले पत्रों की श्रेणी में होने के कारण लोकप्रिय थे। सन् 1897 ईसवी में पत्रकारिता के क्षेत्र में रामानन्द चटर्जी का उदय दासी, प्रदीप, प्रवासी और मॉर्डन रिन्यू के प्रर्वतन के कारण हुआ। अन्तत: वही 'विशाल भारत' के जनक भी हुए, इसी युग में पत्रिका दैनिक हुई। नरेन्द्रनाथ सेन का 'इण्डिया मिरर' दैनिक हो चुका था। सुरेन्द्रबाबू के बंगाली ने भी दैनिक का बाना पहना। उधर, पूना में लोकमान्य तिलक के 'केसरी' की दहाड़ से ब्रिटिश शासन थर्रा उठा था। बम्बई से 'इण्डियन सोशल रिफॉर्मर' का प्रकाशन होने लगा था। सन् 1894 ईसवी में 'बिहार टाइम्स' का प्रकाशन पटना से ही सच्चिदानंद सिंह के प्रयत्न से होने लगा था। इस युग के पत्रों में हम जागरूकता तथा जनपक्ष के उक्त समर्थन की स्पष्ट प्रवृति पाते हैं। अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना हो चुकी थी, जिसके फलस्वरूप भारतीय पत्रकारिता को सजीव उत्तर प्राप्त हो गया था। (चन्द्र, 1993, पृष्ठ-70)

स्वतंत्रता संग्राम को बल

इन भारतीय पत्रों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध चल रहे आंदोलनों को तेज किया। 'अमृत बाजार पत्रिका' ने इसी समय कतिपय देशी राजाओं की रक्षा के लिए, सरकार के विरूद्ध लेखनी उठाई। महाराज मल्हारराव गायकवाढ़, महारानी रीवा आदि के मामले उठाकर तथा उनके पत्र का समर्थन करके पत्रिका ने ख्याति प्राप्त की। इसी समय जम्मू-कश्मीर नरेश महाराज प्रतापसिंह का मामला उठा। अंग्रेजी सरकार गिलगिट प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहती थी और महाराज प्रतापसिंह कश्मीर के राजसिंहासन पर रहते हुए यह सम्भव नहीं दिखाई देता था। फलतः किसी प्रकार सरकार उन्हें राज्यमुक्त करने पर तुली हुई थी, जिसके लिए षड्यन्त्र रचे जा रहे थे। पत्रिका ने बड़ी निर्भीकता से इसका भण्डाफोड़ किया, जिसमें सरकार को झुकना पड़ा। यद्यपि सरकार रुष्ट हुई, पर स्पष्टतः पत्रिका के विरुद्ध कोई कार्यवाही करना सम्भव नहीं था।

बीसवीं सदी के आरम्भिक काल की कुछ घटनाओं में, जिन्होंने भारतीय पत्रकारिता को उत्तेजना प्रदान की, जिसमें सर्वाधिक प्रमुख घटना है लॉर्ड कर्जन ने बंगाल की शस्यश्यामला भूमि को विभक्त करके भारतीय राष्ट्र के हृदय पर वह आघात किया जिसे सहन करना उसके लिए असम्भव हो गया। (डल्लू, 2005, पृष्ठ-97) बंगभंग के विरुद्ध सारे देश में प्रचण्ड प्रतिरोध जाग्रत हुआ, जिसने महान आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। तत्कालीन पत्रों में राष्ट्रीय जीवन की इस धारा का प्रतिबिम्बित होना अनिवार्य था। उन्होंने न केवल देश के हृदय की प्रतिछाया उपस्थित की प्रत्युत उसके भावों के स्वयं प्रतीक बन गया। बंगाल के पत्रों में 'पत्रिका' और 'बंगाली' ने तो इस आन्दोलन का नमन् किया। उनके कार्यालय तत्कालीन देशभक्त कर्मठों के मिलन स्थल हो गए थे। जनभाव जनचेतना से एकाग्रता स्थापित करने वाले पत्रों का सामाजिक जीवन में आदरणीय स्थान हो जाना निश्चि था और उनके प्रभाव की वृद्धि भी अनिवार्य थी। तत्कालीन इतिहास पर हम दृष्टिपात करते हैं तो यह पाते हैं कि जनता भी पत्रों की ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रही थी और संवाद जानने की उसकी उत्सुकता क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी।

जनवरी, 1900 में महान संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी की सर्वकालीन सर्वश्रेष्ठ पत्रिका माने जानी वाली 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ किया। खड़ी बोली हिन्दी का स्वरूप गढ़ने में इस पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका है। विजयदत्त श्रीधर (2011) बताते हैं कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन काल में सरस्वती ने संपादन कला का मानक रचा। वह बताते हैं कि हिन्दी के विद्वानों का मत है कि 'सरस्वती' का अध्ययन करते समय प्रतीत होता था मानों पहली पंक्ति से लेकर अंतिम पंक्ति तक पूरी पत्रिका एक ही व्यक्ति ने लिखी है। (पृष्ठ-42)

बंगीय साहित्य परिषद् के अध्यक्ष शारदाचरण मित्र ने कोलकाता की एक लिपि विस्तारक परिषद् के मुखपत्र के रूप में मई, 1907 में हिन्दी मासिक पत्रिका 'देवनागर' का प्रकाशन आरंभ किया। यशोदानंदन अखौरी एवं उमापतिदत्त शर्मा इसके संपादक थे। देश की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को मान्य करने के उद्देश्य से इस पत्र ने वातावरण बनाने का प्रयास किया। 'देवनागर' में तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, बंगला, मराठी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं के लेख देवनागरी लिपि में प्रकाशित किए जाते थे। भारतीय भाषाओं को व्यवहार में निकट लाने का कार्य 'देवनागर' कर रहा था। (श्रीधर, 2011, पृष्ठ-47)

1907 की बसंत पंचमी के दिन स्वराज्य प्राप्ति का उद्देश्य घोषित करते हुए महामना मदनमोहन मालवीय ने प्रकाशक-संपादक के रूप में 'अभ्युदय' का शुभारंभ किया। 'अभ्युदय' का उद्घोष था- ''हमारी अभिलाषा मंद नहीं है। पृथ्वी मंडल पर जितने पर्वत हैं उनमें सबसे ऊँचा पर्वत नगाधिराज हिमालय है। हमारी अभिलाषा है कि हमारे देश का 'अभ्युदय' भी उतना ही ऊँचा हो।'' (श्रीधर, 2011, पृष्ठ-51) अंग्रेजी शासन के दमन को चुनौती देने के लिए भारत में स्वतंत्रता सेनानियों के विभिन्न वर्ग और दल बने। इनमें से एक नरम दल और गरम दल के नाम से विख्यात है। लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्रपाल, लाला लाजपतराय आदि गरम दल के नेता हो गए और दूसरी ओर गोखले, फिरोजशाह मेहता आदि दिखाई देने लगे। गरम दल के नेताओं का ही प्रयत्न था, जिसके फलस्वरूप सन् 1909 ईसवी में प्रयाग में लीडर की स्थापना हुई। (डल्लू, 2005, पृष्ठ-9)

अगस्त, 1911 ईसवी में कानपुर से हिन्दी मासिक 'जीवन' का प्रकाशन रामप्रसाद मिश्र ने किया। विद्या, शिल्प, कला, कृषि, व्यापार, राजनीति इत्यादि विषयों का समावेश रहता था। अक्तूबर, 1913 ईसवी में साप्ताहिक हो गया, जो आठ पृष्ठ का था। कुछ दिनों तक यह दैनिक पत्र भी रहा। किन्तु आर्थिक संकट के कारण सन् 1914 ईसवी के अन्त में बन्द हो गया। यह समाचार-पत्र भारतीय चेतना तथा समस्याओं को प्रकाशित करने में अग्रसर था और सामाजिक दयनीयता का भी इसने अपने अंकों में उल्लेख किया था। (श्रीधर, 2008, पृष्ठ-561)

गणेशशंकर विद्यार्थी का योगदान

भारत के पत्रकारिता इतिहास में आदर्श संपादक के रूप में पहचान रखने वाले गणेशशंकर विद्यार्थी दो नवम्बर, 1911 से 'सरस्वती' समाचार-पत्र के सहायक संपादक के रूप में कार्यारम्भ कर पत्रकार जीवन में प्रवेश हुआ। लेकिन ष्सरस्वतीष् का विशुद्ध साहित्यिक रुझान और विद्यार्थी की राजनीतिक अभिरुचियों में तालमेल नहीं बैठ सका। दिसम्बर 1912 ईसवी में ष्अभ्युदयष् नामक समाचार-पत्र में चले गए, जहाँ 23 सितम्बर, 1913 ईसवी तक कार्यरत रहे। अन्ततः 9 नवम्बर, 1913 ईसवी को उन्होंने कानपुर से हिन्दी साप्ताहिक 'प्रताप' का प्रकाशन किया।

9 नवम्बर, 1913 को कानपुर से साप्ताहिक 'प्रताप' का संपादन प्रकाशन आरंभ किया। 1920 में प्रताप दैनिक हो गया। प्रताप अपनी राजनीतिक चेतना और मुखर स्वातंत्र्य-कामना के चलते प्रमुख राष्ट्रवादी पत्रिकाओं में से एक था। पत्र के ध्येय वाक्य से ही उसकी मुखरता का आकलन किया जा सकता है, जो कि इस प्रकार थी-

''जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है, और मृतक समान है।।''
(श्रीधर, 2011, पृष्ठ-14)

गणेशशंकर विद्यार्थी से पत्रकारिता के संस्कार ग्रहण करने वाले दशरथ प्रसाद द्विवेदी द्वारा 1919 में 'स्वदेश' नामक समाचार-पत्र प्रारंभ किया गया। 'स्वदेश' का ध्येय वाक्य था-

''जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रस धार नहीं
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।''
(श्रीधर, 2011, पृष्ठ-14)

मुम्बई के जमनादास द्वारकादास द्वारा प्रकाशित 'यंग इंडिया' 8 अक्तूबर 1919 ईसवी को महात्मा गाँधी के संपादकत्व में साप्ताहिक से अर्द्ध साप्ताहिक होकर प्रकाशित हुआ। 'यंग इंडिया' के बारह सौ ग्राहक थे। यंग इंडिया की नीति अन्याय की ओर ध्यान आकर्षित कराने, सत्याग्रह के पक्ष में वातावरण बनाने और जन प्रतिरोध खड़ा करने की थी। यंग इंडिया में लिखा था- ''मेरा ध्येय अत्यंत संयम के साथ सत्याग्रह के बेजोड़ अस्त्र के प्रयोग की शिक्षा देना है। सत्याग्रह जो अहिंसा और सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मुझे निष्प्रयोजन नहीं लिखना है।'' (श्रीधर, 2008, पृष्ठ-625) गांधीजी की कारावास अवधि में सी. राजगोपालाचार्य, जयराम दौलतराम तथा जॉर्ज जोसफ ने 'यंग इंडिया' का संपादन किया।

राष्ट्रवाद के विषय को प्रोत्साहित करने के लिए डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने 1920 में हिन्दी साप्ताहिक 'देश' की स्थापना की। गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा कानपुर से संपादित 'प्रताप', इलाहाबाद से पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा संपादित 'अभ्युदय' और इलाहाबाद से ही शांति नारायण भटनागर द्वारा संपादित 'स्वराज्य'। लोकमान्य तिलक के अखबार 'केसरी' के हिंदी संस्करण की भी उसी वर्ष माधव राव सप्रे के संपादन में शुरुआत हुई थी। 1919 में राष्ट्रीय परिदृश्य पर गांधीजी के आगमन के साथ ही अहमदाबाद से 'हरिजन सेवक' और 'नवजीवन' की शुरुआत हुई।

1920 के बाद की पत्रकारिता

5 सितम्बर, 1920 में शिवप्रसाद गुप्त ने काशी में ज्ञानमंडल प्रकाशन के तहत दैनिक 'आज' का प्रकाशन आरंभ किया। आद्य संपादक श्रीप्रकाश थे, यद्यपि आरंभ से ही 'आज' को संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर के समाचार-पत्र के रूप में जाना गया। स्वतंत्रता आंदोलन में 'आज' एक प्रमुख आवाज के रूप में उभरा। देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करना 'आज' का लक्ष्य था और उसका मानना था कि यह स्वाभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है। राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता की चाह को वाणी देने में कोताही नहीं की। विजयदत्त श्रीदत्त बताते हैं, ''आज की नीति निर्धारण लोकमान्य तिलक के अनुमोदन से किया गया था। इसके लिए पराड़कर जी लोकमान्य से मिलने पुणे गये थे। लोकमान्य ने आज के लिए तीन मंत्र दिए - (एक) देश के लिए स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयास किया जाए, (दो) जनता को उसके अधिकारों की जानकारी दी जाये, (तीन) कर्तव्य पालन में कोई बाधा आये तो उसकी चिंता न करें और ईश्वर पर विश्वास करें।'' (श्रीधर, 2011, पृष्ठ-62)

लाहौर से 13 अप्रैल, 1923 ईसवी को महात्मा हंसराज की प्रेरणा से उर्दू दैनिक 'मिलाप' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। लाला खुशालचंद खुरशंद आद्य संपादक थे। मिलाप के उद्देश्य का खुलासा करते हुए संपादक ने लिखा था- ''स्वराज प्राप्त करने के लिए हिन्दुस्तान की सभी कौमों की एकता आवश्यक है। जब तक हिन्दू और मुसलमान एक नहीं होते, तब तक आजादी मयस्सर नहीं हो सकती।'' (श्रीधर, 2008, पृष्ठ-697) मिलाप में सेनफ्रांस्किो से प्राप्त गदर पार्टी के समाचारादि प्रकाशित होते थे। सन् 1930 ईसवी में 'मिलाप' के संपादक खुशालचंद खुरशंद को राजद्रोह के आरोप में नौ महीने की कैद और दो सौ रूपये जुर्माने की सजा जिला मजिस्ट्रेट ने दी थी।

11 सितम्बर, 1929 ईसवी को दैनिक 'हिन्दी मिलाप' निकला। 'मिलाप' के हिन्दी संस्करण के संपादक लेखराम और उपसंपादक शोभचन्द्र सुमन थे। 'मिलाप' के संपादकीय सहयोगियों में चौधरी गौरीशंकर, लाला नानकचन्द, अमरचन्द के. जालंधरी, कमर जलालावादी, रामानन्द सागर सम्मिलित थे। मिलाप ने भारतीय समस्याओं पर प्रकाश डाला एवं भारतीय अस्पृश्य समस्याओं को भी प्रकाशित किया। (श्रीधर, 2008, पृष्ठ-697, 698)

भारतीय पत्रकारिता में एक ओर बड़ा नाम है माखनलाल चतुर्वेदी। उन्होंने 'कर्मवीर' नामक समाचार-पत्र प्रारंभ किया। पहले पहल 'कर्मवीर' का प्रकाशन 17 जनवरी, 1920 को जबलपुर से हुआ। राष्ट्र सेवा लिमिटेड ने प्रकाशन और माखनलाल चतुर्वेदी ने संपादन का दायित्व संभाला। माखनलाल जी इसके पहले 'प्रभा' (1913) का संपादन कर अपनी योग्यता का परिचय दे चुके थे। गुरुवर्य माधवराव सप्रे ने 'कर्मवीर' के संपादन के लिए उनका चयन किया था। संपादक के साथ-साथ वे राष्ट्रीय धारा के प्रमुख कवि और स्वतंत्रता संग्राम के तपोनिष्ठ सेनानी भी थे। 'कर्मवीर' ने ही जून से सितंबर 1920 तक रतौना कसाई घर के खिलाफ जन आंदोलन का नेतृत्व किया और फिरंगी हुकूमत को कसाई घर बंद करने पर विवश कर दिया था। 1922 में जबलपुर का 'कर्मवीर' बंद हो गया।

चार अप्रैल, 1925 को माखनलाल चतुर्वेदी ने खंडवा से 'कर्मवीर' का पुनः संपादन-प्रकाशन आरंभ किया। शिक्षा का सवाल, किसान और किसानी के सवाल, भारत के ऊपर बेवजह लादे जाते ब्रिटेन की बाहरी लड़ाइयों के वित्तीय बोझ जैसे सभी सामयिक और जरूरी सवालों पर 'कर्मवीर' ने लिखा। नतीजा यह निकला कि मध्य प्रांत का बहुत बड़ा भूभाग देश की आजादी की लड़ाई के अगुआ क्षेत्र के रूप में उभरा। गांव-गांव, कस्बे-कस्बे 'कर्मवीर' ने संवाददाताओं का समूह तैयार किया जो अपने-अपने स्थान के खरे सामाजिक कार्यकर्ता भी बने पत्रकारों, लेखकों और कवियों को उन्होंने प्रेरित और संस्कारित किया। (श्रीधर, 2011, पृष्ठ-67)

रीवा से हिन्दी साप्ताहिक 'प्रकाश' का प्रकाशन विजयादशमी सन् 1932 ईसवी में हुआ। पत्रिका का वार्षिक शुल्क अढ़ाई रुपये था। रीवा के महाराज गुलाबसिंह ने राज्य के खजाने से 'प्रकाश' के प्रकाशन के लिए चार हजार रुपये वार्षिक व्यय स्वीकृत किया था। 'प्रकाश' के आद्य संपादक नृसिंहराम शुक्ल थे। साहित्यिक सामग्री के साथ-साथ समाचारों का प्रकाशन भी 'प्रकाश' में किया जाता था। रीवा राज्य के आंचलिक समाचारों को प्रमुखता दी जाती थी। तीन वर्ष बाद नृसिंहराम शुक्ल के स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में जेल चले जाने पर केशवप्रसाद चतुर्वेदी ने संपादक का कार्यभार ग्रहण किया। उन्होंने सन् 1945 ईसवी तक यह दायित्व निभाया। तत्पश्चात् ठा. अर्जुनसिंह संपादक हुए। उनके संपादन काल में 'प्रकाश' ने और ज्यादा मुखरता से कलम चलाई। सन् 1949 ईसवी में 'प्रकाश' का प्रकाशन बंद हो गया। (श्रीधर, 2008, पृष्ठ-834)

निष्कर्ष

इसके अतिरिक्त भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाले अनेक ऐसे पत्र-पत्रिकाओं का यहां जन्म हुआ, जिन्होंने देश और समाज को सदैव प्राथमिकता दी। अंग्रेजी शासन को निरंतर चुनौती देने का कार्य भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों ने प्रमुखता से किया। भारतीय भाषाओं के पत्रों और पत्रकारों का जीवन उस समय तप और उत्सर्ग तथा कष्ट सहन का रहा। उस युग से लेकर आज तक उन्होंने राष्ट्र भावना के साथ एकात्मा स्थापित करके भारतीय समाज को दिशा दिखाने का कार्य किया है।

सन्दर्भ

1. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री, डॉ भीमराव रामजी आम्बेडकर: यात्रा के पदचिन्ह, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली-70, 2018।
2. भारत भूषण डल्लू, भारतीय पत्रकारिता के आधार, ओमेगा प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली 2005।
3. विजयदत्त श्रीधर, -भारतीय पत्रकारिता कोष, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्लीत्र 2008।
4. विजयदत्त श्रीधर, पहला संपादकीय, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली-02, 2011।
5. संजीव भानावत, सांस्कृतिक चेतना और जैन पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004।

असगर वजाहत की कहानियों में समकालीन यथार्थ

छोटे कुमार मंडल

स्नातकोत्तर हिन्दी, ग्राम+पोस्ट- कुम्हरा विष्णुपुर, थाना- डुमरा, जिला- सीतामढ़ी (बिहार)

समकालीन कहानीकार असगर वजाहत की कहानियाँ यथार्थ की नब्ज को पकड़ने में पूरी तरह समर्थ हैं। उनकी कहानियों का फलक व्यापक है। राजनीति, साम्प्रदायिकता, शिक्षा, बेरोजगारी, मूल्यहीनता, स्त्री-उत्पीड़न, किसान, मजदूर आदि कई विषयों से संबंधित छोटी-बड़ी कहानियाँ उनके यहाँ मिल जाती हैं, पर ध्यान देने वाली बात यह है कि ये कहानियाँ सिर्फ कहानियाँ नहीं हैं, क्योंकि आज के भयावह समय में सिर्फ कहानी नहीं लिखी जा सकती है। जीवन की सच्चाई इतनी कड़वी हो चुकी है कि रचनाकार और पाठक दोनों उसके तिक्त अहसास से खुद को वंचित नहीं रख सकते। अगसर वजाहत की एक विशेषता है कि वे कहानी लिखते नहीं हैं. कहते हैं और बड़े ही सहज ढंग से कहते हैं, किन्तु इसी सहजता के साथ प्रवाह के मध्य वे समाज की असहज स्थितियों पर प्रहार कर देते हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में एक किस्सागो है और यही किस्सागो उनकी कहानियों की शक्ति है। समाज की बर्बरता, हिंसा, असंवेदनशीलता, स्वार्थपरता, भोग-लोलुपता का जो चेहरा वो अपनी किस्सागोई के माध्यम से अनावृत्त करते हैं, वह पाठक की चेतना को गतिशील बनाता है।

आजादी के बाद आमजन को बहलाने के लिए 'डेमाक्रेसिया' का झुनझुना पकड़ा दिया गया। अगसर वजाहत अपनी कहानियों के माध्यम से लोकतंत्र की गहरी पड़ताल करते हैं। अपनी बहुचर्चित कहानी 'मुख्यमंत्री और डेमोक्रेसिया' लोकतंत्र की सच्चाई को सामने लाने वाली शानदार कहानी है। एक राजनेता के लिए डेमोक्रेसिया का सही अर्थ क्या होता है, उसको कथाकार ने विविध संदर्भों के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। 'डेमोक्रेसिया' में लोक अकाल, बाढ़, दंगे, भूख और अभाव से ग्रस्त है, लेकिन हमारे मुख्यमंत्री सुखी और मस्त हैं। बाढ़ के संदर्भ में डेमोक्रेसिया की हकीकत पर कहानीकार लिखते हैं- ''मुख्यमंत्री ने विरोधियों को पकड़ा। उनके गले में हाथ डाला और गिन-गिनकर एक-एक पूड़ी और एक-एक मिठाई का टुकड़ा निकाल लिया।''[1]

फिर मुख्यमंत्री बोला- "जाइए उनका खाइए, जिन्हें वोट देते हैं... अरे ये तो ''डेमोक्रेसिया है भइया।''[2] नेताओं के छल, छद्म, स्वार्थपरता, बनावटीपन और झूठी संवेदना के विविध कोणों को उजागर करती यह एक बेहतरीन कहानी है। लोकतांत्रिक व्यवस्था की सबसे बड़ी विसंगति यह रही कि यहाँ इंसान, इंसान न रहकर सिर्फ 'वोटर' बनकर रह गया- हिन्दू वोटर, मुस्लिम वोटर, दलित वोटर, हरिजन वोटर और ब्राह्मण वोटर इतना ही नहीं इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोकतांत्रिक मूल्यों का हनन करने वाले नेतागण बार-बार लोकतंत्र की दुहाई देकर खुद को निर्दोष साबित करने में तुले रहते हैं। असगर वजाहत अपनी कई कहानियों में विसंगतिपूर्ण स्वातंर्त्योत्तर राजनीतिक स्थितियों का जायजा लेते हैं। 'मैं हिन्दू हूँ', शीशों का मसीहा कोई नहीं, 'तमाशे में डूबा देश', 'नया गणित', 'मुख्यमंत्री और 'डेमोक्रेसिया' आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि कुर्सी की लड़ाई में हमारे राजनेता निम्नतम स्तर तक जा चुके हैं। चुनाव जीतने के लिए एक नया गणित सीखा जा रहा है। भइया, अब की राजनीति में दो और दो चार नहीं होते, बाईस होते हैं। येन-केन प्रकारेण चुनाव जीतने की चेष्टा में मानवीय मूल्यों को ताक पर रखने में कोई गुरेज नहीं।

वजाहत राजनीतिक और सामाजिक विसंगतियों को ही अपनी कहानियों में चित्रित नहीं करते शैक्षिक जगत की विसंगतियों को भी उन्होंने अपनी कहानियों में अंकित किया है। शिक्षा-जगत की विसंगतियों पर करारा प्रहार करती पढ़ोगे लिखोगे तो. होगे खराब कहानी सरकारी स्कूलों की बद से बदतर होती स्थिति की ओर इशारा करती है। नई शिक्षा जीतियों के कारण स्कूलों में बुनियादी ढाँचे का अमाव है। शिक्षक एक साथ एक कमरे में तीन-तीन कक्षाएँ लेने को मजबूर है। गौरतलब यह भी है कि इन शिक्षा-संस्थानों

में सरकारी कर्मचारियों के बच्चे पढ़ने नहीं आते हैं। इन स्कूलों की शोभा वे बच्चे हैं, जिन्हें यहाँ आकर एक समय का भोजन प्राप्त हो जाता है। इतना ही नहीं नौकरी आवंटन में घूसखोरी और भाई-भतीजावाद के कारण शिक्षक का स्तर भी निचले दर्ज पर जा चुका है। शिक्षकों की रूचि इनके स्तर को सुधारने और शिक्षा के प्रति जागरूक करने में नहीं होती। सरकारी स्कूल आज आरामगाह बनते जा रहे हैं।

उच्च शिक्षा-संस्थानों में भी भ्रष्टाचार अपनी जड़ें गहरी कर चुका था। पी-एच.डी. करवाना हो या शिक्षक पद पर नियुक्ति करवाना हो, शिक्षार्थी के लिए चरण गहो की कला में पारंगत होना अनिवार्य शर्त है। इतना ही नहीं छात्र-छात्राओं में अपने कर्णधार के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव भी होना चाहिए। असगर वजाहत ने शिक्षा जगत की विसंगतियों को करीब से देखा है। वर्तमान समय में केवल किसान-मजदूर ही आर्थिक और दैहिक रूप से शोषित नहीं हो रहे हैं. उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवा वर्ग भी आर्थिक दैहिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित हो रहे हैं।

असगर वजाहत की लम्बी कहानी 'तख्ती' शोध छात्रों की दुर्दशा का आख्यान है। यह कहानी शोध की वर्तमान दशा और दिशा बताती है। शोध के दौरान शोध छात्र अपने मार्गदर्शक के निर्देशन में न केवल अपने विषय में कुशलता प्राप्त कर लेते हैं। साथ-साथ अपने निर्देशक के गृह कार्यों में भी कुशलता प्राप्त कर लेते हैं उनके शोध छात्रों के बारे में कहा जाता था कि वे अपने विषय के पंडित होने के अतिरिक्त भैंसों की देखभाल करने की कला में भी निपुण हो जाते थे। ''कितना अच्छा था कि उनके सामने दो रास्ते खुल जाते थे। हिन्दी के अध्यापक न बन पाते तो भैंस पालने का व्यवसाय शुरू कर सकते थे।''[3]

एक दिन एकान्त में उन्होंने शोध-प्रबन्ध के सबसे बड़े दोष की ओर इशारा किया। दोष यह था कि शोध छात्रा को ठीक से साड़ी बाँधना नहीं आता था। मधु जी ने उससे कहा कि ''शोध छात्रा एक दिन, जब उनकी पत्नी और बच्चे मंदिर गये हों तो, उनके घर आ जाए और उनसे साड़ी बाँधना सीखकर दोशमुक्त हो जाय।''[4]

भोगवादी के विस्तार में शिक्षक-शिक्षार्थी का पवित्र और मर्यादित संबंध आज किस तरह छलनी हो चुका है? शिक्षण की आड़ में शिक्षा जगत् के तथाकथित श्रिसरमौर' कितने निचले स्तर पर चले जाते हैं? यह कहानी इसी सच्चाई को उजागर करती है। शिक्षा जगत् की विसंगतियों का जो चेहरा वे अनावृत्त करते हैं, वह घिनौना और भयावह तो है, पर यथार्थ है।

असगर वजाहत ने स्त्री पर होनेवाले अमानुषिक अत्याचार को अपनी कई कहानियों में स्वरबद्ध किया है। 'लड़कियाँ' शीर्षक कहानी पर विचार करें तो वहीं हमें स्त्री शोषण के कई रूप दिख जाएंगे। विवाह में अपनी मेहनत और बचत की कमाई दहेज के रूप में देकर पिता एक प्रकार से बेटी को मौत के मुँह में धकेल देता है तो दहेज से असंतुष्ट लालची ससुराल वाले उसे सचमुच मौत के मुँह में धकेल देते हैं। हार लड़की की ही होती है माता-पिता, रिश्तेदार, समाज, न्याय-व्यवस्था, मानव अधिकार समिति यहाँ तक कि ईश्वर के द्वार पर भी उसे न्याय नहीं मिलता है।[5] कारण हमारी सामाजिक संरचना है, जिसके अनुसार पति परमेश्वर होते हैं। वे जलते नहीं, केवल जलाते हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि हम अमानवीयता के ऐसे दौर में जी रहे हैं, जहाँ परम्परा और ''संस्कार के नाम पर लड़कियों की सरेआम बलि दी जाती है और विडम्बना यह है कि मरने के बाद भी उनके साथ अन्याय होता रहता है।''[6]

समग्रत: असगर वजाहत की कहानियाँ व्यक्ति और समाज में व्याप्त विसंगतियों, विरोधाभासों, विडम्बनाओं और विसंगतियों की कहानियाँ हैं। वे अपनी कहानियों के माध्यम से हमें झिझोड़ने और झकझोरने का प्रयास करते हैं, ताकि स्थिति और बदतर हो, उससे पहले हम बदलाव के लिए सचेत और जागरूक हो जाएँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. पिचासी कहानियाँ असगर वजाहत, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 2015, पृ0-46
2. वही, पृ0-117.
3. वही, पृ0-141
4. वही, (भूमिका से), पृ०-03
5. वही, पृ0-239
6. आजकल, जुलाई-2017, संपाठ- जयसिंह, पृ0-6-7

दार्जिलिंग पहाड़ियों की चुनावी प्रणाली में अनुसूचित जाति समुदाय की भागीदारी का एक ऐतिहासिक अध्ययन

मोनिषा हिमांग

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जगनाथ किशोर कॉलेज, पुरुलिया, पश्चिम बंगाल

शोध सार

दार्जिलिंग जिले में लगभग पच्चीस लाख आठ हजार आठ सौ इक्यासी (258881) अनुसूचित जाति के लोग रहते हैं। (जनगणना 2001 के अनुसार)। इन्हें अल्पसंख्यकों में गिना जाता है और उन्हें अन्य जातियों के बराबर लाने के लिए न केवल सरकार के द्वारा बल्कि पश्चिम बंगाल राज्य द्वारा भी बहुत से प्रावधान किए गए हैं ताकि वे किसी भी अपने को निराश एवम् लाचार न महसूस करें। परंतु राज्य सरकार के विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी एस.सी. समुदाय अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं बना पाया है। इसका मुख्य कारण उनका संकुचित होना, अशिक्षित होना या राजनीतिक स्थिति के प्रति उदासीनता हो सकता है। दार्जिलिंग पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण यहां अनुसूचित जातियों की राजनीतिक क्षेत्रों में हिस्सेदारी बहुत मार्मिक नहीं रही। अत: जहां तक राजनीतिक प्रक्रिया और निर्णय लेने में उनकी हिस्सेदारी का सवाल है, तो वह चाहे पंचायती राज संस्थाएं हों, नगरपालिका प्रशासन या गोरखालैंड प्रादेशिक प्रशासन हो, अनुसूचित जातियों को हमेशा महत्वहीन और अक्षम रूप से हाशिए पर रखा गया है। यह लेख नगर पालिका चुनावों में अनुसूचित जातियों की भागीदारी पर केंद्रित है। इसके अलावा यह अनुसूचित जाति के लोगों की बदलती भूमिका पर भी प्रकाश डालता है जो अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूक हैं और एक अलग विकास बोर्ड की मांग करते हुए अपना पर्याप्त प्रतिनिधित्व करते हैं।

मुख्य शब्द:- नगर पालिका चुनाव, पुरुषों और महिलाओं की भागीदारी, जिले की मुख्य विशेषताएं (2011 की जनगणना), पर्वतीय क्षेत्र

दार्जिलिंग जिले को भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। जिले के 12 सामुदायिक विकास खंडों और 5 वैधानिक कस्बों में से, 8 सीडी ब्लॉक अर्थात् दार्जिलिंग - पुलबाजार, रंगली रंगलियोट, जोरेबंगला, सुखिया पोखरी, कलिम्पोंग कलिम्पोंग प्प, मिरिक और कर्सियांग और 4 वैधानिक कस्बे अर्थात् दार्जिलिंग नगर पालिका, कर्सियांग नगर पालिका, कलिम्पोंग नगर पालिका और मिरिक अधिसूचित क्षेत्र पहाड़ी क्षेत्रों में अवस्थित हैं और शेष 4 सीडी ब्लॉक अर्थात माटीगाड़ा, नक्सलबाड़ी, फांसीदेवा और खारीबाड़ी और सिलीगुड़ी नगर निगम मैदानी इलाकों में स्थित हैं। जिले में कुल 687 गाँव और 24 जनगणना शहर हैं। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति श्रेणी के अंतर्गत जनसंख्या के मामले में दार्जिलिंग जिला राज्य में 18वें और 5वें स्थान पर है।

दार्जिलिंग नगर पालिका इतिहास

दार्जिलिंग नगर पालिका के लिए जवाबदेह है। नगर पालिका और नगर प्रशासन उसके अधिकार क्षेत्र में है। अध्यक्ष काउंसिल में चेयरमैन को नामांकित करता है और नगर पालिका के विभिन्न मामलों का प्रबंधन करता है। नगर पालिकाओं की प्रशासनिक

कार्रवाई समितियों के माध्यम से की जाती है और उनकी अध्यक्षता काउंसिल में चेयरमैन द्वारा की जाती है। हालाँकि नागरिक प्रशासन में लोकप्रिय भागीदारी वस्तुतः 1847 में दार्जिलिंग पहाड़ियों में शुरू हुई, अंग्रेजों ने 1 जुलाई 1850 को दार्जिलिंग नगर पालिका पर कब्जा कर लिया, प्रारंभिक रूप से नगर पालिका का क्षेत्रफल 138 वर्ग किलोमीटर था जिसमें सिक्किम के राजा द्वारा सौंपी गई भूमि का पूरा क्षेत्र शामिल था। आज यह गिंग बाजार से जोरेबंगला तक 1066 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र को कवर करता है। 1869 में इसकी जनसंख्या 22607 थी लेकिन आज दार्जिलिंग नगर पालिका रिकॉर्ड के अनुसार यह 10,4000 है। 1994 तक नगर पालिका का प्रशासन बंगाल नगर पालिका अधिनियम 1932 द्वारा किया जाता था। अब यह बंगाल नगर पालिका अधिनियम 1993 के अधिकार क्षेत्र में है जो 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के बाद जुलाई 1994 से लागू हुआ। जहाँ तक नगर पालिका के संविधान और चुनाव का संबंध है, इसकी स्थापना के समय खुलना, हजारीबाग, मुजफ्फरपुर, दरबंगा और भागलपुर को पहली अनुसूची में रखा गया था, जिसमें आयुक्तों की नियुक्ति स्थानीय सरकार द्वारा की जाती थी और बर्दवान, हुगली के साथ दूसरी अनुसूची में भी रखा गया था। , नदिया , हजारीबाग आदि जिनमें अध्यक्ष की नियुक्ति स्थानीय सरकार द्वारा की जानी थी। 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा संविधान में ष्नगर पालिकाएँष् नामक भाग ए जोड़ा गया। अधिनियम की धारा 243-7 के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों के का विवरण भी दिया गया है। फिर भी, 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के कार्यान्वयन के बाद पार्टी आधार पर केवल दो चुनाव (1994, 1999 और 2000) हुए हैं, जो नगर पालिका चुनावों में महिलाओं के लिए सीटों के अन्य आरक्षण को पूरा करता है।

दार्जिलिंग नगर पालिका चुनाव में अनुसूचित जाति की भागीदारी:

तालिका - 1: दार्जिलिंग नगर पालिका चुनाव में निर्वाचित अनुसूचित जाति के पुरुषों का प्रतिशत

SL .NO	Year	Total	Elected	SC Elected (Men)
1	1994 -99	28	28	1
2	2000 -04	32	32	3

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है दार्जिलिंग में नगर पालिका के चुनावों में अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों को पूरी तरह से प्रतिनिधित्व किया गया है और आंकड़ों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रत्येक नगर पालिका चुनावों में उनकी भागीदारी बढ़ रही है जो इस तथ्य का संकेत है कि अनुसूचित जाति के लोग अपने राजनीतिक अधिकारों के बारे में अच्छी तरह से जानते हैं।

नगर पालिका में कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों में से निर्वाचित महिलाओं का प्रतिशत (74वां संशोधन अधिनियम लागू होने से पहले)

SL.No	Year	Total member	Nominated	Elected	Male	Female	Percentage of elected female members
1	1951	31	8	23	23	0	0
2	1952	29	6	23	23	0	0
3	1960-64	28	0	28	28	0	0
4	1965-70	28	0	27	27	01	0
5	1984	28	0	28	28	0	0

उपरोक्त तालिका से, यह स्पष्ट है कि वर्षों से आजादी के बाद नगर निगम बोर्डों को कुचल दिया गया। लेकिन बोर्ड में एक दशक के लिए कुछ नामांकित सदस्य भी थे। 1960 के दशक में वयस्क मताधिकार की शुरूआत के साथ सभी सदस्य निर्वाचित

प्रतिनिधि थे। हालाँकि 1960 के मध्य तक दार्जिलिंग नगर पालिका में किसी भी महिला का प्रतिनिधित्व नहीं था। 1965-1970 में आठ सदस्यों की बोर्ड कंप्यूटिंग में एक महिला निर्वाचित हुई लेकिन यह केवल आकस्मिक था। 1984 में गठित बोर्ड में स्पष्ट रूप से कोई महिला प्रतिनिधि नहीं थी। दार्जिलिंग में अनुसूचित जाति समुदाय ने विकास बोर्ड की मांग की।

एक विकास बोर्ड की मांग करते हुए दार्जिलिंग पहाड़ियों के अनुसूचित जाति समुदाय ने 9 नवंबर 2015 को एक रैली का आयोजन किया। उन्होंने एक आंदोलन शुरू करने की धमकी दी जिसमें अनिश्चितकालीन हड़ताल और धरने शामिल होंगे। एससी समुदाय अत्यधिक लेप्चा, भूटिया, शेरपा और तमांग समुदाय जैसे बोर्ड बनाना चाहता था, जिन्हें पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा विकास बोर्ड प्रदान किया गया है। इसके अलावा, समुदाय के लिए विकास बोर्ड एसोसिएशन जीटीए के साथ एससी समुदाय के लिए भी आरक्षण चाहता है जहां उन्हें हाशिए पर रखा गया है। एसोसिएशन ने आंदोलन की राह पर चलने का फैसला सुनाते हुए फिलहाल अपना समय बर्बाद करने का फैसला किया है। 20 जुलाई 2016 को ममता बनर्जी द्वारा बिस्वाकर्मा, दमाई और सरकिस के लिए अलग-अलग विकास बोर्ड बनाने के निर्णय से पहाड़ियों में नेपाली अनुसूचित जाति समुदाय विभाजित हो गया, जिसमें विभिन्न गुटों ने निकायों पर दावा किया। बिस्वाकर्मा, दमाई और सार्की नेपाली एससी समुदाय बनाते हैं जिनके सदस्य समग्र रूप से विविध संवैधानिक लाभों का लाभ उठाते हैं। उदाहरण के लिए, वे चुनाव में एससी समुदाय के लिए आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ सकते हैं और नौकरियों में आरक्षण प्राप्त कर सकते हैं। मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने 13 जुलाई को दार्जिलिंग में तीन एससी समुदाय के लिए तीन अलग-अलग विकास बोर्डों की घोषणा की। घोषणा के साथ ही दार्जिलिंग अनुसूचित जाति कल्याण संघ और विभिन्न अन्य संगठन मांग कर रहे हैं कि उन्हें भी बोर्ड बनाने की अनुमति दी जानी चाहिए।

दार्जिलिंग में अनुसूचित जाति समुदाय के सुधार के लिए तीन विकास बोर्डों का गठन किया गया है। तब से बोर्ड जीवन के सभी पहलुओं में समुदाय के उत्थान के लिए कड़ी मेहनत कर रहा है। बोर्ड का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति समुदाय की पारंपरिक लोक कला, लोक संगीत, लोक नृत्यों का संरक्षण, संवर्धन और संरक्षण करना है। समुदाय के बीच घरों, पुस्तकालयों के निर्माण की सुविधा के लिए शिक्षा की वकालत करना, विरासतों की सुरक्षा के लिए केंद्र स्थापित करना और प्रथागत अधिकारों को बढ़ावा देना। इन उद्देश्यों के साथ बोर्ड ने एससी समुदाय को सुविधा प्रदान की है। विकास बोर्ड की स्थापना समुदाय के लिए एक बड़ी उपलब्धि थी। बोर्ड लोगों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में ईमानदारी से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह अनुसूचित जाति समुदाय के बीच उनके राजनीतिक अधिकारों के बारे में जागरूकता पैदा करने में भी सहायता करता है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि अनुसूचित जाति के उत्थान के लिए पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा अनुसूचित जाति समुदाय के लिए विकास बोर्ड की स्थापना एक परोपकारी योजना थी।

निष्कर्ष

दार्जिलिंग की अनुसूचित जातियाँ भी भारत के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित दुष्ट जाति व्यवस्था की शिकार हैं। लेकिन भारत के अन्य हिस्सों के विपरीत दार्जिलिंग पहाड़ियों में जाति व्यवस्था के भीतर कुछ लचीलापन है। संविधान को अपनाने के बाद से सरकार अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए विभिन्न योजनाएं, नीतियां बना रही है लेकिन अभी तक प्रभावी परिणाम देखने को नहीं मिले हैं। 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम ने अनुसूचित जातियों के लिए सीटों का आरक्षण प्रदान किया ताकि वे अपना प्रतिनिधित्व करने में सक्षम हो सकें। लेकिन आंकड़े बताते हैं कि दार्जिलिंग जिले की अनुसूचित जाति की आबादी को पूरी तरह से प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। इसका कारण उनकी शिक्षा की कमी हो सकती है। अनुसूचित जाति की अधिकांश आबादी गरीबी से त्रस्त है और उनके पास न्यूनतम वित्तीय संसाधन नहीं हैं, इसलिए वे किसी भी शैक्षणिक संस्थान में जाने का जोखिम नहीं उठा सकते और निरक्षर बने रहते हैं और इस वजह से वे अनभिज्ञ रहते हैं और राजनीतिक सशक्तिकरण की अवधारणा को महसूस नहीं करते हैं और हमेशा भटके रहते हैं। राजनीतिक भागीदारी से. इसके अलावा सामाजिक रूप में भी भेदभाव कुछ हद तक दिखाई देता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि उच्च जाति को निचली जाति से विवाह करने पर लगातार प्रतिबंध है। दार्जिलिंग के गूढ़ क्षेत्रों में यह देखा गया है कि ऊंची जातियां निचली जाति के साथ घुलने-मिलने का प्रयास नहीं करतीं, जिन्हें वे शारीरिक मानते हैं। देहाती क्षेत्रों की तुलना में शहरी फैलाव में ऊंची जातियों का निचली जातियों के साथ मेलजोल आम है। लेकिन समय बीतने के साथ दार्जिलिंग पहाड़ियों का अनुसूचित जाति समुदाय चेतना प्राप्त कर रहा है और इसके लिए पश्चिम बंगाल सरकार के साथ-साथ अनुसूचित जाति समुदाय के सक्रिय सदस्यों के दोहरे प्रयासों को श्रेय दिया जा सकता है जो इसके लिए आवाज उठा रहे हैं। वे यह मांग उठाते रहे

हैं कि चूंकि अनुसूचित जाति समुदाय को राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में कोई पूर्व अनुभव नहीं है, इसलिए राज्य सरकार द्वारा अधिक सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे राजनीतिक निर्णय लेने और सामाजिक क्षेत्र में अपना प्रतिनिधित्व कर सकें। इस संबंध में उन्होंने अनुसूचित जाति विकास बोर्ड की स्थापना का दावा किया। अपने पूरे प्रयास से वे सरकार को मनाने में सफल रहे और 13 जुलाई को मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने दार्जिलिंग में एससी समुदाय के लिए न केवल एक बोर्ड बनाने की घोषणा की, बल्कि बिस्वाकर्मा (कामी), दमाई और सरकी के लिए तीन अलग-अलग बोर्ड बनाने की घोषणा की।

दार्जिलिंग पर्वतीय क्षेत्र में अनुसूचित जाति समुदाय के लिए तीन बोर्ड बनाने में सरकार द्वारा की गई गति सराहनीय है। यह दार्जिलिंग पहाड़ियों में अनुसूचित जाति समुदाय की स्थिति को ऊपर उठाने के लिए पश्चिम बंगाल सरकार की ओर से एक रचनात्मक कार्य था। विकास बोर्ड के संचालन के बाद से आज तक अनुसूचित जाति की आबादी की स्थितियों में बदलाव आया है।हालाँकि, हाशिए की बुराइयों को दूर करने के लिए, अनुसूचित जातियों के लिए सशक्तिकरण नीतियों और कार्यक्रमों के नियमित और व्यापक प्रभाव आकलन को व्यवस्थित करने की पहल की जानी चाहिए। सरकार, राजनीतिक दलों, गैर सरकारी संगठनों और कार्यकर्ताओं की ओर से उन बाधाओं (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि) को संबोधित करने के लिए एक मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है जो अनुसूचित जातियों की राजनीतिक भागीदारी को बाधित करती हैं और राजनीति में उनकी भागीदारी के लिए अनुकूल माहौल बनाती हैं।

संदर्भ

- गुप्ता, डी. (1991), ष्जाति व्यवस्था की विशेषता।ष सामाजिक स्तरीकरण में, जी.एस. घुर्ये द्वारा, दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- गुप्ता, डी. (1991), सामाजिक स्तरीकरण। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- गुरु, जी. (1984)। आरक्षण और अनुसूचित जातियों का संस्कृतिकरण। कुछ सैद्धांतिक. इंडियन सोशियोलॉजिकल सोसायटी
- गुप्ता, डी, इंट्रोगेटिंग कास्ट (2000) भारत सरकार (1993-73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम।
- हान, ए. (1999)। सोशल एक्सक्लूजन: टुवर्ड्स एन होलिस्टिक अंडरस्टैंडिंग ऑफ डेप्रिवेशन रिसर्च गेट,
- हरिजन, के. (2001)। इसके विकास में अंग्रेजों की भूमिका - एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। दार्जिलिंग एक बहुविषयक अवलोकन।
- पनंदिकर, वी ए पै। (1997), भारत में पिछड़ेपन आरक्षण नीति की राजनीति। नई दिल्ली: कोणार्क प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड।
- पंगन्नावर, ए वाई (2014) भारत में अनुसूचित जाति (एससीएस) सामाजिक-आर्थिक स्थिति
- अंबेडकर, एस नागेंद्र (2008) आरक्षण नीति: मुद्दे और कार्यान्वयन। जयपुर एबीडी प्रकाशन।
- भारत की जनगणना, ष्साक्षरता की स्थिति (अध्याय 7) अनंतिम जनसंख्या योग ष, श्रृंखला 1, भारत , 2001,2001 का पेपर 1,
- पश्चिम बंगाल सरकार, पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग (2001)
- व्यक्तिगत अनुसूचित जाति के लिए राज्य प्राथमिक जनगणना सार (2001)
- सशक्तिकरण नीतियां। नई दिल्ली: न्यू सेंचुरी प्रकाशन
- राम जे (1980) भारत में जातिगत चुनौतियाँ। नई दिल्ली: विजन बुक्स.
- रॉय, के (1999)। राजनीति में महिलाएं, रजत प्रकाशन नई दिल्ली।

वर्ण जाति एवं अस्पृस्यता के प्रश्नों का हिंदी दलित पत्रिकारिता से सरोकार

दुर्गेश कुमार देव

शोध छात्र (श्रत्थ) हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

"धर्म, जाति-वर्ण-व्यवस्था भारतीय समाज की ऐतिहासिक विशेषताएं हैं। समाजोन्मुख पत्रकारिता, विशेषकर दलित पत्रकारिता को इन विशेषताओं के संदर्भों का प्राय: सतत् सामना करना पड़ता है।"[1] 'सिंहनाद' (साप्ताहिक) के संपादकीय लेख के अनुसार- "मूलत: दलितों का अपना कोई धर्म नही है। हिंदू धर्म दलितों का धर्म नहीं है और ना ही दलित हिंदू हैं फिर भी हिंदुओं ने उन्हें दलित पुकार रखा है दलित आरक्षण के लालच में यह चुपचाप स्वीकार कर लेता है। इस आरक्षण नीति पर भी न्यायाधीशों, लेक्चरार, प्रोफेसर जैसे सम्मानित व्यवसायों में अमल नही होता। डॉ0 अम्बेडकर ने 30 वर्ष पूर्व कहा था कि, "हिन्दू धर्म दलितों का धर्म नहीं है इस धर्म में सुधार नहीं हो सकता। जात-पात, हिंदू धर्म कुछ नहीं है यही बात हिंदुओं के शंकराचार्य ने भी कही थी कि छुआछूत समाप्त करने पर हिंदू धर्म नष्ट हो जाएगा।"[2] 1905 में स्वामी अछूतानन्द द्वारा 'अछूत' नामक पत्र की शुरूआत करने से पहले स्वामी जी आर्य समाजी संन्यासी सच्चिदानन्द के सानिध्य में थे, और जाति प्रथा के खिलाफ प्रचार-प्रसार कर रहे थे। इसी समय आर्य समाज की स्थापना हो चुकी थी। आर्य समाजी लोग वैदिक स्वराज की बात करते थे, जो जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था को न मानते हुए कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था को स्वीकारा। उस समय तक शुद्धि आन्दोलन की शुरुआत नहीं हुई थी, किन्तु अछूत समाज में आर्य धर्म का प्रचार-प्रसार जोरों से चल रहा था। जाति आधारित वर्ण व्यवस्था का विरोध एवं कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था ने हीरालाल को इतना प्रभावित किया कि वे अपना नाम बदलकर स्वामी 'हरिहरानन्द' हो गए। सच्चिदानन्द ने हरिहरानन्द को आर्य समाज के मूल ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा वेदों से परिचित कराया।

हरिहरानन्द ने लम्बे समय तक आर्य समाज में रहकर आर्य समाज का खूब प्रचार-प्रसार किया। किन्तु कुछ समय पश्चात् आर्य समाज में उन्होंने महसूस किया कि ब्राम्हणवाद की जड़े यहाँ पर भी हैं, जाति-पात का विरोध आर्य समाज का मात्र ढोंग है। इस संगठन में कार्य करते हुए उन्होने यह भी महसूस किया कि इस संगठन ने उन्हें ईसाई एवं मुस्लिम विरोधी बना दिया। आर्य समाज से मोहभंग के बाद स्वामी अछूतानन्द इससे अलग हो गए, उन्होने अछूतों को 'आदि हिन्दू' घोषित कर उससे संबंधित प्रमाण प्रस्तुत किए। "वर्ण-व्यवस्था में सुधार तथा अछूतों के प्रति सामाजिक नजरिए को बदलने हेतु उन्होंने 'आदि हिन्दू' नामक संस्था का गठन किया तथा 'अछूत' नामक अखबार के माध्यम से आंदोलन का आगाज किया।"[3]

यहीं से हिंदी दलित पत्रकारिता में वर्ण जाति एवं अस्पृश्यता के प्रश्नों की शुरुआत हुई। इनके पत्र 'आदि हिन्दू' पाक्षिक में इनके द्वारा रचित कविता की छह पक्तियां मुखपृष्ठ शीर्षक के नीचे नियमित छपा करती थीं-

हैं अछूत छूत से हम हैं वरी।
आदि हिंदू हैं न संकर वर्ण में हम हैं।
हरी हैं निवासी हिंद के प्राचीन हैं, हकदर हम।
हा बनाया शूद्र हम को थे कभी सरदार हम
जुल्म 'हरिहर' मत सहो।,
तोड़ दो जंजीर क्यों गुलामी में रहो।

इसके पश्चात् 'जात-पांत तोड़क, मंडल' के संस्थापक संतराम (बी.ए.) ने अपनी पत्रिका 'ऊषा' मासिक से वर्ण-व्यवस्था एवं अस्पृश्यता जैसे सामाजिक प्रश्नों को उठाया।

मुंशी हरिप्रसाद टम्टा ने भी अपने पत्र 'समता' (साप्ताहिक) के माध्यम से जाति-व्यवस्था एवं अस्पृश्यता पर प्रहार किया। इस पत्र के शीर्ष आमुख में 'अछूत-दलित, आदि-हिंदू, शिल्पकार, मजदूर तथा कृषकों का पत्र' लिखा गया।

डॉ0 अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन से पहले जितनी भी दलित पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रहीं वो केवल हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों, कर्मकाण्डों, वर्ण-व्यवस्था एवं शोषण की नीतियों पर ही प्रश्न करते थे किन्तु जब डॉ0 अम्बेडकर ने लोगों के समक्ष धर्म परिवर्तन का विकल्प प्रस्तुत किया तो दलित पत्र-पत्रिकाओं ने धर्म सुधार आन्दोलन का उद्देश्य छोड़कर धर्म-परिवर्तन एवं बौद्ध धर्म की बात पर जोर देना शुरू कर दिया।

"तीन वर्ष पूर्व 1990 में इसी वायस ऑफ दी वीक के संपादकीय ने डॉ0 अम्बेडकर के हवाले से लिखा था कि, "वर्ण-व्यवस्था हिंदू धर्म के प्रांण है अगर वर्ण-व्यवस्था को हटा वर्ण की नकारात्मक आलोचना कर रही है वह डॉ0 अम्बेडकर द्वारा धर्मांतरण करने के बाद अनुकरण की राह अपनाने से अधिक संभव हुई। स्वतंत्रता पूर्व जब डॉ0 साहब हिंदू धर्म में सुधार की उम्मीद कर रहे थे, मराठी, हिंदी के दलित पत्र उनके समर्थन में थे। 1942 में समता ने 'हिंदू चेतें' शीर्षक संपादकीय में लिखा... "हिंदू अपने ही दलित अंग को अपनाने के बजाय उन्हें ठोकर मारने में ही अपनी शान समझता है। हम हिंदू समाज को चेतावनी देते हैं कि यदि वे चाहते हैं कि देश आजाद हो तो सब प्रकार का शोरगुल बंद करके अपने दलित भाइयों को गले लगाएं। उन्हें बराबरी के अधिकार दें। अब जुबानी जमा-खर्च से काम नहीं चलेगा।" हिंदू समाज का दलित घटक अपने सामाजिक अधिकारों की मांग करते-करते डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में भी जब अपेक्षित सफलता हासिल नहीं कर पाया। 14 अक्तूबर, 1956 को जब उन्होंने 'बौद्ध धर्म' अपना लिया तब भी दलित पत्रकारों ने उनका यथावत अनुकरण किया अस्तु आज तक अधिसंख्य दलित पत्र हिंदू धर्म छोड़ने का परामर्श दे रहे हैं। और वह न केवल धार्मिक बल्कि आर्थिक समस्याओं का समाधान भी धर्म परिवर्तन में बता रहे हैं। लेकिन यह पमरार्श श्रद्धा और अनुकरण पर आधारित ज्यादा होता है। समय की जरूरत और मांग तथा स्वयं विवेक पर कम।"[4]

मान्यवर, कांशीराम 'बहुजन संगठन' के संपादकीय लेख में हिन्दी पत्रिकारिता को चरितार्थ करते हुए लिखते है कि, "यदि पत्रकार भारतीय है तो उसकी जाति भी होती है। भारत दुनिया में एक असाधारण देश है जिसकी खासियत जातीयता के दायरे में सिमटी हुई है। भारतीय पत्रकारिता का कोई एक दृष्टिकोण न होने के कारण वह पूर्ण रूप से जातीयता से ग्रस्त व प्रभावित है जो तथ्यों को उजागर करने की दिशा में नपुंसक नजर आती है। भारतीय ब्राम्हणवादी पत्रकारिता, पत्रकारिता के नाम पर कलंक है।"[5]

जाति के आधार पर दलित उत्पीड़न की घटना को 19 मार्च 1941 को समता पत्र द्वारा 'दलित उत्पीड़न' की पृष्ठभूमि में लिखा गया शायद दलित पत्रों का इस काल का पहला संपादकीय रहा होगा। 'गढ़वाल के अत्याचार' शीर्षक से तत्कालीन संपादक श्री लक्ष्मी प्रसाद टम्टा ने इसमें लिखा कि- "गांधी जी ने गढ़वाल से देशव्यापी सत्याग्रह इसी कारण स्थगित कर दिया था कि वहां (गढ़वाल) की कांग्रेस पहले वहां के हरिजनों पर होने वाले अत्याचार विशेषकर, 'डोला पालकी' के प्रश्न को पहले हल करे।"[6]

17 दिसम्बर, 1967 के नवभारत टाइम्स ने लिखा कि, "तीन हरिजनों को अपनी मुछे नीची रखने के बजाय ऊंची रख लेने पर गोली से उड़ा दिया गया।"[7]

"भीम संदेश मासिक पत्र ने अपने प्रवेशांक में लिखा कि, "प्रकाशित प्रत्येक अंक पीड़ितों की एकता, समता, निष्पक्षता, और राष्ट्रीय चेतना की अमूल्य निधि से परिचित कराके छुआछूत, ऊंच-नीच, स्वास्थ, शिक्षा, सुरक्षा, रोजी-रोटी, कपड़ा-मकान और मान्य हक प्राप्त कराने के लिए संघर्ष की गति निरंतर तीव्र कराने का मार्ग प्रदर्शित करेगा।"[8]

"अमर उजाला के मुरादाबाद संस्करण ने मेहराना में 'पंचायत के फैसले के साथ शुरू हो गया था क्रूर तांडव' शीर्ष खबर छापी"[9]

"मान्यवर कांशीराम ने बहुजन संगठन के संपादकीय में लिखा कि "1981 में 'देहुली' का वीभत्स हत्याकांड और वर्ष समाप्ति पर 31 दिसंबर को मैनपुरी, उत्तर प्रदेश के 'साढूपुर' गांव में 10 दलित जाटवों की हत्या, 1982 के प्रथम माह में मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र के 'सतारा' गांव में 14 सतनामी दलितों को मौत के घाट उतार दिया। 9 अगस्त, 1982 को इलाहाबाद के 'पीपल' गांव में दलितों के घरों को पुलिस द्वारा तोड़ा गया - भरतपुर (राज.) के पागलशाही खानदान के सिरफिरे जाटों द्वारा आगजनी की गई। जाटवों की 15 दुकानों में आग लगा दी। 12-13 गांव के दलितों को पलायन करना पड़ा।"[10] इसी प्रकार 6 दिसम्बर को अयोध्या में बाबरी विध्वंस मुसलमानों के प्रति सांप्रदायिकता मात्र ही नही थी बल्कि जातिभेद की भावना से यह डॉ0 अम्बेडकर की पुण्यतिथि

को ध्यान में रखकर भी किया गया' ऐसा कई दलित पत्रों ने छापा, इन प्रश्नों को उठाकर मुलायम सिंह और कांशीराम ने भाजपा को 1993 के चुनाव में हरा दिया।

"जतिभेद, सांप्रदायिकता के विषय में त्रैमासिक पत्रिका 'धम्म दर्पण' ने लिखा कि, "भारत में सांप्रदायिकता का रोग उतना ही पुराना है जितना ऋग्वेद में वर्णित आर्यों और दस्युओं का संघर्ष। यह संघर्ष दो जातियों के बीच का संघर्ष न होकर दो धर्मो के मानने वालों के बीच का संघर्ष था। कालांतर में मध्य काल में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष जोर पकड़ गया।"[11]

जातिभेद के मुद्दे पर 'दलित संवेग' के जुलाई सितम्बर, 2015 के अंक में मिथुन कुमार, डी.यू का लेख 'इक्कीसवीं सदी के द्रोणाचार्य और एकलव्य' प्रकाशित हुआ, इसी अंक में धर्मवीर यादव गगन का लेख 'मैं दलित हूँ' एवं प्रिया सिंह का लेख 'वर्तमान विमर्शों में हिन्दी दलित काव्य वेदना, संघर्ष एवं स्वानुभूति का काव्य है।' प्रकाशित हुआ। अम्बेडकर कल्चर पत्रिका के सितम्बर 2014 - मई 2015 अंक में प्रो. कालीचरण स्नेही का संपादकीय 'राष्ट्रीय एकता तथा अखण्ड़ता के लिए जातिवाद सबसे बड़ी चुनौती' प्रकाशित है। इसी पत्रिका के जून-नवम्बर 2015 (संयुक्तांक) अंक में धनंजय कीर का लेख 'हिंदू समाज की पुनर्रचना' तथा तरुण विजय का लेख 'ऊँची जाति नीची जाति' प्रकाशित हैं। इसी पत्रिका के मई-अक्टूबर 2016 (संयुक्तांक) अंक में प्रो० कालीचरण स्नेही (संपादक) का लेख 'रोहिता वेमुला की बरसी पर' प्रकाशित है अम्बेडकर इन इंडिया पत्रिका के सितम्बर 2010 अंक में (अंक 88) प्रो० (डॉ.) अंगने लाल (पूर्व कुलपति) का लेख 'पेरियार रामास्वामी नायकर: ब्राम्हणवाद को चुनौती', राजन लाल जावा 'निर्मोही' का लेख 'सामाजिक क्रांति क्यों नहीं' नारायण बारेठ का लेख 'दलित कार सेवक की कथा' प्रकाशित है। इस पंत्रिका के अंक 123 (जनवरी 2015) में सुभाष चन्द्र कुशवाहा का लेख अंक 'जाति, धर्म, संप्रदाय और राजनीति के चहरे' प्रकाशित है।

इस पत्रिका के अंक 152 (अक्तूबर 2017) में आर.डी. आनन्द का लेख 'जातिप्रथा वर्ग-संघर्ष विरोधी है।' प्रकाशित है। दलित संवेग पत्रिका के सितम्बर 2017 के अंक में डॉ० अवधेश कुमार का लेख 'वर्ण और जाति पर भगवान बुद्ध के विचार तथा हरिकेश गौतम की कविता 'द्रोण तुम्हे धिक्कार' प्रकाशित है। अम्बेडकर इन इण्डिया पत्रिका के अंक 121 (नवम्बर 2014) में कँवल भारती का लेख 'वे हमे जातिवादी कहते हैं। इस पत्रिका के अंक 162 (जुलाई 2018) में महामना रामस्वरूप वर्मा का लेख 'वर्ग संघर्ष कब और कैसे? प्रकाशित है। अम्बेडकर इन इण्डिया के अंक 130 (सितम्बर-अक्टूबर 2015) में एस.आर. दारापुरी का लेख 'उत्तर प्रदेश दलित उत्पीड़न में' प्रकाशित है। बोधिसत्व मिशन पत्रिका के अंक 09 (सितम्बर 2020) में डॉ० बृजेश कुमार भारतीय का लेख 'पूना पैक्ट: पिछड़ों को गुलाम बनाने की योजना', प्रेम कुमार कवि का लेख 'हिन्दू मन्दिर एवं लोकतंत्र', संघप्रिया का लेख' लोकतंत्र के रामराज्य एवं पिछड़ा वर्ग', 'रामसरण का लेख 'राम बहुजनों के लिए कितने हितकारक', राजेश चौधरी का लेख 'ईश्वर के वंशज होने का लॉलीपाप', एड् डगेश्वर खटकर का लेख 'उच्च शिक्षा में विरहारे जनजाति की छात्रा का प्रवेश', अभिनव प्रकाश लेख का लेख 'पेरियार ई.वी. रामास्वामी के क्रांतिकारी वक्तव्य', सिद्धार्थ का लेख 'पेरियार ललई सिंह यादव का आंदोलन, दीपेन्द्र अकेला' का कविता 'हुक्मरानों' से ब्रेकिंग खबर आ रही है।' तथा महेन्द्र नारायण पंकज का रिपोर्ट बहुजन साहित्य संवर्द्धन हेतु विमर्श' प्रकाशित किया गया है। इसी पत्रिका के अंक 07-08 (जुलाई-अगस्त 2020) में डॉ. बृजेश कु0 भारतीय का लेख अंनुसूचित जाति के प्रति हिंदुओ की अराजकता, प्रकाशित है। इसी पत्रिका के अंक 02 (फरवरी 2019) में डॉ0 बृजेश कु0 भारतीय का संपादकीय लेख 'पिछड़ों को गुलाम बनाने की मुहिम' (13 प्वाइंट रोस्टर), प्रकाशित है बोधिसत्व मिशन पत्रिका के अंक 04-06 (अप्रैल-जून 2020) में चन्द्रवली प्रसाद का लेख 'हिंदू व्यवस्था के विरुद्ध अस्पृश्यों के विद्रोह' प्रकाशित है, भीमान्शु टुडे पत्रिका के अंक 40-41 (जनवरी-फरवरी 2015) में 'मध्यकाल में शुद्रों व अतिशूद्रों की गुलामी' लेख प्रकाशित है। डिप्रेस्ड एक्सप्रेस पत्रिका के अंक 03 (अक्टूबर 2016) में धर्मेन्द्र सिंह की खबर 'पीड़ित के प्रति पुलिस का आचरण' प्रकाशित है। इत्यादि। जातीय उत्पीड़न से संबंधित प्रो० श्यौराज सिंह बेचौन का लेख 'अंधेरा उत्तर-प्रदेश में' अम्बेडकर कल्चर पत्रिका के मई-अक्टूबर, 2016 (संयुक्तांक) अंक में प्रकाशित हुआ वे एक दलित लड़की के साथ हुए उत्पीड़न की घटना का जिक्र करते हैं। इस घटना की शुरुआत करते हुए प्रो0 बेचौन कहते हैं कि, "सियासत चंद दिन पूर्व चरन सिंह नामक दलित की बारह वर्षीय बेटी सुधा जो कक्षा छह की छात्रा है। अपने पिता के साथ खेत पर गई थी। प्यास लगी तो सामने बनी मढ़ी यानी हिंदू मंदिर पर पानी पीने चली गई थी। इस पर पुजारी ने न केवल छात्रा को बुरी तरह मारा-पीटा था, शिकायत करनें पर उसके पिता पर भाले से वार किया गया था। सोशल मीडिया, टी.वी. चौनल और अखबारों के द्वारा यह वाकया प्रकाश में आया, कानूनी एक्शन भी हुआ बाबा जेल भी गया, परन्तु इस बीच सुधा के चचेरे भाई ग्यारवी कक्षा का छात्र 'राहुल' के पिता ने एक मोटरसाइकिल और नए कपड़े खरीद कर दिए

क्यों कि कपड़ों से उसकी जाति जोड़ी जा रही थी कि दलित अच्छे कपड़े नहीं पहनते या जो पहनते हैं उससे उनकी जाति पता चलती है। उत्तर प्रदेश की शासक जाति के लोगों को कैसे गवारा हो सकता है, कि दलित उनके जैसा दिखे। सो राहुल को गली से गुजरते हुए दबोच लिया और बात हाथापाई तक भी नहीं रही। बल्कि उसकी छाती और गर्दन पर चाकू से वार किये गए। इरादा जान से मारने का था सो छोड़ा तब जब उसे मर गया मान लिया ओर कुछ लोग उधर आते दिखाई पड़े।"[12]

इस घटना का जिक्र करते हुए प्रो० बेचौन कहते है कि', "यह उपेक्षा या भेदभाव की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। बल्कि अस्पृश्यता के रुप में भी सामने आती है। जिस अस्पृश्यता को भारतीय संविधान में धारा 17 के तहत समाप्त कर दिया है उसका व्यवहार करना गैर कानूनी बना दिया है वह यहां देखी जा सकती। गरीबी बेरोजगारी और अस्पृश्यता हिकारत की भयंकरता के कारण इस गांव के अधिकांश दलित परिवार गांव छोड़ कर भाग चुके हैं। उनके घर वीरान पड़े हैं। अल्पसंख्या में होने के कारण बचे हुए भी गांव छोड़ने और धर्म बदल कर कहीं अपनी जिंदगी गुजारना चाहते हैं।"[13]

इसी अंक में बृजेश चन्द्र कौशल का लेख 'छाया से सितारों तक: रोहित वेमुला' लेख भी प्रकाशित है। जिसमें यह बताया गया है कि किस तरह रोहित वेमुला जातीय उत्पीड़न का शिकार होकर संघर्ष करता है और अन्त में हार कर आत्महत्या कर लेता है, इस उत्पीड़न में वि.वि. प्रशासन किस तरह शामिल रहता है बाद में जब इसकी जाँच होती है तो किस तरह ब्रम्हणवादी मीडिया और पुलिस प्रशासन इस मुद्दे को दबाने का प्रयास करती हैं। इस लेख के अन्त में कौशल कहते हैं कि, "रोहित वेमुला की आत्महत्या के अतिरिक्त जातिवादी मानसिकता के कारण दलित, पिछड़ा एवं अल्पसंख्यक वर्गों में जो आत्महत्याएं हुई हैं उसके लिए इतिहास इस बात का गवाह है कि अगर कोई दलित वर्ग का प्रतिनिधि करता है तो हमारा श्रेष्ठ हिन्दू कुलीन समाज को ये स्वीकार नही है कि एक दलित के मुंह से सर्वण हिन्दू की तरह विचार रखने की आजादी नही देना चाहते। जातिगत भेदभाव रखने वालों के दिमाग में जातिवादी मानसिकता की गहरी जड़े जो व्याप्त हैं उसका समय-समय पर असर देखने को मिलता है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति के अध्यक्ष पी०एल०पुनिया भी ऐसी जातिवादी मानसिकता के लोगों की घोर निंदा करते हुए कहते हैं- "रोहित की खुदकुशी और अम्बेडकर पेरियार स्टडी सर्किल (ए.पी.एस.सी) पर लगे प्रतिबंध में ऐसा ही चलन देखा जा सकता है और फिर अनुसूचित जाति के लोगों को निराधार जाचों के आधार पर दोषी ठहरा दिया जाता है।"[14]

डिप्रेस्ड एक्स्प्रेस हिन्दी मासिक पत्रिका के अगस्त 2016 (वर्ष 1, अंक-01) के, अंक में संपादकीय लेख दिवंगत श्रद्धेय महीपाल सिंह का संपादकीय लेख प्रकाशित है, इस लेख में महीपाल सिंह कहते हैं 'उत्पीड़न से दलित सीख लें' विषय के अन्तर्गत कहते हैं कि, "दलित टुडे देश के दलितों को बार-बार आगाह करती आ रही है कि जिस देश में जाति के कारण दलितों को दुलीना पुलिस चौकी के अन्दर, पुलिस अभिरक्षा में पत्थर मार-मार कर मौत के घाट उतार दिया जाता हो और पुलिस मूक दर्शक बनकर खड़ी रही, जिस देश के अन्दर जातीय दम्भ से सराबोर उन्मादी लोग जातीय आधार पर एकजुट होकर दर्जनों गांवों की पंचायत करके गोहाना की दलित बस्ती को आग के हवाले करने की चेतावनी दें और अपनी चेतावनी के अनुसार चेतावनी देने वाली भीड़ गोहाना की दलित बस्ती में घुसकर जमकर लूट-पाट करे तथा उस पुलिस अमानवीय व आपराधिक कृत्य को एक तमाशबीन की मुद्रा में खड़ी देखकर मुस्कुराती रहे तो इसे आप क्या समझेंगे? जिस देश में खटीक को खाट से बांध कर मौत के घाट उतारा जाता हो, धानुक को रूई की तरह धुन-धुन कर मारा जाता हो, धोबी को लाठी डन्डों से कपड़े की तरह धो-धो कर धमकाया जाता हो, पासी का फरसों से काट-काट कर वध किया जाता हो, कोली को खोलते तारकोल के ड्रम में डाल दिया जाता हो, चमार की बहु-बेटियों को नंगा करके पूरे गांव में घुमाया जाता हो और मुसहर को उसकी झोपड़ी में जिन्दा जला दिया जाता हो, उस देश में असंख्यक जातियों में बंटे दलितों को यह सीख तो नही दे रहे कि वह इस देश को जातिय गृह युद्ध की आग में झोंक कर स्वाह कर दें। लेकिन विभिन्न जातियों में बटे दलितों को यह जरूर समझाना चाहते हैं कि तुम्हारे साथ होने वाले जुल्म और ज्यादति की जड़ में जाति है। जरा समझने की कोशिश कीजिए कि जब आपको पता चल जाता है कि आपको दमा है, अलसर है, पेट में पत्थरी है, कैंसर है या बुखार है तो यकीनन आप अपना इलाज कराते है जिससे आप स्वस्थ्य एवं सम्पन्न रहें। अपने बालक बच्चों के साथ लम्बी उम्र पाये तो ऐसी स्थिति में आपको निश्चिय ही जब यह पता चल चुका है कि आपके साथ होने वाले जुल्म और ज्यादति की जड़ में जाति है तो आपको इस जाति को समाप्त कर सिर्फ और सिर्फ दलित वर्ग के रूप में संगठित होने का संकल्प लेना चाहिए।"[15]

इस लेख के अन्त में महीपाल सिंह लिखते है कि, "हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि जिस दिन इस देश में चमार, वाल्मीकि, पासी, खटीक, धोबी, धानुक, मुसहर और नट आदि एस. सी./एस. टी. की तमाम जातियों के लोग अपनी-अपनी जाति

को मटियामेट करके सिर्फ और सिर्फ दलित वर्ग के रूप में एकजुट हो जायेंगे तो उसके बाद इस देश मे न तो गोहाना में दलितों की बस्ती को कोई आग लगाने की हिम्मत जुटा पायेगा और न ही कोई दुलीना में दलितों को मारने की हिमाकत कर पायेगा। न बेलछी काण्ड होगा और न सादुपुर काण्ड तथा न ही पनवारी काण्ड और न कोई कुम्हरे काण्ड की काली करतूत करने की हिम्मत जुटा पायेगा।"[16]

इस अंक में दलितों की जमीनों पर अवैध कब्जे की घटना पर डी० के० भास्कर का लेख 'अखिलेश सरकार पर दाग'- जवाहर बाग?' प्रकाशित है जिसमें जातीय उत्पीड़न का शिकार हुए दलितों की व्यथा है।

इस अंक में पृ0सं0 12 पर डॉ० आर.पी. टण्डन का लेख 'रोहित वेमुला की आत्महत्या' से उपजे सवाल' के अन्तर्गत यह बताया गया है कि, "भारत में लोकतंत्र की व्यवस्था है, लेकिन, दुख की बात यह है कि आज भी देश भर में ऐसे सामंती तत्वों का बोल बाला अथवा वर्चस्व बना हुआ है जो कि मेहनतकश, दबा- कुचला, पिछड़ा व कमजोर समाज का शोषण कर स्वयं अय्याशी का जीवन व्यतीत करते हैं और उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता जबकि कानून की किताबें ऐसे लोगों के खिलाफ कार्रवाई करने वाली विभिन्न धाराओं से भरी पड़ी हुई हैं। लेकिन ऐसे सामंती तत्वों पर कोई उचित कार्यवाही नहीं होती बल्कि दलित शोषित और निरीह छात्र-छात्राओं जो कि गरीब घरों से निकल कर गांवों से अपनी अव्वल प्रतिभा के साथ उच्च शिक्षण संस्थानों में अगर पहुंच भी जाते हैं, प्रवेश पाने में सक्षम हो जाते हैं, तो भी इन सामंती तत्वों की बुरी नजर इन शोषित एवं दलित छात्र-छात्राओं पर पड़ जाती है, ऐसे ही रोहित की जान ली है। जाति व्यवस्था के उस भयावह पिंजर ने जिस पर हमारी तथाकथित लोकतांत्रिक व्यवस्था टिकी हुई है, रोहित को अपनी जान लेने के लिए मजबूर किया गया, क्योंकि उसने दलितों पर अपने लोगों पर लगातार किये जा रहे अन्याय के खिलाफ खड़े होने की हिम्मत की। रोहित को अपनी जान लेने के लिए मजबूर किया गया क्योंकि वह दलित मुद्दे की बात पर ही नहीं रूका उसने इससे भी आगे जाकर एक अक्षम्य अपराध कर डाला था, समाज के हाशिए पर रह रहे सभी वर्गों की लड़ाई लड़ने का अपराध, अल्पसंख्यकों मजदूरों, औरतों, आदिवासियों, सबकी लड़ाईयों को जोड़ने का उनमें अपनी आवाज उठाने का अपराध। अम्बेडकर स्टूडेण्ट्स एसोसिएशन के एक सक्रिय छात्र नेता के तौर पर रोहित ने व्यवस्था को ज्यादा ही चुनौतियाँ दे डाली थी, हैदराबाद सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी के पी-एच.डी. छात्र रोहित वेमुला की आत्महत्या ने शैक्षणिक संस्थानों में दलित छात्रों के साथ अलग बर्ताव को लेकर कई सवाल खड़े किए हैं।"[17]

इस अंक में पृ0सं0 19 पर 'बोलती तस्वीर' खण्ड के अन्तर्गत दलित उत्पीड़न की कुछ तस्वीरे भी छपी हैं जिसमें गुजरात के उना में मृत गायों को ले जाने पर चार दलितों को पीटने की तस्वीरें, उना के दलितों को पीटने के बाद विरोध प्रदर्शन में उमड़ी भारी भीड़ का दृश्य, जिला सुरेन्द्रनगर गुजरात के जिलाधिका कार्यालय के बाहर मृत गायों को विरोध स्वरूप पटकने की तस्वीरें घोर शर्मनाक बर्बरता की तस्वीर- दो मासूम बच्चे जिन्हें पेड़ से बांधकर पीटा और बाल काटकर सिर पर चौराह बनाए ,ऐसी घटनाओं की तस्वीरे छपी है।

जातिभेद, सांप्रदायिकता, छुआछूत जैसी समस्याएँ परस्पर वर्णव्यवस्था से जुडी हुई हैं, इन सबके समाधान के लिए वर्ण-व्यवस्था जैसी बुराई को समाप्त करना जरूरी है। इस व्यवस्था से समाज में जो एक गहरी खाई बनी हुई है वह कभी समाप्त नही की जा सकती, गैर दलित पत्र दलित मुद्दों को लेकर चर्चा तो कर लेते हैं किन्तु इनके मूल कारण वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने की बात कभी नहीं करते, इन प्रश्नों को लेकर दलित पत्रकारिता शुरू से तार्किक है, इसीलिए अपने लेखों में वर्ण, जाति एवं अस्पृश्यता जैसी समस्याओं पर हमेसा सवाल खड़ा करती रहती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अम्बेडकर गांधी और दलित पत्रिकारिता, डॉ. श्यौराजसिंह 'बेचैन', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2014, पृ0 सं0- 283
2. सिंहनाद (साप्ताहिक), 11.11.1985, संपादक: श्री सुन्दर लाल सागर, दीप नगर, संपादकीय, पृष्ठ संख्या- 3
3. समकालीन हिंदी दलित पत्रकारिता में दलित उवाच, डॉ. श्यौराजसिंह 'बेचैन अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2007, पृष्ठ संख्या- 214
4. अम्बेडकर गांधी और दलित पत्रिकारिता, डॉ. श्यौराजसिंह 'बेचैन', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण:2014, पृ0 सं0- 284-285

5. बहुजन संगठक, अंक 18, जून, 1990, कांशीराम, करोल बाग, दिल्ली, संपादकीय लेख (ब्राह्मणवादी पत्रकारिता का चेहरा)
6. समता, साप्ताहिक, 19/3/1941 अंक, संपादक- लक्ष्मीप्रसाद टम्टा, इंद्रा प्रिंटिग प्रेस, अल्मोड़ा, संपादकीय लेख (गढ़वाल के अत्याचार)
7. नवभारत टाइम्स, दैनिक पत्र, 17 दिसम्बर, 1967
8. भीम संदेश, मासिक, प्रवेशांक, संपादक: एन. एस. बनाफल, 14 अप्रैल 1969, दिल्ली, संपादकीय लेख, पृष्ठ संख्या- 2
9. अमर उजाला, दैनिक पत्र, 31 मार्च, 1991, मुरादाबाद
10. बहुजन संगठक, अंक 10, जनवरी, 1993, कांशीराम, करोल बाग, दिल्ली, संपादकीय लेख, पृष्ठ संख्या- 3
11. अम्बेडकर गांधी और दलित पत्रिकारिता, डॉ. श्यौराजसिंह 'बेचौन', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण:2014, पृ0 सं0- 298
12. अम्बेडकर कल्चर, वर्ष 4, मई-अक्टूबर, 2016 (संयुक्तांक), संपादक: कालीचरण 'स्नेही', लखनऊ, पृष्ठ संख्या- 19
13. वही, पृष्ठ संख्या- 21
14. वही, पृष्ठ संख्या- 30
15. डिप्रेस्ड एक्सप्रेस, वर्ष 1, अंक 1, अगस्त- 2016, संपादक: डी. के. भास्कर, मथुरा, पृष्ठ संख्या- 5
16. वही, पृष्ठ संख्या- 6
17. वही, पृष्ठ संख्या- 12

मोबाइल एडिक्शनः एक विश्लेषण

डॉ० भावना

क्रिस्ट (डिम्ड विश्वविद्यालय), मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली-एनसीआर कैम्पस

सारांश

आज के समय में हर तीसरा व्यक्ति मोबाइल एडिक्शन का शिकार बन चुका है। लेकिन बहुत सारे लोगों को मोबाइल एडिक्शन क्या होता है और इसे होने वाली बीमारियों के बारे में ज्ञान नहीं होता है, इसलिए यह बीमारी तेजी से फैल रही है।

आज हमारे स्मार्टफोन हमारी जिंदगी का अहम भाग बन चुका है इसलिए हम अपने मोबाइल के बिना कुछ घंटे भी नही रह पाते और अपने दैनिक जीवन मे कई घण्टे हम अपने मोबाइल पर व्यक्ति करने लगे है।

लेकिन क्या आप जानते है आपके लगातार मोबाइल इस्तेमाल करना एक खतरनाक बीमारी का रूप धारण कर सकता हैं और इस बात का आपकों पता भी नही लगेगा और आप मोबाइल एडिक्शन यानी मोबाइल के आदि बन जाओगे।

आज बहुत सारे ऐसे लोग है जिन्हें मोबाइल की लत लग चुकी हैं और चौकाने वाली बात यह है कि कुछ लोगों को तो इसकी जानकारी भी नही होती कि वह दरसल मोबाइल एडिक्शन के शिकार हो चुके है।

इसलिए मोबाइल एडिक्शन की सँख्या में तेजी से इजाफा हो रहा है। और यह बीमारी केवल सिर्फ एक आयु वर्ग तक सीमित नही हैं, बल्कि यह बच्चों से लेकर जवान और बूढ़े लोगों को भी अपना शिकार बना रही हैं।

इसलिए अगर आप समझ चुके है कि आप मोबाइल एडिक्शन के प्रभाव में आ चुके हैं, तो अब आपके लिए यह बेहद जरूरी है कि आप मोबाइल लत से कैसे पीछा छुड़वाए इसकी जानकारी भी होनी चाहिए।

मूल शब्दः मोबाइल एडिक्शन, लत, नोमोफोबीया, इंटरनेट, सोशल मीडिया

परिचय

मोबाइल फोन हमारे जीवन का अभिन्न अंग हो गया है, इसके अभाव में हमारे अनेकों महत्वपूर्ण काम रुक जाते हैं। जब व्यक्ति खुद को अपने मोबाइल फोन से दूर नहीं रख पाता, इस स्थिति को मोबाइल की लत कहते हैं। जब कोई व्यक्ति मोबाइल के अभाव में स्वयं को असहज महसूस करता है, उसे मोबाइल का लत कहते है। बेशक मोबाइल ने हमारा अनेकों काम आसान किया है पर समय बीतने के साथ हम मोबाइल के आधिन हो गए हैं। मोबाइल के ऑफ हो जाने पर कई लोगों का मूड भी ऑफ हो जाता है। वह गुस्सा करने लगते हैं। यह सही संकेत नहीं तथा इसका साफ तौर पर यह मतलब है आप 'नोमोफोबिया' के शिकार हो गए है। यह जरूरत से ज्यादा मोबाइल के उपयोग करने से होता है।

मोबइल फोन हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा इसका अविष्कार यंत्रों की दुनिया में क्रांति लेकर आया है। आज के समय में हमारे बहुत सारे काम मोबाइल की सहायता से घर से दूर नहीं रखना चाहते हैं। यह हमारे जीवन पर अनुचित प्रभाव डालता है।

मोबाइल फोन की लत क्या है?

मोबाइल की लत में हम स्वयं को अपने मोबाइल से दूर नहीं रख पाते हैं। कोई विशेष काम न होने पर भी हम मोबाइल को स्क्रोल करते रहते हैं। आज के समय में हमें मोबाइल की इतनी बुरी लत है, इसका अनुमान आप इस वाक्य से लगा सकते हैं-

'मोबाइल की लत को दूर करने के उपाय हम घंटों लगाकर मोबाइल पर ही ढूंढते हैं'। यह आदत हमारे जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करता है।

दरसल 2017 में ही WHO यानी विश्व स्वास्थ्य सगठन ने 194 देशों की सहमति से यह कदम उठा लिया था जिसके अंतर्गत तकनीक सम्बंधित समस्याओं को इस कैटेगरी में रखा गया है और Mobile Game addiction भी इसी के अंदर आता है जिसे गेमिंग डिसऑर्डर एडिक्शन कहते है।

जिस तरह बहुत सारे लोगों को सारा-सारा दिन गेम खेलने की लत लगी होती है, उसी प्रकार बहुत सारे ऐसे लोग भी है जो अपने मोबाइल को बहुत ज्यादा इस्तेमाल करते हैं जिसे मोबाइल एडिक्शन कहते हैं।

मतलब मोबाइल को लगातार इस्तेमाल करना और इस पर आपका खुद का नियंत्रण नही रहना जिसे आपके दैनिक जीवन के कामकाजों पर प्रभाव पड़ता हैं और साथ ही इसे आपके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव को मोबाइल एडिक्शन कहा जाता है।

तो अगर आप पर भी यह परिभाषा लागू होती है, तो आप भी मोबाइल एडिक्शन का शिकार हो चुके हैं। परंतु ऐसे नही है कि मोबाइल की लत को छोड़ नही जा सकता।

बिल्कुल इस लत से आसानी से पीछा छुड़वाया जा सकता हैं और बार-बार मोबाइल इस्तेमाल करने की लत को दूर किया जा सकता हैं। लेकिन सबसे पहले हमारे लिए यह जाना जरूरी है कि मोबाइल की लत कैसे लगती है, ताकि आप भविष्य में इसे सावधान रहे।

नोमोफोबीया क्या है?

मोबाइल के न मिलने पर या खो जाने पर हम सभी परेशान हो जाते है पर बहुत अधिक चिंता का होना नोमोफोबीया कहलाता हैं। इसमें मोबाइल के न होने पर व्यक्ति असहज महसूस करता है तथा उसे बहुत अधिक घबराहट होने लगती है। विश्व भर में किए गए शोधों से पता चला है, नोमोफोबिया की शिकायत तेजी से बढ़ती जा रही है। मोबाइल फोन को बहुत अधिक चलाने से यह बीमारी हो सकती है।

नोमोफोबीया के लक्षण

- मोबाइल से संबंधित सपनें आना- नोमोफोबिया में संबंधित व्यक्ति को मोबाइल चोरी होने या गिर जाने के सपनें आते हैं, इससे वह घबराहट में नींद से उठ जाता हैं। ऐसा दिन भर मोबाइल की चिंता करने के वजह से होता है।
- पैंनिक होना- हम सभी अपने किमती सामानों के न मिलने पर घबरा जाते हैं, पर नोमोफोबीया में व्यक्ति का मोबाइल खो जाने पर वह इतना घबरा जाता है की उसे पैंनिक अटैक आ सकते हैं।
- मोबाइल को स्वयं से दूर नहीं रखना- नोमोफोबिया का अर्थ नो मोबाइल फोबिया है। इसमें व्यक्ति किसी भी स्थिति में मोबाइल को स्वयं से दूर नहीं कर सकता। वह जहां कहीं भी जाता है मोबाइल लेकर हीं जाना पसंद करता है। सोने पर भी वह अपने समीप ही मोबाइल को रख कर सोता है।
- बार-बार कॉल के आने का आभास होना- नोमोफोबिया में बार-बार व्यक्ति को कॉल आने का आभास होता है, उसे लगता है कि जैसे मोबाइल की रिंग बज रही हो।

यह कुछ लक्षण है, जिससे पता चलता है कि व्यक्ति नोमोफोबिया का शिकार हो चुका है। अत: सही समय पर इससे छुटकारा पाने के लिए उचित कदम उठाना चाहिए।

मोबाइल की अधीनता

मोबाइल की लत ने व्यक्ति को अपने अधीन कर लिया है। गैजेट हमारे उपयोग के लिए है पर यहां गैजेट्स हमारा उपयोग कर रहे हैं। व्यक्ति को मोबाइल की ऐसी लत है की वह पास बैठे लोगों से बात करने के स्थान पर सोशल मीडिया पर मित्रों से लगा रहता है। इससे उसके अपनों से आपसी संबंध कमजोर होते चले जाते है। साथ ही व्यकि के जीवन की विभिन्न पहलुओं को भी यह लत प्रभावित करता है जैसे स्वास्थ्य, आजीविका (career), अध्ययन आदि।

मोबाइल एडिक्शन कैसे होता है?

किसी भी चीज की लत ऐसे ही नहीं लगतीं। उसके पीछे का प्रमुख कारण हैं "किसी भी चीज की अधिकता"। और जब हम किस चीज का अत्यधिक इस्तेमाल करते है तो हमें उसकी लत लग जाती है और मोबाइल की लत क्यो लग रही है इसके प्रमुख कारण इस प्रकार हैं:

1. इंटरनेट का इस्तेमाल

भारत मे बढ़ते इंटरनेट के इस्तेमाल से ही मोबाइल एडिक्शन की समस्या पैदा हुई है। क्योंकि इंटरनेट के बिना हम अपने मोबाइल के साथ ज्यादा समय नही बिता सकते हैं। जब तक इंटरनेट मोबाइल में होता हैं तब तक हम अपने मोबाइल के साथ चिपके रहते हैं।

बस इसी कारण हम जब भी खाली बैठे होते है इंटरनेट का इस्तेमाल करने लग जाती है। चाहें वह काम हमारे लिए जरूरी हो या न हो लेकिन फिर भी हम उस पर अपना समय खर्च करते हैं।

इस बात का अनुमान आप ऐसे लगा सकते है कि बिना इंटरनेट के इस्तेमाल के, आप अपने मोबाइल में क्या-क्या कर सकते हैं और कितना मोबाइल इस्तेमाल कर सकते हैं।

अगर आप यह सवाल अपने आप से पूछें तो आपकों आपके सवाल का जबाब चौकाने वाला मिलेगा। क्योंकि मोबाइल में इंटरनेट के कारण ही आप अपने मोबाइल से जुड़े रहते है जिसके कारण आपको मोबाइल एडिक्शन यानी मोबाइल की लत लग जाती है।

2. मोबाइल अप्प्स

यह दूसरा प्रमुख कारण है जो लोगों को मोबाइल एडिक्शन का शिकार बनाता है। चूँकि आज स्मार्टफोन का दौर है, तो जाहिर सी बात है आज हर किसी के पास स्मार्टफोन उपलब्ध है।

इसलिए स्मार्टफोन में आपको ऐसी फंक्शनलिटी और ऐप्प देखने को मिलते हैं, जो आपको इनका फैन बना देता हैं और आप न चाहते हुए भी मोबाइल के आदी बन जाते हैं।

इसका सीधा सा उदाहारण है व्हाट्स एप (WhatsApp), जो दुनिया का सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया जाने वाले एप्लीकेशन बन चुका है। और स्वभाविक सी बात है कि यह आपके स्मार्टफोन में भी जरूर होगा।

यह हमारे स्मार्टफोन में ऐसी चीजें है जो हमे हमारे मोबाइल के साथ जोड़कर रखती हैं और हम चाहकर भी इनसे दूर नही रह पाते। जिसके कारण हम बार-बार मोबाइल इस्तेमाल करते हैं और मोबाइल एडिक्शन के शिकार बन जाते हैं।

3. सोशल मीडिया

आज शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो सोशल मीडिया का इस्तेमाल नही करता होगा। आज फेसबुक (Facebook), इन्स्टाग्राम (Instagram), ट्विटर (Twitter) हम सबके लिये आम बात हो चुकी हैं और इसी कारण बहुत सारे लोग मोबाइल से चिपके रहते है।

ट्विटर पर हम ट्वीट करते है और दूसरो के ट्वीट देखते है, फेसबुक चौटिंग करने का जरिया है तो इंस्टाग्राम पर हम अपने फोटो खींचकर डालते रहते हैं। और भी बहुत सारे सोशल मीडिया का लोग इस्तेमाल करते हैं।

और इसी दौरान हमे मोबाइल एडिक्शन कब हो जाता है, हमे खुद नही पता लगता। और जब हम इन्हें इस्तेमाल नही करते तब भी मन मे इन्हीं के बारे में बार-बार विचार आना आपको मोबाइल एडिक्शन का शिकार बना देता है।

4. वर्चुअल दुनिया से जुड़ाव

यह भी सच्चाई है कि लोग असल दुनिया के मुकाबले वर्चुअल दुनिया से बहुत अधिक जुड़ चुके हैं। बस यही कारण है कि मोबाइल में नोटिफिकेशन की घण्टी बजते ही हम फौरन अपना मोबाइल चेक करने लग जाते हैं।

आज असल जिंदगी में हमारे इतने दोस्त नही होते जिसके कईँ गुना फेसबुक जैसी सोशल मीडिया वेबसाइट पर देखने को मिल जाते हैं। जिसके कारण हमारा जुड़वा मोबाइल के साथ बना रहता है।

इसलिए आज एक ऐसी स्थिति पैदा हो चुकी है कि लोग अपने आस-पास के लोगों के साथ मेलजोल नही बना पाते और अक्सर खाली समय होने पर मोबाइल का इस्तेमाल करना शरू कर देते हैं।

5. मोबाइल गेम

वैसे तो यह एक मनोरंजन का जरिया हैं और हर दिन अति आधुनिक तकनीक से बने नये-नये गेम बाजार में आ रहे हैं जो लोगों की आदत बन चुके हैं।

इसी कारण बहुत सारे लोग चाह कर भी इस गेम को नही छोड़ पाते। बहुत सारे लोग मोबाइल गेम्स को लेकर इतने गम्भीर होते हैं कि वह उस गेम की हर स्टेज को पार करने में लगे रहते हैं।

और जब उन्हें इन गेम में जीत मिलती है तो वह खुशी महसूस करते हैं और हारने पर दु:ख का अनुभव करने लग जाते हैं। इस प्रकार मोबाइल गेम से भी मोबाइल एडिक्शन की समस्या पैदा हो रही है।

6. मोबाइल से पैसे कमाना

आज आप घर बैठे ऑनलाइन पैसे कमा सकते हैं और इसके लिए ऐसे भी बहुत सारे तरीके मौजूद हैं जिनकी मदद से आप अपने मोबाइल से भी पैसे कमा सकते हैं साथ ही गूगल प्ले स्टोर में पैसे कमाने वाले ऐप्प भी मौजूद हैं।

वैसे यह बहुत अच्छी बात है कि आप अपने स्मार्टफोन की मदद से पैसे कमाये। लेकिन बहुत सारे लोग पैसे के लालच में ऐसी एप्लीकेशन और तरीको का इस्तेमाल करते हैं जो थोड़ा बहुत पैसे देते हैं और विश्वसनीय भी नही होती है।

आज कल हर दिन ऐसे एप्स लॉन्च होते रहते हैं जो मोबाइल से पैसे कमाने का दावा करते हैं। लेकिन सच्चाई कुछ अलग होती है और पैसे कमाने के चक्कर मे हमें मोबाइल एडिक्शन का सामना करना पड़ता है। इसलिए आपको सावधान रहने की आवश्यकता है।

तो यह कुछ ऐसे तरीके हैं जिसके कारण अधिकतर लोग मोबाइल की लत के आदि हो जाते हैं। लेकिन वह यह नही जानते कि मोबाइल एडिक्शन से किस-किस तरह की बीमारी हो जाती है जो आपके जिंदगी को खराब कर सकती है।

मोबाइल एडिक्शन से होने वाली बीमारियां

1. आँखों मे समस्या

यह मोबाइल इस्तेमाल करने की सबसे बड़ी बीमारी हैं जिसके कारण आज हमारी आँखों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। क्योंकि मोबाइल स्क्रीन से निकनले वाली लाइट हमारी आँखों पर बुरा प्रभाव डालती है।

हम लगातार मोबाइल स्क्रीन देखते रहते है बिन यह सोचे कि यह हमारी आखों में दर्द का कारण बन सकती हैं और इसी कारण बहुत सारे लोगों की आखों में दर्द रहने लगता हैं और नजर भी कम हो जाती है।

2. चिड़चिड़ापन

अक्सर मोबाइल से चिपके रहने वाले लोगों का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। ऐसा मोबाइल एडिक्शन के होने के संकेत को दर्शाता है। परंतु हर कोई इस बात को अनुभव नही करता है, जिसके कारण यह आदत दिन-प्रति-दिन और खराब होती जाती है।

मोबाइल गेम खेलने वाले लोगों में इस बीमारी को बहुत ज्यादा पाया जाता है। जो मोबाइल गेम एडिक्शन के शिकार होते हैं वो मोबाइल गेम न खेलने और मोबाइल से दूर होने की स्थिति में गुस्से से भर जाते हैं।

3. मानसिकता पर प्रभाव पड़ता है

मोबाइल एडिक्शन की वहज से आपकी मानसिकता पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि जब आप अपने दोस्तों के साथ बातचीत करते हैं तो आपका मन हलका रहता है और आपको अच्छा लगता है।

लेकिन मोबाइल एडिक्शन के कारण आप हर समय मोबाइल पर लगे रहते हैं और जो थोड़ा बहुत समय मिलता है उसमे किसी के साथ अपने विचारों को साझा नही कर पाते। जिससे मन भारी-भारी रहने लगता है।

इस वजह से आपको मानसिक तनाव भी होना शुरू हो जाता है और आप न रात को समय पर सो पाते हैं न ही सुबह समय पर उठ पाते। जिससे आपकी दिनचर्या बिगड़ जाती है।

4. शारीरिक स्वास्थ्य का खराब होना

यह तो आप भी जानते ही होंगे कि मोबाइल के ज्यादा इस्तेमाल के कारण आपके शारीरिक स्वास्थ्य पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है।

अक्सर आपकी कमर और गर्दन में दर्द रहने लगता है और आप अलसी बन जाते हैं। ऐसे इसलिए होता है क्योंकि आप वायरलेस डिवाइस के सम्पर्क में बहुत ज्यादा रहते हैं। देर तक गर्दन/कमर झुकना और रेडिएशन आपके शरीर को नुकसान पहुँचाते हैं।

5. आलसीपन

अक्सर यह देखा गया है कि ज्यादा मोबाइल इस्तेमाल करने वालों में आलसीपन बहुत अधिक होता है। क्योंकि वह शारीरिक काम नही करते जिसकी वहज से उनका शरीर आराम तलब हो जाता है।

और जब वह कोई शारीरिक काम करते भी हैं तो जल्दी ही थक जाते हैं। लम्बे समय तक शरीर के अंगों के नियंत्रण और काम नही करने से वह एक बार काम करने के बाद दर्द करने लग जाते हैं।

6. नींद नहीं आना

मोबाइल एडिक्शन के कारण सबसे ज्यादा असर हमारी आंखों पर पड़ता है जिसके कारण हमें नींद की समस्या उत्पन्न हो जाती है और अब हमे समय पर नींद नहीं आती है जिसके कारण सुबह भी समय पर नही उठ पाते हैं।

चूँकि मोबाइल से निकलने वाली रेडिएशन सीधा आपकी आँखों के साथ दिमख पर भी प्रभाव डालती है और फिर आप चिड़चिड़े और मन ही मन बड़बड़ाने लगतें है जिसके कारण आपको नींद नही आ पाती हैं।

7. दिमाख पर कंट्रोल नही रहता

मोबाइल एडिक्शन होने के कारण दिमाख पर कंट्रोल नही रहता क्योंकि अगर कोई नोटिफिकेशन आता है तो आप फट से अपने मोबाइल को चौक करने लग जाते हों चाहें आप कितना भी महत्वपूर्ण काम क्यो न कर रहे हों।

इसके कारण आपकी निर्णय लेने की शक्ति भी कम हो जाती हैं और आप अपने सपनों को आगे नहीं ले जा पाते और उनके गोल-गोल चक्कर लगाते रहते हैं।

8. गुस्सा आना

ऐसा अक्सर देखा गया हैं मोबाइल एडिक्शन के कारण लोगों में गुस्सा करने की आदत हो जाती है और उसे पहले की तुलना में अत्यधिक क्रोध आने लगता हैं।

जिसके कारण कई बार वह क्रोध में अपना मनसिक सन्तुलन खो देता हैं और जिसका उसे बहुत नुकसान पहुंचा हैं तो अगर मोबाइल एडिक्शन से आपकों इस तरह की समस्या आने लगी है तो आपकों मोबाइल एडिक्शन की लत से छुटकारा पाने के लिए क्या करना चाहिए

हमारे जीवन पर मोबाइल की लत का प्रभाव

किसी भी सामाग्री की लत व्यक्ति को अनेक समस्याओं से घेर देता है। मोबाइल की लत भी मनुष्य के साथ यही व्यवहार करता है। इसमें व्यक्ति अपने जीवन में अनेक समस्याओं से घिर जाता है-

- अपनों से दूरी- 'अपनो से जोड़ना' कहां मोबाइल की परिभाषा के रूप में पढ़ा जाता था। आज अपनों से दूरी का मुख्य कारण मोबाइल है। व्यक्ति एक रूम में एक साथ होने के बाद भी पास बैठे लोगों में अपनी कोई रुचि नहीं दिखाता और अपने-अपने मोबाइल के स्क्रीन स्क्रोल करता रहता है। इससे आपसी संबंध कमजोर होते हैं।
- स्वस्थ्य पर बुरा प्रभाव- मोबाइल के लगातार इस्तेमाल से उससे निकलने वाली हानिकारक रेडिएशन से हमें हृदय संबंधी रोग हो सकते है। इसके अलावां आँखों के रौशनी पर भी गहरा असर पड़ता है। साथ ही सिर दर्द, नींद न आना, चिड़चीड़ापन, याददाश्त का कमजोर होना अन्य स्वास्थ्य संबंधित समस्याएं हो सकते हैं।

- जीवन के दौड़ में पीछे रह जाना- बेशक टेकनॉलजी के माध्यम से हम विकास की ओर बढ़ पाते है, जिसमें मोबाइल फोन मुख्य भूमिका निभाता है। क्योंकि सबके पास पढ़ाई के लिए लैपटॉप या कम्पूटर नहीं हो सकता पर मोबाइल होता है। जिसकी मदद से वह अपने संदेह दूर कर सकते हैं पर मोबाइल की लत में आज लोग घंटों अपना किमती समय मोबाइल को दे देते हैं। जिससे उनका ध्यान पढ़ाई पर नहीं लगता है। अपने व्यवसाय में वह अपना पूर्ण योगदान नहीं दे पाते हैं।
- खुद में ही खोए रहते हैं और खुद से दूर होते चले जाते हैं। हम पढ़ाने वाले समय पर भी खुद से झुठ बोलकर मोबाइल पर पढ़ाई करने के बहाने ढूंढ़ते हैं।

मोबाइल एडिक्शन से छुटकारा कैसे पायें

मोबाइल एडिक्शन से छुटकारा पाना इतना आसान नहीं होता क्योंकि हमारा बहुत सारा काम मोबाइल के बिना नही चलता और साथ ही मोबाइल हमारे साथ चौबीसों घण्टे रहता है। परन्तु मोबाइल के लत से छुटकारा पाया जा सकता है, बस आपकों इसके लिए थोड़ी मेहनत करनी होगी।

1. इंटरनेट से अपना जुड़ाव कम करें क्योंकि बिना इंटरनेट के Mobile addiction से छुटकारा पाना बहुत आसान हो जाता है। फिर हम मोबाइल को केवल जरुरी काम के लिए ही इस्तेमाल करते हैं।
2. चूँकि शुरूवाती दिनों में ऐसा करना सँभव नही है। इसलिए शुरूवाती दिनों में कम इंटरनेट पैक वाला रिचार्ज करें ताकि इंटरनेट डेटा पैक की कमी के कारण आप उसका कम इस्तेमाल कर सकें।
3. इंटरनेट के साथ-साथ वर्चुअल दुनिया से अपना जुड़ाव कम करें और असल दुनिया मे लोगों के साथ समय बितायें।
4. मोबाइल एडिक्शन का सबसे बड़ा कारण सोशल मीडिया है जिसके कारण हम बार-बार यह चौक करते हैं कि सोशल मीडिया पर क्या चल रहा है। इसलिए इससे भी दूरी बनायें।
5. मोबाइल एप्लीकेशन जैसे बिमइववा, Instagram, TikTok, Twitter और WhatsApp से जैसे ही कोई नोटिफिकेशन आता है, हम तुरंत अपना मोबाइल चौक करने लग जाते हैं। इसलिए मोबाइल में फालतू की एप्लीकेशन को डिलीट करें।
6. मोबाइल नोटिफिकेशन को बंद रखें क्योंकि मोबाइल पर नोटिफिकेशन की घण्टी बजने के बाद हमारा ध्यान बार-बार उसकी तरफ चला जाता है।
7. मोबाइल से दूरी बनायें और खाली समय दूसरी जरुरी चीजो में लगायें।
8. हम चाहे कितना भी कंट्रोल कर लें, लेकिन एक बार मोबाइल इस्तेमाल करने लग जाते हैं तो उससे हट नही पाते। इसलिए बस और नही! कहना शुरू करें।
9. बार-बार मोबाइल चौक करने की बजाय अपना समय निश्चित करें कि आप कब और कितना मोबाइल इस्तेमाल करेगें।
10. मैडिटेशन करना शुरू करें। क्योंकि मोबाइल एडिक्शन से छुटकारा पाने में यह बेहद कारगर साबित होगा और आपके दिमाग को कंट्रोल करने में मदद करेगा।
11. खाली समय मे मोबाइल पर गेम खेलना छोड़ें और वह खेल खेलें जिससे आपके शरीर से पसीना निकलने जिसे आपका शारीरिक स्वास्थ्य सही रहेगा।
12. अपने दोस्तों और परिवार के साथ समय बिताये ताकि आपको मोबाइल का कम से कम इस्तेमाल करना पड़े।

निष्कर्ष

कुछ साल पहले तक मोबाइल फोन इस्तेमाल कर पाना सबके बस में नहीं था। पर समय बीतने के साथ आज आम तौर पर यह सभी के पास देखा जा सकता हैं।

मात्र शराब-सिगरेट की लत ही व्यक्ति के जीवन को संकट में नहीं डालते, अपितु संसार की किसी भी वस्तु या सामग्री की लत हमारे लिए हानिकारक है। उनमें से एक मोबाइल फोन की लत भी है, जिसके वजह से जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित अनेक समस्याएं व्यक्ति के लिए उत्पन्न होती हैं।

मोबाइल के लत से होने वाली बीमारी को नोमोफोबिया कहते हैं। इसके लक्षण को पढ़ कर साफ तौर पर पता चलता है व्यक्ति कितना ज्यादा इस यंत्र के अधीन है। नोमोफोबिया हमें अपनों से दूर करता है और इसके साथ स्वास्थ्य संबंधित अनेक समस्याएं व्यक्ति को देता है। जैसे- सिर दर्द, गर्दन दर्द, नेत्र रोग आदि। इस बीमारी का व्यक्ति को सही समय पर पता चलना आवश्यक है, नहीं तो इसके बुरे परिणाम हो सकते हैं।

मोबाइल की लत ने हमारे जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है, अत: हमें इस लत को दूर करने के प्रयास करने चाहिए।

सन्दर्भ

1. अभिनव मिश्रा : "छात्रों और बच्चों के लिए इन्टरनेट के फायदे और नुकसान", जागरण https://www.jagran.com/blogs/abhinavblog/internet-prose-advantages-and-disadvatages/
2. "इन्टरनेट का उपयोग पर निबंध", www.hindikiduniya.com, जनवरी 16 2018 https://www.hindikiduniya.com/essay/essay-on-uses-of-internet-in-hindi/
3. *Roberts, James A. (2015). TOO MUCH OF A GOOD THING: Are You Addicted to Your Smartphone?. Sentia Publishing. ISBN 978-0996300476.*
4. *Richtel, Matt (22 April 2007). "It Don't Mean a Thing if You Ain't Got That Ping". The New York Times.*
5. *Takao, Motoharu; Takahashi, Susumu; Kitamura, Masayoshi (October 2009). "Addictive Personality and Problematic Mobile Phone Use". CyberPsychology & Behavior. **12** (5): 501–507. doi:10.1089/cpb.2009.0022. PMID 19817562. S2CID 2777826.*
6. *Sánchez-Martínez, Mercedes; Otero, Angel (April 2009). "Factors Associated with Cell Phone Use in Adolescents in the Community of Madrid (Spain)". CyberPsychology & Behavior. **12** (2): 131–137. doi:10.1089/cpb.2008.0164. PMID 19072078. S2CID 11934182.*
7. *Griffiths, Mark (April 2000). "Does Internet and Computer 'Addiction' Exist? Some Case Study Evidence" (PDF). CyberPsychology & Behavior. **3** (2): 211–218. doi:10.1089/109493100316067.*
8. Krajewska-Kulak, E., et al. Problematic mobile phone using among the Polish and Belarusian University students, a comparative study. Progress in Health Sciences 2.1 (2012): 45+. Academic OneFile database.
9. Gil Brand, Making Smart Use of the Smartphone, 14 February 2017.

भारतीय उपमहाद्वीप में नक्सलवाद की चुनौती: एक विवेचना

रवि रंजन प्रताप

शोध छात्र, मनोविज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप में नक्सलवाद एक बड़ी समस्या है और इसने पिछले कुछ वर्षों में बहुत अधिक संकट और विनाश का कारण बना है। यह राज्य और उसकी नीतियों के खिलाफ एक सशस्त्र संघर्ष है, जिसमें हिंसा, गरीबी और मानवाधिकारों का हनन होता है। नक्सलवाद पर प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य नक्सलवाद क्या है, इसके कारण, समाज पर प्रभाव और इस समस्या के संभावित समाधान की समझ प्रदान करना है।

मूल शब्दः भारतीय उपमहाद्वीप, नक्सलवाद, समस्या, राज्य, सशस्त्र संघर्ष, हिंसा, गरीबी, मानवाधिकार

परिचय

नक्सलवाद एक राजनीतिक विचारधारा है जो 1960 के दशक के अंत से भारत में मौजूद है। यह माओवादी-प्रेरित क्रांति और उग्रवाद का एक सशस्त्र रूप है, जो मजदूर वर्ग और अन्य उत्पीड़ित लोगों के लिए अधिक अधिकारों के लिए लड़ना चाहता है। दशकों से भारत में मौजूद एक मुद्दा होने के बावजूद, नक्सलवाद देश के कई हिस्सों में एक प्रमुख सुरक्षा खतरा बना हुआ है।

1967 में गढ़ा गया नक्सलवाद, भारत की सुरक्षा और विकास के लिए सबसे गंभीर खतरों में से एक बन गया है। यह एक सशस्त्र माओवादी विद्रोह को संदर्भित करता है, जिसका नाम पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी गाँव से लिया गया है, जहाँ यह पहली बार 1967 में उभरा था। प्रस्तुत शोधलेख भारत में इस प्रकार के कट्टरपंथी विरोध की उत्पत्ति और प्रभाव की जाँच करने के साथ ही संकट को हल करने के लिए संभावित समाधान ढूंडने का प्रयास करता है।

दशकों से भारत में नक्सलवाद एक प्रमुख मुद्दा रहा है। यह माओवादी-प्रेरित समूहों के नेतृत्व में एक सशस्त्र संघर्ष आंदोलन है जो भारत के गरीब और सीमांत लोगों के अधिकारों की वकालत करता है। सामाजिक न्याय के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के साथ इसकी हिंसक प्रकृति ने नक्सलवाद को एक विवादास्पद विषय बना दिया है। इस निबंध का उद्देश्य विभिन्न कोणों से नक्सलवाद की जांच करना है, जिसमें इसकी उत्पत्ति, समाज पर प्रभाव और संभावित समाधान शामिल हैं।

नक्सलवाद क्या है?

नक्सलवाद एक सशस्त्र विद्रोह आंदोलन है जो 1967 में भारतीय राज्य पश्चिम बंगाल में उत्पन्न हुआ था। इसे भारत की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे गंभीर खतरों में से एक माना जाता है क्योंकि यह 1967 से चल रहा है और आज भी जारी है। नक्सलवाद का नाम पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी नामक गाँव से लिया गया है, जहाँ इसकी शुरुआत सबसे पहले हुई थी। आंदोलन समाजवादी-मार्क्सवादी सिद्धांतों के आधार पर एक "नई लोकतांत्रिक व्यवस्था" स्थापित करना चाहता है।

नक्सलियों का मुख्य लक्ष्य सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और ग्रामीण भारत में वंचित समुदायों जैसे आदिवासी, दलित और अन्य जातीय अल्पसंख्यकों के लिए अधिक स्वायत्तता के लिए लड़ना है। वे निगमों द्वारा भूमि अधिग्रहण के भी खिलाफ हैं, क्योंकि उनका मानना है कि इससे बिना किसी मुआवजे या पुनर्वास अधिकारों के स्थानीय समुदायों का विस्थापन होगा।

नक्सलवाद पर अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

नक्सलवाद एक जटिल राजनीतिक विचारधारा है जो दशकों से पूरे भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के कुछ हिस्सों में फैल रही है। यह वामपंथी माओवादी विश्वासों में निहित है जो पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ क्रांतिकारी गतिविधियों को बढ़ावा देता है। नक्सलवाद के उद्भव के साथ, पूरे क्षेत्र में इसके प्रभाव और संभावित परिणामों की जांच करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण सामने आए हैं।

अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षकों के बीच सबसे प्रचलित विचार सावधानी और चिंता का है। नक्सलवाद के प्रसार से हिंसा और अस्थिरता में वृद्धि हुई है, दोनों सरकारी बलों और उग्रवादी समूहों के सशस्त्र संघर्ष में उलझे हुए हैं। इसके अतिरिक्त, आर्थिक विकास पर इसके प्रभावों के बारे में चिंताएं हैं, क्योंकि नक्सली संगठनों द्वारा अपना संदेश फैलाने के लिए कई गरीब क्षेत्रों को लक्षित किया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय विश्लेषक क्षेत्रीय तनाव बढ़ने की संभावना के बारे में भी चिंता करते हैं क्योंकि अधिक देश इस वैचारिक संघर्ष में शामिल हो जाते हैं।

नक्सलवाद अवलोकन

नक्सलवाद एक जटिल सामाजिक-राजनीतिक घटना है जो 1960 के दशक के अंत से भारत में है। यह माओवादी विचारधारा और वामपंथी राजनीतिक विचारधारा के नेतृत्व में भारतीय राज्य को उखाड़ फेंकने और कम्युनिस्ट सिद्धांतों पर निर्मित एक नए समाज की स्थापना के लिए एक सशस्त्र विद्रोह आंदोलन है। नक्सली, जैसा कि वे आमतौर पर जानते हैं, पिछले कुछ दशकों में भारत के लगभग 20 राज्यों में फैल गए हैं। इसने इन क्षेत्रों में भारी व्यवधान पैदा किया है क्योंकि नक्सली समूह अक्सर जबरन वसूली, अपहरण और यहां तक कि हत्या जैसी अवैध गतिविधियों में शामिल होते हैं।

अपनी हिंसक प्रतिष्ठा के बावजूद, नक्सली गरीब लोगों के अधिकारों के लिए लड़ने का दावा करते हैं, जिन्हें उनके जमींदारों या सरकारी अधिकारियों द्वारा उपेक्षित और शोषित किया जाता है। वे आम तौर पर भूमि वितरण सुधारों की मांग करते हैं और वनों, खनिजों आदि जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण की मांग करते हैं, ताकि उन हाशिए के समुदायों को लाभ मिल सके, जिनकी उन तक पहुंच नहीं है।

भारत की स्थिरता पर प्रभाव

भारत एक ऐसा देश है जिसने पिछले कुछ वर्षों में कई बदलाव देखे हैं, लेकिन एक विशेष मुद्दा जिसने इसकी स्थिरता पर प्रभाव डाला है वह है नक्सलवाद। यह शब्द भारत में ग्रामीण और आदिवासी समुदायों के माओवादी-प्रेरित विद्रोह को संदर्भित करता है, जो 1967 से राज्य के उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ लड़ रहे हैं। भारत में इस आंदोलन की उपस्थिति के परिणामस्वरूप कई मानवाधिकारों का हनन, आर्थिक व्यवधान और राजनीतिक अस्थिरता हुई है।.

सरकार और नक्सली संघर्ष से प्रभावित क्षेत्रों में डर या डराने के कारण हजारों लोग अपने घरों से विस्थापित हुए हैं। इसके अतिरिक्त, ये क्षेत्र विस्थापन या विनाश के कारण विकास की कमी के साथ-साथ संसाधनों जैसे भोजन, पानी और स्वास्थ्य सेवा तक सीमित पहुंच के कारण गरीबी से जूझ रहे हैं।

नक्सलवाद का इतिहास

नक्सलवाद भारत में सशस्त्र विद्रोह का एक रूप है जो 1960 के दशक के उत्तरार्ध से चला आ रहा है। यह मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांतों में निहित एक विचारधारा है और इसने दशकों से भारत सरकार और इसके माओवादी समर्थकों के बीच संघर्ष किया है। नक्सलवाद शब्द नक्सलबाड़ी नामक एक गाँव के नाम पर गढ़ा गया था, जहाँ इन विद्रोहियों ने शुरू में 1967 में पश्चिम बंगाल के स्थानीय जमींदारों के खिलाफ हथियार उठाए थे। तब से, यह भारत के कई अन्य हिस्सों में फैल गया है और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सबसे बड़े खतरों में से एक बन गया है।.

ऐतिहासिक संदर्भ

1960 के दशक से भारत में नक्सलवाद एक प्रमुख मुद्दा रहा है। यह कट्टरपंथी माओवादी विद्रोह का एक रूप है जो पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी क्षेत्र में किसान विद्रोह के रूप में शुरू हुआ और भारत के अन्य हिस्सों में फैल गया। सशस्त्र संघर्ष की

विचारधारा, हिंसक साधनों के माध्यम से जन विरोधी सरकार का विरोध और भूमि सुधार तथा सामाजिक न्याय का समर्थन, नक्सलवादी आंदोलन की विशेषता थी।

नक्सलवाद का इतिहास 1967 से शुरू होता है जब पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी जिले में चारु मजूमदार और कानू सान्याल के नेतृत्व में सशस्त्र किसान विद्रोह शुरू हो गया था। मुख्य उद्देश्य वर्ग संघर्ष के माध्यम से आमूल-चूल सामाजिक परिवर्तन लाना और गरीब किसानों के बीच भूमि का पुनर्वितरण करना था।

नक्सलवाद की राजनीतिक विचारधारा

नक्सलवाद एक राजनीतिक विचारधारा है जो 1960 के दशक के अंत में भारत में उभरी। यह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक माओत्से तुंग की शिक्षाओं पर आधारित है और इसकी जड़ें कम्युनिस्ट दर्शन में हैं। यह आंदोलन दमनकारी सरकारी नीतियों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से आर्थिक और सामाजिक न्याय लाकर ग्रामीण और जनजातीय समुदायों को सशक्त बनाना चाहता है। नक्सली मुख्य रूप से छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा और आंध्र प्रदेश राज्यों में पाए जाते हैं, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र जैसे अन्य राज्यों में कुछ उपस्थिति के साथ।

नक्सलवाद के पीछे की विचारधारा मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांतों पर आधारित है, जो पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने के साधन के रूप में वर्ग संघर्ष और सशस्त्र क्रांति पर जोर देती है। यह जमींदारों से गरीब किसानों को संसाधनों के पुनर्वितरण के लिए भूमि सुधारों की वकालत करता है।

नक्सलवाद के कारण

नक्सलवाद का मूल कारण वर्गों के बीच आर्थिक असमानताओं में निहित है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले जिनके पास बेहतरी के लिए संसाधनों या अवसरों तक सीमित पहुंच है।

सामाजिक-आर्थिक असमानताओं के साथ-साथ कुछ क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच की कमी है। इसके अलावा, भूमि सुधारों को लागू करने में केंद्र सरकार की विफलता ने लोगों को उग्रवाद की ओर धकेल दिया है। इससे बड़े पैमाने पर सामाजिक अशांति पैदा हुई और अंततः माओवादी विचारधाराओं का समर्थन करने वाले विभिन्न समूहों द्वारा अन्याय के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष हुआ।

नक्सलवाद का समाधान

भारत में नक्सलवाद की समस्या का समाधान अत्यंत महत्वपूर्ण और अत्यावश्यक है। नक्सली आंदोलन, जो 1967 से सक्रिय है, एक हिंसक वामपंथी विद्रोह है जिसका उद्देश्य सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन और सत्ता परिवर्तन है। इसने भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में मानवाधिकारों के गंभीर उल्लंघन, जीवन और संपत्ति की क्षति को जन्म दिया है। सरकार ने नक्सलवाद से निपटने के लिए कई प्रयास किए लेकिन सीमित सफलता के साथ। इस प्रकार सरकार के लिए एक प्रभावी रणनीति तैयार करना आवश्यक है जो सैन्य और सामाजिक-आर्थिक दोनों उपायों को जोड़ती है ताकि इस खतरे से प्रभावी ढंग से मुकाबला किया जा सके। समाधान खोजने की दिशा में पहला कदम सरकार के लिए नक्सलवाद के मूल कारणों जैसे गरीबी, असमानता, शिक्षा और रोजगार के अवसरों की कमी, भूमि अधिकार आदि को संबोधित करना होगा।

नक्सलवाद विद्रोह का एक रूप है जो दशकों से भारत को त्रस्त कर रहा है। यह केंद्र और राज्य सरकारों के लिए एक प्रमुख सुरक्षा चिंता का विषय है, क्योंकि नक्सली अक्सर अपने राजनीतिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए हिंसा का इस्तेमाल करते हैं। इस खतरे को प्रभावी ढंग से रोकने के लिए, इसके मूल कारणों को समझना और उपयुक्त समाधान निकालना महत्वपूर्ण है।

सरकार की प्रतिक्रिया

दशकों से भारत सरकार नक्सलवाद के रूप में एक बड़ी चुनौती का सामना कर रही है। उग्रवाद के इस रूप ने पूरे क्षेत्र को पंगु बना दिया है, अर्थव्यवस्थाओं को हिला दिया है और जीवन छीन लिया है। यह स्पष्ट है कि इस समस्या से निपटने के लिए कुछ करने की जरूरत है और भारत सरकार इसके समाधान के लिए कड़ी मेहनत कर रही है।

भारत सरकार देश में नक्सलवाद के मुद्दे पर सक्रिय रूप से प्रतिक्रिया दे रही है और इसे संबोधित करने के लिए एक सक्रिय दृष्टिकोण अपना रही है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रभावित क्षेत्रों में शांति और सुरक्षा बनी रहे, सरकार ने विशेष कार्य बलों की स्थापना, गश्त गतिविधियों को बढ़ाने और कानून प्रवर्तन के लिए अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराने जैसे विभिन्न उपायों को लागू किया है। इसने कुछ अंतर्निहित सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए भी कदम उठाए हैं, जिन्होंने नक्सलवाद के विकास में योगदान दिया है, जैसे कि गरीबी, असमानता और बुनियादी सेवाओं तक पहुंच की कमी। नक्सलवाद से अधिक प्रभावी ढंग से निपटने के लिए केंद्र और राज्य दोनों सरकारों द्वारा आगे की पहल की जा रही है।

सरकार द्वारा उठाया गया पहला कदम 2009 में ऑपरेशन ग्रीन हंट शुरू करना था, जिसका उद्देश्य सैन्य बल के उपयोग के माध्यम से नक्सली समूहों को बेअसर करना था। इसके अलावा, अन्य रणनीतियों जैसे विकास कार्यक्रम, स्थानीय समुदायों के साथ संवाद और नौकरी के अवसरों के माध्यम से स्थानीय लोगों को सशक्त बनाना भी लागू किया गया है। इन पहलों के परिणाम कुछ क्षेत्रों में कुछ सफलता के साथ दिखने लगे हैं जबकि अन्य क्षेत्रों में अभी भी नक्सलियों का खतरा बना हुआ है।

नक्सलवाद का मुकाबला करने में नागरिक समाज की भूमिका

कई वर्षों से भारत में नक्सली आंदोलन एक प्रमुख मुद्दा रहा है। यह माओवादी समूहों द्वारा एक सशस्त्र विद्रोह है, जो भारत के कई राज्यों में फैल गया है। सरकार ने कानून और व्यवस्था उपायों का उपयोग करके इस खतरे से निपटने की चुनौती ली है। हालाँकि, नक्सलवाद का मुकाबला करने में नागरिक समाज भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। नागरिक समाज संगठनों में नक्सलवाद की समस्या का प्रभावी वैकल्पिक समाधान प्रदान करने की क्षमता है।

नागरिक समाज यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य और गैर-राज्य अभिनेताओं के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकता है कि उनकी शिकायतों को हिंसक साधनों का सहारा लिए बिना संबोधित किया जाता है। इसके अलावा, स्थानीय समाज और आजीविका पर नक्सलवाद के नकारात्मक प्रभावों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए नागरिक समाज संगठन स्थानीय समुदायों के साथ काम कर सकते हैं। इससे लोगों को चरमपंथी समूहों में शामिल होने या उनका समर्थन नहीं करने के लिए मनाने में मदद मिलेगी।

निष्कर्ष

अंत में, नक्सलवाद एक जटिल मुद्दा है जिसका कोई आसान समाधान नहीं है। फिर भी, यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जा सकते हैं कि नक्सलवाद बड़े पैमाने की समस्या में न बदल जाए। इनमें जनजातीय समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार करना, बुनियादी सुविधाएं प्रदान करना, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच बढ़ाना और क्षेत्र में कानून प्रवर्तन में सुधार करना शामिल है। इसके अतिरिक्त, स्थायी शांति सुनिश्चित करने के लिए सरकार और स्थानीय समुदायों के बीच विश्वास कायम करना आवश्यक है।

सन्दर्भ

[1]. A Study of Naxalism and Its Management In India; Retrieved from www.questjournals.org>jrhss> papers>vol7-issue-7>ser-1 .

[2]. South AsiaTerrorism Portal, retrieved from www.satp.org/satporgtp/datasheetterroristattack/fatalities/indiamaoistinsurgency

[3]. ibid.

[4]. Maoist Documents "strategy and Tactics of the Indian Revolution "Part 1 Strategy"; Chapter 6: The Central Task of the Revolution - Seizure of Political Power Through Protracted People's War, retrieved from https://www.satp.org/satporgtp/countries/india/maoist/documents/papers/;.htm#4

[5]. Adhikari, S. Resurgence of Naxalism : Implications For India's Security. Air Power Journal Vol. 7 No. 1, SPRING 2012 (January-March) 18 Retrieved from http:// indianstrategicknowledgeonline.com/ web/RESURGENCE%20OF%20 NAXALISM.pdf

[6]. ibid.

[7]. ibid.

[8]. The Print dated 21 Sep 2019, Retrieved from https://theprint.in/india/kobad-ghandy-doon-school-alum-maoist-who-has-been-injail-for-10-yrs-despite-acquittals/294448/

[9]. Adhikari, S. Resurgence of Naxalism : Implications For India's Security. Air Power Journal Vol. 7 No. 1, SPRING 2012 (January-March) 18 Retrieved from http:// indianstrategicknowledgeonline.com/ web/ RESURGENCE%20OF%20NAXALISM.pdf

[10]. FAO in India: India at a Glance, Retrieved From http://www.fao.org/india/fao-in-india/india-at-a-glance/en/

[11]. VK Ahluwalia, "Red Revolution 2020 and Beyond Strategic Challenges to Resolve Naxalism" (New Delhi: Bloomsbury Publications, 2013), 26 and Footnote 32 on page 39 ("Human Development Index Report 2011", 391).

[12]. ibid

[13]. VK Ahluwalia, "Red Revolution 2020 and Beyond Strategic Challenges to Resolve Naxalism" (New Delhi: Bloomsbury Publications, 2013), 26 and Footnote 33 on page 39 (TRAI, "Measures to Improve Telecom Penetration in India – The Next 100 Million Subscribers", 2008).

[14]. VK Ahluwalia, "Red Revolution 2020 and Beyond Strategic Challenges to Resolve Naxalism" (New Delhi: Bloomsbury Publications, 2013), 28.

[15]. E.N. Rammohan, "The Naxalite Maoist Insurgency in India: The Root Causes and a Possible Solution", Journal of the United Service Institution of India, Vol. CXLI, No. 589, July-September 2012 : andusiofindia.org/Article/Print/ ?pub=Journal&pubno=589&ano=95

[16]. ibid.

[17]. Adhikari, S. Resurgence of Naxalism : Implications For India s Security. Air Power Journal Vol. 7 No. 1, SPRING 2012 (January-March) 18 Retrieved from http:// indianstrategicknowledgeonline.com/ web/ RESURGENCE%20OF%20NAXALISM.pdf

[18]. ibid.

[19]. Hindustan Times dated 10 Jan 2020, Retrieved from, https://www.hindustantimes.com/india/naxals-prey-on-mine-rich-states/storyU9XOMeJqjHhFwhJhHiwtSI.html.

[20]. VK Ahluwalia, "Red Revolution 2020 and Beyond Strategic Challenges to Resolve Naxalism" (New Delhi: Bloomsbury Publications, 2013), 33.

[21]. Adhikari, S. Resurgence of Naxalism: Implications For India's Security. Air Power Journal Vol. 7 No. 1, SPRING 2012 (January-March) 18 Retrieved from http:// indianstrategicknowledge online.com/web/ RESURGENCE%20OF%20NAXALISM.pdf

[22]. Achin Vanaik . Sub Continental Strategies; New Left Review 70 , July Aug 2011 Pg103 Retrieved from https:// newleftreview.org/issues/II70/articles/achin-vanaik-subcontinental-strategies.pdf

[23]. SK Jha, The Neglected Naxalite Arsenal By in Outlook dated 24 July 2003. https:// www.outlookindia.com/website/ story/theneglected-naxalite-arsenal/220851

[24]. The Economic Times, April 9, 2008. [25]. "Illicit opium cultivation, main source of income for Naxals" Source: http:/ / www.dnaindia.com/india/report-illicit-opiumcultivation-main-source-of-income-for-naxals-1220579

समावेशी शिक्षा और विद्यालय

अभिषेख कुमार पाण्डेय

शोध-छात्र, शिक्षक शिक्षा विभाग, नेहरु ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

शिक्षा समाज व मानव दोनों के विकास मे सहायक होती है। शिक्षा के द्वारा न केवल सामान्य व्यक्तियों बल्कि विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियो का भी विकास उचित रूप समे किया जा सकता है।और इस काम के विद्यालय मे दी जाने वाली शिक्षा सबसे सुलभ मानी जाती है। इस कार्य मे अध्यापक, अभिभावक तथा समुदाय मे सभी की सबसे बड़ी अहम भूमिका होती है।

समावेशी शिक्षा की परिभाषा:-

लिमैन व वालमैन के अनुसार:-

"समावेशी शिक्षा वह शिक्षण है जो बालको मे बढ़ती विभिन्नताओ को ध्यान मे रखता है"

बुथ व युनेस्को के अनुसार:-

"स्थानीय विद्यालयो की संस्कृति, पाठ्यक्रम तथा समुदाय में छात्रो की बढ़ती प्रतिभागिता को बढ़ाना तथा उनके अपवर्जन को घटाना, शिक्षा में समावेश के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

Sibba And Insecow के अनुसार:-

"समावेशी शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसमे विद्यालय अपनी संगठन तथा पाठ्यक्रम के अवसर की समीक्षा करके सभी बालको को एक जैसा मानते हुए प्रतिक्रिया देते है।"

Thomas के अनुसार:-

"समावेशी शिक्षा वह शिक्षा है जो विशिष्ट आवश्यक्ताओं वाले बालकों वही विद्यालय अनुभव प्रदान करती है। जैसे- वह उसी विद्यालय मे तबतक शिक्षा प्रदान करती है तथा बिना विशिष्ट आवश्यकता वाले बालक होते हुए भी बालक बिना किसी योग्यता तथा आवश्यकता को ध्यान मे रखकर शिक्षा प्राप्त करते है।"

वारटन के अनुसार:-

"समावेशी शिक्षा साधारणत: केवल विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को साधारण विद्यालय में रखने से संबंधित जिसके अंतर्गत हम प्रत्येक बालक को प्रभावशाली ढंग से शिक्षित कर सकते हैं।"

समावेशी शिक्षा के अर्थ एवं स्वरूप:-

1. समावेशी शिक्षा प्रणाली में सामान्य विद्यालयों में उनकी संरचना एवं भौतिक सुविधाएं नि:शक्त (अपंग) छात्र छात्राओं के लिए प्रभावशाली शिक्षण उपलब्ध कराती है।
2. इन सामान्य विद्यालयों में सामान्य बालकों की अपेक्षा उन बालकों को प्रवेश दिया जाता है जो की किसी प्रकार की निर्योग्यता से ग्रसित हो।
3. इन विद्यालयों में विशिष्ट या किसी प्रकार की कमी से ग्रसित बालक अपने उम्र के साथियों के साथ शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर पाते है।

4. इसका उद्देश्य बाधित बालकों को सामान्य शिक्षा प्रणाली में इस प्रकार समावेशित करना है या जो की बाधित व सामान्य बालकों की शिक्षा दोनों प्रकार के समूह के उद्देश्यो को ध्यान में रखते हुए बिना किसी अंतर या भेदभाव के साथ सुचारु रुप से चल सके।
5. समावेशित शिक्षा बाधित बालकों को अलग (शिक्षा प्रदान) करने की अपेक्षा जैसे कि उन्हे विशिष्ट विद्यालयो या अलग कक्षाओं मे पढ़ाने से होता है। उसी प्रकार की शिक्षा, शिक्षा की मुख्य धारा मे जोड़ने वाली होती है।
6. समावेशी शिक्षा बाधित बालकों को विद्यालय के भिन्न दृभिन्न कार्यक्रमों, शैक्षिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यवसायिक व अन्य कार्यक्रमों में प्रतिभाग लेकर उनके सम्पूर्ण विकास को अवसर प्रदान करता है।
7. समावेशी शिक्षा विशिष्ट अथवा बाधित बालकों के सामान्य बालकों की भाँती उनकी क्षमता के अनुसार अवसर प्रदान करती है। उनके सीखने में सहयोगात्मक कार्य करती है।
8. किसी भी देश में यदि विशिष्ट विद्यालयो की स्थापना हुई है तो उनकी संख्या बहुत ही कम है। जिनके कारण सभी छात्रों तक यह सुविधाएं नहीं पहुँच पाती है। विकलांग बालकों के पहुँच से दूर होने के कारण धीरे-धीरे सामान्य दृशिक्षा प्रणाली में परिवर्तन किए गये जिनमे एकीकृत विद्यालय (Intigreated School) स्थापित किए गये।

समावेशी शिक्षा की विशेषताएँ:-

(I) सामुदायिकता की भावना:- सभी बालकों का सम्मान बिना किसी भेदभाव के किया जाता है जिससे उनमें आपसी भाईचारा तथा अपनेपन की सामाजिक भावना का विकास होता है।

(II) समान दृष्टिकोण:- शिक्षक सभी छात्रों के प्रति समान दृष्टिकोण रखता है जो समावेशी शिक्षा को अर्थात् समावेशी संस्कृति कों बढ़ावा देता है।

(III) समस्या समाधान टोली:- इसमें विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की समस्या के समाधान हेतु एक बहू दृअनुशासनात्मक टोली का गठन किया जाता है ।जिसमें विद्यालय तथा समुदाय दोनों के ही सदस्य सम्मिलित होते हैं।

(IV) अभिभावक साझेदारी (सहयोग):- समावेशी शिक्षा मे अभिभावकों को समावेशी समूह का सदस्य बनाया जाता है जिससे कि वह अपने बालकों कि आवश्यक्ताओं तथा अन्य क्रियाकलापों कि विस्तृत जानकारी दे सकें व समय समय-समय पर समावेशी विद्यालय में होने वाले वर्कशॉप मे प्रतिभाग ले सकें।वह समस्यात्मक बालकों के लिए सहयोगात्मक व्यवहार अपना सके।

(V) शिक्षक साझेदारी (सहयोग):- समावेशदृशिक्षा मे नियमित शिक्षको को विशेषज्ञो के साथ मिलकर समस्या का हल खोजने तथा उनके समाधान के लिए प्रशिक्षण प्राप्त कर सके।

(VI) वयवसायिक व्यक्ति कि साझेदारी (सहयोग):-सम्पूर्ण सिमावेशी वातावरण का निर्माण करने के लिए सामाजिक स्तर पर सहयोग नि:शक्त जनो को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर आत्म निर्भर बनाया जाये।

(VII) छात्र-समस्या समाधानकर्ता के रूप मे:- समावेशी शिक्षा समस्या समाधान मे छात्रोकी साझेदारी भी सुनिश्चित करती है। छात्रो का इस्तेमाल समावेशी शिक्षा मे निम्न प्रकार से हो सकता है।

(1) मध्यस्थदृ साथी:- आपसी विवाद सुलझाने के लिए। सहयोगात्मक व्यवहार अपना कर सहपाठी समावेशी शिक्षा के उद्देश्यों को पूर्ण करने मे अहम भूमिका नभाता हैं।

(2) ट्यूटरदृसाथी:- सहपाठी अपने पिछड़े साथियो को शैक्षिक सलाह सहयोग शिक्षण की समस्याओ को दूर करने का सफल प्रयास करता है।

(3) अधिक उम्र ट्यूटर साथी:- उच्च शिक्षा के छात्र अपने नीचे वाली कक्षा के छात्रो को शैक्षिक समस्याओ, विषय वस्तु के समझने मे सहयोग प्रदान करते है। शिक्षण सामाग्री पुस्तक, नोट्स उपलब्ध कराते है, मार्गदर्शन करते है।

(4) सहकारी शिक्षा या सहकारी अधिगम:-समूह मे छात्र सी। आपस मे होनेवाली समस्याओ का समाधान भी करते है जिसे सहयोग समूह भी कहते है ।इस समूह मे शारीरिक नि:शक्त छात्रों को भी सम्मिलित किया जाता है।

(5) साथी-प्रणाली:- समावेशी शिक्षा में कक्षा में बैठने की व्यवस्था एक निर्धारित दोस्त या साथी के साथ व्यवस्थित किया जाता है जिसे बेन्चमेट (Bench&mate) भी कहा जाता है जो एक दूसरे की समस्याओ का समाधान भी करते हैं।

सामान्य विद्यालय का समावेशी विद्यालय ने परिवर्तन के उपाय:

पाठ्यक्रम:– क्यो पढ़ाया जाए ऐसे पाठ्यक्रमों का निर्माण करना जिसमें विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को तथा सामान्य बच्चों को अध्ययन करने के लिए संतुलन स्थापित किया जा सके।

शिक्षण शास्त्र:– कैसे पढ़ाया जाए? किस प्रकार की विधियो क प्रयोग किया जाए?, जिसमे विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को अपने समूह से (साथी समूह) अलग न किया जाए।

(3) शैक्षिक संगठन:– विद्यालय को इस प्रकार संचालित किया जाए जिससे वह अपने सभी बालकों पर समान रूप से ध्यान दे सके। उचित समय सारणी उचित व्यवस्था तथा विद्यालय संरचना में आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए।

(4) कर्मचारियों में सहयोग:– विद्यालय के समस्त कर्मचारियों में समन्वय कैसे स्थापित किया जाय शिक्षक कक्षा–कक्ष सहायक सहयोगी क्रमचारियों में इतना लचिलापन होना चाहिए कि जिससे उनमे आसानी से समन्वय स्थापित हो सके तथा सभी एक ही लक्ष्य "सभी के लिए शिक्षा की ओर अग्रसर रहे।"

(5) अभिभावक मे सहयोग:– अभिभावक की भागीदारी कैसे सुनिश्चित की जाय सूचनाओं को साझा करने पाठ्यक्रम प्रदान करने में तथा अन्य व्यवसायिक अभिकारणों के संपर्क बनाने मे अभिभावको की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

(6) विशेषज्ञों का सहयोग:–सामान्य विद्यालय को समावेशी विद्यालय बनाने के लिए विशेषज्ञों का सहयोग आवश्यक है। विशेषज्ञ समय दृसमय पर विद्यालय के शिक्षकों, सहयोगी कर्मचारियों को समयदृसमय पर प्रशिक्षित करते है। तथा समय समय पर त्मतिर्मीमत कोर्स कराएं जाते हैं ।विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की योजना तथा मूल्यांकन के बारे में विस्तृत सहयोग प्राप्त करते है।

व्यवसायिक विकास:–कर्मचारियों की अभिवृति कैसे विकसित की जाय। व्यवसायिक कुशलता के लिए विद्यालय के समस्त कर्मचारियों को अभिवृति मे सकारात्मक परिवर्तन करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण समय दृसमय पर दिए जाने चाहिए।

समावेशी शिक्षा के महत्व (Importance fo~ Inclusive School): पहले ऐसा माना जाता था कि नि:शक्त बालकों को अलग से विशिष्ट शिक्षा प्रदान करनी चाहिए क्योकि उनकी आवश्यकताएं सामान्य बालको से अलग होती है परंतु कई आलोचक इस बात को लेकर आलोचना करते है कि विशिष्ट शिक्षा वाले बच्चों अर्थात नि:शक्त बालको में अलग से शिक्षा प्रदान करने पर उनमें हीनता की भावना आ जाती हैं। वे सामान्य बालकों से स्वयं को अलग समझने लगते है। इस समस्या को दूर करने के लिए समावेशी शिक्षा का महत्व और अधिक बढ़ जाता हैं।

समावेशी शिक्षा के महत्व निम्नलिखित है:–

नि:शक्त (असमर्थ) बालकों के अधिक धन खर्च व व्यवस्था की आवश्यकता होती है इसके लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापक, डॉक्टर, सहकर्मी की आवश्यकता पड़ती है। जबकि समावेशी विद्यालय मे इस प्रकार की सुविधाएं पहले से उपलब्ध होती है बस थोड़ी परिवर्तन व प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। विशिष्ट बालकों को समावेशी विद्यालयों मे पढ़ाना कम खर्चीला होता हैं इसलिए समावेशी शिक्षा अधिक सस्ती है।

जब असमर्थ बालक को समावेशी विद्यालय मे भेजा जाता है तो वह शैक्षिक रूप से अपने आपको विद्यालय समायोजित कर लेता है तथा उसके मन मे यह विचार नहीं आता कि वह दूसरे बालको से किसी क्षेत्र मे कम है। अध्यापक तथा दूसरे कर्मचारियों का सहयोग व व्यवहार भी उसको अनुकूल परिस्थिति प्रदान करती है तथा बालक शैक्षिक दृष्टि से उन्नति करता है। शिक्षा का उद्देश्य बालकों को केवल शिक्षित करना नहीं बल्कि उनका पूर्ण विकास करना है। सामान्य विद्यालय मे असमर्थ बालको को शिक्षा देने मे उनमे सामाजिक गुणों का विकास भी होता है क्योकि विद्यालय मे समाज के सभी वर्गो के बालक अध्ययन करते है उनके साथ मिलकर असमर्थ बालको मे सामाजीकरण की भावना का विकास होता हैं। असमर्थ बालकों की विशिष्ट शिक्षा अलग विद्यालयों मे निपूर्ण व प्रशिक्षण अध्यापको की देख रेख मे होती है।विशिष्ट विद्यालय मे शैक्षिक उपचार की अपेक्षा चिकित्सकीय उपचार को प्राथमिकता दिया जाता है। पूर्ण रूप से मानसिक मंद बालक बहु–विकलांग बालक को प्रशिक्षित किया जाता हैं।

समावेशी विद्यालय में असमर्थ बालकों को प्राकृतिक वातावरण प्राप्त होता है वो अपने अनुसार विषयो का चयन भी करते है। पाठ्यक्रम लचीला बनाया जाता है जिसे समझने मे उन्हे सरलता और सहजता हो। असमर्थ बालक स्वयं को विद्यालय मे सामायोजित

कर लेता हैं। विद्यालय में बिना किसी भेदभाव के सामान्य बालकों की भाति असमर्थ बालको को शिक्षा प्रदान करते हैं। समावेशी शिक्षा के द्वारा असमर्थ बालकों को विद्यालय के साथ दृसाथ समाज मे भी सम्मान प्राप्त होता है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि विशिष्ट शिक्षा कि अपेक्षा असमर्थ बालकों को समावेशी विदयालयों मे ही शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

समावेशी शिक्षा के दिशा निर्देशः अन्तराष्ट्रिय प्रावधानः-वर्ष 1970 मे UNESCo (युनेस्को) ने UnitedNation Education Science Culture Organçation (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन) ने अपनी संस्तुति में कहादृ "विशेषतः विकासशील देशों के लिए समावेशी शिक्षा अन्य विशिष्ट शिक्षा कार्यक्रमों कि अपेक्षा एक सस्ता विकल्प है। "इसके 10 वर्ष पश्चात वर्ष 1981 मे संयुक्त राष्ट्र ने इस वर्ष को संयुक्त राष्ट्र के रूप में मनाया।इस वर्ष में विकलांग व्यक्तियों पर विभिन्न चर्चाये हुई। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 3 दिसंबर 1982 को संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव धारा 37/52 पारित किया। "विश्व क्रियान्वयन कार्यक्रम के अनुच्छेद-120 में समावेशी शिक्षा पर कहा गया कि जहां तक संभव हो सके शिक्षा बिना किसी भेदभाव के (विकलांग तथा प्रौढ़) सामान्य विद्यालयों में दी जानी चाहिए ।वैसे तो यह विश्व क्रियान्वयन कार्यक्रम सभी देशो के लिए लिखा गया है परंतु या विकाशील देशो पर अधिक लागू होता है।

बालिन दिशा निर्देशः- संयुक्त राष्ट्र विकलांगता दशक के अंतर्गत आए परिवर्तनों के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 1989 मे विकलांगता के क्षेत्र में मानव संसाधन विकास के लिए तालिन्न दिशा निर्देश को स्वीकारा गया है। इन दिशा निर्देश मे बाल्यावस्था व्यवधान तथा सभी स्तरो कि शिक्षा में समावेश (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च तथा व्यावसायिक शिक्षा) पर कहा गया है साथ ही विकलांग बच्चों के शैक्षिक सामाग्री विभिन्न प्रारूपो में उपलब्ध कराने पर बल दिया गया है। जैसे भाषायी चिन्हों की व्याख्या करना, पुस्तकों को टेप मे बदलना या ब्रेल मे बदलना, विशिष्ट (कार्यक्रम प्रोग्राम तथा computer, चित्रांकन शैली चलचित्रों की व्यवस्था करना। इन दिशा निदेशो मे पृथक विद्यालयों कि अपेक्षा सस्ते विकल्प पर बल दिया गया। इसमे विशिष्ट शिक्षा वाले अध्यापक सामान्य शिक्षा वाले अध्यापक के लिए एक सलाहकार हो सकते है तथा विशिष्ट व्याख्यान तथा सामान्य विद्यालयो के संसाधन कक्ष श्रवण बाधितों के व्याख्याता के रूप अपना सहयोग दे सकते है।

(2) बालको के अधिकारो के लिए सम्मेलनः वर्ष 1989 बालकों के अधिकारो पर सम्मेलन का वर्ष माना गया है। संयुक्त राष्ट्र में एक सम्मेलन किया गया था। सम्मेलन की कार्यान्वयन पुस्तिका प्रस्तुत की जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 48 वे अधिवेशन 20 दिसंबर 1993 को स्वीकार कर लिया। कार्यान्वयन की पुस्तिका में कई बार संशोधन किया गया जिसके एक भाग मे शीर्षक था विकलांग व्यक्तियों के समान अवसर के लिए कुछ सामान्य नियम और अधिकारो की बात कही गयी जिसमें यह तर्क दिया गया कि विकलांग व्यक्तियों के लिए शिक्षा का एक मात्र उपर्युक्त साधन मुख्य धारा वाली शिक्षा ही है। इस प्रकार सामान्य शिक्षा में विकलांगो का समावेश हो सका।

सभी के लिए शिक्षा पर जोमस्टिन सम्मेलन (1990):- जोमस्टिन सम्मेलन 1990 मे युनेस्को (UNESCO) द्वारा कार्य प्रारूप प्रस्तुत किया गया जिससे 155 देशों(राष्ट्र) के 1500 से अधिक अधिकारी सम्मिलित हुए। जो थाईलैंड के जोमस्टिन मे शिक्षा के महत्व पर चर्चा मे सममिललित हुए। सम्मेलन में सार्व भौमिक प्राथमिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के लिए विश्व व्यापी प्रायसो पर बल दिया गया। जिसके मुख्य केंद्र बिंदु सभी के लिए शिक्षा रहा है। इस सम्मेलन मे विकलांग व्यक्तियों के लिए भी प्रकार के योजना प्रस्तुत नहीं की गयी।

विशिष्ट आवश्यक्ताओं वाली शिक्षा पर सलामान्का सम्मेलनः- संयुक्त राष्ट्र तथा स्पेन की सरकार द्वारा विशिष्ट आवश्यकता वाले शिक्षा पर सलामान्का सम्मेलन स्पेन मे 7 जून से 10 जून तक वर्ष 1994 मे कराया गया। इसमे देश भर के सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिभागियो (प्रतिनिधियों)ने भाग लिया।इस सममेलन का केंद्र बिन्दु विशिष्ट शिक्षा या पृथक शिक्षा की अपेक्षा समावेश तथा समावेशी के महत्व पर रहा। इसकी प्रस्तावना मे कहा कि हमने सभी सरकारों को आमंत्रित किया है। समावेशी शिक्षा के सिद्धांत को कानून या नीति की तरह स्वीकारने के लिए जिसका उद्देश्य विशिष्ट शिक्षा के संसाधनो का प्रयोग करके समावेशी शिक्षा को अधिक सार्थक बनाना है। इस कार्य प्रारूप मे शिक्षा प्रणाली को समावेशी को समावेश बनाने के लिए जिन परिवर्तनों की आवश्यकता है वे निम्नालिखित है।-

1. पाठ्यक्रम मे बदलाव दृ
2. स्कूल भवन मे बदलाव।

3. शिक्षण मे परिवर्तन।
4. मूल्यांकन मे परिवर्तन।
5. कर्मचारियों मे परिवर्तन।
6. स्कूल आचार-विचार मे परिवर्तन।
7. अन्य सहभागी क्रियाओ मे परिवर्तन।

संयुक्त राष्ट्र विकलांग व्यक्तियों अधिकार सम्मलेनः 13 दिसम्बर 2016 विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर सम्मेलन जिसे संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय न्यूयार्क में कराया गया। मार्च 2007 मे वैकल्पिक प्रोटोकॉल द्वारा हस्ताक्षर तथा संपुष्टि हेतु दोबारा खोला गया। जिसमे संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनों के इतिहास मे पहले ही दिन सबसे अधिक हस्ताक्षर कर्ताओ ने हस्ताक्षर किए जिसका मुख्य शीर्षक था शिक्षा। जिसे पाँच खंडो में बाटा गया था।-प्रथम खंड मे विकलांगो के लिए अधिकार कि वे मुख्यधारा वाली शिक्षा के समान अवसर प्राप्त करे जैसा कि सामान्य बालक करते है। खंड-2 मे समावेश पर व्याख्या जिसमे विद्यालयो के स्वरूप मे परिवर्तन, नि:शुल्क शिक्षा व्यवस्था विकलांगो को प्राप्त होनी चाहिए। इस खंड -2 के अनुसार समावेश का अर्थ है विकलांग व्यक्तियों को आवास तथा प्रभावशाली व्यक्तिगत सहायता। खंड-3 मे स्कूल तथा समाज मे पूर्ण तथा समान सहभागिता के लिए प्रयुक्त सम्प्रेषण तथा गतिशील उपकरणो की जानकारी। अंतिम दो (4,5) भाग मे शिक्षक शिक्षण तथा व्यावसायिक शिक्षा का उल्लेख है। शिक्षको की नियुक्तियों पर चर्चा।

स्वतंत्र भारत मे समावेश शिक्षा संबाधित नीतियाँः आजादी के बाद भारत के संविधान मे समावेशी शिक्षा के लिए लिखा कि प्रत्येक नागरिक का शिक्षा का मूल अधिकार है सविधान कि धारा-45 मे कहा गया है कि राष्ट्र के संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अंदर अपने राज्य मे प्रत्येक बालक को नि:शुल्क ..... अनिवार्य शिक्षा जब तक वे 14 वर्ष की आयु पूरी न करे शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करनी होगी।दिसम्बर 2002 में 86 वे संशोधन ..... किया गया। जिसमे कहा गया है कि राज्य 14 वर्ष तक के बालकों के लिए नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

कोठारी आयोग (1964-66) इस आयोग का गठन 1964 मे किया गया। जिसमे अध्यक्ष दौलत सिंह कोठारी थे। भारत सरकार शिक्षा प्रणाली सुधार करने के लिए कार्य योजना तैयार करना चाहती थी इसमें विकलांग व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया।

कोठारी आयोग ने कहा- "अब हम विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा केवल उपयोगिता के मानवतावाद पर आधारित होकर संचालित नहीं होनी चाहिए। सही व उपयुक्त शिक्षा एक विकलांग बालक अपनी विकलांगता पर जीत प्राप्त करके एक उपयोगी नागरिक बनाती है। सामाजिक न्याय भी इसकी मांग करता है। इस समस्या पर समर्पण दृष्टि डालने पर हमे ऐसा मालूम होता है कि समेकित कार्यक्रमों के प्रयोग की अभिलम्ब आवश्यकता है तथा इन बच्चो को समेकित कार्यक्रमो मे लाने के हर संभव प्रयास होने चाहिय। "फिर 1974 मे समेकित बाल विकास योजना जिसे Intigreated Child Development Sceam (ICDS-1974) जो मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा संचालित की गयी। इसमें समाज के दुर्बल वर्ग के कुपोषित बालको के लिए पोषण की व्यवस्था या आहार की वयवस्था की गयी। जिसमे आंगनवाड़ी केंद्र खोले गए है।"

विकलांग बालको की सामेकित शिक्षा योजना (1974):- समाज कल्याण मंत्रालय समाज कल्याण विभाग द्वारा विकलांगो की समेकित शिक्षा योजना भी वर्ष 1974 में शुरू हुई। इस कार्यक्रम में विकलांग बालकों के लिए पुस्तकें, यूनिफॉर्म, यातायात सुविधा, विशिष्ट उपकरण, सहयोगी एवं कृतिम अंग हेतु आर्थिक सहायता भी प्रदान की गयी। इस कार्य योजना का क्रियान्वयन प्रभावशाली ढंग से राज्य एवं केंद्र सरकारों द्वारा निर्देशित की गयी।

इस योजना की मुख्य समस्याएँ:-

1. प्रशिक्षित एवं अनुभवी शिक्षको का अभाव।
2. नियमित स्कूल स्टाफ का विकलांग बच्चों की समस्याओ तथा शैक्षिक आवश्यकताओ की जानकारी का अभाव।

वर्ष 1970 से 1980 तक पूरे देश में 1881 बालक, 181 विद्यालयो मे सुविधा प्राप्त कर सके इस कार्यकाल मे इस बात पर बल दिया गया कि औसत विकलांगता वाले बच्चों को ही समावेशित किया जाए। गंभीर विकलांगता वाले बच्चो को समावेशीत न

किया जाए। इस प्रकार समावेशी विद्यालय में पूर्ण समावेश कि बात नहीं कि जा सकती थी। तो पृथककरण कि शिक्षा या विशिष्ट शिक्षा आवश्यक हो जाती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986):- राष्ट्रीय शिक्षा नीति वर्ष 1986 में बनी IEDC सामेकित शिक्षा योजना है। जिसे IntigreatedEducation----------childrenscream को आगे बढ़ाने के राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे भी वही बाते कही गयी। माध्यम विकलांग बालको को समावेशित किया जाए। गंभीर विकलांग बालको पृथककरण या विशिष्ट शिक्षा प्रदान कि जाए। इस शिक्षा नीति मे बहुत से विचारको का निराशा हुई क्योकि धारा-45 के तहत सभी के शिक्षा के विरुद्ध बात हुई। यह नीति 1986 मे बनी लेकिन उसकी कार्य योजना वर्ष 1992 मे लागू की गयी। इस कार्य योजना मे कहा गया कि विकलांग बालक बुनियादी जीवन कौशल अर्जित कर लेता है जो उसे विशिष्ट विद्यालयो के संसाधनो से प्राप्त होते है, मुख्यधारा वाली विद्यालय में समावेशित कर लेना चाहिए। लेकिन इस कार्य योजना में यह परिभाषित नहीं किया गया कि बुनियादी जीवन कौशल कैसे विकसित किए जाय। इस प्रकार विकलांगो को मुख्यधारा से जोड़ने वाली शिक्षा भ्रम की बनी रही। इस नीति मे यह भी कहा गया कि विशिष्ट विद्यालय (स्कूल) विकलांगो के लिए संसाधन के रूप में काम कराएंगे तथा सामान्य स्कूल इन्हें अधिगम उपलब्ध कराएंगे। इस प्रकार यह शिक्षा नीति पूर्ण समावेश की संभावना को कम करती है।

भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम (1992):- सम्पूर्ण भारत मे यह सर्वोपरि केन्द्रीय संस्थान है। जिसके द्वारा विशिष्ट शिक्षा के संचालन के लिए सम्बद्धता के लिए मानक निर्धारित करती है। भारतीय पुनर्वास अधिनियम वर्ष 1992 में लागू किए गये। यह अधिनियम इसलिए भी महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि इसके बिना अनुज्ञा पत्र (लाइसेन्स) के शिक्षण संस्था संचालित करने पर एक (1) वर्ष सजा या एक हजार रूपये अर्थदण्ड या दोनों हो सकते है। भारतीय पुनर्वास परिषद विशिष्ट विद्यालयो के लिए एक मानक निर्धारित करती है उन्हे सम्बद्धता प्रदान करती है व विद्यालय की संरचना बनावट भौतिक सुविधाए, पाठ्यक्रम, शिक्षको की नियुक्ति कर्मचारियो की योग्यता तथा विद्यालय मे समय-समय चिकित्सकीय परीक्षण के लिए आधुनिक मानदण्ड तय करती है।

विकलांग व्यक्ति अधिनियम (1955) (PeoplewithDisableAct(PDA): भारत में अब तक विकलांगो के लिए सबसे महत्वपूर्ण अधिनियम रहा है। यह अधिनियम अमेरिका में विकलांगता अधिनियम से जुड़ा है। विकलांगता से संबन्धित अनेकों विषयों के संग्रहित किए हुए जैसे उनकी शिक्षा से लेकर नौकरी, व्यवसाय, सहयोगी तथा आरक्षण से जुड़े हुए समस्त बिन्दुओं को निर्धारित करता है।इस अधिनियम ने विकलांगता को सात (7) श्रेणियों में विभाजित किया है।-

दृष्टी बाधित विकलांग
कम दृष्टि बाधित विकलांग
श्रवण बाधित विकलांग
चलन क्रिया मे बाधित विकलांग
कुष्ठ रोग से ग्रसित विकलांग
मानसिक मंदता से ग्रसित विकलांग
मानसिक रोग से संबंधित विकलांग

विकलांग व्यक्ति अधिनियम में विकलांग की शिक्षा के प्रत्येक बिन्दुओं को अंकित किया गया है इसमें कहा गया है कि विकलांग बालक को जब तक वे 18 वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले। स्वतंत्र तथा उपर्युक्त वातावरण मे शिक्षा के अवसर प्राप्त करने का अधिकार है। सामान्य स्कूलों मेंसमाकलन को प्रोत्साहन देने के लिए विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को लाभान्वित करने के PD। निम्नालिखित सुविधाएं प्रदान करता है।-

परिवहन सुविधा उपलब्ध कराना।
भवन की बनावट की बाधाएँ दूर करना।
नि:शुल्क पुस्तके तथा अध्ययन सामाग्री उपलब्ध कराना।
छात्रवृति वितरण।
पाठ्यक्रम पुर्नसंगठन।

इस अधिनियम में शिक्षक प्रशिक्षण के विषय में कहा गया है कि उपर्युक्त शिक्षण प्रशिक्षण कार्यकर्मों की आबश्यकता है जिससे कि प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक इन विकलांग बालकों के साथ आसानी से कार्य कर सके। एक अन्य मुख्य बात जो इस अधिनियम कि एक उपधारा में कही गयी है। देश के प्रत्येक भाग शहरी व ग्रामीण दोनों के ऐसी सुविधाएँ कराना जिससे कि इन बालकों का समायोजन हो सके और वे पूर्ण रूप से अपने को विद्यालय मे समावेशित कर सके। यह अधिगम प्रभावशाली रूप से लागू नहीं हो सका क्योकि सरकारो कि वितीय सहायता, कार्य योजना को उपलब्ध संसाधन, समय से योजना को उपलब्ध नहीं हो सकी। इस अधिनियम का केंद्र बिन्दु विकलांगो का समावेश करना था। इस अधिनियम के अन अंतर्गत सामान्य शिक्षकों को विशिष्ट शिक्षा का प्रशिक्षण, जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान (DIET) के द्वारा दिया गया।

माध्यमिक स्तर पर विकलांगो की समावेशी शिक्षा:- वर्ष 2008 में सरकार ने विकलांग बच्चों की समेकित शिक्षा कार्यक्रम में सुधार करके माध्यमिक स्तर पर दिव्यांगो को समावेश शिक्षा नाम दिया।यह योजना 1 अप्रैल 2009से प्रभाव में आयी। सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत 6-14 वर्ष तक की आयु के विकलांग बच्चो को संसाधन उपलब्ध कराने के सुधार हेतु बनाया गया था।लेकिन आठ वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण कर चुके विकलांग बच्चों को अपनी पढ़ाई जारी रखने के माध्यमिक स्तर पर भी सामान्य स्कूलो मे समावेशी वातावरण बनाने के लिए सुधार किये गए। इस योजना के अंतर्गत 14 -18 वर्ष तक के विकलांग बच्चो को 3000 रुपए शैक्षिक सत्र के अनुसार केंद्र सरकार द्वारा धनराशि प्रदान की जाती है। इस प्रकार माध्यमिक स्तर पर भी विकलांग शिक्षा मे भी सुधार हुई है। यह पहली नीति जो माध्यमिक स्तर के विकलांग बालकों के लिए लागू की गयी।

विकलांग व्यक्तियों की राष्ट्रीय नीति:- यह नीति 2006 मे लागू की गयी लेकिन इसकी कार्य योजना 2005 में ही तैयार कर ली गयी थी ।विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति में सुधार किए गए जो सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत पूर्ण नहीं हो सके थे। उन्हें सामाजिक न्याय तथा सशक्तिकरण मंत्रालय के अधीन संचालित किया गया और विकलांग व्यक्तियों को वर्ष मे 2 बार छ्माही सहायता प्रदान की जाती है। विकलांगो की शिक्षा को और प्रभावशाली बनाने के लिए प्रत्येक जिले मे व उसके प्रखण्ड (ब्लॉक) मे संसाधन केंद्र खोले गए। गरीब उन्नमूलन हेतु राष्ट्रीयकृत बैंको द्वारा सहायता राशि व कम ऋण पर वितीय सहायता प्रदान किया जाता है। प्रत्येक विभाग मे रिक्तियों मे 3४आरक्षण प्रदान किए गए। इस प्रकार इस राष्ट्रीय नीति मे विकलांगो को मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया।

समावेशी कक्षा: एक समावेशी कक्षा को सामान्य रुप में कक्षा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि जिसमें सभी तरह के सामान्य और असामान्य छात्र-छात्रा बिना कोई अंतर भेद भाव के सीखते हैं। समावेशी कक्षाएं बिना किसी प्रकार के भेदभाव के सभी का स्वागत करती हैं। कक्षा प्रबंधन आमतौर पर शिक्षण सीखने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण और जटिल घटक है। समावेशी कक्षा के प्रबंधन में शिक्षकों और प्रशासन का दृष्टिकोण बहुत महत्त्वपूर्ण है। छात्र का शिक्षण इस बात से संबंधित है कि कक्षा कैसे प्रबंधित और नियंत्रित है। समावेशी कक्षा में अतिरिक्त देखभाल इस कारण से की जाए कि विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों को विशेष ध्यान देने और शिक्षण पद्धतियों की आवश्यकता है।

समावेशी कक्षा के प्रबंधन के तरीके:

1. योजनाध्पाठ्यक्रम: कक्षा की समुचित योजना बनाना बहुत महत्वपूर्ण है, किस तरह के शिक्षक होने चाहिए, फर्नीचर कैसा होना चाहिए, सहायक उपकरण कैसे बनाए जाएंगे, आदि। योजना में बच्चों की आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर बदलाव किया जाना चाहिए।
2. बैठने की व्यवस्था: बैठने की व्यवस्था एक कतार में होनी चाहिए और उसे एक समावेशी कक्षा के लिए अतिरिक्त स्थान की आवश्यकता होनी चाहिए क्योंकि कुछ छात्रों के पास उनके साथ उपकरण हो सकते हैं। यदि कुछ छात्रों का ध्यान सहज से भंग हो जाये तो उन्हें द्वार अथवा खिड़की के पास न होकर अध्यापकों के पास बैठना चाहिए।
3. दृश्य एड्स का उपयोग: निर्देश के लिए दृश्य एड्स का प्रयोग करें।उदाहरण के लिए कुछ प्रतीकों और संकेत, चार्ट और ग्राफ, मानचित्र आदि। ग्राफिक्स शिक्षण प्रक्रिया में मदद करता है और अवधारण को भी बढ़ाता है। दृश्य एड्स भी अत्यंत आकर्षक, रोचक तथा इंटरैक्टिव हैं।
4. विभिन्न शिक्षण प्रारूपों और शैक्षणिक विधियों का उपयोग: हमेशा छात्रों की आवश्यकता के अनुसार शिक्षण कौशल का उपयोग करें, केवल एक ही योजना या उपाय लागू नहीं की जा सकती। यह पता करने का प्रयास करीये कि छात्रों पर

कौन से अनुदेश प्रारूप चल रहे हैं और उन्हें किसी विशेष समूह के छात्रों आदि के अनुसार ढाल लीजिये। शिक्षक हमेशा समावेशी कक्षा में अपने शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए नए शैक्षणिक कौशल को अनुकूलित करने की कोशिश करते हैं।

5. दंड के उपयोग को सीमित कर: दंड का प्रयोग न करें क्योंकि इससे बच्चों को स्कूल से डर हो जाता है। वांछित व्यवहार के लिए दंड के स्थान पर नकारात्मक पुनर्बलन का प्रयोग किया जा सकता है।
6. सीखने के लिए सार्वभौमिक डिजाइन को लागू करें: वह डिजाइन जो दुनिया भर में अच्छे परिणामों के साथ उपयुक्त है, समावेशी कक्षा के प्रबंधन की बेहतरी के लिए समय-समय पर क्रियान्वित और उत्परिवर्तित किया जाना चाहिए।
7. आईसीटी उपकरणों और सहायक उपकरणों का उपयोग: सहायक और आईसीटी उपकरणों जैसे विशेष कंप्यूटर, स्विच, बात करने वाले शब्दकोश, पाठ पाठक, स्पीकर या हेडफोन, सीखने को बढ़ाने के लिए बड़ी कुंजियों के साथ विशेष कुंजीपटल, इंटरेक्टिव व्हाइट स्क्रीन आदि का उपयोग करना।
8. हमेशा पेशेवरों से मदद के लिए पूछें: क्लास के समुचित प्रबंधन के लिए ऑर्थोपेडिक्स, मनोवैग्यानिक, थेरपिस्ट, विशेष शिक्षकों आदि से मदद मांगे क्योंकि उन्हें विशेष शिक्षा का प्रशिक्षण दिया जाता है। समय समय पर परामर्श भी बहुत महत्वपूर्ण है
9. समग्र बुनियादी संरचना: समावेशी कक्षा के बेहतर प्रबंधन के लिए एक सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समग्र मूल संरचना उत्कृष्ट होनी चाहिए, जैसे कि फर्नीचर, चौड़े दरवाजे, विशेष प्रयोगशालाएं, पुस्तकालयों, सुरक्षा मानकों, शौचालय, रैंप, जहां भी आवश्यक हो, साइन बोर्ड, आदि।
10. सामाजिक कौशल को सिखाना: शिक्षण पाठ्यक्रम के भाग के रूप में हाथ उठाना, मोड़ना और साझा करना जैसे सामाजिक कौशल को सिखाना। अनुस्मारक दिए जाने पर सभी छात्रों को लाभ होगा। आत्मकेंद्रित के साथ बच्चे अक्सर खुद को उत्तेजित करने वाले व्यवहारों में व्यस्त रहते हैं जैसे हाथ फटकना, कटकना या चेहरे पर खुद को थप्पड़ मारना। कक्षा के अन्य छात्रों को इन व्यवहारों को समझने में मदद करें।
11. ब्रेक लेने के अवसर प्रदान करें: कोई कहानी पढ़ें, कोई छोटा खेल खेलें, उठ कर खड़े हो जाएँ या किसी अनौपचारिक बातचीत करें। कभी कभी उसकी मेज से बाहर आने और कमरे के चारों ओर घूमने का अवसर दिया जाना चाहिए, जिससे कि बच्चा शांत हो सके। उन संकेतों से अवगत होने का प्रयास करें जिनकी आवश्यकता आपके छात्र को थोड़ी देर के लिए हो सकती है।
12. पर्यावरणी कारणों से सावधान रहें: ऊँची आवाज वाली आवाज, तेज रोशनी, और गर्म या ठंडा तापमान बच्चे की सोच के पैटर्न को बाधित कर सकते हैं और कक्षा में अनावश्यक विस्फोट कर सकते हैं। इन पर्यावरणीय कारणों से सावधान रहें और जब भी संभव हो इन्हें हटा दें।

महाराणा कुम्भाकृत 'संगीत राज' ग्रन्थ का स्वरूप

प्रो० के० शशि कुमार

मार्गदर्शक गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय मंच कला विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आवेश कुमार

शोध छात्र, मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सारांश–

कला एवं संस्कृति के महान उन्नायक, कलानुरागी महाराणा कुम्भा के काल में एक ओर जहाँ स्वयं कुम्भा ने संगीतशास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणयन से भारतीय संगीतशास्त्र को अपार श्रीवृद्धि प्रदान की, वहीं दूसरी ओर तत्कालीन शिल्पकारों ने अपने महाराणा के अद्भुत संगीत प्रेम को पाषाणखंडों में तराशने का अनूठा प्रयास भी किया। यही कारण है कि कुम्भा के काल में संगीत का साहित्यशास्त्रीय उपलब्धियों के साथ ही शिल्प-स्थापत्य एवं चित्रकला आदि में भी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही है।

सम्यक् दृष्टिकोण से सम्पूर्ण संगीतराज ग्रन्थ अपने आप में आश्चर्यजनक रूप से भव्य, उत्कृष्ट एवं अतुलनीय है जिसे भारतीय संगीत का विश्वकोश कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ अपने वृहद् आकार, प्रतिपाद्य विषय की व्यापकता, विषयनिरूपण की शास्त्रीय शैली, विपुल उदाहरणों की प्रस्तुति एवं महत्वपूर्ण प्राचीन उल्लेखों के आकलन आदि से भारतीय संगीतशास्त्र में अद्वितीय स्थान का अधिकारी है।

भारतीय संगीत के प्रमुख संगीताचार्यों के रूप में संगीतमर्मज्ञ महाराणा कुम्भा की ख्याति विशेषत: संगीतराज पर ही आधारित हो जाती है। किन्तु कुम्भा संगीत के अद्वितीय ज्ञाता एवं अनन्य अनुरागी थे। यही कारण है कि संगीतराज के अतिरिक्त कुम्भाकृत अन्य रचनाओं में भी संगीतविषयक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं जो उनके संगीतशास्त्रीय ज्ञान की परिचायक है।

कीवर्ड– संगीत, संगीतशास्त्र, ग्रन्थ, संगीताचार्य, रचना।

मेवाड़ का गुहिल वंश संसार के प्राचीनतम राजवंशों में माना जाता है एवं सभी राजपूत जातियों में इस वंश का स्थान ऊँचा है। गुहिल वंशीय शासकों एवं सामन्तों के लिए राजस्थानी में 'गुहिलोत' शब्द प्रयोग किया जाता है।[1] संस्कृत में इसे गोमिलपुत्र, गुहिलपुत्र, गुहिल्य लिखते हैं। मेवाड़ के राजपूत जाति के राजवंश ने घटनाओं और परिस्थितियों के अनुसार अपने नामों में परिवर्तन किया है। पहले ये लोग सूर्यवंशी नाम से विख्यात थे, उसके बाद गुहलोत कहलाए फिर आटारिया (आटेरिया) और उसके बाद सिसोदिया के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश ने मेवाड़ पर लगातार चौदह शताब्दियों तक शासन किया। कुम्भा जी का सम्बन्ध इसी राजवंश से था। मेवाड़ के शिलालेखों में वंश सम्बन्धी वर्णन के अन्तर्गत सर्वप्रथम गुहिल नाम प्राप्त है, जिनका काल छठीं शताब्दी निर्धारित है। इनके पश्चात् इन्हीं के वंशजों ने मेवाड़ पर शासन किया।

श्री गौरीशंकर ओझा की सर्वाधिक प्रमाणिक पुस्तक ''मेवाड़ राज्य का इतिहास'' में मेवाड़ के सभी शासकों के नामों एवं क्रम का उल्लेख है जो इस प्रकार है[2]–

बप्पा रावल ने सन् 734 ई0 में चित्रांगदा गौरी परमार से चित्तौड़ की सत्ता छीन कर मेवाड़ में गहलौत वंश के शासक का सूत्रधार बनने का गौरव प्राप्त किया। इनका काल सन् 734 ई0 से 753 ई0 तक था। इसके बाद रावल खुमान (753 ई.-773 ई0), मत्तट (773-193 ई0), भर्तभट्ट्त (793 ई0- 883 ई0), रावल सिंह (813 ई0-828 ई0), समर सिंह (1273 ई0-1301 ई0) आदि कई राजाओं ने यहाँ शासन किया। महाराणा हमीर सिंह ने 1326 ई0 से 1364 ई0 तक अपनी शौर्य, पराक्रम एवं कूटनीति से मेवाड़ राज्य को तुगलक से जीतकर उसकी खोई प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की और अपना नाम अमर किया एवं महाराणा की उपाधि धारण की। इसी समय से मेवाड़ नरेश महाराणा उपाधि धारण करते आ रहे हैं। महाराणा क्षेत्र सिंह ने 1364-1382 ई0 तक शासन किया। महाराणा लाखा सिंह ने 1364-1382 ई0 तक शासन किया। महाराणा लाखा सिंह ने 1382-1482 ई0 तक योग्य शासक के रूप में एवं राज्य का विस्तार करने में अहम योगदान दिया। इनके पक्ष में ज्येष्ठ पुत्र चूड़ा ने विवाह न करने की भीष्म प्रतिज्ञा की और पिता से हुई सन्तान मोकल को राज्य का उत्तराधिकारी मानकर जीवन भर उसकी रक्षा की। इसके बाद महाराणा मोकल ने 1421-1433 ई0 तक शासन किया। इनके ही पुत्र महाराणा कुम्भा (1433-1469 ई0) थे जिन्होंने इनकी मृत्यु के बाद इनके सिंहासन की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। इन्होंने न केवल अपने राज्य का विस्तार किया बल्कि योग्य शासक के रूप में प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। ये किलों व मन्दिरों के निर्माणक के रूप में भी जाने जाते हैं। कुम्भलगढ़ इन्हीं की देन है। यही गुहिल वंश बाद में सिसोदिया वंश के नाम से जाना जाने लगा। जिसमें कई प्रतापी राजा हुए, जिन्होंने इस वंश की मान-मर्यादा, इज्जत और सम्मान को न केवल बढ़ाया बल्कि इतिहास के गौरवशाली अध्याय में अपना नाम जोड़ा। यह वंश कई उतार चढ़ाव और स्वर्णिम अध्याय रचते हुए आज भी अपने गौरव और श्रेष्ठ परम्परा के लिये जाना पहचाना जाता है।

सन् 1433 ई0 में राणा मोकल की मृत्यु के पश्चात् उनके सात पुत्रों में श्रेष्ठ कुम्भा जी अपने पिता के उत्तराधिकारी बने।[3] महाराणा कुम्भा की माता का नाम सौभाग्यदेवी था। इनकी जन्मतिथि एवं सिंहासनारोहण के समय इनकी उम्र क्या थी, इस विषय में विभिन्न इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं लेकिन प्राप्त साधनों के अध्ययन करने पर यह स्पष्ट है कि इनका जन्म 1419 ई0 को माना जाता है एवं जिस समय वे राजसिंहासन पर बैठे लगभग उस समय उनकी उम्र 18 व 20 वर्षों के मध्य रही होगी।[4]

महाराणा कुम्भाकृत रचनाओं का विवरण[5]-

- गीत गोविन्द की रसिकप्रिय टीका
- चण्डीषतक वृत्ति
- सूडप्रबन्ध
- संगीत रत्नाकर टीका
- संगीत क्रमदीपिका
- संगीत मीमांसा
- गीत गोविन्द
- कामराजरतिसार
- कुम्भस्वामीमन्दार
- वाद्यप्रयत्न
- एकलिंगाश्रय
- दर्शनषास्त्र
- हरिवार्तिकत
- संगीतसुधा
- नाटकराज
- षिल्पषास्त्रीय ग्रन्थ
- संगीतराज

'संगीतराज' ग्रन्थ-

संगीतराज नामक यह ग्रन्थ राणा कुम्भा की महत्वपूर्ण कृति है। संगीतराज ग्रन्थ की रचना मेवाड़ में हुई, इसके रचयिता राणा कुम्भा ने कई पंडितों की सहायता से इसकी रचना की थी। यह ग्रन्थ कार्तिक दी 11 वि.सं. 1509 को पूर्ण हुआ। यह ग्रन्थ अत्यन्त वृहद है। इसमें 16,000 श्लोकों को संग्रह है[6] 16-16 अक्षरों की एक एक पंक्ति के हिसाब से 32,000 पंक्तियों में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। भारतीय संगीत परम्परा के अनुसार संगीत के सभी अंगों का विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। भरत के नाट्यशास्त्र से प्राय ढाई गुना और संगीत रत्नाकर से प्राय तिगुना होने के कारण संगीतराज अपने आकार में अद्वितीय है। साथ ही आधुनिक उपलब्ध साहित्य में संगीतशास्त्र की प्राचीन परम्परा का सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि ग्रन्थ भी है। 16,000 श्लोकों का यह ग्रन्थ संगीत पर अपने आप में विशुद्ध शास्त्रीय परम्परा में लिखा गया एक अनूठा ग्रन्थ है।[7] यह ग्रन्थ गद्य-पद्य मिश्रित है। पुष्पिकाएं अन्तिम प्रशस्तियाँ गद्य में है, शेष ग्रन्थ छन्दोबद्ध है। कुम्भा ने उदाहरणपरक स्वरावलियां और ताल के सांकेतिक वर्ण भी पद्यबद्ध किए हैं।

इस ग्रन्थ के ज्यादातर श्लोकों में अनुष्टुप छन्छ प्रयोग किया है किन्तु कुछ श्लोकों में आर्या, वसन्ततिलक, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है। ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ को पाठ्य, गीत, वाद्य, नृत्य एवं रस इन पांच रत्नकोशों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक कोश चार उल्लासों में तथा प्रत्येक उल्लास चार परीक्षणों में विभक्त है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल पांच रत्नकोश, बीस उल्लास तथा अस्सी परीक्षण हैं।[8]

पाठ्यरत्नकोश

'पाठ्यरतनकोश' में संगीत के साथ-साथ अलंकार, छन्द साहित्य आदि का निरूपण किया गया है। 'अनुक्रमणिकोल्लास' के 'कर्त्तृप्रशंसा परीक्षण' में मंगलाचरण के बाद ग्रन्थकार परिचय एवं पूर्वाचार्यों को स्मरण किया गया है। 'आरम्भसमर्थन परीक्षण' में संगीत के निषेधात्मक उल्लेखों के वर्णन के बाद देव तथा दानवों तक सीमित संगीत को राजा से सामान्य जन तक प्रतिष्ठित करते हुए पूर्व मान्यताओं का खण्डन कर संगीत के उद्देश्य की व्याख्या की गई है। 'संगीत स्तुति परीक्षण' में गीत की महिमा का वर्णन है। 'अनुक्रमणिका परीक्षण' में 'संगीत रत्नाकर' की भाँति 'संगीत' की व्याख्या सहित ग्रन्थ कि विषय-वस्तु की सूची दी गई है। 'पदोल्लास' के 'पदपरीक्षण' में 'शब्द' की व्याख्या है। 'वाक्य परीक्षण' में 'वाक्य' का विस्तृत विश्लेषण, 'संज्ञा परीक्षण' में संगीतशास्त्र की संज्ञाओं की व्याख्या तथा 'परिभाषा परीक्षण' में गीत, वाद्य एवं नृत्य की व्याख्या की गई है। 'छन्दोल्लास' के 'अनुष्टुप् परीक्षण' में प्रबन्ध-रचना में महत्त्वपूर्ण 'छन्दों' का वर्णन है। 'वृत्तपरीक्षण' में वृत्त के भेदों-उपभेदों का लक्षण सहित वर्णन, 'आर्यावलोकन परीक्षण' व आर्यालक्षण, भेद एवं नियमों का वर्णन तथा 'प्रस्तारपरिपाटी परीक्षण' में छन्दों के प्रस्तार का वर्णन है। 'अलंकारोल्लास' के 'उद्देश परीक्षण' में छत्तीस लक्षणों एवं अलंकारों का उल्लेख है। 'लक्षण परीक्षण' में भरत द्वारा प्रतिपादित छत्तीस लक्षणों का जो परवर्ती युग में अलंकारों के मूल रूप में माने-जाने जाते हैं का वर्णन, 'शब्दालंकार परीक्षण' में उपमा, रूपक, दीपक, यमक और अनुप्रास अलंकार-लक्षण तथा 'गुणदोष परीक्षण' में भरतोक्त दस गुण एवं दस दोषों का वर्णन है।

(1) पाठ्यरत्नकोश

(i) अनुक्रमणिकोल्लास

(क) कर्त्तृप्रशंसा परीक्षण, (ख) आरम्भसमर्थन परीक्षण,
(ग) संगीतस्तुति परीक्षण, (घ) अनुक्रमणिका परीक्षण।

(ii) पदोल्लास

(क) पद परीक्षण, (ख) वाक्य परीक्षण,
(ग) संज्ञा परीक्षण, (घ) परिभाषा परीक्षण।

(iii) छन्दोल्लास

(क) अनुष्टुप परीक्षण, (ख) वृत्त परीक्षण,
(ग) आर्यावलोकन परीक्षण, (घ) प्रस्तार परिपाटी परीक्षण।

(iv) अलंकारोल्लास

(क) उद्देश्य परीक्षण, (ख) लक्षण परीक्षण,

(ग) शब्दालंकार परीक्षण, (घ) गुणदोष परीक्षण।

गीतरत्नकोश

गीतरत्नकोश में संगीताचार्य महाराणा कुम्भा ने अपने संगीत के तलस्पर्शी ज्ञान को उद्‌भासित किया है। गीतरत्नकोश संगीतराज का सबसे बड़ा (लगभग पूरे ग्रन्थ का आधा) भाग है जो संगीत से प्रत्यक्षत: सम्बन्धित है। इस कोश में कुम्भा ने संगीत के उत्स 'नाद' तत्व की सूक्ष्मतम सत्ता से लेकर श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, साधारण, ताल, वर्ण, अलंकार, गमक, जाति, राग और प्रबन्ध तक के वृहद्‌तम विषयों के संगीतशास्त्रीय सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या की है। ग्रामराग के वर्गीकरण के अन्तर्गत कुम्भा ने रागध्यान के संदर्भ में अनेक रागों को शब्दचित्रों से दृश्यरूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है। वाग्गेयकार और गायन के गुणदोषों की विस्तृत चर्चा करते हुए कुम्भा ने कण्ठशुद्धि अथवा परिष्कृति के लिये पथ्यापथ्य एवं अनेक औषधियों के सेवन का उल्लेख किया है जो संगीत के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में एक ही स्थान पर उद्धृत नहीं मिलते।

(2) गीतरत्नकोश-

(i) स्वरोल्लास

(क) स्थानादि परीक्षण, (ख) साधारण परीक्षण,

(ग) वर्णालंकार परीक्षण, (घ) जाति परीक्षण

(ii) रागोल्लास

(क) ग्रामराग परीक्षण, (ख) रागांग परीक्षण,

(ग) भाषांग परीक्षण, (घ) क्रियांग परीक्षण।

(iii) प्रकीर्णकोल्लास

(क) वाग्गेयकार परीक्षण, (ख) शब्दभेद परीक्षण,

(ग) गमक परीक्षण(घ) स्थाय परीक्षण।

(iv) प्रबन्धोल्लास

(क) गीतक परीक्षण, (ख) सूडप्रबन्ध परीक्षण,

(ग) आलिक्रमप्रबन्ध परीक्षण (घ) प्रकीर्णप्रबन्ध परीक्षण।

वाद्यरत्नकोश

'वाद्यरत्नकोश' में वाद्य के चार प्रकारों- तत, अवनद्ध, घन एवं सुषिर-का तालों एवं रागों के साथ विस्तृत वर्णन किया गया है। भारतीय तत वाद्यों में प्राचीनतम वाद्य वीणा के प्रकारों का वर्णन है- एकतन्त्री, नकुली, त्रितंत्रिका, विपञ्चची, आलापिनी, मत्तकोकिला, पिनाकी, किन्नरी, नि:शंक, शततन्त्री, औदम्बरी, कूर्मी, घोषवती, शाङ्‌र्गी, वल्कली, रावणहत्या (यह मेवाड़ का लोक वाद्य भी है), श्रुतिवीणा, पद्मवीणा, स्वरमण्डल तथा वंशी वीणा।

इसी खण्ड में वांशिक के गुण-दोष, मुरली-मधुकरी, काहका, श्रृंगलक्षण, शंखलक्षण, पाविका लक्षण आदि के बाद ताल लक्षण, रूद्रघंटिका लक्षण, जयघंटिका, पट्टवाद्य, मंजीर, कांस्यवड, तुम्बरू तथा घनवाद्य लक्षण दिए गए हैं। वादक लक्षण, गीतानुग, मर्दंगिक-दोष आदि के उपरान्त पटह, हुडुक, घट्ट, डमरू, भाण, दुन्दुभि, निसान आदि अवनद्ध वाद्यों के लक्षण, वादक के गुण-दोष आदि का भी वृहद विवेचन किया गया है।

इस रत्नकोश में ही बंगाल भैरव, वैराटी, गूर्जरी, वसन्त, धन्यासी, देशाख्या, कामोद, रामकृति, देवकृति भैरवी, छायानट आदि देशी रागों का भी उल्लेख है।

(3) वाद्यरत्नकोश-

(i) ततोल्लास

(क) एक तन्त्री परीक्षण, (ख) नाकुलादि परीक्षण,
(ग) मत्तकोकिला परीक्षण, (घ) किन्नरी परीक्षण।

(ii) सुषिरोल्लास

(क) वंशी परीक्षण,(ख) स्वरोत्पत्ति परीक्षण,
(ग) गुणदोष परीक्षण, (घ) पावादि परीक्षण।

(iii) घनोल्लास

(क) मार्गताल परीक्षण, (ख) देशीताल परीक्षण,
(ग) तालप्रत्यय परीक्षण, (घ) तालल्क्षण परीक्षण।

(iv) अवनद्धोल्लास

(क) पुष्करवाद्य परीक्षण, (ख) पाट परीक्षण,
(ग) वाद्य प्रबन्ध परीक्षण, (घ) पटहादि परीक्षण।

नृत्यरत्नकोश

नृत्यरत्नकोश कुम्भा के नृत्यशास्त्र के ज्ञाता होने का परिचायक अंश है। संगीतराज के इस कोश में कुम्भा ने दृश्य एवं श्रव्य काव्य दोनों से नृत्य को श्रेष्ठ माना है तथा नृत्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतु:वर्ग की प्राप्ति का साधन बताया है। इस ग्रन्थ में नृत्य में प्रयुक्त होने वाले सभी अंग, प्रत्यंग एवं उपंगों की सूक्ष्मतम क्रियाओं को भेद एवं उपभेदों के साथ वर्णित किया गया है। नृत्य के विविध प्रकारों, नृत्य की सूक्ष्मतम मुद्राओं एवं भावभंगिमाओं को विस्तार से समझाया गया है। नाट्यशाला के निर्माण से लेकर, सभासान्निवेश, नाट्यवेश तथा नट-नटनियों के प्रवेश तक का विस्तृत वर्णन नृत्यरत्नकोश में मिलता है। जिससे स्पष्ट है कि कुम्भा केवल संगीत के शास्त्रीय पक्ष के ही ज्ञाता नहीं थे, वरन प्रयोग अथवा क्रियात्मक पक्ष के भी समान ज्ञाता थे।

(4) नृत्यरत्नकोश-

(i) अंगोल्लास

(क) अंग परीक्षण, (ख) प्रत्यंग परीक्षण,
(ग) उपांग परीक्षण, (घ) आहार्य परीक्षण

(ii) चारीकोल्लास

(क) स्थानक परीक्षण, (ख) शुद्धचारी परीक्षण,
(ग) देशीचारी परीक्षण, (घ) मण्डल परीक्षण।

(iii) करणोल्लास

(क) शुद्धकरण परीक्षण, (ख) देशीकरण परीक्षण,
(ग) अंगहार परीक्षण (घ) रेचक परीक्षण।

(iv) प्रकीर्णकोल्लास

(क) वृत्ति परीक्षण,(ख) न्यायादि परीक्षण,
(क) लास्यांग परीक्षण, (घ) पात्रलक्षण परीक्षण।

रसरत्नकोश

'रसरत्नकोश' के 'रसाल्लास' के अन्तर्गत 'रसस्वरूपपरीक्षण' में कुम्भा ने भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त आदि पूर्वाचार्यों के रस-सम्बन्धी मतों का निरूपण किया है जो स्वयं रसनीय हो, वह रस है। 'रसतत्त्व परीक्षण' में रस-निष्पत्ति का विवेचन है। कुम्भा के अनुसार भाव से ही रस निष्पत्ति होती है। भरत के अनुसार, आठ रसों की गणना की गई है। पुनः स्वयं 'शान्त' रस को सम्मिलित करते हुए रसों की संज्ञा नौ है, ऐसा भी माना है। इन नौ रसों का लक्षण सहित वर्णन भी किया है। चार मूल रसों से ही अन्य रसों की उत्पत्ति होती है, ऐसा भी माना है।

'रसाश्रयपरीक्षण' में रस के आश्रय को तर्कों एवं अनेक उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया है। 'रसलक्षण परीक्षण' में सभी नौ रसों का उदाहरण सहित विश्लेषण किया गया है।

'विभावोल्लास' के 'नायक परीक्षण' में नायक के गुण, नायक के चार प्रकारों के साथ-साथ 'शृंगार नायक' तथा इसके भेद, नायक के सहायक, विदूषक आदि का भी वर्णन है। 'नायिका परीक्षण' में नायिका-भेद तथा सहायिकाओं के विश्लेषण के बाद चार यौवन प्रकारों एवं संभोग के प्रकारों का भी वर्णन किया गया है। 'चेष्टादिक परीक्षण' अठारह चेष्टाओं का उदाहरण सहित अध्याय है। 'उद्दीपन परीक्षण' स्वनामानुरूप उद्दीपन विभावों से सम्बद्ध है। 'अनुभावोल्लास' के प्रथम परीक्षण 'अनुभाव परीक्षण' में शनि, भोजराज भरत आदि को उद्धृत करते हुए दस अनुभावों का विश्लेषण किया गया है। 'अवस्था परीक्षण' में रस की दस अवस्थाओं का निरूपण हुआ है। 'सात्विक परीक्षण' के अन्तर्गत आठों सात्विक भावों की व्याख्या की गई है। 'प्रवासादि परीक्षण' में चार प्रकार के प्रवास तथा विरह के चार प्रकारों का विवेचन है। 'संचार्युल्लास' के प्रथम 'निवेद परीक्षण' में तैंतीस व्यभिचारी भावों का विधान किया गया है। 'भावावस्थान परीक्षण' भावों एवं रसों की विविध स्थितियों का निरूपण है। 'रससंकर परीक्षण' रस के नाश तथा उसके निराकरण को भी दर्शाता है। 'ग्रन्थ समाप्ति परीक्षण' ग्रन्थ का अन्तिम उपअध्याय है जिसमें ग्रन्थ-रचना के उद्देश्य एवं उपयोगिता के साथ-साथ ग्रन्थ रचना-काल को भी निरूपित किया गया है।

(5) रसरत्नकोश-

(i) रसोल्लास

(क) रसस्वरूप परीक्षण, (ख) रसतत्व परीक्षण,
(ग) रसाश्रय परीक्षण, (घ) रसलक्षण परीक्षण।

(ii) विभावोल्लास

(क) नायक परीक्षण, (ख) नायिका परीक्षण,
(ग) चेष्टादिक परीक्षण, (घ) उद्दीपन परीक्षण।

(iii) अनुभावोल्लास

(क) अनुभाव परीक्षण, (ख) अवस्था परीक्षण,
(ग) सात्विक परीक्षण, (घ) प्रवासादि परीक्षण।

(iv) संचार्युल्लास

(क) निर्वेद परीक्षण, (ख) भावावस्थान परीक्षण,
(ग) रससंकर परीक्षण, (घ) ग्रन्थसमाप्ति परीक्षण।

संगीतराज ग्रन्थ संगीतशास्त्रीय मर्मज्ञ महाराणा कुम्भा के संगीतशास्त्रीय तलस्पर्शी गहन ज्ञान का परिचायक ग्रन्थ है। पाठ्य, गीत, वाद्य, नृत्य एवं रस के पंचभूतों से यह महाग्रन्थ भारतीय संगीत की सम्यक् व्याख्या करता है। इस ग्रन्थ के माध्यम से संगीतचार्य महाराणा कुम्भा ने अपने समय की उपलब्ध समग्र संगीत शास्त्रीय सामग्री को संजोकर परवर्ती समय के लिये संगीतशास्त्रीय सिद्धान्तों को सुरक्षित रखने का गुरुतर कार्य किया है क्योंकि भारतीय संगीत की पवित्रधारा जो वैदिक काल से प्रवाहमान हो रही थी, कालान्तर में विदेशी आक्रमणों के प्रभाव से लुप्तप्राय होने लगी थी। मध्यकालीन संगीत में अनेक भ्रान्तियों एवं अस्पष्टताओं का उदय हो गया

था। घोर अंधकार के इसी काल में महाराणा कुम्भा ने प्रकाशस्तम्भ बनकर भारतीय संगीत के शास्त्रीय सिद्धान्तों को पुनः प्रकाशित करने का स्तुत्य कार्य किया। यह ग्रन्थ यद्यपि प्राचीन संगीतशास्त्रीय परम्पराओं पर आधारित है किन्तु विषयवस्तु के सन्निवेश में ग्रन्थकार ने सर्वत्र मौलिकता रखी है। संगीतराज के पांचों कोशों (भाग) का अपना स्वतंत्र विशद संगीतशास्त्रीय महत्व है।

निष्कर्ष-

महाराणा कुम्भा की संगीतविषयक सम्पूर्ण उपलब्धियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संगीतशास्त्रीय तलस्पर्शी गहन ज्ञान के ज्ञाता संगीतमर्मज्ञ महाराणा कुम्भा देश के महान संगीतज्ञ थे तथा कुम्भा का काल संगीतविद्या के वैभव की दृष्टि से भारतीय संगीत का महत्वपूर्ण समय था। विदेशी आक्रमणों के संक्रमण काल में राज्यरक्षा एवं विस्तार करते हुए स्वयं संगीतसाहित्यादि का सृजन करना साथ ही कवि-कवियों और कलाकारों को इस कार्य के लिये प्रोत्साहन एवं आश्रय प्रदान करना निस्संदेह ऐतिहासिक महत्व की घटना है। इसी से संगीतशास्त्रीय मर्म के ज्ञाता संगीतमर्मज्ञ महाराणा कुम्भा का स्थान समकालीन संगीतसाहित्य जगत में महत्वपूर्ण होने के साथ सर्वोच्च भी है।

सन्दर्भ सूची-

1. राठौड़, सीमा (2001). महाराणा कुम्भा की भारतीय संगीत की देन. जोधपुरः राजस्थानी ग्रन्थागार, पृ0 9
2. टाड, जेम्स, अनुवादक- शर्मा, कालूराम (1990). राजस्थान का इतिहास. जयपुरः श्याम प्रकाशन, पृ0 105-109
3. राठौड़, सीमा (2001). महाराणा कुम्भा की भारतीय संगीत की देन. जोधपुरः राजस्थानी ग्रन्थागार, पृ0 12
4. काव्या, लावण्य कीर्ति सिंह (2014). भारतीय संगीत ग्रन्थ. दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ0 205
5. वही, पृ0 205-206
6. दासगुप्ता, लिपिका (2009). भारतीय संगीतशास्त्र ग्रन्थ परम्पराः एक अध्ययन. वाराणसीः प्रेस एण्ड पब्लिकेशन सेल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पृ0 129
7. वही, पृ0 129
8. राठौड़, सीमा (2001). महाराणा कुम्भा की भारतीय संगीत की देन. जोधपुरः राजस्थानी ग्रन्थागार, पृ0 30

गुरू जम्भेश्वर के चिंतन में बाल कल्याण और नैतिक विकास

वैष्णव संगीता कुमारी

शोधार्थी, एम ए. बी. एड हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटन

गुरू भारत महापुरूषों की जननी है। जब इस धरा पर अधर्म और अनाचार का प्रभाव बढ जाता है, उस समय जनमानस को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने के लिए महापुरूषों का जन्म होता है। उन्ही महापुरूषों में गुरू जम्भेश्वर का नाम आता है। गुरू जम्भेश्वर के जन्म के समय सामाजिक कुरूतियों अपनी चरम सीमा पर थी। जनमानस अधर्म के पथ पर चलायमान था। समाज में आडम्बरों और पाखंडों का जाल बिछा रखा था। उनकी कथनी और करनी में एकरूपता का सर्वथा अभाव था। ऐसी ही विकट परिस्थितियों में गुरू जम्भेश्वर का जन्म हुआ। उन्होनें तत्कालीन परिस्थितियों का चिंतन और मनन किया और जनमानस के लिए कल्याण का पथ प्रशस्त किया। उन्हें विश्व सभी धर्मो का समन्वय कर विश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। जंभवाणी में कहा गया है कि समाज का विकास और उद्धार दया, करूणा, अहिंसा और सत्य जैसे मानवीय गुणों से ही किया जा सकता है।

गुरू जम्भेश्वर ने जनमानस के कल्याण के लिए उनतीस धर्म नियमों की आचार संहिता का प्रतिपादन किया। ऐसो माना जाता है कि उन्होनें बीस नियमो को सनातन धर्म से ग्रहण किये औ बाकी नौ नियमों का सार अन्य धर्मो से लिया गया है। इन उनतीस नियमों का अक्षरस पालने करने वाले विश्नोई कहलाते है। गुरू जम्भेश्वर ने जनमानस की समस्याओं का गहराई से मनन किया और कर्म प्रधान मानवतावादी दृष्टिकोण को स्वीकार किया। उन्होने मनुष्य के जीवन का आधार प्राणीमात्र के कल्याण को माना है। उनका मानना था कि बिना अपराध के किसी भी प्राणी को कष्ट देना चाहे वो मन, वचन और कर्म से ही क्यों नही हो, पाप माना जाता है।

गुरू जम्भेश्वर जी के नियम शाश्वत और सत्य पर आधारित है। उनके चिंतन और मनन बच्चों के लिए सारगर्भित और कल्याणकारी है। इस आलेख में गुरू जम्भेश्वर के चिंतन में बाल कल्याण और नैतिक विकास की बात की व्याख्या है। वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाये तो बच्चों में नैतिक विकास का अभाव पाया जाता हैं। यदि बालको को जन्म से ही नैतिक मूल्यों का पाठ पढाया जाये तो निसंदेह उनके जीवन को कल्याणमय और संस्कारित बनाया जा सकता है। नैतिक विकास के माध्यम से सामाजिक विकास भी संभव है।

नैतिक विकास के संदर्भ मे कहा जाये तो संगति इसका मूल आधार है। बालको के जीवन में संगति का प्रभाव विशेष रूप से पडता है। बालको की प्रवृति उसी अनुरूप होती है जिस प्रकार के उसके साथी होते है। यदि उसके साथियों में दया, करूणा, ज्ञान, विनम्रता, सच्चाई और सम्मान की भावना पाई जाती है तो निसंदेह उसकी प्रकृति भी उनके अनुरूप ही होगी। गुरू जम्भेश्वर ने जंभवाणी में कहा है कि–

लोहे हूंता कंचण घडियों, घडियों ठांव सुठाउ।[1]

गुरू जम्भेश्वर जी ने ज्ञान के महता पर विशेष बल दिया है। वर्तमान परिपेक्ष्य पर गौर किया जाये तो बालको को परीक्षा में उर्तीण कराना ही शिक्षा पद्धति का उद्देश्य रह गया है। बालको की नैतिक शिक्षा और विकास पर कोई योजना नही है। वर्तमान समय बालक अपने गुरूजनों का सम्मान नही करते है। माता–पिता को बीच मझधार में छोड देते है। संयुक्त परिवार प्रणाली समाप्त हो गई है। सभी स्वतंत्र जीवन जीना चाहते हैं, बडे–बुर्जुगों का कोई हस्तक्षेप नही चाहता है। मानव मानव का दुश्मन हो गया है, अपनेपन की

भावना समाप्त हो गई है। वाद- विवाद को बढावा मिल रहा है। अदालतों में प्रकरणों की संख्या में उतरोतर वृद्धि हो रही है। पाश्चात्य संस्कृति को बढावा दिया जा रहा है। देश की संस्कृति से पल्ला झाडने की कोशिश की जा रही है।

गुरू जम्भेश्वर की शिक्षाएं इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। उन्होनें ज्ञान की महता को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि मन के भीतर अटल विश्वास और विचारों की उत्पति से ही ज्ञान की प्राप्ति संभव हो सकेगी और ज्ञान के क्षेत्र में प्रगति हो सकती हैं जंभवाणी में ऐसे विचार का भण्डार है। वे मनुष्य में कल्पना शक्ति का संचार पैदा करना चाहते है, जिसके माध्यम से समाज में आदर्शवाद की स्थापना हो सके। वे बन्धुत्व की भावना पैदा करना चाहते है। जिसका आधार ज्ञान ही है। यदि वर्तमान का शिक्षक बालको पर ज्ञान का बोझ डालने की बजाय उनमे ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा शक्ति का भाव उत्पन करे तो निसंदेह वर्तमान की शिक्षा प्रणाली का स्वरूप बदल जायेगा और ज्ञान का विकास हो सकेगा।

आम आदमी गुरू की जिम्मेदारियों को वहन नही कर सकता है। गुरू की पदवी तो भगवान से भी बढकर हैं। गुरू तो ज्ञान की खान होती है। उसका व्यक्तित्व विरला और महान होता है। संत कबीर ने कहा है कि-

गुरू गोविन्द दोय खडे, काकै लागू पाये
बलिहारी गुरू आपणे गोविन्द दियो बताय।

गुरू जंभेश्वर ने गुरू की महता का उल्लेख करते हुए कहा है कि गुरू तो प्रकाश का पुंज होता है। इस पदवी को तो वही धारण कर सकता है जिसमें सहजता हो, सरलता हो, विनम्रता का भाव हो, उसका आचरण शीलयुक्त हो, उसकी वाणी में तेज, मिठास हो और उसका ज्ञान सभी के लिए कल्याणकारी और मंगलकारी हो। जंभवाणी में कहा गया है कि-

जो गुरू होयबा सहजे, शीले शब्दे नादे
वेदे तिहिं गुरू का आलिंकार पिछाणी।[2]

वर्तमान समय में ऐसे गुरूओं की नितांत आवश्यकता है, जो स्वयं जलकर दूसरों के पथ को प्रकाश से आलोकित कर सके। ऐसे सिद्ध और ज्ञान से सुजजित गुरू ही बालकों का सर्वागीण कर सकते है।

आज पाश्चात्य संस्कृति सिर पर चढकर तांडव कर रही है। भौतिकवाद और स्वार्थीपन की प्रवृति से मनुष्य की नैतिकता का हास हो रहा है। मानवीय मूल्यों की धज्जिया उडाई जा रही है। मूल यही कारण है जिसके वजह से मुनष्य स्वयं को अकेला महसूस करता है। अपनेपन की भावना समाप्त होने के कारण मनुष्य के दर्द को समझने वाला कोई सच्चा साथी नही रहा। ऐसे दूषित वातावरण का प्रभाव बालकों पर असर कर रहा है। बच्चे ईश्वर की बनाई हुई अनुकृति है। उनका स्वभाव रबर की भांति होता है। उसे आप जैसे चाहे वैसा आकार दे सकते है। बालक का स्वभाव भोला होता है वो अपने-पराये के विभेदीकरण को नही समझ पाते है। उनमें मानवीय गुण का अथाह भण्डार होता है।लेकिन पारिवारिक और सामाजिक वातावरण का उन पर गहरा असर होता है, और मानवीय मूल्यों की इति श्री होती है।

मानवीय मूल्यों को पुर्नजीवित करने के लिए गुरू जम्भेश्वर ने क्षमा, दया, परोपकार और दान की महता का उल्लेख किया है। उन्होने क्षमा को मनुष्य का श्रंगार कहा है। जिस मनुष्य के भीतर क्षमा का गुण पाया जाता है वो संसार का सबसे महान मनुष्य माना जाता है। अपराधी को दण्ड देने की बजाय क्षमा करना दुष्कर होता है लेकिन क्षमा करने से किसी का हदय परिवर्तन हो जाता है और वह सदमार्ग की ओर प्रवृत हो जाता है। गुरू जम्भेश्वर जंभवाणी मे कहते है कि-

क्षमा, दया हिरदै-धरो- गुरू बतायो जांण।[3]

सदाचारी, शीलवान व संतोषी मनुष्य ही समाज का कल्याण कर सकता है क्योकिं वह स्वार्थ, कदाचार और तृष्णा से परे होता है। स्वार्थ और लालच परमार्थ से परे रखते है। मानवीय मूल्यों के अंतर्गत परोपकार का बडा महत्व माना जाता है। परोपकार मानवता की कसौटी है। स्वयं के लिए तो सभी जीते है लेकिन जो दूसरों के हितार्थ जीता है वही सच्चा मनुष्य होता है। सनातन धर्म मे दूसरों के जीना श्रेष्ठ माना गया है। दान की महता को उजागर करते हुए गुरू जम्भेश्वर कहते है कि-

भूखे ने भोजन दियो, जाणि भगवंत जिमायौ।
तिसीये जण ने जल दियो, जाणि आप ने पायौ।

उघाडे ने पांगरण दियों, जाणि पारब्रहम उढाइयौ।
निरधन नै धन दियो, जाणि आप माने भायौ।[4]

नशे का सेवन आज दिन प्रतिदनि बढता जा रहा है। बालको में यह प्रवृति आम हो गई है। विद्यालय स्तर पर ही बच्चे नशे के आदि हो जाते हैं। इसके लिए बालक चोरी करना सीखते है, विद्यालय से पलायन करने की प्रवृति जन्म लेती है। नैतिकता के अभाव के कारण उनमें अपराध की वृति पैदा होने लगती है। जंभवाणी में गुरू जम्भेश्वर कहते है कि–

होको अमल तमाखू टालै। मदरा भांग-मास नहि नहालै।
चाह धतूरा कबहु न पीवै। सौ साधु जग-जग में जीवे।[5]

गुरू जम्भेश्वर ने अल्पाहार का विद्यार्थी में विशेष महत्व बताया है। उन्होनें अधिक भोजन करने का कोई विरोध नही किया अपितु असंतुलित और अनिष्टकारी आहार को वर्जित बताया है। उनका मानना है कि अधिक भोजन से शरीर में मोटापा बढने लगता है और विभिन्न प्रकार की बीमारियों से मनुष्य ग्रसित होने लगता हैं। जंभवाणी में कहते है कि–

घण तण जीम्यां को गुण नाहीं, मल भरिया भंडारू।
आगे पीछे माटी झूलै, भूला भवै ज भारू।[6]

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि गुरू जम्भेश्वर ने मानव जीवन के सभी पक्षों का चिंतन और मनन किया और बालको में दया, परोपकार, सच्चाई और अहिंसा के गुण विकसित करने पर विशेष जोर दिया। उनके नियम और उनकी वाणी शाश्वत है। इनकी विचारधारा के माध्यम से बालको का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. जंभवाणी सबदसागर, उदयराज खिलेरी, प्रकाशक, विश्नोई सेवक प्रकाशन, नागौर, प्रकाशन वर्ष 2018, पृ. सं. 36
2. जंभसागर, कृष्णानंद आचार्य, प्रकाशक, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, बारहवा संस्करण 2018, पृ. सं. 22
3. जंभसागर, कृष्णानंद आचार्य, प्रकाशक, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, बारहवा संस्करण 2018, पृ. सं. 267
4. जांभाणी साहित्य विविध आयाम, डा कृष्णलाल विश्नोई, प्रकाशन श्री गुरू जम्भेश्वर महाराज चौरिटेबल ट्रस्ट, बीकानेर, द्वितीय सस्करण 2012, पृ. सं. 151
5. जांभाणी साहित्य साधक संत साहबराम, डा सुरेन्द्र कुमार विश्नोई, विनोद जंभदास, प्रकाशक जांभाणी साहित्य अकादमी बीकानेर, प्रथम संस्करण 2015, पृ. सं. 82
6. जम्भसागर, कृष्णानंद आचार्य, प्रकाशक जांभाणी साहित्य अकादमी, बारहवा संस्करण 2018,पृ.सं. 66

भारत में जनसंख्या वृद्धि नियोजन का विश्लेशणात्मक अध्ययन

डॉ० शिवप्रताप सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर सहकारी पी0 जी0 कालेज मिहरावाँ, जौनपुर

राकेश कुमार मौर्य

रिसर्च स्कालर, भूगोल, सहकारी पी0 जी0 कालेज मिहरावाँ, जौनपुर

शोध सार

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विष्व में द्वितीय स्थान है। सन् 2022 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 1.413 बिलियन है तथा पूरी जनसंख्या 8 बिलियन अनुमानित की गई थी। यह विष्व की जनसंख्या का लगभग 18 प्रतिशत है। दूसरे शब्दों में विश्व का हर छठां व्यक्ति भारतीय है, लेकिन भारत में विश्व के भू-क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है। इस तरह क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व के अपेक्षाकृत एक बहुत छोटे भाग में विश्व जनसंख्या एक बहुत बड़ा भाग रहता है। यदि हम अन्य देशों से तुलना करें, तो पता चलता है कि क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत की जनसंख्या अनेक देशों से कहीं अधिक है। यदि हम यू.एस.ए. , इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, जापान, ब्राजील, बांग्लादेश और नाइजीरिया इन सात देशों की कुल जनसंख्या जोड़ लें, तो भी भारत की जनसंख्या इनसे अधिक ही है। हम मानते है कि भारत प्रतिवर्श एक ऑस्ट्रेलिया पैदा करता है, वही प्रत्येक दशक में एक ब्राजील को पैदा करता है। परन्तु यदि हम क्षेत्रफल को लें, तो केवल अमेरिका का क्षेत्रफल ही भारत के क्षेत्रफल से लगभग तीन गुना अधिक है।

भारत में हर 1 सेकेन्ड में 49 बच्चे पैदा होत है और इस प्रकार यहाँ प्रत्येक वर्ष आस्ट्रेलिया की जनसंख्या के बराबर जनवृद्धि हो जाती है। जबकि भारत में विष्व की 18: जनसंख्या निवास करती है, तब भारत की राष्ट्रीय आय, विश्व की आय का केवल 1.5 ही है।

2021-22 की समान तिमाही में यह 51.27 लाख करोड़ रूपये थी। 2021-22 में मौजूदा कीमत पर जी.डी.पी 7 फीसदी बढ़ी है। इसके अन्तर्गत सकल मूल्यवर्धन (जी.वी.ए.) 12 फीसदी बढ़कर 34.41 लाख करोड़ रूपये रहा। वास्तविक जी.डी.पी. 2020 की अप्रैल-जून तिमाही में 27.03 लाख करोड़ रूपये थी। प्रति व्यक्ति आय विभिन्न देषों के अलग-अलग जीवन स्तर का एक महत्वपूर्ण सूचकांक होती है। हमारी सालाना कमाई 1.28 लाख होती है। जबकि यू.पी. की GDp 19.2 लाख करोड़ और प्रति व्यक्ति आय 81520 जो अन्य राज्यों से बहुत कम है। तथा औसत प्रति व्यक्ति आय भारत का 150000 है।

मुख्य बिन्दु- जनसंख्या, नियोजन, भू-क्षेत्र, अपेक्षाकृत, जनसांख्यिकीय।

विकासशील देशों में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या उनके विकास में कहाँ तक बाधक सिद्ध होती है? जनसंख्या वृद्धि की प्रभावशाली नीति की सहायता से क्या देश की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन लाया जा सकता है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका वर्तमान सन्दर्भ में जनसंख्या वृद्धि नियोजन से गहरा सम्बन्ध है।

पश्चिमी देशों के जनसांख्यिकीय विकास के अध्ययन के बाद अनेक शोधकर्त्ताओं ने यह अनुमान लगाया है कि ऐतिहासिक दृष्टि से जनसंख्या में जनसांख्यिकीय संक्रमण होता है, जिसका अभिप्राय यह है कि जनसंख्या में परिवर्तन लगभग सुनिश्चित अवस्थाओं से होकर गुजरता है। पहली अवस्था की विशेषता यह है कि इसमें जनसंख्या प्राय: स्थिर रहती है, ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि जन्म दर तो ऊँची होती है, परन्तु मृत्युदर भी ऊँची ही रहती है तथा इस प्रकार जनसंख्या में वृद्धि नहीं हो पाती। जनसांख्यिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था में आर्थिक विकास, उत्तम आहार, उच्च रहन-सहन एवं चिकित्सा सुविधाओं में सुधार से मृत्यु दर में ह्रास होने लगता है, परन्तु जन्म दर उच्च ही बनी रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि जनसंख्या की शुद्ध वृद्धि दर बढ़ती है, जिससे जनसंख्या में तेजी से बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। तीसरी अवस्था में, जबकि देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत अवस्था में होता है, निम्न मृत्यु दर में गिरावट तो आती है, लेकिन गिरावट की दर बहुत कम होती है। इसके विपरीत, जन्म दर में गिरावट बहुत तेजी से होती है। परन्तु जन्म दर में गिरावट होने के साथ-साथ उसमें गिरावट की मात्रा कम होती जाती है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु की दरें स्थिर हो जाती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि जनसंख्या वृद्धि की दर बहुत धीमी होती है। भारत अभी तीसरी अवस्था में है।

वर्तमान समय में भारत जनसंख्या विस्फोट का सामना कर रहा है। जन्म दर का तात्पर्य और अधिक बच्चों का होना, इस प्रकार कुल जनसंख्या में उनका अनुपात बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप श्रमबल पर निर्भर करने वालों की संख्या बढ़ जाती है। इस पराश्रित जनसंख्या का राष्ट्रीय आय के उत्पादन में कोई योगदान नहीं है, लेकिन स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, आवास, पेयजल पूर्ति आदि सामाजिक सेवाओं का बहुत बड़ा भाग उन्हीं में चला जाता है। वर्तमान समय में भी आधारिक संरचना सुविधाओं और संसाधनों पर बहुत बड़ा बोझ पड़ रहा है तथा दिन-प्रति-दिन जनसंख्या में वृद्धि होने से विद्यमान सुविधाएँ अपर्याप्त होती जा रही हैं।

''भारत में 1901 से 1911 के मध्य इन दस वर्षों में 1.14 प्रतिशत जनसंख्या की वृद्धि हुई थी। सन् 1901 (26.5 प्रतिशत) को छोड़कर प्रत्येक दसवर्षीय अन्तराल में वृद्धि पायी गयी है। ग्रामीण एंव नगरीय दोनों ही क्षेत्रों में आशा से अधिक वृद्धि हुई है। जनसंख्या वृद्धि के निम्न कारण महत्त्व रखते हैं।''

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी बचपन में विवाह करने का प्रचलन है। शिक्षित एवं जागरूक लोगों को छोड़कर सभी जातियों एवं धर्म में कम आयु में ही विवाह कर दिये जाते हैं। इस कारण महिलाओं की स्थिति ऐसी हो जाती है कि वे अपने समस्त जनन-आयु में बच्चों को जन्म दे सकती हैं। 18 वर्ष से कम आयु की लड़कियों और 21 वर्ष से कम आयु के लड़कों के विवाह पर कानूनी प्रतिबन्ध के बावजूद बाल विवाह अभी भी इस पिछड़े क्षेत्र में व्यापक रूप से हो रहे हैं।

माता-पिता अनेक कारणों से पुत्र पैदा करना चाहते हैं। अपनी वृद्धावस्था में सुरक्षा, वंश को आगे चलाना, मृत्यु के बाद संस्कार करना तथा अन्य मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारण हैं। इन कारणों से वे तब तक बच्चे पैदा करते रहते हैं, जब तक एक पुत्र पैदा न हो जाए। गरीब परिवारों के माता-पिता यह सोचते हैं कि जितने अधिक बच्चे होंगे, उतनी ही अधिक मजदूरी कमा कर वे लायेंगे। इसीलिए वे बच्चों की संख्या कम करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं।

इस कारण से भी माता-पिता अधिक सन्तानें उत्पन्न करने की सोचते हैं, ताकि कुछ जिंदा रह जाएँ। भारत के निम्न एवं पिछड़ी जातियों की आज भी यही सोच रहती है। ''भारत में निरक्षरता का प्रतिशत है। विशेषकर महिलाओं के बीच यह स्थिति (32.52 प्रतिशत) और भी दयनीय है। इस कारण लोग जन्म- नियन्त्रण की विधियों से अनभिज्ञ रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त निरक्षरता के कारण ही बाल-विवाह जैसी कुरीतियों में फँस जाते हैं। जन्म- नियन्त्रण सम्बन्धी पोस्टर एवं छपी हुई सामग्री का प्रचार-प्रसार नहीं हो पाता है।''

परिवार के सदस्यों, पास-पड़ोस तथा समुदाय की ओर से छोटे परिवार के आदर्श को सामान्यत: सामाजिक सहायता उपलब्ध नहीं हो पाती है। जनसंख्या वृद्धि में गिरावट हो रही है किन्तु जनसंख्या वृद्धि तीव्र है। कि अल्प विकास और जनसंख्या विस्फोट के दुष्चक्र से बचने के लिए इस समस्या से शीघ्र निबटना होगा।

जनसंख्या वृद्धि के कारण-

1. पुत्र की आषा एवं पुत्र को वंषज मानना।
2. स्वास्थ्य सुविधाओं पर मृत्यु दर से

3. शिक्षा की कमी
4. जागरूता की कमी
5. गरीबी
6. बेरोजगारी
7. कम उम्र में विवाह

जनसंख्या वृद्धि को रोके कैसे? आज आवश्यकता इस बात की है कि परिवार कल्याण सेवाओं तथा समुचित जनसंख्या नीति का सहारा लेकर जनसंख्या वृद्धि को कैसे रोका जाये। ''राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम की संशोधित नीति के अनुसार 1986-90 (रैना 1988) के अन्तर्गत निम्नलिखित विशिष्ट लक्ष्यों तक पहुँचने का प्रयास किया गया था-'' एन.एफ.एच.एस.-5 (1992-93) से एन.एफ.एच.एस.-5 तक के सफर में दिखाई देता है।''

- महिलाओं के विवाह की माध्य आयु (Mean age) को बढ़ाकर 20 वर्ष से अधिक करना।
- प्रत्येक परिवार दो बच्चों के आकार को प्रोत्साहन देना।
- गर्भ निरोधकों की माँग में अत्यधिक वृद्धि करना, जिससे दम्पति संरक्षण दर 42 प्रतिशत से अधिक हो सके।
- आधारिक संरचना और सेवाओं की कोटि में सुधार लाना तथा उन्हें और अधिक प्रभावशाली बनाना।
- व्यापक तौर पर प्रतिरक्षण (इम्युनाइजेशन) करके और जीवन-रक्षक घोल (ओरल रिहाइड्रेशन थैरेपी ORT) विधि को प्रोत्साहन देकर अधिक से अधिक बच्चों को बचाना।
- कार्यक्रम के प्रबन्ध को सभी स्तरों पर और अधिक व्यवस्थित तथा कुशल बनाना।
- सामाजिक-आर्थिक मामलों में आवश्यक हस्तक्षेप करके जन्म दर को घटाने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना।

लैंसेट द्वारा 195 देशों एवं क्षेत्रों के लिये वर्ष 2017 से वर्ष 2100 तक प्रजनन क्षमता, मृत्यु दर और प्रवास एवं जनसंख्या परिदृश्य के संदर्भ में वैष्विक पूर्वानुमान विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस विश्लेषण के अनुसार- वर्ष 2048 में भारत की जनसंख्या 1. 6 बिलियन आबादी के साथ अपने शीर्ष स्तर पर होगी। ''किन्तु यू.एन.ओ. रिपोर्ट के अनुसार 2023 में पहले पर ही आ जायेगा।''

इस प्रकार लैंसेट अध्ययन के अनुसार- वर्ष 2048 में भारत की जनसंख्या विष्व सर्वाधिक होने का अनुमान लगाया गया है। 2023 में 25 वर्श पहले हो जायेगा। जो वर्ष 2017 की 1.38 बिलियन जनसंख्या से बढ़कर लगभग 1.6 बिलियन हो जाएगी। कम होकर वर्ष 2100 में भारत की जनसंख्या 1.09 बिलियन अनुमानित की गई है।

अध्ययन के अनुसार- भारत में 15-64 वर्ष की आयु के कामकाजी वयस्कों की संख्या में गिरावट का अनुमान लगाया गया है जो वर्ष 2100 में वर्ष 2017 के लगभग 762 मिलियन से घटकर 578 मिलियन संभावित है। हालांकि, भारत में वर्ष 2100 तक विष्व की सर्वाधिक कामकाजी उम्र की जनसंख्या अनुमानित की गई है। वहीं पर चीन में कार्यबल/कामकाजी जनसंख्या वर्ष 2100 में वर्ष 2017 के 950 मिलियन से घटकर 357 मिलियन के स्तर पर पहुँच सकती है।

एक अध्ययन के अनुसार, भारत की कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate & TFR) वर्ष 2019 में घटकर 2.0 से नीचे आ गई जो वर्ष 2100 में 1.29 के स्तर पर होगी। कुल प्रजनन दर बच्चों की वह संख्या है जो औसतन किसी स्त्री के संपूर्ण प्रजनन काल (सामान्यत 15 से 49 वर्ष के बीच) में पैदा होते हैं। अर्थात यह प्रति 1000 स्त्रियों की इकाई के पीछे जीवित जन्मे बच्चों की संख्या है।

अध्ययन में वर्ष 2040 तक भारत की कुल प्रजनन दर गिरावट के साथ स्थिर होने का अनुमान है। रिपोर्ट के अनुसार, विष्व की जनसंख्या वर्ष 2064 में लगभग 9.7 बिलियन होने का अनुमान लगाया गया है।

अध्ययन के अनुसार, वर्ष 2100 में कुल 195 देशों में से 183 देशों में प्रति महिला कुल प्रजनन दर 2.2 के प्रतिस्थापन स्तर से नीचे जाने का अनुमान है। विष्व स्तर पर कुल प्रजनन दर वर्ष 2100 में 1.66 होने का अनुमान लगाया गया है जो वर्ष 2017 में 2.37 थी। वर्ष 2100 में कुल प्रजनन दर वर्ष 2017 की तुलना में-2.0 की न्यूनतम दर से कम होगी।

लैंसेट अध्ययन के अनुसार, वैष्विक आयु संरचना में भारी बदलाव का अनुमान लगाया गया है। 65 वर्ष से अधिक आयु वालों की संख्या वर्ष 2000 की तुलना में वर्ष 2100 में 1.7 अरब से बढ़कर 2.37 बिलियन के स्तर पर पहुँचने का अनुमान है।

रिपोर्ट में भारत एवं चीन जैसे देशों में कामकाजी उम्र की आबादी में नाटकीय रूप से गिरावट होना का भी पूर्वानुमान प्रस्तुत किया गया है जिसके चलते आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होगी जो वैष्विक शक्तियों में बदलाव को इंगित करेगा।चिकित्सा सेवाओं में वृद्धि, कम आयु में विवाह, निम्न साक्षरता, परिवार नियोजन के प्रति विमुखता, गरीबी और जनसंख्या विरोधाभास आदि ने जनसंख्या बढ़ाने में योगदान किया है।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2020 की घोषणा गर्भ-निरोध, स्वास्थ्य संबंधी आधारभूत ढाँचा, स्वास्थ्य कर्मचारियों और एकीकृत सेवा डिलीवरी की अतृप्त मांगों को पूरा करने के अविलम्ब लक्ष्य को हासिल करने के लिये की गई थी। इस नीति का उद्देश्य कुल प्रजनकता को प्रतिस्थापन स्तर यानी 2.1 बच्चे प्रति जोड़ा तक लाना है जो इसका मध्य-सत्रीय लक्ष्य है। वर्ष 2045 तक जनसंख्या को स्थिर करना इसका दूरवर्ती लक्ष्य था। जिसको बढ़ाकर 2070 कर दिया गया है।

स्वास्थ्य, जनसंख्या वृद्धि और प्रजनन दर पर चर्चा की गयी प्रजनन दर 2.2 से घटकर 2.0 हो गई। प्रजनन के समय पहले औसत आयु 21.2 वर्श थी। मोटापा स्त्री का 24 प्रतिषत तथा आदमी का 23 प्रतिषत होना चाहिए। गर्भ निरोधक 54 से घटकर 67 प्रतिषत हो गया।

आयोग में प्रेरणा और प्रोत्साहन संबंधी 16 युक्तियाँ भी बताई गई हैं, जिनमें पंचायतों और जिला परिषदों को छोटे परिवारों को प्रोत्साहित करने पर पारितोषिक देना, बाल विवाह विरोधी कानून और प्रसव-पूर्व गर्भ जाँच तकनीक कानून का कड़ाई से पालन, दो बच्चों के प्रतिमान को प्रोत्साहन और नसबंदी की सुविधा को पारितोषिक और प्रोत्साहनों के जरिये मजबूती प्रदान करना है।

उपर्युक्त विश्लेषण एवं राष्ट्रीय जनसंख्या वृद्धि नियोजन के अध्ययनोपरान्त शोधकर्त्ता ने भारत की भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारकों का विश्लेषण कर निम्न सुझाव जनसंख्या वृद्धि नियोजन हेतु प्रस्तावित किए हैं-

ग्राम स्तर पर एक स्वास्थ्य गाइड की नियुक्ति की जाए, जो दिन-प्रतिदिन स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों करने के अतिरिक्त योग्य दम्पतियों को परिवार नियोजन के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध कराये। इसके अतिरिक्त कंडोम और गर्भ निरोधक गोलियों का वितरण, बंध्याकरण (नसबन्दी) के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, नजदीकी उपकेन्द्रों में भेजना सुनिश्चित करे।

ग्राम स्तर पर ही एक महिला कार्यकर्त्ता (दाई) की नियुक्ति की जाए जो स्थायी रूप से गाँव में निवास करती हो दाई को प्रशिक्षित होना आवश्यक हो। बच्चा पैदा करने की उम्र वाली महिलाओं को छोटे परिवार के आदर्श को अपनाने के लिए प्रेरित करे। ऐसी दाई की परिवार नियोजन सम्बन्धी सलाह एवं भूमिका महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है। क्योंकि प्रसव पूर्व प्रसवोत्तर काल में यह दाई पारिवारिक सदस्य के रूप में गर्भवती महिलाओं को शिक्षित कर सकती है।

स्वास्थ्य केन्द्रों से उपकेन्द्रों एवं उपकेन्द्रों से सीधे गाँव तक इन्ही कार्यकत्ताओं के माध्यम से कंडोमों एवं पिलों (गोलियों) का वितरण सुनिश्चित कराया जाए। क्षेत्र की महिलाएँ अधिक शिक्षित न होने के कारण इस सम्बन्ध में किसी से खुलकर बात करने में शर्म महसूस करती हैं। ऐसे में ऐसी दाइयों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होगी।

''प्रत्येक स्वास्थ्य केन्द्रों के स्टाफ में वृद्धि की जाए और उन्हें प्रेरित किया जाए कि वे क्षेत्र में जाकर जागरूकता अभियान चलायें। जिले के बड़े अधिकारियों द्वारा ऐसे कार्यक्रमों का समय-समय पर स्थानीय निरीक्षण किया जाए। ग्राम पंचायत की महिला सदस्यों को इस कार्यक्रम में सम्मिलित कर उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है। ऐसे वार्ड मेम्बरों को समय-समय पर परिवार कल्याण कार्यक्रम की सहभागिता हेतु पुरस्कृत किया जाए।''

ऐसे ग्रामीण जो आदर्श परिवार अपनाते हैं, उन्हें ग्राम समाज की भूमि (पट्टे) आवंटित किये जाएँ तथा निःशुल्क आवास की व्यवस्था कराई जाए। इस कार्य में संलग्न कर्मचारियों एवं अधिकारियों को ईमानदारी हेतु प्रेरित किया जाए। एक पुत्र या पुत्री वाले ऐसे जोड़े को, जिन्होंने परिवार नियोजन जैसे पुनीत कार्यक्रम में भाग लेकर अपना सहयोग दिया हो उसे उसी ग्राम में सार्वजनिक रूप से सम्मानित एवं पुरस्कृत किया जाए। ऐसा करने से अन्य ग्रामीण इसमें अपना योगदान देने हेतु प्रेरित होंगे।

किसी समाज में जनसंख्या का आकार सामाजिक संरचना को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। जनसंख्या के आकार का जीवन स्तर से घनिष्ठ सम्बन्ध है और जीवन स्तर हमारे सामाजिक मूल्यों, विष्वासों और सामाजिक संगठन को प्रभावित करता है। जनसंख्या के आकार में होने वाले परिवर्तन अनेक प्रक्रियाओं के माध्यम से निम्नलिखित क्षेत्रों में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। जैसे- जन्मदर में यदि वृद्धि हो रही है तथा मृत्युदर भी बढ़ रही है तो उच्च जन्मदर तथा उच्च मृत्यु दर के कारण जनसंख्या के आकार में वृद्धि नहीं होगी। जन्मदर वृद्धि अनेक कारणों से प्रभावित होती है प्रजनन क्षमता में वृद्धि, रोगों से निजात, विवाह की आयु में कमी तथा प्रकृति

से अधिक अनुकूल करने की क्षमता। जन्मदर में होने वाली वृद्धि चाहे किसी भी कारण से प्रभावित हो लेकिन इतना अवश्य है कि जन्मदर में वृद्धि होने से जनसंख्या में वृद्धि होती है लेकिन उसके अनुपात में जीविका से साधनों में एकाएक वृद्धि नहीं होती इससे समाज में गरीबी, बीमारी व बेकारी की स्थिति उत्पन्न होती है, कार्य क्षमता के प्रभावित होने के साथ ही साथ लोगों का जीवन स्तर भी गिरता है।

सन्दर्भ सूची

1. Agrawal S.N., Population, New Delhi, 1967
2. Agrawal S.N., Population, New Delhi, 1967, P. 46
3. Arora, R.C., Integrated Rural Development, S. Chand and Co. Ltd., New Delhi, 1979
4. ;w-,u-vks- fjiksVZ 2022
5. ,u-,Q-,p-,l-&5 ¼2019&2021½
6. Barclay G.W., Techniques of Population analysis, Jones wiley and sons. Inc. New York, 1958

जनपद हापुड के आर्थिक विकास में महिलाओं की भागीदारी का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० कविता सक्सैना

एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी0एन0 कालेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

शालिनी त्यागी

शोधार्थिनी, अर्थशास्त्र विभाग, डी0एन0 कालेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

सार–

यह वास्तविकता है कि महिला जगत तरक्की की राह पर चल रहा है। परन्तु महिला सशक्तिकरण की मंजिल अभी दूर है। यह सत्य है कि वर्तमान में अनेको योजनाएं केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही है परन्तु अधिक से अधिक योजनाओं के चलाने से महिलाएं सशक्त नही होगी ब्लकि जो योजनाएं चल रही है उन योजनाओं को सफलता से कार्यरत किया जायें उन योजनाओं का विश्लेषण व मुल्यांकन किया जाये इन योजनाओं का अनुकरण किया जाये कि वो धरातल पर कार्य कर पायी है या नही। आज क्रियान्वयन के स्तर पर कमी व भ्रष्टाचार के चलते अनेक सरकारी योंजनाएं व कार्यक्रम कागजो में ही दम तोड रहे है। यह सत्य है कि महिलाओं से सम्बन्धित योजना पूर्ण रूप से महिलाओं तक नही पहुँच पा रही है।

कल्याणकारी योजनाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांश महिलाओं का मानना है कि शोध क्षेत्र में सरकार द्वारा संचालित महिला कल्याकारी योजनाओं का सकारात्मक प्रभाव पड रहा है। जिसके कारण अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं में सकारात्मक मानसिकता का विकास उत्पन्न हो रहा है। कल्याणकारी योजनाओं के संचालन से शोध क्षेत्र में सकारात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है।

1.1 प्रस्तावना–

प्रत्येक देश के विकास के लिए नारी की भूमिका सर्वोत्तम रहती है देखा गया है कि विकास की राह में पुरूषो के मुकाबले ही नारी स्वयं की पहचान बना रही है अपितु फिर भी हमारा समाज नारी को हीनता की दृष्टि से ही देखता है इसी कारण नारी का विकास धीमा पड रहा है। प्राचीन समाज में जो स्थान नारी का था वो वर्तमान में दिखाई नही देता है। भारत देश की जनसंख्या प्रतिदिन बढ रही है जिसके कारण अनेक समस्याएं जन्म ले रही है जैसे बेरोजगारी, अशिक्षा, निर्धनता, कुपोषण आदि। जिसका प्रभाव महिलाओं व बच्चो पर अधिक पड रहा है। निर्धनता के कारण महिलाएं स्वयं व अपने बच्चो के स्वास्थ्य पर ध्यान नही दे पाती है जिसके कारण कुपोषण जैसी बिमारी पैदा होती है। देखा जाऐ तो हमारी भारतीय सरकार इन सम्पूर्ण समस्याओं से संघर्ष करने के लिए अनेक प्रयास कर रही है। आज भी महिलाएं अपने दरवाजे पर खडी सरकारी सहायता को ताक रही है। जो गाँव सडको के किनारे है उनकी स्थिति में सुधार हो रहा है परन्तु जो गाँव दूरदराज स्थानो पर स्थापित है। वहाँ आज भी हालत गम्भीर है। महिलाएं

संघर्ष तो कर रही है परन्तु उस संघर्ष में पूर्णतः सहयोग प्राप्त नही कर पा रही है। महिलाओं के तीव्र विकास की महत्वाकांक्षी अभिलाषा के साथ देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात से इनके विकास और कल्याण की अनेका-एक योजनाओं और कार्यक्रमों को संचालित किया जाता रहा है। महिलाएं जो सदियों से उपेक्षित रही हैं उनको सम्पूर्ण विकास की मूल धारा से जोडने का प्रयास किया जाने लगा है। महिलाएं तो सदैव दोयम दर्जे की मानी जाती रही। इनके सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवेश में मौलिक परिवर्तन लाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

किसी भी समाज की तस्वीर बदलने में महिलाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा था कि मुझे योग्य माता दे दो मैं तुमको योग्य राष्ट्र दूँगा। आज हर क्षेत्र में महिलाएँ पुरूषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य कर रही हैं। महिला सशक्तीकरण के दौर में महिलाओं ने घर की देहड़ी से बाहर कदम बढ़कर स्वयं कामकाजी महिला होने का गौरव हासिल किया है तथा स्वयं की व समाज की स्थिति को परिवर्तित करने का बीड़ा उठाया हैं। पुरातन समाज में किसी की माँ अथवा बहू या पत्नी के रूप में पहचानी जाने वाली महिला ने अपनी परम्परागत छवि को तोड़ा है। आज उसकी स्वयं की अपनी पहचान है। उसने पुरुषों के समकक्ष स्तर, अवसर तथा सामाजिक, आर्थिक व कानूनी अधिकार प्राप्त कर लिए हैं। एक कामकाजी महिला की स्थिति का ऑकलन करना एक कठिन कार्य है। यूँ तो प्रत्येक महिला कामकाजी होती है। परन्तु घरेलू महिला के कामकाज का आर्थिक मूल्य न होने के कारण उसे कामकाजी की श्रेणी में नहीं रखा जाता। पर्वतीय क्षेत्रों के संदर्भ में यदि देखा जाय तो यहाँ महिला ही घरेलू जीवन की धुरी होती है और कामकाज के बोझ के तले दबी रहती है, परन्तु उसके कार्य का आर्थिक रूप से कोई मूल्यांकन न होने के कारण उसे कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। यूँ तो सामान्य रूप से एक महिला का जीवन सदैव ही परिवार को समर्पित रहा है, परन्तु आज महिला परिवार से इतर स्वयं के लिए भी सोचने लगी है, परन्तु क्या उसकी इस स्थिति को समाज ने स्वीकृत किया है? इस शोध पत्र के माध्यम से यही जानने का प्रयास किया गया है।

1.2 कामकाजी महिलाओं की आर्थिक स्थिति-

आर्थिक रूप से भी कामकाजी महिलाएँ सशक्त होती हैं, इसी कारण अपनी आवश्यकताओं को महत्त्व दे पाती हैं तथा परिवार को भौतिक सुख-सुविधाएँ प्रदान करते हुए सामाजिक व आर्थिक स्तर को बढ़ाने में सहायक होती हैं। गोला (2016) के अनुसार, ''महिलाएँ विशेषकर महानगरों में अपने घर परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी उठाती हैं तथा सशक्तिकरण की पहचान के रूप में विद्यमान महिलाएँ अपने घरेलू कामकाज हेतु किसी एक व्यक्ति को रोजगार भी दे पाती है।'' स्ट्रोमक्विस्ट (2005) के अनुसार, ''आर्थिक सशक्तिकरण का तात्पर्य है कि स्त्री किसी उत्पादन कार्य द्वारा स्वायत्तता प्राप्त कर पाये। वर्तमान समाज में पहचान स्थापित करने हेतु आज 'फेमिली स्टेट्स' ही सबसे महत्त्वपूर्ण बन गया है।'' अतः इस स्टेट्स की प्राप्ति हेतु महिलाएँ सामाजिक व आर्थिक सशक्तता के हर पैमाने पर स्वयं को मजबूती से खडा रखना चाहती है। इस तरह वे व्यक्तिगत सशक्तता की ओर कदम बढ़ा रही हैं। आर्थिक स्थिति के आँकलन हेतु उनकी व्यक्तिगत स्थिति के संदर्भ में यदि देखा जाय तो वह आर्थिक रूप से सशक्त होती हैं। इस सशक्तता के बल पर वे स्वयं के तथा अपने बच्चों के हित के संदर्भ में निर्णय लेने लगी हैं। आर्थिक अशक्तता के कारण प्राचीन समय में सदैव पुरूष (पिता, पति, पुत्र) के अधीन रहने वाली महिला कामकाजी होने के कारण स्वनिर्देशित होने की स्थिति को प्राप्त कर चुकी है। आर्थिक सशक्तता के बल पर वह घरेलू समस्याओं के समाधान का हर सम्भव प्रयास करती है, तथापि पैसा हर समस्या का समाधान तुरन्त नहीं करता। यदि घरेलू नौकर काम छोड़कर चला जाय तो उसका प्रतिस्थानी तुरन्त मिलना बड़ा कठिन है। महानगरीय क्षेत्रो में जहां महिलाएं निजी क्षेत्रों में कार्यरत है। घर से कार्यस्थल तक पहुंचने में लगने वाला समय तथा कार्य समय को देखा जाय, तो महिला 12 घंटे घर से बाहर बिताती है। केवल चार घंटे का समय ही उसके पास पारिवारिक संबंधों के निर्वहन के लिए बचता है, परन्तु परिवार, समाज व कार्य स्थल के उत्तरदायित्वों के बीच समायोजन की कोशिश में ये सदैव लगी रहती हैं। समायोजन की इस प्रक्रिया में यद्यपि तनावग्रस्तता की स्थितियँ भी आती हैं, परन्तु इनकी सशक्तता इन परिस्थितियों से उबरने में सहायक होती है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में 90 प्रतिशत महिलाएँ आज भी अकुशल श्रमिक है, जिस कारण उन्हें उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं प्राप्त हो पाता है। अकुशल होने के कारण उत्पादित माल पर भी उनका कोई नियंत्रण नहीं रह पाता है

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से किये गये सरकारी प्रयासों के परिणाम स्वरूप महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ, जिसके फलस्वरूप 1951 मे महिला साक्षरता का प्रतिशत 8.86 था, जो 2011 में 65.46 प्रतिशत तक बढ़ गया। यह भी स्पष्ट है कि निश्चित रूप से उनके साक्षरता स्तर के बढने के साथ ही उनकी कामकाज की स्थितियों में भी परिवर्तन हुआ है। 1950 के

दशक में जहाँ महिलाओं की भूमिका घर तक सीमित थी वहीं आज के दशक में महिलाओं में कामकाजी होने की प्रवृत्ति बढ़ी है। वे घरेलू के साथ ही बाहरी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने लगी हैं। विभिन्न प्रकार के घरेलू बिलों के भुगतान से लेकर परिवार के अन्य सदस्यों की शिक्षा व स्वास्थ्य संरक्षण की जिम्मेदारी महिला ही निर्वहन कर रही है। भादुड़ी (2015) ने भी इंगित किया है कि वर्तमान में कामकाजी महिलाएँ दोहरी चुनौतियों का सामना कर रही हैं।

यद्यपि महिला व पुरूष दोनों ही पारिवारिक उत्तरदायित्वों के लिये सम्यक रूप से जिम्मेदार हैं। तथापि परम्परागत परिवेश में पले-बढेघ् होने के कारण पारिवारिक उत्तरदायित्व महिलाएँ स्वयंमेव अपने ऊपर ले लेती है। परिवार की धुरी मुख्यत: महिला को इसलिए सम्भवत: माना जाता है। सामाजिक स्थिति के संदर्भ में भी यद्यपि महिला की समाज में एक पहचान होती है। घरेलू महिला की तुलना में समाज में उसका उच्चतर स्थान होता है, परन्तु इस पहचान के एवज में वह भागम-भाग में उलझ कर रह गयी है। जिन परिवारों में बड़े बुजुर्गों के रूप में दादा-दादी अथवा नाना-नानी का संरक्षण बच्चों को नहीं मिल पाता वहाँ बच्चों के लिए उसकी चिन्ता उसके कामकाज को प्रभावित करती है। कार्यक्षेत्र में अतिरिक्त समय की माँग उसके लिए तनाववर्धक हो जाती है। अत: अपने कार्यक्षेत्र के दायित्वों की सहज सम्पन्नता में इनका योगदान पुरूषों के समकक्ष नहीं हो पाता। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में यह स्थिति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सत्य है। संक्रमण के इस दौर के गुजरने के बाद भावी पीढ़ी की महिलाएँ सम्भवत: सशक्तता के अधिक उच्च प्रतिमानों को स्थापित कर सकेंगी और पुरूषों के समकक्ष स्वयं को स्थापित कर सकेंगी।

घरेलू महिला की तुलना में उच्चतर सामाजिक आर्थिक स्थिति ही वर्तमान कामकाजी महिला को मनोवैज्ञानिक रूप से उसकी व्यक्तिगत समस्याओं को नजरअन्दाज करने की क्षमता प्रदान करती है। मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण भावनाओं के विकास से सम्बन्धित होता है। इससे महिला घरेलू संदर्भों में उचित निर्णय लेने में सक्षम होती है, तथा उसके सामाजिक स्तर में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी होती जाती है।

यद्यपि महिला चाहे घरेलू हो या कामकाजी उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है, परन्तु घरेलू महिला के कार्य को कोई मूल्य निर्धारित न होने के कारण कामकाजी महिला को अधिक महत्त्व दिया जाता है, परन्तु वर्तमान कामकाजी महिलाओं में सशक्तता के साथ पनप रही 'लिव इन रिलेशनशिप' की प्रवृत्ति, अधिक उम्र में विवाह तथा विवाह के पश्चात् बच्चों की जिम्मेदारी से भय जैसे प्रश्न परिवार नामक संस्था के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले हैं। अत: कामकाजी महिलाओं को विकास के पथ पर अग्रसर रहते हुए उपरोक्त प्रश्नों पर अवश्य विचार करना होगा तथा पुरुषों को भी घरेलू उत्तरदायित्वों के निर्वहन में अवश्य सहभागिता निभानी होगी। तभी अन्तत: महिला सशक्तता को सार्थक संदर्भों में देखा जा सकेगा।

केन्द्र द्वारा चलायी जा रही कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं का विश्लेषण निम्नलिखित है।

तालिका 1.1: केन्द्रीय योजनाओं का आधार विवरण

क्रम संख्या	योजनाओं के नाम	संचालन संस्थान के नाम
1	बेटी बचाओं बेटी पढाओं	केन्द्र सरकार
2	जननी सुरक्षा योजना	केन्द्र सरकार
3	किशोरी योजना	केन्द्र सरकार
4	इंदिरा गांधी आवास योजना	केन्द्र सरकार
5	वृद्धा पेंशन योजना	केन्द्र सरकार

बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना:- प्रस्तुत तालिका में बेटी बचाओ बेटी पढाओं योजना का अध्ययन किया गया है कि समाज में लड़कियों को पढाना कितना आवश्यक है। क्योकि आधुनिक युग में शिक्षा अत्यधिक आवश्यक हो गयी है। शिक्षा के आभाव में सम्मानपूर्वक जीवन यापन करना सम्भव नही है।

प्रस्तुत तालिका में बेटी बचाओ बेटी पढाओं योजना का अध्ययन किया गया है।

तालिका 1.2: बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना विवरण

	बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना का प्रभाव स्तर		
क्रम संख्या	योजना	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हॉ	145	48.3
2	नही	98	32.7
3	जानकारी नही	41	13.7
4	कह नही सकते	16	5.3
	कुल	300	100.0

स्त्रोतः प्राथमिक सर्वेक्षण (2020-2021)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनपद हापुड़ के विकासखण्ड धौलाना व सिंभावली के ग्रामीण क्षेत्रों में बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना का अध्ययन किया गया है। तालिका द्वारा स्पष्ट है कि 48 प्रतिशत उत्तरदाताओ को बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है जबकि 33 प्रतिशत उत्तरदाताओं को बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना का लाभ प्राप्त नही हो रहा है तथा 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस योजना की कोई जानकारी नही है और शोध क्षेत्र में मात्र 5 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाएं ऐसी है जिन्हे बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना के विषय में कुछ भी कहना नही चाहती है। अध्ययन से स्पष्ट है कि बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना का लाभ 50 प्रतिशत उत्तरदाताओ को भी नही मिल रहा है जबकि शोध क्षेत्र में वर्तमान समय में भी लगभग 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं को बेटी बचाओं बेटी पढाओं योजना की जानकारी ही नही है। अतः शोध क्षेत्र में लोगो को जागरूक करना अति आवश्यक है।

जननी सुरुरक्षा योजनाः- प्रस्तुत तालिका मेंजननी सुरक्षा योजना के लाभ का अध्ययन किया गया है कि जननी सुरक्षा योजना का गर्भवती महिलाओं को लाभ प्राप्त हो रहा है या नही। जननी सुरक्षा योजना के तहत गरीब गर्भवती महिलाओं के लिए सांस्थानिक डिलीवरी सिस्टम को परिपूर्ण करना है।

प्रस्तुत तालिका में जननी सुरक्षा योजना का अध्ययन किया गया है।

तालिका 1.3: जननी सुरक्षा योजना के लाभ का विवरण

	जननी सुरक्षा योजना का प्रभाव स्तर		
क्रमसं0	योजना	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हॉ	188	62.7
2	नही	75	25.0
3	जानकारी नही	27	9.0
4	कह नही सकते	10	3.3
	कुल	300	100.0

स्त्रोतः प्राथमिक सर्वेक्षण (2020-2021)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनपद हापुड़ के विकासखण्ड धौलाना व सिंभावली में जननी सुरक्षा योजना का लाभ 63 प्रतिशत महिलाओं को हुआ है। जिसमें 25 प्रतिशत महिलाओं को लाभ प्राप्त नही हुआ है। 9 प्रतिशत महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार की पाई गई जिन्हे योजनाओं की जानकारी ही नही है। अध्ययन क्षेत्र में 3 प्रतिशत महिलाएं इस योजना के विषय कुछ भी कहना नही चाहती थी।

अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि जननी सुरक्षा योजना का लाभ 63 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लाभ प्राप्त हो रहा है जबकि शोध क्षेत्र में वर्तमान समय में भी लगभग 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को जननी सुरक्षा योजना की जानकारी ही नही है। अतः शोध क्षेत्र में लोगो को जागरूक करना अति आवश्यक है।

किशोरी योजना के लाभ का विवरण– प्रस्तुत तालिका में किशोरी योजना के लाभ का अध्ययन किया गया है। इस योजना के तहत किशोरियों को स्वास्थ्य, स्वच्छता पोषण एवं प्रजनन तंत्र व यौन स्वास्थ्य सम्बन्धित जानकारियों से अवगत कराया जाता है।

प्रस्तुत तालिका में किशोरी योजना का अध्ययन किया गया है

तालिका 1.4: किशोरी योजना के लाभ का विवरण

स्त्रोतः प्राथमिक सर्वेक्षण (2020–2021)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनपद हापुड़ के विकासखण्ड धौलाना व सिंभावली ग्रामीण क्षेत्रो में किशोरी योजना का अध्ययन किया गया है। शोध क्षेत्र में 64 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं को इस योजना का लाभ मिल रहा है। जबकि 24 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं को किशोरी योजना का लाभ नहीं मिल रहा है तथा 12 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं को इस योजना की जानकारी नही है और 3 प्रतिशत महिलाएं इस योजना के विषय में कुछ भी कहना नही चाहती है।

अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि 64 प्रतिशत महिलाओं को किशोरी योजना का लाभ मिल रहा है तथा 32 प्रतिशत महिलाओं को किशोरी योजना का न तो लाभ मिल रहा है और न ही उनको इस योजना के विषय में कोई जानकारी है अतः शोध क्षेत्र में लोगो को किशोरी योजना के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है।

इन्दिरा गांधी आवास योजना– सरकार द्वारा चलायी जा रही निर्धन व्यक्तियों के लिए आवास योजना है जिससे सम्पूर्ण निर्धन व्यक्तियों को सुचारू रूप आवास मिल सके और उनका संपूर्ण विकास हो सके।

प्रस्तुत तालिका में इन्दिरा गांधी आवास योजना का अध्ययन किया गया है।

तालिका 1.5: इन्दिरा गांधी आवास योजना के लाभ का विवरण

इन्दिरा गांधी आवास योजना का प्रसार स्तर			
क्रम संख्या	योजना	आवृति	प्रतिशत
1	हाँ	175	58.3
2	नही	75	25.0
3	जानकारी नही	42	14.0
4	कह नहीं सकते	8	2.7
	कुल	300	100.0

स्त्रोतः प्राथमिक सर्वेक्षण (2020–2021)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनपद हापुड़ के धौलाना व सिंभावली ग्रामीण क्षेत्रो में इन्दिरा गांधी आवास योजना का सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। इस योजना की 58 प्रतिशत महिलाओं को इस योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है। जबकि 25 प्रतिशत महिलाओं को इस योजना का लाभ प्राप्त नही हो रहा है तथा 14 प्रतिशत महिलाओं को अध्ययन क्षेत्र में इस योजना की कोई जानकारी नही है और लगभग 3 प्रतिशत महिलाएं इस योजना के विषय में कुछ भी नही कहना चाहती है।

अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि 58 प्रतिशत महिलाओं को योजना का लाभ मिल रहा है तथा 49 प्रतिशत महिलाओं को इन्दिरा गांधी आवास योजना का न तो लाभ मिल रहा है ओर ना ही उनको इस योजना के विषय में कोई जानकारी है अतः शोध क्षेत्र में लोगो को इन्दिरा गांधी आवास योजना के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है।

वृद्धा पेंशन योजना का विवरण- प्रस्तुत तालिका में वृद्धा पेंशन योजना का अध्ययन किया गया है। इस योजना का क्रियान्वयन राज्य सरकार और केन्द्र सरकार दोनो के द्वारा किया गया है तथा यह योजना उन वृद्ध व्यक्तियों के लिए है जिनकी उम्र 60 या उससे अधिक हो चुकी है वृद्धा पेंशन योजना के द्वारा प्रौढ व्यक्तियों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

प्रस्तुत तालिका में वृद्धा पेंशन योजना का अध्ययन किया गया है।

तालिका 1.6: वृद्धा पेंशन योजना के लाभ का विवरण

वृद्धा पेंशन योजना का प्रभाव स्तर			
क्रम संख्या	योजना	आवृति	प्रतिशत
1	हॉ	159	53.0
2	नही	86	28.7
3	जानकारी नही	36	12.0
4	कह नही सकते	19	6.3
	कुल	300	100.0

स्त्रोतः प्राथमिक सर्वेक्षण (2020-2021)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि शोध क्षेत्र में अध्ययन से ज्ञात है कि वृद्धा पेंशन योजना का लगभग 53 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लाभ मिल रहा है और 29 प्रतिशत उत्तरदाताओं को योजना का लाभ नही मिल रहा है। 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं को योजना की जानकारी ही नही है जबकि 6 प्रतिशत महिलाएं इस योजना के विषय में कुछ भी नही कहना चाहती है।

अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि लगभग 53 प्रतिशत महिलाओं को योजना का लाभ मिल रहा है तथा 47 प्रतिशत महिलाओं को वृद्धा पेंशन योजना का ना तो लाभ मिल रहा है ओर ना ही उनको इस योजना के विषय में कोई जानकारी है अतः शोध क्षेत्र में लोगो को वृद्धा पेंशन योजना के प्रति जागरूक करने की अति आवश्यक है।

1.3 निष्कर्ष-

शोध क्षेत्र में सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि अधिकांशतः महिलाओं का मानना है कि कल्याणकारी योजनाओं द्वारा शोध क्षेत्र में सरकारी योजनाएं नवजागरण के साधन सिद्ध हो रहे है। महिलाएं पुरातनपंथी व रूढ़ी वादी परम्पराओं से उभर रही है। ये कल्याणकारी योजनाएं नव निर्माण में सहायता प्रदान कर रही है। आधुनिकता के दौर में ये योजनाएं ग्रामीण क्षेत्रो को शहरो व महानगरों से जोड रही है। शोध क्षेत्र में चलने वाली महिला सशक्तिकरण योजनाओ के क्रियान्वयन से ज्ञात होता है कि ये योजनाएं महिलाओं के जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित कर रही है। परन्तु अधिकाशंतः उत्तरदाता महिलाएं स्वीकारती है कि महिला विकास योजना से महिलाओं की दशा में सुधार आ रहा है व कुछ उत्तरदाताओं का मानना है कि इन योजनाओं द्वारा महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक गतिविधियों में वृद्धि हो रही है अर्थात इन योजनाओं द्वारा महिलाओं के प्रत्येक पक्ष में परिवर्तन हो रहे है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- जागृति, कल्याणकारी योजनाओं द्वारा महिला सशक्तिकरण, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, मार्च 2009.
- डॉ. कौशिक, जगबीर, भारत निर्माण योजना का अवलोकन, कुरुक्षेत्र, अक्टूबर, 2012
- पाण्डेय, अशोक कुमार, गरीबी रेखा: प्राथमिकताओं के सवाल, योजना, अप्रैल, 2014.
- 'मधुसूदन', गजेन्द्र सिंह, गाँव में नवजीवन का संचार करती पंचायतें, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, कुरूक्षेत्र, नवंबर 2015.
- मिश्र, अखिल कुमार, कमजोर वर्गों के लिए कल्याणकारी योजनाएं, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, फरवरी 2008.
- मुन्नीलाल, शिक्षा नीति में परिवर्तन जरूरी है तो किया क्यों नहीं जाता, योजना 16-31 मार्च, 1983.
- मोदी, के. एम., ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा के विकास का आधार, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, सितम्बर 2013.
- यादव, चन्द्रभान, मनरेगा और पंचायती राज, कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, अक्टूबर 2020
- रंजन, प्रभात, पढ़ेगा भारत, तभी बढ़ेगा भारत, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, सितम्बर 2012.
- राय, ज्योर्तिमय, मनरेगा ने बदली ग्रामीणों की तकदीर, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, दिसंबर 2012

हिन्दी उपन्यास साहित्य में साम्प्रदायिक सद्भाव

साधना मिश्रा

(शोधार्थी) हिन्दी विभाग - डी0जी0 कॉलेज, कानपुर, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

भारत के विख्यात दार्शनिक एवं साहित्य सृष्टा डॉ. राधाकृष्णन ने साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित एक समारोह में अपने मंतव्य में कहा था, "भारतीय वाङ्मय एक है, जो विविध भाषाओं में रचा गया है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय भाषाओं में सृजित साहित्य में हमारी एक अविभाज्य सांस्कृतिक परमपरा का स्रोत अविच्छिन्न रूप में दर्शित होता है। कारण यह है कि वैदिक साहित्य से लेकर आज तक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में एकसूत्रता का आदर्श परिलक्षित है।"[1] राष्ट्र एक व्यक्ति है और राष्ट्र में निहित राष्ट्रीयता उसका व्यक्तित्व है। राष्ट्र के जीवंत, अखण्ड तथा विशिष्ट व्यक्तित्व की पहचान कर उसके प्रति तादात्म्य स्थापित करना 'राष्ट्रीय सद्भाव' कहा जाता है। इसी राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भाव की परम्परा में हिन्दी उपन्यास साहित्य का अपना अनूठा योगदान रहा है। इन हिन्दी उपन्यासों में मनुष्य, मनुष्यता का पालन करे, आपस में आत्मीयता बनाये रखे तथा राष्ट्रीय पारिवारिक भावना का निर्माण करे इसका चित्रण हुआ है।

हिन्दी के आरंभिक युग के उपन्यासों में राष्ट्रभक्ति के बजाय राजभक्ति का स्वर सुनाई देता है। फिर भी तत्कालीन रचनाकार ने भाषा के द्वारा राष्ट्र को जोड़ने का प्रयास किया। भाषा की समन्वयात्मक दृष्टि में ही राष्ट्रीय एकात्मता के बीज हैं। इसी समय में गोपालराम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी तथा देवकीनंदन खत्री के तिलिस्मी उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' तथा 'चन्द्रकान्ता संतती' को अपार प्रसिद्धि प्राप्त हुयी। इनके कारण देशवासियों में आपसी विचार-विमर्शों का आत्मीय संबंध निर्माण हुआ। 'राष्ट्रीय सद्भाव' का सही चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों में हुआ है। प्रेमचंद का लेखन काल सन् 1907 से 1936 तक है। इसी काल में साम्प्रदायिक तत्व उभरकर सामने आ चुके थे। राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने और राष्ट्रीय एकता को विखंडित करने के लिए साम्राज्यवाद इन तत्वों का भरपूर उपयोग कर रहा था। प्रेमचंद साम्राज्यवाद की इस चाल को बखूबी समझते थें अपने साहित्य के माध्यम से इस क्षेत्र में पहल कर उन्होंने साम्राज्यवाद और सांप्रदायिकता के अंत: संबंधों को बेनकाब किया है। दैनिक जागरण के संपादकीय में उन्होंने लिखा, "सरकार की दशा हारे हुये योद्धा की सी है, जो एक खाई से दूसरी खाई में पीछे हटता हुआ अंतिम खाई में पहुँच जाता है। उस खाई के बाद सपाट मैदान है। या तो शत्रु को इस खाई में गिरा दे या स्वयं प्राण दे दे। इस अवस्था में वह विवश होकर टूटे-फूटे अस्त्रों का प्रयोग करता है। गवर्नमेंट किसी नीति से हमें अपने अधिकारों से वंचित नहीं रख सकती थी, अतएव उसने अपना वही टूटा-फूटा अस्त्र निकाल लिया है, जिसका नाम है-डिवाइड एण्ड रूल।"[2] 1907 से 1936 तक साम्प्रदायिक समस्याओं के क्षेत्र में जितने उतार-चढ़ाव आये थे इन सबको प्रेमचंद के कथा साहित्य में देखा जा सकता है। सेवासदन, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान आदि उपन्यासों में साम्प्रदायिक समस्याओं का चित्रण हुआ है। इन रचनाओं के हिन्दू और मुसलमान पात्र धर्म-संप्रदाय के संकुचित दायरे से मुक्त हैं। वे अपने-अपने धर्म पर पूर्ण आस्था रखते हुये दूसरे धर्म और धर्मावलंबियों को आदर की दृष्टि से देखते हैं तथा उनका सम्मान करते हैं। 'कायाकल्प' उपन्यास उस समय लिखा गया था जब देश में सांप्रदायिकता का नग्न नृत्य हो रहा था। छोटी-छोटी बात को लेकर आए दिन हिंसा और उपद्रव का बोलबाला था। मुल्ला, मौलवी और पंडित लोगों को आपस में लड़ा रहे थे। सांप्रदायिक समस्याओं से मुक्ति के लिए प्रेमचंद आपसी मेलजोल और एकता की स्थापना को सबसे महत्वपूर्ण मानते थे। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में प्रेमचंद ने यह दिखलाया है कि आम जनता की समस्या एक है। साम्राज्यवाद और उसके सहयोगियों से हिन्दू-मुसलमान दोनों परेशान हैं। आपस में लड़कर इन समस्याओं से मुक्ति पाना असंभव है। "प्रेमचंद अपने उपन्यासों में बराबर एक चीज पर जोर देते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानों की बुनियादी समस्याएँ एक हैं, इसलिए मिलकर उन्हें हल करना चाहिए दोनों की आर्थिक समस्याएँ एक हैं, एक आजाद इन्सानियत को संस्कृति गढ़ने में उनकी सांस्कृतिक समस्याएँ भी एक जैसी हैं।"[3]

अत: हिन्दू-मुसलमान एक होकर ही एक शोषण को समाप्त कर सकते हैं। उनके मतानुसार हिन्दू-मुसलमानों के आपसी सहयोग से ही इस देश का उन्नयन संभव हैं। उनके इसी संदेश की अनुगूंज गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों में सुनाई पड़ती है।

मन्मथनाथ गुप्त हिन्दी कथाकारों की उस श्रृंखला से सम्बद्ध हैं, जिनका सक्रिय राजनीति से निकट का सम्बन्ध रहा है। भारतीय सवतंत्रता संग्राम की अनेक मंजिलों के वे दृष्टा रहे हैं। उनका 'जय यात्रा' यह उपन्यास कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम दंगे की पृष्ठभूमि पर लिखा उपन्यास है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने सांप्रदायिक संस्थाओं की पोल खोलने के साथ-साथ दंगों का धर्म परिवर्तन के कारणों पर भी प्रकाश डाला है। उनके 'रैन-अंधेरी' उपन्यास में सांप्रदायिक समस्याओं के विकास के सन्दर्भ में साम्राज्यवादी सरकार की कुटिल नीति पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालने की उनकी साजिश सफल हुयी। इसी उग्र होती मुस्लिम सांप्रदायिकता और पाकिस्तान निर्माण सम्बन्धी प्रबल सांप्रदायिक भावनाओं का चित्रण गुप्त जी ने 'प्रतिक्रिया' उपन्यास में किया है। उनके अछूत-समस्या' उपन्यास में चुनाव की पृष्ठभूमि में मुस्लिम लीग और कांग्रेस की विचारधाराओं को व्यक्त किया है।

गुरुदत्त ने सांप्रदायिक समस्याओं को मुख्यत: धार्मिक और राजनीतिक समस्या के रूप में स्वीकार करते हुए 'स्वाधीनता के पथ पर' उपन्यास लिखा। भगवतीचरण वर्मा ने 'भूले बिसरे चित्र' में भारतवर्ष में बढ़ती हुयी सांप्रदायिक समस्या को समझने के लिए दोनों धर्मों-हिन्दू और इस्लाम के व्यावहारिक रूपों का विश्लेषण कर उनकी कमजोरियों पर प्रकाश डाला है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में भी राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भाव की भावना बलवती होती गयी। भगवतीचरण वर्मा का 'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में सांप्रदायिक समस्या के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी पहलुओं पर विमर्श किया गया है। विष्णु प्रभाकर के 'निशिकांत' उपन्यास में भी सांप्रदायिक समस्याओं को अनेक बिन्दुओं से उठाया गया है। भीष्म साहनी के 'तमस' में भारत-पाकिस्तान विभाजन से पूर्व की सांप्रदायिक समस्याओं को सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में तत्कालीन सांप्रदायिक समस्याओं को तटस्थ भाव से देखने में लेखक को पूरी सफलता मिली है। गुरुदत्त के 'पथिक' में भी इसे उजागर किया गया है। इसी सांप्रदायिक समस्या की श्रृंखला का उनका दूसरा उपन्यास -'स्वराज्यदान' है। प्रताप नारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस' उपन्यास में सांप्रदायिकता के संदर्भ में गांधीवादी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के 'नई इमारत' उपन्यास में सांप्रदायिक सद्भाव तथा समाजवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया है।

सांप्रदायिक आधार पर भारत विभाजन और विभाजन के परिणाम स्वरूप फैले सांप्रदायिक उन्माद ने जन समुदाय को बाह्य और आंतरिक दोनों रूपों में प्रभावित किया। इसका चित्रण राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' और बदीउज्जमां के बलवंत सिंह का 'काले-कोस' और भगवतीचरण वर्मा के 'प्रश्न और मरीचिका' विशेष उल्लेखनीय हैं। नेताओं, शासकों और पूँजीपतियों ने किस तरह सांप्रदायिक समस्याओं को भड़काया इसका चित्रण राही मासूम रजा के 'ओस की बूंद', 'टोपी शुक्ला' भैरव प्रसाद गुप्त के 'सती मैया का चौरा' आदि में देखा जा सकता है। इसी श्रृंखला की अंतिम कड़ी गुरुदत्त का 'देश की हत्या' उपन्यास है। डॉ. घनीराम प्रेम के 'मेरा देश' की कहानी दिल को छू लेती है। राधिका रमण प्रसाद सिंह के 'राम-रहीम' और 'गांधी-टोपी' में राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भाव चित्रित हुआ है। वृंदावनलाल वर्मा का 'अमरवेल', उदयशंकर भट्ट का 'शेष-अशेष', सूर्यकान्त त्रिपाठी का 'अप्सरा', इलाचंद्र जोषी का 'घृणामयी', रांगेय राघव का 'विषाद मठ', लक्ष्मीनारायण लाल का 'रूपाजीवा' तथा नागार्जुन के उपन्यासों में राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भाव का स्वर मुखरित हुआ है।

राष्ट्रीयता के सर्वाधिक शत्रु के व्यक्ति और समुदाय हैं, राजनैतिक संगठन और मजहबीगढ़ हैं जो भाषा-धर्म-जाति-क्षेत्र आदि संवेदनशील तत्वों का इस्तेमाल कर सत्ता पाना चाहते हैं। इसमें साहित्य ही एकमात्र सत्ता और व्यवस्था का विपक्ष है जो सदैव सद्भाव को बनाये रखने की कोशिश करता है। इसलिए साहित्य राजनीति के आगे चलने वाला ज्योतिध्वज वाहक हैं भारत माता के स्वरूप का जो चित्रण 'वंदेमातरम्' गीत में किया गया वह नितान्तत 'धर्मनिरपेक्ष' एवं राष्ट्र की अस्मिता का प्रतीक है। तो 'जनगणमन अधिनायक' राष्ट्रगीत राष्ट्र की परिकल्पना को यथार्थ रूप देता है। यह गान देश की भौगोलिक सीमा तथा उसकी संप्रभुता का अनुमान करता है जो निश्चित रूप से व्यक्ति के हृदय में राष्ट्र के निराकार अस्तित्व को साकार रूप देता है।

आज राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में बदलाव आए। विश्व का परिदृश्य बदल गया। विज्ञान का विध्वंसात्मक एवं विकराल रूप समूचे विश्व को अपनी लपेट में लेने को तत्पर है। हिंसा, आतंक, सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद का ताण्डव नृत्य हो रहा है। इन सारी विरोधी स्थितियों में आम आदमी बलि का बकरा बना हुआ है। समाज सड़ता जा रहा है। मानवता कराह रही है।

ग्लोबलाइजेशन ने संस्कृति को झकझोर दिया है। इन सारी विषमताओं और विद्रूपताओं के बीच साहित्यकार चकित हुये हैं। अत: उनकी लेखनी से ऐसा साहित्य निर्माण हो जो विध्वंश के साथ निर्माण का कार्य भी आरंभ करे। जो मानव समुदाय को आल्हादित करे। भारत आज 'विश्वसत्ता' बनने का सापना देख रहा है। अत: अब इस समय जरूरत है 'राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भाव' को बनाये रखने की, देश में शांति बने रहने कीं साथ ही संपूर्ण विश्वमानव सुखी और आनंद से रहे यही हमारी कामना होनी चाहिए।

निष्कर्षत:

1. सभी भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में एकसूत्रता का आदर्श है।
2. राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भाव की परम्परा का हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनूठा योगदान रहा है।
3. प्रेमचंद ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने सांप्रदायिक समस्या को युगीन परिप्रेक्ष्य में गहराई से समझा और अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय जीवन के इस विष को नष्ट करने का प्रयास किया।
4. प्रेमचंदोत्तर युग में भी सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देने वाले उपन्यास रचे गये। जिनमें दो तरह के प्रभाव हैं- गांधीवाद और मार्क्सवाद।
5. भारत पाकिस्तान विभाजन के बाद सांप्रदायिक समस्याओं का निर्माण किस-किस ने किया इसका पूरी तटस्थता से हिन्दी उपन्यासों में चित्रण किया गया।
6. राष्ट्रीयता के शत्रु राजनैतिक संगठन और मजहबीगढ़ हैं।
7. साहित्य ही सदैव सद्भाव को बनाये रख सकता है।
8. रचनाकार की लेखनी से ऐसा साहित्य निर्माण हो जो राष्ट्रीय एकात्मता और सांप्रदायिक सद्भाव के निर्माण का कार्य अनवरत जारी रखें।

संदर्भ:

1. भारतीय साहित्य का भाव संसार, संपादक डॉ. आरसू तथा डॉ. बरदलै, पृ. 42
2. प्रेमचंद: विविध प्रसंग (भाग 2), अमृतराय, पृ. 353
3. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, पृ. 82

नरेश मेहता के कथा साहित्य में युग बोध

बबिता पाठक

शोध छात्रा दयानंद गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर, सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय, कानपुर उ.प्र.

युगबोध समसामयिक परिस्थितियों के ज्ञान की अवधारणा है। समसमायिक परिस्थितियों में किसी काल की राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक, धार्मिक स्थितियाँ शामिल मानी जाती है। युगबोध दो शब्दों से मिलकर बना है-युग+बोध। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है अपने युग का ज्ञान।

युगबोध का सृजन-प्रक्रिया से सीधा संबंध माना गया है। एक सफल साहित्यकार अपने समय की परिस्थितियों के प्रति सजग होता है। इन परिस्थितियों अथवा प्रवृत्तियों के विषय में वह अपनी विचारधारा बनाता है और इसी विचारधारा को वह अपनी रचना के माध्यम से आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है। वह अपनी रचना में युग का यथार्थ चित्र अंकित करके समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करना चाहता है। परिस्थितियाँ ज्यों-ज्यों बदलती जाती है युग का साहित्य भी परिवर्तित होता रहता है, युग की परिस्थिति के अनुसार साहित्य अपना रंग रुप बदलता रहता है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है, इसी सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन उल्लेखनीय है कि-

"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, जब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[1]

किसी भी देश काल में लिखा गया साहित्य तत्कालीन समाज की दिशा-दशा, सोच, आचार-विचार, रहन-सहन आदि को समग्रतः प्रकाशित करता है।

नरेश मेहता आधुनिक भारतीय साहित्य के शीर्षस्थ कवि, उपन्यासकार, कथाकार एवं श्रेष्ठ विचारक है। वे एक सांस्कृतिक चेतना और युगबोध के प्रतीक और औपनिषदिक आभा के रचनाकर्मी हैं। नरेश मेहता की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना अत्यंत प्रबुद्ध है जिनका प्रतिफलन उनके पूरे कथा साहित्य में मिलता है।

नरेश मेहता का साहित्य भारतीय अस्मिता का साहित्य हैं। उसमें समाज के विभिन्न अवधारणाओं को एक साथ देखा जा सकता है। उनकी दृष्टि में समाज में रहने वाले मनुष्य ही सर्वोपरि है। उनका सारा जीवन दर्शन समाज के कल्याण पर केन्द्रित हैं। समाज के कल्याण के लिए ही वे विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित होते हैं। नेरश मेहता 12 वर्ष तक कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य रहे और उसी कारण उन्हें नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

नेरश मेहता कहते हैं कि-

"कम्युनिस्ट होते हुए भी मेरे मन में आर्षसातहित और वैदिक मूल्यों के प्रति उन्नमुखता थी। पार्थिव धरातल पर एक तात्कालिक रुझान मेरे अन्दर अवश्य कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ने का था, परंतु जीवन के और अधिक गहरे प्रश्न मेरे मन में उठते रहते थे और उनका समाधान मुझे कम्युनिस्ट विचारधारा में नहीं मिलता था। मैं बहुत कुछ अपनी मूल्य-दृष्टि और मूल्य-बोध का निर्माता स्वयं था और निरा एकाकी।"[2]

इस प्रकार नरेश मेहता ने कम्युनिस्ट पार्टी को त्याग दिया और गाँधी की ओर बढ़ गये। बाद में वे कहने लगे थे कि-

"गाँधी जी को पिछले तीन वर्षों में आत्मसात मैंने किया है उतना कम ही लोगों ने किया होगा। गाँधी भारतीयता का श्रेष्ठतम स्वरुप है।"[3]

अपने उपन्यास 'उत्तरकथा' खण्ड दो में उन्होंने लिखा है कि "असल में गाँधी जी को समझने में हर आदमी से भूल होती हैं। गाँधी जी के अलावा कोई भी व्यक्ति चाहे वह भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई का पर्याय नहीं है।" नरेश मेहता गाँधीवादी विचारधारा और साम्यवादी विचारधारा दोनों में साध्यगत, पद्धतिगत और निष्कर्षगत साम्यताएँ भी मानते है तो कुछ तात्विक अंतर भी मानते है। मानव-मुक्ति का प्रश्न, शोषणहीन समाज की रचना, निजी सम्पत्ति की विषमताएँ, मजदूर-मालिकों के संबंध आदि पर मार्क्स के स्पष्ट विचार है तो गाँधी ने भी मनन किया है। गाँधी किसी भी प्रश्न और समस्या को मनुष्य की मूलभूत संरचना से अलग करके नहीं देखते अत: उनका मार्ग और निदान दोनों ही मानवीय होते है, परन्तु मार्क्स ने वर्षो के वैचारिक मंथन के बाद समाज की जिन मूलभूत विषमताओं और बुराइयों को उनके कारणों के साथ प्रस्तुत किया उन्हें दूर करने के लिए कम्युनिस्टों का तौर-तरीका नितान्त अमानवीय है क्योंकि वे उसे केवल आर्थिक या राजनीतिक ही मानते हैं।

राधा कमल मुखर्जी के अनुसार-

"समाज का वास्तविक बोध तभी हो सकता है जब एक समग्रता के रूप में समाज की आदतों, मूल्यों तथा प्रतीकों का अध्ययन किया जाए।"[5]

स्वतंत्रता पूर्व तक भारतीय धर्मनिष्ठ समाज के जो कुछ पूर्व निश्चित मान-मूल्य थे जिस पर एक ढर्रे से भारतीय समाज चल रहा था, उन्हें स्वातंत्र्योत्तर भारत में जन्मी नयी आशा। आकांक्षाओं और वैज्ञानिक तर्कसम्मत मूल्य दृष्टि ने निस्सार सिद्ध कर दिया।

औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण के कारण भारतीयों में विघटित जीवन-मूल्यों के परिणामस्वरूप परम्परागत स्थापनाओं एवं आदर्शों का खंडन हुआ।

नरेश मेहता ने अपने समय की सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधारा को समाज में व्याप्त आर्थिक वैषम्य, ग्रामीण जीवन, संबंधों का बिखराव, मूल्य परिवर्तन व पारिवारिक विघटन, स्त्री-पुरुष संबंध, नारी विवशता एवं शिक्षा का प्रसार आदि प्रकरणों के माध्यम से उजागर किया है। नरेश मेहता की सामाजिक चेतना अत्यंत प्रबुद्ध है जिसका प्रभाव उनके पूरे कथा साहित्य में व्यक्त हुआ है। परिवारों के द्वारा ही समाज का निर्माण होता हैं। परिवार में रहकर ही मनुष्य संस्कारी बनता है। नेरश मेहता ने अपने उपन्यासों में संयुक्त और एकल परिवारों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। वह जहाँ 'धूमकेतु एक श्रुति' 'नदी यशस्वी है', 'उत्तरकथा', उपन्यासों में एकल परिवार को चित्रित करते हैं। वही 'यह पथ बंधु था' उपन्यास में संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण करते है-उपन्यास के केन्द्र बिन्दु में ठाकुर परिवार है। श्रीनाथ ठाकुर के तीन बेटे हैं-श्रीमोहन, श्रीधर, श्रीवल्लभ। लेकिन श्रीनाथ ठाकुर का यह भरापूरा परिवार विघटित हो जाता हे। उनका मझला बेटा श्रीधर कुछ नया करने के लिए अकेला घर से चला जाता है, वहीं उनका बड़ा बेटा श्रीमोहन और छोटा बेटा श्रीवल्लभ घर का बटवारा करके अलग रहने लगते है।

नरेश मेहता ने अपने उपन्यासों में मानवीय संबंधों की जटिलता उदात्तता और त्रासदी को विश्वसनीय और मार्मिक रुप में प्रस्तुत किया हैं। पति-पत्नी संबंध, भाई-बहन संबंध, सास-बहू संबंध, माता-पिता और प्रेमी-प्रेमिका संबंध आदि के द्वारा अपनी पारिवारिक समझ प्रस्तुत करते है। 'दो एकांत' उपन्यास में विवेक और वानीरा के द्वारा पति-पत्नी के संबंध में आई कटुता को उकेरते हैं वहीं वह 'उत्तकथा' उपन्यास में दुर्गा और व्यंम्बक के द्वारा पति-पत्नी के विश्वसनीय रिश्ते को उकेरते है।

नरेश मेहता अपने उपन्यासों के द्वारा समाज में नारी की स्थिति का मर्मभेदी चित्रण प्रस्तुत करते है। वह नारी को आदर्श या पतिता के रुप में चित्रित ना करके मानवीय रुप में चित्रित करते हैं।

'यह पथ बंधु था', उपन्यास की सरस्वती अपने जेठ और जेठानी से अनके प्रकार से अपमानित और पीड़ित होती है। मालिनी वेश्या जीवन की त्रासदी झेल रही है। वह उससे मुक्ति पाना चाहती है, तो दूसरी ओर रतना देश की स्वाधीनता के लिए फांसी पर चढ़ जाती है। वही 'उत्तरकथा', उपन्यास की दुर्गा आम भारतीय बहू की नियति प्रस्तुत करती है।

गोपालराय कहते हैं कि-

"भावनाप्रवण और दुखी स्त्रियों के चित्रण में नरेश मेहता शरच्चन्द्रीय भावुकता के शिकार तो हैं, पर वे उस भारतीय नारी का अत्यंत मार्मिक चित्रण करने में सफल हुए हैं जो करुणा, त्याग, साहिष्णुता, स्नेह और आत्मबलिदान की सजीव मूर्ति होती है।"[6]

नरेश मेहता ने विधवा नारी के दु:ख को भी अपने कथा साहित्य में चित्रित किया है। धूमकेतु: एक श्रुति उपन्यास में उदयन की बुआ दादी (माँ) बाल विधवा है, वह श्रृंगार नहीं करती है, उसके बाल नहीं है, सफेद साड़ी पहनती है और वह किसी शुभ कार्य में भाग नहीं लेती है। वहीं रत्नशंकर की विधवा पत्नी को जायदाद में हिस्सा यह कहकर नहीं दिया जाता कि यह शास्त्रगत नहीं है। नरेश मेहता ने सूर्यशंकर द्वारा यह प्रश्न भी उठाया है कि पुरुष को तीन-तीन विवाह करने का हक है तो स्त्री दूसरा विवाह क्यों नहीं कर सकती? लेकिन उनका यही पात्र सूर्यशंकर अपनी पत्नी को कुरुप होने के कारण त्याग देता है। यह नारी जीवन की कितनी बड़ी विडबंना है कि उनके गुणों को ना देखकर उनकी खूबसूरती को देखा जाता है।

नेरश मेहता अनमेल विवाह की समस्या को भी चित्रित करते है। यह पथ बंधु था उपन्यास की इन्दु का विवाह एक बुढ़े जमींदार से कर दिया जाता है। विवाह के कुछ समय बाद ही वह विधवा हो जाती है और उसे अपना पूरा जीवन तीर्थाटन करते हुए व्यतीत करना पड़ता है। वहीं अगर नारी माँ नहीं बन पाती तो उसे सामाजिक बहिष्कार झेलना पड़ता है। 'धुमकेतु: एक श्रुति', उपन्यास की मनोरमा माँ ना बन पाने के कारण समाज द्वारा डाक्कन कहकर पुकारी जाती है। जबकि दुर्गा को बताती है कि कमी उसमे नहीं है, उसके पति में है। यह नारी जीवन की कितनी बड़ी त्रासदी है। नेरश मेहता अपने उपन्यासों में दहेज की बलि चढ़ने वाली स्त्रियों का भी हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत करते हैं। डूबते मस्तुल की रंजना, यह पथ बंधु की गुणवन्ती, उत्तरकथा के न्यम्बक की पहली पत्नी और दुर्गा दहेज के लिए प्रतिड़ित की जाती हैं।

अत: नरेश मेहता ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं जैसे-अनमेल विवाह, बहुविवाह, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति, यौन उत्पीड़न, जारज संतान आदि सामाजिक कुप्रथाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है।

नरेश मेहता अपने उपन्यासों में समयानुसार राजनीति साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का भी चित्रण प्रस्तुत करते है। वह असहयोग आन्दोलन, विदेशी वस्त्रों के खिलाफ आंदोलन, स्वतंत्रता आन्दोलन, प्रभात फेरी, साम्प्रदायिक दंगे-फसाद आदि का चित्रण प्रस्तुत करते है।

अंतत: हम कह सकते है कि नरेश मेहता ने अपने उपन्यासों में समाज के वास्तविक रूप को चित्रित किया है। वह समाज के अच्छे एवं बुरे दोनों पहलुओं को चित्रित करते है। वह अपने नजरिये से समाज को चित्रित करके पाठको को सोचने के लिए मजबूर कर देते है। अत: अपने युग के संदर्भ में नरेश मेहता की दृष्टि को हम उनका युगबोध कह सकते है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य सेवा प्रकाशन, पृ. 5
2. नरेश मेहता का उपन्यास साहित्य (विभिन्न विचारधाराओं के संदर्भ में) डॉ. मंदाकिनी मीणा, दी रीडर्स पैराडाईस प्रकाशन प्रथम संस्करण-2016, 2020, पृ. 1-2
3. एक वार्तालाप के आधार पर।
4. नरेश मेहता: उत्तरकथा खण्ड दो, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 2011, पृ. 493
5. सामाजिक विचारधारा (काँम्ट से मुखर्जी तक) सं, रवीन्द्र नाथ मुखर्जी, विवेक प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2012, पृ. 527
6. राय गोपाल, नरेश मेहता के उपन्यास, वागर्थ पत्रिका, भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता, नवम्बर 2001, पृ. 19
7. मेहता नरेश, धूमकेतु: एक श्रुति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2004, पृ. 29
8. मेहता नरेश, नदी यशस्वी है, मयूर पेपर बैक्स नोएड़ा संस्करण 1998, पृ. 98
9. यह पथ बंधु था-नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद पहला पेपरबैक्स संस्करण 2011, पृ. 86

प्रेमचन्द की कहानियाँ और बाल मनोविज्ञान

कंचन

एम.फिल. हिन्दी डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

प्रस्तावना

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। इसकी सहायता से किसी व्यक्ति विशेष तथा समूह विशेष के व्यवहार का अध्ययन, उनके अपने पर्यावरण तथा परिस्थितियों के संदर्भ में भली-भांति कर सकते हैं। बाल मनोविज्ञान बाल्यवास्थ्या का अध्ययन करता है। शैशवावस्था के तुरन्त बाद बाल्यावस्था आरम्भ हो जाती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, बाल्यावस्था बालक का निर्माणकारी काल है। इस अवस्था में बालक व्यक्तिगत, सामाजिक और शिक्षा संबंधी बहुत सी आदतों, व्यवहारों, रूचियों तथा इच्छाओं का निर्माण कर लेता है। बालक में इस काल में आदतों, इच्छाओं, रूचियों के प्रतिरूप बनते हैं वे लगभग स्थायी रूप धारण कर लेते हैं और उन्हें सरलतापूर्वक रूपान्तरित नहीं किया जा सकता। इसलिए माता-पिता, अभिभावक तथा शिक्षक को बहुत ही सर्तक रहने की आवश्यकता है। बाल्यावस्था का बहुत महत्व है क्योंकि यही अवस्था जीवन का आधार होती है। बाल्यावस्था के बारे में ब्लेयर ने अपने विचार व्यक्त किये हैं ''शैक्षिक दृष्टिकोण से जीवन चक्र में बाल्यावस्था से महत्वपूर्ण और कोई अवस्था नहीं है जो अध्यापक इस अवस्था में बालकों को शिक्षा देते है, उन्हें बालकों का उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का उनकी समस्याओं का और उन परिस्थितियों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, जो उनके व्यवहार को रूपान्तिरित और परिवर्तित करती है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ तथा बालमनोविज्ञान

प्रेमचन्द की कहानियाँ, कथा-प्रधान है जिनमें वे मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रकट करने के लिए कुछ घटनाएँ चुनते हैं जिसमें उनका उद्देश्य जीवन के सर्वश्रेष्ठ अंश का प्रकाशन रहा है। हिन्दी में प्रेमचंद ऐसे प्रारम्भिक प्रसिद्ध कथाकार है जिनकी रचनाओं में हम बाल मनोविज्ञान के कई सूत्र खोज सकते हैं। प्रेमचन्द के कई प्रधान चिन्तनों में एक चिन्तन बाल विकास भी है। यही वजह है कि उनकी कई कहानियों में बाल चिन्ता से हमारा सीधे साक्षात्कार होता है। बाल चित्त में प्रवेश कर प्रेमचंद ने बालमनोविज्ञान को समझने की चेष्ठा की है। प्रेमचंद के कथा साहित्य में बच्चों के गर्भावस्था या शारीरिक विकास को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना उनमें मस्तिष्क विकास तथा उनके परिवेश को। निश्चित रूप से प्रेमचंद का कथा साहित्य हमें बाल मनोविज्ञान की बारिकियों का परिचय कराने तथा बाल मनोविज्ञान को जानने समझने में हमारी मदद कर सकता है।

बाल मनोविज्ञान का गहरा सरोकार कला एवं साहित्यिक चिंतन से भी है। विश्व के कई साहित्यकारों ने बाल केंद्रित रचनाएं की हैं जिनमें बाल मनोविज्ञान का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। हम कह सकते है कि बाल मनोविज्ञान का व्यावहारिक पक्ष इन सात्यिक रचनाओं में होता है। इन साहित्यिक रचनाओं में जहाँ बच्चों की चिंता व्यक्त की जाती है, वहीं यह समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि आज मनुष्य या पाठकों के लिए बाल मनोविज्ञान की जटिल गुंत्थियों को सुलझाना कठिन होता है। लेकिन जब ये गुंत्थियां कहानी, कविता नाटक या अन्य कला रूपों के माध्यम से आती हैं तो लोगों के लिए इसे समझना और हल करना आसान हो जाता है।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों ने विभिन्न शैलियों के साथ मनोवैज्ञानिक का भी पुरा ख्याल रखा है। प्रेमचंद की कथा यात्रा बाह्य दृश्यों तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि मानसिक द्वन्द्वों का भी समाहित करके होती है। प्रेमचंद किसी विशेष मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के पक्ष में नहीं थे। उनकी कहानियों में सभी विशेषताओं के दर्शन होते हैं। उनके विचारों को किसी विशुद्ध मनोवैज्ञानिक नियमों और उपनियमों में नहीं बांधा जा सकता है व्यक्ति-व्यक्ति की मानसिकता ये अंतर होता है। प्रेमचंद ने स्वयं कहा है-मनुष्य जाति के लिए मनुष्य ही सबसे बिकट पहेली है। वह खुद अपनी समझ में नहीं आता किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना करता है।

प्रेमचंद की कहानियों का संसार इंसान और इंसानियत का पक्ष लेता है। अपनी कहानियों में उन्होंने ही उस कुव्यवस्था व परिस्थिति का विरोध किया है जो इंसान से इंसानियत को छिन रहा था। उनकी कहानियों के संसार के द्वार अनेक दिशाओं में खुलते हैं। उन दरवाजों में से एक दरवाजा बचपन पर केंद्रित है बचपन जितना सरल दिखता है उतना सरल है नहीं। उसके जीवन की विकास यात्रा में बहुत बदलाव होते हैं। ये बदलाब बचपन के लिए बहुत महत्व रखते है। ये बदलाव भी बचपन के भावी जीवन को निर्धारित करते हैं। बच्चों व बचपन को संवारने में बहुत सयम की जरूरत होती है। ऐसे समय में थोड़ा सा भी असन्तुलन बचपन के लिए घातक हो सकता है। बचपन को जितने प्यार व स्नेह की आवश्यकता होती है उतनी ही सार्थक मार्गदर्शन की होती है। प्रेमचंद की कहानियां चीख-चीखकर बता रही हैं कि बचपन भूखा, अभाव ग्रस्त व समस्याओं की ग्रफ्त में हैं वर्तमान में भी ये समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज भी बचपन भूखा, अभावों से ग्रस्त व किसी न किसी समस्या से ग्रस्त दिखाई देता है। प्रेमचंद की कहानियाँ इन समस्याओं का बाखुबी प्रस्तुतीकरण करती हैं।

उनकी बाल मनोविज्ञान पर केंद्रित कहानियों में बड़ी शक्त् दिख रही है। उनके जीवन से भरे और क्रियाशील बालपात्र ऐसे लगते है जैसे वे वर्तमान में अपने बचपन के अधिकारों की मांग कर रहे हों। जैसे एक बालक मनोवैज्ञानिक बच्चों के मन को समझाता है तथा उनमें चल रहे उचित व अनुचित अवधारणाओं का विश्लेषण कर बचपन के कल्याण को ध्यान में रखते हुए एक सार्थक मार्ग दर्शन सुझाता है, ठीक उसी तरह का कार्य प्रेमचंद ने अपनी बाल चरित्र प्रधान कहानियों में किया है। जिन्होंने बचपन की पीड़ा को समझ उसके निराकरण के लिए मानव समाज को परामर्श देकर मार्गदर्शन किया है। प्रेमचंद की ये बालचरित प्रधान कहानियाँ बालमनोविज्ञान का भारतीय परिप्रेक्ष्य दर्शाने के साथ-साथ उनका व्यावहारिक पक्ष भी सामने रखती है। इन कहानियों को पढ़कर एक सामान्य पाठक भी बच्चों के मन को जानने का प्रयास करने लगता है। सभ्य समाज की तरफ ले जाने में प्रेमचंद की इन बचपन पर केंद्रित कहानियों का अपना ही महत्व है। इन कहानियों को पढ़ने से स्वत: ही पता चल जाता है कि प्रेमचंद बच्चों के मन की समझ रखते है। उनकी 'दूध का दाम', 'गृहदाह', 'तेंतर', 'सौभाग्य के कोड़े' व 'कप्तान सहाब' जैसी बच्चों पर केंद्रित कहानियों में घोर उपेशित, दलित शोषित व पीड़ित बचपन के मनोविज्ञान पर बड़े मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति देते है।

प्रेमचंद ने इन बच्चों पर केंद्रित कहानियों में बहुत ही प्रभावशाली रूप से दर्शाया है कि बचपन कभी समस्यात्मक नहीं होता है। समस्या तो उस मानव समाज में है जो अपने आचरण व वातावरण के प्रभाव से बचपन को समस्या में डाल देते हैं। प्रेमचंद की ऐसी अनेकों बाल केंद्रित कहानियाँ है जो परिवार व समाज के दोषपूर्ण आचरण व वातावरण को दर्शाती है तथा दोषपूर्ण वातावरण के प्रभाव में आने वाले बच्चों की समस्याओं को दिखाती है। एक बाल मनोवैज्ञानिक बचपन को अच्छे से जानता है व उस बचपन को आदर्श दिशा दे सकता है। यही कार्य प्रेमचंद ने किया है। प्रेमचंद का बाल चरित्र कटु यथार्थ का सामना करते हैं। उस यथार्थ के थपेड़ों में वह बचपन झुलसता नहीं है बल्कि वह बचपन समाधान ढूंढता है और आदर्श को अपनाता है। 'गुलाम डंड़ा' कहानी उस बचपन की मीठी स्मृतियों को ताजा करती है। इस कहानी में प्रेमचंद ने बचपन को उस पक्ष को दर्शाया है जिस पर माता-पिता व समाज ध्यान नहीं देता है। अत: प्रेमचंद बचपन की समझ रखते हैं और उस बचपन की समस्त पीड़ाओं, परेशानियों के समाधान को ध्यान में रखते हुए व उनके निराकरण बाबत उन बाल चरित्रों के मन की आवाज अपनी कहानियों प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

प्रेमचंद की उन आदर्शवाद व यर्थाथवाद सम्मिलित कहानियों में बचपन उन आदर्श को प्रस्तुत करता है जिसकी वर्तमान में बहुत आवश्यकता है। बचपन के उस आदर्शवादी रूप को देखकर मानव समाज प्रेरित करता है व अपने अंतर्मन में झाँकता है। आज देखने को मिलता है कि मानव समाज खुद अनुशासनहीन हो रहा है और बच्चों को अनुशासन का पाठ हिंसा के रूप में पढ़ाना चाहता है। यह सामाजिक विकृति मानव समाज के लिए ठीक नहीं है। इनका समाधान प्रेमचंद की कहानियों में अवश्य मिल सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- https://patnawomenscollege.in/upload/Explore%20Vol.%20IX/t13.pdf
- https://www.academia.edu/2627580

कार्ल मार्क्स, महात्मा गांधी एवं वैज्ञानिक क्रान्ति

डॉ० किरण मदान

विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान, आई.बी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पानीपत

स्थिरता की तलाश एवं परिवर्तन की आवश्यकता आधुनिक युग में आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का महत्वपूर्ण घटक तत्त्व बन गया है। इसके कारण एक प्रकार की प्रणाली के स्थान पर दूसरे प्रकार की प्रणाली की स्थापना के प्रयास कभी शान्तिपूर्ण तरीकों से तो कभी हिंसक तरीकों से किये गये और निरन्तर किये जा रहे हैं। इन्हें क्रान्ति का नाम दिया गया है। क्रान्ति की आकांक्षा और आवश्यकता तो अत्यन्त प्राचीन काल से ही चिन्तकों के गम्भीर चिन्तन में, विचारकों के तेजस्वी विचारों में तथा क्रान्तिकारियों के विलक्षण संघर्ष में दिखाई देती रही है किन्तु क्रान्ति वास्तव में तभी आकार लेती है जब शक्तिशाली नेतृत्व द्वारा उसके लिए प्रभावी प्रक्रिया अपनाई जाती है। इसलिए क्रान्ति प्रक्रिया का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।

क्रान्ति का अर्थ:

क्रान्ति का अर्थ है तेज गति से होने वाला परिवर्तन। किसी भी स्थापित व्यवस्था में छोटे बड़े परिवर्तन की आवश्यकता प्राय: महसूस होती ही रहती है। व्यवस्था में स्थिरता लाने वाले तत्व उसे जड़ता प्रदान करते हैं। जब आवश्यकता प्रबल रूप ले लेती है तो जड़ता के समस्त बन्धनों को तोड़कर परिवर्तन तीव्र गति से होने लगता है। इसे क्रान्ति कहा जाता है। व्यापक या सम्पूर्ण क्रान्ति में व्यवस्था पूरी तरह बदल जाती है और नई व्यवस्था स्थापित होती है।

सीमित क्रान्ति में व्यवस्था में आंशिक बदलाव आते हैं या व्यवस्थापकों में ही परिवर्तन हो जाता है। किसी भी क्रान्ति में उसकी प्रक्रिया बहुत महत्वपूर्ण होती है। जब परिवर्तन हिंसात्मक तरीकों से आता है, तो इसे हिंसात्मक क्रान्ति कहते हैं किन्तु जब शान्तिपूर्ण तरीकों से बदलाव लाया जाता है, तो इसे अहिंसक क्रान्ति कहते हैं।

कार्ल मार्क्स की क्रान्ति प्रक्रिया:

19वी शताब्दी में कार्ल मार्क्स तथा उनके सहयोगी फ्रेडरिक एंजेल्स ने समाजवाद की चिन्तन परम्परा को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने समाज की परिचालक शान्ति का सूक्ष्म विश्लेषण किया तथा यह बताया कि समाजवादी व्यवस्था किस प्रकार साकार रूप धारण कर सकती है। वेपर के शब्दों में इससे पूर्व के कालपनिक समाजवादी ''सुन्दर गुलाबों के सपने देखते थे परन्तु गुलाब के पौधों के लिए कभी जमीन नहीं तैयार कर सके।''[1]

कार्ल मार्क्स ने इतिहास का भौतिकवादी अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि आर्थिक कारण और स्थितियाँ समाज में किसी प्रकार के परिवर्तन के मूल में होती हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा ''.....दार्शनिकों ने विश्व की व्याख्या करने का प्रयास किया है, महत्वपूर्ण बात इसे परिवर्तित करने की है।''

कार्ल मार्क्स ने न केवल संसार की व्याख्या की बल्कि इतिहास की निर्धारक गति को भी इंगित किया। मार्क्स के विचारों से प्रेरणा लेकर एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिका के अनेक देशों में सफलतापूर्वक क्रान्तियाँ हुई।

कार्ल मार्क्स ने बताया कि भौतिक जगत में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इनसे होने वाला विकास या इनमें घटित होने वाली घटनाएं परस्पर सम्बद्ध होती हैं। परिवर्तन की यह प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक होती है। इसमें होने वाले संघर्ष से एक नई अवस्था उत्पन्न होती है।

कार्ल मार्क्स व एंजेल्स के शब्दों में ''अब तक के समस्त मानव समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। स्वतन्त्र व्यक्ति व दास कुलीन व जन साधारण जागीरदार व रैयत, मालिक एवं कारीगर- एक शब्द में शोषक व शोषित सदा एक-दूसरे के विरोध में खड़े होकर कभी खुले रूप में और कभी छिपे रूप में लगातार संघर्ष करते रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप हर बार या तो व्यापक रूप से समाज का क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण होता रहा है अथवा प्रतियोगी वर्गों का समान्य विकास होता रहा है।''[2]

इतिहास की आर्थिक व्याख्या करते हुए मार्क्स ने बताया कि किसी भी समाज के स्वरूप का निर्धारण उस समाज की आर्थिक शक्तियाँ अथार्त उत्पादन के साधन और उत्पादन-प्रक्रिया के घटकों के मध्य संबधों द्वारा होता है। ''जीवन धारण के साधनों के उत्पादन में मनुष्य एक दूसरों के साथ कतिपय निर्दिष्ट तथा आवश्यक सम्बन्ध में आ जाता है। उत्पादन के सम्बन्धों के योग फल से समाज का आर्थिक ढांचा बनता है और इस आर्थिक ढांचे के आधार पर ही समाज का कानूनी तथा राजनीतिक ढांचा खड़ा होता है। यही ढ़ांचा उसकी चेतना का भी निर्णय करता है।''

"हाथ की चक्की हमें सामन्ती स्वामियों वाला समाज देती है किन्तु भाप से चलने वाली चक्की औद्योगिक पूंजीपतियों वाला समाज देती है।''

इस प्रकार किसी भी युग की आर्थिक स्थितियों के आधार पर ही उस युग के वैचारिक, दार्शनिक और राजनीतिक स्वरूप का निर्माण होता है। इसमें वर्त्र सघंर्ष ही ऐतिहासिक विकास तथा परिवर्तन का मूल मन्त्र रहा है।

आदिम साम्यवादी युग में उत्पादन की कोई प्रक्रिया शुरू नहीं हुई थी। मनुष्य पूर्णता प्रकृति के उत्पादों पर निर्भर था। ऐसी स्थिति में न तो वर्ग थे और न ही किसी के द्वारा किसी के शोषण की सम्भावना थी। इसके बाद कृषि और पशुपालन का विकास हुआ। इनमें श्रम करने के लिए दासों की आवश्यकता होने लगी। दास उत्पादन प्रक्रिया के मुख्य घटक बन गए तथा उनके मालिक श्रम के उपभोक्ता थे। इस युग को दास युग कहा गया। कृषि का महत्व निरन्तर बढ़ता गया। जिन लोगों के हाथों में भूमि का स्वामित्व सिमटकर रह गया था। उन्हें सामन्त कहा गया। कृषि का वास्तविक कार्य अर्द्व कृषक दस्तकारों और हस्तशिल्पियों का भी उदय हुआ। इसे सामन्तवादी युग कहा गया। मशीनों के आविष्कार ने उत्पादन प्रणाली में आमूल परिर्वतन कर दिया। छोटे-छोटे उद्योग- धन्धों के स्थान पर बड़े-बड़े कल कारखाने स्थापित हुए। इनके लिए बड़ी पूंजी की आवश्यकता होती थी जो कि पूंजीपतियों के पास ही थी। मशीनों द्वारा उत्पादित वस्तुएं अच्छी और सस्ती होती थीं। हाथों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजार समाप्त प्राय: हो गया। बहुत बड़ी संख्या में ऐसे कारीगर कारखानो में काम करने के लिए जाने लगे। पूंजीपतियों द्वारा इनका बहुत अधिक शोषण किया गया इससे समाज पूंजपति तथा पूंजीविहीन सर्वहारा वर्ग में विभाजित हो गया। इसे कार्ल मार्क्स ने पूंजीवादी युग कहा। इसका विरोध करने के लिए श्रमिक वर्ग ने ट्रेड यूनियन का निर्माण किया और क्रांति द्वारा सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना की। इसमें श्रमिक वर्ग ही शेष रह जाता है और किसी भी प्रकार के शोषण की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। कार्ल मार्क्स ने इसे साम्यवादी युग कहा है। इस प्रकार काल मार्क्स के अनुसार वर्ग सघंर्ष क्रान्ति इतिहास की नियामक शक्तियाँ हैं।

महात्मा गाँधी की क्रांति प्रक्रिया:

महात्मा गॉधी ने क्रान्ति में नैतिक साधनों को अपनाने का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने साध्य और साधन की शुद्धता पर बल दिया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि अहिंसा मानव मात्र का धर्म है। उन्होंने अहिंसक क्रान्ति का आह्वान किया। उनकी अहिंसा निष्क्रियता का नहीं बल्कि क्रियाशीलता का संदेश है।[3]

उनके शब्दों में ''अहिंसा का तात्पर्य अत्याचारी के विरूद्ध नम्रतापूर्वक समर्पण नही, वरन इसका तात्पर्य अत्याचारी की मनमानी शक्ति का आत्मिक बल के आधार पर मुकाबला करना है।[4] अहिंसा का अर्थ है अनन्त प्रेम और प्रेम का अभिप्राय है, कष्ट सहन की अनन्त क्षमता गाँधीजी ने कहा है कि कष्ट-सहन द्वारा विरोधी के हदय को प्रभावित किया जा सकता है। विवेक मस्तिष्क को प्रभावित करता है परन्तु कष्ट-सहन ह्रदय को प्रभावित करता है।[5]

अहिंसक क्रान्ति प्रक्रिया द्वारा गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सफलतापूर्वक रंग भेद नीति का विरोध किया। भारत में राष्ट्रीय आन्दौलन को नई दिशा दी और उस समय की विश्व की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति को कड़ी चुनौती दी। उनकी क्रांति प्रक्रिया के माध्यम से भारत में लोकतंत्र भी मजबूती से स्थापित हुआ। उनके द्वारा अपनाई गई क्रान्ति प्रक्रिया का विश्व के अन्य देशों में भी सफलतापूर्वक राजनीतिक क्रान्ति के लिए प्रयोग किया गया।[6] प्रो. बी.बी. वर्मा ने लिखा है एक नेता तथा विचारक के रूप में

गाँधी की महानता उनके द्वारा अहिंसा के व्यक्तिवादी संदेश को प्रत्यक्ष सामूहिक कार्यवाही की एक सफल तकनीक बनाने में निहित है।[7]

आर्थिक क्रान्ति के लिए गाधीं जी ने नैतिकता का आग्रह किया। उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया। वे श्रमिकों के शोषण के विरूद्ध थे किन्तु उन्होंने औद्योगीकरण को शोषण का साधन माना और इसका विरोध किया। उन्होंने औद्योगीकरण को साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के लिए उत्तरदायी माना। उन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कुटीर उद्योगों का समर्थन किया। इस प्रकार महात्मा गांधी की क्रांति प्रक्रिया राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में अहिंसा के माध्यम से व्यापक क्रांति लाने की पक्षधर है।[8]

वैज्ञानिक क्रांति अथवा क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया:

आधुनिक विश्व के निर्माण में विज्ञान और तकनीक की बहुत बडीध् भूमिका है। औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही कच्चे माल एवं बाजार की तलाश में साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का युग शुरू हुआ। इनके विरोध में अनेक क्रान्तियाँ हुई। इनमें से अनेक आज अप्रांसगिक हो गई हैं किन्तु क्रांति की चाह और उसके लिए उचित-अनुचित या हिंसात्मक साधनों के प्रयोग का सिलसिला थमा नहीं हैं। महात्मा गांधी ने जिस अहिंसक क्रांति की वकालत की थी उसमें शाश्वत तत्व विद्यमान हैं लेकिन उन्हें संगठित रूप देकर सत्रमाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक बदलाव लाने के लिए उन्ही के समान सत्य के महान प्रयागे किये जाने की आवश्यकता है।[9]

क्रांति की आवश्यकता तब तक बनी रहेगी जब तक एक समतावादी, शोषण रहित, न्यायपूर्ण और नैतिक मूल्यों पर आधारित स्वतंत्र समाज की स्थापना नहीं हो जाती। यह कार्य मूलत: विज्ञान एवं तकनीक के विवेक पूर्ण, रचनात्मक एवं नियन्त्रित प्रयोग द्वारा ही किया जा सकता है। रक्त-रंजित क्रांति एक श्रमिक को मालिक बनन का गौरव प्रदान नहीं कर सकती किन्तु उत्पादन की विकेन्द्रित वैज्ञानिक तकनीक से यह चमत्कार शांतिपूर्ण ढंग से घटित हो सकता है इससे आम आदमी के हाथ में पुन: उत्पादन के साधन दिये जा सकते हैं। आज इसी क्रांति की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

विज्ञान और तकनीक के स्वार्थपूर्ण इस्तेमाल ने आज बहुत बड़ी संख्या में लोंगो के जीवन को दैन्य से भर दिया है। इसी के प्रतिकार स्वरूप आम आदमी के जीवत्र में नाना रूपों में हिंसा प्रगट हो रही है। इसका निवारण तभी हो सकता है जब विज्ञान और तकनीक के साधन (उत्पादन के साधन) इस प्रकार विकेन्द्रित रूप में सर्वसाधारण के हाथों में आए कि आम आदमी बहुराष्ट्रीय पूंजीवादी बाजार में खाली हाथ उपभोक्ता न बने बल्कि किसी न किसी रूप में उत्पादन की शक्ति का स्वामी बने तभी वितरण के न्याय की स्थापना हो सकेगी।

संदर्भ:

1) पूंजी, कार्ल मार्क्स
2) साम्यवादी घोषणापत्र, मार्क्स एवं एंजिल्स
3) मेरे सपनों का भारत, महात्मा गांधी
4) हिन्द स्वराज, महात्मा गांधी
5) इतिहास-चक्र, राममनोहर लोहिया
6) समाजवादी आंदोलन का इतिहास, राममनोहर लोहिया
7) गांधीजी और स्वाधीनता आंदोलन, पंडित जवाहरलाल नेहरू
8) गांधी विचार दोहन, किशोर लाल मशरूवाला
9) संघर्ष, डॉ. रा. प्र. पारनेरकर

राजस्थानी लोकनाट्य में अली बख्शी ख्याल परम्परा

रूपा

शोधार्थी, हिंदी, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

लोक साहित्य की प्रसिद्ध एवं समृद्ध विधा लोक नाट्य है। लोकनाट्य परम्परा चिरन्तनकाल से निरन्तर चलती चली आ रही है। भरतमुनि ने (ई.पू.तृतीय शताब्दी) अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में लोकनाट्य विषय का विशद वर्णन किया है। आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का प्रणयन अनायास एवं आकस्मिक ही नही हो गया था। निश्चय ही सुदूर अतीत से प्रवाहमान लोकधर्मी नाट्य-परम्परा इसके सृजन का आधार रही होगी।

लोक नाट्य अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाला सेतु है। लोक में समाहित सामूहिकता की भावना का सरल उदाहरण लोकनाट्य है आचार्य भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में लोक की महत्व को दर्शाते हुए कहा है-

"नाट्य लोक स्वभावजम्"[1]

लोकनाट्य गीत-संगीत, नृत्य एवं अभिनय का अद्‌भुत समन्वय है। लोक नाटक जीवन का उल्लास है, उत्सव है, जिसमें हमारी संस्कृति, परम्पराओं, संस्कारों, मान्यताओं एवं धर्म का सच्चा व सजीव चित्रण होता है। ये लोकानुरंजन के साथ-साथ जीवन में समरसता का संचार करते हैं। स्व से सर्व की ओर अग्रसर कराने वाले लोक नाटकों के संबंध में डॉ. श्याम परमार के शब्द उल्लेखनीय हैं- श्लोक नाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।[2]

शौर्य की अभिव्यक्ति तथा सौन्दर्य की अनुभूति, कर्तव्य का हिमालय, आदर्शों के शिखर तथा यथार्थ के धरातल की धाराओं के मध्य राजस्थान का लोक नाट्य सृजित तथा प्रसारित होता रहा है। राजस्थानी समाज और संस्कृति के संवाहक इन लोक नाटकों की रसमयी, भावमयी तथा धर्म-कर्ममयी भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रही है।

यहाँ के भौगोलिक परिवेश, इतिहासबोध, धर्मानुराग, जातीय संस्कार तथा परम्परानुराग ने ही लोक नाटकों की समृद्ध परम्परा का इतिहास रचा है। यहाँ का लोक नाट्य भी बहुरूपी तथा बहुरंगी है। रूपवैविध्य की दृष्टि से राजस्थान का लोक नाट्य अत्यन्त ही समृद्ध रहा है। यहाँ के लोक नाटकों को लीला, तमाशा, ख्याल, खेल, स्वांग, रम्मत, नौटंकी, झामटणे, टूटिये इत्यादि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है।[3]

राजस्थानी लोक नाटकों की परम्परा बहुत प्राचीन है। सहृदय लोकजन द्वारा इन्हे कही रम्मत तो कहीं तमाशा कहा जाता रहा है परन्तु राजस्थानी लोक हृदय में ख्याल के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। जिसे शेखावाटी क्षेत्र में विशेष लोकप्रियता प्राप्त है। राजस्थान में प्रचलित ख्यालों में कुचामनी ख्याल, नौटंकी ख्याल, माच के ख्याल, सुरंगी ख्याल, जयपुरी ख्याल नागौरी ख्याल, शेखावाटी ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, किशनगढ़ ख्याल, अलीबख्शी ख्याल, हाथरसी ख्याल आदि विशेष प्रसिद्ध है। राजस्थानी ख्यालों में प्रादेशिक संस्कृति का सुंदर उल्लेख मिलता है।

राजस्थानी लोक में बहुचर्चित ख्याल की खास बात यह है कि ये व्यक्ति-विशेष द्वारा रचित होते हैं, जबकि अन्य राजस्थानी लोक नाट्यों के रचयिता अज्ञात होते हैं। ख्याल-सृष्टा कथा एवं चरित्रों को लोक की भावनाओं के अनुरूप मोड़ देता है, ताकि वह दर्शकों को मुग्ध कर सके। इस संबंध में डॉ. सत्येन्द्र ने भी कहा है- "लोक नाट्य विरचित होते हैं, किसी विशेष व्यक्ति, कवि

द्वाराध् पर यह रचना सभी लोक-क्षेत्रों के उपादानों से बनी होती है।[4] अलवर जनपद के राठ क्षेत्र के अलीबख्शी ख्यालों ने भी इन्हीं विशेषताओं से मंडित हो लोक में ख्याल परंपरा को समृद्ध किया व एक और उन्होंने लोकनाट्य की परंपरा को बुलंदियों पर पहुंचाया वहीं दूसरी ओर जन सामान्य की हृदय के कोमल भावों को झंकृत करते हुए उसके हृदय में गहरे भावमयी बीज रोपित किये तभी सहृदय में सदा स्वयं को लोकनाट्यों आकर्षण से आबद्ध पाया।

डॉ. दशरथ शर्मा ने लोक नाटकों को जन नाटकों की संज्ञा दी है जिसके अभिनय के लिए रंगमंच और प्रसाधन की विशेष तैयारी नहीं करनी पड़ती सामान्य शिक्षित व्यक्ति गांवों व नगरों में जिन नाटकों का अभिनय करते हैं वह जन नाटक कहलाते है।[5]

लोकनाट्य की समृद्ध दुनिया में पुरानी अलवर रियासत के राठ जनपद की मुंडावर ठिकाने के राव अलीबख्श द्वारा रचित एवं मंचित ख्याल परंपरा 19वीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति तक बख्शी रंगत के ख्यालों की पश्चिमी हिंदी अंचल में दूर-दूर तक धूम मची हुई थी अलवर के राठ मेवात जनपद और हरियाणा का रेवाड़ी अंचल इन ख्यालों के प्रदर्शन का केंद्र थे इनकी अभिनय एवं नाट्य कला में भले ही शास्त्रीय नाटकों जैसी बारीकियां ना हो किंतु इनका शब्द विधान, भावमयता, संगीत और नृत्य इतना बेजोड़ व अनूठा था कि लोक में अली बख्श के नाम से ही जाना जाने लगा। अलीबख्श द्वारा ख्यालों का आरंभ तथा अंत में वे अपना परिचय इन शब्दों से दिया करते थे-

''राजा हूं मै राठ का, अली बख्श मेरा नाम
इश्क तमाशा में लगा, छूटा मंडावर गांव
छूटा मंडावर गांव आन के, जस दुनिया में कीया
घर खा गया लौंडा लूट, मियां का खूब जलाया जीया।
खूब कमाए पाप, धर्म में पैसा एक ना दिया।।
गांव-गांव में किया तमाशा, नाम बड़ों का किया
रहता शहर मुंडावर गांव, है अली बख्श मेरा नाम।।''[6]

अलीबख्श ने जीवन अनुभवों से जितना कुछ सीखा समझा था उतना किसी औपचारिक स्कूली शिक्षा से नहीं उन्होंने उस समय अपने आसपास एक ऐसे मिले-जुले समाज को फलते फूलते देखा था जिसमें हिंदू-मुसलमान की भेद की ऊंची दीवारें नहीं थी उन्होंने उनके ख्यालों की आरंभ में लोक देवता हनुमान की स्तुति में "हमारो प्यारो हनुमान" जैसी मशहूर रागिनी की रचना की थी तथा मोहम्मद साहब की स्तुति के "मौला ने तुझको अहमद कहकर पुकारा" को जमकर गाया था धर्म सापेक्ष रहकर भी धर्मनिरपेक्ष बने रहने की महान लोक परंपरा अलीबख्श ख्याल संसार में रही है जहां कहीं उनको पाखंड के ऊपर चोट करने का अवसर मिला वहां उन्होंने हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई तीनों ही धर्मों के पाखंडओं को उद्घाटित किया सच तो यह है कि उनका रास्ता मनुष्यता का रास्ता था किसी तरह के सांप्रदायिक संकीर्णता में बंध कर वे कभी नहीं रहे निहालदे ख्याल में उन्होंने कहा है-

''हिंदू के हर भक्त, मुसलमानों के पीर मनाऊं।
अली बख्श दोनो दिनो के, दंगल में गुण गाऊ।।''[7]

अलीबख्श को ख्याल रचना एवं उनके प्रदर्शन की प्रेरणा किससे मिली? किसी भी तरह की रचना शीलता के लिए आत्म प्रेरणा से बड़ी प्रेरणा और कोई नहीं होती अलीबख्श को बचपन से ही संगीत का शौक था वह दूर दूर तक ख्याल प्रदर्शनों को देखने जाया करते थे। शुरू में अलीबख्श मंडलियों में गायन किया करते थे मंडावर में अलीबख्श ने इन ख्यालों का प्रणयन किया। एक बार मंडावर में हाथरस की नौटंकी में अलीबख्श मंच पर बैठ गये तब एक कलाकार ने उन पर व्यंग्य करते हुए कहा कि, ''ठाकुर साहब! यह मंच केवल ब्राह्मणों के बैठने के लिए है। यदि आपको मंच पर आने का गुमान हो तो अपने खुद की नौटंकी खड़ी कर दीजिये।'' इस व्यंग्यबाण से आहत हो अलीबख्श ने संत गरीबदास के आशीर्वाद से अपनी मंडली तैयार की। अत्यंत साधारण रंगमंच पर ढोलक, नगाड़े, सारंगी, तबला व हारमोनियम के साथ भेंट, दोहा, सेंधू, ठुमरी, तोड में ये ख्याल गाए जाने लगे आज अलीबख्शी ख्याल बहुत प्रसिद्ध है। अलीबख्श द्वारा विरचित "श्री कृष्ण जन्म" के प्रसंग में वासुदेव का संवाद इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

सेंधूः- *''भर भादूं की अष्टमी आधी के मझधार*
जा दिन जन्मी देवकी श्रीकृष्ण अवतार ।।''[8]

दोहा:- ''श्री कृष्ण अवतार जनम जा दिन मथुरा में लीनौ।
वा घड़ी जा दुष्ट कंस को, पहले ई परचा दीनौ
गर्व सब रह गयौ धूल में, आ गयो अंग पसीनौ।।
पटक पलंग मोधो कर दोनो, सर नीचा नै कीनौ।।''[9]

तोड़:- ''ब्रज में घर घर मंगलचार।
बोलो सब मिल जय जयकार।।''[10]

कहते हैं कि अलीबख्श का प्रिय ख्याल 'कृष्णलीला' ही था। "लोक समाज व उससे जुड़ी आस्थाएँ ही लोक नाट्य की विषयवस्तु हैं। इसकी कथावस्तु सहज व आमजन के लिए बोधगम्य होती है। यदि शास्त्रीय दृष्टि से इन्हें परखा जाए तो कहा जा सकता है कि लोक नाट्य की श्कथावस्तु अव्यवस्थित ढंग से गुंथी हुई होती है।''[11] आम तौर पर कोई ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा धार्मिक कथा लोक नाट्य के लिए चुनी जाती है।

अलीबख्शी ख्याल में नृत्य-संगीत-वादन व शब्द वैशिष्ट्य पैदा करने का जो अवसर उनको मिला, वैसा किसी अन्य ख्याल में नहीं। डॉ० उपाध्याय ने कहा है लोक नाटकों में गीत के साथ संगीत की योजना बड़ा आनंद प्रदान करती हैं किंतु इसके साथ ही यदि नृत्य भी हुआ तो आनंद की सीमा ही नहीं रहती[12] अलीबख्श के ख्यालों में इन सभी का बेजोड़ संगम हमें दिखाई देता है अलीबक्शी अनेक ख्यालों में जीवन के संघर्ष, इस ख्याल की तुलना में बहुत अधिक है। घटनाएं भी उनमें खूब है। संवादों की गुंजाइश भी वहां कम नहीं है लेकिन भावों की जैसी सघनता, निर्मलता और सहजता कृष्णलीला' में है, वह दूसरे ख्यालों में नहीं। अलीबख्श के भक्त व प्रेमी मन को रमने का खुला आकाश 'कृष्णलीला' में ही मिला है अलीबख्शी ख्यालों में कृष्ण, ब्रज की ग्वालनों के सहज प्रेमी मन सौन्दर्य पर मोहित हैं। वे उन्हें रिझाने-मनाने व समझाने की सारी तरकीबे निकालते हैं। इस समय अलीबख्श ने एक रागिनी लिखी जो गोपियों के सौंदर्य का पूरा चित्र दर्शक के समक्ष प्रस्तुत करती है। इस रागिनी के बोल इस प्रकार हैं-

''दृग दामिनी सी कामनी सी पलक पट नै,
मेरो मन छल लीनो, छंदगारी छट नैं।
निरत करत पग धरत रसीले, गावत कामन छंद छबीले
लचकत अंग कमर पतली, दमक रही सांलू सारी सरवट में, दृग दामिनी...
भर जोबन में क्यों गरबाई, स्याम रूसा क्या कीनी चतुराई।
मान-मान ले सजन सजनी, तू कांई लेगी कामन ऐसी हठ में। दृग दामिनी।।''[13]

प्रस्तुत रागिनी में गुजरी कृष्ण को साधारण मनुष्य समझती है तथा उसकी करतूतों की शिकायत कंस से करती हुई कहती है कि आजकल ऐसा लग रहा है कि पृथ्वी पर तेरा शासन ही नहीं रहा कंस अपनी शक्ति सत्ता का उसे एहसास करा कर तसल्ली देता है लेकिन नाटक में इस अवसर पर संस्था दीवान कंस को साफ साफ कहता है कि "तीन लोक के नाथ हैं सो तें किन पर करी चढ़ाई मत बैर करे बंसीवारे से क्यों कमबख्ती आई। दीवान कंस व गुजरी को समझाने की कोशिश करता है। एक अन्य प्रसंग में एक ग्वलिन कृष्ण की शरार के कारण अपनी साड़ी फट जाने की शिकायत करती है इस पर अली बख्शी ख्यालों में इसका कितना मनोहारी चित्रण किया गया है कृष्ण कहते हैं-

''सारी सारी क्या करे सो तैने सारी ले दूं चार।
सारी ओढ़ के निकसो, हमकु लगो पियारी नार।।
तू डोलैगी दही बेचती, मैं बेचूंगो न्यार।
तुम से मेरी लगी मोहब्बत, छोड़ दिया घर बार।।
चातर बरसाने की नार। जइयो दध का दान चुकार।।''[14]

धर्म लोक का प्राण है समाज में धर्म की महत्व सर्वोच्चता को ध्यान में रखते हुए धार्मिक ख्यालों के रचना हुए हैं" लोकजीवन के छोटे-छोटे कामों के बीच फूटती हुई भावों की जैसी सहज भावाभिव्यक्ति 'कृष्णलीला' में दिखाई गई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस ख्याल में सहज प्रेम का स्फुरण अपने अद्‌भुत रूप में हुआ है। यह लरिकाई का प्रेम है।

रास में कृष्ण का ईश्वरत्व उनसे कभी अलग नहीं होता जबकि ख्याल परंपरा में उसका तिरोहण भी होता रहता है अली बख्श ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि उनके ख्यालों में लोकरंजन के साथ-साथ लोक शिक्षण भी हो आदमी कुमार्ग पर ना चले जीवन में आने वाले कष्ट पीड़ा उनसे हिम्मत ना हारे वह प्रेम के महत्व को जाने और उसे मार्ग का वरण करें यही कारण है कि अली बख्श की कोई भी रागिनी अंत में लोक शिक्षण के रूप में परिवर्तित होती है। उनके आरंभ में रति उत्साह करुणा आदि के भावों का समागम होता है किंतु अन्य अंत में उनका पर्यावसन भक्ति भाव में होता है यही अलीबख्शी की शब्द रचना की विशेषता है।

कृष्ण लीला के अलावा अलीबख्शी की अन्य प्रसिद्ध ख्याल है पद्मावत, नल का छडवा, नल का बगदाद, निहालदे, फसाना अजायब गुलबकावली, इनमें से पद्मावत, निहालदे नल का छडवा आदि ख्यालों के प्रदर्शन की किसी समय धूम मची रहती थी यह सभी ख्याल लोक प्रचलित कथाओं पर आधारित है किंतु अली बख्श का अपना शब्द कौशल, नृत्य कला और संगीत की विशिष्ट रंगत से इन तीन लोक कथाओं को नया रूप प्रदान किया है जनता इन बातों की कहानियों से परिचित होते हुए भी ख्यालों के माध्यम से अलीबख्शी ख्याल को देखने के लिए पहुंचती थी

अलीबख्श के ख्यालों का छंद-विधान भी अपने तरह का है। उन्होंने छंदों के जो नाम दिए हैं, वे आमतौर पर अन्य ख्यालों में नहीं मिलते। हिन्दी के 'दोहा' छंद के लिए इन ख्यालों में 'मांझ' व 'सेंधू' शब्द प्रयुक्त हुआ है और नोटंकी के 'चौबोला' के लिए 'दोहा' का संवादों का निष्कर्ष 'तोड़' जैसे दो पंक्तियों के छोटे से छंद में प्रस्तुत होता है, जो उस समय तक आवृत्त होता रहता है, जब तक कि संवाद कहने वाला पात्र या प्रसंग नहीं बदल जाता। 'तोड़' का मतलब निष्कर्ष ही है। मांझ, सेंधू, दोहा, तोड़ आदि छंदों का प्रयोग संवादों के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाने के लिए किया गया है। इनके बीच-बीच में एकरसता की समाप्ति तथा भाव संकुलता के लिए राग-रागनियों का प्रयोग है, जिनसे पात्रों की संगीत-प्रवीणता तथा नृत्य-निपुणता का पता चलता है। इस रूप में लगभग एक शताब्दी तक अलीबख्शी ख्यालों की धूम, राठ, मेवात, हरियाणा, ब्रज आदि अंचलों में दूर-दूर तक रही आज यह ख्याल-संगीत विधा, संगीत रूप में थोड़ी बहुत जीवित है। इसे तुरंत प्राणवायु की आवश्यकता है।

वर्तमान युग सांस्कृतिक संकट, आध्यात्मिक शून्यता और भौतिक सम्पन्नता का युग है। नित नए हो रहे वैज्ञानिक आविष्कार और तकनीकी क्रान्ति के मध्य मानव पिसता जा रहा है। वह यंत्राधीन होकर ऐसे दोराहे पर खड़ा है जहाँ वह अनिश्चय और अनिर्णय की मनोदशा में अस्तित्व संकट की यातना झेलने के लिए विवश है। परम्परागत मूल्य अर्थहीन हो गए हैं। वह संस्कारों की शक्ति को भूल चुका है। हर चेहरा एक मुखौटा लगाये हुए है । कथनी एवं करनी का अन्तर बढ़ता जा रहा है। सच्चे-झूठे, शुभ-अशुभ, नैतिक-अनैतिक इनका निर्णय करने के लिए हमारे पास मूल्यों, संस्कारों और आदर्शों की कोई संहिता नहीं है। इसके लिए हमें अपनी जड़ों को तलाशना होगा, लोक मानस को खोजना होगा और लोक संस्कृति और साहित्यिक विधाओं से अंतरंगता बढ़ानी होगी।

संदर्भ-

1. लोक संस्कृति परंपरा एक अनुशीलन, डॉक्टर महिपाल सिंह राठौड, राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर, पृ. 211
2. डॉ. श्याम परमार, लोकधर्मी में नाट्य परंपरा, पृ. 30-31
3. लोक संस्कृति परंपरा एक अनुशीलन, डॉ. महिपाल सिंह राठौड़, राजस्थानी ग्रंथागार, 2015 पृ. 225
4. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, डॉ. सोहन दास चारण, पृ. 284
5. लोक सांस्कृतिक परंपरा एक अनुशीलन, डॉ. महिपाल सिंह राठौड़ राजस्थान ग्रन्थागार, पृ. 211
6. सृजन पत्रिका, अलवर अंक 2005-2006, छंगा राम मीना, बाबू शोभाराम कला महाविद्यालय अलवर, पृ. 81
7. सृजन पत्रिका, अलवर अंक 2005-2006, छंगा राम मीना, बाबू शोभाराम कला महाविद्यालय अलवर, पृ. 84
8. वही, 84
9. वही, 84
10. वही, 84
11. भारतीय नाट्य साहित्य, डॉ नगेंद्र, प्रकाशक सेठ गोविंद दास हीरक जयंती समारोह नई दिल्ली, पृ. 80
12. लोक साहित्य की रूपरेखा, डॉ सत्यनारायण दुबे, संस्करण 2009 पृ. 131
13. सृजन पत्रिका, अलवर अंक 2005-2006, छंगा राम मीना, बाबू शोभाराम कला महाविद्यालय, अलवर पृ. 87
14. वही, 87

ग्रामीण भारत में संयुक्त परिवार का विघटन

संतोष विश्वकर्मा

शोधार्थी, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय प्रयागराज

सार

सदी के अंत में हमारे देश के सामाजिक ताने-बाने में आमूल-चूल परिवर्तन आया है। संयुक्त परिवार प्रणाली का धीरे-धीरे विघटन हुआ और 'एकल परिवार' का उदय हुआ। शहरी भारत में एकल परिवारों के उदय को दर्शाते हुए, ये घर आकार में छोटे हैं- 88 प्रतिशत में तीन से चार सदस्य होते हैं और कोई वरिष्ठ नागरिक नहीं होता है और केवल 11 प्रतिशत में दो से अधिक बच्चे होते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य अधिक वित्तीय स्थिरता बनाना, बच्चों को कम निर्भर बनाना और उन्हें व्यक्तिगत और शैक्षणिक विकास की ओर झुकाना है। परिवार समग्र रूप से समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, इसे समाज के निर्माण में मदद करने वाली इकाई के रूप में वर्णित किया जा सकता है। हम बचपन से ही एकल परिवार, संयुक्त परिवार और विस्तारित परिवार जैसे परिवारों के प्रकारों के बारे में सीखते हुए बड़े होते हैं। यहां हम भारत में संयुक्त परिवारों के विघटन पर ध्यान केंद्रित करेंगे। इस पत्र के माध्यम से ग्रामीण भारत में संयुक्त परिवार के विघटन पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः संयुक्त परिवार; विघटन; कारण; परिणाम।

परिचय

पहले के समय में अधिकांश परिवार संयुक्त परिवार प्रणाली में रहते थे। चूँकि परिवार के कई सदस्य एक साथ रहते थे, इसलिए जिम्मेदारियाँ साझा थीं। इसमें सामान्य जीवन, साझा जिम्मेदारियाँ और उपयोगिताएँ और सह-अस्तित्व भी था, जिसने विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक 'कर्ता' होता था जो परिवार का मुखिया होता था और परिवार की देखभाल के लिए जिम्मेदार होता था। परिवार के सभी कामकाजी सदस्यों ने साझा पूल में योगदान दिया। संपत्तियां मुख्य रूप से सामान्य पूल स्वामित्व की प्रकृति में पैतृक थीं, जिसमें 'कर्ता' के पास निर्णय लेने की शक्ति थी। बदलते समय के साथ, परिवार विघटित होने लगे और प्रकृति में अधिक एकल हो गए।

पिछले कुछ वर्षों में, विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों में पुष्टि की है कि एकल परिवारों का उदय- जिसमें जोड़े और उनके अविवाहित बच्चे शामिल हैं, तेजी से शहरीकरण के अनुरूप हैं। एकल परिवारों के उद्भव के साथ, इन परिवारों के संचालन के तरीके में बहुत सी चीजें बदल गई। अब, एक व्यक्ति को अपनी सुरक्षा स्वयं करनी होगी और एकल परिवार के भविष्य को सुरक्षित करना होगा। एक परिवार के सदस्य तीन या चार व्यक्तियों तक सिमट कर रह गये हैं। हालाँकि, एकल परिवार के विस्फोट के परिणामस्वरूप अधिक से अधिक संख्या में व्यक्ति प्रारंभिक चरण में ही तरल और अद्रव दोनों प्रकार की विशाल संपत्ति के मालिक बन रहे हैं। ऐसे परिवारों को विभिन्न प्रकार के जोखिमों का सामना करना पड़ा। पारिवारिक सुरक्षा के लिए योजना बनाना, बच्चों के लिए शिक्षा और आश्रय प्रदान करना, वृद्धावस्था और सेवानिवृत्ति की योजनाएँ और चिकित्सा आपात स्थिति प्राथमिकता बन गई और ये कुछ प्रमुख कारण हैं कि एकल परिवारों को अपनी संपत्ति की योजना क्यों बनानी चाहिए।[1]

ऐसा कहा जाता है कि संयुक्त परिवार प्रणाली सबसे पहले आर्यों के विश्व के विभिन्न हिस्सों में बसने से जुड़ी थी और इसी तरह की संस्थाएँ व्यावहारिक रूप से पूरे विश्व में थीं। जब देहाती चरण समाप्त हो गया और लोगों ने मिट्टी जोतकर, घर का निर्माण करके और पैतृक संपत्ति को बनाए रखते हुए एक व्यवस्थित जीवन जीना शुरू कर दिया, तो संयुक्त परिवार प्रणाली अस्तित्व में

आई। संचार और यात्रा की कठिनाइयों ने परिवार के सभी सदस्यों को एक साथ रहने और कृषि या व्यापार में पारिवारिक व्यवसाय संयुक्त रूप से चलाने के लिए मजबूर किया। विश्व के अधिकांश अन्य हिस्सों में, जबकि संयुक्त परिवार प्रणाली लुप्त हो गई है, भारत में, यह अभी भी जारी है और इसे अस्तित्व और प्रगति के लिए आवश्यक माना जाता है।

जहां लोगों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण बढ़ रहा है, वहीं भारतीय समाज में आज भी संयुक्त परिवार को पारंपरिक, आदर्श और प्रिय परिवार के रूप में देखा जाता है। भारतीय परिवार को एक मजबूत, स्थिर, लचीली और स्थायी सामाजिक इकाई माना जाता है। हालाँकि, यह विचार धीरे-धीरे लुप्त हो रहा है जिससे संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन हो रहा है और मुख्य रूप से शहरी भारत में 'एकल परिवार' का उदय हो रहा है, जहाँ घरों का आकार केवल तीन से चार सदस्यों और शायद ही किसी वरिष्ठ नागरिक के साथ सिकुड़ रहा है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण मनुष्य और भूमि समीकरण में असंतुलन पैदा हो गया और तेजी से औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण आबादी का शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवाह हुआ। लोग नौकरियों और बेहतर जीवन स्तर के लिए शहरी क्षेत्रों में चले गए, जिससे परिवार के साथ उनके रिश्ते टूट गए, जिससे भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन हुआ। यह विडम्बना है कि जहाँ आधुनिक उद्योगों ने राष्ट्रीय विकास को गति दी, वहीं संयुक्त परिवार प्रणाली पर आक्रमण किया जो समाजवाद का प्रतीक और भारतीय समाज की रीढ़ थी। संयुक्त परिवार प्रणाली हमारी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अनुकूल है और अधिकांश धर्मों द्वारा पूरक है।[2]

संयुक्त परिवार को बदलने में कई कारकों ने योगदान दिया है जैसे नई न्याय व्यवस्था, शिक्षा और लोगों के बदलते नजरिए ने संयुक्त परिवारों को विघटित करने में विशेष भूमिका निभाई है। आज व्यक्तिवाद, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, भौतिक सुखों के प्रति लगाव आदि के प्रभाव के कारण सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में परिवार का महत्व कम होता जा रहा है। व्यक्तिगत रिश्ते अधिक संविदात्मक होते जा रहे हैं। सामाजिक नियंत्रण के लिए कानून, पुलिस और अदालतों का उपयोग बढ़ रहा है। इस प्रकार व्यक्तिगत विकास और स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता की इच्छा, विशेष रूप से घर में बच्चों और महिलाओं ने मुख्य रूप से संयुक्त परिवारों के विघटन को गति दी है।

संयुक्त परिवारों के विघटन और उसके बाद एकल परिवार प्रणाली के आगमन ने समाज में विभिन्न समस्याओं को जन्म दिया है; बच्चों द्वारा माता-पिता की उपेक्षा, अपराध की घटनाओं में वृद्धि, सांस्कृतिक विरासत का विघटन, सामाजिक दायित्वों और पारिवारिक जिम्मेदारियों की उपेक्षा, माता-पिता और भाई-बहनों के बंधनों में दरारें और रिश्तों में खटास, त्योहारों और सामाजिक सह पारिवारिक कार्यों में रुचि और उत्साह की कमी। संयुक्त परिवार प्रणाली के लुप्त होने और एकल परिवारों के आदर्श बन जाने से वैकल्पिक सहायता प्रणालियों की उपलब्धता और भी कम हो गई है। पारिवारिक सहायता प्रणाली की यह टूटन कुछ हद तक आत्महत्याओं और भाईचारे की हत्याओं की बढ़ती संख्या में प्रकट हुई है।[3]

संयुक्त परिवार प्रणाली ने परिवार के प्रत्येक सदस्य का निर्वाह सुनिश्चित किया और यह अनुकूलन का आदर्श उदाहरण है क्योंकि परिवार में प्रत्येक सदस्य को उसकी क्षमताओं के अनुसार काम दिया जाता है। बड़ी मात्रा में खपत ने उपभोग्य सामग्रियों की प्रति इकाई लागत को प्रभावी ढंग से कम कर दिया और इसलिए संसाधनों की बचत हुई। यह प्रणाली वृद्धों, बीमारों और अशक्तों के लिए सामाजिक बीमा की तरह है और त्याग, स्नेह, सहयोग, टीम वर्क, निस्वार्थता और व्यापक सोच जैसे सामाजिक गुणों को बढ़ावा देती है। संयुक्त परिवार प्रणाली समाजवाद का सच्चा प्रतिनिधित्व है क्योंकि संयुक्त परिवार में हर कोई अपनी क्षमताओं के अनुसार काम करता है लेकिन अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्राप्त करता है। यह सदस्यों के बीच एकता और एकजुटता की भावना को बढ़ावा देता है और परिवार इकाई को उसके अस्तित्व और अस्तित्व के लिए मजबूत करता है।

संयुक्त परिवार का विघटन

पिछले कुछ वर्षों में भारत में पारिवारिक व्यवस्था में बहुत कुछ बदल गया है। पिछले दशकों से, कई पुराने संयुक्त परिवारों ने छोटे एकल परिवारों में विघटित होने का निर्णय लिया है। अब, जैसा कि हम संयुक्त परिवार और एकल परिवार पर चर्चा करते हैं, दोनों के बीच अंतर को समझना आवश्यक है। संयुक्त परिवार में बड़ी संख्या में परिवार के सदस्य एक ही छत के नीचे एक साथ रह सकते हैं जबकि एकल परिवार में आम तौर पर तीन या चार सदस्य एक साथ रहते हुए पाए जा सकते हैं। इस प्रकार, एकल परिवार की तुलना में संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती है। इसके अलावा, जैसा कि हम संयुक्त परिवारों

के विघटन पर चर्चा करते हैं, प्राप्त जानकारी का कुशलतापूर्वक उपयोग करने के लिए विघटन शब्द के अर्थ को ठीक से समझना भी महत्वपूर्ण है।[4]

संयुक्त परिवारों के विघटन को संयुक्त परिवार के रूप में अलग होकर एकल परिवार के रूप में रहने की प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी परिवार में 3 भाई अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ रहते हैं तो इसे संयुक्त परिवार कहा जा सकता है। हालाँकि, यदि परिवार के सदस्य अलग होने का निर्णय लेते हैं और प्रत्येक जोड़ा अपने बच्चों के साथ अलग रहना शुरू कर देता है तो उन्हें अब एकल परिवार कहा जा सकता है। इस प्रकार, जैसा कि उदाहरण से देखा गया, एक संयुक्त परिवार अलग-अलग एकल परिवारों में विघटित हो गया। जब हम कहते हैं कि संयुक्त परिवार विघटित हो रहा है तो हमारा अभिप्राय उसके लुप्त होने से नहीं है। हमारा अभिप्राय केवल संयुक्त परिवारों की संख्या में कमी से है। भारतीय संदर्भ में संयुक्त परिवार के विघटन के कारण इस प्रकार हैं:

1. औद्योगीकरण:

जहाँ तक ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का प्रश्न है, संयुक्त परिवार उत्पादन और उपभोग दोनों की एक इकाई था। लेकिन औद्योगिक अर्थव्यवस्था के आगमन के साथ, परिवार अब उत्पादन की इकाई के रूप में कार्य नहीं करता है। इसके विपरीत, यह मूलत: उपभोग की एक इकाई बन गया है। ऐसी परिस्थिति में संयुक्त परिवार का भरण-पोषण अत्यंत कठिन हो गया है। इसके अलावा, ग्रामीण इलाकों में कारखानों और उद्योगों की स्थापना के कारण लघु और कुटीर उद्योग बंद हो गए। मजदूर रोजगार की तलाश में कस्बों और शहरों की ओर पलायन करने को मजबूर हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवार का विघटन हो गया।

2. शहरीकरण:

शहरीकरण के कारण भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली भी कमजोर हुई है। बेहतर परिवहन और संचार, बेहतर रोजगार के अवसर, बेहतर शैक्षिक सुविधाएं और विकसित स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के रूप में शहरी जीवन की सुविधाएं ग्रामीण लोगों को कस्बों और शहरों की ओर आकर्षित करती हैं। स्वाभाविक रूप से ग्रामीण से शहरी प्रकार का प्रवास होता है। ग्रामीण आबादी के शहरी केंद्रों की ओर इस तरह के पलायन ने आवास की समस्या को जन्म दिया है। इसके अलावा, शहरीकरण ने वैयक्तिकता और गोपनीयता पर जोर देकर शहरी लोगों को छोटे परिवार चुनने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार शहरी जीवन संयुक्त परिवार पैटर्न को कमजोर करता है और एकल परिवार पैटर्न को मजबूत करता है। ऐलीन रॉस, एम. एस. गोर, मिल्टन सिंगर द्वारा किए गए अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

3. आधुनिक शिक्षा:

संयुक्त परिवार के विघटन में आधुनिक शिक्षा की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आधुनिक शिक्षा लोगों में व्यक्तिवाद की प्रेरणा देती है। इसके अलावा, ग्रामीण इलाकों में शिक्षित पुरुषों और महिलाओं को उपयुक्त नौकरियों की तलाश में अपने परिवार छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है। नौकरी पाने के बाद वे अंतत: उन क्षेत्रों में बस जाते हैं जो उनके पैतृक घरों से बहुत दूर हैं। यहीं पर 'साझा-छत व्यवस्था' समाप्त होती है। वे धीरे-धीरे अपने पैतृक परिवारों के साथ संबंध तोड़ देते हैं जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार टूट जाता है।[5]

4. महिलाओं का ज्ञानवर्धन:

संयुक्त परिवार के विघटन के लिए महिलाओं का जागरूक होना भी जिम्मेदार है। युवा शिक्षित महिलाएँ, समाज में अपने नए अधिकारों और स्थिति के प्रति पूरी तरह सचेत होने के कारण, अब अपनी सास के प्रति नम्रतापूर्वक समर्पण करने के लिए तैयार नहीं हैं। सास-बहू अपने पारंपरिक दबंग रवैये के कारण युवा पीढ़ी की शिक्षित महिलाओं के साथ खुद को समायोजित करने में विफल रहती हैं। परिणामस्वरूप, झगड़े बढ़ते हैं और संयुक्त परिवार के विघटन में समाप्त होते हैं।

5. पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव:

पश्चिमी संस्कृति ने युवा पुरुषों और महिलाओं में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है जिसके परिणामस्वरूप वे नहीं चाहते कि उनका भाग्य हमेशा के लिए संयुक्त परिवार के साथ बंधा रहे। बी.बी. साहा का मानना है कि पश्चिमी संस्कृति के उपहार के रूप में व्यक्तिवाद ने उनमें अलगाववादी प्रवृत्ति को जन्म दिया है। इसके अलावा, बुद्धिवाद, समानता, स्वतंत्रता आदि जैसे पश्चिमी

मूल्यों से प्रभावित होकर, वे संयुक्त परिवार की कड़ी पकड़ के नीचे विनम्र रहना पसंद नहीं करते हैं। अंतिम परिणाम संयुक्त परिवार व्यवस्था का विघटन है।[6]

6. अधिक जनसंख्या:

ग्रामीण भारत में, कृषि ग्रामीण लोगों का प्रमुख व्यवसाय है। भूमि स्थिर होने के कारण, कृषि उस पर निर्भर लोगों की बढ़ती संख्या को रोजगार प्रदान करने में विफल रहती है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि से मनुष्य और भूमि समीकरण में असंतुलन पैदा होता है। लोग रोजगार की तलाश में कस्बों और शहरों की ओर जाने को मजबूर हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवार का विघटन हो गया।[7]

7. परिवहन एवं संचार के विकसित साधन:

अतीत में, परिवहन और संचार के क्षेत्र में शायद ही कोई सराहनीय विकास हुआ था। अत: गतिशीलता का स्तर निम्न था। लेकिन आज परिवहन और संचार के विकसित साधनों के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर गतिशीलता है। बेहतर रोजगार के अवसरों का लाभ उठाने के लिए लोग विभिन्न स्थानों पर जाते हैं। इससे संयुक्त परिवार टूटने लगते हैं।

8. विवाह व्यवस्था में परिवर्तन:

विवाह प्रणाली में परिवर्तन का संयुक्त परिवार प्रणाली की निरंतरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। देर से उम्र में विवाह करना, साथी के चयन में परिवार के मुखिया की सीमित भूमिका, वैवाहिक मामलों में युवा पुरुषों और महिलाओं द्वारा प्राप्त स्वतंत्रता, अधिकांश लोगों द्वारा विवाह को एक धार्मिक संस्कार के बजाय एक सामाजिक समारोह के रूप में समझना जैसे कारक शामिल हैं। आदि ने संयुक्त परिवार संबंधों को कमजोर कर दिया है।

9. आवास की समस्या:

संयुक्त परिवार व्यवस्था के विघटन में आवास की समस्या का प्रमुख योगदान है। यह समस्या बड़े शहरों और महानगरों में अधिक स्पष्ट है। संयुक्त परिवार के सदस्यों को इच्छा और इच्छा के बावजूद एक साथ रहना बेहद मुश्किल लगता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि आवास की समस्या से लोगों में गोपनीयता की हानि होती है और समायोजन तथा समझ की कमी होती है, जिससे संयुक्त परिवार का स्वस्थ संचालन असंभव हो जाता है।

10. सामाजिक विधान:

भारत में संयुक्त परिवार की संस्था पर विधान का विनाशकारी प्रभाव पड़ा है। 1937 का हिंदू महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम, जिसने पत्नी को संपत्ति में उसके सभी अधिकारों के साथ मृत सहदायिक के जीवित व्यक्तित्व के रूप में मान्यता दी, ने संयुक्त परिवार की संपत्ति के मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में उत्तरजीविता के सिद्धांत को हटा दिया है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 ने महिलाओं को विशिष्ट परिस्थितियों में तलाक लेने की अनुमति दी। इसी प्रकार, 1956 के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम ने महिलाओं को विरासत में समान अधिकार प्रदान करके और उत्तरजीविता के सिद्धांत को पूरी तरह से समाप्त करके हिंदू संयुक्त परिवार संरचना में महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं। भूमि सीमा से संबंधित हालिया कानून ने भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली को अपूरणीय क्षति पहुंचाई है।[8]

इसके अलावा, बीमारी, बुढ़ापा, प्रसव, मृत्यु आदि जैसे संकटों के समय में लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाले कानून के अधिनियमन के साथ, सामाजिक बीमा की एक वास्तविक एजेंसी के रूप में संयुक्त परिवार का महत्व पृष्ठभूमि में चला गया है। सरकार और औद्योगिक प्रबंधन पर व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

संक्षेप में, संयुक्त परिवार प्रणाली जो सामंती कृषि समुदायों की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को पूरा करती थी, औद्योगिक आधुनिकीकरण की कई पीढ़ियों के बाद तेजी से बोझिल और प्रतिबंधात्मक हो गई है। लेकिन इसके पूरी तरह से गायब होने की संभावना नहीं है जब तक कि किसी भी परिवार इकाई में शामिल तीन पीढ़ियां समान रूप से परमाणु प्रणाली में पूर्ण मनोवैज्ञानिक समायोजन से नहीं गुजरती हैं।

हालांकि व्यक्तिगत पहल और गतिशीलता की गुंजाइश निस्संदेह अब भारत में मौजूद है, चीन को छोड़कर, गहराई में समग्र परिवर्तन का कोई उदाहरण नहीं है। भारतीय संदर्भ में वर्तमान स्थिति को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है। संयुक्त परिवार खत्म हो गया है. संयुक्त परिवार जिंदाबाद.

परिवार के विघटन का परिणाम

जैसे-जैसे परिवार बिखरना शुरू होता है, परिवार के विभिन्न सदस्यों को अलग-अलग अनुभव हो सकते हैं। जबकि कुछ लोग स्वतंत्रता की भावना महसूस कर सकते हैं, अन्य लोग अपनेपन की भावना से चूक सकते हैं। कोई कल्पना कर सकता है कि परिवार के वृद्ध सदस्यों के साथ-साथ परिवार के बेरोजगार सदस्य भी विघटन के परिणामस्वरूप सबसे अधिक पीड़ित हो सकते हैं। इसके अलावा, आपात्कालीन स्थिति में मदद करने वाले हाथों की कम संख्या के कारण एकल परिवारों को भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संयुक्त परिवारों का विघटन आजकल प्रचलित हो गया है और इसके कई कारण हो सकते हैं। पारिवारिक व्यवसाय अलग होने के कई कारणों में से एक हो सकता है। इस विघटन के परिणाम का परिवार के विभिन्न सदस्यों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ सकता है।[9]

भारत में संयुक्त हिंदू परिवार व्यवसाय

यहां हम भारत में कुछ संयुक्त हिंदू पारिवारिक व्यवसायों पर प्रकाश डालेंगे जो सफलतापूर्वक चल रहे हैं और दिन-ब-दिन बढ़ रहे हैं। इन उदाहरणों में रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड, टाटा संस प्राइवेट लिमिटेड और हल्दीराम प्राइवेट लिमिटेड शामिल हैं। ये कुछ लोकप्रिय उदाहरण हैं जो हमें यह समझने में मदद कर सकते हैं कि भारत में विभिन्न संयुक्त हिंदू पारिवारिक व्यवसाय कैसे बड़ी सफलता बन गए हैं।[10]

निष्कर्ष

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि परिवार समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक परिवार, चाहे वह एकल परिवार हो या संयुक्त परिवार, के फायदे और नुकसान दोनों हो सकते हैं। आजकल संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण पिछले वर्षों की तुलना में एकल परिवारों की संख्या बहुत अधिक हो गई है। संयुक्त परिवार के विघटन के कई कारण हो सकते हैं।

संदर्भ

1. कैल्डवेल जे.सी., पी.एच.रेड्डी, और कैल्डवेल पैट (1984) "ग्रामीण दक्षिण भारत में पारिवारिक संरचना के निर्धारक।" जर्नल ऑफ मैरिज एंड द फैमिली, 46 (1): 215-229। 1988 जनसांख्यिकीय परिवर्तन के कारण: दक्षिण भारत में प्रायोगिक अनुसंधान, विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय प्रेस, मैडिसन.
2. चक्रवर्ती वी. (1987) ग्रेटर बॉम्बे और ठाणे जिलों के कैदियों के परिवारों की स्थिति, अप्रकाशित पीएच.डी. थीसिस. बॉम्बे: टीआईएसएस,
3. चक्रवर्ती सी. और ए.के. सिंह (1991) भारत में घरेलू संरचनाएँ। भारत की जनगणना. समसामयिक पेपर नंबर 1. सामाजिक अध्ययन प्रभाग, रजिस्ट्रार जनरल का कार्यालय, भारत।
4. कपाड़िया के.एम. 1956 "ग्रामीण परिवार पैटर्न" समाजशास्त्रीय बुलेटिन, 5 (2): 111-126।
5. कोलेंडा पॉलीन (1968) क्षेत्र, जाति और परिवार संरचना: भारतीय संयुक्त परिवार का तुलनात्मक अध्ययन, मिल्टन सिंगर और बर्नार में।
6. कुरियन जी. (1976) "संक्रमण में भारतीय परिवार: कुछ क्षेत्रीय विविधताएँ" जी.आर.गुप्ता (सं.) में, आधुनिक भारत में पारिवारिक और सामाजिक परिवर्तन, नई दिल्ली: विकास.
7. लक्ष्मीनारायण एच.डी. (1982) "संक्रमण में ग्रामीण परिवार" जे.एस.ऑगस्टीन (सं.) में, संक्रमण में भारतीय परिवार, नई दिल्ली: विकास.
8. लिंटन, राल्फ (1952) "आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक और व्यक्तित्व कारक"। अविकसित क्षेत्रों की प्रगति (बर्ट एफ.होसेलिट्ज, संस्करण) शिकागो, शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस।
9. मदन टी.एन. (1965) परिवार और रिश्तेदारी: ग्रामीण कश्मीर के पंडितों का एक अध्ययन, बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस।
10. मंडेलबाम डी.जी. (1959) "भारत में परिवार" आर.एन.अनशेन (सं.) में, परिवार: इसका कार्य और नियति, न्यूयॉर्क: हार्पर.

मंजूर एहतेशाम कृत 'सूखा बरगद' उपन्यास में विभाजन की त्रासदी

डॉ० माजिद पटेल

हिंदी विभाग, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

समकालीन मुस्लिम रचनाकारों में मंजूर एहतेशाम का विशेष स्थान है। उनकी कलम समाज के प्रत्येक समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है। उन्होंने साहित्य के लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। और वर्तमान भारतीय मुस्लिम समाज के मन:स्थिति और अल्पसंख्यक समाज के भीतर डर, असुरक्षा के भाव को एवं भटकाव आदि प्रश्नों के बेहद संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है। साथ ही मुस्लिम समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्ष को उनके साहित्य में वास्तविकता से अंकित किया है।

'सूखा बरगद' यह लेखक का सबसे चर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास भोपाल शहर की पृष्ठभूमि पर मुस्लिम समाज को केंद्र में रखकर लिखा है। यह उपन्यास मुस्लिम समाज की पीड़ा, विभाजन के पश्चात जन्मी सांप्रदायिकता को सामने लाता है। वही धार्मिक कट्टरता, रूढ़ि, प्रथा आदि प्रश्नों को भी उजागर करता है। साथ ही मुस्लिम समाज की दशा एवं दिशा को दर्शाता ने में भी सफलता पायी हैं। लेखक ने इस कृति के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद भारतीय मुस्लिम समाज की जीवन गाथा को प्रस्तुत किया है। लेखक कथाचक्र में लिखते हैं कि "मुस्लिम समाज और उसके परिवेश के बारे में भी तो लिखा जाना जरूरी है, जो मैं लिखू तो जिंदगी का हिस्सा भी होगा"[1]

इस उपन्यास के मुख्य पात्र है अब्दुल वाहिद खाँ, रशीदा, सुहेल और विजय आदि भारतीय समाज एवं उनकी चुनौतियों को, आधुनिक युवा पीढ़ी की सोच आदि महत्वपूर्ण मुद्दों को आपसी संवाद के माध्यम से प्रकाश में लाते हैं। देश विभाजन अपने आप में एक त्रासदी थी और उसका परिणाम देश में अशांति, भय, संदेह, असुरक्षा एवं अविश्वास की मानसिकता ने जन्म लिया था। विभाजन की त्रासदी का वर्णन करते हुए लेखक वहिद खां के इस कथन के माध्यम से अभिव्यक्त करते है कि "जो वह सब नहीं देखा जो मेरी उम्र के लोगों के नसीब में देखना लिखा था। यही हिंदुओं की तादाद और मुसलमान की तादाद का खेल एक बार इस मुल्क को टुकड़ों में बँटवा चुका है, हजारहा लोगों को हालाकात और बर्बादी में डाल चुका है"[2]

विभाजन की मानसिकता ने हिंदू और मुसलमान के बीच अलगाववादी धारणा को पैदा किया। जिस कारण भारतीय जनता में अविश्वास, नफरत एवं संदेह की भावना उत्पन्न हुई थी। उपन्यास के पात्र सुहेल का यह मत भारतीय मुस्लिम समाज में व्याप्त भय को सामने लाता है। वह इस प्रकार से हैं "इस शहर को राजधानी ही इसलिए बनाया गया है कि यहां मुसलमानों का पत्ता साफ हो जाए और असगर साहब क्या गलत कहते है? इसलिए शहर तो राजधानी बनाया गया कि धीरे-धीरे मुसलमान गिनती में कम हो जाए और उनके सिर पर जूते बजाए"[3]

वाहिद खाँ इस उपन्यास एक ऐसे पात्र है जो धर्म में विश्वास नहीं रखते और न ही धार्मिक रूढ़ियों को मानते है। वह केवल मानवता के ही धर्म मानते है। धर्म लेकर उनके विचार इस प्रकार से है "मजहब मेरे लिए क्या महत्व रखता है इसको समझाने के लिए आसमानी किताबों की जरूरत नहीं इंसान का जमीर ही काफी है।"[4] मजहब को लेकर वह अन्य लोगों से भीन्न सोच रखते है। यह कथन से स्पष्ट होता है कि "मजहब पता नहीं अभी मैं तुम्हें अपनी बात पूरी तरह समझा भी पाऊंगा या नहीं- मजहब इनके लिए एक खास रब की इबादत करना या एक खास तरह से जिंदा रहना ही नहीं सबसे पहले तो एक धंधा है। बिल्कुल जैसा ही समझ लो जैसे जूते बेचना"[5]

वहिद खाँ का यह मानना है कि धर्म, मजहब नामी ठेकेदारों ने इंसान को इंसान नहीं रहने दिया वह तो हिंदू या मुसलमान में विश्वास रखते है। मजहब को लेकर अपनी संकुचित सोच को बदलने की आवश्यकता है। पात्र वहिद खाँ ने अपने को धर्म जैसे ढोंकसालों से मुक्त रखा है। वहिद खां यह मानते है "मेरी नजर में जमीन पर सबसे बड़ा फितना यह धर्म या मजहब का है- बावजूद इसके कि मजहबी लोगों से मिलकर कभी-कभी अच्छा लगता है।"[6]

स्वार्थी राजनीति ने समाज को हमेशा बाँटने का काम किया हैं। राजनेता हमेशा से ही धर्म और मजहब का केवल स्वार्थ हेतु ही उपयोग करते आ रहे है। मजहब की ताकत और सच्चाई हमें जोड़ने के लिए है न कि बांटने के लिए परंतु समाज में हर कोई इसे अपने हिसाब से उपयोग में लाना चाहता है। जैसे इस उपन्यास का पात्र रज्जब अली एक स्वार्थी राजनेता है। वह मजहब के नाम पर लोगों में डर भय एवं विषमता लाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि "मजहब एक मजबूरी नहीं आसानी है, जिसको वह अच्छी तरह जानता है कि- कौन किस तस्तीब और हिसाब में बड़ा है"[7] राजनेता मजहब को एक धंधा मानते है इससे लाभ उठाते हैं। इसका सत्यचित्र लेखक के इस प्रकार से किया है "मजहब इनके लिए खास रब की इबादत करना या एक खास तरह से जिंदा रहना ही नहीं, सबसे पहले तो एक धंधा है।"[8] धर्म एवं मजहब का उपयोग कर राजनेता स्वार्थ की रोटियां सेकते हैं। इस सच्चाई को लेखक ने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

विभाजन के पश्चात मुस्लिम समाज की ओर देखने का नजरिया ही बदल गया था। सांप्रदायिक वैमनस्यता भारतीय समाज में फैलने लगी थी। हिंदू-मुस्लिम में द्वेष की भावना चरम थी। यही कारण था कि समाज में हिंदू और मुसलमान एक दूसरे को शंका की नजर से देख रहे थे। सुहेल कहता है कि- "हमें कनखियों से देखते हैं और हमारे आते ही बात का टॉपिक बदल देते हैं- जैसे कोई उनकी अपनी राज की बात हो और हमारे जान लेने से बहुत बड़ा नुकसान हो जाएगा! हम जासुस हैं न पाकिस्तान के!"[9] देश में बढ़ती सांप्रदायिकता के कारण मुस्लिम समाज के मन में भय निर्माण होने लगा था। उपन्यास का पात्र सुहेल के मन में असुरक्षा की भावना निर्मित होने के कारण वह कहता है "यही कि यह इंडिया है यहाँ का एक सेकिन्ड क्लास सिटीजन! मैं चाहे जो भी सोचूँ, जो भी करू, मुसलमान होने के नाते एक हिन्दू की बराबरी कभी नहीं कर सकता!"[10]

विभाजन के कारण देश का नुकसान ही हुआ था। इसका चित्रण लेखक ने इस उपन्यास में आत्मीयता के साथ किया है। "सबसे बड़ी चौकाने वाली बात तो दिमाग में ताजा हुई यह थी कि इस विभाजन की कीमत देश ने दस लाख इंसानी जानों से अदा की थी विभाजन रेखा के इस और लगभग पाच लाख लोग मारे गए थे और कोई इतनी ही उस और"[11] इस विभाजन के परिणाम स्वरूप ही समाज में पनपने वाली अलगाववादी धारणा ने इस देश के ढांचे को ही बदल दिया था। विभाजन का परिणाम दोनों ही देशों को और संप्रदाय को भुगतने पड़े थे। इन सारी विषमता के बावजूद भी लेखक को यह विश्वास है कि यह आपसी नफरत, अविश्वास, संदेह आदि समस्याओं से एक दिन समाज मुक्त होगा। उपन्यास के पात्र अब्दुल वाहिद खां के इस कथन से लेखक अपना मत व्यक्त करते है कि "तुम लोग बेहतर जमाना देखोगे यह आपसी नफरत का खेल ज्यादा दिनों तक चलने वाला नहीं है। तहजीब एक अलग चीज है लेकिन इस मजहब नामी मिट्टी में अब नए पौधें की जडें पकड़ने की ताकत नहीं रही। तहजीब अपनी जगह है लेकिन यह भी कोई हमेशा-हमेशा एक जैसी रहनेवाली चीज नहीं, जमाने के साथ-साथ यह भी बदलती है। आज लखनऊ का हिंदू आप या मुझसे ज्यादा बेहतर उर्दू बोलता है"[12] लेखक का यह आशावादी दृष्टिकोण है कि भविष्य में समाज में एकता कायम होगी।

साथ ही इस देश की मीडिया को भी देश के विकास में अपना योगदान देने का आह्वान लेखक करते है। वे कहते हैं कि "किसी भी मुल्क को बनाने या बिगाड में सबसे बड़ा हाथ यहां की ज्युडिशरी और जर्नलिस्ट का होता है।"[13]

इसी कारण वाहिद खाँ अपनी संतान को जर्नलिस्ट बनाना चाहते है। वे रशीदा से कहते हैं कि "मैं आगे पढ़ू और जैसा कि कहती रही हूँ, भविष्य में जर्नलिज्म को अपना करियर बनाऊं।"[14] ताकि वह देश में होने वाले भ्रष्टाचार जैसे गलत कार्य को रोक कर देश के विकास की सही दिशा में लाने का महत्वपूर्ण कार्य कर सकें। साथ ही लेखक ने मीडिया की भूमिका पर भी सवाल खड़ा किया है। वे कहते हैं कि "अगर प्रेस अपनी जवाबदारी ले और कानून अपना फर्ज ईमानदारी से निभाएं, तो देखें यह गूंडे क्या करते हैं। और खैर, कानून तो फिर भी बड़े दांव-पेच की चीज है, इस मुल्क में अगर अच्छे जर्नलिस्ट ही हो तो आधे से ज्यादा मुश्किले हल हो जाए।"[15]

अशिक्षा मुस्लिम समाज की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से शिक्षा समस्या को भी सामने लाया है। इस उपन्यास का पात्र अब्दुल वाहिद खां मुस्लिम समाज की शिक्षा की बिकट स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि "किसी

मध्यमवर्गीय परिवार के लिए शिक्षा पाना संभव नहीं था रियासत में तो कोई कॉलेज नहीं था इसीलिए आगे की शिक्षा के लिए घर से बाहर जाना जरूरी था। शाही खानदान और जमींदारों के लिए तो अपनी औलादों को अलीगढ़ या किसी दूसरी जगह भेजना कोई समस्या नहीं थी लेकिन एक सीमित आमदनी वाले परिवार के लिए ऐसा कर पाना संभव नहीं था"[16]

उपरोक्त कथन के माध्यम से लेखक ने मध्यम वर्गीय मुस्लिम समाज के शिक्षा ले लिये किये गए संघर्ष को सामने लाया है। जैसे अब्दुल वाहिद खां को शिक्षा पाने के लिए कई संघर्ष करना पड़ता है। वह कहते हैं कि "अब्बा के चचाजाद भाई, अब्दुल रशीद खाँ अपनी तमाम तंग-हाली और गरीबी के बाद भी मुझसे बहुत पहले, जाने कितने जतन और मेहनत के बाद, वकालत सीखी थी।"[17] इस प्रकार का शिक्षा का संघर्ष आज भी मुस्लिम युवक में दिखाई देता है।

मुस्लिम समाज की गरीबी यह अत्यंत ज्वलंत प्रश्न है। इस समस्या का वर्णन लेखक ने इस उपन्यास में किया है। लेखक मुस्लिम की समाज गरीबी को रशीदा के इस कथन के माध्यम से दर्शाते है "यह अंदाजा तो बहुत जल्द ही हो गया था कि अबू की आमदानी ज्यादा नहीं है और वह हमारी मनमानी नहीं कर सकते घर खर्च के अलावा हमारी स्कूल की फीस उनके लिए कोई एक छोटी मुद्रा नहीं थी जिसे वह जब-तब बड़ी आसानी से अपनी जेब से निकाल सकें।"[18]

लेखक ने मुस्लिम समाज के जीवन संघर्ष को इस उपन्यास में अंकित किया है। साथ ही मुस्लिम समाज में पनपने वाले अंधविश्वास को भी सामने लाया है। लेखक ने मुस्लिम समाज में व्याप्त रूढी परंपरा का चित्रण वास्तविकता से किया है। मुस्लिम समाज में यह धारणा है कि तस्वीर (फोटो) खिंचवाना गलत माना जाता है। फोटो को लेकर समाज में व्याप्त धार्मिक रूढ़ी इस प्रकार से है। इस उपन्यास की पात्र फफू के इस कथन से सामने लाया है "यह सब गुनाहगार है चाहे तस्वीर बनाए खिंचवाई इनको जहन्नुम है।"[19] तस्वीर को लेकर संपूर्ण मुस्लिम समाज में यह धारणा पनप रही है। फफू मानती है "जो मरदुत तस्वीरे बनावाएगा" वह सहमानेवाले अंदाज में कहती- "उसे कयामत के दिन उस तस्वीरों में जान डालना पड़ेगी।"[20] लेखक ने मुस्लिम समाज में व्याप्त अंधविश्वास उनके पिछड़ेपन का प्रमुख कारण माना है।

अन्तर्जातिय विवाह को लगभग समाज के सभी धर्म नकारते हैं। भले ही सभी धर्म एक मत से कह दे कि अन्तर्जातीय विवाह समाज में होने चाहिए परंतु समाज में कोई भी मां-बाप अथवा परिवार अपने लड़के-लड़की का विवाह अन्य धर्म के साथ करने में हमेशा विरोध करते हैं। इसका सजीव चित्रण इस उपन्यास में लेखक ने विजय और सुहेल के बीच संवाद के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कि "मुझे बताओ है कोई मुसलमान मां-बाप जो अपनी बेटी का हाथ हंसी-खुशी किसी हिंदू लड़के को थमा दे? घर बैठे-बैठे उनका बूढ़ा होना, बिना ब्याहे मरजाना कबूल कर लेंगे मगर यह नहीं"[21] उपन्यास की पात्र रशीदा और विजय एक दूसरे से प्रेम करते हैं। वह विवाह भी करना चाहते हैं परंतु सामाजिक बंधनों को तोड़ने का साहस वह जुटा नहीं पाते इस कारण वह अपने प्रेम अधूरा ही रह जाता है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि मंजूर एहतेशाम ने 'सूखा बरगद' इस उपन्यास के माध्यम से देश विभाजन के पश्चात भारतीय समाज का वास्तविक चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। भारत विभाजन के दुष्परिणाम दोनों ही संप्रदाय को भोगने पड़े थे। देश विभाजन के पश्चात ही समाज में सांप्रदायिकता की अमिट लकीर खींची गई थी। समाज में द्वेष की भावना, असुरक्षा, आदि प्रश्नों को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया हैं। मुस्लिम समाज में व्याप्त रूढ़ी-परंपरा, अंधविश्वास, अशिक्षा, गरीबी के कारण उनके पिछड़ेपन आदि प्रमुख समस्याओं को भी अंकित किया है। साथ ही मुस्लिम समाज की वास्तविक दशा से सही दिशा दर्शाने का महत्वपूर्ण कार्य मंजूर एहतेशाम ने इस उपन्यास के माध्यम से किया है।

संदर्भः

1 कथा चक्र, अक्टूबर दिसंबर, 2005 पुस्तक क्रमांक 8
2 सूखा बरगद, मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 60 61
3 वही, पृ.56
4 वही, पृ.66
5 वही, पृ.60
6 वही, पृ.137

7 वही, पृ.138
8 वही, पृ.60
9 वही, पृ.81
10 वही, पृ.121
11 वही, पृ.143
12 वही, पृ.71
13 वही, पृ.95
14 वही, पृ.95
15 वही, पृ.96
16 वही, पृ.66
17 वही, पृ.66
18 वही, पृ.50
19 वही, पृ.17
20 वही, पृ.18
21 वही, पृ.122

"किशोरों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर प्रभाव का अध्ययन करना"

श्री मुकेश खुटले

सहायक प्राध्यापक, सांदीपनी एकेडमी, पेन्ड्री (मस्तूरी), जिला- बिलासपुर (छ0ग0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के किशोरों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर प्रभाव का अध्ययन को जानने के लिए किया गया है। शोध हेतु छतीसगढ़ राज्य के मुंगेली जिले से 100 विद्यार्थिओं (50 बालक 50 बालिका) का चयन यादृच्छिक (रेडम) प्रतिदर्श विधि द्वारा किया गया। विद्यार्थियों से आंकड़ों के संग्रह हेतु श्री डी०एन० संसनवाल द्वारा समय प्रबंधन क्षमता मापनी एवं श्री एस. के. बावा और श्रीमती सुमनप्रीत कौर द्वारा निर्मित जीवन शैली मापनी का उपयोग किया गया। उपकरण से प्राप्त आंकड़ो के विश्लेषण हेतु t- Test का प्रयोग किया गया। अध्ययन में यह पाया गया कि किशोरों के समय प्रबंधन क्षमता व उनके जीवन शैली का आपस में धनात्मक सहसंबंध पाया गया साथ ही यह भी पता चला कि किशोरवस्था में विधार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता का उसके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि किशोरों में जीवन शैली की अपेक्षा समय प्रबंधन क्षमता का अधिक प्रभाव पाया गया।

मुख्य शब्द:- किशोर, समय प्रबंधन क्षमता, जीवन शैली।

प्रस्तावना:- किशोरावस्था शब्द अंग्रेजी भाषा के Adolescence शब्द का हिन्दी पर्याय है। Adolescence शब्द का उद्‌भव लैटिन भाषा से माना गया है जिसका सामान्य अर्थ है बढ़ाना या विकसित होना बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक के महत्वपूर्ण परिवर्तनो जैसे शारीरिक मानसिक एवं अल्प बौधिक परिवर्तनों की अवस्था किशोरावस्था है।

मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। किशोरावस्था व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय होता है। किशोरावस्था मनुष्य के जीवन का वसंतकाल माना गया है। यह काल 12 से 19 वर्ष तक रहता है यह काल भी सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों के विकास का समय है।

"किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव तथा विरोध की अवस्था है।"

- स्टेनले हॉल

यह अवस्था युवावस्था अथवा परिपक्वावस्था तक रहता है यह संतत् प्रक्रिया है। इसे बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के मध्य का संधि काल कहते है। इस अवस्था की विडम्बना होती हैं बालक स्वयं को बड़ा समझता है और बड़े उसे छोटा समझते है। किशोरावस्था, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का परिवर्तन काल है। मानव विकास की सबसे विचित्र एवं जटिल अवस्था किशोरावस्था है। इस काल में होने वाले परिवर्तन का बालक के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। अत: शिक्षा के क्षेत्र में किशोरावस्था विशेष महत्व है।

"इस बात पर कोई मतभेद नही हो सकता है कि किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन काल है।"

- ई०ए० (किलपैट्रिक)

स्पष्ट है कि वास्तव में किशोरावस्था मानव जीवन के विकास का सबसे कठिन उथल-पुथल व समस्याओं से भरा काल है इस काल में किशोरों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किशोर बालक का बौद्धिक विकास पर्याप्त होता है उसकी चिंतन शक्ति अच्छी होती है। इसके कारण उसे पर्याप्त बौद्धिक कार्य देना आवश्यक होता है। किशोर बालक में, अभिनय करने, भाषण देने तथा लेख लिखने की सहज रुचि होती है। किशोर बालक का सामाजिक भावना प्रबल होता है। वह समाज में सम्मानित रहकर ही जीना चाहता है।

जार्सिल्ड के अनुसार- "किशोरावस्था वह अवस्था है, जिससे मनुष्य बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर बढ़ता है।"

समय प्रबंधनः- समय प्रबंधन का मतलब है अपने विभिन्न क्रियाकलापों को समय सापेक्ष होकर योजना अनुसार क्रमबद्ध तरीके से सुव्यवस्थित करना योजनाबद एवं सुव्यवस्थित तरीको से कार्य करने से जहाँ हमारी दक्षता बढ़ती है वहीं कार्य को सम्पन्न करने का तनाव भी कम होता है।

'Live as if you were to die tommorw, learn as if you were to live forever.'

-Mahatma Gandhi

समय प्रबंधन का तात्पर्य समय के कुशलतापूर्वक प्रयोग से है ताकि इसका सबसे ज्यादा फायदा हो सके। यह जितना आसान लगता है उतना ही इस तकनीक का पालन करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जो समय का प्रबंधन कैसे किया जाता है यह सीख गया तो वह जीवन में लगभग सबकुछ हासिल कर सकता है। ऐसा कहा जाता है कि सफलता की दिशा में पहला कदमे कुशल समय प्रबंधन है। जो अपने समय की ठीठ से व्यवस्था नही कर सकता है वह हर चीज में विफल हो जाता है, कुशल समय प्रबंधन आपकी उत्पादकता बढाता है, काम की गुणवत्ता सुधारता है और तनाव कम करने में भी मदद करता है।

"समय आपके जीवन का सबसे अनमोल है। आप और आप ही तय करेगे कि उस सिक्के की कीमत कितनी होगी। सावधान रहे कि आप अन्य लोगों के लिए इसका उपयोग न करे।"

-जॉन ड्राइडन

कैम्ब्रिज डिक्शनरी के अनुसारः- आपके पास जो समय उपलब्ध है वह उसके उपयोगी और प्रभावशाली तरीकों से उपयोग करने के अभ्यास के अनुसार विशेष रूप से अपने काम में।"

जीवन शैलीः- जीवन शैली एक व्यक्ति, समूह या संस्कृति की रुचियाँ, विचार, व्यवहार और व्यवहारिक उसके रहन-सहन को जीवन शैली कहते हैं। समुदाय, परिवार और समाज के रहने का एक तरीका जो वे अपने शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक माहौल के साथ दिन-प्रतिदिन के आधार पर सामना करते है। जीवन शैली में हमारी प्रेरणाएँ, आवश्यकताएँ चाहतो का एक संयोजन होता है और संस्कृति, परिवार, समन्वय और सामाजिक वर्ग जैसे जीव जीवन से प्रभावित होता है हर एक मानव की अपनी एक जीवन शैली होती है। किसी के जीवन जीने की वह शैली या ढंग जो व्यवहार आदि में दृष्टिगत होता है संयमी बनने के लिए आपको अपने जीवन शैली में परिवर्तन करना होगा।

'It your life is worth thinking about, it is worth writing about'

-Robin S. Sharma

अध्ययन के उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में स्वतंत्र चर के आधार पर दो उद्देश्य बनाए गये है जो निम्न प्रकार से हैं-

1. किशोरों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. किशोरावस्था में विद्यार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाः- प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्य के आधार पर दो परिकल्पनाएँ बनाये गये है जो निम्न प्रकार से है-

Ho_1 किशोरों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जायेगा।

Ho_2 किशोरावस्था में विद्यार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव नही पाया जायेगा।

अध्ययन हेतु विधि एवं उपकरणः-

न्यायदर्शः-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यायदर्श के रूप में छत्तीसगढ़ राज्य के मुंगेली के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के 10 वीं के 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। यह चयन यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि द्वारा किया गया है।

उपकरण:-

आँकड़ों के संग्रह हेतु श्री डी० एन० संसनवाल द्वारा समय प्रबंधन क्षमता मापनी श्री० एस० के० बावा एवं श्रीमती सुमन प्रीत कौर द्वारा विकसित जीवन शैली मापनी का प्रयोग किया गया।

श्री. डी. एन. संसनवाल द्वारा निर्मित मापनी में कुल 36 कथन है। जिसमे योजना प्रबंधन, नेतृत्व तथा मूल्यांकन संबंधित प्रश्न है। कुल 36 प्रश्नों में से 18 प्रश्न धनात्मक एवं 18 प्रश्न ऋणात्मक है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर हमेशा अधिकतर, कभी-कभी, बहुत कम तथा कभी नहीं में देना है दी गई प्रतिक्रियाओं को क्रमशः धनात्मक - 5, 4, 3, 2, 1 व ऋणात्मक - 1, 2, 3, 4, 5 अंक दे कर जोड़ का स्कोर तैयार किया गया।

श्री. एस.के. बावा एवं श्रीमती सुमनप्रीत कौर द्वारा निर्मित जीवन शैली मापनी में कुल 60 प्रश्न है, जिसमें स्वास्थ, शैक्षणिक, भविष्य, सामाजिक, वेशभूषा एवं पारिवारिक जीवन शैली से संबंधित कथन है। कुल 60 कथनों में से 43 प्रश्न धनात्मक तथा 17 कथन ऋणात्मक है। प्रत्येक कथन पर अपनी प्रतिक्रिया पाँच बिन्दु मापनी यथा। पूर्णतः सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत तथा पूर्णतः असहमत में देना। दी गई प्रतिक्रियोगों को क्रमशः धनात्मक- 4,3,2,1,0 एवं ऋणात्मक- 0,1,2,3,4 अंक देकर जोड़ का स्कोर तैयार किया गया, जिसे आंकड़ों के रूप में प्रयोग किया जाएगा।

सांख्यिकीयः- उपकरणों से प्राप्त आंकड़ो के विश्लेषण हेतु Mean- मध्यमान, प्रमाणिक विचलन (Standard Daviation), सह-संबंध परीक्षण (Correlation Test), परिकल्पनाओं की सार्थकता की जांच के लिए t - test का प्रयोग किया गया।

अध्ययन का परिणामः-

प्रस्तुत अध्ययन में 2 परिकल्पनाएं है। प्रस्तुत आंकड़ो के विश्लेषण के आधार पर प्रत्येक परिकल्पना का परीक्षण कर परिणाम प्राप्त किया गया।

परिकल्पना क्रमांक H_{01}

''किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर कोई सार्थक सहसंबंध नही पाया जायेगा।"

तालिका क्र. 01

समय प्रबंधन क्षमता	जीवन भौली	
न्यादर्श N	न्यादर्श N	सहसंबंध गुणांक r
50	50	0.458

R का सारणी मान df =98 पर 0.05 स्तर एवं 0.01 स्तर पर क्रमशः 0.195 एवं 0.254 है।

परिणाम-

किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर सार्थक सहसंबंध पाया गया।

व्याख्या-

तालिका क्र.01 से स्पष्ट है कि किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता एवं उनके जीवन शैली पर सहसंबंध ज्ञात किया गया सहसंबंध गुणांक का मान R = 0.458 प्राप्त हुआ जो समय प्रबंधन क्षमता का प्रभाव उनके जीवन शैली पर धनात्मक सहसंबंध को प्रदर्शित करता है अतः किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता एवं जीवन शैली पर सार्थक सहसंबंध है अतः परिकल्पना क्रमांक H_{01} स्वीकृत होती है।

परिकल्पना क्रमांक H_{02}

''किशोरावस्था में विद्यार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव नही पाया जायेगा।''

तालिका क्र. 02

समय प्रबंधन क्षमता			जीवन भौली					
न्यादर्श N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन σ	न्यादर्श N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन σ	स्वतंत्रता का अंश df	टी–मान t	सार्थकता
50	152.34	15.18	50	147.08	10.71	98	2.00	

सारणी मान df=98 के लिए 0.05 स्तर पर 1.98 एवं 0.01 स्तर पर 2.63 है।

परिणाम– किशोरावस्था में विद्यार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता का उसके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

व्याख्या– तालिका क्र. 02 से स्पष्ट है कि किशोरावस्था में विद्यार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता एवं उसके जीवन शैली के प्राप्तांको के मध्यमान क्रमशः 152.34 एवं 147.08 है। समान्तर माध्य क्रमशः 15.18 एवं 10.71 है, और इन दोनो का t मान 2. 00 प्राप्त हुआ।

सारणी के अनुसार 0.01 से प्राप्त मान अधिक है, एवं 0.05 से प्राप्त मान कम है। अतः परिकल्पना क्रमांक H_{02} अस्वीकृत होती है।

निष्कर्षः–

परिकल्पना क्रमांक H_{01}: किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर कोई सार्थक सहसंबंध नही पाया जायेगा।

प्रस्तुत शोध अध्ययन विद्यालय के किशोरों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए किया गया है अध्ययन के स्वरूप को आकार देते हुए। किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता एवं जीवन शैली के मध्य सहसंबंध की गणना के लिए गुणक घात विधि का प्रयोग किया गया है तथा सहसंबंध गुणांक का मान R = 0.458 प्राप्त हुआ है जो समय प्रबंधन क्षमता और जीवन शैली के मध्य धनात्मक सहसंबंध को प्रदर्शित करता है अतः विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता और जीवन शैली के मध्य सार्थक सहसंबंध है अतः परिकल्पना क्रमांक H_{01} स्वीकृत होती है।

परिकल्पना क्रमांक H_{02}: किशोरावस्था में विद्यार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव नही पाया जायेगा।

किशोरावस्था में विद्यार्थिओं के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली मापनी से प्राप्त प्रदत्तों के वर्गीकरण एवं गणना के पश्चात् m1= 152.34 तथा m2= 147.08 क्रमशः प्राप्त हुआ तथा इनके प्रमाणिक विचलन σ 1=15.18 तथा σ 2=10.71 है, मध्यमानो के सार्थकता की जांच के लिए ज का मान 2.00, df= 98 है, जो की 0.01 सार्थक स्तर पर t=2.63 से अधिक है एवं 0.05 से प्राप्त मान कम है।

अतः स्पष्ट है कि बालक–बालिकाओं के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव है उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि बालक–बालिकाओं के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव पड़ता है अतः परिकल्पना क्रमांक H_{02} अस्वीकृत होती है।

विवेचना–

परिकल्पना क्रमांक H_{01}: किशोरो के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर कोई सार्थक सहसंबंध नही पाया जायेगा।

समय प्रबंधन क्षमता और जीवन शैली के मध्य सहसंबंध अनापेक्षिक है किंतु सबंध यह दर्शाता है कि समय प्रबंधन क्षमता और जीवन शैली एक दूसरे के प्रभाव से स्वतंत्र है अत: इस परिणाम कें कारणो का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि बालक-बालिका समय प्रबंधन क्षमता के बगैर भी अपने आपको जीवन शैली में कर लेता है जीवन शैली एवं समय प्रबंधन क्षमता मापनी स्वयं स्वतंत्र चर के रूप में कार्य कर रहे है।

परिकल्पना क्रमांक H_{02}: किशोरावस्था में विद्यार्थियों के समय प्रबंधन क्षमता का उनके जीवन शैली पर सार्थक प्रभाव नही पाया जायेगा।

उपरोक्त परिकल्पनाओं के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर यह पाया गया की विद्यार्थिओं के समय प्रबंधन क्षमता का प्रभाव जीवन शैली पर पड़ता है, समय प्रबंधन क्षमता एवं जीवन शैली के सार्थक प्रभाव है किंतु यह दर्शाता है कि समय प्रबंधन क्षमता एवं जीवन शैली एक दूसरे के प्रभाव से स्वतंत्र है इस परिणाम के कारणो का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि समय प्रबंधन क्षमता मूल्यांकन के वर्तमान संदर्भो में बहुधा स्मृति से संबंधित है अत: जीवन शेली और समय प्रबंधन क्षमता एक व्यवस्था है जो विद्यार्थी समयानुकूल समय को व्यवस्थित कर लेता है उनमें जीवन शैली की क्षमता ज्यादा होती है। अपेक्षाकृत जो समय को व्यवस्थित नही कर पाते उन्हे उनके जीवन शैली में कुछ कठिनाईया हो सकती है।

संदर्भ सूची (References)

1. अग्रवाल श्रीमती नीतु- बरौलिया डॉ. ए.दुबे, श्री कृष्ण मंगल, डॉ अंशु शैक्षिक अनुसंधान की विधिया,समंक विश्लेषण एवं शैक्षिक सांख्यिकी
2. शुक्ला विनोद कुमार (1991)- किशोरावस्था में शैक्षिक समायोजन का शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन (लघुशोध प्रबंध) गुरूघासीदास विश्वविद्यालय
3. चतुर्वेदी श्रीमती गायत्री (2008)- शैक्षिक समस्याओ के संदर्भ में किशोरो के समायोजन स्तर का अध्ययन लघुशोध प्रबंध गुरूघासीदास विश्वविद्यालय
4. लाल, रमन बिहारी (2009)- शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारंभिक सांख्यिकी, आर. लाल, बुक डिपो, मेरठ
5. भटनागर, सुरेश (2010)- शिक्षा मनोविज्ञान, आर.लाल, बुक डिपो, मेरठ
6. कांत, रामकुमार (2011)- किशोरो के समय प्रबंधन दक्षता का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन लघुशोध प्रबंध एम.एड. गुरूघासीदास विश्वविद्यालय छ0ग0
7. शर्मा डॉ.आर.ए. (2011)- शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया आर.लाल, बुक डिपो, मेरठ
8. पाठक,पी.डी. (2014)- शिक्षा मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन
9. Manual TMC- Time Management competency scaleD.N. Sansanwal (Indore)National psychological corporation 4/230, kacheri ghat, agra
10. Manual LSS- Life style secale S.k.bawa (Punjab) National psychological corporation bhargava bhawan, 4/230, kacheri ghat, agra
11. www.time management quotes.com
12. www.life style quotes.com

''बिलासपुर जिले के शासकीय हायर सेकेण्डरी स्कूलों के सामान्य एवं अनुसुचित जनजाति के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ मे तुलनात्मक अध्ययन''

डॉ० रीता सिंह

प्राचार्य, सांदीपनी एकेडमी (मस्तूरी), बिलासपुर- छ.ग.

सारांश

शिक्षा में मनोविज्ञान के विकास के फलस्वरूप ही शिक्षा के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का उद्‌भव हुआ। मनोवैज्ञानिक प्रगति ने शिक्षा को बाल केन्द्रित बनाने के साथ साथ शैक्षिक समस्याओं का समाधान खोजने में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का अत्यधिक प्रयोग करने का प्रयास किया। मनोविज्ञान ने बालकों की प्रकृति को समझने में सहायता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप माता-पिता, अध्यापकगण तथा प्रशासकतंत्र सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सरल, सुगम तथा प्रभावशाली बनाने में सफल होते है। शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के ज्ञान के बढ़ते प्रयोग के फलस्वरूप शिक्षा प्रक्रिया में संलग्न व्यक्तियों के लिये मनोविज्ञान के तथ्यों, सिद्धांतो तथा अनुप्रयोगों का अध्ययन करना अपरिहार्य हो गया है। शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता ने शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षा के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

Keywords- अनुसुचित जनजाति, आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि।

प्रस्तावना-

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा मनोविज्ञान का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। शिक्षार्थी, शिक्षक एवं शिक्षा व्यवस्था तीनों ही दृष्टि से शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व एवं उपयोगिता असंदिग्ध है। व्यक्तित्व की भिन्नताओं को समझने में बालकों की रूचि, उपलब्धि, अभिव्यक्ति, अभिक्षमता के विकास में शिक्षा मनोविज्ञान का बहुत महत्व है।

शिक्षा, कौशल को धारण किये हुए है जो कि समन्वित रूप से शेष अन्य लोगों से कहीं न कहीं अलग है। जब इन शीलगुणों और कौशलों को उपयुक्त अवसर तथा वातावरण प्राप्त होता है तभी व्यक्ति का विकास उसकी क्षमता के अनुसार हो पाता है अन्यथा नहीं। इसके लिये शिक्षा प्राप्त करना अत्यावश्यक है। मनोवैज्ञानिक विकास एवं अनुसंधानों ने शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित किया है। मनोविज्ञान ने व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों और सामाजिक वातावरण को समझने में सहयोग दिया जिससे शिक्षा और मनोविज्ञान में बाह्य संबंध स्थापित हुआ।

अध्ययन का औचित्य-

प्रत्येक बालक अर्न्तनिहित शक्तियों एवं ज्ञान से युक्त होता है परन्तु उनकी मानसिक बौद्धिक क्षमताएं भिन्न-भिन्न होती हैं जो उनकी शैक्षिक उपलब्धि व आकांक्षा स्तर को प्रभावित करती हैं। इसके साथ ही बालक की शैक्षिक उपलब्धि व आकांक्षा स्तर पर

उनके जातिभेद व क्षेत्रभेद का भी प्रभाव पड़ता है। डिसूजा (1980), मेहता व माथुर (1985) के अनुसार विद्यार्थियों के सामाजिक, आर्थिक स्तर का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है। के.एस. राजपूत (1992) के अनुसार माता-पिता का शैक्षिक स्तर बालक शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करता है। तारा (1980), शर्मा (1990), कौर (1992) ने अपने शोध निष्कर्षों में पाया कि विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर को उनका लिंग व गृह वातावरण प्रभावित करता है।

उपरोक्त शोध अध्ययन पारिवारिक वातावरण, शालेय वातावरण, सामाजिक, आर्थिक स्तर, सामान्य व अनुसूचित जाति वर्ग के विद्यार्थियों से संबंधित अध्ययन है परन्तु बहुत कम कार्य माध्यमिक स्तर के सामान्य व अनुसूचित जनजाति वर्ग के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर, शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों से संबंधित है।

समस्या कथन-

''बिलासपुर जिले के शासकीय हायर सेकेण्डरी स्कूलों के सामान्य एवं अनुसुचित जनजाति के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ मे तुलनात्मक अध्ययन।"

प्रयुक्त पदों की परिभाषाएं-

हायर सेकेण्डरी स्कूल-

हायर सेकेण्डरी स्कूल में 11-12 वीं कक्षा तक के विद्यार्थियों को हायर सेकेण्डरी स्कूल माना गया है।

सामान्य जाति-

प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय संविधान के अनुसार ''वह वर्ग जो आरक्षित वर्ग में नही आते है सामान्य जाति के अन्तर्गत लिया गया हैं।

अनुसूचित जनजाति-

प्रस्तुत अध्ययन में आदिवासी, गिरिजन, वनवासी यथा उरांव, कवंर, गौड जिनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति निम्न है। ऐसे समूह के विद्यार्थियों को अनुसूचित जन जाति के विद्यार्थी माना गया हैं।

आकांक्षा स्तर-

प्रस्तुत अध्ययन में आकांक्षा स्तर से आशय डॉ. व्ही, पी, शर्मा एवं अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित आकांक्षा स्तर मापनी को प्रशासित करने से प्राप्त प्राप्तांको से हैं।

शैक्षिक उपलब्धि-

शैक्षिक उपलब्धि विद्यालय एवं महाविद्यालयों की परीक्षाओं से संदर्भित होता है। परीक्षाओं के अंतिम में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त कुल अंक जो कि महाविद्यालयों के द्वारा अभिलेख के रूप में रखा जाता है व जिसके माध्यम से शैक्षणिक उपलब्धियों में विद्यालय एवं महाविद्यालयों द्वारा चिंतन किया जाता हैं।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. हायर सेकण्डरी स्कूल के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर पर उनकी क्षेत्र भेद के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. हायर सेकण्डरी स्कूल के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर उनकी क्षेत्र भेद के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. हायर सेकण्डरी स्कूल के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं आकांक्षा स्तर पर उनके लिंग भेद के प्रभाव का अध्ययन करना।
4. हायर सेकण्डरी स्कूल के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा आकांक्षा स्तर के बीच सहसम्बंध का अध्ययन करना।

शोध विधि-

प्रस्तुत अध्ययन एक सर्वेक्षणात्मक अध्ययन हैं। जिसमें माध्यमिक स्तर पर सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं आकांक्षा स्तर का मापन कर अध्ययन किया गया है। इसमें चार मुख्य व्यवस्थाओं का पालन किया गया हैं-

1. शोध प्रश्न एवं उद्देश्यों का निर्धारण करना - इनका प्रारूप प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष समस्याओं से संबंधित हैं। अप्रत्यक्ष प्राथमिक रूप से शोध निर्देशित करते हैं। बहुत से शोध प्रश्न कार्य स्थल से उभरे हैं। प्रदत्तों के संकलन के पश्चात् शोध प्रश्नों के आधार पर परिकलन किया गया, ताकि क्षेत्र की वास्तविकता को उजागर किया जा सके।
2. विभिन्न स्रोतो से प्रदत्त संकंलन के पश्चात् व्यवहारगत एवं अन्य विधियों के उपयोग से समस्याओं का विश्लेषण, निष्कर्षो का संश्लेषण एवं प्रदत्तों का सामान्यीकरण किया गया।
3. शोध की व्यवस्था के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा शोध प्रश्नों का संतुलित पर्यावरण तैयार किया गया हैं।

जनसंख्या एवं न्यादर्श-

न्यादर्श हेतु बिलासपुर जिले के 5 विकासखंडों के हायर सेकेण्डरी स्कूलों में अध्ययनरत 100-100 छात्र छात्राओं को ग्रामीण, शहरी सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों का चयन सोद्देशीय न्यादर्श विधि द्वारा किया गया हैं।

इस प्रकार प्रत्येक विकासखंड से 200 विद्यार्थियों व 5 विकासखंडों मे कुल 1000 विद्यार्थियो को न्यादर्श के रूप में चयन किया गया हैं।

शोध उपकरण-

अनुसंधान प्रक्रम में समस्या के निश्चित परिकल्पना के निर्माण के पश्चात् परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु आंकड़ों के संकलन के लिए परिकल्पनाओं की प्रकृति के अनुरूप उपकरणों का चयन किया जाता है। भौतिक विज्ञान तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान में आंकड़ों के संकलन में अधिकांशत: प्रायोगिक पद्धति अनेक मनोवैज्ञानिक समस्यायें ऐसी होती है जिसके अध्ययन में प्रायोगिक विधि का उपयोग सर्वथा साध्य नहीं रहता। इसी कारण विभिन्न मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय व शैक्षिक समस्याओं के लिए आंकड़ों के संकलन में प्रायोगिक पद्धति के अतिरिक्त अन्य विभिन्न उपकरणों का उपयोग करना पड़ता है।

प्रत्येक उपकरण एक विशेष प्रकार के आंकड़ों के लिए उपयुक्त रहता है तथा कभी कभी तो किसी समस्या के लिए आंकड़े इकट्ठे करने में अनेक उपकरणों का उपयोग करना पड़ जाता है। इस प्रकार अनुसंधान कर्ता इस अवस्था में वर्तमान उपलब्ध उपकरणों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह जानने का प्रयास करता है कि कौन सा उपकरण हमारे कार्य में साधक होगा और कौन सा नहीं, तब वह उपयुक्त उपकरण को चुन लेता है। यदि उपलब्ध उपकरण उसकी आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाते तो वह उनमें सुधार कर लेता है अथवा नया उपकरण बना लेता है।

प्रयुक्त सांख्यिकी-

सह संबंध गुणांक-

$$rxy = \frac{N\sum xy - \sum x \sum y}{\sqrt{[N\sum x^2 - (\sum x)^2][N\sum y^2 - (\sum y)^2]}}$$

परिकल्पना-01

H_{01} शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं होगा।

शोधकर्ता द्वारा इस परिकल्पना को लेने का आधार, शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर की जांच करने से है।

परिकल्पना के परीक्षण के लिये सामान्य जाति के विद्यार्थियों पर शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण मापनी का प्रसरण कर प्राप्त आंकड़ों के आधार पर सांख्यिकीय विश्लेषण मुख्य रूप से मध्यमान व प्रमाणिक विचलन द्वारा किया गया है। सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता के परीक्षण हेतु टी परीक्षण किया गया जिसका विवरण सारणी क्रमांक 4.05 में प्रदर्शित है।

सारणी क्रमांक - 01: शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर का सांख्यिकीय विवरण

क्र.	समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्य मान	मानक विचलन	df	'टी' का मान	परिणाम
1	शहरी विद्यार्थी	250	12.02	1.39	998	7.7	सार्थक है. ($p<0.01$)
2	ग्रामीण विद्यार्थी	250	10.4	1.55			

सारणी क्र. 4.05 से ज्ञात होता है कि शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांको का मध्यमान क्रमशः 12.02 व 10.4 है। सामान्य जाति के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का प्रमाणिक विचलन क्रमशः 1.39 तथा 1.55 है। गणना से प्राप्त ''टी'' का मान 7.7 है।

''टी'' सारणी में df=498 एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर ''टी'' का मान 1.97 है।

क्योंकि गणना से प्राप्त ''टी'' का मान सारणी से प्राप्त मान से अधिक है, इससे यह निर्धारित होता है कि सामान्य जाति के हायर सेकेण्डरी स्कूलों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तरं होता है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। इस प्रकार यह स्थापित होता है कि शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों में अध्ययनरत सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एक समान नही होती हैं।

निष्कर्ष-

''शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों में अध्ययनरत सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होता है।'

परिकल्पना-02

H_{02} शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मे सार्थक अंतर नहीं होगा।

शोधकर्ता द्वारा इस परिकल्पना को लेने का आधार, शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर की जांच करने से है। परिकल्पना के परीक्षण के लिये शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों पर शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण मापनी का प्रसरण कर प्राप्त आंकड़ों के आधार पर सांख्यिकीय विश्लेषण मुख्य रूप से मध्यमान व प्रमाणिक विचलन द्वारा किया गया है। अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता के परीक्षण हेतु टी परीक्षण किया गया जिसका विवरण सारणी क्रमांक 4.06 में प्रदर्शित है।

सारणी क्रमांक - 02: शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का सांख्यिकीय विवरण

क्र.	समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	df	'टी' का मान	परिणाम
1	शहरी विद्यार्थी	250	14.76	11.05	998	2.20	सार्थक है. ($p<0.01$)
2	ग्रामीण विद्यार्थी	250	20.06	7.67			

सारणी क्र. 4.06 से ज्ञात होता है कि शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांको का मध्यमान क्रमशः 14.76 व 20.06 है। शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का प्रमाणिक विचलन क्रमशः 11.05 तथा 7.67 है। गणना से प्राप्त ''टी'' का मान 2.20 है।

''टी'' सारणी में df=498 एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर ''टी'' का मान 1.97 है। क्योंकि गणना से प्राप्त ''टी'' का मान सारणी से प्राप्त मान से अधिक है, इससे यह निर्धारित होता है कि शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तरं है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। इस प्रकार यह स्थापित होता है कि शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एक समान नही होती हैं। अतः यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया जायेगा।

निष्कर्ष-

''शहरी व ग्रामीण हायर सेकेण्डरी स्कूलों के अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर होता हैं।''

उपसंहार-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले के हायर सेकेण्डरी स्कूलों में अध्ययनरत सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

संदर्भ ग्रंथ-

- कॉल, लोकेश (1984), शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा.लि.
- कपिल, डॉ. एस.के., असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली पब्लिकेशन.
- कोठारी, सी.आर. (1992), रिसर्च मेथडोलॉजी, न्यू देहली, विले इस्ट्रन.
- कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (1973), स्टडी ऑफ वेल्यूज टेस्ट (हिन्दी) वाराणसी, रूपा साइकोलॉजिकल सेन्टर.
- मिश्रा, एम. (1986), कानपुर के बाहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के शैक्षिक उपलब्धियों पर सामाजिक आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन, पी.एच.डी. शिक्षा, कानपुर विश्वविद्यालय.
- मित्रा, मधुमिता (2007-08) उच्चतर माध्यमिक शाला के सामान्य विद्यार्थियों एवं विकलांग विद्यार्थियों के संवेगात्मक विकास एवं शैक्षिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध, पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.).
- राजपूत, जे.एस. (2004), इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन एजुकेशन, एन.सी.ई.आर.टी..
- शर्मा, आर.ए. (1984) शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा.लि..
- शिन्दे, विष्णु एम. (2009), ए स्टडी ऑफ लेवल ऑफ एसपिरेशन एमंग ट्राइबल चिल्ड्रन, इंटरनेशनल रेफर्ड रिसर्च जर्नल, 2 (23): 22-23.

हरिशंकर परसाई की रचनाओं में सामाजिक समस्यायें: एक अनुचिंतन

प्रो० (डॉ०) शिव शंकर मण्डल

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, जी.बी. कॉलेज, नवगछिया ति. मॉ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोधसार

मानव ईश्वर की श्रेष्ठतम सृष्टि है। यही एकमात्र प्राणी है, जिसके अंदर बुध्दि, मन और संवेदनाएं होती हैं। मानव के लिए जानवरों के सदृश एकाकी जीवन बिताना असंभव बात होगी। अत: हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि मानव की सृष्टि अन्य जीवों की सृष्टि से नितान्त भिन्न है। उसमें मननशक्ति अथवा भले बुरे को पहचानने की शक्ति भी होती है। इसी कारण से वह समाज और सामाजिक व्यवस्था का निमार्ण करता है। वह जानता है कि उसे अपने सहजीवियों का भी हित सोचना है। नहीं तो सामाजिक जीवन में बाधाएँ उत्पन्न होंगी। केवल खाना, सोना और मर जाना पशुओं का जीवन है। मानव जीवन इसके अलावा कुछ और भी होता है। उपन्यास- सम्राट में प्रेमचन्द जी के शब्द इस प्रसंग में स्मरण करने योग्य है- "उस में कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ होती हैं जो प्रकृति के साथ हमारे मेल में बाधक होती हैं, कुछ ऐसी होती हैं, जो इस मेल में सहायक बन जाती हैं। अहंकार, क्रोध या द्वेष हमारे मन की बाघक प्रवृत्तियाँ हैं। यदि हम इनको बेरोकटोक चलने दें तो निस्सन्देह वे हमें नाश और पतन की ओर ले जायेंगी।" ऐसे मौके पर मां के सदृश व्यंग्य तानों की चोट से बुरे व्यक्तियों की लगाम पकड़ने का कार्य साहित्य ही सफलतापूर्वक कर रहा है।

व्यंग एक सहज अभिव्यक्ति है। इसका उद्देश्य है, परिष्करण, बुराइयों पर आघात करना और परिवर्तनकामी मानसिकता का निर्माण करके परिस्थितियों से जूझने की क्षमता रखना। फलत: साहित्य के विविध रूपों में एक सशक्त विद्या के रूप में व्यंग्य साहित्य को लिया जा सकता है। जो पाठकों से, दर्शकों से, साहित्यकारों से व्यंग्य विधा की स्वीकृति के पश्चात स्थापित हुआ है। कहानी और निबंध से भिन्न एक व्यंग्य साहित्य के रूप में जानी जाने वाली हिंदी साहित्य की विधा का स्वरूप ही निराला है, जिसने मानव मन का सीधे स्पर्श करते हुए उसको परिवर्तन की राह दिखाइ है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में हरिशंकर परसाई एक ऐसे ही उल्लेखनीय व्यंगकार हैं जिन्होंने अपने साहित्य को रचनात्मक ऊर्जा प्रदान कर सामाजिक चेतना से ओतप्रेत कर समाज के समक्ष शिक्षाओं को एक नए अंदाज में अभिव्यक्त किया है। उनका व्यंग्य साहित्य सामाजिक समस्याओं को उजागर करने में सर्व अग्रणी है।

आलेख प्रस्तुति

मानव-प्राणियों की सामूहिक सशक्त एवं सचेतन गतिशीलता की प्रक्रियाओं के सामूहिक परिणामों का नाम ही समाज है। उन गतिशील प्रक्रियाओं का अंकन, चित्रण एवं मूल्यांकन व्यापक अर्थों में लिखित रूप के अंतर्गत आनेवाले सभी प्रकार के साहित्य (ज्ञान, विज्ञान, इतिहास, गणित, ज्योतिष आदि) ने किया है, किन्तु समाज की सुख-दुखात्मक सहकारिता का अंकन कर पाने में ललित साहित्य ही अधिक समर्थ हुआ है। साहित्य मानव जीवन की सतत-साधनाओं में संजात कोमलकान्त होते हुए भी सशक्त भावनाओं, जीवन्त विश्वासों एवं चिरंतन धारणाओं में पोषित एक गुलाब ही है जो अनेक प्रकार के वैषम्यों के काँटों में ही खिलकर पुष्पित- पल्लवित होकर युग युगों की साँसों को सुगंधित एवं प्राणान्वित किए रहता है। उसमें भी व्यंग्य साहित्य समाज में व्याप्त

विभिन्न प्रकार की कुरितियों, कुविश्वासों, आनाचारों, अत्याचारों आदि को परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। जो मानव मन को हंस-हंसकर सत्य और सही की राह पर चलने की शिक्षा देता है, जो मस्तिष्क में व्याप्त अनीतियों को उदाहरण देकर समझाता है।

यह सर्वविदित है कि परसाई जी ने केवल मनोरंजन के लिए व्यंग्य साहित्य का सृजन नहीं किया वरन् समाज को एक नई दिशा देने और शिक्षा का एक नया अंदाज सिखाने के लिए व्यंग्य साहित्य की रचना की। अपने आत्मकथ्य में उन्होंने कहा है कि वे व्यंग्य को एक गंभीर चीज मानते हैं। उन्होंने सामाजिक विसंगति, अन्याय, मिथ्याचार, शोषण, पाखण्ड, दोमुँहापन आदि को देखने, गहराई में जाकर अन्वेषण करने तथा उनका सही अर्थ समझने की कोशिश की। फिर ऐसे अनुभव को विश्लेषित करके रचनात्मक चेतना का अंग बनाकर सशक्त रूप में उद्घाटित करने का भी प्रयास किया।

श्री हरिशंकर परसाई जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से समकालीन मानव जीवन के अनेक बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। उनमें समकालीन रीतियों रिवाजों का व्यापक विवरण और विश्लेषण निहित है। यहां आत्मतुष्ट मध्यम वर्ग है, आत्मदंभी बुद्धिजीवी वर्ग है, दर्द को कलेजे की भट्टी में गला कर हंसने वाली व्यक्ति हैं, ईमानदारी की बीमारी से ग्रस्त लोग हैं, ऐसे ठंडे शरीफ आदमी है जो भावात्मक रूप से निर्जीव पत्थर हैं और ठंडी औपचारिकता में बिना आहट के सफलता की सीढ़ियां चढ़ते-चले जा रहे हैं। परसाई जी का लेखन 1947 में जबलपुर के प्रहरी में छपी कहानी पैसे का खेल से प्रारंभ होता है उनकी रचना यात्रा के संदर्भ में श्री मनोहर देवलिया कहते हैं कि, प्रहरी से करंट तक की रचना यात्रा उस प्रहरेदार की राउंड की तरह है जो अपनी बीट पर निरंतर जगते हुए जागते रहो ती आवाज लगाते हुए और सींटी बजाते हुए, खबरदार कौन आ रहा है दोस्त या दुश्मन पूछते हुए चौकन्ना रहता है।

श्री परसाई का लेखन अपने युग का 'राडार' तो है परन्तु वह भविष्य की 'ब्लुप्रिन्ट' भी है। जीवन और समाज के विभिन्न पक्षों की शायद ही कोई विरूपता हो जो उनकी मारक दृष्टि से बची हो। उनके विस्तृत और व्यापक व्यंग्य - साहित्य में उभरनेवाली समस्याओं को विविध शीर्षकों के अंतर्गत रखकर उनपर विचार करने का विनम्र प्रयास हुआ है। यदि सामाजिक विडंबनाओ की तरफ सूक्ष्म दृष्टि डालें तो इस प्रकार की प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में एक मध्यवर्गीय कुत्ता, वह क्या था. मनीषी, रामदास, ईमान्दारों के सम्मेलन में समय काटनेवाले, पहला सफेद बाल आँगन में बैंगन, आदि रचनाएँ सामाजिक समस्याओं को उकेरने वाली हैं।

एक मध्यवर्गीय कुत्ता

इस कहानी के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग के लोगों के चरित्र के कुछ पहलुओं को ही उभारा है। उनके ही शब्दों में, यह मध्यवर्गीय कुत्ता है। उच्च वर्गीय होने का ढोंग भी करता है और सर्वहारा के साथ मिलकर भौंकता भी है" आर्थिक क्षेत्र में मध्यवर्ग के लोगों की स्थिति अत्यंत संदेहग्रस्त और अनिश्चित है। निर्धन व्यक्ति और संपन्न व्यक्ति सुख की नींद सोता है। लेकिन मध्यवर्ग की स्थिति अनुमान पर आधारित है। अनुमान कभी कभी असल में संभव हो जाता है। फिर भी उसे अपनी परंपरा का पालन करना है। मिध्याभिमान के कारण वह अपने अभाव को छिपाकर उच्चवर्गीय होने का ढोंग करता है इसी कारण से वह हमेशा तनावपूर्ण जीवन बिता रहा है। मध्यवर्गीय कुत्ते के समान संकट के अवसर पर वह सर्वहारा के साथ रहता है और बाद में उनपर भौंकने लगता है यानि उनके विरुद्ध खडा होता है। इस प्रकार के कृतघ्न लोग हमारे समाज में दिखाई पड़ते हैं। ऐसे लोगों को समाज तिरस्कृत करता है।सर्वहारा कुत्तों के द्वारा पटके और काटे जाने पर चुपचाप पडे अपने सही वर्ग के बारे में चिन्तन करनेवाले मध्यवर्गीय कुत्ते के माध्यम से परसाई जी ने एक अत्यन्त गंभीर सामाजिक यथार्थ की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है।

मनीषी

इस कहानी में तो अभाव के बीच में भी संतुष्ट रहनेवाले पात्र के द्वारा समाज के ऐसे कुछ लोगों की ओर लेखक ध्यान खींचते हैं जो हमेशा दूसरों को खुश करने की कोशिश करते हैं। "भूखे मनीषी के मुख पर मुस्कान आयी, जैसी भरे पेटवाले के मुख पर भी दुर्लभ है। अपने खाने का ठिकाना नहीं है, पर वह उदारता में कर्ण है। वह बड़े शरणागतवत्सल है। उनके जैसे कुछ भोले-भाले इनसान भी हमारे बीच में हैं जिनके भोलेपन का फायदा उठानेवाले धोखेबाज भी अनेक है। मनीषी अनाथालय से भाग आयी हुई तिरस्कृत और लांछित लडकियों को धर्मपुत्री मानकर आश्रय देते हैं। बाद में कुछ लड़के भी उनके पीछे पड़ गए। आखिर लडकियाँ कुछ लडकों के साथ भाग जाती हैं। बड़े दर्द से धर्मपुत्रियों की याद करनेवाले मनीषी के प्रति सहानुभूति होती है। धर्मपुत्री, धर्मपुत्र, धर्मपिता जैसे शब्दों के प्रयोग से रचना और भी प्रभावशाली हो गई हैं। हरिशंकर परसाई जी की यह रचना समाज में रह रहे सरल

हृदय व्यक्तियों को किस प्रकार छला जाता है ऐसी भावनाओं की अभिव्यक्ति करती है और उन लोगों की ओर व्यंग्य करती है। इस सामाजिक व्यंग्य के द्वारा परसाई जी ने सीधे साधे लोगों के ठगे जाने की समस्या को उजागर किया है।

ईमानदारों के सम्मेलन में

सत्य ही देश में बड़ी तेजी से सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसे विकट समय में देशवासियों में ईमानदारी की चेतना जगाना बहुत जरूरी है। ईमानदारों का सम्मेलन हो रहा था। एक सज्जन के पाँवों में उनकी चप्पलें थी, फिर भी वे बेहिचक दूसरों के साथ मिलकर चप्पल की बातें कह रहे थे। वे लेखक को सलाह दे रहे थे कि चप्पलें एक जगह नहीं छोडनी चाहिए। एक चप्पल से दस फीट की दूरी पर दूसरी चप्पल उतारने से चोरी होने की संभावना नहीं रहती। लेखक को आश्चर्य हुआ कि चोरी की चप्पलें पहना हुआ आदमी ही मुझे ऐसी सलाह दे रहा है। तीन दिनों के अन्दर लेखक का धूप का चश्मा, चादर आदि भी गायब हो गये थे। संक्षेप में मामूली चोरों से अधिक चोरी तथाकथित ईमानदारों के बीच में हो रही है। अफसोस की बात है कि एक 'ईमानदार' दूसरे 'ईमानदार' की चीजें चुराता है। पर साधारण चोर अपने चोर बन्धु की चोरी नहीं करता। धर्म और ईमान जैसे बड़े-बड़े विषयों पर भाषण देनेवालों ने ही ईमानदारों का एक सम्मेलन बुलाया। जिसमें लेखक मुख्य अतिथि थे। उन्होंने एक घंटे तकजोरदार भाषण भी दिया। जाने के वक्त मालूम हुआ कि उनकी नयी चप्पलें गायब थीं। वहाँ एक जोडी फटी पुरानी चपले पड़ी थीं। ईमानदार डेलिगेट कमरे में वापस आये। लेखक उनसे चप्पल की बातें पूछ रहे थे तो समझ में आयी कि उनमें एक चोरियाँ करते हैं। इस कहानी के व्यंग के द्वारा लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि हमारे समाज में कितनी विसंगतियां बढ़ती चली जा रही हैं जो व्यक्ति ईमानदार है, सही हाल है वह भी चोरी करते हुए पकड़ा जाता है। अर्थात एक शिक्षित वर्ग में भी ईमान नाम की चीज देखने को नहीं मिलती। तो फिर अशिक्षित और निकृष्ट लोगों से ईमानदारी की अपेक्षा कैसे की जा सकती है।

पहला सफेद बाल

परसाई जी ऐसे साहित्यकार हैं जो सभी आयु के सभी स्तर के और सभी प्रकार के लोगों की मानसिकता को भली-भाँति पहचानने, परखने और अभिव्यक्त करने में सिद्धहस्त रहे है। सिर पर पहली बार सफेद बाल प्रकट होने पर व्यक्ति को अभूतपूर्व मानसिक स्थिति पैदा होती है। सफेद बाल बुढापे की निशानी है। कोई भी व्यक्ति बूढा बनना पसन्द नहीं करेगा। जैसे मरनेवाले को जिन्दगी अधिक प्यारी लगती है वैसे ही बुढापे के निकट पहुँचने पर आदमी को युवावस्था की बडी चाह होती है। अत: सफेद बाल को देखकर उसके दिल में हलचल मचने लगती है। उसका वर्णन परसाई जी ने अत्यधिक आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। ऐसा लगा जैसे वसन्त में वनश्री देवता घूम रहा है, कि सहसा किसी झाडी से शेर निकल पडे. या पुराने जमाने में किसी मजबूत माने जानेवाले किले की दीवार पर रात को बेफिक्र घूमते गरबीले किलेदार को बाहर से चढ़ते हुए शत्रु के सिपाही की कलगी दिख जाय, या किसी पार्क के कुंज में अपनी राधा को हृदय से लगाये प्रेमी को एकाएक राधा का बाप दिख जाय।" तब जो स्थिति उत्पन्न होती है ऐसी ही स्थिति सर पर एक सफेद बाल के उगने से होती है परसाई जी ने इस कहानी के माध्यम से यह अभिव्यक्त करना चाहा है कि मानव मन बाह्य आकर्षण को सौंदर्य को लेकर जितना ललैट रहता है उतना ललैट अपने आंतरिक सौंदर्य को लेकर नहीं है जबकि व्यक्ति यदि हृदय से सरल विवेक की और गंभीर होगा तो सफेद बाल भी उसके सौंदर्य का केंद्र हो जाएंगे अत: यह व्यंग्य आंतरिक रूप से कमजोर व्यक्तियों के प्रति अधिक है।

मिलावट की सभ्यता

आजकल देश में ऐसी कोई भी चीज नहीं मिल पाती जिसमें किसी अन्य चीज की मिलावट न की गयी हो। चाहे किसी की जान चली जाय, तो भी अपने को लाभ पहुँचाना प्रत्येक आदमी की धुन है। हर दिन के अखबारों में ऐसी अनेक खबरें मिलती रहती हैं। अब भारत सरकार ने शराब पीने तथा बेचने सबन्धी कई नियम बनाये हैं। पर मिलावटी शराब पीकर मरनेवालों की संख्या दिन ब दिन बढ़ रही है। अफसोस की बात है कि ऐसे कुकर्म के पीछे जिन व्यक्तियों के हाथ है उन्हें उचित सजा भी नहीं दी जाती है। इस का मतलब यह है कि इस महाजनी सभ्यता में आदमी की जान की कोई कीमत नहीं रह जाती। लेखक इस कहानी के व्यंग के द्वारा यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि आज समाज में मिलावटी संस्कृति के कारण मानव स्वयं दानव बन बैठा है उसे केवल

जड़ का मुंह है इस दुनिया में जीने के लिए भगवान द्वारा दिया गया प्रत्येक पल वह अपने सुख और आराम के लिए भूख रहा है फिर भी वह दावा करता है कि वह एक सामाजिक प्राणी है।

प्रस्तुत कहानियों के माध्यम से हरिशंकर परसाई जी ने समाज में व्याप्त उन संगीन समस्याओं को प्रस्तुत किया है जिनकी ओर एक साधारण व्यक्ति का हृदय नहीं जाता। आज समाज में ईमानदारी के चोले में छल और कपट देखने को मिलता है। सरल हृदय व्यक्तियों को ढगा जाता है, परेशान किया जाता है। मध्यमवर्गीय परिवार अपनी झूठी शानो- शौकत में लिप्त होकर स्वयं ही समस्याओं के घेरे में बंधता चला जाता है। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक समस्याएं जो मानव संस्कृति को चारों ओर से घेरे रहती हैं, उनको अपनी कहानियों के व्यंग के माध्यम से हरिशंकर परसाई ने उभारने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष

हरिशंकर परसाई जी ने अपनी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं को बड़ी बारीकी से उतारा है। उन्होंने जीवन के कटु यथार्थ को समाज के समक्ष लाकर रखा है। परसाई जी की लेखन कला में वास्तविक रूप से जीवन के विभिन्न अनुभवों की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उनकी रचनाओं में संवेदन की सहजता, सरलता और तरलता के कारण पाठकों के दिल और दिमाग में हलचल पैदा कर देने वाली जिज्ञासा प्राप्त होती है। जिस प्रकार प्रेमचंद जी की भाषा में एक जीवंतता देखने को मिलती है। इस प्रकार परसाई जी के व्यंग्य साहित्य में एक खास अनुगूंज है एक आघात है। उन्होंने अपनी कहानियों में मार्मिक प्रसंग को सहज ही उड़ेलकर पाठकों की सहानुभूति और करुणा को उत्तेजित कर दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. इन्द्रनाथ मदान, आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973.
2. अंजु मिश्रा, साहित्य समीक्षा और शोध भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1992.
3. अमृतलाल नागर, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली. 1987.
4. परसाई रचनावली- 2. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1989
5. परसाई रचनावली- 3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1989
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाराणसी सत्रहवीं पु. मु. संवत् 2029.
7. परसाई रचनावली 4 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1989
8. परसाई रचनावली- 6. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1989
9. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, नैवेद्य प्रकाशन, वाराणसी
10. डॉ. आशा मेहता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में वैचारिकता भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नयी दिल्ली, 1988

महाराव की उपाधि और कच्छ का राज्य

चौधरी विपुलकुमार सगरामभाई

पीएच.डी. विद्वान (इतिहास) हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

कच्छ पर ११४७ में इसके निर्माण से लेकर १९४८ तक नवगठित भारत में प्रवेश करने तक सम्मा जाति के जड़ेजा राजपूत राजवंश का शासन था। १२वीं शताब्दी के अंत में शासक सिंध से कच्छ चले गए। शासकों की उपाधि पहले जाम थी, जिसे ब्रिटिश शासन के दौरान १ जनवरी १९१८ से बदलकर महाराव कर दिया गया।

एक पूर्ववर्ती राज्य जिसे कच्छ साम्राज्य के नाम से जाना जाता है, की स्थापना ११४७ के आसपास लाख जादानी ने की थी, जो सम्मा जाति के थे और सिंध से आए थे। उन्हें जाम जादा ने स्वीकार कर लिया था और इसलिए उन्हें लाखोन जादानी के नाम से जाना जाता था। उन्होंने ११४७-११७५ तक पूर्वी कच्छ पर एक नई राजधानी से शासन किया, जिसका नाम उन्होंने अपने जुड़वां भाई लखियार के नाम पर लखियारविरो (वर्तमान नखराना के पास) रखा। इससे पहले, पूर्वी कच्छ पर चावड़ा वंश का शासन था, जिसके अंतिम ज्ञात शासक वाघम चावड़ा थे, जिनकी १३वीं शताब्दी में उनके भतीजे मोद और जडेजा वंश के मनई ने हत्या कर दी थी।

१२१५ में रैधन जाडेजा की मृत्यु के बाद, उनके क्षेत्र उनके चार पुत्रों के बीच विभाजित हो गए। ओथाजी, डेडाजी, होथिजी और गजनजी को कच्छ में क्रमशः लखीरविरो, कंठकोट, गजोद और बारा के क्षेत्र दिए गए। चूँकि ओथाजी सबसे बड़े थे, वे लखिरवीरों के मुख्य सिंहासन पर बैठे और शेष भयात या संघीय व्यवस्था में भाईचारे का हिस्सा बन गए। हालाँकि, उनके बीच आंतरिक दुश्मनी पीढ़ियों तक बढ़ती रही जब तक कि वे ओथाजी और गजनजी नामक दो गुटों में विलीन नहीं हो गए।

इनमें से पहली घटना जिसने कच्छ के इतिहास को बदल दिया, वह थी बारा के जाम रावल द्वारा जाडेजा की सबसे बड़ी शाखा के मुखिया और ओथाजी के वंशज लखियारवीरा के जाम हमीरजी की हत्या। ऐसा माना जाता है कि जाम रावल ने अपने पिता जाम लाखाजी की हत्या के लिए हमीरजी को जिम्मेदार ठहराया था, क्योंकि उन्हें हमीरजी के कहने पर लखियारविरोना क्षेत्र में डेडा तमियाची ने मार डाला था। जाम रावल ने बदला लेने के लिए अपने बड़े भाई राव हमीरजी (खेंगारजी के पिता) को धोखे से मार डाला और दो दशकों से अधिक समय तक कच्छ पर शासन किया, जब तक कि बड़े होने पर खेंगारजी प्रथम ने कच्छ को उनसे वापस नहीं जीत लिया। जाम रावल कच्छ से भाग गए और आशापुरा माता द्वारा सपने में दी गई सलाह के अनुसार नवानगर की स्थापना की। बाद में उनके वंशजों ने राजकोट, गोंडल ध्रोल और वीरपुर राज्यों का गठन किया जिनकी वंशावली आज भी कायम है।

११४७ में अपनी स्थापना से लेकर १५४८ में जाम रावल के समय तक, लखियारवीरा कच्छ की राजधानी बनी रही। खेंगारजी को कच्छ के पहले साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है, जिन्होंने पूर्वी मध्य और पश्चिमी कच्छ को एक प्रभुत्व में एकजुट किया था, जिस पर आंशिक रूप से जड़ेजा के अलावा अन्य राजपूत जनजातियों का शासन था। खेंगारजी प्रथम को अहमदाबाद के सुल्तान महमूद बेगड़ा ने मोरबी की जागीर और सेना दी थी, जिनकी जान उन्होंने सिंह से बचाई थी। खेंगारजी ने कई वर्षों तक युद्ध किया जब तक कि उन्होंने कच्छ को जाम रावल से वापस नहीं ले लिया और १५४९ में कच्छ को एक विशाल प्रभुत्व में शामिल नहीं कर लिया। जाम रावल को अपनी जान बचाने के लिए कच्छ से भागना पड़ा। खेंगारजी प्रथम रापर में सिंहासनारूढ़ थे लेकिन बाद में उनकी राजधानी भुज से स्थानांतरित कर दी गई, फिर उनके पिता राव हमीरजी ने १५१० में इसकी स्थापना की और भुज कच्छ की राजधानी बन गई। खेंगारजी ने मांडवी के बंदरगाह शहर की भी स्थापना की।

१६९८ में राव रायघनजी की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार की नियमितता फिर से बाधित हो गई। रायघनजी के ८ पुत्र थे। रावजी, नागलजी, प्रागमलजी, सुलोगजी, गिनोजी, गोपालजी, मोदजी, अभयराजजी। सबसे बड़े बेटे रावजी की सोढ़ा राजपूतों ने हत्या कर दी थी, उनके दूसरे भाई नागलजी की पहले प्राकृतिक कारणों से मृत्यु हो गई थी, हालांकि दोनों भाई अपने बेटों को छोड़ गए थे, जो अधिकार से कच्छ के सिंहासन पर बैठने के हकदार थे, लेकिन युवा थे। प्रगमलजी राव रायघनजी के तीसरे पुत्र ने अंततः कच्छ की गद्दी संभाली और महाराव प्रगमलजी पहले बने।

मारे गए रावजी का सबसे बड़ा पुत्र कान्याजी भाग गया और खुद को मोरबी में स्थापित कर लिया, जो उस समय कच्छ राज्य का हिस्सा था। कायनजी ने मोरबी को कच्छ से स्वतंत्र कर दिया और वहां से उन्होंने कच्छ की अपनी असली गद्दी हासिल करने की कई बार असफल कोशिश की। कान्योजी जाडेजा के वंशज इस प्रकार मोरबी में बस गए और कान्या जाडेजा के नाम से जाने गए।

भुज को बाद में राव गोदाजी के शासन में भुजिया किले द्वारा मजबूत किया गया। किले का प्रमुख कार्य और समापन उनके पुत्र महाराव देशलजी के शासनकाल के दौरान हुआ था। १७१९ में देशलजी के शासनकाल के दौरान शेर बुलंद खान, जो गुजरात के मुगल वायसराय थे, ने कच्छ पर आक्रमण किया। कच्छ की सेना एक अनिश्चित स्थिति में थी, जब नागा बावों का एक समूह उनके साथ शामिल हो गया और मुगल सेना हार गई।

देशलजी के उत्तराधिकारी उनके पुत्र राव लखपतजी थे (जिन्होंने प्रसिद्ध आइना महल के निर्माण के लिए रामसिंह मालम को नियुक्त किया था। रामसिंह मालम ने माधापार के पास एक कांच और चीनी मिट्टी का कारखाना भी शुरू किया था।

इस प्रकार भारत के इतिहास में सबसे शुरुआती उद्योगों में से एक कच्छ में स्थापित किया गया था। लखपतजी के शासनकाल के दौरान कच्छ का समुद्री व्यापार फला-फूला और उनके शासनकाल के दौरान कच्छ ने अपनी मुद्रा, कच्छ कोरी जारी की, जो १९४८ तक ब्रिटिश राज के दौरान भी वैध रही, जब इसे स्वतंत्र भारत द्वारा समाप्त कर दिया गया।

बाद में राव गोदाजी के शासनकाल के दौरान जाडेजा राजवंश को सिंध के मियां गुलाम शाह कलहोरो के हाथों अपनी सबसे बड़ी हार का सामना करना पड़ा, जिन्होंने १७६३-६४ में दो बार कच्छ पर हमला किया, (जब युद्ध में सैकड़ों कच्छी मारे गए। जोरा) और फिर १७६५ में। कई प्रदेशों को खोने के बाद गोदाजी को उसके साथ युद्धविराम करना पड़ा। बाद में १७७० में उनके चचेरे भाई वेसुजी की एक बेटी की शादी मियां कल्होरो से हुई और इस शादी को दोनों पक्षों ने बड़े धूमधाम और समारोह के साथ मनाया। इस संबंध को ध्यान में रखते हुए बुस्टा बंदर और लखपत बंदर के शहर और अन्य क्षेत्र जो मियां कल्होरोस द्वारा जीत लिए गए थे, कच्छ के राव को वापस कर दिए गए।

उनके उत्तराधिकारी राव रायधन एक धार्मिक कट्टरपंथी बन गए और उन्होंने अपने सभी छात्रों को जबरन इस्लाम में परिवर्तित करना शुरू कर दिया। १७८५ में, राव रैधन, जो इस रक्तहीन विद्रोह के लिए जिम्मेदार थे, को तब दबा दिया गया जब अंजार के मेघजी सेठ ने विद्रोह किया और सेना प्रमुख जमादार दोसालवेन और जमादार फतेह मोहम्मद भी इसमें शामिल हो गए। राव रायधन को नजरबंद कर दिया गया और राज्य पर बारह भाइयों की एक परिषद द्वारा शासन किया गया। कच्छ कई दशकों तक लोकतंत्र बना रहा और राजा ने केवल नाममात्र प्रमुख के रूप में कार्य किया। यह बारह भाइयों की एक परिषद, एक प्राधिकारी निकाय, द्वारा शासित था। इसमें जाडेजा शासक के परिवार के भाइयों के तीन सदस्य, तीन महाजन (हिंदू और जैन समुदायों के धनी और प्रभावशाली साहूकार या व्यापारी) शामिल थे। मुस्लिम समुदाय के तीन सदस्य, मियाना समुदाय से एक सदस्य, गारा सद्र का एक सदस्य, सेना का एक सदस्य, और इस प्रकार कुल बारह सदस्य। इस परिषद द्वारा जमादार फतेह मोहम्मद को शासक बनाया गया था, जिसे बार भयात नी जमात के नाम से जाना जाता था, जिन्होंने १७८६-१८१३ तक कच्छ पर शासन किया था। उनकी मृत्यु के बाद राव रायघन को फिर से राजा बनाया गया था एक महीने के लिए परिषद द्वारा लेकिन हुसैन मियां को हटा दिया गया, क्योंकि राव ने अभी भी अपने तरीके नहीं बदले। हुसैन मियां ने १८१३-१८१४ तक शासन किया और बाद में राव रायघन के सबसे बड़े बेटे भारमलजी द्वितीय को १८१४ में बार भयात की जमात द्वारा शासक बनाया गया। सेना को हुसैन मियां के नियंत्रण में रखा, जिन्होंने १७८६-१८१३ तक कच्छ पर शासन किया था। उनकी मृत्यु के बाद राव रैधन को फिर से एक महीने के लिए परिषद द्वारा राजा बनाया गया था, लेकिन उनकी जगह हुसैन मियां को लाया गया, क्योंकि राव ने अभी भी अपने तरीके नहीं बदले थे। हुसैन मियां ने १८१३-१८१४ तक शासन किया और बाद में राव रायधन के सबसे बड़े बेटे भारमलजी द्वितीय को १८१४ में बार भयात की जमात

ने सेना को हुसैन मियां के नियंत्रण में रखते हुए शासक बनाया। जिसने कच्छ पर शासन किया। उनकी मृत्यु के बाद राव रायधन को फिर से एक महीने के लिए परिषद द्वारा राजा बनाया गया, लेकिन उनकी जगह हुसैन मियां को नियुक्त किया गया, क्योंकि राव ने फिर भी अपने तरीके नहीं बदले। हुसैन मियां ने १८१३-१८१४ तक शासन किया और बाद में राव रैधन के सबसे बड़े बेटे भारमलजी द्वितीय को १८१४ में बार बेहट नी जमात द्वारा हुसैन मियां के नियंत्रण में सेना का शासक बनाया गया।

१५ दिसंबर १८१५ को, कच्छ में भद्रेश्वर के पास कच्छ राज्य की सेना को बड़ौदा राज्य और गायकवाड़ के अंग्रेजों की संयुक्त सेना ने हरा दिया था। कर्नल ईस्ट के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना और कमांडर हुसैन मियां के नेतृत्व में कच्छ की सेना बहाद्रेश्वर के पास मिलीं। ब्रिटिश सेना प्रसिद्ध भद्रेश्वर जैन मंदिर के पीछे थी और मंदिर उनके बीच आ रहा था। हुसैन मिया ने मंदिर की पवित्रता का सम्मान किया और मंदिरों को नुकसान पहुंचने और ब्रिटिश सेना के लिए ऐसे द्वार खुले रहने के डर से अंग्रेजों पर गोली नहीं चलाई। इस प्रकार अंजार का निकटतम प्रमुख किलेबंद शहर, टूना बंदर और अंजार जिला २५ दिसंबर १८१५ को ब्रिटिश कब्जे में आ गया। इससे कच्छ के शासकों और अंग्रेजों के बीच बातचीत शुरू हुई। कच्छ के जाडेजा शासकों ने १८१९ में ब्रिटिश आधिपत्य स्वीकार कर लिया और कैप्टन जेम्स मैकमुर्डन को भुज में ब्रिटिश राजनीतिक रेजिडेंट के रूप में तैनात किया गया। हालाँकि, अंजार जिला सात वर्षों तक ब्रिटिश सेना के सीधे कब्जे में रहा, जब संधि द्वारा इसे कच्छ रियासत में वापस कर दिया गया।

जीत के बाद, अंग्रेजों ने सत्तारूढ़ राजा जाम भारमुलजी द्वितीय को पदच्युत कर दिया और उनके नाबालिग बेटे देशलजी द्वितीय को कच्छ का शासक बनाया गया। उनके अल्पमत के दौरान राज्य के मामलों का प्रबंधन रीजेंसी काउंसिल द्वारा किया जाता था, जिसमें जड़ेजा प्रमुख शामिल थे और इसकी अध्यक्षता कैप्टन मैकमुर्डो करते थे।

उनके शासनकाल के दौरान कच्छ में १८१९ में भयंकर भूकंप आया और उसके बाद १८२३, १८२५ और १८३२ में भयंकर सूखा पड़ा। इसके अतिरिक्त, कच्छ पर सिंध के लुटेरों ने हमला किया था। १८ वर्ष की आयु के बावजूद, देशलाजी ने कानून का प्रशासन अपने हाथों में लिया और सिंध के आक्रमणकारियों को हराया। उनके शासनकाल में अफ्रीका, ओमान और विशेष रूप से जांजीबार के साथ समुद्री व्यापार में महत्वपूर्ण सुधार देखा गया। कच्छ में धीरे-धीरे औद्योगीकरण फिर से शुरू हुआ जिसकी शुरुआत लखपतजी और गोडजी ने की थी। १८६० में उनके पुत्र प्रागमलजी उनके उत्तराधिकारी बने।

राज्य ने १९वीं सदी के अंत और २०वीं सदी की शुरुआत में प्रागमलजी द्वितीय और उनके उत्तराधिकारी खेंगारजी तृतीय के नेतृत्व में प्रगति की। प्राग्मुलजी द्वितीय द्वारा शुरू किए गए शैक्षिक, न्यायिक और प्रशासनिक सुधारों को खेंगारजी द्वितीय ने आगे बढ़ाया, जिन्होंने कच्छ राज्य रेलवे, कांडला बंदरगाह और कई स्कूलों की नींव भी रखी। खेंगारजी तृतीय कच्छ पर सबसे लंबे समय तक शासन करने वाले राजा थे। खेंगारजी ने कई वर्षों तक महारानी विक्टोरिया के सहयोगी के रूप में भी कार्य किया। उनके अधीन राज्य को १७ तोपों की सलामी वाले राज्य का दर्जा दिया गया और कच्छ के शासकों की उपाधि भी महाराव तक बढ़ा दी गई।

१९४२ में खेंगारजी द्वितीय को उनके पुत्र विजयाराजी ने उत्तराधिकारी बनाया और भारत के स्वतंत्र होने तक कुछ वर्षों तक शासन किया। विजयराजी के शासनकाल के दौरान, कच्छ उच्च न्यायालय की स्थापना की गई, ग्राम परिषदें चुनी गईं, और उनके शासन के छह वर्षों की छोटी अवधि में राज्य में सिंचाई सुविधाओं और कृषि विकास का बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ। उन्होंने सिंचाई में गहरी रुचि ली और उनके शासनकाल के दौरान छह वर्षों में २२ अन्य बांधों के साथ प्रसिद्ध विजयसागर जलाशय का निर्माण किया गया। इसके अलावा, उनके शासनकाल के दौरान, कच्छ वर्ष १९४५ में अपनी बस परिवहन सेवाएं शुरू करने वाली हैदराबाद और त्रावणकोर के बाद तीसरी रियासत बन गई।

१६ अगस्त १९४७ को भारत की आजादी के बाद कच्छ भारत में शामिल होने वाली पहली रियासत थी। भले ही श्री विजयाराजी लंदन में चिकित्सा उपचार के लिए गए हुए थे, उनके आदेश पर उनके पिता की ओर से युवराज मदनसिंहजी ने दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए थे। १६ अगस्त १९४७ को कच्छ के महाराव के वकील के रूप में कच्छ की गद्दी पर आसीन हुए। बाद में, मदनसिंहजी अपने पिता विजयराज की मृत्यु के बाद २६ जनवरी १९४८ को सिंहासन पर बैठे, और ४ मई १९४८ तक थोड़े समय के लिए कच्छ के अंतिम महाराव बने, जब कच्छ की रियासत का प्रशासन पूरी तरह से संघ में विलय हो गया।. भारत में विलय के बाद कच्छ रियासत को १९४८ में कच्छ राज्य के नाम से एक अलग केंद्रीय प्रशासनिक वर्ग-सी राज्य बना दिया गया।

संदर्भग्रंथ सूची

१. "कच्छ दर्शन", शंभूदान गढ़वी, तीसरा संस्करण, प्रवीण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, २०१९
२. "कच्छ परिचय पुस्तिका", हरेश ढोलकिया, २००८, (मुंबई प्रिंट), सूर्या-ऑफसेट" अहमदाबाद
३. "कच्छ का इतिहास" हरेश ढोलकिया, प्रथम संस्करण, छवि प्रकाशन मुंबई, २००९
४. बॉम्बे प्रेसीडेंसी कच्छ, पालनपुर और महिकांठा का गजेटियर, २०१७
५. "कच्छ"। भारत का इंपीरियल गजेटियर १९८०
६. "कराडुंगर कचजो" डुलेराई करानी रुसब्रुक विलियम्स प्रथम संस्करण २०१६

भारत में कृषि श्रमिकों के योगदान पर एक अध्ययन

सोनल जे. पंड्या

शोधकर्ता (पीएच.डी. छात्र) अर्थशास्त्र विभाग, आर्ट्स एवं कोमर्स कालेज, खेडब्रह्मा (सा.कां.)

डॉ० रोहित जे. देसाई

(मार्गदर्शक) एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, आर्ट्स एवं कोमर्स कालेज, खेडब्रह्मा (सा.कां.)

सारांश

अनुसंधान करता ने भारत के कृषि श्रमिको के योगदान और उनकी स्थिति के बारे में अभ्यास किया है। इस अभ्यास में प्रस्तुत किया है की भारत के विभिन्न राज्यों में किसानों का अनुपात और कृषि मजदूरों का अनुपात समय के साथ बदल रहा है। इससे पता चलता है की किसानों की आर्थिक स्थिति बदल रही है और वे कृषि के स्थान पर अन्य व्यवसायों में जा रहे हैं। आगे कृषि मजदूरों की मजदूरी दरों का विवरण दिया गया है, जिससे पता चलता है की विभिन्न राज्यों में कृषि मजदूरों की मासिक मजदूरी में विभिन्नता है। यह विवरण यह भी दिखाता है कि महिला कृषि मजदूरों की मजदूरी दर पुरुषों के मुकाबले कम होती है। भारत में कृषि क्षेत्र और कृषि मजदूरों की आर्थिक स्थिति महत्वपूर्ण है, और इसे समझने के लिए आगे की अध्ययन और कई सामाजिक और आर्थिक मुद्दों को ध्यान में रखना होगा।

भारत में कृषि श्रमिकों के योगदान पर एक अध्ययन

विषय प्रवेष

भारत में कृषि और कृषि मजदूरों की आर्थिक भूमिका महत्वपूर्ण है। किसानों और कृषि मजदूरों का संख्यात्मक अनुपात समय के साथ परिवर्तित हो रहा है, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति पर ब्रुखा: बदलाव हो रहा है। खेतों में काम करने वाले लोगों की मजदूरी दरें राज्यों और क्षेत्रों के आधार पर भिन्न-भिन्न हैं, जिससे आर्थिक असमानता का मुद्दा उजागर होता है। यह जानकारी उद्योग, खाद्य सुरक्षा और समाजिक सामाजिक न्याय के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। कुछ राज्यों में महिला कृषि मजदूरों की मजदूरी दर पुरुषों के मुकाबले कम है, जो लैंगिक असमानता के प्रतीक के रूप में उठता है। कृषि उत्पादन और किसानों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि सरकारें और सामाजिक संगठन इस असमानता के मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करें और उचित समाधान ढूंढें।

श्रमिकों का अनुपात जनसंख्या और आयु समूह से संबंधित है। जैसे-जैसे जनसंख्या और कामकाजी आयु समूहों का अनुपात बदलता है, वैसे-वैसे श्रमिकों की संख्या भी बदलती है। श्रम बल आर्थिक गतिविधि के लिए श्रम बल प्रदान करके आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। वर्ष 2017 में विश्व में कृषि श्रमिकों का अनुपात 26.47% है, जिसमें से कृषि श्रमिकों का अनुपात सबसे अधिक 42.74% भारत में है (ILO, 2018)।

भारत में कुल कृषि श्रम शक्ति में किसानों और कृषि मजदूरों का अनुपात

कृषि मजदूरों का इकाई-उन्मुख अध्ययन करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि देश और राज्य स्तर पर कृषि मजदूरों की समग्र स्थिति कैसी है। इस संदर्भ में, कुल कृषि मजदूरों में किसानों और कृषि मजदूरों के अनुपात का ज्ञान आवश्यक है। भारत में कुल कृषि श्रम शक्ति में किसानों एवं कृषि मजदूरों का अनुपात 71.9% एवं 28.1%, 76.0% था। वर्ष 1951, 1961, 1971, 1981, 1991, 2001 और 2011 क्रमशः। और 24.0%, 62.2% और 37.8%, 62.5% और 37.5%, 59.7% और 40.3%, 54.4% और 45.6% और 45.1% और 54.9%। जिससे पता चलता है कि पिछले 60 वर्षों में किसानों का अनुपात लगातार कम हुआ है और 1961 के असाधारण वर्ष को छोड़कर कृषि मजदूरों का अनुपात लगातार बढ़ा है। जिससे यह भी पता चलता है कि अधिक से अधिक किसान भूमिहीन होते जा रहे हैं। संभव है कि उनमें से कुछ किसान से खेत मजदूर बन गये हों। साथ ही, गांवों में रोजगार की कमी के कारण लोग कृषि मजदूरी की ओर रुख करते हैं।

भारत में कृषि मजदूरों की दैनिक मजदूरी

कृषि मजदूरों को मिलने वाली मजदूरी उनके जीवन स्तर को निर्धारित करती है। भारत में कृषि मजदूरों की दैनिक मजदूरी वर्ष 2014-15 में 277.4 रुपये और 2019-20 में 286.6 रुपये है। भुगतान किया गया। इस प्रकार, वर्ष 2014-15 से वर्ष 2019-20 तक कृषि मजदूरों की मजदूरी में पूर्ण रूप से केवल 62 रुपये की वृद्धि हुई। जितना बढ़ गया है. जिसके बारे में बहुत कम कहा जा सकता है. जबकि सापेक्ष रूप से औसत में 4.9% की वृद्धि हुई है। जिससे कृषि मजदूरों के जीवन स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भारत में पुरुष और महिला कृषि श्रमिकों की दैनिक मजदूरी

वर्ष 2006-07 से वर्ष 2016-17 तक भारत में पुरुष कृषि श्रमिकों और महिला कृषि श्रमिकों की मजदूरी दरों को दर्शाती है। कृषि श्रमिकों की मजदूरी दरों में महिला कृषि श्रमिकों को पुरुष कृषि श्रमिकों की तुलना में कम मजदूरी दी गई है। जो कृषि श्रम में लैंगिक भेदभाव को दर्शाता है। दूसरे अर्थों में समान काम के बावजूद महिलाओं को कम वेतन दिया जाना एक अर्थ में उनका शोषण है। इस दिशा में समग्र स्तर पर नीति निर्माण की आवश्यकता है।

भारत के विभिन्न राज्यों में कार्यरत कुल श्रमिकों में से कृषि श्रमिकों का अनुपात

वर्ष 2001 और 2011 के अनुसार भारत और इसके विभिन्न राज्यों में किसानों, कृषि मजदूरों, घरेलू श्रमिकों और अन्य श्रमिकों के अनुपात को दर्शाते हैं। आंकड़े बताते हैं कि भारत के स्तर पर और पंजाब, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु को छोड़कर अधिकांश राज्यों में किसानों का अनुपात कम हुआ है और कृषि मजदूरों का अनुपात बढ़ा है। जिससे पता चलता है कि जैसे-जैसे किसानों की आर्थिक स्थिति खराब होती है, वे अपनी जमीन खो देते हैं और कृषि मजदूर बन जाते हैं। इससे यह भी पता चलता है कि कृषि से जुड़ा एक बड़ा समूह कृषि श्रमिकों का है जो देश की खाद्य सुरक्षा और उसके आर्थिक विकास से जुड़ा है।

भारत के विभिन्न राज्यों में कृषि मजदूरों की मजदूरी

कृषि मजदूरों को मिलने वाली मजदूरी उनके जीवन स्तर और दक्षता को प्रभावित करती है और देश की आर्थिक वृद्धि को भी प्रभावित करती है। इसके अलावा, यह गरीबी और आय असमानता से भी जुड़ा मुद्दा है। जैसे-जैसे मजदूरी बढ़ती है, गरीबी और आय असमानता कम होती है। दूसरी ओर यह कृषि उत्पादन की लागत को भी प्रभावित करता है। भारत में कृषि मजदूरों को दी जाने वाली दैनिक मजदूरी 2014-15 में 224.6 रुपये, 2015-16 में 236.9 रुपये, 2016-17 में 252.6 रुपये, 2017-18 में 267.1 रुपये, 2018-19 में 277.4 रुपये थी। 2019-20 में 286.6 रुपये था, इस प्रकार, भारत के महत्वपूर्ण राज्यों और पूरे देश में कृषि मजदूरों की मजदूरी दरों को दर्शाता है। यह देखा गया है कि 2014-15 से 2019-20 तक मजदूरी में पूर्ण और सापेक्ष वृद्धि हुई है। केरल की मजदूरी दरें अन्य राज्यों और राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि केरल में कृषि मजदूरों की आर्थिक स्थिति अन्य राज्यों की तुलना में बेहतर है। सबसे कम मजदूरी दर तथाकथित विकासशील राज्य गुजरात की है। 2014-15, 2015-16, 2016-17, 2018-19, 2019-20 में यह क्रमशः 160, 177.6, 184, 189.9, 199.3 और 208.4 रुपये है। इस दृष्टि से गुजरात में कृषि मजदूरों की आर्थिक स्थिति सबसे खराब है।

भारत के विभिन्न राज्यों में महिला कृषि मजदूरों और पुरुष कृषि मजदूरों की औसत मजदूरी

पुरुषों और महिलाओं के बीच वेतन की समानता और लैंगिक आर्थिक विकास दोनों मुद्दे हैं। यदि मजदूरी दरों में अंतर अधिक है, तो यह लैंगिक असमानता को इंगित करता है। यह समाज के आधे हिस्से के साथ हुए अन्याय का प्रतीक है। साथ ही यह वेतनभोगी की आर्थिक स्थिति और आर्थिक विकास को भी प्रभावित करता है। हरियाणा में महिला कृषि मजदूरों को पुरुष कृषि मजदूरों की तुलना में औसतन अधिक मजदूरी दी जाती थी। जबकी जम्मू-कश्मीर, पंजाब, बिहार, झारखंड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, केरल, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में कृषि मजदूर की औसत मजदूरी दर प्रति पुरुष, प्रति महिला के मुकाबले ज्यादा दी जा रही है। इसके अलावा, पूरे भारत में एक पुरुष खेत मजदूर की औसत मजदूरी दर 180. 70 रुपये और एक महिला की औसत मजदूरी दर 135.67 रुपये है। भारत भर में महिला कृषि मजदूरों की मजदूरी पुरुष कृषि मजदूरों की तुलना में 20% से अधिक कम है, जो देशव्यापी स्तर पर लैंगिक भेदभाव का संकेत देती हैं। इस संदर्भ में महिला सशक्तिकरण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए कृषि मजदूरी में लैंगिक भेदभाव को खत्म करने की आवश्यकता है।

भारत के आर्थिक परिदृश्य में, खासकर कृषि क्षेत्र में, महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। विभिन्न राज्यों में कृषि श्रमिकों के किसानों के अनुपात में परिवर्तन के लिए बदलती दिशाएँ देखने को मिलती है, जो आर्थिक विकास के प्रभाव को जीवनों पर प्रकट करता है। केरल कृषि श्रमिकों के लिए तुलनात्मक अधिक वेतन देता है, और वह इस मामले मे सबसे आगे है। जबकि गुजरात पीछे रह जाता है। वेतन में लैंगिक असमानता है, जहाँ पर महिलाएं आमतौर पर पुरुषों से कम कमाई करती हैं, इससे लैंगिक असमानता को दूर करने की आवश्यकता को जोर देते हैं। आमतौर पर, ये कहा जा सकता है की भारत के कृषि क्षेत्र में आर्थिक असमानता को सुधारने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने की सरकारी हस्तक्षेप की महत्वपूर्णता को समजना जरुरी हैं।

संदर्भ साहित्य

1. ILO (2018) India Wage Report, Wage Pollicies For Decent Work And Inclusive growth, ILO Decent Work Team For South Asia And Country Ofiice For india
2. 1987નો વિશ્વ બેંકનો વાર્ષિક અહેવાલ
3. Gunawardana, S. J. (2018). Rural women's participation and recognition in sustainable agricultural livelihoods across their life-course, in post-war Sri Lanka: Oxfam Monash Partnership Report.

डिजिटल सोर्स :

1. https://www.ft.lk/columns/Sri-Lanka-Issues-and-priority-for-the-agriculture-sector/4-713634
2. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/12268292/
3. https://factsanddetails.com/china/cat9/sub63/item346.html
4. https://www.britannica.com/event/Landless-Workers-Movement
5. https://www.scielo.br/j/resr/a/g89zzjQqsJkJjfQRmCdRYKy/?lang=en

सूचना का अधिकार अधिनियमः सुशासन के लिए महत्व और चुनौतियाँ

प्रमोद कुमार गंगवार

पीएच0 डी0 स्कॉलर, महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय बरेली उत्तर प्रदेश

डॉ० धर्मेंद्र कुमार सिंह

शोध पर्यवेक्षक, प्राचार्य, यू.पी. कॉलेज, वाराणसी उत्तर प्रदेश

सारांश

सूचना का अधिकार अधिनियम लोगों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने और विभिन्न सरकारी एजेंसियों और विभागों के अधिकारियों पर बेहतर नियंत्रण रखने और उनके कानूनी और संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए एक बहुत शक्तिशाली उपकरण साबित हुआ। सूचना लोगों की मानसिकता बदल देती है और यह आधुनिक दुनिया से निपटने में सक्षम है। सूचना तक निःशुल्क पहुंच और सरकारी निर्णयों में लोगों की भागीदारी शासन को सुशासन में परिवर्तित करती है। इसलिए, सरकार का यह कर्तव्य है कि वह नागरिकों को सरकार के भीतर दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं के बारे में सूचित करे। भारत की संसद ने जवाबदेही, पारदर्शिता को बढ़ावा देने, राजनीति के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को मजबूत करने और भ्रष्टाचार को कम करने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 पारित किया। यह लेख सुशासन में सूचना का अधिकार की भूमिका को उजागर करने का प्रयास करता है और इस लेख का उद्देश्य सूचना का अधिकार अधिनियम के महत्व और चुनौतियों के बारे में बताया गया है और इस अधिनियम के प्रावधानों के बारे में बताया गया है।

संकेत शब्द- सूचना का अधिकार अधिनियम, सक्षम, पालक, पारदर्शिता, भ्रष्टाचार, परिवर्तन।

परिचय

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक मिशेल फौकॉल्ट ने एक बार कहा था, शक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है और सूचना ज्ञान का मूल घटक है। सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 (आरटीआई) भारत की संसद का एक अधिनियम है जो ''नागरिकों के लिए सूचना के अधिकार की व्यवस्था व्यावहारिक समाधान प्रदान करता है"। यह अधिनियम भारत के सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों पर लागू होता है। सूचना अधिनियम 2005 अधिनियम के प्रावधानों के तहत, कोई भी नागरिक ''प्राधिकरण" से जानकारी का अनुरोध कर सकता है (सरकार का एक निकाय या ''राज्य का साधन") जिसे शीघ्रता से उत्तर देना आवश्यक है[1] सूचना प्रत्येक मनुष्य का अभिन्न एवं नैसर्गिक अधिकार है। एक लोकतांत्रिक देश में प्रत्येक व्यक्ति के पास अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है, इस अधिकार में जनता की राय रखने और जानने का अधिकार शामिल है, सार्वजनिक प्राधिकारियों से जानकारी और विचार प्राप्त करना और प्रदान करना। उपलब्ध एवं उचित जानकारी नागरिक को सभ्य समाज में सम्मानजनक जीवन जीने में मदद करता है।[2] सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 प्रत्येक को सक्षम बनाता है नागरिक पहुँच को जनता जानकारी से सरकार अभिलेख पहले यह पहुँच

था उपलब्ध को नागरिकों का देश में केवल नौ राज्य लेकिन 12 अक्टूबर 2005 को केंद्रीय अधिनियम लागू होने के साथ ही यह अधिकार अब प्रत्येक नागरिक के लिए उपलब्ध है।[3] सूचना की स्वतंत्रता प्रशासन में खुलापन लाती है जिससे राज्य के मामलों में पारदर्शिता, सरकार को अधिक जवाबदेह बनाए रखना और अंततः भ्रष्टाचार को कम करनेमे मदद मिलती है।[4] शासन और सुशासन चर्चा और विचार-विमर्श का विषय और मुद्दा बन गया है। सुशासन की आवश्यकता सर्वमान्य है। राज्य और उसके मशीनरी को लोगों के कल्याण के लिए काम करना चाहिए। सुशासन हर किसी की आधारशिला है। सुशासन में आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और न्यायिक जैसे व्यापक मुद्दे शामिल हैं।[5] अच्छा शासन पारदर्शिता, जवाबदेही और प्रतिक्रियाशीलता को बढ़ावा देने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम को एक महत्वपूर्ण तंत्र के रूप में तेजी से पहचाना जा रहा है। सरकारी प्रशासन में जवाबदेही सरकार के प्रतिनिधि स्वरूप में जनता ही एकमात्र भाग होती है।[6] आरटीआई अधिनियम ने एक शांत सामाजिक क्रांति पैदा की है और देश के शासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सूचना का अधिकार व्यावहारिक रूप से देश के हर कोने में उपयोगकर्ता और कार्यकर्ता विभिन्न विषयों पर प्रश्न पूछ रहे हैं। इस अधिनियम ने गरीबों और हाशिए पर रहने वाले लोगों के जीवन की गुणवत्ता पर बेहतर प्रभाव डाला है। पिछले पांच साल के दौरान, सकारात्मक परिवर्तन लाया है।

साहित्य की समीक्षा-

साठे एस.पी.[7] ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 पर एक स्पष्ट और विश्लेषणात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की है। उन्होंने इस कानून के इतिहास और एक संवैधानिक अधिकार के रूप में सूचना के अधिकार के विकास का भी पता लगाया है। उन्होंने इस अधिनियम के कार्यान्वयन में शामिल प्रशासनिक प्रक्रिया को भी समझाया है। उन्होंने अधिकार पर न्यायिक निर्णयों और अधिनियम को लागू करते समय आने वाली समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया है।

वाडिया एंजेला[8] ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 और इस अधिनियम द्वारा उत्पन्न चुनौतियों को व्यापक रूप से कवर किया है। उन्होंने पीआईओ (सार्वजनिक सूचना अधिकारी) के कर्तव्यों के बारे में बताया।

दास पी.के.[9] भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 और खंड (1) (ए) में प्रयुक्त शब्दों का सरल अर्थ और व्याख्या देता है, जिसका उत्पाद सूचना का अधिकार है।

आचार्य एन.के.[10]12 ने सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया और सूचना प्राप्त करने के लिए शुल्क संरचना पर विस्तार से टिप्पणी की है। उन्होंने जानकारी प्राप्त करने के लिए आवेदन, प्रथम अपील एवं द्वितीय अपील का प्रारूप दिया है।

मिश्रा सुधांशु[11] ने शोध पत्र प्रस्तुत किए हैं जो आरटीआई अधिनियम के दायरे, विभिन्न प्रावधानों, शक्तियों और कमियों को बताते हैं। साथ ही भारतीय लोकतंत्र पर इसके प्रभाव का आलोचनात्मक विश्लेषण करना तथा सतत ग्रामीण विकास के लिए आरटीआई अधिनियम के महत्व पर विचार करना।

गोयल एस.एल.[12]ने सूचना के अधिकार को विभिन्न कोणों से देखा है- ऐतिहासिक, कानूनी, संस्थागत, राजनीतिक, प्रशासनिक और यहां तक कि भविष्य भी।

अध्ययन का उद्देश्य-

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य विशेष रूप से सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 और इसकी समस्या और चुनौतियों का अध्ययन करना है। सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के अधिनियमन के उद्देश्यों का मूल्यांकन करना और सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के बारे में लोगों में जागरूकता लाना।

अनुसंधान क्रियाविधि

अनुसंधान पद्धति किसी भी अनुसंधान परियोजना का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। अध्ययन के उद्देश्य से विभिन्न स्रोतों का सर्वेक्षण किया गया है जैसे भारतीय संविधान, सूचना का अधिकार अधिनियम 2005, सूचना का अधिकार अधिनियम के संबंध में विभिन्न आयोगों और समितियों की रिपोर्ट, सार्वजनिक सूचना अधिकारियों और प्राधिकरणों के प्रश्नावली और साक्षात्कार, पुस्तकों, पत्रिकाओं के माध्यम से जानकारी एकत्र करना।

सूचनाका अधिकार और सुशासन

सूचना का अधिकार अधिनियम एक पथप्रदर्शक कानून है जो लोकतांत्रिक विचारधारा को बढ़ावा देने का एक प्रभावीमाध्यम है। यह अधिनियम भ्रष्टाचार से लड़ने का सशक्त माध्यम है। इस महत्व को समझते हुए द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने सार्वजनिक प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार के लिए एक विस्तृत खाका तैयार किया था। भारत सरकार के दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग ने ''सूचना का अधिकार: सुशासन की मुख्य कुंजी'' में अपनी पहली रिपोर्ट प्रकाशित की है। सुशासन की विशेषता पारदर्शिता और जवाबदेही है और शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने का सबसे अच्छा तरीका है कि लोगों को सरकार की गतिविधियों को जानने का अधिकार होना चाहिए।[13] आरटीआई अधिनियम ने आम लोगों को सशक्त बनाया है, सुशासन को बढ़ावा दिया है, सहभागी लोकतंत्र को मजबूत किया है और भ्रष्टाचार को कम किया है। और राजनीतिक निर्णय लेने में, समाज में स्थिरता और परिवर्तन के बीच संतुलन बनाए रखना चाहता है।[14]

पारदर्शिता

पारदर्शिता सुशासन को बढ़ावा देता हैं। सूचना का अधिकार नागरिकों को यह देखने में सक्षम बनाता है कि सरकारें, सार्वजनिक कार्यालयों में बैठे लोग कैसे काम कर रहे हैं।[15] जनता को खुलकर पता चलना चाहिए कि क्या होना है और क्या हो चुका है। पारदर्शिता किसी भी अच्छी सरकार की आधारशिला है। जनता को सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों के बारे में जानने का अधिकार है। सरकार के सभी संचार जनता के लिए खोले जाने चाहिए।[16] 12 सूचना तक पहुंच पारदर्शिता का एक बड़ा समर्थक है और पारदर्शिता का तात्पर्य आम जनता के लिए सूचना की उपलब्धता और सरकारी संस्थानों के कामकाज के बारे में स्पष्टता से है। सूचना का अधिकार अधिनियम का उद्देश्य सरकारी निर्णय लेने की प्रक्रिया को और अधिक खुला बनाकर सरकार में जवाबदेही और पारदर्शिता को बढ़ावा देना है। हालाँकि केंद्र सरकार के कुछ विभागों को इस अधिनियम से छूट दी गई है, लेकिन यदि यह मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित है तो जानकारी मांगी जा सकती है। यहां तक कि निजी प्राधिकारी से भी जानकारी केवल नियंत्रण प्राधिकारी के माध्यम से मांगी जा सकती है और नियंत्रण प्राधिकारी अधिनियम की धारा 11 के तहत संबंधित संस्थान को नोटिस भेजेगा। अधिकांश देशों ने अनुभव के माध्यम से यह महसूस किया है कि अधिक पहुंच नागरिकों की जानकारी सामुदायिक आवश्यकताओं के प्रति सरकार के खुलेपन को बढ़ाती है। बदले में, यह सार्वजनिक शिकायतों के तत्काल निवारण की सुविधा प्रदान करता है और इस प्रकार सरकार के प्रति सद्भावना की भावना में सुधार करता है। पूंजीवादी और लोकतांत्रिक देशों में सत्तावादी शासन के मुकाबले उच्च स्तर का खुलापन है दुनिया में कहीं भी सरकारी कामकाज पूरी तरह खुला नहीं है।[17]

जवाबदेही

जवाबदेही सुशासन की एक प्रमुख आवश्यकता है। जवाबदेही के बिना, किसी भी विकास विफलता की जड़ का पता नहीं लगाया जा सकता है। सरकार ही नहीं, निजी क्षेत्र की संस्थाएं भी जनता के प्रति जवाबदेह बनें। सूचना शक्ति है और सूचना का अधिकार अधिनियम प्रशासन में जवाबदेही और पारदर्शिता लाता है।[18] जवाबदेही में एक तंत्र का अस्तित्व शामिल है, जो यह सुनिश्चित करता है कि राजनीतिक और अधिकारी दोनों अपने कार्यों, प्रदर्शन और सार्वजनिक संसाधनों के उपयोग के लिए जवाबदेह हैं। यदि वे जवाबदेही बनाए रखने में विफल रहते हैं, तो उनकी शक्ति और अधिकार समाप्त हो जाते हैं। आरटीआई अधिनियम ने लोगों को अपने कार्यों या इसकी कमी के बारे में निश्चित और अधिकारियों की तलाश करने का अधिकार दिया। इसलिए, जवाबदेही से हमेशा सरकारी अधिकारियों में प्रभावशीलता और जिम्मेदारी की भावना पैदा होती है। आरटीआई अधिनियम अपने वर्तमान स्वरूप में भ्रष्टाचार की जड़ों पर भी हमला करने के लिए पर्याप्त रूप से मजबूत है। जब तक इसके बीज उच्चतम स्तर पर बोये जायेंगे तब तक निचले स्तर पर भ्रष्टाचार सदैव रहेगा। आरटीआई अधिनियम का उपयोग भ्रष्टाचार के इन बीजों को उजागर करने के लिए किया जा सकता है जो बदले में निचले स्तर पर भ्रष्टाचार को नियंत्रित कर सकता है।

भाग लेना

भागीदारी शासन में पूरे समाज की भागीदारी की परिकल्पना करती है। पुरुष और महिला दोनों ही सुशासन की आधारशिला हैं। प्रतिनिधि लोकतंत्र का मतलब कुछ चुने हुए लोगों का शासन नहीं है इसे सभी वर्गों, विशेष रूप से समाज के सबसे कमजोर वर्गों

के हित में ध्यान रखना चाहिए। लोगों की भागीदारी के बिना, सूचना का अधिकार एक गैर-शुरुआत वाला रहेगा।[19] भागीदारी की व्यापक परिभाषाएँ हैं। एक ओर, कुछ शोधकर्ता भागीदारी का अर्थ केवल किसी विशेष गतिविधि में शामिल होना मानते हैं (बिशप और डेविस 2002य पॉल 1987)य दूसरी ओर, शोधकर्ता भागीदारी को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जिसके माध्यम से लोग विकास पहलों को प्रभावित करते हैं और उन पर नियंत्रण साझा करते हैं (अर्नस्टीन 1971य शैंड और अर्नबर्ग 1996य विश्व बैंक 1996)।[20] सूचना का अधिकार अधिनियम लोगों और सरकार के बीच संबंध बनाता है। सुशासन के लिए आवश्यक है कि नागरिक समाज को विकास रणनीतियों के निर्माण के दौरान भाग लेने का अवसर मिले और सीधे प्रभावित समुदाय और समूह कार्यक्रमों और परियोजनाओं के डिजाइन और कार्यान्वयन में भाग लेने में सक्षम हों। यहां तक कि जहां परियोजनाओं का विशेष इलाकों या जनसंख्या समूहों पर द्वितीयक प्रभाव पड़ता है, वहां एक परामर्श प्रक्रिया होनी चाहिए जो उनके विचारों को ध्यान में रखे।[21] नागरिक जो सार्वजनिक मामलों को समझते हैं और सरकार क्या कर रही है, वे उन मुद्दों पर अपनी राय दे सकते हैं जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं: वे सरकार के व्यवसाय में भाग ले सकते हैं। सूचना का अधिकार नागरिकों को राजनीतिक और आर्थिक विकल्प चुनने में सुविधा प्रदान करता है और इस प्रकार लोकतंत्र को मजबूत करता है। आरटीआई अधिनियम ने शासन की प्रक्रिया में आम लोगों की भागीदारी को सुविधाजनक और प्रोत्साहित किया है। पहले लोगों के पास इच्छा तो थी, लेकिन तथाकथित अधिकारिक मामलों में हिस्सा लेने का तरीका नहीं था। लेकिन आरटीआई अधिनियम ने शासन में आम लोगों की सक्रिय भागीदारी का मार्ग सुगम कर दिया।[22]

सरल उपयोग

सूचना का अधिकार सरकारी विभागों, दस्तावेजों, अभिलेखों, सेवाओं, वित्त और नीतियों से लेकर समुदाय के सभी क्षेत्रों तक जानकारी तक आसान पहुंच को संभव बनाता है। एक आम गरीब व्यक्ति विकास को लेकर सरकार के मामले में दखल देता है. सूचना का अधिकार अधिनियम सूचना तक आसान पहुंच प्रदान करके नागरिकों और प्रशासन के बीच स्थापित लंबे अंतर को कम करता है और इस प्रकार राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया में मदद करता है। प्रत्येक व्यक्ति सरकार की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों के बारे में जागरूक हो जाता है।[23] जब नागरिकों को सेवा वितरण और अन्य सरकारी कार्यों के बारे में जानकारी मिलती है, तो वे जानते हैं कि वे किस चीज के हकदार हैं और वे जानते हैं कि उन सेवाओं और अन्य पर अपना अधिकार कैसे और कहां मांगना है। आरटीआई से पहले के युग में लोगों की भूमिका केवल अपने नेताओं के चुनाव तक ही सीमित थी, लोगों को सरकारी गतिविधियों के मुद्दों के बारे में जानने का कोई अधिकार नहीं था। लेकिन आरटीआई अधिनियम ने आम लोगों को अपनी सरकार के कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का बहुत जरूरी अधिकार दिया और सरकारी अधिकारियों को पूरी तरह से नागरिकों का सहयोग करना चाहिए। इस अधिनियम को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया था और यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि सरकार के समुचित कामकाज के लिए यह कितना महत्वपूर्ण है।[24]

अधिकारिता

स्थानीय क्षेत्रों में विकास और जनभागीदारी सुनिश्चित करने के लिए शक्ति का विकेंद्रीकरण करना होगा। इसे लोगों का सशक्तिकरण भी कहा जाता है. सूचना का अधिकार अधिनियम के लागू होने से पहले, राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रियाओं में भागीदारी और सूचित विकल्प चुनने की क्षमता भारत तक ही सीमित थी। परिणामस्वरूप, आम लोग विभिन्न योजनाओं से अनभिज्ञ रहते हैं और जब उनके अधिकार कारण बन जाते हैं तो वे विरोध करने में असमर्थ होते हैं। साथ ही, लोग उन तरीकों और साधनों के बारे में भी अनभिज्ञ रहते हैं जिनके माध्यम से वे संबंधित विभागों से कानूनी तौर पर अपना हक प्राप्त कर सकते हैं।

फ्रांसीसी दार्शनिक मिशेल फौकॉल्ट के अनुसार, शक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है और सूचना ज्ञान का मूल घटक है। इसलिए, प्रौद्योगिकी संचालित सूचना क्रांति के इस युग में, सशक्तिकरण का अर्थ सूचना तक पहुंच है। कोई भी अत्याचारी सरकार सबसे पहला काम सूचना के संसाधनों तक लोगों की पहुंच को प्रतिबंधित करना और उस पर एकाधिकार जमाना करती है, जबकि सुशासन का सिद्धांत सूचना के मुक्त प्रवाह की मांग करता है। सूचना के संकेन्द्रण की अनिवार्यता से सत्ता का केन्द्रीकरण होता है।[25] अब सूचना का अधिकार अधिनियम लागू होने से लोग निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग ले सकते हैं और यह नागरिकों को सरकारी निर्णयों के बारे में जानने में सक्षम बनाता है। सूचना का अधिकार अधिनियम सरकार की निर्णय लेने की प्रक्रिया में मौजूद अनावश्यक गोपनीयता को दूर करके लोगों को सशक्त बनाता है।[26]

समानता और समावेशिता

यह सुशासन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है। इसका तात्पर्य यह है कि हर कोई शासन का हिस्सा है और वे समाज की मुख्य धारा से निष्कासित महसूस नहीं करते हैं। सरकारी निर्णयों में हर व्यक्ति को समान दर्जा मिलना चाहिए। सूचना का अधिकार अधिनियम भी अमीर और गरीब के बीच कोई भेदभाव नहीं करता है और यह भारत के सभी नागरिकों को कवर करता है। यह हमेशा असमानता के खिलाफ लड़ने, न्याय और अमानवीय गतिविधियों में एक महान भूमिका निभाता है।[27]

सूचना अधिनियम को अपनाने के लिए उत्तरदायी कारक इस प्रकार हैं

1. भ्रष्टाचार और घोटाले
2. अंतर्राष्ट्रीय दबाव एवं सक्रियता
3. आधुनिकीकरण और सूचना समाज

अधिनियम की विशेषताएं

1. धारा-1(2): इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है।
2. धारा- 2(एफ): ''सूचना" का अर्थ किसी भी रूप में कोई भी सामग्री है, जिसमें रिकॉर्ड, दस्तावेज, मेमो, ई-मेल, राय, सलाह, प्रेस विज्ञप्ति, परिपत्र, आदेश, लॉगबुक, अनुबंध, रिपोर्ट, कागजात, नमूने शामिल हैं। मॉडल, किसी भी इलेक्ट्रॉनिक रूप में रखी गई डेटा सामग्री और किसी निजी निकाय से संबंधित जानकारी जिसे किसी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा उस समय लागू किसी अन्य कानून के तहत एक्सेस किया जा सकता है।
3. धारा- 2(जे): ''सूचना का अधिकार" का अर्थ इस अधिनियम के तहत सुलभ सूचना का अधिकार है जो किसी भी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा या उसके नियंत्रण में है और इसमें निम्नलिखित का अधिकार शामिल है:
    - कार्य, दस्तावेजों, अभिलेखों का निरीक्षण
    - दस्तावेजों या अभिलेखों के नोट्स, उद्धरण या प्रमाणित प्रतियां लेना
    - सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना
    - डिस्केट, फ्लॉपी, टेप, वीडियो कैसेट या किसी अन्य इलेक्ट्रॉनिक मोड में या प्रिंटआउट के माध्यम से जानकारी प्राप्त करना जहां ऐसी जानकारी कंप्यूटर या किसी अन्य डिवाइस में संग्रहीत होती है।
4. आरटीआई अधिनियम की धारा 4 के अनुसार प्रत्येक सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा सूचना का स्वत: खुलासा करना आवश्यक है। हालाँकि, ऐसे खुलासे संतोषजनक से कम रहे हैं।
5. धारा 8(1) में आरटीआई अधिनियम के तहत जानकारी प्रस्तुत करने से छूट का उल्लेख है।
6. धारा 8(2) व्यापक सार्वजनिक हित की पूर्ति के लिए आधिकारिक गोपनीयता अधिनियम, 1923 के तहत छूट प्राप्त जानकारी के प्रकटीकरण का प्रावधान करती है।
7. अधिनियम केंद्र और राज्य स्तर पर सूचना आयुक्तों की नियुक्ति का भी प्रावधान करता है। सार्वजनिक प्राधिकरणों ने अपने कुछ अधिकारियों को सार्वजनिक सूचना अधिकारी के रूप में नामित किया है। वे आरटीआई अधिनियम के तहत जानकारी मांगने वाले व्यक्ति को जानकारी देने के लिए जिम्मेदार हैं।
8. समय अवधि: सामान्य तौर पर, किसी आवेदक को सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा आवेदन प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर जानकारी प्रदान की जानी होती है।
    - यदि मांगी गई जानकारी किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से संबंधित है, तो उसे 48 घंटों के भीतर आपूर्ति की जाएगी।
    - यदि आवेदन सहायक लोक सूचना अधिकारी के माध्यम से भेजा गया है या यह किसी गलत लोक प्राधिकारी को भेजा गया है, तो तीस दिन या 48 घंटे की अवधि में, जैसा भी मामला हो, पांच दिन जोड़े जाएंगे।

महत्त्व

- आरटीआई अधिनियम, 2005 ने कानून को लागू करने के लिए कोई नई नौकरशाही नहीं बनाई। इसके बजाय, इसने प्रत्येक कार्यालय में अधिकारियों को अपने रवैये और कर्तव्य को गोपनीयता से साझा करने और खुलेपन में बदलने का काम सौंपा और अनिवार्य किया।
- इसने सावधानीपूर्वक और जानबूझकर सूचना आयोग को देश में सर्वोच्च प्राधिकारी होने का अधिकार दिया, जिसके पास देश में किसी भी कार्यालय को अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार जानकारी प्रदान करने का आदेश देने का अधिकार था। और इसने आयोग को जनादेश का पालन नहीं करने वाले किसी भी अधिकारी पर जुर्माना लगाने का अधिकार दिया।
- सूचना के अधिकार को सहभागी लोकतंत्र को मजबूत करने और जन-केंद्रित शासन की शुरुआत करने की कुंजी के रूप में देखा गया है। सूचना तक पहुंच गरीबों और समाज के कमजोर वर्गों को सार्वजनिक नीतियों और कार्यों के बारे में जानकारी मांगने और प्राप्त करने के लिए सशक्त बना सकती है, जिससे उनका कल्याण हो सकेगा। इसने राष्ट्रमंडल खेलों के आयोजन और 2जी स्पेक्ट्रम और कोयला ब्लॉकों के आवंटन जैसे उच्च स्थानों पर गलत कामों को उजागर करके एक प्रारंभिक वादा दिखाया।
- सूचना का अधिकार सरकार के रिकॉर्ड को सार्वजनिक जांच के लिए खोलता है, जिससे नागरिकों को यह सूचित करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण मिलता है कि सरकार क्या करती है और कितनी प्रभावी ढंग से करती है, इस प्रकार सरकार अधिक जवाबदेह बनती है।
- अनावश्यक गोपनीयता को हटाकर सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निर्णय लेने में सुधार करता है।

चुनौतियां

1. विभिन्न प्रकार की जानकारी मांगी जाती है जिसका कोई सार्वजनिक हित नहीं होता है और कभी-कभी इसका उपयोग कानून का दुरुपयोग करने और सार्वजनिक अधिकारियों को परेशान करने के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए-
   - हताशापूर्ण और प्रचुर जानकारी मांगना।
   - आरटीआई दाखिल कर प्रचार पाना
   - सार्वजनिक प्राधिकरण को परेशान करने या दबाव डालने के लिए प्रतिशोधात्मक उपकरण के रूप में आरटीआई दायर की गई
2. देश की बहुसंख्यक आबादी में अशिक्षा और अज्ञानता के कारण आरटीआई का प्रयोग नहीं किया जा सकता।
3. हालांकि आरटीआई का उद्देश्य शिकायत निवारण तंत्र बनाना नहीं है, सूचना आयोगों के नोटिस अक्सर सार्वजनिक अधिकारियों को शिकायतों के निवारण के लिए प्रेरित करते हैं।

भारत में भ्रष्टाचार कम करने में आरटीआई की भूमिका

भारत में भ्रष्टाचार सबसे उलझा हुआ मुद्दा बन गया है। इसमें न केवल निचला स्तर बल्कि ऊपरी स्तर भी शामिल है जहां मंत्री और नौकरशाह शामिल होते हैं। भ्रष्टाचार के कई मामले जहां मंत्री शामिल हैं, उन्हें जांच और कार्रवाई के लिए सीबीआई को भेजा गया है।[28] गोपनीयता और जानकारी की कमी भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग के लिए प्रजनन भूमि बनाती है। पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देकर सूचना का अधिकार ऐसे दुरुपयोगों पर अंकुश लगाता है।[29] भ्रष्टाचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जो गरीबी को कायम रखती है और गरीबों को नुकसान पहुंचाती है। यह लोगों और सरकार के बीच अविश्वास का माहौल बनाता है, जो विकास में बाधा डालता है और लोकतांत्रिक शासन को खतरे में डालता है। आरटीआई शासन के तहत, सार्वजनिक विभागों के कामकाज में अभूतपूर्व पारदर्शिता आई है। परिणामस्वरूप, निर्णय लेने की प्रक्रिया की बेहतर समझ और सरकार की अधिक जवाबदेही होती है। इससे देश में भ्रष्टाचार में कमी आई है।[30] भारत के प्रधान मंत्री ने महसूस किया है कि राजनीतिक और प्रशासनिक दोनों स्तरों पर भ्रष्टाचार है। 2007 में जब भारतीय प्रधान मंत्री डॉ. मन मोहन सिंह ने 2006 के आईएएस परिवीक्षार्थियों को संबोधित

करते हुए कहा था कि "आने वाले नौकरशाहों को प्रशासनिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार की बाधाओं से निपटना चाहिए और एक योग्य भारत बनाने के लिए सभी स्तरों पर शासन की गुणवत्ता में सुधार करना चाहिए।" हमारे सपने'। यदि बाधाएँ हैं, तो बाधाएँ हमारे देश में, हमारे सुशासन में, हमारी शासन प्रक्रियाओं में हैं। यह सच है कि राजनीतिक स्तर और प्रशासनिक स्तर दोनों पर बहुत भ्रष्टाचार है। हमें इसे सीधे तौर पर लेना चाहिए।"[31] डॉ. मनमोहन सिंह सरकार में भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के लिए उच्च अधिकारी होशियार सिंह और मंदिर सिंह ने सही टिप्पणी की है कि ''भ्रष्टाचार के खिलाफ कोई भी अभियान तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि सरकार खुद दृढ़ता से प्रतिबद्ध न हो।" रैंक और स्थिति की परवाह किए बिना बेईमान और भ्रष्ट अधिकारियों को बाहर निकालने का कार्य। भ्रष्टाचार की सजा अनुकरणीय होनी चाहिएय कम से कम सेवा से बर्खास्त किया जाना चाहिए। इसलिए आरटीआई एक महत्वपूर्ण उपकरण है, और के हाथ में एक शक्तिशाली हथियार है। एक आम आदमी को भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ना होगा। आरटीआई सरकार को बहुत सहज, पारदर्शी, जवाबदेह और आम लोगों के प्रति सहभागी बनाती है। अंत में हम कहते हैं कि आरटीआई लोगों के लिए एक रास्ता बनाती है जिससे वह सरकार से जुड़ता है और शासन को सुशासन में बदलता है।

निष्कर्ष

सूचना का अधिकार अधिनियम सुशासन का एजेंट है। आरटीआई प्रशासन को लोगों के प्रति अधिक जवाबदेह बनाता है। लोग प्रशासन के प्रति जागरूक होते हैं और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर देते हैं। आरटीआई ने प्रशासन में खुलेपन और पारदर्शिता को बढ़ावा देकर लोकतांत्रिक विचारधारा को बढ़ावा दिया है। मौलिक अर्थ में, इसलिए सूचना का अधिकार अधिनियम, यदि विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग और कार्यान्वित किया जाता है, तो सामुदायिक आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील सुशासन प्रणाली को स्थापित करने की क्षमता है, और यही लोकतंत्र का मूल आधार है। इस प्रकार, यह सही ढंग से उल्लेख किया जा सकता है कि सूचना का अधिकार अधिनियम सुशासन का एक एजेंट है। यह प्रशासन को लोगों के प्रति अधिक जवाबदेह बनाता है। यह लोगों को प्रशासन के प्रति जागरूक बनाता है और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर देता है।सुशासन को बढ़ावा देते हुए इन सभी चुनौतियों से निपटने का सबसे अच्छा तरीका अधिनियम को निरर्थक बनाना है। सरकारों को आम लोगों द्वारा जानकारी मांगने का इंतजार करने के बजाय स्वेच्छा से सारी जानकारी लोगों को उपलब्ध करानी चाहिए। यह न केवल सुशासन को बढ़ावा देगा बल्कि सरकार और उन लोगों के बीच विश्वास भी बढ़ाएगा जिन पर वह शासन करता है।

संदर्भ

1 बनर्जी, आर. (2012).सूचना का अधिकार और सुशासन। उठो प्रकाशक: नई दिल्ली.पी.1.

2 बोरा, एस.के. (2013)। सूचना का अधिकार अधिनियम: सुशासन की कुंजी। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस: वॉल्यूम-2, अंक-2 पृष्ठ 11।

3 http%//www-caluniv-ac-in/global&mdiajournal/WINTER%202010%20COMMENTARIES/Commentaries%201-pdf

4 शिल्पा. (2013).सूचना का अधिकार अधिनियम: सुशासन को मजबूत करने और भ्रष्टाचार से निपटने के लिए एक उपकरण। मानविकी और सामाजिक विज्ञान आविष्कार का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल: पृष्ठ 46।

5 - www-legalindia-in/wp&content/uploads/2013/03/RTI-pdf 8- ogh, N2, p-11-

6 वही, एन2, पृ.17.

7 हाजरा, एन. (2013).आरटीआई- सुशासन का अधिकार। योजना जर्नल: पृष्ठ 56.

8 वाडिया एंजेला सूचना का अधिकार भ्रष्टाचार से निपटने के लिए एक उपकरण। पृ. 214

9 चौबे, एम.के. सूचना का अधिकार विभिन्न आयाम। रीगल प्रकाशन: नई दिल्ली। पृ. 24.

10 वही, एन11. पृ. 122.

11 उक्त.,एन2. पृष्ठ 17.

12 http%//cic-gov-in/CIC&Articles/NorthernEnglish&01-htm

13 हाजरा,एन.(2013).आरटीआई.एस ही को अच्छा शासन. योजना जर्नल: पृष्ठ 56.

14 बे,एम।क। सही को जानकारी विभिन्न आयाम. शाही प्रकाशन: नयी दिल्ली। पृ. 24
15 वही,एन।1. पृ.122
16 इबिड, एन2.पृष्ठ 17
17 जोसेफ,वी (2001)।सही को जानकारी पर चौड़ाबातचीत.भारतीय पत्रिका का जनता प्रशासन: खंड. xvii.नंबर 2.पृ. 269.
18 इबिड, एन2, पृ.18.
19 http://infochangeindia.org/right-to-information/features/without-peoples-participation-the-right-to-information-will-remain-a-non-starter.html
20 http://vuir.vu.edu.au/16003/1/Thesis_3619041_Waheduzzaman.pdf
21 वही, N5,पृ. 47.
22 वही, एन10, पृ. 56
23 इबिड, एन2,पृष्ठ 17.
24 वही, एन10, पृ. 56.
25 वही, एन10, पृ. 56.
26 वही, एन16, पृ. 136.
27 निर्मला. (2012)। सही को जानकारी और एनजीओ-अध्ययन। भारतीय पत्रिका का सामाजिक विज्ञान-अंत: विषय अनुसंधान: खंड.1. अंक.12.
28
29 वही, एन16, पृ. 136.
30 वही, एन11, पृ. 25.
31 वही, एन4, पृ. 47

ओम पुरोहित 'कागद' के काव्य में पुरातात्विक चेतना

डॉ० पूजा धमीजा

शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज0)

कविता वर्मा

शोधार्थी, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज0)

सहित्य समाज का दर्पण होता है, जो किसी भी समाज की तस्वीर शब्दो के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

इस आधार पर हम कह सकते कि कवियों में सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना व सांस्कृतिक चेतना के अंशो को खोजने की प्रतिभा होती है। कवि एक चेतन व्यक्ति होता है जो समाज के सभी पक्षो को गौर से देखता, समझता है और फिर शब्द चित्र के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। कवि ही होता है जो स्वयं के स्वार्थो से उपर उठकर अपने विचारो को लोक - सामान्य के भावों के साथ जोड़ देता है।

साहित्य में कवियो की समाज, राजनीति व पर्यावरण के प्रति चेतना के साथ-साथ पुरातात्विक चेतना भी देखने को मिलती है।

पुरातात्विक चेतना क्या है ? -

इस प्रश्न के उत्तर में केवल हम यह कह सकते है कि किसी साहित्य में जब किसी प्राचीन सभ्यता के इतिहास, उस सभ्यता की यात्रा, नष्ट होना, सभ्यता की खुदाई में मिले अवशेषों व सभ्यता के गौरव का बयान साहित्य में किया जाता है तो साहित्य में पुरातात्विक अंशो का समावेष हो जाता है। पुरातत्व का साधारण रूप में यह अर्थ ग्रहण कर सकते है कि जिस युक्ति से धरती में दबी किसी संस्कृति को उजागर करना हो, उसे पुरातत्व कहा जाता है। पुरातत्व वेसे तो भौतिक पर्यावरण में हुए परिवर्तनो का अध्ययन करता है यह पृथ्वी के नीचे दबी हुई वस्तुओ का अध्ययन कर किसी संस्कृति या सभ्यता के विषय में तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध करता है, परन्तु कवि का उद्देष्य लोगों को उस सभ्यता व पुरातात्विक अषों के बारे में बिम्बात्मक अनुभूति करना है। वह लोगों की चेतनता को उस सभ्यता के साथ जोड़कर दिखाता है। उसके इतिहास को आधुनिक समय से जोड़कर दिखाना कवि का मुख्य उद्देरष्य रहता है। 'कागद' जी के काव्य संग्रह 'आंख भर चितराम' में कई कविताओं में पुरातात्विक चेतना देखी जा सकती है। 'कालीबंगा खण्ड' की इक्कीस कविताएं इस काव्य संग्रह को विषेष बना देती है। कालीबंगा में प्राचीन सरस्वती और दृषद्वती नदी के बांए तट पर स्थित तीन हजार वर्ष पुरानी सभ्यता की पहचान कवि ने अपनी कविताओं में की जो एक भरी-पूरी दुनिया के उजड़ने की त्रासदी को सामुदायिक दृष्टि से देखा है।

साथ ही 'बात तो ही' काव्य संग्रह में कालीबंगा 1, कालीबंगा 2, कालीबंगा 3 शीर्षक से कालीबंगा सभ्यता के प्रति कवि ने चेतना व्यक्त की है। इन कविताओं में 'कागद' जी ने राजस्थान राज्य के हनुमानगढ़ जिले की पीलीबंगा तहसील के गांव 'कालीबंगा' की बात की है जो कि एक पुरातात्विक स्थल है।

1) वस्तु चित्रण -

ओम परोहित 'कागद' जी ने अपनी इन पुरातात्विक चेतना से भरपूर कविताओं में इस सभ्यता में प्राप्त हर वस्तु का चित्रण बड़े ही कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए:-

उंचौ ?
डूंगर मान
थेड़ रै तळे
निकळी ही हांडकी
उण रै तळे
बच्योड़ो हो
ऊगण नै हांफतो बीज।[1]

उपर्युक्त पंक्तियॉ 'थेड़ रै तळे' कविता में से ली गई है। जिसमें कवि ने प्राचीन जीवन शैली को ऊभारा है। संस्कृत साहित्य में उल्लिखित 'बहुधान्यदायक क्षेत्र' यही था। संसार भर में उत्खनन से प्राप्त खेतों में यह पहला है।

कवि कागद नें यहां से प्राप्त मृदभाण्ड, काली चूड़ियों के टुकड़ों जिसके कारण इसका नाम कालीबंगा (पंजाबी में बंगा का अर्थ चूडी होता है) रखा गया। यहां से प्राप्त मुहर, मूर्तियों का चित्रण मानवीय क्रियाकलापों से जोड़कर एक बिम्ब प्रस्तुत किया है। बिम्बों के द्वारा कवि ने वस्तुओं, घटनाओं को साकार तथा निराकार पदार्थों और मानसिक क्रियाकलापों को प्रत्यक्ष एवम् इन्द्रिय ग्राहय बनाया है। वस्तु तथा घटनाएं हमारे सामनें उस रूप में उपस्थित हो जाती है जिस रूप में कवि उसे प्रत्यक्ष कराना चाहता है।

इन्नै-बिन्नै
खिडंयोड़ी
ठीकरयां अणथाग
खडा-बडा माट
ढकण्यां /परस हीण नीं है।
जळ भर
ढक्या होसी माट
हर घर में
किणीं हाथां
सकोरो भर जळ सू
मिटाई हो सी तिरस।[2]

कवि ने कालीबंगा से प्राप्त चूड़ियों को काल के ग्रास के कारण काली हुई बताते है। यहां भी कभी कोई सुहागिन लाल-पीली, केसरिया पाटला (चूड़ा) पहनकर खनकाती थी। केसरिया कसूंम्बल आढे कर स्त्रियाँ श्रृंगार किया करती थी। समय के साथ जैसे ही सभ्यता नष्ट हुई वैसी ही बेरंग हो गई वरना यहां भी हरियाली जीवन था।

काळी नीं ही
कोई बंग
गाया भी नीं हा
धूडिया धूक जीवाश्म
जका सोध्या है आज।

बेरंग चूंदड़ी
केसरिया कसूम्बल में
सज्योड़ी सुहागणा
खणकांवती होसी
सुहाग पाटला
लाल-पीळा-केसरिया।[3]

2) पुरातात्विक अवषेषों का विवरण -

इस काव्य संग्रह के माध्यम से कवि 'कागद' ने राजस्थानी कविता के इतिहास को एक नया मोड़ दिया है। आज तक राजस्थानी काव्य मे वीर रस, प्रकृति चित्रण, शोषण, अकाल व यहाँ की भौगोलिक संस्कृति ही केन्द्रित रही परन्तु यह पहली बार हुआ है कि किसी राजस्थानी कवि ने पुरातात्विक महत्व को और यहां की संस्कृति के प्रति चेतना के साथ संजीदा कवितांए लिखी है।

'कागद' ने कविता 'माटी होवण री जातरा' के माध्यम से कालीबंगा सभ्यता के नष्ट होने की तस्वीर प्रस्तुत करते हुए यह बताते हुए कि यहां प्राप्त हुए अवषेष इस सभ्यता के पतन की कहानी को बयान कर रहे है। यह उदाहरण दृष्टव्य है:-

माटी रो
ओ गोळ घेरो
कोई माडणो नी
अेनाण है डफरों
काठ सूं
माटी होवण री जातरा रो।
डफ हो
ते भेड भी ही
भेड ही
तो चरावणियां भी हा
चरावणियां हा तो
हाथ हा तो
सो क्यू हो
मीत हा / गीत हा / प्रीत ही
जकी विभगी
माटी होवे ण तक।[4]

कवि ने उत्खनन मे ं प्राप्त औजारों का वर्णन करते हुए कहा है -

बतावें
थेड़ में मिल्या
दांती-कस्सियाँ-हंसिया
राजा ई भाग्यो है
पकायत
अंगणां में पड़ी

हाथी दांत री तरवारां
भरै साख
पण उण रा खोज लाधै कद![5]

'कोई तो हा हाथ' कविता में कवि ने इस सभ्यता से प्राप्त चूल्हो के अवषेषों का सजीव चित्रण किया है। जहां सभ्यता में कभी एक साथ बैठकर खाने की परम्परा रही हो। कवि कहते है कि - आ ईटा रै/ ठीक बिचाळै/ पड़ी आ/ काळी माटी नी/ राख है चूल्है री/ जकी ही काळी बंगा में/ कदै' ई चते न/ चुल्लै माथे/ कदै' ई तो सीजतो हो खदबद खीचड़ो/ कोई तो हाथ/ जका परोसता/ घालता पळियै सूं घी/ भेळा जीमता/ टाबरां नै/

3) मानवीय सभ्यताओ ं का गौरवषाली अतीत -

जो सभ्यता आज से हजारो वर्षो पूर्व नष्ट हो चुकी थी उसे कवि ने नई संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। कालीबंगा सभ्यता में लोगों के रहन - सहन, खान -पान, संस्कृति, समाज आदि का इतना सजीव चित्रण कोई सहृदय कवि ही कर सकता है। आज तक अपेक्षित पड़े विषय को कवि ने नई चेतना व आधुनिक सभ्यता से जोड़कर प्रस्तुत किया है। इस काव्य संग्रह के संदर्भ में नीरज दइया का यह आवरण आलेख दृष्टव्य है-

- लोक अर जन सूं जुड़ाव रा केई केई चितरायां भैळै काळीबगां माथै लिख्योड़ी कवितरां री जड़ी इण पोथी री न्यारी निरवाळी ठोड़ बगावैला। पतियारों है कै झींणी संवेदना सूं सजी इण पोथी रो राजस्थानी कविता जातरा में जोरदार स्वागत हुवैला।[6]

'कागद' जी ने इस काव्य संग्रह में मानव सभ्यता के गौरवषाली अतीत व वैभव को रेखांकित करते हुए लिखा है -

भोत तळै जाय' र
नीसरयो है कूओ
रास रा निसाण
आपरै मुडै री
समूळी गोळाई में
कोरया अैनाण
पण नीं बतावै
किण दिस
कुण जात
भरती ही पाणी।
काळी बंगा रो मून
बतावै
अेक जात
आदमजात
जकी
भेळी जागी
भेळी ई सोई
भेळप निभाई
ढिगळी होवय ताई।[7]

कहा जाता है कि कालीबंगा की सभ्यता काफी सम्पन्न रही थी। यहां पर जुते हुए खेतो के अवषेष भी प्रकाष में आये है। कवि ने यहां की जीवन चर्चा को बहुत ही स्वाभाविक रूप मे उपस्थित किया है। एक पूरी संस्कृति के उजड़ने की जो भी व्यथा रही

हो लेकिन कवि ने उसे पूरी संवदेना के साथ व्यक्त किया है। 'भीत है साळ री' कविता में कवि ने मिट्टी के नीचे दबी अचेतना को चेतन रूप देते हुए लिखा है कि ये जो दिवारें है ये किसी कमरे की आरै इन दीवारों पर जो छेद है वो व्यर्थ में नही है। यहां कभी कोई लकड़ी की खूंटी रही होगी जिस पर खेत से वापस आकर घर के किसी बुर्जुग ने अपने वस्त्र टांगे होगे और खेतो में परिश्रम के बाद अपनी थकान मिटाने के लिए अपनी आंखे बन्द की होगी शायद भविष्य के सपने संजोने के लिए जो फिर कभी ना खुली।

ओ
उंचो ढिग्ग/माटी रो
निरी माटी नीं /भीत है साळ री
भीतं रो बेजको /बिरथा नीं हैं
इणी मे ही खूंटी /काठ री
जिठा माथै
खेत सूं बावड़ /टांग्यो हो कुड़तो
घर बडेरै /अर
बिसांई साख /मींची ही आंख
जकी फेर नीं खुली।[8]

4) आधुनिक सभ्यता से जोड़कर प्रस्तुतः-

प्राचीन सभ्यता को कवि ने आधुनिक सभ्यता से जोड़कर प्रस्तुत किया है। जैसा की कालीबंगा पुरातात्विक स्थल लगभग 3000 से 5000 ई पू0 माना जाता है जिस समय यह सभ्यता विकसित हुई काफी सम्पन्न मानी जाती है। उत्खन्न से प्राप्त अवषेषों से पता चलता है कि यहां नगरीय प्रधान सभ्यता थी राजा के घर, प्रजा के अलग प्रकार के घर यहां से प्राप्त हुए है। कवि ने अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए लिखा है कि कालीबंगा में जब राजा का वास मिला है तो जरूर इसका इतिहास रहा होगा परन्तु किसी ने तो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए इस को इतिहास की गर्त में दबा दिया है। शायद धीरे-धीरे बढ़ती स्वार्थ लिप्सा ने यहां की परम्परा को ग्रास लिया हो। कवि आगे कहते है कि कालीबंगा के ये टीले हमेषा से ही गूंगे नही थे, यहां भी शादी-ब्याह के गीत गाये जाते होगें। थालियां बजाई जाती होगी, माताएँ अपने बच्चो के लिए लोरिया गाती होगी, प्रेम की रीत तो यहां भी रही होगी।

अठै बी हा
बयांह रा गीत
बाजती थाळयां
कढता बनौरा
अर गाइजती लोरयां
आवती बरातां
ब्याइजती छोरयां।[9]

'थडे - री कूखं सूं' शीर्षक कविता में कवि ने एक पिता की संवदेना को बहुत मार्मिक ढगं से प्रस्तुत किया है। आज की तरह उस समय भी एक पिता अपनी पुत्री के विवाह के सपने देखता होगा। वह अपनी बेटी के जन्म से ही उसके लिए धन जोड़ना प्रारम्भ कर देता था। इसे कवि ने बड़े ही हृदयविदारक रूप में चित्रित किया है -

धपटवां हुई फसल
उबरया हा की पईसा
धर गुल्लक में

बूर दिया हा धरती में
इणी सूं करना हा
हाथ पीळा बी साल बाई रा
बै ई तो निकळया है
काळीबंगा री खुदाई में
थेड़ री कूख सूं
बाई कद परणाई![10]

5) पुनर्निमाण की आवष्यकता -

कागद जी ने अपनी कविता 'ढकूी खंख' के माध्यम से इस सभ्यता को पुनः जीवित करने सम्बन्धित अपने विचार प्रस्तुत किये है। जो सभ्यता नष्ट हो गई उसके मानवीय मूल्यों को कवि आधुनिक युग में नितान्त आवष्यक मानते है। एक सभ्य समाज के निर्माण के हमें स्वस्थ परम्पराओं का प्रचलन करना होगा। उनका मत है कि जो भारत की प्राचीन सुविकसित स्वस्थ, सषक्त एवम् प्रबुद्ध प्राचीन परम्परांए, संस्कृति थी वो नष्ट प्रायः हो गई है। उन पर खंख चढ़ने लगी है। इसी कारण कवि उसे पुनः परोटने पर बल देता है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण निम्न है -

अै च्यार ढिगळयॉ
माटी री
ढिगळयॉ बिचाळै नर कंकाळ
ढिगळयॉ नी
मांची रा पागा है
इण मांची माथै
सूत्यो हो
कोई बटाउ
उडीकतो
मनवार री थाळी नै
मनवार रै हाथां सूंचौ ली
ढूकी खंख आभै सूं
जकी उठाई है
आज आप
आपरै हाथां
पण परोटै कुण ?[11]

कवि के कहने का आशय है कि किसी भी सभ्यता के नष्ट होने का कारण उनके मानवीय मूल्यों का ह्रास ही होता है। मनुष्य अपनी स्वार्थ पूर्ण नीतियों के कारण अपनी संस्कृति, समाज के नियमों व प्रकृति से खिलवाड़ आरम्भ कर देता है जिसके परिणाम स्वरूप बड़ी बड़ी सभ्यताएँ भी नष्ट हो गई। अतः हमें हमारी पुरातन स्वस्थ परम्परा को पुनः जीवित करने के लिए इस अपसंस्कृति की खंख को अपने हाथों से परोटना होगा।

कवि ओम पुरोहित 'कागद' ने पुरातात्विक संवेदना को आधुनिक इतिहास से जोड़कर प्रस्तुत किया है। कवि 'कागद' ने कालीबंगा सभ्यता के प्रति अपनी चेतना व्यक्त की है। यहां से खुदाई से प्राप्त अवशेषों को कवि ने कलात्मक ढ़ग से प्रस्तुत कर उसे सजीव रूप प्रदान किया हैं। कवि इन अवषेषों के माध्यम से इस सभ्यता के पतन के कारणों को भी पूरी सवंदेना के साथ उजागर किया हैं।

कवि 'कागद' ने कालीबंगा सभ्यता के गौरवषाली अतीत का, लोगो के रहन-सहन, खान-पान, संस्कृति आदि का इतना सजीव चित्रण कर अपनी सहृदयता प्रकट की हैं।

संदर्भ-सूची

1. आंखभर चितराम पृष्ठ संख्या 67
2. वही, पृष्ठ संख्या 74
3. वही पृष्ठ संख्या 76
4. वही पृष्ठ संख्या 63
5. वही पृष्ठ संख्या 80
6. आवरण आलेख आँख भर चितराम
7. आँख भर चितराम पृष्ठ संख्या 71
8. वही पृष्ठ संख्या 61
9. बात तो ही पृष्ठ संख्या 61
10. आँख भर चितराम पृष्ठ संख्या 77
11. वही पृष्ठ संख्या 79

भारत में एचआईवी/एड्स की रोकथाम और उपचार सेवाओं में महिलाओं की भूमिका

चंद्रेश कुमार

(प्रवक्ता)

सारांश

भारत देश उन क्षेत्रों में से एक है, जहां पिछले दशक में एचआईवी/एड्स महामारी की लगातार उच्च प्रचलित दर दर्ज की गई है। महामारी के प्रसार के लिए जैव-चिकित्सा कारणों के बावजूद, सामाजिक-सांस्कृतिक कारक विशेष रूप से महिलाओं के लिए रोकथाम और उपचार सेवाओं तक पहुंच में प्रमुख मुद्दे हो सकते हैं। इसलिए, इस अध्ययन ने उन सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की जांच की, जो भारत में एचआईवी/एड्स की रोकथाम और उपचार सेवाओं तक महिलाओं की पहुंच को प्रभावित करते हैं।

मूलशब्दः सामाजिक-सांस्कृतिक कारक, एचआईवी/एड्स, रोकथाम, उपचार

परिचय

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुमानित 4.1% वयस्क एचआईवी/एड्स प्रसार दर के साथ भारत अभी भी इस बीमारी से एक बड़ी चुनौती का सामना कर रहा है। हालाँकि, यह 2000 के दशक की शुरुआत में 5% से अधिक की व्यापकता दर से एक उल्लेखनीय गिरावट है। बढ़ती जागरूकता, जुटाए गए प्रयासों से लेकर रोग की रोकथाम से लेकर उपचार की निरंतरता तक लक्षित विशाल वित्तीय और मानव संसाधनों तक कई कारकों के कारण कमी संभव हुई। यह महसूस करना केवल प्रशंसनीय है कि गिरावट को रोकथाम और उपचार सुविधाओं दोनों तक निर्बाध पहुंच के संदर्भ में बरकरार रखा जा सकता है, खासकर महिलाओं द्वारा, जो इस बीमारी के प्रति अधिक संवेदनशील दिखाई देती हैं। सभी एचआईवी संक्रमणों में महिलाओं की संख्या 58% है और 15-24 वर्ष की युवा महिलाओं में संक्रमण दर समान आयु वर्ग के युवा पुरुषों की तुलना में लगभग दोगुनी है; इस बढ़ती असमानता को लैंगिक असमानताओं के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है जो अब महामारी का कारण बन रही है। इस संबंध में महिलाओं की असुरक्षा मुख्यतः समाजों के प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों में महिलाओं की स्थिति और शक्तियों (इसकी कमी) से जुड़ी हुई है।

एचआईवी/एड्स के संचरण और प्रबंधन में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों के बारे में चिंता कोई नई बात नहीं है, क्योंकि महामारी के कारण आबादी की व्यवहार में संशोधन की जो बड़ी बाधा थी, वह सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों के कारण कमजोर हो गई है, जो व्यवहार पर प्रभाव डालती हैं और अधिक महत्वपूर्ण रूप से महिलाओं के मामले में, लोग इस बीमारी की चपेट में आ जाते हैं। लोफोर्ट के विचारों में अफ्रीका में यौन और प्रजनन स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच उच्च एचआईवी/एड्स प्रसार के संदर्भ में लैंगिक असमानता, कलंक और भेदभाव पर आधारित है। संक्षेप में, वह इस अंतर्दृष्टि पूर्ण लेख में तर्क देती है कि महिलाओं को एचआईवी/एड्स के लिए सेवाओं और पर्याप्त चिकित्सा और निवारक देखभाल तक पहुंच प्राप्त करने में गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

लेकिन इस पूर्व निर्धारित चरित्र से परे, उपचार लेने के निर्णय और महिलाओं द्वारा इस तरह के निर्णय को कैसे प्रभावित या कार्यान्वित किया जाता है, दोनों में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक समान रूप से महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यह सोच काफी हद तक विशिष्ट समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति से उत्पन्न होती है जो न केवल महिलाओं की आकांक्षाओं को सीमित करती है बल्कि

पितृसत्तात्मक आयाम से अवसरों, भूमिकाओं और व्यवहार को अधिक मौलिक रूप से परिभाषित करती है। पहुंच पर सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव पर विचार करने में यह अहसास भी महत्वपूर्ण है कि विश्वास, मिथक और सामाजिक रूप से अनुकूलित दृष्टिकोण में एचआईवी/एड्स के प्रति लोगों विशेषकर युवाओं की प्रतिक्रिया को प्रभावित करते हैं।

तथ्य यह है कि ग्रामीण और हाल ही में शहरी समाजों में, एचआईवी/एड्स जैसी विकृति (गंभीर बीमारियाँ) और अन्य पीड़ाओं को लोगों द्वारा काले जादू और तंत्र-मंत्र का सहारा लेकर समझाया गया है। ऐसी स्थिति में बीमारी की धारणा और इलाज खोजने का दृष्टिकोण सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकता से उत्पन्न इस विश्वास से निर्धारित या कम से कम प्रभावित होता है।

साहित्य में एक दिलचस्प रहस्योद्घाटन यह है कि लोगों के सांस्कृतिक मानदंड महिलाओं को संक्रमण के प्रति संवेदनशील बनाते हैं और उपचार और रोकथाम सेवाओं दोनों तक उनकी पहुंच को समान रूप से कम कर देते हैं। वास्तव में, महिलाओं के बीच बीमारी के प्रसार के लिए जिम्मेदार सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों पर एक व्यापक अध्ययन का परिणाम है, सांस्कृतिक मानदंडों और बीमारी के प्रसार के बीच संबंध में बहुत मर्मज्ञ अंतर्दृष्टि प्रस्तुत करता है। कई यौन साझेदारों, पारंपरिक स्वास्थ्य प्रथाओं और रीति-रिवाजों, साझेदारों का आदान-प्रदान, पत्नी की विरासत, अनुष्ठानों और कुछ समारोहों के दौरान तरल पदार्थ का आदान-प्रदान, संस्कृति द्वारा अनुमति प्राप्त विवाहेतर यौन संबंध आदि जैसे सांस्कृतिक कारकों की पहचान करने के अलावा, अध्ययन ने अज्ञानता, मिथकों के गढ़ों को भी उजागर किया। और अर्धसत्य के साथ-साथ पितृसत्ता जो न केवल राज्य में बल्कि पूरे देश में महिलाओं को विशेष रूप से एचआईवी/एड्स संक्रमण के प्रति संवेदनशील बनाती है।

वर्तमान अध्ययन में यह पता लगाने की कोशिश की गई है कि एचआईवी/एड्स की रोकथाम और उपचार सेवाओं तक पहुंच किस प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों, विशेष रूप से लिंग, से प्रभावित होती है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि युवा महिलाओं और लड़कियों द्वारा ऐसी पहुंच को कैसे देखा जाता है। इसलिए मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि महिलाएं रोकथाम और उपचार तक अपनी पहुंच को कैसे समझती हैं और साथ ही ऐसी सेवाओं तक पहुंच लिंग संबंधी विचारों, विशेष रूप से राज्यों के लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों पर असर डालने वाले विचारों द्वारा कैसे मध्यस्थ होती है। यह आम तौर पर स्वीकृत तथ्य के सामने विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि एचआईवी/एड्स महामारी का चेहरा महिला है। उपरोक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनुसंधान ने एक सहभागी दृष्टिकोण अपनाया जिसका उद्देश्य मुद्दों को शामिल लोगों की नजर से देखना और उन्हें कथित समस्याओं के लिए सर्वसम्मति से समाधान उत्पन्न करने की अनुमति देना है। इसलिए, शोध में फोकस समूह चर्चा और असंरचित साक्षात्कार के संयोजन का उपयोग किया गया।

दिल्ली और मुंबई जैसे अन्य प्रमुख शहरी शहरों में केंद्रित है। जो वास्तव में इन राज्यों में एचआईवी/एड्स प्रतिक्रिया के समान रूप से केंद्र हैं। भले ही ये राजधानियाँ ग्रामीण इलाकों का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं, फिर भी वे महिलाओं की पहुंच और अधिकारों की बाधाओं की जांच के लिए सबसे अच्छे स्थान हैं, जो पितृसत्ता के गढ़ माने जाने वाले विशिष्ट ग्रामीण इलाकों में एक बेहद गलत और आत्म-संतुष्टि वाला प्रयास होता। दूसरे शब्दों में, शहरी क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करने से यह देखने का अवसर मिलता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक कारक किस हद तक उन आबादी पर प्रभाव डालते हैं जो सामान्य ग्रामीण इलाकों की तुलना में आदर्श रूप से अधिक सशक्त हैं।

शोध विधि

अध्ययन ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए गुणात्मक अनुसंधान पद्धति को अपनाया। दिल्ली और मुंबई जैसे अन्य प्रमुख शहरी शहरों में केंद्रित है। इसलिए इसने असंरचित साक्षात्कारों के संयोजन का उपयोग किया। महिला और पुरुष स्कूल न जाने वाले युवा, महिला, यौनकर्मी और आस्था आधारित संगठनों के प्रतिनिधि; सार्वजनिक क्षेत्र के स्वास्थ्य सेवा प्रदाता; गैर सरकारी संगठन; उपचार तक पहुँचने वाली महिलाएँ और लड़कियाँ; संक्रमित हैं लेकिन इलाज तक नहीं पहुंच रहे हैं; और सहायता समूहों से लिए गए लोग; निजी क्षेत्र के सेवा प्रदाता; और सामान्य आबादी के पुरुष और महिला सदस्य। और अधिक समर्थन जोड़ने के लिए, निम्नलिखित लोगों से बने लक्षित उत्तरदाताओं के साथ साक्षात्कार आयोजित किए गए: सहायता समूह के सदस्य, सार्वजनिक/निजी स्वास्थ्य प्रदाता, उपरोक्त स्रोतों से एकत्र की गई जानकारी का विश्लेषण पूरी तरह से गुणात्मक दृष्टिकोण का उपयोग करके किया गया था जिसमें अनुसंधान के प्रमुख मुद्दों/प्रश्नों को क्षेत्र से एकत्रित आम सहमति और अंतर्दृष्टि पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

परिणाम

रोकथाम सेवाओं तक पहुँचने में सो-सांस्कृतिक कारक

दिल्ली और मुंबई जैसे अन्य प्रमुख शहरी शहरों में केंद्रित है। एचआईवी/एड्स की रोकथाम पर जानकारी की पर्याप्तता दोनों राज्यों में सत्रों में भाग लेने वाले इस बात पर आम सहमति पर पहुंचे कि हालांकि एचआईवी/एड्स पर सराहनीय जानकारी है, लेकिन जानकारी अभी भी काफी अपर्याप्त है। उन्होंने इस संदर्भ में रोकथाम संदेशों की भौगोलिक पहुंच और ऐसे संदेशों से उत्पन्न वास्तविक जागरूकता के संदर्भ में अपर्याप्तता को देखा। इसलिए, उत्तरदाताओं का विचार था कि जानकारी राजधानी शहरों, दिल्ली और मुंबई जैसे अन्य प्रमुख शहरी शहरों में केंद्रित है। परिणामस्वरूप, अन्य क्षेत्रों विशेषकर ग्रामीण इलाकों में रहने वाले बड़ी संख्या में लोगों को बड़े पैमाने पर अनुचित जानकारी (गलत सूचना) दी गई है और वे बीमारी की मूल प्रकृति से अनजान हैं। उपरोक्त विचारों का स्पष्ट रूप से प्रतिनिधित्व उत्तरदाताओं में से एक, स्कूल न जाने वाले एक युवा की भावनाएं हैं, जिन्होंने तर्क दिया, "जितना ये संदेश मौजूद हैं, उनमें अभी तक पर्याप्त जानकारी नहीं है, इसलिए लोगों को अधिक शिक्षा दी जानी चाहिए उन्हें ठीक से उन्मुख करने के लिए"।

पुष्टि में, एक अन्य प्रतिवादी ने तर्क दिया कि एड्स न केवल वास्तविक है, बल्कि घातक भी है, हालांकि अभी भी कुछ लोग हैं जो ऐसा प्रतीत होता है कि वे पूरी तरह से आश्वस्त नहीं हैं। उनके अपने शब्दों में, "अगर आप ऐसे लोगों को कंडोम का इस्तेमाल करने या अपने पार्टनर के प्रति वफादार रहने की सलाह देंगे तो वे नहीं मानेंगे." इसलिए, ऊपर से जो तस्वीर मिलती है वह यह है कि दोनों राज्यों में एचआईवी/एड्स की रोकथाम पर जानकारी अभी भी पर्याप्त नहीं है। दिलचस्प बात यह है कि आमने-सामने के साक्षात्कारों में भी इन भावनाओं की समान रूप से पुष्टि की गई, जहां अधिकांश उत्तरदाताओं का विचार था कि दोनों राज्यों में शहरी और ग्रामीण समुदायों के बीच सूचना में भारी असमानता है।

शिक्षा, ज्ञान और रोकथाम उपकरणों तक पहुंच प्रतिभागियों की राय में दिल्ली और मुंबई जैसे अन्य प्रमुख शहरी शहरों में केंद्रित है। दोनों राज्यों में एचआईवी/एड्स पर शिक्षा और ज्ञान अभी भी कम है, हालांकि अच्छी संख्या में लोगों के पास एचआईवी/एड्स पर शिक्षा और ज्ञान तक पहुंच है। इसलिए, आपके सामने एक ऐसी स्थिति है जहां कुछ लोग जानते हैं कि एचआईवी/एड्स असुरक्षित या असंरक्षित यौन संबंध के माध्यम से होता है, वहीं कुछ अन्य लोग यह नहीं मानते हैं कि यह सेक्स से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, 'जब मैं एक में माध्यमिक विद्यालय में था, लोग हमसे एचआईवी/एड्स के बारे में बात करने आए और यह कैसे फैलता है, उन्होंने कहा कि यह सेक्स के कारण है, लेकिन बाद में कुछ वरिष्ठ छात्रों ने हमसे कहा कि हम उन पर विश्वास न करें क्योंकि ऐसा कुछ नहीं है। एड्स और सेक्स के बीच संबंध. मैंने उन पर विश्वास नहीं किया लेकिन मुझे पता है कि कुछ लोगों ने विश्वास किया था' (स्कूल से बाहर युवा महिला)।

साथ ही, लड़कियां और महिलाएं न तो अपने बॉयफ्रेंड और पतियों को कंडोम का इस्तेमाल करने के लिए कह सकती हैं और न ही उनसे कुछ पुरुषों की तरह कंडोम ले जाने की अपेक्षा की जाती है। दरअसल, जो महिलाएं इसके खिलाफ जाती हैं उन्हें बदचलन और वेश्या के रूप में देखा जाता है। एक स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है, 'समस्या यह है कि आप अपने प्रेमी को उस चीज के उपयोग का सुझाव भी नहीं दे सकते। यह ऐसा है जैसे यदि आप ऐसा कहते हैं तो आप उस पर चारों ओर सोने का आरोप लगा रहे हैं या आप अपने बारे में आश्वस्त नहीं हैं। चाहे कोई भी हो, यह रिश्ते को खत्म कर सकता है और आपको बदनाम कर सकता है। आप जानते हैं कि पुरुष एक-दूसरे से बात करते हैं और यहां तक कि अपने मामलों का बखान भी करते हैं'। रोकथाम उपकरणों तक पहुंच में इस सांस्कृतिक बाधा की पुष्टि करने के लिए, कुल महिलाओं में से केवल एक महिला उत्तरदाता अपने प्रेमी के लिए कंडोम खरीदने गई थी, जबकि अन्य सभी महिला उत्तरदाताओं का विचार था कि वे ऐसा नहीं करेंगी। जैसे कि उनके माता-पिता और जीवनसाथी उन्हें कंडोम के साथ देखते हैं। इस मुद्दे पर साक्षात्कार किए गए बहुत से पुरुषों की राय को देखते हुए एक प्रवृत्ति अपरिहार्य हो गई।

वास्तव में, पुरुषों के बीच इस दृष्टिकोण का बहुत उदाहरण यह है, 'मेरे लिए कोई भी लड़की जो उस चीज को खरीदने जाती है वह साधारण और छोटी, एक वेश्या है। कोई भी महिला, जो अपने पति को इसके बारे में बताती है या इसका उपयोग करवाती है, उससे पूछताछ की जानी चाहिए। संक्षेप में, उसे गंभीरता से मंजूरी मिलनी चाहिए'।

एचआईवी/एड्स पर सूचना और शिक्षा के स्रोत यह देखना दिलचस्प था कि जबकि कुछ उत्तरदाताओं का विचार था कि महिलाएं और लड़कियां पुरुषों और लड़कों के साथ एचआईवी की रोकथाम पर जानकारी और विचार साझा करती हैं; अन्य लोग इस तर्क से असहमत थे कि लैंगिक असमानता विशेष रूप से उन महिलाओं के लिए जानकारी साझा करने से रोकती है जिनसे सांस्कृतिक रूप से ऐसी चर्चाओं में पहल करने या सक्रिय रूप से भाग लेने की उम्मीद नहीं की जाती है। इस तीव्र विभाजन के बावजूद, उत्तरदाताओं की राय थी कि महिलाओं और लड़कियों को निम्नलिखित स्रोतों से एचआईवी/एड्स की रोकथाम के लिए जानकारी और शिक्षा प्राप्त होती है: गैर सरकारी संगठनों/आस्था-आधारित संगठनों द्वारा सेमिनार, कार्यशालाएं, सूचना, शिक्षा और संचार सामग्री (पोस्टर, हैंडबिल, सचित्र या सचित्र दस्तावेज), विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और एजेंसियों, टेलीविजन, रेडियो और समाचार पत्रों और पत्रिकाओं द्वारा जागरूकता कार्यशालाएँ लगाई जाती है

हालाँकि, उत्तरदाताओं का यह भी मानना है कि एचआईवी/एड्स पर शिक्षा अभी भी बहुत अपर्याप्त है और बड़ी संख्या में लोगों को अभी भी अपने यौन व्यवहार और अभिविन्यास में बदलाव करना बाकी है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, उनकी राय थी कि स्कूल शिक्षकों को एचआईवी शिक्षा को सामान्य स्कूल पाठ्यक्रम में एकीकृत करने के लिए और अधिक प्रयास करना चाहिए। दरअसल, चर्चाकर्ताओं में से एक, प्रतिनिधि ने कहा कि अब क्रॉस रिवर स्टेट के कुछ स्कूलों में एक नई पहल की कोशिश की जा रही है। उत्तरदाताओं ने देखा कि दोनों राज्यों में एचआईवी/एड्स संदेशों का अनुपातहीन प्रतिशत अंग्रेजी में है और हाल ही में इस प्रवृत्ति को बदलने की दिशा में प्रयास किए गए हैं। परिणामस्वरूप, राज्य के कुछ समुदायों और गांवों में एड्स का संक्षिप्त नाम स्थानीय बोली के रूप में अनुवादित किया गया है। जबकि उपरोक्त राय से निकली, साक्षात्कारों से पता चला कि लड़कियां और महिलाएं आमतौर पर सांस्कृतिक अपेक्षाओं के कारण कंडोम जैसी रोकथाम या सुरक्षा सामग्री तक पहुंचने से कतराती हैं, जो महिलाओं को अपने पुरुषों के उपयोग के लिए उन्हें खरीदने की अनुमति नहीं देती हैं।

उपचार तक पहुँचने में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक

लिंग और एचआईवी/एड्स उपचार तक पहुंच इस तथ्य की मान्यता में कि बीमारी के खिलाफ युद्ध जीतने में एचआईवी उपचार तक पहुंच अत्यंत महत्वपूर्ण है, इस खंड ने उन महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक और लिंग संबंधी कारकों का पता लगाने का प्रयास किया जो पहुंच को प्रभावित करते हैं। इलाज, हालाँकि रोकथाम के साधनों तक महिलाओं की पहुँच में स्पष्ट भेदभाव है, लेकिन उपचार के मामले में तस्वीर अलग दिखती है। इसलिए, समूह की यह सहमति थी कि दोनों राज्यों में पुरुषों की तुलना में अधिक महिलाओं और लड़कियों को सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में एड्स से संबंधित बीमारियों के लिए उपचार प्राप्त होता है। हालाँकि, यह सांस्कृतिक संदर्भों के एक अलग सेट से पैदा नहीं हुआ है, बल्कि इसलिए कि महिलाएं प्रसव पूर्व क्लिनिकों में जाती हैं और अकसर उन्हें वायरस की जांच के लिए बुलाया जाता है जैसा कि इन राज्यों में सभी सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में नियमित नीति है।

समान रूप से खुलासा करने वाली बात यह है कि महिलाएं पुरुषों की तरह शर्मीली या शर्मीली नहीं हैं। प्रतिभागियों में से एक के अनुसार, 'महिलाओं को परीक्षण करवाने में कोई शर्म नहीं है और यदि वे सकारात्मक हैं तो उपचार की तलाश करें, उन पुरुषों के विपरीत जो आम तौर पर परीक्षण से इनकार करते हैं'। हालाँकि, दोनों सत्रों में मौजूद सेवा प्रदाताओं की राय थी कि उपचार तक पहुँचने वाली महिलाओं और पुरुषों का अनुपात अब तीन साल से अधिक समय से नहीं बदला है; और भले ही अधिक महिलाएं क्लिनिकों में इलाज कराती हैं, लेकिन अंतर बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन इस तथ्य की पुष्टि अन्य प्रतिभागियों द्वारा नहीं की गई, जिन्होंने दावा किया कि भले ही वे आंकड़ों से परिचित नहीं थे, फिर भी वे देखते हैं कि पुरुषों की तुलना में अधिक महिलाएं इलाज के लिए आती हैं।

पहुंच को प्रभावित करने वाली लिंग संबंधी समस्याएं उपरोक्त के अलावा, उत्तरदाताओं ने दोनों राज्यों में महिला रोगियों के सामने आने वाली कुछ प्रमुख समस्याओं की पहचान की। पहचानी गई एक प्रमुख समस्या महिलाओं और लड़कियों की खराब वित्तीय स्थिति है, जिसके कारण वे नियमित रूप से इलाज के लिए नहीं जा पाती हैं, खासकर तब जब उपचार स्थल या क्लिनिक उनके निवास स्थान से बहुत दूर हों। साथ ही, उत्तरदाताओं ने कहा कि कुछ सांस्कृतिक मुद्दे भी हैं जो महिलाओं के लिए इलाज तक पहुंचने में समस्याएं पैदा करते हैं। इसलिए, उन्होंने बताया कि ज्यादातर बार अगर कोई महिला सकारात्मक है तो परिवार और अन्य लोग यह मानने के खिलाफ होंगे कि वह एक वेश्या है। परिवार भी कलंक से बचने की कोशिश करता है और मानता है कि ऐसी महिला

परिवार का नाम खराब करेगी। परिणामस्वरूप, वे उसे बहिष्कृत बना देते हैं और वायरस की चुनौती का सामना करने के लिए महत्वपूर्ण समर्थन से वंचित कर देते हैं। वास्तव में, उत्तरदाताओं में से एक सहायता समूह के नेता ने एक महिला की कहानी सुनाई, जिसके अमीर पति की वायरस से मृत्यु हो गई और उसे अपना ख्याल रखने के लिए परिवार द्वारा पति की संपत्ति तक पहुंच की अनुमति नहीं दी गई। इसके बजाय, परिवार ने उसे बहिष्कृत कर दिया और बिना देखभाल के उसकी हालत बिगड़ गई और वह चल बसी।

एचआईवी/एड्स के परीक्षण में लिंग संबंधी मुद्दे सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में प्रसव पूर्व दौरों पर महिलाओं के लिए अनिवार्य परीक्षण की आवश्यकता वाले मौजूदा विनियमन के बावजूद, सत्रों में उत्तरदाताओं की अभी भी आम सहमति थी कि महिलाओं और लड़कियों पर दबाव नहीं डाला जाता है। दोनों राज्यों में वायरस का परीक्षण। उत्तरदाताओं ने देखा कि खासकर जब महिलाएं प्रसव पूर्व क्लिनिक के लिए आती हैं। ऐसी यात्राओं के दौरान महिलाओं को एचआईवी स्क्रीनिंग की आवश्यकता के बारे में सलाह दी जाती है लेकिन उन्हें परीक्षण के लिए मजबूर नहीं किया जाता है। प्रतिभागियों में से एक, यूनिवर्सिटी टीचिंग हॉस्पिटल के एक सार्वजनिक सेवा प्रदाता के शब्दों में, 'हमारी सुविधा गर्भवती महिलाओं को परीक्षण के लिए मजबूर नहीं करती है, सिवाय इसके कि जब हमारे पास दस्त, बुखार, गंभीर एचआईवी से संबंधित बीमारी के बार-बार मामले हों। पसीना आ रहा है और उल्टी भी हो रही है, तो हम मरीज को स्क्रीनिंग के लिए जाने की सलाह दे सकते हैं।' उन्होंने आगे कहा कि ऐसी स्क्रीनिंग या परीक्षण से पहले काउंसलिंग की जाती है।

उपचार क्लिनिकों में विशिष्ट महिला-मैत्रीपूर्ण सेवाएँ

सत्र में प्रतिभागियों का विचार था कि क्लिनिकों को महिला-अनुकूल सेवा प्रदान करने के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं और ग्राहकों के बीच एक अच्छा संबंध स्थापित किया जाना चाहिए। इसे ग्राहकों को स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के सामने खुलने के लिए पर्याप्त परामर्श देकर हासिल किया जा सकता है; अधिकाधिक महिलाओं को परामर्शदाता के रूप में प्रशिक्षित करना क्योंकि वे साथी महिलाओं की समस्याओं को आसानी से समझ सकती हैं। वास्तव में इस मित्रता को स्थापित करने के तरीके के बारे में एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण सत्रों में से एक में सहायता समूह के सदस्यों में से एक द्वारा पेश किया गया था जब उसने तर्क दिया था कि केवल जो लोग सकारात्मक हैं उन्हें उपचार की पेशकश करने वाले क्लिनिकों का प्रभारी होना चाहिए। आगे की जांच पर, उन्होंने तर्क दिया कि उन्होंने अपना सुझाव उस लापरवाही पर आधारित किया जिसके साथ स्वास्थ्य सेवा प्रदाता अकसर सकारात्मक लोगों की दुर्दशा को देखते हैं। हालाँकि, अन्य प्रतिभागियों ने इसे तर्कसंगत नहीं माना।

परिचर्चा

दिल्ली और मुंबई जैसे अन्य प्रमुख शहरी शहरों में केंद्रित है। जैसा कि अब तक की चर्चा से स्पष्ट है, उत्तरदाताओं का विचार था कि लोगों के सांस्कृतिक मानदंड उन महिलाओं के खिलाफ भेदभाव पैदा करते हैं जो सकारात्मक (एचआईवी/एड्स पॉजिटिव) जीवन जी रही हैं। प्रतिभागियों ने बताया कि यह भेदभाव मृत्यु में भी स्पष्ट है। इस प्रकार, भले ही किसी पुरुष के एड्स से मरने का संदेह हो, फिर भी लोग उसे पूरे अनुष्ठान के साथ उचित तरीके से दफनाने के लिए आगे बढ़ेंगे, लेकिन अगर यह एक महिला है, तो शरीर को बिना किसी विस्तृत अंतिम संस्कार के तुरंत दफना दिया जाता है। इस प्रकार, ऐसा लगता है जैसे लोग उस महिला और उसकी भयानक पीड़ा को दफनाने के लिए इंतजार नहीं कर सकते।

फील्डवर्क के दौरान बातचीत से पता चलता है कि उत्तरदाताओं का विचार था कि पहुंच में सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं को ऐसे उपायों के माध्यम से दूर किया जा सकता है: लड़कियों और महिलाओं को कंडोम के उपयोग पर अधिक शिक्षा देना; चर्च/धार्मिक नेताओं को बीमारी पर अधिक जानकारी पूर्ण और साक्ष्य-आधारित रुख अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना; महिला कंडोम को सभी स्तरों पर महिलाओं के लिए आसानी से उपलब्ध कराया जाना चाहिए (उत्तरदाताओं ने इसके लिए जोरदार तर्क देते हुए कहा कि महिला कंडोम अभी तक आम नहीं है और अपेक्षाकृत महंगा है); ग्रामीण निवासियों और कम शिक्षित लोगों तक पहुंचने के लिए रोकथाम संदेशों का स्थानीय बोलियों में अनुवाद; संदेशों में उपचार के विकल्पों के साथ-साथ महिलाओं की विशिष्ट स्थिति पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए; आबादी के पुरुष सदस्यों को महिलाओं के कामुकता के अधिकारों को पहचानने और उनका सम्मान करने के साथ-साथ अपनी पत्नियों, गर्लफ्रेंड्स और बहनों के स्वतंत्र रूप से विकल्प चुनने के अधिकारों को

प्रोत्साहित करने और उनका सम्मान करने के लिए संवेदनशील बनाया जाना चाहिए। यह इस मान्यता के मद्देनजर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि एचआईवी/एड्स कार्यक्रम हानिकारक लिंग मानदंडों और रूढ़िवादिता को संबोधित करके महिलाओं की रोकथाम और उपचार तक पहुंच में मदद कर सकते हैं, जो विशेष रूप से महिलाओं को दूसरे दर्जे के नागरिकों के रूप में मानते हैं।

निष्कर्ष

कामुकता में लैंगिक समानता पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है और एचआईवी/एड्स कार्यक्रम नियोजकों और नीति निर्माताओं को एचआईवी तक पहुंचने में महिलाओं की विशिष्ट चुनौतियों का समाधान करने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों द्वारा प्रायोजित पुरुष श्रेष्ठता की कहानियों के दायरे से बाहर सोचने और कार्य करने की आवश्यकता है। उपचार तक पहुंच की कमी में धार्मिक विश्वास और आत्म-कलंक को भी प्रभावशाली बताया गया। कुछ संक्रमित व्यक्ति पादरी या भगवान के आदमी की उन्हें ठीक करने की क्षमता पर विश्वास करते हैं और इस प्रकार इलाज से दूर रहते हैं। संयोग से, कुछ धार्मिक नेता सभी बीमारियों पर शक्ति होने के साथ-साथ जीवन और मृत्यु की कुंजी होने का दावा करके इस दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करते हैं। हालाँकि, उत्तरदाताओं ने समान रूप से घटते विश्वास को उपचार लेने के निर्णय पर नकारात्मक प्रभाव के रूप में देखा। उत्तरदाताओं में से कुछ ने एचआईवी/एड्स उपचार ले रहे लोगों के ऐसे मामलों की सूचना दी जिनमें अभी भी अवसरवादी संक्रमण विकसित हो गए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एड्स नियंत्रण के लिए राष्ट्रीय एजेंसी (एनएसीए) (2012)। वैश्विक एड्स प्रतिक्रिया: देश प्रगति रिपोर्ट 2012। एनएसीए; अबुजा [Google विद्वान]
2. वैश्विक एचआईवी रोकथाम और कार्य समूह (2003)। एचआईवी की रोकथाम तक पहुंच: अंतर को पाटना।
3. सांस्कृतिक अनुसंधान परामर्श (सीआरसी) (2007)। नाइजीरिया के अक्वा इबोम राज्य में महिलाओं के बीच एचआईवी/एड्स के प्रसार के लिए जिम्मेदार सामाजिक-सांस्कृतिक कारक। सीआरसी; /अक्वा इबोम एसपीटी, उयो, पीपी. 1-146 [गूगल स्कॉलर]
4. लोफोर्ट ए.एम. (रा)। प्रजनन स्वास्थ्य में असमानताएँ और मूल्य: महिलाओं की असुरक्षा और एड्स का नारीकरण। में: उप-सहारा अफ्रीका में महिलाएं, एड्स और स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच: सामाजिक विज्ञान से दृष्टिकोण। एड्स, कैटलुन्या मेडस मुंडी। वीटा; बार्सिलोना, पीपी. 27-36 [गूगल स्कॉलर]
5. इनयांग ई. (2007). अक्वा इबोम राज्य में तृतीयक संस्थानों में एचआईवी/एड्स की घटना और हस्तक्षेप/शमन। इन: नाइजीरिया के अक्वा इबोम राज्य में महिलाओं के बीच एचआईवी/एड्स के प्रसार के लिए जिम्मेदार सामाजिक-सांस्कृतिक कारक। एड, सीआरसी; अक्वा इबोम एसपीटी .उयो, 24-30 [गूगल स्कॉलर]
6. अकपाबियो ए. (2005). लिंग, मानवाधिकार और एचआईवी/एड्स। एचआईवी/एड्स जागरूकता बढ़ाने की वकालत कार्यशाला में प्रस्तुत एक सम्मेलन पत्र। इकोट ओसुरुआ अक्वा इबोम स्टेट पॉलिटेक्निक (21 अक्टूबर) [गूगल स्कॉलर]
7. विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) (2013)। लैंगिक असमानताएँ और एचआईवी। www-who-int/gender/hiv&aids/en से उपलब्ध है
8. अनुगवोम ईई। (1999)। नाइजीरिया में विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच एड्स की धारणा: रोकथाम कार्यक्रमों के लिए निहितार्थ। इन: अफ्रीका में एड्स का अनुभव और समझ। एड्स, बेकर, डोजोन, ओबो, मोरिबा कोडेसरिया और करथला; डकार और पेरिस, पीपी. 498-513 [गूगल स्कॉलर]
9. तिगावालाना डी. (2010)। अफ्रीकी महिलाएं एचआईवी/एड्स के प्रति अधिक संवेदनशील क्यों हैं? संडे मॉनिटर और रवांडा समाचार एजेंसी (19 सितंबर), पीपी
10. लेनार्स्की एम, पार्र आरएल, सीनोर एचई। महामारी पोलियोमाइलाइटिस: पांच सौ छब्बीस मामलों की समीक्षा। एम जे डिस चाइल्ड. 1951;82(2):160-168. [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
11. विश्व स्वास्थ्य संगठन एचआईवी से पीड़ित महिलाओं की संख्या। 2014. [20 अप्रैल, 2017 को एक्सेस किया गया]। यहां उपलब्ध है: http://www.who.int/gho/hiv/epidemic_status/cases_adults_women_children/en/
12. शापिरो आर, ड्राइडन-पीटरसन एस, पॉविस के, जैश आर, लॉकमैन एस। स्पष्ट दृष्टि में छिपा हुआ: एचआईवी, एंटीरेट्रोवाइरल, और मृत जन्म। लैंसेट. 2016;387(10032):1994-1995। [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]

13. रायल सीटी, हम्पांडा के. डोमिनिकन गणराज्य में एचआईवी/एड्स से संबंधित आंतरिक कलंक को समझना: एक संक्षिप्त रिपोर्ट। एड्स देखभाल. 2016;28(3):319-324। [पीएमसी मुफ्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
14. जोशी एस, कुलकर्णी वी, गंगाखेडकर आर, एट अल। भारत में गर्भावस्था में दोबारा एचआईवी परीक्षण की लागत-प्रभावशीलता। बीएमजे ओपन. 2015;5(6):e006718. [पीएमसी मुफ्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
15. वुड बीआर, बैलेंजर सी, स्टेकलर जेडी। एचआईवी स्व-परीक्षण के पक्ष और विपक्ष में तर्क। एचआईवी एड्स (ऑकल) 2014;6:117-126। [पीएमसी मुफ्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
16. मैडजिम्बामुटो एफडी, रे एस, मोगोबे केडी। मातृ स्वास्थ्य सेवाओं में एचआईवी देखभाल का एकीकरण: उच्च एचआईवी प्रसार वाले देशों में प्रसूति देखभाल की गुणवत्ता में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण बदलाव की आवश्यकता है। बीएमसी इंट हेल्थ हम राइट्स। 2013;13:27. [पीएमसी मुफ्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
17. मोफेंसन एलएम। एंटीरेट्रोवाइरल थेरेपी और प्रतिकूल गर्भावस्था परिणाम: कमरे में हाथी? जे संक्रमण रोग. 2016;213(7):1051-1054। [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
18. शालॉक आर.एल. (सं.)1997जीवन की गुणवत्ता, वॉल्यूम। 2 विकलांग व्यक्तियों के लिए आवेदन वाशिंगटन, यूएसए: अमेरिकन एसोसिएशन ऑन मेंटल रिटार्डेशन [गूगल स्कॉलर]
19. पौडेल वी, बराल केपी। एचआईवी/एड्स (डब्ल्यूएलएचए) से पीड़ित महिलाएं कलंक, भेदभाव और इनकार से जूझ रही हैं और मुकाबला करने की रणनीति के रूप में सहायता समूहों की भूमिका: साहित्य की समीक्षा। पुनरुत्पादन स्वास्थ्य. 2015;12:53. [पीएमसी मुफ्त लेख] [पबमेड] [गूगल स्कॉलर]
20. माकिन जेडी, फोर्सिथ बीडब्ल्यूसी, विजसर एमजे, सिक्केमा केजे, नेफेल्ड एस, जेफरी बी। दक्षिण अफ्रीकी एचआईवी पॉजिटिव गर्भवती महिलाओं में प्रकटीकरण को प्रभावित करने वाले कारक।

अनुसूचित जनजातियों के सशक्तीकरण में मनरेगा की भूमिका (चन्दौली जनपद के नौंगढ़ ब्लाक के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० क्षत्रधारी यादव

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) राम अवध यादव गन्ना कृषक महाविद्यालय, ताखा शाहगंज, जौनपुर (उ0प्र0)

आशुतोष कुमार सिंह

शोध छात्र (समाजशास्त्र) वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर (उ0प्र0)

शोध सारांशः भारत के आर्थिक वृद्धि एवं विकास में एक बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्र का है लेकिन विकास के इस दौड़ में आज भी भारतीय गांव पीछे है। मनरेगा अधिनियम एक विकासीय योजना ही नहीं वरन एक नीति है जिसके तहत् प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्रत्येक परिवार के अकुशल तथा शारीरिक कार्य करने के इच्छुक एक वयस्क सदस्य को 100 कार्य दिवसों का रोजगार प्रदान किया जाता है। पंजीकरण के बाद 15 दिन के अन्दर रोजगार न मिलने पर बेरोजगारी भत्ता देने का प्रावधान है। इस योजना के अन्तर्गत अनेक कार्यों जैसे- जलसंरक्षण, पौधा रोपण, पंचायत भवन का निर्माण, ग्रामीण सड़कों तथा नालियों का निर्माण, तालाब तथा पोखरों की सफाई जैसे अनेक आधारभूत संरचनाओं का निर्माण किया जाता है। राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन किया परन्तु इसका वास्तविक लाभ जरुरत मन्दों को नहीं प्राप्त हुआ। योजनाओं का लाभ व्यक्तियों तक पहुँचाने एवं भ्रष्टाचार को कम करने के लिए मनरेगा कार्यक्रम लागू किया। योजना के क्रियान्वयन से ग्रामीण भारत में अनेक साकारात्मक पहलू परिलक्षित नजर आ रहे है। वर्तमान में इस योजना द्वारा गरीब एवं वंचित परिवार को रोजगार मिलने से उन्हें आर्थिक रूप से लाभ पहुँचा है एवं साथ ही साथ बचत के माध्यम से उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर में सुधार हुआ है। योजना में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित होने से उन्हें आर्थिक सम्बल प्राप्त हो रहा है और उनके आत्मविश्वास एवं मनोबल में वृद्धि हुई है।

मुख्य शब्दः अनुसूचित जनजाति, मनरेगा

प्रस्तावनाः-

ग्रामीण विकास ग्रामीणों के जीवन स्तर सुधार के साथ ग्रामीण क्षेत्र के समग्र विकास को प्रदर्शित करता है। इसके तहत कृषि एवं सहायक गतिविधियां, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, शिल्पकारी, सामाजिक, आर्थिक अधोसंरचना, सामुदायिक सेवाएं एवं सुविधाएं आती हैं, इन सभी के ऊपर ग्रामीण क्षेर्तों के मानव संसाधनों का विकास सम्मिलित है। एक तथ्य के रूप में ग्रामीण विकास विविध भौतिक, तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं संस्थागत कारकों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का अंतिम परिणाम है। एक रणनीति के रूप में इसकी संरचना वर्ग विशेष के लोगों की विशेषतः ग्रामीण गरीबों की आर्थिक एवं सामाजिक समृद्धि में सुधार हेतु की गई है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) एक अनोखी तथा विशिष्ट प्रकार की योजना है। सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना तथा काम के बदले अनाज योजना को इस योजना में समाहित कर लिया गया है। नरेगा 7 सितम्बर, 2005 को अधिसूचित किया गया। इसका श्रीगणेश आंध्रप्रदेश के अनन्तपुर जिले के बादूलापल्ली गांव में किया गया। नरेगा 2 फरवरी 2006 को देश के 200 चुनिंदा जिलों में शुरू किया गया। यह योजना का पहला चरण था, जिसमें बिहार को विशेष तरजीह दी गयी थी। बिहार में इसके साकारात्मक परिणामों को देखते हुए 3 अप्रैल 2008 से इस योजना को पूरे देश में लागू कर दिया गया। 2 अक्टूबर, 2009 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जयंती पर इस योजना का नाम नरेगा से मनरेगा कर दिया यानी महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम।

मनरेगा अधिनियम एक विकासीय योजना ही नहीं वरन एक नीति है जिसके तहत् प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्रत्येक परिवार के अकुशल तथा शारीरिक कार्य करने के इच्छुक एक वयस्क सदस्य को 100 कार्य दिवसों का रोजगार प्रदान किया जाता है। पंजीकरण के बाद 15 दिन के अन्दर रोजगार न मिलने पर बेरोजगारी भत्ता देने का प्रावधान है। इस योजना के अन्तर्गत अनेक कार्यों जैसे- जलसंरक्षण, पौधा रोपण, पंचायत भवन का निर्माण, ग्रामीण सड़कों तथा नालियों का निर्माण, तालाब तथा पोखरों की सफाई जैसे अनेक आधारभूत संरचनाओं का निर्माण किया जाता है।

जनपद चन्दौली के ब्लॉक नौगढ़ में मनरेगा में काम करने वाले अनुसूचित जनजाति के मजदूरों की नयी व युवा पीढ़ी आधुनिकता को लिये हुये है। इसके लिये दोनों ही पक्षों को विवेकयुक्त कदम उठाने चाहिये। अनुसूचित जनजाति के मनरेगा में काम करने वाले मजदूरों के प्रति अच्छा व्यवहार तथा उनका सहयोग करना चाहिए। उनकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए और उनके साथ तालमेल बनाकर चलना चाहिए। जिससे समाज में अनुसूचित जनजाति के मजदूर पीढ़ियों के मध्य संघर्ष कम हो जायेंगे और समाज आगे की ओर विकसित हो सकेगा। इस प्रकार से उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए मनरेगा में काम करने वाले अनुसूचित जनजाति मजदूरों का अध्ययन करने के उद्देश्य से इस समस्या पर शोध कार्य की आवश्यकता महसूस की गई।

मनरेगा के अन्तर्गत सामाजिक अंकेक्षण एक अनिवार्य प्रक्रिया है। सामाजिक अंकेक्षण पारदर्शिता का एक प्रभावी साधन है, जो कुप्रशासन और भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करने एवं बड़े पैमाने पर जागरूकता और लोकतांतिर्क भागेदारी में मदद एवं इसमें भाग लेने वाले को सशक्त करता है। मनरेगा के दिशा निर्देश में ग्राम सभा को यह अधिकार दिया गया है कि वह वर्ष भर में दो बार इस योजना का सामाजिक अंकेक्षण करेगी जिसमें योजना से जुड़े सभी तथ्य शामिल किये गये है। सामाजिक अंकेक्षण की अधिनियम की धारा-17 अनिवार्य बताती है। मनरेगा में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान मजदूरी का प्रावधान मानव अधिकारों के संरक्षण का अभिनव प्रयास माना जा सकता है।

मनरेगा के अन्तर्गत व्याप्त समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

मनरेगा में सबसे बड़ी समस्या एवं चुनौती भ्रष्टाचार की है। इस योजना के अन्तर्गत भ्रष्ट्राचार के अनेक रूप विद्यमान है जिसमें प्रमुख रूप से निधियों का गबन, सामग्री का फर्जी भुगतान, फर्जी मस्टररोल प्रविष्टियाँ, अनुपस्थित श्रमिकों को उपस्थित दिखाकर भुगतान में हिस्सेदारी, मशीनों का उपयोग कर मजदूरी दिखाकर कर फर्जी भुगतान आदि। दूसरी समस्या यह है कि इस योजना में मैट को इतने अधिक दायित्व एवं कार्य सौंप दिये है। जिन्हें कर पाना मुश्किल ही नहीं बल्कि असम्भव है। मनरेगा में राजनैतिक एवं प्रशासनिक अनियमितताएं भी विद्यमान है। वर्तमान में ग्राम पंचायत का चुनाव मनरेगा से होने वाली आमदनी को ध्यान में रखकर लड़ा जाता है। मनरेगा के अन्तर्गत कार्यस्थल पर अनेक सुविधाओं का प्रावधान होता है लेकिन श्रमिकों को यह व्यवस्था बहुत कम ही मिल पाता है। मनरेगा के द्वारा श्रमिकों को बेरोजगारी भत्ता देने का प्रावधान है। परन्तु व्यवहारिकता में देखने को नहीं मिलता है। योजना के तहत 100 दिन का रोजगार दिया जाता है परन्तु यहां भी भेद-भाव की नीति अपनाई जाती है। कार्यस्थल पर बोर्ड पर सूचनाएं दी जाती है। परन्तु यह व्यवहारिकता में देखने को बहुत कम मिलता है। कार्यस्थल पर उपस्थित व्यक्तियों अथवा श्रमिकों की संख्या कम होती है परन्तु मस्टररोल में फर्जी उपस्थिति भरकर वास्तविक मजदूरों द्वारा किये गये कार्य में फर्जी लोगों की उपस्थिति दर्ज कर लिए जाते हैं, जो अनावश्यक रूप से गलत फायदा उठाते है।

चन्दौली जनपद के नौगढ़ ब्लाक की सामुदायिक पृष्ठभूमि-

मनरेगा के तहत आर्थिक बोझ केंद और राज्य सरकार द्वारा साक्षा किया जाता है। इस कार्यक्रम के तहत कुल तीन क्षेत्रों पर धन व्यय किया जाता है। अकुशल, अर्द्धकुशल और कुशल श्रमिकों की मजदूरी आवश्यक सामग्री प्रशासनिक लागत केंद्र सरकार अकुशल

श्रम की लागत का 100 प्रतिशत अर्द्ध कुशल और कुशल श्रम की लागत का 75 प्रतिशत सामग्री की लागत का 75 प्रतिशत तथा प्रशासनिक लागत का 6 प्रतिशत वहन करती है, वही शेष लागत का वहन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।

मनरेगा के लागू होने के बाद चन्दौली जनपद में पंचायती राज व्यवस्था काफी सुदृढ़ हुई है। सबसे ज्यादा कायदा यह हुआ है कि ग्रामीणों का पलायन रूका है। लोगों को घर बैठे काम मिल रहा है और निर्धारित मजदूरी भी। मजदूरों में इस बार की खुशी है कि उन्हे काम के साथ ही सम्मान भी मिला है। कार्यस्थल पर उनकी आधारभूत जरूरतों का भी ध्यान रखा गया। अब गाँव के हर नागरिक की जुबां पर मनरेगा का नाम सुनने में आया है। उन्हें विश्वास है कि मनरेगा के जरिए वे कम से कम दो वक्त की रोटी का इन्तजाम जरूर कर सकते हैं। उन्हें यह कहते हुए खुशी होती है कि अब गाँव शहर एक साथ चलेगा।

सन्दर्भ साहित्य सर्वेक्षण:

देज, जे0 एंयड आर0 खेड़ा (2011) महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए) सामाजिक सुरक्षा और इतिहास में एक अनूठी पहल है- यह सिर्फ रोजगार योजना नहीं है बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक बदलाव का एक कारगर साधन भी है। यह खंड ग्रामीण भारत में ''रोजगार गारंटी के लिए संघर्ष'' का पहला समग्र खाता है। महात्मा गांधी मनरेगा पर अब तक हुई बहस में दुष्प्रचार तथा कीचड़ उछालने की घटनाओं पर स्पष्ट रुख रखते हुए यह पुस्तक जमीनी हकीकत की एक बोधगम्य और विश्वसनीय तस्वीर प्रस्तुत करती है।

रावलियन, एम0 (2012) ने अपने अध्ययन में बताया कि महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना में भ्रष्टाचार है, इसमें कोई संदेह नहीं है। किंतु साधारण उपाय जो कि भ्रष्टाचार मिटाने का दावा करते हैं और अंतर-राज्य स्तर पर उपस्थित भ्रष्टाचार का निर्धारण करते हैं, वे अंत में हमें गलत जानकारी भी दे सकते हैं।

एफ0 ओ0 आर0 डी0, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार (2012), उन तरीकों की जांच करने के लिए जिसमें मनरेगा के प्रचलन दिशा-निर्देशों में संशोधन किया जा सकता है, डॉ0 मिहिर शाह, सदस्य, योजना आयोग की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई ताकि मनरेगा एवं ग्रामीण आजीविका के बीच सहयोग को सुदृढ़ करने के लिए मनरेगा के अंतर्गत अनुमेय कार्यों की सूची में विस्तार करने, अनुमेय कार्यों में वृहत स्थान विशिष्ट लोचनीयता के लिए राज्यों की मांगों को पूरा करने, ग्रामीण भारत में पारिस्थितकीय संतुलन को बेहतर बनाने तथा लोगों को स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद वातावरण उपलब्ध कराने; उन प्रक्रियागत बदलावों के बारे में सुझाव देना जिससे महात्मा गांधी मनरेगा के मांग आधारित स्वरूप जो इसकी विशिष्ट विशेषता है, को सुदृढ़ करेगा; महात्मा गांधी मनरेगा के अंतर्गत भागीदारीपूर्ण आयोजन एवं कार्यान्वयन प्रक्रिया को सुदृढ़ करने जिससे स्थायी परिसंपत्तियों का सृजन एवं कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो सके; कार्यक्रम के अंतर्ग भ्रष्टाचार की गुंजाइश को समाप्त करने के लिए प्रभावी तंत बनाने जैसी समस्याएं दूर की जा सके।

इंस्टीट्यूट ऑफ फारेस्ट मैनेजमेंट (आई आई एफ एम)(2012) यह छोटे तथा सीमांत किसानों पर महात्मा गांधी मनरेगा के प्रभाव के संबंध में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा शुरू किए गए स्वतंत्र मूल्यांकन की रिपोर्ट का प्रारूप है। प्रारंभिक विश्लेषण से पता चलता है कि फसल पैदा करने वाला क्षेत्र बढ़ा है, पलायन में कमी आई है और खाद्य उपलब्धता बढ़ी है।

हिर्वे, आई, और एस0 बताव्याल (2012) महात्मा गांधी मनरेगा ने निश्चित रूप से कुछ प्रक्रियाओं को उत्प्रेरित किया है जिन्होंने महिलाओं के सशक्तीकरण को दैनिक मजदूरी रोजगार, साथ में समान भुगतान, ग्राम सभा और सामाजिक अंकेक्षणों में भागीदारी और सामाजिक सहयोग की गतिशीलता द्वारा बढ़ाया है। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है जिसमें उन्हें सक्रिय भागीदार और महात्मा गांधी मनरेगा का वास्तविक लाभ प्राप्तकर्ता बनाया जा सके। इस अध्ययन में मोबासा, गुजरात में महिलाओं पर महात्मा गांधी मनरेगा के प्रभावों का भी अध्ययन किया गया है।

उपसंहार:-

ग्रामीण लोगों की सरकारी सेवाओं तक पहुँच पिछड़ी अवस्था में है जिसके परिणामस्वरूप गाँव एवं शहर के बीच असमानता बढ़ी है। ग्रामीण विकास का अभिप्राय गरीबी और असमानता दूर करना है, अत: ग्रामीण क्षेत्रों में परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों दृष्टियों से रचनात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है। ग्रामीण विकास ग्रामीण क्षेत्र की इस तरह की विकास की अपेक्षा रखता है ताकि ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, प्राकृतिक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में परिवर्तन हो सके। ग्रामीण विकास के माध्यम

से उत्पादन और उत्पादकों में वृद्धि आधारभूत सेवा के साथ-साथ साख आपूर्ति और आहार का प्रावधान प्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार लायेगा। यह ग्रामीण समाज के आधुनिकीकरण तथा परम्परागत अलगाव से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण में परिवर्तन से सम्बन्धित है। देश के ग्रामीण जरुरतमंद परिवारों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति, महिलाओं, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों) को अवसंरचनात्मक सुविधाओं का विकास करने वाले कार्यों में मजदूरी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर ग्रामीण गरीबों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाना है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का सतत् विकास करने के लिए रोजगार प्रदान करना। ऐसे क्षेत्र जहाँ अत्यधिक गरीबी, सूखा, निर्जलीकरण और मृदा अपरदन में जीवकोपार्जन के साधन समाप्त हो गये हैं वहां रोजगार उपलब्ध करना है।

सुझाव:-

1. समाज की प्रगतिशील नीतियों में ऐसे अनुसूचित जनजाति के मजदूरों को जोड़ने के लिये किसी भी रैली या गोष्ठी में उनके विचारों को सम्मिलित किया जाये व उन्हें भी अन्य लोगों के साथ महत्व दिया जाये।
2. अनुसूचित जनजाति के नक्सली मजदूरों को शिक्षा के अभाव में अपने आप को आगे आने से रोकते है या झिझक महसूस करते हैं, अत: उन्हें यह विश्वास दिलाया जाये कि वे भी समाज का अभिन्न हिस्सा है और समाज की प्रगति में उनका योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।
3. किसी भी कार्य में अनुसूचित जनजाति के नक्सली मजदूरों का योगदान लेने पर पुरस्कार की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये ताकि वे पूरी शक्ति व रूचि के साथ सभी कार्यों में योगदान कर सकें।
4. अनुसूचित जनजाति के नक्सली मजदूरों के लिये कुछ विशेष प्रकार के आसान प्रश्नों से जुड़े प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का समय समय पर आयोजन किया जाये। इस प्रकार वे अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना सीख जायेंगी।
5. अनुसूचित जनजाति के नक्सली मजदूरों के लिये ऐसे उपकरणों का निर्माण किया जाये जिन्हे चलाने या उपयोग करने में केवल दिये गये संकेतो का अनुसरण करना पड़ें। न कि किसी कठिन भाषा का।

सन्दर्भ:-

- महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी (हस्त पुस्तिका), दीनदयाल उपाध्याय राज्य ग्राम विकास संस्थान, लखनऊ.
- भारत ग्रामीण विकास रिपोर्ट, 2012-13, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, पृ0सं0 265-66.
- राजस्थान, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, शासन सचिवालय, जयपुर, पृ0सं0 269.
- सुमन एन०एस० 22-28 फरवरी 1999 ''बहुजन संगठन'' हिन्दी सप्ताहिक 12, गुरूद्वारा रकाबगंज रोड नई दिल्ली पृष्ठ-4-6.
- देज, जे0 एंड आर0 खेड़ा, 2011. 'द बैटल फॉर इम्प्लायमेंट गारंटी', इन द बैटल फॉर इम्प्लायमेंट गारंटी, संपादन आर0 खेड़ा नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- रावलियन, एम0, 2012. ''करप्शन इन द एम जी एन आई जी एस: एसेसिंग इन इनडेक्स', इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, खण्ड 47, संख्या 8.
- एक ओ आर डी0, 2012. ''ग्रामीण विकास मंतर्लाय भारत सरकार'', नई दिल्ली को प्रस्तुत रिपोर्ट, 'रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन रिवीजन ऑफ एमजीएनआरईजीए ऑपरेशन, गाईडलाइन्स.
- इंस्टीट्यूट ऑफ फारेस्ट मैनेजमेंट, (आईआईएफएम) 2012. इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल मैनेजमेंट (आनंद) (आई आरएमए)- इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस रिसर्च (आई एस एस आर), 'इंडिपेंडेंट इवलेल्युएशन ऑफ महात्मा गांधी नरेगा: इंडियन ड्राफ्ट रिपोर्ट फाइंडिंग्स', आई आई एफ एम (भोपाल) आई आर एम ए (आणंद) आई एस एस आर (उज्जैन).
- हिर्वे, आई0, और एस0 बताव्याल, 2012. 'एमजीएनआरईजीए एंड वीमेन्स इम्पावरमेंट', नई दिल्ली: एूएन वीमेन साउथ एशिया.
- National Commission on Agriculture, 1979. "Interim Repart on Credit Sevide ofr small Farmersèkmarginal Farmers and Agriculture Labourer. Govt. of India, New Delhi.

''विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन''

डॉ० हरीश कंसल

शोध-निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, ओ० पी० जे० एस० विश्वविद्यालय, चुरू, राजस्थान

राजेश कान्त रंजन

शोध छात्र, ओ० पी० जे० एस० विश्वविद्यालय, राजस्थान

शोध सारांश प्रस्तुत अध्ययन विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन करना है प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य- बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों की नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन करना एवं बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन करना। प्रस्तुत शोध पत्र की शोध परिकल्पना के रूप में बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों की नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा। बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा तथा न्यादर्श के रूप में शोध पत्र अध्ययन में न्यादर्श के रूप में महाविद्यालयों के 150 छात्र एवं छात्राओं का प्रतिदर्ष के रूप में चयन स्तरीकृत यादृच्छिकी न्यादर्श विधि (Stratified Randon Sampling Tecnique) के अन्तर्गत लॉटरी विधि द्वारा किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य में शोधकर्ता ने शोध अध्ययन हेतु नैराश्य के लिए पी0एम0 दीक्षित तथा डी0एन0 श्रीवास्तव द्वारा निर्मित प्रमापीकृत उपकरण का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में किसी स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

महत्वपूर्ण शब्द: विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रम, विद्यार्थी, नैराश्य

प्रस्तावना:-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसको समाज में ही रहना है। अत: प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसका समाज में न केवल अच्छा सृजन हो बल्कि उसकी प्रतिष्ठा भी बने व बढ़े। व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा बनाने में उसका व्यक्तित्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यहाँ व्यक्तित्व से तात्पर्य उसके बाह्य आवरण या रंग-रूप से नहीं है, बल्कि व्यक्तित्व में उसकी बाह्य एवं आन्तरिक विशिष्टताएं भी आती है। इस प्रकार व्यक्तित्व चरित्र, स्वभाव, बुद्धि व शारीरिक गठन का स्थायी संगठन होता है जिसके आधार पर वह वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता है।

भारत में विद्यार्थी विभिन्न व्यवसायों में व्यावसायिक उपाधि पाठ्यक्रम के बाद ही प्रवेश करते हैं, ऐसे में यह स्तर काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। प्राय: इस स्तर पर विद्यार्थियों में ऊर्जा की तीव्रता के कारण उनका विविध पक्षों में समायोजन ठीक ढ़ग से नहीं हो पाता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव न केवल उनके व्यक्तित्व पर पड़ता है वरन उनकी शैक्षिक सम्प्राप्ति का स्तर भी नकारात्मक

रूप से प्रभावित हो जाता है, साथ ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था की व्यवहारगत् कमी, जिसके चलते विद्यार्थी को विविध व्यवसायों के चयन हेतु किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन और परामर्श नहीं मिलता है, के कारण विद्यार्थी प्रायः श्वेत वसन व्यवसायों की ओर उनकी चमक-दमक के चलते आकर्षित हो जाते हैं। ऐसे में वे अपनी क्षमताओं का बढ़ा-चढ़ा कर आकलन कर बैठते हैं और इस कारण उनका व्यवहार विखंडित होने लगता है तथा उनमें नैराश्य उत्पन्न होने लगता है। बहुत से विद्यार्थी माता-पिता की इच्छा तथा व्यवसायों की सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे कारणों के चलते व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का चयन कर लेते हैं, परन्तु व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में आकर उन्हें इन पाठ्यक्रमों के आकार तथा उन्हें इन सन्दर्भ में कठिनाईयों और लाभों का ज्ञान हो पाता है। बाद में वे अपनी जीविका वरीयता को बदलने का प्रयास करते हैं, जिससे उनका समायोजन प्रभावित होता है तथा उनमें नैराश्य उत्पन्न होने लगता है। व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर पर नैराश्य (Frustation) चर अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करते है। क्योंकि यही स्तर व्यक्ति के व्यवहारिक जीवन में प्रवेश का प्रस्थान बिन्दु है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि इस स्तर पर विद्यार्थियों के नैराश्य का समुचित आंकलन कर उनमें सुधार हेतु उपाय सुझाये जाये, इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर शोधकर्ता ने शोधकार्य को सम्पादित करने का विनम्र प्रयास किया है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्वः-

21वीं सदी को ज्ञान व तकनीकी की सदी कहा गया है ज्ञान की इस सदी में यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली और ज्ञान के ढाँचे में योजनाबद्ध परिवर्तन लाये। भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिये ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित हो, जिससे नवीनता और उद्यमिता को प्रोत्साहन मिले। मगर ज्ञान की वैश्विक प्रतिस्पर्धा में जब हम भारत के भविष्य पर नजर दौड़ाते है तो स्थिति ज्यादा उत्साहजनक नहीं दिखती है। उनमें नैराश्य की भावना देखने को मिलती है। भारत को आजकल 21 वीं सदी की विश्वशक्ति के रूप में देखा जाने लगा है। मनुष्य की आवश्यकताओं के आधार पर ही विभिन्न व्यवसायों का विकास हुआ है। जिनमे मूलभूत आवश्यकतायें सम्मिलित हैं वहीं दूसरी ओर व्यक्ति को सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अपने वातावरण और परिस्थितियों के साथ समायोजन करना आवश्यक हो जाता है।

अतः शोधकर्ता को विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता हुयी है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के निष्कर्ष छात्रों, अभिभावकों, शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों के लिये लाभप्रद सिद्ध होगें।

प्रस्तुत शोध कार्य के निम्नवत् उद्देश्य हैं-

1. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध की परिकल्पनाः-

शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वोत्तम 'शून्य उपकल्पना' को अपनाते हुए अपने शोध विषय के उद्देश्यों को पूर्ण किया है। प्रस्तुत अनुसंधान के उद्देष्यों के आधार पर निम्न लिखित शून्य परिकल्पनाएं निर्मित की गयी हैं-

1. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा।
2. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा।

परिसीमांकनः

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य के देवीपाटन मण्डल के विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् महाविद्यालयों के 150 छात्र एवं छात्राओं को प्रतिदर्श के रूप में चयन स्तरीकृत यादृच्छिकीय न्यादर्श विधि (Stratified Randon Sampling Tecnique) द्वारा लिया गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल बी0एड0 तथा एम0बी0ए0 पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य-

तिवारी अमित (2018) ने युवाओं में नैराश्य प्रतिक्रियाओं पर मद्यपान के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य मद्यपान का युवाओं में नैराश्य प्रतिक्रियाओ पर प्रभाव का अध्ययन में पाया गया कि मद्यपान करने वाले युवाओं में मद्यपान न करने वाले युवाओं की अपेक्षा नैराश्य प्रवृत्ति ज्यादा होती है। शाहिना प्रधान (2021) ने ''महिलाओं में संवेदी संबंधी समस्या अवसाद को बढ़ा सकती है: एक अध्ययन'' अध्ययन में पाया कि जो महिलाएं दृष्टि, श्रवण या दोहरी संवेदी (मस्तिष्क-संबंधी) रोग से पीड़ित (Sffuering from vision] hearing or dual sensory, neurological, disease) हैं, उन्हें इसी तरह की दिक्कतों का सामना करने वाले पुरुषों की तुलना में अवसाद और चिंता संबंधी समस्याएं भी दोगुनी होती हैं। प्रो.सबीहा हुसैन (2022) ने कहा कि महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को व्यापक परिपेक्ष्य में देखना होगा, जिसमें जेन्डर गतिकी व आर्थिक पहलु बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।सभी वर्ग की महिलाएं हिंसा की शिकार हो रही हैं और इसका सीधा सम्बन्ध मानव अधिकार से है।

शोध विधि:

वर्तमान अध्ययन की शोध विधि में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग उसके उद्देष्यों व विषेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है। शोध समस्या का विषय विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है।

न्यादर्श:

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्ता द्वारा न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश राज्य के देवीपाटन मण्डल के विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् महाविद्यालयों के 150 छात्र एवं छात्राओं का प्रतिदर्श के रूप में चयन स्तरीकृत यादृच्छिकी न्यादर्श विधि (Stratified Randon Sampling Tecnique) के अन्तर्गत लॉटरी विधि द्वारा किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण:

नैराश्य के लिए पी0एम0 दीक्षित तथा डी0एन0 श्रीवास्तव द्वारा निर्मित प्रमापीकृत उपकरण रियेक्शन टू फ्रस्टेशन स्केल का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ:

प्रस्तुत शोध अध्ययन शोधकर्ता ने आंकड़ो का ऑकलन कर क्रान्तिक मान प्राप्त करके निष्कर्ष प्राप्त किया है।

आंकड़ों का संकलन, विश्लेषण एवं व्याख्या:-

शोधकर्ता ने विभिन्न सांख्यिकीय विधियों द्वारा निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए उनका विश्लेषण किया है। शोधकर्ता ने आंकड़ों की गणना हेतु सर्वप्रथम प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर प्रत्येक चर का मध्यमान ज्ञात किया, इसके पश्चात् प्राप्त मध्यमान के आधार पर प्रमाणिक विचलन निकाला, तत्पश्चात् विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन हेतु क्रान्तिक मान का प्रयोग किया है।

परिकल्पनाओं के सत्यापनों द्वारा विष्लेषण एवं व्याख्या:-

सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त प्रदत्तों से परिणाम ज्ञात करने के लिए षोधकर्ता ने उपर्युक्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया और प्राप्त परिणामों को सुविधा की दृष्टि से सारणीबद्ध किया। तत्पश्चात् परिणामों की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण का कार्य किया है। प्राप्त परिणामों का सारणीयन व उनकी परिकल्पनाओं के आधार पर व्याख्या इस प्रकार है-

$H_{0(1)}$: 'बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा'- का सत्यापन।

तालिका सं0-01 बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन

क्रम सं0	क्षेत्र	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	क्रान्तिक मान	सार्थकता
1	बी0एड0 पाठ्यक्रम के छात्र	75	98.28	13.41	2.15	0.48	असार्थक
2	प्रबन्धन पाठ्यक्रम के छात्र	75	99.33	13.05			

तालिका सं0-01 स्पष्ट होता है कि बी0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य का परीक्षण का मध्यमान 98.28 एवं मानक विचलन 13.41 एवं प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य के परीक्षण का मध्यमान 99.33 एवं मानक विचलन 13. 05 पाया गया। बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में सार्थक अन्तर है अथवा नहीं, के लिए क्रान्तिक मान ज्ञात किया जो 0.48 प्राप्त हुआ, जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.58 से कम पाया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। इसके कई कारण हो सकते है।

1. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य के परीक्षण मानों में पाया गया कि बी0एड0 पाठ्यक्रम के छात्रों के तुलना में प्रबन्धन पाठ्यक्रम के छात्रों का मध्यमान अधिक एवं मानक विचलन कम पाया गया किन्तु सार्थकता की दृष्टिकोण से उनमें किसी स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
2. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में उनमें अन्तर न पाया जाने का कारण यह हो सकता है कि बी0एड़ पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों में हताशा एवं कुंठा का उनके सामाजिक एवं परिवेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है एवं प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों का नैराश्य भी समान रूप से उच्च स्तर के रूप में प्रतीत होता है।

आरेख सं0-01 बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य का तुलनात्मक आरेखीय प्रदर्शन

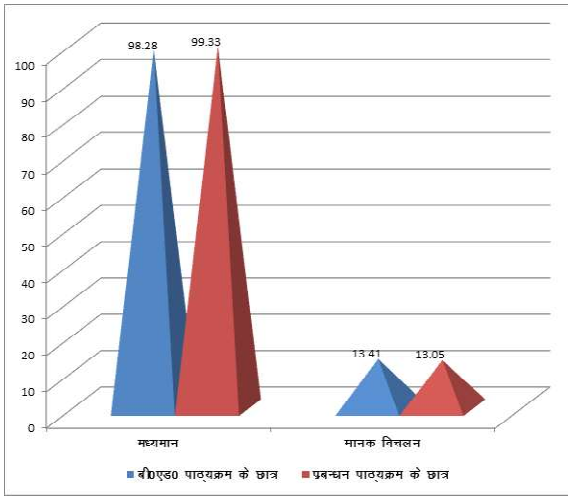

आरेख सं0-01 स्पष्ट होता है कि बी0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य का परीक्षण का मध्यमान 98.28 एवं मानक विचलन 13.41 एवं प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य के परीक्षण का मध्यमान 99.33 एवं मानक विचलन 13.05 पाया गया। $H_{0(2)}$: 'बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा'- का सत्यापन।

तालिका सं0-02 बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य का तुलनात्मक अध्ययन

क्रम सं0	क्षेत्र	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	क्रान्तिक मान	सार्थकता
1	बी0एड0 पाठ्यक्रम की छात्राएं	75	96.35	14.91	2.16	0.50	असार्थक
2	प्रबन्धन पाठ्यक्रम की छात्राएं	75	97.84	11.37			

तालिका सं0-02 स्पष्ट होता है कि बी0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य का परीक्षण का मध्यमान 96.35 एवं मानक विचलन 14.91 एवं प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य के परीक्षण का मध्यमान 97.84 एवं मानक विचलन 11. 37 पाया गया। बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में सार्थक अन्तर है अथवा नहीं, के लिए क्रान्तिक मान ज्ञात किया जो 0.50 प्राप्त हुआ, जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.58 से कम पाया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में किसी स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। इसके कई कारण हो सकते है।

1. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं के नैराश्य में परीक्षण मानों में पाया गया कि बी0एड0 पाठ्यक्रम की छात्राओं की तुलना में प्रबन्धन पाठ्यक्रम की छात्राओं का मध्यमान अधिक एवं मानक विचलन कम पाया गया किन्तु सार्थकता की दृष्टिकोण से उनमें किसी स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
2. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं के नैराश्य में उनमें शैक्षिक एवं प्रबन्धन में समानता का होना यह प्रदर्शित करता है कि छात्राऐं शिक्षा के अनेक प्रबन्धों एवं सहयोगात्मक रूप से एक समान असमायोजित व्यवहार का प्रदर्शन करती है एवं निराश तथा अपने आप को कुठिंत महसूस करती है।

आरेख सं0-02 बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य का तुलनात्मक आरेखीय प्रदर्शन

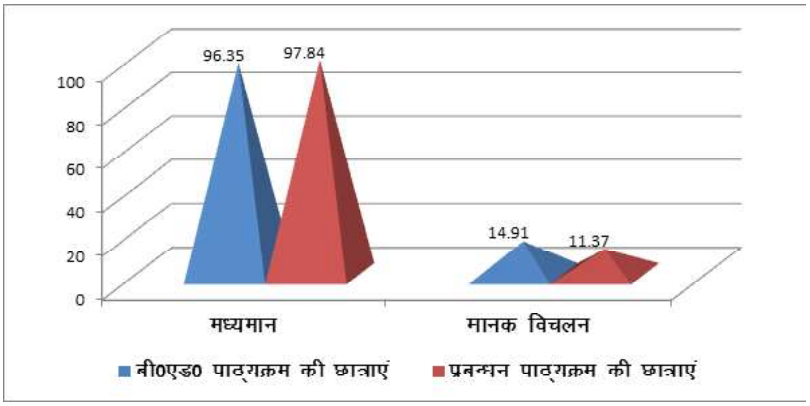

आरेख सं0-02 स्पष्ट होता है कि बी0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य का परीक्षण का मध्यमान 96.35 एवं मानक विचलन 14.91 एवं प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य के परीक्षण का मध्यमान 97.84 एवं मानक विचलन 11. 37 पाया गया।

प्रस्तुत शोध पत्र का निष्कर्ष:

1. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्रों के नैराश्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
2. बी0एड0 तथा प्रबन्धन पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् छात्राओं की नैराश्य में किसी स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

- कपिल, एच.के., (2004); अनुसंधान विधियाँ, भार्गव भवन, आगरा, पृष्ठ 159.
- गैरिट, हेनरी ई0,(1989); शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- जायसवाल, सीता राम "व्यक्तित्व का मनोविज्ञान (तृतीय संस्करण 1993) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-2 पृष्ठ-187.
- तिवारी अमित (2018) ने युवाओं में नैराश्य प्रतिक्रियाओं पर मद्यपान के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन https://www.researchgate.net/publication/332151617 yuva'om mem nairasya pratikriya'om para madyapana ke prabhava ka tulanatmaka adhyayana.
- शाहिना प्रधान (2021) ने ''महिलाओं में संवेदी संबंधी समस्या अवसाद को बढ़ा सकती है: एक अध्ययन'' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ जेरियाट्रिक साइकियाट्री नई दिल्ली, 28 मार्च 2021.
- प्रो.सबीहा हुसैन (2022) महिला अध्ययन केन्द्र, बी.एच.यू./bhupro

''माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के शैक्षिक मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन''

डॉ० हरीश कंसल

शोध-निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, ओ0 पी0 जे0 एस0 विश्वविद्यालय, चुरू, राजस्थान

निहारिका मिश्रा

शोधार्थिनी, ओ0 पी0 जे0 एस0 विश्वविद्यालय, राजस्थान

शोध सारांशः प्रस्तुत अध्ययन ''माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के शैक्षिक मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन'' करना है प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य- माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन करना। प्रस्तुत शोध पत्र की शोध परिकल्पना के रूप में माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में कोई सार्थक प्रभाव नहीं है तथा न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश राज्य के जनपद लखनऊ में स्थित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के 100-100 छात्र-छात्राओं को प्रतिदर्श के रूप में चयन स्तरीकृत यादृच्छिकीय न्यादर्श विधि (Stratified Randon Sampling Tecnique) द्वारा लिया गया है। शोधकर्त्री के द्वारा शैक्षिक मूल्य मापनी डॉ0 (श्रीमती) जी0पी0 शैरी एवं डॉ0 आर0 पी0 वर्मा का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया। माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया। माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में किसी स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया। माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया। माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति की छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में किसी स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

महत्वपूर्ण शब्दः माध्यमिक स्तर, सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति, शैक्षिक मूल्य

प्रस्तावनाः-

शिक्षा का सदैव से ही यह उद्देष्य रहा है कि वह मनुष्य को आदर्श मानव परिणित करे, आदर्श मानव की संकल्पना मूल्यों से जुडीघ है। मूल्य का स्वरूप सभ्यता और अन्तिम सत्यता की अवधारणा से जुड़ा है और अंतिम सत्यता की अवधारणा ज्ञान को बढाघ्ता है। शिक्षा दर्शन में सत्य ज्ञान और मूल्यों की एक निश्चित संकल्पना निहित है, अतः शिक्षित मूल्य शिक्षा मूल्यों का मिला-जुला रूप है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य की अनेक आवश्यकताऐं होती है। पहली वैयक्तिक तथा जिसे दार्षनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने भावात्मक क्रियाओं के रूप में भी देखा है। दूसरी आवश्यकता सामाजिक तथा आध्यात्मिक बतायी गयी है।

इसके अन्तर्गत मानवीय साहचर्य, आर्थिक, सुरक्षा और पारिवारिक जीवन आते है। मनुष्य इन आवश्यकताओं के बिना जीवित नहीं रह सकता। इसकी संतुष्टि एवं प्राप्ति के लिए वह विभिन्न प्रतिक्रियायें एवं इनके प्रयोग का मानव जीवन के लिए मूल्य होता है। शैक्षिक मूल्य इस प्रकार व्यक्ति के जीवन या प्रत्येक क्रिया व्यवहार से सम्बन्धित है।

सामान्य एवं पिछड़ी जाति की तुलना में अनुसूचित जाति वर्ग के छात्र एवं छात्राओं में शिक्षा के प्रति उदासीनता एवं शैक्षिक मूल्यों में जो निराषाजनक साक्ष्य प्रस्तुत हो रहे हैं, वे यह अनिवार्य बना देते है कि वस्तुनिष्ठ ढंग से इसका अध्ययन किया जाये ताकि वस्तुस्थिति का सही-सही अनुमान लगाया जा सके। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्र-छात्राओं में आकांक्षा, शैक्षिक मूल्यों का स्तर यदि ऊपर उठ जाये तो वे स्वंय समाज की मुख्य धारा में समाविष्ट हो सकेंगे, जब तक उनमें यह जागरूकता नहीं आती वे आरक्षण की वैशाखियों पर ही चलते रहेंगे।

अनुसंधाान कार्य के लिए जो समस्या चुनी गयी है, वह समस्या सीमित तथा स्पष्ट रूप से परिभाषित हो जिससे शोध कार्य में अनावश्यक दिशाओं में भटकने की आशंका न हो। शोध समस्या जितनी स्पष्ट एवं परिसीमित होगी लक्ष्य उतना ही निश्चित एवं स्पष्ट होगा, समस्या इस रूप में रखी जानी चाहिए जिससे विषय आकर्षक बन सके। किसी समस्या को परिभाषित करने का अर्थ यह होता है कि चारों ओर एक प्रकार की सीमाओं में बांध दी जाये जिससे वह समस्या अन्य प्रश्नों से अलग दिखायी पड़े। विषय का सीमांकन होने से लक्ष्य स्पष्ट होता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्वः-

सामाजिक पिछड़ेपन के कारण सभी वर्गों के बालक-बालिकाओं का बौद्धिक और भाषायी विकास अवरूद्ध होता है तथा उनकी शिक्षा ग्रहण क्षमता प्रभावित होती है। शैक्षिक मूल्यों के अभाव में बालक-बालिकाओं का बौद्धिक विकास और अध्ययन सम्बन्धी उपलब्धि अपेक्षित स्तर की नही हो पाती है। यह भी पाया गया है कि सामाजिक दृष्टि से हीन भावना के शिकार हुए सभी वर्गों के बालक-बालिकाएं पढ़ने-लिखने में रूचि नहीं लेते है। और स्कूलों आदि में तत्समय उपलब्ध सुविधाओं का पूरा लाभ नही उठा पाते है। उनकी बुद्धि का स्तर, आंकाक्षा स्तर, भाषा अभिव्यक्ति, सामान्य ज्ञान, विश्लेषण क्षमता, समझने, सार ग्रहण करने और स्मरण रखने की शक्ति भी प्रायः निम्न स्तर की होती है। शोध कार्यों के माध्यम से सुझाये गये, निदानात्मक उपायों एवं कार्यक्रमों से बच्चों में जिज्ञासा, आत्म-सम्मान की भावना, बालक-बालिकाओं में स्कूल प्रवेश के लिए अपेक्षित व्यवहार विकसित करने में सहायक होती है। अब तक के शोध कार्यों एवं शासकीय प्रयासों के बावजूद हम सामाजिक रूप से सभी वर्गों के बालक-बालिकाओं में अपेक्षित शिक्षा स्तर की बात तो दूर रही उनमें अपेक्षित साक्षरता के मिशन को पूरा नहीं कर सके। समाज में रूढ़िवादिताओं के साथ में असमानतायें, शोषण एवं उत्पीड़न आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्र-छात्राओं के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया हैं कि वर्तमान समय में यह वर्ग किस प्रकार शैक्षिक मूल्यों से प्रेरित है? छात्र-छात्राऐं किस प्रकार शैक्षिक रूप से समायोजित है अथवा नही इनकी शैक्षिक मूल्यों की समस्याएँ क्या है? इन शैक्षिक मूल्यों की समस्याओं का निवारण किस प्रकार हो सकता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से ऐसे सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं जिनको अमल में लाने पर इस वर्ग के छात्र-छात्राओं की अनेक समस्याएँ दूर हो सकती है।

प्रस्तुत शोध कार्य के निम्नवत् उद्देश्य हैं-

1. माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध की परिकल्पनाः-

शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वोत्तम 'शून्य उपकल्पना' को अपनाते हुए अपने शोध विषय के उद्देश्यों को पूर्ण किया है। प्रस्तुत अनुसंधान के उद्देश्यों के आधार पर निम्न लिखित शून्य परिकल्पनाएं निर्मित की गयी हैं-

3. माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।
4. माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

परिसीमांकन:

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तर प्रदेष राज्य के जनपद लखनऊ में स्थित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के 100-100 छात्र-छात्राओं को प्रतिदर्श के रूप में चयन स्तरीकृत यादृच्छिकीय न्यादर्श विधि (Stratified Randon Sampling Tecnique) द्वारा लिया गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य-

गुप्ता एवं बाला (2008) ने पाया कि पेषेवर मूल्यों तथा पारिवारिक मूल्यों के मध्य ऋणात्मक सहसम्बन्ध पाया गया अर्थात स्नातक युवतियाँ भविष्य के पेशे के प्रति अधिक रूचि रखती हैं, परिवार तथा घरेलू कार्य के प्रति कम रूचि रखती हैं। गुप्ता एवं यादव, (2011) ने पाया कि बालकों का मूल्य ज्ञान सभी अध्ययन में शामिल मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में बालिकाओं के अपेक्षा उच्च स्तर का रहा। किशोरों के समायोजन के 0.45 स्तर पर कोई सार्थक स्तर नहीं पाया गया। बालक बालिकाओं का समायोजन स्थिति, समस्या के अनुरूप रहा। यादव (2012) ने पाया कि बालक बालिकाओं का बौद्धिक स्तर समान ही रहा। सरकारी विद्यालयों के किशोरों ने उच्च स्तर अर्न्तनिहित मूल्यों को तथा निम्न स्तर धार्मिक मूल्यों को प्रदान किया गया। गैर सरकारी विद्यालयों के किशोरों की तुलना में सरकारी विद्यालयों के किशोरों के सामाजिक, लोकतान्त्रिक, ज्ञानात्मक व परिवार मान मूल्य उच्च पाये गये। सिंह एवं गुप्ता (2012) ने मूल्य एवं बुद्धि के कुछ व्यक्तित्व निर्धारण का अध्ययन में पाया कि न्यूरोटिसिज्म का शैक्षिक, सैद्धान्तिक, सौन्दर्यात्मक एवं धार्मिक मूल्यों से धनात्मक सम्बन्ध पाया गया। छात्राओं में शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक व सौन्दर्यात्मक मूल्यों के लिए प्राथमिकता पायी गयी। तिवारी, डॉ0 अरूण कुमार (2016) ने जूनियर हाईस्कूल के छात्रों में शैक्षिक मूल्यों की खोज एवं पहचान नामक अध्ययन में पाया कि कक्षा 7 के बाद छात्रों के शैक्षिक मूल्य स्थिर हो जाते हैं। फोले, एच0 सी0 (2016)-ने दसवीं कक्षा के अमेरिकन विद्यार्थियों के शैक्षिक मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन के रूप मे जाँच की उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों की गृहकार्य के रूप में उनकी शैक्षिक मूल्यों में सकारात्मक प्रभाव पाया गया।

शोध विधि:

वर्तमान अध्ययन की शोध विधि में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग उसके उद्देश्यों व विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है। शोध समस्या का विषय माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है।

न्यादर्श:

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्ता द्वारा न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश राज्य के जनपद लखनऊ में स्थित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के 100-100 छात्र-छात्राओं को प्रतिदर्श के रूप में चयन स्तरीकृत यादृच्छिकीय न्यादर्श विधि (Stratified Randon Sampling Tecnique) द्वारा लिया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण:

शोधकर्त्री के द्वारा शैक्षिक मूल्य मापनी डॉ0 (श्रीमती) जी0पी0 शैरी एवं डॉ0 आर0 पी0 वर्मा का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ:

प्रस्तुत शोध अध्ययन शोधकर्ता ने आंकड़ो का ऑकलन कर क्रान्तिक मान प्राप्त करके निष्कर्ष प्राप्त किया है।

आंकड़ों का संकलन, विश्लेषण एवं व्याख्या:-

शोधकर्त्री ने विभिन्न सांख्यिकीय विधियों द्वारा निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए उनका विश्लेषण किया है। शोधकर्त्री ने आंकड़ों की गणना हेतु सर्वप्रथम प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर प्रत्येक चर का मध्यमान ज्ञात किया, इसके पश्चात् प्राप्त मध्यमान के आधार पर

प्रमाणिक विचलन निकाला, तत्पश्चात् माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन हेतु एनोवा मान का प्रयोग किया है।

परिकल्पनाओं के सत्यापनों द्वारा विष्लेषण एवं व्याख्या:-

सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त प्रदत्तों से परिणाम ज्ञात करने के लिए शोधकर्त्री ने उपर्युक्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया और प्राप्त परिणामों को सुविधा की दृष्टि से सारणीबद्ध किया। तत्पष्चात् परिणामों की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण का कार्य किया है। प्राप्त परिणामों का सारणीयन व उनकी परिकल्पनाओं के आधार पर व्याख्या इस प्रकार है-

$H_{0(01)}$: माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में कोई सार्थक प्रभाव नहीं है- का सत्यापन।

तालिका सं0-01 सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों का प्रसरण विश्लेषण (ANOVA) द्वारा प्रभावात्मक अध्ययन

क्र0 सं0	समूह	N	M	S.D.	σD	t	सार्थकता
1.	सामान्य जाति के छात्र	100	147.58	13.91	1.97	7.15	0.01 स्तर पर सार्थक
	पिछड़ी जाति के छात्र	100	133.48	13.99			
2.	पिछड़ी जाति के छात्र	100	133.48	13.99	2.43	6.75	0.01 स्तर पर सार्थक
	अनुसूचित जाति के छात्र	100	149.89	19.91			
3.	अनुसूचित जाति के छात्र	100	149.89	19.91	2.36	0.97	असार्थक
	सामान्य जाति के छात्र	100	147.58	13.91			

तालिका संख्या-01 से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों का परीक्षण ज्ञात करने पर प्राप्ताँकों का मध्यमान क्रमश: 147.58 एवं 133.48 तथा मानक विचलन क्रमश: 13.91 व 13.99 पाया गया। दोनों के मानों में अन्तर पाया गया, यह अन्तर सार्थक है या नहीं, के लिए क्रान्तिक अनुपात मान की गणना करने पर यह मान 7.15 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.56 से अधिक पाया गया। अत: इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों का परीक्षण ज्ञात करने पर प्राप्ताँकों का मध्यमान क्रमश: 133.48 एवं 149.89 तथा मानक विचलन क्रमश: 13.99 व 19.91 पाया गया। दोनों के मानों में अन्तर पाया गया, यह अन्तर सार्थक है या नहीं, के लिए क्रान्तिक अनुपात मान की गणना करने पर यह मान 6.75 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.56 से अधिक पाया गया। अत: इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों का परीक्षण ज्ञात करने पर प्राप्ताँकों का मध्यमान क्रमश: 149.89 एवं 147.58 तथा मानक विचलन क्रमश: 19.11 व 13.91 पाया गया। दोनों के मानों में अन्तर पाया गया, यह अन्तर सार्थक है या नहीं, के लिए क्रान्तिक अनुपात मान की गणना करने पर यह मान 0.97 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.56 से कम पाया गया। अत: इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में किसी स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

अत: परिकल्पना संख्या-01 ''माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्रों के शैक्षिक मूल्यों के प्रभाव में कोई सार्थक प्रभाव नहीं है''-अस्वीकृत की जाती है।

$H_{0(02)}$: माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में कोई सार्थक प्रभाव नहीं है- का सत्यापन।

तालिका सं0-02 सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों का प्रसरण विश्लेषण (ANOVA) द्वारा प्रभावात्मक अध्ययन

क्र0 सं0	समूह	N	M	S.D.	σD	t	सार्थकता
1.	सामान्य जाति की छात्राऐं	100	147.88	14.49	1.95	2.74	0.01 स्तर पर सार्थक
	पिछड़ी जाति की छात्राऐं	100	153.24	13.11			
2.	पिछड़ी जाति की छात्राऐं	100	153.24	13.11	1.77	2.37	0.01 स्तर पर सार्थक
	अनुसूचित जाति की छात्राऐं	100	149.04	12.05			
3.	अनुसूचित जाति की छात्राऐं	100	149.04	12.05	1.88	0.80	असार्थक
	सामान्य जाति की छात्राऐं	100	147.88	14.49			

तालिका संख्या-02 से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों का परीक्षण ज्ञात करने पर प्राप्ताँकों का मध्यमान क्रमशः 147.88 एवं 153.24 तथा मानक विचलन क्रमशः 14.49 व 13.11 पाया गया। दोनों के मानों में अन्तर पाया गया, यह अन्तर सार्थक है या नहीं, के लिए क्रान्तिक अनुपात मान की गणना करने पर यह मान 2.74 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.56 से अधिक पाया गया। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों का परीक्षण ज्ञात करने पर प्राप्ताँकों का मध्यमान क्रमशः 153.24 एवं 149.04 तथा मानक विचलन क्रमशः 13.11 व 12.05 पाया गया। दोनों के मानों में अन्तर पाया गया, यह अन्तर सार्थक है या नहीं, के लिए क्रान्तिक अनुपात मान की गणना करने पर यह मान 2.37 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.56 से अधिक पाया गया। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति की छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों का परीक्षण ज्ञात करने पर प्राप्ताँकों का मध्यमान क्रमशः 149.40 एवं 147.88 तथा मानक विचलन क्रमशः 12.05 व 14.49 पाया गया। दोनों के मानों में अन्तर पाया गया, यह अन्तर सार्थक है या नहीं, के लिए क्रान्तिक अनुपात मान की गणना करने पर यह मान 0.80 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता सारणी में देखने से ज्ञात होता है कि यह मान 1.96 एवं 2.56 से कम पाया गया। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति की छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में किसी स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

अतः परिकल्पना संख्या-02 ''माध्यमिक स्तर के सामान्य, पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राओं के शैक्षिक मूल्यों के प्रभाव में कोई सार्थक प्रभाव नहीं है''-अस्वीकृत की जाती है।

प्रस्तुत शोध पत्र का निष्कर्षः

A. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।
B. माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।
C. माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति के छात्रों की शैक्षिक मूल्यों में किसी स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।
D. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं पिछड़ी जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

E. माध्यमिक स्तर के पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

F. माध्यमिक स्तर के अनुसूचित एवं सामान्य जाति की छात्राओं की शैक्षिक मूल्यों में किसी स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

- कपिल, एच.के., (2004); अनुसंधान विधियाँ, भार्गव भवन, आगरा, पृष्ठ 159.
- गैरिट, हेनरी ई0,(1989); शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- लाल रमन बिहारी-शिक्षा सिद्धान्त, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस, कानपुर, संस्करण 1998-101, पृष्ठ-05.
- गुप्ता, सुबोध एवं बाला, ज्ञान (2008) "कैरियर एण्ड फैमिली वैल्यूज ऑफ ग्रेजुएट गर्ल्स: ए स्टडी" द जरनल ऑफ एजुकेशन, अंक 4(2) पृ0 39-41.
- गुप्ता, भावना एवं यादव, आर0 के0 (2011) "एडजस्टमेंट एण्ड वैल्यू ऑफ अडोल्सेंट मेल एण्ड फीमेल स्टूडेंट्स" जरनल ऑफ द एजुकेशनल एण्ड साइक्लोजी रिसर्च, वा0 2(2) पृ0 112-114.
- यादव, शालिनी (2012) "इमोशनल इन्टेलीजेंस एण्ड वैल्यूज ऑफ एडोलोसेंट्स स्टडींइग इन गवर्नमेंट एण्ड नॉन गवर्नमेंट स्कूल्स" जरनल ऑफ द एजुकेशनल एण्ड साइक्लोजी रिसर्च, वा0 2(2) पृ0 137-140.
- सिंह ए0के0 एवं गुप्ता (2012): सम पर्सनलटी डिटरमिनेन्टस आूफ वेल्यू एण्ड इंटीजेन्स, इण्डिसन एजूंशनल एबसट्रेक्ट,वाल्यूम (पअ) जनवरी 2012 पृष्ठ-201.
- तिवारी, डॉ0 अरूण कुमार (2012), "जूनियर हाईस्कूल के छात्रों में कार्यात्मक मूल्यों की खोज एवं पहचान", Indian Educational Review, Vol. 5 No. 1, Jan. 2012, Page No. 129.

प्रेमचंद युग में ग्रामीण समाज व नारी की परिस्थितियाँ

डॉ० सुमित्रा कुमारी

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, महिला महाविद्यालय, झोझू कलां, (चरखी दादरी)

शोधलेख सार

साहित्य में प्रायः सम्राटों, राजा, महाराजाओं का वर्णन अधिकांश रूप में होता रहा है। सामान्य जन और ग्रामीण समाज आधुनिक काल से पूर्व साहित्यकारों की दृष्टि से उपेक्षित ही रहा है। प्रेमचंद ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने ग्रामीण समाज और सामान्य जन के दुःख दर्द को अपने साहित्य का विषय बनाया है। इससे पूर्व संस्कृत साहित्य में राजा महाराजाओं का चित्रण है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के राजा महाराजाओं का वर्णन किया है तो महाकवि तुलसीदास ने भगवान राम का जो महाराजा दशरथ के राजकुमार थे। महाकवि सूरदास ने अपने सूरसागर में भगवान श्री कृष्ण का चित्रण किया जो बाबा नंद के पुत्र थे जिनके यहाँ 9 लाख गायें थीं। प्रेमचंद ऐसे साहित्यकार है जिन्होंने अपने युग के ग्रामीण समाज तथा उस युग की ग्रामीण नारी का यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है। परन्तु शोधलेख में मैं प्रेमचंद युग के ग्रामीण समाज एवम् नारी की परिस्थितियों का चित्रण कर रही हूँ।

मूल शब्दः साहित्य, ग्रामीण समाज, सामान्य जन, ग्रामीण नारी, भारतीय किसान, जमींदार, शोषित।

भूमिका

गाँव में सामाजिक परिस्थितियाँ–ग्रामीण समाज भी मुख्यतः दो वर्गों में बँटा हुआ था–शोषक वर्ग तथा शोषित वर्ग। शोषक वर्ग में जमींदार, महाजन, पटवारी, कारिंदा, मुख्तार आदि सम्मलित थे तो शोषित वर्ग में भारतीय किसान व ग्रामीण मजदूर।

सन् 1793 में बना स्थायी भूमि बन्दोबस्त कानून ने जहाँ ग्रामीण समाज में जमींदार वर्ग को पैदा किया वहीं भारतीय किसानों से उनकी भूमि भी छिन गई। वैसे तो जमींदार वर्ग का मुख्य कार्य किसानों से लगान वसूल करवाना था। परन्तु इसके साथ ही इस कार्य के लिए उन्हें कुछ अन्य अधिकार भी दिए गए जैसे भूमि सुधार के लिए प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु भारत को स्वतंत्रता मिलने तक केवल नाम मात्र ही जमींदारों ने भूमि सुधार के उपाय किए। उन्होंने अधिकार का प्रयोग केवल किसानों व अन्य शोषितों के शोषण पर ही किया। ''साहूकारों, व्यापारियों और जिन लोगों ने किसी तरह के शहरी पेशे में रुपया बनाया था, भू-स्वामियों के इस नए वर्ग की भी जमींदारों के पुराने वर्ग की तरह कोई प्रगतिशील भूमिका नहीं रही। इन्होंने भी खेती की तरक्की के कोई काम नहीं किए। नए और पुराने दोनों प्रकार के जमींदार वर्ग को बटाईदारों से लगान वसूली के अलावा, खेती में कोई रूचि नहीं थी।'' इसी प्रकार जमींदार वर्ग पर कोई विशेष सरकारी अंकुश भी न था। अपनी सुविधा के लिए वे नगरों में रहते थे तथा लगान वसूली के लिए उन्होंने मुख्तार, कारिंदा, चपरासी आदि की फौज खड़ी कर रखी थी। अतः किसान और जमींदार में प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रहा। जमींदार किसानों के प्रति पहले ही उदासीन था, इन कारिंदों, चपरासियों की कृपा से किसानों पर अत्याचार व उनका शोषण बढ़ता ही गया जिसका भार जमींदार पर ही पड़ता था।

ग्रामीण समाज में एक अन्य शोषक वर्ग भी था जिसे महाजन कहा जाता था। भारतीय समाज में सूदखोर महाजन और कर्ज कोई नई चीज नहीं थी। लेकिन साम्राज्यवाद में सूदखोर महाजन की एक नई भूमिका ने स्थान ग्रहण कर लिया। 'ब्रिटिश कानूनी प्रणाली ने महाजन को कर्जदार की कुर्की करने और जमीन हस्तांतरण करने का अधिकार देकर सूदखोर महाजन को स्वर्णिम अवसार प्रदान किए और इनकी मदद के लिए पुलिस और कानून की पूरी ताकत उनके पीछे लगा दी।'' इस प्रकार सूदखोर महाजन अनपढ़ किसानों से मनचाही राशि पर अँगूठा लगवाकर उसे अपने शिकंजे में कस लेता था तथा उसका भरपूर शोषण करने तथा जमीन छिनन के पश्चात ही उसे अपने पंजों से मुक्त करता था। इस प्रकार झूठ, अत्याचार, छल-प्रपंच से कमाए गए धन के बल पर गाँव में सुखमय जीवन अवश्य व्यतीत करता था, परन्तु ग्रामीण व जनता के बीच उसकी छवि स्वच्छ न थी। जमींदार के कारिंदे, चपरासी आदि भी किसानों का शोषण करने में पीछे न थे। चूँकि सामान्यत: जमींदार नगरीय सुविधाओं के प्रति आकर्षित होकर वहीं पर रहता था और लगान वसूली के लिए कारिंदों, चपरासियों आदि को नियुक्त कर देता था, अत: जमींदार के आदेश के नाम पर ये सभी मिलकर अपने स्वार्थ के लिए किसानों का शोषण करते थे। यदि किसान या अन्य मजदूर इनकी इच्छानुसार कार्य नहीं करता था तो वे जमींदार के समक्ष मनगढंत बातें बनाकर किसानों की शिकायतें करते थे परिणामस्वरूप जमींदार उन्हें और अधिक अधिकार दे देता था, किसानों को भूमि से बेदखल कर देता था। इस प्रकार ये कारिंदे, चपरासी, मुख्तार आदि किसानों के लिए भय व आतंक के प्रतीक थे।

ग्रामीण समाज में सरकारी पद पर नियुक्त अन्य कर्मचारी जैसे पटवारी, पुलिस कर्मचारी आदि भी किसी भी प्रकार से शोषण व अत्याचार में पीछे न थे। पटवारी जहाँ अपने पद का दुरूपयोग करके किसानों से बेगार लेते थे वहीं पुलिस कर्मचारी छोटी से छोटी घटना में भी रिश्वत लेने के लिए लालायित रहते थे। इन सभी के अतिरिक्त यदि गाँव के आस पास कोई उच्च अधिकारी जाँच-पड़ताल या शिकार अथवा भ्रमण पर निकलकर किसी भी गाँव के पास ठहर जाता तो ये सभी कर्मचारी उन्हें प्रसन्न करने के लिए किसानों की लकड़ी, दूध, चारा आदि लेकर व उनके पशुओं को सेवा में प्रस्तुत करने के लिए तत्पर रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर बेगार लेने में भी उन्हें कोई संकोच न होता था।

इस प्रकार के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसानों, मजदूरों आदि की तुलना में ये जमींदार, महाजन, सरकारी व गैर-सरकारी कर्मचारी आर्थिक रूप् से सम्पन्न थे, अधिकार प्राप्त होने के कारण उन्हें समाज में सम्मान प्राप्त था भले ही वह भय अथवा घृणा से जनित क्यों न थे।

शोषित वर्ग में मुख्यत: किसान, मजदूर व अन्य निम्न वर्ग के लोग आते है। भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आरम्भ से ही गाँवों में निवास करता आया है। ग्रामीण समाज में भी अधिकांश व्यक्ति खेती से जुड़े होते है। अत: दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा खेती से जुड़ा है। परन्तु विड़म्बना यह है कि प्रेमचंद युगीन समाज में जनसंख्या के इस बड़े हिस्से की सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय दशा में पहुँच चुकी थी।

ग्रामीण जीवन में सबसे अधिक मेहनत करने वाला किसान वर्ग ही है। परन्तु जमींदारों, कारिंदों, चपरासियों आदि के शोषण तथा महाजन के सूद के कुचक्र ने भारतीय किसानों को भी विभिन्न वर्गों में बाँट कर रख दिया–

1) वे किसान जिनके पास अधिक भू जोत होने के कारण लगान चुकाने में समर्थ व ऋणमुक्त थे।

2) वे किसान जो लगान देने में असमर्थ तथा अन्य खर्चों के लिए ऋणग्रस्त थे।

3) खेतीहर मजदूर।

पहली श्रेणी के किसानों की संख्या अत्यंत सीमित थी। वे सम्पन्न जीवन व्यतीत करते थे तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। दूसरी श्रेणी के किसानों का बाहुल्य था। उनका जीवन कष्टमय था। उनके लिए एक कहावत का भी प्रचलन था कि ''भारतीय किसान कर्ज में पैदा होता है, कर्ज लेकर जीता है तथा कर्ज में ही मर जाता है।'' कृषि के सीमित साधन थे, संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण, भू-जोतों का छोटा होता आकार, जमींदार को लगान, कारिंदों का शोषण, महाजन का सूद, आपसी क्लेश आदि कितने ही कारण है जो इस वर्ग के किसानों को अत्यधिक मेहनत करने के बाद भी पेटभर भोजन नहीं करने देते थे। ''जैसे जैसे

किसानों के दरिद्रीकरण की गति तेज हुई, वैसे-वैसे विभेदीकरण की यह प्रक्रिया भी तीव्र होती गई। इस तरह जीवन तेजी से किसान मालिकों के हाथ से निकलकर साहूकारों, व्यापारियों आदि के हाथ में जाती रही और दूरस्थ भू-स्वामियों के नए वर्ग का जन्म हुआ। किसानों का मध्यम तबका तेजी से विनष्ट होता गया और ज्यों-ज्यों इनमें से अधिकांश निम्न किसान या दरिद्रों या कृषक सर्वहारा की श्रेणी में मिलते गए इनकी संख्या कम होती गई।'' ये किसान समाज के उत्थान में अपना भरपूर सहयोग देकर भी उपेक्षित थे। उच्च अधिकारियों की दृष्टि में वे मूल्यहीन, जमींदार व महाजन की दृष्टि में शिकार से ज्यादा और कुछ न थे। ''जैसे-जैसे साहूकार की ज्यादतियाँ बढ़ती जाती है, सरकार सामान्यतौर पर शोषण के हितों को ध्यान में रखकर ही, कुछ ऐसे उपाय करने की कोशिश कर रही है, जिसमें महाजन इस सोने के अंड़े देने वाली मुर्गी यानि किसान वर्ग को खत्म ही न कर दे।'' तीसरे वर्ग में वे किसान आते है जिनके पास अपनी खेती नहीं थी। वह दूसरों के खेतों में मजदूरी या अनाज के बदले काम करता था। मध्यमवर्गीय किसान महाजनों के शोषण का शिकार होकर अपनी भूमि से हाथ धो बैठने के पश्चात खेतिहर मजदूर बनकर काम करता था। इनकी दशा में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता था, क्योंकि जमींदार हाथ से निकल जाने के पश्चात इनके पास न कोई पूंजी होती थी, न जमीन, न आभूषण और न ही कसी प्रकार की कार्य-कुशलता। फलतः ये भी मजदूरों जैसा जीवन व्यतीत करते थे।

उपर्युक्त विवेचन में हमने समाज के प्रमुख वर्गों का अध्ययन किया है। इनके अतिरिक्त सामाजिक परिस्थितियों के अंतर्गत कुछ ऐसे वर्ग, क्षेत्र भी शेष है जिनका विवेचन करना आवश्यक है। इनमें समाज में नारी की स्थिति, समाज सुधार के प्रयास तथा विभिन्न सामाजिक समस्याएँ प्रमुख है।

प्रेमचंद युगीन समाज में शोषक व शोषित वर्गों की नारियों को अधिक स्वतंत्रता न थी। यद्यपि स्त्री-शिक्षा का प्रवचन हो चुका था, परन्तु सामान्य जनता में उसके प्रति चेतना जाग्रत नहीं हुई थी। नगरों में मजदूर व गाँवों में किसानों की स्त्रियाँ, पुत्रियाँ आदि आजीविका के साधन में अपनी आय बढ़ाने के प्रयास में सहयोग देती थी। परन्तु वे अपने अधिकार, देशभक्ति की भावना आदि के प्रति सचेत नहीं हुई थी। उनमें चेतना का दौर राष्ट्रीय आंदोलन के साथ आरम्भ हुआ। ''नारी उद्धार के लिए मुख्य रूप से पुरुषों ने प्रयत्न शुरू किया। 1920 के बाद खुद स्त्रियों ने भी अपने उद्धार की जिम्मेवारी सँभाली। उन्होंने कई संगठनों एवं संस्थाओं की शुरूआत की जिसमें सन् 1927 में अखिला भारतीय महिला सभा की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।'' धीरे-धीरे ग्रामीण महिलाओं पर भी मुक्ति आंदोलन का प्रभाव पड़ने लगा था। शिक्षा के प्रति धीमी गति से रूझान बढ़ रहा था। आर्थिक रूप से स्त्री पुरुष पर निर्भर थी। विधवाओं की दशा तो अत्यधिक सोचनीय थी। बाल-विवाह, दहेज समस्या आदि से नारी जीवन कष्टमय था। वृद्ध-विवाह, बहुपत्नी रिवाज समाज में प्रचलित था।

समाज में व्यापत कुरीतियों को दूर करने के लिए अनेक समाज-सुधार आंदोलन चले। सन् 1896 में महर्षि कर्वे की समस्याओं को दूर करने के लिए एक 'विडो होम' की स्थापना की। आर्य समाज के समाज सुधारक विधवा-पुनर्विवाह का प्रचार कर रहे थे। ईश्वरचन्द विद्यासागर, गौड़ मोहन आदि जागरूक नेताओं ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया। इस प्रकार समाज से कुरीतियों को दूर करने के लिए विभिन्न व्यक्ति अपना योगदान दे रहे थे। फिर भी समाज में कई कुरीतियाँ व्याप्त थी। ग्रामीण जनता जादू-टोनों पर विश्वास करती थी। बीमार बच्चे को डॉक्टर के पास ले जाने की बजाय ओझा या फकीर के पास ले जाया जाता था। शासक वर्ग व सरकारी कर्मचारी वर्ग अपने ही भारतीय भाइयों को षड्यंत्रों का शिकार बनाकर पदोन्नति, सम्मान आदि पाने के लिए प्रयासरत था। मुस्लिम समाज की दशा हिन्दू समाज से भिन्न न थी। हाँ कुछ पारसी व ईसाई स्त्रियों व उनके परिवारों में सामाजिक चेतना जाग्रत हो चुकी थी।

प्रेमचंद के साहित्य में इन समस्याओं का स्पष्ट चित्रण हुआ है। उनके पात्र उनके तत्कालीन समाज के ही चलते फिरते स्त्री-पुरुष बच्चे आदि से चुने हुए लगते है जिनसे उपर्युक्त विवेचन की पुष्टि होती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रेमचंद कालीन ग्रामीण समाज दो वर्गों में बँटा हुआ था—एक शोषक वर्ग तथा दूसरा शोषित वर्ग। शोषक वर्ग जमींदार, महाजन, पटवारी, कारिंदा, मुख्तार, पुलिस आदि शोषित वर्ग का खूब शोषण करते थे। जमींदार वर्ग ने भूमि सुधार की बजाय किसानों से केवल लगान वसूली कार्य दिया और उनके साथ अत्याचार व अन्यायपूर्ण व्यवहार किया। सूदखोर महाजन को ब्रिटिया सरकार ने कर्जदार की कुर्की और जमीन हस्तांतरण करने का अधिकार देकर उन्हें

सुनहरा अवसर प्रदान कर दिया, वे अनपढ़ किसानों से मनचाही राशि पर अँगूठा लगवाकर उसकी भूमि को छीन लेते थे। प्रेमचंद के समय में ग्रामीण समाज में जमींदार के कारिंदे, चपरासी, पटवारी, पुलिस किसानों का भरपूर शोषण करते थे, उनकी बाते न मानने पर मनगढंत बाते बनाकर उनमें भय और आतंक बनाकर रखते थे। किसानों को तीन श्रेणी में बाँटा हुआ था। एक वह जो लगान चुकाने में समर्थ थे दूसरे जो लगान देने में असमर्थ और ऋणग्रस्त थे। तीसरे खेतीहर। ग्रामीण समाज में नारी की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। परन्तु स्त्री-शिक्षा की शुरूआत हो चुकी थी। धीरे-धीरे स्त्रियों का शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ रहा था। समाज में कुरीतियों को दूर करने के लिए समाज सुधार आंदोलनों की शुरूआत हो चुकी थी। विधवाओं की समस्याओं को दूर करने के लिए 'विडो होम' की स्थापना हो चुकी थी। मुस्लिम समाज की भी यही स्थिति थी। प्रेमचंद के साहित्य में कुल मिलाकर ग्रामीण स्त्रियों की दशा सोचनीय थी।

संदर्भ सूची

1) ए०आर० देसाई–'भारतीय राष्ट्रवाद की पृष्टभूमि'–एस० जी० बसारनी मेकमिलन इंडिया लि०, दूसरा संस्करण 1977 का पुनर्मुद्रण
2) रजनी पाय दत्त–'आज का भारत' राजीव बेरी, मेकमिलन इंडिया लि० 2/10, अंसारी रोड़ नई दिल्ली-02, प्रथम हिन्दी संस्करण 1977 का पुनर्मुद्रण–1996
3) आर०एल० शुक्ल–'आधुनिक भारत का इतिहास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ० प्रभात कुमार

(एसोसिएट प्रोपफेसर) विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान, किसान पी0जी0 कॉलिज, सिम्भावली (हापुड़) उ0प्र0

डॉ० अरविन्द कुमार

(सहायक प्रोपफेसर) राजनीति विज्ञान, आई.एम.आई.आर. सी.भैना, सदरपुर (हापुड़) उ0प्र0

स्वामी विवेकानंद बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। वे महान बुद्धिजीवी, अद्वैत वेदान्त के संदेशवाहक, विश्व के आध्यात्मिक गुरू तथा समाज सुधारक थे। इन्होंने अपना समपूर्ण जीवन भारत के पुनरूद्धार के कार्य में लगा दिया। इनका जन्म 12 जनवरी 1863 ई0 को कलकत्ता के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। विवेकानंद पर उनकी माता के सद्गुणों का विशेष प्रभाव पड़ा था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा माता की देख-रेख में हुई। बंगला तथा अंग्रेजी भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान उन्हें मां से ही प्राप्त हुआ। इनके पिता 25 वर्ष की आयु में घर त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिये थे। सात वर्ष की अवस्था में इन्होनें संस्कृत व्याकरण की शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ, रामायण तथा महाभारत के अनेक श्लोंको को कण्ठस्थ कर लिया। आठ वर्ष की उम्र में नरेन्द्र को ईश्वरचन्द्र विद्यासागर मेट्रोपोलिटन स्कूल में तीसरी कक्षा में दाखिला कराया गया। 'जनरल असेम्बली इन्स्टीट्यूशन' से इन्होंने स्नातक की परीक्षा पास की।

1881 ई0 में इनकी मुलाकात स्वामी रामकृष्ण परमंहस से हुई। विवेकानंद इनसे बहुत अधिक प्रभावित हुए और इन्हें अपना गुरू माना। कुछ ही वर्षो में विवेकानंद इनके प्रिय शिष्य बन गये। यही कारण है कि जब 1886 ई0 में रामकृष्ण की मृत्यु हो गई तब इन्होंने (24 वर्ष की उम्र में) प्रण लिया कि अपना सारा जीवन गुरू के संदेश प्रचार में लगा देंगे। इन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग कर आजीवन सन्यासी रहने का निश्चय किया। वर्षो तक हिमालय की घाटियों में कठिन साधना करने के उपरान्त पुनः कलकत्ता के रामकृष्ण आश्रम में आये। यहां से ये पारिव्राजक के रूप में भारत यात्रा पर निकल पड़े। भारत भ्रमण के समय इन्होंने जनता के कष्टों तथा पीड़ा को देखा, इससे इनके विचारों तथा चिन्तन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। अब इन्होंने मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया।

1893 ई0 में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए शिकागो (अमेरिका) गए। महाराजा खेतड़ी के सुझाव पर शिकागो जाने से पूर्व इन्होंने विवेकानंद का नाम ग्रहण किया, बाद में भारत तथा विश्व में इसी नाम से जाने गए। विश्व धर्म सम्मेलन में उनका भाषण अत्यंत स्फूर्तिदायक, विद्वतापूर्ण तथा तेजस्विता से ओत-प्रोत था। इन्होंने अमेरीका वासियों को अपने संबोधन में कहा 'अमेरिका निवासी भगिनी एवं भ्रातृगण' इससे वहां के लोग इतने प्रसन्न हुए कि लगातार दो मिनट तक हर्षध्वनि होती रही। सम्मेलन में आये प्रतिनिधियों ने केवल अपने-अपने धर्म की दुहाई दी किन्तु स्वामी जी का भाषण उस धर्म पर हुआ जो आकाश के समान विशाल एवं समुद्र के समान गहरा था। इन्होंने वेदान्त की आधुनिक व्याख्या की। हिन्दू धर्म एवं दर्शन को उच्च आसन पर विराजमान कराके भारत को एक बार फिर से विश्व के आध्यात्मिक गुरू की पदवी पर पुनः प्रतिष्ठित करने की दिशा में सराहनीय कार्य किया।

1897 ई. में विवेकानंद ने कलकत्ता के पास बेलूर में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। देश के विभिन्न भागों में इसकी अनेक शाखाएं खुली। मिशन ने समाज सेवा अपना पहला उद्देश्य बनाया। इन्होंने शिक्षा संस्थाओं, अस्पतालों, अनाथालयों, पुस्तकालयों आदि की स्थापना कर जनता की अपार सेवा की। बनारस में इन्होंने वेदान्त तथा संस्कृत के अध्ययन के लिए एक पाठशाला की स्थापना की।

1898 ई0 में इन्होंने पश्चिम की दूसरी यात्रा की। सेनफ्रांसिस्को में 'शान्ति आश्रम और वेदांत सोसाइटी' की स्थापना की। पेरिस में आयोजित धार्मिक इतिहास परिषद में भाग लिया। विवेकानन्द जनवरी 1901 ई0 से अपने शिष्यों तथा गुरू भाइयों के साथ कलकत्ता में स्थित मठ में रहने लगे। 4 जुलाई 1902 ई0 में 39 वर्ष की अल्पायु में इनकी मृत्यु हो गई।

स्वामी विवेकानंद की रचनाओं का संग्रह रामकृष्ण मिशन ने 'कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानंद' नामक पुस्तक के आठ खण्डों में प्रकाशित किया है।

दार्शनिक एवं धार्मिक चिंतन

अद्वैतवाद वेदांत के संदेशवाहक- स्वामी विवेकानंद अद्वैतवाद के संदेशवाहक थे, वेदांत के आधार पर ये एक ऐसा दर्शन विकसित करना चाहते थे, जो समस्त संघर्षो को दूर करके मानव जाति में बहुमुखी सम्पूर्णता के उस स्तर पर उठा सके, जो उसका प्राप्य है।

विवेकानंद ने ब्रह्म को पूर्ण सत्य माना, वे ब्रह्म को सर्वोच्च सत्ता मानते थे। इनका मानना था कि ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था में पूर्ण सत्य का साक्षात्कार ही ब्रह्म है। ब्रह्म को सच्चिदाननद की संज्ञा दी। इन्होंने अद्वैत वेदांत वाद के तीन आधार स्तम्भ बताये-

1. मानव की वास्तविक प्रकृति ईश्वरीय है। मनुष्य की आत्मा ही अव्यक्त ब्रह्म है। आत्मा अमर नजर हैं इसमें वे सभी गुण है जो ब्रह्म में है।
2. जीवन का लक्ष्य उस ईश्वरीय शक्ति की अनुभूति है।
3. सभी धर्मो का मूल लक्ष्य समान है।

वेदान्त समस्त विश्व को ब्रह्ममय करने का पाठ सिखाता है। यह मनुष्य को प्रेम तथा सेवा का संदेश देता है। विवेकानंद ईश्वर को निर्गुण तथा सगुण दोनों ही रूपों में स्वीकार करते थे। वे सच्चिदानंद की अनुभूति के लिए ज्ञान, भक्ति तथा कर्मयोग तीनों का ही समन्वय आवश्यक मानते थे। वे योग को ही धर्म का मूल आधार मानते थे।

इन्होंने बताया कि वेदान्त व्यक्ति के उत्थान और समाज के निर्माण तथा राष्ट्र के समन्वय का शास्त्र है। एक शब्द में यदि कहा जाए तो वेदान्त का आदर्श है मनुष्य के सच्चे स्वरूप को जानना। विवेकानंद चाहते थे कि वेदान्त के आधार पर भारत को एक बार फिर अतीत का गौरव प्राप्त हो जाए।

धर्म (Religio) विवेकानंद के अनुसार धर्म, व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों के लिए आवश्यक है। ये धर्म को शक्ति का स्रोत मानते थे। इन्होंने कहा था, ''मेरे धर्म का सार शक्ति है। जो धर्म हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता वह मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है, चाहे वह उपनिषदों का धर्म हो और चाहे गीता अथवा भागवत का, शक्ति धर्म से भी बड़ी वस्तु है और शक्ति से बढ़कर कुछ नहीं है।''

विवेकानंद ने प्रत्येक आत्मा को अव्यक्त ब्रह्म माना। जीवन का ध्येय बाह्य तथा अन्तः प्रकृति, दोनों का नियमन किया जाए। बाह्य स्वरूप की प्रप्ति कर्म, भक्ति तथा योग या ज्ञान के द्वारा प्राप्त की जानी चाहिए।

विवेकानंद ने धर्म को विज्ञान बताया और कहा कि, ''जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान भौतिक जगत के नियमों का अनुसंधान करता है उसी प्रकार धर्म नैतिक जगत के सत्यों से संबंद्ध है और मनुष्य के आन्तरिक स्वभाव के भव्य नियमों की खोज करता है। एक अर्थ में समस्त ज्ञान ही धर्म है और एक अन्य अर्थ में समस्त ज्ञान ही विज्ञान है।'' इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि धर्म अंध श्रद्धा का विषय है जिसमें तर्क अथवा युक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। इन्होंने कहा कि ''धर्म आध्यात्मिक जगत् के सत्यों से उसी प्रकार संबंधित है जिस प्रकार रसायन शास्त्र तथा दूसरे भौतिक विज्ञान भौतिक जगत् के सत्यों से उसी प्रकार संबंधित है।

विवेकानंद ने भी सर्वधर्म सम्भाव को माना। वे धर्म में व्याप्त संकीर्णता और रूढ़िवादिता को नष्ट कर देना चाहते थे।

हिन्दू धर्म के महत्व को बतलाते हुए विवेकानंद ने बताया, ''पृथ्वी पर कोई ऐसा धर्म नहीं है जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्तर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो।'' विवेकानंद इस बात से दुःखी थे कि पाखण्डी पण्डितों और पुरोहितों ने धर्म के नाम पर स्वार्थ का विकास कर हिन्दू धर्म को कलंकित कर दिया है। धर्म में जो बुराइयां आ गयी हैं उसे दूर करने की जरूरत है। विवेकानंद के अनुसार हिन्दू वैदिक धर्म नैतिक मानवतावाद तथा आध्यात्मिक आदर्शवाद के सार्वभौमिक तत्त्वों का संदेश देता है।

विवेकानंद का सामाजिक चिन्तन (Social Philosophy of Vivek annad) विवेकानंद ने भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों का विरोध किया तथा उसे दूर करने का प्रयत्न किया। विवेकानंद के सामाजिक विचार–

1. जाति प्रथा का विरोध– विवेकानंद ने समाज में व्याप्त जाति प्रथा का विरोध किया। इन्होंने ब्राह्मणों की उस अधिनायकवादी मनोवृत्ति का पर्दाफाश किया, जिसके आधार पर निम्न जाति के लोगों को वैदिक ज्ञान प्राप्त करने से वंचित रखना था, विशेषकर शूद्रों को। ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म को जटिल धार्मिक क्रिया कलापों, रीति रिवाजों व अनुष्ठानों के बंधन मे जकड़े रख और गरीबों का शोषण करते रहे, लोगों को धर्म का डर दिलाकर पैसा कमाते रहे।

विवेकानंद ने पुरोहित कर्म की कटु शब्दों में निन्दा की, क्योंकि उससे सामाजिक अत्याचार को कायम रखने में सहायता मिलती थी और जनता की उपेक्षा होती थी। इन्होंने साहसपूर्वक आध्यात्मिक समता के आदर्श का पक्ष पोषण किया। इनका कथन था कि सभी मनुष्य समान हैं और सभी को आध्यात्मिक अनुभूति तथा परम ज्ञान का अधिकार है। इनका लोकतांत्रिक अध्यात्मवाद वास्तव में एक क्रांतिकारी आदर्श था।

2. अस्पृश्यता– विवेकानंद ने समाज में जातिवाद से उत्पन्न अस्पृश्यता की कटु निन्दा की। शूद्रों के बारे में उन्होंने कहा था ''हम उनकी जीविका और उन्नति के लिए क्या कर रहे है, हम उन्हें छूते भी नहीं औ उनकी संगति से दूर भागते हैं। क्या हम मनुष्य है? वे हजारों ब्राह्मण भारत की नीच और दलित जनता के लिए क्या कर रहे हैं? 'मत छू', 'मत छू' एक ही वाक्य उनके मुख से निकलता है। उनके हाथों हमारा सनातन धर्म कैसे तुच्छ और भ्रष्ट हो गया है। जब अब हमारा धर्म किसमें रह गया है? केवल छुआछूत में और कहीं नहीं।'' विवेकानंद ने जातिवाद तथा अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि जब तक जातिवाद व उससे उत्पन्न अस्पृश्यता का अन्त नहीं हो जाता तब तक भारत का विकास संभव नहीं है। इनका कहना था कि उपेक्षित तथा शोषित वर्गो को पुरोहिताई से बचाने के लिए समान रूप से शिक्षित किया जाये।

3. बाल विवाह– विवेकानंद बाल-विवाह के भी विरोधी थे। इन्होंने कहा कि बाल-विवाह से असामयिक सन्तानोत्पति होती है और अल्पायु में सन्तान धारण करने के कारण हमारी स्त्रियां कमजोर होती है। उनकी दुर्बल और रोगी संतानें देश में भिखारियों की संख्या बढाने का कारण बनती है। इसलिए समाज से बाल-विवाह की प्रथा समाप्त होनी चाहिए।

4. रूढ़िवादिता तथा सांप्रदायिकता– विवेकानंद धर्म के नाम पर किए जा रहे दुष्कृत्यों से बहुत दु:खी थे। उनका कहना था कि यदि ऐसा होता रहा तो मानव का नैतिक स्तर गिरता ही जाएगा। वे समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों को दूर करना चाहते थे। इन्होंने लोगों को बताया कि अपने धर्म का आचरण करें, किन्तु साथ ही अन्य धर्मो की अच्छी बातें स्वीकार करें, सच्चा धर्म तो लोगो को जोड़ता है न कि सांप्रदायिकता की भावना को बढाता है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि सभी धर्मो के प्रति समानता, सहिष्णुता तथा आदर भाव रखे।

5. दलितों का उत्थान– विवेकानंद का कहना था कि दलितों के साथ जो अन्यया हो रहा है उसे बन्द किया जाए। उनका शोषण अब और न होने दिया जाए। दलितों के उत्थान के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जाए। इन्हें नि:शुल्क शिक्षा दी जाए। निम्न वर्ग के लोगों के उच्चतर स्तर तक लाने का प्रयास किया जाए। इन्हें इनकी संस्कृति से परिचित कराया जाये तथा रोजगार प्राप्ति के लिए उचित अवसर प्रदान किये जाएं। इनका कहना था कि ब्राह्मणों को नीचे गिराने की अपेक्षा यह उचित है कि प्रत्येक निम्न वर्ग के लोगों को उनके धरातल पर ले आना चाहिए। वर्तमान समय में दलितों के उत्थान की सुविधा की गई है।

6. शिक्षा– विवेकानंद का कहना था कि भारत शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ है। वे तत्कालीन शिक्षा पद्धति के प्रबल आलोचक थें। अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली को क्लर्कों का निर्माण करने वाला यंत्र मानते थे। ये गुरूकुल शिक्षा पद्धति के समर्थक थें। शिक्षा पाठ्यक्रम में इन्होनें धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन को अनिवार्य बताया। ये चाहते थे कि भारत में एक विशुद्ध शिक्षा पद्धति का निर्माण किया जाए। वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति को जानने के लिए तथा दूसरे देशों से संपर्क भाषा के लिए अंग्रेजी पर जोर दिया। स्पष्ट है विवेकानंद ने शिक्षा के प्रचार प्रसार पर बहुत जोर दिया। वे तो भारत की दयनीय स्थिति का मूल कारण शिक्षा की कमी को मानते थे।

7. निर्धनता– विवेकानंद गरीब, शोषित, उत्पीड़ित जनता के प्रति गहरी सहानुभूति रखते थे। उन्होंने शोषित वर्ग की दशा को सुधारने के लिए आन्दोलन चलाया। इन्होंने उच्च जातियों द्वारा किये गये उत्पीड़न और दमन के विरूद्ध विद्रोह किया। इनका कहना था उच्च जातियों के विशेषाधिकार अब विद्यमान नहीं कर सकते, इन्हें अब कुचल दिया जाना चाहिए। विवेकानन्द के मन में दलितों

के उद्धार के लिए उत्साह था। उन्होंने कहा जब तक करोड़ों लोग भुखमरी और अज्ञान के शिकार हैं तब तक मै उस प्रत्येक व्यक्ति को विश्वासघाती समझता हूं जो उनके धन से शिक्षा पाकर उनकी ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देते हैं। विवेकानंद ने गांव-गांव जाकर दरिद्रों की सेवा करने का संकल्प लिया। इन्होंने कहा कि जो लोग भूख से मर रहे है, उनकी रक्षा करना ही वेदान्त धर्म का सार है।

8. अन्तर्जातीय विवाह- विवेकानंद समाज का क्रांतिकारी पुनर्निर्माण करना चाहते थे। इन्होंने सामाजिक एकता कायम करने के लिए अन्तर्जातीय विवाह तथा अन्तरउपजातीय विवाह का समर्थन किया।

9. आत्म विश्वास- विवेकानंद ने बताया कि व्यक्ति को चाहिए कि वह सबसे पहले स्वयं पर विश्वास करे। जब तक व्यक्ति अपने आप पर विश्वास नहीं करना सीख लेगा तब तक वह न तो अपना विकास कर सकता है और न ही राष्ट्र का। आत्म-विश्वासी व्यक्ति ही समाज की समस्त बाधाओं को लांघकर आगे बढ़ता है। विवेकानन्द ने कहा, ''लोग कहते हैं- इस पर विश्वास करो, उस पर विश्वास करों, मैं कहता हूं कि पहले अपने आप पर विश्वास करो। सर्वशक्ति तुम में है..... ... कहो हम सब कुछ कर सकते हैं।''

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि विवेकानंद क्रमिक समाज सुधार पद्धति के पक्षधर थे। इनका कहना था कि शिक्षित लोगों को समाज सुधार के लिए आगे आना होगा, शिक्षित लोगों का यह धर्म है, कर्त्तव्य है। वे उन प्रत्येक शिक्षित भारतीयों को ''देशद्रोही व गद्दार'' मानते थे जो समाज को इन बुराइयों से बचाने के लिए संघर्ष न करें।

राजनैतिक विचार

विवेकानंद मुख्य रूप से धार्मिक व्यक्ति थे। जिनका लक्ष्य भारत का आध्यात्मिक तथा नैतिक पुनरूत्थान करना तथा भारतीय संस्कृति के अतीत गौरव को पुन:स्थापित करना था। इनका राजनीति में कोई विश्वास नहीं था और न ही उन्होंने किसी राजनैतिक क्रियाकलापों में कभी भाग लिया। वे खुद कहा करते थे कि ''मैं राजनीतिज्ञ आन्दोलनकारी नहीं हूँ। मैं आत्म-तत्व की चिन्ता करता हूं, जब यह ठीक होगा तो सब काम अपने आप ठीक हो जाएगा।'' फिर भी उनके भाषणों और विचारों में राजनीति का जो दर्शन मिलता है वह उन्हें पश्चिम के व्यावसायिक राजनैतिक चिन्तकों से कहीं आगे ले जाता है। इनके प्रमुख राजनैतिक विचार-

राष्ट्रवाद- विवेकानंद मुख्य रूप से धार्मिक सिद्धान्त की स्थापना की। इनका कहना था कि धर्म ही भारत के राष्ट्रीय जीवन के मेरूदण्ड बनेगा। धर्म के द्वारा ही भारत विश्व के राष्ट्रों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार विवेकानंद के राष्ट्रवाद के आधार धार्मिक तथा आध्यात्मिक था। इन्होंने कहा था कि ''प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में संगीत की तरह एक स्वर अथवा केन्द्रीय विषय वस्तु होती है, जिसके इर्द-गिर्द अन्य सभी वस्तुएं घूमती है। प्रत्येक राष्ट्र की एक मुख्य धारा होती है, अन्य सभी चीजें सहायक हैं। भारत की यह मुख्य धारा धर्म है, समाज सुधार तथा अन्य चीजें सहायक है।''

स्वतंत्रता- विवेकानंद का स्वतंत्रता का सिद्धान्त बहुत व्यापक था। वे स्वतंत्रता को प्रगति की एक आवश्यक शर्त मानते थे, स्वतंत्रता को उन्होंने जीवन, सुख तथा समृद्धि का माध्यम बनाया। इनका कहना था ''शारीरिक, मानसिक तथा आध्यातिम्क स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होना तथा दूसरों को उसकी ओर अग्रसर होने में सहायत देना मनुष्य का सबसे बडा पुरस्कार है। जो सामाजिक नियम स्वतंत्रता के विकास में बाधा डालते हैं, वे हानिकारक हैं और उन्हें शीघ्र नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। उन संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाए जिनके द्वारा मनुष्य स्वतंत्रता के मार्ग पर आगे बढ़ता है।'' विवेकानंद की स्वतंत्रता की अवधारणा आध्यात्मिकता से प्रभावित थी। विचार की स्वतंत्रता के बारे मे कहा था। ''विचार और कर्म की स्वतंत्रता जीवन' विकास और कल्याण ही एक मात्र शर्त है, जहां उसका अभाव होता है वहां मनुष्य जाति और राष्ट्र अवश्य अवनति की ओर जाता है।'' विवेकानंद ने बतलाया कि उपनिषदों का मुख्य सिद्धान्त स्वतंत्रता है। उपनिषद्कारों ने स्वतंत्रता के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का डट कर समर्थन किया था।

प्राकृतिक अधिकार- विवेकानंद व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्तों को मानते थे। उनका कहना था कि, ''स्वतंत्रता का निश्चय ही यह अर्थ नहीं है कि यदि मै और आप किसी की सम्पत्ति को हड़पना चाहें तो हमें ऐसा करने से न रोका जाए, किन्तु प्राकृतिक अधिकार का अर्थ यह है कि हमें अपने शरीर, बुद्धि और धन का प्रयोग अपने इच्छानुसार करने दिया जाए और हम दूसरों को कोई हानि न पहुंचाए और समाज के सभी सदस्यों को धन, शिक्षा तथा ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार हो।''

समान अवसर की प्राप्ति– विवेकानंद ने देश के सब निवासियों के लिए 'समान अवसर' के सिद्धांन्त का समर्थन किया। उनका कहना था कि ''यद्यपि प्रकृति में असमानता है तों भी सबके लिए समान अवसर प्राप्त होने चाहिए।'' चूंकि दुर्बलों की स्थिति दयनीय है इसलिए दुर्बलों को सबलों से अधिकार दिये जाने चाहिए।

शक्ति और निर्भयता का संदेश– विवेकानंद ने जनता को शक्ति और निर्भयता का संदेश दिया। राजनीति विज्ञान में इसे प्रतिरोधक का सिद्धान्त (Theory of resistance) कह सकते हैं। भारतीयों को विवेकानंद ने इस बात से अवगत कराया की बिना शक्ति के हम अपने अस्तित्व को कायम नहीं रख सकते हैं और न इसके बिना अपने अधिकार की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं।

विवेकानंद ने अप्रत्यक्ष रूप से यह संदेश दिया कि ''भारतवासी शक्ति, निर्भीकता और आत्मबल के आधार पर ही विदेशी सत्ता से लोहा ले सकते हैं और आजादी प्राप्त कर सकते है। इन्होंने कहा 'शक्ति ही धर्म है' जो धर्म हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता है वह मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है..... शक्ति धर्म से बढ़कर कुछ नहीं।'' विवेकानंद ने निर्भयता के सिद्धान्त को दार्शनिक वेदान्त के आधार पर उचित ठहराया। इन्होंने भारतीयों से कहा कि ''अगर दुनिया में कोई पाप है तो वह है दुर्बलता। दुर्बलता को दूर करो, दुर्बलता पाप है, दुर्बलता मृत्यु हैं अब हमारे देश को जिन वस्तुओं की आवश्यकता है वे हैं लोहे के पुट्ठे, फौलाद की नाड़ियां और ऐसी प्रबल मन: शक्ति जिसको रोका न जा सके।'' उनका मानना था शक्ति के संदेश का ओजपूर्ण समर्थन करना राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का सबसे अच्छा मार्ग था। भारतीयों को ललकारते हुए इन्होंने कहा था, ''हे वीर! निर्भीक बनो, साहस धारण करो, इस बात पर गर्व करो कि तुम भारतीय हो और गर्व के साथ घोषणा करो, मैं भारतीय हूं और प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है।''

कर्त्तव्य पालन– विवेकानंद ने अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्य पालन पर अधिक जोर दिया। वे चाहते थे कि सभी व्यक्ति तथा व्यक्ति, समूह अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का ईमानदारी से पालन करे। मनुष्य की गरिमा इस बात में है कि वह सार्वभौग शुभ की सिद्धि हेतु अपना उत्सर्ग कर दे अर्थात् व्यक्ति स्वेच्छा से बिना किसी डर या लालच के अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों का निर्वहन करे।

आदर्श राज्य– विवेकानन्द ने आदर्श राज्य की परिकल्पना करते हुए कहा था कि यदि ऐसे राज्य की स्थापना संभव हो जिसमें ब्राह्मण राज्य का ज्ञान, क्षत्रिय राज्य की सभ्यता, वैश्य राज्य का व्यापार तथा प्रचार तथा शूद्र राज्य की समानता हो तो वह आदर्श राज्य होगा। इन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि उपर्युक्त तीन वर्गो का राज्य हो चुका है अब शुद्र अथवा मजदूर वर्ग के राज्य का समय आ गया है। उन्हें कोई नहीं रोक सकता। परन्तु यदि चारों वर्णों के राज्यो की अच्छाइयों को लेकर आदर्श राज्य की स्थापना हो सके तो वह अच्छा होगा।

अंतर्राष्ट्रीयतावाद एवं विश्वबंधुत्व– विवेकानन्द मानवतावादी के साथ ही अंतर्राष्ट्रयवादी थे। उन्होंने आध्यात्मिक आधार पर राष्ट्रों का संगठन बनाने का विचार रखा था, नि:सन्देह उन्होनें भारतीय राष्ट्रवाद की नीवं रखी। वे राष्ट्रवाद तथा अंतर्राष्ट्रवाद को एक दूसरे का पूरक मानते थे। वे पूर्व तथा पश्चिम के समन्वय तथा सहयोग के पक्ष में थे। इन्होंने अंतर्राष्ट्रवाद की कल्पना राष्ट्रीय विभिन्ताओं राष्ट्रों क बीच सम्पर्क तथा ज्ञान का आदान-प्रदान तथा विश्व में भारत के आध्यात्मिक नेतृत्व के आधार पर की। उनका कहना था, ''समस्त ब्रह्माण्ड का अस्तित्व एक है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।'' उन्होनें वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक आधार पर विश्व एकता का समर्थन किया। वे विश्व के राष्ट्रों में भारत को सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए उत्सुक थे। विवेकानंद ने अंतर्राष्ट्रवाद और विश्व-बन्धुत्व के बारे में शिकागो धर्म संसद के समाप्त होने के बाद कहा गया, "जहां अन्य सब प्रतिनिधि अपने-अपने धर्म के ईश्वर की चर्चा करते रहे, वहां केवल विवेकानंद ने ही सबके ईश्वर की बात की।'' वे मानव-मानव के बीच किए जाने वाले भेदभाव के खिलाफ थे।

समाजवाद (Socialism)- विवेकानंद ने भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक असमानता तथा भेदभाव की कटु आलोचना की। दलित, कमजोर, शोषित, पीड़ित जनता के प्रति इनकी गहरी सहानुभूति थी। ये प्रथम भारतीय थे जिसने स्वयं को समाजवादी कहा था, परन्तु इनका समाजवाद पश्चिम के समाजवाद से भिन्न था।

विवेकानंद ने भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषमताओं की खुलकर आलोचना की तथा समाज को कमजोर पिछड़े दलित तथा शोषित वर्ग के उत्थान को प्राथमिकता देने का समर्थन किया। वे धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी ऐसे धर्म को मानने से इंकार करते थे जो लोगों को गरीबी, अशिक्षा तथा शोषण का शिकार बनाता हो। उन्हीं के शब्दों में, ''भूखे व्यक्ति को धर्म का पाठ पढ़ाना उपहास होगा। मैं इसलिए समाजवादी नहीं हूं कि वह पूर्ण व्यवस्था है बल्कि इसलिए कि पूरी रोटी न होने

से आधी रोटी होना अच्छा है।'' वे समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंसात्मक क्रांति का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे। वे तो जनता को समान अवसर दिए जाने, जन-साधारण की भौतिक स्थितियों में सुधार की वकालत करते है।

संदर्भ ग्रथ सूची

- विवेकानंद स्वामी, कर्म योग, रामकृष्ण मिशन इंस्टीटयूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता 1991 वर्मा0वी0पी0 आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 2013
- कुमार, प्रभात भारत एक राष्ट्र, किसलय पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996
- सबके स्वामी जी, रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता 2001
- विवेकानंद स्वामी: हे भारत उठो जागो, रामकृष्ण मठ, नागपुर 1997
- विवेकानंद स्वामी: ज्ञान योगा, श्री रामकृष्ण- विवेकानंद सहित्य नागपुर 2005
- जैन, पोखराज: भारतीय राजनीतिक विचारक, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2001

वल्लभभाई पटेल द्वारा आश्रम का पुनः उद्घाटन

वाणिया भावेशकुमार खेमचंदभाई

पीएच.डी. विद्वान, इतिहास, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

इ.स. 1922 तक स्वराज आश्रम किराये के मकान में संचालित होता था। है। 1921-22 के असहयोग संघर्ष में चौरीचौरा घटना के बाद गांधीजी ने असहयोग संघर्ष स्थगित कर दिया। गांधीजी ने संघर्ष स्थगित करने के लिए कहा कि भारत की जनता अभी तक अहिंसा का अर्थ नहीं समझ पाई है। गांधीजी को चार साल की जेल की सजा सुनाई गई और जेल में रहते हुए उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं से गांवों में रचनात्मक सेवा गतिविधियाँ शुरू करने को कहा। ताकि लोगों में जागरूकता आये और लोग स्वशासन के लिए तैयार हो सकें।

सत्याग्रह संघर्ष बंद होने के बाद बारडोली स्वराज्य आश्रम की पांच बीघे जमीन 3500-3700 रुपये में बिकी। जमीन खरीदते समय ब्याज चुकाने के लिए ही पैसे थे। वह कांग्रेस के सदस्यों द्वारा रिपोर्ट की गई उनके कमीशन से आय थी। जगह बुक करने के बाद महात्माजी ने लिखा कि हम बारडोली में स्वराज्य आश्रम बनाना चाहते हैं। गांधी जी ने बुनाई विद्यालय के भवन के लिए रुस्तमजी ट्रस्ट फंड से 17000 रुपये दिये। यह धन प्राप्त करने के बाद, भूमि की रजिस्ट्री कुँवरजीभाई मेहता, नरहरिभाई पारिख और छगनलाल गांधी के नाम पर कर दी गई और इस प्रकार दरबारश्री गोपालदास देसाई द्वारा बुनाई कार्यशाला की नींव रखी गई। और स्वराज्य आश्रम की नींव सरदार वल्लभभाई पटेल ने रखी थी।

सरदार पटेल और गोपालदास देसाई (दरबार साहब) द्वारा आश्रम और बुनाई कार्यशाला की नींव रखे जाने के बाद, इसके भवनों का निर्माण कार्य शुरू किया गया। खुशालभाई, कुँवरजीभाई, कल्याणजीभाई, नरहरि पारिख, मगनलाल गांधी आदि ने आश्रम के निर्माण की शुरुआत से ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधीजी और सरदार पटेल ने भी आश्रम के निर्माण के लिए धन इकट्ठा करने में मदद की। आश्रम का पुनर्निर्माण सरदार पटेल की देखरेख में किया गया। हैदराबाद के देशमुख ने आश्रम के निर्माण के लिए एक इंजीनियर के रूप में काम किया। देशमुख हिमालय के लिए रवाना हो गए लेकिन उन्होंने कुँवरजीभाई और अन्य कार्यकर्ताओं से कहा, "मैं एक पर्यवेक्षक हूँ। मुझे निर्माण का अनुभव है. मैं तो हिमालय चला गया हूं, लेकिन अगर आप कहें तो महात्माजी का काम करने के लिए कुछ देर रुक जाऊं। मुझे वेतन नहीं चाहिए।"

आश्रम प्रारंभ से ही रचनात्मक गतिविधियों में संलग्न था। इसलिए उन्हें निर्माण के लिए धन जुटाने में अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। हालाँकि, कुछ कठिनाइयों ने आश्रम के निर्माण में बाधाएँ उत्पन्न कीं। लेकिन कुँवरजीभाई और खुशालभाई के प्रयासों से यह सफल हुआ।

इस प्रकार प्रारंभ में देशमुख ने एक इंजीनियर का कार्य किया। देशमुख ने आश्रम की नींव आठ-नौ फीट गहरी बनवाई। बजरी और रेत-चूना उपलब्ध कराया गया। इस प्रकार चार फीट नींव भरने के बाद चिनाई शुरू की गई और इस तरह इमारत का काम पूरा हो गया। लेकिन लागत बढ़कर 17000 की जगह तीस-बत्तीस हजार हो गई. आश्रम में उधार पर सामान लिया गया, इसलिए काम नहीं रुका। कुछ समय बाद जॉन्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका से बीस हजार लोग आये और इस प्रकार स्वराज आश्रम का कार्य प्रारम्भ हुआ। कुछ मितव्ययिता के बावजूद एक मंजिला घर बनाने में 40,000 रुपये खर्च किये गये।

जब भ्रम पैदा होने लगा तो आश्रम के निर्माण में योगदान देने के लिए अफ्रीका जाने का निर्णय लिया गया। सरकारी रजिस्टर में कुँवरजीभाई को विद्रोही माना गया, इसलिए उन्हें पासपोर्ट नहीं दिया गया। खुशालभाई महात्माजी का सिफारिश पत्र लेकर दक्षिण अफ्रीका गये। आश्रम के घर बनाने के लिए जिन लोगों से सामान उधार लिया गया था उनमें वल्लभभाई प्रमुख थे। लेकिन वह उघरानी नहीं करते थे बल्कि कुछ लोग उघरानी करते थे.

ऐसी माँगों को पूरा करने के लिए, कुँवरजीभाई ने बारडोली तालुक के कुछ संपन्न लोगों को आश्रम में बुलाया और कहा; "जब तक दक्षिण अफ्रीका से धन नहीं आता, यदि आप तालुक के भाई दस हजार रुपये उधार देते हैं, तो आप गुजरात कांग्रेस प्रांतीय समिति से दस हजार रुपये उधार लेने के लिए सरदार साहब को लिख सकते हैं।"

इस प्रकार तालुका के प्रसन्न लोगों ने 10,000 रुपये एकत्र किये। कुँवरजी भाई ने सरदार साहब को लिखा कि "स्वराज आश्रम के निर्माण की बढ़ी हुई लागत के कारण बारदोली सरकार अब हड़बड़ी में है। यदि तालुका 10,000 रुपये का ऋण देता है, तो हम आठ रुपये देकर ऋणदाताओं को संतुष्ट कर सकते हैं। जवाब में वल्लभभाई ने 10,000 का चेक भेजा.

कुँवरजीभाई ने लेनदारों को आधी रकम चुकाते हुए कहा; अब बाकी पैसे मत मांगना. जब खुशालभाई आएंगे तो मैं तुम्हें सामने बुला लूंगा और इसका भुगतान कर दूंगा।" खुशालभाई ने साउथ अफ्रीका से 40-45 हजार रुपये का फंड बनाया.

इस प्रकार स्वराज आश्रम के निर्माण में सरदार पटेल और उनके प्रमुख कार्यकर्ता खुशालभाई, कुँवरजीभाई आदि का महत्वपूर्ण योगदान था।

1928 ई. के सत्याग्रह के दौरान सरदार साहब ने सोचा कि अब स्वराज के लिए लड़ने वाले सत्याग्रहियों के लिए कोई जगह नहीं है। इसलिए सरदारश्री ने पहली बार 12 एकड़ जमीन खरीदी। जिसमें आश्रम का कार्यालय, कार्यकर्ता निवास, अतिथि निवास और डेलो (बड़ा घर) बनाया गया था।

ई. में बारडोली स्वराज आश्रम की भूमिका। यह 1921 ई. से 1928 ई. तक परिवर्तित हुआ। शुरुआत में गांधीजी के आह्वान के सम्मान में रचनात्मक गतिविधियों के लिए स्थापित आश्रम ने धीरे-धीरे स्वतंत्रता संग्राम में वहां के लोगों को अंग्रेजों के अन्यायपूर्ण राजस्व से मुक्त कराने और सरदार पटेल को 'सरदार की उपाधि देने' में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।'. इस प्रकार स्वराज आश्रम बारडोली 1928 ई. तक स्वतंत्रता संग्राम का केन्द्र बन गया।

इसीलिए भगवतीकुमार शर्मा कहते हैं, "भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में बारडोली, बारडोली स्वराज आश्रम का अद्वितीय स्थान है। अहमदाबाद के साबरमती आश्रम की तरह, वर्धा के आश्रम की तरह, इलाहाबाद के आनंद भवन की तरह, बारडोली के इस आश्रम की तरह, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल, पंडित जवाहरलाल नेहरू सहित कई राष्ट्रीय नेताओं के नक्शेकदम पर चलकर यह स्वराज आश्रम बना। देश के अनेक स्वतंत्रता संग्रामों की वैचारिक एवं सक्रिय प्रस्थान भूमि।

संदर्भग्रंथ सूची

1. तारुलता, स्वराज आश्रम बारडोली और सरदार पटेल, लघु शोध निबंध (अप्रकाशित), सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, आनंद, 2013
2. निरंजनाबेन कलार्थी, स्वराज आश्रम बारडोली के उत्तमचंदभाई-एक शताब्दी स्मरणोत्सव, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1999
3. धर्मेश पंड्या, शोध (संपादकीय), बारडोली सत्याग्रह और स्वराज आश्रम में मणिबहन पटेल का योगदान- एक अध्ययन, लेख, समाज सेवा महाविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, 2009

गुजरात विद्यापीठ की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ

हर्षदभाई के. चौधरी

पीएच.डी. विद्वान, इतिहास, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

गांधीजी के विचार की बुनियादी शिक्षा को क्रियान्वित करने के लिए विद्यापीठ अपनी स्थापना के बाद से ही उस दिशा में काम कर रहा है। और विद्यापीठ को पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा के सिद्धांतों के लिए कई बार परीक्षण किया गया है। इस प्रकार सरकार ने भी अपने गौरवपूर्ण कार्य एवं लक्ष्यों को स्वीकार किया है। जैसे मातृभाषा शिक्षा, चौदह वर्ष तक प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा, शारीरिक श्रम (उद्योग शिक्षा) आदि स्वीकृत हैं।

इस प्रकार, विद्यापीठ की कुछ विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताएँ हैं और स्कूल एक विशिष्ट तरीके से कार्य करते हैं। जिसमें पूज्य गांधीजी और सरदार पटेल के विचारों और आदर्शों को केंद्र में रखा गया है। ये विशिष्टताएँ निम्नलिखित विद्यापीठ कार्यों में परिलक्षित होती हैं। पसंद करना,

1. स्कूल पाठ्यक्रम को इस तरह से व्यवस्थित किया गया है कि सामान्य परीक्षाएं-प्राथमिक विद्यालय या एसएससीई। कि छात्र को नीट की परीक्षा देने में आसानी होगी और छात्र परीक्षा देने के बाद विश्वविद्यालय या अन्यत्र आगे की पढ़ाई कर सकेगा।
2. छात्रों को बुनियादी शिक्षा के मुख्य भागों जैसे उद्योग, समूह जीवन और श्रम में प्रशिक्षित किया जाता है।
3. प्रत्येक कक्षा में लगभग दो घंटे का औद्योगिक कार्य होता है। उद्योग और श्रम को साक्षरता जितना ही महत्व दिया जाता है।
4. विद्यालय में कोई नौकर या किरायेदार कार्यरत नहीं है। यानी क्लास की सफाई से लेकर पानी भरना, बर्तन खाना, क्लास बंद करना, घंटी बजाना सभी काम योजनाबद्ध तरीके से करते हैं।
5. स्कूल के आंतरिक प्रबंधन के लिए एक स्कूल पंचायत चलती है। यह एक सहकारी स्टोर भी चलाता है। ऐसे कार्यों से संगठन एवं लोकतंत्र का प्रशिक्षण मिलता है।
6. अंग्रेजी पढ़ाने की व्यवस्था है. उनकी शिक्षा आठवीं कक्षा से शुरू होती है। उस विषय को दस घंटे का समय दिया जाता है. ऐसे में एसएससीई जितनी अंग्रेजी करने की व्यवस्था है.
7. पांचवीं कक्षा से छठी कक्षा तक हिंदी पढ़ाना अनिवार्य है।
8. वर्दी के रूप में खादी और समूह कार्य में कंतान सभी के लिए जरूरी है।
9. वार्षिक परिणाम नियमित परीक्षाओं के परिणामों के औसत के आधार पर निर्धारित किया जाता है।
10. छात्रों को बाढ़, भूकंप जैसी आपदाओं के दौरान श्रम करके अपना योगदान देने की व्यवस्था की जाती है।"52 इस प्रकार, विद्यापीठ और बोचासन के स्कूलों में, शिक्षण की उपर्युक्त विशेष विधि की जाती है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में इसने निम्नलिखित प्रणाली को अपनाया है।

1. सभी विषयों को मूल भाषा के माध्यम से पढ़ाया जाता है।

2. जिन लोगों ने अंग्रेजी का अध्ययन नहीं किया है, लेकिन उनके पास एक निश्चित स्तरकी शैक्षणिक योग्यता है, वे विद्यापीठ विश्वविद्यालय में प्रवेश ले सकते हैं और स्नातकहो सकते हैं या अध्ययन करके निपुण बन सकते हैं। इसलिए उच्च शिक्षा के लिए अंग्रेजी का ज्ञान अपरिहार्य नहीं माना जाता है।
3. मातृभाषा में पाठ्यपुस्तकों का अभाव शिक्षण में बाधक नहीं माना जाता। शिक्षण की शुरूआत के साथ, स्थानीय भाषा में पाठ्यपुस्तकें तेजी से तैयार की गईं और शब्दावली बनाई गई।
4. अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, वाणिज्य, गणित और दर्शनशास्त्र की शाखाओं में मूल भाषा में शिक्षण की व्यवस्था आग्रहपूर्वक की गई।
5. शिक्षा की साक्षरता के साथ-साथ औद्योगिक शिक्षा को भी महत्व दिया गया।
6. आसपास के क्षेत्र को स्कूल से जोड़ा।
7. किताबी शिक्षा के स्थान पर जीवन निर्माण को महत्व दिया और विद्यालयों को प्रशिक्षण संस्थान बनाया।
8. छात्रावास जीवन पर जोर दिया और छात्रावासों को भी प्रशिक्षण के लिए आश्रम जैसी संस्थाएँ बना दीं।
9. छात्रों द्वारा पर्यटन, वाद-विवाद, अन्य व्याख्यान, त्यौहार, छात्र अभिलेखागार जैसी गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं।
10. छात्र संख्या के बजाय शिक्षा के प्रति समर्पण पर जोर दिया और इस बात पर जोर दिया कि शिक्षक अपने जीवन से एक उदाहरण स्थापित करें।
11. जोर देकर कहा कि किसी भी छात्र को शारीरिक दंड नहीं दिया जाना चाहिए।
12. शिक्षा परीक्षा उत्तीर्ण करने या नौकरी पाने के लिए नहीं है, बल्कि समग्र विकास की दृष्टि से और जाति या धर्म के भेदभाव के बिना इसे सभी को देने के लिए है।
13. छात्रों के सीखने के आकलन के लिए केवल वार्षिक परीक्षा पर निर्भर रहने के बजाय, वर्ष के दौरान परीक्षणों और परीक्षाओं को भी महत्व दिया गया।
14. जैसे ही विषय पूरे हो जाते हैं, छात्र अपनी परीक्षा दे सकता है या बाद में जब चाहे तब दे सकता है।
15. यह सुविधा रखी गई है कि फेल छात्र भी आगे का सेशन भर सकते हैं।
16. प्रत्येक छात्र को डिग्री परीक्षा के लिए स्वयं जांच करके एक प्रश्न पर एक खोजी निबंध लिखना आवश्यक है।
17. उन्होंने जोर देकर कहा कि प्रत्येक छात्र को पढ़ाई के हिस्से के रूप में समूह कार्य, शिविरो और प्रयासों में शामिल होना चाहिए।
18. कक्षा शिक्षण को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया कि प्रत्येक छात्र को पुस्तकालय का उपयोग करना चाहिए।
19. बशर्ते कि शोध प्रशिक्षण स्नातकोत्तर स्तर पर भी उपलब्ध हो; और शिक्षण पद्धति में समय सारिणी में व्याख्यान के अलावा सेमिनार, क्लासवर्क और स्व-अध्ययन शामिल थे। इसके अलावा समाजसेवा विद्यालय ने स्नातक विभाग में बौद्ध शिक्षा, प्रत्यक्ष ज्ञान, हृदय प्रशिक्षण, हाथ-पैर प्रशिक्षण आदि की संरचना स्थापित करके सर्वांगीण शिक्षा की व्यवस्था की है।

इस प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी की पढ़ाई कक्षा 5 से स्नातक तक विद्यापीठ के कुमार मंदिरों में होती थी। लेकिन वर्ष 1946 से जनता के बीच इसका प्रचार-प्रसार करने के लिए परीक्षा एवं प्रचार केंद्र चार परीक्षाओं प्रथम, द्वितीय, तृतीय और विनीत के अतिरिक्त 'सेवक' की पांचवीं परीक्षा भी आयोजित करते हैं।

1950-51 ई. में राज्य सरकार द्वारा संचालित 'हिन्दी अध्यापक सनद परीक्षा' की कक्षाएँ विद्यापीठ को सौंप दी गईं। इसी प्रकार, भारत सरकार की योजना के अनुसार 'हिन्दी शिक्षा विनीत' और शहिन्दी शिक्षा विशारदश की कक्षाएँ वर्ष 1962 में प्रारम्भ की गई। इस प्रकार हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य बढ़ने पर 1960 में हिन्दी भवन भवन का निर्माण किया गया। आगे चलकर चूँकि उसमें भी कठिनाइयाँ आई तो 1967 में हिन्दी कक्षाओं के लिए एक अलग व्यवस्था बनायी गयी। विद्यापीठ गुजरात में 5वीं कक्षा से कॉलेज के छात्रों के लिए राज्यव्यापी हिंदी भाषण प्रतियोगिता भी आयोजित करता है। उसके लिए विद्यापीठ द्वारा आवश्यक प्रकाशन एवं पुस्तकें, अनुवाद, हिन्दी-गुजराती शब्दकोश, गुजराती-हिन्दी कोश आदि भी प्रकाशित किये गये हैं। प्रचार सम्मेलन भी आयोजित

करता है। हिंदी भवन में सायंकालीन प्रशिक्षण, मराठी, उर्दू और बांग्ला भाषा की कक्षाएं संचालित की जाती हैं। और 1966 से इसकी परीक्षाएं भी आयोजित की जाती हैं। गुजराती भाषा की क्रमिक परीक्षाएँ अन्य राज्यों के लोगों के लिए भी आयोजित की जाती हैं। साहित्य रचना और हिंदी अनुवाद परीक्षा जूनियर छात्रों और वयस्कों के लिए भी आयोजित की जाती है।

विद्यापीठ की स्थापना से ही उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा को अपने लक्ष्य में रखा। इसके लिए गुजराती भाषा में पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित करने का काम हाथ में लिया गया। इस प्रकार प्रकाशन के क्षेत्र में विद्यापीठ का प्रदर्शन सराहनीय एवं महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने प्राथमिक विद्यालय से लेकर उच्च शिक्षा तक कई विषयों पर किताबें, पाठ्यपुस्तकें और साहित्य प्रकाशित किया है और जारी रख रहे हैं। उनकी विद्वत पुस्तकों में गुजराती जोडनिकोश, गुजराती-हिन्दी, संस्कृत-विनीत जोडनिकोश, देश्या दियारबाकिर, कच्ची शब्दावली, भीली-गुजराती शब्दावली आदि के अलावा विभिन्न विषयों के शब्दों के गुजराती पर्यायवाची शब्द प्रकाशित हुए हैं। आदिवासी अनुसंधान केंद्र की गतिविधियाँ गुजरात के आदिवासियों की बोलियों के अलावा विभिन्न समुदायों के जीवन पर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। विद्यापीठ ने विश्वकोश का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है।

विश्वविद्यालय ने अलग-अलग समय पर आवश्यकतानुसार पत्रिकाएँ भी प्रकाशित की हैं। 'साबरमती' द्विमासिक की शुरुआत 1922 में विद्यापीठ विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा की गई थी। आगे बढ़ते हुए, विद्यापीठ के निदेशक मंडल और कार्यकारी परिषद ने 'विद्यापीठ' को 'साबरमती' में विलय करने का निर्णय लिया। उसके अनुसार दो अंक जोड़े गये अर्थात् जनवरी-फरवरी 1923 का अंक और दूसरा अंक। इसके बाद इसे बंद कर 'नवजीवन' के साथ हर महीने पूरक अंक 'केलवाणी' प्रकाशित करने की योजना बनाई गई। दो वर्ष बाद भी विद्यापीठ ने इसे बंद कर अपना स्वतंत्र मुखपत्र बनाने का विचार किया। इसी प्रकार 'पुरातत्व' एक विद्वत त्रैमासिक थी। शिक्षण एवं साहित्य मासिक अप्रैल 1961 तक चलता रहा। जो पहले नवजीवन और बाद में स्वतंत्र रूप से जारी रहा।

"विद्यापीठ" द्विमासिक विद्यापीठ का मुखपत्र है। इसकी शुरुआत 1963 से हुई है. जो आज भी प्रकाशित होता है. इसमें विद्यापीठ के अलावा बाहरी विद्वानों और शोधकर्ताओं के लेख प्रकाशित होते हैं। इसमें हिंदी के लिए एक अनुभाग है। आदिवासी मुद्दों और ग्रामीण अर्थशास्त्र पर विशेष अंक भी प्रकाशित किये जाते हैं। साबरमती अंक पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुका है। अत: केलावानी अंक से 'फंडामेंटल्स ऑफ एजुकेशन' पुस्तक का विमोचन किया गया है। पुरातात्विक लेख आज भी शोधकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार गुजरात के पुस्तकालयों में विद्यापीठ का पुस्तकालय अत्यंत समृद्ध है। इसे केन्द्रीय पुस्तकालय का स्थान प्राप्त है। उसी से इसका महत्व प्राप्त होता है।

राज्य सरकार के प्रावधान के अनुसार विद्यापीठ के नेतृत्व में गुजरात के आदिवासी विकास के लिए एक अनुसंधान-प्रशिक्षण केंद्र भी स्थापित किया गया है। इस केंद्र में अधिकारियों के लिए तीन महीने की प्रशिक्षण कक्षाएं आयोजित की गईं। जो 1965 तक चला. 1965 के बाद आदिवासी क्षेत्रों में ग्राम सेवकों के लिए वे प्रशिक्षण वर्ग जारी रखे गये।

प्रशिक्षण के अलावा, केंद्र जनजातीय मुद्दों के अध्ययन के लिए एक पुस्तकालय, उनकी संस्कृति के नमूनों का भंडार, जनजातीय मुद्दों, उनके आर्थिक, सामाजिक मुद्दों, विभिन्न समुदायों के जीवन, बोलियों आदि के उच्च अध्ययन के लिए स्नातकोत्तर कक्षाएं भी प्रदान करता है।. और साहित्य का प्रकाशन। इन सबमें जनजातीय बोलियों के अध्ययन से संबंधित केंद्र का कार्य सराहनीय है।

अस्पृश्यता निवारण और इसके उच्च आदर्शों के कारण, हालाँकि शुरुआत में विद्यापीठ के विद्यामंदिरों और विनय मंदिरों की संख्या कम हो गई, लेकिन विद्यापीठ ने उसी प्रवृत्ति का पालन किया है और अपने लक्ष्यों में कोई समझौता नहीं किया है। इसी में इसकी महानता निहित है. इस प्रकार विद्यापीठ के सिद्धांतों का आग्रह विद्यापीठ के इतिहास से जुड़ा हुआ है।

कृषि विज्ञान केंद्र, पंचजेनी कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली (आईसीएआर) से संबद्ध है और गुजरात विद्यापीठ के नियंत्रण में काम करता है। इसकी स्थापना वर्ष 1977 में हुई थी जो कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान करता है।

संदर्भसूची

1. नरहरि द्वा. पारिख और उत्तमचंद डी. शाह, (सं.), सरदार वल्लभभाई के भाषण, प्रथम संस्करण, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1949
2. काका कालेलकर, 'वल्लभ विद्यालय', शिक्षा एवं साहित्य, नवजीवनी पूर्ति, दिनांक 5-7-1931
3. महादेव हरिभाई देसाई, 'साप्ताहिक पत्र; 'आत्मनिरीक्षण', हरिजनबंधु, दिनांक 1-3-1936
4. वल्लभभाई पटेल, 'एक नए संकल्प का अवसर', हरिजनबंधु, दिनांक। 17-8-1947

सोशल मीडिया के उपयोग और प्रकृति से संबद्धता से सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की भविष्यवाणी

(Predicting Positive Mental Health from Social Media Usage and Nature Relatedness)

डॉ० बलबिंदर सिंह

Assistant Professor, Department of Psychology, Guru Nanak Dev University, Amritsar

संक्षेप

इस शोध पत्र का उद्देश्य सोशल मीडिया के उपयोग और प्रकृति से जुड़ाव से सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की भविष्यवाणी करना है। अध्ययन के निष्कर्ष, जिसमें छात्रों ने भाग लिया, यह दर्शाता है कि प्रकृति से जुड़ाव और सोशल मीडिया के बुद्धिमानी से उपयोग से मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है।

भूमिका

प्रकृति संबद्धता और मानसिक स्वास्थ्य

19वीं शताब्दी से बेहतर स्वास्थ्य और खुशहाली के लिए प्राकृतिक वातावरण को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है (ली, 2012)। कुछ सिद्धांतों के अनुसार, शिकारी और संग्रहकर्ता के रूप में हमारे इतिहास के कारण आधुनिक लोगों का प्रकृति और सभी जीवित जीवों से एक अंतर्निहित संबंध है (विल्सन, 1984)। नतीजतन, प्रकृति स्वयं एकाग्रता को प्रोत्साहित करती है और हमें ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता नहीं होती है, जिससे हमें मानसिक रूप से बेहतर महसूस होता है (हर्जोग एट अल., 2003) और हमारा ध्यान बहाल होता है (कपलान और कपलान, 1989)। कई पर्यावरणविदों (उदाहरण के लिए, बेरी, 1997; लियोपोल्ड, 1949; ऑर, 1994) और प्रकृति के लेखकों (उदाहरण के लिए, लॉव, 2005; मुइर, 1894; थोरो, 1854) द्वारा सुझाव दिया गया है कि प्रकृति के साथ अच्छा ताल-मेल बनाने से मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है,।

एक मूलभूत मानवीय आवश्यकता के रूप में, मनुष्य की मूल इच्छा दूसरों से संबद्ध होना और समूहों में रहना है (बॉमिस्टर और लेरी, 1995; फिस्के, 2004; मायर्स, 2000)। बायोफिलिया परिकल्पना (विल्सन, 1984; केलर्ट और विल्सन, 1993; केलर्ट, 1997) प्रकृति से इस अपनेपन को आगे बढ़ाती है और तर्क देती है कि मनुष्यों में बड़े प्राकृतिक जगत के साथ पहचान करने और उससे संबंध बनाने की आनुवंशिक रूप से इच्छा होती है। इकोसाइकोलॉजी के विशेषज्ञ रोसजक (1995) ने भी इसी तरह कहा कि जुड़ाव की यह भावना केवल शहरों तक ही सीमित नहीं है, इस में प्राकृतिक पर्यावरण से जुड़ाव की भावना को शामिल करती है। इस सिद्धांत का तर्क है कि मनुष्यों को प्रकृति में रहने से मनोवैज्ञानिक रूप से लाभ होगा क्योंकि इससे उनकी प्रकृति से जुड़ने की इच्छा संतुष्ट होगी। अध्ययनों के अनुसार, जो लोग प्रकृति से जुड़ने का प्रयास करते हैं, उन्हें बेहतर स्वास्थ्य (टारेंट, 1996), जीवन शक्ति (रयान एट अल., 2010), और संपूर्ण मानसिक स्वास्थ्य (उदाहरण के लिए, कपलान, 1995; लेदर एट अल., 1998) जैसे लाभ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रकृति से शांति को बढ़ती है (प्लांटे एट अल., 2006) और तनाव कम होता है (उलरिच

एट अल., 1991)।

गुणात्मक डेटा से सात विषय उभर कर सामने आए, जिनमें आनंद, संबंध, विस्तार, स्पर्श उत्तेजना और सकारात्मक दृष्टिकोण शामिल हैं। निष्कर्ष सामूहिक रूप से दर्शाते हैं कि प्रकृति से जुड़ाव की भावनाओं को मजबूत करने वाली गतिविधियाँ हानिकारक चिंता को कम कर सकती हैं (मार्टिन और ब्रायमर, 2016)। प्रकृति में अनुभव भावनात्मक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार करते हैं (रोडरर और सर्विका, 2012; बॉलर, 2010)। इसके अतिरिक्त, प्रकृति के साथ ताल-मेल को बढ़ावा देना लक्षण और स्थिति चिंता दोनों के लिए एक सफल उपचार हो सकता है।

विभिन्न नवीनतम गहन मूल्यांकनों (बॉलर एट अल., 2010) के अनुसार, इनडोर वातावरण (थॉम्पसन कून एट अल., 2011) और कृत्रिम या निर्मित परिवेश के विपरीत, प्रकृति के साथ अनुभव से मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। आत्मसम्मान में वृद्धि, सकारात्मक और नकारात्मक मनोदशा (बार्टन, ग्रिफिन और प्रिटी, 2012; बार्टन, हाइन और प्रिटी, 2009; मैके और नील, 2010; पार्क एट अल., 2009; वैन डेन बर्ग और कस्टर्स, 2011), स्थिति चिंता (state anxiety), और आराम और शांति की अनुभूतियां सभी नोट की गई हैं। पर्यवेक्षित प्रयोगशाला सेटिंग्स के तहत मॉडल किए गए परिवेश को नियोजित करने पर भी इसी तरह के परिणाम देखे गए हैं (प्रिटी एट अल., 2005)। मिशेल (2013) के शोध के अनुसार, प्राकृति में नियमित बाह्य मनोरंजन से कम मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं होती है। हालाँकि यह पहले विचार से अधिक जटिल हो सकता है, प्राकृतिक आवास और स्वास्थ्य परिणामों के बीच एक गहरा संबंध पाया गया है (वार्ड थॉम्पसन और एस्पिनॉल, 2011; मिशेल, 2013)।

सोशल मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य

लोगों के मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में, सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग से उत्पन्न असंतुलन समाज, विद्वानों और देखभाल करने वालों के लिए प्रमुख मुद्दा है। सोशल इंटरनेट साइटों का अत्यधिक उपयोग सबसे लोकप्रिय आधुनिक शौक में से एक है (बशीर और भट, 2017)। कौर और बशीर (2015) के अनुसार, किशोर मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के महत्वपूर्ण लाभों में सामाजिककरण, प्रभावी संचार, शैक्षिक अनुभव और स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्राप्त करना शामिल है। नकारात्मक प्रभावों में सेक्सटिंग, उदासी/अवसाद, साइबरबुलिंग, थकावट, तनाव, भावनात्मक अवरोध और संज्ञानात्मक कौशल में कमी शामिल है। मूल्यांकन में अंततः कुल 16 अध्ययन शामिल थे। किसी व्यक्ति की आत्म-धारणा, भावनाएं और सामाजिक संपर्क सभी सोशल मीडिया से महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होते हैं। राजनीति, संगठनों और कभी-कभी चिकित्सीय जटिलताओं पर भी इसके प्रभाव का पता लगाना दिलचस्प है।

सामाजिक बंधन, अन्य प्रकार के सामाजिक संसाधनों के बीच, आत्म-सम्मान और जीवन जैसे मनोवैज्ञानिक कल्याण संकेतकों से जुड़े हुए हैं (बार्ग और मैककेना, 2004; एलिसन एट अल., 2007; हेलिवेल और पुत्नाम, 2004; नबी एट अल, 2013)। संतुष्टि नए शोध के अनुसार, ऑनलाइन सोशल मीडिया नेटवर्क लोगों को ऑफलाइन सामाजिक पूंजी बनाने और संरक्षित करने में मदद करते हैं (स्टीनफील्ड, एलिसन, और लैम्पे, 2008; वालेंजुएला, पार्क, और की, 2009)। शोध के अनुसार, सोशल मीडिया किसी के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक और अनुकूल दोनों तरह से प्रभाव डाल सकता है। चिंता, निराशा, अकेलापन, खराब नींद, खराब मानसिक स्वास्थ्य मार्कर, आत्महत्या और खुद को नुकसान पहुंचाने के विचार, भावनात्मक संकट का ऊंचा स्तर, साइबरबुलिंग, किसी के शरीर की छवि से नाखुशी, कुछ छूट जाने की आशंका और जीवन की संतुष्टि में कमी कुछ नकारात्मक परिणाम थे। अन्य लोगों के स्वास्थ्य अनुभव और पेशेवर स्वास्थ्य रिकॉर्ड प्राप्त करना, अवसाद को प्रबंधित करने का प्रयास करना, मनोवैज्ञानिक सहायता और समुदायों का निर्माण करना सभी सकारात्मक प्रभाव थे। अन्य सकारात्मक प्रभावों में ऑफलाइन सिस्टम और अंतर्संबंध ों को बढ़ाना और मजबूत करना, स्वयं को और अपनी पहचान को व्यक्त करना, और संबंध स्थापित करना और बनाए रखना शामिल है (सदाघेयानी और टाटारी, 2020)।

वैज्ञानिक प्रयासों के समकालीन युग में, शोध के एक बड़े संग्रह ने मानव शारीरिक स्वास्थ्य के लिए प्रकृति के महत्व को दर्शाया है, जिसमें उन विभिन्न तरीकों पर प्रकाश डाला गया है जिनके द्वारा व्यक्ति भोजन, पानी, जीवन शक्ति, मौसम की सुरक्षा के लिए पूरी तरह से प्राकृतिक परिवेश पर निर्भर रहते हैं। प्रदूषण जैसे बढ़ते मानवीय मुद्दों के जवाब में वैज्ञानिकों ने अब मनोवैज्ञानिक क्षमता के लिए भी प्रकृति के महत्व का प्रमाण देना शुरू कर दिया है, जो भूमि परिवर्तन, शहरीकरण में वृद्धि और वायु और पानी के

प्रदूषण की प्रणाली में सबसे अधिक स्पष्ट हैं (ब्रैटमैन, हैमिल्टन और डेली, 2012)। अतीत में लोग दृश्यात्मक रूप से सुंदर परिदृश्य बनाने के लिए कितना खर्च करने को तैयार रहे हैं, इसका एक और उदाहरण अमीर लोगों के घरों में प्रकृति का एकीकरण है। इसके लिए प्रेरणाएँ मकान मालिक की शांति और समझ की इच्छा से लेकर प्रकृति पर प्रभुत्व और नियंत्रण के प्रदर्शन तक हो सकती हैं (जैसे कि वर्सेल्स उद्यान में) (मुकर्जी, 1994)।

अध्ययन का औचित्य

साहित्य के परिचय और समीक्षा से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रकृति मनोवैज्ञानिक कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पिछले अधिकांश कार्यों में मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के उपयोग के नकारात्मक प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। लेकिन इन-विट्रो तकनीक के रूप में सोशल मीडिया सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। अध्ययनों के अनुसार, जो लोग प्रकृति से जुड़ने का प्रयास करते हैं, उन्हें बेहतर स्वास्थ्य, जीवन शक्ति और पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य जैसे लाभ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रकृति शांति को बढ़ावा दे सकती है और तनाव कम कर सकती है। प्रकृति के साथ ताल-मेल बनाने से मानव की पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रकृति में रहने या यहां तक कि प्रकृति वीडियो देखने से, सुखद भावनाओं को बढ़ाते हुए क्रोध, भय और तनाव कम हो जाता है। प्रकृति न केवल किसी की भावनात्मक स्वास्थ्य में सुधार करती है, बल्कि यह रक्तचाप, हृदय गति, मांसपेशियों में तनाव और तनाव रसायनों की उत्पत्ति को कम करके शारीरिक स्वास्थ्य में भी सुधार करती है। इसलिए, वर्तमान कार्य सोशल मीडिया के उपयोग की सकारात्मक भूमिका पर केंद्रित है और प्रकृति से संबद्धता सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करेगी।

क्रियाविधि

परिकल्पना

I. सोशल मीडिया का उपयोग युवा वयस्कों के बीच सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की भविष्यवाणी करेगा।

II. प्रकृति से संबद्धता युवा वयस्कों के बीच सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की भविष्यवाणी करेगी।

नमूना: 20-25 वर्ष आयु वर्ग के विश्वविद्यालय/कॉलेज जाने वाले छात्रों के एक सौ पचास (N=150) युवा वयस्कों (पुरुष और महिला) का एक नमूना चुना गया। डेटा संग्रह के उद्देश्य से सुविधाजनक नमूनाकरण विधि का उपयोग किया गया है।

प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक उपकरण

1. सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य पैमाना- 9-आइटम पीएमएच-स्केल लुकाट एट अल द्वारा विकसित किया गया था। सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए एक संक्षिप्त, एक-आयामी और व्यक्ति-केंद्रित उपकरण प्रदान करने के लिए (लुकाट एट अल., 2016)। परीक्षण-पुन: परीक्षण विश्वसनीयता- पीएमएच-स्केल की परीक्षण-पुन: परीक्षण विश्वसनीयता 0.77 के सहसंबंध के साथ संतोषजनक पाई गई है। स्कोरिंग जानकारी: यह 0 (सहमत नहीं) से 3 (सहमत) तक का 4-पॉइंट लिकर्ट स्केल है। आइटम स्कोर को उच्च स्कोर के साथ एक योग स्कोर में जोड़ा जाता है जो उच्च सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य का संकेत देता है।
2. (एनआर - 6) प्रकृति संबंधी पैमाने का संक्षिप्त रूप संस्करण- प्रकृति संबंधी पैमाने (एनआर - 6) को एलिजाबेथ के. निस्बेट और जॉन एम.जेलेंस्की (निस्बेट और जेलेंस्की, 2013) द्वारा 6 आइटमों के साथ विकसित किया गया था। स्वयं" और "अनुभव" आयाम, और इसकी पूर्वानुमानित क्षमता का परीक्षण छात्रों, समुदाय के सदस्यों और व्यापारिक लोगों में कई नमूनों और अनुदैर्ध्य डेटा के साथ किया गया था। नए एनआर-6 पैमाने में मजबूत आंतरिक स्थिरता और अस्थायी स्थिरता थी, और इसने खुशी, पर्यावरणीय चिंता और प्रकृति के साथ जुड़ाव की भविष्यवाणी की थी। संपूर्ण पैमाना और नया लघु एनआर पैमाना काफी हद तक जुड़े हुए थे (आर = 0.91, पी 0.01)। आईएनएस की अभिसरण वैधता 0.64 से 0.75 थी, जो पूरे पैमाने के समान थी (निस्बेट और जेलेंस्की, 2013)। स्कोरिंग जानकारी: एनआर - 6 स्कोर की गणना सभी 6 आइटमों के औसत से की जाती है।
3. सोशल मीडिया उपयोग प्रश्नावली (एसएमयूक्यू)- सोशल मीडिया उपयोग प्रश्नावली (जेनिडिस और ब्रिगनेल, 2016) एक 9-आइटम प्रश्नावली है जो सोशल मीडिया के उपयोग को पांच-बिंदु लिकर्ट पैमाने पर मापती है, 0 (कभी नहीं)

से 4 (हमेशा) तक)। एसएमयूक्यू ने आंतरिक विश्वसनीयता और निर्माण वैधता का भी प्रदर्शन किया (जेनिडिस और ब्रिग्नेल, 2016)।

परिणाम और चर्चा

तालिका 4.1 में अध्ययन में सम्मिलित चरों का माध्य, मानक विचलन, विषमता एवं कुर्टोसिस प्रस्तुत किया गया है। कई शोध कर्ता (ग्रेवेटर और वॉलनॉ, 2012; जॉर्ज और मैलेरी, 2010; फील्ड, 2009; ताबाचनिक और फिडेल, 2007; और ट्रोचिम और डोनली, 2006) सुझाव देते हैं कि यदि तिरछापन और कर्टोसिस मान +2 / −2 के बीच हैं तो डेटा सामान्य वितरण का माना जाएगा। तालिका 4.1 के अवलोकन से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि सभी चरों की विषमता और कुर्टोसिस के मान स्वीकार्य सीमा के भीतर हैं। इसलिए, प्राप्त डेटा सामान्य है और आगे के विश्लेषण के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।

तालिका 4.1 वर्णनात्मक सांख्यिकी (N = 150)

	Range	Mean	Std. Deviation	Skewness		Kurtosis	
	Statistic	Statistic	Statistic	Statistic	Std. Error	Statistic	Std. Error
PMH	19.00	21.91	3.06	-2.61	.198	2.47	.394
NR 6	10.00	12.90	1.88	-1.12	.198	2.67	.394
SMUQ	23.00	32.92	2.68	-2.01	.198	3.33	.394

सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य (पीएमएच), प्रकृति संबद्धता (एनआर-6) और सोशल मीडिया उपयोग (एसएमयू) के बीच सहसंबंध तालिका 4.2 में प्रस्तुत किया गया है। यह पाया गया है कि सोशल मीडिया का उपयोग एनआर-6 [r(148) = .225, p = .006] और पीएमएच [r(148) = .343, p = .000] के साथ महत्वपूर्ण और सकारात्मक रूप से सहसंबंधित है। इसके अलावा, यह भी पाया गया है कि पीएमएच एनआर-6 [r(148) = .790, p = .000] के साथ महत्वपूर्ण और सकारात्मक रूप से सहसंबंधित है।

तालिका 4.2 सहसंबंध मैट्रिक्स

	NR 6	SMU
SMU	**.225****	
PMH	**.343****	**.790****
**. Significant at 0.01 level of significance.		

**. 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण।

समाश्रयण विश्लेषण तालिका 4.3 में बताया गया है। सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य (पीएमएच) दो चरणीय पदानुक्रमित एकाधिक समाश्रयण में आश्रित चर के रूप में कार्य करता है। समाश्रयण के पहले चरण में, एसएमयू जोड़ा गया था और चरण 2 पर एनआर 6 को भिन्नता के लिए दर्ज किया गया था।

Table 4.3 Showing Summary of Hierarchical Regression Analysis for Variables predicting Positive Mental Health (PMH)

Variable	β	t	Std. Error	R	R^2	ΔR^2
Step 1				.343[a]	.118	.118
Social Media Usage (SMU)	**.391**	**4.445****	**.029**			
Step 2				.808[b]	.653	.536
Social Media Usage	**.199**	**3.496****	.057			
Nature Relatedness (NR)	**1.222**	**15.071****	.081			
**. Significant at 0.01 level of significance.						

पदानुक्रमित एकाधिक समाश्रयण के परिणामों से पता चला कि चरण 1 पर, एसएमयू ने समाश्रयण मॉडल (F (1, 148) = 19.762, p = .000) में महत्वपूर्ण योगदान दिया और सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य (पीएमएच) में 11.8% भिन्नता के लिए

जिम्मेदार था। जब प्रकृति संबद्धता (एनआर 6) को शामिल किया गया था, तो पीएमएच में अतिरिक्त 53.6% भिन्नता को समझाया जा सकता था, और R2 में यह परिवर्तन महत्वपूर्ण था (F(2, 147) = 138.547, p = .000)।

ANOVA[a]						
Model		**Sum of Squares**	**df**	**Mean Square**	**F**	**Sig.**
1	Regression	163.823	1	163.823	**19.762**	**.000[b]**
	Residual	1226.871	148	8.290		
	Total	1390.693	149			
2	Regression	908.649	2	454.325	**138.547**	**.000[c]**
	Residual	482.044	147	3.279		
	Total	1390.693	149			
a. Dependent Variable: PMH						
b. Predictors: (Constant), SMUQ						
c. Predictors: (Constant), SMUQ, NR 6						

इंटरनेट का उपयोग रोजमर्रा की जिंदगी का एक अनिवार्य पहलू है, खासकर युवा व्यक्तियों के लिए (जोन्स एट अल., 2007)। वर्तमान अध्ययन के नतीजे सोशल मीडिया के उपयोग और सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य के बीच सकारात्मक सहसंबंध का संकेत देते हैं। इसके अलावा, यह भी पाया गया है कि सोशल मीडिया का उपयोग महत्वपूर्ण रूप से और सकारात्मक रूप से सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। वर्तमान शोध में प्रकृति संबद्धता और सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य के बीच एक महत्वपूर्ण सकारात्मक सहसंबंध पाया गया। इसके अलावा, प्रकृति से संबद्धता महत्वपूर्ण रूप से और सकारात्मक रूप से सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की भविष्यवाणी करती है, जो पीएमएच में 53.6% भिन्नता की व्याख्या करती है। मौका मिलने पर, लोग जंगल, जलमार्ग या पहाड़ियों की सबसे अधिक सघनता वाले क्षेत्रों को चुनते हैं। वे कभी-कभी संकेतों या प्राकृतिक तत्वों को अपने संलग्न वातावरण में शामिल करते हैं, जैसे कि पौधे, जानवर, फूलदान, कलाकृतियाँ, या चित्र जो प्रकृति को चित्रित करते हैं, यदि इस प्रकार के परिवेश आसानी से सुलभ नहीं हैं (वेनस्टीन, प्रिजीबिल्स्की और रयान, 2009)। वर्तमान कार्य स्पष्ट रूप से पिछले शोध के अनुरूप है। कई पर्यावरणविदों (जैसे, बेरी, 1997; लियोपोल्ड, 1949; ऑर, 1994) द्वारा प्रकृति के साथ ताल-मेल बनाने से मानव पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। रॉबर्ट उलरिच के अनुसार, जिन रोगियों ने पेड़ों के दृश्य देखे, उन्होंने दर्द को बेहतर ढंग से प्रबंधित किया, नर्सों पर कम नकारात्मक प्रभाव पड़ा और अस्पताल में कम समय बिताया (मतलब वे जल्द ही ठीक हो गए)।

निष्कर्ष

परिणामों और चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सोशल मीडिया के उपयोग, प्रकृति से संबद्धता और सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य के बीच महत्वपूर्ण संबंध हैं। इसके अलावा, सोशल मीडिया के उपयोग और प्रकृति से संबद्धता से सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की महत्वपूर्ण और सकारात्मक भविष्यवाणी की गई है और प्रभावित किया गया है। सोशल मीडिया को सकारात्मक रूप में उपयोग करने से, व्यक्ति अपने सामाजिक नेटवर्क को बढ़ावा दे सकते हैं और प्रियजनों और दोस्तों के साथ अधिक संवाद स्थापित कर सकते हैं। इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य सुधर सकता है क्योंकि समाज में संबंध और संवाद का आदान-प्रदान मानसिक सुख में सुधार कर सकता है। सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग करने से व्यक्ति अपने आप के प्रति समर्पित हो सकता है और सेल्फ-केयर की दिशा में कदम उठा सकता है। व्यक्ति की स्वास्थ्य की देखभाल करने का प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए, जिससे उनका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बेहतर रह सके। सोशल मीडिया का संयमित और सतर्क उपयोग करने से बच्चों और युवाओं का मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित नहीं होगा। अत्यधिक समय सोशल मीडिया पर खर्च करने से निष्क्रियता और आत्म-संवाद बढ़ सकता है, जो मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। प्रकृति से संबद्धता भी मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक जगहों में समय बिताने, प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने, और वातावरण में सकारात्मक रूप से प्रवृत्त होने से व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य मजबूत हो सकता है। प्रकृति में समय बिताने से, जैसे कि जंगलों में सैर करना, पिकनिक करना, या फूलों और पेड़-पौधों के साथ समय बिताना, व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य सुधार सकता है। नैचरल ग्रीनरी को देखना और उससे जुड़कर मनोबल बढ़ सकता है। प्रकृति में व्यायाम, योग और स्वस्थ आहार का पालन करने से व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है। प्रकृति में अलग-अलग स्थितियों का सामना करने से, व्यक्ति की समस्याओं का समाधान निकलने की क्षमता मजबूत हो सकती है, जिससे उसका मानसिक स्वास्थ्य सुधर सकता है। प्रकृति में समय बिताने से, व्यक्ति दूसरों के साथ

सहयोगी और समर्थन भावना का अनुभव कर सकता है, जिससे उसका मानसिक स्वास्थ्य सुधर सकता है। प्रकृति में समय बिताने से व्यक्ति का ध्यान और मनोनिग्रह कौशल मजबूत हो सकता है, जिससे उसकी मानसिक स्थिरता और ध्यानशीलता में सुधार हो सकता है।

यह सभी कारक एक साथ मिलकर व्यक्ति के सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को प्रोत्साहित कर सकते हैं, जबकि सोशल मीडिया का अत्यधिक और असंयमित उपयोग नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। व्यक्ति को अपने सोशल मीडिया उपयोग पर नियंत्रण रखना चाहिए और नियमित रूप से प्रकृति में समय बिताने का प्रयास करना चाहिए ताकि उनका मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षित रहे।

आशय

- सोशल मीडिया का उपयोग इन-विट्रो तकनीक मानसिक स्वास्थ्य परामर्श के रूप में किया जा सकता है।
- प्रकृति के साथ मेल-मिलाप करने से मानव के समग्र कल्याण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- प्रकृति में रहने या यहां तक कि प्रकृति वीडियो देखने से, सुखद भावनाओं को बढ़ाते हुए क्रोध, भय और तनाव कम हो जाता है। प्रकृति न केवल किसी की भावनात्मक भलाई में सुधार करती है, बल्कि यह शारीरिक भलाई में भी सुधार करती है।
- तो, वर्तमान कार्य सोशल मीडिया के उपयोग की सकारात्मक भूमिका के बारे में बुद्धिमानी से निर्णय लेने में मदद करता है और प्रकृति से संबंधित सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा

परिसीमन

- यह मानसिक स्वास्थ्य में सोशल मीडिया और प्रकृति के उपयोग से संबंधित मौजूदा सिद्धांत को जोड़ता है।
- कार्य अच्छी तरह से डिजाइन किया गया है और वर्तमान संदर्भ में काफी लागू है।

सीमाएँ

- सैंपल का आकार छोटा था लेकिन मास्टर डिग्री और समय की कमी को देखते हुए इसे बढ़ाया नहीं जा सका।
- बड़े नमूने ने शोध निष्कर्षों के अधिक सामान्यीकरण के लिए व्यापक गुंजाइश दी होगी।

भविष्य के सुझाव

- बड़े नमूने का चयन किया जा सकता है।
- विभिन्न आबादी को अध्ययन में शामिल किया जाए।
- वर्तमान कार्य के निष्कर्षों को आधार बनाकर आगे के शोध की योजना बनाई जा सकती है।

संदर्भ हवाले

बार्टन, जे., ग्रिफिन, ऍम्., & प्रेटी, जे. (2012). एक्सर्साइज-, नेचर-अंड सोशली इंटरएक्टिव-बेस्ड इनिशिएटिव इम्प्रूव मूड़ अंड सेल्फ-ईस्टीम इन ठे क्लिनिकल पोपुलेशन. परस्पेक्टिव इन पब्लिक हेल्थ, 132(2), 89-96.

बार्टन, जे., हीने, आर्., & प्रेटी, जे. (2009). द हेल्थ बेनेफिट्स ओफ वाकिंग इन ग्रीन स्पेस ओफ हाइ नेचरल अंड हेरिटेज वैल्यू. जर्नल ओफ इंटीग्रेटिव एनवायरमेंटल साइंस, 6(4), 261-278.

बशीर, हेच्., & भट्, ऍस् ए. (2017). इफेक्ट ओफ सोशियल मीडिया ओन मेंटल हेल्थ: ए रिव्यू. इंटरनेशनल जर्नल ओफ इंडियन साइकोलोजी, 4(3), 125-131.

बेरी, डबल्यू. (1997). द अनसेटलिंग ओफ अमेरिका: कल्चर अंड एग्रीकल्चर. सं फ्रांसिस्को: सिएरा क्लब बुक.

एलिसन, ऍन्. बी., स्टेनफील्ड, सी., & लैम्पे, सी. (2007). द बेनेफिट्स ओफ फेसबुक "फ्रेंड्स:" सोशियल कैपिटल अंड कॉलेज स्टुडेंट' उसे ओफ आनलाइन सोशियल नेटवर्क साइट. जर्नल ओफ कंप्यूटर.मीडिएटेड कम्युनिकेशन, 12(4), 1143-1168.

फील्ड, ए. (2009). डिस्कवरिंग स्टैटिस्टिक यूजिंग ऍस्पीऍस्ऍस्. लंडन: सगे.

जोन्स, ऍस्., जॉन्सन-याले, सी., पीह्रेज, ऍफ्. ऍस्., & स्कुलर, जे. (2007). द इंटरनेट लैंडस्केप इन कॉलेज. टीचर कॉलेज रिकार्ड, 109(14), 39-51.

कौर, आर. & बशीर, हेच्. (2015). इंपैक्ट ओफ सोशियल मीडिया ओन मेंटल हेल्थ ओफ एडोलेसेंट. इंटरनेशनल जर्नल ओफ एजुकेशन, 5, 22-29.

केलर्ट, ऍस्. आर. (1997). किनशिप टो मास्टरी: बायोफिलिया इन हूमन इवोल्यूशन अंड डेवलपमेंट. वाशिंगटन, डीसी: आइलैंड प्रेस.

केलर्ट, ऍस्. आर., & विल्सन, ई. ओ. (ईडीएस.). (1993). द बायोफिलिया हाइपोथेसिस. वाशिंगटन, डीसी: आइलैंड प्रेस.

लेदर, पी., पिरगास, ऍम्., बीले, डी., & लॉरेंस, सी. (1998). विंडोज इन ठे वर्कप्लेस: सनलाइट, व्यू, अंड औच्चुपटिओनल् स्ट्रेस. एनवायरमेंट अंड बिहेवियर, 30(6), 739-762.

लियोपोल्ड, ए. (1949). ए सैंड काउंटी अलमानाक: विद एसेज ओन कंजर्वेशन फ्रम राउंड रिवर. न्यू योर्क: बल्लंतीन.

लॉव, आर. (2005). लास्ट चाइल्ड इन द वुड्स: सेविंग और चिल्ड्रन फ्रम नेचर-डेफिसिट डिसार्डर. चपेल हिल, ऍन्सी: अल्गोंगुइन बुक ओफ चपेल हिल.

मार्टिन, पी., & ब्रायमर, ई. (2016). द रिलेशनशिप बेट्वीन नेचर रिलेटेडनेस अंड एंक्सीटी. जर्नल ओफ हेल्थ साइकोलोजी, 21(7), 1436-1445.

नबी, आ. ऍल्., प्रेस्टिन, ए., & सो, जे. (2013). फेसबुक फ्रेंड्स विथ (हेल्थ) बेनेफिट्स? एक्सप्लोरिंग सोशियल नेटवर्क साइट उसे अंड परसेप्शन ओफ सोशियल सपोर्ट, स्ट्रेस, अंड वेल-बींग. साइबरप्साइकोलोजी, बिहेवियर, अंड सोशियल नेटवर्किंग, 16(10), 721-727.

निस्बेट, ई. के., & जेलेंस्की, जे. ऍस्. (2013). द ऍन्आर्-6: ए न्यू ब्रीफ मेजर ओफ नेचर रिलेटेडनेस. फ्रंटियर इन साइकोलोजी, 4, 813.

निस्बेट, ई. के., & जेलेंस्की, जे. ऍस्. (2014). नेचर रिलेटेडनेस अंड सब्जेक्टिव वेल-बींग. एनसाइक्लोपीडिया ओफ क्वालिटी ओफ लाइफ अंड वेल-बींग रिसर्च. डार्ड्रेच, द नीदरलैंड: स्प्रिंगर, 4269-4276.

पार्क, बी. जे., त्सुनेत्सुगु, वाइ., कसेटनी, टी., मोरिकाव, टी., कागवा, टी., & मियाजकी, वाइ. (2009). फिजियोलॉजिकल इफेक्ट ओफ फॉरेस्ट रिक्रिएशन इन ए यंग कानिफर फॉरेस्ट इन हिनोकाज टाउन, जपान. सिल्वा फेन, 43(2), 291-301.

प्लांटे, टी. जी., केज, सी., क्लेमेंट, ऍस्., & स्टोवर, ए. (2006). साइकोलॉजिकल बेनेफिट्स ओफ एक्सर्साइज पैरेड विथ वर्चुअल रियालिटी: आउटडोर एक्सर्साइज एनर्जीज व्हेरियस इंदूर वर्चुअल एक्सर्साइज रिलेक्सेस. इंटरनेशनल जर्नल ओफ स्ट्रेस मैनेजमेंट, 13(1), 108.

सोशियल मीडिया डेफिनिशन. (ऍन्. डी.). इन लविंसीदेर.काम. रिट्रीव्ड ओन 14/05/2022 फ्रम: हेच्टीटीपीऍस्://डबल्यूडबल्यूडबल्यू.लविंसीदेर.काम/डिक्शनरी/सोशियल-मीडिया

थोरो, हेच्. डी. (1854). वाल्डन: ओर, लाइफ इन द वुड्स. बोस्टन: टिक्नर अंड फील्ड्स.

ट्रोचिम, डबल्यू. ऍम्., अंड डॉनेली, जे. पी. (2006). द रिसर्च मेथड्स नालेज बेस (3आर्डी एड.). सिनसिनाटी, ओहेच्: एटोमिक डॉग.

उलरिच, आ. ऍस्., साइमन्स, आ. ऍफ्., लोसिटो, बी. डी., फियोरिटो, ई., माइल्स, ऍम्. ए., & जेलसन, ऍम्. (1991). स्ट्रेस रिकवरी ड्यूरिंग एक्सपोजर टो नेचरल अंड अर्बन एनवायरमेंट. जर्नल ओफ एनवायरमेंटल साइकोलोजी, 11(3), 201-230.

वालेंजुएला, ऍस्., पार्क, ऍन्., & की, के. ऍफ्. (2009). आईएस ठहरे सोशियल कैपिटल इन ए सोशियल नेटवर्क साइट? फेसबुक उसे अंड कॉलेज स्टुडेंट' एस् लाइफ सटिस्फैक्शन, ट्रस्ट, अंड पार्टिसिपेशन. जर्नल ओफ कंप्यूटर-मीडिएटेड कम्युनिकेशन, 14, 875-901.

वैन डेन बर्ग, ए. ई., & कस्टर, ऍम्. हेच्. (2011). गार्डनिंग प्रमोट न्यूरोएन्डोक्रीन अंड अफेक्टिव रेस्टोरेशन फ्रम स्ट्रेस. जर्नल ओफ हेल्थ साइकोलोजी, 16(1), 3-11.

वार्ड थोम्पसन, सी., & एस्पिनल, पी. ए. (2011). नेचरल एनवायरमेंट अंड ठेर इंपैक्ट ओन एक्टिविटी, हेल्थ, अंड क्वालिटी ओफ लाइफ. एप्लाइड साइकोलोजी: हेल्थ अंड वेल.बींग, 3(3), 230-260.

वेंसटाइन, ऍन्., परजीबिल्सकी, ए. के., & रयन, आ. ऍम्. (2009). कैन नेचर मेक यूएस मोर केरिंग? इफेक्ट ओफ इमर्सन इन नेचर ओन इंट्रिंसिक एस्पिरेशन अंड जेनेरोसिटी. पर्सनालिटी अंड सोशियल साइकोलोजी बुलेटिन, 35(10), 1315-1329.

विल्सन, ई. ओ. (1984). बायोफिलिया. इन बायोफिलिया. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

वुड्स, हेच्. सी., & स्कॉट, हेच्. (2016). # स्लीपाइटीन: सोशियल मीडिया उसे इन एडोलेसेंस आईएस असोसिएटेड विथ पूर स्लीप क्वालिटी, एंक्सीटी, डिप्रेशन अंड लो सेल्फ-ईस्टीम. जर्नल ओफ एडोलेसेंस, 51, 41-49.

जैनिडिस, एन., और ब्रिग्नेल, सी.एम. (2016)। सोशल मीडिया उपयोग प्रश्नावली. मानव व्यवहार में कंप्यूटर.

शाहू का राजनीतिक करियर: पहला भाग

मोतीभाई हरिभाई वलागांठ

पीऐच.डी. स्कोलर, टेक्नो ग्लोबल यूनिवर्सिटी बिसनपुर सिलोंग, मेघालय, मु.पो.वेदंचा ता.पालनपुर, जि.बनासकांठा

शाहू का प्रारंभिक जीवन: शंभाजी और येशुबाई के सबसे बड़े पुत्र शाहू का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। उनका जन्म १९८२ ई. में रायगढ़ में हुआ था और उन्हें शुरू से ही कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उनका प्रारंभिक जीवन अपने माता-पिता के साथ इधर-उधर भटकते हुए बीता। है। १९८९ में, जब शाहू सात साल के बच्चे थे, मुगलों ने रायगढ़ को चारों तरफ से घेरकर उस पर कब्जा कर लिया। फिर मुगल सैनिकों ने नवंबर १९८९ में येशुबाई और शाहू को पकड़ लिया और उन्हें दिल्ली में औरंगजेब के पास ले गए। मुगल कारावास में औरंगजेब की बेटी जिन्नत-उन-निसा (जिंटुन-निसा बेगम) की व्यक्तिगत देखरेख में शाहू का पालन-पोषण मुगल आराम में हुआ। लगातार १७ वर्षों तक अर्थात् १७०७ ई. तक शाहू को अपनी माँ के साथ मुगल कैद में रहना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें शासन-सम्बन्धी कोई विशेष शिक्षा या प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि उन्हें मुगलों की विलासितापूर्ण एवं विलासितापूर्ण जीवन शैली विरासत में मिली।. इस दौरान उनका धर्म परिवर्तन कराने का असफल प्रयास भी हुआ. कौन जानता है क्यों, लेकिन शाहू को शम्भाजी की तरह नहीं मारा गया था। इसलिए, मराठा साम्राज्य का नेता लोगों के लिए बना रहा। बेशक, १७ साल की कैद के दौरान, बालाजी विश्वन नाम का एक चालाक और बुद्धिमान ब्राह्मण उनके निकट संपर्क में आया, जिसने अधिकारियों और जनरलों के माध्यम से शाहू की रिहाई के लिए कड़ी पैरवी की।

छत्रपति शाहू की रिहाई- औरंगजेब की मृत्यु ने मुगल साम्राज्य के लिए मृत्यु की घंटी बजा दी। यह औरंगजेब के सहज व्यक्तित्व के कारण ही था कि विशाल और शक्तिशाली मुगल साम्राज्य अब तक बचा हुआ है; परन्तु उन्हें कोई उपयुक्त उत्तराधिकारी नहीं मिला; इसके विपरीत, उनके अपने ही बेटे उनके अंतिम दिनों में सत्ता के लिए एक-दूसरे से लड़ने लगे। मुहम्मद आजमशाह, आलमशाह और कामबख्श ने अपने पिता की मृत्यु के गहरे दु:ख को छोड़कर आपस में जमकर युद्ध किया। उस उत्तराधिकार में, उत्तरी राज्य से शाह आलम और दक्षिणी राज्य से आजमशाह ने खुद को राजा घोषित किया। दक्षिण-विजेता जनरल जुल्फिकार खान आजमशाह के पक्ष में था। जुल्फिकार खान एक कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी व्यक्ति थे। उन्होंने मराठों को विभाजित करने की दृष्टि से आजमशाह को छत्रपति शाहू को रिहा करने की सलाह दी। आजमशाह खान की 'एक पत्थर से दो शिकार करने' की नीति को समझते थे। छत्रपति शाहू तीन शर्तों के साथ- (१) कि शाहू मुगलों के एक जागीरदार राजकुमार के रूप में अपने पिता के "स्वराज्य" पर शासन करें, (२) जरूरत पड़ने पर मुगल सम्राट को सैन्य सहायता प्रदान करें, और (३) अपनी मां केशुबाई को मुगल दरबार में सौंप दें इस गारंटी के रूप में कि शाहू मुगलों के खिलाफ कार्रवाई नहीं करेंगे। इन शर्तों पर रिहा किया गया। बेशक, मुगल सम्राट आजम शाह ने दक्षिण भारत के छह मुगल सूबों से चोथ और सरदेशमुखी पर दावा करने के शाहू के अधिकार को मान्यता दी। इस अनुमोदन ने पहली बार अप्रत्यक्ष रूप से दक्षिणी भारत पर मराठा शासन को मंजूरी दे दी। शाहू की रिहाई ने मराठा इतिहास में एक नया मोड़ ला दिया, क्योंकि मराठों को सौभाग्य से एक ऐसा नेता वापस मिल गया जो उन मुगलों के खिलाफ और अधिक मजबूती से लड़ सकता था जिन्होंने छत्रपति शंभाजी की बेरहमी से हत्या कर दी थी। लगभग उसी समय जब शाहू वर्षों के बाद दक्षिण लौटे, आलमशाह और आजमशाह के बीच ८ जून (१७०७) को आगरा के पास जजाव में एक भयानक युद्ध हुआ, जिसमें दक्षिणी स्वामी आजमशाह की मृत्यु हो गई और आलमशाह ने 'बहादुर शाह' नाम धारण किया और गद्दी पर बैठा। सर्वोच्च शासक के रूप में दिल्ली की गद्दी पर बैठे।[१] मुगलों के बीच इसके परिणामस्वरूप हुई बेदखली ने, एक ओर मुगल सल्तनत को पतन के गर्त में धकेल दिया, और दूसरी ओर, मराठों को एक बड़ा अप्रत्यक्ष लाभ दिया। आलमशाह, जिसे अपनी शक्ति सुदृढ़ करनी थी, दक्षिण की ओर ध्यान नहीं दे सका, अत: दक्षिणी राजनीति में प्रतिस्पर्धा के अभाव ने मराठों को प्रभुत्वशाली बना दिया।

खेड़ की लड़ाई और ताराबाई के साथ संघर्ष: दूसरी ओर, जुल्फिकारखान ने शाहू की रिहाई के पीछे की चाल को आसानी से प्रबंधित कर लिया। जैसे ही शाहू कारावास से मुक्त हुआ, उसने ताराबाई से राज्य की मांग की, लेकिन ताराबाई ने राज्य का एक अंश भी देने से इनकार कर दिया। इस प्रकार पूरी मराठा सेना दो भागों में विभाजित हो गई और दोनों के बीच संघर्ष छिड़ गया। ताराबाई ने घोषणा की, 'शाह कपटी है और मराठा-राज्य का आधिकारिक स्वामी बनने की इच्छा रखता है; वस्तुत: शम्भाजी द्वारा खोये हुए राज्य पर उनका कोई अधिकार नहीं है; राज्य की स्थापना मेरे पति राजाराम ने की थी। राज्य-सत्ता दया या उदारता का विषय नहीं है, बल्कि मजबूत पुरुषत्व के माध्यम से आत्म-सामर्थ्य से ही प्राप्त की जा सकती है। राजाराम के उत्तराधिकारी के रूप में, उनके पुत्र शिवाजी ही मराठी शक्ति के एकमात्र सच्चे अधिकारी हैं।' इस प्रकार, शाहू और ताराबाई अपने-अपने हितों को हासिल करने के लिए एक-दूसरे से लड़ने लगे, जिसके परिणामस्वरूप महाराष्ट्र गुटीय संघर्ष और अंदरूनी कलह का युद्धक्षेत्र बन गया।

खेड़ की लड़ाई से पहले की तैयारी: महादजी किशना जोशी और गदाधर प्रह्लाद जैसे उल्लेखनीय मराठा सरदार मुगल शिविर से दक्षिण की ओर लौटते समय शाहू के साथ थे, और उनकी सलाह पर शाहू ने पहले से ही कुछ प्रमुख मराठा सरदारों को पत्र लिखकर मदद मांगी और वफादारी। था; शाहून को इसका बहुत अच्छा स्वागत हुआ। बाजीगढ़ के राजघराने मोहन सिंह रावल, जिन्होंने लंबे समय तक औरंगजेब के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी, ने पहले शाहू को सैनिकों और धन से सक्रिय रूप से सहायता की, और फिर अमृतराव कंदब बंदे, सुजानसिंह रावल, बोकिल, पुरंदरे और अन्य प्रमुख परिवारों की मदद की। इनमें से कुछ परिवार मुगल प्रशासन में कार्यरत थे, और फिर भी उन्होंने साहसपूर्वक शिवाजी के असली उत्तराधिकारी का पक्ष लिया। यह संभव है कि बालाजी विश्वनाथ, जिन्होंने पूना के आसपास एक राजनयिक के रूप में ख्याति प्राप्त की थी, को भी पुरदार परिवार अपने साथ लाया था। परिवार के कानूनी उत्तराधिकारी शिवाजी भोसले को पारसजी भोसले से सबसे अधिक समर्थन मिला। इसीलिए वह इस लंबे और बेहद गंभीर युद्ध को लड़ने में सक्षम थे। निमाजी सिंधी, हैबतराव निंबालकर, रुस्तमराव जाधव (शाहू के ससुर), चिमनाजी दामोदर और सभी भोसले परिवार ने अनुस खानदेश में दो महीने बिताए, सेना को संगठित किया और क्षेत्र में अपनी स्थिति मजबूत की। फिर राजधानी सतारा जाने के लिए अहमनगर की ओर रवाना हुए।

खेड़ के युद्धक्षेत्र पर विजय: शाहू ने सेना की तैयारी शुरू कर दी क्योंकि उसे ताराबाई से राज्य का उचित हिस्सा मिलता नहीं दिख रहा था; इस पर ताराबाई चिंतित हो गईं और उन्होंने युद्ध के मैदान में सैन्य कौशल से शाहू की महत्वाकांक्षाओं को समाप्त करने का निश्चय किया। इसी दर्पण में शाहू को एक चतुर बुद्धि वाले ब्राह्मण-परामर्शदाता बालाजी विश्वनाथ मिले, जो उनसे प्रभावित हुए। बालाजी की सहायता से आगामी युद्धों की रणनीतियाँ बनाई जाने लगीं। दूसरी ओर ताराबाई ने शाहू को अहमदनगर से बाहर निकालने की बहुत कोशिश की, अहमदनगर औरंगजेब के दक्षिणी प्रशासन का मुख्यालय था, इसलिए इसका महत्व था, जैसे ही उन्हें पता चला कि ताराबाई की सेना उन्हें अहमदनगर से बाहर निकालने के लिए उनकी ओर बढ़ रही थी, शाहू भी साथ में थे पूना के निकट 'खेड़' नामक स्थान पर सैनिक पहुँचे सौ युद्धों के विजयी सेनापति धनाजी जाधव और परशुराम ताने, जो ताराबाई की ओर से लड़ने के लिए तैयार थे, को किसी भी तरह से पक्ष में शामिल होने के लिए राजी किया गया। बालाजी की बुद्धिमत्ता और धनाजी की बहादुरी के संगम ने शाहू के लिए जीत का मार्ग प्रशस्त किया। धनाजी के साथ-साथ अन्य मराठा सरदार भी शाहू के पक्ष में शामिल हो गये। नतीजा ये हुआ कि विजय का पल्लू शाहू की तरफ झुकने लगा. अक्टूबर १७०७ में जैसे ही ताराबाई की सेना ने भीमा नदी के उत्तर में खेड़ मैदान पर हमला किया, शाहू ने एक अत्यधिक कूटनीतिक रणनीति तैयार की। निजी सूत्रों के अनुसार, अगले दिन धनाजी लौट आए और सुरक्षा के लिए परशुराम पंत ने नदी पार की। इस प्रकार, इस सबने ताराबाई की सेनाओं की कमजोर कड़ियों को उजागर कर दिया। परिणामस्वरूप, १२ अक्टूबर, १७०७ को खेड़ की लड़ाई में शाहू विजयी हुए। इस युद्ध ने शाहू को बहुत प्रतिष्ठा और प्रतिभा प्रदान की। इस विजय से प्रेरित होकर अनेक मराठा सरदार पूरी निष्ठा के साथ शाहू के साथ मिल गये। शाहू की पार्टी मजबूत हो गयी. परिणामस्वरूप, राजधानी सतारा का मार्ग सुगम और आसान हो गया। दूसरी ओर ताराबाई शक्तिशाली नेतृत्व प्रदान करने में सक्षम होते हुए भी राज्य का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकीं, और उनके युवा पुत्र शिवाजी (दूसरे) कमजोर और असहाय थे, और परिणामस्वरूप, मराठा सरदार, जो वास्तविक स्थिति को समझ चुके थे, उनके साथ हो गए। शाहू को अपने फायदे के लिए यह स्वाभाविक था।

सतारा में शाहू का राज्याभिषेक: शाहू की इस पहली उग्र विजय के तुरंत बाद, उन्होंने सतारा की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में वह शिरवल के गांवों में रुके, जहां ताराबाई के वफादार सचिव शंकरजी नारायण प्रशासन का संचालन करते थे। शाहू ने उसे आत्मसमर्पण करने और ऐसा न करने पर गंभीर परिणाम भुगतने की चेतावनी दी। वफादार सचिव को जहर दे दिया गया और उन्होंने

हमेशा के लिए राजनीति छोड़ दी। शिरवल से पैंतीस मील की यात्रा के बाद, शाहू नवंबर में सतारा पहुंचे। हालाँकि, शाहू के आने से पहले, ताराबाई और उसका बेटा सतारा छोड़कर पन्हाला भाग गए थे। सतारा की रक्षा के लिए ताराबाई ने अपने पीछे एक प्रतिनिधि छोड़ दिया; लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला और शेख मीरान नाम के एक मुस्लिम अधिकारी ने मराठी सत्ता के वैध उत्तराधिकारी शाहू के लिए सतारा के किले के दरवाजे खोल दिए। इस प्रकार, मुगल शिविर छोड़ने के ठीक सात महीने बाद, दिसंबर (१९०७) के शनिवार को, शास्त्र ने सतारा में प्रवेश किया। यहां तक कि मराठी साम्राज्य को भी बहुत लंबे समय के बाद अपना राजा पुनः प्राप्त हुआ; परिणामस्वरूप, पूरा सतारा खुशी से झूम उठा। है। १२ जनवरी, १९०८ को शाहू का सतारा में भव्य एवं भव्य तरीके से राज्याभिषेक किया गया।

संदर्भसूचि

1- Sardesai, G.S. : 'New History of the Marathas', Voll, II
2- Sharma S.R. : 'Making of Modern India'
3- Sinha, H.N. : 'Rise of the Peshwas'
४. प्रो.मनुभाई शाह, भारतनो इतिहास', मराठा युग, १७०७ थी १८१८, यूनिवर्सिटी ग्रंथनिर्माण बोर्ड, अमदाबाद,१९७४

प्रबंध काव्य की दृष्टि सें ''वीरांगना बिलासा केंवटीन

श्री मिथलेश सिंह राजपूत

(पी-एच. डी.-हिन्दी) डॉ० सी० व्ही० रमन् वि. कोटा बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ० स्नेहलता निर्मलकर

(सहप्राध्यापक) डॉ० सी० व्ही० रमन् वि. कोटा बिलासपुर (छ.ग.)

सारांशः-

छत्तीसगढ़ी लोकपरम्परा आदिम युग से प्रचलित-प्रवाहित लोकमानस के अनुभव का वह खजाना है जो वह भावी पीढी को हस्तांतरित करता है। नयी पीढ़ी युगानुरूप संशोधित-परिवर्धित संस्कृति के रूप में ग्रसित है जो लोक के रहन-सहन आवास-निवास आचार-विचार रीति-रिवाज, वस्त्राभूण, पर्व, उत्सव, त्यौहार, व्रत लोकविश्वास, धर्म, कला, लोकसाहित्य आदि में विस्तीर्ण है। छत्तीसगढ़ी लोककथाओं और लोकगाथाओं में जहाँ संस्कृति के साथ लोकविज्ञान घुलमिल कर गयी पीढ़ी को जीवन-दर्शन से साक्षात्कार कराते है, वही दृश्यकाव्य होने और लोकमंच से जुड़ने के कारण छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य पात्रों के माध्यम से जीने का तरीका सिखाते है और उनमें सत्य-असत्य धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, नीति अनीति, हिंसा-अंहिसा के धमको समझाकर मानवता की सीख प्रदान करते है।

मुख्य शब्दः- लोकगाथा, लोकसाहित्य, लोकजीवन, लोकपरम्परा

1 प्रस्तावनाः-

छत्तीसगढ़ी में नारी प्रमुख लोकगाथाओं में जहाँ अहिमन रानी, केवला रानी, रेवारानी, रहिमत रानी, कंवलापति, नगेसर कइना, फूलकुंवर, फूलबासन, चंदाग्वालिन, दसमत कैना आदि के गाथा प्रमुख है उसी प्रकार निषाद (केंवट) जाति की महान नायिका "वीरांगना बिलासा केंवटीन" को जानी जाती है। जिसकी वीरगाथा देवार लोग आज भी गाते हैं। प्रबंध काव्य में प्रबंध शब्द "बंध" शब्द में उपसर्ग लगाकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ शास्त्रीय बंधनों से युक्त काव्य है, जबकि "लोकगाथा" शब्द युग्म मौखिक परंपरा में प्रचलित एवं लोक द्वारा स्वीकृत व आदर्श चरित्र गाथा है, जो लोक गीतों से अपेक्षाकृत वृहद् विस्तृत होकर अंग्रेजी के बैलेड्स से साम्य रखती है। गाथा में "गा" का अर्थ गाना या गीत है तथा "था" का अर्थ कथा से है। गीतात्मक कथा ही गाथा है। दोनों के शाब्दिक अर्थ में अंतर स्पष्ट है। एक लिखित परंपरा है, तो दूसरा अलिखित परंपरा है। यदि एक को लोक स्वीकारता है तो दूसरे को शिष्ट जन स्वीकारते वीरांगना बिलासा केंवटीन'' बिलासा की पुरी जीवन की एक गाथा है जिसमें बिलासा केंवटीन की वीरता व उसके जीवन में आयें कई प्रकार के उतार-चढ़ाव को बताया गया है। वह किस प्रकार संघर्ष करके अपने निषाद जाति में अपनी छवि बनाई है। देवार जाति इस गाथा के गायक बिलासा के कल्पसृष्टि का सृजन उन्होंने ही किया है अपने जीवन के अनुभव और समुदाय के रूप में अपने त्रासद आत्मसंघर्ष को जैसे उन्होंने गाथा के भितर उड़ेल दिया है। वीरांगना बिलासा का चरित्र देवारो के समुदायिक जीवन में स्त्री की आकांक्षा और संघर्ष से मिलकर बना है। प्रबंध काव्य के दृष्टि से इस लोकगाथा की नायिका

बिलासा केंवटीन है। छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रतनपुर चारो युग में स्थापित नगरी है। सतयुग में उसका नाम मणिपुर, त्रेता मे माणिपुर, द्वापर में हीरापुर, कलियुग में रतनपुर है। रतनपुर की महिमा काशी की समक्ष मानी गई है, इसलिए उसे कहुरीकाशी के नाम से भी जाना जाता है। रतनपुर से कुछ कोस की दूरी पर बिलासपुर स्थित है। यहाँ अरपा नदी के तट पर पचरीघाट के केंवटपारा में बिलासा का जन्म हुआ। बिलासा अत्यधिक रूपवती एवं साहसी कन्या थी। उसके रूप पर युवा बंशी मोहित था। बंषी भी सुन्दर आकर्षक और साहसी युवक था। बिलासा और बंशी परस्पर प्रेम संबंध था। कालान्तर में दोनों का विवाह हो जाता है। विवाहोपरान्त दोनों सुखपूर्वक वैवाहिक जीवन व्यतित करने लगते है। काफी समय व्यतीत हो जाता है। किन्तु बिलासा को कोई संतान नही होती इस बात से दोनो दु:खी थे। पास-पड़ोस के लोग ताना मारने लगे की बिलासा बांझ है। लोग बंशी को सलाह देते है कि वह दुसरा विवाह कर ले पर वह किसी का नही सुनता। बिलासा के साहस एवं वीरता की चर्चा रतनपुर के राजा कल्याणसाय तक पहुँचती है। राजा कल्याणसाय बिलासा को अपना दरबारी का ओहदा देते है। राजा कल्याणसाय को जब मुगल सेनापति कैद कर दिल्ली ले जाते है, तब उन्हें मुक्त करने हेतु गोपाल मल्ल एवं भैरव दुबे के साथ बिलासा भी दिल्ली मुगल बादाशाह के दरबार में जाकर अपने शौर्य का प्रदर्शन करती है।

2 प्रबंध काव्य की दृष्टि सें ''वीरांगना बिलासा केंवटीन:-

2.1 सर्ग एवं कवि

"बिलासा केंवटीन" छत्तीसगढ़ में देवार जाति के लोगों द्वारा गाये जाने वाली एक लोकगाथा है। इस लोकगाथा में स्त्री जाति की आत्म-पहचान सामंती वर्चस्व के विरूद्ध श्रम जीवियों की स्वाभिमान-रक्षा के संघर्ष तथा वर्ण-आधारित सामाजिक श्रेणीकरण के निचले क्रम की दमित सामुदायिक अस्मिताओं के आत्मबोध की अभिव्यक्ति को बताया गया है। स्वयं देवार जाति के जीवन-संघर्ष की कथा है। देवार जाति मुख्यत: रायपुर और बिलासपुर संभाग में पाए जाते हैं। रायपुर, दुर्ग, राजनांदगांव के देवार "रइपुरिया" और "बिलासपुर" अंचल के देवार रतनपुरिया देवार कहलाते है।

देवार समुदाय के साढ़े बारह गोत्र है- सोनवारी, सौरी, नेताम, छेदइया, मरई, तेलासी, सोनमोंगरी, कुंजाम, मरकाम, मतहा, कुल्हरिया और पुरलोटी है। गाथा गायन देवारों का व्यवसाय है। इनकी लोकगाथाएँ प्राय: धार्मिक, नैतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, भावनाओं से अनुप्राणित होती है तथा प्रेम के उभय पक्षों (संयोग-वियोग) का जैसा निरूपण देवारों की लोकगाथाओं में पाया जाता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। इसी प्रकार प्रेम, वीर, नारी, अध्यात्म विधि-विधानों, रीति-रिवाजों, विश्वास-परंपराओं तथा रहन-सहन का वितरण लोक गाथाओं में किया जाता है। "बिलासा केंवटीन की लोकगाथा भी धार्मिक, नैतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक भावनाओं से अनुप्राणित है। इस गाथा में प्रेम, अध्यात्म, वीर, नारी, अध्यात्म, विधि-विधानों, रीति-रिवाजों, विश्वास-परम्पराओं तथा रहन-सहन का वर्णन किया गया है।" इस गाथा में कोई सर्ग (पर्व) नहीं है।

छत्तीसगढ़ी लोकगाथा गाने वाले कुछ देवार गायक-गायिका निम्न है, जिन्होंने "बिलासा केंवटीन" की जीवन शैली गाथा को अपने वर्णों में प्रस्तुत किये हैं, इनमें श्रीमती रेखा देवार, श्री हीरालाल देवार, हमीर बाबू देवार, नकामू सोनवानी देवार, भग्गुराम देवार, श्री नेतूसिंग देवार, कांतू देवार, सफरी मरकाम, बीर बाबू सोनमोंगरी देवार आदि प्रमुख देवार गायकों ने बिलासा केंवटीन की गाथा को कुछ ने पूर्ण रूप से गाये है और कुछ ने आंशिक।

2.2 नायक/नायिका

प्रबंध काव्य का नायक या नायिका उच्च कुल धीरोदत्त, वीर पराक्रमी और धर्म रक्षक होते है। बिलासा केंवटीन जो नारी प्रधान लोकगाथा है जिसमें प्रमुख नायिका "बिलासा केंवटीन" है। इसमें भी इन्हीं गुणों का समाहार है-

राम के दाई कौशिल्या के,
जनम भूमम येहर तो आय।
ममियारो ये रामचंद के,
दक्छिन कोसल ये कहाय।।
माता शबरी के जनम भूम ये,

जे राम के भक्तिन कहाय।
नवधा के नवो भक्ति रहिस हे,
एक भक्ति बेड़ा पार लगाय।।
बालमिकि के आश्रम इहां,
जे तुरतुरिया धामे कहाय।
जिहां लवकुश जनम लेइन,
अऊ बालमिकि ल गुरू बनाय।।
सीता के मइके ये भुंइया,
जिहां सीता लेइस अउतार।
लवकुश के जनम भूमि ये,
जिहां खेलिन हें दिन चार।।
सबे के ममियारो येहर,
येखर धुर्रा माटी चंदन,
अइसन पबरीत ये हे ठांव।।
येही पबरीत चंदन माटी मं,
लेइस जनम बिलासा नाव।
सोलहवीं सदी के बाते आवे,
अरपा नदी के तीरे ठांव।।
जात के वोहर केंवट आवै,
जेखर हावै अइसन चिन्हार।
निषाद, ढीमर, भोई, मल्लाह,
मांझी मछुवा अऊ रे कहार।।

इस गाथा के नायिका "बिलासा केंवटीन" का आत्मबोध मुख्यत: उसके वीरता से निर्धारित होता है, जिस छत्तीसगढ़ में मर्यादा पुरूषोत्तम राम की माता कौशिल्या ने जन्म लिया था जिस समय छत्तीसगढ़ को दक्षिण कोसल के नाम से जाना जाता था वह एक वीर पुरूष श्री राम के मामा गाँव है, यही वीर पुरूष श्री राम के दोनों पुत्र वीर लव और वीर कुश जन्म लिये थे, तुरतुरिया नामक स्थान जहाँ बाल्मिकी के आश्रम थे, वही लव-कुश का जन्म हुआ था इस तरह छत्तीसगढ़ को वीरो का गढ़ कहा जाता है इसी वीरो के गढ़ में 16 वी सदी के आस-पास एक वीरांगना का भी जन्म हुआ था जिसका नाम बिलासा केंवटीन थी, जो जिसकी वीरता की गुणगान पुरें देश में आज भी चर्चा होता है जिसके नाम से बिलासपुर जिले का नामकरण हुआ है। केंवट समाज में जनमी बिलासा जिसकी वीरता की पहचान से पूरें केंवट समाज का कल्याण हुआ। बिलासा केंवटीन को केंवट समाज में एक देवी के रूप में स्वीकारते है। कहा जाता है कि केंवट जाति चौरासी की उपासना करते है और उसकी विशेष पूजा शनिवार को होता है पर कुछ क्षेत्रों में सतबहिनिया के नामो से पूजा होता है जिसमें जयलाला, कनकुद केवदी, जसोदा, कजियाम, वासूली और चण्डी के साथ बिलासिनी में से एक है यही बिलासिनी माता जिसका अपभ्रंश बिलासा और बिलासपुर से है। केंवट परिवार में जन्मे बिलासा शौर्य, साहस, पराक्रम, और जनसेवा जैसे अनेक गुणों के कारण लोकप्रिता हासिल कर वीरांगना के रूप में इतिहास में अमर हो गई।

5.3.3 रस:-

प्रबंध काव्य में श्रृंगार, वीर और शांत रसों में से कोई एक रस अंगीरूप से रहता है। "बिलासा केंवटीन" की लोकगाथा में प्राय: सभी रसो का समावेश है फिर भी प्रमुख रस वीर ही है। इसका अधिकांश अंश युद्ध से ही भरा है इसीलिये इसमें वीर रस का आधिक्य है। जिसका उदाहरण अधोभांति है।

मरद बरोबर लगय बिलासा,
लगय देवी के अवतार
बघवा असन रेंगनालेखर,
सनन सनन चलय तलवार।

यहीं पर बिलासा केंवटीन की वीरता दिख जाती है। एक नारी के लिये इतना ही पर्याप्त है कि कुछ कर दिखाने के लिये इतना हिम्मत तो रखती है।

उसी प्रकार अरपा के तट पर जब गोंड़ राजा का अपने सैनिको के साथ और बिलासा को देखकर मनमुग्ध हो जाता है, और बिलासा को पाने के लिए आगे बढता है तब बिलासा वीरता पूर्वक उससे परिचय पूछती है:-

बिलासा:- सावधान आगे मत बढ़ना, व्यर्थ विवाद मत करना
कौन हो तुम! निज परिचय दो आने का उद्देश्य
गोंड़ राजा:- हम राजा है गोंड़ो की इस भूमि पर साम्राज्य हमारा है।
कौन हो तुम एक औरत होकर राजा कासे ललकारा है।
बिलासा:- असत्य कथन मत बोलो राजा कि यह साम्राज्य तुम्हारा है।
कल्चुरि राजवंश की यह धरती जाने यह जग सारा है।
इस अरपा तट की मै रक्षक मेरा नाम बिलासा है,
वही द्वंद करे मुझसें जिसे मरने की अभिलाषा है।

बिलासा केवटीन गोंड़ राजा के सामने झुकती नही है। बल्कि राजा गोंड़ को ललकारते हुये कहती है सावधान आगे मत बढ़ना और व्यर्थ का विवाद खड़े मत करना और पुछती है तुम कौन हो और तुम्हारे आने का उद्देश्य क्या है। तब राजा कहता है। कि मै गोंड़ राजा हूँ और इस भूमि पर साम्राज्य मेरा है। तुम कौन होती हो एक राजा को ललकारने वाली, बिलासा बोलती है तुम झुठ मत बोलो यह साम्राज्य तुम्हारा नही है। यह साम्राज्य तो कल्चुरि राजवंश का है। और मै अरपा तट कि रक्षक बिलासा हूँ। वही मुझसे युद्ध करे जिसे मरने की इच्छा हो। जिससे राजा क्रोध में आ जाता है और अपने सैनिकों के साथ बिलासा कि नगरी में आक्रमण कर देता है। वीरांगना बिलासा साहस पूर्वक गोंड़ राजा का मुकाबला करती है, किन्तु गोंड़ राजा सैनिकों के साथ था और बिलासा अकेली। वह बहुत देर तक उनके साथ संघर्ष नही कर पाती और अपनी इज्जत बचाने हेतु दौड़ कर घर में घुस जाती है, और आग लगा लेती है। और इस प्रकार इज्जत और धर्म की रक्षा करते हुऐ सती हो जाती है। वह सती होकर अपनी वीरता की छाप छोड़ जाती है।

द्रष्टव्य:- यह मध्य रात्रि का युद्ध,
साक्षी मात्र इसकी
अरपा की यह धार।
लड़ी अंत तक मैने नही हार को स्वीकारा,
एक अकेली नारी को दस-दस ने मिलकर मारा।
वे कायर थें, कायर से छुपकर आए
और कायर से चले गये
किंतु सत्य के अन्वेषक ,
तुम बोलो कैसे छले गये
मुझको नही तनिक पछतावा,
यह युद्ध कथा गुमनाम हुई,

पीड़ा है तो बस इतनी है
मैं अपनों से बदनाम हुई।
सौदर्य मुर्ति, मै शक्ति पुंज
नारी गौरव की आशा हूँ।
छत्तीसगढ़ की मै गौरव हूँ
अरपा की बेटी बिलासा हूँ।

निष्कर्ष:-

छत्तीसगढ़ मे अनेक नारी के लोकगाथा प्रचलित है जिसमें बिलासा केंवटिन की नारी लोकगाथाओं में एक प्रमुख लोकगाथा है। यहाँ नारी लोकगाथाओं की प्राचीन परंपरा है। बिलासा का नाम अमर। उसके नाम पर बसे बिलासपुर मे ही आज हाईकोर्ट है। यहाँ 1933 मे महात्मा गाँधी आये वे बिलासा के नगर में पधारे जहाँ व आये अब गाँधी चौरा कहलाता है। वीर नारी का नाम अमर हो गयी। अरपा नदी के किनारे माता बिलासा की मूर्ति लगी है। इसका यश चारो ओर फैला है। इतिहास के तथ्य तर्क प्रमाण आश्रित होते है, लोकगाथाओं की तरह सहज स्वाभविक नही इसलिये इतिहास नायकों को चारण-भाट बारोट की आवश्यकता होती है, जो उनकी सत्ता और कृतिव सके प्रमाणीकरण स्व-गढ सके, पत्थर-तांबे पर उकेरे जा सके, लेकिन लोक नायकों के व्यक्तित्व की विशाल उदस्तता जनकवि को प्रेरित और बाध्य करती है, गाथाएँ गाने के लिये। इसलिए संदेश से परे नही होते, किन्तु लोक नायको का सच काल व समाज स्वीकृत होकर सदैव असंदिग्ध होता है। इसी तरह ''बिलासा केंवटीन'' काव्य, संदिग्ध इतिहास नही बल्कि जनकवि-गायक देवारों की अंसदिग्ध गाथा है, जिसमें ''सोने के माची, रूप के पर्रा'' और ''धुर्रा के मुर्रा बनाके, थूक में लाडू बांधै'' कहा जाता है। केवटिन की गाथा देवार गीतों के काव्य मूल्य का प्रतिनिधित्व कर सकने मे सक्षम है ही केंवटीन की वाक्पटुता और बुद्धि-कौषल का प्रमाण भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. निषाद डॉ. दशरथ लाल ''बहादुर सती बिलासा देवी'' संगम साहित्य एवं सांस्कृतिक समिति मगरलोड धमतरी (छ.ग.)
2. बिंद बलराम ''निषाद संस्कृति''
3. पाठक डॉ. विनय कुमार (1970) ''छत्तीसगढ़ी लोकगाथा'' प्रयास प्रकाशन बिलासपुर।
4. निर्मलकर डॉ. बलदाऊ प्रसाद ''छत्तीसगढ़ समीक्षा साहित्य को डॉ. विनय कुमार पाठक का प्रदेय'' -प्रयास प्रकाशन बिलासपुर।
5. शुक्ल दयाशंकर (1969) छत्तीसगढ़ लोक साहित्य का अध्ययन ज्योति प्रकाशन रायपुर।
6. निर्मलकर डॉ. स्नेहलता (2014) छत्तीसगढ़ी लोकगाथा की परम्परा और दसमत कैना एक विवेचना डॉ. सी.वी. रामन् विश्वविद्यालय करगी, रोड कोटा बिलासपुर।
7. वर्मा रामकुमार 'नारी प्रधान देवार लोकगाथा केवलारानी'' प्रकाशक बिहनिया संस्कृति विभाग रायपुर (छ.ग.)

शिक्षा का अधिकार एक मौलिक अधिकार के रूप में

डॉ० ललित मोहन शर्मा

Principal, Vandurga Institute of Management and Technology, Meerut

श्रीमती लक्ष्मी सक्सेना

Assistant Professor

किसी भी समाज अथवा देश के सर्वांगीण विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण होती है। जिस प्रकार से समाज में शैक्षिक स्तर बढता है उसी अनुपात में सामाजिक विकास भी बढता चला जाता है। अत: यह बात सर्वमान्य है कि व्यक्ति व समाज को अपना चहुमुखी विकास करने के लिये शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना होगा। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति व समाज का विकास सम्भव नही है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकास के लिये शिक्षा एक महत्व पूर्ण माध्यम है। अत: शिक्षा प्राप्त करना व शिक्षा प्रदान करना एक वैधानिक व मूलभूत अधिकार की श्रेणी में रखना उचित होगा।

प्रत्येक देश में जीवन स्तर को ऊपर उठाने हेतु वहाँ की सरकारें इस दिशा में सराहनीय प्रयास कर रही है। भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में भी आम जनमानस को शिक्षित करने के लिये प्रावधान है।

मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान में छ: मौलिक अधिकार नागरिकों को प्रदान किये गये है उनकी रक्षा के लिये भारतीयों को न्यायालयों में आवेदन करने की सुविधा दी गयी है। न्यायालय यहॉ के नागरिकों को समुचित रक्षा प्रदान करता है। मौलिक अधिकार की स्थिति कानून के समान है। मौलिक अधिकारों के अर्न्तगत नागरिकों को शान्तिमय ढंग से सभा करने, जुलूस निकालने, बोलने आदि का अधिकार है। राज्य कोई ऐसा कानून नही बना सकता जो भारतीयों के इन अधिकारों पर आघात करता हो। मौलिक अधिकार राज्य के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाते है और नागरिकों को स्वतन्त्रता प्रदान करते है। कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यों को विशेष अधिकार प्रदान करते है। मनुष्य को जिस प्रकार जीवन यापन करने के लिये कुछ मूलभूत चीजों की आवश्यकता पडती है ठीक उसी प्रकार जनता को विकास करने हेतु मौलिक अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है।

एलिन ग्लैडहिल के अनुसार- मौलिक अधिकार राज्य के लिये कुछ निषेध आज्ञा है जिनके द्वारा राज्य को यह आदेश दिया गया है कि राज्य को नागरिकों के अधिकारों में अनुचित हस्तक्षेप नही करना चाहिये।

मौलिक अधिकार के तहत शिक्षा

भारतीय संविधान में शिक्षा को भारतीय लोगों का मूल अधिकार माना है। संविधान में अनेक ऐसी धारायें है जिनका शिक्षा से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। भारतीय नागरिकों को अपनी शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों को प्रयोग करने के लिये संविधान में अनेक व्यवस्थायें की है।

1. समवर्ती सूची व शिक्षा- संघ सूची के सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार के पास तथा राज्य सूची के सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य सरकार के पास सुरक्षित है परन्तु यहॉ यह तथ्य विशेष है कि समवर्ती सूची के सभी विषयों पर केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनो को कानून बनाने का अधिकार है। दोनों ही सरकार द्वारा बनाये गये कानून में विरोध होने पर केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून को माना जाता है। यद्यपि प्रारम्भ मे शिक्षा राज्य सूची में थी जिसकी व्यवस्था राज्य सरकार करती थी परन्तु 1976 में 42 वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया। तब से केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनो मिलकर शिक्षा की व्यवस्था करती है। 2. 6 वर्ष तक के बालकों की देखरेख तथा शिक्षा दृ सन 2002 के 86 वें संविधान संशोधन कि द्वारा अनुच्छेद 45 में यह जोडा गया कि राज्य सभी बच्चों को 6 वर्ष की आयु पूर्ण करने तक बाल्यवस्था देखभाल तथा शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

3. 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था- संविधान के अनुच्छेद 45 में यह कहा गया है कि राज्य संविधान लागू होने से 10 वर्षो के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों की नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा। संविधान में दिये गये राज्य शब्द से अभिप्राय केन्द्र, राज्य सरकार तथा प्रशासन तन्त्र तीनों से है। यह संविधान के अनुच्छेद 45 में दिये गये निर्देश का ही प्रभाव है कि राज्य 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये लगातार प्रयासरत है।

4. प्रवेश के लिये समान अधिकार- संविधान के अनुच्छेद 29 संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार राज्य पोषित (राज्य से सहायता प्राप्त) शिक्षा संस्था में किसी भी नागरिक को धर्म, वंश, मूल, जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नही किया जायेगा। वर्तमान समय में यह नियम वित्त विहीन मान्यता प्राप्त संस्थानों तथा पब्लिक स्कूल अर्थात निजीक्षेत्र में भी लागू है।

5. स्त्रियों के लिये शिक्षा की विशेष व्यवस्था- संविधान के अनुच्छेद 15 (3) में यह व्यवस्था है कि राज्य को स्त्रियों तथा बालकों के लिये उपबन्ध बनाने में कोई बाधा नही होगी।

6. धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में निर्देश- संविधान में वर्णित अनुच्छेद 28 के अनुसार पूर्ण रूप से राज्य की सहायता से चलने वाली किसी भी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा नही दी जायेगी। अनुच्छेद 22 में भी कहा गया है कि राज्य से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में बच्चों को धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिये बाध्य नही किया जायेगा।

7. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिये शिक्षा की विशेष व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता (छुआ-छूत) को समाप्त किया और अनुच्छेद 46 में राज्य, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की शिक्षा की व्यवस्था करेगा। वह सामाजिक अन्याय और शोषण से भी उनका संरक्षण करेगा। आज प्राथमिक स्तर पर कमजोर वर्ग के सभी बच्चों को नि:शुल्क पुस्तकें तथा छात्रवृति भी दी जाती है।

8. अल्पसंख्यकों की शिक्षा की व्यवस्था- अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यक समुदायों की शिक्षा से सम्बन्धित दो प्रावधान दिये गये है।

अ) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपने अनुसार शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार होगा।

ब) अल्प संख्यक वर्ग के प्रबन्धन में चलने वाली संस्थाओं के लिये राज्य सहायता देने में किसी प्रकार का भेद नही करेगा।

9. राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं की शिक्षा- संविधान में अनुच्छेद 344 (1) में 15 भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिया था परन्तु वर्तमान में 22 भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिया गया है। साथ ही संविधान में यह घोषणा की गयी है कि राज्य इन भाषाओं के विकास के लिये प्रयास करेगा।

10. राष्ट्रीय भाषा हिन्दी के सन्दर्भ में- संविधान के अनुच्छेद 343 में हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया तथा अनुच्छेद 351 में इसके विकास के लिये विशेष प्रयत्न करने की व्यवस्था की गयी है। हिन्दी भाषा का प्रसार एवं वृद्धि करना, उसका विकास करना जिससे वह भारत की संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके।

संवैधानिक तौर पर शिक्षा का महत्व

जिस प्रकार से किसी सभ्य समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति व विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान प्राप्त करने तथा अनेक प्रकार के कार्यों के सम्पादन हेतु विशेष प्रकार के अधिकारों की आवश्यकता

होती है इन विशेष अधिकारों की श्रेणी मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत आती है जो कि संविधान में वैधानिक तौर पर वर्णित है। उपरोक्त सभी प्रकार के क्रियाकलाप किसी न किसी प्रकार से शिक्षा से जुड़े होते है अर्थात शिक्षा वह माध्यम है जिसके द्वारा मानव अपने विकास के मार्ग पर आगे बढते हुये अपने निर्धारित विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति करता है तथा इन मानवीय उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षा की एक अहम एवं सजग भूमिका होती है।

अन्य शब्दों में (सामान्य तौर पर) व्यक्ति की प्रत्येक दिन की दिन चर्या को ठीक प्रकार से पूरा करने में शिक्षा विभिन्न दृष्टिकोणो से सहायक होती है जिस प्रकार से विभिन्न दफ्तरों में चतुर्थ श्रेणी से लगाकर उच्च वर्ग तक के सभी कर्मचारी शिक्षा के माध्यम से अपने कार्यों की पूर्ति करते है। टाईप मशीन से लेकर कम्प्यूटर तक का कार्य जो कि मानव कार्य को आसान व सरल बनाता है। इन सबके पीछे शिक्षा का ही हाथ है। अर्थात शिक्षा के माध्यम से ही आज हम विभिन्न नई तकनीकों की खोज कर पाये है जिसके कारण विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों को ठीक प्रकार से प्रयोग करना व मानव कल्याण के लिये इनका सदुपयोग करने के साथ साथ मनुष्य के निरन्तर विकास को और आगे बढ़ाने के लिये शिक्षा की ही सहायता ली जा रही है। शिक्षा के ही माध्यम से हम राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव द्वारा खोज की गयी तकनीको का आदान प्रदान करते है जो कि मानवीय समाज के विकास में उपयोगी सिद्ध होती है। अत: हमें मानव के कल्याण में शिक्षा के योगदान को सर्वोपरि मानना चाहिए। इसकी सत्यता के लिये विभिन्न प्रकार के उदाहरण हम सभी के सामने है। हम वर्तमान में जिस प्रगति की चर्चा करते है उसके पीछे नि:सन्देह शिक्षा का ही हाथ है। अन्तराष्ट्रीय स्तर पर आज हमारे खुद के लाखों इन्जिनीयर व डॉक्टर विदेश में जाकर अपनी सेवायें दे रहे है। ज्ञान व शिक्षा का प्रसार कर रहे है। साथ साथ एक अच्छी जीविका भी प्राप्त कर रहे है जिससे दिन प्रतिदिन राष्ट्रीय स्तर पर आय की बढोतरी हो रही है। यह एक अच्छी शिक्षा का ही संकेत है।

वर्तमान में शिक्षा की महत्ता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है या फिर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य या व्यक्ति स्वत: समाज का निर्माण कर लेता है। यदि किसी क्षेत्र विशेष का आम जनमानस निरक्षर है तो उस विशेष समुदाय की प्रगति के सम्बन्ध में कोई भी सकारात्मक बात सोची ही नही जा सकती। वर्तमान समय में शिक्षा को मानव जीवन का अभिन्न अंग स्वीकार किया जाने लगा है। शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जो मनुष्य के चहुमुखी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निवर्हण करती है। शिक्षा न केवल व्यक्ति का मानसिक विकास ही करती है बल्कि चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक चिन्तन, तर्क के मूल में भी शिक्षा ही होती है। अत: शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अथवा मानव समाज के विकास के सम्बन्ध में यर्थाथपूर्ण ढंग से सोचा ही नही जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व समुदाय को शिक्षित करने पर बल दिया जा रहा है। भारत सरकार भी शिक्षा के महत्व को समझ कर ही विभिन्न माध्यमों के द्वारा साक्षरता मिशन को सफल बनाने हेतु सकारात्मक प्रयास कर रही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा न केवल मानव के विकास के हित के लिये बल्कि समाज, देश और विश्व स्तरीय विकास के लिये भी महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अल्तेकर, ए०एस० (1956): द पॉजिशन ऑफ वोमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ 67, 87-109, 120
- अस्थाना, पी० (1974): हिस्ट्री ऑफ वीमेन्स मूवमेन्ट इन इन्डिया; विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 76, 94, 115
- ढींगरा, ओ०पी० (1983): वोमेन इन एम्प्लॉयमेन्ट, श्रीराम सेन्टर फॉर इन्डस्ट्रीयल रिलेशन, पृष्ठ 145
- गाँगुली, बी०एन० (1977): सोशल डवलपमेंट, नई दिल्ली, पृष्ठ 23, 57, 80, 105, 218
- गोपालकृष्ण टी०पी० (1970): कोडिफाइड हिन्दू लॉ; लॉ पब्लिशर्स इलाहाबाद, पृष्ठ 119

उदारवादी नेताओं के विचारधारा एवं कार्यक्रम (1885-1904)

डॉ० दिवाकर प्रसाद

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, के.डी.एस. कॉलेज, गोगरी, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर

शोध सार

भारतीय राष्ट्रवाद का ऐतिहासिक विकास, संघर्ष की तीन बड़ी लहरों से गुजरा है। इनमें से प्रत्येक लहर पहले की अपेक्षा अध्किा ऊँची थी और प्रत्येक लहर ने आंदोलन पर स्थाई चिन्ह छोड़े तथा एक नए दौर का सूत्रपात किया। भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारंभिक दौर ने केवल बड़े पूँजीपतिवर्ग का प्रतिनिधित्व किया जिसमें जमींदारों के प्रगतिशील तत्वय पए औद्योगिक पूँजीपतिवर्ग का प्रतिनिधित्व किया जिसमें जमींदारों के प्रगतिशील तत्व' नए औद्योगिक पूंजीपति और खुशहाल बुद्धिजीवी शामिल थे। 1914 के पहले के वर्षों में पहली बार इस शांत जल में उस समय हलचल पैदा हुई जब देश में बड़े पैमाने पर असंतोष की अभिव्यक्ति सामने आई। 1914-18 के युद्ध के बाद ही यह स्पष्ट हुआ कि राष्ट्रीय संघर्ष के इस इतिहास के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद आज अपनी शुरुआत के बाद से शक्ति के सर्वोच्च बिंदु पर पहुँचा, उसकी नींव बड़ी मजबूत से उदारवादियों के विचारधारा एवं कार्यक्रमों द्वारा रखा गया।

भूमिका

सन् 1885 से 1904 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी पर उदारवादी नेतृत्व का प्रभुत्व था। उदारवादियों के कार्य करने के तरीके के कारण ही उसके तेतृत्व का नामकरण "उदारवादी" हुआ। प्रमुख उदारवादी नेता थे- दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोज शाह मेहता गोपाल कृषण गोखले आदि। काँग्रेस के जन्म और उसके नीतियों एवं कार्यक्रम के प्रणेता यही नरमपंथी नेतृत्व थे। वस्तुत: कांग्रेस में आरंभिक युग में पैरोकार एवं सर्वसर्वा उदारवादी ही थे। वे कांग्रेस के पर्याय थे। बीस वर्षों तक राष्ट्रीय कांग्रेस अपने संस्थापकों द्वारा तैयार किए गए रास्ते पर चलती रही। इन बीस वर्षों में उसके प्रस्तावों में किसी भी रूप में स्वराज की बुनियादी मांग नहीं की गई, उसकी मांग केवल वहीं तक सीमित रही कि शासन की ब्रिटिश प्रणाली में ही भारतीयों का अधिक से अधिक प्रतितिधित्व हो। शुरू के नरमदली नेताओं का दृष्टिकोण नरमदली नेता श्री रमेशचंद्र दत्त द्वारा 1901 में भारत की जनता की माँग से स्पष्ट होता है -

'भारत की जनता अचानक होने वाले परिवर्तनों और क्रांतियों को पसंद नहीं करती है। उसे नए संविधान की कोई दरकार नहीं। भारत के लोग पहले से ही निर्धारित कर दिए गए तरीकों पर काम करना पसंद करते हैं। वे मौजूदा सरकार को बहुत मजबूत बनाना चाहते हैं और सरकार तथा जनता के बीच संपर्क और बढ़ाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि भारतीय मामलों के मंत्रालय से संबद्ध परिषद् में और वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में कुछ भारतीय सदस्य शामिल किए जाएँ जो भारतीय कृषि तथा उद्योग धंधों का प्रतिनिधित्व करें। वे चाहते हैं कि प्रत्येक सूबे के लिए बनी कार्यकारिणी परिषद् में भारतीय भी सदस्य की हैसियत से रहे। वे चाहते हैं कि प्रशासन संबंधी हर महत्वपूर्ण विचार विमर्श में भारतीय जनता के हितों का भी प्रतिनिधित्व हो। वे चाहते हैं कि साम्राज्यवाद तथा उसके विशाल सूबों का प्रशासन जनता के सहयोग से चलाया जाए।

ब्रिटेन के एक संसद डब्ल्यू. एस. केन ने, जिन्होंने कांग्रेस के 1889 के अधिवेशन में भाग लिया था, लिखा कि, मेरे चारों तरफ जो चार हजार भद्र जन बैठे हुए हैं, वे समूचे भारत के वकीलों, डाक्टरों, इंजीनियरों और लेखकों में से चुने हुए लोग हैं।' शुरू के

इन नरमदली नेताओं को अच्छी तरह पता था कि वे जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं और वे जनता के नाम पर भले ही उनकी बातें कहने की कोशिश करते रहे हों पर वे इस बात का दावा नहीं कर सकते थे कि उनकी आवाज जनता की आवाज है। शुरू के दिनों में कांग्रेस के मुख्य पथप्रदर्शक सर फीरोजशाह मेहता ने कहा था कि, 'निश्चय ही कांग्रेस जनता की आवाज नहीं है लेकिन पढ़े लिखे भारतीयों का यह कर्तव्य है कि वे जनता की शिकायतों को सामने लाएं और उनको दूर करने का सूझाव प्रस्तुत करें।' भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू था भारतीय जनता में एकता की भावना का बोध। उदारवादी इसमें बहुत हद तक सफल रहे। उदारवादी नेता इस विचार को भारतीय जनता में फैलाना चाहते थे। 1876 में सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने कहा, "क्या भारत की महानता एकता के बिना संभव है? पूरे भारत को स्नेह के बंधन में बाँधना है और एक-दूसरे से सहानुभूति रखते हुए जल्दी ही वह दिन आएगा जब भारतीयों की महानता पहचान ली जाएगी।" दादा भाई नौरोजी ने इस बात पर विशेष रूप से बल दिया कि विभिन्न धर्मों को मानने वाली जनता में एकता होनी चाहिए। उनके प्रचार के फलस्वरूप भारत के बुद्धिजीवी वर्ग में एकता की भावना पैदा हुई। उदारवादी नेताओं का मुख्य योगदान इसलिए भी है कि उन्होंने जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की पैरवी की। प्राक्-ब्रिटिश भारत की संस्थाओं का उन्होंने विरोध किया और व्यक्तिगत स्तंत्रता एवं सामाजिक न्याय जैसे उदारवादी पाश्चात्य सिद्धांतों को अपनाने पर जोर दिया। 'हिंदू समाज' अथवा 'रामराज्य' की स्थापना जैसे विचारों के स्थान पर आधुनिक राज्य के सिद्धांतों के आधार पर वे भारतीय समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। गौरवमय अतीत के स्थान पर वे सुंदर भविष्य की कल्पना करते थे। उनके विचार में भारतीय समाज में सुधार लाने में राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक था, इसी कारण गोखले ने 'सिविल विवाह विधेयक (ब्पअपस डंततपंहम ठपसस) का स्वागत किया। 1897 में इतिहास नेशनल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए सी. शंकरन नायर ने सामाजिक व्यवस्था पर उदारवादियों के विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया -

"हम अपनी सामाजिक प्रणाली में से वह सब-कुछ निकाल देना चाहते हैं जो उन्नति के रास्ते में बाधक हैं। हम पाश्चात्य सभ्यता से वह सब-कुछ ग्रहण करना चाहते हैं जो हमें अच्छा दिखाई देता है।" हिंदू धर्म में व्याप्त पृथक्करण (Isolation) - जो सामाजिक समागम एवं एकता से कार्य करने में बाधक हैं- को तोड़ने के लिए, निम्न वर्गों तक शिक्षा का लाभ पहुँचाने के लिए और स्त्रियों को पुरुषों के समान स्थान दिलवाने के लिए, हमें एक ऐसी कठोर धर्म-निरपेक्ष सरकारों की आवश्यकता है जो उदारवादी विचारधारा एवं प्रगति के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखती हो।"

उदारवादियों को ब्रिटिश जनतंत्रीय व्यवस्था में असीम आस्था थी। उनकी मान्यता थी कि ब्रिटिश शासन की स्थापना भारत में दैविक संयोग से हुई है। यह देश को स्वतंत्र, प्रगतिशील एवं प्रजातांत्रिक राष्ट्रीय अस्तित्व प्रदान करेगा। रानाडे के अनुसार 'भारत में अँग्रेजी शासन की सार्थकता यह है कि इसने इतने बड़े पैमाने पर नागरिक और सार्वजनिक क्रिया-कलापों के क्षेत्र में, राजनीतिक शिक्षा दी है। यह उस दैवी लक्ष्य और विधान के लिए सुयोग भी है।'' उदारवादियों ने भारतीयों की इंग्लैंड के प्रति वफादारी और उनकी देश भक्ति के बीच गहरा संबंध स्थापित करने में कभी असुविधा महसूस नहीं की। बनर्जी के अनुसार ''हम वफादार हैं और हम देशभक्त हैं। हम वफादार हैं क्योंकि हम देशभक्त हैं, क्योंकि हम जानते हैं और हमारा यह पक्का विश्वास है कि केवल ब्रिटिश सरकार के माध्यम से ही उन राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त किया जा सकता है जिनकी तीव्र अभिलाषा अँग्रेजी शिक्षा और अँग्रेजी शासन ने हममें उत्पन्न की है। अपनी परंपरागत उद्घोषणा में उन्होंने कहा, "ईश्वर भविष्य में हमारी वफादारी को और गहरा के, हमारी देशभक्ति को और प्रोत्साहित करे और ब्रिटिश साम्राज्य के साथ हमारे संबंधों को और अधिक दृढ़ करे।

उदारवादियों का विश्वास था कि भारतीयों को प्रतिनिधि सरकार के कार्य में प्रशिक्षित करने में ब्रिटेन भारतीय जनता का पथ-प्रदर्शन करेगा। 1895 में सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने कहा, "इंग्लैंड से हमें प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन की आशा है। इंग्लैड से वह महान आदेश आएगा जिससे हमारी जनता को मताधिकार मिलेगा। इंग्लैंड हमारा राजनीतिक नेता है।" प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेताओं ने सरकार के समक्ष जो कुछ राजनीतिक माँगे रखीं उन्हें गोखले ने सन् 1905 में निम्नलिखित श्रेणियों में रखा -

1. प्रशासन व्यवस्था में भारतीय जनता को अधिक-से-अधिक भागीदार बनाया जाना चाहिए, जिससे वह अपने मामलों पर स्वयं नियंत्रण रख सके। विधायी परिषदों में सुधार किया जाए।
2. कार्यपालिका और न्यायपालिका का पृथक्करण किया जाए।
3. वित्तीय व्यवस्था इस प्रकार की हो जिससे करदाता का बोझ कम हो, वित्तीयु ोतों की पुनर्व्यवस्था में सेना पर होने वाले खर्चे में कमी की जाए और भुमिकर-निर्धारण में नरमी बरती जाए।

4. भारतीय आम जनता की दशा सुधारने के लिए उचित कदम उठाए जाएँ। प्राथमिक शिक्षा को विस्तृत किया जाए, औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा की सुविधा दी जाए, सफाई में सुधार के लिए अधिकतम अनुदान दिया जाए और किसानों की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता को रोकने के लिए उचित कदम उठाए जाएँ।

उदारवादियों का विश्वास था कि भारत को अंतत: एक स्वशासी सरकार की माँग की दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए, किंतु इस दिशा में उन्होंने तत्काल स्वशासी सरकार की मांग नहीं की। उन्होंने इस दिशा में एक-एक कदम चलने का सुझाव दिया। प्रारंभ में उन्होंने विधान परिषदों के विस्तार और विभिन्न सुधारों के माध्यम से भारतीय जनता को सरकार में अधिक हिस्सा देने की मांग की क्योंकि 1861 के भारत कौंसिल अधिनियम (India Coucil Act) द्वारा कौंसिलों में जिन गैर-सरकारी लोगों को मनोनीत किया जाता था वे बड़े व्यापारी या जमींदार थे और वे सरकारी नीतियों के समर्थक थे। राष्ट्रवादियों ने विधान परिषदों के अधिकारों में वृद्धि की मांग की ताकि बजट पर बहस की जा सके और प्रशासन की समालोचना की जा सके। उनकी सबसे बड़ी मांग थी कि जनता के प्रतिनिधियों को परिषद का सदस्य बनाया जाए। बढ़ते दबाव के कारण 1892 में भारतीय विधान परिषद अधिनियम के द्वारा गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या में तो वृद्धि की गई लेकिन उन्हें केवल बजट पर बोलने का अधिकार मिला, उसपर मत देने का नहीं। असंतुष्ट उदारवादी नेतृत्व ने अब यह मांग करनी शुरू की कि जन-कोष पर गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यों का नियंत्रण होना चाहिए। अत: उन्होंने नारा दिया, 'प्रतिनिधित्व के बिना कराधान नहीं।' लेकिन उन्होंने आम जनता या स्त्रियों को मतदान का अधिकार दिलाने की मांग नहीं की। 19वीं शताब्दी की समाप्ति तक इन प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने ऑस्ट्रेलिया तथा कनाडा-जैसे स्वशासी उपनिवेशों की तरह भारत में भी पूर्णत: स्वशासी सरकार, स्व-नियंत्रित वित्त और विधान की मांग करनी शुरू कर दी। प्रारंभिक नेताओं की जिन विषयों में दिलचस्पी थी उनमें सेवाओं का भारतीयकरण भी शामिल था। उनके अनुसार विभिन्न प्रशासकीय एवं वित्तीय बुराईयों को तभी समाप्त किया जा सकता था जब अधिक-से-अधिक भारतीयों को सिविल सेवाओं में भरती किया जाए। गोखले कॉमन सभा के 2 जून, 1893 के उस प्रस्ताव को लागू करने की मांग की जिसके द्वारा भारत और इंग्लैंड में सेवाओं के लिए परीक्षा (Competitive Examination) साथ-साथ किया जाना चाहिए जिसका आधार विकेंद्रीकरण हो और न्यायिक कार्य केवल उन व्यक्तियों को दिये जाने चाहिए जिनका व्यवसाय कानून हो।

उदारवादी नेताओं ने कानून के शासन के विस्तार की मांग दो आधारों पर की। पहला आधार था न्यायिक व्यवस्था हो, कार्यपालिका का स्थान पालिका से पृथक्करण हो और दूसरे, देश के सभी भागों में न्यायिक सेवाओं में केवल उन लोगों को भरती किया जाए जिनका व्यवसाय कानून हो। ये दोनों ही आधार व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं कानून के शासन के प्रश्न से जुड़े हुए थे। इनकी राय में जब कार्यपालिका और न्यायपालिका से संबंधित शक्तियां एक ही व्यक्ति में निहित हो जाती है तब न्यायिक व्यवस्था उचित नहीं हो सकती। उदारवादियों ने यह भी मांग की कि जहाँ-जहाँ उच्च-न्यायालय नहीं है वहां वे स्थापित किए जाएं। उदाहरण के लिए उन्होंने उत्तरी पंजाब में उच्च न्यायालय की स्थापना की मांग की। इसके साथ ही उन्होंने यह भी मांग की कि जूरी द्वारा मुकद्दमों की सुनवाई के समय बंच के कम-से-कम आधे सदस्य भारतीय हों।

इन मांगों का उद्देश्य भारत में कानून के शासन का विस्तार था। इस विषय में लिखी गई बहुत-सी-पुस्तकों और अनेक भाषणों में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि कार्यपालिका और न्यायपालिका शक्ति का गठजोड़ कानूनी प्रक्रिया में कितना अधिक बाधा डालता है। उदारवादी राष्ट्रवादियों ने यह प्रयास किया कि स्वतंत्रता का संघर्ष शांतिपूर्वक और रक्त बहाए बिना होना चाहिए। राजनीतिक जन्नति नियम के अनुसार होनी चाहिए।

उदारवादी नेताओं ने आम जनता को राजनीतिक रूप से उदासीन थी, अत: राजनीतिक संघर्ष का कार्य उन्होंने केवल शिक्षित लोगों अथवा शिक्षित वर्गों तक ही सीमित बताया। उसका विश्वास था कि भारतीय जनता राजनीति में बिलकुल सक्रिय नहीं हो सकती। उदासीनता, अज्ञान, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पिछड़ेपन के कारण जनता में त्याग और लड़ने की शक्ति नहीं है। गोपालकृष्ण गोखले के शब्दों में ''भारत का विशाल जनसमूह उदासीन है। विभाजित है गरीब है और अज्ञानी है।" परिणामस्वरूप जनमत को राजनीतिक रूप से संगठित करने का काम इस युग में बहुत धीमा रहा। उदारवादियों का विश्वास था कि उग्र संघर्ष तभी संगठित किया जा सकता है जब समाज के विभन्नि वर्गों को एक राष्ट्र के सूत्र में बाँध दिया जाए और जनता में राजनीतिक जागृति उत्पन्न हो। इस प्रकार के आंदोलन में जनता के आधार का अभाव होने के कारण इनका राजनीतिक कार्य आंदोलनों और प्रचार तक ही सीमित रहा। उन्होंने यह महसूस किया कि अभी वह समय नहीं आया है जब विदेशी शासन को चुनौती दी जा सके क्योंकि ऐसा करने से उस समय चलाया जा रहा आंदोलन खत्म हो जाता। उदारवादियों का विचार था कि राजनीतिक अधिकार और स्वायत्त

शासन की समस्याओं का विकास धीरे-धीरे होना चाहिए, अत: उनके लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता लंबी क्रांति के फलस्वरूप नहीं अपितु धीरे-धीरे विकास के फलस्वरूप प्राप्त होगी। साथ ही यह विकास दबाव डालने से, बातचीत से, समझौता और रियायतों से संभव होगा।

उदारवादी मुख्यत: संविधानिक तरीकों में विश्वास रखते थे। यदि वे कोई भी मांग रखना चाहते थे या आंदोलन करना चाहते थे तो ये मांगे और आंदोलन भी कानून की सीमा के अंदर रहते हुए ही करना चाहते थे। यद्यपि समय बीतने के साथ उनकी मांगे धीरे-धीरे बढ़ती गई। वे आधुनिक राजनीतिक शिक्षा के द्वारा जन-चेतना उत्पन्न करना चाहते थे। उन्होंने जनता के सामने जो भाषण दिए या लेख लिखे वे उच्च बौद्धिक स्तर के थे और वे आम जनता के लिए संदेश के रूप में नहीं थे। उन्होने जो प्रस्ताव पास किए या ज्ञापन भेजे वे मध्यवर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व अधिक करते थे। समाचारपत्रों के माध्यम से उदारवादियों ने सरकारी नीतियों की आलोचना की। उन्होंने सरकार को तरह-तरह की चेतावनियाँ देते हुए जनता की माँगे उसके सामने पेश की। इन मांगो के माध्यम से उन्होने ब्रिटिश सरकार पर तो दबाव डालने की कोशिश की ही, ब्रिटिश जनता की भी सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की। वे प्रारंभिक राष्ट्रवादी यद्यपि सांविधानिक तरीकों में विश्वास रखते थे, फिर भी वे राष्ट्रव्यापी आंदोलन संगठिन नहीं कर सके।

निष्कर्ष

वस्तुत: उदारवादी अच्छी तरह जानते थे कि वह अंग्रेजी राज को चुनौती देने की स्थिति में नहीं है। इसके विपरीत वह अंग्रेजी राज को अपना सहयोगी समझता था। वह अंग्रेजी राज को अपना मुख्य दुश्मन नहीं समझता था। उसके लिए मुख्य दुश्मन थे: जनता का पिछड़ापन, देश में आधुनिक विकास की कमी, अज्ञान और अंधविश्वास की शक्तियां, और 'नौकरशाही' शासन व्यवस्था की कमियाँ जिनके कारण यह स्थिति पैदा हुई है। इन बुराइयों के विरूद्ध अपने संघर्ष में वे ब्रिटिश शासकों के सहयोग की आशा लगाए रहते थे। लेकिन उनके इस काम में ब्रिटिश साम्राज्य उनकी मदद करेगा यह विश्वास और आशा झूठी साबित होने लगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इन लोगों से ज्यादा बेहतर इस रूप में प्रगतिशील कार्य के महत्व को समझा और महसूस किया कि साम्राज्यवादी हितों और शोषण से अनिवार्यत: इसका आगे चलकर टकराव होगा। इसलिए शुरू के दिनों में कांग्रेस को जो संरक्षण मिला था वह संदेह और शत्रुता में बदल गया। कांग्रेस की स्थापना के तीन वर्षों के अंदर ही लार्ड डफरिन ने, जिनकी प्रेरणा से कांग्रेस की स्थापना हुई थी, बड़े अपमानजनक ढंग में कांग्रेस के बारे में कहा कि यह 'केवल मुटठी भर लोगों का' संगठन है। 1900 में लार्ड कर्जन ने भारतीय मामलों के मंत्री के पास एक पत्र में लिखा कि 'कांग्रेस अब लड़खड़ा कर गिरने ही वाली है और मेरी बड़ी महत्वाकांक्षाओं में से एक महत्वाकांक्षा यह भी है कि भारत में रहते हुए मैं इसकी शांतिपूर्ण मौत में मदद करूँ। इन सीमाओं के बावजूद राष्ट्रीय आंदोलन का रूपरेखा निर्धारित किया और स्वतंत्र भारत को वैचारिक आधार रखा।

सहायक ग्रंथ

1. रजनी पाम दळा, आज का भारत, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1977.
2. रमेशचंद्र दत्त, 1901, दि इकानामिक हिस्ट्री आफ इंडिया,' खंड 1 की भूमिका- इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल'.
3. रोनैल्डशे: 'लाइफ आफ लार्ड कर्जन', खंड 2.
4. डॉ. बी. पट्टाभि सीतारामय्या, हिस्ट्री आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस', 1935.
5. डॉ. सत्या एम. राय, भारत के उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्व निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1985.
6. श्रीमती बेसेंटय हाऊ इंडिया रॉट फॉर फ्रीडम, उद्धृत डा. बी. पट्टाभि सीतारमाय्या, हिस्ट्री आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस.
7. सुमित सरकार, आधतकन भारत 1885-1947, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति-एक अध्ययन

कौशल मणी

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, बी एन एम यू मधेपुरा।

सारांश

किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में स्त्रियों की दशा देखकर ज्ञात की जा सकती है। महिलाओं की स्थिति समय-समय पर देश काल के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। समय के साथ भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुये जिससे महिलाओं की स्थिति में दिन-प्रतिदिन गिरावट आती गई तथा गरीब महिलाओं पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा, क्योंकि सैकड़ों वर्षो की परतन्त्रता के कारण भारतवर्ष विश्व के सबसे गरीब देशों में से एक है। समाज के निमार्ण में महिलाओं की भूमिका उतनी ही प्रमुख है जितनी कि शरीर को जीवित रखने के लिये जल, वायु और भोजन हैं। स्त्रियां ही संतति की परम्परा में मुख्य भूमिका निभाती हैं फिर भी प्राचीन समाज से लेकर आधुनिक कहे जाने वाले समाज तक स्त्रियां उपेक्षित ही रही हैं। उन्हें कम से कम सुविधाओं, अधिकारों और उन्नति के अवसरों में रखा जाता रहा है, इसी कारण महिलाओं की परिस्थिति अत्यन्त निचले स्तर पर है। भारतीय समाज की परम्परागत व्यवस्था में महिलायें आजीवन पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में जीवन-यापन करती रही हैं। भारतीय संविधान में पुरूषों एवं महिलाओं को समाज दर्जा और अधिकार दिये जाने के बावजूद इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से महिलायें अभी पुरूषों से काफी पीछे हैं। भारतीय समाज में महिला आज भी कमजोर वर्गों में शामिल हैं महिला परिवार की आधारशिला है और समाजिक विकास बहुत कुछ उसी के सद्प्रयासों से सम्भव हैं। जिस समाज की महिलायें उपेक्षा ओर तिरस्कार का शिकार होती हैं वह समाज कभी प्रगति नहीं कर सकता।

कुंजी-समाज, महिला, देश, परिवर्तन

महिलाओं के ऊपर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक, व्यवसायिक एवं अन्य अनेक ऐसी निर्योग्यतायें लाद दी गई हैं जिसके कारण उन्हें जीवन में आगे बढ़ने एवं व्यक्तित्व का समुचित विकास करने का अवसर नहीं मिलता। ये निर्योग्यतायें उनके लिए बहुत बड़ी चुनोतियां एवं समस्यायें बनकर उभरी है। इन निर्योग्यताओं के कारण कार्य में दक्षता, योग्यता एवं कुशलता होने के बावजूद ये महिलायें न तो सार्वजनिक क्षेत्र में अपना योगदान कर सकती थी ओर न शिक्षा प्राप्त कर सकती थी, न उच्च संस्थानों में नौकरी कर सकती थी और न किसी प्रकार का धार्मिक कार्य बिना पुरूष के सम्पादित कर सकती थी। पुरूष वर्ग के साथ खानपान पर प्रतिबन्ध था। महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा के दरवाजे पूर्णतया बन्द थे जिससे उन्हें विवशतापूर्ण जिन्दगी घर की चहारदीवारी के अन्दर व्यतीत करनी पड़ती थी। इन्हें पढ़-लिखकर नौकरी करने के अधिकारों से वंचित रखा गया था। महिलाओं की बदतर स्थिति के लिए मूलरूप से ही लड़कों, लड़कियों को संस्कार रूप में मिलने वाली सोच जिम्मेदार है, उसके बाद पारिवारिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक परम्परायें, मूल्य तथा रीति- रिवाज इस दृष्टिकोंण की ओर पुष्टि करते हैं। अत: इस सोच में बदलाव लाना महिला विकास की सबसे बड़ी चुनौती हैं।

स्वामी विवेकानन्द के कथनानुसार कोई राष्ट्र तब तक अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता जब तक कि उसका प्रत्येक नागरिक राष्ट्र के विकास में भागीदार नहीं बनता।

इस प्रकार स्त्री एक अच्छे राष्ट्र का स्रोत होती है। विद्या से ही व्यक्ति संकीर्ण मानसिकता और रूढ़िवादिता की जंजीरों को तोड़ सकता है। यदि स्त्री शिक्षित है तो पूरा परिवार शिक्षित होता है। शिक्षा ही हमें सामाजिक भेदभाव और ऊँच-नीच की भावनाओं से

उबारने का काम करती हैं। इसलिये स्त्रियों का शिक्षित होना बहुत आवश्यक होता जाता है क्योंकि उसके विचार ही उसके बच्चे होते हैं अगर वह अपने बच्चों को इन रूढ़िगत विचारों से दूर रखें और यह बताये कि कोई छोटा या बड़ा नहीं होता। व्यक्ति के कार्य और विचार ही उसे छोटा या बड़ा बनाते हैं। यदि माता अपने बच्चों में जाति-भेद और धर्म-भेद रहित विचारों का बीजारोपण करे तो आगे चलकर वह एक ऐसा वृक्ष बनेगा जिसमें सामाजिक-समरसता से पूर्ण फल लगेंगे जो बिना किसी भेदभाव के छाया भी प्रदान करेगा।

इस प्रकार एक शिक्षित स्त्री एक शिक्षित देश को जन्म देती है। यदि हम इतिहास पर नजर डालें तो हमें ऐसी बहुत सी विदुषी स्त्रियों के नाम मिल जायेंगे जिन्होनें अपनी विद्यता का लोहा मनवाया था और इस प्रकार इतिहास में अपना नाम अमर करवा लिया था। ऐसी स्त्रियों में अपाला, घोषा, गोपा, सावित्री, मैत्रेयी और गार्गी जैसी अन्य अनेक स्त्रियों के नाम मिलते हैं जिन्होने विद्यार्जन कर स्त्रियों के अस्तित्व को गौरव प्रदान किया था। उनकी शक्ति थी। उनकी विद्या, लेकिन बाद के कालों में उनकी यह शक्ति उनसे छीनी जाने लगी। उन्हें विद्या से रहित कर दिया गया और यही उनकी स्थिति की अवनत का कारण बना। देखा जाये तो आज भी वो स्थिति प्राप्त नहीं कर पाई है। हालांकि कुछ हद तक उसने अपने को उबारा है, लेकिन अभी भी पूर्णरूपेण उन्नति होना बाकी है। सामाजिक कुरीतियों का उसे शिकार बनाया गया। छोटी उम्र में विवाह प्रारम्भ हुये, उपनयन संस्कार से उसे वंचित किया जाने लगा, फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व कुंठित हो गया है। बाल-विवाह के कारण शिक्षा उससे छिन गई और तब यह केवल संभ्रान्त परिवारों की स्त्रियों तक ही सीमित हो गई या पुरूष की संकीर्ण मानसिकता, स्त्री को शिक्षा से वंचित होना पड़ा जिसके कारण वह पर्दा-प्रथा, सती प्रथा, नियोग-प्रथा आदि अनेक बुराईयों की बेड़ियां काटने में असक्षम हो गई क्योंकि उसका हथियार 'शिक्षा' उससे छीना जा चुका था। शिक्षा जो कि सिर्फ सर्वांगीण विकास ही नहीं करती बल्कि हमें समाज में व्याप्त बुराईयों से लड़ने की शक्ति भी प्रदान करती है। वो हमें अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती है।

अनेक समाजशास्त्रियों, जनसंख्यावादियों तथा शिक्षावादियों ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का अनुभवात्मक अध्ययन किया है तथा अपने विश्लेषण के द्वारा महिलाओं की सामाजिक, व्यवसायिक गतिशीलता तथा पुरूषों के समान शैक्षणिक व सामाजिक अधिकार, परिवार में निर्णय निधार्रक भूमिका तथा प्रदत्त परिस्थिति को नकार कर, अर्जित प्रस्थिति द्वारा अपनी क्षमता के नये आयामों को उद्घाटित करने, के संदर्भ में विभिन्न समाजशास्त्रियों,जनसंख्यावादियों तथा शिक्षावादियों के साहित्य का अवलोकन किया गया है जिसमें इनके अध्ययन के निष्कर्षो का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मीनाक्षी मुखर्जी (1988) का मत है कि पुरूषों से स्वतंत्र स्त्रियों की पहचान की अभिव्यक्ति वैचारिक दृष्टि से सम्भव है परन्तु व्यवहारिक तौर पर नहीं। एक पुरूष की अपेक्षा एक स्त्री के लिये सामाजिक अनुपालन अधिक आवश्यक है। सामान्यत: एक महिला की पहचान स्वंय और अन्य लोगों के द्वारा पुरूषों के साथ एक पुत्री, एक पत्नी और एक माँ के रूप में की जाती है।

मीनाक्षी का मानना है कि परिवार ही स्त्रियों को गुलाम बनाने वाली संस्था नहीं है। समाज की प्रकृति ही ऐसी है कि जिसमें स्त्रियों के साथ अनुदार रूप में व्यवहार किया जाता है।

माग्रेट कारमैक (1779) ने विश्वविद्यालय की 500 छात्राओं के अध्ययन के दौरान पाया कि लड़कियां कॉलेज जाना और लड़कों से मित्रता करना चाहती थीं लेकिन वे ये भी चाहती थीं कि उनका विवाह उनके माता-पिता तय करें। वे अपनी नव स्वतंत्रता का भोग भी करना चाहती हैं लेकिन साथ ही साथ पुराने मूल्यों को भी बनाये रखना चाहती हैं।

गोविन्द केलकर (1981) ने अपने अध्ययन में पाया कि हरित क्रान्ति वाले क्षेत्र पंजाब में स्त्रियों को दिन-भर कामकाज के बाद पति की सेवा भी करनी पड़ती है। स्त्री द्वारा उलटकर जवाब देना, ठीक तरह से भोजन न परोसना या कभी-कभी पारिवारिक मामलों में बोलना उनका अपराध माना जाता है और इसके लिये उनकी पिटाई भी होती है।

कॉपर ने कानून की नजर में महिलाओं की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस अध्ययन के आधार पर महिलाओं की संवैधानिक स्थिति, प्रभुता, अधिकार, सम्पन्नता, कानूनी शक्ति इत्यादि को समझा जा सकता है। वस्तुत: महिलाओं की परिस्थिति को उच्च बनाने की दृष्टि से इनके पक्ष में कानून निर्मित किये गये हैं, किन्तु भारतवर्ष में पुरूष प्रधान समाज होने के कारण भारतीय महिलाओं का एक प्रमुख एवं विचारणीय भाग कानून के प्राविधान से अनभिज्ञ रह गया है फिर भी भारतीय समाज की उच्च वर्गीय महिलाओं ने इसका लाभ उठाकर अपनी सामाजिक परिस्थिति को उच्च किया है।

समाज में महिलाओं की जिम्मेदारियों के महत्व को आम तौर पर तब ध्यान में रखा जाता है जब वे कुछ निश्चित वातावरण में काम करती हैं ओर अन्य गतिविधियों में भाग लेती हैं, जैसे कि सामाजिक कार्य और उस तरह की अन्य चीजें। पिछले कई दशकों में पारिवारिक संरचनाओं में जो मुख्य परिवर्तन और रूझान हुए हैं, वे सर्वविदित हैं। एकल परिवार अधिक आम हो गए हैं, जब बच्चों को पालने के लिए महिलाएं पूरी तरह जिम्मेदार हैं। वे अन्य कार्य विकल्पों में संलग्न हो सकते हैं या नहीं भी कर सकते

हैं। घर में महिलाओं की प्राथमिक जिम्मेदारियां अपनी संतानों को सांस्कृतिक मूल्यों, सिद्धांतों और विश्वासों को प्रदान करने पर केंद्रित होती हैं, जो तब उनके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करती हैं। समाज में महिलाओं की जिम्मेदारियां सामाजिक निष्पक्षता, मानव विकास को बढ़ावा देने और नीति-प्रेरित परिवर्तन पर प्रभाव डालने के लिए समर्पित हैं। भारत में राजनीतिक-धार्मिक समाज और संस्थाएं महिलाओं की समस्याओं के लिए नीति-समर्थन के लिए अद्वितीय बाधाएं प्रदान करती हैं। भारत में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के दौरान, महिला सामाजिक कार्यकर्ताओं को सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में विभिन्न लिंग पदों से चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। लिंग अधारित सामाजिक ढांचे का परिवर्तन और राज्य की नीतियों द्वारा शासित विभिन्न संगठनों और संस्थानों के साथ टकराव इस प्रकार महिलाओं की चिंताओं पर नीति-समर्थन द्वारा निहित है। इसलिए, यह कहा जाता है कि महिलाओं को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि वे मानदंडों का पालन करें और समाज में किसी भी स्थिति को निभाते हुए व्यक्तिगत और सांप्रदायिक कल्याण को व्यवस्थित तरीके से बढ़ावा दें।

महिलाएं अपनी शैक्षिक पृष्ठभूमि, कौशल, प्रतिभा और व्यक्तित्व विशेषताओं के आधार पर रोजगार के विकल्प खोजने में सक्षम हैं। जब वे विभिन्न प्रकार की कार्य संभावनाओं में भाग लेती हैं तो महिलाओं के कुछ कर्तव्य होते हैं। शोध के अनुसार, महिलाएं अक्सर अपने परिवार और घर से ऊपर अपनी नौकरी को प्राथमिकता देती हैं। कई अलग-अलग प्रकार की महिलाएं ज्यादातर आर्थिक संभावनाओं की तलाश में ग्रामीण और अलग-अलग क्षेत्रों से महानगरीय क्षेत्रों में जाती हैं। उन्हें अंतराष्ट्रीय और घरेलू प्रवास में सक्रिय अभिनेताओं के रूप में भी देखा जाता है (2004) विकास में महिलाओं की भूमिका पर विश्व सर्वेक्षण, (2006) महिलाएं अक्सर अपनी क्षमताओं और चरित्र होती हैं। काम की तलाश करते समय विचार करने वाले महत्वपूर्ण कारकों में से एक यह है कि इसे किसी की जरूरतों, प्रतिभाओं, मांगों और आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाना चाहिए। केवल जब किसी के पास काम की जिम्मेदारियों के बारे में पर्याप्त ज्ञान और समझ होगी, तो वे पेशेवर और व्यक्तिगत दोनों उद्येश्यों को पूरा करने में सक्षम होंगे।

निष्कर्ष

समाज के भीतर, महिलाओं को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, ढांचागत और क्षमता-निर्माण के मुद्दे ऐसे हैं जो उनके जुड़ाव को प्रभावित कर रहे हैं। महिलाएं समाज में कई तरह की भूमिकाएं निभाती हैं, जिसमें कोचिंग कक्षाएं पढ़ाना, स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं प्रदान करना, परामर्श और मार्गदर्शन, पाठयेतर गतिविधियां, दान करना, घटनाओं और गतिविधियों की योजना बनाना, अपराध और हिंसा को कम करना, कुपोषण को कम करना, बुजुर्गो की देखभाल करना, और ज्ञान का प्रसार करना शामिल है। और जागरूकता पैदा कर रहा है। उनके वित्त की स्थिति, स्वास्थ्य, जहां वे रहते हैं, शिक्षा का स्तर, कौशल और प्रतिभा, साथ ही साथ उनके वंश और रूचियां, सभी पर प्रभाव पड़ता है कि महिलाएं विभिन्न पदों पर कितना अच्छा प्रदर्शन करती है कि महिलाएं विभिन्न पदों पर कितना अच्छा प्रदर्शन करती हैं। उनके लिए यह आवश्यक है कि वे संसाधनों का उचित उपयोग करें, कि जब भी वे किसी कर्तव्य और गतिविधियों के निष्पादन में लगे हों , तो वे अपने प्रयासों और क्षमताओं के माध्यम से अपने कल्याण को बढ़ाने के लिए उनसे लाभान्वित हो सकें।

संदर्भ

1. धस्के, जी (2016) . । भारत में महिलाओं के मुद्यों पर नीति समर्थन:चुनौतियों की खोज
2. सामाजिक कार्य। क्रिटिकल सोशल वर्क , 17(1) 1-15. 12 फरवरी, 2019 को लिया गया
3. देसाई, एम। (2010)। होप इन हार्ड टाइम्स: वीमेन्स एम् पावरमेंट एंड ह्यूमन डेवलपमेंट। मानव विकास अनुसंधान पत्र 2010/14।
4. फतिमा। (2010)। आर्थिक विकास के निर्धारक के रूप में महिला शिक्षा (पाकिस्तान का एक केस स्टडी)। एप्लाइड इकोनॉमिक पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन।
5. ग्रुनेफेल्डर। (2013)। लिंग संबंध: पाकिस्तान में मुस्लिम महिला और औपचारिक रोजगार।
6. हबीब और दालचीनी। (2015)। इजराइली अरब महिलाओं के बीच काम और उच्च शिक्षा की अवधारणा। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन रिसर्च।
7. सोहेल, एम। (2014)। महिला सशक्तिकरण और आर्थिक विकास पाकिस्तान में एक खोजपूर्ण अध्ययन। विकासशील देशों का अध्ययन, (9)4, 163-170.

उच्च विद्यालय के संदर्भ में शिक्षक-शिक्षिकाओं के सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं शिक्षक प्रभावकारिता का अध्ययन

डॉ० मसउद आलम खान

एसोसिएट प्रोफेसर, डॉ० जाकिर हुसैन टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, लहेरियासराय, दरभंगा

मो० मंसूर आलम

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा

वर्तमान में सामाजिक व्यवस्थाओं को देखते हुए ऐसा लगता है कि "अपराध युग'' का आगमन हो चुका है और हमारी जैनरेशन उसका हिस्सा बन गई है। अपराधिक गतिविधियों ने किसी एक समाज, धर्म समुदाय या देश को ही नहीं जकड़ा वरन पूरी वैश्विक व्यवस्था को ही अपना शिकार बना लिया है। जो अपराध के दिन-प्रति दिन नए स्वरूप की चुनौतियाँ पेश कर रहे हैं। ऐसी बढ़ती हुई अपराधिक प्रवृत्तियों को देखकर लगता है कि हम कहाँ जा रहे हैं और कहाँ पर रुकेंगे?

यदि रुकेंगे तो कैसे रुकेंगे? क्या हम जिस नियम, शासन, प्रशासन, व्यवस्था से चल रहे हैं? क्या यह हमें सभ्य समाज बनाने में मद्दगार साबित होगी? या फिर हमें नए तरीके से सोचना होगा। यह समय जबरदस्त विसंगतियों की चपेट में हैं तेजी से बदलते हुए परिदृश्यों ने देश के वैचारिक मानचित्र पर कई ऐसी रेखायें खींच दी हैं जिनकी व्याख्या जटिल है और इस जटिलता के केन्द्र में लगभग आहत होने की सीमा तक घिरी हुई है, आज की उच्च शिक्षा।

लक्ष्यविहीन प्रगति और संकल्प विहीन प्रयास ने हमारी पूरी शिक्षा संरचना दृष्टि को उलझाकर रख दिया है। यह देश बहुस्तरीय चिंतन किन्तु बहुसंकोची प्रयोग की परम्पराओं का देश है उदात्ततम चिंतन प्रवाहों के होते हुए भी बहुधा उसे व्यवहार रूप में परिणत करने में हम चूक जाते है। नयी सदी के साथ स्वाभाविक रूप से विकास के तंतुओं पर परिवर्तनों की छाप पड़ी किन्तु जटिल अंतधार्राओं वाले प्रगति के प्राय: हर सोपान पर शिक्षा को बार-बार 'पानीपत' बनना पड़ा।

किसी सक्रिय समाज में उच्च शिक्षा की अवधारणायें उस समाज की अपेक्षाओं, ईमानदारियों बेहतर जीवन मूल्यों और व्यावहारिक जीवन की जरूरतों से जोड़कर रची जाती रही है। उच्चशिक्षित व्यक्ति समाज में मानक के तौर पर देखा जाता है उसकी स्थिति, आचरण और व्यवहार, शिक्षा से वंचित लोगों के लिए आश्वस्ति का स्रोत बनता है। वह न केवल आर्थिक सम्पन्नता की गारंटी माना जाता रहा है वरन् मानवीय रिश्तों को न्यायपूर्ण विधि सम्मत, संवेदनशील भावप्रवण और सहयोगी भाव के विकास का द्योतक भी रहा है। एक समाज जिन तत्वों के साथ बेहतर हो सकता है। माना जाता है कि उच्च शिक्षा उन तत्वों को परिपुष्ट करती है लेकिन जिस देश में चार करोड़ सैंतीस लाख पंजीकृत बेरोजगार हो उसमें जीवन के उच्चादर्शो और आश्वस्ति के स्रोतों की नयी व्याख्या और नया विश्लेषण होना चाहिये।

आज के इस दौर की यह घाव की तरह रिसती हुई विडम्बना है कि एक ओर यह देश तेजी से विकास कर रहा है और दूसरी ओर उतनी ही तेजी से बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है। हम तकनीकी विकास के दौर के हर अगले क्षण में नये सिरे से विभिन्न

स्तरों पर पीछे की तरफ उद्दात के भी शिकार हो रहे हैं। करीब एक दशक पूर्व उदारीकरण एक चमकता हुआ शब्द था आज यह जलता हुआ तवा बन चुका है। इस दौरान उदार नियमों के तहत और मुक्त बाजार की अनिवार्यता के हिसाब से कम्पनियाँ को सुविधायें मिली। विदेशी निवेश के लिए आर्थिक प्रसाद के सिंह द्वार खोल दिये गये। लगभग बेअसर हो चुके श्रम कानूनों को उदार बनाया गया तथा सभी मंचों से रोजगार के नये-नये झुनझुने बजाये गये आश्वासन बांटे गये लेकिन हुआ उल्टा। बेरोजगारी अनियंत्रित होकर बढ़ी और पिछले दस सालों में बेरोजगारों की संख्या में लगभग एक करोड़ की वृद्धि हो गयी। यह जितना विचार का विषय है उतना ही चिंता का भी।

हमारे पास कुछ चिन्ताजनक आंकड़े हैं। पहले बेरोजगारी के आंकड़े देखे-सन् 1990 में देश में बेरोजगारों की संख्या लगभग तीन करोड़ छियालिस लाख थी और सन् 2000 में यह संख्या बढ़कर चार करोड़ सैतीस लाख हो गयी। एक ओर बेरोजगारों की यह संख्या बढ़ी तो दूसरी ओर नौकरियों की रिक्तियाँ कम होती गयीं। सन् 1990 में 4 लाख 90 हजार रिक्तियाँ निकलीं जो सन् 1999 में घटकर मात्र 3 लाख 30 हजार रह गयीं। इसी दौरान महिला बेरोजगारों की संख्या भी बढ़ी और यह 21.7 प्रतिशत से 28. 8 प्रतिशत हो गया। यह तब हुआ है जब लड़कियों की शिक्षा और नौकरी का ढिंढोरा खूब पीटा जा रहा है। इस बेरोजगारी के भयावह आंकड़े के समान्तर विडम्बनात्मक स्थिति यह रहीं कि विभिन्न माध्यमों ने उच्च और तकनीकी शिक्षा पर भारी धनराशि आवंटित की।

सन् 1999 और 2000 के बजट में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, वैज्ञानिक शोध सुदृढ़ीकरण कार्यक्रम, अध्यापकों के वेतन में सुधार, भारतीय समाजविज्ञान शोध परिषद, भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद, ग्रामीण विश्वविद्यालय शिक्षण कॉमनवेल्थ, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद, पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं के उन्नयन, शास्त्री भारत कनाडायी संस्थान और अन्य कार्यक्रम के मद पर 20164.65 करोड़ रू0 निर्धारित किये गये किन्तु सन् 2000 और 2001 के बजट में यह राशि 20128.78 करोड़ रुपये कर दी गयी। चालू बजट में उच्च और तकनीकी शिक्षा पर कुल 30234.30 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है लेकिन यह भारी भरकम धनराशि भी करीब प्रतिवर्ष 13 लाख बेरोजगारों को बढ़ने से रोक पाने में असमर्थ साबित हो रही है।

शिक्षा जीवनमूल्य है तथा व्यक्ति और समाज को मानसिक और भौतिक धरातल पर बेहतर बनाने का उपकरण भी लेकिन विसंगति यह है कि यह उपकरण भी स्वतन्त्र नहीं है कभी सत्ता तो कभी समाज नियंता शक्तियाँ इस उपकरण को अपने रंग और ढंग में प्रयुक्त करती रही है और ऐसी ऐसे मौकों पर समाज नियंता ताकतें और सत्ता के स्वार्थ प्रायः एक हो जाते रहे हैं। जिस गति से देश की आबादी बढ़ रही है उसमें शिक्षा को व्यवस्थित करने और विकसित करने के लिए चमत्कारिक ढंग से काम करने होंगे। जनसंख्या बढ़ने की गति यदि यही रही हो काम करने होंगे। जनसंख्या बढ़ने की गति यदि यही रही तो अगले पन्द्रह वर्षों में हमें उच्च शिक्षा के लिए करीब 27 हजार नये कालेज और विश्वविद्यालय खोलने पड़ेगें। एक उच्च शिक्षा संस्थान खोलने की लागत करीब 40 लाख आयेगी और इस तरह करीब 50 हजार करीब 40 लाख आयेगी और इस तरह करीब 50 हजार करोड़ रुपये की व्यवस्था करनी होगी। ये आंकड़े भयावह है। क्या कोई देश इतनी तेजी से ऐसी आकाशीय सम्पन्नता प्राप्त कर सकता है? शायद नहीं। उपरोक्त खर्च केवल पूंजी व्यय है। शिक्षा के रेकरिंग खर्च इसके अलावा है। यहां मेरा मंतव्य आंकड़ों की कविता करने का नहीं है किन्तु आज के दौर में किसी भी उपलब्धि को लाभ हानि से तौलने की एक परिपाटी बन गयी है और यह परिपाटी अब शिक्षा पर हो रहे सोच को भी चौतरफा प्रभावित कर रही है।

यह एक अप्रिय सत्य है कि उच्च शिक्षा का सम्पूर्ण क्षेत्र मंडियों, दुकानों और कारखानों में तब्दील हो गया हैं। यहां से जो सामान निकल रहा है उसकी कीमत पैसे में कितना है, यह आंका जाता है। तमाम शिक्षा संस्थान प्रतिभायें नहीं, समाज के सपने नहीं, समाज के दुःख सुख के सहभागी नहीं, बदलते दौर के सहयात्री नहीं, डिब्बा बंद सामान तैयार करने की होड़ में लगे हुए है। कुछ संस्थान तो केवल इसमें लगे हैं कि छात्रों के दिमाग में कुछ ऐसा जादू डाल दिया जाये, उन्हें मैनेजमेन्ट की ऐसी कला सिखा दी जाये कि वे काले को सफेद और सफेद को काला करने में महारत हासिल कर लें। जो संस्थान इस क्रूर स्पर्धा में निचले पायदान पर हैं वे दीन-हीन भाव में अपने छात्रों को 'जुगाड़ की कला' सिखाने में जुटे हुए है। प्रतियोगिता का एक वर्ग है जो अपने दाम्भिक सामान्य ज्ञान के जरिये प्रबन्धन के प्रमाणपत्रों के मार्फत और तकनीकी जानकारी की सीढ़ियों पर चढ़कर सातवें आसमान की कुंडियाँ खटखटा रहा है और प्रतियोगितयों का ही दूसरा वर्ग है जो इस महंगी शिक्षा में टूटा मनोबल लेकर जुगाड़ का कौशल सीखने में

जीजान से जुटा हुआ है। भयानक बेरोजगारी के इस वक्त में ये दोनों वर्ग या दोनों प्रतिभायें किसी आलोचना या टीक, टिप्पणी की पात्र नहीं है। घर से लेकर के विद्यालय महाविद्यालय तक विद्यार्थी और उसका परिवार सिर्फ एक चिन्ता में डूबता रहता है कि किसी तरह कोई एक डिग्री मिल जाये और ठीकठाक नौकरी का जुगाड़ लग जाये। जून की धूप की तरह, तन मन को जलाती सच्चाई यह है कि शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षालय से बना पूरा शिक्षा तंत्र, चरमरा रहा है और हमारी पूरी उच्च शिक्षा व्यवस्था विपन्नों को और विपन्न बना रही है तथा जिन हाथों में दोहन की क्षमता है, उन्हें मजबूत कर रही है। शिक्षा बहुत तेजी से अपने सामाजिक सरोकार से दूर हटती जा रही है।

बाजार और माल की असंवेदनशील परिभाषा में व्यक्ति और समाज अनुपस्थित होते जा रहे हैं। उच्च शिक्षा पर सरकारी और गैरसरकारी खर्च को लेकर भी देश में लगातार अनिर्णय और ऊहापोह की स्थिति रही है। सरकार के स्तर पर शिक्षा पर विचार और चर्चा महज मौद्रिक आंकड़ों तक सीमित रह गयी हैं समाज के स्तर पर उच्च शिक्षित व्यक्ति बेहद अकेला, अविश्वसनीय और लगभग नकारा मान लिया गया है। शिक्षा की सामाजिक आर्थिक चुनौतियाँ बहुआयामी है। यह आश्चर्यजनक है कि एक ओर हथियारों की खरीद फरोख्त पर सरकारी व्यय में वृद्धि हुई है तो दूसरी ओर शिक्षा के मद में विशेषकर उच्च शिक्षा के मद में लगातार कटौती होती रही है। अजीब यह है कि उच्च शिक्षा बजट में कटौती इसलिए नहीं की जा रही है कि उसे प्राथमिक शिक्षा पर खर्च किया जायेगा। सच्चाई यह है कि वित्तीय घाटे को काबू में करने के लिए उच्च शिक्षा को फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जा सका है। समाज और सरकार जब उच्च शिक्षा का स्वभाव और चरित्र नियन्त्रित नहीं कर पाते तब स्वाभावित गति से समय और आज की शब्दावली में कहें तो बाजार उच्च शिक्षा की प्राथमिकतायें तय कर देता है। यहाँ से शिक्षा जो बाजार के नियम तय करती है। आज आचार है और निर्मम बाजार शिक्षा के मूल्यों और प्रतिमानों को अपने ढंग से निर्धारित, परिभाषित और व्याख्यायित कर रहा है। इस नयी शती में यह गति हर महीने ज्यादा जोर पकड़ती जा रही है। हर शहर में व्यावसायिक और रोजगारोन्मुख शिक्षा की देशी विदेशी दुकाने धड़ल्ले से खुल रही है, जहाँ ऊँची फीस लेकर डिग्रियाँ बांटी या तो कह लीजिये फेंकी जा रही हैं कोई ऐसा तन्त्र या कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जो यह देख सके के शिक्षा की इन विशाल गुमटियों में उपर्युक्त सुविधायें, योग्य प्रशिक्षित अध्यापक और समाजोपयोगी पाठ्यक्रम हैं भी या नहीं। समाज का एक बड़ा हिस्सा शिक्षा के इस बाजार की मेढ़ के बाहर फेंक दिया गया है। रूपक की भाषा में कहें तो किसी मेले में भीड़ गुम हो गयी है और एक बच्चा अकेला पड़ गया है। शिक्षा अपने साथ एक सामाजिक ताना-बाना, परम्परा, संवेग और संवेदना लेकर चलती है।

व्यापक समाज को समय के साथ दौड़ने में शिक्षा पहिया बनकर उसका साथ देती है, लेकिन आज जो स्थिति है उसमें समाजसेवी रेलगाड़ी बिना पहिए के अनियन्त्रित दिशा में भाग रही है। जहाँ तक उच्च शिक्षा की बात है इस नयी सदी में उच्च शिक्षा का परिदृश्य बहुत तेजी से बदल रहा है। आज से एक डेढ़ दशक पहले तक उच्च शिक्षा पर मोटे रूप में भद्र समाज और मध्यवर्गीय तबको का कब्जा था, किन्तु पांच, सात वर्षों में यह परिदृश्य लगभग पूरी तरह से बदला दिख रहा है। समाज के कमजोर वर्गो, पिछड़ों दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों और महिला ओं का एक बड़ा हिस्सा उच्च शिक्षा संस्थानों के परिसरों में पहुंच रहा है। इन शिक्षा-संस्थानों का बाहरी और आंतरिक कलेवर भी इसी गति और मात्रा में बदल रहा है। समाज के कमजोर वर्गों के लिए उच्च शिक्षा आज एक नयी ताकत बन रही है लेकिन आज के शिखा जगत में जिस तरह मुद्रा का वर्चस्व बढ़ा है उसमें समाज का यह नवाजाग्रत तबका एक बार फिर अंधेरे कोने की ओर ढकेला जा सकता है। यह नयी शती की शायद सर्वाधिक खतरनाक चुनौती है। आर्थिक रूप से कमजोर तबके को उच्च शिक्षा से वंचित रखने का कुचक्र हमारे पारम्परिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक ताने-बाने को बदल देगा और शिक्षा की उपलब्धियों को एक बार फिर छोटे दाये में कैद करेगा। यह समय का दबाव भी है और उसकी जरूरत भी। दरअसल उच्च शिक्षा को आम जनता नौकरी, रोजगार, धंधे का साधन मानती है किन्तु अब उच्च शिक्षा और रोजगार का सीधा सम्बन्ध टूटता जा रहा है। रोजगार परक शिक्षा का नारा अभी तक खोखला ही साबित हुआ है। उच्च शिक्षा के अनियोजित विस्तार और तद्नुरूप नौकरी के अवसरों में वृद्धि न होने के कारण, शिक्षा, शिक्षार्थी और समाज के आपसी रिश्ते अवसादग्रस्त हुए हैं।

शिक्षा में न केवल यांत्रिकता बढ़ी है वरन् कभी-कभी तो लगता है कि पूरी उच्च शिक्षा महज यांत्रिक औपचारिकता बनकर रह गयी है। एक बार हमें नये सिरे से यह सोचना और तय करना होगा कि उच्चशिक्षा का अंततः मूल उद्देश्य क्या है? यह तो तय है कि जो शिक्षा आर्थिक प्रवंचनाओं के खिलाफ हथियार नहीं बनेगी समाज उससे कितना भी मोहासक्त हो, समय उसे केंचुल की तरह उतारकर आगे बढ़ जायेगा। सरल शब्दावली में इसका मतलब है यह हुआ कि जो शिक्षा समाज की आर्थिक उपलब्धियों में

बढ़ोत्तरी और उसका न्यायोचित बंटवारा नहीं करेगी। व्यक्ति के लिए भरपेट रोटी का इंतजाम न कर सकेगी उसे अब कोई भी समाज ढो नहीं सकेगा। यहीं पर एक प्रश्न भी बड़े ही विनम्र मुद्रा में उपस्थित होता है कि क्या उच्च शिक्षा का कार्य केवल पेट भरना है? यह सही है कि किसी भी समाज में "रामराज्य" स्थापित नहीं किया जा सकता, लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि समाज को अपराध की आग में झुलसता छोड़ दिया जाय। हम मानते हैं कि अपराध विहीन समाज नहीं बनाया जा सकता क्योंकि पागलपन तो किसी में भी और कभी भी सवार हो सकता है, तो क्या ऐसा मान लिया जाए कि जहाँ अरबों की आबादी है वहाँ लाखों अपराधी होना कोई बड़ी बात नहीं है। नहीं हमें विचार करना होगा और उन आपराधिक गतिविधियों की जड़ पर जाना होगा जहाँ इनके कोपल उगते हैं। आखिर वह कौन सा माध्यम होगा जिसके सहारे हम वहाँ पहुँच सकते हैं? तो ऐसे में शिक्षा और जागरूकता ही प्राथमिक माध्यम समझ में आता है, उन गतिविधियों की जड़ तक पहुँचने के लिए। हम मानते हैं कि आर्थिक असमानता भी अपराधिक प्रवृत्तियों को जन्म देती है। जैसे कहते हैं कि "भूख की आग संस्कृति को खा जाती है"। लेकिन यह तो अपराध का एक विशेष प्रकार है, अब तो बिना काम किए शान-ओ-शौकत की जिन्दगी जीने की प्रवृत्तियाँ भी आपराधिक गतिविधियों को बढ़ावा दे रही हैं। फिल्म, टी0वी0 सीरियल की काल्पनिक कहानियों का सहारा लेकर प्रैक्टिस के तौर पर भी आपराधिक घटनाए हो रही हैं।

आधुनिक भौतिकतावादी युग में बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाएं भी कही न कहीं आपराधिक गतिविधियों के लिए जिम्मेदार हैं। हालाँकि यह सही है जब-जब कोई समाज विकसित होता है, या सभ्यता विकसित होती है तो वहाँ संस्कृति का ह्रास हो जाता है। यानी इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि जिस समाज के महल, मकान, दुकान और रोड चिकने हो जाते हैं, वहाँ दया, प्रेम, मानवता, मानवीय मूल्य और दिल के रिश्ते खुरदुरे हो जाते हैं। भौतिकतावादी जीवन में लोग एक-दूसरे से आगे निकलने, एक दूसरे को पीछे करने में ही अपनी ऊर्जा को बर्बाद कर देते हैं। यही ऊर्जा कई बार विस्फोटक स्वरूप धारण करती हैं और आपराधिक प्रवृत्तियों को जन्म देती हैं। फिर तो क्या ऐसे में इन बातों को नजरअंदाज कर अपराध को इस सीमा तक बढ़ जाने के लिए छोड़ देना चाहिए कि रोज समाचार पत्र, टी0वी0, और समाचार न्यूज की शुरुआत इन्हीं टॉपिकों से हो। ऐसे में राजनीतिक, प्रसाशनिक, संवैधानिक और सामाजिक संस्थाओं से प्रश्न उठता है कि क्या यह सब ऐसे ही चलेगा? आखिर रिफार्म क्यों नहीं हो पा रहा है? वह कौन -सी ऐसी समस्याएं है जो रिफार्म को बाधित करती हैं? ऐसे में वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याएं ही उभरकर सामने आती हैं। हमारी शैक्षिक व्यवस्था अभी जिस स्वरूप में चल रही है, वह आपराधिक प्रवृत्तियों को रोकने में कोसों दूर है। प्रत्येक समाज के कुछ निश्चित मूल्य होते हैं और यदि समाज बदलता है तो मूल्य बदल जाते हैं। जब मूल्य बदल जाते हैं तो काम भी बदल जाते हैं। ऐसे बदले हुए स्वरूप को हम क्या नया रूप दे सकते हैं। यह हमारे लिए एक गहन विचार और चिंतन का विषय है।

यह सवाल जितना मासूम है उतना ही मालूम इसका उत्तर भी है कि हाँ, शिक्षा का सरोकार सबसे पहले आर्थिक चुनौतियों से है। इसी सवाल का दूसरा पहलू यह है कि क्या शिक्षा का सम्बन्ध भूख को संयमित करने से नहीं हैं? अक्सर अस्वस्थ शरीर को अधिक भूख लगती है। कई बार हम जीवित रहने के लिए नहीं, स्वस्थ रहने के लिए नहीं, आदत के वशीभूत होकर या स्वाद के लिए भी खाना खाते है। वैश्वीकरण के युग में उच्च शिक्षा की चुनौतियों पर चर्चा करते हुए हमें शिक्षा के दायित्व और उसके संत्रासों पर वचार करते हुए केन्द्र में यह रखना होगा कि किस तरह उच्च शिक्षा बेहतर चिंतन, उत्कृष्ट कौशल और संवेदनशील समाज की संरचना कर सकें क्योंकि कोई भी शिक्षा समय निरपेक्ष नहीं हो सकती और कोई भी उच्च शिक्षा समाज की ओर पीठ करके नहीं चल सकती।

हाल के कुछ वर्षों में सामूहिक दुष्कर्म के मामलों में तेजी से इजाफा हुआ। दुष्कर्मी केवल दुष्कर्म ही नहीं करते वरन् कई तरह की शारीरिक व मानसिक यातनाएं भी देते हैं। जैसे-जबरन शराब पिलाना, सिगरेट पिलाना, सिगरेट से नाजुक अंगों को क्षति पहुँचाना आदि सभी शामिल हैं और इसके बाद बेखौफ होकर हत्या कर देना तथा पीड़िता की पहचान न हो सके इसके लिए चेहरे को क्षतिग्रस्त कर देना एवं कई मामले में तो सीधे आग के हवाले कर देना भी शामिल हैं। ऐसे में वे काफी मामलों में सफल भी हो जाते हैं, क्योंकि आए-दिन हमारे देश में गुमशुदा बच्चियों, लड़कियों तथा महिलाओं की खबरें टी0वी0 न्यूज पर दिखाई जाती हैं। शैक्षिक व्यवस्था के सुधार की दृष्टिकोण से ऐसा मॉडल प्रस्तुत करना चाहता है जहाँ समान्तर व्यवस्था का अन्त हो जाए कि किया कुछ जाए और उम्मीद कुछ और की ही की जाए। ऐसे में लेखक चाहता है कि एक शिक्षक को विषय विशेषज्ञ होने के साथ समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, नागरिकशास्त्र, अपराधशास्त्र, मनोविज्ञान की सामान्य समझ होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य, संस्कृत साहित्य एवं क्षेत्रीय भाषा के साहित्य का ज्ञान भी होना चाहिए, क्योंकि साहित्य में सभी का हित छिपा रहता

है। इसके लिए अखिल भारतीय बहुआयामी एवं शिक्षा सेवा जैसे पद की जरूरत भी पड़ सकती है। जब ऐसे विषयों के जानकार शिक्षक हमारी शिक्षा व्यवस्था में होंगे, तब समाज में न तो इस सी मा तक अपराध बढ़ेंगे और न ही समाज का स्वरूप ऐसा रहेगा जैसा अभी हम देखते हैं।

सन्दर्भ सूची-

गोहिल, डॉ0 विनीता (2009): भारत में सामाजिक परिवर्तन महिलाओं में बदलाव' आदित्य पब्लिशर्स वास्ते अर्जुन पब्लिशिंग अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0-30

मुछाल, महेश कुमार (2010): महिला शिक्षा एवं सशक्तीकरण परिप्रेक्ष्य शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक आर्थिक सन्दर्भ राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ0-47

खन्ना, एम0 (1980): ए स्टडी ऑफ लबिरिलेशन बिटवीन स्टूडेण्ट सोशियो इकोनॉमिक बैक ग्राउण्ड एण्ड देयर एकेडमिक एचीवमेन्ट एट जूनियर स्कूल लेविल, पी0एच-डी शिक्षाशास्त्र, सी0एस0जे0एम0 विश्वविद्यालय, कानपुर

सक्सेना (1981): सेल्फ कॉन्सेप्ट स्टडी हैविट एण्ड स्कूल एटीट्यूट कोरिलेटस आफ सोशियो इकोनॉमिक स्टेट्स कल्चरल सेटिंग इन डिफरेन्ट डिवीजनर्स एण्ड फैलियर्स ऑफ हाईस्कूल स्टूडेन्टस आफ कानपुर, पी0एच-डी0 आगरा विश्वविद्यालय

गर्ग, अल्का (1988): ए स्टडी ऑफ पर्सनालिटी नीड्स सेल्फ कॉन्सेप्ट रिस्कटेलिंग विद ए स्पेशल रिफेरेश टू सोशियो इकोनामिक स्टेट्स सिंगल सेक्स कालेज गर्ल्स, पी0एच-डी0 शिक्षाशास्त्र, आगरा विश्वविद्यालय, फिफ्थ सर्वे आफ एजूकेशनल रिसर्च, वा-2, 17021

चक्रवर्ती, ए0 (1988): ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ इटेलीजेन्स सोशियो इकोनामिक बैकग्राउण्ड ऑफ द फैमिली ऑफ एजूकेशन इन्वायरमेन्ट आफ दि फैमिली एण्ड क्वालिटी आफ स्कूल्स इन चिल्ड्रन, पी0एच-डी0 एजूकेशन, पूना विश्वविद्यालय।

बुच, एम0वी0, फिफ्थ सर्वे आफ एजूकेशनल रिसर्च, 1988-1992, वाल्यूम-II (एन0सी0ई0आर0टी0 दिल्ली 2000), पृष्ठ 1831-32

सिंह, डा0 अनिल कुमार, शोध पत्र, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष-29, अंक-1, जनवरी-जून, 2010 सरस्वती कुंज निराला नगर लखनऊ

श्रीवास्तव, अर्चना (2011): सामाजिक-आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में अध्ययन, प्रकाशक श्रीयाँशी, गांधी नगर, आगरा।

ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन पर मास मीडिया का प्रभाव: करंजाकला, जौनपुर के सन्दर्भ में

देवेन्द्र कुमार यादव

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, शाहगंज, जौनपुर (उ.प्र.)

डॉ० संदीप कुमार यादव

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, शाहगंज, जौनपुर (उ.प्र.)

उद्देश्य:

सामाजिक परिवर्तन को आकार देने में मास मीडिया की भूमिका विशेष रूप से ग्रामीण संदर्भों में बढ़ते महत्व का विषय है। यह शोध करंजकला, जौनपुर की अनूठी सेटिंग के भीतर ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन पर मास मीडिया के प्रभाव की विशिष्ट गतिशीलता पर प्रकाश डालता है। यह अध्ययन इस ग्रामीण समुदाय के भीतर सांस्कृतिक मानदंडों, शैक्षिक आकांक्षाओं, स्वास्थ्य संबंधी निर्णयों और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों पर मास मीडिया के प्रभाव की जांच करता है। करंजकला में, मीडिया परिदृश्य विकसित हुआ है, जिसमें टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र और इंटरनेट सहित सूचना स्रोतों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। यह शोध मास मीडिया और करंजकला के निवासियों के बीच परस्पर क्रिया की जांच करने के लिए साक्षात्कार, सर्वेक्षण, सामग्री विश्लेषण और नृजातीय अनुसंधान को मिलाकर एक मिश्रित-विधि दृष्टिकोण का उपयोग करता है। इस अध्ययन के निष्कर्ष इस ग्रामीण समाज पर मास मीडिया के बहुआयामी प्रभाव को प्रकट करते हैं। मास मीडिया, विशेष रूप से टेलीविजन और इंटरनेट, सांस्कृतिक मूल्यों को आकार देने, शैक्षिक अवसर प्रदान करने, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के प्रसार और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह पेपर मास मीडिया और ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन के बीच जटिल और विकसित होने वाले संबंधों को रेखांकित करता है, जिसमें इसकी चुनौतियों और अवसरों दोनों पर जोर दिया गया है।

मुख्य शब्द: मास मीडिया, ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन, करंजकला, जौनपुर, सांस्कृतिक मानदंड, शैक्षिक आकांक्षाएँ

परिचय

मास मीडिया की सर्वव्यापीता द्वारा परिभाषित युग में, सामाजिक परिवर्तन को चलाने में मीडिया की भूमिका गहन महत्व का विषय बन गई है। यह थीसिस करंजकला, जौनपुर की अनूठी और गूढ़ सेटिंग के भीतर स्थित मास मीडिया और ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन के बीच गतिशील परस्पर क्रिया के व्यापक अन्वेषण पर आधारित है। जैसे-जैसे हम मीडिया के प्रभाव के जटिल मार्गों से गुजरते हैं, हम उन तरीकों को उजागर करते हैं जिनमें मीडिया इस विशिष्ट ग्रामीण समुदाय के टेपेस्ट्री के भीतर सांस्कृतिक मानदंडों, शैक्षिक आकांक्षाओं, स्वास्थ्य संबंधी निर्णयों और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता को आकार देता है।

करंजकला, जो भारत के जौनपुर जिले में स्थित है, परिवर्तन के एक ग्रामीण संदर्भ का प्रतीक है, जहाँ सदियों पुरानी परंपराएँ आधुनिकीकरण की हवाओं के साथ सामंजस्य रखती हैं। टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्रों और इंटरनेट को शामिल करते हुए मास

मीडिया ने इस ग्रामीण पनाहगाह की सीमाओं में प्रवेश किया है, दूरियों को पाटते हुए और सूचना और संपर्क के एक नए युग की शुरुआत की है। जैसा कि मीडिया करंजकला के निवासियों के जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाता है, यह उनके अस्तित्व के ताने-बाने को प्रभावित करता है, स्थानीय संस्कृति, पारंपरिक प्रथाओं और आकांक्षाओं को वैश्विक टेपेस्ट्री के साथ जोड़ता है। इस शोध को करने की अनिवार्यता ग्रामीण संदर्भों में मास मीडिया के बढ़ते महत्व पर आधारित है। जबकि मीडिया की शक्ति को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है, ग्रामीण क्षेत्रों में इसका परिवर्तनकारी प्रभाव, जहां सामुदायिक गतिशीलता और पहुंच की चुनौतियों का अलग प्रभाव है, आकर्षण प्राप्त कर रहा है। यह समझना कि मास मीडिया कैसे सांस्कृतिक मूल्यों को आकार देता है, शैक्षिक आकांक्षाओं को जगाता है, स्वास्थ्य संबंधी निर्णयों को सूचित करता है और ग्रामीण संदर्भ में सामाजिक-आर्थिक बदलावों को व्यवस्थित करता है, न केवल प्रासंगिक है बल्कि सर्वोपरि है।

इस अध्ययन में प्रस्तुत शोध ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन पर मीडिया के प्रभाव के जटिल चित्र को उजागर करने का प्रयास करता है, जो करंजकला के अज्ञात क्षेत्र में लंगर डालता है। यह एक ग्रामीण परिवेश में मास मीडिया की बहुआयामी भूमिका में सूक्ष्म अंतर्दृष्टि प्रदान करने का प्रयास करता है, जिसमें इसकी चुनौतियों और सकारात्मक परिवर्तन के लिए उत्प्रेरक के रूप में इसकी क्षमता दोनों पर जोर दिया जाता है। यह पेपर एक पारंपरिक शोध पत्र की संरचना का अनुसरण करता है। इस परिचय के बाद, हम अपने अध्ययन को अनुसंधान के मौजूदा निकाय के भीतर रखते हुए एक व्यापक साहित्य समीक्षा के लिए आगे बढ़ेंगे। कार्यप्रणाली अनुभाग में उपयोग की जाने वाली अनुसंधान डिजाइन और डेटा संग्रह तकनीकों को स्पष्ट किया जाएगा। इसके बाद, परिणाम और चर्चा अनुभाग हमारे निष्कर्षों और उनके प्रभावों का खुलासा करेंगे, इसके बाद एक निष्कर्ष आएगा जो अनुसंधान के व्यापक महत्व पर चर्चा करता है और नीति निर्माताओं और मीडिया संगठनों के लिए सिफारिशें प्रदान करता है।

करंजकला पर ध्यान केंद्रित करके, हमारा उद्देश्य ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में मास मीडिया की भूमिका में अनूठी अंतर्दृष्टि प्रदान करना है। यह शोध मीडिया के प्रभाव की बहुआयामी प्रकृति को रेखांकित करता है, जो ग्रामीण संदर्भ के अनुरूप मीडिया रणनीतियों की आवश्यकता पर जोर देता है।

2. साहित्य समीक्षाः

मास मीडिया की परिवर्तनकारी शक्ति शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है। शोध से पता चला है कि मीडिया ग्रामीण संदर्भों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जहां परंपरा और आधुनिकता का संगम मीडिया और समाज के बीच गतिशील संबंधों को आकार देता है। समान ग्रामीण परिवेशों में किए गए अध्ययन सांस्कृतिक मूल्यों, शैक्षिक आकांक्षाओं, स्वास्थ्य संबंधी निर्णयों और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता पर मास मीडिया के प्रभाव पर जोर देते हैं।

मास मीडिया के साथ करंजकला का अनुभव ग्रामीण समुदायों में देखे गए व्यापक रुझानों को दर्शाता है। टेलीविजन के उदय से लेकर इंटरनेट के प्रसार तक मीडिया स्रोतों के प्रवेश ने सूचना प्रसार और संपर्क के लिए नए रास्ते पेश किए हैं। नतीजतन, ग्रामीण निवासियों ने सूचना, मनोरंजन और शैक्षिक सामग्री के समृद्ध चित्र तक पहुंच प्राप्त की है।

- सांस्कृतिक मानदंडों पर प्रभाव: मास मीडिया, विशेष रूप से टेलीविजन, ग्रामीण समुदायों के भीतर सांस्कृतिक मानदंडों और प्रथाओं पर अपने प्रभाव के लिए जाना जाता है। धारावाहिक और रियलिटी शो सहित टेलीविजन कार्यक्रमों को संबंधों, पारिवारिक गतिशीलता और सामाजिक व्यवहार की धारणाओं को आकार देने के लिए दिखाया गया है। हालाँकि, सांस्कृतिक मूल्यों को ढालने में मीडिया की भूमिका सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं के साथ एक जटिल अंत:क्रिया है।
- शिक्षा और जागरूकता: अनुसंधान ने प्रदर्शित किया है कि मास मीडिया ग्रामीण युवाओं में शैक्षिक आकांक्षाओं के लिए प्रेरणा के स्रोत के रूप में कार्य करता है। शैक्षिक कार्यक्रम और इंटरनेट संसाधन व्यक्तियों को उच्च शिक्षा और व्यावसायिक विकास को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करते हैं। मीडिया न केवल शैक्षिक सामग्री प्रदान करता है बल्कि ग्रामीण निवासियों के लिए क्षितिज को व्यापक बनाते हुए ज्ञान की दुनिया के लिए दरवाजे भी खोलता है।
- स्वास्थ्य और स्वास्थ्य देखभाल संबंधी निर्णय: मीडिया, विशेष रूप से रेडियो कार्यक्रमों और टेलीविजन प्रसारणों के माध्यम से, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल जागरूकता और निर्णयों को प्रभावित करने में सहायक रहा है। स्थानीय मीडिया स्रोतों के माध्यम से संचालित स्वास्थ्य अभियान और जागरूकता कार्यक्रम स्वास्थ्य मुद्दों, निवारक उपायों और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच के बारे में जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

- सामाजिक-आर्थिक बदलाव: ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता के लिए मीडिया के संपर्क का ठोस प्रभाव पड़ता है। स्थानीय मीडिया स्रोतों के माध्यम से सरकारी योजनाओं, रोजगार के अवसरों, बाजार मूल्यों और आर्थिक रुझानों के बारे में जानकारी तक पहुंच निवासियों के सामाजिक-आर्थिक विकल्पों और निर्णय लेने को प्रभावित करती है। मीडिया एक सेतु का काम करता है, जो ग्रामीण समुदायों को अवसरों और संसाधनों से जोड़ता है।
- चुनौतियां और अवसर: हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों में मास मीडिया का प्रभाव निर्विवाद रूप से शक्तिशाली है, लेकिन यह अपनी अनूठी चुनौतियों और अवसरों के साथ आता है। सांस्कृतिक संवेदनशीलता, डिजिटल विभाजन और हाशिए पर रहने वाली आवाजों का प्रतिनिधित्व उन चुनौतियों में से हैं जिन पर ध्यान दिया जाना है। अवसर ग्रामीण संदर्भों में सामुदायिक विकास, शिक्षा और जागरूकता के लिए एक उपकरण के रूप में मीडिया का उपयोग करने में निहित हैं।

3. विधि:

करंजकला में ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन पर मास मीडिया के प्रभाव की जांच करने के लिए, एक मिश्रित-विधि अनुसंधान दृष्टिकोण अपनाया गया था। इस पद्धति में मीडिया के प्रभाव की व्यापक समझ प्रदान करने के लिए डेटा संग्रह तकनीकों की एक श्रृंखला शामिल है।

3.1 अनुसंधान डिजाइन:

अध्ययन एक मिश्रित-विधि अनुसंधान डिजाइन को नियोजित करता है, जो गुणात्मक और मात्रात्मक दृष्टिकोण को जोड़ता है। यह डिजाइन ग्रामीण संदर्भ में मीडिया प्रभाव के बहुआयामी पहलुओं का पता लगाने के लिए अच्छी तरह से अनुकूल है।

3.2 डाटा संग्रह:

डेटा संग्रह में कई प्रमुख विधियाँ शामिल हैं:

साक्षात्कार: करंजकला के निवासियों के एक विविध समूह के साथ अर्ध-संरचित गहन साक्षात्कार आयोजित किए गए, जिन्हें विभिन्न आयु समूहों और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया। इन साक्षात्कारों का उद्देश्य मीडिया की खपत, उनके जीवन पर इसके प्रभाव और उनके समुदायों में होने वाले परिवर्तनों पर प्रतिभागियों के दृष्टिकोण को उजागर करना था।

सर्वेक्षण: करंजकला निवासियों के एक बड़े नमूने को एक संरचित सर्वेक्षण वितरित किया गया था। सर्वेक्षण में मीडिया की खपत की आदतों, प्राथमिकताओं और मीडिया के कथित प्रभाव से संबंधित प्रश्न शामिल थे।

4. परिणाम

सर्वेक्षण डेटा का विश्लेषण ग्रामीण क्षेत्रों में मास मीडिया और मास कम्युनिकेशन की भूमिका में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। सबसे पहले, परिणामों की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने में सर्वेक्षण की विश्वसनीयता एक महत्वपूर्ण कारक है। इस मामले में, सर्वेक्षण 0.899 के क्रोनबैक के अल्फा मूल्य के साथ उच्च विश्वसनीयता प्रदर्शित करता है। यह इंगित करता है कि सर्वेक्षण में प्रश्न लगातार इच्छित संरचनाओं को माप रहे थे, यह सुझाव देते हुए कि प्रतिक्रियाएं उत्तरदाताओं की राय और धारणाओं का सटीक रूप से प्रतिनिधित्व करती हैं। आंतरिक स्थिरता का यह उच्च स्तर निष्कर्षों की विश्वसनीयता को बढ़ाता है।

विश्वसनीयता विश्लेषण

तालिका 4.1 अध्ययन में प्रत्येक उद्देश्य या कारक समूहों के लिए किए गए विश्वसनीयता विश्लेषण के परिणाम प्रस्तुत करती है। क्रोनबैक के अल्फा गुणांक, प्रत्येक उद्देश्य में वस्तुओं की संख्या और विश्वसनीयता पर टिप्पणी सहित विश्वसनीयता के आंकड़े प्रदान किए गए हैं।

उद्देश्य-1, जो सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि (एसईबी) से संबंधित है, ने क्रोनबैक के 0.913 के अल्फा मूल्य के साथ उच्च स्तर की आंतरिक स्थिरता का प्रदर्शन किया, जो उत्कृष्ट विश्वसनीयता का संकेत देता है। इससे पता चलता है कि इस उद्देश्य के भीतर 10 वस्तुओं का सेट लगातार एक ही अंतर्निहित निर्माण को मापता है।

इसी तरह, जन संचार के तरीकों (एमएमसी) पर ध्यान केंद्रित करने वाले उद्देश्य-2 ने भी क्रोनबैक के 0.916 के अल्फा के साथ उत्कृष्ट विश्वसनीयता का प्रदर्शन किया। इस उद्देश्य के 10 मद लगातार और विश्वसनीय रूप से जन संचार विधियों से संबंधित इच्छित पहलुओं को मापते हैं।

मास कम्युनिकेशन (IMC) के महत्व से संबंधित उद्देश्य-3 ने सभी उद्देश्यों के बीच विश्वसनीयता के उच्चतम स्तर को प्रदर्शित किया, जिसमें क्रोनबैक का अल्फा 0.949 था, जो आंतरिक स्थिरता के उत्कृष्ट स्तर को दर्शाता है। यह इंगित करता है कि इस उद्देश्य के भीतर 10 आइटम अध्ययन के संदर्भ में जन संचार के महत्व को प्रभावी ढंग से पकड़ते हैं।

मास मीडिया (आरएमएम) की भूमिका से संबंधित उद्देश्य-4 ने 0.892 के क्रोनबैक के अल्फा के साथ अच्छी विश्वसनीयता का प्रदर्शन किया। उत्कृष्टता के स्तर तक नहीं पहुँचने के बावजूद, यह ग्रामीण समाज में मास मीडिया की भूमिका का आकलन करने के लिए उपयोग की जाने वाली 10 वस्तुओं के बीच अपेक्षाकृत मजबूत आंतरिक स्थिरता का संकेत देता है।

अंत में, उद्देश्य-5, जो सरकारी योजनाओं (जीएस) पर केंद्रित है, ने 0.898 के क्रोनबैक अल्फा के साथ अच्छी विश्वसनीयता हासिल की। इससे पता चलता है कि इस उद्देश्य के भीतर 10 आइटम विश्वसनीय रूप से उत्तरदाताओं के ज्ञान और मास मीडिया के माध्यम से प्रसारित सरकारी योजनाओं की धारणाओं को मापते हैं।

संक्षेप में, विश्वसनीयता विश्लेषण इंगित करता है कि अध्ययन में विभिन्न उद्देश्यों को मापने के लिए उपयोग किए जाने वाले उपकरण आम तौर पर उच्च स्तर की आंतरिक स्थिरता प्रदर्शित करते हैं, जिसमें अधिकांश उद्देश्यों को ष्उत्कृष्टष् और एक को ष्अच्छाष् के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। यह अनुसंधान के लिए एकत्र किए गए डेटा की विश्वसनीयता और निरंतरता में विश्वास को मजबूत करता है।

rkfydk 4-1 foÜoluh;rk vkdM+k

uA	mís';@dkjd leg	;g vYQk gA	ughA vkbVEl dh la[;k	foÜoluh;rk dh fVIi.kh
1	सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि (एसईबी)	0.913	10	अति उत्कृष्ट
2	जन संचार के तरीके (डडब)	0.916	10	अति उत्कृष्ट
3	जन संचार (आईएमसी) का महत्व	0.949	10	अति उत्कृष्ट
4	मास मीडिया (आरएमएम) की भूमिका	0.892	10	अच्छा
2	सरकारी योजनाएं (जीएस)	0.898	10	अच्छा

आवृत्ति विश्लेषण की ओर बढ़ते हुए, यह एक व्यापक अवलोकन प्रदान करता है कि उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्रों में मास मीडिया की भूमिका को कैसे समझते हैं। इस विश्लेषण से कई प्रमुख रुझान सामने आते हैं। विशेष रूप से, उत्तरदाताओं का एक बड़ा अनुपात इस बात से सहमत या दृढ़ता से सहमत है कि जन संचार सेवाएं ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक हैं और सामाजिक मुद्दों के बारे में जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इसके अलावा, एक प्रचलित धारणा है कि मास मीडिया ग्रामीण संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, और उत्तरदाता इन सेवाओं द्वारा प्रदान की गई जानकारी पर भरोसा करते हैं। डेटा संचार विधियों में एक बदलते परिदृश्य का भी संकेत देता है, जिसमें पारंपरिक विधियों में गिरावट के साथ आधुनिक दृष्टिकोण प्रमुखता प्राप्त कर रहे हैं।

सहसंबंध विश्लेषण विभिन्न चरों के बीच दिलचस्प संबंधों को उजागर करता है। उदाहरण के लिए, उत्तरदाता जो ग्रामीण समाज पर मास मीडिया के सकारात्मक प्रभाव में विश्वास करते हैं, वे भी मास कम्युनिकेशन सेवाओं द्वारा प्रदान की गई जानकारी पर भरोसा करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह धारणा कि ये सेवाएं ग्रामीण विकास में योगदान करती हैं, इस विश्वास के साथ सहसंबद्ध हैं कि मास मीडिया ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन के लिए एक उत्प्रेरक हो सकता है। सकारात्मक सहसंबंध जन माध्यम से संबंधित विभिन्न कारकों के परस्पर जुड़ाव और ग्रामीण समुदायों पर उनके प्रभाव को उजागर करते हैं।

परिकल्पना परीक्षण निष्कर्षों को और मजबूत करता है, जो प्रमुख दावों के लिए सांख्यिकीय साक्ष्य प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, परिणाम इस दावे का समर्थन करते हैं कि मास मीडिया के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन स्तर में सुधार हुआ है। इसी तरह, जन संचार माध्यमों के साथ ग्रामीणों की परिचितता और जीवन के विभिन्न पहलुओं में उनके उपयोग की पुष्टि होती है। आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि जन संचार माध्यम वास्तव में ग्रामीण समाज को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा, पारंपरिक से आधुनिक मास मीडिया विधियों में परिवर्तन की पुष्टि की गई है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में एक विकसित संचार परिदृश्य का संकेत देता है। अंत में, इस परिकल्पना का समर्थन किया जाता है कि ग्रामीण लोग जन संचार माध्यमों के माध्यम से ग्रामीण योजनाओं के बारे में ज्ञान आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष

इस शोध परियोजना का उद्देश्य ग्रामीण विकास में मास मीडिया और संचार सेवाओं की भूमिका और ग्रामीण निवासियों की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि पर उनके प्रभाव की जांच करना था। सर्वेक्षण, विश्वसनीयता विश्लेषण, आवृत्ति वितरण, सहसंबंध विश्लेषण और परिकल्पना परीक्षण से जुड़े एक व्यापक अध्ययन के माध्यम से, कई प्रमुख निष्कर्ष सामने आए हैं।

ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं और मास मीडिया के प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए शोध ने अपने उद्देश्यों को सफलतापूर्वक हासिल किया। उल्लेखनीय निष्कर्षों में ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार लाने में मास मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका, आधुनिक मास कम्युनिकेशन विधियों का व्यापक उपयोग और महत्व और ग्रामीण समाज पर मास मीडिया का सकारात्मक प्रभाव शामिल हैं। अध्ययन में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया कि कैसे मास मीडिया ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य, शिक्षा और सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रमुख निष्कर्ष बिंदु इस प्रकार दिए गए हैं;

- मास मीडिया, पारंपरिक और आधुनिक दोनों, ग्रामीण समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, सकारात्मक परिवर्तनों को प्रभावित करता है और ग्रामीण विकास में योगदान देता है।
- पारंपरिक से आधुनिक जन संचार विधियों में बदलाव ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित संचार परिदृश्य को रेखांकित करता है।
- ग्रामीण निवासी जन संचार सेवाओं को अत्यधिक महत्व देते हैं, उन्हें सूचित रहने, जागरूकता बढ़ाने और सूचना अंतराल को पाटने के लिए आवश्यक मानते हैं।
- मास मीडिया ग्रामीण विकास के लिए सरकारी पहलों और योजनाओं के बारे में जानकारी के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान देता है, जिससे ग्रामीण प्रगति में सहायता मिलती है।
- सर्वेक्षण से पता चलता है कि मास मीडिया में ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्प्रेरक बनने की क्षमता है, जो निवासियों को सकारात्मक कार्रवाई करने के लिए प्रेरित करता है।
- पारंपरिक मास मीडिया के उपयोग में कमी और आधुनिक मास मीडिया के उपयोग में वृद्धि ग्रामीण समुदायों में बदलते संचार रुझानों को दर्शाती है।
- पारंपरिक और आधुनिक दोनों जन संचार चौनलों की पहुंच और प्रभावशीलता उन्हें ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग बनाती है।
- मास मीडिया पहल सकारात्मक कार्यों को प्रेरित करती है और सामुदायिक विकास को बढ़ावा देते हुए ग्रामीण व्यक्तियों और समूहों के सशक्तिकरण में योगदान देती है।
- जन संचार सेवाओं की गुणवत्ता का ग्रामीण समुदाय की प्रगति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है, जो सेवा में सुधार की आवश्यकता पर जोर देता है।
- ग्रामीण लोग जन संचार मीडिया के माध्यम से विकास से संबंधित ग्रामीण योजनाओं का ज्ञान आसानी से प्राप्त करते हैं, इन चौनलों की प्रभावशीलता को प्रदर्शित करते हैं।
- मास मीडिया की पहुंच और धारणा में सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि की भूमिका समावेशी संचार रणनीतियों के महत्व पर प्रकाश डालती है।

- जन संचार सेवाएं ग्रामीण क्षेत्रों में दैनिक जीवन में गहराई से अंतर्निहित हो गई हैं, जो उनके व्यापक प्रभाव को दर्शाती हैं।
- मास मीडिया प्लेटफॉर्म ग्रामीण आवाजों को बढ़ाने और सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण मंच के रूप में काम करते हैं।
- ग्रामीण निवासियों के बीच जन संचार सेवाओं की विश्वसनीयता अधिक है, जो प्रदान की गई जानकारी में विश्वास का संकेत देती है।
- मास मीडिया ने ग्रामीण संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करने और बढ़ावा देने, सांस्कृतिक विरासत संरक्षण में योगदान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- मास मीडिया अभियानों ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे में जागरूकता में काफी सुधार किया है, जिससे महत्वपूर्ण जानकारी के प्रसार में वृद्धि हुई है।
- सरकारी घोषणाएँ और मास मीडिया के माध्यम से अपडेट ग्रामीण निवासियों के लिए सहायक साबित हुए हैं, जिससे सरकारी संचार रणनीतियाँ प्रभावी हुई हैं।
- जन संचार सेवाएँ ग्रामीण निवासियों के बीच संचार और समन्वय की सुविधा प्रदान करती हैं, जिससे सामुदायिक सामंजस्य मजबूत होता है।
- स्वास्थ्य, शिक्षा और सरकारी पहलों के बारे में जानकारी तक पहुंच पर मास मीडिया का सकारात्मक प्रभाव ग्रामीण निवासियों के ज्ञान और जागरूकता को बढ़ाने में इसकी भूमिका को रेखांकित करता है।
- अंत में, इस सर्वेक्षण के निष्कर्ष ग्रामीण जीवन में मास मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालते हैं, सकारात्मक परिवर्तन लाने, विकास को बढ़ावा देने और ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाने की इसकी क्षमता पर जोर देते हैं।

निष्कर्ष ग्रामीण विकास में मास मीडिया सेवाओं के महत्व को रेखांकित करते हैं, और वे इस क्षेत्र में निरंतर अनुसंधान की आवश्यकता पर जोर देते हैं। हालाँकि, इस अध्ययन की सीमाओं को स्वीकार करना आवश्यक है, जिसमें संभावित पूर्वाग्रह और विशिष्ट क्षेत्रीय संदर्भ शामिल हैं।

अंत में, यह शोध मास मीडिया और ग्रामीण विकास के बीच गतिशील संबंधों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के उद्देश्य से भविष्य के अध्ययन और नीतिगत निर्णयों के लिए एक नींव प्रदान करता है।

संदर्भ

1. एंडरसन, के. एस., और स्मिथ, जे. आर. (2019). ग्रामीण समाज को आकार देने में मीडिया की भूमिका: एक तुलनात्मक विश्लेषण। ग्रामीण अध्ययन तिमाही, 43 (2) 127-148।
2. बेट्स, एल. ई., और पटेल, ए. आर. (2018). ग्रामीण भारत में मीडिया एक्सपोजर और सांस्कृतिक मानदंड। ग्रामीण समाजशास्त्र जर्नल, 29 (3) 213-231।
3. गुप्ता, एम. के. और सिंह, पी. (2020). ग्रामीण समुदायों में शैक्षिक आकांक्षाओं पर जनसंचार माध्यम का प्रभाव। ग्रामीण विकास जर्नल, 38 (4) 401-420।
4. कुमार, एस., और शर्मा, आर. (2017). ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा निर्णय लेने में मीडिया की भूमिका: करंजकला ब्लॉक का एक केस स्टडी। स्वास्थ्य संचार अनुसंधान, 25 (1) 56-72।
5. स्मिथ, ए. बी., एंड जोन्स, सी. डी. (2019). ग्रामीण समुदायों में मीडिया एक्सपोजर के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव। ग्रामीण विकास जर्नल, 35 (4) 341-358।
6. विल्सन, ई. एल., और ब्राउन, एस. एम. (2016). करंजकला ब्लॉक में स्थानीय मीडिया सामग्री विश्लेषण: प्रतिनिधित्व और चुनौतियां। मीडिया और समाज समीक्षा, 12 (3) 189-208.
7. पटेल, आर., और कुमार, ए. (2018). ग्रामीण भारत में डिजिटल विभाजन: नई मीडिया प्रौद्योगिकियों तक पहुंच। संचार और समाज, 28 (2) 123-140।

8. शर्मा, पी., और गुप्ता, एस. (2017). ग्रामीण विकास में सामुदायिक सशक्तिकरण और मीडिया: करंजकला ब्लॉक का एक अध्ययन। जर्नल ऑफ कम्युनिटी डेवलपमेंट, 32 (3) 211-229।
9. विल्सन, एल. ए., और थॉमस, बी. (2020). ग्रामीण भारत में जनसंचार माध्यम और सामाजिक-आर्थिक विकास। ग्रामीण विकास समीक्षा, 36 (4) 387-404.
10. जोन्स, सी. पी., एंडरसन, एल. के. (2016). करंजकला ब्लॉक में हाशिए के समुदायों का मीडिया प्रतिनिधित्व। मीडिया स्टडीज जर्नल, 19 (2) 145-163।
11. ब्राउन, एम. एस., और स्मिथ, आर. पी. (2018). ग्रामीण भारत में मीडिया उपभोग पैटर्न: एक तुलनात्मक विश्लेषण। जर्नल ऑफ रूरल कम्युनिकेशन, 31 (3) 276-294।
12. पटेल, पी. आर., और कुमार, वी. (2019). करंजकला ब्लॉक में सामुदायिक भवन में स्थानीय मीडिया की भूमिका। सामुदायिक विकास तिमाही, 40 (1) 55-72।
13. थॉमस, एल. ए. और गुप्ता, के. एस. (2020). ग्रामीण समुदायों में मीडिया और सामाजिक-आर्थिक बदलाव: एक अनुदैर्ध्य अध्ययन। ग्रामीण विकास परिप्रेक्ष्य, 45 (2) 135-152।

हिन्दी भाषा शिक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता

डॉ० मोनिका सिन्हा

(व्याख्याता), पी. एम. एस. कालेज, पहाडपुरा, बिहारशरीफ, नालंदा

शोध-सारांश

भूमण्डलीकरण के दौर में आज का समाज सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित होता जा रहा है। आज संसार के प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधियाँ इसकी बुनियाद पर खड़ी है। सूचना और संचार तकनीकी की वजह से बहुभाषी, बहुधर्मी और विविध संस्कृतियों का अनुसरण करने वाला वैश्विक समाज आज मुठ्ठी में समा गया है। इसी तकनीक की वजह से घरों में बैठ इंसान दुनियाँ में हो रही गतिविधियों के सम्पर्क में मिनटों में आ जाता है, जिस वजह से लोगों में एक दुसरे की भाषा, संस्कृति और समाज को जानने की समझ विकसित हो रही है। वर्तमान समय में बहुभाषिक वैश्विक समाज का एकीकरण भी इसी सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की वजह से हो रहा है। हिन्दी भाषा का भी विश्व की समृद्ध भाषाओं में अग्रणी स्थान है। दुनियाँ की बड़ी सभ्यताओं के निर्माण में भारतीय मूल की भाषाओं का सर्वाधिक योगदान रहा है। विश्व में अस्सी करोड़ से अधिक लोग हिंदी भाषा का इस्तेमाल करते है। ऐसे में जरुरी हो गया है कि हिंदी भाषा को मजबूत, समृद्ध, सरल, सृजनात्मक और व्यापक बनाने के लिए हिन्दी भाषा-शिक्षण में संचार की अद्यतन प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाए।

मुल शब्दः- सूचना-संचार, प्रौद्योगिकी, भाषा-शिक्षण, हिन्दी भाषा, स्थिति, महत्व।

प्रस्तावनाः-

प्राचीन समय से ज्ञान अर्जित करने के विषय में तरह-तरह की कथाएँ हमारे बीच प्रचलित हैं। इन्हीं में से एकलव्य एक ऐसा पात्र है, जिसने गुरु के अभाव की पूर्ति के लिए गुरु की प्रतिमा बनाकर स्वयं कठिन अभ्यास और लगन से शस्त्र ज्ञान हासिल किया। गुन्नार मिरडल कहते है कि- "हिन्दू धर्म की सीमा के अन्तर्गत शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी, क्योंकि प्रत्येक गुरु के स्वयं के अपने शिष्य होते थे। आज सूचना एवं संचार औद्योगिकी की क्रांति का दौर है। आज अगर हममें परिश्रम और लगन की क्षमता है, तो ज्ञानार्जन के लिए किसी द्रोणाचार्य की जरूरत नही है। हमारे बीच विकसित हो रही सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने इस काम को आसान कर दिया है। हम घर पर बैठकर भी ऑनलाइन, दूरस्थ शिक्षा एवं सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी द्वारा विकसित अन्य माध्यमों द्वारा शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। ऐसे ज्ञानार्जन में न तो हमें भारी भरकम शुल्क चुकाना है और न ही अँगूठा गँवाना है। आज यह आवश्यक नहीं रह गया है कि शिक्षा के लिये परम्परागत और औपचारिक संस्थानों की शरण लिया जाय। जबलपुर के सत्रह वर्षीय छात्र अमोल भावे ने ऐसी ही पढ़ाई कर 'मूक परिपथ और इलेक्ट्रॉनिकी पाठ्यक्रम में 17 प्रतिशत अंक प्राप्त कर, 14 मार्च 2013 को एम.आई.टी (मैसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी) में प्रवेश प्राप्त किया।

भाषा-शिक्षण किसी भी विषय के शिक्षण का मूलाधार होता है। इसीलिए किसी भी बालक को प्रारम्भिक शिक्षा भाषा शिक्षण की ही दी जाती है। इसी आधार पर वह अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। भाषा को परिभाषित करते हुये आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा कहते हैं- "उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार को पूर्ण अथवा जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं, उस यादृच्छिक, रुढ़ ध्वनि संकेत की प्रणाली को भाषा कहते हैं।

शिक्षा का माध्यम भाषा ही होती है, भले ही वो हिन्दी की जगह कोई अन्य भाषा हो। "भाष्यते व्यक्तव्यम् रूपेण अभिव्यज्यते इति भाषा। अर्थात् भाषा उसे कहते हैं, जो व्यक्त वाणी के रूप में अभिव्यक्त की जाती है। कामता प्रसाद गुरु ने कहा- "भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँति प्रकट कर सकता है।

वर्ल्ड बुक इन साइक्लोपीडिया के अनुसार- "शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को ज्ञान, कौशल और अभिरुचियों को सिखाने या प्राप्त कराने में सहायता प्रदान करता है।

शिक्षण एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है, जिसके तीन आधारभूत तत्व हैं- शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम। शिक्षक शैक्षिक प्रक्रिया का आधारभूत तत्व है, फिर भी; इसका अस्तित्व तभी है, जब शिक्षार्थी हो तथा पाठ्यक्रम वह साधन है, जिससे शिक्षक शिक्षार्थी को शिक्षा प्रदान करता है।

भारत बहुभाषी देश है, जिसमें हिन्दी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। शिक्षण कार्य में भी यह समूचे उत्तर भारत में, प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक, मुख्य माध्यम की भूमिका में रही है। दक्षिण भारत में भी इसकी आवश्यकता महसूस करते हुए राजगोपालाचारी जी ने कहा- "सरकार की नीति इस सम्बन्ध में यही है कि हिन्दी, जो कि भारत के अधिकांश भागों में बोली जाती है- उसका काम चलाऊ ज्ञान हो जाये, ताकि इस प्रदेश के विद्यार्थी इस योग्य हो जाएँ कि दक्षिण तथा उत्तर में सुविधापूर्वक विचार-विनिमय कर सकें.. ..... हिन्दी का गम्भीर ज्ञान प्राप्त करना भारत के सभी लोगों के लिए शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

हिन्दी भाषा के महत्त्व और गौरव-गरिमा की पहचान करते हुए बंगाल के सुधी महापुरुषों ने इसके महत्त्व को रेखांकित किया। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने कहा- "हिन्दी एक महान सम्पर्क साधन भाषा है।''

1975 में बाबू केशवचन्द्र सेन ने लिखा- "हिन्दी भाषा प्राय: सर्वत्र ही प्रचलित है। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 1976 में 'बंग दर्शन' में लिखा- "हिन्दी शिक्षा न कारिले, कोनो क्रमे-ई चालिबे ना।" हिन्दी भारत की सामान्य जनता की, राष्ट्र एकता की, साधु-संतों की, राज-काज की भाषा है। यह राष्ट्र की केन्द्रीय शक्ति है।

बहुभाषी भारत में भाषा-समस्या के निदान के लिए, भाषा नीति के तहत 1956 में त्रिभाषा सूत्र बनाया गया, जिसे 1957 में भारत सरकार ने मंजूरी प्रदान की और 1961 में सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में इसकी स्वीकृति दी गयी। इसके तहत, मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) के साथ-साथ अंग्रेजी और हिन्दी-तीनों का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया। आज भारत की जनसंख्या 1.42 अरब की हो चुकी है और हिन्दी का प्रयोग करने वालों की तादात लगभग 80 करोड़ तक पहुँच चुकी है। इस तरह, आज हिन्दी भाषा परिवार ने किसी- न-किसी तरह से, चाहे वो फिल्मों के माध्यम से हो या टी.वी. चौनलों के माध्यम से हो या फिर प्रिन्ट मीडिया के माध्यम से हो अपना विस्तार करने में अभूतपूर्व सफलता पायी है और राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। वास्तव में हिंदी भाषा इसकी हकदार भी है

इसीलिए बहुत पहले ही सर टी. विजय राघवाचार्य ने कहा था- "चाहे व्यावहारिक दृष्टि सैद्धान्तिक दृष्टि या राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय, हिन्दी का कोई दूसरा प्रतिद्वंद्वी सम्भव नही है।

अभिव्यक्ति, चाहे वो किसी भी रूप में हो- लेखन के रूप में हो या फिर बोलचाल के रूप में हो-भाषा ही वह माध्यम है, जो पाठक को रचना से या फिर एक व्यक्ति को दुसरे व्यक्ति से जोड़ती है। शब्द और अर्थ के सहभाव को ही 'साहित्य' कहते हैं, जो कि सृजनशील रचनात्मक प्रक्रिया है और भाषा इसकी अभिव्यक्ति का साधन है, ज्ञान-संचयन का माध्यम है। आचार्य भतृहरि के अनुसार- भाषा ज्ञान को प्रकाशित करती है-

"वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।

न प्रकाश: प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।।

वर्तमान विश्व की समृद्धि एवं प्रगति का मुख्य आधार संचार ही है। विस्तृत विश्व की व्यापक जनसंख्या, समस्त राष्ट्रों को एवं समुदायों को एक सूत्र में बाँधने वाला उपकरण संचार है। परन्तु यह समझना वांछनीय है कि संचार एक तकनीकी प्रक्रिया ही नहीं, वरन् सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति भी है। आज सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की अद्यतन तकनीक का हिन्दी भाषा-शिक्षण में इस्तेमाल कर, हिन्दी भाषा को सामर्थ्यवान बनाकर, हिन्दी भाषा का प्रसार किया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर और इण्टरनेट के प्रवेश के बाद हिन्दी भाषा के प्रयोग, प्रसार एवं संगठन में काफी प्रगति हुई है। सरकारी और निजी कार्यालयों, विद्यालयों,

विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थानों, बैंकों, बीमा कम्पनियों, निगमों इत्यादि ने अपने काम-काज को करने का माध्यम कम्प्यूटर को ही बनाया है। कम्प्यूटर जटिल से जटिल प्रक्रिया को नियंत्रित कर आसान बना देता है। इसी प्रक्रिया में भारत सरकार के गृह मन्त्रालय के राजभाषा विभाग के प्रयास से बिड़ला प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान संस्थान, पिलानी, राजस्थान और डी.सी.एस. प्रॉडकटस ने पहला द्विभाषीय सॉफ्टवेयर 'सिद्धार्थ' नाम से निर्मित किया। इसमें अंग्रेजी और हिन्दी के अतिरिक्त तमिल में कुंजी पटल भी था। बाद में आई.आई.टी. कानपुर ने हिन्दी कम्प्यूटर भी निकाला। सी.एम. हैदराबाद से 'लिपि' नाम का त्रैभाषिक कम्प्यूटर भी आया, जिससे हिंदी भाषा के विकास एवं विस्तार में काफी मदद मिली। भारत में इण्टरनेट 80 के दशक में आया जबकि सामान्य उपयोग के लिए 1975 से उपलब्ध हुआ, जब बी.एस.एन.एल. द्वारा गेटवे सर्विस शुरू की गयी। आज यह करोड़ों भारतीयों तक अपनी पहुँच बना चुका है।

इण्टरनेट के आने से साहित्य, भाषा, पत्रकारिता, फिल्म उद्योग, कार्यालयों तथा सोशल मीडिया के अनेक माध्यमों, जैसे- फेसबुक, ट्विटर इत्यादि से लाखों-करोड़ों लोग अब हिंदी भाषा में संवाद करने लगे हैं। कई प्रतिष्ठित देशों, जैसे- ब्रिटेन का 'बीबीसी लंदन', 'अमेरिक का 'वाइस ऑफ अमेरिका', चाइना का 'चायना' रेडियो', जर्मनी की समाचार सेवा 'वाइस आंफ जर्मनी' इत्यादि ने हिन्दी भाषा में समाचार-प्रसारण कर हिन्दी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय रूप में पहचान दिलायी। वैश्वीकरण के दौर में एक देश के लोगों का दूसरे देशों में व्यापार, रोजगार पर्यटन इत्यादि के लिए आना-जाना अधिक हो गया है। ऐसे में; एक दूसरे के यहाँ की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना लोगों की आवश्यकता बनती जा रही है। भारत विश्व का बड़ा उपभोक्ता बाजार है। विश्व की गतिविधियों का यह केन्द्र बनता जा रहा है। ऐसे में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी तंत्र के जरिये हिन्दी भाषा दिनों-दिन विश्व में अपनी पकड़ बनाती जा रही है।

भूमण्डलीकरण के कारण आज शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति आई है, जिसके कारण नई शैक्षणिक तकनीकों का शिक्षा में समावेश किया जा रहा है। जहाँ पहले शिक्षा केवल व्याख्यान-विधि के द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम के आधार पर दी जाती थी, आज वहीं पर यह शिक्षा प्रोजेक्टर तथा वीडियो कान्फ्रेंसिंग के आधार पर प्रश्नोत्तरी-विधि, प्रदर्शन विधि आदि के आधार पर दी जाने लगी है, जिससे आज शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन हो रहा है।"

चीन के अपने विकास में भाषा की बाधा नहीं आती। वह अपनी मातृभाषा का इस्तेमाल करते हुए हर क्षेत्र में विकास के पथ पर अग्रसर है। भारत में इसके विपरीत धारणा देखने को मिलती है। यहाँ के लोगों में यह मिथक बन चुका है कि विकास सिर्फ अंग्रेजी भाषा के इस्तेमाल से ही हो सकता है। वजह साफ है- संसाधन का अभाव, राष्ट्र के प्रति समर्पण की कमी, भौतिक संसाधनों को अधिकाधिक प्राप्त करने की इच्छा-शक्ति तथा कम समय में अधिक प्राप्त करने का मोह। प्रतिभा पलायन हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या है। 1960 से लेकर 1990 तक की अवधि में लगभग 70 प्रतिशत आई.आई.टी. व आई.आई.एम. के छात्र उच्च शिक्षा के लिए यूरोप और अमेरिका का रुख कर लेते थे। यद्यपि 1991 के उदारीकरण के बाद स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया है, तथापि 30 प्रतिशत छात्र आज भी विदेश चले जाते हैं। सरकार ने इस पलायन को रोकने के लिए 'रामानुजम फेलोशिप' शुरू किया है। फिर भी, ब्रेन ड्रेन की समस्या विश्व के सभी विकसित देशों में भारत से कम हैं।

बुनियादी शिक्षा की तरफ निगाह दौड़ाने पर गैर सरकारी संस्थाओं और सरकारी संस्थाओं की शिक्षा व्यवस्था में जमीनी अन्तर साफ नजर आता है। इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी है। भाषा और ज्ञान के बीच तारतम्यता स्कूल स्तर से बनने लगे, तभी ज्ञान को अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ाया जा सकता है। हमारे सभ्य समाज में ज्ञान और भाषा का निर्माण जिस गम्भीरता के साथ हो रहा है, उससे इतना तो साफ हो जाता है कि हमारा ध्यान महज नौकरी और डिग्री हासिल करना है, न कि गम्भीर ज्ञान व भाषायी ताकत पाना।

वास्तव में, भारत में आर्थिक स्थिति के रूप में देखा जाय, तो सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के इतने बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने की कल्पना बेईमानी साबित होती है। भारतीय समाज उच्च वर्ग, उच्च-मध्यम वर्ग, निम्न मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग आदि में विभाजित है। ऐसे में सूचना संचार प्रौद्योगिकी की अत्याधुनिक तकनीक को उन तक पहुँचाना हमारे देश की सबसे बड़ी चुनौती है। देश धन की कमी से जूझ रहा है। हमारे वैज्ञानिक सीमित संसाधनों में इस चुनौती को लेने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। आई. आई.टी. मद्रास, हैदराबाद, खड्गपुर तथा सी. डॅक मुम्बई, तिरुवनन्तपुरम् ने मिलकर, किसानों को मदद के लिए 'संदेश पाठक' नाम का एक सॉफ्टवेयर 23 अप्रैल, 2014 को हिन्दी, तमिल, तेलुगू, मराठी और गुजराती भाषा में जारी किया, जो किसानों द्वारा भेजे गये सन्देशों को आवाज के साथ पढ़ लेता है।

इन सबके बावजूद, भारत में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की स्थिति अच्छी नहीं है। 2014 में जारी 'वैश्विक सूचना-प्रौद्योगिकी रिपोर्ट' के अनुसार, 144 देशों में भारत की स्थिति 83वें स्थान पर रही है, तो 2015 की वैश्विक सूचना-प्रौद्योगिकी रिपोर्ट में 143 देशों में 89वें स्थान पर रही। यह स्थिति तभी मजबूत होगी, जब सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को जन-जन तक पहुँचाया जा सके और जन-जन तक पहुँचाने के लिए इस तकनीक का हिन्दी भाषा में इस्तेमाल करना होगा।

भारत सरकार ने सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के महत्त्व और उपयोगिता को समझते हुए 3 से 7 फरवरी 2014 को जम्मू विश्वविद्यालय में भारतीय विज्ञान कॉंग्रेस का 101वाँ अधिवेशन आयोजित किया, जिसमें जम्मू-कश्मीर में विज्ञान और तकनीक की आवश्यकताओं पर बल दिया तथा 3 से 7 जनवरी 2015 को मुम्बई विश्वविद्यालय में 102वाँ अधिवेशन आयोजित कर शिक्षा के क्षेत्र में इस तकनीक के इस्तेमाल पर बल दिया।

भारत सरकार अपने सीमित संसाधनों से इस दिशा को ऑक्सीजन देने का काम कर रही है। हिन्दी भाषा को व्यापक बनाने के लिए विदेशों में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन किया जाता रहा है। शैक्षिक संस्थानों को आर्थिक एवं प्रौद्योगिकी सहायता प्रदान करने के लिया 1996 में प्रौद्योगिकी विकास बोर्ड' की स्थापना की गई।

निष्कर्ष

भाषा को सूचना एवं प्रौद्योगिकी के साथ जोड़कर ही हम प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। पठन-पाठन के माध्यम से चुनाव को नई शिक्षा नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण मामला माना जा रहा है। यह समाज के व्यापक हित में होगा कि हम न केवल शिक्षा के माध्यम को परिचित भाषा में ढालें, बल्कि भाषा-शिक्षण की पद्धति को भी वैज्ञानिक ढंग से लागू करें।

हिन्दी भाषा शिक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की गति भले ही मंद हो हमारे संसाधन भले ही सीमित हों, लेकिन दावे के साथ यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के दौर में आज का समाज सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित होता जा रहा है। आज संसार के प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधियाँ इसकी बुनियाद पर खड़ी हैं। सूचना और संचार तकनीक की वजह से बहुभाषी, बहुधर्मी और विविध संस्कृतियों का अनुसरण करने वाला वैश्विक समाज आज मुठ्ठी में समा गया है। इसी तकनीक की वजह से घरों में बैठा इंसान दुनियाँ में हो रही गतिविधियों के सम्पर्क में मिनटों में आ जाता है, जिस वजह से लोगों में एक दूसरे की भाषा संस्कृति और समाज को जानने की समझ विकसित हो रही है। वर्तमान समय में बहुभाषिक वैश्विक समाज का एकीकरण भी इसी सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की वजह से हो रह है। हिन्दी भाषा का भी विश्व की समृद्ध भाषाओं में अग्रणी स्थान है। दुनियाँ की बड़ी सभ्यताओं के निर्माण में भारतीय मूल की भाषाओं का सर्वाधिक योगदान रहा है। विश्व में अस्सी करोड़ से अधिक लोग किसी-न-किसी रूप में हिन्दी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में; जरूरी हो गया है कि हिन्दी भाषा को मजबूत, समृद्ध, सरल, सृजनात्मक और व्यापक बनाने के लिए हिंदी भाषा शिक्षण में संचार की अद्यतन प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाय।

सूचना एवं संचार तकनीक के प्रयोग से न केवल हिन्दी भाषा का प्रसार हो सकेगा, बलिक हिन्दी भाषा शिक्षण का इस्तेमाल न्यूनतम समय में सरलतम ढंग से वैश्विक, सामुदायिक, शैक्षणिक संस्थाओं, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मामलों, सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों इत्यादि के जरिये सृजनात्मक बनाया जा सकेगा। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतर शिक्षा तक हिन्दी भाषा शिक्षण में सूचना और संचार तकनीक के प्रयोग से भारत जैसे बहुभाषी समाज में न केवल बोल-चाल के रूप में, बल्कि शैक्षणिक क्षेत्र में भी हिन्दी भाषा की अधिकतम पैठ बनायी जा सकती है। इस तरह, न केवल हिन्दी भाषा विस्तृत और समृद्ध होगी, बल्कि राष्ट्र की एकता, अखण्डता और गौरवशाली संस्कृति को बनाये रखने में भी सहायक होगी।

सन्दर्भ-सूची

1. पी. डी. पाठक- भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, 1974 पृष्ठ 14
2. योजना मासिक पत्र, प्रकाशन विभाग-दिल्ली, मई 2013, पृष्ठ 15
3. डॉ. वासुदेव नन्दन प्रसाद, आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना, भारती भवन, पटना, 2008, पृष्ठ 1
4. गोविन्द पाण्डेय- हिन्दी भाषा और साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, सरस्वती पाण्डेय अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 1
5. शिक्षण एवं शोध अभियोग्यता- अरिहन्त पब्लिकेशन इंडिया लि., मेरठ, यूनिट 1. पृष्ठ1
6. शिक्षण एवं शोध अभियोग्यता- प्रतियोगिता साहित्य सिरीज, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, पृष्ठ 1

7. डॉ. मार्तण्ड शर्मा- हिन्दी शिक्षण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण- 2008 पृष्ठ 3
8. वासुदेव नन्दन प्रसाद- आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना, पटना, 2008, पृष्ठ 1
9. डॉ. मार्तण्ड शर्मा - हिन्दी शिक्षण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 16
10. एस.के. ओझा- जनसंख्या एवं नगरीकरण, बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ 10
11. डॉ. हरदेव बाहरी - हिन्दी उद्‌भव, विकास और रूप, किताब महल, इलाहाबाद, 2009 पृष्ठ 207
12. गोविन्द पाण्डेय-सरस्वती पाण्डेय- हिन्दी भाषा और साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास् अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, प्राक्कथन- दो शब्द।
13. आशा हींगड़, मधु जैन, सुशीला पारीक संचार के सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रंद्‌थ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण- 2014, पृष्ठ- प्रस्तावना
14. डॉ. हरदेव बाहरी - हिन्दी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृष्ठ 99
15. समसामयिक घटना-चक्र- अतिरिक्तांक, बातें निबंध की, समसामयिक घटना चक्र प्रा . लि .चर्च लेन, इलाहाबाद, संस्करण-2013, पृष्ठ 37

'मानवाधिकार' वैश्विक चेतना के रूप में विकास

विभा कुमारी

जे. डी. विमेंस कालेज, पटना

शोध सार

प्रस्तावित शोध लेख मानवाधिकार के सम्बंध में मानवीय चेतना की स्थिति का विवेचन करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भिक काल में मानव के अधिकारों की समस्या एक विश्व समस्या नहीं थी और न ही यह अध्ययन का अन्तर्राष्ट्रीय विषय था। यह मूलरूप से सम्प्रभु राज्यों के क्षेत्राधिकार का विषय था और किसी राज्य में रहने वाले नागरिक को राज्य द्वारा ही यह अधिकार प्राप्त था। लेकिन धीरे-धीरे मानव कल्याण के संघर्ष एवं उसके अधिकारों के प्रश्न ने इसे विश्वव्यापी स्वरूप प्रदान कर दिया। वस्तुतः यह शताब्दियों से मानव जाति द्वारा अपने अधिकारों के लिए किये गये संघर्ष का परिणाम है। जहाँ मनुष्य मात्र को अधिकार दिये जाने का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, वही बच्चों तथा स्त्रियों को जो शारीरिक दृष्टि से निर्बल होते हैं, सरंक्षण की अधिक आवश्यकता होती है। इनके लिए यह और भी महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध का विषय मानवीय चेतना के मानवाधिकार के सम्बंध में अध्ययन से सम्बंधित है। इसलिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण तथा सामयिक है।

मूल शब्दः- मानवाधिकार, चेतना, वैश्विक, अधिकार, स्वतंत्रता, समानता

प्रस्तावना

मानवाधिकार का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लोगों में ऐसी जागरूकता का बदलाव हो रहा है कि उन्हें एक ऐसी जीवन पद्धति चाहिये जो मानव गरिमा के अनुरूप हो। उनकी आकांक्षा और सम्भावना इस बात को लेकर है कि उनके लिए ऐसे जीवन पद्धति का जिम्मा लिया जाना चाहिये या ऐसी जीवन पद्धति सुनिश्चित की जानी चाहिए।

हैरोल्ड लास्की के अनुसार, ''अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ है जिनके वगैर सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।" मनुष्य के लिए जहाँ रोटी, कपड़ा और मकान अपरिहार्य है वहीं इसके साथ कतिपय ऐसी अन्य चीजें है जो आधुनिक मानव समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है और इसमें मानवाधिकार भी शामिल है। अतः मोटे तौर पर मानवाधिकार को हम वे अधिकार कह सकते हैं जो एक मानव को मानव होने के नाते मिलने चाहिये, वे अधिकार जो उसमें मानव होने के नाते अन्तर्निहित हैं, अधिकार जो एक मानव के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। संक्षेप में वे अधिकार जो मानव को 'भय' और 'भूख' से मुक्ति दिलाने के लिए आवश्यक हैं, मानवाधिकार कहे जा सकते है।

मानव-अधिकारों का विकास

एक समय था जब मानव-अधिकारों की समस्या एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या नहीं थी। यह प्रत्येक राज्य के अनन्य क्षेत्राधिकार का विषय था। यह सदियों के विकास का परिणाम है। शताब्दियों से मानव-जाति अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के बहुत पहले ही कई महत्त्वपूर्ण घोषणाओं में मानव-अधिकारों को मान्यता दी गयी थी। उदाहरणार्थ, 1215 के मैग्ना कार्टा, 1676 के बन्दी प्रतयक्षीकरण अधिनियम, 1689 के बिल ऑफ राइट्स, 1776 की अमरीका की स्वतंत्रता की घोषणा

और 1789 की मानव-आधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा में मानव-अधिकारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। बर्लिन कांग्रेस, ब्रुसेल्स सम्मेलन और दोनों हेग शांति सम्मेलनों में मानव के व्यक्तित्व को मान्यता देने के लिए बड़े कदम उठाये गये। इसी उद्देश्य हेतु 19 वीं सदी में अफ्रीकी दासों के क्रय-विक्रय की भतर्सना की गई और पश्चिमी एशिया में अल्पसंख्यकों के नर-संहार के विरूद्ध पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा आवश्यक कार्रवाई भी की गई। महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये दक्षिणी अफ्रीका की रंग-भेद नीति के विरूद्ध संघर्ष का आधार भी वस्तुत: मानव-अधिकारों की रक्षा ही था। द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य नाजी जर्मनी द्वारा अल्पंसख्यकों और विजित प्रदेशों की जनता पर किये गये अमानुशिक अत्याचारों ने तो विश्व को इन संगठित अत्याचारों के विरूद्ध सुनियोजित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और विधान बनाने के लिए बाध्य कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के एक अंधकारपूर्ण क्षेत्र में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा ब्रिटिस प्रधानमंत्री चर्चिल ने युद्धोत्तर विश्व के मानव के लिए एक घोषणा-पत्र का ऐलान किया। उसमें चार स्वतंत्रताओं को मान्यता दी गयी। जनवरी, 1942 को हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्रों की घोषणा में स्पष्ट कहा गया कि सभी राज्यों में मानवीय अधिकारों का संरक्षण उन अनेक परिणामों में से एक था, जिनकी प्राप्ति की आषा धुरी-राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने से की गयी थी। नवीन अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के आधार-रूप में प्रस्तुत डम्बार्टन-ओक्स प्रस्तावों ने यह प्रावधान किया कि प्रस्तावित संगठन को ''अनतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और अन्य मानवीय समस्याओं को सरलता से हल करना चाहिए तथा मानवीय अधिकारों एवं आधारभूत स्वतंत्रताओं का आदर करने में अभिवृद्धि करनी चाहिए।" सन् 1945 में मेक्सिकों नगर में युद्ध एवं शांति की समस्याओं पर विचारार्थ सम्मेलन ने मनुष्यों के मूलभूत अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण की व्यवस्था के लिए अमरीकी गणराज्यों का समर्थन घोषित किया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ और मानव-अधिकार

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर को अन्तिम स्वरूप देने के लिए सन् 1934 में सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन में एकत्रित अनेक प्रतिनिधियों ने चार्टर में ही मानव-अधिकार सम्बंधी विस्तृत घोषणा तथा तत्सम्बंधी व्यवस्थाओं की माँग की। जनरल स्मट्स ने यह सुझाव दिया कि चार्टर के प्रारम्भ में और उसकी प्रस्तावना में मानव-अधिकारों की एक घोषणा रखनी चाहिए। परिणामस्वरूप चार्टर में मानव-अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है। हैन्स केल्सन ने लिखा है-''संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में संभवत: किसी भी विषय का उतना अधिक उल्लेख नहीं हुआ जितना मानव-अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं का।" चार्टर की प्रस्तावना में ही मानव-अधिकारों, मानव के व्यक्तित्व के सम्मान एवं महत्त्व में" आस्था व्यक्त की गयी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों में, अनुच्छेद 1 के अन्तर्गत ''मानव-अधिकारों तथा सभी के लिए बिना जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म भेद-भाव के मौलिक स्वतंत्रताओं को उन्नत तथा प्रोत्साहित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त" करना भी है। इसी तरह के प्रावधान अनुच्छेद 56 और 76 में भी हैं जिनमें मानव-अधिकारों से सम्बंधित क्रमश: सामाजिक तथा आर्थिक सहयोग और ट्रस्टीशिप व्यवस्था की बात की गयी है। मानव को युद्ध का भय नहीं हो, अभाव से मुक्ति मिले, मानव की मर्यादा एवं गौरव सहज ढंग से उपलब्ध हो, जाति, धर्म, देश, राष्ट्र की दीवारें उनको बाँधें नहीं रखें- ये कुछ संकल्प हैं जो घोषणा-पत्र के हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों ने अपने समक्ष रखे हैं।

मानव-अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा

सभी को समान मानव-अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष प्रारम्भ से ही संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने ढंग से शुरू कर दिया। इस महान कार्य के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में मानव-अधिकार आयोग का गठन किया गया। दो वर्ष से अधिक के परिश्रम के फलस्वरूप आयोग ने मानव-अधिकार की घोषणा तैयार की। महासभा ने अपने 1948 ई0 के अधिवेशन मे इसे स्वीकृति प्रदान की। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने ढंग की यह पहली घोषणा थी। महासभा ने इस घोषणा को एक ऐसा आदेश-पत्र माना जिसके आधार पर सभी व्यक्ति और समाज इन अधिकारों एवं स्वतंत्राताओं को प्राप्त करने-कराने के लिए विभिन्न स्तरों पर समुचित प्रयास करेंगे। घोषणा के दो भाग है- पहले में राजनीतिक एवं नागरिक अधिकार तथा दूसरे में अपेक्षाकृत नवीनतम आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार एवं स्वतंत्रताओं का उल्लेख किया गया है। वास्तव में मानव-अधिकारों की इस घोषणा को एक अन्तर्राष्ट्रीय मैग्नाकार्टा और मानव-अधिकारों का एक अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर कहना उचित है। 'जार्ज स्वर्जनबर्जर' ने ठीक ही कहा है ''संभवत: किसी भी आधुनिक संविधान में मानव-अधिकारों का इस प्रकार उत्तम उल्लेख हो, जैसा कि इसमें किया गया है और इस घोषणा में व्यक्ति के स्वतंत्रता के अधिकार को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है और इसमें यह भी दर्षाया गया है कि एक स्वतंत्र समाज में व्यक्ति के क्या अधिकार हैं। अन्त में यह घोषणा एक सेवा राज्य के आदर्षो को भी बतलाती है।"

घोषणा का महत्त्व

मानव-अधिकारों की घोषणा एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह एक महान् विकासवादी प्रक्रिया का पहला पग है। महासभा ने अधिकारों की इस घोषणा को 'सभी देशों और सभी व्यक्तियों के लिए सफलता का एक सामान्य मापदंड माना है। महासभा के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष कार्ल्स पी0 रोम्यूलो का मत है: ''यह सबसे व्यापक उल्लेख है। यह इतिहास का प्रथम उल्लेख है जिसमें समस्त विश्व के दृष्टिकोण से संसार के सब व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की परिभाषा की गयी है।" लेबनान के प्रति चार्ल्स मलिक, जिनका कि इस घोषणा का प्रारूप तैयार करने में काफी हाथ था, के मतानुसार ''यह प्रथम श्रेणी का लेख्य और एक अनतर्राष्ट्रीय सफलता" है। उन्होंने आगे कहा: ''ईश्वर और राज्य से लेकर बच्चों एवं सामाजिक सुरक्षा तक मानव-जीवन की संभवत: ही कोई ऐसी समस्या हो, जिसका इसमें कोई उल्लेख नहीं किया गया है। यह घोषणा वर्तमान युग के उन मौलिक सिद्धांतों पर प्रकाष डालती है जो मनुष्य के महत्त्व और जन्मजात गौरव को दर्षाते हैं। यह लक्ष्य वास्तव में एक अन्तर्राष्ट्रीय उपज है जिसमें प्रथम बार मानव-अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के सिद्धांतों को अधिकारपूर्ण ढंग तथा विस्तार से बताया गया है।" मानव-अधिकार आयोग की अध्यक्षता श्रीमती एफ0 डी0 रूजवेल्ट ने कहा: ''मानव-अधिकारों की यह घोषणा सब मनुष्यों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मैग्नाकार्टा का स्वरूप ग्रहण कर सकती है।" भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यह आशा प्रकट किये थे कि ''इस घोषणा के द्वारा समस्त विश्व के मनुष्यों के हृदय में विचार का पुनरूत्थान होगा कि जीवन में निश्चयात्मक कुछ ऐसे मूल्य हैं जिनका आदर सबको करना चाहिए। यदि जीवन को भंली भाँति व्यतीत करना है तो उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए।

साहित्य समिक्षा

डॉ0 अभय कुमार, (1988) ने अपने लेख ''भारत में बालश्रमिक" के अन्तर्गत लिखा है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 1979 के एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में 15 वर्ष से कम आयु वाले 52 करोड़ बच्चे रोजी-रोटी से जुझ रहे हैं। इनमें 75 प्रतिशत बाल-श्रमिक तो केवल एशियाई देशों में है। भारत के बच्चों की मुख्य समस्याओं में से एक समस्या बालश्रमिकों की है। भारत में बालश्रमिकों का 80 प्रतिशत से अधिक भाग ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत है। गांवों में जहाँ ये श्रमिक खेती में काम करते हैं, वही शहरी क्षेत्रों में ये दुकानों, होटलों, साईकिल तथा मोटर साइकिल की मरम्मत, रेलवे स्टेशनों, प्रेस, कारखानों, आदि में काम करते देखे जा सकते हैं।

रमेश कनवर्गी, (1991), ने अपनी पुस्तक ''चाइल्ड लेबर इन द इण्डियंन सबकॉन्टीनेन्ट" के अन्तर्गत लेखक का कहना है कि बहुत से अल्पविकसित देशों ने प्राथमिक शिक्षा से सम्बंधित दोहरी समस्याएँ बहुत बड़े पैमाने पर पनप रही है। इनमें से मुख्य समस्या बहुत पहले से ही लाभदायक प्रतिष्ठानों में बच्चों से काम करवाने की प्रथा से जुड़ी है। यद्यपि अल्प विकसित देशों का मुख्य उद्देश्य बालश्रम का उन्मूलन सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों की समप्ति है। लेकिन इन समस्याओं के निराकरण की दिशा में गंभीर अड़चने उनकी व्यवहारिक पहलू पर दृष्टि डालने से उत्पन्न होती हैं, क्योंकि यदि बालश्रमिकों को श्रम करने से रोका जाता है तो इन देशों को सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ढ़ाँचा गड़बड़ा जाता है। अत: इस दिशा में कोई सही सोच बन पाना मुश्किल हैं।

मायरॉन विनर, (1991), ने अपनी पुस्तक ''द चाइल्ड एण्ड द स्टेट इन इण्डिया" में लिखा है कि भारत में दुनिया के सबसे अधिक स्कूल न जाकर काम करने वाले बच्चों की संख्या है। सरकार ने क्यों उन्हें कार्यशक्तियों से अलग नहीं किया और उन्हें स्कूल जाने की आवश्यकता क्यों नहीं महसूस की गई। जैसा कि दूसरे विकसित और विकासशील देशों की सरकारें करती है? इस प्रश्न के उत्तर के लिये बड़े पैमाने पर किये गए अध्ययन से यह पता चलता है कि कब और क्यों दूसरे राज्यों ने माता-पिताओं और रोजगार देने वाले लोगों के विरूद्ध बच्चों को रोका। 19 वीं शताब्दी के यूरोप, संयुक्त राज्यों, जापान और अनेक विकासशील देशों का व्यापक अध्ययन करने के बाद मायरॉन विनर महोदय इस दलील को ठुकरा देते हैं कि बच्चों को कार्य शक्ति से तब अलग किया जब गरीबों की आमदनी बढ़ गई और नौकरी देने वाले लोगों ने अधिक बुद्धिमान श्रम शक्तियों की जरूरत महसूस की।

अध्ययन उद्देश्य

- प्रस्तावित शोध अध्ययन से मानवाधिकार के वैश्विक चुनौतियों का उल्लेख करना है।
- प्रस्तावित शोध अध्ययन से संयुक्त राष्ट्र संघ मे दिये गये मानवाधिकार सम्बंधित विषय को उल्लेख करना।

- प्रस्तावित शोध लेख मानवाधिकार एवं मानवीय चेतना के विकास मे एतिहासिक काल-क्रम का विश्लेषन करना है।
- मानवाधिकार एवं मानवीय चेतना के प्रति राज्यों की भूमिका क्या है।

शोध विधिः-

शोध नियमों के अनुसार प्रस्तुत शोध सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं नवीन व्यवहारिक पद्वतियों को अपनाते हुए मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया। द्वितीयक स्त्रोतों के तहत आवश्यक साम्रगी विभिन्न राष्ट्रीय पुस्तकालयों इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलस्ध साधनों के आलावा प्राचीन संदर्भ ग्रंथों से एकत्र किया जाना अनुमान्य है। इन संदर्भ आधरित पुस्तकों के आलावा विभिन्न आयोगो के प्रकाशनों, आत्मलेखों, समाचार पत्र - पत्रिकाओं एवं राजनैतिक दलों के घोषणा पत्रों इत्यादि के लेखन साम्रगी संग्रहित कर विश्लेषणत्मक अध्ययन है।

मानव-अधिकारों की रक्षा का अभिसमय

मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की स्वीकृति के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र के मानव-अधिकार आयोग ने मानवीय अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय की रचना का प्रयत्न किया। यदि इस प्रकार का कोई अभिसमय महासभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा, तब वह संधि के रूप में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों के समक्ष रखा जाएगा। जो राज्य इस संधि का अनुसमर्थन कर देंगे उन पर यह वैधानिक रूप में बाध्यकारी हो जाएगी। सन् 1950 में महासभा ने नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की एक ही संविदा तैयार करने का निर्णय लिया। किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका के अनुरोध पर सन् 1951 में महासभा ने मानव-अधिकार आयोग से दो अभिसमयों का प्रारूप तैयार करने को कहा एक नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर तथा दूसरा आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर। सन् 1954 के मध्य तक मानव-अधिकार आयोग ने अपना कार्य पूरा कर लिया। इसने दोनों प्रसंविदाओं को महासभा के सम्मुख रखा। दिसम्बर 1954 में महासभा ने इस पर विचार करना शुरू किया और अगले सत्र में इस पर ब्योरेवार विचार करने का निश्चय किया। आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के अभिसमय के प्रारूप में यह सुझाव दिया गया है कि सम्बंधित राज्य इन अधिकारों के कार्यान्वयन के सम्बंध में रिपोर्ट दिया करेंगें जिनमें यह बताया जाएगा कि इन अधिकारों को कहाँ तक कार्यान्वित किया है और उनकी कार्यान्वित करने के मार्ग में क्या बाधाएँ हैं। इस प्रकार आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की कार्यान्वित करने का एक ही अन्तर्राष्ट्रीय उपाय बतलाया गया हैं- रिपोर्टिगं पद्धति। परन्तु नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमय को कार्यान्वित करने के लिए एक मानवीय अधिकार समिति की स्थापना का सुझाव दिया गया है।

वर्तमान अभिसमय के पक्षकार राज्य

इस बात का विचार करते हुए कि संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार-पत्र में घोषित सिद्धांतों के अनुसार, मानव-परिवार के सभी सदस्यों की सहज गरिमा तथा समान और अनपहार्य अधिकारों की स्वीकृति विश्व में सवतंत्रा, न्याय और शांति का आधार-स्तंभ हैं।

यह बात ध्यान में रखते हुए कि संयुक्त राष्ट्र संघ के जन-समाजों ने संयुक्त राष्ट्र अधिकार-पत्र में मूल मानवाधिकारों तथा व्यक्ति की गरिमा और महत्ता में अपने विश्वास की पुर्नपुष्टि की है तथा व्यापक स्वतंत्रता के वातावरण में सामाजिक प्रगति एवं बेहतर जीवन स्तर को बढ़ावा देने का संकल्प किया है।

यह स्वीकार करते हुए कि मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा और मानवाधिकार सम्बंधी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में संयुक्त राष्ट्र संघ ने घोषणा की है और वह इस बात पर सहमत हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी प्रकार के विभेद के बिना, जैसे नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य मत, राष्ट्रीय सा सामाजिक मूल, सम्पत्ति, जन्म या अन्य स्थितियों पर आधारित विभेद के बिना, उक्त घोषणा तथा उक्त प्रसंविदाओं में उल्लिखित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है।

इस बात को याद करते हुए कि मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ऐलान किया है कि बचपन विशेष देखभाल और सहायता का पात्र है।

इस बात का कायल होकर कि समाज के बुनियादी समूह और अपने सभी सदस्यों तथा खास तौर से बच्चों के अभिवर्धन और कल्याण के स्वाभाविक परिवेश के रूप में परिवार को आवश्यक संरक्षण तथा सहायता देनी चाहिए, ताकि वह समाज के अंदर अपने दायित्वों को पूर्ण रूप से ग्रहण कर सके।

निष्कर्ष

इस बात को स्वीकार करते हुए कि मानव को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण और सुसंगत विकास के लिए पारिवारिक परिवेष में आनन्द, स्नेह और सौहार्द्र के वातावरण में बढ़ना चाहिए। इस बात को देखते हुए कि मानव को समाज में एक व्यक्तिगत जीवन जीने के लिए पूर्ण रूप से तैयार करना चाहिए और उसका विकास संयुक्त राष्ट्र अधिकार-पत्र में घोषित आदर्शों के अनुरूप और खास तौर से शांति, गरिमा, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, समानता और एकजुटता की भावना के साथ किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, पद्मिनीसेन; चाइल्ड लेबर ऐज ए सोशल प्राबलम्स, सोशल वेलफेयर, वर्ष 25, अंक 11, फरवरी, 1976.
2. जुयाल बी0 एन0, सुदर्शन कुमारी एवं एल0 एम0 चन्दोला; 'चाइल्ड लेबर द ट्वायस इक्सलोटेड', गांधीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्टडीज, राजघाट, वाराणसी, 1985.
3. जुयाल बी0 एन0, चाइल्ड लेबर एण्ड इक्सप्लोटेशन इन द इण्डस्ट्री', इण्डियन सोशल इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली, 1987.
4. कुमार, अभय (डॉ0); 'भारत में बालश्रमिक', समाज कल्याण, नई दिल्ली, नवम्बर 1998.
5. फिके, एलिक; 'चाइल्ड लेबर', पोलिटी प्रोस, आक्सफोर्ड प्रिन्टेड इन ग्रेट ब्रिटेन, 1989.
6. कनबर्गी, रमेश; 'चाइल्ड लेबर इन द इण्डियन सबकॉन्टीनेन्ट', सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1991.
7. विनर, मायरॉन; 'द चाइल्ड एण्ड द स्टेट इन इण्डिया', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1991.
8. यादव, आर0 एम0 (डॉ0); 'भारत में बालश्रमिकों की वर्तमान स्थिति एवं कानून', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, जुलाई, 1993.
9. फिलिप्स, डब्ल्यू0 एस0 के0; 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन इन इण्डिया', राव पब्लिकेशंस, जयपुर, 1994.
10. कुशवाहा, अलका (डॉ0); 'कच्ची उम्र में मजदूरी का बोझ', योजना, नई दिल्ली, जून 1995.
11. शर्मा, संगीता; 'बालश्रमिक व्यवस्था खत्म करना एक चुनौती', योजना, नई दिल्ली, वर्ष 39, अंक-9, सितम्बर, 1995.
12. बुर्रा, नीरा; 'बार्न टु वर्क चाइल्ड लेबर इन इण्डिया', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1995.

कश्मीर: अतीत समृद्ध, वर्तमान रक्तरंजित और भविष्य विकासोन्मुख, हिंदी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में

कृष्णा अनुराग

शोधप्रज्ञ, हिन्दी-विभाग, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति (1947) के साथ ही कश्मीर समस्या एक ऐसे राजनीतिक नासूर के रूप में उठ खड़ी हुई कि आज तक भारत की राजनीति और जनता उसके दुष्परिणाम भोगती आ रही है, यद्यपि यह भी सत्य है कि यह समस्या भारतीय स्वतंत्रता के बाद की नहीं अपितु इसकी जड़ें ऐतिहासिक त्रासदियों से जुड़ी हुई हैं। कब तक इस समस्या का निराकरण होगा इसकी कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की जा सकती है परंतु राजनीतिक प्रयासों के साथ-साथ हिंदी साहित्य में भी इस विषय पर निरंतर सकारात्मक सृजन हो रहा है और साहित्यिक दृष्टिकोण से इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी उपन्यासों में कश्मीर के हालिया उथल-पुथल को यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। हिंदी उपन्यासों में न केवल कश्मीर के इतिहास, परंपरा और सांस्कृतिक थाति का गहरा विश्लेषण है, अपितु वहाँ के लोक-जीवन, सामान्य जनता में हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द और भाईचारे की विरासत का सूक्ष्म चित्रण भी है, साथ ही वर्तमान के कश्मीरी जीवन, आतंकवादी स्थितियों और सन् 1947ई. से चली आ रही राजनीतिक उथल-पुथल का बड़ा प्रमाणिक और संवेदनात्मक चित्रण हुआ है। कश्मीर की भौगोलिक संरचना और स्वर्गीय प्राकृतिक सुंदरता उसे विशिष्ट की श्रेणी में ला खड़ा करती है। इसके बावजूद दिन-रात चलने वाली गोलियाँ, सुबह-शाम होती पत्थरबाजियाँ, सरेआम होती मारकाट और बमबाजियों की वजह से कश्मीर आज कहीं न कहीं समग्न विकास के मामले में पिछड़ चुका है। कश्मीर की व्यथा-कथा को व्यक्त करते हुए कई उपन्यास, मसलन 'कथा सतीसर' (चंद्रकांता), 'दर्दपुर' (क्षमा कौल), कश्मीर की बेटी' (शत्रुन प्रसाद), 'शिगाफ' (मनीषा कुलश्रेष्ठ), 'व्यथ-व्यथा' (हरिकृष्ण कौल) आदि लिखे गए। महत्त्वपूर्ण यह है कि कश्मीर की व्यथा को वाणी देने वाले अधिकतर उपन्यासकारों के लिए यह त्रासदी 'भोगा हुआ यथार्थ' है।

किसी भी देश-प्रदेश के समग्न विकास के लिए आवश्यक है कि शासन-सत्ता और जनता के बीच समन्वय बना रहे और जनता की भी नीतिगत फैसलों में निर्णायक भागिदारी हो, परंतु दुखद यह है कि चौदहवीं शती में जब कश्मीर का पतनकाल शुरू हुआ तब से लेकर आज तक ऐसा नहीं हो सका है। राजा हो या लोकतांत्रिक रूप से चुनी हुई सरकार, दोनों ही जनता पर अपने फैसले थोप देते हैं। जनता की राय नहीं पूछी जाती बल्कि उन्हें जाति, धर्म, संप्रदायों में विभक्त रहने और उसी में उलझे रहने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह स्थिति चौदहवीं शती में भी थी और आज भी उसी रूप में विद्यमान है। "लोहर, क्षत्रिय, डामर, लावण्य, वैष्य, शूद्र-सभी एक साथ न तो बैठ सकते हैं और न देश के लिए विचार कर सकते हैं।"[1] उपन्यास में यह कथन भले ही चौदहवीं शताब्दी का हो लेकिन हम इस सच से मुँह नहीं मोड़ सकते कि आज भी कमोबेश स्थिति ऐसी ही है। फर्क इतना है कि आज जातियाँ गौण हो गयी हैं और साम्प्रदायिकता चरम पर पहुँच चुकी है। सती के पवित्र सरोवर से निकली कश्मीर वादी, जिसे ज्ञान की भूमि का दर्जा मिला, वहाँ तथाकथित कुलीन वर्ग के प्रबुद्ध जनों ने भी स्वहित को देशहित से ऊपर माना तभी तो पंडित प्रवर देव स्वामी कहते हैं- "नहीं तो ये राजा, महाराजा, सम्राट ब्राह्मणों से कर लेना आरंभ कर देंगे।"[2] जबकि उस समय सम्राट ने कर इसलिए माँगा था कि लुटेरे दुल्चा के आक्रमण से कश्मीर को बचाया जा सके। दूसरी ओर एक तथाकथित निम्न वर्ग का निषाद

अपने देश को विपत्तियों से घिरा देख कहता है- "हम लोग भी कर दे रहे हैं। देश को उजड़ने से बचाना है।"[3] वस्तुत: यही सार्थक साहित्यिक प्रयास है किसी समस्या को सुलझाने का। उपन्यासकार एक तथाकथित निम्न जाति के व्यक्ति से यह बात कहवा कर समाज के समक्ष एक उदाहरण पेश करता है और एक नयी दिशा दिखाता है कि वक्त रहते सँभल जाना चाहिए अन्यथा जाति-संप्रदायों में विभक्त रहने पर परतंत्र तो होना ही पड़ेगा और देश के विकास की गति भी चौपट हो जाएगी।

आज कश्मीर की स्थिति बेहद संवेदनशील है, ऐसे नाजुक मौके पर जब एक तरफ सरकार अनुच्छेद-370 और 35, हटा कर यह प्रचारित कर रही है कि सरकार के इस कदम से कश्मीर में विकास की गंगा बहने लगेगी तब एक आम कश्मीरी इकबाल की बातें अनायास ही मस्तिष्क को झकझोरती हैं- "आप लोगों ने हमेशा कश्मीर को चाहा, कश्मीर के लोगों को नहीं। अगर कश्मीर से आपका मतलब सिर्फ पहाड़, जंगलों से है तो बेशक यह रख लीजिए, लेकिन यदि लोगों की परवाह है तो उनकी मर्जी भी सुनिए।"[4] आज नित्य हो रही हिंसा, पत्थरबाजी, बमबाजी, आतंकियों के समर्थन में नारे लगाने की घटनाएँ इसी ओर इशारा करती हैं कि समाज का एक बड़ा वर्ग सरकार के फैसलों से संतुष्ट नहीं है। शायद यही कारण है कि भारत सरकार ने 5 अगस्त 2019 को जो ऐतिहासिक कदम उठाया उसके कई महीने बीत जाने के बाद भी आज स्थितियाँ सामान्य नहीं हो सकी हैं और लोग संगीनों के साये में जीने को मजबूर हैं। हिंदी उपन्यासों में इस बिंदु पर विशेष प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार सरकार और जनता के बीच विश्वास और समन्वय की भयानक कमी है। यही कारण है कि जब सरकार कश्मीर के लिए हितकारी फैसले भी लेती है तब भी जनता का विश्वास और समर्थन हासिल नहीं होता। सरकार के अच्छे फैसले भी अफवाहों की भेंट चढ़ जाते हैं- "दहशतगर्दों ने अफवाहों का ऐसा घनघोर कुहासा फैला रखा था कि दोषी-निर्दोष दोनों के चेहरे उसमें गुम हो गए थे।"[5] प्रश्न यह उठता है कि आखिर शासन-सत्ता से बड़ा तंत्र आतंकवादियों या अलगाववादियों का नहीं हो सकता, फिर यह कैसे मुमकिन है कि सरकार की बातें जनता तक नहीं पहुँचे? इस समस्या पर भी हिंदी उपन्यासों में विचार किया गया है। वह समाधान जो लगभग सभी उपन्यासों के बीच से निकल कर आता है वह यह है कि शासन-सत्ता और जनता के बीच जो बेहिसाब दूरी बढ़ गयी है, उस खाली जगह में आतंकवादियों और अलगाववादियों ने बड़ी मजबूती से पैर जमा लिए हैं और वहीं से भोली-भाली, अशिक्षित जनता को नियंत्रित करते हैं। एक और कारण जो चंद्रकांता अपने उपन्यास श्कथा सतीसरश में गिनाती हैं- "बाह्य षड्यंत्र, भीतरी अव्यवस्था, गलत रणनीतियाँ और शासकों की महत्त्वाकाँक्षाएँ।[6] जब वे 'शासकों की महत्त्वाकाँक्षाएँ' कहती हैं तब उसका मतलब होता है प्रादेशिक सरकार। आजादी के बाद कश्मीर का मुख्यमंत्री जो भी बना कहीं न कहीं उसके हृदय में यह ख्वाहिश रही कि कश्मीर स्वतंत्र राज्य हो और मैं उसका प्रधानमंत्री बनूं। संभवत: इसीलिए उन्होंने अलगाववादियों और आतंकवादियों को फलने-फूलने दिया। बख्शी साहब अपवाद थे जिनके मन में यह ख्वाहिश नहीं जगी।

विकास और शिक्षा के बीच अन्योन्याश्रित संबंध है, किसी भी देश-प्रदेश का विकास तभी संभव है जब वहाँ के युवा शिक्षित हों। कश्मीर इस मामले में कभी देश का सिरमौर था तब कल्हण, बिल्हण, मम्मट, अभिनवगुप्त आदि विद्वानों का वहाँ बसेरा था परंतु आज स्थितियाँ बिल्कुल विपरीत हैं। आज कश्मीरी युवाओं का एक बड़ा वर्ग आतंकियों, अलगाववादियों और कट्टरपंथियों के बहकावे में आ कर कलम उठाने के बजाए हथियार उठा रहा है। बेवाओं की हालत बयाँ करते हुए हेडमास्टर साहब कहते हैं- "हमें आपका ख्याल बहुत कीमती लगा। अगर ये लोग पढ़े-लिखे होते तो..... मेरा मतलब है इनके खाविन्द पढ़े-लिखे होते तो सब-के-सब सिर्फ पन्द्रह या बीस हजार में खुद को नहीं बेचते और अपने पीछे बेवाओं का पूरा गाँव ही नहीं छोड़ देते। इल्म के न होने से ही ऐसा हुआ। हमीदपुर में ऐसा करने में कामयाबी क्यों नहीं मिली आतंकियों को। क्योंकि वे कमोबेश पढ़े-लिखे हैं। इसीलिए अब यह बेवाओं का पूरा गाँव ही हमारे सिर पर आ गया है, क्या करें? कुछ काम भी इनसे नहीं होता। कुछ पढ़ाई-लिखाई इनके लिए शुरू की जाए तो धीरे-धीरे इनसे अपने रोजगार तलाशने की भी कोशिश शुरू करायी जा सकती है।"[7] हेडमास्टर चूँकि पढ़े-लिखे हैं, इसीलिए उनसे बेवाओं का कष्ट नहीं देखा जाता जबकि अनपढ़ और भ्रमित लोग उन बेवाओं को कहते हैं कि खुशी मनाओं तुम्हारा पति शहीदश हुआ है।

सन् 1931ई. में जब गरीब, किसान, मजदूर आदि के नाम पर कश्मीर में राजा के खिलाफ विरोध का बिगुल फूंका गया तभी से अल्पसंख्यक हिंदू समाज भी हिंसात्मक गतिविधियों का शिकार हुआ। यह बात शेख अब्दुल्ला साहब को भी गलत लगी। यही कारण है कि सन् 1931ई. में जिस दल का नाम उन्होंने 'मुस्लिम कांफ्रेंस' रखा था सन् 1939ई. में उसे बदलकर 'नेशनल कांफ्रेस' कर दिया। क्योंकि वे जानते थे कि कश्मीर के विकास के लिए जितना जरूरी मुसलमान है उतना ही जरूरी हिन्दू भी, यह बात

दीगर है कि आगे चलकर उन्होंने भी धर्म के आधार पर भेदभाव शुरू कर दिया। समाज, प्रदेश और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए यह बेहद जरूरी है कि समाज में सौहार्द, प्रेम, सद्भाव और भाईचारा हो परंतु कटु सत्य यह है कि सन् 1980-1990ई. के बीच कश्मीर में धार्मिक उन्माद अपने चरम पर था। जिसका दंश लोग आज तक झेल रहे हैं। कश्मीर की उन्नति और विकास में बराबर के भागिदार हिन्दू समाज को कश्मीर से बर्बरता के साथ खदेड़ा गया। एक भरे-पूरे समाज के पलायन, विस्थापन और निष्कासन से प्रदेश का भी कितना नुकसान होता है इसका भी बड़ी सूक्ष्मता से हिंदी उपन्यासों में चित्रण हुआ है। "अमि, मैं बारह साल का ही था न, जब हमें उन्होंने खदेड़ा था? मुझे हल्का-सा याद था कि श्रीनगर तब कैसा दिखता था। उस समय वहाँ स्कीइंग की इंटरनेशनल प्रतियोगिता होती थी। बहुत तरसता था इसीलिए चला गया।"[8] एक निष्कासित कश्मीरी जिसे अपने घर से जबर्दस्ती निकाल दिया गया हो उसके दर्द को इन पंक्तियों से समझा जा सकता है। आतंकियों की वजह से ही यहाँ पर्यटन उद्योग भी चौपट हो गया। चंद्रकांता भी इसी त्रासदी का शिकार हुई हैं। इसीलिए अपने उपन्यास में व्यथित होकर वे प्रश्न करती हैं- "कश्मीर की अर्थव्यवस्था का आधार कालीन इंडस्ट्री, शाल इंडस्ट्री, पेपर मैषी, वुड वर्क, रेशम के कारखाने और टूरिज्म हैं। देश-विदेश तक फैले इस व्यापार में, कितने पंडित शामिल हैं? मुट्ठीभर ही तो? वहाँ किसने किसका हक छीना है?"[9] ऐसे तमाम प्रकरणों, घटनाओं से इन उपन्यासों के पन्ने रंगे हुए हैं, जिससे कोई भी संवेदनशील व्यक्ति व्यथित हो सकता है। जिस ऋषिभूमि को कल्हण ने स्वर्ग की संज्ञा से विभूषित किया था वह इस कदर रक्तरंजित होगी, किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। जिस प्रदेश में शिवरात्रि और ईद एक साथ मनाने की परंपरा रही हो, वहाँ जब अपने ही लोग अपनों के खून के प्यासे हो जाएँ तो उससे कैसे बचा जा सकता है। 'पाषाण युग' में बृजमोहनजी अपने सबसे खास मित्र सज्जाद से यही कहते हैं- "यह सबसे खतरनाक तूफान है, सज्जाद, क्योंकि यह न लड़ाई है न कबाइलियों का हमला। देख लेना, यह यहाँ की जमीन पर लाशों की ढेर लगा देगा।"(10)

एक बेहद ही गंभीर मुद्दे पर भी हिन्दी उपन्यासकारों का ध्यान गया है। तमाम उपन्यासों में गरीबों की बढ़ती गरीबी और अमीरों की बढ़ती अमीरी को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। "पहाड़ियाँ उतरते भेड़-बकरियों के झुंडों के साथ फटे फिरनों के नीचे नंगी टांगें दिखाते कम उम्र के चरवाहों को देखते सोचता रहा, कि धन्यधान्य से सुहागवती प्रकृति की गोद में, ये अधनंगे चरवाहे और भूमिहीन मजदूर, आजादी के बाद कितना बदल गए? शेख साहब और बख्शी साहब के रहते भी ये वहीं खड़े हैं, जहाँ पहले थे।"11 जब लोकराज्य की माँग के लिए आंदोलन शुरू हुआ था तब लोगों की उम्मीद थी कि जब हमारी अपनी सरकार आएगी तब सब के जीवन में खुशहाली आएगी जबकि खुशहाली आयी सिर्फ "बख्शी ब्रदर्स और शेख साहब के नाते-रिश्तेदारों के साथ कई राजनीतिक सेठों की शानदार कोठियों"[12] में।

कश्मीर धीरे-धीरे सुनियोजित साजिश के तहत देश से काटा जाने लगा। केंद्र सरकार से मिले पैसे को वहाँ सत्ताधारी नेतागण खा रहे थे और जनता को आतंकवादियों का चारा बनने के लिए छोड़ दिया गया था। "यों वादी में नए धन्धे खुले हैं; मिलिटेंटों से पत्रकारों की मुलाकातें करवाना, न्यूज एजेंसियों को भीतरी खबरे देना। बी.एस.एफ. या आर्मी के जवान को मारने के तो दो लाख तक मिलते हैं।"[13] कश्मीर के नौजवानों को पैसों का प्रलोभन देकर इसी तरह भड़काया और बहकाया गया और वे नासमझ उन्हें ही अपना मसीहा मान बैठे। कश्मीरी युवाओं को हत्या के लिए उकसाते हुए आतंकी कहता है- "याद रखो, दो आर्मी अफसरों के सिर याने चार लाख रुपये। पुश्तों के दरिद्र कटेंगे।"[14] इतने दहशतजदा और हिंसात्मक वातावरण के बीच कश्मीर की कश्मीरियत को तहस-नहस किया गया साथ ही आम जनमानस को देश के खिलाफ भड़काने का भरपूर प्रयास किया गया। इतना सबकुछ होने के बावजूद भी कश्मीर से उम्मीद की किरण नजर आती है और लगता है कि भविष्य में निश्चित ही वहाँ समग्न विकास होगा। कारण यह कि इतने हिंसात्मक माहौल में भी शैव, बौद्ध और इस्लामिक संस्कृति की साँझी विरासत सहेजने वाले लोगों की संख्या में कमी नहीं आयी है। हिंसात्मक माहौल में उनकी आवाज जरूर दब गयी है लेकिन उनकी निश्छल भावनाएँ हमेशा अपने देश और हिंसा पीड़ितों के साथ रहीं। हिंदी उपन्यासों में इस बिंदु पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया है। "रहमान ने दुलार से पुचकारा, चल सुलतान, बढ़ा कदम। धीरे-धीरे, टिह...टिह.... टिह । ताजल नहीं हं, हं लल्ली बहन को खैरों से पहुँचाना है... .।"(15) साम्प्रदायिक सद्भाव के अनेक चित्र इन उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। "शुक्र परवरदिगार! खुर्शीद ने आसमान की तरफ हाथ उठाए, ताँगा मोड़ लो और इत्मीनान से चलो। अब कोई डर नहीं। चले गए मुए।"[16] हिन्दू लड़की की विदाई के लिए मुसलमानों को जिम्मेवारी दी गयी और उनलोगों ने इसे बखूबी निभाया भी। इसी सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत ने कश्मीरियत को जीवित रखा है और यही सोच कश्मीर की प्रगति की वाहक बनेगी। इसीलिए जिन लेखकों ने आतंक को झेला भी है उन्होंने भी अपने उपन्यासों में सूक्ष्म से सूक्ष्म साम्प्रदायिक सद्भाव की घटनाओं का स्थान दिया है।

संदर्भ-सूची:

1. प्रसाद, शत्रुन, कश्मीर की बेटी, सत्साहित्य प्रकाशन, संस्करण-2002, पृ-164
2. वही, पृ-16
3. वही, पृ-19
4. रॉय, जयश्री, इकबाल, आधार प्रकाशन, पृ-8
5. चंद्रकांता, कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, पृ-573
6. वही
7. कौल, क्षमा, दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ-351
8. कुलश्रेष्ठ, मनीषा, शिगाफ, राजकमल प्रकाशन, पृ-59
9. चंद्रकांता, कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, पृ-513
10. कौल, संजना, पाषाण युग, आधार प्रकाशन, पृ-37
11. चंद्रकांता, कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, पृ-326
12. वही, पृ- 326
13. वही, पृ- 535/536
14. वही, पृ- 547
15. वही, पृ- 23
16. वही, पृ-25

भारत में आतंरिक जनस्थान्तरण: एक अध्ययन

तबस्सुम आरा

पी.एच.डी., भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

सार

1.40 अरब की आबादी के साथ, भारत दक्षिण एशिया में स्थित एक सांस्कृतिक रूप से विविध, निम्न-मध्यम आय वाला देश है। 2011 की जनगणना के आंकड़ों से पता चलता है कि भारतीयों में आठ प्रतिशत से कम एसीएमआई के साथ स्थायी आंतरिक प्रवास का निम्न स्तर प्रदर्शित होता है, जिसे विशेष रूप से पुरुषों के बीच अस्थायी परिपत्र प्रवास द्वारा प्रतिस्थापित माना जाता है। अपनी लगभग 30 प्रतिशत आबादी शहरों में रहने के साथ, भारत शहरी संक्रमण के प्रारंभिक चरण में है और ग्रामीण से ग्रामीण प्रवासन का बोलबाला है, हालांकि शहरी क्षेत्रों में आवाजाही धीरे-धीरे बढ़ रही है। प्रवासन प्रभावशीलता का मध्यम स्तर कम तीव्रता के साथ मिलकर सीमित जनसंख्या पुनर्वितरण को रेखांकित करता है। स्थानिक पैटर्न सामाजिक आर्थिक स्थितियों में स्पष्ट और लगातार राज्य-स्तरीय भिन्नताओं को दर्शाते हैं जहां विकसित और शहरीकृत राज्य शुद्ध लाभ दर्ज करते हैं जबकि विकास के निचले स्तर पर राज्य शुद्ध घाटा दर्ज करते हैं। एशियाई और वैश्विक मानकों के आधार पर स्थायी आंतरिक प्रवासन के निम्न स्तर के बावजूद, भारत सरकार भीड़भाड़ और बुनियादी ढांचे के प्रावधान के मुद्दों के आसपास ग्रामीण से शहरी प्रवास के बारे में चिंतित है।

मूल शब्दः भारत, प्रवास, स्थानान्तरण, जनसांख्यिकीय परिवर्तन

1 परिचय

कई विकासशील देशों की तरह, भारत ने भी बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान तेजी से जनसांख्यिकीय परिवर्तन का अनुभव किया है। कुल प्रजनन दर (टीएफआर) 1970 के दशक के दौरान छह के उच्च स्तर से लगातार कम होकर 2015 तक 2.2 की टीएफआर (आईआईपीएस और आईसीएफ 2017) के साथ लगभग प्रतिस्थापन स्तर पर आ गई,। जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ है, जो 1970 और 1975 के बीच 50 वर्ष से बढ़कर 2011 और 2015 के बीच 68 वर्ष हो गई है। परिणामस्वरूप, भारत में एक युवा आबादी है, जिसमें लगभग 60 प्रतिशत 15-59 आयु वर्ग में हैं और 2011 की जनगणना के अनुसार औसत आयु लगभग 24 वर्ष है। इसके अलावा, भौगोलिक क्षेत्रफल के मामले में भारत सातवां सबसे बड़ा देश है और 2011 की जनगणना के अनुसार 1.2 बिलियन की आबादी के साथ दुनिया का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश था जो अब पहले नंबर पर आ गया है। भारतीय क्षेत्रों और राज्यों के बीच काफी जनसांख्यिकीय विविधता और जनसांख्यिकीय और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के विविध पैटर्न दिखाता है।

जनसांख्यिकीय परिवर्तन के माध्यम से प्रगति के बावजूद, शहरीकरण का स्तर अपेक्षाकृत कम 31.1 प्रतिशत बना हुआ है। यह एक शहरी क्षेत्र की एक प्रतिबंधात्मक परिभाषा का उत्पाद है, जो शहरी विकास में शुद्ध ग्रामीण-से-शहरी प्रवास के कम योगदान से जुड़ा है, और देश के भीतर ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या के पुनर्वितरण में प्रवासन की भूमिका पर एक सीमित सुझाव देता है। इस प्रकार, माना जाता है कि यथास्थान शहरीकरण, या ग्रामीण बस्तियों को शहरी के रूप में पुनर्वर्गीकृत करने का शुद्ध ग्रामीण-से-शहरी प्रवास की तुलना में शहरीकरण पर अधिक प्रभाव पड़ा है।

भारत में आंतरिक जनसंख्या आंदोलन का एक लंबा इतिहास है। स्वतंत्रता के बाद के भारत में, 1947 में देश के विभाजन के कारण भारत और पाकिस्तान के बीच लगभग 14 मिलियन लोगों को जबरन विस्थापित होना पड़ा, जिसमें सीमा के दोनों ओर से

लगभग सात मिलियन लोग शामिल थे। इसके बाद, बंदरगाह शहरों, अर्थात् कलकत्ता (कोलकाता), बॉम्बे (मुंबई) और मद्रास (चेन्नई) में उद्योगों और व्यापार की तीव्र वृद्धि ने आंतरिक प्रवास की दूसरी लहर को जन्म दिया। दिल्ली के साथ इन तीन नए उभरे केंद्रों ने क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं को नया आकार दिया और भारत के भीतर बड़े अंतर-क्षेत्रीय प्रवास प्रवाह को गति दी। इन शहरों में छोटे और मध्यम आकार के उद्योग पनपे, जो आसपास के ग्रामीण इलाकों से आने वाले अकुशल मजदूरों पर निर्भर हो गए।

उदाहरण के लिए, बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान कलकत्ता जूट उद्योग में अधिकांश श्रमिक बिहार, उत्तर प्रदेश, ओडिशा और आंध्र प्रदेश जैसे कम विकसित राज्यों से आए थे। मुंबई में, जहां बड़ी संख्या में सूती कपड़ा उद्योग स्थापित किए गए थे, प्रवासी शुरू में महाराष्ट्र राज्य के आसपास के जिलों से आए थे (भगत और जोन्स 2014), जिससे विकास में क्षेत्रीय असमानताएं मजबूत हुई (रजा और हबीब 1976)। वर्तमान में भी क्षेत्रीय असमानताएँ लगातार बढ़ती जा रही हैं और अंतर-राज्य प्रवास का एक महत्वपूर्ण चालक बनी हुई हैं, विशेषकर मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और दिल्ली शहरों में।

यह शोध लेख भारत में वर्तमान आंतरिक प्रवासन प्रक्रियाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है।

2 आंतरिक प्रवासन डेटा

जनगणना, भारत में आंतरिक प्रवासन डेटा का प्रमुख स्रोत है और इसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) द्वारा आयोजित नियमित सर्वेक्षणों द्वारा पूरक किया जाता है। यह अनुभाग प्रत्येक उपकरण द्वारा एकत्र किए गए माइग्रेशन डेटा के प्रकार की समीक्षा करता है। भारत ने 1872 से दशकीय जनगणना आयोजित की है और जन्म स्थान और वर्तमान निवास स्थान की तुलना के आधार पर आजीवन प्रवासन को शुरू से ही एकत्र किया गया है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भारतीय जनगणना वर्षों में निवास की अवधि एकत्र करती है, न कि महीनों में, और इस प्रकार अस्थायी गतिशीलता के विश्लेषण की अनुमति नहीं देती है, जिसे एनएसएसओ सर्वेक्षण डेटा के साथ बेहतर ढंग से कैप्चर किया जाता है। 1971 के बाद से भारतीय जनगणना ने उत्तरदाताओं से यह भी पूछा है कि क्या उनका पिछला निवास स्थान शहरी या ग्रामीण क्षेत्र में था, जो जनगणना के समय उनके निवास की शहरी स्थिति की जानकारी के साथ मिलकर, प्रवास की प्रकृति के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच प्रवासन के कारणों को 1981 की जनगणना में पेश किया गया था और तब से लगातार एकत्र किया जा रहा है। जनगणना के अलावा, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय कई सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण आयोजित करता है, जिसमें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) भी शामिल है, जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधि, बड़े पैमाने पर, बहु-गोल सर्वेक्षण है। इसने 1955 से हर छह से सात वर्षों में अपने श्रोजगार और बेरोजगारीश कार्यक्रम के हिस्से के रूप में सामाजिक आर्थिक और प्रवासन डेटा एकत्र किया है। एकत्र की गई जानकारी के उदाहरणों में 1993 के 49वें सर्वेक्षण दौर में प्रवासियों की आवास स्थिति, और वापसी प्रवासन और आगे बढ़ने के कारण शामिल हैं।

आंतरिक प्रवासन पर डेटा एकत्र करने वाले अन्य महत्वपूर्ण सर्वेक्षण भारतीय मानव विकास सर्वेक्षण (आईएचडीएस) और राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) हैं। पहला मौसमी और अल्पकालिक प्रवास और प्रेषण पर डेटा प्रदान करता है, जबकि दूसरा निवास की अवधि पर डेटा एकत्र करता है और स्थायी आंतरिक प्रवास के विश्लेषण की अनुमति देता है। भारत में अन्य सर्वेक्षणों की तरह, वे उत्पत्ति और गंतव्य स्थानों पर डेटा एकत्र नहीं करते हैं। इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित सीमाओं के बावजूद, जनगणना डेटा में आंतरिक प्रवासन स्तर और स्थानिक पैटर्न के अध्ययन की अनुमति देने का अनूठा लाभ है, जबकि सर्वेक्षण डेटा प्रवासी और गैर-प्रवासी परिवारों के बीच सामाजिक-जनसांख्यिकीय अंतर और कारणों के विश्लेषण के लिए सबसे उपयुक्त है।

स्थानिक ढांचा

भारत एक संघीय देश है जिसकी प्रशासनिक प्रणाली में तीन स्तरीय पदानुक्रम शामिल है: राज्य, जिले और स्थानीय प्रशासनिक इकाइयाँ (यानी, गाँव और शहरी केंद्र)। 2001 की जनगणना में, भारत को 28 राज्यों और सात केंद्र शासित प्रदेशों (यूटी) में विभाजित किया गया था। 2013 में आंध्र प्रदेश को आंध्र प्रदेश और तेलंगाना राज्यों में विभाजित करने के साथ राज्यों की संख्या बढ़कर 29 हो गई। जबकि राज्यों की अपनी सरकार होती है, केंद्र शासित प्रदेशों पर सीधे केंद्र सरकार का शासन होता है। इनमें अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, चंडीगढ़, दारा और नगर हवेली, दमन और दीव, दोहरी स्थिति वाली दिल्ली, लक्षद्वीप और पुडुचेरी

शामिल हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की जनसंख्या नाटकीय रूप से भिन्न है, सिक्किम में दस लाख से कम से लेकर उत्तर प्रदेश में लगभग 200 मिलियन तक।

जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है, राज्यों को जिलों में विभाजित किया गया है, जो राज्य सरकारों के नियंत्रण में शासन की प्राथमिक इकाइयाँ हैं। 2001 में जिलों की संख्या 593 थी और 2011 की जनगणना में यह बढ़कर 640 हो गई। हिमाचल प्रदेश के उत्तर में एक जिला लाहुल स्पीति और अरुणाचल प्रदेश राज्य के ट्वांग जिले में जिले की आबादी 50,000 से कम और महाराष्ट्र राज्य के ठाणे जिले में 11 मिलियन से अधिक है। जिलों को आगे 643,749 गांवों और शहरी केंद्रों (2001 में 638,588 राजस्व गांव और 5161 प्रशासनिक शहर) में विभाजित किया गया है, जो सबसे छोटी स्थानिक इकाइयां हैं। जिनके लिए आंतरिक प्रवासन को अंतर-जिला स्तर पर भारतीय जनगणना में दर्ज किया गया है। दिल्ली, मुंबई और कोलकाता जैसी कुछ शहरी इकाइयाँ बहुत बड़ी हैं और शहर के भीतर आवाजाही दर्ज नहीं की जाती है।

Figure-1 States and Union Territories of India

कौन प्रवास करता है?

प्रवासियों की विशेषताएं दुनिया भर के देशों में, प्रवासन को एक चयनात्मक प्रक्रिया माना जाता है, विशेष रूप से उम्र के संबंध में, क्योंकि प्रवासन की तीव्रता युवा वयस्क उम्र में चरम पर होती है और उसके बाद गिरावट आती है। भारत में भी अंतर-जिला प्रवासन जीवन की शुरुआत में चरम पर होता है, महिलाओं के लिए लगभग 20 साल की उम्र में और पुरुषों के लिए 25 साल की उम्र में।

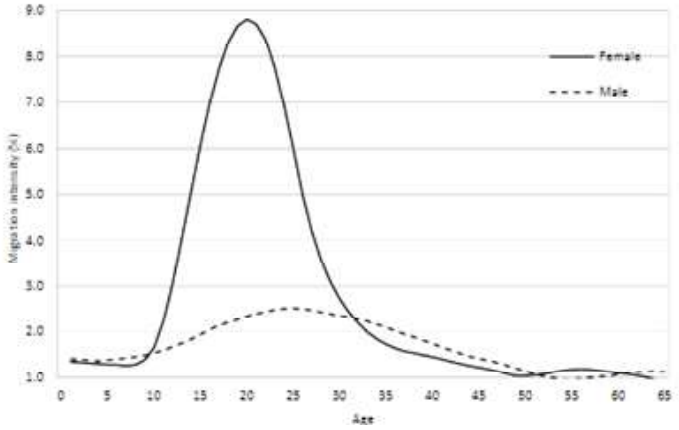

चित्र 2. Age-specific migration intensities by sex, India, 2000

Source; Data from the 1999-2000 National Sample Survey, migration between districts, smoothed using kernel regression (Bernard and Bell 2015)

साथ ही, भारत प्रवास के समय और स्तर में लिंगों के बीच उल्लेखनीय भिन्नता प्रदर्शित करता है। वैश्विक स्तर पर और एशिया के अन्य देशों की तुलना में यह एक सामान्य पैटर्न है; महिला प्रवास आम तौर पर जीवन में पहले होता है और एक सीमित आयु सीमा पर केंद्रित होता है। जबकि अन्य देशों में लिंग अंतर को महिलाओं के जीवन की अधिक कठोर संरचना (बर्नार्ड एट अल. 2014) द्वारा समझाया गया है, भारत में यह पुरुषों और महिलाओं के बीच भिन्नता को रेखांकित करने वाले कारणों के मिश्रण में अंतर है। महिला प्रवासन जल्दी चरम पर होता है क्योंकि यह लगभग पूरी तरह से विवाह से प्रेरित होता है जबकि पुरुष प्रवासन शिक्षा और रोजगार के संयुक्त प्रभावों के कारण बाद में चरम पर होता है। इस प्रकार, चरम प्रवासन के समय महिला की उम्र पहली शादी के समय की औसत उम्र के साथ काफी मेल खाती है, जो कि 20 वर्ष है। यही कारण है कि 2011 तक के पांच वर्षों में 63 प्रतिशत प्रवासी महिलाएं थीं।

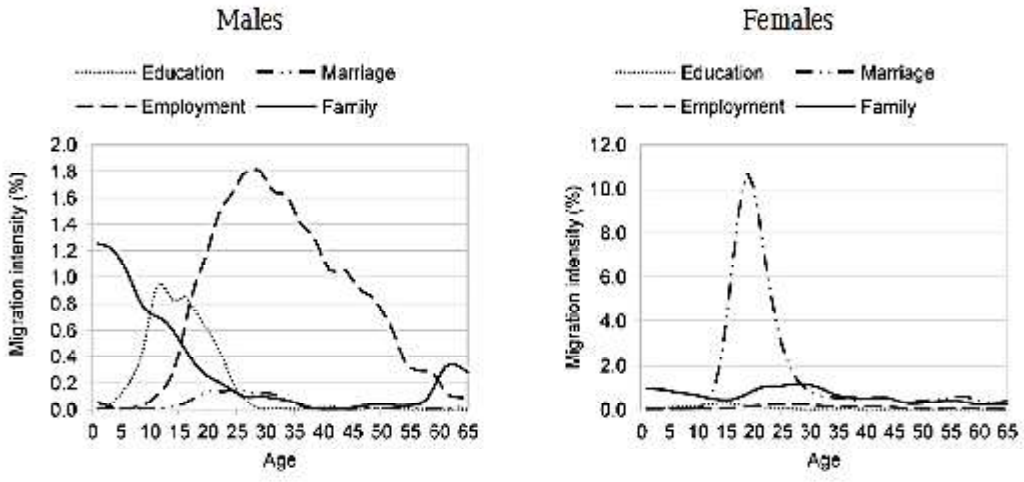

Fig-3 Age-specific migration intensities by sex and reason for move, India, 2000

Source; Data from the 1999-2000 National Sample Survey, migration between districts, smoothed using kernel regression (Bernard and Bell 2015)

प्रवासन के लिए प्रेरणाओं का नवीनतम विवरण प्रदान करने के लिए, तालिका 2 में 2001 और 2011 की जनगणना के आधार पर स्थानांतरण के कारणों को वर्गीकृत किया गया है। इससे पता चलता है कि 2011 में आधे से अधिक महिला प्रवासियों ने विवाह को प्रवासन का मुख्य कारण बताया, हालांकि 2001 के बाद से यह अनुपात थोड़ा कम हो गया है। जबकि अधिकांश विवाह-संबंधी स्थानांतरण जिलों के भीतर या उनके बीच कम दूरी पर होते हैं, कुछ में बदलाव शामिल होता है राज्य की सीमाएँ. दूसरी ओर, पुरुष मुख्य रूप से रोजगार-संबंधी कारणों से प्रवास करते हैं, हालांकि 2011 तक के दस वर्षों में रोजगार-संबंधी प्रवासन की हिस्सेदारी में पांच प्रतिशत की गिरावट आई थी, जो संभवत: इस अवधि में भारत में सुस्त आर्थिक विकास से जुड़ा हुआ है।

तालिका 1 से यह भी पता चलता है कि एक-चौथाई पुरुष और एक-पाँचवीं महिलाएँ घर के पुरुष-महिला सदस्यों के साथ प्रवास करती हैं, विशेषकर बचपन और किशोरावस्था में। जन्म के बाद की गतिविधियों में पुरुषों और महिलाओं दोनों की हिस्सेदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यह उन जन्मों से संबंधित है जो मामा के घर में या वर्तमान निवास स्थान के गांव और शहर की सीमाओं के बाहर अस्पतालों में होते हैं, जिन्हें जनगणना में प्रवासन के रूप में वर्णित किया जाता है जब बच्चे अपने घरों में चले जाते हैं। 2005 के बाद भारत सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के तहत मातृ एवं नवजात मृत्यु दर को कम करने के लिए स्वास्थ्य संस्थानों में जन्म को प्रोत्साहित करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम शुरू किया। इससे देश में संस्थागत प्रसव में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो तालिका 1 में दर्शाया गया है।

	2001		2011	
Reasons	**Male (%)**	**Female (%)**	**Male (%)**	**Female (%)**
Work/Employment	36.9	4.2	31.5	3.8
Business	2.5	0.3	1.6	0.4
Education	8.4	3.2	6.7	2.6
Marriage	1.6	58.7	2.5	55.8
Moved after Birth	8.9	4.7	12.7	6.5
Moved with Household	24.4	21.6	26.2	20.5
Others	17.0	8.3	18.4	10.2
Total	100.0	100.0	100.0	100.0

Source: Census of India 2001, D3 Table; Census of India 2011, D3 Table.

वे कहाँ जाते हैं?

स्थानिक पैटर्न प्रवासन आवश्यक रूप से जनसंख्या के वितरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं लाता है क्योंकि कुछ प्रवाह प्रति-प्रवाह द्वारा संतुलित होते हैं। जनसंख्या का शुद्ध पुनर्वितरण दो समानांतर प्रक्रियाओं का उत्पाद है: (1) गति की तीव्रता, जैसा कि क्रूड माइग्रेशन इंटेंसिटी (सीएमआई) द्वारा मापा जाता है और (2) प्रवाह और प्रति-प्रवाह के बीच विषमता की डिग्री, जैसा कि माइग्रेशन द्वारा मापा जाता है। प्रभावशीलता सूचकांक (एमईआई)। एएनएमआर, जो 100 से विभाजित इन दो मापों का उत्पाद है, देश की सभी भौगोलिक इकाइयों में जनसंख्या पुनर्वितरण की सीमा को निर्धारित करता है।

जैसा कि तालिका 2 में दिखाया गया है, कम प्रवासन तीव्रता की कुछ हद तक एमईआई द्वारा मापी गई उच्च प्रवासन प्रभावशीलता से भरपाई होती है। हालाँकि, बहुत कम सीएमआई के कारण, राज्यों के बीच प्रवास का समग्र पुनर्वितरण प्रभाव सीमित है, 2011 तक पाँच वर्षों में केवल 0.47 प्रतिशत आबादी राज्यों के बीच पुनर्वितरित हुई, जो 2001 में 0.38 प्रतिशत थी। प्रवाह की शुद्ध मात्रा यह 2001 से पांच वर्षों में लगभग 3.9 मिलियन लोगों और 2011 से पांच वर्षों में 5.2 मिलियन लोगों के अनुरूप है। जीवनकाल प्रवासन की जांच करते समय शुद्ध अंतर-राज्य पुनर्वितरण थोड़ा अधिक है, लेकिन यह केवल इसलिए है क्योंकि जीवनकाल प्रवासन संचयी इतिहास का प्रतिनिधित्व करता है कई दशकों में प्रवासन।

भारत में प्रवासन का पुनर्वितरण प्रभाव क्षेत्रीय और वैश्विक मानकों के हिसाब से कम है और 11वें एशियाई क्षेत्र में सबसे कम है। जैसा कि भगत (2005) ने उल्लेख किया है, प्रजनन और मृत्यु दर का भारत में निपटान पैटर्न में बदलाव पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

तालिका 2 सिस्टम-व्यापी प्रवासन संकेतक, भारत के राज्य, 2001 और 2011

Census year	Type of migration	Crude Migration Intensity (%)	Migration Effectiveness Index (%)	Aggregate Net Migration Rate (%)
2011	Five-years	1.23	38.38	0.47
2001	Lifetime	4.14	35.38	1.47
	Five-years	1.00	37.52	0.38

Source: calculated from the 2001 and 2011 censuses (IMAGE-Asia Project)

तालिका 2 में निर्धारित उपाय भारत के भीतर समग्र जनसंख्या पुनर्वितरण पर प्रवासन के प्रभाव के सारांश संकेतक प्रदान करते हैं, लेकिन वे इसकी स्थानिक अभिव्यक्ति में अंतर्दृष्टि प्रदान नहीं करते हैं। यह ऐसे कदमों की दिशा है, गांव से शहर की ओर या विपरीत दिशा में, जो इंगित करता है कि किस तरह से प्रवासन समाज को आकार देने का काम करता है और एक राज्य से दूसरे राज्य में प्रवासियों का प्रवाह भारत के भीतर निपटान पैटर्न को उत्तरोत्तर बदल देता है। औपनिवेशिक शासन की अवधि के दौरान, सड़कें, रेलवे और बंदरगाह केंद्र बनाए गए और वृक्षारोपण, खनन और नागरिक प्रशासन विकसित किया गया। इन नई आर्थिक स्थितियों के कारण क्षेत्रीय असमानताएँ उभरीं, जिससे बढ़ते विनिर्माण, वाणिज्य और व्यवसाय वाले स्थानों की ओर जनसंख्या का पलायन शुरू हो गया। हिल स्टेशन और छावनियाँ भी अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गईं। नए शहर रेलवे के साथ-साथ परिवहन केंद्र के रूप में उभरे, और तेजी से विकासशील राज्यों में कृषि उपज के निर्यात के लिए बाजार शहर सामने आए (हेट्जमैन 2008), जो कम विकसित राज्यों से प्रवासियों को प्राप्त करना जारी रखा। इस तरह के स्थानिक पैटर्न भारत की प्रवास प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता रहे हैं। ब्रिटिश उपनिवेशीकरण के बाद से औद्योगिक विकास दिल्ली - कोलकाता, मुंबई, चेन्नई- और राजधानी दिल्ली का घर हैं। , प्रमुख प्रवासी गंतव्य बने हुए हैं। दूसरी ओर, मध्य, पूर्वी और उत्तर-पूर्वी भारत का बड़ा हिस्सा शहरीकरण के निम्न स्तर वाले बाहरी प्रवास वाले राज्य रहे हैं। देश का यह हिस्सा भारत की 100 मिलियन से अधिक जनजातीय आबादी के बहुमत का घर है। इन क्षेत्रों की विशेषता उच्च जनसंख्या वृद्धि, उच्च स्तर की गरीबी और निरक्षरता भी है। बाह्य-प्रवासन के क्षेत्र सुसंगत बने हुए हैं; वे दोनों भौगोलिक रूप से प्रवासन के क्षेत्रों की तुलना में अधिक व्यापक और अधिक आबादी वाले हैं और यह पैटर्न लंबी अवधि (तुम्बे 2012) के लिए स्थिर रहा है।

शुद्ध जनसंख्या हानि की उच्चतम दर मध्य उत्तरी राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में और पश्चिम में मिजोरम, पश्चिम बंगाल और झारखंड में दर्ज की गई थी। पूर्ण संख्या के संदर्भ में, सबसे अधिक नुकसान उत्तर प्रदेश और बिहार में हुआ, जहां 2001 तक पांच वर्षों में क्रमशः 1.5 और 1.1 मिलियन निवासियों की मृत्यु हो गई। इन दोनों राज्यों में भारत की एक चौथाई आबादी शामिल है और सभी अंतर-राज्यों का एक तिहाई से अधिक हिस्सा है। राज्य प्रवासी. दूसरी ओर, दक्षिण-पश्चिम में राज्यों के एक समूह में शुद्ध जनसंख्या वृद्धि दर्ज की गई, अर्थात् महाराष्ट्र गुजरात और कर्नाटक और आगे उत्तर में हरियाणा और पंजाब राज्यों और दिल्ली और चंडीगढ़ के शहरों/केंद्र शासित प्रदेशों में, दोनों में दर्ज की गई शुद्ध प्रवासन दर छह प्रतिशत से ऊपर। उत्तर-पूर्वी राज्य अरुणाचल प्रदेश और दक्षिण-पूर्व में केंद्र शासित प्रदेश पांडिचेरी में भी शुद्ध जनसंख्या वृद्धि दर्ज की गई। पूर्ण शुद्ध प्रवाह के संदर्भ में, सबसे बड़ा लाभ महाराष्ट्र और दिल्ली में दर्ज किया गया, जहां 2001 तक पांच वर्षों में क्रमशः 1.4 और 0. 9 मिलियन निवासियों की वृद्धि हुई। जबकि इन दोनों राज्यों में भारत की आबादी का 11 प्रतिशत हिस्सा है, उन्हें सभी अंतरराज्यीय प्रवासियों का लगभग 30 प्रतिशत प्राप्त होता है। 2011 की जनगणना के आंकड़े पुष्टि करते हैं कि यह स्थानिक पैटर्न समय के साथ स्थिर रहा है। सबसे बड़ा बहिर्वाह भारत के सबसे अधिक आबादी वाले और सबसे गरीब राज्य उत्तर प्रदेश से महाराष्ट्र दिल्ली, हरियाणा और मध्य प्रदेश राज्य और आगे गुजरात तक होता है। बिहार दूसरा सबसे बड़ा प्रवासी भेजने वाला राज्य है, जहां से अधिक प्रवासी मुख्य रूप से महाराष्ट्र और दिल्ली और पड़ोसी राज्यों झारखंड और पश्चिम बंगाल में जाते हैं।

भारत में आंतरिक प्रवास को समझना

चूंकि भारत में शहरीकरण का स्तर कम बना हुआ है, इसकी केवल एक तिहाई आबादी शहरी क्षेत्रों में रहती है, ग्रामीण से ग्रामीण प्रवास का हिस्सा लगभग 50 प्रतिशत के उच्च स्तर पर बना हुआ है। यह आंशिक रूप से विवाह-संबंधी प्रवासन के महत्व के कारण है, जो अक्सर गांवों के बीच होता है। हालाँकि, 2001 और 2011 की जनगणना के बीच जीवनकाल और पाँच-वर्षीय प्रवास दोनों के लिए ग्रामीण-से-ग्रामीण प्रवासन की हिस्सेदारी में लगभग दस प्रतिशत की गिरावट आई है । साथ ही, ग्रामीण-से-शहरी प्रवासन का हिस्सा लगभग 20 प्रतिशत पर स्थिर रहा है, लेकिन शहरी से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति-प्रवाह का हिस्सा कम हुआ है। 17 थोड़ा ऊपर उठा। इस प्रकार, जबकि 2011 तक के पांच वर्षों में लगभग 17 मिलियन लोग ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गए, लगभग 7 मिलियन लोग ग्रामीण क्षेत्र में चले गए।

भारत में प्रवाह की दिशा में बदलाव को मापना और समझना ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों को परिभाषित करने के तरीके और उपयोग किए जाने वाले मानदंडों में बदलाव से बाधित होता है।

भारतीय समाज की विशेषता वाले जटिल निपटान पैटर्न के प्रतिनिधित्व के रूप में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच व्यापक द्वंद्व अत्यधिक सरल है, जैसा कि भारत सरकार द्वारा मापे गए जनसंख्या घनत्व और शहरीकरण के बीच सीमित संबंध से पता चलता है। उदाहरण के लिए, बिहार राज्य में जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक है (पूरे भारत के लिए 382 की तुलना में 1102 व्यक्ति प्रति किमी2) लेकिन शहरीकरण का स्तर सबसे कम है।

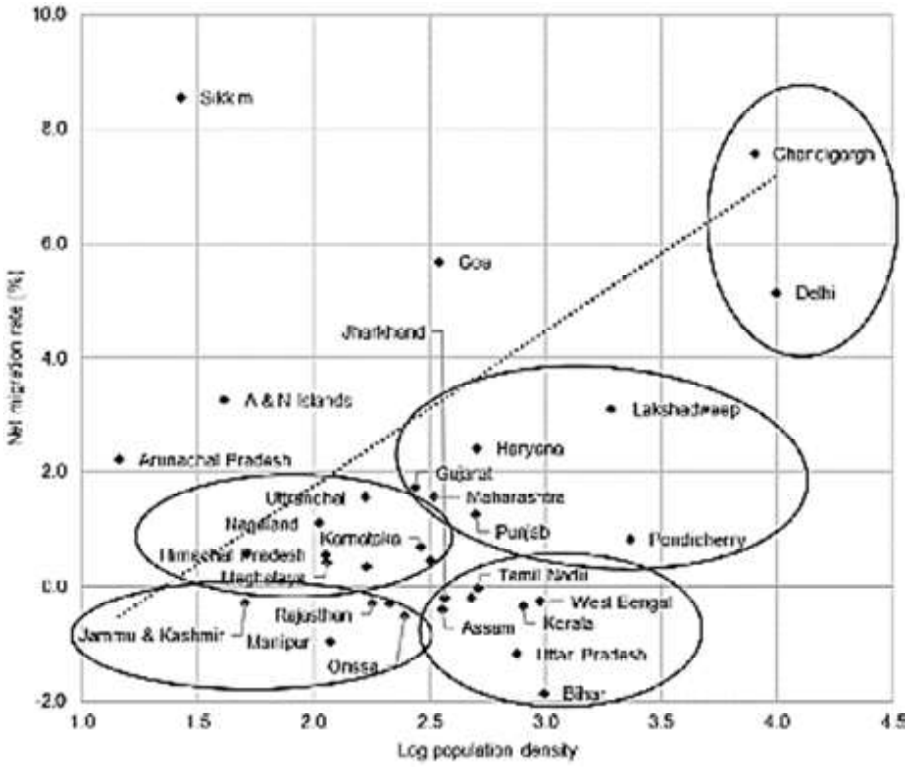

Fig- 4- Net migration rates by log population density, states of India, 2006–2011

Source; calculated from the 2011 census (IMAGE-Asia Project)

प्रभाव और निहितार्थ

भारत में जनसंख्या आंदोलन का एक बड़ा हिस्सा अल्पकालिक, अस्थायी और परिपत्र है, जिससे प्रवासी यात्राओं, प्रेषण और यहां तक कि छोटी अवधि के लिए लौटने के माध्यम से अपने मूल स्थानों से संबंध बनाए रखते हैं। भारतीय संदर्भ में, दुबे एट अल. (2004) में देखा गया कि जब जनसंख्या के अपेक्षाकृत समृद्ध वर्ग और उच्च जातियाँ ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन करती हैं, तो जो अंतर उभरता है वह गरीबों और निचली जातियों द्वारा भरने की संभावना होती है, जिसका ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक सुधार और गरीबी में कमी के निहितार्थ होते हैं। कई अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि आंतरिक प्रवास भेजने और प्राप्त करने वाले दोनों क्षेत्रों में परिवारों को गरीबी में जाने से रोकने या कम करने में मदद कर सकता है।

श्रम उपयोग की दक्षता और गरीबी में कमी कृषि से गैर-कृषि क्षेत्र में अधिशेष श्रम के हस्तांतरण से जुड़े दो मुख्य परिणाम हैं। बाह्य-प्रवासन भारत में मूल क्षेत्रों में गरीबी में कमी और आर्थिक गतिविधियों के विविधीकरण से जुड़ा है। यह भी देखा गया है कि लोग आय सुरक्षा बढ़ाने के लिए अपनी आजीविका रणनीतियों के हिस्से के रूप में परिपत्र, मौसमी और अस्थायी गतिशीलता पैटर्न अपनाते हैं। इस प्रकार, अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्रवासन गरीबी से बाहर निकलने का एक महत्वपूर्ण मार्ग है। हालांकि अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन की तुलना में कम जोर दिया जाता है, आंतरिक प्रवासन आय बढ़ाने और कल्याण के अभिसरण के लिए अधिक अवसर प्रदान करता है (विश्व बैंक 2009; भगत 2016)। शहरी क्षेत्रों में मजबूती से स्थापित होने के बाद कई प्रवासी अपने रिश्तेदारों, दोस्तों और सह-ग्रामीणों को लाते हैं। कुछ प्रवासी अपने कौशल स्तर को उन्नत करते हैं और दो या दो से अधिक नए कौशल सीखते हैं।

कई देशों में प्रवासन को सकारात्मक रूप से नहीं देखा जाता है और भारत में भी यही स्थिति है। नीतियों का उद्देश्य अक्सर ग्रामीण-से-शहरी प्रवासन को कम करना है, और विकास की प्रक्रिया के साथ प्रवासन के एकीकरण की कमी है, इस तथ्य के बावजूद कि यूएनडीपी (2009) की मानव विकास रिपोर्ट इस बात पर प्रकाश डालती है कि प्रवासन प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। मानव विकास। कई लोगों ने यह भी तर्क दिया है कि प्रवासन को रोकना अनुचित होगा क्योंकि यह विकास और मानवीय आकांक्षाओं को पूरा करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रवासन को रोकना प्रतिकूल भी हो सकता है।

भारत के संदर्भ में, गंतव्य और मूल दोनों स्थानों पर आंतरिक प्रवासियों के एकीकरण की सुविधा प्रदान करने वाली नीतियां और कार्यक्रम या तो मौजूद नहीं हैं या शत्रुतापूर्ण हैं। इसलिए विकास प्रक्रिया में प्रवासियों के समावेश और एकीकरण को बढ़ावा देना बेहद चुनौतीपूर्ण है।

निष्कर्ष

भारत के प्रवासन रुझानों और पैटर्न के बारे में हमारी समझ आम तौर पर जनगणना के आंकड़ों पर आधारित है, जो अस्थायी, मौसमी और चक्रीय प्रवासन को पकड़ने के मामले में अपर्याप्त है। दूसरी ओर, जनगणना के आंकड़ों से पता चलता है कि अंतर-राज्य प्रवासन बढ़ रहा है और प्रवासन भी अधिक नारीवादी हो गया है, मुख्य रूप से विवाह-प्रवासन के कारण। इसके अलावा, ग्रामीण-से-शहरी प्रवासन के साथ-साथ, शहरी-से-शहरी प्रवासन भी बढ़ रहा है, जो गतिशीलता संक्रमण के सिद्धांत और शहरी संक्रमण की अपेक्षाओं के अनुरूप है। हालाँकि, शहरी विकास के घटकों के अपघटन से पता चलता है कि शुद्ध ग्रामीण-से-शहरी प्रवास शहरी विकास में केवल एक-पाँचवाँ योगदान देता है, जबकि प्राकृतिक वृद्धि से तीन-पाँचवाँ हिस्सा होता है, शेष पाँचवाँ हिस्सा शहरी विकास के दौरान नगरपालिका सीमा परिवर्तन सहित बस्तियों के पुनर्वर्गीकरण से होता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण जैसे वैकल्पिक स्रोतों पर आधारित अध्ययनों से पता चलता है कि रोजगार उद्देश्यों के लिए अस्थायी और मौसमी प्रवासन स्थायी और अर्ध-स्थायी प्रवासन से सात गुना बड़ा है। अस्थायी और मौसमी प्रवासन एक गरीबी-उन्मूलन रणनीति है जिसका उपयोग मुख्य रूप से भारतीय आबादी के गरीब और निचले सामाजिक-आर्थिक वर्गों द्वारा किया जाता है, इसके विपरीत स्थायी और अर्ध-स्थायी प्रवासी जो समुदाय के अधिक समृद्ध वर्गों से आते हैं। चूँकि बड़ी संख्या में ऐसे प्रवासी हैं जो अपने जन्मस्थानों के साथ संबंध बनाए रखते हैं और जो इन मूल स्थानों से लौटते और घूमते भी हैं। शहरीकरण और जनसंख्या के पुनर्वितरण में प्रवासन का योगदान पश्चिमी देशों के ऐतिहासिक अनुभव की तुलना में बहुत कम है। एशिया के देश विकास के समान स्तर पर हैं। भारत में विकास पर प्रवासन का प्रभाव सकारात्मक रहा है, लेकिन प्रवासन के लिए कोई नीतिगत समर्थन नहीं है और प्रवासन के संबंध में सामान्य धारणाएं नकारात्मक और शत्रुतापूर्ण हैं।

सन्दर्भ

1. Ali, I., Jaleel, A. & Bhagat, R.B. (2019). Migration, remittances and poverty reduction. In R. Mamgain (Ed.), Growth, disparities and inclusive development in India: perspectives from the Indian state of Uttar Pradesh (pp.170–190). Singapore: Springer.
2. Bell, M., Charles-Edwards, E., Kupiszewska, D., Kupiszewski, M., Stillwell, J. & Zhu, Y. (2014). Internal migration around the world: assessing contemporary practice. Population, Space and Place 21(1), 1–17. https://doi.org/10.1002/psp1848.
3. Bell, M., Charles-Edwards, E., Ueffing, P., Stillwell, J., Kupiszewski, M. & Kupiszewska, D. (2015). Internal migration and development: comparing migration intensities around the world. Population and Development Review, 41(1), 33–58.
4. Bernard, A., Bell, M. & Charles-Edwards, E. (2014). Life-course transitions and the age profile of internal migration. Population and Development Review, 40, 213–239.
5. Bernard, A. & Bell, M. (2015). Smoothing internal migration age profiles for comparative research. Demographic Research, 32, 915–948.
6. Bhagat, R.B. (2005). Rural-urban classification and municipal governance in India. Singapore Journal of Tropical Geography, 26(1), 61–73.
7. Bhagat, R.B. (2008). Assessing the measurement of internal migration in India. Asia Pacific Migration Journal, 17(1), 91–102.
8. Bhagat, R.B. (2014). Urban migration trends, challenges and opportunities in India. Background Paper for World Migration Report 2015: Migrants and Cities, International Organization for Migration.
9. Bhagat, R.B. & Jones, G. (2014). Demographic dynamics of mega-urban regions: the case of Mumbai. Demography India, 43(1&2), 71–94.
10. Bhagat, R.B. & Mohanty, S. (2009). Emerging pattern of urbanization and the contribution of migration in urban growth in India. Asian Population Studies, 5(1), 5–20.
11. Census of India. (2001). Data Highlights: Migration Tables. New Delhi: Office of the Registrar General and Census Commissioner. Accessed 12 May 2017. http://censusindia.gov.in/Data_Products/Data_Highlights/Data_Highlights_link/data_highlights_D1D2D3.pdf.
12. Census of India. (2011). Census Schedule: Household. New Delhi: Office of the Registrar General and Census Commissioner. Accessed 1 June 2017. http://www.censusindia.gov.in/2011-Schedule/Shedules/English_HH_Side_B_NT.pdf.
13. Census of India. (2017). SRS Based Life Table 2011–15. New Delhi: Office of the Registrar General and Census Commissioner. Accessed 12 Dec 2017. http://www.censusindia.gov.in/Vital_Statistics/SRS_Life_Table/Srs_life_Table_2011-15.html.
14. Charles-Edwards, E., Bell, M., Bernard, A. & Zhu, Y. (2019). Internal migration in the countries of Asia: levels, ages and spatial impacts. Asian Population Studies, 15(2), 150–171. https://doi.org/10.1080/17441730.2019.1619256.

नई आर्थिक भूस्वामित्व व्यवस्था, शोषण और किसान आंदोलन (19वीं शताब्दी): एक समीक्षा

सुबोध कुमार

शोधार्थी स्नातकोत्तर विभाग, ल0ना0मि0वि0वि0 प्रो0 मो0 नैय्यर आजम, विभागाध्यक्ष, इतिहास, स्नातकोत्तर विभाग, ल0ना0मि0वि0वि0

राजनीतिक एवं आर्थिक प्रमुख की औपनिवेशिक संरचना ने साम्राज्यवादी एवं भारतीय नागरिकों के विभिन्न घटकों के मध्य निरंतर संघर्ष को जन्म दिया। भारतीय नागरिकों द्वारा किये गए विद्रोह का आधारभूत कारण शोषण की वह प्रणाली थी जिसके माध्यम से ब्रिटिश उपनिवेशवाद पोषण या रहा था।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रसार के परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक समूह ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष संपर्क में आए और फिर ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के विरूद्ध उन्होंने प्रतिक्रिया दिखाई। 19वीं सदी के आरंभ में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध होने वाले प्रतिरोध का स्वरूप आढ्य राष्ट्रवादी था।

''अंग्रेजों के उपनिवेशवादी शोषण का कहर भारतीय किसानों पर ही सबसे ज्यादा वरपा। औपनिवेशिक आर्थिक नीतियाँ, भू-राजस्व की नई प्रणाली और उपनिवेशवादी प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था ने किसानों की कमर तोड़ दी।'' वास्तव में ब्रिटिश भूराजस्व नीति यथा स्थायीबंदोवस्त, रैयतवाड़ी, महालवाड़ी ने किसानों पर शोषण का ऐसा चक्र चलाया कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था ही विखंडित हो गई और रही सही कसर औद्योगिक नीति ने पूरी कर दी जो कच्चे माल के निर्यात व विनिर्मित वस्तुओं के आयात पर निर्भर थी। इसके कारण भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सपोर्ट करने वाली कुटिर उद्योग नष्ट हो गये। ''देशी (जमींदार) और विदेशी शोषण के इस चक्र को तोड़ने की किसानों ने कई छिरपुर, लेकिन नाकाम कोशिशें की'' शुरूआत में ये शांतिपूर्ण तरीके से अपनी माँगे को उठाया किंतु जब इनकी माँगे नहीं सुनी गई तो वे (किसान) हिंसकपूर्ण आंदोलन किये जैसे ढक्कन के देगे पावन्य विद्रोह आदि।

मेपला विद्रोह- ''ब्रिटिश शासन भूस्वामियों के अधिकारों पर बल देता था। अत: उसने भू-बदोबस्ती के क्रम में उच्च वर्ग के हिन्दुओं नंबूदरी तथा नायर जन्मियों की शक्ति को पुन: अधिकारिक अधिकार के साथ स्थापित कर दिया। इनमें से अनेक को पहले टीपू ने दक्षिण की तरफ खदेड़ दिया था तथा उसकी भूमि मुसलमान कृषक जो मोपला कहलाते थे को आवंटित कर दी थी।

नई व्यवस्था में इन मोपलाओं को रेहनदार बना दिया अर्थात् जमीन के मालिक अपनी इच्छानुसार इनको बेदखल कर सकते थे। अब लगान की दर मनमाने ढंग से निष्चित कर दी गई।

उपरोक्त शोषण के परिणामस्वरूप काष्तकारों ने जेनमियों के खिलाफ हिंसा प्रारंभ कर दी जिन लोगों ने इस हमले में भाग लिया उनमें से अनेक धार्मिक उन्माद से ग्रस्त थे और उलेमा वर्ग विशेषकर सैयद अली तथा उसके पुत्र सैयद फैजल से प्रभावित थे परंतु मोपला असंतोष की जड़े स्पष्टत: कृषि व्यवस्था में थी।

पाबना आंदोलन- 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बंगाल के पाबना में किसानों ने जमींदारों के शोषण के विरूद्ध विद्रोह किया। यह विद्रोह जितना अधिक जमींदारों के विरूद्ध था उतना अधिक साहूकारों तथा महाजनों के विरूद्ध नहीं था क्योंकि यहाँ भी महाजन

प्राय: स्थानीय घनी किसान था जोतेदार होते थे जिनसे मिलने वाले कर्ज की उत्पादन में अपरिहार्य भूमिका होती थी।'' अपने दोहरे फसल तथा पटसन के फलत-फूलते व्यापार के कारण पाबना अपेक्षाकृत समृद्ध जनपद था जहाँ 50 प्रतिशत से अधिक काश्तकारों ने 1859 के ऐक्ट 10 द्वारा दखली अधिकार प्राप्त कर लिया था फिर भी 1793 से 1873 तक के मध्य जमींदारों के लगान में 7 गुना वृद्धि हो गई, भू स्वामियों ने अनेक प्रकार के आब वाब लगाकर, पैमाइश के लिए मनमाने तौर पर छोटे मापों का प्रयोग करके तथा बल प्रयोग के माध्यम से लगान को मनमाना बढ़ाने का अभियान चला रखा था।''

अत: पाबना के किसानों ने विद्रोह का बिगुल फूँक दिया यद्यपि यह विद्रोह कम हिंसक ही था क्योंकि यह समीपस्थ अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष था। पाबना आंदोलन सचेत रूप में ब्रिटिश विरोधी नहीं था। यहाँ के नेताओं ने तो स्पष्ट रूप से घोषणा की कि हम लोग महारानी के रैयत बनकर रहना चाहते हैं। जमींदारों के नहीं। पाबना आंदोलन को अप्रत्यक्ष रूप से सरकार का समर्थन भी मिला। इसी आंदोलन के परिणामस्वरूप 1885 का बंगाल काष्तकारी कानून पारित हुआ जिसमें किसानों को राहत पहुँचने की व्यवस्था थी।

ढक्कन के दंगे- 1870 के दशक में ढक्कन के किसानों ने विद्रोह किये। यहाँ के किसानों को सरकार के साथ गुजराती और मारवाड़ी सूदखारों एवं महाजनों के शोषण का शिकार होना पड़ा था।। विद्रोह का मुख्य निशाना साहूकार एवं महाजन ही हुए। ''वस्तुत: 1860-65 के बीच अमेरिकी गृहदुष्ट चल रहा था। अत: अमेरिका अपेक्षित कपास यूरोप नहीं पहुँच पा रहा था। इसके विकल्प के रूप में ब्रिटिश सरकार ने ढक्कन में कपास के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया ताकि अमेरिका से आयात की कमी को पूरा किया जा सके। फिर 1865 में अमेरिकी गृहयुद्ध समाप्त हो गया तथा अमेरिकी निर्यात पुर्नस्थापित हो गया। इससे ढक्कन से निर्यात काफी कम हो गया। इससे कपास तथा अन्य वस्तुओं के मूल्यों में काफी गिरावट आ गई। 1868-70 के भयंकर अकाल ने किसानों पर और अधिक बुरा प्रभाव डाला। वे न तो सरकार को लगान चुकाने की स्थिति में रहे और न ही महाजन का कर्ज चुकान की स्थिति। किसानों पर कर्ज ''किस तरह बढ़ गया था, वह डेक्कन रामदस कमीशन' की जाँच से स्पष्ट है। 12 गाँवों की जांच-पड़ताल क रवह निम्नलिखित नतीजे पर पहुँचा। सरकारी जमीन जोतने वालों की संख्या- 1876 इनमें से जिन पर कर्ज है उनकी संख्या-523

इन कर्जदारों को कितना राजस्व देना पड़ता है- 10,603 रू0 उन्होंने अपनी जमानत पर कितना कर्ज ये रखा है- 1,18,007 रू0 जमीन को रेहन रख कितना कर्ज ले रखा है - 76,233 रू0 ये तथ्य बताते है कि सरकारी जमीन जोतने-बोने वालों में से एक तिहाई कर्जदार थे, उन पर लदा कर्ज वार्षिक राजस्व का लगभग 18 गुना था और लगभग दो तिहाई कर्ज उन्होंने जमीन को रेहन रख कर ले रखा था''

किसान में विद्रोह के लक्षण पहली बार दिसंबर 1874 में प्रकट हुए। इसके लिए सिरनर तालुका के एक मारवाड़ी महाजन की ज्यादतियाँ उत्तरदायी थी। मारवाड़ी कालूराम ने करदेह ग्राम के एक किसान का मकान 150 रूपये के एवज में नीलाम करवा दिया तथा उसे तोड़ने लगा। इस महाजन ने किसान के इस अनुरोध को भी ठुकरा दिया कि जब तक वह कर्ज नहीं चुकाता मकान का किराया देगा। अंतत: बाबा साहब देशमुख के नेतृत्व में किसानों ने विद्रोह कर दिया। महाजनों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। अंतत: महाजनों को पुलिस की सहायता लेकर वहाँ भागता पड़ा। इस घटना के बाद भी किसानों के असंतोष को दूर करने का प्रयास नहीं किया गया। किसान अपने-आप को संगठित करते रहे।

''यद्यपि मराठा किसानों का विद्रोह उनकी स्थिति में विशेष सुधार नहीं ला पाया, फिर भी उनके विद्रोह ने सरकार को उनकी तरफ ध्यान देने को बाध्य कर दिया। सरकार ने किसानों के उपद्रव की जाँच के लिये आयोग का गठन किया। आयोग ने भी मत व्यक्त किया कि किसानों की स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि विद्रोह के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई चारा नहीं था।'' आयोग ने लगान की अत्याधिक राशि तय करने की भी आलोचना की। आयोग के निष्कर्ष के आधार पर सरकार 1879 में दक्कन कृषक राहत अधिनियम पारित किया जिसके अनुसार किसानों की जमीन छीनने पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए। किसानों को कर्ज नहीं लौटाने पर गिरफ्तार करने की व्यवस्था भी बंद कर दी गई।

नील विद्रोह- यह विद्रोह सन् 1860 ई0 में आरंभ हुआ और 1917 तक चला जब चंपारण में महात्मा गाँधी ने किसान संघर्ष का नेतृत्व किया। नील विद्रोह उन अंग्रेज बागान मालिकों के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए हुए थे जो किसानों को ऐसी शर्तों पर नील की खेती करने के लिए मजबूर करते थे जो उनके लिए अलामकर थी। ''बागान मालिक ढाई बीघा भूमि को एक बीघा

गिनते थे और नील के दो गट्ठर पौधे को एक गट्ठर मानते थे। इस संबंध में नादिया के जिला जज ए0 स्कोन्स ने लिखा है, "बागान मालिक किसानों की फसलों को मनमाने ढंग से नष्ट कर देते थे। उनके परिवार उजाड़ देते थे, घर जला देते थे और उनके बैल बधिया (मवेशी) जबरदस्ती लूटकर ले जाते थे या उन्हें पानी में डूबा देते थे।'' बागान मालिकों के इस वाश्विक दमन के खिलाफ किसानों में विरोध की भावना और जोर पकड़ती जा रही थी। किन्तु फिर भी उनके दमन चक्र की गति तेज होती गई। नील बागानों के मालिकों की पाश्विकता इतनी स्पष्ट थी कि उसका किसी भी आधार पर समर्थन नहीं किया जा सकता था। इसलिए किसान शहरी मध्य वर्ग से और कुछ मिशनारियों तक का व्यापार समर्थन जुटाने में सफल हुए। किन्तु राजाराम मोहनराय और द्वारकानाथ टैगोर जैसे महत्वपूर्ण सुधारको ने बागान मालिकों को सढ़व्यवहार के प्रमाणपत्र दिये जिससे ''वह खाई साफ जाहिर होती है जो उस समय आम जनता और इन तथा कथित सुधारकों क बीच मौजूद थी।''

पंजाब में किसान आंदोलन– साहूकारों द्वारा पंजाब के किसानों के जमीन पर कब्जा करना मौलिक कारण था जिसके कारण पंजाब में किसानों ने विद्रोह किया। इस क्षेत्र में जहाँ किसान-जमींदार और खेतिहर दोनों मुसलमान थे, वहाँ साहूकार प्राय: हमेशा हिन्दू बनिया था। इस प्रकार इस क्षेत्र में कर्जदार और साहूकार के बीच के संघर्ष ने सांप्रदायिक रंग ग्रहण कर लिया। मुलतान डिवीजन के कमिश्नर आर्थर, ब्रानडेटा पहले अधिकारी थे, जिन्होंने ''वंशानुगत भूस्वामियों से हिन्दू व्यापारिक जातियों को स्वेच्छा से भूमि हस्तांतरित किये जाने के राजनीतिक खतरे को रेखांकित किया'' 1876 ई0 में एस.एन. थारबर्न ने और भी ओजस्वी शब्दों में अपना तर्क प्रस्तुत किया और यह दावा किया कि यदि इस स्थिति का सय पर इलाज नहीं किया या स्थिति का समय पर इलाज नहीं किया गया तो इससे अंतत: इस क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्य का स्थायित्व ही खतरे में पड़ जाएगा'' फलत: 1900 ई0 में भूमि अन्य संक्रमण अधिनियम'' पारित किया गया और जून 1901 में यह अधिनियम लागू भी हो गया। इस अधिनियम लागू भी गया। इस अधिनियम के तहत पंजाब के लोगों को कृषक एवं गैर-कृषक जातियों एवं वर्गों में बाँटा गया और इसमें यह प्रावधान किया गया कि भूमि गैर-कृषक वर्गो को हस्तांतरित नहीं की जा सकती। इस अधिनियम से निश्चय ही किसानों को फायदा हुआ किंतु ये लाभ जमींदारों एवं बड़े किसानों के बीच ही बंट गये।

दिरोग आंदोलन– दिरांग आंदोलन असम क्षेत्र में फैला था। इसकी जड़े भी औपनिवेशिक शोषण में ही निहित थी। असम प्रांत अस्थाई बंदोवस्त वाले रैयतवाड़ी क्षेत्र में आता था। ''ऐसे क्षेत्रों में लगान बढ़ाने के ब्रिटिश सरकार के प्रयासों ने कभी कभी एक अन्य प्रकार के ग्रामीण प्रतिरोध को भड़काया जिसकी विशेषता थी। अत्यधिक भतैक्य, स्थानीय बड़े लोगों का नेतृत्व तथा बुद्धिजीवियों का कहीं अधिक स्पष्ट समर्थन। असम के कामरूप एवं दिरांग क्षेत्रों में 1893-94 में एक नया राजस्व बंदोवस्त जारी किया गया जिससे लगान की दर में 50 से 70 प्रतिशत तक बढ़ोतरी हो गई। इस स्थिति का सामना करने के लिए ग्रामवासियों की सभा स्थापित की गई जिसका नेतृत्व गाँव के अभिजनों द्वारा किया गया। इस सभा में तय कियाग याकि लगान की अदायगी रो दी जाये। इस निर्णय को व्यापक तौर पर लागू करने के लिए सामाजिक बहिष्कार का आह्वान किया गया अर्थात् जो कोई इस निर्णय के विरूद्ध लगान भरता उसका हुक्का पानी एवं नाई-धोबी बंद कर दिया जाता।

इस आंदोलन के दौरान बाजार लूटने की कुछ घटनाएँ हुई तथा जनवरी 1894 में दो स्थानों पर पुलिस गोलीबारी हुई, जोरहाट सार्वजनिक सभा में लगान घटाए जाने की मांग का समर्थन किया और बंगाल के नरमदलीय कांग्रेसी नेता रासबिहारी बोस ने इस मामले को इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के समक्ष भी उठाया। आगे भी यह आंदोलन पृथक रूप से चलता रहा जिसका नेतृत्व पुष्पराम काहर जैसे नेता ने किया।

''19वीं सदी के किसान आंदोलनों का आधार क्षेत्रीय तथा उद्देश्य सीमित था। इन्हें किसी आधुनिक विचारधारा का समर्थन प्राप्त नहीं था। अधिकतर आंदोलन तात्कालीक शोषकों के विरूद्ध आरंभ किये जाते थे। तथा उदेश्य पूरा होते ही ये आंदोलन विखर जाते थे।'' उदाहरण के लिए पाबना के किसानों ने यह घोषित किया कि हम महारानी विक्टोरिया के रैयत है तथा महारानी विक्टोरिया का रैयत होकर ही रहना चाहेगें। इस प्रकार किसानों को औपनिवेशिक शासन के वास्तविक चरित्र की समझ नहीं थी। यही वजह है कि ये आंदोलन ब्रिटिश शासन को बड़ी कठिन चुनौती नहीं दे सके, किन्तु 20वीं सदी तक आकर इन आन्दोलनों के स्वरूप में परिवर्तन आया। फिर किसान आंदोलन व्यापक राष्ट्रवादी चेतना से जुड़ गए एवं राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में भी घुल-मिल गए।

संदर्भ सूची:-

1. चन्द्र बिपिन, मुखर्जी मृदुला भारत के स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय नई दिल्ली, पृष्ठ सं0- 21
2. वही पृष्ठ सं0- 21
3. सरकार सुमित आधुनिक भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं0- 67
4. वहीं पृष्ठ सं0- 69
5. सिंह आयोध्या भारत का मुक्ति संग्राम प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, पृष्ठ सं0- 403-404
6. वहीं पृष्ठ सं0- 404
7. देसाई ए0 आर0, पीजेंट स्ट्रगल इन इंडिया, बाम्बे 1979 पृष्ठ सं0- 150
8. सत्या, राय एम0, भारत में राष्ट्रवाद नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ सं0- 304
9. सत्या राय एम0, लेजिस्लेटिव पॉलिटिक्स एण्ड फ्रीडम स्ट्रगल इन द पंजाब- 1897- 1947, नई दिल्ली, 1984 पृ0 सं0- 13-14
10. थ्रोबर्न एस0 एस0, मुसलमान एंड मनी लैडर्स इन द पंजाब, लंदन, 1888, पृ0 सं0- 49
11. सत्या राय एम0, भारत में राष्ट्रवाद नई दिल्ली 1983, पृ0 सं0- 307
12. चट्टोपाध्याय कुमार दिलीप, हिस्ट्री ऑफ असमीज मूवमेंट, मिनर्बा पब्लिकेशनस कोलकाता, पृ0 सं0- 166
13. चन्द्र बिपिन, मुखर्जी मृदुला भारत के स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय नई दिल्ली, पृष्ठ सं0- 30-31

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

डॉ० सुरेन्द्र कुमार यादव

(प्राध्यापक) राजनीति विज्ञान, शासकीय नवीन महाविद्यालय अमोरा जिला-मुंगेली (छ.ग.)

ऋषि कुमार चन्द्रा

शोधार्थी (सहायक प्राध्यापक) राजनीति विज्ञान, शासकीय नवीन महाविद्यालय चन्द्रपुर जिला-सक्ती (छ.ग.)

सारांश:- समाज का सर्वांगीण व बहुआयामी विकास तभी संभव है,जब महिलाओं को समाज में उनका यथोचित स्थान व पद दिया जाए, उन्हें पुरुषों के साथ सहभागी बनाया जाय अथवा माना जाय। सशक्तिकरण के लिए राजनीतिक सहभागिता, आर्थिक स्वावलंबन, सामाजिक विकास परम आवश्यक है। आज की महिलाएं अपनी शक्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं, अधिकारों वे जिम्मेदारियों के प्रति अधिक जागरूक व संवेदनशील हैं। सशक्तिकरण का शाब्दिक तात्पर्य शक्ति सहित गत्यात्मकता होती है, सशक्त नारी वह है, जो अपने जीवन से संबंधित निर्णय लेने में पूरी तरह स्वतंत्र हो तथा उस पर सामाजिक दबाव न हो।

शोध का उद्देश्य:-

1. महिलाओं में आत्मविश्वास उत्पन्न करना।
2. पुरूष प्रधान समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाना।
3. समतामयी समाज की स्थापना करना।
4. महिलाओं के साथ होने वाले भेद भाव को समाप्त करने की दिशा में अग्रसर होना।
5. महिला पुरूष की पारिश्रमिक के अंतर को समाप्त करना तथा समान वेतन देने की दिशा में आगे बढ़ना।

महिला सशक्तिकरण की पृष्ठभूमि- भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्राचीनकाल से ही नारी को पुरुषों के समान अधिकार प्रदाय किए गए हैं, उन्हें गरिमामय जीवन व्यतीत करने का अधिकार दिया गया है। नारी को शिक्षा व ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा दिखाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदाय की गई थी, किंतु यह स्वतंत्रता अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकी, इसी कारण आज महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता पुनः महसूस की जा रही है। महाभारत काल के बाद नारी की स्थिति में गिरावट परिलक्षित होती है, उससे शिक्षा का मौलिक अधिकार छीन लिया गया, धीरे-धीरे नारी की स्थिति दयनीय होती चली गई। मध्यकाल में नारी की स्थिति गिरावट की पराकाष्ठा पर था, समय के साथ महिलाओं की परिस्थितियों में व्यापक बदलाव आ रहा है,समय परिवर्तित हो रहा है। दमन व उत्पीड़न के खिलाफ महिलाएं आवाज बुलंद कर रही हैं। आज की नारी विकास की ओर अग्रसर है, यह आधुनिक युग की नारी का नया स्वरूप है, निश्चय ही यह एक सकारात्मकता का पर्याय है। समाज का पूर्ण विकास तभी संभव है,जब नारी व पुरुष दोनों का समान विकास हो, दोनों को व्यवहार में समान अधिकार प्राप्त हो। केवल एक वर्ग के विकास से सामाजिक असंतुलन उत्पन्न होगा, सच्चाई यह है, कि आज भी अधिकांश महिलाओं को अपने संवैधानिक अधिकारों व उनके विकास के लिए बनाई गई शासकीय व गैर शासकीय योजनाओं का पर्याप्त जानकारी नहीं है।

आधुनिक भारत में महिला सशक्तिकरण पर विमर्श के महत्वपूर्ण मुद्दे-

शाहबानो प्रकरण-इंदौर के प्रसिद्ध वकील मोहम्मद अकबर खान ने कम उम्र की लड़की से विवाह किया तथा पांच बच्चों की मां शाहबानो को 6/11/1978 को तीन तलाक (तलाक ए सिद्धांत) दे दिया। मुस्लिम पारिवारिक कानून के अनुसार पति, पत्नी के इच्छा के खिलाफ तलाक दे सकता है। मेहर की रकम का भुगतान कर मोहम्मद अहमद खान ने दो टूक कह दिया, कि अब आगे एक नया पैसा नहीं देंगे। ज्ञातव्य हो, कि शाहबानो को पांच बच्चों के साथ घर से 1975 में ही निकाला जा चुका था।घर से निकालने के बाद शुरू में कभी-कभी परवरिश के लिए शाहबानो के पति पैसे दे दिया करते थे, किंतु शाहबानो हर महीने गुजारा भत्ता चाहती थी, इसी बिंदु पर विवाद था। शाहबानो का विवाह 1932 में हुआ था, 1946 में शाहबानो के पति मोहम्मद अकबर खान ने अपने से बहुत कम उम्र की अन्य महिला से विवाह किया था। निचली अदालत में शाहबानो के पति ने दलील दी, कि तीन तलाक के बाद इद्दत की मुद्दत तक ही तलाकशुदा महिला की देखरेख की जिम्मेदारी शौहर की होती है, उसके बाद नहीं। मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार मुस्लिम महिला को तलाक के बाद गुजारा भत्ता नहीं दिया जा सकता। ज्ञातव्य हो कि भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार तलाक के बाद आमतौर पर तीन महीने इद्दत की मुद्दत कहलाती है। इस अवधि के दौरान महिला की देखरेख की जिम्मेदारी तलाक देने वाले पति की होती है, अगर महिला उस वक्त गर्भवती हो, तो इद्दत की मुद्दत बच्चे के जन्म तक मानी जाती है। इद्दत की मुद्दत एक तरह का वेटिंग पीरियड है, ताकि इस दौरान तलाकशुदा महिला चाहे, तो दूसरी शादी कर ले।

इस मुकदमे में निचली अदालत से सर्वोच्च न्यायालय तक हर जगह फैसला शाहबानो के पक्ष में आया,पूरे सात साल मुकदमा चला। सर्वोच्च न्यायालय में यह कहा गया, कि मुस्लिमों में गुजारा भत्ता लागू नहीं होता, क्योंकि यह मुस्लिम पर्सनल लॉ से जुड़ा मामला है। मामला पांच जजों की संविधान पीठ के पास चला गया, आखिरकार 23/04/1985 को तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश वाई वी चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ ने अपना ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए मोहम्मद अहमद खान को आदेश दिया, कि वह शाहबानो को हर महीने भरण पोषण के लिए 179.20 रूपये दिया करेंगे। सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश में समान नागरिक संहिता (अनुच्छेद 44)का भी जिक्र किया। शीर्ष अदालत ने स्पष्ट कहा कि गुजारा भत्ता तलाकशुदा पत्नी का हक है। शीर्ष अदालत ने सरकार से भी समान नागरिक संहिता की दिशा में आगे बढ़ने की अपील की। तत्कालीन गृह राज्य मंत्री आरिफ मोहम्मद खान ने शीर्ष न्यायालय के फैसले का स्वागत किया।

इस मुकदमे में न्यायालय के निर्णय के विरोध में एम जे अकबर, सैयद शहाबुद्दीन जैसे प्रसिद्ध नाम थे। एम जे अकबर तथा सैयद शहाबुद्दीन के नेतृत्व में आल इंडिया पर्सनल लॉ बोर्ड नामक संस्था की तरफ से मुकदमा लड़ा गया, जो शीर्ष न्यायालय के निर्णय के खिलाफ तत्कालीन राजीव गांधी की सरकार पर दबाव डाला और कहा कि शीर्ष अदालत का निर्णय उनकी संस्कृति तथा परंपराओं पर हस्तक्षेप है राजीव गांधी की सरकार कट्टरपंथियों के घुटने टेक दिए और न्यायालय के निर्णय को पलटते हुए संसद में नया अधिनियम बनाया, जिसे तलाक में संरक्षण का अधिकार कानून 1986 कहा गया, इससे क्षुब्ध होकर तत्कालीन गृह राज्य मंत्री आरिफ मोहम्मद खान ने मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। आरिफ मोहम्मद खान सरकार से इतने खफा हुए, कि उन्होंने कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से भी इस्तीफा दे दिया। ज्ञातव्य हो, कि आरिफ मोहम्मद खान वर्तमान में केरल के राज्यपाल पद पर सुशोभित हैं। शीर्ष न्यायालय से मुकदमा जीतने के बाद भी शाहबानो पुरुष प्रधान समाज में कट्टरपंथियों तथा सरकार के सामने पराजित हो गई, 1992 में ब्रेन हेमरेज से शाहबानो का देहांत हो गया।

छत्तीसगढ़ में महिला सशक्तिकरण का पर्याय फूलबासन बाई यादव आपका जन्म 1969 को राजनांदगांव जिले के सुकुलदैहान नामक गांव में हुआ था, आपने केवल सातवीं तक की पढ़ाई की,केवल 10 साल के उम्र में आपका विवाह कर दिया गया। संघर्ष के दिनों में आपका पति आप पर काफी अत्याचार किए,जब आप स्वयं सहायता समूह के कार्यों से देर रात में घर पहुंचती थी, तो आपके पति आपकी पिटाई करते थे, किंतु सफल होने पर अब वही पति आपके समर्थन में खड़े हैं। आप मां बम्लेश्वरी जनहितकारी समिति की संस्थापक हैं।यह संगठन छत्तीसगढ़ की आर्थिक तथा सामाजिक रूप से पिछड़ी महिलाओं के विकास के लिए काम करने वाली एक गैर सरकारी संगठन है। आपके संगठन के बैनर तले आज 12000 स्वयम सहायता समूह है। आपके संगठन से लगभग 2 लाख महिलाएं सदस्य के तौर पर जुड़ी हुई हैं।

आपका संगठन स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, सामाजिक सुधारों से संबंधित कार्यों में लगे हुए हैं। पोलियो टीकाकरण अभियान, आंगनबाड़ी,बाल विवाह के खिलाफ अभियान व जनजागरण में आपका संगठन अग्रणी है। आपके संगठन का दावा है, कि 250

शराब की दुकानें आप लोगों ने बंद करवाया है। जल संरक्षण के कार्य में भी आप और आपके संगठन की अहम भूमिका है। भारत सरकार के स्वच्छता अभियान प्रारंभ होने से आपका संगठन इस मिशन को सफल बनाने में अहम भूमिका अदा किए, 50 गांवों को खुले में शौच से मुक्त कराया।

आप प्रधानमंत्री आवास योजना की ब्रांड एम्बेसडर हैं। छत्तीसगढ़ सरकार ने छत्तीसगढ़ राज्य योजना आयोग और छत्तीसगढ़ के नवरत्न (स्वच्छ भारत अभियान)के सदस्य के रूप में नियुक्त किया है। फूलबासन यादव के सम्मान में गैर सरकारी संगठन मां बम्लेश्वरी जनहितकारी समिति ने ''कहानी फूलबासन की'' नामक एक वृत्तचित्र का निर्माण किया है फूलबासन यादव, विजन इंडिया फाउंडेशन के लिए एक संरक्षक के रूप में भी कार्य करती हैं।यह एक ऐसा संगठन है, जो देश की सार्वजनिक नीति, शासन और संस्थागत ढांचे पर काम करके दीर्घकालीन प्रणालीगत सुधार लाने पर विचार केंद्रित करता है। अरविंद यादव ने आपके जीवनी पर आधारित एक पुस्तक लिखे हैं, जिसका शीर्षक है- फूलबासन यादव फियरलेस, फियर्स एंड अनफैज्ड। यह पुस्तक 2020 में प्रकाशित हुई थी। 2020 में रेणुका शहाणे के साथ कौन बनेगा करोड़पति में आप दिखाई दी थी, जिस कार्यक्रम का संचालन अमिताभ बच्चन ने किया था। आप एक TDEX स्पीकर के तौर पर अपने दृष्टिकोण को साझा करती हैं। आप अपने आइडिया तथा विचारों से लोगों को अवगत कराती हैं। आप अपने आइडिया व विचारों के लिए सेमिनारों में जाती रहती हैं।

महिला सशक्तिकरण के लक्षण

(1) पुरुषों के समान निर्णय लेने का अधिकार।
(2) सत्ता तथा संपत्ति में पुरुषों के समान अधिकार।
(3) आर्थिक आत्मनिर्भरता।
(4) पुरुषों के समान उत्पादन क्षमता।
(5) समाज में नारी सुरक्षा के लिए पर्याप्त कानून तथा सुरक्षा।
(6) परिवर्तन तथा विकास में भागीदारी की क्षमता।
(7) लोक तांत्रिक तरीकों से दूसरों के विचारों का बदलने की क्षमता।
(8) महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है, कि पति तथा पत्नी दोनों को तलाक का अधिकार हो।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार महिला सशक्तिकरण के लिए 5 योजनाएं-

(1) महिलाओं में आत्म मूल्य की भावना जगाना।
(2) उन्हें निर्णय लेने की आजादी देना।
(3) पुरुषों के समान अधिकार देना।
(4) घर तथा घर से बाहर काम करने की आजादी देना।
(5) सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को आगे तक ले जाने में महिलाओं को उनके अधिकार दिलाना तथा उन्हें जागरूक करना।

महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता-

(1) समाज की आधी आबादी को अलग थलग रखना ही समाज के पिछड़ेपन का बड़ा कारण है। जिस प्रकार रथ का पहिया दोनों पहियों के ठीक होने पर सही ढंग से चलता है, उसी प्रकार पुरुषों के समान महिलाओं का भी सशक्त होना आवश्यक है, तभी समाज का सर्वांगीण विकास संभव है। महिलाओं को समाज के मुख्य धारा में लाए जाने की नितांत आवश्यकता है।
(2) महिलाओं के उज्जवल भविष्य के लिए भी महिला सशक्तिकरण परम आवश्यक है।
(3) समाज में अभी भी महिलाओं तथा पुरुषों में भेदभाव अत्याधिक परिलक्षित होता है, महिलाओं को तेज आवाज में बात करने से मना किया जाता है, जबकि पुरुषों के तेज बोलने से कोई दिक्कत नहीं है।

(4) आज भी कुछ महिलाएं अपने वेतन या मजदूरी को अपनी इच्छा से व्यय नहीं कर पाती।

(5) आर्थिक रुप से महिला जब सशक्त होती है, तो अपनी सामाजिक सुरक्षा व अधिकारों के लिए खुद खड़े हो पाती है, जो महिला सशक्तिकरण की दिशा में बड़ा कदम है।

महिला सशक्तिकरण के मार्ग में आने वाली बाधाएं-

(1) पुरानी व रूढ़िवादी विचारधाराएं-भारतीय समाज में अभी भी महिलाओं के अकेली घर छोड़ने पर पाबंदी होती है। शिक्षा तथा रोजगार के लिए घर से बाहर जाने के लिए आजादी नहीं होती। इसी प्रकार अभी भी संतान के रूप में पुत्र के जन्म को प्राथमिकता दिया जाता है। पुत्र के जन्म पर धूमधाम से खुशियां मनाई जाती है, जबकि पुत्री के जन्म पर ऐसा नहीं होता।

(2) महिलाएं समाज की परंपरागत पितृप्रधान व्यवस्था में रहते-रहते स्वयं को पुरुषों की तुलना में कमतर मानने लगती है।

(3) कार्यक्षेत्र में होने वाला शोषण भी महिला सशक्तिकरण में एक बड़ी चुनौती है। कालसेंटर में काम करने वाली महिलाएं देर रात तक कार्य करती है। स्वास्थ्य क्षेत्र में रात्रिकालीन सेवा देने वाली महिलाओं के साथ यह समस्या व्यापक पैमाने पर परिलक्षित होती है।

(4) लैंगिक स्तर पर भेदभाव आज भी एक बड़ी समस्या है।आज भी महिलाओं के साथ शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में भेदभाव जगजाहिर है। उच्च शिक्षा में परिवारों में भी लड़का को प्राथमिकता दिया जाता है।

(5) महिलाओं को पुरुषों की तुलना में भी कम वेतन या मजदूरी देने की शिकायत सुनने को मिल जाती है, हालांकि यह समस्या अब कम देखने को मिल रही है।

(6) महिला अशिक्षा भी महिला सशक्तिकरण में एक बड़ी चुनौती है। आज भी ग्रामीण अंचलों में महिला अशिक्षा देखने को मिलती है। दूसरी समस्या महिलाओं में पुरुषों की तुलना में उच्च शिक्षा की कमी होना है। शहरी क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण का एक बड़ा कारण महिलाओं का बेहतर शैक्षिक स्थिति है।

(7) घरेलू हिंसा-घरों में महिलाओं के साथ छोटी-छोटी बातों पर घरेलू हिंसा होती है। घरेलू हिंसा के लिए जिम्मेदार बहुधा महिला के पति होते हैं। दुर्भाग्यपूर्ण यह है, कि इस घरेलू हिंसा में सास तथा पति के बहनों की भी भूमिका होती है।

(8) आनर किलिंग-झूठी शान के खातिर अपने पुत्री तथा बहन की हत्या आज के तथाकथित विकसित समाजों में यदा कदा देखने को मिल रही है। बहुधा आनर किलिंग विवाह व प्रेम प्रसंग के मामलों में दिखलाई दे रहा है। बेटियों को अपनी इच्छा से जीवन साथी चुनने में आज भी मौका नहीं मिल पा रहा है, यही आनर किलिंग का कारण हो रहा है।

(9) महिला तस्करी-शहरी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाएं इसका अधिक शिकार हो रही है। शिक्षित की तुलना में अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित महिलाएं अधिक शिकार हो रही हैं।

(10) कामकाजी महिलाओं की सुरक्षा-देर रात तक काम करने वाली महिलाओं के लिए यह बड़ी चिंता का विषय है।

(11) कन्या भ्रूण हत्या- यह समस्या भारत के विकसित समाज की समस्या है, भ्रूण हत्या की समस्या गरीबों में नहीं है और न ही अशिक्षित व अल्पशिक्षित समुदाय में है।यह समस्या पढ़े लिखे तथा अमीर लोगों के बीच है। पुरूष प्रधान समाज अभी भी बच्चों के रूप में लड़के को प्राथमिकता देता है, इसमें दुर्भाग्य यह है, कि कुछ महिलाएं भी ऐसा ही चाहती हैं। आधुनिक यंत्रों से लिंग परीक्षण करवाना तथा लड़की होने पर गर्भपात करवाना आज महिला सशक्तिकरण कीदिशा में गंभीर चुनौती है।

स्व सहायता समूह से सशक्तिकरण-

महिला सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका बांग्लादेश के नोबेल विजेता मोहम्मद युनूस ने अनपढ़ तथा गरीब लोगों के लिए स्वयं सहायता समूहों की शुरुआत की, और इन समूहों के आर्थिक विकास के लिए माइक्रो क्रेडिट (लघु ऋण) बैंकों से आसानी से दिलवाया। बांग्लादेश में यह योजना अत्यधिक लोकप्रिय हुई। बैंक, समूह को ऋण देते हैं, न कि किसी व्यक्ति को। समूह पंजीकृत होता है, और आज यह योजना पूरे भारत में अत्यधिक लोकप्रिय हो गयी है, स्वयं सहायता समूहों ने भारतीय महिलाओं को न केवल आर्थिक संबल दिया है, वरन् सामाजिक तथा मानसिक सहारा भी दिया है। स्व सहायता समूहों में 10 से 15 सदस्य

होते हैं समूह में अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सचिव आदि पद होता है और इसका संचालन समूह की महिलाएं ही करती हैं। स्व सहायता समूह से निम्नलिखित लाभ समाज को मिला है–

(1) महिलाओं में आत्मविश्वास आया है।
(2) महिलाएं पापड़, आचार, दोना-पत्तल आदि व्यवसाय में हाथ आजमाने लगी है तथा आत्मनिर्भर होती जा रही हैं।
(3) अनेक गांवों में स्व सहायता समूह को उचित मूल्य की दुकान संचालन का दायित्व सौंपा गया है।
(4) विद्यालयों तथा आंगनबाड़ी केंद्रों में मध्यान्ह भोजन का दायित्व स्व सहायता समूह की महिलाएं निर्वाह कर रही हैं।
(5) स्व सहायता समूह के कार्य से महिलाएं घरों से निकलने लगी हैं। इससे महिलाओं में आत्मविश्वास आया है।
(6) महिलाओं में बचत की भावनाएं बढ़ी है, जब उनको बैंकिंग प्रणाली से जोड़ा गया।
(7) स्व सहायता समूह के बैनर तले सभी महिलाओं को जन धन योजना से जोड़ा गया,जन धन योजना के तहत सभी महिलाओं का जीरो बैलेंस पर बैंक खाता खोला गया।
(8) महिलाएं स्व सहायता समूह के बैनर तले कुछ सरकारी योजनाओं का प्रशिक्षण लेती हैं, जिससे उन्हें सरकारी योजनाओं की जानकारी होती है, और वह खुद भी उन योजनाओं का लाभ लेती है।
(9) समूह से जुड़ने पर महिलाओं के बातचीत का तौर तरीका बदला है, अब वे आत्मविश्वास के साथ अधिकारियों से अपनी बात रखती हैं।
(10) महिलाएं शिक्षा का महत्व समझने लगी हैं।
(11) समूह की महिलाएं बैंकों से ऋण लेकर स्वरोजगार की दिशा में आगे बढ़ रही हैं।
(12) स्व सहायता समूह की महिलाएं आसानी से आशा कार्यकर्ता, मितानिन से आवश्यकता पड़ने पर दवाई ले आती हैं।
(13) अनेक गांवों में समूह की महिलाएं दरी निर्माण,चाक निर्माण, साबुन निर्माण जैसे कार्यों से जुड़ी हुई हैं।
(14) समूह में रहने से महिलाओं में आत्मविश्वास अधिक आया है और अनेक गांवों में ये महिलाएं शराब बंदी जैसे कार्यों में सफलता पाई हैं।
(15) अनेक सामाजिक बुराइयों के खिलाफ भी ये जनजागरण फैलाने में सफल हुए हैं, जैसे जुआ के खिलाफ, बाल विवाह के खिलाफ।
(16) अनेक स्थानों में समूह की महिलाएं अच्छे दबाव समूह की भूमिका में हैं और शासन का ध्यान अच्छे कार्यों के लिए आकृष्ट करने में सफल हुए

महिला सशक्तिकरण से लाभ–

(1) प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रही हैं।
(2) महिलाएं अपनी जिंदगी से जुड़े फैसले स्वयं ले रही हैं।
(3) महिलाएं आत्मनिर्भर होते जा रही हैं
(4) पुरुष वर्ग, अब महिलाओं के फेसले का सम्मान करने लगे हैं।
(5) पुरुष वर्ग, महिलाओं को समझने लगे हैं।
(6) महिला शिक्षा को बढ़ावा मिलने लगा है। धीरे-धीरे लोग महिला शिक्षा का सम्मान करने लगे हैं।
(7) जीवन साथी के चुनाव में महिलाओं से भी परामर्श लिया जाने लगा है।
(8) सरकारी रोजगार के क्षेत्रों में महिलाओं को जाने की अनुमति आसानी से परिवारों से मिलने लगी है।

फ्रांसीसी नारीवादी लेखिका सिमोन द बुआ ने अपनी पुस्तक द सेकंड सेक्स में अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए लिखा है, ''कि स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे ऐसा बना दिया जाता है"। यही महिला सशक्तिकरण पर आधारित गूढ़ विचार है, अब आवश्यकता है कि महिलाओं को सशक्त बनाया जाय।

महिला सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण आयाम-

- शहरी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाएं स्व सहायता समूहो के माध्यम से अधिक तीव्रता से आगे बढ़ रही है।
- आशा कार्यकर्ता (महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता) अब प्रत्येक गांव में दृष्टिगोचर होने लगी हैं, इससे जच्चा-बच्चा के मृत्यु दर में कमी आई है।
- महिलाओं का अस्पतालों में प्रसव के उद्धेश्य से अधिक मात्रा में जाना एक सकारात्मक बदलाव का संकेत है। अब संस्था गत प्रसव अधिक मात्रा में होने लगा है।
- महिला साक्षरता में वृद्धि भी प्रगति की नयी दिशा को अभिव्यक्त करता है।
- पुरूषों की शराबखोरी महिला सशक्तिकरण में बाधक बनी हुई है, शराबखोरी के कारण महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा में वृद्धि होती है, महिला सशक्तिकरण की दिशा में पूर्ण शराब बंदी एक प्रभावशाली कदम सिद्ध होगा।
- महिलाओं को लघु व कुटीर उद्योगों से जोड़ना महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक बेहतर कदम हो सकता है।
- महिलाओं के उत्थान में अनेक गैर सरकारी संगठन भी सक्रिय हैं, उन्हे भी बढ़ावा देना होगा।

निष्कर्ष:-

शिक्षा के व्यापक प्रचार प्रसार से महिला सशक्तिकरण प्रभावी होती जा रही है समाज के दोनो पहियों (महिला और पुरूष) को गति देने के लिए वर्तमान समाज व सरकार पूर्व सरकारों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक गंभीर नजर आ रही है। 2010 में राज्यसभा में एक तिहाई महिला आरक्षण विधेयक का पारित होना यही संकेत करता है। भविष्य में राज्यों की विधान सभाओं तथा लोक सभा में एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हो जाएंगी। आर्थिक दृष्टि से जब तक महिलाएं आत्मनिर्भर नही हो जाती, तब तक सही मायने में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा अधूरी ही रहेगी। निर्णय लेने में महिलाओं की स्वतंत्रता परमं आवश्यक है, तभी महिला सशक्तिकरण सार्थक होगी। महिला और पुरूष का वेतन अथवा मजदूरी एक समान काम के लिए एक समान करने से महिला सशक्तिकरण परिलक्षित होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- पटेल हरिराम- छत्तीसगढ़ क्लास नोट्स
- जनमन पत्रिका-छत्तीसगढ़ शासन की पत्रिका
- नवभारत-08.03.2017 का बिलासपुर अंक
- दैनिक भास्कर- 08.03.2018 का बिलासपुर अंक
- हरिभूमि - 08.03.2019 का रायपुर अंक
- बोरकर हेमलता एवं पाण्डेय स्वेता (2012)- कामकाजी महिलाएं कार्य संतुष्टि(कोरबा नगर के शासकीय व अशासकीय संस्थाओं के विशेष संदर्भ में)
- डुफ्लो एस्तेर (2012) - महिला सशक्तिकरण और आर्थिक विकास
- वर्मा सुरजित कुमार (2015)- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला एवं पुरूष की दैनिक मजदूरी में अंतर
- पाण्डेय शशि (2016)- स्वयं सहायता समूह, लघु ऋण एवं महिला सशक्तिकरण
- डॉ. विरेन्द्र कुमार व्यास (2016)- महिला विकास एवं सशक्तिकरण
- ठाकुर डॉ. राजकुमार (2016)- मध्यप्रदेश के सागर जिले में स्व सहायता समूह योजना
- चौहान सुनीता (2016)- भारत में महिला श्रमिक की आर्थिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन
- मिश्रा आभा (2016)- महिला सशक्तिकरण एवं स्वयं सहायता समूह: एक समाज शास्त्री विश्लेषण (रांची जिले के नामकुम प्रखंड के विशेष संदर्भ में)

स्वच्छ भारत और गाँधीवादी दृष्टिकोण

ऋतेश भारद्वाज

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के यदि हम स्वच्छता संबंधी विचारधारा में देखें और उसे यदि समाज में कार्यान्वित करने का प्रयास करें तो गांधी जी के अनुसार साफ-सफाई, भगवान की उपासना करने के समान है। इसके बारे में गाँधी जी ने समाज में अपना संदेश दिया। उनका जो सपना था कि भारत को एक 'स्वच्छ भारत' बनाया जाये जिसके अंतर्गत भारत के सभी नागरिक मिलकर भारत को स्वच्छ बनाने का कार्य करे। यदि हम इस अभियान (स्वच्छ भारत अभियान) को देखें तो इसकी जड़ें बहुत पुरानी है। स्वच्छता देवत्व के निकटतम है जब यह बात सामने आती है तो प्रमुख रूप में महात्मा गांधी उस धारणा के सबसे बड़े प्रवक्ता के रूप में समाज के सामने आते हैं। गांधी जी के अनुसार इस बात को समझने के लिये हमें उनकी मानव के प्रति मूल भावना को समझना पड़ेगा। गाँधी जी के अनुसार मानव मूलत: व्यक्ति होता है और हर व्यक्ति की आत्मा में परमात्मा का अंश होता है। गांधी जी उपर्युक्त बात बड़े ही साधारण तरीके से तथा व्यावहारिक तौर पर समझते थे। गांधी जी इस मान्यता के आदर्श व्यक्ति थे उनका कहना था कि यदि कोई व्यक्ति स्वच्छ नहीं होगा तो स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वस्थ शरीर से ही स्वस्थ मनोदशा का विकास होगा।

गाँधी जी स्वच्छता को सिर्फ व्यक्तिगत सिद्धांत के आधार पर ही नहीं देखते थे बल्कि इसमें एक सामाजिक अवधारणा के साथ जोड़ते थे। 2 अक्टूबर 2014 में स्वच्छ भारत अभियान शुरु किया और इस अभियान को सफल बनाने के लिये भारत के सभी नागरिकों को इस अभियान से जुड़ने के लिए प्रेरित किया गया। इस अभियान का उद्देश्य 5 वर्ष में स्वच्छ भारत जो कि गाँधी जी का एक सपना था। अभियान को पूरा कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है। ताकि महात्मा गांधी की 150वीं जयंती पर इस स्वच्छ भारत मिशन को लक्ष्य प्राप्ति के रूप में मनाया जा सके। जब इस अभियान की शुरुआत की गई (2014 में) तो उस समय इस आंदोलन के प्रचार-प्रसार के लिये देश की बड़ी-बड़ी हस्तियों को इस अभियान से जुड़ने को कहा गया जिसमें मुख्य हैं- मृदुला सिन्हा, बाबा रामदेव, शशि थरूर, सलमान खान, आदि को इस अभियान में जोड़ा गया। इस अभियान को सोशल मीडिया से भी पूरी तरह जोड़ दिया गया। देश के नागरिकों से सफाई अभियान के लिये सहयोग माँगा गया और नागरिकों को इससे पूरी तरह जोड़ा भी गया। सोशल मीडिया पर #Mycleanindia लिखकर लोगों के विचारों को देश के सामने इस अभियान के लिये साझा करने के लिये कहा गया।

स्वच्छ भारत अभियान को हरित भारत की अवधारणा के साथ जोड़ना- यदि हम स्वच्छ भारत अभियान को देखें तो लोगों को इसका अभिप्राय समझ आता है केवल साफ-सफाई, कूड़ा-करकट को साफ करने से। परन्तु इसका अर्थ केवल इतना ही नहीं है बल्कि इससे कहीं ज्यादा है। स्वच्छ भारत अभियान को हरित भारत की अवधारणा के साथ जोड़ते हुये इसमें देश में पेड़-पौधे लगाना, कचरा मुक्त वातावरण बनाना और खुले में शौच को रोककर एक स्वच्छ वातावरण के भारत का निर्माण करना है। क्योंकि यदि हम देखें तो जो पर्यटक भारत में भ्रमण के लिये आते हैं तो भारत का अस्वच्छ वातावरण एक शर्मिंदगी की वजह बनता है।

क्लीन इंडिया गाँधीवादी अवधारणा- क्लीन इंडिया की जो अवधारणा है यह मुख्यत: गाँधी जी द्वारा इसको समाज के सामने लाया गया। देश के कई सामाजिक संगठन जोकि निजी क्षेत्रों और सरकारी क्षेत्रों दोनों में रहे हैं जोकि सफाई का कार्य कर रहे हैं। महात्मा गाँधी ने जब सफाई अभियान शुरु किया था तो वो इस सफाई अभियान के लिये सभी गलियों/बस्तियों/ कालोनियों में नहीं गये थे परन्तु लोगों की उनके प्रति ऐसी श्रद्धा थी कि लोगों ने अपने-अपने मोहल्लों, गलियों, कालोनियों की सफाई स्वयं से करना शुरु किया और जो 'स्वच्छ भारत' अभियान में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया।

शहरी क्षेत्रों के लिये स्वच्छ भारत मिशन तथा सरकार व नागरिकों में सहदायित्व- 2014 में शुरु किये गये इस मिशन में सरकार का मुख्य कार्य 1.04 करोड़ परिवार को लक्षित रखते हुये 2.5 लाख सामुदायिक शौचालय, 2.6 लाख सार्वजनिक शौचालय

की सुविधा प्रदान करने का प्रस्ताव रखा गया। इस कार्यक्रम के तहत जहाँ पर अधिक जनसंख्या वाले आवासीय क्षेत्र हैं उनमें सामुदायिक शौचालयों का निर्माण करने का प्रस्ताव रखा गया है और जो पर्यटन स्थानों बड़े बाजारों, रेलवे स्टेशनों, बस स्टैंडों, इस प्रका की जगहों पर सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण करने के लिये प्रयास जारी है। इस कार्यक्रम को पांच साल के कार्यकाल में 4401 शहरों में लागू किया जायेगा। इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिये 62,009 करोड़ रुपये में से सरकार की तरफ से 14623 रुपये इस कार्य को पूरा करने के लिये प्रदान किये जायेंगे।

केन्द्र सरकार द्वारा दिये जाने वाले 14623 करोड़ रुपये में से 7366 करोड़ रुपये का प्रयोग अपशिष्ट प्रबंधन कार्य पर खर्च किया जायेगा 1,465 करोड़ रुपये व्यक्तिगत घरेलू शौचालयों पर खर्च करने का प्रावधान है, 1828 करोड़ रुपये का उपयोग जनता में जागरुकता लाने के लिये किया जाना है।

ग्रामीण क्षेत्रों और स्वच्छ भारत मिशन का महत्त्व- भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में चलाये जा रहे ''निर्मल भारत अभियान'' का मुख्य सरोकार ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों में माँग आधारित व जन केन्द्रित अभियान है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के जीवन को स्वच्छ व अच्छा बनाया जा सके। यह अभियान ग्रामीण लोगों की स्वच्छता संबंधी दैनिक आदतों में परिवर्तन लाने तथा उनको बेहतर बनाने के लिये तथा उनको स्वच्छता संबंधी सुविधाओं को उपलब्ध कराना है तथा जो ग्रामीण लोग हैं उनके जीवन स्तर को स्वच्छ, बेहतर एवं सुगम बनाया जा सके। इस कार्यक्रम का उद्देश्य 5 वर्षों में शौचालय बनाकर भारत को खुले शौच से मुक्त करवाना है। इस अभियान के अंतर्गत देश के लगभग 11 करोड़ 11 लाख सार्वजनिक और सामूहिक शौचालयों के निर्माण के लिये 1 लाख 34 हजार करोड़ रुपये खर्च किये जाने का प्रस्ताव सरकार ने जनता के समक्ष रखा है। स्वच्छ अभियान को स्वच्छ विद्यालय अभियान से जोड़ा गया। 25 सितम्बर 2014 से 31 अक्टूबर 2014 के बीच मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा केवीएस तथा नवोदय विद्यालय में Clean India Drive का आयोजन किया गया।

सामाजिक भेद-भावों से रहित स्वच्छता और समग्र सामाजिक पहल- निजी और सामाजिक जीवन शैली में स्वच्छता एक बुनियादी जिम्मेदारी और एक जरूरत है। परन्तु यदि हम आज समाज में देखें तो हमने सफाई में निजी और सामाजिक जीवन में जाति और लिंग के आधार पर विभाजित कर दिया है। जब हम इस संदर्भ में सामाजिक आधार पर स्वच्छता की बात करते हैं तो इसको मुख्यतः जाति से जोड़ा जाता है जिसमें जो सफाई कर्मचारी वर्ग है उनको ही इस सफाई व स्वच्छता के लिये मुख्य कार्यकारिणी व्यक्ति के रूप मे केन्द्रित किया जाता है और जब हम निजी जीवन में यानि पारिवारिक जीवन में सफाई व स्वच्छता की बात करते हैं तो यहाँ पर घर की साफ-सफाई, झाड़ू लगाने, कपड़े धोने और बर्तन साफ करने का काम स्त्री के हिस्से में आता है। इसमें यदि हम धर्म, भाषा, लिंग, समुदाय से ऊपर उठकर देखें तो इसमें हम सब एक जैसे हैं।

इसी परंपरागत व्यवस्था के विरुद्ध गांधी जी ने एक कदम उठाया जिसका भारतीय समाज में एक जबरदस्त प्रभाव देखने को मिला। समाज में स्वच्छता की जिम्मेदारी रखने वालों को पुरस्कृत करने की बजाय तिरस्कृत करने का जो एक विधान समाज में बना हुआ था उसको तोड़ने के लिये गांधी जी ने पहल की तथा जो सफाई-स्वच्छता का कार्य समाज में करते हैं उनको स्वाभिमानी बनाने में गाँधी जी ने एक महत्त्वपूर्ण निभाई। इस संदर्भ में यदि हम देखें तो साफ-सफाई का जो स्वस्थ समाज का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है उसको पूरा करने तथा उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचाने के लिये सामाजिक सोच में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है तथा इस परिवर्तन के द्वारा ही समाज में स्वच्छता का वातावरण बनाया जा सकता है जिसका सपना गाँधी जी ने देखा था।

स्वच्छता के प्रति सामाजिक दृष्टि में बदलाव करना आवश्यक

यदि हम देखें तो हर राज्य की सरकार अपने-अपने राज्य में या हम कहें कि ग्रामीण प्रदेशों में गांधी-अम्बेडकर-लोहिया जैसे स्वच्छता के प्रवक्ता के नाम पर हजारों की संख्या में शौचालय बनाने में लगी हुई है। महानगरों की यदि हम बात करें तो यहाँ पर सुलभ शौचालय, सरकारी शौचालय तथा पहियेदार शौचालय हमें देखने को मिलने हैं। यदि हम आंकड़ों के अनुसार देखें तो देश में मुख्य रूप से कमी रही है शौचालयों की-

- 2011 की जनगणना की रपट के अनुसार गांव के 67.3 फीसदी घरों या 1.31 करोड़ लोगों के पास शौचालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है।
- बाकी 36.4% आबादी के पास वॉटर क्लोजेस्ट है।

- 9.4% के पास पिट लैटरिन्स है।
- भारत में लगभग 626 मिलियन लोग खुले में शौच करते हैं।
- देश में है 800 मिलियन शौचालय की आवश्यता। 2019 तक शहरी क्षेत्र के 1.04 करोड़ घरों में शौचालय मुहैया करवाने का लक्ष्य।
- सरकार द्वारा प्रथम वर्ष में 20 मिलियन टॉयलेट बनाने का लक्ष्य निर्धारित।

इस कार्यक्रम को प्रधानमंत्री से लेकर मुख्यमंत्री, जिला प्रमुख और नगर प्रमुख को खुद से साफ-सफाई, स्वच्छता की मासिक प्रगति की जाँच की जिम्मेदारी लेनी होगी अन्यथा जिस देश में स्कूल, चिकित्सालय और अन्य संस्थाओं में अस्वच्छता पर ध्यान नहीं दिया जाता तो इसके कारण स्वच्छ भारत अभियान के द्वारा देखा गया सपना, सपना ही रह जायेगा वह कभी पूर्ण नहीं हो पायेगा।

लोकप्रियता को दूर रखकर सफाई पर ध्यान देना आवश्यक

स्वच्छता संबंधी कार्य के लिये हमें देश हित में नागरिक कर्तव्य के रूप में अपना योगदान देना होगा। इस कार्य के लिये हमें तन, मन तथा धन से समाज के हित के लिये तथा राष्ट्र प्रगति के लिये कार्य करना होगा। अक्सर हमारे आस-पास देखा जा रहा है कि साफ-सफाई को लेकर लोगों में, नेताओं में अपने-आप से लोकप्रिय करने की एक होड आज देश में देखी जा रही है जोकि एक व्यर्थ तथा दिखावे का हिस्सा है। साफ-सफाई का पहलू यदि हम देखें तो यह मुख्य रूप से श्रमशक्ति व आर्थिक शक्ति से जुड़ा हुआ है। हमें मुख्य रूप से उन तकनीकी व्यवस्थाओं पर ध्यान देना होगा जो स्वच्छता के लिए महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए हमें देश में शौचालयों की आवश्यकता है परन्तु सभी जगह एक जैसे शौचालयों की आवश्यकता नहीं है। गांधी जी ने शौचालयों की सफाई को जाति-व्यवस्था से अलग करके बाहर निकालने की कोशिश की जोकि पूर्ण न हो पाई। इन सबसे ऊपर उठकर स्वच्छता के प्रबंध की पारिवारिक स्तर पर, पड़ोस, गांव, नगर और महानगर के स्तर पर आधारित काम करने के तौर-तरीके तथा परम्परागत रीति-रिवाजों को बहुत पास से देखकर उनको परखने की जरूरत है।

स्वच्छ भारत अभियान का ब्यौरेवार विवरण (2014-19)

स्वच्छ भारत अभियान के लिये भारत सरकार ने कुल 1,96,009 करोड़ रुपये की घोषणा की इस अभियान को पूरा करने के लिये। इस ग्रामीण विकास मंत्रालय 1,34,000 करोड़ रुपये की भागीदारी करेगा और 62,009 करोड़ रुपये की भागीदारी शहरी मंत्रालय की होगी। सरकार द्वारा स्वच्छ भारत अभियान को दो भागों में विभाजित किया गया है -

- ग्रामीण इलाकों में स्वच्छ भारत (ग्रामीण) और 4,041 शहरों के लिये स्वच्छ भारत (शहरी) अभियान।
- इसके तहत 66,575 घरों में रोजाना शौचालय बनेंगे ताकि 5 सालों में हरेक घर में शौचालय देने का लक्ष्य पूरा किया जा सके।
- 56,928 और शौचालय ग्रामीण स्कूलों में बनेंगे। साथ ही, देश के हरेक स्कूल या शिक्षा संस्थानों में लड़के-लड़कियों के लिये अलग टॉयलेट बनेंगे।
- लोगों में स्वच्छता के प्रति नजरिया बदलने का कार्यक्रम अभियान 31 अक्टूबर तक चला। यह 25 दिसंबर 2014 से चलाया गया।

जनसंख्या वृद्धि भी अस्वच्छता का एक मुख्य कारण

यदि हम 21वीं सदी में देखें तो जैसे-जैसे शहरों के आकार में बढ़ोतरी हो रही है वैसे ही कचरे के उत्पादन में भी कहीं ज्यादा वृद्धि हो रही है। जिन शहरों में जनसंख्या 1 लाख से कम है या उसके आसपास है तो उन शहरों में प्रति व्यक्ति 300 ग्राम कचरे की पैदावार होतीप है जबकि 10 लाख से ज्यादा जनसंख्या वाले शहर में एक व्यक्ति हर रोज 550 ग्राम कचरा पैदा करता है। भारत के 7,882 छोटे नगर जितना कुल कचरा (82 हजार मैट्रिक टन प्रतिदिन) पैदा करते हैं, 53 बड़े शहर उससे ज्यादा कचरा (88 हजार मैट्रिक टन प्रतिदिन) पैदा करते हैं। जब तक हम अपनी आर्थिक विकास की नीतियों पर पुनर्विचार व पुनर्समीक्षा नहीं करेंगे तब तक इस तरह के अभियान किसी भी रूप में समाज में कामगार नहीं होंगे। जिस आर्थिक विकास के बारे में आज बात की जा रही है इसके कारण ही कचरे की मात्रा में ढाई गुना वृद्धि हुई है।

यदि हम आंकड़ों पर प्रकाश डालें तो 1999-2000 में हमारे शहर एक दिन में लगभग 52,125 मैट्रिक टन कचरा पैदा करते थे जोकि 2012 में बढ़कर 1,33,760 मैट्रिक टन हो गया। यदि हम विकसित देशों की बात करें तो एक व्यक्ति 1 से 25 किलो ठोस कचरा प्रतिदिन पैदा करता है। परन्तु हम 450 ग्राम के आस-पास ही करते हैं। यह सोच स्वाभाविक है क्योंकि विकास का दृष्टिकोण हमने उन्हीं विकसित देशों से लिया है। परन्तु विकसित देश इस बात के बिल्कुल खिलाफ थे, उनका कहना था कि मनुष्य की जीवनशैली इस प्रकार की हो जिसमें कम से कम कचरा पैदा हो तथा स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाये। जिस प्रकार से बढ़ते शहरीकरण के कारण कचरे का भार देश में बढ़ रहा है तो इसके हिसाब से 20 साल बाद इस कचरे को फेंकने के लिये जगह नहीं होगी तो इसके कारण इस कचरे को घर में ही रखने के लिये मजबूर होना पड़ेगा।

समाज में स्वच्छता का अभाव

सरकार द्वारा देश में सूचना, शिक्षा, संपर्क के लिये खासे धन की व्यवस्था किये जाने के बावजूद हमने पाया कि शौचालयों में शौच न करने तथा खुले में शौच करने से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों के बारे में समाज में जानकारी का अभाव है। ऐसा हाल तब है जब खुले में शौच करने के कारण हर साल हजारों बच्चे बेमौत मारे जाते हैं और जो मौत से बच जाते हैं उनको शारीरिक व मानसिक बीमारियां घेर लेती हैं।

इसके साथ ही यदि हम देखें तो केवल शौचालय का निर्माण करना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि यह महत्त्वपूर्ण है कि शौचालयों का इस्तेमाल करने के लिये लोगों में धारणा बने क्योंकि एक सर्वेक्षण के अनुसार यह देखा गया कि एक गाँव के 84 प्रतिशत लोगों ने कहा कि उन्होंने ग्रामीण-स्तर पर स्वच्छता संबंधी किसी बैठक का नाम ही नहीं सुना। यह बात साफ है कि स्वच्छता संबंधी कार्यों और तौर-तरीकों में बदलाव लाया जाना एक बहुत कठिन कार्य उभरकर सामने आता है। इसके लिये इसमें लाखों लोगों को शौचालय के उपयोग के प्रोत्साहन कार्य में जुटाना होगा जिसमें लोगों के अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त हो सके तथा वे शौचालय का प्रयोग करके स्वच्छता को बढ़ावा दें।

संदर्भ

1. मोहनदास करमचंद गांधी, हिंद स्वराज, अनुवादक अमृतलाल ठाकुर दासनाणावती, प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद 2001
2. Gandhi M.K., An Autobiography or The Story of My Experiment with Truth, Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 2011
3. Gandhi M.K., India of My Dreams, New Delhi, Rajpal and Sons, 2011.
4. https://www.mkgandhi.org/articles/swachh-bharat-of-mahatma-gandhi.html
5. https://www.mkgandhi.org/articles/cleanliness-sanitation-gandhian-movement-swachh-bharat-abhiyan.html
6. https://www.mkgandhi.org/articles/cleanliness-next-to-godliness.html
7. https://www.mkgandhi.org/articles/cleanliness-sanitation-gandhian-movement-swachh-bharat-abhiyan.html
8. https://indianexpress.com/article/research/swachh-bharat-how-mahatma-became-torch-bearer-for-cleanliness/
9. https://ideas.repec.org/a/tec/journl/v6y2020i1p156-159.html
10. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC6515731/

हिमाचली लोक गीतों में अभिव्यक्त स्त्री के विविध रूप

लतेश कुमारी

शोधार्थी हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यहां भारत सांस्कृतिक विविधताओं का देश है। अनेक लोक-संस्कृतियों होने के बावजूद भी पूरा देश एकता के सूत्र में बंधा है। लोक संस्कृति की पहचान लोकगीत भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। भारत का प्रत्येक राज्य अपनी अलग लोक सांस्कृतिक पहचान रखता है। प्राकृतिक सुषमा तथा लोक गीतों की अमूल्य संपदा का धनी भारत का छोटा-सा पहाड़ी राज्य है-हिमाचल प्रदेश। हिमाचल प्रदेश में लोकगीतों की मौखिक परंपरा आज भी प्रचलित है। स्त्रियाँ इन गीतों को जन्म संस्कार विवाह धार्मिक आयोजनों मेलों आदि अवसरों पर तो गाती ही हैं, इसके अलावा दैनिक कार्यों की बोरियत दूर करने के लिए भी लोक गीतों का सहारा लेती हैं। लोकगीतों के माध्यम से वे अपने भाव ही प्रकट नहीं करती बल्कि इन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित भी करती हैं। यद्यपि लोकगीतों को गाने में हिमाचल प्रदेश के पुरुषों की भूमिका भी रहती है परंतु स्त्रियों का योगदान अधिक होता है। इसीलिए लोकगीतों को स्त्रियों के गीत भी कहा जाता है।

लोकगीतों में स्त्रियों के योगदान को लेकर डॉ० शांति जैन लिखती हैं- "लोकगीतों की कल्पना नारी के बिना संभव ही नहीं है। नारी लोकगीतों की धरती है और आकाश भी। उसकी रचना एवं भावभूमि दोनों में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। नारी की भावुकता सरलता संवेदनशीलता इन लोकगीतों को समृद्ध, आकर्षक और मार्मिक बनती है। लोकगीतों में नारी अपनी विविध भूमिकाओं का निर्वाह करती हुई दिखती है।"[1] हिमाचल प्रदेश के स्त्री गीतों की विशेषता है उनकी सामूहिकता। स्त्रियाँ विभिन्न अवसरों पर उन्हें समूह में गाती हैं। इनमें वर्णित भाव सभी के सामूहिक भाव बन जाते हैं। हिमाचल प्रदेश के लोक गीतों के विषय में हरीकृष्ण मिट्टू कहते हैं- "किसी भी सुअवसर पर यहां के निवासियों के कंठों में स्वर-लहरी तैरने लगती है, पांव में थिरकन उत्पन्न हो जाती है। लोक-गीत पर्वतीय जनता के प्राण हैं। अपने मादक गीतों के सहारे वे कठिन से कठिन परिश्रम को भी साधारण-सा अनुभव करते हैं। गीतों की स्वर-लहरी मानों कठोर चट्टानों को भी कोमलता में परिवर्तित कर देती है।"[2]

हिमाचल के लोकगीत यहां के जनजीवन के प्रत्येक पहलू को प्रतिबिम्बित करते हैं। लोक गीत स्त्रियों के वह हथियार होते हैं, जिनके द्वारा वे अपने दुखों, संघर्षों को गीतों के माध्यम से कूटती हैं, पीटती हैं और मानसिक द्वंदों को विरेचित कर जीवन में नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ती हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ शिक्षा के महत्व को जानती हैं। समय के साथ वे भी आगे बढ़ना चाहती हैं। शिक्षित होना चाहती हैं और कहती हैं-

"बाकरी नाईं चारनी निमुये
चले पौढ़दे जाणा लो।
पढ़ी-लिखिये अफसर बनना
संधे घौर चलाणा लो।"[3]

अर्थात नींमू हम बकरियां नहीं चराएंगे, स्कूल पढ़ने जाएंगे। पढ़-लिखकर अफसर बनेंगे और साथ ही घर भी संभालेंगे। लोक गीतों में स्त्री समय और परिस्थितियों के प्रति जागरूक ही नहीं दिखाई देती बल्कि माता के रूप में वात्सल्य और प्रेम की प्रतिमूर्ति के रूप में भी वर्णित होती है। निम्न लोक गीत देखिए-

"तुम रोयां न काहनां मेरेया
हूण मैं पाणीए जो जाणा
काहनां जी तू रोयां न.....
तू खेल वे कहनां मेरेया
बाड़ीया धोगड़ रहन्दे।
काहनां जी तू रोया न
गरीयाख़छुआरे कनै बदामां दे भोजन
काहनां जी में दिंगी तू रोया ना।"[4]

गीत का भावार्थ है कि मेरे कृष्ण रूपी पुत्र तुम रोना मत, मैं पानी लेने जा रही हूँ। अगर तुम नहीं रोओगे तो वापस आने पर मैं तुम्हें नारियल- छुहारे खाने को दूंगी। पहाड़ों का जीवन पहाड़ों के कठिन रास्तों की भांति संघर्षों से भरा होता है। यहाँ की स्त्रियाँ बचपन से ही अपने बच्चों को विपरीत परिस्थितियों से लड़ने के लिए प्रेरित करती रहती हैं। लोकगीत स्त्रियों के जीवन में उत्साह व स्फूर्ति ही नहीं भरते बल्कि उनके प्रेम, विरह, हंसी-खुशी, सुख-दुख जैसे भावों को भी व्यक्त करते हैं यह गीत उनके दैनिक जीवन के लिए आदर्श प्रस्तुत करने में भी समर्थ होते हैं। आदर्श प्रेमिका का प्रतिरूप प्रसिद्ध 'फूलमूं रांझू' गीत, जिसमें फूलमूं आदर्श प्रेमिका का प्रतिरूप स्थापित कर कहती है-

"तेरियां बचना ते बधी मैं वो खड़ी,
रांझू बो मैं खड़ी,
तू मत बचना ते फिरदा जानी,
गल्लां होई बीतियां, होई बीतियां मेरी जान रांझू,
गल्लां हुई बीतियां"[5]

पारिवारिक विरोध के कारण फुलमूं और रांझू का विवाह न हो पाया द्य रांझू का विवाह दूसरी जगह तय कर दिया गया। जब रांझू ने फूलमूं को कहा कि अब तुम सारी पुरानी बातें भूल जाओ, लेकिन फूलमूं उसे एक-दूसरे को दिए वचन की याद दिलाते हुए कहती है कि मैं तुम्हें दिए वचन से पीछे नहीं हट सकती और तुम भी मुझे दिए वचन को भूलना मत। फूलमूं अपने वचन पर अडिग रही। जब उसे पता चला कि रांझू की बारात निकल रही है, वह अपना जीवन समाप्त कर देती है। एक तरफ रांझू की बारात जा रही थी और दूसरी तरफ फूलमूं की अर्थी। रांझू को जैसे ही पता चला कि फूलमूं की मृत्यु हो गई है वह अपनी बारात रुकवा कर फूलमूं को अंतिम बार देखने की इच्छा व्यक्त करता है। फुलमूं की चिता देखते ही उसमें छलांग लगाकर अपना जीवन भी समाप्त कर देता है। यह गीत पितृसत्तात्मक व्यवस्था की क्रूरता को भी प्रकट करता है।

इसी प्रकार सती प्रथा के गीत, कूल्हों व बावड़ीयों के लिए दी गई स्त्रियों की बलियों से सम्बंधित गीत आज भी हिमाचली लोकगीतों में विद्यमान है। चंबा की रानी सुनयना ने राजा के कहने पर अपनी प्रजा के लिए अपना बलिदान दे दिया था ताकि बनाई गई कूल्ह में पानी चढ़ सके और चम्बा में पानी की किल्लत दूर हो जाए। उनके बलिदान की याद में जिला चम्बा में प्रतिवर्ष सूही मेला लगता है। रानी सुनयना के समाधि स्थल पर स्त्रिया ही पूजा करती हैं और सुकरात गीत गाती हैं। गीत इस प्रकार है-

"सुकरात कुड़ियों चिड़ियो,
सुकरात राजे रे बेहड़े हो.....
सुकरात कुड़ियों चिड़ियो,
सुकरात पणिहारा हो.....
सुकरात कुड़ियों चिड़ियो,
सुकरात चौंडिरे देहरे हो,
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो

सुकरात लछमी नरैणा हो.....
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो
सुकरात नगरा बाजारा हो
ठंडा पाणी किहां पीणां
तेरेन नैण हेरी -हेरी जीणा हो....."[5]

इस गीत में रानी सुनयना चम्बा की लड़कियों, महिलाओं तथा यहां की समस्त प्रजा को समाधि लेने से पूर्व आशीर्वाद देती हुई जा रही है। कह रही है कि तुम सदैव खुश रहो। चम्बा रियासत में खुशहाली रहे, राजमहल में शांति बनी रहे। भगवान लक्ष्मी-नारायण की कृपा सब पर बनी रहे। रानी के बलिदान पर प्रजा भी कहती है कि हम आपके बिना इस शीतल जल को कैसे पी पाएंगे। हम तो यही चाहते थे कि इस सुख-समृद्धि और खुशहाली को आप अपनी आंखों से देखती तो हमें अधिक प्रसन्नता होती। लोकगीतों में स्त्री केवल प्रजा के लिए अपना बलिदान देती हुई ही वर्णित नहीं हुई है बल्कि युद्ध में शहीद हुए पति के साथ सती होते हुए भी चित्रित है। चौंखी नामक स्त्री का पति युद्ध में शहीद हो गया। शहीद होने की खबर जब उसे पता चली तो उसने अपने भाई से कहा-

"हाटुई पड़ी टीरा गाए लुम्बेरू धूँई
कालिए रांडे बादलिए तू कौदिए न मूई
टुंजी-मारू टुंजी गाए हाटुआ री टीरा,
कदडु आछा माटिए पवारी ओ बजीरा।
नोटी आए हाजरू इने ढाला बि ना पाई,
लहुओ गे ओ माटिए मेरे पाणी दोहाई।
के लिए हाजरूआ खौबरा नोखी,
कोणी सारे नीरे अपी कोणी जिंदड़ी का मोखी।
तोंगी रीड़ी चौंखिए बिना जड़ियो रे बूटे,
केऊ दोषे माटिए मेरे कौरमा फूटे।
भाइया बोलू मदनुआ सूँचियो कै तेरे,
छूरो-कटारे आणी ओरू जौड़यो मेरे।'"

गीत के अनुसार सती चौंखी का पति युद्ध में शहीद हो गया। जैसे ही यह खबर चौंखी तक पहुंची, वह अपने कर्मों को दोष देकर रोती है। अपने भाई को कहती है-अब मुझे कटार दे दो, ताकि अब मैं भी अपना जीवन समाप्त कर लूं। चौंखी का भाई उसे अनेक तर्क, प्रलोभन देकर समझाता है ताकि वह सती होने से इनकार कर दे। लेकिन चौंखी अपने निर्णय पर अडिग रही और पति की चिता के साथ जलकर सती हो गई। सती गीत आज भी धार्मिक उत्सवों, मेलों में आदि के अवसरों पर गाए जाते हैं। हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में स्त्री जीवन के विविध रूप और भूमिकाएं वर्णित हैं। प्रेमिका के रूप में माता के रूप में वह एक आदर्श स्थापित करती है। पत्नी के रूप में कभी पति की चिता के साथ सती हो जाती है तो किसी गीत में नाराज पति को मनाते हुए कहती है-

"गल्लां लाई लो मेरे साजणा,
असां केहड़े रोज मिलणा,
गल्लां लाई लो मेरे साजणा।
तेरी-तेरी खातर पाणी भराया,
पाणी पी लो मेरे साजणा,

असां केहड़े रोज मिलणा,
गल्लां लाई लो मेरे साजणा।"[8]

पति वर्षों बाद घर आया है लेकिन नाराज- सा बैठा है। पत्नी उसे मनाते हुए कह रही है कि तुम तो अधिकतर काम के सिलसिले में घर से दूर रहते हो। घर आना तो कम ही होता है। इतने समय बाद मिले हो फिर भी नाराज बैठे हो, कुछ तो बात कर लो। हम कभी बैठकर बात भी नहीं कर पाते। आज आप आए हैं तो खूब बातें कर लें। मैंने तुम्हारे लिए ताजा पानी भरा है। तुम पानी तो पी लो, इसी बहाने बात कर लो। वरना ऐसा रोज-रोज कहां संभव है। स्त्रियों की विशेषता है कि वे किसी भी स्थिति में उम्मीद नहीं छोड़ती। अपने संबंधों में सुधार करने की कोशिश करती हैं। वही कोशिश इस गीत में हुई है। लोक जीवन में पुत्री की कल्पना स्नेह और कोमल भाव से भरी होती है। बेटियां घर की रौनक होती हैं। उनके विदा होने के बाद पूरा घर सूना हो जाता है। माता-पिता से बिछड़ने के दर्द और समाज की इस रीति पर अपना विरोध प्रकट करती हुई पुत्री कहती है-

"क्यों ब्याही थी परदेस, है लक्खी बाबल मेरे।
क्यों ब्याही थी परदेस है लक्खी बाबल मेरे।
हम तो जी बाबल चम्बे दी चिड़िया
जिधर डावे उड़ जायें, है लक्खी बाबल मेरे।"[9]

इस गीत में बेटी अपने पिता से शिकायत करते हुए कह रही है कि मेरे बाबुल आपने मुझे इतनी दूर क्यों ब्याह दिया। हम लड़कियां तो चम्बा शहर की चिड़ियों जैसी होती हैं जिस ओर उड़ाया जाए, उस ओर उड़ जाएं। इसीलिए आपने भी इस चिड़िया रूपी बेटी को परदेस ब्याह दिया। बेटियां ससुराल में रहकर भी मायके की चिंता करती हैं। हमेशा यही चाहती हैं कि वे खुशहाल रहे। उनके मनोभावों को व्यक्त करता उक्त गीत-

"बांके-बांके महल चाहियें,
सोहणे-सोहणे महल चाहियें।
देखणे को मोरियां।
जपणे को राम नाम चाहियें,
मान चित लांदियां।
अम्मा चाहिये बापू चाहिये,
भाईयां दीआं जोड़ियां।
बांके-बांके खेत चाहियें,
बैलां दियां जोड़ियां
जपणे को राम नाम चाहिये, मन चित लांदीआं।"[10]

इस गीत में बेटी अपने मायके की खुशहाली की कामना कर रही है। वह अपने भाइयों को सदैव फलता-फूलता देखना चाहती है। वह चाह रही है कि उसके माता-पिता और भाइयों के पास सुंदर महल के समान घर हो। उसमें बड़ी-बड़ी खिड़कियां हो ताकि बाहर भी झांका जा सके। वे सदैव भगवान के प्रति श्रद्धा भाव रखें तथा घर में राम नाम का जाप होता रहे। उस घर में मेरे माता-पिता तथा दोनों भाई खुशी से रहे। वे सब सलामत रहे, उनके पास सुंदर एवं उपजाऊ खेत हो। दो बैलों की जोड़ी हो जिससे उन्हें खेती करने में आसानी हो। उनका खुशहाल परिवार बना रहे और वे सब भगवान श्री राम का नाम जपते रहें, उनका भजन करते रहें। हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में स्त्री के सास रूप में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूप वर्णित हैं। वह दुर्माना सास के रूप में भी वर्णित है तथा स्नेहमयी मां के रूप में भी। निम्न गीत में नववधु के गृह प्रवेश पर सास की प्रसन्नता देखते ही बनती है, यथा-

"रण रण-कोयले शब्द सुहावा,
आओ मेरी बहुए तू आई ता,

मेरा आंगन सुहावा।
आओ मेरी बहुए,
तू आई ता मेरा अंदर सुहावा"[11]

उपरोक्त गीत में सास नववधू को कहती है कि तुम्हारे आने की खुशी तो यह प्रकृति और पक्षी भी व्यक्त कर रहे हैं। कोयल कूक-कूक कर तुम्हारा स्वागत कर रही है। तुम्हारे आने से मेरे घर में शुभता आ गई है। तुम्हारे शुभ कदम पढ़ते ही यह आंगन भी सुहावना हो गया है। ऐसा लग रहा है जैसे घर का कोना-कोना जगमगा रहा हो।

लोकगीतों में वर्णित स्त्री जीवन के विविध रूपों को देख कर कहा जा सकता है कि हिमाचली लोक गीतों में स्त्री के प्रेम और आदर्श का सहज रूप प्रतिष्ठित होता है। वह प्रेयसी, पत्नी के रूप में ही नहीं बल्कि बहू, मां, सास के रूप में भी एक आदर्श स्थापित करती है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि स्त्री अपने जीवन के संघर्षों, विरोधों के बीच भी परिवार और समाज में संतुलन बनाए रखती है।

सन्दर्भ

1. सं० सुरेश गौतम, लोकगीत की सत्ता, पृ० 151
2. सं० हरिकृष्ण मिटू, हिमाचल के लोक - गीत, पृ० 8
3. तारा नेगी, लोक-गीत (हिमाचली), पृ०32
4. सं० के०जे०बी०वी० सुब्रमण्यम, पहाड़ी लोक-साहित्य, पृ० 30
5. सं० एम०आर०ठाकुर, हिमाचली लोकगीत (भाग-1), पृ० 63
6. डी०एस०देवल, चम्बा के प्रसिद्ध लोकगीत, पृ०73
7. सं० लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत (पत्रिका), जनवरी 1966, पृ० 245
8. मंजु तँवर, हिमाचली के लोकगीत, पृ० 53
9. सं० वंशी राम शर्मा, सोमसी (पत्रिका), जनवरी1978, पृ० 1
10. दुनीचंद शर्मा, पहाड़ी लोकगीत, पृ० 35
11. सं० कर्म सिंह, सोमसी (पत्रिका), जनवरी - जून 2019, पृ०15

भारतीय ज्ञान परम्परा का वैश्विक प्रभाव

डॉ० आकाँक्षा दुबे

भोपाल (म०प्र०)

वटविटपसमीपे भूमिभागे निषण्णं सकलमुनि जनानां ज्ञानदातारमारात्।
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं। जननमरणदु:खच्छेद्दक्षं नमामि।।

– *श्रीदक्षिणामूर्ति स्तोत्रम्*

अजस्र ज्ञान धाराओं से आप्लावित परम पवित्र तप:स्थली भारत भूमि सदा से योगी-यतियों, धर्माचार्यों, महापुरुषों की आत्म चेतनाओं का आगार रही है। उसकी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उर्वरता में व्याप्त संस्कृति, सभ्यता, आचरण, आदर्श, शुचिता, नैतिकता, विनम्रता आदि गुण सदैव ही महाविभूतियों की उत्पत्ति का आधार रहे हैं। अपनी सांस्कृतिक, साहित्यिक, ज्ञानमई विशिष्टताओं से आलोकित भारतीय ज्ञान परंपराओं ने ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक चारों ओर से न केवल भारतीय जनमानस को वरन् संपूर्ण विश्व सभ्यता को प्रभावित किया है। भारतीय ज्ञान परंपरायें सनातन धर्म के वैशिष्ट्य से परिपूर्ण होकर इस विश्व को निरंतर परिपूर्णता का आभास कराती रही हैं। उसका प्रभाव विश्व को प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त किए हुए है। भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग प्राचीन जीवन मूल्य, पंच महायज्ञ, षोडश संस्कार, तीन ऋण, भारतीय आयुर्वेद पद्धतियां, भारतीय शिक्षा पद्धति, वैदिकज्ञान, उपनिषदीय गूढ़ विद्याएं, पुराणों में निहित व्यवहारिक ज्ञान, कौशल की अथाह सामग्रियां, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को सम्यक आकार देने वाली अष्टांग योग पद्धतियां, प्रकृति के प्रति भारतीय साहित्य में निहित अद्‌भुत पोषण, स्वास्थ्य व संरक्षण संचेतना, दर्शन शास्त्रों में व्याप्त आध्यात्मिक ऊर्जायें विभिन्न शक्तियों रूप धारण कर विश्व के कण कण में भारतीय ज्ञान परंपराओं की सुवास बनकर अभिव्यक्त होती है। जो पाश्चात्य संस्कृतियों, ज्ञान, अनुसंधान, कर्मकांड सभी का आधार होकर सौंदर्य तेज के रूप में विश्व को आलोकित कर रही है।

शब्द कुंजी :- परंपरायें, ज्ञान, कौशल, भारतीय, वैश्विक प्रभाव।

मूल आलेख :- परंपरा से तात्पर्य बिना व्यवधान के एक श्रृंखला रूप में अग्रसारित होते रहने से है अर्थात परंपरा में किसी विषय या उपविषय का ज्ञान बिना किसी परिवर्तन के एक दूसरे को हस्तांतरित होता चला जाता है। परंपरा एक मान्यता के रूप में भी संचालित होती चली जाती हैं। जो जीवन को नवीन आलोक देने वाली होती हैं, नये मूल्यों से जोड़ने वाली होती हैं, नये ज्ञान का प्रतीक होती हैं। वो मान्यताएँ धीरे धीरे परंपराओं के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं और जन शक्ति द्वारा उनका पालन प्रारंभ हो जाता है। भारतीय ज्ञान परंपराओं की बात करें तो ये भारत की मिट्टी में बसी हुई हैं जो उसके वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, साहित्य ज्ञान के रूप में निरंतर मानव मनीषा का विषय होकर अग्रसारित होती चली जा रही हैं। भारतवर्ष की सबसे सुंदर सुदृढ़ और शक्तिशाली परंपरा शिक्षण परंपरा है जो प्राचीन काल से ज्ञान का मूल स्रोत रही है। जिसने विभिन्न संस्कृतियों, सभ्यताओं को अपनी देववाणी संस्कृत के माध्यम से परिष्कृत और परिमार्जित किया है। जन भाषा हिन्दी ने अपनी सरलता, सरसता, सुगमता तथा सशक्तता से भारतीय ज्ञान परंपराओं को वैश्विक धरातल पर व्याप्त कर दिया।

गुरु शिष्य परंपरा और उसका वैश्विक प्रभाव :- भारतीय ज्ञान परंपराओं में गुरु शिष्य परंपरा का अपना अनूठा ही स्थान है जो युगों युगों से भारत को ही नहीं पूरे विश्व को प्रकाशित करती रही है। यदि गूढ़ चिंतन किया जाए तो शिक्षण परंपरा वह परंपरा है जो प्रत्येक क्षेत्र, विषय और पदार्थ के ज्ञान से जोड़कर विश्व के कण कण को आलोकित कर रही है। गुरु शिष्य प्रणाली के रूप में ऋषि मुनियों ने खुले आसमान के नीचे घने वृक्षों की छाया में प्राकृतिक वातावरण के मध्य अपने शिष्यों को आध्यात्मिक अनुभूतियों के दर्शन करायें हैं। यही नहीं उन्होंने समस्त विद्याओं का दान कर अपने शिष्यों को ज्ञान का आलोक प्रदान किया है और उनके समस्त संशयों को समाप्त किया है जिसका उदाहरण वृहदस्त्रोत रत्नाकर में इस प्रकार दिया गया है -

चित्र वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौन व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः।।

भारतीयों की यह ज्ञान परंपरा विश्व में अपने चरण पसार चुकी है। आज वैश्विक संस्कृति भारतीय संस्कृति की सराहना करते हुए प्रकृति की ओर लौटने की बात करती है। विभिन्न दार्शिनिकों ने प्रकृति के मध्य शान्त वातावरण में विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास को महत्वपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण बताया है। बड़े बड़े पाश्चात्य शिक्षा दार्शनिक भारतीयों की इस प्रणाली का वैज्ञानिक रूप से समर्थन करते हैं। उनका मानना है प्राकृतिक वातावरण पूर्ण स्वच्छ और स्वस्थ होता ह। उसका निर्मल शांत स्वरूप विद्यार्थी को न केवल आत्मिक, मानसिक व बौद्धिक रूप से वरन् शारीरिक रूप से भी स्वस्थ रखता है और स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। अतः आज विश्व भारत की इस परंपरा का हृदय से स्वागत करता है। और कहता है कि भारतीयों की परंपराएं वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण प्रासंगिक हैं।

वैदिक परंपराओं का वैश्विक प्रभाव :- भारतीय वैदिक परंपराएं अत्यधिक समुज्ज्वल और प्राकृतिक हैं। बालक के मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक विकास के लिए उसमें बाल्यकाल से ही जीवनमूल्यों का बीजारोपण किया जाता था। अतः गर्भ में प्रवेश करने से पूर्व से जन्म के अंत तक भारतीय संस्कृति में षोडश संस्कारों को महत्त्व दिया गया है। जिसमें गर्भाधान पुंसवन, सीमन्तोन्यन संस्कार बालक को तेज, पराक्रम, वर्चस्व तथा अप्रतिम मेधा के संवर्धन की मंगल कामना के कारक थे। जन्म के पश्चात जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, निष्क्रमण आदि विविध संस्कार उसको ओजस्विता प्रदान करने में अग्रणी थे। शिक्षा प्राप्ति हेतु उपनयन संस्कार उसमें मोह त्याग विरक्ति आदि के द्वारा परिशुद्धि की ओर ले जाने वाले थे। संस्कृति सभ्यता और आचरण आदि के लिए षोडश संस्कारों की अगली कड़ियाँ भारतीय समाज का विश्वास थीं। वैदिक परंपराओं में समाया हुआ नैसर्गिक ज्ञान सात्विक आहार विहार, तपोमयी चर्या, अगाध श्रद्धा का प्रतीक है।

आज संपूर्ण विश्व वैदिक परंपराओं में समाई हुई इस आचरण शक्ति को अपना रहा है। इन परंपराओं का वैश्विक धरातल पर गहरा प्रभाव पड़ा है। कोरोना जैसी अनेकों महामारियों से बचने के लिए वैदिक चर्या को अपनाया गया। पूरे विश्व में योगक्रियाओं के द्वारा अपने शरीर को शक्ति का पुंज बनाया गया। तपोमई जीवन शैली ने मानव को तनाव मुक्त वातावरण प्रदान किया। सात्विक आहार विहार ने उसे सुख पूर्ण जीवन प्रदान किया। आज स्वास्थ्य संजीवनी बनकर ऋषि प्रणाली पूरे विश्व के द्वारा सराही जा रही है। संपूर्ण संसार वैदिक ऋषि मुनियों के द्वारा बताई गई जीवन शैलियों को अपना रहा है। यह भारतीय ज्ञान परंपराओं का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

चतुर्दश विद्याओं और वैदिक शिक्षाओं का वैश्विक प्रभाव :- संपूर्ण भाषा व ज्ञान तत्वों की जननी हमारी गीवार्ण भारती संस्कृत वह दिव्य कल्पवृक्ष है जिसने 64 कलाओं और 14 विद्याओं को अपने अंदर समाया हुआ है। सात द्वीपों वाली यह पृथ्वी माता चार वेद ऋतु, यजु, साम, और अथर्व, छह वेदांगों शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष सहित धर्मशास्त्र, आन्वीक्षकी, मीमांसा और स्मृतियाँ मिलकर 14 विद्याओं से मण्डित तथा 64 कलाओं से सुशोभित है। जिससे निसृत परंपरायें पूरे विश्व को ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, कला, कौशल और अनुसंधान से जोड़ रही हैं।

वैदिक शिक्षाएं पूरे विश्व को अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा प्रदान कर उसे सत्य, कर्म, ज्ञान और पुरुषार्थ से जोड़ने वाली हैं। "माता भूमि पुत्रो अहम् पृथिव्याः" मनुष्य को प्रकृति के प्रति संरक्षण संचेतना प्रदान करती है तो "वाचा वादामी मधुमद्" की शिक्षा मानवता का पाठ पढ़ाती हैं। "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत्" यदि ब्रह्मचर्य रूपी तपोबल से मृत्यु को जीतने का मंत्र प्रदान करती है तो "कृतम् में दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः" संपूर्ण मानव जाति को पुरुषार्थ की ओर लेकर जाती है।

महर्षि याज्ञवल्क्य भी 14 विद्याओं, 64 कलाओं और वैदिक शिक्षाओं से परिपूर्ण व्यक्ति को महापुरुषत्व की संज्ञा देते हैं वह कहते हैं कि–

"पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता:
वेदा: स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।
उपवेदसहिता ह्योता विद्या ह्यष्टादशस्मृता"

वेदों से लेकर इतिहास पुराण तक की शिक्षाएं एक व्यक्ति को महामानव बनाने की शक्ति रखती हैं। जिन्हें गुरु शिष्य प्रणाली के द्वारा अपनी पीढ़ियों को हस्तांतरित किया गया है–

"श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चौवावधार्यताम् ।
आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।
मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि य: पश्यति स पण्डित:"

इस प्रकार वैदिक शिक्षा परंपरा का संपूर्ण विश्व पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। आज संपूर्ण विश्व लालच के लिए नहीं वरन् निरंतर अपने कर्म के बल पर आगे बढ़ रहा है। वैदिक शिक्षाओं को आधार बनाकर एक साथ मिलकर चल रहा है। जिसका उदाहरण वैश्वीकरण के रूप में सामने आता है। विश्वपटल पर प्रत्येक क्षेत्र का व्यक्ति अपना, अपने राष्ट्र का विकास कर रहा है और वसुधैव कुटुंबकम की परंपरा को हस्तांतरित कर रहा है।

भारतीय दर्शन परंपरा एवं वैश्विक प्रभाव :- दर्शन मूलत: आध्यात्मिक सत्य का साक्षात्कार कराने वाली वह सीढ़ी है जिस पर आरुढ़ होकर मनुष्य अपने जीवन के प्रमुख एवं अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। भारतीय ज्ञान परंपराओं में निहित रहस्यमयी ब्रह्मज्ञान का अध्ययन न केवल भारतीय दार्शनिकों ने किया है वरन् पाश्चात्य चिंतकों ने भी इस क्षेत्र में अनेक अनुसंधान किए और अंत में भारतीय ब्रह्मज्ञान की भूरी भूरी सराहना की। विभिन्न दार्शनिक भारतीय दर्शन ज्ञान धारा को अपने हृदय से पान करते हुए अपने मस्तिष्क के द्वारा अनुभूत करते हैं। और उसकी ज्ञान की शीतलता से अपने अपने राष्ट्रों को सुशोभित करते हैं। भारतीय दार्शनिक पृष्ठभूमि नव रूपों में ज्योतित होती है जो अपने प्रत्येक रूप में आनंद, ज्ञान और ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाली है। जिसको पाश्चात्य दार्शिनिकों के द्वारा वैश्विक स्तर पर सराहा गया है।

लोक साहित्य परंपरा और वैश्विक छवि

लोगों द्वारा गाया गया लोक प्रचलित साहित्य लोक साहित्य के रूप में जाना जाता है। भारतीय लोक साहित्य परंपरा स्वयं में अति विशाल परंपरा है। जिसमें भारत के विभिन्न स्थलों पर, विभिन्न संस्कृतियों, वेशभूषाओं, कलाओं, मानवीय अनुभूतियों से युक्त भावनाएँ निहित हैं। जो अपने स्थल की विशिष्टताओं को न केवल प्रदर्शित करती हैं वरन सरल सरस हृदय वाले मनुष्यों के गुणों का भी परिचय कराती हैं। ये लोक साहित्य आज विश्व में अपने कदम बड़ी तेजी के साथ पसार रहा है। जन जन के द्वारा लोक साहित्य हृदयंगम किया जा रहा है क्योंकि लोकसाहित्य सत्य, यथार्थ और आनंद का सम्मिश्रण है। वैश्विक पटल पर लोक साहित्य की छाप अतते दिन गहरी है जो निरंतर बढ़ती ही जा रही है विश्व स्तर पर पाश्चात्य लेखकों ने इस लोकसाहित्य को अत्यधिक महत्त्व देना प्रारंभ कर दिया है। आज विश्व के कोने कोने से लोक साहित्य उनकी मांग बढ़ने लगी है और विभिन्न पाश्चात्य साहित्यकार अपने क्षेत्रीय भाषा, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता को महत्त्व देते हुए मानव मात्र की भावनाओं को सम्मान दे रहे हैं। अपनी आवाज प्रदान कर रहे हैं और अपने समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की कुरीतियों से लड़ रहे हैं। जिसमें महिला सशक्तिकरण सर्व सशक्त उदाहरण है।

वैश्विक रत्न भारतीय ज्ञान परंपरा :- भारतीय ज्ञान परंपरा वह दिव्य मणि है जिसके आलोक में गूढ़ से गूढ़तर रहस्यों के उद्घाटन हेतु मानव मेधा की तरंगें एक सकारात्मक उर्जा को प्राप्त करने में सक्षम हो जाती हैं। यह वह परंपरा है जहाँ परमात्मा तत्व के रहस्यों का वर्णन है, जहां जगत की नश्वरता में अक्षुण आत्मावलोकन निहित है। वस्तु को अवस्तु में परिवर्तित करने की क्षमता विद्यमान है। सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व कया था? इस प्रकार की समस्त जिज्ञासाओं का शमन है। इन परंपराओं का अग्र, मध्य और अंत स्वयं साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि हैं। श्रीहरि स्वयं कहते हैं–

"अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सो ऽस्म्यहम्"

अर्थात भारतीय चिंतन की धारायें अनंत हैं एवं अपरिमित हैं। यह ज्ञान परंपरा मात्र आध्यात्मिक ऊर्जा से सबल नहीं वरन सामाजिक, सांस्कृतिक, वैश्विक विविध रूपों प्रौढ़ हैं। भारतीय परंपराएं अतिथि सत्कार, अभिवादन, यज्ञकर्म, सत्याचरण, नैतिक मूल्य, मानव कल्याण, जीव कल्याण, वसुधैव कुटंबकम, परोपकार, प्रेम, दया, सौहार्द, ममता आदि विभिन्न रंगों से सजी हुई हैं। जो भारत की विशेषता अनेकता में एकता को द्योतित करती हैं। वर्तमान में यह समस्त परंपरायें विश्व के कण कण में व्याप्त होकर जन जन के रोम रोम में बसी हुई हैं। किसी भी देश के संविधान के मानक हो, अथवा कानून की नियमावलियां सभी में भारतीय ज्ञान परंपराओं की ये शिक्षाएं नहीं थे समस्त शिक्षा का आधार भारतीय ज्ञान परंपरायें हैं।

निष्कर्ष :-

अंत में कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपराओं का विश्व पर अमिट प्रभाव है। वैश्विक धरातल पर चाहे राजनीति हो या सामाजिकता, संस्कृति हो अथवा सभ्यता, ज्ञान हो अथवा कौशल, योग हो अथवा व्यवहार, भाषा हो या विज्ञान, खोज हो अथवा अनुसंधान, तर्क हो या विश्लेषण सभी क्षेत्रों में चारों ओर भारतीय ज्ञान परंपरायें अपना प्रभाव अभिव्यक्त कर रही हैं। इन्हीं ज्ञान परंपराओं से पाश्चात्य संस्कृति कौटिल्य की राजनीति की शिक्षा लेती है तो महर्षि पतंजलि की योग शिक्षाओं से अपने आप को स्वास्थ्य की ओर लेकर जाती है। चरक की संहिता अनुसंधान क्षेत्र को सफल बनाती है तो सामवेद की गान विद्यायें उसको मधुर संगीत से जोड़ती हैं। निष्कर्ष रूप से जीवन के प्रारंभ से मृत्यु के अंत तक जो कुछ भी है वह भारतीय शिक्षाओं से जुड़ा हुआ है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।"
"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. अथर्ववेद
4. सामवेद
5. वैदिक वांग्मय का इतिहास
6. वैदिक साहित्य और संस्कृति
7. 108 उपनिषद
8. काव्य मीमांसा
9. भारतीय संस्कृति के मानदंड

जन और जन आंदोलनों के कवि के रूप में

डॉ० रामाशंकर कुशवाहा

सहायक प्राध्यापक, दयाल सिंह कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ० अमित कुमार सिंह कुशवाहा

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, पंचशील डिग्री कॉलेज, मीरजापुर (उ०प्र०)

नागार्जुन अपने को 'जनकवि' कहते थे। उनका जीवन आर्थिक अभाव में बीता था। अपनी कविता में लिखते हैं- 'स्वगत शोक में बीज निहित है विश्व व्यथा के...।'[1] खुद के अभाव से अनुभव लेकर नागार्जुन जनता के अभाव की सच्चाई को बहुत गहराई से महसूस किए और उसी अनुभव को अपनी कविता में व्यक्त करने का संकल्प लिए। यह नियति नहीं संघर्ष की खुद से चुनी हुई राह थी। अपनी लेखनी का वह व्यापार नहीं किए, बल्कि अधिकारों की लड़ाई लड़ने वालों के साथ हो लिए। वह लिखते हैं कि- 'तुच्छ से अति तुच्छ जन की जीवनी पर हम लिखा करते/-कहानी, काव्य, रूपक गीत/क्योंकि हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद है मालूम/कि हम पर सीधे पड़ी है गरीबी की मार।'[2] वह अन्यत्र लिखते हैं- 'पैदा हुआ था मैं/श्री हीन अपठित किसी कृषक कुल में/आ रहा हूं पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से।'[3] अपने संघर्षों के कारण उनको जो सीख मिली थी, उसका सम्मान करते हुए उन्होंने अपनी कविता को जनता के प्रति जवाबदेह माना।-'जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ/जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।'[4]

नागार्जुन अपने लेखन में निष्कर्ष पर पहुंचे हुए थे। उनका लेखकीय उद्देश्य स्पष्ट था। उनकी इस स्पष्टता को लेकर कहा जाता है कि- 'वह अपनी कविता या काव्याभिव्यक्ति, काव्यभाषा और कविता की बनावट में किसी तरह की दुविधा या दुराव-छिपाव की गुंजाइश नहीं छोड़ते।'[5] जन-प्रतिनिधित्व के स्तर पर 'नागार्जुन नजीर और भारतेन्दु के मिलेजुले उत्तराधिकार को कविता में संभव बनाते हैं। इसमें सहज संप्रेषणीयता भी है और अद्‌भुत नाटकीयता भी। उनकी नाटकीयता में व्यंग्य है, हँसी है, गुस्सा है, चुहल है लेकिन सारा कुछ एक बेहद सजग और जागृत राजनीतिक चेतना के साथ। उनकी हँसी महज हँसी नहीं है, वह बेहद साहस भरी हँसी है जो अभिजात को छेदती है, अन्यायी का मजाक उड़ाती है और अन्यायी पर हँसने और विरोध करने का साहस देती है। कई बार गुस्सा उनके व्यंग्य की जगह ले लेता है, तब नागार्जुन बहुत मुखर हो जाते हैं।''[6]

नागार्जुन की रचना संवेदना के केन्द्र में गाँव, उसकी धरती, उसके लोग हैं। किसान, मजदूर आदि सभी उनकी रचना में चरित्र हैं। मिथिला अंचल की खुशबू, उसके किसान, खेत-खलिहान, पोखर, तालमखान सभी उनकी रचना में उपस्थित हैं। नागार्जुन अपनी कविताई के बारे में खुद स्वीकार करते हैं कि- 'मैं उस सारी आबादी को अपनी कविता की मार्फत एकत्र करना और पुकारना चाहता हूँ जो ठगी जा रही है और अधिकार वंचित है। मेरे लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मेरी कविता का चेहरा-मोहरा सुडौल और सुरम्य है या नहीं। उसमें चिकनापन या शालीनता नहीं है, आक्रामकता है। मैं उस मध्यवर्ग में नहीं घुसना चाहता, जहाँ कविता और साहित्य एक स्वायत्त लोक बन चुके हैं। मेरी कविता तो गाँव से आयी हुई वह चिट्ठी है, जिसे सारे परदेशी मजदूर अपने ठेलों, रिक्शों पर बैठ, किसी से बंचवा कर एक साथ सुन रहे होते हैं।'[7] उनकी यह स्वीकारोक्ति सामाजिक निष्ठा का परिचय देती है। दुख झेलने वाली जनता को केंद्र में रखकर लिखते हैं- 'समझ गया हूँ/जीवन में इस धरा धाम का क्या महत्त्व है/कैसे कहलाता कोई धरती का बेटा/आसमान में सतरंगी बादल पर चढ़कर/कैसे जनकवि धान रोपता.....।'[8]

जनता को अपनी रचना का केन्द्र मानने वालों में और भी लोग है। जन कवि पाब्लो नेरूदा ने यह स्वीकार किया है कि 'जनता मेरे जीवन का सबसे बड़ा पाठ रही है। जब भी मैं इसके बीच आ जाता हूँ, तो बिल्कुल बदला हुआ महसूस करता हूँ। मुझे लगता है कि मैं इस अनिवार्य बहुमत का एक हिस्सा, मानवता के इस महान वृक्ष का एक पत्ता हूँ।'[9] जन कवि के कविता के केंद्र में जनता से जुड़े मुद्दे प्राथमिकता में रहते हैं। जमीनी समस्याओं पर लिखने वाले जीवन के विभिन्न पहलुओं को बहुत नजदीक से जानते हैं। इसलिए उनके लेखन में प्रामाणिकता रहती है।

नागार्जुन का दौर एक तरफ आजादी के समय दिखाए गए सपने टूटने का दौर था। इसलिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, जातिवादी समस्या उनकी रचना में मुखरित हुई है। जीवंत मुद्दों से जुड़े होने के कारण उनकी 'कविता नुक्कड़ नाटक के समानांतर एक भूमिका भी अदा करती है। वहाँ उनका अंदाज नजीर की तरह और विवेक भारतेन्दु की तरह होता है। उनकी राजनीतिक कविताएँ कई बार विवाद का विषय रही हैं। यह विवाद उनकी मूल वर्गीय राजनीतिक चेतना को लेकर उतना नहीं है, जितना वह उनकी व्यावहारिक राजनीति की समझ और उस पर की गई टिप्पणियों को लेकर है। किसी भी रचनाकार की राजनीतिक दृष्टि उसकी पूरी रचना प्रक्रिया और रचना कौशल में अंतर्गुम्फित होती है। इसलिए वह उसके शिल्प, उसकी भाषा और उसके काव्य मुहावरे में भी प्रतिबिंबित होते है।'[10] विषय की विविधता उनकी शैली में भी परिलक्षित होती है।

सामयिक विषयों को प्रस्तुत करना बहुत दुरुह कार्य है। इस तरह के विषय पर लिखने के अपने साहित्यिक और व्यावहारिक खतरे भी हैं। केदारनाथ सिंह ने इन खतरों की तरफ संकेत किया है- 'तात्कालिक विषय पर कविता लिखना एक खतरनाक काम है। यह खतरा केवल सामाजिक या राजनीतिक स्तर पर ही नहीं होता, बल्कि स्वयं कविता के स्तर पर भी होता है। यह खतरा वहाँ हमेशा मौजूद रहता है कि कविता, कविता रह ही न जाए।'[11] रचना का कोई भी स्वरुप उसके शिल्प से पहचाना जाता है। उनका इशारा इस तरफ है कि सामयिक विषय रचना के अस्तित्व को संकट में डाल सकते हैं। बावजूद इसके जनता के प्रति अपने को उत्तरदायी मानने वाले नागार्जुन अभिव्यक्ति के इस प्रकार के खतरे उठाते हैं। केदारनाथ सिंह के अनुसार- 'पर नागार्जुन एक रचनाकार की पूरी जिम्मेदारी के साथ इस खतरे का सामना करते हैं और इस दृष्टि से देखें तो उनमें खतरनाक ढंग से कवि होने के अद्‌भुत साहस हैं।'[12] नागार्जुन ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि 'मैं चाहता हूँ कि मैं किसी औघड़ कवि सा जिऊँ और दुर्वासा की तरह जितना कड़वा सच बोल सकूँ, बोलूँ। मेरे शब्द अभी-अभी भठ्ठी से निकाले गए अंगारे की तरह धधकते हैं। वे जब तक रहेंगे, इसी तरह रहेंगे। मेरा यह ताप ही मेरी पक्षधरता है और मेरी विचारधारा है।'[13] 'मध्य रात्रि में' शीर्षक लंबी कविता के अंत में उन्होंने लिखा है- 'बेईमान नहीं हूँ/मैं सबके साथ इंसाफ करता हूँ/मैं प्यार भी बाँटता हूँ/मैं नफरत की भट्ठी भी झोंकता हूँ।'[14] यह बेबाकी अन्यत्र दुर्लभ है।

नागार्जुन जनविरोधी, सत्ता के लालची, धूर्त और घृणा के पात्र लोगों का भंडाफोड़ अपनी रचनाओं के माध्यम से करते रहे हैं। जैसा व्यंग्य और उपहास उनकी रचनाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी कुछ कविताओं के शीर्षक-'खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के', 'पूँछ उठाकर नाच रहे हैं लोकसभाई मोर', 'तिकड़म के ताऊ', 'सर्वोदय के नटवर लाल', 'इन्दू जी इन्दू जी क्या हुआ आप को', 'तीनों बंदर बापू के', 'सत्य को लकवा मार गया है', 'अब तो बंद करो हे देवि यह चुनाव का प्रहसन', 'बर्बरता का ढाल ठाकरे' आदि, बताते हैं कि उनकी लेखनी का मूल रूप क्या था।

आजादी के बाद देश में जिस प्रकार का कुशासन और दुर्व्यवस्था का प्रचार हुआ? जिस तरह से सत्ता पर आसीन लोग देश को बर्गला रहे थे? उसका जीवंत चित्र नागार्जुन ने अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। कृषि पर लिखी गई उनकी अपनी एक कविता-'कागज पर खेती होती है, कलम पर हरफार/छोड़ रहे हैं गाँव-गाँव खेत मजदूरों के परिवार/कृषि विकास की खबरें प्रतिदिन छाप रहे अखबार/असेंबली की छत पर फसलें उगा रही सरकार।'[15] नागार्जुन एक उद्देश्य लेकर चलते हैं। इसलिए दुर्व्यवस्था की शिकार जनता के साथ खड़े दिखते हैं- 'मंत्री लेकिन सुना करेंगे अपनी जय-जयकार/सौ का खाना खाएँगे, पर लेंगे नहीं डकार/मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार/लिखवा लेगा घर वालों से- 'वह तो था बीमार'।'[16]

नागार्जुन मानते थे कि बिना प्रकृति के जीवन में कुछ नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं के साथ कवि और किसान दोनों को प्रकृति से मिलने वाली असीम उर्जा को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। एक कविता में बादल को धन्यवाद देते हुए उन्होंने लिखा है कि- 'मेघ, तुम्हारी दया कि रातों रात हो गयी/नई-पुरानी दूब/जीवन दाता अपने को तुम/खूब उड़ेलो खूब।'[17] नागार्जुन की प्राकृतिक समझ को विश्लेषित करते हुए प्रसिद्ध आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- 'सच पूछिए

तो...मनुष्य प्रकृति को बहुत प्यार करता है। एक तरफ जंगल काटता है, शेर मारता है, दूसरी तरफ पेड़ लगाता है। पर्यावरण सुरक्षा का कारण सिर्फ उपयोगिता नहीं। पेड़, पौधे, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी, नदी, तालाब, पर्वत, समुद्र मनुष्य को अनायास सुंदर लगते हैं। वस्तुतः मनुष्य भी प्रकृति का ही अंग है। लेकिन मनुष्य विद्या, बुद्धि से भाषा-व्यवहार, सामाजिक चेतना आदि के कारण प्रकृति की अन्य वस्तुओं और प्राणियों को पीछे छोड़कर बहुत आगे चला आया है। वह पीछे छूटी हुई चिर-सहचरी प्रकृति को इतिहास के समकालीन में नहीं ला सकता तो भावात्मक के क्षेत्र में लाता है-यही प्रकृति-सौन्दर्य है। नागार्जुन ने प्रकृति पर जो कविताएँ लिखी हैं वे इसका प्रमाण हैं...।'[18] यही कारण है कि नागार्जुन की प्रकृति संबंधित कविताएँ इतनी सारगर्भित हैं।

नागार्जुन अपने समय के ऐसे साहित्यकार थे, जो गलत होने पर सत्ता से भी दो-दो हाथ करने को तैयार हो जाते थे। इसीलिए उनको जनकवि के साथ जन-आंदोलनों का कवि भी कहा जाता है। विद्रोह केवल स्वभाव में नहीं था। लेखन और व्यवहार में भी दिखाई देता है। कविता लिखने के कारण आपातकाल में उनको जेल जाना पड़ा था। किसान आंदोलन, नक्सली आंदोलन, तेलंगाना आंदोलन हो या जयप्रकाश नारायण का आंदोलन, सभी आंदोलनों में नागार्जुन और उनकी कविता अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए दोनों अगली कतार में मिलते हैं। उन्होंने अपने जीवन में किसी भय को स्थान नहीं दिया। नागार्जुन की कविता में बगावत का भाव कूट-कूट कर भरा है। उनमें सिर्फ रचनात्मक साहस ही नहीं था, राजनीतिक दूरदर्शिता भी थी। 1970 का दशक बालठाकरे के उभार का समय था। उनकी संकुचित, साम्प्रदायिक और जन-विरोधी सोच को नागार्जुन भाँप लिये थे और उस पर कविता लिखे-'बर्बरता की ढाल ठाकरे' और 'महाराष्ट्र का सबसे भारी रोग'। पहली कविता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं- 'बाल ठाकरे! बाल ठाकरे!/कैसे फासिस्टी प्रभुओं की गला रहा है दाल ठाकरे!/शिवसेना की वर्दी डाँटे जमा रहा लय-ताल ठाकरे!/सभी डर गए बजा रहा है गाल ठाकरे!/अपने भक्तों को कर देगा अब तो माला-माल ठाकरे!/.....चुप है कवि डरता है शायद खींच नहीं ले खाल ठाकरे!'[19]

किसी भी व्यवस्था में जन की बात करना व्यवस्था विरोध करना होता है। भारत में लोकतंत्र और संविधान की स्थापना के बाद से जनकवि सत्ता को कभी रास नहीं आये। साहित्यिक विरादरी भी ऐसे लोगों को आसानी से स्वीकार नहीं करती। क्योंकि 'चारण' तो हमेशा से रहे हैं। वह सत्ता और साहित्य, दोनों जगह दखल रखते हैं। जनकवि होने के कारण उपेक्षा नागार्जुन की भी हुई है। इस संदर्भ में प्रो. गोपेश्वर सिंह लिखते हैं-'.....नागार्जुन की कोई कविता बिहार के पाठ्यक्रमों में नहीं थी। जबकि उनके समकालीन अनेक गौण कवियों की कविताएँ थीं और उन्हें हम जानते थे। नागार्जुन की इस उपेक्षा का कारण उनका कम्युनिस्ट होना और जनांदोलनों के साथ जुड़ा होना ही था। तब तक कम्युनिज्म कवियों-लेखकों के लिए सिर्फ बौद्धिक सचेतनता का दर्शन भर नहीं था, वह अग्निपथ था, जिसपर जाने का मतलब था उपेक्षा और तबाही को न्योता देना।'[20] नागार्जुन अग्निपथ पर चलना पसंद करने वालों में थे। वह तो कबीर की तरह तबाही वाली जगह से ही मोक्ष का रास्ता खोजते थे।

आपातकाल के दौरान जब नागार्जुन जयप्रकाश नारायण के साथ जेल गए तो उनकी तारीफ कर रहे थे। जेल से बाहर निकले तो पटना में जयप्रकाश नारायण के खिलाफ भाषण दिए। इसका कारण यह था कि जेल में साथ रहकर उन्होंने जयप्रकाश के चाटुकारों की चालाकी देख ली थी। उनकी इस तरह की प्रतिक्रिया से जयप्रकाश के चाहने वालों को ठेस लगी। लेकिन नागार्जुन तो जनता के कवि थे। दूरदर्शी स्वभाव वाले। जैसे ही जनता सरकार बनी, सब उजागर हो गया। नागुर्जन सही साबित हुए। वहां सब अपने हित के लिए लड़ने लगे। नतीजा यह हुआ कि सरकार गिर गयी। 'हाय अलीगढ़' शीर्षक कविता में दलीय स्वार्थ को लेकर नागुर्जन लिखते हैं- 'पाँच स्वार्थ हैं पाँच दलों के/हदें न दिखतीं कुटिल चालाकी/...../बत्तीस-चौंसठ मंसूबे हैं आठ दलों के।'[21]

नागार्जुन का निष्कर्ष था कि हक प्राप्ति के लिए आंदोलन करना होगा। उन्होंने समाज सेवकों का दोहरा मापदंड देख लिया था। जनता से ठगी उजागर होने लगी थी। उन्होंने 'लाल भवानी' षीर्षक कविता में खुली चुनौती दी- 'झूठ-मूठ सुजलां-सुफलां, गीत न हम अब गाएँगे/भात-दाल, तरकारी जब तक नहीं पेट भर खाएँगे/सड़ी लाश हैं जमींदारियाँ, इनको हम दफनाएँगे/गाँव-गाँव, पाँतर-पाँतर को, हम भूस्वर्ग बनाएँगे/...../जमींदार हैं बदहवास, हमने उनको ललकारा है/जिसका जाँगर उसकी धरती, यही एक बस नारा है/नाहक ही हम पिटते आये, व्यर्थ लाठियाँ खायी हैं/पहचाना अब चोर-चोर सब, ये मौसेरे भाई हैं...।'[22]

नागार्जुन मानते थे कि भूमि किसी भी प्रकार की हो, जो जोतेगा वही उसका मालिक होगा या उसपर उसका हक होगा। नागार्जुन के मूल्यांकन कर्ता यह मानते हैं कि- 'नागार्जुन की वैचारिक प्रतिबद्धता और जनवादी रुझान को स्पष्ट दर्शाती हुई यह कविता मार्क्सवाद की परिचायक है। इसमें जहाँ एक तरफ जमींदारों का विरोध है, वहीं दूसरी तरफ तेलंगाना आंदोलन का समर्थन भी है।..बाढ़, अकाल, या अन्य प्राकृतिक आपदाओं में आज भी व्यवस्था का स्वार्थी और दोगला चेहरा सामने आता है।'[23] निर्भीक, निडर

और स्पष्टवादी नागार्जुन उस दौर में यह सब लिख रहे थे जब जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी की राजनीति उफान पर थी। विरोध करना अपने लिए समस्या खड़ी करने जैसा था। तब भी नागार्जुन जनता की आवाज बने हुए थे। आजादी के ठीक बाद सन् 1955 में जब 'देश मतलब कांग्रेस और कांग्रेस मतलब देश था', तब भी नागार्जुन नेहरू और कांग्रेस की आलोचना कर रहे थे।[24]

1962 में पैदा हुई डॉलर की समस्या से लेकर कॉमनवेल्थ के विरोध तक नागार्जुन सक्रिय थे। इन सभी विषयों पर उनकी निगाह थी। वह जानते थे कि नेहरू व्यापारियों बहकावे में आकर थोड़ा स्वार्थी हो गए हैं। कॉमनवेल्थ खेल आयोजित कर उन्हें वैश्विक नेता बनाना है। यहां नागार्जुन अपने कवि-कर्म को लेकर सतर्क थे। उनका मानना था कि वक्त आने पर हम किसी से टकरा सकते हैं और उसका वारा-न्यारा भी कर सकते हैं। उसका रास्ता उनके पास था। वह प्रतिहिंसा को स्थायी भाव मानते थे। बहुत प्रतिरोधी तरीके से लिखते हैं- 'नव दुर्वासा, शबर पुत्र मैं, शबर-पितामह/सभी रसों को गला-गलाकर अभिनव द्रव तैयार करूँगा/महासिद्ध मैं, मैं नागार्जुन/अष्ट धतुओं के चूरे की छाई में मैं फूँक भरूँगा/देखोगे, सौ बार मरूँगा/देखोगे, सौ बार जिऊँगा/हिंसा मुझसे थर्राएगी/मैं तो उसका खून पीऊँगा।''[25]

व्यवहार के कारण नागार्जुन के बारे में बहुत से विचार मिलते हैं। एक धड़ा ऐसा था जो नागार्जुन को शुद्ध मार्क्सवादी मानता था। लेकिन कुछ इस सोच से अलग थे। लालसालाल तरंग के शब्दों में- 'नागार्जुन वस्तुतः शोषण, दमन के विरोधी थे। अन्याय न सह सकते थे, न देख सकते थे। महंथीपन, जमींदाराना व्यवहार के विरोधी और आम लोगों के दुख से दुखी रहने वाले थे और भरसक उनके निवारण के व्यावहारिक उपाय खोजते रहते थे। मानववाद, समाजवाद और मार्क्सवाद उनका पूर्ण विश्वास था- यह बिल्कुल सही है, लेकिन इसके साथ ही 'उनका जीवन-दर्शन' किसी एक विचारधारा में बँधा हुआ नहीं था।'[26] इसका कारण यह है कि नागार्जुन अपनी रचना में 'छद्म मार्क्सवादियों से सावधान रहने' की सलाह भी देते हैं। किसी भी परिस्थिति में नागार्जुन लकीर का फकीर बनने के पक्षधर नहीं थे।

आजाद भारत में नागार्जुन का विक्षोभ गाँधी की हत्या के समय 1948 में फूटा था। '30 जनवरी, 1948 ई. को महात्मा गाँधी की हत्या हुई और इसके दस दिनों के भीतर ही नागार्जुन की चार क्षोभ-व्यंजक कविताएँ 'शपथ', 'तर्पण', 'गोडसे' और 'मत क्षमा करना' जनशक्ति दैनिक, पटना में 'शोणित-तर्पण' नामक मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत छपती रहीं। उल्लेखनीय है कि बिहार के तत्कालीन प्रशासन ने उन रचनाओं को 'वर्जित रचना' की सूची में डालकर कवि और अख़बार पर कानूनी कार्रवाई की और उन्हें प्रताड़ित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। फलस्वरूप नागार्जुन को स्वतंत्र भारत में पहली बार जेल जाना पड़ा।'[27] इसका उन्हें कोई मलाल नहीं था। ऐसा लगता है जेसे वह तैयार थे। उसी साल प्रकाशित अपने कविता संग्रह में वे व्यंग्य करते हुए अपनी कविता 'शासन की बंदूक' में लिखते हैं- 'जली ठूँठ पर बैठ कर गई कोकिला कूक/बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।'[28] नागार्जुन का असली ठाट यही था। अपनी बात उनको निर्भय होकर कहनी थी, कीमत कुछ भी हो। उनकी यही जीवंतता उनकी कविता को दीर्घजीवी बनाती है। जब-जब प्रकृति, जनपद, समाज, समानता, खेत-खलिहान, मजदूर, किसान, गरीब की चर्चा होगी, या फिर जब अन्याय, अत्याचार, झूठ, लूट, दमन, भ्रष्टाचार की बात होगी, नागार्जुन प्रासंगिक रहेंगे। जनता को संबल देने वाला उनका यह अमूल्य अमर है।

संदर्भ

1. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011,पृ. 70।
2. वही. पृ. 210।
3. राजेश जोशी- नागार्जुन रचना संचयन- साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृ. 10।
4. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, पृ. 400।
5. वचन- अंक 13-14, वर्ष 2013, पृ. 191।
6. राजेश जोशी- नागार्जुन रचना संचयन- साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 13।
7. केदारनाथ सिंह- मेरे समय के शब्द, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, पृ. 57।
8. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, पृ. 93।
9. वचन, अंक 13-14, वर्ष 2013, पृ. 193।
10. राजेश जोशी- नागार्जुन रचना संचयन- साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 13-14।

11. अभिनव कदम, अंक 24-25, वर्ष 2012, पृ. 9।
12. वही.।
13. वचन, अंक 13-14, वर्ष 2013, पृ. 194।
14. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011,पृ. 297।
15. वचन, अंक 13-14, वर्ष 2013, पृ. 195।
16. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, पृ. 253-54।
17. वचन, अंक 13-14, वर्ष 2013, पृ. 196।
18. विश्वनाथ त्रिपाठी और शोभाकांत -सं.- नागार्जुन रचना संचयन, भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 8।
19. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, पृ. 50-51।
20. वचन, अंक 13-14, वर्ष 2013, पृ. 199।
21. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011,पृ. 205।
22. वही., पृ. 59।
23. अलाव: नागार्जुन जन्मशती विशेषांक, जनवरी-फरवरी 2011, पृ. 307।
24. 'दस हजार, दस लाख मरें/पर झंडा ऊंचा रहे हमारा/कुछ भी हो, कांग्रेसी शासन का/डंडा ऊंचा रहे हमारा।- शोभाकांत-सं.- नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएँ-2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 110-111।25. वही., पृ. 257।
26. अलाव: नागार्जुन जन्मशती विशेषांक, जनवरी-फरवरी 2011, पृ. 308।
27. शोभाकांत-सं.- नागार्जुन रचनावली, खंड-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, पृ. 11।
28. वही., पृ. 145।

दयानन्द सरस्वती और नवजागरण

दीप नारायण राम

एम०ए० इतिहास

सारांशः-

उत्तर भारत में धार्मिक और सामाजिक सुधार का सबसे प्रभावशाली आंदोलन दयानंद सरस्वती ने शुरू किया। इनका जन्म 1824 ई0 में गुजरात के एक धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक आडम्बरों से उन्हें घृणा थी और प्राचीन भारत के धर्म और संस्कृति में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। यद्यपि उन्हें अंग्रेजी की शिक्षा नहीं मिल सकी, फिर भी वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। मथुरा में स्वामी विरजानन्द के तत्त्वाधान में उन्होंने 'अष्टाधायी' और 'वेदान्तसूत्र' का अध्ययन किया।

प्रस्तावनाः-

स्वामी दयानंद ने 7 अप्रैल, 1875 को मुंबई में आर्य समाज नामक हिंदू सुधार संगठन की स्थापना की और इसके 10 सिद्धांत भी बनाए जो हिंदू धर्म से काफी अलग हैं, फिर भी वेदों पर आधारित हैं। इन सिद्धांतों का उद्देश्य मानव जाति की शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक बेहतरी के माध्यम से व्यक्ति और समाज को आगे बढ़ाना है। उनका उद्देश्य किसी नये धर्म की स्थापना करना नहीं, बल्कि प्राचीन वेदों की शिक्षाओं को पुनः स्थापित करना था। जैसा कि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में कहा है , वे विश्लेषणात्मक सोच के माध्यम से सर्वोच्च सत्य को स्वीकार करके और असत्य को अस्वीकार करके मानव जाति का सच्चा विकास करना चाहते थे।

दयानंद सरस्वती के दर्शन को उनके तीन प्रसिद्ध योगदानों ''सत्यार्थ प्रकाश'', ''वेद भाष्य भूमिका'' और ''वेद भाष्य भूमिका'' और वेद भाष्य से जाना जा सकता है। इसके अलावा उनके द्वारा संपादित पत्रिका 'आर्य पत्रिका' भी उनकी सोच को दर्शाती है। एक विपुल लेखक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा स्थापित करने के अलावा, उपरोक्त कार्य एक धार्मिक सुधारक के रूप में उनकी भूमिका का संकेत देते हैं। स्वामी जी का मानना था कि स्वार्थी और अज्ञानी पुजारियों ने हिन्दू धर्म को विकृत कर दिया है।

उनके लिए वेद हिंदू संस्कृति की आधारशिला है और ईश्वर से प्रेरित होने के कारण अचूक है। उन्होंने हिंदू धर्म को उसकी बुराइयों से मुक्त करने और उसे तर्कसंगत आधार प्रदान करने का प्रयास किया। उन्होंने ''वेदों की ओर वापस जाओ'' का आह्वान किया। एक समाज सुधारक के रूप में दयानंद पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित नहीं थे बल्कि हिंदू धर्म के सच्चे प्रतीक थे। उनका दृष्टिकोण हिंदू धर्म की लड़ाई की भावना को मजबूत करने के लिए सुधारात्मक था।

वह मूर्ति पूजा, जाति व्यवस्था, कर्मकांड, भाग्यवाद, शिशुहत्या, दूल्हों की बिक्री आदि के खिलाफ थे। वह महिलाओं की मुक्ति और दलित वर्ग के उत्थान के लिए भी खड़े थे। वेदों और हिंदुओं की सर्वोच्चता को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म का विरोध किया और अन्य संप्रदायों को हिंदू व्यवस्था में वापस लाने के लिए शुद्धि आंदोलन की वकालत की। स्वामी दयानंद सरस्वती का ईमानदारी से मानना था कि वैदिक शिक्षा के प्रसार के माध्यम से भारतीय समाज के उत्थान की इच्छा को पूरा किया जा सकता है।

गुरुकुल, कन्या गुरुकुल और डीएवी कॉलेज दयानंद का सबसे महत्वपूर्ण योगदान थे। वास्तव में स्वामी दयानंद के प्रयासों ने लोगों को पश्चिमी शिक्षा के चंगुल से मुक्त कराया। दयानंद सरस्वती ने लोकतंत्र के विकास और राष्ट्रीय जागृति में भी योगदान दिया।

ऐसा कहा जाता है कि "राजनीतिक स्वतंत्रता दयानंद के पहले उद्देश्यों में से एक थी। वास्तव में वह स्वराज शब्द का प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे। "

आर्य समाज के 10 सिद्धांत

- ईश्वर सभी सच्चे ज्ञान और ज्ञान के माध्यम से जो कुछ भी जाना जाता है उसका कुशल कारण है।
- ईश्वर अस्तित्वमान, बुद्धिमान और आनंदमय है। वह निराकार, सर्वज्ञ, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, अपरिवर्तनशील, अनादि, अद्वितीय, सबका आश्रय, सबका स्वामी, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अजर, अमर, निर्भय, शाश्वत और पवित्र है। सबका निर्माता. वही पूजा के योग्य है।
- वेद समस्त सत्य विद्याओं का ग्रन्थ है। इन्हें पढ़ना, पढ़ाना, सुनाना और पढ़ते हुए सुनना सभी आर्यों का परम कर्तव्य है।
- मनुष्य को सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सदैव तत्पर रहना चाहिए।
- सभी कार्य धर्म के अनुसार अर्थात् उचित और अनुचित का विचार करके करने चाहिए।
- आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य विश्व की भलाई करना है, अर्थात सभी की शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक भलाई को बढ़ावा देना है।
- सभी के प्रति हमारा आचरण प्रेम, धार्मिकता और न्याय द्वारा निर्देशित होना चाहिए।
- हमें अविद्या (अज्ञान) को दूर करना चाहिए और विद्या (ज्ञान) को बढ़ावा देना चाहिए।
- किसी को भी केवल अपनी भलाई को बढ़ावा देने से संतुष्ट नहीं होना चाहिएय इसके विपरीत, सभी की भलाई को बढ़ावा देने में ही अपनी भलाई देखनी चाहिए।
- सभी की भलाई को बढ़ावा देने के लिए बनाए गए समाज के नियमों का पालन करने के लिए खुद को प्रतिबंधित मानना चाहिए, जबकि व्यक्तिगत कल्याण के नियमों का पालन करने में सभी को स्वतंत्र होना चाहिए।

1874 ई0 में उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक एक ग्रन्थ लिखा जिसमें उन्होंने अपने सिद्धांतों की व्याख्या की। 1875 ई0 में उन्होंने काठियाबाड़ में 'आर्य समाज' की स्थापना की और उसी समय से ही आर्यसमाज भारतीय जन-जागरण में एक प्रमुख भाग लेता आया है। स्वामी दयानंद सरस्वती के सिद्धांतों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है।

1. सत्य, विद्या और सबों का मूल परमेश्वर है। ईश्वर सच्चिदानंद, निराकार सर्वशक्तिमान, अनन्त, निर्विकार, सर्वाधिकारी, सर्वेश्वरा, सर्वव्यापक, अमर, नित्स, पवित्र तथा सृष्टिकर्त्ता है। अत: सबों को उसकी पूजा करनी चाहिए।
2. मनुष्य को सत्य करना चाहिए। असत्य का त्याग करना चाहिए तथा सभी हिन्दुओ ं को वेदों का अध्ययन करना चाहिए।
3. विश्व कल्याण ही मनुष्य का धर्म है। दूसरों के साथ प्रीतिपूर्वक बर्त्ताव करना, अविद्या का नाश करना तथा शिक्षा का प्रसार करना उसका कर्त्तव्य है।

इन मूल सिद्धांतों के आधार पर स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज द्वारा चलाये गये आंदोलन का विशेष प्रभाव पंजाब और संयुक्त प्राप्त पर पड़ा। 1883 ई0 में स्वामी दयानंद सरस्वती का देहांत हो गया। उस समय से आर्य समाज ने जाति व्यवस्था की कठोरता तथा छुआछूत का घोर विरोध किया है तथा स्त्रियों की अवस्था में सुधार लाने के लिए बहुत से अनाथालय, विधवाश्रम आदि की स्थापनाएँ की हैं। शुद्धि के सहारे धर्मान्तरित हिन्दुओ ं तथा अन्य धर्मावलम्बियों को पुन: हिन्दू धर्म में प्रविष्ट कराने का श्रेय आर्य समाज को ही है। आर्य समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। स्वामी जी पाश्चात्य शिक्षा के विरोधी तथा उपनिषद् युग की गुरूकुल प्रणाली के समर्थक थे। काँगड़ी तथा ज्वालापुर के गुरूकुल कॉलेज तथा डी0ए0वी0 कॉलेज स्वामी जी के आदर्शो ं पर ही स्थापित किये गये हैं। बड़े-बड़े शहरों में आर्यसमाज की ओर से विद्यालयों की स्थापना की गयी है। नारी शिक्षा के प्रचार में भी आर्य समाज का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

आर्य समाज आंदोलन का उत्तर तथा पश्चिमी भारत के लोगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसके द्वारा हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण सुधार लाये गये। इसने जातिवाद छुआछूत और बालविवाह को समाप्त करने का सबल प्रयास किया। स्त्रियों की दशा में सुधार लाने तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को उपर उठाने की दिशा में भी आर्य समाज के कार्य चिरस्मरणीय समझे जाते हैं। इसके द्वारा जनकल्याण के उद्देश्य से अनेक संस्थाओ ं का निर्माण किया गया। आर्यसमाजियों ने देश के विभिन्न भागों में अनाथों, विध

वाओं तथा भिखमंगों के लिए अनेक आश्रम स्थापित किए। उन्होंने अस्पतालों तथा छात्रावासों का भी निर्माण करवाया। आर्यसमाज के द्वारा संचालित 'शुद्धि आंदोलन' हिन्दू धर्म के इतिहास में 'सर्वथा' नवीन है। इसी प्रकार सर्वप्रथम आर्यसमाजियों ने ही हिन्दू ध र्म में एक मिशनरी साहस पैदा की।

1883 ई0 में दयानंद की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के बाद महात्मा हंसराज स्वामी, स्वामी, श्रद्धानंद, लाला लाजपत राय जैसे व्यक्तियों ने आर्यसमाज को न सिर्फ जिन्दा रखा, बल्कि इसे तेजी से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भी फैलाया। दयानंद का बचपन का नाम 'मूलशंकर' था।

1. आर्यसमाज केवल वेदों को ही स्वतंत्रता और अंतिम शब्द स्वीकार करेगा।
2. समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी आय का सौवां भाग समाज, आर्य-विद्यालय और 'आर्य-प्रकाश' समाचार पत्र को देगा तथा
3. आर्यसमाज के विद्यालयों में नवयुवक और नवयुवतियों को सत्य और उचित शिक्षा प्रदान करने के लिए वेदों के आध ार पर शिक्षा दी जाएगी।

1877 ई0 में इन तीन सिद्धांतों के स्थान पर आर्य समाज ने निम्नलिखित 10 सिद्धांत निश्चित किये:

1. वेद ही सत्य ज्ञान के स्रोत हैं। अत: वेदों का अध्ययन आवश्यक है।
2. वेदों के आधार पर मंत्र-पाठ और हवन करना।
3. मूत्तिपूजा का खण्डन।
4. तीर्थयात्रा और अवतारवाद का विरोध।
5. कर्म और पुनर्जन्म अथवा जीव के आवागमन के सिद्धांत में विश्वास।
6. एक ईश्वर में विश्वास जो निराकार हैं।
7. स्त्री शिक्षा में विश्वास।
8. बाल-विवाह और बहु-विवाह का विरोध।
9. कुछ विशेष परिस्थितियों में विधवा-विवाह का समर्थन।
10. हिन्दी और संस्कृत भाषा के प्रसार का प्रयत्न करना।

उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर आर्यसमाज ने हिन्दू धर्म और समाज के सुधार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये। स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज के निर्माण में समानता की जिस भावना को सम्मिलित किया था, वह विभिन्न समाजो ं के संगठन और उनके प्रचार-कार्य में अत्यधिक सहायता का एक अन्य मुख्य आधार आर्यसमाज की धार्मिक कट्टरता थी। हिन्दू धर्म सिद्धांत और व्यवहारिक दृष्टि से सर्वदा उदार रहा है। ईश्वर की एकता और विचारों की विभिन्नता में स्वयं उसका विश्वास रहा है। स्वयं वेद भी अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं करते। इस कारण हिन्दू धर्म ने ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों के प्रति सहनशीलता का व्यवहार किया है, लेकिन यही हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी दुर्बलता भी रही है। जबकि ईस्लाम और ईसाई धर्म क्रमश: 'कुरान: 'कुरान' और 'बाईबिल' को ही एकमात्र सत्य धार्मिक ग्रंथ और 'मुहम्मद' या 'ईसा मसीह' को ही क्रमश: ईश्वर का एकमात्र दूत मानते हैं। हिन्दू धर्म सभी मार्गों को उचित मानता है और सभी महान धार्मिक व्यक्तियों को ईश्वर का दूत स्वीकार करता है। इसी कारण हिन्दू धर्म की उदारता उसकी निर्बलता का कारण बनी और इसी कारण वह कट्टर ईस्लाम और ईसाई धर्म का मुकाबला करने में असमर्थ रहा। स्वामी दयानंद ने इस दुर्ब लता को समझा तथा ईस्लाम और ईसाई धर्म की भाँति ही हिन्दू धर्म को कट्टरता प्रदान की। इसी कारण उन्होंने वेदों को सत्य ज्ञान की एक मात्र सहारा बताया। इसके कारण आर्यसमाज हिन्दू धर्म का कट्टर समर्थक बना और 'सैनिक हिन्दुत्व' कहलाया।

निष्कर्ष:-

स्वामी दयानंद ने अनेक बार ज्ञान की परवाह किए बगैर इंसानियत को बरकरार रखने के संघर्ष किया। जहर पीकर भी वे इंसानियत की रखवाली करते रहे। उन्होंने वह सब कुछ किया, तो उस वक्त समाज, संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रभाषा, स्त्री, विधवा, दलित स्वदेशी और साहित्य के ही एक युग पुरूष को करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इतिहास-चोपड़ा, पुरी और दास।
2. Social, Cultural and Economics History of India-H.C. Roy Chaudhary.
3. Ibid.
4. A Social History of India-R. Kumar
5. Social, Cultural and Economics History of India-H.C. Roy Chaudhary.

उपेन्द्र दोषीक गंधवाह कथा-पिहानीक चित्रण

भोगेन्द्र प्रसाद सिंह

शोधार्थी, यू०जी०सी०नेट/जे०आर०एफ० विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मैथिली साहित्यक सुप्रसिद्ध साहित्यकार 'उपेन्द्र दोषी' कथा आ कविताक क्षेत्रमे एक गम्भीर हास्य-विनोद एवं यशस्वी कविक रूपमे त' सुपरिचित छलथिन, आब एहि गंधवाह कथाक संग-संग एकटा सफल कथाकारक हमरा लोकनिक बीच उपस्थित भेल छथि। हिनक ई गंधवाह कथा-संग्रह 2000 ई.मे बुद्धा कालोनी पटनासँ प्रकाशित भेल अछि। एहि 108 पृष्ठक पोथीमे 20 गोट कथा संगृहीत अछि, जे थिक- बड़द, चकभाउर, डुप्लीकेट, द्रौपदी: मन: स्थितिक, लिलोह, कलपर, पीढ़ीक प्रभाव, राक्षस, लिखलाहा, झीक, उग्रास, पहिल डेग, गंधवाह, अन्हार, अन्हार आ अन्हार, तृप्ती, टीस, सिम्मरक फूल, अप्पन लोक, शून्य, चौमास।

खिस्सा-पिहानी कथा आ काव्यक सर्वोत्तम सर्वोत्कृष्ट विधा थिक। मिथिलामे खिस्सा-पिहानी कहबाक आ सुनबाक परम्परा पहिनहिसँ आबि रहल अछि। खिस्सा सुनलासँ एकटा मनोरंजन भेटैत अछि। ाागाम ारमे बूढ़ पुराण अनपढ़ो लोक सभ नमहर-नमहर खिस्सा कहि क' ओकर मनोरंजन करैत अछि। आइ ओएह खिस्सा-पिहानी सभ कथाक रूपमे सर्वाधिक लोकप्रिय विधा भ' गेल अछि। एतबे अन्तर अछि जे कथाक सृजन स्रष्टा कएनिहार केओ आन आ बचनिहार वक्ता केओ दोसर रहैत छलाह कथा सुनिबएवलाकेँ पोथी उनिटएबाक कोनो काज नहि किन्तु आइ स्रष्टा सभ कथाक रचना क' लिपिबद्ध क' दैत छथि आ पाठक लोकनि कथा पढ़ि अह्लादित होइत छथि। पूर्वमे सभटा देवी देवताक, राक्षसक, दैत्यक, राजा-रानीक, पशुक, चिड़ै-चुनमुनक कथा सभ रहैत छल, किन्तु आइ-काल्हिक कथा साहित्यक अंग थिक जे सभकेँ रूचिकर आ मार्गदर्शक बुझना जाइत अछि।

सर्वप्रथम आब हम एहि गंधवाह कथाक चर्चा करए जा रहल छी। गंधवाह कथा-संग्रह इंगित करैत कहैत अछि जे एहिमे संगृहीत कथा सभमे गंधवाहक कथा-बस्तु विद्यमान रहत। बस्तुत: कुल बीसोटा कथा-संग्रहकेँ हम पढ़ि गेलहुँ आ प्राय: सभ कथामे रोचकता अछिए। तेँ पूर्णत: सार्थक एकर नाम गंधवाह कथा अछि। एहिमे पहिल कथा संगृहीत, जकर पौराणिक आधार अछि, गंधवाह शीर्षकहिमे लागल अछि।

कवि दोषी जीक पौराणिक व्यवहारक आधार-पर समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि- "बड़द" शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे दूइये मासक रहय अंड़िबा कि माए मैनी डकहाक पेटमे चल गेलि कारे बाबू माँड़क पिहुआ चटा-चटा जुआन कएलनि। ओकरा बधिया करएबाक इच्छा त' बड़ रहनि। मुदा मैथिल ब्राह्मणक खुट्टापर बधिया कोना करबितथि। कुसुमा हुनकर नौकर चपबा देने रहैक।' '[1]

कथाक संबंधमे आइ धरि हमर धारणा इएह रहल अछि जे कथा किछु बाजऔ आ कहिओ। कथा द्वारा कहल गेल विषय-बस्तु सत्य जे रहैत अछि ओएह स्थायी होइत अछि। कथामे उपस्थित कथाकारक सत्य, निष्ठा आ जीवन दर्शनकेँ उजागर करैत अछि। कथा कथाकारक प्रतिभा आ अभ्यास अंकित करैत अछि। कथाकारकेँ कथाक माध्यमे चिन्हल जाइत अछि। ओएह असली व्यक्तित्वक परिचय थिक।

व्यवहारक आधार पर कवि दोषी जखन समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि- "गंधवाह शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे मुदा नहि! गलत बात। हमरा आश्चर्य भेल रहए। जखन प्रोफेसर साहेबक कोठलीसँ निकलैत श्रीमती वर्माकेँ देखने रहियनि त' हमरा ोर आश्चर्य भेल रहए। कारण कुमारि छात्रा आ प्रोफेसरक गलत सम्बन्ध त' भ' सकैछ, मुदा ई त' बियाहलि छथि।' '[2]

उपेन्द्र दोषीक गंधवाह कथा बुद्धा कालोनी पटनासँ 2000 ई.मे प्रकाशित अछि, ताहिमे 20 गोट कथाक संकलन थिक जे समाजक बीच बदलैत आशा-आकाँक्षाक समाजिक चेतनाक अनुरूप अनुप्राणित अछि। दोषी जी अपन आत्मनिष्ठताक संग विभिन्न रंग-रूपमे

चित्रित करैत छथि तथा रोमांसक आ सभ हुनक कथामे जीवनक रस ोरि लयबद्धताक संग ओकरा मुग्धकारी बना दइत अछि। गंधवाह शीला वर्माक सम्मोहक चरित्रक मर्मस्पर्शी कथा कहैत अछि।

कवि दोषी जीक कहबाक अभिप्राय ई अछि जे "गंधवाह शीर्षक कथामे कहल गेल अछि जे ई बात एकटा फराक तथ्य थिक जे जखन कखनो हम श्रीमती शीला वर्माक आँखिमे आँखि द' क' देखबाक प्रयास कएने होएब हमरा हुनक आँखि खूब सुन्दर लागल होएत। हुनक आँखिमे समुद्रक गहराइ आ आकाशक अनन्त शून्य दुनू एकहि संग देख' मे आएल होएत।"[3]

श्रीमतीक संग प्रचण्ड साहस तथा प्रेम-रोमांसक अतृप्त लालसाक आधुनिका नवयुवती थिकीह। ओ कोना देखबैत छथि बन्हेज-वर्जनाक बान्ह तोड़ि आधुनिका भूचाल समाजमे मचा सकैछ। ओ प्रवंचनापूर्ण द्रौपदी: मन: स्थितिक आधुनिकता आ एक ग्रामबलाक निश्छल शील-संकोचक तीव्र वैषम्य प्रस्तुत करैत अछि।

कवि दोषीजी "अन्हार, अन्हार आ अन्हार शीर्षक कथामे कहि रहल छथि जे मनुक्ख एकटा समाजमे रहयवला प्राणी अछि ओकरा प्रति आ ओ ओकर भंजक छलथि, छल-कपट भावना नहि रखबाक चाही ताहीसँ समाजमे कुलषित कलेश होइत अछि।

"गुबीरकेँ ट्रेजरी मोन पड़ि गेलैक। अपन पत्नी आ तीन वर्षक नेना मोन पड़ि गेलैक। माए मोन पड़ि गेलथिन आ मोन पड़ि गेलथिन सरकारी स्कूल जिला स्कूलक हेड मास्टर लोकनि जिनका कारणे गुबीर छओ मास ट्रेजरी दौड़ि रहल छल। दौड़ते-दौड़ते गुबीरक तरबा खिया गेल रहै। ओकरा मोनमे क्रमश: तृणा, क्रोध, आ असंतोष पसर' लगलैक।"[4]

पहिल डेग एक गाम-बधूक सहज-सजगताक कतार दिश बढ़ैत ओकर डेगकेँ प्रतिबिम्बित करैत झीक ोर गरीबीक कथा कहैत अछि। टीस, पाखण्ड ओ रूढ़िवादिताक विरूद्ध एक अविवाहिताक आदिवासी कन्याक सांर्षक व्यथा-कथा थिक।

स्त्री-मनोविज्ञानपर अपन मजगूत पकड़ रखबाक कारण सर्वत्रो विशिष्ट उपेन्द्र दोषीक मधुर संवेदनशीलताक संग नारीक तह-दर-तहमे नुकाएल बज्रगेंठकेँ खोलि देवामे पारंगत छथि।

अपन विचार व्यवहारक आधार पर समाज मे उपेन्द्र दोषी सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि- "पहिल डेग" शीर्षक कथामे कहने छथि जे- रौ कोढ़िआ! पुतखौका! तोरे ारनी सन सभ छै? तोरे ारनी जेना युगल सिंह सङे फँसल छौ, तहिना बुझै छिही। बड़ पुर बन' चलला हे। हम जेना जनिते ने छियनि।"[5]

सिमरक फूल अन्यायक विरूद्ध सांर्षशील एक नेपाली युबकक दारूण कथा कहैत छथि। पर्याप्त विडम्बनाक विषय जे ओ अपन ओही सच्चरित्रताक लेल दण्डित कएल जाइछ वास्तवमे ई प्रशासन-तंत्रक ोर उपहास थिक जतय बेईमानी पुरस्कृत होइत अछि आ इमानदारी डण्डित। सहज विनोदपूर्ण शैलीमे दोषी अपना पाठककेँ मुग्ध करबामे प्रवीण छथि, मुदा गाम्भीर्य ओ जटिलतासँ साफ पाला झाड़ि लैत छथि।

कवि उपेन्द्र दोषी "अप्पन लोक शीर्षक कथामे कहि रहल छथि जे समाजमे मौगीक बथकाहाँ हैतारी अनकथले रहैत अछि। जाहिसँ समाज प्रभावित होइत अछि-

"आब औनपाबाप चिकरल- "है की भेलौ! सूति ने होइ छौ अनठा क'। कहू त' अखनी चुहचुहियो ने बजलै आ ई मौगी ोल कएने है।" त' कहलकै जे! पसर के बेर भ' गेलै आ राति धएलै छैं। आबौ ने भनसा क' ने दौ।- बसविट्टीवाली आग्रह करैत कहलकै। "हे बेसी बक्कर-बक्कर नै कर। नै त' आबि क' भथियान पर मसल्ला पीसि देबौ।"[6]

'बड़द', 'चकभाउर' आ डुप्लीकेट शीर्षक कोनो ने कोनो तरहेँ धर्म कर्म सँ जुड़ल अछि। द्रौपदी: मन: स्थितिक कथामे छौंड़ी आ मुरती बाबूक प्रेमकथा अत्यंत करूणक संग उत्सुकताक संग रोचकताक संग आगाँ बढ़ैत अछि किन्तु छौंड़ी मुरती बाबूक गप्प सुनि फँसरी लगा' क' मरि जाइत अछि।

'बड़द', शीर्षक मे करूणक संग-संग हास्य सेहो अछि। गायक नेरू एक दिन पौ होइत अछि बड़द बनि खेतमे जा' क' हड़ बहैत अछि। ओहि बड़दक नाम अंड़िबा रहैत अछि। एक दिन मैनी गायक मृत्यु भ' जाइत अछि तखन ओहि अंड़िबाकेँ कारे बाबू माँर चटा-चटाक' जुआन करैत छथि, हाथसँ छुटलाक बाद फरदवाल भ' जाइत अछि। आ कोनो गायक पाछाँ लागि जाइत अछि। तखन लोक तृणा कर' लगैत अछि। तंग आबि क' एक दिन कुसुमाकेँ कहैत अछि जे रौ कुसमा मैथिलक खुट्टापर बधिया कोना हेतै, कुसुमा ओकरा चपबा दैत अछि।

कवि दोषी जीक गप्पसँ सहमति होइत "पहिल डेग शीर्षकमे कहल गेल छै जे समाजक बेटी तँ सभहक बेटी कहब उचित अछि। एहिना भाबुक समाज होबाक चाही। रौ कलरा, किछु भ' जाउ, हम अपना बेटीकेँ बजार नहि चढ़ायब। एखन ओकर गौना करबाक अछि। ओकरा जे हाकिम लग ठाढ़ करबै त' हम रहब कहाँ के? गौना हेतैक? कुटुम की कहत? नहि, ई नहि होएत। ओ त' पाहुन थिक।"[7]

'चकभाउर' शीर्षक कथामे बुच्चीदाइक संग जे ाटना होइत अछि से सहन कर' जोग्य नहि अप्पन सासु-ससुर नहि रहलासँ पितियौत दुख दइत अछि, ओहि पर इड़िया चिट्ठी लिख क' भगैत बुच्चीदाइक छथि। कलंकिनी बुझि मीराक सासु-ससुर माहुर सँठने रहथिन मीरा लेल। भौजी अहाँ फूल सन कोमल आ पवित्र छी- निर्मल गंगाजल सन।

बुच्चीदाई चिन्तित छथि, विह्वल छथि, करूणार्द्र छथि हमर अवस्था देखि, हमरा दुब्बरि-पातरि देखि। हमर मनः स्थिति पढ़ि हमर मानस उद्वेलित अछि। दुःख अछि, ृणा अछि, ममता सेहो।

कवि दोषीजी "डुप्लीकेट शीर्षक कथामे कहि रहल छथि जे अभ्यास आदति लगौलासँ लोक सुधड़िते अछि वा बीगड़िते अछि नीक दृष्टि सँ नीक आ खराप दृष्टिसँ खराप बनैत अछि।

"अभ्यास आ आदतिक क्रमे सिगरेट लेसि लैत अछि। सभटा दुखकेँ आन्तरिक पीड़ाकेँ सिगरेटक धुआँक संग पीबि जाय चाहैत अछि। मुदा पीबि नहि पबैत अछि। ोटि नहि पबैत अछि। पचा नहि पबैत अछि। सिगरेटक धुआँ आ मानसिक अन्तर्द्वन्दकेँ ओ शंकर तँ थिक नहि जे विषपान क' नील-कण्ठ भ' जाएत।"[8]

'डुप्लीकेट' कथामे किं कर्तव्यविमूढ़ अछि। ओकरा किछु नहि फुरि रहल छैक। खन किछु सोचेत अछि, खन किछु गुनगुनाए लगैत अछि। समयक एहि निरसताकेँ सोचौत, सिगरेट धुकैत बिता देब' चाहैत अछि। मुदा अस्त-व्यस्त आ असंतुलित मोन कतहु स्थिर नहि रहि पबैत छैक। मने, कोनो मूल्यवान वस्तु हेरा गेल होइक।

कवि दोषीजी एहि गपसँ सहमत होइत "लिखलाहा शीर्षक कथाक मनोभावकेँ बुझि कहि रहल छथि जे लिखलाहा रहत सएह हएत। बेटीक लोक नीक वचन सिखबैत अछि। "बीणादाइकेँ भेलनि जे दरबज्जाक मोख लगसँ कहनि- 'ऐना किएक करैत छी? होइ-ए हमरा-सन क्यो लोके ने! इह!"... मुदा बीणादाइ दरबज्जाक केबाड़क पल्ला धएने ठकुआयलि ठाढ़े रहलीह। वीणादाइ चुप्पे रहलीह। किछु नहि बजलीह।"[9]

'पीढ़ीक प्रभाव' श्रीबास्तव नीक नहि अछि। सिन्हो नीक लोक नहि अछि।' हम एहि हेतुएँ ई xIi नहि कहैत छी जे ओ दुनू दारू पिबैत अछि नीक लोक कोना रहत? खानदान, परिवार आ संस्कार छाप तँ पड़िते छैक। दुनूक बाप-माय केहन रहैक?

माय-बापक प्रभाव तँ धीया-पूतापर प्रायः पड़बे करैत छैक। धुरजी! की प्रभाव पड़तैक। धीयोपूता आइ-काल्हि अगिमूत्तुए जनमैत अछि। जनमिक' ठाढ़ भेल कि गाब' लागत- 'मजा मारै....'' ओ की बूझ' गेलैक जे की होइत छैक मजा?

कथाकार दोषी जीक "पहिल डेग शीर्षक कथामे कहबाक अभिप्राय अछि जे हमरा समाजमे मरदक मुँह लागल मौगी कँ नहि बाजब! नीक गप्प भेल ताकी।

"रौ बहिं हमरे धोपै-ए ! कल्लर? सुनहक! कहलकै जे अहीर बुझाबय से मरद। गै, अखनी जे तूँ गारि पढ़लीही' से जँ सुनितौ रहे, आ आबिक' चारि सटका पोनपर ध' दितौ त' केहन लगितौक।"[10]

कथाकार दू गोट कथामे स्त्रीक हास्य-विनोद चित्रण कएने छथि। एहि छोट-छिन आलेखमे एक-एक कथापर संक्षिप्तो चर्चा करब सम्भव नहि भए सकल अछि किन्तु हम त' इएह कहब जे संग्रहक सभ कथामे गंधवाहक परिचर्चा भेल अछि, रोचकता अछि औत्सुक्यक भाव अछि, प्रवाह अछि। यदि कोनो कथा पढ़ए लागब त' मोन होएत पढ़ितय रही, बीचमे छोड़बाक मोन नहि होएत। ओकर परिनाम धरि पहुँचवाक उताहुलता बनल रहत जे कथाक सभसँ पैा गुण थिक। सभ कथा उपदेशप्रद अछि।

यद्यपि कथाकारक ई पहिल कथा संग्रह थिक किन्तु हिनक कथा सभमे पूर्ण परिपक्वता अछि, सभ कथाक गुणसँ समन्वित अछि, भाषा परिष्कृत अछि संगहि सहृदय हृदयाह्ल्लादक अछि। हिनक कथा सभमे यथार्थता अछि जे कल्पनाक संयोगसँ चमत्कारक बनल अछि। अधिकांश कथा बुझि पड़ैत अछि जे लेखकक स्वतः अनुभूत अछि, देखल-पड़ेखल अछि। वस्तुतः कथामे त' सभ किछु सत्ये बुझना जाइत छैक, मात्र नाम, तारीख, स्थान बदलल रहैत छैक।

उपेन्द्र दोषी एहने रोचक कथा सभसँ मैथिल साहित्यकेँ सुरभित करैत छथि।

संदर्भः

1. दोषी, उपेन्द्र, गंधवाह कथा संग्रह, प्रका. वर्ष-2000 ई. पहिल संस्करण, प्रकाशकः बुद्धा कालोनी पटना, पृ०-12
2. तत्रैव, पृ.-69
3. तत्रैव, पृ.-70
4. तत्रैव, पृ.-74
5. तत्रैव, पृ.-66
6. तत्रैव, पृ.-103, 104
7. तत्रैव, पृ.-67
8. तत्रैव, पृ.-18
9. तत्रैव, पृ.-53
10. तत्रैव, पृ.-63

हिंदी साहित्य जगत में छत्तीसगढ़ के हिंदी लेखकों का अवदान (अविभाजित मध्य प्रदेश के काल से लेकर नवगठित छत्तीसगढ़ राज्य में अब तक)

डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, मानव संसाधन विकास केन्द्र, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर

सारांश

वैसे तो हिंदी साहित्य की विकास परम्परा में अनेक क्षेत्रों के लोगों ने अपना योगदान दिया है, जो विशेष उल्लेखनीय हैं। लेकिन इस शोध आलेख में हमने प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय तक छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों के अवदान का अध्ययन किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल विभाजन के अनुरुप देखने से पता चलता है कि हिंदी साहित्य के विकास में छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का योगदान भी अतुलनीय रहा है। उन्होंने भी अपने परिश्रम और कलम की ताकत से हिंदी साहित्य की सेवा की और उसे सींचा है।

मूल शब्दः हिंदी, साहित्य, इतिहास, परंपरा, छत्तीसगढ़, हिंदी लेखक

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की इतिहास परंपरा काफी पुरानी है, लेकिन हिंदी भाषा का साहित्य के रूप में प्रयोग अपभ्रंश के विकसित रूप खड़ी बोली हिंदी के रूप में होता है। हिंदी साहित्य के विकास को अनेक विद्वानों ने अपनी सहूलियत के हिसाब से अनेक भागों में विभाजित किया है, किंतु सबसे प्रामाणिक और सटीक विभाजन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का माना जाता है। जिन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास को चार भागों में बांटा है, जो इस प्रकार है- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल। आचार्य शुक्ल द्वारा किये गए विभाजन को ही अधिकांश लेखकों ने सही माना और उसी के अनुसार ही अपनी रचना एवं व्याख्या की है। हिंदी साहित्य के विकास में केवल एक व्यक्ति का योगदान नहीं रहा, अपितु इसे समृद्ध और पल्लवित करने में अनेक व्यक्तियों, समूहों और पत्र-पत्रिकाओं का योगदान रहा है।

छत्तीसगढ़ी साहित्य

छत्तीसगढ़ी पूर्वी हिंदी की तीन विभाषाओं में से एक है। यह रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग, जगदलपुर तथा बस्तर आदि में बोली जाती है। संभलपुर में तथा उसके आसपास छत्तीसगढ़ी लरिया कहलाती है। छत्तीसगढ़ी भाषा मराठी तथा उड़िया भाषाओं से प्रभावित हुई है।

छत्तीसगढ़ी साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्त्व वर्तमान हैं। इस साहित्य में अनेक लोककथाएँ हैं जिनके मूल भाव भारत की अन्य भाषाओं में भी सामान्य रूप से पाए जाते हैं। कहीं कहीं स्थानीय तथा सामयिक ढंग से इन कथाओं की रोचकता बढ़ गई है।

छत्तीसगढ़ी पँवाड़ों के प्रबन्धगीत किसी न किसी कहानी पर आधारित हैं। पँवाड़ों के केंद्रविन्दु बहुधा ऐतिहासिक है। वीरगाथाओं में राजा वीरसिंह की गाथा प्रसिद्ध है। इसमें मध्यकालीन विश्वासों की प्रचुरता है। कुछ गीतों में देवता के पराक्रम का वर्णन है। श्रवणकुमार संबंधी "सरवन" के गीत तथा "सरवन" की गाथा प्रसिद्ध है। छत्तीसगढ़ी में ऋतुगीत, नृत्यगीत, संस्कारगीत, धार्मिक गीत, बालकगीत तथा अन्य प्रकार के विविध गीत पाए जाते हैं। लोकोक्तियों तथा पहेलियों की भी कमी नहीं है।

कबीर दास के शिष्य और उनके समकालीन (संवत 1520) धनी धर्मदास को छत्तीसगढ़ी के आदि कवि का दर्जा प्राप्त है, जिनके पदों का संकलन व प्रकाशन हरि ठाकुर जी ने किया है। बाबू रेवाराम के भजनों ने छत्तीसगढ़ी की इस शुरुआत को बल दिया।

छत्तीसगढ़ के लेखक और हिंदी साहित्य

अन्य क्षेत्रों के समान ही छत्तीसगढ़ का भी हिंदी साहित्य के विकास में योगदान कम नहीं है, छत्तीसगढ़ में अनेक ऐसे कवि या लेखक हुए जिन्होंने माँ हिंदी के कोष को समृद्ध किया और अपने कलम की ताकत से इसे लगातार सींचते रहे। "भारत के अन्य क्षेत्रों की भाँति छत्तीसगढ़ के अंचल में भी हिंदी विकास का क्रम ब्रज और अवधि भाषा के बाद हुआ है। यहाँ भी हिंदी साहित्य की परंपरा अत्यंत गौरवपूर्ण रही है। यूं तो यहाँ की प्रमुख भाषा छत्तीसगढ़ी है, जिसके विकास का अलग से इतिहास है और लोक साहित्य की परंपरा में इसकी भी अलग से सकता है। पर इस लोक साहित्य की प्राचीनता से हिंदी साहित्य का इतिहास पहले आता है"। प्रस्तुत शोध लेख में हम ऐसे ही छत्तीसगढ़ के रचनाकारों का अध्ययन करेंगे जिन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा निश्चल भाव से की है।

छत्तीसगढ़ की प्रमुख भाषा हिंदी और लोक भाषा छत्तीसगढ़ी रही है। यहाँ बहुतायत की संख्या में लोग छत्तीसगढ़ी भाषा का ही प्रयोग करते हैं, फिर भी हिंदी साहित्य की विकास परंपरा अत्यंत गौरवमयी रही। यहाँ के विद्वानों ने हिंदी साहित्य के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कई विद्वानों ने छत्तीसगढ़ में हिंदी साहित्य के क्रमिक इतिहास को देखते हुए अपने-अपने अनुसार काल विभाजन किया।

"किसी ने छत्तीसगढ़ में हिंदी के विकास को रचना काल के अनुसार पांच भागों में विभक्त किया है 1.चारण कवियों की शृंखला, 2.भक्तिकाल, 3.भारतेंदु युग, 4.द्विवेदी युग, 5.आधुनिक काल।

किसी ने तीन काल में विभक्त किया है- 1.भारतेंदु काल, 2.द्विवेदी काल और 3.आधुनिक काल। और किसी ने सिर्फ दो काल में विभक्त किया है- प्राचीनकाल और आधुनिक काल"। परंतु इनमें से कोई भी काल विभाजन उचित एवं तार्किक सिद्ध नहीं होता है। छत्तीसगढ़ में हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल विभाजन के अनुरूप किया जाए तो कोई अनुचित नहीं होगा, क्योंकि हिंदी साहित्य में आचार्य शुक्ल का काल विभाजन सबसे प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक काल विभाजन माना जाता है, इन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास को चार भागों में बांटा है जो इस प्रकार है-

1. वीरगाथा काल (आदिकाल 1050 से 1375 तक)
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल 1375 से 1700 तक)
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल सन 1700 से 1900 तक)
4. गद्य काल (आधुनिक काल 1900 से अब तक)

"छत्तीसगढ़ का हिंदी काव्य साहित्य हिंदी राष्ट्रीय साहित्य से पृथक नहीं है, अत: छत्तीसगढ़ में काव्य चेतना के संस्कार का अनुशीलन करते हुए उपर्युक्त काल क्रमों का ध्यान रखना आवश्यक है, इन कालों में छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों की गतिविधि क्या थी? यह एक अनुशीलन का विषय है, अनुशीलन करके इस काल विभाजन के साथ समन्वय करने पर छत्तीसगढ़ में हिंदी विकास का क्रम स्पष्ट हो जाता है"।

हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल की समय सीमा 1050 से 1375 विक्रम संवत्तक रही। इससे पूर्व संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, की परंपराएं रही जिसका अंतर्भाव हिंदी साहित्य के पूर्व साहित्य के रूप में कर दिया गया। संस्कृत भाषा का प्रयोग छत्तीसगढ़ में चौथी सदी से आरंभ होकर कलचुरी वंश तक चलता है, लेकिन संस्कृत की अपनी विशिष्टता होने के कारण वह सर्वसाधारण के बीच प्रचलित न हो सकी और कालांतर में हिंदी सर्वसाधारण की भाषा बन गई। छत्तीसगढ़ में क्षेत्रीय राजवंश एवं राजाओं के होने

के पश्चात् भी हिंदी के वीरगाथा युग के समान यहाँ विशुद्ध वीरकाव्य प्राप्त नहीं हुए, इसके संबंध में पंडित लोचन प्रसाद पांडेय ने लिखा है कि "हिंदी साहित्य में संस्कृत युग के बाद आदिकाव्य के अंतर्गत श्री राज रासो जैसे वीर गान का सर्वव्यापी प्रभाव पड़ा। किन्तु इस अंचल में उस गान की प्रतिध्वनि नहीं हुई। छत्तीसगढ़ में यों तो भाटों की परंपरा रही है, किंतु उनके काव्य का मौखिक रूप होने के कारण वे लोक साहित्य तक ही सीमित रह गये। वीर रस का कोई काव्य छत्तीसगढ़ में नहीं लिखा गया"।

संपूर्ण छत्तीसगढ़ में पूर्व में चौदह रियासतें थीं और सभी रियासतों ने अपनी शक्ति के अनुसार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। खैरागढ़ के राजदरबार के चारण कवियों की रचनाएं जो 15वीं से 16वीं शताब्दी तक प्राप्त होती है, ये सभी हिंदी साहित्य के आदि युग की प्रवृत्तियों के समान ही रही, लेकिन ये कुछ देर से परिलक्षित होती है। ये नौ चारण कवि थे जो एक ही वंश के थे इनमें सबसे प्रथम दलपत राम राव एवं अंतिम कमल राय थे। इन सभी ने खड़ी बोली हिंदी साहित्य की साधना की और हिंदी को समृद्ध बनाया। इन्हीं की वंश परंपरा में दलवीर आते हैं ये अपने समय के सफल कवियों में गिने जाते हैं। इन्होंने खैरागढ़ के राजा घनश्याम के लिए खड़ी बोली हिंदी में एक कविता लिखी जो इस प्रकार है-

"गुण न कटक देख, भूप भय रवाना नहीं।
झाड़ो तलवार और हिम्मत अड़ाना है,
कल-बल-छल और साहस बहादुरी के
शाप न घटाना और अकल बढ़ाना है"।

खड़ी बोली हिंदी का छत्तीसगढ़ में आज से साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व इतना शुद्ध रूप में उपयोग होना किसी आश्चर्य से कम नहीं। कविता में हिंदी का इतना शुद्ध रूप देखकर मन विस्मित हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसे ही और अनेक विभूति हुए जो हिंदी साहित्य की साधना में रमे रहे और उसके विकास में अपना योगदान देते रहे। रत्नपुर के राजकवि गोपाल मिश्र एक उल्लेखनीय नाम है जिन्होंने औरंगजेब की क्रूरता पूर्ण शासन की धज्जियां उड़ाने वाली रचना खूब तमाशा की रचना की। इनकी अन्य रचनाएँ सुदामा चरित्र, भक्ति चिंतामणि, रामप्रताप, जैमिनी अस्वमेघ आदि भी इनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ है। इनके पुत्र माखन भी एक अच्छे कवि थे इनकी अपूर्ण रचना रामप्रताप को इन्होंने ही पूर्ण किया। इनके पश्चात् रत्नपुर के बाबू रेवाराम का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है, ये संस्कृत और हिंदी दोनों के ही बड़े अच्छे साहित्यकार थे इन्होंने लगभग 13 ग्रंथों की रचना कर संस्कृत एवं हिंदी के कोष को प्रशस्त किया है। इसके बाद कुछ अन्य कवि भी हुए जो अपने राजाओं के आश्रम में रहकर साहित्य की सेवा करते रहे। इन्हें वीरगाथा युग का कवि तो नहीं कहा जा सकता परंतु ये सभी उसी समय के समान ही राज्याश्रित थे, इसके कारण ही इनका उल्लेख यहाँ किया गया है।

पूर्व मध्यकाल भक्ति काल 1375 से 1700 विक्रम संवत् हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास का अगला चरण है जो दो धाराओं में सगुण और निर्गुण धारा में विभाजित था। निर्गुण धारा के प्रवर्तक कबीरदास जी है। भले ही कबीरदास जी का संबंध छत्तीसगढ़ से ना रहा हो लेकिन इनके अधिकांश शिष्य छत्तीसगढ़ से ही थे। इनके पंथ के प्रमुख स्थानों में एक बनारस है, तो दूसरा कवर्धा है। कवर्धा छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ का प्रमुख स्थान माना जाता है यही से कबीर पंथ के साहित्य का प्रचार-प्रसार हुआ। छत्तीसगढ़ में कबीर के कई शिष्य थे किंतु उनके प्रमुख शिष्य धरमदास छत्तीसगढ़ के बांधवगढ़ के निवासी थे जो आगे चलकर कबीर के उत्तराधिकारी हुए और कबीर के पंत को आगे बढ़ाया। इन्होंने ही कबीर के विचारों और उपदेशों को बीजक नाम से संगृहीत किया है, इनकी प्रमुख रचनाऐ श्री गुरु माहात्म्य, ज्ञान चिंतक, ज्ञान प्रकाश, विवेक सागर, धर्म बोध, ज्ञान स्थिति बोध, ब्रह्म विलास, उग्र गीता आदि हैं।

जगजीवन दास चंदेल क्षत्रिय थे, इन्होंने छत्तीसगढ़ में सतनामी संप्रदाय की स्थापना की। इनकी वाणी से हिंदी साहित्य को बड़ा बल प्रदान हुआ। इसी क्रम में छत्तीसगढ़ में एक और शाखा का जन्म हुआ जिसके आदि प्रवर्तक गुरु घासीदास हुए उन्होंने सत्य को ही ईश्वर और धर्म माना और अपनी वाणी से लोगो का उद्धार करने में लग गये। इनके अनुयायी सतनामी कहलाए और इनके मरणोपरांत गिरौदपुरी में हर साल मेला आयोजन होता है। भक्ति काल में प्रवाहित दूसरी धारा सगुण भक्ति की थी सगुण भक्ति धारा के कवियों में श्री वल्लभाचार्य जी का स्थान प्रथम आता है भले ही इनका कार्यक्षेत्र ब्रजभूमि रहा हो किंतु इनका जन्म रायपुर के चम्पारण नामक स्थान पर हुआ। "ब्रज एक पावन तीर्थ स्थान है, जहाँ भारत के विभिन्न प्रांतों की श्रद्धालु जनता का आगमन प्राचीन काल से हो रहा है, फलतः वल्लभाचार्य के अनुयायी पर्याप्त संख्या में हर प्रांत में पाये जाते हैं, फिर भी छत्तीसगढ़ को इस बात का गर्व तो है ही कि उसने वल्लभाचार्य जैसे पुष्टिमार्ग के संस्थापक को जन्म दिया"।

इनकी दार्शनिक दृष्टि शुद्धाद्वैतवाद की थी इनका लक्ष्य शंकराचार्य के मायावाद और निर्वतवाद से मुक्ति की थी। इनके प्रमुख ग्रंथ श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी टीका, तत्वदीप निबंध, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, ब्रज सूत्र भाषा, सोलह प्रकरण ग्रंथ आदि हैं। इनकी रचना अणुभाष्य को पूर्ण इनके पुत्र विट्ठलनाथ ने किया था। वल्लभाचार्य के पश्चात् सगुण धारा की प्रवृत्ति को प्रभावित करने का कार्य इनके पुत्र विट्ठलनाथ एवं नाती गोकुलनाथ ने किया। इन दोनों की रचनाएं हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से सशक्त रचनाएं हैं। इनके पश्चात् छत्तीसगढ़ में सगुण धारा के कवियों के रूप में गोपालचंद्र मिश्र, माखन लाल मिश्र, बाबू रेवाराम, पहलाद दुबे, पंडित शिवदत्त शास्त्री, तेज नाथ शास्त्री, अमराव बख्शीं आदि आते हैं। गोपाल कवि की शठ शतक, माखन कवि की छंद विलास, प्रह्लाद दुबे की जयचंद चंद्रिका, गंगाधर मिश्र की कोसलनंद, बाबू रेवाराम की कृष्णलीला, पंडित तेज नाथ शास्त्री की रामायण सार संग्रह, अमराव बख्शी की रामलीला रामायण नाटक, कवित्त रामायण, फतेह विनोद, फतेह विलास, आदि रचनाओं ने छत्तीसगढ़ में हिंदी साहित्य के विकास में विशेष योगदान दिया है।

रीतिकाल की समय सीमा 1700 से 1900 विक्रम संवत्तक रही। इस समय में छत्तीसगढ़ के कुछ साहित्यकार ऐसे हुए जिन्होंने भक्ति काव्य और रीतिकाव्य परंपरा को परिपुष्ट करने में अपनी सहायता प्रदान की। जिनमें रत्नपुर के गोपालचंद्र मिश्र का नाम बड़े आदर्श के साथ लिया जा सकता है। "गोपाल मिश्र का रीतियुग से संबंध होने के कारण इनकी काव्य कला में रीत्यात्मकता का भी प्रभाव पूर्ण परिलक्षित होता है किंतु उनकी शृंगारिक अनुभूतियों में हिंदी के रीति युगीन कवियों की भक्ति शृंगार तुलसीदास जी की भांति सात्विकता को लिए हुए है। उनके काव्य में समस्त रसों का परिपाक दिखलाई देता है। वे छत्तीसगढ़ के छंद सम्राट कवि हैं, उनकी काव्यगत प्रवृत्तियाँ तथा कृतित्व की गरिमा के आधार पर इन्हें हिंदी काव्य साहित्य में आचार्य कवि केशवदास के समकक्ष रखा जा सकता है"।

इनके ही समकालीन अन्य रीतिकालीन कवियों में माखन लाल मिश्र, चंद्र मिश्र, रेवाराम आदि का नाम लिया जा सकता है। जिन्होंने भक्तिपरक रचनाओं के साथ रीतिपरक रचनाएं भी की है। रीतिकाल के मध्य भाग के पश्चात् अर्थात 1850 के बाद इसमें नई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया ज्यो-ज्यो राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां बदलने लगी, त्यो-त्यो साहित्य ने भी अपना रुप बदला। जहाँ पहले भक्ति और रीतिपरक रचनाएँ हो रही थी वहीं अब भारतेंदु युग में भारतीयता एवं राष्ट्रीयता की भावना ने स्थान ले लिया। भारतेंदु युग मे छत्तीसगढ़ के कुछ साहित्यकारों के नामों का उल्लेख कुछ इस प्रकार है। सबसे पहले तो ठाकुर जगमोहन सिंह का नाम आता है, जिन्होंने श्यामा स्वप्न, प्रलय, प्रेम हजारा, प्रेम संपत्ति लता, मेघदूत, कुमार संभव सार, श्याम सरोजनी, ज्ञान प्रदीप आदि ग्रंथों की रचना कर हिंदी साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया। इनके अलावा भी कुछ अन्य साहित्यकार और हैं जिनकी रचनाऐ हिंदी साहित्य के विकास में मूल्यवान रही है। हीरालाल की दुर्गायन, जगन्नाथ प्रसाद भानु की छंद प्रभाकर, काव्य प्रभाकर, छंद सारावली, अलंकार दर्पण, हिंदी काव्यालंकार, अलंकार प्रश्नोत्तरी, रस रत्नाकर। इन्हें भारत वर्षीय हिंदी साहित्य सम्मेलन में साहित्य वाचस्पति की उपाधि से नवाजा गया था। सैयद अमीर अली मीर इन्होंने हिंदी के प्रचार के लिए मीर मंडल की स्थापना की थी। इनके ग्रंथ बूढ़े का ब्याह, नीति दर्पण, सदाचारी बालक आदि हैं। पंडित रामदयाल तिवारी एक अच्छे साहित्यकार थे इनकी रचनाएँ गांधीं मीमांसा, गांधीज्म एक्सरेड, स्वराज्य प्रश्नोत्तरी, हमारे नेता आदि हैं। मेदिनी प्रसाद पांडेय की शृंगार सुधा संग्रह, गणेशोत्सव दर्पण, पद्य सुमन, सत्संग विलास। अनन्त राम पांडेय एक अच्छे साहित्यकार और निबंधकार भी थे इनकी रचनाओं का संग्रह अनन्त लेखावली नाम से प्रकाशित है। इनका कपटी मुनि नाटक भी काफी प्रसिद्ध रहा है। दाऊद कृष्ण किशोरदास की रचना श्रीराधा कृष्ण चंद्रिका आदि साहित्यकार हुए जिन्होंने रीतिकाल के साहित्यिक विकास में छत्तीसगढ़ से अपना योगदान दिया।

आधुनिक काल 1900 से प्रारंभ हो जाता है हिंदी साहित्य के विकास में आधुनिक काल में भी अनेक ऐसे साहित्यकार हुए जिन्होंने अपनी साहित्यिक सेवा देकर हिंदी का गौरव बढ़ाया है। 19वीं से 20वीं सदी के बीच जिन साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया है उनमें गणपति लाल चौबे, रामा राव चिचोंलकर, माधवराव सप्रे, श्रीनंदलाल बनवारी प्रसाद, चुन्नी लाल मुन्शी, नंदलाल शुक्ल, मुंशिक कुमार, मोहम्मद याकूब, बहादुर सिंह, ठाकुर प्यारे सिंह, बैरिस्टर प्यारे लाल, राम दयाल तिवारी, जीवन प्रसाद दुबे, सैयद अमीर अली मीर, खंडेराव मराठे, बिसाहू राम सोनी, विश्वनाथ दुबे, हीरालाल काव्योपाध्याय, सुंदरलाल शर्मा, सुखदेव प्रसाद चतुर्वेदी, मुरली प्रसाद पुरोहित, स्वामी विद्या प्रकाश, आदि उल्लेखनीय हैं। सुन्दरलाल शर्मा एक उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार हैं जिन्होंने हृदय तरंग, फुटकर काव्य, ध्रुव चरित्र, पहलाद नाटक, आख्यान नाटक, विक्टोरिया वियोग, सीता परिणय, पार्वती परिणय, श्रीकृष्ण जन्म, कंस वध आदि रचनाएं लिखकर हिंदी साहित्य की सेवा की और इन्हें साहित्य जगत

में अच्छा सम्मान मिला। हिंदी साहित्य परंपरा के साथ-साथ चलने के कारण छत्तीसगढ़ के साहित्यिक परंपरा में आधुनिक काल आते-आते साहित्य गद्य साहित्य का रूप ले लेती है।

गद्य साहित्य के दो रूप दिखाई देते हैं-

1. भाव प्रधान या ललित साहित्य जिसमें कहानी नाटक उपन्यास आते है।
2. विचारप्रधान या वैचारिक साहित्य जिसमें निबंध, आलोचना, संस्मरण, लेख, यात्रा आदि आते हैं।

इन दोनों प्रकार के साहित्य का विकास छत्तीसगढ़ के अंचल में खूब हुआ। छत्तीसगढ़ में गद्य साहित्य के विकास में माधवराव सप्रे जी की भूमिका अतुलनीय रही हिंदी गद्य के विकास में इनका कार्य अनूठा रहा है। द्विवेदी युग के प्रारंभ होने के पश्चात् साहित्य में बहुत कुछ उथल-पुथल हुए, वैचारिक स्तर हो या व्याकरणिक स्तर सभी स्तरों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। राष्ट्रीय भावना जागृत होने लगी, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश आदि भावना दिखाई देने लगी। छत्तीसगढ़ का साहित्य और साहित्यकार इससे अछूते नहीं रह सके इनकी भी रचनाओं में उग्रता, मानवतावादी धारा दिखाई देने लगी। इस युग के प्रमुख साहित्यकारों में लोचन प्रसाद पांडेय, सुखलाल प्रसाद पांडेय, बलदेव प्रसाद मिश्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीं, मुकुटधर पाण्डेय, श्री राम दयाल तिवारी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

निबंध विधा के साहित्यकारों में दो नाम प्रमुख रहे हैं। पहला बिसाहू राम इनके निबंध आध्यात्मिक विषयों पर केंद्रित रहे हैं। दूसरा अनंतराम पांडेय इनके निबंध समालोचनात्मक विषयों पर रहे हैं। इन के पश्चात् समकालीन निबंधकारों में लोचन प्रसाद पांडेय, गोपाल दामोदर तामस्कर, वनमाली प्रसाद शुक्ल, राम दयाल तिवारी, बाबू कुपदीय सहाय आदि उल्लेखनीय हैं। डॉक्टर बलदेव प्रसाद ने मानस से संबंधित लेख लिखकर जो इनके ग्रन्थ मानस माधुरी, मानस से राम में संग्रहित है, इससे उन्होंने काफी प्रभावित किया। जीवनी विधा में प्यारेलाल गुप्त की पंडित लोचन प्रसाद पांडेय व्यक्तित्व व कृतित्व, श्री ठाकुर की ठाकुर प्यारे सिंह की जीवनी, चंद्रशेखर, विश्वनाथ वैश्म्पायन की क्रांतिकारी आजाद की जीवनी विशेष उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। हिंदी गद्य साहित्य के विकास में ऐसे ही अनेक विद्वान हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा निस्वार्थ भाव से की है उनमे से कुछ साहित्यकारों की चर्चा हम क्रमवार करेंगे-

सुखलाल पांडे इनकी रचनाएँ बाल शिक्षक पहेली, बाल गीत, पद्य पंचामृत, मैथिली मंगल, भूलभुलैया, मातृ मिलन आदि। इनकी रचनाएँ सरस्वती, प्रभा, हितकारिणी पत्रिकाओं में छपती थी।

लोचन प्रसाद पांडे- दो मित्र, प्रवासी, नीति कविता, रघुवंश सार, प्रेम प्रशंसा, छात्र दुर्दशा, साहित्य सेवा, मेवाड़ गाथा, माधव मंजरी, बाल विनोद, पद्य पुष्पांजलि, कविता कुसुममाला, महानदी, पुष्पांजलि, चरित माला आदि। "इनके साहित्य का मूल्यांकन खड़ी बोली हिंदी साहित्य के प्रारंभिक इतिहास की पृष्ठभूमि में किया जा सकता है। आधुनिक हिंदी को प्रशस्त करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा"। पांडे बंधु के नाम से विख्यात रायगढ़ के लोचन प्रसाद पांडेय और मुकुटधर पाण्डेय ये पांच भाई थे इन दो के अलावा पुरुषोत्तम प्रसाद पांडे, विद्याधर पांडेय, बंशीधर पांडे ये सभी हिंदी के अच्छे और बड़े साहित्यकार थे। जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा साहित्य विकास में अपना योगदान दिया।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र- जीवन विज्ञान, साकेत सन्त, रामराज्य, तुलसी दर्शन, मानस में रामकथा, जीवन संगीत, क्रांति, गाँधी आदि। इन्हें हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा साहित्य वाचस्पति की उपाधि से नवाजा गया था।

सरयू प्रसाद तिवारी- सीता अन्वेषण, अज्ञातवास, मधु सीकर, मधु बोल। इनका गद्य कम मिलता है, लेकिन ये पद्य के अच्छे रचनाकार थे।

द्वारिका प्रसाद तिवारी- सुराज गीत, शिव स्तुति, गांधीं गीत, जवाहर ज्योति, सन् सन्तावन की क्रान्ति, गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी, कांग्रेस विजय, भजन संग्रह, राम केवट संवाद।

श्रीकांत वर्मा- भटका मेघ, भाषा दर्पण, दिनारंभ, जलसागर, मगध, झाड़ी, संवाद कहानी, घर, दूसरे के पैर, जिरह, अपोलो का रथ, फैसले का दिन, प्रसंग, बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में। इनकी साहित्य की प्रतिभा आजादी के बाद उभरी थी। ये हिंदी के श्रेष्ठ साहित्यकारों में गिने जाते हैं। इन्हें मध्यप्रदेश सरकार ने शिखर सम्मान दिया था।

अमृत लाल दुबे- मानस मुक्ता (पचास कविताओं का संग्रह), मुलिया (छः कहानियों का संग्रह)।

डॉ. शंकर शेष- बंधन अपने-अपने, बाढ़ का पानी, चन्दर के द्वीप, दरिया, घरौंदा, फंदी, द्रोणाचार्य, चेहरे, पोस्टर, एक प्याला, काफी, हुलिया, अजायबघर, त्रिभुज का चौथा कोण। शंकर से एक श्रेष्ठ गद्यकार थे जो आगे चलकर सुप्रसिद्ध नाटककार हुए।

हरि ठाकुर- लोहे का नगर, गीतों का शिलालेख, नए विश्वास के बादल, ठाकुर प्यारेलाल की जीवनी, छत्तीसगढ़ के रत्न।

कपिल नाथ कश्यप- वैदही विछोह, बावरी राधा, युद्ध आमंत्रण, सीता विलाप, राम राज्य, सीता की अग्निपरीक्षा, स्वतंत्रता के सेनानी, आह्वान, सुलोचना विलाप, पुरुषार्थ प्रेम पीयूष, बिखरे फूल, न्याय, श्री राम जन्म, चित्रलेखा।

मुकुटधर पाण्डेय- स्मृति पुंज, परिश्रम, हृदय दान, शैलवाला, मामा, पूजा का फूल, कानन कुसुम। इन्हें छायावाद के प्रवर्तक के रूप में भी जाना जाता है। इन्हें पद्मश्री की उपाधि एवं डी. लिट. से सम्मानित किया गया है।

हिंदी साहित्य को आगे बढ़ाने वालों में मुक्तिबोध, शानी, हरिशंकर परसाई, विनय कुमार पाठक, श्याम लाल चतुर्वेदी, प्रेरणा कुमारी, त्रिवेणी वैष्णव, सुखी राम निषाद, भैया लाल ताम्रकार, देवीप्रसाद वर्मा, राम नारायण शुक्ल, विमल पाठक, पालेश्वर शर्मा, केशव पांडेय, अरुण अग्रवाल, रूपनारायण वर्मा रेणु, अमृतलाल नागर, पुरुषोत्तम, दयाशंकर शुक्ल, उमाशंकर शुक्ल, हीरालाल शुक्ल, डॉ. नरेंद्र देव वर्मा, ध्रुव नारायण वर्मा, नंदकिशोर तिवारी, कुंजबिहारी, पुन्नालाल बख्शी, नारायण लाल परमार, कुंतल गोयल, केदार नाथ ठाकुर आदि साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के विकास में अपनी सराहनीय भूमिका निभाई। इन साहित्यकारों की रचनाओं ने हिंदी साहित्य के विकास को प्रशस्त किया।

समकालीन समय में छत्तीसगढ़ से हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाले साहित्यकारों में- विनोद कुमार शुक्ल, रवि श्रीवास्तव, सियाराम शर्मा, संजीव बख्शी, आनंद हर्षुल, कैलाश बनवासी, जया जादवानी, लोक बाबू, विनोद साव, मीतादास, एकांत श्रीवास्तव, नासिर अहमद सिकंदर, शरद कोकास, बसंत त्रिपाठी, मनोज रूपड़ा, कमलेश्वर साहू, बुद्धि लाल पाल, रजत कृष्ण, संजय श्याम, आलोक वर्मा, भास्कर चौधरी, घनश्याम त्रिपाठी, पूनम वाशम, अंजन कुमार, जयप्रकाश साव आदि वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ से हिंदी साहित्य की सेवा में अपना अतुलनीय योगदान दे रहे हैं।

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य की विकास की जो धारा प्रवाहित हो रही थी उससे छत्तीसगढ़ भी अछूता नहीं था। भले ही छत्तीसगढ़ की अपनी भाषा और संस्कृति रही हो फिर भी उसने हिंदी साहित्य के विकास में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया और उसे समृद्ध किया। हिंदी साहित्य के काल विभाजन के अनुरूप छत्तीसगढ़ के साहित्य और साहित्यकारों को देखते हैं, तब पता चलता है कि हर एक कालखंड में अलग-अलग साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के विकास में अपना अतुलनीय योगदान दिया है। सभी ने हिंदी के विकास में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया चाहे वह आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल या आधुनिक काल हो। सभी कालों की अपनी एक अलग विशेषता रही इन्हीं विशेषताएं के अनुरूप ही साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक रचनाएं लिखीं। अंत में हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य के विकास में छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का योगदान सराहनीय रहा उन्होंने हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रशस्त किया।

संदर्भ

1. मदनलाल गुप्त, छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन द्वितीय भाग द्वितीय संस्करण, प्रकाशक भारतेंदु हिंदी साहित्य समिति बिलासपुर म.प्र., 1998
2. प्यारेलाल गुप्त, प्राचीन छत्तीसगढ़ प्रथम संस्करण, प्रकाशक रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर म.प्र., 1973
3. छत्तीसगढ़ की विभूतियाँ एवं लौकिक प्रसून प्रथम संस्करण 1976 छत्तीसगढ़ सांस्कृतिक मंडल बी.एच.ई.एल. भोपाल
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली,आठवां संस्करण 2012
5. डॉक्टर विमल कुमार पाठक, छत्तीसगढ़ के हीरे, श्री प्रकाशन, दुर्ग छ.ग. 2010
6. डॉ. राजकुमार बेहार, श्रीमती निर्मला बेहार, छत्तीसगढ़ के गौरव रत्न, छत्तीसगढ़ शोध संस्थान रायपुर
7. डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन मयूर पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2018
8. अग्रवाल, अनसूया. हिन्दी लोक-साहित्य शास्त्र, दिल्ली: नीरज बुक सेंटर, प्रथम संस्करण
9. अग्रवाल, अनसूया. 36गढ़ी लोक साहित्य अर्थ और व्याप्ति, रायपुर: शताक्षी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011.

10. अग्रवाल, महावीर. लोक संस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य, दुर्ग: शंकर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1987.
11. चौहान, विद्या. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (भोजपुरी, अवधी, के संबंध में) आगरा: प्रगति प्रकाशन प्रथम संस्करण 1972.
12. दुबे, श्यामाचरण. परम्परा इतिहास बोध और संस्कृति नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
13. गंगा, प्रसाद. छत्तीसगढ़ का साहित्य और उनके साहित्यकार, इलाहाबाद: रचना प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1972.
14. गुप्त, प्यारेलाल. प्राचीन छत्तीसगढ़ रायपुर: प्रकाशन पं.रवि.श.शु.वि.वि. जैन, शान्ति. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, वि.वि.प्रकाशन वाराणसी: सन् 1993.
15. कुलदीप, लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, आगरा: प्रगति प्रकाशन प्रथम संस्करण 1972.
16. कुमार, कीर्तन. छत्तीसगढ़ की कला एवं संस्कृति, कांकेर: प्रकाशन कांकेर साहित्य संस्थान, प्रथम संस्करण 2011.
17. नायडू, हनुमंत. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का लोकतात्विक तथा मनोवैज्ञानिक अनुशीलन, नागपुर: विश्वभारती प्रकाशन, संस्करण 1986.
18. निरगुणे, बसंत. छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति, भोपाल: मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी.
19. शुक्ल, शिवशंकर. छत्तीसगढ़ी ददरिया, वैभव प्रकाशन रायपुर 2015.
20. तेंलग, भालचंद्र. छत्तीसगढ़ी, हल्बी, भतरी, बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर प्राईवेट लिमिटेड संस्करण 1966.
21. तिवारी, गीता. तिवारी, आभा. छत्तीसगढ़ी संस्कृति एवं परिवेश, रायपुर प्रकाशन सर्वोदय पेपर.
22. तिवारी, नंदकिशोर. शर्मा, सुधीर. छत्तीसगढ़ी कहिनी, छत्तीसगढ़ी साहित्य परिषद, बिलासपुर छ.ग.
23. तिवारी, रामकृष्ण. छत्तीसगढ़ का लोक संगीत, खैरागढ़: मातृकला प्रकाशन
24. वर्मा, शंकुतला. छत्तीसगढ़ी लोकजीवन और लोकसाहित्य का अध्ययन, इलाहाबाद: रचना प्रकाशन संस्करण 1971.

'भारत में CAA को लागू करना कितना प्रासंगिक और उपादेयः एक अध्ययन'

डॉ० देवेन्द्र कुमार गोयल

सह-प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, के.के.एम. महाविद्यालय, जमुई (बिहार)

शोधसार

संपूर्ण सृष्टि सुचारू गतिशीलता और अनुशासन में बद्ध रहने के लिए ईश्वरीय नियमों का भी पालन करती है। ईश्वर की सृष्टि हर ओर उसके नियमानुकूल चलती है। जीवन में यदि कोई व्यक्ति गलत कार्य की ओर अग्रसर होता है तो उसे उसका परिणाम भी भोगना पड़ता है। व्यक्ति मूल्यविहीन न हो, उच्छृंखल न हो, दुर्गुणों से युक्त न हो इसलिए ईश्वर ने मनुष्य के प्रत्येक कर्म को अच्छे और बुरे की संज्ञा में बांध दिया है। जिसमें उसके अच्छे कर्मों का परिणाम अच्छा और बुरे का परिणाम बुरा मिलता है। ईश्वर का यह नियम मानव को सकारात्मक की ओर बढ़ने की शक्ति प्रदान करता है और नकारात्मक भावनाओं से विरक्त होने के लिए शिक्षा प्रदान करता है।

वैदिक काल से ही संपूर्ण मानव सभ्यता को अनुशासन में बांधने के लिए, समाज में व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अनेक प्रकार के नियम कानून लागू किए जाते रहे हैं। वैदिक काल में समाज चार वर्णों, चार आश्रम व्यवस्था में विभक्त था। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों को शुद्ध और सकारात्मक रूप प्रदान करने के लिए 16 संस्कारों का विधान करता था। प्रजा को सुख वैभव देने के साथ साथ सुशासन प्रदान करने के लिए अनेक प्रकार की नियमावलियों को प्रजा के मध्य निकाला जाता रहता था लेकिन जैसे जैसे समय की अपेक्षा होती थी वैसे वैसे आगे आने वाली पीढ़ियां और राज्य शासन उनमें परिवर्तन करते रहते थे।

वर्तमान में भी युग परिवर्तन के साथ साथ नए नए नियमों की आवश्यकता होती चली गई और संविधान में अनेक प्रकार से अपेक्षानुसार परिवर्तन व संशोधन आते रहे। उन्हीं में एक है CAA. संविधान के द्वारा मानव सभ्यता को उसके अधिकार और कर्तव्य नियमों को समझाकर शासन की आकांक्षा समाज को एक सुव्यवस्थित उच्च स्वरूप देने के साथ साथ हर प्रकार से उसकी रक्षा करना भी होता है। अतः सी.ए.ए. भी ना केवल समाज में व्यवस्था बनाने के लिए है बल्कि भारतीय को अनेक प्रकार के असामाजिक तत्वों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी है। भारतीय समाज में अनेक प्रकार की विसंगतियों को रोकने के लिए ही नागरिकता संशोधन विधेयक बिल को पास किया गया है। यह कानून मात्र नागरिकता के महत्व को समझता है और यह नागरिकता संशोधन अधिनियम अनेक प्रकार से भारतवासियों के लिए महत्वपूर्ण भी है आवश्यकता इसके सही और स्पष्ट रूप को जन सामान्य के बीच लाने की है।

शब्द कुंजीः- भारत, CAA, प्रासंगिकता, उपादेयता, अधिनियम, नागरिकता, संशोधन।

प्रस्तावना

मानव एक गतिशील प्राणी हैं जो निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर है। आज संपूर्ण भारतवर्ष चारों ओर अपने पंख पसार कर हर दिशा में कार्यरत हैं। कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जहाँ उसकी गति संभव न हो। जीवन के हर एक हिस्से को स्वर्णिम बनाने के लिए वह हर प्रकार के संघर्ष कर निरंतर आगे की ओर चल रहा है। अपने भारतवासियों को आगे बढ़ता देख प्रत्येक शासक हर्ष और गौरव का अनुभव करता है। लेकिन सच्चा शासक वह हैं जो अपनी प्रजा की रक्षा के लिए हर प्रकार की चुनौतियों को धारण करता है।

आज भारत की सुरक्षा को बनाए रखने के लिए, भारतवासियों को निर्भीक वातावरण प्रदान करने के लिये, उसकी संपूर्ण सीमाओं को आक्रमणकारियों से प्रतिबंधित करने के लिए सी.ए.ए. को लागू करना आवश्यक है। जहाँ चारों ओर भारत आगे बढ़ रहा है वहीं उसकी उन्नति और प्रगति को देखकर असमाजिक तत्व अनेक प्रकार के भेष बदलकर उस को क्षति पहुंचाने की घात बनाए रखते हैं। वह इस में सफल ना हो इसलिए भारतीय शासन ने सी.ए.ए. को मंजूरी प्रदान की और अपनी प्रजा की सुरक्षा को सुनिश्चित किया। लेकिन कुछ ऐसे भी विरोधी तत्व हैं जो सीधे-साधे, भोले-भाले जन मानस को भ्रमित कर सीएए को गलत ठहराते हैं। इसका मुख्य कारण यह है जनता के बीच सही ज्ञान की कमी है। यदि प्रत्येक जनता को सत्य ज्ञान से, सत्य सूचनाओं से, सत्य तथ्यों से अवगत कराया जाए तो कोई भी भारतीय इस अधिनियम का विरोध नहीं करेगा। वास्तविकता यही है कि, सी.ए.ए. का लागू होना भारतीयों के पक्ष में है विपक्ष में नहीं।

नागरिकता संशोधन अधिनियम सीएए

नागरिकता संशोधन विधेयक सर्वप्रथम 1955 के नागरिकता अधिनियम में संशोधन करके 2016 में लोकसभा में प्रस्तुत किया गया था। इस विधेयक को एक संयुक्त संसदीय समिति को भेजा गया और तत्पश्चात 7 जनवरी को उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। 8 जनवरी 2019 को लोकसभा द्वारा पारित किया गया लेकिन 16 वीं लोकसभा के विघटन के साथ यह समाप्त हो गया। इस विधेयक को 9 दिसंबर 2019 को 17 वीं लोकसभा में गृह मंत्री अमित शाह द्वारा पुनः प्रस्तुत किया गया जिसको बाद में दिसंबर 19 को पारित किया गया। इस प्रकार पूर्ण रूप से 11 दिसंबर को यह विधेयक पारित हुआ। सीएए को 31 दिसंबर 2014 को या उससे पहले भारत में प्रवेश करने वाले गैर दस्तावेज प्रवासियों को भारतीय नागरिकता प्रदान करने के लिए पारित किया गया था अर्थात इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य जो प्रवासी व्यक्ति भारत में प्रवेश करते हैं ऐसे गैर दस्तावेज अप्रवासियों को भारतीय नागरिकता प्रदान करने के संबंध में पारित किया गया है। इसका सीधा सीधा तात्पर्य है कि, भारत से बाहर यह अधिनियम अफगानिस्तान बांग्लादेश से छह अलग अलग धर्मों जैसे हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई के प्रवासियों के लिए पारित किया गया है। और पाकिस्तान कोई भी व्यक्ति इस अधिनियम के लिए पात्र नहीं माने जाएंगे। यदि वह पिछले 12 महीनों के दौरान और पिछले 14 वर्षों में से 11 वर्षों तक भारत में रहा हैं तो अनिर्दिष्ट प्रवासियों के निर्दिष्ट वर्ग के लिए निवास के वर्षों की संख्या को 11 वर्ष से घटाकर पांच वर्ष कर दिया गया।

नागरिकता

राष्ट्र और राष्ट्र का निर्माण करने वाले लोगों के बीच संबंध को स्थापित करना ही नागरिकता है। यह व्यक्ति को राज्य के प्रति देय कुछ कर्तव्य दायित्वों की पूर्ति के बदले में राज्य द्वारा सुरक्षा, वोट देने का अधिकार और कुछ सार्वजनिक पदों पर रहने का अधिकार प्रदान करती है।

भारत में नागरिकता

यह संविधान संपूर्ण भारतवर्ष में एकल नागरिकता को प्रदान करने का प्रावधान करता है। यह संविधान के अनुच्छेद 11 के माध्यम से संसद को कानून द्वारा नागरिकता के अधिकार को विनियमित करने की शक्ति प्रदान करता है और उसी के अनुसार भारतीय नागरिकता के अधिग्रहण और निर्धारण के लिए नागरिकता अधिनियम 1955 को पारित किया गया था। इस कानून के माध्यम से न केवल माता पिता में से एक भारवास्तव में अवैध प्रवासी वह विदेशी है वास्तव में अवैध प्रवासी वह विदेशी हैतीय होना आवश्यक है बल्कि दूसरा अवैध अप्रवासी भी नहीं होना चाहिए।

वास्तव में अवैध प्रवासी वह विदेशी है जो पासपोर्ट और वीजा जैसे वैध यात्रा दस्तावेजों के बिना ही देश में प्रवेश कर जाए अथवा वैध दस्तावेजों के साथ प्रवेश करता है लेकिन प्राप्त समय अवधि से अधिक रुकता है। इस प्रकार अवैध प्रवासियों को विदेशी अधिनियम 1946 और पासपोर्ट अधिनियम 1920 के तहत जेल में डाला जा सकता है या निर्वासित किया जा सकता है। इस नियम का मुख्य उद्देश्य यही है कि किसी भी प्रकार से कोई अवैध प्रवासी विदेशी अपने भारतवर्ष की सीमाओं में प्रवेश न करें। क्योंकि यदि वह ऐसा करने में सफल हो रहा है तो निश्चित ही वह किसी न किसी रूप में भारत वासियों को और राष्ट्र को क्षति पहुंचाने में कूट नीतियों का सृजन कर रहा है।

CAAकी उपादेयता

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य अपने राष्ट्र की सीमाओं को हर प्रकार क असामाजिक तत्वों से सुरक्षित करना, आतंक विहीन बनाना, दुष्ट व्यक्तियों की दृष्टि से सुरक्षित करना हैं। हाँ इस दृष्टि से देखा जाए तो सीएए अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अधिनियम अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से आने वाले हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई अप्रवासियों को भारत की नागरिकता के लिए पात्र बनाने हेतु नागरिकता अधिनियम में संशोधन करता है।

यह कानून उन लोगों पर लागू होता है जिन्हें 'धर्म के आधार पर उत्पीड़न के कारण भारत में शरण लेने के लिए मजबूर किया गया था। इसका उद्देश्य ऐसे लोगों को अवैध प्रवासन की कार्यवाही से बचाना है।

संशोधन इन छह धर्मों से संबंधित आवेदकों के लिए एक विशिष्ट सर्त के रूप में देशीयकरण की आवश्यकता को।। वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर देता है।

नागरिकता के लिए कटऑफ तारीख 31 दिसंबर 2014 है, जिसका मतलब है कि आवेदक को उस तारीख को या उससे पहले भारत में प्रवेश करना चाहिए था।

इसमें यह भी कहा गया है कि ओवरसीज सिटीजन ऑफ इंडिया (ओसीआई) कार्ड रखने वाले लोग एक आव्रजन स्थिति जो भारतीय मूल के विदेशी नागरिक को भारत में अनिश्चित काल तक रहने और काम करने की अनुमति देती है यदि वे बड़े और छोटे अपराधों और उल्लंघनों के लिए स्थानीय कानूनों का उल्लंघन करते हैं, तो वे अपनी स्थिति खो सकते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार अंत में कहा जा सकता है कि, यह अधिनियम उन पाकिस्तानी, अफगानिस्तान और बांग्लादेश में सताए गए धार्मिक अल्पसंख्यकों को सहायता प्रदान करता है जिन्होंने इन देशों में अनेक प्रकार के धार्मिक अत्याचारों का सामना किया है। इसी के साथ साथ यह अधिनियम अवैध अप्रवासियों को पहचानने और उन्हें अपने देश की सीमाओं से निर्वासित करने का प्रावधान करता है। हालांकि यह अधिनियम अनेक प्रकार की जटिलताओं और आलोचनाओं से परिपूर्ण हैं जिस कारण इसकी ओर से ध्यान हटा लिया गया है। लेकिन अनेक अर्थों में यह अधिनियम भारत के लिए सुरक्षापूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

समाचार पत्र
इंडिया टुडे
अमर उजाला
दैनिक जागरण
प्रतियोगिता दर्पण

शांतिपर्वः राजधर्म

डॉ० वंदना त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दौलत राम कॉलेज, दिल्ली

शांतिपर्व को प्राचीन भारत में राजनीतिक सिद्धांतीकरण में एक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। यह महाभारत के 18 पर्वों में से 12वां पर्व है। इसमें तीन उप-पर्व सम्मिलित हैं, राजधर्मानुशासन पर्व (राजा और शासन के कर्तव्यों का वर्णन करता है), आपद्धर्मानुशासन पर्व (विपत्ति के दौरान आचरण के नियमों पर ध्यान केंद्रित करता है), मोक्षधर्म पर्व (मोक्ष/मुक्ति प्राप्त करने के लिए व्यवहार और नियमों का वर्णन करता है)। इसमें पारंपरिक रूप से 365 अध्याय और 13716 छंद/श्लोक सम्मिलित हैं। यह राजनीति के विभिन्न आयामों पर भीष्म के प्रमुख विचारों को दर्शाता है।

शांतिपर्व में युद्ध के बाद की स्तिथि का विवरण है जब युधिष्ठिर महान युद्ध में अपने भ्राताओं, बंधुओं, महान राजाओं व अन्य लोगों की मृत्यु के लिए स्वयं को कारण मान कर व्यथित और ग्लानि में थे और राजसी सुखों का त्याग कर तप करने की इच्छा से जंगल जाने के लिए तत्तपर थे। कृष्ण, वेद व्यास, नारद सहित अन्य महान विभुतियों द्वारा अतीत की विभिन्न कथाओं के माध्यम से यह समझाने पर कि उन्होंने जो कुछ किया वह उनका क्षत्रिय धर्म था, युधिष्ठिर शांत हुए और अपनी मानसिक पीड़ा का त्याग किया। तत्पश्चात उन्हें हस्तिनापुर का राजा नियुक्त कर राज्याभिषेक किया गया। जिसके उपरांत श्रीकृष्ण के कहने पर उन्होंने पितामह भीष्म से धर्म, राजा की उत्पत्ति और कर्तव्यों सहित राजसी सिद्धांतों, शासन/दंडनीति, प्रजा के राजनीतिक दायित्व, आपद्धर्म, मोक्षधर्म आदि पर ज्ञान प्राप्त किया।

भीष्म के अनुसार राजा धर्म का अवतार है और वह धर्म के लिए ही जीवित रहता है। मानवजाति धर्म पर आधारित है और धर्म राजा पर निर्भर करता है। शांतिपर्व में धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया है कि जो सत्य (सत्य), अहिंसा (अहिंसा), अस्तेय (दूसरे द्वारा बनाई गई संपत्ति की चोरी न करना), शौचम (शुद्धता), और दम (संयम) को बढ़ाता है वहीं धर्म है। इसलिए जो शासक धर्म का पालन करता है वही वास्तविक राजा होता है। इसके अतिरिक्त, राजधर्म मौलिक सामाजिक और राजनीतिक सिद्धांत है जो मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति के साथ-साथ सार्वभौमिक सुरक्षा भी सुनिश्चित करता है। यह शासक के राजसी कर्तव्यों और दण्डनीति (शासन) को संदर्भित करता है। यह क्षत्रियों का धर्म है और सभी धर्मों में सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है जिसके बिना लोगों का विनाश हो जाएगा। यह सम्पूर्ण संसार का आधार है। सभी धर्म राजधर्म से उत्पन्न होते हैं और यहां तक कि धार्मिक दीक्षा और अभ्यास भी इसी में निहित हैं, अतः राजधर्म सर्वव्यापी और अद्वितीय है।

शांतिपर्व में राजधर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है। राजा के धर्म पर विचार करते हुए भीष्म कहते हैं कि दयालुता के साथ सभी प्राणियों, विशेषकर कमजोर और असहायों की रक्षा करना राजा का सबसे बड़ा धर्म है। एक राजा का धर्म है कि वह अपनी प्रजा को उसके भय से, दूसरों के भय से, एक-दूसरे के भय से और उन सभी के भय से बचाए जो मानवीय नहीं हैं। वह राजा सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिसके राज्य में प्रजा निडर होकर उसी प्रकार रहती है जैसे पुत्र अपने पिता के घर में निडर रहते हैं। एक राजा को न केवल भय से मुक्ति की, बल्कि अधिक सकारात्मक रूप से, मानव उत्कर्ष की सामाजिक परिस्थितियाँ बनानी चाहिए, जहाँ व्यक्ति को अपने पूर्ण आत्म का एहसास हो। जब कोई राजा मन, वाणी और देह से अपनी प्रजा की रक्षा करता है और अपने पुत्र के अपराध को भी क्षमा नहीं करता, तो वास्तव में वह धर्म का पालन करता है। जब वह राष्ट्र की रक्षा करता है, लुटेरों और चोरों को वश में करता है और युद्ध में विजयी होता है, बिना भेदभाव दुष्टों को दण्डित करता है, व्यापारियों की अपने बच्चों की तरह रक्षा करता है, बिना लालच या घृणा के योग्य लोगों को उदारतापूर्वक दान देता है, गरीबों, परित्यक्त और वृद्ध प्रजा में सुख

पैदा करता है, मित्रों की संख्या को बढ़ाता है और शत्रुओं को सीमित करता है, अच्छे लोगों का सम्मान करता है, योग्य लोगों का आतिथ्य करता है, पूर्ण निष्ठा से सत्य की रक्षा करता है, तो वह शासन का धर्म माना जाता है। जब धर्म की उन्नति होती है तो राजा सहित सभी प्राणियों की उन्नति होती है और जब धर्म की हानि होती है तो उनका भी पतन होता है। दुर्बल लोगों के क्रोध से नष्ट हुए व्यक्ति के परिवार में कुछ भी शेष नहीं रहता, वहां जीवन का एक अंकुर भी एवम् घास का एक तिनका भी नहीं उगता। अत: राजा को कभी भी निर्बलों तथा निर्धनों पर अत्याचार नहीं करना चाहिए।

भीष्म कहते हैं कि राजा को अपने लिए नहीं बल्कि अपनी प्रजा के लिए जीना चाहिए। उनका हित ही राजा का हित होना चाहिए, उनकी भलाई ही राजा की भलाई होनी चाहिए। जो कुछ उन्हें अच्छा लगे वही उसे अच्छा लगे; उनकी भलाई में उसकी भलाई निहित होनी चाहिए। उसका बर्ताव अपनी प्रजा के प्रति एक गर्भवती महिला का होना चाहिए। जो राजा धर्म और वर्णाश्रम धर्म को कायम रखते हुए अपनी रक्षा के कर्तव्य का पालन करता है, उसे वन में रहने वाले (तपस्वियों) की तुलना में सौ गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, एक राजा जो मन से स्वयं को सुरक्षा के कार्य में समर्पित करता है, वह चार वर्णों और चार वर्गों के गुणों को सुरक्षित रखता है। महाकाव्य के अनुसार राजा द्वारा धर्म के विरुद्ध आचरण को रोकने से समाज में धर्म का प्रचार होता है। अत: राजनीति मानव एवं सामाजिक नैतिकता की सबसे व्यापक शाखा है।

भीष्म के अनुसार एक राजा को शत्रु से अधिक मित्र बनाने चाहिए, जासूसों और राजनयिकों की मदद से शत्रु की गतिविधियों और शक्ति के बारे में सतर्क रहना चाहिए, शत्रु को नियंत्रित करने के लिए सीधे या कपटपूर्ण माध्यमों का उपयोग करना चाहिए। साथ हीं उसे अपने निर्बल शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि एक छोटी सी चिंगारी भी ज्वाला का कारण बनती है और थोड़ा सा विष भी मृत्यु का कारण होता है। शत्रु से संधि करने के बाद भी उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए और सदैव अपनी सेना को प्रोत्साहित करते हुए संकट आने पर शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए। राजा अपनी प्रजा की रक्षा करके एक ही दिन में जो पुण्य कमाता है, उसका भोग वह स्वर्ग में दस हजार वर्षों तक करता है। जो राजा अपने कर्तव्य से विमुख होता है वह अपनी सारी प्रजा का पाप अपने ऊपर ले लेता है और नरक में जाता है।

राजा को अपने कर्तव्य के उचित पालन के लिये सहायकों की नियुक्ति करनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति जो साहसी, समर्पित, विश्वसनीय, कुलीन परिवार से संबंधित, अनुशासित और सुसंस्कृत, सभ्य लोगों के साथ मित्रता करने वाले, स्वयं के सम्मान की रक्षा करने वाले, दूसरों का अपमान न करने वाले, धर्म का पालन करने वाले, पर्वत के समान दृढ़, शास्त्रों में पारंगत, बुद्धिमान, शत्रुओं की गतिविधियों पर नजर रखने वाले होते हैं, राजा को उन्हें हीं सहायक नियुक्त करना चाहिए। उन्हें शासन करने के अधिकार और राजा का छत्र प्राप्त करने के अतिरिक्त, धन और स्थिति के मामले में राजा के समान हीं स्थान दिया जाना चाहिए। ऐसा राजा कभी किसी संकट में नहीं पड़ता।

राजा को वर्णों में भेदभाव नहीं करना चाहिए क्योंकि उनमें कोई अंतर नहीं है। यह कार्य के विभेदीकरण के कारण उत्पन्न हुआ है। शांतिपर्व के अनुसार कोई श्रेष्ठ वर्ण नहीं है; न जन्म, न दीक्षा, न वंश, न किताबी ज्ञान किसी व्यक्ति की योग्यता निर्धारित करता है; केवल उनका वास्तविक आचरण, व्यक्त गुण और सद्गुण ही किसी की योग्यता निर्धारित करते हैं।

राजधर्म का सम्बन्ध दण्डनीति से है। दण्डनीति इस संसार को सत्य पर स्थापित करती है; सत्य धर्म की रक्षा करता है और धर्म उन लोगों में स्थापित होता है जिनके पास वास्तविक ज्ञान होता है। दण्डनीति दैवीय रूप से प्रदत्त है और यह शासक के कर्तव्यों के पालन के लिए प्रामाणिक नियमावली के रूप में काम करने के लिए ब्रह्मा द्वारा तैयार किया गया ग्रंथ था। दण्डनीति के कार्यान्वयन के लिए राजा को दण्ड का अधिकार दिया गया था क्योंकि यह इस लोक और परलोक दोनों को सुनिश्चित करता है। दण्ड धर्म, अर्थ और काम (त्रिवर्ग) की रक्षा करता है जो मोक्ष का मार्ग सुगम करता है। शासन (दण्डनीति) सामाजिक व्यवस्था का आधार है और 'दण्ड का भय' शासन का आधार है जो संसार को अराजकता से बचाता है, विनियमन सीमाएं (एक व्यक्ति के दूसरे के प्रति आचरण पर) निर्धारित करता है और सीमाओं का पालन दण्ड के भय से होता है। इस प्रकार, भय शासन का आधार है और शासन का उद्देश्य लोगों को भय से मुक्ति दिलाना है। यदि दण्ड का सही उपयोग हो तो शांति और समृद्धि आती है और व्यवस्था बनी रहती है। यह मनुष्य के संपत्ति की रक्षा करता है, अनुशासनहीनों को अनुशासित करता है और दुष्टों को दण्डित करता है। इसके अभाव में सामाजिक व्यवस्था अस्थिर होती है व वर्णों का अंतर्मिश्रण होता है; और उचित तथा अनुचित कार्यों के बीच का सारा भेद मिट जाता है; लोग अंधकार में डूब जाते हैं और विनाश का सामना करते हैं। दण्ड उच्च और शुद्ध आचरण वाले लोगों को बढ़ावा देता है और बुरे लोगों को दबाने का प्रयास करता है।

हालाँकि, भीष्म यह भी चेतावनी देते हैं कि राज्य अपने आप में साध्य नहीं है और शासन की शक्ति का प्रयोग धर्म के अनुसार किया जाना चाहिए। दण्ड के भय से कोई परे नहीं है। वह स्वयं राजा को, जो किसी अन्य से अधिक दण्ड का प्रयोग करता है, दण्ड के भय के अधीन रखते हैं। उनका मानना है कि राजा को जिस एक बात का सबसे अधिक भय होना चाहिए वह है गरीबों और पीड़ितों के अश्रु, क्योंकि जिन लोगों पर झूठा आरोप लगाया गया है और जो असहाय हैं, उनकी आंखों से गिरने वाले आंसू पूरे राज्य को नष्ट करने की शक्ति रखते हैं। उत्पीड़ित और शोषित, जब किसी व्यक्ति को असहाय और असुरक्षित छोड़ दिया जाता है, तो उत्पीड़क को किसी उच्च शक्ति द्वारा गुप्त रूप से दण्डित किया जाता है।

इस प्रकार दण्डनीति संसार को संयम में रखती है। यह हर बुराई को वैसे ही नष्ट कर देती है जैसे सूर्य अंधकार को नष्ट कर देता है। यदि दण्डनीति नष्ट हो गयी तो तीनों वेद लुप्त हो जायेंगे और चारों वर्णों के कर्तव्य आपस में मिल जायेंगे। इसी प्रकार, यदि संसार में दण्ड न हो तो संसार का अस्तित्व ही नहीं रहेगा; जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है, उसी प्रकार जो बलवान होंगे वे निर्बलों को खा जायेंगे।

भीष्म के अनुसार एक राजा दण्डनीति का पालन करके युग को बदलने की क्षमता रखता है। राजा ऐतिहासिक परिस्थितियाँ बनाता है, न कि वे उसे बनाते हैं। यदि कोई राजा पूर्णत: दण्डनीति का पालन करे तो सत्ययुग स्थापित हो जायेगा क्योंकि सर्वत्र धर्म ही धर्म रहेगा; जब वह दण्डनीति का तीन-चौथाई (अर्थात् एक भाग अधर्म) पालन करेगा तो त्रेता युग आयेगा; जब वह आधा भाग धर्म और आधा भाग अधर्म का पालन करेगा, तो द्वापर युग की स्थापना होगी; और जब अधर्म ही रहेगा तो कलयुग व्याप्त होगा।

शक्ति (दण्ड) धर्म से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि शक्ति के द्वारा ही धर्म आगे बढ़ता है। जिस प्रकार धुआं वायु की दिशा का अनुसरण करता है, उसी प्रकार धर्म शक्ति का अनुसरण करता है। जिस प्रकार लता को फैलने के लिए वृक्ष के सहारे की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्म को दृढ़ और स्थिर रहने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। लेकिन सत्ता को कभी भी अपना औचित्य नहीं माना जाता। इसके विपरीत, धर्म के बिना सत्ता उतनी ही अत्याचार का रास्ता है, जितना धर्म को असुरक्षित छोड़ देना अराजकता का रास्ता है। इस प्रकार, राज्य की शक्ति को धर्म के सभी अनुशासनों में से सबसे अधिक अनुशासन अपने ऊपर रखना होगा। क्योंकि राज्य अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है।

वहीं राजा को राज्य के हित में हिंसा का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। धर्म उसे उन लोगों को दण्डित करने के लिए अधिकृत करता है जो धर्म का उल्लंघन करते हैं। देश का हित शासक का हित है, इसलिए जो भी उसके रास्ते में खड़ा हो, चाहे वह बेटा हो, भाई हो या पिता या मित्र हो, उसे मार दिया जाना चाहिए। महाभारत लक्ष्य की शुद्धता पर जोर देता है; साध्य के लिए साधन को उचित ठहराओ। यदि किसी अच्छे लक्ष्य को प्राप्त करना आवश्यक हो तो बुरे साधन को उचित ठहराया जा सकता है। साधन परिस्थिति सापेक्ष होते हैं; वे साध्य (धर्म) से भी संबंधित हैं; वे पूर्ण या स्वतंत्र नहीं हैं। इस प्रकार राजा को यह विवेक होना चाहिए कि कब सीधा व्यवहार करना है और कब टेढ़ा व्यवहार करना है। यदि शत्रु फूट डालने की युक्ति अपनाए तो राजा को छल से उस पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

राजा को कुछ अनुशासनों के अंतर्गत दण्ड का प्रयोग करना चाहिए। राजा को दण्डनीति में पूर्णतया पारंगत होना चाहिए। उसे स्वयं को सत्ता और सत्ता के अहंकार/दर्प से मुक्त रखना चाहिए। यदि वह अपनी महान शक्ति का दुरुपयोग करता है, निर्बलों पर अत्याचार करता है और अधर्म अपनाता है, तो उसके अधिकारी और प्रजा भी पथभ्रष्ट हो जायेंगे। और यदि कोई राज्य ऐसे अहंकारी लोगों से भरा है तो वह राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा। राजा प्रजा का रक्षक और उसका संहारक दोनों हो सकता है। यदि वह धर्म के अनुसार आचरण करता है तो वह रक्षक होता है और यदि वह अधर्म का आचरण करता है तो वह विध्वंसक बन जाता है। इसलिए, राजा को पहले स्वयं को अनुशासित करना चाहिए, उसके बाद ही उसे अपने अधीनस्थों और अपनी प्रजा को अनुशासित करना चाहिए। यदि राजा ने स्वयं पर विजय प्राप्त कर लिया, तो उसने अपने शत्रु पर भी विजय प्राप्त कर लिया।

इसके अतिरिक्त, शासन की शक्ति का प्रयोग हर समय क्रोध और असहिष्णुता के बिना किया जाना चाहिए। यह कभी भी ऐसी भाषा नहीं होनी चाहिए जो दूसरों की गरिमा को ठेस पहुंचाए और मित्रों को शत्रुओं में बदल दे। राजा को बुद्धिमान होने के साथ-साथ दण्ड के सिद्धान्त का भी ज्ञान होना चाहिए। जो व्यक्ति उचित दण्ड देने से डरता है, वह राजा के रूप में नपुंसक और बुद्धि से रहित है और कभी भी लोगों की रक्षा नहीं कर सकता है। विधि और शासन का एक अन्य तत्व निष्पक्षता है। जो राजा सदैव समता और निष्पक्षता से शासन करता है, उसे धर्म की प्राप्ति होती है। ऐसे राजा की सराहना और प्रशंसा की जाती है। राजा सहित कोई

भी विधि से ऊपर या अदण्डनीय नहीं है। राजा को अपनी प्रजा का पुत्र और पौत्र के समान ध्यान रखना चाहिए। लेकिन न्याय देने में उसे स्नेह की भावना से उत्पन्न कोई पक्षपात नहीं दिखाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, किसी विषय में बिना किसी पूर्वाग्रह के दोनों पक्षों को सुनने, कथित अपराध की प्रकृति की सावधानीपूर्वक जांच करने, संदर्भ और परिस्थितियों को ध्यान में रखने, किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले काफी देर तक विचार करने और शासन के सिद्धांत के जानकार लोगों से बात करने के बाद ही उनकी सहायता से न्याय देना चाहिए क्योंकि न्याय पर ही राज्य आधारित है। जो राजा इस प्रकार बिना किसी पक्षपात के न्याय करता है, उसे धर्म का फल प्राप्त होता है। जिस प्रकार मृत्यु के स्वामी यम सभी जीवित प्राणियों पर समान रूप से शासन करते हैं, उसी प्रकार राजा को लोगों के बीच भेदभाव किए बिना शासन करना चाहिए। जिस प्रकार ऋषियों के लिए सत्य ही सबसे बड़ा धन है, उसी प्रकार राजाओं के लिए भी प्रजा में विश्वास पैदा करने का सत्य के अलावा कोई अन्य साधन नहीं है।

एक राजा को न तो सदैव विनम्र रहना चाहिए और न ही सदैव कठोर रहना चाहिए। सदैव क्षमाशील रहना बुद्धिमानों के लिए भी मूर्खतापूर्ण है। लेकिन जो राजा सदैव बल का प्रयोग करता है और कभी क्षमा नहीं करता, वह कई समस्याओं को भी आमंत्रित करता है। यदि वह सदैव नम्र रहेगा, तो लोग उसकी उपेक्षा करेंगे; यदि वह सदैव बल प्रयोग करेगा तो वे उत्तेजित हो जायेंगे। उसे अलग-अलग संदर्भ, समय, देश और काल के आधार पर सौम्य या सशक्त होना चाहिए।

सार्वजनिक धन धर्म के नियंत्रण में होना चाहिए। धन धर्म या वैध तरीकों से कमाया जाना चाहिए न कि अधर्म या लालच से। जनता की क्षमता के अनुसार कर लगाया जाना चाहिए। जिस प्रकार अधिक दूध प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को दूध देने वाली गाय के थन काटने से दूध नहीं मिल पाता, उसी प्रकार जब लोगों का अत्यधिक शोषण किया जाता है तो कोई राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता। साथ ही, बिना कठोरता के लगन से एकत्र किए जाने वाले राजसी राजस्व को भी उतनी ही लगन से लेकिन विवेक के साथ हर संभव तरीके से लोगों की रक्षा और उनके कल्याण में व्यय किया जाना चाहिए। अधिशेष को दान या सार्वजनिक कार्यों में नियोजित किया जाना चाहिए। राजा को कोयला खनिक की तरह नहीं बल्कि माली की तरह काम करना चाहिए। उसे कभी भी वित्तीय विषय उन लोगों के हाथों में नहीं सौंपना चाहिए जो लालची और मूर्ख हैं। जो कुछ भी शासन के न्यायसंगत सिद्धांतों के विरुद्ध है वह अस्थिर है।

जो राजा दुर्गुणों से मुक्त, सत्य की रक्षा करने वाला, सच्चरित्र, इंद्रियों पर नियंत्रण रखने वाला, दयालु, उदारतापूर्वक दान करने वाला, प्रजा को प्रसन्न रखने वाला, शूरवीर, क्रोध पर नियंत्रण रखने वाला, शास्त्रों में पारंगत, अपने गुप्त विचारों को कभी दूसरों के सामने प्रकट नहीं करने वाला होता है, वही वास्तव में राजा बनने का अधिकारी है और वह सदैव उन्नति करता है। जो राजा चारों वर्णों के धर्म की रक्षा करता है, किसी पर भरोसा नहीं करता, यमराज के समान न्याय देता है, कुबेर के समान धन संचय करता है, गरीबों, जरूरतमंदों और वृद्धों की रक्षा और सेवा करता है, लालची नहीं होता, दूसरों के साथ व्यवहार करने में प्रसन्न और विनम्र होता है, और जो धर्म का पालन करता है, उसकी प्रजा उसका सम्मान करती है और पराजित होने पर भी, वह उनके समर्थन से अपना राज्य वापस जीत सकता है। जबकि क्रूर और लालची राजा को उसकी ही प्रजा नष्ट कर देती है।

वह राजा सबसे श्रेष्ठ होता है जो बुद्धिमान, त्याग करने वाला, शत्रुओं की कमजोरी को जानने वाला, चारों वर्णों के उचित और अनुचित को जानने वाला, निर्णय लेने और कार्य करने में शीघ्रता वाला, क्रोध पर नियंत्रण रखने वाला, दयालु हृदय वाला और आत्मप्रशंसा से दूर रहने वाला होता है और जिसके राज्य में प्रजा स्वतन्त्रता से विचरती है। सच्चा राजा वही है जिसकी प्रजा न्याय और अन्याय को समझकर अपने-अपने धर्म में लगी रहती है, अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखती है, विकारों से मुक्त, आज्ञाकारी, संघर्ष से दूर रहती है, और उदारतापूर्वक दान करती है।

वह राजा जो जासूस रखता हो, दूसरे राज्यों में राजनयिक नियुक्त करता हो, बुद्धिमान लोगों को अपना सलाहकार बनाता हो, समय पर वेतन और भत्ते देता हो, क्षमता के अनुसार चतुराई से कर वसूल करता हो, अपनी प्रजा की भलाई के लिए चिंतित रहता हो, अच्छे लोगों को कभी अस्वीकार नहीं करता है, अच्छे लोगों को अपने साथ रखता है, अपनी सेना को प्रोत्साहित करता है, अपने राजकोष में वृद्धि करता है, अपने राज्य को सुरक्षित रखने के लिए स्वयं प्रयास करता है और इस विषय में दूसरों पर भरोसा नहीं करता है, शत्रु, मित्र और मध्यस्थों पर नजर रखता है, षडयंत्रकारियों और अपराधियों को दण्डित करता है, नीति धर्म का पालन करता है, सीधे जवाब देने में कभी संकोच नहीं करता है, जब उससे कोई प्रश्न पूछा जाए तो बिना सोचे-समझे कुछ भी न कहें; अपने कार्यों में कभी उतावलापन नहीं करता और दूसरों के बारे में कभी बुरा नहीं बोलता, वह सर्वश्रेष्ठ राजा होता है। जो राजा अपने आप

से पराजित रहता है, वह शत्रु पर विजयी नहीं हो सकता। जब राजा अपने गुणों से अपनी प्रजा को प्रसन्न करता है और स्वयं उनके समस्यायों की देखभाल करता है, तो उसका राज्य स्थिर हो जाता है और वह इस लोक और परलोक दोनों में सुख भोगता है।

राजा/राज्य का उद्‌भव समाज में शांति एवं व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता से हुआ। शांति पर्व में राजसत्ता की उत्पत्ति के दो वृत्तांतों का उल्लेख है। एक के अनुसार, त्रेता युग (स्वर्ण युग) में कोई राज्य या राजा नहीं था क्योंकि हर जगह शांति, समृद्धि और व्यवस्था थी। धीरे-धीरे जब अज्ञान, माया, लोभ, उन्माद और मोह का उदय हुआ तो जीवन दुखमय हो गया और अराजकता फैल गई। इसलिए, देवताओं के अनुरोध पर कि उनमें से सबसे शक्तिशाली को उनका राजा नियुक्त किया जाए, विष्णु ने अपने मानस पुत्र विराजस को राजा नियुक्त किया। लेकिन वह और उनके पांच वंशज और उत्तराधिकारी दण्डनीति में प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार ठीक से शासन करने में विफल रहे। छठे राजा वेन को उसके क्रूर व्यवहार और अधर्मी होने के कारण ऋषियों ने मार डाला। तब पृथु, जिनका जन्म ऋषियों द्वारा वेन के दाहिने हाथ के मंथन से हुआ था, को ऋषियों द्वारा राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था, जब उन्होंने दण्डनीति के सिद्धांतों के अनुसार शासन करने, ब्राह्मणों को दण्ड से ऊपर मानने और दुनिया को वर्णों के मिश्रण से बचाने की शपथ ली थी। इसके अतिरिक्त, उस पर दैवीय स्वीकृति की मुहर तब लगाई गई जब विष्णु ने स्वयं राजा का दर्जा तय किया ताकि कोई भी उससे आगे न निकल सके और इससे भी अधिक भगवान ने राजा के व्यक्तित्व में प्रवेश किया।

एक अन्य वृत्तांत के अनुसार, शासक के बिना प्रकृति की अराजक स्थिति पर काबू पाने के लिए लोगों ने इस आशय का एक प्रस्ताव पारित किया कि जो कठोर शब्द बोलेगा, दूसरों को परेशान करेगा, दूसरों की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार करेगा और दूसरों का धन छीन लेगा, उसे देश से निकाल दिया जाएगा। हालाँकि, जब वे इसका पालन करने में असफल रहे, तो वे ब्रह्मा के पास गए, जिन्होंने बदले में मनु को शासन करने का कार्य करने के लिए कहा। उनके अनुरोध को अस्वीकार करने पर, क्योंकि दुष्टों और असत्यों पर शासन करना एक कठिन कार्य था, लोगों ने उनके साथ राजस्व के रूप में अपने मवेशियों का दो प्रतिशत, नकद और दस प्रतिशत अनाज देने का समझौता किया। बदले में उन्होंने राजा से सुरक्षा मांगी और उन्हें सुरक्षा के कर्तव्य के माध्यम से अर्जित योग्यता का एक-चौथाई हिस्सा देने का आश्वासन दिया। इन शर्तों पर मनु उनका शासक बनने के लिए सहमत हो गये।

उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि राजा/राज्य की उत्पत्ति अराजकता पर काबू पाने और शांति और सुरक्षा बनाए रखने की आवश्यकता का परिणाम थी। यह लोगों और राजा के बीच सामाजिक और राजनीतिक अनुबंध पर आधारित था (वास्तव में पहले विषय में यह राजा और देवताओं और महान संतों के बीच अनुबंध था) और यह दैवीय समन्वय (दिव्य उत्पत्ति) का परिणाम भी था।

प्रजा की ओर से राजनीतिक दायित्व भी अपेक्षित था। प्रजा से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने राजा का सम्मान करें और उसके सामने झुकें जैसे छात्र अपने गुरु के सामने झुकते हैं, और देवता इंद्र के सामने झुकते हैं। जिस राजा का सम्मान उसकी प्रजा करती है, उसका सम्मान उसके शत्रु भी करते हैं। उस व्यक्ति का सम्मान कौन नहीं करेगा जिसके बिना प्राणियों का अस्तित्व नहीं है और जिसके माध्यम से उनका अस्तित्व है। इसके अलावा, जो राजा धर्म को बढ़ावा देता है और उसके उल्लंघन को रोकता है वह सम्मान और पूजा का पात्र है। यह भी कहा गया है कि राजा की संपत्ति की चोरी नहीं करनी चाहिए और जो राजा की संपत्ति लूटता है, वह विष छूने वाले हिरण की तरह नष्ट हो जाता है और ऐसा व्यक्ति सदैव के लिए भयानक नरक में डूब जाता है। इस प्रकार, प्रजा का सबसे प्रमुख कर्तव्य शासक के प्रति निष्ठा है। महाभारत बड़े पैमाने पर राजा के दैवीय समन्वय के आधार पर राजनीतिक दायित्वों पर जोर देता है, हालांकि यह अनुबंध के आधार जैसे अन्य आधारों को भी जोड़ता है।

हालाँकि, लोगों को राजा के आदेशों का पालन करने के अपने प्राथमिक राजनीतिक दायित्व का त्याग करके एक बुरे और अक्षम शासन के प्रति निष्क्रिय प्रतिरोध पेश करने का अधिकार है। उन्हें दुष्ट और अधर्मी राजा के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह का अधिकार है। वे हिंसक और अहिंसक दोनों प्रकारों से बड़े पैमाने पर विद्रोह भी कर सकते हैं। इसमें यह भी माना गया है कि जिस राजा के मंत्री दुराचारी और पापी हैं और जो धर्म का विनाशक है, वह वध के योग्य है। यहाँ तक कि उन्हें स्वयं को संगठित करने और राजा को मार डालने तक का सुझाव भी दिया गया, जैसे कि एक पागल कुत्ता, यदि वह व्यक्ति और संपत्ति को सुरक्षा प्रदान नहीं करता है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि राजा की दिव्यता उसके कार्य पर निर्भर करती है। उसके पास दैवीय शक्ति तभी होती है जब वह परोपकारी, कुशल, धर्म और लोगों के जीवन और संपत्ति का रक्षक और अच्छाई का प्रवर्तक होता है। लेकिन जब वह लालच, सनक, क्रूरता और उत्पीड़न से भर जाता है, तो वह सामान्य इंसान से भी बदतर हो जाता है और पागल कुत्ते की तरह खारिज कर दिया जाता है। देवत्व केवल सद्‌गुणों के साथ होता है, अवगुणों के साथ नहीं।

आपद्धर्मानुशासन पर्व में भीष्म संकट के समय राजा की भूमिका का भी वर्णन करते हैं। एक राजा के पास इतना विवेक होना चाहिए कि वह आने वाली विपत्ति को पहले से समझ सके, संभावित शत्रु से बात करते समय अति सतर्क रहे और राज्य के किसी भी रहस्य को उजागर न करे, कमजोर न पड़े और दुष्ट विचारों का समर्थन न करे, दुष्ट लोगों का दमन करे और नेक लोगों की रक्षा करे व उसके राज्य में सुरक्षा चाहने वाले शरणार्थियों की रक्षा करे। वह यह सिद्ध करने के लिए कई कथा भी सुनाते हैं कि जो राजा कमजोर समय में भी अपने धर्म का पालन करता है, वह अपने राज्य के लोगों के जीवन में शांति और समृद्धि बनाए रखने में सदैव सफल होता है। भीष्म ने सत्य, ईमानदारी और तपस्या के महत्व, तेरह बुराइयों की उत्पत्ति और इन बुराइयों के स्रोतों को नष्ट करने के तरीके, पापियों की प्रकृति और एक व्यक्ति अपने पिछले पापों को कैसे सुधार सकता है, इसके बारे में भी बताया।

शासक संकट की स्थिति में सामान्य नैतिक सामाजिक व्यवहार की आवश्यकताओं को त्याग सकता है। स्वयं को सुरक्षित रखना सबसे बड़ा धर्म है। मरने से बेहतर है जीवित रहना क्योंकि यदि वह जीवित है तो वह अपने जीवन को फिर से व्यवस्थित कर सकता है। आपद स्थिति में राजा को धर्म के सिद्धांतों के विरुद्ध, यदि आवश्यक हो तो किसी भी तरह, अपने लोगों के बीच से वित्तीय संसाधन जुटाने की अनुमति थी। राजा के लिए यह वैध है कि वह बाहरी आक्रमण के दौरान, रक्षा खर्चों को पूरा करने के लिए लोगों की सहायता ले हालांकि उसे राज्य के लिए ऋण के रूप में समझना चाहिए। ऐसा इसलिए आवश्यक है क्योंकि उसकी शक्ति राजकोष और सेना पर निर्भर करती है, और सेना राजकोष पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवस्था की रक्षा सेना द्वारा की जाती है और लोगों की रक्षा सामाजिक व्यवस्था द्वारा की जाती है। लेकिन किसी न किसी रूप में दूसरों को कष्ट पहुंचाए बिना कोई भी असामान्य समय में भौतिक संसाधन नहीं जुटा सकता और राजकोष के बिना न तो कोई सेना हो सकती है और न ही कोई सामाजिक व्यवस्था हो सकती है। हालाँकि, राजा को याद रखना चाहिए कि लोगों को चोट पहुँचाकर एकत्रित किया गया धन न तो लंबे समय तक टिक सकता है और न ही इससे कभी कोई लाभ हो सकता है। इसलिए, जैसे ही सामाजिक परिस्थितियाँ सामान्य हो जाती हैं, राजा को लोगों को वह वापस लौटा देना चाहिए जो उसने स्वयं को बचाने के लिए उनसे लिया है।

विषम समय में राजा और प्रजा को एक-दूसरे की रक्षा करनी चाहिए, यही सर्वकालिक धर्म है। जब राजा ऐसा करने में असमर्थ हो तो ब्राह्मण को भी शस्त्र धारण करना चाहिए। सामान्य समय में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र को हथियार नहीं उठाना चाहिए। परंतु विपत्ति के समय लोगों की सहायता करने वाला तथा डूबते हुए व्यक्ति के लिए नाव की तरह कार्य करने वाला शूद्र भी सभी प्रकार से सम्मान के योग्य है। जो स्वयं निर्भय होकर प्रजा के कष्टों को दूर करने में समर्थ है, वह राजा के सम्मान के योग्य है।

मोक्षधर्म पर्व मोक्ष अथवा शाश्वत मुक्ति प्राप्त करने के लिए जीवन जीने के तरीकों के बारे में बताता है। भीष्म ने धर्म को शाश्वत मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग बताया। उन्होंने कई प्राचीन कहानियाँ के माध्यम से व्यक्ति के लिए मोक्ष प्राप्त करने के उचित तरीके भी बताए। उन्होंने पिछले दुखों और कर्मों से छुटकारा पाने के लिए सभी सांसारिक इच्छाओं के त्याग के महत्व पर प्रकाश डाला। साथ हीं भगवान इंद्र और भगवान विष्णु की कहानियों द्वारा बताया कि कैसे उन्होंने बलिदान और धर्म के सिद्धांतों का निर्माण किया।

संक्षेप में राजधर्म सभी धर्मों में सबसे श्रेष्ठ है जो समाज में शांति, व्यवस्था और भौतिक समृद्धि स्थापित करने के लिए आवश्यक है और यह सभी के लिए आत्म-प्राप्ति का मार्ग सुनिश्चित करता है। हालाँकि, राजधर्म का पालन एक निश्चित अनुशासन और धर्म की सीमा के तहत किया जाना चाहिए; लेकिन इसका व्यावहारिक पहलू भी है, क्योंकि संकट की स्थिति में यह धर्म की स्थापना के लिए अधर्म का सहारा भी ले सकता है। यह राजनीति के भारतीय संस्करण पर प्रकाश डालता है। न्यायशास्त्र, समृद्धि और सफलता संबंधी विषयों को समझने के लिए इन ग्रंथों का व्यापक अध्ययन किया गया है।

संदर्भः

Chaturvedi, B., "Dharma-The Foundation of Raja-Dharma, Law and Governance", in The Mahabharta: An Inquiry in the Human Condition, Orient Longman, Delhi, 2006

Garg, Sushma, Political Ideas of Shanti Parva, The Quarterly Indian Journal of Political Science, Vol. 65, No.1, Jan.-March 2004.

Pandey, Priyanka, Rajdharma in Mahabharat, Printworld Pvt. Ltd, 2018.

Varma, V., Studies in Hindu Political Thought and Its Metaphysical Foundations, Motilal Banarsidass, Delhi, 1974.

व्यास, वेद, (अनुवादकः पंडित रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय) शान्तिपर्व, महाभारत, पंचम खंड, गीता प्रेस, गोरखपुर.

जनजातीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति

डॉ० भावना कमाने

सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) बाबू पढरीराव कृदत शासकीय महाविद्यालय सिलौटी, जिला- धमतरी (छ.ग.)

नारी और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। मनुष्य की निर्मात्री नारी ही है। बालक की आदि गुरु उसकी माता ही होती है नारी के पास जो कुछ है सब दूसरे के लिए पति परिवार और देश के लिए है। मनु ने स्पष्ट कहा है-जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। स्त्रियाँ समाज का निर्माण करती हैं यदि मनुष्य जाति उन्नति चाहती है तो पहले नारी को सामाजिक आर्थिक, बौद्धिक, सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण और सुविकसित बनाना होगा, तभी मनुष्यों में सबलता, सक्षमता, सद्बुद्धि, सद्गुण और महानता के संस्कारों का उदय हो सकता है। हमारा देश समाज जाति तब तक सच्चे अर्थों में विकसित नहीं कहें जा सकते जब तक नारी को भी नर के समान ही क्रियाशीलता और प्रतिभा प्रकट करने का अवसर न मिले।

महिलाओं की स्थिति किसी भी समाज के विकास एवं प्रगति को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इनकी सामाजिक, शैक्षिक स्थिति आर्थिक सक्रियता निर्णय निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी से समाज में उनकी स्थिति को जाना जा सकता है।

जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर्याप्त भिन्न रही है। इसलिए समाज में जनजातीय महिलाओं की स्थिति के बारे में एक सामान्य निष्कर्ष निकालना कठिन कार्य है। विभिन्न जनजातीय समूहों में विभिन्नता देखने को मिलती है। कालान्तर में सांस्कृतिक सम्पर्क की प्रक्रिया ने जनजातीय समाज में स्त्रियों की स्थिति को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। स्पेन्सर ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि आदिम समाज में महिलाओं को किसी प्रकार का सम्मान न देते हुए उनसे पशु और गुलाम की तरह व्यवहार किया जाता था। और समाज में पुरुष का स्थान स्त्रियों से उच्च माना जाता था। फिर भी स्त्रियों को ऐसे बहुत से अधिकार प्राप्त हैं, तथा उन्हें ऐसी बहुत सो सामाजिक सुविधायें है जो तथाकथित सभ्य समाज में नहीं पाई जाती हैं। जनजातीय समुदायों में लगभग 11% समुदाय मातृसत्तात्मक हैं जिनकी स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से पितृसत्तात्मक समुदाय से अच्छी मानी जाती है। रवासी जनजाति इसका उदाहरण है। यहाँ सामान्यत: लड़की के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती हैं। वैवाहिक मामलों जैसे विवाह, तलाक, पुर्नविवाह के संबंध में महिलाओं पर किसी प्रकार के प्रतिबंध नहीं लगाये जाते हैं। ग्रिसन ने मारिया गोड़ महिलाओं के बारे में कहा है कि मारिया गोड़ लड़कियों को अपनी पसंद का जीवन साथी चुनने का पूरा अधिकार होता है। हट्टन ने भी नागा महिलाओं की स्थिति को उच्च सामाजिक स्तर का माना है। मजुमदार ने भी माना है कि इन्हें अपनी सीमाओं में रहते हुए कठोर परिश्रमयुक्त जीवन जीना पड़ता है, लेकिन विवाह व तलाक के संबंध में पर्याप्त स्वतंत्रता भी उन्हें मिलती है।

समानता के प्राकृतिक सिद्धांत पर आधारित इस सामाजिक सांस्कृतिक व आर्थिक जीवन में स्त्री पुरुष बराबर के भागीदार होते है। सच्चिदानंद के अनुसार- आदिवासी महिलाओं की स्थिति उनकी आर्थिक भूमिका से नहीं वरन् उन सामाजिक नियमों परम्पराओं द्वारा निर्धारित होती है, जिस पर समुदाय विशेष आधारित होता है।

विश्व की सभी सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का जन्म इतिहास के धुंधलके जनजातीय समाज से हुआ है और इसी समाज में महिलाओं को नारी होने के कारण अनेक अधिकारों से वंचित कर दिया जाना और पुरुषों की तुलना में गौण सथान दिया जाना कहाँ तक उचित है। जनजातीय समाज की महिलाओं में शिक्षा का अभाव उनके आत्मसम्मान और आत्म विश्वास की सबसे बड़ी बाधा है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश जनजातीय महिलायें अशिक्षा, बेरोजगारी, उत्पीड़न कुपोषण तथा कई प्रकार की बीमारियों से ग्रसित है। स्वतंत्रता के 68 वर्षों के पश्चात् भी महिलाओं में स्वास्थ्य सुधार नहीं हुआ। उनके स्वास्थ्य एवं पोषण की स्थिति निम्न होने

का मुख्य कारण उनमें अशिक्षा, गरीबी, बेराजगारी तथा उत्पीड़न हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 100 में से सिर्फ 54 महिलायें पढ़ी लिखी हैं। जनजातीय महिलाओं में तो यह निरक्षरता दर और भी ज्यादा है। उसी प्रकार विश्व के गरीबों में आधी आबादी महिलाओं की है, जिसे पुरुषों के समान अवसर प्राप्त नहीं हैं विश्व के गरीबों में 70% एवं निरक्षरों में दो तिहाई महिलायें ही हैं। यद्यपि भारतीय संविधान की अनुच्छेद 15 (3) राज्यों को यह अधिकार देता है कि वे महिलाओं तथा बच्चों के लिए विशेष उपबंधों की व्यवस्था करे जिससे संविधान की 14 वें अनुच्छेद में सुस्थापित "विधि के समक्ष समता" के मूलभूत अधिकारों को प्राप्त किया जा सके। फिर भी आदिवासी महिलायें आज भी सर्वाधिक पिछड़ी हुई तथा वंचित जनसंख्या के अन्तर्गत आती हैं इस स्थिति तक आदिवासी महिलाओं को पहुँचाने वाले अनेक कारण जैसे-दुर्गम निवास स्थल, आर्थिक, सामाजिक समस्यायें, धार्मिक अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता, संचार-साधनों का अभाव भाषा संबंधी समस्या एवं परिस्थितियों से संबंधित समस्यायें हैं।

ग्रामीण परिवेश में जनजातीय महिलाओं की राजनीति में भागीदारी भी नगण्य है। 1992-93 में भारतीय संविधान के 73 वे एवं 74 वें संशोधन के फलस्वरूप ग्रामीण एवं नगरीय स्वायत्त संस्थाओं में महिलाओं के लिए (एक तिहाई) 1/3 स्थान आरक्षित करके उन्हें घर की चारदीवारी से बाहर लाने का प्रयास किया गया। इसके बाद राष्ट्रीय महिला कोष, इंदिरा महिला योजना आदि कारगार उपायों द्वारा स्त्रियों को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया गया। यद्यपि ये योजनायें देश के हर वर्ग की महिलाओं के लिए थीं, किन्तु जनजातीय महिलाओं को इस अवसर का लाभ नहीं मिल सका, क्योंकि वे अशिक्षित थीं। इस कारण वे अपने अधिकारों से वंचित रहीं। शासन द्वारा उन्हें शिक्षित करने और विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का भगीरथी प्रयास जारी हैं। जनजातीय बालिकाओं में अधिकांश बालिकायें प्राथमिक स्तर की शिक्षा ही पूरी कर पाती थी और घरेलू एवं आर्थिक जिम्मेदारियों के कारण उन्हें अधूरी पढ़ाई ही करनी पड़ती थी। अब शहरीकरण के कारण आदिवासी परिवारों में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है और अब उन्हें क्षमतानुसार शिक्षा दिलाई जा रही है। 2001 की गणनानुसार आदिवासी महिला साक्षरता 45.66% थी। सरकार द्वारा शिक्षा के विकास की निम्न योजनायें बनाई गई हैं-

1. दत्तक पुत्री योजना-जिसमें ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा का खर्च शासन द्वारा किया जाना।
2. जवाहर आदिम जाति उत्कर्ष विद्यार्थी योजना-इसके अन्तर्गत जनजातीय प्रतिभावान छात्र-छात्राओं को आवासीय शिक्षण संस्थाओं में सरकारी खर्च पर आध्यापन की सुविधा।
3. बुकबैंक योजना-जनजातीय बालिकाओं को पाठ्य पुस्तक उपलब्ध कराना।
4. सरस्वती साईकिल योजना नि:शुल्क साईकिल का वितरण बालिकाओं को कराना।
5. कस्तूरबा गांधी बालिका छात्रावास-जनजातीय बालिकाओं के लिए छात्रावास की सुविधा सरकार द्वारा प्रदान करना।

उसी प्रकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी सरकार ने इस वर्ग के लिये अनेक प्रावधान किये हैं जैसे-राजीव गांधी राष्ट्रीय फेलोशिप, सरकारी नौकरियों में आरक्षित सीटें एवं आयु संबंधी छूट, प्रतियोगी परीक्षाओं में शासन द्वारा नि:शुल्क कोंचिंग की व्यवस्था, नेट एवं सेट की परीक्षाओं में इनके लिये न्यूनतम अंक के मापदण्ड का निर्धारण, शिक्षण संस्थाओं, मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में प्रवेश एवं अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में न्यूनतम योग्यता एवं नि:शुल्क व्यवस्था। इन सरकारी प्रयासों से वर्तमान में शासन की योजनाओं का लाभ उठाकर जनजातीय महिलायें हर क्षेत्र में आगे आ रही हैं। अब यह विचार कि "महिलायें एक पृथक श्रेणी में आती हैं जिनके लिये आवश्यकतानुसार विशेष योजनायें बननी चाहिये" भारतीय विकास की रणनीति को रेखांकित करता है। समय के साथ-साथ उनमें सामाजिक परिवर्तन आया। अब वे इन बुराईयों से लड़ने को तैयार हो रही हैं, जो उन्हें लिंग भेद के कारण आगे नहीं बढ़ने दे रही थीं।

जनजातीय महिलाओं को और अधिक सुदृढ़ करने के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रयासों के फलस्वरूप महिलाओं ने अब समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। वे अन्य सामान्य वर्ग की महिलाओं की तरह हर क्षेत्र में खुलकर भाग ले रही हैं, तथा नौकरी न मिलने पर भी घर में ही रहकर व्यवसाय कर रही हैं। आदिवासी अर्थ व्यवस्था में रोजगार आजीविका परम्परागत साधनों के आस-पास केन्द्रित है जो कृषि एवं वनों पर आधारित होती है। इन दोनों क्षेत्रों की अनिश्चितता के कारण आदिवासियों का आर्थिक जीवन अस्थिर होता है। इसलिये महिलाओं को भी अर्थोपार्जन करना पड़ता है। महिलायें कृषि एवं हल से संबंधित जैसे रोपण, कटाई, निदाई आदि कार्यों में पुरुषों की मदद करती हैं। कुछ दशक पहले तक महिलायें अपने घर से बाहर रोजगार की तलाश में कम निकलती थीं, किन्तु उच्च शिक्षा ने इस स्थिति में तेजी से बदला किया है। आधुनिकीकरण, शहरीकरण

शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा व्यापार-वाणिज्य और उद्योग के क्षेत्र में होने वाले युगान्तरकारी परिवर्तनों से राष्ट्रीय परिदृश्य में जो उथल-पुथल हुई हैं उसमें महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों में असाधारण वृद्धि हुई है। लेकिन बदलते समय एवं आधुनिक युग में भी इनकी जिम्मेदारियाँ कम नहीं हुई हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं पर तो काम का दबाव पुरुषों की अपेक्षा अधिक है। आज आदिवासी महिलायें शहरी उद्योग धंधों व सरकारी व गैर-सरकारी निर्माण कार्यों में भी मजदूर के रूप में एक बड़ी संख्या में कार्यरत हैं। शहरी क्षेत्र ने रोजगार के नवीन अवसर तो दिये हैं, पर इसके शोषण भी कम नहीं हुए हैं। आदिवासी क्षेत्रों में प्रारम्भ किये गये विभिन्न विकासात्मक कार्यक्रमों ने इनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति को प्रभावित अवश्य किया है, लेकिन आदिम अवस्था से विकास की मुख्य धारा में लाने हेतु किये गये विकास कार्यों व उनके लाभों का प्रभाव थोड़े से लोगों में सिमट कर रह गया है इसके लिए आवश्यक है कि महिलाओं के जीवन मूल्यों और दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाने हेतु उन्हें प्रशिक्षित, व्यावसायिक शिक्षण सरकारी, अर्द्ध सरकारी उपक्रमों में पुरुषों के समान अवसर उपलब्ध कराने एवं राजनैतिक, प्रशासनिक क्षेत्रों में उनको सहभागिता सुनिश्चित कराने हेतु व्यापक व्यवस्था की जाये। इससे उनकी व्यक्तिगत उन्नति के साथ साथ विकास के सामाजिक और आर्थिक आयाम का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

इसमें अब बहस की कोई गुंजाइश नहीं है कि आदिवासी महिलायें जाति समाज की अपनी प्रतिरूप महिलाओं की तुलना में आर्थिक व सामाजिक स्वतंत्रता की अधिक अधिकारिणी हैं, किन्तु "सुपीरियर सोशल स्टेटस" से उनकी बराबरी करना नासमझी है। आदिवासी महिलाओं की यह स्थिति उनके उत्पादन के स्तर के जीवन भरण की विवशता के कारण आयी है जबकि अन्य, जाति समाज में लिंग भेद आर्थिक विभेद तथा आधुनिकीकरण से आया है।

यदि सूक्ष्मता के साथ परीक्षण किया जाए, तो आदिवासी समाज में भी लिंग भेदभाव विद्यमान है, किन्तु यह उनकी अभावग्रस्त आर्थिक परिस्थिति के कारण ओझल हो जाता है, जो पुरुषों और महिलाओं को संयुक्त आर्थिक क्रियाओं में सहयोगी व सहभागी बनाने के लिए बाध्य करता है। लेकिन आज स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि आदिवासी महिलाओं को वहाँ का पुरुष वर्ग अपनी जातीय अस्मिता के लिए खतरा मान रहे हैं। क्योंकि सरकारी विकास योजनाओं के कारण बाहरी लोगों का आदिवासी अंचल में अन्त: प्रवाह हो रहा है, जिसके कारण आदिवासी और गैर आदिवासी के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित हो रहे हैं, जिसे पुरुष वर्ग न केवल अवांछित अपितु जातीय अस्मिता के लिए भी खतरा समझता है। जिसने जनजातीय महिलाओं के लिए एक गंभीर समस्या उत्पन्न कर दी है। ने उन्हें सामाजिक प्रताड़ना तथा भेदभाव का सामना करना पड़ता है। वे शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण तथा सम्पत्ति की दृष्टि से पुरुषों से पिछड़ गई हैं। पितृसत्तात्मक समाज उन्हे अधीनस्थता की स्थिति में ला दिया है।

जनजाति समाज की नारी को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने की महती आवश्यकता है ताकि वे सभ्य कहे जाने वाले समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें। आज शिक्षा के माध्यम से जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह राजनीति हो, डॉक्टर, इंजीनियर या प्रोफेसर का पेशा हो चाहे शिक्षिका समाज सेवी संगठन हो, जनजातीय महिलाओं ने अपना कदम आगे बढ़ाना शुरू कर दिया है।

संदर्भ

- उत्प्रेती, डॉ. हरिशचन्द्र-भारतीय जनजाति।
- रसेल, आर.वी.राय बहादुर हीरालाल ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ द सेन्ट्रल प्राविन्येज ऑफ इंडिया, खण्ड-3, 1975।
- सच्चिदानंद-सोशल स्ट्रक्चर स्टेट्स एण्ड मोबिलिटी पैटर्न द केस ऑफ ट्राइबल वीमेन इन इंडिया वाल्यूम-58।
- योजना, सितम्बर 1997।
- दैनिक भास्कर, 2008 मार्च।
- शुक्ल, हीरा लाल-छत्तीसगढ़ का जनजातीय इतिहास।
- तिवारी, डॉ. शिव कुमार म.प्र. की जनजातीय संस्कृति।
- शुक्ल, हीरा लाल-आदिवासी अस्मिता और विकास।
- अग्रवाल, राम भरोसे गोंड़ जात का सामाजिक अध्ययन।
- मजूमदार, डी.एन. ट्राइबल वीमेन ऑफ नार्थ ईस्ट इंडिया।

औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था का मजबूत स्तम्भः गाजीपुर अफीम फैक्ट्री

डॉ० जय लक्ष्मी कौल

इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

गाजीपुर अफीम फैक्ट्री भारत में औपनिवेशिक शासन की सबसे प्रमुख व दुर्लभ विरासतों में से एक है, जो कि बनारस अफीम एजेन्सी का मुख्यालय थी, और वर्तमान समय में भारत सरकार के लिए अफीम बनाने का काम करती थी। इसे सरकारी अफीम 'अल्कलाइड वर्क्स' के नाम से जाना जाता है और यह वित्त मन्त्रालय के राजस्व विभाग के अन्तर्गत आती है।

1820 में अपनी स्थापना के बाद से ही यह पूरी तरह से लाभ में चल रही है। यह दुनिया की सबसे पुरानी और सम्भवतः सबसे बड़ी अफीम फैक्ट्री होने का दावा करती है। पटना अफीम फैक्ट्री, जो कि बांकीपुर में स्थित थी अन्ततः चीन के साथ अफीम के कम व्यापार के कारण 1911 में बन्द हो गयी किन्तु गाजीपुर अफीम फैक्ट्री ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को वित्तपोषित किया था। जिसके परिणाम स्वरूप भारत विश्व का सबसे बडा अफीम उत्पादक देश बनकर सामने आया था।

गाजीपुर स्थित यह कारखाना 'सूडर' कारखाने के नाम से जाना जाता था और पटना कारखाने के साथ मिलकर यह उत्तर भारतीय अफीम का केन्द्रीय मुख्यालय था। गाजीपुर बनारस अफीम कारखाने की उप-एजेंसियों में से एक था। अफीम की खेती में शामिल संयुक्त प्रान्त के सभी जिलों से कच्ची अफीम के साथ-साथ अन्य उत्पाद जैसी पत्ती, कचरा आदि को अफीम कारखाने में भेज दिया जाता था, जो गाजीपुर की एक औद्योगिक चिंता बनी हुई थी।

प्रारम्भिक दिनों में यह फैक्ट्री शहर के पूर्व में एक बड़े घेरे में स्थित थी, जिसका इस्तेमाल एक धर्माध औषधालय के रूप में किया जाता था किन्तु बाद में इसे बेच दिया गया और उसके पश्चात् फैक्ट्री को एक इमारत में स्थापित कर दिया गया जो अब जिला जेल में शामिल है।[1]

1820 में अंग्रेजों ने अफीम की खेती का विस्तार करने का फैसला किया जिसके परिणामस्वरूप अफीम बनाने के काम के लिए एक बड़े परिसर की आवश्यकता महसूस हुई। यह याद रखना चाहिए कि 1820 तक एकाधिकार के शुरूआती दशकों में सरकार ने अफीम की खेती पर प्रतिबन्धात्मक नीति अपनायी थी। लेकिन तुर्की और मालवा अफीम जैसे प्रतिस्पर्धियों से बढ़ती प्रतिस्पर्धा और चीन के बाजार पर उनके कब्जा करने के डर के कारण उन्होंने खेती का विस्तार करने का फैसला किया और फलतः 1820 तक एजेंसी के संचालन में वृद्धि हुई।

कम्पनी के अधिकारियों ने इसे ''Ghazeepore Carcanna'' (गाजीपुर कारकन्ना) कहा; 1820 के बाद यह शहर और सिविल स्टेशन के बीच गंगा के ऊँचे तट पर स्थित था और लगभग 45 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ था।[2] फैक्ट्री का परिसर बहुत बड़ा था जिसमें पानी की टंकियाँ, लोहे की छत वाले शेड और बहुत सारे आंगन थे। फैक्ट्री के अन्दर की इमारतों और यह कैसी दिखती थी, इसका विवरण जानने के लिए 19वीं शताब्दी के तीन ग्रन्थों का अध्ययन जरूरी है। पहला ग्रन्थ जे0 डब्लू, एस0 मैकआर्थर द्वारा लिखित 38 पन्नों की एक गाइड बुक है[3] जो 1865 में प्रकाशित हुई थी। मैकआर्थर गाजीपुर अफीम फैक्ट्री के अधीक्षक थे और उन्होंने यह गाइड बुक उन जिज्ञासु अंग्रेजों के लिए लिखी थी जो फैक्ट्री और इसके संचालन के बारे में जानना चाहते थे। एक दिलचस्प तथ्य यह है कि मैक आर्थर को अपनी अफीम फैक्ट्री पर बहुत गर्व था।

मैकआर्थर की गाइडबुक का ही इस्तेमाल अमिताव घोष ने अपनी बहुचर्चित कृति ''सी ऑफ पॉपीज''[4] में फैक्ट्री का वर्णन करते समय किया था। हालाँकि यह एक काल्पनिक उपन्यास है, लेकिन इसे शोध उपन्यास कहना उचित होगा। चीन के साथ अफीम व्यापार और ''बंधुआ मजदूरों'' का पलायन इस उपन्यास में चर्चित दो महत्वपूर्ण विषय है।

फैक्ट्री के पुनर्निमाण में सहायक एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ कर्नल वाल्टर शेरविल की स्केचबुक है।[5] हालांकि यह पटना फैक्ट्री पर आधारित थी, लेकिन चूँकि इसमें शामिल प्रक्रियाएँ समान थीं अत: यह भी गाजीपुर की अफीम फैक्ट्री के बारे में जानने के लिए बहुत मददगार है।

रूडयार्ड किपलिंग, जिन्हें ज्यादातर 'जंगल बुक' के लिए जाना जाता है, ऐसे ही लोगों में से एक थे, जो इस फैक्ट्री के बारे में जानने के लिए उत्सुक थे और आखिरकार 1888 में वे वहाँ गये थे। उन्होंने अफीम फैक्ट्री एवं उसमें अफीम बनाने के कार्य के बारे में अपना अनुभव लिखा है। वे लिखते हैं कि ''गंगा के किनारे बनारस से चालीस मील की दूरी पर, गाजीपुर फैक्ट्री है, जो एक अफीम की टकसाल है, जहाँ से कीमती केक निकलते हैं जो भारत सरकार के खजाने को भरते हैं.....यहाँ बड़े-बड़े गोदाम हैं, बड़े-बड़े खलिहान हैं जो पाँच लाख पाउण्ड से ज्यादा की अफीम रख सकते हैं। कई एकड़ में ईटों से बनी फर्श है, पेटियों के ऊपर पेटियाँ हैं और फिर भी और भी गोदाम हैं। इस पूरी जगह का हृदय प्रयोगशाला है, जो अफीम की बीमार करने वाली हल्की गंध से भरी हुई एक घेरे में स्थित है।[6]

फैक्ट्री में छह बडे बाड़े थे। गंगा नदी के किनारे अधीक्षक का घर था। उत्तर-पश्चिमी कोने में फैक्ट्री इंजीनियर और एक सहायक के लिए क्वार्टर थे। उत्तर की ओर गार्ड लाइन थी, जो सड़कों के दोनों ओर बनी थी। सार्वजनिक सड़क और मुख्य भवन की पश्चिमी दीवार के बीच एक बड़ा परिसर था जिसमें अधीक्षक का भोजन कक्ष, अग्निशमन कक्ष और नियोजित सहायकों के बड़े कर्मचारियों के लिए इमारतें थीं।[7]

कारखाने की मुख्य इमारत में दो बाड़े थे, एक भीतरी और दूसरा बाहरी। बाहरी बाड़े में 25 हजार मन की क्षमता वाले गोदाम थे जिसमें पत्ते रखे जाते थे, सात गोदाम अफीम के कचरे के लिए, नौ शेड खाली बक्सों के लिए, तीन गोदाम कप, कार्यशालाएँ, दमकल घर और कोयला तथा विविध सामान रखने के लिए थे।[8]

अफीम को बनाने और उसके भंडारण से सम्बन्धित इमारतें भीतरी घेरे में स्थित थीं। दस हजार जार अफीम रखने की क्षमता वाला एक आयात शेड था। भीतरी घेरे में आठ गोदाम भी थे जिनमें लगभग 13,50,000 अफीम के गोले रखने की क्षमता थी। इन गोदामों में लकड़ी की रैक लगी हुई थी। लगभग 47,000 मन की क्षमता वाला एक भंडार भी था।[9] अफीम की जाँच और एल्कलॉइड बनाने के लिए एक प्रयोगशाला थी, जिसे किपलिंग ने कारखाने का हृदय कहा था। इस प्रयोगशाला में दो अन्य इमारतों के साथ-साथ आबकारी अफीम का निर्माण होता था। कुछ अन्य इमारतें भी थीं, जिनका उपयोग थैलियाँ धोने और लेवा तैयार करने के लिए किया जाता था। आग लगने की स्थिति में दो भाप और अग्नि हस्तचालित इंजन थे। इसके साथ ही निरन्तर पानी की आपूर्ति भी थी। बाहरी घेरे में एक फीट ऊँची पानी की टंकी थी।[10]

इस इमारत के निर्माण के लिए लाल ईटों का इस्तेमाल किया गया था जो आज भी कमोवेश अपरिवर्तित अवस्था में मौजूद है। अफीम फैक्ट्री एक अच्छी तरह से संरक्षित एवं ब्रिटिश प्रतिष्ठान के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण इमारत थी। वास्तुकला की दृष्टि से यह बहुत ही शानदार थी। इसकी बाहरी सतह को देख कर ऐसा लगता था कि यह रानी विक्टोरिया के मुकुट के सबसे कीमती रत्नों में से एक है।[11]

अफीम निर्माण का मुख्य स्रोत होने के अलावा, यह कारखाना गाजीपुर और आस-पास के इलाकों के लोगों के लिए रोजगार का स्रोत भी था। कारखाने में काम करने वाले लोगों की संख्या मौसम के हिसाब से बदलती रहती थी। आम तौर पर यह संख्या प्रतिदिन पाँच सौ से दो हजार तक होती थी और अप्रैल से जून तक के व्यस्त मौसम में यह संख्या औसतन लगभग तीन हजार पाँच सौ तक हो जाती थी।[12]

1893 में अफीम पर रॉयल कमीशन के सदस्यों के समक्ष अपना साक्ष्य देते हुए जी0एम0 ग्रेगरी, जो चार वर्षों तक (1890-1894) गाजीपुर कारखाने के प्रमुख थे ने कहा, ''गाजीपुर की जनसंख्या चालीस हजार मानी जा सकती है। व्यस्त मौसम में लगभग चार हजार लोग या कारखाने में कार्यरत लोगों के दस प्रतिशत लोग होते हैं। कारखाने के कारण ही इस स्थान के चारों ओर छोटी-छोटी बस्तियाँ विकसित हो गयी हैं। लोग अपने जीवन-यापन के लिए पूरी तरह से कारखाने पर निर्भर हैं। पूरा परिवार

वहाँ काम करने जाता है। सामान्य समय में लगभग 2000 लोग प्रतिदिन काम करते हैं, जिनमें पुरूष, महिलाएँ और बच्चे शामिल हैं।[13] ग्रेगरी ने अफीम व्यापार के पक्ष में यह कथन दिया कि यदि व्यापार बन्द कर दिया जाता तो कारखाने में काम करने वाले हजारों लोग बेरोजगार हो जाते, जिससे उनका जीवन गम्भिर रूप से प्रभावित होता। इन साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि अफीम फैक्ट्री स्थानीय लोगों के लिए रोजगार का एक बड़ा स्रोत थी।

अफीम के निर्माण में अत्यधित सावधानी बरती जाती थी। मूल रूप से इसमें पाँच चरण शामिल थे। पहले चरण में कच्चे उत्पाद को सूखने देकर एक मानक स्थिरता प्राप्त करने की प्रक्रिया शामिल थी। दूसरे चरण में अर्ध तरल पदार्थो को एक साथ मिलाया जाता था। तीसरे चरण में केक बनाए जाते थे। चौथे चरण में अफीम को सुखाया जाता था और अन्त में लकड़ी के बक्सों में इन केक को पैक करके नदी या रेल के रास्ते कलकत्ता भेजा जाता था।

अफीम निर्माण के विवरण में जाने से पहले, अफीम एजेण्ट के अधीन कार्यरत प्रशासनिक कर्मचारियों के बारे में जानना भी महत्वपूर्ण है। बनारस अफीम एजेण्ट संयुक्त प्रान्त आगरा और अवध का स्थानीय प्रशासक था और अपने अधीन प्रत्येक कार्य के लिए राजस्व बोर्ड के प्रति उत्तरदायी था। फैक्ट्री अधीक्षक के साथ-साथ सहायक फैक्ट्री अधीक्षक, उप अफीम एजेण्ट और सहायक अफीम एजेण्ट व अफीम एजेण्ट अफीम निर्माण के प्रशासनिक कर्मचारी होते थे।

फैक्ट्री अधीक्षक वह अधिकारी होता था जिसके अधीन गाजीपुर फैक्ट्री का पूरा प्रभार होता था। 1857 के अधिनियम XIII के अनुसार वह पदेन अफीम परीक्षक भी होता था। सहायक फैक्ट्री अधीक्षक द्वारा उसके कर्तव्यों के निर्वहन में उसकी सहायता की जाती थी। फैक्ट्री के कर्तव्यों में कोषागार का नियन्तर्ण पत्ती की प्राप्ति और व्यय, अफीम के कचरे की प्राप्ति और व्यय, अफीम का आयात परीक्षण, मानक गणना और भंडारण, प्रोविजन अफीम का निर्माण और देखभाल, प्रोविजन अफीम की पैकिंग और प्रेषण, उत्पाद शुल्क, अफीम का निर्माण और आपूर्ति, तस्करी की गई अफीम का निस्तारण; एल्कलॉइड का निर्माण और आपूर्ति, फैक्ट्री खाते और उसकी जाँच इत्यादि शामिल थे।[14]

आम तौर पर अप्रैल की नौ तारीख को अफीम की नई फसल आती थी और इस उद्देश्य से कारखाने की सफाई की जाती थी ताकि उसे आगामी सीजन के लिए तैयार किया जा सके। कोठियों में प्रारम्भिक जाँच के बाद कच्ची अफीम मिट्टी के बर्तनों में कारखाने में आती थी। जिसे कोठियों तक रेल या गाड़ी से भेजा जाता था। कारखाने में पहुँचने पर जिलेदार की मौजूदगी में अफीम को उतारा जाता था और उसका संग्रहण किया जाता था, अगर बर्तन टूटे होते थे तो उन्हें अलग रख दिया जाता था। इन खेपों को अफीम चालान के नाम से जाना जाता था।

अगला चरण अफीम का वजन था जिसके लिए कारखाना अधीक्षक एक तिथि तय करता था। यह किसान के लिए एक महत्वपूर्ण क्षण था क्योंकि इससे उसकी वार्षिक आय निर्धारित होती थी[15] इस उद्देश्य के लिए तौल अधिकारी नियुक्त किये गये थे, जिनको सहायता के लिए स्थानीय चालान रजिस्टर में डेटा दर्ज करने के लिए एक मोहर्रिर होता था। चालान एक नियम के रूप में, कारखाने में उनके आगमन के क्रम में तौल के लिए ले जाया जाता था।[16] किसानों की समझ के लिए जार का वजन हिन्दी में लिखा जाता था।

अगले कार्य दिवस पर जार तोले जाते थे; जिसमें स्थिरता की जांच के लिए प्रारम्भिक परीक्षण किया जाता था। इसमें हाथ से परखना शामिल था जिसमें रंग सुगंध और बनावट का विश्लेषण किया जाता था। आदर्श स्थिरता 70 प्रतिशत अपेक्षित थी यानी 70 प्रतिशत ठोस और 30 प्रतिशत नमी की मात्रा। इसके बाद एक और विश्लेषण किया जाता था, जिसमें मिलावट की जाँच की जाती थी। मिलावट की जाँच करने के तरीके काफी परिष्कृत थे और उनमें रासायनिक और मैनुअल दोनों विश्लेषण शामिल थे।[17]

कच्ची अफीम को मिट्टी रेत या गोबर के साथ मिलाने जैसी मिलावट का पता ठंडे पानी में घोलने से ही चल जाता था। जिसके बाद अशुद्धियाँ पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती थी[18] अफीम के किसान आमतौर पर तम्बाकू, भांग या अन्य वनस्पति अर्क का उपयोग करके अपनी अफीम में मिलावट करते थे। इस तरह की मिलावट की जाँच के लिए ''सीसा" अमोनिया या आयोडीन के टिंचर के घोल की कुछ बूंदे डाली जाती थी।[19] सभी कार्य परीक्षा हॉल में किए जाते थे। जहाँ उत्पाद का मूल्य और शुद्धता सुनिश्चित की जाती थी।

खराब अफीम दो प्रकार की होती थी पहली थी ''पानी-अमेज' जिसमें मात्रा बढ़ाने के लिए पानी मिलाया जाता था और दूसरी थी ''पासेवग-अमेज'' जिसमें कच्ची अफीम का वजन बढ़ाने के लिए अफीम में "पासेवा'' मिलाया जाता था। ऐसी उपज के लिए

दंड स्वाभाविक रूप से किसान पर लगाया जाता था खराब श्रेणी की ऐसी अफीम का उपयोग अफीम निमार्ण के लिए नहीं किया जाता था और इसे लेवा या आबकारी निर्माण के लिए अलग रखा जाता था।[20]

कोई भी किसान जिसकी अफीम को संदिग्ध अफीम की श्रेणी में रखा गया हो, वह अपने उत्पाद की जाँच में शामिल हो सकता था। अफीम की एक और श्रेणी थी, जली हुई अफीम, इस श्रेणी में ऐसी अफीम शामिल थी जो धुएँ के प्रभाव के खराब हो गयी थी, साथ ही ऐसी अफीम भी शामिल थी जो आग के सम्पर्क में आने से खराब हो गयी थी।[21]

अगर कोई किसान अपनी अफीम के वर्गीकरण से सन्तुष्ट नहीं होता था तो वह अलग से इसकी जाँच की माँग कर सकता था,। ऐसी अफीम को ''आसामीवार अफीम'' के रूप में वर्गीकृत किया जाता था और उसे अलग-अलग बर्तनों में रखा जाता था। किसान की मौजूदगी के ऐसी अफीम की पूरी जाँच की जाती थी। जाँच प्रक्रिया पूरी होने के बाद अफीम के मूल्य की गणना की जाती थी जिससे अफीम की खेती करने वाले किसानों की आय तय होती थी। 70 प्रतिशत स्थिरता के लिए अनुबन्ध में पहले से तय पूरा भुगतान दिया जाता था। स्थिरता में किसी भी तुटि या कमी के परिणामस्वरूप भुगतान में तदनुसार वृद्धि या कमी होती थी।

निर्माण के लिए उपयुक्त अफीम को बड़े-बडे पत्थरों से बने बर्तनों में संग्रहित किया जाता था, जिन्हें वैट (टंजे) कहा जाता था, और उन्हें मिक्सिंग करने वाले कमरे में ले जाया जाता था। यहाँ इसे कभी-कभी नीचे से हिलाया जाता था, जब तक कि यह आवश्यक गाढापन प्राप्त न कर ले।[22] जब कच्ची अफीम को प्रकाश और हवा के सम्पर्क में लाया जाता था, तो नमी कम होने के कारण यह गहरे रंग की हो जाती थी।

मिश्रण कक्ष में एकक्षेत्रकी गयी सभी अफीम के लिए अन्तिम लक्ष्य का मानक 70 प्रतिशत स्थिरता प्रप्त करना था। एक समरूप पेस्ट प्राप्त करने के लिए उच्च स्थिरता वाली अफीम को कम स्थिरता वाली अफीम के साथ मिलाया जाता था। ''उन्हे (अफीम को) उथले लकड़ी के बक्सों में रखा जाता था, जिसमें लोग हाथ से उसे मिलाते हुए गूथते थे।[23] वाल्टर शेरविल ने भी अपने चित्रों में इस दृश्य को दर्शाया है।

अमिताभ घोष ने भी अपनी पुस्तक में इस दयनीय दृश्य का वर्णन किया है, ''वे नंगे बदन के लोग थे जो अफीम के टैंकों में कमर तक डूबे हुए थे, अफीम के कीचड को नरम करने के लिए इधर-उधर घूम रहें थे किसी तरह आगे बढ़ने में कामयाब रहे जब वे आगे नहीं बढ सके तो वो टैंकों के किनारों पर बैठ जाते थे, केवल अपने पैरोसे काले कीचड़ को हिलाते रहते थे।''[24]

ऐसी परिस्थितियों में काम करना बहुत कठीन और बेहद जोखिम भरा रहा होगा। ब्रिटिश अफीम एजेण्ट काम करने की परिस्थितियों और दिन के अन्त तक अफीम सानने की प्रक्रिया में शामिल श्रमिकों की स्थिति से अच्छी तरह से वाकिफ थे। सप्ताह के लगभग सभी दिनों में कारखाने के अन्दर ये श्रमिक अफीम के सीधे सम्पर्क में रहते थे, जो एक जहरीली दवा थी। इसका उन लोगों पर असर हुआ होगा, वास्तव में अफीम के लगातार सम्पर्क ने उन्हें कुछ हद तक निष्क्रिय व अफीम-व्यसनी बना दिया था, जो सम्भवत: त्वचा के सम्पर्क या अफीम के धुंए के लगातार साँस लेने के कारण हुआ था। ईटवेल के अनुसार ''इस तरह का काम करने वाले लोग अपने दैनिक काम के अंत में आलसीपन की शिकायत करते हैं, और घोषणा करते है कि शाम को उन्हें जल्दी ही नींद आ जाती है, लेकिन वे इस प्रभाव को अप्रिय या हानिकारक नहीं मानते हैं।''[25]

ईटवेल ने फैक्ट्री के अन्दर होने वाली कुछ अन्य घटनाओं का भी वर्णन किया है, जिससे फैक्ट्री के अन्दर अमानवीय परिस्थितियों का अंदाजा मिलता है। उन्होंने लिखा है कि ''कुछ महीने के बच्चे, अक्सर अफीम से सने बर्तनों के नीचे फर्श पर लेटे हुए देख जा सकते है जिस खतरनाक स्थिति में उन्हें उनकी विचारहीन माताएँ छोड़ देती है.....[26]

अगला चरण चरण अफीम निर्माण की पूरी प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया थी इसमें उच्च स्तर की शिल्पकला भी शामिल की। इसे ''केकिंग (Caking) कहा जाता था। इसमें एक समान आकार के एक सेर और दस चिटक के अफीम के गोले बनाये जाते थे।

केक बनाने के कमरे को पाँच सुविधाजनक भागों में विभाजित किया गया था। जिन्हेंA, B, C, D और E अक्षरो से पहचाना जाता था। प्रत्येक भाग को लकड़ी की रेलिंग से अलग किया गया था। प्रत्येक केक बनाने वाले को एक लकड़ी की सीट और उभरे हुए किनारे वाली ट्रे दी गई थी, साथ ही एक पीतल का केक साँचा भी दिया गया था जिसका उपयोग अफीम की गेंद को आकार देने के लिए किया जाता था। केक बनाने की प्रक्रिया हर दिन सुबह-सुबह शुरू होती थी। प्रक्रिया अफीम की गेद की बाहरी आवरण को बनाने से शुरू होती है। जिसके लिए लगभग एक इंच मोटी पत्तीयों की परत कप में दबाई जाती थी। इसके लिए लगभग पाँच

चिटक पत्तीयों की आवश्यकता होती थी। इन पत्तियों में सही मात्रा में अफीम डाली जाती थी, फिर बाहरी पत्तियों को खींचकर खोल को बन्द कर दिया जाता था, जो कप के किनारे लटकती थीं।

खोल पूरी तरह से बंद होने के बाद इसे खसखस के कचरे की एक बडी परत से ढक दिया जाता था और फिर उन्हें छोटे आकार के मिट्टी के प्यालों में डाल दिया जाता था। अफीम की गोलियों के आकार के बारे में उचित देखभाल की व्यवस्था की गई थी। नासपाती के आकार का केक बनाने से परहेज किया जाता था क्योंकि इसे खराब माना जाता था। वो केक जो गोलाकार आकार का हो ना तो ढीला और ना ही गाठदार, अपनी सतह के हर हिस्से पर समान रूप से दबाव का प्रतिरोध करता हुआ, उसे एक आदर्श केक माना जाता था।[27]

केक बनाने के लिए एक निश्चित समय सीमा तय की गई थी। हर बीस मिनट में अधिकतम पाँच केक बनाने की सीमा तय की गयी थी। किसी भी केक बनाने वाले को बीस मिनट में पाँच से ज्यादा केक बनाने की इजाजत नहीं था। एक केक बनाने वाला औसतन प्रतिदिन 70 केक बनाता था।[28] केक बनाने वाले को हर दस केसक बनाने पर एक आना मिलता था।

अफीम की इन गोलियों को कड़ी निगरानी में धूप में रखा जाता था ताकि लगभग तीन दिनों तक धूप और हवा मिले। इसके बाद इन गोलियों को बड़े लकड़ी के सेल्फ पर स्टॉकिंग रूम में सजा दिया जाता था। 450 लड़के गोलियों को पलटने, हवा देने, जांचने या उन्हें सूखे और कुचले हुए खसखस की पंखुड़ियों के चूर्ण से रगड़ने में लगाये जाते थे ताकि उनमें फफूदी या कीडे ना लगे, यह सारा कार्य एक या दो लोगों की देखरेख में किया जाता था। यह स्टॉकिंग रूम में आवश्यक देखभाल की माता को दर्शाता है। जिसका उल्लेख ईटवेल ने भी किया है।

केक बनाने की पूरी प्रक्रिया में लगभग तीन महीने लगते थे, जो मई से शुरु होकर जुलाई के अंत तक चलती थी। अगस्त तक स्टॉकिंग रूम में रखे जाने के बाद, इसे लगभग दो महीने तक रखा जाता था जब तक कि ये पूरी तरह से सूख न जाए और आम या साल की लकड़ी से बने बक्सों में पैक करके भेजने के लिए तैयार न हो जाए।

अफीम केक बनाने की पूरी प्रक्रिया के दौरान, विभिन्न वर्गो में से एक वर्ग को ''केकिंग स्कूल'' के रूप में अलग रखा गया था। इस स्कूल का मुख्य उद्देश्य अफीम केक बनाने की विधियाँ सिखाना और नये लोगों को कारखाने के भावी केक निर्माता बनने के लिए तैयार करना था। आधुनिक शब्दों में यह एक तरह का इर्न्टनशिप स्कूल था। स्कूल में प्रशिक्षक प्राप्त करने वाले लोगों की संख्या कारखाने में कार्यरत कुशल केक निर्माताओं की कुल संख्या का लगभग पाँचवाँ हिस्सा होती थी।[29] उन्हें दो ग्रेड में विभाजित किया गया था, उच्च श्रेणी को 4.8 रूपये प्रतिमाह और निम्न श्रेणी को 4 रूपये प्रतिमाह पारिश्रमिक के रूप में मिलते थे। इस स्कूल में प्रवेश के लिए शरीरिक रूप से बेहतर और बुद्धिमान पुरुषों को प्राथमिकता दी जाती थी।

अगला चरण अफीम को लकड़ी के बक्सों में पैक करना था। सीजन की पैकिंग शुरु करने की तारीख फैक्ट्री के अधीक्षक द्वारा पहले से तय की जाती थी, ताकि विशेष ट्रेनों की व्यवस्था की जा सके और गाजीपुर की पुलिस को पहले से सूचित किया जा सके ताकि वे अपनी ड्यूटी के बारे में पहले से जरूरी तैयारियों कर सकें। इन सबके लिए अफीम एजेण्ट और बोर्ड की पूर्व स्वीकृति की जरूरत होती थी। पैकिंग के लिए बाद में बनने वाले केक की तुलना में पहले बने केक को प्राथमिकता दी जाती थी। सामान्य मौसम की स्थिति में पैकिंग पाँच नवम्बर से शुरु होती थी। बारिश होने पर प्रक्रिया में देरी हो जाती थी।

पैकिंग से पहले नियमत: अफीम के छह केक चुने जाते थे और दो-दो केक कलकत्ता स्थित सरकारी रासायनिक परीक्षक और पटना स्थित अफीम परीक्षक के पास भेज दिये जाते थे। शेष दो केक फैक्ट्री की ही प्रयोगशाला में अन्तिम परीक्षण और विश्लेषण के लिए भेजे जाते थे। इसके बाद पैकिंग की प्रक्रिया शुरु होती थी। पैक तैयार होने में औसतन दस से बारह दिन लगते थे, जिसके कारण पैकिंग का वजन आमतौर पर केक के औसत वजन से एक या दो चिटक कम रखा जाता था। ऐसा नमी के कारण होने वाले नुकसान को संतुलित करने के लिए किया जाता था।

अफीम को संदूकों में रखना भी एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसके लिए काफी सावधानी की जरुरत थी हर संदूक में दो परतें होती थी। हर परत पर बीस अफीम के गोले रख्खे जाते थे। हर संदूक का वजन 1 मन 28 सेर और 4 चिटक होता था और इसमें अफीम के वह गोले भी शामिल होते थे जो केक के खोल को बनाने के लिए पेस्ट के रूप में इस्तेमाल किये जाते थे।[30] इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि हर अफीम के गोलों में एक दूसरे से काफी दूरी पर हो। संदूक की ऊपरी और निचली परत को अलग करने के लिए एक चटाई का इस्तेमाल किया जाता था। गद्दी लगाने के उद्देश्य से सभी कोनों को अफीम के कचरे से भर दिया जाता था।

बरसात के दिनों को छोडकर पूरे सप्ताह पैकिंग का काम किया जाता था और हर दिन लगभग 500 पेटियाँ तैयार की जाती थी। अफीम की पैकिंग के लिए इस्तेमाल की जाने वाली पेटियाँ मुख्य रूप से साल और आम की लकड़ी से बनी होती थी। ये पेटियाँ अफीम के कारोबार में वजन की मानक इकाई बन गई थी।

अफीम की इन पेटियों को पूर्वी भारतीय रेलवे से कलकत्ता के घाटों पर भेजा जाता था, जहाँ से ये अफीम के गोदामों तक पहुचती थी। रेलवे के आने से पहले अफीम को तेज गति से चलने वाली नावों पर कलकत्ता भेजा जाता था जिन्हें अफीम क्लिपर कहा जाता था।

गाजीपुर से कलकत्ता तक इतनी देखभाग के बाद जो अफीम पहुँचती थी, उसे ''प्रोविजन अफीम'' के नाम से जाना जाता था। यह अफीम सिर्फ निर्यात बाजार के लिए थी, मुख्य रूप से चीन के लिए। अफीम के उत्पादन और कलकत्ता में इसके शिपमेंट तक ही ब्रिटिश लोगों की भागीदारी सीमित थी, जहाँ इसे नीलाम कर दिया जाता था।

मई और जून तक अफीम ऐजेण्ट उत्पादन का मोटा अनुमान लगा लेते थे। और जून के मध्य तक बोर्ड विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करता था, जिससे सरकार को बिक्री के लिए उपलब्ध पेटियों की संख्या तय करने और विज्ञापित करने की अनुमति मिल जाती थी। जून के अन्त तक कैलेंडर वर्ष में बेची जाने वाली मात्रा को सरकार द्वारा अधिसूचित कर दिया जाता था। इसमें ''बिहार'' और ''बनारस'' अफीम के सम्बन्धित अनुपात का भी उल्लेख किया गया था।'' अधिसूचना में यह शर्त रख्खी गई थी कि ब्रिक्री के लिए अधिसूचित माता में तीन महीने की पूर्व सूचना के बिना कोई कमी नहीं की जाएगी, और किसी भी स्थिति में बिक्री के लिए पेश की जाने वाली मात्रा में वृद्धि नहीं की जाएगी। नवम्बर के अन्त तक बोर्ड सामान्य अधिसूचना जारी कर देता था, जिसमें बिक्री की शर्ते और तारीख जैसे विवरण शामिल होते थे।

1820 के दशक से पहले कम्पनी साल में सिर्फ दो बार नीलामी करती थी। प्रावधानों के आकार में पचास हजार से ज्यादा संदूकों की वृद्धि और बेहतर और तेज गति से चलने वाले जहाजों के आगमन के साथ-साथ रलवे के आगमन के साथ, अफीम का निरन्तर प्रवाह बनाए रखा जा सका और इस लिए 19वीं शताब्दी के मध्य तक, नीलामी गैर कानूनी आधार पर की जाने लगी। तब सरकार ने फसल को कमोवेश बारह बराबर अनुपातों में विभाजित किया और हर महिने उसमें से एक की निलामी की इस बिक्री या निलामी बाले स्थान को 'कलकत्ता बाजार' के नाम से जाना जाता था।

प्रोविजन अफीम के अतिरिक्त गाजीपुर कारखाने में दो अन्य प्रकार की अफीम बनाये जाने की भी चर्चा मिलती है। पहली एक्साइज अफीम जिसे आबकारी अफीम भी कहा जाता था और जो कि स्थानीय खपत के लिए होती थी और दूसरी 'मेडिकल अफीम' जिसे चिकित्सा विभागों को भेजा जाता था।

अफीम फैक्ट्री की सुरक्षा के लिए भी निश्चित और पुख्ता प्रबन्ध किये गए थे फैक्ट्री की सुरक्षा के लिए स्थायी गार्डो की भर्ती की गई थी। गाजीपुर के लोगों के लिए यह सीमा 20 प्रतिशत तय थी। यानी कुल गार्ड पदों में से केवल 20 प्रतिशत स्थानीय लोगों से भरे जाते थे। इसका तर्क यह था कि स्थानीय गार्ड अपने स्थानीय क्षेत्र के ज्ञान के कारण किसी भी तरह की अवैध गतिविधि में शामिल हो सकता था जिससे सुरक्षा को खतरा हो सकता था। इससे बचने के लिए बाकी 80 प्रतिशत गार्ड दूसरे अलग-अलग जिलों से भर्ती किये जाते थे। अच्छे वर्ग के और अच्छी कद-काठी वाले लोगों को प्राथमिकता दी जाती थी। अच्छे चरिक्षेत्र वाले ब्रिटिश भारतीय सेना के सेवानिवृत्त सैनिकों की भी भर्ती की गयी थी।

फैक्ट्री के अन्दर प्रवेश सीमित था। फैक्ट्री में काम करने वाले लोगों के अलावा किसी को भी फैक्ट्री अधीक्षक या अफीम एजेंण्ट की पूर्व अनुमति के बिना अन्दर जाने की अनुमति नहीं थी। फैक्ट्री परिसर से बाहर आने वाले हर व्यक्ति की गहन तलाशी ली जाती थी, सिवाय राजपतिर्त अधिकारियों, अफीम परखियों व फैक्ट्री गार्ड के अधिकारियों के।

गाजीपुर कारखाना गाजीपुर और उसके आस-पास के इलाकों से कुछ स्थानीय खरीद में भी शामिल था। स्थानीय खरीद में कुम्हारों द्वारा 250 रूपये प्रति किलो की दर से आपूर्ति किए गए 20 से 25 लाख मिट्टी के प्याले और 20000 से 25000 बांस की चटाई शामिल हैं, जिनका उपयोग अफीम की पैकिंग के लिए संदूक में दो परतों को अलग करने के लिए किया जाता था और जिसकी कीमत 3.8 रूपये प्रति सैकड़ा थी।

अपनी मौजूदगी के दो सौ साल से ज्यादा समय बाद भी, गाजीपुर अफीम फैक्ट्री की इमारतों में आज भी कोई खास बदलाव देखने को नहीं मिलता है। यद्धपि इसकी तकनीक में कुछ सुधार जरूर हुआ है। छतरीनुमा पानी की टंकी, लाल ईटों वाली इमारतें

और सूर्य घड़ी के रूप में औपनिवेशिक काल के निशान आज भी जिवन्त रूप से उपस्थित हैं और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को बनाये रखने में अफीम के उत्कट योगदान का प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके साथ ही वर्तमान समय में लगभग हजार लोगों के कार्यबल के साथ, गाजीपुर अफीम फैक्ट्री वैश्विक दवा उद्योग में एक प्रमुख भूमिका का निर्वाह कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. District Gazetteer of the United Provinces of Agra and Oudh, Vol. XXIX, Ghazipur: A Gazetteer (1909). p.59
2. Ibid
3. McArthur, J.W.S.: Notes on an Opium Factory, Thacker, Spink & Company's Press, 1865
4. Ghosh, Amitav: Sea of Poppies, Pub. Penguin, 2015
5. Sherwill, Walter Stanhope: Indian Opium, Its mode of Preparation for the Chinese market, London, James Madden, 1851
6. Kipling, Rudyard: "In an Opium Factory". The Pioneer, 16 April 1888.
7. Ibid
8. From Ghazipur Gazetteer, Op. Cit., p. 59
9. Ibid
10. Ghazipur Gazetteer, Op. Cit., p. 59-60
11. Ghosh,Amitav : Sea of Poppies, Penguin, 2015, p. 91
12. Ghazipur Gazetteer, op. cit., p. 62
13. Royal Commission on opium, Vol III: Minutes of Evidence with Appendices, London: HM50, p. 90
14. Opium Manual, Vol. III (Banaras). p. 3
15. Rolf Bauer. The Peasant Production of Opium in Nineteenth-Century India Brill. 2019, p. 56
16. Opium Manual, P. 27
17. Ralf Bauer, op. cit., p. 56
18. Ibid, p. 85
19. Eatwell, W.C.B. : on Poppy cultivation and Banaras Opium Agency. Selections from the records of the Bengal Government, Calcutta: Military orphan press. 1851, p. 16-17
20. Opium Manual. p. 37
21. Ibid, p. 40
22. Eatwell, W.C.B.: On Poppy Cultivation and Banaras Opium Agency. Op. cit., p. 18
23. Ibid
24. Ghosh, Amitav: Sea of Poppies, Penguin, 2015, p.95
25. Eatwell, p.28
26. Ibid
27. Opium Manual, p. 65
28. Eatwell, p. 19-20
29. Opium Manual, p. 80
30. Ibid

योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

डॉ० उदय कुमार

असिसेन्ट प्रोफेसर, इतिहास, राधे हरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, काशीपुर, उधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड

श्री लल्लन कुमार सिंह

असि0 प्रोफेसर (संविदा) योग विज्ञान विभाग सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोडा उत्तराखण्ड

सारांश

योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा न केवल चिकित्सा की एक प्रणाली के रूप में जानी जाती है, वरन् जीवन का यह एक तरीका है, जो कि प्रकृति के सारं नियमों को लागू करने की प्राचीन प्रथा पर आधारित है। यह प्रकृति की ओर लौटने तथा स्वयं, समाज एवं पर्यावरण के साथ सद्भावपूर्ण तरीके से रहने के सिद्धान्त पर आधारित है। योग कोई प्राचीन कालीन गल्प कथा नही है, जो कि इतिहास में समय के साथ विलुप्त हो गई है। यह वर्तमान की सर्वाधिक मूल्यवान विरासत है, जो कि आज की आवश्यकता तथा कल की संस्कृति है। योग सही तरह से जीवन जीने का विज्ञान है। प्राकृतिक चिकित्सा भारतीय एवं पश्चिमी दर्शन पर आधारित दवा रहित चिकित्सा प्रणाली है। नेचुरोपैथी इस चिकित्सा पद्धति में शरीर की प्राण शक्ति एवं आंतरिक शारीरिक प्रक्रियाओं में सुधार लाकर खुद को स्वस्थ बनाने की स्वयं की क्षमता पर आधारित है।

योग शब्द संस्कृत शब्द युज से उद्भवित है, जिसका सामान्य अर्थ होता है जुड़ना। आध्यात्मिक स्तर पर इसका अर्थ है सार्वभौमिक चेतना के साथ व्यक्तिगत चेतना का जुड़ना। व्यावहारिक स्तर पर योग शरीर, मन एवं भावनाओं के बीच संतुलन एवं सांमजस्य स्थापित करने का एक साधन है। योग का विज्ञान प्रारम्भ में भौतिक शरीर पर काम करता है। जब इस स्तर पर असुन्तुलन का अनुभव होता है, तो अंग, मांसपेशियाँ तथा तंत्रिकाओं के मध्य सांमजस्य समाप्त हो जाता है तथा वह एक दूसरे के विरोध में कार्य करने लगती है।[1] योग का मूल उद्देश्य विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के मध्य पूर्ण समन्वय स्थापित करना है, जिससे शरीर सुचारू रूप से कार्य कर सके। योग के माध्यम से भावनात्मक, मानसिक एवं शारीरिक स्तरों के मध्य अंतर्सम्बन्ध विकसित करना है। योग की अनेक शाखाएँ है, जिनमें राज हठ, ज्ञान, कर्म, भक्ति, मंत्र, कुंडलिनी प्रमुख है। योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा एक्यूपंक्चर, एक्यूप्रेशर,योग एवं ध्यान, उपवास चिकित्सा, आहार एवं पोषण, मड थेरेपी, हाइड्रोथेरेपी, चेयरोप्रैक्टिस एवं आस्टियोपैथी, हेरफेर थेरेपी, व्यायाम और इलेक्ट्रोथेरेपी, रिफ्लेक्सोलॉजी, परामर्श जैसे विभिन्न दवा रहित उपचारो पर आधारित है।[2]

योग एक प्राचीन कालीन कला एवं विज्ञान हे, जो मनुष्य के भौतिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्वास्थ्य एवं जीवन कल्याण करता है। योग का इतिहास लगभग 5000 वर्ष पुराना दर्शन है, जिसमें व्यायाम, श्वास, आहार, विश्राम एवं ध्यान का संयोजन देखने को मिलता है। यह शरीर को मजबूत एवं स्वस्थ बनाता है। भारत में योग की विभिन्न शैलियों एवं अभ्यास क्रियाओं का पालन किया जाता है। योग को आध्यात्मिक अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है, जिसका उल्लेख वेद, उपनिषद् तथा भगवत्गीता जैसे विभिन्न ग्रंथों में किया गया है। कई प्रसिद्ध योग गुरूओं ने योग का व्यवस्थित अभ्यास विधियों एवं स्वास्थ्य लाभ का संकलन किया है। इनमें पतंजलि का योगसूत्र एवं हठयोग प्रसिद्ध है।

प्राकृतिक चिकित्सा भारतीय एवं पश्चिमी दर्शन पर आधारित दवा रहित चिकित्सा प्रणाली है। नेचुरोपैथी शब्द 1895 में जॉन शील द्वारा दिया गया।[3] इस चिकित्सा पद्धति में शरीर की प्राण शक्ति एवं आंतरिक शारीरिक प्रक्रियाओं में सुधार लाकर खुद को स्वस्थ बनाने की स्वयं की क्षमता पर आधारित है। पंचमहाभूत सिद्धान्त, रोगकारक पदार्थ सिद्धान्त, प्राण शक्ति सिद्धान्त जैसी प्राकृतिक चिकित्सा की अवधारणाएँ, मनुष्य के सभी स्तर पर स्वास्थ्य एवं बीमारी की व्याख्या करती है। जल चिकित्सा, मालिश चिकित्सा, मिट्टी चिकित्सा, उपवास चिकित्सा, आहार चिकित्सा इत्यादि प्राकृतिक चिकित्सा की बुनियादी उपचार पद्धति है।[4]

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा का संयोग रोग के बोझ को कम करने के साथ साथ स्वास्थ्य रक्षा एवं जीवन कल्याण हेतु भी उपयोगी माना जाता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी प्राकृतिक चिकित्सा को भारत माता के उत्तर के रूप में देखते है, जो भारत की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों पर आधारित है।

शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा योग की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। यह एकीकरण के समग्र सिद्धान्त पर कार्य करती है। अस्थमा, मधुमेह, रक्तचाप, गठिया, पाचन विकार एवं अन्य प्रकार की पुरानी एवं नवीन प्रकार के रोगों का योग के माध्यम से सफलतापूर्वक उपचार किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में चिकित्सा वैज्ञानिकों का मत है कि योग चिकित्सा तंत्रिका एवं अंत:स्त्रावी अंगों के मध्य संतुलन रखने के कारण वर्तमान समय में अधिक उपयोगी हो जाती है।[5] यह शरीर के विभिन्न अंगों एवं प्रणालियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के लगातार विस्तार ने विश्व के लगभग सभी परम्परागत एवं स्थानीय चिकित्सा प्रणालियों का स्थान ले लिया है। संक्रामक एवं असंक्रामक रोगों के उपचार में इसने प्रतिष्ठा भी प्राप्त की है। परन्तु जीवन शैली सम्बन्धी विकारों में लगातार होती वृद्धि ने आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली के लिए एक चुनौती पेश करने का कार्य किया है। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

वर्तमान परिवेश पूर्वकालीन परिवेश की अपेक्षा बहुत ही भिन्न हो गया है। वर्तमान पीढ़ी अस्वस्थ्यकर खान पान, तनाव, नगण्य शारीरिक गतिविधियों, के कारण गतिहीन जीवन शैली की समस्याओं से जूझ रहा है। योग चिकित्सा एक अनुभवात्मक विज्ञान है, जो भारतीय ऋषियों द्वारा हजारों वर्षो के शोध का परिणाम है। यह एक समग्र दर्शन के रूप में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करने में सक्षम है।[6]

प्राकृतिक जीवन आधुनिक जीवन का बिल्कुल विरोधाभासी है। इसमें प्रकृति के रचनात्मक सिद्धान्तों के साथ तालमेल बिठाकर शरीर को स्वस्थ्य बनाए रखने पर जोर दिया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा सामान्य रूप से पंचमहाभूत से जुड़ी हुई है, जिसमें आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी प्रमुख तत्व है। मानव शरीर इन्ही पाँच तत्वों से निर्मित माना जाता है। शरीर में इन तत्वों का असंतुलन ही रोगों का कारक होता है, जिसे विजातीय द्रव्यों के संग्रह के रूप में देखा जाता है। इन असंतुलित द्रव्यो के प्रभाव को पंचमहाभूतो के द्वारा सन्तुलित करने का कार्य किया जाता है।[7]

प्राकृतिक एवं योग चिकित्सा प्रणाली की प्रमुख विधियों को सारांश रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

खाद्य थेरेपी: इस प्रक्रिया में यह प्रयास किया जाता है कि जितना संभव हो, किसी भी आहार को उसके प्राकृतिक रूप में ही खाया जाए। प्राकृतिक रूप से सेवन करने पर अनेक खाद्य पदार्थ दवा के समान कार्य करते है। प्राकृतिक चिकित्सा में खान पान को विशेष महत्व दिया जाता है। इसमें समय पर खाना, संतुलित खाना, कम खाना अथवा नही खाना इस चिकित्सा पद्धति के प्रमुख अंग है। इस प्रकार खाना, पीना, एवं पचाना, शरीर को स्वास्थ्य रखते है तथा विभिन्न प्रकार के रोगों से शरीर की रक्षा करते है।

उपवास इस चिकित्सा प्रणाली का प्रमुख भाग है। यह शरीर की समस्याओं को समाप्त करने की प्रकृति का सर्वाधिक सार्वभौमिक उपाय है। रस उपवास को सामान्य रूप से प्रभावी सफाई योजना के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके माध्यम से शरीर के अपशिष्ट पदार्थो को शरीर से बाहर निकालनें में सहायता मिलती है। उपवास के दौरान भोजन के पाचन के लिए उपयोग की जाने वाली ऊर्जा का उपयोग विषाक्त पदार्थो को समाप्त करने के लिए किया जाता है।[8] योगशास्त्र में मिताहार की महत्ता पर बल दिया गया है। बहुभोजन को निकृष्ट रूप में देखा जाता है। योगशास्त्र ने मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक क्रियात्मक दृष्टिकोण से ही आहार सम्बन्धी नियम सिद्धान्त निर्धारित किए है।

हमारे शरीर में विद्यमान रक्त में क्षार तथा अम्ल का अनुपात 80: 20 है। सामान्य रूप से रक्त का गुण क्षारीय होता है। अप्राकृतिक भोज्य पदार्थो की अधिकता से रक्त का गुण अम्लीय हो जात है, जिससे विभिन्न प्रकार के रोगों का जन्म होता है। भारतीय परिवेश

में सन्तुलित आहार में 80 प्रतिशत क्षारीय पदार्थ खाने की अनुशंसा की जाती है। इसमें गाजर, मूली, टमाटर, प्याज, खीरा, पालक, गोभी, चुकन्दर, नीबू, उबली हुई सब्जियाँ, मौसम के फल, चोकर युक्त आटे की रोटियाँ, हथकुटा चावल, छाछ, दही तथा मधु इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।[9] पाश्चात्य मापदण्ड के अनुसार संतुलित भोजन में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन्स ये चार प्रमुख तत्व है।

मड थेरेपी: मिट्टी प्रकृति के पंच तत्वों में से एक मानी जाती है, जिसका शरीर के स्वास्थ्य तथा बीमारियों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। मिट्टी का रंग सूर्य के सभी रंगों को सोख लेता है तथा उन्हे शरीर तक पहुँचाता है। मिट्टी नमी को बरकरार रखते हुए शरीर को ठंडक पहुँचाने का कार्य करती है। इसके साथ जठरांत्र सम्बन्धी मार्ग एवं विभिन्न प्रकार के त्वचा सम्बन्धी रोगों का उपचार करती है। यह विशेष रूप से रक्तचाप, तनाव, सिरदर्द, चिंता, कब्ज एवं त्वचा विकारों को सही करती है। यह शरीर में उपस्थित विषैले पदार्थो को मुक्त करती है। विष का मूल स्थान नाभि के पास माना जाता है और यही कुण्डलिनी का भी स्थान है, इस कारण इस स्थान पर मिट्टी की पट्टी लगाने से यह अधिक प्रभावी हो जाती है।

जल थेरेपी: जल चिकित्सा एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें पानी का उपयोग विभिन्न तापमानों पर किया जाता है और मानव शरीर पर विभिन्न रोगों के उपचार क लिए प्रयोग किया जाता है। इसके माध्यम से तीव्र एवं पुरानी बीमारियों को ठीक करने के लिए किया जाता है। इस उपचार के बाद शरीर अधिक क्रियाशील हो जाता है। इस उपचार में अलग-अलग बीमारियो के लिए अलग-अलग प्रक्रियाओ को अपनाया जाता है।

कटिस्नान करने से जिगर, बड़ी आंत, पेट एवं गुर्दे की दक्षता में सुधार होता है। भापस्नान से त्वचा के छिद्र खुल जाते है तथा पसीने के माध्यम से शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकल जाते है।

गर्मपाद स्थान अस्थमा, घुटनों का दर्द, सिरदर्द, अनिंद्रा तथा मासिक धर्म से सम्बन्धित समस्याओं को दूर करता है।

मालिश थेरेपी- शरीर की विभिन्न मांसपेशियों एवं स्नायुतंत्रों को स्वस्थ्य एवं सक्रिय रखने में यह थेरेपी अत्यन्त उपयोगी है। इसकों मसाज के रूप में भी देखा जा सकता है। यह प्रक्रिया भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। जैसे शरीर को थपथपाना, शरीर पर विभिन्न प्रकार से हाथ फेरना, त्वचा को रगड़ना, शरीर पर कम्पन उत्पन्न करना प्रमुख है।

योग, प्राणायाम एवं ध्यान: योग वर्तमान में अलग चिकित्सा विज्ञान के रूप में विकसित किया गया है। महर्षि पतंजलि ने इसे एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। इसमें आठ घटकों को महत्वपूर्ण माना जाता है- पुनर्प्रशिक्षण, तपस्या का पालन, शारीरिक आसन, श्वास व्यायाम, इन्द्रियों का पुन: प्रशिक्षण, चिंतन, प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि। योग मनोदैहिक बीमारियों को रोकता है तथा व्यक्ति के प्रतिरोध एवं तनावपूर्ण स्थितियों को सहन करने की क्षमता में वृद्वि करता है। यह बुद्धि एवं स्मृति में सुधार कर एक एकीकृत मनोदैहिक व्यक्तित्व का विकास करता है।[11]

महर्षि चरक ने रोगों के तीन कारण बताए है। प्रथम इन्द्रियों का विषयों के साथ असाम्य संयोग, द्वितीय प्रज्ञापराधबुद्धि की भूलें और परिणाम अर्थात् ऋतुओं का हीनयोग, मिथ्यायोग, विपरीत योग तथा तृतीय इन्द्रियों की क्रियाओं की कमी अथवा अधिकता अर्थात् विपरीत आचरण। उदाहरण के लिए ग्रीष्म ऋतु में गर्मी न पड़कर ठण्ड पड़ने लगे तो यह ऋतु का हीनयोग रोगोत्पादन है। गीष्म ऋतु में उष्ण पदार्थ तथा शीत ऋतु में ठण्डे पदार्थो का सेवन इत्यादि मिथ्यारोग का कारक है।

व्यक्तियों की प्रकृति बल, आयु, देश, काल एवं स्थान इत्यादि देखकर ही चिकित्सा करनी प्रशस्त है। इसके साथ ही पथ्य का पालन करना चाहिए। यद्यपि केवल आसन-प्राणायाम एवं शुद्धि क्रियाओं से ही अनेक प्रकार के रोगो का निवारण संभव है, परन्तु साथ में खान-पान पर ध्यान एवं प्राकृतिक तथा कुछ सीमा तक आयुर्वेदोक्त औषध जड़ी बूटी का सेवन कर रोग निवृत्ति के साधन क रूप में लेना हितकारी है।

यद्यपि योग कोई चिकित्सा नही है, परन्तु पिछले कुछ वर्षो में चिकित्सीय अध्ययन एवं प्रयोग इस बात को बल प्रदान करते है कि योगाभ्यास द्वारा अनेक प्रकार क रोगों की सफल चिकित्सा की जा सकती है। अनेक अवस्थाओं में रोग की औषधीय चिकित्सा के साथ-साथ योगाभ्यास तथा यौगिक क्रियाओं की भूमिका प्रभावी होती जा रही है।

योगशास्त्र में मूल रूप से मानस तंत्र होने के कारण इसमें मनोविकार एवं आध्यात्मिक विकार का उल्लेख किया गया है। वास्तव में शरीर, मन तथा आत्मा को अलग नही किया जा सकता है। सभी मिलकर ही जीव का निर्माण करते है। इस सम्पूण इकाई को आयुर्वेद में आयु कह कर सम्बोधित किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य एवं व्याधियों की चर्चा की गई है। आयुर्वेद एवं योग

दोनों ही स्वभावोपरमवाद में विश्वास करते है। इस विचार के अनुसार प्रकृति ही स्वभाव है। अत: मानव स्वभावत: ही विकृति से उबर कर प्रकृति अथवा स्वास्थ्य की ओर अग्रसर होता है। चिकित्सा केवल सहायक मात्र होती है। जब रोग से ग्रसित व्यक्ति में स्वत: स्वास्थ्य लाभ सम्बन्धी क्षमता शिथिल पड जाती है, तो चिकित्सा अनिवार्य हो जाती है।[12]

स्वामी कुवलयानन्द ने स्थायी रोगों की चर्चा करते हुए इसके दो प्रमुख कारण बताए है-

1. शरीर में रकतसंवहन तथा लसीका संवहन क प्रक्रिया का विकृत होना।
2. शरीर में न्यूरोमस्कुलर, न्युरोग्लैण्डुलर तथा साइकोन्यूरो इम्यूनोलॉजिकल प्रक्रियाओं का अव्यवस्थित होना।

वास्तव में यह दोनों प्रक्रियाओं एक दूसरे पर निर्भर करती है और आपस में एक दूसरे को प्रभावित करती है। शरीर में जब इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है, तो उसे मात्र यौगिक क्रियाओं से उपचारित नही किया जा सकता, इसके लिए उसके साथ शास्त्रप्राणिधनीय चिकित्सा की आवश्यकता होती है। वास्तव में योगशास्त्र यौगिक क्रियाओं के सन्दर्भ में रोगी के शरीर में आवश्यक प्रतिरक्षात्मक क्षमता उत्पन्न करने पर बल देता है, न कि रोग के कारको को नष्ट करने में।[13]

रोगी की मानसिकता में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए योगाभ्यास की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। इसके माध्यम से मनुष्य रूग्ण होते हुए भी अनावश्यक मानसिक तनाव, भय व असुरक्षा की भावना से मुक्त होने में समर्थ हो जाता है और विश्रान्ति का अनुभव करते हुए स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है। योग प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा शरीर के सभी अंगों एवं तंत्रों को अपने तरीकों से स्वस्थ बना कर रखता है। इसलिए वर्तमान समय में चिकित्सा क्षेत्र में योग की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है। ऐलोपैथिक चिकित्सकों के द्वारा भी रोगियों को योगाभ्यास की सलाह दी जाती है।

यह एक सुविचारित तथ्य है कि रोगी की चिकित्सा की सर्वोत्कृष्ट विधा वही है, जिसमें रोगी के शरीर में सहज उपस्थित रोगहर प्रवृत्ति का ही इस्तेमाल किया जाए अर्थात् उसकी सहज शक्ति को ही जाग्रत करके रोग का निवारण किया जाए न कि औषधियों का अनावश्यक प्रयोग करके, उसके शरीर की प्रतिरक्षा तंत्र को कमजोर किया जाए। 2020 में कोरोना महामारी के दौरान हमने इस बात को अच्छी तरह से महसूस किया कि प्रतिरक्षा तंत्र कमजोर होने की स्थिति में किस प्रकार की भयावह स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसलिए आज के तनाव जनित वातावरण योग ही एक मात्र साधन के रूप में दिखाई देता है, जो साधक को स्वस्थ बनाए रख सकता है। वर्तमान समय में यौगिक क्रियाएँ अपनी समग्रता एवं अभ्यास के साथ वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में विकसित की जा रही है।

सन्दर्भ

1. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, दमा, मधुमेह और योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2001, पृ0 सं0 38
2. पूर्णचन्द्र पंत शास्त्री, योग विज्ञान, इन्टरेक्टिव एजुकेशन सिस्टम, प्राइवेट लिमिटेड, नाहन, हिमाचल प्रदेश, 2011, पृ0 सं0 19
3. प्रो0 रामहर्ष सिंह, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1999, पृ0 सं0 105
4. डॉ0 मकरंद मधुकर गोर, शरीर विज्ञान और योगाभ्यास, कंचन प्रकाशन, कैवल्यधाम, लोनावाला, 1999, पृ0 सं0 24
5. डॉ0 सरस्वती काला, योग चिकित्सा के सिद्धान्त, किताब महल, 2018, पृ0 सं0 45
6. डॉ0 स्वामी कर्मानन्द सरस्वती, रोग और योग, बिहार योग विद्यालय, 2018, पृ0 सं 87
7. पं हरिकृष्णशास्त्री दातार, योग: सिद्धान्त एवं साधना, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2014, पृ0 सं0 76
8. डॉ0 विनोद वर्मा, संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए योग, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ0 सं0 32
9. वी0 के0 एस0 आयंगर, योग द्वारा स्वस्थ जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ0 सं0 21
10. बाबा रामदेव, योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार 2004, पृ0 सं0 32
11. शिवकुमार मिश्र, आयुर्वेदीय शिक्षा का क्रमिक विकास, भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, 1973, पृ0 सं0 98
12. बाबा रामदेव, प्राणायाम रहस्य, दिव्य प्रकाशन प्रतिष्ठान, हरिद्वार, 2007, पृ0 सं0 65
13. डॉ0 सुनील डबास, डॉ0 राकेश डबास, स्वास्थ्य और योग, मानसपब पब्लिकेशन, 2016, पृ0 सं0 23

दायभाग में स्त्रीधन स्वरूप

प्रो० (डॉ०) नीभा शर्मा

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, बी० आर० ए० बी० यू०, मुजफ्फरपुर

प्रस्तुत पत्र में दायविभाग के अन्तर्गत स्त्रीधन के स्वरूप विषय को आधार बनाकर विवेचनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है जो आज की एक ज्वलन्त समस्या के रूप में समाज में चारों तरफ गंभीर बीमारी के रूप में तेजी से फैल रहा है। प्रस्तुत पत्र के विषय के माध्यम से यह प्रदर्शित किया जा रहा है कि स्त्रियों को प्राचीनकाल से ही एक अभिन्न दर्जा प्रदान किया गया है जिसमें उसे सभी प्रकार के अधिकार प्रदान किये गये थे जिसमें शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृति, धार्मिक अधिकारों के साथ-साथ सबसे महत्वपूर्ण अधिकार सम्पत्ति का अधिकार प्रदान किया गया था जिससे स्त्रियां स्वावलंबी बन चुकी थी और उन्हीं अधिकारों को वर्तमान समय में उच्च तथा उच्चतम न्यायालय तथा संविधान द्वारा भी मान्यता प्रदान की गई है। अत: उन्हीं प्राचीनकाल तथा आधुनिककाल के स्त्रियों के स्त्री धन के स्वरूप का निबन्धन प्रस्तुत पत्र के माध्यम से किया जा रहा है।

धर्मशास्त्र के अन्तर्गत तीन प्रकार के विषयवस्तु का वर्णन प्राप्त होता है-

1. आचाराध्याय
2. व्यवहाराध्याय
3. प्रायश्चिताध्याय

इसमें व्यवहाराध्याय में व्यवहार सम्बंधी विषयों का विवेचन प्राप्त होता है। व्यवहार का अर्थ है जो अनेक संदेहों को हटाता है या दूर करता है। कात्यायन ने कहा है-

विनानार्थैऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते।
नानासन्देहहरणाद् व्यवहार इति स्मृत:।।[1]

यह व्युत्पत्यर्थ न्याय शासन या न्याय विधि की ओर संकेत करता है। इसके अतिरिक्त व्यवहार झगड़े या मुकदमे या विवाद को कहते हैं। किन्तु याज्ञवल्क्य विवाद को लॉ-सूट कहते हैं और व्यवहार को जुडिशियल प्रोसीड्योर कहते हैं। 'व्यवहार: तस्य पदं विषय:' अर्थात् व्यवहार के विषय को व्यवहारपद कहते हैं। सर्वप्रथम मनु ने अठारह तथा याज्ञवल्क्य ने बीस व्यवहारपदों को गिनाया है जो इस प्रकार हैं- ऋणादान, निक्षेप, अस्वामिविक्रय, सम्भूय-समुत्थान, दत्तस्यान्पाद, वेतनादान, संविद्-व्यतिक्रम, क्रय-विक्रयानशय, स्वामिपालविवाद, सीमाविवाद, वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, स्तेद्य, साहस, स्त्रीसंग्रहण, स्त्रीपुंधर्म, दायविभाग और द्यूतसमाहव्य।

इन्हीं विवादों में दायभाग एक प्रकार का विवाद है जिसका विवेचन इस प्रकार है-

मिताक्षरा के याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार दाय का अर्थ वह धन है जो उसके स्वामी के संबंध में किसी अन्य की सम्पत्ति हो जाती है- 'दायशब्देन यद्धनं स्वामी सम्बन्धादेव निमित्तादन्यस्य स्वं भवति तदुच्यते।'[2] नारद ने दायभाग उसको कहा है जिसमें पुत्र अपने पिता के धन के विभाजन का प्रबन्ध करते हैं-

विभागोऽर्थस्य पित्र्यस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्पते।
दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधै:।।[3]

याज्ञवल्क्यस्मृति की मिताक्षरा के टीकाकार के अनुसार धन के मूल स्वामी के साथ रक्त संबंध के कारण स्वामी के धन पर संबंधी के अधिकार हो जाने का नाम 'दाय' है। इसके दो रूप हैं- अप्रतिबन्ध तथा सप्रतिबन्ध। दादा का पोते को तथा पिता का पुत्र को मिलने वाला धन अप्रतिबन्ध है। इसके विपरीत चाचा तथा भाई आदि के पुत्र के संबंध में भावी स्वामी के न होने पर, दूसरों

को मिलने वाला धन सप्रतिबन्ध है। विभाग वह है जहाँ संयुक्त स्वामित्व हो वहाँ सम्पूर्ण सम्पत्ति के भागों की निश्चित व्यवस्था की जाती है-

'विभागो नाम द्रव्यसमुदाय विषयाणानेकस्वाम्यानां तदेकदेशेषु व्यवस्थापनम्।'[4]

दायभाग के चार प्रमुख विषय होते हैं- विभाजनकाल, विभाजनसम्पत्ति, विभाजनविधि और विभाजन अधिकार।

दायभाग में स्त्रीधन अथवा स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार

दायभाग के अन्तर्गत स्त्रीधन विषय पर विवेचन किया गया है। प्राचीनकाल में पितृसत्तात्मक पारिवारिक संगठन में पुरुष सदस्य ही परिवार का मुखिया एवं सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी माना जाता था। इस काल में स्त्री को साम्पत्तिक अधिकारों से वंचित रखा गया। ऐसी स्थिति में स्त्री के साम्पत्तिक अधिकार का प्रारंभ कैसे हुआ? इस विषय में कोई ठोस तथ्य दृष्टिगत नहीं होता। संभवत: इसका प्रारंभ विवाह के समय पुत्री को दहेज में उपहारस्वरूप दिये जाने वाले आभूषण तथा वस्त्र तथा गृहस्थी के अन्य उपकरणों से हुआ। जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होता गया, समाज में स्त्री के साम्पत्तिक अधिकारों का विकास होने लगा। इस प्रकार स्त्री धन से तात्पर्य स्त्री के सम्पत्ति से है।

वैदिक साहित्य में स्त्री धन संबंधी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में विवाह के अवसर पर पतिगृह जाते समय वधू को उपहार देने का उल्लेख प्राप्त होता है। अथर्ववेद में विवाह के अवसर पर परिधान, स्वर्ण, आभूषण आदि कन्या को देने का स्पष्ट वर्णन है।

तैत्तिरीयसंहिता में पत्नी को घर का स्वामिनी कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य का संन्यास लेने से पूर्व अपनी दोनों पत्नियों मैत्रेयी एवं कात्यायनी के बीच सम्पत्ति का विभाजन करने संबंधी उल्लेख मिलता है।

इन उल्लेखों से कहा जा सकता है कि स्त्रियां साम्पत्तिक स्वत्व की अधिकारिणी होती थी तथा उनको विशेष अवसरों पर उपहारादि भी दिए जाते थे। तथापि स्त्री के उस अधिकार की क्या सीमाएं थी, इसका स्पष्टीकरण प्राप्त संदर्भों से नहीं होता है।

उत्तरवर्ती सूत्रकाल में धर्मसूत्रकार गौतम ने स्त्री की निजी सम्पत्ति का उल्लेख नहीं किया है पर स्त्रीधन के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में पुत्री को उत्तराधिकारिणी स्वीकार किया गया है।

बौधायन संभवत: स्त्री को माता से मिले धन को अथवा अन्य वस्तु को जो उसे उपहार में मिली हो, उसे स्त्रीधन स्वीकार करता है-

मातुरलङ्कारं दुहितरस्साम्प्रदायिकं लभेरन्नयद्वा।[5]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम स्त्रीधन की स्पष्ट व्याख्या की है। उनके अनुसार स्त्रीधन दो प्रकार के हैं- वृत्ति तथा आबध्य। वृत्ति स्वरूप स्त्रीधन जीविका के लिए दी हुई भूमि अथवा धन है। यह कम से कम दो सहस्र पण हो सकता है। आबध्य रूप स्त्रीध न आभूषणादि हैं - 'वृत्तिराबध्यं वा स्त्रीधनम्। परिद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्ति:। आबध्यानियम:।'[6]

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर के अनुसार स्त्रीधन शब्द यौगिक है, पारिभाषिक नहीं है-

स्त्रीधन शब्दश्च यौगिको न पारिभाषिक:।
योगसंभवे परिभाषाया आयुक्तत्वात्।।

'स्त्रिया धनं स्त्रीधनं' इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्त्री की सम्पूर्ण सम्पत्ति ही स्त्रीधन है। चाहे वह सम्पत्ति स्त्री को दाय में प्राप्त हुई हो या विभाजन के द्वारा या अन्य किसी प्रकार से।

दूसरी ओर दायभाग के रचयिता जीमूतवाहन के अनुसार स्त्रीधन शब्द पारिभाषिक है। इनके अनुसार वही स्त्रीधन है, जिसमें स्त्री का स्वत्व हो अर्थात् जिसे स्त्री को पति या अन्य किसी से पूछे बिना स्वेच्छानुसार दान, विक्रय एवम् उपभोग करने का अधिकार है।

स्मृतियों ने स्त्री धन के शाब्दिक अर्थ स्त्री की सम्पत्ति शब्दार्थ को उस प्रकार की सम्पत्ति के विशिष्ट प्रकार तक सीमित रखा है जो स्त्री को विशिष्ट अवसरों या जीवन के विभिन्न स्तरों पर प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य ने स्त्रीधन के लिए कहा है-

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।।
बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।।[7]

पिता, माता, पति या भाई द्वारा दिया गया धन, विवाह के समय अग्नि के समीप प्राप्त धन, तथा पति द्वारा अन्य स्त्री से विवाह के समय प्राप्त धन ये ही स्त्री धन कहे जाते हैं। पिता के बन्धुओं द्वारा दिया गया धन, परिणय के शुल्क के रूप में दिया गया धन, विवाह के बाद पति या पितृकुल से प्राप्त धन भी स्त्री धन कहलाता है।

स्त्रीधन के प्रकार

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार छः प्रकार के स्त्री धन का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति में मनु ने भी छः प्रकार के स्त्रीधन की चर्चा की है–

1. *अध्यग्नि स्त्रीधन* – विवाह के समय अग्नि के समक्ष जो धन दिया जाता है, वह अध्यग्नि स्त्रीधन कहलाता है।
2. *अध्यावाहनिक स्त्रीधन* – पति के घर जाते समय जो कुछ स्त्री पिता के घर से पाती है, वह अध्यावाहनिक स्त्रीधन कहलाता है।
3. *प्रीतिदत्त स्त्रीधन* – श्वसुर या सास के द्वारा जो कुछ स्नेह से दिया जाता है और श्रेष्ठजनों का वन्दन करते समय जो कुछ दिया जाता है, वह प्रीतिदत्त स्त्रीधन है।
4. *शुल्क स्त्रीधन* – जो बरतनों, भारवाही, पशुओं, दुधारु पशुओं, आभूषणों और दास-दासियों के रूप में प्राप्त होता है।
5. *अन्वाधेय स्त्रीधन* – विवाहोपरान्त पतिकुल या पितृकुल के बन्धुजनों से जो कुछ प्राप्त होता है उसे अन्वाधेय स्त्रीधन कहा जाता है।
6. *आधिवेदनिक स्त्रीधन* – पति द्वारा अन्य स्त्री से विवाह के समय जो कुछ प्राप्त होता है उसे आधिवेदनिक कहते हैं।

इनके अतिरिक्त सौदायिक स्त्री धन है जो विवाहित स्त्री को या कुमारी को अपने पिता या पति के घर से मिलता है या भाई से या माता-पिता से मिलता है–

अध्यग्न्यध्यावाहनिक दत्तं च प्रीतिकर्माणि।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।।[8]

मनु ने अन्य दो प्रकार के स्त्रीधन भी बताये हैं- अन्वाधेय एवं यौतुकम्। अन्वाधेय से अभिप्राय विवाह के बाद मिलने वाला द्रव्य है। इसी प्रकार यौतुक से अभिप्राय विवाह के समय प्राप्त धन से है।

विवाहकाले लब्धं यौतुकम्।[9]

नारद के अनुसार–

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं भर्तृदायस्तथैव च।
भ्रातृदत्तं पितृभ्याश्च षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।।[10]

नारद ने भी मनु की भांति ही छः प्रकार का स्त्रीधन कहा है किन्तु मनु के प्रीतिकर्म में दिए गए धन के स्थान पर भर्तृदाय (पति द्वारा दिया गया धन) का उल्लेख किया है।

कौटिल्य ने शुल्क, अन्वाधेय, आधिवेदनिक और बन्धुदत्त को स्त्रीधन के प्रकारों में स्वीकार किया है।

मिताक्षरा के मत से किसी प्रकार का धन स्त्रीधन कहा जा सकता है, चाहे वह स्त्री द्वारा किसी पुरुष की विधवा के रूप से उत्तराधिकार में प्राप्त हो या माता के रूप में प्राप्त हो या पत्नी के रूप में प्राप्त हो।

स्त्री धन पर स्त्री का आधिपत्य

स्त्री धन पर स्त्री का आधिपत्य तीन बातों पर निर्भर करता है। सम्पत्ति प्राप्त करने का उद्गम, प्राप्ति के समय उसकी स्थिति कि वह कुमारी है या सधवा है या विधवा है तथा वह सम्प्रदाय जिसके अनुसार उस पर स्मृति का शासन होता है।

सौदायिक धन के विनियोग के सम्बन्ध में कात्यायन ने स्त्री को पूर्ण स्वतन्त्रता दी है। यहाँ तक कि सौदायिक स्थावर सम्पत्ति के दान एवं विक्रय की पूर्ण स्वतंत्रता है। पति या पुत्र और पिता या भाई को किसी स्त्रीधन को व्यय करने का अधिकार नहीं है। कुछ परिस्थतियों में पति को सौदायुक स्त्री धन को व्यय करने का अधिकार है। याज्ञवल्क्य का कथन है–

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता न स्त्रियौ दातुमर्हति।।[11]

दुर्भिक्ष, धर्मकार्य, व्याधि में तथा ऋणदाता, राजा या शत्रु द्वारा बन्दी बनाये जाने पर पति द्वारा यदि स्त्रीधन का व्यय किया जाय तो उसे लौटाने के लिए उसे बाध्य नहीं किया जा सकता है। कौटिल्य ने इस व्यवस्था को बढ़ाते हुए इतना जोड़ दिया है कि स्त्री अपनी जीविका के लिए या अपने पुत्र या पुत्रवधू की जीविका के लिए व्यय कर सकती है।

जीमूतवाहन ने स्त्रीधन के दो प्रकार की सम्पत्ति का उल्लेख किया है–

1. ऐसी सम्पत्ति जिसका उपयोग केवल स्त्री कर सकती है, किन्तु दान–विक्रयादि नहीं। इस प्रकार की सम्पत्ति में पति द्वारा प्रीतिपूर्वक दिए गए धन का समावेश है जिसमें जीमूतवाहन ने स्त्री को पति के धन में अमुक्तहस्त से उपभोग करने का अधिकार दिया है–

   इदममुक्तहस्तताज्ञापनार्थम्।[12]

   व्यास और जीमूतवाहन के अनुसार पति द्वारा पत्नी को दो सहस्र धन देने का अधिकार है, जिसका स्त्रियां स्वतंत्र रूप से उपभोग करती हैं। पुत्रहीन पति की मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाले धन पर स्त्रियों का सम्पूर्ण रूप से आधिपत्य रहता है। जीमूतवाहन के अनुसार स्त्री की विभाजन में प्राप्त सम्पत्ति स्त्री धन नहीं है। स्त्री द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति पर भी स्त्री को केवल उपभोग करने का अधिकार है। विधवा पत्नी द्वारा प्राप्त सम्पत्ति के विनियोग के सम्बन्ध में कात्यायन का मत है कि पुत्रहीन विधवा जो पति की शय्या को पवित्र रखते हुए, गुरुजनों के साथ स्वनियंत्रण में रहती हैं, उसे आजीवन पति की सम्पत्ति के उपभोग का अधिकार है। उसकी मृत्यु के बाद उस धन के उत्तराधिकारी पति के दायाद होते हैं।

   इसी प्रकार स्त्री द्वारा अपने पति के उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति के संदर्भ में जीमूतवाहन का कथन है कि उस स्त्री की मृत्यु हो जाने पर उस सम्पत्ति को धन के पूर्वस्वामी अर्थात् उस स्त्री के पिता के दायाद प्राप्त करते हैं।

2. जीमूतवाहन ने जो दूसरे प्रकार की सम्पत्ति कही है, उसमें स्त्री का पूर्ण स्वत्व है अर्थात् उसे दान, विक्रय एवं उपभोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। इस प्रकार की सम्पत्ति में सौदायिक सम्पत्ति का समावेश रहता है। इस प्रकार जीमूतवाहन ने स्त्री को पति द्वारा दी गई स्थावर सम्पत्ति के दान विक्रयादि करने का निषेध किया है–

   स्थावरेऽपि भर्तृदत्तमात्रे स्त्रिया दानाद्यनधिकारः।[13]

   स्थावर से अतिरिक्त धन का स्त्री दान, व्यय आदि कर सकती है।

स्त्रीधन का उपयोग करने के लिए दण्ड की व्यवस्था

जीमूतवाहन ने कात्यायन का उल्लेख करते हुए कहा है कि स्त्रीधन का ग्रहण पति, पिता, भाई कोई भी नहीं कर सकता है। यदि वह करता भी है तो उसे ब्याजसहित वापस करना चाहिए और राजा द्वारा उसे दण्ड दिया जाना चाहिए। यदि कोई प्रीतिपूर्वक अनुमति लेकर उसका उपयोग करता है तो उसे धनवान होने पर केवल मूलराशि वापस करनी चाहिए। जीमूतवाहन के अनुसार पति यदि स्त्री का धन लेकर दूसरी पत्नी के साथ रहने लगता है तो राजा द्वारा पति से बलपूर्वक धन ग्रहण करके पूर्व पत्नी को दिलवाना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जीमूतवाहन के अनुसार स्त्री स्त्रीधन का विनियोग करने में पूर्ण स्वतंत्र है, वह स्वेच्छा से उस धन का दान, विक्रय तथा उपभोग कर सकती है।

स्त्रीधन के उत्तराधिकारी तथा विभाग

इस विषय में हिन्दू व्यवहारशास्त्र में बहुत मत-मतान्तर पाये जाते हैं किन्तु एक बात में सबका मत एक है। स्त्रीधन का उत्तराधि कार सर्वप्रथम कन्याओं को प्राप्त होना चाहिए। मिताक्षरा ने कहा है कि पुत्री में पुत्र की अपेक्षा माता के शरीर का अंश अधिक रहता है अत: उसे स्त्री धन की प्राप्ति में वरीयता मिलती है। किन्तु आगे चलकर पुत्रों को कन्याओं के साथ जोड़ दिया गया और कुछ स्त्रीधन में पुत्रों को वरीयता दे दी। इसका संभवत: कारण यह था कि आगे चलकर स्त्री धन की सम्पत्ति का विस्तार हो गया और लोगों को यह बात नहीं रूचिकर लगी कि स्त्रियों को लम्बी सम्पत्ति मिले।

अविवाहित कन्या के धन के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रकारों द्वारा कहा गया है कि कन्या के मर जाने पर सहोदर भ्राता तदुपरान्त माता और तत्पश्चात् पिता धन प्राप्त करता है-

मृतायां दत्तमाद्यात् परिशोध्योभयाव्ययम्।

याज्ञवल्क्य के अनुसार विवाह के प्रतिश्रुत हो जाने पर विवाह के पूर्व कन्या मर जाती है तो दोनों के पिता व्यय का शोध करके जो शेष बचे उसे वर को दे दे।

सप्रजा स्त्रीधन के सम्बन्ध में गौतम के अनुसार पुत्रियों को धन मिलता है। उसमें भी प्रथम अप्रत्ता (अवाग्दत्ता[14]) का उसके उपरान्त प्रत्ता का और इनके अभाव में विवाहित स्त्री का अधिकार है-

स्त्रीधनं दुहिततृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानाञ्च।

विवाहित पुत्रियों में भी पुत्रवती एवं संभावित पुत्री और तत्पश्चात् बन्ध्या और विधवा पुत्री का अधिकार समझना चाहिए। पुत्रियों के अभाव में पुत्रों का अधिकार होता है। तथा याज्ञवल्क्य, नारद तथा कात्यायन ने कहा है कि मातृधन को दुहिताओं के अभाव में पुत्र प्राप्त करता है। दूसरी ओर मनु के अनुसार सहोदर भाई एवं भगिनी दोनों का तुल्य अधिकार प्राप्त होता ह-

मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितृणां तदन्वय:।[15]
दुहितृणामभावे तु रिक्थं पुत्रेषु तद् भवेत्।[16]
मातुर्दुहितर: शेषमृणात्ताभ्य: ऋतेऽन्वय:।[17]
जनन्यां संस्थितायान्तु समं सर्वे सहोदरा:।
भजेरन् मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभय:।।[18]

कौटिल्य के अनुसार सधवा रूप में स्त्री के मर जाने पर पुत्र एवं पुत्रियां स्त्री धन बांट लेते हैं। पुत्र के अभाव में पुत्रियां तथा पुत्रों एवं पुत्रियों के अभव में पति ले लेता है। किन्तु शुल्क, अन्वाधेय एवं स्त्रीधन के अन्य प्रकार, जो सम्बन्धियों से प्राप्त होते हैं, वे सम्बन्धियों को ही मिल जाते हैं। दायभाग के अन्तर्गत व्यभिचारिणी पुत्री को उत्तराधिकार नहीं मिलता है। किन्तु मिताक्षरा ने उसे भी अधिकार दिया है। किन्तु कुमारी या विवाहित पुत्रियों के उपरान्त ही उसे ऐसा अधिकार मिलता है। अत: व्यभिचारिणी का स्त्रीधन उसके भाई या बहन, पति अथवा पति के सम्बन्धियों को मिल जाता है।

दुहिता के अभाव में दौहित्र का धन में अधिकार माना जाता है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि पुत्री अपने पुत्र के माध्यम से पार्वण, श्राद्ध एवं पिण्डदान करती है।

दायभाग के टीकाकार श्रीकृष्ण ने दौहित्र तथा बन्ध्या एवं विधवा पुत्री के बीच सपत्नी पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र का अधिकार माना गया है क्योंकि ये भी मृत स्त्री के पति द्वारा भोगे जाने वाले पिण्ड का दान देते हैं।

नि:सन्तान स्त्री के स्त्रीधन के उत्तराधिकारी

याज्ञवल्क्यस्मृति में स्त्रीधन के स्वरूप में बन्धुदत्त, शुल्क एवं अन्वाधेयक धन का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के धन पर स्त्री के नि:सन्तान मरने पर उसके भाईयों का अधिकार हो जाता है-

बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।
अप्रजायायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयु:।।[19]

मनुस्मृति एवं नारदस्मृति में ब्रह्मादि-दैव-आर्ष-गान्धर्व एवं प्राजापत्य विवाह विधियों से परिणीता स्त्री के नि:संतान मरने पर उसके धन का उत्तराधिकारी उसका पति होता है-

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्धनम्।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते।।[20]
स्त्रीधनं तदपत्यानां भर्तुगाम्यप्रजासु तु।
ब्रह्मादिषु चतुष्वाह: पितृगामीतरेषु च।।[21]

जबकि आसुर-राक्षस एवं पैशाच विवाह विधियों से परिणीता अन्नपत्या स्त्री के धन के उत्तराधिकारी माता-पिता होते हैं-

यत्त्वस्या: स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वरादिषु।
अतीतायामप्रजायां बान्धवास्तदवाप्नुयु: मातापित्रोस्तदिष्यते।।[22]

जीमूतवाहन के दायभाग के अनुसार नि:सन्तान स्त्री के उत्तराधिकार का वर्णन

स्त्री के भर्तृपर्यन्त उत्तराधिकारियों के अभाव में जीमूतवाहन के पिण्डदान की प्रत्यासत्ति के आधार पर क्रमश: देवर, देवर-पुत्र, पति के ज्येष्ठ भ्रातृपुत्र, भर्तृभगिनीपुत्र, भ्रातृपुत्र एवं पुत्री के भर्ता का अधिकार स्वीकार किया गया है। जीमूतवाहन का कथन है कि देवर मृत स्त्री को उसके पति द्वारा दिए जाने वाले तीन पितृपूर्वजों का पिण्डदान करता है। अत: पिण्डदान करने से वह मृत स्वामिनी का अधिकारी होता है। पुत्री के भर्ता का श्वाश्रू के धन में अधिकार होता है क्योंकि वह सास ससुर का पिण्डदान करता है।

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में याज्ञवल्क्यस्मृति में पिता के सम्पत्ति में पुत्र के न रहने पर पुत्री को पूरा अधिकार दिया गया है। और, कहीं-कहीं वर्णन मिलता है कि भाई पिता की सम्पत्ति के चौथाई भाग से स्त्री का विवाह करे या तो उपहारस्वरूप दे।

आधुनिककाल में स्त्रीधन का स्वरूप

हिन्दू स्त्री का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1937

इसके अनुसार विधवा, विधवा पुत्रवधू और विधवा पौत्र वधू को उत्तराधिकार के अधिकार दिये गये। इस प्रकार से प्राप्त सम्पत्ति को स्त्री स्त्री-सम्पदा के रूप में लेती थी न कि स्त्रीधन के रूप में। विधवाओं को ये अधिकार न केवल हिन्दू की पृथक् सम्पत्ति में दिए गये थे बल्कि उन्हें मिताक्षरा सहदायिक के अविभक्त हित में भी दिए गये थे।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, धारा 14(1)

इसके अनुसार स्त्रीधन एवं नारी सम्पदा के मध्य अन्तर समाप्त कर दिया गया है तथा महिलाओं द्वारा काबिल सभी सम्पत्ति उनकी पूर्ण सम्पत्ति हो गई है। वर्तमान अधिनियम एक स्त्री द्वारा अधिकृत सारी सम्पत्ति के सम्बन्ध में चाहे वह इस अधिनियम के आरंभ के पूर्व या पश्चात् अर्जित की गई थी, स्त्रीधन विषय पर अन्य बातों के साथ प्राचीन विधि पर अधिभावी है। इस अधिनियम की धारा 14 घोषणा करती है कि ऐसी सारी सम्पत्ति उसके द्वारा पूर्ण स्वामी के रूप में धारण की जायेगी। यह अधिनियम नारी उत्तराधि कारी पर पूर्ण दाय योग्य क्षमता प्रदान करती है तथा यह धारा सम्पत्ति धारण करने तथा उसका व्ययन करने के लिए हिन्दू नारी की शक्तियों पर पारस्परिक सीमा को हटाती है। हिन्दू नारी अपना स्त्रीधन रखने के लिए स्वतंत्र है। यह अधिनियम हिन्दू नारी द्वारा अधि कृत सम्पत्ति का जो या तो सीमित सम्पदा के रूप में है अथवा स्त्रीधन के रूप में है, उत्तराधिकार का एक रूप क्रम प्रतिपादित करती है। इस प्रकार स्त्रीधन सम्पत्ति के निगमन के विभिन्न ढंगों को समाप्त करती है।

धारा 15

निर्वसीयत मरने वाली हिन्दू नारी की सम्पत्ति धारा 15 में लिखे गये नियमों के अनुसार न्यायगत होगी-

1. पहले पुत्रों और पुत्रियों (किसी पूर्वमृत पुत्र अथवा पुत्री की सन्तान सहित) तथा पति पर।
2. पति के उत्तराधिकारियों पर।

3. पिता और माता पर।
4. पिता के उत्तराधिकारियों पर।
5. अन्त में माता के उत्तराधिकारियों पर।

उपधारा-1 में निहित नियम

1. अपने पिता अथवा माता से प्रापत कोई सम्पत्ति एक हिन्दू नारी द्वारा मृतक के किसी पुत्र यापुत्री की अनुपस्थिति में उपध ारा-1 में सन्दर्भित अन्य उत्तराधिकारियों से उसमें निर्धारित क्रम से न्यायगत नहीं होगी।
2. अपने पति अथवा श्वसुर से प्राप्त सम्पत्ति का मृतक के पुत्र या पुत्री की अनुपस्थिति में उपधारा-1 में सन्दर्भित अन्य उत्तराधिकारियों में न्यायगत नहीं होगी किन्तु पुत्र के उत्तराधिकारियों में न्यायगत होगी।

मिताक्षरा विधि द्वारा शासित एक हिन्दू नारी एक पुत्र, एक पुत्री तथा एक सहोदर भाई को अपनी स्त्रीधन सम्पत्ति को छोड़कर मरती थी। लेकिन यह अधिनियम के पूर्व लागू थी।

उच्चतम न्यायालय में यह टिप्पणी की गई है कि एक हिन्दू विवाहिता नारी की सम्पत्ति के स्त्रीधन की स्थिति पाश्चात्य काल में पूर्णतया असंदिग्ध है। वह अपनी सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी है और अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार व्यवहार कर सकती है। वह इसका पूरा व्ययन कर सकती है और पति को संदर्भित किये बिना अपनी इच्छानुसार इच्छापात्र को दान कर सकती है। सामान्यतया पति इसमें कोई अधिकार नहीं रखता है, जिसका एकमात्र अपवाद यह कि घोर आपदा की स्थिति में जैसे अकाल, बीमारी में पति इसका प्रयोग कर सकता है। किन्तु नैतिक रूप से इसे पुनर्स्थापित करने के लिए बाध्य है अथवा वह इसका मूल्य देगा जब वह ऐसा करने में सक्षम होगा।

स्त्रीसम्पदा का विस्तृत अर्थ है सारी सम्पत्ति जो एक स्त्री के पास किसी स्रोत से आयी है और जिसमें दोनों सम्पत्तियां सम्मिलित हैं जिसमें वह पूर्ण हित (स्त्रीधन) तथा सीमित हित रखती है।

उपसंहार

दायभाग प्रकरण में स्त्रीधन के स्वरूप से यह विदित होता है कि प्राचीन काल में भी स्त्रियों की दशा समुन्नत थी। उन्हें आदर सम्मान, शिक्षा तथा सम्पत्ति पुरुषों के समान ही प्रदान की गई थी। परन्तु मध्यकाल में आकर स्त्रियों की दशा निम्न होने लगी थी लेकिन राजा राममनोहर राय, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी तथा स्वामी विवेकानन्द आदि समाज-सुधारकों तथा विचारकों के द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार किया गया और उन्हें समाज में पुनः सम्मान का स्थान प्रदान किया गया। आज वर्तमान समय में स्त्रियों की दशा काफी समुन्नत हो गयी है। आज उन्हें पुरुषों के समान बराबर का अधिकार एवं सम्मान दिया गया है। साथ ही सम्पत्ति में भी उन्हें पिता की सम्पत्ति में भाई के बराबर ही हिस्सा दिया गया है। पुत्र की सम्पत्ति की तो वह स्वामिनी मानी गई है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में स्त्रियों के धन का स्वरूप विस्तृत हो गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कात्यायनस्मृति
2. याज्ञवल्क्यस्मृति - मिताक्षरा व्याख्या
3. नारदस्मृति
4. मिताक्षरा
5. बौ.ध.सू. 2.2.3.44
6. कौ. अर्थ.
7. याज्ञवल्क्यस्मृति, दायभागप्रकरण 143-144 श्लोक
8. मनुस्मृति 9.94

9. दायभाग, जीमूतवाहन 4.2.14
10. नारदस्मृति 13.4
11. याज्ञवल्क्यस्मृति 2.147
12. दायभाग 4.1.1
13. दायभाग 4.1.23
14. गौ.ध.सू. 3.10.22
15. ना.स्मृ. 13.2
16. का.स्मृ. 9.8
17. याज्ञ.स्मृ. 2.117
18. मनुस्मृति 9.192
19. याज्ञवल्क्यस्मृति 2.144
20. मनुस्मृति 9.196
21. नारदस्मृति, पृ.सं. 226
22. मनुस्मृति 9.117

डॉ० रामविलास शर्मा का हिंदी भाषा के विकास में योगदानः एक विश्लेषण

डॉ० देवेंद्र शुक्ल

स्नातकोत्तर विभागध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय शक्ति जिला जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

हिन्दी विश्व की एक प्रमुख भाषा है और भारत की एक राजभाषा है। डॉ० रामविलास शर्मा (10 अक्टूबर 1912- 30 मई 2000) आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक, निबंधकार, विचारक एवं कवि थे। पेशे से अंग्रेजी के प्रोफेसर, दिल से हिन्दी के प्रकांड पंडित और गहरे विचारक, ऋग्वेद और मार्क्स के अध्येता, कवि, आलोचक, इतिहासवेत्ता, भाषाविद, राजनीति-विशारद ये सब विशेषण उन पर समान रूप से लागू होते हैं।

शर्मा का लेखन बहुआयामी है। मुख्य रूप से साहित्य के आलोचक होते हुए भी उन्होंने भाषाविज्ञान, इतिहास तथा समाज एवं संस्कृति के सन्दर्भों में सुविस्तीर्ण लेखन किया है।

हिंदी जाति की अवधारणा डॉ रामविलास शर्मा की महत्वपूर्ण स्थापनाओं में से एक है। डॉ० रामविलास शर्मा की 'हिन्दी जातिश की अवधारणा में जाति शब्द का प्रयोग नस्ल (race) या बिरादरी (caste) के लिए न होकर राष्ट्रीयता (nationality) के अर्थ में हुआ है। उन्होंने सर्वाधिक बल अपनी इसी मान्यता पर दिया। अपनी इसी स्थापना के कारण वे सर्वाधिक विवादित और चर्चित भी हुए। रामविलास शर्मा ने आधुनिक हिंदी साहित्य का विवेचन और मूल्यांकन करते हुए हिंदी की प्रगतिशील आलोचना का मार्गदर्शन किया। अपने जीवन के आखिरी दिनों में वे भारतीय समाज, संस्कृति और इतिहास की समस्याओं पर गंभीर चिंतन और लेखन करते हुए वर्तमान भारतीय समाज की समस्याओं को समझने के लिए, अतीत की विवेक - यात्रा करते रहे।

मूल शब्दः राहुल सांस्कृत्यायन, हिंदी साहित्य, भोजपुरी भाषा, भाषाई अस्मिता

भाषा हमारे व्यक्तित्व का आईना है। यह हर किसी के लिए सुलभ है, व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व में हवा-पानी की तरह गहराई तक बसी हुई है, इसलिए इसके सहारे शिक्षित और अशिक्षित, स्त्री और पुरूष, उच्च की और निम्न वर्ग आदि समाज के सभी तबके के व्यक्तियों को छेड़ा और उकसाया जाना संभव है। 'छेड़ना' और 'उकसाने' की झलक 'हिंदी-उर्दू' विवाद के संदर्भ में, हमें इस लेख में भी मिलते हैं। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में, ''भाषा अगर दो दिलों को जोड़ने का काम करती है तो वह दो दिलों को तोड़ने का साधन भी बनती है। अगर भाषा के सहारे हम 'सच' को पकड़ने की क्षमता रखते हैं तो उसी के सहारे हम 'झूठ' को भी सच साबित करने का सामर्थ्य रखते हैं।'' [भाषाई अस्मिता और हिंदी, पृष्ठ-19] इस लेख में रामविलास शर्मा ने, हिन्दी भाषा की विकास प्रक्रिया को भारतेन्दु युग के तहत दिखाया है। पूरा लेख 21 खण्डों में है, जिसमें शर्माजी शुरूआत के 10 खण्डों में विशाल हिन्दी-भाषा जाति, हिन्दी की साहित्यिक विरासत और उसका भाषायी परिवेश, लल्लूजी लाल और उनके पहले के लेखकों की रचनाओं में 'भये','सुनाय' का प्रयोग', आवै'-' जावै की जगह आये', 'जाये की प्रतिष्ठा, पूर्वकालिक क्रियारूपों में कर और करके का प्रयोग, पंजाबी और राजस्थानी का प्रभाव, हिंदी-उर्दू के विकास में ब्रजभाषा की भूमिका, पुरानी हिन्दी में 'ने' का प्रयोग और लल्लूजी लाल और मीर अम्मन के गद्य की सामान्य विशेषमताएँ और भेद बतलायी गई हैं।

हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास और प्रसार की राह में जो कठिनाइयाँ थीं, उन्हें दूर करने के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1873 ई. में 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' नाम की पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का गहरा असर हिन्दी भाषा के निखार और साहित्य के विकास पर पड़ा। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि, जातीयता की दृष्टि से आज हिन्दी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा है। आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रगति के सौ वर्ष पूरे हुए हैं और इन सौ वर्षों में हमने अपना एक अलग मुकाम बनाया है, जो हमारे लिए जातीय और राष्ट्रीय महत्व की घटना है। हम देखते हैं कि, जिस तरह हिन्दी का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश है उसी तरह उसका एक भाषागत परिवेश भी है, जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ भी है:-

(1) 'हिन्दी के भाषागत परिवेश की पहली विशेषता यह है कि हिन्दी प्रदेश की बोलियों में सामान्य तत्वों के अलावा उनके व्याकरण और शब्द भण्डार की अपनी विशेषताएँ हैं। यह अन्तर्जनपदीय परिवेश हिन्दी भाषा को प्रभावित करता है और स्वयं भी उससे प्रभावित होता है।' [हिन्दी भाषा की विकास-परम्परा और भारतेंदु युग-पृष्ठ-141]

(2) 'हिन्दी-उर्दू का सह-अस्तित्व और परम्परा प्रभाव हिन्दी के भाषायी परिवेश की दूसरी विशेषता है।' [वही, पृष्ठ-142] यह भी तब जबकि विशिष्ट शब्द-भण्डार के विचार से (हिन्दी-उर्दू) दोनों में उतना फासला है जितना अंग्रेजी और लैटिन में नहीं है। यह और बात है कि संरचना और शब्द-भण्डार की दृष्टि से दोनों के रूप मिलते-जुलते हैं।

(3) 'हिन्दी के भाषागत परिवेश की तीसरी विशेषता इसके सब-स्टैण्डर्ड' रूप है, जो जनपदीय बोलियों के प्रभाव से बनते हैं। [वही, पृष्ठ, 143] जैसे महंगी आदि से प्रभावित पटना की हिन्दी, भोजपुरी से प्रभावित बनारसी और खड़ी बोली की राजधानी दिल्ली पर पंजाबी का असर।

(4) रामविलास शर्मा अरबी-फारसी के महत्व को दरकिनार करते हुए लिखते हैं कि ''किसी भारतीय भाषा के लिए अरबी या फारसी का वह महत्व नहीं हो सकता जो उसके लिए संस्कृत हमारे देश की ही नहीं हमारे प्रदेश की भी भाषा रह चुकी है। वे कहते हैं कि अगर उर्दु की शब्द उधार लेने की हैं तो वह तुर्की से ले क्योंकि दिल्ली की गद्दी पर तुर्क बैठे थे। 'तुर्की' भाषा से शब्द उधार लेने का है रामविलास शर्मा का यह कोण गले से नीचे नहीं उतरती।

लोकतांत्रिक परंपरा में भाषाओं के जायज हक को कुचला नहीं जा सकता है। यह किसी वर्ग विशेष पर अपना राय थोपने जैसा है। रामविलास शर्मा सारे विवाद की जड़ उर्दू में कोई बुनियादी फर्क देना चाहते हैं। उनका कहना है कि हिंदी उर्दू में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। जबकि यह सैद्धांतिक रूप से माना भी जा सकता है किन्तु व्यवहारिक रूप से इसे हम नहीं मान सकते हैं। यह सही है कि 'दोनों ही खड़ी बोली को दो साहित्यिक शैलियां हैं।'[1] यह उदारता पूर्वक दिया गया बयान है। भाषा में उठे इन्हीं सब विवादों को देखकर प्रेमचंद ने कहा ''वह शब्द सरल है जो व्यवहार में आ रहा है। इसमें कोई बहस नहीं क्यों इतना सौतियाडाह है, मेरी समझ में नहीं आता। अगर एक समुदाय के लोगों को उर्दू नाम प्रिय है तों उन्हें इस्तेमाल करने दीजिए। जिसे हिंदी नाम से प्रेम है, वह हिंदी ही कहे। इसमें लड़ाई काहे की है।-[प्रेमचंद-'साहित्य का उद्देश्य, (पृष्ठ-106)]

इस तरह हम देखते हैं कि रामविलास शर्मा ने अरबी-फारसी हिंदी-उर्दू के संबंध में जिसे चौथी भाषाई विशेषता के रूप में इंगित किया है, उनका वह दृष्टिकोण एकांगी है।

(5) पाँचवी और अन्तिम विशेषता के रूप में वे हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी का प्रभाव मानते हैं।

पुरानी चाल की हिन्दी के बाद भारतेन्दु हरिचन्द्र ने उसे नयी चाल में कैसे ढ़ाला इस पर शुक्ल जी अपनी टिप्पणी इस प्रकार करते हैं:-''मुंशी सदासुख की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए भी-लल्लूजी लाल में ब्रजभाषापन और सदसि मिश्र में पूरबीपन था। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक सीमित न था, वाक्य विन्यास तक में घुस गया था। राजा लक्ष्मण सिंट की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें कम न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्ट और सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।'' [हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-246] स्पष्ट है राजा शिवप्रसाद की तरफ से बिल्कुल आँख- मूँदकर भारतेंदु हरिश्चन्द्र को आचार्य शुक्ल ने प्रतिष्ठित कर दिया। ''1873 ई. में भारतेंदु से हिंदी चाल में ढ़ली'' इस एक वाक्य में पर हिन्दी साहित्य में बहुत विवाद उत्पन्न हुए हैं। इस लेख में भी राम विलास शर्मा की ज्यादा कोशिश यही दिखाने में है कि हरिश्चन्द्र के द्वारा ही हिन्दी नए चाल में ढ़ली। अब सवाल यह उठाता है कि क्या सचमुच हिन्दी 1873 ई. में चाल में

ढ़ली या इसके पीछे इसकी एक सुदृढ़ लंबी विरासत है? हलाँकि वो निष्कर्ष के रूप में स्वीकार करते हैं कि ''1873 ई. में हिन्दी नयी चाल में नहीं ढ़ली, यह कार्य इससे बहुत पहले सम्पन्न हो चुका था। 1857 ई. के आस-पास राजा शिवप्रसाद जैसी हिन्दी लिख रहे थे, उसी को भारतेन्दु ने अपनाया था। [हिन्दी भाषा की विकास परम्परा,-पृष्ठ-227]। 1. अमृत राय, आधुनिक भावबोध की संज्ञा। पृष्ठ-154

इस पर डॉ. तलवार अपनी पुस्तक रस्साकशी में लिखते हैं कि ''डॉ. शर्मा का बयान आधा सच है। उन्होंने अपने कथन का अधार 1857 ई. में छपे भूगोलहस्तामलक के दूसरे संस्करण को बनाया। भूगोल-हस्तामलक की भाषा शिवप्रसाद ने बैतालपच्चीसी की चाल पर रखी थी जो अरबी-फारसी के सरल और प्रचलित शब्दों से मिश्रित हिन्दी थी। यह हिन्दी भारतेंदु की पहचान नहीं है। भारतेंदु ने शिवप्रसाद की धार्मिक विषयों से संबंधित किताबों (मानव धर्म सार वगैरह) की हिन्दी को अपनाया था जिनमें संस्कृत के सरल और प्रचलित शब्दों से मिश्रित हिन्दी लिखी गई थी। वास्तव में शिव-प्रसाद की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी भारतेन्दु के मुकाबले ज्यादा सरल साफ-सुथरी और प्रभावपूर्ण है। भारतेन्दु की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बेढंगी और उबड़-खाबड़ है। [रस्साकशी, पृष्ठ-84]।

इन दोनों (राजा शिवप्रसाद सिंह और भारतेन्दु) की हिंदी के साथ-साथ लल्लूजी लाल और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की हिन्दी में भी अंतर खोजा जा रहा था। रामविलास जी के अनुसार, लल्लूजी लाल और भारतेन्दु की हिन्दी में 'भये' का प्रयोग होता था, पुरानी चाल की हिन्दी में भी 'भये' का प्रयोग होता था। 'भया' रूप तो जनपदीय बोलियों में अब भी प्रयुक्त होता है। किन्तु उसे पंडिताऊ या गँवारू समझकर हिन्दी की टकसाल से निकाल दिया गया है। वस्तुत: 'भये' का बहिष्कार आधुनिक हिन्दी-उर्दू की विशेषता है। ''जनपदीय खड़ी बोली का रूप हिन्दी-उर्दू रूप आगरे की देन है। व्यापार की बहुत बड़ी मंडी होने से यहाँ अनेक बोलियों को इकट्ठे होने और एक-दूसरे को प्रभावित करने का अवसर मिला। आगरे के कुछ खास शब्द-रूप पुरानी हिन्दी-उर्दू में प्रचलित थे, वे पुराने व्याकरणों, शब्द-कोशों और पाठ्यपुस्तकों में मिलते हैं। [रामविलास शर्मा, भारतेन्दु और हिन्दी भाषा की विकास-परम्परा, पृष्ठ-277]। खड़ी बोली ब्रजभाषा से भी प्रभावित रही है। आगरा ब्रज जनपद का नगर है, यही कारण है कि यहां जिस खड़ी बोली का विकास हुआ वह ब्रजभाषा से प्रभावित थी। पुरानी उर्दू अथवा मुसलमान लेखकों की हिन्दी पर जितना प्रभाव फारसी का है, उससे कहीं ज्यादा ब्रजभाषा का है। इस तथ्य को ठीक से नहीं समझ पाने के कारण ही यह भ्रम पैदा हो गया कि मुगलों के लश्कर में उर्दू का जन्म हुआ। ब्रजभाषा का यह प्रभाव दिल्ली-आगरे के साथ-साथ बीजापुर और हैदराबाद की हिन्दी पर भी है। हिन्दी-उर्दू एकता कायम में नजीर अकबराबादी का बहुत बड़ा योगदान है। वे कम्पोजीट कल्चर के हिमायती थे। ब्रजभाषा के 'य' रूप का दर्शन इनके यहां मिलते हैं। जैसे- महादेव जी का ब्याह कविता में:-

पहले नॉव गणेश का, लीजे सीस नवाय।

जासे कारण सिद्ध हों, सदा मुहूरत लाय।।

लेकिन क्रियारूपों के 'य' और 'व' वर्णों का प्रयोग अब सिर्फ जनपदीय बोलियों में ही रह गये हैं। इन वर्णों को हटाकर हिन्दी-उर्दू ने अपनी रचना-शक्ति में कुड कमी कर ली है। 'व' के स्थान पर 'य' और 'ए' के स्थान पर 'ए' की प्रतिष्ठा कर हिन्दी-उर्दू टकसाली बन गई है। जैसे- गालिब के इस शेर में 'य' वाले रूपों का प्रयोग किया गया है:-

''कभी नेकी भी-उसके जी में गर आ जाय है मुझ से।

जफायें करके अपनी याद शरमा जाय है मुझसे।।''

इसी तरह 'कर' के प्रयोग में भारतेन्दु सतर्क रहते हैं। वे लिखते हैं- ''यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया'' (मुदाराक्षस')। इनसे पहले राजा लक्ष्मणसिंह भी अपने गद्य में ऐसी ही सतर्कता बरतते हैं, ''शकुन्तला सूरज निकलते ही शिरस्नान करके बैठे हैं'' (शकुन्तला नाटक)। हिन्दी में ऐसे अनेक क्रियारूप हैं जिनका प्रयोग पुरानी हिन्दी में होता था किन्तु आधुनिक हिन्दी में वे प्रयोग नहीं होते। 'आन' और 'पहिरना' ऐसे ही क्रिया रूप हैं गालिब ने भी आन का प्रयोग किया है। काम वह आन पड़ा है कि बनाये न बने,। पहिरना का आधुनिक रूप पहनना हो गया है। इसी तरह 'कारे' 'जहाँ' के साथ वहाँ का प्रयोग 'उस' की जगह 'विस' का प्रयोग आगरे की खड़ी बोली की विशेषता है। हिन्दी-उर्दू सीखने में एक कठिनाई 'ने' का प्रयोग है। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने एक बार प्रस्ताव किया था कि हिन्दी से 'ने' का व्यवहार उठा दिया जाये।

इस तरह हम देखते हैं कि पुरानी हिन्दी-उर्दू के बहुत से रूप, बहुत से प्रयोग आपस में टकरा रहे हैं और भाषा की भागीदारी में बहते-टकराते अपना रूप संवार रहे हैं। [भारतेन्दु युग पृष्ठ-180]

भारतेन्दु-युग की हिन्दी में भदेस पन के कारण बड़ी शक्ति है। आधुनिक हिन्दी ने भाषा की एक प्रबल शक्ति (भदेसपन) की उपेक्षा कर अपने को परिनिष्ठित किया है। जिससे दोनों जहां पहले एक धरातल पर थे, वहीं अब एक ने अपना मुख संस्कृत की तरफ और दूसरे ने अपना मुख अरबी-फारसी की तरफ ली है। अलगाँव का यह सिलसिला कोर्टविलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट से शुरू होता है। इससे पहले मीर, गालिब, नजीर, आदि ने साझी-संस्कृति के विकास में अपनी अहम भूमिका निभायी थी। मीर ने अपनी भाषा को हिन्दी कहा था। उनकी हिंदी, हिंदी-उर्दू का बेइंतहा खूबसूरत रूप है। 'सिरहाने मीर के अहिस्ता बोली अभी टुक रोते-रोते सो गया है।''इस तरह हम देखते हैं कि ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली-तीनों में मुसलमान कवियों ने रचनाएं की हैं। इससे इस धारणा को खारिज किया जा सकता है कि उन्होंने केवल खड़ी बोली के उस रूप को अपनाया था, जिसे उर्दू कहते हैं। गिलक्राइस्ट ही वह शख्स था, जिसने हिन्दु-मुसलमानों के भाषाओं को जातीय आधार पर अलग करने की कोशिश की, और एक ही भाषा के दो रूप करने में सफलता प्राप्त की। उसने अपने यहाँ उर्दू और माखा के मुंशियों से कहा था कि जब हिंदी लिखों, तब उसमें अरबी-फारसी के शब्द न आने दो, और जब उर्दू लिखो तो उसमें संस्कृत के शब्द न आने दो। किन्तु उसके आदेश की अवहेलना कर वे लोग दोनों शैलियों को मिला देते थे।

राजा शिवप्रसाद को अंग्रेजपरस्त समझा जाता रहा है। जबकि उनके प्रति ऐसी धारणा रखना उनपर अन्याय करना है। वस्तुतः वे ऐसे भाषा पर जोर देते थे जो ज्यादा शाइस्ता न हो। लेकिन उसमें रोजमर्रा की जिंदगी का भोंडापन भी न हों, हिंदु या मुसलमान उसकी तारीफ न करें तो उससे बिदके भी नहीं। आम जनता के बीच दोनों भाषाओं में दरार नहीं थी, दरार थी उच्चवर्गों का यह दृष्टिकोण भाषा के परिष्कार के नाम पर उसे जनपदीय बोलियों से शहरी बोलचाल से, दूर ढकेल रहा था और यह सिलसिला अंग्रेजी राज खत्म होने के पच्चीस साल बाद भी जारी रही है। ''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह युगान्तकारी महत्व है कि वह जो भाषा लिखते थे वह जनपदीय बोलियों तथा शहरी बोलचाल के बहुत पास थी। [.....हरिश्चन्द्र युग, पृष्ठ-203]

1873 और 1973 तक पिछले सौ वर्षों में विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली कि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान बनाने वालों को यह सोचकर दुख हुआ कि हमारा राष्ट्र तो स्वाधीन हो गया किन्तु राष्ट्रभाषा अकिसित रह गयी है। इसलिए हिंदी पर दया करके उसे विकसित करने के लिए 15 वर्षों का समय दिया गया। शायद संसार के किसी भी भाषा के लिए उसी के देश में यह नहीं कहा गया होगा कि, यह भाषा अविकसित है और विकसित होने के लिए 15 वर्ष का समय दिया जाता है। तब-तक अंग्रेजी में इसके समकक्ष राजभाषा का कार्य होगा। फिर शुरू हुआ, कोश बनाने का सिलसिला। उसमें हजारों शब्द वही थे जो उन्नीसवीं सदी में प्रचलित थे। कुछ शब्द जॉन 'शेक्सपियर' की पुस्तक से, कुछ फैलन के कोश (1873 ई.) से और कुछ शब्द लल्लूजी लाल की शब्दसूची से लिये गये हैं। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि ''शब्द पुराने हैं, पुरानी पुस्तकों में मौजूद हैं किन्तु हवा यह बाँधी गयी कि हिन्दी निदेशालय हजारों नये शब्द गढ़ने में लगा है। शब्द गढ़ना और बात है, शब्द संग्रह करना और बात।'' [हिन्दी.... ..भारतेन्दु युग पृष्ठ-209]

उन्नीसवीं सदी में लल्लू जी लाल ने साढ़े तीन हजार से ऊपर हिन्दी की सूची बनायी थी और उनके फारसी और अंग्रेजी प्रतिरूप दिये थे। फैलन का शब्दकोश 1879 ई. में प्रकाशित हुआ। फैलन ने अपना कोश हिन्दी उर्दू के साधारण जानकारों के लिए बनाया था। जो पारिभाषिक शब्द उन्होंने दिये हैं, वे चालू हिन्दुस्तानी या हिन्दी के हैं। फैलन ने अपने शब्दकोश में पहली बार और बहुत ही स्पष्ट रूप से जातीय भाषा हिन्दी और जनपदीय बोलियों के संबंध की सही व्याख्या की। उनका शब्दकोश 19वीं सदी की भाषायी स्थिति का दर्पण है। जो पारिभाषिक शब्द उन्होंने दिये हैं वे चालू हिन्दुस्तानी या हिन्दी के है। ये गणित, भौतिक, विद्युत, ज्योतिष और वनस्पति शास्त्रों के हैं। फैलन के सामने तीन तरह के पारिभाषिक शब्द थे- अरबी, संस्कृत और हिन्दुस्तानी। फैलन ने पहली बार अपने कोश में आम जनता की बोलचाल और ग्रामीण माहभाषा को महत्व दिया। यहाँ तक कि ''अभी विद्यालयों में गँवारी बोली के लिए प्रोफेसर पद नहीं है लेकिन एक दिन आयेगा जब जनता की भाषा के लिए ऐसे पद होगें। '' [वही, पृष्ठ-257]

फैलन का शब्दकोश उन्नीसवीं सदी की भाषायी स्थिति का वह दर्पण है जिससे हमें पता चलता है कि हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों की कमी का रोना भ्रामक था, जिसे गढ़ने का काम केन्द्रीय निदेशालय ने किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र और उनके सहयोगियों ने हिन्दी भाषा की प्रकृति पहचानकर उसे साहित्यिक ब्रजभाषा और तत्कालीन जनपदीय बोलियों की भाषा संपदा से वंचित न होने दिया। उनकी नयी चाल की हिन्दी पुरानी चाल की हिन्दी के बहुत निकट है किन्तु आधुनिक हिन्दी उनकी भाषा से दूर जा रही है। इस पर अंग्रेजी का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ रहा है। हिन्दी में अंग्रेजी मुहावरों, शब्दों और वाक्यांशों का अनुवाद करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जिससे हिन्दी का अपना रूप विकृत हुआ है और उसकी आन्तरिक क्षमता में भी कमी आयी है। भारतेन्दु युगीन हिन्दी, राजा शिवप्रसाद एवं फैलन के उत्कृष्ट योगदान को ध्यान में रखते हुए हमें हिन्दी को अंग्रेजी के प्रभाव से मुक्त कराने की जरूरत है। क्योंकि अपनी समस्याओं को जितनी अच्छी तरह से हम अपनी भाषा में समझ सकते हैं। उतनी अच्छी तरह से हम विदेशी चश्मों से नहीं समझ सकते हैं।

निष्कर्ष

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद डॉ० रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक के रूप में स्थापित होते हैं, जो भाषा, साहित्य और समाज को एक साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं। उनकी आलोचना प्रक्रिया में केवल साहित्य ही नहीं होता, बल्कि वे समाज, अर्थ, राजनीति, इतिहास को एक साथ लेकर साहित्य का मूल्यांकन करते हैं।

डॉ. शर्मा का मानना है कि भारतीय संस्कृति के विकास में हिंदी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसलिए वे हिंदी भाषा, हिंदी जाति और इसकी सामाजिक, सांस्कृतिकऔर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के गहन अध्ययन की ओर प्रवत्त हुए।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास [नागरी प्रचारिणी समा, वाराणसी], - रामचंद्र शुक्ल।
2. 'साहित्य का उद्देश्य' - प्रेमचंद।
3. भारत की भाषा समस्या - डा. रामविलास शर्मा।
4. आधुनिक भावबोध की संज्ञा - अमृत राय।
5. 'हिन्दी भाषा का समाजशास्त्र' - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव।
6. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा [राजकमल प्रकाशन, पटना], 1975- रामविलास शर्मा।
7. रस्साकशी [सारांश प्रकाशन, दिल्ली, हैदराबाद], 2002-डा. वीरभारत तलवार।

वैश्वीकरण के दौर में भारतीय महिलायें: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

ईश्वरी बृजवासी सूर्यवंशी

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय टीसीएल पीजी कॉलेज, जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

वैश्वीकरण का कामकाजी महिलाओं पर दोहरा प्रभाव पड़ा है। एक तरफ अनौपचारिकीकरण और काम का विखंडन बढ़ रहा है और दूसरी तरफ अवसरों का विस्तार हो रहा है। हालांकि, श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करने की जिम्मेदारी सरकार पर है, जो अक्सर अपनी जिम्मेदारी से पीछे हट जाती है।

मशीनीकरण के प्रथम चरण में महिलाओं को बेदखल कर दिया गया, हालांकि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक तबके की महिलाएं इससे अलग-अलग तरह से प्रभावित हुई। कुछ के लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई तो कुछ के लिए कमी। रोजगार में कमी के महिलाओं पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तरह के प्रभाव पड़े। चाहे उसने महिलाओं के लिए खाली समय को बढ़ाया है या उन रोजगारों का नुकसान किया जो कुछ महिलाओं के जीवन के लिए अति जरूरी होते हैं।

यहां यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि यह श्रम शक्ति से स्वैच्छिक तरीके से बाहर रहने का मामला हैं या जबर्दस्ती विस्थापन का। मशीनीकरण का तब सकारात्मक प्रभाव हो सकता है जब यह महिलाओं के कृषि कार्य को तकनीक के इस्तेमाल से आसान करता हो या जरूरतमंद महिला रमिकों के लिए रोजगार में बढ़ोत्तरी करता हो, और नकारात्मक तब होता है जब जरूरतमंद महिला श्रमिकों के रोजगार के अवसरों को कम करता है। हालांकि यह चिन्हित किया गया है कि आंशिक मशीनीकरण के जरिये विकसित कृषि तकनीक न हर तरह की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की महिलाओं को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है, चाहे उच्च या मध्य जातियों के उच्च सामाजिक-आर्थिक तबके की महिला कृषकों को या जिनकी काय का स्तर ऊँचा है और जिनके पास ज्यादा जमीनें हैं, उनका कृषि कार्य से मुक्त करके, दूसरी तरफ उन महिलाओं के लिए रोजगार बढ़ाकर जो सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर, पिछड़ी जातियों तथा दलित तबके से थी और जिनका संबंध न्यूनतम आय समूहों से था और जिनके पास या तो कम उपजाऊ/गैर आर्थिक जमीनें थीं, उन्हें कृषि श्रमिकों के बतौर काम करने के लिए मजबूर किया गया।

मूल शब्द: वैश्वीकरण, उदारीकरण, महिलाओं पर प्रभाव

नारीवादी सिंथिया एनलो वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के समर्थकों से पूछा कि तुम्हारी व्यवस्था (वैश्वीकरण) में "औरतें कहाँ हैं?" वैश्विक वित्तीय पूँजी के समर्थकों ने इस छोटे से सवाल का लंबा उत्तर दिया। नयी विश्व अर्थव्यवस्था ने उन्हें सबसे ज्यादा रोजगार दिया है, साथ ही वे फिल्मों में, मॉडलिंग में, टी वी सीरियलों में, पॉप संगीत में, विज्ञापनों में और सौंदर्य प्रतियोगिताओं में छायी हुई हैं। वे धीरे-धीरे शासन में ऊँचे पदों पर पहुँचती जा रही हैं और बहुराष्ट्रीय निगमों के बीच उनकी प्रबंधन क्षमता का इस्तेमाल करने की होड़ मची हुई है। इस जबाब का अर्थ यह है कि वैश्वीकरण तथा उदासीकरण ने औरत को पावर वूमेन (power women)बना दिया है। यह सब करने के लिए उसे किसी नारीवादी गोलबंदी अथवा सिद्धांतशास्त्र की जरूरत भी नहीं पड़ी। केवल बाजार, पूँजी और संचार-क्रांति की ताकत के दम पर औरत की दुनिया बदल गयी है। वैश्वीकरण ने दावा किया कि अब पहले से कहीं ज्यादा औरतें अपने लैंगिक हित को ध्यान में रखकर वोट डालती है और राजनीति में सीधी भागीदारी करती हैं। अब पहले

से कहीं ज्यादा औरतों के पास अपनी निजी आमदनी का स्त्रोत है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं। सौंदर्य-उद्योग और पॉप संस्कृति के जरिये उन्होंने अपनी यौनिकता का दोतरफा इस्तेमाल किया है, अर्थात् ख्याति और धन कमाने के साथ-साथ उन्होंने पुरुष को चमत्कृत कर दिया है। वास्तव में वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जहाँ "समस्पीकरण (Homogenisation) तथा विभेदीकरण (Differentiation) की परस्पर विरोधी प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती है अर्थात् स्थानीयतावाद (Localism) तथा भूमंडलवाद (Globalism) में एक जटिल अंतक्रिया होती है किन्तु अन्ततः समस्पीकरण का वर्चस्व स्थापित होता है। इससे विविधता को धक्का लगता है क्योंकि भूमंडलीकरण एक प्रकार का "भूमंडीकरण (World Marketisation)है जहाँ विभिन्न क्षमताओं और अक्षमताओं वाले देशों को प्रतिस्पर्धा के मैदान में खेलने के लिए छोड़ दिया जाता है। बड़े औद्योगिक/विकसित पूँजीवादी देश अपनी पूँजी, प्रौद्योगिकी तथा कुटिल व्यापारिक नीतियों के कारण छोटे देशों की आशाओं और आकांक्षाओं को रौंद देते हैं ठीक उसी तरह जिस तरह बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। विकसित देश खुद अपने देश के किसानों को भारी मात्रा/अनुपात में अनुदान (Subsidy) देते हैं किन्तु विकासशील देशों को अनुदान समाप्त करने अथवा अधिक से अधिक घटाने के लिए दबाब देते हैं। वे दूसरों से बहुत सारे उत्पाद एंडी-डम्पिंग कानून लागू करके नहीं लेते जबकि अपने उत्पाद दूसरे देशों में निर्यात करने के लिए दबाव डालते हैं। भूमंडलीकरण की दो जुड़वा बहनें उदारीकरण और निजीकरण हैं। उदारीकरण की मान्यता है कि राज्य एक सुविधादाता (Facilitator) की भूमिका निभाए और कोई आर्थिक योजना नहीं बनाये बल्कि बाजार की शक्तियों के भरोसे नागरिकों को छोड़ दे, 24 जुलाई, 1991 के बाद भारत करीब-करीब नागरिकों को बाजार के भावियों के भरोसे ही छोड़ दिया, जिसके परिणामस्वरूप मंहगाई-भ्रष्टाचार-गरीबी जैसे समस्याओं के विविध आयाम उत्पन्न हुए हैं। इसके अलावा निजीकरण की मान्यता है कि राज्य सार्वजनिक क्षेत्र (public sector)इकाइयाँ स्वयं नहीं चलाये, उन्हें निजी निगमों/पूँजीपतियों को सौंप दें और उन पर व्यापारिक विनियमन आदि लागू न करे जिससे स्वतंत्र रूप से उनका विकास होता रहे। वैश्वीकरण, उदारीकरण, तथा निजीकरण जैसी विकास नीतियों का महिलाओं पर कुप्रभाव अधिक पड़ा। वैश्वीकरण के महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने वाली जान जिंजी पेटमेन का निष्कर्ष है-

(क) बाजारवाद और उपभोक्तावाद का कुप्रभाव स्त्री की देह अस्मिता और व्यक्तित्व पर भी काफी पड़ा। स्त्री की देह को खुला और बिकाऊ बनाया गया। मुक्त बाजार में बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने स्त्रियों के सौन्दर्य एवं श्रृंगार के बहुतेरे साधनों के उत्पादन एवं खपत का नया उप-बाजार तैयार किया। इसके लिए पत्र-पत्रिकाओं, इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों आदि के माध्यम से आक्रामक विज्ञापन दिया गया जिसने स्त्रियों में सौंदर्य की ललक एवं भूख पैदा की, पुरुषों में स्त्री देह का उपयोग करने की चाह पैदा की तथा स्थानीय से लेकर विश्व स्तर पर सौन्दर्य प्रतियोगिताओं, फैशन प्रतियोगिताओं आदि का जाल बिछा दिया गया जिससे अधिकतर लोग चमत्कृत एवं वशीभूत हो गये। जिसके परिणामस्वरूप आज मुहल्ले-टोले, ब्लॉक, जिला, कमिश्नरी, प्रान्तीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन हो रहा है। लड़कियों के कई विद्यालय / महाविद्यालय शिक्षा का सर्वोच्च लक्ष्यों में सौन्दर्य प्रतियोगिता आयोजित करना भी मानने लगे हैं। लड़कियों की इसमें भागीदारी काफी होने से वे प्रत्येक विषय/संकाय/स्तर के लिए 'मिस' चुन रही हैं जैसे-मिस हिस्ट्री, मिस साइन्स, मिस एम. ए., मिस बी. ए. आदि। इसलिए प्रत्येक शहर की गली / नुक्कड़ पर नये-नये 'ब्यूटी पार्लर' खुल रहे हैं, यहाँ तक कि छोटे-छोटे कस्बों, चौक-चौराहों पर भी 'ब्यूटी पार्लर' खुल गये हैं जिनमें लड़कियों और विशेषकर विवाह रचानेवाली महिलाओं को सजाया, सँवारा और सुन्दर बनाया जाता है। इसलिए कई महिला महाविद्यालय ने ब्यूटीशियन का कोर्स खोल दिया है और अनेकों लड़कियाँ कुछ महीनों में सौन्दर्य विशेषज्ञ बन जा रही हैं। मगर बाजार की जीभ हमेशा धनरूपी रक्त पीने के लिए लपलपाती रहती है, इसलिए कुछ रसायन, पाउडर, काजल आदि लगाने से भी जिन लड़कियों को संतोष नहीं होता (अथवा जिन भावी पतियों और उनके परिवारों की माँग पर ऐसा करना जरूरी होता है), वे दो कदम आगे बढ़कर 'कासमेटिक सर्जरी' (सौन्दर्य चीड़फाड़) करवाती हैं जिससे नाक, गाल, मुँह, होंठ, ठुडडी आदि सुडौल एवं आकर्षक बन जाएँ। जिन लड़कियों के दाँत कुछ बड़े होते हैं, या टेढ़े-मेढ़े होते हैं, उन्हें दन्त सर्जन से क्लिप आदि के सहारे ठीक करा लिया जाता है।

(ख) इतना ही नहीं, आर्थिक तंगी के कारण महिलाओं के बीच देह-व्यापार एवं वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति बढ़ी है। देह को हथियार बनाकर पैसा कमाना नया उद्योग है और यौन-उद्योग प्रायः सभी देशों में अबाध गति से फल-फूल रहा है। दक्षिण-पूर्वी एशियाई

देशों-थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, फिलीपाइन्स, इन्डोनेशिया आदि में 'यौन पर्यटन' (Sex tourism) सबसे ज्यादा लाभप्रद उद्योग है जहाँ मालिश करने के लिए लड़कियाँ उपलब्ध होती हैं और वे निर्धारित शुल्क अदा किये जाने पर यौन-सुख के लिए सहर्ष उपलब्ध होती हैं, कुछ देश कर्ज के बोझ से दबे होने के कारण अपने यहाँ की महिलाओं को यौन उद्योग के लिए प्रोत्साहित करते हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों के बहुत सारे पर्यटक, विशेषकर सेना के जवान / अधिकारी अपनी यौन-भूख को शान्त करने जाते हैं। यह तो कुछ हद तक स्त्रियों की सहमति (या आर्थिक तंगी के कारण विवशता) से किया जाने वाला कार्य माना जाता है मगर दूसरी ओर विभिन्न अपराधी गिरोहों द्वारा स्त्रियों का व्यापार भी किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार, 1998 में चालीस लाख स्त्रियों का निर्यात हुआ जिसमें अपराधी गिरोहों ने सात अरब डॉलर कमाया। जापान जैसे औद्योगिक देश में भी यौन-उद्योग से 4.2 अरब ऐन (जापानी मुद्रा) की कमाई प्रतिवर्ष होती है। पोलैंड पुलिस मानती है कि एक पोलिश स्त्री के निर्यात पर सात सौ डॉलर का लाभ होता है। नेपाल से प्रतिवर्ष हजारों स्त्रियों का निर्यात अन्य देशों में होता है। एक अनुमान के अनुसार दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में करीब दस-लाख लड़कियाँ (जिनकी उम्र 16 वर्ष से कम है) विभिन्न वेश्यालयों में काम करती हैं। बहुत सारी लड़कियाँ (जो प्रायः मध्यम या उच्च वर्ग की होती हैं) काल गर्ल (Call girl)के रूप में काम करती हैं जिनके ग्राहक अमीर लोग होते हैं, जिनके मिलन-स्थल बड़े-बड़े होटल/वार/रिसोर्ट आदि होते हैं और जिनका शुल्क प्रति मिलन हजारों रुपये/डॉलर होता है। ये भले आर्थिक विवशता की शिकार न हों, मगर सौन्दर्य प्रतियोगिताओं, फैशन प्रतियोगिताओं, विभिन्न प्रकार के नग्न/अर्धनग्न विज्ञापनों तथा फिल्मों आदि के प्रभाव से स्वच्छन्द यौन की हिमायती होती हैं तथा उपभोक्तावादी असीमित महत्वाकांक्षा, लालसा एवं खर्च करने की शक्ति बढ़ाने की सोच के कारण ऐसा करती हैं। ऐसा पाया गया है कि बंगलादेश, नेपाल, चीन, कम्बोडिया, भारत, लाओ, म्याँमार (बर्मा), पाकिस्तान, श्रीलंका आदि से बड़ी संख्या में महिलाओं को भगाकर कम्बोडिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया, फिलीपाइन्स, वियतनाम, उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जापान आदि ले जाया जाता है। यह भूमंडलीकरण और उदारीकरण का ही प्रभाव है कि जिन्हें पहले समाज 'वेश्या' कहकर सामाजिक प्रतिबन्ध लगाता था, आज उन्हें 'यौन कर्मी' (Sex worker) कहकर 'सामाजिक स्वीकृति' देता है-यह कितनी बड़ी त्रासदी है।

(ग) भूमंडलीकरण / उदारीकरण एवं निजीकरण के प्रभाव के कारण विभिन्न देशों के सरकारी अस्पतालों में न्यूनतम शुल्क बढ़ा दिया गया, निःशुल्क दवाएँ वितरित करना बन्द कर दिया गया, विशिष्टता वाली जाँचें बन्द कर दी गईं, प्रसव आदि की सुविधाएँ घटा दी गईं जिसका कुप्रभाव निम्न वर्ग की महिलाओं पर पड़ा क्योंकि वे निजी अस्पतालों/क्लीनिकों का ज्यादा शुल्क वहन करने में असमर्थ रहीं हैं। इसके परिणामस्वरूप उनका तथा उनके परिवार का स्वास्थ्य 'उपयोग शुल्क' (User fee) के कारण प्रभावित हुआ। पहले से ही ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को समुचित स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं, शुल्क बढ़ा देने से कोढ़ में खाज हो गया। फलतः प्रशिक्षित दाईयों के हाथ प्रसव कराने की विवशता बढ़ गई जिसमें जच्चा-बच्चा दोनों की जान को खतरा होता है। विकासशील देशों की महिलाएँ इससे प्रभावित हुईं क्योंकि एलोपैथिक चिकित्सा तक पहुँच नहीं होने से स्त्री की घरेलू चिकित्सा का जुगाड़ करती है।

(घ) इसी प्रकार सरकारी शिक्षण संस्थाओं में भी शुल्क बढ़ा दिये गये जिसके कारण बच्चों की पढ़ाई प्रभावित हुई। पहले से ही बालिकाओं की शिक्षा अपेक्षाकृत कम रही है, आर्थिक बोझ के बढ़ने से उसकी सबसे पहली शिकार बालिका होती है जिसकी पढ़ाई छुड़ा दी जाती है। किन्तु यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है, भूमंडलीकरण की प्रमुख पैरवीकार वैश्विक संस्था विश्व बैंक यह भी चाहती है कि उसके दामन पर दाग भी न लगे, बालिका की शिक्षा प्रभावित होने से उसकी बदनामी न हो, इसलिए वह वैकल्पिक शिक्षा (Alternative education), बहुकक्षीय शिक्षण (Multigrade teaching), शिक्षा मित्र (Para teachers) आदि की हिमायत करता है। इसमें गुणवत्ता पर जोर नहीं होकर अधिक से अधिक बच्चों के नाम लिखाने पर जोर होता है, जहाँ प्रशिक्षित शिक्षक के स्थान पर अप्रशिक्षित, ठेके पर अनियमित शिक्षक मित्र नियुक्त किये जाते हैं। जहाँ प्रत्येक कक्षा के लिए अलग-अलग शिक्षक के बजाय एक ही शिक्षक सभी कक्षाओं के विद्यार्थियों को भेड़ की तरह बैठाए रखता है-अर्थात् जहाँ सीखने-सिखाने की स्थान पर खानापूर्त्ति की जाती है। इस प्रकार, गरीब परिवारों की बालिकाएँ शिक्षा से वंचित हो गई हैं क्योंकि सरकारी और निजी विद्यालय उनकी पहुँच के बाहर हैं, अर्थात् ऐसे विद्यालयों के अनेकों लड़के-लड़कियों को शिक्षा की दूनिया से बाहर खदेड़ दिया है। वास्तव में अवसर, पहुँच तथा परिस्थितिजन्य विवशता की शिकार सबसे ज्यादा बालिकाएँ होती हैं।

(ङ) यह भी पाया जाता है कि भूमंडलीकरण के प्रभाव के कारण जैसे-जैसे राजसत्ता अपने कल्याणकारी दायित्वों से मुक्त हो रही है, वैसे-वैसे बाजार ज्यादा निर्मम एवं क्रूर हो रहा है। महँगाई के कारण घर चलाना कठिन होने के कारण महिलाओं (और पुरुषों को भी) अनेकों को अतिरिक्त कार्य अंशकालिक रूप में करना पड़ता है जिसमें अधिक श्रम एवं समय देने के कारण उनका स्वास्थ्य भी प्रभावित हो रहा है। ऐसा भी पाया जाता है कि घर से बाहर काम करने वाली महिलाएँ दैनिक उपयोग की सामग्रियाँ (कच्ची सब्जी आदि) अपने काम के बाद बाजार से खरीदकर रेल/बस यात्रा के दौरान उन्हें काटती हैं, साफ करती हैं (अथवा स्वेटर आदि बुनती हैं) जिससे घर देर से पहुँचने पर भोजन बनाने का काम तुरंत किया जा सके। फिर भी दैनिक आवश्यकताएँ बाजार के क्रूर नियमों (माँग/पूर्त्ति) के कारण पूरी नहीं हो पातीं- विशेषकर जिन परिवारों में कमाने वाले कम होते हैं, अथवा कमाने वाले पुरुषों की जगह स्त्री ही परिवार की मुखिया होती है, जहाँ भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, जलापूर्त्ति, बिजली आदि की जरूरतें कल्पना तक ही सीमित रह जाती हैं। जिस प्रकार असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की संख्या अत्यधिक होने के कारण 'श्रम का स्त्रीकरण' होता है, वैसे ही गरीबों में स्त्रियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होने से 'गरीबी का स्त्रीकरण' (Feminisation of poverty)की प्रक्रिया भी कायम रहती है। पुरुष और स्त्री किसान अनेकों साधनों को महँगाई के कारण नहीं खरीद पाते, स्त्री मजदूरों को पुरुषों से कम मजदूरी मिलती है और कृषि उत्पादों का सही मूल्य उत्पादकों को नहीं मिल पाने से वे हानि उठाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भूमंडलीकरण और उदारीकरण के कारण स्त्रियों की स्थिति बदतर हुई है। वैसे इतना स्वीकार किया जा सकता है कि अब जन संचार माध्यमों के प्रचार-प्रसार, शिक्षा के फैलाव तथा खुलेपन के कारण कुछ स्त्री विरोधी कुप्रथाएँ कम हुई हैं मगर भूमंडलीकरण का प्रधानकर्त्ता बाजार ने मनुष्य जाति को कर्म या वस्तुएँ बना दिया है, ऐसे में पहले से ही हीन दशा वाली स्त्री को सामाजिक सोपानक्रम में और नीचे के पायदान पर ढकेल दिया गया है। अतः उनका सशक्तीकरण एक कोरा नारा मात्र ही रह गया है।

यह भी पाया गया है कि उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण जैसी विकास नीतियों से विकासशील देशों की महिलाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि में नाना प्रकार के नुकसान उठाती हैं और दूसरी ओर मुख्य बाजार तथा उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव के कारण वे अपनी देह प्रदर्शित करने और अन्ततः उसे बेचने से भी नहीं चूकतीं जिनमें आर्थिक कारण के साथ-साथ स्वच्छंदता की असीमित विचारधारा भी काफी हद तक जिम्मेवार होती है क्योंकि विभिन्न प्रचार माध्यमों से उनको मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार किया जाता है कि ये देह उनकी है, उस पर किसी सीमा तक जाकर मनोरंजन, प्रदर्शन तथा यौनसुख प्राप्त किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप महिलाओं का सशक्तीकरण एवं स्वच्छंदीकरण हो गया। यदि राष्ट्र-राज्य को मूल दायित्त्वों मानव कल्याण के लिए वैश्विक संस्थाओं की ओर से पर्याप्त धन, प्रौद्योगिकी, नीति-रणनीति एवं समझदारी का पैकेज दिया गया हो, तो बाजार की क्रूरता कम होती और सारी मानव जाति, विशेषकर महिलाएँ एवं बच्चे, उससे नाना प्रकार से लाभान्वित होते।

निष्कर्ष

आज 21वीं शताब्दी के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध में भी आर्थिक प्रगति और समाज कल्याण के बीच विरोधाभास को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैं पहले सामाजिक सेवाओं और राष्ट्र का कल्याणकारी ढांचा चाहे, वह कितना ही अपर्याप्त हो, आम जन का अधिकार था जिसे उन्होंने काफी मेहनत से हासिल किया था। लेकिन हाल के वर्षों में यह धीरे-धीरे कमतर होता जा रहा है। आज जब रहन-सहन और विकास का सूचकांक काफी नीचे है तब ऐसा होना कोई अच्छी स्थिति नहीं है। वास्तविकता यह है कि विशालकाय आर्थिक नीतियों से महिलाओं और निर्धन वर्ग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

संदर्भ सूची

1. भारतीय महिलाएँः दशा एवं दिशा-सुभाष शर्मा
2. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी-गोर्डोन मार्शल
3. रीडिंग्स इन ह्यूमन डेवलपमेंट-सकीको फुकुदा-पार्ट एवं ए. के. शिव कुमार
4. रोल्स एण्ड रिचुअल्स फॉर हिन्दू वीमेन-लूलिमा लेस्ली

पितृसत्ता में लैंगिकता के प्रश्नों के मध्य तृतीय लैंगिकता की पहचान का संकटः संदर्भ सुभाष अखिल का दरमियाना उपन्यास

डॉ० बिभा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, वी० एस० जे० महाविद्यालय, राजनगर, मधुबनी, बिहार

सुभाष अखिल ने 'दरमियाना' कहानी 1978-79 में ही लिखी थी और यह सारिका पत्रिका में 1980 के जनवरी अंक में ससम्मान प्रकाशित हुई थी, इस पत्रिका की संपादकीय समिति द्वारा इस विषय पर लिखी गई पहली कहानी के रूप में इस कहानी को मान्यता भी दी गई थी।

"सारिका के तत्कालीन संपादक कन्हैया लाला नंदन सहित सभी संपादकीय सहयोगियों ने एवं जैनेन्द्र कुमार, विष्णु प्रभाकर, अजित कुमार, डॉ. नरेंद्र कोहली तथा अन्य सभी साहित्यकारों ने- 'दरमियाना' को, इस विषय पर लिखी गई हिन्दी की पहली कहानी माना था। सभी को आश्चर्य था कि जो विषय अभी तक साहित्य के योग्य ही नहीं समझा गयाश, उस विषय पर श्इस लड़के ने लिखने का साहस किया!"[1]

'दरमियाना' उपन्यास से पूर्व सुभाष अखिल जी का कहानीसंग्रह 'वजूदकेबावजूद' मैं पढ़ चुकी थी। प्रस्तुत उपन्यास की आरंभिक दो कहानियाँ 'वजूद के बावजूद' कहानी संग्रह में भी संग्रहित है। 'दरमियाना' उपन्यास में उक्त दोनों आरंभिक कहानियाँ तो हैं ही, साथ ही दो और कहानियाँ हैं। इन चारों कहानियों के मुख्य एवं गौण पात्रों को लेखक ने अत्यंत करीब से देखा है जाना है, उनकी समस्याएँ सुनी हैं और उनके समाधान ढूँढने के प्रयास किए हैं। प्रस्तुत उपन्यास 'दरमियाना' जेंडर संवेदनशीलता जैसे विषय को विस्तार देती है, थर्ड जेंडर के प्रति समाज में अभी भी स्वीकार्य भाव का अभाव है, यहाँ तक कि उसे एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाना अभी भी प्रतीक्षित है, फिर उनके साथ मित्रता करना, उठना-बैठना उन्हें अपने घर आने देना, या उनके साथ घर के सदस्य जैसा बर्ताव तो विरले लोग ही कर पाते हैं। सुभाष अखिल की कहानियों में, जिस संजीदगी से इस विषय को उठाया गया है, उसी संजीदगी से उसे पूर्णता की ओर ले जाने का प्रयास भी किया गया है। कहीं भी इन कहानियों में कृत्रिमता, भाषण या उपदेशात्मकता नहीं है बल्कि इतनी सहजता है कि पाठक एक नए संसार से परिचित होने लगता है। अभी तक समाज से उन्हें मान-सम्मान और अवसर के स्थान पर अपमान, उपेक्षा और तिरस्कार ही मिलता रहा है, लेखक ने उनकी पीड़ा, दर्द, अपमान और उपेक्षा का वास्तविक चित्र खींचा है, और अतिशयोक्ति से स्वयं को दूर रखकर अच्छा संतुलन कायम किया है। जिस भारतीय समाज में हम रहते हैं उसमें इन लोगों के लिए कोई स्थान ही नहीं है, इस समाज के समानांतर एक अलग समाज है, जिसकी अपनी जीवन-शैली है, अपने रीति-रिवाज हैं और अपनी शब्दावली है। कतिपय कारणों से बहुत बार ऐसे जैविक भेद उत्पन्न होते हैं, जिन्हें स्वीकार कर पाना समाज के लिए कठिन होता है, यद्यपि इसमें किसी व्यक्ति का कोई दोष नहीं होता है, पर बात यहीं कहाँ खत्म होती है असली समस्या उत्पन्न होती है सामाजिक-सांस्कृतिक भेद-भाव से। जैविक आधार पर कुछ शिशु न लड़का कहला पाए, न लड़की, पर समाज को यह क्यूँ याद नहीं रह पाता कि ये हैं तो फिर भी इंसान ही।

-"मैं भी छोटी जात की हूँ बाबू.....मगर जैसे साधुओं की जात नहीं होती, वैसे ही हम हिजड़े भी जात-वात नहीं मानते।....मेरी गुरु मुसलमान थी, अब मेरी एक चेली भी मुसलमान है। हमारी तो अपनी ही देवी है, सब उसे ही मानते हैं।"[2]

तथाकथित सभ्य समाज ने जाति और धर्म की अनंत शाखाएँ निर्धारित कर रखी हैं, जिनमें असंख्य सीढ़ियाँ हैं, हर पायदान के नीचे कोई न कोई पायदान है।

"वहीं जाति-प्रथा का स्थूल रूप-जन्म पर आधारित, जाति के मूल अर्थ में ही- ऐसा कहीं नहीं मिलेगा। जातियों का जाल और वर्गीकरण, इतना पूर्ण और व्यवस्थित है कि छंद-शास्त्र का प्रस्तार याद आ सकता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की यह टिप्पणी अनायास गणित की अनंत राशि की ओर संकेत करती है कि हिंदू समाज में नीचे से नीचे समझी जानेवाली जाति भी अपने से नीची एक और जाति ढूँढ लेती है। और यह व्यंग्य नहीं, व्यावहारिक सच है।"[3]

पर सर्वाधिक दुखद पहलू यह है कि सभ्य समाज के जाति विभाजन के निचले से निचले पायदान पर भी तीसरे लिंग के मनुष्य के लिए चुटकी भर भी स्थान नहीं है। सभ्य समाज में उनकी गिनती तो मनुष्य के रूप में की ही नहीं जाती है। इन्हें इतना उपेक्षित, अपमानित और तिरस्कृत किया जाता है कि वे खुद भी भूल जाते हैं कि वे भी इंसान हैं। समाज ने इनके भरण-पोषण, शिक्षा, रोजगार आदि के लिए भी कोई व्यवस्था नहीं रखी। घर से जब निष्कासित ही कर दिये जाते हैं तो ऐसे में फिर पैतृक संपत्ति में हिस्से का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। इन सभी विषम परिस्थितियों से जूझते हुए, दुर्गम राहों पर चलते हुए, थकते-हारते इन्हीं परिस्थितियों के मध्य सामंजस्य बैठाते हुए इन लोगों ने जीवन-यापन करना स्वीकार कर लिया। शादी-ब्याह एवं शिशु जन्म के अवसर पर बधाई गाकर, बस-ट्रेन में या फिर चौक-चौराहों, ट्रैफिक सिग्नल पर माँग कर, मिन्नत कर, दुआएँ देकर कुछ पैसे का इंतजाम कर पाते हैं। फिर इन्हें समाज ढंग के काम पर रखना भी पसंद नहीं करता रहा है। उसे समाज में एक मजाक का विषय बना कर रख दिया गया है।

-"मैं जानती हूँ बाबू! लोग हमसे कैसे-कैसे काम करवाते हैं!.....कोई 'वसूली' के लिए कमीशन पर हमें बुलाता है। कोई किसी की 'बीलीकूटने' (अपमानित कराने) के लिए। कोई काम देने, नौकरी देने, धंधा-पानी करने के लिए कोई नहीं कहता। मजाक बना कर रख दिया है।"[4]

स्थिति यह होती गई कि दोनों समाजों ने इन्हें इसी रूप में देखने की आदत डाल ली, भीतर कहीं बहुत गहरे तक यही व्यवस्था रच-बस गई। सभ्य समाज ने इन पर जो तौर-तरीके लाद दिए, इन्होंने भी उसे इच्छा या अनिच्छा से जैसे-तैसे स्वीकार कर लिया, फिर धीरे-धीरे अपने तौर-तरीके, अपनी भाषा, अपनी शब्दावली, अपने रीति-रिवाज, संस्कार, कुल मिलाकर एक अलग ही सभ्यता-संस्कृति विकसित कर ली। आज कुछलोग इन स्टीरियोटाइप चलन से बाहर निकलने के लिए बहुत मेहनत कर रहे हैं, जहाँ यह माना जाता था कि तृतीय लिंग का व्यक्ति ताली ही बजाएगा, बधाई गाकर ढोलक की थाप पर ठुमके ही लगाएगा, हिजड़ा कहकर संबोधित किया जाएगा और किसी के भी द्वारा कभी भी, कहीं भी अपमानित कर दिया जाएगा। इन थोड़े से लोगों की कोशिशों का ही परिणाम है कि अब स्थिति में बहुत सारे बदलाव आए हैं, परंतु पहले तो स्थिति बहुत ज्यादा खराब थी। पर इतना सा बदलाव पर्याप्त नहीं है, जितनी कामयाबी अब तक मिल पाई है, वह वास्तव में बहुत कम है। इन्हें भी मानव होने के नाते वे सारे अधिकार मिलने चाहिए जो एक मानव के हैं। प्रश्न उठता है कि यदि कोई व्यक्ति जैविक कारणों से स्त्री या पुरुष नहीं बन पाता है और इन दोनों के मध्य ही अटक कर रह जाता है तो उसके प्रति समाज का रवैया कैसा होना चाहिए? कुदरत का कहर तो पहले ही टूट चुका है, ऐसे में फिर समाज भी यदि उसे मनोबल बढ़ाने में, उसे उसके अस्तित्व का एहसास करवा पाने में उसे यह विश्वास दिलवा पाने में कि स्त्री या पुरुष वह भले नहीं हो सका, पर है तो इंसान ही, आगे बढ़कर नहीं आता, स्थिति में सुधार की कल्पना नहीं की जा सकती है। जो थोड़ी संख्या में कोशिश की जा रही है, तो कामयाबी नहीं मिल पा रही है, और यदि मिल भी रही है तो बहुत ही कम, जो बिल्कुल भी पर्याप्त नहीं है। एक मानव होने के नाते उन्हें भी वे सारे अधिकार मिलने चाहिए, जिसका अधिकारी कोई भी मानव है। मानव की पहचान क्या सिर्फ और सिर्फ उसके स्त्री या पुरुष होने भर से है। यदि कुछ जैविक कारणों से कोई व्यक्ति पूर्णत: स्त्री या पुरुष नहीं बन पता है, इन दोनों के मध्य ही अटक कर रह जाता है तो उसके प्रति समाज का रवैया संवेदनापूर्ण होना चाहिए न कि उपेक्षापूर्ण। यही सम्पूर्ण समाज के लिए अच्छा रहेगा।

जेंडर और सेक्स के अंतर को समझना भी बहुत जरूरी है। समाज में पुरुष की तुलना में स्त्री को भी कमतर माना जाता है और उसके साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है। इसका कारण भी जेंडर भेद ही है। सेक्स का अंतर तो प्राकृतिक कारणों से है, पर जेंडर भेद तो सभ्य-समाज की देन है। जहाँ पुरुष की तुलना में स्त्री को ही दोयम दर्जे पर रखा जाता हो, वहाँ तृतीय लिंग वाले मनुष्य की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। उनकी स्थिति दयनीय और बदतर है, क्योंकि ये तो स्त्री भी नहीं हैं, निम्न से भी निम्नतर माना जाता है उन्हें। यहाँ तक कि उन्हें इंसान भी नहीं समझा जाता है।

–"मैं हमेशा से सोचती थी कि क्या हम इंसान नहीं हैं?...कम से कम हमें भी तो इन्सानों की तरह जीने का हक मिले।....इसी हक के लिए मैं ने बहुत भाग-दौड़ की है बाबू। कितने ही नेताओं और वकीलों से मिली हूँ। कमेटियाँ बना कर सबको इकट्ठा किया है।"[5]

सामाजिक व्यवस्था उसे एक अभिशप्त जीवन जीने को विवश करती है, परिवार और समाज में बारंबार उन्हें उस कारण के लिए अपमानित किया जाता है, जिनमें उनकी कोई गलती नहीं होती है। यदि इसे एक प्रकार की विकलांगता ही मान लें तो समाज में विकलांगता को लेकर आज तक सहजता-बोध और स्वीकारभाव विकसित नहीं हो सका है। फिर इनके मामले में तो स्थिति करेले ऊपर नीम चढ़ा वाली उक्ति जैसी ही है। जिस समाज में लिंग को ही श्रेष्ठता का प्रतीक मान लिया गया हो, उस समाज में स्त्री को भी जीवन भर उपेक्षा झेलनी पड़ती है, फिर लैंगिक विकलांगता के प्रति तो सहनशीलता और संवेदनशीलता कल्पना से भी परे है। संविधान में सबको एकसमान माना गया है, परंतु व्यवहार में यह समानता कहीं भी दिखाई नहीं देता है। जनतंत्र में जनता में से कोई भी जनता का प्रतिनिधि हो सकता है, इसी प्रतिनिधित्व के प्रति जागरूक दिखी है, दयारनी।- "आखिर जब हमारा संविधान, सभी लोगों को, बिना किसी भेदभाव के, समान रूप से जीने का अधिकार देता है...तो हमें क्यों नहीं? यही लड़ाई हम सबसे बड़ी अदालत में लड़ रही हैं!....अच्छा एक बात बताओ बाबू!.....जना तो आपको भी माँ-बाप ने ही है और हमें भी। इसमें हमारा दोष क्या है? हम कहीं ऊपर से तो टपके नहीं, यहीं से उपजे हैं...आपकी ही तरह!....फिर हमारे जीने के लिए कोई सम्मानजनक रास्ता क्यों नहीं होना चाहिए?..... मुझे न सही, मगर मेरे बाद आनेवाले, मेरे जैसों को तो यह हक मिले! आप तो पत्रकार हैं, आप भी इस लड़ाई में हमारा साथ दो!"[6]

अन्य विकलांगताओं के लिए भी समय-समय पर महिमामंडित करने वाले भारी-भरकम शब्दों का निर्माण अवश्य कर दिया जाता है, परंतु कुछ समय पश्चात ही वह शब्द भी घिस-पिट कर हिकारत के भाव प्रकट करने लगता है, और फिर महिमामंडन से युक्त एक और नए शब्द की तलाश शुरू हो जाती है। 'दरमियाना' उपन्यास इस रूप में अन्य उपन्यासों से अलग है कि इसकी सारी कथाएँ शामिल रूप में एक होकर भी अलग-अलग रूपों में समान महत्व की स्वतंत्र कहानियाँ हैं, जबकि अधिकतर उपन्यासों की कथाओं में एक मुख्य कथा होती है और अन्य उपकथाएँ होती हैं। इस उपन्यास में रेशमा, तारा, संध्या, सुनंदा, रेखा और दयारनी की कथाएँ हैं, और इन सभी कथाओं में समानान्तर रूप से नगमा, गुलाबो, चंदा आदि गौण पात्रों की उपकथाएँ भी शामिल हैं। इन कहानियों के दृश्य कहीं जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं तो कहीं जिज्ञासा को शांत भी करते हैं, पाठक को बहुत कुछ सोचने पर विवश करते हैं। बचपन में ही तारा माँ और रेशमा से संपर्क ने लेखक के मन में कई जिज्ञासाएँ उत्पन्न कीं, बहुत कुछ समझ में नहीं आने के बावजूद भी लेखक को इतना समझ में आने लगा था कि इन्हें भी वे अधिकार और खुशियाँ पाने का हक है, जो किसी को भी इंसान होने के कारण मिलनी चाहिए।

लेखक जब छोटे थे एक दिन एक लड़के ने लड़ाई होने पर कहा- "तेरी माँ हिजड़ा"। 'हिजड़ा' शब्द उस दिन लेखक ने अपने जीवन में पहली बार सुना था और उसी दिन शायद इस उपन्यास की नींव उनके मन में पड़ गई थी, यह बात अलग है कि पाठकों के हाथों तक पहुँचते-पहुंचते लगभग आधी सदी बीत गई। एक आठ-नौ वर्ष के बच्चे के मन में इस नए शब्द ने एक साथ अनेक जिज्ञासाएँ उत्पन्न कर दीं। उसी दिन से वह जिज्ञासाओं के समाधान में जुट गया। हिम्मत जुटाकर सर्वप्रथम माँ से ही पूछा और माँ के उत्तर से उन्हें पता चला कि हिजड़ा किसी की माँ नहीं हो सकती है। हिजड़ा शब्द के संदर्भ में यह उनकी पहली जानकारी थी। जानकारियाँ प्राय: नए प्रश्न भी खड़ी करती हैं और ऐसा लेखक के साथ भी हुआ, एक ओर वो पुराने प्रश्नों की तलाश करते तो दूसरी ओर उनके मन में कुछ और नए प्रश्न उभर आते। प्रश्नों और उनके उत्तरों की तलाश के साथ-साथ लेखक बड़े होते रहे, एम.ए. कर चुके, शोध-कार्य आरंभ कर दिया, साथ ही दिल्ली में ऑटो चलाने का निर्णय भी लिया। भोला नाम के ऑटो मैकेनिक के विषय में जब उन्हें पता चला कि वे किन्नरों के लिए बहुत काम करते हैं तो अकसर उनके पास जाने लगे। यूं तो भारतीय समाज में अनेक विषमताएँ हैं, उन्हें दूर करने के अनेक प्रयास भी होते रहे हैं, लैंगिक विषमता के संदर्भ में भी प्राय: स्त्री के अधिकारों के लिए स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही प्रयास होते रहे हैं, परंतु 78-79 तक इस तीसरे लैंगिक समूह को लेकर समाज में विशेष जागरूकता नहीं थी, परंतु कुछ लोग उनके प्रति संवेदनशील और जागरूक हो रहे थे। लेखक भोला के कामों में यथासंभव सहयोग करने लगे। यद्यपि भोला से मिलने से पहले ही वे 'दरमियाना' कहानी लिख चुके थे।

"हालांकि तब तक 'दरमियाना' लिखी तो जा चुकी थी, किन्तु प्रकाशित नहीं हो पाई थी। भोला जी के सान्निध्य में ही, 52 नंबर कोठे की मालकिन निम्मी बाई से परिचय हुआ, तो वे मुझे पुत्रवत स्नेह करने लगीं। उन्हीं दिनों उन्हें वहाँ से लोकसभा चुनाव भी लड़वाया गया था। उद्देश्य जीतना नहीं था, 'बात को दूर तलक ले जाने का था।' इसी बीच मुझे 'दिल्ली प्रेस' में नौकरी मिल

गई और ये तमाम गतिविधियाँ पीछे छूटने लगीं। वहाँ से बाल पत्रिका 'पराग' और 'पराग' से नवभारत टाइम्स तक आ गया, किन्तु अपने 'मूल विषय के प्रति मेरा लगाव नहीं छूटा।"[7]

बचपन में तारा माँ और रेशमा से संपर्क ने लेखक के मन में एक साथ कई जिज्ञासाएँ उत्पन्न कर दीं, उनका ताली पीटना, पान खाना, घर-घर बधाई माँगने जाना, बधाई के पैसे कम मिलने पर घर की मालकिन से मोल-भाव करना आदि गतिविधियाँ उन्हें यह एहसास कराती थी कि ये कुछ अलग हैं, परंतु क्यों, कैसे क्या आदि प्रश्नों के उत्तर उन्हें नहीं मिल पाते थे। बहुत कुछ समझ में नहीं आने के बावजूद भी लेखक को इतना समझ में आने लगा था कि इन लोगों को भी मान-सम्मान मिलना चाहिए। इन्हें भी मानव होने के सारे अधिकार मिलने चाहिए। इनके जीवन में भी खुशियाँ और नियमित आय होने चाहिए। उनकी एक-एक गतिविधि पर गौर करता लेखक का बाल मन अनंत जिज्ञासाओं में घिरा रहता। कुतूहल और जिज्ञासा से भरा वह बालक बार-बार उनकी मंडली में शामिल होता। इसी क्रम में समय के साथ कुछ बातें उसके सामने स्पष्ट होने लगीं।

– "धीरे-धीरे मैं ने जान लिया था कि तारा उन्हीं घरों पर जाती है, जिनमें विवाह या कोई बच्चा हुआ होता है। अब मैं इस बात का भी ध्यान रखता कि विवाह या बच्चा किसके घर हुआ है, ताकि बस्ती में घुसते ही सबसे पहले मैं तारा को यह सूचना पहुँचा सकूँ.....ताकि हथेलियाँ टकराकर.....गला फाड़कर उसे न पुकारना पड़े "अरे किसके होया है?"[8]

लेखक अपने भाई के जन्म पर खुद ही तारा माँ और उनकी मंडली को बुला लाता है। उन लोगों के साथ घूमते फिरते अपने बचपन के दिनों में ही लेखक उन लोगों के साथ सहज हो जाता है, जो कि आमतौर पर असंभव प्रतीत होता है। जब-जब तारा माँ उसे अच्छी नसीहतें देती है, पढ़ने के लिए कहती है, तब-तब लेखक को वह अपनी माँ जैसी लगती है। लेखक न सिर्फ सहज होता है बल्कि उनके साथ संबंध भी जोड़ लेता है। तारा को वह माँ की तरह मानने लगता है और तारा माँ भी उसे बेटे की तरह प्यार करती है।

– "मैं ने देखा- जब माँ बिगड़ती है, वह भी ऐसी ही लगती है, तारा आगे कह रही थी, "तू ये क्या हरकतें करने लगा है? मेरा नहीं तो कम- से- कम अपनी माँ का ही ख्याल किया होता! एक वो है बेचारी, जो दुनिया-भर के कपड़े सीकर तुझे ठूँसाती है.....और एक तू है!....इससे तो हम जैसे नपुते ही अच्छे! जा हट जा यहाँ से..." तारा ने मुझे धकेल दिया था, "जरा सी भी शरम बची हो तो अपना मुँह न दिखइओ।"[9]

एक ओर तारा का लेखक के प्रति वात्सल्य भाव का प्रेम विकसित होता है तो दूसरी ओर रेशमा का लेखक के प्रति सख्य भाव का प्रेम विकसित होता है। बात-बात पर वह लेखक को गले लगा लेती है, गाल चूम लेती है और चुहल करती है। कई सालों बाद जब एक दिन अचानक लेखक की रेशमा से मुलाकात होती है तो पहले तो वह पुराने अंदाज में ही बात करती है, लेकिन उसे थोड़ी देर बाद अचानक एहसास होता है कि लेखक की पत्नी भी उसके साथ है, और उसके इतने खुले व्यवहार से वह बुरा मान सकती है, तो वह स्वयं को संयमित कर लेती है।

– "मैं तारा के लिए 'अशुए' था। उसका बेटा, मगर रेशमा के लिए 'बबुआ' था। वैसे मैं तारा माँ से कम ही मजाक करता, मगर रेशमा और मेरे बीच छेड़छाड़ चलती रहती। हालांकि पहल उसी की ओर से होती, मगर मैं भी कभी-कभी हाथ फेर देता था। गुदगुदा देता या कोई चुहल कर बैठता। रेशमा मुझसे दस बरस तो बड़ी होगी ही। फिर भी जब वो मुझे बाँहों में भर लेती या पान से रंगे अपने होठों से मेरे गाल चूम लेती तो तो मुझे भी 'कुछ-कुछ' होता था।"[10]

यह व्यवहार इस बात का प्रमाण है कि दरमियाना व्यक्ति भी भावना और संवेदना के स्तर पर किसी पुरुष या स्त्री के समान ही होता है, पर समाज उसके मन में झाँकने का कष्ट कभी नहीं करता है। शरीर के स्तर पर आरंभ यह द्वंद्व उनके मन तक पहुँच जाता है।

– "इसी जनाने और मर्दाने होने के बीच कुदरत कभी-कभी खुद ऐसा घालमेल कर देती है कि इन दोनों ही संदर्भों को स्पष्ट रूप से विभाजित करके नहीं समझा जा सकता।"[11]

अधिकतर दरमियाना अपने मन, हृदय और आत्मा से स्त्री होते हैं, ऐसा लेखक ने कई दरमियाना को बहुत नजदीक से जानने पर जाना।

– "भैया, मेरी इस देह में रूह एक स्त्री की है.....मेरा मतलब मैं आत्मा से स्त्री हूँ.....और हूँ एक ऐसे शरीर में.....मुझे कुछ समझ

नहीं आता मैं क्या करूँ। आप मेरे बारे में क्या सोचते हैं, मैं नहीं जानती, मगर मैं सच कह रही हूँ- मैं औरत हूँ और वही होना चाहती हूँ....."[12] कई दरमियाना ने उसे बताया कि स्त्रियाँ उसके साथ वैसी ही सहज रहती हैं, जैसी वे दूसरी स्त्रियों के साथ होती हैं।

-"हालांकि वे जानने लगी थीं कि शरीर से मैं उनके जैसा नहीं हूँ। किन्तु वे कैसी भी बात मेरे सामने कर लिया करतीं। उनमें से कुछ, लड़कों की बातें भी करने लगी थीं, जिन्हें सुन कर मुझे भी 'उन जैसा ही कुछ' होता था। वे मेरे सामने कपड़े बदल लिया करतीं, मगर मैं ऐसा नहीं कर पता था।"[13]

संध्या लेखक को भैया कहती है, उनकी पत्नी के साथ भी उसी सहजता से रहती है, जिस सहजता से आमतौर पर कोई भी ननद-भाभी रहती है। -"मधुर घर पर होती तो वह ज्यादातर समय मधुर के साथ ही बिताता। दुनिया जहान की बातें उससे करता या बच्चों से खेलने लगता। वह अक्सर आता और मधुर को बाँहों में भर लेता। मधुर भी महिलाओं में होनेवाली 'निजी बातें' तक उससे कर लिया करती।"[14]

समाज किसी भी इंसान को सिर्फ और सिर्फ औरत या मर्द के रूप में ही देखने की आदी रही है, ऐसे में किसी तीसरे लिंग के व्यक्ति को देख या समझ पाना उनके लिए कठिनाइयों से भरा होता है। लिंग यद्यपि प्रकृति प्रदत्त है, पर लैंगिकता तो सामाजिक देन है। बच्चे के जन्म के साथ ही पहला प्रश्न लिंग को लेकर रहता है, और वहीं से लैंगिकता के पैमाने पर उसे खड़ा उतार सकनेकी तैयारी शुरू हो जाती है। यह कभी सोचा ही नहीं गया कि लिंग के अलावा भी इंसान की कोई शख्शियत है। इन दोनों लिंगों से इतर यदि कोई किसी कारणवश हो गया, तो उसे भी इंसान के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

- "बेटी या बेटा? एक बेहूदी जिज्ञासा। प्रायः सोचा जाता कि सृजन की प्रक्रिया से जो भी मिले, वह प्रकृति से प्राप्य है। .. ...किन्तु इतना सहज-सरल तो यह सवाल कभी रहा ही नहीं।"[15]

लेखक ने इनके जीवन को बहुत नजदीक से देखा और इनकी शब्दावली से भी इतने परिचित हो गए कि उनके विषय में जानकारियाँ उन्हीं की शब्दावली में प्राप्त करने लगे। इनकी वेषभूषा और शब्दों के बीच कोई तालमेल न देखकर प्रायः उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। परंतु अपने पत्रकारिता के पेशे के कारण आमलोगों तक इनलोगों के जीवन को पहुंचाया। इन्होंने उन लोगों पर फीचर लिखे, उनकी तस्वीरें अखबारों में छापी, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया। तृतीय लिंगी समाज और आम समाज को जोड़ने में लेखक की अति महत्वपूर्ण भूमिका रही।

- "तभी अचानक मैं पूछ बैठा था, "पन की (अपने इलाके में माँगने वाले) हो?.....या खैरगल्ले (किसी के भी इलाके में घुस जाने वाले) की?"

उसने मुझे ऊपर से नीचे तक बड़े गौर से देखा। गोया, उसकी निगाहें मुझे कुछ समझने का प्रयास कर रही थीं। फिर कुछ ठिठक कर उसने कहा था, "कसम ले लो सर जी!...सुनंदा नाम है मेरा!.....बिलकुल 'पन' की हूँ। मेरी गुरु का इलाका है, सरोजिनी नगर। .....मुनीरका में रहती हूँ, किसी से पूछ लेना!.....उसकी तालियों की टकराहट, उसका इलाका होने की गवाही दे रही थी। क्योंकि उस 'टंकार' में पूरा आत्मविश्वास था।

मैं कुछ और आगे बढना चाहता था। उसके सौन्दर्य ने, सादगी ने, सच्चाई ने.....और उसकी सहजता ने मुझे जैसे बाँध लिया था। थोड़ा साहस कर मैं ने पूछ ही लिया था, "छिबरी हो या..... अकुआ (लिंगसहित)"

इस बार उसकी बड़ी और गहरी-सी आँखें कुछ और बड़ी होकर मेरे चेहरे पर टिक गई थीं।"[16]

थर्ड जेंडर के जीवन को लेखक ने तारा, रेशमा, संध्या, सुनन्दा, रेखा आदि पात्रों के माध्यम से पाठकों के समक्ष रखा है। 'हिजड़ा' शब्द के पहली बार सुनने से लेखक के मन में जो जिज्ञासा उत्पन्न हुई, उसे उन्होंने वक्त की परतों में दबने नहीं दिया, बल्कि निरंतर उस जिज्ञासा का समाधान खोजने की दिशा में प्रयत्नशील रहे। उनके इन प्रयत्नों का ही परिणाम है कि पाठकों के समक्ष पहले 'दरमियाना' कहानी, फिर 'वजूद के बावजूद' कहानी संग्रह और तदनंतर यह 'दरमियाना' उपन्यास आ सका। किसी के दुख को समझ पाना, महसूस कर पाना आसान नहीं होता है। लेखक सुभाष अखिल तृतीय लिंग के इन मनुष्यों के संपर्क में आए, उन्हें देख-जाना, समझा, और अपनी संवेदना से उसे जोड़कर अपने साहित्य का माध्यम बनाकर उसे सामान्य जन तक संप्रेषित किया। इसका समाज में अवश्य सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा, लोग दो लिंगों के मनुष्यों के साथ-साथ तीसरे लिंग के मनुष्य को भी बेहतर

रूप में जान पाएंगे, देख-समझ पाएंगे और स्वीकार कर पाएंगे। एक लोकतांत्रिक देश में इस समूह के लोग भी अपनी अस्मिता का एहसास कर पाएंगे, समाज के जिस तबके ने उसे बहिष्कृत कर दिया, उस समाज में इस समूह के लोग भी अपनी सशक्त उपस्थिती दर्ज करवा पाएंगे। इन कथाओं से जो संदेश पाठकों को मिल रहा है, निश्चित रूप से उसका प्रभाव दोनों समाजों पर पड़ेगा, लोग नए तरीके से सोच पाएँगे। धीरे-धीरे इतनी जागरूकता आएगी कि ऐसे बच्चे के जन्म पर परिवार के लोग मुँह नहीं छुपाते फिरेंगे, और उस बच्चे को त्यागने के लिए बाध्य नहीं होंगे। संविधान के अनुसार हर व्यक्ति बराबर है, अब समाज में व्यावहारिक रूप से इसे अपनाने कि जरूरत है। लेखक ने पुस्तक के फ्लैप पर किन्नर के विषय में महाभारत से लेकर मुगल साम्राज्य तक वर्णित रहस्यात्मकता का जिक्र किया है, साथ वर्तमान संदर्भों में इस पर बदलती दृष्टी का भी उल्लेख किया है। समकालीन साहित्य में इन पर केन्द्रित विशद लेखन हो रहा है, चर्चाएँ हो रही हैं। समाज को इनके विषय में जागरूक और संवेदनशील होने की आवश्यकता है, साहित्य इसमें खासा योगदान कर रहा है। साहित्यिक योगदान की इसी कड़ी में लेखक का यह उपन्यास 'दरमियाना' एक अति महत्वपूर्ण उपन्यास है।

1. दरमियाना पृ.9
2. वही पृ. 121
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 16
4. दरमियाना पृ. 121-122
5. वही, पृ. 122
6. वही
7. वही पृ. 9
8. वही पृ.16
9. वही पृ.19
10. वही पृ. 26
11. वही
12. वही पृ. 39
13. वही पृ. 38
14. वही पृ. 31
15. वही पृ.
16. वही पृ.6

निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी समाज

डॉ० धर्मा रावत

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय(सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

आदिवासी समाज दुनिया भर में मौजूद हैं और सभी का संघर्ष अपनी संस्कृति, अपनी प्रकृति और अस्मिता के लिए है। उनके द्वारा शोषण को देखने की दृष्टि नयी हो गयी है। वह केवल लूटपाट के लिए प्रतिरोध नहीं कर रहा हैं अपितु हर पक्ष को समेटता है। यह साहित्य उनके बीच रह कर उनके ही अनुभवों की अभिव्यक्तियाँ हैं और इसी कारण सहानुभूति और सहानुभूति नहीं होने के कारण गैर आदिवासी साहित्य से अलग है। भूमंडलीकरण के लिए जिस विकास के मॉडल को चुना गया है, वह प्रकृति पर हमले, संस्कृति को उन्मूलित करने एवं मनुष्य के विस्थापन के लिए विवश करती है। विकास का यह मॉडल भूमंडलीकरण के साथ आदिम संस्कृति के अदम्य जिजीविषा से युक्त जनजाति के मध्य टकराहट उत्पन्न कर रहा है। विकास का आधार पूंजीवाद व औद्योगीकरण को बनाने की इच्छा आदिवासियों की समस्या को अधिक गंभीर कर रहा है।

वर्तमान में कई साहित्यकारों एवं मानवसेवियों द्वारा इसका प्रतिरोध किया जा रहा है। विकास के लिए हुए उनके कई दमनों के बावजूद वह अपने सामुदायिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को खारिज नहीं होने देते हैं। आदिवासी समाज के बाहर उपस्थित संस्कृति के प्रभावस्वरूप जो युवा अपने पूर्वजों का इतिहास भूल गए हैं, जिन्हें अधिकारियों का षडयंत्र समझ नहीं आता कि किस प्रकार सुविधा का खोखला वादा कर उनको धोखा दिया जाता है; उनको जागृत करने एवं दृष्टि प्रदान करने का कार्य आदिवासी रचनाकारों द्वारा ही किया जा रहा है।

प्रत्येक रचनाकार पर उसके वातावरण तथा परिवेश का प्रभाव होता है। निर्मला पुतुल भी आदिवासी की जिंदगी को उसके परिवेश में ही जीकर देख रही हैं। पुतुल जी की कविताओं में उन योजनाओं का चित्रण है जो संभाल परगना के खनिज और प्राकृतिक संपदा तक सत्ताधारी और व्यावसायिक नेताओं की पहुँच बनाता है। आदिवासी समाज द्वारा विद्रूपतापूर्ण स्थिति को भी अपनी सहज और मानवीय भावना के कारण दिल में रख जाता है। उनका आर्थिक अभाव, राजनीतिज्ञों द्वारा शोषण, नशे की लत उनके जीवन मूल्यों में कमी करने के साथ ही उनके आपसी संबंधों में भी दरार पैदा करती है। पुतुल जी की कविता में रिश्तों का चित्रण है जहाँ लड़की का परिवार के साथ संबंध चित्रित है। उनके कविता की लड़की माँ के पैर दबाती है, पिता के घर वापस लौटने पर पानी देती है। शादी के बाद माँ घर मे अकेले रह जाने की चिंता करती है और अपने रिश्तेदारों से कभी-कभी मिलने की इच्छा भी उसमें दिखती है। रिश्तों की दृढ़ता उनकी कविता में दिखती है-

"जंगल से लायी लकड़ियों के गट्ठर में बंधी रस्सी की तरह
बंधी रह जाऊँगी तुमसे।"

भारतीय संविधान भी आदिवासी के लिए 'जनजाति' शब्द का प्रयोग करता है। खुद को सभ्य कहलवाने वाला समाज उनको 'वनवासी' से संबोधित करता है। जिस भूमण्डल में किसी भी सामान्य इलाके की तुलना में पेड़ों का घनत्व अधिक होता है उसे वन अथवा जंगल कहा जाता है। मनुष्य से पहले भी पेड़ों पर ही धरती की निर्भरता थी। इसी कारण आदिवासियों द्वारा वन को अपने जीवन का आधार बनाया गया। पेड़ों को काट कर बसने की प्रक्रिया में एक संस्कृति की शुरुआत होती है। किंतु जंगल के बाहर रहने वाले लोगों द्वारा जंगल में रहने वालों का 'वनवासी' कह मजाक उड़ाया गया। किंतु यह वनवासी जनता अपने शरीर के काले

होने या छोटे होने से हतोत्साहित नहीं होती। वह अपनी संस्कृति के साथ स्वयं पर भी गर्व करते हैं। उन्होंने इस धरती के 'आदिसंस्कृति' को अपनाया और इसी कारण 'आदिमानव' कहलाये जो उनकी पहचान बनी–

"कोई जनजाति कहता है/तो कोई पुकारता है कहकर वनवासी
तैयार नहीं है वे सब के सब/आदिवासी मानने को हमें।"[2]

आदिवासी अब सदियों से झेलती हुई वेदना और अपमान को निडरता से विश्व के सम्मुख प्रकट कर रहे हैं। अपनी समस्याओं के लिए सवाल उठाकर उसका समाधान भी खुद ही ढूंढ़ रहे हैं। 'सिनगी देई' जैसी वीर नेत्री एवं बिरसा मुंडा को जो समाज भगवान मानकर उनके आदर्शों को आत्मसात कर रहा है, वह अपने समाज का उत्थान अपनी जीवन की रीति के अनुसार ही चाहता है–

"दुमका की मिट्टी से बनी झारखण्ड का पठार हूँ मैं
जंगल-पहाड़ों में खिलनेवाली जंगली फूल हूँ मैं
जो आपके महल में नहीं सज सकती।"[3]

आदिवासी समाज द्वारा चाव के पानी द्वारा शराब बनायी जाती है जिसे 'हडिया' कहा जाता है। इसको स्त्री एवं पुरुष द्वारा साथ बैठकर पीया जाता है। इसे उनकी संस्कृति का ही हिस्सा माना जाता है। हडिया पिलाकर पूंजीपति एवं साहूकार द्वारा चोरी एवं मार-पीट जैसी घटनाओं में इन्हें शामिल किया जाता है। झारखण्ड में होने वाले अधिकांश बलात्कार इस हडिया के कारण ही है हड़िया के नशे में आदिवासी लड़कियों पर उनके ही समाज के युवकों से हमला होने से उन लड़कियों के साथ ही पूरे समाज का भविष्य अंधकारमय हो जाता है। वह इस विडंबनापूर्ण स्थिति को इस प्रकार चित्रित करती हैं–

"यहाँ तो जाहेर और माँझीथान के देवता भी
बिक जाते हैं बोतल भर दारू में।"[4]

वस्तुत: नशाखोरी आदिवासी समाज की एक बड़ी समस्या है। यह आदिवासी स्त्रियों के लिए एक संकटपूर्ण स्थिति हैं। निर्मला पुतुल की कई कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति दिखाई देती हैं। अपनी एक कविता 'चुड़का सोरेन से' में वे लिखती हैं–

"तुम्हारे पिता ने कितनी शराब पी यह तो मैं नहीं जानती
पर शराब उसे पी गयी यह जानता है सारा गाँव
इससे बचो चुड़का सोरेन!
बचाओ इसमें डूबने से अपनी बस्तियो को
देखो तुम्हारे ही आँगन में बैठे
तुम्हारे हाथों बना हड़िया तुम्हें पिला-पिलाकर
कोई कह रहा है तुम्हारी बहनों से ठिठोली
बीड़ी सुलगाने के बहाने बार-बार उठकर रसोई में जाते
उस आदमी की मंशा पहचानो चुड़का सोरेन
जो तुम्हारी औरत से गुपचुप बतियाते बात-बात में दाँत निपोर रहा है
वह कौन-सा जंगली जानवर था चुड़का सोरेन
जो जंगल लकड़ी बीनने गयी तुम्हारी बहन मुँगली को
उठाकर ले भागा?"[5]

आधुनिकता आदिवासी संस्कृति पर चौतरफा हमला कर रही है। वह आदिवासी समाज और संस्कृति को तहस-नहस करने का काम कर रही है। विकास के नाम पर एक भोगवादी संस्कृति को प्रश्रय दिया जा रहा है और आदिवासियों का शोषण किया जा रहा है। निर्मला पुतुल इस स्थिति को निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं–

"इसकी बेहतरी के लिए
कुकुरमुत्ते की तरह उगी संस्थाओं में

तथाकथित समाज-सेवक हैं
अफसर हैं, चमचे हैं, ठेकेदार हैं, बिचौलिये हैं
और वे सबके सब
हाथों में खुली रंगीन बोतलें लिये
बना रहे हैं राउण्ड-टेबुल पर योजनाएँ
बोतलों में नशा है
नशे में तैरती
गदराई देहवाली कई-कई आदिवासी लड़कियाँ हैं
आदिवासी लड़कियों के पास सपने हैं
सपनों में अधूरी इच्छाएँ हैं
भूख है,
भूख मे दूर तक पसरी ऊबड़-खाबड़ धरती है
धरती पर काले नंगे पहाड़ हैं
पहाड़ पर वीरानियाँ...''[6]

जल, जंगल और जमीन आदिवासियों की अस्मिता की पहचान होती है। आदिवासी अस्मिता के ये मूल तत्त्व हैं। इसलिए आदिवासी अपने जंगलों से अगाढ़ प्रेम करते हैं। पेड़ उनके सहयात्री होते हैं। उनके जंगलों को लगातार नष्ट किया जा रहा है। इसकी पीड़ा निर्मला पुतुल की कविताओं में दिखाई देती है। वे अपनी कविता 'बूढ़ी पृथ्वी का दुख' में लिखती हैं-

"क्या तुमने कभी सुना है
सपनों में चमकती कुल्हाड़ियों के भय से
पेड़ों की चीत्कार?
कुल्हाड़ियों के वार सहते
किसी पेड़ की हिलती टहनियों में
दिखाई पड़े हैं तुम्हें
बचाव के लिए पुकारते हजारों-हजार हाथ?
क्या होती है, तुम्हारे भीतर धमस
कटकर गिरता है जब कोई पेड़ धरती पर?
सुना है कभी
रात के सन्नाटे में अँधेरे से मुँह ढाँप
किस कदर रोती हैं नदियाँ?''[7]

आदिवासी समाज में अपनी स्थिति के प्रति आक्रोश भी दिखाई देता है। निर्मला पुतुल इस आक्रोश की अभिव्यक्ति भी अपनी कविताओं में करती हैं। इस संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"धीरे-धीरे साफ होंगी चीजें
समय के धुँधलके को तोड़
जमीन की परतें तोड़कर फूटते अंकुर की तरह
फूटेगा एक दिन हमारा असंतोष

और भड़क उठेगी आग
आग फैलेगी धीरे-धीरे आदमी के जंगल में
और जल उठेंगे खामोश अचल खड़े पेड़
मौन समाधि लिये बैठा बरगद भी
नहीं बचेगा हमारी लपटों से"[8]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम पाते हैं कि निर्मला पुतुल आदिवासी-विमर्श से अनुप्राणित कवयित्री हैं। इसलिए उनकी कविताओं में आदिवासी समाज का चित्रण बहुत ही गहराई से हुआ है और यह चित्र वैचारिक दृष्टि से भी संपन्न है।

संदर्भः

1. नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 46
2. अपने घर की तलाश में, पृ. 18
3. बेघर सपने, पृ. 47
4. नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 23
5. वही, पृ. 19-20
6. वही, पृ. 26-27
7. वही, पृ. 31
8. वही, पृ. 84

काली आँधी: राजनीतिक यथार्थ की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति

डॉ० मनीष कुमार चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर, दौलत राम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उपन्यास के जनतंत्रीय साहित्यिक विधा होने के कारण उसमें जीवन का कोई अंग निमिद्ध नहीं है। राजनीतिक विशेषता से युक्त उपन्यास राजनीतिक घटनाओं एवं सिद्धांतों से प्रभावित मानव समाज की एवं जीवन की व्याख्या करते हुए जीवन के विविध पक्षों के सत्य की अभिव्यक्ति करता है। व्यक्ति समाज की इकाई है और समाज राजनीति का गढ़ है। उपन्यास जीवन की व्याख्या है और इस रूप में समाज का महाकाव्य। इस तरह राजनीति व्यक्ति और उपन्यास, दोनों को स्वतंत्र रूप से बढ़ने में बाधक है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक ''टच'' का प्रमुख कारण राष्ट्रीय जीवन में राजनीति का प्राधान्य ही है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का यह कथन उचित ही है। कि **''स्वराज मिलने के पश्चात् देश में सहसा राजनीतिक शक्ति का इतना प्राधान्य हो गया है कि उसने सामाजिक जीवन की विविध दिशाओं में जो कुछ कार्य हो, वह राजनीति का 'स्टैम्प लग कर ही हो इस सर्वग्रासिनी वृत्ति ने राष्ट्रीय जीवन को एकांगी बना दिया है।''**

सभ्यता के विकास के साथ-साथ नारी के चेहरे भी परिवर्तित होते रहे हैं और हिन्दी उपन्यासों में नारी-चित्रण के चित्र बदलती हुई सामाजिक स्थिति के ही अनुरूप है। काली आँधी उपन्यास में नारी के जटिल और अति महत्वाकांक्षी रूप को दिखाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास लेखक कमलेश्वर के निजी अनुभवों की परिणति है जो उन्होंने चुनाव की प्रक्रिया में भोगे हैं ''काली आँधी मेरे दिमाग में उस वन उठी थी, जब मैं सन् 1962 में राजस्थान में हो रहे चुनावों के दौरान एक कारकुन की तरह शामिल हुआ था'' काली आँधी उपन्यास भारतीय राजनीति के उस दौर को प्रस्तावित करती है जब देश की जनता को ''गरीबी हटाओ'' का नारा दिया गया था और पागल से दिखने वाले बूढ़े के शब्दों में तय किया था कि एक बार आपका साथ और दिया जाय। शायद गरीबी बार मिट सके। अपने समय और समाज के इस ''सबसे बड़े झूठ'' की बात इस उपन्यास में पूरी तल्खी, ईमानदारी और सच्चाई के साथ कही गई है।

राजनीति हमारे समय की अपरिहार्य सच्चाई है। 20वीं सदी में राजनीति ने मनुष्य के अस्तित्व और मुनि के लिए, क्रांति के लिए अथक और सफल संघर्ष किया है। लेकिन इसी सदी के अंत होते होते राजनीति ने बुनियादी मूल्यों के लिए लड़ाई को जैसे दरकिनार कर दिया है। बुनियाद से अपदस्थ, मूल्यच्युत फिर भी व्यापक और प्रभावशाली इस राजनीति का विरोध करने के लिए साहित्य लगभग अभिशप्त है। प्रस्तुत उपन्यास में राजनीति की विद्रूप स्थितियों का विरोधी स्वर वर्तमान है। आज राजनेता सत्ता की प्राप्ति के लिए सारे नियम, कानून, मर्यादा, नैतिकता सभी को तोड़कर सिर्फ सत्ता प्राप्ति की होड़ में शामिल दिखते हैं। जनता के दु:ख-दर्द से बिल्कुल बेखबर होना उनके स्वभाव की अनिवार्यता है। जनता सिर्फ 'वोट बैंक' है। सत्ता के उत्कर्मा पर पहुँचने का मात्र सोपान इस उपन्यास में मालती का चरित्र भी ऐसे ही नेता का है जो अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के चलते पति, बेटी और जनता सभी को अपने वन जरूरत और जीत के मुताबिक काम में लाती है। मालती जनता के द्वारा चयनित होकर कुर्सी तक पहुँचती है किन्तु उसकी प्राथमिकता में जनता कहीं नहीं होती। उसके जीवन का एकमात्र मूल्य है सत्ता और सफलता। समाज सेवा का नाटक भी इसी उद्देश्य की प्राप्ति का उपक्रम है। आदर्श का आवरण ओढ़कर राजनीतिक षड्यंत्र और पैतरेबाजी में शामिल मालती भले ही

प्रजातंत्र की पवित्र व्यवस्था का अंग हो परन्तु उसकी मनोवृति और कार्यशैली सामंती ही है। लेखक इस सत्य के सहभोना रहे हैं, ''..... कहते हैं कि कुचला हुआ साँप ज्यादा खतरनाक हो जाता है। शाही सामंतवादी कुचला हुआ साँप भी यही रुख अपना रहा था। पैसा, औरतें, शराब, साइकिलें, मशीन, कपड़े, अनाज, जश्न सब कुछ खुलेआम चल रहा था।'' 'काली आँधी' में भी राजनीति अपने इसी कुरूप और घिनौने रूप में उपस्थित है।

'काली आँधी' उपन्यास में समकालीन राजनीति, चुनाव प्रक्रिया, चुनावी हथकण्डे तथा साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति से चुनाव जीतने की घिनौनी राजनीति का विद्रूप चेहरा सामने आता है। चुनाव प्रचार, भामाण, जलसे - जुलूस, उठा-पटक जोड़-तोड़ और राजनीतिक चालों के कुत्सित प्रयोगों का यथार्थ चित्र इस उपन्यास की अन्यतम विशेषता है। जाति के जहर से भारतीय राजनीति जहरीली हो गई है। किन्तु इस बड़े सच को कितनी साफगोई से राजनीतिज्ञ झुठला देते हैं, उसका एक उदाहरण मालती के इस कथन में देखा जा सकता है - **''देखिये हम विरोधी दलों के हथकण्डे नहीं अपनाते हैं। चुनाव एक पवित्र कार्यक्रम है। पैंतरेबाजी और उठा पटक का सवाल नहीं है। हम जातियों के आधार पर चुनाव नहीं लड़ेंगे क्योंकि हमारी नीति किसी खास जाति के लिए नहीं है, पूरी जनता के लिए है।''** लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है। लाला दीनानाथ को चुनाव में खड़ा किया जाता है और जब उसका प्रभाव उसके जाति के लोगों में छा जाता है तो मालती उसे अपने पक्ष में कर मैदान से हटवा देती है। ये सब घटनाएं पूर्व नियोजित और पूर्ण प्रायोजित हैं। **''जनता के बीच काम करने वाले की कोई जाति नहीं होती समझे आप ? लाला दीनानाथ अगर अपने जाति भाइयों को अपनी मुट्ठी में ले लेते हैं और वन आने परहम लाला दीनानाथ को जीत लेते हैं तो इसमें हम कहाँ**

जातिवादी हो जाते हैं ? बताइए। हम पर कौन इल्जाम लगा सकता है इस बात का ?'' अत: कुछ भी किया जाए चाहे वह नकारात्मक हो या सकारात्मक, चेहरा सच्चाई और ईमानदारी का होना चाहिए। राजनीति का गुरूमंत्र भी लल्लू बाबू की जिन्दगी का गुरुमंत्र है- **''हर काम करो, पर उसकी शक्ल बदल कर करो।''** यही शक्ल बदलकर काम करने की बीमारी ने देश को बीमार बना कर कोमा में पहुँचा दिया है। जनतांत्रिक मूल्यों के मुखौटे के पीछे भी यही शक्ल बदलकर काम करने की दुमप्रवृति हावी है। राजनीति में ईमानदारी और बेईमानी का कोई विभाजित अध्याय नहीं होता। यह हमारे विवेक की दृष्टि पर निर्भर है कि हम उसे किस कोण से देखते हैं। **''ईमानदारी और बेईमानी में चार अंगुल का भी फरक नहीं है। यह सवाल चित और पटका है। एक ही स्थिति के दो पहलू हैं, अब यह आप पर है कि आप किस पहलू से देखते हैं। राजनीति यही है और राजनीति की सफलता भी यही है आपका पहलू ईमानदारी से भरा और सही माना जाए।''** राजनीतिक भ्रष्टाचार की विद्रूपता आज हमारे बीच एक मूल्य के रूप में परिवर्तित हो गई है। हमारा समय और समाज इस विषैले मूल्य के बीच सांस ले रहा है। इसकी परिणति आम जीवन की चीख और चीत्कार में देखी जा सकती है। राजनीति मनुष्य के समाज को अधिक व्यवस्थित तथा पूर्ण बनाने की चेमटा से प्रेरित होनी चाहिए। किन्तु इस 'होने' के आदर्श से विपरीत यथार्थ है। आजादी के 56 वर्मों के बाद भी राजनीति का सैद्धांतिक मूल्य कल्याणकारी और औचित्यपूर्ण ही है, किन्तु व्यवहारिक पक्ष जर्जर, विकलांग, कुरूप और संवेदनाहीन। स्वतंत्रता के बाद की पूरी पीढ़ी में इस दर्द को महसूस किया जा सकता है। कमलेश्वर ने बड़े ही सुसंगठित ढंग से स्थिति की वास्तविकता को उजागर किया है। वस्तुत: रचनाकार ने शब्दों की कील से मस्तिमक की चेतना पर सार्थक प्रहार किये हैं।

आज राजनीति से आम आदमी अत्यधिक निराश और क्षुब्ध है। आम आदमी की समस्या राजनीतिक वर्ग के लिए 'हथियार' सदृश है। आम जीवन के सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षा, अभिलाषा का सौन्दर्य कुम्हला रहा है। इस संदर्भ में प्रख्यात नाटककार स्वदेश दीपक की पंनियां चरितार्थ हो उठती हैं **''धर्म राजनीति, संस्कृति और साहित्य रंडी बन गए हैं इन पॉलिटिशियंस के हाथों में। इनका इस्तेमाल तिजारत बन गया है तिजारत। अपने घर में खून-खराबा, भुखमरी, बेरोजगारी और हाहाकार। विदेशों में हो रहे हैं भारत उत्सव। फेस्टीवल ऑफ इंडिया। लोग इतने सुखी हैं कि बस दिन रात नाचते हैं, गाते हैं और मस्त रहते हैं। बना दी है यह धरती शस्य - श्यामला हमारे राजनीति के अवतारों ने।''** सच्चाई की नग्न स्थिति से हम भले ही बौखला जाय किन्तु स्थितियाँ और बदतर होती जा रही हैं। प्रगति के नित नवीन अध्याय लिखे जा रहे हैं किन्तु जीवन की नारकीयता भी उतनी ही तीव्र गति से बढ़ रही है। पोस्टरों में कैद नारों से खुशहाली का पैगाम कभी नहीं आ सकता है। दीवारों को गन्दा करते-करते राजनीतिक दलों ने आज आपसी प्रेम - सौहार्द - सहयोग के स्वच्छ विचारों को भी गंदला कर दिया है।

लोकतंत्र का महाकुंभ ''चुनाव'' आज महाकलंक के रूप में परिणत हो गया है। वैचारिक समृद्धि और व्यवहारिक दरिद्रता के आँगन में क्रय-विक्रय का खुला बाजार सजता है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' इस महाकुंभ का अनिवार्य मंत्र घोषित होता है। इतिहास साक्षी है कि 56 वर्षों की गुलामी की नाटकीय मुनि के पश्चात भी कहने और करने के बीच का फासला मिटने के विपरीत बढ़ता जा रहा है। इस संदर्भ में काली आँधी के पात्र लल्लू बाबू जो राजनीति के द्युत क्रीड़ा में शकुनि के पर्याय हैं का कथन है **''इलेक्शन का धर्म यही है कि सब कुछ कहजा जाए, पर कही बात में विश्वास न किया जाए.....''**

राजनीति के बदसूरत चेहरे से चिढ़ आज आम आदमी की चिढ़ बन गई है। धर्म, जाति, विपदा, त्यौहार, सुख-दु:ख, गरीबी, भूख, भय, भ्रमटाचार, बेरोजगारी सभी चीजें राजनीति के ट्रम्प कार्ड हैं। राजनीतिक सत्ता प्रतिमठानों के मठाधीश जब चाहें, जैसे चाहें इसे इस्तेमाल कर वोट बैंक की संख्या बढ़ाते रहेंगे। भ्रष्ट राजनीति की यथार्थता को उद्घाटित करते हुए जग्गी बाबू का कथन है ''..... तुम्हारी राजनीति बड़ी घटिया चीज है ..... तुम लोगों ने इसे निहायत बेहूदा बना दिया है। तुम लोग सिर्फ चीजों का बखूबी इस्तेमाल करना जानते हों ..... बाढ़ आई तो उसे इस्तेमाल करो, सूखा पड़ा तो उसे इस्तेमाल करो, कहीं कोई लड़की भाग गई तो उसके भागने को इस्तेमाल करो, कही कोई मर गया तो उसकी मौत को इस्तेमाल करो ..... तुम लोगों ने आदमी के आँसुओं और जज्बातों तक को नहीं छोड़ा ..... उसकी आशाओं और सपनों तक को नहीं बख्शा ..... इससे ज्यादा घटिया बात और क्या हो सकती है कि दुखी और मुसीबतजदा इन्सानों के सपनों तक का इस्तेमाल तुमने कर लिया ..... खुदा के लिए, उसके सपने तो उसके लिए छोड़ दिये होते ..... ताकि वह अपनी बदहाली और मुसीबतों के बीच सपनों के सहारे जी लेता, ...तुमने ..... तुमने उसके सपनों को नारे बनाकर निचोड़ लिया। अब क्या बचा है आदमी के पास ?''

प्रस्तुत उन्यास की रचना का अभिप्राय राजनीति और राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट चरित्रों का उद्घाटन करना है। स्वतंत्रता प्राप्ति की अर्द्ध सदी के पश्चात् भी राष्ट्र की जनता की अनिवार्य आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या पूर्ववत् बनी है। एक ओर बेरोजगारी की लम्बी फौज मुँह बाये खड़ी है तो दूसरी ओर व्यक्ति नितान्त असुरक्षित है। जिस रास्ते पर भेड़-बकरी का जीवन सुरक्षित है वहीं व्यक्ति की दिन-दहाड़े हत्या, संपूर्ण मानवीयता पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। संप्रति समाज की जो भी ज्वलंत समस्याएँ हैं कहीं न कहीं उस समस्या का संबंध राजनीतिक व्यवस्था से है। जनतांत्रिक मूल्यों की आत्मा से विमुख जनप्रतिनिधि चयनित होकर लोकसभा और राज्य सभा में जाते हैं। चुनाव प्रजातंत्र का महापर्व की जगह ताकतवरों के व्यवसाय में परिवर्तित हो गया है। इसमें वही सफल होते हैं जिनके पास आर्थिक शनि के साथ-साथ बंदूक और बुलेट की ताकत भी होती है। आज राजनीति का अपराध ीकरण नहीं वरन् अपराधियों का राजनीतिकरण हो गया है। **''तभी तो देश के मुख्य चुनाव आयुक्त जे. एम. लिंगदोह ने राजनीतिकों के कैंसर - चरित्र से आक्रांत बीमारी का रहस्योद्घाटन किया है।''** वस्तुत: इस संक्रमित बीमारी के कैंसर को राष्ट्र ढोते जाने को विवश है। यह विवशता ही राजनीति के कैंसर को पाल-पोस रही है। आजादी के बाद से लगातार स्खलन की दिशा में बढ़ रहे भारतीय लोकतंत्र का चेहरा बीमार राजनेताओं की वजह से दुनिया भर में स्याह हुआ है। यह भारतीय लोकतंत्र का दुर्भाग्यपूर्ण पहलू ही है कि पाँच वर्षों के लिए चुनाव जीत कर लोकसभा या विधानसभा में पहुंचे जनप्रतिनिधि खुद को जमींदार समझने लगता है और सत्ता उसे पाँच साल की पट्टेदारी दिखने लगती है। राजनीतिज्ञों के वास्तविक चेहरों की पहचान और उसके कलुषित मनोवृत्ति पर अंकुश ही व्यवस्था परिवर्तन की चेतना को पुष्ट और सार्थक बना सकती है। कमलेश्वर ने प्रस्तुत उपन्यास में इन सभी तथ्यों का बेबाक चित्रण किया है। कमलेश्वर व्यवस्था से मुनि हेतु लिखते हैं- **''किसी सही राजनीतिक पार्टी के बिना परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। राजनीति से इन्कार करना संभव ही नही है। इसलिए राजनीति को जनतंत्र की चुनाव प्रणाली को स्वीकार करते हुए इस सिस्टम में जो करप्शन पैदा हो गया है, उससे इन्कार किया जाए और इस निहायत गंदे तरीके से खेले जा रहे खेल की असलियत सामने लाई जाए।''**

काली आँधी उपन्यास का कथानक राष्ट्र की समसामयिक राजनीति से संबंध रखते हुए स्वतत्र्योत्तर राजनीति को निर्भीकता और पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत करता है। कथाकार कमलेश्वर ने किसी पार्टी विशेष पर विचारधारा विशेष के समर्थन या विरोध के बजाय राजनीति के प्रत्यक्ष सन्दर्भों को उद्घाटित किया है।

संदर्भ

1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी आधुनिक काव्य-रचना और विचार, पृ. 7
2. कमलेश्वर : काली आँधी, अनुभव से अर्थ की खोज तक, पृ. 1
3. काली आँधी, पृ. 100
4. कमलेश्वर : काली आँधी - अनुभव से अर्थ की खोज तक, पृ. 2
5. काली आँधी, पृ. 15
6. वही, पृ. 19
7. वही, पृ. 61.
8. काली आँधी, पृ. 19
9. स्वदेश दीपक जलता हुआ रथ, पृ. 42
10. काली आँधी,, पृ. 60.
11. वही, पृ. 4.
12. दैनिक राष्ट्रीय सहारा, संपादकीय, दिनांक 27-12-03.
13. कमलेश्वर, लेख, काली आँधी- अनुभव से अर्थ की खोज तक.

संपादक, विचारक और समालोचक के रूप में प्रेमचंद

डॉ० रत्नेश कुमार सिंह

प्रो० (गेस्ट फेकल्टी), सत्यवती कॉलेज सांध्य (एन.सी.डब्ल्यू.ई.बी.), दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रेमचंद स्वयं साहित्य-स्रष्टा तो थे ही, वह दूसरों में साहित्य-रचना की प्रेरणा पैदा करनेवाले और नए लेखकों को प्रोत्साहित करनेवाले साहित्यकार भी थे। वह भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी की शानदार परंपरा में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने इस परंपरा को उन्नत किया था। 'माधुरी' और आगे चलकर विशेष रूप से 'हंस' के जरिए उन्होंने हिंदी-साहित्य की शक्तियों को बटोरने का भगीरथ प्रयत्न किया था। उनके पत्र में एक ओर निराला जी के छायावादी गीत प्रकाशित होते थे तो दूसरी ओर उनकी अपनी यथार्थवादी कहानियाँ भी छपती थीं। लेकिन प्रेमचंद तटस्थ संपादक नहीं थे। वह राष्ट्रीयता और जनतंत्र की भावनाओं का विरोध करनेवाली रचनाओं को खुद छापना तो दूर, दूसरी जगह भी वे छपें, तो उनकी आलोचना करना न भूलते थे।

'हंस' के 'द्विवेदी-अभिनंदनांक' में संपादकीय कलम से जो शब्द द्विवेदी जी के लिए लिखे गए हैं, वे कुछ घट-बढ़कर प्रेमचंद पर भी लागू होते हैं।

''स्वभाव से अत्यंत दृढ़-प्रतिज्ञ और हृदय से परम कोमल, ये हमारे अपने हैं, इस बात को हिंदी-जगत उसी दिन मान गया था, जब ये 'सरस्वती' में थे। उन दिनों ये हम सबको पिता की तरह शासित किया करते थे और माता की तरह प्यार! ये हमारी गलतियों पर फटकारते थे, उन्हें प्रेमपूर्वक सुधार देते और हमारी सफलता पर हमें प्रेम के मोदक भी खिलाते थे। इन्होंने ठोंक-ठोंककर हमें सुधारा, पुचकार-पुचकारकर ठीक रास्ते पर चढ़ाया और उत्साह दे-देकर आगे बढ़ाया।''

प्रेमचंद के ये वाक्य अप्रैल सन् 1933 में प्रकाशित हुए थे, जब वह स्वयं हिंदी में चोटी के साहित्यकार माने जाते थे। दूसरों का सम्मान करने में उनकी स्वाभाविक उदारता देखते ही बनती है।

प्रेमचंद की फटकार का नमूना देखिए। कथाकार सुदर्शन से कह रहे थे- ''मैं तो समझता था आप फारग-उल-बाल होकर अदब की ज्यादा खिदमत कर सकेंगे, मगर मेरा ख्याल गलत निकला। अब महीनों गुजर जाते हैं और आपका कोई किस्सा किसी अखबार में नजर नहीं आता। चार नहीं दो सही, दो नहीं एक सही, लेकिन कुछ-न-कुछ तो हर महीने लिखते रहिए। इससे तो वह तंगदस्ती ही अच्छी थी जो आपसे कुछ-न-कुछ लिखवा लेती थी।''

यह बात सन् 27 की है जब प्रेमचंद 'हंस' के संपादक न थे। उनके लिए यह जरूरी न था कि संपादक बनने पर ही किसी को पफटकारें या उत्साहित करें। एक युग-निर्माता साहित्यकार थे और अपने कर्तव्य को अच्छी तरह पहचानते थे। वह ऐसे अहंवादी नहीं थे कि समझते कि उन्हीं के लिखते रहने से हिंदी-साहित्य का उद्धार हो जाएगा। इसलिए किसी अच्छे लेखक को चुप्पी साधते देखकर वह बिगड़ उठते थे।

उनके प्रोत्साहित करने की एक मिसाल श्री वीरेश्वर सिंह को लिखे हुए खत हैं। दो महीने से प्रेमचंद खाट पर पड़े हुए थे। पेचिश की तकलीपफ थी। लीवर भी खराब था। फिर भी लिखते हैं- ''आज 'भारत' से तुम्हारा लेख पढ़वाकर सुना। बड़ी तकलीपफ में था, लेकिन पिफर भी कुछ आराम ही मिला। बड़ा अच्छा लेख है।''

ऐसी बीमारी में 'हंस' के एक लेखक की रचना को-जो दूसरे पत्रा में छपा थी-पढ़वाकर सुनना और उसकी दाद देना प्रेमचंद का ही काम था।

प्रसाद जी का 'कंकाल' प्रकाशित होने पर प्रेमचंद ने उसकी प्रशंसा छापी थी। और उनके असर से प्रसाद जी ने 'तितली' में एक नए ढंग की कथा रचने का कोशिश की थी।

प्रेमचंद आमतौर से कटु शब्दावली का प्रयोग न करते थे। उनके विरुद्ध कई लेखकों ने गंदे लेख लिखे, इससे वह क्षुब्ध नहीं हुए। लेकिन जब वह किसी दूसरे लेखक पर कीचड़ उछाला जाता देखते थे, तब जरा भी मुलाहिजा न करके सीधा वार करते थे। 'सरस्वती' में पं. बनारसीदास जी चतुर्वेदी के संबंध में एक गंदा लेख निकला, तब 'हंस' में 'साहित्यिक गुंडापन' नाम से टिप्पणी देकर उन्होंने उसकी तीव्र आलोचना की।

इस टिप्पणी के अंत में प्रेमचंद ने लिखा था- ''श्रीनाथसिंह मुझसे मिल चुके हैं और कितने ही मनुष्यों के बारे में ऐसी बातें कर चुके हैं कि यदि मैं लिखूं तो वह प्रयाग में बहुत हल्के हो जाएँगे। लेकिन ऐसी बातें करना जितनी बड़ी नीचता है, उसका जिक्र करना, उससे भी बड़ी नीचता है। इस तरह के प्रोपेगण्डे से श्रीनाथसिंहजी न साहित्य का उपकार कर रहे हैं, न 'सरस्वती' का, न अपना। वरन् संसार के सामने हिन्दी के सम्पादकों की भद्द करा रहे हैं, उन्हें कलंकित कर रहे हैं। आपकी यह कृति देखकर इसके सिवा और क्या होगा कि दुनिया कहेगी-जब 'सरस्वती'-जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का सम्पादक ऐसा लफंगापन कर सकता है, तो पिफर शायद यह आवा ही बिगड़ा हुआ है।''

प्रेमचंद ने यहाँ सख्ती से काम लिया है, यह समझते हुए कि यह मर्ज मामूली दवा से भागनेवाला नहीं है। वह हिंदी-साहित्य और हिंदी-साहित्यकारों की प्रतिष्ठा की रक्षा करनेवाले पत्रकार थे। इसलिए उनकी कटु शब्दावली उन्हें शोभा देती थी।

प्रेमचंद पर यह आरोप लगाया गया था कि वह घृणा का प्रचार करते हैं। प्रेमचंद ने दिसंबर 1933 के 'हंस' में 'जीवन में घृणा का स्थान' नाम से इस विषय पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणी लिखी थी। वह जीवन में घृणा के अस्तित्व को मानते थे। उनका मानवतावाद इतना व्यापक न था कि उसमें अन्यायी, अत्याचारी सभी घुल-मिलकर शुद्ध मानव बन जाएँ। उन्होंने इस टिप्पणी के शुरू में लिखा था-निंदा, क्रोध और घृणा ये सभी दुर्गुण हैं। लेकिन मानव-जीवन में से अगर इन दुर्गुणों को निकाल दीजिए, तो संसार नरक हो जाएगा।''

प्रेमचंद के अनुसार घृणा के बिना बुराइयों से छुटकारा नहीं मिल सकता- ''पाखंड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्प्रवृत्तियों के प्रति हमारे अंदर जितनी ही प्रचंड घृणा हो, उतनी ही कल्याणकारी होगी।''

प्रेमचंद की रचनाओं को समझने के लिए ये शब्द सूत्र की तरह उपयोगी हैं। उनका साहित्य पाखंड, धूर्तता, अन्याय और बलात्कार से घृणा करना सिखलाता है। यह साहित्य जीवन में तटस्थ नहीं है। वह धूर्तता, अन्याय और बलात्कार देखकर किसी शाश्वत सत्य के आँचल में मुंह नहीं छिपा लेता। वह पाठक से ललकारकर कहता है, आओ, इस अन्याय और अत्याचार से घृणा करो। इसे दुनिया से मिटा दो।

पाखंड, धूर्तता, अन्याय आदि देशकाल से परे अदृश्य और अस्पृश्य वृत्तियाँ नहीं हैं। उनका सामयिक जीवन से घनिष्ठ संबंध है। प्रेमचंद का साहित्य मनुष्य को सुसंस्कृत बनाता है, लेकिन जमाने से ऊपर उठकर नहीं। वह किसी विशेष धूर्तता, किसी विशेष अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानेवाला साहित्य है। किसी निर्विशेष अन्याय, किसी चिरंतन धूर्तता से काल्पनिक युद्ध करनेवाला साहित्य नहीं है। प्रेमचंद मानव-आत्मा के शिल्पी हैं, इसलिए कि वह आत्मा अखंड, अछेद्य और अनादि न होकर किन्हीं देशकाल की परिस्थितियों में दुख-सुख पाती है।

जनता की तरफदारी करनेवाला लेखक सबका भला बनकर नहीं रह सकता। जब वह देशकाल की सीमाओं में बँधे हुए किन्हीं खास लोगों के अन्याय और पाखंड का पर्दाफाश करता है, तब यह स्वाभाविक हो जाता है कि उसकी चोट खाकर तिलमिला उठनेवाले लोग उसके खिलाफ जिहाद बोल दें। इस सिलसिले में प्रेमचंद का अनुभव यह था-

''कई पंक्तियों के लेखक ही के विषय में एक कृपालु आलोचक ने आक्षेप किया है कि उसने अपनी रचनाओं में ब्राह्मणों के प्रति घृणा का प्रचार किया है।''

ब्राह्मणत्व की आड़ में होनेवाले पाखंडाचरण की निंदा करते हुए प्रेमचंद ने आगे लिखा है- ''हरेक टकापंथी पुजारी को ब्राह्मण कहकर मैं इस पद का अपमान नहीं कर सकता। इस विकृत धर्मोपजीवी आचरण के हाथों हमारा सामाजिक अहित ही नहीं, कितना राष्ट्रीय अहित हो रहा है, यह वर्णाश्रम-स्वराज्य संघ के हथकंडों से जाहिर है। ऐसी असामाजिक, अराष्ट्रीय, अमानुषीय भावनाओं के प्रति जितनी भी घृणा फैलायी जाए, वह थोड़ी है। केवल भावनाओं के प्रति, व्यक्ति के प्रति नहीं, क्योंकि वर्णाश्रम धर्म के संचालक हमारे वैसे ही भाई हैं जैसे आलोचक महोदय के।''

प्रेमचंद का मानववाद मनुष्य की तरफदारी करनेवाला मानववाद है। वह अमानुषीय भावनाओं को देखकर चुप नहीं रहता। प्रेमचंद खुल्लमखुल्ला अपना उद्देश्य घोषित करते हैं कि ऐसी भावनाओं के प्रति जितनी भी घृणा फैलाई जाए, वह थोड़ी है। वह सोद्देश्य साहित्य के समर्थक हैं। 'कला कला के लिए या निरुद्देश्य साहित्य से उनका वैर है। वह भावनाओं और व्यक्ति में भेद करते हैं, लेकिन स्वयं उनके उपन्यास अन्याय ही नहीं, अन्यायी के प्रति भी घृणा करना सिखाते हैं। ज्ञानशंकर के चरित्र से कौन-सा पाठक क्रोध से विचलित नहीं हो उठता? ज्ञानशंकर को अलग रखकर उसका क्रोध कब सूक्ष्म भावनाओं पर केंद्रित होता है? विचार-क्षेत्रा में प्रेमचंद अन्याय और अन्यायी में भेद करते हैं। इस तरह का भेद अस्वाभाविक है और जन-साधारण की प्रकृति के विरुद्ध है। असल में, अपने उपन्यासों में वह अन्यायी और अत्याचारी से घृणा करना सिखाते हैं, जो उचित ही है।

प्रेमचंद सोद्देश्य साहित्य के हामी थे लेकिन हर तरह के उद्देश्य के नहीं। जैसा कि उन्होंने सन् 1930 में 'विशाल भारत' में घोषित किया था- ''मेरी अभिलाषाएँ बहुत सीमित हैं। इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतंत्रत-संग्राम में सफल हों। मैं दौलत और शोहरत का इच्छुक नहीं हूँ। खाने को मिल जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविस नहीं है। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्च कोटि की रचनाएँ छोड़ जाऊँ। लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतंत्रत-प्राप्ति ही हो।'' (हंसराज रहबर द्वारा 'प्रेमचंद: जीवन और कृतित्व' में उद्धत)।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य का उद्देश्य घोषित किया था-स्वतंत्रत-प्राप्ति। वह स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक- साहित्यकार थे। अगर वह सोचते कि स्वाधीनता प्राप्ति तो क्षणिक ध्येय है, जब आजादी मिल जाएगी तब मेरी किताबों को कौन पूछेगा, यह उद्देश्य मुझे प्रगतिशील तो बनाएगा लेकिन यह प्रगतिशीलता किसी खास जमाने में बंधकर रह जाएगी, इसलिए मुझे साहित्य का ऐसा उद्देश्य ढूँढ़ निकालना चाहिए जो व्यास और वाल्मीकि के लिए भी सच रहा हो और मेरे लिए भी सच हो, इसलिए मुझे ऐसा साहित्य रचना चाहिए जिससे अंग्रेज भी खुश रहें, पंडे-पुजारी, जमींदार और महंत भी खुश रहें-प्रेमचंद अगर इस तरह सोचते तो वह स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक-साहित्यकार न बन पाते, वह हिंदुस्तानी जनता की जिंदगी में नई हरकत न पैदा कर पाते, वह हमेशा के लिए जनता के हृदय में अपना अपूर्व स्थान न बना पाते। उनका उद्देश्य सामयिकता, देशकाल की विशेषता से परे न था। उनका साहित्य सामयिकता की सतह को छूनेवाला साहित्य नहीं था, उसमें गहराई में डबनेवाला, देशकाल की विशेषताओं के परस्पर संबंध को चित्रित करनेवाला साहित्य था। इसीलिए वह इतना सशक्त और प्रभावशाली है।

प्रेमचंद इस बात के कायल नहीं थे कि मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करे, उस पर लिखे। साहित्य में अनुभूति की दुहाई देना दूसरे शब्दों में निरुद्देश्यता की घोषणा करना है। कविता निरुद्देश्य होती है कि सोद्देश्य, इस बात का जवाब देते हुए मई 1936 के 'हंस' में प्रेमचंद ने लिखा था- ''इसलिए यह कहना कि कविता का कुछ उद्देश्य ही नहीं होता और उसको उपयोगिता के बंधन में बाँधना गलती है, एक सारहीन बात है।'' कवि किसी को क्यों रुलाता है और क्यों हँसाता है, इस बात का जवाब देते हए उन्होंने उसी टिप्पणी में लिखा था- ''उसका उद्देश्य है, हमारी करुण भावनाओं को उत्तेजित करना, हमारी मानवता को जगाना और यही उसकी उपयोगिता है। मगर हम तो कवि की सभी अनुभूतियों के कायल नहीं। अगर उसने अपनी प्रेयसी के नख-शिख के बखान में वाणी का चमत्कार दिखाया है, तो हम देखेंगे कि उसने किन भावों से प्रेरित होकर यह रचना की है। अगर उससे हमारे मनोभावों का परिष्कार होता है, इसमें सौंदर्य की भावना सजग होती है, तो उसकी रचना ठीक, वरना गलत।''

प्रेमचंद के ये विचार नई पीढ़ी का मार्ग-दर्शन करते हैं। उनका महत्त्व जितना सन् 1935 में था, उससे कहीं ज्यादा आज है। अपने सामाजिक उत्तरदायित्व से बचने के लिए कई बुद्धि जीवी तरह-तरह के अनगढ़ तर्क पेश करते हैं। कोई कहता है, सामयिक उद्देश्य से साहित्य को बाँध देना उसकी चिरंतन प्रगतिशीलता को खत्म कर देना है। कोई कहता है, साहित्यकार को सच्ची अनुभूति के अनुसार लिखना चाहिए, उद्देश्य की चिंता छोड़ देनी चाहिए। इन सज्जनों के तुमुल कोलाहल में प्रेमचंद की दृढ़ आवाश सनाई देती है- ''मगर हम तो कवि की सभी अनुभूतियों के कायल नहीं।''

प्रेमचंद ने सौंदर्य की भावना के सजग होने की बात लिखी थी। इस सौंदर्य की उस भावना के नाम पर कुछ दूसरे साहित्यकार अपने सामाजिक उद्देश्य से आँख चुराना चाहते हैं। लेकिन 'घृणा के प्रचारक प्रेमचंद' का सौंदर्य इतना व्यापक नहीं था कि उसमें उच्च वर्गों का मनोरंजन करनेवाला, जनता को बरगलाने वाला काम-साहित्य भी समेट लिया जाए। मई सन् 1936 के ही 'हंस' में भारतीय साहित्य परिषद्' के नाम की टिप्पणी में उन्होंने लिखा था- 'जो लोग दुनिया को अपनी मुट्ठी में बंद किए हुए हैं, उन्हें दिमागी ऐयाशी का अधिकार हो सकता है। पर जहाँ फाका है, नग्नता है और पराधीनता है, वहाँ का साहित्य अगर नंगी कामुकता

और निर्लज्ज रति-वर्णन पर मुग्ध है, तो उसका यही आशय है कि अभी उसका प्रायश्चित पूरा नहीं हुआ, और शायद दो-चार सदियों तक उसे गुलामी में और बसर करनी है।

प्रेमचंद जब सौंदर्य की भावना को सजग करने की बात कहते हैं, तब उनका मतलब दिमागी ऐयाशी और रीतिकालीन नायिका-भेद से नहीं होता। वह इस तरह के सौंदर्य-साहित्य की जोरदार भर्त्सना करते हैं। उनका मतलब सौंदर्य की उस भावना से है, जो जन-साधारण के हृदय में है, जिसके सजग होने पर मनुष्य पराधीनता के घिनौनेपन को पहचान लेता है और उसे दूर करने के लिए युद्ध करता है।

प्रेमचंद कथाकार ही नहीं थे, पत्राकार भी थे। भारतेंदु से लेकर प्रेमचंद तक हिंदी-साहित्य की परंपरा में यह बात ध्यान देने की है कि हमारे सभी बड़े साहित्यकार पत्रकार भी थे। पत्रकारिता उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी। यह पत्रकारिता एक सजग और लड़ाकू पत्रकारिता थी, जो देश-विदेश के घटना-क्रम में दखल देती थी, जनता के जीवन और साहित्यकार के परस्पर संबंध को मजबूत करती थी।

प्रेमचंद अंतर्राष्ट्रीय जगत् की देखभाल रखते थे और अपने देश की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उस पर टीका-टिप्पणी करते थे। 'सोवियत रूस में प्रकाशन' नाम की टिप्पणी में उन्होंने सन् 1927 तक के आँकड़े देते हुए लिखा था- ''रूस की जनसंख्या 12 लाख के लगभग है। इस जनसंख्या के लिए लगभग 8 करोड़ पुस्तकें प्रकाशित हुई।'' पिफर हिंदुस्तान के लोगों की उदासीनता और उनकी गुलामी का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा था- ''यहाँ 1930 में अंग्रेजी में 2,332 पुस्तकें, और हिंदुस्तानी भाषाओं में 14,815 पुस्तकें निकलीं। कहाँ 8 करोड़ और कहाँ 15 हशार!'' प्रेमचंद ने इस स्थिति के लिए गरीबों को दोषी नहीं ठहराया, क्योंकि ''यहाँ साहित्य से थोड़ा-बहुत जो प्रेम है वह उन्हीं को है जो अभाव से पीड़ित हैं।'' उन्हें क्रोध आया है संपत्तिशाली लोगों की विरक्ति पर। उनका कहना है- ''अगर हममें विरक्ति की यह भावना न होती तो आए दिन हमारे आंदोलनों का बासी कढ़ी के उबाल का-सा हाल न होता।'' दुनिया की गतिविधि देखकर प्रेमचंद इस नतीजे पर पहुँच रहे थे कि जिस आंदोलन में संपत्तिशाली वर्गों का नेतृत्व होगा, उसका नतीजा बासी कढ़ी में उबाल के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। इसलिए इस टिप्पणी में उन्होंने सोवियत प्रकाशन के आँकड़े देते हए इन वर्गों की विरक्ति की आलोचना की है। साम्राज्यवादी पराधीनता, अंग्रेजी राज्य की हकीकत प्रेमचंद के दिए हुए आँकड़ों से जाहिर हो जाती है- पैंतीस करोड़ हिंदुस्तानियों के लिए सिपर्फ 15 हजार किताबें!

प्रेमचंद सोवियत साहित्य के प्रकाशन-संबंधी आँकड़ों ही से प्रभावित न थे। वह रूसी साहित्य का आदर करनेवाले प्रमुख भारतीय साहित्यकार थे। यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने हत्या और बलात्कार के साहित्य की निंदा करते हुए रूसी साहित्य को उससे श्रेष्ठ ठहराया था। 'रूसी साहित्य और हिंदी' नाम की टिप्पणी में उन्होंने लिखा था- ''एक समय था कि हिंदी में रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी। हिंदी और उर्दू दोनों ही रेनाल्ड की पुस्तकों का अनुवाद करके अपने को धन्य समझ रही थीं। डिकेंस, थैकरे, लैंब, रस्किन आदि को किसी ने पूछा तक नहीं। पर अब जनता की रुचि बदल गई, और यद्यपि अब भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो चोरी, जिना और डाके आदि के वृत्तांतों में आनंद पाते हैंऋ लेकिन साहित्य की रुचि में कुछ परिष्कार अवश्य हुआ है, और रूसी साहित्य से कुछ लोगों को रुचि हो गई।''

प्रेमचंद ने यहाँ साफ-साफ शब्दों में पश्चिम के पतित पूँजीवादी साहित्य की निंदा की है। उन्होंने डिकेंस आदि जनवादी साहित्यकारों को रेनाल्डस की परंपरा से अलग करके दिखलाया है। वह डाके और जानकारी के साहित्य की निंदा करनेवालों में थे। लेकिन उनकी मृत्यु को सोलह साल भी नहीं बीते, डाके और जिनाकारी का साहित्य रंगीन कवरवाली किताबों में छपकर एक बड़ी तादाद में हिंदुस्तान आने लगा है। यही नहीं, कछ कलाकार जब तक जानकारी का वर्णन न कर लें, तब तक उनकी दशा ''रस विशेष जाना तिन्ह नाही'' की-सी रहती है। इस तरह का साहित्य प्रेमचंद की परंपरा पर पानी फेरता है और जनता को बरगलाकर गुलामी में दिन बसर करना सिखलाता है। इस साहित्य के विरुद्ध प्रेमचंद ने रूसी साहित्य का अभिनंदन किया था।

अपनी टिप्पणी के अंत में प्रेमचंद ने लिखा था- ''जिन लेखकों ने रूस को उस मार्ग पर लगाया, जिस पर चलकर आज वह दुखी संसार के लिए आदर्श बना हुआ है, उनकी रचनाएँ क्यों न आदर पाएँ?''

अमरीकी जनतंत्र की असलियत प्रेमचंद की 'अमेरिका में कृषक-विद्रोह' नाम की टिप्पणी में जाहिर हो गई है। आर्थिक संकट से किसानों की तबाही का जिक्र करते हए उन्होंने लिखा था- ''बरसों तक बेचारे अमेरिकन किसान गवर्नमेंट से सहायता की आशा करते रहे। गवर्नमेंट ने उनके उद्धार का प्रयत्न किया। पर ये सभी प्रयत्न असफल हो गए। अब मजबूर होकर उन्होंने अपने उपायों

से काम लेना शुरू किया है, और ये उपाय ज्यादा सफल हो रहे हैं। उन्होंने गुट बाँधकर कई शहरों की सड़कों की नाकाबंदी कर दी और देहातों से जो सामान नगर में आता था उसे रोक दिया। जहाँ जरूरत पड़ी, वहाँ पशु-बल से भी काम लिया। इसमें उन्हें पूरी सपफलता तो नहीं मिली, पर वे बिलकुल असपफल भी न रहे।''

जहाँ पर मंदी की वजह से किसान भूखे मरते हों, वहाँ की शासन-व्यवस्था को प्रेमचंद जनवादी कैसे मान लेते? इसीलिए वह रूस और अमेरिका के बीच तटस्थ नहीं थे बल्कि तथ्य देकर दोनों की संस्कृति पर प्रकाश डालते थे।

और न प्रेमचंद अपने जमाने के खूनी फासिस्टवाद- हिटलरवाद के बारे में। तटस्थ थे। हिटलर द्वारा नाजी नेताओं की हत्या पर 'हिटलर की तानाशाही' नाम की टिप्पणी लिखते हुए प्रेमचंद ने हिटलर का सही हुलिया भी बयान कर दिया था- ''हिटलर ने जर्मनी के पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली बनकर कछ समय पूर्व यहूदियों पर जो अत्याचार किया था, उसी से उसकी ख्याति संसार में हो गई और अब इस क्रूर कर्म ने तो विद्युत-प्रकाश डालकर उसके हृदय का रगरेशा तक सापफ-सापफ दिखला दिया है। ''प्रेमचंद उन देशभक्तों में नहीं थे जो हिटलर को साम्राज्य- विरोधी समझते थे या उसे हिंदुस्तान-जैसे गुलाम देशों का उद्धारक मानते थे। हिटलर पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली था-प्रेमचंद ने उसके बारे में यह अपना स्पष्ट मत दे दिया था।

न प्रेमचंद उन देशभक्तों में थे जिन्होंने जापान से आशाएँ रखी थीं। 'आतंकवाद का उन्मूलन' नाम की टिप्पणी में उन्होंने लिखा था- ''आज भारतवर्ष के द्वारा समस्त यूरोप अपने-अपने खजाने भर रहा है, जापान अपनी जेबें गरम कर रहा है। सभी मालामाल हो रहे हैं, और भारतीय बच्चे भूखे तड़प रहे हैं।'' प्रेमचंद विश्व-शांति के सजग प्रहरी थे। वह युद्ध के लिए अग्रसर होनेवाली ताकतों-जापान और जर्मनी-को पहचान गए थे। वह अमरीकी जनतंत्र की असलियत से बेखबर नहीं थे और साम्राज्यवाद और सोवियत रूस के बीच में तटस्थ नहीं थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ जनता को एकत्रा करनेवाले वह एक कर्मठ साहित्यकार थे।

सितंबर 1936 के 'हंस' में अपने जीवन-काल में निकलनेवाले 'हंस' के आखिरी अंक में-प्रेमचंद का 'महाजनी सभ्यता' नाम का लेख छपा है। यह लेख प्रेमचंद की प्रखर होती हुई क्रांतिकारी चेतना का सबूत है। इसमें उन्होंने तमाम दुनिया के मनुष्य-समाज को दो हिस्सों में बँटा हुआ दिखाया है- ''बड़ा हिस्सा तो मरने और खपनेवालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किए हुए हैं। उन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रू-रियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाए, खून गिराए। और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाए।''

महाजनी सभ्यता में मनुष्यता को व्यापार और मुनाफे की वेदी पर किस तरह कुर्बान किया जाता है, इसकी मार्मिक व्याख्या करने के बाद प्रेमचंद ने पूंजीवाद को खत्म करनेवाली सोवियत रूस की नई सभ्यता के बारे में लिखा था- ''परंतु अब एक सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नारकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड़ खोदकर फेंक दी है।'' इस नई सभ्यता के खिलाफ दुनिया के महाजन किस तरह झूठा प्रचार कर रहे थे, प्रेमचंद उससे बेखबर न थे, उन्होंने इस झूठ का पर्दाफाश करना अपना कर्तव्य समझा। साम्राज्यवादी युद्धों की जड़ झूठ है। झूठे प्रचार के बिना लोगों को बरगलाकर युद्ध की भट्ठी में नहीं झोंका जा सकता। प्रेमचंद ने सोवियत-विरोधी झूठे प्रचार का पर्दाफाश करके एक सच्चे शांति-प्रचारक का काम किया। उन्होंने खासकर इसी मसले को लिया कि सोवियत रूस में आजादी है या नहीं। उन्होंने नई सभ्यता के मूल सिद्धांत का उल्लेख करते हए कहा- ''जिसका मूल सिद्धांत यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है, और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप-दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बना पिफरता है, वह पतितम प्राणी है। उसे राज्य-प्रबंध में राय देने का हक नहीं और वह नागरिकता के अधिकारों का भी पात्रा नहीं। महाजन इस नई लहर से अति उद्विग्न होकर बौखलाया हुआ पिफर रहा है और सारी दुनिया के महाजनों की शामिल आवाज इस नई सभ्यता को कोस रही है, इसे शाप दे रही है। व्यक्ति-स्वातंत्रय, धर्म-विश्वास की स्वाधीनता और अंतरात्मा के आदेश पर चलने की आजादी, वह इन सबकी घातक, गला घोंट देनेवाली बताई जा रही है। उस पर नए-नए लांछन लगाए जा रहे हैं, नई-नई हुरमतें तराशी जा रही हैं। वह काले-से-काले रंग में रंगी जा रही है, कुत्सित-से-कुत्सित रूप में चित्रित की जा रही है। उन सभी साधनों से, जो पैसेवालों के लिए सुलभ हैं, काम लेकर उसके विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है। पर सचाई है, जो इस सारे अंधकार को चीरकर दुनिया में अपनी ज्योति का उजाला फैला रही है।''

कैसे जोरदार शब्दों में प्रेमचंद ने साम्राज्यवादी प्रचार का पर्दाफाश किया है! कितनी दृढ़ता और विश्वास के साथ सत्य और मनुष्य के भविष्य का पक्ष लिया है। इन शब्दों को पढ़कर कौन कह सकता है कि महीनों के रोग से जर्जर शरीरवाले मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए प्रेमचंद ने उन्हें लिखा होगा? जिस सचाई ने अंधकार को चीरकर दुनिया में उजाला फैलाया था, उसने प्रेमचंद के हृदय में आशा और उत्साह का ज्वार पैदा कर दिया था। प्रेमचंद के एक तरपफ मौत और अँधेरा था, तो दूसरी तरफ यह सचाई और प्रकाश। मनुष्य के बल और बुद्धि में, उसके पुरुषार्थ में उनकी आस्था और दृढ़ हो गई थी। इसीलिए व्यक्ति-स्वातंत्र के नाम पर सोवियत रूस पर कीचड़ उछालनेवालों को उन्होंने रगेद मारा था।

प्रेमचंद ने साम्राज्यवादी प्रचारकों को ललकारते हुए लिखा था- ''नि:संदेह इस नई सभ्यता ने व्यक्ति-स्वातंत्रय के पंजे, नाखून और दाँत तोड़ दिए हैं। उसके राज्य में अब एक पूँजीपति लाखों मजदूरों का खून पीकर मोटा नहीं हो सकता। उसे अब यह आजादी नहीं है कि अपने नपफे के लिए साधारण आवश्यकता की वस्तुओं के दाम चढ़ा सके, दूसरे अपने माल की खपत कराने के लिए युद्ध करा दे, गोला-बारूद और युद्ध-सामग्री बनाकर दुर्बल राष्ट्रों का दलन कराए।''

साम्राज्यवादियों के 'व्यक्ति-स्वातंत्रय' का संबंध कितना ज्यादा युद्ध की तैयारियों से होता है, किस तरह उनकी स्वाधीनता चीजों के दाम बढ़ाकर मुनाफा कमाने की आजादी है, उनकी स्वाधीनता दूसरे देशों को गुलाम बनाने की आजादी। है-प्रेमचंद ने अपने ओजपूर्ण लेख में इस तथ्य को अच्छी तरह जाहिर कर दिया। उन्होंने दिखलाया कि इस लूट-मार की आजादी के बदले सोवियत रूस में जनता को खुशहाल और सुसंस्कृत जिंदगी बसर करने की सच्ची आजादी है।

प्रेमचंद ने मानो आज के हिंदुस्तान को देखते हुए लिखा था- ''हाँ, इस समाज-व्यवस्था ने व्यक्ति को यह स्वाधीनता नहीं दी है कि वह जनसाधारण का अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की तृप्ति का साधन बनाए और तरह-तरह के बहानों से उनकी मेहनत का फायदा उठाए, या सरकारी पद प्राप्त करके मोटी-मोटी रकमें उड़ाए, और मूंछों पर ताव देता फिरे। ''प्रेमचंद उस आजादी के विरोधी थे जिसके जरिए मुट्ठी-भर लोग जनता को ठगकर अपना घर भरते हैं और जब जनता असंतुष्ट होकर अपनी माँगें पूरी कराने के लिए संगठित होती है, तब उसे शांति और अहिंसा के उपदेश देते हैं।

अपने लेख के अंत में प्रेमचंद ने इस दलील को भी लिया था कि यह सभ्यता विदेशी है, इसलिए हम उससे अपना दामन बचाकर चलेंगे। उन्होंने पूछा था कि एक समाज-व्यवस्था से अगर किसी एक देश के लोगों का भला हो सकता है, तो दूसरे देशों का क्यों नहीं हो सकता? उन्होंने ईसाई और बौद्ध मतों की मिसाल देते हुए लिखा था- ''जो शासन-विधान और समाज-व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देशों के लिए भी हितकर होगी। हाँ, महाजनी सभ्यता और उसके गुरगे अपनी शक्ति-भर उसका विरोध करेंगे, उसके बारे में भ्रमजनक बातों का प्रचार करेंगे, जनसाधारण को बहकावेंगे, उसकी आँखों में धूल झोंकेंगे, पर जो सत्य है, एक-न-एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी।''

इस तरह सत्य और झूठ के संघर्ष में प्रेमचंद ने सत्य का पक्ष लिया और महाजनी सभ्यता के गुरगों की दलीलों को निस्सार साबित कर दिया। जिस समय उन्होंने यह लेख लिखा था, फासिस्ट जर्मनी सोवियत-विरोधी प्रचार की वैसी ही धूम मचाए हुए था जैसी आज अमरीका। प्रेमचंद ने इस युद्ध-प्रचार का भंडाफोड़ करके शांति के पक्ष को मजबूत किया, हिंदी-पाठकों की अंतर्राष्ट्रीयता और उनकी स्वाधीनता-प्रेमी चेतना को और परिष्कृत किया।

प्रेमचंद का झुकाव शुरू से ही यथार्थ जीवन की तरपफ था। दिन-पर-दिन उनके यथार्थवादी चित्राण में गहराई आती गई। 'जीवन में साहित्य का स्थान' नाम के लेख में उनका पहला ही वाक्य है- ''साहित्य का आधार जीवन है।'' साहित्य का आधार कल्पना नहीं है, उसका स्रोत मनुष्य का अवचेतन नहीं है, बल्कि उसका जीवन है। साहित्य की अटारियों, मीनारों और गुंबदों की नींव प्रेमचंद के शब्दों में, ''मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है।'' उन्होंने इस लेख में आनंद और सुंदरता के स्वाभाविक और बनावटी रूपों में भेद किया है। महलों में स्वाभाविक सुंदरता और आनंद के दर्शन नहीं होते। शृंगार को सुंदर का पर्यायवाची मानते हुए प्रेमचंद ने लिखा है- ''साहित्य में केवल एक रस है और वह शृंगार है।'' शृंगार से उनका वह मतलब नहीं है जो आमतौर से समझा जाता है। फिर भी उनका जोर आनंद पर है और वह कहते हैं- ''और साहित्य का विषय केवल आनंद का संबंध है।'' पिफर जीवन की व्याख्या करते हए वह पशुओं से मनुष्य का भेद इस बात से बतलाते हैं कि मनुष्य में अच्छी-बी मनोवृत्तियाँ होती हैं।

इस लेख में प्रकट किए हुए अनेक विचार ''कला कला के लिए' वाले सिद्धांत से बहुत मिलते-जुलते हैं। यदि साहित्य का विषय केवल आनंद है, तो विषय-वस्तु का उतना महत्त्व नहीं रहता जितना आनंद का। यदि मनुष्य और पशु का आपसी भेद

मनोवृत्तियों का है, तो साहित्य की मीनारों की नींवें मिट्टी के नीचे दबी पड़ी हैं, यह बात बेमानी हो जाती है। लेकिन प्रेमचंद इसी लेख में आगे कहते हैं-''साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।

प्रेमचंद ने इस समस्या का खुद अच्छी तरह समाधान कर दिया है कि साहित्य का संबंध किसी चिरंतन आनंद और सुंदरता से है या युग की परिस्थितियों से। अगर साहित्यकार 'कला कला के लिए' का सिद्धांत मानकर चलता है, तो उसके लिए देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठने का सवाल नहीं उठता। साहित्यकार की विशेषता यह है कि वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है। आज तक कोई ऐसा साहित्यकार नहीं देखा गया जो स्वदेश का हुए बिना सार्वभौमिक बन गया हो। यह कहना गलत न होगा कि साहित्यकार स्वदेश का होकर ही सार्वभौमिक बनता है। प्रेमचंद की रचनाएँ स्वयं इस सत्य की मिसाल हैं। वे स्वदेशपन में डूबी हुई हैंऋ उनका रचयिता अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठा है। उसकी महत्ता का यही सबसे बड़ा कारण है।

प्रेमचंद साहित्य की उपयोगिता का सवाल उठाते हैं। कहते हैं- ''जीवन में साहित्य की उपयोगिता के विषय में कभी-कभी संदेह किया जाता है।'' प्रेमचंद यह नहीं मानते कि मनुष्य का स्वभाव बदल नहीं सकता। स्वभाव बदलता है और साहित्य उसे बदलने का साधन है। किसी देश की जनता और उसके चरित्र की विशेषताओं से साहित्य का क्या संबंध है, इस पर वह कहते हैं- ''विश्व की आत्मा के अंतर्गत भी राष्ट्र या देश की आत्मा होती है। इसी आत्मा की प्रतिध्वनि है-साहित्य।'' प्रेमचंद की यह धारणा साम्राज्यवादियों के इस प्रचार का खंडन करती है कि साहित्य की राष्ट्रीय या जातीय विशेषताएं नहीं होती। अमरीका और ब्रिटेन के साम्राज्यवादी और उनके भाड़े के लेखक विश्व-संस्कृति और विश्व-सरकार की लंबी-चौड़ी बातें करते हैं। वे दूसरे देशों को गुलाम बनाते हैं। उनकी भाषा और संस्कृति को दबाते हैं, उनके जातीय चरित्रा को नष्ट करते हैं। इस निंदनीय काम को छिपाने के लिए विश्व-संस्कृति की बातें नकाब का काम करती। हैं। प्रेमचंद साहित्य की इमारत हवा में खड़ी न करके उसकी नींव धरती में माना हैंऋ वह उसे देश की आत्मा की प्रतिध्वनि कहते हैं। उनका देश, जैसा कि इस लेख से ही जाहिर है, महलों में बंद नहीं हैऋ देश का मतलब है देश की साधारण जनता।

यूरोप के पतित पूँजीवादी साहित्य की तरफ से प्रेमचंद ने यहाँ भी पाठक को आगाह किया है, खूनी कांडों के प्रदर्शन और जासूसी कमाल की निंदा की है। उनके अनुसार सामाजिक आदर्श साहित्य से उत्पन्न होते हैं। इसलिए वह साहित्यकार का दर्जा बहुत ऊँचा मानते हैं।

किसी जाति के चरित्र-निर्माण में साहित्य का कितना बड़ा हाथ रहता है प्रेमचंद इस बात को जानते थे। इसलिए वह सांस्कृतिक विरासत की कद्र करते थे। उन्होंने 'रामायण' और 'महाभारत' के रचयिताओं के बारे में लिखा था- ''व्यास और वाल्मीकि ने जिन आदर्शों की सृष्टि की, वे आज भी भारत का सिर ऊँचा किए हुए हैं। राम अगर वाल्मीकि के साँचे में न ढलते तो राम न रहते। सीता भी उसी साँचे में ढलकर सीता हई।'' व्यास और वाल्मीकि के सामने सिर झुकाते हुए प्रेमचंद ने उनके चरणों में कलम नहीं रख दी। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह सांस्कृतिक विरासत ही प्रगतिशील साहित्य है, इसलिए या तो मैं कुछ लिखूंगा नहीं, या लिखूंगा तो देशकाल की सीमाओं से ऊपर उठकर शाश्वत सौंदर्य के सिद्धांतों के अनुसार लिखूंगा। वह मानते थे कि ''साहित्य का उत्थान अब राष्ट्र का उत्थान है।'' इसलिए इस परम अशाश्वत काम को पूरा करने के लिए वे कमर कसकर जुट गए। प्रेमचंद का साहित्य राष्ट्रीय उत्थान का साहित्य है। वह भारत की नवजाग्रत मानवता और उसके आत्मसम्मान का साहित्य है। उन्होंने वाल्मीकि, व्यास, तुलसी, सूर और कबीर से साधना करना, अपने देश और अपनी संस्कृति की उन्नति के लिए कष्ट सहना सीखा था। उन्होंने भारत के इन अमर कवियों के बारे में लिखा था- ''बाल्मीकि और व्यास दोनों तपस्वी थे। सूर और तुलसी भी विलासिता के उपासक न थे। कबीर भी तपस्वी ही थे। ''प्रेमचंद इन तपस्वियों की विरासत को आगे बढ़ानेवाले साहित्यकार थे। वह बीसवीं सदी में भारतीय संस्कृति का एक नया आगे बढ़ा हुआ चरण थे।

प्रेमचंद अपने देश की संस्कृति के उपासक थे, उसका परिष्कार करके उसे आगे विकसित करना चाहते थे। इसलिए वह दूसरे देशों और जातियों की संस्कृति को घृणा की दृष्टि से न देखते थे। उन्होंने इंगलैंड, फ्रांस, रूस आदि के साहित्य का, विशेष रूप से वहाँ के कथा-साहित्य का, गंभीर अध्ययन किया था। फ्रांसीसी कथाकारों में वह बाल्जाक और मोपासाँ को बहुत ऊंचे दर्जे का कलाकार मानते थे। रूसी भाषा में तोल्स्तोय की कहानियाँ उन्हें विशेष प्रिय थीं। दोस्तोयेव्स्की के बारे में उन्होंने ठीक कहा था कि

उसकी कहानियों में ''मनोभावों की दुर्बलता दिखाने की चेष्टा की गई है, लेकिन शायद चेखोव के बारे में उन्होंने अत्युक्ति की है कि उसकी कहानियों में ''रूस के विलास-प्रिय समाज के जीवन-चित्रों के सिवा और कोई विशेषता नहीं।''

प्रेमचंद का विचार था कि हिंदुस्तान में कहानी-कला यहाँ की परंपराओं, यहाँ की विशेषताओं को देखते हुए विकसित हो। मित्रों की बातचीत या पुलिस-कोर्ट के दृश्य से कहानी शुरू करना वे गलत समझते थे। डायरी और टिप्पणियों द्वारा कहानी लिखने को उन्होंने यूरोपवालों की नकल करना कहा था। जिन कहानियों का कोई अंत न हो, उन्हें भी वह बुरा समझते थे। कहानी में वह कहानीपन के पक्षपाती थे। उनका विचार था कि कहानी के साथ यह अनुचित व्यवहार यथार्थवाद के नाम पर होता है। इसलिए कथाकार को आदर्शवादी होना चाहिए। लेकिन यथार्थवादी कलाकार के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह कहानी को बिगाड़ दे और न सभी आदर्शवादी कलाकार उसे सँवार ही लेते हैं। प्रेमचंद स्वयं यथार्थवादी लेखक थे। उनका यथार्थवाद पफोटो खींचकर चुप रह जानेवाला यथार्थवाद नहीं था। वे एक उद्देश्य लेकर चलनेवाले कलाकार थे।

प्रेमचंद बहुत-सी असंगतियों के बीच से गुजरते हुए क्रांतिकारी यथार्थवाद की तरफ आ रहे थे-एक ऐसे यथार्थवाद की तरफ, जो जीवन का सही चित्र देते हुए पाठक में अपने जीवन की परिस्थितियों को बदलने की, एक नया जनवादी और स्वाधीन जीवन निर्माण करने की प्रेरणा भी दे। प्राचीन अध्यात्मवाद का प्रभाव जहाँ-तहाँ उन पर दिखाई देता है, लेकिन क्रमशः वह क्षीण होता जाता है। कहानी-कला-संबंधी एक लेख में वह कहते हैं- ''मानव- संस्कृति का विकास ही इसलिए हुआ है कि मनुष्य अपने को समझे। अध्यात्म और दर्शन की भाँति साहित्य भी इसी सत्य की खोज में लगा हुआ है-अंतर इतना ही है कि वह इस उद्योग में रस का मिश्रण करके उसे आनंदप्रद बना देता है, इसीलिए अध्यात्म और दर्शन केवल ज्ञानियों के लिए हैं, साहित्य मनुष्य-मात्रा के लिए।''

मनुष्य अपने को समझे-यह धारणा इस अर्थ में सत्य नहीं है कि मनष्य में अखंड सत्य छिपा हुआ है और उसे केवल समझाना बाकी रह गया है। मनुष्य का अपने को समझना उसके भौतिक विकास के साथ जुड़ा हुआ है। इस विकास-क्रम में मनष्य अपने को समझता ही नहीं है, अपने को परिवर्तित भी करता है। कहानी-कला-संबंधी एक और दूसरे लेख में वह कहते हैं- ''कितने ही सिद्धांत, जो एक जमाने में सत्य समझे जाते थे, आज असत्य सिद्ध हो गए हैं, पर कथाएँ आज भी उतनी ही सत्य हैं, क्योंकि उनका संबंध मनोभावों से है और मनोभावों में कभी परिवर्तन नहीं होता।'' (प्रेमचंद: 'कुछ विचार, पृष्ठ 67)। अगर मनोभावों में कभी परिवर्तन न हो तो कहानियों की विषय-वस्तु बहुत-कुछ आज भी वही हो जो चार हजार साल पहले थी। प्रेमचंद का साहित्य बीसवीं सदी के हिंदुस्तान का साहित्य है। 'कथासरित्सागर' या 'अलिफ लैला' की दुनिया में उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। फिर भी वह 'कथासरित्सागर' और 'अलिफ लैला' की दनिया से किन्हीं बातों में जुड़ा भी है और उन कथाओं के बिना प्रेमचंद की नई रचनाओं की कल्पना करना कठिन होगा। वे रचनाएँ ऐसे समाज की उपज हैं जो 'कथासरित्सागर' और 'अलिफ लैला' के जमाने को बहुत पीछे छोड़ आया है हालाँकि उस जमाने के कुछ संस्कार अब भी बाकी हैं। इसलिए यह कहना सही न होगा कि मनोभावों में कभी परिवर्तन नहीं होता।

उपन्यास-संबंधी अपने एक निबंध में प्रेमचंद कहते हैं- ''मैं उपन्यास को मानव-चरित्रा का चित्र-मात्रा समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'' (प्रेमचंद: 'कुछ विचार', पृष्ठ 71)। इस लेख में उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि चरित्र विकासमान हो या अपरिवर्तनशील। यहाँ वह उपन्यासकारों को दो दलों में बाँट देते हैं। एक दल उन लोगों का है जो यथार्थ को नग्न रूप में रख देते हैं। दूसरा दल उन लोगों का है जो गर्म कोठरी में काम करते-करते थकनेवालों को बाग में ले जाकर निर्मल स्वच्छ हवा खिलाते हैं। पिफर वह आदर्शवादियों के लिए इस खतरे की शंका प्रकट करते हैं कि उनके पात्रा सिद्धांतों की मूर्ति-मात्रा न बन जाएँ। इसलिए उनकी राय में ऊंचे दर्जे के उपन्यास वे हैं जिनमें आदर्श और यथार्थ का समावेश हो। जब हमारा उद्देश्य गर्म कोठरी में काम करनेवाले को बाग की हवा खिलाना हो जाता है, तब हम उससे यह भी कहे बिना नहीं रहते, कछ देर के लिए कोठरी को भूल जा, आखिर तो उसी में तुझे सड़कर मरना है, यहाँ बुलबुल के तराने भी सुन ले। नग्न यथार्थवाद गलत चीज है। यथार्थवाद को सोद्देश्य होना चाहिए लेकिन बाग में हवा खिलाने से तो यथार्थवाद की जड़ ही कट जाती है, उसे सोद्देश्य बनाने का सवाल नहीं उठता। (यहाँ बाग का प्रयोग आलंकारिक है। इसका यह मतलब नहीं है कि बाग की सैर करना यथार्थवाद की हत्या करना है।)

प्रेमचंद इसी निबंध में आगे कहते हैं- ''साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाए। 'कला के लिए कला' के सिद्धांत पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। वह साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलंबित हो।'' इत्यादि। इस धारणा का यहाँ खंडन करना जरूरी नहीं है, प्रेमचंद का समूचा साहित्य उसका

खंडन करता है। उसकी तरपफ ध्यान दिलाना सिर्फ इसलिए जरूरी है कि हम उनके विचारों की असंगतियों को भी समझ सकें और उनके हरेक वाक्य को वेद-वाक्य मानकर न दोहराने लगे।

इसी लेख में प्रेमचंद कहते हैं- ''हमारा खय्याल है कि क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान रचना भी इतनी सुंदरता से करे जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता रहे? 'कला के लिए कला का समय वह होता है। जब देश संपन्न और सखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हए हैं, जिधर निगाह उठती है दु:ख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रंदन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हदय दहल न उठे। हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप में व्यक्त हों: उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाए, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जाएगा।''

देश के सुखी और संपन्न होने की दशा में 'कला कला के लिए' के सिद्धांत को बाँधकर प्रेमचंद ने उसकी सनातनता को खत्म कर दिया है। वह अपने जमाने के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों की तरफ देखते हैं और अपनी पिछली विचारधारा को चुनौती देते हुए कहते हैं- यह कैसे संभव है कि इन्हें देख-सुनकर किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे? प्रेमचंद को एक तरफ सामंती पूँजीवादी विचारधारा खींचती है-साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना कला की पूर्ति के लिए की जाए। दूसरी तरफ उसकी सहृदयता उनका सामाजिक ज्ञान उन्हें साहित्य से समाज को बदलने की तरपफ खींचता है-इस अन्याय को देखकर किस विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठेगा?

इस द्वंद्व को वह विचार-जगत में उतना हल नहीं कर पाए जितना अपने कथा-साहित्य के रचनात्मक संसार में। वहाँ उनके सामने वे परिचित पात्रा रहते थे जो अपने जीवन की वास्तविक समस्याओं का समाधान चाहते थे। प्रेमचंद ने उन्हें भी एकाध बार 'प्रेमाश्रम' के सपनों से बहलाया, लेकिन उनकी चली नहीं। उनकी कला पर दिन-पर-दिन यथार्थवाद का रंग चढ़ता गया और उनका साहित्य राष्ट्रीय और जातीय उत्थान का साहित्य बन गया। अत: यह सत्य है कि प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चारों ओर प्रकट होता है।

नवजागरण की अवधारणा: एक विशेलषण

डॉ० राकेश कुमार सिंह

हिंदी विभाग, सत्यवती कॉलेज. दिल्ली विश्वविद्यालय

नवजागरण की अवधरणा: एक विश्लेषण

उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय जनमानस में जिस नई चेतना का प्रतिफलन हुआ उसे कई नामों से लक्षित किया गया। रिनेसाँ, पुनर्जागरण, पुनरूत्थान, प्रबोधन, नवोत्थान, पुनरुज्जीवन, नवजीवन, नवजागरण एवं नवजागृति आदि। इतने नामों से अभिहित किए जाने वाले दौर को किस नाम से पुकारा जाए, यह विद्वानों के बीच विवाद का विषय रहा। सर्वप्रथम अंग्रेजी शब्द रिनेसाँ की जगह हिंदी में पुनर्जागरण शब्द प्रयोग में लाया जाने लगा। आधुनिक संदर्भ में रिनेसाँ के पर्याय के रूप में नवजागरण का सबसे अधिक प्रयोग हिंदी में किया जाता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' (1977) में किया। रिनेसाँ (Renaissance) फ्रांसीसी शब्द रेनायत्रो (Renaitra) से लिया गया है।[1] इन शब्दों की उत्पत्ति मुख्य रूप से लैटिन भाषा के रेनासोर शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है पुनर्जन्म या पुनर्जागरण।[2] रिनेसाँ को इटली के लोगों ने भी कला एवं ज्ञान का पुनर्जागरण कहा है। रिनेसाँ के संदर्भ में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि रिनेसाँ असल में विद्या का पुनर्जन्म था, जिसमें कला, विज्ञान, साहित्य और यूरोपीय भाषाओं की तरक्की हुई।[3]

नवजागरण[4] शब्द यूरोप के मध्ययुग और आधुनिक युग के बीच की संक्रान्ति की अवस्था का वाचक है।[5] यह एक ऐतिहासिक अवधारणा है, जो मानवीय विकास के ऐतिहासिक मोड़ का सूचक है, जिसे मध्यकाल से आधुनिक काल में संक्रमण की स्थिति के रूप में देखा जा सकता है, इसकी मूल प्रेरणा तर्कपरक संवादधिर्मता पर आधरित है। यह ''बौद्धिक और सौन्दर्य विषयक जागृति की तथा धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की एक लहर है, जो संभवत 14वीं सदी के इटली में उद्भूत हुई और वह 15वीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा 16वीं सदी के शुरू में इटली में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची: और बाद के दिनों में फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड तथा स्पेन में उसका उत्थान और पतन हुआ।[6]

रिनेसाँ (नवजागरण) के नाम से जिस युग का उल्लेख किया जाता है, मुख्यतौर से 16वीं सदी के पुर्वार्द्ध में, वह सभ्यता में पुनर्जीवित होने का अहसास था, कि वह संज्ञान और सौन्दर्य के विशुद्ध स्त्रोतों की ओर मुड़ गया था और ज्ञान तथा कला के अपरिवर्ती विचारों पर उसका अधिकार था। लेकिन अपनी मुख्य अभिव्यंजना में पुनर्जन्म का बोध् प्राय: साहित्यिक संस्कृति के लिए प्रयुक्त होता था।[7]

यूरोपीय इतिहास में रिनेसाँ यूरोपीय समाज के मध्यकालीन विचारों, लोकमान्यताओं, जीवन और चिन्तनधारा में वैचारिक ऐतिहासिक आन्दोलन था। जॉन एंडिग्टन साइमंड के अनुसार- ''रिनेसाँ को यूरोपीय प्रज्ञा के सर्वांगपूर्ण आन्दोलन के अर्थ में समझा जाएगा जो आत्मिक मुक्ति लाने वाला, विवेक और इन्द्रिय ज्ञान के सहज अधिकारों में पुन: विश्वास प्रस्थापित करने वाला, मानव के निवास स्थान के रूप में इस नक्षत्रा पर विजय प्राप्त करने वाला तथा व्यक्ति और राज्य दोनों के लिए ऐसे सैद्धान्तिक नियमों का निर्माण करने वाला है, जिसका स्वरूप मध्ययुग के नियमों से भिन्न है।''[8]

नवजागरण (रिनेसाँ) को प्रबोधन काल (18वीं शती) में 'प्रकाश' के अर्थ में लिया गया- 'मध्ययुग के बर्बर अंधकार में प्रकाश।[9] मध्यकालीन अंधेरे की नई चेतना प्रकाश के समान है, दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं। 'पुनर्जन्म' के समय में भी मध्य-युग से विरोध् था, लेकिन यहाँ आकर वह और तीव्र होता है। ''18वीं शताब्दी के दार्शनिक धर्म का दिखावा और चर्च की स्थापना करने

के विरोधी थे। वे धर्मसिद्धान्तों से नफरत करते थे और संस्कृति के उन रूपों की निंदा करते थे जो धर्मिक असर प्रकट करते थे। वे मध्ययुग को विश्वास और अंधविश्वास के एक काल के रूप में समझते थे, जिसको नवजागरण के बुनियाद में खत्म होना था।''[10]

अट्ठारहवीं शताब्दी के चिंतन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस सदी में यूरोप में एक नये दृष्टिकोण का विकास हुआ, जिसमें धर्म निरपेक्ष और विवेकसम्मत मंतव्य को प्रोत्साहित किया गया, जिसे सामूहिक रूप से 'प्रबोधन' कहा जाता है। इस प्रबोधन[11] या ज्ञानोदय काल में लेखकगण सामाजिक बुराइयों का उद्घाटन करने में अपनी प्रतिभा का प्रयोग करने लगे। उनका नारा था, ''तर्वफ, सहिष्णुता और मानवता'' (रीजन, टालरेंस, ह्यूमेनिटी)। प्रबोधन काल में सामान्यजन के विचारों और दृष्टिकोण में विज्ञान व तर्वफ को बढ़ावा देने के कारण इतना अधिक परिवर्तन आ गया कि अधिकाधिक लोग इसे ''बौद्धिक क्रांति''[12] भी कहते हैं।

बौद्धिक क्रांति में चिन्तन का केन्द्र मनुष्य था। मुख्य लक्ष्य मानव कल्याण स्वीकार किया गया। यह माना गया कि राज्य, चर्च तथा अन्य संस्थाओं को केवल मनुष्य के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। मनुष्य के भाग्य-निर्माण के लिए किसी मनुष्येतर सत्ता के सहारे न बैठकर मनुष्य को ही सम्पूर्ण कार्य-कलापों का केन्द्र बिन्दु माना गया। क्रांति ने मनुष्य की गरिमा, मानवीय अधिकारों तथा मानवीय आदर्शों को स्थापित किया। इसके साथ ही उसने मध्ययुग की परम्पराओं का तिरस्कार किया। प्रत्येक विषय की वास्तविकता को समझने की कोशिश की गई तथा विज्ञान और बुद्धि की कसौटी पर परखा जाने लगा। इस युग के प्रवर्तक अपनी पूर्ववर्ती वैज्ञानिक प्रगति से प्रभावित थे। अत: उन्होंने किसी एक ही विषय अथवा दिशा की ओर कदम न बढ़ाकर विभिन्न विषयों की सत्यता एवं उपयोगिता पर समालोचनात्मक दृष्टि डाली। उन्होंने चर्च के दोषों, शासन व्यवस्था की खामियों, सामाजिक असमानता और उत्पीड़न तथा जर्जर आर्थिक व्यवस्था की तरफ ध्यान आकर्षित किया। सामन्तवादी समाज, मध्यकालीन रूढ़िवादी धर्म और निरंवुफश राजतंत्रा सभी को ठुकरा दिया।

प्रबोधन युग के साहित्य की शैली विश्लेषणात्मक थी। उसमें विचारों, संस्थाओं तथा पद्धतियों का अत्यधिक सूक्ष्म ढंग से परीक्षण किया गया। किसी प्रकार की कुप्रथा और मूर्खता, जिस पर अतीत का ढाँचा खड़ा हुआ था, ऐसी न थी जिसको प्रबोधन युग के लेखकों ने उजागर न किया हो और जिसका मखौल न उड़ाया हो। साहित्य आशावादी था। इस युग के साहित्य ने तत्कालीन समाज को जागृत करने, बुद्धि को उभारने, विचारों को प्रोत्साहित करने में जिस निर्भीकता, ताजगी और दुस्साहस से काम लिया, वह विश्व इतिहास में अद्वितीय है। जहाँ एक ओर साहित्य प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध कटु आलोचनाओं से भरा हुआ था, वहीं दूसरी ओर समाज को सुधार कर एक नये ढाँचे में ढालने के अनेक तरीकों पर भी विचार प्रकट करता था। इस युग को कला समीक्षक पैटर ने 'बौद्धिक चिंतन के प्रति अनुराग'[13] की संज्ञा दी है

एशिया में प्रबोधन की अभिव्यक्ति सबसे पहले भारत में हुई। भारतीय साहित्य में इसकी झलक स्पष्टत: मिलती है। आर्थिक लूट और राजनीतिक दमन के बावजूद एशिया के देशों का आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक से परिचय हुआ और धीरे-धीरे एक शिक्षित वर्ग का उदय हुआ, जो अपनी भाषा के अलावा अंग्रेजी भी जानता था। प्रबोधन की अगुवाई में मुख्यत: यही द्विभाषी शिक्षित वर्ग था। इसी नव-शिक्षित वर्ग के नेतृत्व में भारत सहित अन्य एशियाई देशों में उन्नीसवीं सदी के अंत तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में नई सांस्कृतिक चेतना फैली, जिसे प्रबोधन अथवा नवजागरण कहा जाता है

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक दौर में ही समाज में एक स्पष्ट बदलाव दिखाई पड़ता है। इस बदलाव के मूल में रोमांटिक आन्दोलन की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। इस आन्दोलन के अनुयायियों ने 'मनोभाव' और 'अनुभूति' पर बल दिया। वस्तुत: 'वे ऐतिहासिक प्रव्रिफया में विश्वास करते थे और विशेषत: धर्म में और संस्थाओं के ऐतिहासिक उद्गम में रूचि लेते थे। वे प्राय: मध्ययुग में गहन रूचि प्रदर्शित करते थे।'[14]

उन्नीसवीं सदी में ही जैकब बुर्कहर्ट ने अपनी पुस्तक 'इटली की सभ्यता का नवजागरण' (1869) में नवजागरण को मध्यकाल के विरोधी के रूप में और एक महान सांस्कृतिक रूपांतरण के रूप में लक्षित करने के साथ ही उसकी मुख्य विशेषताएँ बताया है- ''व्यक्तिवाद, पुरातनता का पुनरुत्थान तथा संसार और मनुष्य की खोज।''[15]

आधुनिक काल के आरम्भिक स्वर को एक सकारात्मक दिशा देने में उन्नीसवीं सदी के आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस आन्दोलन के सामाजिक और ऐतिहासिक विकास को फेडरिक एंगेल्स ने मजबूती प्रदान की। तत्कालीन परिस्थिति 'जिसे हम जर्मन अपने ऊपर आई उस समय की राष्ट्रीय विपदा के नाम पर धर्मसुधार का काल कहते है और फ्रांसीसी लोग पुनर्जागरण काल

तथा इतालवी लोग चिन्क्वेचेंटों (16वीं शती) कहते हैं, यद्यपि इनमें से कोई भी नाम वस्तुस्थिति की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं करता। यह वह युग था जिसका उदय 15वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ था। राजशाही ने नगरों के वर्गरों के समर्थन से सामंती अभिजात वर्ग की सत्ता चूर कर दी और मूलत: राष्ट्रीयता पर आधारित उन महान राजतंत्रों की स्थापना की जिसके अन्तर्गत आधुनिक यूरोपीय राष्ट्र और आधुनिक पूँजीवाद विकसित हुए।'[16]

वस्तुत: एंगेल्स जिस समय की बात कर रहे हैं, वह सामंती व्यवस्था से पूँजीवादी व्यवस्था में संक्रमण का है। इस संक्रमणयुगीन समय से नवजागरण का सम्बन्ध् जोड़ते हुए आग्नेस हेलर लिखते हैं- ''नवजागरण सामंतवाद से पूँजीवाद के संक्रमण की दीर्घकालिक प्रक्रिया का पहला आवेग था। एंगेल्स ने ठीक ही इसे एक 'आन्दोलन' कहा है। रूपांतरण की इस प्रव्रिफया में एक समूची सामाजिक और आर्थिक संरचना, मूल्यों की संपूर्ण व्यवस्था और जीवन का ढर्रा डगमगा गया। सब कुछ अस्थिर हो गया: अविश्वसनीय गति से सामाजिक क्रांतियाँ परस्पर सफल हुईं। सामाजिक धर्मतंत्रा में 'उँचे' और 'नीचे' स्थापित लोगों ने तेजी से स्थान बदले।''[17]

वस्तुत: ''नवजागरण सामंतवाद से पूँजीवाद में संक्रमण की दीर्घकालिक प्रव्रिफया का आवेश हैऋ न सिर्पफ समय-समय पर किए गये विभिन्न अर्थों को अपने भीतर समाहित कर लेती है, बल्कि इस अवधरणा को एक ठोस सामाजिक-ऐतिहासिक आधर भी प्रदान करती है। आधुनिक इतिहासकार और दार्शनिक नवजागरण को इसी अर्थ में ग्रहण करते हैं - 'रिनेसाँ' (नवजागरण) शब्द उन व्यापक सामाजिक और दार्शनिक सिद्धांतों को संकेतित करने हेतु दर्शन के इतिहास में प्रयुक्त होता है जो कि सामंती पतन और प्रारंभिक पूँजीवादी समाज की स्थापना के दौरान (15वीं सदी से 17वीं सदी के पूर्व) यूरोप में (सर्वप्रथम इटली में) विकसित हुए। इस समय जब रूढ़िवाद आधिकारिक दर्शन बना हुआ था, तब मानववादी संस्कृति के उदय ने, प्राचीन काल की दार्शनिक विरासत के पुनरुत्थान ने और महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों की श्रृंखला ने नवजागरण के प्रगतिशील दर्शन को ब्रह्मविज्ञान के प्रभाव को तोड़ने तथा शास्त्रावाद विरोधी दृष्टिकोण विकसित करने में सक्षम बनाया।''[18]

इस प्रकार नवजागरण की परिभाषा में जो मुख्य बातें सामने आती हैं, उसमें मानवतावादी विश्वदृष्टि के तहत मानव को, विश्व का केन्द्र घोषित किया गया। उसके अनुभव, उसकी मानवीय गरिमा, उसका जीवन मानव-चिंतन का मुख्य विषय बना। प्राच्यकालीन दार्शनिक विरासत का पुनरुत्थान व महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक स्थापनाओं आदि के द्वारा एक ऐसी मानववादी संस्कृति, वैचारिक, दार्शनिक पद्धति और प्रगति की अवधरणा सामने आयी, जो न केवल जड़शास्त्राीयता की विरोधी है, वरन् उसके प्रभाव को भी नकारने में सक्षम है। व्यक्ति की स्वतंत्राता, मानवमात्रा की समानता, भाईचारे की भावना, सामाजिक जीवन और उसकी विभिन्न गतिविधियों को तथ्यों के अनुरूप तर्क के आधर पर समझने-परखने की वैज्ञानिक-दृष्टि और सामाजिक उत्थान के प्रति आस्था जैसे स्वस्थ पूँजीवादी मूल्य नवजागरण की मानवतावादी उपलब्धियाँ हैं। मानवतावादी विश्वदृष्टि के तहत स्वतंत्राता और समानता को एक व्यापक आधार मिला। समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रात के साथ ही परिवार में नारी की मुक्ति, नारी-पुरुष की समानता, आर्थिक क्षेत्रा में सबको विकास के समान अवसर, सांस्कृतिक क्षेत्रा में सभी के लिए विकास की समान सुविधएँ, शिक्षा के समान अवसर आदि जैसे जनतांत्रिक मूल्य नवजागरण द्वारा प्रतिष्ठित हुए।

यहाँ नवजागरणयुगीन उस ऐतिहासिक प्रव्रिफया को देखना उचित होगा, जिसके कारण सामंती सामाजिक-आर्थिक संरचना से पूँजीवादी संरचना में संक्रमण होता है। एंगेल्स ने उस ऐतिहासिक प्रक्रिया को लक्षित करते हुए लिखा है कि राजशाही ने नगरों के वर्गरों (शहरी नागरिकों) के सहयोग से सामंती अभिजात वर्ग की सत्ता खत्म कर दी और मुख्य रूप से राष्ट्रीयता पर आधरित महान राजतंत्रों की स्थापना की। दरअसल उस विधि् के दौरान, जिसे 'नवजागरण' नाम दिया गया है, यूरोप में और इटली में (14वीं शती से) मैनूफैक्टरी उत्पादन की शुरूआत हुई। इससे व्यापारी वर्ग उत्तरोत्तर समृद्धि प्राप्त करता गया। सीमित राजतंत्र व्यापारी वर्ग के विकास में बहुत बड़ी रूकावट था: उन्होंने इसका विरोध् किया: परिणामस्वरूप सीमित राजतंत्र का निरंकुश राजतंत्र में परिवर्तन आरंभ हो गया। निरंकुश राजतंत्र का विरोध् एक ओर अभिजातों और चर्च से था तथा दूसरी ओर किसानों और दस्तकारों से। व्यापारी वर्ग किसानों और दस्तकारों का प्रतिनिधित्व अपने हित में कर रहा था: उस दौरान उसकी भूमिका प्रगतिशील थी। ऐसे समय में राजतंत्रीय नीति केवल संतुलन के उद्देश्य से संचालित थी।

ऐसे ही समय में यूरोपीय देशों में रोमन चर्च के आधिपत्य को चुनौती दी जाने लगी थी, जो सबसे प्रखर रूप में जर्मनी के मार्टिन लूथर (1483-1546), टामस म्यूंजर (1490-1535) और इंग्लैण्ड के जॉन कल्विन के नेतृत्व में शुरू हुई। जर्मनी के प्रोटेस्टेंट

धर्मसुधार आन्दोलन ने सभी यूरोपीय देशों में चर्च के आधिपत्य और मध्ययुगीन मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाना शुरू कर दिया।

सोलहवीं शताब्दी में सामंतवाद विरोधी जो विद्रोह हुए वे प्रायः धर्म के आवरण में हुए। पादरी वर्ग ने जो धन दौलत और राजनीतिक महत्त्व अपना लिया था, उस पर प्रहार किया गया। जनता धर्म का ऐसा रूप चाहती थी जो सभी के लिए सर्वसुलभ हो सके। जर्मनी के इस धर्मद्रोह की व्याख्या करते हुए फ्रेडरिक एंगेल्स ने लिखा है ''प्रत्येक उस धर्मविरोधी आन्दोलन की तरह जिसे गिरजे (ईसाई धर्म संघ) तथा उसके अन्धमतों के आगे विकास में केवल पतन ही दिखलाई देता है। वर्गरों (शहरी नागरिकों) के उस धर्मद्रोह का भी रूप प्रतिक्रियावादी था। उसकी माँग थी कि आरम्भिक काल के सीधे-सादे ईसाई गिरजे के विधान की ओर से स्थापना कर दी जाए तथा पादरियों, खासवर्ग का अंत कर दिया जाए। इस सस्ती व्यवस्था से मठों, लाट पादरियों तथा रोम के दरबार के ठाठ-बाठ का अर्थात् गिरजे की उस हर चीज का अंत हो जाता जो खर्चीली है। कस्बों में जो स्वयं स्थानीय प्रजातंत्रा थे यद्यपि ये राजाओं के संरक्षण में रहने वाले प्रजातंत्रा थे- पोपवाद के विरु" अपने इन हमलों के जरिए इस बात की सबसे पहले आम शब्दों में घोषणा की थी कि प्रजातन्त्र ही पूँजीवादी शासन का सही स्वरूप है।'[19]

एंगेल्स के उपर्युक्त विचार से स्पष्ट है कि सोलहवीं सदी के धर्म विद्रोह के मूल में वर्ग संघर्ष ही था, जो समाजसुधारों और धर्मिक सुधारों के रूप में अभिव्यक्त हो रहा था। अतीत को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने के बावजूद ध्यान देने की बात यह है कि यह लोकतन्त्र पर आधारित नई पूँजीवादी व्यवस्था की माँग कर रहा था, यद्यपि इसकी कोई स्पष्ट तस्वीर सामने न थी। प्रश्न यह है कि इस सदी में यूरोप में सभी विद्रोह गिरजे (चर्च) के विरुद्ध क्यों हुए? इसके मूल में मध्ययुग था, जिस पर टिप्पणी करते हुए फ्रेडरिक एंगेल्स ने लिखा है कि 'मध्ययुगों का विकास सर्वथा अपरिष्कृत स्थिति से हुआ था। हर चीज का नए सिरे से श्रीगणेश करने के लिए पुरानी सभ्यता, पुराने दर्शन, पुरानी राजनीति तथा विधिशास्त्र को उन्होंने बिल्कुल साफ कर लिया था। पुरानी ध्वस्त दुनिया में से जिस एकमात्र चीज को उन्होंने बना रहने दिया था, वह था ईसाई धर्म। इसके अलावा बस कुछ अर्धध्वस्त ऐसे नगर बच गए थे, जिनकी सारी सभ्यता नष्ट कर दी गयी थी। फलस्वरूप जैसा कि विकास की प्रत्येक आदिम अवस्था में होता आया है पादरियों के वर्ग को बौद्धिक शिक्षा की इजारेदारी प्राप्त हो गयी और शिक्षा स्वयं मूलतः धर्मिक शिक्षा बन गयी। पादरियों के हाथ में, अन्य तमाम विज्ञानों की ही तरह, राजनीति तथा विधिशास्त्र भी दर्शन की ही मात्रा शाखाएं बने रहे। उन पर भी धर्म, दर्शन के प्रचलित सिद्धांतों के आधर पर ही अमल किया जाता रहा। चर्च के अन्धमतों को राजनीति के भी स्वयंसिद्ध सत्यों के रूप में माना जाता था और अदालतों में बाइबिल के उदाहरणों का वही मान था जो कानून का था। विधिशस्त्रियों के एक विशेष वर्ग का विकास हो रहा था, किन्तु विधिशास्त्र बहुत दिनों तक धर्मशास्त्र के ही मातहत बना रहा बौधिक क्रियाकलापों के संपूर्ण क्षेत्रा में धर्मशास्त्र का यह प्रभुत्व उस स्थान का अनिवार्य परिणाम था जो उस समय चर्च को प्राप्त था। तात्कालिक सामंती आधिपत्य का वह सबसे आम संश्लेषण रूप था तथा वही उसके शासन का अनुमोदक, समर्थक था।' एंगेल्स अपने इस विश्लेषण का निष्कर्ष निकालते हुए लिखते हैं कि 'स्पष्ट है कि ऐसे हालत में, सामंतवाद के विरूद्ध आमतौर से जितने भी हमले किए जाते थे, वे मुख्यतया चर्च पर ही हमले होते थे तथा सामाजिक और राजनीतिक जितने भी क्रांतिकारी सिद्धांत सामने आते थे वे अनिवार्य रूप से और मुख्यतया धर्म विरोधी ही होते हैं।'[20]

इतना अवश्य है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्व के भारत और यूरोप के मधयकाल की तुलना में एक स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ता है, वह यह कि भारत का मधयकाल पूर्णतः अंधकार युग नहीं है, और न ही धर्म या मंदिर को वह महत्त्व और शक्ति प्राप्त थी, जो यूरोप में चर्च को प्राप्त थी। इसी कारण उन्नीसवीं सदी का नवजागरण एक संस्थान के रूप में धर्म के विरोध् में खड़ा नहीं हुआ था, यद्यपि इस नवजागरण ने धर्मिक बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाई थी, जो सामाजिक आचार-विचारों में द्रष्टव्य हो रहे थे। भारतीय और यूरोपीय परिस्थितियों में सबसे बड़ा अंतर यह था कि तत्कालीन भारत अंग्रेजों की पराधीनता में था और उन्नीसवीं सदी का नवजागरण राष्ट्रीय भावना के प्रबल उभार के साथ सामने आया था, वहीं यूरोप के पुनर्जागरण में यह पक्ष लगभग गायब रहा।

1. 'The term Renaissance was borrowed from the French Language in 1840' [Henary S. Lucas, The RenaissanceAnd Reformation, p.3]
2. इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना (1966), वॉल्यूम 23, पृ० 367-बी.
3. विश्व इतिहास की झलक, पृ० 385.
4. नवजागरण की कल्पना के प्रचार का श्रेय इटली के नवजागरण के प्रथम इतिहासकार जैकब बर्वफहार्ट को है, यद्यपि रेनेसाँ (नवजागरण) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम प्रसिद्ध प्रफांसीसी इतिहास-दार्शनिक मिशेसटने ने 16वीं शती के पुर्वार्द्ध में किया था।

5. हिंदी शब्द कोश (संपा०) धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 313, ज्ञानमण्डल वाराणसी।
6. एन इन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन, पृ० 655.
7. जे. ह्युजिंगा: मैन एण्ड आइडिया, पृ० 245.
8. It will be consideredAs implyingA comprehensive movement of the European intellectAnd will towards self-emancipation, towards reassertion of the natural rights of the reasonAnd the senses, towards the conquest of this planetAsA place of human occupation,And towards the formation of regulative theories both for stateAnd individual differing from those of Medieval Times, Symonds, J.A. Encyclopedia Britannica (Edition IX), Vol. XX, p. 38.
9. जे. ह्युजिंगा: मैन एण्ड आइडिया, पृ० 255.
10. लुकास, एस. हेनरीक्ष 'द रेनेसाँ एण्ड द रिफार्मेशन', पृ० 208.
11 a.Enlightenment "Proceeding from Western Europe, this most important intellectual developmentAfter the information was based on humanismAnd the philosophicalAnd scientific concepts of the world of the 17th century;Amplified toA generallyAccepted view of the world,AndApplied toAll situations of life, its implications were perceived by the bourgeoisie, which had been made self-confident by its prosperityAnd demonstrated capacities. Enlightenment,According to Kant, is man's emergence from his self-imposed nonage."
b. "The 'Age of' Enlightenment included the substitution of science for theology in the explanation of universe, it emphasized the importance of human reasonAs the bases for progress,And most important ofAll dignified the position of the individual." During this period there wasA greatAmount of intellectualActivity in the 17thAnd 18th centuries. There wasA momentous struggle between ideals, between libertyAnd despotism, between ProtestantismAnd Catholicism,And betweenAuthorityAnd reason. by the close of 17th century the liberal in politics, the hereticAnd the skeptic in religion,And the scientist were much saferAnd free to pursue their thinking than in the earlier period. Unique Quintessence of World History, p. 95.
12 The Phrase, "Intellectual Revolution" refers in the broadest sense to the change from the concept ofA mysterious world directed by the inscrutable will God to one in which the complex phenomenon of life could be regardedAs orderly processes, subject to laws which the mind of man was competent to discover. So likewise the phrase, "TheAs of Reason." WidelyApplied to the eighteenth century, reflects the conviction of thisAge that man could, by the exercise of his power of reason, pluck the mystery out of the UniverseAnd lead his fellows intoA future of ever-increasing happiness. StillAnother term came into use late in the eighteenth century to characterize man's victory in this mighty struggle. Whether one takes the German WorldAufklarung, the French Eclaieissement or the English Enlightenment, the connotation isAlways that ofA victory brought by the forces of light over those of darkness.

Ernest John Knapton, Europe-1450-1815.

13. पेटर वाल्टर: द रेनेसाँ स्टडीज इन आर्ट एण्ड पोयट्री, लंदन (1928), पृ० 2-3.
14. लुकास, एस. हेनरी: 'द रेनेसाँ एण्ड द रिपफार्मेशन', पृ० 208.
15. सं. डागीबर्ट डी. रूनिस: डिक्शनरी ऑपफ फिलासपफी, लंदन, पृ० 270.
16. कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स: संकलित रचनाएँ, खण्ड-3, भाग-1, पृ० 45.
17. आग्नेस हेलर: रिनेसांस मैन, पृ० 2.
18. ए डिक्शनरी ऑव फिलॉसफी, मास्को, पृ० 387.
19. मार्क्स, एंगेल्स: जर्मनी में किसा युद्ध - अध्याय-2, धर्म, हिंदी अनुवाद से उद्धृत, पृ० 94.
20. मार्क्स, एंगेल्स: जर्मनी में किसान युद्ध - धर्म, हिंदी अनुवाद से उद्धृत, पृ० 95.

जाति व्यवस्था के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू

श्री अमृतेष शुक्ला

शोधार्थी (राजनीति विज्ञान) सेठ आर.सी.एस. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग

डॉ० डी.एन. सूर्यवंशी

शोध निर्देशक, पूर्व प्राचार्य सेठ आर.सी.एस. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग

सार

भारत में जाति व्यवस्था एक जटिल और पदानुक्रमित सामाजिक स्तरीकरण प्रणाली है जिसने सदियों से भारतीय समाज को आकार दिया है। यद्यपि हिंदू धर्म में इसकी गहरी जड़ें हैं, लेकिन इसका प्रभाव भारत के अन्य धर्मों और समुदायों तक फैला हुआ है। कानूनी रूप से समाप्त होने के बावजूद, जाति देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती रहती है। भारत में जाति व्यवस्था का एक लंबा और जटिल इतिहास है, जो सामाजिक गतिशीलता, आर्थिक अवसरों और राजनीतिक शक्ति को गहराई से प्रभावित करता है। जबकि भारतीय संविधान और कानूनी सुधारों ने जाति-आधारित भेदभाव को दूर करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जाति व्यवस्था की सामाजिक और सांस्कृतिक जड़ें भारत के कई हिस्सों में मजबूत हैं। इन गहरी जड़ें जमाए असमानताओं पर काबू पाने के लिए कानूनी प्रवर्तन, शिक्षा, आर्थिक सुधार और सामाजिक परिवर्तन सहित निरंतर प्रयास की आवश्यकता है। आज, जाति-आधारित परंपराओं के ऐतिहासिक योगदान को स्वीकार करते हुए, अधिकांश चर्चाएँ उन सीमाओं और अन्याय को दूर करने की आवश्यकता पर केंद्रित हैं जो लंबे समय से इस प्रणाली से जुड़ी हुई हैं। नकारात्मक मुद्दों को संबोधित करने के कानूनी प्रयासों के बावजूद, जाति-आधारित भेदभाव और पूर्वाग्रह जीवन के कई क्षेत्रों में लगातार बने हुए हैं, जिससे यह आधुनिक भारत में सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक चुनौतियों में से एक बन गया है।

मुख्य शब्दः वर्ण, श्रम विभाजन, मनुस्मृति, सामाजिक गतिशीलता, जाति पदानुक्रम।

परिचय

जाति राजनीति की समस्या और उसके समाधान का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संवैधानिक आधार पर भारतीय समाज में जातियाँ विद्यमान नहीं हैं। इसके बावजूद व्यावहारिक जीवन में जातियाँ सर्वत्र दिखाई देती हैं। आधुनिक संसदीय व्यवस्था में राजनीति में जाति का प्रभाव बहुत अधिक दिखाई देता है। जाति और राजनीति से संबंधित विभिन्न मान्यताएँ हो सकती हैं। जाति की यह राजनीतिक भूमिका समाज को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से प्रभावित करती है। भारतीय जाति व्यवस्था ने शुद्ध और अशुद्ध की अवधारणा को स्पष्ट किया। संस्कृत साहित्य के महान विद्वान मैक्स मूलर का मानना था कि जाति कभी भी हिंदू धार्मिक व्यवस्था का हिस्सा नहीं थी। महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर भी जाति व्यवस्था में बदलाव करके समाज में सुधार चाहते थे। लेकिन स्वतंत्र भारत की चुनावी राजनीति ने न केवल जाति व्यवस्था में बदलाव लाए हैं बल्कि इसे किसी न किसी तरह

से मजबूत भी किया है। आधुनिक युग में जाति व्यवस्था कुछ मायनों में कमजोर हुई है। तो कुछ मायनों में यह मजबूत भी हुई है। जातिवाद के रूप में जाति व्यवस्था का जहर सामाजिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं में फैल चुका है और धीरे-धीरे पूरे समाज को जहर दे रहा है। लेकिन इसने समाज में कुछ सकारात्मक बदलाव भी लाए हैं। इस बात का विश्लेषण किया जाएगा कि जाति समाज पर किस तरह सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव डालती है।

उद्देश्य

इस शोध लेख का उद्देश्य समाज पर जाति व्यवस्था के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना है।

तरीके और सामग्री

इस कार्य में द्वितीयक स्रोतों से एकत्रित डेटा शामिल है। इस विषय के अंतर्गत जाति से संबंधित पत्रिकाओं, पुस्तकों, लेखों, शोध पत्रों, समाचार पत्रों, पाठ्यपुस्तकों और इंटरनेट स्रोतों तथा सरकार द्वारा समय-समय पर प्रकाशित पुस्तकों या रिपोर्टों का अध्ययन किया जाता है। साथ ही, विषय से संबंधित कानूनों को भी शामिल किया जाता है। इस आधार पर डेटा का विश्लेषण किया जाता है और उससे निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

चर्चा

जाति एक सामाजिक स्तरीकरण प्रणाली को संदर्भित करती है, जो विशेष रूप से भारत और दक्षिण एशिया के कुछ हिस्सों में प्रचलित है, जहाँ लोगों को उनके जन्म के आधार पर पदानुक्रमित समूहों में विभाजित किया जाता है। इस प्रणाली ने ऐतिहासिक रूप से एक व्यक्ति के व्यवसाय, सामाजिक संपर्क और समाज में स्थिति को निर्धारित किया है, जिसमें ऊपर की ओर गतिशीलता के सीमित अवसर हैं। जैसा कि श्री राम आहूजा ने उल्लेख किया है, भारत में जाति व्यवस्था का अध्ययन 3 दृष्टिकोणों से किया गया है जो इंडोलॉजिकल, सामाजिक-मानव शास्त्रीय और समाजशास्त्रीय हैं।

इंडोलॉजिकल दृष्टिकोण जाति व्यवस्था के मूल उद्देश्य और भविष्य के बारे में शास्त्रों से अपनी बुनियादी धारणाएँ प्राप्त करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार वर्ण व्यवस्था ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुई और जातियाँ वर्ण व्यवस्था के भीतर विखंडित इकाइयाँ हैं, जो अतिविवाह और अल्पविवाह प्रथाओं के परिणामस्वरूप विकसित हुई हैं। वे यह भी मानते हैं कि जाति व्यवस्था की उत्पत्ति श्रम विभाजन थी। समय के साथ यह व्यवस्था कठोर हो गई और व्यवसाय वंशानुगत हो गया। हटन, रिस्ले जैसे सामाजिक मानवविज्ञानी जाति व्यवस्था की उत्पत्ति, इसके विकास और संरचना में परिवर्तन की प्रक्रियाओं पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण जाति व्यवस्था को सामाजिक असमानता की एक घटना के रूप में देखता है जहाँ समाज के सदस्यों की सामाजिक स्थितियाँ अलग-अलग होती हैं। जाति के मुख्य पहलू: 1. वर्ण व्यवस्था: पारंपरिक हिंदू जाति व्यवस्था लोगों को चार व्यापक श्रेणियों में विभाजित करती है। 2. जाति: जबकि वर्ण व्यवस्था एक सामान्य ढांचा प्रदान करती है, जाति की वास्तविकता अधिक जटिल और स्थानीय कृत है, जिसमें हजारों छोटे उप समूह हैं जिन्हें जातियाँ कहा जाता है जो क्षेत्र-विशिष्ट हैं और विशेष व्यवसायों से जुड़े हैं। प्रो. रजनी कोठारी ने जाति और राजनीति के बीच संबंधों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया। ऐसा करते हुए उन्होंने दो बिंदुओं पर जोर दिया। सबसे पहले, उन्होंने जांच की कि जाति और राजनीति के बीच संबंधों की प्रकृति क्या है और दूसरी बात, उन्होंने जांच की कि राजनीतिक व्यवस्था में जाति की भागीदारी का क्या परिणाम होता है। प्रो. रजनी कोठारी जाति और राजनीति के बीच संबंधों को देखकर तीन निष्कर्ष निकालते हैं:

1. जाति धर्मनिरपेक्ष है।
2. जाति एकीकरण प्रदान करती है।
3. जाति की प्रकृति वैचारिक है।

प्रो. रजनी कोठारी का कहना है कि जहाँ राजनीति जातियों को प्रभावित करती है, वहीं जातियाँ भी राजनीति को प्रभावित करती हैं। समकालीन समाज में, जबकि शहरीकरण, शिक्षा और आर्थिक प्रगति ने कुछ क्षेत्रों में जाति के प्रत्यक्ष प्रभाव को कम कर दिया है, यह सामाजिक संबंधों, विवाह और राजनीति में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, भूमिका निभाना जारी रखती है। जाति व्यवस्था की ऐतिहासिक उत्पत्ति भारत में जाति व्यवस्था की ऐतिहासिक उत्पत्ति जटिल और विवादित है, जिसमें सहस्राब्दियों से कई सिद्धांत

और ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ शामिल हैं। जाति व्यवस्था पारंपरिक रूप से हिंदू समाज से जुड़ी हुई है, लेकिन इसकी जड़ें और विकास धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों के संयोजन से आकार लेते हैं। यहाँ जाति व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास में प्रमुख चरणों का अवलोकन दिया गया है:

1. वैदिक काल (1500-500 ईसा पूर्व)

आर्य प्रवास सिद्धांत: कई इतिहासकारों का मानना है कि जाति व्यवस्था की शुरुआत भारतीय उपमहाद्वीप में लगभग 1500 ईसा पूर्व में इंडो-आर्यों के आगमन के साथ हुई थी। माना जाता है कि मध्य एशिया के खानाबदोश समूह आर्यों ने वर्ण व्यवस्था की शुरुआत की थी, जिसमें समाज को व्यवसाय के आधार पर चार व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया गया था:

1. ब्राह्मण (पुजारी) 2. क्षत्रिय (योद्धा) 3. वैश्य (व्यापारी) 4. शूद्र (मजदूर)

यह व्यवस्था शुरू में लचीली थी और जन्म के बजाय व्यवसाय पर आधारित थी। सबसे पुराने हिंदू ग्रंथों में से एक ऋग्वेद में इन चार समूहों का उल्लेख है, लेकिन विद्वानों का मानना है कि इस शुरुआती काल में जाति को सख्ती से लागू नहीं किया गया था।

2. उत्तर वैदिक और महाकाव्य काल (1000-500 ईसा पूर्व)

समय के साथ, वर्ण व्यवस्था और अधिक कठोर हो गई। ब्राह्मण (पुजारी) और क्षत्रिय (योद्धा) प्रमुख हो गए, और समाज ने अनुष्ठान शुद्धता और पदानुक्रम पर अधिक जोर दिया। धर्मशास्त्र (कानून की किताबें), विशेष रूप से मनुस्मृति (लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व), ने जाति व्यवस्था को संहिताबद्ध किया, विभिन्न समूहों को निश्चित भूमिकाएँ सौंपी और अंतर-जातीय संबंधों और विवाह के बारे में सख्त नियमों की रूपरेखा तैयार की। शूद्रों को दास की स्थिति में डाल दिया गया, जबकि वर्ण व्यवस्था से बाहर के लोगों (जिन्हें बाद में दलित या "अछूत" कहा गया) को हाशिए पर रखा गया और उनके साथ अपवित्र व्यवहार किया गया। इस अवधि ने जाति-आधारित भेदभाव और पदानुक्रम की शुरुआत को चिह्नित किया।

3. उत्तर-वैदिक काल और जातियों का उदय (500 ईसा पूर्व-500 ई.)

उत्तर वैदिक ग्रंथों और महाभारत और रामायण महाकाव्यों के उदय के समय तक, जाति व्यवस्था और अधिक मजबूत हो गई थी। विभिन्न राज्यों के उदय और समाज की बढ़ती जटिलता के कारण अधिक व्यावसायिक समूहों का विकास हुआ, जिन्हें जाति कहा जाता है। जातियाँ अधिक स्थानीय कृत और क्षेत्रों और व्यवसायों के लिए विशिष्ट थीं, जिससे हजारों छोटी उपजातियाँ बनीं। इस समय के दौरान, बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उदय हुआ, जिसने जाति पदानुक्रम को चुनौती दी और समानता और करुणा के विचारों को बढ़ावा दिया। इन धर्मों ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

अनुयायियों, विशेष रूप से निचली जातियों के बीच, लेकिन समय के साथ, इन धर्मों के भीतर भी जाति विभाजन कायम रहा।

4. मध्यकालीन काल (500-1500 ई.)

मध्यकालीन काल के दौरान, जाति और भी अधिक कठोर हो गई क्योंकि नई सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएँ उभरीं। गुप्त साम्राज्य (4वीं-6वीं शताब्दी) और बाद में हिंदू राज्यों के प्रभाव ने ब्राह्मण वादी सामाजिक व्यवस्था को मजबूत किया। जातियों के बीच विवाह और सामाजिक संपर्क सख्ती से विनियमित थे, और शुद्धता और अशुद्धता की धारणाएँ अधिक स्पष्ट हो गईं।

भारत में इस्लाम के आगमन (लगभग 8वीं शताब्दी से शुरू) ने एक नई गतिशीलता लाई। जबकि इस्लामी शासकों ने जाति व्यवस्था लागू नहीं की, भारतीय मुसलमानों ने कभी-कभी जाति के पहलुओं को अपनाया, विशेष रूप से सामाजिक स्तरीकरण के संदर्भ में, हालांकि यह हिंदू समाज की तुलना में कम कठोर था।

5. औपनिवेशिक काल (18वीं-20वीं शताब्दी)

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का जाति व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश प्रशासन ने जनगणना करके जाति को संस्थागत रूप दिया, जिसमें लोगों को उनकी जाति पहचान के आधार पर वर्गीकृत किया गया। उन्होंने शिक्षा और रोजगार में कुछ जातियों को तरजीह दी, जिससे सामाजिक विभाजन मजबूत हुआ। इस अवधि के दौरान मिशनरी गतिविधि ने कई निचली जाति के हिंदुओं, विशेष रूप से दलितों को ईसाई धर्म में परिवर्तित कर दिया, ताकि वे जातिगत भेदभाव से बच सकें। हालाँकि, इन नए धार्मिक

समुदायों के भीतर भी, जातिगत भेदभाव अक्सर कायम रहा। अंग्रेजों ने "आपराधिक जनजातियों" की अवधारणा भी पेश की, जिससे कुछ समूहों को हाशिए पर धकेल दिया गया, अक्सर निचली जातियों या खानाबदोश समुदायों से, उन्हें स्वाभाविक रूप से अपराधी के रूप में कलंकित किया गया।

6. आधुनिक काल (20वीं सदी के बाद)

भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान, जाति एक केंद्रीय मुद्दा बन गई। महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने अस्पृश्यता के उन्मूलन को बढ़ावा दिया, जबकि दलित नेता डॉ. बी.आर. अंबेडकर हाशिए पर पड़ी जातियों के अधिकारों के कट्टर समर्थक थे। अंबेडकर ने भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने जाति-आधारित भेदभाव को गैरकानूनी घोषित कर दिया। 1947 में स्वतंत्रता के बाद, भारत सरकार ने ऐतिहासिक असमानताओं को दूर करने के लिए अनुसूचित जातियों (पूर्व में दलित), अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) के लिए शिक्षा और सरकारी नौकरियों में आरक्षण सहित सकारात्मक कार्रवाई नीतियों की शुरुआत की।

जाति व्यवस्था का सकारात्मक प्रभाव

हालाँकि जाति व्यवस्था की उसके दमनकारी स्वभाव के लिए काफी आलोचना की जाती है, लेकिन ऐतिहासिक रूप से इस व्यवस्था के सकारात्मक पहलुओं के बारे में कुछ तर्क दिए गए हैं, खासकर इसके शुरुआती और आदर्श रूप में। ये तर्क अक्सर सामाजिक स्थिरता, श्रम विभाजन और सांस्कृतिक संरक्षण पर केंद्रित होते हैं, हालांकि यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि समय के साथ नकारात्मक पहलुओं ने इसे पीछे छोड़ दिया है। जाति व्यवस्था के बारे में दिए गए कुछ अधिक सकारात्मक तर्क इस प्रकार हैं:

1. श्रम विभाजन

जाति व्यवस्था ने श्रम का एक संरचित विभाजन प्रदान किया, जिसमें प्रत्येक जाति किसी विशेष पेशे में विशेषज्ञता रखती थी। इसने पुजारियों जैसे कुछ क्षेत्रों में विशेषज्ञता और महारत हासिल करने की अनुमति दी धार्मिक समारोहों के लिए ब्राह्मण, सुरक्षा के लिए योद्धा (क्षत्रिय), व्यापार के लिए व्यापारी (वैश्य) और शारीरिक श्रम के लिए मजदूर (शूद्र) थे। इस व्यवस्था ने सुनिश्चित किया कि समाज में सभी आवश्यक भूमिकाएँ निभाई जाएँ और विभिन्न शिल्प, कला और कौशल के विकास की अनुमति दी जाए। प्रत्येक जाति की अपनी पारंपरिक भूमिका थी और इससे गाँवों और क्षेत्रों में आर्थिक संतुलन बनाए रखने में मदद मिली।

2. सांस्कृतिक संरक्षण और पहचान

जाति व्यवस्था ने अद्वितीय सांस्कृतिक प्रथाओं, ज्ञान प्रणालियों और परंपराओं को संरक्षित करने में मदद की। उदाहरण के लिए, कुछ जातियों ने कला, शिल्प और धार्मिक अनुष्ठानों में विशेषज्ञता विकसित की, जो पीढ़ियों से चली आ रही थी। जाति व्यवस्था, विशेष रूप से अपने शुरुआती चरणों में, एक समुदाय के भीतर अपनेपन और पहचान की भावना पैदा करती थी। एक ही जाति के लोग एक-दूसरे का समर्थन करते थे, समान मूल्यों को साझा करते थे और सांप्रदायिक अनुष्ठानों में शामिल होते थे, जिससे एक मजबूत सामाजिक बंधन को बढ़ावा मिलता था।

3. सामाजिक व्यवस्था और स्थिरता

जाति व्यवस्था ने एक स्पष्ट सामाजिक संरचना प्रदान की जिसने प्राचीन काल में स्थिरता की अनुमति दी। हर कोई अपनी भूमिका और कर्तव्यों को जानता था, जिसने बिना किसी व्यवधान के एक पूर्वानुमानित सामाजिक वातावरण बनाया। सिद्धांत रूप में, इससे सामाजिक गतिशीलता या सत्ता संघर्ष पर संघर्ष को रोकने में मदद मिली क्योंकि भूमिकाएँ स्पष्ट रूप से परिभाषित थीं। प्राचीन भारत जैसे विविधतापूर्ण और बड़े समाज में, जाति व्यवस्था विकेंद्रीकृत शासन के रूप में कार्य करती थी। स्थानीय समुदाय काफी हद तक स्वशासित थे, और जाति व्यवस्था ने विवादों को सुलझाने, संसाधनों का प्रबंधन करने और गाँव के स्तर पर सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान की।

4. ज्ञान का संचरण

विद्वान वर्ग के रूप में ब्राह्मणों ने प्राचीन धार्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक ज्ञान को संरक्षित करने और प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे भारत की बौद्धिक परंपराओं में निरंतरता बनाए रखने में मदद मिली। कई कारीगर और व्यापारी जातियों (वैश्य

और कुछ शूद्र उपजातियाँ) ने व्यापार, शिल्प और प्रौद्योगिकी के पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित किया। ये कौशल पीढ़ियों से आगे बढ़ते रहे, जिससे बुनाई, मिट्टी के बर्तन और धातु के काम जैसे विशेष शिल्पों का अस्तित्व बना रहा।

5. धार्मिक और आध्यात्मिक भूमिकाएँ

अपने आदर्श रूप में, ब्राह्मण जाति धार्मिक ज्ञान को संरक्षित करने, अनुष्ठान करने और समाज के लिए नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करने के लिए जिम्मेदार थी। इस धार्मिक पदानुक्रम ने प्राचीन ग्रंथों, दर्शन और नैतिक प्रणालियों को संरक्षित करने में मदद की जो भारतीय आध्यात्मिक जीवन के लिए केंद्रीय थे। प्रत्येक जाति का अपना धर्म (कर्तव्य) या नैतिक दायित्व था। आदर्श रूप से, इस प्रणाली ने लोगों को जिम्मेदारी की भावना के साथ अपनी सामाजिक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया, जिससे समुदाय की अधिक भलाई में योगदान मिला।

6. सामाजिक सुरक्षा और सहायता नेटवर्क

विभिन्न जातियाँ एक-दूसरे पर निर्भर थीं, जिसका अर्थ है कि कोई भी जाति दूसरों के बिना काम नहीं कर सकती थी। इस परस्पर निर्भरता ने स्थानीय स्तर पर सहयोग की भावना को बढ़ावा दिया, जहाँ विभिन्न जातियों के सदस्य आपसी लाभ के लिए मिलकर काम करते थे। सिद्धांत रूप में, प्रत्येक जाति की अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं।

अपनी आंतरिक सहायता प्रणाली। निचली जातियाँ अक्सर घनिष्ठ समुदायों का निर्माण करती थीं जो सामाजिक और आर्थिक रूप से एक-दूसरे का समर्थन करती थीं। हालाँकि वे हाशिए पर थे, लेकिन उनके पास आंतरिक एकजुटता और पारस्परिक सहायता की व्यवस्थाएँ भी थीं।

7. व्यावसायिक भूमिकाओं की निरंतरता

पीढ़ियों से एक ही व्यवसाय का पालन करके, कुछ जातियों ने विशिष्ट व्यवसायों, जैसे लोहार, बुनकर या कुम्हार में असाधारण विशेषज्ञता विकसित की। इस निरंतरता ने सदियों से विशेष कौशल के संरक्षण और उन्नति की अनुमति दी। बच्चों ने अपने बड़ों से सीधे मार्गदर्शन के माध्यम से कम उम्र से ही अपने परिवार के व्यवसाय को सीखा, यह सुनिश्चित करते हुए कि कौशल और ज्ञान को स्कूलों या विश्वविद्यालयों जैसी औपचारिक संस्थाओं के बिना कुशलतापूर्वक पारित किया गया।

8. भौगोलिक और पर्यावरणीय अनुकूलन

जाति (उप-जातियाँ) अक्सर स्थानीय वातावरण और पारिस्थितिकी तंत्र के अनुकूल होती थीं, जिससे जीवन जीने के ऐसे स्थायी तरीके बनते थे जो किसी क्षेत्र की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल होते थे। उदाहरण के लिए, कुछ जातियाँ विशेष प्रकार की मिट्टी या जलवायु के अनुकूल कृषि में कुशल थीं, जबकि अन्य तटीय क्षेत्रों में नाव बनाने जैसे शिल्प में निपुण थीं।

9. नैतिक जीवन को प्रोत्साहन

जाति व्यवस्था ने धर्म की अवधारणा के माध्यम से एक नैतिक और नैतिक ढांचा प्रदान किया। इस ढांचे में, व्यक्तियों को नैतिक रूप से जीने और अपने जातिगत दायित्वों के अनुसार अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इससे उद्देश्य और नैतिक मार्गदर्शन की भावना मिलती थी।

10. राजनीतिक स्थिरता

अपने शुरुआती रूप में, जाति व्यवस्था ने सामाजिक गतिशीलता को कम कर दिया, जिसके बारे में कुछ लोग तर्क देते हैं कि इसने राजनीतिक सत्ता पर सीमित प्रतिस्पर्धा और संघर्ष को बढ़ावा दिया। चूँकि भूमिकाएँ विरासत में मिली थीं, इसलिए लोगों के सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देने की संभावना कम थी, जो सैद्धांतिक रूप से राजनीतिक स्थिरता की ओर ले जाती थी।

जाति व्यवस्था का नकारात्मक प्रभाव

जाति व्यवस्था के कई नकारात्मक पहलू हैं, और इसके कठोर पदानुक्रम के परिणामस्वरूप व्यापक भेदभाव, सामाजिक असमानता और आर्थिक शोषण हुआ है। नीचे प्रमुख नकारात्मक पहलू दिए गए हैं:

1. सामाजिक असमानता और भेदभाव

जाति व्यवस्था ने एक कठोर, जन्म-आधारित पदानुक्रम लगाया जिसने समाज को उच्च और निम्न जातियों में विभाजित कर दिया, जिसमें उच्च जातियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे और निचली जातियों को उत्पीड़न का सामना करना पड़ा।

जाति पदानुक्रम के सबसे निचले पायदान पर स्थित दलितों को अस्पृश्यता का सामना करना पड़ता था, जिसका मतलब था कि उन्हें बुनियादी मानवाधिकारों और सार्वजनिक स्थानों, मंदिरों, कुओं और स्कूलों तक पहुँच से वंचित रखा जाता था।

2. सामाजिक गतिशीलता का अभाव

जाति व्यवस्था ने व्यक्तियों को उनकी जन्म की जाति से बांध दिया, जिससे योग्यता या योग्यता की परवाह किए बिना उन्हें अपनी सामाजिक या आर्थिक स्थिति बदलने का कोई अवसर नहीं मिला।

लोगों को उनकी जाति के अनुसार विशिष्ट नौकरियों तक सीमित कर दिया गया था, जिससे उनके विभिन्न व्यवसायों को अपनाने, धन कमाने या गरीबी से बचने की क्षमता सीमित हो गई।

3. आर्थिक शोषण

निम्न जातियों, विशेष रूप से दलितों को श्रम-गहन, नीच नौकरियों, जैसे कि मैला ढोने, में मजबूर किया गया और उन्हें भूमि, संसाधनों और शिक्षा तक पहुँच से वंचित कर दिया गया।

निम्न जातियों के कई व्यक्तियों को बंधुआ मजदूरी के अधीन किया गया, जहाँ उन्हें बहुत कम या बिना किसी वेतन के शोषण किया गया और उन्हें कर्ज और दासता के चक्र में फँसाया गया।

4. दलितों और निचली जातियों का हाशिए पर होना

दलितों और निचली जातियों को सामाजिक रूप से बहिष्कृत किया गया, उन्हें अलग-थलग इलाकों में रहने के लिए मजबूर किया गया और मुख्यधारा के समाज से बाहर रखा गया। इस अलगाव ने उनके हाशिए पर होने को और मजबूत किया।

निम्न जातियों के व्यक्ति, विशेष रूप से दलित, जाति के मानदंडों को चुनौती देने या अपने अधिकारों का दावा करने पर हिंसा, यौन शोषण और अत्याचारों के शिकार हुए हैं।

5. लैंगिक असमानता

निम्न जाति की महिलाओं को जाति-आधारित और लिंग-आधारित भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिससे वे शोषण और दुर्व्यवहार के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील हो जाती हैं। महिलाओं, विशेष रूप से निम्न जातियों से, अक्सर शिक्षा, संपत्ति के स्वामित्व के अधिकार और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भागीदारी से वंचित कर दी जाती थीं, जिससे उनकी अधीनता मजबूत होती थी।

6. उत्पीड़न का धार्मिक औचित्य

जाति व्यवस्था शुद्धता और प्रदूषण की धारणा पर आधारित थी, जहाँ निम्न जातियों को अपवित्र माना जाता था। इस धार्मिक स्वीकृति का उपयोग उनके बहिष्कार और भेदभाव को उचित ठहराने के लिए किया जाता था। मनुस्मृति जैसे धार्मिक ग्रंथों का उपयोग जाति पदानुक्रम को बनाए रखने के लिए किया जाता था, जिससे इस विचार को बल मिलता था कि जाति की भूमिकाएँ ईश्वर द्वारा निर्धारित और अपरिवर्तनीय हैं।

7. नवाचार और प्रगति का दमन

जाति व्यवस्था निम्न जातियों के व्यक्तियों को उनकी प्रतिभा के आधार पर शिक्षा या पेशे अपनाने से रोकती थी, जिससे नवाचार और आर्थिक प्रगति बाधित होती थी।

जाति व्यवस्था की कठोरता ने समाज को लाभ पहुँचाने वाले सुधारों को लागू करना या नए विचारों, तकनीकों या सामाजिक परिवर्तनों को अपनाना मुश्किल बना दिया।

8. मनोवैज्ञानिक प्रभाव

जाति व्यवस्था ने निचली जाति के लोगों में हीनता की भावना पैदा की, जिससे उनके आत्मसम्मान और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा। निचली जाति के लोगों को अक्सर सार्वजनिक रूप से कलंकित और अपमानित किया जाता था, जिससे उन्हें आजीवन आघात और सामाजिक अलगाव का सामना करना पड़ता था।

9. अन्याय को कायम रखना

जाति-आधारित भेदभाव समाज में इतनी गहराई से समा गया है कि कानूनी सुधारों के बाद भी यह कायम रहा, रोजगार, शिक्षा और सामाजिक संबंधों में पक्षपात के सूक्ष्म रूपों में प्रकट हुआ। जाति व्यवस्था ने समाज को कठोर समूहों में विभाजित कर दिया, जिससे सामाजिक सामंजस्य और एकता में बाधा उत्पन्न हुई, असमानता और अन्याय को बढ़ावा मिला।

10. राजनीतिक हेरफेर

राजनेताओं ने अक्सर वोट हासिल करने के लिए जातिगत विभाजन का फायदा उठाया है, जातिगत पहचान को मजबूत किया है और अधिक समतावादी समाज की ओर प्रगति को रोका है। राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक संघर्षों से प्रेरित अंतर-जातीय हिंसा अक्सर भड़क उठी है, जिसमें जाति पदानुक्रम को चुनौती देने पर निचली जातियों को क्रूर हमलों का सामना करना पड़ा है।

निष्कर्ष

जबकि ऊपर दिए गए तर्क जाति व्यवस्था के कुछ सैद्धांतिक और कार्यात्मक लाभों को उजागर करते हैं, यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि, व्यवहार में, इस प्रणाली ने विशेष रूप से निचली जातियों के लिए गंभीर भेदभाव, असमानता और सामाजिक अन्याय को जन्म दिया। समय के साथ, जातिगत भूमिकाओं का कठोर प्रवर्तन, दलितों और अन्य वंचित समूहों का हाशिए पर होना और सामाजिक गतिशीलता की कमी ने महत्वपूर्ण नुकसान पहुँचाया है। इन नकारात्मक पहलुओं ने उन संभावित लाभों को कम कर दिया है जो कुछ लोगों का तर्क है कि यह व्यवस्था कभी प्रदान करती थी। श्रम के कार्यात्मक, लचीले विभाजन के रूप में जाति का मूल आदर्श समय के साथ एक पदानुक्रमित, दमनकारी सामाजिक संरचना में विकृत हो गया। आज, जाति-आधारित परंपराओं के ऐतिहासिक योगदान को स्वीकार करते हुए, अधिकांश चर्चाएँ उन सीमाओं और अन्याय को दूर करने की आवश्यकता पर केंद्रित हैं जो लंबे समय से इस व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं। जाति व्यवस्था के नकारात्मक पहलू, जिसमें जड़ जमाए हुए भेदभाव, गतिशीलता की कमी, आर्थिक शोषण और सामाजिक बहिष्कार शामिल हैं, ने हाशिए पर पड़े समूहों, विशेष रूप से दलितों और निचली जातियों को गहरा नुकसान पहुँचाया है। इसकी कठोर संरचना ने लाखों लोगों को उनके बुनियादी मानवाधिकारों, सामाजिक सम्मान और आर्थिक अवसरों से वंचित किया है, जिससे असमानता की एक स्थायी विरासत बनी हुई है जो भारतीय समाज को प्रभावित करती रहती है। इन मुद्दों को संबोधित करने के कानूनी प्रयासों के बावजूद, जाति-आधारित भेदभाव और पूर्वाग्रह जीवन के कई क्षेत्रों में लगातार बने हुए हैं, जिससे यह आधुनिक भारत में सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक चुनौतियों में से एक बन गया है।

संदर्भ

1. नेमा, जी.पी. जैन, राजेश और हरिश्चंद्र, भारत में राज्यों की राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2008।
2. बॉल, ए.आर., आधुनिक राजनीति और सरकार, मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1971।
3. आहूजा, राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1995।
4. कोठारी रजनी, (संपादित) भारतीय राजनीति में जाति, ओरिएंट ब्लैक स्वान, हैदराबाद, 1970।
5. श्रीनिवास एम.एन., भारत में जाति, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2016।
6. पामर नॉर्मन डी, चुनाव और राजनीतिक विकास, विकास पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1975।
7. पाधी, के.एस.एन., त्रिपाठी पी.पी., भारत में आदिवासियों का मतदान व्यवहार, कृष्णा पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 1994।
8. टाइटस चार्ल्स हिकमैन, संयुक्त राज्य अमेरिका में मतदान व्यवहार, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, 1935।
9. लावणिया, एम.एम., जैन, शशि के., राजनीतिक समाजशास्त्र, शोध प्रकाशन, जयपुर, 2008।

ब्रिटिश भारत में साम्प्रदायिकता का उत्थान: एक ऐतिहासिक विश्लेषण

प्रो० (डॉ०) अरविन्द कुमार सिंह

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डी.के. कॉलेज, डुमरांव (बक्सर)

साम्प्रदायिकता मूलत: ऐसी विचारधारा है जिसका हमारे बीच लम्बे समय से अस्तित्व रहा है तथा जिसका तात्विक रूप समझना आसान प्रतीत होता है। लेकिन कदाचित उसे समझना इतना आसान नहीं है। प्रथमत: साम्प्रदायिक विचारधारा इस विश्वास पर आधारित होती है कि जो लोग एक धर्म को मानते हैं, उनके लौकिक हित अर्थात्, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हित इसी कारण समान होते हैं। इसी मान्यता से धर्म पर आधारित सामाजिक, राजनैतिक समुदायों की धारणा उत्पन्न होती है। दूसरे, यह विश्वास किया जाता है कि भारतीय समाज जैसे किसी समाज में, जिसमें अनेक धर्मों को मानने वाले हों, धर्म पर आधारित समुदायों के लौकिक हित असमान तथा एक-दूसरे से भिन्न होंगे। अंतत: इसी तर्क के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि यह असमानता और भिन्नता परस्पर असंगत, एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी और विरोधी होंगी। साम्प्रदायिक हिंसा साम्प्रदायिक विचारधारा का ही अनुमानित परिणाम है।

उपरोक्त धारणा के आधार पर अनेक राष्ट्रवादी प्रथम प्रकार की साम्प्रदायिकता से प्रभावित हो गए। यद्यपि उन्होंने शेष दोनों प्रकार की साम्प्रदायिकता को अस्वीकार कर दिया। यह लोग अपने को राष्ट्रवादी मुसलमान अथवा राष्ट्रवादी सिख समझते थे, केवल राष्ट्रवादी नहीं। दूसरे प्रकार की साम्प्रदायिकता को उदार साम्प्रदायिकता कह सकते हैं जिसे व्यवहार में स्वीकार करने वाले कुछ उदार, जनतांत्रिक, मानवीय तथा राष्ट्रीय मूल्यों को मानते थे और उनका यह विश्वास था, जिसे वह बराबर प्रकट करते रहते थे कि विभिन्न साम्प्रदायिक हितों के बीच भारत का एक राष्ट्र के रूप में निर्माण करने के लिए सामंजस्य बैठाया जा सकता है। तीसरे प्रकार की साम्प्रदायिकता को अतिवादी साम्प्रदायिकता कह सकते हैं जो फासिस्ट मानसिकता से प्रभावित थी। इस प्रकार की साम्प्रदायिकता भय और घृणा पर आधारित थी और उसमें राजनैतिक विरोधी के प्रति आक्रामक भाषा अथवा हिंसक व्यवहार करने की प्रवृत्ति रहती थी।

तीनों प्रकार की साम्प्रदायिकता यद्यपि एक-दूसरे से भिन्न थीं किन्तु उनके बीच एक प्रकार का संबंध तथा क्रमबद्धता रहती थी जिसके कारण प्रथम प्रकार की साम्प्रदायिकता की विचारधारा को तीसरे प्रकार की विचारधारा में परिवर्तित होने से रोकना कठिन था। एक साम्प्रदायिकतावादी अपने सम्प्रदाय के हितों की रक्षा में विश्वास करता था और उसी की बात करता था, किन्तु वास्तव में, धार्मिक क्षेत्र के बाहर किसी सम्प्रदाय का कोई हित नहीं था। इस प्रकार की बातें करके वह भारतीय जनता के वास्तविक विभाजन को छिपाने का प्रयत्न करता था, जैसे–विभाजन भाषा, क्षेत्रीय संस्कृति अथवा सामाजिक वर्गों पर आधारित था। वह इस तथ्य की भी अनदेखी करता था कि इस विभाजन में ही एकता प्रकट हो रही थी जिसके परिणामस्वरूप एक राष्ट्र का उदय हो रहा था। उपनिवेशवाद द्वारा निर्मित सामाजिक आर्थिक ढांचे के प्रभाव तथा उसको बदलने की आवश्यकता महसूस होने के फलस्वरूप भारतीय समाज के स्वरूप में परिवर्तन आया था और 1857 से पूर्व की राजनीति से हटकर आधुनिक राजनीति का उदय हुआ था।

इसी के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक चेतना भी जागृत हुई। देश के विभिन्न क्षेत्रों का अधिकाधिक सामाजिक-आर्थिक एवं प्रशासनिक एकीकरण हो रहा था, उपनिवेशवाद और भारतीय हितों के बीच अंतर्विरोध बढ़ रहा था, आधुनिक वर्गों एवं सामाजिक

स्तरों का निर्माण हो रहा था। इस परिस्थिति में सामान्य हितों को एक नए दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता थी और इस बात की आवश्यकता थी कि लोगों के बीच अधिक विस्तृत आधार पर संबंध और निष्ठाएँ स्थापित हों और लोगों की नई पहचान बने। भारत के विशिष्ट ऐतिहासिक और सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति कोई विरल घटना नहीं थी। यह उन्हीं परिस्थितियों से उत्पन्न हुयी थी, जिन परिस्थितियों में दूसरे समाजों में फासिस्टवाद, सेमाइट-विरोध, उत्तरी आयरलैंड में जातिवाद तथा कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट विरोध और लेबनान में ईसाई-मुस्लिम विरोध आदि समान घटनाओं और विचारधाराओं ने जन्म लिया था। यह अवश्यम्भावी था कि नए उदयशील और राजनैतिक सत्य तथा नए सामाजिक संबंधों को समझने, एकता लाने वाले नए सिद्धांतों को स्वीकार करने एवं नए विचारों और धारणाओं की सहायता से नई राजनैतिक और सामाजिक पहचान को ग्रहण करने की प्रक्रिया लम्बी होती और जब भी प्रगति कम हुयी अथवा उसकी रफ्तार धीमी हुयी तब लोग नई वस्तु-स्थिति को समझने, विस्तृत आधार पर संबंध निर्मित करने और अपनी नई पहचान और विचारधारा विकसित करने के उद्देश्य से जाने-पहचाने पुराने जाति, धर्म, क्षेत्र, कबीले, मत-सम्प्रदाय और व्यवसाय आदि के आधार पर ही अपनी पहचान करने लगे।

लेकिन अक्सर इन पुराने और थोथे विचारों और पहचान का स्थान राष्ट्र, राष्ट्रीयता तथा वर्ग से संबंधित नए विचारों तथा पहचान ने ले लिया जोकि ऐतिहासिक आवश्यकता थी। भारत में भी, यद्यपि सभी लोगों में समान रूप से नहीं, किन्तु विस्तृत रूप से ऐसा हुआ। विशेषकर, देश के कुछ भागों में और जनता के कुछ वर्गों में धार्मिक चेतना ने साम्प्रदायिक चेतना का रूप ले लिया। सीधा प्रश्न यह है कि बीसवीं सदी में साम्प्रदायिकता में वृद्धि कैसे हुयी? साम्प्रदायिकता अनिवार्यत: परिस्थितिजन्य नहीं थी और केवल सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों तथा धूर्त अफसरशाहों का षड्यंत्र मात्र नहीं था, फिर भी भारतीय परिस्थिति के वे कौन से पक्ष थे जो इस प्रक्रिया के अनुकूल थे तथा किन सामाजिक वर्गों और राजनीतिक शक्तियों को उससे लाभ हुआ?

उपनिवेशवाद में भारतीय अर्थव्यवस्था को विकसित करने की क्षमता न होने के कारण अविकास और आर्थिक प्रगतिरोध की स्थिति पैदा हो गयी थी जिससे भारतीय लोगों का जीवन प्रभावित हुआ, विशेषकर शिक्षित मध्यम वर्गीय लोगों का, जो भूमि पर काम नहीं कर सकते थे तथा जिनको उपलब्ध आर्थिक अवसर बराबर कम होते जा रहे थे, जिससे उनके सामने बेरोजगारी आदि की गंभीर समस्याएँ पैदा हो रही थीं। इस प्रकार भारतीय समाज में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी जो उसके विभाजन और आपसी विरोध के लिए अनुकूल थी लेकिन, साथ ही उसके क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए भी अनुकूल थी। इस सामाजिक परिस्थिति में राष्ट्रीय तथा अन्य जन-आंदोलनों द्वारा उपनिवेशवाद का अंत करने के लिए तथा क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष करके जनता की समस्याओं का दीर्घकालिक समाधान करने का प्रयत्न किया गया। लेकिन जिन लोगों का सामाजिक दृष्टिकोण विस्तृत नहीं था तथा जिसमें राजनैतिक समझदारी का अभाव था उन्होंने अपनी व्यक्तिगत अथवा वर्गीय समस्याओं के समाधान के लिए केवल अपने संकीर्ण तात्कालिक हितों जैसे–नौकरियों अथवा म्यूनिसिपल कमेटियों में साम्प्रदायिक, जातीय अथवा प्रान्तीय आधार पर संरक्षण प्रदान किए जाने की ही चिन्ता की। इस प्रकार, साम्प्रदायिकता से मध्यम वर्ग के कुछ लोगों को तात्कालिक लाभ अवश्य हुआ जिससे साम्प्रदायिक राजनीति की वैधता का भ्रम पैदा हुआ।

साम्प्रदायिक मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को वास्तविकता के संबंध में अपनी व्याख्या का विश्वास दिलाने की स्थिति तथा अनुभवों के आधार पर उसमें कुछ वैधता अवश्य थी, भले ही वह व्याख्या आंशिक, कुत्सित और अल्पकालिक हो।उच्च वर्ग के ग्रामीणों और भू-स्वामियों में शिक्षा का प्रसार धीरे-धीरे बढ़ रहा था। इन लोगों के लिए भूमि पर निर्वाह करना संभव नहीं था क्योंकि औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत कृषि में पूर्णत: प्रगतिरोध आ गया था। विवश होकर यह लोग सरकारी नौकरियों तथा अन्य व्यवसायों की खोजों में शहरों की ओर जाने लगे। स्पर्धा बढ़ने के कारण, इन लोगों ने अपने हितों की रक्षा के लिए साम्प्रदायिक आरक्षण एवं मनोनयन के आधार पर नौकरियों के लिए लड़ना शुरू किया। इससे साम्प्रदायिकता का सामाजिक आधार क्रमश: विस्तृत होता गया। इस प्रकार औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था ने मध्यम वर्ग के लोगों में दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं और प्रवृत्तियों को निरंतर जन्म दिया। जब साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्ति और सामाजिक परिवर्तन की संभावना प्रबल होती थी तब मध्यम वर्ग के लोग विस्तृत सामाजिक परिकल्पना के संदर्भ में अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को भुलाकर राष्ट्रीय तथा जन आन्दोलनों में जोश-खरोश के साथ शामिल हो जाते थे। लेकिन जब क्रांतिकारी परिवर्तन की संभावनाएँ क्षीण दिखाई देने लगती थीं तथा जब साम्राज्यवादी विरोधी संघर्ष

अपेक्षाकृत निष्क्रिय हो जाता था तब मध्यम वर्ग के लोगों का झुकाव अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के अल्पकालिक समाधान की खोज, साम्प्रदायिकता पर आधारित राजनीति तथा ऐसी अन्य विचारधाराओं की ओर हो जाता था।

दूसरी तरफ, यह सच था कि भारतीय सामाजिक विकास की यह एक विशेषता थी कि देश के अनेक भागों में धार्मिक विभेद सामाजिक वर्गीय विभेदों के अनुरूप थे और विभिन्न सामाजिक समूहों में असंतोष तथा उनके हितों में परस्पर टकराव था। इन विभेदों के कोई धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक कारण नहीं थे, किन्तु राजनैतिक चेतना न होने के कारण इन विभेदों की कुत्सित अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक टकराव में होती थी। उपरोक्त वस्तुस्थिति यह थी कि अधिकांश शोषण करने वाले वर्गों के व्यापारी महाजन, भू-स्वामी आदि उच्च वर्ग के मुसलमान अथवा उच्च जातियों के हिन्दू थे। परिणामस्वरूप, सम्प्रदायवादी लोग उन संघर्षों को हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रूप दे देते थे जो जमींदार और किसान के बीच होते थे, जैसे पूर्वी बंगाल और मालाबार में अथवा जो कर्जदार किसान और व्यापारी महाजन के बीच होते थे, जैसे पंजाब में। किसानों का अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष तो वस्तुतः अनिवार्य था। प्रश्न यही रह जाता था कि उस संघर्ष की वैचारिक विषय वस्तु क्या हो? सम्प्रदायवादी लोग तथा औपनिवेशिक शासक, दोनों ही किसानों के शोषण और यातनाओं के वर्गीय पक्ष की अपेक्षा उसके साम्प्रदायिक पक्ष पर अधिक जोर देते थे। आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता की वृद्धि के लिए अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति विशेष रूप से जिम्मेदार थी। यह भी सच है कि आन्तरिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति के कारण ही यह नीति सफल हो सकी। वस्तुतः राज्य इतना शक्ति सम्पन्न था कि वह चाहता तो राष्ट्रीय एकता का संवर्द्धन कर सकता था अथवा सभी प्रकार की विघटनकारी शक्तियों को प्रोत्साहन दे सकता था। औपनिवेशिक राज्य ने, अपने औपनिवेशिक हित को ध्यान में रखकर दूसरा विकल्प चुना। उसने बढ़ते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर बनाने और भारतीय जनता को एक राष्ट्र के रूप में उदित होने से रोकने के लिए सम्प्रदायवाद का इस सीमा तक सहारा लिया कि देश में विभाजन की स्थिति पैदा हो गयी।

इस दृष्टि से, मध्यम वर्गों की राजनीति का उपयोग साम्प्रदायिकता के माध्यम से उप-निवेशवाद और जागीरदार सामंत वर्ग की सेवा के लिए किया गया। वस्तुतः साम्प्रदायिकता ही एक ऐसा माध्यम था जिसके सहारे उपनिवेशवाद अपना संकुचित सामाजिक आधार किसानों, मजदूरों, मध्यम वर्गों और श्रमिक वर्ग में कायम कर सका यद्यपि इन सभी के हितों का उपनिवेशवाद से विरोध था। साम्प्रदायिकता को पोषण देने के लिए अंग्रेज़ों ने क्या विभिन्न उपाय किए, क्या नीतियाँ अपनाईं, क्या अपकृत्य किए अथवा किन कृत्यों को करने से परहेज़ किया? प्रथमतः यह कहा गया कि भारत न तो एक राष्ट्र था, न ही एक राष्ट्र के रूप में उसका निर्माण हो रहा था और न ही वह विभिन्न राष्ट्रों अथवा स्तरों वाले ऐसे समुदाय थे जो आपस में अनुकूल ही नहीं वरन् परस्पर विरोधी भी थे। दूसरे सम्प्रदायवादियों को सरकारी संरक्षण प्रदान किया गया और उनके साथ पक्षपात किया गया। तीसरे, सम्प्रदायिक समाचारपत्रों, व्यक्तियों और आन्दोलनों के प्रति असाधारण सहिष्णुता दिखाई गयी। चौथे, साम्प्रदायिक माँगों को अविलम्ब स्वीकार किया गया। इस प्रकार साम्प्रदायिक संगठनों को मजबूत किया गया और जनता पर उनके प्रभाव को बढ़ाया गया। उदाहरणार्थ, जबकि 1885-1905 के बीच कांग्रेस की एक भी माँग नहीं मानी गयी, मुस्लिम साम्प्रदायिक माँगें वायसराय के सामने रखे जाने के तुरन्त बाद ही स्वीकार कर ली गईं। इसी प्रकार 1932 के साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा सभी तत्कालीन साम्प्रदायिक माँगों को स्वीकार कर लिया गया। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान मुस्लिम सम्प्रदायवादियों को राजनैतिक प्रगति को रोकने का अधिकार दिया गया।

पाँचवें, अंग्रेज़ साम्प्रदायिक संगठनों और नेताओं को तुरन्त मान्यता दे देते थे और अपने सम्प्रदायों के प्रवक्ता होने के उनके अधिकार तुरन्त स्वीकार कर लेते थे जबकि राष्ट्रवादी नेताओं को केवल एक छोटे अल्पसंख्यक वर्ग अथवा अभिजात वर्ग आदि का प्रतिनिधि ही माना जाता था। छठे, पृथक् निर्वाचक क्षेत्र भी साम्प्रदायिक राजनीतिक विकास के महत्त्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हुए। अंततः औपनिवेशिक सरकार ने साम्प्रदायिकता के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करके उसे प्रोत्साहन दिया। साम्प्रदायिकता को बढ़ने से रोकने के लिए कुछ निश्चित उपाय आवश्यक थे, जो राज्य द्वारा ही किए जा सकते थे। ऐसे उपाय न करके, राज्य ने परोक्ष रूप से साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दिया।

उपर्युक्त का सार यही निकलता है कि ऐसी स्थिति में जब औपनिवेशिक राज्य साम्प्रदायिकता का समर्थन कर रहे थे, साम्प्रदायिक समस्या का समाधान औपनिवेशिक शासन के कायम रहने तक संभव नहीं था। इसमें संदेह नहीं कि साम्प्रदायिकता के विरुद्ध

सफलतापूर्वक संघर्ष करने के लिए औपनिवेशिक शासन को समाप्त करना आवश्यक था, किन्तु उतना ही करना काफी नहीं था। साम्प्रदायिकता की वृद्धि का बड़ा कारण यह भी था कि बीसवीं सदी के आरम्भ में अनेक उग्रवादियों ने राष्ट्रवादी विचारधारा और प्रचार को हिन्दुत्व के गहरे रंग में रंगा। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति पर अधिक जोर दिया और इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयता को हिन्दू जामा पहनाया अथवा कम-से-कम दिन-प्रति-दिन के राजनैतिक आन्दोलनों में हिन्दू प्रतीकों का सहारा लिया।

तिलक द्वारा गणेश पूजा और शिवाजी उत्सव मनाने की प्रथा आरम्भ की गयी, बंगाल में विभाजन विरोधी आन्दोलन का आरंभ गंगा स्नान से किया गया, अरविंदों ने 'भारत माता' की संकल्पना प्रस्तुत की जो किसी हद तक रहस्यवादी थी इतना ही नहीं, समकालीन लेखन में मुस्लिम शासकों को विदेशी और अत्याचारी के रूप में दर्शाया गया, जिससे शिक्षित मुसलमानों में विरोध की भावना पैदा हुयी और वे उदयशील राष्ट्रीय आन्दोलन से दूर हो गए। इसमें संदेह नहीं कि कुल मिलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन मूलत: धर्म निरपेक्ष रहा और युवा राष्ट्रवादी मुसलमानों को इस धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण और विचारधारा को समझने और स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इसके कई प्रभाव भी पड़े-(1) राष्ट्रीय आंदोलन में हिन्दुत्व की झलक साम्प्रदायिकता का कारण तो नहीं थी लेकिन साम्प्रदायिकता को रोकने में हुयी विफलता का कारण अवश्य थी। (2) इससे मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर खींचना थोड़ा कठिन हो गया। (3) इसका प्रयोग सरकार ने और सम्प्रदायवादियों ने मुसलमानों के बड़े वर्ग को राष्ट्रीय आन्दोलन से दूर रखने के लिए किया। (4) इसी आधार पर मुसलमानों में यह भावना भी पैदा की गयी कि राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता से देश में हिन्दुओं का वर्चस्व हो जाएगा। (5) हिन्दुत्व की इसी झलक के परिणामस्वरूप हिन्दू सम्प्रदायवादियों के लिए भी वैचारिक मार्ग प्रशस्त हुआ। (6) इससे राष्ट्रीय आन्दोलन से उन कार्यकर्त्ताओं को अलग करना भी कठिन हो गया जिनकी राजनैतिक विचारध ारा हिन्दुवादी थी। (7) परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी मुसलमानों पर मुसलमानी रंग चढ़ने में सहायता मिली।

कुछ लेखकों के विचार में साम्प्रदायिकता में वृद्धि होने का एक बड़ा कारण भारत में अनेक धर्मों का होना था लेकिन यह सत्य नहीं है। साम्प्रदायिकता को धर्म से कभी प्रोत्साहन नहीं मिला और धर्म का केवल सहारा लिया गया। इसमें संदेह नहीं कि सम्प्रदायवादियों ने संगठित होने के लिए धर्म का सहारा लिया और अपनी ऐसी माँगों, महत्त्वाकांक्षाओं और संघर्षों को धार्मिक जामा पहनाया जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं था। इसके विपरीत, अतिधार्मिकता साम्प्रदायिकता का एक बड़ा कारण थी। धार्मिक विषयों के प्रति गहन भावनात्मक निष्ठा और जीवन के धर्मेत्तर क्षेत्रों में, जो व्यक्तिगत और नैतिक सीमा के बाहर के क्षेत्र थे, धर्म और धार्मिक भावनाओं को प्रवेश करने देना ही अति धार्मिकता थी। अति-धार्मिकता यद्यपि साम्प्रदायिकता से भिन्न थी, किन्तु इससे धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता की ओर कोई भी व्यक्ति आकर्षित हो सकता था। भारतीय इतिहास विशेषकर मध्यकालीन और प्राचीनकालीन इतिहास की अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक तथा गलत व्याख्या ही साम्प्रदायिक चेतना के प्रसार का प्रधान माध्यम बनी। स्कूलों और कॉलेजों में साम्प्रदायिक आधार पर इतिहास के शिक्षण से साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति और वृद्धि में बहुत सहायता मिली। ब्रिटिश इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को पक्षपातपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया था। दुर्भाग्यवश, भारतीय इतिहासकारों ने भी उनका अनुसरण किया और फलत: भारतीय इतिहास के मध्य काल को मुस्लिम काल की संज्ञा दी गयी। तुर्कों, अफगानों और मुगलों के शासन को मुस्लिम शासन कहा गया। उनके शासन का विवेचन करने के स्थान पर, उन सबको शासकों और सभी हिन्दुओं को शासितों के वर्ग में रख दिया गया। वस्तुस्थिति यह थी कि सभी शासक, सामंत जमींदार आदि चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान अपनी समस्त हिन्दू और मुसलमान प्रजा को समान रूप से हेय और निम्न समझते थे और यह समझते थे कि प्रजा का अस्तित्व केवल उनके लाभ के लिए है।

इन इतिहासकारों ने यह नहीं समझा कि प्राचीन और मध्यकालीन भारत में राजनीति अन्य स्थानों की ही भाँति मुख्यत: शासक वर्ग के आर्थिक और राजनैतिक हितों पर आधारित होती थी, धर्म पर नहीं। ब्रिटिश और साम्प्रदायिक इतिहासकारों ने भारत की मिली-जुली संस्कृति पर भी जोर नहीं दिया। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय संस्कृति में विविधता थी, किन्तु उसका आधार मुख्यत: वर्गीय और क्षेत्रीय था। पृथक् हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों की साम्प्रदायिक अवधारणा के परिणामस्वरूप विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ पैदा हुई।

संदर्भ

- Tracing an India Diaspora by Parvati Raghuram.
- A Concise History of Modern India by Barbara D Metcalf, Thomas R Metcalf.
- The Future of India - Politics, Economics and Governance by Bimal Jalan.
- The Spirit of India by Ramin Jahanbegloo.
- The Men Who Killed Gandhi-Illustrated with Unpublished Documents and Photographs by Manohar Malgonkar.
- Political and Incorrect-The Real India, Warts and All by Tavleen Singh.
- Archaeology after Excavation by D. Mandal, Shereen Ratnagar.
- Modern Indian History-From 1707 to the Present Day by V D Mahajan.

बौद्धधर्म तथा उपनिषद् एक अनुशीलन

डॉ० मोहन मिश्र

पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (PDF), पालि-अध्ययन केन्द्र, केन्द्रियसंस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ परिसर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

अधिकाधिक विद्वानों ने बौद्धधर्म और उपनिषद् के परस्पर सम्बन्ध को स्वीकारा है। इस विषय में कहीं-कहीं मतभेद भी है। बुद्धि द्वारा याज्ञिक कर्मकाण्डों का विरोध अथवा निन्दक होने के कारण इन्हें अवैदिक और उपनिषद् विरोधी बताने का प्रयास कुछ विद्वानों द्वारा अवश्य किया जाता है किन्तु तथ्यों के आलोक में यह अनुचित है।

जगत् की उत्पत्ति के विषय में छान्दोग्य उपनिषद् का विचार है कि- आरम्भ में असत् ही विद्यमान था। वह एक था, उसके समान कोई नहीं अन्य न था और उसी असत् से सदुत्पत्ति हुई।[1] इसी आधार पर बौद्धों में उत्पत्ति से पूर्व प्रत्येक वस्तु- असद् मानी गई है। शंकराचार्य द्वारा सद्भाव और सिद्धान्त को बौद्धों द्वारा विशिष्ट मत बतलाया गया है। मर्त्य पदार्थों के विषय में नचिकेता का कथन है कि ये टिके रहने वाले नहीं हैं, ये समस्त ऐन्द्रिय तेज को जीर्ण कर देते हैं, यह सम्पूर्ण जीवन भी मनुष्य के लिए अल्प ही है, इस संसार में वर्ण प्रेम और आनन्द के अनित्य स्वभाव को देखने वाला व्यक्ति चिरकाल तक जीवन से प्रेम धारण नहीं कर सकता।[2] बुद्ध के 'सर्वदुःखम्' तथा 'सर्वमनित्यम्' सिद्धान्त का मूल है। भिक्षु रूप में निवृत्तिमार्ग प्रधान औपनिषदिक ध्येय था। वृहदारण्यक उपनिषद् मुक्ति अभिलाषी पुरुष को द्विविध सांसारिक अवधारणाओं उपेक्षा, चित्तेषणा तथा लोकेषणा का परित्याग कर भिक्षा द्वारा जीवन यापन की शिक्षा देता है।[3] यही सिद्धान्त बौद्ध भिक्षुओं तथा जैन यतियों की व्यवस्था में द्रष्टव्य है। पाणिनिकृत अष्टायायी में बुद्धपूर्व भिक्षुओं की व्यवस्था तथा संस्था का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार भिक्षुसूत्रों की रचना पाराशर्थ तथा कर्मेन्द्र नामक आचार्यों द्वारा हुई है। भिक्षु-सूत्रों में भिक्षुओं की चर्या और ज्ञान का वर्णन हुआ है।[4] कर्मसिद्धान्त बौद्ध आचारशास्त्र की आधारशिला है। मनुष्य अपने कृत कुशल अकुशल कर्मों को अवश्य भोगता है। उपनिषदों में भी इस को विशेष स्थान प्राप्त है। जरत्कारव द्वारा याज्ञवल्क्य से ग्रह, अतिग्रह के विषय में पूछे प्रश्न के उत्तर में दोनों द्वारा एकान्त में विचार के परिणाम स्वरूप कर्म की महत्ता को दर्शाया गया है। पुण्यकर्म के कारण जीव शक्तिशाली होता है, तथा पापकर्म के परिणामस्वरूप पापी होता है। पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पाप: पापेनेति।[5] कठोपनिषद् में कहा गया है कुछ देहधारी शरीर ग्रहण हेतु योनि का आश्रय लेते हैं और कुछ वृक्षादि में जन्म ग्रहण करते हैं, जन्म धारण कर्म तथा ज्ञानाधृत है।[6] बौद्धों की भांति उपनिषदों को भी कर्मसिद्धान्त मान्य है। इस प्रकार असत्, क्षणिकवाद, भिक्षाव्रत, कर्मसिद्धान्त आदि सिद्धान्त में बौद्धों तथा उपनिषदों में प्राय: साम्य है।

ब्रह्म तथा शून्यता- जीव आदिकाल से ही इस परिवर्तनशील संसार में उस तत्त्वेषणा में रत रहा है जो प्रपञ्चपूर्ण जगत् से परे इसके मूल में विद्यमान है।

वेदान्त में यह तत्त्व 'ब्रह्म' नाम से अभिहित है और सत्, चित् तथा आनन्द स्वरूप है। वह अनादि, अनन्त, परमचौतन्य, निर्विकार, निर्गुण, निराकार तथा अनिर्वचनीय है। वास्तव में यह आत्मसाक्षात्कार का विषय है। यह साक्षात्कार चौतन्य का परमचौतन्य में विलीन होना है। यह निष्प्रपञ्च है और जगत् का अधिष्ठान है।

जीव ब्रह्मानुभूति से तबतक विरत रहता है जबतक वह जगत् को सत्य समझता है। जबतक हमारी चेतना प्रपञ्चमूलक जगत् से आवृत्त रहती है तबतक यह परमचौतन्य का साक्षात्कार कर पाने में असमर्थ रहती है। जब ब्रह्मज्ञान का आलोक प्रकाशित होता है तब वह हेममय पात्र विलीन हो जाता है जिससे सत्य का मुख आवृत्त रहता है। 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति'। (मुण्डकोपनिषद्- 3/2/9)।

सनातनधर्म तथा चेतना के आत्मविस्तारक भगवान् बुद्ध ने 'शून्यता' का साक्षात्कार किया जो किसी मूक के खाए मीठे फल के समान है जो आनन्दित तो होता है परन्तु बताने मे असमर्थ होता है कि वह क्या है। भगवान् ने यह जान लिया कि इस सापेक्ष जगत् के आधार में एक सारतत्त्व विद्यमान है जो मीठे फल के मिठास के समान अनिर्वचनीय है।

भगवान् बुद्ध की शिक्षाएँ वैदिक चिन्तनधारा पर प्रतिष्ठित हैं। भगवान् समस्त अस्तित्व अथवा सत्य को संवृति और परमार्थरूप में रखते हैं। शून्यता प्रतिपादक नागार्जुन स्वयं कहते हैं कि परमार्थ सत्य ऐन्द्रिक अनुभूतियों से सर्वथा परे है, वह तबतक प्राप्त नहीं हो सकता जबतक उसपर आवृत्त संवृति के आवरण को उच्छिन्न न कर दिया जाए। वेदान्त भी यही कहता है कि जबतक दृष्ट अस्तित्व के अनस्तित्व का ज्ञान नहीं हो जाता तबतक परम सत्य का दर्शन असम्भव है। यही संवृति परमार्थ की सीढ़ी है। व्यवहार द्वारा ही परमार्थ पर पहुँचकर व्यवहार का उच्छेद सम्भव है।

यह परमार्थ सत्य ही शून्यता अथवा तथता का मूर्त स्वरूप है और यह मानवीय बुद्धि से परे है। इसकी प्राप्ति हेतु समस्त प्रपञ्च का शमन अनिवार्य है।

सत्य बन्धनरहित होता है, उसका लोप नहीं होता। वह ज्ञान का विषय नहीं है, अर्थात् शब्दातीत है। इसे ही बुद्ध ज्ञानातीत कहते हैं। आशय यह है कि ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों ही सत्याश्रित हैं। यही ब्रह्म है। ब्रह्मातिरिक्त कुछ भी नहीं।

यही बुद्धस्थिति है, बुद्ध त्रिकालाधिष्ठित हैं। उपनिषदों में शुद्ध चौतन्य स्वरूप बोध शब्द बारम्बार प्रयुक्त है। बुद्ध अपरिवर्तनशील हैं, मोक्षस्वरूप हैं और सर्वथा सत्य हैं। बुद्ध का न तो जन्म होता है न तो मृत्यु। सत्यस्वरूप आत्मा निर्लिप्त है, वह वाह्य एवं आन्तरिक रूप से शून्य है, पूर्ण है। वह मुक्त है। यही वेदान्त है।

भौतिक देह कर्ममय अथवा कर्मजन्य है, यह सभी बौद्ध-अबौद्ध परम्परा को स्वीकार्य है। अतएव विशेष स्वरूप प्राप्ति हेतु साधना की आवश्यकता है। साधना के परिणामस्वरूप कर्मबीजों के शमनोपरान्त परिनैर्वाणिक अवस्था में भौतिक देह भी नष्ट हो जाता है, किन्तु शेष अभौतिक जीव या आत्मा जिसके संयोग-वियोग से जन्म और मोक्ष होता है, उसे बौद्ध आत्मा के रूप में सीधा स्वीकारते नहीं, किन्तु पुनर्जन्म तो मानते ही हैं। मृत्योपरान्त कुछ तो शेष रहता है क्योंकि भगवान् ने उच्छेदवाद का भी खण्डन किया है। देहात्मक उपाधि से रहित सत्ता का क्या स्वरूप बनेगा के प्रश्न के पक्ष में ही भगवान् के परमार्थस्वरूप को ब्रह्मभूत या धर्मभूत कहा गया है। यही बाद में भगवान् के धर्मकाय के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। यही वेदान्त का आनन्दमय निर्विशेष सद्रूप तथा चिद्रूप ब्रह्म है। बौद्धों में भी इस धर्मकाय को सुखरूप माना गया है-

स एवानास्रवो धातुरचिन्त्यः कुशलोध्रुवः।
सुखो विमुक्तिकायोऽसौ धर्माख्योऽयं महामुनेः।।[7]

अर्थात् भगवान् का यह अनास्रवधातु अचिन्त्य, कुशल, ध्रुव सुख एवं विमुक्तिकाय है। यही महामुनि का धर्मकाय कहा जाता है।

योगबल दोनों में प्रशंसित है। योग द्वारा नाना सिद्धियों को प्राप्त किया जा सकता है। इससे भौतिक देह का भी परिवर्तन सम्भव है- न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः। प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।[8] उपनिषद् में आत्माभिन्न जो ब्रह्म के रूप दर्शाए गए हैं, उनका प्रायः शून्य से शाम्य है। माण्डूक्योपनिषद् में इसके लिए कहा गया है- 'नान्तं प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञाधनं न प्रज्ञ। नाप्रज्ञम् अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।[9]

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी कहा गया है- 'तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म।'[10] नागार्जुनकृत माध्यमिककारिका में शून्य के प्रायः इन्हीं लक्षणों का निरूपण है- अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्। अनेकार्थमनानार्थमनागमनिर्गमम्।।[11]

यः प्रतीत्य समुत्पादं प्रपञ्चोपशमं शिवम्। देशयामास सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदां वरम्।।[12]
अपर प्रत्ययं शान्त प्रपञ्चौरप्रपञ्चितं। निर्विकल्पमनानार्थमेतत् तत्त्वस्य लक्षणम्।।[13]
यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्ष्महे। सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत् सैव मध्यमा।।[14]
अप्रतीत्यसमुत्पन्नो धर्मः कश्चिन्न विद्यते। यस्मात् तस्मादशून्यो हि धर्मः कश्चिन्न लिप्यते।।[15]

आचार्य शान्तरक्षित ने ब्रह्म और शून्य की अनिर्वचनीयता को शाश्वत तथा अशाश्वत का अन्तर करते हुए स्वीकार किया है- तेषामल्यापराधंतु दर्शनं नित्यतोक्तितः।[16]

एक अन्य कारिका में भी उन्होंने अनित्य मानते हुए चौतन्य तत्त्व के लिए आत्म शब्द का प्रयोग किया है- चौतन्ये चात्मशब्दस्य निवेशेऽपि न नः क्षति। नित्यत्वं तस्य दुःसाध्यमक्ष्यादेः सफलत्वतः।।[17]

अतः बौद्धों की शून्यता और औपनिषदिक ब्रह्मतत्त्व कमोवेश समान हैं जिन्हें शान्त, शिव, अद्वैत, एक तथा निष्प्रपञ्च आदि विशेषणों द्वारा व्यक्त किया गया है।

बौद्धों ने जो मुख्य विचार उपनिषद् से लिया वह यह है कि हमारी बुद्धि सविकल्पक और सापेक्षता के कारण तत्व का ग्रहण नहीं कर सकती। तत्व वाङ्मनस् अगोचर है। वह निर्विकल्प, निरपेक्ष, गंभीर, शान्त, आनन्दस्वरूप तथा विशुद्ध विज्ञानस्वरूप है जिसे बोधि या प्रज्ञा कहते हैं। वह अपरोक्षानुभूति का विषय है, तर्क का नहीं। दर्शन का चरम लक्ष्य निवृत्ति है। संसार दुःखमय है। इसकी जननी अविद्या है। परमानन्द की प्राप्त्यर्थ सम्यक् सम्बोधि द्वारा तत्व साक्षात्कार हेतु इसके विपरीत अन्य कोई मार्ग नहीं। संसार क्षणिक है; तत्व अद्वय, अजर, अमर, शाश्वत और अनन्त है। परमार्थतत्व संसार का अधिष्ठान है। ज्ञाता ज्ञेय-ज्ञान की व्यावहारिक त्रिपुटी को पार करके निर्विकल्प विज्ञान या स्वानुभूति द्वारा अद्वय परमार्थ का साक्षात्कार करने से ही संसारदुःख से निवृति हो सकती है। सांसारिक जन तमरूपी अविद्या के वशीभूत हैं। उन्हें प्रकाशरूपी ज्ञान की आवश्यकता है और 'अत्तदीपो भव'/ आत्मदीपो भव' के रूप में उन्हें बौद्ध तथा उपनिषद्दर्शन से यह ज्ञान-दीप पुरस्कारस्वरूप प्राप्त है। भारत में शंकर और बुद्ध दोनों पूज्य हैं। बुद्ध को स्वीकार और बौद्धधर्म के सांप्रदायिक स्वरूप को अस्वीकार करने के अन्यान्य कारण रहे होंगे। यहाँ के धर्मों में आरंभ से ही प्रवृत्ति और निवृत्ति का विचार रहा है। सामान्य जन ने दोनों को स्वीकार-अस्वीकार किया है। दोनों की "अति" लोक में अमान्य हुई है। दोनों का मेल ही लोगों को स्वीकार्य है। स्वयं शंकर में इन दोनों का सामञ्जस्य दिखता है।

भगवान् बुद्ध ने प्रज्ञा तथा चार आर्यसत्यों की देशना भी मुख्यतः साधना की दृष्टि से ही किया है- क्योंकि साधक का मन देशना पर केन्द्रित होकर वैराग्य को प्राप्त हो और वह इस नाम-रूपी संसार से विरक्त हो जाए। ऐसी देशना का पारमार्थिक अर्थ तो साधना की समापना पर ही गोचर हो पाता है। जिस स्थिति में वह अर्थ प्राप्य है, वही बुद्धत्व, सम्बोधि तथा निर्वाण है।

वेदान्त के अनुरूप ही बौद्धधर्म में भी प्रायः यही विश्वास है कि परमार्थ की अनुभूति से पूर्व अहंकार का अतिक्रमण आवश्यक है। साधक को तत्त्व की सम्पूर्णता का अवगमन हो, उसके पूर्व अशेष के समान दृष्ट होने वाले संसार के शून्यत्व का बोध हो जाना चाहिए। कठोपनिषद् में आगत "नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा"[18], अर्थात् वह परमतत्व न तो वाचा, न मनसा और न तो चक्षुषा प्राप्य है। यहाँ कामनाओं का क्षय एवं बुद्धि का समस्त प्रपञ्चों से मुक्त होना जाना आवश्यक है। "यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह, बुद्धिश्च न विचेष्टतिः"[19], अर्थात् जब मन सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियां भलीभाँति अवस्थित हो जाती हैं, और बुद्धि भी चेष्टारहित हो जाती है, "यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः"[20], अर्थात् जब हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ पूर्णरूपेण खुल जाती हैं, तब अध्यात्म-ज्ञान तथा निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

बौद्धों का निर्वाण भी कमोवेश निःश्रेयस, मुक्ति, अमृत एवं परमानन्द की अवस्था है। यह तर्क की सीमा से परे है, अवर्णनीय है। 'आचार्य नागसेन ने ग्रीस सम्राट मिलिन्द को निर्वाण के अनिर्वचनीयत्व को अन्यान्य उपमाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। 'निर्वाण की उपमा को उन्होंने समुद्र, पर्वत तथा मधुवत् प्रस्तुत किया है। नागसेन ने कहा कि इसका अनुभवन करने सक्षम व्यक्ती ही कर सकता कोई अन्य नहीं, इसे उपमाओं द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता जैसे जन्मान्ध को रंगों का ज्ञान युक्ति व उपमाओं द्वारा नहीं कराया जा सकता।[21]

अश्वघोष के मतानुसार बुझा हुआ दीपक न तो पृथ्वी पर जलता है, न अन्तरिक्ष में, न किसी दिशा में, न किसी अन्य दिशा में अपितु स्नेहक्षय से वह केवल शान्ति प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार ज्ञानवान् न पृथ्वी पर, न अन्तरिक्ष में, न किसी भी दिशा में न विदिशा में, क्लेशक्षय केउपरान्त वह शान्ति का अधिगम कर लेता है।[22]

सन्दर्भ-

1. छान्दो. 6-1/1।
2. कठोपनिषद्- 1/1/26, 28।
3. बृहदारणचक्रम्- 4/4/22।
4. बृहदारणचक्रम्- 4/3/1109।

5. बृहदारणचक्रम्- 1/3/111।
6. कठ. 2/5/7।
7. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि- शिक्षिका।
8. श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12।
9. माण्डूक्योपनिषद्-417।
10. बृहदारण्यकोपनिषद्- 4/5-13।
11. माध्यमिककारिका-1।
12. माध्यमिककारिका-2।
13. माध्यमिककारिका-18/9।
14. माध्यमिककारिका-24/18।
15. माध्यमिककारिका-24/19।
16. तत्त्वसङ्ग्रह- कारिका-330।
17. तत्त्वसङ्ग्रह- कारिका-305।
18. नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते। कठोपनिषद्, अध्याय-2, वल्ली-3/12।
19. यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्।। कठोपनिषद्, अध्याय-2, वल्ली-3/10।
20. यथा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।। कठोपनिषद्, अध्याय-2, वल्ली-3/15।
21. भारतीय दर्शन, श्री सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पुस्तक भण्डार, पटना, पृष्ठ 131।
22. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1979।

मौर्यात्तर भारत में धार्मिक प्रवृत्तियाँः एक अध्ययन

डॉ० विजय कुमार तिवारी

प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार

सारांश

मौर्योत्तरकाल भारतीय इतिहास में एक ऐसा समय था जब सांस्कृतिक गतिविधियों और उपलब्धियों का बहुत विकास हुआ। इस काल ने दरबार की अत्यधिक शक्ति और प्रभाव से मुक्ति दिलाई। लगभग सभी प्रमुख धार्मिक संप्रदायों में बदलाव देखने को मिले, जिसका एक कारण व्यापार और शिल्पकारी में बड़ा उछाल था और दूसरा कारण मध्य एशिया से बड़ी संख्या में लोगों का आगमन था। लेकिन इस दौर में किसी भी धर्म या विश्वास के नाम पर हिंसा नहीं हुई, सिवाय पुष्यमित्र शुंग और कलिंग के शासक खारवेल के कुछ अपवादों को छोड़कर। इस काल में एक व्यक्ति एक साथ कई धार्मिक संप्रदायों को मान सकता था और इसके लिए उसे किसी प्रकार की कठिनाई या झिझक का सामना नहीं करना पड़ता था। वास्तव में, सभी संप्रदायों के बीच कई सामान्य तत्व थे, जो मानव कल्याण के लिए ही थे, और लोग इन्हें स्वतंत्र रूप से स्वीकार कर सकते थे।

इसके अलावा, विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के प्रचारकों ने अपने सिद्धांतों को इस तरह से प्रस्तुत किया, जिससे वे उस समय की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल हो सकें। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय के लोग धर्म के मामले में खुले विचारों वाले थे और एक साथ कई विचारधाराओं को बिना किसी विवाद या विरोध के अपना सकते थे। इस काल में धार्मिक सहिष्णुता और परस्पर सम्मान का माहौल बना रहा, जिससे समाज में एक समरसता और शांति का वातावरण विकसित हुआ।

बीज शब्दः ब्राह्मणवाद, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, भक्ति, शैव धर्म

भूमिका

मौर्योत्तरकाल में हम वैदिक यज्ञों के पुनरुद्धार, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रसार और उन वैदिक परंपराओं के विरोधी संप्रदायों के उदय को देखते हैं जो पारंपरिक वैदिक यज्ञों, वेदों और ब्राह्मणों के खिलाफ थे। शिलालेखों और साहित्यिक स्रोतों में हमें विभिन्न धार्मिक संप्रदायों और उनके आपसी संबंधों के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री मिलती है। इस समय के दौरान हिंदू धर्म की विभिन्न शाखाओं को विशेष महत्व मिला। बौद्ध संघ ने अपने प्रचारकों द्वारा किए गए कई बदलावों के साथ समृद्धि प्राप्त की। इसी तरह, जैन धर्म को भी इन शताब्दियों में पर्याप्त समर्थन मिला। इन सभी धार्मिक और सांस्कृतिक विकासों को इस अध्ययन में गहराई से परखा गया है। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि किस प्रकार विभिन्न धर्मों और संप्रदायों ने समाज में अपनी जगह बनाई और एक दूसरे के साथ तालमेल बिठाया। इस दौर में, धर्म और समाज के बीच आपसी सहिष्णुता और सहयोग का भाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इस समय ब्राह्मण धर्म ने वे विशेषताएँ अपनाईं, जिन्हें आज हिंदू धर्म के रूप में पहचाना जाता है। ब्राह्मणवाद या हिंदू धर्म को सनातन, अर्थात् शाश्वत माना जाता है, जिसे प्रचारित नहीं किया गया, बल्कि प्रकट किया गया। ऐसा कहा जाता है कि यह धर्म स्वयं भगवान द्वारा अपने अनुयायियों को प्रकट किया गया था। इसे किसी ऐतिहासिक व्यक्ति द्वारा स्थापित नहीं किया गया, बल्कि यह विभिन्न उपासना पद्धतियों और आस्थाओं से विकसित और परिपक्व हुआ।[1] इनमें से कुछ की जड़ें वैदिक धर्म में थीं, जबकि

अन्य लोकप्रिय उपासना पद्धतियाँ थीं, जिन्हें अधिक परिष्कृत धर्म के साथ जोड़ दिया गया, यह एक तरह की रियायत थी जो पुजारियों ने जनसामान्य की पूजा पद्धतियों को अपनाते हुए दी।

मौर्योत्तरकाल में कई प्रकार की धार्मिक गतिविधियाँ संपन्न की जाती थीं। इस समय में न केवल वैदिक यज्ञों और अनुष्ठानों को पुनर्जीवित किया गया, बल्कि विभिन्न धर्मों और संप्रदायों का भी विकास हुआ। ब्राह्मणवाद के साथ-साथ बौद्ध धर्म, जैन धर्म और अन्य वैदिक विरोधी संप्रदाय भी समाज में अपने प्रभाव को बढ़ा रहे थे। इन धर्मों ने समाज में एक दूसरे के साथ सामंजस्य बैठाते हुए अपनी पहचान बनाई।[2]

इस काल के दौरान धार्मिक गतिविधियों का यह मिश्रण समाज के विभिन्न वर्गों और समूहों के बीच आपसी सहिष्णुता और मेलजोल का प्रतीक था। धर्म का विकास और उसका व्यापक रूप से स्वीकृति प्राप्त करना इस बात का संकेत था कि धार्मिक जीवन केवल एक विशेष वर्ग तक सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज के सभी वर्गों के लिए खुला था।

अशोक के समय में ब्राह्मणवाद को कुछ हद तक झटका लगा था, लेकिन पुष्यमित्र शुंग, जिन्होंने शुंग वंश की स्थापना की, ने इसे पुनर्जीवित किया।[3] उन्होंने यज्ञ और ब्राह्मण धर्म को बड़े उत्साह के साथ पुनः स्थापित किया। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में अग्निष्टोम,[4] राजसूय,[5] अश्वमेध और कई घरेलू यज्ञों[6] का उल्लेख किया है, जो पुष्यमित्र शुंग द्वारा किए गए थे। शिलालेखों में भी पुष्यमित्र सरवटता[7], जो राजा गजयान पारसरी का पुत्र था, द्वारा अश्वमेध यज्ञ किए जाने का उल्लेख मिलता है। यह अनुष्ठान सातवाहन काल में भी किया गया था।[8] पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मणवाद को बढ़ावा देकर इसे पुनः समाज में प्रमुखता दिलाई। उन्होंने वैदिक यज्ञों को न केवल पुनर्जीवित किया, बल्कि उन्हें राज्य की धार्मिक गतिविधियों का प्रमुख हिस्सा बना दिया। अग्निष्टोम, राजसूय और अश्वमेध जैसे बड़े यज्ञों के आयोजन से ब्राह्मणवादी धर्म को एक नई दिशा और शक्ति मिली। पतंजलि के महाभाष्य में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि पुष्यमित्र ने वैदिक यज्ञों का पालन किया और उन्हें संरक्षित किया।

सातवाहन काल में भी ब्राह्मणवाद का प्रभाव कायम रहा।[9] इस दौरान कई शासकों ने वैदिक यज्ञ किए, जिनमें अश्वमेध भी शामिल था। इस काल में ब्राह्मण धर्म को कोई विशेष झटका नहीं लगा, बल्कि इसे निरंतर राज्य संरक्षण मिलता रहा।

कुषाण काल में भी ब्राह्मणवाद को कोई खास नुकसान नहीं हुआ। इस समय ब्राह्मण धर्म के अनुयायी शासकों ने धार्मिक यज्ञों और अनुष्ठानों को जारी रखा। उदाहरण के तौर पर, इक्ष्वाकु वंश के राजा सांतामुला प्रथम, जो तीसरी सदी ईस्वी के दूसरे चरण में शासन कर रहे थे, ब्राह्मण धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उन्होंने न केवल अश्वमेध यज्ञ किया, बल्कि वाजपेय और अन्य यज्ञों का भी आयोजन किया। भरशिव वंश के शासकों को दस पवित्र स्नान (अवभृथ्य स्नान) का श्रेय दिया जाता है, जो उन्होंने अश्वमेध यज्ञ पूरा करने के बाद किए थे। इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण धर्म और वैदिक यज्ञों का महत्व इन शासकों के समय में बढ़ा हुआ था और इन्हें राज्य की धार्मिक और सामाजिक संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता था।[10]

इस प्रकार, मौर्योत्तर से लेकर कुषाण और इक्ष्वाकु काल तक ब्राह्मणवाद को निरंतर समर्थन और संरक्षण मिला, जिससे यह धर्म और उसकी परंपराएँ समाज में गहरी जड़ें जमाने में सफल रहीं।

अग्निष्टोम यज्ञ का उल्लेख कई समकालीन साहित्य में किया गया है। यह यज्ञ प्राचीन वैदिक परंपरा से जुड़ा हुआ है और इसका उल्लेख ''अथर्ववेद''[11] और ''शतपथ ब्राह्मण''[12] में भी मिलता है। यह एक महत्वपूर्ण यज्ञ था जिसे धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों के तहत किया जाता था।[13] इसके साथ ही, राजसूय यज्ञ राजा के राज्याभिषेक के समय किया जाता था, और यह राजा के सर्वोच्च शक्ति और अधिकार को स्थापित करने का प्रतीक होता था।[14]

पुराणों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों से यह स्पष्ट है कि राजसूय यज्ञ का आयोजन प्रथम सदी ईस्वी में किया गया था।[15] पतंजलि के महाभाष्य में राजसूय और अभिषेक के बीच अंतर का उल्लेख मिलता है। राजसूय एक विस्तृत और जटिल अनुष्ठान था, जिसे वे क्षत्रिय राजा करते थे जो सर्वोच्च सत्ता की इच्छा रखते थे। यह अनुष्ठान राज्य की राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए महत्वपूर्ण माना जाता था। दूसरी ओर, अभिषेक एक आवश्यक राजकीय अनुष्ठान था, जिसमें पुजारियों द्वारा किए जाने वाले धार्मिक कृत्य भी शामिल होते थे। यह राजा के राज्याभिषेक का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था और इसे शक्ति और अधिकार का प्रतीक माना जाता था।[16]

राजसूय और अभिषेक यज्ञ राजा की शक्ति और सर्वोच्च प्रभुता को स्थापित करने के प्रमुख साधन थे। इन यज्ञों का उद्देश्य न केवल धार्मिक अनुष्ठान करना था, बल्कि राजनीतिक रूप से राजा की स्थिति को मजबूत करना भी था। राजसूय यज्ञ राजा की शक्ति

को अन्य शासकों के ऊपर दिखाता था, जिससे उसकी प्रमुखता साबित होती थी। अग्निष्टोम और राजसूय यज्ञ धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण थे, क्योंकि इनके माध्यम से राजा अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन करता और देवताओं की कृपा प्राप्त करता था, जो राज्य की स्थिरता और समृद्धि के लिए आवश्यक मानी जाती थी।

शोध प्रविधि

इस अध्ययन के लिए चयनित सामग्री और विधियाँ अनुसंधान के उद्देश्यों के अनुरूप हैं। सबसे पहले, ऐतिहासिक दस्तावेज, शिलालेख, ताम्रपत्र और प्राचीन ग्रंथों का विश्लेषण किया गया, जिनमें पुराण और महाभाष्य प्रमुख हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों जैसे यज्ञ स्थलों और धार्मिक प्रतीकों से जुड़ी मूर्तियों का भी अध्ययन किया गया। इन स्रोतों के आधार पर धार्मिक अनुष्ठानों और उनके सामाजिक-राजनीतिक प्रभावों को समझने का प्रयास किया गया। इस अवधि के दौरान ब्रह्मा की पूजा का प्रभाव काफी कम हो गया था, हालांकि कुछ ब्रह्मा की मूर्तियाँ इस समय में बनाई गई थीं। इनमें से एक महत्वपूर्ण मूर्ति मथुरा संग्रहालय (नंबर 382) में संरक्षित है[17], जो कुषाण युग से संबंधित है और चार मुखों वाली है।

कुषाण युग के गांधार कला के बौद्ध चित्रों में भी ब्रह्मा का चित्रण मिलता है। इन चित्रों में ब्रह्मा को बुद्ध के जन्म के दृश्य में या बुद्ध के अनुयायियों में से एक के रूप में दर्शाया गया है।[18] यह दर्शाता है कि उस समय ब्रह्मा की पूजा का व्यापक प्रसार नहीं था, फिर भी उन्हें कुछ धार्मिक संदर्भों में मान्यता दी गई और उन्हें चित्रों और मूर्तियों के माध्यम से प्रमुख स्थान दिया गया।

इस काल में ब्रह्मा की पूजा में आई गिरावट का एक प्रमुख कारण ब्राह्मणवादी धर्म की नई धाराओं और बौद्ध धर्म के प्रसार को माना जा सकता है। बौद्ध धर्म ने इस समय में समाज में व्यापक प्रभाव डाला, और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रभाव में ब्रह्मा की परंपरागत पूजा का महत्व कम हो गया। फिर भी, ब्रह्मा का स्थान पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ था और उन्हें कला और मूर्तियों के माध्यम से संरक्षित रखा गया।

इस प्रकार, ब्रह्मा की पूजा भले ही इस काल में कम हो गई हो, लेकिन उनकी उपस्थिति धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भों में बनी रही।

पुरातात्विक साक्ष्य यह प्रमाणित करते हैं कि मौर्योत्तरकाल में सूर्य उपासना का व्यापक प्रचलन था। कुछ मित्रशासकों के सिक्कों पर सूर्य को एक सौर मंडल के रूप में दर्शाया गया है। इसी तरह, कुषाण शासकों, जैसे कनिष्क और हविष्क, के सिक्कों पर भी सूर्य देव की आकृति अंकित की गई है।[19] इन सिक्कों में सूर्य देव को उनकी दिव्यता और शक्ति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो उस समय के धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं का महत्वपूर्ण हिस्सा था।

बोधगया के एक रेलिंग स्तंभ (चित्र 15) पर सूर्य देव को चार घोड़ों वाले रथ पर सवार दिखाया गया है, और उनके साथ दो देवियों का चित्रण भी किया गया है। यह दृश्य सूर्य देव की महत्ता और उनके अनुयायियों द्वारा उन्हें पूजे जाने का प्रतीक है। भाजा की एक मूर्ति आकृति (चित्र 2)[20] में सूर्य देव को एक रथ में बैठे हुए दर्शाया गया है, जिसके पहिए नग्न राक्षसों को रौंदते हुए दिखाए गए हैं। यह चित्रण यह संकेत देता है कि सूर्य देव न केवल प्रकाश और ऊर्जा के स्रोत हैं, बल्कि बुराई का नाश करने वाले शक्तिशाली देवता भी माने जाते थे।

इसके अलावा, सूर्य देव की मूर्ति एक स्तंभ पर भी मिली है, जिसे लाला भगत में खोजा गया था। इसी तरह, भुवनेश्वर के पास स्थित अनंतगुफा में भी सूर्य देव का चित्रण किया गया है।[21] गांधार कला की मूर्तियों में भी सूर्य देव का उल्लेखनीय चित्रण मिलता है। यह सभी साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि सूर्य उपासना मौर्योत्तर काल के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी।

इस काल में सूर्य उपासना न केवल धार्मिक रूप से महत्वपूर्ण थी, बल्कि इसे कला और मूर्तिकला में भी प्रमुखता से स्थान दिया गया। सूर्य देव की शक्ति और प्रभाव का प्रतीकात्मक रूप से चित्रण उस समय के समाज में उनके प्रति गहरे श्रद्धा भाव को दर्शाता है। सूर्य को केवल जीवन का स्रोत नहीं, बल्कि बुराई का नाश करने वाला और रक्षक देवता भी माना जाता था। विभिन्न कला रूपों में सूर्य देव का यह चित्रण हमें उस समय के धार्मिक परिवेश और लोगों की आस्थाओं का गहरा ज्ञान देता है।

इस प्रकार, मौर्योत्तरकाल में सूर्य उपासना का महत्व न केवल धार्मिक था, बल्कि यह समाज और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा भी था। पुरातात्विक साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस समय सूर्य देव की पूजा व्यापक रूप से की जाती थी, और उन्हें कला और मूर्तियों के माध्यम से सम्मानित किया जाता था।

देवी लक्ष्मी न केवल वैष्णवों की प्रिय थीं, बल्कि बौद्ध और जैन अनुयायी भी उन्हें सम्मान देते थे। ''मिलिंदपन्हो'' में उनका आदरपूर्वक उल्लेख किया गया है।[22] उज्जैनी[23] और कुनिंद[24] शासकों के सिक्कों पर उन्हें पूरी तरह खिले हुए कमल पर बैठे हुए दर्शाया गया है। वह कई शासकों के सिक्कों पर गजलक्ष्मी के रूप में दिखाई देती हैं।[25] अजिलिसेस के सिक्कों पर उन्हें दो हाथियों के बीच में दर्शाया गया है, जो उनकी महत्ता और शक्ति का प्रतीक है। इसके अलावा, उनका चित्रण बौद्ध स्तूपों की रेलिंग पर भी देखा जा सकता है, जैसे कि भरहुत, बोधगया और सांची के स्तूपों पर, जो दूसरी और पहली सदी ईसा पूर्व के माने जाते हैं।[26]

कुषाण काल की मूर्तियों में देवी लक्ष्मी का उल्लेखनीय चित्रण मिलता है, जो उनकी महत्ता को दर्शाता है। देवी लक्ष्मी न केवल वैष्णव धर्म, बल्कि बौद्ध और जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा भी पूजित थीं। गजलक्ष्मी का चित्रण, दो हाथियों के बीच, शक्ति और समृद्धि का प्रतीक था। इससे उस समय की धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक विविधता का पता चलता है, जहां विभिन्न धर्मों के लोग समान रूप से देवी का सम्मान करते थे।

इस काल के साहित्य में इंद्र को मदिरा प्रेमी के रूप में वर्णित किया गया है। उन्हें ऋषियों और तपस्वियों की तपस्या भंग करने में विशेष रुचि थी, जिसके लिए वे दिव्य सुंदरियों का सहारा लेकर उन्हें लुभाते थे। इंद्र अपनी मनोरंजक गतिविधियों के लिए स्वर्ग की अप्सराओं के नृत्यों का आनंद लिया करते थे। एक कथा के अनुसार, उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु गौतम की पत्नी का भी मोहभंग किया।[27]

इंद्र को वर्षा का देवता माना जाता था[28] और उनका मुख्य अस्त्र वज्र था, जिससे वे बिजली गिराते थे।29 उनका प्रिय वाहन ऐरावत, जो एक सफेद हाथी था, के साथ वे अक्सर दर्शाए जाते थे।[30] कुषाण काल की मथुरा कला में इंद्र को उनके बाएँ हाथ में वज्र पकड़े हुए दिखाया गया है।[31] इस समय के बौद्ध के मूर्ति चित्रों में भी इंद्र की आकृति को देखा जा सकता है (चित्र 30)। सांची के तोरण की मूर्तिकला[32] में इंद्र को वज्र लेकर, अपनी पत्नी के साथ ऐरावत पर सवार दिखाया गया है।

बोधगया की मूर्तिकला में[33] इंद्र को एक साधारण व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है, जिसमें वह अपने दाहिने हाथ में घास का एक बंडल लेकर खड़े हैं। गांधार कला;[34] जो कुषाण काल से संबंधित है, में इंद्र का चित्रण बुद्ध के जन्म और इंद्र शिला गुफा[35] के दृश्यों में किया गया है। मथुरा से प्राप्त बौद्ध मूर्ति चित्रों में भी इंद्र का बुद्ध से मिलने का दृश्य दर्शाया गया है, जो इंद्र शिला गुफा में उनकी यात्रा को दर्शाता है।[36]

इस प्रकार, इंद्र का चित्रण न केवल हिंदू पौराणिक कथाओं में मिलता है, बल्कि बौद्ध कला और मूर्तिकला में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान था। वह वर्षा, बिजली और स्वर्गीय शक्तियों के देवता माने जाते थे, और उनके चरित्र को विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया है। यह दिखाता है कि उस समय के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में इंद्र का बड़ा प्रभाव था, चाहे वह हिंदू धर्म हो या बौद्ध धर्म।

वायु देवता का चित्रण कुषाण शासक कनिष्क के सिक्कों[37] पर किया गया है, जहाँ उन्हें बाएँ या दाएँ दौड़ते हुए दिखाया गया है, उनके बाल बिखरे हुए होते हैं। यह चित्रण वायु की गति और ऊर्जा का प्रतीक है। इसी तरह, यम को पापियों के न्यायाधीश के रूप में माना जाता था, और इस भूमिका में उन्हें 'धर्मराज' की उपाधि दी गई थी।[38] कहा जाता है कि यम ने पापियों को नर्क में कठोर दंड दिए। उनके सेवकों को 'यमदूत' कहा जाता था, जो पापियों की आत्माओं को नर्क में ले जाने का कार्य करते थे।

कुबेर, जो वैदिक काल में एक महत्वपूर्ण देवता माने जाते थे, इस काल में उनकी महत्ता थोड़ी कम हो गई थी। हालांकि, साहित्यिक और मूर्तिकला साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि इस काल में भी उनकी पूजा जारी रही। पतंजलि के महाभाष्य[39] में उन्हें 'यक्षपति' या 'गुह्यपति' वैश्रवण के रूप में संदर्भित किया गया है।

कुबेर का सबसे प्रारंभिक चित्रण भरहुत की मूर्तिकला में मिलता है, जहाँ उन्हें एक व्यक्ति की सवारी करते हुए दिखाया गया है। कुषाण काल से संबंधित कुबेर की कई मूर्तियाँ अब तक प्राप्त हुई हैं। कुबेर को 'पंचिका' के रूप में भी जाना जाता है और उनकी पत्नी हरिति के साथ उनका चित्रण गांधार कला में प्रमुखता से किया गया है।[40]

गांधार कला में कुबेर और हरिति का चित्रण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उस समय की धार्मिक और सामाजिक धारणाओं को दर्शाता है। कुबेर धन और समृद्धि के देवता माने जाते थे, और उनकी पूजा मुख्य रूप से व्यापारियों और संपन्न वर्गों के बीच प्रचलित थी। हरिति, जो बच्चों की रक्षक मानी जाती थीं, कुबेर के साथ जुड़ी हुई थीं, और इन दोनों की पूजा उस समय के समाज में समृद्धि और सुरक्षा के प्रतीक के रूप में की जाती थी।

कुषाण काल की कला और साहित्यिक स्रोत यह दर्शाते हैं कि यद्यपि कुबेर की धार्मिक महत्ता वैदिक काल के मुकाबले कुछ कम हो गई थी, फिर भी उन्हें एक महत्वपूर्ण देवता के रूप में मान्यता दी जाती थी। उनकी मूर्तियाँ और उनके चित्रण हमें इस बात का प्रमाण देते हैं कि उनका सम्मान और पूजा इस समय के समाज में व्यापक रूप से प्रचलित थी। कुबेर को धन के देवता और यक्षों के स्वामी के रूप में सम्मानित किया जाता रहा, और उनकी पूजा समाज में आर्थिक समृद्धि और धन की प्राप्ति के लिए की जाती थी।

इस समय में कई लोग नागों की पूजा करते थे। ललितविस्तार में समुद्री व्यापारियों द्वारा नागाधिपति41 का आह्वान करने का उल्लेख किया गया है। इसमें सांपों के भय का भी वर्णन मिलता है।[42] कई शिलालेखों और मूर्तियों में नाग देवता को मानव रूप में दिखाया गया है, जिनके सिर पर सर्प का छत्र होता है। ये शिलालेख नाग पूजा के व्यापक प्रचलन का प्रमाण देते हैं।

नाग-पूजा से संबंधित सबसे पुराने शिलालेखों[43] में से एक जिसपर वर्ष 8 का उल्लेख है, जिसमें एक सात फन वाले नाग की मूर्ति दर्ज है, जिसके साथ दो छोटे नाग भी दिखाए गए हैं। एक अन्य शिलालेख देविला द्वारा दधिकर्ण[44] मंदिर के पुजारी को समर्पित एक स्तंभ का उल्लेख करता है। लुडर का शिलालेख संख्या 85 यह स्पष्ट करता है कि नाग देवता दधिकर्ण की पूजा एक मंदिर में की जाती थी। चारगाँव में नाग देवता की एक जीवन-आकार की मूर्ति स्थापित की गई थी, और शिलालेख में इसे दो भाइयों द्वारा नाग देवता को प्रसन्न करने के लिए स्थापित किया गया बताया गया है।[45] इस समय के अन्य नाग देवताओं की मूर्तियाँ भी इस बात का समर्थन करती हैं कि नाग पूजा इस काल में प्रचलित थी।[46] नाग देवता को भगवान विष्णु से जोड़ा जाता है। ऐसा माना जाता है कि भगवान विष्णु शेषनाग पर विश्राम करते हैं।[47] इसके अलावा, नाग का संबंध बलराम से भी है, जो कि एक अन्य महत्वपूर्ण ब्राह्मणीय देवता हैं। शिव, दुर्गा और सूर्य जैसे अन्य ब्राह्मणीय देवताओं के साथ भी नागों का संबंध देखा जाता है। गरुड़, जो कि एक अर्ध-दैवीय प्राणी माने जाते हैं, का भी इस समय की धार्मिक मान्यताओं में उल्लेख मिलता है। बौद्ध मूर्तिकला में, जैसे कि भरहुत और सांची में, गरुड़ को एक बड़े तोते के रूप में दर्शाया गया है।[48]

इस प्रकार, नागों की पूजा इस काल के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी। नाग देवता न केवल विष्णु और बलराम जैसे प्रमुख ब्राह्मणीय देवताओं से जुड़े थे, बल्कि अन्य देवताओं जैसे शिव, दुर्गा और सूर्य से भी उनका संबंध देखा जाता था। यह दर्शाता है कि नाग-पूजा केवल लोक विश्वासों का हिस्सा नहीं थी, बल्कि इसे ब्राह्मणीय धर्म के मुख्य धारा में भी शामिल किया गया था। नाग देवता की मूर्तियाँ और शिलालेख इस समय की धार्मिक विविधता और सांस्कृतिक मान्यताओं का प्रतीक हैं, जो नागों को महत्वपूर्ण दैवीय प्राणियों के रूप में स्थापित करते हैं।

तथ्य विश्लेषण

भक्ति आंदोलन, विशेष रूप से भगवतीवाद और वैष्णववाद के रूप में, इस काल में व्यापक रूप से प्रचलित था। यह आंदोलन ब्राह्मणीय शिक्षाओं में एकेश्वरवाद के विचारों के कारण तेजी से फैल रहा था।[49] भगवतीवाद में वैदिक यज्ञों पर ज्यादा जोर नहीं दिया गया था, जिसका एक स्पष्ट कारण था। वैदिक यज्ञ मुख्य रूप से समाज के संपन्न वर्ग के लोगों के बीच ही प्रचलित थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वैदिक यज्ञ केवल उन्हीं लोगों द्वारा किए जाने चाहिए जिनके पास तीन वर्षों के लिए पर्याप्त भंडारण हो।

इसके अलावा, वैदिक यज्ञ लंबे अनुष्ठानों और हिंसा से भरे होते थे।[50] इसलिए, यह माना जा सकता है कि भगवतीवाद के अनुयायियों ने वैदिक यज्ञों का विरोध किया होगा, विशेषकर उनमें शामिल हिंसा के कारण। भगवतीवाद में अहिंसा के सिद्धांत पर विशेष जोर दिया गया था। यह भक्ति आंदोलन का एक महत्वपूर्ण पहलू था, जिसमें व्यक्तिगत भक्ति और ईश्वर के प्रति प्रेम को सबसे अधिक महत्व दिया जाता था, न कि जटिल और हिंसक अनुष्ठानों को। भगवतीवाद और वैष्णववाद ने उन लोगों को आकर्षित किया जो जटिल वैदिक अनुष्ठानों और हिंसा से दूर रहकर एक सरल और शांतिपूर्ण धार्मिक मार्ग की तलाश में थे। इस आंदोलन ने एकेश्वरवाद और अहिंसा पर आधारित सरल धार्मिक जीवन को बढ़ावा दिया, जो सभी सामाजिक वर्गों के लिए सुलभ था।

इस भक्ति आंदोलन ने समाज के सभी वर्गों को धार्मिक जीवन में शामिल होने का अवसर दिया, भले ही वे वैदिक यज्ञों में भाग न ले पाते हों। इस प्रकार, भगवतीवाद ने भक्ति, प्रेम, और अहिंसा पर आधारित एक नया धार्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

ब्राह्मणवाद के विपरीत, बौद्ध धर्म का प्राकट्य नहीं हुआ, बल्कि इसे छठी सदी ईसा पूर्व में गौतम बुद्ध ने प्रचारित किया। साहित्यिक और शिलालेखों से हमें पता चलता है कि इस काल में बौद्ध धर्म को समृद्ध और शक्तिशाली लोगों का समर्थन प्राप्त था। संचार साधनों में सुधार के कारण तीर्थ यात्राओं में वृद्धि हुई, जिससे नए विचारों का प्रसार भी हुआ।[51]

बौद्ध धर्म ने उस समय विभिन्न क्षेत्रों और उपमहाद्वीप के बाहर मिशन भेजने में सक्रिय भूमिका निभाई। इस प्रक्रिया में बौद्ध धर्म ने नए विचारों को भी आत्मसात करना शुरू कर दिया। इस वजह से, बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या की जाने लगी, जिससे धीरे-धीरे मतभेद उभरने लगे। आखिरकार, इन मतभेदों ने बौद्ध धर्म को दो प्रमुख संप्रदायों में विभाजित कर दिया–हीनयान और महायान।[52] यह विभाजन दूसरी सदी ईस्वी के प्रारंभ में कश्मीर में आयोजित चौथे बौद्ध संगीति के दौरान हुआ।

इस प्रकार, बौद्ध धर्म न केवल अपने मूल सिद्धांतों पर आधारित रहा, बल्कि नए विचारों को स्वीकारते हुए समय के साथ विकसित हुआ। बौद्ध धर्म ने महिलाओं के लिए भी अपने द्वार खोले थे। भिक्षुणी, उपासिका, और अग्र-श्राविका (मुख्य महिला शिष्या) जैसे शब्द इस बात का संकेत देते हैं कि महिलाओं को बौद्ध संघों में भिक्षुणी और शिष्या के रूप में रहने की अनुमति थी।

कुछ महिलाएँ वीरपुरुषदत्त के परिवार से थीं, जिन्होंने विजयपुरी के निकट स्थित महान मठ को दान दिया था, जो संभवत: इक्ष्वाकु साम्राज्य की राजधानी था। इन महिलाओं की सबसे बड़ी इच्छा निर्वाण की आनंदमय स्थिति को प्राप्त करना था, और इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे आस्था से बौद्ध थीं।53

बौद्ध धर्म ने न केवल पुरुषों बल्कि महिलाओं को भी आध्यात्मिक मार्ग पर चलने और मोक्ष प्राप्त करने का अवसर दिया, जो उस समय समाज में महिलाओं की स्थिति के लिए एक महत्वपूर्ण कदम था। जैन धर्म भी श्वेतांबर और दिगंबर दो प्रमुख संप्रदायों में विभाजित था और इसमें भी महिलाओं के लिए समान अवसर थे। कई महिलाएं जैन धर्म में भिक्षुणी और गृहस्थ अनुयायी के रूप में सक्रिय भूमिका निभाती थीं।[54]

गृहस्थ अनुयायियों को अपने घर छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती थी, लेकिन उन्हें अपने धर्म में दृढ़ रहना पड़ता था। कई महिला अनुयायिकाओं ने भगवान वर्धमान और अन्य तीर्थंकरों की मूर्तियाँ समर्पित कीं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं का जैन धर्म में महत्वपूर्ण योगदान था।[55] इस काल में जैन धर्म ने विदेशियों के लिए भी अपने द्वार खोल दिए थे। लखनऊ संग्रहालय के शिलालेख से पता चलता है कि जैन धर्म ने विदेशियों को भी अपने धर्म में शामिल कर लिया था। इस समय जैन मठीय संगठन भी बहुत सुदृढ़ हो गए थे, जिसमें आचार्य और शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। ये न केवल धर्म की शिक्षा देते थे बल्कि नए अनुयायियों को भी मार्गदर्शन प्रदान करते थे।[56]

इस प्रकार, जैन धर्म ने भारतीय समाज के भीतर और बाहर, दोनों के लिए अपने दरवाजे खोलकर अपने धर्म का विस्तार किया। जैन मठों और शिक्षकों ने इस धर्म को संगठित और मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस समावेशी दृष्टिकोण ने जैन धर्म को एक सहिष्णु और व्यापक परंपरा के रूप में स्थापित किया।

निष्कर्ष

मौर्य शासन के बाद का समय, जैसा कि कुछ इतिहासकार मानते हैं, एक अंधकारमय युग नहीं था। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय के भारतीय लोग सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे शांतिप्रिय थे और आपसी सद्भाव से रहते थे। उन्हें इस बात का एहसास था कि सभी धार्मिक संप्रदायों का लक्ष्य एक ही था–मानव कल्याण–और वे एक-दूसरे के पूरक थे। इसी कारण, विदेशियों ने भी भारतीय धर्मों से अत्यधिक प्रभावित होकर इन्हें अपनाया। ग्रीक राजदूत हेलियोडोरस वैष्णव धर्म के प्रबल अनुयायी बन गए थे। इसी तरह, कुछ अन्य शासकों ने बौद्ध धर्म को अपनाया। प्रसिद्ध ग्रीक शासक मेनांदर बौद्ध धर्म के अनुयायी बने। कुषाण शासक शिव और बुद्ध दोनों की पूजा करते थे, और उनके सिक्कों पर इन देवताओं की मूर्तियाँ अंकित होती थीं। यह सभी घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय धर्मों की उच्च नैतिक मान्यताओं ने समाज को प्रभावित किया। यह काल न केवल धार्मिक सहिष्णुता और विविधता का प्रतीक था, बल्कि यह मौर्य और गुप्त काल के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी भी था। समाज में व्याप्त धार्मिक सहिष्णुता और नैतिकता ने न केवल भारतीयों को बल्कि विदेशियों को भी भारतीय विश्वासों से जोड़ दिया, जिससे समाज में स्थिरता और शांति बनी रही।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. बोस, एम.एल., प्राचीन भारत का सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 90
2. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, खंड 1, पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, हार्मंड्सवर्थ, इंग्लैंड, 1966, पृष्ठ 132
3. दयाल ठाकुर हरेंद्र, प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, संदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1981, पृष्ठ 194
4. पतंजलि, वैयाकरण महाभाष्य, संपादित: एफ. कीलहॉर्न, बॉम्बे संस्कृत सीरीज, बॉम्बे, 1892-1909, IV.3.66, पृष्ठ 312; प्प्.4.1, पृष्ठ 168
5 वही, V.3.66, पृष्ठ 312
6. वही, III.2.123, पृष्ठ 123
7. बिहार और उड़ीसा अनुसंधान सोसाइटी का जर्नल, पटना, X, पृष्ठ 203
8. उपाध्याय बी., प्राचीन भारतीय अभिलेख, पटना, पृष्ठ 270, उद्धृत: ठाकुर हरेंद्र दयाल, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 194।
9. सिरकार डी.सी., नाणाघाट गुफा नागनिका की भारतीय इतिहास और सभ्यता पर चयनित शिलालेख, यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1942, पृष्ठ 186
10. ठाकुर हरेंद्र दयाल, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 194
11. ब्लूमफील्ड एम., अथर्ववेद, पूर्व की पवित्र पुस्तकें, खंड 42, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1897, प.9.2: ग्.9.7
12. जूलियस एगेलिंग, शतपथ ब्राह्मण, पूर्व की पवित्र पुस्तकें, खंड 26, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1885, प्प्.7.1.3
13. वही, पृष्ठ 13
14. बसु जोगीराज, ब्राह्मणों के युग का भारत, संस्कृत पुस्तक भंडार, कलकत्ता, 1969, पृष्ठ 159
15. वही, पृष्ठ 135
16. पुरी बी.एन., पतंजलि के समय का भारत, भारतीय विद्या भवन, बंबई, 198, पृष्ठ 158
17. ठाकुर हरेंद्र दयाल, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 187
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. डेविड्स टी.डब्ल्यू. राइस, मिलिंदपन्हो, अंग्रेजी अनुवाद, राजा मिलिंदा के प्रश्न, पूर्व की पवित्र पुस्तकें, खंड 35, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1890, पृष्ठ 191
23. एलन जे., ब्रिटिश संग्रहालय में सिक्कों की सूची, आंध्र और पश्चिमी क्षत्रप, लंदन, 1908, पृष्ठ 252
24. वही, पृष्ठ 16
25. वही, पृष्ठ 24
26. ठाकुर हरेंद्र दयाल, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 188-189
27. पतंजलि, उद्धृत पुस्तक, ट.12.6
28. विल्सन एच.एच., विष्णु पुराण, अंग्रेजी अनुवाद, लंदन, 1864-70, ट.10.191
29. वही, 1.21.38, ट.20.41
30. वही, 1.9.7, ट.30.35
31. भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण, वार्षिक रिपोर्ट, 1909-10, पृष्ठ 76, चित्र 95 और 99
32. मार्शल जॉन एच., फाउचर ए., सांची के स्मारक, कलकत्ता, 1940, चित्र 95 और 99
33. कूपमारा डी बोधगया पार्क ला स्कल्पचर डी पेरिस, 1935, भाग XXXIX
34. स्मिथ वी ए, भारत और सीलोन की कला का इतिहास, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1930, पृष्ठ 61-62
35. ग्रुनवेडल ए., भारत में बौद्ध कला, लंदन, 1901, पृष्ठ 140-142, उद्धृत: ठाकुर हरेंद्र दयाल, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 189

36. एश्टन, भारत और पाकिस्तान की कला, लंदन, 1947-48, पृष्ठ 28, संख्या 59
37. एलन जे., उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 199
38. दयाल ठाकुर हरेंद्र, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 190
39. वही
40. विल्सन एच.एच., उद्धृत पुस्तक, III, 7.35
41. पतंजलि, प्ट, 3.26
42. दयाल ठाकुर हरेंद्र, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 191
43. मित्रा राजेंद्रलाल, ललितविस्तर, अंग्रेजी अनुवाद, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1877, पृष्ठ 389
44. वही, पृष्ठ 442
45. एपिग्राफिया इंडिका, उद्धृत पुस्तक, XVII, पृष्ठ 10
46. लुडर की सूची, उद्धृत पुस्तक, संख्या 63
47. वोगेल जे.फ., मथुरा पुरातात्त्विक संग्रहालय की सूची, इलाहाबाद, 1910, पृष्ठ 88
48. वही, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 90
49. विल्सन एच.एच., उद्धृत पुस्तक, I, 2.64
50. वही, V, 30
51. थापर रोमिला, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 132
52. थापर रोमिला, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 134
53. थापर रोमिला, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 129
54. वही
55. दयाल ठाकुर हरेंद्र, उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 168
56. एपिग्राफिया इंडिका प्प, उद्धृत पुस्तक, लुडर की सूची संख्या 39, 24, 70, 50

बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से संबद्ध अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता एवं कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

सौरभ सिंह

सहायक आचार्य, एम0एड0 विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है किसी भी समाज या राष्ट्र के विकास के लिए उस समाज या राष्ट्र के व्यक्तियों का शिक्षित होना आवश्यक है क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही मानव अपना तथा अपने समाज का कल्याण कर सकता है। शिक्षा मानव जीवन में व्याप्त व्याध्यिों एवं संघर्षो में मानव का सबसे बड़ा सहायक हथियार है। शिक्षित मनुष्य ही अपने जीवन का महत्व और उद्देश्य सम्यक रुप से समझ सकता है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य समाज, राष्ट्र एवं विश्वकल्याण में अपना समुचित योगदान दे सकता है क्योंकि शिक्षा समाज में चलने वाली वह सोउद्देश्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशलों में वृद्धि और व्यवहार में परिमार्जन किया जाता है। इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत व योग्य नागरिक बनाया जाता है।

समस्या का प्रादुर्भाव

छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करने हेतु शासन स्तर पर महाविद्यालयों को स्थापित किया गया। इन महाविद्यालयों के समस्त खर्चो का भार शासन उठाता है वहीं कुछ समाज सेवी संस्थाओं ने भी महाविद्यालयों का निर्माण किया जिनके खर्चे के लिए शासन अनुदान भेजता है। साथ ही ऐसे महाविद्यालय भी बहुतायात है जो निजी संस्थाओं द्वारा खोले गए और उन्हें शासन द्वारा किसी प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान नहीं की जाती है इन महाविद्यालयों को गैर अनुदानित महाविद्यालय के रूप में जाना जाता है। अनुदानित महाविद्यालयों में शिक्षकों के चयन हेतु प्रदेश स्तर पर 'उच्च शिक्षा चयन आयोग' का गठन किया गया है आयोग द्वारा चयनित शिक्षकों को उच्च वेतन एवं उत्तम कार्य दशायें प्राप्त होती हैं वहीं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों का चयन मूलत: महाविद्यालय के प्रबंधकों द्वारा होता है इन शिक्षकों को निम्न वेतन व निम्न कार्यदशायें प्राप्त होती हैं।

उच्च शिक्षा चयन आयोग की उदासीनता के चलते भी उच्च शैक्षिक अभियोग्यता रखने वाले शिक्षकों को भी निम्न स्तर की कार्यदशाओं में गैर अनुदानित महाविद्यालयों में कार्य करना पड़ रहा है वहीं उत्तम कार्य दशाओं में कार्यरत अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षक भी महाविद्यालयों के अन्य कार्यो में व्यस्त होने के कारण शिक्षण कार्य में पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते हैं जिससे अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों द्वारा प्रदान की जा रही शिक्षा का स्तर भी निम्न श्रेणी का हो जाता है।

अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्ति स्थायी होती है, इनकी एक निश्चित आयु में ही सेवानिवृत्ति होती है इन शिक्षकों के ऊपर सेवा संबंधी किसी प्रकार का दबाव नहीं होता है। दबाब मुक्त वातावरण में शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता बढ़ जाती है परंतु यह भी प्राय: देखा जाता है कि दबाव के अभाव में कई शिक्षक राजनीति एवं अन्य कार्यो में व्यस्त हो जाते हैं और अध्यापन कार्य के प्रति उनका रुझान कम हो जाता है। जिसका परिणाम उनकी शैक्षिक अभियोग्यता पर पड़ता है और इनकी अध्यापन क्षमता एवं विषय दक्षता कमजोर हो जाती है।

इसके विपरीत गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षक सेवा रूप में अस्थायी होते हैं। इनकी नौकरी अपनी योग्यता के साथ ही महाविद्यालय के प्रबंधक/संचालक की कृपा पर निर्भर रहती हैं। इनको किसी भी समय महाविद्यालय से निष्कासित कर दिया जाता है। अत: इन शिक्षकों पर दबाव होता है कि ये महाविद्यालय में उत्तम अध्यापन कार्य संपादित करें। इन शिक्षकों का पूरा ध्यान अपनी शैक्षिक अभियोग्यता बढ़ाने एवं छात्रों तक उत्तम ज्ञान पहुँचाने पर होता है जिससे इन शिक्षकों की कार्य कुशलता बढ़ती जाती है वहीं यह भी पाया जाता है कि गैर अनुदानित महाविद्यालयों के प्रबंधक/संचालक शिक्षकों को कम वेतन व अधिक दबाव में रखते हैं जिससे शिक्षकों में कार्य संतोष नहीं होता है और वे अध्यापन में रुचि नहीं ले पाते हैं। अनुदानित महाविद्यालयों में भी शिक्षकों को महाविद्यालय व राजकीय योजनाओं व अन्य कार्यों में व्यस्त कर दिया जाता है जिससे वे भी अपने कार्य के प्रति संतोष नहीं कर पाते हैं। उनका अध्यापन कार्य भी बाधित होता है और उनका अध्यापन का स्तर भी गिर जाता है। इसलिए इन शिक्षण तंत्र के शिक्षकों का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

समस्या का चयन

चूंकि शोधकर्ता बुंदेलखंड क्षेत्र का निवासी है इसलिए बुंदेलखंड क्षेत्र के वे महाविद्यालय जो बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से संबद्ध है उन महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता का स्तर एवं कार्य के प्रति संतोष की स्थिति का अध्ययन अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के आधार पर करने के लिए प्रेरित हुआ।

अत: शोधकर्ता ने बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से संबद्ध अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता एवं कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करने का निश्चय किया।

समस्या कथन–

समस्या कथन इस प्रकार है- बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से संबद्ध अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता एवं कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

अध्ययन की न्यायोचितता–

प्रस्तुत अध्ययन में अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों की शैक्षिक अभियोग्यता और कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की स्थिति ज्ञात की जा सकेगी जिससे अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता और कार्य संतुष्टि को समान किया जा सके तथा छात्रों को शिक्षा की दृष्टि से समान लाभ प्राप्त हो सकें।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- शोध के उद्देश्य निम्न है–

1. अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पना- शोध की परिकल्पनायें निम्न प्रकार है–

1. अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. अध्ययन में प्रयुक्त प्रमुख शब्दों का परिभाषीकरण- अध्ययन में निम्न प्रमुख शब्दों का प्रयोग किया गया जिनका परिभाषीकरण निम्न है–

1. बुंदेलखंड विश्वविद्यालय- यह उ.प्र. सरकार द्वारा विधि पूर्वक स्थापित राज्य विश्वविद्यालय है जो बुंदेलखंड क्षेत्र में स्थित है। बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से सात जनपद झाँसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बाँदा, चित्रकूट के महाविद्यालय संबद्ध है।
2. अनुदानित महाविद्यालय- ऐसे महाविद्यालय जिनकी स्थापना समाजसेवी संस्थाओं द्वारा की गयी परन्तु कालान्तर में उनका वित्तीय पोषण का उ.प्र. सरकार द्वारा किया जा रहा है और शिक्षकों की नियुक्ति भी उच्च शिक्षा चयन आयोग द्वारा की जाती है।

3. गैर अनुदानित महाविद्यालय- ऐसे महाविद्यालय जिनकी स्थापना संस्था/समिति बनाकर पूंजीपतियों द्वारा की गयी है और इस प्रकार के महाविद्यालय के सर्वाधिकार किसी एक व्यक्ति संस्था/समिति के प्रबंधक/अध्यक्ष के हाथों में होते हैं। इन महाविद्यालयों को किसी भी प्रकार का वित्तीय पोषण शासन द्वारा प्राप्त नहीं होता है। महाविद्यालय का समस्त वित्तीय संचालन छात्रों के अध्ययन शुल्क द्वारा किया जाता है। इन महाविद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्ति में प्रबंधक/अध्यक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
4. शिक्षक- शिक्षक से तात्पर्य महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य में संलग्न व्यक्तियों से है। अध्ययन में किसी प्रकार का लिंगभेद न करते हुए सभी महिला एवं पुरुषों को जो अध्यापन कार्य में संलग्न हैं, शिक्षक माना गया है।
5. शैक्षिक अभियोग्यता- शैक्षिक अभियोग्यता से आशय महाविद्यालयों के शिक्षकों की अध्यापन क्षमता से है। अध्ययन में महिला एवं पुरुष शिक्षकों में किसी प्रकार का लिंगभेद नहीं किया गया है।
6. कार्य संतुष्टि- कार्य संतुष्टि से आशय महाविद्यालयों के शिक्षकों द्वारा किए जा रहे अध्यापन कार्य की संतुष्टि से है। अध्यापन में महिला एवं पुरुष शिक्षकों में किसी प्रकार का लिंगभेद नहीं किया गया है।

अध्ययन चर- प्रस्तुत अध्ययन के अध्ययन चर निम्न है-

स्वतंत्र चर- 1. अनुदानित महाविद्यालय
2. गैर अनुदानित महाविद्यालय

आश्रित चर- 1. शैक्षिक अभियोग्यता
2. कार्य संतुष्टि

शोध अध्ययन का परिसीमांकन-

प्रस्तुत अध्ययन में प्रतिदर्श के रूप में शिक्षकों का चयन बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी से संबद्ध अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों में से ही किया गया है।

शोध अध्ययन विधि-

प्रस्तुत अध्ययन में अनुसंधान की 'सर्वेक्षण विधि' का प्रयोग किया गया है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण-

संबंधित साहित्य का अध्ययन शोधकर्ता को नवीनतम ज्ञान के शिखर पर ले जाता है। जहाँ उसे अपने शोध क्षेत्र से संबंधित तथ्यों, आंकड़ों एवं परिणामों का मूल्यांकन करने का अवसर प्राप्त होता है। संबंधित साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा बहुत से पूर्व अनुसंधानों की अच्छाइयों एवं कमियों को जान लेने के बाद इस बात की संभावना बहुत कम हो जाती है कि वह स्वयं एक निम्न स्तरीय अनुसंधान कार्य करेगा और शोधकर्ता पूर्ववर्ती शोध की गलतियों की पुनरावृत्ति करने से बच जाता है। वस्तुतः संबंधित साहित्य के अध्ययन के बिना शोधकार्य अंधेरे में तीर चलाने के समान होता है जिसके अभाव में शोधकर्ता उचित दिशा में एक पग भी नहीं बढ़ सकता है। शोधकर्ता को जब तक यह ज्ञात नहीं है कि संबंधित क्षेत्र में कितना और क्या-क्या कार्य संपादित हो चुका है तथा वे शोध किस विधि से सम्पन्न किए गए है तब तक वह न तो समस्या का समुचित निर्धारण कर सकता है और न उसकी उचित रूपरेखा तैयार कर सकता है। प्रस्तुत शोधकार्य को संपादित करने से पूर्व भी विभिन्न पूर्ववर्ती शोधों का अध्ययन किया गया जो कि निम्न प्रकार है-

'फाराह' द्वारा "औपचारिक शिक्षक तंत्र एवं दूरस्थ शिक्षक तंत्र के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता का तुलनात्मक अध्ययन" (2012) में किया गया। इसका उद्देश्य औपचारिक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक एवं दूरस्थ शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना था। इसके न्यादर्श हेतु 70 औपचारिक एवं 70 दूरस्थ शिक्षा तंत्र के शिक्षकों का चयन किया गया। जिसके निष्कर्ष के रूप में औपचारिक एवं दूरस्थ शिक्षा तंत्र के शिक्षकों के ज्ञान व व्यवहार में सार्थक अंतर पाया गया परन्तु शिक्षण कौशलों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। 'अरोकियाडास' द्वारा "तमिलनाडु की मदुरई कामराज यूनीवर्सिटी से संबद्ध महाविद्यालयों के अध्यापकों की शैक्षिक प्रभावशीलता का अध्ययन" (2015) में किया गया। जिसका उद्देश्य

महाविद्यालयों के अध्यापकों की शैक्षिक प्रभावशीलता का अध्ययन करना था। न्यादर्श हेतु तमिलनाडु की मदुरई कामराज यूनीवर्सिटी से संबद्ध 275 शिक्षकों का चयन किया गया। निष्कर्ष में उच्च शैक्षिक प्रभावशीलता धारक 18% शिक्षक, निम्न शैक्षिक प्रभावशीलता वाले 15% शिक्षक व शेष 67% शिक्षक औसत शैक्षिक प्रभावशीलता वाले पाए गए। पुरुष शिक्षक अच्छे अभिप्रेरक के रूप में पाए गए। गैर अनुदानित महाविद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं की शैक्षिक प्रभावशीलता अनुदानित महाविद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की अपेक्षा अधिक प्रभावी पाई गई। गैर अनुदानित एवं अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों में ज्ञान की वास्तविकता एवं वातावरण अनुकूल बनाने की क्षमता में सार्थक अंतर पाया गया। महाविद्यालयों के प्रकार और शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का उनके शिक्षण पर कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। 'राउट' द्वारा "अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन" (2016) में किया गया। जिसका उद्देश्य अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक प्रभावशीलता को मापना था। अध्ययन में न्यादर्श हेतु 100 अनुदानित व 100 गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों का चयन किया गया, निष्कर्ष में पाया गया कि गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक प्रभावशीलता अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होती है साथ ही गैर अनुदानित महाविद्यालयों के पुरुष शिक्षकों की प्रभावशीलता अनुदानित महाविद्यालयों के पुरुष शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रभावी पाई गई। 'कल्यन उमी' द्वारा "अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि पर विद्यालय के संगठनात्मक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन" (2018) किया गया इसका उद्देश्य माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि पर विद्यालय के संगठनात्मक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना निश्चित किया गया। इन्होंने न्यादर्श रूप में बंगलौर के विभिन्न वातावरण वाले 45 माध्यमिक विद्यालयों के 586 अध्यापकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया, निष्कर्ष रूप में पाया गया कि खुले वातावरण वाले विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अंतर बन्द वातावरण वाले विद्यालयों के अध्यापकों की अपेक्षा उच्च था। शोधकर्ता द्वारा अन्य पूर्ववर्ती समान क्षेत्र के शोधकार्यों का अध्ययन किया परन्तु शैक्षिक अभियोग्यता और कार्य संतुष्टि का एक साथ बुंदेलखंड क्षेत्र के महाविद्यालयीय स्तर पर पर्याप्त अध्ययन नहीं पाया गया और बुंदेलखंड विश्वविद्यालय के सन्दर्भ में इस प्रकार के शोध की पूर्ण अपर्याप्तता पायी गयी। इस कारण शोधकर्ता ने उपरोक्त वर्णित विषय पर अनुसंधान प्रारम्भ किया।

न्यादर्श-

प्रस्तुत अध्ययन में बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से संबद्ध अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों का चयन किया गया है। अध्ययन न्यादर्श हेतु 100 अनुदानित एवं 100 गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों का चयन किया गया। कुल न्यादर्श संख्या 200 है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण-

प्रत्येक प्रकार के अनुसंधान के लिए नवीन प्रदत्त संकलन हेतु कतिपय यंत्रों अर्थात् उपकरणों की आवश्यकता होती है। सफल अनुसंधान के लिए उपकरणों का चयन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विभिन्न उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए अनुसंधानकर्ता एक या एक से अधिक उपकरणों का प्रयोग करता है। प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन की आवश्यकतानुसार निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया है-

शैक्षिक अभियोग्यता स्तर मापनी- शैक्षिक अभियोग्यता स्तर को मापने के लिए शोधकर्ता ने "(GTSC)" का प्रयोग किया है। इसका निर्माण बी0के0पासी, प्रो0एवं हेड, देवी अहिल्याबाई विश्वविद्यालय, इन्दौर एवं एम0एस0लालिया, प्रवक्ता, मैसूर ने किया है। इस स्केल या मापनी को पाँच भागों में विभक्त किया गया है-

(i) Planning (ii) Presentation (iii) Closely (iv) Evaluation (v) Managerial

कार्य संतुष्टि मापनी- शिक्षकों द्वारा कार्य की संतुष्टि को मापने के लिए शोधकर्ता ने Job satisfaction Scales (J.S.S.) का प्रयोग किया है। इसका निर्माण डा0अमर सिंह, पटियाला एवं टी0आर0शर्मा, पटियाला द्वारा किया गया है। इस मापनी में 30 प्रश्नों को रखा गया है।

उपकरणों का प्रशासन एवं फलांकन-

उपकरणों के प्रशासन के लिए शोधकर्ता ने 200 शिक्षकों का चयन किया जिसमें अनुदनित महाविद्यालय के 100 शिक्षकों व गैर अनुदानित महाविद्यालयों के 100 शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। शोधकर्ता ने प्रदत्तों के संकलन के लिए बुंदेलखंड विश्वविद्यालय से संबद्ध झाँसी व जालौन जनपद के महाविद्यालयों के शिक्षकों का चयन किया। शोधकर्ता ने स्वयं महाविद्यालयों मे जाकर प्राचार्यों से अनुमति प्राप्त कर उपकरणों की मुद्रित प्रतियों को शिक्षको में बांटा व पूर्ण रूप से भरे हुए पत्रकों का फलांकन स्वयं शोधकर्ता के द्वारा उपकरणों के उंदनंस के आधार पर किया गया।

अनुसंधान में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधि-

शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन की आवश्यकतानुसार (T-Test) का उपयोग किया गया। जिसके लिए पहले अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों के प्राप्ताकों का मध्यमान निकाला गया तत्पश्चात् अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों के प्राप्तांकों का मानक विचलन (S.D.) निकाला गया। इसके बाद टी-परीक्षण के लिए अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों के प्राप्ताकों के मध्यमानों का अंतर ज्ञात किया गया। इसके पश्चात दोनों मध्यमानों का अंतर निकालने के बाद मध्यमानों के अंतर की मानक त्रुटि निकाली गई। मानक त्रुटि निकालने के बाद दोनों मध्यमानों के अंतर की सार्थकता के लिए क्रातिंक अनुपात निकाला गया और इस प्रकार क्रातिंक परीक्षण द्वारा दो समूहों के मध्यमानों के अंतर की सार्थकता को ज्ञात कर लिया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या-

परिकल्पना-01: अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

दण्ड आरेख -01

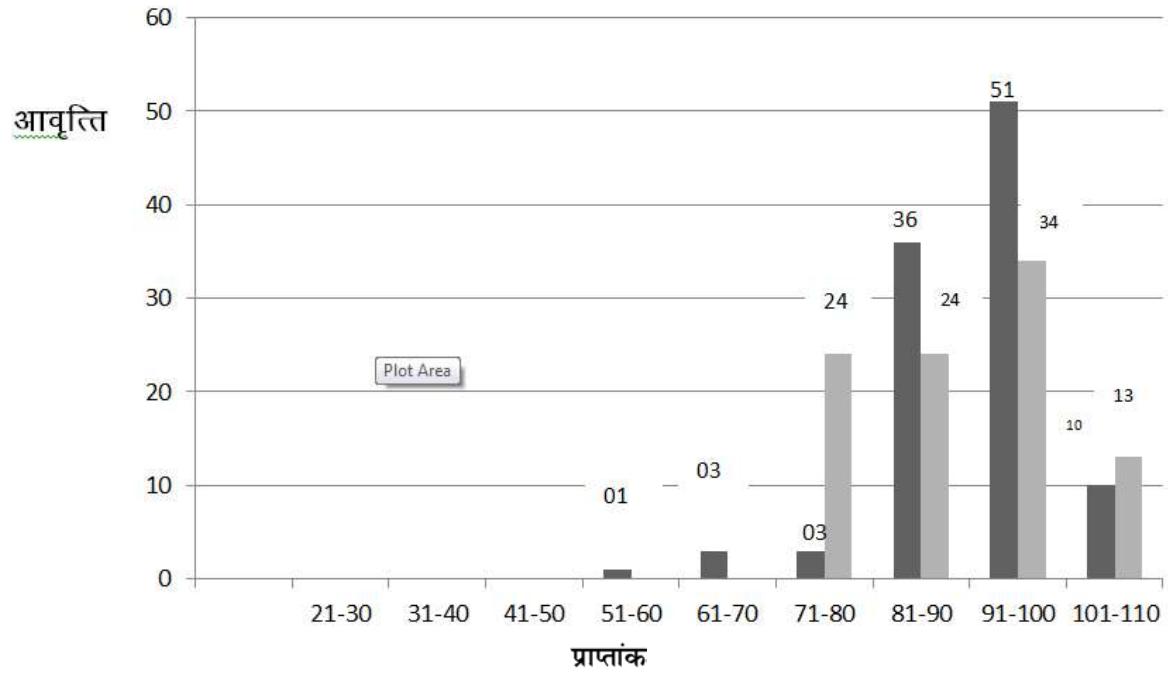

सारणी– 01अनुदानित महाविद्यालय गैर अनुदानित महाविद्यालय

सारणी-01

प्रतिदर्श	N	M	S	D	σd	F	सार्थकता स्तर
अनुदानित महाविद्यालय के भिक्षक	100	92.30	103.330	92.208	10.39	8.874	सार्थक अंतर है।
गैर अनुदानित महाविद्यालय के भिक्षक	100	88.20	11.122				

जांच– सारणी 01 में ज.परीक्षण का मान 8.87 है अत: t=8.87 का मान कत्रि100.1=99 पर एक पुच्छीय परीक्षण के ज0ण01=2.36 से बड़ा है। अत: यह 0.01 स्तर पर सार्थक है। इसलिए 0.01 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष– परिकल्पना 01 अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता में कोई सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत की जाती है। अर्थात अनुदानित और गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता में अंतर है।

व्याख्या– अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता में अंतर का मुख्य कारण होता है 'चयन प्रक्रिया'। अनुदानित महाविद्यालयों में शिक्षकों का चयन, उच्च शिक्षा सेवा चयन बोर्ड के द्वारा किया जाता है उनका साक्षात्कार देश के प्रसिद्ध विद्वानों के द्वारा निष्पक्षता से किया जाता है जो उच्च शैक्षिक अभियोग्यता वाले शिक्षकों के चयन में सक्षम होते हैं। वहीं दूसरी तरफ गैर अनुदानित महाविद्यालयों में शिक्षकों का चयन महाविद्यालय के प्रबंधक की अनुमति से होता है जिससे चयन प्रक्रिया प्रभावित होती है और उच्च शैक्षिक अभियोग्यता वाले शिक्षकों का चयन सफलता पूर्वक नहीं हो पाता हैं। इसके अतिरिक्त अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षक मानक भर की शैक्षिक योग्यता रखते हैं। इन्हीं कारणों से अनुदानित महाविद्यालयों एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों की शैक्षिक योग्यता में सार्थक अंतर पाया जाता है जो कि दण्ड आरेख 01 से स्पष्ट है।

परिकल्पना- 02: अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई अंतर नहीं है।

दण्ड आरेख-02

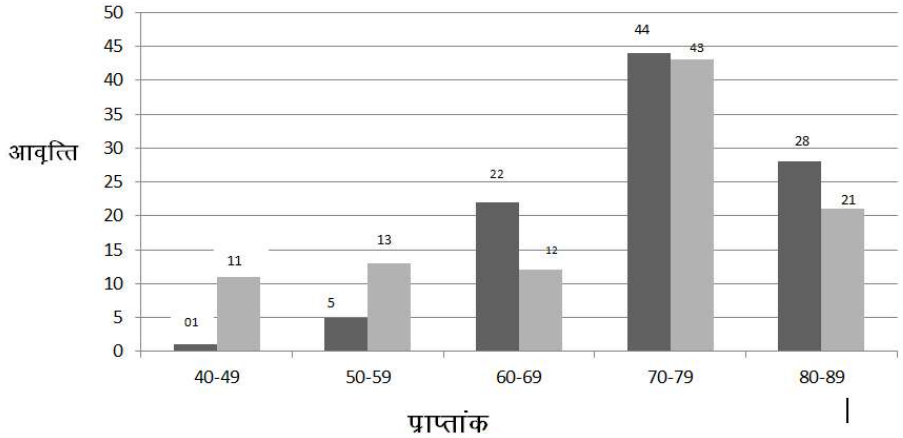

अनुदानित महाविद्यालय गैर
अनुदानित महाविद्यालय

सारणी-02

प्रतिदर्श	N	M	S	D	σd	F	सार्थकता स्तर
अनुदानित महाविद्यालय के भिक्षक	100	73.80	8.86	9.3	1.55	2.77	सार्थक अंतर है।
गैर अनुदानित महाविद्यालय के भिक्षक	100	69.50	12.81				

जाँच- सारणी-02 में ज.परीक्षण का मान 2.77 प्राप्त हुआ। अत: t=2.77 का मान कत्रि100.1=99 पर एक पुच्छीय परीक्षण के t0.01=2.36 से बड़ा है। अत: यह 0.01 स्तर पर सार्थक है इसलिए 0.01 स्तर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष- अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई अंतर नहीं है, अस्वीकृत की जाती है अर्थात अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि सार्थक में अंतर है।

व्याख्या- अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में निम्न कारकों का प्रभाव जैसे- आर्थिक कारक, पर्यावरणीय कारक, महत्वाकांक्षी कारक आदि के कारण सार्थक अंतर पाया जाता है। इन कारणों में से आज के युग में आर्थिक कारक अधिक महत्वपूर्ण है। जहाँ अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों को उच्च वेतन प्राप्त होता है जिससे वे अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण भली प्रकार कर पाते है वहीं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों द्वारा निम्न वेतन व निम्न कार्यदशाओं में कार्यों को किया जाता है जिससे गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षक अपने परिवार का भरण-पोषण ठीक प्रकार से न कर पाने के कारण व एक समान कार्य के लिए असमान पारिश्रमिक प्राप्त होने के कारण वे अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हो पाते हैं। इसके अतिरिक्त अनुदानित महाविद्यालयों का वातावरण अधिक प्रभावशली होता है व स्थान की पर्याप्तता होती है जबकि गैर अनुदानित महाविद्यालय का वातावरण तनावपूर्ण होता है व महाविद्यालय अपेक्षाकृत कम स्थान में ही संचालित होते हैं जहां कमरों की भी अपर्याप्तता होती है जिसका प्रभाव भी गैर अनुदानित महाविद्यालय के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर पड़ता है। इन्हीं कारणों से अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षको की संतुष्टि में सार्थक अंतर प्राप्त होता है जो कि दण्ड आरेख-02 से स्पष्ट है।

शैक्षिक निहितार्थ-

शिक्षक समाज का निर्माता व संस्कृति का संरक्षक होता है। शिक्षक का स्थान किसी भी समाज, देश में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। शिक्षक ही होता है जो अच्छे नागरिकों का निर्माण करके समाज व देश की प्रगति में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक की शैक्षिक अभियोग्यता उच्च हो जिससे वह शिक्षार्थियों को उत्तम ज्ञान प्रदान करें साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि उसे अपने कार्य में उचित संतुष्टि भी प्राप्त हो। कार्य संतुष्टि से ही वह अपना कार्य अच्छे ढंग से संपादित कर पाएगा। यह आवश्यक है कि शिक्षक को अपने कार्य के प्रति पूर्ण संतोष हो। शोध के अंत में शोधकर्ता निम्न सुझाव प्रेषित करना चाहता है-

1. शिक्षकों के ज्ञान की वृद्धि के लिए समय-समय पर सेमिनार, गोष्ठियों व कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।
2. शिक्षकों को सेवा कालीन प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
3. शिक्षकों को आधुनिक युग के आविष्कारों से परिचित होना चाहिए। कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि का प्रयोग एक अच्छे शिक्षक के लिए उपयोगी होता है। इसकी शिक्षा भी शिक्षकों को प्रदान की जानी चाहिए।

4. कक्षा में शिक्षार्थियों की संख्या अधिक न हो, जिससे शिक्षक द्वारा प्रत्येक शिक्षार्थी को व्यक्तिगत परामर्श दिया जा सके। इससे शिक्षक के कार्य की गुणवत्ता भी बढ़ती है।
5. विषय के अध्यापन के साथ ही शिक्षक को विषय का व्यावहारिक उपयोग भी शिक्षार्थियों को समझाना चाहिए।
6. शिक्षक को कक्षा में विभिन्न सहायक सामग्री का प्रयोग कर शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाना चाहिए।
7. समय-समय आयोग को शिक्षक भर्तियां करनी चाहिए जिससे योग्य अभ्यर्थियों को चयनित होने का अवसर मिले।
8. गैर अनुदानित महाविद्यालयों का नियंत्रण शासन और विश्वविद्यालयों के हाथों में होना चाहिए जिससे वहाँ कार्यरत शिक्षकों का शोषण रोका जा सकें।
9. गैर अनुदानित महाविद्यालयों के शिक्षकों को अनुदानित महाविद्यालय के समान ही वेतन और अन्य सुविधायें दी जानी चाहिए जिससे उनमें कार्य संतोष बढ़े।
10. शासन को शिक्षक का महत्व समझकर उसकी महत्ता के अनुरूप ही कार्य कराने चाहिए।
11. महाविद्यालयों के शिक्षकों की समस्याओं के समाधान हेतु एक अलग संस्था बनायी जानी चाहिए।
12. शिक्षकों की शैक्षिक अभियोग्यता बढ़ाने हेतु व तनाव कम करने हेतु समय-समय पर विभिन्न मनोवैज्ञानिक का र्यक्रमों का आयोजन होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

कपिल, एच.के. : सांख्यिकी के मूल तत्व, विनोद, पुस्तक मन्दिर आगरा (1994)

गुप्ता, एस.पी. : मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

राय, पी.एन. : अनुसंधान परिचय, श्री लक्ष्मी नारायण अग्रवाल संजय प्लेस आगरा

सिंह एस.के. : मनोविज्ञान, समाज शास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास पटना

शर्मा आर.ए. : शिक्षा तथा मनोविज्ञान, आर, लाल, बुक डिपो आगरा (2008)

कौल, लोकेश : शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, नई दिल्ली विकास पब्लिशिंग हाउस (2007)

पाण्डेय, के0पी : शैक्षिक अनुसधान, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, (2006)

सिंह अरूण कुमार : उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, नई दिल्ली मोतीलाल बनारसी दास (2006)

नगरीय एवं ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों की राजनीतिक गतिविधियाँ:एक अध्ययन

डॉ० सुनीता त्रिपाठी

supervisor

आलोक कुमार माहेश्वरी

Research scholar NEFTUniversity Arunanchal Pradesh

प्रत्येक समाज में कुछ नियंत्रात्मक नियम होते हैं। आदिम और कृषक समाजों में इन नियमों की अभिव्यक्ति जनरीतियों और परम्पराओं के रूप में दिखाई देती है। आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में इन्होंने कानून का रूप ले लिया है। प्रत्येक समाज में इन प्रतिबंधात्मक नियमों को लागू करने के लिए कुछ निश्चित संगठन बनाए होते औद्योगिक व्यवस्था में राज्य सरकार इसके विभिन्न अंग, शक्ति, सत्ता तथा राजनीतिक दल, मुख्य रूप से राजनीतिक संस्थाओं के अंतर्गत आते हैं।

आज की सामाजिक व्यवस्था में राज्य एक समूह के रूप में सामाजिक नियंत्रण का कार्य करता है। राज्य के कार्यों के संचालन का सीधा प्रभाव आम जन-मानस पर पडता है। वृद्ध भी इस व्यवस्था के कार्यों से प्रभावित होते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र बुन्देलखण्ड क्षेत्र के हमीरपुर जनपद के वृद्धजनों पर आधारित है। जनपद हमीरपुर के नगरीय क्षेत्र के 100 तथा ग्रामीण क्षेत्र के 100 वृद्धो को अध्ययन हेतु चयनित किया गया है।

वृद्धों की राजनीतिक गतिविधियाँ

बदलते सामाजिक मूल्यों, बढ़ती स्वार्थपरता सम्मान देने की परम्परा में आ रहे बदलाव सत्तात्मक पक्ष में परिलखित हो रहे हैं। यद्यपि वृद्धों के प्रति दायित्वों की स्वीकृति एवं उनके सम्मान के परम्परागत पारिवारिक मूल्य अभी भी कुछ न कुछ मात्रा में विद्यमान हैं। किन्तु बदल रहे सामाजिक आर्थिक परिवेश में नयी समस्यएं उठ रही हैं। गाँवों में परम्परागत जमीदार परिवारों में वृद्ध व्यक्ति इस अनुभव से काल्पनिक रूप में संतुष्ट रहते हैं कि परिवार की सम्पत्ति में उनका भी अधिकार है। किन्तु शहरी परिवारों में अर्थ व्यवस्था में क्रियाशीलता समाप्त होने के कारण आर्थिक भूमिका व स्तर प्राय: खो सा जाता है। यदि उनके पास बचत राशि है तो वे श्रेष्ठता का भाव रखते हैं और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं तथा किसी न किसी रूप में राजनैतिक दलों के सदस्य भी हो जाते हैं।

किन्तु अचानक दैनिक कार्यों से अलग होने और अपने पुत्रों और रिश्तेदारों पर आर्थिक रूप से आश्रित होने पर राजनैतिक गतिविधियों में क्रियाशील होने की इच्छा उनमें समाप्त सी हो जाती है।

सारिणी -1 वृद्ध व्यक्तियों की राजनैतिक गतिविधियों की स्थिति

आयुस मूह (वर्षो में)	राजनैतिक गतिविधियों की स्थिति					
	नगरीय			ग्रामीण		
	कुल संख्या	हाँ	नहीं	कुल संख्या	हाँ	नहीं
55–60	88	69 (78.4)	19 (21.60)	96	36 (37.50)	60 (62.50)
60–65	74	65 (87.83)	09 (12.17)	51	13 (25.49)	38 (74.51)
65–70	23	14 (60.86)	09 (39.14)	27	07 (25.92)	20 (74.08)
70–75	12	06 (50.00)	06 (50.00)	18	01 (5.55)	17 (94.45)
75से ऊपर	03	01 (33.33)	02 (66.34)	08	01 (12.50)	07 (87.50)
योग	**200(100.00)**	**155 (77.50)**	**45(22.50)**	**200 (100.00)**	**58 (29.00)**	**142 (71.00)**

स्रोत-क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

सारिणी संख्या -1 में नगरीय एवं ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों की राजनैतिक गतिविधियों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन क्षेत्र (नगरीय) के 200 वृद्ध व्यक्तियों में से 77.50 प्रतिशत व्यक्ति राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं तथा 22.50 प्रतिशत वृद्धों की राजनीतिक गतिविधियों के किसी प्रकार की रूचि नहीं है। आयु-समूह 60-65 वर्ष के वृद्धों की राजनीतिक गतिविधियों में संलिप्तता सर्वाधिक है। ऐसे वृद्धों का प्रतिशतांक अपने वर्ग में 87.83 है। सबसे कम रूचि 75 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धों की है। ऐसे व्यक्तियों का प्रतिशतांक 33.33 है। सारिणी के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे आयु में वृद्धि होती जाती है। वृद्ध व्यक्तियों की राजनीति में रूचि कम होती जाती है और वे राजनीतिक गतिविधियों के प्रति उदासीन रहने लगते हैं।

नगरीय क्षेत्र के जो वृद्ध राजनीति में रूचि रखते हैं तथा राजनीतिक गतिविधियों में संलिप्त रहते हैं उनमें से वे वृद्ध अधिक होते हैं जो सेवा क्षेत्र से अवकाश ग्रहण कर चुके होते हैं।

ग्रामीण क्षेत्र (ग्रामीण) के वृद्ध व्यक्तियों में राजनीति तथा राजनैतिक गतिविधियों में संलिप्तता कम होती है। अध्ययन क्षेत्र के 200 वृद्ध व्यक्तियों में 29.00 प्रतिशत वृद्ध व्यक्ति ही राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं जबकि 71.00 प्रतिशत वृद्ध व्यक्तियों का राजनीति से कुछ लेना देना नहीं रहता है।

ग्रामीण क्षेत्र के आयु समूह 55-60 वर्ष के वृद्धों में राजनीति के प्रति रूचि अधिक होती है। ऐसे वृद्धों का प्रतिशतांक सर्वाधिक 37.50 है। नगरीय क्षेत्र के वृद्धों के समान ही जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती हैं राजनीति के प्रति रूचि घटती जाती है। आयु समूह 75 वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धों में राजनीति के प्रति रूचि रखने वाले वृद्धों का प्रतिशतांक 12.50 है। जबकि राजनीति के प्रति अरूचि रखने वाले वृद्धों का सर्वाधिक प्रतिशतांक 74.51 है। ये वृद्ध आयु समूह 60-65 वर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं।

नगरीय क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण वृद्धों में अरूचि इस कारण होती है क्योंकि वे कृषि कार्यों में संलिप्त रहते हैं। जिन वृद्धों में रूचि होती भी है वे या तो सेवा क्षेत्र से सम्बद्ध रहे होते हैं या फिर किसी भी कार्य से सम्बद्ध नहीं होते। जो वृद्ध सम्बद्ध होते भी हैं उनमें भी चुनाव के समय ही रूचि दिखाई देती है चाहे वे राष्ट्रीय स्तर के चुनाव हो या ग्राम स्तर के। ग्राम स्तर की समस्याओं के प्रति वे न तो किसी प्रकार के आन्दोलन करते हैं और न ही उसके लिए किसी प्रकार की योजना ही बनाते हैं। नगरीय क्षेत्र की तुलना में उनके जागरूकता की कमी भी किसी न किसी रूप में अरूची का कारण होती है।

सारिणी-2 वृद्ध व्यक्तियों का राजनैतिक दलों से सम्बन्ध

आयु समूह वर्षों में	वृद्ध व्यक्तियों का राजनैतिक दलों से सम्बन्ध											
	झांसी						ग्रामीण					
	स	क	ख	ग	घ	ङ	स	क	ख	ग	घ	ङ
55–60	69	28	13	11	11	06	36	11	13	10	02	00
60–65	65	29	11	12	11	02	13	04	05	03	01	00
65–70	14	07	04	01	01	01	07	02	03	01	01	00
70–75	06	02	03	01	00	00	01	00	01	00	00	00
75 से ऊपर	01	00	00	00	00	00	01	00	01	00	00	00
योग	155	66	32	25	23	09	58	17	23	14	04	00
	(100.00	(42.58)	(20.64)	(16.12)	(14.83)	(5.83)	(100.00)	(29.31)	(39.65)	(24.13)	(6.91)	(00.00)

स्रोत-क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

स. राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने वाले वृद्धों की संख्या।

क. भारतीय जनता पार्टी

ख. काँग्रेस

ग. बहुजन समाज पार्टी

घ. समाजवादी पार्टी

ङ. अन्य दल

सारिणी संख्या - 2 में नगरीय एवं ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों की राजनैतिक दलों से सम्बन्ध रखने या सदस्यता की स्थिति का वर्गीकरण किया गया है।

नगरीय क्षेत्र (नगरीय) के राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने वाले वृद्ध व्यक्तियों में से सर्वाधिक 42.58 प्रतिशत वृद्ध भारतीय जनता पार्टी के सदस्य हैं या वे इस दल की राजनीतिक विचारधारा से आबद्ध है जबकि 14.83 प्रतिशत वृद्ध समाजवादी पार्टी से सम्बद्ध है। 5.83 प्रतिशत वृद्ध अन्य किसी न किसी राजनीतिक दल से जुड़े हुए है। आयु समूह 60-65 वर्ष के वृद्ध सभी आयु समूह के वृद्धों में से सर्वाधिक भारतीय जनता पार्टी से सम्बद्ध है तथा आयु समूह 65-70 वर्ष के सबसे कम वृद्ध समाजवादी पार्टी के सदस्य है या फिर इस दल की विचारधारा से प्रभावित हैं। आयु समूह 75 वर्ष से अधिक का 01 वृद्ध कांग्रेस दल में अपनी आस्था रखता है। राजनीतिक दलों से सम्बन्ध रखने वाले वृद्धों में आयु घटने के साथ-साथ रूचि भी घटती जाती है।

ग्रामीण क्षेत्र (ग्रामीण) के राजनीतिक गतिविधियों में रूचि रखने वाले 58 वृद्ध व्यक्तियों में से 39.65 प्रतिशत वृद्ध ऐसे हैं। जो कांग्रेस पार्टी के सदस्य हैं या फिर इस दल की विचार धारा से प्रभावित है।

आयु समूह 55-60 वर्ष के 10 वृद्ध बहुजन समाज पार्टी के सदस्य हैं यह संख्या इस दल के सदस्यों की नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्र में सर्वाधिक है।

नगरीय क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र के वृद्ध व्यक्तियों में दलों की सदस्यता में रूचि कम है। ग्रामीण क्षेत्र के वृद्धों में कांग्रेस पार्टी के प्रति आस्था अधिक दिखाई देती हैं। अन्य दलों का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में शून्यता की स्थिति में है। संभवत: अन्य दल ग्रामीण क्षेत्र में प्रचार-प्रसार में कम रूचि रखते हैं।

वृद्ध व्यक्तियों का राजनीतिक संरचना के प्रति दृष्टिकोण

वर्तमान राजनीतिक संरचना के सम्बन्ध में वृद्ध व्यक्तियों का दृष्टिकोण जानने का प्रयास किया गया है। अध्ययन क्षेत्र (नगरीय) के 42.00 प्रतिशत वृद्ध वर्तमान राजनीतिक संरचना को उचित मानते हैं जबकि 45.00 प्रतिशत वृद्धों की मान्यता है कि वर्तमान राजनीतिक संरचना अनुचित है और उसमें सुधार होना चाहिए। 13.00 प्रतिशत वृद्धों ने इस सम्बन्ध में कुछ भी मत व्यक्त नहीं किया।

सारिणी संख्या - 3 वृद्ध व्यक्तियों का राजनैतिक संरचना के प्रति दृष्टिकोण

आयुसमूह (वर्षो में)	राजनैतिक संरचना के प्रति दृष्टिकोण							
	झांसी				ग्रामीण			
	कुल संख्या	क	ख	ग	कुल संख्या	क	ख	ग
55–60	88	33 (37.50)	37 (42.04)	18 (20.46)	96	16 (16.66)	24 (25.00)	56 (58.34)
60–65	74	38 (51.35)	32 (32.24)	04 (5.41)	51	11 (21.58)	20 (39.21)	20 (39.21)
65–70	23	10 (43.47)	11 (47.82)	02 (8.71)	27	05 (18.51)	05 (18.51)	17 (62.98)
70–75	12	02 (16.66)	08 (66.68)	02 (16.66)	18	01 (5.55)	02 (11.11)	15 (83.34)
75से ऊपर	03	01 (33.33)	02 (66.67)	00 (00.00)	08	01 (12.50)	01 (12.50)	06 (75.00)
योग	200 (100.00)	84 (42.00)	90 (45.00)	26 (13.00)	200 (100.00)	34 (17.00)	52 (26.00)	114 (57.00)

स्रोत-क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

क. उचित

ख. अनुचित

ग. कुछ नहीं कह सकते हैं

आयु समूह 70-75 वर्ष के वृद्ध जो वर्तमान राजनीतिक संरचना को अनुचित मानते हैं उनका प्रतिशतांक सर्वाधिक 66.68 है।

ग्रामीण क्षेत्र (ग्रामीण) के 57.00 प्रतिशत वृद्धों ने राजनीतिक संरचना के सम्बन्ध में किसी प्रकार का मत व्यक्त नहीं किया जबकि 26.00 प्रतिशत वृद्ध वर्तमान राजनीतिक संरचना को उचित नहीं मानते हैं। 17.00 प्रतिशत वृद्ध ही इसे उचित मानते हैं। आयु समूह 60-65 वर्ष के 21.58 प्रतिशत वृद्ध वर्तमान राजनीतिक संरचना को उचित मानते हैं।

नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्र के अधिकांश वृद्ध व्यक्तियों की मान्यता है कि वर्तमान राजनीति में क्षेत्रीय दलों की प्रचुरता बढ़ती जा रही है। जो स्थिर सरकार प्रदान करने में सक्षम है स्थिर राष्ट्रीय सरकार के अभाव में राष्ट्रीय प्रगति अपेक्षाकृत बाधित होती हैं स्थिर सरकार के लिए आवश्यक हैं कि राष्ट्रीय राजनीतिक दल समयानुसार संवैधानिक व्यवस्था परिवर्तित करें इसके लिए आवश्यक हो तो संविधान में भी बदलाव किया जाए। वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था बदलती परिस्थितियों में पूर्णतया अनुकूल नहीं हैं।

सारिणी में गवेषक द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया कि वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं के निराकरण में वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था क्या कोई प्रभावी भूमिका निभा सकती है? इस सम्बन्ध में नगरीय क्षेत्र (नगरीय) के 65.00 प्रतिशत वृद्ध व्यक्तियों की मान्यता है कि राजनीतिक व्यवस्था चाहे तो वृद्धों की समस्याओं में कभी आ सकती है। जबकि 20.50 प्रतिशत वृद्धों की मान्यता है राजनीतिक व्यवस्था से समस्याओं में कमी हो पाना संभव नहीं है 5.50 प्रतिशत वृद्धों ने इस सम्बन्ध में कोई विचार व्यक्त नहीं किया।

सारिणी संख्या-4 वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं के निराकरण के सम्बन्ध में विचार

आयुसमूह (वर्षो में)	समस्याओं के निराकरण के सम्बन्ध में विचार							
	झांसी				ग्रामीण			
	कुल संख्या	क	ख	ग	कुल संख्या	क	ख	ग
55–60	88	58 (65.90)	24 (27.27)	06 (6.83)	96	36 (37.50)	30 (31.25)	30 (31.25)
60–65	74	42 (56.75)	28 (37.83)	04 (5.42)	51	28 (54.90)	16 (31.37)	30 (58.83)
65–70	23	20 (86.95)	03 (13.05)	00 (00.00)	27	09 (37.50)	08 (29.62)	09 (33.35)
70–75	12	08 (66.66)	03 (25.00)	01 (8.34)	18	03 (16.66)	03 (16.66)	12 (66.68)
75से ऊपर	03	02 (66.66)	01 (33.34)	00 (00.00)	08	01 (12.50)	01 (12.50)	06 (75.00)
योग	200(100.00)	130 (65.00)	59 (29.50)	11 (5.50)	200 (100.00)	55 (27.50)	58 (29.00)	87 (43.50)

स्रोत-क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

क. हाँ

ख. नहीं

ग. कुछ नहीं कह सकते

आयु समूह 65-70 वर्ष के वृद्धों की मान्यता है कि सरकारें चाहें तो वृद्धों की किसी प्रकार की कोई समस्या ही न रहे ऐसे वृद्धों का प्रतिशतांक 86.95 है।

ग्रामीण क्षेत्र (ग्रामीण) के 29.00 प्रतिशत वृद्धों की मान्यता है कि वृद्धों की समस्याओं के निराकरण में सरकारी प्रयास उतने प्रभावी नहीं हो सकते इसके लिए सामाजिक रूप से प्रयास ही सार्थक हो सकते हैं। 27.00 प्रतिशत वृद्धों की मान्यता है कि सरकारी प्रयासों से वृद्धों की समस्याओं का निराकरण संभव हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्र के 43.50 प्रतिशत वृद्धों ने इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का मत व्यक्त नहीं किया। आयु समूह 55-60 वर्ष के वृद्धों की मान्यता है कि सरकारें चाहें तो वृद्धों को किसी प्रकार की समस्याओं का सामना ही न करना पड़े।

किन्तु जैसे-जैसे आयु में वृद्धि होती जाती है। सरकार से अधिक सामाजिक आधार पर समस्याओं के समाधान पर विश्वास बढ़ता जाता है।

नगरीय एवं ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों का दृष्टिकोण समस्याओं के निराकरण के सम्बन्ध में कमोवेश एक सा प्रतीत होता है किन्तु नगरीय वृद्ध व्यक्ति शासकीय ढाँचा पर अधिक विश्वास करते हैं। इसकी तुलना में ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों की आस्था सामाजिक संरचना पर केन्द्रित हैं। उनकी मान्यता है कि यदि वृद्ध आर्थिक रूप से सुदृढ़ हों तो अधिक से अधिक समस्याएं स्वयं ही समाप्त हो जायेंगी। मात्र सुरक्षा का दायित्व सरकार पर छोड़ना चाहिए।

नगरीय एवं ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों के उनके जीवन काल के अनुभवों का लाभ राजनीतिक योजनाओं के लिए उपयोगी हो सकते है। उनके जीवनकाल में घटित घटनाओं एवं आने वाली समस्याओं के अनुभवों को बाँटकर भविष्य की योजनाओं को यथार्थपरक बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ-

कर्वे, इरावती : भारत में नातेदारी व्यवस्था

मुखर्जी, आर.एन. : सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी

अग्रवाल, जी.के. : समाजशास्त्र (आगरा)

Bhatia H.S.	:	1983 Aging and Society: A Sociological Study of the Retired Public Servants . Udaipur.
Bose A.B. & K.D. Gangrade,	:	1988 Aging in India, New Delhi.
Carol, H. Meyer	:	1975 Social Work with the Aging. New York.
Chandra Dave	:	Some Pycho-social Aspects of Aging. Tirupati.
Desai K.C.	:	1982 Aging in India, Bombay
Desai, K.G. &R.D. Naik,	:	1970 Problems of the Retired People in Greater Bombay. Bombay
D' Souza V.S.	:	1969 Changes in Social Structure and changing Roles of Other People in India Washington.
Hambon, David	:	1978 Social Challenge of Aging. London
Kilty, K.M.&A. feld,	:	1976 Attitudes toward Aging and the Needs of other People, Jurnal of Geronotology.
Mahajan. A.	:	1987 Problems of the Aged in unorganized Sector. Delhi.
Nair, T. Krishnan	:	1980 Other People in Rural Tamil Nadu. Madras.
Raghani, V. and N.K. Singhi	:	1970: "A Survery of Problems of Retired Persons" Jaipur.
Raj B. and .B.G. Prasad	:	1971 "A study of Rural Aged Persons in Social Profile Bombay.
Bamamurti. P.V.	:	Problems of Aging in Industry.
Sati, P.M.	:	1988 Retired and Aging People Delhi.
Sharma, M.L. & T.M. Dak.	:	1987 Aging in India, Delhi.
Srivastava, R.S.	:	1983 Aged and the Society, New Delhi.

बौद्ध सिद्धों की चर्या एवं दर्शनः एक समीक्षा

डॉ० चंद्रशेखर पासवान

स्कूल ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज एंड सिविलाइजेशन, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश

सार संक्षेप

भारतीय धार्मिक संस्कृति में सहसा तांत्रिक साधनाओं का प्रादुर्भाव होता है और वे इतनी व्यापक हो जाती है कि सभी सम्प्रदाय चाहे वे वैदिक हो या अवैदिक, चाहे वैष्णव हो या शैव, चाहे बौद्ध हो या जैन, सभी तांत्रिक सृष्टि तत्व को प्रश्रय देने लगे। इस प्रकार बुद्ध द्वारा प्रवर्त्तित बौद्ध धर्म साधना की परिधि का विस्तार हो रहा था। तंत्रों की इन सामान्य प्रवृत्तियों को बौद्धों ने उत्साहपूर्वक ग्रहण किया और उन्हीं से सम्बन्धित शाखा वज्रयान के नाम से अभिहित हुई। जिसका परिधि बाद के काल क्रम में सहजयान हो गया।

बीज शब्दः महायान का विकास बज्रयान, सहजयान, बौद्ध सिद्ध, निम्न जातियों प्रभाव, सिद्धों का दर्शन, नैरात्म्य, भवचक्र आदि।

विस्तृत व्याख्या मूल्यांकन पाद टिप्पणी

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद ईसा की पहली शताब्दी के लगभग महायान का विकास बौद्ध धर्म के अन्तर्गत होता है। महायान की विचार तथा साधना पद्धति की मूल प्रेरणा यह थी कि बौद्ध र्ध्म की कठिन एवं दुस्साध्य जीवन पद्धति को अधिक लोकपरक और सहज बनाया जाय।[1] महायान के विकास की मूल प्रेरणा बौद्ध धर्म को लोक जीवन के निकट पहुंचाने और ऐसे पथ का विकास करने की थी जिसमें केवल सम्बुद्ध व्यक्ति ही नहीं वरन् समस्त लोक का कल्याण हो सके। सभी का कल्याण हो।[2] इस कारण से लोक साधारण भी कठिन साधना पथ पर विशेष ध्यान न देकर बोधिसत्त्व की ही महाकरूणा के आकांक्षी हो रहे थे और उस दृष्टि से बौद्ध धर्म, को धीरे-धीरे साधना और अनुशासन की दृष्टि से लोक परक बनाये जाने लगा।

कालान्तर में साधकों की सुविधा के लिए जनसाधरण को महायान में समाविष्ट कराने के लिए पारमिता शास्त्र को संक्षेप में शतसाहस्रिका, दशसाहस्रिका, अष्ट साहस्रिका, शतश्लोकी, आदि लिखा गया।[3] उन मंत्रों के साथ विभिन्न ध्यानी बुद्धों का भी महत्व जुड़ गया। देव श्रृंखलाओं में अनेक देवताओं की वृद्धि हुई। गुह्य साधनाओं का विकास हुआ और महायान का रूप तांत्रिक हो गया। ईसा के 600 से 1200 ई. के बीच का काल भारतीय धार्मिक संस्कृति में सहसा तांत्रिक साधनाओं का प्रादुर्भाव होता है और वे इतनी व्यापक हो जाती है कि सभी सम्प्रदाय चाहे वे वैदिक हो या अवैदिक, चाहे वैष्णव हो या शैव, चाहे बौद्ध हो या जैन, सभी तांत्रिक सृष्टि तत्व को प्रश्रय देने लगे। इस प्रकार बुद्ध द्वारा प्रवर्त्तित बौद्ध धर्म साधना की परिधि का विस्तार हो रहा था। तंत्रों की इन सामान्य प्रवृत्तियों को बौद्धों ने उत्साहपूर्वक ग्रहण किया और उन्हीं से सम्बन्धित शाखा वज्रयान के नाम से अभिहित हुई। जिसका परिधि बाद के काल क्रम में सहजयान हो गया। 600 ई. से 1200 ई. के बीच इन साधकों के काल क्रम को सिद्धों का काल कहा गया है।[4]

इतना स्पष्ट है कि चिन्तन, साधना, मंत्र-तंत्र, योग, देवी-देवता, आचार-विचार, भाषा, शैली और जीवनदर्शन इन सभी दिशाओं में बौद्ध धर्म इतना सर्वग्राही कभी नहीं रहा जितना सिद्ध काल में।

इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इन सिद्धों का मुख्य केन्द्र पूर्वी भारत में था किन्तु इनके साधना स्थल सम्पूर्ण भारत में फैले हुए थे। अधिकांश तंत्रपीठ महाराष्ट्र, उत्तर पश्चिम भारत, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, आदि जगहों पर था। सिद्ध के साहित्य का रचना काल 9वीं सदी से 13वीं सदी तक निश्चित किया गया है।[5]

सिद्ध साहित्य से तात्पर्य महायानी परम्परा के परिवर्तित रूप वज्रयानी परम्परा के उन सिद्धाचार्यों के साहित्य से है जो अपभ्रंश दोहों तथा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है। और जिसमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धान्तों को मान्यता दी गई है। यद्यपि उन्हीं के समकालीन शैव नाथयोगियों को भी सिद्ध कहा जाता था, किन्तु कतिपय कारणों से हिन्दी तथा अन्य कई प्रान्तीय भाषाओं में शैव योगियो के लिए 'नाथ' तथा बौद्ध तांत्रिकों के लिए 'सिद्ध' शब्द प्रचलित हो गया।[6] उसी प्रसंग में सिद्ध साहित्य बौद्ध सिद्धाचार्यों के साहित्य का वाचक हो गया। सिद्धों की रचना प्रमुखत: दो रूपों में उपलब्ध है दोहाकोष तथा चर्यापद। प्रत्येक विचार पद्धति अपने अन्दर अपने समय की प्रवृत्तियों को धरण करती है एवं उन्हें प्रकट करती है और इसलिए उसे ठीक-ठीक तभी समझा जा सकता है जबकि हम उस दृष्टिकोण को पहले ग्रहण कर ले जिससे वह संसार की व्याख्या करती है और साथ में उस स्वाभाविक प्रेरणा को भी समझने का प्रयत्न करें जिसके कारण उक्त विचार पद्धति सम्भव हो सकी। उस प्रचलित साहित्य के द्वारा जो पीछे से लिखित रूप में प्राप्त होता है, उन परिस्थितियों का अनुमान सहज रूप से कर सकते हैं।

चर्यापद बौद्ध तांत्रिक चर्चा के समय गाये जाने वाले पद हैं। इन सिद्धाचार्यों के कई दोहाकोश उपलब्ध हैं। जिनमें से कुछ पूर्ण हैं कुछ खण्डित पाये गये हैं जैसे कि कन्हपा का दोहाकोश की एक पाण्डुलिपि सर्वप्रथम म. हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल में मिली थी। जिसका प्रतिलिपि काल 1027 नेपाली संवत् 1907 ई. था।[7] कन्हपा के दोहाकाा का एक पाठान्तर 'श्री गुह्येन्द्र तिलक तन्त्रा' के प्रबोधन पटल में भी मिलता है। जिसकी पाण्डुलिपि 'बिबलियाथीक नेशनल' पेरिस में संस्कृत संख्या 47 सुरक्षित हैं।[8] डॉ. प्रबोध चन्द्र बागची ने कलकत्ता संस्कृत सीरिज से प्रकाशित 'दोहाकोष' में गुह्येन्द्र तिलक तंत्र' में उल्लेख किया है।

सिद्ध पुरुष

तांत्रिक काल में अधिकांश सम्प्रदाय 84 सिद्ध पुरुषों के अस्तित्व में विश्वास करते थे, जिन्हें अष्टमहासिद्धियाँ प्राप्त थीं और जो अति-प्राकृतिक चमत्कारों का प्रदर्शन कर सकते थे। ये 84 सिद्ध अजर-अमर माने जाते थे तथा वे देवों, यक्षिणियों, डाकिनियों आदि के स्वामी माने जाते थे और अतिमानव अर्द्ध देवताओं में उनकी गणना होती थी।[9] मध्यकाल में समस्त जनता इन 84 महासिद्धों की कल्पना से प्रभावित थी और 'जायसी' तक उनका उल्लेख अमर पुरुषों के रूप में उल्लेख करते हुए कहते हैं- 'नवौ नाथ चलि आवहि और चौरासी सिद्ध, आज महारन-भारया चले, गगन, गरूड़ औ गिद्ध....'[10]

ये सिद्ध केवल कल्पना मात्रा ही नहीं थी बल्कि इनका ऐतिहासिक अस्तित्व भी था। इनमें 84 सिद्ध अति प्रसिद्ध थे। तांत्रिकों के तंत्रों में भी 84 संख्या का एक विशेष महत्व और उसके गूढ़ तांत्रिक अभिप्राय है। तंत्रों में, योगो में, आसनों में भी 84 संख्या माने गये हैं और उस संख्या का सांकेतिक महत्व है। यह 84 संख्या लगभग प्रत्येक तांत्रिक सम्प्रदाय में स्वीकृत थी और यह विश्वास किया जाता था कि इन सम्प्रदायों में 84 सिद्धों का होना अनिवार्य हैं।[11]

विभिन्न प्रान्तों में ये सिद्ध फैले हुए थे। ये सिद्ध पुरुष घुम्मकड़ थे लेकिन इनका साधना अपना स्थल भी था। इन 84 सिद्धों की सूची 'वर्णरत्नाकर' में वर्णित हैं। वर्णरत्नाकर तालपत्र पर एक हस्तलिखित ग्रन्थ है। जो मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान ज्योतिश्वर ठाकुर ने लिखा था।[12] यह ग्रन्थ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' में सुरक्षित है। इसके लेखक कवि शेखराचार्य ज्योतिश्वर ठाकुर मिथिला के राजा हरिसिंहदेव 1300-1321 ई के दरबार में थे।[13] इन ग्रन्थों के विभिन्न कल्लोलो में नगर वर्णना, नायिका वर्णना, जाति वर्णना आदि का विस्तृत वर्णन हैं। उसी में 84 सिद्धों का वर्णना भी दी गई है यद्यपि इनमें केवल 76 सिद्धों के ही नाम दिया गया है। 'वर्णरत्नाकर'[14] में 84 सिद्धों वर्णन में 76 नाम इस प्रकार है - 1. मीननाथ 2. गोरक्षनाथ 3. चौरंगीनाथ 4. चामरीनाथ 5. तंतिपा 6. हलिपा 7. केदारिपा 8. ढोंगपा 9. दरिपा 10. विरूपा 11. कपाली 12. कमारी 13. कान्ह 14. कनखल 15. मेखला 16. उन्मल 17. कान्तलि 18. धेबी 19. जालंध्र 20. डोंगी 21. मवह 22. नागार्जुन 23. दौली 24. भिलाष 25. अंचिति 26. चंपक 27. ढेन्ढसर 28. भुसुरी 29. वाकलि 30. तुजी 31. चर्पटी 32. भादे 33. चांदन 34. कामरि 35. करवत 36. धर्मपा पतंग 37. भद्र 38. पातलिभद्र 39. पलिहिह 40. भानु 41. मीनो 42. निर्द्दम 43. सबर 44. सांति 45. भर्तृहरि 46. भीसन 47. भरी 48. गगन्नपा 49. गमार 50. मेनुरा 51. कुमारी 52. जीवन 53. अघोसाध्र 54. गिरिवर 55. सीयरी 56. नागवलि 57. धिभरह 58. सारंग 59. विविकिध्ज 60. मगरध्ज 61. अचिंत 62. विचिंत 63. नेवक 64. चाटल 65. नाचन 66. भीलो 67. पाहिल 68. पासल 69. कमल कंगारि 70. चिपिल 71. गोविंद 72. भीम 73. भैरव 74. भद्र 75. भामरी और 76. भृकुटी।

10वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई सिद्ध ऐसे थे जो शैव और बौद्ध दोनों पद्धतियों के आचार्य थे लेकिन केवल मान्यता एक ही सम्प्रदाय को देते थे परन्तु प्रश्रय दोनों को ही देते थे। ऐसे तीन सिद्ध प्राय: उस समय प्रमुख थे - मत्स्येन्द्र, जालन्ध्र तथा कन्ह। मत्स्येन्द्र मूलतया शैव थे तथा उनका योगिनी-कौल मार्ग बौद्ध तंत्रों से ज्यादा प्रभावित था। इसी कारण नेपाल में उन्हें पाशुपत शिव और तिब्बत में अवलोकितेश्वर का अवतार माना जाता था।[15] इसी तरह जालन्धरपा ने हड़ीपा पूर्व बौद्ध रूप धरण कर प्रचार करते थे और पश्चिम में जालन्धरपा शैव रूप ही धरण करते थे।[16] इस तरह उस समय की साम्प्रदायिक स्थित इस प्रकार थी कि कुछ प्रदेशों में वैष्णवों के विरोध में शैव तथा बौद्ध सम्प्रदाय का संयुक्त मठ स्थापित कर लिया था और दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के देवताओं, पद्धतियों तथा आचार्यों की परम्परा को आत्मसात कर रहे थे।[17] नाथ सम्प्रदाय स्वत: बौद्ध प्रभावों के प्रति शैव विद्रोह तथा कुछ तिब्बती अनुश्रुतियां तो गोरखनाथ को पहले वज्रयानी बताते है जबकि वे शैव बाद में हुए थे।[18] कुछ सिद्ध ऐसे व्यक्तित्व के थे जिनका जनता पर बहुत प्रभाव था। संभवत: उस समय आदरवश भिन्न-भिन्न वर्गों के लोग अपनी-अपनी परम्परा अनुसार इन सिद्धों को अपना लिया हो। उदाहरण के लिए वयनजीवी जातियों में से कुछ पहले बौद्ध था और बाद में सामूहिक रूप से नाथ योगी हो गयी थे।[19]

इन 84 सिद्धों की सूची में साधरणत: सर्वप्रथम नाम सहजयानी सिद्ध सहरपा का आता है। पंडित राहुल जी ने 'स-स्क्यू'कं.वुम. 'पके आधर पर की है इसके अतिरिक्त कालक्रमबद्ध नामों की सूची एवं गुरू परम्परा को दर्शाया है। इन सिद्धों के कुछ विशिष्ट केन्द्र देश के विभिन्न भागों में थे। जिसका महत्व तांत्रिक परम्पराओं में माना गया है। ऐसे केन्द्रों को सिद्ध पीठ कहा गया है। जैसे - जालन्ध्र, ओडियान, कामरूप, बंगाल, श्रीहर, आदि जगहों पर था। यद्यपि इन सिद्धों का मुख्य केन्द्र पूर्वी भारत में था। इन सिद्ध पीठों के अतिरिक्त नालन्दा तथा विक्रमशीला दोनों विद्यापीठ बौद्ध शिक्षा एवं तन्त्रों के विकास से सम्बन्धित रहे हैं।

चर्यापद

'चर्या' शब्द से अभिप्राय, साधरणत: 'आचरणीय' या 'आचरण' से होता है - जैसा कि तपश्चर्या ;अर्थात् तप की दृष्टि से की जाने वाली साधना विशेष पद्धति या दिनचर्या -दिन भर के लिए निश्चित किया जाने वाला कार्य जैसे शब्दों से स्पष्ट होता है।[20] 'बोधिचर्या' के अंत में जुड़े चर्या शब्द के विषय में कहा जा सकता है कि बोधि या बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए पालन किये जाने वाले, आचार विशेष का सूचक। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने चर्यापद के चार भेद बताये है - 1. बोधिपक्ष चर्या अर्थात् बोधित्व के अंगों का अभ्यास, 2. अभिज्ञाचर्या अर्थात् ज्ञान का अभ्यास, 3. पारमिताचर्या-अर्थात् पूर्णता का अभ्यास, 4. सत्वपरिपाकचर्या अर्थात् - जीवकल्याण के निमित्त उपदेशादि।[21]

बौद्ध सिद्धों की 'चर्या' नामक रचनाओं के लिए एक ओर जहाँ 'चर्यापद' की संज्ञा प्रदान की गई है वही दूसरी ओर 'चर्यागीत' भी कहा गया है।[22] वे साधक थे और साधक के लिए लौकिक जीवन बंधन था, अज्ञानता था, मायाजाल था। उनकी साधनाओं का लक्ष्य था इस मायाजाल से किसी प्रकार मुक्त होकर लौकिक जीवन से उफपर आध्यात्मिक अर्थों को ग्रहण कर पायें। इसलिए उनके काव्य को हम लौकिक काव्य शास्त्रा की कसौटी पर उनका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते और न उसके दृष्टिकोण से सही समझ सकते। उनके काव्य का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें उसी दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त करना होगा। जिससे प्रेरित होकर जिसे आधर बनाकर उन लोगों ने काव्य प्रणीत किया। इसमें वास्तविकता यह भी हो सकता है कि जिस प्रकार तांत्रिक पद्धति ने एक सर्वथा नवीन जीवन दर्शन और आचार व्यवस्था का प्रतिपादन किया था उसी प्रकार भाव जगत, हमारी अनुभूतियाँ और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम, भाषा, उसकी ईकाईयाँ स्वर और व्यंजन आदि का भी वे नई, नाद और बिन्दू सिद्धान्त पर आधरित व्याख्याएँ प्रस्तुत कर रहे थे। उनकी दिशा ही सर्वथा अलग नई दिशा थी जिस प्रकार उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि हमारे सारे वाह्य अनुष्ठानों के पीछे लौकिकता से सर्वथा उपर एक दूसरा गहन् और आध्यात्मपरक अर्थ है, उसी प्रकार के मानवीय भावों वासनाओं, राग-द्वेष, काम क्रोध आदि के भी एक दूसरे मानवोपरि दिव्य अर्थ पर विश्वास करते थे। चर्यापद में बोधिचत्त की चर्या अर्थात् प्रज्ञा को ग्रहण करने की महारागयुक्त चर्या का सन्ध-भाषा में काव्यत्मक वर्णन है और दोहे आदि जनता मे उसी तत्व चिन्तन को प्रचलित करने, साम्प्रदायिक खण्डन-मण्डन करने, सैद्धान्तिक विवेचन करने, साधक को ज्ञान और चेतावनी देने के लिए थे।

सन्ध -सन्ध्या भाषा

बौद्धद्धों ने अपने तंत्रों की इस रहस्यमयी प्रतिकात्मक शैली को 'सन्ध भाषा' या संघा वचन कहा। डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य ने भी इस शैली का नाम सन्ध्या भाषा ही स्वीकार किया है।[23] इस प्रकार संध्या भाषा का उद्येश्य यह है कि किसी साम्प्रदायिक विचारधारा को बिना दीक्षा ग्रहण किये हुए व्यक्ति से गुप्त रखा जाय। इस प्रकार विशेष रूप से किसी साधक या योगी को द्विविद्या की स्थिति में ही रखा जाय जो उसके सिद्धि प्राप्ति के लिए परमावश्यक भी हो जाता है। इस तरह हिन्दू एवं बौद्ध दोनों ही प्रकार के तांत्रिक साधकों की विशिष्ट प्रक्रिया को सदा गुप्त समझा जाता था और उन्हें इस बात की कभी कोई छूट नहीं दी जाती थी कि वे अशिक्षित व्यक्ति को उसके रहस्य का परिचय होने दें। भाषा दृष्टिकोण से पता चलता है कि संध्या भाषा किसी गुढ़ार्थ ही प्रयोग किये जाते होगे। इस प्रकार इस भाषा की मंत्र प्रकृति स्वरूप थी। मंत्रा सिद्धान्त में प्रत्येक शब्द और अक्षर का एक गुह्य, दिव्य या परम अर्थ होता था। शब्दों की उसी द्वयार्थक प्रकृति का परिचय-सन्ध्या भाषा में भी मिलता है। महायान में इस संध्या शैली का प्रयोग उपायकौशल पारमिता के अन्तर्गत बताया गया था। प्रारम्भ में उपाय कौशल के अर्थ थे, बौद्ध सम्प्रदाय में अदीक्षित लोक साधरण को बौद्ध धर्म के भेदों से अवगत कराकर उन्हें बोध्सित्वयान में दीक्षित करना। इस कार्य के लिए बोधिसत्त्वों को सन्ध्याशैली के प्रयोग का आदेश मिला था। तंत्रों तक आते-आते सन्ध्या भाषा को योगियों की महाभाषा कहा गया है। इनमें योगियों, नायक और नायिका का प्रतिकात्मक प्रतीक योजना, पदों में हठयोग तथा मुद्रामैथुन सम्बन्ध संकेत भी करने लगे। नायकों के लिए सिद्धों ने वीर, बंगाली, कपाली, शवर, हरिण, आदि प्रतीक रखे। नायिका पक्ष के लिए चण्डाली, शवरो, सहज सुन्दरी, वधु, गृहणी, योगिणी, डाकनी, डोम्बी, मातंगी, कमलिनि, पद्मिनी, आदि संकेतों का प्रयोग किया जाने लगा। इन सिद्धों के प्रतीक के पीछे योगपरक अर्थ भाव छीपे हैं।

शबर जो शबरी के प्रति उन्मुख होने के कारण साधक को शबर कहा गया है। नायक और नायिका को हिरण और हिरणी के रूप में कल्पना की गई है। बहुत से प्रतीक को जो सिद्धों ने तत्कालीन जनजीवन से ग्रहण किये। सिद्धों में बहुत से लोग निम्न वर्ग से आये थे। बहुत से ब्राह्मण सिद्ध अपनी उच्चता का परित्याग का लोक जीवन में घुल मिल गये थे। अत: उन्होंने अपनी भाषा शैली में बहुत सी बातें सामान्य जीवन से ग्रहण किये। प्रज्ञा को डोम्बी के रूप में परिकल्पित करने के उपरान्त कन्हपा ने डोम्बी के निवास, उसकी तंत्री, उसकी डलिया, उसके नृत्य आदि को प्रस्तुत रूप से ग्रहण कर उसके जीवनचित्रा को सजीव कर दिया। इस प्रकार तांत्रिक बौद्ध सिद्धों ने चर्यापद, दोहाकोष, संध्यावचन, आदि तात्कालिन सामाजिक, भौगोलिक राजपोषित, परिस्थितिवश, ग्रहण किया जिसका आगे चलकर समाज, साहित्य एवं संस्कृति पर प्रभाव पड़ा।

लोक साहित्य का 'लोकत्व' की रचनाकार उसकी अनुभति को लोकानुभूति में रूपान्तरित करता है और वही लोकानुभूति को लोककृति में तब उपायित कर देती है जो रचनाकार उसे अभिव्यक्त करने के लिए लोकाभिव्यक्ति का माध्यम अपनाता है। उस लोकत्व दो रूप है-सैद्धान्ति और व्यवहारिक।

सैद्धान्तिक रूप में लोकदर्शन, लोकधर्म और लोकमूल्य का समन्वय रहता है - जिसे लोकचिन्तन या लोक विवेक की भी कहा जा सकता है। उसके लोकदर्शन में सभी दर्शन, लोकधर्म में सभी धर्म, लोकमूल्य में सभी लोकोपयोगी मूल्य प्राप्त हैं। तात्पर्य यह है कि लोक उन सभी विशिष्ट दर्शनों, धर्मों, मूल्यों में सभी लोकोपयोगी तत्वों का चयन करता है और तब उन्हें ग्रहण करता है। उनमें किसी विशिष्ट दर्शन, विशिष्ट धर्म या विशिष्ट मूल्य के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं होती।

लोकतत्व के व्यवहारिक रूप में लोकाचार प्रमुख हैं लोकाचार लोकसंस्कारों, लोकरीतियों लोकप्रथाओं और लोकवर्जनाओं के समुच्चय हैं-इसलिए वे दीर्घ जीवी होते हैं।

सिद्ध साधक लोकाचार और लोकसंस्कृति में घुलमिल गया। उदाहरण के लिए सिद्ध शवर ने अपनी एक चर्या में शबर और शबरी के निवास स्थान, उनकी रहन-सहन, पारस्परिक प्रेमपरक व्यवहार बनकर मनमोहन चित्रा खींचा है। जैसे कि विभिन्न जातियों, समुदायों, वर्गों, सम्प्रदायिक धर्मों, संस्कृतियों आदि में समरसता। असल में आन्तरिक लोकत्व ही समूचे एकत्व का आधर है जिसे कुछ विद्वान लोक जीवन मानते है।

7वीं सदी के बाद जब बौद्ध धर्म में तांत्रिक तत्व का समावेश हुआ तो बहुत से बौद्ध सिद्ध पुरुष अपने विचारों को जनमानस में प्रचार एवं प्रसार किया। वस्तुत: महायान में ही धर्म प्रचार के लिए अनेक प्रकार उद्योग किया गया। सद्धर्मपुण्डरीक में भगवान तथागत औपम्य शैली में अशिक्षित को उपदेश देने की मंत्राणा देते हैं क्योंकि औपम्य के द्वारा अशिक्षित भी गूढ़ तात्विक रहस्यों को

समझने में समर्थ हो जाते हैं। सिद्धों के समस्त तत्व ज्ञान की मूलभित्ति विज्ञानवाद की शून्य कल्पना थी ;शुन्यवाद की नहीं जिनमें शुन्य को तथागत रूप माना गया था। बौद्ध सिद्धों ने अपनी प्रज्ञोपाय योग प्रणाली में इसी शुन्य को नैरात्म बालिका, प्रज्ञा या महामुद्रा रूप में ग्रहण किया और साथ ही महासुख चक्र में इस शुन्यता की स्थिति मानी।

सिद्धों की साधना से शुन्य का पूरक तत्व वज्र था जो पुरुष रूप में बोधिचित्त में जागृति होकर नैरात्मज्ञान में लीन होने के लिए अग्रसर होता था। यह मणि, अश्म, अथवा अस्त्र के वैदिक अर्थों का परित्याग कर व्रजयान में परमतत्व का अर्थ देकर सिद्धों ने अपनी प्रज्ञोपाय साधना में पुरुष, पति या उपाय से समन्वित कर वज्रास्त्र योग या कुलिश-कमल योग की साधनाओं का उपदेश दिया था। वज्रयान में वज्र की जो प्रमुखता मिली थी, बाद में सहज या कालचक्र पद्धति में बदल गया। इन सिद्धाचार्यों में सरहपा, लुईपा, कण्हपा, भुसुकुपा आदि विशेष प्रमुख हैं। इसमें सिद्ध-लूईपा 'अपने दार्शनिक मत का विवेचन करते हुए कहते हैं कि जिनकी पांच शाखाएं, पंच स्कन्धें अर्थात् रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान के रूपों में पायी जाती है किन्तु अपने चंचल चित्त के कारण यहाँ पर काल प्रवेश कर जाता है। अतएव, सुख-दुख के झमेले में पड़ कर मरण की दशा को प्राप्त कर लेना निश्चित है जिस बात को भलीभांति समझ लेना चाहिए तथा इस प्रकार गुरु से उपदेश ग्रहण करके महासुख की ओर उन्मुख हो जाना ही श्रेयकर है।[24] अत: सिद्ध लूईया ने इसे प्राप्त करने के लिए सारे प्रपंचों की ओर से चित्त को हटा कर उसे शुन्य पक्ष में लाने का ही उपदेश दिया है।

मूल्यांकन

बौद्ध तांत्रिकों की यह धरणा है कि जो कुछ परम सत्य रूप में वर्तमान है उसे हम अपने शरीर के भीतर ही प्राप्त कर ले सकते हैं। जिस कारण कायसाधना को उतना ही महत्व दिया गया जितना योग साधना वाले मतों का। महायानी बौद्धों ने निकाय में अपनी आस्था प्रकट करते हुए इसके तीन पृथक स्तर अस्तित्व स्वीकार कर लिया था और उन्हें क्रमश: 'निर्माण काय', संभोगकाय' एवं 'धर्मकाय' जैसी तीन संज्ञाएँ प्रदान करके उनके क्रमश: क्रमश: नाभि, हृदय एवं कंठ में अवस्थित होने की ओर संकेत भी कर दिया था। परन्तु बौद्ध तांत्रिकों ने इसमें चौथा काय 'महासुखकाय' नाम जोड़ दिया। परन्तु बौद्ध तांत्रिकों ने उस महासुखकाय की कल्पना किसी सहजसुन्दरी उस नैरामणि, नैरात्य जैसे रूपों में भी कर डाली तथा नाभि देश वाले निर्माण चक्र में उसे कभी चंडाली, कभी शबरी कभी डोंबी जैसे नाम अभिहित किया। जिस समय इसे निर्माणकाय वाले स्तर पर जागृत किया जाता है उसे चंडाली कह दिया करते है किन्तु जब इसी का स्तर, क्रमश: संभोगकाय की उन्नत दशा को प्राप्त कर लेता है तो वह नैरामणि आदि कही जाने लग जाती है और चतुर्थ स्तर अर्थात् महासुखकाय वाली स्थिति तक पहुंच कर यह सहज सुन्दरी का रूप धरण कर लेती है। इन सिद्धाचार्यों द्वारा प्रसारित दर्शन का प्रभाव कई सामाजिक संदर्भों पर पड़ा।

पाद टिप्पणी

1. धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, किताब महल इलाहाबाद, प्रथम सं. 1955, पृ. 100.
2. वही, पृ. 101.
3. वही, पृ. 111.
4. वही, सिद्ध साहित्य, पृ. 113.
5. वही, पृ. 287.
6. वही, पृ. 19.
7. वही, पृ. 19.
8. वही, पृ. 19.
9. वही, पृ. 28.
10. वही, पृ. 28.
11. वही, पृ. 29.
12. वही, पृ. 30.
13. वही, पृ. 30.

14. वर्णरत्नाकर, ज्योतिश्वर ठाकुर प्रणीत, सम्पादक पंडित गोविन्द झा, आनन्द मिश्र, मैथिली अकादमी पटना, द्वितीय संस्करण, 1990,; सप्तम कल्लोल 10, पृ. 76
15. धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृ. 34.
16. वही, पृ. 34.
17. वही, पृ. 34.
18. वही, पृ. 34.
19. धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृ. 35.
20. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, बौद्ध सिद्धों के चर्यापद, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1969, पृ. 1.
21. वही, पृ. 1.
22. वही, पृ. 10.
23. वही, पृ. 268.
24. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, बौद्ध सिद्धों के चर्यापद, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1969, पृ. 59

अर्थशास्त्र का ऐतिहासिक विकास-क्रमः मुख्यधारा के 'व्यष्टि-अर्थशास्त्र' की स्थापना एवं उन्नयन

डॉ० सत्येंद्र पूजन प्रताप त्रिपाठी

प्रवक्ता, अर्थशास्त्र, शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार दिल्ली

सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोध पत्र अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक और ऐतिहासिक विकास का क्रमवार विशेषकर कालानुक्रमिक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें इसके उद्भव और विकास के विभिन्न चरणों का विश्लेषण किया गया है। प्रारंभिक काल यानी प्राचीन सभ्यताओं में आर्थिक क्रियाओं से प्रारम्भ होकर मध्यकाल में आर्थिक चिन्तनों और कालांतर में आर्थिक सिद्धांतों की स्थापनाओं ने व्यष्टि-अर्थशास्त्र की नींव रखी, जिसमें एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो और जेरेमी बेंथम जैसे प्रमुख अर्थशास्त्रियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा। 19वीं शताब्दी में सीमांत क्रांति (Marginal Revolution) के बाद उपयोगिता, मांग, और संतुलन के सिद्धांतों का विकास हुआ, जिसने व्यष्टि-अर्थशास्त्र को एक मुख्यधारा के अर्थशास्त्र के रूप में स्थापित किया।

20वीं शताब्दी में नव-शास्त्रीय अर्थशास्त्र के सिद्धांतों, खेल सिद्धांत (Game Theory), और असममित सूचना (Asymmetric Information) के अनुसंधान ने व्यष्टि-अर्थशास्त्र को अधिक जटिल और व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रदान किया। हाल के दशकों में, व्यवहारिक अर्थशास्त्र और डिजिटल अर्थव्यवस्था के अध्ययन ने इस क्षेत्र को और व्यापक बनाया है, जिससे यह आज के सामाजिक और आर्थिक मुद्दों के विश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

यह शोध पत्र मुख्यधारा के व्यष्टि-अर्थशास्त्र के विकास-क्रम का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें इसके प्रारंभिक सिद्धांतों से लेकर वर्तमान में इसके नवीन विकास तक की यात्रा का विश्लेषण किया गया है। यह पेपर शास्त्रीय अर्थशास्त्र, सीमांत क्रांति, और आधुनिक सिद्धांतों के योगदान का विवेचन करता है।

वर्तमान समय में अर्थशास्त्र, मूलतः एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन करता है। अर्थशास्त्र आर्थिक एजेंटों के व्यवहार और उनके मध्य की अंतर्क्रियाओं पर केंद्रित है और यह इस बात का भी विश्लेषण करता है कि अर्थव्यवस्थाएं कैसे काम करती हैं।

'अर्थशास्त्र' शब्द संस्कृत शब्दों अर्थ (धन) और शास्त्र (किसी विषय के संबंध में मनुष्यों के कार्यों के क्रमबद्ध ज्ञान को उस विषय का शास्त्र कहते हैं,) की संधि से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है-'धन का अध्ययन'। अर्थशास्त्र बहुत प्राचीन विद्या है। ऋग्वेद दान को एक स्वैच्छिक कार्य के रूप में वर्णित करता है। यजुर्वेद में टोकरी निर्माताओं से लेकर कसाई तक के विभिन्न व्यवसायों को चिह्नित किया गया है। अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से मिलते हैं। इन चार वेदों के अतिरिक्त, चार उपवेद भी अति प्राचीन काल में बनाए गए थे। इन चारों उपवेदों में अर्थवेद भी एक उपवेद माना जाता है, परन्तु अब यह उपलब्ध नहीं है। विष्णुपुराण में भारत की प्राचीन तथा प्रधान 18 विद्याओं में अर्थशास्त्र भी परिगणित है। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) में अर्थ (धन-सम्पदा) भी सम्मिलित है। जैन धर्म में अपरिग्रह (बहुत अधिक धन संग्रह न

करना) का उपदेश किया गया है। भर्तृहरि ने कहा है, 'सर्वे गुणा कांचनम् आश्रयन्ते' (सभी गुणों का आधार स्वर्ण ही है।) चाणक्यसूत्र में कहा है- सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः। अर्थस्य मूलं राज्यं। राज्यस्य मूलं इन्द्रिय जयः। इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः। विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा (अर्थः सुख का मूल है, धर्म। धर्म का मूल है, अर्थ। अर्थ का मूल है, राज्य। राज्य का मूल है, इन्द्रियों पर विजय। इन्द्रियजय का मूल है, विनय। विनय का मूल है, वृद्धों की सेवा।) महाभारत में इस संबंध में एक प्रसंग है, जिसमें अर्जुन को अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ माना गया है।

समाप्तवचने तस्मिन्नर्थशास्त्र विशारदः।
पार्थो धर्मार्थतत्त्वज्ञो जगौ वाक्यमनन्द्रितः।।

वर्तमान समय में बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र उपलब्ध हैं। अर्थशास्त्र के सर्वप्रथम आचार्य बृहस्पति थे। उनका अर्थशास्त्र सूत्रों के रूप में प्राप्त है, परन्तु उसमें अर्थशास्त्र सम्बन्धी सब बातों का समावेश नहीं है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र ही एक ऐसा ग्रंथ है जो अर्थशास्त्र के विषय पर उपलब्ध क्रमबद्ध ग्रंथ है, इसलिए इसका महत्व सबसे अधिक है। आचार्य कौटिल्य, चाणक्य के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये चंद्रगुप्त मौर्य (321–297 ई.पू.) के महामंत्री थे। इनका ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' पंडितों की राय में प्रायः 2,300 वर्ष पुराना है। इस ग्रंथ की कितनी ही बातें अर्थशास्त्र के आधुनिक काल में निर्दिष्ट क्षेत्र से बाहर की हैं। उसमें राजनीति, दंडनीति, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र इत्यादि विषयों पर भी विचार हुआ है।

भारतीय अर्थशास्त्र को एक अलग विषय के रूप में पढ़ाने की मूल नींव दादाभाई नौरोजी (4 September 1825–30 June 1917) द्वारा रखी गई थी। परन्तु, प्रारंभिक दिनों में महादेव गोविंद रानाडे (18 January 1842 –16 January 1901) ने भारतीय अर्थशास्त्र को आधुनिक स्वरूप और आकार दिया तथा इसे एक अलग विषय के रूप में स्वतंत्रता आंदोलनों के पूर्व ही स्थापित करने में सफल रहे। इसीलिए वास्तव में, महादेव गोविंद रानाडे को ''भारतीय अर्थशास्त्र के जनक'' ("Father of Indian Economics") के रूप में सम्मानित किया जाता है।

आधुनिक स्वरूप में, एक विषय के रूप में अर्थशास्त्र इंग्लिश के ECONOMICS का हिंदी अनुवाद है, जबकि इंग्लिश का ECONOMICS प्राचीन ग्रीक भाषा के "Oikonomikos" वत "oikonomia" का इंग्लिश अनुवाद है। "Oikonomikos" वत "oikonomia" प्राचीन ग्रीक भाषा के दो शब्दों व्यावे (भ्वनेमीवसक या गृह) और छमउमपद (Management या प्रबंधन) से मिल कर बना है। "Oikonomikos" वत "oikonomia" का अर्थ है गृह प्रबंधन।

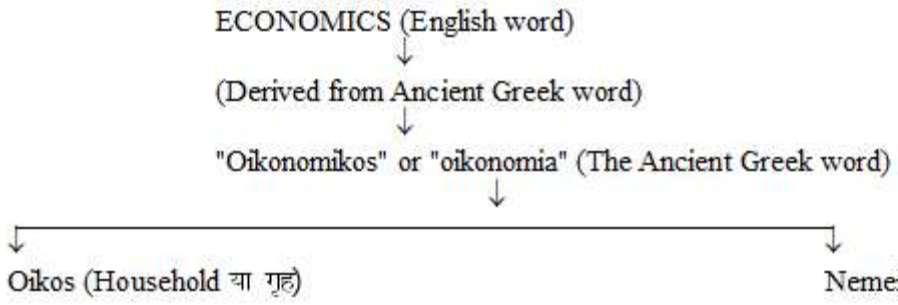

व्मबवदवउपबने नाम से एक ग्रन्थ भी प्राप्त हुआ है, जो एथेन्स के विचारक और चिंतक क्सेनोफोन द्धग्मदवचीवदऋ द्वारा रचित माना जाता है।

I. अर्थशास्त्र का ऐतिहासिक विकास

प्रारम्भिक अवस्था में आर्थिक विचार और सिद्धांत राजनीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नैतिकता और धर्म के सम्मिलित स्वरूपों से विकसित हुए। समयोपरांत धीरे-धीरे मन

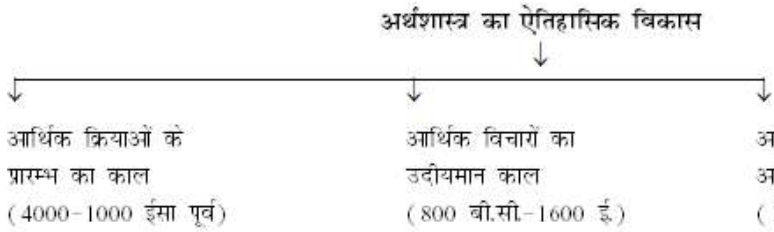

I. आर्थिक क्रियाओं के प्रारम्भ का काल:- अपने मूल रूप में लिखित दस्तावेजों के प्रमाण सहित आर्थिक क्रियाओं का प्रारम्भ कांस्य युग (4000-2500 ईसा पूर्व) से माना जा सकता है, जिसमे तत्कालीन चार प्रमुख प्राचीन सभ्यताओं का योगदान रहा है-

1. सुमेरियन सभ्यता या मेसोपोटामिया की सभ्यता (4500-1900 ईसा पूर्व); (आज के ईराक में दजला और फरात दो नदियों के मध्य क्षेत्र में विकसित)
2. बेबीलोनिया की सभ्यता (3500-2500 ईसा पूर्व); (मेसोपोटामिया के दक्षिणी क्षेत्र में फरात और टिगरिस नदियों के बीच विकसित)
3. सिंधु नदी घाटी सभ्यता (3300-1030 ईसा पूर्व); (आज के अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत में सिंधु नदी तथा चीन में यांग्त्जी नदी के किनारे विकसित)
4. मिस्र की सभ्यता, (लगभग 3100-2000 ईसा पूर्व); (नील नदी घाटी में विकसित)

सुमेरियन व्यापारियों ने महीनों और वर्षों की अवधि के लिए चक्रवृद्धि ब्याज की गणना करने की विधियों का विकास किया। बेबीलोनियन सभ्यता की हम्मुराबी की विधि संहिता (लगभग 1810-1750 ईसा पूर्व), आर्थिक संश्लेषण का सबसे पहला कार्य है, जो आर्थिक गतिविधियो के लिए मानदंडों को तय करता है और व्यापार वाणिज्य के लिए मानकों का एक विस्तृत ढांचा प्रदान करता है। सिंधु घाटी की सभ्यता में आर्थिक लेनदेन के लिए प्रतीकों का उपयोग किया जाने लगा था। मिस्रवासियों ने भूमि और उत्पादित वस्तुओं के संग्रह एवं पुनर्वितरण को स्पष्ट किया। अतएव सभ्यता युग मूलत: आर्थिक क्रियाओं के प्रारम्भ का काल कहा जा सकता है

II. आर्थिक विचारों का उदीयमान काल:- सभ्यता युग के पश्चात आर्थिक विचारों के उदीयमान काल का प्रारम्भ माना जा सकता है। इस काल को आर्थिक इतिहास के दृष्टिकोण से मुख्यत: तीन भागों में विभक्त करके देखा जा सकता है -

1. प्राचीन ग्रीस (Ancient Greece; 800BC – 300BC):- ग्रीक दार्शनिक और कवि हेसियोड ने आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में खेतों के प्रबंधन के लिए श्रमिकों द्वारा किये गए कार्यों और इसमें लगाए गए दिनों पर अपने विचार और विश्लेषण प्रस्तुत किये।

''अर्थव्यवस्था'' की अवधारणा पहली बार ग्रीक दार्शनिक क्सेनोफोन ने अपने महत्वपूर्ण लेखन कार्य ''ओइकॉनॉमिक्स (Oeconomicus)'' में प्रस्तुत की है, जहां उन्होंने घरेलू प्रबंधन और कृषि के महत्व पर चर्चा की। क्सेनोफोन (Xenophon) सुकरात के शिष्य थे। इन्होंने Oeconomicus में सुकरात द्वारा अन्य विचारकों के साथ 'धन, गृह-प्रबंधन एवं कृषि सम्बन्धी' विषय पर किये गए विचार-विमर्श और चर्चाओं को संकलित किया है। यह पुस्तक संभवत: 362 ई. पू. लिखी गयी प्रतीत होती है। इस पुस्तक का सिसरो द्वारा लैटिन भाषा में अनुवाद भी किया गया, जो पुनर्जागरण काल में लोकप्रिय हुई।

2. मध्ययुगीन यूरोप (1100-1500 ईस्वी):- इस अवधि के दौरान अधिकांशत: आर्थिक विचार कैथोलिक चर्च की दान-शिक्षाओं (Charity) और ''न्यायसंगत मूल्य (Just-Price)'' की अवधारणा पर आधारित थे।
3. यूरोपीय पुनर्जागरण काल (1400-1600 ईस्वी):- इस अवधि के आर्थिक विचार निक्कोलो मैकियावेली और फ्रांसेस्को गुइकियार्डिनी जैसे मानवतावादियों के विचारों से प्रभावित थे। इस काल के विचारों में आर्थिक शक्ति की महत्ता और अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका पर बल दिया गया।
4. बुलियनवाद (16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, 1550-1600):- गैर-लौह धात्विक सिक्कों (सोने, चांदी, तांबे आदि) को बुलियन कहा जाता है। बुलियनवाद, इंग्लैण्ड में, सोलहवीं शताब्दी में उद्भुत एक ऐसी आर्थिक विचारधारा थी जो कीमतों

धातुओं और सिक्कों की मात्रा को ही वास्तविक धन-सम्पत्ति समझती थी। इसे वणिकवाद की प्रारंभिक अवस्था माना जा सकता है।

III. आर्थिक विचारों की परिपक्वता और आर्थिक सिद्धान्तो के सृजन का काल:- प्रत्यक्ष आर्थिक विचारों की शुरुआत वणिकवाद से मानी जा सकती है।

1. वणिकवादी विचारधारा (Mercantilism) (1600 AD-1776 AD):- 'अर्थशास्त्र के जनक' एडम स्मिथ ने पहली बार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वेल्थ ऑफ नेशंस' में 'मर्केंटिलिज्म' शब्द का इस्तेमाल किया था। वणिकवाद का संस्थापक थॉमस मन को माना जा सकता है। इस अवधि के आर्थिक विचार इस संकल्पना पर आधारित थे कि किसी देश की आर्थिक शक्ति उसकी संपत्ति यानी उसके पास संग्रहीत सोने और चांदी की मात्रा पर निर्भर करती है। आर्थिक शक्ति द्वारा ही व्यापार को नियंत्रित करने की उसकी क्षमता उत्पन्न होती है। व्यापार से पुन: सोने और चांदी की मात्रा को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है।

सामंतवाद का पतन (मध्ययुग के बाद यानि 1450 ई. के आसपास या पश्चात), धर्मसुधार आंदोलन (16वीं शताब्दी के प्रारंभ में) एवं पुनर्जागरण (14वीं और 17वीं सदी के बीच यूरोप में जो सांस्कृतिक व धार्मिक प्रगति, आंदोलन तथा युद्ध) तीन ऐसे प्रमुख कारक थे जिन्होंने यूरोप में आधुनिक युग के आरंभ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुनर्जागरण एवं वैज्ञानिक क्रांति के फलस्वरूप यूरोप में आर्थिक प्रगति के दौर आरंभ हुआ। वैज्ञानिक क्रांति ने औद्योगिक क्रांति एवं कृषि क्रांति का आधार तैयार किया और इसके बाद यूरोप में वाणिज्यवाद का आरंभ हुआ। यूरोपीय वाणिज्यवाद ने आधुनिक पश्चिमी विश्व में आर्थिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त किया। यूरोप में वाणिज्यिक क्रांति का आरंभ क्रमश: तीन घटनाओं का प्रतिफल था-

1. धर्म युद्ध (1095 ई.-1291 ई.) एवं व्यापारी वर्ग का अभ्युदय,
2. तुर्कों का कुस्तुनतुनिया (एशिया माइनर) पर अधिकार (1453 ई.)
3. भौगोलिक खोजें।

व्यापारिक क्रांति ने एक नवीन आर्थिक विचारधारा को जन्म दिया। इसका प्रारम्भ सोलहवीं सदी में हुआ। इस नवीन आर्थिक विचारधारा को वाणिज्यवाद, वणिकवाद या व्यापारवाद कहा गया है। फ्रांस में इस विचारधारा को कोल्बर्टवाद और जर्मनी में केमरलिज्म कहा गया। वणिकवाद ''राजनीतिक निरपेक्षवाद'' (Political Absolutism) का आर्थिक पहलू था। 1776 ई. में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने भी अपने ग्रन्थ 'द वेल्थ ऑफ नेशन्स' में इसका विवेचन किया है।

वाणिज्यवाद से अभिप्राय उस आर्थिक विचारधारा से है जो पश्चिमी यूरोप के देशों में विशेषकर फ्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी में सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में प्रसारित हुई थी और अठारहवीं सदी के मध्य तक इसका खूब विकास हुआ। इसके अन्तर्गत राज्य की शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से राष्ट्र की अर्थव्यवस्थाओं का सरकारों द्वारा नियंत्रण को प्रोत्साहन मिला। वाणिज्यवाद की धारणा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और उससे प्राप्त धन से संबंधित है। इस वाणिज्यवाद के सिद्धांत के अनुसार कृषि और उसके उत्पादन की कुछ सीमा तक ही वृद्धि कर सकते हैं। कृषि आर्थिक दृष्टि से कुछ सीमा के बाद अनुत्पादक भी हो सकती है, पर उद्योगों, व्यवसायों और वाणिज्य व्यापार की वृद्धि और विस्तार की कोई सीमा नहीं है। औद्योगीकरण से और व्यापार की नियमित वृद्धि से देश सोना-चांदी प्राप्त कर समृद्ध और शक्तिशाली होगा। यह वाणिज्यवाद का मूल सिद्धांत है। वाणिज्यवाद में व्यापारी वर्ग, व्यवस्थित, सुनिश्चित और नियमित वाणिज्य-व्यापार और सोने-चांदी की प्राप्ति और संगठन पर अधिक बल दिया गया। ''निर्यात अधिकतमीकरण के साथ आयात न्यूनीकरण' और ''अधिक स्वर्ण प्राप्त कर अधिक सशक्त बनो'' यह वाणिज्यवाद का नारा था। अधिक धन संग्रह से देश की आर्थिक शक्ति और सम्पन्नता बढ़ती है। इससे राजनीतिक लक्ष्य सरलता से प्राप्त किए जा सकते हैं। आंतरिक शान्ति और बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा प्राप्त हो सकती है, इसलिए शासक, राजनीतिज्ञ, विचारक, अर्थशास्त्री, प्रशासक और व्यापारी वर्ग ने वाणिज्यवाद का समर्थन किया।

2. प्रकृतिवादी विचारधारा (Physiocrats) (1750AD-1776):- प्रकृतिवाद या फिजियोक्रेसी (प्रकृतिवाद फ्रांसीसी शब्द फिजियोक्रेटी से आया है जिसका अर्थ है ''प्रकृति की सरकार'') के सिद्धांतों की उत्पत्ति फ्रांस में हुयी तथा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पुनर्जागरण युग के दौरान सर्वाधिक लोकप्रिय हुए। शब्द ''फिजिओक्रेसी'' या प्रकृतिवाद का उपयोग पहली बार 1768 में डुपोंट-डी-नेमोर्स (Dupont-De-Nemours) द्वारा किया गया था। यह एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है 'प्रकृति के नियम'। प्रकृतिवादी समाज की एक प्राकृतिक प्रणाली में विश्वास करते थे जो केवल मानव कल्याण को बढ़ाने का तरीका था। इनके आर्थिक

विचारों को अर्थशास्त्र के क्षेत्र में प्रथम पूर्ण विकसित सिद्धांत के रूप में चिन्हित किया जा सकता है। प्रकृतिवादी यह मानते थे कि राष्ट्रों की संपत्ति पूरी तरह से कृषि भूमि से व्युत्पन्न होती है अतएव कृषि उत्पादों की कीमत सर्वाधिक होनी चाहिए।

फ्रांकोइस क्वेने को फिजियोक्रेसी का संस्थापक या जनक माना जाता है। इन्होंने 1758 में ''Tableau Economique'' यानि (आर्थिक तालिका) निर्मित करके उसे प्रकाशित किया। क्वेने एक चिकित्सक थे और अपने पेशे से प्रभावित थे। जिस तरह विलियम हार्वे की खोज ने स्पष्ट किया कि मानव शरीर के लिए रक्त प्रवाह और संचार प्रणाली महत्वपूर्ण है; उसी को आधार बनाकर क्वेने ने समझाया कि अर्थव्यवस्था के लिए धन का संचलन महत्वपूर्ण है। उन्होंने विश्लेषण किया कि ''किसानों, भू-स्वामियों और कारीगरों, इन तीन वर्गों के बीच धन का का प्रवाह किस तरह होता है, यानि उसी यांत्रिक तरीके से जिस तरह से विभिन्न अंगों के बीच रक्त बहता है'।

यूरोप में, अहस्तक्षेप या लाइसेज-फेयर (Laissez-faire) आंदोलन को पहली बार फिजियोक्रेट्स द्वारा व्यापक रूप से बढ़ावा दिया गया था। फ्रांस्वा क्वेस्ने ने सर्वप्रथम अहस्तक्षेप या लाइसेज-फेयर (Laissez-faire) शब्द का प्रयोग किया था।

प्रकृतिवादियों ने राष्ट्रीय संपत्ति के स्रोत के रूप में उत्पादक कार्यों पर बल दिया, जो इनके पूर्ववर्ती विचारधाराओं (बुलियनवादी और वणिकवादी, जो मूलतः शासक की संपत्ति, सोने के संचय, या व्यापार संतुलन पर केंद्रित था) विपरीत था। प्रकृतिवाद अर्थशास्त्र की ऐसी पहली स्थापित विचारधारा थी जिसने श्रम को मूल्य के एक मात्र स्रोत के रूप में पहचाना। इनके अनुसार समाज में केवल कृषि श्रमिकों ने ही उत्पादों में मूल्य का सृजन किया है, सभी ''औद्योगिक'' और गैर-कृषि श्रमिक अनुत्पादक हैं। ''फिजियोक्रेट्स'' ने शहरों को उनकी कृत्रिमता के लिए धिक्कारा और जीवन जीने की प्राकृतिक शैलियों की सराहना की। उन्होंने किसानों की प्रशंसा की। वे स्वयं को लेस इकोनॉमिस्ट (Les Economistes) कहते थे।

3. राजनीतिक अर्थव्यवस्था या स्मिथियन अर्थशास्त्र (Political Economy) (1776):- राजनीतिशास्त्र से अलग होकर एक पूर्ण विषय के रूप स्थापित विषय जिसे ''राजनीतिक अर्थव्यवस्था'' कहा गया। इसकी शुरुआत 1776 में एडम स्मिथ द्वारा लिखी गयी पुस्तक ।द प्दुनपतल पदजव जीम छंजनतम दंक ब्नेमे वि जीम ॅमंसजी वि छंजपवदे से माना जाता है। राजनीतिक अर्थव्यवस्था से सम्बंधित प्रारंभिक योगदानों के लिए सामान्यतः ब्रिटिश विद्वानों एडम स्मिथ, थॉमस माल्थस और डेविड रिकार्डो के कार्यों को उत्तरदायी माना जाता है। थॉमस माल्थस, 1805 में, इंग्लैंड में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के पहले प्रोफेसर बने।

4. परम्परावाद, शास्त्रीय, प्रतिष्ठित, या संस्थापित विचारधारा (Classical Economics) (1776-1890):- कार्ल मार्क्स ने मूल रूप से 'रिकार्डियन अर्थशास्त्र' को सर्वप्रथम ''शास्त्रीय अर्थशास्त्र'' कहा। इन्होंने डेविड रिकार्डो, जेम्स मिल और उनके पूर्ववर्तियों अर्थशास्त्रियों को प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री कहा परन्तु कालांतर में यह शब्द में रिकार्डो के सभी अनुयायियों के लिए उपयोग किया जाने लगा। 1776 में लिखी गई एडम स्मिथ की पुस्तक 'द वेल्थ ऑफ नेशंस' (An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations) को आमतौर पर शास्त्रीय अर्थशास्त्र की शुरुआत माना जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र, परम्परावादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था, या स्मिथियन अर्थशास्त्र या राजनीतिक अर्थव्यवस्था एक विचारधारा है जो मुख्य रूप से ब्रिटेन में, 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के मध्य में फली-फूली। इसके मुख्य विचारक एडम स्मिथ, जीन-बैपटिस्ट से, डेविड रिकार्डो, थॉमस रॉबर्ट माल्थस और जॉन स्टुअर्ट मिल माने जाते हैं।

इन अर्थशास्त्रियों ने बड़े पैमाने पर स्व-विनियमन प्रणालियों के रूप में बाजार अर्थव्यवस्थाओं के एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जो उत्पादन और विनिमय के प्राकृतिक नियमों पर आधारित था। एडम स्मिथ ने इस प्राकृतिक नियम को प्रकृति के दो अदृश्य हाथ (Two invisible hands of nature) के रूप में चिन्हित किया था। ''प्रकृति के दो अदृश्य हाथ की अवधारणा'' एडम स्मिथ ने 1758 में लिखी अपनी पुस्तक 'थ्योरी ऑफ मोरल सेंटिमेंट्स' (Theory of Moral Sentiments) में प्रतिपादित की थी। रिकार्डो और जेम्स मिल ने स्मिथ के सिद्धांत को व्यवस्थित किया। हेनरी जॉर्ज (1839 -1897) को अंतिम प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री (The Last Classical Economist) के रूप में जाना जाता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताएं Main features of Classical Economics

- बाजार अर्थव्यवस्थाओं के सिद्धांत का प्रतिपादन (Adam Smith)
- प्रकृति के दो अदृश्य हाथ (Two invisible hands of nature i.e. Demand - Supply) (Adam Smith)

- सभी बाजारों के लिए कीमत की पूर्णलोचशीलता (जैसे वस्तु बाजार, श्रम बाजार और पूंजी बाजार सभी के लिए) (Price flexibility for all market, as goods market, labour market and capital market) (Adam Smith)
- जे. बी. से का बाजार नियम यानि ''आपूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं करती है''। (J. B. Say's law of market i.e. "Supply creates its own demand")
- फ्रैंकोइस क्वेस्ने का अहस्तक्षेप नीति या लाइसेज-फेयर यानी अर्थव्यवस्था में सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं है। (François iQuesnay's Laissez-faire i.e. No interference of government in the economy)
- मुक्त व्यापार (Free Trade) (Francisco de Vitoria, Adam Smith and David Ricardo)

5. समाजवाद (Socialism) (1848 AD-1883 AD):- समाजवाद मूलत: दो जर्मन पुस्तकों की देन माना जा सकता है-

1) कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो, (1848 ई. में जर्मन दार्शनिकों कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा लिखा गया एक राजनीतिक दस्तावेज है)
2) दास कैपिटल (1867 ई. में कार्ल मार्क्स द्वारा लिखी गयी यह पुस्तक मूलत: भौतिकवादी दर्शन में राजनीतिक अर्थव्यवस्था की आलोचनात्मक व्याख्या है।) समाजवाद या मार्क्सवादी अर्थशास्त्र, राजनीतिक आर्थिक विचारों की एक गैर-परम्परावादी या विषम विचारधारा है। मार्क्सवादी अर्थशास्त्र, पूंजीवाद में संकट के विश्लेषण से उत्पन्न होता है। यह, विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों में अधिशेष उत्पाद, अधिशेष मूल्य (Surplus value), श्रम का शोषण (Exploitation of labour), उत्पादन प्रक्रिया (Mode of production), औद्योगिक रिजर्व सेना (Industrial reserve army) की भूमिका और उत्पादन के वितरण की प्रक्रियाओं में वर्ग संघर्ष (Class struggle) के प्रभाव के द्वारा अंतत: पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने की व्याख्या करता है।

राजनीतिक अर्थव्यवस्था की आलोचना करते हुए मार्क्स ने तीन खंडों में दास कैपिटल (Das Kapital) की रचना की थी, जिनमें से पहला खंड (दास कैपिटल: ए क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी) 1867 में प्रकाशित हुआ था।

समाजवाद की प्रमुख विशेषताएं (Main features of Socialism)

- कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो, (1848 ई. में जर्मन दार्शनिकों कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा लिखा गया एक राजनीतिक दस्तावेज है)
- दास कैपिटल (1867 ई. में कार्ल मार्क्स द्वारा लिखी गयी यह पुस्तक मूलत: भौतिकवादी दर्शन में राजनीतिक अर्थव्यवस्था की आलोचनात्मक व्याख्या है)
- अधिशेष मूल्य (Surplus value),
- श्रम का शोषण (Exploitation of labour),
- उत्पादन प्रक्रिया (Mode of production),
- औद्योगिक रिजर्व सेना (Industrial reserve army)
- वितरण की प्रक्रियाओं वर्ग संघर्ष (Class struggle)
- अंतत: पूंजीवाद का विघटन

6. नव-परम्परावादी विचारधारा या मुख्यधारा का अर्थशास्त्र या रूढ़िवादी अर्थशास्त्र (Neo-Classical thoughts of Economics i.e. Mainstream Economics or Orthodox Economics) (1871-1929 AD):- मार्क्सवादी अर्थशास्त्र, श्रमिक आंदोलन और श्रम के शोषण के समाजवादी सिद्धांतों की प्रतिक्रिया के रूप में सीमांतवाद और सीमांत क्रांति के सिद्धांतों का उदय हुआ। जिसने नव-परम्परावादी विचारधारा यानि मुख्यधारा के अर्थशास्त्र की नींव रखी। नियो-क्लासिकल शब्द, मूल रूप से थोरस्टीन वेबलेन द्वारा अपने 1900 में प्रकाशित अपने लेख ''आर्थिक विज्ञान की पूर्वधारणा'' (Preconceptions of Economic Science) में प्रस्तुत किया गया था। बाद में इसका उपयोग अन्य लोगों द्वारा कार्ल मेंगर, विलियम स्टेनली जेवोन्स, लियोन वालरा, मार्शल, जॉन हिक्स, जॉर्ज स्टिगलर और जॉन बेट्स क्लार्क और कई अन्य अर्थशास्त्रियों के योगदान को शामिल करने के लिए किया जाने लगा। आज इसका उपयोग आमतौर पर ''मुख्यधारा के अर्थशास्त्र'' के लिए किया जाता है। नियोक्लासिकल अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का वह

दृष्टिकोण है जिसमें वस्तुओं-सेवाओं के उत्पादन, उपभोग और मूल्य निर्धारण को आपूर्ति और मांग मॉडल (Supply and Demand Model) द्वारा विश्लेषित किया जाता है।

नियोक्लासिकल अर्थशास्त्र अंतर्गत चार मुख्य विचारधाराएं शामिल की जातीं हैं जो समकालीन रूप से अलग अलग उत्पन्न हुई-

नियो-क्लासिकल अर्थशास्त्र

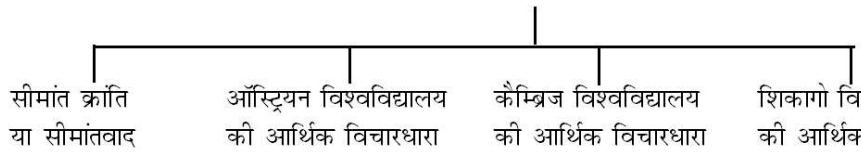

1. सीमांत क्रांति या सीमांतवाद (Marginal Revolution&Marginalism (1871.1890):- ''सीमांत'' (Marginal) शब्द का उपयोग पहली बार जोहान एच वॉन थ्यूनेन (Johann H.Von Thünen) ने 1826 में अपने ''द आइसोलेटेड स्टेट'' (The Isolated State) में किया था। सीमांतवाद (Marginalism) का विचार, ब्रिटिश अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल द्वारा 1890 में प्रकाशित अपनी पुस्तक Principles of Economics में लोकप्रिय किया गया था।

सीमांत उपयोगिता के किसी भी प्रकार के सिद्धांत का पहला उद्घाटन डैनियल बर्नौली के शोध-पत्र को माना जाता है, जो 1738 में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि 1728 में, गेब्रियल क्रैमर ने एक निजी पत्र में मौलिक एवं स्वतंत्र रूप से इसी सिद्धांत का प्रतिपादन कर लिया था। 1836 में नसाउ विलियम सीनियर (Nassau William Senior) ने जोर देकर कहा कि सीमांत उपयोगिताएं मांग की अंतिम निर्धारक होतीं हैं। 1844 में जूल्स ड्यूपिट (Jules Dupuit) ने पुल टोल निर्धारित करने की समस्या के समाधान के लिए सीमांत उपयोगिता की अवधारणा का उपयोग किया था। सीमांत क्रांति ने ''हीरे-जल विरोधाभास'' का समाधान किया।

1854 में, हरमन हेनरिक गोसेन (Hermann Heinrich Gossen) ने सीमांत उपयोगिता सिद्धांत (Marginal utility theory) प्रस्तुत किया और बाजार अर्थव्यवस्था के अंतर्गत इसके निहितार्थ को समझाया। इन्होंने दो प्रमुख नियम बताये-

1. गोसेन का पहला नियम- ह्रासमान उपयोगिता नियम
2. गोसेन का दूसरा नियम- सम-सीमान्त उपयोगिता नियम

नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र के आर्थिक सिद्धांत में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए उसे प्रमुख रूप से ''सीमांत क्रांति'' के रूप में जाना जाता है। इसमें विलियम स्टेनली जेवोन्स (1871), कार्ल मेंजर (1871), और लियोन वालरा (1874-1877) योगदान को सर्वोपरि माना जाता है। विलियम स्टेनली जेवोन्स ने पहली बार 1863 और 1871 में लेखों में सिद्धांत को प्रस्तावित किया। कार्ल मेंजर ने समझाया कि व्यक्ति लेनदेन के निर्णय लेने के लिए सीमांत उपयोगिता का उपयोग करते हैं। लेओन वालरा ने अपने सिद्धांत का पहला भाग 1874 में प्रस्तुत किया। अमेरिकी अर्थशास्त्री जॉन बेट्स क्लार्क भी सीमांतवाद की उत्पत्ति से सम्बंधित हैं परन्तु इनका योगदान बहुत कम माना जाता है।

यद्यपि सीमांत क्रांति जेवोन्स, मेंगर और वालरा के कार्यों से प्रवाहित हुयी थी, परन्तु उनका कार्य मुख्यधारा के अर्थशास्त्र में प्रवेश करने मे विफल हो जाता अगर सीमान्तवादी अर्थशास्त्रियों की दूसरी पीढ़ी नहीं होती। सीमान्तवादी अर्थशास्त्रियों की दूसरी पीढ़ी में, इंग्लैंड के फिलिप विकस्टीड, विलियम स्मार्ट और अल्फ्रेड मार्शल, ऑस्ट्रिया के यूजेन बोहम वॉन बावेर्क और फ्रेडरिक वॉन वीसरय स्विट्जरलैंड के विल्फ्रेडो पेरेटो और अमेरिका के हर्बर्ट जोसेफ डेवनपोर्ट और फ्रैंक ए फेटर को सम्मिलित किया जाता है।

2. ऑस्ट्रियन आर्थिक विचारधारा (Austrian School of economic thought) (1871):- सर्वप्रथम 1833 में गुस्ताव वॉन श्मोलर (Gustav von Schmoller) ''ऑस्ट्रियाई स्कूल'' शब्द का उपयोग किया गया। ऑस्ट्रियाई आर्थिक विचारधारा की उत्पत्ति 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में कार्ल मेंजर, यूजेन वॉन बोहम-बावर्क, फ्रेडरिक वॉन वीसर और अन्य लोगों के सीमान्तवादी उपयोगिता सम्बन्धी विचारों के साथ हुई। आर्थिक सिद्धांत में मेंगर के योगदान का अनुसरण यूजेन बोहम वॉन बावेर्क और फ्रेडरिक वॉन वीसर ने किया। ये तीन अर्थशास्त्री ऑस्ट्रियाई स्कूल की ''पहली पीढ़ी'' के रूप में जाने जाते हैं। अवसर लागत सिद्धांत (Theory opportunity cost) पहली बार 19वीं शताब्दी के अंत में ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्री फ्रेडरिक वॉन वीसर द्वारा ही स्पष्ट रूप से प्रस्तुत की गई। अवसर लागत मुख्यधारा के अर्थशास्त्र में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है और इसे ''दुर्लभता

(Scarcity) और चयन (Choices) के बीच मूलभूत संबंधों को व्यक्त करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। संसाधनों के कुशलतम उपयोग को सुनिश्चित करने में अवसर लागत की धारणा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

3. कैम्ब्रिज आर्थिक विचारधारा या मार्शलियन अर्थशास्त्र (Cambridge school ofeconomic thought or Marshallian Economics) (1890):- नव-क्लासिकलवाद की कैम्ब्रिज आर्थिक विचारधारा के संस्थापक प्रमुख अंग्रेज अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल माने जाते हैं। इसीलिये इस विचारधारा को मार्शलियन अर्थशास्त्र (Marshallian Economics) भी कहा जाता है। कैम्ब्रिज विचारधारा के अन्य प्रमुख अर्थशास्त्रियों में, आर्थर सेसिल पीगू (Arthur Cecil Pigou), फ्रांसिस वाई. एजवर्थ (Francis Ysidro Edgeworth), डेनिस हॉम रॉबर्ट्सन (Dennis Holme Robertson) लियोनेल चार्ल्स रॉबिन्स (Lionel Charles Robbins) आदि आते हैं।

मार्शल दूसरी पीढ़ी के सबसे प्रमुख सीमांतवादी थे, जिनके सीमांत उपयोगिता पर किये गए कार्य ने नियोक्लासिकल अर्थशास्त्र को स्थापित कर दिया। विशेष रूप से उनकी पुस्तक 'अर्थशास्त्र के सिद्धांत' (Principles of Economics 1890) के माध्यम से, नियोक्लासिकल अर्थशास्त्र एक संस्थापित मुख्यधारा का अर्थशास्त्र (Mainstream Economics) बन गया। यहीं से 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' (Political Economy) अंतत: 'अर्थशास्त्र'(Economics) के रूप में संस्थापित हो गयी। मार्शल ने आपूर्ति वक्र और मांग वक्र के प्रतिच्छेदन बिंदु से कीमत निर्धारण की व्याख्या की। विभिन्न ''बाजार-अवधियों'' (Market periods) की शुरुआत करना मार्शल का एक महत्वपूर्ण नवाचार था। इन्होंने 4 प्रकार की बाजार अवधि का उल्लेख किया है-

1) बाजार की अवधि:- जिस अवधि में, बाजार में बिक्री के लिए उत्पादित वस्तु की मात्रा तय या निश्चित रहती है।
2) अल्प अवधि:- जिस अवधि में, औद्योगिक क्षमता निश्चित रहती है यानी औद्योगिक उत्पादन क्षमता बढ़ायी नहीं जा सकती।
3) दीर्घ अवधि:- जिस अवधि में, पूंजीगत वस्तुओं, जैसे कारखानों की संख्या और मशीनों की संख्या आदि में परिवर्तन कर पाना संभव हो।
4) अति दीर्घ अवधि:- जिस अवधि में, प्रौद्योगिकी, जनसंख्या प्रवृत्तियों, आदतों और रीति-रिवाजों में भी परिवर्तन सम्भव हो। उदासीनता वक्र (Indifference Curve) का सिद्धांत फ्रांसिस यिड्रो एजवर्थ द्वारा 1881 में विकसित किया गया।

4. शिकागो विश्वविद्यालय की आर्थिक विचारधारा (Chicago School of Economics, 1929):- शिकागो विश्वविद्यालय की आर्थिक विचारधारा की स्थापना 1930 के दशक में फ्रैंक हाइनमैन नाइट (Frank Hyneman Knight) ने की थी, जिस का उद्देश्य मुक्त बाजार सिद्धांतों को बढ़ावा देना तथा नवक्लासिकीय विचारों को पोषण प्रदान करना था। फ्रैंक नाइट (1885-1972) शिकागो विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में 1929 में शामिल हुए, यहीं से शिकागो आर्थिक विचारधारा का जन्म माना जा सकता है, भले ही यह विचारधारा स्वतंत्र रूप में 1950 के बाद प्रसिद्ध हुयी। इनकी पहली पीढ़ी में फ्रैंक नाइट (Frank Knight, 1885. 1972), हेनरी कल्वर्ट सिमोंस (Henry Calvert Simons, 1899.1946), जैकब वाइनर (Jacob Viner, 1892-1970), थिओडोर शुल्ज (Theodore Schultz, 1902.1998) आदि आते हैं।

इस विचारधारा की दूसरी पीढ़ी 1950 के दशक में उत्पन्न हुयी जिसकी शुरुआत मिल्टन फ्रीडमैन (Milton Friedman, 1912. 2006) से मानी जाती है। आगे चलकर, इसी विचारधारा से 1950 के दशक में मुद्रावाद (Monetarism) का जन्म हुआ। अन्य प्रमुख अर्थशास्त्री हैं- जॉर्ज स्टीगलर (George Stigler, 1911.1991)ए रोनाल्ड कोज (Ronald Coase, 1910-2013) आदि।

नियो-क्लासिकल अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताएं (Main features of Neoclassical Economics)

1. शब्द ''नियो-क्लासिकल'' (Neoclassical) मूल रूप से थोरस्टीन वेबलेन द्वारा 1900 में प्रस्तुत
2. ''मुख्यधारा के अर्थशास्त्र'' (Mainstream Economics) की स्थापना।
3. 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' (Political Economy) अंतत: 'अर्थशास्त्र' (Economics) के रूप में संस्थापित
4. संस्थागत अर्थशास्त्र (Institutional economics) का उदय
5. 'सीमांत' शब्द का उपयोग पहली बार जोहान एच वॉन थ्यूनेन द्वारा 1826 में
6. सीमांतवाद (Marginalism) का विचार पहली बार, अल्फ्रेड मार्शल द्वारा 1890

7. 1854 में, सीमांत उपयोगिता सिद्धांत (Marginal utility theory) और गोसेन के दो नियम–
   1. गोसेन का पहला नियम - ह्रासमान उपयोगिता नियम
   2. गोसेन का दूसरा नियम - सम-सीमान्त उपयोगिता नियम
8. सीमांत क्रांति ने एडम स्मिथ के ''हीरा-जल विरोधाभास'' का समाधान किया।
9. अर्थशास्त्र में गणितीय पद्धति (Mathematical method in economics) की शुरुआत (विलियम स्टेनली जेवोन्स)
10. मात्रात्मक उपयोगिता की अवधारणा का प्रारम्भ (डैनियल बर्नौली - कार्ल मेंजर)
11. पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) सर्वप्रथम परिभाषित (लियोन वालरा)
12. सामान्य संतुलन सिद्धांत (General equilibrium theory) (लियोन वालरा)
13. वितरण के नियम (Laws of Distribution) (फिलिप विकस्टीड)
14. मार्शल द्वारा मांग वक्र का निर्माण और मांग के नियम की व्याख्या
15. मार्शल और "लीमिंग जेनकिन द्वारा आपूर्ति और मांग मॉडल (Supply and Demand Model) का प्रारम्भ
16. आंशिक संतुलन की अवधारणा (Concept of partial equilibrium) (अल्फ्रेड मार्शल)
17. अर्थशास्त्र में अल्फ्रेड मार्शल द्वारा प्रतिपादित प्रमुख संकल्पनाएँ- (अन्य बातें समान रहने पर (C.P. Law), लोच का विश्लेषण, उपभोक्ता अधिशेष (बचत), प्रतिफल का नियम, वर्धमान प्रतिफल का नियम, ह्रासमान प्रतिफल का नियम, अल्पकाल और दीर्घकाल की अवधारणाएं, सीमांत उपयोगिता और संतुलन, आभासी लगान)
18. क्रमिक उपयोगिता की अवधारणा (पेरेटो)
19. अधिमान वक्रों को सचित्र रूप में पहली बार दर्शाया (पेरेटो)
20. Chamberlinian Monopolistic Competition theory
21. अर्थशास्त्री फ्रेडरिक वॉन वीसर द्वारा अवसर लागत सिद्धांत (Theory opportunity cost)
22. लाभ का अनिश्चितता सिद्धांत (Frank Knight)
23. व्यापार सृजन और व्यापार विपथन (जैकब वाइनर)
24. एकल घटकीय व्यापार शर्तें व द्वि-घटकीय व्यापार शर्तें (जैकब वाइनर)
25. सीमा संघ (जैकब वाइनर)

औद्योगिक क्रांति के कारण 1920 के दशक के निवेश में तीव्र उछाल आया जिससे फर्मों की पूंजी स्टॉक वांछित स्तर को पार कर गया। फर्मों को उतनी पूंजी की आवश्यकता नहीं थी जितनी लगा दी गई। इसके कारण फर्मों ने निवेश में कटौती प्रारम्भ कर दी 1929 के शेयर बाजार की गिरावट ने व्यावसायिक विश्वासों को झकझोर दिया, निवेश और भी अधिक गिरावट हुई। वास्तविक सकल निजी घरेलू निवेश 1929 और 1932 के बीच लगभग 80% गिर गया। 1929 की मंदी गहराती चली जा रही थी जिसने क्लासिकल और नव-क्लासिकल आर्थिक विचारों को गहरा आघात दिया। इसी मंदी ने केंसियन क्रांति (Keynesian Revolution) को जन्म दिया।

7. नव-मार्क्सवाद (Neo-Maxism or Neo-Marxian Economics) (1966-80): 1960 एवं 1970 के दशक में एक व्यापक राजनीतिक आंदोलन था- न्यू लेफ्ट (छमू स्मजि या नया वामपंथ)। आलोचनात्मक सिद्धांतकार हर्बर्ट मार्क्स (Herbert Marcuse, July 19, 1898– July 29, 1979) को ''नए वामपंथ के जनक'' के रूप में जाना जाता है। समाजशास्त्री सी राइट मिल्स (C. Wright Mills) द्वारा 1960 में लिखे गए एक खुले पत्र में 'न्यू लेफ्ट' शब्द का उपयोग किया गया था यहीं से इस शब्द को को लोकप्रियता मिली। इसी आंदोलन से नव-मार्क्सवाद भी निकला परन्तु अर्थशास्त्र में इसकी शुरुआत 1966 में Monopoly Capital: An Essay on the American Economic and Social Order (By the Marxian economists Paul Sweezy and Paul A. Baran) के प्रकाशन से मानी जा सकती है।

8. आधुनिक युग में व्यष्टि-अर्थशास्त्र:- 20वीं शताब्दी में व्यष्टि-अर्थशास्त्र का क्षेत्र और व्यापक हुआ, जिसमें पॉल समुएलसन, केनेथ एरो और जॉन हिक्स जैसे अर्थशास्त्रियों का योगदान रहा। खेल सिद्धांत (Game Theory), असममित सूचना

(Asymmetric Information), बाजार की अपूर्णताओं (Market Failures) और व्यवहारिक अर्थशास्त्र (Behavioral Economics) के अध्ययन ने विषय को अधिक प्रासंगिक और बहुमुखी बना दिया। नियो-क्लासिकल और नियो-केनेसियन विचारधाराओं के विकास ने इस क्षेत्र को विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान किया।

खेल सिद्धांत यानि गेम थ्योरी का औपचारिक विकास 1944 में जॉन वॉन न्यूमैन और ऑस्कर मॉर्गनस्टर्न द्वारा लिखी गई पुस्तक ''Theory of Games and Economic Behavior'' के साथ हुआ। इस पुस्तक में उन्होंने आर्थिक गतिविधियों को खेल के रूप में प्रस्तुत किया और इसे गणितीय ढांचे में रखा। 1950 में जॉन नैश ने गेम थ्योरी में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। नैश ने नेश इक्विलिब्रियम की अवधारणा विकसित की। 1994 में गेम थ्योरी में महत्वपूर्ण योगदान के लिए जॉन नैश, जॉन हैर्सानी, और रीन्हार्ड सेल्टन को अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1950 के दशक में गेम थ्योरी के एक और महत्वपूर्ण मॉडल प्रिजनर्स डिलेमा का विकास हुआ। अल्बर्ट टकर ने इसे समझने के लिए एक सरल उदाहरण के रूप में पेश किया। 1970 और 1980 के दशक में गेम थ्योरी का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से बढ़ा। 21वीं सदी में कंप्यूटर विज्ञान के साथ गेम थ्योरी का अधिक गहन तालमेल हुआ। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन लर्निंग में गेम थ्योरी का उपयोग करके जटिल निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं को समझा और विकसित किया जा रहा है। आज के दौर में गेम थ्योरी का उपयोग बड़े डेटा के विश्लेषण, डिजिटल प्लेटफार्मों, और नेटवर्क में किया जाता है, जहाँ सहयोग और प्रतिस्पर्धा दोनों महत्वपूर्ण होते हैं।

जोर्ज अकरलोफ, माइकल स्पेन्स, और जोसेफ स्टिग्लिट्ज के कार्यों से प्रेरित, असममित सूचना सिद्धांत उन स्थितियों का अध्ययन करता है जहाँ आर्थिक एजेंटों के पास एक समान जानकारी नहीं होती। इसके परिणामस्वरूप ''विकल्प का प्रतिकूल चयन'' (Adverse Selection) और ''नैतिक संकट'' (Moral Hazard) जैसी समस्याओं का जन्म होता है, जो बीमा, वित्त और श्रम बाजारों में व्यापक रूप से देखी जाती हैं। इस सिद्धांत ने आर्थिक नीति निर्धारण में सुधार के लिए नई संभावनाएं प्रदान की हैं।

व्यवहारिक अर्थशास्त्र का उदय रिचर्ड थेलर और डैनियल कानेमैन जैसे अर्थशास्त्रियों के कार्यों का परिणाम है, जिन्होंने दिखाया कि व्यक्ति अपने निर्णयों में तर्कसंगत (rational) नहीं होते। इस सिद्धांत के अनुसार, मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और भावनात्मक कारकों का अध्ययन किया जाता है। नीति निर्माण में इसका व्यापक प्रभाव देखा गया है, जहां ''नज'' (Nudge) थ्योरी जैसी अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष एवं उपसंहार

''व्यष्टि-अर्थशास्त्र'' का विकास एक लंबे ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें विभिन्न विचारधाराओं और सिद्धांतों का योगदान है। भारत में कौटिल्य का ''अर्थशास्त्र'' (चाणक्य नीति) और यूनान में अरस्तु जैसे दार्शनिकों के योगदान ने इस विषय को प्रारंभिक रूप से स्थापित किया। प्राचीन काल में, अर्थशास्त्र के विचार मुख्य रूप से व्यापार और विनिमय पर आधारित थे। मध्यकालीन युग में में यूरोपीय देशों में व्यापारिक अर्थशास्त्र या मार्केंटिलिज्म का विकास हुआ। व्यापारिक अर्थशास्त्र में धन और सोने-चांदी को अर्थव्यवस्था की प्रगति का मुख्य आधार माना गया। इस दौर की अवधारणा थी कि, राष्ट्र की समृद्धि उसकी आयात और निर्यात की क्षमता पर निर्भर करती है।

शास्त्रीय अर्थशास्त्र के संस्थापक एडम स्मिथ ने अपने ग्रंथ ''एन इंक्वायरी इनटू द नेचर एंड कॉजेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशंस'' में व्यक्तियों और बाजार की गतिविधियों का अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि कैसे व्यक्तियों का स्व-हितकारी व्यवहार (self-interest) और ''अदृश्य हाथ'' (invisible hand) बाजार को संतुलन में बनाए रखते हैं। एडम स्मिथ के विचारों ने व्यष्टि-अर्थशास्त्र की नींव रखी, जो आगे चलकर औद्योगिक क्रांति के समय उपयोगी सिद्ध हुआ।

19वीं शताब्दी में जेरेमी बेंथम और अन्य अर्थशास्त्रियों ने उपयोगिता सिद्धांत का विकास किया, जिसमें व्यक्तियों के निर्णयों को उनके द्वारा प्राप्त लाभ पर आधारित बताया गया। 1870 के दशक में ''सीमांत क्रांति'' (Marginal Revolution) ने व्यष्टि-अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विलियम स्टेनली जेवन्स, कार्ल मेंगर और लियोन वालरस जैसे अर्थशास्त्रियों ने सीमांत विश्लेषण और संतुलन (Equilibrium) के सिद्धांतों को प्रस्तुत किया। इस समय, उपयोगिता, मांग-आपूर्ति संतुलन और मूल्य निर्धारण जैसे विषयों पर गहराई से अध्ययन किया गया।

20वीं सदी में गेम थ्योरी का विकास एक महत्वपूर्ण शोध क्षेत्र बन गया। जॉन वॉन न्यूमैन, ऑस्कर मॉर्गनस्टर्न, जॉन नैश और अन्य विद्वानों के योगदान से यह सिद्धांत इतना प्रभावी बना कि इसे विभिन्न निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

असममित सूचना सिद्धांत (Asymmetric Information Theory) को अर्थशास्त्र में प्रमुख रूप से 1970 के दशक में जॉर्ज अकरलॉफ (George Akerlof), माइकल स्पेंस (Michael Spence), और जोसेफ स्टिगलिट्ज (Joseph Stiglitz) जैसे अर्थशास्त्रियों ने विकसित किया और इस पर विस्तृत शोध किया।

व्यवहारिक अर्थशास्त्र (Behavioral Economics) के सिद्धांतों ने व्यक्ति के निर्णयों में भावनाओं और तर्कहीनता को भी शामिल किया है, जो व्यष्टि-अर्थशास्त्र को और अधिक प्रासंगिक बनाता है। आज के सामाजिक और आर्थिक समस्याओं जैसे कि जलवायु परिवर्तन, असमानता, और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के लिए, व्यष्टि-अर्थशास्त्र के नए दृष्टिकोण अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। आधुनिक युग में व्यष्टि-अर्थशास्त्र का क्षेत्र बहुत विस्तृत और जटिल हो गया है। इसके सिद्धांत अब केवल आर्थिक लाभ या हानि तक सीमित नहीं हैं; बल्कि यह एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाकर समाज के व्यापक हित के लिए प्रभावी समाधान और नीति निर्माण में सहायक बन चुका है। आज के दौर में व्यष्टि-अर्थशास्त्र के सिद्धांतों का प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जा रहा है, जैसे कि स्वास्थ्य, पर्यावरण, डिजिटल बाजार और व्यवहारिक अर्थशास्त्र। नीति निर्माताओं के लिए माइक्रोइकॉनॉमिक्स एक ऐसा उपकरण बन गया है, जो उन्हें बेहतर नीति-निर्माण, सार्वजनिक कल्याण और बाजार में सुधार के लिए प्रभावी सुझाव प्रदान कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. Amemiya, Takeshi- Economy and Economics of Ancient Greece- Taylor & Francis, 7 May 2007
2. Aristotle, Politics Book I, Part X Archived 2011-06-29 at the Wayback Machine
3. Aristotle, Politics Book II, Part V Archived 2011-06-29 at the Wayback Machine
4. Chapra, Muhammad Umer (2014). Morality and Justice in Islamic Economics and Finance. Edward Elgar Publishing. pp. 62–63. ISBN 9781783475728
5. Chpt 1 Graeco-Roman Economics, History of Economic Analysis, Joseph Schumpeter, (1954)
6. Colander, David; The Death of Neoclassical Economics
7. Conversations of Socrates by Xenophon, edited by Robin H. Waterfield, Penguin Classics 1990 ISBN 0-14-044517-X
8. David Held, Models of Democracy (Polity, 2006) 3rd Ed., pp. 11
9. David Ricardo Archived 2006-05-02 at the Wayback Machine, Economic History Services Edwin Cannan (editor) Adam Smith – Lectures On Justice, Police, Revenue And Arms Kessinger Publishing, 30 Apr 2004 Retrieved 2012-05-16
10. Henry W. Speigel (1987). "Xenophon," The New Palgrave: A Dictionary of Economics, v. 4, pp. 935–36
11. Islamic and European Expansion: The Forging of a Global Order, Michael Adas, Temple University Press (Philadelphia, PA), 1993
12. I.W. Mabbett (1964). "The Date of the Arthasastra". Journal of the American Oriental Society. 84 (2): 162–169. doi:10.2307è597102. JSTOR 597102
13. Lovewell, Mark. "Advancing Economic Thought: Rise and Fall: Ibn Khaldun and the Effects of Taxation: Ibn Khaldun and his Influence". Wayback Machine. Archived from the original on 8 June 2003. Retrieved 9 April 2015. This article, which is a supplement to Understanding Economics (McGraw-Hill Ryerson, 1998), describes the early Arab historian Ibn Khaldun's views of taxation, and their parallels with the modern-day Laffer Curve
14. Menger, Carl (1871) GrundsDrtze der Volkswirtschaftslehre, full text in html Archived 2014-09-14 at the Wayback Machine
15. "Mercantilism," Laura LaHaye The Concise Encyclopedia of Economics (2008)
16. M. M. Austin; Vidal-Naquet, Pierre (1980). Economic and Social History of Ancient Greece. University of California Press. ISBN 9780520042674. Retrieved 11 April 2012
17. Murray N. Rothbard An Austrian Perspective on the History of Economic Thought, vol. 1, Economic Thought Before Adam Smith (1995) Archived 2014.09.14 at the Wayback Machine Ludwig von Mises Institute Retrieved 2012.05.16
18. Olivelle, Patrick (2013), King, Governance, and Law in Ancient India: Kau?ilya's Arthasastra, Oxford UK: Oxford University Press, pp. 66–69, ISBN 978-0199891825

19. Principles of Economics, by Alfred Marshall
20. Samuelson, Paul (1966). The collected scientific papers of Paul A.Samuelson. Cambridge, Mass: M.I.T. Press. ISBN 9780262190800
21. S.D. Chamola. Kautilya Arthshastra and the Science of Management: Relevance for the Contemporary Society. Hope India Publications. p. 48
22. Spengler, Joseph J, (April 1964). "Economic Thought of Islam: Ibn Khaldun", Comparative Studies in Society and History, Comparative Studies in Society and History vol 6 no. 3. 6 (3): 268–306. doi:10.1017/S0010417500002164. JSTOR 177577. S2CID 143498971
23. Stabile, Donald R, "Veblen and the Political Economy of the Engineer: the radical thinker and engineering leaders came to technocratic ideas at the same time", American Journal of Economics and Sociology (45:1) 1986, 43–44.
24. Strauss, Leo, Xenophon's Socratic Discourse: An Interpretation of the "Oeconomicus", Ithaca: Cornell University Press, 1970 ISBN 1-890318-96-5
25. "The Austrian School", New School. Archived from the original on 23 July 2011. Retrieved 23 March 2015
26. "The Engineers and the Price System" (PDF). Archived (PDF) from the original on 13 November 2012. Retrieved 29 March 2013
27. Toynbee, Arnold J. A Study of History. Vol. III. Royal Institute of International Affairs and Oxford University Press. p. 321. ASIN B000OF48G8
28. Veblen, Thorstein Bunde; "The Preconceptions of Economic Science" Pt III, iQuarterly Journal of Economics v14 (1900).
29. WILLIAMS, BROCK R. "AN ECOCONOMIST LOOKS AT XENOPHON'S ^OECONOMICUS.'" The Classical Outlook, vol. 85. no. 3, 2008, pp.102–105. JSTOR, www.jstor.org/stable/43939810.
30. Yun Lee Too. "Oeconomicus" The Classical Review, vol, 45, no. 2, 1995, pp.246–248. JSTOR, www.jstor.org/stableè712370
31. Xenophon, The Shorter Socratic Writings: "Apology of Socrates to the Jury", "Oeconomicus", and "Symposium," trans. and with interpretive essays by Robert C. Bartlett, with Thomas Pangle and Wayne Ambler, Ithaca: Cornell University Press, The Agora Editions, 1996 ISBN 0-8014-7298-9

समकालीन साहित्यः विविध विमर्श

डॉ० राजकुमार एस. नाईक

सह-प्राध्यापक, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड

साहित्य का उद्देश्य समाज की प्रगति है। वह रचनात्मकता के व्दारा समाज की कुरीतियाँ पाखण्डता और आडंबर जैसे स्थिति से अवगत कराकर नई दिशा की ओर ले जाता हैं। समकालीन हिंदी साहित्य अजीब स्थितियों से गुजर रहा हैं। पाठक, श्रोता और दर्शक की अभिरूचि भी समयानुसार बदल रही हैं। जगतीकरण, भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, आधुनिकता और उत्तराधुनिकता के इस संदर्भ में समाज अनेक विमर्शों का उगम हुआ है। जैसे नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श, वृद्ध विमर्श और किन्नर विमर्श आदि चर्चा के विषय बन गए हैं। उपरोक्त समाज घोर अन्याय का शिकार बनता जा रहा है। आज हम एक ऐसी दुनिया में जीने के लिए अभिशप्त हैं, जो मूलतः तनावों की दुनिया हैं, यहाँ विश्वास कम और चालबाजियाँ ज्यादा हैं। जन कल्याण के नाम पर पाखंडता तथा शोषण जारी है।

स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में सामाजिक तंथा सांस्कृतिक परिवेश में जो परिवर्तन हुआ हैं, उसका परिणाम स्वरूप नारी पारंपरिक बेडियों से बाहर आकर नये अस्तित्ववादी रूप को धारण कर अपनी पहचान बना चुकी हैं। सृजनात्मक साहित्य में समकालीन कविताएँ नारी संवेदना और चेतना को जागृत करने में सशक्त माध्यम बनी हैं।

भारतीय संविधान में अवधारणा, प्रेम-वात्सल्य, दया, ममता और माया की साकार मूर्ति के रूप में होता रहा हैं। भारतीय प्राचीन ग्रंथ मनुस्मृति में उल्लेख हैं- यत्र नार्यतु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः[1]

इसीलिए हिंदी साहित्य में नारी का आदिकाल से आधुनिक काल तक विविध रूपों में किया जाता रहा है- आदिकाल में वीरांगन के रूप में, भक्तिकाल में देवता या संगिनी के रूप में रीतिकाल में भोग-विलास की वस्तु के रूप में और आधुनिक काल में ममता, करूणा, वेदना और कई समस्याओं से घिरी हुई नारी के रूप में हुआ हैं।

समकालीन साहित्य में पुरूष साहित्यकारों की बराबरी में, महिला लेखिकाओं का योगदान साहित्य क्षेत्र में कम रहा है। इसका कारण पुरूष सत्तात्मक व्यवस्था ही है। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक कारण भी हैं। स्त्री को सदियों से अशिक्षित रखा गया है, उसे जुल्म सहने का आदि बनाया गया है। अंधविश्वासों से विश्वास कराके उसे परावलंबी जीवन बिताने के लिए मजबूर किया गया है।

वर्ममान समय में नारी ने अर्थ-अर्जन करने के लिए पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिला लिया है। वह चौका बर्तन से, बंद कमरे से, पुरूषों की कटपुतली से सचेत हो गई है। नारी चेतना एवं संवेदनाओं को लेकर समकालीन साहित्य में ममता कालिया, निर्मला अनामिका, कात्यायनी, कुसुम सुधा आरोडा, सुनिता जैन, सविता सिंह, रजत रानी और पुरूषों में रघुवीर सहाय, सफदर हाशमी, कमल कुमार, आदि आते है''।

समकालीन साहित्य अपनी अस्मिता, आत्म-सम्मान, पीडा-आक्रोश, समानता, अंधविश्वास, पाखंडता, धार्मिक आडंबर, जुल्म, बलात्कार आदि सामाजिक न्याय के लिए अपने साहित्य में संघर्षशील और विद्रोही चेतना के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है। नारी विमर्श पर यह पंक्ति सही लगती है।

"एक टहनी एकदिन, पतवार बनती है।
एक चिंगारी दहक अंगार बनती है।

जो सदा से रौंदी गई मिट्टी समजकर
एक दिन मिट्टी वही मीनार बनती हैं।"[2]

आम तोर पर नारी पढ़-लिखकर अर्थार्जन करके सबल तो हो गई है, परंतु उस पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार में कोई कमी नहीं आई। सफदर हाशमी नारी की समस्याओं को इस प्रकार बताते हैं।

''वह समाज जो न कर सके औरतों का सम्मान, जिस समाज में बसते हैं भैसे जैसे इंसान, जिस में माँ बहनों की इज्जत बिक जाती है। जहाँ नजर हर गुंडे की औरत पर टिक जाती है, जहाँ न ही औरत को सड़क पर चलने की आजादी, भूखी, नंगी बेघर है, वहाँ की हो आबादी।"[3]

सविता सिंह जी अपनी कविताओं में नारी के स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता की स्वतंत्र पहचान बताती है। उसे पुरूष नाम के सहारों की जरूरत नहीं है। उसका अपना अस्तित्व है। उसकी अपनी चेतना है। अपना गौरव है। इसलिए वह अपनी कविता ''माँ किसकी औरत हूँ" में लिखती है-

मैं किसी की औरत नहीं हुँ, मैं अपनी औरत हूँ।
जब जी चाहता है तब खाती, मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं है।"[4]

सुधा अरोड़ा जो स्त्री के बदलते स्वभाव का परिचय देती हुए कहती हैं- ''पहले स्त्री ममता और त्याग की या समर्पण की पुतली थी। आज वह बदल गई है। शोषण के खिलाफ लड़ने की ताकत उसमें आ गई है।" जिसका प्रमाण 'अकेली औरत' नामक कविता में हम देख सकते हैं-

'इक्कीसवीं सदी की औरत,
हाड़ मांस की नहीं रह जाती,
इस्पात में ढ़ल जाती है,
और समाज का सदियों पुराना
शोषण का इतिहास बदल डालती है।"[5]

ममता कालिया की कविताएँ महिला जीवन तथा संघर्षमय जीवन का दर्पन है। वह अपनी कविता-'बिकाऊ माल', खंटी घरेलू', 'अनमन मन' आदि कविताओं में नारी मन के समस्त जटिलताओं को प्रस्तुत किया है।

अनामिका का कहना है- ''स्त्री का अपना क्या है? स्त्री ही क्या है? स्त्री के देह के अतिरिक्त भी स्त्री का कोई अस्तित्व हैं? आज भी स्त्री एक अच्छे घर की तलाश में भटक रही है।" जिसका उदाहरण ''काव्यपरासर में नामक कविता में देख सकते हैं- राम देख यह तेरा कमरा है। यह मेरा? लड़कियाँ हवा धूप मिली होती है। उनका कोई घर नहीं होता।"

नारी के बिना हम समाज की कल्पना नहीं कर सकते। मुझे इस संदर्भ में नारी दिवस यह महत्वपूर्ण पंक्तियाँ सही लगती हैं-

नारी तुम प्रेम हो, आस्था हो, विश्वास हो।
टूटी हुई उम्मीदों की एकमात्र आस हो,
हर जान का तुम ही तो आस हो,

नफरत की दुनिया में, मात्र तुम ही प्यार हो, उठो अपने अस्तित्व को संभालो, केवल एक दिन नहीं, हर दिन नहीं, हर दिन नारी दिवस बनालो।

प्रज्ञा नामक कवयित्री नारी में चेतना एवं आत्मविश्वास भरती हुई' आज की नारी हूँ नामक कविता में कहती है-

आज की नारी हूँ नहीं में सीता
क्योंकि कोई नहीं है राम यहाँ बस रावण दिखता
हर बार अग्नि से गुजर कर भी, प्रश्न सभी मुझ पर आते है
देवी कहते हैं और अंगुलिया मुझ पर ही उठाते हैं।

कात्यायनी का कहना है- सामाजिक आदर्श, मूल्यों तथा नैतिकता की दुर्ग रूपी बेडियों में कैद स्त्री सदियों से तड़पती और मुक्ति की आकांक्षा पाने के लिए तड़पती है। एक दिन अवश्य आएगा वह दुर्ग धराशाई हो जाएगा। इसलिए कात्यायनी लिखती है-

''शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, मैं थक चुकी हूँ दुर्गपति।
तुम्हारे अदृश्य दीवारों से टकराकर मेरा सिर लहूलुहान हो रहा है।
मैं निढ़ाल हो चुकी हूँ।
यह दीवार कहीं तक फैली हुई है दुर्गपति।
कहाँ हैं वह निकालने का द्वारा।"

मृदुला गर्ग स्त्री के मन में धैर्य भरती है। स्त्री को कभी भी शारीरिक के साथ-साथ मानसिक दृढ़ता, हिम्मत एवं हताश न होकर दिल-दिमाग और शरीर से आत्मरक्षा करना जरूरी है। इसलिए वह स्त्रियों में प्रेरणा प्रदान करती है। वह 'नागपाश में स्त्री' नामक कविता में कहती है।

जिजिविषा का परचम ऊंचा लहराना होगा हर बेटी जन्म लेगी बराबरी का अधिकार दिलाना होगा,

बेटी की खाई तोड़ समता का मूलक दिखाना होगा।
सदियों की सोच जुल्मों की, मानवता से बदलना होगा।"[6]

सुशीला टाकभोरे स्वयं दलित लेखिका हैं। वह अपनी कविता 'स्वाति बून्द खारे मोती', 'टूटता अहम आदि में दलित नारी की पीड़ा, व्यथा, शोषण, अन्याय, अन्धविश्वास, पढ़ी लिखी नारी की घुटन, छुआछूत आदि ज्वलंत समस्याएँ दलित नारी को शिक्षित बनने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

कुसुम मेघवाल अपनी कविता में पुरूष-प्रधान समाज को लेकर लिखती हैं। इस पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था, में करना पड़ता है केवल तुम्हें।

अपनी प्रकृति दत्त, उन इच्छाओं का दमन
कैसे रोके रहती हो नारी तुम अपने को
और कैसे सहन करती हो तुम अपनी पीड़ा को।"

रश्मि मल्होत्रा 'युग-धर्म नामक कविता में पुरूष वर्ग की मानसिकता के माध्यम से नारी मन की व्यथा का चित्रण किया हैं-

''बरसों से चिंगारियों में दब ढ़की नकारे जाने की मनो व्यथा को,
नारी मन ढ़ोता रहा, युग-युग से, अपने को मन में दबाए।
हर युग में समानता पाने को, पुरूष की संपूर्ण शक्ति आडी आती रही।"[7]

आदिवासी समाज की अशिक्षित नारियों की घुटन, पीड़ा शहरों की ओर पलायन, शोषन आदि को लेकर निर्मला पुतुल और रजत रानी कवयित्रियों ने अपना कलम चलाया है।

निर्मला पुतुल आदिवासी बहनों को सचेत करते हुए शहरी जीवन की धोखे बाजी का चित्रण करते हुए लिखती है-

''अब तो जान गई कि, दूर से चम-चमाता हुआ शहर दिल्ली।
नहीं है हम जैसे लोगों के लिए, तुम्हें ऐसा नहीं लगता माया।
यह ऐसा शमशान है, जहाँ जिंदा दकन होने के लिए भी।
लेग लाइन में खड़े हैं? तुम उस लाइन को तोड़कर बाहर आ जाओ
लाटै आओ जहाँ भी हो।"[8]

निर्मला पुतुल के अनुसार- ''प्रजातंत्र किस चिड़िया का नाम है। सरकार द्वारा घोषित योजनाएँ आदिवासियों तक नहीं पहुंच पाती।" नगाड़ों की तरह बजते शब्द नामक कविता में वह लिखती है-

''इंदिरा आवास के लिए बहुत भाग-दौड़ की, पंचायत सेवक को मुर्गो
भी दे दिया।
प्रधान को भी दिया पचास टका,
पर अभी तक कुछ नहीं हुआ। पूरा ढेघ्ड साल हो गया।''[9]

रजतरानी अपनी कविता 'शहर से बाहर' में जंगल शहर तक दीनदलित आदिवासी नारी की यात्रा के बारे में वह कहती है-

गोबर तपति झाड़ू लगाती
राशियों पर चक्करें, तमाशा दिखाती
भीख मांगती यह औरतों फिर भी लड़ती है।''

सपना मांगलिक और नीलम शर्मा किन्नर के जीवन को लेकर लिखती हैं। उनका कहना है किन्नर बच्चों को अपने असली माँ-बाप तक का पता नहीं होता। सपना मंगलिक का कहना है-

''कहते है विकलांग उसे, जिनका अंग-भंग हो जाता।
मिलता यह दर्जा मुझको तो, क्या मैं स्वांग रचाता।
लिंग वृति क्या दोष माँ मेरा काहे फिर तू रूठी।
फेंक दिया दल-दल में लाकर ममता मेरी झूठी।''[10]

नीलम वर्मा कहती है, भगवान ने किन्नरों के साथ बड़ा अन्याय किया है। दिल में ममता, वात्सल्य तो है लेकिन संतान को जन्म देने की काबिल ईश्वर ने उन्हें नहीं बनाया इसीलिए वह लिखती है-

''मैं नर हूँ नारी हूँ।
नहीं माँ किसी की और न बाप हूँ।
हूँ ईश्वर की एक विकृत रचना,
या खुद के लिए एक शॉप हूँ।''[11]

वैभव गुप्ताजी नारी शक्ति के मान सम्मान, आत्मरक्षा शोषण, अन्याय और गौरव को लेकर अपनी एक कविता में वह लिखते हैं-

''मैं स्त्री हूँ, मैं काली हूँ, फुलवारी हूँ।
मैं दर्शन हूँ दर्पण हूँ, मैं गर्जन हूँ,
मैं बेटी हूँ, मैं बलिदान की गाथा हूँ
मैं श्रीमद् भगवत गीता हूँ, मैं द्रौपदी हूँ मैं सीता हूँ।

पुरूषों की इस दूनिया में मुझे कैसी नियती दिखलाई, कभी जुए में हार गई, कभी अग्नि परीक्षा दिलवाई कलयुग हो या सतयुग हो, इल्जाम मुझी पर आता है। क्यों घनी अंधेरी सड़को पर चलने को मन घबराता है। और इस एहसास से बढ़कर कोई दर्द नहीं को सकता है। जो नारी का अपमान करे, वह मर्द नहीं हो सकता है। जब सजा मौत की लागू होगी, सारे दोषी लड़कों पर, फिर कोई नहीं मिलेगी खून से लथ-पथ सड़कों पर।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में हर किसी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। संसार में यदि सभी का गौरव नहीं होता तो, सभ्यता एवं संस्कृति कतई न होती। अपने विविध रूपों में इन सभी ने समाज के संवर्धन को प्रोत्साहन और शक्ति दी है। इसलिए कहा जाता है कि कण-कण ही कणज है। अत: समाज का दायित्व बनता है कि हर वर्ग को समान अधिकार एवं मान सम्मान देकर मनुकुल को संवारे।

संदर्भ ग्रंथ-

1. मनुस्मृति अध्याय- 3 श्लोक- 56-60
2. ओम प्रकाश वाल्मीकि- दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.सं. 84
3. सफदर हश्मी- सफदर हाश्मी का जीवन व्यक्तित्व, पृ.सं. 104
4. सविता सिंह- समकालीन साहित्य में स्त्री संवेदना, पृ.सं. 413
5. सुधा अरोड़ा- अकेली औरत कविता- भारतीय साहित्य विविध विमर्श, पृ.सं. 320
6. मृदुला गर्ग- 'नागपाशा में स्त्री- वाक पत्रिका, पृ.सं. 04
7. रश्मी मल्होत्रा- युगधर्म कविता- पृ.सं.
8. निर्मल पुतुल- अपने घर की तलाश में- पृ.सं. 31
9. निर्मला पुतुल- नगाडे की तरह बजते शब्द- पृ.सं. 43
10. सपना मांगलिक- समकालीन कविताओं में किन्नर विमर्श
11. नीलम वर्मा- अंतर्राष्ट्रीय संगोष्टी क.वि.वि., धारवाड, पृ.सं. 406

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की दशा एवं भावी संभावनायें: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० श्याम कुमार मधुकर

सहायक प्राध्यापक एवं विभागसध्यक्ष वाणिज्य, शासकीय टीसीएल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जांजगीर, छत्तीसगढ़

सारांश

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग (एमएसएमई) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह अध्ययन भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की वर्तमान स्थिति, चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। एमएसएमई क्षेत्र न केवल रोजगार के अवसर प्रदान करता है, बल्कि यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के सामाजिक और आर्थिक विकास को गति भी देता है। वर्तमान समय में, इन उद्योगों को तकनीकी ज्ञान की कमी, वित्तीय सहायता की अपर्याप्तता, प्रतिस्पर्धा, और कच्चे माल की अनुपलब्धता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। डिजिटल इंडिया और मेक इन इंडिया जैसे सरकारी अभियानों ने इस क्षेत्र को बढ़ावा देने की कोशिश की है, लेकिन कई बाधाएं अभी भी बनी हुई हैं। अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि नवाचार, डिजिटल तकनीकों का उपयोग, वित्तीय समावेशन, और नीतिगत सुधार इन उद्योगों को और सशक्त बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रशिक्षण और कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमियों को समर्थ बनाना आवश्यक है। निर्यात क्षमता बढ़ाने के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजार तक पहुंच और गुणवत्ता मानकों में सुधार की आवश्यकता है। अंततः, यह अध्ययन यह संकेत देता है कि लघु एवं कुटीर उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं और इन्हें सशक्त करने के लिए सरकार और निजी क्षेत्र को सामूहिक प्रयास करने होंगे।

(मुख्याशब्दः लघु एवं कुटीर उद्योग, एमएसएमई, रोजगार, आर्थिक विकास, डिजिटल तकनीक, नीतिगत सुधार, नवाचार, निर्यात क्षमता, वित्तीय समावेशन, भारत)

प्रस्तावना (Introduction)

लघु एवं कुटीर उद्योग (Micro, Small, and Cottage Industries) भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य आधारों में से एक हैं। ये उद्योग न केवल रोजगार सृजन में योगदान देते हैं, बल्कि स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक और सामाजिक विकास को भी गति प्रदान करते हैं। भारत जैसे विकासशील देश में, जहां जनसंख्या का बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है, वहाँ लघु और कुटीर उद्योग ग्रामीण रोजगार और आजीविका का एक प्रमुख स्रोत हैं।

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका को न केवल अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से बल्कि समाज के संतुलित और समावेशी विकास के लिए भी देखा जाता है। ये उद्योग स्थिरता, पर्यावरण-अनुकूल उत्पादन, और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में सहायक होते हैं। (स्रोतः 'लघु उद्योग और भारतीय अर्थव्यवस्था', पृष्ठ 23)।

लघु एवं कुटीर उद्योगों की परिभाषा और महत्त्व

लघु एवं कुटीर उद्योग की परिभाषा विभिन्न मानकों जैसे निवेश, उत्पादन क्षमता और कार्यबल के आधार पर की जाती है। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) और सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSME) के अनुसार, लघु उद्योग वे उद्योग हैं, जिनका निवेश पूंजीगत उपकरणों में एक निश्चित सीमा के भीतर होता है।

कुटीर उद्योग, आमतौर पर पारिवारिक इकाइयों द्वारा संचालित होते हैं और इनमें पारंपरिक ज्ञान और कौशल का उपयोग होता है। इनका मुख्य उद्देश्य स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते हुए उत्पादन करना और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना होता है।

महत्त्व:

1. **रोजगार सृजन:** लघु एवं कुटीर उद्योग भारत में कृषि के बाद सबसे अधिक रोजगार प्रदान करते हैं। विशेष रूप से, यह ऐसे क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराते हैं, जहाँ बड़े उद्योगों की पहुंच नहीं है। (स्रोत: 'भारतीय उद्योग संरचना', पृष्ठ 45)।
2. **ग्रामीण विकास:** ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग न केवल रोजगार देते हैं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सशक्त बनाते हैं।
3. **विदेशी मुद्रा अर्जन:** कई कुटीर उत्पाद, जैसे हस्तशिल्प, कालीन, और अन्य कलात्मक वस्तुएँ, वैश्विक स्तर पर मांग में हैं और विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं।
4. समाज की संतुलित संरचना: यह क्षेत्र असमान आर्थिक विकास को कम करने में सहायक होता है, जिससे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच का अंतर घटता है।

शोध के उद्देश्य और क्षेत्र

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करना और इनके विकास के लिए संभावित अवसरों की पहचान करना है। इसके अलावा, यह अध्ययन उन चुनौतियों पर भी प्रकाश डालता है, जो इस क्षेत्र के विकास में बाधक हैं। शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **वर्तमान स्थिति का विश्लेषण:** लघु एवं कुटीर उद्योगों की वर्तमान आर्थिक और सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना।
2. **चुनौतियों की पहचान:** वित्तीय, तकनीकी और प्रशासनिक चुनौतियों को उजागर करना।
3. **सरकारी नीतियों का प्रभाव:** मौजूदा सरकारी योजनाओं और नीतियों का मूल्यांकन और उनकी प्रभावशीलता की जाँच करना।
4. **भविष्य की संभावनाओं का मूल्यांकन:** तकनीकी नवाचार, निर्यात के अवसर, और क्षेत्रीय विकास के माध्यम से इन उद्योगों को सशक्त बनाने के उपाय सुझाना।

शोध का क्षेत्र मुख्यत: ग्रामीण और शहरी दोनों प्रकार के लघु एवं कुटीर उद्योगों को कवर करता है। इसके अंतर्गत कुटीर हस्तशिल्प, लघु निर्माण इकाइयाँ, ग्रामीण आधारित उद्योग, और सेवा आधारित एमएसएमई इकाइयाँ शामिल हैं। अध्ययन का भूगोलिक क्षेत्र पूरे भारत को कवर करता है, जिसमें उत्तर भारत की काशी सिल्क, दक्षिण भारत की कोयंबटूर हैंडलूम, और पूर्वोत्तर भारत के बांस हस्तशिल्प जैसे प्रमुख केंद्र शामिल हैं। (स्रोत: 'भारतीय कुटीर उद्योग: समस्याएँ और समाधान', पृष्ठ 67)।

इस प्रस्तावना में विषय का परिचय देते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों की परिभाषा, उनके महत्व, और शोध के उद्देश्य स्पष्ट किए गए हैं। यह अध्ययन इस क्षेत्र की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण कर, इसे सशक्त बनाने के लिए आवश्यक सुधारों और नीतियों पर केंद्रित है। लघु एवं कुटीर उद्योग भारत की आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने में एक प्रमुख साधन साबित हो सकते हैं।

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Perspective of MSMEs in India)

प्राचीन समय में कुटीर उद्योग

भारत में कुटीर उद्योगों का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है, जब ये उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थे। वैदिक काल से लेकर मौर्य और गुप्त साम्राज्य तक, कुटीर उद्योगों का उल्लेख मिलता है। इन उद्योगों में बुनाई, कपड़ा निर्माण, हस्तशिल्प, धातु-कला, और बांस के उत्पाद शामिल थे।

कुटीर उद्योग उस समय आत्मनिर्भरता और सामुदायिक विकास का प्रतीक थे। हर गाँव में विभिन्न प्रकार की कुटीर उद्योग इकाइयाँ होती थीं, जो स्थानीय स्तर पर रोजगार प्रदान करती थीं। उस समय हस्तनिर्मित वस्त्र (जैसे बुनाई से निर्मित कपड़े), मिट्टी

के बर्तन, और लकड़ी के शिल्प वैश्विक व्यापार का भी हिस्सा थे। भारतीय कुटीर उद्योगों का सिल्क रोड के माध्यम से पश्चिमी देशों तक पहुंच थी।

उदाहरण: बनारस का रेशम और चंदेरी की साड़ियाँ प्राचीन समय से विश्व प्रसिद्ध हैं। (स्रोत: 'भारतीय हस्तशिल्प का इतिहास', पृष्ठ 32)।

स्वतंत्रता के बाद एमएसएमई का विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने औद्योगिक विकास के लिए योजनाबद्ध दृष्टिकोण अपनाया। पहले पंचवर्षीय योजना (1951-1956) में लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्राथमिकता दी गई। इसका उद्देश्य न केवल रोजगार सृजन था, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक असमानता को भी कम करना था।

1956 की औद्योगिक नीति में लघु उद्योगों के लिए वित्तीय सहायता और तकनीकी सहयोग की आवश्यकता को रेखांकित किया गया। इस दिशा में खादी ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) और लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO) की स्थापना की गई। इन संस्थाओं ने कुटीर और लघु उद्योगों को संगठित करने और उन्हें आधुनिकता के साथ जोड़ने का प्रयास किया।

1960 और 1970 के दशकों में, सरकार ने छोटे उद्योगों को बड़े उद्योगों से अलग पहचान देने के लिए विशेष सब्सिडी और कर छूट प्रदान की। उदाहरण: भारत के हरित क्रांति काल में कृषि उपकरणों का निर्माण करने वाले छोटे उद्योगों ने ग्रामीण विकास में योगदान दिया। (स्रोत: 'भारत में औद्योगिक विकास', पृष्ठ 45)।

औद्योगिकीकरण और लघु उद्योग

1980 और 1990 के दशकों में, भारत ने औद्योगिकीकरण और आर्थिक उदारीकरण का दौर देखा। इसने लघु और कुटीर उद्योगों के सामने नई चुनौतियाँ और अवसर प्रस्तुत किए। आर्थिक उदारीकरण के कारण अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा बढ़ी, जिससे लघु उद्योगों को अपनी उत्पादन गुणवत्ता और दक्षता में सुधार करने की आवश्यकता पड़ी।

औद्योगिकीकरण के इस दौर में, कुटीर उद्योग जैसे हस्तशिल्प और पारंपरिक कलाओं को संरक्षण देने के लिए हस्तशिल्प विकास निगम और निर्यात संवर्धन परिषद की स्थापना की गई। इसके अलावा, एमएसएमई के तहत सेवा क्षेत्र का उदय हुआ। छोटे पैमाने पर आईटी और सेवाओं से जुड़ी गतिविधियाँ ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में तेजी से विकसित हुईं।

महत्वपूर्ण कदम:

- 1999 में प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY) की शुरुआत।
- 2006 में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम (MSMED Act) लागू हुआ। यह अधिनियम एमएसएमई को औपचारिक पहचान देने और उनकी वृद्धि में सहायक रहा। (स्रोत: 'एमएसएमई का विधिक परिप्रेक्ष्य', पृष्ठ 78)।

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य दर्शाता है कि यह क्षेत्र न केवल देश की सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा है, बल्कि इसकी आर्थिक प्रगति का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। प्राचीन काल से आधुनिक युग तक, इन उद्योगों ने विभिन्न रूपों में विकास किया है। स्वतंत्रता के बाद इन्हें संगठित करने और उनकी क्षमता को बढ़ाने के लिए सरकारी और निजी क्षेत्र के संयुक्त प्रयासों ने इन्हें स्थायित्व और विकास की ओर अग्रसर किया है।

वर्तमान स्थिति (Current Scenario)

भारतीय अर्थव्यवस्था में एमएसएमई का योगदान

भारत में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (एमएसएमई) क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ के रूप में कार्य करता है। इस क्षेत्र का योगदान देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में लगभग 30% है। एमएसएमई न केवल देश की आर्थिक वृद्धि में सहायक हैं, बल्कि निर्यात के क्षेत्र में भी इनकी 48% की भागीदारी है।

एमएसएमई सेक्टर का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि यह ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव डालता है। यह क्षेत्र कृषि के बाद सबसे अधिक रोजगार प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, यह क्षेत्र भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए ष्मेक इन इंडियाष और ष्आत्मनिर्भर भारतष जैसे अभियानों के तहत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। (स्रोत: 'एमएसएमई: भारतीय अर्थव्यवस्था का इंजन', पृष्ठ 54)।

रोजगार सृजन और सामाजिक प्रभाव

एमएसएमई न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है, बल्कि यह रोजगार सृजन के माध्यम से सामाजिक संतुलन बनाए रखने में भी सहायक है।

- **रोजगार सृजन:** एमएसएमई क्षेत्र में लगभग 11 करोड़ से अधिक लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला हुआ है। यह विशेष रूप से ऐसे क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराता है जहाँ बड़े उद्योगों की पहुंच सीमित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह क्षेत्र हस्तशिल्प, खादी, और कुटीर उद्योगों के माध्यम से जीवनयापन का एक प्रमुख स्रोत है।
- **महिला सशक्तिकरण:** एमएसएमई क्षेत्र महिलाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता के माध्यम से सशक्त बनाने में सहायक है। कई महिला उद्यमी इस क्षेत्र में कपड़ा, खाद्य प्रसंस्करण, और सेवा उद्योग में सक्रिय हैं।
- **सामाजिक संतुलन:** एमएसएमई ग्रामीण-शहरी अंतर को कम करने में सहायक है। यह स्थानीय स्तर पर उत्पादों और सेवाओं का निर्माण कर समुदायों को आत्मनिर्भर बनाता है। (स्रोत: 'भारत में लघु उद्योग: रोजगार और सशक्तिकरण', पृष्ठ 76)।

मुख्य उत्पाद और सेवाएँ

एमएसएमई क्षेत्र व्यापक उत्पाद और सेवाओं का उत्पादन करता है, जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मांग में हैं।

1. **हस्तशिल्प और खादी:** भारत के हस्तशिल्प उत्पाद जैसे कालीन, लकड़ी के फर्नीचर, धातु की मूर्तियाँ, और पारंपरिक वस्त्र विश्व स्तर पर प्रसिद्ध हैं। खादी और ग्रामोद्योग उत्पाद पर्यावरण-अनुकूल और पारंपरिक शिल्प के प्रतीक हैं।
2. **खाद्य प्रसंस्करण:** लघु उद्योग क्षेत्र में पैकेजिंग, जैम, अचार, और अन्य खाद्य उत्पादों का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक प्रमुख उद्योग है।
3. **तकनीकी सेवाएँ:** एमएसएमई का सेवा क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है, जिसमें आईटी सेवाएँ, डिजिटल मार्केटिंग, और तकनीकी समाधान शामिल हैं।
4. **खुदरा और निर्माण:** छोटे पैमाने पर निर्माण इकाइयाँ जैसे प्लास्टिक, खिलौने, और घरेलू उपकरण भी इस क्षेत्र के मुख्य उत्पादों में से हैं। (स्रोत: 'एमएसएमई उत्पाद और सेवाएँ', पृष्ठ 92)।

सांख्यिकी और डेटा (आंकड़े प्रस्तुत करना)

- एमएसएमई का कुल संख्या: 6.3 करोड़
- सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में योगदान: 30%
- रोजगार प्रदान करने वाले व्यक्ति: 11 करोड़
- भारतीय निर्यात में योगदान: 48%
- महिला उद्यमियों की भागीदारी: 20%
- ग्रामीण एमएसएमई इकाइयों का हिस्सा: 51% (स्रोत: 'एमएसएमई का आर्थिक योगदान', पृष्ठ 102)।

वर्तमान समय में एमएसएमई भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में एक मजबूत स्तंभ है। यह न केवल रोजगार सृजन और सामाजिक उत्थान में सहायक है, बल्कि आत्मनिर्भर भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके मुख्य उत्पाद और सेवाएँ देश की सांस्कृतिक और आर्थिक धरोहर को संरक्षित करते हुए वैश्विक मंच पर भारतीय पहचान को मजबूत बनाते हैं।

चुनौतियाँ (Challenges)

वित्तीय समस्याएँ

लघु और कुटीर उद्योगों (एमएसएमई) के समक्ष वित्तीय समस्याएँ सबसे बड़ी बाधा हैं। इन उद्योगों के पास अक्सर पर्याप्त पूंजी नहीं होती, जिससे उन्हें अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने और आधुनिक तकनीकों को अपनाने में कठिनाई होती है।

1. बैंक ऋण की कठिनाई: एमएसएमई क्षेत्र को बैंक और वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में समस्याएँ होती हैं। अधिकांश बैंक इन उद्योगों को उच्च जोखिम के रूप में देखते हैं और उनकी क्रेडिट आवश्यकताओं को पूरा करने में हिचकिचाते हैं।
2. ऊँची ब्याज दरें: बैंक ऋण उपलब्ध होने पर भी उच्च ब्याज दरें एमएसएमई उद्यमियों के लिए एक बड़ी चुनौती हैं। यह उनकी लागत को बढ़ाती है और प्रतिस्पर्धा में बने रहना मुश्किल हो जाता है।
3. वित्तीय जागरूकता की कमी: ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के उद्यमियों में वित्तीय प्रबंधन और योजनाओं की जानकारी की कमी है, जिससे वे सरकारी योजनाओं और सब्सिडी का पूरा लाभ नहीं उठा पाते। (स्रोत: 'एमएसएमई की वित्तीय स्थिति', पृष्ठ 34)।

तकनीकी ज्ञान की कमी

तकनीकी नवाचार और स्वचालन की दिशा में बढ़ते वैश्विक कदमों के बावजूद एमएसएमई क्षेत्र में तकनीकी ज्ञान और कौशल की कमी एक बड़ी समस्या बनी हुई है।

1. **पुरानी उत्पादन विधियाँ:** अधिकांश कुटीर और लघु उद्योग अब भी पारंपरिक उत्पादन तकनीकों पर निर्भर हैं। यह उनकी उत्पादकता और उत्पाद की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।
2. **तकनीकी प्रशिक्षण का अभाव:** उद्यमियों और कर्मचारियों के लिए तकनीकी प्रशिक्षण की अनुपलब्धता इन उद्योगों को नवाचार अपनाने से रोकती है।
3. **डिजिटल टेक्नोलॉजी का सीमित उपयोग:** ई-कॉमर्स और डिजिटल मार्केटिंग के युग में, एमएसएमई अभी तक डिजिटल तकनीकों का पूरी तरह उपयोग करने में सक्षम नहीं हैं। (स्रोत: 'तकनीकी ज्ञान और एमएसएमई', पृष्ठ 46)।

वैश्विक प्रतिस्पर्धा

एमएसएमई क्षेत्र को वैश्विक बाजार में बड़ी कंपनियों और सस्ते आयातित उत्पादों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

1. **गुणवत्ता मानकों की कमी:** भारतीय लघु उद्योग कई बार वैश्विक गुणवत्ता मानकों को पूरा करने में असमर्थ रहते हैं, जिससे उनके उत्पाद अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते।
2. **कम उत्पादन क्षमता:** लघु उद्योग बड़े पैमाने पर उत्पादन में सक्षम नहीं होते, जिससे उनके उत्पादों की लागत बढ़ जाती है और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में टिक पाना मुश्किल होता है।
3. **विदेशी ब्रांडों का दबदबा:** अंतरराष्ट्रीय ब्रांडों की मजबूत मार्केटिंग और उनकी कीमत-प्रतिस्पर्धा ने स्थानीय एमएसएमई उत्पादों की मांग को प्रभावित किया है।(स्रोत: 'वैश्विक बाजार में एमएसएमई की चुनौतियाँ', पृष्ठ 58)।

बुनियादी ढाँचे की कमी

एमएसएमई क्षेत्र को संचालित करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढाँचे की कमी उनकी उत्पादकता और विकास में बाधा डालती है।

1. **ऊर्जा की उपलब्धता:** कई ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की अनियमित आपूर्ति उत्पादन प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है।
2. **परिवहन सुविधाएँ:** सुदूर क्षेत्रों में स्थित कुटीर उद्योगों को परिवहन की कमी के कारण अपने उत्पादों को बाजार तक पहुँचाने में कठिनाई होती है।
3. **लॉजिस्टिक्स और गोदाम सुविधाओं का अभाव:** एमएसएमई के पास अपने उत्पादों को संग्रहीत करने और समय पर आपूर्ति के लिए उचित लॉजिस्टिक सेवाएँ नहीं होतीं। (स्रोत: 'एमएसएमई का बुनियादी ढाँचा', पृष्ठ 64)।

विपणन और वितरण की समस्याएँ

एमएसएमई के पास अपने उत्पादों को बाजार में पहुँचाने और प्रतिस्पर्धी स्तर पर बनाए रखने के लिए पर्याप्त विपणन और वितरण तंत्र नहीं होता।

1. **ब्रांडिंग की कमी:** अधिकांश लघु उद्योग अपने उत्पादों के लिए ब्रांड पहचान बनाने में असमर्थ होते हैं, जिससे वे बड़ी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते।
2. **बिचौलियों पर निर्भरता:** कई बार एमएसएमई बिचौलियों पर निर्भर रहते हैं, जो उनके उत्पादों को उचित कीमत पर बाजार तक पहुँचाने में विफल रहते हैं।
3. **डिजिटल मार्केटिंग का सीमित उपयोग:** वैश्विक ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म पर पहुँच के अभाव में ये उद्योग आधुनिक बाजार की माँगों को पूरा नहीं कर पाते। (स्रोत: 'विपणन और एमएसएमई', पृष्ठ 72)।

भारतीय एमएसएमई क्षेत्र को वर्तमान में वित्तीय बाधाओं, तकनीकी पिछड़ेपन, वैश्विक प्रतिस्पर्धा, बुनियादी ढाँचे की कमी, और विपणन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए वित्तीय सहायता, तकनीकी उन्नति, बुनियादी ढाँचे का विकास, और प्रभावी विपणन रणनीतियों की आवश्यकता है।

सरकारी नीतियाँ और योजनाएँ (Government Policies and Schemes)

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग (एमएसएमई) के विकास और प्रोत्साहन के लिए सरकार ने विभिन्न नीतियाँ और योजनाएँ लागू की हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य रोजगार सृजन, आर्थिक विकास को गति देना, और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना है।

मेक इन इंडिया (Make in India)

मेक इन इंडिया अभियान की शुरुआत 2014 में हुई थी। इसका उद्देश्य भारत को वैश्विक विनिर्माण केंद्र बनाना और निवेश को आकर्षित करना था। यह योजना एमएसएमई क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि इसमें स्थानीय विनिर्माण को बढ़ावा दिया गया और छोटे उद्यमियों को सरकारी प्रोत्साहन दिया गया।

- उद्देश्य: 25 प्रमुख क्षेत्रों, जैसे ऑटोमोबाइल, टेक्सटाइल, और इलेक्ट्रॉनिक्स में लघु उद्योगों के लिए अनुकूल वातावरण बनाना।
- प्रभाव: मेक इन इंडिया ने एमएसएमई को आधुनिक तकनीकों और निवेश तक पहुँच दिलाई, जिससे निर्यात क्षमता में वृद्धि हुई। (स्रोत: 'मेक इन इंडिया: औद्योगिक विकास', पृष्ठ 28)।

स्टार्टअप इंडिया (Startup India)

स्टार्टअप इंडिया योजना 2016 में शुरू की गई, जिसका मुख्य उद्देश्य नवाचार और स्टार्टअप उद्यमिता को प्रोत्साहित करना था। यह योजना एमएसएमई क्षेत्र में नई सोच और नवाचार को बढ़ावा देने में सहायक रही है।

मुख्य विशेषताएँ:

1. नई स्टार्टअप कंपनियों को तीन साल तक कर में छूट।
2. ऑनलाइन सिंगल-विंडो क्लीयरेंस।
3. नवाचार और अनुसंधान के लिए वित्तीय सहायता।

सफलता: स्टार्टअप इंडिया ने एमएसएमई क्षेत्र में 50,000 से अधिक स्टार्टअप्स को समर्थन प्रदान किया है, जिनमें से कई ने वैश्विक स्तर पर सफलता प्राप्त की है। (स्रोत: 'स्टार्टअप इंडिया और नवाचार', पृष्ठ 42)।

मुद्रा योजना (MUDRA Scheme)

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY) की शुरुआत 2015 में हुई। इसका उद्देश्य सूक्ष्म और लघु उद्यमों को बिना गारंटी के ऋण प्रदान करना था। यह योजना मुख्य रूप से उन उद्यमियों के लिए थी, जो पारंपरिक वित्तीय प्रणाली से बाहर हैं।

मुख्य श्रेणियाँ:

1. शिशु (रू. 50,000 तक का ऋण)।
2. किशोर (रू. 50,000-रू. 5 लाख तक का ऋण)।
3. तरुण (रू. 5 लाख-रू. 10 लाख तक का ऋण)।

प्रभाव:

मुद्रा योजना के तहत 2023 तक रू. 18 लाख करोड़ से अधिक का ऋण प्रदान किया गया है। इससे 12 करोड़ से अधिक छोटे उद्यमियों को लाभ हुआ है। (स्रोत: 'मुद्रा योजना: वित्तीय समावेशन', पृष्ठ 56)।

आत्मनिर्भर भारत (Aatmanirbhar Bharat)

आत्मनिर्भर भारत अभियान की शुरुआत 2020 में कोविड-19 महामारी के दौरान हुई। इसका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर और टिकाऊ बनाना था।

एमएसएमई क्षेत्र के लिए प्रावधान:

1. रू. 3 लाख करोड़ का आपातकालीन ऋण गारंटी योजना।
2. उत्पादकता और निर्यात क्षमता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन।
3. घरेलू निर्माण को बढ़ावा।

प्रभाव:

आत्मनिर्भर भारत ने एमएसएमई को अपनी उत्पादकता बढ़ाने और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित किया। (स्रोत: 'आत्मनिर्भर भारत: नई दिशा', पृष्ठ 68)।

योजनाओं की समीक्षा और उनकी सफलता का मूल्यांकन

इन योजनाओं ने एमएसएमई क्षेत्र में कई सकारात्मक प्रभाव डाले हैं, लेकिन उनके सामने कुछ चुनौतियाँ भी रही हैं।

सकारात्मक प्रभाव:

1. वित्तीय समावेशन में वृद्धि।
2. लघु उद्योगों के लिए आधुनिक तकनीकों और प्रशिक्षण की उपलब्धता।
3. निर्यात और रोजगार में बढ़ोतरी।

चुनौतियाँ:

1. योजनाओं की जानकारी का अभाव।
2. बिचौलियों और नौकरशाही के कारण कई छोटे उद्यमी योजनाओं का लाभ नहीं उठा सके।
3. क्रियान्वयन में क्षेत्रीय असमानता।

सुधार की आवश्यकता:

1. योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए जागरूकता अभियान।
2. लघु उद्यमियों तक सीधी पहुँच के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग।
3. छोटे और मध्यम उद्यमों को निरंतर वित्तीय सहायता।

सरकार की ये योजनाएँ एमएसएमई क्षेत्र के विकास में सहायक रही हैं, लेकिन इनके प्रभाव को और अधिक बढ़ाने के लिए जमीनी स्तर पर सुधार आवश्यक है। यदि योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाए, तो लघु और कुटीर उद्योग आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

भावी संभावनाएँ (Future Prospects)

डिजिटल तकनीकों का उपयोग

डिजिटल तकनीकों का उपयोग लघु एवं कुटीर उद्योग (एमएसएमई) क्षेत्र के लिए न केवल एक आवश्यकता है, बल्कि यह क्षेत्रीय और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए एक अनिवार्यता बन चुका है।

1. **ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म:** एमएसएमई अपने उत्पादों को वैश्विक बाजारों में पहुँचाने के लिए ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म का उपयोग कर सकते हैं। यह छोटे उद्यमों को अपने ग्राहकों के साथ सीधा संपर्क स्थापित करने और वितरण चौनलों को सरल बनाने में सहायता करता है।
2. **डिजिटल भुगतान प्रणाली:** डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन वित्तीय प्रबंधन ने एमएसएमई के लिए लेन-देन को सुगम और पारदर्शी बनाया है।
3. **क्लाउड कंप्यूटिंग और डेटा एनालिटिक्स:** क्लाउड और डेटा एनालिटिक्स जैसे तकनीकी उपकरण छोटे उद्यमों को अपनी उत्पादकता, बाजार प्रवृत्तियों और ग्राहकों की आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से समझने में मदद कर सकते हैं। (स्रोत: 'डिजिटल युग में एमएसएमई', पृष्ठ 30)।

नवाचार और अनुसंधान

नवाचार और अनुसंधान एमएसएमई को प्रतिस्पर्धा में बनाए रखने और उनकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

1. **प्रोडक्ट इनोवेशन:** नए उत्पादों के विकास और मौजूदा उत्पादों के गुणवत्ता सुधार पर ध्यान देना आवश्यक है।
2. **संस्थानिक सहयोग:** एमएसएमई अनुसंधान एवं विकास में निवेश करने के लिए तकनीकी संस्थानों और अनुसंधान केंद्रों के साथ सहयोग कर सकते हैं।
3. **सरकारी योजनाएँ:** 'स्टार्टअप इंडिया' और 'मेक इन इंडिया' जैसे अभियानों के तहत नवाचार को प्रोत्साहन दिया गया है। (स्रोत: 'नवाचार और लघु उद्योग', पृष्ठ 44)।

वैश्विक बाजार में विस्तार की संभावना

एमएसएमई के लिए वैश्विक बाजार में अपने उत्पादों और सेवाओं का विस्तार करने की प्रबल संभावना है।

1. **निर्यात क्षमता का विकास:** हस्तशिल्प, टेक्सटाइल, और कृषि उत्पाद जैसे क्षेत्रों में निर्यात क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।
2. **गुणवत्ता मानकों का पालन:** वैश्विक गुणवत्ता मानकों को अपनाकर अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा की जा सकती है।
3. **सरकारी समर्थन:** निर्यात प्रोत्साहन योजनाएँ और फ्री ट्रेड एग्रीमेंट्स (FTA) एमएसएमई के लिए वैश्विक बाजार में प्रवेश को सरल बना सकते हैं। (स्रोत: 'वैश्विक एमएसएमई बाजार', पृष्ठ 55)।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में समावेश

एमएसएमई को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में शामिल कर भारत के संतुलित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

1. **ग्रामीण विकास:** ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों का विस्तार न केवल रोजगार के अवसर पैदा करेगा, बल्कि ग्रामीण समुदायों को आत्मनिर्भर बनाएगा।
2. **शहरी एकीकरण:** शहरी क्षेत्रों में सेवा आधारित एमएसएमई जैसे आईटी और लॉजिस्टिक सेक्टर का विकास किया जा सकता है।
3. **समान अवसर:** सरकार और निजी क्षेत्र को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। (स्रोत: 'समावेशी एमएसएमई विकास', पृष्ठ 63)।

सतत विकास और पर्यावरण अनुकूल प्रथाएँ

सतत विकास और पर्यावरण के प्रति जागरूकता को प्राथमिकता देते हुए एमएसएमई को पर्यावरण-अनुकूल उत्पादन प्रक्रियाएँ अपनानी चाहिए।

1. **ग्रीन मैन्युफैक्चरिंग:** अक्षय ऊर्जा स्रोतों और पर्यावरण-अनुकूल तकनीकों का उपयोग।
2. **अपशिष्ट प्रबंधन:** उत्पादन प्रक्रियाओं में अपशिष्ट प्रबंधन और पुनर्चक्रण को शामिल करना।

3. **सामाजिक जिम्मेदारी:** सतत विकास की दिशा में एमएसएमई का योगदान समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारी को दर्शाता है। (स्रोत: 'सतत विकास और एमएसएमई', पृष्ठ 71)।

डिजिटल तकनीकों का उपयोग, नवाचार, वैश्विक विस्तार, और सतत विकास एमएसएमई के लिए भविष्य की संभावनाओं को उज्जवल बनाते हैं। यदि सरकार और निजी क्षेत्र इस दिशा में मिलकर कार्य करें, तो एमएसएमई क्षेत्र न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था को गति देगा, बल्कि इसे वैश्विक मंच पर भी स्थापित करेगा।

सुझाव (Recommendations)

वित्तीय समावेशन और आसान ऋण सुविधाएँ

लघु एवं कुटीर उद्योगों (एमएसएमई) को सशक्त बनाने के लिए वित्तीय समावेशन और आसान ऋण सुविधाएँ प्रदान करना आवश्यक है।

- बैंकों और वित्तीय संस्थानों को छोटे उद्योगों के लिए कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना चाहिए।
- डिजिटल ऋण वितरण प्रणाली और सरकारी योजनाओं की जानकारी सुनिश्चित करने के लिए जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए। (स्रोत: 'एमएसएमई की वित्तीय स्थिति', पृष्ठ 34)।

कौशल विकास और प्रशिक्षण

तकनीकी ज्ञान और आधुनिक प्रथाओं में कौशल विकास एमएसएमई के उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार के लिए महत्वपूर्ण है।

- प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना और सरकारी कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमियों और कर्मचारियों को तकनीकी और व्यावसायिक कौशल सिखाए जाने चाहिए।
- डिजिटलीकरण और नवाचार पर विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएं। (स्रोत: 'तकनीकी ज्ञान और कौशल विकास', पृष्ठ 46)।

सरकारी और निजी साझेदारी

सरकार और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग एमएसएमई को नए बाजार और प्रौद्योगिकीय संसाधन प्रदान कर सकता है।

- शोध एवं विकास में निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए सह-वित्तीय मॉडल अपनाया जाना चाहिए।
- स्थानीय स्तर पर व्यापार नेटवर्क स्थापित किए जाने चाहिए। (स्रोत: 'सरकारी और निजी साझेदारी', पृष्ठ 58)।

स्थानीय उत्पादों का ब्रांडिंग और मार्केटिंग

स्थानीय उत्पादों की ब्रांडिंग और मार्केटिंग से एमएसएमई को वैश्विक पहचान मिल सकती है।

- 'मेक इन इंडिया' और 'वोकल फॉर लोकल' जैसे अभियानों के तहत ब्रांडिंग अभियान चलाए जाएं।
- डिजिटल मार्केटिंग प्लेटफॉर्म और ई-कॉमर्स का उपयोग बढ़ाया जाए। (स्रोत: 'स्थानीय उत्पादों का विपणन', पृष्ठ 66)।

निर्यात को बढ़ावा

एमएसएमई के निर्यात क्षमता को बढ़ाने के लिए गुणवत्तापूर्ण उत्पादन और सरकारी सहयोग आवश्यक है।

- निर्यात के लिए विशेष सब्सिडी और प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किए जाएं।
- अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले और प्रदर्शनी में भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाए। (स्रोत: 'निर्यात और एमएसएमई', पृष्ठ 72)।

एमएसएमई क्षेत्र की चुनौतियों का समाधान करके इसे आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता का मुख्य आधार बनाया जा सकता है। सरकार और निजी क्षेत्र के समन्वित प्रयासों से यह क्षेत्र वैश्विक स्तर पर नई ऊंचाइयों को छू सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अध्ययन का सारांश

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग (एमएसएमई) क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में एक अहम भूमिका निभाता है। यह न केवल रोजगार सृजन और सामाजिक समावेश को बढ़ावा देता है, बल्कि निर्यात और उत्पादन के माध्यम से देश को आत्मनिर्भर बनाने में भी सहायक है। अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ कि एमएसएमई क्षेत्र को वित्तीय बाधाओं, तकनीकी ज्ञान की कमी, वैश्विक प्रतिस्पर्धा, बुनियादी ढाँचे की कमी और विपणन समस्याओं जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार ने कई योजनाएँ और नीतियाँ लागू की हैं, जिनमें 'मेक इन इंडिया,' 'स्टार्टअप इंडिया,' 'मुद्रा योजना,' और 'आत्मनिर्भर भारत' जैसे अभियान शामिल हैं। इन योजनाओं ने इस क्षेत्र को सशक्त बनाने में एक सकारात्मक प्रभाव डाला है, लेकिन अभी भी सुधार और सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। (स्रोत: 'एमएसएमई का वर्तमान परिदृश्य,' पृष्ठ 25-30)।

भारत के आर्थिक विकास में लघु एवं कुटीर उद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका

एमएसएमई भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ के रूप में कार्य करता है।

1. **रोजगार सृजन:** यह क्षेत्र 11 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करता है, जो इसे कृषि के बाद देश का सबसे बड़ा रोजगार प्रदाता बनाता है।
2. **सामाजिक समावेशन:** ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में समान रूप से प्रभाव डालने वाले एमएसएमई सामाजिक असमानता को कम करने में सहायक हैं।
3. **निर्यात में योगदान:** भारतीय निर्यात का लगभग 48% हिस्सा एमएसएमई के उत्पादों का है, जो वैश्विक बाजार में इसकी प्रतिस्पर्धा क्षमता को दर्शाता है।
4. **स्थानीय उत्पाद और सांस्कृतिक संरक्षण:** हस्तशिल्प, खादी, और पारंपरिक वस्त्र जैसे उत्पाद भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने और वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने में मदद करते हैं। (स्रोत: 'भारतीय अर्थव्यवस्था में एमएसएमई का योगदान,' पृष्ठ 40-45)।

सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता

एमएसएमई क्षेत्र को स्थिर और मजबूत बनाने के लिए सरकार, निजी क्षेत्र, और समाज के सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है।

1. **सरकार की भूमिका:** सरकार को नीतिगत सुधार, वित्तीय सहायता, और डिजिटल प्लेटफॉर्म तक पहुँच बढ़ाने के प्रयासों को जारी रखना चाहिए।
2. **निजी क्षेत्र का योगदान:** निजी क्षेत्र तकनीकी सहयोग, निवेश, और अनुसंधान एवं विकास में मदद कर सकता है।
3. **सामुदायिक भागीदारी:** स्थानीय स्तर पर सामुदायिक भागीदारी एमएसएमई के उत्पादों की ब्रांडिंग, विपणन, और वितरण को बेहतर बना सकती है।
4. **वैश्विक स्तर पर प्रयास:** अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा के लिए गुणवत्तापूर्ण उत्पादन और निर्यात को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। (स्रोत: 'एमएसएमई: चुनौतियाँ और समाधान,' पृष्ठ 50-55)।

लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास भारत को आत्मनिर्भरता के पथ पर ले जाने और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करने में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस क्षेत्र को सशक्त बनाने के लिए वित्तीय, तकनीकी, और सामाजिक सुधारों की आवश्यकता है। यदि सरकार और निजी क्षेत्र सामूहिक प्रयास करें और इन उद्योगों को सशक्त करें, तो यह क्षेत्र न केवल भारत की आर्थिक वृद्धि में एक प्रमुख भूमिका निभाएगा, बल्कि 'आत्मनिर्भर भारत' के लक्ष्य को भी साकार करेगा।

संदर्भ (References)

1. आत्मनिर्भर भारत: नई दिशा, पृष्ठ 68।
2. एमएसएमई उत्पाद और सेवाएँ, पृष्ठ 92।

3. एमएसएमई का आर्थिक योगदान, पृष्ठ 102।
4. एमएसएमई का बुनियादी ढाँचा, पृष्ठ 64।
5. एमएसएमई का वर्तमान परिदृश्य, पृष्ठ 25-30।
6. एमएसएमई का विधिक परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 78।
7. एमएसएमई की वित्तीय स्थिति, पृष्ठ 34।
8. एमएसएमईः चुनौतियाँ और समाधान, पृष्ठ 50-55।
9. एमएसएमईः भारतीय अर्थव्यवस्था का इंजन, पृष्ठ 54।
10. डिजिटल युग में एमएसएमई, पृष्ठ 30।
11. तकनीकी ज्ञान और एमएसएमई, पृष्ठ 46।
12. नवाचार और लघु उद्योग, पृष्ठ 44।
13. भारत में औद्योगिक विकास, पृष्ठ 45।
14. भारत में लघु उद्योगः रोजगार और सशक्तिकरण, पृष्ठ 76।
15. भारतीय अर्थव्यवस्था में एमएसएमई का योगदान, पृष्ठ 40-45।
16. भारतीय उद्योग संरचना, पृष्ठ 23-45।
17. भारतीय कुटीर उद्योगः समस्याएँ और समाधान, पृष्ठ 89।
18. भारतीय हस्तशिल्प का इतिहास, पृष्ठ 32।
19. मुद्रा योजनाः वित्तीय समावेशन, पृष्ठ 56।
20. मेक इन इंडियाः औद्योगिक विकास, पृष्ठ 28।
21. लघु उद्योग और भारतीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ 67।
22. विपणन और एमएसएमई, पृष्ठ 72।
23. वैश्विक एमएसएमई बाजार, पृष्ठ 55।
24. वैश्विक बाजार में एमएसएमई की चुनौतियाँ, पृष्ठ 58।
25. सतत विकास और एमएसएमई, पृष्ठ 71।
26. समावेशी एमएसएमई विकास, पृष्ठ 63।
27. स्टार्टअप इंडिया और नवाचार, पृष्ठ 42।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण: समस्या एवं समाधान

डॉ० कादम्बरी शर्मा पांडेय

सह-प्राध्यापक, संस्कृत, शास दू. श्री वै. स्नातकोत्तर संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

वैदिक वाङ्मय में प्रकृति तथा प्राणिमात्र का शाश्वत संबंध प्रतिपादित किया गया है। शास्त्रों में जहां पर प्रकृति-सृष्टि जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है वर्तमान समय में उन शब्दों को पर्यावरण के नाम से जाना जाता है। पर्यावरण का अर्थ है–यदस्मान् परितः आवृणोति येन वयं परितः आवृतास्तत् पर्यावरणम्। हमें चारों तरफ से कौन आवृत किये हुए है इस विषय पर चिंतन करने से स्पष्ट होता है कि पंचमाभूत नाम से प्रसिद्ध पृथ्वी, जल, तेज वायु आकाश, वनस्पति तथा जलचर, खेचर, सरीसृप एवं समस्त निसर्गजात पदार्थों की समष्टि ही पर्यावरण है। इनमें पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु तथा आकाश पंच महाभूत नाम से प्रसिद्ध है। भूत का अर्थ है–जीवन सत्ताधारी जीव।

आज विश्व में अन्य समस्याओं में ज्यादा पर्यावरण प्रदूषण की समस्या अपना विशाल क्षेत्र बनाती जा रही है। विकास की अवधारणाओं में पर्यावरण खो गया है। विकास ने संपूर्ण विश्व के पारिस्थितिक तंत्र तथा प्राकृतिक संतुलन को नष्ट कर दिया है। सारा विश्व पर्यावरण संरक्षण तथा सुरक्षा की समस्या से चिंतित है। विकास तथा प्रगति सामयिक आवश्यकता है। औद्योगिक विकास ने पर्यावरण के सामने नित नवीन प्रकार के संकट उत्पन्न कर दिये है। विज्ञान के नवीनतम अविष्कार पर्यावरण के लिए चुनौती बनते जा रहे हैं। जिसका कोई समाधान तत्कालिक रूप से विज्ञान के पास दिखाई नहीं देता है। केवल स्वार्थ की भावना में लिप्त आज का मानव नंगे होते पहाड़ों के बारे में, सूखती नदियों के बारे में, कुओं में घटते जल स्तर के बारे में, वनों के सिमटते आकार के बारे में, धरती पर बढ़ते तापमान, लगातार बढ़ती प्राकृतिक आपदाओं के विषय में चिंतित न होने पर आज पर्यावरण समस्या भयावह बनती जा रही है।

पर्यावरण की इस अभिव्यक्ति के साथ सीधा प्रश्न खड़ा हो जायेगा कि क्या विकास की गति को रोक दिया जाये। नये-नये अविष्कार नहीं किये जायें। चिकित्सा विज्ञान परमाणु विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान में नवीन खोजें बंद कर दी जाय। क्या बिजली का उत्पादन करना, बांध बनाना बंद कर दें? नहीं! विकास की गति बढ़े लेकिन पर्यावरण को भी क्षति नहीं पहुंचे! इसके लिए हमारे वैज्ञानिक पद्धति से निष्णात वैदिक ग्रंथों का अवलोकन करना होगा। इस देश में विज्ञान पढ़ने वाला संस्कृत नहीं पढ़ता तथा संस्कृत पढ़ने वाला व्यक्ति विज्ञान को नहीं पढ़ पाता है। इन दोनों विषयों को यदि जोड़ दिया जाय तो समस्या का समाधान खोजा जा सकता है आज इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता है।

हमारे देश में पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए प्राचीन काल से ही ऋषि-महर्षियों ने यज्ञ को हमारे समक्ष रखा। याज्ञवलक्य स्मृति कहती है कि संसार का श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ है ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' पश्चिम जर्मनी के स्वतंत्र पत्रकार ''बर्न्ड रविन्द्र सेन्जमेर के 25 वर्षों के अग्निहोत्र यज्ञ के अनुभव से सिद्ध किया कि यज्ञकुण्ड में कण्डों की अग्नि, घी तथा चावल आहुती से चुम्बकीय ऊर्जा उत्पन्न होती है जो पर्यावरण को सुरक्षा देती है तथा मानव की आयु एवं मानसिक शक्ति का विस्तार करती है। अमेरिका के अंदर 1978 से अग्निहोत्र फार्म बना हुआ है जहां नित्य यज्ञ चलता है। यजुर्वेद में यज्ञ को अमृत कहा है अर्थात् यह हमारे आयु

प्राण आदि का दाता है–आयुर्यज्ञेन कल्पन्तां, प्राणो यज्ञेन कल्पन्तां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पन्तां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पन्तां, पृष्ठं यज्ञेन कल्पन्तां यज्ञो यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। युजः 9.12 ।।

''स्तर्गकामो यजेत्'' कहकर यज्ञ को स्वर्ग प्राप्ति का साधन किया है। इसका अभिप्राय है स्वर्गीय अर्थात् अत्यधिक रमणीय सुख। इस रमणीय सुख तथा दुःख की अनुभूति इसी जीवन में करता है। वेदों में जल एवं वायुकी शुद्धि के लिए अनेक मंत्र आते हैं। जल तथा वातावरण की शुद्धि वर्षा द्वारा संभव है। ऋग्वेद के अस्यवागीय सूक्त तीन मंत्र वृष्टि के प्रतिपादक हैं जो वर्षा को भूमि पर कैसे लाया जाय इस स्थिति को स्पष्ट करते हैं यथा–

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।

ते धितिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः ।।

ऋग्वेद के पर्जन्य-सूक्त में वृष्टिकारक मंत्रों की प्राप्ति होती है–

प्रवाता पान्ति पतयन्ति विद्युत् उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।

इस विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावती ।।

अर्थात् ''वृष्टि प्रेरक वायु जिसे मानसून कहते हैं, इस विश्व में संचरित है इसी से विद्युत उत्पन्न होकर अंतरिक्ष में ज्योति प्रज्वलित होती है और पुनः संघर्षण से वृष्टि होती है इस वृष्टि से औषधि उत्पन्न होती है। वेद में जल की परिशुद्धि के लिए तथा भूमि में अशुद्ध पदार्थों एवं अंतरिक्ष में प्रदूषित वायु को शुद्ध करने हेतु यजमान अर्थात् मानव मरूत् से प्रार्थना करता है कि–

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्रपिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अर्वाङ्स्तेन स्तनयित्नु नैह्यपो विषिचत्रसुरः पिता नः ।।

अर्थात् हे मरुतो तुम हमे अंतरिक्ष से वृष्टि प्रदानकर वर्षाकारी मेघों की धारा को हमारी ओर प्रवाहित करो। इस स्तनयित्नु मेघ द्वारा यह प्रदूषित, वायु तथा अशुद्ध भूमि पुनः शुद्धता को प्राप्त करेंगे।

अथर्ववेद में कहा गया है कि घर के पास शुद्ध जल से भरा जलाशय होना चाहिये यथा–

इमा आपःप्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।

गृहानुप प्रसीदाम्य मृतेन सहाग्निना ।।

अर्थात् अच्छे प्रकार का रोग रहित जल मैं लाता हूं। शुद्ध जलपान करने मैं मृत्यु से बचा रहूंगा। एक ऋचा में कहा गया है कि जल द्वारा ही देखने सुनने एवं बोलने की शक्ति प्राप्त होती है यथा–आदित्पश्याम्युत वा भृणोम्याः, हिरण्य वर्णा अतुपंयदातः।

इसी प्रकार वायु के प्रदूषण की समस्या भी आज विषम समस्या के रूप में है, जिनका समाधान अप्राकृतिक साधनों के माध्यम से होना संभव नहीं है। शुद्ध वायु हमें जीवन देती है। वायु कब प्रदूषित होती है इसके बारे में वेद में कहा गया है कि–''आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः। त्वं ही विश्वभेषजो देवानां दूत ईयस्रे।।'' अर्थात् जिस वायु में किसी प्रकार की बिमारी के अंश नहीं होते तथा जो औषधस्वरूप होती है वह शुद्ध है और इसके विपरीत सारी वायु अशुद्ध है

शुद्ध वायु का संचार यज्ञ से ही संभव है। शुद्ध वायु से हमारे शरीर के समस्त अंग सुदृढ़ होते हैं प्राणशक्ति का पोषण होता है। यज्ञीय वायु के द्वारा गठिया रोग, हृदयरोग, तपेदिक, निमोनिया इत्यादि रोगों का नाश हो जाता है। ये सारे रोग प्रदूषित वायु से उत्पन्न होते हैं यथा–''वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ।।''

ध्वनि प्रदूषण का निदान-आत्मशुद्धि के लिए हमारे जीवन में भजनकीर्तन, धर्मग्रंथों के पाठ प्रार्थना स्तुति मंत्रोच्चार इत्यादि स्वमुख से करना श्रेष्ठ माना गया है। लेकिन आज के युग में ही टी.वी. ध्वनि प्रसारक सयंत्र सारे दिन जोर-जोर से शोर मचाकर ध्वनि प्रदूषण फैलाते हैं जिससे सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा जैसी बिमारियां उत्पन्न होती है। वेद कहता है कि मानसिक तनाव से बचने के लिए हमें धीरे एवं मधुर बोलना चाहिए यथा–भा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

सम्यंच सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

अर्थात् भाई-भाई से बहन-बहन से अथवा परिवार सभी सदस्य द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि छोड़कर तथा सभी सदस्य एकमत, एकव्रती होकर शांतिपूर्वक भद्र पुरुषों के समान मधुरता से बोलें।

खाद्य-प्रदूषण से बचाव

वेदों ने खाद्य के संबंध में वैज्ञानिक आधार पर निष्कर्ष प्रतिपादित किया है। वेद कहता है कि मनुष्य की पाचन शक्ति ही उसके शारीरिक एवं आत्मिक बल को बढ़ाकर उसके जीवन को सुखदायक बनाती है यथा–

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।

प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ।।

अर्थात् मैं जो कुछ पीता हूं यथाविधि पीता हूं, जैसे यथाविधि पीने वाला समुद्र पचा लेता है। पेय पदार्थ अच्छी तरह पीयें तथा जो कुछ खावें अच्छी तरह चबाकर खाएं। इस प्रकार वेद भोजन की प्रक्रिया पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्तन कर अपाचन से उत्पन्न व्याधि के निवारण के उपाय प्रतिपादित कर हमें खाद्य-प्रदूषण से बचाता है।

इस प्रकार चिंतन करने पर स्पष्ट होता है कि जीवन को सुखमय बनाने के लिए शुद्ध पर्यावरण की आवश्यकता है और शुद्ध पर्यावरण को उत्पन्न करने में यज्ञीय अग्नि इत्यादि वैदिक समाधान ही समर्थ है, ये वैदिक उपाय हमें इसी पृथ्वी तल पर शुद्ध पर्यावरण की प्राप्ति कराकर स्वर्ग रूपी नौका पर चढ़ा सकता है अन्य कोई कर्म नहीं।

कामकाजी महिलाओं की दोहरी जिंदगी पर पड़ता प्रभावः एक अध्ययन

रीना कुमारी

शोध-छात्रा, समाजशास्त्र, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

हमारे देश में पिछले कई दशकों से कार्यस्थल पर तनाव एक सामान्य स्थिति बन गई है और इस प्रकार से यह कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। इन कर्मचारियों को इस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है- एक पारिवारिक जिम्मेदारी और दूसरी कार्यस्थल की चुनौतियां। अर्थात, उन्हें अपने पारिवारिक रिश्तों के साथ-साथ कार्य की अपेक्षाओं को भी संतुलित करना होता है और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि उन्हें इन दोनों के बीच संतुलन बनाए रखना होता है, क्योंकि अक्सर यह एक व्यक्ति को तनावग्रस्त कर सकता है और उनके पारिवारिक जीवन को प्रभावित कर सकता है। आज के समय में कार्यस्थल पर तनाव एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है। हालांकि, कभी-कभी इन दोनों भूमिकाओं में वे खुद को उलझा हुआ महसूस करते हैं। आजादी के बाद से कार्यस्थल की स्थिति में सुधार हुआ है।।

कुंजी शब्दः ऑफिस, कामकाजी महिलायें, परिवार, दोहरी भूमिका, जिम्मेंदारियां, आधुनिक समाज

परिचय

मानव विकास के इतिहास में इतिहास के निर्माण में महिलाओं का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है जितना कि पुरूषों का। वास्तव में महिलाओं और उनके द्वारा किए गए कार्यों और उनको रोजगार के समान अवसर उपलब्ध कराना किसी भी उच्च स्थिति वाले समाज की प्रगति और राष्ट्र की समय प्रगति का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। भारतीय महिलाओं को काम करने के लिए मजबूर करने वाले कई कारण और समस्याएँ हैं। भारतीय परिवारों पर आर्थिक दबाव दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। भारत में रहने की लागत, बच्चों की शिक्षा पर खर्च और आवास संपत्तियों की लागत में वृद्धि, रहन-सहन के स्तर में हो रहे बेहताशा बढ़ोतरी, दिनों-दिन बढ़ती महंगाई के कारण भारत में हर परिवार को घरेलू आय बढ़ाने के तरीकों और साधनों की तलाश करने के लिए मजबूर किया है। नतीजतन, भारत में ज्यादातर गृहिणियाँ के रूप में जानी जाने वाली महिलाएँ नौकरियों के लिए जाने के लिए मजबूर हुई है और यहाँ तक कि महिलाओं के द्वारा रोजगार करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है जो अब तक केवल पुरूषों के लिए उपयुक्त माना जाता था, जैसे कि रात की पाली में काम करना, ऑटोरिक्षा, टैक्सी चलाना, सेना में भर्ती होकर देश की सीमा पर पहरेदारी करना।

चूंकि, परंपरागत रूप से घर के काम महिलाओं द्वारा किए जाते थे। लेकिन तब स्थिति अलग थी, क्योंकि तब महिलाएँ घर पर काम करती थीं लेकिन अब जब वह काम पर चली गई है, तब भी उससे घर के सारे काम करने की उम्मीद की जाती है। एक कामकाजी महिला को एक कामकाजी पुरूष से दोगुना काम करना पड़ता है। आपको अपने बच्चों, पति, सास, ससुर आदि का भी ध्यान रखना होगा। अब जब संयुक्त परिवार टूट गए हैं तो उनकी मदद करने वाला कोई नहीं है। ऐसे में उनकी परेशानी और बढ़ जाती है।

भारत में कामकाजी महिलाओं की व्यावहारिक समस्याएँः-

दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ महिलाओं को समान काम करने के लिए पुरूषों के बराबर वेतन मिलता हो। यहाँ तक कि ऐसे देश, जिनमें समग्र रूप से अत्यधिक लैंगिक समानता है, समान कार्य के लिए समान वेतन का दावा नहीं कर सकते। भारत को सबसे कम लैंगिक समानता वाली बीआरआइसी (ब्राजील, रूस, भारत और चीन) अर्थव्यवस्था होने का गौरव प्राप्त है, जिसमें वेतन समानता भी शामिल है। 2010 की ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट ने यह खुलासा किया। एक सदी से भी अधिक समय से, पुरूषों और महिलाओं के बीच वेतन असमानता एक वैश्विक समस्या रही है। हालांकि, शुरूआती सफलताओं के बाद प्रगति मामूली रही है।

भारतीय महिलाओं के लिए दैनिक आधार पर यौन उत्पीड़न एक घृणित वास्तविकता है। हर दिन, उनकी सबसे बड़ी चुनौती अपने घरों में, सड़क पर, अपने शिक्षण संस्थानों में और काम पर अपनी पवित्रता बनाए रखना है।

कार्यस्थल पर 'यौन उत्पीड़न' या मानसिक उत्पीड़न का डर बना रहना।

- अपने सहकर्मी और सीनियर अधिकारियों से उचित सम्मान नहीं मिल पाना।
- कार्य स्थल (ऑफिस) में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं मिलना।
- कार्यस्थल या पारिवारिक रिश्ते नातेदारों, आस पड़ोस में प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से मजाक बनाना।
- महिलाएँ ज्यादातर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं, इसलिए जीवन, व्यवसाय आदि की असुरक्षा की भावना का रहना आम बात है।
- महिलाओं को जैविक कार्यो (मातृत्व आदि) के लिए भी पर्याप्त अवकाश नहीं मिलना।
- अपर्याप्त मातृत्व अवकाश एक प्रमुख समस्या है जिसका सामना एक कामकाजी माँ को करना पड़ता है। यह काम पर उनके प्रदर्शन के साथ-साथ कर्मियों के व्यक्तिगत जीवन को भी प्रभावित करता है।
- कामकाजी महिलाओं को ऑफिस के कार्य के अलावा पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन भी करना पड़ता है।
- महिलाओं को ऑफिस के कार्य और पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन में मानसिक तनाव से गुजरना पड़ता है।
- कामकाजी महिलाओं के लिए उचित पारिवारिक समर्थन का अभाव एक और गंभीर मुद्दा है। गृहकार्य आज भी महिलाओं का प्रमुख कर्तव्य माना जाता है। वे कार्यालय में देर से काम करने के लिए महिलाओं का विरोध करते हैं जो महिलाओं के प्रदर्शन और पदोन्नति को प्रभावित करता है।
- कार्यस्थल पर कामकाजी महिलाओं के लिए खराब सुरक्षा एक गंभीर विषय है। कॉरपोरेट क्षेत्रों और अन्य निजी संगठनों में काम करने वाली महिलाओं को उनके कार्यस्थल पर सुरक्षा के अभाव के कारण ज्यादातर कामकाजी महिलाओं को विभिन्न अपराधों का सामना करना पड़ता है।
- कामकाजी महिलाओं के लिए असमान वेतन एक और मुद्दा है। यह देखा गया है कि पुरूष कर्मचारियों की तुलना में महिलाओं को कम वेतन दिया जाता है। हालांकि महिलाएँ खुद को पुरूष कर्मचारियों की तुलना में अधिक कुषल साबित करती है, लेकिन ज्यादातर समय उन्हें समान रूप से भुगतान नहीं किया जाता है। यह उनमें अवसाद और डिमोटिवेशन पैदा करता है जो उसके कर्मियों के जीवन को भी प्रभावित करता है।
- दोहरी भूमिका निभाने के कारण कामकाजी महिलाएँ अपने बच्चों को उनकी विभिन्न गतिविधियों और स्कूल के कार्यो में उचित समय नहीं दे पाती हैं। इसमें महिलाओं में तनाव भी पैदा होता है, इससे वो परिवार और ऑफिस के बीच ठीक से सामंजस्य नहीं रख पाती है।
- अपने पेशे के प्रति पूर्ण समर्पण के बावजूद, अभी भी उनकी नौकरी की प्राथमिकता परिवार और समाज में गौण मानी जाती है। आज के समय में भी यह अपेक्षा की जाती है कि महिलाओं का प्राथमिक कर्तव्य केवल अपने परिवार और बच्चों को संभालना है।
- यदि कामकाजी महिलाओं को अपने कैरियर के विकास के लिए बिजनेस टूर या किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए जाना है, तो उन्हें पति और परिवार के सदस्यों से अनुमति लेनी होगी। उन्हें अपने बच्चों के लिए भी उचित व्यवस्था करनी होगी। लेकिन भारत में पुरूषों के लिए ऐसा नहीं है।

कामकाजी महिलाओं की समस्याओं का समाधानः

कामकाजी महिलाओं की समस्या की बात करें तो उनका घरेलू जीवन भी इसमें शामिल है। आधुनिक कामकाजी महिला की छवि क्या है? भारतीय कामकाजी महिला समाज के मध्यम वर्ग या निम्न मध्यम वर्ग से संबंधित है। उच्च वर्ग की महिलाएँ जीवन यापन के लिए काम नहीं करती है। काम करने के पीछे उनका मकसद समय बिताना होता है। जबकि घर के कामों में उनकी कोई भूमिका नहीं होती है, घर के काम उनके लिए अनजान होते हैं। मध्यम या निम्न मध्यम वर्ग की कामकाजी महिला की किस्मत ऐसी नहीं होती। निःसंदेह उसकी स्थिति दो नावों में सवार व्यक्ति के समान है क्योंकि एक ओर उसे कार्यालय में तनाव में काम करना पड़ता है, एक महिला होने के नाते नौकरशाही उसे दबाने की कोशिश करती रहती है। हम रोजमर्रा की जिन्दगी में कामकाजी महिलाओं को होने वाली समस्याओं के कुछ निम्नलिखित समाधानों पर विमर्श कर सकते हैं-

- महिलाओं के कामकाजी होने पर घरेलू कार्यों में पुरूषों को महिलाओं के साथ समान रूप से कार्य में सहयोग करना चाहिए।
- घर के बाहर की व्यवस्था, जैसे कार्यालय, परिवहन के साधन आदि इतनी सुरक्षित और 'महिला अनुकूल' होनी चाहिए कि वे वहाँ सुरक्षित महसूस करें।
- उनकी जैविक आवश्यकता को देखते हुए उन्हें अवकाश की पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए।
- संगठित क्षेत्र में अब 'मातृत्व लाभ' अनिवार्य हो गया है, लेकिन असंगठित क्षेत्र में भी कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए या सरकार द्वारा कुछ वित्तीय सुरक्षा दी जानी चाहिए, जिससे उन्हें भी इसका लाभ मिल सके।
- 'घरेलू सहायता' को विनियमित और सुरक्षित बनाया जाना चाहिए, ताकि महिलाओं की मदद की जा सके तभी हम सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ा पायेंगे और अरुंधति रॉय, चंदा कोचर, किरण मजूमदार जैसी कई महिला उद्यमी लोक सेवक बनेंगी।
- महिलाओं के कार्यस्थल पर महिलाओं को मानसिक रूप से सुरक्षित और संवेदनशील माहौल होना चाहिए जिससे वो स्वयं को सुरक्षित महसूस करें।

राष्ट्र के निर्माण में स्त्रियों का योगदान काफी महत्व रखता है लेकिन राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और विकास में भी स्त्रियों की भूमिका कुछ कम महत्व नहीं रखती। इस महान और मजबूत स्त्री शक्ति की ओर उचित ध्यान देने की जरुरत है जिससे कि खुद स्त्रियों को ज्यादा से ज्यादा फायदा हो और साथ ही राष्ट्र के विकास और आर्थिक प्रगति के मामले में ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाया जा सके। यह तभी सम्भव होगा जब स्त्रियों को सम्मान दिया जाए और जिसके साथ ही उनकी शक्ति को राष्ट्र के लाभ के लिए और स्त्रियों का दर्जा उठाने के लिए सही रास्ते पर लाया जाए।

शहरों में कामकाजी महिलाओं की स्थिति और संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है लेकिन छोटे कस्बों और गांवों में स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अभी कुछ समय पूर्व निम्न आय वर्ग के कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में एक अध्ययन किया गया जिसके नतीजों का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा। इस अध्ययन के मुताबिक अधिकतर कामकाजी महिलाएँ 20 से 45 वर्ष के आयु वर्ग की होती है अर्थात् आजादी के बाद जन्मी महिलाएँ ही आज घर से निकल कर काम संभाल रही है। इनमें भी 20-25 वर्ष आयु वर्ग की महिलाओं की संख्या अधिक है जिसका अर्थ है कि आजकल निम्न आय वर्ग की महिलाएँ किसी न किसी रोजगार में लग रही है।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि अधिकतर कामकाजी महिलाएँ शिक्षित और उच्च शिक्षित होती हैं लेकिन फिर भी तथ्य यह है कि 13 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ निरक्षर होती हैं जबकि 12 फीसदी महिलाएँ बस साक्षर ही होती है। अन्य समाजों के साथ-साथ भारत में भी परंपरा रहा है कि पति, जीविका का साधन जुटाने का कार्य करता है और पत्नी परिवार के दायित्व सम्भालती है लेकिन अब वह परंपरा बदल रही है।

निम्नवर्ग की स्त्रियों के सामने मुख्य प्रश्न परिवार की मूलभूत आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने का है और इसीलिए समाजशास्त्री कला रानी ''निम्नवर्गीय स्त्रियों के संदर्भ में आर्थिक कारणों को उत्तरदायी मानती हैं।'' आर्थिक आवश्यकताओं तथा संकटों ने मध्यवर्ग की स्त्रियों को भी नौकरी करने की प्रेरणा दी। मध्यवर्गीय परिवारों में आरंभ से ही स्त्रियों का घर से बाहर

निकलकर काम करना अपमानजनक समझा जाता था। कालांतर में अभाव और बढ़ती आर्थिक आवश्यकताओं ने मध्यवर्गीय स्त्रियों को घर से बाहर निकलने पर बाध्य किया। स्वतंत्रता पश्चात् आर्थिक दबाव के चलते मध्यवर्गीय पुरुष समाज का दृष्टिकोण बदलने लगा और वे बेटियों को शिक्षित करके स्वावलंबी बनाने लगे। रमणिका गुप्ता के अनुसार ''मध्यवर्गीय समाज में आए इस बदलाव के पीछे देश के बँटवारे एवं शरणार्थियों के बड़ी संख्या में आगम की भी भूमिका रही। देश की आजादी और बँटवारे के बाद शरणार्थी औरत के सामने दो ही रास्ते बच गए थे- या तो वह काम करे और जिंदा रहे अन्यथा पेट की भूख और अपमान-अत्याचार सहते-सहते मर जाए।'' इसके अतिरिक्त ''टूटते संयुक्त परिवारों के युगल जोड़े भी परंपरागत बंधन तोड़कर परिवार के सीमित दायरे से मुक्त होकर घर से बाहर निकले और काम करने लगे। अब स्त्री आर्थिक रुप से सक्षम बनने लगी।

घरेलू महिलाओं की अपेक्षा कामकाजी महिलाओं पर कार्य का बोझ अधिक होता है। इन महिलाओं को अपने कार्य क्षेत्र और घर दोनों को संभालने में अत्यधिक कार्य करना पड़ता है। 'कारोबारी संगठन एसोचेम' द्वारा किए गए सर्वे के अनुसार ''माँ बनने के बाद अत्यधिक महिलायें नौकरी छोड़ देती हैं तथा 40 प्रतिशत महिलायें अपने बच्चों को पालने हेतु यह निर्णय लेती हैं क्योंकि एक ओर कार्यक्षेत्र का कार्य का तनाव तथा दूसरी ओर पारिवारिक दायित्वों की स्थिति का ध्यान रखना अनिवार्य होता है। कार्य स्थल में कार्य करने के पश्चात् अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होती हैं एक ओर उसका निजी व्यक्तिगत प्रभावित होता है, दूसरी ओर पारिवारिक सम्बन्ध भी प्रभावित होता है।

लैंगिक असमानता:- निम्नवर्गीय कामकाजी महिलाओं के जीवन में कई प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष बाधक तत्व होते हैं, जो उनकी प्रगति में बाधा उत्पन्न करते हैं, जिसमें लैंगिक भेदभाव, यौन उत्पीड़न आदि सम्मिलित होता है।

पारिवारिक असहयोग:- परिवार का सहयोग विभिन्न महिलाओं को पूर्ण रुप से नहीं मिलता है, जिसके कारणवश वह अत्यधिक तनावग्रस्त महसूस करती है। महिलाओं के लिए परिवार का बहुत महत्व होता है। समाज की उनसे अपेक्षाओं का बोझ इतना बढ़ जाता है कि वे अपनी उम्मीदें एवं महत्वकांक्षाएं कम कर लेती हैं। आन्तरिक प्रेरणा हेतु परिवार का सहयोग मातृत्व उनके लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। मानदेय की असमानता भी कामकाजी महिलाओं की समस्याओं में निहित है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष:-

कामकाजी महिलाओं को आज भी अनेकानेक समस्याओं से जूझ रही है। कामकाजी महिलाओं के खिलाफ दर्ज अपराधों की संख्या में लगातार वृद्धि होती है। यह स्पष्ट है कि डर और सामाजिक कलंक के कारण कई और मामले दर्ज नहीं किए जाते है। इसलिए महिलाओं के सभी अधिकारों का सम्मान, संरक्षण और पूर्ति होनी चाहिए, चाहे वह सम्पत्ति का अधिकार हो, स्वास्थ्य का अधिकार हो, शिक्षा का अधिकार हो और सम्मान के साथ जीवन हो। कानून और व्यवस्था को इन अपराधों को विशेष रूप से देखना होगा और इन पर प्रभावी ढ़ंग से अंकुश लगाना होगा। सुरक्षा की कमी महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने से रोकती है। कामकाजी महिलाओं को हमे सम्मान दृष्टि से देखना होगा और उनको भी कार्य करने के सामान अवसर प्रदान करने होंगे, तभी महिलाएँ एक सच्चे नागरिक होने के अधिकारों की पूरी श्रृंखला तक पहुँच सकती हैं। हम ऐसे देश के नागरिक हैं जहाँ जब पी.वी सिंधु ने ओलंपिक पदक जीता और कल्पना चावला के अंतरिक्ष अभियान में चमत्कार किया। एक महिला के सामने असीम संभावनाएँ होती है जब उसे अपनी प्रतिभा को निखारने और अपनी क्षमता का पता लगाने के लिए सही अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। आइए हम महिलाओं को वह सही सम्मान और अवसर दे जिसके वे हकदार हैं और बदले में वे हमें गर्व करने के अंतहीन कारण देंगे। पेपर में 21वीं सदी के वर्तमान युग में कामकाजी महिलाओं के मुद्दों और चुनौतियों और उन चुनौतियों से निपटने के लिए किये जा सकने वाले समाधानों पर चर्चा की गई। व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन के बीच संतुलन साधने के लिए और खुद को फिट और फाइन रखने के लिए महिलाओं को कई स्थितियों और चुनौतियों से गुजरना पड़ता है।

सुझाव:-

- महिलाओं के कामकाजी होने पर घरेलू कार्यों में पुरूषों को महिलाओं के साथ समान रूप से कार्य में सहयोग करना चाहिए।

- घर के बाहर की व्यवस्था, जैसे कार्यालय, परिवहन के साधन आदि इतनी सुरक्षित और 'महिला अनुकूल' होनी चाहिए कि वे वहाँ सुरक्षित महसूस करें।
- उनकी जैविक आवश्यकता को देखते हुए उन्हें अवकाश की पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए।
- संगठित क्षेत्र में अब 'मातृत्व लाभ' अनिवार्य हो गया है, लेकिन असंगठित क्षेत्र में भी कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए या सरकार द्वारा कुछ वित्तीय सुरक्षा दी जानी चाहिए, जिससे उन्हें भी इसका लाभ मिल सके।
- 'घरेलू सहायता' को विनियमित और सुरक्षित बनाया जाना चाहिए, ताकि महिलाओं की मदद की जा सके तभी हम सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ा पायेंगे और अरुंधति रॉय, चंदा कोचर, किरण मजूमदार जैसी कई महिला उद्यमी लोक सेवक बनेंगी।
- महिलाओं के कार्यस्थल पर महिलाओं को मानसिक रूप से सुरक्षित और संवेदनशील माहौल होना चाहिए जिससे वो स्वयं को सुरक्षित महसूस करें।

संदर्भ-सूची

- देसाई नीरा- आधुनिक भारत में महिलाएँ
- "National Policy for the Empowerment of Women (2001)" http://www.nic.in/empwomen.htm.
- Afsjar, Heleh: women world and ideology in the third world
- महिला मुक्ति की ओर प्रगतिशील महिला, एकता केन्द्र दिल्ली।
- पत्रिका 'समन्वित बाल विकास सेवायें'
- पत्रिका अमर उजाला हल्द्वानी पब्लिकेशन।

ग्रामीणों के समुन्नयन में प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता मिशन का योगदान

डॉ० शिवेन्द्र सिंह

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)

भारत को देखना समझना हो तो उसे उसकी ग्रामीण जनमानस के द्वारा ही समझा जा सकता है क्योंकि ग्रामीण भारत की आत्मा है कहा जाता है कि भारत का ताना-बाना-गांवो से बना हुआ है गांव ही असली भारत का चेहरा है यहां की संस्कृति, कार्य व्यवहार, सामाजिकता, उत्पादन, कृषि हथकरघा आदि देश के लिए बहुत ही आवश्यक एवं अपरिहार्य है इन्ही सबसे भारत का दर्पण यहां की ग्रामीणता को कहा जाता है।

यदि देश की ग्रामीण संरचना पर ध्यान दिया जाय तो पता चलता है कि भारत के आर्थिक सामाजिक बुनियादी कृषि आदि के तरक्की के नये-नये आयामो तक पहुंचाने में ग्रामीण भारत की सर्वाधिक निर्णायक भूमिका रही है क्योंकि देश की कार्यकारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग ग्रामीणीय स्तर का ही है। सन् 2050 तक देश की ग्रामीणीय जनसंख्या में लगातार वृद्धि का अनुमान है। ग्रामीण आबादी का लगभग 51.72 प्रतिशत आबादी 24 वर्ष से कम उम्र की है उसी परिपेक्ष्य में शहरी जनसंख्या में इसका प्रतिशत 49.91 है।

भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती जननांकीय आंकड़े है क्योंकि वर्ष 2025 तक भारतीय जनसंख्या 1.4 अरब होने का अनुमान है। अब प्रश्न यह उठता है कि भारत यदि पुरानी परिपाटी को तोड़कर बाहर नहीं निकला तो बहुत देर हो जाएंगी और भारत विश्व परिदृष्य में अपने को अलग-थलग पायेगा वही पर यदि भारतीय ग्रामीणों को नई कौशल, शिक्षा सक्षम, डिजिटलाइजेन्स से परिपूर्ण कर ले गया तो भारत को विश्वगुरू की गरिमा प्राप्त होने में देर नहीं लगेगी ग्रामीणता को उनेक संस्कारो, सामाजिकताओं के साथ पुरानी शिक्षा प्रणाली में बदलाव करके डिजिटल शिक्षा पर ध्यान देना होगा जिससे वे विश्व के साथ कदम से कदम मिलाकर कार्य कर सकें।

भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा भाग गांवो में निवास करता है उनकी शिक्षा-दिक्षा का आकार भी ग्रामीणीय स्तर का रहा है। जहाँ पर विश्वपरिदृष्य में बहुत परिवर्तन हो चुका है वही भारतीय ग्रामीण शिक्षा अपनी पुरानी शिक्षा प्रणाणी पर ही निर्भर रही उसमें थोड़े बहुत सुधार तो हुए परन्तु वे इतने पर्याप्त नहीं रहे कि भारत के ग्रामीण युवा अपनी उपस्थिति समाज और विभिन्न देशों के साथ उन्नत तरीके से कर सकें। इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने ग्रामीणों को शसक्त बनाने के लिए एक महत्वाकांक्षी परिकल्पना पर विचार करके ग्रामीण डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम की शुरूआत 8 फरवरी 2017 के कैबिनेट की बैठक में किया कार्यक्रम के इस योजना के माध्यम से सरकार देश के नागरिकों के प्रति सरकारी जवाबदेही निश्चित करते हुए सार्वजनिक भागीदारी को मजबूत बनाया तथा ई-गवर्नेस का विकास किया जिससे कही पर किसी भी प्रकार की सूचना प्रदान की एवं प्राप्त की जा सकती है।

ग्रामीण परिवेश को डिजिटल प्रणाली से जोड़कर एक ऐसा खाका तैयार करना है जिससे आधुनिक प्रौद्योगिकी का फायदा उठाया जा सके। देश में डिजिटल साक्षरता विकास की तरफ बढ़ने का पहला कदम माना जा सकता है। क्योंकि वर्तमान में तुरन्त एक एक्सन से ही कार्य में स्तरीय संवाद सफलता का द्योतक होगी।

भारत सरकार ने देश में डिजिटल साक्षारता प्रदान करने के लिए दो योजनाओं को 1. राष्ट्रीय डिजिटल साक्षरता मिशन (एनडीएलएम) 2. डिजिटल साक्षरता अभियान (डी-आईएसएचए) को संचालित करने का निर्णय स्पेशल पर्पज व्हीकल कम्पनी अधिनियम 1956 परिवर्तित 2013 के अन्तर्गत लागू किया इसके द्वारा लोगो को डिजिटल साक्षरता से जोड़कर लाभान्वित करने का प्रयास रखा गया डिजिटल साक्षरता मिशन में भारतीय परिवारों को एक इकाई के रूप में परिभाशित किया गया जिसके अन्तर्गत परिवार के मुखिया पति-पत्नी, बच्चे एवं माता-पिता को शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत जिन घर या परिवारों में कोई भी डिजिटल साक्षर नहीं है उसे इसके लिए पात्र माना जाएगा।

देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने एक नया अभियान चलाया जिसके माध्यम से सीधे विभिन्न वातों एवं सरकारी योजनाओं की जानकारी ग्रामीण जनता सीधे प्राप्त कर सके।

प्रधानमंत्री ग्रामीण साक्षरता मिशन का प्रमुख उद्देश्य :

1. डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा : भारतीय नागरिकों को तुरन्त कार्य प्रणाली से जोड़ने के लिए उनके कम्प्यूटर टैबलेट एवं स्मार्ट फोन जैसे डिजिटल उपकरणों की चलाने में प्रवीणता दिलाना जिससे वे आत्मनिर्भर बनकर योजना का लाभ ले सके।

2. इण्टर नेट प्रयोग की जानकारी : लोगों को इण्टरनेट की जानकारी देना जिससे कि लाभार्थी स्वंय विभिन्न प्रकार की जानकारी वैश्विक स्तर पर प्राप्त कर सके।

3. भुगतान को सुरक्षित बनाना : भारतीय ग्रामीण क्षेत्र के लोग भुगतान नकद करना पसन्द करते है उसके लिए जब लोग जानकारी से लैस रहेगे तो वे आसानी से डिजिटल माध्यम से पेमेण्ट कर के विभिन्न प्रकार की बचत करते है एवं आसानी से सुरक्षित भुगतान का लाभ उठा सकते है।

4. बिल भुगतान की सुविधा : डिजिटल रूप से साक्षर होने पर बिल का भुगतान (जैसे बिजली, पानी, फोन आदि) आसानी से स्वंय कर सकते है।

5. बैंकिग प्रणाली से सीधा सम्पर्क : डिजिटल प्रणाली से सुसज्जित होने के बाद आज लोग 24 ग 7 हर समय अपने बैंक के साथ है उन्हें बैंक में जाने की जरूरत नहीं है। अपना भुगतान कर सकते, भुगतान प्राप्त कर सकते है तथा बैलेन्स की जानकारी चेक कर सकते है।

6. बुकिंग प्रणाली : यह योजना लोगों को विभिन प्रकार का टिकट बुक करने के लिए प्रयोग करते है लोग आज रेलवे टिकट, प्लेन टिकट, मूवी टिकट पासपोर्ट आदि की बुकिंग स्वंय कर रहे है।

7. डिजिटल प्रोजेक्ट को बढ़ावा : मोदी सरकार की इस महत्वाकांक्षी योजना के माध्यम से सभी ग्राम पंचायतों इंटरनेट ब्रॉडबैड के माध्यम से जोड़ा जाता है जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था में सुधार लाने का लक्ष्य है इस प्रोजेक्ट के तहत 355 गांवो को हाईस्पीड इण्टरनेट से जोड़ा जाएगा।

8. डिजिटल वीक का आयोजन : सरकार द्वारा डिजिटल सप्ताह का आयोजन होता है जिसके माध्यम से सार्वजनिक और स्कूली छात्रों को न्यूटेलीकॉम सर्विस और ई-गवर्नेस के विषय में सुव्यवस्थित जानकारी दी जाती है।

9. डिजिटल इवेन्ट आयोजन : प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि जनता को जागरूक करने के लिए राजधानी दिल्ली में `Digital India Event' मनाया जाय और उसका आयोजन किया गया। जिसके द्वारा 10 हजार से ज्यादा लोगों को जानकारी प्रदान की गयी।

10. मानदण्ड के द्वारा सुविधा : इस योजना अन्तर्गत 14 से 60 वर्ष आयुवर्ग के लोगों को प्रशिक्षित किया जाएगा तथा प्रत्येक परिवार से केवल एक व्यक्ति को प्रशिक्षण दिये जाने का विचार है।

उपलब्धियाँ

भारत सरकार का ग्रामीण डिजिटल साक्षरता मिशन की शुरूआत होने के बाद से योजना की प्रमुख उपलब्धियाँ निम्न प्रकार है।

1. डिजिटल साक्षरता की प्राप्ति : 2017 में शुरू हुए इस प्रोग्राम के द्वारा सरकार ने 2351.38 करोड़ रूपये की योजना के माध्यम से मार्च 2019 तक लगभग 6 करोड़ ग्रामीण परिवार को डिजिटल रूप से साक्षर बनाने में सफलता पूर्वक प्रयास किया जिसके माध्यम से बड़ा लाभ ऐसे परिवारो को प्राप्त हुआ।

2. लक्ष्य प्राप्ति के बढ़ते कदम : सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य के अनुसार वर्ष 2019 तक 6 करोड़ लोगो को शिक्षित करना है जिसमें से अत्यन्त अल्प समय में वित्तीय वर्ष 2017-18 में 2075 करोड़ परिवार को डिजिटल रूप से साक्षर किया गया शेष को आगे साक्षर कर लक्ष्य की प्रप्ति की जायेगी।

3. डिजिटल सेवा लाभ की प्राप्ति : भारत सरकार द्वारा ग्रामीण डिजिटल शिक्षा प्रोग्राम के द्वारा लोग कम्प्यूटर, लैपटाप, टैबलेट, पेजर, स्मार्ट फोन जैसे उपकरणो का ठीक से प्रयोग कर लाभ उठा रहे है।

4. नागरिक सेवा की प्राप्ति : ग्रामीण डिजिटल साक्षरता मिशन के द्वार शिक्षित होकर लोग अपने गांवो में रहकर ही नागरिक सेवा जैसे : स्वास्थ्य, वित्तीय और अन्य सेवाएं एवं जानकारी प्राप्त कर रहे है।

5. लाभार्थी योजना की प्राप्ति : भारत में पूरे देश में लगभग 2.6 लाख सी0एच0सी0 है जो 4 से 5 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान के साथ प्रत्येक सी0एच0सी0 पर 90: महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की गयी।

6. उद्यमिता विकास : ग्रामीण डिजिटल साक्षरता के माध्यम से लोगों में उद्यमिता प्रबन्ध प्रणाली विकसित हुई है जिसका लाभ वे उठा रहे है साथ-साथ सामाजिक जागरूकता में सहभागिता दर्ज करा रहे है।

7. आवश्यक प्रमाण पत्र की सुरक्षा : भारतीय डिजिटल प्रणाली के द्वारा शिक्षित एवं जानकार होने के बाद ग्रामीण लोग जन्म प्रमाण-पत्र, शैक्षिक प्रमाण पत्र, राशनकार्ड, ड्राइविंग लाइसेन्स, टेलीफोन उपभोक्ता आईडी, बीमा, वाहन प्रमाण पत्र आदि को सुरक्षित रख रहा है और उसका लाभ उठा रहा है।

8. ई-गवर्नेंस : डिजिटल शिक्षा प्रणाली के द्वारा ई-गवर्नेंस की प्राप्ति सम्भव हो सकी है इसके द्वारा आवेदनो प्रमाण-पत्रों को आसानी से ट्रैक किया जा सकता है इसके लिए अब उन्हे कैरी करने आवश्यकता नहीं है।

निष्कर्ष

भारत सरकार की ग्रामीण साक्षरता मिशन एक त्रिनेत्र की भांति ग्रामीणों के जीवन में एक नई आशा की किरण लेकर आया जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार की समस्याओं का हल आसानी से हो रहा है लोगो को कार्यस्थल पर हमेशा उपस्थित हुए बिना कार्य करने में सफलता प्राप्त हो रही है।

आज चाहे बैंक, बीमा, ऑनलाइन पेमेन्ट ई-कामर्स जैसे कार्य लोग घर बैठकर सम्पन्न कर रहे है। ये सब डिजिटल ज्ञान की ही देन है ग्रामीणीय जीवन में यह बदलाव किसी अविष्कार से कम नहीं है।

देश में इन्टरनेट प्रदाता की संख्या में वृद्धि हुई तथा स्पीड में बढ़ोत्तरी हुई जबकि मूल्य भी कम हुआ है जिसके द्वारा लोग लाभ उठा रहे है।

अत: निष्कर्ष रूप से डिजिटल शिक्षा ग्रामीणों के ही नहीं सम्पूर्ण भारत के नागरिकों के लिए एक वरदान साबित हुआ है।

सन्दर्भ

1. इण्डिया डिजिटल प्रोग्राम रिपोर्ट।
2. डिजिटल योजना प्रोजेक्ट इण्डिया।
3. डिजिटल इण्डिया इवेन्ट डाट काम।
4. योजना विशेषांक ISSN0971-8397।
5. कुरूक्षेत्र पत्रिका भारत का ग्रामीण कौशल विकास।
6. Indian economy S. chand.

भारतीय राजनैतिक परिपेक्ष्य और महिला सशक्तिकरणः प्रयास और चुनौतियाँ

डॉ० पंकज कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

प्राचीन ग्रथों में वर्णित उक्ति 'यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' एवं माओत्से-तुंग का यह कथन की आधा आसमान महिलाओं के हिस्से में आता है, समाज में महिलाओं की स्थिति, स्थान एवं महत्ता को स्वतः स्पष्ट करता है, लेकिन इस सच्चाई से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि शताब्दियों से संसार में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को दूसरा स्थान दिया जाता रहा है, दोनों के महत्व एवं रुतबा में अंतर रहा है। मानव के पूरे इतिहास में पुरुषों को महिलाओं की तुलना में अधिक शक्तियाँ प्राप्त रहीं हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी स्तरों पर औरत को पुरुष से हीन माना जाता रहा है। यद्यपि महिला और पुरुष के बीच का अंतर जैविक प्रजनन के आधार पर किया जाता है लेकिन हजारों वर्षों से विभिन्न समाजों द्वारा इस अंतर का प्रयोग सुविधा के रुप में किया जाता रहा है। प्राचीन भारत में महिलाओं और पुरुषों के बीच का संबंध समानता पर आधारित था। महिलाओं को पुरुषों की तरह सभी प्रकार की धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। रोजगार में लगी विवाहित महिलाएँ अपनी संपत्ति एवं जायदाद को अपने अधिकार में रख सकती थी एवं पैतृक संपत्ति में भी हिस्सा प्राप्त कर सकती थी।

परंतु समयोपरांत समाज में व्यापक परिवर्तन हुए, जिसके परिणामवरुप महिलाओं की स्वतंत्रता का क्षरण हुआ एवं 'असूर्यमपस्या' की उपाधि से नवाज कर पर्दा प्रथा की बेड़ियों में जकड़ दिया गया। महिलाएँ धार्मिक एवं वैदिक अधययन के लिए अयोग्य धेषित की गई, समाज में उनके साथ लैंगिक भेदभाव की शुरुआत हुई। विधवा विवाह पर धर्मिक प्रतिबंध के कारण समाज में सती-प्रथा का प्रचलन शुरु हुआ।

19वीं शताब्दी में भारत में अनेक सुधारवादी आंदोलनों का जन्म हुआ, जिसने आधुनिक भारत में पहली बार महिला सशक्तिकरण की ओर कदम बढ़ाया। सती-प्रथा उन्मूलन 1829, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, कानूनी विवाह अधिनियम 1872 जैसे सुधारात्मक कानून बनाए गए, लेकिन महिलाओं के प्रति लोगों के व्यवहार में विशेष परिवर्तन नहीं आया। विधि निर्माण के बाद भी संपत्ति, विरासत आदि के कानून महिलाओं के विरुद्ध बने रहे। समाज में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं थी।

सशक्तिकरण का पहला आयाम है– आत्मविश्वास की वृद्धि और स्वाभिमान एवं इसी के आधार पर है समाज में सम्मान की प्राप्ति। अतः स्वतंत्रता के बाद संविधान के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन और विकास लाने का प्रयास किया गया है। विशेष विवाह अधिनियम 1954, अनैतिक व्यापार समाप्ति अधिनियम 1956, दहेज निषेध अधिनियम 1961, समान वेतन अधिनियम 1976, बाल विवाह प्रतिबंध संशोधन अधिनियम 1978,परिवार न्यायालय अधिनियम 1984, दहेज निषेध संशोधन अधिनियम 1984, अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1986, महिलाओं के यौन उत्पीड़न से निपटने के लिए 1998 में राष्ट्रीय कारवाई योजना, घरेलू हिंसा अधिनियम 2006, आदि प्रमुख हैं। विधायिका द्वारा कानून बनाने के अतिरिक्त न्यायपालिका ने भी अपने निर्णयों से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है। नवंबर 1975 में सर्वोच्च न्यायालय ने विधवा या मृत व्यक्ति की पुत्री को उसकी संपत्ति में समान अधिकार दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने तलाकशुदा महिलाओं के भरण-पोषण के लिए व्यवस्था पर बल दिया। न्यायपालिका ने सरकार को समय-समय पर निर्देश दिए हैं जो महिला सशक्तिकरण को सुदृढ़ बनाता है। इसी के अधार पर सरकार ने पैतृक संपत्ति में महिलाओं के समान भागीदारी का कानून बनाया है।

महिला सशक्तिकरण का प्रयास केवल कानून बनाने एवं उसकी व्याख्या तक सीमित नहीं रहा है। महिला विकास कार्यक्रमों को पंचवर्षीय योजनाओं में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया हैं। तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में महिला शिक्षा और कल्याण को उच्च प्राथमिकता दी गई। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में महिला विकास और महिला सशक्तिकरण पर ध्यान केन्द्रित किया गया। सन् 1985 में केन्द्र में स्वतंत्र महिला और बाल विकास विभाग स्थापित किया गया। आठवीं योजना में महिलाओं को शक्ति प्रदान करने पर ध्यान क्रेन्द्रित किया गया। सन् 2001 की जनगणनानुसार भारत में महिलाओं की संख्या 49.87 करोड़ है जो कुल जनसंख्या का 48.2: है। अत: भारत सरकार द्वारा महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक कल्याण हेतु अनेक कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। सरकार ने 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रुप में मनाया है। सरकार द्वारा चलाए गए कार्यक्रमों में से कुछ निम्न हैं–

रोजगार एवं प्रशिक्षण में सहायता देने का कार्यक्रम (स्टेप) (1985.86)

इसका उद्देश्य परंपरागत क्षेत्रों में महिलाओं के कौशल में सुधार तथा परियोजना के आधार पर रोजगार उपलब्ध कराकर महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना है। महिलाओं को समूहों में संगठित कर सेवाओं में मदद दी जाती है, ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इस योजना में आठ परंपरागत क्षेत्र शामिल हैं। यह योजना सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों, राज्य निगमों, जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों, सहकारिता परिसंधों एवं स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से लागू की जाती है। परियोजना लागत का 90: केन्द्र सरकार वहन करती है।

स्वावलंबन (1982-83)

इस कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं को स्वरोजगार प्राप्त कराना है। महिला तथा बाल विकास सचिवों/समाज कल्याण सचिवों की अध्यक्षता में प्रत्येक राज्य में अधिकारिता समिति का गठन किया गया है जो इस योजना से संबंधित स्किारिशें करती है।

स्वयंसिद्धा

स्वयंसिद्धा महिलाओं के विकास एवं सशक्तिकरण की समन्वित योजना है। इस योजना का दीर्घकालीन उद्देश्य महिलाओं का चहुँमुखी विकास, खासतौर पर उनका सामाजिक और आर्थिक विकास करना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 31 दिसंबर 2004 तक 650 प्रखंडों में 59940 स्वयंसहायता समूह बनाए गए।

स्वशक्ति

ग्रामीण महिलाओं के विकास की यह केन्द्र प्रायोजित योजना जो विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास बैंक के सहयोग से संचालित की जाती है। यह योजना बिहार, हरियाणा, गुजरात, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड में लागू है।

सरकार द्वारा 20 मार्च 2001 में महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति घोषित की गई। इसका उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास और सशक्तिकरण को सुनिश्चित करना और महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव को समाप्त कर यह सुनिश्चित करना है कि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और गतिविधि में खुलकर भागीदारी करें। 2010 तक इस नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्य योजना बनाई गई है। महिला सशक्तिकरण के प्रयासों को गति देने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग नामक सांविधिक संस्था राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 के तहत गठित की गई है। यह महिलाओं की शिकायतों को दूर करने तथा महिलाओं की प्रगति के लिए अनुसंधान का कार्य करती है। यह आयोग महिलाओं की जागरुकता बढाने में सक्रिय रुप से योगदान करता है। सन् 1953 में भारत सरकार ने महिलाओं के कल्याण और विकास सेवाओं को बढ़ाने के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाने हेतु केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को स्थापित किया है। इसके अलावा राष्ट्रीय महिला कोष, राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान की भी स्थापना की गई है जो महिला सशक्तिकरण की दिशा में योगदान दे रहें है।

महिलाओं को चुनावों में हिस्सा लेने के स्वतंत्र एवं समान अधिकार के बावजूद भी निर्वाचित एवं निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं की संख्या बहुत कम रही है। इस उद्देश्य के लिए स्थानीय निकायों में संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन द्वारा महिलाओं को 33: आरक्षण प्रदान किया गया। बिहार, उत्तराखंड़, छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में महिलाओं के लिए आरक्षण की सीमा बढाकर 50:

कर दी गई है। राजस्थान में 2010 से आरक्षण की सीमा को 50: का दिया जाएगा। बिहार में शिक्षक नियुक्ति में भी आरक्षण की सीमा बढाकर 50: कर दी गई है। केन्द्रीय कैबिनेट ने स्थानीय निकायों में 50: महिला आरक्षण को स्वीकृति प्रदान कर दी है। संसद तथा विधानसभओं में महिला आरक्षण का प्रयास किया जा रहा है। इसके अलावा भी सरकार ने महिला सशक्तिकरण हेतु अनेक घोषणाएँ की है। इंदिरा आवास योजना में महिलाओं को संयुक्त रुप से लाभकर्ता माना जा रहा है। महिलाओं के नाम से संपत्ति खरीदने पर निबंधन शुल्क एवं मुद्रांक शुल्क में छुट दी जा रही है।

इन व्यवस्थाओं ने महिला सशक्तिकरण को तीव्र गति प्रदान की है। महिलाएँ सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं का लाभ उठाकर सशक्त हो रही है। स्थानीय स्वशासन में महिलाओं की आरक्षण व्यवस्था ने क्रांतिकारी परिवर्तन किया एवं महिलाएँ मुखिया, सरपंच, प्रखंड प्रमुख, जिलापरिषद के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष जैसे पदों को सुशोभित कर दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन कर रही हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महिला सशक्तिकरण के अनेक सार्थक प्रयास हुए हैं। सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने घोषणापत्र में महिलाओं के प्रति भेदभाव को दूर करने के संकल्पों का वर्णन किया। सन् 1967 महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव बरतने वाले सभी साधनों को समाप्त करने की घोषणा को स्वीकार किया। सन् 1975 को संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रुप में मनाने की घोषणा की। अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलनों का आयोजन किया गया है। सन् 1995 में बीजिंग में आयोजित विश्व महिला सम्मेलन में महिला संबंधी विषयों की व्यापक समीक्षा हुई।

इन प्रयासों के अतिरिक्त महिला सशक्तिकरण के पक्ष में एक व्यापक बदलाव का माहौल पैदा हुआ है। 21वीं सदी को महिलाओं की सदी माना जा रहा है। समूचे विश्व में इस प्रकार का माहौल है। मई 2005 में कुवैत की महिलाओं को वोट का अधिकार प्रदान किया गया। सऊदी अरब में भी महिलाओं पर से प्रतिबंधों को हटाया जा रहा है। भारत में घरेलू हिंसा अधिनियम में यौन उत्पीड़न और गाली-गलौज को हिंसा की श्रेणी में रखा गया तथा महिलाएँ इस कानून का बखूबी इस्तेमाल कर रहीं हैं। आज महिलाएँ पढ़ाई करने एवं आत्मनिर्भर बनने में पुरुषों के साथ खड़ी नजर आ रहीं हैं। उत्पीड़न का मुकाबला सफलतापूर्वक कर अपने अधिकारों का उपयोग कर रहीं हैं। महिला आयोग, मीडिया एवं स्वयंसेवी संस्थाओं ने महिला सशक्तिकरण की दिशा में व्यापक योगदान दिया है। आत्मनिर्भर स्त्रियों की संख्या बढ़ी है। कार्यस्थल पर शोषण से बचाव हेतु सुप्रीम कोर्ट ने पहल की है। न्यायालय ने आचार संहिता बनाकर यह स्पष्ट किया कि कौन सी बातें इसके अंदर आती हैं तथा इसके लिए उपाय सुझाए हैं।

महिलाओं के विकास में सबसे अधिक बाधक हमारी रुढ़ियाँ, परंपरा, एवं रीति-रिवाज हैं। परन्तु अब महिलाओं की भूमिका में निर्णायक परिवर्तन शुरु हुआ है। महिलाएँ आज सभी क्षेत्रों में उपस्थिति दर्ज करा रहीं हैं। वर्तमान में भारत में सर्वोच्च राजनीतिक स्थिति एक महिला को प्राप्त है। विश्व स्तर पर हिलेरी क्लिंटन, चीनी उपप्रधानमंत्री एवं जर्मनी की चांसलर एंजेला मार्कल, इंदिरा नूयी, चंदा कोचर ने अपने व्यक्तित्व से सभी को प्रभावित किया है। यह महिला सशक्तिकरण का सर्वोच्च प्रमाण है।

पूरी दुनिया में कामकाजी महिलाओं की संख्या में तेजी से बढोत्तरी हो रही है। सार्वजनिक क्षेत्र के मुकाबले निजी क्षेत्र में महिलाओं की संख्यां में तेजी से इजाफा हुआ है। विश्व स्तर पर यह माना गया है कि यदि महिलाओं की स्थिति सुधारनी है तो उनकी आर्थिक स्थिति सुधारनी होगी क्योंकि दुनिया के 58: संसाधनों पर पुरुषों का कब्जा है। अत: वित्तीय व्यवस्था को महिला समर्थक बनाने का प्रयास किया गया है। लिंग आधारित बजट प्रणाली की व्यवस्था को अपनाया जा रहा है। महिलाएँ आर्थिक दक्षता हासिल कर व्यापारिक प्रतिष्ठानों को अपनी सेवाएँ प्रदान कर रही हैं। इंदिरा नूयी शीतल पेय बनाने वाली कंपनी पेप्सी के सर्वोच्च पद पर आसीन हैं। आर्थिक क्षेत्र में एच.एस.बी.सी. बैंक की नैना लाल किदवई, रिर्जव बैंक की डिप्टी गवर्नर सुश्री लीला सेठ के अलावा अन्य कई महिलाएँ हैं जो सार्वजनिक बैंकों से लेकर निजी औद्यौगिक घरानों में प्रमुख वित्तीय एवं प्रशासनिक पद पर तैनात हैं। न्यायपालिका में भी महिलाओं ने अपना रुतबा बढ़ाया है। सानिया मिर्जा, अंजू बॉबी जार्ज, कानेरु हंपी, सानिया नेहवाल जैसी महिला खिलाड़ियों की प्रतिभा एवं ख्याति किसी से छुपी नहीं है। शीतल महाजन ने उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों से छलाँग लगाकर महिला सशक्तिकरण को नई ऊँचाई दी है।

भारत द्वारा सन् 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष मनाने के बाद से निरंतर महिला सशक्तिकरण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है(महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए विशेष रुप से महिलाओं को समानता प्रदान करने के प्रयास किए गए हैं।

महिलाओं को कानून एवं संविधान द्वारा समान अधिकार प्राप्त हैं। महिलाओं को अपना भविष्य उज्जवल बनाने के लिए किसी भी प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने की स्वतंत्रता है, किन्तु जब हम समाज की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि महिला सशक्तिकरण के प्रावधानों पर ईमानदारीपूर्वक क्रियान्वयन नहीं किया गया है। कुछ सकरात्मक प्रयासों से कुछ उपलब्धियाँ अवश्य हैं, किन्तु यह अभी पूर्ण नहीं है। आज भी पुरुष प्रधान समाज महिला सशक्तिकरण को अपने अधिकारों की कटौती के रुप में देख रहा है। सरकारों द्वारा समय-समय पर संविधान संशोधन एवं अधिनियम बनाकर नए अधिकार तो दिए जाते हैं किन्तु क्रियान्वयन के नाम पर तत्परता नहीं दिखाई जाती है। पुरुष एवं महिला की सामाजिक स्थिति में अंतर यों तो समूचे समाज में मौजूद है किन्तु ग्रामीण समाज में हालात बद्तर हैं। शहरों में शिक्षा, समाज सुधार आंदोलनों और प्रचार-प्रसार के माध्यमों के प्रभाव से महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी है, जिससे महिलाओं का एक छोटा सा वर्ग लाभान्वित हुआ है, परन्तु व्यापकता में इस चेतना का असर काफी हल्का है। समाज में लिंग भेद जारी है, सामाजिक कुरीतियों जैसे बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, नशाखोरी आदि का सबसे ज्यादा कुप्रभाव महिलाओं पर पड़ा है जिससे महिलाएँ पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टि से दबी रहती हैं।

संविधान प्रदत्त समानता के अधिकार को वास्तविक बनाने के लिए अनेक कानूनों का निर्माण किया गया है। सामाजिक परिदृश्य में महिलाओं के अधिकार पुरुषों की तुलना में कम हैं। महिलाओं के प्रति सामाजिक व्यवहार पक्षपात से परिपूर्ण है। सामाजिक व्यवहार के स्तर पर महिलाओं की स्थिति और भूमिका के प्रति समाज की अभिवृत्ति और दृष्टिकोण अभी तक संकीर्ण हैं। महिलाओं के विरुद्ध बढ़ते अपराध और हिंसा की घटनाएँ समाज में व्याकुलता को प्रकट करती हैं। सांस्कृतिक, जातिगत, वर्गगत, धार्मिक और पुनरुत्थानवादी शक्तियों द्वारा उत्पन्न चुनौतियां महिलाओं के सम्मानजनक जीवन बिताने में बाधक है।

विश्व में फैली रुढ़िवादी कटरवादिता की भावना से भी महिला आंदोलन को खतरा है। सभी धार्मिक, जातीय सांस्कृतिक रुढिवादी मूलत: लैंगिक समानता को नहीं मानते हैं चाहे उनकी अभिवृत्ति कुछ भी क्यों न हो। संपत्ति से संबंधित मामलों में हाल में बने कानूनों और न्यायिक निर्णयों के बावजूद महिलाओं को प्राय: संपत्ति में हक नहीं दिया जाता है। उन्हें बलपूर्वक या भावनात्मक रुप से बाध्यकर अधिकार छोड़ने के लिए विवश किया जाता है। लिगांनुपात में निरंतर गिरावट महिलाओं के प्रति भेदभाव को दर्शाता है। हरियाणा में यह चिंताजनक स्थिति तक पहुँच गया है। अभी भी मात्र 54.16: महिलाएं ही शिक्षित हो पायीं हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग के आकंड़ों के अनुसार प्रति 24 मिनट में एक महिला का यौन शोषण, प्रति 43 मिनट में एक अपहरण तथा प्रति 54 मिनट में एक बलात्कार हो रहा है। 102 मिनट के अन्तराल पर एक औरत दहेज की भेंट चढ़ जाती है। शासन के स्तर पर भी केवल स्थानीय निकायों में महिला आरक्षण की व्यवस्था हो पायी है। संसद एवं विधानसभाओं में इसके लिए अभी तक गंभीरतापूर्वक प्रयास नहीं किए गए हैं।

अर्थव्यवस्था के विस्तार, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने रोजगार के अवसरों में वृद्धि की है, लेकिन आकंडों से पता चलता है कि आर्थिक क्षेत्र में भी महिलाओं के रोजगार में बहुत कम परिवर्तन आया है। पुरुषों की तुलना में महिलाएं कम वेतन वाले रोजगार या अवैतनिक कार्यों में कार्यरत हैं। महिलाओं द्वारा किया गया कार्य यद्यपि उत्पादक हैं लेकिन इसे मान्यता नहीं दी गई है। असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता है। संगठित क्षेत्र में 50: या उससे अधिक महिलाएँ अर्द्धकुशल कार्यों में लगी हैं उन्हें भी कम वेतन दिया जाता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के ऑकड़ें दर्शाते हैं कि कृषि में कार्यरत कुल श्रम का 44: महिलाएँ हैं फिर भी उन्हें वह स्थिति नहीं प्राप्त है जो कि होनी चाहिए।

समाज में घटने वाली अनेकों घटनाओं से सामाजिक प्रवृत्ति का पता चलता है। जिसमें इमराना मामला, गुडिया मामला, हरियाणा में पति-पत्नी को भाई-बहन बनाना, प्रेम विवाह के बाद परिवार द्वारा प्रताड़ित किया जाना, महिलाओं के अश्लील चित्र तथा मल्टी -मिडिया क्लिप तैयार कर ब्लैकमेल करने की घटनाएँ हमारे सामने आम हैं। इन सब परिस्थितियों से नारी की स्थिति का वास्तविक स्वरुप हमारे सामने आता है, जहॉ आज भी महिलाओं को अधिकार एवं सुविधाए कम प्राप्त है लेकिन श्रम का न्यूनतम पारिश्रमिक, शोषण और ज्यादा है।

अत: महिला सशक्तिकरण को मूर्तरुप देने के लिए आवश्यक है कि महिलाओं के वर्तमान सामाजिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक आदि पक्षों को दृष्टिगत रखते हुए उनकी समस्याओं, कठिनाइयों और अपेक्षाओं को वास्तविक धरातल पर उतारकर निरीक्षण एवं

नीति निर्धारण किया जाए। पुरुष-प्रधान समाज व शासन-प्रशासन में महिलाओं हेतु मात्र कानून या नए अधिकारों की स्थापना से सशक्तता नहीं दी जा सकती है बल्कि इसके लिए महिलाओं के प्रति संकुचित दृष्टिकोण को व्यापक, उदार व व्यवहारिक बनाए जाने पर बल दिया जाना चाहिए। महिलाओं के पूर्ण सशक्तिकरण हेतु उन्हें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ सभी स्वतंत्रताओं को प्रदान करना पडेगा।

महिलाओं को जागरुक तथा साहसी बनाने में दो तत्व अधिक सार्थक भूमिका निभा सकते हैं। ये हैं- शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन। ये दानों तत्व न केवल महिलाओं में स्वाभिमान और आत्मविश्वास पैदा करते हैं बल्कि उन्हें सशक्त एवं अधिकार संपन्न भी बनाते हैं। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक जोरदार कदम राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना करके उठाया गया है। यह कोष बांग्लादेश की ग्रमीण बैंक की सफलता से प्रेरित होकर स्थापित किया गया है।

महिलाओं को शिक्षित करना सशक्तिकरण का सबसे अधिक कारगर उपाय है। यह इस बात से भी साबित होती है कि देश के जिन राज्यों में महिला साक्षरता की दर ऊँची है वहाँ महिलाओं की स्थिति ज्यादा अच्छी है। सरकारों ने भी महसूस किया है कि शिक्षा महिला सशक्तिकरण के लिए अनिवार्य है, जिससे लड़कियों को शिक्षित करने की अवधारणा को व्यापक स्वीकृति मिली है। गावों में भी अधिकांश लोग अपनी बेटियों को शिक्षित करना चाहते हैं। इन परिवर्तित परिस्थितियों के फलस्वरुप ही महिला साक्षरता दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। 2001 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता की दर 54.16% हो गई है जो 1991 की दर से 14.87% अधिक है जबकि इसी दौरान पुरुष साक्षरता की दर में 11.72% की वृद्धि हुई है।

आर्थिक स्वावलंबन और शिक्षा के बाद सत्ता में भागीदारी महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण कारक है। निर्णय लेने के स्तर पर महिलाओं की हिस्सेदारी के बिना उन्हें समानता और सम्मान देने का सपना पूरा नहीं हो सकता। 73वें और 74वें संविधान संशोधन के जरिए स्थानीय स्वशासी संस्थाओं में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित करने का कदम कारगर सिद्ध हुआ है। महिलाओं के शिरकत से पंचायतें पहले से अधिक सक्रियता और ईमानदारी से काम करने लगी हैं और परिवार एवं समाज में इनका सम्मान तथा प्रभाव बढ़ा है। महिलाएँ अपनी योग्यता एवं आत्मविश्वास के बल पर चुनौतियों का मुकाबला कर रहीं हैं जिससे सशक्तिकरण की प्रक्रिया को निश्चित रुप से गति मिली है।

इस प्रकार अब समय आ गया है कि महिलाएँ थोपी गई संकीर्ण धारणाओं से बाहर निकल कंधा से कंधा मिलाकर आगे बढ़ें। हमें समानता आधारित सुव्यवस्थित सामाजिक प्रणाली विकसित करनी होगी, जिसमें महिलाएँ भेदभाव रहित एवं उत्साहवर्द्धक वातावरण पाकर अपनी निहित क्षमताओं का उपयोग करके सशक्त बनें। स्वामी विवेकानंद के अनुसार ' स्त्रियों की दशा में सुधार न होने तक विश्व का कल्याण उसी प्रकार से असंभव है, जिस प्रकार पक्षी का एक पंख से उड़ना। ' हमें सदैव यह स्मरण रहना चाहिए कि एक नारी ही एक सुयोग्य राष्ट्र के निर्माण का श्रेय प्राप्त कर सकती है। अत: महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु अधिकारों के साथ-साथ उन्हें स्वस्थ्य मानवीय व्यवहार, समान अवसर व महत्व प्रदान किया जाए। उन्हें उत्साहवर्द्धक पारिवारिक, सामाजिक, एवं प्रशासनिक वातावरण सुलभ कराया जाए, तभी महिलाएँ अपने अधिकारों का पूर्ण लाभ उठा सकेंगी। इससे ही महिला उत्थान का राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा एवं समाज का एक महत्वपूर्ण अंग जो अब तब उपेक्षा का शिकार है सशक्त होकर राष्ट्रीय विकास में अपना बहुमुल्य योगदान कर सकेगा।

संदर्भ सूची:

* Desai, Nerra(1996) – Womens Employment and their Familial Role in India.
* Srinivas, M.N. (2002) – The Changing Position Of Indian Women.
* Ghose, S.K. (1984) – Women in changing society.
* Ashok and Harish (1991) – Women Power: Status of Women in India..
* Anju, Malhohra (2002) – Measuring Women's Empowerment as a variable in International Development

* Kurukshetra (2007) – March
* नारंग, ए.एस–भाारतीय शाासन और राजनीति
* शर्मा, सुभाष–भारतीय महिलाएं: दशा एवं दिशाएं
* शर्मा, ब्रजकिशोर–भारत का संविधन एक परिचय, (तीसरा संस्करण)
* कुरुक्षेत्र– दिसंबर 2003,जुलाई 2002
* योजना–मार्च 2004, अक्टूबर 2008
* भारत–2007

द्वैत वेदान्तः एक दर्शनशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० भैरवी

अतिथि सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

दृष्टिरेव दर्शनम् अर्थात् देखना। दृश्यतेऽनेनेति अर्थात् देखने का साधन। साधन से तात्पर्य है – दृश्यते प्रेक्ष्यते ज्ञायते अनेन इति दर्शनम् अर्थात् जिसके माध्यम से तत्त्वों का साक्षात्कार हो, वह दर्शन है।[1] विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय या सिद्धान्त ही वे साधन हैं। समस्त भारतीय दर्शन सम्प्रदायों को दो वर्गों[2] में बाँटा गया है –

आस्तिक एवं नास्तिक[3]। आस्तिक सम्प्रदाय – सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) हैं और नास्तिक सम्प्रदाय से अभिप्राय है- चार्वाक, बौद्ध एवं जैन।

भारतीय दर्शन में वेदान्त दर्शन का एक विशिष्ट स्थान है। उत्तर मीमांसा अर्थात् वेदान्त में उपनिषत्प्रतिपाद्य जीव और ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है। 'वेदानां अन्तः इति वेदान्तः' इस व्युत्पत्ति से 'वेदान्त' शब्द का व्यवहार मुख्य रूप से वेद के अन्तिम भाग उपनिषदों के लिए होता है। वेद के अन्त अर्थात् चरमोत्कर्ष एवं प्रमाण रूप होने से ही यह वेदान्त है। वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च[4] के अनुसार ब्रह्मविद्या अथवा प्रमाणरूप उपनिषद् ही वेदान्त है, उनके उपकारक अर्थात् अर्थ का अनुवर्तन करने वाले शारीरक सूत्रादि ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता आदि भी उपचार से वेदान्त है। इन्हें प्रस्थानत्रयी भी कहा जाता है। वेदान्त के गूढ रहस्यों को सुलझाने हेतु प्रस्थानत्रयी पर अनेक भाष्यकारों ने भाष्य लिखे, जिसके फलस्वरूप वेदान्त दर्शन के अनेक सिद्धान्त विकसित हुए। इनमें प्रमुख पाँच सिद्धान्त इस प्रकार है – आचार्य शङ्कर का अद्वैतवाद (नॉन डुअलिज़्म), आचार्य रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद (क्वालीफाइड मोनीज़्म), आचार्य मध्व का द्वैत (डुअलिज़्म), आचार्य निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद (डुअलिज़्म कम नॉन डुअलिज़्म) एवं आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैत (प्योर नॉन डुअलिज़्म)।

उपरोक्त वर्णित वेदान्त सम्प्रदायों में शोध विषय होने के कारण द्वैतवाद अथवा द्वैत वेदान्त का सारांशात्मक विवरण देना आवश्यक है। जो इस प्रकार है –

I. द्वैत वेदान्त सम्प्रदाय

मध्वाचार्य दक्षिणात्य द्वैत वेदान्त थे। इन्हें ही द्वैत वेदान्त सम्प्रदाय का संस्थापक माना जाता है। इनका सम्प्रदाय 'ब्रह्म सम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है। यह सम्प्रदाय भेदवादी, ईश्वरवादी एवं यथार्थवादी दर्शन है। मध्वाचार्य (1238–1317 ई०)[5] का जन्म दक्षिण भारत में शृंगेरी से पश्चिम कनारा जिले के उडुपि (उडिपी) के समीप रजतपीठ नामक स्थान के पाजक नामक ग्राम में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट था। इनके गुरु का नाम अच्युत प्रेक्ष्य था। व्यावहारिक पक्ष में द्वैत वेदान्त सम्प्रदाय भक्तिवादी है तथा आध्यात्मिक पक्ष में वह भेदवादी या द्वैतवादी है।

सुब्बानाचार की माने तो द्वैत केवल भेद मात्र नहीं है, वह दो स्वतंत्र तत्त्वों को निर्देश करने का माध्यम है, वह स्वतंत्र और परतंत्र तत्त्व के मध्य की विलक्षणता है, सर्वोत्तम (सर्वकारण) तत्त्व का कार्य मात्र है। जिस प्रकार स्वतंत्र विष्णु द्वैत की प्रवृत्ति और स्थिति का कारण है।[6] मध्व सिद्धान्त की परम्परा में इसे ब्रह्ममीमांसा, ब्रह्मवाद, विष्णुशास्त्र, सरशास्त्र और वैष्णव सिद्धान्त भी कहते है। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों की संख्या सैंतीस मानी जाती है। उनमें प्रस्थानत्रयी का भाष्य, भागवततात्पर्यनिर्णय, महाभारततात्पर्यनिर्णय, विष्णुतत्त्वविनिर्णय, मायावाद खण्डन, उपाधिखण्डन, तत्त्वविवेक, तत्त्वसंख्यान, कर्मनिर्णय तथा तत्त्वोद्योत आदि प्रमुख ग्रन्थ है।

द्वैत वेदान्त की आचार्य परम्परा

मध्वाचार्य के पश्चात् द्वैत वेदान्त परम्परा में अनेक प्रतिभाशाली आचार्य हुए है, जिनमें कतिपय प्रसिद्ध आचार्यों का कालक्रम[7] संहित संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय इस प्रकार है –

1. पद्मनाभ तीर्थ (1318-24 ई०) – द्वैत-वेदान्त परम्परा में पद्मनाभ तीर्थ का नाम मध्वाचार्य कृत भाष्य पर प्रथम टीकाकार के रूप में स्मरणीय है। मध्व विजय के अनुसार यह गोदावरी तट के उत्तरी कर्नाटक के निवासी थे।[8]

इनकी विद्वता के कारण ही, इनके लगभग 'पन्द्रह' हस्तलिखित ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। जयतीर्थ की विद्वता, प्रक्रिया और स्वरूप दोनों की दृष्टि से पद्मनाभ तीर्थ की ऋणी है।[9] मध्व के दसों प्रकरण ग्रन्थ, ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता भाष्य इत्यादि पर इनकी टीकाएँ है, किन्तु इनके प्रकाशित ग्रन्थों की सूची नगण्य ही है। इसका कारण जयतीर्थ की प्रसिद्धि ही है।

2. नरहरि तीर्थ (1324-1333 ई०) – नरहरि तीर्थ संभवत: आन्ध्र अथवा उड़ीसा निवासी थे। मध्व विजय में नरहरि का नामश: उल्लेख न होने पर भी श्रीकुरम् तथा अन्य स्थलों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि नरहरि भी मध्व के प्रत्यक्ष शिष्य थे, किन्तु उनके जीवन वृत्त के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। नरहरि तीर्थ के अनेक ग्रन्थों के उल्लेख मिलते है, किन्तु उपलब्ध ग्रन्थ गीताभाष्य की भावप्रकाशिका टीका है, जो अनेक स्थलों से खण्डित है।

3. अक्षोभ्य तीर्थ (1350-1365 ई०) – अक्षोभ्य तीर्थ आचार्य मध्व के प्रत्यक्ष शिष्यों में अन्तिम थे, जो पीठाधिपति के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इनका पूर्व नाम गोविन्द शास्त्री था। द्वैत परम्परा की अनुश्रुति के अनुसार अद्वैत वेदान्त के प्रमुख विचारक एवं लेखक विद्यारण्य (1302-87 ई०) के साथ 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यार्थ पर विवाद हुआ था। सम्प्रदाय में प्रचलित श्रुति 'असिना तत्त्वमसिना परजीवप्रभेदिना। विद्यारण्यमहारण्यमक्षेभ्य -मुनिरच्छिनत्।।' इसका समर्थन करती है।

बी०एन०के० शर्मा के अनुसार यह द्वैत वेदान्त के प्राचीन टीकाकारों में से एक है।[10] किन्तु द्वैत वेदान्त परम्परा को इनका अमूल्य उपहार तो जयतीर्थ जैसा सदादर्श शिष्य एवं मठाधिपति देना ही महनीय कार्य रहा, जिसने द्वैत वेदान्त चिन्तन को एक नया आयाम दिया है।

4. जयतीर्थ (1365-1388 ई०) – उपरोक्त कतिपय प्राचीन टीकाकारों के पश्चात् जयतीर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जयतीर्थ के मूल स्थान के विषय में पर्याप्त मतभेद है। गुरुचर्या के अनुसार वह वृष्टिखेट ग्राम के निवासी थे।[11] इनके पिता का नाम रघुनाथ था। इनकी विद्वता के विषय में एस.एन.दास के शब्द इस प्रकार हैं – "जयतीर्थ द्वारा प्रदर्शित प्रखर द्वन्द्वात्मक तर्क कौशल भारतीय चिन्तन के क्षेत्र में अप्रतिम है।"[12] इन्होंने पूर्व आचार्यों के ग्रन्थों को नितान्त श्रद्धा के साथ आत्मसात करके, अत्यधिक प्रौढ़ता एवं विद्वता के साथ ग्रन्थों का निर्माण किया है। इन्हें टीकाचार्य के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त है। द्वैत वेदान्त में इनका स्थान व्याकरण क्षेत्र के महाभाष्यकार पतञ्जलि के समतुल्य माना जाता है।

जयतीर्थ ने मध्वाचार्य के प्राय: सभी ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी हैं। जयतीर्थ कृत टीकाओं पर भी अनेक विद्वानों ने टीकाऐं लिखी हैं। वादावली एवं प्रमाणपद्धति ये दो स्वतंत्र ग्रन्थ भी जयतीर्थ द्वारा रचित है। जयतीर्थ कृत प्रमाणपद्धति द्वैत वेदान्त का एक प्रकरण ग्रन्थ है, जिसमें मुख्यत: द्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में ही यह कहा गया है कि अल्पज्ञ नवच्छात्र का द्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों से परिचय कराने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गई है। प्रमाणपद्धति में सविस्तार और मुख्यतया से प्रमाण मीमांसा का ही विवेचन किया गया है। जिसके अन्तर्गत प्रमाण लक्षण, प्रमाण भेद, यथार्थ-अयथार्थ ज्ञान का स्वरूप, संशय का स्वरूप, तर्क का स्वरूप, अनुमान दोष निरूपण की आवश्यकता, आगम प्रमाण की आवश्यकता, शब्द स्वरूप, शब्द-वाक्य दोष, वाक्यार्थ प्रतीति, उपमान अर्थापत्ति का अन्तर्भाव इत्यादि तथ्यों का विश्लेषणात्मक निरूपण प्राप्त होता है। प्रमाणपद्धति तीन अध्यायों में विभक्त है- प्रत्यक्ष, अनुमान, एवं आगम परिच्छेद। उपर्युक्त तथ्यों का तत्सम्बद्ध अध्यायों में विवेचन किया गया है। प्रमाणपद्धति में न्याय मत और मीमांसक मत का निरन्तर उल्लेख प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ भारतीय दर्शन प्रमाणशास्त्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसमें भारतीय दर्शन सम्मत प्रमाण और द्वैत वेदान्त सम्मत प्रमाण का विश्लेषण किया गया है।

प्रमाणपद्धति की टीकाएँ - प्रमाणपद्धति द्वैत वेदान्त सम्प्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण, संक्षिप्त और सरल सुबोध शैली में लिखा गया प्रकरण ग्रन्थ है। जिसकी उपादेयता को समझते हुए परवर्ती अनेक विद्वानों ने प्रमाणपद्धति पर अपनी-अपनी टीकाऐं लिखी हैं। प्रत्यक्षत: प्रकाशित रूप में इनकी संख्या आठ है। इन टीकाओं और टीकाकारों के नाम इस प्रकार है -

1. विजयीन्द्रतीर्थ टीका - विजयीन्द्रतीर्थ (1514-1595 ई0),
2. वेदेशतीर्थ टीका - वेदेशतीर्थ (1570-1620 ई0),
3. श्रीनिवासतीर्थ टीका - श्रीनिवासाचार्य (1590-1640 ई0),
4. राघवेन्द्रतीर्थ टीका - राघवेन्द्रतीर्थ (1623-1671 ई0),
5. अभिनवामृत टीका - विजयीन्द्रतीर्थ (1648-1674 ई0),
6. जनार्दन टीका - जनार्दन भट्ट (17वीं शताब्दी),
7. विट्ठल टीका - विट्ठल भट्ट (18वीं शताब्दी),
8. आदर्श टीका - नरसिम्हा (19वीं शताब्दी).

उपर्युक्त आठ टीकायें प्रमाणपद्धति के अध्ययन और विश्लेषण में महत्त्वपूर्ण एवं सहायक है। इनका योगदान किसी भी दृष्टि से उपादेय है- यह टीकायें ग्रन्थ के वक्तव्य को सरल और सुबोध शैली में समझाती है एवं अन्य सम्प्रदायो के प्रामाणिक तथ्यों को उद्धृत करते हुए तथ्यों का निरूपण करती है। यह कतिपय स्थलों पर परिभाषाओं का पदकृत्य अर्थ भी स्पष्ट करती है। यह टीकायें द्वैत वेदान्त के अन्य ग्रन्थ अनुव्याख्या, न्यायसुधा, तर्कताण्डव इत्यादि के उद्धरण भी प्रस्तुत करती है। यह टीकायें और ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि विषय प्रतिपादन के समय द्वैत वेदान्त से भिन्न यथा - बौद्ध, मीमांसा, न्याय-वैशेषिक इत्यादि सम्प्रदायों के मतों को प्रस्तुत करके उनका खण्डन भी किया है। परिणामस्वरूप यह ग्रन्थ तुलनात्मक और आलोचनात्मक रूप को उद्घाटित करता है। प्रमाणपद्धति की भाषा सरल, सुबोध, संक्षिप्त और वैज्ञानिक है। ये द्वैत वेदान्त के दुरूह विषय को इतनी बोधगम्य रीति से समझाता है कि ज्ञाता अथवा श्रोता को काठिन्य का अनुभव नहीं होता है। वस्तुत: यह ग्रन्थ नवच्छात्र और विद्वद्जन दोनों के लिए ही अत्यधिक उपादेय सिद्ध होता है ।

5. व्यासतीर्थ (1478-1539 ई०) - सोमनाथ कृत व्यासयोगिचरित से व्यासतीर्थ के जीवनवृत्त का पूर्ण एवं विश्वसनीय चित्र अङ्कित हो जाता है। जयतीर्थ द्वारा प्रारम्भ परम्परा को पल्लवित एवं पुष्पित अत्यन्त विद्वत्ता से व्यासतीर्थ ने ही किया है। व्यासतीर्थ ने न्यायामृत, तात्पर्यचंद्रिका, तर्कताण्डव, मायावादखण्डनमंदारमंजरी, उपाधिखण्डनमंदारमंजरी, तत्त्वविवेक मंदारमंजरी, भेदोज्जीवन इत्यादि ग्रन्थों की रचना की है।[13]

6. विजयीन्द्रतीर्थ (1514-1595 ई०) - व्यासतीर्थ के पश्चात् द्वैत वेदान्त के रक्षक की भूमिका उनके प्रिय शिष्य विजयीन्द्रतीर्थ के कंधों पर पूर्णत: आ गई, जिसका निर्वाह उन्होंने विद्वत्ता से पूर्णरूपेण किया। इनका अधिकांश समय कुंभकोनम में व्यतीत हुआ। ये अद्वैत मत के प्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित के समकालीन थे।

मध्व के दसों प्रकरणों के टीकाकार होने पर भी उपलब्ध टीका में केवल तत्त्वोद्योत एवं तत्त्वसंख्यान टिप्पणी ही प्राप्य है।

इनके मध्वनयमंजरी पर लघुआमोद, प्रमाणपद्धतिव्याख्या, अधिकरणमाला, चंद्रिकोदाहृतन्यविवरणम्, चक्रमीमांसा, न्यायमुकुर, न्याससंग्रह, भेदविद्याविलास अद्वैतशिक्षा इत्यादि प्रसिद्ध ग्रन्थ प्राप्य हैं।[14]

7. वादिराजतीर्थ (1480-1600 ई०) - व्यासतीर्थ के प्रत्यक्ष शिष्य वादिराजतीर्थ तुलु (शिवाल्ली) ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामाचार्य था।

वादिराज द्वारा रचित ग्रन्थों की लम्बी शृंखला सुनी जाती है। जिनमें कतिपय प्रसिद्ध रचनाएँ भी हैं- दश प्रकरणों पर टीका, एकोनपंचपादिका, विवरणव्रणम्, पाष्णडखण्डनम्, युक्तिमल्लिका, न्यायरत्नावली, मध्व वाग्वज्रवाली, वृन्दावनाख्यान श्रुतितत्त्वप्रकाश, कल्पलता, तीर्थप्रबन्ध, त्रिविक्रमस्तोत्र, कृष्णस्तुति, प्रश्नावली इत्यादि।[15]

8. सत्यनाथयति (1648-1674 ई०) - सत्यनाथ द्वारा बारह ग्रन्थों की रचना मानी जाती है। उसमें आठ हस्तलिखित ग्रन्थ रूप में प्राप्य है। खण्डनत्रयकर्मनिर्णय पर कर्मप्रकाशिका, मायावादखण्डन पर परशु, अभिनवचंद्रिका, ऋग्भाष्यटिप्पणी, अभिनवामृत, अभिनवतर्कताण्डव, विजयमाला, अप्पयदीक्षित के विरोध में लिखी टीका अभिनव गदा[16] इत्यादि सत्यनाथयति रचित ग्रन्थ है।[17]

9. वनमाली मिश्र (1650-1720 ई०) - सत्रहवीं शताब्दी में ब्राह्मण कुलावतंश मथुरा क्षेत्र में वनमाली मिश्र का जन्म हुआ। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों[18] में तरंगिनी सौरभ, न्यायामृत सौंगध, चण्डमारुत, प्रमाणसंग्रह, अभिनवपरिमल, वेदान्त सिद्धान्तमुक्तावली, भक्तिरत्नाकर मध्वमुखलंकार, जीवेश्वराभेदधिक्कार, अद्वैतसिद्धिखण्डन आदि प्रमुख है।

II. द्वैत वेदान्त के तत्त्वत्रय

द्वैत वेदान्त परम्परा के अनेक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान् आचार्यों तथा शताधिक ग्रन्थों के पश्चात् भी आचार्य मध्व का द्वैतवाद अप्रचलित रहा। इसके कारण - आचार्य मध्व का उग्र द्वैतवादी स्वभाव, आचार्य की अस्पष्ट शब्दावली एवं आचार्य शङ्कर का कट्टर विरोधी होना माने जा सकते हैं ।

शङ्कराचार्य के सिद्धान्त मायावाद का आविर्भाव और विस्तार इतना गहरा एवं प्रभावशाली था कि 'वेदान्त' शब्द अद्वैतवाद में रूढ़ हो गया। दासगुप्त के शब्दों से भी यह तथ्य दृष्टिगोचर हो रहा है कि "शङ्कर द्वारा प्रस्थापित दर्शन का प्रभाव इतना व्यापक है। कि जब भी वेदान्त-दर्शन की चर्चा करते है, तो हमारा तात्पर्य उस दर्शन से होता है जो शंकर द्वारा मंडित किया गया है।"[19] यद्यपि अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के समान मध्वाचार्य का ब्रह्म सिद्धान्त भी आचार्य शङ्कर के विरोध में सविशेष, ब्रह्मवाद, जगत्सत्यत्व, भक्तिवादादि सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, तथापि कतिपय अंशों में वेदान्त परम्परा से हटकर आत्यन्तिक भेदवाद या द्वैतवाद का समर्थन भी करता है। आचार्य मध्व अनेक विषयों में रामानुज के यथार्थ सत्ता सम्बन्धी विचार से सहमत प्रतीत होते है यथा - तीन नित्य तत्व हैं, क्योंकि इनकी प्रतीति होती हैं जो मूलतः अन्यों से भिन्न है- ईश्वर, जीव और जगत्। इन तीनों तत्त्व के दो वर्ग है - स्वतंत्र एवं परतंत्र।[20] इनमें ईश्वर (विष्णु) स्वतंत्र या स्वाश्रित तत्त्व है। वह स्वरूप, प्रवृत्ति और सत्ता की दृष्टि से पूर्णतः स्वतंत्र है एवं अन्य परतंत्र अथवा पराश्रित है।

ईश्वर अन्तर्यामी है। वह जीव को नियंत्रित करता है। जीव अणु निर्मित है। इस आधार पर तीन प्रकार का है - नित्य, मुक्त और बद्ध। इस तथ्य पर दोनों आचार्य ऐकमत्य हैं, किन्तु उनमें कतिपय भेद है[21]-

1. रामानुज मत में जीवात्मा अपने स्वाभाविक रूप में एक हैं, किन्तु मध्व के अनुसार उनमें भेद है।
2. मध्व ब्रह्म को उपादान कारण नहीं मानते, किन्तु रामानुज मानते हैं।
3. रामानुज ब्रह्म के अवतार के मानने के पश्चात्, अवतारों में ईश्वर के न्यून गुणों का आविर्भाव मानते है, जबकि मध्व अवतारों को ईश्वर के समान गुणों से युक्त स्वीकार करते है।

मध्व परमसत्ता में भेद मानते हैं। वे प्रत्यक्ष एवं श्रुति का आश्रय लेकर ईश्वर, जीव एवं जड़ तत्त्व के पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित पञ्च भेद[22] स्वीकार करते हैं-

1. ब्रह्म (ईश्वर) का जीव से भेद
2. ब्रह्म का जड़ पदार्थ से भेद
3. जीव का जीव से भेद
4. जीव का जड़ पदार्थ से भेद
5. जड़ पदार्थ का जड़ पदार्थ से भेद

इसके अतिरिक्त मध्व जीव और ब्रह्म में भिन्नता प्रतिपादित करने के लिए "तत्त्वमसि" की व्याख्या इस प्रकार से करते हैं - आत्मा अतत् त्वम् असि अर्थात् तुम वही (ब्रह्म) नहीं हो, अतः जीव और ब्रह्म का ऐक्य नहीं है।

1. ईश्वर (ब्रह्म) - विष्णु ही ब्रह्म है (स विष्णुराह हि तं ब्रह्मोत्याचक्षते)। परमात्मा अनन्त गुणों से परिपूर्ण है अर्थात् वे सर्वज्ञ हैं। शरीरी होने पर भी परमात्मा नित्य और स्वतंत्र है। वह नित्य, चित्, सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा, समस्त शक्तियों से पूर्ण और जीव-जगत्

से पूर्णत: भिन्न हैं। मध्वाचार्य के ईश्वर के आठ कार्य है[23] – सृष्टि, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्ध और मोक्ष' – सृष्टिस्थितिसंहारनियमनज्ञानावरणबन्धमोक्षा: (ब्रह्मसूत्रभाष्य मध्व)।

2. जीव – जीव अनेक हैं, अणुपरिमाण हैं, कर्म और प्राकृत शरीर जन्म बन्धन के कारण संसरणशील हैं। जीव कर्त्ता, भोक्ता और ज्ञाता है, किन्तु जीव का नियन्ता ईश्वर ही है। वह निरवयव और अनादि है। यद्यपि आत्मा ईश्वर पर आश्रित है, तथापि वह स्वतंत्र कर्त्ता है, क्योंकि भले बुरे कर्म वह स्वयं करता है। एक पाप-पुण्य स्वयं अर्जित करता है और तदनुरूप फल पाता है। जीव की दो उपाधियाँ होती है- स्वारूपोपाधि और ब्राह्य उपाधि। ब्राह्य उपाधि अधिक नित्य है, इसलिए जीव अविनाशी होती है-

जीवोपाधि द्विधा प्रोक्तं स्वरूप ब्राह्य एव च।
ब्राह्योपाधितयं याति मुक्तावन्यस्य तु स्थिति।।
तथोपाधेश्च नित्यत्वान्नैव जीवो विनश्यति।।

मध्व के अनुसार जीव के तीन भेद है[24] – मुक्ति योग्य, तमोयोग्य और नित्य संसारी। इनमें नित्य संसारी तथा तमोयोग्य मुक्ति के अधिकारी नहीं होते है।

3. जगत् – मध्वाचार्य के अनुसार 'जगत्' की सत्ता ब्रह्म की सत्ता के समान ही पारमार्थिक है। यह जगत् ब्रह्म के समान सत्य है तथा सृष्टि की प्रक्रिया ईश्वरेच्छा के कारण प्रकृति से (जो उसका उपादान कारण है) उत्पन्न होती है । जगत् की सृष्टि में एकमात्र ईश्वरेच्छा को ही प्रमुख कारण माना गया है । यद्यपि ईश्वर आप्तकाम है और उनमें किसी प्रकार के फल की इच्छा नहीं होती तथापि वे अपनी लीला से वशीभूत होकर जगत् की सृष्टि करते है ।

द्वैत वेदान्त में जगत् की सत्यता के पक्ष में जो सबसे प्रबल तर्क दिया जाता है, उसका आधार 'अनुभव' है । प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा अनुभव के द्वारा हमें जगत् की सत्यता का ज्ञान होता है ।

III. द्वैत वेदान्त की ज्ञान मीमांसा और पदार्थ मीमांसा

1. ज्ञान-मीमांसा – मध्व, रामानुज के अनुसार ही प्रमाण-त्रय को स्वीकार करते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।[25] प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण स्वयं विश्व की समस्या को हल करने में हमारे सहायक नहीं हो सकते, क्योंकि प्रत्यक्ष की पहुँच उन्हीं तत्त्वों तक है, जो इन्द्रियगोचर है और अनुमान हमें कोई नवीन तथ्य नहीं दे सकता, अत: आगम की प्रधानता है, क्योंकि नारायण, विष्णु, ईश्वरादि आगम प्रमाणगम्य है। मध्व ने वेद को अपौरूषेय माना है और उसका उपदेशक ईश्वर को कहा है। मध्व इसके अतिरिक्त केवल प्रमाण[26] को भी माना है। जयतीर्थ के अनुसार 'यथार्थज्ञान' केवलप्रमाण है।[27] यथावस्थित वस्तु का उसी रूप में ज्ञान केवलप्रमाण है। ईश्वर, लक्ष्मी, योगिजन इत्यादि को ज्ञान की प्राप्ति के लिए किसी प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती है। उन्हें वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान जिज्ञासा या दर्शन मात्र से ही हो जाता है। 'यथार्थ' पद के द्वारा संशयादि अयथार्थज्ञान का निरास किया गया हैं।[28] यथार्थज्ञान कहने से प्रत्यक्ष में केवलप्रमाण का लक्षण घटित नहीं हो सकता है। भाव अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण यह लिङ्ग ज्ञान (अनुमान) एवं वाक्य ज्ञान (आगम) से अनुप्रमाण में भी अतिव्याप्त नहीं होता है। अत: यह प्रत्यक्ष के द्वारा ज्ञेय विषय का कारण होने से केवल प्रमाण कहलाता है।[29] द्वैत वेदान्तानुसार केवलप्रमाण चार प्रकार का होता है – ईश्वरज्ञान, लक्ष्मीज्ञान, योगिज्ञान एवं अयोगिज्ञान।[30] प्रमाणचंद्रिका में भी इसी स्वरूप का अनुकरण किया गया है।[31] इन चार भेदों को मानने का मुख्य उद्देश्य भी अपने द्वैत वेदान्ती सिद्धान्त अर्थात् भेदवादी दृष्टिकोण को परिपुष्ट करना है कि तत्त्व द्विविध होते हैं- एक स्वतन्त्र और दूसरा परतन्त्र।

प्रमाण के द्विविध 'प्रमा ज्ञान' और 'प्रमा ज्ञान के साधन' अर्थों को प्रदर्शित करने एवं अपने भेदवादी सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए केवल प्रमाण और अनुप्रमाण भेदों का निरूपण किया गया है।

1. ईश्वर ज्ञान – यह ज्ञान सदैव स्वतंत्र रहता है तथा स्वरूपत: ईश्वर पर ही आश्रित रहता है। ईश्वर ज्ञान की स्वतंत्रता उनके ज्ञान को लक्ष्यादि ज्ञान से भिन्न प्रदर्शित करती है। ईश्वर ज्ञान उस प्रकार का ज्ञान है जो 'स्व' एवं 'परगत' सर्वार्थ (सम्पूर्ण ज्ञान से युक्त) होता है।[32] यह ज्ञान ईश्वर स्वरूपभूत अथवा स्वभाव से अनादि एवं नित्य होता है[33] एवं अतिशय रूप में स्पष्ट है।

2. लक्ष्मी ज्ञान – यह ज्ञान केवल ईश्वर ज्ञान पर ही आश्रित होता है। इस कारण ही ईश्वर ज्ञान की अपेक्षा यह न्यून होता है।[34] यह ज्ञान भी एक प्रकार का प्रत्यक्ष होता है, जो ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों में व्याप्त होता है। स्वभावत: यह ज्ञान यथार्थ होता है एवं ईश्वर ज्ञान के समान ही, स्वरूपभूत होने के कारण अनादि एवं नित्य होता है।[35]

3. योगिज्ञान – 'ध्यानादि योग के प्रभाव से योगियों को जो अतिशय ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह योगि ज्ञान है'।[36] प्रमाणपद्धति में योगिज्ञान त्रिविध कहा गया है– ऋजुयोगिज्ञान, तात्त्विकयोगिज्ञान एवं अतात्त्विकयोगिज्ञान[37]।

ऋजुयोगि वे जीव है, जो ब्रह्मत्व के योग्य होते हैं।[38] ईश्वर से अन्यत्र सभी विषयों का आलोचनात्मक ज्ञान इन योगियों को होता है। ऋजुयोगिज्ञान भी स्वरूप एवं मनोवृत्ति रूप से द्विविध होता है।[39] योगियों का स्वरूपज्ञान सदैव अनादि एवं नित्य होता है। किन्तु उनका मनोवृत्त्यात्मक ज्ञान प्रभाव रूप से अनादि होता है एवं योग से अनुगृहित प्रत्यक्ष से उत्पन्न होता है।[40] दोनों ही ज्ञान नियम से यथार्थ है। ईश्वर में तो अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक विषयों का ज्ञान होता है। तत्त्वाभिमानी देव तात्विक योगियों की श्रेणी में आते हैं।[41]इन्हें जो तत्व ज्ञान होता है, उसके साथ इन्हें तत्त्वज्ञान का अभिमान भी होता है। ऋजुयोगि इनके विपरीत स्वभावत: अभिमान से निर्लिप्त होते हैं। इनका ज्ञान भी अनादि है, किन्तु ऋजुयोगि के समान इनका ज्ञान सर्वविषयात्मक नहीं होता है। इसके भी स्वरूप एवं बाह्यज्ञान प्रकारक द्विविध भेद हैं। प्रथम स्वरूप पूर्व सदृश ही अनादि एवं स्वरूप से यथार्थ होता है। द्वितीय बाह्य में कदाचित् अयथार्थ हो सकते हैं।[42]

इसके अतिरिक्त देवता, ऋषि योगि आदि अतात्विकयोगि है।[43] इनका ज्ञान अनादि नहीं अपितु आदि है। इनका ज्ञान ईश्वर के अतिरिक्त अन्य पदार्थों में अल्प ज्ञान युक्त भी होता है अथवा अज्ञान से युक्त होता है। इनका ज्ञान पूर्ववत् द्विविध प्रकारक ही होता है – स्वरूप एवं बाह्य।

4. अयोगिज्ञान – उपर्युक्त योगियों से व्यतिरिक्त जीव अयोगि ज्ञान स्वरूप है।[44]इन जीवों के ज्ञान में ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सभी ज्ञान अज्ञान से परिपूर्ण होते है। इन लौकिक जीवों का ज्ञान पूर्ववत् द्विविध उत्पत्ति एवं विनाश से युक्त होता है। क्योंकि इनका ज्ञान अनादि एवं नित्य नहीं है। अयोगिज्ञान भी त्रिविध प्रकार का होता है – मुक्तियोग्य, नित्यसंसारी एवं तमोयोग्य।[45]

मुक्तियोग्य जीवों का स्वरूपज्ञान सदैव यथार्थ होता है। नित्यसंसारी जीवों का ज्ञान मिश्र अर्थात् यथार्थ एवं अयथार्थ दोनों ही प्रकार का हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य तमोयोग्य जीव का ज्ञान अयथार्थ ही होता है। इन तीनों प्रकार के जीवों का बाह्य ज्ञान उपर्युक्त प्रकार से यथार्थ, मिश्र एवं अयथार्थ ही होता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार भी यथार्थज्ञान चतुर्विध प्रकार का होता है – इन्द्रियज, लिङ्गज, स्मृति, एवं आर्ष।[46] सम्भवत: द्वैत वेदान्त को इस प्रकार के विभाजन की प्रेरणा वैशेषिक दर्शन से ही प्राप्त हुई है।

द्वैत वेदान्त प्रतिपादित अनुप्रमाण और उसके भेद

यथार्थज्ञान साधन अर्थात् ज्ञेय (प्रमेय) की यथावस्थित उपलब्धि के साधन अनुप्रमाण का निरूपण करते है।[47] ज्ञेय के अनुरूप ही ज्ञान का प्रकटीकरण करना यथार्थ ज्ञान है, इसी यथार्थज्ञान का करण (साधन) अनुप्रमाण है। ग्रन्थकार के अनुसार उपर्युक्त लक्षण के पदों का प्रयोग समीचीन है, इसके पक्ष में तर्क देते हुए कहते हैं, यदि अनुप्रमाण का लक्षण केवल 'यथार्थ' पद द्वारा दिया जाता तो यह उक्त केवल प्रमाण में अतिव्याप्त हो जाता। यदि ज्ञान कहकर करते तो यह संशयादि एवं प्रत्यक्षादि में अव्याप्त हो जाता। यदि केवल 'साधन' कहते तो कुठारादि साधन में अतिव्याप्त हो जाता। यदि 'यथार्थज्ञान' कहते तब भी केवल प्रमाण में अतिव्याप्त होता। यदि 'यथार्थ साधन' रूप में देते तो यह प्रत्यक्षसाधन में अतिव्याप्त हो जाता। ज्ञान साधन कहने से संशयादि साधन में अतिव्याप्त हो जाने और यथार्थज्ञान कारण से प्रमाता में अतिव्याप्त हो जाता है। इसलिए अनुप्रमाण लक्षण में प्रयुक्त सभी पद सार्थक है। यथार्थ ज्ञान के साधन को अनुप्रमाण कहते हैं। द्वैत वेदान्त के अनुसार यह तीन प्रकार का होता है– प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम।[48] इनका विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से पूर्व यहाँ इसका संक्षिप्त निरूपण करना श्रेयस्कर रहेगा –

1. प्रत्यक्ष प्रमाण – निर्दोष इन्द्रियों से वस्तु के सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।[49] यह इन्द्रिय भेद से सप्तविध होता है– साक्षीन्द्रिय, मन, नेत्र, त्वक्, रसना, श्रोत एवं घ्राण। इनमें प्रमाता का स्वरूपेन्द्रिय ही साक्षी कहलाता है। प्रत्यक्ष मुख्यत: चार प्रकार का होता है– ईश्वरप्रत्यक्ष, लक्ष्मीप्रत्यक्ष, योगिप्रत्यक्ष एवं अयोगिप्रत्यक्ष।[50]

2. अनुमान प्रमाण – अनुमान प्रमाण का लक्षण है– 'निर्दोष उपपत्तिरनुमानम्'[51]अर्थात् व्याप्ति के स्मरण के साथ-साथ लिङ्ग या हेतु या व्याप्य का देश काल में सम्यक् ज्ञान से साध्य, अनुमेय पदार्थ के ज्ञान का साधन अनुमान कहलाता है। अनुमान के दो मुख्य अङ्ग है– व्याप्ति एवं पक्षधर्मता। जयतीर्थ के अनुसार प्रमाणपद्धति में अनुमान के चतुर्विध विभिन्न भेद दृष्टिगोचर होते है–

3.1 कार्यानुमान, कारणानुमान एवं अकार्यकारणानुमान।[52]

3.2 दृष्ट एवं सामान्यतोदृष्ट।[53]

3.3 साधनानुमान एवं दूषणानुमान।[54]

3.4 स्वार्थानुमान एवं परार्थानुमान।[55]

3. आगम प्रमाण – इसका लक्षण है – 'निर्दोषः शब्दः वाक्यमिति वा आगमः' निर्दोष (निर्दुष्ट) शब्द अथवा वाक्य आगम कहलाता है।[56] शब्द और वाक्य में सप्तविध दोष हो सकते हैं – अबोधकता, विपरीतबोधकता, ज्ञातज्ञापकता, अप्रयोजनवत्ता, अनभिमतप्रयोजनवत्ता, अशक्यसाधनप्रतिपादकता एवं गौरव। इन दोषों से रहित शब्द ही आगम कहलाता है।[57] आगम द्विविध हैं– अपौरुषेय अथवा नित्य एवं पौरुषेय अथवा अनित्य।[58]

2. पदार्थ-मीमांसा – मध्व के अनुसार 'प्रमेयत्व'[59] पदार्थ का सामान्य लक्षण है। जो पदार्थ है वह निश्चय रूप से प्रमेय अर्थात् प्रमा का विषय है। मध्व न्याय-वैशेषिक के प्रथम पाँच और अभाव के अतिरिक्त चार और पदार्थों का मानता है, जो इस प्रकार – द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशि, शक्ति, सादृश्य एवं अभाव।[60]

2.1 द्रव्य – 'उपादानकारणत्वं वा द्रव्यम्'[61]– अर्थात् उपादानकारणत्वं को द्रव्य के रूप में ग्रहण किया गया है। मध्व के अनुसार द्रव्यों की संख्या 20 है जो इस प्रकार है – परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत, आकाश, प्रकृति, त्रिगुण, महत्, अहंकार, बुद्धि, मनस्, तन्मात्र, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल और प्रतिबिम्ब।

2.2 गुण – गुण द्रव्य के आश्रित होते है। मध्व दर्शन ने वैशेषिक गुणों के अतिरिक्त शम, दम, तितिक्षा, सौन्दर्य, गाम्भीर्य, शौर्य, ओदार्य और गुणों की गणना की है। वस्तुतः गुणों की संख्या अनन्त है।

2.3 कर्म – यह न तो द्रव्य है और न गुण, अपितु दोनो से भिन्न है। कर्म को पाप और पुण्य का असाधारण कारण कहा गया है – 'साक्षात्परम्पत्या वा पुण्यपापासाधारणकारणम् कर्मेति कर्मसामान्यलक्षणम्'[62] मध्व के अनुसार कर्म तीन प्रकार के होते है– विहित, निषिद्ध एवं उदासीन। वेदशास्त्रोक्त कर्म को विहित कर्म कहा गया है। शास्त्रों द्वारा अविहित कर्म को निषिद्ध कर्म कहा गया है और इन दोनों से भिन्न उदासीन कर्म परिस्पन्दात्मक होते हैं।

2.4 सामान्य – मध्व ने सामान्य को द्रव्य के अतिरिक्त स्वतंत्र पदार्थ माना है। इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है – "वह पदार्थ जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न वस्तुओं में समानता का ज्ञान होता है, वह सामान्य है"।[63] जाति और उपाधि के भेद से तथा नित्य और अनित्य भेद से यह दो प्रकार का होता है।

2.5 विशेष – भेद के न रहने पर भी भेद की तरह व्यवहार के कारणभूत तत्त्व को विशेष कहते है। यह विशेष पदार्थ समस्त पदार्थों में रहता है और अनन्त है।[64]

2.6 विशिष्ट – विशेषण से युक्त पदार्थ को विशेष कहते है अर्थात् विशेषण के सम्बन्ध के उपरान्त विशेष्य का जो रूप हो जाता है, उसे विशिष्ट कहते है।[65]

2.7 अंशि – विशिष्ट की तरह अंशि को भी मध्व ने एक अलग वर्ग माना है।

2.8 शक्ति – शक्ति को माध्व दर्शन में चतुर्विध[66] माना गया है।

2.8.1 अचित्य शक्ति – यह वह रहस्यमयी शक्ति है जिसके द्वारा सभी प्रकार की असम्भव बाते सम्भव हो सकती है। इसलिए मध्वदर्शन इसे अघटित घटना परीयसी कह कर परिभषित करता है।

2.8.2 आधेय शक्ति – किसी वस्तु में जब किसी अन्य वस्तु के द्वारा इसकी शक्ति उत्पन्न होती है, तब उसे आधेय शक्ति कहते है। यथा– प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठा द्वारा नवीन शक्ति का उत्पन्न होना।

2.8.3 सहज शक्ति – वस्तुओं में जो अन्य कार्यों को उत्पन्न करने की स्वाभाविक कारण शक्ति होती उसको सहज शक्ति कहते है।

2.8.4 पद शक्ति - पद एवं पदार्थ के वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध को पद शक्ति कहते है।

2.9 सादृश्य - सादृश्य पदार्थ को प्रभाकर मत के समान ही एक पृथक पदार्थ मानते है। किसी भी वस्तु की समानता का ज्ञान सादृश्य द्वारा ही होता है। पदार्थ संग्रहकार के अनुसार सादृश्य दो प्रकार का होता है- नित्य और अनित्य।

2.10 अभाव - मध्व ने न्यायदर्शन की भांति ही अभाव के चार विभाग माने है- प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव।

IV. द्वैत वेदान्त में मोक्ष-मीमांसा

भारतीय दर्शन में मोक्ष को ही परमपुरुषार्थ के रूप में प्रतिपादित किया जाता है। प्रायः सभी दार्शनिक दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष रूप में ग्रहण करते है। द्वैत वेदान्त में मोक्ष का स्वरूप न्याय के समान केवल दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं है, अपितु आनन्दमय एवं भावात्मक रूप है, जो कि द्वैत वेदान्त में जीवात्मा का पारमार्थिक स्वरूप है। जयतीर्थ के अनुसार जीव का अविद्या रूपी आवरण मोक्ष के समय ईश्वर प्रसाद से ही निवृत्त होता है। ज्ञान एवं भक्ति की सम्प्राप्ति के पश्चात् ईश्वर के परम प्रसाद से जीव के वास्तविक स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है, जिसमें भावात्मक आनन्द का प्राचुर्य रहता है। यही मोक्ष की वास्तविक स्थिति है।

पदार्थसंग्रह नामक ग्रन्थ में बीस साधारण कारणों का उल्लेख है, जिनकी उपलब्धि मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक सभी जीवों के लिए अनिवार्य है। इनमें इहामुत्रफ्रलभोगविराग, शमदमादिषटकसम्पत्ति, परमात्मभक्ति, सर्वस्वसमर्पण, उपासना, गुरूभक्ति इत्यादि का उल्लेख किया गया है ।

द्वैत वेदान्त दर्शन की संक्षिप्त साध्य-साधन की रूपरेखा इस पद्य में समायोजित इन नौ सिद्धान्तों अथवा प्रमेयों द्वारा भी ज्ञात हो सकती है, जो द्वैत वेदान्त मत में सर्वथा मान्य भी है -

श्रीमन्मध्वमते हरिः परमतरः सत्यं जगत् तत्वतो।
भिन्ना जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्यभावं गताः।।
मुक्तिनै जसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधन
ह्यक्षदित्रितय प्रमाणमखितामनमैकवेद्यो हरिः।।

- द्वैत वेदान्त परम्परा

सन्दर्भ-सूची

1. भारतीय दर्शन परिभाषा कोष, दीनानाथ शुक्ल, दिल्ली, 1993, पृष्ठ 109.
2. आस्तिक एवं नास्तिक - पाणिनि के अनुसार 'ठक्' प्रत्यय से निष्पन्न है - 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः (अष्टाध्यायी, 4.4.60), अस्ति परलोकः इत्यैव मतिर्यस्य सः आस्तिकः, तथा नास्ति इति मतिर्यस्य सः नास्तिकः, अर्थात् परलोक पर विश्वास करने वाला आस्तिक और विश्वास न करने वाला नास्तिक है।
3. 'नास्तिको वेदनिन्दकः', मनुस्मृति, 2.11, पृष्ठ 40.
4. वेदान्तसार, सदानन्द, (अनु०) सन्त नारायण श्रीवास्तव, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ 39-40.
5. ए हिस्ट्री ऑफ द्वैत स्कूल ऑफ वेदान्त एण्ड इट्स लिटरेचर, पृष्ठ 77-79.
6. "दि मीनिंग एण्ड सिंगनिफिकेन्स ऑफ 'द्वैत' इन द्वैत वेदान्त", आर०एन०वी० सुब्बनाचार, पृष्ठ 14.
7. द्वैत वेदान्त आचार्यों का कालक्रम, ए हिस्ट्री ऑफ द्वैत स्कूल ऑफ वेदान्त एण्ड इट्स लिटरेचर, पर आधारित है।
8. 'कर्नाटकोत्तरादेहि पद्मनाभमुनेरसौ।', सुमध्व विजय, नारायण पण्डिताचार्य, 15.127.
9. न्यायसुधा, जयतीर्थ, 1.4.
10. ए हिस्ट्री ऑफ द्वैत स्कूल ऑफ वेदान्त एण्ड इट्स लिटरेचर, पृष्ठ 239.

11. 1. 'वृष्टिखेटाधिपो घोण्डो रघुनाथामिधः प्रभु। चतुरङ्गबलोपेतो मृगया प्रचरन् वने।', उपरिवत्, पृष्ठ 247.
    2. ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी, भाग-4, डॉ०एस.एन. दासगुप्त, 1972, पृष्ठ 12.
12. ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी, भाग-4, एस.एन.दासगुप्त, भूमिका, पृष्ठ 8.
13. ए हिस्ट्री ऑफ द्वैत स्कूल ऑफ वेदान्त एण्ड इट्स लिटरेचर, बी०एन०के० शर्मा, पृष्ठ 297.
14. उपरिवत् , पृष्ठ 303.
15. ए हिस्ट्री ऑफ द्वैत स्कूल ऑफ वेदान्त एण्ड इट्स लिटरेचर , पृष्ठ 311.
16. 'सदापेये दीक्षितस्य मृघे दुरभिमानिनः। पातयामि शिरस्यद्य गुर्वीमभिनवां गदाम्', उपरिवत् .
17. उपरिवत्, पृष्ठ 322.
18. उपरिवत्, पृष्ठ 330.
19. ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, भाग-1, एस.एन. दासगुप्त, पृष्ठ 429.
20. 'स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च द्विविधं तत्त्वमिष्यते.....स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुः', तत्त्वसंख्यान, पृष्ठ 6-14.
21. द्वैत वेदान्त का तात्विक अनुशीलन, भूमिका, पृष्ठ 4-5.
22. 'जगत्प्रवाहः सत्योऽयं पञ्चभेदसमन्वितः। जीवेशयोर्भिदा चैव जीवभेदः परम्स्परम्।।
    जडेशयोर्जडानाञ्च जडजीवभिदा तथा।।', महाभारततात्पर्यनिर्णय,
    एवं 'पञ्चभेदास्तु जीवेशयोर्भेदः..जडजीवयोर्भेदः। मध्वसिद्धान्तसार, पृष्ठ 31.
23. उत्पत्तिस्थितिसंहारा नियतिर्ज्ञानमावृतिः।
    बन्ध मौक्षौ च पुरुषाद्यस्मात् स हरिरेकराट्।। पूर्णप्रज्ञभाष्य, पृष्ठ 6.
24. प्रमाणपद्धति, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 11.
25. मध्वसिद्धान्तसार, पृष्ठ 19-23.
26. प्रमाणपद्धति, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 10.
27. 'यथार्थज्ञानं केवल प्रमाणम्...,' उपरिवत्, पृष्ठ 91.
28. 'यथार्थमिति संशयादिव्युदासः', उपरिवत् .
29. 'इदं च साक्षात्... केवलमित्युच्यते'. उपरिवत् .
30. 'तच्च(केवलप्रमाणम्)चतुर्विधं ईश्वरज्ञानं लक्ष्मीज्ञानं..चेति', उपरिवत्, पृष्ठ 94.
31. 'केवल प्रमाणं चतुर्विधं। ईश्वर ज्ञानं', प्रमाणचंद्रिका, श्लारिशेषाचार्य, पृष्ठ 135.
32. 'सर्वार्थविषयकमीश्वरज्ञानम्...', प्रमाणपद्धति, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 94.
33. 'तत्स्वरूपमनादिनित्यम्', उपरिवत् .
34. 'तदपेक्षया स्पष्टत्वे न्यूनम्', उपरिवत् .
35. 'तदपि नियमेन यथार्थम्। तत्स्वरूपमनादि नित्यं च...', उपरिवत्, पृष्ठ 94.
36. 'योगप्रभावलब्धातिशयं योगिज्ञानम्', उपरिवत्, पृष्ठ 97.
37. 'तत्त्रिविधम्। ऋजुयोगिज्ञानं, तात्विकयोगिज्ञानं, अतात्विकयोगिज्ञानं चेति', उपरिवत्
38. 'ऋजवो नाम ब्रह्मत्वयोग्याः जीवाः...', उपरिवत् .
39. 'तद् द्विविधम्। स्वरूपं मनोवृत्तिरूपं चेति...' उपरिवत् .
40. 'वृत्तिज्ञानं तु प्रवाहतो...योगानुगृहीत प्रत्यक्षादिजन्यम्', उपरिवत्.
41. 'तत्वाभिमानिनो देवास्तात्विकाः, ...', उपरिवत् .
42. 'तस्यानादित्वं..... बाह्यं कदाचिदयथार्थमपि.....' , प्रमाणपद्धति, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 97.
43. 'तद्व्यतिरिक्ताः देवादयो योगिनोऽतात्विकाः.....', उपरिवत् .

44. 'तद्व्यतिरिक्ता: (अन्य सभी योगियों से) जीवा: अयोगिन:' , उपरिवत्, पृष्ठ 111.
45. अयोगिनोऽपि त्रिविधा...मुक्तियोग्या नित्यसंसारिणस्तमोयोग्या...चेति...', उपरिवत् .
46. 1. 'इन्द्रियं लिङ्गजं स्मृति: आर्षं..... वैशेषिका:...', उपरिवत्, पृष्ठ 114.
    2. 'विद्यापि चतुर्विद्या... प्रत्यक्षलैङ्गिकस्मृत्यार्ष लक्षणा...' प्रशस्तपादभाष्य, पृष्ठ 153.
47. 'यथार्थज्ञानसाधनम् अनुप्रमाणम्...', प्रमाणपद्धति, प्रत्यक्ष परिच्छेद्, पृष्ठ 115.
48. 'त्रिविधम् अनुप्रमाणम्.....अनुमानम्, आगमश्चेति', प्रमाणपद्धति, प्रत्यक्ष परिच्छेद्, पृष्ठ 125.
49. 'निर्दोषार्थेन्द्रियसन्निकर्ष: प्रत्यक्षम्...', उपरिवत्, पृष्ठ 125.
50. 'चतुर्विध:...ईश्वरप्रत्यक्षम्, लक्ष्मीप्रत्यक्षं, योगिप्रत्यक्षं... चेति...', उपरिवत्, पृष्ठ 135.
51. 'निर्दोषोपपत्तिरनुमानम्....', उपरिवत्, पृष्ठ 155.
52. 'त्रिविधमनुमानम् कार्यानुमानं कारणानुमानमकार्यकारणानुमानं चेति...',उपरिवत्, पृष्ठ 199.
53. 'पुनर्द्विविधम्। दृष्टं सामान्यतोदृष्टं चेति...', उपरिवत्, पृष्ठ 199.
54. 'पुनर्द्विविधम्। साधनानुमानं दूषणानुमानं चेति...', उपरिवत्, पृष्ठ 203.
55. 'पुनरनुमानं द्विविधम्। स्वार्थं पदार्थं चेति', उपरिवत्, पृष्ठ 230.
56. 'निर्दोष: शब्द: आगम:...', उपरिवत्, आगम परिच्छेद, पृष्ठ 374.
57. 'निरभिधेयत्वेनान्वयाभावेन...लघूपाये सति गुरुपायोपदेशनम्..शब्द आगम:', प्रमाणपद्धति, आगम परिच्छेद्, पृष्ठ 374.
58. 'आगमो द्विविध:। अपौरुषेय: पौरुषेयश्चेति...', उपरिवत्, आगम परिच्छेद, पृष्ठ 428.
59. 'प्रमेयत्वं पदार्थ सामान्यलक्षणं स्फुटतयोपेक्ष्य विभाग एवादौ कृतम्', मध्वसिद्धान्तसार, पृष्ठ 8.
60. 'द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषविशिष्टांशिराक्तिसादृश्याभावा: दश पदार्था:', उपरिवत्, पृष्ठ 2.
61. पदार्थ संग्रह:, द्रव्य प्रकरण, पृष्ठ 5-7.
62. मध्वसिद्धान्तसार, पृष्ठ 2.
63. उपरिवत् , पृष्ठ 5.
64. 'भेदाभावेऽपि भेदव्यवहारनिर्वाहका अनन्ता एव विशेषा:', मध्वसिद्धान्तसार, पृष्ठ 6.
65. 'विशेषणसम्बन्धेन विशेष्यस्य आकार: तद्विशिष्टम्', पदार्थसंग्रह, पृष्ठ 26.
66. मध्वसिद्धान्तसार, पृष्ठ 15-17.

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. मूल ग्रन्थ

- अनुव्याख्या (ब्रह्मसूत्र) : मध्वाचार्य, सर्वमूल ग्रन्थ, (सम्पादक) आर.एस.पंचमुखी, धारवाड़, 1980
- अष्टाध्यायी : पाणिनि, (सम्पादक) पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, पञ्चम संस्करण, 1955
- अष्टाध्यायी सूत्रपाठ : पाणिनि, (आभा हिन्दी टीका सहित) श्री नारायण मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1977
- उपाधियाण्डन : मध्वाचार्य, द्रष्टव्य दशप्रकरणानि
- तत्त्वसंख्यान : मध्वाचार्य, द्रष्टव्य दशप्रकरणानि
- दशप्रकरणानि : आन्नदतीर्थ, (सम्पादक) लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, (चार भाग), बैंगलोर, 1969
- न्यायसुधा : जयतीर्थ, श्रीगुरुसार्वभौम संस्कृत विद्यापीठ, श्रीराघवेन्द्र-स्वामीमठ, मन्त्रालय, तिरुपति, 15 भाग, 2003-07
- न्यायसुधा : जयतीर्थ, षट् टीकाओं सहित (सम्पादक) के.टी. पान्डुरंगी, द्वैत वेदान्त स्टडीज़ एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलोर, 1991
- प्रमाणचन्द्रिका : शलारिशेषाचार्य, (अनुवादक) सुशील कुमार, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1980
- प्रमाणपद्धति : जयतीर्थ, टीका द्वय सहित (सम्पादक)आर.एस. पंचमुखी, धारवाड़, 1982

- प्रमाणपद्धति : जयतीर्थ, आठ टीकाओं सहित (सम्पादक)के.टी. पान्डुरंगी, द्वैत वेदान्त स्टडीज़ एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलौर, 1991
- प्रमाणलक्षण : मध्वाचार्य, द्रष्ट्व्य दशप्रकरणानि
- प्रमाणलक्षणटीका : जयतीर्थ, द्रष्ट्व्य दशप्रकरणानि
- प्रशस्तपादभाष्य : प्रशस्तपाद, (सम्पादक) दुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1966
- मध्वसिद्धान्तसार (पदार्थसंग्रह) : श्रीपद्मनाभसूरी, (सम्पादक) डी.एन. शान्भाग, द्वैत वेदान्त स्टड़ीज एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलौर, 1994
- मनुस्मृति : (व्याख्याकार) राकेश शास्त्री, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1999
- वादावली : जयतीर्थ, राघवेन्द्र विरचित वादावलीभावदीपिका, श्रीनिवासतीर्थ विरचित वादावलीप्रकाश एवं कृष्णाचार्य विरचित वादावलीटिप्पणी टीका सहित, (सम्पादक) सत्यध्यानाचार्य कट्टी, द्वैत वेदान्त अध्ययन एवं संशोधन प्रतिस्थान, बैंगलुरू, 2001
- वेदान्तसार : सदानन्द, (व्याख्याकार) सन्त नारायण श्रीवास्तव, इलाहाबाद, 1983
- सुमध्वविजय : नारायण पण्डिताचार्य, नारायण पण्डिताचार्य कृत भावप्रकाशिका, विश्वपति कृत पदार्थदीपिकोद्बोधिका और श्रीछलारीशेषाचार्य कृत मन्दोषकारिणी टीका सहित, (सम्पादक) ए.बी.श्यामाचार एवं एस.आर.पाण्डुरंगी, द्वैत वेदान्त स्टड़ीज एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलौर, 2000

2. सहायक ग्रन्थ

- चतुर्वेदी, कृष्णकान्त : द्वैत वेदान्त का तात्विक अनुशीलन, विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, 1971
- दासगुप्त, एस.एन : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, वॉल्यूम 1-5, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1975
- दासगुप्त, एस.एन : भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-4 (अनुवादक) सुधीर कुमार, जयपुर, 1972
- सुब्बनाचार, एन.वी. : "दि मिनिंग एण्ड सिग्निफिकेन्स इन 'द्वैत' इन द्वैत वेदान्त", इण्डियन फिलॉसफी एण्ड कलचर, वॉल्यूम 13. 3-4, 1968
- शर्मा, बी.एन.के. : ए हिस्ट्री ऑफ द्वैत वेदान्त एण्ड इट्स लिटरेचर, भारतीय विद्या भवन, बोम्बे, वॉल्यूम-1-2 1960-61
- शर्मा, बी.एन.के. : हिस्ट्री ऑफ द्वैत वेदान्त एण्ड इट्स लिटरेचर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1981
- शुक्ल, दीनानाथ : भारतीय दर्शन परिभाषा कोश, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1993

संस्कृतसाहित्य में श्रृंगार और हास्यरसः एक अध्ययन

निधि कुमारी

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

भूमिका

संस्कृत वान्नमय में रस का विवेचन अत्यधिक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण है। प्रारम्भ से ही भारतीयों के जीवन में रस का बहुत महत्त्व रहा है। रसों की संख्या को लेकर प्राचीन एवं आधुनिक सभी विद्वानों में मतभेद रहे हैं। भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत इन आठ रसों को माना है। दण्डी ने भी आठ रसों आठ रसों का उल्लेख किया हे लेकिन उद्भट्, आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त ने शान्त रस को नवें रस के रूप में स्वीकार किया है।[1] इसी प्रकार विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में वात्सल्य रस को दसवें रस के रूप में माना है।[2] इस प्रकार मूलरूप से रसों की संख्या आठ ही मानी गयी है, लेकिन बाद में बढ़ते-बढ़ते इनकी संख्या दस हो गयी। कुछ विद्वान भक्ति रस को भी एक स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकार करते हैं, यह रस भक्ति साहित्य में ही मिलता है, परन्तु यह कोई मौलिक रस नहीं है। रूपगोस्वामी ने ग्यारह रसों को माना है। मम्मट के अनुसार रसों की संख्या आठ है जो इस प्रकार हैं-

श्रृंगारहास्यकरूण रौद्रवीरभयानकाः।

वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।[3]

इसके अनुसार मम्मट ने नाटक में आठ रसों को स्वीकार किया है। मम्मट ने आगे शान्त रस को नवें रस के रूप में स्वीकार किया है।

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।[4]

प्राचीनकाल से संस्कृत साहित्य में रस शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। वेद वेदांग से लेकर रामायण, महाभारत तक रस शब्द अनेक भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। रामायण में रस शब्द का प्रयोग जीवन-रस अर्थात् अमृत, पेय आदि ग्रन्थों में हुआ है। महाभारत में भी वह जल, सुरा, पेय तथा गन्ध आदि का पर्याय है।

इस प्रकार सम्पूर्ण रचना में विषय वस्तु के अनुसार अनेकों रस हो सकते हैं लेकिन उनमें से एक रस प्रमुख होता है जो सम्पूर्ण विषयवस्तु को व्याप्त करता है। जैसे - रामायण एवं महाभारत में करूण, श्रृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत, शान्त, वात्सल्य आदि रस हैं लेकिन रामायण में करूण और शान्त रस ही प्रमुख हैं।

इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। जो इस प्रकार है-

"यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्नेयों आनां यो गवां यस्तनूनाम्।"[5]

ब्राह्मण ग्रन्थों में रस को मधु (शहद) के अर्थ में ग्रहण किया गया है। **'रसोंवै मधु।'**[6] छान्दोग्यपनिषद् में रस को चिदानन्दस्वरूप परमात्मा कहा गया है और रस के आठ प्रकारों का उल्लेख किया गया है। स्थूल से सूक्ष्म होने की समस्त प्रक्रिया का विवरण प्राप्त होता हे। जो इस प्रकार है-

एषां भूतानां पृथिवी रसः। पृथिव्या आपों रसः।

अपामोर्षध्यो रसः। औषधीनां पुरुषो रसः।

पुरुषस्य वाग् रसः। वाच ऋग् रसः।

ऋचः साम रसः। साम उद्गीथो रसः।।[7]

अर्थात् इन भूतों का रस पृथ्वी है। पृथ्वी का रस जल है। जल का रस उस पर निर्भर रहने वाली औषधियाँ हैं। औषधियों का रस पुरुष है। पुरुष का रस वाणी है। वाणी का रस ऋचा है। ऋचा का रस साम है। साम का रस उद्गीध है।

अतः रस से ही ऋक्, यजुः तथा साम् की ऋचाओं की उद्भावना बतायी गयी है। कोश ग्रन्थों में रस शब्द के अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं जैसे - भोज के तिक्तकटु छः रस स्वाद, विष, पारद, वीर्य, राग, द्रव आदि। उपनिषद् में तो परमात्मा को भी रस कहा है-

रसो वै सः। रसं ह्योवायं लब्धवानन्दी भवति।

न को ह्योवान्यात कः प्राण्याता।

यषेद आकाश आनन्दो न स्यात् एषह्योवानन्दपति।।[8]

सामान्य व्यवहार में रस का प्रयोग प्रायः निम्नलिखित 7 अर्थों में स्वीकृत है।

1. शड्रस (मधुर, अक्ल, कटु, कषाय, लवण और तिल)
2. सारभूत द्रव या तरल पदार्थ।
3. आस्वाद्य सभी पदार्थ।
4. शक्ति।
5. मधुर पेय।
6. साहित्य में श्रृंगार आदि नौ रस।
7. तृप्ति सुख या आनन्द।

भरत मुनि ने कहा है कि रस एक अस्वाद्यमान पदार्थ है और उसका आस्वादन नाट्य प्रेक्षक या सहृदय लोग करते हैं जिस प्रकार नानाप्रकार के व्यंजनों से अन्न का उपयोग करते हुए रसों का आस्वादन करते हैं और उससे आनन्द की प्राप्ति होती है वैसे ही अनेक प्रकार के भावों के अभिनय के द्वारा अभिव्यक्ति तथा वाणी, शरीर एवं सत्व के अभिनयों से युक्त स्थायी भावों का आस्वादन होता है तथा हर्ष आदि की प्राप्ति होती है। सभी काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने रस की महत्ता को सर्वतोभावेन स्वीकार किया है। रस काव्य की आत्मा है। **"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"** रस के विषय में यह विश्वनाथ की परिभाषा है।

रस की परिभाषा

रस काव्यशास्त्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। रस शब्द रस् धातु और अच् (वा 'ध') प्रत्यय से निष्पन्न है। इस प्रकार रस का शाब्दिक अर्थ है- 'आनन्द'। अर्थात् काव्य को पढ़ने या सुनने से जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे रस कहा जाता है। कहा जाता है कि, रस ही काव्य की आत्मा है। **रसात्मकम् वाक्यम् काव्यम्** अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है।

रस का स्वरूप

रस शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण के अनुसार इस प्रकार की गई है, **'रस्यते इति रसः'** अथवा **'रस आस्वादन स्नेहयोः'** अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाये वह रस है। रस की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी बताई गई है। 'सरते इति रसः' अर्थात् जो बहे वह रस है। कहा गया है, कि रस काव्य का जीवन है। रस शब्द की व्युत्पत्ति शब्दकल्पद्रुम में इस प्रकार बताई गई है–

'रस+पचाछया पुसि संज्ञाएं च प्रयायेण।"

रस का महत्त्व

काव्यशास्त्र में रस को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। आचार्य भरत ने रस के महत्त्व पर बल देते हुए कहा है-

"न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।"[10]

अर्थात् रस के बिना कोई अर्थ प्रवर्तित हो ही नहीं सकता है और कोई भी काव्य रसहीन नहीं होना चाहिए। इस कथन से स्पष्ट है, कि भरत रस को कलाओं में सर्वाधिक महत्त्व देते थे। श्रंग का अर्थ है, **'कामोद्रेक'** और **'आर'** का अर्थ है, वृद्धि प्राप्ति। जो कि (ऋ धातु से बना है)। अतः श्रृंगार का अर्थ हुआ कामोद्रेक की प्राप्ति। इसी बात को इन शब्दों में कहा गया है-

श्रृन्न हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतु काः।
उत्तम प्रकृति प्रायो रसः श्रृंगार इष्यते।।[11]

अर्थात् काम के उद्भेद अर्थात् अंकुरित होने को 'श्रृंग' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति का प्रमुख कारण उत्तम प्रकृति से युक्त 'श्रृंगार' रस को कहा जाता है। इस संसार में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है, वही श्रृंगार रस कहलाता है। आगे भरतमुनि कहते हैं, कि यह रस उत्तम प्रकृति के नायक नायिका को लेकर पारस्परिक अनुराग द्वारा अपने स्वरूप को प्रकट करता है।[12]

इसमें प्रायः उच्च भावनाओं का ही वर्णन होता है। रस के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत से रसों की संख्या भिन्न-भिन्न मानी है, परन्तु उन सभी रसों में से मैंने अपने शोधपत्र का विषय प्रमुख दो रसों श्रृंगार रस एवं हास्य रस का चयन किया है जिसका वर्णन अब हम आगे करेंगे, जो इस प्रकार है-

1. श्रृंगार रस
2. हास्य रस

1. श्रृंगार रस

रसों में से एक प्रमुख रस श्रृंगार रस है। यह रस रति के भाव को दर्शाता है और सभी रसों में श्रृंगार रस को रसराज कहा गया है। इसका कारण यह है कि 'श्रृंगार' में दो आलम्बन (नायक-नायिका) होते हैं।' श्रृंगार शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, **'श्रृंग'** एवं **'आर'** श्रृंगार शब्द की व्युत्पत्ति **'श्रृंगार ऋच्छति इति श्रृंगार'** इस प्रकार बताई गई है।

श्रृंगार रस में स्त्री और पुरुष की पवित्र प्रेम-भावनाओं का ही वर्णन होता है। इस बात का लक्षण धनंजय इस प्रकार बताते हैं-

रम्यदेशकला काल वेषभोगदिसेवनैः।
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
प्रह्वष्यमाणा श्रृंगारो मधुरान्नविचेष्टितैः।।[13]

अर्थात् अनुराग युवा नायक-नायिका के हृदय में देश, काल, कला, वेश भोग आदि के सेवन द्वारा आत्मा का प्रसन्न होना रति संक्षक स्थायी भाव है। अतः यही रति भाव नायक और नायिका के अंगों की मधुर चेष्टाओं के द्वारा एक-दूसरे के हृदय में प्रेम को परिपुष्ट करता है। अतः यही श्रृंगार रस होता है।

आलस्यौग्रयजु गुप्साररव्यैरेवं भावैस्तु वर्जिताः।
उद्भावयन्ति श्रृंगार सर्वेभावाः स्वसंज्ञया।।[14]

अर्थात् आलस्य, उग्रता तथा जुगुप्सा को छोड़कर शेष सभी भाव श्रृंगार रस को उत्पन्न करते हैं। आचार्य भरत तथा अधिकांश काव्यशास्त्रीय आचायों ने श्रृंगार रस के दो भेद कहे हैं। इस प्रकार श्रृंगार रस के दो भेद हैं-

1. संयोग श्रृंगार (संभोग श्रृंगार)
2. वियोग श्रृंगार (विप्रलम्भ श्रृंगार)

1. संयोग श्रृंगार (संभोग श्रृंगार): संयोग श्रृंगार में नायक-नायिका के मिलन में रति भाव की दशा का चित्रण होता है। यह ऋतु, पुष्प, मालाओं तथा अलंकारों को धारण करना तथा अपने प्रियजन तथा सुन्दर भवन का उपभोग, उद्यान में भ्रमण करना, प्रियजन के दर्शन, श्रवण तथा क्रीड़ा लीला आदि विभावों के संयोग से उद्‌भुत होता है। इसका अभिनय नयन चातुर्य, एक दूसरे को देखना, कटाक्ष, लज्जा, अंग-संचालन, मधुर शब्द तथा ऐसी ही अन्य वस्तुओं द्वारा किया जाता है। इसमें त्रास, उग्रता तथा जुगुप्सा नामक संचारी भावों को छोड़कर शेष सभी प्रयुक्त किये जाते हैं।

इसलिए इसे संयोग श्रृंगार अथवा संभोग श्रृंगार कहते हैं। अत: संयोग श्रृंगार का वर्णन उत्तररामचरित के इस श्लोक में किया है, जो इस प्रकार है, यथा -

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा।
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो।
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत।।[15]
(उत्तररामचरितम् - 1/27)

अर्थात् एक-दूसरे के अनुराग के योग से कपोलों को चिपकाये हुए तथा बिना क्रम के ही मन्द-मन्द कुछ बोलते हुए और दृढ़ आलिंगन में फंसी भुजाओं वाले हम दोनों की सम्पूर्ण रात्रि बीत जाया करती थी।

2. वियोग श्रृंगार (विप्रलम्भ श्रृंगार): श्रृंगार रस का दूसरा भेद वियोग श्रृंगार है, जिसे विप्रयोग श्रृंगार तथा विप्रलम्भ श्रृंगार आदि नामों से प्राचीन शास्त्रों में पुकारा गया है। श्रृंगार रस के विप्रलम्भ नामक द्वितीय भेद का अभिनय निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, चिन्ता, औत्सुक्य, निद्रा, स्वप्न, व्याधि, उन्माद, अपस्मार, जाड्य तथा मरण आदि संचारी भावों द्वारा किया जाता है। वियोग श्रृंगार का उदाहरण इस प्रकार दिया गया है, यथा -

श्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा तीर।
अँसुवन करति तरौंस को रिवन रवौरौहों नीर।।[16]

अर्थात् यहाँ कृष्ण के प्रति राधिका का रति स्थायी भाव है। कृष्ण आलम्बन है। राधिका आश्रय है। यमुना का श्याम रंग उद्दीपन है। आँसू सात्त्विक अनुभाव है। स्मरण और औत्सुक्य संचारी है। कृष्ण के वियोग में राधा में वियोग श्रृंगार की निष्पत्ति होती है।

संयोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार के भी कुछ आचार्यों ने चार-चार भेद किए हैं- जिसको हम इस सारणी द्वारा समझायेंगे जो इस प्रकार है-

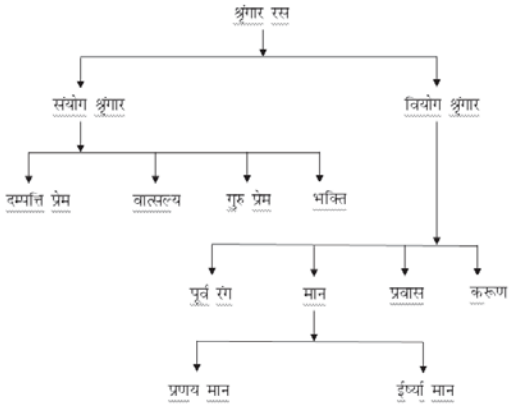

इस प्रकार वियोग श्रृंगार में आश्रय की वियोग जनित दस दिशायें होती हैं- (1) अभिलाषा, (2) चिन्ता, (3) स्मृति, (4) गुण-गाथा, (5) उद्वेग, (6) प्रलाप, (7) उन्माद, (8) व्याधि, (9) जड़ता, (10) मरण।

श्रृंगार रस बहुत मनोरम होता है। लोगों के हृदय को आसानी से अपनी ओर आर्कषिक कर लेता है। श्रृंगार रस में स्त्री पुरुष के पवित्र प्रेम की भावनाओं का ही वर्णन होता है। साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चाहे युग

बदले, भाषा बदले, गुलामी आयी, गुलामी गई, परन्तु स्त्री और पुरुष के बीच में रहने वाले परस्पर आकर्षण को शाश्वत्, स्वच्छन्द प्रेम के बंधन नहीं बदले हैं।

अतः श्रृंगार रस का वर्ण श्याम है। श्रृंगार रस सभी रसों का राजा है और इसके विषय में कवि ने कहा है-

"नव रसिन मुख्य सिगार,
जहाँ उपजत बिनसत सकल रस।।"

अतः अब हम द्वितीय रस हास्य रस के विषय में आगे चर्चा करेंगे जो इस प्रकार है।

2. हास्य रस

हास्य रस नव रसों के अन्तर्गत सबसे अधिक सुखात्मक रस प्रतीत होता है। इसकी उत्पत्ति श्रृंगार रस से मानी गयी है।[17]

परिभाषा - किसी के अनोखे कार्य, वेशभूषा, वाणी आदि से सामाजिक अर्थात् दर्शक के हृदय में जो आनन्द उत्पन्न होता है उसे हास्य रस कहते हैं।

अथ हास्यो नाम हासस्थायिभावात्मकः।[18]

अर्थात् हास्य रस का स्वरूप "हास्य" नामक स्थायी भाव वाला होता है। भरतमुनि का कहना है यह अन्य व्यक्ति के विकृत वेश, अलंकार, चंचलता, हीन अवयवों के दर्शन, दोषों या ऐसे ही अन्य दुर्गुणों को देखने तथा इस प्रकार की बातों वाले विभावों के द्वारा व्यंजित होता है।[19]

हास्य रस का अभिनय - होंठ, नाक तथा गले के फडकने, दृष्टि को सिकोड़ने या फैलाने, स्वेद, मुँह लाल होना आदि अनुभावों के द्वारा किया जाता है और इसका वर्ण श्वेत है।

विकृताकृतिवाग्वेषै रात्मनोऽथ परस्यदा।
हासः स्या रियोषोऽस्य त्परिपापोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतिः।।[20]

अर्थात् अपने या अन्य के विकृत आकृति वाली और देश के द्वारा पैदा हुए हास के परिपुष्ट होने का नाम हास्य रस है।

हास्य रस के भेद

हास्य रस के दो भेद होते हैं- **(1) आत्मस्थ, (2) प्ररस्थ।**

1. आत्मस्थ - अपने में स्थित विकृत वेश आदि विभावों से जब विदूषक आदि पात्र स्वयं हँसते हों तो वह 'आत्मस्थ' हास्य होता है।

2. प्ररस्थ - जब वह महारानी आदि अन्य पात्रों को हँसाता है तो वह 'प्ररस्थ' हास्य हो जाता है।

ऐसा श्री शंकुक आदि प्राचीन आचार्य ने माना है।[21] यह रस अधिकांश स्त्री तथा नीच प्रकृति के मनुष्यों में अधिक दिखाई देता है।

इस प्रकार भरतमुनि ने हास्य के छः भेद माने हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार किया गया है-

1. स्मित हास्य - स्मित हास्य के लक्षण गालों का थोड़ा खिल जाना, नेत्रों का दिखाई न देना, सौष्ठवयुक्त होना तथा मुस्कान रहने पर भी दाँतो का दिखाई न देना 'स्मित' हास्य होता है।

2. हसित हास्य - हसित हारू में मुख एवं नेत्र थोड़े खिल जाते हैं। गाल फैल जाते हैं। कुछ-कुछ दाँत भी दिखाई देते हैं।

3. विहसित - आँखे और गाल सिकुड़ जायें, ध्वनि अल्पता तथा मधुरता लिये हो अथवा मुख प्रसन्नता के कारण लाल हो जाए, उसे 'विहसित' हास्य कहते हैं।

4. उपहसित - हास्य में नासिका फूल जाती है, टेढ़ी दृष्टि से देखना होता है। मस्तक सिकुड़ जाता है।

5. अपहसित - जिसमें बेमौके हँसना होता है, हँसते-हँसते आँखों में आँसू आ जाएँ तथा कन्धा हिलने लगे।

6. अतिहसित - इस हास्य में हँसते-हँसते आँखों में आँसू भर जाएँ, कर्ण-कटु और उद्धत शब्दों का उच्चारण और पसलियों को हाथों से दबाना पड़े तो 'अतिहसित' होता है।

क्रमशः शुरू के दो उत्तम कोटि में उसके बाद के दो मध्यम कोटि में और शेष अधम कोटि में आते हैं।

साहित्यदर्पण, रसगंगाधर, दशरूपक आदि ग्रन्थों में हास्य रस के उपर्युक्त छः भेदों का ही वर्णन किया गया है।

हास्य का उदाहरण इस प्रकार है-

हँसि हँसि भजे देखि इलह दिगम्बर को,
पाहुनी जो आवे हिमाचल की उछाह में।
कहे 'पदूमाकर' सकुकाहु सो कहै को कहा,
जोई जहाँ देखे सो हँसेई तहाँ राह में।।
भगन भयेई हँसे नगन महेस ठाढ़े,
और हँसे ऐऊ हँस-हँस के उमाह में,
सीस पर गंगा हँसे भुजनि भुजंगा हँसे,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।[P2]

यहाँ दर्शकों के हृदय का हास स्थायी भाव है। आलम्बन महादेव है। शिव का नग्न शरीर विचित्र वेशभूषा उद्दीपन है। गंगा और साँपों का हँसना अनुभाव है। हर्ष, विस्मय, ओतसुम्य आदि संचारी भाव है। इन सबसे पुष्ट 'हास' स्थायी भाव से हास्य रस की निष्पत्ति होती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूपेण कहा जा सकता है, कि काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में रस का बहुत अत्यधिक महत्त्व है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक रस को निरन्तर मान्यता मिली है। ध्वनिकार श्री आनन्दवर्धनाचार्य ने भी रस की उपयोगिता को सिद्ध करते हुए अपने काव्य में लिखा है-

दृष्टपूर्वा अपि ह्यार्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः।।
(ध्वन्यालोक - 4/4)

अर्थात् जिस प्रकार मधुमास में वृक्ष अधिक चित्तकर्षक और नवीन दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार काव्य में रस का आश्रय ग्रहण कर लेने से पूर्वदृष्ट अर्थ भी नवीन और सौम्य रूप धारण कर लेते ळैं। कहने का अभिप्राय यह है, कि रस को प्रायः सभी काव्य सिद्धान्तों में स्वीकृति मिली है। रस काव्य की आत्मा मानी गई है और आठ रसों में से श्रृंगार रस एवं हास्य रस इन दोनों रसों को मैंने अपने शोधपत्र का विषय चुना है। इन दोनों रसों का वर्णन इस शोधपत्र में किया गया है।

सन्दर्भ

1. डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल, संस्कृत काव्यशास्त्र एवं काव्यांग, पृ. सं. 50, जोधपुर, अरिहन्त, 2019
2. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद, वाराणसी, चौखम्बा, 1998
3. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, वाराणसी, चौखम्बा, 1995
4. वही, सूत्र संख्या - 47
5. कमलेश कमल, संस्कृत साहित्य के विविध सम्प्रदाय, पृ. सं. 1, वाराणसी, कला प्रकाशन, 2012
6. आनन्द प्रकाश दीक्षित, रस हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ. सं. 518, वाराणसी, 1985

7. शंकराचार्च, छान्दोग्यपनिषद्, 1/1/2-3, गोरखपुर, गीता प्रेस, 2011
8. शंकराचार्य, तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/7, गोरखपुर, गीता प्रेस, 2011
9. राधाकान्तदेव, शब्दकल्पद्रुम, वाराणसी, चौखम्बा, 1985
10. भरतमुनि नाट्यशास्त्र, भाग-1, पृ. सं. 288-289, वाराणसी, चौखम्बा, 2011
11. कविराज विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 3/183-106, वाराणसी, चौखम्बा, 1998
12. डॉ. पुरु दाधीच, एकादश नाट्य-संग्रह और प्रयोक्तागण, पृ. सं. 12, वाराणसी, चौखम्बा, 2000
13. हजारी प्रसाद द्विवेदी, भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक, 4/49/201, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2003
14. डॉ. पुरु दाधीच, एकादश नाट्य-संग्रह और प्रयोक्तागण, पृ. सं. 10, वाराणसी, चौखम्बा, 2003
15. भवभूति, उत्तररामचरितम्, 2/27, बनारस, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, 1949
16. बिहारी, बिहारी सतसई, 525, मुम्बई, कल्याण, 1978
17. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 6/39, वाराणसी, चौखम्बा, 2011
18. डॉ. पुरू दाधीच 'एकादश नाट्यसंग्रह और प्रयोक्तागण, (पृष्ठ 22), वाराणसी, चौखम्बा, 2000
19. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 6/पृ. सं. 316, वाराणसी, चौखम्बा, 2011
20. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'भारतीय नाट्यशासकी परम्परा और दशरूपक, 4/74/239, वाराणसी, चौखम्बा, 2008
21. डॉ. पुरू दाधीच, 'एकादश नाट्य संग्रह और प्रयोक्ताग' (पृष्ठ 23), वाराणसी, चौखम्बा, 2000
22. शिखा खरे, 'कत्थक सौन्दर्यात्मक शास्त्रीय नृत्य', पृ. सं. 226, वाराणसी, चौखम्बा, 2002

परिवर्तनशील साहित्य परंपरा में संस्कृत रचनाः एक अध्ययन

तारकान्त मित्र

मोतिहारी, बिहार

सारांश

संस्कृत का कवि प्रत्येक युग में अपने स्तर पर जागरूक एवं सावधान रहा है। अन्याय एवं असत्य के प्रति अपना स्वर मुखरित किया है। संस्कृत-साहित्य का प्रथम श्लोक 'मा निषाद प्रतिष्ठा'..... जो महर्षि 'प्राचेतस्' के संवेदशील अन्तस् से अनायास फूट पड़ा था, उसके मूल में शायद अन्याय को कभी भी क्षमा न किये जाने का संकल्प निहित था। संस्कृत कविया ने महर्षि के इस सिद्धान्त को अंगीकार किया। संस्कृत कवि की पीडा व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत है, उनका चिन्तन संकीर्ण एवं स्थूल न होकर सूक्ष्म एवं व्यापक है।

संस्कृत काव्य-रचना पूर्व शताब्दी तक 'वेद', 'रामायण', 'महाभारत' और 'पुराण', आदि को उपजीव्य बनाकर की जा रही थी, किन्तु साहित्य के बदलते परिदृश्य में संस्कृत रचनाकार ने अन्य भाषाओं के साहित्य की तरह अपने विषय वस्तु को समाज की समस्याओं, विसंगतियों एवं बाह्य प्रभावों के मध्य खोजा। यूरोप के संसर्ग से संस्कृत रचनाकार में आये प्रारम्भिक उत्साह और तत्पश्चात् जन्मी हताशा का 'डॉ० राघवन्' ने विश्लेषण किया है-.....अंग्रेजी अखिल भारतीय माध्यम का स्थान लेने लगी जो कि पहले संस्कृत का था, संस्कृत सीखने का माध्यम पहले जो प्रादेशिक भाषाएँ थीं, उनके बदले में अंग्रेजी माध्यम बनी। .....जो संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए बड़े जोरों से तर्क करते थे, संस्कृत में मौलिक लेखन को उपेक्षा से देखने लगे।'

मुख्य शब्दः- निषाद प्रतिष्ठा, समष्टिगत, सत्याग्रह आन्दोलन, बालोद्वाह, प्रौद्योगिकी

उद्देश्य - संस्कृत साहित्य के बदलते परिदृश्य के बारे में यह जानने का प्रयास करना कि किस प्रकार नये-नये वातावरण और जीवनानुभव को व्यक्त करने के लिए विद्वानों को उत्प्रेरित किया है।

संस्कृत भाषा ने नये से नये वातावरण, जीवनानुभव या परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिए कवियों को निरन्तर उत्प्रेरित किया। पश्चिम से सम्पर्क का एक प्रभाव संस्कृत जगत् पर यह हुआ कि पण्डित नए ज्ञान विज्ञान पर लेखनी चलाने में प्रवृत्त हुए। अंग्रेजी के व्याकरण लिखे जाने लगे। 'मधुसूदन तर्कालंकार' का 'इंग्लैण्डी' व्याकरणसारः', विनायकभट्टकृत 'अंग्रेजचन्द्रिका' (मद्रास) तथा 'इतिहासतमोमणिः' (मद्रास) आधुनिक अर्थ में इतिहास रचना का उपक्रम है। बर्कले का Principles of Human knowledge 'ज्ञानसिद्धान्तचन्द्रिका' नाम से तथा लॉक के Essays concerning Human Understanding का 'मानवीयज्ञान विषयकशास्त्र' नाम से अनुवाद किया गया। इस क्रम में 'जुबिलि-गानम्', 'चक्रवर्तिविक्टोरियाविजयपत्रम्', 'आङ्गलाधिराजस्वागतम्', 'एडवर्डमहोदयस्याभिनन्दनम्', 'विक्टोरियाचरितसंग्रहः', 'विक्टोरियाप्रशस्तिः', 'राजपुत्रगमनम्' आदि कृतियाँ रची गईं।

शनैः शनैः संस्कृत कवि की समाज चेतना प्रखर होती है और वह अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। महायोगी 'अरविन्द' का काव्य 'भवानी भारती' राष्ट्रिय जागरण की गीता है। कवि निर्भय की 'परिवर्तनम्', 'क्रान्तिः', 'शङ्खनादः', 'राष्ट्रध्वनिः', 'बन्दी', 'हृदयाग्निः', 'सुभाषबोसचरितम्', 'भगतसिंहचरितम्', 'रामप्रसादविस्मलस्मृतिः', 'रावणायनम्' आदि रचनाएँ

स्वतन्त्रता आन्दोलन की उपज हैं। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में राष्ट्रियता की भावना का अभूतपूर्व उन्मेष हुआ, गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन तथा उनके जीवन दर्शन ने सारे देश को प्रेरणा के सूत्र में बाँध दिया। गाँधीजी के चरित्र पर 'सत्याग्रहगीता', 'गाँधी गीता' (अनन्तविष्णुकाणे) 'गाँधी माहात्म्य' (विजयाराघवाचार्य) 'गाँधीचरितम्' (चारुदेवशास्त्री) 'मोहनपञ्चाध्यायी', 'मोहनगीता', 'महात्माविजय' आदि काव्य लिखे गये। राष्ट्रिय विभूतियों पर 'लालबहादुरशास्त्रिचरितम्' (रमेशचन्द्र शुक्ल) 'बाङ्गलादेशः', 'इन्दिरायशस्तिलकम्', राष्ट्रपतिराजेन्द्रप्रशस्ति' (विष्णुकान्त झा), श्रीजवाहरवसन्तसाम्राज्यम्,(जयरामशास्त्री), जवाहरतरङ्गिणी' (श्रीधर भास्करवर्णेकर), 'इन्दिराप्रियदर्शनी', 'जनविजयम्', 'दयानन्ददिग्विजयम्' आदि काव्यों का प्रणयन किया गया। राष्ट्र भक्ति से प्रेरित होकर रचे गये संस्कृत-काव्यों में अनेक सपूतों का उज्ज्वल चरित्र प्रस्तुत किया गया है। 'रानी लक्ष्मीबाई', 'दयानन्द', 'तिलक'. 'मालवीय जी', 'गाँधी', 'नेहरू', 'राधाकृष्णन', भगतसिंह' 'आजाद' आदि क्रान्तिकारियों के गौरवमय जीवन की कथाएँ पद्यबद्ध की गई हैं। युद्धरत झाँसी की रानी की शौर्यगाथा का चित्रण करते हुए कवि कहता है-

सा पृष्ठदेशे स्वसुतं बबन्ध जग्राह वल्गाग्रमहो मुखेन ।
दोर्भ्या कृपाणद्वयशोभिताभ्यां शत्रून् समुत्सारयितुं प्रवृत्ता।।

संस्कृत रचनाकार सामाजिक चेतना से अछूता नहीं है। कवि 'रामनारायण' तर्करत्न ने 'कुलीनकुलसर्वस्व' में कुल रमणियों की दुर्दशा का चित्रण किया। 'श्यामाचरण' ने बालविवाह पर 'बालोद्वाह' नाटक लिखा तथा बिहारी लाल नन्दा ने 'विधवापरिणयोत्सव' की रचनाकर विधवा-विवाह का समर्थन किया। सामाजिक चेतना के साथ आञ्चलिकता का पुट भी कविता को प्रभावी बनाता है। धान रोपती स्त्रियों के कीचड़ में लथपथ पाँव, बीच-बीच में उनका बच्चों को दूध पिलाने के लिए काम रोकना, फिर काम में जुटना, भेड़ बकरियाँ चराते लाठीधारी कृषक बालक इन सबके चित्र हैं -

इमे कृषकदारकाः परिगृहीतपाथेयकाः
करात्तलगुडा मुहुर्मधुर गीतगाने रताः ।
अजाविपरिचारणे प्रतिदिनं समायोजिताः
कमप्यतिशयं मुदामनुभवन्यचिन्तालवम्घ (लक्ष्मणशास्त्रीकृत उपशल्यशंसनम्)

इस काल में हास्य तथा व्यंग्य की प्रवृत्ति प्रतिफलित हुई। आधुनिक जीवन से कवि को सहानुभूति नहीं है। पारम्परिक मूल्यों में आस्था के साथ वह आज के समाज की खिल्ली उड़ाता है। बीसवीं शती के पूर्व कुछ दशकों में कविता में शिष्ट हास्य तथा उत्प्रास या व्यंग्य (सेटायर) की प्रवृत्ति अधिक प्रतिफलित हुई। आचार्य 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' जी ने कान्यकुब्जलील मृतम् काव्य में कान्यकुब्जब्राह्मणों की लोलुपता, पाखण्ड, अन्धविश्वास पर प्रहार किया है -

सदैवशुक्लारुणपीतवर्णपाटीरपङ्कावृतसर्वभाल ।
आभूतलालम्बिदुकूलधारिन् हे कान्यकुब्जद्विज ते नमोऽस्तु ।।

सदा सफेद, लाल और पीले चन्दन का पंक सारे भाल पर लपेटे हुए धरती तक घिसटता हुआ दुकूल धारण करने वाले हे कान्यकुब्ज ब्राह्मण, तुम्हें नमस्कार है।

अद्यतन समाज में सर्वत्र हिंसा व्याप्त है। 'नागार्जुन' अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता के द्वारा हिंसा को वरेण्य मानते हैं-

हिंसे देवि नमस्तुभ्यं महाकालसहोदरे।
शतसाहस्रिका जिह्वा नाद्यापि न ते तृप्यति।।

हिंसा के रचनात्मक स्वरूप का समर्थन संस्कृत परम्परा में इस तरह पहली बार हुआ है-

कर्णाञ्जलं जलेनैव कण्टकेनैव कण्टकम्।
हिंसयैव हि हिंसापि तदुपायेन नश्यति।।

पारम्परिक शैली के महाकाव्यों में भी समकालिक बोध के साथ सामाजिक जागरूकता दिखाई देती है। 'रामसेवक' 'मालवीयश' के काव्य 'भूभामिनीविलासम्' में साकेत के भिखारियों पर व्यंग्य द्रष्टव्य है-

कूले हि संख्यारू कलिकालशूले संस्तीर्णकाष्ठासनपादमूले ।

एका कृशागी क्षुधया तदग्रे गां ब्रह्मबन्धुर्जरतीं बबन्ध ।।

अवसरवादी पण्डों की चेष्टाओं का सजीव चित्रण द्रष्टव्य है-

पान्थं समासाद्य तु घाटवारारू पण्डाः क्वचिच्छदमविरक्तवेषाः ।

छलन्ति लुण्ठन्ति च तीर्थकारान् शवं यथैकं परिवार्य गृध्राः ।। (भूभामिनीविलासम्)

'काशीनाथ' विरचित 'रुक्मिणीहरण' महाकाव्य में कृष्ण आधुनिक सुधारवादी तथा गाँधीवादी नेताओं की भाषा में बोलते-

जनेषु कस्मान विभज्यते समं समानरूपेण समीहितं वसु।

न कस्यचिद् यत् सहजं समीक्ष्यते न कोऽपि तनाधिकृता विशेषभाक् ।।

बीती शताब्दी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की आश्चर्यजनक उपलब्धियों की शताब्दी रही। इस शती में जीवन की पद्धतियों में द्रुतगति से परिवर्तन हुए । संस्कृत कवियों ने नए वातावरण के अनुरूप नए-नए विषय ग्रहण किये।

'मथुरानाथशास्त्री' ने ट्राम, मोटरकार, रेल, जहाज, बिजली, क्षकिरण, छायाचित्र, सिनेमा, विज्ञान की उपलब्धियों पर पद्य रचे। कवियों ने अपनी यात्राओं का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया कृश्विमानवातायनात्' (प्रभाकरनारायण कवठेकर) 'विमानयात्राशतकम्' (राजेन्द्रमिश्र) 'धारित्रीदर्शन-लहरी' (राधावल्लभ-त्रिपाठी) आदि।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में 'पं. बटुकनाथशास्त्रीखिस्ते', 'डॉ० राघवन', 'कमलेशदत्त त्रिपाठी', रतिनाथ झा', 'रामकरणशर्मा' आदि कवियों ने समकालिक घटनाओं पर संवेदना के साथ काव्य लिखा। रेवाप्रसाद द्विवेदी', 'कमलेश दत्त त्रिपाठी', 'शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी' आदि ने बांग्लादेश युद्ध के अवसर पर जो रचनाएँ की, वे वीरगाथा काल की पुनरावृत्ति सी करती लगती हैं।

परमाणु युद्ध की विभीषिका को लेकर श्रीनिवास रथ की ये पंक्तियाँ-माँ कुरु। भीतिविकम्पितमनसा। मलिनवदनं। सजलनयनम्। भुवि दानवता यथाप्रकाशम्। कलयति मानवताकुलनाशनम्'। समकालिक कविताओं में पौराणिक चरित्रों के माध्यम से आधुनिक के अन्तर्द्वन्द्व, संशय और जटिल मनोविज्ञान को बारीकी से चित्रित व्यंजित किया गया है। 'कमलेशदत्त त्रिपाठी' 'सुतनुके', 'दयानन्द भार्गव' ने 'द्विधा विभक्तं पुरुराजचित्तम्' (आधुनिक दुष्यन्त) तथा रेवाप्रसाद द्विवेदी' ने 'शकटारकाव्यम' (शकटार और मण्डेला दोनों को मनुष्य की चिरन्तन जिजीविषा और युयुत्सा का प्रतीक माना है।)

संस्कृत में नवगीतविधा का विकास हुआ, जिनमें वैयक्तिक भावनाएँ, रूमानियत, स्वच्छन्द मनः स्थितियों के चित्रण की प्रवृत्ति फलवती हुई। नाटककार 'वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य' ने नई विधा-सानेट दी जो अंग्रेजी कविता में चौदह पंक्ति का छन्द है। 'गीतगोविन्द' की परम्परा पर रागकाव्यों की रचना की गई जिसमें 'राधावल्लभ त्रिपाठी' का 'गीतधीवरम्' मुख्य है। एक नई विधा 'संगीतिका' का विकास हुआ जिसे पश्चिमी साहित्य में 'ऑपेरा' कहा गया है। रागकाव्य की ही तरह लहरीकाव्यों की रचना की गई-मातृभूलहरी' (वर्णेकर) 'निदाघलहरी', 'प्रावृड्लहरी', 'जनतालहरी', 'रोटिकालहरी' (राधावल्लभ त्रिपाठी) आदि।

उर्दू काव्य परम्परा का संस्कृत पर प्रभाव पड़ा और 'मथुरानाथ शास्त्री', जगन्नाथ पाठक', 'बच्चूलाल अवस्थी', 'राजेन्द्र मिश्र' ने गजल-गीतियों में रदीफ और काफिये का आकर्षक संयोजन किया। 'राजेन्द्र मिश्र', 'नलिनी-शुक्ला', 'श्रीमती पुष्पा दीक्षित' आदि कवियों ने हिन्दी के 'नवगीत विधा' का सफल प्रयोग संस्कृत काव्य रचना में किया। राजेन्द्र मिश्र ने 'स्कंधहारीयम् (कहरवा) 'चौत्रकम् (चौती) की धुन और छन्द पर संस्कृत में गीतिकाएँ लिखी। 'डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठी' ने सौहर गायन शैली पर गीत लिखा। 'हर्षदेव माधव' ने हायकू, तांका, शिजो जैसे विदेशी छन्दों पर काव्य रचना की।

बीसवीं शताब्दी का संस्कृत-उपन्यास साहित्य भी समृद्ध है। 'आदर्शरमणी' (मथुरानाथशास्त्री) 'दुःखिनी बाला' (रामनाथ शास्त्री) 'वियोगिनी बाला' (बलभद्र शर्मा) 'सीमासमस्या' (गंग उपाध्याय) 'सरला' (हरिदास सिद्धान्त वागीश) 'मंगलमयूख' (भगीरथप्रसाद शास्त्री) 'जीवनस्य पृष्ठद्वयम् (कलानाथ शास्त्री) 'कुसुमलक्ष्मी', 'द्वासुपर्णा', 'उदयनचरितम्' (कृष्णकुमार) 'गुहावासी' (सत्यप्रकाश सिंह), केशवचन्द्रदाश के-श्निकषा, ऋतम्, मधुयानम्, 'अञ्जलि', 'शिखा', 'तिलोत्तमा', 'शीतलतृष्णा', 'अरुणा', 'ओम् शान्तिः' आदि उपन्यास विभिन्न विषयों पर लिखे गये हैं। अधुनातन महाकाव्यों में 'जानकीजीवनम्' (राजेन्द्र मिश्र) 'सीताचरितम' (रेवाप्रसाद द्विवेदी) 'स्वातन्त्र्यसम्भवम्, 'भीष्मचरितम् (हरिनारायण दीक्षित) लेनिनामृतम् (पद्य शास्त्री) 'चर्चा-महाकाव्यम्' (शिवदत्त शर्मा) आदि प्रमुख हैं । शास्त्रीय साहित्य में 'डॉ० ब्रह्मानन्द शर्मा' कृत-'काव्यसत्यालोकः', 'अभिनवरसमीमांसा', 'रसासोचनम' तथा 'वस्त्वलङ्कारदर्शनम् आदि प्रमुख हैं।

परम्परा और आधुनिकता का समन्वय, यथार्थबोध, व्यक्तिवाद का उदय, परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व तथा नवार्थसन्धान आज के संस्कृत साहित्य में समाहित हैं। कवि सनातन के बोध में स्थित रहकर भी यह अनुभव करता है कि जीवन की गति प्रतिदिन कुछ और होती जा रही है-

जीवनगतिरनुदिनमपरा। तदेवगगनं सैवधरा। (श्रीनिवास रथ)

'मथुरानाथ शास्त्री' ने कामचोर, रिश्वतखोर, केवल पदोन्नति में रुचि रखने वाले अधिकारी के लिए 'हाकिम' शब्द का प्रयोग किया है, वे इसे 'हा किम् मम लोकै:' -मुझे आम लोगों से क्या लेना-देना यह रोचक परिभाषा देते हैं।

आज संस्कृत में उपन्यास, कहानी, एकांकी, कथासंग्रह, लघुनाटिका, यात्रा-विवरण, रिपोर्ताज, नुक्कड़ नाटक, प्रहसन, लघु-कहानी के साथ-साथ परम्परागत महाकाव्य, खण्डकाव्य, शास्त्रीय साहित्य पर साहित्य सर्जना करने वाले 'डॉ. राजेन्द्र मिश्र 'रमाकान्त शुक्ल', 'राधावल्लभत्रिपाठी', 'हर्ष माधव', 'केशवचन्द्र दाश', 'जगन्नाथ पाठक', 'रेवाप्रसाद द्विवेदी', कमलेश दत्त त्रिपाठी', 'रामकरण शर्मा', 'इच्छाराम द्विवेदी', 'भास्कराचार्य त्रिपाठी', 'विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र', 'जनार्दन प्रसाद पाण्डेय', 'हरिनारायण दीक्षित', 'वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य', रामकिशोर मिश्र, डॉ गणेशदत्त शर्मा आदि सरस्वती समुपासक निरन्तर साधनारत हैं। आर्यभाषाओं की जननी संस्कृत का वैदिक काल एवं लौकिक संस्कृत का आदिकाल समृद्धशाली रहा है। मध्ययुग में विदेशी आक्रान्ताओं तथा लुटेरों ने हमारी साहित्यिक निधि को खूब क्षति पहुँचाई जिससे मध्ययुगीन दशा अवश्य सोचनीय रही, पर बीसवीं एवं इक्कीसवीं सदी की दिशा साहित्य-सर्जना की दृष्टि से सर्वथा स्तुत्य एवं समृद्ध है।

सन्दर्भ

1. आज का भारतीय साहित्य
2. वसुधा अंक,
3. भूभामिनीविलासम्
4. रुक्मिणीहरण
5. साहित्यवैभवम्-नवयुगवीथी।
6. शान्तिवाचनम्-श्रीनिवासरथ।
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास - परमानन्द गुप्त सरस्वती हाऊस दिल्ली, 1980
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास -कीथ, अनुवादक डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1970
9. संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन, वाराणसी-1978
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास -वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याप्रकाशन, वाराणसी, 1960
11. संस्कृत साहित्य का इतिहास -वेद वरदाचार्य रामानारायण लाल वेणीप्रसाद, इलाहाबाद, 1962
12. संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० श्याम शर्मा वाशिष्ठ नितिन पब्लिकेशन, अलवर-1995
13. संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० बाबूराम तिवारी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-1988
14. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास-कृष्ण चौतन्य, अनु० विनयकुमार राय चौखम्बा विद्याप्रकाशन, वाराणसी,
15. संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ-जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1969

पाण्डुलिपि-सरंक्षण की आवश्यकता: एक अनुसंधान

नीलिमा पाण्डेय

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, गोरखपुर विश्वविद्याल, गोरखपुर

भूमिका:

पाण्डुलिपियों में ज्ञान निहित होता है। भारत के पास दुनिया में सबसे ज्यादा पांडुलिपियां हैं। भारतीय पांडुलिपियों की लिपियों, भाषाओं और विषयों में अत्यधिक विविधता है। भारत की पाण्डुलिपि विरासत अपनी भाषाई और लेखन विविधता में अद्वितीय है। पाण्डुलिपि कागज, छाल, धातु, ताड़ के पत्ते अथवा किसी अन्य सामग्री पर कम से कम 75 वर्ष पहले हस्त लिखित संयोजन को कहते हैं, जिसका वैज्ञानिक, ऐतिहासिक अथवा सौंदर्यपरक महत्त्व हो। लिथोग्राफ और मुद्रित खंड पाण्डुलिपियों में नहीं आते। पाण्डुलिपियां सहस्त्र विभिन्न भाषाओं और लिपियों में पाई जाती हैंअक्सर एक भाषा विभिन्न लिपियों में लिखी होती है। उदाहरण के लिए संस्कृत उडिघ्या लिपि, ग्रंथ लिपि, देवनागरी लिपि और कई अन्य लिपियों में लिखी जाती है। पाण्डुलिपियां ऐतिहासिक रिकॉर्डों जैसे शिलालेखों, फरमानों, राजस्व अभिलेखों से भिन्न होती है जो इतिहास में घटनाओं अथवा प्रक्रियाओं के संबंध में सीधी सूचना प्रदान करते हैं।

पाण्डुलिपि का ज्ञान क्षेत्र:

वैदिक काल से आरंभ होकर भारतीय समाज ने एक ज्ञानपरक समाज के तौर पर उत्कृष्टता हासिल करने के सभी प्रयास किए हैं। मानव जीवन के परम लक्ष्य का पता लगाने के उद्देश्य ने अनंत काल से मानव समाज को संचालित किया है और यही जिज्ञासा अंतत: बौद्धिक संवाद का केंद्र बिंदु रही है। समाज में सही मायनों में बहुलता ने इस मार्ग को आसान किया है और कालातीत में इसे और सघन और सार्थक बनाया है। संवाद के इस निर्बाध प्रवाह ने बहु-आयामी भारतीय बौद्धिक परंपरा को गति प्रदान की और स्वयं भी सम्पुष्ट हुई। विभिन्न पंथों ने भिन्न-भिन्न कालों में विभिन्न सिद्धांत रखे जिसमें उन्होंने उस परम उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग सुझाए, इन सिद्धांतों को बाद में आने वाले विद्वानों द्वारा और नए पंथियों द्वारा दिए गए सृजनात्मक स्पष्टीकरणों और महत्त्वपूर्ण निर्वचनों द्वारा अभेद्य कर दिया गया परम्परा ने बौद्धिकता का कोई मुद्दा अछूता नहीं छोड़ा जिसके परिणामस्वरूप देश में सार्थक लेखन का उद्भव हुआ भाग्यवश जो आज हमारी विरासत है। इन लेखनों की विषय-वस्तु वेद, वेदांत, दर्शन, आयुर्वेद, सौंदर्यशास्त्र, खगोल शास्त्र, ज्योतिष, योग, वास्तु, गणित, भाषा विज्ञान और इस प्रकार की अन्य विषय वस्तुएं रही हैं जिन्हें विभिन्न प्राचीन लिपियों और भाषाओं में लिखा गया है।

पाण्डुलिपि सरंक्षण क्यों ?

भारतीय पाण्डुलिपियों को सुरक्षित करने और उनकी ज्ञान सामग्री को सुलभ बनाने के लिए भारत की विभिन्न संस्थाएं कार्य कर रहीं है । हालांकि, इस विरासत का संरक्षण तभी सार्थक होगा ,जब पाण्डुलिपियां वर्तमान में और भविष्य में प्रासंगिक हों। पाण्डुलिपियों के सरंक्षण के संबंध में निम्न घटक महत्वपूर्ण हैं:

1. इसमें विशेषज्ञता की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है- कच्चे माल की तैयारी (कागज, भोजपत्र, ताल पत्र, स्याही, स्टाइलस) लिपि और वर्णमाला के विकास का अध्ययनय उच्च और निम्न आलोचनाओं की पद्धतियांय अनुवाद, व्याख्या, ग्रंथों का पुनर्निर्माणय पाण्डुलिपियों का परिरक्षण, संरक्षण और भंडारणय पाण्डुलिपि भंडारण के लिए संग्रहालयों और अभिलेखागार डिजाइनिंग, भाषा विज्ञान,लिखित परंपराओं का ज्ञान, आलोचनात्मक संपादन पाठय सूचीकरण।
2. भारतीय पाण्डुलिपियां विभिन्न भाषाओं और लिपियों में पाई जाती है- जैसे नेवारी, गौड़ी, तिब्बती, कन्नड़, नाख आदि। लेकिन अफसोस की बात है, ऐसी लिपि पढ़ने वाले लोगों की संख्या बहुत कम है। नतीजतन, इनके विलुप्त होने का खतरा है।

भारत की प्रमुख पाण्डुलिपि एवं उनका स्थान:

1. कुब्जिका माता (एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता)
2. मैत्रेयीव्याकरणम् (एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता)
3. सम्पुतटिका (एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता)
4. कालचक्रवतारा (एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता)
5. घ्वेद संहिता (भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे)
6. चिकित्सारसंग्रह (भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे)
7. उपमीतिभावप्रपंचकथा (भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे)
8. भागवतपुराण (भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे)
9. महाभाष्य (भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे)
10. शैवागमतंत्र (कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता)
11. अष्टसाहस्त्रिकाप्रज्ञापारमिता (कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता)
12. कृत्तिवासरामायण (कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता)
13. शैवागम (इंस्टीट्यूट फ्रैंकायस डी पॉन्डिचेरी, पॉन्डिचेरी)
14. शून्य सम्पादने (कन्नड़ विश्वविद्यालय, हम्पी)
15. कुरबरारत्तमाला (कन्नड़ विश्वविद्यालय, हम्पी)
16. बासवपुराण (कन्नड़ विश्वविद्यालय, हम्पी)
17. धुल वा (कार्गोन गोम्पा, इगू, लद्दाख)
18. ज़्याद स्टोन्पा (कार्गोन गोम्पा, इगू, लद्दाख)
19. दीवान-ए-हाफीज (खुदा बक्श ओरिएंटल पब्लिक लाईब्रेरी, पटना)
20. तारीख-ए-खानदान-ए-तिमुरिया (खुदा बक्श ओरिएंटल पब्लिक लाईब्रेरी, पटना)
21. किताब-अल-हशैष (खुदा बक्श ओरिएंटल पब्लिक लाईब्रेरी, पटना)
22. किताब-अल-तारीफ (खुदा बक्श ओरिएंटल पब्लिक लाईब्रेरी, पटना)
23. चित्राभागवत (कृष्ण कांत हन्दीकी लाईब्रेरी, गुवाहाटी)
24. रत्नमाल्व्याकर्ण (कृष्ण कांत हन्दीकी लाईब्रेरी, गुवाहाटी)
25. उत्तराध्ययनसूत्र (लालभाई दलपतभाई इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलॅजी, अहमदाबाद)
26. शांतिनाथ चरित (लालभाई दलपतभाई इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलॅजी, अहमदाबाद)
27. आर्यभद्र-कलापिका-नामा-महायान-सूत्र (लाईब्रेरी ऑफ तिब्बतन वर्क्स, धरमशाला)
28. यम्बनलोल (मणिपुर राज्य के अभिलेखागार)
29. सुबिका (मणिपुर राज्य के अभिलेखागार)

30. गिलगिट पाण्डुलिपियां (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली एवं श्री प्रताप सिंह संग्रहालय, जम्मू और कशमीर तथा कशमीर राज्य सरकार का राज्य पुरातत्त्व विभाग, अभिलेखागार और संग्रहालय, श्रीनगर)
31. बाबरनामा (राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)
32. तुजुक-ए-जहांगीरी (राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)
33. अर्थशास्त्र (ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, मैसूर)
34. नाट्यशास्त्र (ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, मैसूर)
35. शारदातिलक (ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, मैसूर)
36. सौभाग्यरत्नाकर (ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति)
37. आर्यमंजुश्रीमुलाकलापम् (ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट एवं पाण्डुलिपियां लाईब्रेरी, तितुवन्नतपुरम)
38. गीतगोविंद (ओडिशा राज्य संग्रहालय, भुबनेश्वर)
39. चिकित्सा मंजरी (ओडिशा राज्य संग्रहालय, भुबनेश्वर)
40. आर्षरामायण (राजस्थान ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, जोधपुर)
41. ध्वन्यालोकलोचन (राजस्थान ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, जोधपुर)
42. अल-कुरान-अल-मजीद (रामपुर रजा लाईब्रेरी, रामपुर)
43. रामायण (रामपुर रजा लाईब्रेरी, रामपुर)
44. कालि-वा-डिमना (रामपुर रजा लाइब्रेरी, रामपुर)
45. कलीला-व-दिम्ना (रामपुर रजा लाईब्रेरी, रामपुर)
46. सर्वरोगहरणगुणगंभीरता अथवा अश्वपहल प्रकाश (विश्वेशवरनंद बिश्वाबंधु इंस्टीट्यूट ऑफ संस्कृत एंड इंडोलॉजिकल स्टडीज, होशियारपुर)

पाण्डुलिपि सरंक्षण की स्वदेशी विधियाँः

भारत की बहुमूल्य विरासत का रखरखाव, देखभाल और संरक्षण की स्पष्ट समस्या के कारण मिशन पाण्डुलिपि संरक्षण पर जोर देता है। संरक्षण का ज्ञान भारतीयों के लिए नया नहीं है। अतीत में पाण्डुलिपियों की देखभाल एक बड़ी समस्या थी और उनके विभिन्न कारकों से नष्ट होने से बचाने के लिए प्रयास किए गए थे। इन अपकर्षक कारकों में से सबसे महत्वपूर्ण जैविक-विकास था। हम प्रीभेंशन, रिमेडियल, रेस्टोरेशन व डुपलिकेशन विधि से पांडुलिपि को संरक्षित कर सकते हैं। इनमें प्रीवेंटिव तरीका सबसे बेहतर है। जिसमें हम अपनी धरोहर को कीड़ों, दीमकों, धूलों व अन्य क्षरण के कारकों को क्षरण करने से रोकते हैं। हमारे पूर्वज भी इन धरोहरों को इन्हीं तरीकों से संरक्षित करते थे। संरक्षण ज्ञान के देशी परंपरा यहां के स्थानीय लोगों के माध्यम से कालांतर में अपने अनुभवों से संवर्धित किया गया। संरक्षण की यह परंपरा यहां के वातावरण, सांस्कृतिक, भौगोलिक कारकों से संपोषित होकर विकसित हुई है। दु:ख की बात यह है कि अब हम प्राकृतिक पदार्थों को छोड़कर रासायनिक तरीकों से पांडुलिपि को संरक्षित करने लगे हैं। संरक्षण में तीन तरह के विष का प्रयोग होता है। जिसमें पहला बेल विष जरीका से कीड़े-दीमक मात्र विष के गंध से संरक्षित वस्तु के नजदीक नहीं आते। यह सबसे सुरक्षित तरीका है। दूसरा तरीका स्पर्श विष के रूप में है। जिसमें कीड़े विष के संसर्ग में आने से मर जाते हैं। तीसरा तरीका भोज्य विष का होता है। जिसमें कीड़े विष खाने से मर जाते हैं। इन तरीकों में कृत्रिम रसायन का प्रयोग होता है जिसमें मानव को भी नुकसान होने का भय लगा रहता है। पाण्डुलिपियों को बचाने के लिए उपयोग की जाने वाली विधियां जड़ी- बूटियों और अन्य प्राकृतिक सामग्रियों के अनुभव और ज्ञान पर आधारित थीं और इन प्रथाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया गया था। सदियों से भारत में इन संग्रहों के संरक्षकों ने अपनी पाण्डुलिपियों के संरक्षण के लिए विभिन्न प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग किया है। संरक्षण के क्षेत्र में नई प्रौद्योगिकियों के आगमन के साथ, और सामाजिक एवं जीवन प्रणालियों में हुए बदलावों के साथ परंपरागत प्रथाओं और संरक्षण प्रणालियों में कमी आई है। साथ ही, संरक्षण के लिए उपयुक्त रसायनों के आगमन के बावजूद, भारत में कुछ पुस्तकालयों और पाण्डुलिपि संग्रहालयों में संरक्षण की पारंपरिक पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं। कीटों के हमले का सामना करने के लिए वर्तमान में उपयोग की जाने वाली अधिकांश आधुनिक सामग्री अपेक्षाकृत कठोर और जहरीली

होती है। इसलिए उपयोग की जा रही पारंपरिक सामग्रियों का पुनर्मूल्यांकन करना और कुछ संशोधनों के साथ उनके उपयोग की संभावना का पता लगाना महत्वपूर्ण है। यदि आवश्यक हो तो, परंपरागत कीटनाशकों को, एक ही समय में, गैर-रासायनिक तरीकों के पक्ष में बहुत आसानी से खारिज नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उन उत्पादों के साथ काम करना बेहतर होता है जिनके पीछे लंबा इतिहास हो और जिसके संबंध में उनके लाभ और नुकसान संबंधी बहुत सारी जानकारी उपलब्ध हो। कई कारणों से स्वदेशी ज्ञान महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि स्थानीय ज्ञान कम दुष्प्रभावों सहित विकास समाधान के लिए सबसे अच्छा हल ढूंढ़ने में मदद कर सकता है और स्वदेशी ज्ञान उन सफल तरीकों का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी सहायता से हमारे पूर्वजों ने समृद्ध विरासत का संरक्षण किया है। उपयुक्त समाधान तैयार करने के लिए मौजूदा ज्ञान का उपयोग करने का बार-बार उल्लेख पूरे विकास साहित्य में मिलता है। स्वदेशी ज्ञान का उपयोग संस्कृति के लिए सर्वोत्तम समाधान ढूंढने में मदद कर सकता है क्योंकि, सृजित समाधान आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से सहायता किए जाने वाले समाज के लिए स्वीकार्य होने चाहिए।

पाण्डुलिपि सरंक्षण के अन्य केंद्र:

भारत में पाण्डुलिपि संरक्षण के बहुत से केंद्र स्थित हैं, जिसमें प्रमुख रूप से निनांकित है:

1. राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), गंगानाथ झा कैम्पस, चंद्र शेखर आजाद पार्क, इलाहाबाद 211002, उत्तर प्रदेश
2. अमीर-उद-दौला पब्लिक लाईब्रेरी, कैसर बाग, लखनऊ 226001, उत्तर प्रदेश
3. सेंट्रल लाईब्रेरी, बनारस हिंदु विश्वविद्यालय, वाराणसी 221005, उत्तर प्रदेश
4. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर 250404, जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश
5. हस्तलेखागार एवं संग्रहालय, के.एम. इंस्टीट्यूट ऑफ हिन्दी स्टडीज एंड लिंग्विस्टिक्स, बी.आर. अम्बेडकर विश्विद्यालय, पालीवाल पार्क, आगरा 282004, उत्तर प्रदेश
6. इदारा-ए-अदाबियत-ए-उर्दू, एवान-ए-उर्दू, 6-3-662ध्ए, पंजागुट्टा रोड, सोमाजीगुडा, हैदराबाद 500 082, आंध्र प्रदेश
7. इंस्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज, चेम्मनचेरी, शोलिंगानल्लूर पोस्ट, चेन्नई 600 119, तमिलनाडु
8. श्री शंकराचार्य यूनिवर्सिटी ऑफ संस्कृत, कलाडी, जिला एर्नाकुलम 683 574, केरल
9. मिथिला इंस्टीट्यूट ऑफ पोस्ट-ग्रेजुएट स्टडीज एंड रिसर्च इन संस्कृत लर्निंग, महेशनगर, काबराघाट, दरभंगा 846004, बिहार
10. इंस्टीट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज, जे.आर. नगर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर 313001, राजस्थान
11. जैन विश्व भारती इंस्टीट्यूट (मानक विश्वविद्यालय), लाडनन 341306, राजस्थान
12. श्री फोर्ब्स गुजराती सभा, तृतीय तल, उत्पल संघवी स्कल के सामने, संत ज्ञानेश्वर मार्ग, जुहू विले पार्ले (वेस्ट), मुम्बई, महाराष्ट्र।

पाण्डुलिपि सरंक्षण हेतु शोध:

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन द्वारा राष्ट्रीय सांस्कृतिक संपदा संरक्षण अनुसंधानशाला, लखनऊ के सहयोग से चार अनुसंधान परियोजनाएँ शुरु की गई हैं। साक्षात्कार के माध्यम से चयनित 7 शोधकर्ता, वर्तमान में क्षेत्रीय संरक्षण प्रयोगशाला, मैसूर, जो की एनआरएलसी का एक क्षेत्रीय शाखा है, में कार्य कर रहे हैं। इसके तहत शामिल विषय हैं-

1. पेपर लैमिनेटिंग की विभिन्न पद्धतियों का मूल्यांकन करना और एक स्वदेशी पद्धति विकसित करना।
2. ताड़पत्र को सुधारने और पुनरुद्धार के लिए उपयुक्त गोंद की खोज करना।
3. पाण्डुलिपियों का व्यापक विअम्लीकरण की सहज पद्धति विकसित करना।
4. विकर्षकों और फफूंदनाशकों के रूप में पारंपरिक रुप से उपयोग की जा रही वस्तुओं का मूल्यांकन करना और उनकी दक्षता को बढ़ाना।

निष्कर्ष:

भारत मे पाण्डुलिपियों के संरक्षण के लिए विभिन्न प्रयास किए जा रहें है। पर्यटन और संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा फरवरी 2003 में पांडुलिपियों के लिए राष्ट्रीय मिशन की स्थापना की गई थी। अपने कार्यक्रम और जनादेश में एक अनूठी परियोजना, मिशन भारत की विशाल पांडुलिपि धन का पता लगाने और संरक्षित करना चाहता है। भारत के पास दस मिलियन पांडुलिपियों का अनुमान है, जो शायद दुनिया का सबसे बड़ा संग्रह है। ये विभिन्न विषयों, बनावट और सौंदर्यशास्त्र, लिपियों, भाषाओं, सुलेखों, चित्रों और चित्रों को शामिल करते हैं।मिशन में भारत की पांडुलिपि विरासत को पहचानने, दस्तावेजीकरण, संरक्षण और सुलभ बनाने का जनादेश है। हम पांडुलिपियों के लिए एक मिशन के रूप में एक राष्ट्रीय प्रयास को एक बहुत ही समकालीन चुनौती के लिए तार्किक, कट्टरपंथी और तत्काल प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं- पांडुलिपियों में निहित विरासत को पुन: प्राप्त करने के लिए, अक्सर संरक्षण की खराब स्थिति में। पांडुलिपियों के लिए राष्ट्रीय मिशन एक राष्ट्रीय स्तर की व्यापक पहल है जो पांडुलिपियों के संरक्षण और उसमें निहित ज्ञान के प्रसार की आवश्यकता को पूरा करता है। राष्ट्रीय मिशन अपने आदर्श वाक्य को पूरा करने की दिशा में काम कर रहा है, 'भविष्य के लिए अतीत का संरक्षण'। यह एक आंदोलन के रूप में उभरा है, निस्संदेह देश में सभी विरासत संरक्षण पहल के बीच सबसे लोकप्रिय और प्रभावी है।

सन्दर्भ

1. पाण्डुलिपि विज्ञान/डॉ. सत्येन्द्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी ,जयपुर,1978।
2. कैटलॉग ऑफ मैन्यूस्क्रिप्ट ऑन परफॉर्मिंग आर्ट्स/कौशल्या गुप्ता:एनएमएम और देव पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली,2016।
3. पाण्डुलिपि सम्पादन कला/रामगोपाल शर्मा, दिल्ली: प्रभात प्रकाशन,1979।
4. https://www.namami.gov.in/hi

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के राज्य सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण

डॉ० प्रेम सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, विजय सिंह पथिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय; श्री महावीर जी, जिला करौली, राजस्थान

शोध सारांश

दीनदयाल उपाध्याय की मान्यता है कि समाज स्वयंभू इकाई है तथा 'राज्य' की उत्पत्ति समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुई। वे समाज व राज्य की उत्पत्ति एक साथ हुई नहीं मानते; वरन् समाज पहले उत्पन्न हुआ तथा राज्य बाद में। समाज का सहोदर 'धर्म' है। 'धर्म' के आधार पर समाज चलता था। उपाध्याय इस भारतीय मान्यता से सहमत थे कि कृतयुग में राज्य व दंड-व्यवस्था नहीं थी। धर्म के आधार पर संचालित स्वायत्त समाज था। कालांतर में समाज में विकृति आई। उस विकृति से 'धर्म' का संरक्षण करने के लिए राज्य की उत्पत्ति हुई। इस संदर्भ में दीनदयाल कहते हैं: राज्य का निर्माण हमारे यहाँ सामाजिक समझौते के अनुसार हुआ। पहले राजा नहीं था। महाभारत में वर्णन है कि कृतयुग में न राज्य था, न राजा था, न दंड था, न दंड देनेवाला था; सब प्रजा धर्म के आधार पर एक-दूसरे की रक्षा करती थी।राष्ट्र को एक सांस्कृतिक अवधारणा माना जाता है, जबकि राज्य केवल एक भौगोलिक क्षेत्र है। प्राचीन भारत में अनेक राज्य विद्यमान थे, जिनमें काशी, कोशल, मानगढ़ वज्जि, मल्ल जैसे गणराज्य भी विद्यमान थे। आज भी राज्य और राष्ट्र को एक ही माना जाता है। पंडित जी ने इस विषय पर बहुत विचार किया है और अपने लेखन में इसका उल्लेख भी किया है। पंडित जी कहते थे कि 'राज्य राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।' उदाहरण के लिए, जिसे हम संयुक्त राष्ट्र कहते हैं, वह वास्तव में राष्ट्रों का संघ नहीं बल्कि राज्यों का संघ है। राज्य वहां राष्ट्रों के प्रतिनिधि के रूप में मौजूद है। लेकिन यदि राज्य में विकृति आ जाए या वह अपने दायित्वों को पूरा करने में अक्षम सिद्ध हो तो राष्ट्र ऐसे राज्य को बदल देता है। राष्ट्र अपने प्रतिनिधि को बदल देता है। राज्य की उत्पत्ति की यह अवधारणा आधुनिक लोकतांत्रिक संवैधानिक शासन के बहुत करीब है। संभवत: इसी परंपरा के कारण भारत तीसरी दुनिया का एकमात्र देश है, जहां आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्र आसानी से जड़ें जमा सका। पश्चिमी विचारों के संबंध में दीनदयाल उपाध्याय द्वारा की गई टिप्पणियों को बहुत गलत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि हॉब्स, लॉक और रूसो द्वारा प्रतिपादित सामाजिक अनुबंध का सिद्धांत समाज की उत्पत्ति का सिद्धांत नहीं बल्कि राज्य की उत्पत्ति का सिद्धांत है। इस सिद्धांत को सामाजिक अनुबंध का सिद्धांत अवश्य कहा जाता है; लेकिन यह वास्तव में 'राज्य की स्थापना के लिए समाज द्वारा किए गए समझौते' का सिद्धांत है। प्रस्तुत शोध पत्र में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के राज्य सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य बिन्दु:- दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार राज्य के विचार, धर्म संस्कृति, राष्ट्र संबधी विचार, धर्म राज्य, राष्ट्र व राज्य एवं निष्कर्ष।

संक्षिप्त परिचय:-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितम्बर 1916 को धनकिया नामक स्थान ,जयपुर अजमेर रेलवे लाइन के पास (राजस्थान) हुआ था। उनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय था, नागला चंद्रभान दीनदयाल जी का पैतृक गांव था, और नगला

चंद्रभान (फरह, मथुरा) के निवासी थे। उनकी माता का नाम रामप्यारी था, जो धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। पिता रेलवे में जलेसर रोड स्टेशन के सहायक स्टेशन मास्टर थे। रेल की नौकरी होने के कारण उनके पिता का अधिक समय बाहर ही बीतता था। कभी-कभी छुट्टी मिलने पर ही घर आते थे।

दो वर्ष बाद दीनदयाल के भाई ने जन्म लिया, जिसका नाम शिवदयाल रखा गया। पिता भगवती प्रसाद ने बच्चों को ननिहाल भेज दिया। उस समय उपाध्याय जी के नाना चुन्नीलाल शुक्ल धानक्या (जयपुर, राज०) में स्टेशन मास्टर थे। नाना का परिवार बहुत बड़ा था। दीनदयाल अपने ममेरे भाइयों के साथ बड़े हुए। नाना का गाँव आगरा जिले में फतेहपुर सीकरी के पास 'गुड़ की मँढई' था।

दीनदयाल अभी 3 वर्ष के भी नहीं हुये थे, कि उनके पिता का देहान्त हो गया। पति की मृत्यु से माँ रामप्यारी को अपना जीवन अंधकारमय लगने लगा। वे अत्यधिक बीमार रहने लगीं। उन्हें क्षय रोग लग गया। 8 अगस्त 1924 को उनका भी देहावसान हो गया। उस समय दीनदयाल 7 वर्ष के थे। 1926 में नाना चुन्नीलाल भी नहीं रहे। 1931 में पालन करने वाली मामी का निधन हो गया। 18 नवम्बर 1934 को अनुज शिवदयाल ने भी उपाध्याय जी का साथ सदा के लिए छोड़कर दुनिया से विदा ले ली। 1935 में स्नेहमयी नानी भी स्वर्ग सिधार गयीं। 19 वर्ष की अवस्था तक उपाध्याय जी ने मृत्यु-दर्शन से गहन साक्षात्कार कर लिया था।

8वीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उपाध्याय जी ने कल्याण हाईस्कूल, सीकर, राजस्थान से दसवीं की परीक्षा में बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1937 में पिलानी से इंटरमीडिएट की परीक्षा में पुनः बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1939 में कानपुर के सनातन धर्म कालेज से बी०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। एम०ए० करने के लिए सेंट जॉन्स कालेज, आगरा में प्रवेश लिया और पूर्वार्द्ध में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। बीमार बहन रामादेवी की शुश्रूषा में लगे रहने के कारण उत्तरार्द्ध न कर सके। बहन की मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। मामाजी के बहुत आग्रह पर उन्होंने प्रशासनिक परीक्षा दी, उत्तीर्ण भी हुये किन्तु अंगरेज सरकार की नौकरी नहीं की। 1941 में प्रयाग से बी०टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी०ए० और बी०टी० करने के बाद भी उन्होंने नौकरी नहीं की।

1937 में जब वह कानपुर से बी०ए० कर थे, अपने सहपाठी बालूजी महाशब्दे की प्रेरणा से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये। संघ के संस्थापक डॉ० हेडगेवार का सान्निध्य कानपुर में ही मिला। उपाध्याय जी ने पढ़ाई पूरी होने के बाद संघ का दो वर्षों का प्रशिक्षण पूर्ण किया और संघ के जीवनव्रती प्रचारक हो गये। आजीवन संघ के प्रचारक रहे।

संघ के माध्यम से ही उपाध्याय जी राजनीति में आये। 21 अक्टूबर 1951 को डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना हुई। गुरुजी (गोलवलकर जी) की प्रेरणा इसमें निहित थी। 1952 में इसका प्रथम अधिवेशन कानपुर में हुआ। उपाध्याय जी इस दल के महामंत्री बने। इस अधिवेशन में पारित 15 प्रस्तावों में से 7 उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किये। डॉ० मुखर्जी ने उनकी कार्यकुशलता और क्षमता से प्रभावित होकर कहा- "यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएं, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।"

1967 तक उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1967 में कालीकट अधिवेशन में उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह मात्र 43 दिन जनसंघ के अध्यक्ष रहे। 10/11 फरवरी 1968 की रात्रि में मुगलसराय स्टेशन पर उनकी हत्या कर दी गई। 11 फरवरी को प्रातः पौने चार बजे सहायक स्टेशन मास्टर को खंभा नं० 1276 के पास कंकड़ पर पड़ी हुई

लाश की सूचना मिली। शव प्लेटफार्म पर रखा गया तो लोगों की भीड़ में से चिल्लाया- "अरे, यह तो जनसंघ के अध्यक्ष दीन दयाल उपाध्याय हैं।" पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गयी?

उद्देश्यः-

1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय की राज्य सम्बन्धी विचारधारा का अध्ययन करना।

2 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के धर्म राज्य की अवधारणा को स्पष्ट करना।

परिकल्पनाः-

1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय की राज्य व धर्मराज्य सम्बधी विचारधारा का राष्ट्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

आंकड़ो के स्त्रोतः-

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक सूचनाओं का उपयोग किया गया है जिसका संकलन पत्र पत्रिकाओं, सेमिनार, शोध ग्रंथों व पुस्तकों के किया गया है। शोध पत्र में वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक विधि तंत्र को अपनाया गया है।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार राज्यः-

दीनदयाल उपाध्याय की मान्यता है कि समाज स्वयंभू इकाई है तथा 'राज्य' की उत्पत्ति समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुई। वे समाज व राज्य की उत्पत्ति एक साथ हुई नहीं मानते; वरन् समाज पहले उत्पन्न हुआ तथा राज्य बाद में। समाज का सहोदर 'धर्म' है। 'धर्म' के आधार पर समाज चलता था। उपाध्याय इस भारतीय मान्यता से सहमत थे कि कृतयुग में राज्य व दंड-व्यवस्था नहीं थी। धर्म के आधार पर संचालित स्वायत्त समाज था। कालांतर में समाज में विकृति आई। उस विकृति से 'धर्म' का संरक्षण करने के लिए राज्य की उत्पत्ति हुई। इस संदर्भ में दीनदयाल कहते हैं: राज्य का निर्माण हमारे यहाँ सामाजिक समझौते के अनुसार हुआ। पहले राजा नहीं था। महाभारत में वर्णन है कि कृतयुग में न राज्य था, न राजा था, न दंड था, न दंड देनेवाला था; सब प्रजा धर्म के आधार पर एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

नराज्यं न च राजासीत् न दण्ड्यो न च दण्डिकः।

धर्मेनैव प्रजाः सर्वः रक्षण्ति स्म मिलनम्।।

(राज्य, राजा, दंड तथा दांडिक, ये सब नहीं थे। धर्म के आधार पर ही सारी प्रजा परस्पर एक-दूसरे का संरक्षण करती थी।) "बाद में अव्यवस्था आई, लोभ आया, क्रोध आया, धर्म की ग्लानि हुई और 'मात्स्य न्याय' प्रारंभ हो गया। सारे ऋषि घबराकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्माजी ने स्वयं द्वारा रचित एक ग्रंथ इन ऋषियों को दिया जो 'दंडनीति' या 'राज्यशास्त्र' से संबंधित ग्रंथ था। उन्होंने मनु से कहा कि तुम राजा हो जाओ।

मनु ने कहा, 'मैं राजा नहीं बनूंगा; क्योंकि राजा बनने के बाद मुझे दंडित करना पड़ेगा और कुछ लोगों को मारना होगा, कुछ को पीटना होगा, कुछ को कारागार में डालना होगा व अन्य कई कठोर कर्म करने पड़ेंगे। मैं यह पाप क्यों करूँ?' इस पर ब्रह्माजी ने कहा, 'ऐसी कोई बात नहीं है। यह पाप नहीं; बल्कि अन्य लोग धर्म का काम करें इसके लिए तुम यह काम करोगे।' अतः यह भी धर्म ही गिना जाएगा। इतना ही नहीं, प्रजा के जितने कर्म होंगे, उन कर्मों का एक भाग तुम्हें मिल जाएगा और इसलिए ये जितना धर्म करेंगे उसका एक भाग स्वयं मिल जाएगा। परंतु यदि प्रजा पाप या अधर्म करेगी और राजा उसे रोक नहीं सके, तो उस पाप का भाग भी राजा को मिलना चाहिए। ऐसा नहीं हो सकता कि 'मीठा-मीठा गप्प और कड़वा-कड़वा थू।' दोनों ही मिलने चाहिए। "यह 'समझौता सिद्धांत' राज्य पर लागू हो सकता है, राष्ट्र के ऊपर नहीं। परंतु पश्चिम में कुछ उल्टा हुआ। समाज तो उनकी दृष्टि से समझौते में से पैदा हुआ; परंतु राजा दैवी अधिकार के आधार पर सीधा ईश्वर का प्रतिनिधि बन गया। यह उलटी बात है। हमारे यहाँ राजा को चाहे आदि- समय से पैदा हुआ माना गया; परंतु समाज को सो 'स्वयंभू', माना है तथा राज्य एक संस्था के नाते है।" उपर्युक्त उद्धरण में मुख्यतः तीन बातों पर उपाध्याय ने अपना मत प्रस्तुत किया है।

(1) राज्योत्पत्ति पूर्व समाज की स्थिति,

(2) राज्य की उत्पत्ति तथा

(3) पश्चिम की तत्संबंधी अवधारणा।

राष्ट्र व राज्य से संबंधित विचार-

राष्ट्र को एक सांस्कृतिक अवधारणा माना जाता है, जबकि राज्य केवल एक भौगोलिक क्षेत्र है। प्राचीन भारत में अनेक राज्य विद्यमान थे, जिनमें काशी, कोशल, मानगढ़ वज्जि, मल्ल जैसे गणराज्य भी विद्यमान थे। आज भी राज्य और राष्ट्र को एक ही माना जाता है। पंडित जी ने इस विषय पर बहुत विचार किया है और अपने लेखन में इसका उल्लेख भी किया है। पंडित जी कहते थे कि 'राज्य राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।' उदाहरण के लिए, जिसे हम संयुक्त राष्ट्र कहते हैं, वह वास्तव में राष्ट्रों का संघ नहीं बल्कि राज्यों का संघ है। राज्य वहां राष्ट्रों के प्रतिनिधि के रूप में मौजूद है। लेकिन यदि राज्य में विकृति आ जाए या वह अपने दायित्वों को पूरा करने में अक्षम सिद्ध हो तो राष्ट्र ऐसे राज्य को बदल देता है। राष्ट्र अपने प्रतिनिधि को बदल देता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो कहा जाता है कि किसी देश विशेष में सरकार बदल गई है। जिसे हम लोकतंत्र कहते हैं वह भी राज्य को उपयोगी बनाए रखने और आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन करने की प्रक्रिया का नाम है। राज्य में परिवर्तन हो सकता है, लेकिन कोई भी लोकतंत्र राष्ट्र की चेतना को नहीं बदल सकता। सामान्य शब्दों में राष्ट्र का स्थान महत्वपूर्ण है, लेकिन ऐसा नहीं है कि राज्य महत्वहीन हो गया है। यदि राज्य की प्रवृत्ति तानाशाही है तो राष्ट्र की शक्ति में गिरावट आ सकती है। पंडित जी का यह भी मानना था कि राज्य का निर्माण सामाजिक प्रगति के लिए हुआ था। पंडित जी कहते हैं कि "समाज एक आत्मनिर्भर इकाई है और राज्य का निर्माण समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। वे ऐसा नहीं मानते कि समाज और राज्य एक साथ बने हैं। बल्कि समाज पहले अस्तित्व में आया और राज्य बाद में अस्तित्व में आया। धर्म समाज का सहोदर है। समाज धर्म के आधार पर चलता था।" धर्म समाज और राज्य को नियंत्रित करता था। 'धर्म' रक्षक का कार्य करता था। पंडित जी इस मान्यता से सहमत थे कि कृतयुग में राज्य और दण्ड व्यवस्था नहीं थी। धर्म के आधार पर चलने वाला स्वायत्त समाज था। समय के साथ समाज में विकृति आई। उस विकृति से धर्म की रक्षा के लिए राज्य अस्तित्व में आया। इस संदर्भ में पंडित जी कहते हैं कि "हमारे लिए सामाजिक समझौते के अनुसार राज्य की रचना हुई। पहले कोई राजा नहीं था। महाभारत में उल्लेख है कि कृतयुग में न राज्य था, न राजा, न दण्ड था, न दण्ड देने वाला, सभी लोग धर्म के आधार पर एक दूसरे की रक्षा करते थे। 'न राज्य, न राज', न दण्ड, न दण्ड। 'धर्मेणैव प्रजा:सर्व: रक्षन्ति स्म् सम्परताम्' (महाभारत शांतिपर्व 59.14) प्राचीन भारतीय समाज में राज्य के अभाव में भी धर्म ही राज्य के रूप में शासन करता था और लोगों को नियंत्रण में रखता था। और इसका मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर कर न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना था। राज्य का काम था कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्मानजनक जीवन जीने की व्यवस्था करे।

पंडित जी ने राज्य के निर्माण तथा प्राचीन समाज के संबंध में पाश्चात्य धारणा के संबंध में निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए हैं।

1 समाज के बाद साम्राज्य की उत्पत्ति हुई।
2 साम्राज्य की उत्पत्ति से पूर्व समाज सहज धर्म का अनुयायी था, धर्मगुरु ऋषि वप्रजापति ब्रह्मा स्वयं राजा नहीं थे।
3 साम्राज्य मानवीय विकारों का उद्गम है। यह लोगों में उत्पन्न होने वाले लोभ, क्रोध आदि तत्वों के विरुद्ध अभिव्यक्त होता था, जो धर्म को हानि पहुंचाते हैं। अत: राज्य का प्रारंभिक स्वरूप दंड संहिता के रूप में नकारात्मक था।
4 राज्य की भारतीय अवधारणा राज्य की वैदिक अवधारणा है। राजा मनु को प्रजा के प्रतिनिधि ब्रह्मा ने स्वयं निर्मित कानून दिया था।
5 साम्राज्य राजा और प्रजा के बीच द्वैध समझौते से उत्पन्न हुआ। धर्म की स्थापना का कार्य ऋषियों का तथा धर्म की रक्षा का कार्य राजा का माना जाता था।
6 राजा को प्रजा के 'धर्म' का एक हिस्सा मिलेगा, यह विचार प्रजा द्वारा स्वीकृत राज्य व्यवस्था और कराधान की जिम्मेदारी की ओर संकेत करता है।
7 राजा को पापों का भी एक हिस्सा मिलेगा, अर्थात जो राजा धर्म की रक्षा करने में असमर्थ है, उसे हटाने का अधिकार प्रजा और उसके प्रतिनिधि ऋषियों को होगा।
8 साम्राज्य समाज की एक संस्था है, संपूर्ण समाज नहीं।

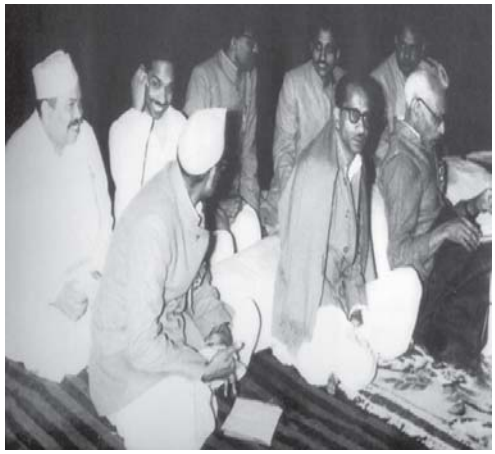

राज्य की उत्पत्ति की यह अवधारणा आधुनिक लोकतांत्रिक संवैधानिक शासन के बहुत करीब है। संभवत: इसी परंपरा के कारण भारत तीसरी दुनिया का एकमात्र देश है, जहां आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्र आसानी से जड़ें जमा सका। पश्चिमी विचारों के संबंध में दीनदयाल उपाध्याय द्वारा की गई टिप्पणियों को बहुत गलत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि हॉब्स, लॉक और रूसो द्वारा प्रतिपादित सामाजिक अनुबंध का सिद्धांत समाज की उत्पत्ति का सिद्धांत नहीं बल्कि राज्य की उत्पत्ति का सिद्धांत है। इस सिद्धांत को सामाजिक अनुबंध का सिद्धांत अवश्य कहा जाता है; लेकिन यह वास्तव में 'राज्य की स्थापना के लिए समाज द्वारा किए गए समझौते' का सिद्धांत है।

धर्मराज्य-

वर्तमान राजनीतिक युग में राजनीति और धर्म का मेल अनैतिक माना जाता है तथा मैकियावेली के दर्शन से प्रभावित लोग धर्म की व्याख्या संप्रदाय के रूप में करते हैं तथा राजनीति और धर्म के मेल को अवांछनीय मानते हैं। जबकि पंडित जी तथा महात्मा गांधी जैसे अनेक महापुरुषों ने धर्मराज्य की कल्पना की है। गांधी जी धर्मविहीन राजनीति को वेश्या कहते थे। दीनदयाल धर्मराज्य के समर्थक हैं। उनके धर्मराज का अर्थ है अच्छाई का राज्य, राजनीति पर धर्म का नियंत्रण अर्थात अच्छी नीति भारत की प्राचीन परंपरा है। हमारे देश में धर्म कोई पूजा पद्धति नहीं बल्कि समाज को धारण करने वाला धर्म है। धर्म के तत्व शाश्वत एवं सार्वभौमिक हैं।

पंडित जी का मानना था कि धर्मराज्य में राज्य निरंकुश नहीं होता। जिस प्रकार पागल हाथी को नियंत्रित करने के लिए छोटी लगाम का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार राज्य की निरंकुशता और मनमानी को धर्म द्वारा नियंत्रित किया जाता है। पंडित जी के समग्र राजनीतिक चिंतन में नैतिकता और धर्म सर्वोपरि थे। उनका मानना था कि धर्म भारत की आत्मा है। उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में संघ द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में उन्होंने कहा कि "भारत को अधार्मिक राष्ट्र (धर्मनिरपेक्ष) घोषित करके देश की आत्मा पर हमला किया गया है। अधार्मिक राज्य में हमेशा दुख ही दुख होता है। रावण की अधार्मिक लंका में सोने की ईंटें जरूर थीं, लेकिन वहां रामराज्य नहीं बन सका। पंडित जी के धर्मराज्य में शासक को तब तक भोजन करने का अधिकार नहीं है, जब तक अंतिम व्यक्ति भोजन न कर ले। पंडित जी कहते हैं कि धर्मराज्य में एकता, अखंडता और भूमि के प्रति सम्मान मुख्य रूप में विद्यमान रहेगा। धर्मराज्य कभी संकीर्ण नहीं हो सकता। तुच्छ से तुच्छ वस्तु को भी पूजनीय बना देना ही धर्म का गुण है। भूमि को अत्यंत आदर और श्रद्धा से देखना ही इस गुण का चमत्कार है। निस्वार्थ देशभक्ति धर्म से परे नहीं हो सकती। लोक पूजा ही धर्मराज्य का एकमात्र उद्देश्य है। लोक मनोरंजन के कारण ही शासक को राजा कहा गया है। राष्ट्रभाषा की समस्या- राष्ट्र की आत्मा- भारत में भाषा हमेशा से ही संघर्ष का कारण रही है। इसका विवाद सामाजिक न होकर राजनीति से प्रेरित रहा है। अगर हम भाषा की समस्या को राजनीति से अलग करके देखें तो कहीं भी किसी भाषा का संघर्ष संभव नहीं है। संविधान लागू होने के बाद गांधीवादी नेता पोट्टी रामुलु के अनशन के कारण भाषा के संघर्ष की राजनीति शुरू हुई, उस अनशन में रामुलु की मृत्यु हो गई और राज्य की स्थिति बिगड़ गई। अंत में नेहरू जी ने 1953 में भाषाई राज्यों के गठन की शुरुआत की। तब से लेकर अब तक भाषा विवाद समय-समय पर सामने आता रहता है। संविधान सभा ने भी भाषा पर काफी विचार किया। "संविधान सभा ने हिन्दी के भावी स्वरूप पर विचार

करते हुए अनुच्छेद 351 में कहा है कि उसे अपनी शब्दावली के लिए मुख्यत: अन्य भाषाओं (आठवीं अनुसूची में उल्लिखित, जिनमें अंग्रेजी सम्मिलित नहीं है) से शब्द अपनाने चाहिए। आज संस्कृत से बना शब्द अपरिचित एवं कठिन लग सकता है, किन्तु कुछ ही दिनों में यह स्पष्ट हो जाएगा कि वह शब्द हमारे लिए अधिक ग्राह्य होगा तथा प्रमाणित दृष्टि से सूक्ष्म एवं वास्तविक अर्थ को व्यक्त करेगा। संस्कृत-आधारित परिभाषिक शब्दावली न केवल भारत के लिए, अपितु सम्पूर्ण दक्षिण एवं पूर्वी एशिया के लिए उपयोगी होगी तथा आने वाले समय में यह अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली बन जाएगी।"

पंडित जी ने संस्कृतनिष्ठ हिंदी भाषा को महत्व दिया, लेकिन तत्कालीन नेताओं ने इसे स्वीकार नहीं किया। संविधान सभा में भी इस पर मतभेद था। गांधी जी हिंदुस्तानी के पक्ष में थे, जबकि नेहरू हिंदी के कुछ कठिन शब्दों से नाराज थे। नेहरू जी को उर्दू आधारित हिंदी भाषा बहुत पसंद थी। गांधी जी ने हिंदुस्तानी भाषा को भाषा के कारण नहीं, बल्कि मुसलमानों को खुश करने के लिए स्वीकार किया। इसलिए उन्होंने हिंदी में उर्दू मिलाकर हिंदुस्तानी नाम की एक कृत्रिम भाषा बनाई। पंडित नेहरू की हिंदी नर्मदा पार किसी को समझ में नहीं आती और मौलाना आजाद की भाषा उत्तर प्रदेश में भी किसी को समझ में नहीं आती। हिंदुस्तानी को केवल स्कूली शिक्षा में उर्दू पढ़ने वाले ही समझते थे। नेहरू जी 'तारामंडल' शब्द के लिए कृत्रिम आकाश शब्द पर बहुत नाराज थे, लेकिन वे कोई दूसरा शब्द नहीं सुझा सके। अंग्रेजी भाषा के संदर्भ में पंडित जी कहते हैं कि सबसे पहले हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अंग्रेजी को यहां से हटाना होगा। अगर अंग्रेजी चली गई, तो हिंदी ही नहीं, बल्कि सभी प्रांतीय भाषाएं उसकी जगह ले लेंगी। अगर अंग्रेजी यहीं रहेगी तो देश की कोई भी दूसरी भाषा विकसित नहीं हो पाएगी।"26 "क्या हिंदी ने ही तमिल या बंगाली को उनके क्षेत्रों से बाहर किया? कोई नहीं सोचता कि केरल में विधानसभा और प्रशासन का काम मलयालम की जगह हिंदी में होगा। लेकिन मलयालम तब तक नहीं आ सकती जब तक अंग्रेजी नहीं हटेगी।" पंडित जी का यह कथन सत्य है कि दक्षिण के कई राज्यों ने दशकों से आज तक हिंदी का विरोध करके अपनी राजनीति चमकाई है। आज भी कई राजनीतिक दलों का मुख्य एजेंडा हिंदी और अन्य भाषाओं के बीच की लड़ाई है। हालांकि उनकी भाषा को सबसे बड़ा खतरा हिंदी से नहीं बल्कि अंग्रेजी से है। "यह सत्य है कि अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी। वह स्थान किसी अन्य भारतीय भाषा को दिया जा सकता है, लेकिन हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया।" वस्तुत: हिंदी को ऐतिहासिक दृष्टि से वह स्थान उसके स्वीकृत होने से बहुत पहले से प्राप्त था। पंडित जी के उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी का विरोध नहीं हुआ है। बल्कि हिंदी के विरोध की शुरुआत आधुनिक युग की देन है। विशेषकर स्वतंत्र भारत के बाद यह राजनीति का साधन बन गया। हिंदी का विरोध करने के लिए अनेक दल बन गए। हिंदी भाषी न होते हुए भी सावरकर के विचारों में हिंदी भाषा के प्रति सम्मान झलकता है। सावरकर कहते हैं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हुए हमारे मन में कभी भी किसी क्षेत्रीय भाषा के प्रति अनादर या तिरस्कार की भावना नहीं आती। हिंदी की तरह हमारी क्षेत्रीय भाषाएं भी हमें प्रिय हैं। वे सभी भाषाएं अपने-अपने प्रांतों में विकसित होंगी और समृद्ध बनेंगी। इनमें से कुछ प्रांतीय भाषाएं आज भी हिंदी से कहीं अधिक विकसित और समृद्ध हैं। लेकिन फिर भी यदि समग्र रूप से विचार करें तो हिंदी संपूर्ण हिंदू राष्ट्र के लिए उपयुक्त है। पंडित जी का हिंदी के प्रति प्रेम और उनके तर्क वीर सावरकर के विचारों से प्रेरित हैं और यह तथ्य सही भी है। हिंदी राष्ट्रभाषा बनने योग्य है। लेकिन यह देश का दुर्भाग्य है कि आजादी के 70 साल बाद भी इस बात पर विवाद है कि देश की भाषा क्या हो। देश के वर्तमान गृह मंत्री माननीय अमित शाह जी ने हाल ही में हिंदी दिवस के अवसर पर हिंदी के विकास और प्रसार पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उसके तुरंत बाद भाषा की राजनीति करने वाली पार्टियों की ओर से विरोध के स्वर शुरू हो गए। खासकर दक्षिण की पार्टियां हिंदी को पुरजोर तरीके से नकार रही हैं। जो बेहद चिंताजनक है।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार राष्ट्र-राज्य

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, राष्ट्र की भारतीय परिभाषा में भूमि, लोग और संस्कृति शामिल हैं। वह बताते हैं कि संस्कृति किसी राष्ट्र के सार और जीवन शक्ति को समाहित करती है। उपाध्याय ने लंबे समय से भारत को प्राचीन काल से भौगोलिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक महत्व वाले राष्ट्र के रूप में चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त, वह एक राष्ट्र का निर्माण करने वाले चार आवश्यक तत्वों की रूपरेखा बताते हैं। सबसे पहले, भूमि और लोगों के संयोजन से एक देश बनता है। दूसरे, इसके अस्तित्व में नागरिकों की सामूहिक इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प का योगदान है। तीसरा, एक प्रणाली, जैसे नियम या संविधान, महत्वपूर्ण है। अंत में, 'धर्म' किसी राष्ट्र के लिए आदर्श जीवन शैली का प्रतिनिधित्व करता है।

इन चारों का समुच्चय अर्थात् ऐसी समष्टि को 'राष्ट्र' कहा जाता है। जिस प्रकार व्यक्ति के लिये शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा जरूरी है, इन चारों को मिलाकर व्यक्ति बनता है, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श के समुच्चय से राष्ट्र बनता है। राष्ट्र एक सजीव मनुष्य की भांति है। मनुष्य के साथ राष्ट्र की भी एक अन्तर्रात्मा होती है, एक सचेतन पुरुष होता है जो राष्ट्र के राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक रचना को धारण, गठित एवं संचालित करते है। 10 राष्ट्र की आत्मा को 'शास्त्रीय' नाम दिया गया है, जिसे 'चिति' कहा गया है। मैक्डूगल के अनुसार, किसी भी समूह की एक मूल प्रकृति होती है, वैसी ही चिति भी समाज की वह प्रकृति है जो जन्म से है तथा ऐतिहासिक कारणों से इसका निर्माण नहीं होता है। 11 चिति ही किसी भी राष्ट्र की आत्मा है जिसके सम्बल पर ही राष्ट्र का निर्माण सम्भव है, चितिविहीन राष्ट्र की कल्पना व्यर्थ है, राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक, चिति के अन्तर्गत आता है इसके साथ ही राष्ट्रीय हित से जुड़ी विभिन्न संस्थाएँ भी चिति में से जुड़ी है व इसके अन्तर्गत आती है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि चिति में व्यक्ति व राष्ट्र दोनों का ही समावेश है। अब यदि हम यहीं कुछ प्रश्नों का विश्लेषण करें, तो यहाँ निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है- चिति क्या है?

1. चिति राष्ट्र की आत्मा है।
2. चिति राष्ट्र का चेतन्य है।
3. चिति राष्ट्रीय संस्कृति का नियामक है।
4. चिति राष्ट्र की विशेष प्रकृति है।
5. चिति राष्ट्र की विभिन्न संस्थाओं की जननी है।
6. चिति' राष्ट्र के उत्थान एवं पतन को निर्धारित करती है।
7. प्रत्येक समाज 'चिति के साथ ही उत्पन्न होता है।
8. चिति ईश्वरप्रदत्त होती है।

'चिति' संबंधी अवधारणा वस्तुतः, पं० दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवादी मानस की उपज है। चिति वह मापदण्ड है, जिससे प्रत्येक वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है। यही राष्ट्र की आत्मा है, इसी आत्मा के आधार पर राष्ट्र मजबूत रूप से खड़ा होता है व यही आत्मा, राष्ट्र के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होती है। सामान्यतः, लोग राज्य को ही राष्ट्र की संज्ञा देते हैं; ये एक गलत धारणा है, राज्य राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला एक अंग है। राज्य अनेक अवसरों पर राष्ट्र का प्रतिनिधत्व करता है।

निष्कर्षः-

राष्ट्र और राज्य में अंतर बताते हुए पंडित जी राष्ट्र को स्थायी मानते हैं। राष्ट्र की इच्छाओं की पूर्ति के लिए राज्य अस्तित्व में आया है। वे राज्य के निर्माण के दो कारण बताते हैं, पहला, जब राष्ट्रीय चेतना में किसी प्रकार की कमी हो और उसके समाधान के लिए राज्य की उत्पत्ति आवश्यक हो, दूसरा, जब सामाजिक संबंधों में जटिलता उत्पन्न हो और सार्वजनिक व्यवस्था पंगु हो जाए और शक्तिशाली वर्ग कमजोर वर्ग का लाभ न उठा सके, तथा सभी को न्याय की सीमा में बांधने की आवश्यकता हो, तब राज्य का निर्माण होता है। वस्तुतः राज्य की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं, सभी के लिए न्यायपूर्ण जीवन का अधिकार स्थापित करना और बाह्य सुरक्षा सुनिश्चित करना राज्य के कार्य हैं। इस प्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय राज्य, राष्ट्र तथा उसकी उत्पत्ति एवं कार्यों पर गहन चिंतन के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि राज्य राष्ट्र पर निर्भर है तथा उसकी उत्पत्ति लोगों के कल्याण के लिए है।

सन्दर्भ सूची

1 उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार दर्शन, खण्ड-6, सुरूचि प्रकाशन केशव पुंज झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 143 उपरोक्त, पृ. 144.
2 उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार दर्शन, राजनीति राष्ट्र के लिए, खण्ड-6, सुरूचि प्रकाशन, केशव कुंज झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 198.
3 उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार-दर्शन, खण्ड-6 उपरोक्त, पृ. 39,40
4 शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 292
5 नाना जी देशमुख से भेंट वार्ता, साक्षात्कार पत्रिका, 1 जनवरी 1984, दिल्ली, पृ. 26.
6 माथुर, जगदीश प्रसाद, जनसंघ के मूल विचारक पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 60,61.
7 विचार तिथि मिशनरी और शिक्षा संस्थाएं, पाञ्जन्य, 24 अक्टूबर, 1955, पृ. 99.
8 परिमल, बी., समाजशास्त्र, सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ. 468.
9 उपाध्याय, दीनदयाल, राष्ट्र चिन्तन, अध्याय शिक्षा, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ सं. 2029, पृ. 97
10 पं. दीनदयाल उपाध्याय, राव चिन्तन, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, तृतीय आवृत्ति वर्ष प्रतिपदा 2029, प. 100-101.

छत्तीसगढ़ की महिला रचनाकारों का भावात्मक पक्षः वात्सल्य

श्रीमती अंजू महिलांग

(प्रयोगशाला तकनीशियन) नवीन शासकीय महाविद्यालय, सकरी, जिला-बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

शोध सारांश- छत्तीसगढ़ की महिला रचनाकारों की रचनाओं में वात्सल्य भाव स्वतः प्रकाश की तरह फूटता हुआ दिखाई देता है। मातृत्व नारी के जीवन को ईश्वरीय देन है। माँ के रूप में नारी क्षमा, दया, ममता और स्नेह की मूर्ति होती है। वात्सल्य वह भाव होता है जो नारी के मातृत्व रूप से उभरता है और यह उसकी जनन प्रक्रिया के कारण नहीं होता है अपितु यह उसमें जन्मजात होता है एक नन्ही अबोध बालिका के द्वारा अपने खिलौनों की मातृवत देखभाल यह सिद्ध करती है, कि उसके अन्दर भी मातृत्व का गुण उसी आवेश में है जितने आवेश में उस नन्ही बालिका की माँ को होता है। अतः नैसर्गिक मातृत्व का पक्ष लेखिकाओं के लेखन पर अपना प्रभाव डालती है।

बीज शब्द- वात्सल्य, छत्तीसगढ़, बच्चा, ईश्वर, प्रकाश वर्ष, मातृत्व, पालक।

मूल आलेख- मनुष्य के सामाजिक जीवन में प्रारम्भ से कई परिवर्तन होते रहे और इन परिवर्तनों का प्रभाव नारी की स्थिति पर भी पड़ता रहा। सामाजिक परिवर्तनों की यह बयार कभी भी नारी के शाश्वत और स्त्रियोचित गुणों को परिवर्तित नहीं कर पायी क्योंकि नारी का प्राकृतिक गुण उसका वात्सल्य, प्रेम और समर्पण है जो कि नितांत अपरिवर्तनीय है। नारी का यह नैसर्गिक गुण उसके साये की तरह हमेशा साथ जीवन के हर पहलू में बना रहा। वात्सल्य शब्द की उत्पत्ति ही माँ के अस्तित्व से होती है। माँ शब्द जितना जीवनदायिनी लगता है उतना ही मंगलकारी और महान है, उसे एक कैनवास में समेटना अत्यंत कठिन है। छत्तीसगढ़ की प्रमुख कवियत्री 'वंदना केंगरानी' की कविता 'ईश्वर' में बहुत ही छोटे कैनवास में बच्चे के भोले और निष्कलुष पक्ष को दिखाया गया है-

"जिन्दगी के
बहुत करीब होता है प्यार
जैसे
बच्चे के करीब ईश्वर।".

वात्सल्य भाव को वंदना केंगरानी ने अत्यंत संक्षिप्त और सुंदर रूप में उल्लेखित किया है, बच्चे और और ईश्वर की समीपता का सुंदर बिम्ब प्रस्तुत करते हुए जिन्दगी एवं प्रेम की समीपता को समझाया गया है। कवियत्री का सरस, सरल एवं आकर्षक भाषा का प्रयोग वात्सल्य को और सौम्य एवं कोमल बना देता है। 'वंदना केंगरानी' जी की दूसरी कविता में माँ और बच्चे का अलौकिक सम्बन्ध बताते हुए माँ को बच्चे का सबसे नजदीकी साया बताया है जो उसे हर पल पालक और निरीक्षक की दृष्टि से बांधता है-

"बच्चे को मालूम है
कागज की नाव
पानी में
बहुत दूर तक

नहीं चल पाएगी
फिर भी
वह कोशिस पर कोशिश कर रहा है
आदत से मजबूर है
बच्चा जो ठहरा।"[2].

आंचलिक लेखिकाएं सार्वभौमिकता के अनुरूप अपनी रचनाओं में वात्सल्य को सहज समेटे रहती हैं। आदिम काल से अब तक जीवन के सभी क्षेत्रों की तरह वात्सल्य, प्रेम और समर्पण में नारी एक उपलब्धि की तरह प्रतिउत्तरित होती है। 'इंदिरा परमार' के गीतों में प्रकृति का वात्सल्य अपने अनूठे रूप में दिखाई देता है–

"खूब करे शैतानी सावनी झकोरे
बूंद-बूंद चपला सी
आँगन भर नाचती
साधों की हिरनियां
हृदय में कुलांचती।"[3].

वात्सल्य रस स्त्री रचनाकारों के अंतस में इतनी गहराई से रच बस गया है कि वह लौकिक भावों से अलग एक अलौकिक भाव के रूप में व्यक्त होता है द्य घर-संसार में सिमटे रहने के कारण कई बार कुंए के मेढ़क की संज्ञा प्राप्त करती स्त्रियाँ अपने अंदर संवेदनाओं का सागर छिपा रखती हैं। उनकी संवेदनशीलता से ही उन्हें घर की एक छोटी-सी खिड़की से पूरा आकाश को नापने का पैमाना मिल जाता है। जैसे धरती से अन्य ग्रहों या सूर्य से दूरी को प्रकाश वर्ष में मापा जाता है ठीक वैसे ही लेखिकाएं अपने जीवन के अनुभवों को प्रकाश वर्षों के छोटे छोटे कणों में बदलकर पूरे जीव जगत का नाप जोख कर डालती हैं। लेखिका 'शैलजा' की किताब 'मेरे लिए' में बेटे के लिए शब्दों को ऐसे पिरोया कि वह स्वत: ही कवितामय हो गयी। अपने बच्चे के लिए सब कुछ करने के बाद भी कुछ ना कर पाने का भाव एक माँ के अंतस में उपजने वाली व्याकुलता एक झंझावत की तरह उसके व्यक्तित्व में तथा खुशी एक श्रृंगार की तरह उसके अस्तित्व में महकती रहती है–

"मेरे बच्चे
मैंने नर्म बिछौना तो दिया,
तुम्हे,
पर वह रेत का बिछौना है।
जो तपेगा भी और चुभेगा भी,
तुम
प्यासे इस जीवन में,
अन्जुरी भर जल हो
तृप्त किया मुझे तुमने,
तप्त किया तुम्हे मैंने,
कर पाओगे क्षमा,
मेरे विवश प्रतिदिन को?"[4].

उपरोक्त पंक्तियों में उस माँ का वास्तविक रूप दिखाई देता है जो अपने कुचले हुए जीर्ण क्षीण अस्तित्व को एक कोने में फेंककर कर पालने की ओर दौड़ती नजर आती है जो अपने पुत्र को अपनी किसी भी असफलता, दुर्भाग्य अथवा सामाजिक दुश्चिंताओं के बीच एक अलग और सुंदर, कोमल, सहज और शांत जीवन देना चाहती है। इन पंक्तियों में कवियत्री के भावों की

गहराई पाठकों के हृदय तक उतरती है। माँ का एक असहाय रूप काव्य के विस्तृत रूप में इस तरह समाहित है कि माँ और कविता को अलग करना नामुमकिन सा हो जाता है और यह भाव भी समझना कठिन हो जाता है, कि दु:ख माँ के भीतर है या कविता के।

निष्कर्ष- छत्तीसगढ़ की महिला रचनाकारों की रचनाओं में वात्सल्य की निरन्तरता है तथा वात्सल्य इनकी रचनाओं का अभिन्न अंग बन चुका है। लेखिकाओं की लेखनी से व्यक्त शब्द उनकी नितांत व्यक्तिगत संवेदनाएं न होकर पारिवारिक, सामाजिक एवं आंचलिक दीवारों को पार कर ऊपर आकाश की ओर अग्रसर हो रही हैं। भाषा शैली और शिल्प सभी कुछ वात्सल्य के भावसागर में डूबी हुई बौद्धिकता की कलम से लिखी गई एक विशिष्ट पौध की तरह छत्तीसगढ़ के साहित्य संसार में लहलहा रही है।

संदर्भ ग्रन्थ-

वंदना केंगरानी, मुट्ठी में बंद मौसम, वर्ष 2002, पृष्ठ 11.
वंदना केंगरानी, मुट्ठी में बंद मौसम, वर्ष 2002, पृष्ठ 12.
इंदिरा परमार, टहनी, वर्ष 1993, पृष्ठ 49.
शैलजा, मेरे लिये, वर्ष 1997, पृष्ठ 88.

अष्टाध्यायी: पाणिनि का संस्कृत भाषा व्याकरण शास्त्र

डॉ० सुषमा भारद्वाज

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय.

सारांश

अष्टाध्यायी (अष्टाध्यायी = आठ अध्यायों वाली) महर्षि पाणिनि द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण का एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ (8वी ई पू) है। इसमें आठ अध्याय है। अष्टाध्यायी छह वेदांगों में मुख्य माना जाता है। पतञ्जलिकृत महाभाष्य में अष्टाध्यायी को "सर्ववेद-परिषद्-शास्त्र" कहा गया है। अर्थात् अष्टाध्यायी का संबंध किसी वेदविशेष तक सीमित न होकर सभी वैदिक संहिताओं से था और सभी के प्रातिशरूय अभिमतों का पाणिनि ने समादर किया था। अष्टाध्यायी में अनेक पूर्वाचार्यों के मतों और सूत्रों का संनिवेश किया गया। उनमें से शाकटायन, शाकल्य, अभिशाली, गार्ग्य, गालव, भारद्वाज, कश्यप, शौनक, स्फोटायन, चाक्रवर्मण का उल्लेख पाणिनि ने किया है।

अष्टाध्यायी के आठों अध्यायों में चार-चार पाद हैं; प्रत्येक पाद में 38 से 220 तक सूत्र हैं। इस प्रकार अष्टाध्यायी में आठ अध्याय, बत्तीस पाद और सब मिलाकर लगभग 4000 सूत्र हैं। अष्टाध्यायी पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्तिक ग्रन्थ है और सूत्र तथा वार्तिकों पर पतंजलि का विशद विवरणात्मक ग्रन्थ महाभाष्य है। संक्षेप में सूत्र, वार्तिक एवं महाभाष्य तीनों सम्मिलित रूप में 'पाणिनीय व्याकरण' कहलाता है और सूत्रकार पाणिनी, वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतंजलि- तीनों व्याकरण के 'त्रिमुनि' कहलाते हैं।

अष्टाध्यायी में 3155 सूत्र और आरंभ में वर्णसमाम्नाय के 14 प्रत्याहार सूत्र हैं। अष्टाध्यायी का प्रथम सूत्र 'वृद्धिरादैच्' और अंतिम सूत्र 'अ अ' है। अष्टाध्यायी का परिमाण एक सहस्र अनुष्टुप श्लोक के बराबर है। अष्टाध्यायी के कर्ता पाणिनि कब हुए, इस विषय में कई मत हैं।

मूल शब्द: अष्टाध्यायी, महर्षि पाणिनि, संस्कृत व्याकरण, प्राचीन ग्रंथ, आठ अध्याय, छह वेदांग

परिचय

पाणिनि ने संस्कृत भाषा के तत्कालीन स्वरूप को परिष्कृत एवं नियमित करने के उद्देश्य से भाषा के विभिन्न अवयवों एवं घटकों यथा ध्वनि-विभाग (अक्षरसमाम्नाय), नाम (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण), पद, क्रिया, वाक्य, लिंग इत्यादि तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों का समावेश अष्टाध्यायी के 32 पदों में, जो आठ अध्यायों में समान रूप से विभक्त हैं, किया है।

व्याकरण के इस महनीय ग्रन्थ में पाणिनि ने विभक्ति-प्रधान संस्कृत भाषा के विशाल कलेवर का समग्र एवं सम्पूर्ण विवेचन लगभग 4000 सूत्रों में किया है, जो आठ अध्यायों में संख्या की दृष्टि से असमान रूप से विभाजित हैं। तत्कालीन समाज में लेखन सामग्री की दुष्प्राप्यता को ध्यान में रखकर पाणिनि ने व्याकरण को स्मृतिगम्य बनाने के लिए सूत्र शैली की सहायता ली है। पुन:, विवेचन को अतिशय संक्षिप्त बनाने हेतु पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से प्राप्त उपकरणों के साथ-साथ स्वयं भी अनेक उपकरणों का प्रयोग किया है जिनमे शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र सबसे महत्वपूर्ण हैं। प्रसिद्ध है कि महर्षि पाणिनि ने इन सूत्रों को देवाधिदेव शिव से प्राप्त किया था।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्त्तुकामो सनकादिसिद्धादिनेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

पाणिनि ने संस्कृत भाषा के सभी शब्दों के निर्वचन के लिए करीब 4000 सूत्रों की रचना की जो अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में वैज्ञानिक ढंग से संगृहीत हैं। ये सूत्र वास्तव में गणित के सूत्रों की भाँति हैं। जिस तरह से जटिल एवं विस्तृत गणितीय धारणाओं अथवा सिद्धान्तों को सूत्रों (Formula/formulae) द्वारा सरलता से व्यक्त किया जाता है, उसी तरह पाणिनि ने सूत्रों द्वारा अत्यन्त संक्षेप में ही व्याकरण के जटिल नियमों को स्पष्ट कर दिया है। भाषा के समस्त पहलुओं के विवेचन हेतु ही उन्हें 4000 सूत्रों की रचना करनी पड़ी।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में प्रकरणों तथा तद्सम्बन्धित सूत्रों का विभाजन वैज्ञानिक रीति से किया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी को दो भागों में बाँटा है: प्रथम अध्याय से लेकर आठवें अध्याय के प्रथम पद तक को सपाद सप्ताध्यायी एवं शेष तीन पदों को त्रिपादी कहा जाता है। पाणिनि ने पूर्वत्राऽसिद्धम् (8-2-1) सूत्र बनाकर निर्देश दिया है कि सपाद सप्ताध्यायी में विवेचित नियमों (सूत्रों) की तुलना में त्रिपादी में वर्णित नियम असिद्ध हैं। अर्थात्, यदि दोनो भागों में वर्णित नियमों के मध्य यदि कभी विरोध हो जाए तो पूर्व भाग का नियम ही मान्य होगा। इसी तरह, सपादसप्ताध्यायी के अन्तर्गत आने वाले सूत्रों (नियमों) में भी विरोध दृष्टिगोचर होने पर क्रमानुसार परवर्ती (बाद में आने वाले) सूत्र का प्राधान्य रहेगा- विप्रतिषेधे परं कार्यम्। इन सिद्धान्तों को स्थापित करने के बाद, पाणिनि ने सर्वप्रथम संज्ञा पदों को परिभाषित किया है और बाद में उन संज्ञा पदों पर आधारित विषय का विवेचन।

संक्षिप्तता बनाए रखने के लिए पाणिनि ने अनेक उपाय किए हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है- विशिष्ट संज्ञाओं (Technical Terms) का निर्माण। व्याकरण के नियमों को बताने में भाषा के जिन शब्दों / अक्षरों समूहों की बारम्बार आवश्यकता पड़ती थी, उन्हें पाणिनि ने एकत्र कर विभिन्न विशिष्ट नाम दे दिया जो संज्ञाओं के रूप में अष्टाध्यायी में आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रसंगों में प्रयुक्त किए गए हैं। नियमों को बताने के पहले ही पाणिनि वैसी संज्ञाओं को परिभाषित कर देते हैं, यथा- माहेश्वर सूत्र- 'प्रत्याहार, इत्, टि, नदी, घु, पद, धातु, प्रत्यय, अंग, निष्ठा इत्यादि। इनमें से कुछ को पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से उधार लिया है। लेकिन अधिकांश स्वयं उनके द्वारा बनाए गए हैं। इन संज्ञाओं का विवरण आगे दिया गया है।

व्याकरण के कुछ अवयवों यथा धातु, प्रत्यय, उपसर्ग के विवेचन मे, पाणिनि को अनेक नियमों (सूत्र) की आवश्यकता पड़ी। ऐसे नियमों के निर्माण के पहले, प्रारंभ में ही पाणिनि उन सम्बन्धित अवयवों का उल्लेख कर बता देते हैं कि आगे एक निश्चित सूत्र तक इन अवयवों का अधिकार रहेगा। इन अवयवों को वे पूर्व में ही संज्ञा रूप में परिभाषित कर चुके हैं। दूसरे शब्दों में पाणिनि प्रकरण विशेष का निर्वचन उस प्रकरण की मूलभूत संज्ञा- यथा धातु, प्रत्यय इत्यादि- के अधिकार (Coverage) में करते हैं जिससे उन्हे प्रत्येक सूत्र में सम्बन्धित संज्ञा को बारम्बार दुहराना नहीं पड़ता है। संक्षिप्तता लाने में यह उपकरण बहुत सहायक है।

अनुवृत्ति: सूत्र-शैली में लिखे गए ग्रन्थों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, 'अनुवृत्ति'। प्राय: एक उपविषय से सम्बन्धित सभी सूत्रों को एकत्र लिखा जाता है। दोहराव न हो, इसके लिए सभी सर्वनिष्ट (कॉमन) शब्दों को सावधानीपूर्वक निकाल लिया जाता था और उनको सही जगह पर सही क्रम में रखा जाता था। अनुवृत्ति के अनुसार, किसी सूत्र में कही गयी बात आगे आने वाले एक या अधिक सूत्रों पर भी लागू हो सकती है। एक उदाहरण देखिए। अष्टाध्यायी का सूत्र (१-१-९) "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" है। इसके बाद सूत्र (१-१-१०) "नाञ्झलौ (= न अच्-हलौ)" है। जब हम (१-१-१०) नाञ्झलौ (न अच्-हलौ) का अर्थ निकालते हैं तो यह ध्यान में रखना होगा कि इसका अकेले मतलब न निकाला जाय बल्कि इसका पूरा मतलब यह है कि "'इसके पूर्व सूत्र में कही गयी 'सवर्ण' से सम्बन्धित बात अच्-हलौ (अच् और हल्) पर लागू नहीं (न) होती है।" अर्थात्, सूत्र (१-१-१०) को केवल "नाञ्झलौ" न पढ़ा जाय बल्कि "अच्-हलौ सवर्णौ न" पढ़ा जाय।

शब्दों/पदों के निर्वचन के लिए, प्रकृति के आधार पर पाणिनि ने छ: प्रकार के सूत्रों की रचना की है:

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधम् सूत्रं मतम्।।

- संज्ञा सूत्र: नामकरणं संज्ञा- तकनीकी शब्दों का नामकरण।
- परिभाषा सूत्र: अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।

- विधि सूत्रः विषय का विधान।
- नियम सूत्रः बहुत्र प्राप्तो संकोचनं हेतु।
- अतिदेश सूत्रः जो अपने गुणधर्म को दूसरे सूत्रों पर लागू करते हैं।
- अधिकार सूत्रः एकत्र उपात्तस्य अन्यत्र व्यापारः अधिकारः।

पाणिनीय व्याकरण के चार भाग

- अष्टाध्यायी- इसमें व्याकरण के लगभग ४००० सूत्र हैं।
- शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र- यह प्रत्याहार बनाने में सहायक होता है। प्रत्याहार के प्रयोग से व्याकरण के नियम संक्षिप्त रूप में पूरी स्पष्टता से कहे गये हैं।
- धातुपाठ- इस भाग में लगभग २००० धातुओं (क्रिया-मूलों) की सूची दी गयी है। इन धातुओं को विभिन्न वर्गों में रखा गया है।
- गणपाठ- यह २६१ गणों में पदों का संग्रह है।

पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन के लिये आवश्यक बातें

प्रत्याहार, इत्संज्ञक, अधिकार, अनुवृत्ति, अपकर्ष, सन्धिविषयक शब्द (एकादेश, पररूप, पूर्वरूप, प्रकृतिभाव आदि), कुछ ज्ञातव्य संज्ञाएँ- (अङ्ग, प्रतिपदिक, पद, भ संज्ञा, विभाषा, उपधा, टी, संयोग, संप्रसारण, गुण, वृद्धि, लोप, आदेश, आगम), शब्द-सिद्धि में सहायक कुछ अन्य उपाय।

पाणिनीय व्याकरण की प्रमुख विशेषताएँ

सम्पूर्णता

पाणिनि का व्याकरण संस्कृत भाषा का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण करता है। यह उस समय की बोलचाल की मानक भाषा का तो वर्णन करता ही है, इसके साथ ही वैदिक संस्कृत और संस्कृत के क्षेत्रीय प्रयोगों का भी वर्णन करता है। यहाँ तक कि पाणिनि ने भाषा के सामाजिक-भाषिक (sociolinguistic) प्रयोग पर भी प्रकाश डाला है।

संक्षिप्तता

पाणिनि का व्याकरण सम्पूर्ण होने के साथ ही इतना छोटा है कि लोग इसे याद करते आये हैं।

प्रयोग-सरलता

सामान्य

यद्यपि पाणिनि ने अपना व्याकरण संस्कृत के लिये रचा, किन्तु इसकी युक्तियाँ और उपकरण सभी भाषाओं के व्याकरण के विश्लेषण में प्रयुक्त की जा सकती हैं।

अन्य विशेषताएँ

- वाक्य को भाषा की मूल इकाई मानना,
- ध्वनि-उत्पादन-प्रक्रिया का वर्णन एवं ध्वनियों का वर्गीकरण,
- सुबन्त एवं तिङन्त के रूप में सरल और सटीक पद-विभाग,
- व्युत्पत्ति- प्रकृति और प्रत्यय के आधार पर शब्दों का विवेचन।

अष्टाध्यायी में वैदिक संस्कृत और पाणिनि की समकालीन शिष्ट भाषा में प्रयुक्त संस्कृत का सर्वांगपूर्ण विचार किया गया है। वैदिक भाषा का व्याकरण अपेक्षाकृत और भी परिपूर्ण हो सकता था। पाणिनि ने अपनी समकालीन संस्कृत भाषा का बहुत अच्छा सर्वेक्षण किया था। इनके शब्दसंग्रह में तीन प्रकार की विशेष सूचियाँ आई हैं:

1. जनपद और ग्रामों के नाम,
2. गोत्रों के नाम,
3. वैदिक शाखाओं और चरणों के नाम।

इतिहास की दृष्टि से और भी अनेक प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री, शब्दों और संस्थाओं का सन्निवेश सूत्रों में हो गया है।

अष्टाध्यायी के बाद

अष्टाध्यायी के साथ आरंभ से ही अर्थों की व्याख्यापूरक कोई वृत्ति भी थी जिसके कारण अष्टाध्यायी का एक नाम, जैसा पतंजलि ने लिखा है, वृत्तिसूत्र भी था। और भी, माथुरीवृत्ति, पुण्यवृत्ति आदि वृत्तियाँ थीं जिनकी परंपरा में वर्तमान काशिकावृत्ति है। अष्टाध्यायी की रचना के लगभग दो शताब्दी के भीतर कात्यायन ने सूत्रों की बहुमुखी समीक्षा करते हुए लगभग चार सहस्र वार्तिकों की रचना की जो सूत्रशैली में ही हैं। वार्तिकसूत्र और कुछ वृत्तिसूत्रों को लेकर पतंजलि ने महाभाष्य का निर्माण किया जो पाणिनीय सूत्रों पर अर्थ, उदाहरण और प्रक्रिया की दृष्टि से सर्वोपरि ग्रंथ है। "अथ शब्दानुशासनम्"- यह माहाभाष्य का प्रथम वाक्य है। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि- ये तीन व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्य हैं जिन्हें 'मुनित्रय' कहा जाता है। पाणिनि के सूत्रों के आधार पर भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी की रचना की, और उनके शिष्य वरदराज ने सिद्धान्तकौमुदी के आधार पर लघुसिद्धान्तकौमुदी, सारसिद्धांतकौमुदी एवं मध्यसिद्धांतकौमुदी की रचना की।

निष्कर्ष

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पद हैं। पहले दूसरे अध्यायों में संज्ञा और परिभाषा संबंधी सूत्र हैं एवं वाक्य में आए हुए क्रिया और संज्ञा शब्दों के पारस्परिक संबंध के नियामक प्रकरण भी हैं, जैसे क्रिया के लिए आत्मनेपद-परस्मैपद-प्रकरण, एवं संज्ञाओं के लिए विभक्ति, समास आदि। तीसरे, चौथे और पाँचवें अध्यायों में सब प्रकार के प्रत्ययों का विधान है। तीसरे अध्याय में धातुओं में प्रत्यय लगाकर कृदंत शब्दों का निर्वचन है और चौथे तथा पाँचवे अध्यायों में संज्ञा शब्दों में प्रत्यय जोड़कर बने नए संज्ञा शब्दों का विस्तृत निर्वचन बताया गया है। ये प्रत्यय जिन अर्थविषयों को प्रकट करते हैं उन्हें व्याकरण की परिभाषा में 'वृत्ति' कहते हैं, जैसे वर्षा में होनेवाले इंद्रधनु को वार्षिक इंद्रधनु कहेंगे। वर्षा में होनेवाले इस विशेष अर्थ को प्रकट करनेवाला "इक" प्रत्यय तद्धित प्रत्यय है। तद्धित प्रकरण में 1,190 सूत्र हैं और कृदंत प्रकरण में 631। इस प्रकार कृदंत, तद्धित प्रत्ययों के विधान के लिए अष्टाध्यायी के 1,821 अर्थात् आधे से कुछ ही कम सूत्र विनियुक्त हुए हैं। छठे, सातवें और आठवें अध्यायों में उन परिवर्तनों का उल्लेख है जो शब्द के अक्षरों में होते हैं। ये परिवर्तन या तो मूल शब्द में जुड़नेवाले प्रत्ययों के कारण या संधि के कारण होते हैं। द्वित्व, संप्रसारण, संधि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घ आदि के विधायक सूत्र छठे अध्याय में आए हैं। छठे अध्याय के चौथे पद से सातवें अध्याय के अंत तक अंगाधिकार नामक एक विशिष्ट प्रकरण है जिसमें उन परिवर्तनों का वर्णन है जो प्रत्यय के कारण मूल शब्दों में या मूल शब्द के कारण प्रत्यय में होते हैं। ये परिवर्तन भी दीर्घ, ह्रस्व, लोप, आगम, आदेश, गुण, वृद्धि आदि के विधान के रूप में ही देखे जाते हैं। अष्टम अध्याय में, वाक्यगत शब्दों के द्वित्वविधान, प्लुतविधान एवं षत्व और णत्वविधान का विशेषत: उपदेश है।

अष्टाध्यायी के अतिरिक्त उसी से संबंधित गणपाठ और धातुपाठ नामक दो प्रकरण भी निश्चित रूप से पाणिनि निर्मित थे। उनकी परंपरा आज तक अक्षुण्ण चली आती है, यद्यपि गणपाठ में कुछ नए शब्द भी पुरानी सूचियों में कालान्तर में जोड़ दिए गए हैं। वर्तमान उणादि सूत्रों के पाणिनिकृत होने में संदेह है और उन्हें अष्टाध्यायी के गणपाठ के समान अभिन्न अंग नहीं माना जा सकता। वर्तमान उणादि सूत्र शाकटायन-व्याकरण के ज्ञात हाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Burrow, Thomas (2001). The Sanskrit Language. Motilal Banarsidass. ISBN 81-208-1767-2.
2. Cardona, George (2012). Sanskrit Language. Encyclopaedia Britannica. Archived from the original on 16 October 2023. Retrieved 13 July 2018.
3. Annette Wilke; Oliver Moebus (2011). Sound and Communication: An Aesthetic Cultural History of Sanskrit Hinduism. Walter de Gruyter. ISBN 978-3-11-024003-0. Archived from the original on 29 March 2024. Retrieved 16 July 2018.

4. Robert P. Goldman; Sally J Sutherland Goldman (2002). DevavâGîpraveœikâ: An Introduction to the Sanskrit Language. Center for South Asia Studies, University of California Press. Archived from the original on 29 March 2024. Retrieved 17 July 2018.
5. Dhanesh Jain; George Cardona (2007). The Indo-Aryan Languages. Routledge. ISBN 978-1-135-79711-9.
6. Oberlies, Thomas (2003). A Grammar of Epic Sanskrit. Berlin New York: Walter de Gruyter. ISBN 978-3-11-014448-2.
7. Filliozat, Pierre-Sylvain (2000). The Sanskrit Language: An Overview : History and Structure, Linguistic and Philosophical Representations, Uses and Users. Indica. ISBN 978-81-86569-17-7.
8. Maurer, Walter (2001). The Sanskrit language: an introductory grammar and reader. Surrey, England: Curzon. ISBN 978-0-7007-1382-0.
9. Hartmut Scharfe, A history of Indian literature. Vol. 5, Otto Harrassowitz Verlag, ISBN 3-447-01722-8
10. Sures Chandra Banerji (1989). A Companion to Sanskrit Literature. Motilal Banarsidass. पपृ० 1–4, with a long list in Part , II. आई०ऍस०बी०ऍन० 978–81–208–0063–2
11. Sternbach, Ludwik (1974). Subhâcita: Gnomic and didactic literature. Otto Harrassowitz Verlag. Verlag- आई०ऍस०बी०ऍन० 978–3–447–01546–2.

सोनभद्र जनपद में ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों का सामाजिक आर्थिक विकास: एक भौगोलिक अध्ययन

रवि प्रकाश सिंह

शोधार्थी, भूगोल विभाग, एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ० बी आर पंत

अध्यक्ष एवं प्रोफेसर, भूगोल विभाग, एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश–

भारत वर्ष को गांवों का देश कहा जाता है, जहा की सामाजिक संरचना मे अनुसूचित जनजातियां एक अभिन्न भाग है, उनका अपना विशिष्ट सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू है लेकिन वे वर्षों से सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से अभी भी हासिए पर बने हुए हैं। 2011 के जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति कुल जनसंख्या का 20.67 प्रतिशत साझा करते है। भारत की ऊर्जा राजधानी में रहने के बावजूद वे बेहद निम्न जीवन स्तर जीवन जी रहे हैं। अधिकांश उत्तरदाता अशिक्षित हैं, इसका अनुमान इस तथ्य से ज्ञात होता की जनपद की ग्रामीण अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर 44.2 प्रतिशत है। वे अकुशल मजदूरों का दयनीय जीवन जी रहे हैं। सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र की जनजातियों को सरकारों द्वारा की गई विकास प्रक्रियाओं का लाभ पिछले छह दशको से पूरा नहीं मिला है। अधिकांश उत्तरदाता निजी और सरकारी ऋण के भारी बोझ के नीचे जी रहे हैं। सोनभद्र जनपद में रहने वाले आदिवासी लोगों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति विकसित करने के लिए अधिक से अधिक प्रभावी प्रयास किए जाने चाहिए।

सांकेतिक शब्दः– अनुसूचित जनजाति, साक्षरता दर, सामाजिक–आर्थिक, कार्यशील जनसंख्या

प्रस्तावनाः–

सामाजिक–आर्थिक सन्दर्भ में विकास से अभिप्राय बेहतर शिक्षा, आय वृद्धि कौशल विकास और रोजगार के माध्यम से लोगों की जीवन–शैली में सुधार से है। यह सांस्कृतिक और पर्यावरणीय कारकों के आधार पर आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है। सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है जो सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन व बदलाव कर समाज की अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने की क्षमता में सुधार करती है। इसका सम्बन्ध समाज निर्माण में गुणात्मक परिवर्तन, लोगों का प्रगतिशील दृष्टिकोण और व्यवहार, प्रभावी प्रक्रियाओं और उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाने से है। किसी देश या क्षेत्र में रह रहे लोगों के हित में आर्थिक सम्पत्ति के संवर्धन को आर्थिक विकास कहा जाता है। आर्थिक वृद्धि को प्रायः आर्थिक विकास के स्तर का संकेतक माना जाता है। आर्थिक वृद्धि का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद या प्रतिव्यक्ति आय में प्रगति से है।

जनजाति शब्द मूल रूप से जंगल या पहाड़ी इलाकों में रहने वाले लोग से संदर्भित करता है। वे गरीब, अशिक्षित और जंगली लोग माने जाते हैं (शर्मा, 2010)। ऐतिहासिक रूप से एक आदिवासी समुदाय मुख्य धारा के समाज से सुदूर जंगलों मे एक अलग समूह मे अपना जीवन निर्वाह करते है। अध्ययन क्षेत्र मे आदिवासी समुदाय की आजीविका का मुख्य स्रोत वन संसाधन एवं दैनिक मजदूरी है। गोंड समुदाय के कुछ उत्तरदाता और खरवार समुदाय अभी तक कृषि व्यवसाय में हैं और उनका जीवन स्तर बहुत निम्न है। उनकी सांस्कृतिक जीवन शैली, परम्पराए एवं प्रथाए अन्य सभ्य समाज के लोगों से बहुत भिन्न है। यही कारण है की उन्हें जंगलों में रहने वाला तथा असभ्य और पिछड़ा माना जाता है। भारतीय सरकार आदिवासी समाज की स्थिति मे सुधार लाने के लिए दुद्धी और ओबरा की विधान सभा सीट को अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित कर दिया है। जनपद के संसदीय निर्वाचन क्षेत्र को भी आरक्षित किया गया है।

राष्ट्रीय स्तर पर अनुसूचित जनजातियो की भागीदारी कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है, जबकि जनपद मे कुल जनसंख्या मे इनकी भागीदारी 20.67 प्रतिशत है जो राष्ट्रीय स्तर से बहुत ज्यादा है (भारत की जनगणना, 2011)। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य अनुसूचित जनजातियो की सामाजिक- आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करना है, ताकि सरकारी निकायों के माध्यम से कुछ विशेष कानून, विनिमयन और प्रावधान करके इस समाज को मुख्य धारा के साथ जोड़ा जा सके-

विश्व बैंक ने भारत में गरीबी पर अध्ययन किया और उद्धृत किया गया है कि "एक अनपढ़ ग्रामीण महिला, अनुसूचित जनजाति का सदस्य, एक व्यक्ति जो एक में रहता है और भूमिहीन परिवार या मजदूरी पर निर्भर है, गरीबी के औसत जोखिम से काफी अधिक जोखिम का सामना करते हैं। यह कथन हमारे देश में रहने वाले आदिवासियों की वास्तविक स्थिति के बारे मे वर्णन करता है (विश्व बैंक, 1991)।

उद्देश्य-

इस शोध प्रपत्र का उद्देश्य निम्नलिखित है-

- अनुसूचित जनजातियों के संबंध में सामाजिक-आर्थिक पहलू का अध्ययन करना है
- अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा, लिंगानुपात, कार्यशील जनसँख्या, ऋणग्रस्तता और भूमि अलगाव की प्रथा आदि के उप-शीर्षकों के तहत अध्ययन करना।

आकड़ा एकत्रीकरण एवं कार्यप्रणाली-

प्रस्तुत अध्ययन सोनभद्र जनपद के आदिवासी एवं अनुसूचित जनजाति बहुल क्षेत्रों के संदर्भ मे किया गया है। उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आकड़ों का उपयोग किया गया है। जनजातीय समाज के लोगों की सामाजिक- आर्थिक स्थिति एवं समस्याओ के जानकारी के लिए एक पालयट सर्वेक्षण एवं साक्षात्कार किया गया और आकड़ों का विश्लेषण किया गया है। इस प्रक्रिया में उदेश्यपूर्ण प्रतिचयन के आधार पर जनपद के 8 विकासखंडो में से 4 विकासखंड के 8 गाँवो से कुल 140 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। द्वितीयक प्रकार के आकड़ों का एकत्रीकरण जिला जनगणना पुस्तिका जनपद सोनभद्र, 2011 से किया गया है। जिसके माध्यम से जनजातियो का विकासखंडवार तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र-

उत्तर प्रदेश के दक्षिण पूर्व मे स्थित जनपद सोनभद्र को पूरे देश की ऊर्जा राजधानी के रूप मे जाना जाता है इसका क्षेत्रफल 6788 वर्ग किमी है। यह उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जनपद से 1989 मे अलग होकर एक नए जनपद के रूप मे अस्तित्व मे आया था, यह उत्तर मे मिर्जापुर एवं चंदौली जनपद से, पूर्व मे बिहार राज्य के रोहतास एवं झारखंड के गढ़वा जनपद से, पश्चिम मे मध्य प्रदेश के सिंगरौली एवं दक्षिण मे छतीसगढ़ राज्य से सीमा साझा करता है। सोनभद्र जनपद का मुख्यालय राबर्टसगंज है।

सोनभद्र जनपद जिसकी सीमाएं चार राज्यों क्रमशः मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और बिहार से लगती है। भौगोलिक रूप से अध्ययन क्षेत्र $23^0 51'$ उत्तर से $24^0 53'$ उत्तरी अक्षांश के मध्य स्थित है, जबकि इसका देशान्तरीय विस्तार $82^0 31'$ पूर्व से $83^0 33'$ पूर्व के मध्य स्थित है। सोनभद्र उत्तरप्रदेश राज्य के आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक रूप से सबसे पिछड़े जनपद के रूप मे जाना जाता है। 2011 की जनगणना के अनुसार सोनभद्र जनपद का क्षेत्रफल के दृष्टि कोण से दूसरा स्थान, जबकि जनसंख्या की दृष्टिकोण से इसका स्थान 51 वाँ एवं साक्षरता के दृष्टिकोण मे यह पूरे उत्तर प्रदेश मे 52 वें स्थान पर आता है। यह बैगा, गोंड़ (धुरिया, नायक,

ओझा, पठारी राजगोंड) पटारी, चेरो, खरवार, पहड़िया, अगरिया, पनिका, भुईया (भुनिया) आदि जनजातियों की सभ्यता का केंद्र है। यह जनजातियां अपने निम्न स्तरीय सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि होने के कारण और राजनैतिक चेतना की कमी के कारण बहुत दयनीय जीवन जीने की लिए विवश हैं।

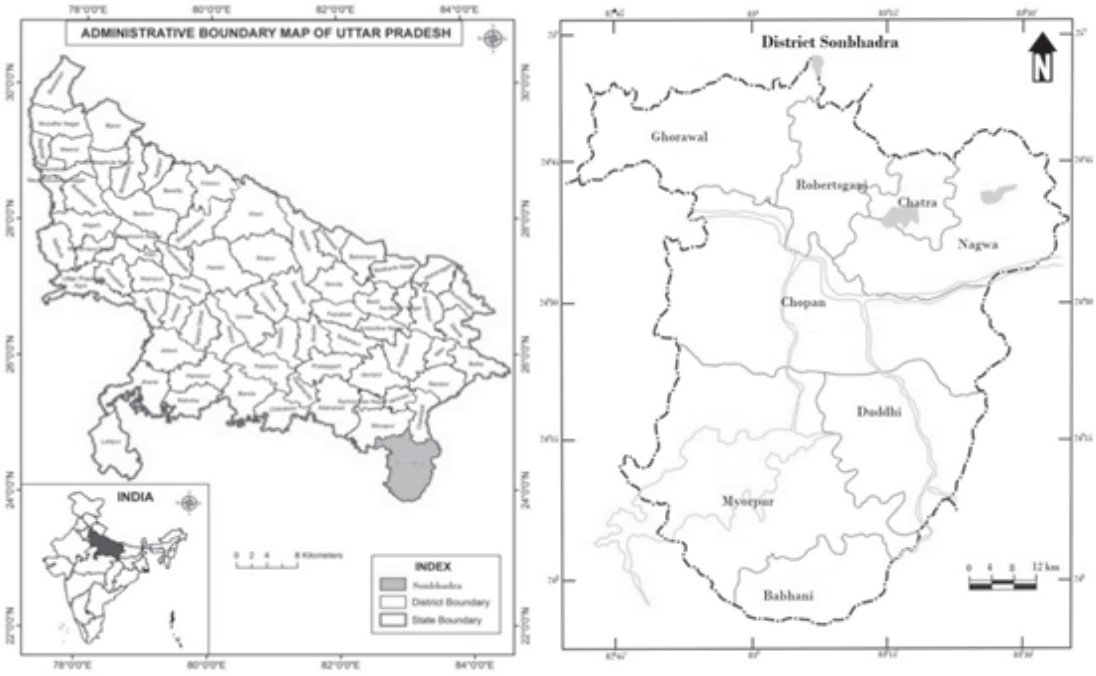

मानचित्र-जनपद सोनभद्र की भौगोलिक अवस्थितिकी

ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति-

सोनभद्र जनपद के जनजातीय समुदाय जो अपनी विशिष्ट और विविध सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने के लिए, तथा मुख्य धारा में शामिल होने के लिए बहुत पिछड़े हैं। जनजातीय समुदाय सतत विकास के दृष्टि से असमर्थ हैं। हालांकि अध्ययन क्षेत्र की कुल आबादी का ये 20.67 प्रतिशत है, फिर भी दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर है।

तालिका 1- जनपद सोनभद्र मे विकासखण्डवार ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या, 2011

क्र0 स0	विकासखण्ड	कुल अनुसूचित जनजाति	पुरुष (प्रतिषत में)	महिला (प्रतिषत में)
1	घोरावल	13052	51.16	48.83
2	राबर्टसगंज	15042	51.63	48.36
3	चतरा	6916	51.33	48.66
4	नगवा	32432	51.19	48.80
5	चोपन	103411	51.84	48.15
6	म्योरपूर	85622	51.48	48.51
7	दुद्धी	65912	50.95	49.04
8	बभनी	52529	50.50	49.28
	जनपद	374916	51.35	48.64

स्रोत- जिला जनगणना पुस्तिका सोनभद्र से परिगणित, 2011

तालिका 1 से ज्ञात होता है कि विकासखण्ड स्तर पर जनजातीय जनसंख्या का वितरण असमान है। चोपन प्रखंड आदिवासियों का सबसे बड़ा प्रखंड है जहा कुल जनसंख्या मे से कुल जनजातीय जनसंख्या 103411 है (जनगणना 2011)। चतरा विकासखण्ड मे अनुसूचित जनजाति की संख्या सबसे कम है। अधिकांश आदिवासी परिवार अपना दयनीय जीवन जी रहे हैं, और उन्हे गरीबी रेखा से नीचे (बी0पी0एल0) रखा गया है। ये लोग अल्प संपत्ति, विशेष रूप से वन संसाधनों और कुछ कृषि खेती पर ही निर्भर होते है।

उत्तरदाताओं का चयन विभिन्न गांवों जैसे कोलकाडी और तिलहर घोरावल विकासखण्ड से, सलैयादेह व बूढ़ापेरावा दुदधी प्रखंड से, पानीकाप एवं शिकारपुर नगवां विकासखण्ड से, और विकासखण्ड बभनी से शीशटोला और सतबहनी को साक्षात्कार के लिए लिया गया। इन गांवों का चयन भौतिक और आर्थिक स्थिति का नमूना अध्ययन करने के लिए विभिन्न मानदंड को आधार बनाया गया है। अध्ययन क्षेत्र का जनजातीय समाज अधिकांशत: पुरुष प्रधान है, जबकि महिला भागीदारी काम के दृष्टिकोण से लगभग बराबर की है। पुरुष मुखिया वाले परिवारों की संख्या 90 प्रतिशत से अधिक पाई गई है। इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी समुदाय के बीच लैंगिक समानता को लेकर मानसिकता में बदलाव की आवश्यकता है।

शैक्षणिक स्थिति-

शिक्षा एक प्रक्रिया है, जो मानव मस्तिष्क को स्वतंत्रता पूर्वक सोचने समझने की क्षमता का विकास करती है। विभिन्न दर्शन कई बार शिक्षा को उचित मूल्य देते हैं इस हद तक कि यह मानव को सभी प्रकार के अंधकार और अज्ञान से मुक्ति की ओर ले जाता है (लेविन, 1993)।

सोनभद्र जनपद शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान मे भी बहुत पिछड़ा हुआ है। जनजातीय समुदाय की गरीबी का मुख्य कारण अशिक्षा एवं लोगों का अनपढ़ होना है। जनपद की साक्षरता दर 44.2 प्रतिशत है जो राज्य के अन्य जनपद से बहुत पीछे है।

आलेख 1- जनपद सोनभद्र मे ग्रामीण अनुसूचित जनजातियो की साक्षरता दर, 2011

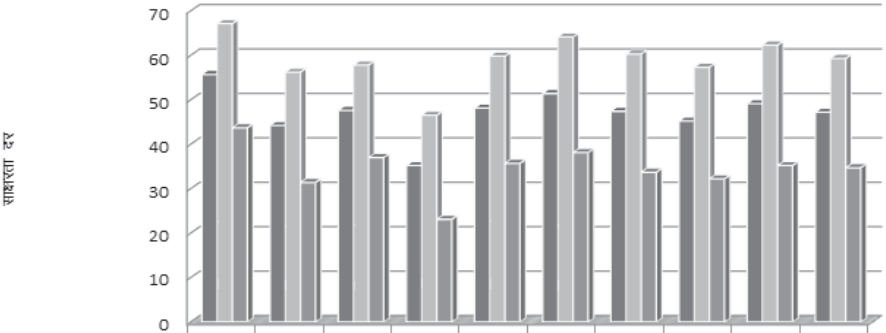

	उत्तर प्रदेश	सोनभद्र	घोरावल	चोपन	राबर्टसगंज	चतरा	नगवा	मयोरपुर	दूदधी	बभनी
कुल साक्षरता दर	55.7	44.2	47.6	35.2	48.1	51.4	47.4	45.2	49.1	47.2
पुरुष साक्षरता	67.1	56.2	57.8	46.5	59.8	64.1	60.3	57.3	62.3	59.3
महिला साक्षरता	43.7	31.4	37	23.1	35.7	38.1	33.7	32.2	35.2	34.7

स्रोत- जिला जनगणना पुस्तिका सोनभद्र से परिगणित, 2011

आलेख 1 से स्पष्ट है की, जिले और राज्य की आनुपातिक साक्षरता दर में भी बहुत अंतर दिखता है। जनजातीय जनसंख्या के दृष्टिकोण से चोपन विकासखण्ड सबसे बड़ा विकासखण्ड है जहा की साक्षरता दर सबसे कम (35.2 प्रतिशत) है। इस असमान भू-भाग वाले विकासखण्ड मे लोग अभी भी शिक्षा एवं स्वास्थ्य की दृष्टिकोण से गंभीर समस्या से जूझ रहे है। ज्यादातर आदिवासी लोग मजदूर बनने को विवश हैं। औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा का अभाव है। इस प्रखंड में महिला की साक्षरता दर (23. 1 प्रतिशत) की स्थिति भी गंभीर है।

शैक्षिक स्थिति की जानकारी के लिए सभी आयु वर्ग के उत्तरदाता का साक्षात्कार किया गया हैं। उत्तरदाताओं को पांच श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, यथा प्राथमिक स्तर, हाई स्कूल स्तर, माध्यमिक स्तर, स्नातक स्तर और अशिक्षित वर्ग हैं। आलेख 2 दर्शाती है कि 45 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं, जो कि राज्य के औसत (43.3 प्रतिशत) से भी अधिक है। मात्र 26.43 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्राथमिक शिक्षा पूरी की है, जबकि उत्तरदाताओं मे से 15.71 प्रतिशत लोगों ने हाई स्कूल स्तर की शिक्षा पूरी की है। 10.71 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूर्ण किया है, और केवल .02 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्नातक की पढ़ाई पूरी की है।

आलेख 2- जनपद सोनभद्र में ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की शैक्षिणक स्थिति, 2020

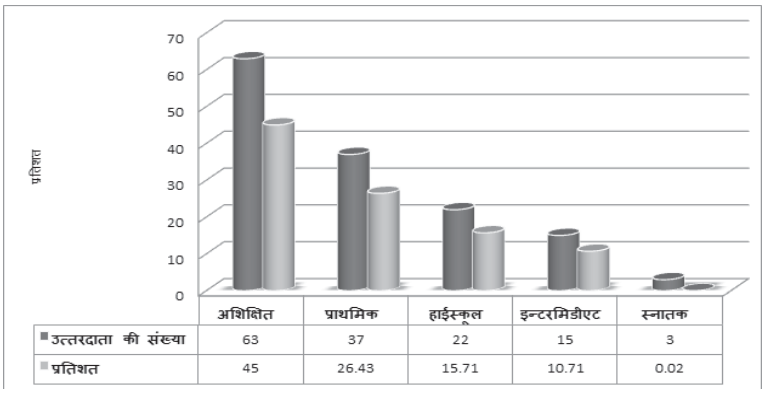

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2020

लिंग अनुपात-

किसी भी क्षेत्र की आबादी में पुरुषों से महिलाओं का अनुपात ही लिंगानुपात कहलाता है। यह समाज मे महिलाओं की स्थिति का संवेदनशील संकेतक है। आधुनिक भारतीय सामाजिक संदर्भ में यह यह देखा गया है कि लिंगानुपात में वृद्धि बेहतर जीवन प्रत्याशा का संकेत देती है, जबकि कम लिंगानुपात भारत का एक इतिहास रहा है। 1991 से इस प्रवृत्ति में उलटफेर देखा जा रहा है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में लिंगानुपात 927 प्रति 1000 पुरुष थी जो 2001 में 933 तक पहुंच गया और 2011 में 943 हो गया (जनगणना, 2011)।

आलेख 3- जनपद सोनभद्र मे ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की विकासखण्डवार लिंगानुपात,2011

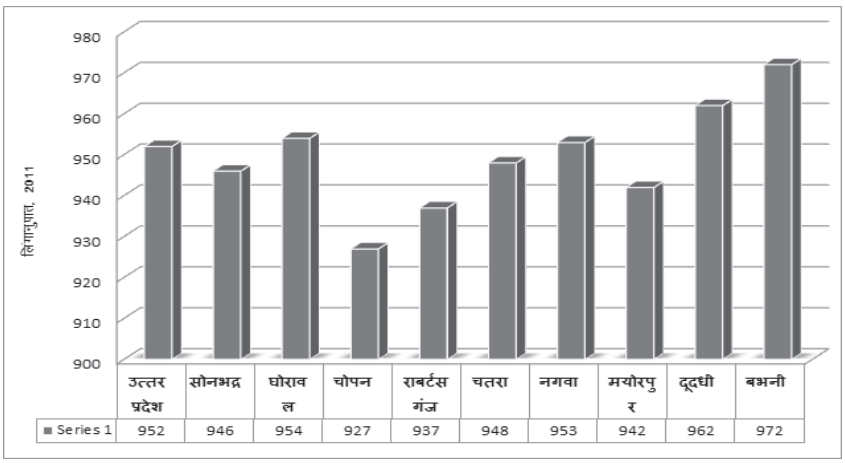

स्रोत- जिला जनगणना पुस्तिका सोनभद्र से परिगणित, 2011

आलेख 3 से स्पष्ट है की सोनभद्र जिले का लिंगानुपात 946 है जो उत्तर प्रदेश के लिंगनुपात (952) से कम है। यह देखा गया है कि में कुछ विकासखण्ड के जनजातीय लिंगानुपात राज्य की तुलना में अधिक है, जैसे घोरावल का आदिवासी लिंगानुपात (954), नगवा (953) दुद्धी (962) और बभनी (971) है। जबकि कुछ विकासखण्ड का लिंगानुपात (चोपन, 927 और रॉबर्ट्सगंज, 937) राज्य के लिंगअनुपात से पीछे भी हैं। सर्वे के दौरान यह देखा गया है कि महिलाएं मुख्य रूप से आर्थिक आय अर्जन कर रही हैं। जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के संबंध में यह आकडा असंतुलित अनुपात दिखाता है, क्योंकि यहां का समाज पुरुष प्रधान समाज है जो नशे और बुरी आदतों मे संलिप्त है।

कार्यशील जनसँख्या-

कार्यशील जनसँख्या उन लोगो का समूह होता है जो किसी देश या क्षेत्र में आर्थिक रूप से सक्रीय होते है और विभिनं उत्पादक कार्यो में लगे होते है। अर्थात वे लोग जो काम कर रहे होते है या काम की तलश में होते है और अर्थव्यवस्था में योगदान देते है। कार्यशील जनसँख्या को बड़े पैमाने पर समाज के सदस्यों की उनकी आजीविका के लिए गतिविधियों में बदलाव के रूप में समझा गया है। एक समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना के वितरण में वृद्धि या कमी से परिवर्तन उनकी गतिविधियों के कारण देखा जाता है। अलग अलग गतिविधियॉ में लगे व्यक्तियों की संख्या की गणना करके यह परिवर्तन ज्ञात किया जाता है।

सोनभद्र जिले में बेरोजगारी, आदिवासियों के बीच एक बड़ी समस्या है। अपर्याप्त आजीविका के अवसर के कारण वे अपना जीवन अभाव मे व्यतीत करने को विवश हैं। आर्थिक क्रियाकलापों के आधार पर यह दो प्रकार के लोग निवास करते है, पहला श्रमिक वर्ग दूसरा अश्रमिक वर्ग। श्रमिक वर्ग मे वे जनजातियों के लोग आते जो काम कर रहे हैं या नौकरी की तलाश में हैं और बाहर हैं। अश्रम शक्ति गतिविधि मे वे जनजाति आते हैं जो न तो काम कर रहे हैं और न ही नौकरी की तलाश में हैं। अश्रमिक वर्ग इन्ही कारणों से सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन के लिए अधिक से अधिक जिम्मेदार हैं।

तालिका 2- जनपद सोनभद्र मे ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की विकासखंण्डवार कार्यशील जनसंख्या, 2011

विकासखण्ड	कर्मकार (प्रतिषात में)			मुख्य कर्मकार (प्रतिषात में)			सीमांत कर्मकार(प्रतिषात में)		
	कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला
घोरावल	44.3	50.4	37.9	52.6	60.2	42.0	47.4	39.8	58
राबर्टसगंज	42.6	48.5	36.4	46.6	59	29	53.4	41	71
चतरा	45.4	48.7	41.8	20.9	25.7	15	79.1	74.3	85
नगवा	47.4	50.3	44.4	53.8	58.2	48.5	46.2	41.8	71.0
चोपन	42.5	48.8	35.8	46.2	51.6	38.2	53.8	48.4	61.8
म्योरपूर	41.4	48.9	33.5	45	53.1	32.6	55	46.9	67.4
दुद्धी	45.3	50.6	39.7	38.2	47.9	25.4	61.8	52.1	74.6
बभनी	42.8	48.1	37.4	28.5	32.2	23.6	71.5	67.8	76.4
जनपद	43.2	49.2	36.8	42.7	49.7	33	57.3	50.3	67

स्रोत- जिला जनगणना पुस्तिका सोनभद्र से परिगणित, 2011

तालिका संख्या 2 से स्पष्ट है की सोनभद्र जनपद की कुल श्रमिकों में से 43.2 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति जनसंख्या पंजीकृत है जो राष्ट्रीय स्तर 49.19 के कुल योग से बहुत कम है। गैर-कर्मचारियों का प्रतिशत 56.8 प्रतिशत है जो बेरोजगारी की गंभीर समस्या पैदा करने के लिए पर्याप्त है। सीमांत कर्मकारों का प्रतिशत अध्ययन क्षेत्र मे 57.3 प्रतिशत है जो कि राष्ट्रीय स्तर 53.9 प्रतिशत से काफी ऊपर है। जनजातियों के बीच आर्थिक असंतुलन का मुख्य कारण यही है। जनजातियों के बीच महिला कार्य भागीदारी दर 38.8 प्रतिशत है जो की पुरुष भागीदारी दर 49.2 प्रतिशत से कम है। महिला कार्यकर्ता का कार्य सहभागिता दर म्योरपुर प्रखंड में 33.5 प्रतिशत और चोपन प्रखंड में यह 35.8 प्रतिशत है।

ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की वार्षिक आय एवं स्त्रोत-

वार्षिक आय से तात्पर्य उन सभी आर्थिक संसाधनों से है जो एक वर्ष में किसी परिवार व्यक्ति या संस्था के द्वारा विभिन्न स्रोतों से अर्जित किए जाते हैं। स्रोत से तात्पर्य उन सभी तरीकों या साधन से है, जिससे कोई व्यक्ति परिवार या संस्था के लोग अपनी आजीविका चलाते हैं। तालिका 3 से स्पष्ट है, कि 78.4 प्रतिशत ग्रामीण जनजाति के लोगों की वार्षिक आय 90 हजार रुपए से कम है। मात्र 21.6 प्रतिशत लोगों की ही वार्षिक आय 90 हजार रुपए से अधिक है।

तालिका 3- ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की वार्षिक आय

okf"kd vk; ¼ :i;s esa ½	mUkjnkrk	
	l[;k	¼çfr'kr½
30000 से कम	14	9.8
30001 से 60000	59	42.2
60001 से 90000	37	26.4
90000 से अधिक	30	21.6
योग	140	100

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2020

तालिका 4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 97.77 प्रतिशत ग्रामीण जनजातीय लोग अभी भी वार्षिक आय हेतु प्राथमिक स्रोतों पर निर्भर है शेष 2.23 प्रतिशत ही जनजातियां प्राथमिक सेवा से अलग नौकरी उद्योग धंधों इत्यादि में लगी है। अध्ययन और विश्लेषण से यह पता चलता है कि अधिकतर लोग प्राथमिक क्रियाओं में संलग्न है जनपद सोनभद्र अभी भी अवसंरचनात्मक विकास में और सामाजिक रूप से पिछड़ा है जिससे यहां की जनजातियां अभी

तालिका 4- ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों के आय का विभिन्न स्रोत

vk; ds iesa[k lzksr	mUkjnkrk	
	l[;k	¼çfr'kr½
—f"k	40	28.7
i'kqikyu	41	29.33
Jfed	25	17.84
oukRikn	31	21.9
vU;	3	2.23
;ksx	140	100

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2020

भी प्राथमिक स्रोतों से पर्याप्त आय अर्जित नहीं कर पा रही है वही अन्य सेवाओं पर आश्रित जनजाति के लोग अपने आय में वृद्धि कर रहे है। पंत एवं कुमार (2019) के अनुसार आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ बढता हुआ उपभोग तिव्र प्रदूषण को भी बढावा देता है, जिसके निवारण पर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है (पंत एवं कुमार 2019)। यद्यपि अभी तक इस क्षेत्र में जनजातियो का आर्थिक स्तर इतना उच्च नही है, कि वह पर्यावरण को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकें।

ऋणग्रस्तता की स्थिति-

सोनभद्र जनपद मे शिक्षा व कल्याणकारी कार्यक्रमों मे सकारात्मक बदलाव के बावजूद भी जनजातीय समुदाय मुख्य धारा से कोसों दूर है, जिसके कारण उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति अभी भी कमजोर बनी हुई है। यहाँ कई जनजातियो के बीच गरीबी का स्तर बहुत अधिक है। वे कर्ज की समस्या से हमेशा जूझते रहते हैं। अध्ययन क्षेत्र के जनजातीय लोगो का साहूकारों द्वारा शोषण किया जाता है इसी कारण पीढ़ी दर पीढ़ी ऋणग्रस्तता से वे ग्रसित रहते है।

अध्ययन क्षेत्र मे जनजाति लोगों के लिए साहूकार और व्यापारी अभी भी छोटे बड़े ऋण का प्रमुख स्रोत हैं। आदिवासी लोग बैंकों की जटिल प्रक्रिया से नहीं गुजरना चाहते, वे सरल प्रक्रिया के लिए साहूकारों से कर्ज लेने को विवश हैं। इन लेनदारों से देय तिथि पर लिए गए कर्ज का भुगतान नहीं करने की स्थिति में भारी चक्रवृद्धि ब्याज के साथ उनकी खड़ी फसलों का भी सौदा कर लिया जाता है। विवाह, बीमारी, त्योहार या अंतिम संस्कार के लिए ऋण प्राप्त करने अपने पसंदीदा स्थानीय ऋणदाता के पास जाते है, जहा उन्हे आसानी से ऋण मिल जाता है। ज्यादातर जनजातीय लोग अनपढ़ हैं जिसके करण वो चक्रवृद्धि व्याज की गणना करने मे भी असक्षम है, जिसके कारण बकायेदारों के पास हमेशा ऋण की स्थिति बनी ही रहता है। इस कारण आमदनी के अभाव में अधिकतम आय ऋण चुकाने मे चला जाता है। भारी ब्याज के लेनदारी के माध्यम से लेनदार उन्हें और भी गरीब बना देती हैं।

आलेख 4 से पता चलता है कि क्षेत्र के आदिवासी साहूकारों और जमींदार के चंगुल में जी रहे हैं। इस क्षेत्र में ऋणग्रस्तता और भूमि हस्तांतरण की स्थिति का यह भयानक कारण है। 140 उत्तरदाताओं में से केवल 3.5 प्रतिशत ही इनके चंगुल से बाहर हैं। 43. 57 प्रतिशत उत्तरदाता देनदारों के 5000–10000 के बीच ऋण लिए हुए है। यह कहना बहुत ही निराशाजनक है कि संस्थागत स्रोत केवल 28.57 प्रतिशत नमूना परिवारों की सेवा कर रहे हैं जबकि साहूकार अधिकतम सेवा दे रहे हैं हालांकि वे लोग चक्रवृद्धि ब्याज की उच्च दर वसूलते है।

आलेख 4- जनपद सोनभद्र मे ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों की ऋणग्रस्तता की स्थिति, 2020

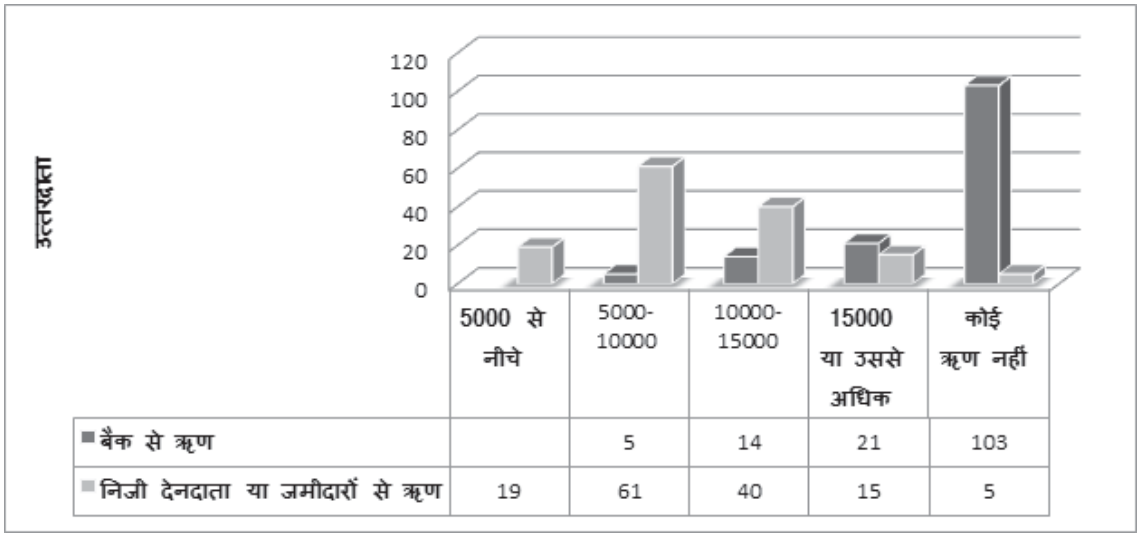

	5000 से नीचे	5000-10000	10000-15000	15000 या उससे अधिक	कोई ऋण नहीं
बैंक से ऋण		5	14	21	103
निजी देनदाता या जमीदारों से ऋण	19	61	40	15	5

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित, 2020

भूमि और वन आदिवासियों के लिए आजीविका का प्राथमिक स्रोत है। गैर-इमारती वन उपज की कमी के साथ ही भूमि आधारित आजीविका ने अतिरिक्त महत्व ग्रहण कर लिया है। वृहद स्तर पर देखा जाए तो सभ्य समाज के व्यावसायिक लोगों द्वारा, सरकारों द्वारा स्थानतारित कृषि, जंगल आधारित जीविकोपार्जन के साधन एवं भू अधिग्रहण नीतियों के माध्यम से आदिवासी समुदाय के व्यवसाय को सीमित कर दिया गया है (राव और अन्य, 2006)। सोनभद्र जिले जनजातीय समुदाय विकास की मुख्य धारा के विकास से बहुत दूर है। श्रम बल से बाहर होने के कारण वे सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले लाभों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। यही कारण है की आदिवासी समुदाय की भूमि को गैर आदिवासी लोगों को हस्तांतरित किया जा रहा है।

तालिका 5 दर्शाती है कि 50.71 प्रतिशत लोगो के पास 1 एकड़ से कम भूमि है, और 32.12 प्रतिशत लोगो के पास 2 से 3 एकड़ भूमि है। मात्र 11.43 प्रतिशत लोग ही 3 से 4 एकड़ भूमि पर स्वामित्व रखते है। 5 प्रतिशत ऐसे लोग है जो 4 एकड़ से अधिक भूमि रखते है, जो उनकी दयनीय स्थिति दिखा रही है।

तालिका 5- जनपद सोनभद्र मे ग्रामीण अनुसूचित जनजातियों के पास उपलब्ध भूमि, 2020

Hkfe miyC/krk	mUkjnkrk	
	l[;k	çfr'kr
1 एकड़ से नीचे	71	50.71
2 से 3 एकड़	45	32.12
3 से 4 एकड़	16	11.43
4 एकड़ से अधिक	8	5
योग	140	100

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित, 2020

निष्कर्ष-

अध्ययन क्षेत्र का जनजाति समाज अभिजात वर्ग, सामाजिक समूह और साथ ही सरकारों के अपर्याप्त सहयोग के कारण घोर अभाव की स्थिति में जीने के लिए विवश है, अतः उनकी आर्थिक स्थिति और उनका मानक जीवनयापन दोनों निम्न स्तरीय है। आरक्षित वन क्षेत्र के कारण, जनजातीय लोगों के पास जमीन की कमी है। अकुशल शिक्षा और गैर जनजातीय लोगों के साथ कम अंतरसंबंध ने उन्हे विकास की धारा में शामिल होने और भाग लेने से रोकती हैं। उन्हे समाज के साथ-साथ शासनाधिकारियों द्वारा भी वास्तविक पिछड़ा या जगली के रूप में समझा जाता है। जनजातियों के लिए सरकार द्वारा बहुत सारे संवैधानिक प्रावधान और नीतियां प्रदान करने के बावजूद, एक कड़वी सच्चाई यह है कि जनजातीय लोग अध्ययन नहीं करते हैं, क्षेत्र अभी भी कई मामलों में पिछड़ा हुआ है और उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

उपर्युक्त अध्ययन ने सोनभद्र जनपद में जनजातीय विकास की आवश्यकता पर बल दिया है। न्यून आर्थिक गतिविधियां, आय के लिए अधिकतम लोगो का प्राथमिक कार्यो पर निर्भरता सामाजिक पिछड़ापन, कम साक्षरता दर, गंभीर ऋणग्रस्तता की स्थिति, ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया की दशा एवं दिशा तय किया है जिसके करण वे समाज की मुख्य धारा से दूर हो गए है। आधारभूत संरचनाओ का विकास एवं सरकारी योजनाओ का सही से क्रियान्यवन करके अध्ययन क्षेत्र के जनजातियो को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है।

संदर्भ सूची

Census Of India, 2011 (Http://Censusindia.Gov.In).

https://www.uptdd.gov.in/hi/article/history-backgraound.

Lewin, M.K. (1993). Education And Development: The Issues And The Evidence, Education Research 6, Pp-61.

Pant, B.R., Kumar, Susheel (2019). Process and Pattern of Urban Growth: A Case Study of Muzaffarnagar City, Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR), June 2019, Volume 6, Issue 6

Rao ,Sl, & Al (2006). Tribal Land Alienation In Andhra Pradesh: Processes Impact And Policy Concerns ,Economic And Political Weekly ,Dec 30 Pp 5401.

Sharma ,A.K. (2010). Tribes Through The Ages, Vista International Publishing House, New Delhi.

The World Bank (2012). Measuring Poverty , Movies Or Snapshot , Development Research (Https://Www.Worldbank.Org).

गुरू जाम्भोजी का आचार-दर्शन

डॉ० दर्शना धवल

एसोसिएट प्रोफेसर, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल विलक्षण प्रतिभाओं वाली विभूतियों का काल है। इन महापुरूषों ने अपने अद्‌भूत सद्‌प्रयासों से जनमानस को सदैव सद्‌प्रवृतिओं की ओर प्रेरित किया। इसी तरह की विलक्षण प्रतिभा के धनी गुरू जाम्भोजी ने जनमानस की बहुआयामी सेवा की। गुरू जाम्भोजी का अवतरण वर्तमान राजस्थान के नागौर जिले के पीपासर गाँव में सन् 1451 में हुआ था। सन् 1485 में उन्होनें बिश्नोई पंथ की स्थापना की। गुरू जाम्भोजी को उनके अनुयायी भक्त विष्णु का पूर्णावतार मानते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना के समय गुरू जाम्भोजी ने क्लश स्थापना एवम यज्ञ के बाद जल को अभियंत्रित करके ''पाहल'' बनाया था। इसी पवित्र जल पाहल को पिलाकर बिश्नोई पंथ मे लोगों को शामिल किया जाता है। उन्होनें बिश्नोई पंथ में बिना किसी भेदभाव के सभी धर्मों, सम्प्रदायों व जातियों के लोगों को दीक्षित किया। इस पंथ की संस्थापक आचार संहिता में 29 नियमों की सूची है। बीस जमा नौ, उन्नतीस अर्थात बिश्नोई जो मानव कल्याण के मार्ग प्रशस्त करती है। जिसमें समृद्ध मानव मूल्यों जैसे प्रेम, सादगी, अहिंसा, हरे वृक्षों को ना काटना, वैदिक हवन पद्धति का पालन, प्रकृति सरंक्षण, जीव हत्या न करना, पवित्र आचार विचार के सिद्धान्तों को प्रमुखता दी है। इनके उन्नतीस धर्म-नियमों में आत्मज्ञान, आत्मशुद्धि और लोकमंगल की भावना को स्थापित किया है। इन नियमों के अन्तर्भाव में एकता, सगुण-निर्गुण का एकाभाव, समन्यवयता व्यवसाय और जातिगत भेदभाव का उन्मूलन समाहित है। गुरू जाम्भोजी द्वारा दिये गये ज्ञानोपदेश ''सबदवाणी'' शब्दवाणी, जम्भवाणी नामक रचना संग्रह के अन्तर्गत संग्रहित हैं।

गुरू जाम्भोजी की वाणी में समन्यवयता और सारग्रहण की प्रवति पाई जाती है। उनका आचार-दर्शन व विचारधारा वेदों, उपनिषदों तथा गीता से प्रभावित है। उनकी वाणी को उनके परवर्ती कवियों ने पंचम वेद की संज्ञा दी है। उनकी विचारधारा समाज में फैली बुराईयों, कुरीतियों व पाखंड पर तीव्र प्रहार करती है। उन्होनें सिद्धान्त से अधिक व्यवहार को महत्व दिया है क्योंकि सिद्धान्त की स्थापना का उद्देश्य ही व्यवहारिक धरातल पर सिद्ध होता है। उन्होनें ऐसी जीवन पद्धति की प्रेरणा दी जिसमें आदर्श और व्यवहार का समन्यवयात्मक संतुलन हो। वे धर्म के नाम पर फैले आडम्बरों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हैं। और सत्य के वास्तविक रूप को आवृत करते हैं। वास्तव में उन्होनें जिन मूल्यों पर समाज को अग्रसर किया वे मूल्य व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, सोच और कर्म को अनुशासित करते हैं। उदाहरणस्वरूप-

''को आचारी आचारे लीणां
संजमे सीले सहन पतीना
तिहं आचारी ने चीन्हत कौण?
जिन्हि की सहजे चूकै आवागौंण।''[1]

उन्होनें अपने नियमों के माध्यम से मानव-मात्र को अधिक से अधिक कर्म की ओर प्रेरित किया जो सत्य और सद्‌भावना पर आधारित है। उन्होनें ऐसे लोगों पर विशेष प्रहार किया है जो बाहरी तौर पर कर्मकाण्डों में फंसे हैं। और दूसरी तरफ जीव हत्या जैसे दुष्कर्म में लिप्त हैं। ऐसे कार्य करने वालों को वे योगी नहीं पाखण्डी कहते हैं। गुरू जाम्भोजी ने कान चिराना, कंथा पहनना, सिर पर जटा बढ़ाना, ऋृषि मुनियों का वेश बनाना एवं जीव हत्या करने वाले लोगों को पाखंडी बताया है जिन्हें केवल बाह्य उपकरणों से स्वयं को योगी दिखाने का लोभ होता है और आंतरिक सूक्ष्म तत्वों का उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं होता। गुरू जाम्भोजी ने मानव को उसी भीतरी सत्य से परिचित करवाया है। जिसमें जीव का ब्रह्म के साथ सम्पर्क होता है। किन्तु बाह्य आडम्बरों में पड़कर जीव उस सत्य से अनभिज्ञ हो जाता है। गुरू जाम्भोजी इन्ही भ्रमित लोगों को संदेश देते हैं -

''भरमी भूला वाद-विवाद
आचार विचार न जाणंत स्वाद।''[2]

गुरू जाम्भोजी मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए चित्त को परिष्कृत करने का उपदेश देते हैं। मनुष्य जब सांसारिक मोह-माया से ग्रसित हो जाता है तो उसमे अनेक प्रकार के विकार आ सकते हैं जैसे- काम, क्रोध, मोह, माया, लोभ आदि। तत्पश्चात् मनुष्य केवल और केवल पतन की ओर ही अग्रसर होता है। ऐसे में गुरू जाम्भोजी मानव मात्र को अपनी इन्द्रियों पर संयम रखने का उपदेश देते हैं। जिसके माध्यम से चित्त को स्थिर, शुद्ध और स्वस्थ रखा जा सकता है। इसके अन्तर्गत वे संदेश देते हैं कि मनुष्य को वर्ग, जाति, कुल, धर्म, वर्ण, रूप, रंग आदि पर अभिमान नहीं करना चाहिए। इस मायावी लोक में कुछ भी स्थायी नहीं है। जिस शरीर और रूप-रंग का हम अभिमान करते हैं वही नश्वर है। अत: हमें अपने जीवन में उन मूल्यों तथा नियमों को अपनाना चाहिए जिनसे न केवल हमारा कल्याण हो अपितू परिवार तथा समाज भी कल्याणकारी भावना से ओत-प्रोत हो। इस मायावी जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है न हम न हमारे सम्बन्धी। वे जीव को ऐसे क्रम करने की प्रेरणा देते हैं जो पाप पुण्य की धाराओं से परे एवं परमार्थ की उन्नति में सहायक हों। उदाहरण स्वरूप-

''सुकरथ करता हरकति आवै, तो ना पछतावौ करियौ।
विसन जपंता जीभ जु थाकै, जा जीभडिया विणि सारियो''[3]

ज्ञातव्य है कि गुरू जाम्भोजी का आचार-दर्शन कितना सारगर्भित है। उनके अनुसार मनुष्य भ्रमवश जीवन के मूल उद्देश्य से दूर हो जाता है। माया से ग्रसित व्यक्ति अहम, निंदा, जाति-पाति के कुचक्र, कुल, वंश, वर्ण आदि के दुरूह चक्र में फंसा रहता है। ये सभी दुष्प्रवृतियाँ मनुष्य के ज्ञान को हर लेती हैं। उसे दिगभ्रान्त कर देती हैं। गुरू जाम्भोजी की भांति संत कबीर भी इसी कुचक्र से मनुष्य को निकालने के लिए सन्मार्ग दिखाते हैं -

''निंदा अस्तुति, मान-अभिमाना, इन झूठे जीव हत्या विग्याना।
बहुविधि करि संसार भुलावा, झूठे जो लगि सांच लुकावा।
माया मोह धन जोबना, इन बंधे सब कोई।
झूठे झूठे बियायिया, अलख लखे नहीं कोई।''[4]

गुरू जाम्भोजी का आचार-दर्शन स्पष्ट, सरल और व्यवहारिक है। माया, मोह, धन, यौवन में यदि मनुष्य बंधेगा तो वह ईश्वर को नहीं पा सकता। ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति में इन्हीं पर विजय प्राप्त करना उनके दर्शन का सार है। मानव जीवन एक निरन्तर गतिमान रहने वाली प्रक्रिया है। हमें सदैव सद्गुणों को आत्मसात् करने के लिए तत्पर रहना चाहिए और अवगुणों को समाप्त करते रहना चाहिए। सद्व्यवहार के द्वारा हम अपना चित्त परिष्कृत कर सकते हैं। क्योंकि चित्त का शुद्धिकरण जीवन को सत्य मार्ग पर चलने को प्रेरित करता है। गुरू जाम्भोजी के अनुसार इस भौतिक जगत में कोई भी चिरस्थायी और शाश्वत नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य इस भौतिक जगत के मायाजाल में फंसा रहता है। इस देह से सम्बन्धित सभी सम्बन्ध भी इसी के साथ नष्ट हो जाएगें। ऐसी स्थिति में गुरू जाम्भोजी विषय-विकारों से दूर रहने के लिए सहज साधना पर चलने का उपदेश देते हैं। सहज साधना का पूरा मार्ग सत्य को जानने और प्राप्त करने का है। इस मार्ग में किया गया सारा प्रयास सहज साधना के अन्तर्गत आता है। जिस प्रकार सभी प्राणी एक दूसरे से भिन्न हैं उसी प्रकार साधना का प्रयास भी सभी का अलग-अलग है। सर्वप्रथम वे मनुष्य को अपनी इन्द्रियों पर संयम रखने का उपदेश देते हैं क्योंकि मन की चंचलता और अस्थिरता ही साधना में सबसे बडी बाधा है। मन से ही आप परब्रह्म को प्राप्त कर सकते हो। इसीलिए गुरू जाम्भोजी ने मन पर विजय प्राप्त करने वालों को सबसे अधिक महत्व दिया है। मन को नियंत्रित करने पर इन्द्रियां स्वत: ही नियंत्रित हो जाती हैं। सहज साधना का यही प्रथम मूल मंत्र हैं।

गुरू जाम्भोजी का कर्म और सिद्धान्त को लेकर बड़ा ही स्पष्ट मत है। वे सिद्धान्त को तभी महत्वपूर्ण मानते हैं जब वे कर्म के रूप में व्यवहारिक धरातल पर उतरते हैं। अन्यथा कोरे सिद्धान्त किसी मानव समाज का भला नहीं कर सकते। कथनी और करनी में सामजंस्य और समन्वय ही मानव जीवन का मूल मंत्र होना चाहिए। वेदों उपनिषदों में वर्णित सिद्धान्त व नियम तभी सार्थक हैं जब मनुष्य उन्हें अपने कर्मो में अवतरित करें। जिससे मानव जाति का कल्याण हो। केवल मंत्रों को जप कर उनका उद्देश्य पूरा नहीं होगा जब तक उन्हें व्यवहार में न उतारें। गुरू जाम्भोजी ने सहज साधना के द्वारा निरन्तर कर्म करते हुए ईष्वर की प्राप्ति पर बल

दिया है और इन सब के मूल में मनुष्य का सत्याचरण है। सत्य पर अडिगता से चलते हुए ज्ञान की प्राप्ति ही मानव का लक्ष्य होना चाहिए। इसके साथ प्रकृति से प्रेम तथा दूसरे जीवों का भी सम्मान तथा रक्षा में तत्पर रहना चाहिए। किसी भी जीव की हत्या मनुष्य के सबसे बडे दुष्कर्मो में शामिल है। व्यवहारिक जीवन में गुरू जाम्भोजी मनुष्य को सद्प्रवृतियों का आचरण करने का उपदेश देते हैं।

गुरू जाम्भोजी के आचार-दर्शन को यदि हम वर्तमान संदर्भों में देखें तो इनकी महत्ता ओर अधिक बढ़ जाती है। मानव मूल्यों से लेकर परजीवी सरंक्षण और प्रकृति के संदर्भो में गुरू जाम्भोजी की विचारधारा और उनके द्वारा स्थापित मूल्यों और नियमों के माध्यम से हम वर्तमान संदर्भों में उपस्थित विषमताओं का निराकरण सहजता से कर सकते हैं। आज वैश्वीकरण और बाजारवाद जैसे यांत्रिक युग में पूरी मानव जाति के लिए जाम्भोजी वाणी वरदान स्वरूप है। ये मनुष्य को न्याय एवम् सद्भावना से आचरण करने का उपदेश देते हैं। अन्याय और कुसंगति के मार्ग पर चलकर अर्जित किया गया मान-सम्मान, धन, वैभव मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है। ऐसा वैभव केवल और केवल अधोगति का मार्ग दिखाता है। जो स्वयं के लिए परिवार और समाज के लिए अमंगलकारी सिद्ध होता है। जैसे दान के विषय में गुरू जी कहते हैं कि न्याय और सत्संगति के मार्ग पर चलकर अर्जित किए धन से ही दान देना चाहिए। सदा सुपात्र व्यक्ति को ही दान देना चाहिए। अर्थात न्याय द्वारा कमाया गया धन और दिया गया दान लोकमंगलकारी सिद्ध होता है। उससे चहुमुखी विकास होता है। इसके साथ ही गुरू जी ने मनुष्य को अहंकार भाव से दूर रहने का उपदेश दिया है क्योंकि अहंकार ही मनुष्य को ईश्वर से दूर करता है।

आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में गुरू जाम्भोजी का आचार-दर्शन अमृतवर्षा के समतुल्य है। वह मानव को दूसरे मानव से परस्पर स्नेह, सद्भाव, दया, करूणा, ममता जैसे सात्विक गुणों से परिपूरित करता है। आज जहाँ मनुष्य को अपने बारे मे सोचने तक का समय नहीं है वही इनकी गुरूवाणी समाज में परस्पर सदभावना और विश्वबंधुत्व का संदेश देती है। उनकी वाणी किसी धर्म विशेष के लिए नहीं है ये जहाँ भी आडम्बर और विषमता देखते है वहीं प्रहार करते हैं। उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, काजी, पंडित, नाथ, दिगम्बर इत्यादि किसी को भी नहीं छोडा-

''काजी मुल्ला पढिया पंड़ित, निंदा करे गिवारा
दोजख छोड़ भिस्त जे चाहो तो कहिया करो हमारा।''[5]

गुरू जाम्भोजी ने एक वर्गविहीन सामाजिक सरंचना पर बल दिया जिसमें जातिवाद, अस्पृश्यता, बाह्य आडंबर और अनेक कुरीतियों पर प्रहार किया निम्न जातियों पर उच्च वर्ग के घोर अत्याचार के वे पुरजोर विरोधी थे। उनका मानना था

''उत्तम कुली का उत्तम न होयबा
कारण किरिया सारू।''[6]

अर्थात उत्तम कुल में जन्म लेकर जो धर्म का पालन नहीं करता वह व्यक्ति महान नहीं हो सकता बल्कि वह अपने कर्मो से ही उत्तम श्रेणी प्राप्त कर सकता है। बिश्नोई पंथ में समाज के लगभग सभी जाति समूह के व्यक्ति शामिल हुए है। बिश्नोई धर्म में आस्था प्रकट कर तथा उनका पालन कर कोई भी बिश्नोई बन सकता है। जाम्भोजी के प्रमुख शिष्यों में रेड़ा जी (विक्रम सम्वत् 1530-1620) के कथन से प्रतीत होता है कि वे जातिगत रूढ़ियों के धुर विरोधी थे वे सभी को समान समझते थे-

''जाम्भोजी ने पन्थ चलाया, सन्मार्ग सबको दिखलाया।
शाख सूत्र सबको उतराये, देख दशा ब्राह्मण घबराये।
जाति भेद दूर भगाया, अद्भूद सन्मार्ग खुब दिखाया।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मुडाये सत्य गुरू की शरण आये।''

गुरू जाम्भोजी शुद्ध अंत:करण से मन और वाणी पर संयम रखने का संदेश देते हैं। यदि मनुष्य ऐसा कर लेता है तो उसे ईश्वर या खुदा को कहीं बाहर ढूढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

इससे स्पष्ट है कि भारत जैसे बहुधर्मी देश में गुरू जाम्भोजी की वाणी ओर उनका दर्शन समाज में सद्भाव और समन्यवयता को स्थापित करने में सर्वदा सक्षम हैं। मनुष्य सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक परिस्थितियों में धर्म नियमों का पालन करते हुए ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। सहज साधना, कर्म और सिद्धान्त का समन्यवय और सद्प्रवृतियों का विकास गुरू जाम्भोजी के

आचार-दर्शन की मुख्य विशेषताएँ हैं। उनका आचार दर्शन सच्चाई, परोपकार, ईमानदारी, अंहिसा, पर्यावरण संरक्षण और साम्प्रदायिक सद्भावना का प्रतिमान है। उन्होनें कर्ममय सिद्धान्त में कथनी और करनी के विभेद को कभी स्वीकार नहीं किया। केवल कहने मात्र से कार्य में सफलता नहीं मिल सकती जब तक उसे क्रियान्वित ना किया जाये। इसीलिए उन्होनें सत्य आचरण और सत्सगंति पर बल दिया जिससे अंततः परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार गुरू जाम्भोजी की आचार पद्धति मानव कल्याण की ओर उन्मुख है। यह सहज जीवन पद्धति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती हुई विषय वासनाओं के जाल से निकालकर मुक्ति के मार्ग की ओर प्रशस्त होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. शब्दवाणी, जम्भसागर, पृ. - 132
2. वही, पृ. - 86
3. वही, पृ. - 209
4. कबीर ग्रन्थावली, स. श्यामसुंदर दास, पृ. - 40
5. शब्दवाणी, जम्भसागर, पृ. - 223
6. बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, डॉ. हीरालाल, भाग-1, पृ. - 328

बिहार राज्य में गरीबी को कम करने में सार्वजानिक वितरण प्रणाली (PDS) की भूमिका

हिना कुमारी

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध सार

बिहार में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा के लिए मुख्य उपायों में से एक रही है। यह प्रणाली राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह सरकार द्वारा संचालित प्रणाली है जो गरीब परिवारों के बीच रियायती कीमतों पर खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तुओं का वितरण करती है।

खाद्यान्न की कमी की चुनौतियों का समाधान करने और आवश्यक वस्तुओं का समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए इसे दशकों में विकसित किया गया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) के महान उद्देश्यों के बावजूद, यह गंभीर रिसाव और भ्रष्टाचार से ग्रस्त है, जिससे इसकी प्रभावशीलता और लाखों भारतीयों की खाद्य सुरक्षा कमजोर हो रही है।

वर्तमान अध्ययन बिहार के विभिन्न जिलों में अंत्योदय अन्न योजना (एएएच) और प्राथमिकता गृह कार्ड धारकों (पीएचएच) और उसके सदस्यों के वितरण पैटर्न की पहचान करने पर आधारित है, जहां यह पाया गया है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की पीएचएच योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कार्डों का उपयोग अधिक था।

मूल शब्दः सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), एएएच, पीपीएच, ग्रामीण, बिहार, गरीबी

परिचय

पिछले दशक में उपभोक्ताओं की खरीदारी की आदतों में नाटकीय बदलाव आया है। भले ही खरीदार अभी भी पारंपरिक दुकानों पर जाते हैं, लेकिन कई लोग ऑनलाइन खरीदारी की आसानी को पसंद करते हैं। आजकल लोगों के पास समय की इतनी कमी है कि वे या तो मॉल नहीं जा सकते या जाना नहीं चाहते, जिससे ऑनलाइन शॉपिंग द्वारा समय की बचत अमूल्य हो जाती है। "सार्वजनिक वितरण प्रणाली" की अवधारणा का उपयोग उस प्रणाली को संदर्भित करने के लिए किया जाता है जिसके माध्यम से सरकार या अन्य सार्वजनिक एजेंसी विभिन्न उत्पादों और सेवाओं का प्रसार करती है, विशेष रूप से वे जो मानव अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) "उचित मूल्य भंडार या सहकारी समितियों जैसे संस्थानों के माध्यम से निर्दिष्ट वस्तुओं की बिक्री की एक प्रणाली है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आवश्यक वस्तुओं को भारी रियायती कीमतों पर वितरित किया जाता है, जो गरीबों और वंचितों के लिए एक बड़ी राहत है।

इतिहास

भारत में पीडीएस का प्रचलन सदियों से है, लेकिन इसका इतिहास बहुत पुराना है। हालाँकि, यह केवल खिलजी काल के तहत ही था कि विनियमित वितरण को सफलतापूर्वक लागू किया गया था। निर्णायक कदम उठाकर, अला-उद-दीन खिलजी ने सुनिश्चित

किया कि खाद्य आपूर्ति समाप्त न हो और कीमतें स्थिर रहें। जब प्रोफेसर किरेली ने विदेशी सरकार के आर्थिक सलाहकार के रूप में अपनी क्षमता में द्वितीय विश्व युद्ध (1930-45) के दौरान राशनिंग की स्थापना की, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि संघर्ष के कारण व्यापक कमी के बावजूद आवश्यक वस्तुएं जनता को समान आधार पर उपलब्ध कराई जाएं, तो वे वैज्ञानिक और व्यवस्थित आधार पर पीडीएस बनने की नींव रख रहे थे। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद, भारत उचित मूल्य की दुकानों (एफपीएस) पर आधारित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) को लागू करने वाला पहला देश बन गया।

खाद्यान्न की आपूर्ति के लिए भारत सरकार ने 1946 में आवश्यक वस्तु (अस्थायी शक्तियाँ) आपूर्ति अधिनियम पारित किया। 1947 के अंत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने नियंत्रण की रणनीति बनाई, लेकिन अंततः वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रही। मुद्रास्फीति के दबाव के कारण गेहूँ, चीनी, केरोसिन, गुड़ आदि सभी के बाजार बंद हो गए। नियंत्रणों को ढीला करने का प्रयोग एक बड़ी विफलता थी। इसके कारण 1948 में "नियंत्रण" को पुनः लागू किया गया, जिसे 1952 तक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार होने तक फिर से नहीं हटाया गया। इन तीन वर्षों के दौरान सभी बुनियादी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हुई। 1950 में, 1947 से 1950 तक की स्थिति का आकलन करने के लिए भारत सरकार द्वारा "खाद्यान्न खरीद समिति" नामक एक समूह की स्थापना की गई।

चौथी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में, यह घोषणा की गई कि पीडीएस एक नए चरण में प्रवेश करेगा। ग्रामीण निवासियों की सहायता करने और कुछ हद तक मुक्त बाजार में कीमतों पर दबाव डालने के लिए पीडीएस को नियमित आधार पर आवश्यक माना गया। पीडीएस की जरूरतों को मुख्य रूप से आंतरिक खरीद के जरिए पूरा किया जाना चाहिए और मूल अपेक्षाओं के अनुसार बफर स्टॉक बनाए जाने चाहिए। खाद्यान्न, चीनी, कपड़ा, खाद्य तेल आदि जैसे चुनिंदा जन उपभोग वस्तुओं के संबंध में दोहरे मूल्य निर्धारण की अवधारणा को योजना आयोग ने पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के मसौदे में शामिल किया था। दो-स्तरीय मूल्य निर्धारण प्रणाली का विचार समाज के अधिक कमजोर समूहों पर मुद्रास्फीति के प्रभाव को कम करना था। जुलाई 1975 में 20-सूत्री योजना के कार्यान्वयन में पीडीएस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसके लिए महत्वपूर्ण वस्तुओं के लिए बड़ी संख्या में खरीद और वितरण गतिविधियों की आवश्यकता थी। नतीजतन, पीडीएस ने मुख्य रूप से 1979 तक तत्काल सहायता प्रदान करने के साधन के रूप में काम किया। भारत में, अधिकांश लोगों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) की बदौलत अपना भोजन मुफ्त मिलता है। इस कार्यक्रम के तहत लगभग 11 करोड़ परिवारों को सब्सिडी वाला खाद्यान्न मिल सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1955) की ब्रिटिश ष्राशनिंगष् प्रणाली ने पीडीएस के लिए प्रेरणा का काम किया, जिसे 1951 में शुरू हुई योजनाबद्ध आर्थिक वृद्धि की पूरी प्रक्रिया में सामाजिक नीति के एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में रखा गया था। यह निष्पक्ष-विकास नीति की नींव थी। पहली पंचवर्षीय योजना (1951-1956) की मदद से, इस प्रणाली का विस्तार देश के उन सभी ग्रामीण क्षेत्रों तक किया गया, जहाँ खाद्यान्नों की भारी कमी थी। 1965 में ही भारत ने भारतीय खाद्य निगम (FCI) और कृषि मूल्य आयोग (APC) दोनों की स्थापना की थी। समाज के सबसे हाशिए पर पड़े लोगों के लिए खाद्य और अन्य आवश्यकताओं की लागत में सब्सिडी देने की यह नीति पीडीएस के तहत वर्षों तक कायम रही है।

1997 से पहले, पीडीएस खाद्य सब्सिडी किसे देता है, इसमें कोई भेदभाव नहीं करता था। लाखों जरूरतमंद लोगों की मदद करने के बावजूद, इस कार्यक्रम की कई कारणों से भारी आलोचना की गई है, जिसमें शहरी पूर्वाग्रह, सीमित कवरेज और खुलेपन और जवाबदेही की कमी शामिल है। वितरण प्रणाली से लाभ पाने वाले लगभग आधे लोग गरीब नहीं हैं, जैसा कि झा (1992) ने कहा है। यह दर्शाता है कि पीडीएस ने लक्षित आबादी की पोषण स्थिति में महत्वपूर्ण रूप से सुधार नहीं किया है। इस प्रकार, यह निर्णय लिया गया कि पीडीएस को गरीबों की ओर निर्देशित करना एक आवश्यक और तत्काल परिवर्तन है। 31 दिसंबर 2022 तक, बिहार में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार राज्य भर में 51,188 उचित मूल्य की दुकानों तक हो गया है।

बिहार में NFSA के तहत दो प्रकार के राशन कार्ड प्रदान किए जाते हैं और ये इस प्रकार हैं:

प्राथमिकता वाले घरेलू (PHH) राशन कार्ड- राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा करने वाले परिवारों के सदस्यों को यह कार्ड जारी किया जाता है। प्रत्येक परिवार को प्रति व्यक्ति प्रति माह 5 किलोग्राम अनाज प्रदान किया जाएगा।

अंत्योदय अन्न योजना (AAY) राशन कार्ड- राज्य सरकारें सत्यापित निवासियों को ये कार्ड प्रदान करती हैं। आम तौर पर, प्रत्येक परिवार को हर महीने 35 किलो अनाज आवंटित किया जाता है।

साहित्य की समीक्षा

भट और हुसैन (2012), ने दावा किया कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली भारत और शायद दुनिया की सबसे बड़ी खाद्य सब्सिडी योजना है। उचित मूल्य की दुकानों (एफपीएस) के अपने नेटवर्क के माध्यम से, यह पूरे देश में लगभग 10.5 करोड़ परिवारों को सब्सिडी वाला खाद्यान्न वितरित करता है।

रे और रे (2013), "खाद्य सुरक्षा" का अर्थ है यह आश्वासन कि पौष्टिक भोजन हमेशा आसानी से उपलब्ध रहेगा, आसानी से सुलभ होगा, और हर किसी की वित्तीय क्षमता के भीतर होगा। जब खाद्य फसलों के उत्पादन या वितरण में कोई समस्या होती है, तो कम आय वाले परिवार सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) और सरकारी निगरानी और कार्रवाई देश की खाद्य आपूर्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

गैरोला (2014), ने अपने शोध में पाया कि देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली जरूरतमंदों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराने में मदद करती है। एक अच्छी तरह से काम करने वाली सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उद्देश्य कार्डधारकों को आवश्यक वस्तुएं जैसे चयनित अनाज, चीनी और केरोसिन रियायती दरों पर उपलब्ध कराना है। वस्तुओं के वितरण को सुविधाजनक बनाने के अलावा, पीडीएस उनके खुले बाजार मूल्य निर्धारण के विनियमन में सहायता करता है।

गुंडेगौड़ा और नागराज (2014) ने पाया कि भारत जैसे कम आय वाले देशों के लिए सार्वजनिक वितरण महत्वपूर्ण है। हालाँकि, ऐसे कई कारण हैं कि यह प्रणाली पहले जितनी मजबूत नहीं है, और इसके कार्यान्वयन को अधिक कुशल और सार्वजनिक जांच के लिए खुला बनाने के लिए प्रस्तावों की आवश्यकता है। FDD के मार्जिन लाभ में से लगभग कुछ भी नहीं रखा जाता है। नतीजतन, यह धोखाधड़ी को बढ़ावा दे सकता है और प्रगति को पटरी से उतार सकता है। सरकार को मौजूदा मार्जिन राशि बढ़ानी चाहिए। ऐसे कानून लागू करने की संभावना है जो कदाचार के लिए त्वरित और कड़ी सजा का मार्ग प्रशस्त करेगा। इस पद्धति के अनुचित निष्पादन की समस्याओं में से एक अत्यधिक दृश्यमान स्थान पर गोदाम की स्थापना है।

कुमार, बाबू, और बेटने (2016), इस शोध का उद्देश्य बिहार राज्य में भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) की प्रभावकारिता का मूल्यांकन करना था, जो गरीबी, कुपोषण और भूख से ग्रस्त है और अपने पीडीएस की व्यापक अक्षमताओं के लिए कुख्यात है। NSSO डेटा की जांच और ग्राम स्तरीय अध्ययनों से प्राप्त सूक्ष्म स्तर के साक्ष्यों के आधार पर, निष्कर्ष पूरे राज्य में पीडीएस की दक्षता में एक आशाजनक सुधार की ओर इशारा करते हैं। समाज के गरीब वर्गों की उल्लेखनीय रूप से बढ़ी हुई भागीदारी के साथ पीडीएस की पहुंच बढ़ी और इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अनाज के सेवन और कैलोरी लाभ में उल्लेखनीय सुधार हुआ।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन बिहार के विभिन्न जिलों में अंत्योदय अन्न योजना (AAH) और प्राथमिकता गृह धारकों (PHH) कार्ड और उसके सदस्यों के वितरण पैटर्न की पहचान करने पर आधारित है, जहाँ यह पाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में औसतन कार्ड सदस्यों की कुल संख्या अधिक पाई गई और अंत्योदय अन्न योजना (AAH) कार्ड धारकों की तुलना में प्राथमिकता गृह धारकों (PHH) की संख्या अधिक पाई गई। बिहार के पूर्वी चंपारण जिले में PHH कार्ड धारक सभी के बीच अधिक पाए गए और।AY कार्ड सदस्यों की तुलना में उनकी संख्या भी अधिक पाई गई। ग्रामीण क्षेत्रों में और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की PHH योजना के तहत विभिन्न प्रकार के कार्डों का उपयोग अधिक पाया गया और सांख्यिकीय परिणामों ने भी वही परिणाम दिखाए। अध्ययन का दूसरा उद्देश्य बिहार के विभिन्न जिलों में अंत्योदय अन्न योजना (AAH) और प्राथमिकता गृह धारकों (PHH) योजनाओं के तहत गेहूं और चावल की बिक्री पैटर्न का विश्लेषण करना था, जहाँ यह पाया गया है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की PHH योजना के तहत गेहूं की बिक्री अधिक हुई है।

सन्दर्भ

1. Bhat, G. M., & Hussain, B.A. (2012). Efficiency of public distribution system in Kashmir:A micro economicAnalysis. International Research Journal of Social Sciences, 1(4), 24-27.

2. Chakraborty, S., & Sarmah, S. P. (2019). India 2025: the public distribution systemAnd national food securityAct 2013. Development in Practice, 29(2), 230-249.
3. Gairola, B.K., (2014). Public Distribution System, Informatics,An e – governance publication from informatics centre, Vol. 19 (3), ISSN: 0971- 3409. 106
4. George, N.A., & McKay, F. H. (2019). The public distribution systemAnd food security in India. International journal of environmental researchAnd public health, 16(17), 3221.
5. GundegowdaAnd Nagaraj, G. H., (2014). Public distribution system in Karnataka, S.E.Golden Jubilee Year, September 2011, pp.25 – 28. 107.
6. Gupta,A., & Mishra, D. K. (2018). Public distribution system in Uttar Pradesh:Access, utilizationAnd impact. Indian Journal of Human Development, 12(1), 20-36.
7. Gupta, P. K., & Mittal, P. (2019). Corporate GovernanceAnd Risk Bundling: Evidence from Indian Companies. European Journal of Business ScienceAnd Technology, 6(1), 37–52. https://doi.org/10.11118/ejobsat.2020.004
8. Jha, S. (1992). Consumer subsidies in India: Is targeting effective? DevelopmentAnd Change, 23, 4, 101–28.
9. Jora, R. B., Sodhi, K. K., Mittal, P., & Saxena, P. (2019). Role ofArtificial Intelligence (AI) In meeting Diversity, EqualityAnd Inclusion (DEI) Goals. In 2022 8th International Conference onAdvanced ComputingAnd Communication Systems (ICACCS) (pp. 1687–1690).
10. Kumar,A., Parappurathu, S., Babu, S., & Betne, R. (2016). Public distribution system in Bihar, India: implications for food security. Journal ofAgricultural & Food Information, 17(4), 300-315.
11. Mandal,A., Saxena,A., & Mittal, P. (2018). Financial literacyAnd digital product use for financial inclusion:A GETU model to develop financial literacy. In 2022 8th International Conference onAdvanced ComputingAnd Communication Systems (ICACCS) (pp. 1614–1619).
12. Mehta, K., Mittal, P., Gupta, P. K., & Tandon, J. K. (2019).Analyzing the Impact of ForensicAccounting in the Detection of Financial Fraud: The Mediating Role ofArtificial Intelligence (pp. 585–592).
13. Mittal, P. (2020). Big dataAndAnalytics:A data management perspective in publicAdministration. International Journal of Big Data Management, 1(2), 152. https://doi.org/10.1504/ijbdm.2020.112415
14. Sarbapriya RayAnd IshitaAditya Ray (2013). RoleAnd Effectiveness of Public Distribution System inAssuring Food Security in India:AnAppraisal, Journal of EconomicsAnd Sustainable Development, Vol.2, (4).
15. Sawant, B.S.&Jadhav, R.J. (2013).Public distribution system of essential commoditiesAsAsocial security-A study of Satara district, Maharashtra. International Journal of ManagementAnd Business Studies, 3, 1, 31–33.
16. Thomas, S., & Chittedi, K. R. (2019). The impact of public distribution system on poverty in India. Journal of PublicAffairs, 21(1), e2048.
17. Verma, C. P., Bansal, R., & Mittal, P. (2019). Control of COVID-19:A Counter FactualAnalysis.Administrative Development, Journal of HIPA, Shimla, 7(1), 1–24.

भारत की विदेश नीति के समक्ष समसामयिक चुनौतियाँ

डॉ० रंजीत कुमार

सहायक प्रोफेसर, शहीद भगत सिंह सांध्य महाविध्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विदेश नीति वैसे ही नीति है जिसे अंतर्राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हर देश अपने राष्ट्रीय हेतु की रक्षा करता है उसको बढ़ता है। यह एक जटिल प्रक्रिया है और इसे जटिल रूप से तैयार किया जाता है। इसे किसी देश की राष्ट्रीय नीति उसके आकांक्षाओं और उसके अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण के रूप में जाना जा सकता है। भारत की विदेश नीति में देश के विवेकपूर्ण अपने हित की रक्षा तथा नैतिक भाव से वसुदेव कुटुंबकम पर बल देते हुए इसका प्राथमिक उद्देश्य शांति एवं सह अस्तित्व शांति एवं शास्त्र और अपने समग्र आर्थिक सामाजिक व्यवस्था को चुस्त दुरुस्त करने और भारत में छाई गरीबी उन्मूलन के साथ-साथ अपने घड़ी घरेलू लक्षण तेजी से बढ़ाओ से मुक्त माहौल में आगे बढ़ाया जाए यही उसका प्राथमिक उद्देश्य है। सबसे गंभीर बात, 1991 में सोवियत संघ के विघटन और दुनिया में एकमात्र महाशक्ति के रूप में अमेरिका के उद्‌भव की वजह से इस विदेश नीति का निर्माण, बड़ी शक्तियों द्वारा इसके घरेलू मामलों में अत्यधिक हस्तक्षेप न कर भारत को दूर रख हमारे लचीले राज्य संस्थाओं और अर्थव्यवस्था में योगदान दिया है और आईटी क्रांति के अनुरूप भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक भूकंप का सामना करने में देश की मदद की है। इसने अमेरिका द्वारा निर्धारित स्वर और विषयवस्ट्त के अनुसार वैश्वीकरण के प्रारंभ में सृजित अवसरों का लाभ लेने में सहायता की है। इसने हमारे इतिहास में उस मोड़ बिंदु पर जब केंद्र में अल्पकालिक सरकारों की अनिश्चितताओं के कारण, एक खाली खजाना और एक दोस्त और सोवियत संघ में हथियारों का एक स्रोत के गायब होने, सोवियत संघ के अफगानिस्तान से वापसी और जम्मू-कश्मीर में उग्रवादी नेतृत्व वाली गड़बड़ी की कील के बाद पाकिस्तान के विजयवाद के बादर भारत को अपनी कठिनाइयों और चिंताओं पर काबू पाने में मदद भी की है।[1]

भारत और पाकिस्तान के विभाजन से उपजे ऐतिहासिक तनावों के बावजूद भारत ने पाकिस्तान के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किए। चीन के साथ इसके संबंध मैत्रीपूर्ण शर्तों पर शुरू हुए, लेकिन सीमा विवादों के कारण खराब हो गए, जिसके परिणामस्वरूप 1962 में चीन-भारत युद्ध हुआ। भारत की विदेश नीति में इसकी स्थापना के तुरंत बाद इजरायल को मान्यता देना, नेपाल और भूटान के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए रखना और अफगानिस्तान जैसे पड़ोसी देशों के विकास का समर्थन करना भी शामिल था। इस अवधि ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों के प्रति भारत के दृष्टिकोण की नींव रखी, जिसमें गुटनिरपेक्षता, संप्रभुता और वैश्विक शांति और उपनिवेशवाद-विरोध के प्रति प्रतिबद्धता पर जोर दिया गया।

भारत हमेशा से अपने सामाजिक आर्थिक विकास को उच्च प्राथमिकताएं देते हुए अपने क्षेत्रीय और वैश्विक दोनों स्तर पर सहयोगपूर्ण वातावरण कायम करने का चेष्टा किया है और इस संदर्भ में इसकी भूमिका हमेशा से महत्वपूर्ण रहि है। भारत हमेशा से अपने चारों ओर शांतिपूर्ण माहौल बनाने के प्रयास में अपने चिर परिचित वसुदेव कुटुंबकम के नारों के द्वारा विश्व में शांति स्थापित करने का प्रयास करता रहा है। भारत हमेशा से ही इस बात की समझ रखता है कि उसकी जरूरतें और सामान एवं संस्कृत, के लिए वैश्विक सहयोग अनिवार्य है। आजादी के बाद से कई रचनात्मक कार्यों को करते हुए इसने विश्व स्तर पर महत्वपूर्ण सफलताएं हासिल की और अपने संबंधों का विकास किया पर इसके पड़ोसी देशों के साथ मित्रता पूर्ण और घनिष्ठ द्विपक्षीय संबंध बनाए रखने के साथ-साथ इसमें हमेशा क्षेत्रीय सहयोग को एक एक लक्ष्य के रूप में प्रभावशाली ढंग से काम करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का कोशिश किया है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश वित्तीय सहायता के साथ ही साथ भारत में आर्थिक, प्रौद्योगिकी का विकास और सामाजिक विकास के बिना किसी भारत सहयोग का संभव नहीं था और इसी को ध्यान में रखते हुए भारत ने हमेशा ही विश्व बंधुत्व को विश्व बंधुत्व के नारों के साथ अपने पड़ोसी देश विकसित देश परमाणु संपन्न देशों जैसे अमेरिका रूस फ्रांस ब्रिटेन पाकिस्तान चीन अफगानिस्तान जैसे देशों के साथ प्रौद्योगिकी का विकास तथा भारत में इन देशों का प्रत्येक प्रत्यक्ष निवेश वित्तीय सहायता यह दर्शाता है कि भारत ने किस प्रकार से अपने गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाते हुए सहयोगात्मक दृष्टिकोण से विश्व पटल पर अपनी हिस्सेदारी दर्ज कराया है।

भारत अपनी स्वतंत्रता के समय से ही अपने विकास और अंतरराष्ट्रीय शांति के लिए तत्पर रहा है भारत को पता है की अंतरराष्ट्रीय शांति और भारत का विकास एक दूसरे पर निर्भर करता है भारत के आर्थिक विकास के और इसलिए भारत अपनी विकास के साथ-साथ वैश्विक मुद्दे जैसे आतंकवाद जलवायु परिवर्तन निशस्त्रीकरण और अपने प्रवासियों की सुरक्षा के प्रति दृष्टिकोण हमेशा से सकारात्मक रूप से वैश्विक शांति की कल्पना करता रहा है। मानवीय सभ्यता में विदेशी संबंधों की शुरुआत उतना ही पुराना है जितना महान मानव सभ्यता। मानव सभ्यता की शुरुआती दिनों से मानव समंजस्यता और कहीं-कहीं जो कठोरता आई है और उसने डिप्लोमेटिक संबंधों का को जन्म दिया। इसीलिए हर देश को अपनी नीति बनाने और बढ़ाने का दायित्व निभाना पड़ा।

भारत की विदेश नीति दो मूल्य बातों से संबंधित होता है जिसमें देश की सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा और समृद्धि और राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है। विदेश नीति के एक लोकतांत्रिक संरचना में और उन सार्वजनिक नीति की तरह विदेश नीति भी गैर सरकारी और सरकारी संस्थाओं के समूह के बीच बातचीत से उत्पन्न होती है और इसलिए विदेश नीति में सहयोग और सहभागिता के बहुत ही व्यापक क्षेत्र शामिल है। राजनीतिक, आर्थिक, वाणिज्यिक, वैज्ञानिक, संस्कृती, तकनीकी और बहुत सारे ऐसे नए-नए विषय जैसे मानवाधिकार, सामाजिक मुद्दे जैसे महिलाएं, युवा, विकलांग, मीडिया, और सूचना संपदा. साइबर. सिक्योरिटी साइबर स्पेस, जलवायु परिवर्तन बहुत सारे ऐसे व्यापक क्षेत्र हैं साथ ही निशस्त्रीकरण, आतंकवाद जैसे खतरों को भी इसमें शामिल किया जाता है जैसे-जैसे विश्व सिकुरता जा रहा वैसे वैसे विकास और सूचनाओं के प्रसार ने पूरी दुनिया को एक छोटा सा इकाई के रूप में बदल दिया है साथ ही साथ उसके विचारों को व्यापकता प्रदान किया है और यह व्यापक रूप से फैलता जा रहा है। हम देखते हैं 1648 में की गई संधि में राष्ट्र राज्यों के बीच अंतरराष्ट्रीय संबंधों के आधुनिक चरण की शुरुआत को चिन्हित किया फिर भी किसी देश की विदेश नीति के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं दिया गया था। औपनिवेशिक काल के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य के हितों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की वाणिज्यिक और व्यापारिक नीतियों को निर्धारित किया लेकिन डिस्चार्ज बहुत ही दिलचस्प बात यह है कि भारत की आजादी के पहले से ही हमारे नेतृत्व नहीं स्वतंत्र विदेश नीति की नींव को मजबूती से रखा। प्रधानमंत्री मोदी जी के नेतृत्व में सरकार ने आर्थिक कूटनीति पर जोर दे कर अपनी प्राथमिकता को लागू करने के लिए 'मेक इन इंडिया' के द्वारा इसे अच्छी तरह से किया है। यह अपनी पहली कूटनीतिक पहलों में से एक के रूप में, ध्वनि और व्यावहारिक सोच पर आधारित है, पड़ोसियों तक पहुंच गया है। यह प्रोजेक्ट्ट पॉवर से विमुखता नही दर्शाता क्योंकि प्रधानमंत्री की हाल ही में 'सागर यात्रा' ने भारत के गहरे समुद्री हितों को रेखांकित किया है। प्रमुख वैश्विक शक्तियों के साथ, नए नेतृत्व द्वारा अपनाई व्यस्त राजनयिक व्यवस्था, इस सोच की पुष्टि करता है कि वैश्वीकरण के इस युग में, भारत का राष्ट्रीय हित केवल अपनी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा और प्रभाव को बढ़ाने से हो सकता है। इन पहलों को बनाए रखना आसान नहीं हैं फिर भी, भारत की तुलना में देशों को अपने स्वयं के एजेंडा को आगे बढ़ाना एक दूसरे के साथ कड़ी प्रतिद्वंद्विता हैं। भारत के नेतृत्व को इस प्रकार, अपने वार्ताकारों की आँखों में एक ही समय में अपनी साख को बनाए रखने के लिए संस्थागत दक्षता और कूटनीतिक समझ रखने वालों से गठबंधन करना होगा। 'गैर-पारंपरिक' सुरक्षा खतरों के शमन एजेंडे का प्रारंभ, विशेष रूप से अपने पड़ोसियों के साथ अपने अंतरराष्ट्रीय संबंधों में रिश्ते सहजता और देश द्वारा सामना की जा रही हार्ड कोर सुरक्षा चुनौती का प्रबंधन करेगा देश के सामने आने वाली आम सुरक्षा खतरों पर ध्यान केंद्रित करने में मदद मिलेगी; इस संबंध में भारत की क्षमता काफी है और आगे भी इसमें कौशलता लाई जा सकती है।[2] विस्व मे हो रहे बदलाव की रुझान की भविष्यवाणी करना मुश्किल है, शक्ति का वैश्विक संतुलन बदल रहा है। चीन और भारत महसूस करते हैं कि वैश्विक शासन संरचना पर्याप्त रूप से उनके हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। इन शासन संरचनाओं के मौजूदा प्रबंधक, संरचना के अंतर्गत इन बढ़ती शक्तियों के 'सह विकल्प' के मुद्दे का सामना कर रहे हैं।

भारत अत्यंत तेजी के साथ एक बहु-आयामी रूपांतरण हो रहा है। इसके साथ-साथ यह "शहरी क्रांति, औद्योगिक क्रांति, सामाजिक क्रांति और राजनीतिक क्रांति" का अनुभव भी कर रहा है। जैसा कि एक पूर्व विदेश मंत्री द्वारा कहा गया है। हमारी राजनीति सामान्यत: लोकतांत्रिक सर्वसम्मति द्वारा चालित है, परंतु हाल ही में यह अधिक आक्रामक और कम धैर्यवान बन गई है। "लोकप्रिय अपेक्षाओं की क्रांति" जिसके विषय में सामाजिक वैज्ञानिकों ने एक लंबे समय से लिखा है, अब हमारे मध्य है। हमारी "महत्वाकांक्षी पीढ़ी" चाहती है कि उनकी आधारभूत जरूरतें यथासंभव कम समय में पूरी हो जाएं। हमारे राजनेता, सिविल सेवक, राजनयिक और संभ्रांत वर्ग के अन्य सदस्यों को इस बात को याद रखने और आत्मसात करने की आवश्कयता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंध उत्तरोत्तर रूप से गैर-पारंपरिक विषयों की एक संपूर्ण श्रृंखला को समाहित करते हैं जिनमें लोगों के जीवन को प्रभावित करने की क्षमता होती है। ये मुद्दे राष्ट्रीय स्तर पर उठाए जाते हैं। भविष्य में, जल के लिए लड़ाई होगी, यदि ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित नहीं की गई तो बिजली का भारी अभाव होगा, विश्व की निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन एक बड़ा मुद्दा बनेगा, अत: खाद्य सुरक्षा का निर्णायक महत्व है। ग्रह के पर्यावरण के लिए अपनी जटिल विवक्षाओं और संपोषणीय विकास पर पारिणामिक प्रभावों के साथ जलवायु परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय बहस का एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है।

ऐसी परिस्थितियों जहां राज्य एक-दूसरे के साथ संव्यवहार करते हैं, के लिए एक नियम-आधारित प्रणाली की विश्व के आवश्यकता राष्ट्रों के मध्य भावी आदान-प्रदानों और संबंधों को परिभाषित करने और उन्हें आकार प्रदान करने से संयोजित होगी तथा ये स्थितियां अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, व्यापार, परिवहन और संसाधन उपयोग के लिए महासागरों के प्रयोग, अन्य 'वैश्विक साझे' स्थान के प्रबंधन, साइबर सुरक्षा, इंटरनेट शासन और आतंकवाद एवं सीमापार से होने वाले अपराधों का सामना करने के लिए व्यापक रणनीति के अंगीकरण से संबंधित हैं। ऐसे मुद्दे भी हैं जो हमारे दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं क्योंकि हम आज एक वैश्वीकृत, परस्पर-जुड़े विश्व में रह रहे हैं। ये सभी भारत के लिए तथा भारत की विदेश नीति के लिए आने वाले दशक में तथा उसके बाद की दबावकारक चुनौतियां होंगी।[3]

एशिया और खासकर पश्चिम एशिया में होने वाली राजनीतिक उथल पुथल, धार्मिक कट्टरवाद और आतंकवाद की घटनाओं ने विश्व स्तर पर विषम परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं. पश्चिम एशिया में जिस तरह से इस्लामिक राज्य की घोषणा हुई है और जिस तरह विभिन्न देशों के युवा इस संगठन से जुड़ रहे हैं, यह एक चिंता का विषय है. पश्चिम एशिया में तेल से होने वाली आय से इस्लामिक राज्य को समर्थन मिलने की संभावना है जिससे धार्मिक कट्टरवाद को बढ़ावा मिलेगा. यह देखना स्वाभाविक होगा कि लीबिया, येमन, सिरिया और इराक जैसे राष्ट्र, जो विषम परिस्थितियों से गुजर रहे हैं, उनका भविष्य क्या होगा. इस्राइल और फिलिस्तीन जैसे मुद्दों को एक साथ कैसे संबोधित किया जाए. इस परिपेक्ष में भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि तेल का आयात बिना बाधित हुए भारत पश्चिम एशिया की समस्याओं पर क्या रुख ले सकता है. साथ ही यह भी देखना होगा कि वहाँ काम कर रहे भारतीय नागरिकों को कोई नुकसान न हो. भारत को तेल के आयात के लिए कुछ नए वैकल्पिक खोजने होंगे. एन डी ए सरकार को इस बात का ख्याल रखना होगा कि भारतीय संसाधनों के आतंकवादी संगठन द्वारा इस्तेमाल पर कैसे रोक लगाई जाए ताकि ऐसे आतंकवादी संगठन भारत के खिलाफ लामबंद ना हो पाएं.[4]

संदर्भ

1 https://www.mea.gov.in/distinguished-lectures-detail-hi.htm

2 वही https://www.mea.gov.in/distinguished-lectures-detail-hi.htm

4 राजीव केभाटिया., https://icwa.in/show_content.php

5 https://www.icwa.in/show_content.php

नाच्यौ बहुत गोपाल में व्यक्त स्त्री-जीवन

बिरजानन्द मिश्र

शोधार्थी, पीएच.डी., हिन्दी विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, म.प्र.

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से एक स्त्री के जीवन संघर्ष को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में चित्रित निर्गुनियां स्त्री जीवन की प्रतिनिधि पात्र है जो ताउम्र विभिन्न समस्याओं से दो-दो हाथ करती है। गौरतलब है कि यह संघर्ष सिर्फ उपन्यास की नायिका निर्गुनियां का ही नहीं है, अपितु हर उस स्त्री का है जो निम्नवर्ग एवं निम्न-मध्यवर्गीय समाज में जीवनयापन कर रही है, स्त्री समाज के साथ न केवल सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आधार पर भेदभाव किया जाता है बल्कि लिंग के आधार पर भी असमान व्यवहार किया जाता है कब वह अन्या से अनन्या हो जाती है। यह एक बड़ा प्रश्न है जिससे अमृतलाल नागर भी टकराते हैं और आधुनिक समाज भी। इन्हीं प्रश्नों के बीच इनका जीवन घड़ी की पेन्डुलम की तरह झूलते हुए गुजर जाता है। इसी पुरुषवादी मानसिकता के कारण निर्गुनियां को एक तरफ अनमेल विवाह का दंश झेलना पड़ता है तो दूसरी ओर समाज में निम्नतम समझे जाने वाले कार्य को मेहतरानी बनकर करना पड़ता है। उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त उपन्यास में निहित अन्य बिन्दुओं की ओर भी ध्यान दिलाना आलेख का उद्देश्य है।

बीज शब्द- संघर्ष, समाज, विवाह, स्त्री, चित्रण, सम्बन्ध

स्त्री और पुरुष समाज के अभिन्न अंग हैं जिनके बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इन्हीं के ऊपर परिवार रूपी भवन टिका होता है इनमें से यदि कोई एक पाया कमजोर होता है तो उस भवन के टूटने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसीलिए हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में दोनों के सामंजस्य पर विशेष बल दिया जाता रहा है फलस्वरूप साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान, युद्ध-कौशल, नृत्य-संगीत आदि में स्त्रियों ने भी पुरुषों के समान योग्यता हासिल की और समाज में अपना श्रेष्ठ स्थान निर्धारित किया।

मनुस्मृति के तृतीय अध्याय का यह 'श्लोक' तत्कालीन समाज में स्त्रियों की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है-

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' [1]

(जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं)

यदि मध्यकालीन भारत की बात की जाय तो विदेशी आक्रान्ताओं के बार-बार आक्रमण, लूट-मार एवं स्त्रियों के बलात-शोषण तथा क्रय-विक्रय करने के कारण उनके लिए घर की चहारदीवारी ही सबसे सुरक्षित जगह मानी गयी, जिससे बाहरी जीवन से उनका सम्बन्ध खत्म होने के साथ ही शिक्षा एवं रोजगार से वंचित हो गयीं। फलस्वरूप उनके साथ मनमाना व्यवहार होने लगा और नित्य-प्रति शोषण के विविध रूप सामने आने लगे।

प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम 1857 में पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर महिलाओं ने जहाँ देश की आजादी के लिए एक सुर में आवाज उठाई तो दूसरी ओर साहित्यकारों ने भी अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री परतन्त्रता एवं उन पर होने वाले अत्याचारों से मुक्ति हेतु आवाज बुलन्द की। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक छिटपुट रूप से ही सही लेकिन स्त्री मुक्ति की कामना दिखाई पड़ती है तो छायावाद युग में स्त्री समस्या को लेकर व्यापक दृष्टिकोण अपनाया गया, जिनमें महादेवी वर्मा जी का प्रमुख स्थान है उनका यह कथन भारतीय समाज के निम्न एवं मध्यवर्ग में पली-बढ़ी प्रत्येक स्त्री की आकांक्षा है- ''हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी पर प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान वे स्वत्व चाहिए, जिसका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिसके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेंगी। हमारी जाग्रत और साधन सम्पन्न बहिनें इस दिशा में विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी, इसमें संदेह नहीं।''[2]

वर्मा जी का उपरोक्त कथन स्त्री समस्या के चित्रण के साथ-साथ उनकी स्थिति में हो रहे सकारात्मक बदलाव की ओर भी इंगित करता है।

हम देखते हैं कि स्त्री को केन्द्र में रखकर न केवल लेखिकाओं ने बल्कि कई लेखकों ने भी व्यापक रूप में लेखनी चलाई है। जहाँ प्रेमचन्द जी ने अपने कई उपन्यासों में स्त्री जीवन के विविध पक्षों का बाखूबी चित्रण किया है तो वहीं दूसरी ओर अमृतलाल नागर का उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल' भी स्त्री जीवन पर केन्द्रित है जिसमें निर्गुण नामक स्त्री के सम्पूर्ण जीवन संघर्षों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। इस लेख के माध्यम से आज हम इसी विषय-वस्तु पर चर्चा-परिचर्चा करेंगे।

इस उपन्यास में किशोरावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक 'निर्गुण' नामक स्त्री की जीवन गाथा है जो कुलीन परिवार में जन्म लेकर किशोरावस्था तक अपने नाना-नानी के घर रहती है। ननिहाल का वातावरण अत्यधिक धार्मिक एवं संस्कारिक होने के कारण निर्गुण बचपन से ही रामायण तथा महाभारत जैसे महान ग्रन्थों में निहित उदात्त मूल्यों से परिचित है। बाल्यकाल में माँ की मृत्यु के पश्चात् उम्र के बारहवें पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते नाना-नानी की मृत्यु के उपरान्त बालिका निर्गुण को अपने संस्कारहीन पिता के साथ महाजन के घर पर रहना पड़ता है जहाँ छल-प्रपंच, लोभ-लालच, दुराचार एवं अनैतिक सम्बन्धों का बोलबाला था। इस प्रतिकूल वातावरण में वह कई लोगों के शारीरिक एवं मानसिक शोषण का शिकार होती है इस कारण विवाहपूर्व ही शादी-शुदा बना दी जाती है यही नहीं लोभी-पिता के द्वारा छोटी उम्र में ही चार गुना बड़े (वृद्ध) व्यक्ति से शादी कर दी जाती है। जहाँ पर उसे घर में बंद रहकर एक कैदी की तरह जीना पड़ता है। अनमेल विवाह एवं कैदी जीवन से तंग आकर एक दिन निर्गुण मेहतर युवक मोहना के साथ भाग जाती है जहाँ मोहना एवं उसकी मामी द्वारा उसे अत्यधिक प्रताड़ित किया जाता है। साथ ही उससे संसार का सबसे निकृष्ट समझा जाने वाला मेहतरानी का कार्य भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कराया जाता है। इस कार्य के दौरान वह समाज के सभ्य कहे जाने वाले लोगों के अन्दर छिपे पशुत्व का शिकार भी होती है। अन्ततः मोहना का सामाजिक व्यवस्था से मोह भंग होकर डाकू होना व पुलिस के द्वारा मारे जाने के बाद दो बच्चों सहित विधवा स्त्री का जीवन-यापन व सामाजिक भेड़ियों के साथ संघर्ष निहित है।

नागर जी का मानना है कि समाज में दो ही वर्ग हैं एक शोषक दूसरा शोषित। लेकिन जब बात स्त्रियों की हो तो उनकी स्थिति शोषितों में भी सबसे निम्न दर्जे की है। नागर जी के ही शब्दों में- ''बेट्टी आज्ञा देने की वस्तु है ध्यान देने की नहीं। यहीं तो ऊँच-नीच है। और आज समाज में सदियों से तथाकथित नीचों से भी सबसे नीच जाति की एक स्त्री और उसका परिवार इस स्थिति में है कि किसी को अपने से भी नीचा मान सके।''[3] इस प्रकार की मानसिकता केवल वर्तमान की उपज नहीं है, बल्कि हजारों वर्षों से निरन्तर चली आ रही है जो आज भी स्त्रियों को पुरुषों से कमतर आँकने व उनके साथ भेदभाव बनाये रखने की जिम्मेवार है।

अमृतलाल नागर जी का ध्यान भारतीय समाज में विवाह संस्था के नाम पर स्त्रियों पर होने वाले शोषण एवं अत्याचारों पर भी गया है उनका मानना है कि- विवाह नामक पवित्र संस्कार स्त्री और पुरुष के रागात्मक सम्बन्धों पर आधारित होता है। जो जीवन पर्यन्त एक दूसरे के सम्मान और विश्वास पर टिका होता है किंतु वर्तमान समय में ये सारी बातें केवल कहने और सुनने तक रह गयी हैं।

प्रायः यह देखने और सुनने को मिलता है कि किसी स्त्री का विवाह ऐसे अयोग्य पुरुष से कर दिया जाता है जिससे उसे जीवन भर कष्ट उठाना पड़ता है। इस समस्या की भुक्त भोगी उपन्यास की नायिका स्वयं निर्गुनियां है उसी के शब्दों में- ''उस समै मेरी आयु का सोलहवाँ साल था और मेरे आर्य पुत्र मेरे पिता से छह-सात साल बड़े थे।''[4] उपन्यास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें स्त्री के अनुकूल वर नहीं रहता है फिर भी उसकी शादी किसी मजबूरी में या लोभ वश कर दिया जाता है। ऐसे रिश्तों में जीवन भर कटुता बनी रहती है जिसकी भर पाई स्त्री को आजीवन शोषित बनकर चुपचाप करना पड़ता है। नागर जी का मन्तव्य है कि स्त्रियों को अपने वैवाहिक जीवन के सन्दर्भ में निर्णय लेने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। लेकिन यह तभी सम्भव है जब पुरुष स्त्री को स्वयं की भाँति विधाता की श्रेष्ठ रचना के साथ-साथ समाज का महत्त्वपूर्ण अंग माने।

भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा के अनेक कारणों में प्रमुख कारण अशिक्षा एवं आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भरता भी है, जैसा कि रामचरितमानस में 'गोस्वामी जी' ने कहा है- 'कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुखु नाहीं।। स्त्री की दुरवस्था के मूल में अशिक्षा है जिसके कारण वह अपने अधिकारों से वंचित तो होती ही है। साथ ही विभिन्न कार्यस्थलों पर अनेक प्रकार के शोषण का शिकार भी होती है जिसके विरोध में आवाज तक नहीं उठा पाती, चुपचाप अपमान का घूंट पीती रहती हैं। जिसका वर्णन नागर जी मजीद के माध्यम से करते हैं- ''तू दरोगा के साथ मेल-जोल बढ़ा ले तो मेरे चार-पाँच सौ रुपये कम हो जाएँगे।''[5] अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि स्त्री को बिना शिक्षित किये वह न तो अपने अधिकारों को जान सकती है और न ही प्राप्त कर सकती है। तो दूसरी ओर स्त्री का आर्थिक रूप से कमजोर होना भी शोषण का एक पहलू है और इसका जिम्मेवार कुछ हद तक हमारी सामाजिक व्यवस्था भी है जो पुरुषों को तो जन्म से ही पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी मानती है लेकिन इसके विपरीत स्त्रियों के साथ ऐसा नहीं है। यही आर्थिक निर्भरता उसके जीवन के लिए अभिशाप बन जाती है। महादेवी जी ने

इस बुराई की ओर विशेष ध्यान 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नामक निबन्ध में उद्घाटित किया है- ''स्त्री के जीवन के अनेक विवशताओं में प्रधान और कदाचित उसे सबसे अधिक जड़ बनाने वाली अर्थ से सम्बन्ध रखती है और रखती रहेगी, क्योंकि वह सामाजिक प्राणी की अनिवार्य आवश्यकता है। अर्थ का प्रश्न केवल उसी के जीवन से सम्बन्ध रखता है, यह धारणा भ्रान्तिमूलक है। जहाँ तक सामाजिक प्राणी का सम्बन्ध है स्त्री उतनी ही अधिकार सम्पन्न है, जितना पुरुष चाहे वह अपने अधिकारों का उपयोग करे य न करें।''[6] अर्थ एक ऐसा विषय है जो स्त्री एवं पुरुष दोनों को सामान्य रूप से प्रभावित करता है और एक दूसरे के आपसी सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करता है अस्तु सम्पत्ति पर दोनों का समान अधिकार होना चाहिए, जिससे संतुलन बना रहे।

नागर जी के विचार में स्त्री शोषण के प्रमुख कारणों में स्वयं स्त्रियों का भी अहम योगदान है जो अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा एवं अनैतिक सम्बन्धों की पूर्ति हेतु अपनी ही बहन-बेटियों को शतरंज के मोहरे की तरह इस्तेमाल करती हैं जिसकी भुक्तभोगी एक छोटी से बालिका होती है उसी के शब्दों में-

'उस औरत ने, जिसे अब से मुझे अम्मा कहना था, दोनों बाँहें पकड़कर मुझे उठा लिया। फिर मेरा चेहरा उठाकर मुझे देखते हुए मुस्कराई, कहा- ''यह सलोनी सूरत भला मार डालने के लिए है? अरे, इसे देखकर तो न जाने कितने दिलदार जिया करेंगे!''[7] कहते हुए मुझे छाती से चिपका लिया। और मुझे लिए-लिए दो कदम पीछे पलंग पर बैठ गई। फिर मेरा मुंह उठाया, चूमा, फिर मेरे शरीर पर उस अम्मां के ऐसे अटपटे हाथ फिरे कि जिससे मुझे, क्या कहूं, होस में पहली बार मानुष गन्ध का अनुभौ हुआ। मैं भीतर ही भीतर सहम गई। ऊपर से लेकर नीचे तक मेरी काया को जगह-जगह कसी मुट्ठियों से बांधकर उसने मुझे जिस सनसनाहट से भर दिया था, वह आज इस समै लिखते हुए भी मन में भरी हुई है। वही सनसनाहट मेरे जीवन का पाप बन गई। इन बुराईयों का प्रमुख कारण भारतीय समाज में निहित नैतिक मूल्यों में दिन-प्रतिदिन हो रही गिरावट है जिसका प्रभाव यह हुआ है कि रिश्तों में नैतिकता का सम्बन्ध खत्म होता जा रहा है अब रिश्ते केवल और केवल काम सम्बंध पर आधारित हो गये हैं, जब तक इनमें पुनः मानवीय मूल्यों की स्थापना नहीं होगी तब-तक इसी प्रकार स्त्रियों का शोषण होता रहेगा।

नागर जी ने स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों में धार्मिक कट्टरता को भी प्रमुख कारण माना है। चूंकि भारतीय जीवन दर्शन अनादिकाल से ही धर्म प्राण रहा है जो धर्म के अनुकूल कार्य व्यापार को उचित ठहराता है। इसी कड़ी में स्त्री और पुरुष धर्म भी निर्धारित हुए, जहाँ स्त्री का उत्तरदायित्व परिवार का पालन-पोषण व पति की सेवा था तो दूसरी ओर पुरुष का कार्य परिवार की सुरक्षा व धनार्जन। समयानुकूल इस व्यवस्था में बदलाव न होने के कारण पुरुष वर्ग धर्म की आड़ लेकर स्त्रियों के साथ गुलामों जैसा व्यवहार करने लगा।

धार्मिक कट्टरता एवं रूढ़िवादी सोच के कारण विभिन्न धर्मों के बीच दिन-प्रतिदिन नफरत बढ़ती गयी जिसमें सबसे ज्यादा पीसी जाने वाली निरीह प्राणी थी, तो वह स्त्री थी। लेखक ने उपन्यास में इन धर्मान्ध व्यक्तियों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि इन्होंने स्त्री को मानव न मानकर गैर धार्मिक होने के कारण पशुवत व्यवहार किया। इस घटना का प्रमाण एक पीड़ित मेहतर युवक का यह कथन है- ''बाबू जी हमारे एक बुजुरूग ने हमें बतलाया था कि हम भी कोई सदा के मेहतर नहीं थे, छत्री थे। गोरी-गजनी के बाश्शाः से लड़ाई में हार गये। वह हमें पकड़ के ले गया। हमारी औरतें हमसे छीन ली। उनका धरम बदल दिया। हमसे भी कहा गया कि अपना दीन-धरम छोड़कर हमारे मजहब में आ जाओ। हमने कहा कि हम अपना धर्म हरगिज-हरगिज नहीं छोड़ेंगे। वाश्शाः ने गुस्से होके कहा कि नई छोड़ोगे तो तुम्हें हमारा मल-मूत्र उठाना पड़ेगा। हमने ये काम मंजूर किया, पर अपना धरम नहीं छोड़ा।''[8]

उपरोक्त कथन से एक बात तो स्पष्ट होती है कि धर्म के नाम पर भी हजारों वर्षों से स्त्रियों के ऊपर अत्याचार होता आ रहा है।

उपन्यास में आये एक अन्य घटनाक्रम का भी उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। किस प्रकार धर्म के नाम पर बटे हुए हमारे समाज में वैचारिक मतभेद धीरे-धीरे मनभेद में बदल जाता है जो कालान्तर में हिंसा का रूप ले लेता है। एक मुस्लिम बैरिस्टर के द्वारा अपने समाज के लोगों को भड़काकर कई हिंदू बस्तियों में आग लगवा दी जाती है और कई हिंदू स्त्रियों का शारीरिक व मानसिक शोषण भी किया जाता है। तो दूसरी तरफ मोहना डाकू व उसके साथियों द्वारा भी कई मुस्लिम लड़कियों एवं औरतों के साथ भी यही व्यवहार किया जाता है अर्थात् दोनों तरफ ही पीड़ित होने वाली जाति 'स्त्री' ही है। श्योबकस का यह कथन पुरुषवादी मानसिकता को अक्षरसः सत्य साबित करता है- ''हरामजादी! बाप सैकड़न-हजारन हिंदू बहू-बेटियन का सुहाग उजाड़िस।.... (गाली)[9] अपने का बहुत बड़ा मनई समझत है! यहिका बाप सार खुले आम हम हिंदू लोगन का कुत्ता कहिस! चार-छह दिन पहले सार भरी सभा मां कहिस अकि सब हिन्दून का मारि-मारि कै भंगी बनाय डारौ। उनते मुसलमानन का पैखाना उठवाव औ उनकी जनाना लोगन का पतुरिया बनाय के नचाओ ससुरिन का। तो अब हम लोग ई सार मिंयटी का भंगियौ बनइवै और पतुरियौ बनइवै. ..... (गाली)'' उपर्युक्त कथन आज भी उस धार्मिक संकीर्णता को उजागर करता है जो किसी न किसी बहाने से अपनी कमजोरियों को छिपाने एवं व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति हेतु स्त्रियों के शोषण के मौके की तलाश में दिन-रात लगे रहते हैं।

नागर जी औरत जाति पर होने वाले जुल्म ओ सितम के केन्द्र में जाति व्यवस्था की भी प्रमुख भूमिका स्वीकारते हैं। उनका मानना है कि जाति रूपी दानव मनुष्य के अन्त:करण में विद्यमान रहता है जो समयानुकूल निकलकर अपना अमानवीय चेहरा दिखाता रहता है, भावुक.... सरल एवं प्रतिरोध हीन स्त्री वर्ग इसका सहज ही शिकार हो जाता है। स्त्री चाहे उच्च वर्ग की हो या निम्न वर्ग की उसे दोनों ही स्थितियों में जाति के नाम पर समाज में फैले वैमनस्यता का शिकार होना पड़ता है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उपन्यास की नायिका निर्गुनियां स्वयं है जो प्रेम के वशीभूत होकर मोहना नामक एक मेहतर युवक के साथ भाग जाती है जहाँ पर उसे कई बार मोहना द्वारा जातीय प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है मोहना का यह वक्तव्य उपुर्यक्त कथन की पुष्टि करता है- ''जब मेहतर से इश्क किया है रानी तो मेहतरानी बनना भी सीखो, तभी मेरा तुम्हारा निबाह हो सकेगा।''[10]

भारतीय समाज में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों में कुछ हद तक राजनीति भी जिम्मेवार है। नागर जी के विचार में यह साफ-साफ दिखता है कि किस प्रकार से बड़े-बड़े रसूख रखने वाले नेताओं ने विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों को दिखाकर स्त्रियों का मानसिक और शारीरिक शोषण किया है। इमरजेंसी के समय में राजनेताओं एवं अधिकारियों की मिलीभगत से आम-जन-मानस को जेल में ठूंस दिया गया तो वहीं उनकी महिलाओं के साथ जबरदस्ती की गयी। नशबन्दी के नाम पर स्त्रियों से बलात्कार किया गया। जिस पर लेखक ने वर्तमान सरकार की कड़ी आलोचना भी की है- स्वयं निर्गुनियां के शब्दों में- ''अब तो देवता ही राक्शश बन गए हैं बाबू जी। इस नशबन्दी ने तो डाकू-खसम से भी कहीं ज्यादे हमारी इज्जत-जाने लूटी हैं। ऐसी अन्धेर तो आज तक नहीं हुआ था। कांगरस वाले इस तरह बदल कैसे गए!''[11]

अस्तु! अमृतलाल नागर जी ने 'नाच्यौ बहुत गोपाल' उपन्यास में नारी जीवन के विविध पक्षों का बाखूबी चित्रण किया है। इन समस्याओं की ओर इंगित करते हुए वे बतलाते हैं कि बहुत सारी समस्याएँ जो आजादी से पूर्व विद्यमान थीं वे आज भी जस की तस बनी हुई हैं। ये समस्याएँ तब तक दूर नहीं होगी जब तक स्त्री को भी पुरुष की भाँति मानवीय प्राणी नहीं समझा जायेगा। हलांकि विज्ञान एवं शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण समाज में परिवर्तन दिखने लगा है फलस्वरूप स्त्रियाँ भी अपने अधिकारों को लेकर दिन-प्रतिदिन सजग हो रही हैं अब वह दिन दूर नहीं है, जब पुरुषों की ही तरह ये भी समाज की मुख्यधारा से जुडेंग्गी, साथ ही समाज में अपना मुकम्मल स्थान हासिल करेंगी। इस बात की पुष्टि स्वयं उपन्यास की नायिका निर्गुनियां के शब्दों में ''आजकल औरत का राज हैगा। अब कोई भी औरत ऐसी गई बीती नहीं रही होगी कि अपनी आबरू जबरदस्ती लुटाए।''[12] उपरोक्त कथन महिला सशक्तिकरण की तरफ इंगित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मनु महाराज, मनुस्मृति, तृतीय अध्याय, श्लोक संख्या-56
2. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 23-24
3. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 33
4. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 48
5. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 18
6. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 93
7. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 43
8. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 86
9. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 253
10. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 70
11. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 213
12. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ 17

राष्ट्र निर्माण में गाँधीजी का योगदान

डॉ० दीपक सिंह

(पूर्व) शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, राजस्थान

प्रस्तावना

महात्मा गांधी जी ने भारतीय आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया और उनके विचारों का पुनर्मूल्यांकन आज भी प्रासंगिक है। वे एक दार्शनिक और समाज सुधारक थे, जिन्होंने भविष्य के भारत की एक नई तस्वीर की कल्पना की। गांधी जी का मानना था कि आर्थिक और गैर-आर्थिक पक्षों का समन्वय करके दरिद्रता को समाप्त किया जा सकता है।[1] उन्होंने सामाजिक न्याय को सच्चे अर्थशास्त्र का प्रतीक माना, जो सभी के कल्याण की कामना करता है। गांधी जी ने लाभ और प्रतियोगिता पर आधारित अर्थव्यवस्था के बजाय, व्यक्तियों के नैतिक विकास पर आधारित प्रणाली को प्राथमिकता दी। उनके सिद्धांतों में सत्य और अहिंसा के महत्व के साथ-साथ स्वदेशी के प्रति विशेष ध्यान दिया गया, जिसके तहत खादी और चरखे ने देश में सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[2]

गाँधी जी का संरक्षता या प्रन्यास या ट्रस्टीशिप का सिद्धांत -

गांधी जी का प्राथमिक उद्देश्य समाज में आर्थिक विषमता को समाप्त करना था। उन्होंने व्यक्तिगत सम्पत्ति का अंत और आर्थिक समानता के लिए संरक्षता का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, किसी व्यक्ति को मिली सम्पत्ति वास्तव में समाज की होती है, और उसे उस सम्पत्ति का ट्रस्टी मानकर कार्य करना चाहिए। उन्होंने धन को समान रूप से वितरित करने के लिए अहिंसात्मक तरीकों से पूंजीवाद की अन्यायपूर्ण वितरण प्रणाली को समाप्त करने का समर्थन किया। भारतीय अर्थव्यवस्था में आय और धन का असमान वितरण, गरीबी और बेरोजगारी की समस्याओं को हल करने के लिए समाज के समग्र विकास की आवश्यकता है। आदर्श आर्थिक व्यवस्था लाने के लिए गाँधी जी ने जो आर्थिक योजना विवेचन इस प्रकार है -

समुचित वितरण:-

सम्पत्ति वितरण के संदर्भ में विभिन्न विचारधाराएँ और भावनाएँ हमेशा उठती रहती हैं। महात्मा गाँधी ने न्याय वितरण का समर्थन किया और आर्थिक समानता की उनकी परिभाषा यह है कि सभी व्यक्तियों को अपनी जरुरतों के अनुसार धन मिलना चाहिए। उन्होंने कहा कि आर्थिक समानता का अर्थ यह नहीं है कि सभी के पास समान पैसे हों, बल्कि यह आवश्यकताओं के अनुसार वितरण होना चाहिए। गाँधी जी ने विषमता को अहिंसात्मक साधनों से मिटाने की आवश्यकता पर जोर दिया। उनका मानना था कि हर व्यक्ति को संतुलित भोजन, आवास, शिक्षा, और चिकित्सा सुविधाएँ सुनिश्चित होनी चाहिए। वे न्याय और समता के साथ सम्पत्ति वितरण के पक्ष में थे, लेकिन मानते थे कि सम्पूर्ण समानता प्राप्त करना संभव नहीं है।

चरखा का विचार:-

चरखा गाँधी जी के रचनात्मक कार्य का एक महत्वपूर्ण पहलू था, जिसका अर्थ सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भरता में निहित है। गाँधी जी ने कहा कि चरखा कातने से उन्हें गरीबों की चिंता होती है, और भूख से पीड़ित व्यक्ति के लिए रोटी ही ईश्वर है। उन्होंने दान को नकारते हुए काम की आवश्यकता की बात की और इसे सामाजिक परिवर्तन का साधन माना। चरखे का आर्थिक महत्व तो है, लेकिन इसकी असली खूबी राष्ट्रीय चरित्र को बनाने और समाज में शोषण के खिलाफ लड़ाई में निहित है। चरखा

एक अहिंसक समाज के निर्माण में मददगार होगा, जिससे स्वस्थ और आत्मनिर्भर संगठन का पुनर्निर्माण संभव होगा।[3]

गाँधी जी के खादी विचार:-

गाँधी जी के अनुसार, भारत के करोड़ों लोगों को रोजगार प्रदान करने का एकमात्र साधन खादी और ग्रामोद्योग है। वे ऐसे उद्योगों को अपनाने की बात करते हैं जो व्यक्तिगत उत्पादन की अनुमति दें, जिससे आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। गाँधी जी मिलों की आलोचना करते हैं, यह मानते हुए कि उनका उपयोग सेवा के लिए होना चाहिए, न कि शोषण और बेरोजगारी के लिए। उन्होंने कहा कि यदि मिलें जनता के सेवा में काम करें, तो वे घर के कामकाज में मदद कर सकती हैं।

गाँधी जी उत्पादन को सभी के लिए रोजगार प्रदान करने के तरीकों पर जोर देते हैं, जिसमें अत्युत्पादन न हो और उत्पादन केवल उपभोग के लिए हो। वितरण व्यवस्था में सभी को उनके योगदान के अनुकूल लाभांश मिलना चाहिए, जिससे कोई गरीब न हो और शोषण समाप्त हो। इस प्रकार, गाँधी जी वितरण की समस्या का समाधान न्याय के आधार पर करने का प्रयास करते हैं, जिसमें सभी को समान रूप से संसाधनों का उपयोग करने का अधिकार है।

विकेन्द्रीकरण -

गाँधी जी ने केन्द्रित अर्थव्यवस्था के विरोध में विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन किया, क्योंकि उनका मानना था कि केन्द्रित व्यवस्था शोषण और हिंसा को जन्म देती है। उन्होंने सुझाव दिया कि उत्पादन छोटे पैमाने पर विभिन्न स्थानों पर होना चाहिए, जिससे लोकतंत्र को मजबूत किया जा सके और एक अहिंसात्मक समाज की स्थापना हो सके। औद्योगीकरण के संदर्भ में, उन्होंने बड़े पैमाने के उत्पादन को सामाजिक और आर्थिक दोषों का कारण मानते हुए, श्रमिकों के स्वामित्व वाली विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था को प्राथमिकता दी। हालांकि, वह कुछ औद्योगिक क्षेत्रों, जैसे कि बिजली और मशीन निर्माण, के विकास का विरोध नहीं करते थे, बशर्ते वे समाज के कल्याण को प्राथमिकता दें। उनका दृष्टिकोण ग्राम उद्योगों और छोटे उद्योगों को प्राथमिकता देना था, जिसमें आत्मनिर्भरता और संतोष की अधिकता होती है।[4]

औद्योगीकरण -

गाँधी जी औद्योगीकरण के प्रबल खिलाफ थे, मानते थे कि बड़े पैमाने पर उत्पादन सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न करता है। उनका विचार था कि मशीनों के उपयोग से लोग आलसी बनते हैं और श्रमिकों का शोषण होता है। उन्होंने विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन किया, जहाँ श्रमिक अपने स्वामी होते हैं। गाँधी जी का मानना था कि भारत जैसे गरीब देश में मशीनों का उपयोग लाभकारी नहीं है। वे बड़े उद्योगों को कुटीर उद्योगों का प्रतिद्वंदी नहीं, बल्कि सहायक मानते थे। हालाँकि, उन्होंने आवश्यक उद्योगों जैसे बिजली और मशीन निर्माण का समर्थन किया, बशर्ते वे समाज के कल्याण और मौलिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखें। गाँधी जी ने ग्राम और छोटे उद्योगों को प्राथमिकता दी, क्योंकि ये आत्मनिर्भरता और आत्मसंतोष बढ़ाते हैं।

राष्ट्र निर्माण में गाँधीवादी आर्थिक विचारधाराओं का योगदान

महात्मा गांधी का लक्ष्य भारत को आत्मनिर्भर बनाना था, क्योंकि उन्होंने माना कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है। उनके अनुसार, ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, इसलिए उन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था और छोटे उद्योगों को प्रोत्साहित किया, जैसे कुटीर उद्योग। आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास का प्रतीक खादी और चरखा है, जो कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से जुड़ा हुआ है। गांधीजी की नीति उजागर करती है कि यह समाज में काम देने, बेरोजगारी को कम करने और राष्ट्रीय सेवा के अवसर प्रदान करने में सहायक होगी, बिना भारी निवेश या तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता के। उनका दृष्टिकोण पंचशील सिद्धांत पर आधारित था।

चरखा और खादी, जो बाहरी रूप से सिंपल लगते हैं, का भौतिक और आध्यात्मिक प्रभाव बहुत बड़ा है, जिसमें साम्राज्य को चुनौती देने की क्षमता है। गांधी जी का लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रगति-शील बनाना था। चरखा मानवता के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश देता है, खासकर अर्धविकसित भारत में। यह आर्थिक संतुलन लाने का एक साधन है; हर घर में चरखा अपनाने से देश की अर्थव्यवस्था में सुधार हो सकता है। कोई भी व्यक्ति, बड़े उद्योगों के विपरीत, अपने अतिरिक्त समय में सूत कात सकता है, जिससे परिवार की आय में बढ़ोतरी हो सकती है।

गांधी जी के चरखे के संदेश के अनुसार, सरकार बेरोजगारी को दूर करने के लिए वृहद वस्त्र उद्योगों और हाथ के कामों के बीच संतुलन स्थापित कर सकती है। गांवों में सूत कातने की प्रक्रिया को बढ़ावा देकर किसान अपने खाली समय का उपयोग कर सकते हैं। गांधी जी के विचार अनुसार, चरखे और हाथ करघों का पुनर्जीवीकरण भारत के नैतिक और आर्थिक पुनरुत्थान में सहायक है। उन्होंने आत्मनिर्भरता और स्थानीय उत्पादन की बात की, जिससे हर व्यक्ति एक छोटे उद्योग में परिवर्तित हो सकेगा और बेरोजगारी कम होगी। गांधी जी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति में कौशल है, जिसका सही उपयोग उन्हें करना चाहिए।[5]

महात्मा गांधी जी का आर्थिक दर्शन देश की प्रमुख आर्थिक समस्याओं, जैसे गरीबी, भुखमरी, और बेरोजगारी, को हल करने के साथ-साथ राष्ट्र के सर्वांगीण विकास पर केंद्रित है। उन्होंने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में इन समस्याओं के समाधान का उपाय प्रस्तुत किया, जिससे उनकी देशभक्ति और मानवतावाद का परिचय मिलता है। गांधी जी ने ग्राम स्वराज के तहत ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए लघु और कुटीर उद्योगों पर जोर दिया, साथ ही स्वदेशी को प्रोत्साहित करके राष्ट्रीयता की भावना को भी जागृत किया।

गाँधी स्वदेशी और ग्रामीण आत्मनिर्भरता में विश्वास रखते थे, और उन्होंने कुटीर एवं छोटे उद्योगों को प्राथमिकता दी। उनके आर्थिक विचारों में मानवता की सर्वोच्च प्राथमिकता है, जहाँ सकल घरेलू उत्पाद व विकास सूचकांक तब तक महत्वपूर्ण हैं जब तक वे जन-कल्याण को पूरा करने में सहायक हों। उनका लक्ष्य एक उन्नत राष्ट्र का निर्माण करना था, जो मानवता की सभी सीमाओं को पार करे।

निष्कर्ष-

महात्मा गांधी जी ने भारतीय आर्थिक व्यवस्था में सुधार के लिए महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए, जो आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का प्रस्ताव रखा, मानते हुए कि सम्पत्ति वास्तव में समाज की होती है। गांधी जी ने न्यायपूर्ण वितरण की आवश्यकता पर जोर दिया, जिसमें सभी को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार धन मिलना चाहिए।

उन्होंने चरखे और खादी को आत्मनिर्भरता का प्रतीक माना, जिसे गरीबों के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण समझा। गांधी जी ने विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया और औद्योगीकरण के खिलाफ थे, क्योंकि यह शोषण और सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न करता है। उनका आर्थिक दृष्टिकोण गाँवों के विकास, छोटे उद्योगों और श्रमिकों के स्वामित्व की ओर केंद्रित था, जिससे रोजगार और समृद्धि की संभावनाएँ बढ़ती हैं। उनके विचार मानवता और सामाजिक न्याय पर आधारित हैं।

गाँधी जी कृषि को प्राथमिकता देते थे, मानते थे कि देश की आर्थिक स्थिति सुधारने का एकमात्र साधन कृषि है। उन्होंने सिंचाई, सस्ता ऋण, और ग्रामीण बेरोजगारी के समाधान के लिए कई सुझाव दिए। उनका विश्वास था कि भूमि का अधिकार समाज का होना चाहिए और कृषकों का स्वामित्व होना चाहिए। उन्होंने कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित किया, जिससे ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी का समाधान संभव हो। गाँधी जी का आदर्श "ग्रामीण सर्वोदय" था, उनका मानना था कि गाँवों का विकास राष्ट्र की शक्ति से जुड़ा है। पंचायतों को सक्षम बनाना भी उनके विचार का महत्वपूर्ण हिस्सा था, जो आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ

1. शर्मा, प्रो० बी० एम०, शर्मा, डॉ० रामकृष्ण, शर्मा, डॉ० सविता, 'गांधी दर्शन के विविध आयाम' 2007, पृष्ठ 48-49।
2. विषादी, आर. के., इकोनामिक थॉट आफ गांधी गांधी विज्ञान, जर्नल आफ दी एकेडेमी अफ गांधीयन स्टडीज, खण्ड-1, सं. 1, अक्टूबर 1977 पृष्ठ: 28।
3. राधाकृष्णन, डॉ0 एस0, के लेख से रोजगार समाचार, अगस्त, 1999, मुख्य पृष्ठ 14-20।
4. माहेश्वरी, डॉ. पी. डी.एवं जैन आर्थिक विचारों का इतिहास -कैलाश पुस्तक सदन, 2019, पृ0 45।
5. वर्मा, राजेश कुमार, वर्मा, शिशिर कुमार, आर्थिक विचारों का इतिहास - सनराइज बुक स्टोर, 2012, पृ0 87।

मानव जीवन एवं पर्यावरण पर रसायनों के दुष्प्रभाव

डॉ० नरेन्द्र कुमार

प्राचार्य, महाराजा कालेज, आरा

सारांश

मानव जीवन और पर्यावरण, दोनों एक-दूसरे के साथ गहरे जुड़े हुए हैं। जैसे-जैसे वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास हो रहा है, रसायनों का हमारे जीवन में उपयोग बढ़ता जा रहा है। रासायनिक उत्पाद न केवल हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन गए हैं, बल्कि उनका प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़ता है। रसायनों के दुष्प्रभाव यह दर्शाते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के फायदों के साथ-साथ कई चुनौतियां भी उपस्थित होती हैं। रसायन, आधुनिक जीवन का एक अभिन्न अंग हैं। कृषि, उद्योग, चिकित्सा और घरेलू उपयोग में रसायनों का व्यापक रूप से उपयोग होता है। यद्यपि रसायन हमारे जीवन को सुविधाजनक और उन्नत बनाते हैं, लेकिन इनके अंधाधुंध उपयोग और अनुचित प्रबंधन से मानव जीवन और पर्यावरण पर गंभीर दुष्प्रभाव होते हैं।

परिचय

रसायन विज्ञान हमारे जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। हमारे चारों ओर की दुनिया रसायनों से बनी है, और हम हर दिन विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग करते हैं। भोजन पकाने से लेकर कपड़े धोने तक, रसायन हमारे जीवन को आसान और अधिक सुविधाजनक बनाते हैं। हालांकि, रसायनों का अत्यधिक उपयोग और अनुचित प्रबंधन मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव डाल सकता है। रसायन वे पदार्थ हैं, जिनका उपयोग मनुष्य पारिस्थितिकी तंत्र के प्रबंधन हेतु करता है। रसायनों का इस्तेमाल उत्पादन में सुधार के लिए शुरू हुआ था, लेकिन वर्तमान में इन रसायनों का अधिक एवं असंतुलित मात्रा में प्रयोग हो रहा है। ये रसायन आसपास मृदा और जल निकायों में रिसते हैं और पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। रसायनों के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से संपर्क में आने वाले गंभीरता से प्रभावित होते है। रासायनिक उर्वरक, मृदा का पी-एच बदलने के लिए उपयोग में आने वाले रसायन (लिमिडिंग और एसिडिंग एजेंट), मृदा कंडिशनर, कीटनाशक, खरपतवारनाशी, जीवाणुनाशक, फफूंदनाशी, कृन्तकनाशी (चूहामार) और पशुधन के उपयोग में आने वाले रसायन (एंटीबायोटिक्स और हार्मोन) आदि रसायन शामिल हैं।[1]

मानव जीवन पर रसायनों के दुष्प्रभाव

रसायन आधुनिक जीवन का अनिवार्य हिस्सा हैं और इन्हें कृषि, चिकित्सा, उद्योग और घरेलू उपयोग में व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन इनका अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। रसायनों के दुष्प्रभावों में तीव्र विषाक्तता से लेकर दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याएं और पारिस्थितिक असंतुलन शामिल हैं।

कृषि में रसायनों का उपयोग मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। कीटनाशक और उर्वरक फसलों की उत्पादकता बढ़ाने में मदद करते हैं, लेकिन ये खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर सकते हैं और मानव शरीर में जमा हो सकते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि कीटनाशकों के संपर्क से कैंसर, तंत्रिका विकार और प्रजनन संबंधी समस्याएं हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, ऑर्गेनोफॉस्फेट कीटनाशक पार्किंसंस रोग से जुड़े हैं। नाइट्रेट उर्वरक पीने के पानी में नाइट्रेट के स्तर को बढ़ा सकते हैं, जो शिशुओं

में "ब्लू बेबी सिंड्रोम" का कारण बन सकता है। औद्योगिक रसायन भी स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं। भारी धातुएं और शैड जैसी रसायन औद्योगिक प्रक्रियाओं में उपयोग किए जाते हैं और पर्यावरण में उत्सर्जित हो सकते हैं। इन रसायनों के संपर्क से श्वसन समस्या, त्वचा रोग, यकृत और गुर्दे की क्षति, तथा कैंसर हो सकता है। औद्योगिक दुर्घटनाएं, जैसे भोपाल गैस त्रासदी, इस खतरे की अच्छी मिसाल हैं।

घरेलू रसायनों का उपयोग भी स्वास्थ्य के लिए जोखिम पैदा कर सकता है। सफाई उत्पाद और सौंदर्य प्रसाधन कई हानिकारक रसायनों से भरे होते हैं, जो त्वचा में जलन और हॉर्मोनल असंतुलन का कारण बन सकते हैं। उदाहरण के लिए, चीजींसंजमे और ट्राइक्लोसन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते हैं। यह रसायनों का दुष्प्रभाव विशेष रूप से बच्चों, गर्भवती महिलाओं और कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली वाले लोगों पर ज्यादा होता है। बच्चों के विकास के कारण वे रसायनों के प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। गर्भवती महिलाओं में रसायनों का संपर्क भ्रूण के विकास को प्रभावित कर सकता है। पर्यावरण पर भी रसायनों के दुष्प्रभाव गंभीर हैं।[2] कीटनाशक और उर्वरकों का उपयोग नॉन-टारगेट जीवों को नुकसान पहुंचा सकता है, जैसे मधुमक्खियों। औद्योगिक रसायनों का उत्सर्जन वायु और जल प्रदूषण का कारण बन सकता है, जिससे अम्ल वर्षा और जलवायु परिवर्तन हो सकता है।

रसायनों के संपर्क में आने से मानव स्वास्थ्य पर कई तरह के नकारात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं। कुछ रसायन तत्काल विषाक्तता का कारण बन सकते हैं, जबकि अन्य दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकते हैं। रसायनों के संपर्क में आने से होने वाली कुछ सामान्य स्वास्थ्य समस्याओं में शामिल हैं:-

श्वसन संबंधी समस्याएं: - कुछ रसायन, जैसे कि क्लोरीन और अमोनिया, फेफड़ों को नुकसान पहुंचा सकते हैं और सांस लेने में कठिनाई पैदा कर सकते हैं।

त्वचा की जलन: - कुछ रसायन, जैसे कि एसिड और क्षार, त्वचा को जला सकते हैं और जलन पैदा कर सकते हैं।

एलर्जी: - कुछ रसायन, जैसे कि निकेल और लेटेक्स, एलर्जी की प्रतिक्रिया पैदा कर सकते हैं।

कैंसर: - कुछ रसायन, जैसे कि बेंजीन और फॉर्मल्डेहाइड, कैंसर का कारण बन सकते हैं।

तंत्रिका संबंधी समस्याएँ: - कुछ रसायन, जैसे कि पारा और सीसा, तंत्रिका तंत्र को नुकसान पहुंचा सकते हैं और सीखने की अक्षमता, व्यवहार संबंधी समस्याएं और दौरे का कारण बन सकते हैं।

प्रजनन संबंधी समस्याएँ: - कुछ रसायन, जैसे कि पीसीबी और डाइऑक्सिन, प्रजनन क्षमता को कम कर सकते हैं और जन्म दोषों का कारण बन सकते हैं।

पर्यावरण पर रसायनों के दुष्प्रभाव

पर्यावरण पर रसायनों का प्रभाव अत्यन्त गहरा और व्यापक है। जल, भूमि, और वायु सभी पर्यावरण के विभिन्न तत्व हैं और इन पर रसायनों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। जल स्रोतों में रसायनों का बहाव, जैसे कीटनाशक और औद्योगिक अपशिष्ट, जल प्रदूषण का कारण बनता है। इस जल प्रदूषण के परिणामस्वरूप जलीय जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। मछलियों और अन्य जलीय जीवों के जीवित रहने की क्षमता कमजोर हो सकती है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बिगड़ता है। रसायनों का पर्यावरण पर भी कई तरह के नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। कुछ रसायन मिट्टी और पानी को दूषित कर सकते हैं, जबकि अन्य वायु प्रदूषण का कारण बन सकते हैं। रसायनों के पर्यावरण पर होने वाले कुछ सामान्य प्रभाव इस प्रकार है -

जल प्रदूषण - जल प्रदूषण रसायनों के कारण होने वाली एक और गंभीर समस्या है। औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि अपवाह और घरेलू सीवेज में मौजूद रसायन नदियों, झीलों और महासागरों में प्रवेश करते हैं। ये रसायन जलीय जीवन के लिए हानिकारक होते हैं और पीने के पानी की गुणवत्ता को कम करते हैं। भारी धातुएँ, जैसे कि पारा और सीसा, खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर सकती हैं, जिससे मनुष्यों और जानवरों में गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं। प्लास्टिक प्रदूषण भी एक बड़ी चिंता है, क्योंकि प्लास्टिक के छोटे टुकड़े जलीय जीवों द्वारा खाए जाते हैं और खाद्य श्रृंखला में ऊपर की ओर बढ़ते हैं।3

वायु प्रदूषण - वायु प्रदूषण रसायनों के कारण होने वाली एक व्यापक समस्या है। औद्योगिक उत्सर्जन, वाहनों से निकलने वाले धुएं और कृषि गतिविधियों से वायुमंडल में विभिन्न प्रकार के रसायन निकलते हैं। ये रसायन सांस लेने में कठिनाई, हृदय रोग और

कैंसर जैसी स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकते हैं। ग्रीनहाउस गैसें, जैसे कि कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन, जलवायु परिवर्तन में योगदान करती हैं, जिससे वैश्विक तापमान में वृद्धि और मौसम के पैटर्न में बदलाव होता है। ओजोन परत का क्षरण भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, जो पराबैंगनी विकिरण के स्तर को बढ़ाता है और त्वचा कैंसर और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का खतरा बढ़ाता है।

मृदा प्रदूषण - रसायन मिट्टी की उर्वरता और संरचना को बदल सकते हैं। कृषि में उपयोग किए जाने वाले कीटनाशक और उर्वरक मिट्टी में जमा हो जाते हैं, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता कम हो जाती है। यह मिट्टी को फसलों के लिए अनुपयुक्त बना सकता है और मिट्टी के जीवों को नुकसान पहुंचा सकता है।4

ओजोन परत का क्षरण - कुछ रसायन, जैसे कि क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी), ओजोन परत को नष्ट कर सकते हैं। ओजोन परत पृथ्वी को सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों से बचाती है।

ग्रीनहाउस प्रभाव - कुछ रसायन, जैसे कि कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन, ग्रीनहाउस प्रभाव में योगदान करते हैं। ग्रीनहाउस प्रभाव पृथ्वी के तापमान को बढ़ाता है, जिससे जलवायु परिवर्तन होता है।

रसायनों के दुष्प्रभावों को कम करने के उपाय

मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर रसायनों के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं। इन उपायों में शामिल हैं: -

रसायनों का सुरक्षित उपयोग: रसायनों का उपयोग करते समय, सभी सुरक्षा निर्देशों का पालन करना महत्वपूर्ण है। इसमें दस्ताने और मास्क पहनना और अच्छी तरह हवादार जगह में काम करना शामिल है।

रसायनों का उचित भंडारण: - रसायनों को सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जाना चाहिए ताकि वे बच्चों और पालतू जानवरों की पहुंच से बाहर हों।

रसायनों का उचित निपटान: - रसायनों को कभी भी नालियों में या कचरे में नहीं फेंकना चाहिए। रसायनों को उचित रूप से निपटाने के लिए, उन्हें रीसाइक्लिंग केंद्र या खतरनाक अपशिष्ट निपटान सुविधा में ले जाना चाहिए।

गैर विषैले विकल्पों का उपयोग: - जब भी संभव हो, रसायनों के गैर विषैले विकल्पों का उपयोग करना चाहिए। उदाहरण के लिए, सफाई उत्पादों के लिए सिरका और बेकिंग सोडा का उपयोग किया जा सकता है।

रसायनों के उपयोग को कम करना: - रसायनों के उपयोग को कम करने के लिए, हम कम रसायनों का उपयोग करके उत्पाद खरीद सकते हैं और अपने घरों और बगीचों में प्राकृतिक उत्पादों का उपयोग कर सकते हैं।

रासायनिक प्रदूषण के समस्या को सुलझाने के लिए कई उपाय करने की जरूरत है। नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग, प्रदूषण-मुक्त तकनीकों का विकास, और पर्यावरण के अनुकूल कृषि अपनाने जैसे कदम उठाए जा सकते हैं। नागरिकों को प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों के बारे में जागरूक करने के लिए जन जागरूकता कार्यक्रम भी महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ, सरकार और गैर-सरकारी संगठनों को कड़े मानदंड स्थापित करने चाहिए और सुरक्षित रसायनों के विकास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

निष्कर्ष

जिस प्रकार रसायनों ने हमारे जीवन को सरल और सुविधाजनक बनाया है, उसी तरह उनके दुष्प्रभावों ने स्वास्थ्य और पर्यावरण पर गंभीर खतरे उत्पन्न किए हैं। रसायनों का अत्यधिक उपयोग न केवल मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि यह पारिस्थितिकी तंत्र के साथ-साथ सभी जीवित प्राणियों पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। रसायनों के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए, हमें रसायनों का सुरक्षित उपयोग, उचित भंडारण और उचित निपटान करना चाहिए। हमें गैर विषैले विकल्पों का उपयोग करना चाहिए और रसायनों के उपयोग को कम करना चाहिए। इन उपायों से हम मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा कर सकते

हैं। रसायनों के मानव जीवन और पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कम करने के लिए जागरूकता बढ़ाना और शिक्षा प्रदान करना महत्वपूर्ण है। सरकारों, उद्योगों और व्यक्तियों को मिलकर काम करना चाहिए। इसलिए, आवश्यक है कि हम रासायनिक उपयोग में संतुलन बनाए रखें और सतत विकास की दिशा में प्रयासरत रहें। हमें यह समझना होगा कि स्वास्थ्य और वातावरण की सुरक्षा के बिना, मानवता का भविष्य खतरे में है।

संदर्भ

1. Agarwal, A., Singh, O. P., Sharma, R. K., & Shukla, P. (2010). Impact of pesticides on environment and human health. In Pesticides-Advances in chemical and botanical pesticides. IntechOpen.
2. WHO. (2016). Preventing disease through healthy environments: a global assessment of the burden of disease from environmental risks. World Health Organization.
3. National Oceanic and Atmospheric Administration. (2020). Water pollution and aquatic life. Retrieved from http://www.noaa.gov/.
4. Food and Agriculture Organization. (2019). Soil pollution: A hidden basic problem. Retrieved from http://www.fao.org/

पाश्चात्य अवधारणा में नारी विमर्श

डॉ० शुभा तिवारी

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय आर०एन०एम० महाविद्यालय, भटगाँव, जिला-सारंगढ़, बिलाईगढ़ (छ०ग०)

अंग्रेजी के 'डिस्कॉर्स' का हिन्दी अनुवाद विमर्श है। साहित्य में इधर करीब एक-डेढ़ दशक से दलित एवं स्त्री-विमर्श पर पर्याप्त चर्चाएँ हो रही हैं। आज जब कभी साहित्यिक परिचर्चा होती है तो 'विमर्श' शब्द स्वत: बहस के केन्द्र में आ जाता है। ''शब्द-प्रयोग की दृष्टि से विमर्श शब्द अत्यन्त प्राचीन है। इस शब्द की व्युत्पत्ति वि + मृद् + धञ् से मानी गई है। इसके कई अर्थ हैं : विचार-विनिमय, सोच-विचार, परिचर्चा, चर्चा, तर्कना, विपरीत निर्णय आदि-आदि।''[1] किन्तु आज यह विमर्श शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है उसे हिन्दी के आलोचक डॉ० नामवर सिंह ''मिशेल फूको के डिस्कॉर्स का अनुवाद''[2] मानते हैं। अंग्रेजी के 'डिस्कॉर्स' का अर्थ भी वार्तालाप संभाषण, बातचीत करना आदि होता है। अत: स्पष्ट है कि पश्चिमी 'डिस्कॉर्स' और भारतीय 'विमर्श' की अवधारणा में शब्दार्थगत पर्याप्त साम्य है, किन्तु आज इस शब्द का प्रयोग दलित एवं स्त्री शब्द के साथ होने पर एक विशिष्ट प्रकार की अर्थवत्ता देने लगता है। वस्तुत: इसकी अर्थवत्ता दलित एवं स्त्रियों की उपेक्षा एवं दुर्दशा के उन कारणों से संधान करने में है, जिनसे दलित एवं स्त्री जाति ने समाज में घोर उपेक्षा झेली है। उत्तर-आधुनिकता ने उत्तर संरचनावाद, नव मार्क्सवाद, नव व्यवहारवाद और फेमिनिज्म यानी स्त्रीवाद को जन्म दिया। वस्तुत: स्त्रीवाद ही एक प्रकार से स्त्री लेखन और विमर्श का प्रेरक रहा है, ऐसा लेखन जिसने स्त्री के बारे में गहराई से सोचने-समझने के लिए ध्यान आकृष्ट किया था।

इसमें सम्भवत: दो मत नहीं हो सकते कि आज के स्त्री-विमर्श का विषय है - स्त्री, उसका जीवन और जीवन की समस्याएँ। पश्चिम में यह आन्दोलन बहुत पुराना है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के विचारक अलनस्टोक्राफ्ट (1759-1873), हैरियट टेलर (1807-1858) और जॉन स्टुअर्ट मिल (1806-1873) उदारवादी नारीवाद के प्रमुख समर्थक के रूप में जाने जाते हैं। हम इतिहास से परिचित हैं और इस बात को जानते हैं कि नारी की अस्मिता के सवाल को सबसे ज्यादा बल देकर और किसी ने नहीं, दुनिया के समाजवादियों और मार्क्सवादियों ने ही उठाया थ। एंगेल्स की प्रसिद्ध पुस्तक 'परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' के एक वर्ष पहले 1883 में अगस्त बेबल की पुस्तक 'नारी और समाजवाद' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक ने सिर्फ जर्मनी में ही नहीं, पूरे यूरोप में एक प्रकार की सनसनी पैदा की थी। आज तक कई पीढ़ियों से यह पुस्तक मार्क्सवादियों को नारियों के प्रति एक नये दृष्टिकोण से दीक्षित करने की भूमिका अदा कर रही है। बेबेल की यह पुस्तक और कुछ नहीं एंगेल्स की, 'परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' की नारी संबंधी कुछ मूलभूत धारणाओं का ही किंचित विस्तार थी। एंगेल्स ने जॉन स्टुवर्ट मिल आदि विचाारकों के विपरीत साफ शब्दों में कहा कि ''यह एक बिल्कुल बेतुकी धारणा है जो हमें अठारहवीं सदी के जागरण काल से विरासत में मिली है कि समाज के आदिकाल से नारी पुरुष की दासी थी।''[3] लम्बे वैज्ञानिक पर्यवेक्षण के बाद एंगेल्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि ''आधुनिक वैयक्तिक परिवार, नारी की प्रत्यक्ष या परोक्ष घरेलू दासता पर आधारित है ..... स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी जाति फिर से सार्वजनिक उद्योग में प्रवेश करे और इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक परिवार पर गुण नष्ट कर दिया जाय।''[4]

यूरोप में पन्द्रहवीं सदी के इतालियन रेनेसां की चरम परिणति 18वीं सदी के ज्ञान प्रसार आन्दोलन के रूप में हुई, इस दौर में बुद्धिवाद चिन्तन के केन्द्र में आ गया तथा सभी परम्परागत संस्थाओं को कड़ी चुनौतियाँ दी गयी। इसी काल में अमरीकी और

फ्रांसीसी क्रांतियाँ हुई। स्वतंत्रता की अमरीकी घोषणा (1776) तथा मनुष्य और नागरिक के बारे में फ्रांसीसी घोषणा (1779) की तरह ऐतिहासिक दस्तावेजों के जरिये स्वतंत्रता और मानवीय विवेक के बारे में लम्बे अरसे से चली आ रही शास्त्रीय किस्म की बहस ने एक ऐसा रूप ग्रहण कर लिया, जिस पर ठोस ढ़ंग से सामाजिक कारवाइयों का प्रारंभ हो गया। जाहिर है कि इस पूरे दौर के यूरोपीय समाज के सभी हिस्सो पर गहरा असर पड़ा। स्त्रियाँ भी इस उथल-पुथल में अछूती नहीं रह सकती थीं। औरतों के अधिकार सम्बन्धी प्रश्न भी तभी से नए रूप में उभर कर सामने आने लगे। इसी काल में बाल्स्टानक्राफ्ट की प्रसिद्ध पुस्तक 'विन्डीकेशन ऑफ दी राइट्स ऑफ वुमेन' 1772 प्रकाशित हुई, जिसे आधुनिक काल में नारीवादी विचारों की सबसे पहली महत्त्वपूर्ण पुस्तक के रूप में स्वीकारा जाता है। उस दौर में और भी कई लेखिकाओं ने यूरोप में महिलाओं के अधिकारों के बारे में छोटी बड़ी पुस्तकें लिखीं। इसमें सबसे गौर करने लायक बात यह थी कि खुद महिलाओं ने ही पुरुषों से समानता की बात करते हुए कलम उठायी थी। एक बात पर सबसे अधिक बल दिया गया कि महिलाओं और पुरुषों के बीच फर्क उनकी निजी प्रकृति से नहीं बल्कि शिक्षा और महिलाओं को मिलने वाले सामाजिक परिवेश की वजह से है। लड़कियों को भी लड़कों की तरह शिक्षा दी जाये-यह मांग उठ गयी थी। मेरी बालस्टानक्राफ्ट ने मूलत: औरतों के बारे में रूसो के विचारों पर कड़ा प्रहार करते हुए पूरे यूरोप का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। रूसो को चुनौती देते हुए उन्होंने कहा कि - ''मैंने सम्भवत: रूसो की तुलना में कहीं ज्यादा संख्या में लड़कियों को उनके शैशव काल में देखा है।''[5] उन्होंने पहली बार महिलाओं के लिए समान अधिकार की मांग रखी। बालस्टानक्राफ्ट की इस किताब को कुछ हलकों द्वारा नारियों के अधिकारों की बाइबिल कहा जाता है। बाद के काल के नारी आन्दोलन के समूचे इतिहास को यदि हम देखे तो उन सब में निहित विचारों को किसी-न-किसी रूप में बालस्टानक्राफ्ट की अवधारणाओं के साथ जोड़कर देख सकते हैं।

नारियों के अधिकार की यह विचारधारा सेंट साईमन, फूरियर तथा राबर्ट ओवेल की तरह के काल्पनिक समाजवादियों के चिन्तन के जरिये और आगे बढ़ी। काल्पनिक समाजवादियों का नारीवादी चिन्तन सबसे समग्र रूप में विलियम थांपसन (1775-1844) की पुस्तक में देखा गया। जिन जेम्स मिल के लेख के उत्तर में थांपसन ने अपनी किताब लिखी थी। उन्हीं के बेटे जॉन स्टुवर्ट मिल ने 24 वर्ष बाद अपने पिता की ही नहीं बल्कि थाम्पसन की परम्परा को भी आगे बढ़ाया और महिलाओं की स्थिति के विषय में विश्व विख्यात पुस्तक 'On the subjection of women' लिखा। स्टुवर्ट मिल की इस पुस्तक को उदारवादी नारीवाद की एक श्रेष्ठ अभिव्यक्ति के रूप में जाना जाता है।

उन्नीसवीं सदी तक आते-आते, महिलाओं के लिए समान अधिकार की मांग एक प्रमुख राजनीतिक प्रश्न की शक्ल लेने लगी। शिक्षा, कानून, राजनीति आदि तमाम क्षेत्रों में एक आन्दोलन-सा शुरू हो गया तथा महिलाओं के लिए मतदान के अधिकार की मांग ने एक जन अभियान का रूप ले लिया। इस दौर के प्रमुख नारीवादी विचारकों में मुख्य रूप से इंग्लैण्ड के जॉन स्टुवर्ट मिल तथा उनकी पत्नी हेरियट टेलर तथा अमरीका की एलिजावेथ केडी स्टैन्टन का जिक्र किया जा सकता है। जिनके लेखन में इस पूरे दौर के नारीवादी सोच की सभी प्रमुख बातें निहित है। स्टैन्टन ने 'सेनेकाफाल कान्वैशन ऑफ 1848' लिखा, जिसमें महिलाओं के लिए मतदान का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, रोजगार का अधिकार तथा राजनीति और गिरिजाघरों में सार्वजनिक भागीदारी के अधिकार की मांग उठायी थी। 19वीं शदी के अंत तक आते-आते यूरोप में नारी केन्द्रित चिन्तन और सामाजिक आन्दोलनों ने एक ऐसी शक्ल अख्तियार कर ली थी, जिसमें से नारी-मुक्ति के परवर्ती सभी प्रकार की सोंच के स्रोत को पाया जा सकता है।

नारी केन्द्रित चिन्तन की इस लम्बी परम्परा पर ही, समाज में नारियों की स्थिति के बारे में मार्क्सवादी चिन्तन टिका हुआ है। यह सच है कि खुद मार्क्स ने यौन-उत्पीड़न को कभी भी अपने अध्ययन का प्रमुख विषय नहीं बनाया। वे अक्सर यह अवश्य कहते थे कि 'समाज में नारी की स्थिति सामाजिक प्रगति का सूचकांक है।''[6] लेकिन अपने आप में यह कोई नई बात नहीं थी। मिल की पुस्तक "On the Subjection of Women" में भी इसे पाया जा सकता है। लेकिन चूँकि मार्क्स ने पूरे मानव इतिहास और समाज का व्यापक विश्लेषण करने वाली एक विचारधारा दी थी, इसलिए आधुनिक नारीवादी-विमर्श में भी मार्क्सवादी विचारधारा ने एक काफी अहम् भूमिका अदा की। इस मामले में खास तौर पर एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' और

अगस्त बेबेल की पुस्तक 'नारी और समाजवाद' को नारीवादी विमर्श में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान के रूप में देखा जा सकता है।

अठारहवीं सदी के अंतिम दिनों तथा उन्नीसवीं सदी में मेरी बाल्स्टानक्राफ्ट, काल्पनिक समाजवादियों, विलियम थाम्पसन, जेम्स मिल से लेकर सेनेकाफाल कन्वेशन तथा जॉन स्टुवर्ट मिल तक के प्रारंभिक नारीवादियों ने नारियों के जनतांत्रिक अधिकारों की जो मांग उठायी थी, उन्नीसवीं सदी के अंत तक उनमें अधिकांश मांगों को ब्रिटेन तथा अमरीका में कानूनी तौर पर मान लिया गया था। यद्यपि वास्तविक समानता का अधिकार अभी बहुत दूर की चीज थी, लेकिन महिलाओं में शिक्षा का विस्तार हुआ, ऑफिस अदालतों में महिलाएँ काम करने लगीं। ब्रिटेन, अमरीका का संवैधानिक इतिहास इस बात का गवाह है कि उन्नीसवीं सदी के अंत तक विभिन्न विषयों पर ऐसे कानून पारित किए गए, जिनमें मुख्यत: महिलाओं से जुड़ी समस्याओं को उठाया गया था। कुल मिलाकर उन्नीसवीं सदी के अंत तक स्थिति यह बनी कि महिलाएँ अब सार्वजनिक जीवन और राजनैतिक बहसों से बाहर नहीं रह गयी थीं।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में ब्रिटेन और अमरीका के महिला आन्दोलन के लिए मतदान का अधिकार एक प्रमुख मांग बन गया था। महत्त्व की बात यह है कि अब मतदान का अधिकार ही अपने आप में अंतिम लक्ष्य नहीं रह गया, बल्कि वह महिलाओं की जिन्दगी में भारी रूपान्तरण की प्रक्रिया का एक अंग बन गया। ''मतदान के अधिकार के लिए लड़ाई के जरिये, मतदानवादियों ने महिलाओं की जिन्दगी में पूर्ण रूपांतरण से कम की लड़ाई नहीं शुरू की थी।''[7] महिलाओं के लिए मतदान की मांग के फलस्वरूप जनतांत्रिक आन्दोलन के अंदर ही एक जनतंत्र-विरोधी विचारधारा भी पैदा हो गयी। इंग्लैण्ड और अमरीका में जब महिलाओं के मतदान का आन्दोलन शुरू हुआ था, उस समय तक सार्थक मताधिकार की स्वीकृति नहीं मिली थी, अर्थात् हर वयस्क नागरिक को मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं हो सका था, वह भले ही स्त्री हो या पुरुष, स्त्रियों के तो किसी भी हिस्से को यह प्राप्त नहीं था। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक तो यह था कि स्त्रियों को मतदान के अधिकार का प्रश्न सार्थक मताधिकार की मांग के साथ अभिन्न रूप से जुड़ जाता। लेकिन धरातल पर यह देखा गया कि स्त्रियों के मतदान के आंदोलन का भी एक हिस्सा सभी नारियों के मतदान के अधिकार के पक्ष में नहीं था। अमरीका की नारीवादी आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण लेखिका कैरी चैपमैन कैन्ट (1858-1947) थी। उनकी यह मांग काफी उद्धृत की जाती रही है कि - ''गंदी बस्तियों से मतदान का अधिकार छीनकर औरतों को दे दो।''[8] मतदान का अधिकार समाज के सिर्फ कुलीन तबके को प्राप्त हो, यूरोपीय नारीवाद का एक हिस्सा भी इसका समर्थक था। पश्चिम में नारीवादी आंदोलन की इन भिन्न धाराओं के उदय का इतिहास इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि नारी-मुक्ति की सारी लम्बी चौड़ी बातों के बावजूद नारीवाद अनिवार्य रूप में हमेशा प्रगतिशील नहीं रहा है। मतदान के अधिकार के आन्दोलन के वक्त नारीवादी आन्दोलन की अलग-अलग धाराओं का यह यथार्थ बाद के पूरे इतिहास में बार-बार जाहिर हुआ है।

इसी सिलसिले में ब्रिटेन की नारीवादी नेता, क्रिस्टाबेल पैंकहर्स्ट की भूमिका का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्हें नारीवाद की आधुनिक सेक्स केन्द्रित धारा का एक मूल स्रोत कहा जाता है। उनका तर्क था कि - ''क्यों महिलाएँ लेबर पार्टी पर विश्वास करें क्योंकि मजदूर वर्ग का पुरुष भी महिलाओं के प्रति उतना ही अन्याय पूर्ण है, जितना कि अन्य वर्ग का पुरुष।''[9] अपनी इसी सोंच पर चलते हुए राजनीतिक दृष्टि से क्रिस्टावेल पैंकहर्स्ट संरक्षणवादी हो गयी और महिलाओं के मामले में यह मानने लग गयी कि महिलाओं का उत्पीड़न मुख्य रूप से होता है। उन्होंने नारा दिया था - ''महिलाओं को मतदान का अधिकार हो और पुरुष सतीत्व का पालन करे।''[10]

1930 के दशक तक दुनिया के नारीवादी आंदोलन का यह एक दौर था। इस दौर में समाजवादी देशों के साथ पश्चिम के पूँजीवादी देशों में भी महिलाओं को व्यापक राजनीतिक और कानूनी समानता के अधिकार प्राप्त हुए। इस प्रकार कमोवेश लगभग दो तीन दशकों का एक ऐसा दौर बीता जिसमें पहले की तरह का कोई सक्रिय नारीवादी आंदोलन नहीं दिखाई देता। नारी जीवन में जो भी परिवर्तन आ रहे थे उसके मूल में सामाजिक विकास का स्वत: स्फूर्त प्रभाव कहीं ज्यादा दिखाई पड़ता है। इस प्रकार दो-तीन दशकों के बीतने के साथ क्रमश: नये सामाजिक यथार्थ की गहराई से जाँच की जाने लगी और कानून तथा सिद्धांत के स्तर पर घोषित समानता के लक्ष्यों के विपरीत व्यवहार के स्तर पर सामाजिक जीवन में महिलाओं के प्रति जो भेदभाव बरकरार है, उस पर ध्यान दिया जाने लगा। राजनीति, रोजगार, वेतन आदि के समान अधिकार पर, तमाम तरह के प्रश्नों ने सर उठाना शुरू कर

दिया और फिर एक बार नये विद्रोही तेवर के साथ नारीवाद का उभार दिखाई देने लगा, जो नवजागरण, ज्ञान-प्रसार से लेकर 19वीं और 20वीं सदी के प्रथमार्द्ध तक की सारी उपलब्धियों पर प्रश्न चिन्ह् लगाने लगा। 30 के दशक से लेकर 60 के दशक तक नारीवादी आन्दोलन के मौन रूप को भी पुरुष प्रधान विचारधाराओं के दमन का परिणाम बताया जाने लगा और नये रूप में नारी मुक्ति की आवाज उठने लगी।

60 के दशक में अन्य कई प्रकार के कथित विद्रोही आंदोलनों के साथ ही उस कथित आधुनिक नारीवादी आंदोलन का जन्म हुआ जिसकी अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं को हम पूरे पूंजीवादी विश्व में फैलते हुए देख सकते हैं। इस नये दौर में, फिर एक बार कुछ पुराने प्रश्नों को भी उठाया गया। संभवत: इसकी मूल वजह यह भी थी कि नारीवादी आंदोलन की नयी पीढ़ी काफी हद तक इतिहास बोध से शून्य थी तथा नारीवादी विचारों और इतिहास की समृद्ध परम्परा से अपरिचित थी।

सिमोन द बोउवार के आगमन ने नारी-विमर्श को एक नया आयाम दिया। इनकी 'दि सेकेन्ड सेक्स' पुस्तक से नारी-विमर्श की विधिवत चर्चा की शुरूआत हो गयी। खुद बोउवार ने यह लिखा कि एक नारी होने के नाते व्यक्तिगत रूप से उन्हें कभी कोई कठिनाई नहीं आई, उल्टे 20 वर्ष की उम्र से ही उन्हें दोनों लिंगों के लाभ मिले। सार्त्र के साथ वे जुड़ी रहीं, लेकिन कभी उनसे न शादी की और न घर ही बसाया। सार्त्र के अन्य कई औरतों से सम्बन्ध थे, उसी प्रकार सिमोन के भी सार्त्र के अलावा दूसरे पुरुषों से सम्बंध थे। उन्होंने अपना अधिकांश जीवन होटलों में बिताया और कहते हैं कि फ्रांसीसी बुद्धिजीवियों की पुरुष प्रधान दुनिया में सिमोन ने भी पुरुष की भांति जिन्दगी जी थी। सिमोन ने खुद को जानने के लिए यह जरूरी समझा कि पहले यह जानूं कि औरत क्या होती है। इसी क्रम में सिमोन ने औरतों से सम्बद्ध साहित्य, इतिहास, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र आदि की पुस्तकों का अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि अन्य कई औरतों के साक्षात्कार लिए और उन्हें जानने समझने की कोशिश की। इस पूरे उपक्रम का ही परिणाम था - उनकी पुस्तक 'दि सेकेन्ड सेक्स'। अपने पूरे अध्ययन के बीच सिमोन ने यह दिखाया है कि ''स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बनायी जाती है।''[11] सिमोन द बोउवार की इस पुस्तक पर सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन के विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

एलिस श्वेंजर के साथ अपनी एक संवाद शृंखला में सिमोन द बोउवार ने स्वीकार किया कि सन् 1949 में जब उनकी 'द सेकेन्ड सेक्स' प्रकाशित हुई, तो पहले उसकी तीखी आलोचना हुई। फिर जल्दी ही यूरोप में उसे नारीवादी आन्दोलन का बाइबिल समझा जाने लगा। इसके बावजूद वे नारीवादी नहीं थीं। इसके कारण का उल्लेख करते हुए वे कहती हैं - क्योंकि उस समय मेरा यह विश्वास था कि औरत की समस्याएँ समाजवाद की प्रस्थापना और विकास के साथ हल हो जाएँगी। नारीवादी होने से मेरा तात्पर्य यह है कि कुछ खास स्त्री मुद्दों पर वर्ग संघर्ष से हटकर स्वतंत्र रूप से संघर्ष करना। मैं आज भी अपने इसी विचार पर कायम हूँ। मेरी परिभाषा के अनुसार ''स्त्रियाँ और वे पुरुष भी नारीवादी हैं जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था में औरतों की स्थिति में परिवर्तन के लिए संघर्षरत हैं। यह सच है कि पूरे समाज की मुक्ति के बगैर स्त्रियों की पूर्ण मुक्ति संभव नहीं है, लेकिन फिर भी नारीवाद इस लक्ष्य के लिए आज और अभी से संघर्षरत है। इस अर्थ में मैं नारीवादी हूँ क्योंकि मुझे लगता है कि औरत की मुक्ति के लिए हमें आज और अभी संघर्ष करना चाहिए, इससे पहले कि समाजवाद का हमारा स्वप्न पूरा हो.....।''[12] सन् 72 में दिए गए अपने इस साक्षात्कार में सिमोन फ्रेंच वामपंथियों और सोवियत रूस के अपने अनुभवों को भी 'द सेकेन्ड सेक्स' लिखे जाने के तेईस वर्ष बाद अपने को नारीवादी घोषित करने के मूल में स्वीाकर करती हैं। अपने अनुभव के आधार पर वे इसका उल्लेख करने में कोई संकोच नहीं बरततीं कि वामपंथियों में भी स्त्री-मुक्ति के सवाल पर कुछेक अपवादों को छोड़कर, आम रवैया काफी विरोधी, आक्रामक और शत्रुतापूर्ण है।

अपनी पुस्तक 'द सेकेन्ड सेक्स' में सिमोन प्राय: दुनिया में सब कहीं स्त्री के प्रति अपनाए गए दोहरे मानदण्डों की भर्त्सना करती है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि स्त्री की मुक्ति का मार्ग, स्त्री के अपने संघर्ष से ही निकलेगा। सिमोन मानती है कि स्त्री और उसके अंतर्संसार के बारे में स्त्री ही अच्छी तरह से जान सकती है। इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि उसकी अपनी जड़े भी नहीं है। अन्य मानव प्राणियों की भांति स्त्री भी एक स्वतंत्र और स्वायत्त जीव है, लेकिन सदियों से पुरुष अपनी जरूरतों और स्वार्थों के अनुकूल उसे गढ़ता रहा है।

अस्सी के दशक के पश्चात तो विभिन्न संघटनाओं का काल आ जाता है, जिसमें उत्तर का उपसर्ग लगा हुआ है, जैसे - उत्तर औद्योगिकवाद, उत्तर मानववाद और उसी क्रम में उत्तर नारीवाद। इन तमाम उत्तर युक्त वादों को अपने में समाहित कर अवतरित हुआ

– उत्तर आधुनिकतावाद। गायत्री स्पीवाक (1988) के अनुसार इस उत्तर औपनिवेशिक दुनिया में स्त्री-विमर्श से उत्पन्न जटिल समस्याओं का सामना केवल उत्तर आधुनिक तरीके से ही किया जा सकता है। इसके अनुसार हम कला, मूल्यबोध, नीतिशास्त्र और विज्ञान को अलग-अलग संवर्गो में बांटकर उनपर चर्चा नहीं कर सकते। विज्ञान वस्तु परक हो नहीं सकता, क्योंकि वैज्ञानिक अन्वेषण में व्यक्ति का दृष्टिकोण भी अन्तर्निहित रहता है। निरपेक्ष सत्ता जैसी कोई चीज नहीं। नारीवाद आधे मन से ही सही, उत्तर आधुनिक मान्यताओं से कटकर अपना अस्तित्व नहीं बचा सकता था। क्योंकि उत्तर आधुनिकतावादियों के सवाल और चुनौतियाँ केन्द्रीयकरण की उसी सत्तात्मक वृत्ति को संबोधित की जा रही हैं, जिसके द्वारा किए दमन को स्त्रियाँ भी झेल रही हैं। ऐसी परिस्थिति में नारीवाद को क्या करना चाहिए। दो विकल्प हैं- पितृसत्तात्मक श्रेणीकृत समाज में अपना स्पेश कायम करे या फिर मातृसत्तात्मक व्यवस्था में लौट जाये। तोड़ दे उस सड़ी-गली व्यवस्था को, सभ्यता की उपलब्धि को। यह ठीक है कि पित्तृसत्तात्मक समाज कई मायने में सुरक्षित है किन्तु स्त्री सदा छली गई है- उसे किसी सुरक्षित आधारवाद का मोह नहीं पालना है।

पश्चिमी समाज में नारियों की स्थिति अब काफी भिन्न है। प्रारंभिक नारीवादियों ने जो तमाम सवाल उठाये थे, उनमें से काफी कुछ अब उस समाज के नैसर्गिक अंग बन चुके हैं। लेकिन समूची दुनिया की परिस्थिति एक समान नहीं है, दुनिया के अनेक देशों में महिलाएँ न्यूनतम नागरिक अधिकारों से आज भी वंचित हैं। अनेक देशों में धार्मिक तत्ववाद के उभार ने महिलाओं की स्थिति को काफी सोचनीय बनाया है। कई देशों में महिलाओं के अधिकारों का हनन किया जा रहा है। इसका सबसे ताजा उदाहरण अफगानिस्तान है। यह भी सच है कि जिन देशों में भी धार्मिक तत्ववाद या तानाशाही सर उठाती है, वहाँ राजनीतिज्ञों तक का नारियों के प्रति क्या दृष्टिकोण होता है, इसकी एक झलक ईरान, अफगानिस्तान में देखने को मिलती है। हाल के तमाम अनुभवों से भी पश्चिमी देशों में नारीवादी आन्दोलन की तमाम धाराओं के बीच से उठने वाले अनेक प्रश्नों की प्रासंगिकता साफ दिखाई देने लगी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नारी प्रश्न की उपेक्षा करके कोई भी सामाजिक रूपांतरण के आन्दोलन में अपनी सार्थक भूमिका अदा नहीं कर सकता।

कुल मिलाकर पश्चिमी स्त्री-विमर्श ने अपने आन्दोलनों के माध्यम से कुछ अधिकार प्राप्त कर लिए हैं। किन्तु आज भी पश्चिम की स्त्रियाँ स्त्री मुक्ति के लिए अपनी आवाज बुलंद कर रही हैं। आर्थिक स्वतंत्रता तो उन्हें मिल गयी है किन्तु दैहिक स्वतंत्रता अभी नहीं मिल पायी है। आज उनका आन्दोलन दैहिक स्वतंत्रता के लिए चल रहा है। पश्चिम की स्त्रियाँ यह चाहती हैं कि जिस तरह पुरुष वर्ग कई स्त्रियों से संबंध रखते हैं उसी तरह वे भी कई पुरुषों से संबंध रखें। फलतः उनका संघर्ष अपनी दैहिक-मुक्ति के लिए इक्कीसवीं शताब्दी में चल रहा है, देखें कब उन्हें सफलता मिलती है। यह समय संदर्भ की बात है।

संदर्भ –

1. संस्कृत-हिन्दी कोष – वामन शिवराम आप्टे, रचना प्रकाशन जयपुर, 2004, पृ0 सं0 . 946
2. हंस, अगस्त, 2004, पृ0 सं0 . 195
3. मार्क्स-एंजेल्स संकलित रचनाएँ, प्रगति प्रकाशन, मास्को भाग-3, पृ0 सं0 . 226
4. वही, पृ0 सं0 . 227
5. विन्डीकेशन ऑफ दी साइट्स ऑफ वुमेन – मेरी वालस्टानक्राफ्ट, पृ0 सं0 . 226
6. नारी प्रश्न – सरला महेश्वरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 . 19
7. सेक्स एण्ड सफरेज इन ब्रिटेन – एस केन्ट, प्रकाशन, 1990 पृ0 सं0 . 3
8. द फैमनिस्ट वुमेन्स, इमैन्सीपेसन मुवमेन्ट इन यूरोप, अमरीका एण्ड आस्ट्रोएशिया – आर० इवेन्स, 1842. 1920ए पृ0 सं0 . 204
9. राइज अप वुमेन द लिमिटेंड कम्पीगेन ऑफ वुमेन सोसल एण्ड पोलिटिकल यूनियन – ए० रोसेल, 1903-1914, पृ0 सं0 . 23
10. वही, पृ0 सं0 . आमुख
11. स्त्री : उपेक्षिता – प्रस्तुति डॉ० प्रभा खेतान, हिन्द पॉकेट बुक्स संस्करण, 2002ए पृ0 सं0 . 24
12. स्त्री के पास खोने के लिए कुछ नहीं है – प्रभा खेतान, पृ0 सं0 . 39।

भारतीय कला वास्तुकला का इतिहास

डॉ० दिवाकर त्रिपाठी

सहायक आचार्य- इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

सारांश

भारत की वास्तुकला का इतिहास हजारों वर्षों पुराना है। भारतीय कला और वास्तुकला कई चरणों से गुजरी है: शैल कला और प्रारंभिक बस्ती डिजाइन की विशेषताएं, प्रागैतिहासिक काल के अनुमान; सिंधु घाटी सभ्यता की परिष्कृत शहरी योजना; स्तूप और चौत्य, चौत्य हॉल, आदिम बौद्ध मठों के विहार हॉल; प्रारंभिक जैन धर्म की सार्वजनिक और घरेलू वास्तुकला; गुप्त वास्तुकला और मूर्तिकला; हिंदू मंदिर वास्तुकला का प्रारंभिक और मध्यकालीन काल; और इंडो इस्लामिक वास्तुकला का विकास। उन्होंने विभिन्न राजवंशों के तहत और समय के साथ विभिन्न धर्मों, हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और बाद में इस्लाम और सिख धर्म के तहत अद्वितीय स्थापत्य रूप विकसित किए हैं। गुप्त मंदिर और अजंता और एलोरा जैसे गुफा परिसर मूर्तिकला और भित्ति चित्रकला समृद्धि प्रदर्शित करते हैं जो आध्यात्मिक और कलात्मक उत्कृष्टता को दर्शाते हैं। यूरोपीय शैलियाँ स्थानीय सौंदर्यशास्त्र के साथ घुल-मिल गईं और औपनिवेशिक काल में सुर्खियों में आईं: विक्टोरिया मेमोरियल में दिखाई देने वाली ऐतिहासिक संरचनाएँ इसी का उदाहरण हैं। यह ऐतिहासिक सम्मिश्रण आधुनिक भारतीय वास्तुकला में, पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों के मिश्रित उपयोग में, आज भी परिलक्षित होता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि प्राचीन मूर्तियों से लेकर आधुनिक चित्रकलाओं तक, भारतीय कला भी इन स्थापत्य प्रवृत्तियों को एक समृद्ध, फिर भी विकसित होती दृश्य भाषा के रूप में प्रतिबिंबित करती है जो भारत की आध्यात्मिकता, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता का प्रतिबिंब है। यह विरासत सहस्राब्दियों से भारतीय कलात्मकता की रचनात्मक और अनुकूलनशील अभिव्यक्ति की दृढ़ता को प्रदर्शित करती है।

यह लेख प्राचीन भारत में वास्तुकला, मंदिर के डिजाइन और कला के साथ-साथ हड़प्पा और ऐतिहासिक कला और लेखन के बीच निरंतरता से सम्बंधित है। यह उत्तर-पश्चिम भारत (2000 ईसा पूर्व) की संरचनाओं पर ध्यान आकर्षित करके उत्तर-हड़प्पा, भारत की पूर्व-बौद्ध कला में अंतराल को भरता है। भारतीय वास्तु की विशेषता यहाँ की दीवारों के उत्कृष्ट और प्रचुर अलंकरण में है। भित्तिचित्रों और मूर्तियों की योजना, जिसमें अलंकरण के अतिरिक्त अपने विषय के गंभीर भाव भी व्यक्त होते हैं, भवन को बाहर से कभी कभी पूर्णतया लपेट लेती है।

मूल शब्दः भारतीय, कला, वास्तुकला, स्तंभ, स्तूप, गुफा वास्तुकला, मंदिर निर्माण, सांस्कृतिक विरासत, मानव प्रतिभा

प्रस्तावना

भारतीय कला और वास्तुकला का इतिहास अत्यधिक समृद्ध और विविध है, जो सहस्राब्दियों से विकसित हुआ है और जिसमें सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर आधुनिक काल तक की विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और शासनों का गहरा प्रभाव रहा है। यह इतिहास न केवल स्थापत्य शैलियों (जैसे नागर, द्रविड़, गुफा और चट्टान काटकर बनाई गई वास्तुकला) और कलात्मक अभिव्यक्तियों (जैसे चित्रकला, मूर्तिकला) में विविधता को दर्शाता है, बल्कि प्राचीन भारत की सांस्कृतिक विरासत और मानव प्रतिभा का भी प्रमाण है।[1]

भारतीय कला और वास्तुकला के प्रमुख पहलू

- सिंधु घाटी सभ्यता: भारतीय कला और वास्तुकला की शुरुआत लगभग 4,000 साल पहले सिंधु घाटी सभ्यता में हुई थी, जिसमें उन्नत जल निकासी प्रणाली और ईंटों का कुशल उपयोग देखा जा सकता है।

- मौर्य काल: इस काल में लकड़ी की शिल्पकला का विकास हुआ और बाद में अशोक के शासनकाल में पत्थर की इमारतों का निर्माण हुआ, जिसमें स्तंभ, गुफाएँ और स्तूप शामिल थे, जैसे साँची का महान स्तूप।
- धार्मिक प्रभाव: बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म के उदय ने मूर्तिकला, गुफा वास्तुकला और मंदिर निर्माण को बढ़ावा दिया।
- मुगल काल: मुगल काल में इस्लामी और फारसी तत्वों का भारतीय कला और वास्तुकला में समावेश हुआ, जिससे हुमायूँ का मकबरा और ताजमहल जैसी उत्कृष्ट कृतियाँ बनीं, जिनमें लाल बलुआ पत्थर और संगमरमर का व्यापक उपयोग हुआ।
- ब्रिटिश शासन: इस दौरान, भारतीय कला पश्चिमी शैलियों से प्रभावित हुई और यूरोपीय दर्शकों को आकर्षित करने के लिए एक रूमानी शैली विकसित हुई।
- आधुनिक काल: आज, भारतीय वास्तुकला में पारंपरिक और आधुनिक शैलियों का मिश्रण देखा जाता है, जैसा कि नए संसद भवन में देखा जा सकता है, जिसमें सनातन परंपरा और संस्कृति से जुड़ी कलाकृतियाँ शामिल हैं।

विभिन्न शैलियाँ:

- नागर शैली: विस्तृत मूर्तियों के साथ उत्तरी वक्ररेखीय मीनारें।
- द्रविड़ वास्तुकला: जटिल नक्काशी के साथ दक्षिणी पिरामिड के आकार के टॉवर।
- गुफा वास्तुकला: अजंता और एलोरा जैसे चट्टान पर नक्काशीदार मंदिर और मठ।
- चट्टान काटकर बनाई गई वास्तुकला: बाराबर गुफाओं जैसे ठोस चट्टान संरचनाएं।

वास्तुशास्त्र:

प्राचीन भारत में वास्तुशास्त्र पर कई महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गए, जिनमें विश्वकर्मा और मय जैसे वास्तुकारों का उल्लेख है, जो स्थापत्य तकनीक के उच्च विकास को दर्शाते हैं।

संक्षेप में, भारतीय कला और वास्तुकला का इतिहास, विभिन्न युगों में विकसित हुई शैलियों, तकनीकों और सांस्कृतिक प्रभावों का एक जटिल ताना-बाना है, जो आज भी विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाए हुए है।

भारत की वास्तुकला का इतिहास और महत्वपूर्ण निर्माण

कभी-कभी यह याद दिलाना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम वह सभ्यता हैं जो कम से कम 4,500 वर्षों तक फैली हुई है और जिसने हमारे जीवन और समाज में लगभग हर चीज पर अपना प्रभाव छोड़ा है। कल्पना कीजिए कि यूनेस्को ने 830 विश्व धरोहर स्थलों को सूचीबद्ध किया है, जिनमें से 26 भारत में हैं। यह छह अन्य देशों से कम है। क्या यह इस प्राचीन भूमि, लोगों की रचनात्मक प्रतिभा और उद्योग और प्रकृति द्वारा दिए गए उपहारों का एक ठोस प्रमाण नहीं है। चाहे वह एक छोर पर भीमबेटका की पूर्व-ऐतिहासिक रॉक कला हो या असंख्य महल, मस्जिद, मंदिर, गुरुद्वारे, चर्च या मकबरे और विशाल शहर और गंभीर स्तूप।[2]

दिल्ली, आगरा, जयपुर, मुंबई और कलकत्ता आदि शहरों से गुजरते हुए आपको कई खूबसूरत इमारतें मिलती हैं। कुछ स्मारक, महल, मंदिर, चर्च, मस्जिद और स्मारक हैं। उनमें से बहुतों की नींव ईसा मसीह से पहले और बहुतों की मसीह के आने के बाद थी। कई पीढ़ियां इस वास्तुकला का हिस्सा रही हैं जो हमें उस गौरवशाली अतीत की याद दिलाती है जो हमारा रहा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कला और वास्तुकला भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कई विशिष्ट विशेषताएं जो आज हम वास्तुकला में पाते हैं, भारतीय इतिहास की लंबी अवधि में विकसित हुई हैं। भारतीय वास्तुकला का सबसे पुराना और सबसे उल्लेखनीय प्रमाण हड़प्पा सभ्यता के शहरों में मिलता है जो एक अद्वितीय नगर योजना का दावा करते हैं। हड़प्पा काल के बाद की स्थापत्य शैली को हिंदू, बौद्ध और जैन के रूप में वर्गीकृत किया गया है, मध्ययुगीन काल में फारसी और वास्तुकला की स्वदेशी शैलियों का संश्लेषण देखा गया। इसके बाद औपनिवेशिक काल ने पश्चिमी

स्थापत्य रूपों का प्रभाव भारत में लाया। इस प्रकार भारतीय वास्तुकला स्वदेशी शैलियों और बाहरी प्रभावों का एक संश्लेषण है जिसने इसे अपनी अनूठी विशेषता प्रदान की है। भारत के स्थापत्य की जड़ें यहाँ के इतिहास, दर्शन एवं संस्कृति में निहित हैं। भारत की वास्तुकला यहाँ की परम्परागत एवं बाहरी प्रभावों का मिश्रण है।

भारतीय वास्तु की विशेषता यहाँ की दीवारों के उत्कृष्ट और प्रचुर अलंकरण में है। भित्तिचित्रों और मूर्तियों की योजना, जिसमें अलंकरण के अतिरिक्त अपने विषय के गंभीर भाव भी व्यक्त होते हैं, भवन को बाहर से कभी कभी पूर्णतया लपेट लेती है। इनमें वास्तु का जीवन से संबंध क्या, वास्तव में आध्यात्मिक जीवन ही अंकित है। न्यूनाधिक उभार में उत्कीर्ण अपने अलौकिक कृत्यों में लगे हुए देश भर के देवी देवता, तथा युगों पुराना पौराणिक गाथाएँ, मूर्तिकला को प्रतीक बनाकर दर्शकों के सम्मुख अत्यंत रोचक कथाओं और मनोहर चित्रों की एक पुस्तक सी खोल देती हैं।[3]

सिन्धुघाटी का स्थापत्य

दो-तीन हजार वर्ष ई. पू. विकसित सिंधु घाटी सभ्यता की खोज से एक आश्चर्यजनक तथ्य प्रकाश में आया है कि भारत की प्राचीनतम कला सौन्दर्य की दृष्टि से ऐसी ही शून्य थी, जैसी आजकल की कोई भी सभ्यता। जब आजकल की कोई भी सभ्यता जागरण की अँगड़ाई भी न ले पाई थी तब भारत की यह कला इतनी विकसित थी। इन बस्तियों के निर्माताओं का नगर नियोजन संबंधी ज्ञान इतना परिपक्व था, उनके द्वारा प्रयुक्त सामग्री ऐसी उत्कृष्ट कोटि की थी और रचना इतनी सुदृढ़ थी कि उस सभ्यता का आरंभ बहुत पहले, लगभग चार पाँच हजार वर्ष, ईसा पूर्व, मानने को बाध्य हो पड़ता है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से प्राप्त अवशेष तत्कालीन भौतिक समृद्धि के सूचक हैं और उनमें किसी मंदिर, देवालय आदि के अभाव से यह अनुमान होता है कि वहाँ धार्मिक विचारों का कुछ विशेष स्थान न था, अथवा यदि था तो वह निराकार शक्ति में आस्था क रूप में ही था। फिर भी, विलक्षण प्रतिभा और उत्कृष्ट वास्तुकौशल से आद्योपांत परिप्लावित भारतीय जनजीवन के इतिहास का ऐसा आडंबरहीन आरंभ आश्चर्यजनक होने के साथ-साथ और अधिक गवेषण की अपेक्षा रखता है, जिससे आर्य सभ्यता से, जो इससे भी प्राचीन मानी जाती है, इसका संबंध जोड़नेवाली कड़ी का पता लग सके।

प्राचीन भारतीय स्थापत्य

सीमित आवश्यकताओं में विश्वास रखनेवाले, अपने कृषि कर्म और आश्रमजीवन से संतुष्ट आर्य प्रायरू ग्रामवासी थे और शायद इसीलिए, अपने परिपक्व विचारों के अनुरूप ही, समसामयिक सिंधु घाटी सभ्यता के विलासी भौतिक जीवन की चकाचौंध से अप्रभावित रहे।

कुछ भी हो, उनके अस्थायी निवासों से ही बाद के भारतीय वास्तु का जन्म हुआ प्रतीत होता है। इसका आधार धरती में और विकास वृक्षों में हुआ, जैसा वैदिक वाङ्मय में महावन, तोरण, गोपुर आदि के उल्लेखों से विदित होता है। अतरू यदि उस अस्थायी रचनाकाल की कोई स्मारक कृति आज देखने को नहीं मिलती, तो कोई आश्चर्य नहीं।

धीरे-धीरे नगरों की भी रचना हुई और स्थायी निवास भी बने। बिहार में मगध की राजधानी राजगृह शायद 8वीं शती ईसा पूर्व में उन्नति के शिखर पर थी। यह भी पता लगता है कि भवन आदिकालीन झोपड़ियों के नमूने पर प्रायः गोल ही बना करते थे। दीवारों में कच्ची ईंटें भी लगने लगी थीं और चौकोर दरवाजे खिड़कियाँ बनने लगी थीं।

बौद्ध लेखक धम्मपाल के अनुसार, पाँचवीं शती ईसा पूर्व में महागोविन्द नामक स्थपति ने उत्तर भारत की अनेक राजधानियों के विन्यास तैयार किए थे। चौकोर नगरियाँ बीचो बीच दो मुख्य सड़कें बनाकर चार-चार भागों में बाँटी गई थीं। एक भाग में राजमहल होते थे, जिनका विस्तृत वर्णन भी मिलता है। सड़कों के चारों सिरों पर नगरद्वार थे। मौर्यकाल (4थी शती ई. पू.) के अनेक नगर कपिलवस्तु, कुशीनगर, उरुबिल्व आदि एक ही नमूने के थे, यह इनके नगरद्वारों से प्रकट होता है। जगह-जगह पर बाहर निकले हुए छज्जों, स्तंभों से अलंकृत गवाक्षों, जँगलों और कटहरों से बौद्धकालीन पवित्र नगरियों की भावुकता का आभास मिलता है।

राज्य का आश्रय पाकर अनेक स्तूपों, चौत्यों, बिहारों, स्तंभों, तोरणों और गुफामंदिरों में वास्तुकला का चरम विकास हुआ। तत्कालीन वास्तुकौशल के उत्कृष्ट उदाहरण पत्थर और ईंट के साथ-साथ लकड़ी पर भी मिलते हैं, जिनके विषय में सर जॉन मार्शल ने भारत का पुरातात्विक सर्वेक्षण, 1912-13 में लिखा है कि 'तत्कालीन कृतियों की अद्वितीय सूक्ष्मता और पूर्णता का दिग्दर्शन कराते हैं। उनके कारीगर आज भी यदि संसार में आ

सकते, तो अपनी कला के क्षेत्र में कुछ विशेष सीखने योग्य शायद न पाते'। साँची, भरहुत, कुशीनगर, बेसनगर (विदिशा), तिगावाँ (जबलपुर), उदयगिरि, प्रयाग, कार्ली (मुम्बई), अजन्ता, इलोरा, विदिशा, अमरावती, नासिक, जुनार (पूना), कान्हेरी, भुज,

कोंडेन, गांधार (वर्तमान कंधार-अफगानिस्तान), तक्षशिला पश्चिमोत्तर सीमान्त में चौथी शती ई. पू. से चौथी शती ई. तक की वास्तुकृतियाँ कला की दृष्टि से अनूठी हैं। दक्षिण भारत में गुंतूपल्ले (कृष्ण जिला) और शंकरन् पहाड़ी (विजगापट्टम् जिला) में शैलकृत्त वास्तु के दर्शन होते हैं। साँची, नालन्दा और सारनाथ में अपेक्षाकृत बाद की वास्तुकृतियाँ हैं।

पाँचवीं शती से ईंट का प्रयोग होने लगा। उसी समय से ब्राह्मण प्रभाव भी प्रकट हुआ। तत्कालीन ब्राह्मण मंदिरों में भीटागाँव (कानपुर जिला), बुधरामऊ (फतेहपुर जिला), सीरपुर और खरोद (रायपुर जिला), तथा तेर (शोलापुर के निकट) के मंदिरों की शृंखला उल्लेखनीय है। भीटागाँव का मंदिर, जो शायद सबसे प्राचीन है, 36 फुट वर्ग के ऊँचे चबूतरे पर बुर्ज की भाँति 70 फुट ऊँचा खड़ा है। बुधरामऊ का मंदिर भी ऐसा ही है। अन्य हिंदू मंदिरों की भाँति इनमें मण्डप आदि नहीं है, केवल गर्भगृह हैं। भीतर दीवारें यद्यपि सादी हैं, तथापि उनमें पट्टे, किंगरियाँ, दिल्हे, आले आदि, रचना की कुछ विशिष्टताएँ इमारतों की प्राचीनता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनके विभिन्न भागों का अनुपात सुंदर है और वास्तु प्रभाव कौशलपूर्ण। इनकी शैलियों का अनुकरण शताब्दियों बाद बननेवाले मंदिरों में भी हुआ है।

हिंदू वास्तुकौशल का विस्तार महलों, समाधियों, दुर्गों, बावड़ियों और घाटों में भी हुआ, किन्तु देश भर में बिखरे मंदिरों में यह विशेष मुखर हुआ है। गुप्तकाल (350-650 ई.) में मंदिरवास्तु के स्वरूप में स्थिरता आई। ७वीं शती के अंत में शिखर महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग समझा जाने लगा। मंदिरवास्तु में उत्तर की ओर आर्य शैली और दक्षिण की ओर द्रविड़ शैली स्पष्ट दीखती है। ग्वालियर के 'तेली का मंदिर' (११वीं शती) और भुवनेश्वर के 'वेताल देवल मंदिर' (९वीं शती) उत्तरी शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं और सोमंगलम्, मणिमंगलम् आदि के चोल मंदिर (११वीं शती) दक्षिणी शैली का। किन्तु ये शैलियाँ किसी भौगोलिक सीमा में बँधी नहीं हैं।

10 वीं - 11 वीं शती में पल्लव, चोल, पांड्य, चालुक्य और राष्ट्रकूट सभी राजवंशो ने दक्षिणी शैली का पोषण किया। दोनों ही शैलियों पर बौद्ध वास्तु का प्रभाव है, विशेषकर शिखरों में।

देश में साथ साथ विकसित होते हुए बौद्धवास्तु, जैन वास्तु, हिंदू वास्तु, तथा द्रविण वास्तु की ये झाँकियाँ विशाल भारत की परंपरागत धार्मिक सहिष्णुता का प्रमाण हैं।[4]

मध्यकालीन मुस्लिम वास्तु

वास्तुकला पर मुसलमानों के आक्रमण का जितना प्रभाव भारत में पड़ा उतना अन्यत्र कहीं नहीं, क्योंकि जिस सभ्यता से मुस्लिम सभ्यता की टक्कर हुई, किसी से उसका इतना विरोध नहीं था जितना भारतीय सभ्यता से। चिर प्रतिष्ठित भारतीय सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों की तुलना में मुस्लिम सभ्यता बिलकुल नई तो थी ही, उसके मौलिक सिद्धात भी भिन्न थे। दोनों का संघर्ष यथार्थवाद का आदर्शवाद से, वास्तविकता का स्वप्नदर्शिता से और व्यक्त का अव्यक्त से संघर्ष था, जिसका प्रमाण मस्जिद और मंदिर के भेद में स्पष्ट है।

मस्जिदें खुली हुई होती हैं, उनका केंद्र सुदूर मक्का की दिशा में होता है; जबकि मंदिर रहस्य का घर होता है, जिसका केंद्र अनेक दीवारों एवं गलियारों से घिरा हुआ बीच का देवस्थान या गर्भगृह होता है। मजिस्द की दीवारें प्राय: सादी या पवित्र आयतों से उत्कीर्ण होती हैं, उनमें मानव आकृतियों का चित्रण निषिद्ध होता है; जबकि मंदिरों की दीवारों में मूर्तिकला और मानवकृति चित्रण उच्चतम शिखर पर पहुँचा, पर लिखाई का नाम न था।

पत्थरों के सहल रंगों में ही इस चित्रण द्वारा मंदिरों की सजीवता आई; जबकि मस्जिदों में रंगबिरंगे पत्थरों, संगमरमर और चित्र विचित्र पलस्तर के द्वारा दीवारें मुखर की गई।

गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर एक ही प्रकार की भारी भरकम संरचनाएँ खड़ी करने में सिद्धहस्त, भारतीय कारीगरों की युगों युगों से एक ही लीक पर पड़ी, निष्प्रवाह प्रतिभा, विजेताओं द्वारा अन्य देशों से लाए हुए नए सिद्धांत, नई पद्धतियाँ और नई दिशा पाकर स्फूर्त हो उठी। फलस्वरूप धार्मि क इमारतों, जैसे मस्जिदों, मकबरों, रौजों और दरगाहों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार की धर्मनिरपेक्ष इमारतें भी, जैसे महल, मंडप, नगरद्वार, कूप, उद्यान और बड़े बड़े किले, यहाँ तक कि सारा शहर घेरनेवाले परकोटे तक तैयार हुए। देश में उत्तर से दक्षिण तक जैसे जैसे मुस्लिम प्रभत्व बढ़ता गा, वास्तुकला का युग भी बदलता गया।[5]

मुस्लिम वास्तु के चार चरण

मुस्लिम वास्तु के तीन क्रमिक चरण स्पष्ट हैं। पहला चरण, जो बहुत थोड़े समय रहा, विजयदर्प और धर्मांधता से प्रेरित था, जिसके बारे में हसन निजामी लिखता है कि प्रत्येक किला जीतने के बाद उसके स्तंभ और नींव तक महाकाय हाथियों के पैरों तले रौंदवाकर धूल में मिला देने का रिवाज था। अनेक दुर्ग, नगर और मंदिर इसी प्रकार अस्तित्वहीन किए गए। तदनंतर दूसरा चरण सोद्देश्य और आंशिक विध्वंस का आया, जिसमें इमारतें इसलिए तोड़ी गईं कि विजेताओं की मस्जिदों और मकबरों के लिए तैयार माल उपलब्ध हो सके। बड़ी-बड़ी धरने और स्तम्भ अपने स्थान से हटाकर नई जगह ले जाने के लिए भी हाथियों का ही प्रयोग हुआ। प्रयरू इसी काल में मंदिरों को विशेष क्षति पहुँची, जो विजित प्रांतों की नई नई राजधानियों के निर्माण के लिए तैयार माल की खान बन गए और उत्तर भारत से हिंदू वास्तु की प्रायः सफाई ही हो गई। अंतिम चरण तब आरंभ हुआ, जब आक्रांता अनेक भागों में भली भाँति जग गए थे और उन्होंने प्रत्यवस्थापन के बजाय योजनाबद्ध निर्माण द्वारा सुविन्यस्त और उत्कृष्ट वास्तुकृतियाँ प्रस्तुत कीं।[6]

मुस्लिम वास्तु की तीन शैलियाँ

शैलियों की दृष्टि से भी मुस्लिम वास्तु के तीन वर्ग हो सकते हैं। पहली दिल्ली शैली, अथवा शहंशाही शैली है (1193-1554) कहते हैं। इस वर्ग में दिल्ली की कुतुबमीनार (1200), सुल्तान गढ़ी (1231), अल्तमश का मकबरा (1236), अलाई दरवाजा (1305), निजामुद्दीन (1320), गयासुद्दीन तुगलक (1325) और फीरोजशाह तुगलक (1388) के मकबरे, कोटला फीरोजशाह (1354-1490), मुबारकशाह का मकबरा (1434), मेरठ की मस्जिद (1505), शेरशाह की मस्जिद (1540-45) सहसराम का शेरशाह का मकबरा (1540-45) और अजमेर का अढ़ाई दिन का झोंपड़ा (1205) आदि उल्लेखनीय हैं।[7]

दूसरे वर्ग में प्रांतीय शैलियाँ हैं। इनमें पंजाब शैली (1150-1325 ई.); जैसे मुल्तान के श्रकने आलम (1320) और शाहयूसुफ गर्दिजी (1150), तब्रिजी (1276), बहाउलहक (1262) के मकबरे; बंगाल शैली (1203-1573), जैसे पंडुआ की अदीना मस्जिद (1364), गौर के फतेहखाँ का मकबरा (1657), कदम रसूल (1530), तांतीमारा मस्जिद (1475); गुजरात शैली (1300-1572); जैसे खंबे (1325), अहमदाबाद (1423), भड़ोच और चमाने (1523) की जामा मस्जिदें, नगीना मस्जिद मकबरा (1525); जौनपुर शैली (1376-1479); जैसे अटाला मस्जिद (1408), लाल दरवाजा मस्जिद (1450), जामा मस्जिद (1470); मालवा शैली (1405-1569) जैसे माडू के जहाजमहल (1460), होशंग का मकबरा (1440), जामा मस्जिद (1440), हिंडोला महल (1425), धार की लाट मस्जिद (1405), चंदेरी का बदल महल फाटक (1460), कुशक महल (1445), शहजादी का रौजा (1450); दक्षिणी शैली (1347-1617); जैसे गुलबर्ग की जामा मस्जिद (1367) और हफ्त गुंबज (1378), बीदर का मदरसा (1481), हैदराबाद की चारमीनार (1591) आदि; बीजापुर खानदेश शैली (1425-1660), जैसे बीजापुर के गोलगुंबज (1660), रौजा इब्राहीम (1615) और जामा मस्जिद (1570), थालनेर खानदेश के फारूकी वंश के मकबरे (15 वीं शती); और कश्मीर शैली (15-17 वीं शती); जैसे श्रीनगर की जामा मस्जिद (1400), शाह हमदन का मकबरा (17 वीं शती) आदि, सम्मिलित हैं।

तीसरे वर्ग में मुगल शैली आती है, जिसके उत्कृष्टतम नमूने दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी, लखनऊ, लाहौर आदि में किलों, मकबरों, राजमहलों, उद्यान मंडपों आदि के रूप में मौजूद हैं। इसी काल में कला पत्थर से बढ़कर संगमरमर तक पहुँची और दिल्ली के दीवाने खास, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद और आगरा के ताजमहल जैसी विश्वविश्रुत कृतियाँ तैयार हुई।

बीसवीं शती का वास्तु

सन् 1911 ई. में ब्रिटिश राज्य उन्नति के शिखर पर था। उसी समय दिल्ली दरबार में घोषणा की गई और साम्राज्य की राजधानी के अनुरूप एक नई दिल्ली में और सारे भारत के जिला सदर स्थानों तक में, सुंदर इमारतें बनवाई, जिनमें अनेक कार्यालय भवन, गिरजे और ईसाई कब्रिस्तान कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। सरकारी प्रयास से नई दिल्ली में राजभवन (अब राष्ट्रपति भवन), सचिवालय भवन, संसद भवन जैसी भव्य इमारतें बनीं, जिनमें पाश्चात्य कला के साथ हिंदू, बौद्ध और मुस्लिम कला का सुखद सम्मिश्रण दिखाई देता है।

मंदिर वास्तु भी, जो केवल व्यक्तिगत प्रयास से अपना अस्तित्व बनाए रहा, कुछ कुछ इसी दिशा में झुका। मुस्लिम वास्तु के अनुकरण पर अशोक कालीन शिलालेखों की प्रथा पुन: प्रतिष्ठित हुई और मंदिरों मे भीतर बाहर, मूर्तियों और चित्रों के साथ लेखों को भी स्थान मिलने लगा। दिल्ली का लक्ष्मीनारायण मंदिर और हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, का शिवमंदिर बीसवीं शती के मंदिर वास्तु की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। मंदिरों के अतिरिक्त राजाओं के महल और विद्यालय आदि भी कला को प्रश्रय देते रहे। काशी हिंदू विश्वविद्यालय की सभी इमारतें और वाराणसी का भारतमाता मंदिर, काशी विश्वनाथ की मंदिरोंवाली नगरी में दर्शकों के लिए विशेष आकर्षण के केंद्र हैं। कुशीनगर में बने निर्वाण बिहार, बुद्ध मंदिर और सरकारी विश्रामगृह में बौद्ध कला को पुनर्जीवन मिला है। दिल्ली में लक्ष्मीनारायण मंदिर के साथ भी एक बुद्ध मंदिर है। इस प्रकार किसी शैली विशेष के पति अनाग्रह और उत्कृष्टता के लिए समन्वय 20 वीं शती की विशेषता समझी जा सकती है।[8]

निष्कर्ष

भारतीय वास्तु की विशेषता यहाँ की दीवारों के उत्कृष्ट और प्रचुर अलंकरण में है। भित्तिचित्रों और मूर्तियों की योजना, जिसमें अलंकरण के अतिरिक्त अपने विषय के गंभीर भाव भी व्यक्त होते हैं, भवन को बाहर से कभी कभी पूर्णतया लपेट लेती है। इनमें वास्तु का जीवन से संबंध क्या, वास्तव में आध्यात्मिक जीवन ही अंकित है। न्यूनाधिक उभार में उत्कीर्ण अपने अलौकिक कृत्यों में लगे हुए देश भर के देवी देवता, तथा युगों पुराना पौराणिक गाथाएँ, मूर्तिकला को प्रतीक बनाकर दर्शकों के सम्मुख अत्यंत रोचक कथाओं और मनोहर चित्रों की एक पुस्तक सी खोल देती हैं। हड़प्पा काल के बाद की स्थापत्य शैली को हिंदू, बौद्ध और जैन के रूप में वर्गीकृत किया गया है, मध्ययुगीन काल में फारसी और वास्तुकला की स्वदेशी शैलियों का संश्लेषण देखा गया। इसके बाद औपनिवेशिक काल ने पश्चिमी स्थापत्य रूपों का प्रभाव भारत में लाया। इस प्रकार भारतीय वास्तुकला स्वदेशी शैलियों और बाहरी प्रभावों का एक संश्लेषण है जिसने इसे अपनी अनूठी विशेषता प्रदान की है। भारत के स्थापत्य की जड़ें यहाँ के इतिहास, दर्शन एवं संस्कृति में निहित हैं। भारत की वास्तुकला यहाँ की परम्परागत एवं बाहरी प्रभावों का मिश्रण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. हैवेल, ई.बी. (1915). भारत की प्राचीन और मध्यकालीन वास्तुकला: इंडो-आर्यन सभ्यता का एक अध्ययन . जॉन मरे, लंदन.
2. के. वात्स्यायन, द स्क्वायर एंड द सर्कल ऑफ इंडियन आर्ट्स। अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।
3. बी बी लाल, दक्षिण एशिया की सबसे प्रारंभिक सभ्यता। आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, 1997।
4. एस. काक, इवोल्यूशन ऑफ अर्ली राइटिंग इन इंडिया। इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री ऑफ साइंस। 1994।
5. एस. क्रैमरिश, द हिंदू टेम्पल। कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, 1946।
6. एस. काक, द गॉड्स विदिन। मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 2002।
7. कपिला वात्स्यायन, साहित्य और कला में शास्त्रीय भारतीय नृत्य। संगीत नाटक अकादमी (पहला संस्करण 1968), नई दिल्ली, 1977।
8. भारतीय मूर्तिकला में पद्म सुब्रह्मण्यम, करण। पीएचडी थीसिस, अन्नामलाई विश्वविद्यालय, 1978;

वर्तमान हिंदी सिनेमा में संगीत की परंपरा एवं प्रयोग, नवाचार के संदर्भ में

डॉ० दिनकर शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत गायन, डी०बी०जी० गवर्नमेंट कॉलेज, पानीपत (हरियाणा)

शोध प्रपत्र सारांशः

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। विज्ञान एक वरदान है तो एक अभिशाप भी। आज के इस प्रतियोगी युग में जिस प्रकार एक भागदौड़ सी बनी हुई हैं, इसका असर विभिन्न क्षेत्रों पर दृष्टिगोचर होता है। संगीत एवं दूसरी अन्य दृश्य कलाएं भी विज्ञान के नित नए प्रयोगों एवं परिवर्तन से अछूती नहीं हैं। आज सिनेमा का जो हम स्वरूप देख रहे हैं पहले का सिनेमा वैसा बिल्कुल भी नहीं था आज सिनेमा का जो रूप हमारे सामने हैं वह सिर्फ विज्ञान, तकनीकी एवं विभिन्न प्रकार के नवाचारों के कारण ही संभव हुआ है। भारतीय सरल संगीत के प्रचार-प्रसार में चित्रपटों का अपना एक विशेष योगदान है। खासबात यह है कि चित्रपट अपने शुरूआती दौर से ही अत्यंत प्रभावशाली रहा है। चित्रपटों में संगीत के प्रयोग के उपरांत तो संगीत एवं चित्रपटों की लोकप्रियता में चार चांद लग गए हैं। वर्तमान में चित्रपट और संगीत एकदूजे के दो पहलू हैं, संगीत के बगैर चित्रपट का कोई विशेष अस्तित्व नहीं है। इसी अनुक्रम में हम प्रस्तुत शोध प्रपत्र में चित्रपट संगीत की परंपरा, महत्त्व, प्रयोग आदि पर प्रकाश डालेंगे।"

मुख्य शब्दः चित्रपट, संगीत, संस्कृति, कला, सिनेमा, नवाचार।

संगीत का अतीत अत्यंत गौरवशाली एवं प्राचीन है, संगीत मानव हृदय का सूक्ष्म स्पन्दन है। स्वर में असीम शक्ति है। इसी कारण भावाभिव्यक्ति का अनन्य साधारण माध्यम है। संगीत किसी भी मोड़ से गुजरे किसी भी आकार में ढले या किसी भी वर्ग में पले, वह आनन्दमयी ही होता है। अर्थात् संगीत के किसी भी क्षेत्र में प्रवेश करने पर, निश्चित रूप से आनन्द ही प्राप्त होगा, चाहे वहाँ लोक संगीत हो, सुगम संगीत हो, चित्रपट संगीत हो अथवा शास्त्रीय संगीत। मानव की बदलती हुई रूचि एवं प्रवृत्ति के कारण उपरोक्त कलाओं का जन्म हुआ। उसी प्रकार विज्ञान के आविष्कारी तथा मानव के प्रयासों ने प्राचीन नाट्य कला को चित्रपट के रूप में परिवर्तित कर दिया। यूं तो चित्रपट में विभिन्न कलाओं का समावेश रहता है। फिर भी यह एक स्वतन्त्र यांत्रिक कला है। चित्रपट, रंगमंच के समान दृश्य एवं श्रव्य कला का एक नवीन स्वरूप है। समाज का सर्वोपरि मनोरंजन करने वाली कला जिसमें नाट्य और संगीत दोनों ही समाहित थे। चित्रपट संगीत के नाम से समाज के सम्मुख आई। प्रत्यक्ष में चित्रपट संगीत सर्वसाधारण समाज के सभी वर्गों का प्रिय संगीत कहलाया। चित्रपट संगीत गाँव में रहने वाली सीधी-सादी जनता, शहर का पढ़ा-लिखा परन्तु शास्त्रीय में अनभिज्ञ जनमानस या शास्त्रीय संगीत जानने वाला वैशिष्टयपूर्ण अभिजात कला प्रेमी वर्ग, सभी के लिए मनोरंजन उत्साहपूर्वक तथा चौतन्यपूर्ण समृद्ध संगीत धारा है।

गीत-संगीत का भारतीय जीवन में अभिन्न स्थान रहा है। बिना गीत-संगीत के फिल्म की सफलता की कामना भी नहीं की जा सकती है।

चित्रपटों में संगीत का उद्‌भवः

भारतीय फिल्मों में संगीत का महत्त्व उस समय से हैं जब मूक (साइलेंट) फिल्में बन रही थी। इन मूक फिल्मों हेतु पर्दे के सामने एक पिट में साजिन्दे बैठा दिये जाते थे और वे दृश्य के अनुकूल धुनें बजाते रहते थे। बोलती हुई फिल्मों का निर्माण शुरू होने पर संवादों के साथ गीत भी जुड़ गये।

"भारत में 14 मार्च 1931 को पहली बोलती फिल्म आलमआरा से ही फिल्मों में संगीत भी प्रवेश कर गया। इस फिल्म में फिरोजशाह एम० मिस्त्री एवं बी० ईरानी ने संगीत दिया था।" आलमआरा के बाद एक बड़ी फिल्म आयी। शीरी फरहाद, मादन थियेटर्स की इस फिल्म में 17 गाने थे ।यह संगीत प्रधान फिल्म थी। इसके गीतों को जहाँआरा कज्जन तथा मास्टर निसार ने अभिनय के साथ गाया। जहाँआरा कज्जन की सुरीली आवाज और बेहतरीन रिकॉर्डिंग के कारण देशभर में उसने खूब प्रशंसा व पैसा कमाया। मादन थियेटर्स वालों ने संगीत प्रधान फिल्में बनाने की परम्परा शुरू कर दी थी।

1962 की श्रेष्ठतम फिल्म बैजूबावरा थी। संगीतकार नौशाद के संगीत से सजी इस फिल्म का हर गीत शास्त्रीय संगीत में इला था। गीतकार शकील बदायूँनी के गीत गली-गली में गूंज उठे। इसका संगीत उस समय भी हिट हुआ था जिस समय विदेशी संगीत का प्रभाव फिल्म संगीत पर चल रहा था। पं० डी० बी० प्लुस्कर और उस्ताद अमीर खाँ ने मिलकर इसका गीत "आज गावत मन मेरो" गाया था। "मन तड़पत हरि दरसन को आज" नामक भक्ति गीत ख्याल शैली में राग मालकौंस में बांधा गया था और यही गीत उतना ही लोकप्रिय हुआ था जितना की कोई भी मैलोडी प्रधान गीत हुआ करता था। आज भी इसके संगीत को लोग याद करते हैं।

सी० रामचन्द्र के संगीत से सजी अनारकली बेहद सफल फिल्म रही। आज भी इसका एक नगमा सुरों का जादू बिखेरता है।

सन् 1990 से 2000 के बीच के समय की कुछ फिल्में पारिवारिक दृष्टिकोण पर आधारित थी जिनका संगीत बहुत प्रसिद्ध हुआ। बहुत ही मधुर संगीत से सजी फिल्मों में प्रमुख रहीं हम आपके हैं कौन, दिलवाले दुल्हनियाँ ले जायेंगे, राजा हिन्दुस्तानी, बॉर्डर, कुछ-कुछ होता है, ताल, हम दिल दे चुके सनम आदि। हम दिल दे चुके सनम का संगीत गुजराती संस्कृति पर आधारित था। इसके सभी गीत बहुत प्रसिद्ध हुए मधुरता से परिपूर्ण गीतों में निम्बोड़ा-निम्बोड़ा, ढोल बाजे ढोल तथा एक गीत भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा पाश्चात्य संगीत का सम्मिश्रण था "अलबेला सजन आयो रे" का बहुत ही अलग प्रयोग रहा।

सन् 2002 में फिल्म संगीत की सबसे अच्छी फिल्म देवदास है। इसके सभी गीतों को संगीतकारों के अथक प्रयास से संगीतमय एवं कर्णप्रिय बनाया गया है जिनमें डोला रे डोला, मार डाला, छलक दलक छल, काहे छेड़-छेड़ मोहे आदि प्रमुख हैं। जिनमें भारतीय शास्त्रीय संगीत को आधार मानकर उसके साथ पाश्चात्य संगीत व आर्केस्ट्रा का बेजोड़ मिश्रण करके व संगीत के उच्चकोटि के महान संगीतज्ञ पं० बिरजू महाराज का गायन एवं नृत्य भी फिल्म संगीत के माध्यम से मानवजन तक पहुँचा है। प्रत्येक मानव संगीत सुनकर बहुत खुशी का अनुभव करता है तथ सीखने का भी प्रयास करता है।

संगीत निर्देशकों की भूमिकाः

किसी भी फिल्म की सफलता व उसके संगीत को लोकप्रिय बनाने में संगीत निर्देशक का विशेष योगदान रहता है। किसी भी सांगीतिक विधा को या रचना को तैयार करने में निर्देशक की अहम् भूमिका रहती है। इसके लिए उसे बुद्धिमान व प्रतिभाशाली होना चाहिए। साहित्य से लेकर लोकधुनों और लोकद्रदय की उसे गहरी पहचान होना आवश्यक है। फिल्मों में प्रयुक्त होने वाले गीत और उनके संगीत की निर्माण प्रक्रिया में भी गीतकार, संगीतकार, अरेंजर गायक गायिका विभिन्न वाद्यवादक, रिकॉर्डिस्ट का सामूहिक योगदान रहता है। फिल्म में उसके वातावरण के अनुकूल प्रयोग को निर्देशक ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब भारतीय फिल्मों में संगीत प्रस्तुत किया जाने लगा तो फिल्मों की लोकप्रियता और बढ़ गई। फिल्मों में संगीत देने का श्रेय संगीत-निर्देशक या फिल्म संगीतकार को जाता है। सी० रामचन्द्र का पतंगा चित्रपट का एक हल्का-फुल्का गीत मेरे पिया गये रंगून जिसे शमशाद बेगम व चितलकर ने बड़े मस्ताने अन्दाज में गाया है जो सदाबहार गीत है। चित्रपट शहनाई का गीत आना मेरी जान सण्डे के सण्डे मीना कपूर और सी० रामचन्द्र द्वारा गाया गया एवं बहुत लोकप्रिय रहा। सन् 1938 में ग्रामोफोन-सिंगर चित्रपट में संगीतकार अनिल बिस्वास ने संगीत दिया। इसका एक गीत काहे अकेला डोलत बादल जिसे गाया था सुरेन्द्र ने। यह गीत विशेष लोकप्रिय हुआ है।

दर्शकों के मस्तिष्क पर सिनेमा के बढ़ते प्रभुत्व का प्रधान कारण है। सिनेमा का 'माईमेटिक (भूक) कला न होना। भारतीय सिनेमा के जन्मदाता दादासाहब फाल्के ने कहा था 'फिल्म मनोरंजन का उत्तम माध्यम है लेकिन वह ज्ञानवर्धन के लिए भी अत्यन्त बेहतरीन माध्यम है। अन्ततः फिल्म इन दोनों चीजों मनोरंजन और ज्ञानवर्धन पर टिकी हुई हैं।

चित्रपटों में संगीत का महत्त्वः

भारतीयों फिल्मों में संगीत का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। ग्रामोफोन, रिकॉर्ड और रेडियो ने सिनेमा हॉल से बाहर भी फिल्म के गीतों को सुनने की सुविधा जुटा दी। इससे फिल्मी गानों की ताकत लगातार बढ़ती गई और फिल्मी गानों की ताकत यहाँ तक बढ़ी कि लोग कभी-कभी तो सिर्फ गानों के लिए फिल्म देखने जाते थे। फिल्मी गीतों ने बीसवीं सदी में हमारे देश में जो तहलका मचाया, उसकी मिसाल दुनिया में कहीं और नहीं मिलती। भारतीय संगीत में इसी सदी की सबसे बड़ी क्रांति फिल्मी गीतों के जरिये हुई। इन फिल्मी गीतों के सुर-लय व ताल की झनकार से हिन्दुस्तान सुरीला हो गया। संगीतकारों ने फिल्म संगीत में शास्त्रीय संगीत को आधार रख फिल्म संगीत के स्तर को ऊँचा रखा और हम लोगों को इतनी मीठी धुनें बनाकर दी जिन्हें हम कभी नहीं भूलेंगे।

लता जी कहती हैं कि मेरी मान्यता है कि शास्त्रीय रागों पर आधारित गीतों में अधिक जीवन शक्ति होती है और ऐसे कई गीत हैं, जो वर्षों पुराने हैं किन्तु आज भी उसी तरह ताजे हैं।

हिन्दी सिनेमा का अस्तित्व पूरी तरह से गीतों के साथ जुड़ा है। दर्शक फिल्म में अच्छे मौलिक गीत चाहता है जिसे वह आसानी से गुनगुना भी सके। फिल्मों में संगीत का व्यापक प्रचार होने से भारतीय फिल्मों को अपार सफलता मिली है।

"मानव हृदय, भावनाओं और संवेदनाओं से परिपूर्ण हैं। मानव अपने उद्‌गारों को, अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। चाहे दे० हर्ष के क्षण हों या हृदय की पीड़ा, ममता का वात्सल्य हो या ईश्वर प्रेम, देशभक्ति प्रेम हो या शत्रु के प्रति बदले की भावना आदि सभी भावों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम संगीत है। यह संगीत भी निश्चित रूप से चित्रपट संगीत हैं वैसे तो मानव मन को प्रभावित करने के अनेक माध्यम हैं परन्तु चित्रपट संगीत एक ऐसा माध्यम है जो प्रत्येक मानव के हृदय में रच-बस गया है। चित्रपटों में जब से संगीत का प्रयोग होने लगा तब से चित्रपट संगीत मानव जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया है। चित्रपट संगीत एक सुन्दर और वैचित्र्यपूर्ण क्रिया है जिसका फलक बहुत विस्तृत है। चित्रपट को अच्छे गीत-संगीत के कारण ही याद किया जाता है।

सिनेमा का वर्तमान स्वरूप एवं नवाचारः

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। विज्ञान एक वरदान है तो एक अभिशाप भी। वर्तमान में विज्ञान के दिन-प्रतिदिन नए प्रयोग से मानव जीवन प्रभावित हो रहा है। मानव जीवन के प्रभाव के फल स्वरूप हमारी कला संस्कृति संगीत आदि प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का प्रभाव देखने को मिलता है। संगीत एवं दूसरी ललित कलाएं भी इससे अछूती नहीं हैं। खासकर सिनेमा तो शुरू से ही विज्ञान तकनीकी का मिला-जुला स्वरूप रहा है। विज्ञान के प्रयोग के बिना संगीत कला का प्रचार-प्रसार एवं संरक्षण तथा संवर्धन बड़ा ही मुश्किल था।

वर्तमान में हम चित्रपटों का जो स्वरूप देख रहे हैं पुराने चित्र पटों का वह स्वरूप बिल्कुल भी नहीं था लेकिन विज्ञान के प्रयोग के कारण चित्रपट एवं सिनेमा के क्षेत्र में भी नवाचार देखने को मिलता है। पुराने समय में सभी चित्रपट काले और सफेद होते थे तथा उन सब को रिकॉर्ड करने की तकनीक भी यही होती थी लेकिन धीरे-धीरे विकास के विभिन्न सोपानों को पार करते हुए काले एवं सफेद चित्रपटों का स्वरूप रंगीन चित्रपटों ने ले लिया पुरानी डीसीपी और वीसीआर धीरे-धीरे सीडी, डीवीडी, फ्लॉपी और मेमोरी कार्ड मोबाइल कंप्यूटर तथा तकनीकी में बदल गए। आज यह चीज भी समय के साथ पीछे रह गई और सिनेमा कब डीवीडी कंप्यूटर आदि के जाल से निकलकर यू-टयूब, पेन ड्राइव, मोबाइल और मेमोरी कार्ड तक आ पहुंचा। यह तो चित्रपट में तकनीकी प्रयोग एवं नवाचार हुआ। इसके साथ ही चित्रपटों में सहायक कलाओं जेसे संगीत आदि पर भी विज्ञान का असर धीरे-धीरे हुआ। पुराने समय में बड़े-बड़े रिकॉर्डिंग स्टूडियो होते थे। गाना एक ही टेक में रिकॉर्ड करना पड़ता था। 20 से 25 संगीतकार एक साथ गाने में अपना-अपना वाद्य यंत्र बजाकर कार्य पूरा करते थे। लेकिन विज्ञान के नवाचारों की बदौलत यह कार्य विभिन्न प्रकार के सॉफ्टवेयरोन के माध्यम से एक ही व्यक्ति द्वारा होने लगा। पहले गाना एक टेक में रिकॉर्ड होता था। अब एक गाने को रिकॉर्ड करने

के लिए अनेक टेक लिए जाते हैं। रिकॉर्डिंग की अत्यंत उन्नत तकनीक आज हमारे सामने हैं। फलस्वरूप इससे कुछ मेहनत भी कम हुई हैं लेकिन धीरे-धीरे वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग से संगीत की मेलोडी भी कम हुई हैं तथा मेलोडी का स्थान शोर शराबे ने ले लिया है। वर्तमान चित्रपट संगीत में वह आनंद नहीं आता जो पुराने संगीत में आता था क्योंकि पुराने संगीत में वास्तविक वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता था। वर्तमान में चित्रपट में लगने वाला समय भी कम हुआ है। पहले एक-एक चित्रपट दो से तीन घंटे का होता था। आज वह चित्रपट दो से 30 मिनट तक का हो गया है। आज चित्रपट का स्थान धीरे-धीरे वेब सीरीजों ने ले लिया है। गाने के टीजर के माध्यम से चित्रपटों के पोस्टर रिलीज किए जाते हैं। चित्रपटों में इस प्रकार के प्रयोग एवं नव चार कितने कारगर साबित होंगे यह तो आने वाला समय ही तय करेगा तथापि हमें इन सभी नवाचार के संसाधनों के प्रयोग उपयोग को समय के साथ स्वीकारना ही होगा।

सौ वर्षों से भी अधिक लम्बी और दुर्गम यात्रा तय करने के बाद में भी हिन्दी सिनेमा गंभीर अध्ययन का विषय नहीं बन पाया है। इस विशालतम सिनेमाजगत के शोध की व अध्ययन की असीमित सम्भावनाएँ एवं आवश्यकताएं हैं। अत: फिल्म संगीत का मानव जीवन में महत्त्व है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विमल, 2005, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
2. शर्मा डॉ० इन्दु, 2006, भारतीय फिल्म संगीत में ताल-समन्वय कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण
3. सिंह हरमिन्दर हमराज, श्रीमती सविन्दर कौर, हिन्दी फिल्म गीतकोश, खण्ड-1
4. गर्ग डॉ० उमा संगीत का सौन्दर्यबोध (फिल्म संगीत के सन्दर्भ में) संजय प्रकाशन, दिल्ली ।
5. परांजपे डॉ० श्रीधर, 1960, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण
6. डॉ० सारणा, रागिनी, संगीत लेख विथिका, शिल्पायन द म्यूजिक हब वाराणसी, 2017
7. वही
8. डॉ० अमित शर्मा, सहायक आचार्य, संगीत विभाग, चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा से दूरभाष-9991300841 पर हुई बातचीत के आधार पर मुद्रित।
9. वही

ग्रामीण महिला सशक्तिकरणः एक अध्ययन

डॉ० नीलम कुमारी

अतिथि शिक्षिका, गृह विज्ञान विभाग, सिंहभूम कॉलेज, चाण्डिल, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में जीविका की भूमिका से संबंधित है। समाज में आर्थिक व सामाजिक बदलाव के साथ-साथ महिला सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं का संचालन की जा रही है। बिहार रूरल लाइवलीहुड्स सोसाइटी के माध्याम से बिहार सरकार विश्व बैंक की सहायता से बिहार ग्रामीण आजीविका परियोजना (BRLP) संचालित है जिसे स्थानीय स्तर पर जीविका JEEVIKA के नाम से जाना जाता है। महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण के लिए जीविका मिशन से अतिनिर्धन, विधवा, तलाकशुदा अनूसूचित जाति, अनूसूचित जनजाति महिलाओं को अधिक से अधिक जोडनें के प्रयास किए जा रहे है। इस अध्ययन में रोहतास जिले के नोखा प्रखंड के जीविका के विभिन्न समूहो से 50 महिलाओं का चयन किया गया। प्राथमिक और द्वित्तीयक श्रोतों के आधार पर तथ्यों के संग्रह और विशलेषण किया गया, जीविका से जुडाव के पश्चात् महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्त्तन पाया गया तथा आर्थिक, सामाजिक सशक्तिकरण के साथ-साथ महिलाओं में आत्मगौरव एवं आत्म सम्मान की प्रवलता पाया गया।

संकेत शब्दः- सशक्तिकरण, आर्थिक, आत्मसम्मान, सकारात्मक स्वावलंबन, जीविका

परिचय

महिला सशक्तिकरण से अभिप्राय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओ द्वारा निर्णय प्रक्रिया में साझेदारी से है, इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में परिवर्त्तन होता है। महिलाओं को सशक्त करने में कुछ कारको की अहम भूमिका होती है जैसे-शिक्षा स्वास्थ्य, कौशल, प्रशिक्षण, प्रौधोगिकीय ज्ञान, इत्यादि, महिला सशक्तिकरण में महिलाओं द्वारा अपनी क्षमता के दायरे में विश्वास का निर्माण शामिल होता है।

वर्ष 2007 में विश्व बैंक की आर्थिक सहायता से बिहार रूरल लाइवलिहुड प्रोजेक्ट यानि जीविका शुरू किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण गरीबों का सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण करना है। जीविका ग्रामीण महिला सशक्तिकरण का एक प्रमुख माध्यम भी है। जीविका ने जहाँ ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया वही उनकी जीवन में दूसरे सार्थक परिवर्तन का माध्यम भी बना। महिला स्वास्थ्य में सुधार के लिए भी जीविका समूह के द्वारा कर्ज का भी प्रावधान है। जिससे महिलाएँ स्वस्थ्य रहने लगी, महिलाओं को परिवार नियोजन का महत्व समझाया, महिलाओं के पति और बच्चों को आत्मनिर्भर बनने में मदद की जिससे पूरे परिवार का सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य तथा शैक्षिक स्तर उठा। चूँकि महिलाओं ने जीविका के माध्यम से आत्मनिर्भरता की राह चुनी इसलिए घरेलू हिंसा और कलह से भी उन्हें मुक्ति मिली। सफलता का यह मार्ग बिहार में प्रत्येक महिलाओं के लिए खुला है। विभिन्न नामों से बनाए गए जीविका समूह की कर्त्तधर्त्ता भी महिलाएँ है। जीविका समूह से जुड़ने के बाद बही-खाते और महिलाओं के प्रशिक्षण आदि संभालने के लिए शिक्षित होना जरूरी होता है इसलिए समूह से जुडने के बाद पहले चार महीने ग्रामीण महिलाओं को शिक्षित किया जाता है। जिसका प्रभाव बिहार में साक्षरता दर पर भी देखा गया। राज्य की सर्वाधिक महिला साक्षरता वाला जिला रोहतास है। यहाँ साक्षरता दर 73.37% है।

ग्रामीण महिलाओं विशेषकर विधवा अकेली, अतिनिर्धन जिसका पति किसी कारण वश कोई आर्थिक उपार्जन न करता हो को जीविका समूह से जोड़ा जा रहा है आर्थिक स्वावलंबन जीविका का मूल मंत्र है, प्रत्येक वर्ष अधिक से अधिक जीविका समूह का गठन करने का लक्ष्य है। ताकि बिहार की 50% महिला आबादी को सशक्त किया जाए। एक समूह में कम से कम 10 महिलाएँ और अधिक से अधिक 20 महिलाओं को जोड़ने है। प्रत्येक समूह को बैंको से प्रति 50 हजार रूपये का वित्त पोषण किया जाता है। राज्य सरकार ने ग्रामीण महिलाओं के साथ-साथ शहरी महिलाओं के लिए भी समान अवसर उपलब्ध करा रही है।

जीविका समूहों का ग्रामीण महिला के सामाजिक, आर्थिक विकास में योगदान:-

- समाजिक उद्यमिता को प्रोत्साहन देने में सहायक।
- महिलाओं में उद्यमशीलता, प्रबंधकीय गुणों जैसे नेतृत्व एवं निर्णय लेने की क्षमता इत्यादि का विकास।
- आर्थिक गतिविधियों द्वारा मूल्यवर्द्धक वस्तुओं का उत्पादन।
- रोजगार, स्वरोजगार व उद्यामिता से गरीबी उन्मूलन में सहायक।
- नवाचार एवं रचनात्मक उद्योगों को प्रोत्साहन।
- जीविका समूहां द्वारा उत्पादित विभिन्न खाद्य पदार्थो जैसे अचार, पापड बडी, आटा, अगरबती, मुरब्बा इत्यादि की सुगम उपलब्धता से महिलाओं व बच्चों के पोषण तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान।
- ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में होने वाले पलायन को रोकने में सहायक।
- क्षेत्रीय आर्थिक व सामाजिक असमानता को कम करने में सहायक।

जीविका स्वयं सहायता समूह विभिन्न क्षेत्रो में उल्लेखनीय कार्य कर रहे है।

- जीविका समूह में महिलाएँ बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रही है जिससे समाज में उनकी स्थिति में सकारात्मक बदलाव देखने को मिल रहा है।
- समूह के सदस्य अपने नियमित बचत से एक कोष बना लेती है और उस कोष का उपयोग आपातकालीन स्थिति में अपने सामूहिक उद्देश्य के कार्य हेतु करती है।
- समूह के सदस्य अपने कोष के पैसे से ग्रामीण आधारित सूक्ष्म या लघु उद्योग की शुरूआत भी करते है।
- समूहो को बैंकों द्वारा धन भी दिया जाता है, जिससे वित्तीय लेन देन में आसानी होती है।
- समूहो में से ही किसी को नेतृत्व दे दिया जाता है जो सारे प्रबंध का कार्य करता है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने केन्द्रीय योजना स्वर्णजंयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) को राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन ने (NRLM) में पुनर्गठित किया। एस जी०एस०वाई रणनीति की आधारशिला जिससे 1999 से लागू किया गया था। बिहार सरकार ने NRLM के कार्यान्वयन के लिए BRLPS को राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन SRLM के रूप में नामित है। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन DAY-NRLM गरीब ग्रामीण महिलाओं को स्वावलंबी बनाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य

- महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण का पता लगाना।
- महिलाओं में विशेषकर विधवा, तलाकशुदा, अतिनिर्धन महिलाओं का आर्थिक निर्भरता का पता लगाना।
- जीविका से जुड़ाव के पश्चात् महिलाओं के जीवन में हुए सकारात्मक परिवर्त्तन का पता लगाना।

उपकल्पना

- आर्थिक स्थिति बेहतर हुई होगी एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ी होगी।
- सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सामाजिक पहचान बढ़ी होगी।
- घरेलू हिंसा कम हुई होगी।

- स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति जागरूगता बढ़ी होगी।
- महिलाओं में आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान बढ़ा होगा।
- महिलाओं में नेतृत्व एवं निर्णय लेने की क्षमता की विकास हुआ होगा।
- वित्तीय क्षेत्र में भागीदारी बढ़ी होगी।

साहित्य का पुनरावलोकनः- महिला सशक्तिकरण महिलाओं के स्वयं पर नियत्रंण, अपने परिवार के बारे में महत्वपूर्ण निर्णयों में साझेदारी तथा घर के प्रति निर्णयों में भूमिका निर्धारित करता है। सशक्तिकृत महिलाओं द्वारा अपनी क्षमताओं के दायरे में विश्वास का निर्माण शामिल होता है।

वाटलीवाला, मई, 1996- जब महिलाओं को अपने खुद के लिए समय और जगह मिलता है तो वे समीक्षात्मक रूप से अपने जीवन के बारे में सोचती है।

वर्ष 2005 के नोबल शांति पुरस्कार विजेता श्री मुहम्मद यूनूस ने 1976 से सूक्ष्म वित्त को आधार बनाकर अनेक स्वयं सहायता समूहो का सृजन किया जिसने बंगलादेश में गरीबी कम करने, महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने एवं कई लघु एवं कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवन देने का कार्य किया।

जनवरी 2018 जागरण समाज में आर्थिक व सामाजिक बदलाव के साथ-साथ महिला सशक्तिकरण की मजबूती के लिए सरकार कई स्तरो पर योजनाओ का संचालन कर रही है। इसी कड़ी में जीविका मिशन के तहत महिलाओं को जोड़कर लाभ देने की योजना बनाई गई है।

कोयल दास (जीविका ऐज ए मोड ऑफ वुमन एम्पवरमेंट) जीविका गरीबी उन्मूलन के साथ-साथ महिलाओं के सामाजिक पहचान और सशक्तिकरण का माध्यम भी है।

नाबार्ड की भारत में सूक्ष्म वित्त की स्थिति 2011-12 रिर्पोट के अनुसार मार्च 12 के अंत तक SHG बैंक लिकेज योजना के लगभग 79 प्रतिशत बचत खाते महिला SHG द्वारा खोले गये है। SHG को बैंको द्वारा दिए गये ऋण में लगभग 80 प्रतिशत ऋण महिला SHG को दिए गए है। वहीं बैंको द्वारा दिए बकाया ऋण में लगभग 84 प्रतिशत महिला SHG द्वारा लिए गए है। स्पष्ट है कि भारत में SHG बैंक लिकेज योजना में तीन चौथई से अधिक लाभार्थी महिला SHG है।

अध्ययन विधि

शोध कार्य और अध्ययन हेतु प्राथमिक और द्वितीयक श्रोतों से तथ्यों का संग्रह किया गया है।

प्राथमिक श्रोतों से आँकड़ो का संग्रह के लिए साक्षात्कार प्रविधि और अवलोकन प्रविधि प्रयोग किया गया। उत्तरदाता चयन उद्देयानुसार प्रतिचयन के आधार पर 50 जीविका समूह से जुड़ी महिलाओं का किया गया। साक्षात्कार अनुसूचि के आधार पर विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों तथा अवलोकन के आधार पर आकड़ों का संग्रह और विशलेषण किया गया।

अध्ययन से संबंधित सूचना संग्रह हेतु द्वितियक श्रोतों जैसे-समाचार पत्र, मैगजीन, पूर्व शोध पत्र तथा विभिन्न वेवसाइटों का उपयोग किया गया।

अध्ययन क्षेत्र

इस शोध को करने हेतु बिहार के रोहतास जिले के नोखा प्रखण्ड का चयन किया गया। नोखा प्रखण्ड के विभिन्न पंचायतों के जीविका समूह से जुड़ी महिलाओं विशेषकर विधवा, तलाकशुदा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाती महिलाओं का अध्ययन के लिए चयन किया गया।

परिणाम एवं परिचर्चा

इस अध्ययन में पाया गया कि नोखा प्रखण्ड के विभिन्न पंचायतों के जीविका समूह से जुड़ाव के पश्चात महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्त्तन हुए विशेषकर जो महिलाएँ दलित समाज से थी, विधवा थी या तलाकशुदा थी या जिनके घर में कोई कमाऊ

पुरूष सदस्य नहीं थे। विधवा महिलाएँ विधवा पेंशन जो कि मात्र 400 प्रतिमाह मिलता है और वह भी नियमित नहीं उसी पर आर्थिक रूप से निर्भर थी या तो बच्चों का भरण पोषण के लिए चूल्हा, चौका बर्तन, साफ सफाई का काम करती है, या खेतों में मजदूरी करती थी। उनका समाज में कोई पहचान, सम्मान भी नहीं था। महिलाओं को आर्थिक जरूरतो के लिए महाजनों से अधिक ब्याज पर ऋण लेना पड़ता था, या अपना जमीन, गहना गिरवी रखना पड़ता था। लेकिन जीविका समूह के सदस्य बनकर महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्त्तन हुआ। जीविका का महिला सशक्तिकरण पर प्रभाव को नीचे लिखे तालिका में प्रतिशत के रूप में दर्शाया गया है।

तालिका

जीविका का महिलाओं के सशक्तिकरण पर प्रभाव	*प्रतिशत में*
1. आर्थिक आत्मनिर्भरता में बढ़ोतरी	90%
2. सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सामाजिक पहचान बढ़ी	62%
3. घरेलू हिंसा में कमी	40%
4. स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति जागरूकता	50%
5. महिलाओं में आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान	80%
6. महिलाओं में नेतृत्व एवं निर्णय लेने की क्षमता	50%
7. वित्तीय क्षेत्र में भागीदारी	95%
8. कौशल की विकास	70%
9. साक्षरता में वृद्धि	45%

उपरोक्त तालिका यह दर्शता है कि जीविका से जुड़वा के पश्चात् 90 प्रतिशत महिलाओं में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हुई जिससे परिवार में उनकी स्थिति में सुधार हुआ। अध्ययन में पाया गया कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं में घरेलू हिसां के मामले 40 प्रतिशत तक कम हुए। जीविका से जुड़कर महिलाएँ स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति 50 प्रतिशत अधिक जागरूक हुई जिससे महिलाओं का स्वास्थ्य स्तर बेहतर हुआ तथा परिवार के सदस्यों का स्वास्थ्य भी बेहतर हुआ 50 प्रतिशत महिलाओं में आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान पाया गया 80 प्रतिशत महिलाओं में नेतृत्व एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास हुआ अन्य महिलाओं की अपेक्षा ये महिलाएँ अपनी बात समुदाय के सामने अधिक बलपूर्वक रख पाती है। 95 प्रतिशत वित्तीय क्षेत्र में भी महिलाओं की भागदारी बढ़ी। बिहार में 80 फीसदी से अधिक जीविका समूह महिलाओं से संबंद्ध है जिनमें भुगतान दर 95 फीसदी के आसपास है तथा गैर निष्पादक परिसंपत्तियों की प्रतिशत बहुत कम है। 70 प्रतिशत महिलाओं में विभिन्न कौशल क्षमता का विकास हुआ। इन समूहों को सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा कौशल प्रशिक्षण भी दिया जाता है। जिससे महिलाओं की स्वयं की व्यक्तिगत या सामूहिक शक्ति बेहतर करने के लिए कौशल सीखने की क्षमता का विकास हुआ है। जीविका समूह से जुड़ने के बाद महिलाओं में साक्षरता दर 45 प्रतिशत तक बढ़ी है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि जीविका स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के पश्चात् नोखा प्रखण्ड के भिन्न पंचायतो की महिलाओं के जीवन में सकरात्मक परिवर्त्तन हुए है। उनके स्वाभिमान, गौरव व आत्म निर्भरता में वृद्धि हुई तथा उनके क्षमताओं एवं कौशल में बढोतरी हुई।

बिहार सरकार द्वारा शुरू की गई सतत् जीविकोपार्जन योजना के तहत अत्यंत निर्धन परिवारों का जीविका ग्राम संगठन के माध्यम से आजीविका श्रोतों से जोड़ा जा रहा है। जिससे ऐसे निर्धन परिवार समाज की मुख्य धारा में शामिल हो सकें। योजना के तहत जिला के अंतर्गत 113 लाभान्वितों का चयन कर उन्हें भिन्न आजीविका श्रोतों से जोड़ा गया एस०जे०वाई० के तहत वैसे परिवारों का चयन किया गया जिनकी मासिक आमदनी 3 हजार रूपये से भी कम है। परिवार में कोई पुरूष कमाऊ सदस्य नहीं है। या उनका

निधन हो चुका है या कोई अन्य विषम परिस्थिति है। योजना के अंतर्गत प्राथमिक रूप से वैसे परिवारों का चयन किया गया है जो बिहार में शराबबंदी से प्रभावित हुए है देशी शराब और ताड़ी के उत्पादन तथा बिक्री में पारंपरिक रूप से जुड़े परिवारों के साथ ही अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाती और अन्य समुदायों के लिखित अत्यंत निर्धन परिवारों के लिए एस०जे०वाई० शुरू की गई है।

इसके अतिरिक्त एन०आर०एल०एम० के अन्तर्गत गठित समूहों एवं ग्राम संगठनों की वित्तीय सहायता भी ग्रामीण क्षेत्र की जीविका समूह से जुड़ी महिलाओं का आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण देखा जा रहा है। महिलाएँ जीविका समूह से जुड़ने के पश्चात आर्थिक और सामाजिक रूप से मुखर होते हुए समाज के विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। जीविका महिला सशक्तिकरण का एक सशक्त माध्यम है। जीविका के प्रयासों का नतीजा है कि महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता का विकास हुआ वे अपने शिक्षा स्वास्थ्य और अधिकारों के प्रति सजग हुई। जीविका से जुडकर महिलाएँ हुनरमंद हो रही है। समाज के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

अंतत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीविका का महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है क्योंकि जीविका जुडने के बाद उनके स्वाभिमान, गौरव व आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है। परिणमस्वरूप महिलाओं के क्षमताओं में बढ़ोतरी होती है। आज बिहार एवं भारत भर में महिलाओं द्वारा संचालित जीविका स्वयं सहायता समूह के क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान रखता है, किन्तु हमारे बिहार की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रशासनिक राजनितिक व आर्थिक परिस्थितियाँ महिला समूहों की गतिशीलता व्यवहार्यता व सहायता में अनेक चुनौतियाँ खड़ी होती है। इन चुनौतियों को कम करने में महिला संगठनों, सामजसेवी संस्थाओं गैर-सरकारी संगठनों, सरकारी एजेंसियों इत्यादि द्वारा कार्य किया जा रहा है। जिसके फलस्वरूप महिला समूहों की सक्रियता व सामाजिक आर्थिक जीवन में भागीदारी व महिला सशक्तिकरण वास्तव में हो रहा है।

सुझाव

महिला सशक्तिकरण को लेकर जिले में स्वयं सहायता समूह का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे ज्यादा से ज्यादा स्वयं सहायता समूह का गठन किया जा सके। सरकार की ओर से महिला सशक्तिकरण के लिए सभी योजनाओं के प्रति महिलाओं के अधिकार, कर्त्तव्य व जागरूकता को लेकर प्रखण्ड में कार्यशाला व प्रशिक्षण का कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण को प्रभावी बनाने के हर संभव प्रयास किये जाने चाहिए। अभियानों के तहत महिलाओं को सशक्त एवं सबल बनाने का प्रयास जारी रखना चाहिए ताकि आधी आबादी देश के विकास में अपना भूमिका निभा पाए।

संदर्भ सूची

1. https://www.pravaka.com
2. https://www.jagran.com
3. https://www.dhyeyais.in
4- https://brlp.in
5. नाबार्ड भारत में सूक्ष्म वित्त की स्थिति 2011-12 रिर्पोट
6. लता गंगाधरण टी0जे0 (दिसम्बर 2014) द विहेबियर रेसपॉस टू विमेन्स एम्पायरमेंट प्रोग्राम एक्सपेरिमेंटल एवीडेस फर्म जीविका इन बिहार
7. जीविका ऐज ए मोड ऑफ वुमन एम्पावरमेंट: कोयल दास
8. स्वामीनाथन पी0 (2012) वुमेन एण्ड वर्क: नोयडा: ओरियंट बैल्कसवन प्राइवेट लिमिटेड

धूमिल के काव्य में राजनीतिक यथार्थ और जन-सरोकार

डॉ० दीनदयाल

सहायक आचार्य, कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

विशाल कुमार यादव

शोधार्थी, डॉ.राम मनोहर लोहिया अवध विश्व विद्यालय, अयोध्या, उत्तरप्रदेश

शोध सार: कविता मानव-मन की सर्जनात्मक उपज है, जो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों, विचारों और स्वभावों के प्रभाव में निरंतर परिवर्तनशील रूप में विकसित होती रहती है। कविता केवल पारलौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित होकर आदर्शों और मूल्यों का गुणगान भर नहीं करती, बल्कि उसकी वास्तविक सार्थकता मानव स्वभाव के प्रत्येक कण में अभिव्यक्त होती है। वह मानवीय संवेदनाओं की युगानुकूल प्रवाहित धारा है, जिसकी प्रासंगिकता समसामयिक संदर्भों से जुड़कर अपने चरम बिंदु पर पहुँचती है।कविता समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक यथार्थ से अछूती नहीं रह सकती, क्योंकि जितनी अधिक तीव्रता से वह इन यथार्थों की मार्मिक अभिव्यक्ति करती है, उतनी ही अधिक सार्थक सिद्ध होती है। कविता समाज में घटित होने वाली प्रतिदिन की घटनाओं से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध होती है और जन-सामान्य के जीवन से उसका गहरा सरोकार होता है। इस प्रकार कविता समाज का दर्पण बनकर उसकी वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करती है।व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है और उसकी उन्नति-अवनति समाज से पृथक नहीं देखी जा सकती। इसी प्रकार समाज और राजनीति का संबंध भी अटूट रहा है, जो सदियों से निरंतर विकसित होता आया है। इस संबंध को हिंदी साहित्य के कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। इन कवियों में धूमिल का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी रचनात्मकता में राजनीतिक चेतना एक केंद्रीय तत्त्व के रूप में उपस्थित है, जिसका विस्तृत विश्लेषण इस शोध आलेख में किया गया है।

बीज शब्द: राजनीतिक चेतना, आक्रोश, व्यवस्था-विरोध, गरीबी, जहालत, गवई-गंध, प्रजातंत्र, आजादी, राजनेता, संसद, आम आदमी।

मूल आलेख :

राजनीति समाज का एक ऐसा ज्वलंत मुद्दा है जिससे कतरा कर निकल पाना किसी भी साहित्यकार के लिए संभव नहीं हो पाया है क्योंकि राजनीतिक यथार्थता प्रत्येक कालखंड की चेतना में प्रदर्शित होती रही है। हिन्दी कविता भी इस राजनीतिक प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकी है। भले ही यह कमोवेश रूप में प्रभावित रही हो। हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखंडों में राजनीति का वर्चस्वशाली प्रभाव परिलक्षित होता है। हिन्दी साहित्य की आदिकालीन काव्य परंपरा से लेकर आधुनिक काल तक की कविताओं में यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आदिकालीन रासों काव्य राज-प्रासादों, दरबारों, सामाजिक संगठनों, समुदायों की राजनीतिक गतिविधियों का हवाला प्रस्तुत करते हुए लक्षित होते हैं। इसके साथ ही राज्याश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता का गुणगान करने के साथ-साथ उनकी राजनीतिक प्रभावशीलता का भी वर्णन करने में कम महारथ हासिल नहीं की थी। इसी तरह भक्तिकाल,

रीतिकाल और आधुनिक काल के कवियों ने भी प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक वर्चस्व को भी अभिव्यंजित करने का भरसक प्रयत्न किया है। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन काव्य में राजनीतिक उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। मुगलों की व्यवस्थाओं, व्यवस्थापिकाओं और उनकी शासन-प्रशासन की राजनीतिक गतिविधियों का हवाला प्रस्तुत किया गया है। यह हवाला चाहे भक्ति कालीन रचना धर्मिता के माध्यम से हो या फिर सीधे समाज केंद्रित। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास की अप्रतिम रचना 'रामचरितमानस' है। जिसमें गोस्वामी जी ने राजनीतिक व्यवस्था-विरोध को भलीभांति प्रश्रय दिया है।

इसी तरह रीतिकाल में भी रीतिकालीन कवियों ने राजनीतिक व्यवस्था-विरोध के उठापटक को अभिव्यंजित करने का प्रयास किया है। रीतिकालीन कविता राजाओं, रईसों, सामंतों आदि के दरबारों में पली-बढ़ी है। जिससे इन दरबारों की विलासिता वहाँ से निकल कर समाज को भी क्षतिग्रस्त करने लगी थी। जिसका भली-भांति वर्णन बिहारी, भूषण, सूदन आदि कवियों की रचनाओं में देखा जा सकता है। आधुनिक काल की कविता राजनीतिक चेतना से ओत-प्रोत है। आधुनिक काल के कवि अपनी कविताओं में केवल ईश्वरीय भक्ति का गुणगान नहीं करते थे बल्कि मनुष्य को केंद्र में रखकर भी रचनाएँ करते थे। आम जन-मानस को राजनीति, देश-प्रेम, समाज सुधार जैसी भावनाओं से अवगत कराने के लिए रचनाएँ करते थे। आधुनिक काल में कई ऐसी राजनीतिक त्रासदियाँ हुई हैं जिनका कवियों ने अपनी कविताओं में विरोध किया है। हिन्दी साहित्य की कविता की विकास यात्रा आधुनिक काल तक आते-आते दरबारों से बाहर निकल कर अंग्रेजी सत्ता के चंगुल में फंस गई थी, जिसका फायदा उठाकर अंग्रेजों ने कई वर्षों तक भारत को गुलाम बनाकर लूटपाट की। अपने स्वार्थ के लिए लोगों को एक दूसरे से लड़ाकर अपनी उन्नति करते रहे। "अनेक जातियों, उपजातियों में विभक्त इस देश में पारस्परिक एकता का सर्वदा अभाव रहा है। विदेशी मुसलमानों की विजय का कारण भी यही था और अंग्रेजों की विजय का भी।"[1]

ऐसी स्थिति में आधुनिक काल के कवियों के लिए राजनीतिक गतिविधियों की अभिव्यंजना एक अहम विषय रहा है। स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक अंतर्द्वंद्व को भारतेन्दु, द्विवेदी तथा छायावादी युगीन काव्य रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रगतिवादी कविता मार्क्सवादी सिद्धांतों पर आधारित है, जिसमें राजनीति का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। प्रेम और मस्ती के काव्य में अनुभूतियों के अनुरूप कविताएँ रची जा रहीं थी तो प्रयोगवादी कविता में शब्द प्रयोग के साथ-साथ राजनीति का भी अभिव्यंजन देखा जा सकता है।

समकालीन हिन्दी कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद की कविता है। समकालीन हिन्दी कविता केवल राजनीति की यथा स्थिति को ही नहीं व्यंजित करती है बल्कि उसकी मूल्यहीनता को भी अभिव्यक्त करती है। इस संदर्भ में डॉक्टर हुकुमचंद राजपाल लिखते हैं कि- "इस काव्यधारा के कवियों का मूल प्रतिपाद्य राजनीति और व्यवस्था की विद्रूपताओं के फलस्वरूप जन-सामान्य में व्याप्त मूल्यहीनता को व्यंजित करना है। ये कवि मूल्यहीन स्थितियों को उद्घाटित कर जन-मुक्ति के मूल्य के प्रतिष्ठापक हैं। सही और सार्थक पहचान इनका संबल है।"[2] समकालीन हिन्दी कविता में समकालीन जन-सरोकारों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। राजनीति आधुनिक व्यक्तियों के जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित कर रही है। जिसके फलस्वरूप समकालीन हिन्दी हिन्दी कविता के केंद्र में राजनीति का आ जाना कोई आकस्मिक घटना नहीं है।

समकालीन हिन्दी काव्य जगत के लगभग सभी कवियों ने राजनीति को दृष्टि में रखकर अपनी रचना की हैं। क्योंकि यह समकालीन संदर्भों का एक ऐसा प्रसंग था जिससे कोई अलगाव न रख सका। धूमिल समकालीन हिन्दी कविता के पक्षधर कवि माने जाते हैं। जिनका काव्य राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियों पर अधिकाधिक कटाक्ष करता दिखाई पड़ता है। धूमिल का वास्तविक नाम सुदामा प्रसाद पांडेय है। इनके मुख्यतः तीन काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पांडे का प्रजातंत्र'हैं। इन संग्रहों की कविताएँ किसी न किसी रूप में राजनीति के छल-छद्म को यथार्थता के धरातल पर अवश्य ही प्रकट करती हैं। उनकी राजनीतिक चेतना एक समस्या के रूप में चित्रित हुई है, जो कठिन परिस्थितियों में भी संवेदनात्मक चुनौतियों की भरमार करती दिखाई पड़ती है।

कवि ने राजनीति के अछूते पहलुओं पर ऐसा प्रहार किया है जिससे राजनीतिक चरित्र का दोहरापन बेनकाब होने से बच नहीं सका है। ऐसा ध्वनित होता है कि धूमिल अपने काव्य में समाज तथा देश की किसी भी विसंगति को छोड़ना नहीं चाहते थे। उनके काव्य में संसद, सड़क, जनता, जनतंत्र, आजादी, समाजवाद, राजनेता, आम आदमी जैसे सब प्रयुक्त हुए हैं जो कवि की दृष्टि में अपनी सार्थक अर्थवत्ता को छोड़कर निरर्थक साबित हो रहे हैं। "व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विरोध, विसंगतियों पर पैना व्यंग्य,

व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के बदलते हुए आयाम भी उनकी कविता में अभिव्यंजित हुए हैं। सच्चे अर्थों में वे युग बोध के कवि हैं। उन्होंने जो कुछ भी देखा, जैसा देखा उसे वैसा ही चित्रित किया है। उनके काव्य में समकालीन यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। यही कारण है कि उनकी अधिकांश कविताओं में व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के कथ्य के साथ-साथ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ भी समाहित हैं। देश की ज्वलंत समस्याओं के प्रति भी वे सजग हैं। जनसंख्या, बेकारी, भुखमरी को उन्होंने अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। धूमिल की कविताओं का मूल्यांकन समसामयिक संदर्भों तथा कवि चेतना की पृष्ठभूमि में ही किया जा सकता है।"[3]

वर्तमान में इस राजनीतिक मसौदे से कोई कट नहीं सकता है, क्योंकि यह मानव विकास की स्वचालित गति है जो समयानुसार उसको प्रभावित करती रही है। कविता भी राजनीति पर आज खुलकर अपनी पक्षधरता को व्यक्त करती है। धूमिल का काव्य राजनीतिक चेतना दृष्टि से हिन्दी काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

हमारे देश की आजादी के संघर्ष को भुलाया नहीं जा सकता है। यह आजादी केवल शासकों का परिवर्तन मात्र नहीं थी बल्कि इससे सामाजिक जीवन में भी कई परिवर्तन हुए हैं। समाज में फैली भुखमरी, अशिक्षा, अकाल जैसी अनेक समस्याओं पर लोगों का ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु देश विभाजन, युद्ध और अशांति जैसी परिस्थितियों ने देश की जड़ों को हिला कर रख दिया है। देश की आजादी का सपना पूरा होने पर हर व्यक्ति प्रसन्न था, इस प्रसन्नता को कवि धूमिल भी अपने काव्य में व्यक्त करते हैं। यथा-

"मैंने कहा आजादी...
मुझे अच्छी तरह याद है
मैंने यही कहा था
मेरे नस-नस में
बिजली दौड़ रही थी
उत्साह में।"[4]

कवि को आजादी के खुले वातावरण में कई प्रकार की अजीब चीजें देखने को मिलीं। वह दौड़कर खेतों में देखता है कि आजादी का प्रभाव अनाज की उपज के अंकुरों में फूट पड़ा है, चिड़िया पेड़ों पर बैठी चहचहा रही हैं, बैलों के गले में पड़ी कांस्य की बजती घंटियों को देखकर उनकी पीठ थपथपाता है, वापस लौट सारे घर में रोशनी करता है, उत्साह में सारे देश में दीप जलाए गए, दीवार में टंगी पुरानी तस्वीरों की सफाई कर उन्हें वहीं टांग देता है और आजादी के नाम पर एक पौधा लगा कर वन महोत्सव की घोषणा करता है।

भारत शांति का पर्याय माना जाता है, इसलिए कवि शांति के प्रतिरूप एक जोड़ी कबूतर पाल लेता है। धूमिल आजादी को ही अपना लक्ष्य नहीं मानते हैं। उनके लिए आजादी वह साधन है जिसमें सामाजिक जीवन की खुशहाली की दिशा दिखाई देती है। वे वर्तमान का स्मरण कर भविष्य की काल्पनिक खुशहाली की सांत्वना को व्यंग्यात्मक रूप में काव्य में प्रकट करते हैं। उनका मानना था कि स्वतंत्र भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाएँ शोषण मुक्त होंगी तथा कोई व्यक्ति रोटी, कपड़ा, मकान और दवा के अभाव में घुट-घुट कर नहीं मरेगा। जिसके लिए वे बार-बार अपनी सम्मोहित बुद्धि के कारण उन नेताओं को अपना नेतृत्व सौंपते रहे। परन्तु ये राजनेता देश के आम लोगों की मूल समस्याओं को अनदेखा कर विश्व शांति, पंचशील जैसे मुद्दों पर उलझे रहे। ऐसे समय में आम जनमानस की आशाएँ, आकाक्षाएँ निरर्थक मालूम पड़ रही थीं तथा विकास योजनाएं विफल साबित हो रही थीं। ये परिस्थितियाँ आजादी के बाद अधिक भयवाह होने लगी थीं। क्योंकि यह राजनीतिक विफलता का दौर थाघ लोगों का ऐसी राजनीतिक सत्ता से मोहभंग होने लगा जो अपने स्वार्थ के लिए छल-कपट, सत्ता-लोलुपता तथा चुनावी हथकंडे अपनाने से नहीं चूकते हैं। धूमिल आजादी के इस यथार्थ का आंकलन करके आजादी पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए सवाल करते हैं-

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?"[5]

कवि इस मोहभंग की स्थिति में आजादी को निरर्थक मानता है जो सिर्फ औपचारिक बनकर रह गई है। जिससे न भूख मिटाई जा रही है, न मौसम बदला जा रहा है। विश्वनाथ त्रिपाठी का कथन है कि- "नेहरू का निधन स्वातंत्र्योत्तर भारत में निराशा और मोहभंग की पहचान है। यह मोहभंग तारसप्तक में पाए जाने वाले मोहभंग जैसा केवल बौद्धिक नहीं। यह हमारे देश के एक दौर का मोहभंग है।"[6] धूमिल की राजनीतिक अभिव्यंजना इसी मोहभंग की उपज कही जा सकती है। स्वतंत्र देश में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली अपनाई गई और सभी को स्वतंत्रता, समानता के अधिकार भी दिए गए। परन्तु इस व्यवस्था ने समाज को कई वर्गों में विभाजित करके आम लोगों के अधिकार पूंजीपतियों के हाथों में सौंप दिए जो उनकी विलासिता के एकमात्र साधन बनकर रह गए। आज जो साधन संपन्न हैं उनके लिए निर्बल, असहाय गरीब लोग सबसे गंदी गाली बन गए हैं।

प्रजातंत्र की इस व्यवस्था में चुनाव, राजनेता, संसद, जनता, न्याय व्यवस्था, संविधान आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस पर कवि धूमिल ने विचारकर प्रजातंत्र के असली चेहरे को समाज के सम्मुख उजागर करने का काम अपनी कविताओं के माध्यम से किया। धूमिल की दृष्टि में आज जिसे 'जनतंत्र'कहते हैं वह आज इन भेड़ियों की जुबान पर ही जिंदा है, जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या की जाती है-

"जनतंत्र'
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा है।"[7]

धूमिल वर्तमान की परिस्थितियों के लिए लोगों को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। क्योंकि ये लोग अपनी जड़ीभूत मानसिकता के कारण ही पीड़ित, शोषित और दमित हैं, जो व्यवस्था के अमानवीय अत्याचारों के शिकार हैं फिर भी वे अपने इस दशा के खिलाफ न ही आवाज उठाने और न ही कुछ करने को तैयार होते हैं। धूमिल इन लोगों की इस उदासीनता और तटस्थता को देखकर दुखी होते हैं जो देश के चालाक नेताओं के बहकावे में आकर शोषित होने को अपनी नियति मान बैठे हैं। देश की स्वतंत्रता के बाद जो नेतृत्व उभरा वह अत्यंत स्वार्थी, धूर्त, क्रूर एवं संकीर्ण दृष्टि का था जो भ्रष्टाचार में संलिप्त होकर राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाता था। ऐसे नेतृत्वकर्ता नेताओं के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए धूमिल लिखते हैं कि-

"मगर चालाक 'सुराजिये'
आजादी के बाद के अंधेरे में
अपने पुरखों का रंगीन बलगम
और गलत इरादों का मौसम जी रहे थे
अपने-अपने दराजों की भाषा में बैठकर
गर्म कुत्ता खा रहे थे
'सफेद घोड़ा'पी रहे थे।"[8]

कवि ने चालाक 'सुराजिये' शब्द के द्वारा नेताओं के प्रति पूरी कुत्सा को चित्रित किया है। इस अव्यवस्थित एवं स्वार्थपूरित व्यवस्था के अंधेरे में इन चालाक नेताओं ने अपनी सुख-सुविधाएँ सुरक्षित करके पूर्व-शासकों के पदचिह्नों पर चलकर भी गलत दिशा का चुनाव कर लिया है। जिसका उद्देश राष्ट्र निर्माण न होकर अपने लिए सुख - सुविधाएँ जुटाना हो गया है। धूमिल ऐसे स्वार्थी नेताओं की कटु आलोचना करते हैं।

धूमिल ऐसे अवसरवादी नेताओं को निर्लज्ज और निष्ठुर कहते हैं, जो सत्तापक्ष से अपने को अधिक समय तक अलग नहीं रख सकते। अगर आवेश या अन्य किसी कारणवश ये सत्तापक्ष से विमुख भी हो जाते हैं तो वहीं दूसरी तरफ अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए सत्ता के गठजोड़ में लग जाते हैं। जिसके लिए ये नेता लोग चुनावों के समय आम जनता से कई तरह के झूठे वादे भी करते हैं। परंतु अपना स्वार्थ सिद्ध होने के बाद ये जनता की समस्याओं को अनदेखा करते नजर आते हैं। वर्तमान समय में राजनीतिक

व्यवस्था की यह स्थिति अत्यंत भयावह रूप धारण कर चुकी है। धूमिल ने 'चुनाव' नामक कविता में यह अभिव्यंजित किया है कि आश्वासनों की बौछार और चुनावों के नाम पर लोगों को कैसे ठगा जाता है। "चुनाव जीतने के लिए उन्हें एक ओर तो पूंजीपतियों के अनुसार चलने के लिए बाध्य होना पड़ता तथा दूसरी ओर जनता को झूठे आश्वासन देने पड़े। इस दोमुंही नीति के कारण उनमें राजनीतिक चरित्रहीनता बढ़ने लगी।"[9]

यह राजनीतिक व्यवस्था की विडंबना रही है कि वह सिर्फ और सिर्फ पूंजीपतियों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है जिसके चारों ओर पूंजीवादी दिमाग घूमता रहता है। इन नेताओं की निरर्थक नारेबाजी के फलस्वरुप ही राजनीतिक व्यवस्था में व्यंग्य के स्वर का मुखरित होना स्वाभाविक है। धूमिल इसे कई प्रसंगों में अभिव्यंजित करते हुए लक्षित होते हैं।

इस समग्र विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हिंदी कविता की परंपरा में राजनीति कोई बाह्य अथवा आकस्मिक तत्व नहीं रही है, बल्कि वह प्रत्येक युग की साहित्यिक चेतना का अनिवार्य अंग रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को समाज की "अंत:प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति" माना है, और इसी दृष्टि से राजनीतिक परिस्थितियाँ कविता की संवेदना को निरंतर प्रभावित करती रही हैं। आधुनिक और समकालीन हिंदी कविता में यह राजनीतिक चेतना अधिक मुखर, प्रत्यक्ष और आलोचनात्मक रूप में सामने आती है, जहाँ कविता सत्ता के प्रति प्रशंसा का माध्यम न रहकर प्रतिरोध और प्रश्नाकुलता का स्वर ग्रहण कर लेती है।[10]

समकालीन हिंदी कविता में धूमिल इस राजनीतिक चेतना के सर्वाधिक सशक्त और निर्भीक प्रतिनिधि के रूप में उभरते हैं। उनका काव्य स्वतंत्रता के बाद विकसित हुई राजनीतिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक संस्थाओं और सत्ता-संरचनाओं की गहरी पड़ताल करता है। नामवर सिंह के अनुसार धूमिल की कविता लोकतंत्र के भीतर छिपे हुए अलोकतांत्रिक यथार्थ का पर्दाफाश करती है। धूमिल के यहाँ राजनीति किसी अमूर्त वैचारिक संरचना के रूप में नहीं, बल्कि आम आदमी के जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाली यथार्थ सत्ता के रूप में उपस्थित होती है।धूमिल की कविता में स्वतंत्रता के प्रति प्रारंभिक उत्साह के साथ-साथ उससे उत्पन्न मोहभंग की अनुभूति भी तीव्रता से अभिव्यक्त हुई है। स्वतंत्र भारत में व्याप्त भूख, बेरोजगारी, असमानता और भ्रष्टाचार कवि को इस निष्कर्ष तक पहुँचाते हैं कि यदि आजादी केवल संवैधानिक घोषणा बनकर रह जाए और जनसाधारण के जीवन में ठोस परिवर्तन न ला सके, तो उसकी सार्थकता संदिग्ध हो जाती है। इस संदर्भ में धूमिल की कविता उस "आजादी की विडंबना" को उजागर करती है, जिसकी ओर पहले ही प्रेमचंद ने संकेत किया था।[11] प्रजातंत्र के संदर्भ में धूमिल का दृष्टिकोण विशेष रूप से विचारणीय है। उनके अनुसार लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था में परिणत हो चुका है, जहाँ सत्ता और पूँजी का गठजोड़ जनता की आकांक्षाओं को लगातार कुचल रहा है। इस संदर्भ में धूमिल की कविता केवल शासक वर्ग की आलोचना तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह जनता की निष्क्रियता और राजनीतिक चेतना के अभाव पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है। यह द्वंद्वात्मक दृष्टि धूमिल को अन्य समकालीन कवियों से अलग करती है।[12] धूमिल की काव्य-भाषा उनकी राजनीतिक चेतना को और अधिक धार प्रदान करती है। उनकी भाषा में व्यंग्य, कटाक्ष और आक्रोश का तीखापन है, जो कविता को अलंकरणात्मक सौंदर्य से मुक्त कर जीवन की कठोर सच्चाइयों से जोड़ देता है। अजय तिवारी के अनुसार धूमिल की भाषा "कविता को भाषण नहीं बनाती, बल्कि उसे जनसंघर्ष का हथियार बना देती है।"[13] यही कारण है कि उनकी कविता पाठक को केवल भावनात्मक स्तर पर प्रभावित नहीं करती, बल्कि उसे असहज करती है और सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों से मुठभेड़ के लिए विवश करती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि धूमिल का काव्य समकालीन हिंदी कविता में राजनीतिक चेतना की एक निर्णायक उपलब्धि है। उनकी कविताएँ स्वतंत्रता-उपरांत भारतीय राजनीति के अंतर्विरोधों, विडंबनाओं और विफलताओं का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। वे कविता को केवल सौंदर्य या मनोरंजन का माध्यम न मानकर सामाजिक-राजनीतिक हस्तक्षेप का सशक्त औजार बनाते हैं। इस दृष्टि से धूमिल की कविता न केवल अपने समय की पहचान है, बल्कि हिंदी कविता में राजनीतिक प्रतिरोध की एक स्थायी और विश्वसनीय परंपरा को भी स्थापित करती है।

संदर्भ :

1. नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014, पृ. सं.- 402
2. हुकुमचन्द राजपाल, 'समकालीन बोध और धूमिल का काव्य', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. सं.- 42

3. मीनाक्षी जोशी, 'धूमकेतु धूमिल और साठोत्तरी कविता', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं.- 180
4. रत्नशंकर पाण्डेय, 'धूमिल समग्र' भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. सं.- 113
5. वही, पृ. सं.- 47
6. नीलम सिंह, 'धूमिल की कविता में विरोध और संघर्ष', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. सं.-54
7. रत्नशंकर पाण्डेय, 'धूमिल समग्र' भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. सं.- 72
8. वही, पृ. सं.- 74
9. मीनाक्षी जोशी, 'धूमकेतु धूमिल और साठोत्तरी कविता', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं.- 52
10. रामचंद्रशुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रयोग : नागरी प्रचारिणी सभा, 1955, पृ. सं.-12-15
11. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य,वाराणसी : हंस प्रकाशन, 1962, पृ. सं.-1-5
12. रामविलासशर्मा, प्रगतिशील साहित्य की परंपरा.नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1984, पृ. सं.-78-86
13. अजयतिवारी, समकालीन हिंदी कविता, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2010, पृ. 132-138

संजीव के कथा-साहित्य में आदिवासी अस्मिता से जुड़े आन्दोलन

डॉ० क्षमा यादव

पूर्व शोधार्थी, पीएच.डी., हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध-सार :

समकालीन समय में सदियों से दमित वर्गों के अंतस में क्रांति और विरोध की भावना निरंतर विकसित हो रही है। यदि हम आदिवासी वर्ग की बात करें तो आदिवासी समाज एक लम्बे समय से अपनी संस्कृति और अस्मिता को लेकर जागरुक रहा है। आदिवासी समाज के अंग्रेजों के साथ हुए संघर्षों को भुलाया नहीं जा सकता। साहित्य ने अब इन संघर्षों को दर्ज करना शुरू किया है। संजीव के कथा साहित्य में भी आदिवासी समाज का यह संघर्ष साफ दिखाई देता है। संजीव ने भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समाज की चिंताओं और उनके सत्ता तथा दिकू समाज के अत्याचारों के प्रति विद्रोहों को अपने कथा साहित्य में समेटा है। इस शोध आलेख में संजीव के साहित्य में वर्णित उन्हीं विद्रोहों पर चर्चच की गई है।

बीज शब्द: आदिवासी, आन्दोलन, शोषण, अस्मिता, विद्रोह, साहित्य, विमर्श

गौरतलब है कि आदिवासी समाज आरंभ से ही स्वतंत्र और स्वावलंबी समाज रहा है। अत: अगर कोई भी उनकी स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता है तो यह समाज चौकन्ना हो जाता है और उसका पुरजोर विरोध करता है। जब-जब आदिवासी समाज शोषण से तंग आया उसने अपनी अस्मिता के लिए आवाज उठाई। चिपको आन्दोलन, संथाल-विद्रोह, मुंडा-बिरसा, सिद्धू-कान्हू आन्दोलन आदिवासी विद्रोह के मुख्य उदाहरण रहे हैं। समकालीन समय में अस्मितामूलक विमर्शों के उभरने के साथ ही यह आन्दोलन और भी तीव्र हुआ है। गौरतलब है कि जितना शोषण तीव्र हुआ है उतना ही उसका विरोध भी। हर जुल्म, हर शोषण की एक इन्तहा होती है; उस इन्तहा के बाद मनुष्य उस जुल्म को सहने से इंकार कर देता है या यूँ कहें कि उसकी सहन करने की सीमा अब समाप्त हो जाती है। कभी मजबूरी में और कभी अपने आत्मसम्मान के लिए वह पलटकर जवाब देता ही है। इसी तरह से आदिवासी समाज ने भी समकालीन समय में पूँजीवादी वर्ग, दिकू समाज और प्रशासन के शोषण से तंग आकर एक बगावत छेड़ दी है। "किसी समुदाय की संस्कृति उसके जीवन के पूरे दायरे (देशकाल) में अर्जित मूल्य-बोध की पूँजी होती है और उसके लिए पहचान(अस्मिता, आइडेंटिटी) के संकट का सवाल तब आता है जब वह देखता है कि उस पर आक्रमण हो रहा है। जब उसकी पहचान के विघटित होने का भय उसे आतंकित करता है।"[1] आदिवासी समाज समकालीन समय में अपनी इस विघटित होती पहचान को बचाने के लिए निरंतर आवाज उठा रहा है।

संजीव ने आदिवासी वर्ग के भीतर निरंतर उभरती इस चेतना को अपने कथा-साहित्य में बखूबी दिखाया है। संजीव के कथा-साहित्य में हमें बड़ी संख्या में ऐसे आदिवासी पात्र मिलते हैं जो इस क्रूर समाज और व्यवस्था पर पलटवार करते हैं तथा दिकू समाज और प्रशासन की गुलामी को नकार देते हैं। वे विद्रोह करने का माद्दा रखते हैं; उस अमानवीय और असंवेदनशील व्यवस्था के प्रति जिनके लिए आदिवासी महज जंगली और असभ्य हैं। हाँ, इन पात्रों का विद्रोह का तरीका बेशक अलग-अलग है परन्तु उदेश्य एक ही है-अपनी अस्मिता, अपने अस्तित्व, अपने हक को बचाए रखना। अपने जल, जंगल, जमीन और संस्कृति को बचाए रखना।

संजीव के यहाँ आदिवासियों के हित में आन्दोलन दो तरह से मिलता है। एक वह है जहाँ आदिवासी पात्र स्वयं विद्रोह करते हैं, दूसरा वह है जिसमें गैर-आदिवासी आदिवासी हक के लिए आवाज उठाते हैं। यहाँ पर भी स्वानुभूति और सहानुभूति का फर्क साफ देखा जा सकता है। सहानुभूति की स्थिति में थोड़ी शक की गुंजाइश है क्योंकि ऐसे लोगो का आन्दोलन उनके अपने निजी स्वार्थ से प्रेरित हो सकता है। संजीव ने आदिवासी हित के नाम पर अपना भला साधने वाले फर्जी आन्दोलनकारियों के वास्तविक चरित्र को अपने उपन्यास 'पाँव तले की दूब' में यथार्थपूर्ण ढंग से उभारा है। इस उपन्यास के माध्यम से संजीव ने आदिवासियों के हित को सोच कर चलाए गए झारखंड आन्दोलन की जमीनी हकीकत को बयाँ किया है। झारखंड आंदोलन ने इस उम्मीद के साथ जोर पकड़ा था कि अलग राज्य बनने पर आदिवासियों की स्थिति में कुछ सुधार होगा, उनकी समस्याओं को राज्य प्राथमिकता देगा और एक खुशहाल आदिवासी समाज का निर्माण होगा। परंतु कुछ सत्तालोलुप नेताओं ने इस आंदोलन का इस्तेमाल अपने राजनैतिक लाभ के लिए किया और आदिवासियों की स्थिति आज भी उतनी ही दयनीय, उतनी ही करुण, उतनी ही अभावग्रस्त बनी हुई है। 'पाँव तले की दूब' के पात्र सुदीप्त को इस बात की आशंका पहले ही हो जाती है और वह कहता है- "अलग झारखंड राज्य मिल जाने मात्र से सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी? कहीं ऐसा तो नहीं कि भारत की आजादी की तरह स्वार्थी शोषकतत्व, तथाकथित कुलीन वर्ग और शिक्षित वर्ग आगे बढ़कर उनका लाभ हथिया ले जायेंगे, ये दीन-हीन लोग जस के तस पड़े रह जाएँगे।"[2]

गौरतलब है कि आदिवासियों के लिए जितनी भी योजनाएँ और राहत कार्य चले जाते हैं उनका लाभ उन तक नहीं पहुँचता। उनके लिए जो आन्दोलन चलाए जाते हैं वे स्वार्थ से प्रेरित होते हैं। दूसरी तरफ आदिवासी वर्ग से सहानुभूति रखने वाले वर्ग में सुदीप्त और अविनाश शर्मा जैसे कुछ भले आदिवासियों का हित चाहने वाले लोग भी हैं जो वास्तव में सहानुभूति रखते हैं। जो आदिवासियों को अपने हक के लिए आवाज उठाने के लिए जागरूक करते हैं। 'धार' उपन्यास में अविनाश शर्मा कहते हैं- "तो साथियों यह धार हमारी शक्ति है और धार का भोथरा होना ही मौत है; धार बरकरार रही तो सारा संसार ही आपका है। इसलिए हमें धार की जरूरत है। सतत सान से पैदा होती हुई धार चाहिए, हमें कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े।"[3] परन्तु कहीं न कहीं ये लोग भी उस समुदाय का हिस्सा न होने के कारण असली नब्ज को नहीं पकड़ पातें और जीवन भर अलगाव महसूस करते हैं।

आदिवासी समाज ने अब इस बात को भली-भाँति समझ लिया है कि उनका उद्धार उनके बीच से निकला व्यक्ति ही कर सकता है। "समाज के शक्तिशाली लोग आदिवासी मूल्यों को उसी सीमा तक स्वीकार करेंगे, जहाँ तक राज्य के निहित स्वार्थ नहीं टकराएँगे। पहले आदिवासी और दलित दया पर निर्भर थे, अब उनमें अस्मिता-बोध पैदा हो गया है। यह बहुत गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। वे अपने हक की बात करते हैं। अट्ठारहवीं सदी में आदिवासी संघर्ष का जो सशस्त्र प्रतिरोधी स्वर उठा था, प्रतिरोध का वही स्वर इक्कीसवीं सदी में नए रूप में पुनर्जीवित हो रहा है।"[4] अब आदिवासी समझ गए हैं कि उन्हें अगर अपनी स्थिति सुधारनी है तो स्वयं ही आवाज उठानी होगी। इसी कारण इस कोयलांचल के गर्भ से फिलिप और मैना जैसे कुछ पात्र हीरे की तरह निकलते हैं। जो संघर्ष करते हैं, क्रूर व्यवस्था के खिलाफ खड़े होते हैं, अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और निराशा के कोहरे में आशा की एक चमक की तरह उभर कर आते हैं। 'धार' उपन्यास की मैना ऐसे अंधकारपूर्ण वातावरण में एक प्रकाश-पुंज की तरह उभरती है। उसके एक तरफ पितृसत्ता है तो दूसरी तरफ शोषण का वह तंत्र जो मुनाफे के लोभ में आदिवासी समाज को घास की तरह रौंदना चाहता है। उसके अस्तित्व को छिन्न-भिन्न कर देना चाहता है। परन्तु मैना अंत तक इस शोषण तंत्र का विरोध करती रहती है और इस क्रूर दिकू समाज को दिखा देती है कि अब आदिवासी समाज उनके शोषण को मूक बना सहता नहीं रहेगा बल्कि अब ईंट का जवाब पत्थर से देगा। मैना अपने पिता और पति के खिलाफ जाकर तेजाब की फैक्ट्री का विरोध करती है। क्योंकि वह भली प्रकार समझती है कि किस तरह इस फैक्ट्री के खुलने से उनका जीवन बुरी तरह प्रभावित होगा। वह अब अपनी पहचान और अपनी अस्मिता के साथ तनिक भी समझौता बर्दाश्त नहीं कर सकती।

अपने उपन्यास 'पाँव तले की दूब' में संजीव आदिवासी समाज का एक अलग तरह का विद्रोह दिखाते हैं। यह विद्रोह है धान कटनी का जिसमें आदिवासी समाज अपने विद्रोह को प्रकट करने के लिए महाजन द्वारा उनसे छीने गए खेत से धान काट लेते हैं। "दूसरी सुबह हम जल्दी-जल्दी तैयार होकर टीले तक पहुँचे थे। मेड़ पर नगाड़ा बज रहा था और तीर धनुष, कुल्हाड़ी, हंसिया लिए काले-काले दरिद्र आदिवासी, महिला, पुरुष, बच्चे तक दो-एक बन्दूक भी थी। बहुत दूर पर खड़े कुछ अपेक्षाकृत संपन्न से दिखने वाले लोग ताक रहे थे। मगर वे पास न फटके और दोपहर तक सारा धान कट-बटकर पहाड़ों की दरारों में समा गया।"[5] यह आदिवासी समाज का खुला विद्रोह है।

आदिवासी समाज जब अपने ऊपर हुए जुल्म का विरोध करता है तो एक झटके में ही उन्हें उपद्रवी और नक्सलवादी करार कर दिया जाता है। नक्सलवाद के नाम पर जाने कितने ही अपने हक के लिए लड़ते निर्दोषों को अपराधी मान लिया जाता है। 'ऑपरेशन जोनाकी' कहानी में चिन्मय के साथ भी यही हुआ। पहले अनिमेष दा भी चिन्मय को अपराधी समझते थे परन्तु जब वे उसे अपने घर ले आए तो उन्हें पता चला कि वह बिल्कुल निर्दोष है परन्तु फिर भी उसकी गिरफ्तारी कर ली जाती है। इसी तरह से जब व्यवस्था देखती है कि सत्येन जैसे प्रतिवादी युवा के नेतृत्व में किस तरह से जोनाकी गाँव के आदिवासी सचेत हो रहे हैं तो आनन-फानन में सत्येन को नक्सलवादी घोषित कर उसका एनकाउंटर करने की तैयारी कर लेती है। जोनाकी गाँव में जब अनिमेष दा सत्येन को पकड़ने जाते हैं तो उन्हें लगता है कि एक बार फिर चिन्मय वाली घटना को दोहराया जा रहा है। नक्सलवाद के नाम पर व्यवस्था आदिवासी विद्रोह को दबाने की कोशिश करती है। अनिमेष दा इस बात को भली प्रकार समझते हैं। वे आदिवासियों के अपने हक के लिए आवाज उठाने का समर्थन करते हैं। अनिमेष दा पुलिस अफसर हैं। वे व्यवस्था के भीतर हैं, व्यवस्था के पुर्जे हैं। इसलिए वे व्यवस्था की खामियों को बखूबी जानते हैं। वे कहते हैं, "ये वन विभाग के कुछ भ्रष्ट कर्मी और कुछ वैसे ही भ्रष्ट महाजन, अफसर, जोतदार और इनके गुर्गे यही हैं न आपके शांतिप्रिय प्रतिष्ठित नागरिक...? आखिर ये त्रस्त क्यों हैं उन भूमिहीन और चासा और आदिवासियों से? गाँव की दस लाइसेंस शुदा और बीस अवैध बंदूकें तो इन्हीं के पास हैं। गाँव की 80 प्रतिशत जमीन, तालाब, बाग-बगीचे भी इन्हीं के हैं। गाँव में जब भी कोई मारा-पीटा गया तो वह उस दूसरे भूमिहीन तबके का रहा, बलात्कार भी हुए तो उन्हीं पर। सत्येन का कसूर सिर्फ यही है कि ये गूँगे अब बोलने भी लगे हैं, सरकार क्या नहीं चाहती कि वे बोलें? आज वे अपने अधिकारों, भूमि, जंगल, मजदूरी और अस्मिता के लिए खड़े होने लगे हैं तनकर, सरकार क्यों नहीं चाहती कि वे खड़े हों तनकर?"[6] इस प्रकार संजीव व्यवस्था का बिना सोचे समझे विद्रोह करते और अपने हक के लिए आवाज उठाते आदिवासियों पर नक्सलवादी का तमगा लगाने के लिए निंदा करते हैं।

अनिमेष दा के माध्यम से संजीव ने व्यवस्था के भीतर काम कर रहे व्यक्ति से ही व्यवस्था की आलोचना करवाई है। अंतत: उनकी विभाग के प्रति जिम्मेदारी उनके व्यक्ति होने के प्रति जिम्मेदारी से हार मान जाती है। आदिवासियों को उपद्रवी बताकर उन पर कार्यवाही करने वाले 'ऑपरेशन जोनाकी' को अंजाम देने की तत्परता को देखकर अपने साथी अफसर से अनिमेष कहते है, "यह तत्परता उस समय क्यों नहीं दिखाई गयी, जब सरकार की तय मजदूरी माँगने पर इन्हें पीटा जा रहा था, जब नए एक्ट की आड़ लेकर ठेकेदारों के खरीदे हुए वन-विभाग वाले इनके परम्परागत जीने के अधिकार, इनके जंगल से इन्हें वंचित कर रहे थे, जब इनकी अर्जियों पर अधिकारी कान में तेल डाले पड़े थे।"[7]

बहरहाल संजीव ने अपने कथा साहित्य में विभिन्न आदिवासी आंदोलनों को आधार बनाया है जिनमें से एक है- नक्सलवादी आन्दोलन। नक्सलवादी आन्दोलन का उदय 14 मई 1967 को पश्चिम-बंगाल में साहूकार, सरकार, जमींदार के विरोध में हुआ था। इस आन्दोलन को समझने के लिए हमें इसकी तहों को खोलने की जरूरत है। प्रश्न यह उठता है कि आदिवासी नक्सली बनने पर मजबूर क्यों होता है? संजीव अपने लेखन में नक्सलवाद के इन्हीं कारकों पर विचार-विमर्श करते हैं और नक्सलवादी आन्दोलन के कारण, परिणाम और आन्तरिक अंतर्विरोधों पर चर्चा करते हैं। संजीव ने नक्सलवादी आन्दोलन के प्रति अपने विचारों को कुछ इस तरह प्रकट किया है- "मैं आन्दोलन के सात्विक और निस्वार्थ विचारों का कायल था। परोक्ष रूप से काफी दिनों तक और आज भी मुझे ये विचारधारा प्रभावित करती है। यहाँ पर दु:ख, कातरता और सर्वांगीण मुक्ति की कामना मुझे ऐसे आंदोलनों से जोड़ती थी....नक्सलवाद के पवित्र मानवीय भाव से मैं अलग नहीं हूँ। लेकिन उसके भटकाव पर मैंने ऊँगली जरूर रखी।"[8]

संजीव अपने कथा साहित्य के माध्यम से दिखाते हैं कि नक्सलबाड़ी आन्दोलन के लिए कहीं न कहीं व्यवस्था जिम्मेदार है। जब आदिवासी या आदिवासी हितैषी व्यक्ति को अत्याचार और शोषण से बचने का कोई तरीका नहीं मिलता तो वह मजबूरीवश नक्सलवाद का दामन थाम लेता है। 'अपराध' कहानी में संजीव ने दिखाया है कि किस तरह संघमित्रा जैसी मेडिकल की मेधावी छात्रा नक्सलवादी बनने के लिए मजबूर होती है और व्यवस्था के हाथों कत्ल कर दी जाती है। संजीव प्रश्न खड़ा करते हैं कि क्या वास्तव मे संघमित्रा अपराधी है? यह फिर यह व्यवस्था अपराधी है जो उसके इस हश्र का सबब बनती है।

इस प्रकार संजीव आदिवासी समाज के विद्रोह के विभिन्न स्वरूपों को भी अपने कथा साहित्य के माध्यम से पकड़ते हैं। वर्तमान समय में आदिवासी समाज अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हो रहा है। वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहा है। अत: अब आदिवासियों को बहकाना और उनका शोषण करना इतना आसान नहीं है। अब तक दूब समझ कर पैरों तले कुचला जाने वाला यह वर्ग अब इन्हें कुचलने वाले पैरों में काटों की तरह चुभने लगा है।

सन्दर्भ सूची :

1. मुंडा रामदयाल, आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल, प्रकाशन संस्थान, 2002
2. संजीव, पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर- 334033, संस्करण-2016, पृष्ठ- 73
3. संजीव, धार, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपुरी, दिल्ली-110051, पहला पेपरबैक संस्करण- 2018, पृष्ठ-165
4. लुगुन अनुज, पक्षधर पत्रिका, जुलाई 2018 से जून 2019, पृष्ठ- 362
5. संजीव, पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर- 334033, संस्करण-2016, पृष्ठ- 15
6. संजीव, संजीव की कथा यात्रा: पहला पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण- 2008, पृष्ठ- 308-309
7. वही, पृष्ठ- 308
8. वही, पृष्ठ- 88

"अमृतलाल नागर के कथा साहित्य में ब्रज लोक संस्कृति की झलक"

डॉ० राधा भारद्वाज

सहायक प्राध्यापक, हिंदी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहाबाद, आगरा

सारांशः

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम उपन्यास है। सामाजिक जीवन को हुबहू रूप में उतारने वाला उपन्यास ही है। यदि पद्यात्मक महाकाव्य को जीवन का प्रतिबिम्ब कहें तो छंद व तुक के नियम, भावात्मक विन्तन और विचार अवरोधक होते हैं। मानव जीवन की सम्पूर्णता को अपने कलेवर में खींचने वाली उपन्यास विधा मनुष्य की गहराइयों तक प्रवेश कर क्रियाओं, घटनाओं, परम्परा, संस्कारों को सहज ही विद्या में उड़ेल देती है। उपन्यास तभी लोकप्रियता को प्राप्त करते हैं जब उनमें जनजीवन की निकटता व सहजता हो। इसी कारण प्रेमचंद जी उपन्यासों को मानव जीवन का चित्र कहते थे और इसी कारण उनके साहित्य को मानव जीवन का चितेरा कहा जाता है। अमृतलाल नागर भी उसी परम्परा के उपन्यासकार हैं। नागर जी के उपन्यासों में भी ब्रज लोक संस्कृति की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

प्रस्तावना :

अमृतलाल नागर आंचलिकता के चितेरे कहे जाते हैं। नागर जी ने आंचलिकता के साथ सम्पूर्ण लोक को अपने साहित्य में प्रतिविम्बित किया है। चाहे वह लखनऊ का चौक हो या मथुरा का परिवेश हो। लोक को एक व्यापक रूप देकर समाज का यथार्थ चित्रण किया है। नागर जी के तीन उपन्यास 'बूँद और समुद्र', 'शतरंज के मोहरे', एवं 'अमृत और विष' में लखनऊ की संस्कृति पर आधारित है। नागर जी के उपन्यासों में लोक जीवन की संस्कृति, अतीत, वर्तमान संस्कार एवं परम्परायें, विश्वास व आदर्श भाषा को चित्रित किया है। नागर जी ने 'बूँद और समुद्र' में लोक जीवन, संस्कृति, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार आदि को अभिव्यक्त किया है।

विचार-विमर्श :

हमारी ब्रज संस्कृति बहुमूल्य है। संस्कृति शब्द अपने में अति व्यापक व गहन है। इस कारण सांस्कृतिक एकता संस्कृति का प्रमुख आधार है। ब्रज संस्कृति के कुशल पारखी नागर जी ने ब्रज लोक संस्कृति के चित्रांकन में अपनी कुशलता का परिचय दिया है। जिसे नागर जी ने अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। नागर जी ने 'नैमिष आन्दोलन' को एकता का शुरूआती आन्दोलन माना है। उनका कथन है कि 'नैमिष आन्दोलन' को ही मैंने वर्तमान भारतीय या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करने वाला माना है। वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड, उपासनावाद, ज्ञान मार्ग आदि का अन्तिम रूप से समन्वय नैमिषारण्य में हुआ है। अवतारवाद रूपी जादू की लकड़ी घुमाकर परस्पर विरोधी संस्कृतियों को घुला-मिलाकर अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का उदय नैमिषारण्य में हुआ।

नागर जी ने लोक संस्कृति की एकता की खोज के लिए नैमिष आन्दोलन 'मानस का हंस' व 'खंजन नयन' को आधार बनाया है। संकीर्ण संस्कृति से व्यक्ति अवनति के गर्त में गिर सकता है। इस बात का ज्ञान साहित्यकार को अवश्य ही था। अमृत और विष

उपन्यास में नागर जी ने इन साम्प्रदायिक दंगों पर टिप्पणी करते हुए कहा है-"ये हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा तो हमने सिर्फ यहीं शहर में ही आकर देखा, हमारे गाँव वालों पर कोई हमला करता है तो हिन्दू-मुसलमान सब साथ होते हैं। दो गाँवों की लड़ाई होती है. हिन्दू-मुसलमान की नहीं है। संस्कृति व्यक्ति को एकता का पाठ तो पढ़ाती है। साथ ही अन्याय के विरुद्ध सजग होने में भी उसका सहयोग करती है। एक स्थान पर वे दु:खी होकर कहते हैं- "राम भद्र आप साक्षी हैं, मैंने इस मस्जिद से अपने में कभी कोई दुर्भाव नहीं रखा। प्रजा भूमि इस रूप में भी पूज्य है। अब भी वहाँ निर्गुण निराकार परब्रह्म के प्रति ही माथा झुकाया जाता है रामानुजीय मठ से हटने पर मैं यही सोने आता था, तब में फकीर था, अब हिन्दू हो गया। हे राम जी, इस अन्याय को मिटाने के लिए एक बार आप फिर अवतार लीजिए।"

नागर जी मानते हैं कि ब्रज संस्कृति में अनेक मत-मतांतरों का समन्वय यह है। इसी कारण उन्होंने 'भूख', 'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' में जीवन के उपन्यास लिखने वाले नागर जी ने 'खंजन नयन', 'मानस का हंस' में सामाजिक, सास्कृतिक व धार्मिक, आर्थिक राजनैतिक स्थिति का वर्णन कर एक नवीन वातावरण की सृष्टि की है। नागर जी मानते थे कि धार्मिक भावना मनुष्य के लिए हितकारी है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में नागर जी ने धर्म को मानव हित के लिए आवश्यक माना है। "वारद और भार्गव एक ऐसी भक्ति भावना जगा रहे थे जिसमें ईश्वर और राष्ट्र में नहीं के बराबर अन्तर रह जाता है। भक्ति विराट् के प्रति समर्पित होकर मानवता का नया और उच्च आदर्श स्थापित कर रही थी।"

इसी उपन्यास में व्यास सीमा हुति धर्म की और स्पष्ट व्याख्या करते हुए नागर जी कहते हैं- 'भजन से भक्ति जागती है। तप और भय से ज्ञान जागता है और भक्ति भी। अत: भक्ति ज्ञान और धर्म तीनों का उक्ति समन्वय ही लोक धर्म है। हमें इसी सिद्धान्त को लेकर धर्म मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए। धर्म की आड़ में फैले आडम्बरों का विरोध कर वे अपनी धार्मिक भावना को व्यक्त करते हैं। इसी कारण 'बूँद और समुद्र' उपन्यास की ताई के द्वारा धर्म के नाम पर किये गये टोने-टोटके, जादू-मंतर आदि का विरोध कर उनका कहना है-'हमारा सनातन धर्म उस हिजड़े की तरह है जो नाक पर उंगली रखकर दीदे मटकाते हुए अपने मानने वालों से कहता है कि निगोड़ो मुओ। मुझे छूना मत मैं बड़ी पाक-साफ हूँ।"

अमृतलाल नागर जी मानते हैं कि धार्मिक भावना में मानव कल्याण निहित है- "अनाचारी, आततायी, शासक से संतृप्त निरीह प्रजा की सुरक्षा हेतु किया जाने वाला आक्रमण ही धर्म है। जहाँ धर्म है वहीं स्वर्ग भी होता है।" पापी को सदा दण्ड मिलना ही चाहिए। 'मानस का हंस' के तुलसीदास एक अत्याचारी ब्राह्मण के बारे में यह कहने से नहीं चूकते कि श्मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र' ने भी ब्राह्मण रावण को मारा था। असुर धर्मी अपना वर्ण खो देता है। पापी सदा दण्ड के योग्य है। इस तरह के नागर जी ने धर्म की संकीर्ण व्याख्याओं से ऊपर उठकर उसमें सुधार लाने का प्रयत्न किया है। एक कुशल रचनाकार की यही विशेषता होती है कि वह समाज की धुंधली तस्वीर को स्पष्ट करता है। सत्य से अवगत कराता है। समाज को अलग-अलग ढंग से विश्लेषित करता है।

समाजोद्देश्य परम्परा के प्रति भावना हस्ताक्षर अमृतलाल नागर मानवीय संवेदनाओं से पूरी तरह से उनका मानना है कि व्यक्ति को समाज से अलग करके व समाज को व्यक्ति से अलग करके देखना संभव ही नहीं है, क्योंकि दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं- मनुष्य का आत्मविश्वास जगाना चाहिए। उसकी जीवन में आस्था जगानी चाहिए। मनुष्य को एक-दूसरे के सुख-दु:ख में अपना सुख-दु:ख मानना चाहिए। व्यक्ति के विचारों में भेद हो सकता है। विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दु:ख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे। जैसे- 'बूंद' में श्समुद्रश समाया रहता है।"

नागर जी सामाजिक मतभेद को भी बुरा नहीं मानते थे, क्योंकि उनका मानना था कि मतैक्य समाज में गूढ़ता के जाल को बाँधता है व मतभेद स्वरूप विकास की ओर ले जाता है। बूँद और समुद्र में वे लिखते हैं व्यक्ति और समाज बूँद और समुद्र की तरह ही भिन्न-भिन्न है। दोनों की स्थिति सुरक्षित रखने के लिए मैं सही संतुलन चाहता हूँ और अपनी इस चाहना से अटूट रूप से बंधा हुआ हूँ।

नागर जी व्यक्तिवाद की बाधा को अच्छी तरह समझते थे। इसी कारण उनका कहना है कि खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुयी जा रही है, लेकिन यह खुदी है क्या और क्यों? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप से क्यों नहीं देखता? दुनिया से अलग रहकर मैं अपनी असलियत का अनुभव ही क्यों कर सकता हूँ? सम्मिलित रूप से समाज को प्रत्येक क्रिया व प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझ पर पड़ता है और मुझे चौतन्य बनाता है। मैं अपने हर अच्छे और बुरे काम का निर्णय समाज

के तराजू पर ही करता हूँ। अपने हर काम में मनुष्य को दुनिया को रूख बेरुख की ही फिक्र रहती है, फिर वह अलग कैसे हो जाता है? क्यों हो जाता है?"

नागर जी लोक संस्कृति के पुजारी थे। उनके साहित्य में ब्रज संस्कृति की छाप पूर्णत: ही समाई हुयी है। लेखक की इतिहास में रुचि की भावना ने मोहन जोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त अवशेषों का नगर निर्माण की ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रिया का क्रमबद्ध इतिहास खोज निकाला है। अवध के इतिहास के बारे में तो ये इतिहासकारों और विशेषज्ञों से भी अधिक जानकारी रखते हैं। भारत के अंग्रेजी शासन के इतिहास में स्वतंत्रता संग्राम (1857) पर 'गदर के फूल' नामक एक पुस्तक भी इन्होंने लिखी है- जिसमें गदर से सम्बन्धित एक प्रमाणित और अनुपलब्ध साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। आध्यात्मिक व धार्मिक विचार ईश्वर का नाम स्मरण मनुष्य को आस्तिक बल व संतोष प्रदान करता है कि कर्तव्य होने पर ईश्वर का नाम ही शांतिदायक होता है। ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है। हम धर्म के अनुयायी बनकर ही ईश्वर को प्रणाम कर सकते हैं, भज सकते हैं। भारतीय धर्म साधना में देवी-देवताओं का पूजन, पूजा की पद्धतियों, कर्मकाण्डों और अनुष्ठानों का आयोजन बताया है। एकदा नैमिषारण्ये में नागर जी ने भक्ति तत्त्व का राष्ट्रीयकरण करते हुए समस्त पूजा पद्धतियों को राष्ट्रीय मानते हुए समग्र भारत राष्ट्र की सुषुप्तावस्था से जाग्रति का संदेश दिया है। आधुनिक युग के अनुरूप धर्म और अध्यात्म की व्याख्या करते हुए नागर जी ने तैतीस करोड़ देवी-देवताओं से जुड़ी हुई मनुष्य की चेतना को मुक्त करके आत्मविश्वास पूर्ण युग धर्म को समझने की आवश्यकता पर बल दिया है।

ब्रज संस्कृति जीवन को जीने व संघर्ष करने में विश्वास रखती है। इसलिए जीवन का वरण कर भूख, मृत्यु, बीमारी, अपमान, अभाव और कष्ट झेलते हुए भी मनुष्य अपने जीवन के अधिकार को पाने के लिए संघर्ष करता है। "'भूख' उपन्यास का पाँचू मृत्यु से लडकर अपने अधिकार को जीता है।" 'बूँद और समुद्र' की वन कन्या विश्वास के बल पर अपने जीवन को जीती है। "अमृत और विष'' का अरविन्द शंकर कहता है- 'मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा, बन्धन ही मेरी मुक्ति है। इस संसार में ही प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है।"

निष्कर्ष :

नागर जी ने अपने उपन्यास साहित्य में आशावादी एवं आस्थावादी विचारों को स्थान दिया है। वे मानते हैं कि विपत्तियों, कठिनाईयों और अभावों से जूझते हुए ही आशा की किरण व्यक्ति को जीवित रखती है। रात के बाद दिन अवश्य आता है। इसी उजाले की बाट में मनुष्य बैठा रहता है।" 'मानस का हंस' में नागर जी का यही आशावादी दृष्टिकोण उजागर हुआ है- आज के हारे-थके, हर तरह से टूटे मुझे हुए जनजीवन को इस आस्था से पूर्ण कर देना चाहता हूँ कि न्याय, धर्म और त्याग भी इस जग में विद्यमान है। कोई चिंगारी को छोटा न समझे। वह किसी भी समय अनुकूल परिस्थिति पाकर अवश्य ही महाज्वाला बन जायेगी। राम थे राम हैं और राम सदा रहेंगे और इस पृथ्वी पर राम राज आकर रहेगा।"

इस प्रकार अमृतलाल नागर के कथा साहित्य में अभिव्यक्त ब्रज संस्कृति का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि नागर जी ने व्यापक जीवन फलक व शैली वैशिष्ट्य के कारण साहित्य को एक नई दिशा दी है। उनका कथा साहित्य ब्रज संस्कृति पर आधारित होने के कारण आचार-विचार, आदर्श व मान्यताओं को सामाजिक परिवेश में अपने जीवन-दर्शन के साथ अंकित किया है।

संदर्भ :

1. अमृतलाल नागर, 'एकदा नैमिषारण्ये', पृ.36
2. अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष', पृ. 516
3. अमृतलाल नागर, 'मानस का हंस', पृ. 296
4. अमृतलाल नागर, 'एकदा नैमिषारण्ये', पृ.३17
5. अमृतलाल नागर, 'एकदा नैमिषारण्ये', पृ.279
6. अमृतलाल नागर, 'बूँद और समुद्र', पृ-317

7. अमृतलाल नागर, 'एकदा नैमिषारण्ये', पृ.135
8. अमृतलाल नागर, 'मानस का हंस', पृ.320
9. अमृतलाल नागर, 'बूँद और समुद्र'. पृ.876
10. 'अनेकता', अक्टूबर, पृ.6
11. अमृतलाल नागर, 'नद्यकाल', पृ. 164.165
12. अमृतलाल नागर, 'बूँद और समुद्र', पृ. 534
13. अमृतलाल नागर, एकदा नैमिषारण्ये', पृ.325
14. अमृतलाल नागर, श्एकदा नैमिषारण्ये', पृ. 582
15. अमृतलाल नागर, 'भूख', पृ. 236
16. अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष', पृ. 648
17. अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष', पृ. 430
18. अमृतलाल नागर, 'मानस का हंस', पृ. 418